CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीमद्देवीभागवतम्

भाषाटीकासहितम्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीमद्देवीभागवत भाषा टीका

टीकाकार पाण्डेय रामतेज शास्त्री

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(प्राच्यभारती के प्रकाशक एवं वितरक

३८ यू० ए०, जवाहरनगर, बंगलो रोड

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

प्रमुख वितरक :

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९

वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०४

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के० ३७।११७ गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९

वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३३३४३१

कतिपय पुराण-ग्रन्थ

श्रीमद्भागवतम् 'श्रीधरी'-'वंशीधरी'-टीकोपेतम् सम्पूर्ण : १-२ भाग मूल्य { ३०००-०० सजिल्द, २८००-०० पत्राकार	**श्रीमद्भागवतम्** 'अन्वितार्थप्रकाशिका'-टीकोपेतम् मूल्य { ८००-०० सजिल्द, ७५०-०० पत्राकार	**श्रीमद्भागवतम्** 'श्रीधरी'-टीकोपेतम् मूल्य { ६००-०० सजिल्द, ५५०-०० पत्राकार

श्रीमद्देवीभागवतम् 'पीताम्बरा'-भाषाटीकासहितम् मूल्य { ७५०-०० सजिल्द, ७००-०० पत्राकार	**हरिवंशपुराणम्** 'नारायणी'-भाषाटीकासहितम् मूल्य { ६००-०० सजिल्द, ५५०-०० पत्राकार	**श्रीमद्भागवतम्** 'चूर्णिका'-टीकोपेतम् मूल्य { ६००-०० सजिल्द, ५५०-०० पत्राकार	**श्रीशिवमहापुराणम्** 'शिवा' भाषाटीकासहितम् मूल्य { ८००-०० सजिल्द, ७५०-०० पत्राकार	**श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्** 'रामाभिनन्दिनी'-भाषाटीकासहितम् मूल्य { 750.00 सजिल्द, ५५०-०० पत्राकार
श्रीमद्देवीभागवतम् मूलमात्रम् मूल्य १५०-०० (सजिल्द)	**आनन्दरामायणम्** 'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकाहितम् मूल्य 300.00 (सजिल्द)	**योगवाशिष्ठ-महारामायणम्** भाषाटीकासहितम् सम्पूर्ण : १-२ भाग मूल्य ७५०-००	**गर्गसंहिता** 'प्रियंवदा'-भाषाटीकासहितम् मूल्य ४००-०० (सजिल्द)	**श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्** मूलमात्रम् मूल्य 250.00 (सजिल्द)

श्रीमद्भागवतम् 'सामयिकी'-भाषाटीकासहितम्	{ सजिल्द ६००-००, पत्राकार ५५०-००	© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन	मुद्रक : ए० के० लिथोग्राफर, दिल्ली	पुनर्मुद्रित संस्करण 2001 ई.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

।। श्रीः ।।

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
१७

****

श्रीमद्देवीभागवतम्

भाषाटीकासहितम्

प्रमोद कुमार दीक्षित
राजगुरु मठ
शिवाला घाट
वाराणसी

टीकाकारः
श्रीपण्डितरामतेजपाण्डेयः

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए, जवाहरनगर, बंगलो रोड, दिल्ली ११०००७
पो. बा. नं. २११३ दूरभाष : २३६३९१

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मूल्य : सजिल्द 800.00, अजिल्द 750.00

पुनर्मुद्रित संस्करण 2001ई.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्री नवदुर्गादेविभ्यो नमः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीकृष्णद्वैपायन-वेदव्यासविरचितं—

श्रीमद्देवीभागवतं महापुराणम्

पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतया 'पीताम्बरा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम् ।

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान —३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड — दिल्ली ११०००७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाङ्मुखम्

भगवति जगदम्बिके !

पिछले कई वर्षोंसे आपके परम प्रिय महाग्रन्थ 'श्रीदेवीभागवत भा० टी०' के प्रकाशनकी कामना थी। अनेक बार अपनी यह साध पूरी करनेके लिए आगे बढ़ा, किन्तु किसी न किसी कारणवश रुक जाना पड़ा। कभी कोई घरेलू समस्या आड़े आयी तो कभी किसी अन्य ग्रन्थने बीचमें कूदकर बरबस मुझसे अपना प्रकाशन करा लिया। कभी किसी मित्रने इस ग्रन्थके प्रकाशनके प्रति हतोत्साह किया तो कभी स्टाकके किसी ग्रन्थने सहसा चुककर मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। इस प्रकार वर्षों यह आँखमिचौनीका खेल चलता रहा। किन्तु यह काम न होनेकी कसक बराबर बनी रही। गत वर्ष तो इसके लिए हृदयमें इतनी विकट टीस उठी कि मैं भागकर आपके परम धाम ज्वालामुखी और काँगड़ेकी भगवती वज्रेश्वरी देवीकी चरणशरणमें जा पहुँचा। दोनों धामोंमें इस ग्रन्थका पारायण करके गद्गद कण्ठसे चीख उठा—'माता! क्या कारण है कि अनायास अनेकानेक महाग्रन्थोंका प्रकाशन करके भी मैं इस पुनीत महापुराणके प्रकाशनमें क्यों नहीं सफल हो पा रहा हूँ? क्या मैं इसके अयोग्य हूँ? जब भगवान् श्रीकृष्णके लीलामय महापुराण श्रीमद्भागवत तथा भगवान् रामके पुनीत इतिहाससे ओत-प्रोत 'श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण' एवं 'आनन्दरामायण'में कोई अड़चन नहीं पड़ी, तब 'श्रीदेवीभागवत भा० टी०'के ही प्रकाशनमें बार-बार क्यों बाधा पड़ रही है? क्या मुझसे कोई बहुत बड़ी चूक हो गयी है? या कोई पूर्वजन्मका दुष्कृत बाधक बना हुआ है? कुछ भी हो, यदि आप मुझपर दाहिन-दयाल हो जायँ तो मेरे सभी अपराध और सारी बाधायें दूर हो जायँ और मैं चटपट अपनी चाह पूर्ण कर लूँ। महिमामयी माँ! क्यों नहीं मेरे ऊपर तनिक कृपालु हो जातीं? मेरी भूलों और मेरे अपराधोंको आप कहाँतक गिनेंगी? वे तो अनन्त हैं। आप मेरे गुनाहोंकी ओर न निहारकर अपने मातृत्वकी ओर निहारिए—'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।' मैं आँखें मूँदकर अश्रुविजडित कण्ठ द्वारा भगवती वज्रेश्वरीसे ऐसा मनुहार कर ही रहा था कि श्वेतवस्त्रधारिणी एक सप्तवर्षीया बालिका मेरे सम्मुख आ खड़ी हुई और कहने लगी—'बाबा! बड़ी भूख लगी है। कुछ खिलाइए।' उसकी मधुर ध्वनि सुनते ही आँखें खुल गयीं। उस बालिकाको देखकर ऐसा भान हुआ कि जैसे जगदम्बाने मेरी अर्जी स्वीकार कर ली और मेरी आन्तरिक प्रार्थनापर रीझकर वे स्वयं मेरे सम्मुख आ उपस्थित हुई हैं। बालिकासे मैंने कहा—'देवी! ठहरो, अभी खिलाता हूँ।' यह कहकर मैं अपनी पोथी समेटने लगा। लेकिन यह क्या, पोथी बाँधकर जब निगाह ऊपर उठायी तो एककी जगह समान वय और एकजैसी वेष-भूषासे सम्पन्न नौ बालिकायें मेरी ओर एकटक निहारती दीखीं। यह देखकर मन बाँसों उछल पड़ा कि मुझपर प्रसन्न होकर नवों दुर्गायें सम्मुख आ खड़ी हुई हैं। तत्काल मैंने पास ही बैठे हुए एक किशोर बालकको भेजकर गरम-गरम जलेबी और दूध मँगवाया। तत्पश्चात् उस बालकके साथ नवों कुमारियोंका गन्ध-पुष्पाक्षतसे पूजन करके दूध-जलेबी खिलायी और भोजनोपरान्त दक्षिणा देकर उन्हें बिदा किया। वे नवों बालिकायें जाते समय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परम प्रसन्न थीं और जैसे उनके रोम-रोमसे आशीर्वादकी वर्षा हो रही थी। उसके बाद मैं मानों कृतार्थ होकर काशी लौट आया और पूर्ण तन्मयताके साथ श्रीदेवीभागवतके प्रकाशनके काममें जुट पड़ा। जो काम वर्षोंसे नहीं हो पा रहा था, अब वह महीनोंमें सम्पन्न होकर आपके सम्मुख उपस्थित है। माता! यह महाग्रन्थ कैसा तैयार हुआ है, इसकी परख या तो आप कर सकती हैं या आपके वे भक्त जो मधुकरकी भाँति अहर्निशि आपके चरणारविन्दका मकरन्द पान करते रहते हैं। हाँ, मैं यह कह सकता हूँ कि आपने मुझे जैसी बुद्धि और जैसी सूझ-बूझ दी थी, उसके अनुसार मैंने पूरी लगनके साथ यह काम किया है—कहींसे रत्तीभर भी कोई कोताही नहीं की है।

त्वदीयं वस्तु देवेशि तुभ्यमेव समर्पये।
गृहाण सुमुखी भूत्वा प्रसीद परमेश्वरि॥

पण्डित-पुस्तकालय काशी
ज्येष्ठी पूर्णिमा
सं० २०२६

वशंवद
पाण्डेय रामतेज शास्त्री

श्रीमद्देवीभागवतनवाहपारायणक्रमः

प्रथमदिने—आदितस्तृतीयस्कन्धस्याध्यायत्रयपर्यन्तम् (पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)

द्वितीयदिने—चतुर्थस्कन्धस्याष्टमाध्यायान्तं यावत् (पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)

तृतीयदिने—पञ्चमस्कन्धस्य दशाध्यायान्तं यावत् (पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)

चतुर्थदिने—षष्ठस्कन्धस्याष्टादशाध्यायपर्यन्तम् (पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)

पञ्चमदिने—सप्तमस्कन्धस्याष्टादशाध्यायान्तम् (एकत्रिंशदध्यायाः ३१)

षष्ठदिने—अष्टमस्कन्धस्य सप्तदशाध्यायान्तम् (एकोनचत्वारिंशदध्यायाः ३९)

सप्तमदिने—नवमस्कन्धस्याष्टाविंशतितमाध्यायान्तम् (पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)

अष्टमदिने—दशमस्कन्धस्य त्रयोदशाध्यायपर्यन्तम् (पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)

नवमदिने—द्वादशस्कन्धस्यान्तं यावत्पारायणम् (अष्टत्रिंशदध्यायाः ३८)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयानुक्रमणिका

अध्याय विषय पत्र

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य

१ सूत-शौनकसंवादके प्रसङ्गमें इतिहासपूर्वक देवी-भागवतके माहात्म्यका वर्णन १४
२ खोये हुए श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए वसुदेवजीका श्रीदेवीभागवतश्रवण १९
३ श्राद्धदेवनामक मनुका वृत्तान्त, सुद्युम्नका स्त्रीत्व और देवीभागवतके श्रवणसे पुनः पुंस्त्वप्राप्ति २४
४ ऋतवाङ्मुनिका इतिहास २८
५ श्रीदेवीभागवत-महापुराण श्रवणविधि ३६

प्रथम स्कन्ध ४५

१ श्रीदेवीभागवतका पुराणत्वादि-निर्णय, मंगलाचरण और ऋषियोंका सूतसे प्रश्न ४६
२ श्रीदेवीभागवतके अध्यायों तथा श्लोकोंकी संख्या ४८
३ पुराण, उपपुराण और व्याससंख्या ५१
४ शुकदेवकी जन्मगाथा ५५
५ हयग्रीवावतारकी कथा ५९
६ मधु-कैटभका युद्धोद्योग ६९
७ मधु-कैटभसे भयभीत ब्रह्माजीके द्वारा परा शक्ति अम्बिकाकी स्तुति ७२
८ आराध्यनिर्णय ७७
९ विष्णुभगवानके हाथों मधु-कैटभका वध ८१
१० शिवजीके वरदानसे व्यासको पुत्रप्राप्ति ८७
११ बुधकी उत्पत्तिका वृत्तान्त ९०
१२ राजा पुरूरवाकी जीवनी ९७
१३ पुरूरवा और उर्वशीका चरित्र १०२
१४ श्रीशुकदेवका जन्म १०४
१५ श्रीशुकदेवका वैराग्य और भगवतीका विष्णु-भगवान्को ज्ञानोपदेश ११०
१६ व्यासजीका शुकदेवको देवीभागवत पढ़ाना ११५
१७ राजा जनककी परीक्षाके लिए शुकदेवका मिथिलागमन ११९
१८ राजा जनकका शुकदेवको ज्ञानोपदेश १२४
१९ श्रीशुकदेवका विवाह आदि १२९
२० शुकदेवके चले जानेपर व्यासका शोक १३४

द्वितीय स्कन्ध

१ मत्यगन्धाका वृत्तान्त १४२
२ पराशर ऋषि द्वारा मत्स्यगन्धासे व्यासजीका जन्म १४५
३ राजा शन्तनुका गंगाके साथ विवाह १४९
४ मर्त्यलोकमें अष्टवसुओंका आगमन १५४
५ राजा शन्तनुका सत्यवतीसे विवाह १५९
६ पाण्डवोंका जन्मवृत्तान्त १६४
७ व्यासका स्वजनोंको मृत कौरवोंको दिखाना १७०
८ यदुकुलका विनाश और राजा परीक्षितको शाप १७५
९ रुरुका वृत्तान्त और राजा परीक्षितका गुप्तगृहमें निवास १७९
१० तक्षक-कश्यपसंवाद तथा तक्षक नागका राजा परीक्षित्को काटना १८३
११ राजा जनमेजयका सर्पयज्ञ और आस्तीक मुनि द्वारा उसका निवारण १८८
१२ आस्तीक ऋषिका जीवनवृत्तान्त तथा देवीभागवतकी महिमा १९३

तृतीय स्कन्ध

१ राजा जनमेजयके प्रश्न तथा भुवनेश्वरी-निर्णय २०२
२ ब्रह्मादि देवताओंकी विमानयात्रा और विविध लोकोंका दर्शन २०५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय	विषय	पत्र
३	विमानस्थित देवताओंको देवीका दर्शन मिलना	२०९
४	विष्णुकृत देवीस्तोत्र	२१४
५	शिव तथा ब्रह्माजीके द्वारा देवीकी स्तुति	२१८
६	ब्रह्मा और विष्णुको भगवतीका ज्ञानोपदेश	२२३
७	तत्त्वोंका निरूपण	२२९
८	गुणोंका स्वरूप	२३४
९	गुणोंके लक्षण	२३८
१०	राजा सत्यव्रतकी कथा	२४२
११	सारस्वत बीजमन्त्रकी महत्ता	२४७
१२	अम्बायज्ञकी विधि	२५२
१३	भगवान् विष्णु द्वारा देवीयज्ञका अनुष्ठान	२५८
१४	शत्रुजित्सुदर्शनाख्यान एवं देवीकी महिमा	२६२
१५	युधाजित् और वीरसेनका युद्ध	२६६
१६	सुदर्शनका वध करनेके लिए युधाजित्का भारद्वाजके आश्रमपर जाना	२७१
१७	विश्वामित्रसे वार्ताके उपरान्त सुदर्शनको कामबीजकी प्राप्ति	२७६
१८	काशिराजकी पुत्री शशिकलाका स्वयंवर	२८१
१९	उस स्वयंवरमें सुदर्शनका आगमन	२८५
२०	राजाओंका परस्पर वाग्युद्ध	२८९
२१	सुदर्शनके साथ शशिकलाका विवाह	२९५
२२	पिता काशिराज द्वारा सुदर्शनको कन्यादान	२९९
२३	निराश राजाओंके साथ सुदर्शनका युद्ध और देवीकी सहायता	३०४
२४	दुर्गाजीका काशीमें स्थायी निवास	३०८
२५	अयोध्या और काशीमें दुर्गामन्दिरका निर्माण	३१२
२६	शारदीय नवरात्रका विधान	३१६
२७	कुमारी-पूजनविधि एवं सुशील वैश्यकी कथा	३२०
२८	रामचरितका वर्णन	३२५
२९	सीताहरण और रामका विलाप	३३०
३०	नारदजीका रामको नवरात्र व्रत करनेका परामर्श देना	३३४
	चतुर्थ स्कन्ध	
१	जनमेजयका कृष्णावतारसम्बन्धी प्रश्न	३४२
२	गहन कर्मगतिका निरूपण	३४५
३	च्यवन-सुकन्याविवाह	३५०
४	अधिकारारूढ़ पुरुषोंकी पापमें प्रवृत्ति	३५४
५	नर-नारायणकी तपस्या	३५८
६	नर-नारायणके पास अप्सराओंका जाना	३६२
७	अहङ्काररूपी बन्धनकी व्याख्या	३६६
८	महर्षि च्यवन द्वारा तीर्थमाहात्म्य-वर्णन	३७१
९	प्रह्लाद और नारायणका युद्ध	३७४
१०	महर्षि नारायणको शाप	३७९
११	मन्त्र लेनेके लिए शुक्राचार्यका शिवजीके पास गमन और विष्णु द्वारा शुक्रकी माताका वध	३८२
१२	भगवान् विष्णुको भृगुका शाप	३८७
१३	बृहस्पतिका शुक्ररूपसे दैत्योंको छलना	३९२
१४	शुक्राचार्यपर दैत्योंका अविश्वास	३९७
१५	इन्द्र एवं प्रह्लादमें देव-दैत्यसन्धि	४०१
१६	प्रत्येक मन्वन्तरमें भगवदवतारका वर्णन	४०७
१७	नारायणके आश्रमपर अप्सराओंका आगमन	४०९
१८	पापियोंके भारसे त्रस्त पृथिवीका देवलोकगमन	४१३
१९	देवताओं द्वारा शक्तिकी स्तुति	४१८
२०	वसुदेव-देवकीविवाह और महामायाकी महिमा	४२२
२१	वसुदेव-देवकीसंवाद तथा कंस द्वारा देवकीके अनेक पुत्रोंका वध	४२९
२२	देवताओंके अंशावतारकी कथा	४३३
२३	श्रीकृष्णके अवतारका वर्णन	४३७
२४	श्रीकृष्णचरित्र	४४१
२५	भगवती परा शक्तिकी सर्वज्ञता	४४७
	पञ्चम स्कन्ध	
१	विष्णुकी अपेक्षा शिवकी श्रेष्ठता	४५६
२	महिषासुरका जन्म और वरप्राप्ति	४६०
३	महिषासुरका देवताओंके साथ युद्ध	४६४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय	विषय	पत्र
४	देवसभामें युद्धसम्बन्धी मंत्रणा	४६८
५	देव-दानवसंग्राममें ताम्र असुरकी पराजय	४७२
६	देव-दानव-सेनापतियोंका युद्ध	४७७
७	देवताओंका परास्त होकर कैलास जाना	४८१
८	देवताओंके तेजसे देवीकी उत्पत्ति	४८५
९	देवताओंके द्वारा देवीकी स्तुति	४९१
१०	देवी और दैत्यके प्रधान मंत्रीका संवाद	४९६
११	दैत्योंकी मंत्रणा और ताम्रका रणस्थलको प्रस्थान	५०१
१२	महिषासुरके युद्धमंत्रिमण्डलका निश्चय	५०७
१३	देवीके हाथों बाष्कल तथा दुर्मुखका वध	५१२
१४	भगवती द्वारा ताम्र तथा चिक्षुरका वध	५१५
१५	देवीके हाथों असिलोमा और बिडालाक्षका वध	५१९
१६	देवी-महिषासुरसंवाद	५२४
१७	मन्दोदरीकी कथा	५२९
१८	देवीके हाथों महिषासुरका वध	५३४
१९	देवताओं द्वारा देवीकी स्तुति	५३९
२०	स्वातंत्र्यका प्रभाव	५४४
२१	शुम्भ-निशुम्भका तप करके स्वर्गपर विजय पाना	५४९
२२	हिमालयपर देवताओं द्वारा देवीकी स्तुति एवं उनका प्रादुर्भाव	५५३
२३	कौशिकी देवीका आविर्भाव और चण्ड-मुण्डकी ओरसे शुम्भको सूचना	५५९
२४	देवी-दूतसम्वाद	५६४
२५	भगवती द्वारा धूम्रलोचनका वध	५६८
२६	चण्ड-मुण्डका वध	५७३
२७	रक्तबीजका रणभूमिको प्रस्थान	५७८
२८	रक्तबीजका मूर्छित होना और मातृगणों द्वारा असुर-सेनाका संहार	५८३
२९	देवीके हाथों रक्तबीजका वध	५८८
३०	निशुम्भवधकी कथा	५९३
३१	शुम्भवधका वृत्तान्त	५९७
३२	राजा सुरथ और समाधि वैश्यकी कथा	६०३
३३	देवीमाहात्म्य और ब्रह्मा-विष्णुविवाद	६०८
३४	देवीकी आराधना तथा हवनविधि	६१३
३५	राजा सुरथ और समाधि वैश्यको देवीका दर्शन मिलना तथा वरप्राप्ति	६१७
	षष्ठ स्कन्ध	
१	त्रिशिरा और विश्वरूपके तपमें इन्द्रका विघ्न डालना	६२४
२	इन्द्र द्वारा त्रिशिराका वध	६२९
३	देवताओंके साथ वृत्रका युद्ध और इन्द्रकी पराजय	६३३
४	वृत्रको ब्रह्माजीसे वरप्राप्ति और देवताओंको पराजित करके उसका स्वर्गपर शासन	६३७
५	भगवान् विष्णुका वृत्रासुरके नाशका उपाय बताना और देवताओंको देवीसे वरप्राप्ति	६४२
६	इन्द्रका छलसे वृत्रासुरको मारना	६४८
७	वृत्रकी हत्यासे भयभीत इन्द्रका मानसरोवरके कमल-नालमें छिपना और नहुषका इन्द्रपद पाना	६५३
८	देवताओंका बृहस्पतिसे परामर्श	६५८
९	नहुषका पतन	६६४
१०	विविध प्रकारके कर्म	६६९
११	युगधर्म	६७२
१२	पृथ्वीतलके तीर्थ और उनका माहात्म्य	६७७
१३	वसिष्ठ-विश्वामित्रका कलह	६८३
१४	वसिष्ठके मैत्रावरुणि नामका कारण	६८७
१५	निमिका नेत्रकी पलकोंपर निवास	६९३
१६	हैहयवंशी क्षत्रियों द्वारा भार्गवोंका संहार	६९८
१७	एक ब्राह्मणीकी जाँघसे भार्गव विप्रकी उत्पत्ति	७०२
१८	शंकरजीके द्वारा लक्ष्मीको वरदान	७०८
१९	अश्वीरूपिणी लक्ष्मीको अश्वरूपधारी विष्णुसे पुत्रप्राप्ति	७१२
२०	अश्वीरूपधारिणी लक्ष्मीके पुत्रका वृत्तान्त	७१६
२१	एकवीरचरित्र	७२१
२२	राजकुमारी एकावलीका चरित्र	७२६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय	विषय	पत्र
४५	दक्षिणा देवीकी कथा	१२७३
४६	षष्ठी देवीकी कथा	१२८०
४७	मङ्गलचण्डीकी कथा	१२८६
४८	मनसादेवीकी कथा	१२९०
४९	आदि सुरभी देवीकी कथा	१३०२
५०	राधा और दुर्गाके चरित्र	१३०४
	दशम स्कन्ध	
१	स्वायम्भुव मनुका वृत्तान्त	१३१६
२	भगवतीका विन्ध्यगिरिपर गमन	१३१८
३	विन्ध्य द्वारा सूर्यका मार्गावरोध	१३२०
४	राजा वृषध्वज द्वारा देवीकी स्तुति	१३२२
५	देवताओं द्वारा विष्णुकी स्तुति	१३२३
६	अगस्त्य द्वारा देवीकी स्तुति करनेपर विन्ध्यकी वृद्धि रुकना	१३२५
७	अगस्त्यका विन्ध्यकी वृद्धि रोकना	१३२७
८	स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत मनुकी कथा	१३३०
९	चाक्षुष मनुकी कथा	१३३१
१०	सावर्णि मनुका चरित्र	१३३४
११	महाकालीकी कथा	१३३६
१२	महालक्ष्मी और महासरस्वतीकी कथा	१३३९
१३	नवमादि मनुओंकी कथा	१३४६

अध्याय	विषय	पत्र
	एकादश स्कन्ध	
१	सदाचारका वर्णन	१३६०
२	शौचाशौचका विचार	१३६४
३	स्नानादि विधि और रुद्राक्षधारणकी महिमा	१३६७
४	रुद्राक्षके प्रकार	१३७०
५	जपमालाके लक्षण	१३७४
६	रुद्राक्षमाहात्म्य	१३७७
७	रुद्राक्षके लक्षण और मन्त्रविन्यास	१३८१
८	भूतशुद्धि	१३८४
९	शिरोव्रतमाहात्म्य	१३८६
१०	शिरोव्रतविधि	१३९०
११	भस्मके तीन प्रकार और उनकी विशेषता	१३९३
१२	भस्म धारण करनेका फल	१३९५
१३	भस्मकी महिमा	१३९९
१४	भस्मधारीका महत्त्व	१४०१
१५	भस्म धारण करनेकी विधि	१४०६
१६	सन्ध्योपासनविधि	१४१६
१७	गायत्रीजपकी विवेचना	१४२५
१८	पूर्णोपचार आदिका वर्णन	१४२८
१९	मध्याह्नसन्ध्याविधि	१४३३
२०	सायंसन्ध्याविधि	१४३५

अध्याय	विषय	पत्र
२१	गायत्री-पुरश्चरणविधि	१४३९
२२	बलिवैश्वदेव और प्राणाग्निहोत्रविधि	१४४३
२३	प्राजापत्य आदि व्रतोंका वर्णन	१४४७
२४	उपद्रवोंकी शान्तिके लिए गायत्रीके विविध प्रयोग	१४५२
	द्वादश स्कन्ध	
१	नारदका सदाचारविषयक प्रश्न	१४६४
२	नारायण द्वारा गायत्रीका गुणगान	१४६५
३	गायत्रीका ध्यान और कवच	१४६७
४	गायत्री-हृदयन्यास	१४६९
५	गायत्रीस्तोत्र	१४७०
६	गायत्रीसहस्रनाम	१४७३
७	दीक्षाविधि	१४९४
८	देवताओंका गर्वध्वंस	१५०५
९	गौतम द्वारा असंख्य ब्राह्मणोंकी रक्षा और उनकी कृतघ्नतासे कुपित होकर शापदान	१५१२
१०	मणिद्वीपका वर्णन	१५२०
११	मणिद्वीपका वर्णन	१५२७
१२	मणिद्वीपका वर्णन	१५३५
१३	जनमेजयका अम्बायज्ञ तथा देवीभागवतकी महिमा	१५४१
१४	देवीभागवतकी फलश्रुति	१५४३

इति विषयानुक्रमणिका ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीमद्देवीभागवतपाठविधिः

दोनों नवरात्रोंमें तथा आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ एवं फाल्गुन शुक्लकी प्रतिपदासे नवमीतक इसके अनुष्ठानका विधान है। इसे 'नवाहयज्ञ' कहा जाता है। एतदर्थ कथा-स्थानकी भूमिका संशोधन-मार्जन करके स्तम्भादिसे मण्डित मण्डप बनाना चाहिये। मण्डपका स्थान शुद्ध तथा समतल होना चाहिये। उसका नाप १६ हाथ लम्बा-चौड़ा हो तथा उसे तोरण, कलश एवं ध्वजा-पताकासे मण्डित किया जाय। मण्डपके बीचमें चार हाथ लम्बी-चौड़ी तथा एक हाथ ऊँची वेदी होनी चाहिये। प्रतिपदाको प्रातः उठकर हृदय या शिरोदेशमें विद्यमान उज्ज्वल कमलके अन्तर्गत गुरुका ध्यान करना चाहिये। फिर शिखाके बीच इस प्रकार देवीका ध्यान करे—

"प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम्।
अन्तःपदव्यामनुसंचरन्तीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये॥ १॥

तत्पश्चात् किसी नदी, तड़ाग, सरोवर, पहाड़ी झील या झरने आदिमें स्नान करके नित्यकृत्य करना चाहिये। फिर भूतशुद्धि, मातृका-न्यास एवं हृल्लेखा-मातृका-न्यास करना चाहिये। इसकी विधि यह है कि मूलाधारमें 'ह'कार, हृदयमें 'र'कार, भ्रूमध्यमें 'ई'कार और मस्तकमें 'ह्रीं'कारका न्यास करे। फिर उपयुक्त ब्राह्मणोंका वरण करके वेदीपर सिंहासन रक्खे और क्षौम (रेशमी) वस्त्रसे अलंकृत एवं चार भुजाओंयुक्त जगदम्बिकाकी प्रतिमा स्थापित करे। उन्हें रत्नभूषण तथा मुक्ताहारादिसे विभूषित करे। चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण कराये या अठारह भुजावाली प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाके अभावमें 'नवार्णमन्त्र'का यन्त्र रख दे। फिर पञ्चपल्लवादियुक्त एक कलश वेद-मन्त्रोंसे संस्कृत करके श्रेष्ठ तीर्थके जलसे भरकर पास ही स्थापित करे। तत्पश्चात् गणपति, बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी, मातृका, नवग्रह, तुलसी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, लोकपाल, दिक्पाल आदिकी पूजा करके षोडशोपचार, श्रीसूक्त या नवार्णमन्त्रसे भगवती महाशक्तिकी पूजा करे। देवी-पूजनमें चन्दन, अगर या अष्टगन्ध (चन्दनागुरुकर्पूरचौरकुंकुमरोचनाः। जटामांसी कपियुता शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः॥ अर्थात् चन्दन, अगुरु, कपूर, कृष्णशुंठी, कुंकुम (केसर), गोरोचन, जटामांसी तथा गांठना (एक प्रकारका करंज) मिलाकर शक्तिका अष्टगन्ध बनता है।) तथा अशोक, चम्पा, मालती, मन्दार आदिके पुष्पों, बिल्व तथा तुलसी आदिका प्रयोग श्रेष्ठ होता है। फलोंमें नारियल, नारंगी, अनार, केला और आम शुभ हैं। तत्पश्चात् १६ उपचारोंसे देवीभागवत ग्रन्थकी पूजा करे। अन्तमें इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये—

"कात्यायनि महामाये भवानि भुवनेश्वरि॥ संसारसागरे मग्नं मामुद्धर कृपामयि॥ १॥
ब्रह्मविष्णुशिवाराध्ये प्रसीद जगदम्बिके॥ मनोऽभिलषितं देवि वरं देहि नमोऽस्तु ते॥ २॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्पश्चात् ऋष्यादिका न्यास करके विनियोग करे—

"ॐ अस्य श्रीमद्देवीभागवताख्यस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीकृष्णद्वैपायन ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः श्रीमणिद्वीपाधिवासिनी भगवती महाशक्तिः देवता ब्रह्मबीजम् गायत्री शक्तिः भुक्तिमुक्तिके कीलकम् पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः ।"

फिर 'नवार्णमन्त्र'से अङ्गन्यास-करन्यास करके इस प्रकार ध्यान करनेके पश्चात् पाठ आरम्भ करे—

"बालार्कायुततेजसां त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीं नानालंकृतिराजमानवपुषां बालोडुराट्शेखराम् ।
हस्तैरिक्षुधनुःसृणिं सुमशरं पाशं मुदा बिभ्रतीं श्रीचक्रस्थितसुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां स्मरेत् ॥ १ ॥"

पाठ आरम्भ करनेके बाद अध्यायके बीचमें नहीं रुके । किसी कारण रुक जानेपर पुनः उसी अध्यायका आरम्भसे पाठ करना चाहिये । मध्यम स्वरसे श्रद्धापूर्वक धीरे-धीरे स्पष्ट पाठ करे । गीत गाना, जल्दी करना, सिर हिलाना, अशुद्ध या अस्पष्ट उच्चारण करना, बिना अर्थ समझे ही पाठ करना—ये पाठके दोष हैं । पाठमें यथासाध्य इन दोषोंसे बचे रहना चाहिये । क्रोध, मद और त्वरा बाधक हैं । पाठमें मनकी पवित्रता और शरीरकी पवित्रता आवश्यक है । दोपहरके बाद एक घड़ी विश्राम करके लघुशंका आदिसे निवृत्त होकर पुनः पाठ करना चाहिये । फिर सन्ध्याके समय प्रतिदिन नवाहपारायणक्रममें लिखित स्थलोंपर विश्राम करना चाहिये ।

कथारम्भके लिए सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, अनुराधा, मूल तथा श्रवण नक्षत्र शुभ हैं । बृहस्पति जिस नक्षत्रमें हों, उससे चौथे नक्षत्रतक कथा आरम्भ करनेसे धर्मप्राप्ति, ५ से ८ वें तक लक्ष्मीप्राप्ति, पुनः ९ में सिद्धि और १० से १४ तक सुख प्राप्त होता है । गुर्वधिष्ठित नक्षत्रसे २० नक्षत्रों तकमें कथारम्भ करनेसे पीडा, २४ वें तक राजभय तथा २७ वें तक ज्ञानकी प्राप्ति होती है । इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है । (किंतु नवरात्रमें देवीभागवतकथामें चक्र-विचार अपेक्षित नहीं है ।) अनुष्ठानके समय ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, सत्यवचन तथा इन्द्रियसंयम अत्यन्त आवश्यक है । पत्तलमें भोजन करना चाहिये । बैंगन, दाल, बहेड़ा, मधु, तैल और बासी तथा दूषित अन्न नहीं खाना चाहिये । रजस्वलादिसे स्पृष्ट तथा मसूर, मूली, हींग, प्याज, गाजर, कुम्हड़ा तथा नलिका आदिका शाक भी नहीं खाना चाहिये । प्रतिदिन कुमारीपूजन करना चाहिये या प्रतिदिन क्रमशः दुगुनी, तिगुनी पूजा बढ़ाता जाय । एक वर्षकी कन्याकी पूजा नहीं करनी चाहिये । क्योंकि उसे गन्धादिका कोई भी ज्ञान नहीं होता । दोसे नौ वर्षों तककी कन्याएँ पूज्य हैं । अन्तिम दिन गायत्रीसहस्रनामका पाठ और सप्तशतीके मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये अथवा गायत्री या नवार्णमन्त्रसे हवन किया जाय । यही संक्षेपमें देवीभागवतकी पाठविधि है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहितं--

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यं प्रारभ्यते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीगणेशाय नमः ॥ जो प्रसन्नवदना भगवती सृष्टिकार्यमें उत्पत्तिरूपा, जगत्‌के पालनकार्यमें रक्षणस्वरूपा और संहारकार्यमें रौद्ररूपिणी दीखती हैं। समस्त विश्व जिनकी क्रीडाभूमि है। जो परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी वाणीस्वरूपा हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव द्वारा आराधित देवी मेरी वाणीको अलंकृत करें ॥ १ ॥ नारायण, नरोत्तम नर, देवी सरस्वती एवं महामुनि व्यासको नमस्कार करनेके बाद जय अर्थात् महाभारतसम्बन्धी किसी आख्यानका प्रवचन आरम्भ करना चाहिए ॥ २ ॥ मुनिगण बोले—हे सूत! हे महामते! हे व्यासशिष्य! आप चिरंजीवी हों। क्योंकि आप हमें नाना प्रकारकी मनोहारिणी और पुनीत कथायें सुनाया करते हैं ॥ ३ ॥ भगवान् विष्णुके सर्वपापहारी, पवित्र और उनकी अवतारकथाओंके प्रसंगमें अद्भुत चरित्र हमने श्रद्धापूर्वक सुना ॥ ४ ॥ इसी प्रकार शंकरजीके दिव्य चरित्र तथा भस्म-रुद्राक्षका ऐतिहासिक माहात्म्य भी हमने आपके मुखारविन्दसे सुन लिया ॥ ५ ॥ अब हम लोग कोई ऐसी पुनीत कथा सुनना चाहते हैं कि जो मनुष्योंको भुक्ति तथा मुक्ति बिना प्रयासके प्रदान कर सके ॥ ६ ॥ हे महाभाग! अब आप

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीदुर्गादेव्यै नमः ॥ सृष्टौ या सर्गरूपा जगदवनविधौ पालनी या च रौद्री संहारे चापि यस्या जगदिदमखिलं क्रीडनं या पराख्या ॥ पश्यन्ती मध्यमाऽथो तदनु भगवती वैखरी वर्णरूपा साऽस्मद्वाचं प्रसन्ना विधिहरिगिरिशाराधिताऽलंकरोतु ॥ १ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत जीव समा बह्वीर्यस्त्वं श्रावयसीह नः ॥ कथा मनोहराः पुण्या व्यासशिष्य महामते ॥ ३ ॥ सर्वपापहरं पुण्यं विष्णोश्चरितमद्भुतम् ॥ अवतारकथोपेतमस्माभिर्भक्तितः श्रुतम् ॥ ४ ॥ शिवस्य चरितं दिव्यं भस्मरुद्राक्षयोस्तथा ॥ सेतिहासं च माहात्म्यं श्रुतं तव मुखाम्बुजात् ॥ ५ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामः पावनात्पावनं परम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणामनायासेन सर्वशः ॥ ६ ॥ तत्त्वं ब्रूहि महाभाग येन सिद्ध्यन्ति मानवाः ॥ कलावपि परं त्वत्तो न विद्मः संशयच्छिदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभागा लोकानां हितकाम्यया ॥ सर्वशास्त्रस्य यत्सारं तद्वो वक्ष्याम्यशेषतः ॥ ८ ॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानि व्रतानि च ॥ यावन्न श्रूयते सम्यग्देवीभागवतं नरैः ॥९॥ तावत्पापाटवी नृणां क्लेशदाऽदभ्रकंटका ॥ यावन्न परशुः प्राप्तो देवीभागवताभिधः ॥१०॥ तावत्क्लेशावहं नृणामुपसर्गमहातमः ॥ यावन्नैवोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णगुः ॥ ११ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर ॥

हमें वह कथानक सुनाइए कि जिससे लोग कलियुगमें भी सद्यः सिद्धि प्राप्त कर लें। क्योंकि आपसे श्रेष्ठ कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो हमारे संशय निवृत्त कर सके ॥ ७ ॥ सूतजी बोले—हे महाभाग मुनियों! लोककल्याणकी भावनासे आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। अतएव सब शास्त्रोंका सार भलीभाँति मैं आपको बताऊँगा ॥ ८ ॥ सभी तीर्थ, पुराण और व्रत अपनी श्रेष्ठता सूचित करते हुए तभी तक गर्जते हैं, जबतक मनुष्य भलीभाँति देवीभागवतका श्रवण नहीं कर लेता ॥ ९ ॥ मनुष्योंको पापरूपी अरण्य तभी तक दुखदायी और कंटकाकीर्ण दिखायी देता है, जबतक उसे काटनेके लिए उन्हें देवीभागवतरूपी कुल्हाड़ी नहीं मिल जाती ॥१०॥ मानव जातिको उपसर्गरूपी घोर अन्धकार तभीतक सताता है, जबतक कि उसके सम्मुख देवीभागवतरूपी सूर्य नहीं उदित होता ॥ ११ ॥ ऋषियोंने कहा—हे महाभाग सूत! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महामुनि! वह देवीभागवत पुराण कैसा है और उसके सुनने-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का क्या विधान है ॥१२॥ कितने दिनोंमें उसे सुनना चाहिये? उसको सुनते समय किसका पूजन किया जाता है? प्राचीन कालमें किस-किसने सुना और उसकी कौन-कौन-सी कामनायें पूर्ण हुई ? ॥१३॥ सूतजी बोले—पूर्वकालमें महामुनि व्यासने पराशर ऋषि द्वारा देवी सत्यवतीके गर्भसे जन्म लिया । उन्होंने ही वेदोंके चार भाग करके अपने शिष्योंको पढ़ाया ॥ १४ ॥ "असंस्कृत, व्रात्य, ब्राह्मणाधम, वेदाध्ययनके अनधिकारी, स्त्रोजाति तथा दुर्बुद्धि मनुष्योंको धर्मका ज्ञान कैसे हो" इस बातका विचार करके व्यासजीने इसीलिए पुराणसंहिताओंका प्रतिपादन किया कि जिससे उपर्युक्त अनधिकारियोंको भी धर्मका ज्ञान अनायास प्राप्त हो सके ॥१५॥१६॥ भगवान् वेदव्यासने अष्टादश पुराण तथा महाभारतकी रचना करके सर्वप्रथम मुझे पढ़ाया ॥१७॥ उन पुराणोंमेंसे भुक्ति एवं मुक्तिदायक देवीभागवत पुराण उन्होंने स्वयं राजा जनमेजयको सुनाया था ॥ १८ ॥ जनमेजयके पिता राजा परीक्षित्को तक्षक नागने काट लिया, जिससे उनकी

कीदृशं तत्पुराणं हि विधिस्तच्छ्रवणे च कः ॥१२॥ कतिभिर्वासरैरेतच्छ्रोतव्यं किं च पूजनम् ॥ कैर्मानवैः श्रुतं पूर्वं काँस्कान्कामानवाप्नुयुः ॥१३॥
सूत उवाच ॥ विष्णोरंशो मुनिर्जातः सत्यवत्यां पराशरात् ॥ विभज्य वेदांश्चतुरः शिष्यानध्यापयत्पुरा ॥१४॥ व्रात्यानां द्विजबन्धूनां वेदेष्वनधिका-
रिणाम् ॥ स्त्रीणां दुर्मेधसां नृणां धर्मज्ञानं कथं भवेत् ॥१५॥ विचार्यैतत्तु मनसा भगवान् बादरायणः ॥ पुराणसंहितां दध्यौ तेषां धर्मविधित्सया
॥१६॥ अष्टादश पुराणानि स कृत्वा भगवान् मुनिः ॥ मामेवाध्यापयामास भारताख्यानमेव च ॥ १७ ॥ देवीभागवतं तत्र पुराणं भोगमोक्षदम् ॥
स्वयं तु श्रावयामास जनमेजयभूपतिम् ॥ १८ ॥ पूर्वमस्य पिता राजा परीक्षित्तक्षकाहिना ॥ संदष्टस्तस्य संशुद्ध्यै राज्ञा भागवतं श्रुतम् ॥ १९ ॥
नवभिर्दिवसैः श्रीमद्व्यासमुखाम्बुजात् ॥ त्रैलोक्यमातरं देवीं पूजयित्वा विधानतः ॥२०॥ नवाहयज्ञे सम्पूर्णे परीक्षिदपि भूपतिः ॥ दिव्यरूपधरो
देव्याः सालोक्यं तत्क्षणादगात् ॥ २१ ॥ पितुर्दिव्यां गतिं राजा विलोक्य जनमेजयः ॥ व्यासं मुनिं समभ्यर्च्य परां मुदमवाप ह ॥ २२ ॥
अष्टादशपुराणानां मध्ये सर्वोत्तमं परम् ॥ देवीभागवतं नाम धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥ २३ ॥ ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या देव्या भागवतीं कथाम् ॥
तेषां सिद्धिर्न दूरस्था तस्मात् सेव्या सदा नृभिः ॥ २४ ॥ दिनमर्द्धं तदर्द्धं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा ॥ ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिः
क्वचित् ॥ २५ ॥ सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं लभते नरः ॥ २६ ॥ कृतादौ बहवो धर्माः कलौ धर्मस्तु केवलम्

मृत्यु हो गयी । सो पिताकी सद्गतिके लिए जनमेजयने देवीभागवत सुनी ॥ १९ ॥ त्रिलोकजननी देवीका विधिवत् पूजन करके उन्होंने नौ दिन व्यासजीके मुखारविन्दसे यह पुराण सुना ॥२०॥ इस नवाहयज्ञके पूर्ण होते ही महाराज परीक्षित् दिव्य रूप धारण करके देवीके लोकको चले गये ॥२१॥ अपने पिताकी दिव्य गतिको देखकर राजा जनमेजय बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने व्यासजीका पूजन किया ॥२२॥ यह देवीभागवत सब पुराणोंमें श्रेष्ठ और धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्षदायक है ॥२३॥ जो लोग सदा श्रद्धापूर्वक देवीभागवत श्रवण करते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त करनेमें देर नहीं लगती । अतएव नित्य इसका श्रवण करना चाहिए ॥२४॥ दिनभर, आधे दिन, चौथाई दिन, मुहूर्त भर अथवा केवल एक क्षण भी जो इसका श्रवण करता है, उसकी कभी दुर्गति नहीं होती ॥२५॥ सभी यज्ञों, तीर्थों और दानोंको करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल केवल एकबार इस देवीभागवतको सुन लेनेसे प्राप्त हो जाता है ॥२६॥ सत्ययुग आदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युगोंमें बहुतेरे धर्म प्रचलित थे, किन्तु कलियुगमें पुराणश्रवणके सिवाय मनुष्योंके लिए अन्य कोई भी धर्म विहित नहीं है ॥२७॥ धर्म और आचारसे हीन तथा अल्पायु मनुष्योंके कल्याणार्थ वेदव्यासने कलियुगमें पुराणरूपी अमृतरसका सृजन किया है ॥२८॥ अमृतका पान करके तो केवल एक मनुष्य अमर होता है, किन्तु देवीभागवतीरूपी अमृत पीकर सारा कुल अजर-अमर हो जाता है ॥२९॥ इसे सुननेमें महीने और दिनका कोई नियम नहीं है। अतएव सदा लोगोंको इस अमृतका सेवन करना चाहिए ॥ ३० ॥ आश्विन, चैत्र, माघ, और आषाढ़ इन चारों नवरात्रोंमें इसका श्रवण करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है ॥३१॥ सभी पुण्यकर्मोंसे अधिक फलदायक होनेके कारण देवीभागवतका श्रवण विशेष पुण्यप्रद माना गया है ॥३२॥ दुष्टप्रकृति, पापी, मूर्ख, मित्रद्रोही, वेदनिन्दक, हिंसापरायण और नास्तिकमार्गावलम्बी मनुष्य भी कलियुगमें इस नवाहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ परधन तथा परदाराहरणके लोभी, पापके

पुराणश्रवणादन्यो विद्यते नापरो नृणाम् ॥ २७ ॥ धर्माचारविहीनानां कलावल्पायुषां नृणाम् ॥ व्यासो हिताय विदधे पुराणाख्यं सुधारसम् ॥२८॥
सुधां पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः ॥ देव्याः कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजरामरम् ॥ २९ ॥ मासानां नियमो नात्र दिनानां नियमोऽपि न ॥
सदा सेव्यं सदा सेव्यं देवीभागवतं नरैः ॥ ३० ॥ आश्विने मधुमासे वा तपोमासे शुचौ तथा ॥ चतुर्षु नवरात्रेषु विशेषात्फलदायकम् ॥ ३१ ॥
अतो नवाहयज्ञोऽयं सर्वस्मात्पुण्यकर्मणः ॥ फलाधिकप्रदानेन प्रोक्तः पुण्यप्रदो नृणाम् ॥३२॥ ये दुर्हृदः पापरता विमूढा मित्रद्रुहो वेदविनिन्दकाश्च ॥
हिंसारता नास्तिकमार्गसक्ता नवाहयज्ञेन पुनन्ति ते कलौ ॥३३॥ परस्वदाराहरणेऽतिलुब्धा ये वै नराः कल्मषभारभाजः ॥ गोदेवताब्राह्मणभक्ति-
हीना नवाहयज्ञेन भवन्ति शुद्धाः ॥ ३४ ॥ तपोभिरुग्रैर्व्रततीर्थसेवनैर्दानैरनेकैर्नियमैर्मखैश्च ॥ हुतैर्जपैर्यच्च फलं न लभ्यते नवाहयज्ञेन तदाप्यते
नृणाम् ॥ ३५ ॥ तथा न गङ्गा न गया न काशी न नैमिषं नो मथुरा न पुष्करम् ॥ पुनाति सद्यो बदरीवनं नो यथा हि देवीमख एष विप्राः
॥३६॥ अतो भागवतं देव्याः पुराणं परतः परम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणामुत्तमं साधनं मतम् ॥३७॥ आश्विनस्य सिते पक्षे कन्याराशिगते रवौ ॥
महाष्टम्यां समभ्यर्च्य हैमसिंहासनस्थितम् ॥३८॥ देवीप्रीतिप्रदं भक्त्या श्रीभागवतपुस्तकम् ॥ दद्याद्विप्राय योग्याय स देव्याः पदवीं लभेत् ॥३९॥
देवीभागवतस्यापि श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा ॥ भक्त्या यश्च पठेन्नित्यं स देव्याः प्रीतिभाग्भवेत् ॥ ४० ॥ उपसर्गभयं घोरं महामारीसमुद्भवम् ॥

बोझसे दबे और गौ-देवता-ब्राह्मणकी भक्तिसे विमुख मनुष्य भी इस नवाहयज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ उग्र तपस्या, व्रत, तीर्थसेवन, अनेक प्रकारके दान, नियम, यज्ञ, हवन और मन्त्रजप करनेसे जो फल प्राप्त होते हैं, वे सभी फल नवाहयज्ञसे प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ हे विप्रो ! गङ्गा, गया, काशी, नैमिषारण्य, मथुरा, पुष्कर तथा बदरिकारण्य भी मनुष्यको उतने शीघ्र पवित्र नहीं कर सकते, जितने शीघ्र यह नवाहयज्ञ अपने श्रोताओंको पवित्र कर देता है ॥ ३६ ॥ इसी कारण देवीभागवत पुराण सब पुराणोंमें श्रेष्ठ तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी प्राप्तिका उत्तम साधन माना जाता है ॥३७॥ आश्विन मासके शुक्ल पक्षमें जब कि सूर्य कन्याराशिमें जाते हैं, उस महाष्टमी तिथिको पूजन करके देवीभागवतकी पोथी स्वर्णसिंहासनपर रखकर देवीको प्रसन्नताके लिए जो मनुष्य किसी योग्य ब्राह्मणको दान देता है, वह अन्तमें देवीके पदको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जो प्राणी भक्तिपूर्वक देवी-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भागवतके एक अथवा आधे श्लोकका भी नित्य पाठ करता है, उसपर देवी प्रसन्न हो जाती हैं ॥४०॥ महामारी जैसी भीषण परिस्थिति तथा उल्कापात-भूकम्प सदृश दारुण विपत्तियाँ भी इस पुराणका श्रवण करनेसे दूर हो जाती हैं ॥ ४१ ॥ बालकोंपर आनेवाले संकट तथा भूत-प्रेत आदिका भय भी इसका श्रवण करनेसे दूर हो जाता है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य श्रद्धा-के साथ देवीभागवत पढ़ता या सुनता है, वह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त कर लेता है ॥ ४३ ॥ वनमें प्रसेनको खोजनेके लिए गये हुए श्रीकृष्णचन्द्रके लौटनेमें जब बहुत विलम्ब हुआ, तब वसुदेवने इस देवीभागवतका श्रवण किया, जिससे उन्हें श्रीकृष्ण शीघ्र मिल गये और बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसे सुनता या सुनाता है, उसे मुक्ति अनायास मिल जाती है ॥ ४५ ॥ इस पुराणरूपी अमृतका पान करनेवाला अपुत्री पुत्रवान्, निर्धन धनवान् और रोगी नीरोग हो जाता है ॥ ४६ ॥ वन्ध्या अर्थात् बाँझ,

उत्पातानखिलांश्चापि हन्ति श्रवणमात्रतः ॥ ४१ ॥ बालग्रहकृतं यच्च भूतप्रेतकृतं भयम् ॥ देवीभागवतस्यास्य श्रवणाद्याति दूरतः ॥ ४२ ॥ यस्तु भागवतं देव्याः पठेद्भक्त्या शृणोति वा ॥ धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः ॥ ४३ ॥ श्रवणाद्वसुदेवोऽस्य प्रसेनान्वेषणे गतम् ॥ चिरायितं प्रियं पुत्रं कृष्णं लब्ध्वा मुमोद ह ॥ ४४ ॥ य एतां शृणुयाद्भक्त्या श्रीमद्भागवतीं कथाम् ॥ भुक्तिं मुक्तिं स लभते भक्त्या यश्च पठेदि-माम् ॥४५॥ अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान् भवेत् ॥ रोगी रोगात् प्रमुच्येत श्रुत्वा भागवतामृतम् ॥४६॥ वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवत्सा च याऽङ्गना ॥ देवीभागवतं श्रुत्वा लभेत् पुत्रं चिरायुषम् ॥४७॥ पूजितं यद्गृहे नित्यं श्रीभागवतपुस्तकम् ॥ तद्गृहं तीर्थभूतं हि वसतां पाप-नाशकम् ॥४८॥ अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां नवम्यां भक्तिसंयुतः ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि स सिद्धिं लभते पराम् ॥४९॥ पठन् द्विजो वेदविदग्रणीर्भवे-द्बाहुप्रजातो धरणीपतिः स्यात् ॥ वैश्यः पठन् वित्तसमृद्धिमेति शूद्रोऽपि शृण्वन् स्वकुलोत्तमः स्यात् ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥ वसुदेवो महाभागः कथं पुत्रमवाप्तवान् ॥ प्रसेनः कुत्र कृष्णेन भ्रमताऽन्वेषितः कथम् ॥ १ ॥ विधिना केन कस्माच्च देवीभागवतं श्रुतम् ॥ वसुदेवेन सुमते वद सूत कथामिमाम् ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ सत्राजिद्भोजवंशीयो द्वारवत्यां सुखं वसन् ॥ सूर्यस्याराधने

काकवन्ध्या अर्थात् केवल एक सन्ततिवाली, मृतवत्सा अर्थात् जिसकी सन्तान उत्पन्न हो-होकर मर जाती हो, ऐसी स्त्री भी देवीभागवतको सुनकर दीर्घायु पुत्र पाती है ॥ ४७ ॥ जिस घर-में नित्य देवीभागवतकी पूजा होती है, वह घर तीर्थतुल्य हो जाता है और उस घरमें रहनेवालोंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ अष्टमी, चतुर्दशी तथा नवमीको जो प्राणी प्रेमके साथ इसे पढ़ता या सुनता है, उसे परा सिद्धि प्राप्त होती है ॥४९॥ इस पुराणका पाठ करनेवाला ब्राह्मण वेदज्ञोंमें अग्रणी, क्षत्रिय राजा, वैश्य धन-धान्यसम्पन्न तथा शूद्र इसका श्रवणमात्र करके अपनी जातिका नेता बन जाता है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पं० पाण्डेयरामतेजकृतभाषाटीकासहिते देवीभागवतमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऋषि बोले—हे महाभाग ! वसुदेवजी अपने पुत्रको कैसे प्राप्त कर सके और वनमें भटकते हुए श्रीकृष्णने प्रसेनको कैसे ढूँढ निकाला ? ॥ १ ॥ हे सूत ! किस विधि-विधानके साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और किस वक्ताके मुखसे वसुदेवने देवीभागवतकी कथा सुनी ? यह हमें बताइए ॥ २ ॥ सूतजी कहने लगे—भोजवंशी सत्राजित् सानन्द द्वारकापुरीमें रहता हुआ सूर्यदेवको आराधना करता था। क्योंकि वह सूर्यनारायणका परम भक्त और उनका मित्र था ॥ ३ ॥ कुछ समय बाद सूर्यदेव उसपर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी भक्ति एवं नम्रतापर रीझकर उसको अपना सूर्यलोक दिखाया ॥ ४ ॥ उसी प्रसन्नताके आवेशमें भगवान् सूर्यने सत्राजित्को स्यमन्तक मणि दे दिया और वह उसे पहनकर द्वारका लौट आया ॥ ५ ॥ सत्राजित्को देखकर मणिके असाधारण तेजसे चकपकाये हुए पुरवासियोंने उसे सूर्य समझ लिया और अपनी सुधर्मा सभामें विराजमान भगवान् कृष्णके पास जाकर वे कहने लगे—॥ ६ ॥ हे जगत्पते ! आपका दर्शन करनेके निमित्त स्वयं सूर्य भगवान् यहाँ आ रहे हैं। नागरिकोंके वचन सुनकर भगवान् कृष्ण हँसे और कहने लगे—॥ ७ ॥ हे बालकों जैसे भोले नागरिको ! ये सूर्यदेव नहीं हैं, बल्कि सूर्यदेवके दिये हुए मणिसे देदीप्यमान सत्राजित् आ रहा है ॥ ८ ॥ तदनन्तर सत्राजित्ने ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन कराया और उस स्यमन्तक मणिको अपने

युक्तो भक्तश्च परमः सखा ॥ ३ ॥ अथ कालेन कियता प्रसन्नः सविताऽभवत् ॥ स्वलोकं दर्शयामास तद्भक्त्या प्रणयेन च ॥ ४ ॥ तस्मै प्रीतश्च भगवान् स्यमन्तकमणिं ददौ ॥ स तं बिभ्रन् मणिं कण्ठे द्वारकामाजगाम ह ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तं तेजसा भ्रांता मत्वाऽऽदित्यं पुरौकसः ॥ कृष्णमूचुः समभ्येत्य सुधर्मायामवस्थितम् ॥ ६ ॥ एष आयाति सविता दिदृक्षुस्त्वां जगत्पते ॥ श्रुत्वा कृष्णस्तु तद्वाचं प्रहस्योवाच संसदि ॥ ७ ॥ सविता नैष भो बालाः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ स्यमन्तकेन चायाति भास्वद्दत्तेन भास्वता ॥ ८ ॥ अथ विप्रान् समाहूय स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ प्रावेशयत् समभ्यर्च्य सत्राजित्स्वगृहे मणिम् ॥ ९ ॥ न तत्र मारी दुर्भिक्षं नोपसर्गभयं क्वचित् ॥ यत्रास्ते स मणिर्नित्यमष्टभारसुवर्णदः ॥ १० ॥ अथ सत्राजितो भ्राता प्रसेनो नाम कर्हिचित् ॥ कण्ठे बद्ध्वा मणिं सद्यो हयमारुह्य सैन्धवम् ॥ ११ ॥ मृगयार्थं वनं यातस्तमद्राक्षीन्मृगाधिपः ॥ प्रसेनं सहयं हत्वा सिंहो जग्राह तं मणिम् ॥१२॥ जाम्बवानृक्षराजोऽथ दृष्ट्वा मणिधरं हरिम् ॥ हत्वा च तं बिलद्वारि मणिं जग्राह वीर्यवान् ॥१३॥ स तं मणिं स्वपुत्राय क्रीडनार्थमदात् प्रभुः ॥ अथ चिक्रीड बालोऽपि मणिं सम्प्राप्य भास्वरम् ॥ १४ ॥ प्रसेनेऽनागते चाथ सत्राजित्पर्यतप्यत ॥ न जाने केन निहतः प्रसेनो मणिमिच्छता ॥१५॥ अथ लोकमुखोद्गीर्णा किंवदन्ती पुरेऽभवत् ॥ कृष्णेन निहतो नूनं प्रसेनो मणिलिप्सुना ॥१६॥

घरमें रक्खा ॥ ९ ॥ वह मणि नित्य आठ भार अर्थात् सोलह हजार पल सोना देता था और जहाँ रहता था, वहाँ किसी प्रकारकी बीमारी, दुर्भिक्ष तथा ग्रह-नक्षत्रजनित उत्पात नहीं होता था ॥ १० ॥ एक दिन सत्राजित्के भाई प्रसेनने वह मणि गलेमें पहन लिया और सिन्धुदेशीय अश्वपर चढ़कर मृगयाके लिये वनमें चला गया। वहाँ उसे किसी सिंहने देखा तो घोड़े समेत प्रसेनको मार डाला और मणि स्वयं ले लिया ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसके बाद ऋक्षराज जाम्बवान्ने अपनी गुफाके द्वारपर उस मणिधारी सिंहको देखते ही मार डाला और मणि अपने कब्जेमें कर लिया ॥ १३ ॥ उन्होंने वह मणि खेलनेके लिए अपने बालकको दे दिया और बालक भी बड़ी उत्सुकतापूर्वक उस दीप्तिमान् मणिके साथ खेलने लगा ॥ १४ ॥ कुछ समय बीतनेपर भी प्रसेन नहीं लौटा, तब सत्राजित्को बड़ा दुःख हुआ और कहने लगा कि मणिके लोभवश न जाने किसने प्रसेनको मार डाला ॥ १५ ॥ इस प्रकार परस्पर लोगोंके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कानाफूसी करते-करते द्वारकामें यह अफवाह फैल गयी कि मणिकी लालचसे अवश्य श्रीकृष्णने ही प्रसेनको मार डाला है ॥ १६ ॥ यह बात श्रीकृष्ण तक पहुँची तो अपने इस कलंकका परिमार्जन करनेके लिए नागरिकोंके साथ वे स्वयं प्रसेनको खोजने निकले ॥१७॥ जंगलमें पहुँचकर उन्होंने सिंह द्वारा मारे गये प्रसेनको देखा। फिर राहमें टपकी हुई रुधिरकी बूँदोंका अनुसरण करते हुए सिंहको खोजते-खोजते आगे बढ़े ॥ १८ ॥ तदनन्तर एक गुफाके द्वारपर मरे हुए सिंहको देखकर बड़ी करुणाके साथ श्रीकृष्णने नागरिकोंसे कहा—मैं मणिके चोरका पता लगानेके लिए इस कन्दराके भीतर जा रहा हूँ। जब तक मैं न लौटूँ, तब तक तुमलोग यहाँ ही मेरी प्रतीक्षा करो ॥ १९ ॥ २० ॥ 'तथास्तु' कहकर सब द्वारकावासी तो द्वारपर ही रुक गये और भगवान् कृष्ण उस बिलमें घुस पड़े, जहाँ जाम्बवान्का घर था ॥ २१ ॥ भीतर पहुँचनेपर भगवानने ऋक्षराजके पुत्रको वह मणिमय हार पहने देखा। जब श्रीकृष्णने उसे छीनना चाहा तो कुमारकी धाय डरके मारे बड़ी जोरसे चिल्लाने लगी ॥ २२ ॥ धायकी चिल्लाहट सुनते ही जाम्बवान् आ पहुँचे और उनसे भिड़कर अपने पूर्वप्रभुके साथ बिना विश्राम

स तं शुश्राव कृष्णोऽपि दुर्यशो लिप्तमात्मनि ॥ मार्ष्टुं तत्तस्य पदवीं पुरौकोभिः सहागमत् ॥ १७ ॥ गत्वा स विपिनेऽपश्यत् प्रसेनं हरिणा हतम् ॥ ययौ मृगेन्द्रमन्विष्यन्नसृग्बिन्द्वङ्किताध्वना ॥ १८ ॥ अथ कृष्णो हतं सिंहं बिलद्वारि विलोक्य च ॥ उवाच भगवान् वाचं कृपया पुरवासिनः ॥ १९ ॥ तिष्ठध्वं यूयमत्रैव यावदागमनं मम ॥ प्रविशामि बिलं त्वेतन्मणिहारकलब्धये ॥ २० ॥ तथेत्युक्त्वा तु ते तस्थुस्तत्रैव द्वारकौकसः ॥ जगामान्तर्बिलं कृष्णो यत्र जाम्बवतो गृहम् ॥२१॥ ऋक्षराजसुतं दृष्ट्वा कृष्णो मणिधरं तदा ॥ हर्तुमैच्छन्मणिं तावद्धात्री चुक्रोश भीतवत् ॥२२॥ श्रुत्वा धात्रीरवं सद्यः समागत्यर्क्षराट् तदा ॥ युयुधे स्वामिना साकमविश्राममहर्निशम् ॥ २३ ॥ एवं त्रिनवरात्रं तु महद्युद्धमभूत्तयोः ॥ कृष्णागमं प्रतीक्षन्तस्तस्थुर्द्वारि पुरौकसः ॥ २४ ॥ द्वादशाहं ततो भीत्या प्रतिजग्मुर्निजालयम् ॥ तत्र ते कथयामासुर्वृत्तान्तं सर्वमादितः ॥ २५ ॥ सत्राजितं शपन्तस्ते सर्वे शोकाकुला भृशम् ॥ वसुदेवो महाभागः श्रुत्वा पुत्रस्य तां कथाम् ॥ २६ ॥ मुमोह सपरीवारस्तदा परमया शुचा ॥ चिन्तयामास बहुधा कथं श्रेयो भवेन्मम ॥ २७ ॥ अथाजगाम भगवान् देवर्षिर्ब्रह्मलोकतः ॥ उत्थाय तं प्रणम्यासौ वसुदेवोऽभ्यपूजयत् ॥ २८ ॥ नारदोऽनामयं पृष्ट्वा वसुदेवं महामतिम् ॥ पप्रच्छ च यदुश्रेष्ठं किं चिन्तयसि तद्वद ॥ २९ ॥ वसुदेव उवाच ॥ पुत्रो मेऽतिप्रियः कृष्णः प्रसेनान्वेषणाय तु ॥

किये अहर्निशि युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार उन दोनोंमें सत्ताईस दिनों तक भीषण युद्ध हुआ। उधर गुफाके द्वारपर रुके हुए द्वारकाके नागरिक बारह दिन तक भगवान् कृष्णके लौटनेकी प्रतीक्षा करते रहे। जब श्रीकृष्ण नहीं लौटे, तब डरके मारे वे अपने घर लौट गये और वहाँ उन्होंने लोगोंको आदिसे अन्ततक सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २४ ॥ २५ ॥ यह सुनकर समस्त द्वारकावासी सत्राजित्को कोसते हुए अतिशय शोकाकुल हो गये। सपरिवार महाभाग वसुदेव तो अपने पुत्रका समाचार सुनकर मूर्छित हो गये। सचेत होनेपर वे बार-बार इस बातपर विचार करने लगे कि 'हमारा कल्याण कैसे हो' ॥ २६ ॥ २७ ॥ उसी समय देवर्षि नारद ब्रह्मलोकसे उनके समक्ष आ उपस्थित हुए। वसुदेवने उनका स्वागत-सत्कार किया ॥ २८ ॥ नारदजीने वसुदेवजीसे कुशल-क्षेम पूछकर कहा—हे यदुश्रेष्ठ ! आप क्या सोच रहे हैं, सो बताइए ॥ २९ ॥ वसुदेवजी बोले—देवर्षे ! हे मेरे अतिशय प्रिय पुत्र कृष्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रसेनको खोजनेके लिए द्वारिकावासियोंके साथ वनमें गये थे। वहाँ उन्होंने उसे मरा पाया। तदनन्तर प्रसेनको मारनेवाले सिंहको भी एक गुफाके द्वारपर मरा पड़ा देख श्रीकृष्ण नागरिकोंको गुफाके द्वारपर ही छोड़कर स्वयं उस कन्दरामें घुस गये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ बहुत दिन बीत गये, किन्तु मेरा प्यारा पुत्र अब तक लौटकर नहीं आया। इस कारण मैं बहुत दुखी हूँ। हे मुनिराज! अब आप ही कोई ऐसा उपाय बताइए कि जिससे मैं अपने पुत्रको शीघ्र पा लूँ ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले—'हे यदुपुङ्गव! पुत्रप्राप्तिके लिए आप अम्बिका देवीकी आराधना करिए। ऐसा करनेसे आपका सद्यः कल्याण होगा' ॥ ३३ ॥ वसुदेवजी बोले—हे भगवन्! वे देवी कौन हैं? उन महेश्वरीका क्या प्रभाव है? हे देवर्षे! कृपया मुझे यह भी बता दीजिए कि उनकी आराधना कैसे की जाती है? ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले—हे महाभाग वसुदेव! मैं संक्षेपमें उनकी महिमाका बर्णन करता हूँ। उनके अतुलित माहात्म्यका विस्तारके साथ वर्णन कौन कर सकेगा? ॥ ३५ ॥ जो भगवती नित्य सच्चिदानन्दस्वरूपा और परात्परतरा हैं, जो समस्त संसारमें व्याप्त हैं ॥ ३६ ॥ जिनकी आराधनाके बलपर ब्रह्मा इस चराचर

पौरैः साकं वनं गत्वा निहतं तं तदैक्षत ॥ ३० ॥ प्रसेनघातकं दृष्ट्वा बिलद्वारे मृतं हरिम् ॥ द्वारि पौरानधिष्ठाय बिलान्तर्गतवान् स्वयम् ॥ ३१ ॥ बहवो दिवसा याता नायात्यद्यापि मे सुतः ॥ अतः शोचामि तद्ब्रूहि येन लप्स्ये सुतं मुने ॥ ३२ ॥ नारद उवाच ॥ पुत्रप्राप्त्यै यदुश्रेष्ठ देवीमाराधयाम्बिकाम् ॥ तस्या आराधनेनैव सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवन् का हि सा देवी किंप्रभावा महेश्वरी ॥ कथमाराधनं तस्या देवर्षे कृपया वद ॥३४॥ नारद उवाच ॥ वसुदेव महाभाग शृणु संक्षेपतो मम ॥ देव्या माहात्म्यमतुलं को वक्तुं विस्तरात् क्षमः ॥३५॥ या सा भगवती नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ परात्परतरा देवी यया व्याप्तमिदं जगत् ॥३६॥ यदाराधनतो ब्रह्मा सृजतीदं चराचरम् ॥ यां च स्तुत्वा विनिर्मुक्तो मधुकैटभजाद्भयात् ॥३७॥ विष्णुर्यत्कृपया विश्वं बिभर्ति भगवानिदम् ॥ रुद्रः संहरते यस्याः कृपापाङ्गनिरीक्षणात् ॥३८॥ संसारबन्धहेतुर्या सैव मुक्तिप्रदायिनी ॥ सा विद्या परमा देवी सैव सर्वेश्वरीश्वरी ॥३९॥ नवरात्रविधानेन सम्पूज्य जगदम्बिकाम् ॥ नवाहोभिः पुराणं च देव्या भागवतं शृणु ॥४०॥ यस्य श्रवणमात्रेण सद्यः पुत्रमवाप्स्यसि ॥ भुक्तिर्मुक्तिर्न दूरस्था पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥ ४१ ॥ इत्युक्तो नारदेनासौ वसुदेवः प्रणम्य तम् ॥ उवाच परया प्रीत्या नारदं मुनिसत्तमम् ॥ ४२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवंस्तव वाक्येन संस्मृतं वृत्तमात्मनः ॥ श्रूयतां तच्च वक्ष्यामि

जगत्की सृष्टि करते हैं, जिनकी स्तुति करके भगवान विष्णु मधु-कैटभके भयसे मुक्त होकर समस्त विश्वका पालन करते हैं, जिनकी कृपादृष्टिसे शंकरजी जगत्का संहारकार्य सम्पन्न करते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जो संसारके बन्धन और मुक्तिकी कारणस्वरूपा हैं, वे ही परमा विद्या और वे ही देवी सबकी ईश्वरी हैं ॥ ३९ ॥ सो नवरात्र-पूजनविधिके अनुसार उन जगदम्बिकाकी पूजा करके नौ दिनोंमें देवीभागवतका श्रवण करिए ॥ ४० ॥ उसका श्रवण करते ही आप अपने प्रिय पुत्रको शीघ्र पा जायेंगे। क्योंकि जो लोग इस पुराणका पठन तथा श्रवण करते हैं, उनके लिए भुक्ति (ऐहिक सुखप्राप्ति) और मुक्ति (मोक्ष) दूर नहीं रहती ॥ ४१ ॥ देवर्षि नारदके ऐसा कहनेपर वसुदेवजीने बड़े प्रेमपूर्वक नारदजीसे कहा ॥ ४२ ॥ वसुदेवजी बोले—भगवन्! आपके कथनसे मुझे एक पुरानी बात याद आ गयी। देवीके माहात्म्यसे परिपूर्ण यह वृत्तान्त बताता हूँ, सुनिए। पूर्वकालमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब कंसने आकाशवाणी द्वारा सुना कि देवकीके अष्टम गर्भसे उसकी मृत्यु हो जायगी तो भयवश उसने भरी सभामें मुझे बाँध लिया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जिससे मैं अपनी भार्या देवकीके साथ कारागारमें रहने लगा और पापी कंस मेरे द्वारा उत्पन्न सभी पुत्रोंको मारता रहा ॥४५॥ इस प्रकार कंसने जब मेरे छ पुत्र मार डाले, तब साध्वी देवकी पुत्रशोकसे सदा सन्तप्त रहने लगी ॥ ४६ ॥ उस समय मैंने चुपकेसे गर्गमुनिको बुलवाया। नमस्कार तथा पूजनके बाद पुत्रप्राप्तिकी कामनासे मैंने उन्हें देवकीके दुःखकी बात बतायी ॥ ४७ ॥ और कहा—हे भगवन्! हे दयासागर! आप यादवोंके गुरु हैं। हे मुनिराज! आप हमें कोई ऐसा उपाय बताइए कि जिससे मुझे चिरंजीवी पुत्र प्राप्त हो ॥४८॥ तब दयानिधि मुनि गर्गने प्रसन्न होकर कहा। गर्गजी बोले—हे महाभाग वसुदेव! मैं वह सर्वश्रेष्ठ साधन बता रहा हूँ, सुनिए ॥ ४९ ॥ भक्तोंकी दुर्गति दूर करनेवाली कल्याणी भगवती दुर्गाकी आप आराधना करिए।

देवीमाहात्म्यसम्भवम् ॥४३॥ पुरा नभोगिरा कंसो देवक्यष्टमगर्भतः ॥ ज्ञात्वाऽऽत्ममृत्युं पापो मां सभायां न्यरुणद्धिया ॥ ४४ ॥ कारागारेऽहमवसं देवक्या सह भार्यया ॥ जातं जातं समवधीत् पुत्रं कंसोऽपि पापकृत् ॥ ४५ ॥ षट् पुत्रा निहतास्तेन तदा शोकाकुला भृशम् ॥ अतप्यद्देवकी देवी नक्तन्दिवमनिन्दिता ॥४६॥ तदाऽहं गर्गमाहूय मुनिं नत्वाऽभिपूज्य च ॥ निवेद्य देवकीदुःखमवोचं पुत्रकाम्यया ॥४७॥ भगवन् करुणासिन्धो यादवानां गुरुर्भवान् ॥ आयुष्मत्पुत्रसम्प्राप्तिसाधनं वद मे मुने ॥ ४८ ॥ ततो गर्गः प्रसन्नात्मा मामुवाच दयानिधिः ॥ गर्ग उवाच ॥ वसुदेव महाभाग शृणु तत्साधनं परम् ॥४९॥ या सा भगवती दुर्गा भक्तदुर्गतिहारिणी ॥ तामाराधय कल्याणीं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥ ५० ॥ यदाराधनतः सर्वे सर्वान् कामानवाप्नुयुः ॥ न किञ्चिद्दुर्लभं लोके दुर्गार्चनवतां नृणाम् ॥५१॥ इत्युक्तोऽहं मुदा युक्तः सभार्यो मुनिपुङ्गवम् ॥ प्रणम्य परया भक्त्या प्रावोचं विहिताञ्जलिः ॥ ५२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ यद्यस्ति भगवन् प्रीतिर्मयि ते करुणानिधे ॥ तदा पुरो मदर्थे त्वं समाराधय चण्डिकाम् ॥ ५३ ॥ निरुद्धः कंसगेहेऽहं न किञ्चित्कर्तुमुत्सहे ॥ अतस्त्वमेव दुःखाब्धेर्मामुद्धर महामते ॥ ५४ ॥ इत्युक्तस्तु मया प्रीतः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥ वसुदेव तव प्रीत्या करिष्यामि हितं तव ॥५५॥ अथ गर्गमुनिः प्रीत्या मया सम्प्रार्थितोऽगमत् ॥ आरिराधयिषुर्दुर्गां विन्ध्याद्रिं ब्राह्मणैः सह ॥ ५६ ॥ तत्र गत्वा जग-

इससे शीघ्र आपका कल्याण होगा ॥ ५० ॥ उनकी आराधना करके बहुतेरे लोग अपनी कामनायें पूर्ण कर चुके हैं। दुर्गाका पूजन करनेवाले प्राणियोंको संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती ॥ ५१ ॥ यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई और मैंने तथा मेरी पत्नी देवकीने प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर कहा —॥ ५२ ॥ हे भगवन्! हे करुणानिधे! यदि मुझपर आपका स्नेह हो तो आप ही मेरे कल्याणार्थ मेरी ओरसे उन भगवतीकी आराधना करिए ॥५३॥ मैं कंसके घरमें कैद रहनेके कारण कुछ नहीं कर सकता। अतएव हे महामते! आप ही मुझे इस महान् दुःखसागरसे उबारिए ॥५४॥ मेरे ऐसा कहनेपर परम प्रसन्न होकर गर्ग मुनिने कहा–हे वसुदेव! तुमपर विशेष स्नेह होनेके कारण मैं तुम्हारे कल्याणका उपाय करूँगा ॥५५॥ इस प्रकार मेरे प्रार्थना करनेपर गर्गमुनि देवीकी आराधना करनेके लिए अन्यान्य ब्राह्मणोंके साथ विन्ध्यपर्वतपर चले गये ॥ ५६ ॥ वहाँ पहुँचकर वे महामुनि जप-पाठपूर्वक समस्त विश्वकी माता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली भगवतीकी आराधना करने लगे ॥५७॥ व्रत-पूजनकी समाप्तिपर आकाशवाणी हुई—हे मुने ! मैं तुम्हारी आराधनासे प्रसन्न हो गयी । अब तुम्हारा कार्य सिद्ध हो जायगा ॥ ५८ ॥ पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए मेरे द्वारा प्रेरित विष्णु भगवान् अपने अंशसे देवकीकी कोखसे जन्म लेंगे ॥५९॥ कंसके भयसे वसुदेव उस नवजात शिशुको लेकर तत्काल गोकुलमें नन्दगोपके घर पहुँचा देंगे ॥६०॥ वहाँसे वे यशोदाकी सद्यःप्रसूता कन्या लाकर कंसको दे देंगे और कंस उसे मार डालनेके लिए धरतीपर पटक देगा ॥६१॥ मेरी अंशस्वरूपा वह कन्या उसके हाथसे छूटकर तत्काल दिव्य रूप धारण करके विन्ध्यपर्वतपर चली जायगी । वहाँ रहती हुई वह संसारका कल्याण करेगी ॥६२॥ यह आकाशवाणी सुनी तो भगवती जगदम्बिकाको प्रणाम करके गर्गमुनि प्रसन्नतापूर्वक मथुरा लौट गये ॥६३॥ गर्गाचार्यके मुखसे देवीके वरदानका समाचार सुनकर मेरी पत्नी देवकी तथा मैं बहुत प्रसन्न हुआ

द्धात्रीं भक्ताभीष्टप्रदायिनीम् ॥ आराधयामास मुनिर्जपपाठपरायणः ॥ ५७ ॥ ततः समाप्ते नियमे वागुवाचाशरीरिणी ॥ प्रसन्नाऽहं मुने कार्यसिद्धिस्तव भविष्यति ॥ ५८ ॥ भूभारहरणार्थाय मया सम्प्रेरितो हरिः ॥ वसुदेवस्य देवक्यां स्वांशेनावतरिष्यति ॥ ५९ ॥ कंसभीत्या तमादाय बालमानकदुन्दुभिः ॥ प्रापयिष्यति सद्यस्तु गोकुले नन्दवेश्मनि ॥६०॥ यशोदातनयां नीत्वा स्वगृहे कंसभूभुजे ॥ दास्यत्यथ च तां हन्तुं कंस आक्षेप्स्यति क्षितौ ॥ ६१ ॥ सा तद्धस्ताद्विनिर्गत्य सद्यो दिव्यवपुर्द्धरा ॥ मदंशभूता विन्ध्याद्रौ करिष्यति जगद्धितम् ॥ ६२ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य जगदम्बिकाम् ॥ गर्गो मुनिः प्रसन्नात्मा मथुरामगमत् पुरीम् ॥ ६३ ॥ वरदानं महादेव्या गर्गाचार्यमुखादहम् ॥ श्रुत्वा सभार्यः सम्प्रीतः परां मुदमथागमम् ॥६४॥ तदारभ्य परं जाने देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ अधुनाऽपि हि देवर्षे श्रुतं तव मुखाम्बुजात् ॥६५॥ अतो भागवतं देव्यास्त्वमेव श्रावय प्रभो ॥ मद्भाग्यादेव देवर्षे सम्प्राप्तोऽसि दयानिधे ॥ ६६ ॥ वसुदेववचः श्रुत्वा नारदः प्रीतमानसः ॥ सुदिने शुभनक्षत्रे कथारम्भमथाकरोत् ॥ ६७ ॥ कथाविघ्नविघातार्थं द्विजा जेपुर्नवाक्षरम् ॥ मार्कण्डेयपुराणोक्तं पेठुर्देव्याः स्तवं तथा ॥ ६८ ॥ प्रथमस्कन्धमारभ्य श्रीनारदमुखोद्गतम् ॥ शुश्राव वसुदेवश्च भक्त्या भागवतामृतम् ॥ ६९ ॥ नवमेऽह्नि कथापूर्तौ पुस्तकं वाचकं तथा ॥ प्रसन्नः पूजयामास वसुदेवो महामनाः ॥ ७० ॥ अथ तत्र बिलस्यान्तः कृष्णजाम्बवतोर्मृधे ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातश्लथाङ्गो जाम्बवानभूत् ॥ ७१ ॥ अथागतस्मृतिः सोऽपि भगवन्तं प्रणम्य च ॥

॥ ६४ ॥ हे देवर्षे ! तभी मैंने देवीका माहात्म्य जाना । आज फिर आपके मुखसे मैं उनकी महिमा सुन रहा हूँ ॥ ६५ ॥ अतएव हे प्रभो ! अब देवीभागवत आप ही मुझे सुनाइये । हे दयानिधे ! मेरे भाग्यसे ही आप यहाँ आ गये हैं ॥ ६६ ॥ वसुदेवके कथनानुसार प्रसन्न मनसे नारदजीने एक शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें देवीभागवतकी कथा कहना आरम्भ किया ॥ ६७ ॥ कथामें आनेवाले विघ्नोंको दूर करनेके लिए ब्राह्मण देवीके नवाक्षर मंत्रका जप तथा मार्कण्डेयपुराणोक्त स्तुतियों (दुर्गासप्तशती) का पाठ करने लगे ॥ ६८ ॥ प्रथम स्कन्धसे ही वसुदेवजी नारद मुनिके मुखकमलसे निःसृत देवीभागवतरूपी अमृतका अपने श्रवणपुटसे पान करने लगे ॥ ६९ ॥ नवें दिन कथाकी समाप्तिपर उन्होंने देवीभागवतकी पुस्तक तथा वक्ता दोनोंकी प्रसन्नतापूर्वक पूजा की ॥ ७० ॥ उधर कन्दराके भीतर कृष्ण और जाम्बवान्का जो युद्ध चल रहा था, उसमें भगवान कृष्णके मुक्कोंकी मारसे जाम्बवान्के समस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अंग ढीले पड़ गये ॥ ७१ ॥ तब उन्हें पूर्वकालकी बातें याद आ गयीं और जाम्बवान्ने प्रणामपूर्वक अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना करते हुए कहा—॥ ७२ ॥ हे प्रभो ! अब मुझे ज्ञात हो गया कि त्रेतायुगके राम आप ही हैं, जिनके क्रोधसे समुद्र तथा लंका क्षुब्ध हो उठी थी और सपरिवार रावण मारा गया था ॥ ७३ ॥ हे श्रीकृष्ण ! वह राम आप ही हैं। मेरी दुष्टताको क्षमा कर दीजिये। अब आप मेरे योग्य कोई सेवा बताइयें। मैं सर्वथा आपका अनुचर हूँ ॥ ७४ ॥ जाम्बवान्के वचन सुनकर जगत्पति श्रीकृष्णने कहा—हे ऋक्षराज ! इस मणिके लिये ही मैं कन्दरामें आया था ॥ ७५ ॥ तदनन्तर प्रसन्नतापूर्वक जाम्बवान्ने अपनी कन्या जाम्बवती तथा स्यमन्तक मणि भगवान् कृष्णको अर्पण कर दिया ॥ ७६ ॥ तब भगवान कृष्णने जाम्बवतीको पत्नीरूपमें स्वीकार करके मणिको गलेमें पहन लिया और जाम्बवान्से अनुमति लेकर द्वारका चल पड़े ॥ ७७ ॥ उधर द्वारकामें देवीभागवतकी कथा-समाप्तिके दिन महामना वसुदेवने ब्राह्मणोंको भोजन कराके दक्षिणा दी। जब वे सन्तुष्ट द्विजगण वसुदेवको आशीर्वाद दे रहे थे, उसी समय श्रीकृष्ण गलेमें मणि पहने अपनी नयी

उवाच परया भक्त्या स्वापराधं क्षमापयन् ॥७२॥ ज्ञातोऽसि रघुवर्यस्त्वं यद्रोषात्सरितां पतिः ॥ क्षोभं जगाम लङ्का च रावणः सानुगो हतः ॥७३॥ स एवासि भवान् कृष्ण मदौरात्म्यं क्षमस्व भोः ॥ ब्रूहि यत्करणीयं मे भृत्योऽहं तव सर्वथा ॥ ७४ ॥ श्रुत्वा जाम्बवतो वाचमब्रवीज्जगदीश्वरः ॥ मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ॥ ७५ ॥ ऋक्षराजस्ततः प्रीत्या कन्यां जाम्बवतीं निजाम् ॥ ददौ कृष्णाय सम्पूज्य स्यमन्तकमणिं तथा ॥ ७६ ॥ स तां पत्नीं समादाय मणिं कण्ठे तथा दधत् ॥ अभिमन्त्र्यर्क्षराजञ्च प्रतस्थे द्वारकां प्रति ॥ ७७ ॥ कथासमाप्तिदिवसे वसुदेव उदारधीः ॥ ब्राह्मणान् भोजयामास दक्षिणाभिरतोषयत् ॥ ७८ ॥ आशीर्वाचं प्रयुञ्जाना द्विजा यत्समये हरिः ॥ आजगाम क्षणे तस्मिन् पत्न्या सह मणिं दधत् ॥७९॥ भार्यया सहितं कृष्णं वसुदेवपुरोगमाः ॥ दृष्ट्वा हर्षाश्रुपूर्णाक्षाः समवापुः परां मुदम् ॥८०॥ देवर्षिर्नारदश्चाथ कृष्णागमनहर्षितः ॥ आमन्त्र्य वसुदेवं च कृष्णं ब्रह्मसभां ययौ ॥८१॥ हरिचरितमिदं यत्कीर्तितं दुर्यशोघ्नं पठति विमलभक्त्या शुद्धचित्तः शृणोति ॥ स भवति सुखपूर्णः सर्वदा सिद्धकामो जगति च वपुषोऽन्ते मुक्तिमार्गं लभेच्च ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सूत उवाच ॥ अथेतिहासमन्यच्च शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥ देवीभागवतस्यास्य माहात्म्यं यत्र गीयते ॥ १ ॥ एकदा कुम्भयोनिस्तु लोपामु-

पत्नीके साथ वहाँ आ उपस्थित हुए ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ वसुदेव आदि सभी यादव भार्या समेत भगवान् कृष्णको सम्मुख उपस्थित देखकर मारे हर्षके गद्गद हो गये और उनके नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये ॥ ८० ॥ श्रीकृष्णके आगमनसे नारदजीको भी अपार हर्ष हुआ और वसुदेवजी तथा कृष्णसे विदा लेकर वे ब्रह्मसभाको चले गये ॥ ८१ ॥ कलंकनाशक इस पवित्र चरित्रको जो प्राणी शुद्ध चित्त तथा निर्मल भक्तिके साथ पढ़ता या सुनता है, उसे संसारके सब सुख सुलभ हो जाते हैं, सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं और शरीर छूटनेपर मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीदेवीभागवतमाहाम्ये पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सूतजी बोले—हे मुनिसत्तम ! अब एक दूसरा इतिहास सुनिए। उसमें भी देवीभागवतकी महिमा गायी गयी है ॥१॥ एक बार कुम्भयोनि अर्थात् लोपामुद्राके पति महर्षि अगस्त्यने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वामिकार्तिकेयके पास जाकर उनका अभिनन्दन किया और उनसे विविध बातें पूछीं ॥ २ ॥ तब कुमार कार्तिकेयने उन्हें दान, तीर्थ तथा व्रत आदिकी महिमासे परिपूर्ण बहुतेरी बातें बतायीं ॥ ३ ॥ उन्होंने अगस्त्य मुनिको काशीपुरी, मणिकर्णिका, गङ्गा तथा अन्यान्य तीर्थोंका माहात्म्य विस्तारके साथ सुनाया ॥ ४ ॥ इन कथाओंको सुनकर अगस्त्य मुनि बहुत प्रसन्न हुए और अतिशय तेजस्वी कार्तिकेयसे उन्होंने लोककल्याणकी भावनासे पुनः प्रश्न किया ॥ ५ ॥ अगस्त्यजी बोले—हे तारकरिपु ! हे भगवन् ! हे प्रभो ! अब आप मुझे देवीभागवतका माहात्म्य तथा उसके श्रवणकी विधि बताइए ॥६॥ देवीभागवत सब पुराणोंमें उत्तम पुराण है । क्योंकि उसमें त्रिलोकजननी और नित्या भगवतीकी महिमा बखानी गई है ॥७॥ स्वामिकार्तिकेय बोले—हे ब्रह्मन् ! श्रीदेवीभागवतके माहात्म्यको विस्तारके साथ भला कौन कह सकता है ? हाँ, मैं संक्षिप्तरूपमें कहूँगा, उसे सुनिए ॥८॥ जिसमें नित्या, सच्चिदानन्दरूपिणी,

द्रापतिर्मुनिः ॥ गत्वा कुमारमभ्यर्च्य प्रपच्छ विविधाः कथाः ॥ २ ॥ स तस्मै भगवान् स्कन्दः कथयामास भूरिशः ॥ दानतीर्थव्रतादीनां माहात्म्योपचिताः कथाः ॥ ३ ॥ वाराणस्याश्च माहात्म्यं मणिकर्णीभवं तथा ॥ गङ्गायाश्चापि तीर्थानां वर्णितं बहुविस्तरम् ॥ ४ ॥ श्रुत्वाऽथ स मुनिः प्रीतः कुमारं भूरिवर्चसम् ॥ पुनः पप्रच्छ लोकानां हितार्थं कुम्भसम्भवः ॥ ५ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ भगवंस्तारकाराते देवीभागवतस्य तु ॥ माहात्म्यं श्रवणे तस्य विधिं चापि वद प्रभो ॥ ६ ॥ देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम् ॥ त्रैलोक्यजननी साक्षाद्गीयते यत्र शाश्वती ॥ ७ ॥ स्कन्द उवाच ॥ श्रीभागवतमाहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात्क्षमः ॥ शृणु संक्षेपतो ब्रह्मन् कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥ ८ ॥ या नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बिका ॥ साक्षात् समाश्रिता यत्र भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ ९ ॥ अतस्तद्वाङ्मयी मूर्तिर्देवीभागवते मुने ॥ पठनाच्छ्रवणाद्यस्य न किञ्चिदिह दुर्लभम् ॥ १० ॥ आसीद्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ॥ सोऽनपत्योऽकरोदिष्टिं वसिष्ठानुमतो नृपः ॥ ११ ॥ होतारं प्रार्थयामास श्रद्धाऽथ दयिता मनोः ॥ कन्या भवतु मे ब्रह्मंस्तथोपायो विधीयताम् ॥ १२ ॥ मनसा चिन्तयन्होता कन्यामेवाजुहोद्धविः ॥ ततस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम चाभवत् ॥ १३ ॥ अथ राजा सुतां दृष्ट्वा प्रोवाच विमना गुरुम् ॥ कथं संकल्पवैषम्यमिह जातं प्रभो तव ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वा स मुनिर्ध्यात्वा ज्ञात्वा होतुर्व्यतिक्रमम् ॥ ईश्वरं शरणं यात इलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥१५॥ मुनेस्तपःप्रभावाच्च परेशानुग्रहात्तथा ॥ पश्यतां सर्वलोकानामिला पुरुष-

भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनी साक्षात् जगदम्बिका स्वयं विद्यमान हैं ॥९॥ इसी कारण देवीभागवत उन भगवतीकी वाङ्मयी मूर्ति मानी जाती है । इसका पठन और श्रवण करनेसे संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता ॥१०॥ विवस्वान्के पुत्र श्राद्धदेवके नामसे विख्यात थे। श्राद्धदेवके कोई सन्तान नहीं थी । अतएव महर्षि वसिष्ठकी अनुमतिसे उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ किया॥११॥ तब मनुवंशी श्राद्धदेवकी पत्नी श्रद्धाने यज्ञके होतासे प्रार्थना की—हे भगवन् ! आप कोई ऐसा उपाय करें कि जिससे मेरी कोखसे कन्या उत्पन्न हो ॥१२॥ तदनुसार होताने मन ही मन कन्याप्राप्तिका विचार करके आहुति दी । उसके इस दोषसे श्राद्धदेवके इला नामकी कन्या उत्पन्न हुई ॥ १३ ॥ कन्याको देखकर अनमने भावसे श्राद्धदेवने गुरु वसिष्ठसे कहा—हे प्रभो ! आपने तो पुत्रप्राप्तिके लिए यज्ञ किया था । फिर कन्या क्यों हुई ? ॥१४॥ यह सुनकर मुनि वसिष्ठने ध्यान किया तो उन्हें होताके व्यतिक्रमका पता लगा । अब वे इलाको कन्यासे पुत्र-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूपमें परिणत करनेके लिए ईश्वरकी शरणमें गये ॥१५॥ सो मुनि वसिष्ठके तपःप्रभाव तथा भगवान्‌की कृपासे सब लोगोंके समक्ष इला कन्यासे पुत्र हो गयी ॥१६॥ तदनन्तर गुरु वसिष्ठने संस्कार करके उसका सुद्युम्न नाम रक्खा। जैसे समुद्र सब नदियोंका निधान होता है। उसी प्रकार वह सब विद्याओंका निधान बन गया ॥ १७ ॥ कुछ समय बाद सुद्युम्न तरुण हुआ और एक दिन सिन्धुप्रदेशीय घोड़ेपर सवार होकर वनमें शिकार खेलने गया ॥ १८ ॥ अपने साथियोंके साथ एक वनसे दूसरे वनमें जाते-जाते वह दूर निकल गया। संयोगवश कुमार सुद्युम्न घूमते-फिरते हिमालय पर्वतकी उस तलहटीमें जा पहुँचा ॥१९॥ जहाँ किसी समय देवाधिदेव शंकर भगवान् अपनी भार्या पार्वतीके साथ सानन्द रमण कर रहे थे ॥२०॥ उसी समय शिवदर्शनकी लालसासे बहुतेरे मुनिगण वहाँ जा पहुँचे। उन्हें देखकर भगवती पार्वती लजा गयीं ॥२१॥ वे व्रतनिष्ठ मुनि शिव-पार्वतीको विहार करते देखकर लौट पड़े और वहाँसे सीधे वैकुण्ठ धामको चले गये ॥२२॥ तब अपनी प्रियतमाको प्रसन्न करनेके लिए शिवजीने उस वनको यह शाप दे दिया कि "आजसे जो भी पुरुष इस वनमें आयेगा, वह स्त्री हो जायगा" ॥२३॥ उसी समयसे पुरुषोंने

तामगात् ॥ १६ ॥ गुरुणा कृतसंस्कारः सुद्युम्नोऽथ मनोः सुतः ॥ निधिर्बभूव विद्यानां सरितामिव सागरः ॥ १७ ॥ अथ कालेन सुद्युम्नस्तारुण्यं समवाप्य च ॥ मृगयार्थं वनं यातो हयमारुह्य सैन्धवम् ॥१८॥ वनाद्वनान्तरं गच्छन्बहु बभ्राम सानुगः ॥ दैवादधस्ताद्धेमाद्रेः स कुमारो वनं ययौ ॥ १६ ॥ कस्मिंश्चित्समये यत्र भार्ययाऽपर्णया सह ॥ अरमद्देवदेवस्तु शङ्करो भगवान्मुदा ॥ २० ॥ तदा तु मुनयस्तत्र शिवदर्शनलालसाः ॥ आजग्मुरथ तान्दृष्ट्वा गिरिजा व्रीडिताऽभवत् ॥ २१ ॥ रममाणौ तु तौ दृष्ट्वा गिरिशौ संशितव्रताः ॥ निवृत्ता मुनयो जग्मुर्वैकुण्ठनिलयं तदा ॥ २२ ॥ प्रियायाः प्रियमन्विच्छञ्छिवोऽरण्यं शशाप ह ॥ अद्यारभ्य विशेद्योऽत्र पुमान्योषिद्भवेदिति ॥२३॥ तत आरभ्य तं देशं पुरुषा वर्जयंति हि ॥ तत्र प्रविष्टः सुद्युम्नो बभूव प्रमदोत्तमा ॥२४॥ स्त्रीभूतानुगानश्वं वडवां वीक्ष्य विस्मितः ॥ अथ सा सुन्दरी योषा विचचार वने वने ॥ २५ ॥ एकदा सा जगामाथ बुधस्याश्रमसन्निधौ ॥ दृष्ट्वा तां चारुसर्वाङ्गीं पीनोन्नतपयोधराम् ॥ २६ ॥ बिम्बोष्ठीं कुन्ददशनां सुमुखीमुत्पलेक्षणाम् ॥ अनंगशरविद्धांगश्चकमे भगवान्बुधः ॥ २७ ॥ साऽपि तं चकमे सुभ्रूः कुमारं सोमनन्दनम् ॥ ततस्तस्याश्रमेऽवात्सीद्रममाणा बुधेन सा ॥ २८ ॥ अथ कालेन कियता पुरूरवसमात्मजम् ॥ स तस्यां जनयामास मित्रावरुणसम्भव ॥ २६ ॥ अथ वर्षेषु यातेषु कदाचित्सा बुधाश्रमे ॥ स्मृत्वा स्वं

उस वनमें जाना छोड़ दिया था। हाँ, जब सुद्युम्न उस वनमें पहुँचा तो वह एक अति सुन्दरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया ॥२४॥ अपने सेवकोंको भी पुरुषसे स्त्री तथा घोड़ेको घोड़ीके रूपमें देखकर सुद्युम्नको बहुत आश्चर्य हुआ। अब वह सुन्दरी वन-वनमें विचरने लगी ॥२५॥ एक दिन वह बुधके आश्रमके पास जा पहुँची। उस सर्वाङ्गसुन्दरी, पोढ़े तथा उन्नत स्तनयुक्त, बिम्ब (कुंदुरू) के समान लाल होंठ, कुन्द-कुसुम सदृश श्वेत दन्तवाली, सुन्दर मुख तथा कमनीय नयनोंवाली उस तरुणीको देखते ही बुधके समस्त अङ्ग कामबाणसे बिंध गये और वे उसपर आसक्त हो गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ सुन्दर भौंहोंवाली वह तरुणी भी चन्द्रपुत्र बुधपर मोहित हो गयी। अब वह बुधके साथ रमण करती हुई वहाँ ही रहने लगी ॥ २८ ॥ हे महर्षि अगस्त्य! कुछ समय बाद बुधने उस तरुणी द्वारा पुरूरवा नामके पुत्रको उत्पन्न किया ॥२९॥ कुछ वर्ष व्यतीत होनेपर उस सुन्दरीको जब पूर्व वृत्तान्तका स्मरण आया तो बहुत दुःखित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होकर वह उस आश्रमसे भाग निकली ॥३०॥ वह वहाँसे चलकर गुरु वसिष्ठके आश्रमपर गयी और सब वृत्तान्त बताकर उसने पुनः पुरुषत्व पानेकी इच्छा व्यक्त की ॥३१॥ सब वृत्तान्त सुनकर गुरु वसिष्ठ कैलास पर्वतपर गये और शंकर भगवान्‌का पूजन करके परम श्रद्धापूर्वक इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥३२॥ वसिष्ठजी बोले—हे शिव! शङ्कर, कपर्दी, भगवती गिरिजाके अर्धाङ्ग और चन्द्रमौलि शिवको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ मृड, सुखदाता, कैलासवासी, नीलकण्ठ और भक्तोंको भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले शङ्करजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३४॥ शिव, शिवस्वरूप, शरणागतभयहारी, वृषभवाहन तथा शरणदायक परमात्मा शिवको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ सृष्टि, स्थिति तथा संहारके लिए ब्रह्मा-विष्णु तथा शिवरूपधारी, देवाधिदेव, वरदायक तथा त्रिपुरासुरके शत्रु शंकरजीको अनेकशः नमस्कार है ॥ ३६ ॥ यज्ञरूप तथा याजकोंके फलदायक शिवजीको नमस्कार है । गङ्गाधर, सूर्य-चन्द्र-अग्नि-स्वरूप तथा तीन नेत्रोंवाले

पूर्ववृत्तान्तं दुःखिता निर्जगाम ह ॥ ३० ॥ गुरोरथाश्रमं गत्वा वसिष्ठस्य प्रणम्य तम् ॥ निवेद्य वृत्तं शरणं ययौ पुंस्त्वमभीप्सती ॥ ३१ ॥ वसिष्ठो
ज्ञातवृत्तान्तो गत्वा कैलासपर्वतम् ॥ संपूज्य शंभुं तुष्टाव भक्त्या परमया युतः ॥३२॥ वसिष्ठ उवाच ॥ नमो नमः शिवायास्तु शङ्कराय कपर्दिने॥
गिरिजार्द्धाङ्गदेहाय नमस्ते चन्द्रमौलये ॥ ३३ ॥ मृडाय सुखदात्रे ते नमः कैलासवासिने ॥ नीलकण्ठाय भक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने ॥ ३४ ॥
शिवाय शिवरूपाय प्रपन्नभयहारिणे ॥ नमो वृषभवाहाय शरण्याय परात्मने ॥ ३५ ॥ ब्रह्मविष्णवीशरूपाय सर्गस्थितिलयेषु च ॥ नमो देवाधि-
देवाय वरदाय पुरारये ॥ ३६ ॥ यज्ञरूपाय यजतां फलदात्रे नमो नमः ॥ गङ्गाधराय सूर्येन्दुशिखिनेत्राय ते नमः ॥ ३७॥ एवं स्तुतः स भगवा-
न्प्रादुरासीज्जगत्पतिः ॥ वृषारूढोऽम्बिकोपेतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥३८॥ रजताचलसंकाशस्त्रिनेत्रश्चंद्रशेखरः ॥ प्रणतं परितुष्टात्मा प्रोवाच मुनिसत्त-
मम् ॥३९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वरय विप्रर्षे यत्ते मनसि वर्तते ॥ इत्युक्तस्तं प्रणम्येला पुंस्त्वमभ्यर्थयन्मुनिः ॥४०॥ अथ प्रसन्नो भगवानुवाच
मुनिसत्तमम् ॥ मासं पुमान्स भविता मासं नारी भविष्यति ॥ ४१ ॥ इति प्राप्य वरं शंभोर्महर्षिर्जगदम्बिकाम् ॥ वरदानोन्मुखीं देवीं प्रणनाम
महेश्वरीम् ॥ ४२ ॥ कोटिचंद्रकलाकान्ति सुस्मितां परिपूज्य च ॥ तुष्टाव भक्त्या सततमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ ४३ ॥ जय देवि महादेवि

शिवजीको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ गुरु वसिष्ठके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर जगत्पति शंकरजी प्रकट हो गये। वे नन्दीपर सवार थे और भगवती पार्वती उनके साथ थीं। करोड़ों सूर्योंके समान उनका तेज था ॥ ३८ ॥ चाँदीके पर्वत सदृश शुभ्र, त्रिनेत्रधारी और चन्द्रशेखर शिवजी अतिशय प्रसन्न होकर विनम्र वसिष्ठ मुनिसे बोले ॥ ३९ ॥ शंकरजीने कहा—हे विप्रर्षे! आपकी जो इच्छा हो, वह वर माँगिए। उनके ऐसा कहनेपर गुरु वसिष्ठने प्रणाम करके इलाके पुनः पुरुषत्व प्राप्तिकी प्रार्थना की ॥ ४० ॥ तब प्रसन्न होकर शंकरजीने कहा—एक महीना वह पुरुष रहेगी और एक महीना स्त्री ॥ ४१ ॥ इस प्रकार शिवजीसे वर प्राप्त करके वसिष्ठजीने वरदानके लिए उत्सुक महेश्वरी भगवती पार्वतीको प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ चन्द्रमाकी करोड़ों कलाओं सदृश कान्तिमती तथा मन्द-मन्द मुसकाती हुई भगवती पार्वतीको प्रणाम करके इलाके सर्वकालीन पुरुषत्वप्राप्तिकी कामनासे प्रेमपूर्वक स्तुति करते हुए वसिष्ठ कहने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगे—॥४३॥ हे देवि ! हे महादेवि ! हे भक्तोंपर कृपा करनेवाली भगवती ! आपकी जय हो । हे सब देवताओंकी आराध्या ! आपकी जय हो । हे अनन्त गुणोंकी खानि ! आपकी जय हो ॥ ४४ ॥ हे देवि ! हे शरणागतवत्सले ! आपको नमस्कार है । हे दुर्गे ! हे दुःखविनाशिनि ! हे दुष्ट दैत्योंका विनाश करनेवाली ! आपकी जय हो ॥ ४५ ॥ हे भक्तिसे प्राप्त होनेवाली माता ! हे महामाये ! हे जगदम्बिके ! हे संसारसागरसे पार करनेके लिए नौकास्वरूप एवं पावन चरणकमलोंवाली देवी ! आपको अनेकशः नमस्कार है ॥ ४६ ॥ आपके चरणकमलोंकी सेवा करके ही ब्रह्मादिक देवता विश्वकी सृष्टि, पालन तथा संहारकार्य करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ४७ ॥ हे देवेशि ! हे अर्थ-धर्म-काम-मोक्षरूपी चारों पदार्थ प्रदान करनेवाली देवी ! आप मुझपर प्रसन्न हों । हे माता ! भलीभाँति आपकी स्तुति करनेमें भला कौन समर्थ हो सकता है ? अतएव मैं केवल प्रणाम ही करता हूँ ॥ ४८ ॥ वसिष्ठ मुनिके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर परा, नारायणी, दुर्गा, भगवती उनके ऊपर तत्काल प्रसन्न हो गयीं ॥ ४९ ॥ प्रणत जनोंका दुःख दूर करनेवाली महादेवीने मुनि वसिष्ठसे कहा—हे मुनिराज ! आप सुद्युम्नके-

भक्तानुग्रहकारिणि ॥ जय सर्वसुराराध्ये जयानन्तगुणालये ॥ ४४ ॥ नमो नमस्ते देवेशि शरणागतवत्सले ॥ जय दुर्गे दुःखहंत्रि दुष्टदैत्यनिषूदिनि ॥ ४५ ॥ भक्तिगम्ये महामाये नमस्ते जगदम्बिके ॥ संसारसागरोत्तारपोतीभूतपदाम्बुजे ॥ ४६ ॥ ब्रह्मादयोऽपि विबुधास्त्वत्पादाम्बुजसेवया ॥ विश्वसर्गस्थितिलयप्रभुत्वं समवाप्नुयुः ॥ ४७ ॥ प्रसन्ना भव देवेशि चतुर्वर्गप्रदायिनि ॥ कस्त्वां स्तोतुं क्षमो देवि केवलं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ ४८ ॥ एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा ॥ भक्त्या वसिष्ठमुनिना प्रसन्ना तत्क्षणादभूत् ॥ ४९ ॥ तदोवाच महादेवी प्रणतार्तिहरी मुनिम् ॥ सुद्युम्नभवनं गत्वा कुरु भक्त्या मदर्चनम् ॥ ५० ॥ सुद्युम्नं श्रावय प्रीत्या पुराणं मत्प्रियंकरम् ॥ देवीभागवतं नाम नवाहोभिर्द्विजोत्तम ॥ ५१ ॥ श्रवणादेव सततं पुंस्त्वमस्य भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा च तिरोधानं गच्छतः स्म शिवेश्वरौ ॥ ५२ ॥ वसिष्ठस्तां दिशं नत्वा समागत्याश्रमं निजम् ॥ समाहूय च सुद्युम्नं देव्याराधनमादिशत् ॥ ५३ ॥ आश्विनस्य सिते पक्षे संपूज्य जगदम्बिकाम् ॥ नवरात्रविधानेन श्रावयामास भूपतिम् ॥ ५४ ॥ श्रुत्वा भक्त्याऽपि सुद्युम्नः श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ प्रणम्याभ्यर्च्य च गुरुं लेभे पुंस्त्वं निरंतरम् ॥ ५५ ॥ राज्यासनेऽभिषिक्तस्तु वसिष्ठेन महर्षिणा ॥ भुवं शशास धर्मेण प्रजाश्चैवानुरंजयन् ॥ ५६ ॥ ईजे च विविधैर्यज्ञैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः ॥ पुत्रेषु राज्यं सन्दिश्य प्राप देव्याः सलोकताम् ॥ ५७ ॥ इति कथित-

घर जाकर भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करें ॥ ५० ॥ साथ ही नौ दिनोंमें सुद्युम्नको मेरा प्रिय पुराण देवीभागवत सुनाइए ॥५१॥ उसके सुननेसे ही उसे सदाके लिए पुरुषत्व प्राप्त हो जायगा। ऐसा कहकर शंकर भगवान तथा पार्वती दोनों अन्तर्धान हो गये ॥५२॥ तब वसिष्ठजी उस दिशाको नमस्कार करके अपने आश्रमको लौट गये और सुद्युम्नको बुलाकर उन्होंने देवीके आराधन-का आदेश दिया ॥५३॥ तदनन्तर आश्विन मासके शुक्लपक्षमें जगदम्बाका पूजन करके वसिष्ठने नवरात्रविधिसे उसे देवीभागवत पुराण सुनाया ॥ ५४ ॥ सुद्युम्नने इस प्रकार अपने श्रवण-पुटसे श्रीमद्देवीभागवतरूपी अमृतका पान करके सदाके लिए स्थायी पुरुषत्व प्राप्त कर लिया ॥ ५५ ॥ तत्पश्चात् गुरु वसिष्ठने सुद्युम्नका राज्याभिषेक किया और वह प्रजाको प्रसन्न रखता हुआ धर्मपूर्वक राज्यशासन करने लगा ॥ ५६ ॥ सुद्युम्नने पुष्कल दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ किये और अन्तमें पुत्रोंको राज्यभार सौंपकर वह देवीके लोकको चला गया ॥ ५७ ॥ हे विप्रो !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार मैंने इतिहास समेत देवीका माहात्म्य कह सुनाया। जो प्राणी इसका पठन तथा श्रवण करता है, वह देवीकी कृपासे अपनी सब कामनायें पूर्ण करके अन्तमें देवीके लोकको प्राप्त कर लेता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—हे ऋषियों ! यह दिव्य और विचित्र कथा सुनकर अगस्त्यजीने कुछ और सुननेके लिए बड़े विनीत भावसे स्वामिकार्तिकेयके प्रति कहा—॥ १ ॥ अगस्त्यजी बोले–हे देवताओंके सेनापति ! मैंने आपके मुखसे यह विचित्र कथा सुनी। अब मुझे देवीभागवतके माहात्म्यकी कोई अन्य कथा सुनाइए ॥ २ ॥ कार्तिकेय बोले–हे मुने ! हे मित्रावरुण-सुवन ! अब आप वह कथा सुनें, जिसमें देवीभागवतके एक अङ्गकी महिमा बतायी गयी है ॥३॥ गायत्रीके आधारपर अब मैं धर्मका विस्तृत वर्णन करता हूँ। जिस आख्यानमें गायत्रीकी

मशेषं सेतिहासं च विप्रा यदि पठति सुभक्त्या मानवो वा शृणोति ॥ स इह सकलकामान्प्राप्य देव्याः प्रसादातपरममृतमथान्ते याति देव्याः सलोकम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा कथां दिव्यां विचित्रां कुम्भसंभवः ॥ शुश्रूषुः पुनराहेदं विशाखं विनयान्वितः ॥१॥ अगस्त्य उवाच ॥ देवसेनापते देव विचित्रेयं श्रुता कथा ॥ पुनरन्यच्च माहात्म्यं वद भागवतस्य मे ॥ २ ॥ स्कन्द उवाच ॥ मित्रावरुणसंभूत मुने शृणु कथामिमाम् ॥ यत्रैकदेशमहिमा प्रोक्तो भागवतस्य तु ॥ ३ ॥ वर्ण्यते धर्मविस्तारो गायत्रीमधिकृत्य च ॥ गायत्र्या महिमा यत्र तद्भागवतमिष्यते ॥ ४ ॥ भगवत्या इदं यस्मात्तस्माद्भागवतं विदुः ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाराध्या परा भगवती हि सा ॥५॥ ऋतवागिति विख्यातो मुनिरासीन्महामतिः ॥ तस्य पुत्रोऽभवत्काले गण्डान्ते पौष्णभान्तिमे ॥ ६ ॥ स तस्य जातकर्मादि क्रियाश्चक्रे यथाविधि ॥ चूडोपनयनादींश्च संस्कारानपि सोऽकरोत् ॥ ७ ॥ यत आरभ्य जातोऽसौ पुत्रस्तस्य महात्मनः ॥ तत एवाथ स मुनिः शोकरोगाकुलोऽभवत् ॥ ८ ॥ रोषलोभपरीतात्मा तथा माताऽपि तस्य च ॥ बहुरोगार्दिता नित्यं शुचा दुःखीकृता भृशम् ॥ ९ ॥ ऋतवाक्स मुनिश्चिन्तामवाप भृशदुःखितः ॥ किमेतत्कारणं जातं पुत्रो मेऽत्यंतदुर्मतिः ॥ १० ॥ कस्यचि-

महिमा गायी गयी हो, उसे भागवत कहते हैं ॥ ४ ॥ यह पुराण भगवतीके माहात्म्यसे परिपूर्ण है। इसीसे यह देवीभागवत कहलाता है। वे परा भगवती ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीकी भी आराध्या हैं ॥५॥ ऋतवाक् इस नामसे विख्यात एक बड़े बुद्धिमान् मुनि थे। गण्डान्त योग तथा रेवती नक्षत्रमें उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ उन्होंने विधिवत् उसका जातकर्मादि संस्कार किया। बादमें चूडाकरण तथा उपनयन आदि संस्कार भी सम्पन्न किये ॥ ७ ॥ उन महात्माके घर जबसे वह पुत्र उत्पन्न हुआ, तबसे ऋतवाक् मुनि रोग तथा शोकसे व्याकुल रहने लगे ॥ ८ ॥ तभीसे उनमें क्रोध और लोभकी मात्रा बढ़ गयी। उस बालककी माता भी बहुतेरे रोगों तथा शोकसे सन्तप्त रहने लगी ॥ ९ ॥ अत्यन्त दुःखी रहनेके कारण मुनि ऋतवाक् बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा कि मेरे घरमें ऐसा दुर्मति पुत्र क्यों उत्पन्न हुआ ॥१०॥ तरुण होनेपर वह मुनिपुत्र किसी अन्य मुनिकुमारकी पत्नीको बलात् हर लाया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस दुर्बुद्धिने पिता और माताके उपदेशपर भी ध्यान नहीं दिया ॥११॥ तब बहुत दुःखित होकर उन्होंने कहा कि निपूता रह जाना अच्छा है, किन्तु कुपुत्रका पिता होना ठीक नहीं है ॥ १२ ॥ कुपुत्र अपने स्वर्गगत पितरोंको भी नरकमें गिरा देता है और वह जब तक जीता है, तबतक अपने माता-पिताको दुःख देता रहता है ॥ १३ ॥ इस प्रकार माता-पिताको दुःख देनेवाले पापी पुत्रके जन्मको धिक्कार है। क्योंकि कुपुत्र न तो मित्रोंका उपकार कर सकता है और न शत्रुओंका अपकार ॥ १४ ॥ संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके घरमें परोपकारी तथा माता-पिताको सुखदायी पुत्र विद्यमान है ॥ १५ ॥ कुपुत्रसे कुल नष्ट हो जाता है। कुपुत्रसे कीर्ति भी नष्ट हो जाती है। कुपुत्रसे मनुष्यको इहलोक और परलोक दोनों जगह नारकीय यातना भोगनी पड़ती है ॥१६॥ कुपुत्रसे कुल, दुष्टा भार्यासे जीवन, दूषित भोजनसे दिन और दुष्टि मित्रसे सुख नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥ कार्तिकेय बोले—हे अगस्त्यजी ! इस प्रकार

न्मुनिपुत्रस्य बलात्पत्नीं जहार च ॥ मेने शिक्षां पितुर्नासौ न च मातुर्विमूढधीः ॥ ११ ॥ ततो विषण्णचित्तस्तु ऋतवागब्रवीदिदम् ॥ अपुत्रता वरं नृणां न कदाचित्कुपुत्रता ॥ १२ ॥ पितॄन्कुपुत्रः स्वर्यातान्निरये पातयत्यपि ॥ यावज्जीवेत्सदा पित्रोः केवलं दुःखदायकः ॥ १३ ॥ पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म कुपुत्रस्य च पापिनः ॥ सुहृदां नोपकाराय नापकाराय वैरिणाम् ॥ १४ ॥ धन्यास्ते मानवा लोके सुपुत्रो यद्गृहे स्थितः ॥ परोपकारशीलश्च पितुर्मातुः सुखावहः ॥ १५ ॥ कुपुत्रेण कुलं नष्टं कुपुत्रेण हतं यशः ॥ कुपुत्रेणेह चामुत्र दुःखं निरययातनाः ॥ १६ ॥ कुपुत्रेणान्वयो नष्टो जन्म नष्टं कुभार्यया ॥ कुभोजनेन दिवसः कुमित्रेण सुखं कुतः ॥ १७ ॥ स्कन्द उवाच ॥ एवं दुष्टस्य पुत्रस्य दुष्टैराचरणैर्मुनिः ॥ तप्यमानोऽनिशं काले गत्वा गर्गमपृच्छत ॥ १८ ॥ ऋतवागुवाच ॥ भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छामि वद तत्प्रभो ॥ ज्योतिश्शास्त्रस्य चाचार्य पुत्रदौःशील्यकारणम् ॥ १९ ॥ गुरुशुश्रूषया वेदा अधीता विधिवन्मया ॥ ब्रह्मचारिव्रतं तीर्त्वा विवाहो विधिवत्कृतः ॥ २० ॥ भार्यया सह गार्हस्थ्यधर्मश्चानुष्ठितोऽनिशम् ॥ पंचयज्ञविधानं च मयाऽकारि यथाविधि ॥ २१ ॥ नरकाद्बिभ्यता विप्र न तु कामसुखेच्छया ॥ गर्भाधानं च विधिवत्पुत्रप्राप्त्यै मया कृतम् ॥ २२ ॥ पुत्रोऽयं मम दोषेण मातुर्दोषेण वा मुने ॥ जातो दुःखावहः पित्रोर्दुःशीलो बंधुशोकदः ॥ २३ ॥ एतन्निशम्य वचनं गर्गाचार्यो मुनेस्तदा ॥ विचार्य सर्वं तद्धेतुं ज्योतिर्विद्वाचमब्रवीत् ॥ २४ ॥ गर्ग उवाच ॥ मुने नैवापराधस्ते न मातुर्न कुलस्य च ॥ रेवत्यन्तं तु

अपने पुत्रके दुराचारसे दुःखी होकर ऋतवाक् मुनि महर्षि गर्गके पास गये ॥ १८ ॥ वहाँ ऋतवाक् मुनिने कहा—हे भगवन् ! आप ज्योतिषशास्त्रके आचार्य हैं। अतएव मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरा पुत्र दुराचारी क्यों है ? ॥ १९ ॥ मैंने गुरुकी सेवा करके विधिवत् वेदाध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य व्रतको निबाहा और विधिवत् अपना ब्याह किया ॥ २० ॥ अपनी पत्नीके साथ मैंने गार्हस्थ्य धर्मका पालन करते हुए विधिवत् पञ्चयज्ञ किया ॥ २१ ॥ हे विप्र ! नरकमें जानेके भयसे मैंने पुत्रप्राप्तिके निमित्त विधिवत् गर्भाधान किया था-कामजनित सुख पानेके लिए नहीं ॥ २२ ॥ ऐसी दशामें मेरे या अपनी माताके दोषसे यह पुत्र ऐसा दुखदायी, दुराचारी और बान्धवजनोंको सतानेवाला क्यों उत्पन्न हुआ है ? ॥ २३ ॥ यह वचन सुनकर ज्योतिर्विद् गर्गाचार्यने कारणका भली-भाँति विचार करके कहा ॥ २४ ॥ गर्गजी बोले—हे मुने ! उसके कुपुत्र होनेमें न आपका कोई दोष है, न बालककी माताका और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न कुलका ही दोष है। रेवती नक्षत्रके अन्तिम चरण अर्थात् गण्डान्तयोगमें जन्म लेनेके कारण ही वह ऐसा दुष्ट हुआ है ॥२५॥ हे मुने! दुष्ट कालमें उत्पन्न होनेके कारण ही आपको ऐसा दुःख देनेवाला पुत्र प्राप्त हुआ है। इसके सिवाय और कोई कारण नहीं है ॥२६॥ हे ब्रह्मन्! इस दुःखको दूर करनेके लिए आप प्रयत्नपूर्वक दुर्गतिनाशिनी जगदम्बा दुर्गा भवानीकी आराधना करिए ॥ २७ ॥ गर्गके वचन सनकर महर्षि ऋतवाक् क्रोधसे बावले हो गये और उन्होंने शाप देते हुए कहा कि रेवती आकाशसे नीचे गिर जाय ॥ २८ ॥ उनके ऐसा कहते ही सबके समक्ष रेवती नक्षत्र आकाशसे कुमुद पर्वतपर गिरकर चमकने लगा ॥ २९ ॥ रेवतीके गिरनेसे वह कुमुदाचल पर्वत रैवतकके नामसे विख्यात हो गया। उसी समयसे वह पर्वत बहुत ही रमणीक रहने लगा ॥ ३० ॥ इस प्रकार रेवतीको शाप देकर मुनि ऋतवाक् गर्गाचार्यकी बतायी विधिके अनुसार भगवतीका आराधन करके सुखी हुए ॥ ३१ ॥ कार्तिकेय

गण्डान्तं पुत्रदौःशील्यकारणम् ॥ २५ ॥ दुष्टे काले यतो जन्म पुत्रस्य तव भो मुने ॥ तेनैव तव दुःखाय नान्यो हेतुर्मनागपि ॥ २६ ॥ तद्दुःखशांतये ब्रह्मञ्जगतां शिवाम् ॥ समाराधय यत्नेन दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ २७ ॥ गर्गस्य वचनं श्रुत्वा ऋतवाक् क्रोधमूर्छितः ॥ रेवतीं तु शशापासौ व्योम्नः पततु रेवती ॥ २८ ॥ दत्ते शापे तु तेनाथ पूष्णो भं च पपात खात् ॥ कुमुदाद्रौ भासमानं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २९ ॥ ख्यातो रैवतकश्चाभूत्तत्पातात्कुमुदाचलः ॥ अतीव रमणीयश्च ततः प्रभृति सोऽप्यभूत् ॥ ३० ॥ दत्त्वा शापं च रेवत्यै गर्गोक्तविधिना मुनिः ॥ समाराध्यांबिकां देवीं सुखसौभाग्यभागभूत् ॥ ३१ ॥ स्कन्द उवाच ॥ रेवत्यृक्षस्य यत्तेजस्तस्माज्जाता तु कन्यका ॥ रूपेणाप्रतिमा लोके द्वितीया श्रीरिवाभवत् ॥ ३२ ॥ अथ तां प्रमुचः कन्यां रेवतीकांतिसंभवाम् ॥ दृष्ट्वा नाम चकारास्या रेवतीति मुदा मुनिः ॥ ३३ ॥ निन्येऽथ स्वाश्रमे चैनां पोषयामास धर्मतः ॥ ब्रह्मर्षिः प्रमुचो नाम कुमुदाद्रौ सुतामिव ॥३४॥ अथ कालेन च प्रौढां दृष्ट्वा तां रूपशालिनीम् ॥ स मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या योग्यो वरो भवेत् ॥ ३५ ॥ बहुधाऽन्वेषयंस्तस्या नाससादोचितं पतित् ॥ ततोऽग्निशालां संविष्य मुनिस्तुष्टाव पावकम् ॥ ॥ ३६ ॥ कन्यावरं तदाशंसत्प्रीतस्तमपि हव्यवाट् ॥ धर्मिष्ठो बलवान्वीरः प्रियवागपराजितः ॥ ३७ ॥ दुर्दमो भविता भर्ता मुनेऽस्याः पृथिवीपतिः ॥ इति श्रुत्वा वचो वह्नेः प्रसन्नोऽभून्मुनिस्तदा ॥ ३८ ॥ दैवादाखेटकव्याजात्तत्क्षणादागतो नृपः ॥ दुर्दमो नाम मेधावी तस्याश्रमपदं मुनेः

बोले—हे अगस्त्यजी! उस रेवतीके तेजसे एक कन्या उत्पन्न हुई, जो अनुपम रूपवती होनेके कारण दूसरी लक्ष्मी जैसी लग रही थी ॥ ३२ ॥ रेवतीके तेजसे उत्पन्न कन्याको देखकर प्रमुच मुनिने उसका रैवती नाम रक्खा ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् वे उसे अपने कुमुदाचलवर्ती आश्रमपर ले आये और अपनी कन्या सदृश समझकर उसका पालन करने लगे ॥ ३४ ॥ कालान्तरमें उसे परम सुन्दरी और सयानी देखकर वे यह सोचने लगे कि इस कन्याके योग्य वर कौन होगा ॥ ३५ ॥ बहुत खोज करनेपर भी जब उन्हें उसके योग्य वर नहीं मिला, तब अग्निशालामें जाकर अग्निदेवकी पूजा करने लगे ॥ ३६ ॥ उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर अग्निदेवने उपयुक्त वर बताते हुए कहा —हे मुने! इस कन्याका पति दुर्दम बड़ा धर्मात्मा, बलवान्, बीर, प्रियभाषी और किसीसे परास्त न होनेवाला योद्धा होगा। अग्निदेवके वचन सुनकर प्रमुच मुनि बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ संयोगवश उसी समय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिकार खेलनेके बहाने राजा दुर्दम उन मुनिके आश्रमपर आ उपस्थित हुए ॥३९॥ वे प्रियव्रतके वंशज राजा विक्रमशीलके पुत्र तथा असाधारण बलवान् थे और कालिन्दीके गर्भसे जनमे थे ॥४०॥ आश्रममें पहुँचनेके बाद मुनिको वहाँ न देखकर राजा दुर्दमने रेवतीको 'प्रिये' कहकर सम्बोधित करते हुए पूछा ॥ ४१ ॥ राजाने कहा—हे प्रिये ! महर्षि प्रमुच इस समय कहाँ हैं ? हे कल्याणी ! मैं उनके श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहता हूँ । मुझे ठीक-ठीक बताओ ॥ ४२ ॥ कन्या रेवती बोली—महाराज ! महामुनि इस समय अग्निशालामें हैं । राजा दुर्दम यह वचन सुनते ही आश्रमसे बाहर निकल आये ॥ ४३ ॥ इसके कुछ ही क्षणों बाद प्रमुच मुनिने अग्निशालाके द्वारपर राजलक्षणसम्पन्न एवं विनयावनत राजा दुर्दमको उपस्थित देखा ॥ ४४ ॥ तभी मुनिराज प्रमुचको राजाने प्रणाम किया । महामुनिने तत्काल शिष्यसे कहा—गौतम ! शीघ्र अर्घ्य ले आओ । क्योंकि यह राजा अर्घ्य पाने योग्य है ॥ ४५ ॥ आज

॥ ३९ ॥ पुत्रो विक्रमशीलस्य बलवान् वीर्यवत्तरः ॥ कालिन्दीजठरे जातः प्रियव्रतकुलोद्भवः ॥ ४० ॥ मुनेराश्रममाविश्य तमदृष्ट्वा महामुनिम् ॥ आमन्त्र्य तां प्रिये चेति रेवतीं पृष्टवान् नृपः ॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ महर्षिर्भगवानस्मादाश्रमात् क्व गतः प्रिये ॥ तत्पादौ द्रष्टुमिच्छामि वद कल्याणि तत्त्वतः ॥ ४२ ॥ कन्योवाच ॥ अग्निशालामुपगतो महाराज महामुनिः ॥ निश्चक्रामाश्रमात्तूर्णं राजाप्याकर्ण्य तद्वचः ॥ ४३ ॥ अथाग्निशालाद्वारस्थं राजानं दुर्दमं मुनिः ॥ राजलक्षणसंयुक्तमपश्यत् प्रश्रयानतम् ॥ ४४ ॥ प्रणनाम च तं राजा मुनिः शिष्यमुवाच ह ॥ गौतमानीयतामर्घ्यमर्घ्ययोग्योऽस्ति भूपतिः ॥ ४५ ॥ आगतश्चिरकालेन जामातेति विशेषतः ॥ इत्युक्त्वाऽर्घ्यं ददौ तस्मै सोऽपि जग्राह चिन्तयन् ॥ ४६ ॥ मुनिरासनमासीनं गृहीतार्घ्यं च भूपतिम् ॥ आशीर्भिरभिनन्द्याथ कुशलं चाप्यपृच्छत ॥ ४७ ॥ अपि तेऽनामयं राजन् बले कोशे सुहृत्सु च ॥ भृत्येऽमात्ये पुरे देशे तथात्मनि जनाधिप ॥ ४८ ॥ भार्याऽस्ति ते कुशलिनी यतः साऽत्रैव तिष्ठति ॥ अतो न पृच्छाम्यस्यास्ते चान्यासां कुशलं वद ॥ ४९ ॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वत्रानामयं मम ॥ एतत्कुतूहलं ब्रह्मन् मद्भार्या काऽत्र विद्यते ॥ ५० ॥ ऋषिरुवाच ॥ रेवती नाम ते भार्या रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ विद्यतेऽत्र कथं पत्नीं तां न वेत्सि महीपते ॥ ५१ ॥ राजोवाच ॥ सुभद्राद्यास्तु या भार्या मम सन्ति गृहे

बहुत समय बाद मेरा जामाता मेरे घर आया है । ऐसा कहकर मुनिने अर्घ्य दिया और कुछ विस्मयके साथ राजाने भी उसे स्वीकार कर लिया ॥ ४६ ॥ अर्घ्य स्वीकार करके आसनपर बैठ जानेपर मुनिने आशीर्वादसे अभिनन्दन करनेके पश्चात् क्षेम-कुशल पूछा ॥ ४७ ॥ और कहा—राजन् ! आप प्रसन्न हैं ? आपकी सेना, कोष, सगे-सम्बन्धी, भृत्य, सचिव, नगर और देश तो सकुशल है ? ॥ ४८ ॥ आपकी भार्या सकुशल है और वह यहाँ ही है । अतएव आप उसे छोड़कर अपनी अन्यान्य स्त्रियोंका हाल बताइए ॥ ४९ ॥ राजाने कहा -हे भगवन् ! आपकी कृपासे सभी लोग सकुशल हैं । मुझे बहुत बड़ा कुतूहल यह है कि मेरी कौनसी भार्या यहाँ विद्यमान है ? ॥ ५० ॥ प्रमुच मुनि बोले—हे महीपति ! संसारमें अनुपम सुन्दरी रेवती नामकी आपकी पत्नी यहाँ ही रहती है । क्या आप उसे नहीं जानते ? ॥ ५१ ॥ राजाने कहा—भगवन् ! सुभद्रा आदि मेरी स्त्रियाँ तो घरपर हैं । मैं उन्हें ही जानता हूँ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रेवतीको नहीं जानता ॥ ५२ ॥ मुनि बोले—हे महामते ! अभी 'प्रिये' ऐसा कहकर आपने जिसका सम्बोधन किया है, क्या उसे भूल गये ? वह तो आपकी अतिशय प्यारी पत्नी है ॥ ५३ ॥ राजाने कहा—भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है, किन्तु मैंने तो उसे यों ही प्रिये कहकर पुकार लिया था। उसमें मेरी कोई दुर्भावना नहीं थी। अतएव आप मुझपर कोप न करें ॥ ५४ ॥ ऋषि बोले—राजन् ! आपने ठीक ही कहा है। आपका भाव दूषित नहीं था। अग्निदेवकी प्रेरणासे ही आपने वैसा कहा था ॥ ५५ ॥ आज ही मैंने अग्निदेवसे पूछा था कि इस कन्याका पति कौन होगा ? तब उन्होंने कहा—राजा दुर्दम इसके पति होंगे ॥ ५६ ॥ अतएव मेरे द्वारा दी हुई उस कन्याको आप स्वीकार करें। हे महीपते ! उसे 'प्रिये' कहकर आप सम्बोधित कर चुके हैं। आप विशेष विचार न करिए ॥ ५७ ॥ यह सुनकर राजा दुर्दम मुनिके वचनका चिन्तन करते हुए चुप रह गये। उधर मुनिराज विवाहकी

विभो ॥ जानामि तास्तु भगवन्नैव जानामि रेवतीम् ॥ ५२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ प्रियेति साम्प्रतं राजँस्त्वयोक्ता या महामते ॥ सा विस्मृता क्षणादेव या ते श्लाघ्यतमा प्रिया ॥ ५३ ॥ राजोवाच ॥ त्वयोक्तं यन्मृषा तन्नो तथैवामन्त्रिता मया ॥ मुने दुष्टो न मे भावः कोपं मा कर्तुमर्हसि ॥ ५४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ राजन्नुक्तं त्वया सत्यं न भावो दूषितस्तव ॥ वह्निना प्रेरितेनेत्थं भवता व्याहृतं वचः ॥ ५५ ॥ अद्य पृष्टो मया वह्निः कोऽस्या भर्ता भविष्यति ॥ तेनोक्तं दुर्दमो राजा भविताऽस्याः पतिर्ध्रुवम् ॥ ५६ ॥ तदादत्स्व मया दत्तामिमां कन्यां महीपते ॥ प्रियेत्यामन्त्रिता पूर्वं मा विचारं कुरुष्व भोः ॥ ५७ ॥ श्रुत्वैतत् सोऽभवत्तूष्णीं चिन्तयन् मुनिभाषितम् ॥ वैवाहिकं विधिं तस्य मुनिः कर्तुं समुद्यतः ॥ ५८ ॥ अथोद्यतः विवाहाय दृष्ट्वा कन्याऽब्रवीन्मुनिम् ॥ रेवत्यृक्षे विवाहो मे तात कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ५९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ वत्से विवाहयोग्यानि सन्त्यन्यर्क्षाणि भूरिशः ॥ रेवत्यां कथमुद्वाहः पौष्णभं न दिवि स्थितम् ॥६०॥ कन्योवाच ॥ रेवत्यृक्षं विना कालो ममोद्वाहोचितो न हि ॥ अतः सम्प्रार्थयाम्येतद्विवाहं पौष्णभं कुरु ॥ ६१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ऋतवाङ्मुनिना पूर्वं रेवतीभं निपातितम् ॥ भान्तरे चेन्न ते प्रीतिर्विवाहः स्यात् कथं तव ॥ ६२ ॥ कन्योवाच ॥ तपः किं तप्तवानेक ऋतवागेव केवलम् ॥ भवता किं तपो नेदृक् तप्तं वाकायमानसैः ॥ ६३ ॥ जगत्स्रष्टुं समर्थ-स्त्वं वेद्म्यहं ते तपोबलम् ॥ रेवत्यृक्षं दिवि स्थाप्य ममोद्वाहं पितः कुरु ॥ ६४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं भवतु भद्रं ते यथैव त्वं ब्रवीषि माम् ॥

तैयारी करने लगे ॥ ५८ ॥ विवाहके लिए उद्यत मुनिको देखकर कन्या रेवती बोली—हे तात ! रेवती नक्षत्रमें ही मेरा विवाह करिएगा ॥ ५९ ॥ ऋषि बोले—वत्से ! विवाहके योग्य बहुतेरे नक्षत्र हैं, फिर रेवतीमें ही विवाहका आग्रह क्यों कर रही हो ? और फिर रेवती नक्षत्र आकाशमें स्थित नहीं है ॥ ६० ॥ कन्या बोली—पिताजी ! रेवतीके सिवाय अन्य नक्षत्रमें मेरा विवाह करना उचित न होगा। अतएव मैं प्रार्थना करती है कि रेवतीमें ही मेरा विवाह करिएगा ॥ ६१ ॥ ऋषिने कहा—वत्से ! रेवती नक्षत्रको तो पूर्वकालमें महर्षि ऋतवाक् भूपातित कर चुके हैं। तब यदि अन्य नक्षत्रोंमें तुम्हारी श्रद्धा नहीं है तो तुम्हारा विवाह कैसे होगा ? ॥ ६२ ॥ कन्या बोली—भगवन् ! क्या अकेले ऋतवाक् मुनिने ही तप किया है ? आपने क्या मनसा वाचा कर्मणा वैसा तप नहीं किया है ? ॥६३॥ आप चाहें तो नयी सृष्टि कर सकते हैं। मैं आपके तपोबलको जानती हूँ। अतएव हे पिताजी ! आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रेवतीको पुनः आकाशमें स्थापित करके उसी नक्षत्रमें मेरा विवाह करिए ॥६४॥ ऋषि बोले—पुत्री! तुम्हारा कल्याण हो। तुम जो कह रही हो, वैसा ही होगा। तुम्हारे लिए मैं रेवतीको आकाशमार्गमें स्थापित करूँगा ॥ ६५ ॥ कार्तिकेयने कहा—हे अगस्त्यजी! ऐसा कहकर महर्षि प्रमुचने अपने तपोबलसे रेवती नक्षत्रको फिर पहलेकी तरह आकाशमें स्थापित कर दिया ॥६६॥ तदनन्तर उन्होंने रेवती नक्षत्रमें वैवाहिक विधिके अनुसार कन्या रेवती राजा दुर्दमको सौंप दी ॥६७॥ इस प्रकार कन्याका विवाह करके मुनिने राजासे कहा–हे वीर! आपकी जो अभिलाषा हो सो बताइए। मैं उसे पूर्ण करूँगा ॥ ६८ ॥ राजाने कहा—हे मुने! मैं स्वायम्भुव मनुका वंशज हूँ। अतएव मेरी यही अभिलाषा है कि आपकी कृपासे मेरे वीर्यसे मन्वन्तराधिपति पुत्र उत्पन्न हो ॥ ६९ ॥ मुनि बोले–यदि ऐसा चाहते हों तो आप देवीकी आराधना करिए। देवीके आराधनसे अवश्य आपको मन्वन्तराधिप पुत्र प्राप्त होगा ॥ ७० ॥

त्वत्कृते सोममार्गेऽहं स्थापयाम्यद्य पौष्णभम् ॥६५॥ स्कन्द उवाच ॥ एवमुक्त्वा मुनिस्तूर्णं पौष्णभं स्वतपोबलात् ॥ यथापूर्वं तथा चक्रे सोममार्गे घटोद्भव ॥ ६६ ॥ रेवतीनाम्नि नक्षत्रे विवाहविधिना मुनिः ॥ रेवतीं प्रददौ राज्ञे दुर्दमाय महात्मने ॥ ६७ ॥ कृत्वा विवाहं कन्याया मुनी राजानमब्रवीत् ॥ किं तेऽभिलषितं वीर वद तत्पूरयाम्यहम् ॥ ६८ ॥ राजोवाच ॥ मनोः स्वायंभुवस्याहं वंशे जातोऽस्मि हे मुने ॥ मन्वंतराधिपं पुत्रं त्वत्प्रसादाच्च कामये ॥ ६९ ॥ मुनिरुवाच ॥ यद्येषा कामना तेऽस्ति देव्या आराधनं कुरु ॥ भविष्यत्येव ते पुत्रो मनुर्मन्वंतराधिप ॥ ७० ॥ देवीभागवतं नाम पुराणं यत्तु पंचमम् ॥ पंचकृत्वस्तु तच्छ्रुत्वा लप्स्यसेऽभिमतं सुतम् ॥ ७१ ॥ रेवत्या रैवतो नाम पंचमो भविता मनुः ॥ वेदविच्छास्त्रतत्त्वज्ञो धर्मवानपराजितः ॥ ७२ ॥ इत्युक्तो मुनिना राजा प्रणम्य मुदितो मुनिम् ॥ भार्यया सह मेधावी जगाम नगरं निजम् ॥ ७३ ॥ पितृपैतामहं राज्यं चकार स महामतिः ॥ पालयामास धर्मात्मा प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ ७४ ॥ एकदा लोमशो नाम महात्मा मुनिरागतः ॥ प्रणिपत्य तमभ्यर्च्य प्रांजलिश्चाब्रवीन्नृपः ॥ ७५ ॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रोतुमिच्छामि भो मुने ॥ देवीभागवतं नाम पुराणं पुत्रलिप्सया ॥ ७६ ॥ श्रुत्वा वाचं प्रजाभर्तुः प्रीतः प्रोवाच लोमशः ॥ धन्योऽसि राजंस्ते भक्तिर्जाता त्रैलोक्य-

देवीभागवत नामके पाँचवें पुराणका पाँच बार श्रवण करनेसे आपकी कामना पूर्ण हो जायगी ॥ ७१ ॥ रेवतीसे उत्पन्न रैवत नामका पंचम मनु वेदज्ञ, शास्त्रतत्त्वज्ञ, धर्मात्मा एवं किसीसे भी परास्त न होनेवाला वीर होगा ॥ ७२ ॥ मुनिराजके ऐसा कहनेपर राजा दुर्दमने उन्हें प्रणाम किया और उस नवोढा पत्नीके साथ अपने नगरको चल पड़े ॥७३॥ वहाँ पहुँचकर वे अपने पिता-पितामहके सम्पादित राज्यका औरस पुत्रके समान पालन करने लगे ॥ ७४ ॥ एक दिन उनके घर लोमश मुनि आये। राजा दुर्दमने प्रणाम करके उनका विधिवत् पूजन किया और हाथ जोड़कर बोले ॥ ७५ ॥ राजाने कहा—भगवन्! पुत्रप्राप्तिके निमित्त मैं आपसे देवीभागवत नामका पुराण सुनना चाहता हूँ ॥ ७६ ॥ राजाका वचन सुनकर महर्षि लोमश बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा–राजन्! आप धन्य हैं। क्योंकि त्रिलोकजननी भगवतीके चरणोंमें आपकी भक्ति हो गयी है। सुर, असुर और मानवमात्रकी आराध्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पराभगवती जगदम्बाके चरणोंमें यदि आपकी भक्ति हो गयी है तो आपकी कार्यसिद्धि अवश्य होगी ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ अतएव मैं आपको देवीभागवत सुनाऊँगा। क्योंकि इसके सुननेसे कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती ॥ ७९ ॥ हे ब्रह्मन्! ऐसा कहकर राजाने शुभ दिनको कथा सुनना आरम्भ किया और पत्नीके साथ उन्होंने पाँच बार विधिवत् देवीभागवतकी कथा सुनी ॥ ८० ॥ कथासमाप्तिके दिन बड़ी प्रसन्नताके साथ राजाने देवीभागवत पुराण तथा लोमश मुनिकी पूजा की ॥ ८१ ॥ नवार्ण मन्त्रसे उन्होंने हवन किया। कुमारी कन्याओंको भोजन कराया और सपत्नीक ब्राह्मणोंको पुष्कल दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया ॥ ८२ ॥ कुछ समय बाद भगवतीकी कृपासे रानी रेवतीने लोककल्याणकारी गर्भ धारण किया ॥ ८३ ॥ तदनन्तर शुभ समय आनेपर जब ग्रहगण शुभ स्थानोंमें विद्यमान थे और सभी मांगलिक कृत्य सम्पन्न कर लिये गये थे, तब रेवतीने पुत्र प्रसव किया ॥ ८४ ॥ पुत्रके

मातरि ॥ ७७ ॥ सुरासुरनराराध्या या परा जगदम्बिका ॥ तस्यां चेद्भक्तिरुत्पन्ना कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ ७८ ॥ अतस्त्वां श्रावयिष्यामि श्रीमद्भागवतं नृप ॥ यस्य श्रवणमात्रेण न किंचिदपि दुर्लभम् ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वा सुदिने ब्रह्मन्कथारंभमथाकरोत् ॥ पंचकृत्वः स शुश्राव विधिवद्भार्यया सह ॥ ८० ॥ समाप्तिदिवसे राजा पुराणं च मुनिं तथा ॥ पूजयामास धर्मात्मा मुदा परमया युतः ॥ ८१ ॥ हुत्वा नवार्ण-मंत्रेण भोजयित्वा कुमारिकाः ॥ वाडवांश्च सपत्नीकान्दक्षिणाभिरतोषयत् ॥ ८२ ॥ अथ कालेन कियता भगवत्याः प्रसादतः ॥ गर्भं दधार सा राज्ञी लोककल्याणकारकम् ॥ ८३ ॥ पुण्येऽथ समये प्राप्ते ग्रहैः सुस्थानसंगतैः ॥ सर्वमंगलसम्पन्ने रेवती सुषुवे सुतम् ॥ ८४ ॥ श्रुत्वा पुत्रस्य जननं स्नात्वा राजा मुदान्वितः ॥ ससुवर्णाम्भसा चक्रे जातकर्मादिकाः क्रियाः ॥ ८५ ॥ यथाविधि च दानानि दत्त्वा विप्रानतोषयत् ॥ कृतोपनयनं राजा सांगान्वेदानपाठयत् ॥ ८६ ॥ सर्वविद्यानिधिर्जातो धर्मिष्ठोऽस्त्रविदां वरः ॥ धर्मस्य वक्ता कर्त्ता च रैवतो नाम वीर्यवान् ॥ ८७ ॥ नियुक्तवानथ ब्रह्मा रैवतं मानवे पदे ॥ मन्वन्तराधिपः श्रीमान्गां शशास स धर्मतः ॥ ८८ ॥ इत्थं देव्याः प्रभावोऽयं संक्षेपेणोप-वर्णितः ॥ पुराणस्य च माहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात्क्षमः ॥ ८९ ॥ सूत उवाच ॥ कुम्भयोनिस्तु माहात्म्यं विधिं भागवतस्य च ॥ श्रुत्वा कुमारं

जन्मका शुभ समाचार सुनकर राजा दुर्दमने प्रसन्नतापूर्वक स्नान करके स्वर्णकलशके जलसे बालकका जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न किया ॥ ८५ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंको विधिवत् दान देकर सन्तुष्ट किया। वयस्क होनेपर राजाने बालकका उपनयनसंस्कार कराके शिक्षा-कला आदि अंगों समेत वेदाध्ययन कराया ॥ ८६ ॥ ऐसा करनेसे कुछ ही दिनोंमें कुमार रैवत सब विद्याओंके निधान, धर्मात्मा, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, धर्मके वक्ता, रचयिता तथा असाधारण बलवान् हो गये ॥ ८७ ॥ योग्य देखकर ब्रह्माजीने उन्हें मनुके पदपर नियुक्त किया और वे मन्वन्तराधिप होकर धर्मपूर्वक पृथिवीपर शासन करने लगे ॥ ८८ ॥ इस प्रकार संक्षेपमें देवीके प्रभावका वर्णन किया गया। इस पुराणके माहात्म्यको विस्तारके साथ कहनेमें भला कौन समर्थ हो सकता है? ॥ ८९ ॥ सूतजी कहते हैं—हे ऋषियों! महर्षि अगस्त्य इस प्रकार देवीभागवतका माहात्म्य तथा उसकी विधि सुन और कार्तिकेयका पूजन करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने आश्रमपर लौट गये ॥ ९० ॥ हे विप्रो ! आप लोगोंके समक्ष मैंने देवीभागवतका माहात्म्य कहा । जो प्राणी भक्तिके साथ इसका पाठ करता है, वह इस लोकमें सब सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीदेवीभागवतमाहात्म्ये पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ऋषिगण बोले—हे महाभाग सूत ! हमने माहात्म्य सुन लिया । अब देवीभागवतकी श्रवणविधि सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥ सूतजी कहने लगे—हे मुनियों ! अब इस पुराणकी श्रवणविधि सुनिए । इसे सुननेवाले मनुष्योंकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ २ ॥ पुराणश्रवणका इच्छुक मनुष्य सर्वप्रथम ज्योतिषीको बुलाकर कोई शुभ मुहूर्त निश्चित कर ले । ज्येष्ठ माससे लेकर आगामी छ महीने कथाश्रवणके लिए शुभ होते हैं ॥ ३ ॥ हस्त, अश्विनी, मूल, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, मृगशिरा तथा श्रवण नक्षत्र, शुभ तिथि तथा

चाभ्यर्च्य स्वाश्रमं पुनराययौ ॥ ९० ॥ इदं मया भागवतस्य विप्रा माहात्म्यमुक्तं भवतां समक्षम् ॥ शृणोति भक्त्या पठतीह भोगान्भुक्त्वाऽखिलान्मुक्तिमुपैति चांते ॥९१॥ इति श्रीस्कंदपुराणे मानसखण्डे श्रीदेवीभागवतमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभाग श्रुतं माहात्म्यमुत्तमम् ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामः पुराणश्रवणे विधिम् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ श्रूयतां मुनयः सर्वे पुराणश्रवणे विधिम् ॥ नराणां शृण्वतां येन सिद्धिः स्यात्सार्वकामिकी ॥ २ ॥ आदौ दैवज्ञमाहूय मुहूर्त्तं कल्पयेत्सुधीः ॥ आरभ्य शुचिमासं तु मासषट्कं शुभावहम् ॥ ३ ॥ हस्ताश्विमूलपुण्यर्क्षे ब्रह्ममैत्रेन्दुवैष्णवे ॥ सत्तिथौ शुभवारे च पुराणश्रवणं शुभम् ॥ ४ ॥ गुरुभाद्वेद४वेदा४ब्ज१शरां५गा६ब्धि४गुणैः३ क्रमात् ॥ धर्माप्तिरिन्दिराप्राप्तिः कथासिद्धिः परं सुखम् ॥ ५ ॥ पीडाऽथ भूपतिभयं ज्ञानप्राप्तिः क्रमात्फलम् ॥ पुराणश्रवणे चक्रं शोधयेच्छिवभाषितम् ॥ ६ ॥ अथवा प्रीतये देव्या नवरात्रचतुष्टये ॥ शृणुयादन्यमासेऽपि तिथिवारर्क्षशोभिते ॥ ७ ॥ संभारं तादृशं कार्यं विवाहादौ च यादृशम् ॥ नवाहयज्ञे चाप्यस्मिन्विधेयं यत्नतो बुधैः ॥ ८ ॥ सहाया बहवः कार्या दंभलोभविवर्जिताः ॥ चतुराश्च वदान्याश्च देवीभक्तिपरा नराः ॥९॥ प्रेष्या यत्नेन वार्तेयं देशे देशे जने जने ॥ आगन्तव्यमिहावश्यं कथा देव्या भविष्यति

शुभ नक्षत्र और शुभ वारको पुराणश्रवण शुभ होता है ॥४॥ जिस नक्षत्रमें बृहस्पति हों उससे ४,४,१,५,६,४,३ हों तो क्रमशः धर्मप्राप्ति, लक्ष्मीप्राप्ति, कथासिद्धि, परम सुख, पीडा, राजभय और ज्ञानप्राप्ति ये फल प्राप्त होते हैं । पुराणश्रवणके अवसरपर शिवोक्त चक्रका शोधन कर लेना चाहिए ॥५॥६॥ अथवा देवीको प्रसन्न करनेके लिए चारों नवरात्रोंमें इसे सुने । अथवा तिथि, वार और नक्षत्रसे शोधित अन्य मासोंमें भी इसे सुना जा सकता है ॥ ७ ॥ विवाह आदिके अवसरोंपर जिस धूम-धामके साथ सब सामग्रियाँ जुटायी जाती हैं, वैसे ही उत्साहके साथ इस नवाहयज्ञके अवसरपर भी सब सामग्रियाँ जुटाये ॥ ८ ॥ पाखण्ड तथा लोभसे रहित, चतुर, उदार और देवीभक्त बहुतेरे सहायकोंको भी अपने साथ ले ले ॥ ९ ॥ बड़े प्रयत्नपूर्वक देश-देशान्तरमें भी लोगोंके पास यह समाचार भेज दे कि देवीभागवतकी कथा होनेवाली है । इसलिए आपलोग यहाँ अवश्य पधारिए । यह समाचार पाकर आप सब लोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस यज्ञमें सम्मिलित हों। फिर चाहे आप सूर्योपासक, गणपतिभक्त, शिवभक्त, शक्तिके उपासक अथवा वैष्णव हों। क्योंकि उपर्युक्त सभी देवता शक्तिके भक्त होते हैं ॥१०॥११॥ श्रीमद्देवीभागवतरूपी अमृतरसके लोलुप भक्तोंको तो कथाके अर्थमें प्रेम रखते हुए अवश्य इस यज्ञमें योग देना चाहिए ॥ १२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रममें निरत सभी लोग सकाम तथा निष्काम किसी भी भावसे इस कथारूपी अमृतका अवश्य पान करें ॥ १३ ॥ यदि उन्हें पूरे नवाह श्रवणका अवकाश न मिल सके तो जितना अवकाश हो, उतनी ही देर यहाँ आकर यह कथा सुनें। क्योंकि यज्ञमें क्षणभरकी भी पहुँच पुण्यदायक होती है ॥१४॥ निमन्त्रण बड़े विनयपूर्वक देना चाहिए और आगन्तुकोंके बैठनेका भी उत्तम प्रबन्ध आवश्यक है ॥१५॥ कथाके लिए नियत स्थान प्रशस्त होना चाहिए। पहले उस स्थानकी सफाई कराके गोबरसे लिपवाकर उसे स्वच्छ और सुन्दर

॥ १० ॥ सौराश्च गाणपत्याश्च शैवाः शाक्ताश्च वैष्णवाः ॥ सर्वेषामपि सेव्येयं यतो देवाः सशक्तयः ॥ ११ ॥ श्रीमद्देवीभागवतपीयूषरसलोलुपैः ॥ आगंतव्यं विशेषण कथार्थं प्रेमतत्परैः ॥ १२ ॥ ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णाः स्त्रियश्चाश्रमिणस्तथा ॥ सकामाश्चापि निष्कामाः पातव्यं तैः कथामृतम् ॥ १३ ॥ नावकाशः कदाचित्स्यान्नवाहश्रवणेऽपि तैः ॥ आगंतव्यं यथाकालं यज्ञे पुण्या क्षणस्थितिः ॥ १४ ॥ विनयेनैव कर्त्तव्यमेवमाकारणं नृणाम् ॥ आगतानां च कर्त्तव्यं वासस्थानं यथोचितम् ॥ १५ ॥ कथास्थानं प्रकर्त्तव्यं भूमौ मार्जनपूर्वकम् ॥ लेपनं गोमयेनाथ विशालायां मनोरमम् ॥ १६ ॥ कार्यस्तु मण्डपो रम्यो रंभास्तंभोपशोभितः ॥ वितानमुपरिष्टात्तु पताकाध्वजराजितः ॥ १७ ॥ वक्तुश्चैवासनं दिव्यं सुखास्तरणसंयुतम् ॥ रचितव्यं प्रयत्नेन प्राङ्मुखं वाप्युदङ्मुखम् ॥ १८ ॥ यथोचितानि कुर्वीत श्रोतॄणामासनानि च ॥ नृणां चैवाथ नारीणां कथाश्रवणहेतवे ॥ १९ ॥ वाग्मी दांतश्च शास्त्रज्ञो देव्याराधनतत्परः ॥ दयालुर्नस्पृहो दक्षो धीरो वक्तोत्तमो मतः ॥ २० ॥ ब्रह्मण्यो देवताभक्तः कथारसपरायणः ॥ उदारोऽलोलुपो नम्रः श्रोता हिंसादिवर्जितः ॥ २१ ॥ पाखण्डनिरतो लुब्धः स्त्रैणो धर्मध्वजस्तथा ॥ निष्ठुरः क्रोधनो वक्ता देवीयज्ञे न शस्यते ॥ २२ ॥ संशयच्छेदनायैकः पण्डितश्च तथागुणः ॥ श्रोतृबोधकृदव्यग्रः कार्यो वक्तुः सहायकृत् ॥ २३ ॥ मुहूर्तदिवसाद-

बना ले ॥ १६ ॥ कथास्थानपर केलेके खम्भोंसे सुशोभित रमणीक मण्डप बनावे और उसके ऊपर ध्वजा-पताकासे अलंकृत चँदवा तान दे ॥१७॥ वक्ताके लिए मुलायम गद्दीका बिछौना इस ढंगसे बिछावे कि उसका मुख पूर्व या उत्तर दिशामें पड़े ॥१८॥ श्रोता स्त्री-पुरुषोंको बैठनेके लिए उचित आसनका प्रबन्ध करे, जिससे वे बैठकर भली भाँति कथा सुन सकें ॥१९॥ वक्तृत्वशक्तियुक्त, संयमी, शास्त्रज्ञ, देवीकी आराधनामें संलग्न, दयालु, लोभहीन, कथा कहनेमें निपुण और धैर्यशाली वक्ता उत्तम माना जाता है ॥२०॥ उत्तम श्रोता वह होता है कि जो ब्राह्मणभक्त, देवताभक्त, कथाके रसमें मग्न, उदार, निर्लोभ, विनम्र और हिंसादि अवगुणोंसे रहित हो ॥ २१ ॥ पाखण्डी, लोभी, कामी, दिखावटी धर्मात्मा, निर्दयी और क्रोधी वक्ता देवीभागवतके यज्ञमें अच्छा नहीं माना जाता ॥२२॥ लोगोंका संशय निवृत्त करनेके लिए वक्ताका सहायक एक और पण्डित भी रहना चाहिए, जो पूर्ण विद्वान् हो ॥२३॥ कथा आरम्भ होनेके एक दिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहले वक्ता और श्रोता दोनों बाल बनवा लें। उसके बाद अन्यान्य नियमोंका पालन करें ॥ २४ ॥ जिस दिन कथा प्रारम्भ होनेवाली हो, उस रोज अरुणोदयकालमें शौचसे निवृत्त होकर स्नान, सन्ध्या और तर्पण करे। ये कृत्य नित्य संक्षेपसे करता रहे ॥ २५ ॥ कथाश्रवणकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए गोदान करके सर्वप्रथम समस्त विघ्नोंके नाशक गणपतिका पूजन करे ॥ २६ ॥ कुलशकी स्थापनाके बाद दिक्पालों, बटुकों, क्षेत्रपालों, योगिनियों तथा षोडश मातृकाओंका पूजन करे ॥ २७ ॥ तदनन्तर तुलसीकी पूजा करके नवग्रह, विष्णुभगवान् और शंकरजीका पूजन करे। फिर नवाक्षर-मंत्रसे जगदम्बाकी पूजा करे ॥ २८ ॥ तत्पश्चात् भगवतीकी वाङ्मयी मूर्ति और सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई देवीभागवतकी पोथीका पूजन करे ॥ २९ ॥ कथामें आनेवाले विघ्नोंको दूर करनेके लिए पाँच ब्राह्मणोंका वरण करे। वे बराबर नवार्णमंत्रका जप तथा दुर्गासप्तशतीका पाठ करते रहें ॥ ३० ॥

वाग्वक्तृश्रोत्रादिभिर्जनैः ॥ कर्त्तव्यं क्षौरकर्मादि ततो नियमकल्पनम् ॥ २४ ॥ अरुणोदयवेलायां स्नायाच्छौचं विधाय च ॥ संध्यातर्पणकार्यं च नित्यं संक्षेपतश्चरेत् ॥ २५ ॥ कथाश्रवणयोग्यत्वसिद्धये गाश्च दापयेत् ॥ समस्तविघ्नहर्तारमादौ गणपतिं यजेत् ॥ २६ ॥ कलशांश्चापि संस्थाप्य पूजयेत्तत्र दिग्भवान् ॥ वटुकं क्षेत्रपालं च योगिनीर्मातृकास्तथा ॥२७॥ तुलसीं चापि संपूज्य ग्रहान्विष्णुं च शंकरम् ॥ नवाक्षरेण मनुना पूजयेज्जगदम्बिकाम् ॥ २८ ॥ सर्वोपचारैः संपूज्य श्रीभागवतपुस्तकम् ॥ श्रीदेव्या वाङ्मयीं मूर्तिं यथावच्छोधनाक्षरम् ॥ २९ ॥ कथाविघ्नोपशांत्यर्थं वृणुयात्तं च वाडवान् ॥ जाप्यो नवार्णमंत्रैस्तैः पाठ्यः सप्तशतीस्तवः ॥ ३० ॥ प्रदक्षिणानमस्कारान्कृत्वांते स्तुतिमाचरेत् ॥ कात्यायनि महामाये भवानि भुवनेश्वरि ॥ ३१ ॥ संसारसागरे मग्नं मामुद्धर कृपामयि ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाराध्ये प्रसीद जगदम्बिके ॥ ३२ ॥ मनोऽभिलषितं देवि वरं देहि नमोऽस्तु ते ॥ इति संप्रार्थ्य शृणुयात्कथां नियतमानसः ॥ ३३ ॥ वक्तारं चापि संपूज्य व्यासबुद्ध्या यतात्मवान् ॥ माल्यालंकारवस्त्राद्यैः संभूष्य प्रार्थयेच्च तम् ॥ ३४ ॥ सर्वशास्त्रेतिहासज्ञ व्यासरूप नमोऽस्तु ते ॥ कथाचंद्रोदयेनांतस्तमःस्तोमं निराकुरु ॥ ३५ ॥ तदग्रे तु नवाहान्तं कर्तव्या नियमास्तदा ॥ विप्रादीनुपवेश्यादौ संपूज्योपविशेत्स्वयम् ॥ ३६ ॥ श्रोतव्यं सावधानेन चतुर्वर्गफलाप्तये ॥ गृहपुत्रकलत्रास-

फिर परिक्रमा तथा प्रणाम करके देवीकी स्तुति करता हुआ कहे—हे कात्यायनि ! हे महाभागे ! हे भुवनेश्वरि ! हे कृपामयि ! संसारसागरमें डूबते हुए मुझ अभागेका आप उद्धार करें। हे ब्रह्मा-विष्णु और शिवकी आराधनीया देवि ! आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३१ ॥ हे देवि ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मुझे मेरा मनचाहा वरदान दें। इस प्रकार प्रार्थना करके मनोयोगपूर्वक कथा सुने ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ संयत चित्तसे साक्षात् व्यासदेव समझकर वक्ताका पूजन करे और माला, आभूषण तथा विविध प्रकारके वस्त्र पहनाये ॥ ३४ ॥ फिर प्रार्थना करता हुआ कहे—हे सब शास्त्रों और इतिहासोंके ज्ञाता व्यासदेव ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप अपने कथारूपी चन्द्रमाको उदित करके मेरे हृदयका अन्धकार दूर करें ॥ ३५ ॥ इसके बाद नवाहके नियमोंका व्रत ले। पहले ब्राह्मणोंका पूजन करके उन्हें बैठा दे। उसके बाद स्वयं आसनपर बैठे ॥ ३६ ॥ धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूपी चारों पदार्थोंको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राप्त करनेके लिए गृह, पुत्र, स्त्री तथा धनकी चिन्ता त्यागकर सावधानीके साथ कथा सुने ॥ ३७ ॥ विद्वान् वक्ता सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त तक कथा बाँचे। दोपहरके समय मुहूर्तभर विश्राम अवश्य कर ले ॥ ३८ ॥ मल-मूत्रके वेगपर काबू पानेके लिए हल्का भोजन करे। श्रोता दिन-रातमें केवल एक बार हविष्यान्न खाकर रहे ॥ ३९ ॥ अथवा फलाहार करे या केवल दूध पीकर रहे। तात्पर्य यह कि ऐसा आहार करे, जिससे कथाश्रवणमें कोई बाधा न उपस्थित हो ॥४०॥ हे विप्रों! अब मैं कथा श्रवण करनेवालोंके नियम बताता हूँ। जो लोग ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें भेद समझते हैं ॥ ४१ ॥ जो देवीकी भक्तिसे हीन हैं, जो पाखण्डी, हिंसक, खल, विप्रद्रोही और नास्तिक हैं, ऐसे लोग देवीभागवतकी कथा सुननेके अधिकारी नहीं हो सकते ॥४२॥ ब्राह्मणधन, परायी स्त्री, पराया धन और देवसम्पत्ति हरण करनेवाले लोग यह कथा सुननेके योग्य नहीं होते ॥४३॥ श्रोता नवाहयज्ञके समय ब्रह्मचर्यसे रहे, जमीनपर

धनचिंतामपास्य च ॥ ३७ ॥ सूर्योदयं समारभ्य किंचित्सूर्येऽवशेषिते ॥ मुहूर्त्तमात्रं विश्रम्य मध्याह्ने वाचयेत्सुधीः ॥ ३८ ॥ मलमूत्रजयायैषां लघु भोजनमिष्यते ॥ हविष्यान्नं वरं भोज्यं सकृदेव कथार्थिना ॥ ३९ ॥ अथवा स्यात्फलाहारी पयोभुग्वा घृताशनः ॥ यथा स्यान्न कथाविघ्नस्तथा कार्यं विचक्षणैः ॥ ४० ॥ कथाश्रवणनिष्ठानां वक्ष्यामि नियमं द्विजाः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां मध्ये ये भेददर्शिनः ॥ ४१ ॥ देवीभक्तिविहीना ये पाखण्डा हिंसकाः खलाः ॥ विप्रद्रुहो नास्तिका ये न ते योग्याः कथाश्रवे ॥ ४२ ॥ ब्रह्मस्वहरणे लुब्धाः परदारधनेषु च ॥ देवस्वहरणे तेषां नाधिकारः कथाश्रवे ॥ ४३ ॥ ब्रह्मचारी च भूशायी सत्यवक्ता जितेंद्रियः ॥ कथासमाप्तौ भुंजीत पत्रावल्यां यतात्मवान् ॥ ४४ ॥ वृंताकं च कलिन्दं च तैलं च द्विदलं मधु ॥ दग्धमन्नं पर्युषितं भावदुष्टं त्यजेद्व्रती ॥ ४५ ॥ आमिषं च मसूरान्नमुदक्या दृष्टमेव च ॥ रसोनं मूलकं हिंगुं पलांडुं गृञ्जनं तथा ॥ ४६ ॥ कूष्मांडनलिकाशाकं न भुञ्जीत कथाव्रती ॥ कामं क्रोधं मदं लोभं दंभं मानं च वर्जयेत् ॥ ४७ ॥ विप्रध्रुक्पतितव्रात्यश्वपाकयवनांत्यजैः ॥ उदक्यया वेदबाह्यैर्न वदेद्यः कथाव्रती ॥ ४८ ॥ वेदगोगुरुविप्राणां स्त्रीराज्ञां महतां तथा ॥ देवानां देवभक्तानां न निंदां शृणुयादपि ॥ ४९ ॥ विनयं चार्जवं शौचं दयां च मितभाषणम् ॥ उदारं मानसं चैव कुर्याद्यस्तु कथाव्रती ॥ ५० ॥ श्वित्री कुष्ठी क्षयी रुग्णो भाग्यहीनश्च पापकृत् ॥ दरिद्रश्चानपत्यश्च भक्त्येमां शृणुयात्कथाम् ॥ ५१ ॥ वंध्या वा काकवंध्या वा दुर्भगा वा मृतार्भका ॥ पतद्गर्भा गना

सोये, सत्य वचन बोले, इन्द्रियोंपर संयम रक्खे और नित्य कथासमाप्तिपर पत्तलमें भोजन करे ॥४४॥ बैगन, तरबूज, तेल, दाल, मधु, भुना दाना, बासी अन्न और चित्त बिगाड़नेवाला अन्न न खाय ॥४५॥ कथाव्रती श्रोता मांस, मसूर, जिसपर किसी रजस्वला स्त्रीकी दृष्टि पड़ गयी हो वह अन्न, लहसुन, मूली, हींग, प्याज, गाजर, कोंहड़ा और करेमूका साग न खाय। काम, क्रोध, मद, लोभ, पाखण्ड और अहंकारको सर्वथा त्याग दे ॥४६॥४७॥ कथाव्रती श्रोता विप्रद्रोही, पतित, अन्त्यज, चण्डाल, रजस्वला स्त्री तथा वेदबहिष्कृत प्राणियोंसे सम्भाषण न करे ॥४८॥ वेद, गौ, गुरु, ब्राह्मण, स्त्री, राजा, महापुरुष, देवता और देवभक्तकी निन्दा न सुने ॥४९॥ कथाव्रती श्रोता नम्रता, सरलता, पवित्रता, दया और मितभाषण आदि सद्गुणोंका पालन करता हुआ अपने मनको उदार बनाये रहे ॥५०॥ श्वित्री (सफेद दागवाला रोगी), कोढ़ी, क्षयरोगी, अभागा, पापी, कंगाल और निपूता व्यक्ति भी भक्तिपूर्वक यह कथा सुने ॥५१॥ वन्ध्या (बाँझ),

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काकवन्ध्या (केवल एक सन्तानवाली स्त्री), दुर्भगा (पतिसे परित्यक्त), जिसके बच्चे मर जाते हों और जिसका गर्भ गिर जाता हो, ऐसी स्त्रियाँ देवीभागवतकी कथा अवश्य सुनें ॥५२॥ जो प्राणी बिना विशेष परिश्रम किये ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त करना चाहता हो, वह प्रयत्नपूर्वक देवीभागवत सुने ॥ ५३ ॥ इस कथाके नवों दिन नौ यज्ञोंके समान पुनीत होते हैं। इनमें किया हुआ दान, हवन और जप अनन्त फलदायक होता है ॥ ५४ ॥ इस प्रकार नवाह व्रतका पालन करके उद्यापन करे। पूर्ण फलप्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य महाष्टमी व्रतकी विधिके अनुसार उद्यापनका कार्य करें ॥५५॥ निष्कामभावसे कथा सुननेवाले प्राणी इसे सुनते ही पवित्र होकर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। क्योंकि वे परा भगवती मनुष्योंको भोग और मोक्ष सब कुछ दे सकती हैं ॥५६॥ देवीभागवतकी पोथी और कथावाचककी तो नवाहयज्ञके समय नित्य पूजा करे। वक्ता जो प्रसाद दे, उसे परम श्रद्धाके साथ स्वीकार करे ॥ ५७॥ नित्य कुमारी कन्याओं, सोहागिन स्त्रियों तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराके जो पूजन करता है, उसकी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥५८॥ कथासमाप्तिपर सब दोषोंके शान्त्यर्थ गायत्रीसहस्रनाम तथा

या च ताभिः श्राव्या तथा कथा ॥ ५२ ॥ धर्मार्थकाममोक्षांश्च यो वांछति विना श्रमम् ॥ भगवत्या भागवतं श्रोतव्यं तेन यत्नतः ॥ ५३ ॥
कथादिनानि चैतानि नवयज्ञैः समानि हि ॥ तेषु दत्तं हुतं जप्तमनन्तफलदं भवेत् ॥ ५४ ॥ एवं व्रतं नवाहं तु कृत्वोद्यापनमाचरेत् ॥ महाष्टमीव्रतं
यद्वत्तथा कार्यं फलेप्सुभिः ॥ ५५ ॥ निष्कामा श्रवणेनैव पूता मुक्तिं व्रजन्ति हि ॥ भोगमोक्षप्रदा नृणां यतो भगवती परा ॥ ५६ ॥ पुस्तकस्य
च वक्तुश्च पूजा कार्या तु नित्यशः ॥ वक्त्रा दत्तं प्रसादं तु गृह्णीयाद्भक्तिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥ कुमारीः पूजयेन्नित्यं भोजयेत्प्रार्थयेच्च यः ॥ सुवा-
सिनीश्च विप्रांश्च तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ ५८ ॥ गायत्र्या नाम साहस्रं समाप्तावथ वा पठेत् ॥ विष्णोर्नामसहस्रं च सर्वदोषोपशान्तये ॥ ५९ ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ॥ न्यूनं संपूर्णतां याति तस्माद्विष्णुं च कीर्तयेत् ॥ ६० ॥ देव्याः सप्तशतीमंत्रैः समाप्तौ
होममाचरेत् ॥ देवीमाहात्म्यमूलेन नवार्णमनुनाऽथवा ॥ ६१ ॥ गायत्र्या त्वथवा होमः पायसेन ससर्पिषा ॥ यतो भागवतं त्वेतद्गायत्रीमय-
मीरितम् ॥ ६२ ॥ वाचकं तोषयेत्सम्यग्वस्त्रभूषाधनादिभिः ॥ प्रसन्ने वाचके सर्वाः प्रसन्नास्तस्य देवताः ॥ ६३ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या
दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥ पृथिव्यां देवरूपास्ते तुष्टेष्वेष्वीप्सितं फलम् ॥ ६४ ॥ सुवासिनीः कुमारीश्च देवीभक्त्या च भोजयेत् ॥ ताभ्योऽपि

विष्णुसहस्रनामका पाठ करे ॥५९॥ तप तथा यज्ञादि क्रियाओंमें जिसका नाम लेने अथवा स्मरण करनेसे ही सारी न्यूनता पूर्णताके रूपमें परिणत हो जाती है, उन विष्णुका कथासमाप्तिपर नामसंकीर्तन अवश्य करे ॥६०॥ नवाहयज्ञकी समाप्तिपर दुर्गासप्तशतीके मंत्र, देवीमाहात्म्यके मूलमन्त्र तथा नवार्णमन्त्रसे होम करे ॥६१॥ अथवा गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करता हुआ घृत-मिश्रित पायस (खीर) का हवन करे। क्योंकि देवीभागवत गायत्रीमन्त्रमय है ॥६२॥ तदनन्तर कथावाचकको भलीभाँति वस्त्र, आभूषण तथा प्रचुर धन देकर प्रसन्न करे। क्योंकि वक्ताके सन्तुष्ट होनेसे श्रोतापर देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ६३ ॥ तत्पश्चात् श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन करा तथा दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे। क्योंकि ब्राह्मण पृथिवीपर देवतारूपसे रहते हैं और उनके सन्तुष्ट होनेपर इच्छित फल प्राप्त होता है ॥६४॥ सोहागिन स्त्रियों और कुमारी कन्याओंको भी साक्षात् देवी समझकर भोजन कराये और दक्षिणा देकर अपनी कामना पूर्ण होनेकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रार्थना करे ॥६५॥ फिर सुवर्ण, दुधार गौ, हाथी, घोड़े और पृथिवी दान करे तो अक्षय फल प्राप्त होता है ॥६६॥ सुन्दर अक्षरोंमें लिखी या छपी हुई देवीभागवतकी पोथीको रेशमी वस्त्रमें लपेटकर सुवर्णनिर्मित्त चौकीपर रक्खे और अष्टमी तथा नवमीको यदि कथा कहनेवाले विद्वान्‌को दान करके दिया जाय तो दाताको संसारके सब सुख मिलते हैं और अन्तमें मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ पुराणवेत्ता विद्वान् दरिद्र, दुर्बल, बालक, जवान या वृद्ध कैसा भी हो वह सबका वन्दनीय, पूजनीय और माननीय होता है ॥ ६९ ॥ वैसे तो संसारमें जन्मके अनुसार बहुतेरे गुरु होते हैं, किन्तु पुराणका ज्ञाता विद्वान् सबका सर्वश्रेष्ठ गुरु होता है ॥ ७० ॥ व्यासासनपर बैठा हुआ पौराणिक ब्राह्मण जबतक कथा समाप्त न हो जाय, तबतक किसीको भी प्रणाम न करे ॥ ७१ ॥ जो लोग इस दिव्य पौराणिक कथाको अश्रद्धासे सुनते हैं, उन दुःख-दारिद्र्यभागी मनुष्योंको कथा सुननेका कुछ भी फल नहीं मिलता ॥ ७२ ॥

दक्षिणां दत्त्वा प्रार्थयेत्सिद्धिमात्मनः ॥ ६५ ॥ दद्याद्दानानि चान्यानि सुवर्णं गाः पयस्विनीः ॥ हयानिभान्मेदिनीं च तस्य स्यादक्षयं फलम् ॥६६॥ देवीभागवतं चैतल्लिखितं शोभनाक्षरम् ॥ हेमसिंहासने स्थाप्य पट्टवस्त्रेण वेष्टितम् ॥ ६७ ॥ अष्टम्यां वा नवम्यां च वाचकायार्चिताय च ॥ दद्यात्स भोगान्भुक्त्वेह दुर्लभं मोक्षमाप्नुयात् ॥ ६८ ॥ दरिद्रो दुर्बलो बालस्तरुणो जरठोऽपि वा ॥ पुराणवेत्ता वंद्यः स्यात्पूज्यो मान्यश्च सर्वदा ॥ ६९ ॥ सन्ति लोकस्य बहवो गुरवो गुणजन्मतः ॥ सर्वेषामपि तेषां च पुराणज्ञः परो गुरुः ॥ ७० ॥ पौराणिको ब्राह्मणस्तु व्यासासनसमाश्रितः ॥ आसमाप्ते प्रसंगे तु नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ ७१ ॥ पौराणिकीं कथां दिव्यां येऽपि शृण्वंत्यभक्तितः ॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखदारिद्र्यभागिनाम् ॥ ७२ ॥ असंपूज्य पुराणं तु ताम्बूलकुसुमादिभिः ॥ ये शृण्वंति कथां देव्यास्ते दरिद्रा भवंति हि ॥ ७३ ॥ कीर्त्यमानां कथां त्यक्त्वा ये व्रजंत्यन्यतो नराः ॥ भोगान्तरे प्रणश्यंति तेषां दाराश्च सम्पदः ॥ ७४ ॥ ये च तुंगासनारूढाः कथां शृण्वंति दांभिकाः ॥ ते वायसा भवंत्यत्र भुक्त्वा निरययातनाम् ॥ ७५ ॥ ये चाढ्यासनसंस्थाश्च ये वीरासनसंस्थिताः ॥ शृण्वंति च कथां दिव्यां ते स्युरर्जुनशाखिनः ॥ ७६ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां ये वदंति दुरुत्तरम् ॥ रासभास्ते भवंतीह कृकलासास्ततः परम् ॥ ७७ ॥ निंदंति ये पुराणज्ञान्कथां वा पापहारिणीम् ॥ ते तु जन्मशतं दुष्टाः शुनकाः स्युर्न संशयः ॥ ७८ ॥ ये शृण्वंति कथां वक्तुः समानासनसंस्थिताः ॥

जो लोग पान-फूल आदि सामग्रियोंसे पुस्तकका पूजन किये बिना ही देवीभागवतकी कथा सुनते हैं, वे दरिद्र होते हैं ॥ ७३ ॥ जो लोग होती हुई कथाको बीचमें ही छोड़कर चल देते हैं तो कुछ समय बाद उनकी स्त्रियाँ तथा सम्पदा नष्ट हो जाती है ॥ ७४ ॥ जो पाखण्डी उच्च आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे विविध नारकीय यन्त्रणायें भोगकर जन्मान्तरमें कौआ होते हैं ॥ ७५ ॥ जो कीमती आसनपर अथवा वीरासनसे बैठकर कथा सुनते हैं, वे जन्मान्तरमें अर्जुन वृक्ष होते हैं ॥ ७६ ॥ कथा होते समय जो लोग व्यर्थका तर्क-वितर्क करते हैं, वे पहले गदहा और बादमें गिरगिट होते हैं ॥७७ ॥ जो पौराणिकोंकी तथा इस पापनाशिनी कथाकी निन्दा करते हैं, वे सैकड़ों जन्म तक दुष्ट कुत्ते होते हैं ॥ ७८ ॥ जो लोग वक्ताके समान ऊँचे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, उन्हें गुरुके आसनपर बैठनेका पाप लगता है ॥ ७९ ॥ जो बिना नमस्कार किये कथा सुनते हैं, वे कालान्तरमें जहरीले वृक्ष होते हैं। जो लोग लेटे-लेटे कथा सुनते हैं, वे अजगर सर्प होते हैं ॥ ८० ॥ जो लोग जीवनमें कभी भी पुराणोंकी कथा नहीं सुनते, वे घोर नरक भोगकर वनसूकर होते हैं ॥८१॥ जो कथा सुनकर उसका अनुमोदन न करके बीच-बीचमें विघ्न डालते हैं, वे करोड़ों वर्ष नरक भोगकर अन्तमें ग्रामशूकर होते हैं ॥ ८२ ॥ जो लोग कथा कहनेवाले पौराणिकको पात्र, द्रव्य, फल, वस्त्र तथा कम्बल देते हैं, वे भगवान् विष्णुके चरणोंमें प्राप्त होते हैं ॥ ८३ ॥ जो लोग पुराण-पुस्तकके लिए नया रेशमी वस्त्र अथवा सूत्र प्रदान करते हैं, वे सब प्रकारसे सुखी रहते हैं ॥८४॥ सब पुराणोंको सुननेसे जो फल मिलता है, उससे सौगुना अधिक पुण्य देवीभागवत सुननेसे प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ जैसे नदियोंमें गङ्गा, देवताओंमें शंकरजी, काव्योंमें रामायण और तेजस्वियोंमें सूर्यभगवान्

गुरुतल्पसमं पापं लभंते नरकालयाः ॥ ७९ ॥ ये चाप्रणम्य शृवंति ते भवन्ति विषद्रुमाः ॥ शयाना येऽपि शृण्वन्ति भवंत्यजगराह्यः ॥ ८० ॥ ये कदाचन पौराणीं न शृण्वन्ति कथां नराः ॥ ते घोरं नरकं भुक्त्वा भवंति वनसूकराः ॥ ८१ ॥ ये कथां नानुमोदंते विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः ॥ कोट्यब्दं निरयं भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥ ८२ ॥ आसनं भाजनं द्रव्यं फलं वस्त्राणि कम्बलम् ॥ पुराणज्ञाय यच्छन्ति ते व्रजन्ति हरेः पदम् ॥ ८३ ॥ पुराणपुस्तकस्यापि ये पट्टवसनं नवम् ॥ प्रयच्छन्ति शुभं सूत्रं ते नराः सुखभागिनः ॥ ८४ ॥ पुराणानां तु सर्वेषां श्रवणाद्यत्फलं लभेत् ॥ तस्माच्छतगुणं पुण्यं देवीभागवताल्लभेत् ॥ ८५ ॥ यथा सरित्सु प्रवरा गङ्गा देवेषु शंकरः ॥ काव्ये रामायणं यद्वज्ज्योतिष्मत्सु यथा रविः ॥ ८६ ॥ आह्लादकानां चन्द्रश्च धनानां च यथा यशः ॥ क्षमावतां यथा भूमिर्गाम्भीर्ये सागरो यथा ॥ ८७ ॥ मंत्राणां चैव सावित्री पापनाशे हरिस्मृतिः ॥ अष्टादशपुराणानां देवीभागवतं तथा ॥ ८८ ॥ येन केनाप्युपायेन नवकृत्वः शृणोति चेत् ॥ न शक्यं तत्फलं वक्तुं जीवन्मुक्तः स एव हि ॥ ८९ ॥ राजशत्रुभये प्राप्ते महामारीभये तथा ॥ दुर्भिक्षे राष्ट्रभंगे च तच्छांत्यै शृणुयादिदम् ॥ ९० ॥ भूतप्रेतविनाशाय राज्यलाभाय शत्रुतः ॥ पुत्रलाभाय शृणुयाद्देवीभागवतं द्विजाः ॥ ९१ ॥ श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि ॥ श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम् ॥ ९२ ॥ भगवत्या स्वयं देव्या श्लोकार्द्धेन प्रकाशितम् ॥ शिष्यप्रशिष्यद्वारेण तदेव विपुलीकृतम् ॥ ९३ ॥ न

श्रेष्ठ हैं ॥८६॥ जैसे आनन्ददायकोंमें चन्द्रमा, धनोंमें यश, क्षमाशीलोंमें पृथ्वी, गाम्भीर्यमें समुद्र, मंत्रोंमें गायत्री और पापनाशकोंमें विष्णुभगवान श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार अष्टादश पुराणोंमें देवीभागवत सबसे श्रेष्ठ पुराण है ॥८७॥८८॥ जो प्राणी जिस किसी भी उपायसे नौ बार इसे सुन लेता है, उसके द्वारा प्राप्त फलका वर्णन नहीं हो सकता। वह तो जीवन्मुक्त हो जाता है ॥८९॥ किसी शत्रु राजाके आक्रमण करनेपर, महामारीके समय, अकाल तथा राष्ट्रभङ्गके अवसरपर उस बाधाकी शांतिके लिए यह पुराण सुनना चाहिए ॥ ९० ॥ हे विप्रो! भूत-प्रेतके विनाशार्थ, शत्रुके हाथोंमें गया हुआ राज्य लौटानेके लिए और पुत्रप्राप्तिके निमित्त देवीभागवत सुनना चाहिये ॥ ९१ ॥ जो प्राणी देवीभागवतके एक, आधे अथवा चौथाई श्लोकको भी पढ़ता या सुनता है, वह उत्तम गति पाता है ॥९२॥ स्वयं भगवतीने इस पुराणको आधे श्लोकमें कहा था, वही शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा बढ़ते-बढ़ते विस्तृत हो गया ॥९३॥ गायत्रीसे बढ़कर कोई धर्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं है, गायत्रीसे बढ़कर कोई तप नहीं है, गायत्रीसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है और गायत्रीसे बढ़कर कोई मंत्र नहीं है ॥९४॥ अपना गुण गान करनेवालोंकी रक्षा करनेके कारण ही देवीका गायत्री यह नाम पड़ा है और रहस्यसमेत वे गायत्री देवी इस पुराणमें विराजमान रहती हैं ॥ ९५ ॥ अतएव देवीको प्रसन्न करनेवाले इस देवीभागवतकी सोलहवीं कलाको भी अन्यान्य बड़े-बड़े पुराण नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ९६ ॥ देवीभागवत बड़ा ही निर्मल पुराण है और यह ब्राह्मणोंका बहुमूल्य धन है। इसमें धर्मात्मा सूत और स्वयं नारायणके उज्ज्वल धर्मका वर्णन किया गया है। इसमें गायत्रीका रहस्य है और इसीमें मणिद्वीपका वर्णन किया गया है। इसीमें हिमालय पर्वतपर स्वयं भगवती द्वारा कथित देवीगीता है ॥९७॥ यही कारण है कि इस देवीभागवतके समान अन्य कोई भी पुराण नहीं है। अतएव हे द्विजो! आपलोग सदा देवीभागवतकी सेवा करें ॥९८॥ इसके माहात्म्यको पूर्णरीतिसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शेषभगवान

गायत्र्याः परो धर्मो न गायत्र्याः परं तपः ॥ न गायत्र्याः समो देवो न गायत्र्याः परो मनुः ॥ ९४ ॥ गातारं त्रायते यस्माद्गायत्री तेन सोच्यते ॥ साऽत्र भागवते देवी सरहस्या प्रतिष्ठिता ॥ ९५ ॥ अतो भागवतस्यास्य देव्याः प्रीतिकरस्य च ॥ महांत्यपि पुराणानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ९६ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्ब्राह्मणानां धनं धर्मो धर्मसुतेन यत्र गदितो नारायणेनामलः ॥ गायत्र्याश्च रहस्यमत्र च मणिद्वीपश्च संवर्णितः श्रीदेव्या हिमभूभृते भगवती गीता च गीता स्वयम् ॥ ९७ ॥ तस्मान्नास्य पुराणस्य लोकेऽन्यत्सदृशं परम् ॥ अतः सदैव संसेव्यं देवीभागवतं द्विजाः ॥ ९८ ॥ यस्याः प्रभावमखिलं न हि वेद धाता नो वा हरिर्न गिरिशो न हि चाप्यनन्तः ॥ अंशांशका अपि च ते किमुतान्यदेवास्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै ॥ ९९ ॥ यत्पादपंकजरजः समवाप्य विश्वं ब्रह्मा सृजत्यनुदिनं च बिभर्ति विष्णुः ॥ रुद्रश्च संहरति नेतरथा समर्थास्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै ॥ १०० ॥ सुधाकूपारांतस्त्रिदशतरुवाटीविलसिते मणिद्वीपे चिन्तामणिमयगृहे चित्ररुचिरे ॥ विराजन्तीमम्बां परशिवहृदि स्मेरवदनां नरो ध्यात्वा भोगं भजति खलु मोक्षं च लभते ॥ १०१ ॥ ब्रह्मेशाच्युतशक्राद्यैर्महर्षिभिरुपासिता ॥ जगतां श्रेयसे साऽस्तु मणिद्वीपाधिदेवता ॥ १०२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ समाप्तमिदं देवीभागवतमाहात्म्यम् ॥

भी नहीं जानते। क्योंकि वे भी भगवतीके एक अल्प अंशमात्र हैं। तब अन्य देवता उन्हें कैसे जान सकेंगे। ऐसी परम महिमामयी जगदम्बाको सतत प्रणाम है ॥९९॥ जिनके चरणोंकी रज प्राप्त करके ही ब्रह्मा प्रतिदिन जगत्की सृष्टि, विष्णु पालन और रुद्र संहार करते हैं। और किसी भी तरह वे ऐसा नहीं कर सकते। उन भगवती जगदम्बाको अनेकशः नमस्कार है ॥१००॥ अमृतसमुद्रके तटपर कल्पवृक्षकी फुलवारीसे सुशोभित मणिद्वीपके बहुवर्णचित्रित चिन्तामणिमय भवन एवं परम शिवके हृदयमें विराजमान मन्द-मन्द मुसकाती हुई भगवतीका ध्यान करनेवाला मनुष्य सभी सांसारिक सुखोंका उपभोग करके अन्तमें मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१०१॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्रादि देवताओं एवं मुनियोंके द्वारा आराधित और मणिद्वीपकी अधिदेवता देवी समस्त संसारका कल्याण करती रहें ॥ १०२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहितं—

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यम्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते प्रथमः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ सभी चेतन प्राणियोंकी आत्मा और सत्रकी आदिविद्यारूपिणी भगवतीका मैं ध्यान करता हूँ। क्योंकि वे ही भगवती हमारी बुद्धि सत्कार्यके लिए प्रेरित करती हैं ॥ १ ॥ शौनकजी बोले–हे महाभाग सूत ! हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप धन्य हैं। क्योंकि आपने भलीभाँति पुराणसंहिताओंका अध्ययन किया है ॥ २ ॥ हे अनघ ! कृष्ण द्वैपायन (व्यास) द्वारा रचित, दिव्य, पञ्चलक्षणयुक्त एवं रहस्य समेत अष्टादश पुराणोंको आपने पढ़ा है। सत्यवतीतनय व्यासजीकी कृपासे आपने सब कुछ जान लिया है ॥ ३ ॥ ४ ॥ हमारे पुण्यसे ही आप इस उत्तम, दिव्य, मुनियोंके निवास योग्य, पवित्र तथा कलिके दोषोंसे रहित क्षेत्रमें आ उपस्थित हुए हैं ॥ ५ ॥ हे सूत ! मुनियोंकी यह विशाल सभा परम पुण्यदायिनी पुराण-संहिता सुनना चाहती है। सो आप समाहित चित्त होकर उसे हम लोगोंको सुनाइए ॥ ६ ॥ हे सर्वज्ञ ! आप दैहिक, दैविक और भौतिक इन तीनों तापोंसे रहित होकर दीर्घायु हों।

ॐ सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि ॥ बुद्धिं या नः प्रचोदयात् ॥१॥ शौनक उवाच ॥ सूत सूत महाभाग धन्योऽसि पुरुषर्षभ ॥ यदधीतास्त्वया सम्यक्पुराणसंहिताः शुभाः ॥ २ ॥ अष्टादश पुराणानि कृष्णेन मुनिनाऽनघ ॥ कथितानि सुदिव्यानि पठितानि त्वयाऽनघ ॥ ३ ॥ पंचलक्षणयुक्तानि सरहस्यानि मानद ॥ त्वया ज्ञातानि सर्वाणि व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ ४ ॥ अस्माकं पुण्ययोगेन प्राप्तस्त्वं क्षेत्र-मुत्तमम् ॥ दिव्यं विश्वसनं पुण्यं कलिदोषविवर्जितम् ॥ ५ ॥ समाजोऽयं मुनीनां हि श्रोतुकामोऽस्ति पुण्यदाम् ॥ पुराणसंहितां सूत ब्रूहि त्वं नः समाहितः ॥ ६ ॥ दीर्घायुर्भव सर्वज्ञ तापत्रयविवर्जितः ॥ कथयाद्य महाभाग पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ ७ ॥ श्रोत्रेन्द्रिययुताः सूत नराः स्वादविचक्षणाः ॥ न शृण्वंति पुराणानि वंचिता विधिना हि ते ॥ ८ ॥ यथा जिह्वेन्द्रियाह्लादः षड्रसैः प्रतिपद्यते ॥ तथा श्रोत्रेन्द्रियाह्लादो वचोभिः सुधियां स्मृतः ॥ ९ ॥ अश्रोत्राः फणिनः कामं मुह्यंति हि नभोगुणैः ॥ सकर्णा ये न शृण्वंति तेऽप्यकर्णाः कथं न च ॥ १० ॥ अतः सर्वे द्विजाः सौम्य श्रोतुकामाः समाहिताः ॥ वर्तंते नैमिषारण्ये क्षेत्रे कलिभयार्दिताः ॥ ११ ॥ येन केनाप्युपायेन कालातिवाहनं स्मृतम् ॥ व्यसनैरिह मूर्खाणां बुधानां शास्त्रचिंतनैः ॥ १२ ॥ शास्त्राण्यपि विचित्राणि जल्पवादयुतानि च ॥ (त्रिविधानि पुराणानि शास्त्राणि विविधानि च ॥ वितंडाच्छलयुक्तानि गर्वामर्षकराणि च ॥ १ ॥) नानार्थवादयुक्तानि हेतुमन्ति बृहन्ति च ॥ १३ ॥ सात्त्विकं तत्र वेदान्तं मीमांसा

हे महाभाग ! आज आप ब्रह्मसे अनुमोदित पुराण कहिए ॥ ७ ॥ हे सूत ! जो मनुष्य कर्णेन्द्रिययुक्त होते हुए भी जिह्वाके स्वादमें लिप्त होकर पुराणोंका श्रवण नहीं करते, वे दैववञ्चित अर्थात् अभागे हैं ॥ ८ ॥ जैसे कटु-तिक्त-कषाय आदि षड्रसोंसे जिह्वाको सुख प्राप्त होता है, उसी प्रकार विद्वानोंकी अच्छी-अच्छी बातें सुननेसे कर्णेन्द्रियको सुख मिलता है ॥ ९ ॥ श्रोत्रेन्द्रियहीन सर्प भी वाद्य-ध्वनि सुनकर मोहित हो जाता है, फिर श्रवणेन्द्रियके रहते हुए भी जो मनुष्य यह कथा नहीं सुनते, उन्हें बहरा क्यों न कहा जाय ? ॥१०॥ सो हे सौम्य ! सभी द्विज कलिके भयसे पीडित होकर कुछ सुननेकी अभिलाषासे इस नैमिषारण्य क्षेत्रमें आ पहुँचे हैं ॥ ११ ॥ जिस किसी भी उपायसे समय बिताना अनिवार्य रखा है। सो मूर्खोंका समय व्यसनोंमें बीतता है और पण्डितोंका शास्त्रचिन्तनमें ॥ १२ ॥ शास्त्र भी विचित्र प्रकारके वाद-विवादसे पूर्ण हैं। (पुराण तीन प्रकारके और शास्त्र विविध प्रकारके हैं। उनमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाना प्रकारके वितण्डावाद तथा छलभरे अहंकार और अमर्ष उत्पन्न करनेवाले विचार दृष्टिगोचर हो रहे हैं ॥ १ ॥) उनमें अर्थवाद (असत्यको सत्य साबित करनेवाले विचार) युक्त, हेतुमान् और बृहत् विचार सन्निविष्ट हैं ॥१३॥ उन शास्त्रोंमें वेदान्त तथा मीमांसा सात्त्विक शास्त्र हैं। किन्तु हेतुवादसंकुल होनेके कारण न्यायशास्त्र तामस कहा जाता है ॥ १४ ॥ हे सौम्य ! इसी प्रकार कथानकभेदसे पुराण भी त्रिगुणात्मक कहे जाते हैं और पञ्चलक्षणात्मक पुराणोंका वर्णन तो आप स्वयं कर चुके हैं ॥१५॥ उनमें भागवत पुराण पाँचवें वेदके समान पुनीत माना गया है। उस सर्वलक्षणसम्पन्न पुराणको आप पहले भी कह चुके है ॥ १६ ॥ प्रसङ्गवश संक्षेपमें ही आपने वह परम अद्भुत, मुमुक्षुजनोंको मुक्तिदायक, कामनायें पूर्ण करनेवाला और धर्मवर्धक भागवतपुराण कहा था ॥१७॥ हे सूत ! अब वही उत्तम पुराण आप विस्तारके साथ फिरसे कहिए। हम सभी द्विज उस दिव्य तथा कल्याणमय भागवतको आदर-पूर्वक सुनना चाहते हैं ॥१८॥ हे धर्मज्ञ ! सात्त्विकताके प्रेमी और गुरुभक्त होनेके कारण आप कृष्ण द्वैपायन व्यासकी रची हुई समस्त पुराणसंहिताओंको जानते हैं ॥१९॥ जैसे सुधापा-

राजसं मतम् ॥ तामसं न्यायशास्त्रं च हेतुवादाभियंत्रितम् ॥ १४ ॥ तथैव च पुराणानि त्रिगुणानि कथानकैः ॥ कथितानि त्वया सौम्य
पंचलक्षणवंति च ॥ १५ ॥ तत्र भागवतं पुण्यं पंचमं वेदसंमितम् ॥ कथितं यत्त्वया पूर्वं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ १६ ॥ उद्देशमात्रेण तदा कीर्तितं
परमाद्भुतम् ॥ मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामदं धर्मदं तथा ॥ १७ ॥ विस्तरेण तदाख्याहि पुराणोत्तममादरात् ॥ श्रोतुकामा द्विजाः सर्वे दिव्यं
भागवतं शुभम् ॥ १८ ॥ त्वं तु जानासि धर्मज्ञ पौराणीं संहितां किल ॥ कृष्णोक्तां गुरुभक्तत्वात्सम्यक्सत्त्वगुणाश्रयः ॥ १९ ॥ श्रुतान्यन्यानि
सर्वज्ञ त्वन्मुखान्निःसृतानि च ॥ नैव तृप्तिं व्रजामोऽद्य सुधापानेऽमरा यथा ॥ २० ॥ धिक्सुधां पिबतां सूत मुक्तिर्नैव कदाचन ॥ पिबन्भागवतं
सद्यो नरो मुच्येत संकटात् ॥ २१ ॥ सुधापाननिमित्तं यत्कृता यज्ञाः सहस्रशः ॥ न शांतिमधिगच्छामः सूत सर्वात्मना वयम् ॥ २२ ॥ मखानां
हि फलं स्वर्गः स्वर्गात्प्रच्यवनं पुनः ॥ एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमणं च निरंतरम् ॥ २३ ॥ बिना ज्ञानेन सर्वज्ञ नैव मुक्तिः कदाचन ॥ भ्रमता
कालचक्रेऽत्र नराणां त्रिगुणात्मके ॥ २४ ॥ अतः सर्वरसोपेतं पुण्यं भागवतं वद ॥ पावनं मुक्तिदं गुह्यं मुमुक्षूणां सदा प्रियम् ॥ २५ ॥ इति
श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शौनकप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

नसे देवता अतृप्त रह गये थे, वैसे ही आपके मुखारविन्दसे निःसृत अन्यान्य पुराणामृत पी करके भी हम तृप्त नहीं हो पाते ॥२०॥ हे सूत ! अमृत पीनेवाले धिक्कारके योग्य हैं। क्योंकि उसे पीकर मुक्ति नहीं मिल सकती और भागवतरूपी अमृत पीकर मनुष्य तत्काल मृत्युसंकटसे छूट जाता है ॥२१॥ हे सूतजी ! अमृतपानके निमित्त जो हजारों प्रकारके यज्ञ किये जाते हैं, उनसे हमको सर्वथा शान्ति नहीं मिलती ॥२२॥ कारण यह है कि यज्ञका फल स्वर्ग है और स्वर्गमें जानेसे पुनः नीचे मृत्युलोकमें लौटना पड़ जाता है। इस प्रकार निरन्तर संसारचक्रमें चक्कर काटना पड़ता है ॥२३॥ हे सर्वज्ञ ! बिना ज्ञानके मुक्ति कदापि नहीं मिल सकती और मनुष्य सत्त्व-रज-तमोगुण युक्त कालचक्रमें पड़कर घूमा करता है ॥२४॥ अतएव आप सर्वरसपरिपूर्ण पुनीत भागवतपुराण कहिए। क्योंकि वह परम पावन पुराण मुमुक्षुजनोंको मुक्तिदायक और सर्वप्रिय है ॥२५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(देवीभागवतकी अध्याय तथा श्लोकसंख्या) श्रीसूतजी बोले—हे मुनियों ! मैं धन्य और बड़भागी हूँ। आप महात्माओंने वेदविख्यात भागवतपुराणसम्बन्धी प्रश्न करके मुझे पवित्र कर दिया है ॥१॥ सभी श्रुतियोंके अर्थसे सम्मत तथा सब शास्त्रों और आगमों (तान्त्रिक विचारों) के रहस्यस्वरूप सर्वोत्तम भागवतपुराण मैं अवश्य कहूँगा ॥ २ ॥ योगियों तथा ब्रह्मादिक देवताओं द्वारा सेवित, स्तुतिपरायण महामुनियोंके ध्यानयोग्य और मुक्तिदायिनी भगवतीके सुललित चरण-कमलोंको प्रणाम करके मैं विस्तारके साथ बहुरससमन्वित, श्रीसम्पन्न, उत्तम एवं भगवतीके नामसे विख्यात देवीभागवत पुराणको मैं भक्तिपूर्वक कहूँगा ॥३॥ वैदिक मार्गमें जिसे लोग विद्या कहते हैं, जो सदा आद्या और परा शक्तिके नामसे अभिहित होती है, जो सर्वज्ञा है और भवबन्धन काटनेमें कुशल है, जो सर्वत्र विद्यमान रहती है, दुरात्मा प्राणी जिसे कठिनाईसे जान पाते हैं, जो ध्यान करनेपर मुनिजनोंको प्राप्त हो जाती है, जो साधना द्वारा प्रत्यक्ष हो सकती है, वह भगवती हमारे लिए सदा सिद्धिदात्री हो ॥ ४ ॥ जो सत् तथा असत्स्वरूप अखिल विश्वकी सृष्टि करके अपनी त्रिगुणात्मिका शक्तिसे पालन

॥ श्रीसूत उवाच ॥ धन्योऽहमतिभाग्योऽहं पावितोऽहं महात्मभिः ॥ यत्पृष्टं सुमहत्पुण्यं पुराणं वेदविश्रुतम् ॥१॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि सर्वश्रुत्यर्थसम्मतम् ॥ रहस्यं सर्वशास्त्राणामागमानामनुत्तमम् ॥ २ ॥ नत्वा तत्पदपंकजं सुललितं मुक्तिप्रदं योगिनां ब्रह्माद्यैरपि सेवितं स्तुतिपरैर्ध्येयं मुनीन्द्रैः सदा ॥ वक्ष्याम्यद्य सविस्तरं बहुरसं श्रीमत्पुराणोत्तमं भक्त्या सर्वरसालयं भगवतीनाम्ना प्रसिद्धं द्विजाः ॥३॥ या विद्येत्यभिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाऽऽद्या परा सर्वज्ञा भवबंधछित्तिनिपुणा सर्वाशये संस्थिता ॥ दुर्ज्ञेया सुदुरात्मभिश्च मुनिभिर्ध्यानास्पदं प्रापिता प्रत्यक्षा भवतीह सा भगवती सिद्धिप्रदा स्यात्सदा ॥ ४ ॥ सृष्ट्वाऽखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम् ॥ संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि ॥ ५ ॥ ब्रह्मा सृजत्यखिलमेतदिति प्रसिद्धं पौराणिकैश्च कथितं खलु वेदविद्भिः ॥ विष्णोस्तु नाभिकमले किल तस्य जन्म तैरुक्तमेव सृजते न हि स स्वतन्त्रः ॥ ६ ॥ विष्णुस्तु शेषशयने स्वपितीति काले तन्नाभिपद्ममुकुले खलु तस्य जन्म ॥ आधारतां किल गतोऽत्र सहस्रमौलिः सम्बोध्यतां स भगवान् हि कथं मुरारिः ॥ ७ ॥ एकार्णवस्य सलिलं रसरूपमेव पात्रं विना न हि रसस्थितिरस्ति कचित् ॥ या सर्वभूतविषये किल शक्तिरूपा तां सर्वभूतजननीं शरणं गतोऽस्मि ॥ ८ ॥ योगनिद्रामीलिताक्षं विष्णुं

करती और कल्पान्तमें उसका संहार करके अकेली विहार करती है, उस समस्त विश्वकी जननीका मैं मन ही मन स्मरण करता हूँ ॥ ५ ॥ यह बात विख्यात है कि ब्रह्माजी इस संसारकी सृष्टि करते हैं। बड़े-बड़े वैदिक तथा पौराणिक विद्वान् भी इस बातका समर्थन करते हैं कि विष्णु भगवान्के नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है और उन्हींकी प्रेरणासे वे सब कुछ करते हैं—अपने मनसे नहीं। क्योंकि वे भी स्वतन्त्र नहीं हैं ॥ ६ ॥ भगवान् विष्णु भी कल्पान्तकालमें शेषशय्यापर सोते हैं और उन्हींके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका जन्म हुआ है। तो जब सहस्रशीर्षा शेषजी उनके आधार बन गये, तब विष्णुजी भी मुरारि कैसे कहे जा सकते हैं ॥ ७ ॥ कल्पान्तकालके एकार्णव (समुद्र) का जल भी रसरूप है और बिना किसी पात्रके रसकी स्थित नहीं हो सकती। अतएव जो सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे विराजमान रहती है। मैं उस अखिल विश्वकी जननीकी शरणमें हूँ ॥ ८ ॥ योगनिद्रासे आँखें मूँदे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विष्णुभगवानको देखकर कमलपर विराजमान ब्रह्माजीने जिनकी स्तुति की थी, मैं उन देवीकी शरणमें हूँ ॥ ९ ॥ हे मुनियों ! उस सगुणात्मिका, निर्गुणा तथा मुक्तिदायिनी महामायाका ध्यान करके मैं समस्त देवीभागवत पुराण कहूँगा—आपलोग सुनें ॥ १० ॥ यह श्रीमद्भागवत बड़ा पुनीत और उत्तम पुराण है । इसमें अट्ठारह हजार श्लोक हैं ॥ ११ ॥ वेदव्यासने इसमें शुभ द्वादश स्कन्धोंका निर्माण किया है और कुल तीन सौ अठारह अध्याय हैं ॥ १२ ॥ प्रथम स्कन्धमें बीस, द्वितीय स्कन्धमें बारह, तृतीय स्कन्धमें तीस और चतुर्थ स्कन्धमें पचीस अध्याय हैं ॥ १३ ॥ पञ्चम स्कन्धमें पैंतीस, षष्ठ स्कन्धमें एकतीस और सप्तम स्कन्धमें चालिस अध्याय हैं ॥ १४ ॥ अष्टम स्कन्धमें चौबीस, नवें स्कन्धमें पचास और दशम स्कन्धमें वेदव्यासने तेरह अध्याय कहे हैं ॥ १५ ॥ हे मुनियो ! ग्यारहवें स्कन्धमें चौबीस और बारहवें स्कन्धमें चौदह अध्याय हैं ॥ १६ ॥ इस पुराणमें महात्मा व्यासने

दृष्ट्वाऽम्बुजे स्थितः ॥ अजस्तुष्टाव यां देवीं तामहं शरणं गतः ॥ ९ ॥ तां ध्यात्वा सगुणां मायां मुक्तिदां निर्गुणां तथा ॥ वक्ष्ये पुराणमखिलं शृण्वन्तु मुनयस्त्विह ॥ १० ॥ पुराणमुत्तमं पुण्यं श्रीमद्भागवताभिधम् ॥ अष्टादश सहस्राणि श्लोकास्तत्र तु संस्कृताः ॥ ११ ॥ स्कन्धा द्वादश चैवात्र कृष्णेन विहिताः शुभाः ॥ त्रिशतं पूर्णमध्याया अष्टादशयुताः स्मृताः ॥ १२ ॥ विंशतिः प्रथमे तत्र द्वितीये द्वादशैव तु ॥ त्रिंशच्चैव तृतीये तु चतुर्थे पंचविंशतिः ॥ १३ ॥ पंचत्रिंशत्तथाऽध्यायाः पंचमे परिकीर्तिताः ॥ एकत्रिंशत्तथा षष्ठे चत्वारिंशच्च सप्तमे ॥ १४ ॥ अष्टमे तत्त्वसंख्याश्च पंचाशन्नवमे तथा ॥ त्रयोदश तु संप्रोक्ता दशमे मुनिना किल ॥ १५ ॥ तथा चैकादशस्कन्धे चतुर्विंशतिरीरिताः ॥ चतुर्दशैव चाध्याया द्वादशे मुनिसत्तमाः ॥१६॥ एवं संख्या समाख्याता पुराणेऽस्मिन्महात्मना ॥ अष्टादशसाहस्रीया संख्या च परिकीर्तिता ॥ १७ ॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च ॥ वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥ १८ ॥ निर्गुणा या सदा नित्या व्यापिका विकृता शिवा ॥ योगगम्याऽखिलाधारा तुरीया या च संस्थिता ॥ १९ ॥ तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा ॥ महालक्ष्मी सरस्वती महाकालीति ताः स्त्रियः ॥ २० ॥ तासां तिसृणां शक्तीनां देहांगीकारलक्षणः ॥ सृष्ट्यर्थं च समाख्यातः सर्गः शास्त्रविशारदैः ॥ २१ ॥ हरिद्रुहिणरुद्राणां समुत्पत्तिस्ततः स्मृता ॥ पालनोत्पत्तिनाशार्थं प्रतिसर्गः स्मृतो हि सः ॥ २२ ॥ सोमसूर्योद्भवानां च राज्ञां वंशप्रकीर्तनम् ॥ हिरण्यकशिप्वादीनां

इसी प्रकार अध्यायों और अट्ठारह हजार श्लोकोंकी संख्या बतायी गयी है ॥ १७ ॥ सर्ग (अर्थात् कार्यसृष्टि), प्रतिसर्ग (कारणसृष्टि), वंशवर्णन, मन्वंतर और वंशानुचरित, ये ही पाँच उन पुराणोंके लक्षण हैं ॥ १८ ॥ जो देवी गुणातीता, सदा नित्यस्वरूपसे विराजनेवाली, सर्वव्यापिनी, निर्विकारा, कल्याणात्मिका, योगज्ञेया, समस्त विश्वकी आधारस्वरूपा और तुरीयावस्थाको पहुँची हुई हैं ॥ १९ ॥ उन्हीं भगवतीकी सात्त्विकी, राजसी और तामसी शक्ति महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली कहलाती है । ये तीनों स्त्री हैं ॥ २० ॥ उपर्युक्त तीनों शक्तियोंके शरीर-धारणका जो मूल कारण है, उसीको शास्त्रनिपुण विद्वान् 'सर्ग' कहते हैं ॥ २१ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और उनकी उत्पत्तिका मूलतत्त्व एवं जो विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहारका निमित्त कारण है, वही 'प्रतिसर्ग' कहलाता है ॥ २२ ॥ चन्द्र एवं सूर्यवंशी राजाओंका वंशवर्णन तथा हिरण्यकशिपु आदिके चरित्रोंका कथन ही 'वंश' कहा जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है ॥ २३ ॥ स्वायम्भुव आदि चतुर्दश मनुओंकी कथा तथा उनके समयविभागको 'मन्वंतर' कहा जाता है ॥ २४ ॥ उन मनुओंके वंशका एक क्रमसे किये गये वर्णनको 'वंशानुचरित' कहते हैं । हे महामुनियो ! इस प्रकार सभी पुराण उपर्युक्त पाँचों लक्षणोंसे युक्त रहते हैं ॥ २५ ॥ व्यास मुनिने सवा लाख श्लोकोंका महाभारत ग्रन्थ भी रचा है । वह इतिहासग्रंथ कहलाता है और वेदसम्मत होनेके कारण पाँचवें वेदके समान आदरणीय माना जाता है ॥ २६ ॥ शौनक मुनि बोले—हे सूत ! वे पुराण कौन-कौनसे हैं ? हे सर्वज्ञ ! उनकी कितनी संख्या है ? हम लोगोंको विस्तृतरूसे बताइए । हम उसे सुनना चाहते हैं ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! हम नैमिषारण्यनिवासी मुनि कलिकालसे डर गये थे । तब ब्रह्माजीने मनोमय चक्र देकर हमें यह आदेश दिया और कहा—आपलोग इस चक्रके पीछे-पीछे जायँ और जहाँ इसका धुरा गिर जाय, उसी प्रदेशको पवित्र समझें ॥ २८ ॥ २९ ॥ क्योंकि वहाँ कर्मी भी

वंशास्ते परिकीर्तिताः ॥ २३ ॥ स्वायंभुवमुखानां च मनूनां परिवर्णनम् ॥ कालसंख्या तथा तेषां तत्तन्मन्वंतराणि च ॥ २४ ॥ तेषां वंशानुकथनं वंशानुचरितं स्मृतम् ॥ पंचलक्षणयुक्तानि भवंति मुनिसत्तमाः ॥ २५ ॥ सपादलक्षं च तथा भारतं मुनिना कृतम् ॥ इतिहास इति प्रोक्तं पञ्चमं वेदसम्मतम् ॥ २६ ॥ शौनक उवाच ॥ कानि तानि पुराणानि ब्रूहि सूत सविस्तरम् ॥ कतिसंख्यानि सर्वज्ञ श्रोतुकामा वयं त्विह ॥ २७ ॥ कलिकालविभीताः स्मो नैमिषारण्यवासिनः ॥ ब्रह्मणाऽत्र समादिष्टाश्चक्रं दत्त्वा मनोमयम् ॥ २८ ॥ कथितं तेन नः सर्वान्गच्छंत्वेतस्य पृष्ठतः ॥ नेमिः संशीर्यते यत्र स देशः पावनः स्मृतः ॥ २९ ॥ कलेस्तत्र प्रवेशो न कदाचित्संभविष्यति ॥ तावत्तिष्ठन्तु तत्रैव यावत्सत्ययुगं पुनः ॥ ३० ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गृहीत्वा तत्कथानकम् ॥ चालयन्निर्गतस्तूर्णं सर्वदेशदिदृक्षया ॥ ३१ ॥ प्रेत्यात्र चालयंश्चक्रं नेमिः शीर्णोऽत्र पश्यतः ॥ तेनेदं नैमिषं प्रोक्तं क्षेत्रं परमपावनम् ॥ ३२ ॥ कलिप्रवेशो नैवात्र तस्मात्स्थानं कृतं मया ॥ मुनिभिः सिद्धसंघैश्च कलिभीतैर्महात्मभिः ॥ ३३ ॥ पशुहीनाः कृता यज्ञाः पुरोडाशादिभिः किल ॥ कालातिवाहनं कार्यं यावत्सत्ययुगागमः ॥ ३४ ॥ भाग्ययोगेन संप्राप्तः सूत त्वं चात्र सर्वथा ॥ कथायाद्य पुराणं हि पावनं ब्रह्मसम्मतम् ॥ ३५ ॥ सूत शुश्रूषवः सर्वे वक्ता त्वं मतिमानथ ॥

कलियुगकी पहुँच नहीं हो सकेगी । आपलोग उस स्थानपर तब तक रहें, जब तक पुनः सत्ययुग न आ जाय ॥ ३० ॥ ब्रह्माजीके वचन सुन और उनके आदेशको हृदयङ्गम करके सब देशोंके दर्शनार्थ हमलोग तत्काल उस मनोमय चक्रके पीछे-पीछे चल पड़े ॥ ३१ ॥ चलते-चलते इस स्थानपर आकर उस चक्रका धुरा हमलोगोंके समक्ष गिरा । इसी कारण यह नैमिषक्षेत्र परम पावन माना जाता है ॥३२॥ यहाँ कलिकी पहुँच नहीं हो सकती थी, इसीसे बहुतेरे मुनियों, सिद्धजनों तथा कलिकालसे भयभीत अन्यान्य महात्माओंने यहीं अपना अपना निवासस्थान बनाया ॥३३॥ हमने यहाँ चरु-पुरोडाश आदिका उपयोग करके पशुवधहीन अनेक अहिंस्र यज्ञ किये हैं और जब तक सत्ययुग न आये, तब तक हमको यहाँ ही रहना है ॥ ३४ ॥ हमारे भाग्यवश हे सूत ! आप भी यहाँ आ पहुँचे हैं । सो अब आप वेदसम्मत पुराण कहिए ॥ ३५ ॥ हे सूत ! हम लोग उसे सुननेके लिए बहुत ही उत्सुक हैं । आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुद्धिमान् वक्ता हैं। अतएव हम अपना सारा काम छोड़ तथा चित्त एकाग्र करके बैठे हैं ॥ ३६ ॥ हे सूत! त्रितापसे रहित होते हुए आप चिरंजीवी हों। आज आप हमें पुनीत तथा कल्याणदायक भागवतपुराण अवश्य सुनाइए ॥ ३७ ॥ जिसमें धर्म, अर्थ और कामका विधिवत् वर्णन किया गया है, जिसका श्रवण करनेसे ज्ञान प्राप्त होता है और उस ज्ञानके प्राप्त होनेपर मुक्ति मिल जाती है ॥३८॥ महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित वह बहुत ही पावन पुराण है। हे सूत! नित्य मन लुभानेवाली कथायें सुनते रहनेपर भी हम तृप्त नहीं हो पाते ॥३९॥ समस्त गुणोंका एकमात्र पात्र, परम पवित्र, समस्त जगत्की जननीकी लीलाके समान विचित्र, समस्त पापोंका नाशक और समस्त कामनायें पूर्ण करनेवाला देवीभागवत पुराण आप अवश्य कहिए ॥ ४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते पुराणे प्रथमस्कन्धे भाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

(पुराण-उपपुराण और व्यास) सूतजी बोले—हे महामुनियों! सत्यवतीतनय वेदव्यासके मुखसे मैंने जिस तरह पुराणोंको सुना है, सो कह रहा हूँ, सुनिए ॥ १ ॥ मकारके दो

निर्व्यापारा वयं नूनमेकचित्तास्तथैव च ॥ ३६ ॥ त्वं सूत भव दीर्घायुस्तापत्रयविवर्जित ॥ कथयाद्य पुराणं हि पुण्यं भागवतं शिवम् ॥ ३७ ॥ यत्र धर्मार्थकामानां वर्णनं विधिपूर्वकम् ॥ विद्यां प्राप्य तया मोक्षः कथितो मुनिना किल ॥ ३८ ॥ द्वैपायनेन मुनिना कथितं यच्च पावनम् ॥ न तृप्यामो वयं सूत कथां श्रुत्वा मनोरमाम् ॥ ३९ ॥ सकलगुणानामेकपात्रं पवित्रमखिलभुवनमातुर्नाट्यवद्यद्विचित्रम् ॥ निखिलमलगणानां नाशकृत्कामकन्दं प्रकटय भगवत्या नामयुक्तं पुराणम् ॥ ४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ सूत उवाच ॥ शृण्वन्तु संप्रवक्ष्यामि पुराणानि मुनीश्वराः ॥ यथाश्रुतानि तत्त्वेन व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ १ ॥ मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ॥ अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्पृथक् ॥ २ ॥ चतुर्दशसहस्रं च मत्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम् ॥ तथा ग्रहसहस्रं तु मार्कण्डेयं महाद्भुतम् ॥ ३ ॥ चतुर्दश सहस्राणि तथा पंचशतानि च ॥ भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४ ॥ अष्टादशसहस्रं वै पुण्यं भागवतं किल ॥ तथा चायुतसंख्याकं पुराणं ब्रह्मसंज्ञकम् ॥ ५ ॥ द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्मांडं च शताधिकम् ॥ तथाऽष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमेव च ॥ ६ ॥ अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च ॥ चतुर्विंशतिसंख्यातः सहस्राणि तु शौनक ॥ ७ ॥ त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं

अर्थात् मत्स्य और मार्कण्डेय, भकारके दो अर्थात् भविष्य और भागवत, बकारके तीन अर्थात् ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्त, वकारके चार अर्थात् वामन, वायु, विष्णु और वाराह, अ अर्थात् अग्निपुराण, ना अर्थात् नारदपुराण, प अर्थात् पद्मपुराण, लिं अर्थात् लिङ्गपुराण, ग अर्थात् गरुड़पुराण, कू अर्थात् कूर्मपुराण, स्क अर्थात् स्कन्दपुराण ये ही विभिन्न अष्टादश पुराण हैं ॥२॥ उनमेंसे आदिके मत्स्यपुराणमें चौदह हजार और महान् अद्भुत मार्कण्डेयपुराणमें नौ हजार श्लोक हैं ॥ ३ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने भविष्यपुराणमें चौदह हजार पाँच सौ श्लोक बताये हैं ॥ ४ ॥ भागवतमें अठारह हजार और ब्रह्मपुराणमें दस हजार श्लोक हैं ॥ ५ ॥ ब्रह्माण्डपुराणमें बारह हजार एक सौ तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आठरह हजार श्लोक हैं ॥ ६ ॥ हे शौनक! वामनपुराणमें दस हजार तथा वायुपुराणमें चौबीस हजार छ सौ श्लोक हैं ॥ ७ ॥ अति अद्भुत विष्णुपुराणमें तेईस हजार तथा परम अद्भुत वाराहपुराणमें चौबीस हजार श्लोक हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अग्निपुराणमें सोलह तथा नारदपुराणमें पचीस हजार श्लोक हैं ॥८।९॥ विशालकाय पद्मपुराणमें पचपन हजार तथा विस्तृत लिङ्गपुराणमें ग्यारह हजार श्लोक हैं ॥ १० ॥ भगवानके कहे हुए गरुड़पुराणमें उन्नीस हजार और कूर्मपुराणमें सत्रह हजार श्लोक हैं ॥ ११ ॥ परम अद्भुत स्कन्दपुराणमें इक्यासी हजार श्लोक कहे गये हैं। हे पापशून्य मुनियों ! इस प्रकार मैंने आपको विस्तारके साथ पुराणोंको तथा उनकी श्लोकसंख्या बतायी ॥ १२ ॥ हे मुनिसत्तम ! अब उपपुराणोंको बता रहा हूँ। उनमें पहला सनत्कुमार उपपुराण, दूसरा नारसिंह-उपपुराण, तीसरा नारदीय उपपुराण, चौथा शिव उपपुराण, पाँचवाँ दुर्वासा उपपुराण, छठाँ कपिल उपपुराण, सातवाँ मनु उपपुराण, आठवाँ शुक्र उपपुराण, नवाँ वरुण उपपुराण, दसवाँ कालिका उपपुराण, ग्यारहवाँ साम्ब उपपुराण, बारहवाँ नन्दी उपपुराण, तेरहवाँ सूर्य उपपुराण, चौदहवाँ पाराशर उपपुराण, पन्द्रहवाँ अतिशय विस्तृत आदित्य उपपुराण, सोलहवाँ माहेश्वर

परमाद्भुतम् ॥ चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम् ॥ ८ ॥ षोडशैव सहस्राणि पुराणं चाग्निसंज्ञितम् ॥ पंचविंशतिसाहस्रं नारदं परमं मतम् ॥ ६ ॥ पञ्चपञ्चाशत्साहस्रं पद्माख्यं विपुलं मतम् ॥ एकादशसहस्राणि लिङ्गाख्यं चातिविस्तृतम् ॥ १० ॥ एकोनविंशत्साहस्रं गारुडं हरिभाषितम् ॥ सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्मभाषितम् ॥ ११ ॥ एकाशीतिसहस्राणि स्कन्दाख्यं परमाद्भुतम् ॥ पुराणाख्या संख्या च विस्तरेण मयाऽनघाः ॥ १२ ॥ तथैवोपपुराणानि शृण्वंतु ऋषिसत्तमाः ॥ सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम् ॥ १३ ॥ नारदीयं शिवं चैव दौर्वाससमनुत्तमम् ॥ कापिलं मानवं चैव तथा चौशनसं स्मृतम् ॥ १४ ॥ वारुणं कालिकाख्यं च साम्बं नंदिकृतं शुभम् ॥ सौरं पाराशरप्रोक्तमादित्यं चातिविस्तरम् ॥ १५ ॥ माहेश्वरं भागवतं वासिष्ठं च सविस्तरम् ॥ एतान्युपपुराणानि कथितानि महात्मभिः ॥ १६ ॥ अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ॥ भारताख्यानमतुलं चक्रे तदुपबृंहितम् ॥१७॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु द्वापरे द्वापरे युगे ॥ प्रादुःकरोति धर्मार्थी पुराणानि यथाविधि ॥ १८ ॥ द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण सर्वदा ॥ वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया ॥१९॥ अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्रान् ज्ञात्वा कलावथ ॥ पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे युगे ॥ २० ॥ स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां न वेदश्रवणं मतम् ॥ तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च ॥ २१ ॥ मन्वंतरे सप्तमेऽत्र शुभे वैवस्वताभिधे ॥ अष्टाविंशतिमे प्राप्ते द्वापरे मुनिसत्तमाः ॥ २२ ॥ व्यासः सत्यवतीसूनुर्गुरुर्मे धर्म-

उपपुराण, सत्रहवाँ भागवत उपपुराण और अठारहवाँ विस्तृत वासिष्ठ उपपुराण है। महात्मा मुनियोंने इन्हें ही उपपुराण कहा है ॥ १३-१६ ॥ सत्यवतीपुत्र वेदव्यासने उपर्युक्त अठारह पुराणोंकी रचना करनेके बाद उन्हीं सामग्रियोंको विस्तृत करके अतुलनीय महाभारत आख्यानका निर्माण किया ॥ १७ ॥ सभी मन्वन्तरोंके प्रत्येक द्वापर युगमें धर्माभिवृद्धिके इच्छुक व्यासजी विधिवत् पुराणोंकी रचना करते हैं ॥ १८ ॥ प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासरूपधारी भगवान् विष्णु लोककल्याणके निमित्त एक-एक वेदके अनेक विभाग कर देते हैं ॥ १९ ॥ कलिकालमें ब्राह्मणोंको अल्पायु तथा अल्पबुद्धि समझकर वे पवित्र पुराणसंहिताओंका निर्माण करते हैं ॥२०॥ स्त्रियों, शूद्रों और अधम ब्राह्मणोंको वेदश्रवणका अधिकार नहीं है। सो उनका उपकार करनेके लिए ही व्यासजीने पुराणोंकी रचना की है ॥२१॥ हे महामुनियों! इस शुभ सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें परम धर्मात्मा सत्यवतीतनय एवं मेरे गुरु व्यास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुए। उन्तीसवें मन्वन्तरमें द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा व्यास होंगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस प्रकार अबतक कुल सत्ताईसं व्यास हुए हैं और उन्होंने युग-युगमें विविध पुराणसंहितायें बनायी हैं ॥२४॥ ऋषिगण बोले—हे सूतजी! पूर्वयुगोंमें उत्पन्न उन व्यासोंका वर्णन करिए, जिन्होंने प्रत्येक द्वापरमें पुराणोंका निर्माण किया हो ॥२५॥ सूतजी कहने लगे—प्रथम द्वापरमें स्वयं ब्रह्माजी व्यास हुए और उन्होंने वेदोंका विभाजन किया। द्वितीय द्वापरमें प्रजापति व्यास हुए ॥२६॥ तृतीय द्वापरमें शुक्राचार्य और चौथे द्वापरमें मृत्युदेव व्यास हुए ॥२७॥ सातवें द्वापरमें इन्द्र, आठवें द्वापरमें वसिष्ठ, नवें द्वापरमें सारस्वत और दसवें द्वापरमें त्रिधामा व्यास हुए ॥२८॥ ग्यारहवें द्वापरमें त्रिवृष, बारहवें द्वापरमें भरद्वाज, तेरहवें द्वापरमें अन्तरिक्ष और चौदहवें द्वापरमें धर्म व्यास हुए ॥२९॥ पन्द्रहवें द्वापरमें त्रय्यारुणि, सोलहवेंमें धनञ्जय, सत्रहवें द्वापरमें मेधातिथि और अठारहवें द्वापरमें व्रती व्यास हुए ॥३०॥ उन्नीसवें द्वापरमें अत्रि, बीसवेंमें गौतम,

वित्तमः ॥ एकोनत्रिंशत्संप्राप्ते द्रौणिर्व्यासो भविष्यति ॥ २३ ॥ अतीतास्तु तथा व्यासाः सप्तविंशतिरेव च ॥ पुराणसंहितास्तैस्तु कथितास्तु युगे युगे ॥ २४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ब्रूहि सूत महाभाग व्यासाः पूर्वयुगोद्भवाः ॥ वक्तारस्तु पुराणानां द्वापरे द्वापरे युगे ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयंभुवा ॥ प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यासकार्यकृत् ॥ २६ ॥ तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः ॥ पंचमे सविता व्यासः षष्ठे मृत्युस्तथापरे ॥ २७ ॥ मघवा सप्तमे प्राप्ते वसिष्ठस्त्वष्टमे स्मृतः ॥ सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे तथा ॥ २८ ॥ एकादशेऽथ त्रिवृषो भरद्वाजस्ततः परम् ॥ त्रयोदशे चांतरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे ॥ २९ ॥ त्रय्यारुणिः पंचदशे षोडशे तु धनंजयः ॥ मेधातिथिः सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा ॥ ३० ॥ अत्रिरेकोनविंशेऽथ गौतमस्तु ततः परम् ॥ उत्तमश्चैकविंशेऽथ हर्यात्मा परिकीर्तितः ॥ ३१ ॥ वेनो वाजश्रवाश्चैव सोमोऽमुष्यायणस्तथा ॥ तृणबिंदुस्तथा व्यासो भार्गवस्तु ततः परम् ॥ ३२ ॥ ततः शक्तिर्जातुकर्ण्यः कृष्णद्वैपायनस्ततः ॥ अष्टाविंशतिसंख्येयं कथिता या मया श्रुता ॥ ३३ ॥ कृष्णद्वैपायनात्प्रोक्तं पुराणं च मया श्रुतम् ॥ श्रीमद्भागवतं पुण्यं सर्वदुःखौघनाशनम् ॥ ३४ ॥ कामदं मोक्षदं चैव वेदार्थपरिबृंहितम् ॥ सर्वागमरसारामं मुमुक्षूणां सदा प्रियम् ॥ ३५ ॥ व्यासेन कृत्वाऽतिशुभं पुराणं शुकाय पुत्राय महात्मने यत् ॥

इक्कीसवेंमें उत्तम तथा बाईसवें द्वापरमें हर्यात्मा व्यास हुए ॥ ३१ ॥ बाईसवें द्वापरमें वेन वाजश्रवा, तेईसवेंमें सोम अमुष्यायण, चौबीसवेंमें तृणबिन्दु और पचीसवें द्वापरमें भार्गव व्यास हुए ॥ ३२ ॥ छब्बीसवें द्वापरमें शक्ति, सत्ताईसवेंमें जातुकर्ण्य तथा अट्ठाईसवें द्वापरमें कृष्णद्वैपायन व्यास हुए। इस प्रकार मैंने जैसे सुना था, उस तरह अट्ठाईस व्यासोंको कह सुनाया ॥ ३३ ॥ कृष्णद्वैपायन व्याससे ही मैंने सर्वदुःखनाशन तथा परम पुनीत श्रीमद्भागवत पुराण सुना था ॥ ३४ ॥ यह पुराण कामनायें पूर्ण करनेवाला, मोक्षदायक, वैदिक अर्थसे परिपुष्ट, सभी आगमों (तन्त्रों) के रसोंसे पूर्ण होनेके कारण मनोज्ञ और मुमुक्षु जनोंको सदा प्रिय लगनेवाला है ॥ ३५ ॥ जिस अतिशय शुभ पुराणको रचकर व्यासजीने अपने विरागी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विद्वान्, अरणीके गर्भसे जायमान तथा महात्मा पुत्र शुकको पढ़ाया ॥३६॥ हे महामुनिगण ! उसी महापुराणको मैंने भी करुणानिधि गुरु व्यासजीके मुखसे जैसा सुना, वैसा ही हृदयंगम कर लिया ॥ ३७ ॥ अयोनिज और अद्भुत बुद्धिमान् पुत्र शुकदेवजीके पूछनेपर जब व्यासजीने यह रहस्यमय पुराण कहा तो उसी अवसरपर मैंने भी यह महाप्रभावशाली पुराण सुन लिया था ॥ ३८ ॥ हे महामुनिजन ! श्रीमद्भागवतरूपी कल्पवृक्षके फलका स्वाद चखने और संसारसमुद्रके अगाध जलसे पार पानेके लिए शुकमुनिने विविध कथानकोंके स्थानस्वरूप जिस महापुराणको प्रेमपूर्वक सुना, उसे सुनकर भी जो कलिकालके भयसे न मुक्त हुआ हो, ऐसा प्राणी इस भूतलपर कौन होगा ? ॥ ३९ ॥ बड़ासे बड़ा पापी, वैदिक धर्मसे रहित और तुच्छ विचार रखनेवाला प्राणी भी यदि किसी बहाने यह उत्तम पुराण सुन लेता है तो वह सभी सांसारिक सुखोंको भोगकर अन्तकालमें योगियोंको प्राप्त होनेवाला तथा भगवतीके नामसे

वैराग्ययुक्ताय च पाठितं वै विज्ञाय चैवारणिसंभवाय ॥ ३६ ॥ श्रुतं मया तत्र तथा गृहीतं यथार्थवद्व्यासमुखान्मुनींद्राः ॥ पुराणगुह्यं सकलं समेतं गुरोः प्रसादात्करुणानिधेश्च ॥ ३७ ॥ सूतेन पृष्टः सकलं जगाद द्वैपायनस्तत्र पुराणगुह्यम् ॥ अयोनिजेनाद्भुतबुद्धिना वै श्रुतं मया तत्र महाप्रभावम् ॥ ३८ ॥ श्रीमद्भागवतामरांघ्रिपफलास्वादावरः सत्तमाः संसारार्णवदुर्विगाह्यसलिलं संततुंकामः शुकः ॥ नानाख्यानरसालयं श्रुतिपुटैः प्रेम्णाऽशृणोदद्भुतं तच्छ्रुत्वा न विमुच्यते कलिभयादेवंविधः कः क्षितौ ॥ ३९ ॥ पापीयानपि वेदधर्मरहितः स्वाचारहीनाशयो व्याजेनापि शृणोति यः परमिदं श्रीमत्पुराणोत्तमम् ॥ मुक्त्वा भोगकलापमत्र विपुलं देहावसानेऽचलं योगिप्राप्यमवाप्नुयाद्भगवतीनामांकितं सुन्दरम् ॥४०॥ या निर्गुणा हरिहरादिभिरप्यलभ्या विद्या सतां प्रियतमाऽथ समाधिगम्या ॥ सा तस्य चित्तकुहरे प्रकरोति भावं यः संशृणोति सततं तु सतीपुराणम् ॥ ४१ ॥ संप्राप्य मानुषभवं सकलाङ्गयुक्तं पोतं भवार्णवजलोत्तरणाय कामम् ॥ संप्राप्य वाचकमहो न शृणोति मूढः स वंचितोऽत्र विधिना सुखदं पुराणम् ॥ ४२ ॥ यः प्राप्य कर्णयुगलं पटुमानुषत्वे रागी शृणोति सततं च परापवादान् ॥ सर्वार्थदं रसनिधिं विमलं पुराणं नष्टः कुतो न शृणुते भुवि मंदबुद्धिः ॥ ४३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अङ्कित अविचल मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ४० ॥ जो प्राणी नित्य इस देवीभागवतको सुनता है, उसके हृदयरूपी कन्दरामें गुणातीता, विष्णु-शिव आदिको भी अलक्ष्य, परमविद्यारूपिणी, सज्जनोंकी प्रिया और एकमात्र समाधिगम्या भगवती निवास करने लगती हैं ॥ ४१ ॥ सभी अवयवोंयुक्त मानव शरीर पा करके भी संसारसमुद्रके जलको पार करनेके लिए जहाजस्वरूप इस परम सुखदायी देवीभागवत पुराण तथा इसके वक्ताको प्राप्त करके भी जो नहीं सुनता, वह विधिवञ्चित तथा अभागा ही कहा जायगा ॥ ४२ ॥ मानव शरीरमें दो श्रवणपटु कानोंको पा करके भी जो रागवश सदा औरोंकी बुराई ही सुनते रहते हैं, वे मन्दबुद्धि प्राणी धर्म-अर्थ-काम-मोक्षदायक और सब रसोंके निधानस्वरूप इस निर्मल पुराणको क्यों नहीं सुना करते ? ॥ ४३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(शुकदेवका जन्मवृत्तान्त) मुनिगण बोले—हे सौम्य ! व्यासजीकी किस भार्यासे शुकदेव पुत्ररूपमें जायमान हुए ? उनका जन्म कैसे हुआ ? उनमें क्या विशेषता थी कि जिससे अल्पकालमें ही उन्होंने यह पुराणसंहिता पढ़ ली ॥ १ ॥ आप ही उन्हें अयोनिज कह चुके हैं । फिर अरणीसे उनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? इस विषयमें हमें बड़ा संशय हो रहा है । आप उसका निवारण करें ॥ २ ॥ मैंने सुना था कि तपस्वी शुकदेव गर्भयोगी थे । तब उन्होंने इतने विस्तृत श्रीमद्भागवतको कैसे पढ़ा ? ॥ ३ ॥ सूतजी कहने लगे—प्राचीन समयमें एक दिन सत्यवतीसुवन व्यास सरस्वतीनदीके तटपर विद्यमान अपने आश्रममें एक गौरैया पक्षीका जोड़ा देखकर बहुत विस्मित हुए ॥ ४ ॥ उन्होंने देखा कि अण्डेसे तुरन्त उत्पन्न लाल मुख, सुन्दर अङ्गयुक्त और बिना पंखके सुन्दर शिशुको वहीं छोड़कर वे दोनों चारेके लिए उड़ गये और बड़े परिश्रमसे चारा ला-लाकर बार-बार उस नवजात शावकके मुखमें डालने लगे ॥५॥६॥ वे

॥ ऋषय ऊचुः ॥ सौम्य व्यासस्य भार्यायां कस्या जातः सुतः शुकः ॥ कथं वा कीदृशो येन पठितेयं सुसंहिता ॥ १ ॥ अयोनिजस्त्वया प्रोक्तस्तथा चारणिजः शुकः ॥ संदेहोऽस्ति महांस्तत्र कथयाद्य महामते ॥ २ ॥ गर्भयोगी श्रुतः पूर्वं शुको नाम महातपाः ॥ कथं च पठितं तेन पुराणं बहुविस्तरम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ पुरा सरस्वतीतीरे व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ आश्रमे कलविंकौ तु दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥ ४ ॥ जातमात्रं शिशुं नीडे मुक्तमंडान्मनोहरम् ॥ ताम्रास्यं शुभसर्वाङ्गं पिच्छांकुरविवर्जितम् ॥ ५ ॥ तौ तु भक्ष्यार्थमत्यंतं रतौ श्रमपरायणौ ॥ शिशोश्चंचुपुटे भक्ष्यं क्षिपंतौ च पुनः पुनः ॥ ६ ॥ अङ्गेनाङ्गानि बालस्य घर्षयंतौ मुदान्वितौ ॥ चुंबंतौ च मुखं प्रेम्णा कलविंकौ शिशोः शुभम् ॥ ७ ॥ वीक्ष्य प्रेमाद्भुतं तत्र बाले चटकयोस्तदा ॥ व्यासश्चिंतातुरः कामं मनसा समचिन्तयत् ॥ ८ ॥ तिरश्चामपि यत्प्रेम पुत्रे समभिलक्ष्यते ॥ किं चित्रं यन्मनुष्याणां सेवाफलमभीप्सताम् ॥९॥ किमेतौ चटकौ चास्य विवाहं सुखसाधनम् ॥ विरच्य सुखिनौ स्यातां दृष्ट्वा वध्वा मुखं शुभम् ॥१०॥ अथवा वार्द्धके प्राप्ते परिचर्यां करिष्यति ॥ पुत्रः परमधर्मिष्ठः पुण्यार्थं कलविंकयोः ॥ ११ ॥ अर्जयित्वाऽथवा द्रव्यं पितरौ तर्पयिष्यति ॥ अथवा प्रेतकार्याणि करिष्यति यथाविधि ॥ १२ ॥ अथवा किं गयाश्राद्धं गत्वा संवितरिष्यति ॥ नीलोत्सर्गं च विधिवत्प्रकरिष्यति बालकः ॥ १३ ॥ संसारेऽत्र समाख्यातं सुखानामुत्तमं सुखम् ॥ पुत्रगात्रपरिष्वंगो लालनं च विशेषतः ॥१४॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ पुत्रादन्य-

दोनों बार-बार उस बच्चेके अङ्गोंको बड़े प्रेमपूर्वक अपने अङ्गोंसे रगड़ते हुए शिशुके सुन्दर मुखको चूम रहे थे ॥७॥ उस बच्चेमें उन दोनोंका ऐसा अद्भुत प्रेम देखकर व्यासजी चिन्तातुर होकर सोचने लगे ॥ ८ ॥ जब पक्षियोंमें भी ऐसा प्रेम दीखता है तो अपनी सेवाका फल चाहनेवाले मनुष्योंमें प्रेम हो तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ९ ॥ क्या ये दोनों पंछी इस बालकका सौख्यसाधनस्वरूप विवाह करके पुत्रवधूका सुन्दर मुख देख सकेंगे ? ॥ १० ॥ वृद्धावस्थामें यह परम धर्मात्मा पुत्र पुण्यलाभके लिए अपने इन माता-पिताकी सेवा करेगा ? ॥ ११ ॥ क्या यह पुष्कल धन कमाकर अपने माता-पिताको प्रसन्न करेगा ? अथवा इनके मर जानेपर यह इनका विधिवत् क्रियाकर्म करेगा ? ॥ १२ ॥ उसके बाद क्या यह गयामें जाकर इनका श्राद्ध करेगा ? क्या यह बालक दिवंगत माता-पिताके कल्याणार्थ नीलवृषभ (साँड) छोड़ेगा ? ॥ १३ ॥ इस संसारमें सर्वोत्तम सुख पुत्रके अंगोंको छातीसे लगाने और उसका दुलार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेमें है ॥ १४ ॥ सन्तानहीन प्राणीकी न तो गति होती है और न उसे स्वर्ग ही प्राप्त होता है। परलोक सुधारनेके लिए पुत्रसे बढ़कर और कोई साधन नहीं है ॥ १५ ॥ मनु आदि मुनियोंने भी धर्मशास्त्रोंमें कहा है कि पुत्रवान् व्यक्ति ही स्वर्ग जाता है—सन्तानहीन व्यक्ति कदापि नहीं स्वर्ग पाता ॥१६॥ यह बात तो प्रत्यक्ष देखी जाती है। इसमें अनुमानकी कोई आवश्यकता नहीं है। आप्त पुरुषोंका यह सनातन वाक्य है कि पुत्रवान् प्राणी पापमुक्त हो जाता है ॥ १७ ॥ रोगग्रस्त और मरणकालमें भूमिपर लेटा हुआ पुत्रहीन मनुष्य दुःखित होकर सोचता है कि मेरे पास प्रचुर धन और विविध प्रकारके पात्र हैं। मेरा मकान भी बड़ा सुन्दर है, किन्तु इसका मालिक कौन होगा ? ॥ १८ ॥ १९ ॥ मरणकालमें उसका मन दुःखी और भ्रान्त रहता है। अतएव भ्रान्त चित्तवाले प्राणीकी दुर्गति अवश्य होती है ॥ २०॥ ऐसी-ऐसी बहुतेरी बातें सोच तथा बार-बार गरम साँसें लेकर सत्यवतीतनय व्यासजी

तरं नास्ति परलोकस्य साधनम् ॥ १५ ॥ मन्वादिभिश्च मुनिभिर्धर्मशास्त्रेषु भाषितम् ॥ पुत्रवान्स्वर्गमाप्नोति नापुत्रस्तु कथंचन ॥ १६ ॥ दृश्यतेऽत्र समक्षं तन्नानुमानेन साध्यते ॥ पुत्रवान्मुच्यते पापादाप्तवाक्यं च शाश्वतम् ॥ १७ ॥ आतुरे मृत्युकालेऽपि भूमिशय्यागतो नरः ॥ करोति मनसा चिंतां दुःखितः पुत्रवर्जितः ॥ १८ ॥ धनं मे विपुलं गेहे पात्राणि विविधानि च ॥ मंदिरं सुन्दरं चैतत्कोऽस्य स्वामी भविष्यति ॥ १९ ॥ मृत्युकाले मनस्तस्य दुःखेन भ्रमते यतः ॥ अतोऽस्य दुर्गतिर्नूनं भ्रांतचित्तस्य सर्वथा ॥२०॥ एवं बहुविधां चिंतां कृत्वा सत्यवतीसुतः ॥ निःश्वस्य बहुधा चोष्णं विमनाः सम्बभूव ह ॥ २१ ॥ विचार्य मनसाऽत्यर्थं कृत्वा मनसि निश्चयम् ॥ जगाम च तपस्तप्तुं मेरुपर्वतसंनिधौ ॥ २२ ॥ मनसा चिंतयामास कं देवं समुपास्महे ॥ वरप्रदाननिपुणं वांछितार्थप्रदं तथा ॥ २३ ॥ विष्णुं रुद्रं सुरेन्द्रं वा ब्रह्माणं वा दिवाकरम् ॥ गणेशं कार्तिकेयं च पावकं वरुणं तथा ॥२४॥ एवं चिंतयतस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः ॥ यदृच्छया समायातो वीणापाणिः समाहितः ॥२५॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ कृत्वाऽर्घ्यमासनं दत्वा पप्रच्छ कुशलं मुनिम् ॥ २६ ॥ श्रुत्वाऽथ कुशलप्रश्नं पप्रच्छ मुनिसत्तमः ॥ चिंतातुरोऽसि कस्मात्त्वं द्वैपायन वदस्व मे ॥ २७ ॥ व्यास उवाच ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति न सुखं मानसे यतः ॥ तदर्थं दुःखितश्चाहं चिंतयामि पुनः पुनः ॥ २८ ॥ तपसा

खिन्न हो उठे ॥ २१ ॥ तदनन्तर भली-भाँति विचारकर और दृढ़ निश्चय करके वे तप करनेके लिए मेरुपर्वतके पास चले गये ॥ २२ ॥ वहाँ उन्होंने मन ही मन सोचा—मैं किस देवताकी उपासना करूँ कि जो शीघ्र वरदान देकर मेरी अभिलाषा पूर्ण कर दे ॥ २३ ॥ विष्णु, शिव, चन्द्र, ब्रह्मा, सूर्य, गणपति, कार्त्तिकेय, वायु तथा वरुण इनमेंसे कौन देवता मेरे अनुकूल पड़ेंगे ॥ २४ ॥ वे इस प्रकार उधेड़-बुनमें पड़े थे, उसी समय हाथोंमें वीणा लिये हुए नारदजी वहाँ जा पहुँचे ॥ २५ ॥ उन्हें देखकर सत्यवतीतनय व्यासजी बहुत प्रसन्न हुए और अर्घ्य तथा आसन प्रदान करनेके बाद उनसे कुशल पूछा ॥ २६ ॥ अपना कुशलसमाचार बतानेके बाद नारदजीने कहा—हे द्वैपायन ! आप चिन्तित क्यों हैं ? इसका कारण मुझे बताइए ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले—भगवन् ! निपूते मनुष्यकी गति नहीं होती और उसका मन सदा दुखी रहता है। इसी विषय-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में मैं बार-बार विचार कर रहा हूँ ॥२८॥ शीघ्र कामनायें पूर्ण करनेवाले किस देवताकी मैं आराधना करूँ ? इसी चिन्तासे व्याकुल होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ २९ ॥ हे महर्षे ! आप सर्वज्ञ हैं। हे कृपानिधान ! आप मुझे शीघ्र बताइए कि मैं किस देवताकी शरणमें जाऊँ, जो मुझे शीघ्र पुत्र प्रदान कर दे ॥ ३० ॥ सूतजी बोले—वेदविद् नारद व्यासके इस प्रकार प्रश्न करनेपर बड़े प्रेमपूर्वक उनसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ नारदजीने कहा—हे पराशरनन्दन महाभाग व्यास ! आप जिस प्रकारका प्रश्न मुझसे कर रहे हैं, ऐसा ही प्रश्न एक बार मेरे पिता ब्रह्माजीने श्रीविष्णुभगवान्से किया था ॥ ३२ ॥ मेरे पिताजी देवदेव लक्ष्मीपति तथा जगत्पति विष्णुभगवानको ध्यानमग्न देखकर बहुत विस्मित हुए और उनसे पूछा ॥ ३३ ॥ उस समय भगवान कौस्तुभ मणिकी दीप्तिसे देदीप्यमान हो रहे थे, शंख-चक्र-गदा धारण किये थे, पीताम्बर पहने थे, उनके चार भुजायें थीं और उनका वक्षस्थल श्रीवत्स-चिह्नसे विभूषित था ॥ ३४ ॥ वे सब लोकोंके आश्रय, देवदेव, जगद्गुरु, वासुदेव और समस्त विश्वके प्रभु तपस्या कर रहे थे ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी बोले--हे देवदेव ! हे जगन्नाथ !

तोषयाम्यद्य कं देवं वांछितार्थदम् ॥ इति चिंतातुरोऽस्म्यद्य त्वामहं शरणं गतः ॥ २९ ॥ सर्वज्ञोऽसि महर्षे त्वं कथयाशु कृपानिधे ॥ कं देवं शरणं यामि यो मे पुत्रं प्रदास्यति ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ इति व्यासेन पृष्टस्तु नारदो वेदविन्मुनिः ॥ उवाच परया प्रीत्या कृष्णं प्रति महा-मनाः ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ पाराशर्य महाभाग यत्त्वं पृच्छसि मामिह ॥ तमेवार्थं पुरा पृष्टः पित्रा मे मधुसूदनः ॥ ३२ ॥ ध्यानस्थं च हरिं दृष्ट्वा पिता मे विस्मयं गतः ॥ पर्यपृच्छत देवेशं श्रीनाथं जगतः पतिम् ॥ ३३ ॥ कौस्तुभोद्भासितं दिव्यं शंखचक्रगदाधरम् ॥ पीतांबरं चतुर्बाहुं श्रीवत्सांकितवक्षसम् ॥ ३४ ॥ कारणं सर्वलोकानां देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ वासुदेवं जगन्नाथं तप्यमानं महत्तपः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेव जग-न्नाथ भूतभव्यभवत्प्रभो ॥ तपश्चरसि कस्मात्त्वं किं ध्यायसि जनार्दन ॥ ३६ ॥ विस्मयोऽयं ममात्यर्थं त्वं सर्वजगतां प्रभुः ॥ ध्यानयुक्तोऽसि देवेश किं च चित्रमतः परम् ॥ ३७ ॥ त्वन्नाभिकमलाज्जातः कर्ताऽहमखिलस्य ह ॥ त्वत्तः कोऽप्यधिकोऽस्त्यत्र तं देवं ब्रूहि मापते ॥ ३८ ॥ जानाम्यहं जगन्नाथ त्वमादिः सर्वकारणम् ॥ कर्ता पालयिता हर्ता समर्थः सर्वकार्यकृत् ॥ ३९ ॥ इच्छया ते महाराज सृजाम्यहमिदं जगत् ॥ हरः संहरते काले सोऽपि ते वचने सदा ॥ ४० ॥ सूर्यो भ्रमति चाकाशे वायुर्वाति शुभाशुभः ॥ अग्निस्तपति पर्जन्यो वर्षतीश त्वदाज्ञया ॥ ४१ ॥ त्वं तु

हे भूत-भविष्य और वर्तमानकालके अधिपति ! आप किसलिए यह कठोर तप कर रहे हैं ? हे जनार्दन ! आप किसका ध्यान करते हैं ? ॥ ३६ ॥ यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि अखिल विश्वके प्रभु होते हुए भी आप ऐसा तप और ध्यान कर रहे हैं। इससे बढ़कर विचित्र बात और क्या होगी ? ॥ ३७ ॥ आपके नाभिकमलसे उत्पन्न होकर मैं सबका कर्ता बना बैठा हूँ। हे लक्ष्मीपते ! क्या आपसे भी बढ़कर कोई देवता है कि जिसका आप ध्यान करते हैं। यदि कोई हो तो बताइए ॥ ३८ ॥ हे जगन्नाथ ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप ही सबके आदि कारण, रचयिता, हर्ता, समर्थ और सबके कार्यकर्ता हैं ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! आपकी इच्छासे ही मैं जगत्की सृष्टि करता हूँ। आपके आदेशसे ही शिवजी प्रलयकालमें इसका संहार करते हैं ॥ ४० ॥ हे ईश ! आपकी आज्ञासे सूर्य आकाशमें चक्कर काटते हैं, वायु शुभ तथा अशुभ हवा चलाते हैं, अग्नि तपता है और मेघ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जल बरसाता है ॥ ४१ ॥ तब आप किस देवताका ध्यान करते हैं ? मुझे यह बहुत बड़ी शंका है। समस्त त्रिलोकीमें आपसे बढ़कर कोई भी देवता नहीं है ॥ ४२ ॥ अतएव कृपा करके आप अपनी तपस्याका कारण बताइए। हे सुव्रत ! मैं आपका भक्त हूँ। और फिर बड़े लोग अपने भक्तोंसे कोई बात नहीं छिपाते, यह बात जगजाहिर है ॥४३॥ ब्रह्माजीके वचन सुनकर विष्णु भगवान् बोले--हे ब्रह्मन् ! आपको अपने मनकी बात बताता हूँ। आप एकाग्र मनसे सुनिए ॥ ४४ ॥ यद्यपि सभी देव, असुर और मनुष्य यही जानते हैं कि आप (ब्रह्मा), मैं (विष्णु) और शिवजी क्रमशः जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके मूल कारण हैं ॥ ४५ ॥ वेदपारगामी विद्वान् यह तर्क करते हैं कि किसी अलक्ष्य शक्तिके बूतेपर आप (ब्रह्मा) स्रष्टा, मैं (विष्णु) पालक तथा शंकरजी संहारक हैं ॥ ४६ ॥ संसारकी सृष्टि करनेके लिए आपमें राजसी शक्ति रहती है। मुझमें सात्त्विकी तथा शंकरजीमें तामसी शक्तिका अधिष्ठान रहता है ॥ ४७ ॥ यदि वह शक्ति न रहे तो आप सृष्टि, मैं पालन और शिव संहारकार्य नहीं कर सकते ॥ ४८ ॥ हे विभो ! हम सब सदा उसके अधीन रहते हैं। हे सुव्रत !

ध्यायसि कं देवं संशयोऽयं महान्मम ॥ त्वत्तः परं न पश्यामि देवं वै भुवनत्रये ॥ ४२ ॥ कृपां कृत्वा वदस्वाद्य भक्तोऽस्मि तव सुव्रत ॥ महतां नैव गोप्यं हि प्रायः किंचिदिति स्मृतिः ॥४३॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिराह प्रजापतिम् ॥ शृणुष्वैकमना ब्रह्मंस्त्वां ब्रवीमि मनोगतम् ॥ ४४ ॥ यद्यपि त्वां शिवं मां च स्थितिसृष्ट्यंतकारणम् ॥ ते जानंति जनाः सर्वे सदेवासुरमानुषाः ॥४५॥ स्रष्टा त्वं पालकश्चाहं हरः संहारकारकः ॥ कृताः शक्त्येति संतर्कः क्रियते वेदपारगैः ॥ ४६ ॥ जगत्संजनने शक्तिस्त्वयि तिष्ठति राजसी ॥ सात्त्विकी मयि रुद्रे च तामसी परिकीर्तिता ॥ ४७ ॥ तया विरहितस्त्वं न तत्कर्मकरणे प्रभुः ॥ नाहं पालयितुं शक्तः संहर्तुं नापि शंकरः ॥ ४८ ॥ तदधीना वयं सर्वे वर्तामः सततं विभो ॥ प्रत्यक्षे च परोक्षे च दृष्टांतं शृणु सुव्रत ॥ ४९ ॥ शेषे स्वपिमि पर्यंके परतंत्रो न संशयः ॥ तदधीनः सदोत्तिष्ठे काले कालवशं गतः ॥ ५० ॥ तपश्चरामि सततं तदधीनोऽस्म्यहं सदा ॥ कदाचित्सह लक्ष्म्या च विहरामि यथासुखम् ॥ ५१ ॥ कदाचिद्दानवैः सार्द्धं संग्रामं प्रकरोम्यहम् ॥ दारुणं देहदमनं सर्वलोकभयंकरम् ॥ ५२ ॥ प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तस्मिन्नेकार्णवे पुरा ॥ पंचवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धं मया कृतम् ॥ ५३ ॥ तौ कर्णमलजौ दुष्टौ दानवौ मदगर्वितौ ॥ देव देव्याः प्रसादेन निहतौ मधुकैटभौ ॥ ५४ ॥ तदा त्वया न किं ज्ञातं कारणं तु परात्परम् ॥ शक्तिरूपं महाभाग किं पृच्छसि

अब प्रत्यक्ष और परोक्षसम्बन्धी दृष्टान्त भी सुन लीजिए ॥ ४९ ॥ मैं परतन्त्र होकर शेषशय्यापर शयन करता हूँ। उसी शक्तिके भरोसे कालका वशवर्ती होकर उठता हूँ ॥ ५० ॥ उसी अलक्ष्य शक्तिके अधीन होकर कभी मैं तप करता हूँ और कभी लक्ष्मीके साथ सुखसे विहार करता हूँ ॥ ५१ ॥ उसीकी प्रेरणासे मैं कभी-कभी दानवोंके साथ भयानक तथा शरीरको चूर्ण कर देनेवाला और सब लोगोंको दहला देनेवाला भीषण संग्राम करता हूँ ॥ ५२ ॥ हे धर्मज्ञ ! यह तो आपके प्रत्यक्ष ही है कि पूर्वकाल में उस महासागरमें पाँच हजार वर्षोंतक कितना भयंकर बाहुयुद्ध करता रहा ॥ ५३ ॥ कानकी मैलसे उत्पन्न मधु-कैटभ नामके दो दैत्य बड़े दुष्ट और मदसे गर्वीले थे। किन्तु देवीकी कृपासे मैंने उन्हें मार डाला ॥ ५४ ॥ हे महाभाग ! उस समय क्या आपने उस परात्पर कारणस्वरूपा महाशक्तिको नहीं पहचाना था ? यदि पहचाना था, तब आप फिर बार-बार क्यों पूछ रहे हैं ? उसीकी इच्छासे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परमपुरुष होकर मैं महासागरमें विचरता हूँ और युग-युगमें कच्छप, वराह, नृसिंह और वामन अवतार लेता हूँ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तिर्यग्योनिमें जन्म लेना किसे अच्छा लगेगा? अपनी इच्छासे मैं वामन-वराह आदि योनियोंमें जन्म नहीं लेता, बल्कि उस अलक्ष्य शक्तिकी प्रेरणासे ही ऐसा करता हूँ ॥ ५७ ॥ लक्ष्मीके साथ विहार करनेका सुख त्यागकर मैं अपनी इच्छासे मत्स्यादि हीन योनियोंमें जन्म नहीं लेता । इसी प्रकार मैं स्वतन्त्र होता तो कोमल शय्या त्याग और गरुड़की पीठपर बैठकर युद्ध करने न जाता ॥ ५८ ॥ हे अज ! प्राचीन कालमें आपके सामने ही एक बार धनुषकी प्रत्यञ्चा टूट जानेपर मेरा मस्तक ही उड़ गया था । तब आपने ही अपनी कारीगरीसे त्वष्टाके द्वारा घोड़ेका सिर मेरे धड़में जोड़वा दिया था ॥५९॥ हे लोक-विधाता ! तभीसे मेरा नाम हयग्रीव पड़ गया । यह सब घटनायें आपके सामने ही घटी थीं । यदि मैं स्वतंत्र होता तो संसारमें मेरी ऐसी विडम्वना कैसे होती ॥६०॥ अतएव मैं स्वतंत्र

पुनः पुनः ॥ ५५ ॥ यदिच्छः पुरुषो भूत्वा विचरामि महार्णवे ॥ कच्छपः कोलसिंहश्च वामनश्च युगे युगे ॥ ५६ ॥ न कस्यापि प्रियो लोके तिर्यग्योनिषु संभवः ॥ नाभवं स्वेच्छया वामवराहादिषु योनिषु ॥ ५७ ॥ विहाय लक्ष्म्या सह संविहारं को याति मत्स्यादिषु हीनयोनिषु ॥ शय्यां च मुक्त्वा गरुडासनस्थः करोमि युद्धं विपुलं स्वतंत्रः ॥ ५८ ॥ पुरा पुरस्तेऽज शिरो मदीयं गतं धनुर्ज्यास्खलनात्क्व चापि ॥ त्वया तदा वाजि-शिरो गृहीत्वा संयोजितं शिल्पिवरेण भूयः ॥ ५९ ॥ हयाननोऽहं परिकीर्तितश्च प्रत्यक्षमेतत्तव लोककर्तः ॥ विडंबनेयं किल लोकमध्ये कथं भवेदा-त्मपरो यदि स्याम् ॥ ६० ॥ तस्मान्नाहं स्वतंत्रोऽस्मि शक्त्यधीनोऽस्मि सर्वथा ॥ तामेव शक्तिं सततं ध्यायामि च निरंतरम् ॥ ६१ ॥ नातः पर-तरं किंचिज्जानामि कमलोद्भव ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तं विष्णुना तेन पद्मयोनेस्तु सन्निधौ ॥ ६२ ॥ तेन चाप्यहमुक्तोऽस्मि तथैव मुनिपुंगव ॥ तस्मात्त्वमपि कल्याण पुरुषार्थाप्तिहेतवे ॥६३॥ असंशयं हृदंभोजे भज देवीपदांबुजम् ॥ सर्वं दास्यति सा देवी यद्यदिष्टं भवेत्तव ॥६४॥ सूत उवाच ॥ नारदेनैवमुक्तस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ देवीपादाब्जनिष्णातस्तपसे प्रययौ गिरौ ॥६५॥ इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

ऋषय ऊचुः ॥ सूतास्माकं मनः कामं मग्नं संशयसागरे ॥ यथोक्तं महदाश्चर्यं जगद्विस्मयकारकम् ॥ १ ॥ यन्मूर्द्धा माधवस्यापि गतो देहा-

रहकर उसी महाशक्तिके अधीन रहता हुआ सदा उसीका ध्यान किया करता हूँ ॥ ६१ ॥ हे कमलसम्भव ! इसके सिवाय मैं और कुछ नहीं जानता । नारदजी बोले—हे व्यासजी ! विष्णुभगवान्ने ब्रह्माजीसे ऐसा कहा था ॥६२॥ हे मुनिपुङ्गव ! मेरे पिता ब्रह्माने मुझे भी वह सब बातें बतायी थीं । अतएव आप भी कल्याणकारी पुत्र प्राप्त करनेके लिए निःसन्दिग्धभावसे अपने हृदयमें उन देवीके ही चरणकमलोंका ध्यान करिए । ऐसा करनेसे वह जगदम्बा आपकी सब इच्छायें पूर्ण कर देगी ॥६३॥६४॥ सत्यवतीसुत व्यास नारदके वचन सुनकर देवीके चरणकमलोंका ध्यान करते हुए तप करनेके लिए सुमेरुपर्वतपर चले गये ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(हयग्रीवावतारकी कथा) इतनी कथा सुनकर ऋषि बोले–हे सूतजी ! हमारा मन सर्वथा संशयरूपी समुद्रमें मग्न हो रहा है । आपने बड़ी आश्चर्यजनक और समस्त संसारको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विस्मयमें डाल देनेवाली यह वार्ता सुना दी कि भगवान् विष्णुका भी मस्तक कट गया था और तभीसे सबके कर्ता जनार्दन हयग्रीव कहलाने लगे ॥१॥२॥ वेद भी जिनकी स्तुति करते हैं। समस्त देवता जिनके अधीन रहते हैं। जो आदिदेव, जगत्पति और कारणोंके भी कारण हैं। दैवयोगसे उनका भी मस्तक कैसे कट गया ? हे महामते ! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त आप विस्तारके साथ बताइए ॥ ३ ॥ ४ ॥ सूतजी बोले—हे मुनिजन ! आपलोग सावधान होकर परम तेजस्वी देवदेव विष्णुभगवानका चरित्र सुनिए ॥ ५ ॥ एक बार वे सनातनदेव विष्णु दस हजार वर्ष तक भीषण युद्ध करते-करते थक गये ॥६॥ तब एक समतल एवं पवित्र स्थानपर पद्मासन लगा तथा रोदा चढ़े हुए धनुषपर गर्दन रख और उस धनुषकी नोकपर भार देकर लेट गये। विशेष थकावट तथा दैवयोगसे उन्हें गहरी नींद लग गई ॥ ७ ॥ ८ ॥ कुछ समय बाद ब्रह्मा-शिवसमेत इन्द्रादि देवता यज्ञ करनेको उद्यत हुए ॥९॥ तब सब देवता विष्णुभगवान्-

त्पुनः परम् ॥ हयग्रीवस्ततो जातः सर्वकर्ता जनार्दनः ॥ २ ॥ वेदोऽपि स्तौति यं देवं देवाः सर्वे यदाश्रयाः ॥ आदिदेवो जगन्नाथः सर्वकारण-कारणः ॥ ३ ॥ तस्यापि वदनं छिन्नं दैवयोगात्कथं तदा ॥ तत्सर्वं कथयाशु त्वं विस्तरेण महामते ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ शृण्वंतु मुनयः सर्वे सावधानाः समंततः ॥ चरित्रं देवदेवस्य विष्णोः परमतेजसः ॥ ५ ॥ कदाचिद्दारुणं युद्धं कृत्वा देवः सनातनः ॥ दशवर्षसहस्राणि परिश्रांतो जनार्दनः ॥ ६ ॥ समे देशे शुभे स्थाने कृत्वा पद्मासनं विभुः ॥ अवलंब्य धनुः सज्यं कंठदेशे धरास्थितम् ॥ ७ ॥ दत्त्वा भारं धनुष्कोट्यां निद्रामाप रमापतिः ॥ श्रांतत्वाद्दैवयोगाच्च जातस्तत्रातिनिद्रितः ॥ ८ ॥ तदा कालेन कियता देवाः सर्वे सवासवाः ॥ ब्रह्मेशसहिताः सर्वे यज्ञं कर्तुं समुद्यताः ॥ ९ ॥ गताः सर्वेऽथ वैकुंठं द्रष्टुं देवं जनार्दनम् ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं मखानामधिपं प्रभुम् ॥ १० ॥ अदृष्ट्वा तु तदा तत्र ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य ते ॥ यत्रास्ते भगवान्विष्णुर्जग्मुस्तत्र तदा सुराः ॥ ११ ॥ ददृशुस्ते तदेशानं योगनिद्रावशं गतम् ॥ विचेतनं विभुं विष्णुं तत्रासांचक्रिरे सुराः ॥ १२ ॥ स्थितेषु सर्वदेवेषु निद्रासुप्ते जगत्पतौ ॥ चिंतामापुः सुराः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥ १३ ॥ तानुवाच ततः शक्रः किं कर्तव्यं सुरोत्तमाः ॥ निद्राभङ्गः कथं कार्यश्चिन्तयन्तु सुरोत्तमाः ॥ १४ ॥ तमुवाच तदा शंभुर्निद्राभंगेऽस्ति दूषणम् ॥ कार्यं चैव प्रकर्तव्यं यज्ञस्य सुरसत्तमाः ॥ १५ ॥ उत्पादिता तदा वम्री ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ तया भक्षयितुं तत्र धनुषोऽग्रं धरास्थितम् ॥ १६ ॥ भक्षितेऽग्रे तदा निम्नं गमिष्यति

से मिलनेके लिए वैकुण्ठधाम गये। क्योंकि यज्ञके अधिपति विष्णु ही थे और उन्हींकी कृपासे देवताओंका यह महान् कार्य सिद्ध हो सकता था ॥ १० ॥ वहाँ उन्हें न पाकर देवताओंने ज्ञानदृष्टिसे देखा और जहाँ विष्णुभगवान सोये हुए थे, उस स्थानपर जा पहुँचे ॥११॥ वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि सर्वेश्वर और विभु विष्णुभगवान् निद्राधीन होकर अचेत पड़े हुए हैं। बस, देवता वहाँ ही रुक गये ॥१२॥ इस प्रकार उन्हें निद्रित देखकर ब्रह्मा शिव आदि देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई ॥ १३ ॥ तब इन्द्रने उन देवताओंसे कहा—हे श्रेष्ठ देवताओं ! अब क्या किया जाय ? आप लोग इस बातपर विचार करें कि इनकी निद्रा कैसे टूटे ॥१४॥ तब शिवजीने इन्द्रसे कहा कि इन्हें जगानेसे बड़ा दोष होगा। किन्तु यज्ञका कार्य भी सम्पन्न करना आवश्यक है ॥ १५ ॥ तब परमेष्ठी ब्रह्माजीने धरातलपर स्थित विशाल विष्णुधनुषको खा लेनेके लिए दीमकोंकी सृष्टि की ॥१६॥ उन्होंने सोचा कि यदि धनुषका अग्रभाग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये खा लेंगी तो धनुष नीचा हो जायगा, जिससे भगवान् शीघ्र जाग जायँगे ॥ १७ ॥ ऐसा होनेपर देवताओंका सब कार्य सिद्ध हो जायगा। सो सनातन देवता ब्रह्माजीने दीमकोंको ऐसा करनेका आदेश दे दिया ॥१८॥ तब दीमकोंने कहा–हे जगद्गुरो ! मैं लक्ष्मीपति विष्णु भगवानकी निद्रा कैसे भंग करूँगी ? ॥ १९ ॥ क्योंकि किसीकी निद्रा भंग करना, कथामें विघ्न तथा स्त्री-पुरुषमें भेद डालना और माँ बेटेमें लड़ाई कराना ब्रह्महत्याके समान पातक माना जाता है ॥२०॥ ऐसी स्थितिमें मैं देवदेव विष्णुभगवान्‌के सुखको कैसे नष्ट करूँ ? उस धनुषके अग्रभागको खा लेनेसे मुझे क्या लाभ होगा कि जिसके लिए मैं यह महापाप करूँ ॥२१॥ प्रायः स्वार्थवश ही लोग पाप करते हैं। अतएव मैं भी कोई स्वार्थसिद्धि देखकर ही धनुषभक्षणका पाप करूँगी ॥२२॥ ब्रह्माजीने कहा–सुनो, यज्ञमें हमलोग तुम्हारे भागकी भी व्यवस्था कर देंगे। अतएव तुम मेरा काम बनानेके लिए शीघ्र विष्णुभगवानको जगा दो ॥२३॥ होम करते समय

शरासनम् ॥ तदा निद्राविमुक्तोऽसौ देवदेवो भविष्यति ॥ १७ ॥ देवकार्यं तदा सर्वं भविष्यति न संशयः ॥ स वम्रीं संदिदेशाथ देवदेवः सनातनः ॥ १८ ॥ तमुवाच तदा वम्री देवदेवस्य मापतेः ॥ निद्राभंगः कथं कार्यो देवस्य जगतां गुरोः ॥ १९ ॥ निद्राभंगः कथाछेदो दंपत्योः प्रीतिभेदनम् ॥ शिशुमातृविभेदश्च ब्रह्महत्यासमं स्मृतम् ॥२०॥ तत्कथं देवदेवस्य करोमि सुखनाशनम् ॥ किं फलं भक्षणाद्देव येन पापं करोम्यहम् ॥२१॥ सर्वः स्वार्थवशो लोकः कुरुते पातकं किल ॥ तस्मादहं करिष्यामि स्वार्थमेव प्रभक्षणम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तव भागं करिष्यामो मखमध्ये यथा शृणु ॥ तेन त्वं कुरु कार्यं नो विष्णुं बोधय माचिरम् ॥ २३ ॥ होमकर्मणि पार्श्वे च हविर्दानात्पतिष्यति ॥ तत्ते भागं विजानीहि कुरु कार्यं त्वरान्विता ॥२४॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ता ब्रह्मणा वम्री धनुषोऽग्रं त्वरान्विता ॥ चखाद संस्थितं भूमौ विमुक्ता ज्या तदाऽभवत् ॥२५॥ प्रत्यंचायां विमुक्तायां मुक्ता कोटिस्तथोत्तरा ॥ शब्दः समभवद्घोरस्तेन त्रस्ताः सुरास्तदा ॥ २६ ॥ ब्रह्मांडं क्षुभितं सर्वं वसुधा कंपिता तदा ॥ समुद्राश्च समुद्विग्नास्त्रेसुश्च जलजंतवः ॥ २७ ॥ ववुर्वातास्तथा चोग्राः पर्वताश्च चकंपिरे ॥ उल्कापाता महोत्पाता बभूवुर्दुःखशंसिनः ॥ २८ ॥ दिशो घोरतराश्चासन्सूर्योऽप्यस्तंगतोऽभवत् ॥ चिंतामापुः सुराः सर्वे किं भविष्यति दुर्दिने ॥ २९ ॥ एवं चिंतयतां तेषां मूर्धा विष्णोः सकुंडलः ॥

अग्निको हविदान करते हुए जो अन्न अग्निके बगलमें गिरेगा, वही तुम्हारा भाग होगा। अब तुम शीघ्र विष्णुको जगानेका काम कर डालो ॥२४॥ सूतजी कहते हैं–हे मुनियों ! ब्रह्माजीके वचन सुनकर दीमकोंने तत्काल विष्णु-धनुषका अग्रभाग खा लिया, जिससे उसकी प्रत्यञ्चा खुल गयी ॥२५॥ प्रत्यञ्चा खुलनेसे धनुषका एक शिरा उछल पड़ा, जिससे भीषण शब्द हुआ। वह शब्द सुनकर देवता डर गये ॥२६॥ उस भयंकर शब्दसे समस्त ब्रह्माण्ड क्षुब्ध हो उठा, धरती काँपने लगी, समुद्र उद्विग्न हो गये और उसके जलचर जीव घबरा गये ॥२७॥ वायु जोरोंसे चलने लगा, पर्वत काँपने लगे और किसी भयानक विपत्तिकी सूचना देते हुए उल्कापात आदि महान् उत्पात होने लगे ॥२८॥ दिशायें भयानक दीखने लगीं और सूर्य अस्त हो गये। यह संकट देखकर देवता भी सोचने लगे कि अब क्या होगा ॥२९॥ वे यह सोच ही रहे थे कि उसी समय मुकुट-कुण्डल समेत विष्णुभगवान्‌का मस्तक कटकर न जाने कहाँ चला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गया ॥३०॥ कुछ देर बाद जब अन्धकार दूर हुआ, तब ब्रह्मा और शिवजीने भगवान् विष्णुका मस्तकविहीन विलक्षण शरीर देखा ॥३१॥ भगवानका मस्तकहीन धड़ देखकर देवताओं-को बहुत आश्चर्य हुआ और वे चिन्तासागरमें मग्न हो तथा शोकाकुल होकर रोने लगे ॥३२॥ उन्होंने कहा—हे नाथ ! हाय प्रभो ! यह कैसी अमानवी घटना घट गयी ? हे देवदेव ! हे सनातन ! हम देवताओंके लिए तो यह बहुत बड़ा अनर्थ हो गया ॥३३॥ यह किस देवताकी माया है कि जिसने आपका मस्तक हर लिया ? क्योंकि आप तो सदा अच्छेद्य, अभेद्य और अदाह्य थे ॥३४॥ हे विभो ! ऐसा होनेसे तो हम सब देवता मर जायँगे। आपका हम सबपर कितना स्नेह था। हमलोग अपने स्वार्थके लिए रुदन कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ दैत्यों, यक्षों अथवा राक्षसोंने यह संकट नहीं उपस्थित किया है। हम देवताओंने ही यह विपत्ति बुलायी है, किन्तु हे रमापते ! हम किसे दोष दें ॥ ३६ ॥ हम सभी देवता परतंत्र हैं। हम क्या करें

गतः समुकुटः क्वापि देवदेवस्य तापसाः ॥ ३० ॥ अन्धकारे तदा घोरे शांते ब्रह्महरौ तदा ॥ शिरोहीनं शरीरं तु ददृशाते विलक्षणम् ॥ ३१ ॥
दृष्ट्वा कबंधं विष्णोस्ते विस्मिताः सुरसत्तमाः ॥ चिंतासागरमग्नाश्च रुरुदुः शोककर्शिताः ॥ ३२ ॥ हा नाथ किं प्रभो जातमत्यद्भुतममानुषम् ॥
वैशसं सर्वदेवानां देवदेव सनातन ॥ ३३ ॥ मायेयं कस्य देवस्य यया तेऽद्य शिरो हृतम् ॥ अच्छेद्यस्त्वमभेद्योऽसि अप्रदाह्योऽसि सर्वदा ॥ ३४ ॥
एवंगते त्वयि विभो मरिष्यंति च देवताः ॥ कीदृशस्त्वयि नः स्नेहः स्वार्थेनैव रुदामहे ॥ ३५ ॥ नायं विघ्नः कृतो दैत्यैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः ॥
देवैरेव कृतः कस्य दूषणं च रमापते ॥ ३६ ॥ पराधीनाः सुराः सर्वे किं कुर्मः क्व व्रजाम च ॥ शरणं नैव देवेश सुराणां मूढचेतसाम् ॥ ३७ ॥
न चैषा सात्त्विकी माया राजसी न च तामसी ॥ यया छिन्नं शिरस्तेऽद्य मायेशस्य जगद्गुरोः ॥ ३८ ॥ क्रंदमानांस्तदा दृष्ट्वा देवाञ्छिवपुरो-
गमान् ॥ बृहस्पतिस्तदोवाच शमयन्वेदवित्तमः ॥३९॥ रुदितेन महाभागाः क्रंदितेन तथापि किम् ॥ उपायश्चात्र कर्तव्यः सर्वथा बुद्धिगोचरः ॥४०॥
दैवं पुरुषकारश्च देवेश सदृशावुभौ ॥ उपायश्च विधातव्ये दैवात्फलति सर्वथा ॥ ४१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ॥
विष्णोरपि शिरश्छिन्नं सुराणां चैव पश्यताम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कालेनापादितं च यत् ॥ शुभं वाप्यशुभं वापि दैवं

और कहाँ जायँ ? हे देवेश ! हम मूढचित्त देवताओंको अब कहीं भी शरण नहीं मिलेगी ॥ ३७ ॥ जिससे आप मायापति तथा जगद्गुरुका मस्तक कटा है, उसमें सात्त्विकी राजसी तथा तामसी मायाका भी हाथ नहीं है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा-शिव समेत सब देवताओंको रोते देखकर परम वेदविद् देवगुरु बृहस्पतिने उन्हें शान्त करते हुए कहा—॥३९॥ हे महाभाग ! अब इस प्रकार रोने-चिल्लानेसे क्या लाभ होगा ? इस समय तो बुद्धिके अनुरूप कोई उपाय करना आवश्यक है ॥ ४० ॥ हे देवेश ! दैव और पुरुपार्थ ये दोनों बराबर दर्जेके हैं। अतएव उपाय करना चाहिए। ऐसा करनेपर दैवयोगसे सफलता भी मिल ही जाती है ॥४१॥ इन्द्र बोले—मैं तो दैवको ही प्रधान मानता हूँ। पुरुषार्थ व्यर्थ और धिक्कार योग्य वस्तु है। अभी हमने कम पुरुषार्थ किया था ? जो हम देवताओंके देखते-देखते भगवान विष्णुका मस्तक कटकर गायब हो गया ॥४२॥ ब्रह्माजी बोले—समयानुसार प्राप्त सब शुभ-अशुभ फल भोगना ही पड़ता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाग्यका अतिक्रमण कौन कर सकता है ? ॥४३॥ प्रत्येक देहधारीको समय-समयपर आया हुआ सुख-दुःख भोगना ही पड़ता है। पूर्वकालमें संयोगवश महादेवजीने मेरा मस्तक काट लिया था ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार शापवश शिवजीका लिंग कटकर गिर गया था। उसी तरह आज विष्णु भगवानका मस्तक भी कटकर लवणसमुद्रमें जा गिरा है ॥ ४५ ॥ शचीपति इन्द्रको सहस्र योनिकी प्राप्तिका दुःख भोगना पड़ा और स्वर्गसे पतित होकर कमलवनमें छिपनेको विवश होना पड़ा था ॥ ४६ ॥ जब बड़े-बड़ोंको दुःख भोगना पड़ा, तब संसारमें दुःखसे कौन बच सकता है ? अतएव आप शोक त्याग दें ॥ ४७ ॥ अब आप उन महामाया, विद्या तथा सनातनी देवीका ध्यान धरिए। वह निपुणा प्रकृति हमारा सब काम बना देगी ॥ ४८ ॥ क्योंकि वह ब्रह्मविद्या, जगद्धात्री और अखिल विश्वकी जननी समस्त त्रिलोकीके सभी चर और अचर प्राणियोंमें सदा व्याप्त रहती है ॥ ४९ ॥ सूतजी कहते हैं—

कोऽतिक्रमेत्पुनः ॥ ४३ ॥ देहवान्सुखदुःखानां भोक्ता नैवात्र संशयः ॥ यथा कालवशात्कृत्तं शिरो मे शंभुना पुरा ॥ ४४ ॥ तथैव लिंगपातश्च
महादेवस्य शापतः ॥ तथैवाद्य हरेर्मूर्धा पतितो लवणांभसि ॥ ४५ ॥ सहस्रभगसंप्राप्तिर्दुःखं चैव शचीपतेः ॥ स्वर्गाद्भ्रंशस्तथा वासः कमले मानसे
सरे ॥ ४६ ॥ एते दुःखस्य भोक्तारः केन दुःखं न भुज्यते ॥ संसारेऽस्मिन्महाभागास्तस्माच्छोकं त्यजंतु वै ॥ ४७ ॥ चिंतयंतु महामायां विद्या-
देवीं सनातनीम् ॥ सा विधास्यति नः कार्यं निपुणा प्रकृतिः परा ॥ ४८ ॥ ब्रह्मविद्यां जगद्धात्रीं सर्वेषां जननीं तथा ॥ यया सर्वमिदं व्याप्तं
त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वै सुरान्वेधा निगमानादिदेश ह ॥ देहयुक्तान्स्थितानग्रे सुरकार्यार्थसिद्धये ॥ ५० ॥
ब्रह्मोवाच ॥ स्तुवंतु परमां देवीं ब्रह्मविद्यां सनातनीम् ॥ गूढांगीं च महामायां सर्वकार्यार्थसाधनीम् ॥ ५१ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वेदाः सर्वां-
गसुन्दराः ॥ तुष्टुवुर्ज्ञानगम्यां तां महामायां जगत्स्थिताम् ॥५२॥ वेदा ऊचुः ॥ नमो देवि महामाये विश्वोत्पत्तिकरे शिवे ॥ निर्गुणे सर्वभूतेशि
मातः शंकरकामदे ॥५३॥ त्वं भूतिः सर्वभूतानां प्राणाः प्राणवतां तथा ॥ धीः श्रीः कांतिः क्षमा शांतिः श्रद्धा मेधा धृतिः स्मृतिः ॥ ५४॥ त्वमु-
द्गीथेऽर्धमात्राऽसि गायत्री व्याहृतिस्तथा ॥ जया च विजया धात्री लज्जा कीर्तिः स्पृहा दया ॥ ५५ ॥ त्वां संस्तुमोऽम्ब भुवनत्रयसंविधानदक्षां

हे मुनियों ! देवताओंसे ऐसा कहकर ब्रह्माजीने अपने समक्ष सदेह विद्यमान वेदोंको आज्ञा दी ॥ ५० ॥ ब्रह्माजीने कहा—आप लोग परा ब्रह्मविद्या, सनातनी, प्रच्छन्न शरीरधारिणी तथा सब प्रयोजन सिद्ध करनेवाली महामायाकी स्तुति करिए ॥ ५१ ॥ तदनुसार सर्वाङ्गसुन्दर वेद भगवतीकी स्तुति करते हुए कहने लगे—हे देवि ! हे माहामाये ! हे विश्वको उत्पन्न करनेवाली ! हे शिवे ! हे निर्गुणे ! हे सर्वभूतेशि ! हे माता ! और हे शंकरजीकी कामना पूर्ण करनेवाली भगवती ! आपको अनेकशः नमस्कार है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ आप सब प्राणियोंकी आधारभूमि, जीवधारियोंके प्राण तथा उनकी बुद्धि, श्री, कान्ति, क्षमा, शान्ति, श्रद्धा, मेधा, स्मृति, धृति और स्मृति हैं ॥ ५४ ॥ आप उद्गीथ अर्थात् ॐकारमें चन्द्रबिन्दुरूपिणी हैं। आप गायत्री, भूर्भुवः स्वः आदि सप्तव्याहृति, जया, विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा और दयास्वरूपा हैं ॥५५॥ हे अम्ब ! आप तीनों लोकोंकी सृष्टिमें निपुण, कारुण्यरसपरिपूर्ण,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानवमात्रकी जननी, विद्या, कल्याणी, सब लोगोंके हितमें तत्पर, सर्वश्रेष्ठ, वाग्बीजमंत्रनिवासिनी और भवबन्धन काटनेमें कुशल हैं। हे भगवती! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥५६॥ ब्रह्मा, शिव, विष्णु, इन्द्र, सरस्वती, अग्नि, सूर्य और लोकपाल ये सब आपके ही बनाये हुए हैं। अतएव उनकी कोई प्रधानता नहीं है। आप स्थावर-जंगमात्मक समस्त जीवोंकी माता हैं ॥ ५७ ॥ हे जननी! जब आप विश्वकी सृष्टि करना चाहती हैं, तब ब्रह्मा-विष्णु और शिवकी रचना करती हैं। उन्हींके द्वारा आप संसारकी सृष्टि, पालन और संहारकार्य सम्पन्न कराती हैं। हे देवि! आपमें संसारका लेश भी नहीं रहता ॥ ५८ ॥ हे भगवती! संसारमें कोई भी ऐसा निपुण प्राणी नहीं है, जो आपके रूपको जान सके। आपके नामोंकी संख्या बताने योग्य कोई भी पुरुष नहीं है! जो एक नन्हीं सी तलैयाको भी नहीं पार कर सकता, वह सत्यबुद्धिसम्पन्न चतुर पुरुष ओर-छोररहित महासागर पार करनेमें कैसे समर्थ हो सकेगा? ॥५९॥ हे भगवती! देवताओंमें भी कोई ऐसा नहीं है कि जो आपके अनन्त वैभवको जान सके। आप समस्त विश्वकी जननी हैं। आपको किसीकी सहायता नहीं अपेक्षित है। आप अकेली इस

दयारसयुतां जननीं जनानाम् ॥ विद्यां शिवां सकललोकहितां वरेण्यां वाग्बीजवासनिपुणां भवनाशकर्त्रीम् ॥ ५६ ॥ ब्रह्मा हरः शौरिसहस्रनेत्रवाग्वह्निसूर्या भुवनाधिनाथाः ॥ ते त्वत्कृताः संति ततो न मुख्या माता यतस्त्वं स्थिरजंगमानाम् ॥ ५७ ॥ सकलभुवनमेतत्कर्तुकामा यदा त्वं सृजसि जननि देवान्विष्णुरुद्राजमुख्यान् ॥ स्थितिलयजननं तैः कारयस्येकरूपा न खलु तव कथंचिद्देवि संसारलेशः ॥ ५८ ॥ न ते रूपं वेत्तुं सकलभुवने कोऽपि निपुणो न नाम्नां संख्या ते कथितुमिह योग्योऽस्ति पुरुषः ॥ यदल्पं कीलालं कलयितुमशक्तः स तु नरः कथं पारावाराकलनचतुरः स्याद्दृतमतिः ॥५९॥ न देवानां मध्ये भगवति तवानंतविभवं विजानात्येकोऽपि त्वमिह भुवनैकाऽसि जननी ॥ कथं मिथ्या विश्वं सकलमपि चैका रचयसि प्रमाणं त्वेतस्मिन्नगमवचनं देवि विहितम् ॥ ६० ॥ निरीहैवासि त्वं निखिलजगतां कारणमहो चरित्रं ते चित्रं भगवति मनो नो व्यथयति ॥ कथंकारं वाच्यः सकलनिगमागोचरगुणप्रभावः स्वं यस्मात्स्वयमपि न जानासि परमम् ॥६१॥ न किं जानासि त्वं जननि मधुजिन्मौलिपतनं शिवे किं वा ज्ञात्वा विविदिषसि शक्तिं मधुजितः ॥ हरेः किं वा मातर्दुरिततितिरेषा बलवतो भवत्या पादाब्जे भजननिपुणे क्वास्ति दुरितम् ॥६२॥ उपेक्षा किं चेयं तव सुरसमूहेऽतिविषमा हरेर्मूर्ध्नो नाशो मतमिह महाश्चर्यजनकम् ॥ महद्दुःखं मातस्त्वमसि जननच्छेदकुशला न जानीमो मौलेर्विघटन-

मिथ्या जगत्की सृष्टि कैसे करती हैं? हे देवि! आपके इन कार्योंमें एकमात्र वेदवाक्य ही प्रमाण हैं ॥६०॥ हे माता! आप समस्त विश्वकी कारणस्वरूपा होती हुई भी निरीह रहती हैं। अहो! आपके विचित्र चरित्रको देखकर हमारा मन व्यथित हो जाता है। यही कारण है कि वेदोंके जानने योग्य आपके गुणों और प्रभावका वर्णन करनेमें हम लोग असमर्थ हो जाते हैं। क्योंकि अपने परम तत्त्वको आप स्वयं भी नहीं जान पातीं ॥ ६१ ॥ हे जननी! क्या आप नहीं जानतीं कि भगवान् विष्णुका मस्तक कट गया है? यह जानकर भी क्या आप विष्णुकी शक्ति जानना चाहती हैं? यदि कहा जाय कि विष्णुभगवानके पापोंका यह फल है तो यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि आपका भजन करनेवालोंसे पाप हो ही कैसे सकता है? ॥ ६२ ॥ हे माता! आप इस सुरसमुदायकी भीषण उपेक्षा कर रही हैं। विष्णु भगवानका शिरश्छेद बहुत ही आश्चर्यजनक दुर्घटना है। इससे हमलोग बहुत दुःखी हैं। हे माता! आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही जन्म-मरणके बन्धनको काटती हैं। मालूम नहीं कि विष्णु भगवानका कटा हुआ मस्तक जुड़नेमें विलम्ब क्यों हो रहा है॥ ६३॥ अथवा हे देवि! आप सब देवताओंके दोष देखती और जानती हैं। उनके दोषसे ही विष्णु भगवानका मस्तक कटा है। या कि विष्णु भगवानको किसी प्रकारका समरजनित गर्व हो गया था, जिसे दूर करनेके लिए ही आप यह लीला कर रही हैं। हम आपका मनोभाव जाननेमें समर्थ नहीं हो रहे हैं॥ ६४॥ या कि युद्धमें पराजित दैत्योंने किसी रमणीक तीर्थमें कठोर तपस्या करके आपसे कोई वर प्राप्त कर लिया है, जिससे विष्णुका मस्तक कटकर गायब हो गया है। अथवा विष्णुभगवानको मस्तकहीन देखनेके लिए आप ही यह कौतुक कर रही हैं॥ ६५॥ हे आद्ये! क्या आप सिन्धुसुता लक्ष्मीपर कुपित तो नहीं हो गयी हैं? यदि ऐसा नहीं है तो आप उन्हें अनाथ क्यों देख रही हैं? आप अपने अंशजा लक्ष्मीके अपराध क्षमा कर दें और विष्णु भगवानको जीवित करके रमाको प्रसन्न करें॥ ६६॥ सृष्टि आदि कार्योंपर नियुक्त और असाधारण प्रभावशाली ये देवता आपको सदा नमस्कार करते हैं। अतएव हे देवि! सब देवताओंके

विलंबः कथमभूत्॥ ६३॥ ज्ञात्वा दोषं सकलसुरतापादितं देवि चित्ते किंवा विष्णावमरजनितं दुष्कृतं पातितं ते॥ विष्णोर्वा किं समरजनितः कोपवर्गोऽतिवेगाच्छेत्तुं मातस्तव विलसितं नैव विद्मोऽत्र भावम्॥ ६४॥ किं वा दैत्यैः समरविजितैस्तीर्थदेशे सुरम्ये घोरं तप्त्वा भगवति वरं लब्धवद्भिर्भवत्या॥ अन्तर्धानं गमितमधुना विष्णुशीर्षं भवानि द्रष्टुं किं वा विगतशिरसं वासुदेवं विनोदः॥ ६५॥ सिंधोः पुत्र्या रोषिता किं त्वमाद्ये कस्मादेनां प्रेक्षसे नाथहीनाम्॥ क्षंतव्यस्ते स्वांशजातापराधो व्युत्थाप्यैनं मोदितां मां कुरुष्व॥ ६६॥ एते सुरास्त्वां सततं नमंति कार्येषु मुख्याः प्रथितप्रभावाः॥ शोकार्णवात्तारय देवि देवानुत्थाप्य देवं सकलाधिनाथम्॥ ६७॥ मूर्धा गतः क्वाम्ब हरेर्न विद्मो नान्योऽस्त्युपायः खलु जीवनेऽद्य॥ यथा सुधा जीवनकर्मदक्षा तथा जगज्जीवितदाऽसि देवि॥ ६८॥ सूत उवाच॥ एवं स्तुता तदा देवी गुणातीता महेश्वरी॥ प्रसन्ना परमा माया वेदैः सांगैश्च सामगैः॥ ६९॥ तानुवाच तदा वाणी चाकाशस्था शरीरिणी॥ देवान्प्रतिसुखैः शब्दैर्जनानंदकरी शुभा॥ ७०॥ मा कुरुध्वं सुराश्चिंतां स्वस्थास्तिष्ठन्तु चामराः॥ स्तुताऽहं निगमैः कामं संतुष्टाऽस्मि न संशयः॥ ७१॥ यः पुमान्मानुषे लोके स्तौत्येतां मामकीं स्तुतिम्॥ पठिष्यति सदा भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ७२॥ शृणोति वा स्तोत्रमिदं मदीयं भक्त्या त्रिकालं सततं नरो यः॥ विमुक्तदुःखः स

अधिपति विष्णुको जीवित करके इन्हें शोकसमुद्रसे पार उतार दीजिए॥ ६७॥ हे अम्ब! हमें यह नहीं मालूम कि इनका मस्तक कटकर कहाँ चला गया है। इन्हें जीवित करनेका और कोई उपाय भी हम नहीं जानते। जैसे अमृत जीवनदान देनेमें निपुण है, उसी प्रकार आप समस्त जगत्को जीवनदान देनेमें समर्थ हैं॥ ६८॥ सूतजी बोले—हे महामुनियों! वे गुणातीता, महेश्वरी और परमा माया भगवती सामगायक साङ्ग वेदोंकी स्तुति सुनकर प्रसन्न हो गयीं॥ ६९॥ उसी समय देवताओंके लिए सुखदायक शब्दोंसे पूर्ण और भक्तोंको आनन्ददायिनी यह आकाशवाणी हुई—॥ ७०॥ हे देवताओं! आप लोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करके प्रसन्न हों। इन वेदोंकी स्तुति सुनकर मैं भलीभाँति प्रसन्न हो गयी हूँ॥ ७१॥ संसारमें जो मनुष्य इस स्तोत्रसे मेरी स्तुति करेगा या प्रेमसे इसका पाठ करेगा, वह अपनी सब कामनायें पूर्ण कर लेगा॥ ७२॥ जो मनुष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रातः सायं तथा मध्याह्नमें नित्य मेरी स्तुतिको सुनेगा, उसका सब दुःख दूर हो जायगा और वह सुखी होगा। यह स्तुति वेदोंकी कही है। इस कारण यह श्रुतियोंके समान ही आदरणीय है ॥७३॥ हे देवताओं! अब आप यह सुनें कि भगवान विष्णुका मस्तक क्यों कटकर लुप्त हो गया है। क्योंकि विना कारण संसारमें कोई कार्य नहीं होता ॥७४॥ एक समयकी बात है कि विष्णु भगवान् अपने समीप विराजमान अपनी प्रियतमा उदधितनया लक्ष्मीके मनोहर मुखको देखकर हँस पड़े ॥७५॥ लक्ष्मीने सोचा कि हमें देखकर भगवान हँसे क्यों? उन्होंने मेरे मुखमें क्या दोष देखा कि जिससे हँसे ॥७६॥ बिना किसी कारणके वे नहीं हँस सकते। अथवा हो सकता है कि उन्होंने मेरी कोई दूसरी सौत चुन ली हो ॥७७॥ बस, इसी बातपर महालक्ष्मी कुपित हो गयीं और उनके शरीरमें तामसी शक्तिका समावेश हो गया ॥ ७८ ॥ कुछ समय बाद दैवयोगसे देवताओंकी कार्यसद्धिके निमित्त उनके शरीरमें अतिशय दारुण तामसी शक्ति

भवेत्सुखी च वेदोक्तमेतन्नन्नु वेदतुल्यम् ॥ ७३ ॥ शृण्वंतु कारणं चाद्य मद्गतं वदनं हरेः ॥ अकारणं कथं कार्यं संसारेऽत्र भविष्यति ॥ ७४ ॥ उदधे-
स्तनयां विष्णुः संस्थितामंतिके प्रियाम् ॥ जहास वदनं वीक्ष्य तस्यास्तत्र मनोरमम् ॥ ७५ ॥ तया ज्ञातं हरिर्नूनं कथं मां हसति प्रभुः ॥ विरूपं
हरिणा दृष्टं मुखं मे केन हेतुना ॥ ७६ ॥ विनापि कारणेनाद्य कथं हास्यस्य संभवः ॥ सपत्नीव कृता तेन मन्येऽन्या वरवर्णिनी ॥ ७७ ॥ ततः
कोपयुता जाता महालक्ष्मी तमोगुणा ॥ तामसी तु तदा शक्तिस्तस्या देहे समाविशत् ॥ ७८ ॥ केनचित्कालयोगेन देवकार्यार्थसिद्धये ॥ प्रविष्टा
तामसी शक्तिस्तस्या देहेऽतिदारुणा ॥ ७९ ॥ तामस्याविष्टदेहा सा चुकोपातिशयं तदा ॥ शनकैः समुवाचेदमिदं पततु ते शिरः ॥ ८० ॥ स्त्री-
स्वभावाच्च भावित्वात्कालयोगाद्विनिर्गतः ॥ अनिवार्यं तदा दत्तः शापः स्वसुखनाशनः ॥ ८१ ॥ सपत्नीसंभवं दुःखं वैधव्यादधिकं त्विति ॥
विचिंत्य मनसेत्युक्तं तामसीशक्तियोगतः ॥ ८२ ॥ अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ॥ अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः
॥ ८३ ॥ सशीर्षं वासुदेवं तं करोम्यद्य यथा पुरा ॥ शिरोऽस्य शापयोगेन निमग्नं लवणांबुधौ ॥ ८४ ॥ अन्यच्च कारणं किंचिद्वर्तते सुरसत्तमाः ॥
भवतां च महत्कार्यं भविष्यति न संशयः ॥ ८५ ॥ पुरा दैत्यो महाबाहुर्हयग्रीवोऽतिविश्रुतः ॥ तपश्चक्रे सरस्वत्यास्तीरे परमदारुणम् ॥ ८६ ॥

प्रविष्ट हो गयी ॥ ७९ ॥ शरीरपर तमोगुणका अधिकार हो जानेके कारण लक्ष्मीजी भगवानपर अत्यधिक कुपित हो गयीं और मन्द-मन्द स्वरमें उन्होंने कहा कि आपका यह मस्तक कटकर गिर जायगा ॥८०॥ स्त्रीस्वभाव, भावी तथा संयोगवश विना विचारे उन्होंने अपने ही सुखका नाश करनेवाला यह शाप दे डाला ॥ ८१ ॥ किसी सौतसे प्राप्त होनेवाला दुःख वैधव्यसे भी बढ़कर होता है। ऐसा विचार करके और अन्तःकरणपर तामसी शक्तिका आधिपत्य होनेके कारण उन्होंने ऐसा कह दिया ॥ ८२ ॥ झूठ, अविचार, माया, मूर्खता, अत्यधिक लोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष कहे गये हैं। देवीने कहा—अब मैं भगवान विष्णुको मस्तकयुक्त किये देती हूँ। पूर्व शापवश इनका मस्तक समुद्रमें जाकर डूब गया है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ हे श्रेष्ठ देवताओं! ऐसा होनेमें एक और भी कारण है। तथापि आप लोगोंका महान् कार्य अवश्य पूर्ण होगा ॥८५॥ पूर्वकालमें महाबाहु तथा अत्यन्त प्रसिद्ध हयग्रीव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नामका दैत्य सरस्वती नदीके तटपर जाकर बहुत कठोर तप करने लगा ॥ ८६ ॥ वह मेरे मायाबीजात्मक एकाक्षर मंत्रको जपता था। उसने भोजन त्याग दिया था। सब इन्द्रियोंको वशमें करके उसने सभी भोगोंको छोड़ दिया था ॥ ८७ ॥ समस्त आभूषणोंसे आभूषित मेरी तामसी शक्तिका ध्यान करते हुए उसने एक हजार वर्ष तक दारुण तपस्या की ॥ ८८ ॥ तब उसने जिस रूपमें मेरा ध्यान किया था, वही तामस रूप धारण करके उसके समक्ष प्रकट होकर मैंने दर्शन दिया ॥ ८९ ॥ उस समय मैं सिंहपर सवार थी। मैंने दयापूर्वक उससे कहा—हे महाभाग! वर माँगो। हे सुव्रत! मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करूँगी ॥ ९० ॥ देवीका वचन सुनकर वह दानव प्रेमाकुल हो उठा। तत्काल उसने मुझे प्रणाम किया और परिक्रमा की ॥ ९१ ॥ मेरा रूप देखते ही मारे हर्षके उसके नेत्र खिल गये, उन नयनोंमें आँसू उमड़ पड़े और गद्गद होकर वह मेरी स्तुति करने लगा ॥ ९२ ॥ हयग्रीव बोला—हे महामाये! हे सृष्टिका पालन तथा संहार करनेवाली! हे भक्तोंपर कृपा करनेमें निपुण! हे मोक्षदायिनी! हे शिवे! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ९३ ॥

जपन्नेकाक्षरं मंत्रं मायाबीजात्मकं मम ॥ निराहारो जितात्मा च सर्वभोगविवर्जितः ॥८७॥ ध्यायन्मां तामसीं शक्तिं सर्वभूषणभूषिताम् ॥ एवं वर्षसहस्रं च तपश्चक्रेऽतिदारुणम् ॥८८॥ तदाऽहं तामसं रूपं कृत्वा तत्र समागता ॥ दर्शने पुरतस्तस्य ध्यातं तत्तेन यादृशम् ॥८९॥ सिंहोपरि स्थिता तत्र तमवोचं दयान्विता ॥ वरं ब्रूहि महाभाग ददामि तव सुव्रत ॥९०॥ इति श्रुत्वा वचो देव्या दानवः प्रेमपूरितः ॥ प्रदक्षिणां प्रणामं च चकार त्वरितस्तदा ॥९१॥ दृष्ट्वा रूपं मदीयं स प्रेमोत्फुल्लविलोचनः ॥ हर्षाश्रुपूर्णनयनस्तुष्टाव स च मां तदा ॥९२॥ हयग्रीव उवाच ॥ नमो देव्यै महामाये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ॥ भक्तानुग्रहचतुरे कामदे मोक्षदे शिवे ॥९३॥ धरांबुतेजःपवनखपंचानां च कारणम् ॥ त्वं गंधरसरूपाणां कारणं स्पर्शशब्दयोः ॥९४॥ घ्राणं च रसना चक्षुस्त्वक्श्रोत्रमिंद्रियाणि च ॥ कर्मेंद्रियाणि चान्यानि त्वत्तः सर्वं महेश्वरि ॥९५॥ श्रीदेव्युवाच ॥ किं तेऽभीष्टं वरं ब्रूहि वांछितं यद्ददामि तत् ॥ परितुष्टाऽस्मि भक्त्या ते तपसा चाद्भुतेन च ॥ ९६ ॥ हयग्रीव उवाच ॥ यथा मे मरणं मातर्न भवेत्तत्तथा कुरु ॥ भवेयममरो योगी तथाऽजेयः सुरासुरैः ॥ ९७ ॥ देव्युवाच ॥ जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ मर्यादा चेदृशी लोके भवेच्च कथमन्यथा ॥ ९८ ॥ एवं त्वं निश्चयं कृत्वा मरणे राक्षसोत्तम ॥ वरं वरय चेष्टं ते विचार्य मनसा किल ॥ ९९ ॥ हयग्रीव उवाच ॥ हयग्रीवाच्च मे मृत्युर्नान्यस्माज्जगदंबिके ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दकी उत्पत्तिमें एकमात्र आप ही कारण हैं ॥ ९४ ॥ नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों और लिङ्ग, गुदा, हाथ-पैर आदि कर्मेन्द्रियोंकी भी उत्पत्ति आपसे ही होती है ॥ ९५ ॥ देवी बोलीं—हे भक्त! तुम क्या चाहते हो, बताओ। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगी। क्योंकि तुम्हारी अनन्य भक्ति तथा कठोर तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ९६ ॥ हयग्रीव बोला—हे मातः! मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि जिससे मैं कभी न मरूँ और देव-दानव कोई मुझे न जीत सके ॥ ९७ ॥ देवीने कहा—हे भक्त! जो जन्म लेता है, वह मरता है और जो मरता है, वह पुनः अवश्य जन्म लेता है। यह संसारकी मर्यादा है। इसमें परिवर्तन कैसे हो सकता है? ॥ ९८ ॥ अतएव हे राक्षसश्रेष्ठ! तुम मरणको निश्चित जान तथा भली भाँति विचार करके अभिलषित वर माँगो ॥ ९९ ॥ हयग्रीव बोला—हे माता! यदि ऐसा है तो मेरी मृत्यु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हयग्रीवसे ही हो—अन्य किसीके हाथों नहीं। आप मेरी यह कामना पूर्ण कर दें ॥ १०० ॥ देवीने कहा—हे महाभाग ! अब तुम अपने घर जाकर सानन्द राज करो। हयग्रीवके सिवाय अन्य किसीसें तुम्हारी मृत्यु न होगी ॥ १०१ ॥ उसे यह वरदान देकर मैं अन्तर्धान हो गयी और वह भी बहुत प्रसन्न होकर अपने घर चला गया ॥ १०२ ॥ इस समय वह दुष्ट मुनियों और वेदोंको बहुत सता रहा है। क्योंकि तीनों लोकमें कोई ऐसा नहीं है कि जो उसे मार सके ॥१०३॥ अतएव विश्वकर्मा किसी सुन्दर घोड़ेका सिर लेकर इन मस्तकविहीन भगवान् विष्णुके धड़में जोड़ दें ॥१०४॥ तब देवताओंका कल्याण करनेके लिए ये हयग्रीव भगवान् उस पापी और क्रूर असुरका वध करेंगे ॥१०५॥ सूतजी कहते हैं—देवताओंसे ऐसा कहकर भगवती चुप हो गयीं। तब देवताओंने अतिशय प्रसन्न होकर देवशिल्पी त्वष्टासे कहा ॥१०६॥ देवता बोले—आप विष्णुभगवान्‌के धड़में घोड़ेका मस्तक जोड़कर देवताओंका महान्

इति मे वांछितं कामं पूरयस्व मनोगतम् ॥ १०० ॥ देव्युवाच ॥ गृहं गच्छ महाभाग कुरु राज्यं यथासुखम् ॥ हयग्रीवादृते मृत्युर्न ते नूनं भवि-
ष्यति ॥ १०१ ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मा अंतर्धानं गता तथा ॥ मुदं परमिकां प्राप्य सोऽपि स्वभवनं गतः ॥ १०२ ॥ स पीडयति दुष्टात्मा मुनि-
न्वेदाँश्च सर्वशः ॥ न कोऽपि विद्यते तस्य हंताऽद्य भुवनत्रये ॥ १०३ ॥ तस्माच्छीर्षं हयस्यास्य समुद्धृत्य मनोहरम् ॥ देहेऽत्र विशिरो विष्णोः
स्त्वष्टा संयोजयिष्यति ॥ १०४॥ हयग्रीवोऽथ भगवान्हनिष्यति तं महासुरम् ॥ पापिष्ठं दानवं क्रूरं देवानां हितकाम्यया ॥१०५॥ सूत उवाच ॥
एवं सुराँस्तदाऽऽभाष्य शर्वाणी विरराम ह ॥ देवास्तदातिसंतुष्टास्तमूचूर्देवशिल्पिनम् ॥१०६॥ देवा ऊचुः ॥ कुरु कार्यं सुराणां वै विष्णोः शीर्षा-
भियोजनम् ॥ दानवप्रवरं दैत्यं हयग्रीवो हनिष्यति ॥ १०७ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां त्वष्टा चातित्वरान्वितः ॥ वाजिशीर्षं चकर्ताशु
खड्गेन सुरसन्निधौ ॥ १०८ ॥ विष्णोः शरीरे तेनाशु योजितं वाजिमस्तकम् ॥ हयग्रीवो हरिर्जातो महामायाप्रसादतः ॥ १०९ ॥ कियता तेन
कालेन दानवो मददर्पितः ॥ निहतस्तरसा संख्ये देवानां रिपुरोजसा ॥ ११० ॥ य इदं शुभमाख्यानं शृण्वन्ति भुवि मानवाः ॥ सर्वदुःखविनि-
र्मुक्तास्ते भवंति न संशयः ॥ १११ ॥ महामायाचरित्रञ्च पवित्रं पापनाशनम् ॥ पठतां शृण्वतां चैव सर्वसंपत्तिकारकम् ॥ ११२ ॥ इति श्रीदेवी-
भागवते प्रथमस्कन्धे हयग्रीवावतारकथनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कार्य सम्पन्न कर दीजिए। आपके ऐसा करनेसे भगवान् हयग्रीव उस क्रूर दानवराजका वध करेंगे ॥ १०७ ॥ सूतजी कहते हैं—देवताओंके वचन सुनकर त्वष्टाने बड़ी शीघ्रतापूर्वक अपने खड्गसे एक घोड़ेका सिर काटा और उसे विष्णु भगवान्‌के धड़में जोड़ दिया। इस प्रकार महामायाकी कृपासे विष्णुभगवान् हयग्रीव हो गये ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ कालान्तरमें उन्होंने उस मददर्पित तथा देवशत्रु दानव हयग्रीवको अपने अतुलित पराक्रमसे रणभूमिमें शीघ्र मार डाला ॥११०॥ जो मनुष्य इस शुभ कथाको सुनते हैं, वे सभी दुःखोंसे छुटकारा पा जाते हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१११॥ महामायाका यह चरित्र परम पवित्र और पापनाशक है। इसका पाठ तथा श्रवण करनेवालोंको सब सम्पत्तियाँ सुलभ हो जाती हैं ॥११२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(मधु-कैटभयुद्धका उपक्रम) मुनिगण बोले—हे सौम्य सूत ! आपने महासमुद्रमें पाँच हजार वर्षतक मधु-कैटभके साथ विष्णु भगवानके युद्धकी जो बात कही थी ॥१॥ उस विषयमें हमारी यह जिज्ञासा है कि उस एकार्णव समुद्रके जलमें महाप्रतापी, दुर्धर्ष तथा देवताओंके भी अजेय वे दोनों दानव किससे उत्पन्न हुए ? ॥ २ ॥ वे असुर क्यों हो गये और भगवानने उन्हें क्यों मारा ? हे महाप्राज्ञ ! आप यह परम अद्भुत वृत्तान्त हमको सुनाइए ॥ ३ ॥ यह उपाख्यान हम सुनना चाहते हैं। आप भी बहुश्रुत वक्ता हैं। संयोगसे ही यहाँ हमारा और आपका सम्पर्क हो गया है ॥ ४ ॥ मूर्खके साथका सम्पर्क विषसे बढ़कर घातक होता है और विद्वान्‌का मिलाप अमृतरसके सदृश उपकारी माना जाता है ॥ ५ ॥ वैसे तो पशु भी भोजन करते, मल-मूत्र त्यागते तथा अद्भुत विषयसुखका आनन्द लेते हैं ॥ ६ ॥ किन्तु उन्हें भले-बुरेका ज्ञान नहीं रहता और न उनमें मोक्ष प्राप्त करनेवाला विवेक ही जागृत होता है।

ऋषय ऊचुः ॥ सौम्य यच्च त्वया प्रोक्तं शौरेर्युद्धं महार्णवे ॥ मधुकैटभयोः सार्द्धं पंचवर्षसहस्रकम् ॥ १ ॥ कस्मात्तौ दानवौ जातौ तस्मि-
न्नेकार्णवे जले ॥ महावीर्यौ दुराधर्षौ देवैरपि सुदुर्जयौ ॥ २ ॥ कथं तावसुरौ जातौ कथं च हरिणा हतौ ॥ तदाचक्ष्व महाप्राज्ञ चरितं परमा-
द्भुतम् ॥ ३ ॥ श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वं वक्ता च बहुश्रुतः ॥ दैवाचात्रैव संजातः संयोगश्च तथावयोः ॥४॥ मूर्खेण सह संयोगो विषादपि सुदुर्जरः ॥
विज्ञेन सह संयोगः सुधारससमः स्मृतः ॥ ५ ॥ जीवंति पशवः सर्वे खादंति मेहयन्ति च ॥ जानंति विषयाकारं व्यवायसुखमद्भुतम् ॥ ६ ॥ न
तेषां सदसज्ज्ञानं विवेको न च मोक्षदः ॥ पशुभिस्ते समा ज्ञेया येषां न श्रवणादरः ॥ ७ ॥ मृगाद्याः पशवः केचिज्जानंति श्रावणं सुखम् ॥
अश्रोत्राः फणिनश्चैव मुमुहुर्नादपानतः ॥ ८ ॥ पंचानामिंद्रियाणां वै शुभे श्रवणदर्शने ॥ श्रवणाद्वस्तुविज्ञानं दर्शनाच्चित्तरंजनम् ॥ ९ ॥ श्रवणं
त्रिविधं प्रोक्तं सात्त्विकं राजसं तथा ॥ तामसं च महाभागाः सुज्ञोक्तं निश्चयान्वितम् ॥ १० ॥ सात्त्विकं वेदशास्त्रादि साहित्यं चैव राजसम् ॥
तामसं युद्धवार्ता च परदोषप्रकाशनम् ॥ ११ ॥ सात्त्विकं त्रिविधं प्रोक्तं प्रज्ञावद्भिश्च पण्डितैः ॥ उत्तमं मध्यमं चैव तथैवाधममित्युत ॥ १२ ॥
उत्तमं मोक्षफलदं स्वर्गदं मध्यमं तथा ॥ अधमं भोगदं प्रोक्तं निर्णीय विदितं बुधैः ॥ १३ ॥ साहित्यं चैव त्रिविधं स्वीयायां चोत्तमं स्मृतम् ॥

जिन्हें अच्छी बातें सुननेका शौक नहीं रहता, उन्हें पशु ही समझना चाहिए ॥ ७ ॥ मृग आदि कितने ही पशु श्रवणसुखका आनन्द जानते हैं और श्रवणविहीन सर्प भी बाजेकी ध्वनि सुनकर मस्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ मनुष्यकी पाँच ज्ञानेन्द्रियोंमें श्रवणेन्द्रिय (कान) तथा दर्शनेन्द्रिय (आँख) ये दोनों इन्द्रियाँ शुभ मानी जाती हैं। सुननेसे वस्तुओंका ज्ञान होता तथा देखनेसे मनोरंजन होता है ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! सुज्ञ विद्वानोंका यह निश्चित मत है कि श्रवण तीन प्रकारका होता है—सात्त्विक, राजस तथा तामस ॥ १० ॥ वेदशास्त्रादिका श्रवण सात्त्विक, साहित्य-श्रवण राजस तथा परदोष एवं युद्धसम्बन्धी वार्ताका श्रवण तामस कहलाता है ॥ ११ ॥ सात्त्विक श्रवणको भी विद्वान् पण्डितोंने तीन प्रकारका बताया है। जैसे-उत्तम, मध्यम और अधम ॥१२॥ उत्तम श्रवण मोक्षदायक, मध्यम स्वर्गदायक तथा अधम श्रवणको भोगदायक कहा है। विद्वानोंने भली-भाँति जाँच करके ऐसा निर्णय किया है ॥१३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साहित्य भी उत्तम-मध्यम-अधमभेदसे तीन प्रकारके होते हैं। स्वकीया नायिकाका जिसमें वर्णन हो वह उत्तम, वेश्याओंके वर्णनका साहित्य मध्यम और परस्त्रीवर्णनसम्बन्धी साहित्य अधम कहलाता है ॥ १४ ॥ शास्त्रोंके पारदर्शी विद्वानोंने तामस साहित्यके तीन भेद बताये हैं। उन्होंने किसी आततायी (पापी) के साथ युद्धका वर्णनवाला साहित्य उत्तम बताया है ॥ १५ ॥ कौरव-पाण्डव जैसे शत्रुके साथ युद्धकी वार्ताका वर्णन करनेवाला साहित्य मध्यम तथा अकारण विवाद एवं लड़ाई-झगड़ेका वर्णन करनेवाला साहित्य अधम कहलाता है ॥ १६ ॥ हे महामते ! सभी सुनने योग्य साहित्योंमें पुराण प्रधान है। क्योंकि इन्हें सुननेसे बुद्धि बढ़ती है, अन्तरात्मामें पवित्रता आती है और पापोंका नाश होता है ॥ १७ ॥ अतएव हे महाबुद्धे ! महर्षि द्वैपायन व्यासके मुखारविन्दसे सुने हुए पुराणकी शुभ कथा कहिए ; क्योंकि इससे सब अर्थ एक साथ सध जाते हैं ॥ १८ ॥ सूतजी बोले—हे महाभाग ! आप लोग धन्य हैं। क्योंकि आप पुराण सुनना चाहते हैं और मैं भी धन्य हूँ, क्योंकि उसे कहना चाहता हूँ ॥१९॥ पूर्वकालमें जब प्रलय हो गया और जगत् तथा उसकी

मध्यमं वारयोषायां परोढायां तथाऽधमम् ॥ १४ ॥ तामसं त्रिविधं ज्ञेयं विद्वद्भिः शास्त्रदर्शिभिः ॥ आततायिनियुद्धं यत्तदुत्तममुदाहृतम् ॥ १५ ॥ मध्यमं चापि विद्वेषात्पांडवानां तथाऽरिभिः ॥ अधमं निर्निमित्तं तु विवादे कलहे तथा ॥१६॥ तदत्र श्रवणं मुख्यं पुराणस्य महामते ॥ बुद्धिप्रवर्धनं पुण्यं ततः पापप्रणाशनम् ॥ १७ ॥ तदाख्याहि महाबुद्धे कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ श्रुतां द्वैपायनात्पूर्वं सर्वार्थस्य प्रसाधिनीम् ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ यूयं धन्या महाभागा धन्योऽहं पृथिवीतले ॥ येषां श्रवणबुद्धिश्च ममापि कथने किल ॥ १९ ॥ पुरा चैकार्णवे जाते विलीने भुवनत्रये ॥ शेषपर्यङ्कसुप्ते च देवदेवे जनार्दने ॥ २० ॥ विष्णुकर्णमलोद्भूतौ दानवौ मधुकैटभौ ॥ महाबलौ च तौ दैत्यौ विवृद्धौ सागरे जले ॥२१॥ क्रीडमानौ स्थितौ तत्र विचरंतावितस्ततः ॥ तावेकदा महाकायौ क्रीडासक्तौ महार्णवे ॥ २२ ॥ चिंतामवापतुश्चित्ते भ्रातराविव संस्थितौ ॥ नाकारणं भवेत्कार्यं सर्वत्रैषा परंपरा ॥२३॥ आधेयं तु विनाधारं न तिष्ठति कथंचन ॥ आधाराधेयभावस्तु भाति नो चित्तगोचरः॥२४॥ क्व तिष्ठति जलं चेदं सुखरूपं सुविस्तरम् ॥ केन सृष्टं कथं जातं मग्नावावाञ्जले स्थितौ ॥ २५ ॥ आवां वा कथमुत्पन्नौ केन वोत्पादितावुभौ ॥ पितरौ क्वेति विज्ञानं नास्ति कामं तथावयोः ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं कामयमानौ तौ जग्मतुर्न विनिश्चयम् ॥ उवाच कैटभस्तत्र मधुं पार्श्वे स्थितं जले ॥ २७ ॥ कैटभ-

सब वस्तुयें प्रलयकालीन महासमुद्रके जलमें विलीन हो गयीं और देवदेव विष्णुभगवान शेषशय्यापर सो गये ॥ २० ॥ तब विष्णुभगवानके ही कानोंकी मैलसे मधु-कैटभ नामके दो दानव उत्पन्न हुए और वे बलवान् दैत्य उसी समुद्रके जलमें बढ़ने लगे ॥ २१ ॥ वे विविध प्रकारकी क्रीडायें करते हुए इधर-उधर विचरते थे। इस प्रकार क्रीडापरायण उन दोनों महाकाय भ्राताओंने सोचा कि बिना किसी कारणके कोई कार्य नहीं होता। यह परम्परा प्रायः सर्वत्र पायी जाती है ॥ २२ ॥ २३ ॥ किसी आधारके बिना आधेय (रखा जानेवाला पदार्थ) नहीं रहता। अतएव हमारे मनमें बार-बार आधाराधेय भाव उठता रहता है ॥२४॥ यह सुखस्वरूप विशाल जलराशि किसके आधारपर टिकी हुई है ? इसे किसने बनाया ? यह कैसे बना ? हम दोनों इस जलमें मग्न क्यों रहते हैं ? ॥२५॥ हम दोनों भाई कैसे उत्पन्न हुए और हमें किसने उत्पन्न किया ? हमारे माता-पिता कौन हैं ? यह भी हम नहीं जानते ॥२६॥ सूतजी बोले-इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार तर्क-वितर्क करके भी वे किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके। तब जलके भीतर ही पास बैठा हुआ कैटभ मधुसे बोला ॥ २७ ॥ कैटभने कहा—हे मधो ! हमारे इस प्रकार जलमें स्थित रहनेमें अवश्य किसी महाशक्तिका हाथ है। हे भाई ! हमारी स्थिति उसी अचला शक्तिके बूतेपर है ॥ २८ ॥ उससे समुद्रका सारा जल व्याप्त है और उसीके सहारे यह जल टिका हुआ है। वही परमा देवी हम दोनोंकी स्थितिका कारण है ॥२९॥ वे दोनों परस्पर तर्क-वितर्क करके इस निष्कर्षपर पहुँचकर ज्ञानसम्पन्न हो गये। तब सहसा आकाशसे वाग्बीजस्वरूप मनोहर शब्द उन्हें सुनायी पड़ा ॥ ३० ॥ उन दोनोंने जब वह शब्द हृदयङ्गम कर लिया, तब उन्होंने आकाशमें चमकती हुई बिजली देखी ॥३१॥ तदनन्तर उन्होंने सोचा कि यह मन्त्र ही है। इसमें सन्देह नहीं है और यह सगुण ध्यान ही प्रत्यक्षरूपसे दृष्टिगोचर हुआ है ॥ ३२ ॥ उसके पश्चात् वे दोनों निराहार रहते हुए इन्द्रियोंको अपने वशमें करके और उसी प्रकाशमें मन लगाकर समाधिस्थ भावसे जप और ध्यान करने लगे ॥३३॥ इस प्रकार एक हजार वर्षतक उन्होंने बड़ी कठोर तपस्या की। ऐसा करनेसे वह परमा शक्ति उनपर प्रसन्न हो गयी ॥३४॥

उवाच ॥ मधो वामत्र सलिले स्थातुं शक्तिर्महाबला ॥ वर्तते भ्रातरचला कारणं सा हि मे मता ॥ २८ ॥ तया ततमिदं तोयं तदाधारं च तिष्ठति ॥ सा एव परमा देवी कारणं च तथावयोः ॥ २९ ॥ एवं विबुध्यमानौ तौ चिंताविष्टौ यदाऽसुरौ ॥ तदाकाशे श्रुतं ताभ्यां वाग्बीजं सुमनोहरम् ॥३०॥ गृहीतं च ततस्ताभ्यां तस्याध्यासो दृढः कृतः ॥ तदा सौदामनी दृष्टा ताभ्यां खे चोत्थिता शुभा ॥३१॥ ताभ्यां विचारितं तत्र मंत्रोऽयं नात्र संशयः ॥ तथा ध्यानमिदं दृष्टं गगने सगुणं किल ॥३२॥ निराहारौ जितात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ बभूवतुर्विचिंत्यैव जपध्यानपरायणौ ॥३३॥ एवं वर्षसहस्रं तु ताभ्यां तप्तं महत्तपः ॥ प्रसन्ना परमा शक्तिर्जाता सा परमा तयोः ॥३४॥ खिन्नौ तौ दानवौ दृष्ट्वा तपसे कृतनिश्चयौ ॥ तयोरनुग्रहार्थाय वागुवाचाशरीरिणी ॥३५॥ वरं वां वांछितं दैत्यौ ब्रूतं परमसंमतम् ॥ ददामि परितुष्टाऽस्मि युवयोस्तपसा किल ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा तु तां वाणीं दानवावूचतुस्तदा ॥ स्वेच्छया मरणं देवि वरं नौ देहि सुव्रते ॥ ३७ ॥ वागुवाच ॥ वांछितं मरणं दैत्यौ भवेद्वा मत्प्रसादतः ॥ अजेयौ देवदैत्यैश्च भ्रातरौ नात्र संशयः ॥ ३८ ॥ सूत उवाच ॥ इति दत्तवरौ देव्या दानवौ मददर्पितौ ॥ चक्रतुः सागरे क्रीडां यादोगणसमन्वितौ ॥ ३९ ॥ कालेन कियता विप्रा दानवाभ्यां यदृच्छया ॥ दृष्टः प्रजापतिर्ब्रह्मा पद्मासनगतः प्रभुः ॥४०॥ दृष्ट्वा तु मुदितावास्तां युद्धकामौ महाबलौ ॥ तमूचतु-

तपस्या करनेके दृढ़निश्चयी उन दोनों दानवोंको खिन्न देखकर उनपर कृपा करनेके निमित्त यह आकाशवाणी हुई—॥ ३५ ॥ हे दोनों दैत्यो ! तुम अपना अभिलषित वर माँगो। तुम्हारी तपस्यासे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अतएव मैं तुम्हें वरदान दूँगी ॥३६॥ सूतजी कहते हैं कि आकाशवाणी सुनकर दोनों दैत्योंने कहा—हे देवि ! आप हमें यही वरदान दीजिए कि जब हम चाहें, तभी हमारी मृत्यु हो—अन्यथा नहीं ॥ ३७ ॥ वाणी बोली—हे दैत्यों ! मेरी कृपासे तुम्हारी स्वेच्छा मृत्यु होगी और तुम दोनों भाई सभी देवताओं तथा दैत्योंसे अजेय हो जाओगे ॥३८॥ सूतजी कहते हैं—हे मुनियों ! इस प्रकार उस महाशक्तिसे वरदान पाकर वे दोनों मदोद्धत होकर समुद्रके जलचरोंके साथ विहार करने लगे ॥३९॥ कुछ समय बीतनेके बाद उन दानवोंने कमलके आसनपर विराजमान ब्रह्माजीको देखा ॥ ४० ॥ देखते ही वे दोनों युद्धोत्सुक दानव उनके पास जा पहुँचे और उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा—हे सुव्रत ! आप हमारे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ युद्ध करिए ॥४१॥ यदि ऐसा न कर सकें तो यह कमलासन छोड़कर तत्काल चले जाइए। यदि आप दुर्बल हैं तो आपको इस शुभ आसनपर बैठनेका कोई अधिकार नहीं है ॥४२॥ यह स्थान वीरोंके रहने योग्य है। यदि आप कायर हों तो इसे शीघ्र त्याग दें। उनकी बातें सुनकर प्रजापति ब्रह्मा चिन्तित हो उठे ॥ ४३ ॥ उन दोनों दानवोंको असाधारण वीर तथा बलवान् देखकर ब्रह्माजीने सोचा कि इनके आगे मैं तपस्वी कर ही क्या सकता हूँ ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(ब्रह्माजीके द्वारा देवीकी स्तुति) सूतजी बोले—हे महामुनियो! उन दोनों वीरोंको देखकर राजनीति आदि सभी शास्त्रोंके विज्ञ ब्रह्माजी साम, दाम और भेदसम्बन्धी उपायोंको सोचने लगे ॥ १ ॥ उन्होंने सोचा कि मुझे इनके वास्तविक बलका ज्ञान नहीं है और परपक्षका बल जाने बिना युद्ध अनुपयुक्त होता है ॥ २ ॥ यदि मैं इस समय सामनीतिका अवलम्बन करके

स्तदा तत्र युद्धं नौ देहि सुव्रत ॥ ४१ ॥ नोचेत्पद्मं परित्यज्य यथेष्टं गच्छ माचिरम् ॥ यदि त्वं निर्बलश्चासि क्व योग्यं शुभमासनम् ॥ ४२ ॥ वीरभोग्यमिदं स्थानं कातरोऽसि त्यजाशु वै ॥ तयोरिति वचः श्रुत्वा चिंतामाप प्रजापतिः ॥ ४३ ॥ दृष्ट्वा च बलिनौ वीरौ किं करोमीति तापसः ॥ चिंताविष्टस्तदा तस्थौ चिंतयन्मनसा तदा ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूत उवाच ॥ तौ वीक्ष्य बलिनौ ब्रह्मा तदोपायानचिंतयत् ॥ सामदानभिदादींश्च युद्धांतान्सर्वतंत्रवित् ॥ १ ॥ न जानेऽहं बलं नूनमेतयोर्वा यथातथम् ॥ अज्ञाते तु बले कामं नैव युद्धं प्रशस्यते ॥ २ ॥ स्तुतिं करोमि चेदद्य दुष्टयोर्मदमत्तयोः ॥ प्रकाशितं भवेन्नूनं निर्बलत्वं मया स्वयम् ॥ ३ ॥ वधिष्यति तदैकोऽपि निर्बलत्वे प्रकाशिते ॥ दानं नैवाद्य योग्यं वा भेदः कार्यो मया कथम् ॥ ४ ॥ विष्णुं प्रबोधयाम्यद्य शेषे सुप्तं जनार्दनम् ॥ चतुर्भुजं महावीर्यं दुःखहा स भविष्यति ॥ ५ ॥ इति संचिन्त्य मनसा पद्मनालगतोऽब्जजः ॥ जगाम शरणं विष्णुं मनसा दुःखनाशकम् ॥ ६ ॥ तुष्टाव बोधनार्थं तं शुभैः संबोधनैर्हरिम् ॥ नारायणं जगन्नाथं निस्पंदं योगनिद्रया ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दीनानाथ हरे विष्णो वामनोत्तिष्ठ माधव ॥ भक्तार्त्तिहृत् हृषीकेश सर्वावास जगत्पते ॥ ८ ॥ अन्तर्यामिन्नमेयात्मन्वासुदेव जगत्पते ॥ दुष्टारिनाशनैकाग्रचित्त

इन मतवालोंकी स्तुति करता हूँ तो अपने ही द्वारा अपनी निर्बलता प्रदर्शित हो जाती है ॥३॥ उस परिस्थितिमें तो इनमेंसे अकेला ही कोई मुझे मार डालेगा। कुछ देकर मिलाना या इनमें भेद डालना भी सम्भव नहीं है ॥४॥ अतएव उचित यही है कि मैं शेषशय्यापर सोये हुए पराक्रमी एवं चतुर्भुज विष्णुभगवान्को जगाऊँ। वे ही मेरा दुःख दूर कर सकते हैं ॥५॥ अपने मनमें ऐसा सोचकर कमलयोनि एवं कमलासन ब्रह्माजी मन ही मन दुःखनाशन भगवान् विष्णुके शरणागत हो गये ॥६॥ तदनन्तर वे हरि, नारायण, जगन्नाथ तथा योगनिद्राके वशीभूत होनेके कारण अचेत विष्णुभगवान्की शुभ सम्बोधनोंमें स्तुति करने लगे ॥७॥ ब्रह्माजी बोले—हे दीनानाथ ! हे हरे ! हे विष्णो ! हे वामन ! हे माधव ! हे भक्तार्तिहारिन् ! हे हृषीकेश ! हे सर्वावास ! हे जगत्पते ! हे अन्तर्यामिन् ! हे अमेयात्मन् ! हे वासुदेव ! हे जगत्पते ! हे दुष्ट शत्रुओंका नाश करनेमें एकाग्रचित्त ! हे चक्र-गदाधर ! हे सर्वज्ञ ! हे सर्वलोकेश ! हे सर्वशक्ति-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समन्वित ! हे देवेश ! हे दुःखनाशन ! आप अब उठिए और मेरी रक्षा करिए ॥८–१०॥ हे विश्वम्भर ! हे विशालाक्ष ! हे पुण्यश्रवणकीर्तन ! हे जगत्के रचयिता ! हे निराकार ! हे सृष्टि-स्थिति-विनाशकारिन् ! हे महाराज ! ये दोनों मदोद्धत दैत्य मुझे मार डालना चाहते हैं । हे सर्वाधार ! आप क्या यह बात नहीं जानते कि मैं भयानक संकटमें पड़ा हुआ हूँ ॥११॥१२॥ अतिशय दुखी और शरणमें आये मुझ दीनकी यदि आप उपेक्षा करेंगे तो हे महाविष्णु ! आपका 'पालक' यह विशेषण ही व्यर्थ हो जायगा ॥ १३ ॥ इस प्रकार स्तुति करनेपर भी जब योग-निद्रामें लीन विष्णुभगवान नहीं जागे, तब ब्रह्माजी सोचने लगे—॥१४॥ ये विष्णुभगवान अवश्य उस अलक्ष्य शक्तिके अधीन होकर निद्राके वशीभूत हो गये हैं । इसी कारण ये धर्मात्मा भगवान नहीं जागे हैं। आखिर मैं दुखिया अब क्या करूँ ? ॥१५॥ उधर वे दोनों मदमत्त दानव मुझे मार डालनेके लिए आ पहुँचे हैं। अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? अब तो मेरे लिए कहीं

चक्रगदाधर ॥ ९ ॥ सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वशक्तिसमन्वित ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश दुःखनाशन पाहि माम् ॥ १० ॥ विश्वम्भर विशालाक्ष पुण्यश्र-वणकीर्तन ॥ जगद्योने निराकार सर्गस्थित्यन्तकारक ॥ ११ ॥ इमौ दैत्यौ महाराज हंतुकामौ मदोद्धतौ ॥ न जानास्यखिलाधार कथं मां संकटे गतम् ॥ १२ ॥ उपेक्षसेऽतिदुःखार्तं यदि मां शरणं गतम् ॥ पालकत्वं महाविष्णो निराधारं भवेत्ततः ॥ १३ ॥ एवं स्तुतोऽपि भगवान्न बुबोध यदा हरिः ॥ योगनिद्रासमाक्रांतस्तदा ब्रह्मा ह्यचिंतयत् ॥ १४ ॥ नूनं शक्तिसमाक्रांतो विष्णुर्निद्रावशं गतः ॥ जजागार न धर्मात्मा किं करोम्यद्य दुखितः ॥ १५ ॥ हंतुकामावुभौ प्राप्तौ दानवौ मदगर्वितौ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि नास्ति मे शरणं क्वचित् ॥ १६ ॥ इति संचिंत्य मनसा निश्चयं प्रतिपद्य च ॥ तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ॥ १७ ॥ विचार्य मनसाऽप्येवं शक्तिर्मे रक्षणे क्षमा ॥ यया ह्यचेतनो विष्णुः कृतोऽस्ति स्पंदवर्जितः ॥ १८ ॥ व्यसुर्यथा न जानाति गुणाञ्छब्दादिकानिह ॥ तथा हरिर्न जानाति निद्रामीलितलोचनः ॥ १९ ॥ न जहाति यतो निद्रां बहुधा संस्तुतोऽप्यसौ ॥ मन्ये नास्य वशे निद्रा निद्रयाऽयं वशीकृतः ॥ २० ॥ यो यस्य वशमापन्नः स तस्य किंकरः किल ॥ तस्माच्च योगनिद्रेयं स्वामिनी मापतेर्हरेः ॥ २१ ॥ सिंधुजाया अपि वशे यया स्वामी वशीकृतः ॥ नूनं जगदिदं सर्वं भगवत्या वशीकृतम् ॥ २२ ॥ अहं

कोई सहारा नहीं हैं ॥१६॥ अपने मनमें ऐसा विचार करके वे एक निश्चयपर पहुँचे । तदनुसार एकाग्र चित्तसे भगवती योगनिद्राकी स्तुति करने लगे ॥१७॥ उन्होंने यह समझ लिया कि इस समय एकमात्र महाशक्ति ही मेरी रक्षा कर सकती है। क्योंकि उसीने तो विष्णुभगवानको इस प्रकार अचेत कर रक्खा है॥१८॥ संसारमें जैसे कोई मरा हुआ व्यक्ति शब्दादि गुणोंका अनुभव नहीं कर पाता, उसी प्रकार निद्राके कारण आँखें मूँदकर पड़े हुए विष्णुभगवान भी कुछ नहीं जान पाते ॥१९॥ मेरे अनेकशः स्तुति करनेपर भी ये नहीं जागते। इससे ज्ञात होता है कि निद्रा इनके वशमें नहीं है, प्रत्युत ये स्वयं निद्राके वशमें हो गये हैं ॥ २० ॥ जो जिसके वशमें होता है, वह उसका दास बन जाता है । अतएव इस समय योगनिद्रा ही रमापति विष्णुभगवानकी स्वामिनी हो गयी है॥२१॥ जिसने सिन्धुसुता लक्ष्मीके वशमें रहनेवाले विष्णुभगवानको अपने वशमें कर लिया तो इससे यही ज्ञात होता है कि यह समस्त संसार भगवती-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के वशमें है ।।२२।। मे ब्रह्मा, विष्णु, शंकरजी, सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती, हम सब उनके वशीभूत हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।।२३।। जिसके वशीभूत होकर भगवान विष्णु भी इस प्रकार विवशकी भाँति सो रहे हैं, जैसे कोई साधारण मनुष्य सोता है। तब अन्य महापुरुषोंके विषयमें क्या कहा जाय ? ।। २४ ।। अतएव अब मैं योगनिद्राकी ही स्तुति करूँगा। जिससे छुटकारा पाकर जनार्दन, वासुदेव और सनातन विष्णुभगवान जागकर उन दुष्ट दानवोंके साथ युद्ध करेंगे ।। २५ ।। कमलनालपर विराजमान ब्रह्माजी ऐसा निश्चय करके विष्णुभगवानके अङ्गमें विद्यमान योगनिद्राकी स्तुति करने लगे ।।२६।। ब्रह्माजी बोले—हे देवि ! आप इस जगत्‌की उत्पत्तिमें मूलकारणस्वरूपा हैं। यह बात मुझे वेदवाक्योंसे ज्ञात हुई है। जब कि समस्त विश्वको ज्ञान देनेवाले पुरुषोत्तम भगवान विष्णु भी आपकी प्रेरणासे निद्राके वशीभूत हो गये हैं, तब आपकी प्रभुतापर किसको संशय हो सकता है ।। २७ ।। हे माता ! आपकी मोहमयी विलासलीलाको भला कौन समझ सकता है ? मैं इस लीलासे मूढ़ हो गया हूँ और विष्णुभगवान विवश होकर पड़े सो रहे हैं। हे सब प्राणियोंमें निवास करनेवाली भगवती ! देवताओंमें भी

विष्णुस्तथा शम्भुः सावित्री च रमाप्युमा ।। सर्वे वयं वशे यस्या नात्र किंचिद्विचारणा ।। २३ ।। हरिरप्यवशः शेते यथाऽन्यः प्राकृतो जनः ।। ययाऽभिभूतः का वार्ता किलान्येषां महात्मनाम् ।। २४ ।। स्तौम्यद्य योगनिद्रां वै यया मुक्तो जनार्दनः ।। घटयिष्यति युद्धे च वासुदेवः सनातनः ।। २५ ।। इति कृत्वा मतिं ब्रह्मा पद्मनालस्थितस्तदा ।। तुष्टाव योगनिद्रां तां विष्णोरंगेषु संस्थिताम् ।। २६ ।। ब्रह्मोवाच ।। देवि त्वमस्य जगतः किल कारणं हि ज्ञातं मया सकलवेदवचोभिरम्ब ।। यद्विष्णुरप्यखिललोकविवेककर्ता निद्रावशं च गमितः पुरुषोत्तमोऽद्य ।। २७ ।। को वेद ते जननि मोहविलासलीलां मूढोऽस्म्यहं हरिरयं विवशश्च शेते ।। ईदृक्तया सकलभूतमनोनिवासे विद्वत्तमो विबुधकोटिषु निर्गुणायाः ।। २८ ।। सांख्या वदंति पुरुषं प्रकृतिं च यां तां चैतन्यभावरहितां जगतश्च कर्त्रीम् ।। किं तादृशाऽसि कथमत्र जगन्निवासश्चैतन्यताविरहितो विहितस्त्वयाऽद्य ।।२९।। नाट्यं तनोषि सगुणा विविधप्रकारं नो वेत्ति कोऽपि तव कृत्यविधानयोगम् ।। ध्यायंति यां मुनिगणा नियतं त्रिकालं संध्येति नाम परिकल्प्य गुणा-न्भवानि ।।३०।। बुद्धिर्हि बोधकरणा जगतां सदा त्वं श्रीश्चासि देवि सततं सुखदा सुराणाम् ।। कीर्तिस्तथा मतिधृतौ किल कांतिरेव श्रद्धा रतिश्च सकलेषु जनेषु मातः ।।३१।। नातः परं किल वितर्कशतैः प्रमाणं प्राप्तं मया यदिह दुःखगतिं गतेन ।। त्वं चात्र सर्वजगतां जननीति सत्यं निद्रालुतां वितरता

ऐसा विद्वान् कौन है कि जो आपका भेद समझ सके ।।२८।। सांख्यशास्त्रज्ञ विद्वान् प्रकृति और पुरुषसे इस जगत्‌की उत्पत्ति बताते हैं। इन दोनोंमें वे प्रकृतिको इस चेतनाहीन जड़ जगत्‌की उत्पत्तिका मूल कारण मानते हैं। तो क्या वास्तवमें आप जड़ हैं ? यदि आप ऐसी होतीं तो जगन्निवास भगवान विष्णुको इस प्रकार अचेत कैसे करतीं ।। २९ ।। हे महामाये ! आप सगुण रूप धारण करके विविध प्रकारकी लीलायें करती हैं। आपके कार्यविधानको कोई नहीं जानता। हे भवानी ! इसी कारण मुनिगण 'सन्ध्या' इस नामकी कल्पना करके प्रातः-सायं तथा मध्याह्न इन तीनों कालोंमें आपका सम्यक् ध्यान करते हैं ।। ३० ।। हे देवि ! बुद्धिरूपसे आप सभी संसारी प्राणियोंको ज्ञान प्रदान करती हैं। लक्ष्मीरूपसे आप देवताओंको सदा सुख देती हैं। हे माता ! विश्वके समस्त चराचर प्राणियोंमें आप कीर्ति, मति, धृति, कान्ति, श्रद्धा तथा रतिरूपसे विराजमान रहती हैं ।। ३१ ।। इस समय भयानक कष्टमें पड़कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैंने निद्रावस्थामें अचेत पड़े विष्णु भगवानपर आपकी प्रत्यक्ष महिमा देख ली। इस प्रत्यक्ष प्रमाणको पाकर अब सैकड़ों प्रकारके तर्क-वितर्कसे प्राप्य अनुमानादि प्रमाणोंकी कोई आवश्यकता नहीं दिखायी देती ॥ ३२ ॥ हे देवि ! आप बड़े-बड़े वैदिक विद्वानोंकी तर्कनासे परे हैं। वेद भी आपको भली भाँति नहीं जानते। क्योंकि आखिर वे भी तो आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। आपके ये सभी कार्यकलाप सबको प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं॥३३॥ हे माता ! आपकी समस्त लीलाओंको संसारका कौन बुद्धिमान् प्राणी जानता है? कोई नहीं। मैं ब्रह्मा, विष्णु भगवान्, शंकरजी, सब देवता, तत्त्वज्ञानी मुनिगण और मेरे विज्ञ पुत्र लोग भी आपको नहीं जान सके हैं। अखिल भुवनमें आपका महत्त्व अनिर्वचनीय है ॥३४॥ हे देवि ! यदि यज्ञमें वैदिक विद्वान् होम करते समय आपके 'स्वाहा' इस नामका उच्चारण न करें तो देवता अपना यज्ञभाग न पायें। इससे यह सिद्ध हुआ कि देवताओंको भी वृत्ति आप ही देती हैं ॥ ३५॥ हे भगवती ! दैत्यों द्वारा संकट उपस्थित होनेपर पहले भी आपने हमारी रक्षा की है। उसी तरह इस समय भी मैं भयभीत होकर आपकी शरणमें आया हूँ। हे देवि ! हे वरदे ! मधु और

हरिणाऽत्र दृष्टम् ॥३२॥ त्वं देवि वेदविदुषामपि दुर्विभाव्या वेदोऽपि नूनमखिलार्थतया न वेद॥ यस्मात्त्वदुद्भवमसौ श्रुतिराप्नुवाना प्रत्यक्षमेव सकलं तव कार्यमेतत् ॥३३॥ कस्ते चरित्रमखिलं भुवि वेद धीमान्नाहं हरिर्न च भवो न सुरास्तथाऽन्ये ॥ ज्ञातुं क्षमाश्च मुनयो न ममात्मजाश्च दुर्वाच्य एव महिमा तव सर्वलोके ॥३४॥ यज्ञेषु देवि यदि नाम न ते वदंति स्वाहेति वेदविदुषो हवने कृतेऽपि ॥ न प्राप्नुवंति सततं मखभागधेयं देवास्त्वमेव विबुधेष्वपि वृत्तिदाऽसि ॥ ३५ ॥ त्राता वयं भगवति प्रथमं त्वया वै देवारिसंभवभयादधुना तथैव ॥ भीतोऽस्मि देवि वरदे शरणं गतोऽस्मि घोरं निरीक्ष्य मधुना सह कैटभं च ॥ ३६ ॥ नो वेत्ति विष्णुरधुना मम दुःखमेतज्जाने त्वयात्मविवशीकृतदेहयष्टिः ॥ मुंचादिदेवमथवा जहि दानवेंद्रौ यद्रोचते तव कुरुष्व महानुभावे ॥३७॥ जानंति ये न तव देवि परं प्रभावं ध्यायंति ते हरिहरावपि मंदचित्ताः ॥ ज्ञातं मयाऽद्य जननि प्रकटं प्रमाणं यद्विष्णुरत्यतितरां विवशोऽथ शेते ॥ ३८ ॥ सिन्धूद्भवापि न हरिं प्रतिबोधितुं वै शक्ता पतिं तव वशानुगमद्य शक्त्या ॥ मन्ये त्वया भगवति प्रसभं रमाऽपि प्रस्वापिता न बुबुधे विवशीकृतेव ॥ ३९ ॥ धन्यास्त एव भुवि भक्तिपरास्तवांघ्रौ त्यक्त्वाऽन्यदेवभजनं त्वयि लीनभावाः ॥ कुर्वंति

कैटभ नामके दो भयानक दैत्योंको देखकर मैं बहुत डर गया हूँ ॥३६॥ इस समय विष्णु भगवान भी मुझपर आयी हुई इस महाविपत्तिको नहीं जानते। क्योंकि आपने उनकी देह तथा सभी अवयवोंको विवश कर दिया है। हे महानुभावे ! ऐसी स्थितिमें आप या तो आदिदेव भगवान् विष्णुको छोड़ दें अथवा उन दोनों दैत्योंको मार डालें। इन दोनों कार्योंमेंसे आपको जो रुचे, वही करिए ॥ ३७ ॥ हे देवि ! जो आपकी महिमा नहीं जानते, वे मन्दबुद्धि प्राणी ही विष्णु तथा शिवका ध्यान करते हैं। हे जगज्जननि ! आज मैंने अपनी आँखों आपका वह प्रभाव देख लिया कि जिससे विष्णु भगवान भी अतिशय विवश होकर किस प्रकार पड़े सो रहे हैं ॥ ३८ ॥ समुद्रकन्या लक्ष्मीजी भी अपने पति भगवान विष्णुको नहीं जगा सकतीं। क्योंकि आप आद्या शक्तिने उन्हें विवश करके सुला दिया है। हे भगवती ! मैं तो समझता हूँ कि आपने लक्ष्मीको भी सोनेके लिए विवश कर दिया है। इसी कारण वे अचेत हो गयी हैं ॥ ३९ ॥ हे देवि ! इस संसारमें वे ही लोग धन्य हैं कि जो अन्य देवताओंकी उपासना त्यागकर एकमात्र आपके चरणोंके ध्यानमें लीन हो गये हैं और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आपको कामनायें पूर्ण करनेवाली कामधेनु तथा निखिल जगत्की जननी जानकर भजते हैं ॥४०॥ धी (बुद्धि), कान्ति, कीर्ति और शुभवृत्ति आदि गुण इस समय भगवान विष्णुको त्यागकर कहाँ चले गये ? हे भगवती ! अतिशय मानवती आपकी ही शक्तिसे भगवान् विष्णु इस प्रकार निद्राभिभूत हो गये हैं ॥४१॥ जैसे कोई नट अपने हो बनाये हुए नाट्यमें अभिनय करता रहता है, उसी तरह आप अपने ही द्वारा निर्मित मोहपाशमें पड़ी लीलायें किया करती हैं । आप ही अखिल विश्वकी प्रभवा शक्ति हैं और आपने ही सबकी रचना की है । नवयुगके आरम्भमें आपने पहले विष्णुकी सृष्टि की और सबकी रक्षा करनेके लिए उन्हें निर्मल शक्ति दी । फिर जब सबकी रक्षाका काम पूरा हो गया, तब निद्राविवश करके उन्हें सुला दिया । हे अम्ब ! ठीक ही है, आपको जो अच्छा लगता है वही करती हैं ॥४२॥४३॥ हे भगवति ! यदि आप मेरी सृष्टि करके मुझे नष्ट नहीं कर देना चाहतीं तो यह मौनावलम्बन त्यागकर मुझपर दया करिए अर्थात् कुछ बोलिए । हे भगवति ! आपने इन कालसदृश भयानक दैत्योंको किस लिए प्रकट किया है ? अथवा हे भवानी ! मेरा उपहास करनेके लिए ही तो आपने ऐसा नहीं

देवि भजनं सकलं निकामं ज्ञात्वा समस्तजननीं किल कामधेनुम् ॥ ४० ॥ धीकांतिकीर्तिशुभवृत्तिगुणादयस्ते विष्णोर्गुणास्तु परिहृत्य गताः क्व चाद्य ॥ बंदीकृतो हरिरसौ ननु निद्रयाऽत्र शक्त्या तवैव भगवत्यतिमानवत्याः ॥ ४१ ॥ त्वं शक्तिरेव जगतामखिलप्रभावा त्वन्निर्मितं च सकलं खलु भावमात्रम् ॥ त्वं क्रीडसे निजविनिर्मितमोहजाले नाट्ये यथा विहरते स्वकृतौ नटो वै ॥ ४२ ॥ विष्णुस्त्वया प्रकटितः प्रथमं युगादौ दत्ता च शक्तिरमला खलु पालनाय ॥ त्रातं च सर्वमखिलं विवशीकृतोऽद्य यद्रोचते तव तथाऽम्ब करोषि नूनम् ॥ ४३ ॥ सृष्ट्वाऽत्र मां भगवति प्रविनाशितुं चेन्नेच्छाऽस्ति ते कुरु दयां परिहृत्य मौनम् ॥ कस्मादिमौ प्रकटितौ किल कालरूपौ यद्वा भवानि हसितुं नु किमिच्छसे माम् ॥ ४४ ॥ ज्ञातं मया तव विचेष्टितमद्भुतं वै कृत्वाऽखिलं जगदिदं रमसे स्वतंत्रा ॥ लीनं करोषि सकलं किल मां तथैव हंतुं त्वमिच्छसि भवानि किमत्र चित्रम् ॥ ४५ ॥ कामं कुरुष्व वधमद्य ममैव मातर्दुःखं न मे मरणजं जगदंबिकेऽत्र ॥ कर्ता त्वयैव विहितः प्रथमं स चायं दैत्याहतोऽथ मृत इत्ययशो गरिष्ठम् ॥ ४६ ॥ उत्तिष्ठ देवि कुरु रूपमिहाद्भुतं त्वं मां वा त्विमौ जहि यथेच्छसि बाललीले ॥ नोचेत्प्रबोधय हरिं निहनेदिमौ यस्त्वत्साध्यमेतदखिलं किल कार्यजातम् ॥ ४७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥ निःसृत्य हरिदेहात्तु

किया है ? ॥ ४४ ॥ हाँ, अब मैंने आपकी अद्भुत लीला समझ ली । समस्त विश्वकी रचना करके उसीमें आप स्वेच्छापूर्वक विहार करती हैं और जब चाहती हैं, तब संहार करके उसे फिर अपनेमें समेट लेती हैं । उसी तरह अब आप मेरी सृष्टि करके पुनः नष्टकर डालना चाहती हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ४५ ॥ हे जगदम्बिके ! आपकी यही इच्छा हो तो मुझे मार डालिए । हे माता ! मुझे मरणविषयक दुःखकी कुछ भी चिन्ता नहीं है । चिन्ता तो इस बातकी है कि आदिमें आपने जिसकी सृष्टि की, उसको एक दैत्यने मार डाला । यह बड़ा भारी कलङ्क आपको लगेगा ॥४६॥ हे देवि ! अब अपना अद्भुत रूप धारण करके आप उठें । हे बाललीलाकारिणि ! इच्छा हो तो मुझे मार डालिए या इन दैत्योंको समाप्त कर दीजिए या कि आप विष्णुभगवान्को जगा दें, जिससे कि वे इनको मारें । यह सब काम आप ही कर सकती हैं ॥ ४७ ॥ सूतजी कहते हैं—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर तामसी देवी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विष्णुभगवान्‌के शरीरसे निकलकर उनकी बगलमें जा खड़ी हुईं ॥४८॥ इस प्रकार अतुलित तेजस्वी विष्णुके अङ्गोंको त्यागकर भगवती योगनिद्रा मधु-कैटभको मारनेके लिए चल पड़ीं ॥४९॥ ऐसा करनेसे विष्णुभगवान्‌के शरीरमें कुछ चेतना आयी। उन्हें सचेत होते देखकर ब्रह्माजीको अपार हर्ष हुआ ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

(आराध्य कौन है इसका निर्णय) मुनिगण बोले—हे महाभाग सूत ! इस विषयमें मुझे बहुत बड़ा संदेह है। वेदों, शास्त्रों, पुराणों तथा बुद्धिमानोंने सदासे यह कह रक्खा है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता सनातन हैं। हे महामते ! समस्त ब्रह्माण्डमें इनसे बढ़कर और कोई देवता नहीं है ॥१॥२॥ ब्रह्माजी लोकोंकी सृष्टि करते हैं, विष्णु उसकी रक्षा करते और शिवजी संहार करते हैं। ये ही तीनों इस विश्वकी स्थितिके कारण हैं ॥ ३ ॥ ये तीनों देवता एक मूर्ति और तीन स्वरूप हैं। ये तीनों क्रमशः सत्त्व, रज और तम

संस्थिता पार्श्वतस्तदा ॥ ४८ ॥ त्यक्त्वाऽङ्गानि च सर्वाणि विष्णोरतुलतेजसः ॥ निर्गता योगनिद्रा सा नाशाय च तयोस्तदा ॥ ४९ ॥ विस्पंदितशरीरोऽसौ यदा जातो जनार्दनः ॥ धाता परमिकां प्राप्तो मुदं दृष्ट्वा हरिं ततः ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे विष्णुप्रबोधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥ संदेहोऽत्र महाभाग कथायां तु महाद्भुतः ॥ वेदशास्त्रपुराणैश्च निश्चितं तु सदा बुधैः ॥ १ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवाः सनातनाः ॥ नातः परतरं किंचिद्ब्रह्माण्डेऽस्मिन्महामते ॥ २ ॥ ब्रह्मा सृजति लोकान्वै विष्णुः पात्यखिलं जगत् ॥ रुद्रः संहरते काले त्रय एतेऽत्र कारणम् ॥ ३ ॥ एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ रजःसत्त्वतमोभिश्च संयुताः कार्यकारकाः ॥ ४ ॥ तेषां मध्ये हरिः श्रेष्ठो माधवः पुरुषोत्तमः ॥ आदिदेवो जगन्नाथः समर्थः सर्वकर्मसु ॥ ५ ॥ नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति विष्णोरतुलतेजसः ॥ स कथं स्वापितः स्वामी विवशो योगमायया ॥ ६ ॥ क्व गतं तस्य विज्ञानं जीवतोश्चेष्टितं कुतः ॥ संदेहोऽयं महाभाग कथयस्व यथाशुभम् ॥ ७ ॥ का सा शक्तिः पुरा प्रोक्ता यया विष्णुर्जितः प्रभुः ॥ कुतो जाता कथं शक्ता का शक्तिर्वद सुव्रत ॥ ८ ॥ यस्तु सर्वेश्वरो विष्णुर्वासुदेवो जगद्गुरुः ॥ परमात्मा परमानन्दः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ९ ॥ सर्वकृत्सर्वभृत्स्रष्टा विरजः सर्वगः शुचिः ॥ स कथं निद्रया नीतः परतन्त्रः परात्परः ॥ १० ॥ एतदाश्चर्य-

इन तीनों गुणोंसे पूर्ण हैं ॥ ४ ॥ उनमें वे विष्णुभगवान्, श्रेष्ठ, माधव, पुरुषोत्तम, आदिदेव और जगन्नाथ सब कार्य करनेमें समर्थ हैं ॥५॥ अतुलित तेजस्वी विष्णुके सदृश सर्वसमर्थ देवता और कोई भी नहीं है। ऐसे सबके प्रभुको योगमायाने कैसे सोनेके लिए विवश कर दिया ? ॥६॥ उस समय विष्णुभगवान्‌का विज्ञान कहाँ चला गया ? उनके जीवनकी चेष्टा कहाँ लुप्त हो गयी ? हे महाभाग ! यह बड़े सन्देहका विषय है। कृपया आप ठीक-ठीक बताइए ॥ ७ ॥ वह कौनसी शक्ति है, जिसके विषयमें आप पहले बता चुके हैं कि उसने विष्णुभगवान्‌को भी परास्त कर दिया था ? वह शक्ति कहाँ उत्पन्न हुई थी ? उसमें इतनी शक्ति कहाँसे आयी ? उसमें कौन-सी शक्ति है ? हे सुव्रत ! यह सब आप समझाकर कहिए ॥८॥ सर्वेश्वर विष्णु तो वासुदेव, जगद्गुरु, परमात्मा, परमानन्द तथा सच्चिदानन्दस्वरूप हैं ॥९॥ वे तो सब कुछ करनेमें समर्थ, सबके रक्षक, रचयिता, रजोगुणहीन, सर्वव्यापी और सर्वथा शुचि (पवित्र) हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे परात्पर परमात्मा निद्राके वशीभूत कैसे हो गये ? ॥१०॥ हे परन्तप ! हमको यह बड़ा विस्मयजनक सन्देह है। हे सूत ! हे व्यासशिष्य ! हे महामते ! आप अपने ज्ञानरूपी तलवारसे हमारे इस संशयको काट दीजिए ॥११॥ ऋषियोंके वचन सुनकर सूतजी बोले—हे मुनिगण ! सचराचर त्रिलोकीमें ऐसा कौन व्यक्ति है कि जो आपके इस महान् सन्देहका निवारण करनेमें समर्थ हो ? औरोंकी कौन कहे, साक्षात् ब्रह्माजीके सनातन पुत्र सनकादि मुनि भी इस विषयमें कुछ नहीं कह सकते ॥१२॥ हे मुनिसत्तमगण ! नारद और कपिल सरीखे ज्ञानी भी इस विषयपर मौन रह जाते हैं। तब इस दुर्घट प्रसङ्गमें भला मैं क्या कह सकूँगा ? ॥ १३ ॥ देवताओंमें भगवान् विष्णु सर्वव्यापी और सर्वपालक कहे गये हैं। उन्हींकी प्रेरणासे इस सचराचर विश्वकी उत्पत्ति हुई है ॥ १४ ॥ वे सब परात्पर परमात्माको प्रणाम करके उनकी आराधना करते हैं : वे उनको नारायण, हृषीकेश, वासुदेव और जनार्दनके नामसे पुकारते हैं ॥ १५ ॥ उन्हींको कुछ लोग महादेव, शङ्कर, शशिशेखर, त्रिनेत्र, पञ्चवक्त्र, शूलपाणि और वृषध्वज भी कहते हैं ॥ १६ ॥ सब वेदोंमें वे त्र्यम्बक, कपर्दी, पञ्चवक्त्र और गौरीदेहार्धधारीके नामसे

भूतो हि सन्देहो नः परंतप ॥ छिंधि ज्ञानासिना सूत व्यासशिष्य महामते ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ कः सन्देहं भिनत्त्येनं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ मुह्यन्ति मुनयः कामं ब्रह्मपुत्राः सनातनाः ॥ १२ ॥ नारदः कपिलश्चैव प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः ॥ किं ब्रवीमि महाभागा दुर्घटेऽस्मिन्विमर्शने ॥ १३ ॥ देवेषु विष्णुः कथितः सर्वगः सर्वपालकः ॥ यतो विराडिदं सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् ॥ १४ ॥ ते सर्वे समुपासन्ते नत्वा देवं परात्परम् ॥ नारायणं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम् ॥ १५ ॥ तथा केचिन्महादेवं शङ्करं शशिशेखरम् ॥ त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च शूलपाणिं वृषध्वजम् ॥ १६ ॥ तथा वेदेषु सर्वेषु गीतं नाम्ना त्रियंबकम् ॥ कपर्दिनं पञ्चवक्त्रं गौरीदेहार्धधारिणम् ॥ १७ ॥ कैलासवासनिरतं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ भूतवृन्दयुतं देवं दक्षयज्ञविघातकम् ॥ १८ ॥ तथा सूर्यं वेदविदः सायंप्रातर्दिने दिने ॥ मध्याह्ने तु महाभागाः स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः ॥ १९ ॥ तथा वेदेषु सर्वेषु सूर्योपासनमुत्तमम् ॥ परमात्मेति विख्यातं नाम तस्य महात्मनः ॥ २० ॥ अग्निः सर्वत्र वेदेषु संस्तुतो वेदवित्तमैः ॥ इन्द्रश्चापि त्रिलोकेशो वरुणश्च तथापरः ॥ २१ ॥ यथा गङ्गा प्रवाहैश्च बहुभिः परिवर्तते ॥ तथैव सर्वदेवेषु विष्णुः प्रोक्तो महर्षिभिः ॥ २२ ॥ त्रीण्येव हि प्रमाणानि पठितानि सुपण्डितैः ॥ प्रत्यक्षं चानुमानं च शाब्दं चैव तृतीयकम् ॥ २३ ॥ चत्वार्येवेतरे प्राहुरुपमानयुतानि च ॥ अर्थापत्तियुतान्यन्ये

प्रसिद्ध हैं ॥ १७ ॥ कैलासवासी, सर्वशक्तिसमन्वित, भूतोंकी मण्डलीसे घिरे हुए तथा दक्षयज्ञविध्वंसक शंकर भगवानकी लोग स्तुति करते रहते हैं ॥ १८ ॥ बहुतेरे वेदविद् विद्वान् सायं-प्रातः एवं मध्याह्नके समय विविध प्रकारके स्तोत्रोंसे सूर्यनारायणकी स्तुति करते हैं ॥ १९ ॥ सब वेदोंमें सूर्योपासनाको प्रधानता दी गयी है और उन महात्मा सूर्यको ही परमात्मा कहा गया है ॥ २० ॥ सब वेदोंमें वेदविद् विद्वानोंने स्थान-स्थानपर अग्निकी स्तुति की है। उन्होंने त्रिलोकेश इन्द्र और वरुणकी भी स्तुति की है ॥ २१ ॥ जैसे बहुतेरे प्रवाहोंसे गंगाजीमें परिवर्तन आता है, उसी प्रकार महर्षियोंने विष्णुभगवान्को सर्वश्रेष्ठ देवता कहा है ॥ २२ ॥ अच्छे-अच्छे विद्वानोंने तीन प्रमाणोंको माना है—प्रत्यक्ष, अनुमान और तीसरा शब्दप्रमाण ॥ २३ ॥ नैयायिक विद्वान् चार प्रमाण मानते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द। अत्यधिक बुद्धिमान् मीमांसक विद्वान् उपर्युक्त चारों प्रमाणोंके अतिरिक्त अर्थापत्तिको भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाँचवाँ प्रमाण मानते हैं ॥ २४ ॥ पौराणिक विद्वान् इन पाँचों प्रमाणोंके सिवाय छठें साक्षी और सातवें ऐतिह्यको भी प्रमाण मानते हैं। इस प्रकार पौराणिकोंके मतसे सात प्रमाण हैं। वेदान्ती विद्वान् ब्रह्मको इन सातों प्रमाणोंसे भी परे बताते हैं ॥ २५ ॥ इस विषयमें बुद्धि और शास्त्रों द्वारा विविध प्रकारके तर्क करके निश्चयात्मिका युक्तियों द्वारा पुनः पुनः मनन करना चाहिए ॥ २६ ॥ बुद्धिमान् प्राणियोंको चाहिए कि वे शिष्टमार्गका अनुसरण करनेवाले दृष्टान्तों द्वारा इस प्रत्यक्ष विज्ञानका सदैव चिन्तन करते रहें ॥ २७ ॥ प्रायः सभी विद्वान् और सब पुराण कहते हैं कि ब्रह्माजीमें सृष्टिशक्ति, विष्णुमें पालनशक्ति, शिवमें संहारशक्ति, सूर्यमें प्रकाशशक्ति और शेष तथा कच्छपमें पृथ्वीधारणशक्ति विद्यमान रहती है ॥२८॥२९॥ एकमात्र वे आद्या शक्ति भगवती ही उपर्युक्त देवताओंमें व्याप्त रहती हैं। वे अग्निमें दाहिकाशक्ति तथा वायुमें प्रेरणाशक्ति उत्पन्न करती हैं ॥ ३० ॥ कुण्डलिनी शक्तिके अभावमें शिव भी

पंच प्राहुर्महाधियः ॥ २४ ॥ सप्त पौराणिकाश्चैव प्रवदंति मनीषिणः ॥ एतैः प्रमाणैर्दुर्ज्ञेयं यद्ब्रह्म परमं च तत् ॥ २५ ॥ वितर्कश्चात्र कर्तव्यो बुद्ध्या चैवागमेन च ॥ निश्चयात्मिकया युक्त्या विचार्य च पुनः पुनः ॥ २६ ॥ प्रत्यक्षतस्तु विज्ञानं चिंत्यं मतिमतां सदा ॥ दृष्टान्तेनापि सतत शिष्टमार्गानुसारिणा ॥ २७ ॥ विद्वांसोऽपि वदन्त्येवं पुराणैः परिगीयते ॥ द्रुहिणे सृष्टिशक्तिश्च हरौ पालनशक्तिता ॥ २८॥ हरे संहारशक्तिश्च सूर्ये शक्तिः प्रकाशिका ॥ धराधरणशक्तिश्च शेषे कूर्मे तथैव च ॥ २९ ॥ साऽऽद्या शक्तिः परिणता सर्वस्मिन्या प्रतिष्ठिता ॥ दाहशक्तिस्तथा वह्नौ समीरे प्रेरणात्मिका ॥ ३० ॥ शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः ॥ शक्तिहीनस्तु यः कश्चिदसमर्थः स्मृतो बुधैः ॥ ३१ ॥ एवं सर्वत्र भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं ब्रह्माण्डेऽस्मिन्महातपाः ॥ ३२ ॥ शक्तिहीनं तु निंद्यं स्याद्वस्तुमात्रं चराचरम् ॥ अशक्तः शत्रुविजये गमने भोजने तथा ॥ ३३ ॥ एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते ॥ सोपास्या विविधैः सम्यग्विचार्या सुधिया सदा ॥ ३४ ॥ विष्णौ च सात्त्विकी शक्तिस्तया हीनोऽप्यकर्मकृत् ॥ द्रुहिणे राजसी शक्तिर्यया हीनो ह्यसृष्टिकृत् ॥ ३५ ॥ शिवे च तामसी शक्तिस्तया संहार-कारकः ॥ इत्यूह्यं मनसा सर्वं विचार्य च पुनः पुनः ॥ ३६ ॥ शक्तिः करोति ब्रह्मांडं सा वै पालयतेऽखिलम् ॥ इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चरा-

शव बन जाते हैं। विद्वान् लोग शक्तिहीन प्राणीको ही असमर्थ कहते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार हे महातपस्वियों ! ब्रह्मसे लेकर तृणपर्यन्त स्थावर-जङ्गमात्मक अखिल ब्रह्माण्डमें शक्तिहीन सभी चराचर वस्तु निन्दनीय मानी जाती है। शक्तिहीन मनुष्य शत्रुपर विजय प्राप्त करने, चलने-फिरने और भोजन करनेमें भी असमर्थ रहता है ॥३२॥३३॥ इस प्रकार वह सर्वव्यापका शक्ति ही ब्रह्म कहलाती है। बुद्धिमान् प्राणियोंका कर्तव्य है कि विविध यत्नोंसे वे उस शक्तिकी उपासना करते हुए उसके विषयमें विचार करें ॥३४॥ विष्णुभगवानमें सात्त्विकी शक्ति रहती है। उसके अभावमें वे अकर्मण्य हो जाते हैं। ब्रह्माजीमें राजसी शक्ति रहती है। वह न रहे तो वे सृष्टिकार्य नहीं कर सकते ॥ ३५ ॥ शंकरजीमें तामसी शक्ति रहती है। उसीके बूतेपर वे संहार करते हैं। इन बातोंपर वारम्बार विचार तथा तर्कना करनी चाहिए ॥ ३६ ॥ शक्ति ही अखिल ब्रह्माण्डकी सृष्टि करती है, उसका पालन करती है और वह जब चाहती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, तब इस चराचर जगत्का संहार कर देती है ॥ ३७ ॥ विष्णु, शिव, इन्द्र, ब्रह्म, अग्नि, सूर्य और वरुण ये स्वतः कुछ करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ३८ ॥ उस शक्तिसे समन्वित होनेपर ही ये अपना-अपना कार्य सम्पन्न कर पाते हैं। प्रत्येक कारण और कार्यमें वह शक्ति प्रत्यक्ष दिखायी देती है ॥ ३९ ॥ विद्वानोंने उसे सगुणा और निर्गुणाके भेदसे दो प्रकारका बतलाया है। जिसमें सगुणा शक्तिकी उपासना सकाम पुरुष करते हैं और निर्गुणा शक्तिकी आराधना निष्काम पुरुष करते हैं ॥ ४० ॥ वे शक्ति अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंकी स्वामिनी हैं। यदि उनका विधिवत् पूजन किया जाय तो वे आराधककी सब कामनायें पूर्ण कर देती हैं ॥ ४१ ॥ मायाके चक्करमें पड़कर मूढ़ बने हुए प्राणी उस शक्तिको नहीं जान पाते। बहुतेरे विज्ञ उसे जान करके भी औरोंको भ्रममें डाल देते हैं ॥ ४२ ॥ कुछ मन्दबुद्धि विद्वान् अपने उदरकी पूर्तिके निमित्त कलिसे प्रेरित होकर नाना प्रकारके पाखण्ड फैलाते हैं ॥ ४३॥ हे महाभाग मुनियों ! इस कलियुगमें विविध प्रकारके वेदबहिष्कृत एवं भेदमूलक धर्म उत्पन्न हो जाते हैं। अन्य युगोंमें यह अनर्थ कदापि नहीं होता

चरम् ॥ ३७ ॥ न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः ॥ न सूर्यो वरुणः शक्तः स्वे स्वे कार्ये कथंचन ॥ ३८ ॥ तया युक्ता हि कुर्वंति स्वानि कार्याणि ते सुराः ॥ सैव कारणकार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते ॥ ३९ ॥ सगुणा निर्गुणा सा तु द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां स्वामिनी सा निराकुला ॥ ददाति वांछितान्कामान्पूजिता विधिपूर्वकम् ॥ ४१ ॥ न जानंति जना मूढास्तां सदा माययाऽऽवृताः ॥ जानंतोऽपि नराः केचिन्मोहयंति परानपि ॥४२॥ पंडिताः स्वोदरार्थं वै पाखंडानि पृथक्पृथक् ॥ प्रवर्तयंति कलिना प्रेरिता मंदचेतसः ॥ ४३ ॥ कलावस्मिन्महाभागा नानाभेदसमुत्थिताः ॥ नान्ये युगे तथा धर्मा वेदबाह्याः कथंचन ॥ ४४ ॥ विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः ॥ ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायंतः कमपि ध्रुवम् ॥ ४५ ॥ कामयानाः सदा कामं ते त्रयः सर्वदैव हि ॥ यजंति यज्ञान्विविधान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ४६ ॥ ते वै शक्तिं परां देवीं ब्रह्माख्यां परमात्मिकाम् ॥ ध्यायंति मनसा नित्यं नित्यां मत्वा सनातनीम् ॥ ४७ ॥ तस्माच्छक्तिः सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः ॥ निश्चयः सर्वशास्त्राणां ज्ञातव्यो मुनिसत्तमाः ॥ ४८ ॥ कृष्णाच्छ्रुतं मया चैतत्तेन ज्ञातं तु नारदात् ॥ पितुः सकाशात्तेनापि ब्रह्मणा विष्णुवाक्यतः ॥४९॥ न श्रोतव्यं न मंतव्यमन्येषां वचनं बुधैः ॥ शक्तिरेव सदा सेव्या विद्वद्भिः

॥४४॥ विष्णुभगवान बहुतेरे वर्षों तक उग्र तप करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्माजी और शंकरभगवान भी किसीका ध्यान करते हुए कठोर तपस्या करते हैं ॥४५॥ अपनी नयी-नयी इच्छायें पूर्ण करनेके लिए ब्रह्मा-विष्णु-महेश ये तीनों सदा भाँति-भाँतिके यज्ञ करते रहते हैं ॥४६॥ ये तीनों देवता परा शक्ति एवं ब्रह्मरूपिणी परमात्मिका देवीको नित्या तथा सनातनी समझकर मन ही मन नित्य उनका ध्यान करते हैं ॥ ४७ ॥ हे मुनिसत्तम ! विद्वानोंका यह कर्तव्य है कि वे दृढ़ निश्चयपूर्वक सदा शक्तिकी उपासना करें। यह सब शास्त्रोंका दृढ़ निश्चय है ॥४८॥ मैंने यह निश्चय कृष्ण द्वैपायन व्यासके मुखसे सुना है। व्यासजीने नारदसे सुना, नारदजीने अपने पिता ब्रह्माजीसे सुना और ब्रह्माजीने इसे साक्षात् विष्णुभगवानसे सुना था ॥४९॥ बुद्धिमान् विद्वानोंका यह कर्तव्य है कि और किसीकी बात न सुनें और न उसका मनन ही करें। वे दृढ़ निश्चय करके सदा शक्तिकी उपासना करें। शक्तिहीन प्राणियोंके कार्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो प्रत्यक्ष देखे जाते हैं, किन्तु उनसे कुछ करते-धरते नहीं बनता। अतएव सर्वव्यापिनी शक्तिका ही ध्यान करना चाहिये ॥५०॥५१॥ इति प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

(विष्णुभगवानके हाथों मधु-कैटभका वध) सूतजी कहते हैं—हे मुनिसत्तम ! जगद्गुरु विष्णुभगवानके शरीरसे निद्रा दूर हुई तो उनके नेत्र, मुख, नासिका, भुजा, हृदय तथा छातीसे एक प्रकारका अद्भुत तेज निकला। इस प्रकार उस तेजके रूपमें वे तामसी शक्ति उनके शरीरसे निकलकर आकाशमें जा विराजीं। तब विष्णुभगवान बार-बार जम्हाई लेते हुए उठ बैठे ॥ १ ॥ २ ॥ आँख खुलनेपर उन्होंने भयभीत प्रजापति ब्रह्माको अपने सम्मुख उपस्थित देखा। तब महातेजस्वी विष्णु मेघसदृश गम्भीर वाणीमें बोले ॥३॥ श्रीविष्णुने कहा-हे भगवन् ! हे पद्मज ! आप तप छोड़कर यहाँ किस लिए आये हैं ? आप चिन्तित और भयभीत क्यों हैं ? ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे देव ! आपके कानोंकी मैलसे उत्पन्न भयानक रूपधारी और

कृतनिश्चयैः ॥ ५० ॥ प्रत्यक्षमपि द्रष्टव्यमशक्तस्य विचेष्टितम् ॥ अतः सर्वेषु भूतेषु ज्ञातव्या शक्तिरेव हि ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्रयां संहितायां प्रथमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ सूत उवाच ॥ यदा विनिर्गता निद्रा देहात्तस्य जगद्गुरोः ॥ नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ १ ॥ निःसृत्य गगने तस्थौ तामसी शक्तिरुत्तमा ॥ उदतिष्ठज्जगन्नाथो जृम्भमाणः पुनः पुनः ॥ २ ॥ तदाऽपश्यत्स्थितं तत्र भयत्रस्तं प्रजापतिम् ॥ उवाच च महातेजा मेघगंभीरया गिरा ॥ ३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ किमागतोऽसि भगवंस्तपस्त्यक्त्वाऽत्र पद्मज ॥ कस्माच्चिंतातुरोऽसि त्वं भयाकुलितमानसः ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वत्कर्णमलजौ देव दैत्यौ च मधुकैटभौ ॥ हंतुं मां समुपायातौ घोररूपौ महाबलौ ॥ ५ ॥ भयात्तयोः समायातस्त्वत्समीपं जगत्पते ॥ त्राहि मां वासुदेवाद्य भयत्रस्तं विचेतनम् ॥ ६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तिष्ठाद्य निर्भयो जातस्तौ हनिष्याम्यहं किल ॥ युद्धायाजग्मतुर्मूढौ मत्समीपं गतायुषौ ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वदति देवेशे दानवौ तौ महाबलौ ॥ विचिन्वानावजं चोभौ संप्राप्तौ मदगर्वितौ ॥ ८ ॥ निराधारौ जले तत्र संस्थितौ विगतज्वरौ ॥ तावूचतुर्मदोन्मत्तौ ब्राह्मणं मुनिसत्तमाः ॥ ९ ॥ पलायित्वा समायातः सन्निधावस्य किं ततः ॥ युद्धं कुरु हनिष्यावः पश्यतोऽस्यैव सन्निधौ ॥ १० ॥ पश्चादेनं हनिष्यावः सर्पभोगोपरि स्थितम् ॥ त्वमद्य कुरु संग्रामं दासोऽस्मीति च वा वद ॥ ११ ॥ सूत

महाबली मधु-कैटभ नामके दो दैत्य मुझे मारने आ रहे हैं ॥ ५ ॥ हे जगत्पते ! उन्हींके डरसे मैं आपके पास आया हूँ। हे वासुदेव ! मुझ भयभीत तथा व्याकुल भक्तकी आप रक्षा करिए ॥ ६ ॥ विष्णुभगवान्ने कहा—हे प्रजापते ! आप निर्भय हो जाइए। मैं उन दोनोंका वध करूँगा। उनकी मृत्यु समीप है। तभी वे युद्ध करनेके लिए यहाँ आ रहे हैं ॥ ७ ॥ सूतजी बोले—भगवान देवेश ऐसा कह ही रहे थे कि वे दोनों महाबली तथा मदगर्वित दानव ब्रह्माजीको खोजते हुए वहाँ जा पहुँचे ॥ ८ ॥ हे मुनिसत्तम ! वे उस एकार्णवके जलमें निराधार और निर्भीक भावसे खड़े थे। उन मदोन्मत्त दानवोंने ब्रह्माजीको ललकारते हुए कहा—॥ ९ ॥ तुम भागकर यहाँ इसके पास क्यों चले आये ? अब मेरे साथ युद्ध करो। मैं इसके सामने ही तुम्हें मारूँगा ॥ १० ॥ उसके बाद हम दोनों सर्पशय्यापर सोनेवाले इस अपरिचित पुरुषको भी मार डालेंगे। अब तुम या तो हमारे साथ लड़ो या कि यह कह दो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, तब इस चराचर जगत्का संहार कर देती है ॥ ३७ ॥ विष्णु, शिव, इन्द्र, ब्रह्म, अग्नि, सूर्य और वरुण ये स्वतः कुछ करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ३८ ॥ उस शक्तिसे समन्वित होनेपर ही ये अपना-अपना कार्य सम्पन्न कर पाते हैं। प्रत्येक कारण और कार्यमें वह शक्ति प्रत्यक्ष दिखायी देती है ॥ ३९ ॥ विद्वानोंने उसे सगुणा और निर्गुणाके भेदसे दो प्रकारका बतलाया है। जिसमें सगुणा शक्तिकी उपासना सकाम पुरुष करते हैं और निर्गुणा शक्तिकी आराधना निष्काम पुरुष करते हैं ॥ ४० ॥ वे शक्ति अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंकी स्वामिनी हैं। यदि उनका विधिवत् पूजन किया जाय तो वे आराधककी सब कामनायें पूर्ण कर देती हैं ॥ ४१ ॥ मायाके चक्करमें पड़कर मूढ़ बने हुए प्राणी उस शक्तिको नहीं जान पाते। बहुतेरे विज्ञ उसे जान करके भी औरोंको भ्रममें डाल देते हैं ॥ ४२ ॥ कुछ मन्दबुद्धि विद्वान् अपने उदरकी पूर्तिके निमित्त कलिसे प्रेरित होकर नाना प्रकारके पाखण्ड फैलाते हैं ॥४३॥ हे महाभाग मुनियों ! इस कलियुगमें विविध प्रकारके वेदबहिष्कृत एवं भेदमूलक धर्म उत्पन्न हो जाते हैं। अन्य युगोंमें यह अनर्थ कदापि नहीं होता

चरम् ॥ ३७ ॥ न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः ॥ न सूर्यो वरुणः शक्तः स्वे स्वे कार्ये कथंचन ॥ ३८ ॥ तया युक्ता हि कुर्वंति स्वानि कार्याणि ते सुराः ॥ सैव कारणकार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते ॥ ३९ ॥ सगुणा निर्गुणा सा तु द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां स्वामिनी सा निराकुला ॥ ददाति वांछितान्कामान्पूजिता विधिपूर्वकम् ॥ ४१ ॥ न जानंति जना मूढास्तां सदा मायया॒ऽऽवृताः ॥ जानंतोऽपि नराः केचिन्मोहयंति परानपि ॥४२॥ पंडिताः स्वोदरार्थं वै पाखंडानि पृथक्पृथक् ॥ प्रवर्तयंति कलिना प्रेरिता मंदचेतसः ॥ ४३ ॥ कलावस्मिन्महाभागा नानाभेदसमुत्थिताः ॥ नान्ये युगे तथा धर्मा वेदबाह्याः कथंचन ॥ ४४ ॥ विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः ॥ ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायंतः कमपि ध्रुवम् ॥ ४५ ॥ कामयानाः सदा कामं ते त्रयः सर्वदैव हि ॥ यजंति यज्ञान्विविधान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ४६ ॥ ते वै शक्तिं परां देवीं ब्रह्माख्यां परमात्मिकाम् ॥ ध्यायंति मनसा नित्यं नित्यां मत्वा सनातनीम् ॥ ४७ ॥ तस्माच्छक्तिः सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः ॥ निश्चयः सर्वशास्त्राणां ज्ञातव्यो मुनिसत्तमाः ॥ ४८ ॥ कृष्णाच्छ्रुतं मया चैतत्तेन ज्ञातं तु नारदात् ॥ पितुः सकाशात्तेनापि ब्रह्मणा विष्णुवाक्यतः ॥४९॥ न श्रोतव्यं न मंतव्यमन्येषां वचनं बुधैः ॥ शक्तिरेव सदा सेव्या विद्वद्भिः

॥४४॥ विष्णुभगवान बहुतेरे वर्षों तक उग्र तप करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्माजी और शंकरभगवान भी किसीका ध्यान करते हुए कठोर तपस्या करते हैं ॥४५॥ अपनी नयी-नयी इच्छायें पूर्ण करनेके लिए ब्रह्मा-विष्णु-महेश ये तीनों सदा भाँति-भाँतिके यज्ञ करते रहते हैं ॥४६॥ ये तीनों देवता परा शक्ति एवं ब्रह्मरूपिणी परमात्मिका देवीको नित्या तथा सनातनी समझकर मन ही मन नित्य उनका ध्यान करते हैं ॥ ४७ ॥ हे मुनिसत्तम ! विद्वानोंका यह कर्तव्य है कि वे दृढ़ निश्चयपूर्वक सदा शक्तिकी उपासना करें। यह सब शास्त्रोंका दृढ़ निश्चय है ॥४८॥ मैंने यह निश्चय कृष्ण द्वैपायन व्यासके मुखसे सुना है। व्यासजीने नारदसे सुना, नारदजीने अपने पिता ब्रह्माजीसे सुना और ब्रह्माजीने इसे साक्षात् विष्णुभगवानसे सुना था ॥४९॥ बुद्धिमान् विद्वानोंका यह कर्तव्य है कि और किसीकी बात न सुनें और न उसका मनन ही करें। वे दृढ़ निश्चय करके सदा शक्तिकी उपासना करें। शक्तिहीन प्राणियोंके कार्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो प्रत्यक्ष देखे जाते हैं, किन्तु उनसे कुछ करते-धरते नहीं बनता। अतएव सर्वव्यापिनी शक्तिका ही ध्यान करना चाहिये ॥५०॥५१॥ इति प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

(विष्णुभगवानके हाथों मधु-कैटभका वध) सूतजी कहते हैं—हे मुनिसत्तम! जगद्गुरु विष्णुभगवानके शरीरसे निद्रा दूर हुई तो उनके नेत्र, मुख, नासिका, भुजा, हृदय तथा छातीसे एक प्रकारका अद्भुत तेज निकला। इस प्रकार उस तेजके रूपमें वे तामसी शक्ति उनके शरीरसे निकलकर आकाशमें जा विराजीं। तब विष्णुभगवान बार-बार जम्हाई लेते हुए उठ बैठे ॥ १ ॥ २ ॥ आँख खुलनेपर उन्होंने भयभीत प्रजापति ब्रह्माको अपने सम्मुख उपस्थित देखा। तब महातेजस्वी विष्णु मेघसदृश गम्भीर वाणीमें बोले ॥३॥ श्रीविष्णुने कहा-हे भगवन्! हे पद्मज! आप तप छोड़कर यहाँ किस लिए आये हैं? आप चिन्तित और भयभीत क्यों हैं? ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे देव! आपके कानोंकी मैलसे उत्पन्न भयानक रूपधारी और

कृतनिश्चयैः ॥ ५० ॥ प्रत्यक्षमपि द्रष्टव्यमशक्तस्य विचेष्टितम् ॥ अतः सर्वेषु भूतेषु ज्ञातव्या शक्तिरेव हि ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ सूत उवाच ॥ यदा विनिर्गता निद्रा देहात्तस्य जगद्गुरोः ॥ नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ १ ॥ निःसृत्य गगने तस्थौ तामसी शक्तिरुत्तमा ॥ उदतिष्ठज्जगन्नाथो जृम्भमाणः पुनः पुनः ॥ २ ॥ तदाऽपश्यत्स्थितं तत्र भयत्रस्तं प्रजापतिम् ॥ उवाच च महातेजा मेघगंभीरया गिरा ॥ ३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ किमागतोऽसि भगवंस्तपस्त्यक्त्वाऽत्र पद्मज ॥ कस्माच्चिंतातुरोऽसि त्वं भयाकुलितमानसः ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वत्कर्णमलजौ देव दैत्यौ च मधुकैटभौ ॥ हंतुं मां समुपायातौ घोररूपौ महाबलौ ॥ ५ ॥ भयात्तयोः समायातस्त्वत्समीपं जगत्पते ॥ त्राहि मां वासुदेवाद्य भयत्रस्तं विचेतनम् ॥ ६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तिष्ठाद्य निर्भयो जातस्तौ हनिष्याम्यहं किल ॥ युद्धायाजग्मतुर्मूढौ मत्समीपं गतायुषौ ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वदति देवेशे दानवौ तौ महाबलौ ॥ विचिन्वानावजं चोभौ संप्राप्तौ मदगर्वितौ ॥ ८ ॥ निराधारौ जले तत्र संस्थितौ विगतज्वरौ ॥ तावूचतुर्मदोन्मत्तौ ब्राह्मणं मुनिसत्तमाः ॥ ९ ॥ पलायित्वा समायातः सन्निधावस्य किं ततः ॥ युद्धं कुरु हनिष्यावः पश्यतोऽस्यैव सन्निधौ ॥ १० ॥ पश्चादेनं हनिष्यावः सर्पभोगोपरि स्थितम् ॥ त्वमद्य कुरु संग्रामं दासोऽस्मीति च वा वद ॥ ११ ॥ सूत

महाबली मधु-कैटभ नामके दो दैत्य मुझे मारने आ रहे हैं ॥ ५ ॥ हे जगत्पते! उन्हींके डरसे मैं आपके पास आया हूँ। हे वासुदेव! मुझ भयभीत तथा व्याकुल भक्तकी आप रक्षा करिए ॥ ६ ॥ विष्णुभगवान्ने कहा—हे प्रजापते! आप निर्भय हो जाइए। मैं उन दोनोंका वध करूँगा। उनकी मृत्यु समीप है। तभी वे युद्ध करनेके लिए यहाँ आ रहे हैं ॥ ७ ॥ सूतजी बोले—भगवान देवेश ऐसा कह ही रहे थे कि वे दोनों महाबली तथा मदगर्वित दानव ब्रह्माजीको खोजते हुए वहाँ जा पहुँचे ॥ ८ ॥ हे मुनिसत्तम! वे उस एकार्णवके जलमें निराधार और निर्भीक भावसे खड़े थे। उन मदोन्मत्त दानवोंने ब्रह्माजीको ललकारते हुए कहा—॥ ९ ॥ तुम भागकर यहाँ इसके पास क्यों चले आये? अब मेरे साथ युद्ध करो। मैं इसके सामने ही तुम्हें मारूँगा ॥ १० ॥ उसके बाद हम दोनों सर्पशय्यापर सोनेवाले इस अपरिचित पुरुषको भी मार डालेंगे। अब तुम या तो हमारे साथ लड़ो या कि यह कह दो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि 'मैं तुम्हारा दास हूँ' ॥ ११ ॥ सूतजी बोले—उनके वचन सुनकर जनार्दन विष्णुभगवान्ने कहा—हे दानवश्रेष्ठ ! तुम दोनों मेरे साथ युद्ध करो ॥१२॥ मैं तुम दोनों गर्वीले दानवों का गर्व खर्व करूँगा । हे महाभागो ! हे महाबली दानवों ! यदि इच्छा हो तो आ जाओ ॥१३॥ सूतजी बोले—भगवानके वचन सुनते ही उन दानवोंके नेत्र क्रोधसे लाल हो उठे । निराधार जलमें खड़े वे दोनों तत्काल युद्धके लिए तैयार हो गये ॥ १४ ॥ पहले मधु अतिशय कुपित होकर युद्धके लिए आगे बढ़ा और कैटभ जहाँका तहाँ खड़ा रह गया ॥ १५ ॥ अब वीर पहलवानोंकी तरह विष्णुभगवान् और मधुमें मल्ल युद्ध होने लगा । जब मधु लड़ते-लड़ते थक गया, तब कैटभ लड़ने लगा ॥ १६ ॥ इस प्रकार बारी-बारीसे क्रोधान्ध मधु और कैटभ परम प्रभु विष्णु भगवान्के साथ मल्ल युद्ध करते रहे ॥१७॥ इस युद्धके प्रेक्षक थे ब्रह्माजी और आकाशमें विद्यमान भगवती । बड़ी देर तक युद्ध करनेपर भी वे दानवों हिम्मत नहीं हारे, किंतु

उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुस्तावुवाच जनार्दनः ॥ कुरुतां समरं कामं मया दानवपुंगवौ ॥१२॥ हरिष्यामि मदं चाहं युवयोर्मत्तयोः किल ॥ आगच्छतं महाभागौ श्रद्धा चेद्वां महाबलौ ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा तद्वचनं चोभौ क्रोधव्याकुललोचनौ ॥ निराधारौ जलस्थौ च युद्धोद्युक्तौ बभूवतुः ॥ १४ ॥ मधुश्च कुपितस्तत्र हरिणा सह संयुगम् ॥ कर्तुं प्रचलितस्तूर्णं कैटभस्तु तथा स्थितः ॥ १५ ॥ बाहुयुद्धं तयोरासीन्मल्लयोरिव मत्तयोः ॥ श्रांते मधौ कैटभस्तु संग्राममकरोत्तदा ॥ १६ ॥ पुनर्मधुः कैटभश्च युयुधाते पुनः पुनः ॥ बाहुयुद्धेन रागांधौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १७ ॥ प्रेक्षकस्तु तदा ब्रह्मा देवी चैवांतरिक्षगा ॥ न मम्लतुस्तदा तौ तु विष्णुस्तु ग्लानिमाप्तवान् ॥ १८ ॥ पञ्चवर्षसहस्राणि यदा जातानि युद्धयता ॥ हरिणा चिंतितं तत्र कारणं मरणे तयोः ॥ १९ ॥ पंचवर्षसहस्राणि मया युद्धं कृतं किल ॥ न श्रांतौ दानवौ घोरौ श्रांतोऽहं चैतदद्भुतम् ॥ २० ॥ क्व गतं मे बलं शौर्यं कस्माच्चेमावनामयौ ॥ किमत्र कारणं चिंत्यं विचार्य मनसा त्विह ॥ २१ ॥ इति चिंतापरं दृष्ट्वा हरिं हर्षपराबुभौ ॥ ऊचतुस्तौ मदोन्मत्तौ मेघगंभीरनिःस्वनौ ॥ २२ ॥ तव नोचेद्बलं विष्णो यदि श्रांतोऽसि युद्धतः ॥ ब्रूहि दासोऽस्मि वां नूनं कृत्वा शिरसि चांजलिम् ॥ २३ ॥ न चेद्युद्धं कुरुष्वाद्य समर्थोऽसि महामते ॥ हत्वा त्वां निहनिष्यावः पुरुषं च चतुर्मुखम् ॥ २४॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा तद्वा-

विष्णुभगवानका मुख कुम्हलाने लगा ॥१८॥ इस प्रकार युद्ध करते-करते जब पाँच हजार वर्ष बीत गये, तब भगवान विष्णु उनके न मरनेका कारण सोचने लगे ॥१९॥ उन्होंने विचार किया कि मैंने पाँच हजार वर्ष तक इनके साथ युद्ध किया, किंतु ये भयानक दानव नहीं थके और मैं थक गया । यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है ॥२०॥ मेरा वह बल और वह पराक्रम कहाँ चला गया ? मुझसे युद्ध करके भी ये सकुशल क्यों हैं ? इन कारणोंपर अब मुझे भलीभाँति विचार करना होगा ॥ २१ ॥ भगवान्को इस प्रकार चिन्तित देखकर वे दोनों मदोन्मत्त दानव बहुत प्रसन्न हुए और मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—हे विष्णो ! यदि अब शरीरमें बल न रह गया हो और थक गये हों तो मस्तकपर हाथ जोड़कर कह दीजिए कि मैं तुम दोनोंका दास हूँ ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसके विपरीत यदि सामर्थ्य हो तो हे महामते ! फिर मेरे साथ लड़िए । आज मैं आपको मारकर इस चार मुखवाले व्यक्तिको भी मार डालूँगा ॥२४॥ सूतजी बोले—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस महासमुद्रमें विद्यमान महामनस्वी विष्णुभगवान् उन दोनोंके वचन सुनकर सान्त्वनापूर्ण वाणीमें बोले ॥ २५ ॥ विष्णुने कहा—यह सनातन नियम है कि थके हुए, भयभीत, शस्त्र त्यागे हुए, पतित तथा बालकपर वीर लोग प्रहार नहीं करते ॥ २६ ॥ यहाँ मैंने पाँच हजार वर्षों तक युद्ध किया। मैं अकेला हूँ तथा तुम दो भाई हो और दोनों ही समान बली हो ॥ २७ ॥ बीच-बीचमें तुमने कई बार विश्राम किया है। उसी प्रकार मैं भी थोड़ा विश्राम करके फिर लड़ूँगा। इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ थोड़ी देर तुम दोनों मतवाले वीर ठहर जाओ, तबतक विश्राम करके मैं न्यायमार्गसे फिर तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा ॥ २९ ॥ सूतजी बोले—विष्णुभगवानके वचन सुनकर दोनों दानव उनकी बातपर विश्वास करके पुनः युद्धकी अभिलाषा करते हुए तनिक दूर जाकर बैठ गये ॥ ३० ॥ उनको काफी दूर बैठे देखकर चतुर्भुज विष्णुभगवान उनके मरणके कारणपर विचार करने लगे ॥ ३१ ॥ कुछ देर विचार

षितं विष्णुस्तयोस्तस्मिन्महोदधौ ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं सामपूर्वं महामनाः ॥ २५ ॥ हरिरुवाच ॥ श्रांते भीते त्यक्तशस्त्रे पतिते बालके तथा ॥ प्रहरंति न वीरास्ते धर्म एष सनातनः ॥ २६ ॥ पंचवर्षसहस्राणि कृतं युद्धं मया त्विह ॥ एकोऽहं भ्रातरौ वां च बलिनौ सदृशौ तथा ॥ २७ ॥ कृतं विश्रमणं मध्ये युवाभ्यां च पुनः पुनः ॥ तथा विश्रमणं कृत्वा युध्येऽहं नात्र संशयः ॥ २८ ॥ तिष्ठतां हि युवां तावद्बलवंतौ मदोत्कटौ ॥ विश्रम्याहं करिष्यामि युद्धं वा न्यायमार्गतः ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य विश्रब्धौ दानवोत्तमौ ॥ संस्थितौ दूरतस्तत्र संग्रामे कृतनिश्चयौ ॥ ३० ॥ अतिदूरे च तौ दृष्ट्वा वासुदेवश्चतुर्भुजः ॥ दध्यौ च मनसा तत्र कारणं मरणे तयोः ॥ ३१ ॥ चिंतनाज्ज्ञानमुत्पन्नं देवीदत्त-वरावुभौ ॥ कामं वांछितमरणौ न म्लतुरतस्त्विमौ ॥ ३२ ॥ वृथा मया कृतं युद्धं श्रमोऽयं मे वृथा गतः ॥ करोमि च कथं युद्धमेवं ज्ञात्वा विनिश्चयम् ॥ ३३ ॥ अकृते च तथा युद्धे कथमेतौ गमिष्यतः ॥ विनाशं दुःखदौ नित्यं दानवौ वरदर्पितौ ॥ ३४ ॥ भगवत्या वरो दत्तस्तया सोऽपि च दुर्घटः ॥ मरणं चेच्छया कामं दुःखितोऽपि न वांछति ॥ ३५ ॥ रोगग्रस्तोऽपि दीनोऽपि न मुमूर्षति कश्चन ॥ कथं चेमौ मदोन्मत्तौ मर्तुकामौ भविष्यतः ॥ ३६ ॥ नन्वद्य शरणं यामि विद्यां शक्तिं सुकामदाम् ॥ विना तया न सिध्यंति कामाः सम्यक्प्रसन्नया ॥ ३७ ॥

करनेपर उन्हें ज्ञात हुआ कि इन दोनोंको देवीसे वरदान प्राप्त है। अतएव ये इच्छामृत्यु हैं। इसी कारण ये मेरे मारे नहीं मरते ॥३२॥ यह ज्ञात होनेपर भगवान सोचने लगे कि ऐसा था तो मैंने इतने दिन व्यर्थ इनके साथ युद्ध किया और मेरा प्रयास भी व्यर्थ हो गया। इस बातको जानकर भी फिर कैसे युद्ध करूँ ? ॥ ३३ ॥ और यदि मैं युद्ध न भी करूँ तो ये दोनों यहाँसे कैसे हटेंगे ? यदि इनका नाश न होगा तो ये वरदर्पित दानव नित्य सबको दुःख देते रहेंगे ॥ ३४ ॥ देवीने इन्हें जो वर दे रक्खा है, उसका पूरा होना बहुत कठिन है। क्योंकि अतिशय दुःखित प्राणी भी अपनी इच्छासे अपनी मृत्यु नहीं चाहता ॥ ३५ ॥ रोगी और निर्धन व्यक्ति भी नहीं मरना चाहता। तब ये दोनों मदमत्त दानव अपनी इच्छासे कैसे मरना चाहेंगे ? ॥ ३६ ॥ अच्छा, अब मैं सब कामनायें पूर्ण करनेवाली विद्याशक्तिकी शरणमें जाऊँगा। बिना उन भगवतीके भलीभाँति प्रसन्न हुए कामनायें पूर्ण नहीं होने आतीं ॥ ३७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐसा विचार करते ही भगवानने अन्तरिक्षमें विराजमान मनोहरा, शिवा एवं योगनिद्रा भगवतीको देखा ॥ ३८ ॥ अब अमेयात्मा एवं योगतत्त्वज्ञ विष्णुभगवान् उन दोनों दानवोंके विनाशार्थ उन वरदायिनी तथा भुवनेश्वरी भगवतीकी स्तुति करने लगे ॥ ३९ ॥ विष्णुभगवान् बोले—हे देवि ! हे महामाये ! हे सृष्टि एवं संहार करनेवाली भगवती ! हे आदि-अंतरहित ! हे चण्डि ! हे भुक्ति-मुक्तिप्रदे ! हे शिवे ! आपको पुनः पुनः नमस्कार है ॥४०॥ हे माता ! मैं आपके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानता कि वह सगुण है या निर्गुण । तब भला मैं आपकी असंख्य लीलाओंको कैसे जान सकूँगा ॥ ४१ ॥ अब मुझे आपके अति दुर्घट प्रभावका ज्ञान हो चुका है, आपके द्वारा प्रेरित निद्रामें लीन होकर मैं अचेत हो गया था ॥ ४२ ॥ बड़े यत्नसे ब्रह्माने मुझे बार-बार जगाया, फिर भी मैं नहीं जागा । क्योंकि उस समय मेरी छहों इन्द्रियाँ संकुचित हो गयी थीं ॥ ४३ ॥ हे अम्बिके ! आपके प्रभावसे मैं इस प्रकार अचेत हो गया था । जब आपने अपना वह प्रभाव हटा लिया तो मैं जाग गया और इन दानवोंके साथ बहुत तरहका युद्ध किया ॥ ४४ ॥ युद्ध करते-करते मैं तो थक गया, किन्तु वे नहीं थके ।

एवं संचिंत्यमानस्तु गगने संस्थितां शिवाम् ॥ अपश्यद्भगवान्विष्णुर्योगनिद्रां मनोहराम् ॥ ३८ ॥ कृतांजलिरमेयात्मा तां च तुष्टाव योगवित् ॥ विनाशार्थं तयोस्तत्र वरदां भुवनेश्वरीम् ॥ ३९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नमो देवि महामाये सृष्टिसंहारकारिणि ॥ अनादिनिधने चंडि भुक्तिमुक्तिप्रदे शिवे ॥ ४० ॥ न ते रूपं विजानामि सगुणं निर्गुणं तथा ॥ चरित्राणि कुतो देवि संख्यातीतानि यानि ते ॥ ४१ ॥ अनुभूतो मया तेऽद्य प्रभावश्चातिदुर्घटः ॥ यदहं निद्रया लीनः संजातोऽस्मि विचेतनः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणा चातियत्नेन बोधितोऽपि पुनः पुनः ॥ न प्रबुद्धः सर्वथाऽहं संकोचितषडिंद्रियः ॥ ४३ ॥ अचेतनत्वं संप्राप्तः प्रभावात्तव चांबिके ॥ त्वया मुक्तः प्रबुद्धोऽहं युद्धं च बहुधा कृतम् ॥ ४४ ॥ श्रांतोऽहं न च तौ श्रांतौ त्वया दत्तवरौ वरौ ॥ ब्रह्माणं हंतुमायातौ दानवौ मदगर्वितौ ॥ ४५ ॥ आहूतौ च मया कामं द्वंद्वयुद्धाय मानदे ॥ कृतं युद्धं महाघोरं मया ताभ्यां महार्णवे ॥ ४६ ॥ मरणं वरदानं ते ततो ज्ञातं महाद्भुतम् ॥ ज्ञात्वाऽहं शरणं प्राप्तस्त्वामद्य शरणप्रदाम् ॥ ४७ ॥ साहाय्यं कुरु मे मातः खिन्नोऽहं युद्धकर्मणा ॥ दृप्तौ तौ वरदानेन तव देवार्तिनाशने ॥ ४८ ॥ हंतुं मामुद्यतौ पापौ किं करोमि क्व यामि च ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी स्मितपूर्वमुवाच ह ॥ ४९ ॥ प्रणमंतं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम् ॥ देवदेव हरे विष्णो कुरु युद्धं पुनः स्वयम् ॥ ५० ॥ वंचयित्वा त्विमौ शूरौ हंतव्यौ च

क्योंकि उन्हें आपका वरदान प्राप्त है । इसी कारण वे घमण्डी होकर ब्रह्माजीको मारने आये हैं ॥ ४५ ॥ हे मानदायिनी ! उन्हें मैंने द्वन्द्वयुद्धके लिए चुनौती दी और इस महासागरमें मैंने उनके साथ भयानक युद्ध किया ॥ ४६ ॥ बादमें मुझे ज्ञात हुआ कि उन्हें आपने महान् अद्भुत वरदान दे रक्खा है । यह ज्ञात होनेपर मैं आप शरणदायिनीकी शरणमें आया हूँ ॥ ४७ ॥ हे माता ! अब आप मेरी सहायता करिए । युद्ध करते-करते मैं बहुत खिन्न हो चुका हूँ । हे देवताओंका संकट काटनेवाली भगवती ! आपके वरदानसे वे बड़े उद्धत हो गये हैं । हे देवी ! वे दोनों पापी मुझे मार डालना चाहते हैं । अब क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? विष्णुभगवानके आर्त वचन सुन और उन्हें प्रणाम करते देखकर भगवती मुसकाती हुई बोलीं—हे देवदेव ! हे विष्णो ! आप फिर उनसे युद्ध करिए ॥ ४८–५० ॥ आप उन्हें मोहमें डालकर छलसे मार डालिए । इधर मैं अपनी वक्रदृष्टिसे उन्हे मोहित करूँगी । हे नारायण !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब इन्हें मैं अपनी मायासे मोहित कर दूँ, तब आप तुरन्त इनको मार डालिए । सूतजी बोले—विष्णुभगवान देवीके प्रीतिरसपरिपूर्ण वचन सुनकर तत्काल महासमुद्रवर्ती युद्धस्थलमें जा पहुँचे । उसी समय वे दोनों युद्धलोलुप दानव भी वहाँ आ गये ।।५१-५३।। विष्णुको अपने समक्ष उपस्थित देखकर मधु-कैटभ बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे–हे महाकाम ! हे चतुर्भुज ! आइए, हमारे साथ युद्ध करिए ।।५४।। जय और पराजय दैवाधीन है । कभी बलवान् जीतता है तो भाग्यवश कभी-कभी दुर्बल भी विजयी हो सकता है ।। ५५ ।। इस लिए महान् आत्मा-वाले पुरुष जय-पराजयमें हर्ष-शोक नहीं करते । पूर्वकालमें दानवोंके वैरी बनकर आपने बहुतेरे दैत्योंको जीता है ।। ५६ ।। किन्तु इस समय हम दोनों भ्राताओंके साथ होते हुए इस युद्धमें आप हार गये । सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे दोनों विशालबाहु दानव युद्धके लिए आ डटे ।। ५७ ।। अवसर देखकर अद्भुतकर्मा भगवान विष्णुने बड़ी फुर्तीके साथ एक मुक्का मारा ।

विमोहितौ ।। मोहयिष्याम्यहं नूनं दानवौ वक्रया दृशा ।।५१।। जहि नारायणाशु त्वं मम मायाविमोहितौ ।। सूत उवाच ।। तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णु-स्तस्याः प्रीतिरसान्वितम् ।। ५२ ।। संग्रामस्थलमासाद्य तस्थौ तत्र महार्णवे ।। तदायातौ च तौ वीरौ युद्धकामौ महाबलौ ।। ५३ ।। वीक्ष्य विष्णुं स्थितं तत्र हर्षयुक्तौ बभूवतुः ।। तिष्ठ तिष्ठ महाकाम कुरु युद्धं चतुर्भुज ।। ५४ ।। दैवाधीनौ विदित्वाऽद्य नूनं जयपराजयौ ।। सबलो जयमाप्नोति दैवाज्जयति दुर्बलः ।। ५५ ।। सर्वथैव न कर्तव्यौ हर्षशोकौ महात्मना ।। पुरा वै बहवो दैत्या जिता दानववैरिणा ।। ५६ ।। अधुना चावयोः सार्धं युध्यमानः पराजितः ।। सूत उवाच ।। इत्युक्त्वा तौ महाबाहू युद्धाय समुपस्थितौ ।।५७।। वीक्ष्य विष्णुर्जघानाशु मुष्टिनाऽद्भुतकर्मणा ।। तावप्यति-बलोन्मत्तौ जघ्नतुर्मुष्टिना हरिम् ।। ५८ ।। एवं परस्परं जातं युद्धं परमदारुणम् ।। युध्यमानौ महावीर्यौ दृष्ट्वा नारायणस्तदा ।। ५६ ।। अपश्य-त्संमुखं देव्याः कृत्वा दीनां दृशं हरिः ।। तं वीक्ष्य तादृशं विष्णुं करुणारससंयुतम् ।। ६० ।। जहासातीव ताम्राक्षी वीक्षमाणा तदाऽसुरौ ।। तौ जघान कटाक्षैश्च कामबाणैरिवापरैः ।।६१।। मन्दस्मितयुतैः कामं प्रेमभावयुतैरनु ।। दृष्ट्वा मुमुहतुः पापौ देव्या वक्त्रं विलोकयन् ।।६२।। विशेषमिति मन्वानौ कामबाणातिपीडितौ ।। वीक्षमाणौ स्थितौ तत्र तां देवीं विशदप्रभाम् ।। ६३ ।। हरिणाऽपि च तद्दृष्टं देव्यास्तत्र चिकीर्षितम् ।। मोहितौ

अतिशय बलोन्मत्त उन दानवोंने भी भगवानपर मुक्केका प्रहार किया । इस प्रकार उन दोनोंमें अति भयंकर युद्ध होने लगा । जब वे दोनों महावली दैत्य मिलकर भगवानको मारने लगे, तब भगवान विष्णुने बड़ी कातर दृष्टिसे भगवतीकी ओर निहारा । सूतजीने कहा—भगवान विष्णुकी वह करुणाजनक दशा देखकर वे लाल-लाल नेत्रोंवाली भगवती उन दोनों वीरोंकी ओर देखकर बहुत जोरसे हँसने लगीं । उस अट्टहाससे उनका ध्यान देवीकी ओर आकृष्ट हुआ और भगवतीने अन्य कामबाणोंकी तरह भीषण कटाक्षबाणोंसे उन्हें मार डाला ।। ५८–६१ ।। अब वे मन्द मन्द मुसकाती हुई उनके मनमें कामवासना जगाने लगीं । वे दोनों महामायाका वह अनुपम मुख देखते हुए मोहित हो गये ।। ६२ ।। वे अपनेको उनका विशेष कृपापात्र समझकर कामबाणसे अतिशय पीड़ित हो और उनकी तरफ एकटक निहारते हुए जहाँके तहाँ खड़े रह गये ।। ६३ ।। उसी समय विष्णुभगवानने भगवतीका अभिप्राय समझ लिया ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपना काम बनानेमें निपुण विष्णुभगवानने जब मधु-कैटभको भगवतीके रूपपर आसक्त समझा ॥ ६४ ॥ तब मेघसदृश गम्भीर वाणीमें मृदु वचनों द्वारा उनका उपहास करते हुए बोले—हे वीरों ! तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर माँगो ॥ ६५ ॥ तुम दोनोंके युद्धसे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अतएव मैं तुम्हें इच्छित वरदान दूँगा। पूर्वकालमें युद्ध करते समय मैंने बहुतेरे दानव देखे थे ॥ ६६ ॥ तुम दोनोंके समान वीर न मैंने कभी देखा और न सुना ही है। तुम्हारे अपरिमित बलको देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ६७ ॥ हे महाबलो वीरों ! मैं तुम दोनों भाइयोंकी इच्छा पूर्ण करूँगा। विष्णुभगवानके वचन सुनकर कमलकी तरह खिले नेत्रोंवाले वे कामपोडित असुर समस्त जगत्को आनन्दित करनेवाली महामायाकी तरफ निहारकर भगवान विष्णुसे बोले—॥ ६८ ॥ ६९ ॥ हे हरे ! हम याचक नहीं हैं, तब आप हमें क्या देंगे ? हाँ, हम अलबत्ते आपको दे सकते हैं। हे देवेश ! हम दाता हैं, भिक्षुक

तौ परिज्ञाय भगवान्कार्यवित्तमः ॥ ६४ ॥ उवाच तौ हसन् श्लक्ष्णं मेघगंभीरया गिरा ॥ वरं वरयतां वीरौ युवयोर्योऽभिवांछितः ॥ ६५ ॥ ददामि परमप्रीतो युद्धेन युवयोः किल ॥ दानवा बहवो दृष्टा युध्यमाना मया पुरा॥६६॥ युवयोः सदृशः कोऽपि न दृष्टो न च वै श्रुतः ॥ तस्मात्तुष्टोऽस्मि कामं वै निस्तुलेन बलेन च ॥ ६७ ॥ भ्रात्रोश्च वांछितं कामं प्रयच्छामि महाबलौ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोः साभिमानौ स्मरातुरौ ॥ ६८ ॥ सूत उवाच ॥ वीक्षमाणौ महामायां जगदानन्दकारिणीम् ॥ तमूचतुश्च कामार्तौ विष्णुं कमललोचनौ ॥ ६९ ॥ हरे न याचकावावां त्वं किं दातुमिहेच्छसि ॥ ददावतुल्यं देवेश दातारौ नौ न याचकौ ॥ ७० ॥ प्रार्थय त्वं हृषीकेश मनोऽभिलषितं वरम् ॥ तुष्टौ स्वस्तव युद्धेन वासुदेवाद्भुतेन च ॥ ७१ ॥ तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्दनः ॥ भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥ ७२ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोर्दानवौ चातिविस्मितौ ॥ वंचिताविति मन्वानौ तस्थतुः शोकसंयुतौ ॥ ७३ ॥ विचार्य मनसा तौ तु दानवौ विष्णुमूचतुः ॥ प्रेक्ष्य सर्वं जलमयं भूमिं स्थलविवर्जितम् ॥ ७४ ॥ हरे योऽयं वरो दत्तस्त्वया पूर्वं जनार्दन ॥ सत्यवागसि देवेश देहि तं वांछितं वरम् ॥ ७५ ॥ निर्जले विपुले देशे हनस्व मधुसूदन ॥ वध्यावावां तु भवतः सत्यवाग्भव माधव ॥७६॥ स्मृत्वा चक्रं तदा विष्णुस्तावुवाच हसन्हरिः ॥ हन्म्यद्य वां महाभागौ निर्जले विपुले

नहीं ॥ ७० ॥ हे हृषीकेश ! आप अपना अभिलषित वर हमसे माँगिए। आपके युद्धरूपी स्तोत्रसे हम आपपर प्रसन्न हैं ॥ ७१ ॥ उन दोनोंके वचन सुनकर भगवान विष्णुने जवाब दिया कि यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो मुझे यही वरदान दो कि तुम मेरे हाथों मारे जाओ ॥ ७२ ॥ विष्णुभगवानके वचन सुनकर दोनों भाई बहुत विस्मित हुए और अपनेको विष्णुके द्वारा ठगा हुआ जानकर शोकाकुल हो उठे ॥ ७३ ॥ तदनन्तर भलीभाँति मनमें विचार करके और चारों ओर केवल जल देखकर उन्होंने भगवान विष्णुसे कहा—॥ ७४ ॥ हे हरे ! हे जनार्दन ! पहले आपने हम दोनोंको जो वरदान देनेके लिए कहा था, अब सत्यवादी होकर आप अपना वह वचन पूरा करिए ॥ ७५ ॥ हे मधुसूदन ! आप हमें किसी निर्जल प्रदेशकी लम्बी-चौड़ी भूमिपर मारिए तो हम मर जायँगे। हे माधव ! अब अपनी वाणी आप सत्य करिए ॥७६॥ तब विष्णुभगवानने अपने सुदर्शन चक्रका स्मरण करके उन दैत्योंसे हँसते हुए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा–हे महाभागो! आज ही मैं तुम दोनोंको निर्जल प्रदेशकी विस्तृत भूमिपर ही मारूँगा ॥७७॥ ऐसा कहकर देवदेवेश विष्णुभगवानने अपनी दोनों जाँघें खूब विस्तृत करके उन दानवोंको जलके ऊपर ही निर्जल स्थान दिखाया ॥ ७८ ॥ और उनसे कहा—हे दानवो! यहाँ जल नहीं है। अतएव इसी स्थानपर तुम दोनों अपना-अपना मस्तक त्याग दो। ऐसा करनेसे आज ही हम और तुम दोनों अपना वचन सत्य कर दिखायेंगे ॥ ७९ ॥ विष्णुके सत्य वचन सुन और अपने मनमें कुछ विचारकर उन दोनोंने अपना शरीर बढ़ाकर हजार-हजार योजन विस्तृत कर लिया ॥८०॥ तब भगवानने भी अपनी जाँघोंको बढ़ाकर दो-दो हजार योजन विस्तृत कर दिया। यह देखकर उन दोनों दैत्योंको बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु वचन सत्य करनेके लिए उन्होंने अपनी गर्दन उनकी उस विशाल जंघापर रख दी ॥ ८१ ॥ उसी समय प्रतापी विष्णुने अपने सुदर्शन चक्रसे उनका मस्तक काट लिया ॥ ८२ ॥ जिससे दोनों दानव मधु और

स्थले ॥ ७७ ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेश ऊरू कृत्वाऽतिविस्तरौ ॥ दर्शयामास तौ तत्र निर्जलं च जलोपरि ॥ ७८ ॥ नास्त्यत्र दानवौ वारि शिरसी मुंचतामिह ॥ सत्यवागहमद्यैव भविष्यामि च वां तथा ॥ ७९ ॥ तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं विचिंत्य मनसा च तौ ॥ वर्धयामासतुर्देहं योजनानां सहस्रकम् ॥ ८० ॥ भगवान्द्विगुणं चक्रे जघनं विस्मितौ तदा ॥ शीर्षे संदधतां तत्र जघने परमाद्भुते ॥ ८१ ॥ रथांगेन तदा छिन्ने विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ जघनोपरि वेगेन प्रकृष्टे शिरसी तयोः ॥ ८२ ॥ गतप्राणौ तदा जातौ दानवौ मधुकैटभौ ॥ सागरः सकलो व्याप्तस्तदा वै मेदसा तयोः ॥ ८३ ॥ मेदिनीति ततो जातं नाम पृथ्व्याः समंततः ॥ अभक्ष्या मृत्तिका तेन कारणेन मुनीश्वराः ॥ ८४ ॥ इति वः कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽस्मि सुनिश्चितम् ॥ महाविद्या महामाया सेवनीया सदा बुधैः ॥ ८५ ॥ आराध्या परमा शक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ नातः परतरं किंचिदधिकं भुवनत्रये ॥ ८६ ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वेदशास्त्रार्थनिर्णयः ॥ पूजनीया परा शक्तिर्निर्गुणा सगुणाऽथवा ॥ ८७ ॥ इति देवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

ऋषय ऊचुः ॥ सूत पूर्वं त्वया प्रोक्तं व्यासेनामिततेजसा ॥ कृत्वा पुराणमखिलं शुकायाध्यापितं शुभम् ॥ १ ॥ व्यासेन तु तपस्तप्त्वा

कैटभ मर गये और उनकी चर्बीसे सारा समुद्र भर गया ॥ ८३ ॥ तभीसे पृथिवीका 'मेदिनी' यह नाम पड़ गया और मृत्तिका अभक्ष्य मानी जाने लगी ॥ ८४ ॥ हे मुनीश्वरो! आप लोगोंने जो प्रश्न किया था, उसका मैंने सुनिश्चित उत्तर दे दिया। विद्वानोंको चाहिए कि वे महाविद्या तथा महामायारूपिणी भगवतीकी सदा उपासना करते रहें ॥ ८५ ॥ क्योंकि वे परमा शक्ति सभी देवताओं और दानवोंकी आराधनीया हैं। समस्त त्रिलोकीमें उनसे श्रेष्ठ देवता और कोई नहीं है ॥८६॥ यह वचन सर्वथा सत्य है और चारों वेदो तथा छहों शास्त्रोंका यही निर्णय है कि सगुण अथवा निर्गुण चाहे किसी भी रूपमें सदा उस परा शक्तिका पूजन करता रहे ॥ ८७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

(शिवजीके वरदानसे व्यासजीको पुत्रप्राप्ति) इतनी कथा सुनकर ऋषि बोले—हे सूतजी! यह आप पहले ही बता चुके हैं कि अमित तेजस्वी व्यासजीने समस्त पुराणोंको रचकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुकदेवको पढ़ाया ॥ १ ॥ उन व्यासजीने कैसी तपस्या करके शुकदेवको पुत्ररूपमें प्राप्त किया? इस वृत्तान्तको आपने व्यासजीके मुखसे जैसा सुना हो, विस्तारके साथ कहिए ॥२॥ सूतजी कहने लगे–सत्यवतीसुवन व्यासजीके द्वारा जिस तरह योगियोंमें श्रेष्ठ शुक मुनि उत्पन्न हुए, वह इतिहास बता रहा हूँ ॥ ३ ॥ सत्यवतीसुत व्यास पुत्रप्राप्तिका निश्चय करके अतिशय रमणीक सुमेरु पर्वतकी चोटीपर जाकर कठोर तप करने लगे ॥४॥ नारदजीके बताये एकाक्षरात्मक वाग्बीज मंत्रका जप करते हुए तपोनिधि व्यासजी पुत्रप्राप्तिकी कामनासे परा महामायाका ध्यान करते जा रहे थे ॥ ५ ॥ जप-ध्यान करते समय वे अपने मनमें यह सोच रहे थे कि अग्नि, जल, भूमि, वायु और आकाश इन पाँचों तत्त्वोंकी शक्तिसे सम्पन्न पुत्र मुझे प्राप्त हो ॥ ६ ॥ इस प्रकार व्यासजी सौ वर्ष तक आहार त्यागकर महादेवजी तथा सदाशिवा भगवतीकी आराधना करते रहे ॥७॥ उनकी यह धारणा थी कि सर्वत्र शक्तिकी ही पूजा होती है। संसारमें अशक्तकी

कथमुत्पादितः शुकः ॥ विस्तरं ब्रूहि सकलं यच्छ्रुतं कृष्णतस्त्वया ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ प्रवक्ष्यामि शुकोत्पत्तिं व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ यथोत्पन्नः
शुकः साक्षाद्योगिनां प्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥ मेरुशृंगे महारम्ये व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ तपश्चचार सोऽत्युग्रं पुत्रार्थं कृतनिश्चयः ॥ ४ ॥ जपन्नेकाक्षरं
मंत्रं वाग्बीजं नारदाच्छ्रुतम् ॥ ध्यायन्परां महामायां पुत्रकामस्तपोनिधिः ॥ ५ ॥ अग्नेर्भूमेस्तथा वायोरंतरिक्षस्य चाप्ययम् ॥ वीर्येण संमितः
पुत्रो मम भूयादिति स्म ह ॥ ६ ॥ अतिष्ठत्स गताहारः शतसंवत्सरं प्रभुः ॥ आराधयन्महादेवं तथैव च सदाशिवाम् ॥ ७ ॥ शक्तिः सर्वत्र पूज्येति
विचार्य च पुनः पुनः ॥ अशक्तो निंद्यते लोके शक्तस्तु परिपूज्यते ॥ ८ ॥ यत्र पर्वतशृंगे वै कर्णिकारवनाद्भुते ॥ क्रीडंति देवताः सर्वे मुनयश्च
तपोऽधिकाः ॥ ९ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनौ तथा ॥ वसन्ति मुनयो यत्र ये चान्ये ब्रह्मवित्तमाः ॥ १० ॥ तत्र हेमगिरेः शृंगे संगीतध्व-
निनादिते ॥ तपश्चचार धर्मात्मा व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ ११ ॥ ततोऽस्य तेजसा व्याप्तं विश्वं सर्वं चराचरम् ॥ अग्निवर्णा जटा जाता पाराशर्यस्य
धीमतः ॥ १२ ॥ ततोऽस्य तेज आलक्ष्य भयमाप शचीपतिः ॥ तुरासाहं तदा दृष्ट्वा भयत्रस्तं श्रमातुरम् ॥ १३ ॥ उवाच भगवान् रुद्रो मघवंतं
तथा स्थितम् ॥ कथमिंद्राद्य भीतोऽसि किं दुःखं ते सुरेश्वर ॥ १४ ॥ शंकर उवाच ॥ अमर्षो नैव कर्तव्यस्तापसेषु कदाचन ॥ तपश्चरंति मुनयो

निन्दा होती है और शक्तिसम्पन्न पुरुष पूजा जाता है ॥ ८ ॥ जिस पर्वतशिखरपर कर्णिकारके अद्भुत वनमें देवता तथा असाधारण मुनिगण विहार करते हैं ॥ ९ ॥ जहाँ आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत्, दोनों अश्विनीकुमार और ब्रह्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ मुनिगण निवास करते हैं ॥ १० ॥ संगीतकी ध्वनिसे मुखरित उसी सुमेरु पर्वतके शिखरपर सत्यवतीसुत धर्मात्मा व्यासजी तप कर रहे थे ॥ ११ ॥ कुछ ही समयमें व्यासजीके तेजसे सचराचर विश्व व्याप्त हो गया और व्यासजीकी जटा अग्निवर्ण अर्थात् लाल हो गयी ॥ १२ ॥ उनका अपरिमित तेज देखकर इन्द्राणीपति इन्द्रको बड़ा भय लगा। इन्द्रको इस प्रकार भयभीत तथा व्याकुल देखकर शंकरजी बोले। उन्होंने कहा—हे देवेश्वर! आज आप इस प्रकार भयभीत क्यों हैं? आपको क्या दुःख है? ॥ १३ ॥ १४ ॥ तपस्वियोंकी तपस्यापर किसीको डाह नहीं करनी चाहियें। क्योंकि वे मुझे शक्तिसम्पन्न समझकर ही कठोर तप करते हैं। ये तापस कभी किसीका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अहित नहीं चाहते । शिवजीके ऐसा कहनेपर इन्द्र बोले-हे भगवन् ! व्यासजी इस प्रकार तप क्यों कर रहे हैं ? उनकी क्या अभिलाषा है ? शिवजीने कहा—पराशरसुत व्यास पुत्रप्राप्तिके लिए दुष्कर तप कर रहे हैं ॥ १५-१७ ॥ इनको तप करते-करते सौ वर्ष हो गये हैं । आज मैं इन्हें कल्याणदायक पुत्रकी प्राप्तिका वरदान दूँगा ॥ १८ ॥ इन्द्रसे ऐसा कहकर प्रसन्नमुख शङ्कर भगवान व्यास ऋषिके समीप गये और उनसे बोले-हे वासवीपुत्र ! अब उठो । तुमको शुभलक्षणसम्पन्न पुत्र प्राप्त होगा ॥ १९ ॥ वह पुत्र सर्वथा तेजस्वी, ज्ञानी और तुम्हारी कीर्ति बढ़ानेवाला होगा । हे पुण्यात्मन् ! तुम्हारा वह पुत्र सब लोगोंको प्रिय होगा ॥ २० ॥ वह सभी सात्त्विक गुणोंसे परिपूर्ण और सत्यबलसे सम्पन्न होगा । सूतजी बोले-शंकरजीके मृदु वचन सुन और उन्हें नमस्कार करके व्यासजी अपने आश्रमको चले गये । बहुत वर्षोंतक कठोर तप करनेके कारण थके हुए व्यासजी अरणीमें छिपी अग्निको प्रकट करनेके लिए

ज्ञात्वा मां शक्तिसंयुतम् ॥ १५ ॥ न त्वेतेऽहितमिच्छंति तापसाः सर्वथैव हि ॥ इत्युक्तवचनः शक्रस्तमुवाच वृषध्वजम् ॥ १६ ॥ कस्मात्तपस्यति व्यासः कोऽर्थस्तस्य मनोगतः ॥ शिव उवाच ॥ पाराशर्यस्तु पुत्रार्थी तपश्चरति दुश्चरम् ॥ १७ ॥ पूर्णवर्षशतं जातं ददाम्यद्य सुतं शुभम् ॥ इत्युक्त्वा वासवं रुद्रो दयया मुदिताननः ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ गत्वा ऋषिसमीपं तु तमुवाच जगद्गुरुः ॥ उत्तिष्ठ वासवीपुत्र पुत्रस्ते भविता शुभः ॥ १९ ॥ सर्वतेजोमयो ज्ञानी कीर्तिकर्ता तवानघ ॥ अखिलस्य जनस्यात्र वल्लभस्ते सुतः सदा ॥ २० ॥ भविष्यति गुणैः पूर्णः सात्त्विकैः सत्यविक्रमः ॥ तदाकर्ण्य वचः श्लक्ष्णं कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ शूलपाणिं नमस्कृत्य जगामाश्रममात्मनः ॥ स गत्वाऽऽश्रममेवाशु बहुवर्षश्रमातुरः ॥ २२ ॥ अरणीसहितं गुह्यं ममंथाग्निं चिकीर्षया ॥ मंथनं कुर्वतस्तस्य चित्ते चिंताभरस्तदा ॥ २३ ॥ प्रादुर्बभूव सहसा सुतोत्पत्तौ महात्मनः ॥ मंथानारणिसंयोगान्मंथनाच्च समुद्भवः ॥ २४ ॥ पावकस्य यथा तद्वत्कथं मे स्यात्सुतोद्भवः ॥ पुत्रारणिस्तु या ख्याता सा ममाद्य न विद्यते ॥ २५ ॥ तरुणी रूपसंपन्ना कुलोत्पन्ना पतिव्रता ॥ कथं करोमि कांतां च पादयोः शृंखलासमाम् ॥ २६ ॥ पुत्रोत्पादनदक्षां च पातिव्रत्ये सदा स्थिताम् ॥ पतिव्रताऽपि दक्षाऽपि रूपवत्यपि कामिनी ॥२७॥ सदा बंधनरूपा च स्वेच्छासुखविधायिनी ॥ शिवोऽपि पर्वते नित्यं कामिनीपाशसंयुतः ॥ २८ ॥ कथं करोम्यहं चात्र दुर्घटं च गृहाश्रमम् ॥ एवं चिंतयतस्तस्य घृताची दिव्यरूपिणी ॥ २९ ॥ प्राप्ता दृष्टिपथं तत्र

अरणिमन्थन करने लगे । मन्थन करते समय उनके मनमें बड़ी भारी चिन्ता हो रही थी ॥ २१-२३ ॥ इस प्रकार मन्थन तथा अरणिके संयोगसे उत्पन्न अग्निको देखकर उनके मनमें यह विचार उठा कि जिस तरह अरणिमन्थनसे अग्नि उत्पन्न हुई है, उसी प्रकार मेरे पुत्र कैसे उत्पन्न हो ? क्योंकि पुत्र उत्पन्न करनेवाली अरणी (स्त्री) मेरे पास नहीं है ॥२४॥२५॥ किसी तरुणी, रूपवती, कुलीन और पतिपरायणा पत्नीको मैं कैसे प्राप्त करूँ ? और फिर उसे अपनी पत्नी बनाकर अपने पैरोंमें बेड़ी कैसे डालूँ ? ॥२६॥ पुत्र उत्पन्न करनेमें निपुण और पतिव्रतधर्ममें तत्पर पत्नी मुझे कैसे मिले ? पतिव्रता, चतुर और रूपवती स्त्री भी सदा बन्धनरूप ही रहती है । फिर भी वह इच्छानुकूल सुख देती है । इसी कारण शंकरजी भी तो सर्वदा स्त्रीके बन्धनमें बँधे रहते हैं ॥२७॥२८॥ अब मैं क्या करूँ ? गृहस्थाश्रम भी बड़ा जटिल होता है । व्यासजी इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उसी समय आकाशमण्डलमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिव्यरूपधारिणी घृताची अप्सरा दिखायी पड़ी। उस चंचल कटाक्षोंवाली और सुन्दरी अप्सराको अपने समीप देखकर परम संयमी व्यासजी कामबाणसे आहत हो गये और सोचने लगे कि इस संकटके समय मैं क्या करूँ ? ॥ २९-३१ ॥ एक ओर धर्म है तो दूसरी ओर हृदयको झकझोर देनेवाली कामवासना है। यदि छलनेके लिए आयी हुई इस अप्सराको अङ्गीकार करता हूँ ॥ ३२ ॥ तब महात्मा तपस्वीगण मुझे इस प्रकार कामयुक्तावश विकल देखकर हँसेंगे कि सौ वर्ष तक अत्यन्त कठोर तप करनेके बाद भी एक अप्सराको देखकर महातेजस्वी व्यास इतने बेकाबू क्यों हो गये ? अस्तु, यदि प्रचुर सुख प्राप्त हो सके तो ऐसी निन्दा भी सही जा सकती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ क्योंकि गृहस्थाश्रम पुत्ररूपिणी कामना पूर्ण करनेवाला परम सुखदायी आश्रम कहा गया है। इससे स्वर्ग तथा ज्ञानी गृहस्थोंको मोक्ष तककी प्राप्ति हो जाती है ॥३५॥ किन्तु वह गार्हस्थ्य सुख तो इस देवकन्यासे नहीं प्राप्त किया जा सकता।

समीपे गगने स्थिता ॥ तां दृष्ट्वा चञ्चलापांगीं समीपस्थां वराप्सराम् ॥ ३० ॥ पंचबाणपरीतांगस्तूर्णमासीद्धृतव्रतः ॥ चिंतयामास च तदा किं करो-म्यद्य संकटे ॥ ३१ ॥ धर्मस्य पुरतः प्राप्ते कामभावे दुरासदे ॥ अंगीकरोमि यद्येनां वंचनार्थमिहागताम् ॥ ३२ ॥ हसिष्यंति महात्मानस्तापसा मां तु विह्वलम् ॥ तपस्तप्त्वा महाघोरं पूर्णं वर्षशतं त्विह ॥ ३३॥ दृष्ट्वाऽप्सरां च विवशः कथं जातो महातपाः ॥ कामं निंदापि भवतु यदि स्याद-तुलं सुखम् ॥ ३४ ॥ गृहस्थाश्रमसंभूतं सुखदं पुत्रकामदम् ॥ स्वर्गदं च तथा प्रोक्तं ज्ञानिनां मोक्षदं तथा ॥ ३५ ॥ न भविष्यति तन्नूनमनया देवकन्यया ॥ नारदाच्च मया पूर्वं श्रुतमस्ति कथानकम् ॥ यथोर्वशीवशो राजा पराभूतः पुरूरवाः॥ ३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टा-दशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ऋषय ऊचुः ॥ कोऽसौ पुरूरवा राजा कोर्वशी देवकन्यका ॥ कथं कष्टं च संप्राप्तं तेन राज्ञा महात्मना ॥ १ ॥ सर्वं कथानकं ब्रूहि लोमहर्षणजाधुना ॥ श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वन्मुखाब्जच्युतं रसम् ॥ २ ॥ अमृतादपि मिष्टा ते वाणी सूत रसात्मिका ॥ न तृप्यामो वयं सर्वे सुधया च यथाऽमराः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे कथां दिव्यां मनोरमाम् ॥ वक्ष्याम्यहं यथाबुद्ध्या श्रुतां व्यासवरोत्तमात् ॥ ४ ॥ गुरोस्तु दयिता भार्या तारा नामेति विश्रुता ॥ रूपयौवनयुक्ता सा चार्वङ्गी मदविह्वला ॥ ५ ॥ गतैकदा विधोर्धाम यजमानस्य भामिनी ॥

पूर्वकालमें नारदजीसे मैंने एक कथानक सुना था कि उर्वशीके फेरमें पड़कर महाराज पुरूरवाकी दुर्दशा हुई थी ॥३६॥ इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥

(चन्द्रपुत्र बुधकी उत्पत्तिका वृत्तान्त) ऋषि बोले—हे सूत ! ये राजा पुरूरवा कौन थे। और देवकन्या उर्वशी कौन थी ? महात्मा राजा पुरूरवाकी क्या दुर्गति हुई थी ? ॥ १ ॥ हे लोमहर्षणतनय ! आप इस कथानकको विस्तारके साथ कहिए। हम लोग आपकी सरस वाणी सुननेको उत्सुक हैं ॥ २ ॥ हे सूत ! आपके वचन अमृतसे भी मीठे होते हैं। उन्हें सदा सुनते रहनेपर भी हम उसी प्रकार तृप्त नहीं होने आते, जैसे देवता अमृतसे तृप्त नहीं होते थे ॥ ३ ॥ सूतजी बोले—हे मुनियों ! आप लोग यह दिव्य, रसमयी तथा मनोरम कथा सुनें। मैंने व्यासदेवके मुखसे जैसा सुना था, वैसा ही अपनी बुद्धिके अनुसार कहूँगा ॥ ४ ॥ गुरु बृहस्पतिकी पत्नी 'तारा' इन नामसे विख्यात थी। वह रूप तथा यौवनसे युक्त थी। उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सभी अङ्ग सुडौल थे और वह सदा काममदसे विह्वल रहती थी ॥ ५ ॥ एक बार वह अपने यजमान चन्द्रमाके घर गयी। तब उस रूपवती कामिनीको चन्द्रमाने देखा ॥ ६ ॥ उस चन्द्रवदना नारीको देखते ही चन्द्रमा कामातुर हो गये। तारा भी चन्द्रमाको देखकर उसपर मोहित हो गयी ॥ ७ ॥ इस प्रकार वे दोनों एक दूसरेपर आसक्त होकर कामदेवके बाणोंसे पीड़ित तथा मदसे उन्मत्त हो गये ॥८॥ अब वे दोनों मदमत्त प्रेमी परस्पर कामपिपासा पूर्ण करते हुए रमण करने लगे। इस प्रकार दोनोंको आनन्द लेते-लेते कुछ समय बीत गया ॥९॥ तब गुरु बृहस्पतिने दुःखी होकर ताराको लानेके लिए अपने एक शिष्यको भेजा। किन्तु चन्द्रमाके वशीभूत होनेके कारण वह नहीं आयी ॥१०॥ जब चन्द्रमाने बार-बार शिष्यको लौटाया, तब गुरु बृहस्पति क्रुद्ध होकर स्वयं उनके घर गये ॥११॥ उदारबुद्धि देवगुरु बृहस्पतिने अभिमानभरे तथा मुसकाते हुए चन्द्रमासे कहा—॥ १२ ॥ हे शीतांशो! तुमने यह धर्मके विपरीत कर्म

दृष्टा च शशिनाऽत्यर्थं रूपयौवनशालिनी ॥ ६ ॥ कामातुरस्तदा जातः शशी शशिमुखीं प्रति ॥ साऽपि वीक्ष्य विधुं कामं जाता मदनपीडिता ॥ ७ ॥ तावन्योन्यं प्रेमयुक्तौ स्मरार्तौ च बभूवतुः ॥ ताराशशी मदोन्मत्तौ कामबाणप्रपीडितौ ॥ ८ ॥ रेमाते मदमत्तौ तौ परस्परस्पृहान्वितौ ॥ दिनानि कतिचित्तत्र जातानि रममाणयोः ॥ ९ ॥ बृहस्पतिस्तु दुःखार्तस्तारामानयितुं गृहम् ॥ प्रेषयामास शिष्यं तु नायाता सा वशीकृता ॥ १० ॥ पुनः पुनर्यदा शिष्यं परावर्तत चन्द्रमाः ॥ बृहस्पतिस्तदा क्रुद्धो जगाम स्वयमेव हि ॥ ११ ॥ गत्वा सोमगृहं तत्र वाचस्पतिरुदारधीः ॥ उवाच शशिनं क्रुद्धः स्मयमानं मदान्वितम् ॥ १२ ॥ किं कृतं किल शीतांशो कर्म धर्मविगर्हितम् ॥ रक्षिता मम भार्येयं सुन्दरी केन हेतुना ॥ १३ ॥ तव देव गुरुश्चाहं यजमानोऽसि सर्वथा ॥ गुरुभार्या कथं मूढ भुक्ता किं रक्षिताऽथवा ॥ १४ ॥ ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ महापातकिनो ह्येते तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥ १५ ॥ महापातकयुक्तस्त्वं दुराचारोऽतिगर्हितः ॥ न देवसदनार्होऽसि यदि भुक्तेयमङ्गना ॥ १६ ॥ मुञ्चेमामसितापाङ्गीं नयामि सदनं मम ॥ नोचेद्वक्ष्यामि दुष्टात्मन् गुरुदारापहारिणम् ॥ १७ ॥ इत्येवं भाषमाणं तमुवाच रोहिणीपतिः ॥ गुरुं क्रोधसमायुक्तं कान्ताविरहदुःखितम् ॥ १८ ॥ इन्दुरुवाच ॥ क्रोधात्ते तु दुराराध्या ब्राह्मणाः क्रोधवर्जिताः ॥ पूजार्हा धर्मशास्त्रज्ञा वर्जनी-

क्यों किया? तुमने मेरी सुन्दरी भार्याको क्यों अपने घरमें रख लिया? ॥१३॥ हे देव! मैं तुम्हारा गुरु हूँ और तुम मेरे यजमान हो। तब हे मूढ़! तुमने क्या समझकर गुरुपत्नीके साथ दुराचार किया और उसे अपने घरमें रख लिया? ॥ १४ ॥ ब्रह्मघाती, सुवर्णका चोर, मदिरा पान करनेवाला, गुरुपत्नीके साथ भोग करनेवाला और उपर्युक्त पापियोंसे सम्पर्क रखनेवाला, ये पाँचों महापातकी कहलाते हैं ॥ १५ ॥ अतएव तुम महापातकी, दुराचारी और अत्यन्त नीच प्राणी हो। यदि तुमने मेरी पत्नीका भोग किया है तो तुम देवलोकमें रहनेके अधिकारी नहीं रह गये ॥ १६ ॥ तुम इस श्याम भौंहोंवाली मेरी पत्नीको छोड़ दो। जिससे मैं इसे अपने घर ले जाऊँ। नहीं तो अरे दुरात्मा! तुझ गुरुपत्नीका अपहरण करनेवाले पापीको मैं अभी शाप दे दूँगा ॥१७॥ क्रोधाकुल और पत्नीके विरहसे व्यथित गुरु बृहस्पतिके वचन सुनकर रोहिणीपति चन्द्रमा बोले ॥ १८ ॥ चन्द्रदेवने कहा—क्रोधी ब्राह्मणकी निन्दा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होती है। अतएव ब्राह्मणको सदा क्रोधहीन रहना चाहिए। क्रोधहीन तथा धर्मशास्त्रके ज्ञाता ब्राह्मण पूज्य माने जाते हैं। जो इन गुणोंसे हीन हों, वे ब्राह्मण त्याज्य होते हैं। वह रूपवती नारी किसी दिन स्वेच्छासे आपके घर चली जायगी। तबतक वह यदि कुछ दिन यहीं रह जाय तो क्या हर्ज है? ॥१९॥२०॥ वह अपनी इच्छासे यहाँ रह रही है। क्योंकि उसे सुखके उपभोगकी इच्छा है। कुछ दिन यहाँ रहकर वह स्वयं आपके घर चली जायगी ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें आपने ही स्वरचित धर्मशास्त्रमें इस मतका प्रतिपादन किया है कि रजोदर्शनके अवसरपर पापाचरण करनेवाली स्त्री और वैदिक कर्ममें संलग्न पापी ब्राह्मण दूषित नहीं माने जाते ॥२२॥ चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर गुरु बृहस्पति अत्यन्त दुःखी हुए। कामपीड़ासे व्यथित तथा चिन्तित होकर वे तत्काल चले गये ॥२३॥ चिन्तासे व्याकुल बृहस्पतिजी कुछ दिन अपने घर रहकर फिर चन्द्रमाके यहाँ जा पहुँचे ॥२४॥ वहाँ द्वारपर खड़े पहरेदारने उन्हें भीतर नहीं जाने दिया, तब क्रुद्ध होकर वे द्वारपर ही रुक गये। कुछ देर प्रतीक्षा करनेपर भी जब चन्द्रमा उनसे मिलने नहीं आये, तब उनका क्रोध और भी भभक उठा ॥२५॥ उन्होंने सोचा

यास्ततोऽन्यथा ॥ १९ ॥ आगमिष्यति सा कामं गृहं ते वरवर्णिनी ॥ अत्रैव संस्थिता बाला का ते हानिरिहानघ ॥ २० ॥ इच्छया संस्थिता चात्र सुखकामार्थिनी हि सा ॥ दिनानि कतिचित्स्थित्वा स्वेच्छया चागमिष्यति ॥ २१ ॥ त्वयैवोदाहृतं पूर्वं धर्मशास्त्रमतं तथा ॥ न स्त्री दुष्यति चारेण न विप्रो वेदकर्मणा ॥२२॥ इत्युक्तः शशिना तत्र गुरुरत्यन्तदुःखितः ॥ जगाम स्वगृहं तूर्णं चिन्ताविष्टः स्मरातुरः ॥२३॥ दिनानि कतिचित्तत्र स्थित्वा चिन्तातुरो गुरुः ॥ ययावथ गृहं तस्य त्वरितश्चौषधीपतेः ॥ २४ ॥ स्थितः क्षत्रा निषिद्धोऽसौ द्वारदेशे रुषाऽन्वितः ॥ नाजगाम शशी तत्र चुकोपाति बृहस्पतिः ॥२५॥ अयं मे शिष्यतां यातो गुरुपत्नीं तु मातरम् ॥ जग्राह बलतोऽधर्मी शिक्षणीयो मयाऽधुना ॥२६॥ उवाच वाचं कोपात्तु द्वारदेशस्थितो बहिः ॥ किं शेषे भवने मंद पापाचार सुराधम ॥२७॥ देहि मे कामिनीं शीघ्रं नोचेच्छापं ददाम्यहम् ॥ करोमि भस्मसात्त्वूनं न ददासि प्रियां मम ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ क्रूराणि चैवमादीनि भाषणानि बृहस्पतेः ॥ श्रुत्वा द्विजपतिः शीघ्रं निर्गतः सदनाद्बहिः ॥ २९ ॥ तमुवाच हसन्सोमः किमिदं बहु भाषसे ॥ न ते योग्याऽसितापांगी सर्वलक्षणसंयुता ॥३०॥ कुरूपां च स्वसदृशीं गृहाणान्यां स्त्रियं द्विज ॥ भिक्षुकस्य गृहे योग्या नेदृशी वरवर्णिनी ॥३१॥ रतिः स्वसदृशे कांते नार्याः किल निगद्यते ॥ त्वं न जानासि मंदात्मन्कामशास्त्रविनिर्णयम् ॥३२॥

कि यह मेरा शिष्य है। इसने माताके सदृश आदरणीया गुरुपत्नीको बरबस हर लिया है। अतएव अब मुझे इस अधर्मीको दण्ड देना चाहिए ॥ २६ ॥ बाहर दरवाजेपर खड़े बृहस्पतिने बड़े क्रोधके साथ कहा—अरे नीच, पापी और देवताओंमें अधम! तू घरके भीतर पड़ा क्यों सो रहा है? ॥ २७ ॥ मेरी स्त्री मुझे दे दे, नहीं तो मैं तुझे अभी शाप देकर भस्म कर दूँगा ॥ २८ ॥ बृहस्पतिके इन क्रूर वचनोंको सुनकर द्विजराज चन्द्रमा शीघ्र अपने महलसे बाहर निकल आये ॥ २९ ॥ द्वारपर आकर चन्द्रमाने हँसते हुए कहा—आप इस तरह अनाप-शनाप क्या बक रहे हैं? वह सर्वसुलक्षणसम्पन्न कामिनी आपके योग्य नहीं है ॥३०॥ हे विप्र! आप अपने सदृश कुरूपा किसी दूसरी स्त्रीको खोजकर उसके साथ विवाह कर लीजिए। सुन्दरी तारा आप जैसे भिक्षुकके घरमें रहने लायक नहीं है ॥ ३१ ॥ यह बात सभी लोग जानते हैं कि अपने सदृश रूप-गुणसम्पन्न पतिपर ही पत्नीका प्रेम होता है। हे मन्दात्मन्!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कामशास्त्रका यह सर्वविदित सिद्धान्त भी क्या आपको नहीं मालूम है? ॥३२॥ हे दुर्बुद्धे! अब आप स्वेच्छासे अपने घर जा सकते हैं। मैं यह स्त्री आपको नहीं दूँगा। आप जो चाहें सो करिए। मैं इस सुन्दरीको कदापि नहीं लौटाऊँगा॥३३॥ आप जैसे कामुक ब्राह्मणका शाप मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। हे गुरो! मैं ताराको नहीं ही दूँगा। आपकी जो इच्छा हो सो कर लीजिएगा ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले—चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर देवगुरु बृहस्पति बहुत चिन्तित हो उठे। उसी आवेशमें वे वहाँसे चलकर शचीपति इन्द्रके पास जा पहुँचे ॥ ३५ ॥ गुरु बृहस्पतिको विशेष दुःखी और चिन्तित अवस्थामें अपने सम्मुख उपस्थित देखकर देवराज इन्द्रने पाद्य-अर्घ्य-आचमनीय आदि सामग्रियोंसे उनकी विधिवत् पूजा की ॥ ३६ ॥ जब गुरुदेव आसनपर बैठ गये, तब परम उदार इन्द्रने पूछा—हे महाभाग! आपको किस बातकी चिन्ता है? हे महामुने! आप इस प्रकार शोकाकुल किस लिए हैं? ॥ ३७ ॥ मेरे राज्यमें किसने मेरे गुरुको अपमानित किया है? हे गुरुदेव! समस्त लोकपालों समेत मेरी सारी सेना आपके अधीन है ॥ ३८ ॥ इनके अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि अन्यान्य देवता भी

यथेष्टं गच्छ दुर्बुद्धे नाहं दास्यामि कामिनीम् ॥ यच्छक्यं कुरु तत्कामं न देया वरवर्णिनी ॥ ३३ ॥ कामार्तस्य च ते शापो न मां बाधितुमर्हति ॥ नाहं ददे गुरो कांतां यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तः शशिना चेज्यश्चिंतामाप रुषान्वितः ॥ जगाम तरसा सद्म क्रोधयुक्तः शचीपतेः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा शतक्रस्तुस्तत्र गुरुं दुःखातुरं स्थितम् ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः पूजयित्वा सुसंस्थितः ॥ ३६ ॥ पप्रच्छ परमोदारस्तं तथाऽवस्थितं गुरुम् ॥ का चिंता ते महाभाग शोकार्तोऽसि महामुने ॥ ३७ ॥ केनापमानितोऽसि त्वं मम राज्ये गुरुश्च मे ॥ त्वदधीनमिदं सर्वं सैन्यं लोकाधिपैः सह ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा शंभुर्ये चान्ये देवसत्तमाः ॥ करिष्यंति च साहाय्यं का चिंता वद सांप्रतम् ॥ ३९ ॥ गुरुरुवाच ॥ शशिनाऽपहृता भार्या तारा मम सुलोचना ॥ न ददाति स दुष्टात्मा प्रार्थितोऽपि पुनः पुनः ॥ ४० ॥ किं करोमि सुरेशान त्वमेव शरणं मम ॥ साहाय्यं कुरु देवेश दुःखितोऽस्मि शतक्रतो ॥ ४१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ मा शोकं कुरु धर्मज्ञ दासोऽस्मि तव सुव्रत ॥ आनयिष्याम्यहं नूनं भार्यां तव महामते ॥ ४२ ॥ प्रेषिते चेन्मया दूते न दास्यति मदाकुलः ॥ ततो युद्धं करिष्यामि देवसैन्यैः समावृतः ॥ ४३ ॥ इत्याश्वास्य गुरुं शक्रो दूतं वक्तृविचक्षणम् ॥ प्रेषयामास सोमाय वार्ताशंसिनमद्भुतम् ॥ ४४ ॥ स गत्वा शशिलोकं तु त्वरितः सुविचक्षणः ॥ उवाच वचनेनैव वचनं रोहि-

आपकी सहायता करेंगे। अब आप अपने कष्टका कारण बताइए ॥ ३९ ॥ गुरु बृहस्पति बोले–चन्द्रमाने मेरी सुनयनी पत्नीका अपहरण कर लिया है और वह दुष्ट मेरे बार-बार अनुरोध करनेपर भी उसे नहीं लौटा रहा है ॥४०॥ हे देवराज! मैं क्या करूँ? एकमात्र आप ही मेरे रक्षक हैं। हे देवेश! आप मेरी सहायता कीजिए। हे शतक्रतो! मैं बहुत दुखी हूँ ॥४१॥ इन्द्रने कहा—हे धर्मज्ञ! आप शोक न करें। हे सुव्रत! मैं आपका दास हूँ। हे महामते! मैं अवश्य आपकी पत्नीको लौटा ले आऊँगा ॥ ४२ ॥ मैं दूत भेजता हूँ। फिर भी यदि वह अभिमानी आपकी पत्नीको नहीं देगा तो देवसेनाको साथ लेकर मैं युद्ध करूँगा ॥ ४३ ॥ देवगुरु बृहस्पतिको इस प्रकार आश्वासन देकर इन्द्रने बातचीतमें निपुण एक दूतको चन्द्रमाके पास भेजा ॥ ४४ ॥ वह चतुर दूत तत्काल चन्द्रलोकमें जा पहुँचा और रोहिणीपति चन्द्रमासे कहने लगा—हे महाभाग! देवराज इन्द्रने आपसे कुछ कहनेके लिए मुझे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आपके पास भेजा है। हे महामते ! मेरे स्वामी इन्द्रने जो कहा है, वही मैं कहता हूँ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे महाभाग ! आप धर्मके तत्त्वको जानते हैं। हे सुव्रत ! आप नीतिज्ञ भी हैं। धर्मात्मा अत्रि आपके पिता हैं। इसलिए आप कोई ऐसा काम न कीजिए, जिससे लोकनिन्दा हो ॥ ४७ ॥ सब प्राणियोंका यह कर्तव्य है कि वे यथाशक्ति और आलस्यहीन होकर अपनी भार्याकी रक्षा करें। अतएव उस स्त्री ताराके लिए बहुत बड़ा झगड़ा खड़ा हो जायगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥ ४८ ॥ जैसे आपको अपनी पत्नीकी रक्षाका अधिकार है, उसी प्रकार गुरु बृहस्पतिको भी वह अधिकार प्राप्त है। हे सुधानिधे ! अपनी ही तरह आप सब प्राणियोंको समझिए ॥ ४९ ॥ हे सुधानिधान ! आपके महलोंमें दक्ष प्रजापतिकी अट्ठाईस शुभलक्षणसम्पन्न कन्यायें आपकी पत्नीके रूपमें विद्यमान हैं। ऐसी दशामें हे सुधाकर ! आप गुरुपत्नीको भोगनेकी इच्छा क्यों करते हैं ? ॥ ५० ॥ स्वर्गलोकमें मेनका आदि बहुतेरी सुन्दरी अप्सरायें सदा निवास करती हैं, उनके साथ आप यथेच्छ भोग-विलास करिए और गुरुपत्नी ताराको लौटा दीजिये ॥ ५१ ॥ यदि आप जैसे महापुरुष अहंकारवश ऐसा नीच कर्म

णीपतिम् ॥ ४५ ॥ प्रेषितोऽहं महाभाग शक्रेण त्वां विवक्षया ॥ कथितं प्रभुणा यच्च तद्ब्रवीमि महामते ॥ ४६ ॥ धर्मज्ञोऽसि महाभाग नीतिं जानासि सुव्रत ॥ अत्रिः पिता ते धर्मात्मा न निंद्यं कर्तुमर्हसि ॥ ४७ ॥ भार्या रक्ष्या सर्वभूतैर्यथाशक्ति ह्यतंद्रितैः ॥ तदर्थे कलहः कामं भविता नात्र संशयः ॥ ४८ ॥ यथा तव तथा तस्य यत्नः स्याद्दारक्षणे ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि चिंतय त्वं सुधानिधे ॥ ४९ ॥ अष्टाविंशतिसंख्यास्ते कामिन्यो दक्षजाः शुभाः ॥ गुरुपत्नीं कथं भोक्तुं त्वमिच्छसि सुधानिधे ॥ ५० ॥ स्वर्गे सदा वसंत्येता मेनकाद्या मनोरमाः ॥ भुंक्ष्व ताः स्वेच्छया कामं मुञ्च पत्नीं गुरोरपि ॥ ५१ ॥ ईश्वरा यदि कुर्वंति जुगुप्सितमहंतया ॥ अज्ञास्तदनुवर्तंते तदा धर्मक्षयो भवेत् ॥ ५२ ॥ तस्मान्मुंच महाभाग गुरोः पत्नीं मनोरमाम् ॥ कलहस्त्वन्निमित्तोऽद्य सुराणां न भवेद्यथा ॥ ५३ ॥ सूत उवाच ॥ सोमः शक्रवचः श्रुत्वा किंचित्क्रोधसमाकुलः ॥ भंग्या प्रतिवचः प्राह शक्रदूतं तदा शशी ॥ ५४ ॥ इन्दुरुवाच ॥ धर्मज्ञोऽसि महाबाहो देवानामधिपः स्वयम् ॥ पुरोधाऽपि च ते तादृग्युवयोः सदृशी मतिः ॥ ५५ ॥ परोपदेशे कुशला भवंति बहवो जनाः ॥ दुर्लभस्तु स्वयं कर्ता प्राप्ते कर्मणि सर्वदा ॥ ५६ ॥ बार्हस्पत्यप्रणीतं च शास्त्रं गृह्णन्ति मानवाः ॥ को विरोधोऽत्र देवेश कामयानां भजन्स्त्रियम् ॥ ५७ ॥ स्वकीयं बलिनां सर्वं दुर्बलानां न किंचन ॥

करते हैं तो साधारण अज्ञजन उनका अनुकरण करने लगते हैं, जिससे धर्मका नाश हो जाता है ॥ ५२ ॥ अतएव हे महाभाग ! आप उस सुस्वरूपा गुरुपत्नीको लौटा दीजिये। जिससे आपके कारण देवताओंमें कोई कलह न उपस्थित हो ॥५३॥ सूतजी बोले—उस दूतकी जबानी इन्द्रका सन्देश सुनकर चन्द्रमा कुछ क्रुद्ध हो गये और उन्होंने ताना मारते हुए कहा ॥५४॥ चन्द्रमा बोले—हे महाबाहो इन्द्र ! आप बड़े धर्मात्मा और देवताओंके अधिपति हैं। आपके पुरोहित बृहस्पति भी ठीक आप जैसे ही हैं और आप दोनोंकी बुद्धि भी एक जैसी है ॥५५॥ औरोंको उपदेश देनेमें बहुतेरे लोग निगुण होते हैं। किन्तु कार्यकाल उपस्थित होनेपर स्वयं उस उपदेशके अनुसार आचरण करनेवाले प्राणी दुर्लभ रहते हैं ॥५६॥ हे देवेश ! बृहस्पतिजीके बनाये हुए धर्मशास्त्रको सब लोग प्रमाण मानते हैं। उसी शास्त्रके अनुसार अपनेपर आसक्त किसी स्त्रीके साथ भोग करनेमें क्या हानि है ? ॥ ५७ ॥ जिनमें शक्ति है, उनका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सब कुछ अपना है। दुर्बल प्राणियोंको तो अपना कहनेके लिए कुछ भी नहीं रह जाता। और फिर अपनी-परायी स्त्रीका भेदभाव मन्द बुद्धिवाले प्राणियोंमें रहता है—हम जैसोंमें नहीं ॥ ५८ ॥ ताराका जितना प्रेम मुझपर है, उतना प्रेम गुरु बृहस्पतिपर नहीं है। किसी अनुरक्ता स्त्रीको त्यागना कहाँका धर्म है और कहाँका न्याय है? ॥ ५९ ॥ गार्हस्थ्य जीवन पतिपर प्रेम रखनेवाली स्त्रीके साथ ही सुखपूर्वक बीत सकता है—विरक्त स्त्रीके साथ नहीं। जब बृहस्पति अपने छोटे भाई संवर्तकी स्त्रीपर आसक्त हुए, तभीसे ताराका बृहस्पतिपरसे अनुराग हट गया ॥ ६० ॥ हे दूत! तुम जाकर इन्द्रसे कह दो कि मैं सुन्दरी ताराको नहीं लौटाऊँगा। हे सहस्राक्ष (अहल्याका सतीत्व नष्ट करके कारण शापप्राप्त) इन्द्र! आप प्रभु हैं। आपकी जो इच्छा हो सो कर सकते हैं ॥६१॥ सूतजी बोले–चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर दूत इन्द्रके पास लौट गया और शीतरश्मि चन्द्रमाने जो कुछ कहा था, सो सब कह सुनाया ॥६२॥ चन्द्रमाका उत्तर सुनकर इन्द्र बहुत कुपित हुए और गुरु बृहस्पतिकी सहायताके लिए सेना जुटाने लगे। ॥ ६३ ॥ दैत्यगुरु शुक्राचार्यको जब इस झगड़ेका पता लगा तो बृहस्पतिसे द्वेष

स्वीया च परकीया च भ्रमोऽयं मंदचेतसाम् ॥ ५८ ॥ तारा मय्यनुरक्ता च यथा न तु तथा गुरौ ॥ अनुरक्ता कथं त्याज्या धर्मतो न्यायतस्तथा ॥ ५९ ॥ गृहारंभस्तु रक्तायां विरक्तायां कथं भवेत् ॥ विरक्तेयं यदा जाता चकमेऽनुजकामिनीम् ॥ ६० ॥ न दास्येऽहं वरारोहां गच्छ दूत वद स्वयम् ॥ ईश्वरोऽसि सहस्राक्ष यदिच्छसि कुरुष्व तत् ॥ ६१ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तः शशिना दूतः प्रययौ शक्रसन्निधिम् ॥ इन्द्रायाचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं शीतरश्मिना ॥ ६२ ॥ तुराषाडपि तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तो बभूव ह ॥ सेनोद्योगं तथा चक्रे साहाय्यार्थं गुरोर्विभुः ॥ ६३ ॥ शुक्रस्तु विग्रहं श्रुत्वा गुरुद्वेषात्ततो ययौ ॥ मा ददस्वेति तं वाक्यमुवाच शशिनं प्रति ॥ ६४ ॥ साहाय्यं ते करिष्यामि मंत्रशक्त्या महामते ॥ भविता यदि संग्रामस्तव चेंद्रेण मारिष ॥ ६५ ॥ शंकरस्तु तदाकर्ण्य गुरुदाराभिमर्शनम् ॥ गुरुशत्रुं भृगुं मत्वा साहाय्यमकरोत्तदा ॥ ६६ ॥ संग्रामस्तु तदा वृत्तो देवदानवयोर्द्रुतम् ॥ बहूनि तत्र वर्षाणि तारकासुरवत्किल ॥ ६७ ॥ देवासुरकृतं युद्धं दृष्ट्वा तत्र पितामहः ॥ हंसारूढो जगामाशु तं देशं क्लेशशांतये ॥ ६८ ॥ राकापतिं तदा प्राह मुंच भार्यां गुरोरिति ॥ नोचेद्विष्णुं समाहूय करिष्यामि तु संक्षयम् ॥ ६९ ॥ भृगुं निवारयामास

रहनेके कारण वे चन्द्रमाके पास गये और कहा कि आप ताराको कदापि न लौटाइयेगा ॥ ६४ ॥ हे महामते! यदि इन्द्रके साथ आपका युद्ध छिड़ जायगा तो मैं अपनी मंत्रणाशक्तिसे आपकी सहायता करूँगा ॥ ६५ ॥ शिवजीने जब गुरुपत्नीके साथ दुराचारकी बात सुनी तो शुक्राचार्यको बृहस्पतिका विरोधी समझकर देवगुरुकी सहायताको सन्नद्ध हो गये ॥ ६६ ॥ तदनन्तर उसी प्रकारका भीषण देवासुरसंग्राम आरम्भ हो गया, जैसा कि तारकासुरके साथ हुआ था। यह युद्ध भी बहुत दिनतक चलता रहा ॥ ६७ ॥ देवताओं और असुरोंका वह भयंकर युद्ध होते देखकर लोकपितामह ब्रह्माजी अपने हंसपर सवार होकर शान्ति स्थापित करनेके लिए युद्धभूमिमें जा पहुँचे ॥ ६८ ॥ वहाँ जाकर उन्होंने चन्द्रमासे कहा कि तुम देवगुरुकी भार्याको लौटा दो। नहीं तो विष्णु भगवानको बुलाकर मैं तुम्हें नष्ट कर दूँगा ॥६९॥ लोकपितामह ब्रह्माजीने भृगुवंशी शुक्राचार्यको भी बुलाकर युद्धसे निवृत्त करते हुए कहा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे महामते ! असुरोंके सङ्गदोषसे क्या आपकी भी बुद्धि अन्यायका समर्थक बन गयी है ? ॥ ७० ॥ तदनुसार शुक्राचार्य औषधिपति चन्द्रमाके पास गये और कहा कि आप तत्काल गुरु-पत्नीको लौटा दीजिए। मैं आपके पिताका सन्देश लेकर आया हूँ—उन्होंने ही मुझे भेजा है ॥ ७१ ॥ सूतजी बोले—भृगुके अद्भुत वचन सुनकर द्विजराज चन्द्रमाने देवगुरुकी गर्भवती पत्नीको लौटा दिया ॥ ७२ ॥ अपनी प्रिय पत्नीको पाकर देवगुरु बहुत प्रसन्न हुए और हँसी-खुशी अपने घर चले गये। उसके बाद सब देवता भी अपने-अपने स्थानको पयान कर गये ॥७३॥ उधर ब्रह्माजी अपने लोकको तथा शंकरजी कैलास पर्वतको चले गये। इस तरह अपनी मनोरमा भार्याको पाकर देवगुरु बृहस्पति बहुत प्रसन्न हुए ॥७४॥ कुछ समय बाद ताराने शुभ नक्षत्रमें चन्द्रमाके सदृश गुणवान् पुत्रको जन्म दिया ॥ ७५ ॥ पुत्रको उत्पन्न देखकर देवगुरुने बड़ी प्रसन्नताके साथ विधिवत् उसका जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया

ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ किमन्यायमतिर्जाता सङ्गदोषान्महामते ॥ ७० ॥ निषेधयामास ततो भृगुस्तं चौषधीपतिम् ॥ मुंच भार्यां गुरोरद्य पित्राऽहं प्रेषितस्तव ॥ ७१ ॥ सूत उवाच ॥ द्विजराजस्तु तच्छ्रुत्वा भृगोर्वचनमद्भुतम् ॥ ददौ च तत्प्रियां भार्यां गुरोर्गर्भवतीं शुभाम् ॥ ७२ ॥ प्राप्य कान्तां गुरुर्हृष्टः स्वगृहं मुदितो ययौ ॥ ततो देवास्ततो दैत्या ययुः स्वान्स्वान्गृहान्प्रति ॥ ७३ ॥ ब्रह्मा स्वसदनं प्राप्तः कैलासं चापि शङ्करः ॥ बृहस्पतिस्तु सन्तुष्टः प्राप्य भार्यां मनोरमाम् ॥ ७४ ॥ ततः कालेन कियता ताराऽसूत सुतं शुभम् ॥ सुदिने शुभनक्षत्रे तारापतिसमं गुणैः ॥ ७५ ॥ दृष्ट्वा पुत्रं गुरुर्जातं चकार विधिपूर्वकम् ॥ जातकर्मादिकं सर्वं प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ ७६ ॥ श्रुतं चन्द्रमसा जन्म पुत्रस्य मुनिसत्तमाः ॥ दूतं च प्रेषयामास गुरुं प्रति महामतिः ॥ ७७ ॥ न चायं तव पुत्रोऽस्ति मम वीर्यसमुद्भवः ॥ कथं त्वं कृतवान्कामं जातकर्मादिकं विधिम् ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दूतस्य च बृहस्पतिः ॥ उवाच मम पुत्रो मे सदृशो नात्र संशयः ॥ ७९ ॥ पुनर्विवादः संजातो मिलिता देवदानवाः ॥ युद्धार्थमागतास्तेषां समाजः समजायत ॥ ८० ॥ तत्रागतः स्वयं ब्रह्मा शान्तिकामः प्रजापतिः ॥ निवारयामास मुखे संस्थितान् युद्धदुर्मदान् ॥ ८१ ॥ तारां पप्रच्छ धर्मात्मा कस्यायं तनयः शुभे ॥ सत्यं वद वरारोहे यथा क्लेशः प्रशाम्यति ॥ ८२ ॥ तमुवाचासितापांगी लज्जमाना-

॥ ७६ ॥ सूतजी कहते हैं—हे मुनिसत्तम ! उधर जब चन्द्रमाने सुना कि ताराके पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब उन्होंने बृहस्पतिके पास दूत भेजा ॥ ७७ ॥ चन्द्रमाने कहलाया कि वह पुत्र आपका नहीं है। बल्कि मेरे वीर्यसे उत्पन्न हुआ है । तब आपने स्वेच्छासे उस बालकका जातकर्मादि संस्कार क्यों किया ? ॥ ७८ ॥ दूतके वचन सुनकर बृहस्पतिने कहा कि यह पुत्र मेरा है। क्योंकि इसकी आकृति ठीक मेरे समान है ॥७९॥ इस प्रकार उन दोनोंमें फिर विवाद खड़ा हो गया और सब देव-दानव एकत्र हो गये, जिससे फिर युद्धकी सम्भावना हो चली ॥ ८० ॥ उस समय शांतिके इच्छुक प्रजापति ब्रह्माजी वहाँ जा पहुँचे और युद्धके लिए उत्सुक देवताओं तथा दानवोंको उन्होंने रोका ॥ ८१ ॥ इसके बाद उन्होंने तारासे कहा—हे कल्याणी ! तुम सच-सच बता दो कि यह किसका पुत्र है ? हे सुन्दरी ! तुम्हारे बता देनेपर यह बहुत बड़ा कलह शान्त हो जायगा ॥ ८२ ॥ उस असितापाङ्गी एवं परम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुन्दरी ताराने लजाते हुए धीरेसे कहा कि 'यह पुत्र चन्द्रमाका है' और घरके भीतर चली गयी ॥ ८३ ॥ तब प्रसन्न मनसे चन्द्रमाने उस पुत्रको ले लिया और अपने घर जाकर उन्होंने उस शिशुका बुध नाम रखा ॥ ८४ ॥ इसके बाद ब्रह्माजी अपने ब्रह्मलोकको चले गये और बाकी सब देवता तथा अन्यान्य प्रेक्षक भी जिस क्रमसे वहाँ जुटे थे, उसी क्रमसे अपने-अपने घरको चले गये ॥ ८५ ॥ सूतजी कहते हैं कि बृहस्पतिके क्षेत्रमें चन्द्रमाके वीर्यसे उत्पन्न बुधका वृत्तान्त मैंने आप लोगोंको ठीक उसी तरह कह सुनाया, जैसा कि सत्यवतीसुत व्यास-जीके मुखसे सुना था ॥ ८६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पं० रामतेजपाण्डेयकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(राजा पुरूरवाका जन्मवृत्तान्त) सूतजी बोले—हे मुनियो ! अब मैं इलाके गर्भसे उत्पन्न बुधपुत्र महाराज पुरूरवाका जन्मवृत्तान्त सुनाता हूँ। राजा पुरूरवा बड़े धर्मात्मा, बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले और असाधारण ज्ञानी थे ॥ १ ॥ इसी तरह सुद्युम्न नामके एक राजा बड़े सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे । एक दिन वे अपने सिन्धुदेशीय घोड़ेपर सवार होकर मृगयाके

प्यधोमुखी ॥ चंद्रस्येति शनैरंतर्जगाम वरवर्णिनी ॥ ८३ ॥ जग्राह तं सुतं सोमः प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ नाम चक्रे बुध इति जगाम स्वगृहं पुनः ॥ ८४ ॥ ययौ ब्रह्मा स्वकं धाम सर्वे देवाः सवासवाः ॥ यथागतं गतं सर्वैः सर्वशः प्रेक्षकैर्जनैः ॥ ८५ ॥ कथितेयं बुधोत्पत्तिर्गुरुक्षेत्रे च सोमतः ॥ यथा श्रुता मया पूर्वं व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ ८६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कन्धे बुधोत्पत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ सूत उवाच ॥ ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां कथयामि वः ॥ बुधपुत्रोऽतिधर्मात्मा यज्ञकृद्दानतत्परः ॥ १ ॥ सुद्युम्नो नाम भूपालः सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ सैन्धवं हयमारुह्य चचार मृगयां वने ॥ २ ॥ युतः कतिपयामात्यैर्दंशितश्चारुकुंडलः ॥ धनुराजगवं बद्ध्वा बाणसंघं तथाद्भुतम् ॥ ३ ॥ स भ्रमंस्तद्वनोद्देशे हन्यमानो रुरून्मृगान् ॥ शशांश्च सूकरांश्चैव खड्गांश्च गवयांस्तथा ॥ ४ ॥ शरभान्महिषाँश्चैव साँभरान्व-नकुक्कुटान् ॥ निघ्नन्मेध्यान्पशूनराजा कुमारवनमाविशत् ॥ ५ ॥ मेरोरधस्तले दिव्यं मंदारद्रुमराजितम् ॥ अशोकलतिकाकीर्णं बकुलैरधिवा-सितम् ॥ ६ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्च चंपकैः पनसैस्तथा ॥ आम्रैर्नीपैर्मधूकैश्च माधवीमंडपावृतम् ॥ ७ ॥ दाडिमैर्नारिकेलैश्च कदलीखंडमंडितम् ॥ यूथिकामालतीकुंदपुष्पवल्लीसमावृतम् ॥ ८ ॥ हंसकारंडवाकीर्णं कीचकध्वनिनादितम् ॥ भ्रमरालिरुतारामं वनं सर्वसुखावहम् ॥ ९ ॥

लिए वनमें गये ॥२॥ उनके साथ कुछ मंत्री भी थे । राजा कमनीय कुण्डल पहने तथा हाथमें शिवधनुषके समान कठोर आजगव धनुष और बाण लिये हुए थे ॥३॥ उस बीहड़ वनमें बारह-सिंघे, मृग, खरगोश, सूअर, गैंड़े, नीलगाय जातिके जंगली बैलों, साँभर, भैंसे, जंगली मुर्ग तथा अन्यान्य यज्ञके लिए उपयोगी वनपशुओंको मारते हुए राजा सुद्युम्न कुमार नामके वनमें प्रविष्ट हुए ॥ ४ ॥ ५ ॥ वह वन सुमेरु पर्वतकी तलैटीमें था । उसमें दिव्य मन्दार वृक्ष उगे हुए थे । अशोककी लतायें फैली थीं और मौलसिरीके फूलोंकी सुगन्धि आ रही थी ॥ ६ ॥ उस वनमें साल (साखू), ताड़, तमाल, चम्पा, कटहर, आम, कदम्ब और महुआके पेड़ विद्यमान थे और जहाँ-तहाँ माधवी लताओंके मण्डप बन गये थे ॥ ७ ॥ अनार, नारियल और केलेके वृक्षोंसे वह वन शोभायमान हो रहा था । जूही, मालती तथा कुन्दकी पुष्पित लतायें चारों ओर फैली हुई थीं ॥ ८ ॥ हंस तथा कारण्डव (बत्तक) विचर रहे थे । कीचक वेणु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(पोले बाँस) की ध्वनि फैल रही थी। भौरोंकी मीठी गुञ्जार सुनायी पड़ रही थी। इन विभूतियोंसे वह वन बड़ा आनन्द दे रहा था ॥ ९ ॥ पुष्पित वृक्षोंयुक्त एवं भ्रमरोंके गुञ्जारसे मुखरित वह वन देखकर अपने सेवकोंसे घिरे राजा सुद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए ॥ १० ॥ राजर्षि सुद्युम्न उस वनमें घुसते ही पुरुषसे स्त्री हो गये और उनका घोड़ा भी घोड़ी बन गया। यह दशा देखकर राजाको बड़ी चिन्ता हो गयी ॥११॥ उन्होंने सोचा कि यह क्या हो गया। उन्हें बार-बार यही चिन्ता हो रही थी और वे बहुत लज्जित थे। वे सोच रहे थे—॥१२॥ क्या करूँ और इस स्त्रीरूपको लेकर मैं घर कैसे जाऊँ ? वहाँ जाकर भी राज्य कैसे करूँगा? किसने मुझे इस प्रकार धोखा दिया ? ॥१३॥ मुनिगण बोले—हे सूत ! आपने यह बड़ी लोमहर्षक बात कही। हे मुने ! देवतातुल्य प्रतापशाली राजा सुद्युम्न स्त्री क्यों हो गये ? ॥ १४ ॥ उस मनोहर वनमें जाकर राजाने क्या अपराध किया, जिससे उनकी यह दशा हुई ? हे सुव्रत !

दृष्ट्वा प्रमुदितो राजा सुद्युम्नः सेवकैर्वृतः ॥ वृक्षान्सुपुष्पितान्वीक्ष्य कोकिलारावमंडितान् ॥ १० ॥ प्रविष्टस्तत्र राजर्षिः स्त्रीत्वमाप क्षणात्ततः ॥ अश्वोऽपि वडवा जातश्चिंताविष्टः स भूपतिः ॥ ११ ॥ किमेतदिति चिंतार्तश्चिंत्यमानः पुनः पुनः ॥ दुःखं बहुतरं प्राप्तः सुद्युम्नो लज्जयाऽन्वितः ॥ १२ ॥ किं करोमि कथं यामि गृहं स्त्रीभावसंयुतः ॥ कथं राज्यं करिष्यामि केन वा वंचितो ह्यहम् ॥ १३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूताश्चर्यमिदं प्रोक्तं त्वया यल्लोमहर्षणम् ॥ सुद्युम्नः स्त्रीत्वमापन्नो भूपतिर्देवसन्निभः ॥ १४ ॥ किं तत्कारणमाचक्ष्व वने तत्र मनोहरे ॥ किं कृतं तेन राज्ञा च विस्तरं वद सुव्रत ॥ १५ ॥ सूत उवाच ॥ एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयः सनकादयः ॥ दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥ १६ ॥ तस्मिंश्च समये तत्र शंकरः प्रमदायुतः ॥ क्रीडासक्तो महादेवी विवस्त्रा कामिनी शिवा ॥ १७ ॥ उत्संगे संस्थिता भर्तू रममाणा मनोरमा ॥ तान्विलोक्यांबिका देवी विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ॥ १८ ॥ भर्तुरंकात्समुत्थाय वस्त्रमादाय पर्यधात् ॥ लज्जाविष्टा स्थिता तत्र वेपमानातिमानिनी ॥ १९ ॥ ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः ॥ परिवृत्य ययुस्तूर्णं नरनारायणाश्रमम् ॥ २० ॥ ह्रीयुतां कामिनीं वीक्ष्य प्रोवाच भगवान्हरः ॥ कथं लज्जातुराऽसि त्वं सुखं ते प्रकरोम्यहम् ॥ २१ ॥ अद्यप्रभृति यो मोहात्पुमान्कोऽपि वरानने ॥ वनं च प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भविष्यति ॥ २२ ॥

आप विस्तारके साथ इसका करण बताइए ॥ १५ ॥ सूतजी बोले—एक समय सनकादि ऋषि अपने तेजसे दसों दिशाओंको आलोकित करते हुए शंकरजीका दर्शन करने गये ॥ १६ ॥ उस समय शिवजी अपनी पत्नी पार्वतीके साथ विहार कर रहे थे और पार्वतीजी नग्न थीं ॥१७॥ वे उस समय शिवजीकी गोदमें बैठी रमण कर रही थीं। सनकादि मुनियोंको देखकर वस्त्र-विहीन पार्वतीको बड़ी लज्जा आयी ॥ १८ ॥ वे तत्काल पतिकी गोदसे उतरकर वस्त्र पहनने लगीं। लाजके मारे उनका बुरा हाल था और वे थरथर काँप रही थीं ॥ १९ ॥ सनकादि मुनि भी वहाँ शंकर भगवानके विहारका वातावरण देखकर तत्काल लौट पड़े और वहाँसे सीधे नर-नारायणके आश्रम बदरीवनको चले गये ॥ २० ॥ इधर शिवजी अपनी पत्नी पार्वतीको लज्जित देखकर कहने लगे—प्रिये ! तुम इस तरह लज्जित क्यों हो ? बताओ, मैं तुम्हारे सुखका उपाय करूँगा ॥ २१ ॥ आजसे अज्ञानवश भी जो पुरुष इस वनमें आयेगा, वह स्त्री हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जायगा ॥ २२ ॥ जो उस वनके शापकी बात जानते थे, वे उस दोषपूर्ण कामवनको दूर ही से त्याग देते थे ॥ २३ ॥ राजा सुद्युम्न अनजानमें अपने मंत्रियोंके साथ वहाँ चले गये, जिससे वे और उनके साथके सब पुरुष स्त्री हो गये। इसलिए इस विषयमें शंकाका कोई कारण नहीं है ॥ २४॥ तब चिन्तासे व्याकुल रहनेके कारण राजर्षि सुद्युम्न लज्जावश अपने घर नहीं गये, बल्कि उसी वनके आस-पासवाले स्थानोंमें घूमने लगे ॥ २५ ॥ स्त्रीत्व प्राप्त हो जानेपर उनका 'इला' नाम पड़ गया। इसी प्रकार घूमते-फिरते एक दिन युवा चन्द्रपुत्र बुधसे उनका साक्षात्कार हो गया ॥ २६ ॥ बहुतेरी स्त्रियोंसे घिरी उस हाव-भावमयी सुन्दरी युवतीको देखते ही चन्द्रपुत्र बुध उसपर आसक्त हो गये ॥ २७ ॥ वह रमणी भी सोमतनयको अपना पति बनाने लिए आकुल हो उठी। इस प्रकार परस्पर दोनोंके अनुरागसे संयोग भी हो गया ॥ २८ ॥ चन्द्रतनय बुधने इलासे चक्रवर्ती पुत्र पुरूरवाको उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ जब वह पुत्र जायमान हुआ, तभीसे इला चिन्तित भावसे वनमें रहने लगी। वहाँ उसने अपने कुलके आचार्य वसिष्ठजीका स्मरण किया ॥३०॥ तदनुसार उसके पास वसिष्ठ पहुँचे तो भूतपूर्व सुद्युम्नकी

इति शप्तं वनं तेन ये जानंति जनाः क्वचित् ॥ वर्जयंतीह ते कामं वनं दोषसमृद्धिमत् ॥ २३ ॥ सुद्युम्नस्तु तदज्ञानात्प्रविष्टः सचिवैः सह ॥ तथैव स्त्रीत्वमापन्नस्तैः सहेति न संशयः ॥ २४ ॥ चिंताविष्टः स राजर्षिर्न जगाम गृहं ह्रिया ॥ विचचार बहिस्तस्माद्वनदेशादितस्ततः ॥ २५ ॥ इलेति नाम संप्राप्तं स्त्रीत्वे तेन महात्मना ॥ विचरंस्तत्र संप्राप्तो बुधः सोमसुतो युवा ॥ २६ ॥ स्त्रीभिः परिवृतां तां तु दृष्ट्वा कांतां मनोरमाम् ॥ हाव-भावकलायुक्तां चकमे भगवान्बुधः ॥२७॥ साऽपि तं चकमे कांतं बुधं सोमसुतं पतिम् ॥ संयोगस्तत्र संजातस्तयोः प्रेम्णा परस्परम् ॥२८॥ स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥ इलायां सोमपुत्रस्तु चक्रवर्तिनमुत्तमम् ॥२९॥ सा प्रासूत सुतं बाला चिंताविष्टा वने स्थिता ॥ सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठं मुनिसत्तमम् ॥३०॥ स तदाऽस्य दशां दृष्ट्वा सुद्युम्नस्य कृपान्वितः॥ अतोषयन्महादेवं शंकरं लोकशंकरम् ॥३१॥ तस्मै स भगवांस्तुष्टः प्रददौ वांछितं वरम् ॥ वसिष्ठः प्रार्थयामास पुंस्त्वं राज्ञः प्रियस्य च ॥ ३२ ॥ शंकरस्तु निजां वाचमृतां कुर्वन्नुवाच ह ॥ मासं पुमांस्तु भविता मासं स्त्री भूपतिः किल ॥ ३३ ॥ इत्थं प्राप्य वरं राजा जगाम स्वगृहं पुनः ॥ चक्रे राज्यं स धर्मात्मा वसिष्ठस्याप्यनुग्रहात् ॥ ३४ ॥ स्त्रीत्वे तिष्ठति हर्म्येषु पुंस्त्वे राज्यं प्रशास्ति च ॥ प्रजास्तस्मिन्समुद्विग्ना नाभ्यनन्दन्महीपतिम् ॥ ३५ ॥ काले तु यौवनं प्राप्तः पुत्रः पुरूरवास्तदा ॥ प्रतिष्ठां नृपतिस्तस्मै

दुर्दशा देखकर उन्हें बड़ी दया आयी। तब उन्होंने सब लोकका कल्याण करनेवाले शंकर भगवानको संतुष्ट किया ॥ ३१ ॥ वसिष्ठजीपर प्रसन्न होकर शिवजीने उनसे वर माँगनेके लिए कहा। तब उन्होंने राजा सुद्युम्नको पुनः पुरुषत्व प्राप्त होनेका वर माँगा ॥३२॥ शिवजी अपना वचन सत्य करते हुए कहा कि राजा सुद्युम्न एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रहेंगे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वरदान प्राप्त करके राजा सुद्युम्न फिर अपने घर चले गये। वहाँ कुलगुरु वसिष्ठजीके अनुग्रहसे वह धर्मात्मा राजा फिर राज्य करने लगा ॥ ३४ ॥ वे राजा सुद्युम्न जबतक स्त्री रहते, तबतक महलमें रहते और पुरुष रहते तब राज्य करते थे। किन्तु स्त्रीरूपमें रहनेके कारण प्रजा उनसे अप्रसन्न रहती थी। इसलिए वह उन्हें राजाके रूपमें नहीं देखना चाहती थी ॥ ३५ ॥ कुछ समय बाद जब पुत्र पुरूरवा युवा हो गया। तब राजा सुद्युम्न प्रतिष्ठानपुरके राज्यसिंहासनपर उसका अभिषेक करके वनको चले गये। विविध वृक्षोंसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भरे रमणीक वनमें पहुँचकर राजा धुद्युम्नने देवर्षि नारदसे अत्युत्तम नौ अक्षरोंके मंत्रकी दीक्षा ली ॥३६॥३७॥ तत्र अतिशय प्रेमपूर्वक वे उस मन्त्रका जप करने लगे । इससे वे सगुणा और जगत्तारिणी भगवती प्रसन्न हो गयीं ॥ ३८ ॥ सिंहपर सवार भगवती उनके समक्ष आकर खड़ी हो गयीं । उनका बड़ा दिव्य रूप था । वे उस समय वारुणी मदिरा पीकर मत्त थीं और नशेके कारण उनके नेत्र नाच रहे थे ॥३९॥ उन दिव्यरूपधारिणी भगवतीको अपने सम्मुख देखकर प्रेमातिरेकसे राजाके नेत्र छलछला आये । वे प्रेमपूर्वक मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ इलाने कहा—हे भगवती ! आपका दिव्य रूप विश्वविख्यात है । उस लोककल्याणकारी स्वरूपका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हो गया । हे जननी ! जिन चरणोंकी देवता भी उपासना करते हैं, जो सब कामनायें पूर्ण करते और मोक्षतक प्रदान करते हैं । मैं उन श्रीचरणोंकी वन्दना करता हूँ ॥४१॥ इस संसारमें कौन मानव आपकी महिमाको भली-भाँति जानता है ? जिसके विषयमें सोचकर देवता और मुनि चक्करमें पड़ जाते हैं, आपके पास ऐसा विपुल ऐश्वर्य है । फिर भी आप मुझ जैसे अकिञ्चनपर दया करती हैं । यह देखकर मुझे बड़ा

दत्त्वा राज्यं वनं ययौ ॥ ३६ ॥ गत्वा तस्मिन्वने रम्ये नानाद्रुमसमाकुले ॥ नारदान्मंत्रमासाद्य नवाक्षरमनुत्तमम् ॥ ३७ ॥ ज़जाप मंत्रमत्यर्थं प्रेमपूरितमानसः ॥ परितुष्टा तदा देवी सगुणा तारिणी शिवा ॥ ३८ ॥ सिंहारूढा स्थिता चाग्रे दिव्यरूपा मनोरमा ॥ वारुणीपानसंमत्ता मदाघूर्णितलोचना ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा तां दिव्यारूपां च प्रेमाकुलितलोचनः ॥ प्रणम्य शिरसा प्रीत्या तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥ ४० ॥ इलोवाच ॥ दिव्यं च ते भगवति प्रथितं स्वरूपं दृष्टं मया सकललोकहितानुरूपम् ॥ वंदे त्वदंघ्रिकमलं सुरसंघसेव्यं कामप्रदं जननि चापि विमुक्तिदं च ॥ ४१ ॥ को वेत्ति तेऽम्ब भुवि मर्त्यतनुर्निकामं मुह्यंति यत्र मुनयश्च सुराश्च सर्वे ॥ ऐश्वर्यमेतदखिलं कृपणे दयां च दृष्ट्वैव देवि सकलं किल विस्मयो मे ॥ ४२ ॥ शंभुर्हरिः कमलजो मघवा रविश्च वित्तेशवह्निवरुणाः पवनश्च सोमः ॥ जानंति नैव वसवोऽपि हि ते प्रभावं बुध्येत्कथं तव गुणानगुणो मनुष्यः ॥ ४३ ॥ जानाति विष्णुरमितद्युतिरंब साक्षात्त्वां सात्त्विकीमुदधिजां सकलार्थदां च ॥ को राजसीं हर उमां किल तामसीं त्वां वेदांबिके न तु पुनः खलु निर्गुणां त्वाम् ॥ ४४ ॥ क्वाहं सुमंदमतिरप्रतिमप्रभावः क्वायं तवातिनिपुणो मयि सुप्रसादः ॥ जाने भवानि चरितं करुणासमेतं यत्सेवकांश्च दयसे त्वयि भावयुक्तान् ॥ ४५ ॥ वृत्तस्त्वया हरिरसौ वनजेशयापि नैवाचरत्यपि मुदं मधुसूदनश्च ॥ पादौ तवादिपुरुषः किल

आश्चर्य होता है ॥ ४२ ॥ शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, कुबेर, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, अष्टवसु भी आपकी महिमाको नहीं जानते, तब भला कोई गुणहीन मनुष्य उसे कैसे जान सकेगा ? ॥४३॥ हे अम्बे ! अमित तेजस्वी विष्णुभगवान् आपको समुद्रसे जायमान एवं सब प्रयोजन सिद्ध करनेवाली साक्षात् सात्त्विकी शक्तिरूपा लक्ष्मी समझते हैं । इसी प्रकार ब्रह्मा आपको राजसी शक्तिस्वरूपा तथा शिवजी आपको तामसी शक्तिस्वरूपा उमा समझते हैं । किन्तु हे अम्बिके ! आपकी निर्गुणात्मिका शक्तिको कोई नहीं जानता ॥ ४४ ॥ कहाँ अतिशय मन्दबुद्धि तथा सीमित प्रभाववाला मैं और कहाँ मुझपर आपकी अत्यन्त कृपा । हे भगवती ! मैं आपके कारुण्यपरिपूर्ण चरित्रको जानता हूँ । वह यह कि आप अपनी भक्ति करनेवाले भक्तोंपर सदा कृपालु रहती हैं ॥ ४५ ॥ यद्यपि कमलवनवासिनी लक्ष्मी होकर आपने विष्णुभगवान्को पतिरूपमें वरण किया है, किन्तु आप जैसी पत्नीको पाकर भी वे मधुसूदन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रसन्न नहीं हैं। क्योंकि वे अपनेको आपके योग्य पति नहीं समझते। वे आदिपुरुष विष्णु जो आपसे पैर दबवाते हैं, उसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि उनकी इच्छा रहती है कि आपके पावन करकमलोंका संस्पर्श पाकर वे अपनेको पवित्र कर लें ॥ ४६ ॥ अहो ! वे पुराणपुरुष भगवान विष्णु अशोकवृक्षके समान आपके पादप्रहारकी अभिलाषा करते हैं और जब वह प्राप्त हो जाता है, तब उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहता। आप भी समय-समयपर प्रणयकोपका प्रदर्शन करके समस्त देवमण्डलीसे नमस्कृत तथा कामातुर पतिको अपने चरणोंपर लोटते देख पादप्रहार करके उनकी आकांक्षा पूर्ण करती हैं (ऐसी किम्वदन्ती है कि अशोकवृक्ष किसी सुन्दरीका पादप्रहार पाकर विकसित होता है) ॥ ४७ ॥ हे देवि ! आप नित्य उनके सच्चरित्रसम्पन्न विस्तृत एवं शान्त हृदयरूपी पलंगपर सर्वदा उसी तरह निवास करती हैं, जैसे श्याम मेघमें बिजलीका निवास रहता है। ऐसा करनेसे क्या वे समस्त जगत्के ईश्वर आपके वाहन नहीं बन जाते ? ॥ ४८ ॥ हे अम्ब ! यदि आप कुपित होकर उन भगवान विष्णुको त्याग दें तो समस्त विश्वसे पूजित होते हुए भी वे शक्तिहीन होकर कुछ नहीं कर

पावकेन कृत्वा करोति च करेण शुभौ पवित्रौ ॥ ४६ ॥ वांछत्यहो हरिरशोक इवातिकामं पादाहतिं प्रमुदितः पुरुषः पुराणः ॥ तां त्वं करोषि रुषिता प्रणतं च पादे दृष्ट्वा पतिं सकलदेवनुतं स्मरार्तम् ॥ ४७ ॥ वक्षःस्थले वसति देवि सदैव तस्य पर्यंकवत्सुचरिते विपुलेऽतिशांते ॥ सौदामिनीव सुघने सुविभूषिते च किं ते न वाहनमसौ जगदीश्वरोऽपि ॥४८॥ त्वं चेज्जहासि मधुसूदनमंब कोपान्नैवार्चितोऽपि स भवेत्किल शक्तिहीनः ॥ प्रत्यक्षमेव पुरुषं स्वजनास्त्यजंति शांतं श्रियोज्झितमतीवगुणैर्वियुक्तम् ॥ ४९ ॥ ब्रह्मादयः सुरगणा न तु किं युवत्यो ये त्वत्पदांबुजमहर्निशमाश्रयंति ॥ मन्ये त्वयैव विहिताः खलु ते पुमांसः किं वर्णयामि तव शक्तिमनंतवीर्ये ॥ ५० ॥ त्वं नापुमान्न च पुमानिति मे विकल्पो या काऽसि देवि सगुणा ननु निर्गुणा वा ॥ तां त्वां नमामि सततं किल भावयुक्तो वांछामि भक्तिमचलां त्वयि मातरं ते ॥ ५१ ॥ सूत उवाच ॥ इति स्तुत्वा महीपालो जगाम शरणं तदा ॥ परितुष्टा ददौ देवी तत्र सायुज्यमात्मनि ॥ ५२ ॥ सुद्युम्नस्तु ततः प्राप पदं परमकं स्थिरम् ॥ तस्या देव्याः प्रसादेन मुनीनामपि दुर्लभम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कन्धे सुद्युम्नस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सकते। क्योंकि शान्त, श्रीहीन तथा गुणहीन पुरुषोंको उनके कुटुम्बी भी त्याग देते हैं ॥ ४९ ॥ ब्रह्मादिक देवता भी रात-दिन आपके चरणकमलोंका आश्रय लेते हैं। मैं यह समझता हूँ कि आपने ही उन्हें पुरुषत्व प्रदान किया है। हे अनन्तवीर्ये ! मैं आपकी शक्तिका वर्णन कहाँ तक करूँ ? ॥५०॥ हे माता ! आप न स्त्री हैं और न पुरुष, यह मेरा अपना विचार है। आप निर्गुण हों या सगुण, मैं तो आपकी शक्तिको नमस्कार करता हूँ। मैं बड़ी श्रद्धाके साथ आपसे यही प्रार्थना करूँगा कि आप अपने चरणोंकी अविचल भक्ति मुझे प्रदान करें ॥५१॥ सूतजी बोले—हे मुनियों ! इस प्रकार स्तुति करके राजा सुद्युम्न उनके शरणागत हो गये और भगवतीने भी प्रसन्न होकर उन्हें सायुज्य मुक्ति प्राप्त होनेका वरदान दे दिया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर उन्होंने भगवतीकी कृपासे वह परम पद प्राप्त किया कि जो बड़े-बड़े मुनियोंको भी दुर्लभ था ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(पुरूरवा और उर्वशीका मिलन) सूतजी बोले—हे मुनिसत्तम ! सुद्युम्नके परलोकगामी होनेके बाद गुणी, सुन्दर और प्रजाको प्रसन्न रखनेमें तत्पर महाराज पुरूरवा राज्य करने लगे ॥१॥ परम रम्य प्रतिष्ठानपुरमें उनके सर्वलोकनमस्कृत राज्यकी राजधानी थी । सर्वधर्मज्ञ राजा पुरूरवा सब प्रकारसे प्रजाकी रक्षा करते हुए वहाँसे ही शासनकार्य चलाते थे ॥ २ ॥ उनकी मन्त्रणायें गुप्त रहती थीं, किन्तु वे अन्य राज्योंकी गतिविधिसे भली भाँति परिचित रहते थे। उनमें सदा उत्साहशक्ति तथा प्रभुशक्ति (प्रताप) विद्यमान रहती थी ॥ ३ ॥ साम, दान, दण्ड तथा भेद ये नीतियाँ उनके वशमें रहती थीं । वे चारों वर्णों तथा चारों आश्रमोंका अनुसरण करनेवाले लोगों द्वारा अपने-अपने धर्मका आचरण कराते हुए राज्यकार्य करते थे ॥४॥ राजा पुरूरवाने प्रचुर दक्षिणायें दे-देकर अनेक यज्ञ किये और विविध प्रकारके दान दिये ॥ ५ ॥ उनके रूप, गुण, उदारता, शील, ऐश्वर्य तथा पराक्रमकी प्रशंसा सुनकर उर्वशी अप्सरा उनपर मोहित हो गयी और उन्हें चाहने लगी ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीके शापसे सन्तप्त होकर वह स्वर्गसे मनुष्यलोकमें आयी थी । यहाँ राजा पुरूरवाके गुणोंपर मुग्ध होकर उन्हें उसने पति-

॥ सूत उवाच ॥ सुद्युम्ने तु दिवं याते राज्यं चक्रे पुरूरवाः ॥ सगुणश्च सुरूपश्च प्रजारंजनतत्परः ॥ १ ॥ प्रतिष्ठाने पुरे रम्ये राज्यं सर्व-
नमस्कृतम् ॥ चकार सर्वधर्मज्ञः प्रजारक्षणतत्परः ॥ २ ॥ मंत्रः सुगुप्तस्तस्यासीत्परत्राभिज्ञता तथा ॥ सदैवोत्साहशक्तिश्च प्रभुशक्तिस्तथोत्तमा
॥ ३ ॥ सामदानादयः सर्वे वशगास्तस्य भूपतेः ॥ वर्णाश्रमान्स्वधर्मस्थान्कुर्वन्राज्यं शशास ह ॥ ४ ॥ यज्ञांश्च विविधांश्चक्रे स राजा बहुदक्षिणान् ॥
दानानि च पवित्राणि ददावथ नराधिपः ॥ ५ ॥ तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ श्रुत्वोर्वशी वशीभूता चकमे तं नराधिपम् ॥ ६ ॥
ब्रह्मशापाभितप्ता सा मानुषं लोकमास्थिता ॥ गुणिनं तं नृपं मत्वा वरयामास मानिनी ॥ ७ ॥ समयं चेदृशं कृत्वा स्थिता तत्र वरांगना ॥ एता-
वुरणकौ राजन्न्यस्तौ रक्षस्व मानद ॥ ८ ॥ घृतं मे भक्षणं नित्यं नान्यत्किञ्चिन्नृपाशनम् ॥ नेक्षे त्वां च महाराज नग्नमन्यत्र मैथुनात् ॥ ९ ॥
भाषाबंधस्त्वयं राजन् यदि भग्नो भविष्यति ॥ तदा त्यक्त्वा गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ १० ॥ अंगीकृतं च तद्राज्ञा कामिन्या भाषितं तु
यत् ॥ स्थिता भाषणबन्धेन शापानुग्रहकाम्यया ॥ ११ ॥ रेमे तदा स भूपालो लीनो वर्षगणान्बहून् ॥ धर्मकर्मादिकं त्यक्त्वा चोर्वश्या मदमोहितः
॥ १२ ॥ एकचित्तस्तु संजातस्तन्मनस्को महीपतिः ॥ न शशाक तया हीनः क्षणमप्यतिमोहितः ॥ १३ ॥ एवं वर्षगणांते तु स्वर्गस्थः पाक-

रूपमें वरण किया ॥ ७ ॥ उस सुन्दरी अप्सराने राजाके समक्ष तीन शर्तें रखीं, जिनमेंसे पहली शर्तमें उसने कहा—हे राजन् ! इन दोनों मेढ़ेके बच्चोंको मैं धरोहरके रूपमें आपके पास रखती हूँ । हे मानद ! आप इनकी रक्षा करें ॥ ८ ॥ दूसरी शर्तमें उसने कहा कि मैं केवल घी खाऊँगी और कुछ नहीं । तीसरी शर्तमें उसने कहा- हे महाराज ! मैथुनकर्मके सिवाय अन्य किसी अवसरपर मैं आपको नंगा न देखूँ ॥ ९ ॥ हे राजन् ! यदि आप इन शर्तोंका उल्लंघन करेंगे तो मैं आपको छोड़कर चली जाऊँगी, यह मैं सत्य कह रही हूँ ॥ १० ॥ इस प्रकार उस कामिनी उर्वशीने जितनी शर्तें रखीं, उन सबको राजाने मंजूर कर लिया । शापसे छुटकारा पानेके लिए उन्हीं शर्तोंके अनुसार उर्वशी भी राजाके राजमहलमें रहने लगी ॥ ११ ॥ तदनुसार राजा पुरूरवा उसके यौवनपर आसक्त हो तथा सब धर्म-कर्म त्यागकर महलोंमें रहते हुए बहुत वर्षों तक उसके साथ विहार करते रहे । राजाका मन सर्वथा उसमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लीन हो गया था। अतिशय मोहित हो जानेके कारण वे क्षणभर भी उसके बिना नहीं रह सकते थे ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस प्रकार बहुतेरे वर्ष बीत जानेपर स्वर्गमें विराजमान देवराज इन्द्रने अपनी सभामें उर्वशीको अनुपस्थित देखकर गन्धर्वोंसे कहा— ॥ १४ ॥ हे गन्धर्वो! प्रतिज्ञाके समय उर्वशीने राजा पुरुरवाके पास दो मेढ़े धरोहरके रूपमें रक्खे हैं, उन्हें चुराकर तुमलोग उर्वशीको यहाँ ले आओ ॥ १५ ॥ उर्वशीके अभावमें मुझे यह स्थान अच्छा नहीं लगता। अतएव जिस किसी उपायसे सम्भव हो, उसे यहाँ लाओ ॥ १६ ॥ देवराजके आदेशानुसार वे विश्वावसु आदि गन्धर्व चल पड़े और रात्रिके गहन अन्धकारमें राजाको विहार करते देखकर उन्होंने उन दोनों मेढ़ोंको चुरा लिया और आकाशमार्गसे भाग खड़े हुए। हरण किये जानेपर आकाशमें वे दोनों मेढ़े चिल्लाने लगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ बालककी तरह पले हुए उन मेढ़ोंकी चिल्लाहट सुनी तो उर्वशीने कुपित होकर राजा पुरूरवासे कहा कि मैंने आपके समक्ष जो पहली शर्त रक्खी थी, वह भङ्ग हो गयी ॥ १९ ॥ आपपर विश्वास करके मैं बरबाद हो गयी। मेरे प्यारे मेमनोंको चोरोंने चुरा लिया। हे राजन्! उन दोनोंको मैं पुत्रकी तरह मानती थी।

शासनः ॥ उर्वशीं नागतां दृष्ट्वा गंधर्वानाह देवराट् ॥ १४ ॥ उर्वशीमानयध्वं भो गन्धर्वाः सर्व एव हि ॥ हृत्वोरणौ गृहात्तस्य भूपतेः समये किल ॥ १५ ॥ उर्वशीरहितं स्थानं मदीयं नातिशोभते ॥ येन केनाप्युपायेन तामानयत कामिनीम् ॥ १६ ॥ इत्युक्तास्तेऽथ गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः ॥ ततो गत्वा महागाढ़े तमसि प्रत्युपस्थिते ॥ १७ ॥ जह्रुस्तावुरणौ देवा रममाणं विलोक्य तम् ॥ चक्रंदतुस्तदा तौ तु ह्रियमाणौ विहायसा ॥ १८ ॥ उर्वशी तदुपाकर्ण्य क्रंदितं सुतयोरिव ॥ कुपितोवाच राजानं समयोऽयं कृतो मया ॥ १९ ॥ नष्टाऽहं तव विश्वासाद्धृतौ चौरैर्ममोरणौ ॥ राजन्पुत्रसमावेतौ त्वं किं शेषे स्त्रिया समः ॥ २० ॥ हताऽस्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥ उरणौ मे गतौ चाद्य सदा प्राणप्रियौ मम ॥ २१ ॥ एवं विलप्यमानां तां दृष्ट्वा राजा विमोहितः ॥ नग्न एव ययौ तूर्णं पृष्ठतः पृथिवीपतिः ॥ २२ ॥ विद्युत्प्रकाशिता तत्र गन्धर्वैर्नृपवेश्मनि ॥ नग्नभूतस्तया दृष्टो भूपतिर्गन्तुकामया ॥ २३ ॥ त्यक्त्वोरणौ गताः सर्वे गन्धर्वाः पथि पार्थिवः ॥ नग्नो जग्राह तौ श्रांतौ जगाम स्वगृहं प्रति ॥ २४ ॥ तदोर्वशीं गतां दृष्ट्वा विललापातिदुःखितः ॥ नग्नं वीक्ष्य पतिं नारी गता सा वरवर्णिनी ॥ २५ ॥ क्रंदन्स देशदेशेषु बभ्राम नृपतिः स्वयम् ॥ तच्चित्तो विह्वलः शोचन्विवशः काममोहितः ॥ २६ ॥ भ्रमन्वै सकलां पृथ्वीं कुरुक्षेत्रे ददर्श ताम् ॥ दृष्ट्वा संहृष्टवदनः प्राह सूक्तं नृपोत्तमः ॥ २७ ॥

अब भी आप स्त्रियोंकी तरह पड़े सो रहे हैं? ॥ २० ॥ हाय! अपनेको वीर समझनेवाले किन्तु वास्तवमें नपुंसक इस अधम स्वामीके कारण मेरा सर्वनाश हो गया। सदासे प्राणोंके समान प्रिय मेरे दोनों मेढ़े आज गायब हो गये ॥२१॥ उसे इस प्रकार बिलखती देखकर उसपर आसक्त राजा पुरूरवा उन चोरोंका पीछा करते हुए नंगे ही दौड़ पड़े ॥२२॥ उसी समय गंधर्वोंने राजमहलमें बिजली चमका दी, जिससे उर्वशीने राजाको नंगा देख लिया ॥ २३ ॥ इसके बाद वे गन्धर्व उन दोनों मेढ़ोंको वहीं छोड़कर भाग गये और थके तथा नंगे राजा पुरूरवा मेढ़ोंको लेकर राजभवनमें लौट आये ॥२४॥ यहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि उर्वशी चली गयी है। तब अतिशय दुखी होकर वे विलाप करने लगे। क्योंकि शर्तके अनुसार अपने पतिको छोड़कर उर्वशी चली गयी थी ॥२५॥ अब काममोहित, विह्वल, विवश एवं एकमात्र उर्वशीमें आसक्त राजा पुरूरवा करुण क्रन्दन करते हुए देश-देशमें घूमने लगे ॥२६॥ इस प्रकार समस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पृथिवीका चक्कर लगा लेनेके बाद उन्होंने उर्वशीको कुरुक्षेत्रमें देखा। उसे देखते ही प्रसन्नतासे उनका मुख खिल उठा और उन्होंने यह सूक्त कहा—॥ २७ ॥ हे भयंकर नारी! ठहरो ठहरो। तुम मुझे त्यागो मत। मेरा मन तुममें ही लगा हुआ है। मैं अब भी तुमपर आसक्त हूँ। इस प्रकार मुझ निरपराध तथा अपने वशवर्ती पतिको न छोड़ो ॥२८॥ हे देवि! यदि तुम त्याग दोगी तो तुम्हारे द्वारा खींचकर इतनी दूर लाया हुआ यह शरीर निष्प्राण होकर गिर जायगा और हे सुजंघे! इसे भेड़िये तथा कौवे खा जायँगे ॥ २९ ॥ इस तरह बिलखते हुए, दुःखित, दीन, थके, कामार्त तथा अत्यन्त विवश राजासे उर्वशी बोली ॥ ३० ॥ उसने कहा—हे नृपशार्दूल! आप मूर्ख हैं। आपका ज्ञान कहाँ चला गया? हे पृथिवीपति! पृथिवीपर रहनेवाले लोगोंको चाहिए कि वे स्त्रियों और चोरोंपर कदापि विश्वास न करें। अब आप घर जाइए और आनन्द करिए। मनमें विषादको मत आने दीजिएगा॥३२॥ अत्यन्त आसक्त होनेके कारण उर्वशीके समझानेपर भी राजाको ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ। उस स्वेच्छाचारिणी अप्सराके भेड़ियोंके समान क्रूर रूपवाली नारीजातिका किसीपर भी प्रेम नहीं होता॥ ३१ ॥

अये जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ॥ मां त्वं त्वन्मनसं कांतं वशगं चाप्यनागसम् ॥ २८ ॥ स देहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ॥ खादंत्येनं वृकाः काकास्त्वया त्यक्तं वरोरु यत् ॥ २९ ॥ एवं विलपमानं तं राजानं प्राह चोर्वशी ॥ दुःखितं कृपणं श्रांतं कामार्तं विवशं भृशम् ॥ ३० ॥ उर्वश्युवाच ॥ मूर्खोऽसि नृपशार्दूल ज्ञानं कुत्र गतं तव ॥ क्वापि सख्यं न च स्त्रीणां वृकाणामिव पार्थिव ॥ ३१ ॥ न विश्वासो हि कर्तव्यः स्त्रीषु चौरेषु पार्थिवैः ॥ गृहं गच्छ सुखं भुंक्ष्व मा विषादे मनः कृथाः ॥ ३२ ॥ इत्येवं बोधितो राजा न विवेदातिमोहितः ॥ दुःखं च परमं प्राप्तः स्वैरिणीस्नेहयंत्रितः ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ इति सर्वं समाख्यातमुर्वशीचरितं महत् ॥ वेदे विस्तरितं चैतत्संक्षेपात्कथितं मया ॥ ३४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ सूत उवाच ॥ दृष्ट्वा तामसितापांगीं व्यासश्चिंतापरोऽभवत् ॥ किं करोमि न मे योग्या देवकन्येयमप्सराः ॥ १ ॥ एवं चिंतयमानं तु दृष्ट्वा व्यासं तदाऽप्सराः ॥ भयभीता हि सञ्जाता शापं मा विसृजेदयम् ॥ २ ॥ सा कृत्वाऽथ शुकीरूपं निर्गता भयविह्वला ॥ कृष्णस्तु विस्मयं प्राप्तो विहंगीं तां विलोकयन् ॥ ३ ॥ कामस्तु देहे व्यासस्य दर्शनादेव संगतः ॥ मनोऽतिविस्मितं सर्वगात्रेषु विस्मितः ॥ ४ ॥ स तु धैर्येण

स्नेहमें जकड़े रहनेके कारण उन्हें अपार दुःख हुआ ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले—हे मुनिगण! इस प्रकार मैंने महान् उर्वशीचरित्र कह सुनाया। वेद (ऋग्वेद) में विस्तारके साथ इस चरित्रका वर्णन किया गया है। यहाँ मैंने संक्षेपमें यह कथा कही है ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

(श्रीशुकदेवजीका जन्म) सूतजी बोले—उस सुन्दरी घृताची अप्सराको देखकर व्यासजी बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि यह देवकन्या मेरे योग्य नहीं है। अब मैं क्या करूँ? ॥१॥ उधर वह अप्सरा व्यासजीको इस प्रकार विचारमग्न देखकर डर गयी कि कहीं ये मुझे शाप न दे दें ॥२॥ तदनन्तर वह भयभीत अप्सरा शुकीका रूप धारण करके उड़ गयी। अब कृष्ण द्वैपायन उस पक्षिणीको देखकर बड़े आश्चर्यमें पड गये ॥ ३ ॥ उस अप्सराको देखते ही व्यासजीके सब अंगोंमें कामदेवका सञ्चार होकर मन विस्मयमें पड़ गया ॥४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्होंने बड़े धैर्यके साथ मनको रोकना चाहा, किन्तु वे अपने विषयासक्त मनको नहीं रोक सके ॥ ५ ॥ घृताची अप्सरा द्वारा अमिततेजस्वी व्यासजीका मन अनेक प्रयत्न करनेपर भी भावीवश काबूमें नहीं आया ॥ ६ ॥ तभी अग्नि प्राप्त करनेके लिए मन्थन करते समय एकाएक उनका वीर्य अरणीपर गिर गया ॥ ७ ॥ उस वीर्यपातपर कुछ भी ध्यान न देकर व्यासजी बराबर अरणीमन्थन करते रहे । उससे अचानक व्यासजीके ही समान आकृतिका एक शुक उत्पन्न हो गया ॥८॥ जिस तरह यज्ञमें हव्यसे दीप्तियुक्त अग्नि प्रकट होता है, ठीक उसी प्रकार व्यासजीको विस्मयमें डालता हुआ वह शिशु अरणीसे उत्पन्न हो गया ॥९॥ व्यासजी उस बालकको देखकर बहुत विस्मित हुए । उन्होंने सोचा कि 'यह क्या है' । बादमें स्मरण आया कि सम्भवतः शिवजीके वरदानसे इसकी उत्पत्ति हुई है ॥१०॥ अरणीके गर्भसे जायमान शुकदेव बड़े तेजस्वी थे । वे अपने असाधारण तेजसे दूसरे अग्निके समान दीप्तिमान् लग रहे थे॥ ११ ॥

महता निगृह्णन्मानसं मुनिः ॥ न शशाक नियंतुं च स व्यासः प्रसृतं मनः ॥ ५ ॥ बहुशो गृह्यमाणं च घृताच्या मोहितं मनः ॥ भावित्वान्नैव विधृतं व्यासस्यामिततेजसः ॥ ६ ॥ मंथनं कुर्वतस्तस्य मुनेरग्निचिकीर्षया ॥ अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमथापतत् ॥ ७ ॥ सोऽविचिंत्य तथा पातं ममंथारणिमेव च ॥ तस्माच्छुकः समुद्भूतो व्यासाकृतिमनोहरः ॥ ८ ॥ विस्मयं जनयन्बालः सञ्जातस्तदरण्यजः ॥ यथाऽध्वरे समिद्धोऽग्नि-र्भाति हव्येन दीप्तिमान् ॥ ९ ॥ व्यासस्तु सुतमालोक्य विस्मयं परमं गतः ॥ किमेतदिति संचिंत्य वरदानाच्छिवस्य वै ॥ १० ॥ तेजोरूपी शुको जातोऽप्यरणीगर्भसंभवः ॥ द्वितीयोऽग्निरिवात्यर्थं दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥ विलोकयामास तदा व्यासस्तु मुदितं सुतम् ॥ दिव्येन तेजसा युक्तं गार्हपत्यमिवापरम् ॥ १२ ॥ गङ्गांतः स्नापयामास समागत्य गिरेस्तदा ॥ पुष्पवृष्टिस्तु खाज्जाता शिशोरुपरि तापसाः ॥ १३ ॥ जातकर्मादिकं चक्रे व्यासस्तस्य महात्मनः ॥ देवदुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ १४ ॥ जगुर्गंधर्वपतयो मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥ विश्वावसुर्नारदश्च तुंबुरुः शुकसंभवे ॥ १५ ॥ तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे देवा विद्याधरास्तथा ॥ दृष्ट्वा व्याससुतं दिव्यमरणीगर्भसंभवम् ॥ १६ ॥ अंतरिक्षात्पपातोर्व्यां दंडः कृष्णाजिनं शुभम् ॥ कमण्डलुस्तथा दिव्यः शुकस्यार्थे द्विजोत्तमाः ॥ १७ ॥ सद्यः स ववृधे बालो जातमात्रोऽतिदीप्तिमान् ॥ तस्योपनयनं चक्रे व्यासो विद्याविधानवित् ॥ १८ ॥ उत्पन्नमात्रं तं वेदाः सरहस्याः ससंग्रहाः ॥ उपतस्थुर्महात्मानं यथाऽस्य पितरं तथा ॥ १९ ॥ यतो दृष्टं शुकी-

तदनन्तर अपर गार्हपत्य अग्निके समान दिव्य तेजसे युक्त तथा प्रसन्न उस बालकको उन्होंने देखा ॥१२॥ उसे उठाकर वे पर्वतसे नीचे उतरे और गङ्गाजीमें नहलाया । हे तपस्वियो ! उस समय उस बालकपर आकाशसे पुष्पवर्षा हुई ॥ १३ ॥ महामुनि व्यासने उस नवजात महात्मा पुत्रका जातकर्म आदि संस्कार किया । उस अवसरपर देवताओंने दुन्दुभी बजाई और अप्स-राओंने नृत्य किया ॥ १४ ॥ उस बालकको देखकर विश्वावसु, नारद तथा तुम्बुरु आदि बड़े-बड़े गन्धर्वोंने गायन गाये ॥ १५ ॥ सब देवताओं और विद्याधरोंने अरणीके गर्भसे उत्पन्न व्यासतनयको देखकर उनकी स्तुति की ॥१६॥ हे द्विजोत्तमगण ! उसी समय शुकदेवके लिए आकाशसे दिव्य दण्ड, कृष्णमृगचर्म तथा कमण्डल धरतीपर आ गिरा ॥१७॥ उत्पन्न होते ही वह अति दीप्तिमान् बालक बढ़ गया । तब वैदिक विधानके विशेषज्ञ व्यासजीने उसका उपनयन-संस्कार किया ॥ १८ ॥ वह बालक जैसे ही उत्पन्न हुआ, उसी समय रहस्य तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संग्रहात्मक ग्रन्थों समेत चारों वेद उसी प्रकार तत्काल कंठस्थ हो गये, जैसे उसके पिता व्यासको कंठस्थ हुए थे ॥१९॥ कामवासना उत्पन्न होनेके समय व्यासजीने घृताची अप्सराको शुकीके रूपमें देखा था। अतएव उन्होंने इस बालकका 'शुक' नाम रक्खा ॥ २० ॥ तदनन्तर व्यासपुत्र शुकने देवगुरु बृहस्पतिको गुरु बनाकर विधिवत् ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया ॥ २१ ॥ गुरुकुलमें निवास करते हुए शुकदेवने रहस्य तथा संग्रहात्मक ग्रन्थों समेत चारों वेदों और धर्मशास्त्रोंका अध्ययन किया ॥२२॥ तत्पश्चात् गुरुको गुरुदक्षिणा देकर वे गुरुकुलसे लौट पड़े और अपने पिता कृष्णद्वैपायन व्यासके पास आये ॥ २३ ॥ व्यासजी शुकदेवको देखते ही प्रेमसे उठ खड़े हुए और छातीसे लगाकर उनका माथा सूँघा ॥ २४ ॥ तत्पश्चात् उन्होंने कुशल-क्षेम पूछा और उनके स्वाध्यायकी परीक्षा ली। फिर उन्हें अपने रमणीक आश्रममें ले जाकर रक्खा ॥ २५ ॥ इसके बाद व्यासजी शुकदेवके विवाहकी बात सोचने लगे और उन्होंने

रूपं घृताच्याः संभवे तदा ॥ शुकेति नाम पुत्रस्य चकार मुनिसत्तमः ॥ २० ॥ बृहस्पतिमुपाध्यायं कृत्वा व्याससुतस्तदा ॥ व्रतानि ब्रह्मचर्यस्य चकार विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥ सोऽधीत्य निखिलान्वेदान्सरहस्यान्ससंग्रहान् ॥ धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कृत्वा गुरुकुले शुकः ॥ २२ ॥ गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावृत्तो मुनिस्तदा ॥ आजगाम पितुः पार्श्वं कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा व्यासः शुकं प्राप्तं प्रेम्णोत्थाय ससंभ्रमः ॥ आलिलिंग मुहुर्घ्राणं मूर्ध्नि तस्य चकार ह ॥ २४ ॥ पप्रच्छ कुशलं व्यासस्तस्थौ चाध्ययनं शुचिः ॥ आश्वास्य स्थापयामास शुकं तत्राश्रमे शुभे ॥ २५ ॥ दारकर्म ततो व्यासः शुकस्य पर्यचिंतयत् ॥ कन्यां मुनिसुतां कांतामपृच्छदतिवेगवान् ॥ २६ ॥ शुकं प्राह सुतं व्यासो वेदोऽधीतस्त्वयाऽनघ ॥ धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कुरु भार्यां महामते ॥ २७ ॥ गार्हस्थ्यं च समासाद्य यज देवान्पितॄनथ ॥ ऋणान्मोचयं मां पुत्र प्राप्य दारान्मनोरमान् ॥ २८ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ तस्मात्पुत्र महाभाग कुरुष्वाद्य गृहाश्रमम् ॥ २९ ॥ कृत्वा गृहाश्रमं पुत्र सुखिनं कुरु मां शुक ॥ आशा मे महती पुत्र पूरयस्व महामते ॥ ३० ॥ तपस्तप्त्वा महाघोरं प्राप्तोऽसि स्वयमयोनिजः ॥ देवरूपी महाप्राज्ञ पाहि मां पितरं शुक ॥ ३१ ॥ सूत उवाच ॥ इति वादिनमभ्याशे प्राप्तः प्राह शुकस्तदा ॥ विरक्तः सोऽतिरक्तं तं साक्षात्पितरमात्मनः ॥ ३२ ॥ शुक उवाच ॥ किं

शुकदेवसे भी किसी मुनिकन्याके साथ विवाहविषयक पूछताछ की ॥ २६ ॥ उन्होंने शुकदेवसे कहा—हे पूतात्मन्! तुमने सब वेदों और धर्मशास्त्रोंका अध्ययन कर लिया है। हे महामते! अब तुम अपना विवाह कर लो ॥ २७ ॥ इस प्रकार गार्हस्थ्य आश्रम स्वीकार करके देवयज्ञ तथा पितृयज्ञ सम्पन्न करो। हे पुत्र! तुम किसी सुन्दरी स्त्रीको प्राप्त करके मुझे ऋणमुक्त कर दो ॥ २८ ॥ हे पुत्र! निपूते मनुष्यकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग तो कभी मिलता ही नहीं। अतएव हे महाभाग पुत्र! अब तुम गृहस्थाश्रममें प्रवेश करो ॥ २९ ॥ हे शुक! हे पुत्र! घर-गृहस्थी बसाकर मुझे आनन्दित करो। हे महामति पुत्र! ऐसा करके तुम मेरी महती आशाको पूर्ण करो ॥ ३० ॥ बड़ी कठोर तपस्या करके मैंने तुम्हें पाया है। तुम अयोनिजन्मा हो। हे महाप्राज्ञ! तुम देवतास्वरूप हो। हे शुक! तुम मुझ अपने पिताकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले—ऐसा कहते हुए गार्हस्थ्य धर्मके अनुरागी अपने पिता व्याससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विरक्त शुकदेवने कहा ॥ ३२ ॥ शुकदेव बोले—हे धर्मज्ञ ! हे वेदव्यास ! हे महामते ! आप यह क्या कह रहे हैं ? मैं आपका शिष्य हूँ । आप मुझे तत्त्वज्ञानकी बातें बतायें तो मैं आपकी आज्ञा मानूँगा ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले—हे पुत्र ! तुम्हारे लिए मैंने सैकड़ों वर्ष कठोर तपस्या की है और बड़े कष्टसे शिवजीको प्रसन्न करके तुम्हें पाया है ॥ ३४ ॥ किसी राजासे माँगकर मैं तुम्हें पुष्कल धन ला दूँगा । जिससे हे महाप्राज्ञ ! तुम यौवनावस्था प्राप्त करके सुख भोग सकोगे ॥३५॥ शुकदेव बोले—हे तात ! आप मुझे यह बताइए कि इस मनुष्यलोकमें विपत्तिहीन कौनसा सुख है ? यहाँका सब सुख दुःखपूर्ण है । बुद्धिमान् लोग इसे सुख नहीं कहते ॥ ३६ ॥ हे महाभाग ! स्त्री रखकर मैं उसके अधीन हो जाऊँगा । तब आप ही बताइए कि परतन्त्र, वह भी स्त्रीके अधीन रहनेवाले पुरुषको कौनसा सुख प्राप्त हो सकता है ? ॥ ३७ ॥ लौह तथा काष्ठमें जकड़ा पुरुष कभी उससे छूट भी जाय, किन्तु स्त्री-पुत्रके बंधनमें पड़ा हुआ प्राणी कभी भी बन्धनमुक्त नहीं होता ॥३८॥ स्त्रियोंका शरीर विष्ठा तथा मूत्रके संसर्गसे उत्पन्न होता है । तब हे विप्रेन्द्र ! उसमें आसक्त होकर मुझे कौन-सा सुख मिलेगा और कौन

त्वं वदसि धर्मज्ञ वेदव्यास महामते ॥ तत्त्वेन शाधि शिष्यं मां त्वदाज्ञां करवाण्यलम् ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ त्वदर्थे यत्तपस्तप्तं मया पुत्र शतं समाः ॥ प्राप्तस्त्वं चातिदुःखेन शिवस्याराधनेन च ॥३४॥ ददामि तव वित्तं तु प्रार्थयित्वाथ भूपतिम् ॥ सुखं भुंक्ष्व महाप्राज्ञ प्राप्य यौवनमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ शुक उवाच ॥ किं सुखं मानुषे लोके ब्रूहि तात निरामयम् ॥ दुःखविद्धं सुखं प्राज्ञा न वदंति सुखं किल ॥ ३६ ॥ स्त्रियं कृत्वा महाभाग भवामि तद्वशानुगः ॥ सुखं किं परतंत्रस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ ३७ ॥ कदाचिदपि मुच्येत लोहकाष्ठादियंत्रितः ॥ पुत्रदारैर्निबद्धस्तु न विमुच्येत कर्हिचित् ॥ ३८ ॥ विण्मूत्रसंभवो देहो नारीणां तन्मयस्तथा ॥ कः प्रीतिं तत्र विप्रेन्द्र विबुधः कर्तुमिच्छति ॥ ३९ ॥ अयोनिजोऽहं विप्रर्षे योनौ मे कीदृशी मतिः ॥ न वांछाम्यहमग्रेऽपि योनावेव समुद्भवम् ॥ ४० ॥ विट्सुखं किमु वांछामि त्यक्त्वाऽऽत्मसुखमद्भुतम् ॥ आत्मारामश्च भूयोऽपि न भवत्यतिलोलुपः ॥ ४१ ॥ प्रथमं पठिता वेदा मया विस्तारिताश्च ते ॥ हिंसामयास्ते पठिताः कर्ममार्गप्रवर्तकाः ॥ ४२ ॥ बृहस्पतिर्गुरुः प्राप्तः सोऽपि मग्नो गृहार्णवे ॥ अविद्याग्रस्तहृदयः कथं तारयितुं क्षमः ॥ ४३ ॥ रोगग्रस्तो यथा वैद्यः पररोगचिकित्सकः ॥ तथा गुरुर्मुमुक्षोर्मे गृहस्थोऽयं विडम्बना ॥ ४४ ॥ कृत्वा प्रणामं गुरवे त्वत्समीपमुपागतः ॥ त्राहि मां तत्त्वबोधेन भीतं संसारसर्पतः ॥ ४५ ॥ संसारेऽस्मिन्म-

विद्वान् उससे प्रेम करना चाहेगा ॥ ३९ ॥ हे विप्रर्षे ! मैं अयोनिज हूँ । तब योनिमें मेरी प्रीति क्यों होगी ? भविष्यमें भी मैं योनिसे अपनी उत्पत्ति नहीं चाहता ॥ ४० ॥ अद्भुत आत्मसुख त्यागकर मै विष्ठाजनित सुख क्यों चाहूँ ? अपने आपमें मस्त रहनेवाला मैं विषयका लोभी नहीं बनना चाहता ॥ ४१ ॥ सर्वप्रथम मैंने आपके द्वारा विस्तारित वेदोंको पढ़ा । बादमें उनका मनन करनेपर ज्ञात हुआ कि कर्मकाण्डके प्रवर्तक होनेके नाते वे हिंसाको प्रोत्साहन देते हैं ॥ ४२ ॥ गुरुरूपमें मुझे बृहस्पतिजी मिले, वे भी गार्हस्थ्यके समुद्रमें डूबे दीखे । जब स्वतः उनका हृदय अविद्याग्रस्त है, तब भला वे औरोंको कैसे तारेंगे ? ॥ ४३ ॥ जैसे कोई रोगी वैद्य किसी अन्य रोगीकी चिकित्सा करे। उसी प्रकार मुझ मोक्षाभिलाषीको गार्हस्थ्य धर्म विडम्बना जैसा दीखता है ॥ ४४ ॥ ऐसे गुरुको नमस्कार करके मैं आपके पास आया हूँ । मुझे तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर मेरी रक्षा करिए । क्योंकि मैं संसाररूपी सर्पसे डरा हुआ हूँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ४५ ॥ इस महाभयानक संसारमें प्राणीको नक्षत्रोंकी तरह सदा चक्कर लगाना पड़ता है और सूर्यकी तरह रात-दिन कभी भी विश्रामका अवकाश नहीं मिलता ॥ ४६ ॥ इस संसारमें तत्त्वविचारके सिवाय भला और कौन-सा सुख धरा है? हे तात! इसमें तो मूर्खोंको ही सुख मिलता है। जैसे विष्ठाके कीड़ेको विष्ठामें ही सुख मिलता है ॥४७॥ जो लोग वेदों और शास्त्रोंका अध्ययन करके भी संसारके प्रेमी बने रहते हैं, उनसे बढ़कर मूर्ख और कोई न होगा। उन्हें कुत्तों, घोड़ों और सुअरोंका समानधर्मी कहना चाहिए ॥ ४८ ॥ दुर्लभ मानव शरीर पाकर और वेदों तथा शास्त्रोंका अध्ययन करनेके बाद भी जो संसारके बन्धनमें बँधा रह जाता है तो भला कौन मनुष्य बन्धनमुक्त होगा? ॥ ४९ ॥ संसारमें इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात और कोई न होगी कि यहाँ पुत्र, स्त्री और गृहस्थीमें आसक्त पुरुष पंडित कहलाता है ॥ ५० ॥ बन्धनमें जो मनुष्य मायाके सत्त्व-रज-तमरूपी तीनों गुणोंके बन्धनमें नहीं बँधता, वही मनुष्य विद्वान्, बुद्धिमान् तथा शास्त्रपारदर्शी है ॥५१॥ बन्धन दृढ़ करनेवाले अध्ययनसे क्या लाभ? सार्थक स्वाध्याय तो वही है कि जिसके द्वारा भवबन्धनसे शीघ्र मुक्ति मिल जाय

हाघोरे भ्रमणं नभचक्रवत् ॥ न च विश्रमणं क्वापि सूर्यस्येव दिवानिशि ॥ ४६ ॥ किं सुखं तात संसारे निधनत्वविचारणात् ॥ मूढानां सुखबुद्धिस्तु विट्सु कीटसुखं यथा ॥ ४७ ॥ अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये ॥ तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः ॥ ४८ ॥ मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य वेदशास्त्राण्यधीत्य च ॥ बद्ध्यते यदि संसारे को विमुच्येत मानवः ॥ ४९ ॥ नातःपरतरं लोके क्वचिदाश्चर्यमद्भुतम् ॥ पुत्रदारगृहासक्तः पंडितः परिगीयते ॥ ५० ॥ न बद्ध्यते यः संसारे नरो मायागुणैस्त्रिभिः ॥ स विद्वान्स च मेधावी शास्त्रपारं गतो हि सः ॥ ५१ ॥ किं वृथाऽध्ययनेनाऽत्र दृढबंधकरेण च ॥ पठितव्यं तदेवाशु मोचयेद्भवबंधनात् ॥ ५२ ॥ गृह्णाति पुरुषं यस्माद्गृहं तेन प्रकीर्तितम् ॥ क्व सुखं बन्धनागारे तेन भीतोस्म्यहं पितः ॥ ५३ ॥ येऽबुधा मंदमतयो विधिना मुषिताश्च ये ॥ ते प्राप्य मानुषं जन्म पुनर्बंधं विशंत्युत ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ न गृहं बन्धनागारं बन्धने न च कारणम् ॥ मनसा यो विनिर्मुक्तो गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥ ५५ ॥ न्यायागतधनः कुर्वन्वेदोक्तं विधिवत्क्रमात् ॥ गृहस्थोऽपि विमुच्येत श्राद्धकृत्सत्यवाक्शुचिः ॥५६॥ ब्रह्मचारी यतिश्चैव वानप्रस्थो व्रतस्थितः ॥ गृहस्थं समुपासंते मध्याह्नातिक्रमे सदा ॥ ५७ ॥ श्रद्धया चान्नदानेन वाचा सूनृतया तथा ॥ उपकुर्वन्ति धर्मस्था गृहाश्रमनिवासिनः ॥ ५८ ॥ गृहाश्रमात्परो धर्मो न दृष्टो

॥५२॥ पुरुषोंको जकड़ लेनेके कारण ही घरको 'गृह' कहते हैं। ऐसे बन्धनस्वरूप घरमें सुख कहाँ है? हे पिताजी! इसी कारण मैं गृहस्थीसे डर गया हूँ ॥५३॥ अज्ञानी, मन्दबुद्धि और अभागे मनुष्य ही मानव तन पा करके भी बन्धनमें बँधते हैं ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले—हे पुत्र! घर न बन्धनागार है और न बन्धनका हेतु ही है। जिस गृहस्थका मन गृहस्थीमें रहता हुआ भी अनासक्त है, वह गृहस्थ भी मुक्त ही माना जाता है ॥ ५५ ॥ जिस गृहस्थके पास न्यायोपार्जित धन रहता है, जो वेदोक्त कर्मोंका विधिवत् और क्रमशः सम्पादन करता है, जो पितृश्राद्ध करता है, सत्य वचन बोलता है और सदा पवित्र रहता है, वह गृहस्थ भी मुक्त हो जाता है ॥ ५६ ॥ सभी ब्रह्मचारी, संन्यासी, वानप्रस्थी तथा व्रती मध्याह्नके बाद गृहस्थके ही पास जाते हैं ॥ ५७ ॥ धर्मात्मा गृहस्थजन श्रद्धासे अन्नदान और मधुरी वाणीसे सबका उपकार करते रहते हैं ॥ ५८ ॥ वसिष्ठ आदि ज्ञानी आचार्यों द्वारा परिपालित गृहस्थाश्रमसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रेष्ठ धर्म न कहीं देखा गया है और न सुननेमें ही आया है ॥ ५९ ॥ हे महाभाग ! वेदोक्त कर्म करनेवाले प्राणियोंको कौन-सा पदार्थ अप्राप्य रह जाता है ? स्वर्ग, मोक्ष और अच्छा जन्म इनमेंसे वह जो भी चाहता है, सो प्राप्त कर लेता है ॥ ६० ॥ सभी धर्मज्ञ पुरुष इस बातको मानते हैं कि एक आश्रमका धर्म पालन करनेके बाद दूसरे आश्रममें जाना चाहिए । अतएव तुम अग्न्याधान करके निरलसभावसे गृहस्थोचित कर्म करो ॥ ६१ ॥ हे पुत्र ! देवताओं, पितरों और अपने आश्रित मनुष्योंको विधिवत् सन्तुष्ट करते हुए पुत्र उत्पन्न करो । सज्ञान होनेपर उसे गृहस्थाश्रममें नियुक्त कर दो । ६२॥ उसके बाद घर त्यागकर वनमें चले जाना और वहाँ वानप्रस्थ आश्रमके नियमोंका पालन करके संन्यास ले लेना ॥६३॥ हे महाभाग ! यह बात सर्वमान्य है कि इन्द्रियाँ मनुष्यको उन्मत्त बना देती हैं । जो मनुष्य स्त्रीविहीन रहता है, उसे मन समेत पाँचों इन्द्रियाँ विकल कर देती हैं ॥६४॥ उन इन्द्रियोंपर

न च वै श्रुतः ॥ वसिष्ठादिभिराचार्यैर्ज्ञानिभिः समुपाश्रितः ॥ ५९ ॥ किमसाध्यं महाभाग वेदोक्तानि च कुर्वतः ॥ स्वर्गं मोक्षं च सज्जन्म यद्यद्वांछति तद्भवेत् ॥ ६० ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति धर्मविदो विदुः ॥ तस्मादग्निं समाधाय कुरु कर्माण्यतन्द्रितः ॥ ६१ ॥ देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च सन्तर्प्य विधिवत्सुत ॥ पुत्रमुत्पाद्य धर्मज्ञ संयोज्य च गृहाश्रमे ॥ ६२ ॥ त्यक्त्वा गृहं वनं गत्वा कर्ताऽसि व्रतमुत्तमम् ॥ वानप्रस्थाश्रमं कृत्वा संन्यासं च ततः परम् ॥ ६३ ॥ इन्द्रियाणि महाभाग मादकानि सुनिश्चितम् ॥ अदारस्य दुरंतानि पंचैव मनसा सह ॥ ६४ ॥ तस्माद्दारान्प्रकुर्वीत तज्जयाय महामते ॥ वार्द्धके तप आतिष्ठेदिति शास्त्रोदितं वचः ॥ ६५ ॥ विश्वामित्रो महाभाग तपः कृत्वाऽतिदुश्चरम् ॥ त्रीणि वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रियः ॥ ६६ ॥ मोहितश्च महातेजा वने मेनकया स्थितः ॥ शकुन्तला समुत्पन्ना पुत्री तद्वीर्यजा शुभा ॥ ६७ ॥ दृष्ट्वा दाशसुतां कालीं पिता मम पराशरः ॥ कामबाणार्दितः कन्यां तां जग्राहोडुपे स्थितः ॥ ६८ ॥ ब्रह्माऽपि स्वसुतां दृष्ट्वा पञ्चबाणप्रपीडितः ॥ धावमानश्च रुद्रेण मूर्छितश्च निवारितः ॥ ६९ ॥ तस्मात्त्वमपि कल्याण कुरु मे वचनं हितम् ॥ कुलजां कन्यकां वृत्वा वेदमार्गं समाश्रय ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

विजय प्राप्त करनेके लिए प्राणिग्रहण करे और बुढ़ापा आये, तब तपस्या करे । यह शास्त्रीय आदेश है ॥ ६५ ॥ हे महाभाग ! महर्षि विश्वामित्र अति कठोर तप करते हुए तीन हजार वर्षोंतक निराहार रहकर इन्द्रियोंको रोके रहे ॥ ६६ ॥ किन्तु वे महातेजस्वी मुनि भी मेनका अप्सराको देखते ही उसपर मोहित हो गये और उन्हींके वीर्यसे शकुन्तला उत्पन्न हुई ॥६७॥ इसी प्रकार मेरे पिता पराशर एक धीवरकी कन्या कालीको देखकर कामबाणसे आहत हो गये और नावपर उसके साथ भोग किया ॥ ६८ ॥ लोकपितामह ब्रह्माजी भी अपनी पुत्री सरस्वतीको देखकर कामातुर हो गये और उसके पीछे दौड़ पड़े, तब शिवजीने उन्हें रोका ॥६९॥ अतएव हे कल्याण ! तुम मेरे हितभरे वचन मानकर किसी कुलीन कन्याका पाणिग्रहण करके वैदिक मार्गका अनुसरण करो ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पं०रामतेजपाण्डेयकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(शुकदेवजीकी वैराग्यवार्ता और भगवती द्वारा विष्णुको ब्रह्मोपदेश) श्रीशुकदेव बोले—हे पिताजी ! सब प्रकारके दुःख देनेवाले गृहस्थाश्रमको मैं कदापि स्वीकार नहीं करूँगा। क्योंकि यह सब लोगोंको मृग फँसानेवाले जालकी तरह बन्धनमें डाल देता है ॥१॥ हे तात ! धनप्राप्तिके लिए व्याकुल रहनेवाले लोगोंको सुख कहाँ मिलता है ? निर्धन और लोभी अपने ही स्वजनों द्वारा सताये जाते हैं ॥ २ ॥ भिक्षुकों और निःस्पृह लोगोंको जितना सुख मिलता है, उतना सुख इन्द्रको भी नहीं मिलता । तब त्रिलोकीमें ऐसा कौन प्राणी है, जो वैभव प्राप्त करके सुखी हो सके ॥३॥ एक तपस्वीको तप करते देखकर इन्द्र दहल जाते हैं और उसपर नाना प्रकारके विघ्नोंकी वर्षा कर देते हैं ॥४॥ ब्रह्माजी भी सुखी नहीं हैं। मनोहारिणी लक्ष्मी जैसी पत्नी पाकर भी भगवान विष्णु सुखी नहीं हैं। क्योंकि उन्हें सदा असुरोंके साथ संग्राम करते हुए विविध संकट झेलने पड़ते हैं ॥ ५ ॥ वे सुखप्राप्तिके लिए विविध प्रयत्न तथा तप करते रहते हैं। फिर भी क्या उन्हें सुख मिलता है ? ॥ ६ ॥ मुझे यह भी मालूम है कि शंकर भगवान भी सुखी नहीं हैं। क्योंकि उन्हें तपस्या करके असुरोंसे

॥ श्रीशुक उवाच ॥ नाहं गृहं करिष्यामि दुःखदं सर्वदा पितः ॥ वागुरासदृशं नित्यं बन्धनं सर्वदेहिनाम् ॥ १ ॥ धनचिंतातुराणां हि क सुखं तात दृश्यते ॥ स्वजनैः खलु पीड्यंते निर्धना लोलुपा जनाः ॥ २ ॥ इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृशो भिक्षुनिःस्पृहः ॥ कोऽन्यः स्यादिह संसारे त्रिलोकीविभवे सति ॥ ३ ॥ तपन्तं तापसं दृष्ट्वा मघवा दुःखितोऽभवत् ॥ विघ्नान्बहुविधानस्य करोति च दिवस्पतिः ॥ ४ ॥ ब्रह्माऽपि न सुखी विष्णुर्लक्ष्मीं प्राप्य मनोरमाम् ॥ खेदं प्राप्नोति सततं संग्रामैरसुरैः सह ॥ ५ ॥ करोति विपुलान्यत्नांस्तपश्चरति दुश्चरान् ॥ रमाधतिरपि श्रीमान्कस्यास्ति विपुलं सुखम् ॥ ६ ॥ शङ्करोऽपि सदा दुःखी भवत्येव च वेद्म्यहम् ॥ तपश्चर्यां प्रकुर्वाणो दैत्ययुद्धकरः सदा ॥ ७ ॥ कदाचिन्न सुखी शेते धनवानपि लोलुपः ॥ निर्धनस्तु कथं तात सुखं प्राप्नोति मानवः ॥ ८ ॥ जानन्नपि महाभाग पुत्रं वा वीर्यसंभवम् ॥ नियोक्ष्यसि महाघोरे संघारे दुःखदे सदा ॥ ९ ॥ जन्मदुःखं जरादुःखं दुःखं च मरणे तथा ॥ गर्भवासे पुनर्दुःखं विष्ठामूत्रमये पितः ॥ १० ॥ तस्मादतिशयं दुःखं तृष्णालोभसमुद्भवम् ॥ याञ्चायां परमं दुःखं मरणादपि मानद ॥ ११ ॥ प्रतिग्रहधना विप्रा न बुद्धिबलजीवनाः ॥ पराशा परमं दुःखं मरणं च दिने दिने ॥ १२ ॥ पठित्वा सकलान्वेदाञ्छास्त्राणि च समन्ततः ॥ गत्वा च धनिनां कार्या स्तुतिः सर्वात्मना बुधैः ॥ १३ ॥ एकोदरस्य का चिन्ता पत्रमूलफलादिभिः । येन केनाप्युपायेन संतुष्ट्या च प्रपूर्यते ॥१४॥ भार्या पुत्रास्तथा पौत्राः कुटुम्बे विपुले सति । पूरणार्थ

लड़ना पड़ता है ॥७॥ लोभी धनवान् भी सुखकी नींद नहीं सो पाता। फिर हे तात ! निर्धन कैसे सुखी हो सकता है ? ॥ ८ ॥ हे महाभाग ! जान-बूझकर आप मुझ अपने वीर्यजनित पुत्रको दुःखदायी भयानक संसारमें क्यों फँसाना चाहते हैं ? ॥९॥ हे पिताजी ! जहाँ जन्ममें दुःख, बुढ़ापेमें दुःख, मरणमें दुःख तथा विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गर्भमें दुःख झेलना पड़ता है ॥ १० ॥ उनसे भी भीषण दुःख होता है तृष्णा और लोभसे। हे मानद ! मरनेसे भी अधिक दुःख माँगनेमें होता है ॥ ११ ॥ उसमें भी ब्राह्मण दान-दक्षिणापर ही निर्भर रहते हैं। जीविकार्जनके लिए वे बुद्धिबलका उपयोग नहीं करते। सो पराया भरोसा बड़ा दुःखदायी होता है और पराश्रितको प्रतिदिन मरना पड़ता है ॥१२॥ समस्त वेदों और शास्त्रोंका अध्ययन करनेके बाद भी विद्वानोंको धनिकोंकी अभ्यर्थना करनी पड़ती है ॥ १३ ॥ अकेले पेटके लिए क्या चिन्ता ? उसे तो साग-पात फल-फूल और कुछ न मिले तो सन्तोषसे भरा जा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकता है ॥ १४ ॥ हे पिताजी ! पत्नी, पुत्र, पौत्र आदि विशाल कुटुम्ब हों तो उनका पालन-पोषण करनेके लिए बड़ा दुःख झेलना पड़ता है । ऐसी दशामें सुख कहाँ है ? ॥१५॥ अतएव हे तात ! मुझे आप योगशास्त्र और अन्य शास्त्रोंका सुखदायक उपदेश दीजिए । कर्मकाण्डोंमें मेरी तनिक भी रुचि नहीं है ॥ १६ ॥ आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइए कि जिससे मेरे प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण इन तीनों प्रकारके कर्मोंका नाश हो ॥१७॥ स्त्री जोंककी तरह पुरुषका रुधिर पीती है, किन्तु मूर्ख मानव उसके हाव-भावपर ही रीझा रहता है और तथ्यको नहीं समझ पाता ॥ १८ ॥ स्त्री सम्भोगसे वीर्य तथा समस्त धनको और चिकनी-चुपड़ी बातोंसे मनको हर लेती है । इस प्रकार वह पुरुषका सर्वस्व हड़प लेती है । इससे बढ़कर चोर भला और कौन होगा ? ॥१९॥ भाग्यका मारा हुआ मूर्ख मनुष्य केवल दुःख पाने और निद्रासुखका नाश करनेके लिए ब्याह करता है—सुखके लिए नहीं ॥ २० ॥ सूतजी बोले—शुकदेवकी ऐसी बातें

महद्दुःखं क्व सुखं पितरद्भुतम् ॥ १५ ॥ योगशास्त्रं वद मम ज्ञानशास्त्रं सुखाकरम् ॥ कर्मकांडेऽखिले तात न रमेऽहं कदाचन ॥ १६ ॥ वद कर्मक्षयोपायं प्रारब्धं संचितं तथा ॥ वर्तमानं यथा नश्येत्त्रिविधं कर्ममूलजम् ॥१७॥ जलौकेव सदा नारी रुधिरं पिबतीति वै ॥ मूर्खस्तु न विजानाति मोहितो भावचेष्टितैः ॥ १८ ॥ भोगैर्वीर्यं धनं पूर्णं मनः कुटिलभाषणैः ॥ कांता हरति सर्वस्वं कः स्तेनस्तादृशोऽपरः ॥ १९ ॥ निद्रासुखविनाशार्थं मूर्खस्तु दारसंग्रहम् ॥ करोति वंचितो धात्रा दुःखाय न सुखाय च ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा व्यासः शुकस्य च ॥ संप्राप महतीं चिंतां किं करोमीत्यसंशयम् ॥ २१ ॥ तस्य सुस्रुवुरश्रूणि लोचनाद्दुःखजानि च ॥ वेपथुश्च शरीरेऽभूद्ग्लानिं प्राप मनस्तथा ॥ २२ ॥ शोचंतं पितरं दृष्ट्वा दीनं शोकपरिप्लुतम् ॥ उवाच पितरं व्यासं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ २३ ॥ अहो मायाबलं चोग्रं यन्मोहयति पंडितम् ॥ वेदांतस्य च कर्तारं सर्वज्ञं वेदसंमितम् ॥ २४ ॥ न जाने का च सा माया किंस्वित्साऽतीव दुष्करा ॥ या मोहयति विद्वांसं व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥ २५ ॥ पुराणानां च वक्ता च निर्माता भारतस्य च ॥ विभागकर्ता वेदानां सोऽपि मोहमुपागतः ॥ २६ ॥ तां यामि शरणं देवीं या मोहयति वै जगत् ॥ ब्रह्मविष्णुहरादींश्च कथाऽन्येषां च कीदृशी ॥ २७ ॥ कोऽप्यस्ति त्रिषु लोकेषु यो न मुह्यति मायया ॥ यन्मोहं

सुनकर व्यासजीको बड़ी चिन्ता हुई । वे सोचने लगे कि मैं क्या करूँ ? ॥ २१ ॥ उनके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगे । शरीरमें कँपकँपी आ गयी और मनमें बड़ी ग्लानि होने लगी ॥२२॥ अपने दुःखी और असहाय पिताको इस प्रकार शोक करते देखकर शुकदेवके नेत्र विस्मयसे विकम्पित हो गये और उन्होंने पिताजीसे कहा—॥ २३ ॥ अहो ! मायाका बल बड़ा उग्र होता है । वह माया ही तो वेदान्तदर्शनके प्रणेता, सर्वज्ञ और वेदोंके प्रमाणस्वरूप मेरे पिता व्यासजीको भी मोहमें डाले हुए है ॥ २४ ॥ पता नहीं कि वह कौनसी माया है । क्या वह इतनी प्रबल है कि सत्यवतीतनय व्यास सरीखे विद्वान्को भी मोहमें डाल सकती है ? ॥ २५ ॥ उसके कारण पुराणोंके वक्ता, महाभारतके रचयिता तथा वेदोंके विभाजक व्यासजी भी मोहमें पड़ गये ? ॥२६॥ अतएव अब मैं उस देवीकी ही शरणमें जाऊँगा, जो समस्त विश्व तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेश तकको मोहित करती है, तब औरोंकी बात ही क्या है ? ॥२७॥ तीनों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकोंमें क्या कोई ऐसा प्राणी है कि जो मायाके जंजालसे बचा हो ? अरे, उस मायाने तो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रको भी मोहमें डाल रक्खा है ॥ २८ ॥ अहो ! उन भगवतीका बल और उनका पराक्रम बेजोड़ है । उन्होंने अपनी मायासे ही सर्वज्ञ और सबके प्रभु ईश्वरको अपने वशमें कर रक्खा है ॥ २९ ॥ पौराणिकोंका कथन है कि व्यासजी साक्षात् विष्णु भगवान्‌के अंशसे उत्पन्न हुए हैं । किन्तु वे भी आज इस प्रकार शोकसमुद्रमें डूबे हुए हैं, जैसे किसी बनियेका जहाज डूब गया हो और वह सिर धुनकर रोता हो ॥ ३० ॥ आज वे माया-विवश होकर एक साधारण प्राणीकी तरह आँसू ढाल रहे हैं । अहो ! मायामें बड़ी प्रचण्ड शक्ति है, जिससे बड़े-बड़े विद्वान् भी उसे नहीं छोड़ पाते ॥ ३१ ॥ ये व्यासजी कौन हैं ? मैं कौन हूँ ? यह जगत् क्या चीज है ? यह कैसा प्रमाद है ? इस पञ्चभूतात्मक देहमें पिता-पुत्रकी वासना कहाँसे आयी ? ॥ ३२ ॥ यह माया बड़ी बलवती है और पंडितोंको भी मोहमें डाल देती है । उसीके वशीभूत होकर कृष्णद्वैपायन जैसे ब्राह्मण भी रुदन कर रहे हैं ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले—सब कारणोंका कारण, सब देवताओंकी जननी और ब्रह्मादिकोंकी भी ईश्वरी

गमितः पूर्वे ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ २८ ॥ अहो बलमहो वीर्यं देव्या खलु विनिर्मितम् ॥ माययैव वशं नीतः सर्वज्ञ ईश्वरः प्रभुः ॥ २९ ॥ विष्णवंश-संभवो व्यास इति पौराणिका जगुः ॥ सोऽपि मोहार्णवे मग्नो भग्नपोतो वणिग्यथा ॥ ३० ॥ अश्रुपातं करोत्यद्य विवशः प्राकृतो यथा ॥ अहो मायाबलं चैतद्दुस्त्यजं पंडितैरपि ॥ ३१ ॥ कोऽयं कोऽहं कथं चेह कीदृशोऽयं भ्रमः किल ॥ पंचभूतात्मके देहे पिता पुत्रेति वासना ॥ ३२ ॥ बलिष्ठा खलु मायेयं मायिनामपि मोहिनी ॥ ययाऽभिभूतः कृष्णोऽपि करोति रोदनं द्विजः ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ तां नत्वा मनसा देवीं सर्व-कारणकारणाम् ॥ जननीं सर्वदेवानां ब्रह्मादीनां तथेश्वरीम् ॥ ३४ ॥ पितरं प्राह दीनं तं शोकार्णवपरिप्लुतम् ॥ अरणीसंभवो व्यासं हेतुमद्वचनं शुभम् ॥ ३५ ॥ पाराशर्य महाभाग सर्वेषां बोधदः स्वयम् ॥ किं शोकं कुरुषे स्वामिन्यथाऽज्ञः प्राकृतो नरः ॥ ३६ ॥ अद्याहं तव पुत्रोऽस्मि न जाने पूर्वजन्मनि ॥ कोऽहं कस्त्वं महाभाग विभ्रमोऽयं महात्मनि ॥ ३७ ॥ कुरु धैर्यं प्रबुध्यस्व मा विषादे मनः कृथाः ॥ मोहजालमिमं मत्वा मुंच शोकं महामते ॥ ३८ ॥ क्षुधानिवृत्तिर्भक्ष्येण न पुत्रदर्शनेन च ॥ पिपासा जलपानेन याति नैवात्मजेक्षणात् ॥ ३९ ॥ घ्राणं सुखं सुगंधेन कर्णजं श्रवणेन च ॥ स्त्रीसुखं तु स्त्रिया नूनं पुत्रोऽहं किं करोमि ते ॥ ४० ॥ अजीगर्तेन पुत्रोऽपि हरिश्चंद्राय भूभुजे ॥ पशुकामाय यज्ञार्थं दत्तो

भगवतीको मन ही मन प्रणाम करके शोकसमुद्रमें डूबते हुए अपने पिता व्यासजीसे अरणीके गर्भसे जायमान शुकदेव ये नीतिसंगत वचन बोले—॥३४॥३५॥ हे पराशरतनय ! आप तो स्वयं सब लोगोंको ज्ञान देते हैं । तब हे स्वामिन् ! आप एक अज्ञ तथा पामर प्राणीके समान इस प्रकार शोक क्यों करते हैं ? ॥ ३६ ॥ आज मैं आपका पुत्र हूँ, किन्तु यह नहीं पता कि पूर्वजन्ममें मैं कौन था और आप क्या थे । हे महाभाग ! आप जैसे महात्माको ऐसे भ्रममें नहीं पड़ना चाहिए ॥ ३७ ॥ हे महामते ! आप धैर्य धरिए । होशमें आइए और मनमें क्लेशको प्रश्रय मत दीजिए । यह सब मोहजाल समझकर शोकका त्याग करिए ॥ ३८ ॥ भूख भोजनसे मिटती है—पुत्रका मुख देखनेसे नहीं । प्यास जल पीनेसे मिटती है—पुत्रको निहारनेसे नहीं ॥ ३९ ॥ सुगन्ध सूँघनेसे नाकको और अच्छी बातें सुननेसे कानोंको सुख मिलता है । स्त्रीसुख स्त्रीसे प्राप्त होता है । मैं आपका पुत्र हूँ । बताइए कि मैं आपके लिए क्या करूँ ॥ ४० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अजीगर्तने दाम लेकर पशुबलिके लिए अपने पुत्र शुनःशेपको राजा हरिश्चन्द्रके हाथ बेच दिया था ॥ ४१ ॥ सांसारिक सुखका साधन धन है। धनसे ही सब सुख मिलते हैं। अतएव यदि लोभ हो तो धन जोड़िए। मैं तो पुत्र हूँ। आपके लिए मैं क्या कर सकता हूँ ॥ ४२ ॥ हे महामते! आप विधाताके मनकी बात भी जानते हैं। अतएव हे मुनिराज! मुझे ज्ञान दीजिए। जिससे कि मैं पुनः गर्भवासके महादुःखसे छुटकारा पा सकूँ ॥४३॥ हे पूतात्मन्! इस कर्मभूमिस्वरूप संसारमें मानव तन प्राप्त होना दुर्लभ है। उसपर भी किसी उत्तम कुलवाले ब्राह्मणके घर जन्म मिलना और भी दुर्लभ होता है ॥ ४४ ॥ मैं बन्धनमें पड़ा हुआ हूँ। यह विचार मेरे मनसे नहीं दूर होता। वह तो सांसारिक वासनाओंके जालमें फँसकर बराबर बढ़ता ही रहता है ॥ ४५ ॥ सूतजी बोले–अपरिमित बुद्धिमान् अपने पुत्रके इन वचनोंको सुनकर शान्त तथा चतुर्थ आश्रम (सन्यास) में प्रवेश करनेको उत्सुक पुत्र शुकदेवसे व्यासजीने कहा ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले–हे महाभाग पुत्र! तुम मेरी रचित भागवत पढ़ो। वह ग्रन्थ कल्याणदायी तथा वेदके समान आदरणीय है। विशेष विस्तृत भी नहीं है ॥४७॥ उसमें कुल

मौल्येन सर्वथा ॥ ४१ ॥ सुखानां साधनं द्रव्यं धनात्सुखसमुच्चयः ॥ धनमर्जय लोभश्चेत्पुत्रोऽहं किं करोम्यहम् ॥ ४२ ॥ मां प्रबोधय बुद्ध्या त्वं दैवज्ञोऽसि महामते ॥ यथा मुच्येयमत्यन्तं गर्भवासभयान्मुने ॥४३॥ दुर्लभं मानुषं जन्म कर्मभूमाविहानघ ॥ तत्रापि ब्राह्मणत्वं वै दुर्लभं चोत्तमे कुले ॥ ४४ ॥ बद्धोऽहमिति मे बुद्धिर्नापसर्पति चित्ततः ॥ संसारवासनाजाले निविष्टा वृद्धिगामिनी ॥ ४५ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तु तदा व्यासः पुत्रेणामितबुद्धिना ॥ प्रत्युवाच शुकं शांतं चतुर्थाश्रममानसम् ॥ ४६ ॥ व्यास उवाच ॥ पठ पुत्र महाभाग मया भागवतं कृतम् ॥ शुभं न चातिविस्तीर्णं पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥ ४७ ॥ स्कन्धा द्वादश तत्रैव पञ्चलक्षणसंयुतम् ॥ सर्वेषां च पुराणानां भूषणं मम सम्मतम् ॥ ४८ ॥ सदसज्ज्ञानविज्ञानं श्रुतमात्रेण जायते ॥ येन भागवतेनेह तत्पठ त्वं महामते ॥ ४९ ॥ वटपत्रशयानाय विष्णवे बालरूपिणे ॥ केनास्मि बालभावेन निर्मितोऽहं चिदात्मना ॥ ५० ॥ किमर्थं केन द्रव्येण कथं जानामि चाखिलम् ॥ इत्येवं चिन्त्यमानाय मुकुन्दाय महात्मने ॥ ५१ ॥ श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं भगवत्याऽखिलार्थदम् ॥ सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम् ॥ ५२ ॥ तद्वचो विष्णुना पूर्वं संविज्ञातं मनस्यपि ॥ केनोक्ता

बारह स्कन्ध हैं और पुराणके सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पाँचों लक्षण विद्यमान हैं। मेरे विचारसे तो वह सब पुराणोंका आभूषण है ॥ ४८ ॥ उसके सुनते ही सत् और असत् ज्ञानका रहस्य ज्ञात हो जाता है। अतएव हे महामते! तुम उसे अवश्य पढ़ो ॥ ४९ ॥ महाप्रलयकालमें वटपत्रपर शयन करते हुए बालकरूपधारी विष्णुभगवान् पड़े-पड़े सोच रहे थे कि किस चेतन महापुरुषने मुझे इस प्रकार बालकरूपमें उत्पन्न किया है? ॥५०॥ उसने मुझे किसलिए जन्म दिया? किस उपकरणसे उसने मेरी रचना की? इन सब बातोंकी जानकारी मुझे कैसे हो? जब भगवान् विष्णु ऐसा सोच रहे थे, उसी समय भगवतीने केवल आधे श्लोकमें उनकी सब शंकाओंका समाधान कर दिया। वे बोलीं–सब कुछ मैं ही हूँ। मेरे सिवाय सनातन यहाँ और कुछ नहीं है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ सर्वप्रथम विष्णुभगवान्के अन्तःकरणमें ही इस वाक्यका आविर्भाव हुआ था। अतएव अब वे यह सोचने लगे कि इस सत्य वचनका उच्चारण किसने किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह कहनेवालेको मैं कैसे जानूँ कि वह स्त्री है, पुरुष है या कि नपुंसक है ? यह चिन्ता होनेपर वे उपर्युक्त भगवतीके (सर्वं खल्विदमेवाहं) इस आधे श्लोकका मनन करने लगे ॥५३॥५४॥ वटपत्रपर शयन करते हुए चिन्ताकुल बालरूपधारी भगवान् मन लगाकर बारम्बार उसी अर्धश्लोकका उच्चारण कर रहे थे ॥ ५५ ॥ कुछ ही क्षणों बाद शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि उत्तम आयुधोंको धारण किये चतुर्भुजा, शान्ता और शिवा भगवती उनके सामने प्रकट हो गयीं ॥५६॥ वे दिव्य वस्त्र धारण किये तथा दिव्य आभूषणोंसे आभूषित थीं। उनकी विभूतिस्वरूपा तथा उन्हींके सदृश अनेक सखियाँ उनके साथ थीं ॥५७॥ वे शुभानना भगवती महालक्ष्मी मन्द-मन्द मुसकाती हुई अमित तेजस्वी विष्णुभगवान्के समक्ष प्रकट हो गयीं ॥५८॥ सूतजी बोले—कमलनयन भगवान विष्णु उस प्रलयसागरमें उन निराधारा तथा मनोहारिणी भगवतीको देखकर बहुत विस्मित हुए ॥५९॥ रति, भूति, बुद्धि, मति, कीर्ति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, स्वधा,

वागियं सत्या चिंतयामास चेतसा ॥५३॥ कथं वेद्मि प्रवक्तारं स्त्रीपुंसौ वा नपुंसकम् ॥ इति चिंताप्रपन्नेन धृतं भागवतं हृदि ॥ ५४ ॥ पुनः पुनः कृतोच्चारस्तस्मिन्नेवास्तचेतसा ॥ वटपत्रे शयानः सन्नभूच्चिन्तासमन्वितः ॥ ५५ ॥ तदा शांता भगवती प्रादुरास चतुर्भुजा ॥ शङ्खचक्रगदापद्म-वरायुधधरा शिवा ॥ ५६ ॥ दिव्यांबरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता ॥ संयुता सदृशीभिश्च सखीभिः स्वविभूतिभिः ॥ ५७ ॥ प्रादुर्बभूव तस्याग्रे विष्णोरमिततेजसः ॥ मन्दहास्यं प्रयुंजाना महालक्ष्मीः शुभानना ॥ ५८ ॥ सूत उवाच ॥ तां तथा संस्थितां दृष्ट्वा हृदये कमलेक्षणः ॥ विस्मितः सलिले तस्मिन्निराधारां मनोरमाम् ॥ ५९ ॥ रतिर्भूतिस्तथा बुद्धिर्मतिः कीर्तिः स्मृतिर्धृतिः ॥ श्रद्धा मेधा स्वधा स्वाहा क्षुधा निद्रा दया गतिः ॥ ६० ॥ तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा जृम्भा तन्द्रा च शक्तयः ॥ संस्थिताः सर्वतः पार्श्वं महादेव्याः पृथक्पृथक् ॥ ६१ ॥ वरायुधधराः सर्वा नानाभू-षणभूषिताः ॥ मन्दारमालाकुलिता मुक्ताहारविराजिताः ॥ ६२ ॥ तां दृष्ट्वा ताश्च संवीक्ष्य तस्मिन्नेकार्णवे जले ॥ विस्मयाविष्टहृदयः संबभूव जनार्दनः ॥ ६३ ॥ चिंतयामास सर्वात्मा दृष्टमायोऽतिविस्मितः ॥ कुतो भूताः स्त्रियः सर्वाः कुतोऽहं वटतल्पगः ॥ ६४ ॥ अस्मिन्नेकार्णवे घोरे न्यग्रोधः कथमुत्थितः ॥ केनाहं स्थापितोऽस्म्यत्र शिशुं कृत्वा शुभाकृतिः ॥ ६५ ॥ ममेयं जननी नो वा माया वा काऽपि दुर्घटा ॥ दर्शनं

स्वाहा, क्षुधा, निद्रा, दया, गति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, जृम्भा, तन्द्रा ये इक्कीस शक्तियाँ पृथक्-पृथक् रूपसे उन महादेवीको चारों ओरसे घेरकर अगल-बगल खड़ी थीं ॥६०॥६१॥ वे सभी शक्तियाँ उच्च कोटिके आयुध धारण किये हुए थीं। उनके अङ्गोंमें विविध प्रकारके आभूषण विद्यमान थे। वे मन्दारकी मालायें तथा मोतियोंके हार पहने थीं ॥ ६२ ॥ उन भगवती महालक्ष्मी तथा उनके साथकी अन्यान्य शक्तियोंको उस महासागरमें विद्यमान देखकर भगवान विष्णुको बहुत आश्चर्य हुआ ॥ ६३ ॥ सर्वात्मा विष्णुभगवान्ने उन अतिशय विस्मय उत्पन्न करनेवाली महामायाको देखकर सोचा कि ये देवियाँ कहाँसे आयीं और मैं इस बरगदके पत्तेपर कैसे आ गया ॥ ६४ ॥ इस महाभयानक समुद्रमें यह वटवृक्ष कहाँसे आया और किसने मुझे ऐसा सुन्दर बालक बनाकर इस बरगदके पत्तेपर सुला दिया ? ॥ ६५ ॥ यह मेरी माता भी नहीं जान पड़ती । यह अवश्य कोई दुर्घट माया है। अभी-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अभी किसी विशेष शक्तिने मुझे दर्शन दिया है। आखिर उसने ऐसा क्यों किया ? ॥ ६६ ॥ अब मैं उस शक्तिसे क्या कहूँ ? मैं यहाँसे कहीं चला जाऊँ या नहीं ? अथवा इसी बालभावसे चुपचाप यहीं पड़ा रह जाऊँ ? ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे 'पिताम्बरा' भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

(व्यासजीका शुकदेवको देवीभागवत पढ़ाना) ॥ वटपत्रपर लेटे हुए भगवानको विस्मित देखकर मन्द-मन्द मुसकाती हुई भगवती बोलीं–हे विष्णो ! आप इस प्रकार चकित क्यों होते हैं ? ॥ १ ॥ उस महाशक्तिके प्रभावसे आप मुझे भूल गये हैं। पहले भी सृष्टि तथा प्रलयकालमें आप बारम्बार जन्म ले चुके हैं ॥ २ ॥ वह परा शक्ति निर्गुण है और आप तथा मैं सगुण हूँ। जो सात्त्विकी शक्तिके नामसे विख्यात है, वह मैं ही हूँ ॥ ३ ॥ आपके नाभिकमलसे प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न होंगे। वे रजोगुणी ब्रह्मा सब लोकोंकी सृष्टि करेंगे ॥ ४ ॥

केनचित्त्वद्य दत्तं वा केन हेतुना ॥ ६६ ॥ किं मया चात्र वक्तव्यं गन्तव्यं वा न वा क्वचित् ॥ मौनमास्थाय तिष्ठेयं बालभावादतंद्रितः ॥ ६७ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ दृष्ट्वा तं विस्मितं देवं शयानं वटपत्रके ॥ उवाच सस्मितं वाक्यं विष्णो किं विस्मितो ह्यसि ॥ १ ॥ महाशक्त्याः प्रभावेण त्वं मां विस्मृतवान्पुरा ॥ प्रभवे प्रलये जाते भूत्वा भूत्वा पुनः पुनः ॥ २ ॥ निर्गुणा सा परा शक्तिः सगुणस्त्वं तथाप्यहम् ॥ सात्त्विकी किल या शक्तिस्तां शक्तिं विद्धि मामिकाम् ॥३॥ त्वन्नाभिकमलाद्ब्रह्मा भविष्यति प्रजापतिः ॥ स कर्ता सर्वलोकस्य रजोगुणसमन्वितः ॥ ४ ॥ स तदा तप आस्थाय प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम् ॥ रजसा रक्तवर्णञ्च करिष्यति जगत्त्रयम् ॥ ५ ॥ सगुणान्पंचभूतांश्च समुत्पाद्य महामतिः ॥ इन्द्रियाणींद्रियेशांश्च मनःपूर्वान्समंततः ॥ ६ ॥ करिष्यति ततः सर्गं तेन कर्ता स उच्यते ॥ विश्वस्यास्य महाभाग त्वं वै पालयिता तथा ॥ ७ ॥ तद्भ्रुवोर्मध्यदेशाच्च क्रोधाद्रुद्रो भविष्यति ॥ तपः कृत्वा महाघोरं प्राप्य शक्तिं तु तामसीम् ॥ ८ ॥ कल्पांते सोऽपि संहर्ता भविष्यति महामते ॥ तेनाहं त्वामुपायाता सात्त्विकीं त्वमवेहि माम् ॥ ९ ॥ स्थास्येऽहं त्वत्समीपस्था सदाऽहं मधुसूदन ॥ हृदये ते कृतावासा भवामि सततं किल ॥ १० ॥ विष्णुरुवाच ॥ श्लोकस्यार्द्धं मया पूर्वं श्रुतं देवि स्फुटाक्षरम् ॥ तत्केनोक्तं वरारोहे रहस्यं परमं शिवम् ॥ ११ ॥ तन्मे ब्रूहि वरारोहे संशयोऽयं वरानने ॥ निर्धनो

ब्रह्माजी तपस्या द्वारा शक्ति प्राप्त करके अपने रजोगुणसे तीनों लोक रक्त वर्ण कर देंगे ॥ ५ ॥ महाबुद्धिमान् ब्रह्मा गुणों समेत पृथिवी-जल आदि पञ्चतत्त्वोंकी सृष्टि करके इन्द्रिय, आत्मा तथा मन आदिकी रचना करेंगे। उसके बाद सृष्टि होगी, जिससे वे सृष्टिकर्ता कहलायेंगे। हे महाभाग ! आप उस विश्वके पालक होंगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे महामते ! जब आप क्रुद्ध होंगे, तब आपकी भौंहोंसे रुद्रकी उत्पत्ति होगी। वे रुद्र महाघोर तपस्या द्वारा तामसी शक्ति प्राप्त करके कल्पान्तमें विश्वका संहार करेंगे। हे देव ! इसी लिए मैं आपके पास आयी हूँ। आप मुझको सात्त्विकी शक्ति समझें ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे मधुसूदन ! मैं सदा आपके पास रहूँगी। आपके हृदयमें सर्वदा मेरा निवास रहेगा ॥ १० ॥ विष्णुभगवान बोले—हे देवि ! अभी कुछ देर पहले मैंने स्पष्ट शब्दोंमें आधा श्लोक सुना था। हे वरारोहे ! उस परम कल्याणकारी वाक्यको किसने कहा था ? ॥११॥ हे वरारोहे ! यह मुझे बताओ। क्योंकि हे सुमुखि ! इस विषयमें मुझे बहुत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंका है। जैसे कोई निर्धन मनुष्य सदा द्रव्यकी चिन्ता करता है, उसी प्रकार मैं सदा उस श्लोकार्धका स्मरण करता रहता हूँ॥ १२ ॥ व्यासजी कहते हैं—विष्णुके वचन सुनकर मन्द मुसकराहट युक्त मुखवाली भगवती हँसती हुई बड़े प्रेमपूर्वक कहने लगीं ॥ १३ ॥ महालक्ष्मी बोलीं—हे शौरे! मेरी बात सुनिए। हे चतुर्भुज! आप मुझे जानते हैं? नहीं जानते। तो सुनिए—मैं निर्गुण होती हुई भी सगुणा हूँ॥ १४ ॥ हे महाभाग! वह श्लोकार्ध उसी परा शक्तिने कहा था। वह परम पवित्र, कल्याणकारी, सब वेदोंका सार तथा भगवतीका सर्वश्रेष्ठ मंत्र है ॥१५॥ हे शत्रुनाशन! मैं आपपर देवीकी बड़ी भारी अनुकम्पा समझती हूँ। हे सुव्रत! तभी तो आपके कल्याणार्थ उन्होंने वह परम गोप्य मंत्र आपको बताया है ॥१६॥ उसे सदा अपने मनमें रखिए और कभी भी उसको मत भूलिए। क्योंकि वह सब शास्त्रोंका निचोड़ है और साक्षात् भगवती महाविद्याने उसे कहा है ॥ १७ ॥ तीनों लोकोंमें उससे बढ़कर

हि यथा द्रव्यं तत्स्मरामि पुनः पुनः ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा महालक्ष्मीः स्मितानना ॥ उवाच परया प्रीत्या वचनं चारुहासिनी ॥ १३ ॥ महालक्ष्मीरुवाच ॥ शृणु शौरे वचो मह्यं सगुणाऽहं चतुर्भुजा ॥ मां जानासि न जानासि निर्गुणां सगुणालयाम् ॥ १४ ॥ त्वं जानीहि महाभाग तया तत्प्रकटीकृतम् ॥ पुण्यं भागवतं विद्धि वेदसारं शुभावहम् ॥ १५ ॥ कृपां च महतीं मन्ये देव्याः शत्रुनिषूदन ॥ यया प्रोक्तं परं गुह्यं हिताय तव सुव्रत ॥ १६ ॥ रक्षणीयं सदा चित्ते न विस्मार्यं कदाचन ॥ सारं हि सर्वशास्त्राणां महाविद्याप्रकाशितम् ॥ १७ ॥ नातः परं वेदितव्यं वर्तते भुवनत्रये ॥ प्रियोऽसि खलु देव्यास्त्वं तेन ते व्याहृतं वचः ॥१८॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो देव्या महालक्ष्म्याश्चतुर्भुजः ॥ दधार हृदये नित्यं मत्वा मंत्रमनुत्तमम् ॥१९॥ कालेन कियता तत्र तन्नाभिकमलोद्भवः ॥ ब्रह्मा दैत्यभयात्त्रस्तो जगाम शरणं हरेः ॥ २० ॥ ततः कृत्वा महायुद्धं हत्वा तौ मधुकैटभौ ॥ जजाप भगवान्विष्णुः श्लोकार्धं विशदाक्षरम् ॥ २१ ॥ जपंतं वासुदेवं च दृष्ट्वा देवः प्रजापतिः ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः कंजजः कमलापतिम् ॥ २२ ॥ किं त्वं जपसि देवेश त्वत्तः कोऽप्यधिकोऽस्ति वै ॥ यत्स्मृत्वा पुण्डरीकाक्ष प्रीतोऽसि जगदीश्वर ॥ २३ ॥ हरिरुवाच ॥ मयि त्वयि च या शक्तिः क्रियाकारणलक्षणा ॥ विचारय महाभाग या सा भगवती शिवा ॥ २४ ॥ यस्याधारे जगत्सर्वं तिष्ठ-

जानने योग्य और कोई बात नहीं है। आप देवीके प्रिय हैं। इसी कारण उन्होंने वह मंत्र आपसे कहा है ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले—देवी महालक्ष्मीके इन वचनोंको सुनकर चतुर्भुज विष्णुभगवानने उस श्लोकार्धको अति उत्तम मन्त्र समझकर सदाके लिए अपने हृदयमें धारण कर लिया ॥१९॥ कुछ समय बाद उनके नाभिकमलसे उत्पन्न ब्रह्मा दैत्योंसे डरकर विष्णुभगवानकी शरणमें गये ॥ २० ॥ तब विष्णुभगवानने महायुद्ध करके मधु-कैटभको मारा और उस विशद अक्षरवाले श्लोकार्धका जप करने लगे ॥२१॥ भगवान वासुदेवको जप करते देखकर प्रजापति ब्रह्माने कमलापति विष्णुसे बड़े प्रेमपूर्वक पूछा—॥ २२ ॥ हे देवेश! हे जगदीश्वर! हे पुण्डरीकाक्ष! आप क्या जप रहे हैं? क्या आपसे भी बढ़कर कोई है कि जिसका स्मरण करके आप इतने प्रसन्न हो रहे हैं? ॥ २३ ॥ विष्णुभगवान बोले—हे महाभाग! आपमें और मुझमें जो कार्य-कारणलक्षणा शक्ति विद्यमान है। उसके विषयमें विचार करिए। वे ही भगवती शिवा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं ॥ २४ ॥ जिसके सहारे इस महासमुद्रमें समस्त विश्व टिका हुआ है। जो साकार, अपरिमित और सनातनी महाशक्ति हैं ॥ २५ ॥ जो इस चराचर जगत्की सृष्टि करती हैं, वे ही जब प्रसन्न होती हैं तो मनुष्योंको मुक्तिका वरदान देती हैं ॥२६॥ वे ही परमा विद्या एवं सनातनी भगवती मुक्तिकी हेतुस्वरूपा हैं। वे हो सब ईश्वरोंकी ईश्वरी देवी सांसारिक बन्धनका कारण भी हैं ॥ २७ ॥ हम, आप और अखिल विश्व उन्हींकी चित्शक्तिसे जायमान हुआ है। हे भूतात्मा ब्रह्माजी ! इसे आप निश्चित समझिए और इस विषयमें किसी प्रकारका संशय मत करिए ॥ २८ ॥ उन भगवतीने आधे श्लोकमें जो कहा है, वही भागवत है। आगे चलकर द्वापर आदि युगोंमें उसका विस्तार हो जायगा ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार भगवानके नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माजीने उस भागवतको सुना। तदनन्तर ब्रह्माजीने असाधारण बुद्धिमान् नारदजीको उसे सुनाया ॥ ३० ॥ पूर्वकालमें नारदमुनिने वह भागवत मुझे बतायी और उसीके आधारपर मैंने उसे बारह स्कन्धोंमें विस्तृत कर दिया ॥३१॥ अतः हे महाभाग ! वेदके समान आदरणीय, पञ्चलक्षणयुक्त तथा भगवतीके उत्तम चरित्रोंसे परिपूर्ण वह देवीभागवत

त्यत्र महार्णवे ॥ साकारा या महाशक्तिरमेया च सनातनी ॥ २५ ॥ यया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥ २६ ॥ सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥ संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ २७ ॥ अहं त्वमखिलं विश्वं तस्याश्चिच्छक्तिसम्भवम् ॥ विद्धि ब्रह्मन्न सन्देहः कर्तव्यः सर्वदाऽनघ ॥ २८ ॥ श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं तद्वै भागवतं किल ॥ विस्तरो भविता तस्य द्वापरादौ युगे तथा ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मणा संगृहीतं च विष्णोस्तु नाभिपङ्कजे ॥ नारदाय च तेनोक्तं पुत्रायामितबुद्धये ॥ ३० ॥ नारदेन तथा मह्यं दत्तं हि मुनिना पुरा ॥ मया कृतमिदं पूर्णं द्वादशस्कन्धविस्तरम् ॥ ३१ ॥ तत्पठस्व महाभाग पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥ पञ्चलक्षणयुक्तं च देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥३२॥ तत्त्वज्ञानरसोपेतं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥ धर्मशास्त्रसमं पुण्यं वेदार्थेनोपबृंहितम् ॥३३॥ वृत्रासुरवधोपेतं नानाख्यानकथायुतम् ॥ ब्रह्मविद्यानिधानं तु संसारार्णवतारकम् ॥ ३४ ॥ गृहाण त्वं महाभाग योग्योऽसि मतिमत्तरः ॥ पुण्यं भागवतं नाम पुराणं पुरुषर्षभ ॥ ३५ ॥ अष्टादशसहस्राणां श्लोकानां कुरु संग्रहम् ॥ अज्ञाननाशनं दिव्यं ज्ञानभास्करबोधकम् ॥ ३६ ॥ सुखदं शान्तिदं धन्यं दीर्घायुष्करं शिवम् ॥ शृण्वतां पठतां चेदं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥ ३७ ॥ शिष्योऽयं मम धर्मात्मा लोमहर्षणसम्भवः ॥ पठिष्यति त्वया सार्थं पुराणीं संहितां शुभाम् ॥ ३८ ॥ सूत उवाच ॥

अवश्य पढ़ो ॥ ३२ ॥ उसमें तत्त्वज्ञानका रस भरा हुआ है। वह सब पुराणोंसे उत्तम है। वह धर्मशास्त्रके समान पवित्र तथा वैदिक विचारोंसे ओतप्रोत है ॥ ३३ ॥ उसमें वृत्रासुरवध जैसे बहुतेरे आख्यान तथा विविध कथायें हैं। वह ब्रह्मविद्याका खजाना है और भवसागरसे तरनेका मूलमंत्र है ॥ ३ ॥ हे महाभाग ! तुम उस भागवतको पढ़ो। क्योंकि हे नरशार्दूल ! तुम बड़े बुद्धिमान् होनेके कारण उसे प्राप्त करनेके अधिकारी हो। हे पुरुषर्षभ ! भागवतपुराण बहुत ही पुनीत ग्रन्थ है ॥ ३५ ॥ तुम उसके अठारह हजार श्लोकोंको हृदयंगम कर लो। क्योंकि वह अज्ञाननाशक, दिव्य और हृदयमें ज्ञानरूपी सूर्यको उदित करनेवाला पुराण है ॥ ३६ ॥ वह सुखदायक, शान्तिदायक, धन्य, दीर्घायुदायक तथा कल्याणका स्वरूप है। उसका श्रवण तथा पठन करनेवालोंको पुत्र-पौत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ३७ ॥ ये लोमहर्षणतनय धर्मात्मा सूत मेरे शिष्य हैं। ये भी तुम्हारे साथ उस पुराणसंहिताका अध्ययन करेंगे ॥ ३८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूतजी बोले—व्यासजीने अपने पुत्र शुकदेव तथा मुझसे यह बात कही। तब मैंने उस अतिशय विस्तृत पुराणको भलीभाँति पढ़ा ॥ ३९ ॥ शुकदेव भागवतपुराणका अध्ययन करके व्यासजीके आश्रममें रहने लगे, किन्तु दूसरे ब्रह्मपुत्रके समान माननीय शुकको शान्ति नहीं प्राप्त हो सकी ॥ ४० ॥ अब वे सदा एकान्तमें रहते थे। उनकी व्याकुलता बढ़ गयी और वे अनमनेसे रहने लगे। वे न अधिक भोजन करते और न सर्वथा उपवास ही करते थे ॥ ४१ ॥ शुकदेवको चिन्तित देखकर व्यासजीने कहा—पुत्र! तुम क्या सोचते रहते हो और किसलिए व्यग्र हो? ॥४२॥ जैसे कोई निर्धन ऋणी सदा ऋणके ही विषयमें सोचा करता है, वैसे ही तुम भी चिन्तित रहते हो। हे पुत्र! मेरे रहते तुम्हें किस बातकी चिन्ता है? ॥ ४३ ॥ तुम अपने इच्छानुसार सुख भोगो और मानसिक चिन्ताको एकदम त्याग दो। यदि चिन्तन ही करना हो तो शास्त्रोक्त ज्ञानका मनन करो और विज्ञानमें बुद्धि लगाओ

इत्युक्तं तेन पुत्राय मह्यं च कथितं किल ॥ मया गृहीतं तत्सर्वं पुराणं चातिविस्तरम् ॥ ३९ ॥ शुकोऽधीत्य पुराणं तु स्थितो व्यासाश्रमे शुभे ॥ न लेभे शर्म धर्मात्मा ब्रह्मात्मज इवापरः ॥ ४० ॥ एकान्तसेवी विकलः स शून्य इव लक्ष्यते ॥ नात्यन्तभोजनासक्तो नोपवासरतस्तथा ॥ ४१ ॥ चिन्ताविष्टं शुकं दृष्ट्वा व्यासः प्राह सुतं प्रति ॥ किं पुत्र चिन्त्यते नित्यं कस्माद्व्यग्रोऽसि मानद ॥ ४२ ॥ आस्से ध्यानपरो नित्यमृणग्रस्त इवाधनः ॥ का चिन्ता वर्तते पुत्र मयि ताते तु तिष्ठति ॥४३॥ सुखं भुंक्ष्व यथाकामं मुञ्च शोकं मनोगतम् ॥ ज्ञानं चिन्तय शास्त्रोक्तं विज्ञाने च मतिं कुरु ॥ ४४ ॥ न चेन्मनसि ते शान्तिर्वचसा मम सुव्रत ॥ गच्छ त्वं मिथिलां पुत्र पालितां जनकेन ह ॥ ४५ ॥ स ते मोहं महाभाग नाशयिष्यति भूपतिः ॥ जनको नाम धर्मात्मा विदेहः सत्यसागरः ॥ ४६ ॥ तं गत्वा नृपतिं पुत्र सन्देहं स्वं निवर्तय ॥ वर्णाश्रमाणां धर्मास्त्वं पृच्छ पुत्र यथातथम् ॥४७॥ जीवन्मुक्तः स राजर्षिर्ब्रह्मज्ञानमतिः शुचिः ॥ तथ्यवक्ताऽतिशान्तश्च योगी योगप्रियः सदा ॥४८॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासस्यामिततेजसः ॥ प्रत्युवाच महातेजाः शुकश्चारणिसम्भवः ॥ ४९ ॥ दम्भोऽयं किल धर्मात्मन्भाति चित्ते ममाधुना ॥ जीवन्मुक्तो विदेहश्च राज्यं शास्ति मुदान्वितः ॥५०॥ वन्ध्यापुत्र इवाभाति राजाऽसौ जनकः पितः ॥ कुर्वन्राज्यं विदेहः किं सन्देहोऽयं ममाद्भुतः ॥ ५१ ॥ द्रष्टु-

॥४४॥ हे सुव्रत! यदि मेरे वचनोंसे तुम्हारे हृदयको शान्ति न मिली हो तो हे पुत्र! तुम राजा जनक द्वारा पालित मिथिलापुरीको चले जाओ ॥४५॥ हे महाभाग! वे महाराज जनक तुम्हारे अज्ञानको नष्ट कर देंगे। हे पुत्र! विदेह जनक बड़े धर्मात्मा और सत्यके समुद्र हैं ॥ ४६ ॥ हे पुत्र! उन महाराज जनकके पास जाकर अपना सन्देह निवृत्त कर लो। इसके बाद उनसे वर्णाश्रम धर्मके यथार्थ स्वरूपसम्बन्धी प्रश्न करना ॥४७॥ राजर्षि जनक जीवन्मुक्त, ब्रह्मज्ञानी, पूतात्मा, सत्यभाषी, अतिशय शान्त, योगी और योगप्रिय पुरुष हैं ॥ ४८॥ सूतजी बोले—अमित तेजस्वी व्यासके वचन सुनकर महातेजस्वी तथा अरणीसे जायमान शुकदेवने कहा—॥४९॥ हे धर्मात्मन्! इस समय मेरे मनमें यही बात आती है कि यह सब भी पाखण्ड है। महाराज जनक विदेह और जीवन्मुक्त हैं तो फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ राज्यशासन क्यों करते हैं? ॥५०॥ हे पिताजी! राजा जनक तो वन्ध्यापुत्रके उदाहरण हैं। राज्यकार्य करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुए भी वे विदेह क्यों कहलाते हैं ? मेरे मनमें यह अद्भुत सन्देह उत्पन्न हो रहा है ॥ ५१ ॥ मैं नृपसत्तम महाराज विदेहका दर्शन करना चाहता हूँ। वे जलमें कमलपत्रकी तरह संसारमें रहते हुए निर्लिप्त कैसे रहते हैं ? ॥५२॥ हे तात ! मुझे उनके विषयमें महान् सन्देह है। हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ पिताजी ! बौद्धोंकी तरह वे भी मोक्षकी दूसरी परिभाषा तो नहीं हैं ? ॥ ५३ ॥ भोगा हुआ भोग अभोग कैसे हो जायगा और किया हुआ कर्म अकर्म कैसे बन जायगा ? हे महाभाग ! इन्द्रियोंका व्यवहार भला कैसे त्यागा जा सकता है ? ॥५४॥ माता, पुत्र, स्त्री, बहिन और कुलटा स्त्री क्या इनमें कोई भेद ही नहीं है ? और यदिभे दबुद्धि है तो फिर मुक्तता:कैसी ? ॥ ५५ ॥: कटु, क्षार, तीक्ष्ण, कषाय, मीठा इन स्वादोंकी पहचान जीभको ही होती है, तभी तो वह अच्छे-अच्छे पदार्थोंका आस्वादन करती है ॥ ५६ ॥ यदि वे शीत-उष्ण और सुख-दुःख आदिका अनुभव करते हैं तो उनकी मुक्तता कैसी है ? हे तात ! मुझे उनपर एक अद्भुत सन्देह हो रहा है ॥ ५७ ॥ शत्रु और मित्रको पहचानकर उनके साथ वैर या मैत्रीभावका व्यवहार किया जाता है। क्या उच्च पदपर पहुँचे हुए महाराज जनक ऐसा नहीं

मिच्छाम्यहं भूपं विदेहं नृपसत्तमम् ॥ कथं तिष्ठति संसारे पद्मपत्रमिवांभसि ॥ ५२ ॥ संदेहोऽयं महांस्तात विदेहे परिवर्तते ॥ मोक्षः किं वदतां श्रेष्ठ सौगतानामिवापरः ॥५३॥ कथं भुक्तमभुक्तं स्यादकृतं च कृतं कथम् ॥ व्यवहारः कथं त्याज्य इन्द्रियाणां महामते ॥५४॥ माता पुत्रस्तथा भार्या भगिनी कुलटा तथा ॥ भेदाभेदः कथं न स्याद्यद्येतन्मुक्तता कथम् ॥५५॥ कटु क्षारं तथा तीक्ष्णं कषायं मिष्टमेव च ॥ रसना यदि जानाति भुक्ते भोगाननुत्तमान् ॥ ५६ ॥ शीतोष्णसुखदुःखादिपरिज्ञानं यदा भवेत् ॥ मुक्तता कीदृशी तात संदेहोऽयं ममाद्भुतः ॥ ५७ ॥ शत्रुमित्रपरिज्ञानं वैरं प्रीतिकरं सदा ॥ व्यवहारे परे तिष्ठन्कथं न कुरुते नृपः ॥५८॥ चौरं वा तापसं वाऽपि समानं मन्यते कथम् ॥ असमा यदि बुद्धिः स्यान्मुक्तता तर्हि कीदृशी ॥ ५९ ॥ दृष्टपूर्वो न मे कश्चिज्जीवन्मुक्तश्च भूपतिः ॥ शंकेयं महती तात गृहे मुक्तः कथं नृपः ॥ ६० ॥ दिदृक्षा महती जाता श्रुत्वा तं भूपतिं तथा ॥ संदेहविनिवृत्त्यर्थं गच्छामि मिथिलां प्रति ॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा पितरं पुत्रः पादयोः पतितः शुकः ॥ बद्धांजलिरुवाचेदं गंतुकामो महामनाः ॥ १ ॥ आपृच्छे त्वां महाभाग ग्राह्यं ते वचनं मया ॥ विदेहान्द्रष्टुमिच्छामि पालिताञ्जनकेन तु ॥ २ ॥ बिना दंडं कथं राज्यं करोति जनकः किल ॥ धर्मे न वर्तते लोको दण्ड-

करते ? ॥ ५८ ॥ राज्यकार्यमें वे साधु और चोरको समान कैसे समझ सकते हैं ? यदि उनमें समता नहीं आयी तो वह जीवन्मुक्तता कैसी ? ॥ ५९ ॥ मैंने ऐसा कभी नहीं देखा कि कोई जीवन्मुक्त और राजा दोनों हो। हे तात ! मुझे यह बड़ी प्रबल शंका है कि घरमें रहते हुए भी वे मुक्त कैसे हुए ? ॥ ६० ॥ उन महाराज जनकका वृत्तान्त सुनकर उन्हें देखनेकी प्रबल आकांक्षा मेरे मनमें उत्पन्न हो गयी है। सो अपना सन्देह निवृत्त करनेके लिए मैं मिथिला जा रहा हूँ ॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

(शुकदेवका मिथिला पहुँचना और वहाँकी स्त्रियोंके हाव-भावपर मुग्ध होना) सूतजी बोले-ऐसा कहकर शुकदेव पिताके चरणोंपर गिर गये और जानेकी तैयारी करतेहुए हाथ जोड़कर बोले—॥ १ ॥ हे महाभाग ! मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है। मैं महाराज जनक द्वारा पालित मिथिलापुरी देखनेको जाना चाहता हूँ। आप मुझे अनुमति दीजिये ॥२॥ वहाँ जाकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुझे देखना है कि बिना दण्ड दिये राजा जनक राज्य कैसे करते हैं ? यदि दण्डका भय न हो तो प्रजा धर्मपथपर न चले ॥ ३ ॥ मनु आदिके विरचित शास्त्रोंमें राजधर्मका मूल दण्ड-विधानको ही बतलाया है। हे पिताजी ! वे महाराज जनक दंडविधानका व्यवहार कैसे चलाते हैं ? इस विषयमें मुझे बहुत बड़ा सन्देह हो रहा है ॥४॥ मुझे तो यह बात वैसी ही लग रही है, जैसे कोई कहे कि मेरी माता बाँझ है। हे महाभाग ! हे परन्तप ! अब आपसे विदा लेकर मैं जा रहा हूँ ॥५॥ सूतजी बोले—शुकदेवको मिथिला जानेके लिए तैयार देखकर सत्यवती-सुत व्यासने छातीसे लगाकर अपने ज्ञानी, वैराग्ययुक्त तथा निःस्पृह पुत्रसे कहा ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले—हे शुक ! तुम्हारा कल्याण हो। हे महामति पुत्र ! दीर्घायु होओ। तुम मुझे यह सत्य वचन देकर जाओ कि 'मैं वहाँसे फिर अपने आश्रमको लौट आऊँगा।' वहाँसे ही कहीं मत चले जाना ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! मैं तुम्हारा मुखकमल देखकर ही सुखपूर्वक जीता हूँ।

श्चेन्न भवेद्यदि ॥ ३ ॥ धर्मस्य कारणं दण्डो मन्वादिप्रहितः सदा ॥ स कथं वर्तते तात संशयोऽयं महान्मम ॥ ४ ॥ मम माता त्वियं वंध्या तद्व-द्भाति विचेष्टितम् ॥ पृच्छामि त्वां महाभाग गच्छामि च परंतप ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ तं दृष्ट्वा गन्तुकामं च शुकं सत्यवतीसुतः ॥ आलिंग्योवाच पुत्रं तं ज्ञानिनं निस्पृहं दृढम् ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ स्वस्त्यस्तु शुक दीर्घायुर्भव पुत्र महामते ॥ सत्यां वाचं प्रदत्त्वा मे गच्छ तात यथासुखम् ॥ ७ ॥ आगंतव्यं पुनर्गत्वा ममाश्रममनुत्तमम् ॥ न कुत्रापि च गंतव्यं त्वया पुत्र कथंचन ॥ ८ ॥ सुखं जीवामि पुत्राहं दृष्ट्वा ते मुखपङ्कजम् ॥ अपश्यन्दुःखमाप्नोमि प्राणस्त्वमसि मे सुत ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा त्वं जनकं पुत्र सन्देहं विनिवर्त्य च ॥ अत्रागत्य सुखं तिष्ठ वेदाध्ययनतत्परः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तः सोऽभिवाद्याथ कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ॥ चलितस्तरसाऽतीव धनुर्मुक्तः शरो यथा ॥ ११ ॥ संपश्यन्विवधान्देशाँल्लोकांश्च वित्तधर्मिणः ॥ वनानि पादपांश्चैव क्षेत्राणि फलितानि च ॥ १२ ॥ तापसांस्तप्यमानांश्च याजकान्दीक्षयान्वितान् ॥ योगाभ्यासरतान्योगि-वानप्रस्थान् वनौकसः ॥ १३ ॥ शैवान्पाशुपतांश्चैव सौराञ्छाक्तांश्च वैष्णवान् ॥ वीक्ष्य नानाविधान्धर्माञ्जगामातिस्मयन्मुनिः ॥ १४ ॥ वर्षद्वयेन मेरुं च समुल्लंध्य महामतिः ॥ हिमाचलं च वर्षेण जगाम मिथिलां प्रति ॥ १५ ॥ प्रविष्टो मिथिलां मध्ये पश्यन्सर्वर्द्धिमुत्तमाम् ॥ प्रजाश्च

जब तुम्हें नहीं देखता तो मुझे बड़ा दुःख होता है। हे सुत ! तुम मेरे प्राण हो ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! तुम महाराज जनकसे मिल तथा अपनी शंकाओंका समाधान करके अपने आश्रमको लौट आओ और यहाँ रहते हुए सुखपूर्वक वेदाध्ययन करो ॥ १० ॥ सूतजी बोले—व्यासजीके ऐसा कहनेपर शुकदेवने पिताके चरणोंकी वन्दना एवं प्रदक्षिणा की और धनुषसे छूटे हुए बाणकी तरह बड़े वेगसे चल पड़े ॥ ११ ॥ मार्गमें पड़नेवाले विविध देशों, मनुष्यों, धनोपार्जन करनेमें कुशल व्यापारियों, वनों, वृक्षों और फसलवाले खेतोंको देखते हुए शुकदेव बढ़े चले जा रहे थे ॥१२॥ वे तापसों, तपोलीन मुनियों, दीक्षा लिये हुए याजकों, योगाभ्यासपरायण योगियों, वनवासी वानप्रस्थियों, शैवों, पाशुपतों, सूर्योपासकों, वैष्णवों और नाना प्रकारके मता-वलम्बियोंसे मिलते-जुलते हुए चल रहे थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ महामति शुकदेव दो वर्षमें सुमेरु और सालभरमें हिमालय पर्वत पार करके मिथिलापुरी पहुँचे ॥ १५ ॥ वहाँकी सब उत्तम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समृद्धियोंको देखते हुए वे उस महानगरीमें प्रविष्ट हुए। उन्होंने देखा कि वहाँकी समस्त प्रजा सुखी और सदाचारपरायण है ॥१६॥ वे जब नगरके राजद्वारपर पहुँचे, तब द्वारपालने रोककर पूछा कि तुम कौन हो और यहाँ क्यों आये हो? तुम्हारा क्या काम है? सो बताओ। किन्तु शुकदेव कुछ नहीं बोले ॥१७॥ अब नगरके द्वारसे बाहर जाकर वे एक स्थानपर ठूँठकी तरह अचल होकर बैठ गये। वे विस्मित भावसे हँसते हुए बैठे थे, किन्तु किसीसे कुछ बोलते नहीं थे ॥१८॥ द्वारपालने उनसे फिर कहा—ब्रह्मन्! कुछ बोलिए। आप गूँगे हैं क्या? बताइए आप कहाँसे आये हैं। मेरा तो ख्याल है कि कोई बिना किसी प्रयोजनके कहीं नहीं जाता ॥१९॥ हे द्विज! इस नगरमें राजाज्ञा प्राप्त करके ही प्रवेश होता है। जिसके कुल-शीलका पता न हो, यहाँ उसका प्रवेश सर्वथा निषिद्ध है ॥२०॥ हे मानद! आप तो एक तेजस्वी और वेदज्ञ ब्राह्मण मालूम पड़ते हैं। अतएव आप अपना कुल और प्रयोजन बताकर जहाँ चाहें, वहाँ जाइए ॥ २१ ॥ शुकदेवने कहा—मैं यहाँ जिस कामके लिए आया था, वह तुम्हारी बातसे ही पूरा हो गया। मैं विदेहकी राजधानी देखने आया था, किन्तु यहाँ तो प्रवेश ही दुर्लभ

सुखिताः सर्वाः सदाचाराः सुसंस्थिताः ॥ १६ ॥ क्षत्रा निवारितस्तत्र कस्त्वमत्र समागतः ॥ किं ते कार्यं वदस्वेति पृष्टस्तेन न चाब्रवीत् ॥ १७ ॥
निःसृत्य नगरद्वारात्स्थितः स्थाणुरिवाचलः ॥ विस्मितोऽतिहसंस्तस्थौ वचो नोवाच किंचन ॥१८॥ प्रतीहार उवाच ॥ ब्रूहि मूकोऽसि किं ब्रह्मन्कि-
मर्थं त्वमिहागतः ॥ चलनं च बिना कार्यं न भवेदिति मे मतिः ॥ १९ ॥ राजाज्ञया प्रवेष्टव्यं नगरेऽस्मिन्सदा द्विज ॥ अज्ञातकुलशीलस्य प्रवेशो
नात्र सर्वथा ॥ २० ॥ तेजस्वी भासि नूनं त्वं ब्राह्मणो वेदवित्तमः ॥ कुलं कार्यं च मे ब्रूहि यथेष्टं गच्छ मानद ॥२१॥ शुक उवाच ॥ यदर्थमाग-
तोऽस्म्यत्र तत्प्राप्तं वचनात्तव ॥ विदेहनगरं द्रष्टुं प्रवेशो यत्र दुर्लभः ॥ २२ ॥ मोहोऽयं मम दुर्बुद्धेः समुल्लंघ्य गिरिद्वयम् ॥ राजानं द्रष्टुकामोऽहं
पर्यटन्समुपागतः ॥ २३ ॥ वंचितोऽहं स्वयं पित्रा दूषणं कस्य दीयते ॥ भ्रामितोऽहं महाभाग कर्मणा वा महीतले ॥ २४ ॥ धनाशा पुरुषस्येह
परिभ्रमणकारणम् ॥ सा मे नास्ति तथाप्यत्र संप्राप्तोऽस्मि भ्रमात्किल ॥ २५ ॥ निराशस्य सुखं नित्यं यदि मोहे न मज्जति ॥ निराशोऽहं महा-
भाग मग्नोऽस्मिन्मोहसागरे ॥ २६ ॥ क्व मेरुर्मिथिला क्वेयं पद्भ्यां च समुपागतः ॥ परिश्रमफलं किं मे वंचितो विधिना किल ॥२७॥ प्रारब्धं
किल भोक्तव्यं शुभं वाप्यथवाऽशुभम् ॥ उद्यमस्तद्वशे नित्यं कारयत्येव सर्वथा ॥ २८ ॥ न तीर्थं न च वेदोऽत्र यदर्थमिह मे श्रमः ॥ अप्रवेशः पुरे

है ॥ २२ ॥ मुझ दुर्बुद्धिकी यह मूर्खता ही थी कि जो दो-दो पर्वत लाँघकर महाराजसे मिलने आया ॥ २३ ॥ स्वयं मेरे पिताने मुझे धोखा दिया, तब मैं किसे दोष दूँ। अथवा यह मेरे भाग्यका दोष है कि जिसके कारण मैंने इतना चक्कर काटा ॥२४॥ प्रायः सभी पुरुष धनकी आशासे घूमा करते हैं। सो धनकी मुझे कुछ भी इच्छा नहीं है। फिर भी मैं घूमता हुआ यहाँ आ गया ॥ २५ ॥ हे भाई! यदि मोहमें न पड़े तो निराश व्यक्तिको सदा सुख ही रहता है। किन्तु निराश हो करके भी मैं मोहके सागरमें मग्न हो रहा हूँ ॥ २६ ॥ कहाँ सुमेरु पर्वत है और कहाँ यह मिथिला नगरी है। तिसपर भी मैं वहाँसे यहाँतक पैदल चलकर आया हूँ। मेरे इस प्रकार टक्कर खानेसे क्या लाभ हुआ? विधाताने ही मेरे साथ ठगहारी की है ॥२७॥ शुभ हो या अशुभ प्रारब्धमें जो होता है, वह भोगना ही पड़ता है। उद्यम सदा प्रारब्धके वशमें रहता है, वह जो चाहता है, सो कराता है ॥२८॥ यह न कोई तीर्थ है और न वेदोपदेशकी भूमि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि जिसके लिए मैं इतना परिश्रम करके यहाँ आता। मैं तो महाराज जनकका नाम सुनकर आया था। सो उनके नगरमें प्रवेश ही निषिद्ध है ॥ २९ ॥ इतना कहकर शुक मुनि चुप हो गये। अब द्वारपालको ज्ञात हुआ कि ये कोई ज्ञानी ब्राह्मण हैं ॥३०॥ तदनन्तर उस प्रतीहारने बड़ी शान्तिके साथ कहा—हे द्विजसत्तम ? आप नगरमें जहाँ इच्छा हो, वहाँ जाइए॥३१॥ हे ब्रह्मन् ! यह मेरा ही अपराध है कि जो मैंने आपको रोका। सो हे महाभाग ! आप मुझे क्षमा कर दीजिए। क्योंकि मुक्त पुरुषोंके पास क्षमाका ही बल रहता है ॥ ३२ ॥ शुकदेव बोले—हे द्वारपाल ! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। क्योंकि तुम सदा पराधीन रहते हो। और फिर सेवकका यह कर्तव्य होता है कि वह अपने स्वामीका काम तत्परतापूर्वक करे ॥३३॥ इसमें राजाका भी कोई दोष नहीं है। क्योंकि बुद्धिमानोंका यह कर्तव्य है कि वे चोर और शत्रुको पहचानें ॥३४॥ इसमें सर्वथा मेरा ही दोष है कि जो मैं यहाँ आया। पराये घर जानेमें हल्कापन तो होता ही है ॥३५॥ प्रतीहार बोला—हे द्विज ! किसे सुख कहते हैं और किसे दुःख ? कल्याण चाहनेवाले मनुष्यका क्या कर्तव्य है ? कौन शत्रु है और कौन मित्र ? कृपया

जातो विदेहो नाम भूपतिः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा विररामाशु मौनीभत इव स्थितः ॥ ज्ञातो हि प्रतिहारेण ज्ञानी कश्चिद्द्विजोत्तमः ॥ ३० ॥ सामपूर्वमुवाचासौ तं क्षत्ता संस्थितं मुनिम् ॥ गच्छ भो यत्र ते कार्यं यथेष्टं द्विजसत्तम ॥ ३१ ॥ अपराधो मम ब्रह्मन् यन्निवारितवानहम् ॥ तत्क्षंतव्यं महाभाग विमुक्तानां क्षमाबलम् ॥ ३२ ॥ शुक उवाच ॥ किं तेऽत्र दूषणं क्षत्तः परतन्त्रोऽसि सर्वदा ॥ प्रभुकार्यं प्रकर्तव्यं सेवकेन यथोचितम् ॥ ३३ ॥ न भूपदूषणं चात्र यदहं रक्षितस्त्वया ॥ चोरशत्रुपरिज्ञानं कर्तव्यं सर्वथा बुधैः ॥३४॥ ममैव सर्वथा दोषो यदहं समुपागतः ॥ गमनं परगेहे यल्लघुतायाश्च कारणम् ॥ ३५ ॥ प्रतीहार उवाच ॥ किं सुखं द्विज किं दुःखं किं कार्यं शुभमिच्छता ॥ कः शत्रुर्हितकर्ता को ब्रूहि सर्वं ममाद्य वै ॥ ३६ ॥ शुक उवाच ॥ द्वैविध्यं सर्वलोकेषु सर्वत्र द्विविधो जनः ॥ रागी चैव विरागी च तयोश्चित्तं द्विधा पुनः ॥ ३७ ॥ विरागी त्रिविधः कामं ज्ञातोऽज्ञातश्च मध्यमः ॥ रागी च द्विविधः प्रोक्तो मूर्खश्च चतुरस्तथा ॥३८॥ चातुर्यं द्विविधं प्रोक्तं शास्त्रजं मतिजं तथा ॥ मतिस्तु द्विविधा लोके युक्तायुक्तेति सर्वथा ॥३९॥ प्रतीहार उवाच ॥ यदुक्तं भवता विद्वन्नार्थज्ञोऽहं द्विजोत्तम ॥ तत्सर्वं विस्तरेणाद्य यथार्थं वद सत्तम ॥ ४० ॥ शुक उवाच ॥ रागो यस्यास्ति संसारे स रागीत्युच्यते ध्रुवम् ॥ दुःखं बहुविधं तस्य सुखं च विविधं पुनः ॥ ४१ ॥ धनं प्राप्य सुतान्दारान्मानं च

आप इन प्रश्नोंका उत्तर अभी दे दीजिए ॥ ३६ ॥ शुकदेव बोले—सभी लोगोंमें द्वैतभाव विद्यमान रहता है। अतएव मनुष्य भी दो प्रकारके होते हैं—रागी और विरागी। उन दोनोंके मन दो प्रकारके होते हैं ॥३७॥ इसी प्रकार विरागी भी तीन प्रकारके होते हैं। जैसे—ज्ञात, अज्ञात और मध्यम। रागी दो प्रकारके होते हैं—मूर्ख और चतुर ॥३८॥ चतुराई दो तरहकी होती है—पहली शास्त्रजनित चतुरता तथा दूसरी बुद्धिजन्य। इसी प्रकार बुद्धि भी दो तरहकी होती है—उचित और अनुचित ॥ ३९ ॥ प्रतीहार बोला—हे विद्वन् ! हे द्विजोत्तम ! आपने जो कुछ कहा, वह मैं नहीं समझ सका। हे सत्तम ! आप विस्तारके साथ उसे यथार्थरूपसे फिर कहिए ॥ ४० ॥ शुकदेव बोले—संसारमें जिसको राग (आसक्ति) हो, वह रागी कहलाता है। उस रागीको समय-समयपर विविध प्रकारके दुःख तथा सुख प्राप्त होते हैं ॥४१॥ धन प्राप्त करनेके बाद पुत्र, स्त्री, मान-सम्मान और विजय पाना सुख कहलाता है। इनके न प्राप्त होनेपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्षण-क्षणमें असह्य दुःख होता है ॥ ४२ ॥ अपना कल्याण चाहनेवालोंका यह कर्तव्य है कि जिस तरह सच्चा सुख मिल सके, उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। जो उस सुखमें बाधा डाले, वही शत्रु है ॥ ४३ ॥ जो रागी मनुष्योंके सुखको बढ़ाये, वही उनका मित्र है। चतुर मनुष्य उनमें नहीं फँसता, किन्तु मूर्ख रागी मनुष्य सर्वत्र फँसता रहता है ॥४४॥ विरागी तथा आत्मरागी दोनोंको एकान्तमें आत्मचिन्तन तथा वेदान्तचिन्तनसे ही सुख मिलता है ॥४५॥ सांसारिक कथोपकथन आदि सब कुछ दुःख ही दुःख है। विज्ञ और आत्मकल्याण चाहनेवाले लोगोंके बहुतेरे शत्रु होते हैं। काम, क्रोध, प्रमाद आदि विविध शत्रु हैं, किन्तु सच्चा साथी तो सन्तोष ही होता है। इसके समान शुभचिन्तक संगी तीनों लोकमें भी नहीं मिलेगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले—शुकदेवके वचन सुनकर प्रतीहारको विश्वास हो गया कि यह कोई ज्ञानी ब्राह्मण है। यह जानकर उसने शुकदेवको नगरके एक अतिशय रमणीक कक्षमें

विजयं तथा ॥ तदप्राप्य महद्दुःखं भवत्येव क्षणे क्षणे ॥ ४२ ॥ कार्यस्तस्य सुखोपायः कर्तव्यं सुखसाधनम् ॥ तस्यारातिः स विज्ञेयः सुखविघ्नकरोति यः ॥४३॥ सुखोत्पादयिता मित्रं रागयुक्तस्य सर्वदा ॥ चतुरो नैव मुह्येत मूर्खः सर्वत्र मुह्यति ॥ ४४ ॥ विरक्तस्यात्मरक्तस्य सुखमेकान्तसेवनम् ॥ आत्मानुचिन्तनं चैव वेदान्तस्य च चिन्तनम् ॥४५॥ दुःखं तदेतत्सर्वं हि संसारकथनादिकम् ॥ शत्रवो बहवस्तस्य विज्ञस्य शुभमिच्छतः ॥ ४६ ॥ कामः क्रोधः प्रमादश्च शत्रवो विविधाः स्मृताः ॥ बन्धुः सन्तोष एवास्य नान्योऽस्ति भुवनत्रये ॥ ४७ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मत्वा तं ज्ञानिनं द्विजम् ॥ क्षत्ता प्रवेशयामास कक्षां चातिमनोरमाम् ॥ ४८ ॥ नगरं वीक्षमाणः संस्त्रैविध्यजनसंकुलम् ॥ नानापणिद्रव्याढ्यं क्रयविक्रयकारकम् ॥ ४९ ॥ रागद्वेषयुतं कामलोभमोहाकुलं तथा ॥ विवदत्सुजनाकीर्णं वसुपूर्णं महत्तरम् ॥ ५० ॥ पश्यन्स त्रिविधाँल्लोकान्प्रासरद्राजमन्दिरम् ॥ प्राप्तः परमतेजस्वी द्वितीय इव भास्करः ॥५१॥ निवारितश्च तत्रैव प्रतीहारेण काष्ठवत् ॥ तत्रैव च स्थितो द्वारि मोक्षमेवानुचिन्तयन् ॥५२॥ छायायामातपे चैव समदर्शी महातपाः ॥ ध्यानं कृत्वा तथैकान्ते स्थितः स्थाणुरिवाचलः ॥५३॥ तं मुहूर्तादुपागत्य राज्ञोऽमात्यः कृताञ्जलिः ॥ प्रावेशयत्ततः कक्षां द्वितीयां राजवेश्मनः ॥ ५४ ॥ तत्र दिव्यं मनोरम्यं पुष्पितं दिव्यपादपम् ॥ तद्वनं दर्शयित्वा तु कृत्वा चातिथिसत्क्रियाम् ॥ ५५ ॥ वारमुख्यः स्त्रियस्तत्र राजसेवापरायणाः ॥ गीतवादित्रकुशलाः कामशास्त्रविशारदाः ॥ ५६ ॥ ता आदिश्य च सेवार्थं

पहुँचा दिया ॥ ४८ ॥ वहाँ राग-द्वेष तथा काम-क्रोध-लोभ-मोह आदिसे परिपूर्ण नागरिक विद्यमान थे और विविध प्रकारके सौदोंसे भरी दूकानें थीं, जिनमें खरीद-बिक्री करनेवाले लोग बैठे थे। वे परस्पर नाना प्रकारके व्यापारिक विवाद कर रहे थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस तरह तीन प्रकारके नागरिकोंको देखते हुए सूर्यसदृश तेजस्वी शुकदेव राजमहलके समीप जा पहुँचे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वहाँ भी प्रतीहारने भीतर जानेसे रोक दिया। तब वे काष्ठके पुतलेकी तरह वहाँ ही बैठ गये और मोक्षसम्बन्धी धारणाओंपर विचार-विमर्श करने लगे ॥५३॥ मुहूर्त ही भर बाद राजाका एक मंत्री आया और वह उन्हें अपने साथ राजमहलके दूसरे कक्षमें ले गया ॥५४॥ उस कक्षमें विविध दिव्य वृक्ष पुष्पोंसे लदे हुए थे। अतएव वे बहुत सुन्दर लग रहे थे। उस सुन्दर उपवनको दिखाता हुआ वह मंत्री उन्हें भीतर ले गया और भली भाँति अतिथिसत्कार किया ॥५५॥ वहाँ गाने-बजानेमें निपुण तथा कामशास्त्रमें पारंगत बहुतेरी वारांगनायें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजाकी सेवामें नियुक्त थीं ॥५६॥ उन्हें शुकदेवकी सेवा करनेका आदेश देकर मंत्री चला गया और शुकदेव वहाँ ही रुक गये ॥ ५७ ॥ उन स्त्रियोंने बड़ी श्रद्धाके साथ उनकी विधिवत् पूजा की और देश-कालके अनुसार प्राप्त विविध व्यञ्जन खिलाकर सन्तुष्ट किया ॥ ५८ ॥ तदनन्तर शुकदेवपर मोहित उन वाराङ्गनाओंने उन्हें राजमहलके अन्तःपुरका सुन्दर बगीचा दिखलाया ॥ ५९ ॥ शुकदेव युवा, सुन्दर, मृदुभाषी और मनोरम थे। अतएव वे वाराङ्गनायें उन्हें दूसरा कामदेव समझकर उनपर आसक्त हो गयीं ॥ ६० ॥ किन्तु बादमें उन्हें एक जितेन्द्रिय मुनि समझकर वे शुद्धभावसे उनकी सेवा करने लगीं। पूतात्मा शुकदेव भी उन सबके प्रति माता जैसा भाव रखते थे ॥ ६१ ॥ शुकमुनि आत्माराम (अपने आपमें मस्त रहनेवाले) और क्रोधको वशमें किये हुए तत्त्वज्ञानी थे। अतएव वे कभी न हर्षित होते थे और न सन्तप्त। वे उनके हाव-भाव भरे कामजनित विकारोंको देखकर भी शान्त रहते थे ॥ ६२ ॥ उन स्त्रियोंने उनके लिए बहुत सुन्दर, साफ-सुथरी तथा कीमती बिछौने बिछी हुई शय्याकी व्यवस्था की ॥६३॥ तब शुकमुनिने निरलस भावसे हाथ-पैर धो तथा हाथमें कुश

शुकस्य मन्त्रिसत्तमः ॥ निर्गतः सदनात्तस्माद्व्यासपुत्रः स्थितस्तदा ॥ ५७ ॥ पूजितः परया भक्त्या ताभिः स्त्रीभिर्यथाविधि ॥ देशकालोपपन्नेन नानाऽन्नेनातितोषितः ॥ ५८ ॥ ततोऽन्तःपुरवासिन्यस्तस्यान्तःपुरकाननम् ॥ रम्यं संदर्शयामासुरङ्गनाः काममोहिताः ॥ ५९ ॥ स युवा रूपवान्कांतो मृदुभाषी मनोरमः ॥ दृष्ट्वा ता मुमुहुः सर्वास्तं च काममिवापरम् ॥६०॥ जितेन्द्रियं मुनिं मत्वा सर्वाः पर्यचरंस्तदा ॥ आरणेयस्तु शुद्धात्मा मातृभावमकल्पयत् ॥ ६१ ॥ आत्मारात्मो जितक्रोधो न हृष्यति न तप्यति ॥ पश्यंस्तासां विकारांश्च स्वस्थ एव स तस्थिवान् ॥ ६२ ॥ तस्मै शय्यां सुरम्यां च ददुर्नार्यः सुसंस्कृताम् ॥ परार्ध्यास्तरणोपेतां नानोपस्करसंवृताम् ॥ ६३ ॥ स कृत्वा पादशौचं च कुशपाणिरतन्द्रितः ॥ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ ६४ ॥ याममेकं स्थितो ध्याने सुष्वाप तदनन्तरम् ॥ सुप्त्वा यामद्वयं तत्र चोदतिष्ठत्ततः शुकः ॥६५॥ पाश्चात्यं यामिनीयामं ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ स्नात्वा प्रातःक्रियाः कृत्वा पुनरास्ते समाहितः ॥६६॥ इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा तमागतं राजा मन्त्रिभिः सहितः शुचिः ॥ पुनः पुरोहितं कृत्वा गुरुपुत्रं समभ्यगात् ॥ १ ॥ कृत्वार्हणां नृपः सम्यग्दत्त्वाऽऽसनमनुत्तमम् ॥ पप्रच्छ कुशलं गां च विनिवेद्य पयस्विनीम् ॥२॥ स च तां नृपपूजां वै प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ॥ पप्रच्छ कुशलं राज्ञे स्वं

लेकर सायंकालीन सन्ध्योपासना की और उसके बाद भगवानका ध्यान करने लगे ॥६४॥ इस प्रकार पहरभर ध्यान करनेके पश्चात् शयन करने चले गये। रातको दो पहर शयन करके उठ गये ॥ ६५ ॥ पिछली रातका एक पहर उन्होंने भगवद्ध्यानमें बिताया और प्रातःकाल स्नान करके नित्यकर्मोंसे निवृत्त होनेके पश्चात् वे पुनः समाधिस्थ हो गये ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

(विदेह जनक द्वारा शुकदेवको ज्ञानोपदेश) सूतजी बोले—शुकदेवके आगमनका समाचार सुनकर मंत्रियों समेत महाराज जनक अपने पुरोहितको आगे करके उनसे मिलने गये ॥ १ ॥ वहाँ पहुँचकर राजाने भलीभाँति उनकी पूजा की और बैठनेके लिए उत्तम आसन प्रदान किया। तत्पश्चात् एक दुधार गाय भेंट की और उनसे कुशल-क्षेम पूछा ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुकदेवने भी राजाकी पूजाको बड़े प्रेमसे स्वीकार किया और अपना कुशल-क्षेम बताकर जनकजीसे कुशल-क्षेम पूछा ॥ ३ ॥ कुशल-प्रश्नके अनन्तर सुखपूर्वक बैठे हुए शान्त व्यासतनय शुकदेवसे महाराज जनकने कहा–॥ ४ ॥ हे महाभाग ! आप जैसे निःस्पृह मुनिका मेरे यहाँ आगमन कैसे हुआ ? हे मुनिसत्तम ! मुझे अपना प्रयोजन बताइए ॥ ५ ॥ शुकदेव बोले—हे महाराज ! मेरे पिता व्यासजीने मुझसे विवाह करनेका आग्रह करते हुए कहा कि सब आश्रमोंमें गृहस्थ आश्रम श्रेष्ठ है ॥६॥ किन्तु उसे बन्धन समझकर मैंने पिताजीकी बात नहीं मानी। उन्होंने कहा कि गृहस्थाश्रममें बन्धन नहीं है। फिर भी मैं राजी नहीं हुआ ॥ ७ ॥ मेरे मनमें नाना प्रकारके सन्देह देखकर पिताजीने कहा—पुत्र ! तुम किसी प्रकारका सोच न करके मिथिला चले जाओ ॥ ८ ॥ महाराज जनक याज्ञिक और जीवन्मुक्त राजा हैं। संसारमें वे विदेहके नामसे विख्यात हैं और निष्कण्टक राज्य करते हैं ॥९॥ इस प्रकार राज्यका सब काम करते हुए भी वे मायाके बन्धनमें नहीं बँधे हैं। हे पुत्र ! हे परन्तप ! तुम वनवासी होकर ऐसे गृहस्थधर्मसे डरते क्यों हो ? ॥ १० ॥ तुम जाकर उन नृपश्रेष्ठसे अवश्य मिलो और

निवेद्य निरामयम् ॥ ३ ॥ कृत्वा कुशलसंप्रश्नमुपविष्टं सुखासने ॥ शुकं व्याससुतं शांतं पर्यपृच्छत पार्थिवः ॥ ४ ॥ किं निमित्तं महाभाग निःस्पृहस्य च मां प्रति ॥ जातं ह्यागमनं ब्रूहि कार्यं तन्मुनिसत्तम ॥ ५ ॥ शुक उवाच ॥ व्यासेनोक्तो महाराज कुरु दारपरिग्रहम् ॥ सर्वेषामाश्रमाणां च गृहस्थाश्रम उत्तमः ॥ ६ ॥ मया नांगीकृतं वाक्यं मत्त्वा बन्धं गुरोरपि ॥ न बंधोऽस्तीति तेनोक्तो नाहं तत्कृतवान्पुनः ॥ ७ ॥ इति संदिग्धमनसं मत्वा स मुनिसत्तमः ॥ उवाच वचनं तथ्यं मिथिलां गच्छ मा शुचः ॥ ८ ॥ याज्योऽस्ति जनकस्तत्र जीवन्मुक्तो नराधिपः ॥ विदेहो लोकविदितः पाति राज्यमकंटकम् ॥ ९ ॥ कुर्वन्राज्यं तथा राजा मायापाशैर्न बध्यते ॥ त्वं बिभेषि कथं पुत्र वनवृत्तिः परंतप ॥ १० ॥ पश्य तं नृपशार्दूलं त्यज मोहं मनोगतम् ॥ कुरु दारान्महाभाग पृच्छ वा भूपतिं च तम् ॥ ११ ॥ संदेहं ते मनोजातं कथयिष्यति पार्थिवः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मामेहि तरसा सुत ॥ १२ ॥ संप्रोक्तोऽहं महाराज त्वत्पुरे च तदाज्ञया ॥ मोक्षकामोऽस्मि राजेंद्र ब्रूहि कृत्यं ममानघ ॥ १३ ॥ तपस्तीर्थव्रतेज्याश्च स्वाध्यायस्तीर्थसेवनम् ॥ ज्ञानं वा वद राजेंद्र मोक्षं प्रति च कारणम् ॥ १४ ॥ जनक उवाच ॥ शृणु विप्रेण कर्तव्यं मोक्षमार्गाश्रितेन यत् ॥ उपनीतो वसेदादौ वेदाभ्यासाय वै गुरौ ॥ १५ ॥ अधीत्य वेदवेदांतान्दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ॥ समावृत्तस्तु गार्हस्थ्ये सदारो निवसे-

मनका मोह त्याग दो। अथवा हे महाभाग ! उन महाराजसे पूछकर तुम अपना विवाह कर लो ॥११॥ राजा जनक तुम्हारी सब शंकाओंका समाधान कर देंगे। वे जो कहें, उसे सुनकर हे पुत्र ! तुम शीघ्र यहाँ मेरे पास लौट आओ ॥ १२ ॥ हे महाराज ! उन्हीं अपने पिता व्यासजीकी आज्ञासे मैं आपके नगरमें आया हूँ। हे पूतात्मन् ! आप मुझे मेरा कर्तव्य बताइए ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र ! तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय, तीर्थसेवन तथा ज्ञान, इनमेंसे जिस साधन द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सके, वह आप मुझको बताइए ॥ १४ ॥ जनकजी बोले—हे विप्र ! सुनिए, मैं मोक्षमार्गावलम्बी मनुष्योंके कर्तव्य बतलाता हूँ। उपनयनसंस्कार हो जानेके बाद वह वेदाभ्यासके लिए गुरुकुलमें रहे ॥१५॥ वहाँ वेद-वेदान्तका अध्ययन करनेके पश्चात् गुरुको गुरुदक्षिणा दे और समावर्तनसंस्कार हो जानेके बाद स्त्रीके साथ गृहस्थाश्रमका जीवन बिताये। गृहस्थीमें रहते समय न्यायोपार्जित धनसे जीविका सम्पादन करता हुआ सदा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सन्तुष्ट रहे, किसीसे कोई आशा न रक्खे, पापोंको दूर करे, समयपर अग्निहोत्र आदि कर्म करता रहे, सदा सत्य वचन बोले और पवित्र रहे ॥१६॥१७॥ जब पुत्र-पौत्र आदि हो जायँ, तब वानप्रस्थ आश्रममें चला जाय। वहाँ तपस्या द्वारा काम-क्रोध-मद-मोह-लोभ-मात्सर्य इन छहों रिपुओंपर विजय प्राप्त करे और अपनी स्त्रीकी रक्षाका भार पुत्रको सौंप दे ॥१८॥ तदनन्तर सब अग्नियोंको अपनी आत्मामें आरोपित करे। वह धर्मात्मा जब सांसारिक विषयोंसे थक जाय और हृदयमें शुद्ध वैराग्य जागृत हो, तब संन्यास ले ले ॥ १९ ॥ एकमात्र विरक्त पुरुषको ही संन्यास लेनेका अधिकार है—औरोंको नहीं। यह वेदवाक्य सर्वथा सत्य है--असत्य नहीं। यह मेरा मन्तव्य है ॥ २० ॥ हे शुक ! वेदोंमें कुल मिलाकर अड़तालीस संस्कार बताये गये हैं। जिनमें चालीस संस्कार महात्माओंने गृहस्थोंके लिए बतलाये हैं ॥ २१ ॥ शम-दम आदि आठ संस्कार मुक्तिके इच्छुक पुरुषोंके लिए कहे गये हैं। एक आश्रमका कार्य पूर्ण करनेके बाद ही दूसरे आश्रममें जाय। यही शिष्टाचार है ॥ २२ ॥ शुकदेव बोले—हे महाराज ! जिस गृहस्थके अन्तःकरणमें ज्ञान-विज्ञानजनित वैराग्य उत्पन्न हो जाय तो वह वानप्रस्थ

न्मुनिः ॥ १६ ॥ न्यायवृत्तिस्तु संतोषी निराशी गतकल्मषः ॥ अग्निहोत्रादिकर्माणि कुर्वाणः सत्यवाक्शुचिः ॥ १७ ॥ पुत्रं पौत्रं समासाद्य वानप्रस्थाश्रमे वसेत् ॥ तपसा षड्रिपूञ्जित्वा भार्यां पुत्रे निवेश्य च ॥ १८ ॥ सर्वानग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्य धर्मवित ॥ वसेत्तुर्याश्रमे श्रांतः शुद्धे वैराग्यसम्भवे ॥ १९ ॥ विरक्तस्याधिकारोऽस्ति संन्यासे नान्यथा क्वचित् ॥ वेदवाक्यमिदं तथ्यं नान्यथेति मतिर्मम ॥ २० ॥ शुकाष्टचत्वारिंशद्वै संस्कारा वेदबोधिताः ॥ चत्वारिंशद्गृहस्थस्य प्रोक्तास्तत्र महात्मभिः ॥ २१ ॥ अष्टौ च मुक्तिकामस्य प्रोक्ताः शमदमादयः ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति शिष्टानुशासनम् ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उत्पन्ने हृदि वैराग्ये ज्ञानविज्ञानसंभवे ॥ अवश्यमेव वस्तव्यमाश्रमेषु वनेषु वा ॥ २३ ॥ ॥ जनक उवाच ॥ इन्द्रियाणि बलिष्ठानि न नियुक्तानि मानद ॥ अपक्वस्य प्रकुर्वंति विकारांस्ताननेकशः ॥ २४ ॥ भोजनेच्छां सुखेच्छां च शय्येच्छामात्मजस्य च ॥ यती भूत्वा कथं कुर्याद्विकारे समुपस्थिते ॥ २५ ॥ दुर्जरं वासनाजालं न शांतिमुपयाति वै ॥ अतस्तच्छमनार्थाय क्रमेण च परित्यजेत् ॥ २६ ॥ ऊर्ध्वं सुप्तः पतत्येव न शयानः पतत्यधः ॥ परिव्रज्य परिभ्रष्टो न मार्गं लभते पुनः ॥ २७ ॥ यथा पिपीलिका मूलाच्छाखायामधिरोहति ॥ शनैः शनैः फलं याति सुखेन पदगामिनी ॥ २८ ॥ विहंगस्तरसा याति विघ्नशंकामुदस्य वै ॥ श्रांतो भवति विश्रम्य सुखं याति

आश्रममें जाय या कि संन्यास आश्रममें ? ॥ २३ ॥ जनकजी बोले—हे मानद ! इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं, वे वशमें नहीं आतीं। अपरिपक्व विचारवाले लोगोंके मनमें वे नाना प्रकारके विकार उत्पन्न करती हैं ॥२४॥ यदि मनमें भोजनकी इच्छा, सुखकी इच्छा, अच्छी शय्याकी इच्छा और पुत्रकी इच्छारूपी विकार भरे हुए हों तो वह पुरुष संन्यास ले करके ही क्या कर लेगा ? ॥ २५ ॥ वासनाओंका जाल बड़ा दुर्भेद्य होता है, वह जल्दी शान्त नहीं होता। अतएव उसे शान्त करनेके लिए क्रमशः एक-एक वासना त्यागे ॥२६॥ ऊँचे स्थानपर सोया हुआ व्यक्ति ही नीचे गिरता है, पृथिवीपर सोनेवाला नहीं गिरता। सो संन्यासाश्रमरूपी उच्च स्थानसे गिरे हुए व्यक्तिके लिए कोई अन्य मार्ग ही नहीं रह जाता ॥२७॥ जैसे चींटी वृक्षकी जड़से चढ़कर शाखापर जाती और वहाँसे धीरे-धीरे सुखसे पैदल चलती हुई फलपर पहुँच जाती है, वैसे ही कल्याणकामी पुरुष क्रमशः एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें जाय ॥२८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पक्षी विघ्नकी आशंका करके चारेके लिए बड़े वेगसे उड़ता है और जल्दी थक जाता है, किन्तु चींटी सुखसे धीरे-धीरे चलती हुई अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँच जाती है ॥ २९ ॥ मनका वेग बड़ा प्रबल होता है और काम अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये अजेय है । अतएव इन्हें आश्रमोंके क्रमसे ही जीतनेका प्रयत्न करे ॥३०॥ गृहस्थाश्रममें रहता हुआ भी जो मनुष्य शान्त तथा सद्बुद्धिसम्पन्न रहता है, अपने आपपर काबू रखता है, न लाभमें प्रसन्न होता और न हानिमें दुखी रहता है, सबको समान समझता है, शास्त्रप्रतिपादित कर्मोंमें संलग्न रहता है, जो चिन्ताको पास नहीं आने देता और आत्मज्ञानसे ही सन्तुष्ट रहता है, वह मुक्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥३१॥३२॥ हे निष्पाप! देखिए, मैं राज्य करता हुआ भी मुक्त हूँ। मैं इच्छानुसार सब काम करता हूँ। मुझे हर्ष तथा शोक कुछ नहीं होता ॥३३॥ जैसे मैं विविध प्रकारके भोग भोगता हूँ और अनेक प्रकारके कार्य करता हूँ, उसी प्रकार हे पूतात्मन्! आप भी जीवन्मुक्त हो जायँ ॥ ३४ ॥ ऐसा कहा जाता है कि जड़ जगत्के दृश्य पदार्थ अदृश्य आत्मतत्त्वको कैसे अपने अधीन कर सकते हैं? पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पञ्चभूत तथा

पिपीलिका ॥ २९ ॥ मनस्तु प्रबलं काममजेयमकृतात्मभिः ॥ अतः क्रमेण जेतव्यमाश्रमानुक्रमेण च ॥३०॥ गृहस्थाश्रमसंस्थोऽपि शांतः सुमतिरात्मवान् ॥ न च हृष्येन्न च तपेल्लाभालाभे समो भवेत् ॥ ३१ ॥ विहितं कर्म कुर्वाणस्त्यजंश्चिन्तान्वितं च यत् ॥ आत्मलाभेन संतुष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३२ ॥ पश्याहं राज्यसंस्थोऽपि जीवन्मुक्तो यथाऽनघ ॥ विचरामि यथाकामं न मे किंचित्प्रजायते ॥ ३३ ॥ भुंजानो विविधान्भोगान्कुर्वन्कार्याण्यनेकशः ॥ भविष्यामि यथाऽहं त्वं तथा मुक्तो भवानघ ॥ ३४ ॥ कथ्यते खलु यद्दृश्यमदृश्यं बध्यते कुतः ॥ दृश्यानि पंचभूतानि गुणास्तेषां तथा पुनः ॥ ३५ ॥ आत्मा गम्योऽनुमानेन प्रत्यक्षो न कदाचन ॥ स कथं बध्यते ब्रह्मन्निर्विकारो निरंजनः ॥ ३६ ॥ मनस्तु सुखदुःखानां महतां कारणं द्विज ॥ जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्सर्वं भवति निर्मलम् ॥३७॥ भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः॥ निर्मलं न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम् ॥ ३८ ॥ न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परंतप ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ॥ ३९ ॥ शुद्धो मुक्तः सदैवात्मा न वै बद्ध्येत कर्हिचित् ॥ बन्धमोक्षौ मनःसंस्थौ तस्मिञ्छांते प्रशाम्यति ॥ ४० ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः ॥ एकात्मत्वे

उनके गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये गुण दृश्य कहलाते हैं ॥ ३५ ॥ आत्माका ज्ञान तो अनुमानसे ही हो सकता है । उसे प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता । ऐसी दशामें हे ब्रह्मन्! वह अनुमानगम्य, निर्विकार तथा निरंजन आत्मा बन्धनमें कैसे बँध सकता है? ॥ ३६ ॥ हे द्विज! मन ही सुख तथा महान् दुःखका कारण है । मनके निर्मल हो जानेपर सब कुछ निर्मल हो जाता है ॥३७॥ सभी तीर्थोंमें घूम-घूमकर बारम्बार स्नान करनेपर भी यदि मनका मैल नहीं छूटा तो सब किया-धरा व्यर्थ हो जाता है ॥३८॥ हे परन्तप! मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण होता है । देह, जीवात्मा और इन्द्रियाँ बन्धनका कारण नहीं होतीं ॥ ३९ ॥ आत्मा तो सदा शुद्ध और मुक्त रहता है। वह कभी किसी बन्धनमें नहीं बँधता। बन्धन और मोक्ष मनमें रहते हैं । यदि मन शान्त होता है तो बन्धन भी समाप्त होजाता है ॥ ४० ॥ शत्रु, मित्र, उदासीन ये सब भेद मनके ही होते हैं । एकात्मभाव आनेपर द्वैतका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दर्शन कैसे होगा ? ॥४१॥ मैं तो सदासे जीव नामका ब्रह्म हूँ। इस विषयमें विशेष विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। भेदबुद्धि तो सांसारिक व्यवहारमें ही चलती है ॥४२॥ हे महाभाग ! बन्धनका कारण अविद्या है और इस अविद्याको विद्या ही निवृत्त करती है। अतएव विद्वानोंको चाहिए कि वे सदा विद्या और अविद्याका अनुसन्धान करते रहें ॥ ४३ ॥ आतप (धूप) के विना छायाके सुखका अनुभव कैसे किया जा सकता है ? उसी प्रकार अविद्याके विना विद्याका अनुभव कैसे होगा ? ॥४४॥ गुण गुणोंमें, पञ्चभूत पञ्चभूतोंमें और इन्द्रियाँ इन्द्रियोंमें रमण करती हैं। इसमें आत्माका क्या दोष है ? ॥ ४५ ॥ हे पुण्यात्मन् ! वेदोंमें सबकी रक्षाके लिए उचित व्यवस्था कर दी गयी है। यदि ऐसा न किया जाता तो बौद्धधर्मकी तरह सब धर्मोंका लोप हो जाता ॥ ४६ ॥ धर्म नष्ट होनेपर सब वर्णोंके आचार-विचार भी नष्ट हो जाते। अतएव वेदप्रतिपादित मार्गपर चलनेसे ही सबका कल्याण हो सकता है ॥४७॥

कथं भेदः संभवेद्द्वैतदर्शनात् ॥ ४१ ॥ जीवो ब्रह्म सदैवाहं नात्र कार्या विचारणा ॥ भेदबुद्धिस्तु संसारे वर्तमाना प्रवर्तते ॥ ४२ ॥ अविद्येयं महाभाग विद्या चैतन्निवर्तनम् ॥ विद्याविद्ये च विज्ञेये सर्वदैव विचक्षणैः ॥ ४३ ॥ विनाऽऽतपं हि छायाया ज्ञायते च कथं सुखम् ॥ अविद्यया विना तद्वत्कथं विद्यां च वेत्ति वै ॥४४॥ गुणा गुणेषु वर्तन्ते भूतानि च तथैव वै ॥ इन्द्रियाणींद्रियार्थेषु को दोषस्तत्र चात्मनः ॥ ४५ ॥ मर्यादा सर्वरक्षार्थं कृता वेदेषु सर्वशः ॥ अन्यथा धर्मनाशः स्यात्सौगतानामिवानघ ॥ ४६ ॥ धर्मनाशे विनष्टः स्याद्वर्णाचारोऽतिवर्तितः ॥ अतो वेदप्रदिष्टेन मार्गेण गच्छतां शुभम् ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संदेहो वर्तते राजन्न निवर्तति मे क्वचित् ॥ भवता कथितं यत्तच्छृण्वतो मे नराधिप ॥ ४८ ॥ वेदधर्मेषु हिंसा स्यादधर्मबहुला हि सा ॥ कथं मुक्तिप्रदो धर्मो वेदोक्तो बत भूपते ॥ ४९ ॥ प्रत्यक्षेण त्वनाचारः सोमपानं नराधिप ॥ पशूनां हिंसनं तद्वद्भक्षणं चामिषस्य च ॥ ५० ॥ सौत्रामणौ तथा प्रोक्तः प्रत्यक्षेण सुराग्रहः ॥ द्यूतक्रीडा तथा प्रोक्ता व्रतानि विविधानि च ॥ ५१ ॥ श्रूयते स्म पुरा ह्यासीच्छशबिंदुर्नृपोत्तमः ॥ यज्वा धर्मपरो नित्यं वदान्यः सत्यसागरः ॥ ५२ ॥ गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता चोत्पथगामिनाम् ॥ यज्ञाश्च विहितास्तेन बहवो भूरिदक्षिणाः ॥ ५३ ॥ चर्मणां पर्वतो जातो विंध्याचलसमः पुनः ॥ मेघांबुप्लावनाज्जाता नदी चर्मण्वती

शुकदेव बोले—हे राजन् ! आपकी कही हुई बातें सुन करके भी मेरा सन्देह निवृत्त नहीं हुआ ॥ ४८ ॥ हे भूपते ! वेदप्रतिपादित धर्मोंमें हिंसाका बाहुल्य है और हिंसामें विविध अधर्म भरे हुए हैं। ऐसी परिस्थितिमें वेदोक्त धर्म मुक्तिदायक कैसे हो सकते हैं ? ॥ ४९ ॥ हे नरपते ! सोमरसपान, पशुहिंसा और मांसभक्षण ये वेदविहित प्रत्यक्ष अनाचार हैं ॥ ५० ॥ सौत्रामणि यज्ञमें तो प्रत्यक्षरूपसे मदिरापान करनेको कहा गया है। इसी प्रकार वेदोंमें जुआ खेलनेकी विधि तथा अन्यान्य व्रत बतलाये गये हैं ॥५१॥ सुना जाता है कि शशबिन्दु नामके एक उत्तम राजा थे। वे बड़े याज्ञिक, धर्मपरायण, उदार और सत्यके समुद्र थे ॥५२॥ वे धर्मरूपी सेतुके संरक्षक थे और कुपथगामी लोगोंको दण्ड देते थे। उन्होंने प्रचुर दक्षिणा देकर बहुतेरे यज्ञ किये ॥ ५३ ॥ जिनमें मारे गये पशुओंके चमड़ेसे विन्ध्य पर्वतके समान ऊँचा ढेर लग गया और उसपर जब बादलोंने जल बरसाया तो उसी ढेरसे चर्मण्वती नामकी एक पुनीत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नदी बह निकली ॥ ५४ ॥ ऐसा राजा भी स्वर्ग गया और उसकी कीर्ति अचल हो गयी । इस प्रकारके धर्मोंका प्रवर्तन करनेवाले वेदोंपर मेरी आस्था नहीं है ॥ ५५ ॥ स्त्रीका साथ करके पुरुष भोगका सुख प्राप्त करता है और स्त्री न मिलनेपर उसे बहुत क्लेश होता है । ऐसी परिस्थितिमें वह भला जीवन्मुक्त कैसे होगा ? ॥ ५६ ॥ जनकजी कहने लगे—वेदोंमें प्रत्यक्षरूपसे जिस हिंसाका प्रतिपादन किया गया है, वह हिंसा वास्तवमें अहिंसा ही है । किन्तु यदि वह राग अथवा उपाधिवश की जाय तो हिंसा मानी जाती है । जैसे ईंधनके संयोगसे अग्निमें धुआँ उठता है, किन्तु ईंधन न मिलनेसे धुआँ नहीं रह जाता ॥५७॥५८॥ हे मुनिसत्तम ! उसी प्रकार वेदोक्त हिंसाके विषयमें भी समझिए । रागी अथवा आसक्त पुरुष द्वारा किया गया पशुवध हिंसा है और वे ही कार्य विरागियों द्वारा किये जानेपर अहिंसात्मक हो जाते हैं ॥५९॥ जो कर्म रागरहित हो अहंकार त्यागकर किया जाता है, उसे वेदविद् विद्वान् अकर्म कहते

शुभा ॥ ५४ ॥ सोऽपि राजा दिवं यातः कीर्तिरस्याचला भुवि ॥ एवं धर्मेषु वेदेषु न मे बुद्धिः प्रवर्तते ॥ ५५ ॥ स्त्रीसंगेन सदा भोगे सुखमाप्नोति मानवः ॥ अलाभे दुःखमत्यंतं जीवन्मुक्तः कथं भवेत् ॥ ५६ ॥ जनक उवाच ॥ हिंसा यज्ञेषु प्रत्यक्षा साऽहिंसा परिकीर्तिता ॥ उपाधियोगतो हिंसा नान्यथेति विनिर्णयः ॥ ५७ ॥ यथा चेंधनसंयोगादग्नौ धूमः प्रवर्तते ॥ तद्वियोगात्तथा तस्मिन्निर्धूमत्वं विभाति वै ॥ ५८ ॥ अहिंसां च तथा विद्धि वेदोक्तां मुनिसत्तम ॥ रागिणां साऽपि हिंसैव निःस्पृहाणां न सा मता ॥ ५९ ॥ अरागेण च यत्कर्म तथाऽहंकारवर्जितम् ॥ अकृतं वेदविद्वांसः प्रवदंति मनीषिणः ॥ ६० ॥ गृहस्थानां तु हिंसैव या यज्ञे द्विजसत्तम ॥ अरागेण च यत्कर्म तथाऽहंकारवर्जितम् ॥ साऽहिंसैव महाभाग मुमुक्षूणां जितात्मनाम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ संदेहोऽयं महाराज वर्तते हृदये मम ॥ मायामध्ये वर्तमानः स कथं निःस्पृहो भवेत् ॥ १ ॥ शास्त्रज्ञानं च संप्राप्य नित्यानित्याविचारणम् ॥ त्यजते न मनो मोहं स कथं मुच्यते नरः ॥ २ ॥ अंतर्गतं तमश्छेत्तुं शास्त्राद्बोधो हि न क्षमः ॥ यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया ॥ ३ ॥ अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्तव्यः सर्वदा बुधैः ॥ स कथं राजशार्दूल गृहस्थस्य भवेत्तथा ॥ ४ ॥ वित्तैषणा न ते शांता तथा राज्य-

हैं ॥ ६० ॥ हे द्विजसत्तम ! गृहस्थोंके लिए जो हिंसाकर्म बताया गया है, वह यदि अहंकाररहित होकर किया जाय तो उससे आसक्ति ढीली पड़ जाती है । हे महाभाग ! जितेन्द्रियों द्वारा की हुई हिंसा भी अहिंसा हो जाती है ॥ ६१ ॥ इति श्री.देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(शुकदेवजीका विवाह) शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! मुझे यह बहुत बड़ा सन्देह है कि मायामें लिप्त रहते हुए भी कोई मनुष्य निःस्पृह कैसे हो सकता है ? ॥१॥ शास्त्रज्ञान प्राप्त करके भली भाँति नित्य-अनित्यका विचार करनेपर भी चित्तसे मोह दूर नहीं होता । तब मायामें लिप्त पुरुष कैसे मुक्त हो सकता है ॥ २ ॥ मानवहृदयमें व्याप्त मायारूपी अन्धकार कोरे शास्त्रज्ञानसे दूर नहीं होता । केवल दीपककी बात करनेसे अन्धेरा दूर नहीं हो जाता ॥ ३ ॥ वैसे तो सभी बुद्धिमान् मनुष्योंका यह कर्तव्य है कि किसी भी प्राणीके साथ द्रोहभाव न रक्खें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किन्तु हे नरपते ! एक साधारण गृहस्थ ऐसा कैसे कर सकता है ? ॥ ४ ॥ आप अपनी ही बात ले लीजिए । आपकी धनसम्बन्धी इच्छायें अभी शान्त नहीं हुई हैं । राज्यसु तथा युद्धमें विजय प्राप्त करनेकी इच्छायें अभी भी हैं । ऐसी दशामें आप अपनेको जीवन्मुक्त कैसे कहते हैं ? ॥ ५ ॥ चोरोंमें चोरबुद्धि अभी आपकी बनी हुई है । अपने-परायेका भेदभाव भी अभी आपमें है, तब आप जीवन्मुक्त कैसे हो सकते हैं ? ॥६॥ अभी आप कड़वे, तीखे, कसैले और खट्टे रसका स्वाद जानते हैं । हे महाराज ! अभी भले कामोंमें आपका मन लगता है, बुरे कामोंमें नहीं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! अभी आपमें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थायें विद्यमान हैं, तब तुरीयावस्था (समाधिकी दशा) कैसे प्राप्त होगी ? ॥ ८ ॥ पैदल, घुड़सवार, रथ, सेना तथा हाथियोंकी सेनाका अधिपति आप अपनेको मानते हैं या नहीं मानते ? ॥ ९ ॥ हे राजन् ! आप सदा मिठाई खाते हैं और कभी प्रसन्न तथा कभी अनमने होज ते हैं । अभी आप मालाको माला तथा सर्पको सर्प समझते हैं, तब आप समदर्शी कैसे हुए ? ॥ १० ॥ हे राजन् ! विमुक्त तो वह होता है कि जो मिट्टीके ढेले तथा सुवर्णको समान समझता हो, सबके

सुखैषणा ॥ जयैषणा च संग्रामे जीवन्मुक्तः कथं भवेः ॥ ५ ॥ चौरेषु चौरबुद्धिस्ते साधुबुद्धिस्तु तापसे ॥ स्वपरत्वं तवाप्यस्ति विदेहस्त्वं कथं नृप ॥ ६ ॥ कटुतीक्ष्णकषायाम्लरसान् वेत्सि शुभाशुभान् ॥ शुभेषु रमते चित्तं नाशुभेषु तथा नृप ॥ ७ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तव राजन्भवंति हि ॥ अवस्थास्तु यथाकालं तुरीया तु कथं नृप ॥ ८ ॥ पदात्यश्वरथेभाश्च सर्वे वै वशगा मम ॥ स्वाम्यहं चैव सर्वेषां मन्यसे त्वं न मन्यसे ॥ ९ ॥ मिष्टमत्सि सदा राजन्मुदितो विमनास्तथा ॥ मालायां च तथा सर्पे समदृक्क्व नृपोत्तम ॥१०॥ विमुक्तस्तु भवेद्राजन्समलोष्ठाश्मकांचनः ॥ एकात्मबुद्धिः सर्वत्र हितकृत्सर्वजंतुषु ॥ ११ ॥ न मेऽद्य रमते चित्तं गृहदारादिषु क्वचित् ॥ एकाकी निःस्पृहोऽत्यर्थं चरेयमिति मे मतिः ॥ १२ ॥ निःसंगो निर्ममः शांतः पत्रमूलफलाशनः ॥ मृगवद्विचरिष्यामि निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ १३ ॥ किं मे गृहेण वित्तेन भार्यया च सुरूपया ॥ विरागमनसः कामं गुणातीतस्य पार्थिव ॥ १४ ॥ चिंत्यसे विविधाकारं नानारागसमाकुलम् ॥ दम्भोऽयं किल ते भाति विमुक्तोऽस्मीति भाषसे ॥ १५ ॥ कदाचिच्छत्रुजा चिंता धनजा च कदाचन ॥ कदाचित्सैन्यजा चिंता निश्चिंतोऽसि कदा नृप ॥ १६ ॥ वैखानसा ये मुनयो मिताहारा जितव्रताः ॥ तेऽपि मुह्यंति संसारे जानंतोपि ह्यसत्यताम् ॥ १७ ॥ तव वंशसमुत्थानां विदेहा इति भूपते ॥ कुटिलं नाम जानीहि नान्यथेति कदाचन ॥ १८ ॥

प्रति एकात्मबुद्धि रखता हो और सब प्राणियोंका उपकार करता हो ॥ ११ ॥ घर-स्त्री आदिमें मेरा मन नहीं लगता । मेरे जीमें ऐसा आता है कि मैं अत्यन्त निःस्पृह रहता हुआ अकेला विचरूँ ॥१२॥ निःसङ्ग, निर्भय एवं शान्त रहता और पत्र-फल-फूल खाता हुआ निर्द्वन्द्व तथा निष्प्रतिग्रही होकर मृगकी तरह स्वच्छन्द विचरनेकी मेरी अभिलाषा है ॥१३॥ घर, धन-दौलत और रूपवती स्त्रीसे मुझे क्या काम ? हे राजन् ! मेरे मनमें वैराग्य है और मैं गुणातीत हूँ ॥१४॥ आप विविध प्रकारकी राग-द्वेषपूर्ण बातें सोचते हैं, फिर भी कहते हैं कि मैं विमुक्त हूँ । यह तो मुझे दम्भ ही मालूम पड़ता है ॥१५॥ आपको कभी शत्रुकी, कभी धनकी और कभी सेनाकी चिंता होती है । ऐसी स्थितिमें हे नृप ! आप निश्चिन्त कहाँ हैं ? ॥१६॥ मिताहारी, व्रतपरायण और वानप्रस्थी मुनि इस संसारकी असत्यताको जानते हुए भी इसमें आसक्त हो जाते हैं ॥१७॥ हे भूपते ! आपके वंशमें उत्पन्न सभी राजे अपनेको 'विदेह' कहते आये हैं । इसमें तो मुझे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धोखा ही दिखाई देता है- और कुछ नहीं ॥१८॥ जैसे किसी मूर्खका नाम 'विद्याधर', किसी जन्मान्धका नाम 'दिवाकर' तथा सदाके दरिद्र मनुष्यका नाम 'लक्ष्मीधर' रखना निरर्थक होता है, वैसे ही आपके वंशजोंका 'विदेह' नाम व्यर्थ है ॥१९॥२०॥ हे राजन्! पूर्वकालमें आपके कुलमें निमि नामके एक राजा हुए थे। उन्होंने यज्ञके लिए अपने गुरु वसिष्ठ मुनिको निमन्त्रित किया ॥ २१ ॥ इसपर मुनि वसिष्ठ बोले–हे नृप! अभी ही देवराज इन्द्रने भी यज्ञके लिए मुझे आमन्त्रित किया है ॥२२॥ उनका यज्ञ पूर्ण करके मैं आपके यहाँ आऊँगा। हे राजेन्द्र! तबतक धीरे-धीरे आप यज्ञकी सामग्री जुटाइए ॥२३॥ ऐसा कहकर वसिष्ठजी देवराज इन्द्रका यज्ञ कराने चले गये। इधर राजा निमि किसी दूसरे मुनिको पुरोहित बनाकर अपना उत्तम यज्ञ करने लगे ॥२४॥ यह समाचार सुनकर गुरु वसिष्ठ बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने शाप देते हुए कहा–अरे गुरुका परित्याग करनेवाले राजा! तेरा शरीर नष्ट हो जाय ॥ २५ ॥ इसपर

विद्याधरो यथा मूर्खो जन्मांधस्तु दिवाकरः ॥ लक्ष्मीधरो दरिद्रश्च नाम तेषां निरर्थकम् ॥ १९ ॥ तव वंशोद्भवा ये ये श्रुताः पूर्वे मया नृपाः ॥ विदेहा इति विख्याता नामतः कर्मतो न ते ॥ २० ॥ निमिनामाऽभवद्राजा पूर्वं तव कुले नृपः ॥ यज्ञार्थं स तु राजर्षिर्वसिष्ठं स्वगुरुं मुनिम् ॥ २१ ॥ निमंत्रयामास तदा तमुवाच नृपं मुनिः ॥ निमंत्रितोऽस्मि यज्ञार्थं देवेन्द्रेणाधुना किल ॥ २२ ॥ कृत्वा तस्य मखं पूर्णं करिष्यामि तवापि वै ॥ तावत्कुरुष्व राजेन्द्र संभारं तु शनैः शनैः ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वा निर्ययौ सोऽथ महेन्द्रयजने मुनिः ॥ निमिरन्यं गुरुं कृत्वा चकार मखमुत्तमम् ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितोऽत्यर्थं वसिष्ठो नृपतिं पुनः ॥ शशाप च पतत्वद्य देहस्ते गुरुलोपक ॥ २५ ॥ राजाऽपि तं शशापाथ तवापि च पतत्वयम् ॥ अन्योन्यशापात्पतितौ तावेव च मया श्रुतम् ॥२६॥ विदेहेन च राजेन्द्र कथं शप्तो गुरुः स्वयम् ॥ विनोद इव मे चित्ते विभाति नृपसत्तम ॥ २७ ॥ जनक उवाच ॥ सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चिदिदं मतम् ॥ तथापि शृणु विप्रेन्द्र गुरुर्मम सुपूजितः ॥ २८ ॥ पितुः सङ्गं परित्यज्य त्वं वनं गन्तुमिच्छसि ॥ मृगैः सह सुसंबंधो भविता ते न संशयः ॥ २९ ॥ महाभूतानि सर्वत्र निःसङ्गः क भविष्यसि ॥ आहारार्थं सदा चिंता निश्चितः स्याः कथं मुने ॥ ३० ॥ दण्डाजिनकृता चिंता यथा तव वनेऽपि च ॥ तथैव राज्यचिंता मे चिन्तयानस्य वा न वा ॥ ३१ ॥ विकल्पोपहतस्त्वं वै दूरदेशमुपागतः ॥ न मे विकल्पसंदेहो निर्विकल्पोऽस्मि सर्वथा ॥ ३२ ॥ सुखं स्वपिमि विप्राहं सुखं भुञ्जामि सर्वथा ॥ न बद्धोऽस्मीति

राजा निमिने भी अपने गुरुको शाप दे दिया कि तुम्हारा भी शरीर नष्ट हो जाय। मैंने सुना है कि इस प्रकार परस्परके शापसे वे दोनों ही नष्ट हो गये ॥ २६ ॥ हे राजेन्द्र! यह सोचकर मेरे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है कि विदेहने साक्षात् अपने गुरुको शाप क्यों दे दिया? ॥२७॥ जनकजी बोले–हे विप्रेन्द्र! आपका कथन यथार्थ है–असत्य तो बिल्कुल ही नहीं है। फिर भी व्यासजी मेरे पूज्य हैं ॥२८॥ आप अपने पिताका साथ छोड़कर वनमें चले जाना चाहते हैं। वनमें मृगोंके साथ आपका सुन्दर सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। इसमें भी कोई संदेह नहीं है ॥२९॥ किंतु पृथिवी-जल आदि पञ्चमहाभूत तो सर्वत्र रहेंगे, तब आप अपनेको निःसङ्ग कैसे कहेंगे? भोजनकी भी चिन्ता रहेगी ही, तब आप निश्चित कैसे होंगे? ॥३०॥ वनमें भी आपको दण्ड तथा कृष्णमृगचर्मकी चिन्ता बनी रहेगी। हे मुने! ठीक उसी तरह मुझ विचारशील राजाको राज्यकी चिन्ता रहती है ॥३१॥ भ्रममें पड़कर आप यहाँ इतनी दूर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आये हैं। किंतु मुझे श्रमका भय नहीं है और मैं सर्वथा संकल्पसे रहित हूँ ॥ ३२ ॥ हे विप्र! मैं सुखसे सोता हूँ और सुखसे भोजन करता हूँ। हे मुने! 'मैं बद्ध नहीं हूँ' यह विचार रखता हुआ सदा सुखी रहता हूँ ॥३३॥ 'मैं बद्ध हूँ' इस भावनाको मनमें रखकर आप सर्वदा दुखी रहते हैं। आप बद्ध होनेका भ्रम अपने मनसे निकाल दें और सुखी बनें ॥ ३४ ॥ मेरा शरीर बन्धनस्वरूप है, इस भावनाको मनमें रखता हुआ कोई मनुष्य मुक्त नहीं हो सकता। यह घर, धन तथा राज्य मेरा नहीं है। यह मेरा दृढ़ निश्चय है। इसी कारण मैं सदा सुखसे रहता हूँ ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले—महाराज जनकके वचन सुनकर शुकदेव बहुत प्रसन्न हुए और उनसे विदा लेकर व्यासजीके उत्तम आश्रमको चले गये ॥३६॥ अपने पुत्रको आते देखकर व्यासजी बहुत प्रसन्न हुए। तत्काल उठकर उन्होंने शुकदेवको छाती से लगाया और माथा सूँघकर कुशल पूछा ॥ ३७ ॥ उस रमणीक आश्रममें सर्वशास्त्रविशारद तथा वेदाध्ययनसम्पन्न शुक-मुनि अपने पिताके पास रहने लगे ॥ ३८ ॥ राज्यसिंहासनपर विराजमान महाराज जनककी दशा देखकर उनको पूर्ण सन्तोष मिला और वे अपने पिताके आश्रममें ही रहने लगे ॥ ३९ ॥

बुद्ध्याऽहं सर्वदैव सुखी मुने ॥ ३३ ॥ त्वं तु दुःखी सदैवासि बद्धोऽहमिति शङ्कया ॥ इति शङ्कां परित्यज्य सुखी भव समाहितः ॥ ३४ ॥ देहोऽयं मम बन्धोऽयं न ममेति च मुक्तता ॥ तथा धनं गृहं राज्यं न ममेति च निश्चयः ॥ ३५ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शुकः प्रीतमनाऽभवत् ॥ आपृच्छ्य तं जगामाशु व्यासस्याश्रममुत्तमम् ॥ ३६ ॥ आगच्छन्तं सुतं दृष्ट्वा व्यासोऽपि सुखमाप्तवान् ॥ आलिंग्याघ्राय मूर्धानं पप्रच्छ कुशलं पुनः ॥ ३७ ॥ स्थितस्तत्राश्रमे रम्ये पितुः पार्श्वे समाहितः ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३८ ॥ जनकस्य दशां दृष्ट्वा राज्यस्थस्य महात्मनः ॥ स निर्वृतिं परां प्राप्य पितुराश्रमसंस्थितः ॥ ३९ ॥ पितॄणां सुभगा कन्या पीवरी नाम सुन्दरी ॥ शुकश्चकार पत्नीं तां योगमार्गस्थितोऽपि हि ॥ ४० ॥ स तस्यां जनयामास पुत्रांश्चतुर एव हि ॥ कृष्णं गौरप्रभं चैव भूरिं देवश्रुतं तथा ॥ ४१ ॥ कन्यां कीर्तिं समुत्पाद्य व्यासपुत्रः प्रतापवान् ॥ ददौ विभ्राजपुत्राय त्वणुहाय महात्मने ॥ ४२ ॥ अणुहस्य सुतः श्रीमान्ब्रह्मदत्तः प्रतापवान् ॥ ब्रह्मज्ञः पृथिवीपालः शुककन्यासमुद्भवः ॥ ४३ ॥ कालेन कियता तत्र नारदस्योपदेशतः ॥ ज्ञानं परमकं प्राप्य योगमार्गमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥ पुत्रे राज्यं निधायाथ गतो बदरिकाश्रमम् ॥ मायाबीजोपदेशेन तस्य ज्ञानं निरर्गलम् ॥ ४५ ॥ नारदस्य प्रसादेन जातं सद्यो विमुक्तिदम् ॥ कैलासशिखरे

तदनन्तर योगमार्गके राही होते हुए भी शुकदेवने पितरोंकी सौभाग्यवती तथा सुन्दरी कन्या पीवरीका प्राणिग्रहण कर लिया ॥४०॥ अपनी पत्नी पीवरीके गर्भसे उन्होंने—कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि और देवश्रुत, ये चार पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४१ ॥ प्रतापशाली व्यासपुत्र शुकदेवने उससे कीर्ति नामकी एक कन्या भी उत्पन्न की। विभ्राजके पुत्र अणुहके साथ उन्होंने उस कन्याका विवाह कर दिया ॥४२॥ उस शुककन्या कीर्तिके गर्भसे अणुहने श्रीमान्, प्रतापशाली एवं ब्रह्मज्ञानी राजा ब्रह्मदत्तको उत्पन्न किया ॥४३॥ कुछ समय बाद नारदजीके उपदेशसे ब्रह्मदत्तको परम श्रेष्ठ ज्ञान तथा उत्तम योगमार्गका तत्त्व प्राप्त हुआ ॥४४॥ तब राज्यभार पुत्रको सौंपकर वे बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ मायाबीज मंत्रके उपदेशसे उन्हें उच्च कोटिका पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया ॥४५॥ इस प्रकार देवर्षि नारदजीकी कृपासे उन्होंने मुक्ति प्रदान करनेवाला ज्ञान प्राप्त कर लिया। उधर शुकदेव अपने पिता व्यासजीका साथ छोड़कर कैलासपर्वतपर जा पहुँचे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वहाँ वे ध्यानमें लीन हो गये। उस ध्यानके प्रभावसे उन्हें अणिमा-महिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो गयीं, तब वे उस पर्वतकी चोटीसे उड़कर आकाशमें चले गये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ आकाशमें जाकर महातेजस्वी शुकदेव सूर्यके समान शोभित हुए। इधर शुकदेवके उड़ते ही वह पर्वतशिखर फटकर दो टुकड़ोंमें विभक्त हो गया ॥ ४८ ॥ इस प्रकार शुकदेवके आकाशमें जाते ही नाना प्रकारके उत्पात होने लगे। आकाशमें स्थित वायुके समान पूज्य शुकदेवको देखकर सब देवर्षि उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४९ ॥ वे अपने असाधारण तेजसे आकाशमें दूसरे सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहे थे। इधर व्यासजी पुत्रके वियोगसे व्याकुल होकर 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहते हुए विलाप करने लगे ॥५०॥ बादमें व्यासजी उस पर्वतशिखरपर गये, जहाँ शुकदेव रहते थे। थके हुए व्यासजीको दीनभावसे रुदन करते देखकर सब प्राणियोंमें साक्षीरूपसे विद्यमान शुकदेवने प्रतिध्वनिके समान वाणीमें कहा—'सबकी आत्मा एक है। तब आप शोक क्यों करते हैं?' यह कहकर वे सदाके लिए आकाशमें विलीन हो गये। किन्तु आज भी उस पर्वतशिखरसे यह प्रतिध्वनि सुनायी देती रहती है ॥५१॥५२॥ 'पुत्र-पुत्र' कहकर रुदन

रम्ये त्यक्त्वा संगं पितुः शुकः ॥ ४६ ॥ ध्यानमास्थाय विपुलं स्थितः संगपराङ्मुखः ॥ उत्पपात गिरेः शृंगात्सिद्धिं च परमां गतः ॥ ४७ ॥ आकाशगो महातेजा विरराज यथा रविः ॥ गिरेः शृङ्गं द्विधा जातं शुकस्योत्पतने तदा ॥ ४८ ॥ उत्पाता बहतो जाताः शुकश्चाकाशगोऽभवत् ॥ अन्तरिक्षे यथा वायुः स्तूयमानः सुरर्षिभिः ॥ ४९ ॥ तेजसाऽतिविराजन्वै द्वितीय इव भास्करः ॥ व्यासस्तु विरहाक्रांतः क्रंदन्पुत्रेति चासकृत् ॥ ५० ॥ गिरेः शृंगे गतस्तत्र शुको यत्र स्थितोऽभवत् ॥ क्रंदमानं तदा दीनं व्यासं मत्वा श्रमाकुलम् ॥ ५१ ॥ सर्वभूतगतः साक्षी प्रतिशब्द-मदात्तदा ॥ तत्राद्यापि गिरेः शृंगे प्रतिशब्दः स्फुटोऽभवत् ॥ ५२ ॥ रुदंतं तं समालक्ष्य व्यासं शोकसमन्वितम् ॥ पुत्र पुत्रेति भाषंतं विरहेण परिप्लुतम् ॥ ५३ ॥ शिवस्तत्र समागत्य पाराशर्यमबोधयत् ॥ व्यास शोकं मा कुरु त्वं पुत्रस्ते योगवित्तमः ॥ ५४ ॥ परमां गतिमापन्नो दुर्लभां चाकृतात्मभिः ॥ तस्य शोको न कर्तव्यस्त्वया शोकं विजानता ॥ ५५ ॥ कीर्तिस्ते विपुला जाता तेन पुत्रेण चानघ ॥ व्यास उवाच ॥ न शोको याति देवेश किं करोमि जगत्पते ॥ ५६ ॥ अतृप्ते लोचने मेऽद्य पुत्रदर्शनलालसे ॥ महादेव उवाच ॥ छायां द्रक्ष्यसि पुत्रस्य पार्श्वस्थां सुमनो-हराम् ॥ ५७ ॥ तां वीक्ष्य मुनिशार्दूल शोकं जहि परंतप ॥ सूत उवाच ॥ तदा ददर्श व्यासस्तु छायां पुत्रस्य सुप्रभाम् ॥ ५८ ॥ दत्त्वा वरं

करते, विरहसे व्यथित तथा परम शोकाकुल व्यासजीको देखकर शिवजी स्वयं वहाँ आये और उन्हें सान्त्वना दी। उन्होंने कहा—हे व्यासजी! आप शोक न करिए। आपका पुत्र उच्च कोटिका योगी था ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ जो गति साधारण लोगोंके लिए दुर्लभ है, उस परम गतिको उसने प्राप्त कर लिया है। आप ब्रह्मज्ञानी हैं। इसलिए आपको शोक नहीं करना चाहिए ॥५५॥ हे पुण्यात्मन्! शुकदेव जैसा पुत्र पाकर संसारमें आपको विपुल कीर्ति प्राप्त हो गयी है। व्यासजी बोले—हे जगत्पते! किसी भी उपायसे मेरा शोक दूर नहीं हो रहा है। मैं क्या करूँ? ॥ ५६ ॥ पुत्रदर्शनकी लालसासे आज भी मेरे नेत्र अतृप्त हैं। शिवजीने कहा—अब आप अपने पुत्रकी मनोहर छाया सदा अपने पास विद्यमान देखेंगे ॥ ५७ ॥ हे मुनिशार्दूल! हे परन्तप! उस छायाको देखकर ही आप अपना शोक शान्त कर लीजिए। सूतजी बोले—तदनुसार व्यासजीने अपने पुत्रकी तेजस्विनी छाया देखी ॥ ५८ ॥ इस प्रकार व्यासजीको वरदान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देकर शिवजी वहाँ ही अन्तर्धान हो गये और शिवजीके अन्तर्धान हो जानेपर व्यासजी अपने आश्रमको लौट गये ॥ ५९ ॥ किन्तु शुकदेवके विरहसे वे अब भी बहुत सन्तप्त तथा दुखी थे ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

(शुकदेवके परलोकगामी हो जानेपर व्यासजीके कार्यकलाप) ऋषिगण बोले—हे सूत ! देवसत्तम शुकदेवको तो परम सिद्धि प्राप्त हो गयी । फिर उसके बाद व्यासजी क्या किया ? सो विस्तारके साथ बताइए ॥ १ ॥ सूतजी बोले—हे मुनियों ! व्यासजीके जितने वेदाभ्यासपरायण शिष्य थे, वे व्यासजीकी आज्ञा प्राप्त करके पहले ही पृथिवीके विभिन्न भागोंको चले जा चुके थे ॥ २ ॥ असित, देवल, वैशम्पायन, जैमिनि, सुमन्तु आदि सभी तापस चले गये ॥ ३ ॥ उपर्युक्त शिष्योंको पृथिवीके विभिन्न भागोंमें तथा पुत्र शुकदेवको

हरस्तस्मै तत्रैवांतरधीयत ॥ अन्तर्हिते महादेवे व्यासः स्वाश्रममभ्यगात् ॥ ५९ ॥ शुकस्य विरहेणापि तप्तः परमदुःखितः ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

ऋषय ऊचुः ॥ शुकस्तु परमां सिद्धिमाप्तवान्देवसत्तमः ॥ किं चकार ततो व्यासस्तन्नो ब्रूहि सविस्तरम् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ शिष्या व्यासस्य येऽप्यासन्वेदाभ्यासपरायणाः ॥ आज्ञामादाय ते सर्वे गताः पूर्वं महीतले ॥ २ ॥ असितो देवलश्चैव वैशम्पायन एव च ॥ जैमिनिश्च सुमंतुश्च गताः सर्वे तपोधनाः ॥ ३ ॥ तानेतान्वीक्ष्य पुत्रं च लोकांतरितमप्युत ॥ व्यासः शोकसमाक्रांतो गमनायाकरोन्मतिम् ॥ ४ ॥ सस्मार मनसा व्यासस्तां निषादसुतां शुभाम् ॥ मातरं जाह्नवीतीरे मुक्तां शोकसमन्विताम् ॥ ५ ॥ स्मृत्वा सत्यवतीं व्यासस्त्यक्त्वा तं पर्वतोत्तमम् ॥ आजगाम महातेजा जन्मस्थानं स्वकं मुनिः ॥ ६ ॥ द्वीपं प्राप्याथ पप्रच्छ क्व गता सा वरानना ॥ निषादास्तं समाचख्युर्दत्ता राज्ञे तु कन्यका ॥ ७ ॥ दाशराजोऽपि संपूज्य व्यासं प्रीतिपुरःसरम् ॥ स्वागतेनाभिसत्कृत्य प्रोवाच विहितांजलिः ॥ ८ ॥ दाशराज उवाच ॥ अद्य मे सफलं जन्म पावितं नः कुलं मुने ॥ देवानामपि दुर्दर्शं यज्जातं तव दर्शनम् ॥ ९ ॥ यदर्थमागतोऽसि त्वं तद्ब्रूहि द्विजसत्तम ॥ अपि दारा धनं पुत्रास्त्व-

परलोक गया देखकर शोकाकुल व्यासजीने भी वहाँसे चल देनेका निश्चय किया ॥ ४ ॥ उसी समय उन्होंने मन ही मन उस सुन्दरी निषादकन्या तथा अपनी माता सत्यवतीका स्मरण किया, जिसे गंगाजीके तटपर शोकाकुल दशामें छोड़ आये थे ॥ ५ ॥ इस प्रकार सत्यवतीका स्मरण करके उन्होंने पर्वतश्रेष्ठ सुमेरुको त्याग दिया और अपने जन्मस्थानको चले आये ॥ ६ ॥ उस द्वीपमें पहुँचकर लोगोंसे पूछा कि वह सुन्दरी कहाँ गयी ? निषादोंने कहा कि वह कन्या तो राजा शन्तनुको व्याह दी गयी थी ॥ ७ ॥ तदनन्तर निषादराजने बड़े प्रेमके साथ व्यासजीका स्वागत करके पूजन किया और हाथ जोड़कर कहा ॥ ८ ॥ निषादराज बोले—हे मुनिराज ! देवताओंको भी दुर्लभ आपका दर्शन पाकर आज मेरा जन्म सफल हुआ और मेरा कुल पवित्र हो गया ॥ ९ ॥ हे द्विजसत्तम ! आप जिस प्रयोजनसे यहाँ आये हों, वह बताइए । हे विभो ! स्त्री, पुत्र और मेरा धन आदि सर्वस्व आपका है । उसके बाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सरस्वती नदीके तटपर व्यासजीने आश्रमका निर्माण किया और वहाँ ही समाहित चित्तसे तप करते हुए रहने लगे ॥१०॥११॥ उन्हीं दिनों उन्होंने सुना कि अमित तेजस्वी राजा शन्तनुके वीर्य तथा सत्यवतीके गर्भसे दो पुत्र हुए हैं। यह सुना तो उन दोनोंको अपना भाई मानकर वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ उन दोनोंमें श्रेष्ठ पुत्र चित्राङ्गद बड़े रूपवान् और शत्रुओंको पीड़ित करनेवाले वीर थे। उनमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान थे ॥ १३ ॥ द्वितीय पुत्रका नाम था–विचित्रवीर्य। वह भी सद्‌गुणोंसे सम्पन्न तथा राजा शन्तनुके सुखको बढ़ानेवाला पुत्र था ॥ १४ ॥ राजा शन्तनुकी प्रथम पत्नी गङ्गासे बड़े वीर और अतुलित बलशाली गांगेय भीष्म उत्पन्न हुए थे। उसके बाद सत्यवती नामकी दूसरी पत्नीसे चित्राङ्गद तथा विचित्रवीर्य ये दो पुत्र हुए ॥ १५ ॥ उन सर्वसुलक्षणसम्पन्न पुत्रोंको देखकर राजा शन्तनुने अपनेको देवताओंसे भी अजेय समझ लिया था ॥ १६ ॥ इसके बाद कालक्रमसे कुछ समय

दायत्तमिदं विभो ॥ १० ॥ सरस्वत्यास्तटे रम्ये चकाराश्रममंडलम् ॥ व्यासस्तपःसमायुक्तस्तत्रैवास समाहितः ॥ ११ ॥ सत्यवत्याः सुतौ जातौ शंतनोरमितद्युतेः ॥ मत्वा तौ भ्रातरौ व्यासः सुखमाप वने स्थितः ॥ १२ ॥ चित्रांगदः प्रथमजो रूपवाञ्छत्रुतापनः ॥ बभूव नृपतेः पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ १३ ॥ विचित्रवीर्यनामाऽसौ द्वितीयः समजायत ॥ सोऽपि सर्वगुणोपेतः शंतनोः सुखवर्धनः ॥ १४ ॥ गांगेयः प्रथमस्तस्य महावीरो बलाधिकः ॥ तथैव तौ सुतौ जातौ सत्यवत्यां महाबलौ ॥ १५ ॥ शंतनुस्तान्सुतान्वीक्ष्य सर्वलक्षणसंयुतान् ॥ अमंस्ताजय्यमात्मानं देवादीनां महामनाः ॥ १६ ॥ अथ कालेन कियता शंतनुः कालपर्ययात् ॥ तत्याज देहं धर्मात्मा देही जीर्णमिवांबरम् ॥ १७ ॥ कालधर्मगते राज्ञि भीष्मश्चक्रे विधानतः ॥ प्रेतकार्याणि सर्वाणि दानानि विविधानि च ॥ १८ ॥ चित्रांगदं ततो राज्ये स्थापयामास वीर्यवान् ॥ स्वयं न कृतवान् राज्यं तस्माद्देवव्रतोऽभवत् ॥ १९ ॥ चित्रांगदस्तु वीर्येण प्रमत्तः परदुःखदः ॥ बभूव बलवान्वीरः सत्यवत्यात्मजः शुचिः ॥ २० ॥ अथैकदा महाबाहुः सैन्येन महताऽऽवृतः ॥ प्रचचार वनोद्देशान्पश्यन्वध्यान्मृगान् रुरून् ॥२१॥ चित्रांगदस्तु गंधर्वो दृष्ट्वा तं मार्गगं नृपम् ॥ उत्ततारान्तिकं भूमेर्विमानवरमास्थितः ॥ २२ ॥ तत्राभूच्च महद्युद्धं तयोः सदृशवीर्ययोः ॥ कुरुक्षेत्रे महास्थाने त्रीणि वर्षाणि तापसाः ॥ २३ ॥ इन्द्रलोक-

बीतनेपर धर्मात्मा महाराज शन्तनुने उसी प्रकार अपना शरीर त्यागा, जैसे मनुष्य पुराना कपड़ा उतार देता है ॥ १७ ॥ राजा शन्तनुके स्वर्गगामी हो जानेपर भीष्मने उनका विधिवत् प्रेतकृत्य करके विविध प्रकारका दान दिया ॥ १८ ॥ तत्पश्चात् उन्होंने चित्राङ्गदको राजसिंहासनपर बिठाला। स्वयं अधिकारी होते हुए भी उन्होंने राज्य नहीं स्वीकार किया। इसी कारण वे देवव्रत कहलाये ॥ १९ ॥ चित्राङ्गद अत्यधिक बलवान् होनेके कारण मदमत्त तथा शत्रुओंको दुःखदायक थे। सत्यवतीसुत चित्राङ्गद बड़े बलवान्, वीर और पवित्र विचारके राजा थे ॥ २० ॥ महाबाहु चित्राङ्गद एक दिन अपने साथ विशाल सेना लेकर निकले और वनोंमें वध करने योग्य रुरु-मृग आदि पशुओंको खोजते हुए विचरने लगे ॥ २१ ॥ उसी समय चित्राङ्गद गन्धर्वने मार्गपर पैदल चलते हुए राजा चित्राङ्गदको देखा तो वह उनके पास ही अपने विमानसे नीचे उतर पड़ा ॥ २२ ॥ सूतजी कहते हैं–हे तपस्वियो! तब कुरुक्षेत्रके उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशाल मैदानमें तीन वर्ष तक उन दोनों समान बलवान् वीरोंका भीषण युद्ध हुआ ॥ २३ ॥ अन्तमें उस गन्धर्वके प्रहारसे राजा चित्राङ्गदका मरण हुआ और वे शरीर त्यागकर इन्द्रपुरीको चले गये। भीष्मको जब यह समाचार मिला, तब तत्काल उन्होंने चित्राङ्गदका और्ध्वदैहिक कृत्य किया ॥२४॥ उसके बाद मंत्रियोंने समझाकर उनका शोक दूर किया। तत्पश्चात् भीष्मने विचित्रवीर्यको राजा बनाया ॥ २५ ॥ तदनन्तर मन्त्रियों तथा गुरुजनोंने जाकर राजमाता सत्यवतीको सान्त्वना दी। अतएव ज्येष्ठ पुत्रके मरणसे शोकाकुल होती हुई भी सत्यवती अपने द्वितीय पुत्र विचित्रवीर्यको राजाके रूपमें देखकर बहुत प्रसन्न हुई। अपने अन्यतम भ्राताके राजा होनेका समाचार सुनकर व्यासजी भी हर्षित हुए ॥२६॥२७॥ जब सत्यवतीतनय विचित्रवीर्य युवा हुए, तब भीष्मको अपने लघु भ्राताके विवाहकी चिन्ता हुई ॥२८॥ काशिराजके सब शुभ लक्षणोंसे पूर्ण तीन कन्यायें थीं और राजाने विवाहार्थ स्वयंवर रचाया था ॥२९॥ उसमें

मवाप्याशु गंधर्वेण हतो रणे ॥ भीष्मः श्रुत्वा चकाराशु तस्यौर्ध्वदैहिकं तदा ॥ २४ ॥ गांगेयः कृतशोकस्तु मन्त्रिभिः परिवारितः ॥ विचित्रवीर्यनामानं राज्येशं च चकार ह ॥ २५ ॥ मन्त्रिभिर्बोधिता पश्चाद्गुरुभिश्च महात्मभिः ॥ स्वपुत्रं राज्यगं दृष्ट्वा पुत्रशोकहताऽपि च ॥ २६ ॥ सत्यवत्यतिसंतुष्टा बभूव वरवर्णिनी ॥ व्यासोऽपि भ्रातरं श्रुत्वा राजानं मुदितोऽभवत् ॥ २७ ॥ यौवनं परमं प्राप्तः सत्यवत्याः सुतः शुभः ॥ चकार चिंतां भीष्मोऽपि विवाहार्थं कनीयसः ॥ २८ ॥ काशिराजसुतास्तिस्रः सर्वलक्षणसंयुताः ॥ तेन राज्ञा विवाहार्थं स्थापिताश्च स्वयम्वरे ॥ २९ ॥ राजानो राजपुत्राश्च समाहूताः सहस्रशः ॥ इच्छास्वयम्वरार्थं वै पूज्यमानाः समागताः ॥ ३० ॥ तत्र भीष्मो महातेजास्ता जहार बलेन वै ॥ निर्मथ्य राजकं सर्वं रथेनैकेन वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ स जित्वा पार्थिवान्सर्वांस्ताँश्चादाय महारथः ॥ बाहुवीर्येण तेजस्वी ह्यससाद गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ मातृवद्भगिनीवच्च पुत्रीवच्चिंतयन्किल ॥ तिस्रः समानयामास कन्यका वामलोचनाः ॥ ३३ ॥ सत्यवत्यै निवेद्याशु द्विजानाहूय सत्वरः ॥ दैवज्ञान्वेदविदुषः पर्यच्छच्छुभ दिनम् ॥ ३४ ॥ कृत्वा विवाहसंभारं यदा वै भ्रातरं निजम् ॥ विचित्रवीर्यं धर्मिष्ठं विवाहयति ता यदा ॥ ३५ ॥ तदा ज्येष्ठाऽप्युवाचेदं कन्यका जाह्नवीसुतम् ॥ लज्जमानाऽसितापांगी तिसृणां चारुलोचना ॥३६॥ गङ्गापुत्र कुरुश्रेष्ठ धर्मज्ञ कुलदीपक ॥ मया स्वयम्वरे शाल्वो वृतोऽस्ति मनसा नृपः ॥ ३७ ॥ वृताऽहं तेन राज्ञा वै चित्ते प्रेमसमाकुले ॥ यथायोग्यं कुरुष्वाद्य कुलस्यास्य परंतप ॥ ३८ ॥ तेनाहं

हजारों राजे और राजपुत्र बड़े आदरपूर्वक उस स्वयम्वरमें आमन्त्रित होकर आये थे ॥३०॥ उसी समय महातेजस्वी भीष्म भी रथपर सवार होकर अकेले ही वहाँ जा पहुँचे और अपने पराक्रमसे सब राजाओंको परास्त करके उन तीनों कन्याओंको बरजोरी हर लिया और उन्हें हस्तिनापुर ले आये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ वे उन तीनोंको माता, बहिन तथा पुत्रीके समान आदरकी दृष्टिसे देखते हुए लाये थे ॥ ३३ ॥ उन्हें लाकर देवव्रत भीष्मने माता सत्यवतीको सौंप दिया और ज्योतिषियों तथा वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर विवाहका मुहूर्त पूछा ॥ ३४ ॥ जब उन्होंने विवाहकी सब सामग्रियाँ जुटा लीं और अपने भाई विचित्रवीर्यका विवाह करनेको उद्यत हुए ॥ ३५ ॥ तब उन तीनोंमें ज्येष्ठ कन्या लजाती हुई गङ्गातनय भीष्मसे बोली—॥३६॥ हे गङ्गापुत्र ! हे कुरुश्रेष्ठ ! हे धर्मज्ञ ! हे कुलदीपक ! मैं स्वयम्वरमें मन ही मन राजा शाल्वको अपना पति मान चुकी थी ॥३७॥ राजाने भी बड़े प्रेमभरे हृदयसे मुझे अपनी पत्नी समझ लिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। हे परन्तप! यह सुन और समझकर अपनी वंशपरम्पराके अनुसार जो उचित समझिए, सो करिए ॥ ३८ ॥ शाल्वने पहले ही मेरा वरण कर लिया है। आप भी धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ और बलवान् हैं। हे गांगेय! अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करिए ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले—हे मुनियों! उस कन्याके वचन सुनकर भीष्मने ब्राह्मणों, माता सत्यवती तथा मंत्रियोंसे सलाह माँगी ॥४०॥ सबका मत जाननेके बाद धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ भीष्मने उस कन्यासे कहा—हे वरानने! तुम अपने इच्छानुसार जहाँ चाहो, वहाँ जा सकती हो ॥४१॥ इस प्रकार भीष्मसे छुट्टी पाकर वह सुन्दरी अपने मनचाहे वर शाल्वके पास जा पहुँची और कहने लगी–हे महाराज! मुझे आपपर आसक्त जानकर धर्मका आदर करते हुए भीष्मने छोड़ दिया है और मैं आपके पास आयी हूँ। अब आप मेरा पाणिग्रहण करिए ॥४२॥४३॥ हे नृपसत्तम! मैं आपकी अत्यन्त प्रिय पत्नी हूँगी। क्योंकि मैंने आपको चाहा है और आपने मुझे। इसमें कोई

वृतपूर्वाऽस्मि त्वं च धर्मभृतां वरः ॥ बलवानसि गांगेय यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्तस्तया तत्र कन्यया कुरुनंदनः ॥
अपृच्छद्ब्राह्मणान्वृद्धान्मातरं सचिवांस्तथा ॥ ४० ॥ सर्वेषां मतमाज्ञाय गांगेयो धर्मवित्तमः ॥ गच्छेति कन्यकां प्राह यथारुचि वरानने ॥ ४१ ॥
विसर्जिताऽथ सा तेन गता शाल्वनिकेतनम् ॥ उवाच तं वरारोहा राजानं मनसेप्सितम् ॥ ४२ ॥ विनिर्मुक्ताऽस्मि भीष्मेण त्वन्मनस्केति धर्मतः ॥
आगताऽस्मि महाराज गृहाणाद्य करं मम ॥ ४३ ॥ धर्मपत्नी तवात्यंतं भवामि नृपसत्तम ॥ चिंतितोऽसि मया पूर्वं त्वयाऽहं नात्र संशयः ॥ ४४ ॥
॥ शाल्व उवाच ॥ गृहीता त्वं वरारोहे भीष्मेण पश्यतो मम ॥ रथे संस्थापिता तेन न ग्रहीष्ये करं तव ॥ ४५ ॥ परोच्छिष्टां च कः कन्यां
गृह्णाति मतिमान्नरः ॥ अतोऽहं न ग्रहीष्यामि त्यक्तां भीष्मेण मातृवत् ॥ ४६ ॥ रुदती विलपंती सा त्यक्ता तेन महात्मना ॥ पुनर्भीष्मं समा-
गत्य रुदती चेदमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ शाल्वो मुक्तां त्वया वीर न गृह्णाति गृहाण माम् ॥ धर्मज्ञोऽसि महाभाग मरिष्याम्यन्यथा ह्यहम् ॥ ४८ ॥ भीष्म
उवाच ॥ अन्यचित्तां कथं त्वां वै गृह्णामि वरवर्णिनि ॥ पितरं त्वं वरारोहे व्रज शीघ्रं निराकुला ॥ ४९ ॥ तथोक्ता सा तु भीष्मेण जगाम वनमेव
हि ॥ तपश्चकार विजने तीर्थे परमपावने ॥ ५० ॥ द्वे भार्ये चातिरूपाढ्ये तस्य राज्ञो बभूवतुः ॥ अम्बालिका चांबिका च काशिराजसुते शुभे

सन्देह नहीं है ॥४४॥ शाल्वने कहा—हे सुन्दरी! मेरे समक्ष भीष्मने तुम्हें पकड़ा और रथपर बिठाला था। अतएव मैं तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं करूँगा ॥ ४५ ॥ ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य होगा, जो इस प्रकार परायी उच्छिष्ट कन्याको अपनायेगा? सो भीष्मके द्वारा मातृवत् त्यागी हुई कन्याको भी मैं नहीं स्वीकार कर सकता ॥ ४६ ॥ उसके रोने-विलखनेपर भी जब महात्मा शाल्वने उसे इस प्रकार ठुकरा दिया, तब वह फिर भीष्मके पास आयी और रो-रोकर कहने लगी–॥४७॥ हे वीर! आपके छोड़ देनेके कारण शाल्व भी मुझे अपनानेको तैयार नहीं है। हे महाभाग! आप धर्मज्ञ हैं। अतएव आप ही मुझे अपने यहाँ रख लीजिए। नहीं तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। ४८॥ भीष्म बोले–हे सुन्दरी! अन्य पुरुषपर आसक्त होनेके कारण मैं भी तुम्हें नहीं रख सकता। हे वरारोहे! अब तुम विकलता त्यागकर शीघ्र अपने पिताके घर चली जाओ ॥४९॥ भीष्मके ऐसा कहनेपर वह सीधे वनमें चली गयी और एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्जन तथा पवित्र तीर्थमें तप करने लगी ॥ ५० ॥ काशिराजकी बाकी दो सुन्दरी कन्यायें अम्बालिका और अम्बिका राजा विचित्रवीर्यकी राजरानियाँ बन गयीं ॥ ५१ ॥ महाबली राजा विचित्रवीर्य भी उन दोनोंके साथ राजमहल तथा उपवनोंमें भाँति-भाँतिकी क्रीडायें करते हुए विहार करने लगे ॥५२॥ इस प्रकार पूरे नौ वर्ष तक मनोरम क्रीडायें करनेके बाद राजा विचित्रवीर्यको राजयक्ष्मा रोग हो गया और वे उसीसे मर गये ॥५३॥ पुत्रके मर जानेपर राजमाता सत्यवतीको बहुत दुःख हुआ और उन्होंने मन्त्रियों द्वारा उसका प्रेतकृत्य कराया ॥५४॥ इसके बाद बहुत दुखी होकर सत्यवतीने एकान्तमें भीष्मसे कहा—हे महाभाग शंतनुतनय ! अब तुम यह राज्य सम्हालो और अपने भाईकी भार्याको स्वीकार करके वंशकी रक्षा करो। जिससे राजा ययातिका वंश नष्ट न हो। भीष्म बोले—हे माताजी ! आप पिताके समक्ष की हुई मेरी प्रतिज्ञाको सुन चुकी हैं। अतएव न मैं राज्य लूँगा और न विवाह ही करूँगा ॥५५-५७॥ सूतजीने कहा—

॥ ५१ ॥ राजा विचित्रवीर्योऽसौ ताभ्यां सह महाबलः ॥ रेमे नानाविहारैश्च गृहे चोपवने तथा ॥ ५२ ॥ वर्षाणि नव राजेन्द्रः कुर्वन् क्रीडां मनोरमाम् ॥ प्रापासौ मरणं भूयो गृहीतो राजयक्ष्मणा ॥ ५३ ॥ मृते पुत्रेऽतिदुःखार्ता जाता सत्यवती तदा ॥ कारयामास पुत्रस्य प्रेतकार्याणि मंत्रिभिः ॥ ५४ ॥ भीष्ममाह तदैकांते वचनं चातिदुःखिता ॥ राज्यं कुरु महाभाग पितुस्ते शंतनोः सुत ॥ ५५ ॥ भ्रातुर्भार्यां गृहाण त्वं वंशं च परिरक्षय ॥ यथा न नाशमायाति ययातेर्वंश इत्युत ॥५६॥ भीष्म उवाच ॥ प्रतिज्ञा मे श्रुता मातः पित्रर्थे या मया कृता ॥ नाहं राज्यं करिष्यामि न चाहं दारसंग्रहम् ॥५७॥ तदा चिंतातुरा जाता कथं वंशो भवेदिति ॥ नालसाद्धि सुखं मह्यं समुत्पन्ने ह्यराजके ॥ ५८ ॥ गांगेयस्तामुवाचेदं मा चिंतां कुरु भामिनि ॥ पुत्रं विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रजं चोपपादय ॥ ५९ ॥ कुलीनं द्विजमाहूय वध्वा सह नियोजय ॥ नात्र दोषोऽस्ति वेदेऽपि कुलरक्षाविधौ किल ॥ ६० ॥ पौत्रं चैव समुत्पाद्य राज्यं देहि शुचिस्मिते ॥ अहं च पालयिष्यामि तस्य शासनमेव हि ॥ ६१ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कानीनं स्वसुतं मुनिम् ॥ जगाम मनसा व्यासं द्वैपायनमकल्मषम् ॥ ६२ ॥ स्मृतमात्रस्ततो व्यास आजगाम स तापसः ॥ कृत्वा प्रणामं मात्रेऽथ संस्थितो दीप्तिमान्मुनिः ॥६३॥ भीष्मेण पूजितः कामं सत्यवत्या च मानितः ॥ तस्थौ तत्र महातेजा विधूमोऽग्निरिवापरः ॥६४॥ तमुवाच मुनिं

हे मुनियो ! भीष्मके वचन सुनकर सत्यवती बहुत चिंतित होकर सोचने लगी कि अब मेरा वंश कैसे चलेगा ? राजसिंहासनपर राजाके न होनेकी स्थितिमें मैंने यदि कुछ भी आलस्य किया तो अराजकता फैल जायगी। जिससे मुझे अपार कष्ट होगा ॥५८॥ तब भीष्मने कहा—हे माताजी ! आप चिंता न करें। बल्कि राजा विचित्रवीर्यका क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न करानेका कोई प्रबंध करें ॥५९॥ किसी कुलीन ब्राह्मणको बुलाकर राजवधूके साथ नियोग कराइए। ऐसा करनेमें कोई दोष नहीं है। क्योंकि वंशरक्षाके लिए वेदमें भी ऐसा विधान बताया गया है ॥६०॥ हे शुचिस्मिते ! इस विधिसे पौत्र उत्पन्न कराके आप उसीको राजगद्दीपर बैठाइए। तबतक राज्यकार्य मैं सम्हाल दूँगा ॥ ६१ ॥ भीष्मके वचन सुनकर सत्यवतीने अपनी कन्यावस्थामें उत्पन्न निर्दोष पुत्र द्वैपायन व्यासका स्मरण किया ॥ ६२ ॥ स्मरण करते ही तपस्वी व्यास आ उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने माताको प्रणाम किया और पास ही बैठ गये ॥६३॥ भीष्मने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनकी भलीभाँति पूजा की और माताने भी सम्मान किया। तब धूमविहीन अग्निके समान महातेजस्वी व्यासजी उस राजमहलमें ही टिक गये॥६४॥ एक दिन एकान्तमें माता सत्यवतीने व्यास मुनिसे कहा कि तुम राजा विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें अपने वीर्यसे सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो ॥ ६५ ॥ माताके वचन सुनकर व्यासजीने उसे आप्त वचन समझा और 'तथास्तु' कहकर ऋतुकालकी प्रतीक्षा करते हुए वे वहाँ ही ठहर गये ॥ ६६ ॥ विचित्रवीर्यकी विधवा पत्नी अम्बिका जब ऋतुमती होकर स्नान कर चुकी, तब उसने व्यासमुनिके साथ सहवास करके एक महाबली जन्मान्ध पुत्र उत्पन्न किया ॥ ६७ ॥ उस बालकको जन्मान्ध देखकर सत्यवतीको बड़ा दुःख हुआ। तब उन्होंने दूसरी राजवधू अम्बालिकासे कहा कि तुम भी शीघ्र एक पुत्र उत्पन्न करो ॥ ६८ ॥ ऋतुकाल उपस्थित होनेपर उसने भी व्यासजीके साथ सहवास करके गर्भ धारण किया ॥ ६९ ॥ उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह पाण्डु वर्णका था। इस

माता पुत्रमुत्पादयाधुना ॥ क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य सुन्दरं तव वीर्यजम् ॥ ६५ ॥ व्यासः श्रुत्वा वचो मातुराप्तवाक्यममन्यत ॥ ओमित्युक्त्वा स्थितस्तत्र ऋतुकालमचिंतयत् ॥ ६६ ॥ अम्बिका च यदा स्नाता नारी ऋतुमती तदा ॥ सङ्गं प्राप्य मुनेः पुत्रमसूतान्धं महाबलम् ॥ ६७ ॥ जन्मांधं च सुतं वीक्ष्य दुःखिता सत्यवत्यपि ॥ द्वितीयां च वधूमाह पुत्रमुत्पादयाशु वै ॥ ६८ ॥ ऋतुकालेऽथ संप्राप्ते व्यासेन सह सङ्गता ॥ तथा चांबालिका रात्रौ गर्भं नारी दधार सा ॥ ६९ ॥ सोऽपि पांडुः सुतो जातो राज्ययोग्यो न सम्मतः ॥ पुत्रार्थे प्रेरयामास वर्षान्ते च पुनर्वधूम् ॥ ७० ॥ आहूय च ततो व्यासं संप्रार्थ्य मुनिसत्तमम् ॥ प्रेषयामास रात्रौ सा शयनागारमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ न गता च वधूस्तत्र प्रेष्या संप्रेषिता तथा ॥ तस्यां च विदुरो जातो दास्यां धर्मांशतः शुभः ॥ ७२ ॥ एवं व्यासेन ते पुत्रा धृतराष्ट्रादयस्त्रयः ॥ उत्पादिता महावीर वंशरक्षणहेतवे ॥ ७३ ॥ एतद्वः सर्वमाख्यातं तस्य वंशसमुद्भवम् ॥ व्यासेन रक्षितो वंशो भ्रातृधर्मविदाऽनघाः ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ वेदाष्टेन्दुक्षितिमितैः [११८४॥] सार्धश्लोकैः सविस्तरम्॥ देवीभागवतस्यास्य प्रथमस्कन्ध ईरितः ॥१॥

॥ समाप्तोऽयं प्रथमः स्कन्धः ॥

कारण वह राजा होनेके अयोग्य समझा गया। अतएव एक वर्ष बाद फिर सत्यवतीने पुत्र उत्पन्न करनेके लिए अपनी पतोहूसे कहा ॥ ७० ॥ तदनुसार उन्होंने व्यासजीको फिर बुलवाया और उनसे प्रार्थना करके रात्रिमें शयनागार भेजा ॥७१॥ किन्तु अबकी बार वधू अम्बालिका व्यासजीके पास नहीं गयी, बल्कि अपनी दासीको भेज दिया। उस दासीके गर्भसे साक्षात् धर्मके अंशस्वरूप विदुरजी उत्पन्न हुए ॥ ७२ ॥ इस प्रकार वंशकी रक्षाके निमित्त व्यासजीने धृतराष्ट्र आदि तीन महावीर पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ७३ ॥ सूतजीने कहा—हे पुण्यात्मा मुनिजनो! इस तरह उनके वंशविस्तारका सब वृत्तान्त मैंने कह सुनाया। भ्राताका धर्म जाननेवाले व्यासजीने ऐसा करके अपने भाईके वंशकी रक्षा कर ली ॥७४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पं० रामतेजपाण्डेयकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ कुल ११८४॥ श्लोकोंमें यह विस्तृत प्रथम स्कन्ध कहा गया है ॥ १ ॥

॥ समाप्तोऽयं प्रथमः स्कन्धः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते–

श्रीमद्देवीभागवते प्रथमः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा'भाषाटीकासहिते--

श्रीमद्देवीभागवते द्वितीयः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(मत्स्य तथा मत्स्यगन्धाका जन्मवृत्तान्त) इतनी कथा सुनकर ऋषि बोले—हे सूतजी ! आपने नियोग द्वारा गर्भकी बात बताकर हम लोगोंको बड़े आश्चर्यमें डाल दिया। इस विषयमें हम सब तपस्वियोंको बहुत संशय है ॥१॥ हे मेधाविन् ! व्यासजीकी माता सत्यवतीको पहले ही विवाहित जानकर भी महाराज शन्तनुने उसके साथ विवाह कर लिया था ॥२॥ तब अपने घर रहते समय व्यासजी उनके गर्भसे पुत्ररूपमें कैसे उत्पन्न हुए ? और फिर एक व्याहता स्त्रीके साथ राजा शंतनुने ही क्यों विवाह किया ? ॥ ३ ॥ आप कहते हैं कि उसके गर्भसे फिर दो पुत्र उत्पन्न हुए। सो हे सुव्रत ! हे महाभाग ! आप इस परम पुनीत कथानकको विस्तारके साथ कहें ॥ ४ ॥ सर्वप्रथम आप व्यासजीकी उत्पत्तिका इतिहास और उसके बाद सत्यवतीका वृत्तान्त बताइए। क्योंकि हम व्रतधारी मुनियोंको यह उपाख्यान सुननेकी बड़ी उत्कट आकांक्षा है ॥ ५ ॥ सूतजी बोले—हे मुनियो ! मैं चतुर्वर्ग प्रदान करने-

॥ ऋषय ऊचुः ॥ आश्चर्यकरमेतत्ते वचनं गर्भहेतुकम् ॥ संदेहोऽत्र समुत्पन्नः सर्वेषां नस्तपस्विनाम् ॥ १ ॥ माता व्यासस्य मेधाविन्नाम्ना सत्यवतीति च ॥ विवाहिता पुरा ज्ञाता राजा शंतनुना यथा ॥ २ ॥ तस्याः पुत्रः कथं व्यासः सती स्वभवने स्थिता ॥ ईदृशी सा कथं राज्ञा पुनः शंतनुना वृता ॥ ३ ॥ तस्यां पुत्रावुभौ जातौ तत्त्वं कथय सुव्रत ॥ विस्तरेण महाभाग कथां परमपावनीम् ॥ ४ ॥ उत्पत्तिं वद व्यासस्य सत्यवत्यास्तथा पुनः ॥ श्रोतुकामाः पुनः सर्वे ऋषयः संशितव्रताः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ प्रणम्य परमां शक्तिं चतुर्वर्गप्रदायिनीम् ॥ आदिशक्तिं वदिष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ६ ॥ यस्योच्चारणमात्रेण सिद्धिर्भवति शाश्वती ॥ व्याजेनापि हि बीजस्य वाग्भवस्य विशेषतः ॥ ७ ॥ सम्यक्सर्वात्मना सर्वैः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ स्मर्तव्या सर्वथा देवी वांछितार्थप्रदायिनी ॥ ८ ॥ राजोपरिचरो नाम धार्मिकः सत्यसंगरः ॥ चेदिदेश-पतिः श्रीमान्बभूव द्विजपूजकः ॥ ९ ॥ तपसा तस्य तुष्टेन विमानं स्फाटिकं शुभम् ॥ दत्तमिंद्रेण तत्तस्मै सुन्दरं प्रियकाम्यया ॥ १० ॥ तेनारू-ढस्तु सर्वत्र याति दिव्येन भूपतिः ॥ न भूमावुपरिस्थोऽसौ तेनोपरिचरो वसुः ॥ ११ ॥ विख्यातः सर्वलोकेषु धर्मनित्यः स भूपतिः ॥ तस्य भार्या वरारोहा गिरिका नाम सुन्दरी ॥ १२ ॥ पुत्राश्चास्य महावीर्याः पंचासन्नमितौजसः ॥ पृथग्देशेषु राजानः स्थापितास्तेन भूभुजा ॥ १३ ॥ वसोस्तु

वाली परमा एवं आदि शक्तिको प्रणाम करके यह शुभ पौराणिकी कथा कहूँगा ॥ ६ ॥ जिस वाग्भव बीजमन्त्रका किसी भी बहाने उच्चारण करते ही शाश्वती सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ७ ॥ उस अभिलषित फल देनेवाली भगवतीका सभी लोगोंको अपनी समस्त कामनायें पूर्ण करनेके लिए सब तरहसे स्मरण करना चाहिए ॥ ८ ॥ उपरिचर नामका एक धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, श्रीमान् तथा ब्राह्मणोंका सम्मान करनेवाला राजा था ॥ ९ ॥ उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्रने उसको एक सुन्दर विमान दिया, जो स्फटिक मणिका बना हुआ था ॥१०॥ उस दिव्य विमानपर बैठकर वह राजा सर्वत्र जाता था। वह कभी पृथ्वीपर नहीं उतरता था। इसी कारण लोग उसे उपरिचर वसुके नामसे पुकारते थे ॥११॥ नित्य धर्मका पालन करनेके कारण वह राजा सब लोकमें विख्यात हो गया था। उसकी वरारोहा तथा परम सुन्दरी स्त्रीका नाम था–गिरिका ॥ १२ ॥ राजा उपरिचरके महाबली तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अमित तेजस्वी पाँच पुत्र थे। उसने उन्हें पृथक्-पृथक् देशोंका राजा बना दिया था ॥ १३ ॥ एक बार राजा उपरिचरकी भार्या गिरिकाने पुंसवन और ऋतुस्नानके अनन्तर राजासे गर्भाधान करनेकी प्रार्थना की ॥१४॥ उसी दिन राजाके पिताने उसे आदेश दिया कि वनमें जाकर श्राद्धके योग्य मृगोंको मार लाओ। यह आज्ञा सुनकर राजाको अपनी ऋतुमती स्त्री याद आयी ॥ १५ ॥ किन्तु पिताकी आज्ञाको श्रेष्ठ मानकर वह मन ही मन गिरिकाका स्मरण करता हुआ आखेट करनेको चल पड़ा ॥ १६ ॥ वनमें पहुँचकर राजा उपरिचर अपने मनमें साक्षात् लक्ष्मीके समान अतिशय रूपवती पत्नी गिरिकाका स्मरण करने लगा ॥१७॥ इस प्रकार बार-बार कामिनीका ध्यान करनेसे एकाएक उसका वीर्यपात हो गया। स्खलित होते ही उस वीर्यको राजाने एक बरगदके पत्तेपर रख दिया ॥१८॥ राजाने सोचा कि मेरा वीर्य अमोघ (अव्यर्थ) है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। फिर उसे अपनी ऋतुमती स्त्रीका स्मरण आया तो

पत्नी गिरिका कामान्काले न्यवेदयत् ॥ ऋतुकालमनुप्राप्ता स्नाता पुंसवने शुचिः ॥ १४ ॥ तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति ॥ तच्छ्रुत्वा चिंतयामास भार्यामृतुमतीं तथा ॥ १५ ॥ पितृवाक्यं गुरुं मत्वा कर्तव्यमिति निश्चितम् ॥ चचार मृगयां राजा गिरिकां मनसा स्मरन् ॥ १६ ॥ वने स्थितः स राजर्षिश्चित्ते सस्मार भामिनीम् ॥ अतीवरूपसम्पन्नां साक्षाच्छ्रियमिवापराम् ॥ १७ ॥ तस्य रेतः प्रचस्कन्द स्मरतस्तां च कामिनीम् ॥ वटपत्रे तु तद्राजा स्कन्नमात्रं समाक्षिपत् ॥ १८ ॥ इदं वृथा परिस्कन्नं रेतो वै न भवेत्कथम् ॥ ऋतुकालं च विज्ञाय मतिं चक्रे नृपस्तदा ॥ १९ ॥ अमोघं सर्वथा वीर्यं मम चैतन्न संशयः ॥ प्रियायै प्रेषयाम्येतदिति बुद्धिमकल्पयत् ॥ २० ॥ शुक्रप्रस्थापने काले महिष्याः प्रसमीक्ष्य सः ॥ अभिमंत्र्याथ तद्वीर्यं वटपर्णपुटे कृतम् ॥ २१ ॥ पार्श्वस्थं श्येनमाभाष्य राजोवाच द्विजं प्रति ॥ गृहाणेदं महाभाग गच्छ शीघ्रं गृहं मम ॥ २२ ॥ मत्प्रीत्यर्थमिदं सौम्य गृहीत्वा त्वं गृहं नय ॥ गिरिकायै प्रयच्छाशु तस्यास्त्वार्तवमद्य वै ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रददौ पर्णं श्येनाय नृपसत्तमः ॥ स गृहीत्वोत्पपाताशु गगनं गतिवित्तमः ॥२४॥ गच्छन्तं गगनं श्येनं धृत्वा चंचुपुटे पुटम् ॥ तमपश्यदथायांतं खगं श्येनस्तथाऽपरः ॥ २५ ॥ आमिषं स तु विज्ञाय शीघ्रमभ्यद्रवत्खगम् ॥ तुंडयुद्धमथाकाशे तावुभौ संप्रचक्रतुः ॥ २६ ॥ युद्ध्यतोरपतद्रेतस्तच्चापि यमुनांभसि ॥ खगौ तौ निर्गतौ कामं पुटके पतिते तदा ॥ २७ ॥ एतस्मिन्समये काचिदद्रिका नाम चाप्सराः ॥ ब्राह्मणं समनुप्राप्तं संध्यावंदनतत्परम्

सोचा कि इसे अपनी रानीके ही पास क्यों न भेज दूँ ॥ १९ ॥ २० ॥ भेजते समय राजाने उस वीर्यको एक दोनेमें रखकर अपनी रानीका स्मरण करते हुए उसका अभिमन्त्रण किया और पास ही बैठे हुए एक श्येन (बाज) से कहा—हे पक्षी ! तुम इसे लेकर शीघ्र मेरे घर चले जाओ ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे सौम्य ! मेरी भलाईके लिए तुम इसे मेरी राजरानी गिरिकाको दे देना। क्योंकि आज ही उसके ऋतुस्नानका दिन है ॥ २३ ॥ सूतजी बोले—ऐसा कहकर महाराजने उसे वह दोना दे दिया और द्रुतगामी बाज भी तत्काल आकाशमण्डलमें उड़ने लगा ॥२४॥ चोंचमें कोई वस्तु लेकर गगनमण्डलमें उड़ते हुए उस पक्षीको एक दूसरे बाजने देख लिया ॥२५॥ उसने समझा कि वह बाज चोंचमें मांसखण्ड लिये हुए है। बस, उसने तत्काल इस बाजपर आक्रमण कर दिया और उन दोनों पक्षियोंमें घमासान लड़ाई होने लगी ॥२६॥ इस प्रकार युद्ध होनेसे वह वीर्यभरा दोना यमुनाजीके जलमें गिर गया और वे दोनों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पक्षी दोना गिर जानेपर इधर-उधर उड़ गये ॥ २७ ॥ उसी समय अद्रिका नामकी एक अप्सरा जलमें खड़े होकर सन्ध्यावन्दन करते हुए एक ब्राह्मणके पास गयी और जलक्रीड़ा करते-करते उसने डुबकी लगाकर उस ब्राह्मणका पैर पकड़ लिया ॥२८॥२९॥ प्राणायामपरायण ब्राह्मणने उस स्वेच्छाचारिणीकी यह उद्दण्डता देखकर शाप दे दिया और कहा कि तूने मेरे ध्यानमें विघ्न डाला है। इसलिए तू मछली हो जा ॥३०॥ इस प्रकार शाप पाकर वह अद्रिका अप्सरा मछली होकर यमुनाजीमें विचरने लगी ॥३१॥ उसी अवसरपर उस बाजके पदाघातसे गिरा हुआ वीर्यभरा दोना बहता-बहता उस मछलीके सम्मुख पहुँचा और मत्स्यरूपधारिणी अद्रिका अप्सराने उसे उदरस्थ कर लिया ॥३२॥ दस महीने बाद एक मछुएने उस सुन्दर मछलीको जालमें फँसा लिया ॥३३॥ उन धीवरोंने जब उसका पेट फाड़ा तो उसमेंसे मानव आकृतिकी एक जोड़आ सन्तति निकली ॥३४॥ उन दोनोंमें एक सुन्दर बालक था और दूसरी

॥ २८ ॥ कुर्वती जलकेलिं सा जले मग्ना चचार सा ॥ जग्राह चरणं नारी द्विजस्य वरवर्णिनी ॥ २९ ॥ प्राणायामपरः सोऽथ दृष्ट्वा तां कामचारिणीम् ॥ शशाप भव मत्स्यी त्वं ध्यानविघ्नकरी यतः ॥३०॥ सा शप्ता विप्रमुख्येन बभूव यमुनाचरी ॥ शफरी रूपसम्पन्ना ह्यद्रिका च वराप्सराः ॥ ३१ ॥ श्येनपादपरिभ्रष्टं तच्छुक्रमथ वासवी ॥ जग्राह तरसाऽभ्येत्य साऽद्रिका मत्स्यरूपिणी ॥ ३२ ॥ अथ कालेन कियता मत्स्यीं तां मत्स्यजीवनः ॥ संप्राप्ते दशमे मासि बबंध तां मनोरमाम् ॥ ३३ ॥ उदरं विददाराशु स तस्या मत्स्यजीवनः ॥ युग्मं विनिःसृतं तस्मादुदरान्मानुषाकृति ॥ ३४ ॥ बालः कुमारः सुभगस्तथा कन्या शुभानना ॥ दृष्ट्वाऽऽश्चर्यमिदं सोऽथ विस्मयं परमं गतः ॥ ३५ ॥ राज्ञे निवेदयामास पुत्रौ द्वौ तु झषोद्भवौ ॥ राजाऽपि विस्मयाविष्टः सुतं जग्राह तं शुभम् ॥ ३६ ॥ स मत्स्यो नाम राजाऽसौ धार्मिकः सत्यसंगरः ॥ वसुपुत्रो महातेजाः पित्रा तुल्यपराक्रमः ॥ ३७ ॥ कालिका वसुना दत्ता तरसा जलजीविने ॥ नाम्ना कालीति विख्याता तथा मत्स्योदरीति च ॥ ३८ ॥ मत्स्यगंधेति नाम्ना वै गुणेन समजायत ॥ विवर्धमाना दासस्य गृहे सा वासवी शुभा ॥ ३९ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अद्रिका मुनिना शप्ता मत्स्यी जाता वराप्सराः-॥ विदारिता च दाशेन मृता च भक्षिता पुनः ॥४०॥ किं बभूव पुनस्तस्या अप्सराया वदस्व तत् ॥ शापस्यांतं कथं सूत कथं स्वर्गमवाप सा ॥४१॥ सूत उवाच ॥

अतिशय रूपवती कन्या। उन्हें देखकर उस धीवरको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३५ ॥ उसने उन दोनोंको ले जाकर राजा उपरिचरको दे दिया। राजाने भी विस्मित होकर वह बालक ले लिया ॥ ३६ ॥ वही बालक आगे चलकर मत्स्य नामका एक धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, महातेजस्वी और अपने पिताके ही समान वीर राजा हुआ ॥ ३७ ॥ किन्तु राजा उपरिचर वसुने वह मछलीके उदरसे निकली काली कन्या उसी मछुएको दे दी। आगे चलकर वह कन्या काली तथा मत्स्योदरीके नामसे विख्यात हुई ॥ ३८ ॥ अपनेगुणविशेषके कारण उसे लोग मत्स्यगन्धा भी कहने लगे। उस निषादके घर वह उपरिचर वसुकी वासवी कन्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी ॥ ३९ ॥ ऋषि बोले—हे सूतजी! ब्राह्मणने जिसे शाप दिया था, मछली रूपमें परिणत उस उत्तम अप्सरा आद्रिकाका क्या हुआ? उसे क्या धीवरने फाड़कर मारा और खा लिया ? ॥ ४० ॥ उस अप्सराका क्या हाल हुआ, सो बताइए। हे सूत! उसके शापकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाप्ति कैसे हुई और उसे पुनः स्वर्ग कैसे प्राप्त हुआ ? ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले—जब मुनिने शाप दिया तो उसे बड़ा दुःख हुआ और वह दैन्यभावसे रोती हुई उस ब्राह्मणकी स्तुति करने लगी ॥ ४२ ॥ तब दयालु ब्राह्मणने उस रोती हुई स्त्रीसे कहा—हे कल्याणी ! तुम शोक मत करो । मैं तुम्हारे शापान्तका उपाय बताता हूँ ॥ ४३ ॥ हे शुभे ! मैंने क्रुद्ध होकर जो शाप दिया है, उससे तुम मछली अवश्य होओगी । किन्तु कुछ ही समय बाद तुम्हारे उदरसे एक जोड़आ मानव-सन्तान उत्पन्न होगी । उसके होते ही तुम शापसे मुक्त हो जाओगी ॥ ४४ ॥ तदनुसार वह मछली हुई और उन युगल सन्ततियोंको उत्पन्न करके मर गयी । उसी समय उसके शापकी अवधि भी समाप्त हो गयी ॥४५॥ शापान्तमें मत्स्यरूप त्याग तथा दिव्य रूप प्राप्त करके वह सुन्दरी देवलोकको चली गयी ॥ ४६ ॥ उसके उदरसे उत्पन्न सुन्दर पुत्री मत्स्यगन्धा पलती-पुसती हुई निषादके घरमें बढ़ने लगी ॥ ४७ ॥ किशोरावस्थामें पहुँचनेपर

शप्ता यदा सा मुनिना विस्मिता संबभूव ह ॥ स्तुतिं चकार विप्रस्य दीनेव रुदती तदा ॥ ४२ ॥ दयावान्ब्राह्मणः प्राह तां तदा रुदतीं स्त्रियम् ॥ मा शोकं कुरु कल्याणि शापांतं ते वदाम्यहम् ॥ ४३ ॥ मत्क्रोधशापयोगेन मत्स्ययोनिं गता शुभे ॥ मानुषौ जनयित्वा त्वं शापमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ४४ ॥ इत्युक्ता तेन सा प्राप मत्स्यदेहं नदीजले ॥ बालकौ जनयित्वा सा मृता मुक्ता च शापतः ॥ ४५ ॥ संत्यज्य रूपं मत्स्यस्य दिव्यरूप-मवाप्य च ॥ जगामामरमार्गं च शापांते वरवर्णिनी ॥ ४६ ॥ एवं जाता वरा पुत्री मत्स्यगन्धा वरानना ॥ पुत्री च पाल्यमाना सा दाशगेहे व्यवर्धत ॥ ४७ ॥ मत्स्यगंधा तदा जाता किशोरी चातिसुप्रभा ॥ तस्य कार्याणि कुर्वाणा वासवी चातिसुप्रभा ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे मत्स्यगंधोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ सूत उवाच ॥ एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन्पाराशरो मुनिः ॥ आजगाम महातेजाः कालिंद्यास्तटमुत्तमम् ॥१॥ निषादमाह धर्मात्मा कुर्वंतं भोजनं तदा ॥ प्रापयस्व परं पारं कालिंद्या उडुपेन माम् ॥ २ ॥ दाशः श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं कुर्वाणो भोजनं तटे ॥ उवाच तां सुतां बालां मत्स्यगंधां मनोरमाम् ॥ ३ ॥ उडुपेन मुनिं बाले परं पारं नयस्व ह ॥ गंतुकामोऽस्ति धर्मात्मा तापसोऽयं शुचिस्मिते ॥ ४ ॥ इत्युक्ता सा तदा पित्रा मत्स्य-गंधाऽथ वासवी ॥ उडुपे मुनिमासीनं संवाहयति भामिनी ॥ ५ ॥ व्रजन् सूर्यसुतातोये भावित्वाद्दैवयोगतः ॥ कामार्तस्तु मुनिर्जातो दृष्ट्वा तां चारु-

मत्स्यगन्धाका रूप दिन-दिन निखारपर आने लगा और वह रूपवती वसुकन्या वासवी निषादके घरेलू कार्यमें संलग्न हो गयी ॥४८॥ इति श्रीदेवीभागवते द्वितीयस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

(व्यासजीकी जन्मगाथा) एक समय पराशर मुनि तीर्थयात्राके लिए चले । चलते-चलते वे यमुनाजीके तटपर जा पहुँचे ॥ १ ॥ वहाँ उन्होंने भोजन करते हुए केवटसे कहा—भद्र ! मुझको डोंगीपर चढ़ाकर यमुनाजीके पार पहुँचा दो ॥ २ ॥ मुनिराजके वचन सुनकर केवटने सुन्दरी कन्या मत्स्यगन्धासे कहा—पुत्री ! तुम इन मुनिराजको डोंगीमें बैठाकर पार उतार दो । हे निर्दोष मुसकानवाली कन्यके ! ये धर्मात्मा और तापस मुनि उस पार जाना चाहते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ पिताके वचन सुनकर वासवी कुमारी मत्स्यगन्धा मुनिराजकोनौकामें बिठाकर नाव खेती हुई उस पारकी ओर चली ॥ ५ ॥ यमुनाजीके जलपर नाव द्वारा चलते-चलते भावीवश अथवा दैवयोगसे मुनिराज पराशर उस सुनयनी कन्याको देखकर कामार्त हो उठे । जिसमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यौवनके चिह्नस्वरूप स्तन आदि उभड़ आये थे। उस दासकन्याको मुनिराजने भुजाओंमें भर लेना चाहा और इसी अभिप्रायसे उन्होंने अपने दाहिने हाथसे उसके दाहिने हाथका स्पर्श किया ॥६॥७॥ इसपर उस श्यामलोचना कुमारीने मुसकाकर कहा—मुनिराज! आप जो कुछ कर रहे हैं, वह क्या आपके कुल और तपस्याके अनुरूप है? ॥८॥ हे धर्मज्ञ! आप वसिष्ठजीके वंशज हैं और कुल-शीलसे सम्पन्न हैं। फिर भी कामदेवसे पीडित होकर यह क्या कर रहे हैं? ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणसत्तम! इस संसारमें मनुष्यजन्म बड़ी कठिनाईसे मिलता है। उसमें भी ब्राह्मण होना तो और कठिन है ॥ १० ॥ हे अन्वर्थ बुद्धिसम्पन्न मुनिराज! हे द्विज! मेरे शरीरमें आपने कौन-सी ऐसी विशेषता देखी कि जो मेरा हाथ पकड़नेको उद्यत हो गये? आप कामार्त होकर मेरे समीप क्यों खिसके चले आ रहे हैं? इस समय क्या आप अपने धर्मको भी भूल गये? ॥११॥१२॥ अहो! ये मन्दबुद्धि ब्राह्मण तो इस जलमें ही मुझे पकड़नेको

लोचनाम् ॥ ६ ॥ ग्रहीतुकामः स मुनिर्दृष्ट्वा व्यंजितयौवनाम् ॥ दक्षिणेन करेणैनामस्पृशद्दक्षिणे करे ॥ ७ ॥ तमुवाचासितापांगी स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ कुलस्य सदृशं वः किं श्रुतस्य तपसश्च किम् ॥ ८ ॥ त्वं वै वसिष्ठदायादः कुलशीलसमन्वितः॥ किं चिकीर्षसि धर्मज्ञ मन्मथेन प्रपीडितः ॥ ९ ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म भुवि ब्राह्मणसत्तम ॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये ब्राह्मणत्वं विशेषतः ॥ १० ॥ कुलेन शीलेन तथा श्रुतेन द्विजोत्तमस्त्वं किल धर्मवित्त्व ॥ अनार्यभावं कथमागतोऽसि विप्रेंद्र मां वीक्ष्य च मीनगन्धाम् ॥ ११ ॥ मदीये शरीरे द्विजामोघबुद्धे शुभं किं समालोक्य पाणिं ग्रहीतुम् ॥ समीपं समायासि कामातुरस्त्वं कथं नाभिजानासि धर्मं स्वकीयम् ॥ १२ ॥ अहो मंदबुद्धिर्द्विजोऽयं ग्रहीष्यञ्जले मम एवाद्य मां वै गृहीत्वा ॥ मनो व्याकुलं पञ्चबाणातिविद्धं न कोऽपीह शक्तः प्रतीपं हि कर्तुम् ॥ १३ ॥ इति संचिंत्य सा बाला तमुवाच महामुनिम् ॥ धैर्यं कुरु महाभाग परं पारं नयामि वै ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ पराशरस्तु तच्छ्रुत्वा वचनं हितपूर्वकम् ॥ करं त्यक्त्वा स्थितस्तत्र सिंधोः पारं गतः पुनः ॥ १५ ॥ मत्स्यगंधां प्रजग्राह मुनिः कामातुरस्तदा ॥ वेपमाना तु सा कन्या तमुवाच पुरःस्थितम् ॥ १६ ॥ दुर्गंधाऽहं मुनिश्रेष्ठ कथं त्वं नोपशंकसे ॥ समानरूपयोः कामसंयोगस्तु सुखावहः ॥ १७ ॥ इत्युक्तेन तु सा कन्या क्षणमात्रेण भामिनी॥ कृता योजनगंधा तु सुरूपा च

उतावले हो रहे हैं। कामबाणसे घायल होकर इनका मन बावला हो गया है। इस समय कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है कि जो इन्हें इस दुराचारसे पराङ्मुख कर सके॥ १३ ॥ ऐसा विचार करके उस केवटकुमारीने महामुनि पराशरसे कहा—हे महाभाग! धीरज धरिए। मैं अभी आपको परली पार पहुँचाये देती हूँ ॥ १४ ॥ पराशर मुनिने उस कन्याके हितकारी वचन सुनकर हाथ छोड़ दिया और चुपचाप बैठकर पार पहुँच गये ॥१५॥ वहाँ पहुँचकर कामार्त पराशर मुनिने जबर्दस्ती उस कन्याको पकड़ लिया। तब थरथर काँपती हुई उस कन्याने अपने सम्मुख उपस्थित मुनिराजसे कहा—॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे शरीरसे मछली जैसी दुर्गन्धि निकल रही है। क्या इससे आपके मनमें घृणा नहीं उत्पन्न होती? समान रूपवालोंका ही कामजनित संयोग सुखदायी हुआ करता है ॥ १७ ॥ उसके ऐसा कहते ही पराशर मुनिने अपने तपोबलसे कुछ ऐसा चमत्कार कर दिया कि जिससे वह तत्काल अत्यन्त रूपवती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और सुमुखी स्त्री हो गयी। उसी मत्स्यगन्धाके शरीरसे अब कस्तूरीकी सुगन्धि निकलकर योजनभर तक फैलने लगी। ऐसा हो जानेपर कामार्त मुनिराजने अपने दाहिने हाथसे उसे पकड़ लिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस प्रकार बेसुध होकर जब मुनिराजने उसके साथ भोग करना चाहा, तब सत्यवती बोली—हे मुनिराज! बहुतेरे लोग और नदीके उस पार खड़े मेरे पिताजी देख रहे हैं ॥ २० ॥ और फिर अतिशय दारुण संभोगरूपी पशुधर्म मुझे नहीं भाता। फिर भी यदि आप न मानें तो रात्रि आनेतक तो ठहरिए ॥ २१ ॥ मनुष्योंके लिए रात्रिमें ही मैथुनकर्मका निर्देश है, दिनमें यह काम निषिद्ध माना जाता है। दिनके समय मैथुन करनेसे बड़ा पाप होता है और बहुतेरे लोग देखते हैं॥२२॥ अतएव हे महाबुद्धे! इस समय आप अपनेको रोकिए। क्योंकि लोकनिन्दा बड़ी बुरी चीज है। सत्यवतीके युक्तिसंगत वचन सुनकर उदारबुद्धि पराशर मुनिने अपने पुण्यबलसे तत्काल कुहासा उत्पन्न कर दिया। उस कुहासेके कारण नदीके दोनों तटोंपर अँधेरा छा गया ॥२३॥२४॥ तब उस कामिनीने पराशर मुनिसे विनयपूर्वक कहा—हे द्विजशार्दूल! मैं अभी कुमारी कन्या हूँ। आप तो संभोग करके अपनी राह

वरानना ॥ १८ ॥ मृगनाभिसुगन्धां तां कृत्वा कान्तां मनोहराम् ॥ जग्राह दक्षिणे पाणौ मुनिर्मन्मथपीडितः ॥ १९ ॥ ग्रहीतुकामं तं प्राह नाम्ना सत्यवती शुभा ॥ मुने पश्यति लोकोऽयं पिता चैव तटस्थितः ॥ २० ॥ पशुधर्मो न मे प्रीतिं जनयत्यतिदारुणः ॥ प्रतीक्षस्व मुनिश्रेष्ठ यावद्भवति यामिनी ॥ २१ ॥ रात्रौ व्यवाय उद्दिष्टो दिवा न मनुजस्य हि ॥ दिवासंगे महान्दोषः पश्यन्ति किल मानवाः ॥ २२ ॥ कामं गच्छ महाबुद्धे लोकनिन्दा दुरासदा ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या युक्तमुक्तमुदारधीः ॥ २३ ॥ नीहारं कल्पयामास शीघ्रं पुण्यबलेन वै ॥ नीहारे च समुत्पन्ने तटेऽतितमसा युते ॥ २४ ॥ कामिनी तं मुनिं प्राह मृदुपूर्वमिदं वचः ॥ कन्याऽहं द्विजशार्दूल भुक्त्वा गन्ताऽसि कामतः ॥ २५ ॥ अमोघवीर्यस्त्वं ब्रह्मन्का गतिर्मे भवेदिति ॥ पितरं किं ब्रवीम्यद्य सगर्भा चेद्भवाम्यहम् ॥ २६ ॥ त्वं गमिष्यसि भुक्त्वा मां किं करोमि वदस्व तत् ॥ पराशर उवाच ॥ कान्तेऽद्य मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥ २७ ॥ वृणीष्व च वरं भीरु यं त्वमिच्छसि भामिनि ॥ सत्यवत्युवाच ॥ यथा मे पितरौ लोके न जानीतो हि मानद ॥ २८ ॥ कन्याव्रतं न मे हन्यात्तथा कुरु द्विजोत्तम ॥ पुत्रश्च त्वत्समः कामं भवेदद्भुतवीर्यवान् ॥ २९ ॥ गन्धोऽयं सर्वदा मे स्याद्यौवनं च नवं नवम् ॥ पराशर उवाच ॥ शृणु सुन्दरि पुत्रस्ते विष्णवंशसम्भवः शुचिः ॥ ३० ॥ भविष्यति च विख्यातस्त्रै-

चले जाइएगा ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन्! आपका वीर्य व्यर्थ नहीं जायगा। अतएव गर्भ रह गया तो मेरा क्या हाल होगा और मैं अपने पिताको क्या जवाब दूँगी ॥२६॥ आप तो भोग करके चले जायँगे, किन्तु उसके बाद मैं क्या करूँगी? सो बतलाइए। पराशरजी बोले—हे कान्ते! इस समय तुम यदि मेरा मन रख लोगी तो बादमें भी कुमारी कन्या ही रह जाओगी ॥ २७ ॥ हे भीरु! हे भामिनी! तुम जो चाहो, सो वर मुझसे माँग लो। सत्यवती बोली—हे मानव! आप ऐसा कुछ कर दीजिए कि जिससे मेरे माता-पिता तथा अन्य लोग इस दुराचारको न जान सकें ॥२८॥ हे द्विजश्रेष्ठ! आप यह भी व्यवस्था कर दें कि मेरा कन्याव्रत न नष्ट हो और इस संभोगसे जो पुत्र उत्पन्न हो, वह आपके ही सदृश अद्भुत वीर्यवान् हो ॥ २९ ॥ मेरे शरीरसे ऐसी ही सुगन्धि सदा आती रहे और मेरा यौवन उत्तरोत्तर निखरता जाय। पराशर मुनि बोले—हे सुन्दरी! सुनो, तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न पुत्र परम पवित्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा साक्षात् विष्णुभगवान्का अंशावतार होगा ॥ ३० ॥ हे सुन्दरी ! वह तुम्हारा पुत्र तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगा । किसी अज्ञात कारणसे ही मैं तुम्हारे ऊपर आसक्त हुआ हूँ ॥ ३१ ॥ हे सुमुखी ! मुझे ऐसा मोह कभी भी नहीं हुआ था । एकसे एक रूपवती अप्सराओंको देखकर भी मैंने कभी अपना धीरज नहीं खोया ॥ ३२ ॥ दैवयोगसे तुम्हें देखते ही मैं कामदेवके अधीन हो गया हूँ । ऐसा समझो कि इसमें भी कोई विशेष कारण है । दैवकी इच्छाका अतिक्रमण बड़ा कठिन होता है ॥ ३३ ॥ यदि ऐसा न होता तो तुम जैसी मैली-कुचैली और दुर्गन्धित कन्याको देखकर मैं क्यों इस प्रकार मोहमें पड़ जाता ? हे सुन्दरी ! तुम्हारा पुत्र पुराणोंकी रचना करेगा ॥ ३४ ॥ वह वेदोंका विज्ञ, वेदोंका विभाजक तथा त्रिभुवनविख्यात पुत्र होगा । सूतजी बोले—ऐसा कहनेपर अपने वशमें आयी हुई उस कन्याके साथ भोग करके मुनिसत्तम पराशरने तत्काल यमुनाजीमें स्नान किया और वहाँसे चल पड़े । इधर सत्यवती उस संभोगसे तत्काल गर्भवती हो गयी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ कालान्तरमें सत्यवतीने यमुनाजीके द्वीपमें कामदेवके समान सुन्दर एक पुत्र उत्पन्न किया । उत्पन्न

लोक्ये वरवर्णिनि ॥ केनचित्कारणेनाहं जातः कामातुरस्त्वयि ॥ ३१ ॥ कदापि च न संमोहो भूतपूर्वो वरानने ॥ दृष्ट्वा चाप्सरसां रूपं सदाऽहं धैर्यमावहम् ॥ ३२ ॥ दैवयोगेन वीक्ष्य त्वां कामस्य वशगोऽभवम् ॥ तत्किंचित्कारणं विद्धि दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वाऽहं चातिदुर्गधां त्वां कथं मोहमाप्नुयाम् ॥ पुराणकर्ता पुत्रस्ते भविष्यति वरानने ॥ ३४ ॥ वेदविद्भागकर्ता च ख्यातश्च भुवनत्रये ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तां वशं यातां भुक्त्वा स मुनिसत्तमः ॥ ३५ ॥ जगाम तरसा स्नात्वा कालिंदीसलिले मुनिः ॥ साऽपि सत्यवती जाता सद्यो गर्भवती सती ॥ ३६ ॥ सुषुवे यमुनाद्वीपे पुत्रं काममिवापरम् ॥ जातमात्रस्तु तेजस्वी तामुवाच स्वमातरम् ॥ ३७ ॥ तपस्येव मनः कृत्वा विविशे चातिवीर्यवान् ॥ गच्छ मातर्यथाकामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥ ३८ ॥ तपः कर्तुं महाभागे दर्शयिष्यामि वै स्मृतः ॥ मातर्यदा भवेत्कार्यं तव किञ्चिदुत्तमम् ॥ ३९ ॥ स्मर्तव्योऽहं तदा शीघ्रमागमिष्यामि भामिनि ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि त्यक्त्वा चिंतां सुखं वस ॥ ४० ॥ इत्युक्त्वा निर्ययौ व्यासः साऽपि पित्रंतिकं गता ॥ द्वीपे न्यस्तस्तया बालस्तस्माद्द्वैपायनोऽभवत् ॥ ४१ ॥ जातमात्रो जगामाशु वृद्धिं विष्ण्वंशयोगतः ॥ तीर्थे तीर्थे कृतस्नानश्चचार तप उत्तमम् ॥ ४२ ॥ एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात् ॥ चकार वेदशाखाश्च प्राप्तं ज्ञात्वा कलेर्युगम् ॥ ४३ ॥

होते ही उस तेजस्वी पुत्रने अपनी मातासे कहा ॥ ३७ ॥ जन्मके साथ ही उस वीर बालकने अपने मनमें तपको प्रश्रय दिया था । अतएव वह बोला—हे माताजी ! हे महाभागे ! मैं तप करनेके लिए वनमें जा रहा हूँ । आपकी भी जहाँ इच्छा हो, वहाँ जाइए । हे माताजी ! जब कोई बड़ा काम आ पड़े तो मेरा स्मरण करिएगा । स्मरण करते ही मैं आपके समक्ष आ उपस्थित हूँगा । अच्छा, आपका कल्याण हो । अब मैं जाता हूँ । आप चिन्ता त्यागकर सुखसे रहिएगा ॥ ३८–४ ॥ ऐसा कहकर व्यासजी चले गये और सत्यवती भी अपने पिताके पास चली गयी । द्वीप (नदीमें चारों ओर पानीसे घिरी जमीन) में जन्म होनेके कारण ही उस बालकका नाम द्वैपायन पड़ा ॥४१॥ भगवान् विष्णुका अंशावतार होनेके कारण उत्पन्न होते ही वह बालक वयस्क हो गया और तीर्थ-तीर्थमें स्नान करता हुआ उत्तम तप करने लगा ॥४२॥ इस प्रकार पराशर मुनिके वीर्य तथा सत्यवतीके गर्भसे द्वैपायनका जन्म हुआ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्होंने ही कलियुगको प्राप्त देखकर वेदोंको अनेक शाखाओंमें विभाजित कर दिया ॥ ४३ ॥ इस प्रकार वेदोंका विस्तार करनेके कारण महर्षि द्वैपायन व्यास कहे जाने लगे । उन्होंने ही विभिन्न पुराणसंहिताओं तथा सर्वोत्तम ग्रन्थ महाभारतकी रचना की ॥४४॥ वेदोंका अनेक भाग करके अपने शिष्योंको पढ़ाया । जिनके नाम थे–सुमन्तु, जैमिनि, पैल, वैशम्पायन, असित, देवल और व्यासजीके पुत्र शुकदेव । सूतजी बोले--हे मुनियो ! मैंने संक्षेपमें सब कारणोंको कह सुनाया ॥४५॥४६॥ इसी प्रसंगमें मैंने सत्यवतीके पुत्र व्यासकी उत्पत्तिका शुभ वृत्तान्त भी बता दिया । हे श्रेष्ठ मुनिगण ! व्यासजीकी उत्पत्तिके विषयमें किसी प्रकारका सन्देह न करिएगा ॥ ४७ ॥ महापुरुषोंके जीवनचरित्रसे केवल गुण ही ग्रहण करना चाहिए—अवगुण नहीं । किसी विशेष उद्देश्यसे ही मछलीके पेटसे सत्यवतीका जन्म हुआ था ॥ ४८ ॥ महामुनि पराशरके साथ उसका प्रथम संयोग हुआ और उसके बाद राजा शन्तनुने उसके साथ विवाह किया । यदि कोई विशेष कारण न रहता तो महामुनि पराशरका चित्त ही कामातुर न होता ॥ ४९ ॥ धर्मके तत्त्वको जाननेवाले महामुनि पराशरने अकारण ऐसा अनार्य कृत्य क्यों किया

वेदविस्तारकरणाद्व्यासनामाऽभवन्मुनिः ॥ पुराणसंहिताश्चक्रे महाभारतमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ शिष्यानध्यापयामास वेदान्कृत्वा विभागशः ॥ सुमंतुं जैमिनिं पैलं वैशंपायनमेव च ॥४५॥ असितं देवलं चैव शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥ सूत उवाच ॥ एतच्च कथितं सर्वं कारणं मुनिसत्तमाः ॥ ४६ ॥ सत्यवत्याः सुतस्यापि समुत्पत्तिस्तथा शुभा ॥ संशयोऽत्र न कर्तव्यः संभवे मुनिसत्तमाः ॥ ४७ ॥ महतां चरिते चैव गुणा ग्राह्या मुनेरिति ॥ कारणाच्च समुत्पत्तिः सत्यवत्या झषोदरे ॥ ४८ ॥ पराशरेण संयोगः पुनः शंतनुना तथा ॥ अन्यथा तु मुनेश्चित्तं कथं कामाकुलं भवेत् ॥ ४९ ॥ अनार्यजुष्टं धर्मज्ञः कृतवान्स कथं मुनिः ॥ सकारणेयमुत्पत्तिः कथिताऽऽश्चर्यकारिणी ॥ ५० ॥ श्रुत्वा पापाच्च निर्मुक्तो नरो भवति सर्वथा ॥ य एतच्छुभमाख्यानं शृणोति श्रुतिमान्नरः ॥ न दुर्गतिमवाप्नोति सुखी भवति सर्वदा॥५१॥ इति श्रीदेवीभागवते द्वितीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

ऋषय ऊचुः ॥ उत्पत्तिस्तु त्वया प्रोक्ता व्यासस्यामिततेजसः ॥ सत्यवत्यास्तथा सूत विस्तरेण त्वयाऽनघ ॥ १ ॥ तथाप्येकस्तु संदेहश्चित्तेऽस्माकं सुसंस्थितः ॥ न निवर्तति धर्मज्ञ कथितेन त्वयाऽनघ ॥ २ ॥ माता व्यासस्य या प्रोक्ता नाम्ना सत्यवती शुभा ॥ सा कथं नृपतिं प्राप्ता शंतनुं धर्मवित्तमम् ॥ ३ ॥ निषादपुत्रीं स कथं वृतवान्नृपतिः स्वयम् ॥ धर्मिष्ठः पौरवो राजा कुलहीनामसंवृताम् ॥४॥ शंतनोः प्रथमा पत्नी

तात्पर्य यह है कि उनकी उत्पत्ति उद्देश्यविशेषको लेकर हुई थी और मैंने वह आश्चर्यकारिणी कथा कह सुनायी ॥ ५० ॥ श्रुतिज्ञानसम्पन्न जो मनुष्य इस शुभ कथाको सुनता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। उसकी कोई दुर्गति नहीं होती और वह सदा सब तरहसे सुखी रहता है ॥५१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

(ब्रह्माजीके द्वारा गंगाजीको शाप) ऋषिगण बोले–हे सूतजी ! आपने अमित तेजस्वी व्यास तथा देवी सत्यवतीके जन्मका वृत्तान्त विस्तारके साथ सुनाया ॥ १ ॥ तथापि हमारे मनमें एक सन्देह घर किये हुए है । हे धर्मज्ञ ! आपकी विस्तृत बातें सुन करके भी मेरा सन्देह दूर नहीं हो रहा है ॥ २ ॥ हे अनघ ! वेदव्यासकी माता सत्यवती धर्मात्मा राजा शन्तनुको कैसे प्राप्त हुई ? ॥ ३ ॥ और फिर महाराज शन्तनुने ही उस निषादपुत्रीके साथ विवाह क्यों किया ? धर्मात्मा और पुरुवंशी राजा शन्तनुने उस कुलहीन कन्याको कैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वीकार किया ? ॥ ४ ॥ आप कृपया हमको यह बतालाइए कि राजा शन्तनुकी पहली रानी कौन थी ? परम बुद्धिमान् भीष्म वसुके अंशज क्यों कहे जाते हैं ? ॥ ५ ॥ हे सूतजी ! आप पहले ही कह आये हैं कि असाधारण तेजस्वी और सत्यवतीके पुत्र भीष्मने वीर चित्राङ्गदको राजा बनाया था ॥ ६ ॥ चित्राङ्गदके मर जानेपर उनके छोटे भाई सत्यवतीतनय विचित्रवीर्य राजा बने ॥ ७ ॥ सो ज्येष्ठ, रूपवान् तथा धर्मात्मा भीष्मके रहते पहले उनके छोटे भाई राजा क्यों बने और जान-बूझकर छोटे भाइयोंको किसने राज्यसिंहासनपर बिठाला ? ॥ ८ ॥ विचित्रवीर्यके मरनेपर अतिशय दुःखिनी रानी सत्यवतीने अपनी पुत्रवधुओंसे गोलक सन्तान (पतिके मर जानेपर अन्य पुरुषसे उत्पन्न पुत्र) क्यों पैदा करायी ॥ ९ ॥ सुन्दरी सत्यवतीने भीष्मको राज्य क्यों नहीं दिया और वीर भीष्मने अपना विवाह क्यों नहीं किया ? ॥ १० ॥ अमित तेजस्वी और ज्येष्ठ भ्राता व्यासने अपने लघु भ्राताओंकी पत्नियोंसे पुत्र उत्पादन-रूपी अधर्मका कार्य क्यों किया ? ॥ ११ ॥ पुराणोंके रचयिता, धर्मात्मा और महामुनि होते हुए भी उन्होंने परस्त्री और वह भी भाईकी पत्नीके साथ ऐसा दुराचार क्यों किया ? ॥१२॥

सत्यवत्याः सुतो का ह्यभूत्कथयाधुना ॥ भीष्मः पुत्रोऽथ मेधावी वसोरंशः कथं पुनः ॥ ५ ॥ त्वया प्रोक्तं पुरा सूत राजा चित्रांगदः कृतः ॥ सत्यवत्याः सुतो वीरो भीष्मेणामिततेजसा ॥ ६ ॥ चित्रांगदे हते वीरे कृतस्तदनुजस्तथा ॥ विचित्रवीर्यनामाऽसौ सत्यवत्याः सुतो नृपः ॥ ७ ॥ ज्येष्ठे भीष्मे स्थिते पूर्वं धर्मिष्ठे रूपवत्यपि ॥ कृतवान्स कथं राज्यं स्थापितस्तेन जानता ॥ ८ ॥ मृते विचित्रवीर्ये तु सत्यवत्यतिदुःखिता ॥ वधूभ्यां गोलकौ पुत्रौ जनयामास सा कथम् ॥ ९ ॥ कथं राज्यं न भीष्माय ददौ सा वरवर्णिनी ॥ न कृतस्तु कथं तेन वीरेण दारसंग्रहः ॥१०॥ अधर्मस्तु कृतः कस्मा-द्व्यासेनामिततेजसा ॥ ज्येष्ठेन भ्रातृभार्यायां पुत्रावुत्पादिताविति ॥११॥ पुराणकर्ता धर्मात्मा स कथं कृतवान्मुनिः ॥ सेवनं परदाराणां भ्रातुश्चैव विशेषतः ॥१२॥ जुगुप्सितमिदं कर्म स कथं कृतवान्मुनिः ॥ शिष्टाचारः कथं सूत वेदानुमितिकारकः ॥१३॥ व्यासशिष्योऽसि मेधाविन्संदेहं छेत्तुम-र्हसि ॥ श्रोतुकामा वयं सर्वे धर्मक्षेत्रे कृतक्षणाः ॥१४॥ सूत उवाच ॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवो महाभिष इति स्मृतः ॥ सत्यवान्धर्मशीलश्च चक्रवर्ती नृपो-त्तमः ॥१५॥ अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतेन च ॥ तोषयामास देवेंद्रं स्वर्गं प्राप महामतिः ॥१६॥ एकदा ब्रह्मसदनं गतो राजा महाभिषः ॥ सुराः सर्वे समाजग्मुः सेवनार्थं प्रजापतिम् ॥१७॥ गंगा महानदी तत्र संस्थिता सेवितुं विभुम् ॥ तस्या वासःसमुद्धूतं मारुतेन तरस्विना ॥१८॥ अधोमुखाः सुराः

महामुनि व्यासजीने यह निन्दनीय काम क्यों किया ? हे सूतजी ! वेदोंकी अनुमिति अर्थात् परामर्शजनित ज्ञान देनेवाला शिष्टाचार क्या यही है ? ॥१३॥ हे मेधाविन् ! आप व्यासजीके शिष्य हैं । अतएव हमारी इन शंकाओंका समाधान करनेमें समर्थ हैं । हमलोग इसी धर्मक्षेत्रमें इन सभी प्रश्नोंका उत्तर सुननेको उत्सुक हैं ॥१४॥ सूतजी बोले—हे मुनिवृन्द ! इक्ष्वाकु-कुलमें महाभिष नामके एक राजा हो गये हैं । वे सत्यपरायण, धर्मात्मा और चक्रवर्ती राजा थे ॥ १५ ॥ उन्होंने हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ करके देवराज इन्द्रको प्रसन्न किया था और उन्हींकी कृपासे उन्हें स्वर्ग मिला था ॥ १६ ॥ एक बार राजा महाभिष ब्रह्मलोक गये । वहाँ प्रजापति ब्रह्माजीसे मिलनेके लिए बहुतेरे देवता आये हुए थे ॥ १७ ॥ सर्वव्यापक ब्रह्माजीकी सेवाके लिए महानदी गंगाजी भी वहाँ उपस्थित थीं । एकाएक तेज हवाके चलनेसे उनके आँचलका कपड़ा उड़ गया ॥ १८ ॥ यह देखकर सब देवताओंने माथा नीचा कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया और बिना उधर निहारे बैठे रह गये। किन्तु राजा महाभिष तब भी निःशंकभावसे गङ्गाजीकी ओर निहारते रहे ॥ १९ ॥ इससे गङ्गाने राजाको अपनेपर आसक्त समझ लिया। अब दोनों प्रेमी काममोहित होकर सबके समक्ष निर्लज्ज व्यवहार करने लगे ॥ २० ॥ उन दोनोंकी यह दुश्चेष्टा देखकर ब्रह्माजी क्रुद्ध हो गये। अतिशय कुपित ब्रह्माजीने उन दोनोंको शाप देते हुए कहा—हे भूपाल ! तुम मनुष्यलोकमें जाकर जन्म लो। वहाँ जब अत्यधिक पुण्य संचित कर लोगे, तभी पुनः स्वर्गलोकमें आ सकोगे। उसी प्रकार गङ्गाजीको भी महाभिषपर आसक्त जानकर मनुष्यलोकमें जन्म लेनेका शाप दे दिया ॥२१॥२२॥ तब अनमने होकर वे दोनों ब्रह्माजीके पाससे चले आये। अब राजा महाभिष सोचने लगे कि मनुष्यलोकमें कौन-कौन राजे धर्मपरायण हैं कि जिनके घर जन्म लिया जा सके ? ॥ २३ ॥ अन्तमें उन्होंने पुरुवंशी राजा प्रतीपको अपना पिता बनाना निश्चित किया। उसी समय आठों वसु अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ विहार करते हुए स्वेच्छासे महर्षि वसिष्ठके आश्रमपर जा पहुँचे। पृथु आदि आठों वसुओंमें एक द्यौ नामके वसुराज थे ॥ २४ ॥ २५ ॥ उनकी स्त्रीने नन्दिनी

सर्वे न विलोक्यैव तां स्थिताः ॥ राजा महाभिषस्तां तु निःशंकः समपश्यत ॥१९॥ साऽपि तं प्रेमसंयुक्तं नृपं ज्ञातवती नदी ॥ दृष्ट्वा तौ प्रेमसंयुक्तौ निर्लज्जौ काममोहितौ ॥२०॥ ब्रह्मा चुकोप तौ तूर्णं शशाप च रुषान्वितः ॥ मर्त्यलोकेषु भूपाल जन्म प्राप्य पुनर्दिवम् ॥२१॥ पुण्येन महताऽऽविष्टस्त्वमवाप्स्यसि सर्वथा ॥ गंगां तथोक्तवान्ब्रह्मा वीक्ष्य प्रेमवतीं नृपे ॥२२॥ विमनस्कौ तु तौ तूर्णं निःसृतौ ब्रह्मणोऽन्तिकात् ॥ स नृपश्चिंतयित्वाऽथ भूर्लोके धर्मतत्परान् ॥ २३ ॥ प्रतीपं चिन्तयामास पितरं पूरुवंशजम् ॥ एतस्मिन्समये चाष्टौ वसवः स्त्रीसमन्विताः ॥ २४ ॥ वसिष्ठस्याश्रमं प्राप्ता रममाणा यदृच्छया ॥ पृथ्वादीनां वसूनां च मध्ये कोऽपि वसूत्तमः ॥ २५ ॥ द्यौर्नामा तस्य भार्याऽथ नंदिनीं गां ददर्श ह ॥ दृष्ट्वा पतिं सा पप्रच्छ कस्येयं धेनुरुत्तमा ॥ २६ ॥ द्यौस्तामाह वसिष्ठस्य गौरियं शृणु सुन्दरि ॥ दुग्धमस्याः पिबेद्यस्तु नारी वा पुरुषोऽथ वा ॥ २७ ॥ अयुतायुर्भवेन्नूनं सदैवागतयौवनः ॥ तच्छ्रुत्वा सुन्दरी प्राह मृत्युलोकेऽस्ति मे सखी ॥ २८ ॥ उशीनरस्य राजर्षेः पुत्री परमशोभना ॥ तस्य हेतोर्महाभाग सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥ २९ ॥ आनयस्वाश्रमं श्रेष्ठं नंदिनीं कामदां शुभाम् ॥ यावदस्याः पयः पीत्वा सखी मम सदैव हि ॥ ३० ॥ मानुषेषु भवेदेका जरारोगविवर्जिता ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या द्यौर्जहार च नंदिनीम् ॥ ३१ ॥ अवमन्य मुनिं दांतं पृथ्वाद्यैः सहितोऽनघः ॥ हृतायामथ नंदिन्यां

गौको देखकर अपने पतिसे पूछा कि यह किसकी गाय है ? बड़ी अच्छी गौ है ॥ २६ ॥ द्यौने कहा—हे सुन्दरी ! यह महर्षि वसिष्ठकी गाय है। स्त्री अथवा पुरुष जो कोई भी इस गौका दूध पीता है, उसकी आयु दस हजार वर्ष हो जाती है और उसका यौवन नित्य निखरता रहता है। यह सुनकर उस सुन्दरीने कहा कि मृत्युलोकमें मेरी एक सखी है ॥ २७ ॥ २८ ॥ वह राजर्षि उशीनरकी परम रूपवती पुत्री है। हे महाभाग ! उसीके लिए आप इस दुधार, सवत्सा, कामनायें पूर्ण करनेवाली तथा कल्याणकारिणी नन्दिनीको अपने आश्रमपर ले चलिए। जिससे मेरी सखी इसका दूध पीकर बुढ़ापा तथा रोगोंसे बचकर मनुष्योंमें माननीया अकेली स्त्री हो सके। अपनी पत्नीके वचन सुनकर द्यौने नन्दिनीका अपहरण कर लिया ॥२९–३१॥ पृथु आदि अष्टवसुओंके साथ रहते हुए भी द्यौने उन इन्द्रियसंयमी महामुनि वसिष्ठकी अवहेलना करके यह कुकृत्य कर डाला। नन्दिनीका अपहरण हो जानेके बाद वसिष्ठजी वनसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फल लेकर तुरन्त आ गये। तेजस्वी वसिष्ठ मुनिने जब अपने आश्रममें सवत्सा नन्दिनी गौको नहीं देखा तो वनों और कन्दराओंमें उसकी खोज की। वहाँ भी जब वह उन्हें नहीं मिली, तब वे अत्यन्त कुपित हो गये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वरुणतनय वसिष्ठने जब दिव्य दृष्टिसे देखा तो ज्ञात हुआ कि वसुओंने उस गौका अपहरण किया है। बस, तत्काल शाप देते हुए उन्होंने कहा कि मेरी अवहेलना करके वसुओंने मेरी गायकी चोरी की है। अतएव सभी वसु जाकर मर्त्यलोकमें जन्म लेंगे। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस प्रकार स्वयं वसिष्ठ मुनिने उन्हें शाप दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ यह समाचार सुनकर सब वसु उदास हो गये और अपनेको शापित जानकर दुखी होते हुए वे सब महर्षिके समीप जा पहुँचे ॥ ३७ ॥ वहाँ जाकर वसिष्ठजीको मनाते हुए वे सब उनके शरणागत हो गये। धर्मात्मा मुनि वसिष्ठने उन दीन वसुओंको अपने समक्ष उपस्थित देखकर कहा—॥ ३८ ॥ आठ वसुओंमेंसे सात वसु तो एक

वसिष्ठस्तु महातपाः ॥ ३२ ॥ आजगामाश्रमपदं फलान्यादाय सत्वरः ॥ नापश्यत यदा धेनुं सवत्सां स्वाश्रमे मुनिः ॥ ३३ ॥ मृगयामास तेजस्वी गह्वरेषु वनेष्वपि ॥ नासादिता यदा धेनुश्चुकोपातिशयं मुनिः ॥ ३४ ॥ वारुणिश्चापि विज्ञाय ध्यानेन वसुभिर्हृताम् ॥ वसुभिर्मे हृता धेनुर्यस्मान्माम-वमन्य वै ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वे जनिष्यंति मानुषेषु न संशयः ॥ एवं शशाप धर्मात्मा वसूंस्तान्वारुणिः स्वयम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा विमनसः सर्वे प्रययुर्दुःखिताश्च ते ॥ शप्ताः स्म इति जानंत ऋषिं तमुपचक्रमुः ॥ ३७ ॥ प्रसादयंतस्तमृषिं वसवः शरणं गताः ॥ मुनिस्तानाह धर्मात्मा वसून्दी-नान्पुरः स्थितान् ॥ ३८ ॥ अनुसंवत्सरं सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ ॥ येनेयं विहृता धेनुर्नंदिनी मम वत्सला ॥ ३९ ॥ तस्माद्द्यौर्मानुषे देहे दीर्घकालं वसिष्यति ॥ ते शप्ताः पथि गच्छन्तीं गंगां दृष्ट्वा सरिद्वराम् ॥ ४० ॥ ऊचुस्तां प्रणताः सर्वे शप्तां चिंतातुरां नदीम् ॥ भविष्यामो वयं देवि कथं देवाः सुधाशनाः ॥ ४१ ॥ मानुषाणां च जठरे चिंतेयं महती हि नः ॥ तस्मात्त्वं मानुषी भूत्वा जनयास्मान्सरिद्वरे ॥ ४२ ॥ शंतनुर्नाम राजर्षिस्तस्य भार्या भवानघे ॥ जाताञ्जाताञ्जले चास्मान्निःक्षिपस्व सुरापगे ॥ ४३ ॥ एवं शापविनिर्मोक्षो भविता नात्र संशयः ॥ तथेत्युक्ताश्च ते सर्वे जग्मुर्लोकं स्वकं पुनः ॥ ४४ ॥ गंगाऽपि निर्गता देवि चिंत्यमाना पुनः पुनः ॥ महाभिषो नृपो जातः प्रतीपस्य सुतस्तदा ॥ ४५ ॥

सालमें ही शापसे छुटकारा पा जायँगे, किन्तु जिसने मेरी प्यारी गाय नन्दिनीका अपहरण किया है, वह द्यौ बहुत समयतक मानव देहमें निवास करेगा। इस प्रकार शाप पाकर वे आठों वसु चल पड़े। राहमें उन्होंने नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीको जाते देखा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उन शाप पायी हुई चिन्तातुरा गंगाजीसे उन्होंने कहा—हे देवि! हम अमृत पान किये हुए देवता मानव गर्भसे कैसे जन्म लेंगे? अतएव हे सरिद्वरे! आप ही मानुषी बनकर हम लोगोंको जन्म दें ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ शन्तनु नामके एक राजर्षि हैं। हे अनघे! आप उन्हींकी पत्नी बन जायँ। हे देवनदी! हम सबको जन्म दे-देकर आप जलमें फेंकती रहें ॥४३॥ आपके ऐसा करनेसे हमलोग शीघ्र शापसे मुक्त हो जायँगे। गङ्गाजीके 'तथास्तु' कहनेपर वे आठों वसु अपने-अपने लोकको चले गये ॥ ४४ ॥ देवी गङ्गाजी भी वारम्वार उसी शापकी बात सोचती हुई चलीं। उधर राजा महाभिष जाकर महाराज प्रतीपके पुत्र शन्तनु हुए ॥ ४५ ॥ राजर्षि शन्तनु बड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ थे। उन्हीं दिनों शन्तनुके पिता महाराज प्रतीपने अमित तेजस्वी सूर्यभगवानकी स्तुति की ॥ ४६ ॥ उसी समय जलके भीतरसे एक सुन्दरी स्त्री निकली और वह आकर महाराजके साखूके लट्ठे जैसी विशाल दाहिनी जंघापर बैठ गयी ॥ ४७ ॥ इस प्रकार गोदमें बैठी हुई उस स्त्रीसे राजाने कहा—हे सुन्दरी! तुम मेरी दाहिनी जाँघपर क्यों आकर बैठ गयीं? ॥ ४८ ॥ उस सुन्दरी स्त्रीने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ! हे राजसत्तम! मैं आपपर मोहित हूँ। अतएव आप मेरे साथ सम्भोग करें। इसीलिए मैं यहाँ आकर बैठी हूँ ॥ ४९ ॥ उस रूप-यौवनशालिनी बालासे महाराज प्रतीपने कहा—मैं कभी किसी परस्त्री सुन्दरीको नहीं चाहता ॥ ५० ॥ हे भामिनी! तुम जो मेरा आलिंगन करके मेरी दाहिनी जाँघपर बैठ गयी हो, सो हे शुचिस्मिते (निर्दोष मुसकानवाली)! यह स्थान तो पुत्रों और पुत्रवधुओंका है ॥ ५१ ॥ हे कल्याणी! मेरे किसी अत्यधिक प्रिय पुत्र उत्पन्न होनेपर तुम मेरी पतोहू

शंतनुर्नाम राजर्षिर्धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥ प्रतीपस्तु स्तुतिं चक्रे सूर्यस्यामिततेजसः ॥ ४६ ॥ तदा च सलिलात्तस्मान्निःसृता वरवर्णिनी ॥ दक्षिणं शालसंकाशमूरुं भेजे शुभानना ॥ ४७ ॥ अंके स्थितां स्त्रियं चाह मां दृष्ट्वा किं वरानने ॥ ममोरावास्थिताऽसि त्वं किमर्थं दक्षिणे शुभे ॥ ४८ ॥ सा तमाह वरारोहा यदर्थं राजसत्तम ॥ स्थिताऽस्म्यंके कुरुश्रेष्ठ कामयानां भजस्व माम् ॥ ४९ ॥ तमवोचदथो राजा रूपयौवनशालिनीम् ॥ नाहं परस्त्रियं कामाद्गच्छेयं वरवर्णिनीम् ॥ ५० ॥ स्थिता दक्षिणमूरुं मे त्वमाश्लिष्य च भामिनि ॥ अपत्यानां स्नुषाणां च स्थानं विद्धि शुचिस्मिते ॥ ५१ ॥ स्नुषा मे भव कल्याणि जाते पुत्रेऽतिवाञ्छिते ॥ भविष्यति च मे पुत्रस्तव पुण्यान्न संशयः ॥ ५२ ॥ तथेत्युक्त्वा गता सा वै कामिनी दिव्यदर्शना ॥ राजा चापि गृहं प्राप्तश्चिन्तयंस्तां स्त्रियं पुनः ॥ ५३ ॥ ततः कालेन कियता जाते पुत्रे वयस्विनि ॥ वनं जिगमिषू राजा पुत्रं वृत्तांतमूचिवान् ॥ ५४ ॥ वृत्तांतं कथयित्वा तु पुनरूचे निजं सुतम् ॥ यदि प्रयाति सा बाला त्वां वने चारुहासिनी ॥ ५५ ॥ कामयाना वरारोहा तां भजेथा मनोरमाम् ॥ न प्रष्टव्या त्वया काऽसि मन्नियोगान्नराधिप ॥५६॥ धर्मपत्नीं च तां कृत्वा भविता त्वं सुखी किल॥ सूत उवाच ॥ एवं संदिश्य तं पुत्रं भूपतिः प्रीतमानसः ॥५७॥ दत्त्वा राज्यश्रियं सर्वां वनं राजा विवेश ह ॥ तत्रापि च तपस्तप्त्वा समाराध्य परांबिकाम् ॥५८॥

बनना। तुम्हारे पुण्यसे मेरे वैसा पुत्र अवश्य होगा ॥ ५२ ॥ तब 'तथास्तु' कहकर वह दिव्यरूपा स्त्री वहाँसे चली गयी। महाराज प्रतीप भी उस स्त्रीके बारेमें सोचते हुए अपने घर चले गये ॥५३॥ कुछ समय बाद राजा प्रतीपके पुत्र हुआ और जब वह वयस्क हो गया, तब महाराजने वानप्रस्थी होनेकी इच्छा की और पुत्रको उन्होंने उस पूर्वघटित घटनाका सब हाल कह सुनाया ॥ ५४ ॥ हाल बतानेके पश्चात् राजाने राजपुत्रसे फिर कहा कि यदि कभी वह चारुहासिनी बाला तुम्हें वनमें मिले—॥ ५५ ॥ और अपनी कामजनित अभिलाषा प्रकट करे तो हे नराधिप! तुम उससे यह न पूछना कि तुम कौन हो? यह मेरी आज्ञा है ॥५६॥ उसे धर्मपत्नी बनाकर तुम सुखी होओगे। सूतजी बोले—इस प्रकार पुत्र शन्तनुको आदेश देकर परम प्रसन्नतापूर्वक महाराज प्रतीप अपनी समस्त राज्यश्री उसे देकर वनको चले गये। वहाँ उन्होंने परमा अम्बिका देवीका आराधन करते हुए तप किया ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तदनन्तर अपना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेजस्वी शरीर त्यागकर प्रतीप स्वर्गलोकको चले गये। तब महातेजस्वी शन्तनुको सार्वभौम राज्य मिला। महाराज शन्तनु धर्मपूर्वक दण्डविधानके सहारे प्रजाजनोंका पालन करने लगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(मर्त्यलोकमें अष्ट वसुओंका जन्म) सूतजी बोले—हे ऋषिवृन्द ! महाराज प्रतीपके दिवंगत हो जानेपर सत्यपराक्रमी महाराज शन्तनु बाघों और मृगोंका शिकार करते-करते मृगयाप्रिय हो गये ॥१॥ एक समय गङ्गातटवर्ती प्रदेशमें घूमते हुए राजाको मृगके बच्चे जैसी आँखोंवाली एक स्त्री दिखलायी दी। वह उत्तम आभूषण पहने थी ॥ २ ॥ उसे देखकर राजा शन्तनुको ख्याल आया कि यह सुन्दरी वही है, जिसके विषयमें पिताजीने मुझे आदेश दिया था। क्योंकि यह तो साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान रूप-यौवनसम्पन्न नारी है ॥ ३ ॥ उसके मुखकमलका सौन्दर्यरसामृत पान करते हुए राजा तृप्त नहीं हो सके। हर्षातिरेकसे उनके रोयें खड़े हो गये और उनका चित्त उसी स्त्रीमें उलझ गया ॥ ४ ॥ वह स्त्री भी राजा शन्तनुको

जगाम स्वर्गं राजाऽसौ देहं त्यक्त्वा स्वतेजसा ॥ राज्यं प्राप्य महातेजाः शन्तनुः सार्वभौमिकम् ॥ प्रजां वै पालयामास धर्मदंडो महीपतिः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सूत उवाच ॥ प्रतीपेऽथ दिवं याते शंतनुः सत्यविक्रमः ॥ बभूव मृगयाशीलो निघ्नन्व्याघ्रान्मृगान्नृपः ॥ १ ॥ स कदाचिद्वने घोरे गंगातीरे चरन्नृपः ॥ ददर्श मृगशावाक्षीं सुंदरीं चारुभूषणाम् ॥ २ ॥ दृष्ट्वा तां नृपतिर्मेने पित्रोक्तेयं वरानना ॥ रूपयौवनसंपन्ना साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥ ३ ॥ पिबन्मुखांबुजं तस्या न तृप्तिमगमन्नृपः ॥ हृष्टरोमाऽभवत्तत्र व्याप्तचित्त इवानघः ॥ ४ ॥ महाभिषं साऽपि मत्वा प्रेमयुक्ता बभूव ह ॥ किंचिन्मंदस्मितं कृत्वा तस्थावग्रे नृपस्य च ॥ ५ ॥ वीक्ष्य तामसितापांगीं राजा प्रीतमना भृशम् ॥ उवाच मधुरं वाक्यं सांत्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ ६ ॥ देवी वा त्वं च वामोरु मानुषी वा वरानने ॥ गंधर्वी वाऽथ यक्षी वा नागकन्याऽप्सरापि वा ॥ ७ ॥ यासि कासि वरारोहे भार्या मे भव सुंदरि ॥ प्रेमयुक्तस्मितैव त्वं धर्मपत्नी भवाद्य मे ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ राजा तां नाभिजानाति गंगेयमिति निश्चितम् ॥ महाभिषं समुत्पन्नं नृपं जानाति जाह्नवी ॥ ९ ॥ पूर्वप्रेमसमायोगाच्छ्रुत्वा वाचं नृपस्य ताम् ॥ उवाच नारी राजानं स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ १० ॥ स्त्र्युवाच ॥

महाभिष समझकर आसक्त हो गयी और मन्द-मन्द मुसकाती हुई उनके आगे जा खड़ी हुई ॥ ५ ॥ उस श्यामनयनी सुन्दरीको देखकर राजा शन्तनु बहुत प्रसन्न हुए और सुन्दर शब्दोंसे सान्त्वना देते हुए मीठी वाणीमें बोले—॥ ६ ॥ हे सुजंघे ! हे वरानने ! तुम कोई देवी हो ? अथवा कोई मानुषी हो ? तुम कोई यक्षकन्या या अप्सरा तो नहीं हो ? ॥ ७ ॥ हे वरारोहे ! चाहे जो हो, किन्तु हे सुन्दरी ! अब तुम मेरी पत्नी बन जाओ। मेरी इच्छा है कि प्रेममयी मुसकानके साथ मौनभाषामें तुम मेरी रानी बनना स्वीकार कर लो ॥ ८ ॥ सूतजी बोले—राजा शन्तनु उसे नहीं पहचान सके कि यह गंगा है, किन्तु गंगाजीने पहचान लिया कि ये रूपान्तरित राजा महाभिष ही हैं ॥ ९ ॥ पूर्वकालीन प्रेमवश राजा शन्तनुके वचन सुनकर वह स्त्री तनिक मुसकाकर कहने लगी। स्त्री बोली—हे नृपश्रेष्ठ ! मैं यह जानती हूँ कि आप महाराज प्रतीपके पुत्र हैं। संयोगवश प्राप्त अपने अनुरूप पतिको कौन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुन्दरी नहीं चाहती ? ॥ १० ॥ ११ ॥ हे राजन् ! मैं कुछ बातोंके लिए वचनबद्ध करके ही आपको अपना पति बनाऊँगी । हे महाराज ! यदि मेरी शर्तें मान लें तो मैं आपको पतिरूपमें वरण कर लूँ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! मैं अच्छा या बुरा जो भी काम करूँ, आप न मुझे रोकें और न कोई अप्रिय बात कहें ॥ १३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जब आप मेरी बात न मानेंगे, तभी मैं आपको छोड़कर जहाँ जी चाहेगा, चली जाऊँगी ॥ १४ ॥ गंगाजीने यह सोचा कि अष्टवसुओंने मेरे गर्भसे जन्म पानेकी प्रार्थना की थी और राजा महाभिषने भी ब्रह्मलोकमें प्रेम प्रदर्शन किया था ॥ १५ ॥ राजा शन्तनुके 'तथास्तु' कहनेपर गंगाजीने उन्हें अपना पति बना लिया । अब गंगाजी स्त्रीका रूप धारण करके राजा शन्तनुकी भार्या बनकर चलीं । कुछ ही देर बाद वह सौभाग्यवती सुन्दरी महाराजके राजमहलमें जा पहुँची । राजा शन्तनु भी उसे लेकर सुन्दर उपवनोंमें उसके साथ विहार करने लगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ मनोभाव जाननेमें निपुण वह सुन्दरी भी उनको रमण कराने लगी । ऐसा करते हुए बहुतेरे वर्ष बीत गये, किन्तु राजाको कुछ मालूम नहीं पड़ा ॥ १८ ॥ जैसे इन्द्र शचीके साथ विहार करते थे, ठीक उसी प्रकार कामशास्त्रके

जानामि त्वां नृपश्रेष्ठ प्रतीपतनयं शुभम् ॥ का न वांछति चार्वंगी भावित्वात्सदृशं पतिम् ॥ ११ ॥ वाग्बंधेन नृपश्रेष्ठ वरिष्याऽमि पतिं किल ॥
शृणु मे समयं राजन्वृणोमि त्वां नृपोत्तम ॥ १२ ॥ यच्च कुर्यामहं कार्यं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ न निषेध्या त्वया राजन्न वक्तव्यं तथाऽप्रियम्
॥ १३ ॥ यदा च त्वं नृपश्रेष्ठ न करिष्यसि मे वचः ॥ तदा मुक्त्वा गमिष्यामि यथेष्टं देशमारिष ॥ १४ ॥ स्मृत्वा जन्म वसूनां सा प्रार्थना-
पूर्वकं हृदि ॥ महाभिषस्य प्रेमाथ विचिंत्यैव च जाह्नवी ॥ १५ ॥ तथेत्युक्ताऽथ सा देवी चकार नृपतिं पतिम् ॥ एवं वृता नृपेणाथ गंगा मानुष-
रूपिणी ॥ १६ ॥ नृपस्य मंदिरं प्राप्ता सुभगा वरवर्णिनी ॥ नृपतिस्तां समासाद्य चिक्रीडोपवने शुभे ॥ १७ ॥ साऽपि तं रमयामास भावज्ञा
वै वरांगना ॥ न बुबोध नृपः क्रीडन्गतान्वर्षगणानथ ॥ १८ ॥ स तया मृगशावाक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा ॥ सा सर्वगुणसंपन्ना सोऽपि काम-
विचक्षणः ॥ १९ ॥ रेमाते मंदिरे दिव्ये रमानारायणाविव ॥ एवं गच्छति काले सा दधार नृपतेस्तदा ॥ २० ॥ गर्भं गंगा वसुं पुत्रं सुषुवे चारु-
लोचना ॥ जातमात्रं सुतं वारि चिक्षेपैवं द्वितीयके ॥ २१ ॥ तृतीयेऽथ चतुर्थेऽथ पंचमे षष्ठ एव च ॥ सप्तमे च हते पुत्रे राजा चिंतापरोऽ-
भवत् ॥ २२ ॥ किं करोम्यद्य वंशो मे कथं स्यात्सुस्थिरो भुवि ॥ सप्त पुत्रा हता नूनमनया पापरूपया ॥ २३ ॥ निवारयामि यदि मां त्यक्त्वा

विज्ञ राजा शन्तनु भी उस मृगशावाक्षी तथा सर्वगुणसम्पन्ना पत्नीके साथ विहार कर रहे थे ॥ १९ ॥ जिस प्रकार लक्ष्मीजीके साथ विष्णुभगवान वैकुण्ठमें रमण करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों दिव्य महलोंमें रमण करते थे । इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर गंगाजीने गर्भ धारण किया और यथासमय उस सुनयनीने वसुको पुत्ररूपमें जन्म दिया । किन्तु उन्होंने उस बच्चेको उठाकर तत्काल जलमें फेंक दिया । द्वितीय पुत्र होनेपर भी उन्होंने ऐसा ही किया ॥ २० ॥ २१ ॥ इसी प्रकार उन्होंने अपने गर्भसे उत्पन्न तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठें और सातवें पुत्रको भी उठा-उठाकर जलमें फेंक दिया । इस तरह जब सातवें पुत्रको भी गंगाजीने जलमें डाल दिया, तब राजा शन्तनुको बड़ी चिन्ता हुई ॥ २२ ॥ उन्होंने सोचा—मैं क्या करूँ कि जिससे मेरा वंश सुस्थिर हो सके । इस पापिनीने मेरे सात-सात पुत्र मार डाले । यदि रोकता हूँ तो यह मुझे त्यागकर चली जायगी । मेरे अभिलषित आठवें गर्भका समय भी पूरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो चला है ॥ २३ ॥ २४ ॥ यदि आज ही मैं रोकता नहीं तो यह इसे भी जलमें फेंक देगी । यह भी सन्देह है कि भविष्यमें कोई सन्तति होगी या नहीं ॥२५॥ यदि हो भी तो पता नहीं कि यह दुष्टा उसकी रक्षा करेगी या उसे भी मार डालेगी । इस संशयकी स्थितिमें मैं क्या करूँ ? ॥२६॥ वंशकी रक्षाके लिए कोई यत्न करना ही होगा । तदनन्तर समय आनेपर जब वह अष्टम वसु द्यौ पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ, जिसने अपनी स्त्रीकी प्रेरणासे महामुनि वसिष्ठकी नन्दिनी गौकी चोरी की थी । उस पुत्रको देखकर राजा शन्तनु गंगाजीके पैरोंपर गिर पड़े और कहने लगे—॥ २७ ॥ २८ ॥ हे तन्वङ्गि ! मैं तुम्हारा सेवक हूँ । हे शुचिस्मिते ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ । मैं इस पुत्रको जीवित रखना चाहता हूँ । इसे देकर तुम मुझे जीवनदान दे दो ॥ २९ ॥ हे करभोरु ! तुमने मेरे सात सुन्दर पुत्रोंको मार डाला । किन्तु इस आठवें पुत्रकी रक्षा करो । हे शोभननितम्बे ! मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ ॥ ३० ॥ हे परम रूपवती ! इसके बदले तुम मुझसे जो माँगोगी, मैं वह दुर्लभ वस्तु भी तुम्हें दूँगा । अब जैसे भी हो, तुम मेरे वंशकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ वेदविद् विद्वानोंका कहना है कि निपूते मनुष्यकी गति

यास्यति सर्वथा ॥ अष्टमोऽयं सुसंप्राप्तो गर्भो मे मनसीप्सितः ॥२४॥ न वारयामि चेदद्य सर्वथेयं जले क्षिपेत् ॥ भविता वा न वा चाग्रे संशयोऽयं ममाद्भुतः ॥ २५ ॥ संभवेऽपि च दुष्टेयं रक्षयेद्वा न रक्षयेत् ॥ एवं संशयिते कार्ये किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ २६ ॥ वंशस्य रक्षणार्थं हि यत्नः कार्यः परो मया ॥ ततः काले यदा जातः पुत्रोऽयमष्टमो वसुः ॥ २७ ॥ मुनेर्येन हृता धेनुर्नंदिनी स्त्रीजितेन हि ॥ तं दृष्ट्वा नृपतिः पुत्रं तामुवाच पतन्पदे ॥ २८ ॥ दासोऽस्मि तव तन्वंगि प्रार्थयामि शुचिस्मिते ॥ पुत्रमेकं पुषाम्यद्य देहि जीवितमद्य मे ॥ २९ ॥ हिंसिताः सप्त पुत्रा मे करभोरु त्वया शुभाः ॥ अष्टमं रक्ष सुश्रोणि पतामि तव पादयोः ॥ ३० ॥ अन्यद्वै प्रार्थितं तेऽद्य ददाम्यथ च दुर्लभम् ॥ वंशो मे रक्षणीयोऽद्य त्वया परमशोभने ॥ ३१ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे वेदविदो विदुः ॥ तस्मादद्य वरारोहे प्रार्थयाम्यष्टमं सुतम् ॥ ३२ ॥ इत्युक्ताऽपि गृहीत्वा तं यदा गंतुं समुत्सुका ॥ तदाऽतिकुपितो राजा तामुवाचातिदुःखितः ॥ ३३ ॥ पापिष्ठे किं करोम्यद्य निरयान्न बिभेषि किम् ॥ काऽसि पापकराणां त्वं पुत्री पापरता सदा ॥ ३४ ॥ यथेच्छं गच्छ वा तिष्ठ पुत्रो मे स्थीयतामिह ॥ किं करोमि त्वया पापे वंशांतकरयाऽनया ॥ ३५ ॥ एवं वदति भूपाले सा गृहीत्वा सुतं शिशुम् ॥ गच्छंती वचनं कोपसंयुता तमुवाच ह ॥ ३६ ॥ पुत्रकामा सुतं त्वेनं पालयामि वने गता ॥ समयो मे गमि-

नहीं होती । इसी कारण हे सुन्दरी ! मैं इस आठवें पुत्रकी याचना करता हूँ ॥ ३२ ॥ राजा शन्तनुके ऐसा कहनेपर जब गंगा उस पुत्रको भी ले जानेको उद्यत हुई, तब राजाने अत्यन्त कुपित तथा दुःखित होकर कहा—॥ ३३ ॥ ओ पापिनी ! मैं क्या करूँ ? क्या तू नरकसे भी नहीं डरती ? आखिर तू है ही कौन, पापियोंकी पुत्री तो पापिनी ही होगी । तभी तो तू सदा ऐसे पापकर्ममें लगी रहती है ॥ ३४ ॥ अब तुम जी चाहे वहाँ जाओ या रहो, किन्तु यह पुत्र रहेगा ही । अरी पापिनी ! अपने वंशका अन्त करनेवाली तुझ डाइनको रखकर ही मैं क्या करूँगा ॥ ३५ ॥ महाराज शन्तनुके ऐसा कहनेपर गंगाने उस नवजात शिशुको ले लिया और जाते-जाते बड़े क्रोधसे बोली—॥ ३६ ॥ इस पुत्रको मैं भी जीवित रखना चाहती हूँ । किन्तु मैं इसे वनमें ले जाकर पालूँगी । मेरा-आपका समझौता भंग हो गया । क्योंकि आपने उसके विपरीत व्यवहार किया है । इसलिए अब मैं चली जाऊँगी । हे राजन् ! मैं गंगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हूँ और देवताओंका काम बनानेके लिए यहाँ आयी थी। महात्मा वसिष्ठने आठों वसुओंको शाप दिया था ॥३७॥३८॥ और उनसे कहा था कि तुम सब मनुष्ययोनिमें जाकर जन्म लो। तब चिन्तातुर होकर अष्टवसु मेरे पास आये और प्रार्थना की—हे अनघे! मर्त्यलोकमें चलकर तुम मेरी माता बनो ॥३९॥ सो हे नृपसत्तम! उन्हें वरदान देकर मैं आपकी पत्नी बनी। आप यह समझ लीजिए कि देवताओंकी कार्यसिद्धि करनेके लिए ही मेरा जन्म हुआ है ॥४०॥ आठमेंसे सात वसु उन महर्षि वसिष्ठके शापसे छुटकारा पा चुके हैं। यह आठवाँ वसु कुछ समयतक आपके पुत्ररूपमें विद्यमान रहेगा ॥ ४१ ॥ हे महाराज शन्तनु! मुझ गंगाके दिये हुए पुत्रको आप लीजिए। इसे अष्टम वसु समझते हुए आप पुत्रसुख प्राप्त करिए ॥ ४२ ॥ हे महाभाग! मुझ गंगाके द्वारा उत्पन्न यह गांगेय बड़ा बलवान् होगा। आज इसे मैं वहाँ ले जा रही हूँ, जहाँ मैंने पतिरूपमें आपका वरण किया था ॥४३॥ हे राजन्! वहाँ ही मैं इसे पालूँगी

ष्यामि वचनं ह्यन्यथाकृतम् ॥ ३७ ॥ गंगां मां वै विजानीहि देवकार्यार्थमागताम् ॥ वसवस्तु पुरा शप्ता वसिष्ठेन महात्मना ॥ ३८ ॥ व्रजंतु मानुषीं
योनिं स्थितां चिंतातुरास्तु माम् ॥ दृष्ट्वेदं प्रार्थयामासुर्जननी नो भवानघे ॥ ३९ ॥ तेभ्यो दत्त्वा वरं जाता पत्नी ते नृपसत्तम ॥ देवकार्यार्थ-
सिद्ध्यर्थं जानीहि संभवो मम ॥ ४० ॥ सप्त ते वसवः पुत्रा मुक्ताः शापाद्‌पेस्तु ते ॥ कियंतं कालमेकोऽयं तव पुत्रो भविष्यति ॥ ४१ ॥ गंगा-
दत्तमिमं पुत्रं गृहाण शंतनो स्वयम् ॥ वसुं देवं विदित्वैनं सुखं भुंक्ष्व सुतोद्भवम् ॥ ४२ ॥ गांगेयोऽयं महाभाग भविष्यति बलाधिकः ॥ अद्य तत्र
नयाम्येनं यत्र त्वं वै मया वृतः ॥ ४३ ॥ दास्यामि यौवनप्राप्तं पालयित्वा महीपते ॥ न मातृरहितः पुत्रो जीवेन्न च सुखी भवेत् ॥ ४४ ॥ इत्यु-
क्त्वाऽन्तर्दधे गंगा तं गृहीत्वा च बालकम् ॥ राजा चातीव दुःखार्तः संस्थितो निजमन्दिरे ॥ ४५ ॥ भार्याविरहजं दुःखं तथा पुत्रस्य चाद्भुतम् ॥
सर्वदा चिंतयन्नास्ते राज्यं कुर्वन्महीपतिः ॥ ४६ ॥ एवं गच्छति कालेऽथ नृपतिर्मृगयां गतः ॥ निघ्नन्मृगगणान्बाणैर्महिषान्सूकरानपि ॥ ४७ ॥
गंगातीरमनुप्राप्तः स राजा शंतनुस्तदा ॥ नदीं स्तोकजलां दृष्ट्वा विस्मितः स महीपतिः ॥ ४८ ॥ तत्रापश्यत्कुमारं तं मुंचंतं विशिखान्बहून् ॥
आकृष्य च महाचापं क्रीडंतं सरितस्तटे ॥ ४९ ॥ तं वीक्ष्य विस्मितो राजा न स्म जानाति किंचन ॥ नोपलेभे स्मृतिं भूपः पुत्रोऽयं मम वा न
वा ॥ ५० ॥ दृष्ट्वाप्यमानुषं कर्म बाणेषु लघुहस्तताम् ॥ विद्यां वाऽप्रतिमां रूपं तस्य वै स्मरसन्निभम् ॥ ५१ ॥ पप्रच्छ विस्मितो राजा कस्य

और जब यह जवान होगा, तब आपको दे दूँगी। क्योंकि माताके बिना पुत्र न जीता है और न सुखी रहता है ॥ ४४ ॥ ऐसा कह तथा उस बालकको लेकर गंगाजी अन्तर्धान हो गयीं और अतीव दुःखार्त राजा शंतनु अपने भवनमें ही रह गये ॥४५॥ अब महाराज शंतनु स्त्री तथा पुत्रके वियोगजनित कष्टका चिंतन एवं शासनकार्य करते हुए समय बिताने लगे ॥ ४६ ॥ कुछ समय बाद राजा शन्तनु मृगयाके लिए वनमें गये। वहाँ विविध वनपशुओं, भैंसों तथा सूकरोंको अपने बाणोंसे मारते हुए गंगाजीके तटपर जा पहुँचे। उस नदीमें बहुत थोड़ा जल देखकर महाराज शन्तनु बहुत आश्चर्यमें पड़ गये ।।४७॥४८॥ वहाँ ही उन्होंने देखा कि एक बालक धनुषकी डोरी खींच-खींचकर बहुतेरे बाणोंकी वर्षा कर रहा है ॥ ४९ ॥ उसे देखकर राजा शन्तनु बहुत विस्मित हुए, किन्तु उसे पहचान नहीं सके। महाराजको यह भी स्मरण नहीं रहा कि यह मेरा पुत्र है या नहीं ॥५०॥ उस बालकका अमानुषिक कर्म, बाणचालनमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हस्तलाघव, असाधारण विद्या और कामदेवके समान सुन्दर रूप देखकर विस्मित राजाने उस बालकसे पूछा—हे निर्दोष बालक! तुम किसके पुत्र हो? किंतु वह वीर बालक कुछ न बोलकर बराबर बाण छोड़ता हुआ अन्तर्धान हो गया। अब राजा शन्तनुकी चिन्ता और बढ़ गयी। उन्होंने सोचा कि कहीं यह मेरा ही पुत्र तो नहीं है? अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? ॥ ५१-५३ ॥ वे वहाँ ही खड़े खड़े शान्त चित्तसे गंगाजीकी स्तुति करने लगे। उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर गंगाजीने पहले ही के समान सुन्दरी बनकर उन्हे दर्शन दिया ॥५४॥ सर्वांगसुन्दरी गंगाजीको देखकर राजा शन्तनु बोले—हे गंगे! यह बालक कौन है और कहाँ चला गया? आप उसे बुलाकर मुझको दिखा दें ॥ ५५ ॥ गङ्गाजीने कहा—हे राजेन्द्र! वह आपका ही बालक है। पुत्ररूपमें मैंने अष्टम वसुको पाला है। उस महातपस्वी गांगेयको मैं आपको सौंपती हूँ ॥५६॥ हे सुव्रत! वह बालक आपके कुलकी कीर्ति बढ़ायेगा। मैंने उसे सब

पुत्रोऽसि चानघ ॥ नोवाच किञ्चिद्वीरोऽसौ मुञ्चञ्छिलीमुखानथ ॥ ५२ ॥ अन्तर्धानं गतः सोऽथ राजा चिन्तातुरोऽभवत् ॥ कोऽयं मम सुतो बालः किं करोमि व्रजामि कम् ॥ ५३ ॥ गङ्गां तुष्टाव भूपालः स्थितस्तत्र समाहितः ॥ दर्शनं सा ददौ चाथ चारुरूपा यथा पुरा ॥ ५४ ॥ दृष्ट्वा तां चारुसर्वांगीं बभाषे नृपतिः स्वयम् ॥ कोऽयं गङ्गे गतो बालो मम त्वं दर्शयाधुना ॥ ५५ ॥ गङ्गोवाच ॥ पुत्रोऽयं तव राजेन्द्र रक्षितश्चाष्टमो वसुः ॥ ददामि तव हस्ते तु गाङ्गेयोऽयं महातपाः ॥५६॥ कीर्तिकर्ता कुलस्यास्य भविता तव सुव्रत ॥ पाठितस्त्वखिलान्वेदान्धनुर्वेदं च शाश्वतम् ॥५७॥ वसिष्ठस्याश्रमे दिव्ये संस्थितोऽयं सुतस्तव ॥ सर्वविद्याविधानज्ञः सर्वार्थकुशलः शुचिः ॥ ५८ ॥ यद्वेद जामदग्न्योऽसौ तद्वेदायं सुतस्तव ॥ गृहाण गच्छ राजेन्द्र सुखी भव नराधिप ॥५९॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे गङ्गा दत्त्वा पुत्रं नृपाय वै ॥ नृपतिस्तु मुदा युक्तो बभूवातिसुखान्वितः ॥६०॥ समालिंग्य सुतं राजा समाघ्राय च मस्तकम् ॥ समारोप्य रथे पुत्रं स्वपुरं स प्रचक्रमे ॥ ६१ ॥ गत्वा गजाह्वयं राजा चकारोत्सवमुत्तमम् ॥ दैवज्ञं च समाहूय पप्रच्छ च शुभं दिनम् ॥ ६२ ॥ समाहूय प्रजाः सर्वाः सचिवान्सर्वशः शुभान् ॥ यौवराज्येऽथ गाङ्गेयं स्थापयामास पार्थिवः ॥ ६३ ॥ कृत्वा तं युवराजानं पुत्रं सर्वगुणान्वितम् ॥ सुखमास स धर्मात्मा न सस्मार च जाह्नवीम् ॥६४॥ सूत उवाच ॥ एतद्वः कथितं सर्वं कारणं वसुशा-

वेदों तथा चिरस्थायी धनुर्वेदकी शिक्षा दी है ॥ ५७ ॥ सब विद्याओंका विधान जाननेवाला और सब बातोंमें निपुण आपका पुत्र वसिष्ठके दिव्य आश्रममें शिक्षित हुआ है ॥५८॥ जिस विद्याको जमदग्नितनय परशुराम जानते हैं, उसे यह भी जानता है। हे राजेन्द्र! हे नराधिप! आप उसे लेकर सुखी हों ॥५९॥ ऐसा कह और वह पुत्र राजाको देकर गंगाजी अंतर्धान हो गयीं। उसे पाकर महाराज शंतनु बहुत आनंदित और सुखी हुए ॥ ६० ॥ उन्होंने उसे छातीसे लगाकर माथा सूँघा और रथपर बिठाकर अपने नगरको चल पड़े ॥६१॥ हस्तिनापुरमें पहुँचकर राजाने बहुत बड़ा उत्सव मनाया और ज्योतिषियोंको बुलाकर मुहूर्त पूछा ॥ ६२ ॥ उन्होंने सब प्रजाजनों तथा मंत्रियोंको बुलाकर गांगेयको युवराज पदपर बैठा दिया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार सर्वगुणान्वित पुत्रको युवराज बनाकर धर्मात्मा महाराज शन्तनु बहुत प्रसन्न हुए और अब उन्हें गंगाजीकी भी सुधि नहीं रह गयी ॥६४॥ सूतजी बोले—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे मुनिगण ! इस प्रकार मैंने वसुओंके शापका वृत्तान्त बता दिया । उसके साथ ही गंगाजी तथा गांगेयकी उत्पत्तिका विवरण भी कह सुनाया ॥ ६५ ॥ जो मनुष्य इस गंगावतरण तथा वसुओंकी उत्पत्तिकी कथाको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६६॥ हे मुनिसत्तम ! पुराणों तथा वेदोंके समान आदरणीय यह पुनीत उपाख्यान जैसा कि व्यासजीके मुखसे सुना था, वैसा ही मैंने आप लोगोंको सुना दिया ॥६७॥ यह श्रीमद्देवीभागवत पुराण बड़ा ही पवित्र, विविध कथाओंसे परिपूर्ण, द्वैपायन व्यासजीके-मुखकमलसे निःसृत तथा सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पुराणोंके पांचों लक्षणोंसे सम्पन्न है ॥ ६८ ॥ जो लोग इसे सुनते हैं, उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं । उनका सर्वथा कल्याण होता है और उन्हें सुख मिलता है । हे मुनिसत्तमगण ! इस प्रकार मैंने आपको यह पुनीत इतिहास कह सुनाया ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(राजा शन्तनुका सत्यवतीके साथ विवाह) ऋषिगण बोले—हे लोमहर्षणतनय सूतजी ! आपने शापवश अष्टवसुओंके जन्म तथा गंगाजीकी उत्पत्तिका इतिहास कहा ॥ १ ॥

पजम् ॥ गांगेयस्य तथोत्पत्तिं जाह्नव्याः संभवं तथा ॥ ६५ ॥ गंगावतरणं पुण्यं वसूनां संभवं तथा ॥ यः शृणोति नरः पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६६ ॥ पुण्यं पवित्रमाख्यानं कथितं मुनिसत्तमाः ॥ यथा मया श्रुतं व्यासात्पुराणं वेदसंमितम् ॥ ६७ ॥ श्रीमद्भागवतं पुण्यं नानाख्यानकथान्वितम् ॥ द्वैपायनमुखोद्भूतं पंचलक्षणसंयुतम् ॥ ६८ ॥ शृण्वतां सर्वपापघ्नं शुभदं सुखदं तथा ॥ इतिहासमिमं पुण्यं कीर्तितं मुनिसत्तमाः ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥ वसूनां संभवः सूत कथितः शापकारणात् ॥ गांगेयस्य तथोत्पत्तिः कथिता लोमहर्षणे ॥१॥ माता व्यासस्य धर्मज्ञ नाम्ना सत्यवती सती ॥ कथं शन्तनुना प्राप्ता भार्या गंधवती शुभा ॥ २॥ तन्ममाचक्ष्व विस्तारं दाशपुत्री कथं वृता ॥ राज्ञा धर्मवरिष्ठेन संशयं छिंधि सुव्रत ॥३॥ सूत उवाच ॥ शंतनुर्नाम राजर्षिर्मृगयानिरतः सदा ॥ वनं जगाम निघ्नन्वै मृगांश्च महिषान्रुरून् ॥४॥ चत्वार्येव तु वर्षाणि पुत्रेण सह भूपतिः ॥ रममाणः सुखं प्राप कुमारेण यथा हरः ॥५॥ एकदा विक्षिपन्बाणान्विनिघ्नन्खड्गसूकरान् ॥ स कदाचिद्वनं प्राप्तः कालिंदीं सरितां वराम् ॥६॥ महीपतिरनिर्देश्यमजिघ्रद्गन्धमुत्तमम् ॥ तस्य प्रभवमन्विच्छन्संचचार वनं तदा ॥७॥ न मन्दारस्य गन्धोऽयं मृगनाभिमदस्य न ॥ चंपकस्य न मालत्या न

हे धर्मज्ञ ! व्यासजीकी माता सती सत्यवती, जिसकी सुगन्धि बहुत दूर तक जाती थी, वह राजा शन्तनुको कैसे प्राप्त हुई ? ॥ २ ॥ कृपया आप हमें विस्तारके साथ बताइए कि सर्वश्रेष्ठ राजा शंतनुने एक निषादपुत्रीके साथ विवाह क्यों किया ? हे सुव्रत ! आप हमारे इस संशयको दूर करिए ॥ ३ ॥ सूतजी बोले—राजर्षि शंतनु सदा मृगया खेलते थे । वे नित्य वनमें जाकर मृग, महिष तथा रुरुमृगों (बारहसिंघों) का वध किया करते थे ॥४॥ राजा शन्तनु केवल चार वर्ष अपने पुत्र गांगेय भीष्मके साथ उसी प्रकार सुखसे रहे, जैसे भगवान् शंकर कार्तिकेयके साथ सानन्द रहते थे ॥ ५ ॥ एक बार ऐसा हुआ कि महाराज शन्तनु वनमें बाण चला-चलाकर बहुतेरे गैंडों तथा सुअरोंका वध करते हुए यमुनाजीके तटपर जा पहुँचे ॥ ६ ॥ वहाँ उन्हें एक अकल्पित सुगन्धिकी लहरका अनुभव हुआ । अब वे उसके उत्पत्तिस्थानका अन्वेषण करते हुए वनमें घूमने लगे ॥७॥ वे बड़े असमंजसमें पड़े थे कि यह सुगन्धि न मन्दार-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुष्पकी है, न कस्तूरीकी है, न मालती और केतकीकी ही यह मनोहर सुगन्धि है ॥ ८ ॥ ऐसी अनुपम सुगंधि मैंने कभी नहीं सूँघी थी । इस दिव्य सुगंधिको लेकर वायु भी कितनी अच्छी बह रही है । आखिर मेरे घ्राणेन्द्रियको मुग्ध कर देनेवाली यह हवा कहाँसे आती है ? ॥९॥ ऐसा विचार करते हुए राजा शंतनु उस सुगन्धिके लोभवश जिधरसे वह हवा आ रही थी, उधर ही चल पड़े ॥१०॥ कुछ आगे बढ़नेपर उन्होंनें यमुनाजीके किनारे एक सुंदरी स्त्रीको बैठी देखा । यद्यपि उसने अपना शृङ्गार नहीं किया था और उसके वस्त्र भी गंदे थे, तथापि वह बड़ी सुंदर लग रही थी ॥११॥ उस श्याम नयनोंवाली स्त्रीको देखकर राजा आश्चर्यमें पड़ गये और उन्हें विश्वास हो गया कि यह सुगन्धि इसीके शरीरसे निकलकर फैल रही है ॥१२॥ उसका अद्भुत एवं अतिशय सुंदर रूप, सब प्राणियोंका मन बरबस अपनी ओर खींच लेनेवाली सुगन्धि, उभड़ते नवयौवनकी अवस्था आदि देखकर महाराजको बड़ा विस्मय हुआ ॥ १३ ॥ यह कौन है ? यह कहाँसे आयी है ? यह कोई देवांगना है या मानवी स्त्री ? यह कोई गंधर्व अथवा नागकी कन्या तो नहीं है ? मैं इस सुगन्धा कामिनीका परिचय कैसे प्राप्त करूँ ? ॥१४॥

केतक्या मनोहरः ॥८॥ न चानुभूतपूर्वोऽयं वाति गन्धवहः शुभः ॥ कुतोऽयमेति वायुर्वै मम घ्राणविमोहनः ॥९॥ इति संचिंत्यमानोऽसौ बभ्राम वनमंडलम् ॥ मोहितो गंधलोभेन शंतनुः पवनानुगः ॥१०॥ स ददर्श नदीतीरे संस्थितां चारुदर्शनाम् ॥ शृङ्गाररहितां कांतां सुस्थितां मलिनांबराम् ॥११॥ दृष्ट्वा तामसितापांगीं विस्मितः स महीपतिः ॥ अस्या देहस्य गंधोऽयमिति संजातनिश्चयः ॥ १२ ॥ तदद्भुतं रूपमतीव सुंदरं तथैव गन्धोऽखिललोकसंमतः ॥ वयश्च तादृङ्नवयौवनं शुभं दृष्ट्वैव राजा किल विस्मितोऽभवत् ॥ १३ ॥ केयं कुतो वा समुपागताऽधुना देवांगना वा किमु मानुषी वा ॥ गन्धर्वपुत्री किल नागकन्या जाने कथं गंधवतीं नु कामिनीम् ॥ १४ ॥ संचिंत्य चैवं मनसा नृपोऽसौ न निश्चयं प्राप यदा ततः स्वयम् ॥ गङ्गां स्मरन्कामवशं गतोऽथ पप्रच्छ कान्तां तटसंस्थितां च ॥ १५ ॥ काऽसि प्रिये कस्य सुताऽसि कस्मादिह स्थिता त्वं विजने वरोरु ॥ एकाकिनी किं वद चारुनेत्रे विवाहिता वा न विवाहिताऽसि ॥ १६ ॥ संजातकामोऽहमरालनेत्रे त्वां वीक्ष्य कान्तां च मनोहरां च ॥ ब्रूहि प्रिये काऽसि चिकीर्षसि त्वं किं चेति सर्वं मम विस्तरेण ॥ १७ ॥ इत्येवमुक्ता सुदती नृपेण प्रोवाच तं सस्मितमंबुजेक्षणा ॥ दाशस्य पुत्रीं त्वमवेहि राजन्कन्यां पितुः शासनसंस्थितां च ॥ १८ ॥ तरीमिमां धर्मनिमित्तमेव संवाहयामीह जले नृपेंद्र ॥ पिता गृहे मेऽद्य गतोऽस्ति कामं सत्यं ब्रवीम्यर्थपते तवाग्रे

बारम्बार इस प्रकार विचार करके भी वे जब कुछ निश्चय नहीं कर सके, तब सहसा उन्हें गंगाजीका स्मरण हो आया और वे कामातुर होकर उस स्त्रीके पास गये । उस तटवर्तिनी कामिनीसे उन्होंने कहा–हे प्रिये ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? हे सुजंघे ! तुम इस निर्जन वनमें क्यों बैठी हो ? हे सुनयनी ! तुम अकेली ही हो ? तुम विवाहिता हो या कुमारी ? ॥१५॥१६॥ हे अरालनेत्रे (तिरछी चितवनवाली) ! तुम जैसी मनोरमा स्त्रीको देखते ही मैं कामातुर हो गया हूँ । हे प्रिये ! विस्तारके साथ मुझे यह बताओ कि तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो ? ॥ १७ ॥ महाराज शंतनुके वचन सुनकर वह सुंदर दंतावलीयुक्त तथा कमल सदृश नयनोंवाली स्त्री मुसकाकर बोली–हे राजन् ! मैं एक केवटकी कन्या हूँ और अपने पिताकी आज्ञामें रहती हूँ ॥ १८ ॥ हे नृपेंद्र ! मैं अपने जातिधर्मका अनुसरण करती हुई जलमें यह नौका चलाती हूँ । हे अर्थपते ! पिताजी अभी ही घर गये हैं । आपके समक्ष ये सभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बातें मैंने सत्य कही हैं ॥१९॥ इतना कहकर वह स्त्री चुप हो गयी । इसपर कामातुर राजा शन्तनुने कहा–हे सुन्दरी ! मुझ कुरुवंशी वीरको तुम अपना पति बना लो । जिससे तुम्हारा यौवन व्यर्थ न जाय ॥२०॥ अब मेरी पहली पत्नी नहीं रह गयी है । अतएव हे मृगनयनी ! तुम मेरी द्वितीय धर्मपत्नी बन जाओ । मैं सदाके लिए तुम्हारा वशवर्ती सेवक बन जाऊँगा । हे प्रिये ! मुझे कामदेव बुरी तरह सता रहा है ॥२१॥ मेरी प्रियतमा मुझे छोड़कर चली गयी है । तबसे मैंने अपना दूसरा विवाह नहीं किया । हे कान्ते ! मैं इस समय विधुर हूँ । तुम जैसी सर्वाङ्गसुन्दरी रमणीको देखकर मेरा मन वशके बाहर हो गया है ॥२२॥ अमृत जैसी स्वादिष्ट तथा रसीली बात सुनकर सात्त्विकभावयुक्ता दासकन्या सुगन्धा भली भाँति धैर्य धारण करके बोली—॥ २३ ॥ हे राजन् ! आपने मेरे विषयमें जो कुछ कहा, वह यथार्थ है । किंतु मैं स्वच्छन्द नहीं हूँ । मेरे दाता तो मेरे पिता हैं । अतएव आप शीघ्र उनके पास जाकर याचना

॥ १९ ॥ इत्येवमुक्त्वा विरराम बाला कामातुरस्तां नृपतिर्बभाषे ॥ कुरुप्रवीरं कुरु मां पतिं त्वं वृथा न गच्छेन्ननु यौवनं ते ॥ २० ॥ न चास्ति पत्नी मम वै द्वितीया त्वं धर्मपत्नी भव मे मृगाक्षि ॥ दासोऽस्मि तेऽहं वशगः सदैव मनोभवस्तापयति प्रिये माम् ॥ २१ ॥ गता प्रिया मां परिहृत्य कांता नान्या वृताऽहं विधुरोऽस्मि कांते ॥ त्वां वीक्ष्य सर्वावयवातिरम्यां मनो हि जातं विवशं मदीयम् ॥ २२ ॥ श्रुत्वाऽमृतास्वादरसं नृपस्य वचोऽतिरम्यं खलु दासकन्या ॥ उवाच तं सात्त्विकभावयुक्ता कृत्वाऽतिधैर्यं नृपतिं सुगंधा ॥ २३ ॥ यदात्थ राजन्मयि तत्तथैव मन्येऽहमेतत्तु यथा वचस्ते ॥ नास्मि स्वतंत्रा त्वमवेहि कामं दाता पिता मेऽर्थय तं त्वमाशु ॥ २४ ॥ न स्वैरिणीहास्म्यपि दाशपुत्री पितुर्वशेऽहं सततं चरामि ॥ स चेद्ददाति प्रथितः पिता मे गृहाण पाणिं वशगाऽस्मि तेऽहम् ॥ २५ ॥ मनोभवस्त्वां नृप किं दुनोति यथा पुनर्मां नवयौवनां च ॥ दुनोति तत्रापि हि रक्षणीया धृतिः कुलाचारपरंपरासु ॥२६॥ सूत उवाच॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नृपतिः काममोहितः ॥ गतो दाशपतेर्गेहं तस्या याचनहेतवे ॥२७॥ दृष्ट्वा नृपतिमायांतं दाशोऽतिविस्मयं गतः ॥ प्रणामं नृपतेः कृत्वा कृताञ्जलिरभाषत ॥२८॥ दाश उवाच ॥ दासोऽस्मि तव भूपाल कृतार्थोऽहं तवागमे ॥ आज्ञां देहि महाराज यदर्थमिह चागमः ॥ २९ ॥ राजोवाच ॥ धर्मपत्नीं करिष्यामि सुतामेतां तवानघ ॥ त्वया चेद्दीयते

करिए ॥२४॥ मैं एक केवटकी कन्या होती हुई भी स्वेच्छचारिणी नहीं हूँ । मैं सदा अपने पिताके वशमें रहती हुई सब काम करती हूँ । यदि मेरे पिता देना स्वीकार कर लें, तब मैं सदाके लिए आपके वशमें हो जाऊँगी ॥२५॥ हे राजन् ! कामदेव आपको उतना नहीं सताता, जितना कि मुझको सता रहा है । फिर भी कुलाचारकी परम्पराको ध्यानमें रखते हुए धैर्य रखना ही चाहिए ॥२६॥ सूतजी बोले–सुगन्धाके वचन सुनकर कामपीड़ित राजा शन्तनु उसे माँगनेके लिए निषादराजके घर गये ॥२७॥ राजाको अपने घर आये देखकर निषादको बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा ॥ २८ ॥ निषाद बोला–हे भूपाल ! मैं आपका सेवक हूँ । आपके आगमनसे मैं कृतार्थ हो गया । हे महाराज ! आप जिस कार्यके लिए आये हों, मुझे आज्ञा दीजिए ॥२९॥ राजा शन्तनुने कहा–हे अनघ ! यदि आप अपनी कन्या मुझे दें तो मैं उसे अपनी धर्मपत्नी बनाना चाहता हूँ । यह मैं सर्वथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥ दाश उवाच ॥ कन्यारत्नं मदीयं चेद्यत्त्वं प्रार्थयसे नृप ॥ दातव्यं तु प्रदास्यामि न त्वदेयं कदाचन ॥ ३१ ॥
तस्याः पुत्रो महाराज त्वदन्ते पृथिवीपतिः ॥ सर्वथा चाभिषेक्तव्यो नान्यः पुत्रस्तवेति वै ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा वाक्यं तु दाशस्य राजा
चिन्तातुरोऽभवत् ॥ गांगेयं मनसा कृत्वा नोवाच नृपतिस्तदा ॥३३॥ कामातुरो गृहं प्राप्तश्चिंताविष्टो महीपतिः ॥ न सस्नौ बुभुजे नाथ न सुष्वाप
गृहं गतः ॥ ३४ ॥ चिंतातुरं तु तं दृष्ट्वा पुत्रो देवव्रतस्तदा ॥ गत्वाऽपृच्छन्महीपालं तदसंतोषकारणम् ॥ ३५ ॥ दुर्जयः सोऽस्ति शत्रुस्ते करोमि
वशगं तव ॥ का चिंता नृपशार्दूल सत्यं वद नृपोत्तम ॥ ३६ ॥ किं तेन ज्ञातेन सुतेन राजन्दुःखं न जानाति न नाशयेद्यः ॥ ऋणं ग्रहीतुं समु-
पागतोऽसौ प्राग्जन्मजं नात्र विचारणाऽस्ति ॥ ३७ ॥ विमुच्य राज्यं रघुनन्दनोऽपि ताताज्ञया दाशरथिस्तु रामः ॥ वनं गतो लक्ष्मणजानकीभ्यां
सहैव शैलं किल चित्रकूटम् ॥३८॥ सुतो हरिश्चन्द्रनृपस्य राजन् यो रोहितश्चेति प्रसिद्धनामा ॥ क्रीतोऽथ पित्रा विपणोद्यतश्च दासार्पितो विप्रगृहे
तु नूनम् ॥३९॥ तथाऽजिगर्तस्य सुतो वरिष्ठो नाम्ना शुनःशेप इति प्रसिद्धः ॥ क्रीतस्तु पित्राप्यथ यूपबद्धः सम्मोचितो गाधिसुतेन पश्चात् ॥४०॥
पित्राज्ञया जामदग्न्येन पूर्वं छिन्नं शिरो मातुरिति प्रसिद्धम् ॥ अकार्यमप्याचरितं च तेन गुरोरनुज्ञा च गरीयसी कृता ॥ ४१ ॥ इदं शरीरं तव
भूपते न क्षमोऽस्मि नूनं वद किं करोम्यहम् ॥ न शोचनीयं मयि वर्तमानेऽप्यसाध्यमर्थं प्रतिपादयाम्यदः ॥४२॥ प्रब्रूहि राजंस्तव काऽस्ति चिन्ता

सत्य कह रहा हूँ ॥ ३० ॥ निषाद बोला—हे महाराज ! यदि आप मेरी कन्या माँग रहे हैं तो मैं अवश्य दूँगा । कन्या भी क्या कभी अदेय होती है ? ॥ ३१ ॥ किंतु महाराज ! इस कन्यादानके साथ मेरी एक शर्त है, वह यह कि आपके बाद इस कन्याके पुत्रका ही राज्याभिषेक होना चाहिए । किसी दूसरे पुत्रको आप राज्य न दें ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले–निषादकी बात सुनकर राजा शन्तनु चिंतित हो उठे । गांगेय (भीष्म) का स्मरण आ जानेसे वे उसे उस समय कुछ भी उत्तर नहीं दे सके ॥३३॥ तदन्तर कामातुर और चिंताकुल राजा अपने घर चले गये । वहाँ जाकर उन्होंने न नहाया-खाया और न सोये ही ॥३४॥ महाराजको चिंतित देखकर राजपुत्र देवव्रत भीष्म उनके पास गये और असंतोषका कारण पूछा ॥३५॥ उन्होने कहा–हे नृपशार्दूल ! आपका कौनसा दुर्जय शत्रु है ? बताइए, उसे मैं आपके वशमें कर दूँगा । हे नृपोत्तम ! आपको जिस बातकी चिंता हो, मुझे सच-सच बता दीजिए ॥३६॥ हे राजन् ! उस पुत्रसे क्या लाभ कि जो जन्म लेकर अपने पिताका दुःख न जाने और उसका नाश न करे । ऐसा कुपुत्र तो पूर्वजन्ममें दिये हुए ऋणका भुगतान करानेके लिए ही यहाँ आता है । इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ३७ ॥ दशरथतनय रघुनंदन रामचंद्रजी पिताकी आज्ञासे लक्ष्मण तथा जानकीके साथ चित्रकूट पर्वतके वनमें चले गये थे ॥३८॥ हे राजन् ! राजा हरिश्चंद्रका पुत्र रोहित माता-पिताके बिक जानेपर स्वयं भी बिककर सेवकाई करता हुआ एक ब्राह्मणके घरमें रहने लगा था ॥३९॥ इसी प्रकार अजीगर्त ब्राह्मणका ज्येष्ठ पुत्र शुनःशेप था । वह अपने पिताकी आज्ञासे बिककर यूप (बलिदानके खम्भे) में बँध गया था । उसको बादमें विश्वामित्रने छुड़ाया ॥४०॥ यह बात लोकप्रसिद्ध है कि पिताकी आज्ञासे परशुरामने अपनी माताका सिर काट लिया था । इस प्रकार अनुचित कार्य करके भी उन्होंने पिताकी आज्ञाका महत्त्व बढ़ाया ॥४१॥ हे भूपते ! यह शरीर आपका है । यद्यपि मैं कुछ करने-धरनेमें समर्थ नहीं हूँ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर भी बताइए कि मैं क्या करूँ ? मेरे रहते आप कोई चिन्ता न करें । मैं असाध्य कार्यका भी साधन करनेको तैयार हूँ ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! बताइए कि आपको क्या चिन्ता है ? मैं अभी धनुष धारण करके उसका निवारण कर दूँगा । यदि मेरे देहदानसे आपका काम बनता हो तो भी मैं आपकी आकांक्षा पूर्ण करूँगा ॥ ४३ ॥ उस पुत्रको धिक्कार है कि जो समर्थ होकर भी अपने पिताकी इच्छाको पूर्ण नहीं करता । जो अपने पिताकी चिन्ता दूर नहीं करता, उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे ही क्या लाभ ? ॥४४॥ सूतजी बोले—अपने पुत्रका वचन सुनकर राजा शन्तनुने मनमें लज्जित होकर तुरन्त कहा ॥ ४५ ॥ राजा बोले—हे पुत्र ! मुझको यही चिंता है कि तुम अकेले ही मेरे पुत्र हो, बलवान् हो, स्वाभिमानी हो और रणभूमिमें पीठ न दिखाने-वाले वीर हो ॥ ४६ ॥ तथापि हे पुत्र ! केवल एक पुत्रवाले मुझ पिताका जीवन व्यर्थ है । यदि कहीं किसी संग्राममें तुम्हारी मृत्यु हो गयी तो मैं असहाय हो जाऊँगा । तब मुझसे कुछ करते न बनेगा ॥४७॥ मुझे इस बातकी बड़ी चिन्ता है और इसी वास्ते मैं आज इतना दुखी हूँ । हे पुत्र ! इसके सिवाय और कोई ऐसी चिंता नहीं है कि जो मैं तुम्हें बताऊँ ॥४८॥

निवारयाम्यद्य धनुर्गृहीत्वा ॥ देहेन मे चेच्चरितार्थता वा भवत्वमोघा भवतश्चिकीर्षा ॥ ४३ ॥ धिक्तं सुतं यः पितुरीप्सितार्थं क्षमोऽपि सन्न प्रति-पादयेद्यः ॥ जातेन किं तेन सुतेन कामं पितुर्न चिंतां हि समुद्धरेद्यः ॥ ४४ ॥ सूत उवाच ॥ निशम्येति वचस्तस्य पुत्रस्य शंतनुर्नृपः ॥ लज्जमा-नस्तु मनसा तमाह त्वरितं सुतम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ चिंता मे महती पुत्र यस्त्वमेकोऽसि मे सुतः ॥ शूरोऽतिबलवान्मानी संग्रामेष्वपराङ्-मुखः ॥ ४६ ॥ एकापत्यस्य मे तात वृथेदं जीवितं किल ॥ मृते त्वयि मृधे क्वापि किं करोमि निराश्रयः ॥ ४७ ॥ एषा मे महती चिंता तेनाद्य दुःखितोऽस्म्यहम् ॥ नान्या चिंताऽस्ति मे पुत्र यां तवाग्रे वदाम्यहम् ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ तदाकर्ण्याथ गांगेयो मंत्रिवृद्धानपृच्छत ॥ न मां वदति भूपालो लज्जयाऽद्य परिप्लुतः ॥ ४९ ॥ वित्त वार्तां नृपस्याद्य पृष्ट्वा यूयं विनिश्चयात् ॥ सत्यं ब्रुवंतु मां सर्वं तत्करोमि निराकुलः ॥ ५० ॥ तच्छ्रुत्वा ते नृपं गत्वा संविज्ञाय च कारणम् ॥ शशंसुर्विदितार्थस्तु गांगेयस्तदचिंतयत् ॥ ५१ ॥ सहितस्तैर्जगामाशु दाशस्य सदनं तदा ॥ प्रेम-पूर्वमुवाचेदं विनम्रो जाह्नवीसुतः ॥५२॥ गांगेय उवाच ॥ पित्रे देहि सुतां तेऽद्य प्रार्थयामि सुमध्यमाम् ॥ माता मेऽस्तु सुतेयं ते दासोऽस्म्यस्याः परंतप ॥ ५३ ॥ दाश उवाच ॥ त्वं गृहाण महाभाग पत्नीं कुरु नृपात्मज ॥ पुत्रोऽस्या न भवेद्राजा वर्तमाने त्वयीति वै ॥५४॥ गांगेय उवाच ॥

सूतजी बोले—अपने पिताके वचन सुनकर गांगेय देवव्रतने वृद्ध मंत्रियोंसे कहा कि लज्जाके कारण महाराज मुझे कुछ साफ-साफ नहीं बता रहे हैं ॥ ४९ ॥ आपलोग आज महाराजके मनकी बात निश्चयपूर्वक जानकर सच-सच बता दें । मैं बिना संकोच उनकी आज्ञाका पालन करूँगा ॥ ५० ॥ यह सुनकर वे मंत्री एकान्तमें महाराज शन्तनुसे मिले और यथार्थ कारणका पता लगाकर गांगेय भीष्मको बता दिया और वे उसपर विचार करने लगे ॥५१॥ तदनन्तर उन मंत्रियोंको साथ लेकर भीष्म उस निषादके घर गये और बड़े प्रेमपूर्वक विनम्रभावसे कहने लगे ॥ ५२ ॥ गांगेय बोले—हे परन्तप ! आप आज ही अपनी सुन्दरी कन्या मेरे पिताको दे दीजिए । वह मेरी माता होगी और मैं उसका दास बनकर रहूँगा ॥ ५३ ॥ निषादने कहा—हे महाभाग ! हे नृपपुत्र ! आप ही इसे अपनी भार्या बना लीजिए । क्योंकि महाराजको देनेसे आपके रहते मेरी पुत्रीका बेटा राजा नहीं हो सकेगा ॥ ५४ ॥ गांगेयने कहा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह निषादकन्या मेरी माता होगी । मैं जीवनभर राज्य नहीं करूँगा । इसका पुत्र ही राज्य करेगा । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥५५॥ निषाद बोला—मैं आपका वचन सच मानता हूँ, किन्तु यदि कोई आपका बलवान् पुत्र हुआ तो वह गद्दी छीन लेगा । यह निश्चित है ॥५६॥ गांगेय बोले–हे तात ! मैं जीवनभर अपना विवाह ही न करूँगा । मैं आपके समक्ष यह भीष्म प्रतिज्ञा करता हूँ । मेरी बात सर्वथा सत्य है ॥५७॥ सूतजी कहते हैं—गांगेयकी ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर निषादराजने अपनी सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या राजा शन्तनुको दे दी ॥ ५८ ॥ इस तरह राजा शन्तनुने अपनी प्रियतमा सत्यवतीके साथ विवाह कर लिया । उन्हें यह नहीं मालूम था कि इसकी कोखसे व्यासजीका जन्म हो चुका है ॥५९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

मातेयं मम दाशेयी राज्यं नैव करोम्यहम् ॥ पुत्रोऽस्याः सर्वथा राज्यं करिष्यति न संशयः ॥ ५५॥ दाश उवाच ॥ सत्यं वाक्यं मया ज्ञातं पुत्रस्ते बलवान्भवेत् ॥ सोऽपि राज्यं बलान्नूनं गृह्णीयादिति निश्चयः ॥ ५६ ॥ गांगेय उवाच ॥ न दारसंग्रहं नूनं करिष्यामि हि सर्वथा ॥ सत्यं मे वचनं तात मया भीष्मं व्रतं कृतम् ॥ ५७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं कृतां प्रतिज्ञां तु निशम्य झषजीवकः ॥ ददौ सत्यवतीं तस्मै राज्ञे सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ५८ ॥ अनेन विधिना तेन वृता सत्यवती प्रिया ॥ न जानाति परं जन्म व्यासस्य नृपसत्तमः ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे शन्तनुसत्यवतीपरिणयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ सूत उवाच ॥ एवं सत्यवती तेन वृता शंतनुना किल ॥ द्वौ पुत्रौ च तथा जातौ मृतौ कालवशादपि ॥ १ ॥ व्यासवीर्यात्तु संजातो धृतराष्ट्रोऽन्ध एव च ॥ मुनिं दृष्ट्वाऽथ कामिन्या नेत्रसंमीलने कृते ॥ २ ॥ श्वेतरूपा यतो जाता दृष्ट्वा व्यासं नृपात्मजा ॥ व्यासकोपात्समुत्पन्नः पांडुस्तेन न संशयः ॥ ३ ॥ संतोषितस्तया व्यासो दास्या कामकलाविदा ॥ विदुरस्तु समुत्पन्नो धर्मांशः सत्यवाक्शुचिः ॥ ४ ॥ राज्ये संस्थापितः पांडुः कनीयानपि मंत्रिभिः ॥ अन्धत्वाद्धृतराष्ट्रोऽसौ नाधिकारे नियोजितः ॥ ५ ॥ भीष्मस्यानुमते राज्यं प्राप्तः पांडुर्महाबलः ॥ विदुरोऽ-

(पाण्डवोंके जन्मकी कथा) सूतजी बोले—हे मुनिवृन्द ! इस प्रकार राजा शन्तनुने सत्यवतीके साथ अपना विवाह किया । उसके गर्भसे चित्राङ्गद तथा विचित्रवीर्य नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए । किन्तु कालवश वे जल्दी ही मर गये ॥१॥ बादमें व्यासजीके वीर्यसे जन्मान्ध धृतराष्ट्रका जन्म हुआ । क्योंकि गर्भाधानके समय लाजवश स्त्रीने अपनी नेत्र मूँद लिये थे ॥२॥ उसके बाद फिर गर्भाधानके समय छोटी रानी व्यासको देखकर पीली पड़ गयी, जिससे व्यासजी कुपित हो गये । उससे जो पुत्र हुआ, वह पाण्डुवर्णका था ॥ ३ ॥ तत्पश्चात् कामकलामें निपुण दासीने व्यासजीको प्रसन्न किया । उससे विदुरका जन्म हुआ । विदुर बड़े धर्मात्मा, सत्यवादी तथा पवित्र विचारके पुरुष थे ॥ ४ ॥ धृतराष्ट्र जन्मके अंधे थे । इस कारण वे राजगद्दीपर नहीं बैठाये गये, बल्कि छोटे होते हुए भी पाण्डुको मंत्रियोंमे राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया ॥ ५ ॥ गांगेय भीष्मकी सलाहसे ही महाबली पाण्डुको राज्य मिला । परम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेधावी विदुर मंत्रिपदपर नियुक्त हुए ॥६॥ धृतराष्ट्रकी दो पत्नियाँ थीं-पहली सुबलपुत्री गान्धारी और दूसरी एक वैश्यकी पुत्री, जो गृहस्थीका सब काम सम्हालती थी ॥ ७ ॥ वेदवादी विद्वानोंका कहना है कि राजा पाण्डुकी भी दो पत्नियाँ थीं। पहली शूरसेनकी पुत्री कुन्ती और दूसरी मद्रदेशकी राजकुमारी माद्री ॥ ८ ॥ गान्धारीने परम सुन्दर सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया। धृतराष्ट्रकी वैश्या पत्नीने भी एक परम प्रिय युयुत्सु नामके पुत्रको जन्म दिया ॥ ९ ॥ कुन्ती कन्यावस्थामें पिताके घर रहते ही समय सूर्यके सहयोगसे कर्ण नामके पुत्रको उत्पन्न कर चुकी थी। उसके बाद पाण्डुके साथ उसका विवाह हुआ ॥१०॥ ऋषिगण बोले–हे सूत! हे मुनिसत्तम! आप कैसी विचित्र बात कह रहे हैं? पहले पुत्र उत्पन्न किया, उसके बादपाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह हुआ? ॥ ११ ॥ सूर्यके द्वारा उस कन्या कुन्तीसे कर्णका जन्म कैसे हुआ? पुत्र हो जानेके बाद भी वह कन्या कैसे रह गयी, जो पाण्डुके साथ उसका विवाह हो

प्यथ मेधावी मंत्रिकार्ये नियोजितः ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रस्य द्वे भार्ये गांधारी सौबली स्मृता ॥ द्वितीया च तथा वैश्या गार्हस्थ्येषु प्रतिष्ठिता ॥ ७ ॥ पांडोरपि तथा पत्न्यौ द्वे प्रोक्ते वेदवादिभिः ॥ शौरसेनी तथा कुन्ती माद्री च मद्रदेशजा ॥ ८ ॥ गांधारी सुषुवे पुत्रशतं परमशोभनम् ॥ वैश्याप्येकं सुतं कांतं युयुत्सुं सुषुवे प्रियम् ॥ ९ ॥ कुन्ती तु प्रथमं कन्या सूर्यात्कर्णं मनोहरम् ॥ सुषुवे पितृगेहस्था पश्चात्पांडुपरिग्रहः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किमेतत्सूत चित्रं त्वं भाषसे मुनिसत्तम ॥ जनितश्च सुतः पूर्वं पांडुना सा विवाहिता ॥ ११ ॥ सूर्यात्कर्णः कथं जातः कन्यायां वद विस्तरात् ॥ कन्या कथं पुनर्जाता पांडुना सा विवाहिता ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ शूरसेनसुता कुन्ती बालभावे यदा द्विजाः ॥ कुन्तिभोजेन राज्ञा तु प्रार्थिता कन्यका शुभा ॥ १३ ॥ कुंतिभोजेन सा बाला पुत्री तु परिकल्पिता ॥ सेवनार्थं तु दीप्तस्य विहिता चारुहासिनी ॥ १४ ॥ दुर्वासास्तु मुनिः प्राप्तश्चातुर्मास्ये स्थितो द्विजः ॥ परिचर्या कृता कुंत्या मुनिस्तोषं जगाम ह ॥१५॥ ददौ मंत्रं शुभं तस्यै येनाहूतः सुरः स्वयम् ॥ समायाति तथा कामं पूरयिष्यति वांछितम् ॥ १६ ॥ गते मनौ ततः कुन्ती निश्चयार्थं गृहे स्थिता ॥ चिंतयामास मनसा कं सुरं समचिंतये ॥ १७ ॥ उदितश्च तदा भानुस्तया दृष्टो दिवाकरः ॥ मंत्रोच्चारं तया कृत्वा चाहूतस्तिग्मगुस्तदा ॥ १८ ॥ मंडलान्मानुषं रूपं कृत्वा सर्वातिपेशलम् ॥ अवातरत्तदाऽऽकाशात्समीपे तत्र मंदिरे ॥१९॥ दृष्ट्वा देवं समायांतं कुन्ती भानुं सुविस्मिता ॥ वेपमाना रजोदोषं प्राप्ता सद्यस्तु भामिनी

गया। इस वृत्तान्तको विस्तारपूर्वक बताइए ॥ १२ ॥ सूतजी बोले–हे द्विजगण! शूरसेनकी पुत्री कुन्ती जब बच्ची थी, तभी राजा कुन्तिभोजने उसे माँग लिया था ॥१३॥ राजा कुन्तिभोजने उसे अपनी पुत्री बनाकर रक्खा और उस चारुहासिनी कन्याको अग्निहोत्रका काम सौंप दिया ॥१४॥ तभी चातुर्मास अर्थात् वर्षाके दिनोंमें महर्षि दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे और चार महीने वहीं रहे। उस समय कुन्तीने ही उनकी सेवा की। इससे मुनिराज उसपर प्रसन्न हो गये ॥ १५ ॥ उन्होंने कुन्तीको एक ऐसा मंत्र बताया कि जिसके प्रयोगसे देवता स्वयं आकर उसकी अभिलाषा पूर्ण कर दें ॥ १६ ॥ जब मुनिराज चले गये, तब घरमें बैठी हुई कुन्तीने उस मंत्रकी परीक्षाके लिए अपने मनमें सोचा कि मैं किस देवताका स्मरण करूँ? ॥ १७ ॥ उसी समय सूर्यनारायण उदित हुए। उसने उन्हें देखा और मंत्रका उच्चारण करके अपने पास बुला लिया ॥१८॥ तत्काल सूर्यनारायण बहुत ही सुन्दर मनुष्यका रूप धारण करके मण्डलसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भयके मारे वह काँपने लगी और तत्काल उसको रजःस्राव हो गया ॥२०॥ कुन्तीके भवनमें उतर आये ॥१९॥ इस प्रकार सूर्य भगवानको अपने पास आते देखकर कुन्तीको बड़ा आश्चर्य हुआ । तब उस सुनयनी कुन्तीने हाथ जोड़कर सूर्य भगवान्से कहा—आपका दर्शन पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुई । अब आप फिर अपने मण्डलको लौट जाइए ॥ २१ ॥ सूर्यभगवान् बोले—हे कुन्ती! तुमने मंत्रबलसे मुझे क्यों बुलाया? और फिर बुलानेपर जब मैं तुम्हारे समक्ष आ गया, तब तुम मेरी सेवा क्यों नहीं करतीं? ॥ २२ ॥ हे श्यामापाङ्गि! मैं तुम्हें देखकर कामातुर हो गया हूँ । तुम प्रेमपूर्वक मेरी सेवा करो । उस मंत्रके बलसे मैं तुम्हारे अधीन हो गया हूँ । अब तुम मेरे साथ चलकर विहार करो ॥ २३ ॥ कुन्तीने कहा—हे धर्मज्ञ! मैं अभी कन्या हूँ । हे सर्वसाक्षिन्! मैं आपको प्रणाम करती हूँ । हे सुव्रत! आप ऐसे दुर्वचन न बोलें! क्योंकि मैं एक कुलीन कन्या हूँ ॥२४॥ सूर्य भगवानने कहा—यदि मैं यहाँसे व्यर्थ लौट गया तो बड़ी लज्जाकी बात होगी और देवताओंमें मेरी बड़ी बदनामी होगी ॥ २५ ॥ अभी मैं उस ब्राह्मणको शाप दे दूँगा, जिसने तुम्हें यह मंत्र बताया है । यदि तुम मेरा कहना न मानोगी तो हे

॥२०॥ कृतांजलिः स्थिता सूर्यं बभाषे चारुलोचना ॥ सुप्रीता दर्शनेनाद्य गच्छ त्वं निजमंडलम् ॥२१॥ सूर्य उवाच ॥ आहूतोऽस्मि कथं कुन्ति त्वया मंत्रबलेन वै ॥ न मां भजसि कस्मात्त्वं समाहूय पुरोगतम् ॥ २२ ॥ कामार्तोऽस्म्यसितापांगि भज मां भावसंयुतम् ॥ मंत्रेणाधीनतां प्राप्तं क्रीडितुं नय मामिति ॥ २३ ॥ कुंत्युवाच ॥ कन्याऽस्म्यहं तु धर्मज्ञ सर्वसाक्षिन्नमाम्यहम् ॥ तवाप्यहं न दुर्वाच्या कुलकन्याऽस्मि सुव्रत ॥ २४ ॥ सूर्य उवाच ॥ लज्जा मे महती चाद्य यदि गच्छाम्यहं वृथा ॥ वाच्यतां सर्वदेवानां यास्याम्यत्र न संशयः ॥ २५ ॥ शप्स्यामि तं द्विजं चाद्य येन मंत्रः समर्पितः ॥ त्वां चापि सुभृशं कुन्ति नोचेन्मां त्वं भजिष्यसि ॥२६॥ कन्याधर्मः स्थिरस्ते स्यान्न ज्ञास्यंति जनाः किल ॥ मत्समस्तु तथा पुत्रो भविता ते वरानने ॥२७॥ इत्युक्त्वा तरणिः कुन्तीं तन्मनस्कां सुलज्जिताम् ॥ भुक्त्वा जगाम देवेशो वरं दत्त्वाऽतिवांछितम् ॥२८॥ गर्भं दधार सुश्रोणी सुगुप्ते मंदिरे स्थिता ॥ धात्री वेद प्रिया चैका न माता न जनस्तथा ॥ २९ ॥ गुप्तः सद्मनि पुत्रस्तु जातश्चातिमनोहरः ॥ कवचेनातिरम्येण कुण्डलाभ्यां समन्वितः ॥ ३० ॥ द्वितीय इव सूर्यस्तु कुमार इव चापरः ॥ करे कृत्वाऽथ धात्रेयी तामुवाच सुलज्जिताम् ॥ ३१ ॥ किं करोमि सुतार्ताऽहं त्यजे त्वां प्राणकां चिंतां करभोरु त्वमाधत्सेऽद्य स्थिताऽस्म्यहम् ॥ मंजूषायां सुतं कुन्ती मुंचंती वाक्यमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

कुंती! मैं तुमको भी शाप दे दूँगा ॥२६॥ तुम्हारा कन्याधर्म स्थिर रहेगा और इस बातको कोई न जान सकेगा । हे सुन्दरी! मेरे साथ रमण करनेसे तुम्हें मेरे ही समान तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा ॥ २७ ॥ ऐसा कहकर सूर्यदेवने उस सुलज्जिता कुन्तीके साथ भोग किया और अभिलषित वरदान देकर अपने मण्डलको चले गये ॥२८॥ सूर्यदेवके ऐसा करनेसे वह गर्भवती हो गयी और एकान्तमें छिपकर रहने लगी । इस भेदको केवल उसकी प्रिय धाय जानती थी । माता तथा अन्य किसीको इस बातका पता नहीं लग सका ॥२९॥ उसी एकान्तके गुप्त भवनमें उसने एक सुन्दर बालक उत्पन्न किया । वह अति रमणीक कुण्डल तथा कवच धारण किये हुए था ॥३०॥ वह दूसरे सूर्य तथा दूसरे कार्तिकेयके समान तेजस्वी था । तत्काल धात्रीने उस बालकको उठा लिया और बहुत ही लज्जित कुन्तीसे कहा—॥३१॥ हे करभोरु (अर्थात् हस्तिशावककी सूँड़ जैसी सुडौल जंघावाली)! तुम किस बातकी चिन्ता करती हो? मैं हूँ न!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदनन्तर एक काठकी पेटीमें उस शिशुको रखते-रखते कुन्तीने कहा—॥ ३२ ॥ क्या करूँ पुत्र ! तुम सरीखे प्राणप्रिय सन्तानको त्यागते हुये मुझे अपार दुःख हो रहा है। मुझ जैसी अभागिन कौन होगी, जो तुम जैसे सर्वसुलक्षणसम्पन्न शिशुको इस प्रकार त्याग दे ॥ ३३ ॥ सगुणा, निर्गुणा, भगवती, सर्वेश्वरी और अम्बिका तुम्हारी रक्षा करें। विश्वजननी तथा कात्यायनी भगवती तुम्हें दूध पिलावें। साक्षात् सूर्यभगवानके पुत्रको एक कुलटाके समान निर्जन वनमें त्यागकर मैं फिर कब तुम्हारे प्राणप्रिय सुन्दर मुखकमलको देखूँगी ? ॥३४॥ हे सुत ! पूर्वजन्ममें मैंने तीनों लोककी मातारूपिणी भगवतीकी आराधना नहीं की थी। देवी पार्वतीके सुखदायक चरणकमलोंका ध्यान भी नहीं किया था। अतएव हे पुत्र ! मैं सदाकी अभागिन हूँ, जो तुम्हें मैं निर्जन वनमें सदाके लिए त्याग रही हूँ। हे प्रिय पुत्र ! तुम्हें त्यागकर अपने पापोंका फल भोगती हुई मैं अपनी बुद्धिसे किये हुए कर्मका परिणाम भुगतूँगी ॥३५॥ सूतजी बोले—

वल्लभम् ॥ मन्दभाग्या त्यजामि त्वां सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ३३ ॥ पातु त्वां सगुणाऽगुणा भगवती सर्वेश्वरी चाम्बिका स्तन्यं सैव ददातु विश्वजननी कात्यायनी कामदा ॥ द्रक्ष्येऽहं मुखपङ्कजं सुललितं प्राणप्रियार्हं कदा त्यक्त्वा त्वां विजने वने रविसुतं दुष्टा यथा स्वैरिणी ॥ ३४ ॥ पूर्वस्मिन्नपि जन्मनि त्रिजगतां माता न चाराधिता न ध्यातं पदपङ्कजं सुखकरं देव्याः शिवायाश्चिरम् ॥ तेनाहं सुत दुर्भगाऽस्मि संततं त्यक्त्वा पुनस्त्वां वने तप्स्यामि प्रिय पातकं स्मृतवती बुद्ध्या कृतं यत्स्वयम् ॥ ३५ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं सुतं कुन्ती मञ्जूषायां सुतं किल ॥ धात्रीहस्ते ददौ भीता जनदर्शनतस्तथा ॥ ३६ ॥ स्नात्वा त्रस्ता तदा कुन्ती पितृवेश्मन्युवास सा ॥ मञ्जूषा वहमाना च प्राप्ता ह्यधिरथेन वै ॥ ३७ ॥ राधा सूतस्य भार्या वै तयाऽसौ प्रार्थितः सुतः ॥ कर्णोऽभूद्बलवान्वीरः पालितः सूतसद्मनि ॥ ३८ ॥ कुन्ती विवाहिता कन्या पांडुना सा स्वयम्वरे ॥ माद्री चैवापरा भार्या मद्रराजसुता शुभा ॥ ३९ ॥ मृगयां रममाणस्तु वने पांडुर्महाबलः ॥ जघान मृगबुद्ध्या तु रममाणं मुनिं वने ॥ ४० ॥ शप्तस्तेन तदा पांडुर्मुनिना कुपितेन च ॥ स्त्रीसङ्गं यदि कर्ताऽसि तदा ते मरणं ध्रुवम् ॥ ४१ ॥ इति शप्तस्तु मुनिना पांडुः शोकसमन्वितः ॥ त्यक्त्वा राज्यं वने वासं चकार भृशदुःखितः ॥ ४२ ॥ कुन्ती माद्री च भार्ये द्वे जग्मतुः सह सङ्गते ॥ सेवनार्थं सतीधर्मं संश्रिते मुनिसत्तमाः

ऐसा कहकर कुन्तीने सन्दूकमें रखे हुए शिशुको लोगोंकी दृष्टिसे बचाते हुए भयभीत भावसे धात्रीको दे दिया ॥ ३६ ॥ इसके बाद स्नान करके कुन्ती अपने पिताके घर रहने लगी। उधर गंगाजीमें डाली हुई सन्दूक बहती-बहती गयी सारथी अधिरथको मिली ॥ ३७ ॥ सूत अधिरथकी भार्या राधा थी। सो विनय करनेपर अधिरथने वह शिशु राधाको दे दिया। सूतके घरमें पलकर युवावस्थाको प्राप्त करके कर्ण बड़ा वीर और बलवान् हुआ ॥३८॥ तदनन्तर स्वयम्वरमें कुन्तीका विवाह पाण्डुके साथ हो गया। महाराज पाण्डुकी दूसरी पत्नी मद्रराजकी कन्या माद्री थी ॥ ३९ ॥ एक समय वनमें मृगया करते-करते महाबली पाण्डुने मृगके धोखेमें रमण करते हुए एक मुनिको मार डाला ॥ ४० ॥ मरते समय मुनिने उन्हें यह शाप दे दिया कि जब तुम स्त्रीप्रसंग करोगे, उसी समय मर जाओगे ॥४१॥ मुनिके यह शाप देनेपर महाराज पांडुको बहुत दुःख हुआ और वे राज्य त्यागकर वनमें रहने लगे ॥४२॥ हे मुनिसत्तम !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुन्ती और माद्री ये दोनों उनकी भार्यायें भी अपने सतीधर्मका पालन करनेके लिए उनके साथ गयीं ॥ ४३ ॥ राजधानीसे चलकर महाराज पांडु गङ्गाजीके तटपर मुनियोंके एक आश्रम-में टिके और धर्मशास्त्रकी बातें सुनते हुए दुष्कर तप करने लगे ॥४४॥ एक दिन कथाके समय राजाने किसी मुनिके मुखसे उच्चरित यह धार्मिक वचन सुना—॥ ४५ ॥ हे परन्तप ! पुत्र-हीन मनुष्यकी स्वर्गमें पहुँच नहीं होती। अतएव जिस किसी भी उपायसे सम्भव हो, पुत्रका उत्पादन अवश्य करे ॥ ४६ ॥ औरस (सगा), पुत्रिकापुत्र (नाती), क्षेत्रक (अपनी स्त्रीमें किसीके नियोगसे उत्पन्न), गोलक (अन्य पुरुषके वीर्यसे जायमान), कुण्ड (पतिके समक्ष दूसरे पुरुष द्वारा अपनी भार्यासे उत्पन्न), सहोढ़ (विवाहके समय ही कन्याके उदरमें स्थित), कानीन (कन्यावस्थामें ही उत्पन्न), क्रीत (खरीदा हुआ), वनमें प्राप्त अनाथ बालक और किसीका दिया हुआ दत्तक ये इतने प्रकारके पुत्र पिताकी सम्पत्तिके अधिकारी होते हैं और इनमें भी उत्तरोत्तर एक दूसरेसे निकृष्ट माने जाते हैं। जैसे—प्रथम औरस, द्वितीय नाती इत्यादि ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ यह वचन सुनकर राजा पाण्डुने कमलनयनी स्त्री कुन्तीसे कहा कि तुम किसी

॥ ४३ ॥ गङ्गातीरे स्थितः पांडुर्मुनीनामाश्रमेषु च ॥ शृण्वानो धर्मशास्त्राणि चकार दुश्चरं तपः ॥ ४४ ॥ कथायां वर्तमानायां कदाचिद्धर्म-संश्रितम् ॥ अशृणोद्वचनं राजा सुस्पष्टं मुनिभाषितम् ॥ ४५ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे गन्तुं परन्तप ॥ येन केनाप्युपायेन पुत्रस्य जननं चरेत् ॥ ४६ ॥ अंशजः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गोलकस्तथा ॥ कुण्डः सहोढः कानीनः क्रीतः प्राप्तस्तथा वने ॥ ४७ ॥ दत्तः केनापि चाशक्तौ धन-ग्राहिसुताः स्मृताः ॥ उत्तरोत्तरतः पुत्रा निकृष्टा इति निश्चयः ॥४८॥ इत्याकर्ण्य तदा प्राह कुन्तीं कमललोचनाम् ॥ सुतमुत्पादयाशु त्वं मुनिं गत्वा तपोन्वितम् ॥ ४९ ॥ ममाज्ञया न दोषस्ते पुरा राज्ञा महात्मना ॥ वसिष्ठाज्जनितः पुत्रः सौदासेनेति मे श्रुतम् ॥ ५० ॥ तं कुन्ती वचनं प्राह मम मन्त्रोऽस्ति कामदः ॥ दत्तो दुर्वाससा पूर्वं सिद्धिदः सर्वथा प्रभो ॥५१॥ निमन्त्रयेऽहं यं देवं मन्त्रेणानेन पार्थिव ॥ आगच्छेत्सर्वथाऽसौ वै मम पार्श्वं निमन्त्रितः ॥५२॥ भर्तुर्वाक्येन सा तत्र स्मृत्वा धर्मं सुरोत्तमम् ॥ संगम्य सुषुवे पुत्रं प्रथमं च युधिष्ठिरम् ॥५३॥ वायोर्वृकोदरं पुत्रं जिष्णुं चैव शत-क्रतोः ॥ वर्षे वर्षे त्रयः पुत्राः कुन्त्या जाता महाबलाः ॥ ५४ ॥ माद्री प्राह पतिं पाण्डुं पुत्रं मे कुरु सत्तम ॥ किं करोमि महाराज दुःखं नाशय

तपस्वी मुनिके पास जाकर शीघ्र पुत्र उत्पन्न करो ॥ ४९ ॥ मेरी ऐसी आज्ञा होनेके कारण तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा। मैंने ऐसा सुना है कि प्राचीन कालमें राजा सौदासने वसिष्ठसे पुत्र उत्पन्न कराया था ॥५०॥ यह सुनकर कुन्तीने कहा–हे प्रभो ! मेरे पास एक ऐसा मंत्र है कि जिससे सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। पूर्वकालमें महर्षि दुर्वासाने वह सिद्धि-दायक मंत्र मुझे दिया था ॥५१॥ हे महाराज ! इस मन्त्र द्वारा मैं जिस देवताको बुलाती हूँ, वह बरबस आकृष्ट होकर मेरे पास चला आता है ॥५२॥ तदनन्तर पतिकी आज्ञासे कुन्तीने सुरश्रेष्ठ धर्मराजका स्मरण किया और उनके साथ सहवास करके प्रथम पुत्र युधिष्ठिरको उत्पन्न किया ॥५३॥ फिर दूसरे वर्ष कुन्तीने वायुका आवाहन करके भीमको तथा तीसरे साल इन्द्र-देवको निमंत्रित करके कुन्तीने अर्जुनको उत्पन्न किया। इस तरह तीन वर्षोंमें कुन्तीने तीन बलवान् पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५४ ॥ तब राजा पांडुकी दूसरी पत्नी माद्रीने पतिके पास जाकर कहा–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे कुरुसत्तम ! मुझे भी पुत्र प्रदान करिए। हे महाराज ! मैं क्या करूँ ? हे प्रभो ! आप मेरा दुःख दूर करिए ॥५५॥ पतिके विशेष अनुरोध करनेपर कुंतीने दया करके वह मंत्र माद्रीको भी बतला दिया। पतिकी अनुमति पाकर माद्री केवल एक पुत्रकी प्राप्तिके लिए राजी हो गयी ॥५६॥ तदनुसार माद्रीने अश्विनीकुमारका स्मरण किया और उनके सहवाससे उसके नकुल और सहदेव नामके दो पुत्र उत्पन्न किये ॥५७॥ हे द्विजोत्तमगण ! इस प्रकार वे पाँचों पाण्डव देवताओंके वीर्यसे क्षेत्रजरूपमें उत्पन्न हुए। उस वनमें प्रतिवर्षके क्रमसे पाँच वर्षमें पाँचों पांडव जायमान हुए ॥ ५८ ॥ एक समय राजा पांडुने माद्रीको एकान्तमें देखा तो मृत्युकाल निकट होनेके कारण अत्यन्त कामातुर होकर उन्होंने उसे पकड़ लिया ॥ ५९ ॥ माद्रीके नहीं-नहीं करके बारम्बार मना करनेपर भी भाग्यवश उन्होंने उसे जबर्दस्ती लिपटा लिया और पूर्वकालीन शापके कारण तत्काल मरकर धरतीपर गिर पड़े ॥६०॥ जैसे वृक्षपर लसी हुई लता वृक्षके कट जानेपर गिर पड़ती है, उसी प्रकार माद्री जोरोंसे विलाप करती हुई गिर गयी ॥६१॥ माद्रीका रुदन सुनकर कुंती तथा उसके बालक भी रोते हुएआ पहुँचे। कोलाहल सुनकर आश्रम-

मे प्रभो ॥ ५५ ॥ प्रार्थिता पतिना कुन्ती ददौ मन्त्रं दयान्विता ॥ एकपुत्रप्रबन्धेन माद्री पतिमते स्थिता ॥ ५६ ॥ स्मृत्वा तदाऽश्विनौ देवौ मद्रराजसुता सुतौ ॥ नकुलः सहदेवश्च सुषुवे वरवर्णिनी ॥ ५७ ॥ एवं ते पांडवाः पञ्च क्षेत्रोत्पन्नाः सुरात्मजाः ॥ वर्षवर्षान्तरे जाता वने तस्मिन्द्विजोत्तमाः ॥ ५८ ॥ एकस्मिन्समये पांडुर्माद्रीं दृष्ट्वाऽथ निर्जने ॥ आश्रमे चातिकामार्तो जग्राहागतवैशसः ॥ ५९ ॥ मा मा मा मेति बहुधा निषिद्धोऽपि तया भृशम् ॥ आलिलिंग प्रियां दैवात्पपात धरणीतले ॥ ६० ॥ यथा वृक्षगता वल्ली छिन्ने पतति वै द्रुमे ॥ तथा सा पतिता बाला कुर्वन्ती रोदनं बहु ॥ ६१ ॥ प्रत्यागता तदा कुन्ती रुदती बालकास्तथा ॥ मुनयश्च महाभागाः श्रुत्वा कोलाहलं तदा ॥ ६२ ॥ मृतः पांडुस्तदा सर्वे मुनयः संशितव्रताः ॥ सहाग्निभिर्विधिं कृत्वा गंगातीरे तदाऽदहन् ॥ ६३ ॥ चक्रे सहैव गमनं माद्री दत्त्वा सुतौ शिशू ॥ कुन्त्यै धर्मं पुरस्कृत्य सतीनां सत्यकामतः ॥ ६४ ॥ जलदानादिकं कृत्वा मुनयस्तत्र वासिनः ॥ पञ्चपुत्रयुतां कुन्तीमनयन्हास्तिनापुरम् ॥ ६५ ॥ तां प्राप्तां च समाज्ञाय गांगेयो विदुरस्तथा ॥ नगरीं धृतराष्ट्रस्य सर्वे तत्र समाययुः ॥ ६६ ॥ पप्रच्छुश्च जनाः सर्वे कस्य पुत्रा वरानने ॥ पांडोः शापं समाज्ञाय कुन्ती दुःखान्विता तदा ॥ ६७ ॥ तानुवाच सुराणां वै पुत्राः कुरुकुलोद्भवाः ॥ विश्वासार्थं समाहूताः कुन्त्या सर्वे सुरास्तदा ॥ ६८ ॥ आगत्य खे तदा

के मुनि भी एकत्र हो गये ॥ ६२ ॥ इस प्रकार जब राजा पाण्डु मर गये, तब व्रतधारी मुनियोंने चिता लगाकर उसी गङ्गातटपर उनका दाहसंस्कार कर दिया ॥६३॥ पतिव्रता स्त्रियोंमें अग्रणी माद्री अपने पुत्रोंको कुंतीके हाथों सौंपकर पतिके साथ सती हो गयी ॥ ६४ ॥ वहाँके निवासी मुनियोंने दिवंगत राजा पांडुको जलाञ्जलि दी और कुंती तथा उसके पाँचों पुत्रोंको साथ लेकर हस्तिनापुर चले गये ॥६५॥ कुंतीके लौटनेकी खबर पाकर भीष्म, विदुर और अन्य लोग हस्तिनापुरमें धृतराष्ट्रकी नगरीमें जा पहुँचे ॥६६॥ उन सबने कुंतीसे कहा—हे सुमुखी ! ये पुत्र किसके हैं ? तब कुन्तीने बड़े दुःखके साथ पांडुको प्राप्त शापका उल्लेख करके उन लोगोंसे कहा कि ये सब देवताओंके अंशसे जायमान पुत्र हैं। उन्हें विश्वास दिलाने लिए कुंतीने मंत्रका प्रयोग करके सब देवताओंको वहाँ बुला लिया। तदनुसार आकाशमंडलमें आकर देवताओंने कहा–हाँ, ये सब पुत्र हमारे अंशसे उत्पन्न हुए हैं। देवताओंके वचनको प्रामाणिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानकर देवव्रत भीष्मने उन पाँचों देवपुत्रोंका स्वागत-सत्कार किया ॥ ६७-६९ ॥ तदनंतर पाँचों पांडवों तथा राजमाता कुंतीको लेकर वे सब हस्तिनापुर गये और भीष्म आदि स्वजन बड़ी प्रसन्नताके साथ आर्थिक सहायता करते हुए उनका पालन करने लगे। इस प्रकार पांडवोंकी उत्पत्ति हुई और भीष्मने उनका पालन-पोषण किया ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे पं०रामतेजपाण्डेयकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(धृतराष्ट्रको भीमका व्यङ्ग्यवाक्यों द्वारा बींधना और व्यासका मरे हुए कौरवोंका दर्शन कराना) सूतजी बोले—हे मुनिसत्तमगण ! सामान्यरूपसे उन पाँचों पांडवोंकी पत्नी पतिव्रता द्रौपदी थीं । उन पाँचों पतियों द्वारा द्रौपदीके गर्भसे अतीव सुन्दर पाँच पुत्र उत्पन्न हुए ॥१॥ श्रीकृष्णकी सुशील और सुंदरी बहिन सुभद्रा भी अर्जुनकी पत्नी थीं । भगवानकी सलाहसे अर्जुन उसे हर लाये थे ॥ २ ॥ सुभद्राके गर्भसे वीर अभिमन्युका जन्म हुआ, जो महाभारतकी युद्धभूमिमें मारे गये और उसी संग्राममें द्रौपदीके भी पाँचों पुत्रोंको वीरगति प्राप्त हुई

तैस्तु कथितं नः सुताः किल ॥ भीष्मेण सत्कृतं वाक्यं देवानां सत्कृताः सुताः ॥ ६९ ॥ गता नागपुरं सर्वे तानादाय सुतान्वधूम् ॥ भीष्मादयः प्रीतचित्ताः पालयामासुरर्थतः ॥ एवं पार्थाः समुत्पन्ना गांगेयेनाथ पालिताः ॥७०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सूत उवाच ॥ पञ्चानां द्रौपदी भार्या सामान्या सा पतिव्रता ॥ पञ्च पुत्रास्तु तस्याः स्युर्भर्तृभ्योऽतीव सुन्दराः ॥ १ ॥ अर्जुनस्य तथा भार्या कृष्णस्य भगिनी शुभा ॥ सुभद्रा या हृता पूर्वं जिष्णुना हरिसम्मते ॥ २ ॥ तस्यां जातो महावीरो निहतोऽसौ रणाजिरे ॥ अभिमन्युर्हतस्तत्र द्रौपद्याश्च सुताः किल ॥ ३ ॥ अभिमन्योर्वरा भार्या वैराटी चातिसुन्दरी ॥ कुलांते सुषुवे पुत्रं मृतो बाणाग्निना शिशुः ॥ ४ ॥ जीवितः स तु कृष्णेन भागिनेयसुतः स्वयम् ॥ द्रौणिबाणाग्निनिर्दग्धः प्रतापेनाद्भुतेन च ॥ ५ ॥ परिक्षीणेषु वंशेषु जातो यस्माद्वरः सुतः ॥ तस्मात्परीक्षितो नाम विख्यातः पृथिवीतले ॥ ६ ॥ निहतेषु च पुत्रेषु धृतराष्ट्रोऽतिदुःखितः ॥ तस्थौ पांडवराज्ये च भीमवाग्बाणपीडितः ॥ ७ ॥ गांधारी च तथाऽतिष्ठत्पुत्रशोकातुरा भृशम् ॥ सेवां तयोर्दिवारात्रं चकारार्तो युधिष्ठिरः ॥ ८ ॥ विदुरोप्यतिधर्मात्मा प्रज्ञानेत्रमबोधयत् ॥ युधिष्ठिरस्यानुमते भ्रातृपार्श्वे व्यतिष्ठत ॥ ९ ॥ धर्मपुत्रोऽपि धर्मात्मा चकार सेवनं पितुः ॥ पुत्रशोकोद्भवं दुःखं तस्य विस्मारयन्निव ॥ १० ॥ यथा शृणोति वृद्धोऽसौ

॥३॥ वीर अभिमन्युकी स्त्री राजा विराटकी पुत्री अतीव सुंदरी उत्तरा थी । महाभारतके युद्धमें जब समस्त कुलका संहार हो गया, तब उसने एक पुत्र उत्पन्न किया । किंतु अश्वत्थामाने बाणाग्निसे जलाकर उसे भी मार डाला ॥४॥ बादमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणाग्निसे मरे हुए भांजेको भगवान कृष्णने अपने अद्भुत प्रतापसे पुनः जीवित कर दिया ॥५॥ समस्त कौरववंशके परिक्षीण हो जानेपर वह बालक उत्पन्न हुआ था । अतएव पृथिवीतलमें वह परीक्षित नामसे विख्यात हुआ ॥६॥ अपने सौ पुत्रोंके मर जानेपर धृतराष्ट्र बहुत दुखी रहकर भीमके व्यङ्ग्यबाण सहते हुए पाण्डवोंके राज्यमें रहने लगे ॥ ७ ॥ पुत्रशोकसे व्याकुल गांधारी भी किसी प्रकार जीवन यापन करती थी, इन्हीं विपत्तियोंसे दुखी युधिष्ठिर उन दोनोंकी सेवा करते थे ॥ ८ ॥ अतिशय धर्मात्मा विदुर भी प्रज्ञाचक्षु (अंधे) धृतराष्ट्रको ज्ञानकी बातें बताते हुए युधिष्ठिरकी सलाहसे उनके साथ ही रहते थे ॥ ९ ॥ धर्मराजके पुत्र युधिष्ठिर भी अपने चाचा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धृतराष्ट्रकी इसलिए बड़ी तन्मयताके साथ सेवा करते थे कि जिससे उनका पुत्रशोकजनित दुःख भूल जाय ॥१०॥ किंतु भीम अत्यन्त क्रुद्ध होकर सब लोगोंके समक्ष धृतराष्ट्रको सुनाते हुए बराबर उनपर अपने वचनरूपी बाणोंका प्रहार करते रहते थे ॥११॥ वे कहते थे कि मैंने इस दुष्ट अन्धेके सभी पुत्रोंको रणभूमिमें मार डाला और पापी दुःशासनके कलेजेका खून खूब जी भरकर पिया ॥ १२ ॥ अब यह अंधा निर्लज्ज बनकर हमारे द्वारा दिये टुकड़े खाता हुआ कौओं और कुत्तोंकी तरह जी रहा है ॥ १३ ॥ ऐसी-ऐसी जली-कटी बातें वे प्रतिदिन सुनाया करते थे। किंतु धर्मात्मा युधिष्ठिर धृतराष्ट्रको आश्वासन देते हुए कहते थे कि भीम मूर्ख है। उसकी बातोंपर ध्यान न दीजिए ॥ १४ ॥ इस प्रकार धृतराष्ट्रने अठारह वर्ष तक बड़े कष्टके साथ समय बिताया। इसके बाद उन्होंने युधिष्ठिरसे प्रार्थना की कि आप हमें वनमें जाकर रहनेकी अनुमति दे दीजिए ॥ १५ ॥ उन्होंने युधिष्ठिरसे यह भी कहा कि मैं अपने मृत पुत्रोंको विधिवत् पिण्डदान देना चाहता हूँ ॥ १६ ॥ क्योंकि भीमने सब मृतकोंका तो और्ध्वदैहिक कर्म कर दिया, किंतु पूर्व वैरका स्मरण करके मेरे पुत्रोंके लिए कुछ नहीं

तथा भीमोऽतिरोषितः ॥ वाग्बाणेनाहनत्तं तु श्रावयन्संस्थिताञ्जनान् ॥ ११ ॥ मया पुत्रा हताः सर्वे दुष्टस्यांधस्य ते रणे ॥ दुःशासनस्य रुधिरं पीतं हृद्यं तथा भृशम् ॥ १२ ॥ भुनक्ति पिण्डमन्धोऽयं मया दत्तं गतत्रपः ॥ ध्वांक्षवद्वा श्ववच्चापि वृथा जीवत्यसौ जनः ॥ १३ ॥ एवंविधानि रूक्षाणि श्रावयत्यनुवासरम् ॥ आश्वासयति धर्मात्मा मूर्खोऽयमिति च ब्रुवन् ॥ १४ ॥ अष्टादशैव वर्षाणि स्थित्वा तत्रैव दुःखितः ॥ धृतराष्ट्रो वने यानं प्रार्थयामास धर्मजम् ॥ १५ ॥ अयाचत धर्मपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ पुत्रेभ्योऽहं ददाम्यद्य निर्वापं विधिपूर्वकम् ॥ १६ ॥ वृकोदरेण सर्वेषां कृतमत्रौर्ध्वदैहिकम् ॥ न कृतं मम पुत्राणां पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ १७ ॥ ददासि चेद्धनं मह्यं कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम् ॥ गमिष्येऽहं वनं तप्तुं तपः स्वर्गफलप्रदम् ॥ १८ ॥ एकान्ते विदुरेणोक्तो राजा धर्मसुतः शुचिः ॥ धनं दातुं मनश्चक्रे धृतराष्ट्राय चार्थिने ॥ १९ ॥ समाहूय निजान्सर्वानुवाच पृथिवीपतिः ॥ धनं दास्ये महाभागाः पित्रे निर्वापकामिने ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं भ्रातुर्ज्येष्ठस्यामिततेजसः ॥ संग्रहेऽस्य महाबाहुर्मारुतिः कुपितोऽब्रवीत् ॥ २१ ॥ धनं देयं महाभाग दुर्योधनहिताय किम् ॥ अन्धोऽपि सुखमाप्नोति मूर्खत्वं किमतः परम् ॥ २२ ॥ तव दुर्मन्त्रितेनाथ दुःखं प्राप्ता वने वयम् ॥ द्रौपदी च महाभागा समानीता दुरात्मना ॥ २३ ॥ विराटभवने वासः प्रासादात्तव सुव्रत ॥ दासत्वं च कृतं सर्वैर्मत्स्यस्या-

किया ॥१७॥ अतएव आप यदि कुछ धन दे दें तो मैं अपने पुत्रोंका क्रियाकर्म करके तप करनेके लिए वनको चला जाऊँ। क्योंकि तपस्यासे स्वर्ग मिलता है ॥१८॥ विदुरने भी एकान्तमें युधिष्ठिरसे मिलकर धृतराष्ट्रके प्रस्तावका समर्थन किया। जिससे युधिष्ठिर उन्हें धन देनेको राजी हो गये ॥ १९ ॥ तत्पश्चात् युधिष्ठिरने परिवारके सब लोगोंको बुलाकर कहा—हे महाभागगण! पुत्रोंका श्राद्धादि कर्म करनेके लिए मैं अपने चाचाको कुछ धन देना चाहता हूँ ॥२०॥ अमित तेजस्वी भ्राता युधिष्ठिरका वचन सुनकर वायुपुत्र महाबाहु भीम अतिशय कुपित होकर कहने लगे—हे धर्मराज! दुर्योधनकी भलाईके लिए राजकोषका धन क्यों दिया जाय? इस अंधे धृतराष्ट्रको सुख देनेसे बढ़कर मूर्खता और क्या होगी? ॥ २१ ॥ २२ ॥ आपको कुत्सित मंत्रणासे ही हमें वनवासका दुःख सहना पड़ा और महारानी द्रौपदीका भीषण अपमान हुआ ॥ २३ ॥ हे सुव्रत! आपकी ही कृपासे हमें राजा विराटके घर रहना पड़ा और हम असा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धारण वीर पुरुषोंको मत्स्यदेशके राजाकी सेवकाई करनी पड़ी ।। २४ ।। हम सबके ज्येष्ठ भ्राता आप यदि जुआड़ी न होते तो हमारे कुलका नाश न होता । मगधराज जरासंधका वध करनेवाले मुझ वीरको राजा विराटकी रसोईदारी करनी पड़ी ।। २५ ।। आपकी ही गलती से इन्द्रपुत्र महाबाहु अर्जुनको राजा विराटकी संतानोंको नृत्यशिक्षा देनेके लिए बृहन्नला (नचनियाँ) दासीका वेष बनाना पड़ा ।।२६।। गाण्डीव धनुषसे शोभित उनके दोनों हाथोंको कंकण (चूड़ी) पहनना पड़ा। मानव तन पाकर इससे बड़ा कष्ट और क्या हो सकता है ? ।।२७।। अर्जुनके मस्तकपर चोटी और नेत्रोंमें काजलकी बात याद आती है तो यही जी करता है कि तलवार लेकर अभी मैं इस अंधेकी गर्दन काट लूँ । किसी अन्य उपायसे मुझे सुख-शांति नहीं मिल सकती ।। २८ ।। उस पापी दुर्योधनने धृतराष्ट्रसे पूछे बिना ही हम सबको जला डालनेके विचारसे लाक्षागृहमें रहनेको भेज दिया । संयोगवश हम बच गये और उसका मित्र पुरोचन उसमें जल मरा ।। २९ ।। हे राजन् ! जिस प्रकार आपसे सलाह लिये बिना ही मैंने राजा विराटके साले कीचक तथा उसके साथियोंको मार डाला, उसी प्रकार स्त्री-पुत्र समेत

मितविक्रमैः ।। २४ ।। देविता त्वं न चेज्ज्येष्ठः प्रभवेत्संक्षयः कथम् ।। सूपकारो विराटस्य हत्वाऽभूवं तु मागधम् ।। २५ ।। बृहन्नला कथं जिष्णुर्भवेद्बालस्य नर्तकः ।। कृत्वा वेषं महाबाहुर्योषाया वासवात्मजः ।। २६ ।। गांडीवशोभितौ हस्तौ कृतौ कङ्कणशोभितौ ।। मानुषं च वपुः प्राप्य किं दुःखं स्यादतः परम् ।। २७ ।। दृष्ट्वा वेणीं कृतां मूर्ध्नि कज्जलं लोचने तथा ।। असिं गृहीत्वा तरसा छेद्मयहं नान्यथा सुखम् ।। २८ ।। अपृष्ट्वा च महीपालं निक्षिप्तोऽग्निर्मया गृहे ।। दग्धुकामश्च पापात्मा निर्दग्धोऽसौ पुरोचनः ।। २९ ।। कीचका निहताः सर्वे त्वामपृष्ट्वा जनाधिप ।। न तथा निहताः सर्वे सभार्या धृतराष्ट्रजाः ।। ३० ।। मूर्खत्वं तव राजेन्द्र गन्धर्वेभ्यश्च मोचिताः ।। दुर्योधनादयः कामं शत्रवो निगडीकृताः ।। ३१ ।। दुर्योधनहितायाद्य धनं दातुं त्वमिच्छसि ।। नाहं ददे महीपाल सर्वथा प्रेरितस्त्वया ।। ३२ ।। इत्युक्त्वा निर्गते भीमे त्रिभिः परिवृतो नृपः ।। ददौ वित्तं सुबहुलं धृतराष्ट्राय धर्मजः ।। ३३ ।। कारयामास विधिवत्पुत्राणां चौर्ध्वदैहिकम् ।। ददौ दानानि विप्रेभ्यो धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।। ३४ ।। कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं गांधारीसहितो नृपः ।। प्रविवेश वनं तूर्णं कुंत्या च विदुरेण च ।। ३५ ।। संजयेन परिज्ञातो निर्गतोऽसौ महामतिः ।। पुत्रैर्निवार्यमाणोऽपि शूरसेनसुता गता ।। ३६ ।। विलपन्भीमसेनोऽपि तथाऽन्ये चापि कौरवाः ।। गङ्गातीरात्परावृत्य ययुः सर्वे गजाह्वयम् ।। ३७ ।। ते

दुर्योधन तथा उसके सब भाइयोंको मैंने नहीं मार पाया, यह टीस अब भी मेरे हृदयमें उठती रहती है ।।३०।। हे राजेन्द्र ! दुर्योधन आदि मेरे सभी शत्रुओंको जब गन्धर्वोंने कैद कर लिया था, तब आपने ही उन्हें छुड़ा दिया । यह आपकी ही मूर्खता थी ।। ३१ ।। उसी दुष्ट दुर्योधनके कल्याणार्थ आप धन देनेकी बात कहते हैं ? हे महीपाल ! आप चाहे कितना ही जोर लगायें, फिर भी मैं उन्हें धन नहीं देने दूँगा ।।३२।। ऐसा कहकर भीम वहाँसे चले गये । तब युधिष्ठिरने अर्जुन, नकुल तथा सहदेवसे परामर्श करके धृतराष्ट्रको प्रचुर धन दे दिया । तदनन्तर अम्बिकातनय धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंका विधिवत् प्रेतकृत्य कराया और ब्राह्मणोंको यथेष्ट दान दिया ।।३३।।३४।। इस प्रकार और्ध्वदैहिक कर्म करके गांधारी, कुंती और विदुरके साथ धृतराष्ट्र वनको चल पड़े ।। ३५ ।। सञ्जयके द्वारा जब कुंतीको समाचार मिला कि परम बुद्धिमान् धृतराष्ट्र वनको जा रहे हैं, तब अपने युधिष्ठिर आदि पुत्रोंके रोकनेपर भी वह उनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ चल पड़ी ॥ ३६ ॥ तब भीमसेन तथा अन्यान्य कौरव विलाप करते हुए उनके साथ चले और गङ्गातटपर पहुँचाकर फिर हस्तिनापुर लौट आये ॥ ३७ ॥ वे धृतराष्ट्र आदि वहाँसे चलकर गङ्गातटवर्ती शतयूप आश्रमपर पहुँचे और वहाँ ही पर्णकुटी बनाकर रहते हुए तप करने लगे ॥ ३८ ॥ धृतराष्ट्र आदि तपस्वियोंके चले जानेपर जब छः साल बीत गये, तब उनके वियोगसे दुःखी युधिष्ठिरने अपने भाइयोंसे कहा—॥ ३९ ॥ मैंने स्वप्नमें देखा है कि वनमें रहती हुई माता कुंती बहुत दुर्बल हो गयी हैं। अतएव मेरी इच्छा है कि मैं जाकर माता कुन्ती तथा अपने चाचा-चाचीको देख आऊँ ॥ ४० ॥ महात्मा विदुर और महाबुद्धिमान् संजयसे भी मिलनेकी आकांक्षा है। मेरा ऐसा विचार है कि आप लोगोंको मेरी बात जँचे तो हम सब लोग उनसे मिलने चलें ॥४१॥ तदनन्तर वे पाँचो भाई, सुभद्रा, द्रौपदी, महाभागा उत्तरा तथा अन्यान्य नागरिक ये सब पाण्डवोंके साथ शतयूप आश्रममें जा पहुँचे और वहाँ-पर सब लोगोंका दर्शन किया, किन्तु उन्हें जब वहाँ विदुरजी नहीं दिखायी दिये तो उन्होंने धृतराष्ट्रसे पूछा कि विदुरजी कहाँ हैं ? उन्होंने उत्तर दिया कि विदुर विरक्त तथा निष्काम हो

गत्वा जाह्ववीतीरे शतयूपाश्रमं शुभम् ॥ कृत्वा तृणैः कुटीं तत्र तपस्तेपुः समाहिताः ॥ ३८ ॥ गतान्यब्दानि षट् तेषां यदा याता हि तापसाः ॥ युधिष्ठिरस्तु विरहात्तनुजानिदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ स्वप्ने दृष्टा मया कुन्ती दुर्बला वनसंस्थिता ॥ मनो मे जायते द्रष्टुं मातरं पितरौ तथा ॥ ४० ॥ विदुरं च महात्मानं संजयं च महामतिम् ॥ रोचते यदि वः सर्वान्व्रजाम इति मे मतिः ॥ ४१ ॥ ततस्ते भ्रातरः सर्वे सुभद्रा दौपदी तथा ॥ वैराटी च महाभागा तथा नागरिको जनः ॥ ४२ ॥ प्राप्ताः सर्वजनैः सार्धं पांडवा दर्शनोत्सुकाः ॥ शतयूपाश्रमं प्राप्य ददृशुः सर्व एव ते ॥ ४३ ॥ विदुरो न यदा दृष्टो धर्मस्तं पृष्टवांस्तदा ॥ कास्ते स विदुरो धीमाँस्तामुवाचांबिकासुतः ॥ ४४ ॥ विरक्तश्चरते क्षत्ता निरीहो निष्प-रिग्रहः ॥ कुतोऽप्येकांतसंवासी ध्यायतेऽन्तः सनातनम् ॥ ४५ ॥ गंगां गच्छन्द्वितीयेऽह्नि वने राजा युधिष्ठिरः ॥ ददर्श विदुरं क्षामं तपसा संशितव्रतम् ॥४६॥ दृष्ट्वोवाच महीपालो वंदेऽहं त्वां युधिष्ठिरः ॥ तस्थौ श्रुत्वा च विदुरः स्थाणुभूत इवानघः ॥ ४७ ॥ क्षणेन विदुरस्यास्यान्निः-सृतं तेज अद्भुतम् ॥ लीनं युधिष्ठिरस्यास्ये धर्मांशत्वात्परस्परम् ॥ ४८ ॥ क्षत्ता जहौ तदा प्राणाञ्छुशोचातियुधिष्ठिरः ॥ दाहार्थं तस्य देहस्य कृतवानुद्यमं नृपः ॥ ४९ ॥ शृण्वतस्तु तदा राज्ञो वागुवाचाशरीरिणी ॥ विरक्तोऽयं न दाहार्हो यथेष्टं गच्छ भूपते ॥ ५० ॥ श्रुत्वा ते भ्रातरः

और सबकी माया-ममता त्यागकर कहीं एकांतमें मन ही मन सनातन भगवानका ध्यान कर रहे होंगे ॥४२–४५॥ दूसरे दिन जब युधिष्ठिर गङ्गाजीकी ओर चले, तब वनमें एक जगह व्रत धारण करनेके कारण अतिशय दुर्बल विदुरजीको देखा ॥४६॥ उन्होंने देखकर कहा—मैं युधिष्ठिर आपको नमस्कार करता हूँ। यह सुनकर भी विदुरजी खम्भेकी तरह चुपचाप बैठे रह गये ॥४७॥ क्षण ही भर बाद विदुरजीके मुखसे एक प्रकारका अद्भुत तेज निकला और युधिष्ठिरके मुखमें समा गया। क्योंकि वे दोनों ही धर्मराजके अंशावतार थे ॥ ४८ ॥ विदुरके प्राण त्यागनेपर युधिष्ठिरने बहुत रोदन किया। इसके बाद उनका दाहसंस्कार करनेके लिए सामग्री एकत्र करने लगे ॥ ४९ ॥ उसी समय राजा युधिष्ठिरको सुनाती हुई यह आकाशवाणी हुई कि विदुरजी विरक्त थे। अतएव उनका दाहसंस्कार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अब आप चले जाइए ॥५०॥ यह आकाशवाणी सुनकर वे सब भाई गङ्गाजीके तटपर गये और निर्मल जलमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्नान किया। वहाँसे लौटकर उन्होंने धृतराष्ट्रको विस्तारपूर्वक सब वृत्तांत बताया ॥ ५१ ॥ इसके बाद सब पाण्डव और नागरिकगण उसी आश्रममें बैठ गये। उसी समय सत्यवती-तनय व्यासजी तथा नारदजी वहाँ जा पहुँचे ॥ ५२ ॥ बहुतेरे अन्य मुनि और महात्मागण भी युधिष्ठिरजीके पास आगये। जब शुभदर्शन व्यासजी बैठ गये, तब कुंतीने कहा—॥५३॥ हे कृष्ण (व्यासजी) ! जन्मके समय ही मैंने कर्णको देखा था। उसे देखनेके लिए मेरा जी तड़प रहा है। अतएव हे तपोधन ! कृपया एक बार आप उसे दिखा दीजिये ॥ ५४ ॥ हे महाभाग ! आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। अतएव हे प्रभो ! मेरी यह इच्छा पूर्ण कर दीजिए। गान्धारी बोली–हे मुने! संग्रामभूमिमें जाते समय मैंने दुर्योधनको नहीं देखा था ॥५५॥ सो हे मुनिश्रेष्ठ! अपने छोटे भाइयों समेत दुर्योधनको मुझे दिखा दीजिए। सुभद्रा बोली—प्राणोंसे भी अधिक प्रिय पुत्र अभिमन्युको मैं देखना चाहती हूँ। हे सर्वज्ञ ! हे तपोधन ! आप उसको

सर्वे सस्नुर्गङ्गाजलेऽमले ॥ गत्वा निवेदयामासुर्धृतराष्ट्राय विस्तरात् ॥ ५१ ॥ स्थितास्तत्राश्रमे सर्वे पांडवा नागरैः सह ॥ तत्र सत्यवतीसूनु-र्नारदश्च समागतः ॥ ५२ ॥ मुनयोऽन्ये महात्मानश्चागता धर्मनन्दनम् ॥ कुन्ती प्राह तदा व्यासं संस्थितं शुभदर्शनम् ॥ ५३ ॥ कृष्ण कर्णस्तु पुत्रो मे जातमात्रस्तु वीक्षितः ॥ मनो मे तप्यते तीव्रं दर्शयस्व तपोधन ॥ ५४ ॥ समर्थोऽसि महाभाग कुरु मे वांछितं प्रभो ॥ गांधार्यु-वाच ॥ दुर्योधनो रणेऽगच्छद्वीक्षितो न मया मुने ॥ ५५ ॥ तं दर्शय मुनिश्रेष्ठ पुत्रं मे त्वं सहानुजम् ॥ सुभद्रोवाच ॥ अभिमन्युं महावीरं प्राणादप्यधिकं प्रियम् ॥ ५६ ॥ द्रष्टुकामाऽस्मि सर्वज्ञ दर्शयाद्य तपोधन ॥ एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा सत्यवतीसुतः ॥ ५७ ॥ प्राणायामं ततः कृत्वा दध्यौ देवीं सनातनीम् ॥ सन्ध्याकालेऽथ संप्राप्ते गङ्गायां मुनिसत्तमः ॥ ५८ ॥ सर्वांस्तांश्च समाहूय युधिष्ठिरपुरोगमान् ॥ तुष्टाव विश्वजननीं स्नात्वा पुण्यसरिज्जले ॥ ५९ ॥ प्रकृतिं पुरुषारामां सगुणां निर्गुणां तथा ॥ देवदेवीं ब्रह्मरूपां मणिद्वीपाधिवासिनीम् ॥ ६० ॥ यदा न वेधा न च विष्णुरीश्वरो न वासवो नैव जलाधिपस्तथा ॥ न वित्तपो नैव यमश्च पावकस्तदाऽसि देवि त्वमहं नमामि ताम् ॥ ६१ ॥ जलं न वायुर्न धरा न चांबरं गुणा न तेषां च न चेंद्रियाण्यहम् ॥ मनो न बुद्धिर्न च तिग्मगुः शशी तदाऽसि देवि त्वमहं नमामि ताम् ॥ ६२ ॥ इमं जीवलोकं समाधाय चित्ते गुणैर्लिङ्गकोशं च नीत्वा समाधौ ॥ स्थिता कल्पकालं नयस्यात्मतन्त्रा न कोऽप्यस्ति वेत्ता विवेकं गतोऽपि ॥ ६३ ॥ प्रार्थय-

दिखा दीजिए। सूतजी बोले—सत्यवतीतनय व्यासजीने उन सबकी बातें सुनीं तो प्राणायाम करके सनातनी भगवतीका ध्यान किया। सायंकालके समय व्यासजीने युधिष्ठिर आदि सब लोगोंको गङ्गाजीके तटपर बुलाया और गंगाजीके पावन जलमें स्नान करके विश्वजननी भगवतीकी स्तुति करने लगे ॥५६–५९॥ उन्होंने कहा—हे माता ! आप प्रकृति तथा पुरुष दोनों-को प्रसन्न करनेवाली, सगुण तथा निर्गुणस्वरूप देवताओंकी देवी, ब्रह्मरूपिणी तथा मणिद्वीपनिवासिनी हैं ॥ ६० ॥ जब ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, कुबेर, यम तथा अग्नि कोई नहीं था, तब भी आप विद्यमान थीं। ऐसी सर्वकालव्यापिनी देवीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६१॥ जब जल, वायु, पृथिवी, आकाश तथा उनके गुण रस, स्पर्श, गन्ध और शब्द, सभी इन्द्रियाँ अहंकार, मन, बुद्धि, सूर्य तथा चन्द्रमा कोई नहीं था। तब भी हे देवि ! आप विराजमान थीं। अतएव मैं आपको नमन करता हूँ ॥६२॥ समस्त जीवोंको अपने चित्तमें स्थापित करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्त्व-रज आदि गुणों समेत लिङ्गकोषको सुषुप्तिके द्वारा साम्यावस्थामें पहुँचाकर जब आप कल्पपर्यन्त स्वच्छंदतापूर्वक विहार करती हैं, तब बड़े-बड़े ज्ञानी भी आपका तत्त्व नहीं जान पाते ॥ ६३ ॥ हे माताजी ! ये लोग मृत व्यक्तियोंका दर्शन करना चाहते हैं, किंतु मुझमें ऐसा करनेकी सामर्थ्य नहीं है। अतएव आप शीघ्र उन मरे हुए लोगोंको इन्हें दिखा दीजिए ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले—जब व्यासजीने इस प्रकार स्तुति की, तब महामाया भुवनेश्वरी देवीने सभी मरे हुए लोगोंको स्वर्गसे बुलाकर उनके स्वजनोंको दिखा दिया ॥ ६५ ॥ कुंती, गांधारी, सुभद्रा, उत्तरा और सब पाण्डव अपने स्वजनोंको देखकर व्याकुल हो गये ॥ ६६ ॥ तब अमित तेजस्वी व्यासजीने महामाया देवीका स्मरण करके जादूगरके खेलकी तरह आये हुए मृत स्वजनोंको फिर लौटा दिया ॥ ६७ ॥ तदनन्तर धृतराष्ट्र आदि तापसोंसे विदा लेकर पाण्डव तथा मुनिजन वहाँसे चल पड़े। राजा युधिष्ठिर रास्तेमें व्यासजीकी चर्चा करते हुए हस्तिनापुरको चले गये ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

त्येष मां लोको मृतानां दर्शनं पुनः ॥ नाहं क्षमोऽस्मि मातस्त्वं दर्शयाशु जनान्मृतान् ॥ ६४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी माया श्रीभुवनेश्वरी ॥ स्वर्गादाहूय सर्वान् वै दर्शयामास पार्थिवान् ॥ ६५ ॥ दृष्ट्वा कुन्ती च गांधारी सुभद्रा च विराटजा ॥ पांडवा मुमुहुः सर्वे वीक्ष्य प्रत्यागतान्स्वकान् ॥ ६६ ॥ पुनर्विसर्जितास्तेन व्यासेनामिततेजसा ॥ स्मृत्वा देवीं महामायामिंद्रजालमिवोद्यतम् ॥ ६७ ॥ तदा पृष्ट्वा ययुः सर्वे पांडवा मुनयस्तथा ॥ राजा नागपुरं प्राप्तः कुर्वन्व्यासकथां पथि ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ सूत उवाच ॥ ततो दिने तृतीये च धृतराष्ट्रः स भूपतिः ॥ दावाग्निना वने दग्धः सभार्यः कुंतिसंयुतः ॥ १ ॥ संजयस्तीर्थयात्रायां गतस्त्यक्त्वा महीपतिम् ॥ श्रुत्वा युधिष्ठिरो राजा नारदाद्दुःखमाप्तवान् ॥ २ ॥ षट्त्रिंशेऽथ गते वर्षे कौरवाणां क्षयात्पुनः ॥ प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः ॥ ३ ॥ ते पीत्वा मदिरां मत्ताः कृत्वा युद्धं परस्परम् ॥ क्षयं प्राप्ता महात्मानः पश्यतो रामकृष्णयोः ॥ ४ ॥ देहं तत्याज रामस्तु कृष्णः कमललोचनः ॥ व्याधबाणहतः शापं पालयन्भगवान्हरिः ॥५॥ वसुदेवस्तु तच्छ्रुत्वा देहत्यागं हरेरथ ॥ जहौ प्राणञ्छुचीन्कृत्वा चित्ते श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ ६ ॥ अर्जुनस्तु ततो गत्वा प्रभासे चातिदुःखितः ॥ संस्कारं तत्र सर्वेषा यथायोग्यं चकार ह ॥ ७ ॥ समीक्ष्याथ हरेर्देहं कृत्वा

(यादवोंका पतन तथा राजा परीक्षितको शापकी प्राप्ति) सूतजी बोले—हे मुनिवृन्द ! पाण्डवोंके चले जानेपर तीसरे ही दिन उस वनमें दावाग्नि लग गयी। उसीमें कुंती तथा गांधारी समेत धृतराष्ट्र जलकर मर गये ॥ १ ॥ सञ्जय पहले ही धृतराष्ट्रको छोड़कर तीर्थयात्राके लिए चल पड़े थे। महाराज युधिष्ठिरने जब नारदजीके मुखसे यह समाचार सुना तो बहुत दुखी हुए ॥ २ ॥ महाभारतके युद्धमें कौरवोंका विनाश होनेके छत्तीस वर्ष बाद एक ब्राह्मणके शापसे सब यादव भी नष्ट हो गये ॥ ३ ॥ वे सभी यादववीर मदिरा पीकर मस्त हो गये और परस्पर लड़कर श्रीबलराम तथा भगवान कृष्णके सामने ही मर मिटे ॥ ४ ॥ तब बलरामजीने योगबल द्वारा शरीर त्याग दिया और भगवान कृष्ण शापका पालन करते हुए एक बहेलियेके बाणसे घायल होकर परम धामको सिधारे ॥ ५ ॥ वसुदेवजीने जब श्रीकृष्णकी परमधाम-यात्राका हाल सुना तो श्रीभुवनेश्वरी देवीके ध्यान द्वारा अपने प्राणोंको पवित्र करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्याग दिया ॥६॥ तदनन्तर अर्जुन बहुत दुखी होते हुए प्रभासक्षेत्र गये और वहाँ उन्होंने यादवोंका यथोचित प्रेतसंस्कार कराया ॥७॥ भगवान कृष्णका शरीर खोजकर उन्होंने लकड़ी जुटायी और राजपुत्रों द्वारा उनकी आठ पटरानियोंके साथ उनका दाहसंस्कार कराया ॥ ८ ॥ तत्पश्चात् महारानी रेवतीके साथ बलरामजीका दाहसंस्कार कराया। इसके बाद अर्जुन द्वारका गये और वहाँके नागरिकोंको हटाकर वह नगरी खाली करायी ॥ ९ ॥ कुछ ही देर बाद समुद्रने उस पुरीको बहाकर आत्मसात् कर लिया। किंतु अर्जुन सब लोगोंको लेकर निकल आये ॥ १० ॥ मार्गमें चोरों और भीलोंने भगवान कृष्णकी रानियोंको लूटकर सब धन छीन लिया, किंतु अर्जुन कुछ नहीं कर सके। जैसे वे एकदम निस्तेज हो गये थे ॥११ इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली पहुँचकर अमिततेजस्वी अर्जुनने अनिरुद्धके पुत्र वज्रको यादवोंका राजा बनाया ॥ १२ ॥ इसके बाद अर्जुनने व्यासजीके पास जाकर अपने तेजहीन होनेका वृत्तान्त बताया। व्यासजीने कहा—हे महामते ! जब भगवान कृष्ण फिर अवतार लेंगे, तब तुम भी जन्म लोगे ॥ १३ ॥ उस युगमें तुम्हारा तेज बहुत उग्र होगा। व्यासजीका वचन

काष्ठस्य संचयम् ॥ अष्टभिः सह पत्नीभिर्दाहयामास पार्थिवः ॥ ८ ॥ देहं रामस्य रेवत्या सह दग्ध्वा विभावसौ ॥ अर्जुनो द्वारकामेत्य पुरान्निष्काम-यज्जनम् ॥ ९ ॥ पुरी सा वासुदेवस्य प्लावितोदधिना ततः ॥ अर्जुनः सर्वलोकान्वै गृहीत्वा निर्गतस्तदा ॥ १० ॥ कृष्णपत्न्यस्तदा मार्गे चौराभी-रैश्च लुण्ठिताः ॥ धनं सर्वं गृहीतं च निस्तेजश्चार्जुनोऽभवत् ॥ ॥ ११ ॥ इन्द्रप्रस्थे समागत्य वज्रो राजा कृतस्तदा ॥ अनिरुद्धसुतो नाम्ना पार्थेनामिततेजसा ॥ १२ ॥ व्यासाय कथितं दुःखं तेनोक्तोऽसौ महारथः ॥ पुनर्यदा हरिस्त्वं च भविताऽसि महामते ॥ १३ ॥ तदा तेजस्तवा-त्युग्रं भविष्यति पुनर्युगे ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं पार्थो गत्वा नागपुरेऽर्जुनः ॥ १४ ॥ दुःखितो धर्मराजानं वृत्तान्तं सर्वमब्रवीत् ॥ देहत्यागं हरेः श्रुत्वा यादवानां क्षयं तथा ॥ १५ ॥ गमनाय मतिं चक्रे राजा हैमाचलं प्रति ॥ षट्त्रिंशद्वार्षिकं राज्ये स्थापयित्वोत्तरासुतम् ॥ १६ ॥ निर्जगाम वनं राजा द्रौपद्या भ्रातृभिः सह ॥ षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणि कृत्वा राज्यं गजाह्वये ॥ १७ ॥ गत्वा हिमाचले षट् ते जहुः प्राणान्पृथासुताः ॥ परीक्षिदपि राजर्षिः प्रजाः सर्वाः सुधार्मिकः ॥ १८ ॥ अपालयच्च राजेन्द्रः षष्टिवर्षाण्यतंद्रितः ॥ बभूव मृगयाशीलो जगाम च वनं महत् ॥ १९ ॥ विद्धं मृगं विचिन्वानो मध्याह्ने भूपतिः स्वयम् ॥ तृषितश्च परिश्रान्तः क्षुधितश्चोत्तरासुतः ॥ २० ॥ राजा घर्मेण संतप्तो ददर्श मुनिमन्तिके ॥ स्थितं मुनिं

सुनकर उन्हें कुछ सान्त्वना मिली और वे वहाँसे चलकर हस्तिनापुर जा पहुँचे ॥ १४ ॥ वहाँ बहुत दुःखी होकर उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरको सब वृत्तान्त बताया। भगवान कृष्णके देहत्याग तथा यादवोंके विनाशका शोकभरा समाचार सुनकर राजा युधिष्ठिरने हिमाचल जानेका विचार स्थिर कर लिया। तदनुसार उन्होंने छत्तीस वर्षके उत्तरातनय परीक्षितका राज्या-भिषेक कर दिया ॥१५॥१६॥ इसके वाद धर्मराज युधिष्ठिर द्रौपदी तथा सब भाइयोंको साथ लेकर वनको चल पड़े। इस प्रकार छत्तीस वर्षतक हस्तिनापुरमें राज्य करनेके बाद हिमवान् पर्वतपर जाकर उन सब पाण्डवोंने शरीर त्याग किया। परम धर्मात्मा राजर्षि परीक्षित्ने भी साठ वर्षों तक भली भाँति प्रजाका पालन किया। उसके बाद उन्हें शिकारका शौक हुआ और वे एक बीहड़ वनमें चले गये ॥१७-१९॥ वहाँ उन्होंने एक मृगपर बाण चलाया, पर वह भाग निकला। उस घायल मृगको खोजते-खाजते दोपहर हो गया और महाराज भूख-प्यास तथा थकावट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बेचैन हो उठे ॥२०॥ धूपसे झुलसे हुए राजाने पास ही एक मुनिको विराजमान देखा। मुनिजी उस समय ध्यानमग्न थे। तभी व्याकुल राजाने पास पहुँचकर उनसे जल माँगा॥ २१॥ किन्तु वे मुनि कुछ नहीं बोले। इससे राजाका क्रोध भभक उठा और प्याससे पीड़ित राजर्षिने अपने धनुषकी नोकसे एक मरा हुआ सर्प उठाकर उनके गलेमें डाल दिया। क्योंकि उस समय उनके चित्तमें कलि घर कर चुका था। इस प्रकार सर्प डालनेपर भी मुनिराज कुछ नहीं बोले॥ २२॥ २३॥ वे तब भी समाधिस्थ बने रहे। तब महाराज परीक्षित् अपने घर चले आये। गविजात उन ऋषिका अतिशय तेजस्वी तथा महातपस्वी पुत्र था॥ २४॥ वह शक्तिका महान् उपासक था। पास ही के जंगलमें खेलते हुए उसने यह हाल सुना। उसके मित्रोंने कहा—हे मुनीश्वर! अभी किसीने तुम्हारे पिताके गलेमें मरा हुआ सर्प डाल दिया है। मित्रोंके वचन सुनकर महर्षि गविजात क्रोधसे तमतमा उठे॥ २५॥ २६॥ तत्काल हाथमें

राजा जलं पप्रच्छ चातुरः॥ २१॥ नोवाच किंचिन्मौनस्थश्चुकोप नृपतिस्तदा॥ मृतं सर्पं तदाऽऽदाय धनुष्कोट्या तृषातुरः॥ २२॥ कलिनाऽऽविष्टचित्तस्तु कंठे तस्य न्यवेशयत्॥ आरोपिते तथा सर्पे नोवाच मुनिसत्तमः॥ २३॥ न चचाल समाधिस्थो राजाऽपि स्वगृहं गतः॥ तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी गविजातो महातपाः॥ २४॥ महाशाक्तोऽथ शुश्राव क्रीडमानो वनांतिके॥ मित्राण्याहुश्च तत्पुत्रं पितुः कंठे तवाधुना॥ २५॥ लम्बितोऽस्ति मृतः सर्पः केनापीति मुनीश्वर॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपातिशयं तदा॥ २६॥ शशाप नृपतिं क्रुद्धो गृहीत्वाऽऽशु करे जलम्॥ पितुः कंठेऽद्य मे येन विनिक्षिप्तो मृतोरगः॥ २७॥ तक्षकः सप्तरात्रेण तं दशेत्पापपूरुषम्॥ मुनेः शिष्योऽथ राजानं समुपेत्य गृहे स्थितम्॥ २८॥ शापं निवेदयामास मुनिपुत्रेण चार्पितम्॥ अभिमन्युसुतः श्रुत्वा शापं दत्तं द्विजेन वै॥ २९॥ अनिवार्यं च विज्ञाय मंत्रिवृद्धानुवाच ह॥ शप्तोऽहं द्विजरूपेण मम द्वेषादसंशयम्॥ ३०॥ किं विधेयं मयाऽमात्या उपायश्चिंत्यतामिह॥ मृत्युः किलानिवार्योऽसौ वदन्ति वेदवादिनः॥ ३१॥ यत्नस्तथापि शास्त्रोक्तः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः॥ उपायवादिनः केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ३२॥ विज्ञोपायेन सिद्ध्यन्ति कार्याणि नेतरस्य च॥ मणिमंत्रौषधीनां वै प्रभावाः खलु दुर्विदः॥ ३३॥ न भवेदिति किं तैस्तु मणिमद्भिः सुसाधितैः॥ सर्पदष्टा पुरा भार्या

जल लेकर शाप देते हुए उन्होंने कहा कि जिसने मेरे पिताके गलेमें मरा हुआ सर्प डाला है, उस पापीको आजसे ठीक सातवें रोज तक्षक सर्प डस लेगा। तदनन्तर मुनिराजके एक शिष्यने राजा परीक्षितके घर जाकर मुनिपुत्रके दिये हुए शापका वृत्तान्त बताया। अभिमन्युपुत्र राजा परीक्षित् ब्राह्मणके दिये हुए शापका हाल सुनकर सिहर उठे॥ २७-२९॥ किन्तु उसे अनिवार्य समझकर उन्होंने अपने वृद्ध मन्त्रियोंसे कहा—निःसन्देह मेरे ही अपराधसे उस ब्राह्मणने मुझे शाप दिया है॥ ३०॥ हे मन्त्रिगण! इस विषयमें आप लोग कोई उपाय सोचें। वेदवादी विद्वानोंका तो यह मत है कि मृत्यु अनिवार्य होती है॥ ३१॥ किन्तु फिर भी बुद्धिमान् मनुष्यका कर्तव्य है कि वह शास्त्रोक्त युक्तियों द्वारा उससे बचनेका उपाय करें। कुछ उपायवादी मनीषियोंका कहना है कि-॥ ३२॥ समझदारीके साथ उपाय करनेसे सब काम बन जाते हैं। उपायके सिवा और कोई भी साधन नहीं है। मणि, मंत्र और औषधियों-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के प्रभावको जानना दुरूह है ॥ ३३ ॥ मणि धारण करके विष उतारनेवाले गुणीजन क्या नहीं कर सकते ? प्राचीन कालमें एक मुनिकी स्त्रीको साँपने काट लिया, जिससे वह मर गयी ।
किन्तु मुनिने उपाय करके उसको फिर जिला लिया ॥ ३४ ॥ उन मुनिराजने अपनी आधी आयु उस अप्सराको देकर जीवनदान दिया था । अतएव बुद्धिमानोंको चाहिए कि
भाग्यपर भरोसा न करें ॥३५॥ हे मन्त्रिगण ! आप लोग यह प्रत्यक्ष उदाहरण देख लें कि समस्त भूमण्डलपर कोई भी ऐसा मनुष्य न मिलेगा, जो केवल भाग्यपर भरोसा करके उपाय
करना ही छोड़ दे ॥३६॥ जो मनुष्य दैवपर भरोसा करके प्रयत्न करना छोड़ देते हैं, उन्हें संन्यासी बन जाना पड़ता है और भीख माँगनी पड़ती है ॥३७॥ ऐसे संन्यासी बुलाये या बिना
बुलाये गृहस्थके घर पहूँच जाते हैं । किन्तु वहाँ भी भोजन पेटमें अपने आप नहीं चला जाता अथवा कोई उनके मुखमें फेंक नहीं देता, बल्कि खानेका उद्यम करना ही पड़ता है ॥३८॥
मुँहमें रखी हुई वस्तु भी बिना मुँह हिलानेका प्रयत्न किये उदरमें कैसे पहुँचेगी ? यदि उद्योग करनेपर भी सफलता न मिले, तब चित्तको दैवके अस्तित्वका सहारा दे । मन्त्रिगण बोले–

मुने संजीविता मृता ॥ ३४ ॥ दत्त्वाऽर्धमायुषस्तेन मुनिना सा वराऽप्सराः ॥ भवितव्ये न विश्वासः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः ॥ ३५ ॥ प्रत्यक्षं तत्र
दृष्टांतं पश्यंतु सचिवाः किल ॥ दिवि कोऽपि पृथिव्यां वा दृश्यते पुरुषः क्वचित् ॥ ३६ ॥ दैवे मतिं समाधाय यस्तिष्ठेत्तु निरुद्यमः ॥ विरक्तस्तु
यतिर्भूत्वा भिक्षार्थं याति सर्वथा ॥ ३७ ॥ गृहस्थानां गृहे काममाहूतो वाथवाऽन्यथा ॥ यदृच्छयोपपन्नं च क्षिप्तं केनापि वा मुखे ॥ ३८ ॥
उद्यमेन विना चास्यादुदरे संविशेत्कथम् ॥ प्रयत्नश्चोद्यमे कार्यो यदा सिद्धिं न याति चेत् ॥ ३९ ॥ तदा दैवं स्थितं चेति चित्तमालम्बयेद्बुधः ॥
मंत्रिण ऊचुः ॥ को मुनिर्येन दत्त्वाऽर्धमायुषो जीविता प्रिया ॥ ४० ॥ कथं मृता महाराज तन्नो ब्रूहि सविस्तरम् ॥ राजोवाच ॥ भृगोर्भार्या वरा-
रोहा पुलोमा नाम सुन्दरी ॥ ४१ ॥ तस्यां तु च्यवनो नाम मुनिर्जातोऽतिविश्रुतः ॥ च्यवनस्य च शर्यातेः सुकन्या नाम सुन्दरी ॥ ४२ ॥ तस्यां
जज्ञे सुतः श्रीमान्प्रमतिर्नाम विश्रुतः ॥ प्रमतेस्तु प्रिया भार्या प्रतापी नाम विश्रुता ॥ ४३ ॥ रुरुर्नाम सुतो जातस्तथा परमतापसः ॥ तस्मिंश्च
समये कश्चित्स्थूलकेशश्च विश्रुतः ॥ ४४ ॥ बभूव तपसा युक्तो धर्मात्मा सत्यसम्मतः ॥ एतस्मिन्नंतरे मान्या मेनका च वराप्सराः ॥ ४५ ॥ क्रीडां
चक्रे नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुन्दरी ॥ गर्भं विश्वावसोः प्राप्य निर्गता वरवर्णिनी ॥ ४६ ॥ स्थूलकेशाश्रमें गत्वा विससर्ज वराप्सराः ॥ कन्यकां

हे महाराज ! वे कौन मुनि महानुभाव थे कि जिन्होंने अपनी आयु देकर अपनी प्रियतमाको जीवित किया था ? ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और वह अप्सरा कैसे मरी ? इस कथाको
विस्तारके साथ बताइए । महाराज परीक्षित् बोले—महर्षि भृगुकी पुलोमा नामकी सुन्दरी पत्नी थी ॥ ४१ ॥ उसके गर्भसे लोकविख्यात च्यवन मुनिका जन्म हुआ था । उन च्यवन
मुनिकी स्त्रीका नाम था–सुकन्या । वह महाराज शर्यातिकी पुत्री थी ॥ ४२ ॥ सुकन्याके गर्भसे श्रीमान् प्रमति जनमे, जो बड़े यशस्वी थे । उन प्रमतिकी प्रिय भार्याका नाम प्रतापी था
॥ ४३ ॥ प्रमतिके परम तपस्वी पुत्र रुरु हुए । उन्हीं दिनों स्थूलकेश नामके एक बड़े धर्मात्मा, तपस्वी और सत्यप्रतिज्ञ महात्मा थे । उसी समय लोकमाननीया सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मेनका
अप्सरा नदीतटपर क्रीड़ा कर रही थी । वह विश्वावसुके द्वारा गर्भिणी होकर घरसे निकल पड़ी ॥ ४४–४६ ॥ वह अप्सरा स्थूलकेश मुनिके आश्रमपर गयी और नदीके किनारे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसने तीनों लोकमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी एक कन्याको जन्म दिया ॥४७॥ उस कन्याको वहीं छोड़कर मेनका चली गयी। उस बालिकाको अनाथ समझकर महर्षि स्थूलकेश अपने आश्रमपर ले आये और उसका पालन-पोषण करने लगे। उन्होंने उसका नाम प्रमद्वरा रक्खा ॥ ४८ ॥ कुछ समय बाद वह कन्या सर्वसुलक्षणसम्पन्ना युवती हो गयी। उस नवयौवनाको देखकर रुरु मुनि कामबाणसे आहत हो गये ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(रुरुका वृत्तान्त तथा राजा परीक्षित्‌का गुप्त प्रकोष्ठमें निवास) राजा परीक्षित् बोले—हे मंत्रिगण ! इस प्रकार कामबाणसे पीड़ित होकर रुरुमुनि अपने आश्रममें जाकर लेट गये। उन्हें दुखी देखकर पिताने पूछा—हे रुरु ! तुम इस तरह उदास क्यों हो ? ॥ १ ॥ अतीव कामार्त मुनि रुरुने कहा कि महर्षि स्थूलकेशके आश्रममें प्रमद्वरा नामकी एक कन्या है। मैं चाहता हूँ कि वह मेरी पत्नी बन जाय ॥ २ ॥ यह सुनकर प्रमति महर्षि स्थूलकेश पास गये और अपनी सरस बातोंसे प्रसन्न करके उन्होंने उनसे वह सुन्दरी कन्या माँगी ॥ ३ ॥ महामुनि

च नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुन्दरीम् ॥ ४७ ॥ दृष्ट्वाऽनाथां तदा कन्यां जग्राह मुनिसत्तमः ॥ पुपोष स्थूलकेशस्तु नाम्ना चक्रे प्रमद्वराम् ॥ ४८ ॥ सा काले यौवनं प्राप्ता सर्वलक्षणसंयुता ॥ रुरुर्दृष्ट्वाऽथ तां बालां कामबाणार्दितो ह्यभूत् ॥४९॥ इति श्रीदेवीभागवते द्वितीयस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

॥ परीक्षिदुवाच ॥ कामार्तः स मुनिर्गत्वा रुरुः सुप्तो निजाश्रमे ॥ पिता पप्रच्छ दीनं तं किं रुरो विमना असि ॥ १ ॥ स तमाहातिकामार्तः स्थूलकेशस्य चाश्रमे ॥ कन्या प्रमद्वरा नाम सा मे भार्या भवेदिति ॥ २ ॥ स गत्वा प्रमतिस्तूर्णं स्थूलकेशं महामुनिम् ॥ प्रमुद्य सुमुखं कृत्वा ययाचे तां वराननाम् ॥ ३ ॥ ददौ वाचं स्थूलकेशः प्रदास्यामि शुभेऽहनि ॥ विवाहार्थं च संभारं रचायामासतुर्वने ॥ ४ ॥ प्रमतिः स्थूलकेशश्च विवाहार्थं समुद्यतौ ॥ बभूवतुर्महात्मानौ समीपस्थौ तपोवने ॥ ५ ॥ तस्मिन्नवसरे कन्या रममाणा गृहाङ्गणे ॥ प्रसुप्तं पन्नगं पादेनास्पृशच्चारुलोचना ॥ ६ ॥ दष्टा तु पन्नगेनाथ सा ममार वरांगना ॥ कोलाहलस्तदा जातो मृतां दृष्ट्वा प्रमद्वराम् ॥ ७ ॥ मिलिता मुनयः सर्वे चुक्रुशुः शोकसंयुताः ॥ भूमौ तां पतितां दृष्ट्वा पिता तस्यातिदुःखितः ॥ ८ ॥ रुरोद विगतप्राणां दीप्यमानां सुतेजसा ॥ रुरुः श्रुत्वा तदाक्रन्दं दर्शनार्थं समागतः ॥ ९ ॥ ददर्श पतितां तत्र सजीवामिव कामिनीम् ॥ रुदंतं स्थूलकेशं च दृष्ट्वाऽन्यानृषिसत्तमान् ॥ १० ॥ रुरुःस्थानाद्बहिर्गत्वारुरोद

स्थूलकेशने भी उनकी बात मान ली और कहा कि मैं किसी अच्छे दिन कन्यादान दे दूँगा। अब प्रमति तथा स्थूलकेश दोनों मुनि उसी दिनसे विवाहकी सामग्रियाँ एकत्र करने लगे ॥४॥ विवाहके दिन प्रमति तथा स्थूलकेश तैयार होकर तपोवनके समीप एक दूसरेका स्वागत करने पहुँचे ॥५॥ उस समय कन्या प्रमद्वरा अपने घरके आँगनमें खेल रही थी। तभी एक सोते हुए सर्पपर उस सुनयनीका पैर पड़ गया ॥६॥ तत्काल सर्पने उसे काट लिया, जिससे वह सुन्दरी मर गयी। प्रमद्वराका मरण देखकर चारों ओर हाहाकार मच गया ॥७॥ वहाँ बहुतेरे मुनि एकत्र हो गये और सब दुखी होकर रोने लगे। उसे मरकर जमीनमें पड़ी देखकर उसके पिता स्थूलकेश बहुत दुखी हुए ॥८॥ और रुदन करने लगे। इस प्रकार मर जानेपर भी प्रमद्वरा अपने तेजसे देदीप्यमान हो रही थी। वह रोना-पीटना सुनकर रुरु मुनि भी उसे देखनेके लिए आ गये ॥९॥ उन्होंने उस कामिनीको अब भी जीवितके सदृश ही देखा। महर्षि स्थूलकेश तथा अन्यान्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋषियोंको रोते देखकर रुरु भी अलग जाकर विरहाकुल भावसे रोने लगे । उन्होंने कहा—अहो ! दैवने यह परम अद्भुत सर्प भेजा ॥ १० ॥ ११ ॥ इसने मेरे सुखमें बाधा डालदी और दुःखका कारण बन गया । मेरी प्राणप्रिया मर गयी । अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? मैं अपनी प्रियासे अलग होकर जीवित नहीं रहना चाहता । उस सुंदरीका न मैंने आलिङ्गन किया और न मुखचुम्बन ॥१२॥१३॥ मुझ अभागेने उसका प्राणिग्रहण भी नहीं कर पाया । उसके साथ मैं अग्निमें धानके लावेका हवन भी नहीं कर सका ॥१४॥ इस मानव जन्मको धिकार है । आज मेरे प्राण निकल जायँ तो अच्छा हो । किन्तु मुझ जैसे दुखिया मनुष्यको चाहनेपर मृत्यु भी नहीं मिलती ॥ १५ ॥ तब भला अभिलषित सुख कैसे मिलेगा ? अब मैं या तो किसी भयानक तालाबमें डूब मरूँगा अथवा अग्निमें कूदकर प्राण दे दूँगा ॥१६॥ मैं विष खालूँगा या कि गलेमें फँसरी लगाकर प्राण त्याग दूँगा । इस प्रकार बड़ी देर तक

विरहाकुलः ॥ अहो दैवेन सर्पोऽयं प्रेषितः परमाद्भुतः ॥ ११ ॥ मम शर्मविघाताय दुःखहेतुरयं किल ॥ किं करोमि क्व गच्छामि मृता मे प्राण-
वल्लभा ॥ १२ ॥ न वै जीवितुमिच्छामि वियुक्तः प्रिययाऽनया ॥ नालिङ्गिता वरारोहा न मया चुम्बिता मुखे ॥ १३ ॥ न पाणिग्रहणं प्राप्तं
मंदभाग्येन सर्वथा ॥ लाजाहोमस्तथा चाग्नौ न कृतस्त्वनया सह ॥ १४ ॥ मानुष्यं धिगिदं कामं गच्छन्त्वद्य ममासवः ॥ दुःखितस्य न वा मृत्यु-
र्वांछितः समुपैति हि ॥ १५ ॥ सखं तर्हि कथं दिव्यमाप्यते भुवि वांछितम् ॥ प्रपतामि ह्रदे घोरे पावके प्रपताम्यहम् ॥ १६ ॥ विषमद्मि गले
पाशं कृत्वा प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ विलप्यैवं रुरुस्तत्र विचार्य मनसा पुनः ॥ १७ ॥ उपायं चिंतयामास स्थितस्तस्मिन्नदीतटे ॥ मरणात्किं फलं मे
स्यादात्महत्या दुरत्यया ॥ १८ ॥ दुःखितश्च पिता मे स्याज्जननी चातिदुःखिता ॥ दैवस्तुष्टो भवेत्कामं दृष्ट्वा मां त्यक्तजीवितम् ॥ १९ ॥ सर्वः
प्रमुदितश्च स्यान्मत्क्षये नात्र संशयः ॥ उपकारः प्रियायाः कः परलोके भवेदपि ॥ २० ॥ मृते मय्यात्मघातेन विरहात्पीडितेऽपि च ॥ परलोके
प्रिया साऽपि न मे स्यादात्मघातिनः ॥ २१ ॥ एतदर्थं मृते दोषा मयि नैवामृते पुनः ॥ विमृश्यैवं रुरुस्तत्र स्नात्वाऽऽचम्य शुचिः स्थितः ॥२२॥
अब्रवीद्वचनं कृत्वा जलं पाणावसौ मुनिः ॥ यन्मया सुकृतं किंचित्कृतं देवार्चनादिकम् ॥ २३ ॥ गुरवः पूजिता भक्त्या हुतं जप्तं तपः कृतम् ॥

विलाप करके रुरुने अपने मनमें सोचा ॥१७॥ नदीके तटपर बैठकर उपाय सोचते हुए रुरुने विचार किया कि आखिर मेरे मरनेसे भी क्या लाभ होगा ? उसपर भी आत्महत्या तो और भी निकृष्ट चीज है ॥१८॥ मेरा मरण सुनकर पिताजी कितने दुखी होंगे और माताजीको कितना क्लेश होगा । हाँ, मेरा मरण देखकर दैव अलबत्ते सन्तुष्ट हो जायगा ॥१९॥ मेरे मर जानेपर मेरे वैरी भी सुखी होंगे । लेकिन ऐसा करनेसे परलोकमें मेरी प्रियतमाका क्या उपकार होगा ? ॥ २० ॥ यदि आत्मघात करके या उसके विरहमें घुल-घुलकर मर जाऊँ, फिर भी पर-लोकमें मुझ आत्मघातीको मेरी प्रियतमा तो न मिलेगी ॥ २१ ॥ इस हेतु मरनेमें दोष है और यदि नहीं मरता तो कोई दोष न होगा । ऐसा विचार करके रुरुने वहाँ ही स्नान किया और पवित्रतापूर्वक आचमन करके बैठ गये ॥२२॥ तदनन्तर हाथमें जल लेकर रुरु मुनिने कहा—यदि देवार्चन आदि कुछ भी पुण्य मैंने किया हो ॥२३॥ यदि मैंने गुरुजनोंकी पूजा की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो, भक्तिके साथ हवन, जप तथा तप किया हो, यदि मैंने समस्त वेदोंका अध्ययन करके गायत्रीकी उपासना और सूर्यनारायणकी आराधना की हो तो मेरी प्रिया जीवित हो जाय । यदि मेरी प्रियतमा न जियेगी तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा ॥२४॥२५॥ ऐसा कहकर रुरुने देवताओंका ध्यान करके हाथका जल धरतीपर छोड़ दिया । राजा परीक्षित् बोले—इस प्रकार विलाप करते हुए अपनी प्रियतमाके लिये दुःखित रुरुके पास एक देवदूत आया और उसने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप व्यर्थ ऐसा दुःसाहस न करें । मरी हुई आपकी प्रिया जीवित कैसे होगी ? ॥२६॥ ॥२७॥ यह गन्धर्वों और अप्सराओंकी सन्तति थी । यह अविवाहिता ही मर गयी । अब आप किसी अन्य सुन्दरीकी खोज करिए ॥ २८ ॥ हे दुर्बुद्धे ! आप रोते क्यों हैं ? इसके साथ आपकी प्रीति ही कितनी थी ? रुरु मुनिने कहा—हे देवदूत ! मैं किसी अन्य कन्याके साथ विवाह न करूँगा ॥२९॥ यदि यह जीवित हो गयी तो ठीक ही है । कदाचित् न जीवित हुइ तो

अधीतास्त्वखिला वेदा गायत्री संस्कृता यदि ॥ २४ ॥ रविराराधितस्तेन संजीवतु मम प्रिया ॥ यदि जीवेन्न मे कांता त्यजे प्राणानहं ततः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा तज्जलं भूमौ चिक्षेपाराध्य देवताः ॥ राजोवाच ॥ एवं विलपतस्तस्य भार्यया दुःखितस्य च ॥ २६ ॥ देवदूतस्तदाऽभ्येत्य वाक्य-माह रुरुं ततः ॥ देवदूत उवाच ॥ माऽकार्षीः साहसं ब्रह्मन्कथं जीवेन्मृता प्रिया ॥ २७ ॥ गतायुरेषा सुश्रोणी गंधर्वाप्सरसोः सुता ॥ अन्यां कामय चार्वंगीं मृतेयं चाविवाहिता ॥ २८ ॥ किं रोदिषि सुदुर्बुद्धे का प्रीतिस्तेऽनया सह ॥ रुरुरुवाच ॥ देवदूत न चान्यां वै वरिष्याम्यहमंग-नाम् ॥ २९ ॥ यदि जीवेन्न जीवेद्वा मर्तव्यं चाधुना मया ॥ राजोवाच ॥ विदित्वेति हठं तस्य देवदूतो मुदान्वितः ॥३० ॥ उवाच वचनं तथ्यं सत्यं चातिमनोहरम् ॥ उपायं शृणु विप्रेंद्र विहितं यत्सुरैः पुरा ॥ ३१॥ आयुषोऽर्धप्रदानेन जीवयाशु प्रमद्वराम् ॥ रुरुरुवाच ॥ आयुषोऽर्धं प्रयच्छामि कन्यायै नात्र संशयः ॥ ३२ ॥ अद्य प्रत्यावृतप्राणा प्रोत्तिष्ठतु मम प्रिया ॥ विश्वावसुस्तदा तत्र विमानेन समागतः ॥ ३३ ॥ ज्ञात्वा पुत्रीं मृतां चाशु स्वर्गलोकात्प्रमद्वराम् ॥ ततो गंधर्वराजश्च देवदूतश्च सत्तमः ॥ ३४ ॥ धर्मराजमुपेत्येदं वचनं प्रत्यभाषताम् ॥ धर्मराज रुरोः पत्नी सुता विश्वावसोस्तथा ॥ ३५ ॥ सुता प्रमद्वरा कन्या दष्टा सर्पेण चाधुना ॥ सा रुरोरायुषोऽर्धेन मर्तुकामस्य सूर्यज ॥ ३६ ॥ समु-त्तिष्ठतु तन्वंगी व्रतचर्याप्रभावतः ॥ धर्म उवाच ॥ विश्वावसुसुतां कन्यां देवदूत यदीच्छसि ॥ ३७ ॥ उत्तिष्ठत्वायुषोऽर्धेन रुरुं गत्वा त्वमर्पय ॥

अभी मैं अपने प्राण त्याग दूँगा । राजा परीक्षित् बोले—रुरुका हठ देखकर देवदूत बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३० ॥ उसने वास्तविक, सत्य तथा अतिमनोहर वाणीमें कहा—हे विप्रेन्द्र ! मैं एक उपाय बता रहा हूँ । जिसे प्राचीन समयमें देवताओंने बतलाया था ॥३१॥ आप अपने जीवनकी आधी आयु देकर शीघ्र प्रमद्वराको जीवित कर लीजिए । रुरुने कहा—मैं उस कन्याको अपनी आधी आयु दे दूँगा ॥ ३२ ॥ मेरी प्रतिज्ञापर मेरी प्रियाके प्राण लौट आयें और वह उठकर बैठ जाय । उसी समय प्रमद्वराके पिता विश्वावसु उसके मरणकी खबर पाकर स्वर्गसे विमान द्वारा वहाँ जा पहुँचे । तदनन्तर गन्धवराज विश्वावसु तथा उस देवदूतने धर्मराजके पास जाकर कहा—हे धर्मराज ! रुरुकी पत्नी तथा विश्वावसुकी पुत्री प्रमद्वरा अभी सर्पदंशसे मर गई है। हे सूर्यनन्दन ! वह मरणके लिए उद्यत रुरुकी आधी आयु तथा उनकी व्रतचर्याके प्रभावसे जीवित होकर उठ खड़ी हो । धर्मराजने कहा-हे देवदूत ! यदि तुम विश्वावसुकी कन्याको पुनः जीवित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करना चाहते होओ तो तुम जाकर उसकी आधी आयुसे उसे जीवित करके रुरुको सौंप दो। राजा परीक्षित् बोले—धर्मराजके ऐसा कहनेपर देवदूतने जाकर प्रमद्वराको जीवित कर दिया ॥ ३३–३८ ॥ इस प्रकार देवदूतने उसे जीवित करके रुरुको सौंप दिया और शुभ दिन तथा मुहूर्तमें रुरुने उसके साथ विवाह कर लिया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार उपायका अवलम्बन करके वह मरी हुई स्त्री भी बचा ली गयी। अतएव शास्त्रसम्मत उपाय अवश्य करना चाहिए ॥ ४० ॥ मणि, मंत्र तथा औषधिका उपयोग करके प्राणरक्षा करना आवश्यक है। मंत्रियोंसे ऐसा कहकर राजा परीक्षित्ने अच्छे-अच्छे रक्षकोंकी व्यवस्था की ॥ ४१ ॥ इस योजनाके अनुसार राजाने एक सतमहला भवन बनवाया और तत्काल वे अपने मंत्रियोंके साथ उसपर चढ़ गये ॥४२॥ उस महलकी सुरक्षाके लिए मणि-मन्त्रधारी वीर नियुक्त किये गये। तदनन्तर महाराजने गौरमुख मुनिको दूत बनाकर मुनि गविजातके पास भेजा और कहलाया कि मुझ सेवकका अपराध क्षमा करके वे प्रसन्न हो जाँय। तत्पश्चात् राजा परीक्षित्ने मंत्रसिद्धिके विशेषज्ञ ब्राह्मणोंको बुलवाकर उन्हें रक्षाकार्यपर नियुक्त कर दिया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ एक मन्त्रपुत्रने महलकी

॥राजोवाच॥ एवमुक्तस्ततो गत्वा जीवयित्वा प्रमद्वराम् ॥ ३८ ॥ रुरोः समर्पयामास देवदूतस्त्वरान्वितः ॥ ततः शुभेऽह्नि विधिना रुरुणाऽपि विवाहिता ॥ ३९ ॥ इत्थं चोपाययोगेन मृताऽप्युज्जीविता तदा ॥ उपायस्तु प्रकर्तव्यः सर्वथा शास्त्रसंमतः ॥ ४० ॥ मणिमंत्रौषधीभिश्च विधिवत्प्राणरक्षणे ॥ इत्युक्त्वा सचिवान्राजा कल्पयित्वा सुरक्षकान् ॥ ४१ ॥ कारयित्वाऽथ प्रासादं सप्तभूमिकमुत्तमम् ॥ आरुरोहोत्तरासूनुः सचिवैः सह तत्क्षणम् ॥ ४२ ॥ मणिमंत्रधराः शूराः स्थापितास्तत्र रक्षणे ॥ प्रेषयामास भूपालो मुनिं गौरमुखं ततः ॥ ४३ ॥ प्रसादार्थं सेवकस्य क्षमस्वेति पुनः पुनः ॥ ब्राह्मणान्सिद्धमंत्रज्ञान्रक्षणार्थमितस्ततः ॥ ४४ ॥ मंत्रिपुत्रः स्थितस्तत्र स्थापयामास दंतिनः ॥ न कश्चिदारुहेत्तत्र प्रासादे चातिरक्षिते ॥४५॥ वातोऽपि न चरेत्तत्र प्रवेशे विनिवार्यते ॥ भक्ष्यभोज्यादिकं राजा तत्रस्थश्च चकार सः ॥४६॥ स्नानसंध्यादिकं कर्म तत्रैव विनिवर्त्य च ॥ राजकार्याणि सर्वाणि तत्रस्थश्चाकरोन्नृपः ॥४७॥ मंत्रिभिः सह संमंत्र्य गणयन्दिवसानपि ॥ कश्चिच्च कश्यपो नाम ब्राह्मणो मंत्रिसत्तमः ॥ ४८ ॥ शुश्राव च तथा शापं प्राप्तं राज्ञा महात्मना ॥ स धनार्थी द्विजश्रेष्ठः कश्यपः समचिंतयत् ॥४९॥ व्रजामि तत्र यत्रास्ते शप्तो राजा द्विजेन ह॥ इति कृत्वा मतिं विप्रः स्वगृहान्निःसृतः पथि ॥ कश्यपो मंत्रविद्विद्वान्धनार्थी मुनिसत्तमः ॥५०॥ इति श्रीदेवीभागवते द्वितीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

रक्षाके लिए चारों ओर हाथियोंका घेरा डलवा दिया जिससे कि उस सुरक्षित महलपर कोई चढ़ न सके ॥ ४५ ॥ इस प्रकार सुरक्षाकी ऐसी प्रबल व्यवस्था की गयी कि उस महलके भीतर वायुका प्रवेश भी नहीं हो सकता था। वहाँ ही महाराजने भोजनादिकी भी व्यवस्था कर ली थी ॥ ४६ ॥ वहाँ ही वे स्नान-सन्ध्यादि करके समस्त राजकार्यका संचालन करते थे ॥ ४७ ॥ वे उसी सतमहले भवनमें रहकर मंत्रियोंसे मन्त्रणाकार्य करते तथा शापके दिन गिनते हुए समय बिताते थे। इसी समय सर्पविष उतारनेके विशेषज्ञ कश्यप नामके ब्राह्मणने किसीसे सुना कि महाराज परीक्षित्को तक्षक सर्पके काटनेका शाप मिल गया है। यह खबर पाकर धनलोलुप कश्यपने सोचा कि–॥४८॥४९॥ मैं वहाँ जाऊँगा, जहाँ कि शापप्राप्त महाराज परीक्षित् इस समय रह रहे हैं। ऐसा निश्चय करके वह ब्राह्मण अपने घरसे चल पड़े। मुनिश्रेष्ठ कश्यप मन्त्रशास्त्रके विद्वान् और धनके इच्छुक थे॥ ५० ॥ इति द्वितीये स्कन्धे नवमोऽध्यायः॥ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(तक्षक-कश्यपसंवाद तथा राजाको तक्षकका काटना) सूतजी बोले—हे मुनिवृन्द ! उसी दिन तक्षक नाग महाराज परीक्षित्‌के शापकी बात सुनकर मनुष्यका रूप धारण करके अपने घरसे निकल पड़ा ॥ १ ॥ वह एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके मार्गमें चला। कुछ आगे बढ़नेपर उसे महाराज परीक्षित्‌के पास जाते हुए विप्रवर कश्यप मिले ॥ २ ॥ वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी तक्षकने उन मंत्रवादी विप्रसे पूछा—कहिए विप्रदेव ! आप कहाँ इतनी जल्दी-जल्दी भागे जा रहे हैं और क्या करनेकी इच्छा है ? ॥ ३ ॥ कश्यपने कहा—नृपतिश्रेष्ठ परीक्षित्‌को आज तक्षक नाग काटनेवाला है। सो मैं उन्हें बचानेके लिए इतनी शीघ्रतापूर्वक जा रहा हूँ ॥ ४ ॥ हे विप्रेन्द्र ! मेरे पास एक बड़ा प्रबल विषनाशक मंत्र है। अतएव यदि उनका जीवन शेष होगा तो मैं उन्हें जीवित कर दूँगा ॥ ५ ॥ तक्षक बोला—हे ब्रह्मन् ! मैं ही वह तक्षक नाग हूँ और मैं ही महाराज परीक्षितको काटूँगा। मेरे काट लेनेपर आप चिकित्सा नहीं कर सकेंगे। इसलिए आप लौट जाइए ॥ ६ ॥ कश्यप बोले—हे सर्प ! ब्राह्मणका शाप पाये हुए राजाको आप काटेंगे तो मैं अपने मन्त्रबलसे उन्हें अवश्य जीवित कर दूँगा ॥ ७ ॥ तक्षकने कहा—यदि आप मेरे काटे हुए नृपश्रेष्ठ परीक्षितको जीवित करने जा रहे हैं तो हे विप्र ! आप अपनी मंत्रशक्तिका कुछ चमत्कार दिखाइए ॥ ८ ॥ मैं अभी इस वटवृक्षको अपने विषैले दाँतसे काटता हूँ। कश्यपने कहा—हे सर्पश्रेष्ठ ! यदि आप इसे काट लें या अपने प्रबल विषसे जलाकर भस्म कर दें, तो भी मैं इसे पुनरुज्जीवित कर दूँगा ॥ ९ ॥ सूतजी बोले—कश्यपकी बात सुनकर तक्षक नागने उसको काट लिया, जिससे वह तत्काल भस्म हो गया। फिर उसने कश्यपसे कहा—हे द्विजवर ! अब आप इसे जीवित करिए ॥ १० ॥ उस सर्पकी विषाग्निसे वृक्षको भस्मीभूत देखकर कश्यपने सब भस्म एकत्र कर लिया और कहा—॥ ११ ॥ हे पन्नगोत्तम ! अब आप मेरा मंत्रबल देखिए। मैं आपके सामने अभी इस वटवृक्षको

॥ सूत उवाच ॥ तस्मिन्नेव दिने नाम्ना तक्षकस्तं नृपोत्तमम् ॥ शप्तं ज्ञात्वा गृहात्तूर्णं निःसृतः पुरुषोत्तम ॥ १ ॥ वृद्धब्राह्मणवेषेण तक्षकः पथि निर्गतः ॥ अपश्यत्कश्यपं मार्गे व्रजंतं नृपतिं प्रति ॥ २ ॥ तमपृच्छत्पन्नगोऽसौ ब्राह्मणं मंत्रवादिनम् ॥ क्व भवांस्त्वरितो याति किं च कार्यं चिकीर्षति ॥ ३ ॥ कश्यप उवाच ॥ परीक्षितं नृपश्रेष्ठं तक्षकश्च प्रधक्ष्यति ॥ तत्राहं त्वरितो यामि नृपं कर्तुमपज्वरम् ॥ ४ ॥ मंत्रोऽस्ति मम विप्रेंद्र विषनाशकरः किल ॥ जीवयिष्याम्यहं तं वै जीवितव्येऽधुना किल ॥ ५ ॥ तक्षक उवाच ॥ अहं स पन्नगो ब्रह्मंस्तं धक्ष्यामि महीपतिम् ॥ निवर्तस्व न शक्तस्त्वं मया दष्टं चिकित्सितुम् ॥ ६ ॥ कश्यप उवाच ॥ अहं दष्टं त्वया सर्प नृपं शप्तं द्विजेन वै ॥ जीवयाम्यसंदेहं कामं मंत्रबलेन वै ॥ ७ ॥ तक्षक उवाच ॥ यदि त्वं जीवितुं यासि मया दष्टं नृपोत्तमम् ॥ मंत्रशक्तिबलं विप्र दर्शय त्वं ममानघ ॥ ८ ॥ धक्ष्याम्येनं च न्यग्रोधं विषदंष्ट्राभिरद्य वै ॥ कश्यप उवाच ॥ जीवयिष्ये त्वया दष्टं दग्धं वा पन्नगोत्तम ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ अदशत्पन्नगो वृक्षं भस्मसाच्च चकार तम् ॥ उवाच कश्यपं भूयो जीवयैनं द्विजोत्तम ॥ १० ॥ दृष्ट्वा भस्मीकृतं वृक्षं पन्नगेन विषाग्निना ॥ सर्वं भस्म समाहृत्य कश्यपो वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥ पश्य मंत्रबलं मेऽद्य न्यग्रोधं पन्नगोत्तम ॥ जीवयाम्यद्य वृक्षं वै पश्यतस्ते महाविष ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा जलमादाय कश्यपो मंत्रवित्तमः ॥ सिषेच

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हरा भरा किये देता हूँ ॥ १२ ॥ ऐसा कहकर मंत्रविद्यामें निपुण कश्यपने हाथमें जल लिया और उसे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसी भस्मराशिपर छिड़क दिया ॥ १३ ॥ जलके पड़ते ही वह वटवृक्ष फिर पहले ही के समान सुन्दर और हरा-भरा हो गया। उस वृक्षको इस प्रकार जीवित देखकर तक्षकको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥१४॥ तब उसने कश्यप ब्राह्मणसे कहा—विप्रदेव ! आखिर किसलिए आप इतना परिश्रम करेंगे ? आपकी कामना मैं ही पूर्ण कर दूँगा। कहिए, आप क्या चाहते हैं ? ॥ १५ ॥ द्विज कश्यपने कहा—हे पन्नग ! मैं धन चाहता हूँ और इसीके लिए शापित राजा परीक्षितके पास जा रहा था। अपनी विद्याके बलसे उनका उपकार करनेकी भी अभिलाषा थी ॥ १६ ॥ तक्षक नागने कहा—हे विप्रेन्द्र ! आप राजा परीक्षितसे जितना धन पाना चाहते हों, उतना मुझसे ही ले लीजिए और अपने घर लौट जाइए। जिससे कि मैं अपने कार्यमें सफल हो सकूँ ॥ १७ ॥ सूतजी बोले—तक्षक नागकी बात सुनकर परमार्थके तत्त्वज्ञ कश्यप बार-बार मनमें विचार करने लगे कि मैं क्या करूँ ॥ १८ ॥ यदि मैं धन लेकर घर लौट जाऊँ तो लोभके कारण मुझे यश न प्राप्त होगा ॥ १९ ॥ और यदि

भस्मराशिं तं मंत्रितेनैव वारिणा ॥ १३ ॥ तद्वारिसेचनाज्जातो न्यग्रोधः पूर्ववच्छुभः ॥ विस्मयं तक्षकः प्राप्तो दृष्ट्वा तं जीवितं नगम् ॥ १४ ॥ तमाह कश्यपं नागः किमर्थं ते परिश्रमः ॥ सम्पादयामि तं कामं ब्रूहि वाडव वांछितम् ॥ १५ ॥ कश्यप उवाच ॥ वित्तार्थी नृपतिं मत्वा शप्तं पन्नग निःसृतः ॥ गृहादहं चोपकर्तुं विद्यया नृपसत्तमम् ॥ १६ ॥ तक्षक उवाच ॥ वित्तं गृहाण विप्रेन्द्र यावदिच्छसि पार्थिवात् ॥ ददामि स्वगृहं याहि कृतार्थोऽहं भवाम्यतः ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कश्यपः परमार्थवित् ॥ चिंतयामास मनसा किं करोमि पुनः पुनः ॥ १८ ॥ धनं गृहीत्वा स्वगृहं प्रयामि यद्यहं पुनः ॥ भविष्यति न मे कीर्तिर्लोके लोभसमाश्रयात् ॥ १६ ॥ जीवितेऽथ नृपश्रेष्ठे कीर्तिः स्यादचला मम ॥ धनप्राप्तिश्च बहुधा भवेत्पुण्यं च जीवनात् ॥ २० ॥ रक्षणीयं यशः कामं धिग्धनं यशसा विना ॥ सर्वस्वं रघुणा पूर्वं दत्तं विप्राय कीर्त्तये ॥ २१ ॥ हरिश्चंद्रेण कर्णेन कीर्त्यर्थं बहुविस्तरम् ॥ उपेक्षेयं कथं भूपं दह्यमानं विषाग्निना ॥ २२ ॥ जीवितेऽद्य मया राज्ञि सुखं सर्वजनस्य च ॥ अराजके प्रजानाशो भविता नात्र संशयः ॥ २३ ॥ प्रजानाशस्य पापं मे भविष्यति मृते नृपे ॥ अपकीर्तिश्च लोकेषु धनलोभाद्भविष्यति ॥ २४ ॥ इति संचिन्त्य मनसा ध्यानं कृत्वा स कश्यपः ॥ गतायुषं च नृपतिं ज्ञातवान्बुद्धिमत्तरः ॥ २५ ॥ आपन्नमृत्युं राजानं ज्ञात्वा

मेरे उद्योगसे महाराज जीवित हो गये तो मेरी कीर्ति स्थायी हो जायगी, धनकी प्राप्ति होगी और जीवनदानका पुण्य भी मिलेगा ॥ २० ॥ मनुष्यको चाहिए कि वह अपने यशकी रक्षा करे। यशके बिना धन धिक्कृत समझा जाता है। कीर्तिके लिए ही तो पूर्वकालमें रघुने अपना सारा धन ब्राह्मणोंको दान दे दिया था ॥ २१ ॥ राजा हरिश्चन्द्र और कर्णने भी कीर्तिके लिए बहुत कुछ किया था। और फिर विषकी अग्निमें जलते हुए महाराज परीक्षितकी मैं उपेक्षा कैसे करूँ ? ॥२२॥ यदि मैं राजाको जिला दूँगा तो सब लोगोंको अपार सुख मिलेगा। यदि राजा मर गया तो अराजकताके कारण सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥ राजाके मर जानेपर मुझे प्रजाके नाशका पाप लगेगा और संसारमें धनके लोभसे मेरी बहुत बड़ी अपकीर्ति होगी ॥ २४ ॥ ऐसा विचार करके परम बुद्धिमान् कश्यपने ध्यान किया तो ज्ञात हुआ कि महाराज परीक्षित्की आयु समाप्त हो चुकी है ॥ २५ ॥ इस प्रकार ध्यान-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दृष्टिसे धर्मात्मा कश्यपने जब राजाकी मृत्यु आसन्न देखी, तब तक्षकसे धन लेकर वे अपने घर लौट गये ॥२६॥ इस प्रकार कश्यपको लौटाकर तक्षक नाग सातवें दिन राजाको काटनेके लिए हस्तिनापुर गया ॥२७॥ नगरमें पहुँचकर उसने सुना कि मणि, मंत्र तथा औषधिसे भली-भाँति सुरक्षित सतमहले भवनमें इस समय महाराज बड़ी चौकसीसे रह रहे हैं ॥२८॥ तब ब्राह्मणके शापसे भयभीत तक्षक नागको बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा कि इस सर्वथा सुरक्षित महलमें मैं किस तरह घुसूँ? ॥२९॥ पापकर्म करनेवाले राजाको मैं कैसे ठगूँ? क्योंकि विप्र-शापके कारण यह पहले ही मर चुका है। इस मूर्ख और शठ राजाने एक ब्राह्मणको पीडा पहुँचायी है ॥३०॥ पाण्डवोंके कुलमें ऐसा कोई भी राजा नहीं हुआ कि जिसने एक तपस्वी ब्राह्मणके गलेमें मरा हुआ सर्प डाला हो ॥३१॥ ऐसा कुत्सित कर्म करके कालकी गतिको जानते हुए भी इसने रक्षकोंकी नियुक्ति की है और मृत्युसे बचनेके लिए सतमहला भवन बनवाकर

ध्यानेन कश्यपः ॥ गृहं ययौ स धर्मात्मा धनमादाय तक्षकात् ॥ २६ ॥ निवर्त्य कश्यपं सर्पः सप्तमे दिवसे नृपम् ॥ हंतुकामो जगामाशु नगरं नागसाह्वयम् ॥ २७ ॥ शुश्राव नगरस्यांते प्रासादस्थं परीक्षितम् ॥ मणिमंत्रौषधैः कामं रक्ष्यमाणमतंद्रितम् ॥ २८ ॥ चिन्ताविष्टस्तदा नागो विप्रशापभयाकुलः ॥ चिंतयामास योगेन प्रविशेयं गृहं कथम् ॥ २९ ॥ वंचयामि कथं चैनं राजानं पापकारिणम् ॥ विप्रशापाद्धतं मूढं विप्रपीडा-करं शठम् ॥ ३० ॥ पांडवानां कुले जातः कोऽपि नैतादृशोऽभवत् ॥ तापसस्य गले येन मृतः सर्पो निवेशितः ॥ ३१ ॥ कृत्वा विगर्हितं कर्म जानन्कालगतिं नृपः ॥ रक्षकान्भवने कृत्वा प्रासादमभिगम्य च ॥ ३२ ॥ मृत्युं वंचयते राजा वर्ततेऽद्य निराकुलः ॥ तं कथं धक्षयिष्यामि विप्र-वाक्येन चोदितः ॥ ३३ ॥ न जानाति च मंदात्मा मरणं ह्यनिवर्तनम् ॥ तेनासौ रक्षकान्स्थाप्य सौधारूढोऽद्य मोदते ॥ ३४ ॥ यदि वै विहितो मृत्युर्दैवेनामिततेजसा ॥ स कथं परिवर्तेत कृतैर्यत्नैस्तु कोटिभिः ॥ ३५ ॥ पांडवस्य च दायादो जानन्मृत्युं गतं नृपः ॥ जीवने मतिमास्थाय स्थितः स्थाने निराकुलः ॥ ३६ ॥ दानपुण्यादिकं राजा कर्तुमर्हति सर्वथा ॥ धर्मेण हन्यते व्याधिर्येनायुः शाश्वतं भवेत् ॥ ३७ ॥ नोचेन्मृत्यु-विधिं कृत्वा स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ मरणं स्वर्गलोकाय नरकायान्यथा भवेत् ॥ ३८ ॥ द्विजपीडाकृतं पापं पृथग्वाऽस्य च भूपतेः ॥ विप्र-

उसमें जा छुपा है ॥३२॥ यह राजा मृत्युको भी ठगना चाहता है और बेखटके आनन्द ले रहा है। ऐसी दशामें ब्राह्मणके शापानुसार मैं कैसे जाकर इसे डसूँ? ॥३३॥ यह मन्दबुद्धि यह भी नहीं जानता कि मृत्युको कोई नहीं टाल सकता। इसी कारण यह रक्षकोंको तैनात करके सतमहले भवनमें बैठा मौज ले रहा है ॥३४॥ अमित प्रतापी दैवने यदि मृत्यु निश्चित कर दी है तो करोड़ों प्रकारके यत्न करके भी कोई उसे कैसे टाल सकता है? ॥३५॥ पांडवकुलका उत्तराधिकारी यह राजा अपनेको कालके गालमें पहुँचा हुआ समझ करके भी जीवित रहनेकी लालसासे एक सुरक्षित स्थानमें बैठा आनन्द ले रहा है ॥३६॥ यह राजा चाहे तो इस समय तरह-तरहके दान-पुण्य कर सकता है। क्योंकि धर्म करनेसे व्याधि घटती हैं और आयु बढ़ती है ॥३७॥ यदि दान-पुण्य न करता तो न सही, पर मृत्युके समय की जानेवाली स्नान-दान आदि क्रियायें करके स्वर्गगमनकी तैयारी तो कर ही सकता था। यह भी न करनेसे इसका नरकगमन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निश्चित है ॥ ३८ ॥ इसपर ब्राह्मणको कष्ट पहुँचानेका पाप सवार है और इसको उस विप्रका शाप भी प्राप्त हो चुका है। अतएव इसकी मृत्यु निकट है ॥ ३९ ॥ इसके पास कोई ऐसा ब्राह्मण भी नहीं है, जो इसे समझाये कि विधाता द्वारा निश्चित मृत्यु सर्वथा अनिवार्य होती है ॥ ४० ॥ इस प्रकार विचार करके तक्षक नागने अपने साथ रहनेवाले नागोंको तपस्वीका वेष धारण कराके भेजनेका निश्चय किया ॥ ४१ ॥ तदनुसार वे तपस्वी राजाको भेंट देनेके लिए फल-मूल लेकर तैयार हो गये। तब तक्षक नाग एक नन्हेसे कीड़ेका रूप धारण करके उन्हीं फलोंके बीच छिपकर बैठ गया ॥४२॥ अब वे तपस्वी फल-मूलका दोना हाथमें लिये हुए राजप्रासादके सामने जाकर खड़े हो गये ॥ ४३ ॥ उन्हें देखकर रक्षकोंने उनके आगमन-का कारण पूछा, तब तपस्वियोंने कहा कि हमलोग महाराजका दर्शन करनेके लिए तपोवनसे आ रहे हैं ॥४४॥ हम अभिमन्युसुत, वीर, अपने कुलमें सूर्यके समान तेजस्वी तथा शुभदर्शन राजा परीक्षित्को अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे आशीर्वाद देने आये हैं ॥ ४५ ॥ आप जाकर महाराजसे कहें कि हम मुनिगण उनका दर्शन करना चाहते हैं। हम उनका मंत्राभिषेक करके और

शापस्तथा घोर आसन्ने मरणे किल ॥ ३६ ॥ न कोऽपि ब्राह्मणः पार्श्वे य एनं प्रतिबोधयेत् ॥ वेधसा विहितो मृत्युरनिवार्यस्तु सर्वथा ॥ ४० ॥ इति संचिन्त्य सर्पोऽसौ स्वान्नागान्निकटे स्थितान् ॥ कृत्वा तापसवेषांस्तान्प्राहिणोत्सुभुजंगमान् ॥ ४१ ॥ फलमूलादिकं गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः ॥ स्वयं च कीटरूपेण फलमध्ये ससार ह ॥ ४२ ॥ निर्गतास्ते तदा नागाः फलान्यादाय सत्वराः ॥ ते राजभवनं प्राप्य स्थिताः प्रासाद-सन्निधौ ॥ ४३ ॥ रक्षकास्तापसान्दृष्ट्वा पप्रच्छुस्तच्चिकीर्षितम् ॥ ऊचुस्ते भूपतिं द्रष्टुं प्राप्ताः स्मोऽद्य तपोवनात् ॥४४॥ अभिमन्युसुतं वीरं कुलार्कं चारुदर्शनम् ॥ परिवर्धयितुं प्राप्ता मंत्रैराथर्वणैस्तथा ॥ ४५ ॥ निवेदयध्वं राजानं दर्शनार्थागतान्मुनीन् ॥ कृत्वाऽभिषेकान् यास्यामो दत्त्वा मिष्टफ-लानि च ॥ ४६ ॥ भरतानां कुले क्वापि न दृष्टा द्वाररक्षकाः ॥ न श्रुतं तापसानां तु राज्ञोऽसंदर्शनं किल ॥ ४७ ॥ आरोहामो वयं तत्र यत्र राजा परीक्षितः ॥ आशीर्भिर्वर्धयित्वैनं दत्ताज्ञाः प्रव्रजामहे ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां तापसानां तु रक्षकाः ॥ प्रत्यूचुस्तान् द्विजान्मत्वा निदेशं भूपतेर्यथा ॥ ४९ ॥ नाद्य वो दर्शनं विप्रा राज्ञः स्यादिति नो मतिः ॥ श्वः सर्वतापसैरत्र त्वागंतव्यं नृपालये ॥ ५० ॥ अनारोहस्तु प्रासादो विप्राणां मुनिसत्तमाः ॥ विप्रशापभयाद्राज्ञा विहितोऽस्ति न संशयः ॥ ५१ ॥ तदोचुस्तानथो विप्राः फलमूलजलानि च ॥

इन मीठे फलोंकी भेंट देकर लौट जायँगे ॥ ४६ ॥ हमने भरतवंशी राजाओंके द्वारपर कहीं भी द्वाररक्षक नहीं देखा और न कभी यही सुना है कि तपस्वियोंको किसी राजाका दर्शन नहीं मिल सका है ॥ ४७ ॥ हमलोग उस खण्डमें चढ़कर जायँगे, जहाँ महाराज परीक्षित् विराजमान हैं। उन्हें आशीर्वाद देकर विदा लेंगे और अपने आश्रमको लौट जायँगे ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले—उन तपस्वियोंके वचन सुनकर रक्षकोंने उन्हें महाराजका आदेश सुनाते हुए कहा कि आज आपको महाराजका दर्शन नहीं मिल सकेगा। अतएव अच्छा हो कि आप तपस्वी लोग कल राजदरबारमें आयें और उनसे मिलें ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे मुनिसत्तमगण ! ब्राह्मणोंको भीतर जानेकी मनाही है। विप्रोंके शापके भयसे महाराजने ऐसा आदेश दे रक्खा है ॥५१॥ तब उन तपस्वी ब्राह्मणोंने कहा—अच्छा, यदि हम नहीं जा सकते तो न सही, पर आप ही लोग हमारी ओरसे यह फल-मूल तथा मन्त्राभिषिक्त जल ले जाकर महाराज परीक्षित्-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को दे दें और हमारा आशीर्वाद भी कह दें ॥ ५२ ॥ तब रक्षकोंने राजाके पास जाकर उन तपस्वियोंका आगमन तथा उनका विचार बताया। इसपर महाराजने आज्ञा दी कि वे लोग फल-मूल आदि जो कुछ दे रहे हों, उन्हें यहाँ ले आओ ॥ ५३ ॥ उन तापसोंसे कार्य भी पूछ लेना और कल आनेके लिए कह देना। उन सबको मेरा प्रणाम कहकर यह भी बता देना कि उन्हें आज मेरा दर्शन नहीं मिलेगा ॥ ५४ ॥ महाराजके आज्ञानुसार रक्षक उन तपस्वियोंके पास गये और उनके दिये हुए फल-मूल आदि लाकर बड़े सम्मानपूर्वक राजा परीक्षित्को अर्पण कर दिया ॥ ५५ ॥ उन विप्रवेषधारी नागोंके चले जानेपर उन फलोंको हाथमें लेकर राजा परीक्षित्ने मंत्रियोंसे कहा—॥ ५६ ॥ मित्रों ! आप लोग इन फलोंको खूब खाइए। मैं तो ब्राह्मणों द्वारा अर्पित यही एक बड़ा फल खाऊँगा ॥५७॥ ऐसा कहकर उत्तरातनय राजा परीक्षित्ने सब फल मित्रोंको दे दिया और उसमेंसे एक फल लेकर अपने हाथों उसे फोड़ा ॥५८॥

विप्राशिषश्च राज्ञेऽथ ग्राहयन्तु सुरक्षकाः ॥ ५२ ॥ ते गत्वा नृपतिं प्रोचुस्तापसानागताञ्जनाः ॥ राजोवाचानयध्वं वै फलमूलादिकं च यत् ॥ ५३ ॥ पृच्छध्वं तापसान्कार्यं प्रातरागमनं पुनः ॥ प्रणामं कथयध्वं मे नाद्य संदर्शनं मम ॥ ५४ ॥ ते गत्वाऽथ समादाय फलमूलादिकं च यत् ॥ राज्ञे समर्पयामासुर्बहुमानपुरःसरम् ॥ ५५ ॥ गतेषु तेषु नागेषु विप्रवेषावृतेषु च ॥ फलान्यादाय राजाऽसौ सचिवानिदमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ सुहृदो भक्षयंत्वद्य फलान्येतानि सर्वशः ॥ अद्म्यहं चैकमेतद्वै फलं विप्रार्पितं महत् ॥ ५७ ॥ इत्युक्त्वा तत्फलं दत्त्वा सुहृद्भ्यश्चोत्तरासुतः ॥ करे कृत्वा फलं पक्वं ददार नृपतिः स्वयम् ॥ ५८ ॥ विदारितं फलं राज्ञा तत्र क्रिमिरभूदणुः ॥ स कृष्णनयनस्ताम्रो दृष्टो भूपतिना स्वयम् ॥ ५९ ॥ तं दृष्ट्वा नृपतिः प्राह सचिवान्विस्मितानथ ॥ अस्तमभ्येति सविता विषादद्य न मे भयम् ॥ ६० ॥ अंगीकरोमि तं शापं कृमिको मां दशत्वयम् ॥ एवमुक्त्वा स राजेन्द्रो ग्रीवायां संन्यवेशयत् ॥ ६१ ॥ अस्तं याते दिवानाथे धृतः कंठेऽथ कीटकः ॥ तक्षकस्तु तदा जातः कालरूपी भयानकः ॥ ६२ ॥ राजा संवेष्टितस्तेन दष्टश्चापि महीपतिः ॥ मंत्रिणो विस्मयं प्राप्ता रुरुदुर्भृशदुःखिताः ॥ ६३ ॥ घोररूपमहिं वीक्ष्य दुद्रुवुस्ते भयार्दिताः ॥ चुक्रुशू रक्षकाः सर्वे हाहाकारो महानभूत् ॥ ६४ ॥ वेष्टितो भोगिभोगेन विनष्टबहुपौरुषः ॥ नोवाच नृपतिः किंचिन्न चचालोत्तरासुतः ॥ ६५ ॥

जिस फलको राजाने फोड़ा, उसमें एक बहुत ही छोटा अणुमात्रका कीड़ा दिखायी पड़ा। उसे राजाने स्वयं देखा ॥५९॥ उस क्रिमिको देखकर अपने विस्मित मंत्रियोंसे परीक्षितने कहा—सूर्य भगवान अस्त हो रहे हैं। अतएव अब मुझे विषका भय नहीं रहा ॥६०॥ मैं ब्राह्मणके शापको अङ्गीकार करके कहता हूँ कि यह क्रिमि मुझे काट ले। ऐसा कहकर राजेन्द्र परीक्षित्ने उसे अपने गलेपर रख लिया ॥६१॥ सूर्य भगवानके अस्त हो जानेपर गलेपर रक्खा हुआ वह अणुमात्रका कीड़ा भयानक कालके रूपमें परिणत हो गया ॥६२॥ तत्काल उसे अपना विकराल रूप प्रकट करके राजाको लपेटकर जकड़ लिया और काट खाया। यह घटना घटते देखकर मन्त्रिगण आश्चर्यमें पड़कर रोने लगे ॥ ६३ ॥ उस सर्पका वह भयंकर रूप देखकर भयभीत रक्षक रोते-चिल्लाते हुए भागने लगे और महलमें हाहाकार मच गया ॥ ६४ ॥ उस सर्पके शरीरसे जकड़ जानेके कारण महाराजका असाधारण पुरुषार्थ नष्ट हो गया। अतएव वे न कुछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बोले और न अपने आसनसे हिले-डुले ॥ ६५ ॥ उसी समय तक्षक नागके मुखसे विषजनित आगकी लपटें निकलने लगीं। उन लपटोंने मरे हुए महाराजको जलाकर भस्म कर दिया ॥ ६६ ॥ इस प्रकार तनिक देरमें राजा परीक्षित्के प्राण लेकर तक्षक नाग आकाशमें उड़ गया। वहाँके लोगोंने देखा कि उस सर्पमें समस्त विश्वको भस्म कर देनेकी शक्ति थी ॥ ६७ ॥ तब राजा परीक्षित् जले हुए वृक्षकी तरह गिर गये और उन्हें मरा हुआ देखकर लोग रोने-चिल्लाने लगे ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(राजा जनमेजयका सर्पयज्ञ) महाराज परीक्षित्को मरा हुआ तथा राजपुत्र जनमेजयको अबोध बालक देखकर मन्त्रिगण महाराजकी और्ध्वदैहिक क्रियामें लग गये ॥ १ ॥ गङ्गाजीके तटपर महाराजके सर्पविषसे भस्मप्राय शरीरको अगुरुकी चितापर रक्खा गया ॥ २ ॥ इस प्रकार अकाल मृत्युसे मरे हुए राजा परीक्षित्का विधिवत् प्रेतकृत्य राजपुरोहितोंने वैदिक

उत्थिताऽग्निशिखा घोरा विषजा तक्षकाननात् ॥ प्रजज्वाल नृपं त्वाशु गतप्राणं चकार ह ॥ ६६ ॥ हत्वाऽऽशु जीवितं राज्ञस्तक्षको गगने गतः ॥ जगद्दग्धं तु कुर्वाणं ददृशुस्तं जना इह ॥ ६७ ॥ स पपात गतप्राणो राजा दग्ध इव द्रुमः ॥ चुक्रुशुश्च जनाः सर्वे मृतं दृष्ट्वा नराधिपम् ॥ ६८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे परीक्षिन्मरणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ सूत उवाच ॥ गतप्राणं तु राजानं बालं पुत्रं समीक्ष्य च ॥ चक्रुश्च मंत्रिणः सर्वे परलोकस्य सत्क्रियाः ॥ १ ॥ गंगातीरे दग्धदेहं भस्मप्रायं महीपतिम् ॥ अगुरुभिश्चाभियुक्तायां चितायामध्यरोपयन् ॥ २ ॥ दुर्मरणे मृतस्यास्य चक्रुश्चैवौर्ध्वदैहिकीम् ॥ क्रियां पुरोहितास्तस्य वेदमंत्रैर्विधानतः ॥ ३ ॥ ददुर्दानानि विप्रेभ्यो गाः सुवर्णं यथोचितम् ॥ अन्नं बहुविधं तत्र वस्त्राणि विविधानि च ॥ ४ ॥ सुमुहूर्ते सुतं बालं प्रजानां प्रीतिवर्धनम् ॥ सिंहासने शुभे तत्र मंत्रिणः संन्यवेशयन् ॥ ५ ॥ पौरा जानपदा लोकाश्चक्रुस्तं नृपतिं शिशुम् ॥ जनमेजयनामानं राजलक्षणसंयुतम् ॥ ६ ॥ धात्रेयी शिक्षयामास राजचिह्नानि सर्वशः ॥ दिने दिने वर्धमानः स बभूव महामतिः ॥ ७ ॥ प्राप्ते चैकादशे वर्षे तस्मै कुलपुरोहितः ॥ यथोचितां ददौ विद्यां जग्राह स यथोचिताम् ॥ ८ ॥ धनुर्वेदं कृपः पूर्णं ददावस्मै सुसंस्कृतम् ॥ अर्जुनाय यथा द्रोणः कर्णाय भार्गवो यथा ॥ ९ ॥ संप्राप्तविद्यो बलवान्बभूव दुरतिक्रमः ॥ धनुर्वेदे तथा वेदे पारगः परमार्थवित् ॥ १० ॥ धर्मशास्त्रार्थकुशलः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ चकार राज्यं

मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सम्पन्न किया ॥ ३ ॥ राजाके मन्त्रियोंने ब्राह्मणोंको गौ, सुवर्ण, बहुत प्रकारके अन्न तथा विविध भाँतिके वस्त्रदान करके दिये ॥ ४ ॥ इसके बाद शुभ मुहूर्तमें प्रजाकी प्रीति बढ़ानेवाले बालक राजपुत्र जनमेजयको मंत्रियोंने पुनीत राजसिंहासनपर बिठाया ॥ ५ ॥ पुरवासी तथा जनपदनिवासी प्रजाजनोंने राजलक्षणसम्पन्न बालक जनमेजयको अपना राजा मान लिया ॥ ६ ॥ राजकुमारकी धाय उनको राजसी चाल-ढालकी शिक्षा देने लगी। वे धीरे-धीरे बढ़ने लगे और कुछ दिनोंमें बड़े बुद्धिमान् हो गये ॥ ७ ॥ जब जनमेजय ग्यारह वर्षके हुए, तब कुलपुरोहितने उन्हें क्षात्र धर्मकी शिक्षा दी और कुशाग्रबुद्धि जनमेजयने उन्हें हृदयङ्गम कर लिया ॥ ८ ॥ कृपाचार्यने भली-भाँति उन्हें उसी तरह धनुर्वेदकी शिक्षा दी, जैसे अर्जुनको द्रोणाचार्यने और कर्णको परशुरामने शस्त्रशिक्षा दी थी ॥ ९ ॥ इस प्रकार वेद तथा धनुर्वेदकी समस्त विद्यायें प्राप्त करके बुद्धिमान् जनमेजय बड़े बलवान् और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अजेय हो गये ॥ १० ॥ वे धर्मशास्त्रका अर्थ समझनेमें निपुण, सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे। धर्मात्मा जनमेजय इस प्रकार राज्य कर रहे थे, जैसे धर्मराज युधिष्ठिरने किया था ॥ ११ ॥ तदनन्तर सुवर्णवर्मा नामक काशिराजने अपनी शुभगुणसम्पन्ना राजकुमारी वपुष्टमाका विवाह परीक्षितपुत्र जनमेजयके साथ कर दिया ॥ १२ ॥ उस श्यामनयनी सुन्दरीको पाकर राजा जनमेजय उसी तरह प्रसन्न हुए, जैसे पूर्वकालमें काशिराजकी पुत्री अम्बा-अम्बालिकाको पाकर महाराज विचित्रवीर्य तथा सुभद्राको पाकर अर्जुन प्रसन्न हुए थे। अब महाराज जनमेजय महारानी वपुष्टमाके साथ वनों और उपवनोंमें विहार करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ जैसे शतक्रतु इन्द्र इन्द्राणी शचीके साथ सुखसे रहते हैं, उसी प्रकार वे अपनी रानी वपुष्टमाके साथ सुखसे रहने लगे। सुखपूर्वक पालित होती हुई प्रजा भी उनके राज्यमें सब तरहसे सन्तुष्ट थी ॥ १५ ॥ उनके कार्यनिपुण मन्त्रिगण भी सब कामोंको बड़े सुन्दर ढङ्गसे सन्पादित करते थे। उसी समय तक्षक सर्प द्वारा सताये हुए उत्तङ्क नामके ऋषि हस्तिनापुर आये। वे अपने मनमें यह विचार कर रहे थे कि उस सर्पके वैरका बदला कैसे लिया जा सकता है?

धर्मात्मा पुरा धर्मसुतो यथा ॥ ११ ॥ ततः सुवर्णवर्माख्यो राजा काशिपतिः किल ॥ वपुष्टमां शुभां कन्यां ददौ पारीक्षिताय च ॥ १२ ॥ स तां प्राप्यासितापांगीं मुमुदे जनमेजयः ॥ काशिराजसुतां कांतां प्राप्य राजा यथा पुरा ॥ १३ ॥ विचित्रवीर्यो मुमुदे सुभद्रां च यथाऽर्जुनः ॥ विजहार महीपालो वनेषूपवनेषु च ॥ १४ ॥ तया कमलपत्राक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा ॥ प्रजास्तस्य सुसंतुष्टा बभूवुः सुखलालिताः ॥ १५ ॥ मंत्रिणः कर्मकुशलाश्चक्रुः कार्याणि सर्वशः ॥ एतस्मिन्नेव काले तु मुनिरुत्तंकनामकः ॥ १६ ॥ तक्षकेण परिक्लिष्टो हस्तिनापुरमभ्यगात् ॥ वैरस्यापचितिं कोऽस्य प्रकुर्यादिति चिंतयन् ॥ १७ ॥ परीक्षितसुतं मत्वा तं नृपं समुपागतः ॥ कार्याकार्यं न जानासि समये नृपसत्तम ॥ १८ ॥ अकर्तव्यं करोष्यद्य कर्तव्यं न करोषि वै ॥ किं त्वां संप्रार्थयाम्यद्य गतामर्षं निरुद्यमम् ॥ १९ ॥ अवैरज्ञमतंत्रज्ञं बालचेष्टासमन्वितम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ किं वैरं न मया ज्ञातं न किं प्रतिकृतं मया ॥ २० ॥ तद्वद त्वं महाभाग करोमि यदनन्तरम् ॥ उत्तंक उवाच ॥ पिता ते निहतो भूप तक्षकेण दुरात्मना ॥२१॥ मंत्रिणस्त्वं समाहूय पृच्छ स्वपितृनाशनम् ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा पप्रच्छ मंत्रिसत्तमान् ॥२२॥ ऊचुस्ते द्विजशा-

॥ १६ ॥ १७ ॥ अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि यह कार्य महाराज परीक्षितके पुत्र जनमेजय ही कर सकते हैं। इसलिए वे वहाँ आये और राजा जनमेजयसे कहने लगे—हे राजन्! आप यह नहीं जानते कि किस समय क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ॥ १८ ॥ जो कर्तव्य है, उसे आप नहीं करते और अकर्तव्य कर्म किये जा रहे हैं। आप जैसे रोषरहित और निरुद्यमी राजासे मैं क्या कहूँ? ॥ १९ ॥ आप वैरीके प्रति किये जानेवाले कर्तव्यके ज्ञानसे शून्य हैं और बच्चों जैसा काम करते हैं। राजा जनमेजयने पूछा—मैंने किस वैरीके प्रति अपना कर्तव्य नहीं निभाया और वैरका प्रतीकार नहीं किया? ॥ २० ॥ हे महाभाग! आप बताइए, जिससे मैं उसे कर डालूँ। महर्षि उत्तङ्कने कहा—हे भूपाल! आपके पिताको तक्षकने डसकर मार डाला था ॥ २१ ॥ आप अपने मंत्रियोंको बुलाकर अपने पिताके विनाशका वृत्तान्त पूछिए। सूतजी बोले—महर्षिका वचन सुनकर राजा जनमेजयने मन्त्रियोंको बुलाकर पूछा। तब मन्त्रियोंने बताया कि एक ब्राह्मणके शापसे तक्षक सर्पने उन्हें काट लिया और उनकी मृत्यु हो गयी। राजा जनमेजयने कहा कि पिताजीके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मरणका कारण तो ब्राह्मणका शाप ही था। हे मुनिसत्तम! कृपया यह बताइए कि इसमें तक्षकका क्या अपराध है? महर्षि उत्तङ्कने कहा—यदि तक्षक निरपराध था तो उसने कश्यप ब्राह्मणको धन देकर रास्तेसे ही क्यों लौटा दिया? ॥ २२ ॥ २३ ॥ ऐसे प्रमाणके रहते हुए भी हे भूपते! आपके पिताको मारनेवाला तक्षक क्या आपका वैरी नहीं हुआ? ॥ २४ ॥ हे भूप! पूर्वकालमें महर्षि रुरुकी पत्नीको भी सर्पने ही काट लिया था, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी ॥ २५ ॥ वह अविवाहिता थी। अतएव रुरुने अपनी प्रियतमाको फिर जीवित कर लिया। तभीसे महामुनि रुरुने सभी सर्पोंके वधकी प्रतिज्ञा की और हाथमें शस्त्र लेकर पृथिवीपर घूमने लगे। जहाँ कभी कोई सर्प मिला, वे बराबर उसका वध करते रहे। एक दिन वनमें उन्हें एक बूढ़ा डोंड़हा सर्प मिला ॥२६–२८॥ उसे देखते ही मुनिने अपनी लाठी तानी और क्रुद्ध होकर मारनेको झपटे। तब उस डोंड़हाने कहा—॥२९॥ हे विप्र! मैं आपपर किसी प्रकारकी

पेन दष्टः सर्पेण वै मृतः ॥ जनमेजय उवाच ॥ शापोऽत्र कारणं राज्ञः शप्तस्य मुनिना किल ॥ २३ ॥ तक्षकस्य तु को दोषो ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥ उत्तंक उवाच ॥ तक्षकेण धनं दत्त्वा कश्यपः स निवारितः ॥ २४ ॥ न स किं तक्षको वैरी पितृहा तव भूपते ॥ भार्या रुरोः पुरा भूप दष्टा सर्पेण सा मृता ॥ २५ ॥ अविवाहिता तु मुनिना जीविता च पुनः प्रिया ॥ रुरुणाऽपि कृता तत्र प्रतिज्ञा चातिदारुणा ॥ २६ ॥ यं यं सर्पं प्रपश्यामि तं तं हन्म्यायुधेन वै ॥ एवं कृत्वा प्रतिज्ञां स शस्त्रपाणी रुरुस्तदा ॥ २७ ॥ व्यचरत्पृथिवीं राजन्निघ्नन्सर्पान् यतस्ततः ॥ एकदा स वने घोरं डुण्डुभं जरसान्वितम् ॥ २८ ॥ अपश्यद्दंडमुद्यम्य हंतुं तं समुपाययौ ॥ अभ्यहत्रुषितो विप्रस्तमुवाचाथ डुण्डुभः ॥ २९ ॥ नापराध्नोमि ते विप्र कस्मान्मामभिहंसि वै ॥ रुरुरुवाच ॥ प्राणप्रिया मे दयिता दष्टा सर्पेण सा मृता ॥ ३० ॥ प्रतिज्ञेयं तदा सर्प दुःखितेन मया कृता ॥ डुण्डुभ उवाच ॥ नाहं दशामि तेऽन्ये वै ये दशंति भुजंगमाः ॥ ३१ ॥ शरीरसमयोगेन न मां हिंसितुमर्हसि ॥ उत्तङ्क उवाच ॥ श्रुत्वा तां मानुषीं वाणीं सर्पेणोक्तां मनोहराम् ॥ ३२ ॥ रुरुः पप्रच्छ कोऽसि त्वं कस्मात् डुण्डुभतां गतः ॥ सर्प उवाच ॥ ब्राह्मणोऽहं पुरा विप्र सखा मे खगमाभिधः ॥ ३३ ॥ विप्रो धर्मभृतां श्रेष्ठः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ स मया वंचितो मौर्ख्यात्सर्पं कृत्वा च तार्णकम् ॥ ३४ ॥ भयं च प्रापितोऽत्यर्थमग्निहोत्रगृहे स्थितः ॥ तेन भीतेन शप्तोऽहं विह्वलेनातिवेपिना ॥ ३५ ॥ भव सर्पो मंदबुद्धे येनाहं धर्षितस्त्वया ॥ मया प्रसादितोऽत्यर्थं

चोट नहीं करता। फिर आप मुझे क्यों मार रहे हैं? रुरु बोले—साँपके ही काटनेसे मेरी स्त्री मर गयी थी ॥ ३० ॥ हे सर्प! उसी समयसे दुखी होकर मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि जो भी सर्प मिलेगा, उसे मार डालूँगा। डोंड़हेने कहा—मैं किसीको नहीं काटता। काटनेवाले सर्प दूसरे होते हैं ॥ ३१ ॥ शरीरकी समता देखकर ही आप मेरी हिंसा न करें। महर्षि उत्तङ्क बोले—उस सर्पकी मनोहर मानुषी वाणी सुनकर रुरुने उससे पूछा कि तुम कौन हो और यह डोंड़हे सर्पकी योनि तुमने क्यों पायी? सर्प बोला—पूर्वजन्ममें मैं एक ब्राह्मण था और खगम नामक मेरा एक मित्र था ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वह बड़ा धर्मात्मा, माननीय, सत्यवादी और जितेन्द्रिय ब्राह्मण था। मूर्खतावश मैंने घासका बना सर्प दिखाकर उसे डरा दिया ॥३४॥ उस समय वह अग्निमें होम कर रहा था। मेरी इस चालसे वह बहुत डर गया। तब उस भयभीत तथा थरथर काँपनेवाले ब्राह्मणने मुझे शाप देते हुए कहा—॥३५॥ ओ मन्दबुद्धे! तूने मुझे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नकली सर्प दिखाकर डराया है। इसलिए जा, तू भी सर्प हो जा। उस शापके अनुसार सर्प होकर मैंने उसकी बड़ी चिरौरी की ॥ ३६ ॥ जब क्रोध कुछ शान्त हुआ, तब उसने कहा—हे सर्प! प्रमतिपुत्र रुरु तुम्हें इस योनिसे छुड़ायेंगे। उन्होंने स्वयं मुझसे यह बात कही थी। सो मैं वही सर्प हूँ और आप रुरु हैं। अतएव आप मेरी बातोंको ध्यान देकर सुनिए ॥३७॥३८॥ ब्राह्मणोंके लिए अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। विद्वान् ब्राह्मणका सर्वथा यह कर्तव्य है कि वह सब प्राणियोंपर दया करे ॥ ३९ ॥ हे विप्रवर! यज्ञके सिवाय अन्यत्र हिंसाका विधान नहीं बताया गया है और यज्ञमें की गयी हिंसाको हिंसा नहीं कहते। महर्षि उत्तंक बोले—इसके बाद वह ब्राह्मण सर्पयोनिसे छूट गया ॥ ४० ॥ इस प्रकार उस ब्राह्मणके शापका अन्त करके मुनिवर रुरुने हिंसा त्याग दी और मरकर पुनः जीवित उस सुन्दरीके साथ विवाह कर लिया ॥४१॥ इस प्रकार उन मुनिने तो सर्पजातिके वैरका स्मरण करके सर्पोंका महासंहार किया, किन्तु एक आप हैं कि जो अपने वैरीको वैरी नहीं मानते ॥४२॥ हे भरतश्रेष्ठ! आप अपने पिताके हत्यारेपर कोप क्यों नहीं करते? आपके पिता स्नान-दान त्यागकर

सर्पेणासौ द्विजोत्तमः ॥ ३६ ॥ मामुवाचाथ तत्क्रोधात्किंचिच्छान्तिमवाप्य च ॥ रुरुस्ते मोचिता शापस्यास्य सर्प भविष्यति ॥ ३७ ॥ प्रमतेस्तु सुतो नूनमिति मां सोऽब्रवीद्वचः ॥ सोऽहं सर्पो रुरुस्त्वं च शृणु मे परमं वचः ॥ ३८ ॥ अहिंसा परमो धर्मो विप्राणां नात्र संशयः ॥ दया सर्वत्र कर्तव्या ब्राह्मणेन विजानता ॥ ३९ ॥ यज्ञादन्यत्र विप्रेन्द्र न हिंसा याज्ञिकी मता ॥ उत्तंक उवाच ॥ सर्पयोनेर्विनिर्मुक्तो ब्राह्मणोऽसौ रुरुस्ततः ॥ ४० ॥ कृत्वा तस्य च शापांतं परित्यक्तं च हिंसनम् ॥ विवाहिता तेन बाला मृता संजीविता पुनः ॥ ४१ ॥ कदनं सर्वसर्पाणां कृतं वैरमनुस्मरन् ॥ त्वं तु वैरं समुत्सृज्य वर्तसे पन्नगेष्वथ ॥ ४२ ॥ विमन्युर्भरतश्रेष्ठ पितृघातकरेषु वै ॥ अन्तरिक्षे मृतस्तातः स्नानदानविवर्जितः ॥ ४३ ॥ तस्योद्धारं च राजेंद्र कुरु हत्वाऽथ पन्नगान् ॥ पितुर्वैरं न जानाति जीवन्नेव मृतो हि सः ॥ ४४ ॥ दुर्गतिस्ते पितुस्तावद्यावत्तान्न हनिष्यसि ॥ अम्बामखमिषं कृत्वा कुरु यज्ञं नृपोत्तम ॥ ४५ ॥ सर्पसत्रं महाराज पितुर्वैरमनुस्मरन् ॥ सूत उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा जनमेजयस्तदा ॥ ४६ ॥ नेत्राभ्यामश्रुपातं च चकारातीव दुःखितः ॥ धिङ्मामस्तु सुदुर्बुद्धेर्वृथा मानकरस्य वै ॥ ४७ ॥ पिता यस्य गतिं घोरां प्राप्तः पन्नगपीडितः ॥ अद्याहं मखमारभ्य करोम्यपचितिं पितुः ॥ ४८ ॥ हत्वा सर्पानसंदिग्धो दीप्यमाने विभावसौ ॥ आहूय मंत्रिणः सर्वान्राजा वचन-

अन्तरिक्षमें मरे हैं ॥४३॥ अतएव हे राजेन्द्र! आप सर्पोंका विनाश करके अपने पिताका उद्धार करिए। जो मनुष्य पिताके वैरीसे बदला नहीं लेता, वह जीवित रहता हुआ भी मुर्देके सदृश होता है ॥४४॥ जब तक आप अपने पितृघाती सर्पोंको नहीं मारेंगे, तब तक परलोकमें भी आपके पिताकी दुर्गति होती रहेगी। अतएव हे नृपसत्तम! आप नवरात्रमें अम्बामखकी योजना बनाइए ॥४५॥ उसीके बहाने आप अपने पिताके वैरीका स्मरण करके सर्पयज्ञ करिए। सूतजी बोले—महर्षि उत्तंकके वचन सुनकर राजा जनमेजय बहुत दुखी हुए और उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। उन्होंने कहा—वृथा अभिमानी मुझ दुर्बुद्धिको धिक्कार है ॥४६॥४७॥ जिसके पिता सर्पसे पीडित होकर दुर्गतिको पहुँचे, वह पुत्र धिक्कारके ही योग्य है। अब सर्पयज्ञ आरम्भ करके मैं अपने पिताके वैरका बदला लूँगा ॥४८॥ सर्पयज्ञकी धधकती आगमें सब सर्प जलकर मर जायँगे। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। ऐसा विचार करके उन्होंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मंत्रियोंको बुलाया और उनसे कहा–॥ ४९ ॥ हे मेरे श्रेष्ठ मन्त्रियों ! आप लोग यज्ञके लिए उपयोगी सामग्रियाँ जुटायें । उत्तम ब्राह्मणोंसे परामर्श करके गंगाजीके तटपर पवित्र भूमिकी नाप-जोख कर लीजिए ॥ ५० ॥ इसके बाद सौ खम्भोंका एक रमणीक मण्डप बनाकर तैयार करिए । हे सचिवों ! आप लोग आज ही यज्ञकी वेदी तैयार कराना आरम्भ कर दें ॥ ५१ ॥ उसी यज्ञका अङ्गस्वरूप सर्पयज्ञ होगा । उस यज्ञका यज्ञपशु तक्षक नाग होगा और महर्षि उत्तंक उस यज्ञके होता होंगे ॥ ५२ ॥ शीघ्र ही सर्वज्ञ और वेदोंके पारङ्गत ब्राह्मणोंको बुलवा लें । सूतजी बोले—राजा जनमेजयके आदेशानुसार वे बुद्धिमान् मन्त्री उस कार्यमें जुट गये ॥ ५३ ॥ उन्होंने यज्ञकी सब सामग्रियाँ जुटाकर बड़ी विस्तृत यज्ञवेदी तैयार करायीं । जब यज्ञ आरम्भ होकर हवन होने लगा, तब तक्षक नाग भागकर इन्द्रके पास पहुँचा और कहा कि 'मैं भयभीत हूँ, आप मेरी रक्षा करें ।' इंद्रने उस भयभीत नागको ढाढ़स बँधाकर अपने आसनपर बैठाया ॥५४॥५५॥ फिर अत्यधिक अभयदान देकर कहा–हे पन्नग ! तुम निर्भय रहो । उधर महर्षि उत्तंकको जब मालूम हो गया कि तक्षक इन्द्रकी शरणमें गया है और

मब्रवीत् ॥ ४९ ॥ कुर्वन्तु यज्ञसंभारं यथार्हं मंत्रिसत्तमाः ॥ गंगातीरे शुभां भूमिं मापयित्वा द्विजोत्तमैः ॥ ५० ॥ कुर्वन्तु मंडपं स्वस्थाः शत-
स्तंभं मनोहरम् ॥ वेदी यज्ञस्य कर्तव्या ममाद्य सचिवाः खलु ॥ ५१ ॥ तदंगत्वे विधेयो वै सर्पसत्रः सुविस्तरः ॥ तक्षकस्य पशुस्तत्र होतोत्तंको
महामुनिः ॥ ५२ ॥ शीघ्रमाहूयतां विप्राः सर्वज्ञा वेदपारगाः ॥ सूत उवाच ॥ मंत्रिणस्तु तदा चक्रुर्भूपवाक्यैर्विचक्षणाः ॥ ५३ ॥ यज्ञस्य सर्वसं-
भारं वेदीं यज्ञस्य विस्तृताम् ॥ हवने वर्तमाने तु सर्पाणां तक्षको गतः ॥ ५४ ॥ इन्द्रं प्रति भयार्तोऽहं त्राहि मामिति चाब्रवीत् ॥ भयभीतं समा-
श्वास्य स्वासने संनिवेश्य च ॥५५॥ ददावभयमत्यर्थं निर्भयो भव पन्नग ॥ स तमिंद्रशरणं ज्ञात्वा मुनिर्दत्ताभयं तथा ॥ ५६ ॥ उत्तङ्कोऽह्वयदुद्विग्नः
सेंद्रं कृत्वा निमंत्रणम् ॥ स्मृतस्तदा तक्षकेण यायावरकुलोद्भवः ॥ ५७ ॥ आस्तीको नाम धर्मात्मा जरत्कारुसुतो मुनिः ॥ तत्रागत्य मुनेर्बालस्तु-
ष्टाव जनमेजयम् ॥ ५८ ॥ राजा तमर्च्चयामास दृष्ट्वा बालं सुपण्डितम् ॥ अर्चयित्वा नृपस्तं तु छंदयामास वांछितैः ॥ ५९ ॥ स तु वव्रे महाभाग
यज्ञोऽयं विरमत्विति ॥ सत्यबद्धो नृपस्तेन प्रार्थितश्च पुनस्तथा ॥ ६० ॥ होमं निवर्तयामास सर्पाणां मुनिवाक्यतः ॥ भारतं श्रावयामास वैशं-
पायन विस्तरात् ॥ ६१ ॥ श्रुत्वाऽपि नृपतिः कामं न शांतिमभिजग्मिवान् ॥ व्यासं पप्रच्छ भूपालो मम शांतिः कथं भवेत् ॥ ६२ ॥ मनोऽति

उन्होंने उसे अभयदान दे दिया है ॥५६॥ इससे मुनिराज उद्विग्न हो उठे और उन्होंने अपने मंत्रबलसे इंद्र समेत तक्षकका आवाहन किया । तब तक्षक नागने यायावरवंशी अपने भानजे धर्मात्मा आस्तीक मुनिका स्मरण किया । ये नागराज वासुकीके बहनोई और महर्षि जरत्कारके पुत्र थे । सो वह मुनिबालक आस्तीक यज्ञशालामें जाकर महाराज जनमेजयकी स्तुति करने लगा ॥५७॥५८॥ एक अच्छे विद्वान् बालकको देखकर राजाने उसकी पूजा की । पूजनके पश्चात् राजाने उससे अभिलषित वस्तु माँगनेका अनुरोध किया ॥ ५९ ॥ तब उस मुनि-बालकने वरदान माँगा कि यह यज्ञ बन्द कर दिया जाय । सत्यमें आबद्ध राजासे उस बालकने फिर अपनी माँग दुहरायी ॥ ६० ॥ तब आस्तीक मुनिके कथनानुसार राजा जनमेजयने वह सर्पयज्ञ बंद कर दिया । इसके बाद वैशम्पायन मुनिने विस्तारपूर्वक उन्हें महाभारतकी कथा सुनायी ॥६१॥ उसे सुन करके भी राजा जनमेजयको शान्ति नहीं मिली । तब उन्होंने व्यासजीसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा-हे भगवन्! मुझे शान्ति कैसे मिलेगी? ॥६२॥ अशान्तिकी आगमें मेरा हृदय जला जा रहा है। मुझ अभागेके पिता, पृथाके पुत्र और अर्जुनके पौत्र महाराज परीक्षितकी बड़ी भीषण मृत्यु हुई है ॥ ६३ ॥ हे महाभाग! क्षत्रियोंकी मृत्यु तो संग्राममें हो, तभी वह अच्छी मानी जाती है। हे व्यासजी! यदि रणमें मरनेका अवसर न मिले तो घरमें विधिपूर्वक मरण होनेसे अच्छा होता है ॥ ६४ ॥ किन्तु मेरे पिता इस प्रकार नहीं मरे। वे तो आकाशमें और वहाँ भी विवश होकर मरे थे। हे सत्यवतीतनय! इस विषयमें शान्ति प्राप्त करनेका कोई ऐसा उपाय मुझे बतलाइए, जिससे दुर्गतिको प्राप्त मेरे पिता स्वर्ग प्राप्त कर लें ॥६५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(जरत्कारु मुनिका विवाह और आस्तीकका जन्म) सूतजी बोले-जनमेजयके वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र महर्षि व्यासजीने उस राजसभामें राजा जनमेजयसे कहा ॥ १ ॥ व्यासजी बोले-हे राजन्! सुनिए, मैं आपको एक गुप्त और अद्भुत पुराण सुनाऊँगा। वह पुनीत पुराण भागवत है। जिसमें विविध लोककल्याणकारी आख्यान भरे हुए हैं॥२॥ पूर्वकालमें उसे मैंने

दह्यते कामं किं करोमि वदस्व मे ॥ पिता मे दुर्भगस्यैव मृतः पार्थसुतात्मजः ॥ ६३ ॥ क्षत्रियाणां महाभाग संग्रामे मरणं वरम् ॥ रणे वा मरणं व्यास गृहे वा विधिपूर्वकम् ॥ ६४ ॥ मरणं न पितुर्मेऽभूदंतरिक्षे मृतोऽवशः ॥ शांत्युपायं वदस्वात्र त्वं च सत्यवतीसुत ॥ यथा स्वर्गं व्रजेदाशु पिता मे दुर्गतिं गतः ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ उवाच वचनं तत्र सभायां नृपतिं च तम् ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि पुराणं गुह्यमद्भुतम् ॥ पुण्यं भागवतं नाम नानाख्यानयुतं शिवम् ॥ २ ॥ अध्यापितं मया पूर्वं शुकायात्मसुताय वै ॥ श्रावयामि नृप त्वां हि रहस्यं परमं मम ॥ ३ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां दायकं श्रवणात्किल ॥ शुभदं सुखदं नित्यं सर्वागमसमुद्धृतम् ॥ ४ ॥ जनमेजय उवाच ॥ आस्तीकोऽयं सुतः कस्य विघ्नार्थं कथमागतः ॥ प्रयोजनं किमत्रास्य सर्पाणां रक्षणे प्रभो ॥ ५ ॥ कथयैतन्महाभाग विस्तरेण कथानकम् ॥ पुराणं च यथा सर्वं विस्तराद्वद सुव्रत ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ जरत्कारुर्मुनिः शांतो न चकार गृहाश्रमम् ॥ तेन दृष्टा वने गर्ते लम्बमानाः स्वपूर्वजाः ॥ ७ ॥ ततस्तमाहुः कुरु पुत्र दारान्यथा च नः स्यात्परमा हि तृप्तिः ॥ स्वर्गे व्रजामः खलु दुःखमुक्ता वयं सदाचारयुते सुते वै ॥ ८ ॥ स तानु-

अपने पुत्र शुकदेवको पढ़ाया था। हे महाराज! वही परम रहस्य मैं आपको सुना रहा हूँ ॥ ३ ॥ इस पुराणको सुननेसे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। यह शुभदायक और सुखदायक पुराण है। यह सभी वेदों और शास्त्रोंका सार है ॥ ४ ॥ राजा जनमेजय बोले—यह आस्तीक किसका पुत्र है और यह मेरे यज्ञमें विघ्न डालने क्यों आया है? हे प्रभो! सर्पोंकी उसने किस अभिप्रायसे रक्षा की है? ॥५॥ हे महाभाग! आप विस्तारके साथ यह कथानक तथा वह पुराण सुनाइए ॥६॥ व्यासजी बोले—महामुनि जरत्कारु बड़े ही शान्त प्रकृतिके महात्मा थे। उन्होने घर-गृहस्थी नहीं बसायी थी। एक बार उन्होंने वनके एक गढ़ेमें अपने पूर्वजोंको लटकते हुए देखा ॥७॥ जरत्कारुको देखकर उनके पूर्वजोंने कहा—हे पुत्र! तुम अपना विवाह कर लो, जिससे हमलोग परम तृप्ति प्राप्त कर सकें। तुम जैसे सदाचारी पुत्रको ऐसा कोई उपाय करना चाहिए कि जिससे हम दुःखमुक्त होकर स्वर्ग चले जायँ॥८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पितरोंके वचन सुनकर जरत्कारु बोले—हे पूर्वजों ! मैं तभी अपना विवाह करूँगा, जब कि मुझे मेरे अनुरूप, विना माँगे और वशवर्तिनी कन्या मिलेगी। यह मैं सर्वथा सत्य कह रहा हूँ ॥ ९ ॥ अपने पूर्वजोंसे ऐसा कहकर द्विज जरत्कारु तीर्थयात्राको चले गये। उसी समय सर्पोंको उनकी माताने यह शाप दे दिया कि तुम लोग जाकर आगमें जल जाओ ॥१०॥ महामुनि कश्यपकी दो पत्नियाँ थीं—कद्रू और विनता। वे दोनों सूर्यभगवानके रथमें जुते एक घोड़ेको देखकर परस्पर बातें करने लगीं ॥ ११ ॥ घोड़ेको देखकर कद्रूने विनतासे कहा—हे कल्याणी ! मुझे तुम सच-सच और शीघ्र बताओ कि उस घोड़ेका कौनसा रंग है ॥ १२ ॥ विनता बोली—हे शुभे ! यह अश्वराज तो श्वेत वर्णका है। हाँ, आप किस रंगका समझती हैं ? आप भी उसका रंग बता दें तो हमारी आपकी बाजी लग जाय ॥ १३ ॥ कद्रूने कहा—हे पवित्र मुसकानवाली ! मैं तो उस घोड़ेको काले रंगका समझती हूँ। हे भामिनि ! अब हम यह बाजी लगायें कि हममेंसे जो हार जाय, वह दूसरीकी दासी बनकर रहे ॥ १४ ॥ सूतजी बोले—बाजी लग जानेपर कद्रूने अपने वशवर्ती पुत्रोंसे कहा कि

वाचाथ लभे समानामयाचितां चातिवशानुगां च ॥ तदा गृहारंभमहं करोमि ब्रवीमि तथ्यं मम पूर्वजा वै ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा ताञ्जरत्कारुर्गतस्तीर्थान्प्रति द्विजः ॥ तदैव पन्नगाः शप्ता मात्राऽग्नौ निपतंत्विति ॥ १० ॥ कश्यपस्य मुनेः पत्न्यौ कद्रूश्च विनता तथा ॥ दृष्ट्वाऽऽदित्यरथे चाश्वमूचतुश्च परस्परम् ॥ ११ ॥ तं दृष्ट्वा च कद्रूर्विनतामिदमब्रवीत् ॥ किंवर्णोऽयं हयो भद्रे सत्यं प्रब्रूहि माचिरम् ॥ १२ ॥ विनतोवाच ॥ श्वेत एवाश्वराजोऽयं किं वा त्वं मन्यसे शुभे ॥ ब्रूहि वर्णं त्वमप्यस्य ततस्तु विपणावहे ॥ १३ ॥ कद्रूरुवाच ॥ कृष्णवर्णमहं मन्ये हयमेनं शुचिस्मिते ॥ एहि सार्धं मया दिव्यं दासीभावाय भामिनि ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ कद्रूश्च स्वसुतानाह सर्वान्सर्पान्वशे स्थितान् ॥ वालान् श्यामान्प्रकुर्वंतु यावतोऽश्वशरीरके ॥ १५ ॥ नेनि केचन तत्राहुस्तानथासौ शशाप ह ॥ जनमेजयस्य यज्ञे वै गमिष्यथ हुताशनम् ॥ १६ ॥ अन्ये चक्रुर्हयं सर्पाः कर्बुरं वर्णभोगकैः ॥ वेष्टयित्वाऽस्य पुच्छं तु मातुः प्रियचिकीर्षया ॥ १७ ॥ भगिन्यौ च सुसंयुक्ते गत्वा ददृशतुर्हयम् ॥ कुर्बुरं तं हयं दृष्ट्वा विनता चातिदुःखिता ॥ १८ ॥ तदाऽऽजगाम गरुडः सुतस्तस्या महाबलः ॥ स दृष्ट्वा मातरं दीनामपृच्छत्पन्नगाशनः ॥ १९ ॥ मातः कथं सुदीनाऽसि रुदितेव विभासि मे ॥ जीवमाने मयि सुते तथाऽन्ये रविसारथौ ॥ २० ॥ दुःखिताऽसि ततो वां धिग्जीवितं चारुलोचने ॥ किं जातेन सुतेनाथ

तुम सब जाकर उस घोड़ेके बालोंमें लिपट जाओ और उन्हें काला कर दो ॥ १५ ॥ उनमेंसे कुछ सर्पोंने ऐसा करनेसे इन्कार किया। उनको कद्रूने शाप दे दिया कि तुम सब राजा जनमेजयके सर्पयज्ञमें जाकर आगमें जल जाओगे ॥ १६ ॥ शेष सर्पोंने माताको प्रसन्न करनेके लिए उस घोड़ेकी पूँछमें लिपटकर अपने विभिन्न रंगोंसे उसे चितकबरा कर दिया ॥ १७ ॥ उसके बाद कद्रू और विनता दोनों बहिनोंने साथ-साथ जाकर उस घोड़ेको देखा। उस घोड़ेको चितकबरा देखकर विनताको बहुत दुःख हुआ ॥ १८ ॥ उसी समय विनताके बलवान् पुत्र सर्पभक्षी गरुड़जी आ पहुँचे। उन्होंने अपनी माताको दुःखिनी देखकर कहा—॥ १९ ॥ माताजी ! आप इतनी दुःखिनी क्यों हैं ? मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे आप रो रही हों। मेरे तथा सूर्यभगवानके सारथी अरुण जैसे पुत्रोंके रहते आप दुःखी रहें तो हे चारुलोचने ! हम दोनों भाइयोंके जीवनको धिक्कार है। जिस पुत्रके उत्पन्न होनेपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माता कष्टमें रहे तो उस पुत्रसे उसे क्या लाभ हुआ ? ॥ २० ॥ २१ ॥ हे माताजी ! आप मुझे अपने दुःखका कारण बताइए । मैं उसे दूर करूँगा । विनता बोली—हे पुत्र ! मैं अपनी सौतकी दासी बन गयी । अब और क्या कहूँ ॥ २२ ॥ आज वह मुझसे कह रही है कि जहाँ कहीं मैं जाऊँ, वहाँ तुम मुझे अपने कन्धेपर चढ़ाकर ले चला करो । हे पुत्र ! इस अपमानसे मैं बहुत दुःखी हूँ । गरुड़जी बोले—वे जहाँ जाना चाहेंगी, वहाँ मैं उन्हें पहुँचाऊँगा ॥ २३ ॥ हे कल्याणी ! अब आप शोक न करें । मैं आपको निश्चिंत किये देता हूँ । व्यासजीने कहा—गरुड़जीके यह कहनेपर विनता तत्काल कद्रूके पास गयी ॥ २४ ॥ बलवान् गरुड़ अपनी माताको दासतासे छुड़ानेके लिए कद्रू और उसके पुत्र सर्पोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर समुद्रके उस पार ले गये ॥ २५ ॥ वहाँ पहुँचकर गरुड़ने कद्रूसे कहा—हे माताजी ! आपको प्रणाम है । कृपया आप मुझे यह बताइए कि मेरी माताको दासीभावसे मुक्ति मिलनेका कौन-सा अचूक उपाय है ? ॥२६॥ कद्रू बोली—यदि तुम बलपूर्वक देवलोकसे अमृत लाकर मेरे पुत्रोंको दे दो तो हे पुत्र ! तुम शीघ्र अपनी अबला माताको दासीवृत्तिसे मुक्त करा लोगे

यदि माता सुदुःखिता ॥ २१ ॥ शंस मे कारणं मातः करोमि विगतज्वराम् ॥ विनतोवाच ॥ सपत्न्या दास्यहं पुत्र किं ब्रवीमि वृथा क्षता ॥ २२ ॥ वह मां सा ब्रवीत्यद्य तेनास्मि दुःखिता सुत ॥ गरुड उवाच ॥ वहिष्येऽहं तत्र किल यत्र सा गन्तुमुत्सुका ॥ २३ ॥ मा शोकं कुरु कल्याणि निश्चिंतां त्वां करोम्यहम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता सा गता पार्श्वं कद्रोश्च विनता तदा ॥ २४ ॥ दासीभावमपाकर्तुं गरुडोऽपि महाबलः ॥ उवाह तां सपुत्रां वै सिंधोः पारं जगाम ह ॥ २५ ॥ गत्वा तां गरुडः प्राह ब्रूहि मातर्नमोऽस्तु ते ॥ कथं मुच्येत मे माता दासीभावादसंशयम् ॥ २६ ॥ कद्रूरुवाच ॥ अमृतं देवलोकात्त्वं बलादानीय मे सुतान् ॥ समर्पय सुताद्याशु मातरं मोचयाबलाम् ॥ २७ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः प्रययौ शीघ्रमिन्द्रलोकं महाबलः ॥ कृत्वा युद्धं जहाराशु सुधाकुम्भं खगोत्तमः ॥ २८ ॥ समानीयामृतं मात्रे वैनतेयः समर्पयत् ॥ मोचिता विनता तेन दासीभावादसंशयम् ॥ २९ ॥ अमृतं संजहारेन्द्रः स्नातुं सर्पा यदा गताः ॥ दासीभावाद्विनिर्मुक्ता विनता विपतेर्बलात् ॥ ३० ॥ तत्रास्तीर्णाः कुशास्तैस्तु लीढाः पन्नगनामकैः ॥ द्विजिह्वास्ते सुसम्पन्नाः कुशाग्रस्पर्शमात्रतः ॥ ३१ ॥ मात्रा शप्ताश्च ये नागा वासुकिप्रमुखाः शुचा ॥ ब्रह्माणं शरणं गत्वा ते होचुः शापजं भयम् ॥ ३२ ॥ तानाह भगवान्ब्रह्मा जरत्कारुर्महामुनिः ॥ वासुकेर्भगिनीं तस्मै अर्पयध्वं

॥ २७ ॥ व्यासजीने कहा—कद्रूके ऐसा कहनेपर महाबली गरुड़ तत्काल इन्द्रलोक जा पहुँचे और वहाँ रक्षकोंसे युद्ध करके अमृतकलश छीन लाये ॥ २८ ॥ स्वर्गसे अमृत लाकर गरुड़ने अपनी विमाता कद्रूको सौंप दिया । जिससे उसने उनकी माता विनताको दासीवृत्तिसे मुक्त कर दिया ॥ २९ ॥ उधर जब सब सर्प अमृतपान करनेके पहले स्नान करने चले गये, तब इन्द्रने आकर अमृतका अपहरण कर लिया । इस प्रकार विनताने गरुड़जीके पराक्रम द्वारा दासीभावसे छुटकारा पाया ॥ ३० ॥ वहाँ कुश बिछे हुए थे, उनको सर्पगण अमृत समझकर चाटने लगे । सो उन कुशाओंके अग्रभागका स्पर्श होते ही उनकी जीभें फट गयीं । तभीसे सर्पोंकी दो जिह्वायें हो गयीं ॥ ३१ ॥ जिन सर्पोंको माता कद्रूका शाप मिल चुका था, वे वासुकी आदि नागगण बहुत शोकाकुल होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उन्होंने शापजनित भयका सब वृत्तान्त कहा ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले—जरत्कारु नामके एक महामुनि हैं । तुम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोग उनके साथ वासुकीकी बहिन सनामिका (जरत्कारु) का विवाह कर दो ॥ ३३ ॥ उन दोनोंके सहवाससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही तुम्हारी इस विपत्तिको दूर करेगा । इसमें कोई संशय नहीं है । उस पुत्रका आस्तीक नाम पड़ेगा ॥ ३४ ॥ वासुकी ब्रह्माजीका आदेश सुनकर तुरन्त गये और उन्होंने बड़े विनयपूर्वक जरत्कारुमुनिके साथ अपनी बहिनका विवाह कर दिया ॥ ३५ ॥ महामुनि जरत्कारुने उसका भी अपने समान नाम जानकर कहा कि जब कभी यह मेरा कोई अप्रिय कार्य करेगी तो मैं इसे त्याग दूँगा ॥ ३६ ॥ इस शर्तके साथ उन्होंने उस कन्याको अङ्गीकार कर लिया । वासुकी नाग भी उन्हें अपनी बहिन देकर हँसी-खुशी अपने घर चले गये ॥ ३७ ॥ हे परन्तप ! महर्षि जरत्कारु भी अब उसी वनमें एक सुन्दर पर्णकुटी छवाकर उसके साथ सानन्द विहार करने लगे ॥ ३८ ॥ एक दिन मुनिसत्तम जरत्कारु भोजन करके लेटे हुए थे और वासुकीकी बहिन वहाँ ही बैठी हुई थी ॥ ३९ ॥

सनामिकाम् ॥ ३३ ॥ तस्यां यो जायते पुत्रः स वस्त्राता भविष्यति ॥ आस्तीक इति नामासौ भविता नात्र संशयः ॥ ३४ ॥ वासुकिस्तु
तदाकर्ण्य वचनं ब्रह्मणः शिवम् ॥ वनं गत्वा सुतां तस्मै ददौ विनयपूर्वकम् ॥ ३५ ॥ सनामां तां मुनिर्ज्ञात्वा जरत्कारुरुवाच तम् ॥ अप्रियं मे
यदा कुर्यात्तदा तां संत्यजाम्यहम् ॥ ३६ ॥ वाग्बंधं तादृशं कृत्वा मुनिर्जग्राह तां स्वयम् ॥ दत्त्वा च वासुकिः कामं भवनं स्वं जगाम ह ॥ ३७ ॥
कृत्वा पर्णकुटीं शुभ्रां जरत्कारुर्महावने ॥ तया सह सुखं प्राप रममाणः परंतपः ॥ ३८ ॥ एकदा भोजनं कृत्वा सुप्तोऽसौ मुनिसत्तमः ॥ भगिनी
वासुकेस्तत्र संस्थिता वरवर्णिनी ॥ ३९ ॥ न सम्बोधयितव्योऽहं त्वया कान्ते कथंचन ॥ इत्युक्त्वा तु गतो निद्रां मुनिस्तां सुदतीं तदा ॥ ४० ॥
रविरस्तगिरिं प्राप्तः सन्ध्याकाल उपस्थिते ॥ किं करोमि न मे शांतिस्त्यजेन्मां बोधितः पुनः ॥ ४१ ॥ धर्मलोपभयाद्भीता जरत्कारुरचिन्तयत् ॥
नोचेत्प्रबोधयाम्येनं सन्ध्याकालो वृथा व्रजेत् ॥ ४२ ॥ धर्मनाशाद्वरं त्यागस्तथापि मरणं ध्रुवम् ॥ धर्महानिर्नराणां हि नरकाय भवेत्पुनः ॥ ४३ ॥
इति संचिंत्य सा बाला तं मुनिं प्रत्यबोधयत् ॥ सन्ध्याकालोऽपि संजात उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुव्रत ॥४४॥ उत्थितोऽसौ मुनिः कोपात्तामुवाच व्रजाम्यहम् ॥
त्वं तु भ्रातृगृहं याहि निद्राविच्छेदकारिणी ॥४५॥ वेपमानाऽब्रवीद्वाक्यमित्युक्ता मुनिना तदा ॥ भ्रात्रा दत्ता यदर्थं तत्कथं स्यादमितप्रभ ॥४६॥

मुनिने उस सुन्दर दाँतोंवाली सुन्दरीसे कहा कि मुझे जगाना नहीं । ऐसा कहकर वे सो गये ॥ ४० ॥ सोते-सोते सन्ध्या हो गयी और सूर्य भगवान अस्त हो गये । अब वह सोचने लगी कि मैं क्या करूँ ? मेरी मानसिक अशान्ति बढ़ती जा रही है । यदि इन्हें जगाती हूँ तो ये मुझे त्याग देंगे ॥ ४१ ॥ और यदि नहीं जगाती तो सन्ध्याका समय व्यर्थ बीत जायगा । धर्मलोपके भयसे मुनिपत्नी जरत्कारुने ऐसा सोचा ॥ ४२ ॥ अन्तमें उसने निश्चय किया कि धर्मनाशकी अपेक्षा मेरा त्याग अथवा मरण भी अच्छा है । क्योंकि धर्मनाश होनेपर मनुष्योंको नरकगामी होना पड़ता है ॥४३॥ ऐसा विचार करके उस सुन्दरीने उन्हें जगाते हुए कहा—हे सुव्रत ! उठिए । सन्ध्याका समय हो गया है ॥ ४४ ॥ उठते ही मुनिने क्रोधपूर्वक कहा—अरी मेरी निद्रा नष्ट करनेवाली नारी ! मैं जाता हूँ । तू अपने भाई वासुकीके घर चली जा ॥४५॥ मुनिराजके ऐसा कहनेपर भयसे काँपती हुई नागकन्या जरत्कारुने कहा कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे अमिततेजस्विन् ! मेरे भाईने जिस कार्यसे आपके साथ मेरा विवाह किया था, वह कार्य अब कैसे पूर्ण होगा ? ॥ ४६ ॥ मुनिने शान्तभावसे कहा कि वह है अर्थात् मेरे वीर्यसे तुम्हें गर्भाधान हो गया है । इस प्रकार महामुनिके त्याग देनेपर नागकन्या जरत्कारु वासुकीके घर चली गयी ॥ ४७ ॥ जब उसके भाई वासुकीने उससे पूछा, तब उसने पतिकी कही हुई बात दोहरा कर कहा—'अस्ति' अर्थात् है, यह कहकर मुनिराज चले गये ॥४८॥ उसके वचन सुनकर वासुकीने सोचा कि मुनिराज सत्यवादी हैं । ऐसा विश्वास करके उन्होंने सनामाको अपने घरमें आश्रय दे दिया ॥ ४९ ॥ हे कुरुसत्तम ! कुछ समय बाद एक मुनिबालक उत्पन्न हुआ और उसका आस्तीक नाम पड़ा ॥ ५० ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार अपने मातृपक्षकी रक्षा करनेके लिए ही भावुकहृदय आस्तीक मुनिने वह सर्पयज्ञ समाप्त कराया है ॥ ५१ ॥ हे महाराज ! आपने यह बहुत अच्छा किया कि जो यायावरवंशमें उत्पन्न उन महामुनिका सम्मान

मुनिः प्राह जरत्कारुं तदस्तीति निराकुलः ॥ गता सा मुनिना त्यक्ता वासुकेः सदनं तदा ॥ ४७॥ पृष्टा भ्रात्राऽब्रवीद्वाक्यं यथोक्तं पतिना तदा ॥ अस्तीत्युक्त्वा च हित्वा मां गतोऽसौ मुनिसत्तमः ॥ ४८ ॥ वासुकिस्तु तदाकर्ण्य सत्यवाङ्मुनिरित्युत ॥ विश्वासं च परं कृत्वा भगिनीं तां समाश्रयत् ॥ ४९ ॥ ततः कालेन कियता जातोऽसौ मुनिबालकः ॥ आस्तीक इति नामाऽसौ विख्यातः कुरुसत्तम ॥ ५० ॥ तेनायं रक्षितो यज्ञस्तव पार्थिवसत्तम ॥ मातृपक्षस्य रक्षार्थं मुनिना भावितात्मना ॥ ५१ ॥ भव्यं कृतं महाराज मानितोऽयं त्वया मुनिः ॥ यायावरकुलोत्पन्नो वासुकेर्भगिनीसुतः ॥ ५२ ॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाबाहो भारतं सकलं श्रुतम् ॥ दानानि बहु दत्तानि पूजिता मुनयस्तथा ॥ ५३ ॥ कृतेन सुकृतेनापि न पिता स्वर्गतिं गतः ॥ पावितं नः कुलं कृत्स्नं त्वया नृपतिसत्तम ॥ ५४ ॥ देव्याश्चायतनं भूप विस्तीर्णं कुरु भक्तितः ॥ येन वै सकला सिद्धिस्तव स्याज्जनमेजय ॥ ५५ ॥ पूजिता परया भक्त्या शिवा सकलदा सदा ॥ कुलवृद्धिं करोत्येव राज्यं च सुस्थिरं सदा ॥ ५६ ॥ देवीमखं विधानेन कृत्वा पार्थिवसत्तम ॥ श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं परमं शृणु ॥ ५७ ॥ त्वामहं श्रावयिष्यामि कथां परमपावनीम् ॥ संसार-तारिणीं दिव्यां नानारससमाहृताम् ॥ ५८ ॥ न श्रोतव्यं परं चास्मात्पुराणाद्विद्यते भुवि ॥ नाराध्यं विद्यते राजन्देवीपादाम्बुजादृते ॥ ५९ ॥

करते हुए उनकी बात मान ली ॥ ५२ ॥ हे महाबाहो ! आपका कल्याण हो । आपने समग्र महाभारत सुना, विविध प्रकारके दान दिये और अगणित मुनियोंकी पूजा की ॥ ५३ ॥ हे भूपतिसत्तम ! इतने पुनीत कर्म करनेपर भी यदि आपके पिता स्वर्गलाभ नहीं कर सके और न आपका कुरुवंश ही पवित्र हुआ तो हे राजन् ! आप श्रद्धापूर्वक भगवती दुर्गाका एक बहुत बड़ा मन्दिर बनवाइए । हे जनमेजय ! ऐसा करनेसे आपको सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ समस्त इच्छायें पूर्ण करनेवाली भगवती दुर्गाका यदि परम भक्तिके साथ पूजन किया जाय तो वे कुलकी वृद्धि करतीं और राज्यको सुस्थिर बनाती हैं ॥ ५६ ॥ हे महाराज ! अब विधिवत् देवीयज्ञ करिए और देवीभागवत नामके पुराणको सुनिए ॥ ५७ ॥ परम पावनी, संसारतारिणी, दिव्य तथा विविधि रसोंसे परिपूर्ण वह कथा मैं स्वयं आपको सुनाऊँगा ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! इस पुराणसे बढ़कर सुनने लायक अन्य कोई पुराण नहीं है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुर्गादेवीके चरणोंके सिवाय संसारमें आराधनीय और कोई नहीं है ॥ ५९ ॥ हे नृपसत्तम ! जिन सज्जनोंके प्रेमसंकुल हृदयमें सदा देवीका निवास रहता है, वे ही भाग्यवान् हैं, वे ही ज्ञानी हैं और वे ही धन्य हैं ॥ ६० ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! इस भारतभूमिमें वे ही प्राणी दुखी रहते हैं, जिन्होंने कभी अम्बिका भगवती महामायाकी आराधना नहीं की है ॥ ६१ ॥ ब्रह्मादिक देवता भी सदा जिनकी आराधनामें संलग्न रहते हैं, उनकी आराधना भला कौन मनुष्य नहीं करेगा ? ॥ ६२ ॥ स्वयं भगवतीने जो महापुराण विष्णुभगवानको सुनाया था।

ते सभाग्याः कृतप्रज्ञा धन्यास्ते नृपसत्तम ॥ येषां चित्ते सदा देवी वसति प्रेमसंकुले ॥ ६० ॥ सुदुःखितास्ते दृश्यंते भुवि भारत भारते ॥ नाराधिता महामाया यैर्जनैश्च सदाऽम्बिका ॥ ६१ ॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे यदाराधनतत्पराः ॥ वर्तंते सर्वदा राजंस्तां न सेवेत को जनः ॥ ६२ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ भगवत्या समाख्यातं विष्णवे यदनुत्तमम् ॥ ६३ ॥ तेन श्रुतेन ते राजंश्चित्ते शांतिर्भविष्यति ॥ पितॄणां चाक्षयः स्वर्गः पुराणश्रवणाद्भवेत् ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे श्रोतृप्रवक्तृप्रसंगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

द्वाविंशत्यधिकसंख्यैः पद्यैः सप्तशतैः शुभैः ॥ श्रीमद्व्यासमुखोद्गीतैर्द्वितीयस्कन्ध ईरितः ॥ १ ॥

उसे नित्य जो मनुष्य पढ़ता या सुनता है, उसकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ ६३ ॥ हे महाराज ! यह पुराण सुननेसे आपके चित्तको शान्ति मिलेगी और आपके पिताको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होगा ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

भगवान् वेदव्यासके मुखारविन्दसे निःसृत सात सौ बाईस श्लोकों द्वारा यह द्वितीय स्कन्ध कहा गया है ॥ १ ॥

॥ समाप्तोऽयं द्वितीयः स्कन्धः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा'भाषाटीकासहिते--

श्रीमद्देवीभागवते द्वितीयः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते तृतीयः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(राजा जनमेजयके विविध प्रश्न) राजा जनमेजय बोले—भगवन् ! आपने जो महान् अम्बायज्ञकी चर्चा की है, उसके विषयमें मैं यह जानना चाहता हूँ कि वे अम्बा कौन हैं ? वे कैसे और कहाँ उत्पन्न हुईं और उनमें क्या गुण हैं ? ।।१।। उन भगवतीका यज्ञ कैसे किया जाता है ? उस यज्ञका स्वरूप कैसा होता है ? हे दयानिधान ! आप सर्वज्ञ हैं । अतएव उस यज्ञका विधान विधिवत् बताइए ।। २ ।। हे भूसुर ! उसके साथ ही विस्तारपूर्वक ब्रह्माकी उत्पत्तिका विवरण भी बताइए । हे ब्रह्मन् ! इस विषयमें अन्यान्य मनीषियोंके विचारोंको भी आप जानते हैं ।। ३ ।। ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन्हीं तीनों देवताओंकी महिमा मैंने सुनी है । जो क्रमशः संसारकी सृष्टि, पालन तथा संहारकार्य करते हैं और ये तीनों सगुण हैं ।। ४ ।। हे पराशरतनय व्यासजी ! ये तीनों महात्मा स्वतन्त्र हैं या कि परतन्त्र ? इस समय मैं यह जानना चाहता हूँ ।।५।। ये तीनों देवता मृत्युधर्मा हैं या सच्चिदानन्दस्वरूप ? ये तीनों अधिभूत, अधिदैव तथा अध्यात्मसे युक्त हैं अथवा तीनों प्रकारके दुःखोंसे रहित हैं ? ।।६।। ये तीनों देवेश कालके वशमें रहते हैं या उससे मुक्त हैं ? ये तीनों देवता कैसे और किसलिए उत्पन्न हुए,

।। जनमेजय उवाच ।। भगवन्भवता प्रोक्तं यज्ञमंबाभिधं महत् ।। सा का कथं समुत्पन्ना कुत्र कस्माच्च किंगुणा ।।१।। कीदृशश्च मखस्तस्याः स्वरूपं कीदृशं तथा ।। विधानं विधिवद्ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ।। २ ।। ब्रह्माण्डस्य तथोत्पत्तिं वद विस्तरतस्तथा ।। यथोक्तं यादृशं ब्रह्मन्नखिलं वेत्सि भूसुर ।। ३ ।। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवा मया श्रुताः ।। सृष्टिपालनसंहारकारकाः सगुणास्त्वमी ।। ४ ।। स्वतंत्रास्ते महात्मानः पाराशर्य वदस्व मे ।। अहोस्वित्परतंत्रास्ते श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ।। ५ ।। मृत्युधर्माश्च ते नो वा सच्चिदानन्दरूपिणः ।। अधिभूतादिभिर्युक्ता न वा दुःखैस्त्रि-धात्मकैः ।।६।। कालस्य वशगा नो वा ते सुरेन्द्रा महाबलाः ।। कथं ते वै समुत्पन्नाः कस्मादिति च संशयः ।।७।। हर्षशोकयुतास्ते वै निद्रालस्यसमन्विताः।। सप्तधातुमयास्तेषां देहाः किं वान्यथा मुने ।।८।। कैर्द्रव्यैर्निर्मितास्ते वै कैर्गुणैरिं द्रियैस्तथा ।। भोगश्च कीदृशस्तेषां प्रमाणमायुषस्तथा ।।९।। निवासस्थान-मप्येषां विभूतिं च वदस्व मे ।। श्रोतुमिच्छाम्यहं ब्रह्मन्विस्तरेण कथामिमाम् ।।१०।। व्यास उवाच ।। दुर्गमः प्रश्नभारोऽयं कृतो राजंस्त्वयाऽधुना।। ब्रह्मा-दीनां समुत्पत्तिः कस्मादिति महामते ।।११।। एतदेव मया पुत्र पृष्टोऽसौ नारदो मुनिः ।। विस्मितः प्रत्युवाचेदमुत्थितः शृणु भूपते ।।१२।। कस्मिंश्च समये चाहं गंगातीरे स्थितं मुनिम् ।।अपश्यं नारदं शांतं सर्वज्ञं वेदवित्तमम् ।। १३ ।। दृष्ट्वाऽहं मुदितो भूत्वा पादयोरपतं मुनेः ।। तेनाज्ञप्तः समीपेऽस्य

यह भी शङ्का है ।।७।। ये हर्ष, शोक, निद्रा तथा आलस्ययुक्त हैं ? इनका शरीर पृथिवी-जल आदि सप्तधातुओंसे निर्मित है या नहीं ? ।।८।। किन द्रव्योंसे इनका निर्माण हुआ है ? सत्त्व-रज-तम इन तीन गुणोंमेंसे उनमें किस गुणका प्राधान्य है ? उनमें कौन-कौन इन्द्रियाँ रहती हैं ? उनका भोग कैसा होता है ? और उनकी आयुका क्या परिमाण है ? ।। ९ ।। उनके निवासस्थान तथा उनकी विभूतियोंको भी बताइए । हे ब्रह्मन् ! मैं विस्तारके साथ यह कथा सुनना चाहता हूँ ।। १० ।। व्यासजी बोले—हे राजन् ! आपने बड़े विकट प्रश्न किये हैं । हे महामते ! ब्रह्मादि देवताओंकी उत्पत्ति कैसे हुई ? इस प्रश्नका उत्तर बड़ा दुरूह है ।। ११ ।। पूर्वकालमें मैंने इन्हीं प्रश्नोंको देवर्षि नारदसे पूछा था । हे भूपते ! उन्होंने विस्मित होकर जो उत्तर दिया—वही मैं आपको सुना रहा हूँ, सुनिए ।। १२ ।। एक समय मैंने गङ्गाजीके तटपर शान्त, सर्वज्ञ तथा वेदज्ञ विद्वानोंमें श्रेष्ठ नारदमुनिको विराजमान देखा ।। १३ ।। उन्हें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं जाकर उनके पैरोंपर गिर पड़ा। बादमें उनकी आज्ञा पाकर मैं समीपके एक सुन्दर आसनपर बैठ गया ॥ १४ ॥ कुशल-प्रश्नके पश्चात् मैंने उस महीन बालूवाले गङ्गाजीके तटपर एकान्तमें विराजमान ब्रह्माजीके पुत्र नारदजीसे पूछा—॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन्! इस विशाल ब्रह्माण्डका प्रधान निर्माणकर्ता कौन है? सो आप मुझे विधिवत् बताइए ॥ १६ ॥ हे मुनिसत्तम! यह ब्रह्माण्ड किससे उत्पन्न हुआ है? हे द्विजोत्तम! यह नित्य है या अनित्य? यह भी बताइए ॥१७॥ इसका रचयिता कोई एक है या अनेक रचयिता हैं? क्योंकि विना कर्ताके कार्य नहीं हो सकता, इस सिद्धान्तसे विरोध हो जाता है ॥ १८ ॥ इन संदेहोंके महासागरमें डूबते हुए मुझ दुखियाका आप उद्धार करिए। इस अतीव विस्तृत संसारके विषयमें करोड़ों प्रकारकी तर्कनायें करते-करते मेरी बुद्धि चकरा गयी है ॥ १९ ॥ कुछ लोगोंका कहना है कि इस विश्वके स्रष्टा शंकर भगवान हैं और वे कारणोंके कारण, सदा-

संविष्टश्च वरासने ॥ १४ ॥ श्रुत्वा कुशलवार्तां वै तमपृच्छं विधेः सुतम् ॥ निविष्टं जाह्नवीतीरे निर्जने सूक्ष्मबालुके ॥ १५ ॥ मुनेऽतिविततस्यास्य ब्रह्मांडस्य महामते ॥ कः कर्ता परमः प्रोक्तस्तन्मे ब्रूहि विधानतः ॥ १६ ॥ कस्मादेतत्समुत्पन्नं ब्रह्मांडं मुनिसत्तम ॥ अनित्यं वा तथा नित्यं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम ॥ १७ ॥ एककर्तृकमेतद्वा बहुकर्तृकमन्यथा ॥ अकर्तृकं न कार्यं स्याद्विरोधोऽयं विभाति मे ॥ १८ ॥ इति संदेहसंदोहे मग्नं मां तारयाधुना ॥ विकल्पकोटीः कुर्वाणं संसारेऽस्मिन् प्रविस्तरे ॥ १९ ॥ ब्रुवन्ति शङ्करं केचिन्मत्वा कारणकारणम् ॥ सदाशिवं महादेवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम् ॥ २० ॥ आत्मारामं सुरेशं च त्रिगुणं निर्मलं हरम् ॥ संसारतारकं नित्यं सृष्टिस्थित्यंतकारणम् ॥ २१ ॥ अन्ये विष्णुं स्तुवंत्येनं सर्वेषां प्रभुमीश्वरम् ॥ परमात्मानमव्यक्तं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ २२ ॥ भुक्तिदं मुक्तिदं शांतं सर्वादिं सर्वतोमुखम् ॥ व्यापकं विश्वशरणमनादिनिधनं हरिम् ॥ २३ ॥ धातारं च तथा चान्ये ब्रुवन्ति सृष्टिकारणम् ॥ तमेव सर्ववेत्तारं सर्वभूतप्रवर्तकम् ॥ २४ ॥ चतुर्मुखं सुरेशानं नाभिपद्मभवं विभुम् ॥ स्रष्टारं सर्वलोकानां सत्यलोकनिवासिनम् ॥ २५ ॥ दिनेशं प्रवदंत्यन्ये सर्वेशं वेदवादिनः ॥ स्तुवन्ति चैव गायंति सायंप्रातरतंद्रिताः ॥ २६ ॥ यजंति च तथा यज्ञं वासवं च शतक्रतुम् ॥ सहस्राक्षं देवदेवं सर्वेषां प्रभुमुल्बणम् ॥ २७ ॥ यज्ञाधीशं

शिव, प्रलय और उत्पत्तिसे रहित, आत्माराम (अपने आपमें रमण करनेवाले), देवताओंके स्वामी, त्रिगुणात्मक, निर्मल, संसारतारक, नित्य तथा सृष्टिके रचयिता और संहारक हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ अन्य मनीषीगण सबके प्रभु और ईश्वर विष्णु भगवान्की स्तुति करते हैं। उनके मतसे वे ही परब्रह्म परमात्मा, अव्यक्त, सर्वशक्तिसम्पन्न, भुक्ति और मुक्तिदायक, शान्त, सबके आदि, सर्वतोमुख, व्यापक, समस्त विश्वके शरणदाता और आदि-अन्तसे हीन हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ दूसरे कुछ लोग ब्रह्माजीको सृष्टिका कारण मानते हैं। उनके मतानुसार ब्रह्माजी ही सर्ववेत्ता, सब प्राणियोंके जन्मदाता, चतुर्मुख, सुरेशान, विष्णुके नाभिकमलसे जायमान, सर्वव्यापक, सब लोकोंके रचयिता और सत्यलोकनिवासी हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ कुछ वेदवादी लोग सूर्य भगवानको सर्वेश बताते हैं। वे साँझ-सवेरे बड़ी तत्परतापूर्वक उन्हींके गुण गाते और उन्हींकी स्तुति करते हैं ॥ २६ ॥ यज्ञनिष्ठ लोग यज्ञमें वसु (धन) दाता, शत-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रतु, सहस्राक्ष, देवदेव तथा सबके प्रभु इन्द्रका ही यज्ञ करते और उन्हींको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं ॥ २७ ॥ वे उन्हीं शचीपतिको यज्ञोंका अधीश्वर, सुराधीश, त्रिलोकेश, यज्ञभोक्ता, सोमपान करनेवाला तथा सोमपान करनेवाले महानुभावोंका प्रिय बताते हुए स्तुति करते हैं ॥ २८ ॥ इसी प्रकार कुछ लोग वरुणको, कुछ सोमको, कुछ लोग अग्निको, कुछ वायुको, कुछ लोग यमको और कुछ विद्वान् लोग धनपति कुबेरको सर्वश्रेष्ठ कहते हैं ॥ २९ ॥ गणपतिके उपासक गणाधीश, हेरम्ब, गजवदन, सर्वकार्यसाधक, स्मरणमात्रसे सिद्धिदाता, कामरूप, कामना पूर्ण करनेवाला मानते हुए गणेशजीको सर्वश्रेष्ठ देवता समझते हैं ॥३०॥ कुछ अन्य आचार्य भवानीको ही सब कुछ देनेवाली, आदि माया, महाशक्ति और पुरुषका अनुसरण करनेवाली प्रकृति कहते हैं ॥३१॥ उनके मतसे वे ही ब्रह्मके साथ एकताको प्राप्त सृष्टि-पालन-संहारकारिणी, सब प्राणियों और देवताओंकी माता, आदि-अन्तहीन, पूर्णरूपा, सब जीवोंमें व्यापक, सब लोकों-की ईश्वरी, निर्गुण, सगुण तथा कल्याणस्वरूपा हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वे ही वैष्णवी, शाङ्करी, ब्राह्मी, वासवी, वारुणी, वाराही, नारसिंही तथा अद्भुतस्वरूपा महालक्ष्मी कहलाती हैं ॥३४॥

सुराधीशं त्रिलोकेशं शचीपतिम् ॥ यज्ञानां चैव भोक्तारं सोमपं सोमपप्रियम् ॥ २८ ॥ वरुणं च तथा सोमं पावकं पवनं तथा ॥ यमं कुबेरं धनदं गणाधीशं तथापरे ॥ २९ ॥ हेरंबं गजवक्त्रं च सर्वकार्यप्रसाधकम् ॥ स्मरणात्सिद्धिदं कामं कामदं कामगं परम् ॥ ३० ॥ भवानीं केचनाचार्याः प्रवदंत्यखिलार्थदाम् ॥ आदिमायां महाशक्तिं प्रकृतिं पुरुषानुगाम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मैकतासमापन्नां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम् ॥ मातरं सर्वभूतानां देवतानां तथैव च ॥ ३२ ॥ अनादिनिधनां पूर्णां व्यापिकां सर्वजंतुषु ॥ ईश्वरीं सर्वलोकानां निर्गुणां सगुणां शिवाम् ॥ ३३ ॥ वैष्णवीं शांकरीं ब्राह्मीं वासवीं वारुणीं तथा ॥ वाराहीं नारसिंहीं च महालक्ष्मीं तथाऽद्भुताम् ॥ ३४ ॥ वेदमातरमेकां च विद्यां भवतरोः स्थिराम् ॥ सर्वदुःखनिहंत्रीं च स्मरणात्सर्वकामदाम् ॥ ३५ ॥ मोक्षदां च मुमुक्षूणां कामदं च फलार्थिनाम् ॥ त्रिगुणातीतरूपां च गुणविस्तारकारकाम् ॥३६॥ निर्गुणां सगुणां तस्मात्तां ध्यायंति फलार्थिनः ॥ निरञ्जनं निराकारं निर्लेपं निर्गुणं किल ॥ ३७ ॥ अरूपं व्यापकं ब्रह्म प्रवदंति मुनीश्वराः ॥ वेदोपनिषदि प्रोक्तस्तेजोमय इति क्वचित् ॥ ३८ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्रनयनस्तथा ॥ सहस्रकरकर्णश्च सहस्रास्यः सहस्रपात् ॥ ३९ ॥ विष्णोः पादमथाकाशं परमं समुदाहृतम् ॥ विराजं विरजं शान्तं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ४० ॥ पुरुषोत्तमं तथा चान्ये प्रवदन्ति पुराविदः ॥ नैकोऽपीति

वे ही वेदमाता, विद्या, संसारवृक्षकी स्थिर ईश्वरी, सर्वदुःखनाशिनी और स्मरण करते ही सब कामनायें पूर्ण कर देनेवाली भगवती हैं ॥ ३५ ॥ वे ही मोक्षार्थियोंके लिए मोक्षदायिनी और फलार्थियोंकी कामनायें पूर्ण करनेवाली भगवती हैं । वे त्रिगुणातीतस्वरूपा और गुणविस्तारकारिणी हैं ॥३६॥ फलकी अभिलाषा रखनेवाले लोग उन निर्गुणस्वरूपा भगवतीका सगुणरूपमें ध्यान करते हैं । इसी प्रकार कुछ वेदान्ती लोग ईश्वरको निरञ्जन, निराकार, निर्लेप, निर्गुण, रूपरहित और सर्वव्यापक ब्रह्म कहते हैं । वेदों तथा उपनिषदोंमें उन्हें तेजोमय परम पुरुष कहा गया है ॥३७॥३८॥ कुछ अन्य विद्वान् उन्हें सहस्र मस्तकवाला, सहस्रनेत्र, सहस्रभुज, सहस्रकर्ण सहस्रमुख और सहस्रपाद पुरुष मानते हैं ॥ ३९ ॥ वे आकाशको विष्णु भगवानका परम पद मानते और उन्हीं शान्तिस्वरूप परमात्माको विराट् कहते हैं ॥ ४० ॥ कुछ अन्य पुरातत्त्वविद् महापुरुष उन्हें पुरुषोत्तम कहते हैं । कुछ लोगोंका कहना है कि इतने बड़े विश्वका रचयिता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक ही ईश्वर कदापि नहीं हो सकता ॥४१॥ कुछ लोग कहते हैं कि इस ब्रह्माण्डमें ईश्वर कोई है ही नहीं। यदि यह जगत् किसी ईश्वरका बनाया हुआ होता तो यह अचिंत्य न कहलाता
॥४२॥ महर्षि कपिल जैसे सांख्यवादियोंका कहना है कि यह जगत् सदा ईश्वरहीन रहा है। यह स्वभावसे उत्पन्न होता है। पुरुष तो अकर्ता है। प्रकृति ही सब काम करती है। मुझे ये
तथा इनके अतिरिक्त भी नाना प्रकारके सन्देह हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे मुनीश्वर ! मेरे मनमें तरह-तरहके विचार उठते हैं। मैं क्या करूँ ? धर्म-अधर्मकी विवेचना करते समय कहीं भी मेरा
मन स्थिर नहीं होता ॥ ४५ ॥ क्या धर्म है और क्या अधर्म है, इसका कोई प्रत्यक्ष चिह्न नहीं मिलता। कुछ लोग कहते हैं कि देवता सत्त्वगुणसे जायमान होते हैं। अतएव सत्यधर्मका
पालन उन्हींके द्वारा होता है ॥ ४६ ॥ किन्तु वे देवता भी पापी दानवों द्वारा सताये जाते हैं, तब धर्मकी व्यवस्था कहाँ रह गयी ? धर्मपरायण और सदाचारसम्पन्न मेरे वंशज पाण्डवोंको
विविध कष्ट सहने पड़े, तब धर्मकी मर्यादा कहाँ रह गयी ? अतएव हे तात ! इन शंकाओंकी चपेटमें पड़कर मेरा हृदय काँप उठता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हे महामुने ! मेरे मनसे इन

वदंत्यन्ये प्रभुरीशः कदाचन ॥ ४१ ॥ अनीश्वरमिदं सर्वं ब्रह्माण्डमिति केचन ॥ न कदापीशजन्यं यज्जगदेतदचिंतितम् ॥ ४२ ॥ सदैवेदमनीशं
च स्वभावोत्थं सदेदृशम् ॥ अकर्ताऽसौ पुमान्प्रोक्तः प्रकृतिस्तु तथा च सा ॥४३॥ एवं वदन्ति सांख्याश्च मुनयः कपिलादयः॥ एते सन्देहसन्दोहाः
प्रभवन्ति तथाऽपरे ॥ ४४ ॥ विकल्पोपहतं चेतः किं करोमि मुनीश्वर ॥ धर्माधर्मविवक्षायां न मनो मे स्थिरं भवेत् ॥ ४५ ॥ को धर्मः कीदृशोऽ-
धर्मश्चिह्नं नैवोपलभ्यते ॥ देवाः सत्त्वगुणोत्पन्नाः सत्यधर्मव्यवस्थिताः ॥ ४६ ॥ पीड्यन्ते दानवैः पापैः कुत्र धर्मव्यवस्थितिः ॥ धर्मस्थिताः
सदाचाराः पाण्डवा मम वंशजाः ॥ ४७ ॥ दुःखं बहुविधं प्राप्तास्तत्र धर्मस्य का स्थितिः ॥ अतो मे हृदयं तात वेपतेऽतीव संशये ॥ ४८ ॥
कुरु मेऽसंशयं चेतः समर्थोऽसि महामुने ॥ त्राहि संसारवार्धेस्त्वं ज्ञानपोतेन मां मुने ॥ ४९ ॥ मज्जन्तं चोत्पतंतं च मग्नं मोहजलाविले ॥ ५० ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे जनमेजयप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ यत्त्वया च महाबाहो पृष्टोऽहं कुरुसत्तमम ॥ तान्प्रश्नान्नारदः प्राह मया पृष्टो मुनीश्वरः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ व्यास किं
ते ब्रवीम्यद्य पुराऽयं संशयो मम ॥ उत्पन्नो हृदयेऽत्यर्थं संदेहासारपीडितः ॥ २ ॥ गत्वाऽहं पितरं स्थाने ब्रह्माणममितौजसम् ॥ अपृच्छं यत्त्वया

शंकाओंको निकाल दीजिये। आप सर्वसमर्थ हैं। हे मुनिराज ! आप मुझे अपने ज्ञानरूपी जहाज द्वारा इस संसार-समुद्रसे पार उतार दीजिए ॥ ४९ ॥ क्योंकि मैं संसारसागरके मोहरूपी
गन्दे जलमें कभी डूबता हूँ, कभी उतराता हूँ और कभी फिर डूब जाता हूँ ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(जनमेजयके प्रश्नोंका उत्तर और देवीका देवताओंको बहुतेरे लोक दिखाना) व्यासजी बोले—हे महाबाहो ! हे कुरुसत्तम ! आपने मुझसे जो प्रश्न पूछे हैं। उन्हीं प्रश्नोंको मैंने
मुनिराज नारदजीसे पूछा था। उनके उत्तरमें मुझे उन्होंने जो बताया था, सो कह रहा हूँ ॥ १ ॥ नारदजी बोले—हे व्यासजी ! मैं क्या कहूँ ? प्राचीनकालमें मेरे हृदयमें भी ऐसा ही
सन्देह उत्पन्न हुआ था। फिर आगे चलकर तो जैसे मुझपर शंकाओंकी वर्षा होने लगी और मैं अकुला उठा ॥ २ ॥ बस, तत्काल मैं चल पड़ा और ब्रह्मलोकमें अपने अमिततेजस्वी पिता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्माजीके पास जा पहुँचा । हे व्यासजी ! आज आपने जो उत्तम प्रश्न मेरे सम्मुख रक्खा है, यही प्रश्न मैंने भी उनसे किया ॥३॥ मैंने कहा—हे पिताजी ! यह ब्रह्माण्ड कैसे उत्पन्न हुआ ? हे विभो ! इसकी रचना आपने की है या विष्णु भगवानने ? अथवा शिवने विश्वकी सृष्टि की ? हे विश्वात्मन् ! मुझे सच-सच बता दीजिए । साथ ही यह भी बताइए कि किसकी आराधना करनी चाहिए ? सर्वश्रेष्ठ ईश्वर कौन है ? ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे पूतात्मन् ! आप यह सब बताकर मेरे सन्देहोंको निवृत्त करिए । मैं दुःख तथा असत्यरूपी भवसागरमें डूब रहा हूँ ॥ ६ ॥ मेरा मन सन्देहमें पड़कर डगमगा रहा है और उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिलती । तीर्थोंमें, देवमन्दिरोंमें तथा अन्यान्य साधनोंमें कहीं भी मन स्थिर नहीं होने आता ॥ ७ ॥ हे परन्तप ! परम तत्त्वको जाने बिना शान्ति मिल भी कैसे सकती है ? क्योंकि बहुत ओर छितराया हुआ चित्त एकाग्र ही नहीं हो पाता ॥ ८ ॥ मैं किसका स्मरण करूँ ? किसकी पूजा करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसकी अर्चना करूँ ? किसकी स्तुति करूँ ? उस सर्वेश्वर देवताको मैं जानता हो नहीं ॥ ९ ॥ हे सत्यवतीसुत व्यासजी ! मेरे इन विकट प्रश्नोंको सुनकर

पृष्टं व्यासाद्य प्रश्नमुत्तमम् ॥ ३ ॥ पितः कुतः समुत्पन्नं ब्रह्माण्डमखिलं विभो ॥ भवत्कृतेन वा सम्यर्किं वा विष्णुकृतं त्विदम् ॥ ४ ॥ रुद्रकृतं वा विश्वात्मन्ब्रूहि सत्यं जगत्पते ॥ आराधनीयः कः कामं सर्वोत्कृष्टश्च कः प्रभुः ॥ ५ ॥ तत्सर्वं वद मे ब्रह्मन्सन्देहांश्छिन्धि चानघ ॥ निमग्नो ह्यस्मि संसारे दुःखरूपेऽनृतोपमे ॥ ६ ॥ सन्देहांदोलितं चेतो न प्रशाम्यति कुत्रचित् ॥ न तीर्थेषु न देवेषु साधनेष्वितरेषु च ॥ ७ ॥ अविज्ञाय परं तत्त्वं कुतः शान्तिः परन्तप ॥ विकर्णं बहुधा चित्तं नैकत्र स्थिरतां व्रजेत् ॥ ८ ॥ कं स्मरामि युगे कं वा कं व्रजाम्यर्चयामि कम् ॥ स्तौमि कं नाभिजानामि देव सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ ९ ॥ ततो मां प्रत्युवाचेदं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ मया सत्यवतीसूनो कृते प्रश्ने सुदुस्तरे ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किं ब्रवीमि सुताद्याहं दुर्बोधं प्रश्नमुत्तमम् ॥ त्वयाऽशक्यं महाभाग विष्णोरपि सुनिश्चयात् ॥ ११ ॥ रागी कोऽपि न जानाति संसारेऽस्मिन्महामते ॥ विरक्तश्च विजानाति निरीहो यो विमत्सरः ॥ १२ ॥ एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजंगमे ॥ भूतमात्रे समुत्पन्ने संजज्ञे कमलादहम् ॥ १३ ॥ नापश्यं तरणिं सोमं न वृक्षान्न च पर्वतान् ॥ कर्णिकायां समाविष्टश्चिन्तामकरवं तदा ॥ १४ ॥ कस्मादहं समुद्भूतः सलिलेऽस्मिन्महार्णवे ॥ को मे त्राता प्रभुः कर्ता संहर्ता वा युगात्यये ॥ १५ ॥ न च भूर्विद्यते स्पष्टा यदाधारं जलं त्विदम् ॥ पङ्कजं कथमुत्पन्नं प्रसिद्धं

लोकपितामह ब्रह्माजीने कहा—हे पुत्र ! जिन दुरूह प्रश्नोंको तुमने हमारे सम्मुख रक्खा है, उनका मैं क्या उत्तर दूँ ? हे महाभाग ! साक्षात् विष्णुभगवान भी इन प्रश्नोंका कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सकते ॥१०॥११॥ हे महामते ! इस संसारमें लिप्त कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है, जो तत्त्वकी बात जानता हो । उसे तो विरक्त, निरीह और मत्सरहीन महापुरुष ही जान सकते हैं ॥ १२ ॥ पूर्वकालमें जब स्थावर-जङ्गात्मक प्राणीमात्र नष्ट हो गये और समस्त विश्व अपार समुद्रके रूपमें परिणत हो गया । तब पुनः पञ्चमहाभूतोंके उत्पन्न होनेपर मैं कमलसे उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ उस समय सूर्य, चन्द्रमा, वृक्ष तथा पर्वत ये कुछ भी मुझे नहीं दिखायी पड़े । उसी कमलकोशपर चुपचाप बैठे-बैठे मैंने सोचा—॥ १४ ॥ इस महासमुद्रके जलमें मैं किससे उत्पन्न हुआ ? मेरा निर्माता कौन है ? मेरा रक्षक प्रभु कौन है ? और युगान्तके समय संहार कौन करता है ? ॥१५॥ भूमि भी स्पष्ट नहीं दिखायी देती कि जिसके आधारपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जल टिका हो। जब जमीन ही नहीं है, तब पङ्क (कीचड़) कहाँसे आयेगा ? और विना पङ्कके पङ्कज (कमल) की उत्पत्ति कैसे हुई ? ॥१६॥ अस्तु, आज मैं यही देखूँगा कि इस पङ्कजका मूलाधार पङ्क कहा है ? जहाँ पङ्क होगा, वहाँ भूमि भी अवश्य होगी। इसमें सन्देह नहीं है ॥१७॥ इस निश्चयके अनुसार मैं जलमें नीचे उतरकर एक हजार वर्षतक भूमिकी खोज करता रहा। किन्तु फिर भी जब वह नहीं मिली, तब सहसा आकाशवाणी हुई कि 'तप करो'। तदनुसार मैं फिर उसी कमलपर लौट आया और हजार वर्षतक कमलपर ही बैठा-बैठा तप करता रहा ॥ १८॥ १९॥ उसके बाद मुझे फिर आकाशवाणी सुनायी पड़ी कि 'सृष्टि करो'। वह वाणी सुनकर मैं चकरा गया कि किसकी सृष्टि करूँ और कैसे करूँ॥ २०॥ उसी समय मधु-कैटभ नामके दो भयानक दैत्य मेरे समक्ष आकर खड़े हो गये। युद्धके लिए सन्नद्ध उन दोनों दानवोंको देखकर मैं बहुत डर गया॥ २१॥ तदनन्तर उसी कमलकी डण्डी पकड़कर जलमें नीचे उतरा तो वहाँ मैंने एक परम अद्भुत पुरुषको देखा ॥२२॥ उसका सजल-जलद सदृश श्याम शरीर था। उसके चार भुजायें थीं और वह पीत वसन धारण किये हुए था। वह

रूढियोगयोः ॥ १६ ॥ पश्याम्यद्यास्य पंकं मूलं वै पंकजस्य च ॥ भविष्यति धरा तत्र मूलं नास्त्यत्र संशयः ॥ १७ ॥ उत्तरन्सलिले तत्र यावद्वर्षसहस्रकम् ॥ अन्वेषमाणो धरणीं नावाप तां यदा तदा ॥ १८ ॥ तपस्तपेति चाकाशे वागभूदशरीरिणी ॥ ततो मया तपस्तप्तं पद्मे वर्षसहस्रकम् ॥ १९ ॥ सृजेति पुनरुद्भूता वाणी तत्र श्रुता मया॥ विमूढोऽहं तदाकर्ण्य कं सृजामि करोमि किम् ॥ २० ॥ तदा दैत्यावति प्राप्तौ दारुणौ मधुकैटभौ॥ ताभ्यां विभीषितश्चाहं युद्धाय मकरालये ॥ २१ ॥ ततोऽहं नालमालंब्य वारिमध्यमवातरम् ॥ तदा तत्र मया दृष्टः पुरुषः परमाद्भुतः॥ २२ ॥ मेघश्यामशरीरस्तु पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ शेषशायी जगन्नाथो वनमालाविभूषितः॥ २३ ॥ शंखचक्रगदापद्माद्यायुधैः सुविराजितः ॥ तमद्राक्षं महाविष्णुं शेषपर्यंकशायिनम्॥ २४ ॥ योगनिद्रासमाक्रांतमविस्पंदिनमच्युतम् ॥ शयानं तं समालोक्य भोगिभोगोपरि स्थितम् ॥ २५ ॥ चिंता ममाद्भुता जाता किं करोमीति नारद ॥ मया स्मृता तदा देवी स्तुता निद्रास्वरूपिणी ॥ २६ ॥ देहान्निर्गत्य सा देवी गगने संस्थिता शिवा॥ अवितर्क्यशरीरा सा दिव्याभरणमण्डिता॥ २७ ॥ विष्णोर्देहं विहायाशु विरराज नभःस्थिता ॥ उदतिष्ठदमेयात्मा तया मुक्तो जनार्दनः ॥२८॥ पञ्चवर्षसहस्राणि कृतवान् युद्धमुत्तमम् ॥ तदा विलोकितौ दैत्यौ हरिणा विनिपातितौ॥ २९ ॥ उत्संगं विमलं कृत्वा तत्रैव

शेषशय्यापर शयन कर रहा था। वह जगन्नाथ वनमालाओंसे अलंकृत था॥ २३॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि आयुध उसके हाथोंमें विराजमान थे। इस प्रकार मैंने वहाँ शेषकी शय्यापर सोते हुए महाविष्णुको देखा॥ २४॥ उस समय वे अच्युत विष्णुभगवान योगनिद्राके वशीभूत होनेके कारण निःस्पन्द थे। उनको साँपोंकी सेजपर सोते देखकर हे नारद ! मेरे मनमें एक प्रकारकी अद्भुत चिन्ता समा गयी और मैं सोचने लगा कि अब क्या करूँ। तब मैंने निद्रास्वरूपिणी भगवतीका स्मरण किया और उनकी स्तुति करने लगा॥ २५॥ २६॥ मेरे स्तुति करते ही वे कल्याणरूपिणी भगवती विष्णुभगवानके शरीरसे निकलकर आकाशमें दृष्टिगोचर हुई। उनका शरीर कल्पनासे परे था और वे दिव्य आभूषणोंसे आभूषित थीं॥ २७॥ वे तत्काल विष्णुभगवानका शरीर त्यागकर आकाशमें सुशोभित होने लगीं। इस प्रकार उनके हटते ही अमेयात्मा जनार्दन भगवान उठ बैठे॥ २८॥ तदनन्तर पूरे पाँच हजार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्षतक उन्होंने उन दोनों दैत्योंके साथ उच्च कोटिका बाहुयुद्ध किया। जब भगवती महामायाने अपने कटाक्षविक्षेपसे उन दैत्योंको मोहित कर दिया, तब भगवान विष्णु मधु-कैटभको मारनेमें समर्थ हुए ॥ २९ ॥ अपनी जाँघको खूब विस्तृत करके उन्होंने उसीपर रखकर उन दैत्योंका वध किया। उसी समय जहाँ हम और विष्णु भगवान थे, वहाँ ही शंकरजी भी पहुँच गये ॥ ३० ॥ तब हम तीनोंने आकाशमण्डलमें विद्यमान उन स्वच्छ और मनोहर देवीको देखा। जब हमलोगोंने उनकी स्तुति की, तब हम तीनोंसे उन्होंने कहा। अपनी पावन कृपा-दृष्टिसे निहारकर प्रसन्न करनेके बाद वे बोलीं। देवीने कहा—हे क अज ईश अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-महेश! आपलोग पूर्ण तत्परताके साथ अपना-अपना काम करिए॥ ३१ ॥ ३२ ॥ आप तीनोंका कार्य क्रमशः सृष्टि, पालन और संहार है। आपलोग अपना-अपना घर बनाकर त्रेखटके उसमें निवास करिए। क्योंकि आपके बाधक वे दोनों महान् असुर मधु-कैटभ मार डाले गये हैं ॥ ३३ ॥ अब आपलोग अपनी विभूतियों द्वारा अण्डज, पिण्डज, उद्भिज और स्वेदज इन चारों प्रकारकी प्रजाकी सृष्टि करिए। ब्रह्माजी बोले—भगवतीका वह सुन्दर, सुखदायी

निहतौ च तौ ॥ रुद्रस्तत्रैव संप्राप्तो यत्रावां संस्थितावुभौ ॥ ३० ॥ त्रिभिः संवीक्षिताऽस्माभिः खस्था देवी मनोहरा ॥ संस्तुता परमा शक्ति-रुवाचास्मानवस्थितान् ॥३१॥ कृपावलोकनैः कृत्वा पावनैर्मुदितानथ ॥ देव्युवाच ॥ काजेशाः स्वानि कार्याणि कुरुध्वं समतंद्रिताः ॥३२॥ सृष्टि-स्थितिविशिष्टानि हतावेतौ महासुरौ ॥ कृत्वा स्वानि निकेतानि वसध्वं विगतज्वराः ॥ ३३ ॥ प्रजाश्चतुर्विधाः सर्वाः सृजध्वं स्वविभूतिभिः ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः पेशलं सुखदं मृदु ॥ ३४ ॥ अब्रूम तामशक्ताः स्मः कथं कुर्मस्त्विमाः प्रजाः ॥ न मही वितता मातः सर्वत्र विततं जलम् ॥ ३५ ॥ न भूतानि गुणाश्चापि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ॥ तदाकर्ण्य वचोऽस्माकं शिवा जाता स्मितानना ॥ ३६ ॥ झटि-त्येवागतं तत्र विमानं गगनाच्छुभम् ॥ सोवाचास्मिन्सुराः कामं विशध्वं गतसाध्वसाः ॥ ३७ ॥ विमाने ब्रह्मविष्ण्वीशा दर्शयाम्यद्य चाद्भुतम् ॥ तन्निशम्य वचस्तस्या ओमित्युक्त्वा पुनर्वयम् ॥३८॥ समारुह्योपविष्टाः स्मो विमाने रत्नमंडिते ॥ मुक्तादामसुसंवीते किंकिणीजालशब्दिते ॥३९॥ सुरसद्मनिभे रम्ये त्रयस्तत्राविशंकिताः ॥ सोपविष्टांस्ततो दृष्ट्वा देव्यस्मान्विजितेन्द्रियान् ॥४०॥ स्वशक्त्या तद्विमानं वै नोदयामास चांबरे ॥४१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तथा मधुर वचन सुनकर हम तीनोंने कहा—माताजी! अभी हमलोग शक्तिशून्य हैं। ऐसी स्थितिमें प्रजाकी सृष्टि कैसे कर सकेंगे? अभी विस्तृत पृथिवी ही नहीं है और चारों ओर जल ही जल भरा हुआ है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अभी न पञ्चमहातत्त्व हैं, न गुण हैं, न तन्मात्रायें हैं और न इन्द्रियें हैं। हमारे वचन सुनकर भगवती मुसकरायीं ॥ ३६ ॥ उसी समय वहाँ आकाशसे एक सुन्दर विमान उतरा। तब भगवतीने हम तीनोंको आदेश दिया कि हे देवताओं! आपलोग निर्भय होकर इस विमानपर बैठें ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मा-विष्णु और शिव! इस विमानमें मैं आज आप लोगोंको अद्भुत दृश्य दिखाऊँगी। उनकी बात सुनकर हम तीनों 'बहुत अच्छा' कहकर उस रत्नविमण्डित विमानमें जाकर बैठ गये। उस विमानमें मोतियोंकी झालरें लगी थीं और घंटियोंकी ध्वनि गूँज रही थी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वह विमान स्वर्गके सदृश रमणीक था। हम तीनों निर्भय भावसे उसमें बैठे। हम जितेन्द्रिय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवताओंको बैठे देखकर भगवतीने अपनी शक्तिसे उस विमानको आकाशमें उड़ाया ॥४०॥४१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

(विमानपर बैठे हुए देवताओंको भगवतीका प्रत्यक्ष दर्शन मिलना) ब्रह्माजी बोले—मनके समान वेगसे उड़नेवाला वह विमान जिस स्थानपर पहुँचा, वहाँ जलका अभाव था। यह देखकर हम लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ १ ॥ वहाँके वृक्ष सब प्रकारके फलोंसे लदे हुए थे और उनपर कोकिलकी कूक सुनायी दे रही थीं। वहाँकी पृथिवी, पर्वत, वन और उपवन सब सुन्दर थे ॥ २ ॥ वहाँ स्त्रियाँ, पुरुष, पशु, नदियाँ, कुएँ, तालाब, तलैयाँ और झरने सब थे ॥ ३ ॥ सामने ही दिव्य चहारदीवारियोंसे घिरा हुआ एक परम रमणीक नगर बसा हुआ था। उसमें स्थान-स्थानपर यज्ञशालायें, विभिन्न प्रकारके महल और हवेलियाँ बनी हुई थीं ॥ ४ ॥ उस नगरको देखकर हमें ऐसा लगा कि स्वर्ग यही है। लेकिन यह महान् अद्भुत नगर बनाया किसने ? यह जिज्ञासा हुई ॥५॥ तभी हमने देखा कि एक देवतुल्य राजा शिकार खेलने जा रहा है और यह भी देखा कि भगवती अपने विमानपर विराज रही

॥ ब्रह्मोवाच ॥ विमानं तन्मनोवेगं यत्र स्थानांतरे गतम् ॥ न जलं तत्र पश्यामो विस्मिताः स्मो वयं तदा ॥ १ ॥ वृक्षाः सर्वफला रम्याः कोकिलारावमंडिताः ॥ मही महीधराः कामं वनान्युपवनानि च ॥ २ ॥ नार्यश्च पुरुषाश्चैव पशवश्च सरिद्वराः ॥ वाप्यः कूपास्तडागाश्च पल्वलानि च निर्झराः ॥ ३ ॥ पुरतो नगरं रम्यं दिव्यप्राकारमंडितम् ॥ यज्ञशालासमायुक्तं नानाहर्म्यविराजितम् ॥ ४ ॥ प्रत्यभिज्ञा तदा जाताऽप्यस्माकं प्रेक्ष्य तत्पुरम् ॥ स्वर्गोऽयमिति केनासौ निर्मितोऽस्ति तदद्भुतम् ॥ ५ ॥ राजानं देवसंकाशं व्रजंतं मृगयां वने ॥ अस्माभिः संस्थिता दृष्टा विमानोपरि चांबिका ॥ ६ ॥ क्षणाच्चचाल गगने विमानं पवनेरितम् ॥ मुहूर्ताद्वा ततः प्राप्तं देशे वान्ये मनोहरे ॥ ७ ॥ नन्दनं च वनं तत्र दृष्टमस्माभिरुत्तमम् ॥ पारिजाततरुच्छायासंश्रिता सुरभिः स्थिता ॥८॥ चतुर्दन्तो गजस्तस्याः समीपे समवस्थितः ॥ अप्सरसां तत्र वृंदानि मेनकाप्रभृतीनि च ॥९॥ क्रीडंति विविधैर्भावैर्गानन्रृत्यसमन्वितैः ॥ गन्धर्वाः शतशस्तत्र यक्षा विद्याधरास्तथा ॥ १० ॥ मंदारवाटिकामध्ये गायंति च रमंति च ॥ दृष्टः शतक्रतुस्तत्र पौलोम्या सहितः प्रभुः ॥ ११ ॥ वयं तु विस्मिताश्चास्म दृष्ट्वा त्रैविष्टपं तदा ॥ यादःपतिं कुबेरं च यमं सूर्यं विभावसुम् ॥ १२ ॥ विलोक्य विस्मिताश्चास्म वयं तत्र सुरान्स्थितान् ॥ तदा विनिर्गतो राजा पुरात्तस्मात्सुमंडितात् ॥ १३ ॥ देवराज इवाक्षोभ्यो नरवाह्यावनौ स्थितः ॥ विमानस्था

॥ ६ ॥ क्षण ही भर बाद पवनसे प्रेरित होकर हमारा विमान फिर आकाशमें उड़ने लगा और मुहूर्त भरमें वह एक दूसरे मनोहर प्रदेशमें जा पहुँचा ॥ ७ ॥ वहाँपर हमने अति उत्तम नन्दनवन देखा और यह भी देखा कि पारिजात तरुकी छायामें सुरभी गाय खड़ी थी ॥८॥ उसी गायके पास चार दाँतोंवाला एक गजराज खड़ा झूम रहा था। वहाँ मेनका आदि गण्य-मान्य अप्सराओंका झुण्ड विचर रहा था ॥ ९ ॥ वे अप्सरायें विविध प्रकारके भावोंका प्रदर्शन करती हुई नाचती-गाती और क्रीडायें कर रही थीं। सैकड़ों गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर मन्दार वृक्षकी वाटिकाओंमें विचरते हुए गायन गा रहे थे। पौलोमी (इन्द्राणी) के साथ इन्द्रदेव भी दिखायी दिये ॥ १० ॥ ११ ॥ स्वर्गको देखकर हमलोग बहुत चकराये। वरुण, कुबेर, यम, सूर्य तथा अग्नि आदि देवताओंको वहाँ विद्यमान देखकर हमको बड़ा विस्मय हुआ। उसी समय उस सजे हुए नगरसे एक राजाकी सवारी निकली ॥ १२ ॥ १३ ॥ देवराज इन्द्रके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समान अक्षोभ्य वह राजा एक गाड़ीपर बैठा था और उस गाड़ीको मनुष्य खींच रहे थे। इधर जिस विमानपर हम बैठे हुए थे, वह तेजीके साथ आगे बढ़ा।।१४।। कुछ ही देरमें हमलोग सब देवअताओंसे नमस्कृत दिव्य ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे। वहाँ ब्रह्माजीको विराजमान देखकर भगवान विष्णु और शिवजी बहुत विस्मित हुए ॥ १५ ॥ ब्रह्माजीकी सभामें सब अङ्गों समेत चारों वेद मूर्तरूपसे उपस्थित थे। वहाँ समुद्र, नदियाँ, पर्वत, पन्नग तथा उरग सब थे ।।१६।। उसी समय विष्णु भगवान् और शिवजीने मुझसे कहा—हे चतुर्वक्त्र! यह कौनसे सनातन ब्रह्मा हैं? मैंने उन दोनोंसे कहा कि मैं इन सृष्टिकर्ता तथा सबके प्रभु ब्रह्माजीको नहीं जानता ।।१७।। हे ईश्वरों! मैं कौन हूँ, ये कौन हैं, इनका और हमारा प्रयोजन क्या है, इन बातोंको सोचकर मैं थक गया हूँ। क्षण ही भर बाद हमारा विमान फिर मनके समान वेगसे आगे बढ़ा ॥ १८ ॥ तनिक ही देर बाद विमान परम रमणीक कैलासशिखरपर पहुँचा। वहाँ मन्दार-वृक्षकी सुन्दर वाटिकाओंमें तोते और कोयलें बोल रही थीं ।।१९।। वीणा और मृदङ्ग आदि बाजे बज रहे थे। इस कारण वह शिखर बड़ा ही सुखदायक और सुन्दर दीख रहा था। जिस समय

वयं तत्र चचाल तरसा गतम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मलोकं तदा दिव्यं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ तत्र ब्रह्माणमालोक्य विस्मितौ हरकेशवौ ॥ १५ ॥ सभायां तत्र वेदाश्च सर्वे सांगाः स्वरूपिणः ॥ सागराः सरितश्चैव पर्वताः पन्नगोरगाः ।।१६।। मामूचतुश्चतुर्वक्त्रं कोऽयं ब्रह्मा सनातनः ॥ ताववोचमहं नैव जाने सृष्टिपतिं पतिम् ॥ १७ ॥ कोऽहं कोऽयं किमर्थं वा भ्रमोऽयं मम चेश्वरौ ॥ क्षणादथ विमानं तच्चचालाशु मनोजवम् ॥ १८ ॥ कैलासशिखरे प्राप्तं रम्ये यक्षगणान्विते ॥ मंदारवाटिकारम्ये कीरकोकिलकूजिते ।।१९।। वीणामुरजवाद्यैश्च नादिते सुखदे शिवे ॥ यदा प्राप्तं विमानं तत्तदैव सदनाच्छु-भात् ॥ २० ॥ निर्गतो भगवाञ्छंभुर्वृषारूढस्त्रिलोचनः ॥ पंचाननो दशभुजः कृतसोमार्धशेखरः ॥ २१ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरी-यकः ॥ पार्ष्णिरक्षौ महावीरौ गजाननषडाननौ ॥ २२ ॥ शिवेन सह पुत्रौ द्वौ व्रजमानौ विरेजतुः ॥ नंदिप्रभृतयः सर्वे गणपाश्च वराश्च ते ॥ २३ ॥ जयशब्दं प्रयुंजाना व्रजन्ति शिवपृष्ठगाः ॥ तं वीक्ष्य शंकरं चान्यं विस्मितास्तत्र नारद ॥ २४ ॥ मातृभिः संशयाविष्टस्तत्राहं न्यवसं मुने ॥ क्षणात्तस्माद्गिरेः शृंगाद्विमानं वातरंहसा ॥ २५ ॥ वैकुंठसदनं प्राप्तं रमारमणमंदिरम् ॥ असंभाव्या विभूतिश्च तत्र दृष्टा मया सुत ॥ २६ ॥ विसिष्मिये तदा विष्णुर्दृष्ट्वा तत्पुरमुत्तमम् ॥ सदनाग्रे ययौ तावद्धरिः कमलोचनः ॥ २७ ॥ अतसीकुसुमाभासः पीतवासाश्चतु-

हमारा विमान वहाँ पहुँचा, उसी समय एक भव्य भवनसे त्रिलोचन भगवान शंकर बैलपर सवार होकर बाहर निकले। शंकरजीके पाँच मुख थे, दस भुजायें थीं और मस्तकपर अर्धचन्द्र सुशोभित हो रहा था ॥२०॥२१॥ वे व्याघ्रचर्म पहने और गजचर्म ओढ़े हुए थे। महावीर गजानन तथा षडानन उनके अङ्गरक्षक थे ॥ २२ ॥ शंकर भगवानके साथ चलते हुए उनके दोनों पुत्र बड़े सुंदर लग रहे थे। नन्दी आदि मुख्य-मुख्य शिवगण उनकी जयजयकार करते हुए पीछे-पीछे चल रहे थे। हे नारद! उन शंकरजीको ब्राह्मी-वैष्णवी आदि सप्तमातृकाओंके साथ देखकर हमलोग बहुत विस्मित हुए और मुझे तो सबसे अधिक आश्चर्य हुआ। क्षण ही भर बादहमारा विमान कैलासशिखरसे उड़कर विष्णुभगवान्के आवासस्वरूप वैकुण्ठ धाममें जा पहुँचा। हे पुत्र नारद! मैंने वहाँ अनेक अद्भुत विभूतियाँ देखीं ॥ २३–२६ ॥ उस उत्तम नगरको देखकर भगवान विष्णु बहुत चकित हुए। ज्यों ही वे एक भव्य भवनके आगे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहुँचे, त्यों ही कमल सदृश नयनोंवाले विष्णुभगवान उसमेंसे निकलते दीखे ॥ २७ ॥ अलसीके फूलकी तरह उनका श्यामवर्ण था। वे पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनके चार भुजायें थीं। वे पक्षिराज गरुड़की पीठपर सवार थे। उनके विभिन्न अङ्गोंमें दिव्य आभूषण विद्यमान थे॥२८॥ कामिनी महारानी लक्ष्मी चमर डुला रही थीं। उन सनातन विष्णु भगवान्को देखकर हमलोग चक्करमें पड़ गये॥२९॥ हम तीनों परस्पर एक दूसरेका मुँह निहारते हुए चुपचाप अपने आसनपर बैठे रह गये। इसके बाद वह विमान फिर वायुवेगसे चला॥३०॥ थोड़ी ही देर बाद हमारा विमान अमृतसमुद्रके तटपर जा पहुँचा। उस समुद्रका जल मीठा था और ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं। बड़े-बड़े जलजन्तु उसमें भरे पड़े थे और उसकी तरंगें बड़ी सुन्दर लग रही थी ॥ ३१ ॥ उसके तटपर मन्दार-पारिजात आदिके वृक्ष विद्यमान थे। विहारके लिए बने हुए भव्य भवनोंमें सुन्दर बिछौने बिछे थे और दीवारोंपर विविध प्रकारके चित्र चित्रित थे॥३२॥ मोतियोंकी मालायें लटक रही थीं। विविध प्रकारकी मालायें शोभा पा रही थीं। उस समुद्रके तटपर अशोक, मौलसिरी, कुरबक आदि वृक्ष विद्यमान थे। उसके चारों ओर

भुजः ॥ द्विजराजाधिरूढश्च दिव्याभरणभूषितः ॥ २८ ॥ वीज्यमानस्तदा लक्ष्म्या कामिन्या चामरैः शुभैः ॥ तं वीक्ष्य विस्मिताः सर्वे वयं विष्णुं सनातनम् ॥ २९ ॥ परस्परं निरीक्षंतः स्थितास्तस्मिन् वरासने ॥ ततश्चचाल तरसा विमानं वातरंहसा ॥ ३० ॥ सुधासमुद्रः संप्राप्तो मिष्टवारिमहोर्मिमान् ॥ यादोगणसमाकीर्णश्चलद्वीचिविराजितः ॥ ३१ ॥ मन्दारपारिजाताद्यैः पादपैरतिशोभितः ॥ नानास्तरणसंयुक्तो नानाचित्रविचित्रितः ॥३२॥ मुक्तादामपरिक्लिष्टो नानादामविराजितः ॥ अशोकबकुलाख्यैश्च वृक्षैः कुरवकादिभिः ॥ ३३ ॥ सर्वतः संवृतः सौम्यैः केतकीचंपकैर्वृतः ॥ कोकिलारावसंघुष्टो दिव्यगंधसमन्वितः ॥ ३४ ॥ द्विरेफातिरणत्कारै रंजितः परमाद्भुतः ॥ तस्मिन्द्वीपे शिवाकारः पर्यङ्कः सुमनोहरः ॥ ३५ ॥ रत्नालिखचितोऽत्यर्थं नानारत्नविराजितः ॥ दृष्टोऽस्माभिर्विमानस्थैर्दूरतः परिमण्डितः ॥ ३६ ॥ नानास्तरणसंछन्न इन्द्रचापसमन्वितः ॥ पर्यङ्कप्रवरे तस्मिन्नुपविष्टा वरांगना ॥ ३७ ॥ रक्तमाल्यांबराधरा रक्तगंधानुलेपना ॥ सुरक्तनयना कांता विद्युत्कोटिसमप्रभा ॥ ३८ ॥ सुचारुवदना रक्तदंतच्छदविराजिता ॥ रमाकोट्यधिका कांत्या सूर्यबिंबनिभाऽखिला ॥ ३९ ॥ वरपाशांकुशाभीष्टधरा श्रीभुवनेश्वरी ॥ अदृष्टपूर्वा

सुन्दर केतकी (केवँड़ा) और चम्पक पुष्पकी वाटिकायें थीं। उनमें कोयलकी कूक सुनायी देती थी और उनकी मनभावनी सुगन्धि फैल रही थी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वहाँपर भौंरे गुञ्जार कर रहे थे, जिससे हम लोगोंको बड़ा कुतूहल हो रहा था। उस विमानपर बैठे हुए ही हम लोगोंने कुछ दूरीपर शिवजीके आकारका एक बहुत ही सुन्दर पलंग देखा॥३५॥ उस पलंगमें रत्ननिर्मित भौंरे जड़े हुए थे और नाना प्रकारके रत्नोंकी शोभा देखते ही बनती थी। उस सुसज्जित पलंगको हमने दूरसे ही देखा था ॥ ३६ ॥ उसपर विविध रंगके बिछौने बिछे थे। अतएव उसमेंसे इन्द्रधनुषकी आभा निकलती दीख रही थी। उस अत्युत्तम पलंगपर एक सुन्दर स्त्री बैठी हुई थी॥३७॥ उस सुन्दरीने लाल मालायें और लाल ही वस्त्र पहन रक्खे थे। उसने अपने शरीरमें लाल चन्दनका अनुलेपन किया था। उसके नेत्र भी बहुत लाल थे और उसके शरीरसे करोड़ों बिजलियोंकी दीप्ति निकल रही थी॥३८॥ उसका आकर्षक मुख था और लाल होंठ थे। करोड़ों लक्ष्मीसे भी बढ़कर उसका सौन्दर्य था। वह अपनी अलौकिक कान्तिसे सूर्यमण्डलकी दीप्तिका तिरस्कार कर रही थी॥३९॥ चार भुजाओंमेंसे दोनों बायीं भुजाओंमें वरदानकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुद्रा तथा पाश विद्यमान था। उनकी दोनों दाहिनी भुजाओंमें अभयमुद्रा तथा अकुंश शोभित था। वे साक्षात् श्रीभुवनेश्वरी देवी थीं। ऐसी अपूर्व सुन्दरी हमने पहले कभी नहीं देखी थी। उनकी मुसकराहट भी आभूषणका काम कर रही थी ॥ ४० ॥ वहाँके पक्षिवृन्द ह्रींकार बीजमंत्रका जप कर रहे थे। वे अरुणवर्णकी भवानी करुणामूर्ति, कुमारी और नवयौवनसपन्न थीं ॥ ४१ ॥ वे सब प्रकारका शृंगार किये हुए थीं और उनके मुखकमलपर मन्द मुसकान खेल रही थी। उभड़ते हुए उनके दोनों कुच कमलकी कलियोंको तिरस्कृत कर रहे थे ॥४२॥ विविध प्रकारके मणियोंसे खचित आभरण उनके शरीरपर सुशोभित थे। सुवर्णके बने बिजायठ, कंकण और किरीट शोभा पा रहे थे ॥ ४३ ॥ स्वर्णनिर्मित एक चक्राकार कर्णफूलसे उनका मुख-कमल देदीप्यमान हो रहा था। उनकी सखियोंका समुदाय 'हृल्लेखा' तथा 'भुवनेशी' इन दोनों नामोंका जप कर रहा था। बहुतेरी सखियाँ उन भुवनेशी महेश्वरी देवीकी स्तुति कर रही थीं। हृल्लेखा आदि देवकन्यायें उनके पास थीं और अनङ्गकुसुमा आदि देवियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए थीं। वे षट्कोण यन्त्रके बीच यंत्रराजके ऊपर विद्यमान थीं ॥४४–४६॥ उन भग-

दृष्टा सा सुन्दरी स्मितभूषणा ॥ ४० ॥ ह्रींकारजपनिष्ठैस्तु पक्षिवृंदैर्निषेविता ॥ अरुणा करुणामूर्तिः कुमारी नवयौवना ॥ ४१ ॥ सर्वशृङ्गारवे-षाढ्या मन्दस्मितमुखांबुजा ॥ उद्यत्पीनकुचद्वंद्वनिर्जितांभोजकुड्मला ॥ ४२ ॥ नानामणिगणाकीर्णभूषणैरुपशोभिता ॥ कनकांगदकेयूरकिरीट-परिशोभिता ॥ ४३ ॥ कनकश्रीचक्रताटंकविटंकवदनांबुजा ॥ हृल्लेखा भुवनेशीति नामजापपरायणैः ॥ ४४ ॥ सखीवृंदैः स्तुता नित्यं भुवनेशी महेश्वरी ॥ हृल्लेखाद्याभिरमरकन्याभिः परिवेष्टिता ॥ ४५ ॥ अनंगकुसुमाद्याभिर्देवीभिः परिवेष्टिता ॥ देवी षट्कोणमध्यस्था यंत्रराजोपरि स्थिता ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा तां विस्मिताः सर्वे वयं तत्र स्थिताऽभवम् ॥ केयं कांता च किं नाम न जानीमोऽत्र संस्थिताः ॥ ४७ ॥ सहस्रनयना रामा सहस्रकरसंयुता ॥ सहस्रवदना रम्या भाति दूरादसंशयम् ॥ ४८ ॥ नाप्सरा नापि गंधर्वी नेयं देवाङ्गना किल ॥ इति संशयमापन्नास्तत्र नारद संस्थिताः ॥ ४९ ॥ तदाऽसौ भगवान्विष्णुर्दृष्ट्वा तां चारुहासिनीम् ॥ उवाचांबां स्वविज्ञानात्कृत्वा मनसि निश्चयम् ॥ ५० ॥ एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं हि नः ॥ महाविद्या महामाया पूर्णा प्रकृतिरव्यया ॥ ५१ ॥ दुर्ज्ञेयाऽल्पधियां देवी योगगम्या दुराशया ॥ इच्छा परात्मनः

वतीको देखकर हमलोग बहुत विस्मित हुए और वहाँ ही रुक गये, किन्तु हमको यह नहीं ज्ञात हो सका कि वह सुन्दरी कौन हैं और उनका नाम क्या है ॥ ४७ ॥ उन देवीके हजार नेत्र, हजार मुख और हजार ही हाथ थे। बड़ी दूरसे देखनेपर भी वे बहुत सुन्दर लग रही थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ हम यही सोच रहे थे कि ये न अप्सरा हैं, न गन्धर्वी हैं, न देवाङ्गना हैं, तब आखिर हैं कौन ? हे नारद ! इस प्रकार सन्देहमें पड़कर हम तीनों वहाँ ही रुक गये ॥ ४९ ॥ उस चारुहासिनी सुन्दरीको देखकर भगवान विष्णु-ने अपने अनुभवसे अनुमान किया कि ये तो साक्षात् जगदम्बा हैं। तब उन्होंने हमें बतलाया—॥ ५० ॥ ये भगवती हम सबकी कारणस्वरूपा हैं। ये ही महाविद्या, महामाया, पूर्णा प्रकृति और अव्यय हैं ॥५१॥ अल्पबुद्धिके प्राणी इन्हें नहीं जान सकते। ये भगवती केवल योगमार्गसे जानी जा सकती हैं। इनके मनकी बात कोई नहीं जान सकता। ये परमात्माकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इच्छा हैं, नित्या हैं और नित्यस्वरूपिणी हैं ॥५२॥ ये देवी, विश्वेश्वरी और शिवा अल्प भाग्यवाले लोगों द्वारा आराधित नहीं हो पातीं। ये वेदगर्भा-विशालाक्षी आदि सब देवियोंकी आदि-स्वरूपा ईश्वरी हैं ॥५३॥ प्रलयकालमें ये समस्त विश्वका संहार करके समस्त जीवोंके लिंगशरीरको आत्मसात् कर लेतीं और अकेली ही विहार करती हैं ॥५४॥ हे ब्रह्मा तथा शिवजी! इस समय ये सर्वबीजमयी भवानीके रूपमें विराजमान हैं। देखिए न, इसके अगल-बगल करोड़ों विभूतियाँ विद्यमान हैं ॥५५॥ ये दिव्य आभूषण धारण किये हैं और दिव्य चन्दनका अनुलेपन लगाये हैं। हे ब्रह्मा और शंकरजी! देखिए, ये विभूतियाँ इन महामायाकी सेवामें किस तरह संलग्न हैं ॥ ५६ ॥ इस समय हमलोग धन्य और कृतकृत्य हो गये। क्योंकि हमें साक्षात् भगवतीके दर्शन प्राप्त हो गये हैं ॥ ५७ ॥ ऐसा मालूम होता है कि पूर्वकालमें हम लोगोंने बड़े यत्नके साथ तपस्या की थी। उसीके फलस्वरूप हमें इन जगदम्बाके दर्शन मिले हैं। नहीं तो इनके दर्शन कैसे मिलते? ॥ ५८ ॥ जो लोग उदार विचारके हैं, पुण्यात्मा हैं, तपस्वी हैं, वे ही इनका दर्शन पाते हैं। इसके विपरीत जो लोग संसारमें आसक्त हैं, वे इन देवी, भगवती एवं

कामं नित्यानित्यस्वरूपिणी ॥ ५२ ॥ दुराराध्याऽल्पभाग्यैश्च देवी विश्वेश्वरी शिवा ॥ वेदगर्भा विशालाक्षी सर्वेषामादिरीश्वरी ॥ ५३ ॥ एषा संहृत्य सकलं विश्वं क्रीडति संक्षये ॥ लिंगानि सर्वजीवानां स्वशरीरे निवेश्य च ॥ ५४ ॥ सर्वबीजमयी ह्येषा राजते साम्प्रतं सुरौ ॥ विभूतयः स्थिताः पार्श्वे पश्यतां कोटिशः क्रमात् ॥ ५५ ॥ दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यगंधानुलेपनाः ॥ परिचर्यापराः सर्वाः पश्यतां ब्रह्मशंकरौ ॥ ५६ ॥ धन्या वयं महाभागाः कृतकृत्याः स्म सांप्रतम् ॥ यदत्र दर्शनं प्राप्तं भगवत्याः स्वयं त्विदम् ॥ ५७ ॥ तपस्तप्तं पुरा यत्नात्तस्येदं फलमुत्तमम् ॥ अन्यथा दर्शनं कुत्र भवेदस्माकमादरात् ॥ ५८ ॥ पश्यन्ति पुण्यपुञ्जा ये ये वदान्यास्तपस्विनः ॥ रागिणो नैव पश्यन्ति देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ ५९ ॥ मूलप्रकृतिरेवैषा सदा पुरुषसंगता ॥ ब्रह्मांडं दर्शयत्येषा कृत्वा वै परमात्मने ॥ ६० ॥ द्रष्टाऽसौ दृश्यमखिलं ब्रह्मांडं देवताः सुरौ ॥ तस्यैषा कारणं सर्वा माया सर्वेश्वरी शिवा ॥ ६१ ॥ काहं वा क सुराः सर्वे रम्भाद्याः सुरयोषितः ॥ लक्षांशेन तुलामस्य न भवामः कथंचन ॥६२॥ सैषा वरांगना नाम या वै दृष्टा महार्णवे ॥ बालभावे महादेवी दोलयंतीव मां मुदा ॥६३॥ शयानं वटपत्रे च पर्यंके सुस्थिरे दृढे ॥ पादांगुष्ठं करे कृत्वा निवेश्य मुखपंकजे ॥ ६४ ॥ लेलिहंतं च क्रीडंतमनेकैर्बालचेष्टितैः ॥ रममाणं कोमलांगं वटपत्रपुटे स्थितम् ॥ ६५ ॥ गायंती

शिवाका दर्शन नहीं पा सकते ॥५९॥ ये ही मूलप्रकृतिरूपा भगवती परम पुरुषके सहयोगसे ब्रह्माण्डकी रचना करके परमात्माके समक्ष उपस्थित करती हैं ॥६०॥ हे ब्रह्मा और शिवजी! जीव द्रष्टा है और समस्त ब्रह्माण्ड दृश्य है। इन दोनोंका कारण माया, सर्वेश्वरी तथा शिवा भवानी ही हैं ॥ ६१ ॥ कहाँ हम, कहाँ सब देवता और कहाँ लक्ष्मी आदि देवाङ्गनायें। हम सब इन भगवतीकी तुलनामें लक्षांशके भी बराबर नहीं हैं ॥ ६२ ॥ ये वही सुन्दरी हैं, जिन्हें मैंने महासागरमें देखा था और जो मुझे बाल्यावस्थामें प्रसन्नतापूर्वक जैसे झूला झुला रही थीं ॥६३॥ उस समय मैं एक बरगदके पत्तेपर लेटा था! वह पत्ता मेरे लिए एक सुदृढ़ पलंगका काम दे रहा था। मैं अपने पैरका अंगूठा मुखमें डालकर चूस रहा था। इसके अतिरिक्त भी अनेक बालसुलभ चेष्टायें करता हुआ मैं खेल रहा था। उस समय मेरे सभी अङ्ग बहुत कोमल थे और मैं उसी वटपत्रपर विराजमान था ॥६४॥६५॥ उस अवसरपर लोरियाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गाती हुई ये मुझ बालकको झूला झुलाती थीं । इन्हें देखकर मुझे वे पुरानी बातें याद आ गयीं ॥ ६६ ॥ वस्तुतः ये ही मेरी माता हैं । इन्हें देखनेके बाद मुझको कुछ अनुभूत तथ्योंका परिज्ञान हो गया है । उन्हें बतलाता हूँ, सुनिए—॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(विष्णुभगवान द्वारा भगवतीकी स्तुति) ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! इतना कहकर जनार्दन विष्णुभगवान बोले—चलिए, हमलोग इनको पुनः पुनः प्रणाम करते हुए इनके पास चलें ॥ १ ॥ ये वरदायिनी भगवती हमको वरदान देंगी । हमें निर्भयभावसे इनके श्रीचरणोंके समीप चलकर स्तुति करनी चाहिए ॥२॥ यदि इनकी द्वारपालिकायें हमको रोकेंगी तो हम वहाँ ही बैठकर एकाग्रचित्तसे भगवतीका स्तुतिपाठ करने लगेंगे ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीने कहा— भगवान विष्णुके ऐसा कहनेपर मैं और शिवजी दोनों हर्षसे गद्गद हो गये और शीघ्र उनके पास

दोलयंती च बालभावान्मयि स्थिते ॥ सेयं सुनिश्चितं ज्ञानं जातं मे दर्शनादिव ॥ ६६ ॥ कामं नो जननी सैषा शृणु तं प्रवदाम्यहम् ॥ अनुभूतं मया पूर्वं प्रत्यभिज्ञा समुत्थिता ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह जनार्दनः ॥ वयं गच्छेम पार्श्वेऽस्याः प्रणमंतः पुनः पुनः ॥ १ ॥ सेयं वरा महामाया दास्यत्येषा वरान्हि नः ॥ स्तुवामः संनिधिं प्राप्य निर्भयाश्चरणांतिके ॥२॥ यदि नो वारयिष्यंति द्वारस्थाः परिचारकाः ॥ पठिष्यामश्च तत्रस्थाः स्तुतिं देव्याः समाहिताः ॥३॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ते हरिणा वाक्ये सुप्रहृष्टौ सुसंस्थितौ ॥ जातौ प्रमुदितौ कामं निकटे गमनाय च ॥४॥ ओमित्युक्त्वा हरिं सर्वे विमानात्त्वरितास्त्रयः ॥ उत्तीर्य निर्गता द्वारि शंकमाना मनस्यलम् ॥५॥ द्वारस्थान्वीक्ष्य तान्सर्वान्देवी भगवती तदा ॥ स्मितं कृत्वा चकाराशु तांस्त्रीन्स्त्रीरूपधारिणः ॥६॥ वयं युवतयो जाताः सुरूपाश्चारुभूषणाः ॥ विस्मयं परमं प्राप्ता गतास्तत्संनिधिं पुनः ॥ ७ ॥ सा दृष्ट्वा नः स्थितांस्तत्र स्त्रीरूपांश्चरणांतिके ॥ व्यलोकयत चार्वङ्गी प्रेमसंपूर्णया दृशा ॥ ८ ॥ प्रणम्य तां महादेवीं पुरतः संस्थिता वयम् ॥ परस्परं लोकयंतः स्त्रीरूपाश्चारुभूषणाः ॥९॥ पादपीठं प्रेक्षमाणा नानामणिविभूषितम् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं स्थितास्तत्र वयं त्रयः ॥१०॥ काश्चिद्रक्तांबरास्तत्र सहचर्यः सहस्रशः ॥

पहुँचनेके लिए उतावले हो उठे ॥ ४ ॥ भगवान् विष्णुसे 'बहुत अच्छा' कहकर हम तीनों तत्काल विमानसे उतर पड़े और मन ही मन भाँति-भाँतिकी शंकायें करते हुए भगवतीके द्वारपर जा पहुँचे ॥ ५ ॥ हम लोगोंको द्वारपर देखकर मन्द-मन्द मुसकाती हुई महामायाने हम तीनोंको स्त्रीरूपमें परिणत कर दिया ॥ ६ ॥ अब हम बहुत सुन्दरी, रूपवती तथा भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे युक्त युवती स्त्री हो गये । यह कौतुक देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ और हम उन महामायाके समीप पहुँच गये ॥७॥ स्त्रीरूपमें हमें अपने चरणोंके पास देखकर उन सुन्दर अङ्गों-वाली भगवतीने हमको प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा ॥८॥ तब उन महादेवीको प्रणाम करके स्त्रीरूपधारी तथा दिव्य आभूषण धारण किये हम तीनों परस्पर एक दूसरेको निहारते हुए वहाँ ही खड़े हो गये ॥९॥ विविध मणियोंसे विभूषित तथा करोड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान उनके सिंहासनको देखते हुए हम खड़े रहे ॥१०॥ वहाँ उनकी हजारों दासियाँ उपस्थित थीं । उनमेंसे कुछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लाल वस्त्र, कुछ दासियाँ नीले वस्त्र और कुछ पीले वस्त्र पहने हुए थीं॥ ११ ॥ वहाँ विद्यमान सभी देवियाँ सुन्दर आकृतिकी थीं और विचित्र वसन-भूषण पहने थीं। वे सब उनकी विभिन्न सेवाओंमें संलग्न थीं ॥१२॥ उनमेंसे कुछ देवियाँ गा रही थीं, कुछ नाच रही थीं और कुछ स्त्रियाँ भगवतीकी उपासना कर रही थीं। कुछ नारियाँ बड़े हर्षके साथ वीणा तथा मुरली आदि बाजे बजा रही थीं ॥१३॥ हे नारद ! वहाँ मैंने भगवतीके नखरूपी दर्पणमें जो अद्भुत बात देखी, उसे बता रहा हूँ। सुनो-॥१४॥ उसमें समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक ब्रह्माण्ड, मैं (ब्रह्मा), भगवान विष्णु, शिवजी, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, त्वष्टा (विश्वकर्मा), कुवेर, इन्द्र, सभी पर्वत, समुद्र, नदियाँ, गन्धर्व और सब अप्सरायें विद्यमान थीं ॥१५॥१६॥ विश्वावसु, चित्रकेतु, श्वेत, चित्राङ्गद, नारद, तुम्बुरु, हाहा, हूहू, दोनों अश्विनीकुमार, अष्टवसु, साध्य, सिद्ध, पितर, शेष आदि सभी नाग, किन्नर, उरग और राक्षस ये सब मुझे उनके नखदर्पणमें दिखायी

काश्चिन्नीलांबरा नार्यस्तथा पीतांबराः शुभाः ॥ ११ ॥ देव्यः सर्वाः शुभाकारा विचित्राम्बरभूषणाः ॥ विरेजुः पार्श्वतस्तस्याः परिचर्यापराः किल ॥ १२ ॥ जगुश्च ननृतुश्चान्याः पर्युपासन्त ताः स्त्रियः ॥ वीणामारुतवाद्यानि वादयंत्यो मुदान्विताः ॥ १३ ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि यद्दृष्टं तत्र चाद्भुतम् ॥ नखदर्पणमध्ये वै देव्याश्चरणपंकजे ॥ १४ ॥ ब्रह्माण्डमखिलं सर्वं तत्र स्थावरजंगमम् ॥ अहं विष्णुश्च रुद्रश्च वायुरग्निर्यमो रविः ॥१५॥ वरुणः शीतगुस्त्वष्टा कुबेरः पाकशासनः ॥ पर्वताः सागरा नद्यो गंधर्वाप्सरसस्तथा ॥ १६ ॥ विश्वावसुश्चित्रकेतुः श्वेतश्चित्रांगदस्तथा ॥ नारदस्तुंबुरुश्चैव हाहाहूहूस्तथैव च ॥१७॥ अश्विनौ वसवः साध्याः सिद्धाश्च पितरस्तथा ॥ नागाः शेषादयः सर्वे किन्नरोरगराक्षसाः ॥१८॥ वैकुंठो ब्रह्मलोकश्च कैलासः पर्वतोत्तमः ॥ सर्वं तदखिलं दृष्टं नखमध्यस्थितं च वै ॥१९॥ मज्जन्मपंकजं तत्र स्थितोऽहं चतुराननः ॥ शेषशायी जगन्नाथस्तथा च मधुकैटभौ ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं दृष्टं मया तत्र पादपद्मनखे स्थितम् ॥ विस्मितोऽहं ततो वीक्ष्य किमेतदिति शंकितः ॥ २१ ॥ विष्णुश्च विस्मयाविष्टः शंकरश्च तथा स्थितः ॥ तां तदा मेनिरे देवीं वयं विश्वस्य मातरम् ॥ २२ ॥ ततो वर्षशतं पूर्णं व्यतिक्रांतं प्रपश्यतः ॥ सुधामये शिवे द्वीपे विहारं विविधं तदा ॥ २३ ॥ सख्य इव तदा तत्र मेनिरेऽस्मानवस्थितान् ॥ देव्यः प्रमुदिताकारा नानाभरणमंडिताः ॥ २४ ॥ वयमप्यतिरम्यत्वाद्भूविम विमोहिताः ॥ प्रहृष्टमनसः सर्वे पश्यन्भावान्मनोरमान् ॥ २५ ॥ एकदा तां महादेवीं देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ तुष्टाव

दिये ॥१७॥१८॥ वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक तथा पर्वतश्रेष्ठ कैलास, इन सबको मैंने उनके नखरूपी दर्पणमें उपस्थित देखा ॥१९॥ उसीमें मुझे जन्म देनेवाला वह कमल भी था और मैं चतुर्मुख ब्रह्मा उस कमलकोषमें बैठा हुआ था। मधु-कैटभ नामके दोनों दैत्य तथा शेषशायी भगवान विष्णु भी उसीमें विद्यमान दिखायी पड़े ॥२०॥ भगवान ब्रह्मा बोले–इस प्रकारका एक अद्भुत चमत्कार महामायाके नखदर्पणमें देखकर मैं चकरा गया और सोचने लगा कि यह क्या है॥ २१ ॥ भगवान विष्णु और शंकरजी भी मेरी ही तरह विस्मित थे। उसी समय हम तीनोंने मान लिया कि समस्त विश्वकी माता ये ही हैं ॥२२॥ इस प्रकार उस अमृतमय तथा कल्याणमय द्वीपमें विविध भाँतिकी क्रीडायें और वहाँके कौतुक देखते हुए पूरे सौ वर्ष बीत गये॥२३॥ वहाँकी हँसमुख तथा विविध आभूषणोंसे आभूषित देवियाँ हम तीनोंको अपनी सखियाँ मानती थीं ॥२४॥ हमलोग भी उनके स्नेहभरे व्यवहार तथा मनोहर भावोंको देखकर बहुत प्रसन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे ॥ २५ ॥ एकदिन युवती स्त्रीके रूपमें परिणत विष्णुभगवान महादेवी श्रीभुवनेश्वरी देवीकी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ श्रीभगवान बोले—प्रकृति देवी तथा विधात्री देवीको मेरा नमस्कार है। कल्याणी, कामदा, वृद्धि और सिद्धि देवीको नमस्कार है ॥ २७ ॥ सच्चिदानन्दरूपिणी तथा संसारकी योनिस्वरूपा देवीको नमस्कार है। पञ्चकर्मविधात्री तथा भुवनेशी देवीको नमस्कार है ॥ २८ ॥ समस्त विश्वकी अधिष्ठात्री तथा कूटस्थस्वरूपा देवीको नमस्कार है। अर्धमात्राकी अर्थस्वरूपा हृल्लेखा देवीको नमस्कार है ॥ २९ ॥ हे माता! मैंने यह बात जान ली कि समस्त विश्व आपमें ही लीन है और आपहीके द्वारा इसकी उत्पत्ति और संहार होता है। आपकी विस्तृत प्रभावमयी सब सकललोकमयी शक्ति ही सब कुछ करती-धरती है। आज मुझे इस बातका भी अनुभव हो गया ॥ ३० ॥ इस सत् तथा असत्स्वरूप समस्त जगत्का विस्तार करके उस चेतन पुरुषके उपयोगके लिए आप द्रष्टा बन जाती हैं। आपको सोलह तत्त्वों तथा महदादि सात तत्त्वोंमें परिणत देखकर मुझे आपके सब कार्यकलाप जादूगरके खेल सरीखे प्रतीत होते हैं ॥ ३१ ॥ हे माता! जगत्की सब वस्तुओंमें मुझे आपके सिवाय

भगवान्विष्णुर्युवतीभावसंस्थितः ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नमो देव्यै प्रकृत्यै च विधात्र्यै सततं नमः ॥ कल्याण्यै कामदायै च वृद्ध्यै सिद्ध्यै नमोनमः ॥ २७ ॥ सच्चिदानंदरूपिण्यै संसारारंण्ये नमः ॥ पंचकृत्यविधात्र्यै ते भुवनेश्यै नमोनमः ॥ २८ ॥ सर्वाधिष्ठानरूपायै कूटस्थायै नमोनमः ॥ अर्धमात्रार्थभूतायै हृल्लेखायै नमोनमः ॥ २९ ॥ ज्ञातं मयाऽखिलमिदं त्वयि सन्निविष्टं त्वत्तोऽस्य संभवलयावपि मातरद्य ॥ शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा ज्ञाताऽधुना सकललोकमयीति नूनम् ॥ ३० ॥ विस्तार्य सर्वमखिलं सदसद्विकारं संदर्शयस्यविकलं पुरुषाय काले ॥ तत्त्वैश्च षोडशभिरेव च सप्तभिश्च भासींद्रजालमिव नः किल रंजनाय ॥ ३१ ॥ न त्वामृते किमपि वस्तुगतं विभाति व्याप्यैव सर्वमखिलं त्वमवस्थिताऽसि ॥ शक्तिं विना व्यवहृतो पुरुषोऽप्यशक्तो बम्भण्यते जननि बुद्धिमता जनेन ॥ ३२ ॥ प्रीणासि विश्वमखिलं सततं प्रभावैः स्वैस्तेजसा च सकलं प्रकटीकरोषि ॥ अस्त्येव देवि तरसा किल कल्पकाले को वेद देवि चरितं तव वैभवस्य ॥३३॥ त्राता वयं जननि ते मधुकैटभाभ्यां लोकाश्च ते सुवितताः खलु दर्शिता वै ॥ नीताः सुखस्य भवने परमां च कोटिं यद्दर्शनं तव भवानि महाप्रभावम् ॥ ३४ ॥ नाहं भवो न च विरिंचि विवेद मातः कोऽन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाव्यम् ॥ कानीह संति भुवनानि महाप्रभावे ह्यस्मिन्भवानि रचिते रचनाकलापे ॥ ३५ ॥ अस्माभिरत्र

और कुछ भी नहीं दिखायी देता। आप ही समस्त भूमण्डलमें व्याप्त होकर विराज रही हैं। बुद्धिमान् भक्तोंका यह कथन है कि आपकी प्रदत्त शक्तिके बिना वह परम पुरुष भी कुछ करनेमें समर्थ नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥ हे माताजी! आप अपने प्रभावसे समस्त संसारको पालती-पोसती हैं और अपने तेजसे सबको उत्पन्न करती हैं। हे देवि! कल्पान्तके समय आप ही इसे खा जाती हैं। हे माता! आपके वैभव तथा चरित्रको भली भाँति भला कौन जान सकता है? ॥ ३३ ॥ हे जननी! आपने मधु-कैटभ नामके दो महादैत्योंसे हमारी रक्षा की। उसके बाद हमें आपने अनेक सुविस्तृत लोक दिखाये। तदनन्तर आपने हम लोगोंको सुखके सदनस्वरूप इस मणिद्वीपमें लाकर पहुँचाया। ऐसा करके हमको आपने परम उत्कर्षपर पहुँचा दिया। हे भवानी! आपका दर्शन असाधारण प्रभावशाली होता है ॥ ३४ ॥ हे माताजी! न मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(विष्णु) और न ब्रह्माजी ही आपके अतर्क्य चरित्रको जान पाते हैं, तब दूसरा कोई उसे कैसे जान सकेगा ? हमने आपके नखदर्पणमें जितने भुवन देखे हैं, उनसे कहीं ज्यादा कितने ही भुवन आपके रचनाकलापमें पड़े होंगे ॥ ३५ ॥ हमने आपके इस लोकमें दूसरे विष्णु, शिव तथा विस्तृत प्रभावसम्पन्न ब्रह्मा देखे हैं । हे देवि ! क्या वे अन्यान्य लोकोंमें न होंगे ? हे देवि ! हम आपके लोकविख्यात प्रभावको कैसे समझ सकते हैं ? ॥ ३६ ॥ हे अम्ब ! हम लोग आपके चरणोंमें मस्तक रखकर यही वरदान माँगते हैं कि आपका यह भव्य रूप सदा हमारे हृदयमें बसा रहे । हमारे मुखगह्वरसे सदा आपका नाम उच्चरित होता रहे और हमारे नेत्रोंको नित्य आपके दर्शन प्राप्त होते रहें ॥ ३७ ॥ हे माता ! 'ये मेरे सेवक हैं' आपकी यह भावना हमारे प्रति सर्वदा बनी रहे और मैं सदा आपको अपनी स्वामिनी समझता रहूँ । देवि ! हे आर्ये ! सदा हमारा और आपका सम्बन्ध माता-पुत्रका रहा करे ॥ ३८ ॥ हे जगदम्बे ! आप समस्त लोकोंके प्रपञ्चको जानती हैं । क्योंकि जहाँ सर्वज्ञता समाप्त होती है । आप उसकी अन्तिम भूमि हैं । हे भवानी ! हम पामर प्राणी और कह ही क्या सकते हैं ?

भुवने हरिरन्य एव दृष्टः शिवः कमलजः प्रथितप्रभावः ॥ अन्येषु देवि भुवनेषु न संति किं विद्म देवि विततं तव सुप्रभावम् ॥ ३६ ॥ याचेऽम्ब तेऽङ्घ्रिकमलं प्रणिपत्य कामं चित्ते सदा वसतु रूपमिदं तवैतत् ॥ नामापि वक्त्रकुहरे सततं तवैव संदर्शनं तव पदांबुजयोः सदैव ॥ ३७ ॥ भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयं त्वां स्वामिनीति मनसा ननु चिंतयामि ॥ एषाऽऽवयोरविरता किल देवि भूयाद्व्याप्तिः सदैव जननी सुतयो-रिवार्ये ॥ ३८ ॥ त्वं वेत्सि सर्वमखिलं भुवनप्रपंचं सर्वज्ञतापरिसमाप्तिनितांतभूमिः ॥ किं पामरेण जगदंब निवेदनीयं यद्युक्तमाचर भवानि तवेङ्गितं स्यात् ॥ ३९ ॥ ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरुमापतिश्च संहारकारक इयं तु जने प्रसिद्धः ॥ किं सत्यमेतदपि देवि तवेच्छया वै कर्तुं क्षमा वयमजे तव शक्तियुक्ताः ॥ ४० ॥ धात्री धराधरसुते न जगद्बिभर्ति आधारशक्तिरखिलं तव वै बिभर्ति ॥ सूर्योऽपि भाति वरदे प्रभया युतस्ते त्वं सर्वमेत-दखिलं विरजा विभासि ॥ ४१ ॥ ब्रह्माहमीश्वरवरः किल ते प्रभावात्सर्वे वयं जनियुता न यदा तु नित्याः ॥ केऽन्ये सुराः शतमखप्रमुखाश्च नित्या नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा ॥ ४२ ॥ त्वं चेद्भवानि दयसे पुरुषं पुराणं जानेऽहमद्य तव संनिधिगः सदैव ॥ नोचेदहं विभुरनादिरनीह

आप जो उचित समझें सो करें । क्योंकि जो कुछ होगा, वह आपके संकेतसे ही होगा ॥ ३९ ॥ संसारमें ऐसी प्रसिद्धि है कि ब्रह्मा जगत्‌की सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शङ्कर भगवान इसका संहार करते हैं । किन्तु हे देवि ! क्या यह लोकप्रसिद्धि सत्य है ? हे गिरिजे ! सच तो यह है कि हम आपकी इच्छासे और आपकी शक्ति पाकर ही सब कुछ करते-धरते हैं ॥ ४० ॥ हे वरदे ! आप जगद्धात्री होकर अपने शरीरसे इस संसारका पालन-पोषण करती हैं । आपकी अपार शक्तिके सहारे ही सारा संसार टिका हुआ है । हे माता ! सूर्यदेव आपकी ही प्रभासे आकाशमें प्रकाशमान होते हैं और आप अपनी निर्गुण शक्तिसे समस्त भुवनमण्डलको विभासित करती हैं ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी, मैं और शिव ये तीनों आपके प्रभावसे ही जन्म पाते हैं । हम नित्य नहीं हैं । तब भला इन्द्र आदि अन्य देवता कैसे नित्य हो सकते हैं ? वास्तवमें आप ही सबकी जननी, नित्या और पुराण प्रकृति हैं ॥४२॥ हे भवानी ! आप नित्य पुराणपुरुषपर सर्वदा दयाभाव बनाये रहती हैं । इस बातको मैं आपके समक्ष आनेपर ही समझ सका । नहीं तो वह पुराणपुरुष अपनेको सर्वव्यापक, अनादि, अनीह (निष्काम) और सर्वेश्वर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समझ बैठता और अहंकारसे परिपूर्ण होकर सदाके लिए नष्ट हो जाता ॥ ४३ ॥ हे माता ! आप बुद्धिमानोंकी विद्या और शक्तिसम्पन्न पुरुषोंकी शक्ति हैं। आप ही कीर्ति, कान्ति, कमला और निर्मल तुष्टिस्वरूपा भगवती हैं। आप मनुष्यलोकमें प्राणियोंको मुक्ति देनेवाली विराग हैं ॥ ४४ ॥ आप वेदोंकी प्रथम कला गायत्री हैं। आप ही स्वाहा, स्वधा, सगुणा और अर्धमात्रा हैं। देवता आदि सभी प्राणियोंके संरक्षण तथा मोक्षके लिए आपने आगम और निगमकी रचना की है ॥४५॥ उनके मोक्षके लिए ही आपने इन सब प्रपंचोंका निर्माण किया है। जैसे पूर्ण समुद्रकी उठती हुई तरंगें उस समुद्रका ही अंश होती हैं, उसी प्रकार आदि-अन्तहीन ब्रह्मके जो जीवरूपी अंश हैं, उनको मोक्ष प्राप्त करानेके लिए ही आपका शास्त्रविधान बना है। जब जीवको यह ज्ञान हो जाता है कि एकमात्र आप ही कर्त्री तथा संहारशक्ति हैं। तब विश्वविख्यात महिमामयी आपको अपने कार्योंसे सन्तोष होता है। जैसे सर्वथा मिथ्या किंतु रहस्य तथा चमत्कारपूर्ण खेल करनेमें सफल मदारीको अपने कार्योंसे सन्तोष होता है ॥४६॥४७॥ हे अम्बिके ! आप ही इस महामोहरूपी संसारसमुद्रसे हमें बचा सकती हैं। राग-

ईशो विश्वात्मधीरिति तमःप्रकृतिः सदैव ॥ ४३ ॥ विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव ॥ त्वं कीर्तिकांतिकमलामलतुष्टिरूपा मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके ॥ ४४ ॥ गायत्र्यसि प्रथमवेदकला त्वमेव स्वाहा स्वधा भगवती सगुणाऽर्धमात्रा ॥ आम्नाय एव विहितो निगमो भवत्यै संजीवनाय सततं सुरपूर्वजानाम् ॥ ४५ ॥ मोक्षार्थमेव रचयस्यखिलं प्रपञ्चं तेषां गताः खलु यतो ननु जीवभावम् ॥ अंशा अनादिनिधनस्य किलानघस्य पूर्णार्णवस्य वितता हि यथा तरङ्गाः ॥ ४६ ॥ जीवो यदा तु परिवेत्ति तवैव कृत्यं त्वं संहरस्यखिलमेतदिति प्रसिद्धिम् ॥ नाट्यं नटेन रचितं वितथेऽन्तरंगे कार्ये कृते विरमसे प्रथितप्रभावा ॥ ४७ ॥ त्राता त्वमेव मम मोहमयाद्भवाब्धेस्त्वामंबिके सततमेमि महार्तिदे च ॥ रागादिभिर्विरचिते वितथे किलांते मामेव पाहि बहुदुःखकरे च काले ॥ ४८ ॥ नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव ॥ सदा ज्ञानप्रकाशं मे देहि सर्वार्थदे शिवे ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा विरते विष्णौ देवदेवे जनार्दने ॥ उवाच शंकरः शर्वः प्रणतः पुरतः स्थितः ॥ १ ॥ शिव उवाच ॥ यदि हरिस्तव देवि विभावजस्तदनु पद्मज एव तवोद्भवः ॥ किमहमत्र तवापि न सद्गुणः सकललोकविधौ चतुरा शिवे ॥ २ ॥ त्वमसि भूः सलिलं

द्वेष आदि द्वन्द्वोंके कारण बहुत कष्टप्रद तथा सन्तापदायक अन्तकालमें आप मेरी रक्षा करिएगा। मैं आपकी शरणमें हूँ ॥४८॥ हे देवि ! हे महाविद्ये ! मैं आपके चरणकमलोंको प्रणाम करता हूँ। हे सर्वार्थदायिनी शिवे ! मुझे आप सर्वदा ज्ञानका प्रकाश प्रदान करती रहें ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(शिवजी तथा ब्रह्माजीका देवीकी स्तुति करना) ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! जब देवदेव जनार्दन विष्णु भगवान इस प्रकार स्तुति करके चुप हो गये। तब शर्व अर्थात् शंकरजी विनम्र भावसे देवीके सम्मुख खड़े होकर बोले ॥ १ ॥ शिवजीने कहा—हे शिवे ! यदि भगवान् विष्णु आपके पराक्रमसे जायमान हुए और उनके बाद ब्रह्माजी जनमे तो क्या मैं सद्गुणी आपसे नहीं उत्पन्न हुआँ हूँ ? क्योंकि आप समस्त भूमण्डलकी रचनामें चतुर हैं ॥ २ ॥ आप ही पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और तेजोमयी पञ्चमहाभूतस्वरूपिणी हैं। हे माताजी ! आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही इन्द्रियरूपिणी तथा आप ही मन, बुद्धि एवं अहङ्कारस्वरूपा देवी हैं ॥३॥ जो लोग कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और शिवने अखिल विश्वका निर्माण किया है, वे कुछ नहीं जानते । बल्कि सच तो यह है कि आपके बनाये हुए उपर्युक्त तीनों देवता आपके ही आदेशानुसार सृष्टि, पालन तथा संहारका कार्य सम्पन्न करते हैं ॥ ४ ॥ यदि पृथिवी, वायु, आकाश, जल तथा अग्नि इन पाँच महाभूतादि गुणों तथा विषयोंसे संसार बनता है, इस जड़वादके सिद्धान्तको मान लिया जाय तो भी हे अम्बे ! आपकी चिदंशस्वरूपा चैतन्यकलाके बिना वह स्फुटरूपमें व्यक्त कैसे होगा ? ॥ ५ ॥ हे अम्बे ! ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनों देवताओं द्वारा रचित सचराचर जगत्‌में आप व्याप्त रहती हैं और अपनी रुचिके अनुसार विविध वेष धारण करके नाना प्रकारकी क्रीड़ायें करती हैं । जब प्रलयकाल आता है, तब आप विश्राम करती हैं ॥ ६ ॥ जब मैं (शिव), विष्णु भगवान् तथा ब्रह्माजी ब्रह्माण्डकी रचना करनेकी इच्छा करते हैं, तब आपके चरणकमलोंकी रज प्राप्त करके ही विश्वरचनाका कार्य करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ७ ॥ हे अम्बिके ! यदि आप सदा दयालु न रहतीं तो मुझे तमोगुणी क्यों बनातीं ? इसी

पवनस्तथा खमपि वह्निगुणश्च तथा पुनः ॥ जननि तानि पुनः करणानि च त्वमसि बुद्धिमनोऽप्यथ हंकृतिः ॥ ३ ॥ न च विदन्ति वदन्ति च येऽन्यथा हरिहराजकृतं निखिलं जगत् ॥ तव कृताश्रय एव सदैव ते विरचयन्ति जगत्सचराचरम् ॥ ४ ॥ अवनिवायुखवह्निजलादिभिः सविषयैः सगुणैश्च जगद्भवेत् ॥ यदि तदा कथमद्य च तत्स्फुटं प्रभवतीति तवांब कलामृते ॥ ५ ॥ भवसि सर्वमिदं सचराचरं त्वमजविष्णुशिवाकृति-कल्पितम् ॥ विविधवेषविलासकुतूहलैर्विरमसे रमसेऽम्ब यथारुचि ॥ ६ ॥ सकललोकसिसृक्षुरहं हरिः कमलभूश्च भवाम यदाऽम्बिके ॥ तव पदाम्बुजपांसुपरिग्रहं समधिगम्य तदा ननु चक्रिम ॥ ७ ॥ यदि दयार्द्रमना न सदांबिके कथमहं विहितश्च तमोगुणः ॥ कमलजश्च रजोगुण-सम्भवः सुविहितः किमु सत्त्वगुणो हरिः ॥ ८ ॥ यदि न ते विषमा मतिरम्बिके कथमिदं बहुधा विहितं जगत् ॥ सचिवभूपतिभृत्यजनावृतं बहुधनैरधनैश्च समाकुलम् ॥ ९ ॥ तव गुणास्त्रय एव सदा क्षमाः प्रकटनावनसंहरणेषु वै ॥ हरिहरद्रुहिणाश्च क्रमात्त्वया विरचितास्त्रिजगत्किल कारणम् ॥ १० ॥ परिचितानि मया हरिणा तथा कमलजेन विमानगतेन वै ॥ पथिगतैर्भुवनानि कृतानि वा कथय केन भवानि नवानि च ॥११॥ सृजसि पासि जगज्जगदम्बिके स्वकलया कियदिच्छसि नाशितुम् ॥ रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा तव गतिं न हि विद्म वयं शिवे ॥ १२ ॥ जननि

प्रकार ब्रह्माजीको रजोगुणी तथा विष्णु भगवानको सतोगुणी क्यों बनातीं ? ॥ ८ ॥ हे अम्बिके ! यदि आपकी विषम बुद्धि न होती तो आप इस जगत्‌के जीवोंको विभिन्नरूप क्यों देतीं ? यहाँ कोई मन्त्री, कोई राजा, कोई सेवक, कोई बहुत बड़ा धनी और कोई सर्वथा निर्धन क्यों होता ? ॥९॥ हे माता ! आपके प्राकट्य, रक्षण तथा संहरण ये तीनों गुण ही संसारकी सृष्टिके लिए पर्याप्त थे । फिर भी आपने उपर्युक्त तीनों कार्योंका सुचारुरूपसे सम्पादन करनेके लिए कारणस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी रचना की । यह आपकी कृपा ही कही जायगी ॥१०॥ इस विमानमें बैठा हुआ मैं, ब्रह्मा और विष्णु तीनों आपकी असाधारण कर्तृत्वशक्तिसे परिचित हो गये । अभी रास्तेमें हमने जो अनेकानेक भुवन देखे हैं, हे भवानी ! उन्हें आपके सिवाय और कौन रच सकता है ? ॥ ११ ॥ हे जगदम्बिके ! आप अपनी कलासे इस जगत्‌की रचना करती हैं, इसका पालन करती हैं और जब चाहती हैं, तब इसका संहार कर देती हैं ! ऐसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करके आप अपने परम पुरुष पतिको आनन्दित करती हैं। हे शिवे ! आपकी लीलाओंको हम नहीं जान सकते ॥ १२ ॥ हे जननी ! युवतीभावको प्राप्त हम तीनों देवताओंको आप सदाके लिए अपने पावन चरणकमलोंकी सेवा करनेकी सामर्थ्य दें। आगे चलकर पुरुष बन जानेपर भी यदि आपके चरणोंसे दूर रहेंगे तो हमें सुख कहाँ मिलेगा ? ॥१३॥ हे अम्बे ! हे शिवे ! आपके चरणोंको छोड़कर समस्त भुवनोंमें कहीं भी रहनेकी मेरी इच्छा नहीं है, चाहे मनुष्यशरीर पाकर मैं त्रिभुवनका अधिपति ही क्यों न बन जाऊँ ॥ १४ ॥ हे सुदती ! युवतीका रूप पाकर हमें आपके चरणोंका दर्शन मिला। अब यदि मैं पुरुष बन जाता हूँ तो मुझे इनके दर्शनका अवसर न मिलेगा। अतएव ऐसी पुरुषतामें मेरी तनिक भी श्रद्धा नहीं है। उसमें मुझे सुख ही क्या मिलेगा ? ॥ १५ ॥ हे अम्बिके ! स्त्रीका रूप पाकर हमको बन्धनसे छुड़ानेवाले आपके श्रीचरणोंका परिचय प्राप्त हुआ। इससे तीनों लोकोंमें हमारी कीर्ति सदा निर्मल बनी रहेगी ॥१६॥ संसारमें ऐसा कौन प्राणी होगा कि जो आपके पास रहनेकी कामना त्यागकर निष्कण्टक राज्यकी इच्छा करेगा ? जिसे आपके चरणकमलोंका सामीप्य नहीं प्राप्त होता

देहि पदाम्बुजसेवनं युवति भागवतानपि नः सदा ॥ पुरुषतामधिगम्य पदाम्बुजाद्विरहिताः क्व लभे न सुखं स्फुटम् ॥ १३ ॥ न रुचिरस्ति ममांब पदांबुजं तव विहाय शिवे भुवनेष्वलम् ॥ विवसितुं नरदेहमवाप्य च त्रिभुवनस्य पतित्वमवाप्य वै ॥ १४ ॥ सुदति नास्ति मनागपि मे रतिर्युवतिभावमवाप्य तवान्तिके ॥ पुरुषता क्व सुखाय भवत्यलं तव पदं न यदीक्षणगोचरम् ॥ १५ ॥ त्रिभुवनेषु भवत्वियमम्बिके मम सदैव हि कीर्तिरनाविला ॥ युवतिभावमवाप्य पदांबुजं परिचितं तव संसृतिनाशनम् ॥ १६ ॥ भुवि विहाय तवान्तिकसेवनं क इव वांछति राज्यमकंटकम् ॥ त्रुटिरसौ किल याति युगात्मतां न निकटं यदि तेऽङ्घ्रिसरोरुहम् ॥ १७ ॥ तपसि ये निरता मुनयोऽमलास्तव विहाय पदांबुजपूजनम् ॥ जननि ते विधिना किल वञ्चिताः परिभवो विभवे परिकल्पितः ॥ १८ ॥ न तपसा न दमेन समाधिना न च तथा विहितैः क्रतुभिर्यथा ॥ तव पदाब्जपरागनिषेवणाद्भवति मुक्तिरजे भवसागरात् ॥ १९ ॥ कुरु दयां दयसे यदि देवि मां कथय मंत्रमनाविलमद्भुतम् ॥ समभवं प्रजपन्सुखितो ह्यहं सुविशदं च नवार्णमनुत्तमम् ॥२०॥ प्रथमजन्मनि चाधिगतो मया तदधुना न विभाति नवाक्षरः ॥ कथय मां मनुमद्य भवार्णवाज्जननि तारय तारय तारके ॥२१॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी शिवेनाद्भुततेजसा ॥ उच्चचारांबिका मंत्रं प्रस्फुटं च नवाक्षरम् ॥ २२ ॥ तं गृहीत्वा महादेवः परां

उसे युग-युगमें जन्म लेना पड़ जाता है ॥१७॥ जो निर्मल विचारके मुनि आपके चरणकमलोंकी पूजा त्यागकर तपस्या करते हैं, वे तपस्याकी अतुल सम्पत्ति प्राप्त करके भी मोक्ष नहीं पाते। उनके विषयमें यही कहा जा सकता है कि वे अभागे हैं ॥१८॥ तपस्या, इन्द्रियसंयम, समाधि तथा वेदविहित विविध यज्ञोंके करनेवालोंको वह मुक्ति नहीं मिलती, जो शाश्वती मुक्ति आपके चरणकमलोंकी धूलि सेवन करनेवालोंको प्राप्त होती है ॥१९॥ हे देवि ! यदि आपको दया हो तो मेरे ऊपर कृपा करके आप मुझे निर्मल, अद्भुत, सुविशद और सर्वश्रेष्ठ अपने नवार्णमंत्रकी दीक्षा दीजिए-जिसका सतत जप करके मैं सदाके लिए सुखी हो सकूँ ॥ २० ॥ पूर्वजन्ममें मुझे नवार्णमंत्रकी दीक्षा मिली थी। किन्तु अब वह नवाक्षरमंत्र स्मरण नहीं रह गया। अतएव हे जननी ! हे तारके ! आज वह मंत्र पुनः देकर मुझे भवसागरसे तार दीजिए तार दीजिए ॥२१॥ ब्रह्माजी बोले-हे नारद ! अद्भुत तेजस्वी शङ्करजीके ऐसा कहनेपर भगवती जगदम्बाने स्पष्टरीतिसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नवाक्षर मन्त्रका उच्चारण किया ॥ २२ ॥ उस मंत्रको हृदयङ्गम करके महादेवजी बहुत प्रसन्न हुए और देवीके चरणोंकी वन्दना करके एक ओर बैठ गये ॥ २३ ॥ समस्त कामनायें पूर्ण करनेमें समर्थ, मोक्षदायक, बीजयुक्त तथा शुभ उच्चारणसम्पन्न नवाक्षर मंत्रका जप करते हुए शिवजी विराजमान थे ॥ २४ ॥ संसारका कल्याण करनेवाले शंकर भगवानको उस स्थितिमें देखकर मैंने उन महामायाके समीप जाकर कहा—॥ २५ ॥ हे माता ! चारों वेद भी आपको भली भाँति जाननेमें समर्थ नहीं हुए। क्योंकि उन्होंने समस्त जीवोंकी धात्रीस्वरूपा आपकी कहीं भी चर्चा नहीं की। किंतु सभी होमों और यज्ञोंमें देवीको 'स्वाहा' इस नामसे आवाहन करनेसे ही यह सिद्ध हो जाता है कि आपका स्मरण त्रिलोकीमें सर्वज्ञाके रूपमें प्रसिद्ध है ॥ २६ ॥ मैं सृष्टि करता हूँ, मैं अत्यन्त अद्भुत समस्त ब्रह्माण्डोंका निर्माता हूँ, इस चराचर जीवमयी त्रिलोकीमें मुझसे बढ़कर समर्थ पुरुष और कौन होगा ? मैं धन्य हूँ और मैं लोकातीत ब्रह्मा हूँ। इस मिथ्या अहंकारके कारण मैं सदा भवसागरमें डूबा रहा हूँ। इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ २७ ॥ लेकिन आज आपके चरणकमलोंकी धूलि प्राप्त करके मैं

मुदमवाप ह ॥ प्रणम्य चरणौ देव्यास्तत्रैवावस्थितः शिवः ॥ २३ ॥ जपन्नवाक्षरं मन्त्रं कामदं मोक्षदं तथा ॥ बीजयुक्तं शुभोच्चारं शङ्करस्तस्थिवांस्तदा ॥ २४ ॥ तं तथाऽवस्थितं दृष्ट्वा शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ अवोचं तां महामायां संस्थितोऽहं पदांतिके ॥ २५ ॥ न वेदास्त्वामेवं कलयितुमिहासन्नपटवो यतस्तेनोचुस्त्वां सकलजनधात्रीमविकलाम् ॥ स्वधाभूता देवी सकलमखहोमेषु विहिता तदा त्वं सर्वज्ञा जननि खलु जाता त्रिभुवने ॥ २६ ॥ कर्ताऽहं प्रकरोमि सर्वमखिलं ब्रह्माण्डमत्यद्भुतं कोऽन्योस्तीह चराचरे त्रिभुवने मत्तः समर्थः पुमान् ॥ धन्योऽस्म्यत्र न संशयः किल यदा ब्रह्माऽस्मि लोकातिगो मग्नोऽहं भवसागरे प्रवितते गर्वाभिवेशादिति ॥ २७ ॥ अद्याहं तव पादपङ्कजपरागादानगर्वेण वै धन्योऽस्मीति यथार्थवादनिपुणो जातः प्रसादाच्च ते ॥ याचे त्वां भवभीतिनाशचतुरां मुक्तिप्रदां चेश्वरीं हित्वा मोहकृतं महार्तिनिगडं त्वद्भक्तियुक्तं कुरु ॥ २८ ॥ अतोऽहं च जातो विमुक्तः कथं स्यां सरोजादमेयात्त्वदाविष्कृताद्वै ॥ तवाज्ञाकरः किंकरोऽस्मीति नूनं शिवे पाहि मां मोहमग्नं भवाब्धौ ॥ २९ ॥ न जानन्ति ये मानवास्ते वदन्ति प्रभुं मां तवाद्यं चरित्रं पवित्रम् ॥ यजन्तीह ये याजकाः स्वर्गकामा न ते ते प्रभावं विदंत्येव कामम् ॥३०॥ त्वया निर्मितोऽहं विधित्वे विहारं विकर्तुं चतुर्धा विधायादिसर्गम् ॥ अहं वेद्मि कोऽन्यो विवेदादिमाये क्षमस्वापराधं त्वहङ्कारजं मे ॥ ३१ ॥ श्रमं येऽष्टधा

वास्तवमें धन्य हो गया। आपकी कृपासे मैं आज ही यथार्थवादमें निपुण हुआ। संसारका भय दूर करनेवाली, मुक्तिदायिनी और सर्वेश्वरीस्वरूपा आपसे मैं यही वर माँगता हूँ कि मोहविरचित महादुखदायी बन्धनसे मुक्त करके मुझे आप अपनी भक्ति प्रदान करिए ॥२८॥ हे शिवे ! मैं आपके ही निर्मित अप्रमेय कमलसे जायमान हुआ हूँ। 'मैं किस तरह मुक्त हूँगा' इस चिंतासे व्याकुल मैं आपका आज्ञाकारी दास हूँ। भयानक मोहरूपी भवसागरमें डूबते हुए मुझ किंकरकी आप जैसे बने वैसे रक्षा कीजिए ॥२९॥ जो लोग आपके पुरातन चरित्रकी महिमा नहीं जानते, वे मनुष्य मुझे ही ईश्वर कहते हैं। जो याजक स्वर्गप्राप्तिके निमित्त इन्द्र आदि देवताओंका यज्ञ करते हैं, वे सर्वथा आपके प्रभावको नहीं जानते ॥३०॥ हे आदिमाये ! आदि सृष्टिको चार भागों अर्थात् अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुजरूपमें विभक्त करनेके लिए ही आपने मुझे विधिके पदपर बिठाला है। किंतु अहंकारवश मैं यह समझ बैठा कि सब जगत मेरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही रचा हुआ है। मुझसे बढ़कर इसको जाननेवाला और कौन है? मो मिथ्या अभिमानसे उत्पन्न मेरे इस अपराधको आप क्षमा कर दें ॥३१॥ जो लोग मोक्ष प्राप्त करनेके लिए योगमार्गमें प्रवृत्त होकर यम-नियम आदि अष्टाङ्गयोग साधनेका परिश्रम करते हैं अथवा जो लोग समाधिमें स्थित होनेका कष्ट उठाते हैं, वे मूर्ख हैं। हे माताजी! वे यह नहीं जानते कि किसी भी बहाने आपका नाम लेनेसे ही उन्हें मोक्ष प्राप्त हो सकता है ॥३२॥ कुछ लोग आपका नामजप त्यागकर तत्त्वोंकी संख्याके पीछे पड़ जाते हैं। वे सांख्यवादी क्या भवसागरमें भटकनेवाले मूर्ख नहीं कहलायेंगे? क्योंकि हे भवानी! संसारसे मुक्ति देनेवाली तो एकमात्र आप ही हैं ॥३३॥ जिन पूर्ण ज्ञानियोंको परम तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो चुका रहता है, वे क्या आधे निमेषके लिए भी आपके शिवा, अम्बिका, शक्ति, ईश्वरी आदि पुनीत चरित्रसम्पन्न नामोंको त्यागते हैं? कदापि नहीं त्यागते ॥३४॥ हे आदिसर्गे! क्या आप स्वयं विश्वकी रचना करनेमें समर्थ नहीं हैं? हे, आप अपने दृष्टिनिक्षेपमात्रसे इस भूमण्डलपर अण्डज-स्वेदज आदि चार श्रेणियोंमें विभक्त जीवोंकी सृष्टि कर सकती हैं। यह तो आप मनोविनोदके निमित्त मुझ ब्रह्माकी सृष्टि

योगमार्गे प्रवृत्ताः प्रकुर्वंति मूढाः समाधौ स्थिता वै ॥ न जानन्ति ते नाम मोक्षप्रदं वा समुच्चारितं जातु मातर्मिषेण ॥ ३२ ॥ विचारे परे तत्त्वसंख्याविधाने पदे मोहिता नाम ते संविहाय ॥ न किं ते विमूढा भवाब्धौ भवानि त्वमेवासि संसारमुक्तिप्रदा वै ॥३३॥ परं तत्त्वविज्ञानमाध्वैर्जनैर्यैरजे चानुभूतं त्यजन्त्येव ते किम् ॥ निमेषार्धमात्रं पवित्रं चरित्रं शिवा चांबिका शक्तिरीशेति नाम ॥ ३४ ॥ न किं त्वं समर्थाऽसि विश्वं विधातुं दृशैवाशु सर्वं चतुर्धा विभक्तम् ॥ विनोदार्थमेवंविधं मां विधायादिसर्गे किलेदं करोषीति कामम् ॥ ३५ ॥ हरिः पालकः किं त्वयाऽसौ मधोर्वा तथा कैटभाद्रक्षितः सिंधुमध्ये ॥ हरः संहृतः किं त्वयाऽसौ न काले कथं मे भ्रुवोर्मध्यदेशात्स जातः ॥ ३६ ॥ न ते जन्म कुत्रापि दृष्टं श्रुतं वा कुतः संभवस्ते न कोऽपीह वेद ॥ किलाद्यासि शक्तिस्त्वमेका भवानि स्वतंत्रैः समस्तैरतो बोधिताऽसि ॥ ३७ ॥ त्वया संयुतोऽहं विकर्तुं समर्थो हरिस्त्रातुमंब त्वया संयुतश्च ॥ हरः संप्रहर्तुं त्वयैवेह युक्तः क्षमा नाद्य सर्वे त्वया विप्रयुक्ताः ॥३८॥ यथाऽहं हरिः शङ्करः किं तथाऽन्ये न जाता न सन्तीह नो वा भविष्यन् ॥ न मुह्यन्ति केऽस्मिंस्तवात्यन्तचित्रे विनोदे विवादास्पदेऽल्पाशयानाम् ॥ ३९ ॥ अकर्ता गुणस्पृष्ट एवाद्य देवो निरीहोऽनुपाधिः

करके जो चाहती हैं, वह कराती हैं ॥३५॥ प्रलयकालीन महासमुद्रमें मधु और कैटभका नाश करके आपने विष्णुभगवानकी रक्षा की, तब वे सृष्टिपालक बने। यदि आप उन्हें न बचातीं तो वे यह वर कैसे पाते? उसी प्रकार सबका संहार करनेवाले शिवका यदि आप विनाश न करतीं तो वे मेरी भौंहोंके मध्यभागसे कैसे उत्पन्न होते? ॥३६॥ कभी किसीने आपका जन्म न देखा है और न सुना ही है। किससे आपकी उत्पत्ति हुई, इस बातको भी कोई नहीं जानता। हे भवानी! एकमात्र आद्या शक्ति आप ही हैं और सब वेदोंने भी इसी रूपमें आपका निरूपण किया है ॥३७॥ हे अम्ब! आपकी शक्तिसे युक्त होकर मैं सृष्टिकार्य करनेमें समर्थ होता हूँ। इसी प्रकार विष्णुभगवान आपसे ही शक्ति प्राप्त करके विश्वपालन कार्य करते और आप ही की शक्तिसे शिवजी विश्वका संहार करते हैं। यदि आपका सहयोग न मिले तो हम कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥३८॥ जिस प्रकार मैं (ब्रह्मा), विष्णु और शिव ये तीनों उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार क्या अन्य लोग उत्पन्न नहीं हुए अथवा विद्यमान नहीं हैं या आगे चलकर न होंगे? किन्तु अल्पबुद्धि लोगोंके अत्यन्त विचित्र तथा विवादग्रस्त विचारोंमें पड़कर कौन भ्रममें न पड़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जायगा ॥ ३९ ॥ अकर्ता, गुणोंसे व्यक्त होनेवाले, निष्काम, उपाधिशून्य, अवयवरहित तथा निर्गुण वे आद्यदेव ईश्वर ही आपके विस्तृत चमत्कारके द्रष्टा हैं। यह सांख्यवादी विद्वानोंका कथन है ॥४०॥ उनके मतसे मूर्त और अमूर्त भेदयुक्त इस संसारमें आपसे बढ़कर श्रेष्ठ पुरुष और कोई नहीं है। प्रमेय पदार्थोंके विषयमें निर्णय करके यह बात सिद्ध की गयी है ॥४१॥ यह सत्य है कि 'एकमेवाद्वितीयं' आदि वेदवाक्योंको कदापि मिथ्या नहीं समझना चाहिए। किन्तु अनुभवसे मुझे एककी जगह दो पदार्थ प्रतीत होते हैं। सो वेद और अनुभवमें विरोध पड़नेके कारण मेरे मनमें शंका हो रही है ॥४२॥ वेदोंका जो 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' अर्थात् सब कुछ एकमात्र ब्रह्म ही है, यह कथन है। सो आप आत्मरूपिणी देवी हैं या पुरुष हैं? कृपया मेरे इस संशयको दूर कर दें ॥४३॥ मेरा सन्देहाकुल मन द्वैत और अद्वैतके झमेलेमें पड़कर कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहा है ॥ ४४ ॥ कृपया आप अपने मुखसे ही मेरी इस शंकाका निवारण कर दीजिए। मेरे पुण्यसे ही सहसा मुझे आपके चरणोंकी संगति प्राप्त हो गयी है ॥ ४५ ॥ आप पुरुष हैं या स्त्री? इस बातको मुझे विस्तारके साथ बताइए। आपके उत्तरसे

सदैवाकलश्च ॥ तथापीश्वरस्ते वितीर्णं विनोदं सुसंपश्यतीत्याहुरेवं विधिज्ञाः ॥ ४० ॥ दृष्टादृष्टविभेदेऽस्मिन्प्राक्त्वत्तो वै पुमान्परः ॥ नान्यः कोऽपि तृतीयोऽस्ति प्रमेये सुविचारिते ॥ ४१ ॥ न मिथ्या वेदवाक्यं वै कल्पनीयं कदाचन ॥ विरोधोऽयं मयाऽत्यंतं हृदये तु विशंकितः ॥ ४२ ॥ एकमेवाद्वितीयं यद्ब्रह्म वेदा वदंति वै ॥ सा किं त्वं वाप्यसौ वा किं संदेहं विनिवर्तय ॥ ४३ ॥ निःसंशयं न मे चेतः प्रभवत्यविशंकितम् ॥ द्वित्वैकत्वविचारेऽस्मिन्निमग्नं चुल्लकं मनः ॥४४॥ स्वमुखेनापि संदेहं छेत्तुमर्हसि मामकम् ॥ पुण्ययोगाच्च मे प्राप्ता संगतिस्तव पादयोः ॥ ४५ ॥ पुमानसि त्वं स्त्री वाऽसि वद विस्तरतो मम ॥ ज्ञात्वाऽहं परमां शक्तिं मुक्तः स्यां भवसागरात् ॥४६॥ इति श्रीदेवीभागवते तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति पृष्टा मया देवी विनयावनतेन च ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णमाद्या भगवती हि सा ॥ १ ॥ देव्युवाच ॥ यदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च ॥ योऽसौ साऽहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥ २ ॥ आवयोरंतरं सूक्ष्मं यो वेद मतिमान्हि सः ॥ विमुक्तः स तु संसारान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३ ॥ एकमेवाद्वितीयं वै ब्रह्म नित्यं सनातनम् ॥ द्वैतभावं पुनर्याति काल उत्पित्सुसंज्ञके ॥ ४ ॥ यथा दीपस्तथोपाधेर्योगात्संजायते द्विधा ॥ छायेवादर्शमध्ये वा प्रतिबिम्बं तथाऽऽवयोः ॥ ५ ॥ भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गार्थं प्रभवत्यज ॥ दृश्यादृश्यवि-

मैं परमा शक्तिको जानकर भवसागरसे पार हो जाऊँगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(देवी द्वारा ब्रह्मा-विष्णु-शिवको उपदेश) ब्रह्माजी बोले—हे नारद! विनयावनत भावसे जब मैंने ऐसा प्रश्न किया, तब वे आद्या शक्ति भगवती मधुर वाणीमें बोलीं ॥१॥ देवीने कहा—वस्तुतः एकमात्र सत् ही ब्रह्म है। मुझमें और उसमें कुछ भेद नहीं है। जो वह है, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ, वही वह है। बुद्धिके भ्रममें पड़ जानेके कारण ही लोगोंको मुझमें और उसमें अन्तर दिखायी देता है ॥२॥ हम दोनों अर्थात् शक्ति और शक्तिमान्‌में विद्यमान सूक्ष्म अन्तरके भेदको जो जानता है, वह भवबन्धनसे छुटकारा पाकर सदाके लिए मुक्त हो जाता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ ब्रह्म नित्य, सनातन और अद्वितीय है। किन्तु जब वह सृष्टि करना चाहता है, तब एकसे अनेक हो जाता है ॥ ४ ॥ जैसे किसी उपाधिवश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक ही दीपक दो होकर दीखता है अथवा दर्पणमें एकके अनेक प्रतिबिम्ब दिखायी देते हैं, उसी प्रकार मुझमें और उस सत् परम पुरुषमें अनेकता दिखायी देती है ॥ ५ ॥ हे अज अर्थात् ब्रह्माजी ! विश्वसृष्टिके निमित्त उत्पत्तिके समय ही यह भेद होता है। इस भेदके भी दृश्य तथा अदृश्य ये दो भेद होते हैं ॥ ६ ॥ सृष्टिका संहार हो जानेपर न मैं स्त्री, न पुरुष और न नपुंसक ही रहती हूँ। सृष्टिकार्य आरम्भ होते ही यह भेद उत्पन्न हो जाता है, जिसे कि मैंने अपनी कल्पनासे रच रक्खी है॥ ७ ॥ मैं ही बुद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, जरा, अजरा, विद्या, अविद्या, स्पृहा, वाञ्छा, शक्ति, अशक्ति, बसा, मज्जा, त्वचा, दृष्टि, वाणी, ऋता, अनृता, परा, मध्या, पश्यन्ती और विभिन्न प्रकारकी नाड़ियाँ मैं ही हूँ ॥८-१०॥ ध्यानसे देखिए कि संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु है, जिसमें मेरा अस्तित्व न हो। हे कमलसे जायमान ब्रह्माजी !

भेदोऽयं द्वैविध्ये सति सर्वथा ॥ ६ ॥ नाहं स्त्री न पुमांश्चाहं न क्लीबं सर्गसंक्षये ॥ सर्गे सति विभेदः स्यात्कल्पितोऽयं धिया पुनः ॥ ७ ॥ अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्तिः स्मृतिस्तथा ॥ श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा ॥ ८ ॥ कांतिः शांतिः पिपासा च निद्रा तंद्रा जराऽजरा ॥ विद्याऽविद्या स्पृहा वांछा शक्तिश्चाशक्तिरेव च ॥ ९ ॥ वसा मज्जा च त्वक्चाहं दृष्टिर्वागनृतानृता ॥ परा मध्या च पश्यंती नाड्योऽहं विविधाश्च याः ॥ १० ॥ किं नाहं पश्य संसारे मद्वियुक्तं किमस्ति हि ॥ सर्वमेवाहमित्येवं निश्चयं विद्धि पद्मज ॥ ११ ॥ एतैर्मे निश्चितै रूपैर्विहीनं किं वदस्व मे ॥ तस्मादहं विधे चास्मिन्सर्गे वै वितताऽभवम् ॥ १२ ॥ नूनं सर्वेषु देवेषु नानानामधरा ह्यहम् ॥ भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम् ॥ १३ ॥ गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा ॥ वारुणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वासवी ॥ १४ ॥ उत्पन्नेषु समस्तेषु कार्येषु प्रविशामि ताम् ॥ करोमि सर्वकार्याणि निमित्तं तं विधाय वै ॥ १५ ॥ जलं शीतं तथा वह्नावौष्ण्यं ज्योतिर्दिवाकरे ॥ निशानाथे हिमा कामं प्रभवामि यथा तथा ॥ १६ ॥ मया त्यक्तं विधे नूनं स्पंदितुं न क्षमं भवेत् ॥ जीवजातं च संसारे निश्चयोऽयं ब्रुवे त्वयि ॥ १७ ॥ अशक्तः शंकरो हंतुं दैत्यान्किल मयोज्झितः ॥ शक्तिहीनं नरं ब्रूते लोकश्चैवातिदुर्बलम् ॥ १८ ॥ रुद्रहीनं विष्णुहीनं न वदंति जनाः किल ॥ शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदंति नराधमम् ॥ १९ ॥ पतितः स्खलितो भीतः शांतः शत्रुवशं गतः ॥ अशक्तः प्रोच्यते लोके नारुद्रः

सब कुछ मैं ही हूँ, यह आप निश्चित समझिए ॥ ११ ॥ ये मेरे निश्चित स्वरूप हैं। इनके अतिरिक्त यदि कुछ हो तो कहिए। इन्हींके कारण मैं समस्त सृष्टिमें व्याप्त हो सकी हूँ ॥ १२ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि सब देवताओंमें मैं भिन्न-भिन्न नामोंसे विराजती हूँ और शक्तिरूपसे पराक्रम करती हूँ॥१३॥ गौरी, ब्राह्मी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी, शिवा, वारुणी, कौबेरी, नारसिंही और वासवी शक्ति मैं ही हूँ ॥ १४ ॥ सब कार्योंके उत्पन्न होनेपर मैं पुरुषको निमित्त बनाकर ही सब काम करती हूँ ॥ १५ ॥ जलमें शीतलता, अग्निमें उष्णता, सूर्यमें ज्योति और चन्द्रमामें शीतलता मैं ही हूँ ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मन् ! संसारमें जितने भी जीव हैं, यदि मैं उन्हें त्याग दूँ तो उनकी स्पन्दनक्रिया ही समाप्त हो जाय। यह बात मैं निश्चितरूपसे कह रही हूँ ॥ १७ ॥ यदि मैं त्याग दूँ तो शंकरजी दैत्योंका संसार नहीं कर सकते। संसारमें भी शक्तिहीन पुरुष दुर्बल कहे जाते हैं ॥ १८ ॥ उन्हें लोग विष्णुहीन अथवा रुद्रहीन नहीं कहते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बल्कि उस नराधमको लोग शक्तिहीन कहते हैं ॥ १९ ॥ जो गिर गया हो, ठोकर खाकर लड़खड़ा गया हो, डर गया हो, शान्त हो गया हो और शत्रुके पंजेमें फँस गया हो, उसे कोई रुद्रहीन नहीं कहता । बल्कि शक्तिहीन कहता है ॥ २० ॥ आप ही जो सृष्टिकार्य करते हैं, उसमें भी शक्ति ही कारण है । भविष्यमें भी जब आप शक्तिसम्पन्न होंगे, तभी जगत्कर्ता बन सकेंगे ॥ २१ ॥ इसी प्रकार विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, यम, विश्वकर्मा, वरुण और वायु शक्तिसे सम्बद्ध होकर ही अपना-अपना कार्य सम्पन्न करते हैं ॥२२॥ धरती भी जब शक्तिशालिनी रहती है, तभी इतना बड़ा बोझ सम्हालती है । यदि उसमें शक्ति न हो तो वह एक परमाणु भी नहीं उठाये रह सकती ॥ २३ ॥ शेषनाग, कूर्म और दसों दिग्गज मेरी शक्तिसे युक्त होकर ही अपना-अपना कार्यसाधन करनेमें समर्थ होते हैं ॥ २४ ॥ यदि मैं चाहूँ तो समस्त विश्वका जल पी लूँ, अग्निका अस्तित्व मिटा दूँ और सदा गमनशील वायुकी गति रोक दूँ ॥ २५ ॥ हे कमलसे उत्पन्न ब्रह्माजी ! अब फिर आप कभी भी तत्त्वोंके अभावका सन्देह न करिएगा ॥ २६ ॥ कभी-कभी किसी वस्तुका प्रागभाव (अर्थात् जिसका

कोऽपि कथ्यते ॥ २० ॥ तद्वद्धि कारणं शक्तिर्यथा त्वं च सिसृक्षसि ॥ भविता च यथा युक्तः शक्त्या कर्ता तदाऽखिलम् ॥ २१ ॥ तथा हरिस्तथा शंभुस्तथेन्द्रोऽथ विभावसुः ॥ शशी सूर्यो यमस्त्वष्टा वरुणः पवनस्तथा ॥ २२ ॥ धरा स्थिरा तदा धर्तुं शक्तियुक्ता यदा भवेत् ॥ अन्यथा चेदशक्ता स्यात्परमाणोश्च धारणे ॥ २३ ॥ तथा शेषस्तथा कूर्मो येऽन्ये सर्वे च दिग्गजाः ॥ मद्युक्ता वै समार्थाश्च स्वानि कार्याणि साधितुम् ॥ २४ ॥ जलं पिबामि सकलं संहरामि विभावसुम् ॥ पवनं स्तंभयाम्यद्य यदिच्छामि तथाचरम् ॥ २५ ॥ तत्त्वानां चैव सर्वेषां कदापि कमलोद्भव ॥ असतां भावसन्देहः कर्तव्यो न कदाचन ॥ २६ ॥ कदाचित्प्रागभावः स्यात्प्रध्वंसाभाव एव वा ॥ मृत्पिंडेषु कपालेषु घटाभावे यथा तथा ॥ २७ ॥ अद्यात्र पृथिवी नास्ति क्व गतेति विचारणे ॥ संजाता इति विज्ञेया अस्यास्तु परमाणवः ॥ २८ ॥ शाश्वतं क्षणिकं शून्यं नित्यानित्यं सकर्तृकम् ॥ अहंकाराग्रिमं चैव सप्तभेदैर्विवक्षितम् ॥ २९ ॥ गृहाणाज महत्तत्त्वमहंकारस्तदुद्भवः ॥ ततः सर्वाणि भूतानि रचयस्व यथा पुरा ॥ ३० ॥ व्रजन्तु स्वानि धिष्ण्यानि विरच्य निवसन्तु वः ॥ स्वानि स्वानि च कार्याणि कुर्वंतु दैवभाविताः ॥ ३१ ॥ गृहाणेमां विधे शक्तिं सुरूपां चारुहासिनीम् ॥ महासरस्वतीं नाम्ना रजोगुणयुतां वराम् ॥ ३२ ॥ श्वेतांबरधरां दिव्यां दिव्यभूषणभूषिताम् ॥ वरासनसमारूढां क्रीडार्थं सहचारिणीम् ॥ ३३ ॥

आदि न हो, किन्तु अन्त हो वह अभाव) और कभी प्रध्वंसाभाव (अर्थात् जिसका आदि हो, किन्तु अन्त न हो, वह अभाव) हो जाता है । जैसे मिट्टीके ठीकरेमें घटाभाव हो जाता है ॥ २७ ॥ इस समय यहाँ वह घटरूपिणी पृथिवी नहीं है, तब आखिर वह गयी कहाँ ? इस बातपर विचार करते समय लोग कहते हैं कि वह घट अब पृथिवीके परमाणुरूपमें बदल गया । वैसे परमाणुरूपसे घट अभी विद्यमान है ॥२८॥ शाश्वत, क्षणिक, शून्य, नित्य, अनित्य, सकर्तृक और अहङ्कार इन सात भेदोंमें विभक्त करके प्रकृतिका वर्णन किया गया है ॥२९॥ हे अज ! आप उस महत्तत्त्वको मुझसे लीजिए, जिससे अहंकारकी उत्पत्ति होती है । इसके बाद आप पहलेकी तरह सब प्राणियोंकी सृष्टि करिए ॥ ३० ॥ अब आप लोग जाइए और अपने-अपने लोकोंकी रचना करके उनमें निवास करिए और अपने प्रारब्धके द्वारा प्रेरणा पाकर अपना काम कीजिए ॥ ३१ ॥ हे विधे ! आप इस सुन्दरी, सुन्दर हास्यमयी तथा रजोगुणसम्पन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नारी महासरस्वती नामकी शक्तिको लीजिए ॥३२॥ ये नित्य श्वेत वस्त्र धारण करती हैं, इनका दिव्य रूप है, ये दिव्य आभूषण पहने रहती हैं और उत्तम आसनपर बैठती हैं। ये आपका मनोविनोद करती हुई सदा आपके साथ रहेंगी ॥३३॥ ये सदा आपके साथ रहेंगी। इन्हें अपनी पूज्यतमा प्रिया तथा मेरी विभूति समझते हुए आप कभी भी इनका अपमान न करिएगा ॥ ३४ ॥ अब आप तत्काल इनके साथ सत्यलोकको जाइए और मेरे महत्तत्त्व बीजके द्वारा चार प्रकारकी सृष्टि करिए ॥ ३५ ॥ प्राचीन कर्म तथा जीव समेत लिङ्गशरीर पहलेसे ही विद्यमान हैं। उन्हें आप पहलेकी तरह कर दीजिए ॥ ३६ ॥ आपने अपने सात्त्विक-राजस-तामस गुणों तथा प्रारब्धके अनुसार परिणामोंका भोग करनेके समय अपने-अपने स्वाभाविक गुणोंके अनुरूप संसारके प्राणियोंको काल, कर्म और गुणके अनुसार उचित फल प्रदान करिए ॥ ३७ ॥ आप सर्वदा विष्णु भगवानका आदर और पूजन करिए। सत्त्वगुण प्रधान होनेके कारण ये सदा सबसे श्रेष्ठ रहे हैं ॥ ३८ ॥ जब कभी आपके सृष्टिकार्यमें कोई बाधा आयेगी, तब ये भगवान विष्णु पृथिवीपर अवतरित होंगे ॥३९॥ ये जनार्दन भगवान पशु तथा मानव

एषा सहचरी नित्यं भविष्यति वरांगना ॥ माऽवमंस्था विभूतिं मे मत्वा पूज्यतमां प्रियाम् ॥ ३४ ॥ गच्छ त्वमनया सार्धं सत्यलोकं बताशु वै ॥ बीजाच्चतुर्विधं सर्वं समुत्पादय सांप्रतम् ॥३५॥ लिङ्गकोशाश्च जीवैस्तैः सहिताः कर्मभिस्तथा ॥ वर्तन्ते संस्थिताः काले तान्कुरु त्वं यथा पुरा ॥ ३६ ॥ कालकर्मस्वभावाख्यैः कारणैः सकलं जगत् ॥ स्वभावस्वगुणैर्युक्तं पूर्ववत्सचराचरम् ॥ ३७ ॥ माननीयस्त्वया विष्णुः पूजनीयश्च सर्वदा ॥ सत्त्वगुण-प्रधानत्वादधिकः सर्वतः सदा ॥ ३८ ॥ यदा यदा हि कार्यं वो भविष्यति दुरत्ययम् ॥ करिष्यति पृथिव्यां वै अवतारं तदा हरिः ॥ ३९ ॥ तिर्यग्योनावथान्यत्र मानुषीं तनुमाश्रितः ॥ दानवानां विनाशं वै करिष्यति जनार्दनः ॥ ४० ॥ भवोऽयं ते सहायश्च भविष्यति महाबलः ॥ समुत्पाद्य सुरान्सर्वान्विहरस्व यथासुखम् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या नानायज्ञैः सदक्षिणैः ॥ यजिष्यन्ति विधानेन सर्वान्वः सुसमाहिताः ॥ ४२ ॥ मन्नामोच्चारणात्सर्वे मखेषु सकलेषु च ॥ सदा तृप्ताश्च सन्तुष्टा भविष्यध्वं सुराः किल ॥४३॥ शिवश्च माननीयो वै सर्वथा यत्तमोगुणः ॥ यज्ञकार्येषु सर्वेषु पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ ४४ ॥ यदा पुनः सुराणां वै भयं दैत्याद्भविष्यति ॥ शक्तयो मे तदोत्पन्ना हरिष्यंति सुविग्रहाः ॥ ४५ ॥ वाराही वैष्णवी गौरी नारसिंही सदाशिवा ॥ एताश्चान्याश्च कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव ॥ ४६ ॥ नवाक्षरमिमं मंत्रं बीजध्यानयुतं सदा ॥ जपन्सर्वाणि

योनिमें जन्म लेकर दानवोंका नाश करेंगे ॥४०॥ ये शंकरजी भी समय-समयपर आपकी सहायता करते रहेंगे। अब आप सब देवताओंकी सृष्टि करके स्वेच्छानुसार विहार करिए ॥४१॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जातिके लोग पुष्कल दक्षिणायुक्त नाना प्रकारके यज्ञों द्वारा बड़ी विधिसे आप लोगोंकी पूजा करेंगे ॥ ४२ ॥ तमोगुणप्रधान शिवजीका भी आप सदा सम्मान करते रहिएगा। विशेष करके सभी यज्ञकार्योंमें यत्नपूर्वक इनका पूजन करिएगा ॥ ४३ ॥ सभी यज्ञोंमें मेरे नामका उच्चारण करते ही आपलोग तृप्त तथा सन्तुष्ट हो जाइएगा ॥ ४४ ॥ जब भी कभी देवताओंको दैत्योंसे भय उपस्थित होगा, तब मेरी विकराल शक्तियाँ उत्पन्न होकर उनका भय दूर कर देंगी ॥४५॥ वाराही, वैष्णवी, नारसिंही, सदाशिवा आदि तथा इनके अतिरिक्त भी अन्यान्य शक्तियाँ सदा आपकी सहायता करेंगी। अतएव हे कमलोद्भव ! अब जाकर अपना कार्य आरम्भ कर दीजिए ॥ ४६ ॥ हे कमलसे जायमान ब्रह्माजी ! बीज और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यानयुक्त मेरे नवाक्षर मंत्रका जप करते हुए सब काम करिए ॥ ४७ ॥ हे महामत ! इसे आप सब मंत्रोंसे उत्तम समझें । सब कार्योंकी सिद्धि करनेके लिए आप इसे सदा अपने हृदयमें धारण किये रहिए ॥ ४८ ॥ मुझसे ऐसा कहकर जगन्माता भगवतीने विष्णुभगवान्‌से कहा–हे विष्णो ! अब आप जाइए और इन मनोहरा महालक्ष्मीको अपने साथ लेते जाइए ॥ ४९ ॥ आपके वक्षःस्थलमें सदा इनका निवास रहेगा । आपके मनोविनोदके लिए यह सर्वार्थदायिनी शक्ति मैं आपको दे रही हूँ ॥ ५० ॥ आप कभी भी इनका अपमान न करिएगा । बल्कि इनका आदर करिएगा । मैंने ही लक्ष्मीनारायणकी रचना की है ॥५१॥ मैंने देवताओंकी जीविकाके लिए यज्ञोंकी रचना की है । आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों मिलकर सहयोगके साथ रहें ॥५२॥ आप ब्रह्माजी, विष्णु और शिव ये तीनों तथा सब देवता मेरे अंशसे उत्पन्न हुए हैं । अतएव आप लोग सबके माननीय तथा पूज्य होंगे । इसमें कोई संशय नहीं है ॥५३॥

कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव ॥ ४७ ॥ मन्त्राणामुत्तमोऽयं वै त्वं जानीहि महामते ॥ हृदये ते सदा धार्यः सर्वकामार्थसिद्धये ॥४८॥ इत्युक्त्वा मां जगन्माता हरिं प्राह शुचिस्मिता ॥ विष्णो व्रज गृहाणेमां महालक्ष्मीं मनोहराम् ॥ ४९ ॥ सदा वक्षःस्थले स्थानं भविता नात्र संशयः ॥ क्रीडार्थं ते मया दत्ता शक्तिः सर्वार्थदा शिवा ॥५०॥ त्वयेयं नावमन्तव्या माननीया च सर्वदा ॥ लक्ष्मीनारायणाख्योऽयं योगो वै विहितो मया ॥ ५१ ॥ जीवनार्थं कृता यज्ञा देवानां सर्वथा मया ॥ अविरोधेन सङ्गेन वर्तितव्यं त्रिभिः सदा ॥ ५२ ॥ त्वं च वेधाः शिवस्त्वेते देवा मद्गुणसम्भवाः ॥ मान्याः पूज्याश्च सर्वेषां भविष्यन्ति न संशयः ॥५३॥ ये विभेदं करिष्यन्ति मानवा मूढचेतसः ॥ निरयं ते गमिष्यन्ति विभेदान्नात्र संशयः ॥५४॥ यो हरिः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स स्वयं हरिः ॥ एतयोर्भेदमातिष्ठन्नरकाय भवेन्नरः ॥ ५५ ॥ तथैव द्रुहिणो ज्ञेयो नात्र कार्या विचारणा ॥ अपरो गुणभेदोऽस्ति शृणु विष्णो ब्रवीमि ते ॥ ५६ ॥ मुख्यः सत्त्वगुणस्तेऽस्तु परमात्मविचिन्तने ॥ गौणत्वेऽपि परौ ख्यातौ रजोगुणतमोगुणौ ॥ ५७ ॥ लक्ष्म्या सह विकारेषु नानाभेदेषु सर्वदा ॥ रजोगुणयुतो भूत्वा विहरस्वानया सह ॥ ५८ ॥ वाग्बीजं कामराजं च मायाबीजं तृतीयकम् ॥ मन्त्रोऽयं त्वं रमाकान्त मद्दत्तः परमार्थदः ॥ ५९ ॥ गृहीत्वा जप तं नित्यं विहरस्व यथासुखम् ॥ न ते मृत्युभयं विष्णो न कालप्रभवं भयम् ॥ ६० ॥ यावदेष विहारो मे भविष्यति सुनिश्चयः ॥ संहरिष्याम्यहं सर्वं यदा विश्वं चराचरम् ॥ ६१ ॥ भवन्तोऽपि तदा नूनं

जो मूढ़ मनुष्य इन तीनों देवताओंमें भेदभाव रक्खेंगे, वे अवश्य नरकमें जायँगे ॥५४॥ जो विष्णु हैं, वे ही शिव हैं । जो शिव हैं, वे ही विष्णु हैं । जो इन दोनोंमें भेदकी भावना रक्खेंगे, उन्हें नरक भोगना पड़ेगा ॥ ५५ ॥ ब्रह्माजीके विषयमें यह समझिए कि उनमें और विष्णु-शिवमें कोई भेद नहीं है । हे विष्णो ! इनमें गुणके कारण जो भेद है, उसे बताती हूँ, सुनिए ॥५६॥ परमात्माके चिन्तनके लिए आपका मुख्य गुण सतोगुण है । तमोगुण और रजोगुण आपके लिए गौण हैं ॥ ५७ ॥ विभिन्न भेदयुक्त विकारोंमें आप रजोगुणी बनकर लक्ष्मीजीके साथ विहार करिएगा ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मीकान्त ! वाग्बीज, कामराज और मायाबीजयुक्त तीन अक्षरोंवाला भुवनेशी मन्त्र परमार्थदायक है, उसे मैं आपको देती हूँ ॥ ५९ ॥ इसे हृदयङ्गम करके नित्य इसका जप करते हुए आप सुखपूर्वक विहार करिए । ऐसा करनेसे न आपको मृत्युका भय रहेगा और न कालका ॥६०॥ जबतक मेरा विहार होता रहेगा, तबतक निश्चितरूपसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह संसार रहेगा। जब मैं सचराचर विश्वका संहार कर दूँगी, उस समय आप लोग मुझमें लीन हो जायँगे। आप लोग सदा इस मन्त्रका जप करते रहें। क्योंकि यह भुवनेशी मंत्र सब कामनायें पूर्ण करता और अन्तमें मोक्ष प्रदान कर देता है॥ ६१ ॥ ६२ ॥ शान्तिकामी पुरुषको चाहिए कि इस त्र्यक्षर मन्त्रके साथ ओंकारको जोड़कर चतुरक्षर मन्त्रका जप करे। हे पुरुषोत्तम! अन्तमें आप वैकुण्ठलोककी रचना करके सदा उसीमें निवास करें॥ ६३ ॥ मुझ सनातनी ईश्वरीका ध्यान करते हुए वहाँ विहार करें। ब्रह्माजी बोले—हे नारद! भगवान् विष्णुसे ऐसा कहकर उस त्रिगुणात्मिका और निर्गुणा परा प्रकृतिने देवदेव शङ्करजीसे कहा। देवी बोलीं—हे हर! आप इन मनोहरा, महाकाली एवं गौरीको स्वीकार कीजिए॥६४॥६५॥ फिर कैलासशिखरका निर्माण करके इनके साथ सुखपूर्वक विहार करिए। आपका मुख्य गुण तमोगुण होगा और सतोगुण तथा रजोगुण गौणरूपसे आपमें विद्यमान रहेंगे॥ ६६ ॥ रजोगुण तथा तमोगुणके द्वारा असुरोंके विनाशार्थ आप विहार करें। हे शिव! तपस्या तथा परमात्माका स्मरण करनेके लिए आप शान्तिप्रधान सतोगुणका आश्रय लीजिएगा। हे अनघ! आप

मयि लीना भविष्यथ॥ स्मर्तव्योऽयं सदा मन्त्रः कामदो मोक्षदस्तथा॥ ६२ ॥ उद्गीथेन च संयुक्तः कर्तव्यः शुभमिच्छता॥ कारयित्वाऽथ वैकुण्ठं वस्तव्यं पुरुषोत्तम॥ ६३ ॥ विहरस्व यथाकामं चिन्तयन्मां सनातनीम्॥ ब्रह्मोवाच॥ इत्युक्त्वा वासुदेवं सा त्रिगुणा प्रकृतिः परा॥ ६४ ॥ निर्गुणा शङ्करं देवमवोचदमृतं वचः॥ देव्युवाच॥ गृहाण हर गौरीं त्वं महाकालीं मनोहराम्॥६५॥ कैलासं कारयित्वा च विहरस्व यथासुखम्॥ मुख्यस्तमोगुणस्तेऽस्तु गौणौ सत्त्वरजोगुणौ॥ ६६ ॥ विहरासुरनाशार्थं रजोगुणतमोगुणौ॥ तपस्तप्तं तथा कर्तुं स्मरणं परमात्मनः॥ ६७ ॥ शर्व सत्त्वगुणः शान्तो गृहीतव्यः सदाऽनघ॥ सर्वथा त्रिगुणा यूयं सृष्टिस्थित्यन्तकारकाः॥ ६८ ॥ एभिर्विहीनं संसारे वस्तु नैवात्र कुत्रचित्॥ वस्तुमात्रं तु यद्दृश्यं संसारे त्रिगुणं हि तत्॥ ६९ ॥ दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं नो भविष्यति॥ निर्गुणः परमात्माऽसौ न तु दृश्यः कदाचन॥ ७० ॥ सगुणा निर्गुणा चाहं समये शंकरोत्तमा॥ सदाऽहं कारणं शम्भो न च कार्यं कदाचन॥ ७१ ॥ सगुणा कारणत्वाद्वै निर्गुणा पुरुषांतिके॥ महत्तत्त्वमहङ्कारो गुणाः शब्दादयस्तथा॥७२॥ कार्यकारणरूपेण संसरन्ते त्वहर्निशम्॥ समुद्भूतस्त्वहङ्कारस्तेनाहं कारणं शिवा॥७३॥ अहङ्कारश्च मे कार्यं त्रिगुणोऽसौ प्रतिष्ठितः॥ अहङ्कारान्महत्तत्त्वं बुद्धिः सा परिकीर्तिता॥ ७४ ॥ महत्तत्त्वं हि कार्यं स्यादहङ्कारो हि कारणम्॥

तीनों त्रिगुणात्मक देवता सर्वथा संसारकी सृष्टि, पालन और संहार सम्पन्न करेंगे॥६७॥६८॥ संसारकी कोई भी वस्तु इन तीन गुणोंके विना नहीं रह सकती। जगत्की जितनी भी दृश्य वस्तुयें हैं, वे सब त्रिगुणात्मक हैं॥६९॥ संसारमें ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जो दृश्य होते हुए भी निर्गुण हो। निर्गुण एकमात्र परमात्मा है, किन्तु वह कभी किसीको दिखायी नहीं देता॥७०॥ हे शंकरजी! समय आनेपर मैं ही सगुणा और निर्गुणा होती रहती हूँ। हे शम्भो! मैं सदा कारणरूपा रहती हूँ—कार्यरूपा कभी नहीं होती॥७१॥ किसी कारणवश मैं सगुणा प्रकृति रहती हूँ और उस परम पुरुषके निकट पहुँचकर निर्गुणा हो जाती हूँ। महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धगुण कार्य-कारणरूपसे दिन-रात सदा चक्कर काटा करते हैं। सत्से अहंकारकी उत्पत्ति होती है। अतएव मैं शिवा उस सत्की उत्पत्तिका कारण हूँ॥७२॥७३॥ अहङ्कार मेरा कार्य है और वह त्रिगुणात्मक है। उस अहंकारसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, उसीको सांख्यवादी समष्टि बुद्धि कहते हैं ॥ ७४ ॥ महत्तत्त्व कार्य और अहंकार कारण कहलाता है। अहंकारसे ही तन्मात्राओंकी उत्पत्ति होती है ॥ ७५ ॥ ये तन्मात्रायें ही समस्त प्रपञ्चोंकी उत्पत्तिके समय पृथिवी-जल आदि पंचमहाभूतोंका कारण बन जाती हैं। उपर्युक्त पंचमहाभूतोंके राजस अंशसे पाँचों कर्मेन्द्रियाँ तथा उनके सात्त्विक अंशसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ जायमान होती हैं ॥ ७६ ॥ उपर्युक्त दसों इन्द्रियाँ, पञ्चमहाभूत और एक मन, सब मिलाकर सोलह हुए। इन्हीं सोलहोंका कार्य और कारण षोडशात्मक गण कहलाता है ॥ ७७ ॥ वह आदिपुरुष परमात्मा कार्य और कारणसे परे है। हे शम्भो ! सृष्टिके आदिमें सबकी उत्पत्तिका यही क्रम है ॥ ७८ ॥ संक्षिप्तरूपसे मैंने आप लोगोंकी उत्पत्तिपरम्परा बतायी। हे तीनों श्रेष्ठ देवताओं ! अब आप लोग इस विमानमें बैठकर जाइए और अपना-अपना काम करिए ॥ ७९ ॥ जब कोई संकटका समय आये तो मेरा स्मरण करिएगा। मैं तत्काल आपको दर्शन दूँगी। हे देवताओं ! आपलोग सदा मेरा तथा सनातन परमात्माका स्मरण करते रहिएगा ॥ ८० ॥ हम दोनोंका स्मरण करनेसे आपकी कामनाएँ पूर्ण होंगी। ब्रह्माजी बोले—हे नारद !

तन्मात्राणि त्वहंकारादुत्पद्यंते सदैव हि ॥ ७५ ॥ कारणं पञ्चभूतानां तानि सर्वसमुद्भवे ॥ कर्मेन्द्रियाणि पंचैव पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि च ॥ ७६ ॥ महाभूतानि पंचैव मनः षोडशमेव च ॥ कार्यं च कारणं चैव गणोऽयं षोडशात्मकः ॥ ७७ ॥ परमात्मा पुमानाद्यो न कार्यं न च कारणम् ॥ एवं समुद्भवः शंभो सर्वेषामादिसंभवे ॥ ७८ ॥ संक्षेपेण मया प्रोक्तस्तव तत्र समुद्भवः ॥ व्रजंत्वद्य विमानेन कार्यार्थं मम सत्तमाः ॥ ७९ ॥ स्मरणाद्दर्शनं तुभ्यं दास्येऽहं विषमे स्थिते ॥ स्मर्तव्याऽहं सदा देवा परमात्मा सनातनः ॥ ८० ॥ उभयोः स्मरणादेव कार्यसिद्धिरसंशयम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा विससर्जास्मान्दत्त्वा शक्तीः सुसंस्कृताः ॥ ८१ ॥ विष्णवेऽथ महालक्ष्मीं महाकालीं शिवाय च ॥ महासरस्वतीं मह्यं स्थानात्तस्माद्विसर्जिताः ॥ ८२ ॥ स्थलांतरं समासाद्य ते जाताः पुरुषा वयम् ॥ चिंतयंतः स्वरूपं यत्प्रभावं परमाद्भुतम् ॥ ८३ ॥ विमानं तत्समासाद्य संरूढास्तत्र वै त्रयः ॥ न द्वीपोऽसौ न सा देवी सुधासिंधुस्तथैव च ॥ पुनर्दृष्टं विमानं वै तत्रास्माभिर्न चान्यथा ॥८४॥ आसाद्य तस्मिन्वितते विमाने प्राप्ता वयं पंकजसन्निधौ च ॥ महार्णवे यत्र हतौ दुरत्ययौ मुरारिणा तौ मधुकैटभाख्यौ ॥८५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥१२॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवंप्रभावा सा देवी मया दृष्टाऽथ विष्णुना ॥ शिवेनापि महाभाग देव्यः सर्वाः पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य

भगवतीने ऐसा उपदेश दिया और अपनी सुसंस्कृत शक्तियाँ देकर हमें विदा कर दिया ॥ ८१ ॥ विष्णुभगवान्को महालक्ष्मी, शिवजीको महाकाली और मुझ ब्रह्माको महासरस्वती नामकी शक्ति देकर हम तीनोंको वहाँसे विदा किया ॥ ८२ ॥ वहाँसे हटकर अन्य स्थानमें पहुँचते ही हम तीनों फिर पुरुष हो गये और महामायाके परम अद्भुत स्वरूप तथा प्रभावका स्मरण करने लगे ॥ ८३ ॥ हम तीनोंके फिर उस विमानमें जाकर बैठते ही न वह द्वीप रहा, न महामाया रही और न वह सुधासमुद्र ही रह गया। सब न जाने कहाँ चले गये ॥ ८४ ॥ उस समय वहाँ विमानके सिवाय और कुछ भी नहीं दिखलायी पड़ा। उस विशाल विमानमें बैठकर हमलोग फिर उसी महासागरमें विद्यमान कमलके पास पहुँच गये, जहाँ भगवान् विष्णुने मधु-कैटभ नामके दुष्ट दैत्योंका वध किया था ॥ ८५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(तत्त्वोंका निरूपण) ब्रह्माजी बोले–हे नारद ! मैंने, विष्णुने और शिवजीने ऐसी प्रभावशालिनी देवीको देखा । हे महाभाग ! उनके साथ-साथ हमने पृथक्-पृथक् देवियोंका भी दर्शन पाया ॥१॥ व्यासजी बोले-पिताजीके इन वचनोंको सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदने बहुत प्रसन्नताके साथ प्रजापति ब्रह्मासे पूछा । उन्होंने कहा–हे पितामह ! आपने उन अविनाशी, निर्गुण, अच्युत तथा अव्यय आदि पुरुषका दर्शन करके जो अनुभव प्राप्त किया हो, उसे बताइए ॥२॥३॥ हे पिताजी ! आपने तो त्रिगुणात्मिका शक्तिको ही देखा था न ? फिर वह निर्गुणा शक्ति कैसी होती है ? हे कमलयोने ! आप मुझे आदि पुरुषका भी स्वरूप बतला दीजिए ॥ ४ ॥ जिस कार्यके लिए मैंने श्वेतद्वीपमें कठोर तपस्या की और क्रोधहीन तपस्वियों, महात्माओं और सिद्ध पुरुषोंके दर्शन किये ॥ ५ ॥ किन्तु न तो परमात्माका पता लगा और न उनके दर्शन ही मिले । हे प्रजापते ! तब फिर मैंने पुनः पुनः तपस्या की ॥ ६ ॥ हे तात ! आपने सगुणा और निर्गुणा दोनों मनोरम शक्तियोंका साक्षात्कार करके निर्गुण परमात्माका अनुभव किया है । सो अब आप उनका स्वरूप बताइए ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले–इस प्रकार नारदजीके पूछने-

पितुर्वाक्यं नारदो मुनिसत्तमः ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः प्रजापतिमिदं वचः ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ पुमानाद्योऽविनाशी यो निर्गुणोऽच्युतिरव्ययः ॥ दृष्टश्चैवानुभूतश्च तद्वदस्व पितामह ॥ ३ ॥ त्रिगुणा वीक्षिता शक्तिर्निर्गुणा कीदृशी पितः ॥ तस्याः स्वरूपं मे ब्रूहि पुरुषस्य च पद्मज ॥ ४ ॥ यदर्थं च मया तप्तं श्वेतद्वीपे महातपः ॥ दृष्टाः सिद्धा महात्मानस्तापसा गतमन्यवः ॥ ५ ॥ परमात्मा न संप्राप्तो मयाऽसौ दृष्टिगोचरः ॥ पुनः पुनस्तपस्तीव्रं कृतं तत्र प्रजापते ॥ ६ ॥ भवता सगुणा शक्तिर्दृष्टा तात मनोरमा ॥ निर्गुणा निर्गुणश्चैव कीदृशौ तौ वदस्व मे ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्टः पिता तेन नारदेन प्रजापतिः ॥ उवाच वचनं तथ्यं स्मितपूर्वं पितामहः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ निर्गुणस्य मुने रूपं न भवेद्दृष्टिगोचरम् ॥ दृश्यं च नश्वरं यस्मादरूपं दृश्यते कथम् ॥ ९ ॥ निर्गुणा दुर्गमा शक्तिर्निर्गुणश्च तथा पुमान् ॥ ज्ञानगम्यौ मुनीनां तु भावनीयौ तथा पुनः ॥१०॥ अनादिनिधनौ विद्धि सदा प्रकृतिपूरुषौ ॥ विश्वासेनाभिगम्यौ तौ नाविश्वासेन कर्हिचित् ॥ ११ ॥ चैतन्यं सर्वभूतेषु यत्तद्विद्धि परात्मकम् ॥ तेजः सर्वत्रगं नित्यं नानाभावेषु नारद ॥१२॥ तं च तां च महाभाग व्यापकौ विद्धि सर्वगौ ॥ ताभ्यां विहीनां संसारे न किंचिद्वस्तु विद्यते ॥१३॥ तौ विचिंत्यौ सदा देहे मिश्रीभूतौ सदाऽव्ययौ ॥ एकरूपौ चिदात्मानौ निर्गुणौ निर्मलावुभौ ॥१४॥ या शक्तिः परमात्माऽसौ योऽसौ सा परमा मता ॥ अन्तरं

पर प्रजापति तथा जगत्पितामह ब्रह्माजीने मुस्कराते हुए कहा—॥ ८ ॥ हे मुने ! निर्वाणका स्वरूप किसी भी तरह दृष्टिगोचर नहीं हो सकता । क्योंकि जो दिखलायी पड़ता है, वह नश्वर होता है और जिसका कोई स्वरूप नहीं है, वह दिखलायी कैसे देगा ? ॥ ९ ॥ निर्गुण शक्तिका पता पाना बहुत दुष्कर कार्य है । उसी प्रकार निर्गुण परम पुरुषको जानना भी दुर्घट है । दोनों ज्ञानगम्य हैं और मुनिलोग अपनी भावनासे उन्हें जाननेका उपाय करते हैं ॥ १० ॥ प्रकृति और पुरुष दोनोंको आदि और अन्तसे रहित समझिए । ये केवल विश्वाससे जाने जा सकते हैं, अविश्वाससे कदापि इनका ज्ञान नहीं हो सकता ॥११॥ सब प्राणियोंमें विद्यमान चैतन्य ही परमात्मा है । हे नारद ! विविध प्रकारके जीवोंमें व्याप्त रहनेवाला वह तेज नित्य है ॥१२॥ हे महाभाग ! प्रकृति और पुरुष ये दोनों सर्वत्र व्याप्त हैं, ऐसा समझें । संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है कि जिसमें इन दोनोंका अस्तित्व न हो ॥१३॥ इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दोनोंकी पृथक्-पृथक् उपासना न करके इन्हें एक ही शरीरमें मिले हुएकी तरह सदा अव्यय, एकरूप, चिदात्मा, निर्मल और निर्गुणस्वरूप मानकर दोनोंकी उपासना एक साथ करनी चाहिए ॥ १४ ॥ जो शक्ति है, वही परमात्मा है। जो परमात्मा हैं, वही शक्ति है। हे नारद ! इन दोनोंमें जो बहुत ही सूक्ष्म अन्तर है, उसे कोई भी नहीं जान सकता। यह बात सर्वविदित है ॥ १५ ॥ हे नारद ! सब शास्त्रों और अङ्गोंसमेत चारों वेदोंका अध्ययन करके भी वैराग्य आये बिना प्रकृति-पुरुषके सूक्ष्म भेदको कोई नहीं जान पाता ॥१६॥ स्थावर-जंगमात्मक यह समस्त विश्व अहंकारके द्वारा निर्मित हुआ है। हे पुत्र ! तब यह कैसे सम्भव हो सकता है कि सैकड़ों कल्पमें भी यह अहंकारसे अलग हो जाय। हे पुत्र नारद ! अहंकार आदि विकारोंसे परिपूर्ण सगुण मनुष्य उस निर्गुण परम पुरुषको नेत्रोंसे कैसे देख सकता है ? अतएव हे महाबुद्धे ! जबतक निर्गुण परमात्माको जाननेकी योग्यता न प्राप्त हो जाय, तबतक उनके सगुण स्वरूपका ध्यान करता हुआ सदा उसीका विचार करता रहे ॥ १७ ॥ हे मुनिसत्तम ! जैसे पित्तसे आच्छादित जिह्वा केवल कटु रसका ही अनुभव करती है, यथार्थ रसकी जानकारी नहीं प्राप्तकर पाती। जैसे नेत्र पित्तसे आच्छादित होकर केवल पीले रंगको ही देखते हैं, उसके सही रूपको नहीं देख पाते ॥ १८ ॥ उसी प्रकार गुणोंसे आच्छादित

नैतयोः कोऽपि सूक्ष्मं वेद च नारद ॥ १५ ॥ अधीत्य सर्वशास्त्राणि वेदान्सांगांश्च नारद ॥ न जानाति तयोः सूक्ष्ममंतरं विरतिं विना ॥ १६ ॥ अहंकारकृतं सर्वं विश्वं स्थावरजंगमम् ॥ कथं तद्रहितं पुत्र भवेत्कल्पशतैरपि ॥१७॥ निर्गुणं सगुणः पुत्र कथं पश्यति चक्षुषा ॥ सगुणं च महाबुद्धे चेतसा संविचारय ॥ १८ ॥ पित्तेनाच्छादिता जिह्वा चक्षुश्च मुनिसत्तम ॥ कटु पीतं विजानाति रसं रूपं न तत्तथा॥ १९ ॥ गुणैः समावृतं चेतः कथं जानाति निर्गुणम् ॥ अहंकारोद्भवं तच्च तद्विहीनं कथं भवेत् ॥२०॥ यावन्न गुणविच्छेदस्तावत्तद्दर्शनं कुतः ॥ तं पश्यति तदा चित्ते यदाऽहंकारवर्जितः ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ स्वरूपं देवदेवेश त्रयाणामेव विस्तरात् ॥ गुणानां यत्स्वरूपोऽस्ति ह्यहंकारस्त्रिरूपकः ॥ २२ ॥ सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च तथापरः ॥ विभेदेन स्वरूपाणि वदस्व पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥ यज्ज्ञात्वा विप्रमुच्येऽहं ज्ञानं तद्वद मे प्रभो ॥ गुणानां लक्षणान्येव विततानि विभागशः ॥ २४॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्रयाणां शक्तयस्तिस्रस्तद्ब्रवीमि तवानघ ॥ ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरर्थशक्तिस्तथापरा ॥२५॥ सात्त्वि-

मनुष्यका अन्तःकरण उस निर्गुण परमात्माको कैसे जानेगा ? क्योंकि अन्तःकरण भी तो अहंकारसे ही जायमान हुआ है। गुणोंके बिना वह रह ही नहीं सकता ॥१९॥ जबतक गुणोंसे रहित नहीं होता, तबतक उसे निर्गुण परम पुरुषकी झाँकी कैसे मिल सकेगी ? जब मनुष्य सर्वथा अहंकारसे हीन हो जाता है, तब वह अपने आपमें ही उसे देख लेता है। उसको बाहर ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं रह जाती ॥२०॥२१॥ नारदजी बोले—हे देवाधिदेव ! अब आप तीनों गुणोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन करिए। उसी प्रकार त्रिगुणात्मक अहंकारका भी स्वरूप बताइए ॥ २२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण, इन तीनों गुणोंका जो वास्तविक स्वरूप हो सो आप मुझे बताइए ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! मैंने ऐसा सुना है कि गुणोंके भी कई विभाग हैं और उनके लक्षण बड़े विस्तृत हैं। उन्हें आप मुझे बताइए। जिन्हें जानकर मैं भवबन्धनसे मुक्त हो जाऊँ, आप मुझे ऐसा ज्ञान भी प्रदान करिए ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे पुण्यात्मन् ! उपर्युक्त तीनों गुणोंकी तीन शक्तियाँ होती हैं, उन्हें बताता हूँ। उन तीनों शक्तियोंके नाम हैं—ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा अर्थशक्ति ॥ २५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सतोगुणकी ज्ञानशक्ति, रजोगुणकी क्रियाशक्ति और तमोगुणकी अर्थशक्ति कही गयी है ॥ २६ ॥ हे नारद ! अब मैं भलीभाँति उन तीनों शक्तियोंके कार्य बता रहा हूँ, सुनिए। तामसी अर्थशक्तिसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पञ्चतन्मात्राओंकी उत्पत्ति होती है। आकाशका केवल एक गुण शब्द है। वायुका गुण स्पर्श है ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे नारद ! इसी प्रकार अग्निका गुण रूप और जलका गुण रस है। पृथिवीका गुण गन्ध है। ये ही इसकी सूक्ष्म तन्मात्रायें हैं ॥ २९ ॥ ये दस अर्थात् पाँच महाभूत और पाँच ही उनके गुण अर्थशक्तिसे युक्त रहते हैं। तामस अहंकारका अनुवर्तन करके ही ब्रह्माण्डकी सृष्टि होती है ॥ ३० ॥ हे नारद ! अब रजोगुणकी क्रियाशक्तिसे उत्पन्न होनेवालोंके नाम बताता हूँ, सुनिए। उस क्रियाशक्तिसे-श्रोत्र (कान), त्वक् (चमड़ी), रसना (जिह्वा), नेत्र और नासिका उत्पन्न होती है। ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं। वाणी, हाथ, पैर, गुदा और पाँचवाँ

कस्य ज्ञानशक्ती राजसस्य क्रियात्मिका ॥ द्रव्यशक्तिस्तामसस्य तिस्रश्च कथितास्तव ॥ २६ ॥ तेषां कार्याणि वक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः ॥ तामस्या द्रव्यशक्तेश्च शब्दस्पर्शसमुद्भवः ॥ २७ ॥ रूपं रसश्च गंधश्च तन्मात्राणि प्रचक्षते ॥ शब्दैकगुणमाकाशं वायुः स्पर्शगुणस्तथा ॥ २८ ॥ सुरूपैकगुणोऽग्निश्च जलं रसगुणात्मकम् ॥ पृथ्वी गंधगुणा ज्ञेया सूक्ष्माण्येतानि नारद ॥ २९ ॥ दशैतानि मिलित्वा तु द्रव्यशक्तियुतानि वै ॥ तामसाहंकारजः स स्यात्सर्गस्तदनुवृत्तिकः ॥ ३० ॥ राजस्याश्च क्रियाशक्तेरुत्पन्नानि शृणुष्व मे ॥ श्रोत्रं त्वग्रसना चक्षुर्घ्राणं चैव च पंचमम् ॥ ३१ ॥ ज्ञानेंद्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च ॥ वाक्पाणिपादपायुश्च गुह्यांतानि च पंच वै ॥३२॥ प्राणोऽपानश्च व्यानश्च समानोदानवायवः ॥ पंचदश मिलित्वैव राजसः सर्ग उच्यते ॥३३॥ साधनानि किलैतानि क्रियाशक्तिमयानि च ॥ उपादानं किलैतेषां चिदनुवृत्तिरुच्यते ॥३४॥ ज्ञानशक्ति-समायुक्ताः सात्त्विकाच्च समुद्भवाः ॥ दिशो वायुश्च सूर्यश्च वरुणश्चाश्विनावपि ॥ ३५ ॥ ज्ञानेंद्रियाणां पंचानां पंचाधिष्ठातृदेवताः ॥ चंद्रो ब्रह्मा तथा रुद्रः क्षेत्रज्ञश्च चतुर्थकः ॥ ३६ ॥ इत्यन्तःकरणाख्यस्य बुद्ध्यादेश्चाधिदैवतम् ॥ चत्वार्येव तथा प्रोक्ताः किलाधिष्ठातृदेवताः ॥ ३७ ॥ मनसा सह चैतानि नूनं पंचदशैव तु ॥ सात्त्विकस्य तु सर्गोऽयं सात्त्विकाख्यः प्रकीर्तितः ॥ ३८ ॥ स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन द्वे रूपे परमात्मनः ॥ ज्ञानरूपं निरा-

लिङ्ग ये पाँचों कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ प्राणवायु, अपानवायु, व्यानवायु, समानवायु और उदानवायु ये पाँच वायु, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय कुल मिलाकर पन्द्रह राजसी सृष्टि कही जाती है ॥ ३३ ॥ इनमें क्रियात्मक शक्ति विद्यमान रहती है। अतएव इन्हें करणेन्द्रिय कहते हैं और इन सबका उपादान कारण चित् अर्थात् चैतन्य शक्ति है ॥ ३४ ॥ ज्ञानशक्तिसे दिशा, वायु, सूर्य, वरुण और दोनों अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ३५ ॥ ये ही पाँचों पञ्चज्ञानेन्द्रियोंके अधिष्ठाता कहे जाते हैं। चन्द्रमा, ब्रह्मा, रुद्र और क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा, ये चारों तथा अन्तःकरण, बुद्धि, अहंकार और चित्तके अधिदेव बताये गये हैं। ये ही चारों इनके अधिष्ठाता देवता भी कहलाते हैं ॥३६॥३७॥ इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच वायु और एक मन कुल मिलाकर सोलह तत्त्व सतोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण सात्त्विकी सृष्टिके अङ्ग कहे गये हैं ॥३८॥ स्थूल और सूक्ष्मभेदसे परमात्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के दो रूप होते हैं–एक ज्ञानरूप अर्थात् साकार और दूसरा निराकार । अब इनके कारण कहे जाते हैं ॥३९॥ साधनापरायण पुरुषोंके ध्यानादि कार्योंके लिए परमात्माके स्थूलरूपकी उपासना बतायी गयी है । यह उस परम पुरुषका सूक्ष्म शरीर ही मान लिया गया है ॥४०॥ ब्रह्माजी कहते हैं कि मेरा जो सूत्रसंज्ञक शरीर है, वह भी उस परम पुरुषका स्थूल शरीर है । अब मैं परब्रह्म परमात्माके विराट् स्वरूपका वर्णन करूँगा ॥ ४१ ॥ हे नारद ! आप सावधानीके साथ सुनें । क्योंकि इसके श्रवणमात्रसे प्राणी भवबन्धनसे छुटकारा पा जाता है । पहले गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन पञ्चतन्मात्राओं तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पञ्च सूक्ष्म महाभूतोंको बताया जा चुका है ॥४२॥ उन्हीं पाँचोंको मिलाकर अर्थात् पञ्चीकरण करके परमात्माने सूक्ष्मभूतोंकी रचना की है । अब मैं पञ्चीकरणका भेद बता रहा हूँ, सुनिए–॥४३॥ सर्वप्रथम रसकी तन्मात्राको मनमें लेकर उसके दो प्रकारकी कल्पना करता हुआ स्थूल जलके समान उसकी भावना करे ॥४४॥ पहले जैसे रसतन्मात्राकी दो प्रकारकी कल्पना की गयी है, उसी प्रकार अवशिष्ट चार भूतोंके भी दो-दो भाग कर दे । अब उसमेंसे आधे भागको

कारं निदानं तत्प्रचक्षते ॥ ३९ ॥ साधकस्य तु ध्यानादौ स्थूलरूपं प्रचक्षते ॥ शरीरं सूक्ष्ममेवेदं पुरुषस्य प्रकीर्तितम् ॥ ४० ॥ मम चैव शरीरं वै सूत्रमित्यभिधीयते ॥ स्थूलं शरीरं वक्ष्यामि ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ४१ ॥ शृणु नारद यत्नेन यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यते ॥ तन्मात्राणि पुरोक्तानि भूतसूक्ष्माणि यानि वै ॥ ४२ ॥ पञ्चीकृत्य तु तान्येव पञ्चभूतसमुद्भवः ॥ पञ्चीकरणभेदोऽयं शृणु संवदतः किल ॥ ४३ ॥ प्रथमं रसतन्मात्रामुपादाय मनस्यपि ॥ कल्पयेच्च तथा तद्वै यथा भवति चोदकम् ॥ ४४ ॥ शिष्टानां चैव भूतानामंशान्कृत्वा पृथक्पृथक् ॥ उदके मिश्रयेच्चांशान्कृते रसमये ततः ॥ ४५ ॥ तदा भूतविभागे च चैतन्ये च प्रकाशिते ॥ चैतन्यस्य प्रवेशात्तु तदाऽहमिति संशयः ॥ ४६ ॥ प्रतीयमाने तेनैव विशेषेणाभिमानतः ॥ आदिनारायणो देवो भगवानिति चोच्यते ॥ ४७ ॥ घनीभूतेऽथ भूतानां विभागे स्पष्टतां गते ॥ वृद्धिं प्राप्य गुणैश्चेत्थमेकैकगुणवृद्धितः ॥ ४८ ॥ आकाशस्य गुणश्चैकः शब्द एव न चापरः ॥ शब्दस्पर्शौ च वायोश्च द्वौ गुणौ परिकीर्तितौ ॥ ४९ ॥ अग्नेः शब्दश्च स्पर्शश्च रूपमेते त्रयो गुणाः ॥ शब्दस्पर्शरूपरसाश्चत्वारो वै जलस्य च ॥ ५० ॥ स्पर्शशब्दरसा रूपं गन्धश्च पृथिवीगुणाः ॥ एवं मिलितयोगैश्च ब्रह्मांडो-

अलग कर लें । शेष आधे भागको चार प्रकारसे अलग करके आधे भागरहित उन अंशोंमें मिला दें । जैसे–रसतन्मात्राके आधे भाग जलमें मिलाकर शेष भूतन्मात्राके आधे भागको चारों भागोंमें मिला दे । ऐसा करनेसे जब रसमय स्थूल जल हो जाय, तब अन्य चार भूतोंके पञ्चीकरणका विभाग करे । उन पञ्चभूतोंमें अधिष्ठानताके कारण उनमें प्रतिबिम्बरूपसे चैतन्य प्रविष्ट हो जाता है । तब पञ्चभूतात्मक शरीरमें अहम्की तदात्मरूपा संशयकी मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाती है । वह संशय जब स्पष्टरूपसे भासमान होता है, तब उस स्थूल देहमें देहाभिमानयुक्त चैतन्यको आदि नारायण, देव और भगवान आदि कहने लगते हैं ॥४५-४७॥ यह पञ्चीकरण जब दृढ़ हो जाता है और उसके आकाश आदि रूप स्पष्ट रीतिसे विभक्त हो जाते हैं, तब पूर्वोक्त रसतन्मात्राके कारण अपने-अपने विशेष गुणोंके द्वारा भूत (तत्त्व) वृद्धिको प्राप्त होता है और एक-एक गुणकी वृद्धिसे एक-एक भूत उत्पन्न होता है ॥ ४८ ॥ जैसे–महाभूत आकाशका केवल एक तन्मात्रात्मक गुण शब्द है । वायु महाभूतके दो गुण हैं–शब्द और स्पर्श ॥४९॥ अग्नि महाभूतके तीन गुण हैं–शब्द, स्पर्श और रूप । जल महाभूतके चार गुण होते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं—शब्द, स्पर्श, रूप और रस । पृथ्वी महाभूतके पाँच गुण होते हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध । इस प्रकार इन पंचीकृत महाभूतोंके संयोगसे ब्रह्मांड उत्पन्न होता है ॥५०॥५१॥ ब्रह्मांडके अंशसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी जातिसंख्या चौरासी लाख कही गयी है ॥५२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

(गुणोंका स्वरूप) ब्रह्माजी बोले—हे तात ! आपने जो प्रश्न किया था, तदनुसार मैंने सृष्टिका क्रम बतलाया । अब गुणोंका स्वरूप बता रहा हूँ । एकाग्रचित्त करके इसे सुनिए ॥१॥ सतोगुण प्रेमात्मक है और सुखसे प्रेमकी उत्पत्ति होती है । कोमलता, सत्य, शुचिता, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, कृपा, लज्जा, शांति और संतोष, इन दस लक्षणोंसे सदाके लिए निश्चल सतोगुणकी प्रतीति होती है ॥२॥३॥ सतोगुणका वर्ण श्वेत है । इससे सदा धर्ममें प्रीति होती हैं, उत्तम श्रद्धा उत्पन्न होती है और असत् श्रद्धा निवृत्त होती है ॥४॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने श्रद्धाके

त्पत्तिरुच्यते ॥ ५१ ॥ सर्वे जीवा मिलित्वैव ब्रह्मांडांशसमुद्भवाः ॥ चतुरशीतिलक्षाश्च प्रोक्ता वै जीवजातयः ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ सर्गोऽयं कथितस्तात यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ॥ गुणानां रूपसंस्थां वै शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ १ ॥ सत्त्वं प्रीत्यात्मकं ज्ञेयं सुखात्प्रीतिसमुद्भवः ॥ आर्जवं च तथा सत्यं शौचं श्रद्धा क्षमा धृतिः ॥ २ ॥ अनुकम्पा तथा लज्जा शांतिः सन्तोष एव च ॥ एतैः सत्त्वप्रतीतिश्च जायते निश्चला सदा ॥ ३ ॥ श्वेतवर्णं तथा सत्त्वं धर्मे प्रीतिकरं सदा ॥ सच्छ्रद्धोत्पादकं नित्यमसच्छ्रद्धानिवारकम् ॥ ४ ॥ सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च तथाऽपरा ॥ श्रद्धा तु त्रिविधा प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५ ॥ रक्तवर्णं रजः प्रोक्तमप्रीतिकरमद्भुतम् ॥ अप्रीतिर्दुःखयोगत्वाद्भवत्येव सुनिश्चिता ॥ ६ ॥ प्रद्वेषोऽथ तथा द्रोहो मत्सरः स्तम्भ एव च ॥ उत्कंठा च तथा निद्रा श्रद्धा तत्र च राजसी ॥ ७ ॥ मानो मदस्तथा गर्वो रजसा किल जायते ॥ प्रत्येतव्यं रजस्त्वेतैर्लक्षणैश्च विचक्षणैः ॥ ८ ॥ कृष्णवर्णं तमः प्रोक्तं मोहनं च विषादकृत् ॥ आलस्यं च तथाऽज्ञानं निद्रा दैन्यं भयं तथा ॥ ९ ॥ विवादश्चैव कार्पण्यं कौटिल्यं रोष एव च ॥ वैषम्यं वाऽतिनास्तिक्यं परदोषानुदर्शनम् ॥ १० ॥ प्रत्येतव्यं तमस्त्वेतैर्लक्षणैः सर्वथा बुधैः ॥ तामस्या श्रद्धया युक्तं परतापोपपादकम् ॥ ११ ॥ सत्त्वं प्रकाशयितव्यं नियंतव्यं रजः सदा ॥ संहर्तव्यं तमः कामं जनेन शुभ-

भी तीन भेद बतालाये हैं । जैसे—सात्त्विकी श्रद्धा, राजसी श्रद्धा और तामसी श्रद्धा ॥५॥ रजोगुणका रंग लाल है । यह एक प्रकारकी अद्भुत अप्रीति उत्पन्न करता है । वह अप्रीति दुःखके कारण ही जायमान होती है । यह सुनिश्चित सिद्धान्त है ॥ ६ ॥ इससे प्रद्वेप (डाह), द्रोह, मत्सर (दूसरोंका उत्कर्ष देखकर मन ही मन जलना), स्तम्भ (अड़ंगेबाजी), उत्कण्ठा (बेचैनी), निद्रा और राजसी श्रद्धा उपजती है ॥ ७ ॥ अभिमान, मद यानी निकृष्ट काममें प्रवृत्ति और गर्व अर्थात् घमण्डकी उत्पत्ति भी रजोगुणसे ही होती है । विज्ञजनोंका यह कर्तव्य है कि वे इन लक्षणोंसे रजोगुणका स्वरूप समझें ॥८॥ तमोगुणका रंग काला है । यह तमोगुण मोहमें डालनेवाला, विषाद उपजानेवाला, आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, कृपणता, कुटिलता, वैषम्य (रूखा व्यवहार), प्रबल नास्तिकता और परदोषदर्शन, इन लक्षणोंसे विज्ञ विद्वान् तमोगुणका स्वरूप समझें । क्योंकि तामसी श्रद्धा उत्पन्न होनेपर ही औरोंको संताप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देनेवाली प्रवृत्तिका प्रादुर्भाव होता है ॥९-११॥ अतः आत्मकल्याणेच्छुक लोग ऐसा काम करें, जिससे सतोगुणका अभ्युदय हो। जिन कार्योंसे रजोगुण बढ़े, उनपर नियंत्रण रक्खें और तमोगुणका तो जैसे भी संभव हो, सर्वथा विनाश ही कर डालें ॥१२॥ तीनों गुणोंमेंसे किसी एक गुणका उत्कर्ष होनेपर ये झगड़ते हैं, किन्तु ये एक दूसरेके आश्रित रहते हैं। निराश्रय होकर रह ही नहीं सकते ॥१३॥ यह तो कभी हो ही नहीं सकता कि कहीं केवल सतोगुण अथवा कहीं अकेला तमोगुण ही रहे। परस्परविरोधी होते हुए भी अन्योन्याश्रय भावसे ये सदा एक साथ रहते हैं॥ १४॥ अब मैं इनके अन्योन्याश्रय सम्बन्धका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ, सुनिए। हे नारद! इस सम्बन्धको जान लेनेपर प्राणी भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥१५॥ इस विषयमें मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसपर सन्देह मत करिएगा। क्योंकि इन्हें भलीभाँति जानकर ही मैं कह रहा हूँ। मैंने पहले इन्हें जाना, तब अनुभव किया और फिर इनका फल देखकर परिज्ञान प्राप्त किया ॥ १६ ॥ हे महामते! केवल देख या सुन लेनेसे अथवा संस्कारजनित ज्ञानसे ही किसीके विषयमें परिज्ञान नहीं हो जाता ॥१७॥ जैसे किसी मनुष्यने किसी पवित्र तीर्थकी महिमा सुनी तो उसके मनमें

मिच्छता ॥१२॥ अन्योन्याभिभवाच्चैते विरुध्यंति परस्परम् ॥ तथाऽन्योन्याश्रयाः सर्वे न तिष्ठंति निराश्रयाः ॥१३॥ सत्त्वं न केवलं क्वापि न रजो न तमस्तथा॥ मिलिताश्च सदा सर्वे तेनान्योन्याश्रयाः स्मृताः ॥१४॥ अन्योन्यमिथुनाच्चैव विस्तारं कथयाम्यहम् ॥ शृणु नारद यज्ज्ञात्वा मुच्यते भवबंधनात् ॥१५॥ संदेहोऽत्र न कर्तव्यो ज्ञात्वेत्युक्तं मया वचः ॥ ज्ञातं तदनुभूतं यत्परिज्ञातं फले सति ॥१६॥ श्रवणाद्दर्शनाच्चैव सपद्येव महामते ॥ संस्कारानुभवाच्चैव परिज्ञानं न जायते ॥ १७ ॥ श्रुतं तीर्थं पवित्रं च श्रद्धोत्पन्ना च राजसी ॥ निर्गतस्तत्र तीर्थे वै दृष्टं चैव यथाश्रुतम् ॥१८॥ स्नातस्तत्र कृतं कृत्यं दत्तं दानं च राजसम् ॥ स्थितस्तत्र कियत्कालं रजोगुणसमावृतः ॥ १९ ॥ रागद्वेषान्न निर्मुक्तः कामक्रोधसमावृतः ॥ पुनरेव गृहं प्राप्तो यथापूर्वं तथा स्थितः ॥ २० ॥ श्रुतं च नानुभूतं वै तेन तीर्थं मुनीश्वर ॥ न प्राप्तं च फलं यस्मादश्रुतं विद्धि नारद ॥२१॥ निष्पापत्वं फलं विद्धि तीर्थस्य मुनिसत्तम ॥ कृषेः फलं यथा लोके निष्पन्नान्नस्य भक्षणम् ॥ २२॥ पापदेहविकारा ये कामक्रोधादयः परे ॥ लोभो मोहस्तथा तृष्णा द्वेषो रागस्तथा मदः ॥ २३ ॥ असूयेर्ष्याक्षमाशांतिः पापान्येतानि नारद ॥ न निर्गतानि देहात्तु तावत्पापयुतो नरः ॥ २४ ॥ कृते तीर्थे

राजसी श्रद्धा उत्पन्न हुई। तदनुसार वह उस तीर्थमें गया। वहाँ पहुँचकर उसने उसे देखा तो जैसा सुना था, वैसा ही महत्त्वपूर्ण पाया ॥ १८ ॥ वहाँ उसने स्नान किया और तीर्थकृत्य करके राजसी दान दिया। राजसी वृत्तिके अनुसार ही वहाँ वह कुछ दिन रहा ॥१९॥ ऐसे पुनीत तीर्थमें जा करके भी न उसने रागद्वेष त्यागा और न काम-क्रोधका ही परित्याग किया। बल्कि पहले जैसा था, वैसा ही घर लौटकर रहने लगा ॥२०॥ हे मुनीश्वर! उस प्राणीने तीर्थकी महिमा सुनी, किन्तु फलका अनुभव नहीं किया। इसी कारण उसे तीर्थयात्राका कोई फल नहीं मिला। जब फल नहीं प्राप्त हो सका तो उसका सुना भी अनसुना बन गया ॥२१॥ हे मुनिसत्तम! जैसे संसारमें खेती करनेका फल है, उत्पादित अन्नका भोजन। वैसे ही तीर्थयात्राका फल है, पापसे मुक्त होकर निष्पाप होना ॥ २२ ॥ काम-क्रोध आदि पापकर्म शरीरके दोष हैं। लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, असूया (परदोषदर्शन), ईर्ष्या, सहनशीलताका अभाव और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशान्ति ये पाप कहलाते हैं। हे नारद ! जब तक शरीरसे ये नहीं निकलते, तबतक मनुष्य पापी ही रहता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ तीर्थ करनेपर भी यदि शरीरसे पाप नहीं निकलते तो तीर्थयात्राके निमित्त किया हुआ परिश्रम व्यर्थ है। जैसे किसी किसानने बड़े परिश्रमसे खेतको गोड़ा। उसने पत्थर जैसी कठोर जमीनको जोता और पर्याप्त खाद देकर उपजाऊ बनाया। उसमें बहुत महँगा बीज खरीद कर बोया और उसके हितके लिए जो-जो काम अवश्यक थे, वह सब किया ॥ २५ ॥ २६ ॥ उस खेतसे लाभ उठानेके लिए उसने रातदिन नाना प्रकारके कष्ट सहे। किन्तु जब उसमें फल लगनेका समय आया, तब वह सो गया। जिससे उसके फलोंको मृग-व्याघ्र आदि वनपशुओं तथा टिड्डियोंने आकर खा लिया। ऐसी स्थितिमें वह किसान सर्वथा निराश हो जाता है। इसी प्रकार हे पुत्र ! जो मनुष्य तीर्थयात्राका कष्ट सह करके भी उपर्युक्त पापोंमें ही संलग्न रहता है तो उसके लिए वह तीर्थयात्रा कष्ट देनेवाली ही सिद्ध होती है। उससे यात्रीको कुछ लाभ नहीं होता ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे नारद ! अच्छे शास्त्रोंका स्वाध्याय करनेसे सतोगुण अति तीव्र रूपसे बढ़ता है। उससे लाभ यह होता है कि

यद्येतानि देहान्न निर्गतानि चेत् ॥ निष्फलः श्रम एवैकः कर्षकस्य यथा तथा ॥ २५ ॥ श्रमेणापीडितं क्षेत्रं कृष्टा भूमिः सुदुर्घटा ॥ उप्तं बीजं महर्घं च हिता वृत्तिरुदाहृता ॥ २६ ॥ अहोरात्रं परिक्लिष्टो रक्षणार्थं फलोत्सुकः ॥ काले सुप्तस्तु हेमंते वने व्याघ्रादिभिर्भृशम् ॥ २७ ॥ भक्षितं शलभैः सर्वं निराशश्च कृतः पुनः ॥ तद्वत्तीर्थश्रमः पुत्र कष्टदो न फलप्रदः ॥ २८ ॥ सत्त्वं समुत्कटं जातं प्रवृद्धं शास्त्रदर्शनात् ॥ वैराग्यं तत्फलं जातं तामसार्थेषु नारद ॥ २९ ॥ प्रसह्याभिभवत्येव तद्रजस्तमसी उभे ॥ रजः समुत्कटं जातं प्रवृत्तं लोभयोगतः ॥ ३० ॥ तत्तथाभिभवत्येव तमः सत्त्वे तथा उभे ॥ तमस्तथोत्कटं भूत्वा प्रवृद्धं मोहयोगतः ॥ ३१ ॥ तत्सत्त्वरजसी चोभे संगम्याभिभवत्यपि ॥ विस्तरं कथयाम्यद्य यथाभिभवतीति वै ॥ ३२ ॥ यदा सत्त्वं प्रवृद्धं वै मतिर्धर्मे स्थिता तदा ॥ न चिन्तयति बाह्यार्थं रजस्तमःसमुद्भवम् ॥ ३३ ॥ अर्थं सत्त्वसमुद्भूतं गृह्णाति च न चान्यथा ॥ अनायासकृतं चार्थं धर्मं यज्ञं च वांछति ॥ ३४ ॥ सात्त्विकेष्वेव भोगेषु कामं वै कुरुते तदा ॥ राजसेषु न मोक्षार्थी तामसेषु पुनः कुतः ॥ ३५ ॥ एवं जित्वा रजः पूर्वं ततश्च तमसो जयः ॥ सत्त्वं च केवलं पुत्र तदा भवति निर्मलम् ॥ ३६ ॥ यदा रजः प्रवृद्धं वै त्यक्त्वा धर्मान्स-

रजोगुण और तमोगुणके प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ॥ २९ ॥ वह सतोगुण रजोगुण तथा तमोगुणको बरबस दबा देता है। लोभभावके जागृत होनेपर रजोगुण अत्यन्त तीव्र हो उठता है ॥ ३० ॥ बढ़ा हुआ रजोगुण सतोगुण तथा तमोगुण दोनोंको दबा देता है। इसी प्रकार मोहके कारण तीव्रताको प्राप्त तमोगुण सतोगुण एवं रजोगुणको दबा देता है। ये गुण किस तरह एक दूसरेको दबाते हैं, यह क्रम अब मैं विस्तारके साथ बताता हूँ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जब सतोगुण बढ़ता है, तब बुद्धि धर्ममें लगती है। उस समय वह रजोगुण तथा तमोगुणके बाहरी विषयोंमें नहीं फँसती ॥ ३३ ॥ ऐसी स्थितिमें बुद्धि सतोगुणसे जायमान कार्योंको ही अपनाती है। वह रजोगुण तथा तमोगुणसे उत्पन्न होनेवाले कार्योंमें नहीं उलझती। उस अनायास प्राप्त कार्यसे वह बुद्धि धर्म तथा यज्ञ करनेकी इच्छा करने लगती है ॥ ३४ ॥ मोक्षार्थी पुरुष सात्त्विक भोगोंकी ही इच्छा करता है। वह राजसिक एवं तामसिक भोगोंसे दूर रहता है ॥ ३५ ॥ वह पहले रजोगुणको जीतता है। उसके बाद तमोगुणको पराजित करता है। हे पुत्र ! वैसी स्थितिमें एकमात्र निर्मल सतोगुण ही उसके अन्तःकरणमें टिका रहता है ॥ ३६ ॥ जब मनुष्यके मनमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रजोगुण बढ़ता है, तब वे सनातन धर्मको त्यागकर राजसी श्रद्धाके वशीभूत होते हुए सतोगुणके विपरीत आचरण करने लगते हैं ॥३७॥ रजोगुणकी वृद्धिमें धन बढ़ता है और सब भोग भी राजसी ही होते हैं। उस परिस्थितिमें सतोगुण दूर चला जाता है। उसके न रहनेपर तमोगुण भी अपने आप दब जाता है ॥३८॥ जब प्राणीके मनमें तमोगुणकी वृद्धि होती है, यब वेदों और शास्त्रोंपरसे श्रद्धा हट जाती है ॥ ३९ ॥ उस समय वह तामसी श्रद्धा प्राप्त करके धनका दुरुपयोग करता हुआ सबसे द्रोह करता फिरता है। अतएव उसके मनको शान्ति नहीं प्राप्त होती ॥४०॥ वह क्रोधित, दुर्बुद्धि तथा शठ प्राणी सतोगुण और रजोगुणसे मुँह मोड़कर विभिन्न प्रकारके तामसिक विचारोंमें लीन होता हुआ स्वेच्छाचार करने लग जाता है ॥४१॥ किसी प्राणीमें न अकेला सतोगुण, न रजोगुण और न तमोगुण ही रहता है। बल्कि वे तीनों समानधर्मा गुण एक दूसरेके आश्रित होकर ही रहते हैं ॥ ४२ ॥ हे पुरुर्षभ ! रजोगुण बिना सतोगुणके नहीं रहता, सतोगुण बिना रजोगुण तथा तमोगुण इन दोनों गुणोंके बिना नहीं रह सकता ॥ ४३ ॥ सतोगुण तथा रजोगुणके बिना तमोगुण नहीं रहता। इन

नातनात् ॥ अन्यथा कुरुते धर्मांच्छ्रद्धां प्राप्य तु राजसीम् ॥ ३७ ॥ राजसादर्थसंवृद्धिस्तथा भोगस्तु राजसः ॥ सत्त्वं विनिर्गतं तेन तमसश्चापि निग्रहः ॥ ३८ ॥ यदा तमो विवृद्धं स्यादुत्कटं संबभूव ह ॥ तदा वेदे न विश्वासो धर्मशास्त्रे तथैव च ॥ ३९ ॥ श्रद्धां च तामसीं प्राप्य करोति च धनात्ययम् ॥ द्रोहं सर्वत्र कुरुते न शांतिमधिगच्छति ॥ ४० ॥ जित्वा सत्त्वरजश्चैव क्रोधनो दुर्मतिः शठः ॥ वर्तते कामचारेषु भावेषु विततेषु च ॥४१॥ एकं सत्त्वं न भवति रजश्चैकं तमस्तथा ॥ सदैवाश्रित्य वर्तंते गुणा मिथुनधर्मिणः ॥४२॥ रजो विना न सत्त्वं स्याद्रजः सत्त्वं विना क्वचित्॥ तमो विना न चैवैते वर्तंते पुरुषर्षभ ॥४३॥ तमस्ताभ्यां विहीनं तु केवलं न कदाचन ॥ सर्वे मिथुनधर्माणो गुणाः कार्यान्तरेषु वै ॥ ४४ ॥ अन्योन्यसंश्रिताः सर्वे तिष्ठंति न वियोजिताः ॥ अन्योन्यजनकाश्चैव यतः प्रसवधर्मिणः ॥४५॥ सत्त्वं कदाचिच्च रजस्तमसी जनयत्युत॥ कदाचित्तु रजः सत्त्वतमसी जनयत्यपि ॥ ४६ ॥ कदाचित्तु तमः सत्त्वरजसी जनयत्युभे ॥ जनयंत्येवमन्योन्यं मृत्पिंडश्च घटं यथा ॥ ४७ ॥ बुद्धिस्थास्ते गुणाः कामान्बोधयंति परस्परम् ॥ देवदत्तविष्णुमित्रयज्ञदत्तादयो यथा ॥ ४८ ॥ यथा स्त्रीपुरुषश्चैव मिथुनौ च परस्परम् ॥ तथा गुणाः समायांति युग्मभावं परस्परम् ॥ ४९ ॥ रजसो मिथुने सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुने रजः ॥ उभे ते सत्त्वरजसी तमसो मिथुने विदुः ॥ ५० ॥ नारद उवाच ॥ इत्येत-

समानधर्मी गुणोंकी स्थिति भिन्न-भिन्न कार्योंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी रहती है ॥ ४४ ॥ ये गुण प्राणियोंमें अन्योन्याश्रय भावसे विद्यमान रहते हैं-पृथक्-पृथक् भावसे नहीं। प्रसवधर्मी होनेके कारण ये एक दूसरेके उत्पादक भी होते हैं ॥४५॥ सतोगुण कभी रजोगुण तथा कभी तमोगुणको उत्पन्न करता है। इसी प्रकार रजोगुण कभी सतोगुण तथा कभी तमोगुणको उत्पन्न कर देता है ॥ ४६ ॥ कभी तमोगुण सतोगुण तथा रजोगुणको उत्पन्न करता है। ये तीनों गुण परस्पर एक दूसरेको उसी तरह उत्पन्न करते हैं, जैसे मिट्टीके लोंदे घड़ेको उत्पन्न करते हैं ॥४७॥ मनुष्योंकी बुद्धिमें रहनेवाले ये तीनों गुण परस्पर एक दूसरेको वैसे ही उभाड़ते हैं, जैसे संसारमें देवदत्त, विष्णुमित्र और यज्ञदत्त ये तीनों मिलकर परस्पर सहयोगके साथ काम करते हों ॥ ४८ ॥ अथवा जैसे स्त्री और पुरुष परस्पर मिल-जुलकर काम करते हैं। उसी प्रकार तीनों गुण बराबर युग्मभावको अपनाये रहते हैं ॥ ४९ ॥ जैसे रजोगुणका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युग्मभाव होनेपर सतोगुण गौण अर्थात् स्त्रीभावयुक्त हो जाता है। जैसे सतोगुणका युग्मभाव होनेपर रजोगुण गौण हो जाता है, इसी तरह सतोगुणके युग्मभावमें तमोगुण गौण हो जाता है। तमोगुणका युग्मभाव होनेपर सतोगुण गौण हो जाता है। रजोगुणके युग्मभावमें तमोगुण गौण होता है। तमोगुणके मिथुनमें रजोगुण गौण हो जाता है। तात्पर्य यह कि इन तीनों गुणोंमेंसे एक पुरुष और दूसरा स्त्रीभावको प्राप्त हो जाता है ॥ ५० ॥ नारदजी बोले—मेरे पिताजीने इस तरह तीनों गुणोंके स्वरूपका उत्तम रीतिसे वर्णन किया। यह सुनकर मैंने लोकपितामह ब्रह्माजीसे फिर पूछा ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(गुणोंके लक्षण) नारदजी बोले—हे तात ! आपने तीनों गुणोंके लक्षण बतलाये। किन्तु आपके मुखसे निःसृत सरस वाणी सुनकर भी मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ ॥ १ ॥ अतएव अब आप यथावत् उन गुणोंके परिज्ञानका वर्णन करिए। जिससे मेरे मनको परम शान्ति प्राप्त हो सके ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा—अपने पुत्र नारदके इस प्रकार प्रश्न करनेपर

त्कथितं पित्रा गुणरूपमनुत्तमम् ॥ श्रुत्वाप्येतत्स एवाहं ततोऽपृच्छं पितामहम् ॥५१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नारद उवाच ॥ गुणानां लक्षणं तात भवता कथितं किल ॥ न तृप्तोऽस्मि पिबन्मिष्टं त्वन्मुखात्प्रच्युतं रसम् ॥ १ ॥ गुणानां तु परिज्ञानं यथावदनुवर्णय ॥ येनाहं परमां शांतिमधिगच्छामि चेतसि ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्टस्तु पुत्रेण नारदेन महात्मना ॥ उवाच च जगत्कर्ता रजोगणसमुद्भवः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि गुणानां परिवर्णनम् ॥ सम्यङ् नाहं विजानामि यथामति वदामि ते ॥४॥ सत्त्वं तु केवलं नैव कुत्रापि परिलक्ष्यते ॥ मिश्रीभावस्तु तेषां वै मिश्रत्वं प्रतिभाति वै ॥ ५ ॥ यथा काचिद्वरा नारी सर्वभूषणभूषिता ॥ हावभावयुता कामं भर्तुः प्रीतिकरी भवेत् ॥६॥ मातापित्रोस्तथा सैव बंधुवर्गस्य प्रीतिदा ॥ दुःखं मोहं सपत्नीषु जनयत्यपि सैव हि ॥७॥ एवं सत्त्वेन तेनैव स्त्रीत्वमापादितेन च ॥ रजसस्तमसश्चैव जनिता वृत्तिरन्यथा ॥८॥ रजसा स्त्रीकृतेनैव तमसा च तथा पुनः ॥ अन्योन्यस्य समायोगादन्यथा प्रतिभाति वै ॥ ९ ॥ अवस्थानात्स्वभावेषु न वै जात्यंतराणि च ॥ लक्ष्यंते विपरीतानि योगान्नारद कुत्रचित् ॥१०॥ यथा रूपवती नारी यौवनेन विभूषिता ॥ लज्जा-

जगत्कर्ता और रजोगुणसे जायमान ब्रह्माजी बोले ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीने कहा—हे नारद ! अब मैं गुणोंका वर्णन कर रहा हूँ। यद्यपि इस विषयको भलीभाँति मैं भी नहीं जानता। फिर भी अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥ अकेला सतोगुण कहीं नहीं दिखायी देता। गुणोंका परस्पर मिश्रीभाव होनेके कारण वह भी मिश्रित ही दिखायी देता है ॥ ५ ॥ जैसे सब गहनोंसे सजी हुई कोई सुन्दरी स्त्री अपने अनोखे हाव-भावके कारण अपने पतिको विशेष प्रिय हो ॥ ६ ॥ उसी प्रकार अपने माता-पिता तथा कुटुम्बियोंकी भी दुलारी हो, किंतु वह भी अपनी सौतोंके मनमें दुःख उत्पन्न करती है ॥७॥ इसी प्रकार सतोगुणके स्त्रीभावापन्न होनेपर किसी पुरुषको सुख मिलता है तो कालान्तरमें उसी पुरुषके मनमें दुःख तथा मोहमें डालनेवाली भावना भी उत्पन्न हो जाती है ॥८॥ इसी तरह रजोगुण तथा तमोगुणके स्त्रीभावापन्न होनेपर भावनाका क्रम दूसरा हो जाता है। इस प्रकार परस्पर एक दूसरेके संयोगसे विपरीत भावना जागृत होती रहती है ॥९॥ हे नारद ! यदि तीनों गुण परस्पर मिश्रित न होकर पृथक्-पृथक् होते तो उनके स्वभावमें एक ही प्रकारकी प्रवृत्ति होती। किन्तु प्राणीमें कभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुख, कभी दुःख और कभी मोह देखकर यही निश्चित होता है कि गुणोंमें मिश्रीभाव होनेके कारण ही विभिन्नता आती है ।। १० ।। जैसे कोई रूपवती स्त्री यौवनके भारसे लदी हो। उसमें लज्जा, माधुर्य और विनयभाव भी भरपूर हो ।। ११ ।। वह धर्मशास्त्रके विधि-विधानसे परिचित हो और कामशास्त्रकी विधियोंको भी भलीभाँति जानती हो। अतएव वह अपने पतिकी विशेष प्यारी हो, किन्तु इन सब गुणोंके होते हुए भी वह अपनी सौतोंको कष्ट देती हो ।। १२ ।। तब लोगोंकी धारणा बन जाती है कि यह स्त्री सात्त्विकी प्रकृतिकी होती हुई भी ऐसे स्वभावकी है कि जिससे मोह और कष्ट होता है। इसी प्रकार सतोगुणके विकारमें भी अन्यान्य भाव प्रकट होते हैं ।। १३ ।। जैसे राजकीय सेना चोरोंसे सतायी हुई सीधी-सादी जनताको सुख देती है, किन्तु चोरों-डाकुओंको वही सेना दुःखदायिनी तथा मूर्ख दीखती है ।। १४ ।। इससे यही सिद्ध होता है कि स्वाभाविक गुण भी कभी-कभी विपरीत लक्षण प्रकट करते हैं। जैसे किसी दिन चारों ओर काले-काले बादल घिर आये हों ।। १५ ।। बिजली कौंध रही हो, प्रकृतिसुन्दरीने अन्धकाररूपी घूँघटमें अपना रूप छिपा लिया हो और घनघोर

माधुर्ययुक्ता च तथा विनयसंयुता ।। ११ ।। कामशास्त्रविधिज्ञा च धर्मशास्त्रेऽपि संमता ।। भर्तुः प्रीतिकरी भूत्वा सपत्नीनां च दुःखदा ।। १२ ।। मोहदुःखस्वभावस्था सत्त्वस्थेत्युच्यते जनैः ।।तथा सत्त्वं विकुर्वाणमन्यभावं विभाति वै ।।१३।। चौ रैरुपद्रुतानां हि साधूनां सुखदा भवेत् ।। दुःखा मूढा च दस्यूनां सैव सेना तथाऽगुणा ।। १४ ।। विपरीतप्रतीतिं वै वर्जयन्ति स्वभावतः ।। यथा च दुर्दिनं जातं महामेघघनावृतम् ।।१५।। विद्युत्स्तनित-संयुक्तं तिमिरेणावगुण्ठितम् ।। सिंचद्भूमिं प्रवर्षद्वै तमोरूपमुदाहृतम् ।। १६ ।। यदेतत्कर्षकाणां वै तदेवातीव दुर्दिनम् ।। बीजोपस्करयुक्तानां सुखदं प्रभवत्युत ।। १७ ।। अप्रच्छन्नगृहाणां च दुर्भगानां विशेषतः ।। तृणकाष्ठगृहीतानां दुःखदं गृहमेधिनाम् ।। १८ ।। प्रोषितभर्तृकाणां वै मोहदं प्रवदन्त्यपि ।। स्वभावस्था गुणाः सर्वे विपरीता विभांति वै ।।१९।। लक्षणानि पुनस्तेषां शृणु पुत्र ब्रवीम्यहम् ।। लघुप्रकाशकं सत्त्वं निर्मलं विशदं सदा ।। २० ।। यदाऽङ्गानि लघून्येव नेत्रादीनीन्द्रियाणि च ।। निर्ममं च तथा चेतो गृह्णाति विषयान्न तान् ।।२१।। तदा सत्त्वं शरीरे वै मंतव्यं च समुत्कटम् ।। जृम्भा स्तम्भं च तंद्रा च चलं चैव रजः पुनः ।।२२।। यदा तदुत्कटं जातं देहे यस्य च कस्यचित् ।। कलिं मृगयते कर्तुं गन्तुं ग्रामांतरं

वर्षासे सूखी भूमि सिंच रही हो, तब भी लोग उसे तमोरूप अर्थात् गाढान्धकारस्वरूप दुर्दिन कहते हैं ।। १६ ।। अब विचार कीजिए कि एक तरफ वही मेघ किसानोंको खेत जोतने तथा बीज छींटनेकी सुविधा देनेके कारण सुखदायी प्रतीत होता है, किन्तु दूसरी तरफ वही दुर्दिन उन अभागे गृहस्थोंके लिए दुःखदायी हो जाता है कि जिनके घर छाये नहीं जा सके हैं और जो छानेकी सामग्री तृण-काष्ठ आदिको ही जुटानेमें व्यस्त हैं ।। १७ ।। १८ ।। वही दुर्दिन उन स्त्रियोंके हृदयमें मोह उत्पन्न करता है कि जिनके पति परदेश गये रहते हैं। जैसे उपर्युक्त दृष्टान्तोंमें विपरीत भावना दिखायी देती है, ठीक उसी प्रकार ये सत्त्वादि गुण अपने स्वभावमें स्थित रहते हुए भी अन्य गुणोंमें मिलनेपर विपरीत दिखायी देने लगते हैं।।१९।। हे पुत्र नारद! अब मैं सत्त्वादि गुणोंके लक्षण फिरसे बता रहा हूँ। सुनो—सतोगुण लघुप्रकाशसम्पन्न, निर्मल और विशद होता है ।। २० ।। जब मनुष्यके समस्त अवयव हल्के हों, नेत्र आदि इन्द्रियाँ निर्मल हों, मन राजसिक तथा तामसिक विषयोंकी ओर न जाय ।।२१।। तब यह समझे कि शरीरमें सतोगुण प्रधानरूपसे विद्यमान है। जब बार-बार जमुहाई आती हो, शरीर टूटे, नींदकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खुमारी बनी हुई है और मन चञ्चल बना रहे, तब यह समझे कि शरीरमें रजोगुण प्रधानरूपसे विद्यमान है। जब मनमें झगड़ा करनेकी भावना हो, किसी दूसरे गाँवको जानेकी इच्छा हो, चित्त चञ्चल बना रहे, बाद-विवाद करनेको जी चाहे और कामवासनाका गहरा परदा पड़ जाय, तब यह समझे कि शरीरमें तमोगुणकी प्रधानता हो रही है॥ २२-२४॥ तमोगुणकी स्थितिमें शरीर भारी हो जाता है, इन्द्रियोंपर तामसी वासनायें छा जाती हैं, मनमें उदासी व्याप जाती है और बराबर सोते रहनेकी इच्छा होती है॥ २५॥ हे नारद! इस प्रकार मैंने गुणोंके लक्षण बताये। इनके विशद लक्षण उपर्युक्त रीतिसे समझना चाहिए। नारदजीने कहा-'हे पितामह! आपने तीनों गुणोंके विभिन्न लक्षण बतलाये॥ २६॥ अब मुझे यह जिज्ञासा हो रही है कि विपरीत लक्षणसम्पन्न होते हुए भी तीनों गुण आपसमें मिलकर सहयोगपूर्वक कैसे कार्य करते हैं? क्योंकि ये तो परस्परविरोधी होनेके कारण आपसमें एक दूसरेके शत्रु हैं॥ २७॥ ऐसी दशामें वे एकत्र होकर कैसे कार्य करते हैं, इसे बताइए। ब्रह्माजी बोले—हे पुत्र! सुनो, मैं तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दे रहा हूँ। उपर्युक्त तीनों गुणोंका

तथा॥२३॥ चलचित्तश्च सोऽत्यर्थं विवादे चोद्यतस्तथा॥ गुरुमावरणं कामं तमो भवति तद्यथा॥ २४॥ तदाऽङ्गानि गुरूण्याशु प्रभवंत्यावृतानि च॥ इन्द्रियाणि मनः शून्यं निद्रां नैवाभिवांछति॥२५॥ गुणानां लक्षणान्येवं विज्ञेयानीह नारद॥ नारद उवाच॥ विभिन्नलक्षणाः प्रोक्ताः पितामह गुणास्त्रयः॥ २६॥ कथमेकत्र संस्थाने कार्यं कुर्वन्ति शाश्वतम्॥ परस्परं मिलित्वा हि विभिन्नाः शत्रवः किल॥२७॥ एकत्रस्थाः कथं कार्यं कुर्वन्तीति वदस्व मे॥ ब्रह्मोवाच॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुणास्ते दीपवृत्तयः॥ २८॥ प्रदीपश्च यथा कार्यं प्रकरोत्यर्थदर्शनम्॥ वर्तिस्तैलं यथाऽर्चिश्च विरुद्धाश्च परस्परम्॥२९॥ विरुद्धं हि तथा तैलमग्निना सह संगतम्॥ तैलं वर्तिविरोध्येव पावकोऽपि परस्परम्॥३०॥ एकत्रस्थाः पदार्थानां प्रकुर्वंति प्रदर्शनम्॥ नारद उवाच॥ एवं प्रकृतिजाः प्रोक्ता गणाः सत्यवतीसुत॥३१॥ विश्वस्य कारणं ते वै मया पूर्वं यथाश्रुतम्॥ व्यास उवाच॥ इत्युक्तं नारदेनाथ मम सर्वं सविस्तरम्॥ ३२॥ गुणानां लक्षणं सर्वं कार्यं चैव विभागशः॥ आराध्या परमा शक्तिर्यया सर्वमिदं ततम्॥ ३३॥ सगुणा निर्गुणा चैव कार्यभेदे सदैव हि॥ अकर्ता पुरुषः पूर्णो निरीहः परमोऽव्ययः॥३४॥ करोत्येषा महामाया विश्वं सदसदात्मकम्॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा

स्वभाव दीपक जैसा है॥ २८॥ जैसे दीपक अर्थदर्शन कराता है, किन्तु उसके अंगस्वरूप तेल, बत्ती और आग ये परस्पर दूसरेके विरोधी हैं॥ २९॥ आगके साथ मिला हुआ तेल आगका विरोधी है, बत्तीका विरोधी तेल होता है और तेलका विरोधी अग्नि है॥ ३०॥ लेकिन ये सब एक साथ मिलकर विभिन्न वस्तुओंका दर्शन कराते हैं। नारदजी बोले—हे सत्यवतीतनय व्यासजी! ये सत्त्वादि तीनों गुण भी प्रकृतिसे ही उत्पन्न होते हैं॥ ३१॥ ऐसा मैंने पहलेसे ही सुन रक्खा है कि प्रकृतिके गुण ही जगत्की उत्पत्तिके कारण हैं। व्यासजीने राजा जनमेजयसे कहा कि नारदजीने विस्तारके साथ गुणोंके लक्षण और विभागोंके साथ-साथ उनके कार्योंको भी मुझे बतलाया। अतएव मनुष्यको चाहिए कि उस परमा शक्तिकी ही आराधना करे, जो समस्त विश्वमें व्याप्त हो रही है॥ ३२॥ ३३॥ कार्यभेदसे वे भगवती सगुणा और निर्गुणा दोनों हैं और वह परम पुरुष अकर्ता, पूर्ण, निरीह तथा परम अविनाशी है॥ ३४॥ ये महामाया ही सत् और असत्स्वरूप जगत्की रचना करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार, अष्टवसु, त्वष्टा (विश्वकर्मा),

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुबेर, वरुण, अग्नि, वायु, पूषा (सूर्य), स्वामिकार्तिकेय और गणपति, ये सब देवता उसी महामायासे शक्ति प्राप्त करके अपना-अपना काम करते हैं। यदि उन्हें महामायाकी शक्ति न मिली होती तो वे हिल-डुल भी न सकते ॥ ३५–३७ ॥ हे राजन्! वे परमेश्वरी इस जगत्की कारणस्वरूपा हैं। अतएव हे भूप! हे जनाधिपते! अब आप उन्हींका यज्ञ करें ॥ ३८ ॥ परम भक्तिपूर्वक और विधि-विधानके साथ आप उन जगदम्बाकी ही उपासना करें। वे ही महालक्ष्मी, महाकाली तथा महासरस्वतीस्वरूपा हैं ॥ ३९ ॥ वे भगवती सब प्राणियोंकी अधीश्वरी, समस्त कारणोंकी कारणरूपा, सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, शान्तस्वरूपा और दयामयी हैं ॥ ४० ॥ वे नामोच्चारण करते ही इच्छित फल दे देती हैं। पूर्वकालमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवने उन्हींकी आराधना की थी ॥ ४१ ॥ अनेकानेक जितेन्द्रिय तपस्वियोंने मोक्षकी कामना करके उन्हींका आराधन किया था। प्रसंगवश यदि अशुद्ध रूपसे भी उनका नाम ले लिया जाय तो वे महामाया दुर्लभ अभिलाषाओंको पूर्ण कर देती हैं। सत्यव्रत नामके एक मुनिने वनमें व्याघ्र आदि हिंस्र पशुओंको देखकर मारे डरके 'ऐ ऐ' शब्दका

रुद्रः सूर्यश्चन्द्रः शचीपतिः ॥३५॥ अश्विनौ वसवस्त्वष्टा कुबेरो यादसां पतिः ॥ वह्निर्वायुस्तथा पूषा सेनानीश्च विनायकः ॥३६॥ सव शक्तियुताः शक्ताः कर्तुं कार्याणि स्वानि च ॥ अन्यथा तेऽप्यशक्ता वै प्रस्पंदितुमनीश्वराः ॥३६॥ सा चैव कारणं राजञ्जगतः परमेश्वरी ॥ समाराधय तां भूप कुरु यज्ञं जनाधिप ॥३८॥ पूजनं परया भक्त्या तस्या एव विधानतः ॥ महालक्ष्मी महाकाली तथा महासरस्वती ॥३६॥ ईश्वरी सर्वभूतानां सर्वकारणकारणम् ॥ सर्वकामार्थदा शांता सुखसेव्या दयान्विता ॥ ४० ॥ नामोच्चारणमात्रेण वांछितार्थफलप्रदा ॥ देवैराराधिता पूर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥ ४१ ॥ मोक्षकामैश्च विविधैस्तापसैर्विजितात्मभिः ॥ अस्पष्टमपि यन्नाम प्रसंगेनापि भाषितम् ॥४२॥ ददाति वांछितानर्थान्दुर्लभानपि सर्वथा ॥ ऐऐ इति भयार्तेन दृष्ट्वा व्याघ्रादिकं वने ॥ ४३ ॥ बिंदुहीनमपीत्युक्तं वांछितं प्रददाति वै ॥ तत्र सत्यव्रतस्यैव दृष्टांतो नृपसत्तम ॥ ४४ ॥ प्रत्यक्ष एव चास्माकं मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ब्राह्मणानां समाजेषु तस्योदाहरणं बुधैः ॥ ४५ ॥ कथ्यमानं मया राजञ्छ्रुतं सर्वं सविस्तरम् ॥ अनक्षरो महामूर्खो नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः ॥ ४६ ॥ श्रुत्वाऽक्षरं कोलमुखात्समुच्चार्य स्वयं ततः ॥ बिन्दुहीनं प्रसंगेन जातोऽसौ विबुधोत्तमः ॥ ४७ ॥ ऐकारोच्चरणाद्देवी तुष्टा भगवती तदा ॥ चकार कविराजं तं दयार्द्रा परमेश्वरी ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

उच्चारण किया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यह उन महामायाका बिन्दुहीन ऐ कहा था, किन्तु बिन्दुहीन ऐका उच्चारण करनेपर भी भगवतीने उसकी कामना पूर्ण कर दी। हे नृपसत्तम! देवीकी दयालुताके विषयमें सत्यव्रत मुनिका दृष्टान्त ही पर्याप्त है ॥ ४४ ॥ बहुतेरे भावुक मुनिजनोंने बड़ी-बड़ी ब्राह्मणसभाओंमें सत्यव्रत मुनिका दृष्टान्त विस्तारपूर्वक सुनाया है ॥ ४५ ॥ हे राजन्! अब मैं वही सुना हुआ दृष्टान्त आपको सुना रहा हूँ। सत्यव्रत नामका एक ब्राह्मण था। जो एकदम निरक्षर और महामूर्ख था ॥ ४६ ॥ उसने एक दिन एक सुअरके मुखसे 'ऐऐ' शब्द सुना। उसे सुनकर वह उसी शब्दको रटने लगा। इस प्रकार बिन्दुविहीन ऐऐका उच्चारण करनेसे ही वह धुरन्धर विद्वान् हो गया ॥ ४७ ॥ उस ऐ ऐकारके उच्चारणसे भगवती उसपर प्रसन्न हो गयीं और दयार्द्र होकर उन्होंने उस महामूर्खको कविराज बना दिया ॥४८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(सत्यव्रत ब्राह्मणकी कथा) राजा जनमेजयने व्यासजीसे पूछा—वह द्विजश्रेष्ठ सत्यव्रत ब्राह्मण कौन था? वह किस देशमें और किस तरह जनमा, सो बताइए ॥१॥ उसने यह ऐ ऐ शब्द कहाँ सुना और कैसे स्वयं भी उसका उच्चारण करने लगा? उस विप्रको तत्काल कैसे सिद्धि प्राप्त हो गयी? ॥ २ ॥ सब प्राणियोंकी अन्तरात्मामें विराजनेवाली भगवती उसपर किस तरह प्रसन्न हुई? आप यह मनोरम कथा मुझे विस्तारपूर्वक सुनाइए ॥ ३ ॥ सूतजी बोले—राजा जनमेजयके इस प्रकार प्रश्न करनेपर सत्यवतीपुत्र व्यासजी रसीली, पवित्र एवं परम उदार वाणी बोले ॥ ४ ॥ व्यासजी कहने लगे—हे राजन्! सुनिए, मैं पुराणसम्मत वह कल्याणकारिणी कथा कह रहा हूँ। हे कुरुवंशके धुरन्धर! बहुत दिन पहले मुनिमण्डलीमें मैंने स्वयं यह कथा सुनी थी ॥ ५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! एक बार तीर्थयात्रा करता हुआ मैं बहुतेरे मुनियों द्वारा सेवित परम पावन नैमिषारण्यतीर्थमें जा पहुँचा ॥६॥ वहाँके सब मुनियोंको प्रणाम करके

॥ जनमेजय उवाच ॥ कोऽसौ सत्यव्रतो नाम ब्राह्मणो द्विजसत्तमः ॥ कस्मिन्देशे समुत्पन्नः कीदृशश्च वदस्व मे ॥ १ ॥ कथं तेन श्रुतः शब्दः कथमुच्चारितः पुनः ॥ सिद्धिश्च कीदृशी जाता तस्य विप्रस्य तत्क्षणात् ॥२॥ कथं तुष्टा भवानी सा सर्वज्ञा सर्वसंस्थिता ॥ विस्तरेण वदस्वाद्य कथामेतां मनोरमाम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा राज्ञा व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ उवाच परमोदारं वचनं रसवच्छुचि ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ श्रुता मुनिसमाजेषु मया पूर्वं कुरूद्वह ॥ ५ ॥ एकदाऽहं कुरुश्रेष्ठ कुर्वंस्तीर्थाटनं शुचि ॥ संप्राप्तो नैमिषारण्यं पावनं मुनिसेवितम् ॥ ६ ॥ प्रणम्याहं मुनीन्सर्वान् स्थितस्तत्र वराश्रमे ॥ विधिपुत्रास्तु यत्रासञ्जीवन्मुक्ता महाव्रताः ॥ ७ ॥ कथाप्रसंग एवासीत्तत्र विप्रसमागमे ॥ जमदग्निस्तु पप्रच्छ मुनीनेवं सभास्थितः ॥८॥ जमदग्निरुवाच ॥ संदेहोऽस्ति महाभागा मम चेतसि तापसाः ॥ समाजेषु मुनीनां वै निःसन्देहो भवाम्यहम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो मघवा वरुणोऽनलः ॥ कुबेरः पवनस्त्वष्टा सेनानीश्च गणाधिपः ॥ १० ॥ सूर्योऽश्विनौ भगः पूषा निशानाथो ग्रहस्तथा ॥ आराधनीयतमः कोऽत्र वांछितार्थफलप्रदः ॥ ११ ॥ सुखसेव्यश्च सततं चाशुतोषश्च मानदः ॥ ब्रुवन्तु मुनयः शीघ्रं सर्वज्ञाः संशितव्रताः ॥ १२ ॥ एवं प्रश्ने कृते तत्र लोमशो वाक्यमब्रवीत् ॥ जमदग्ने शृणुष्वैतद्यत्पृष्टं वै त्वयाऽधुना ॥ १३ ॥

मैं उसी आश्रममें टिक गया। उस आश्रममें ब्रह्माजीके पुत्र, महाव्रती और जीवन्मुक्त मुनि निवास करते थे ॥७॥ वहाँ उपस्थित ब्रह्ममण्डलीमें कथाका ही प्रसंग चल रहा था। उसी सभामें महर्षि जमदग्निने उन मुनियोंसे प्रश्न किया ॥ ८ ॥ जमदग्नि बोले—हे महाभाग तपस्वियों! मेरे मनमें एक बहुत बड़ी शंका है। मुझे आशा है मुनिमण्डलीमें उसका सम्यक् समाधान हो जायगा ॥ ९ ॥ वह शंका यह है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, अग्नि, कुबेर, वायु, त्वष्टा, स्वामिकार्तिकेय, गणेशजी, सूर्य, दोनों अश्विनीकुमार, भग, चन्द्रमा और नवों ग्रह, इन देवताओंमें कौन देवता सर्वश्रेष्ठ और आराधनीय हैं, जिसकी आराधना करनेसे शीघ्र कामना पूर्ण हो जाती है ॥ १० ॥ ११ ॥ हे मानदायक मुनिजन! कौनसा देवता सुखसेव्य और शीघ्र प्रसन्न होनेवाला है? हे मुनियों! हे सर्वज्ञ! हे व्रतधारिन्! आप हमें शीघ्र बतायें ॥ १२ ॥ इस प्रकार प्रश्न करनेपर लोमश मुनिने कहा—हे जमदग्ने! आपने जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनिए॥ १३ ॥ आत्मकल्याण चाहनेवाले सभी लोगोंको शक्तिकी उपासना करनी चाहिए। क्योंकि वे ही सर्वश्रेष्ठ, परा प्रकृति, सर्वगामिनी, सर्वदायिनी और कल्याणकारिणी हैं ॥ १४ ॥ वे ही ब्रह्मादिक बड़े-बड़े देवताओंकी जननी हैं। संसाररूपी वृक्षकी वे ही मूल आदि प्रकृति हैं ॥ १५ ॥ स्मरण तथा नामोच्चारण करते ही वे वांछित फल दे देती हैं। उनका चित्त सदा दयासे आर्द्र रहता है। जो लोग उनकी उपासना करते हैं, उनपर वे सदा दयालु रहती हैं ॥ १६ ॥ हे मुनियों! मैं एक पुनीत इतिहास सुनाता हूँ, सुनिए। एक ब्राह्मणने केवल ऐ अक्षरका उच्चारण करके सिद्धि प्राप्त कर ली थी ॥ १७॥ कोसल देशमें देवदत्त नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसके कोई सन्तान नहीं थी। अतएव पुत्रप्राप्तिके लिए उसने विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ किया ॥ १८ ॥ तमसा नदीके तटपर उसने उत्तम मण्डप बनवाया और वेदज्ञ तथा यज्ञकार्यमें निपुण ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया ॥ १९ ॥ विधानके

सेवनीयतमा शक्तिः सर्वेषां शुभमिच्छताम् ॥ परा प्रकृतिराद्या च सर्वगा सर्वदा शिवा ॥ १४ ॥ देवानां जननी सैव ब्रह्मादीनां महात्मनाम् ॥ आदिप्रकृतिमूलं सा संसारपादपस्य वै ॥ १५ ॥ स्मृता चोच्चारिता देवी ददाति किल वांछितम् ॥ सर्वदैवार्द्रचित्ता सा वरदानाय सेविता ॥ १६ ॥ इतिहासं प्रवक्ष्यामि शृण्वंतु मुनयः शुभम् ॥ अक्षरोच्चारणादेव यथा प्राप्तं द्विजेन वै ॥ १७ ॥ कोसलेषु द्विजः कश्चिद्देवदत्तेति विश्रुतः ॥ अनपत्यश्चकारेष्टिं पुत्राय विधिपूर्वकम् ॥ १८ ॥ तमसातीरमास्थाय कृत्वा मंडपमुत्तमम् ॥ द्विजानाहूय वेदज्ञान्सत्रकर्मविशारदान् ॥ १९ ॥ कृत्वा वेदीं विधानेन स्थापयित्वा विभावसून् ॥ पुत्रेष्टिं विधिवत्तत्र चकार द्विजसत्तमः ॥२०॥ ब्रह्माणं कल्पयामास सुहोत्रं मुनिसत्तमम् ॥ अध्वर्युं याज्ञवल्क्यं च होतारं च बृहस्पतिम् ॥ २१ ॥ प्रस्तोतारं तथा पैलमुद्गातारं च गोभिलम्॥ सभ्यानन्यान्मुनीन्कृत्वा विधिवत्प्रददौ वसु ॥ २२ ॥ उद्गाता सामगः श्रेष्ठः सप्तस्वरसमन्वितम् ॥ रथन्तरमगायत्तु स्वरितेन समन्वितम् ॥ २३ ॥ तदाऽस्य स्वरभंगोऽभूत्कृते श्वासे मुहुर्मुहुः ॥ देवदत्तश्चुकोपाशु गोभिलं प्रत्युवाच ह ॥ २४ ॥ मूर्खोऽसि मुनिमुख्याद्य स्वरभंगस्त्वया कृतः ॥ काम्यकर्मणि संजाते पुत्रार्थं यजतश्च मे ॥ २५ ॥ गोभिलस्तु तदोवाच देवदत्तं सुकोपितः ॥ मूर्खस्ते भविता पुत्रः शठः शब्दविवर्जितः ॥ २६ ॥ सर्वप्राणिशरीरे तु श्वासोच्छ्वासः सुदुर्ग्रहः ॥ न मेऽत्र दूषणं

अनुसार वेदी बनवाकर अग्निस्थापन किया और उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने पुत्रेष्टि आरम्भ कर दी ॥ २० ॥ उस यज्ञमें उसने मुनिसत्तम सुहोत्रको ब्रह्मा, याज्ञवल्क्य मुनिको अध्वर्यु और बृहस्पतिको होता बनाया ॥ २१ ॥ पैलमुनिको प्रस्तोता, महर्षि गोभिलको उद्गाता तथा अन्यान्य मुनियोंको सभ्य बनाकर उसने उन्हें प्रचुर धन दान दिया ॥ २२ ॥ तभी सामवेदके गायनमें निपुण उद्गाता महर्षि गोभिल सप्तस्वरयुक्त तथा स्वरितसमन्वित रथन्तर सामवेदका गान करने लगे ॥२३॥ किंतु बार बार साँस लेनेके कारण स्वरभंग हो गया। तब देवदत्त ब्राह्मणने कुपित होकर गोभिल मुनिसे कहा—॥२४॥ हे मुनियोंमें मुख्य गोभिल! तुम मूर्ख हो। मैंने पुत्रप्राप्तिके लिए काम्य कर्मस्वरूप यह यज्ञ ठाना था। उसमें तुमने स्वरभंग कर दिया ॥ २५ ॥ तब अत्यधिक क्रुद्ध होकर गोभिलने शाप देते हुए कहा कि इस यज्ञसे उत्पन्न तुम्हारा पुत्र मूर्ख, शठ और गूँगा होगा ॥ २६ ॥ सभी प्राणियोंके शरीरमें यह देखा जाता है कि वे श्वास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेते और छोड़ते हैं। श्वासको रोक लेना बड़ा कठिन कार्य है। ऐसी स्थितिमें यदि स्वरभङ्ग हो गया तो मेरा कोई दोष नहीं है ॥२७ महात्मा गोभिलके वचन सुनकर शापसे भयभीत देवदत्तने बहुत दुखी होकर कहा—॥ २८ ॥ हे विप्रेन्द्र! मुझ निरपराधकर आप नाहक नाराज हो गये। क्योंकि मुनिलोग तो सदा क्रोधरहित और सुखदायक होते हैं ॥ २९ ॥ तनिकसे अपराधपर हे विप्रवर! आपने मुझे शाप क्यों दे दिया? एक तो निपूता होनेके कारण मैं पहलेसे ही दुखी था, उसपर शाप देकर आपने मुझे और भी दुखी कर दिया ॥ ३० ॥ वेदज्ञ विद्वानोंका कथन है कि मूर्ख पुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना कहीं अच्छा है। तिसपर भी ब्राह्मणबालकका मूर्ख होना तो और भी निन्दनीय माना जाता है ॥३१॥ मूर्ख ब्राह्मण पशु और शूद्रके समान सब ऊँचे कामोंमें अयोग्य समझा जाता है। हे द्विजसत्तम! ऐसी दशामें मैं मूर्ख पुत्रको लेकर क्या करूँगा? ॥३२॥ शूद्र और मूर्ख ब्राह्मण दोनों समान होते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। वह न पूज्य माना जाता है और न दान लेनेका ही अधिकारी होता है। वह सभी कामोंमें निन्द्य माना जाता है॥३३॥ किसी भी देशमें बसा हुआ मूर्ख ब्राह्मण शूद्रके समान

किंचित्स्वरभंगे महामते ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गोभिलस्य महात्मनः ॥ शापाद्भीतो देवदत्तस्तमुवाचातिदुःखितः ॥ २८ ॥ कथं क्रुद्धोऽसि विप्रेन्द्र वृथा मयि निरागसि ॥ अक्रोधना हि मुनयो भवंति सुखदाः सदा ॥ २९ ॥ स्वल्पेऽपराधे विप्रेंद्र कथं शप्तस्त्वया ह्यहम् ॥ अपुत्रोऽहं सुतप्तः प्राक्तापयुक्तः पुनः कृतः ॥ ३० ॥ मूर्खपुत्रादपुत्रत्वं वरं वेदविदो विदुः ॥ तथापि ब्राह्मणो मूर्खः सर्वेषां निंद्य एव हि ॥ ३१ ॥ पशुवच्छूद्रवच्चैव न योग्यः सर्वकर्मसु ॥ किं करोमीह मूर्खेण पुत्रेण द्विजसत्तम ॥ ३२ ॥ यथा शूद्रस्तथा मूर्खो ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥ न पूजार्हो न दानार्हो निंद्यश्च सर्वकर्मसु ॥ ३३ ॥ देशे वै वसमानश्च ब्राह्मणो वेदवर्जितः ॥ करदः शूद्रवच्चैव मंतव्यः स च भूभुजा ॥ ३४ ॥ नासने पितृकार्येषु देवकार्येषु स द्विजः ॥ मूर्खः समुपवेश्यश्च कार्यस्य फलमिच्छता ॥ ३५ ॥ राज्ञा शूद्रसमो ज्ञेयो न योज्यः सर्वकर्मसु ॥ कर्षकस्तु द्विजः कार्यो ब्राह्मणो वेदवर्जितः ॥ ३६ ॥ विना विप्रेण कर्तव्यं श्राद्धं कुशचटेन वै ॥ न तु विप्रेण मूर्खेण श्राद्धं कार्यं कदाचन ॥ ३७ ॥ आहारादधिकं चान्नं न दातव्यमपंडिते ॥ दाता नरकमाप्नोति ग्रहीता तु विशेषतः ॥ ३८ ॥ धिग्राज्यं तस्य राज्ञो वै यस्य देशेऽबुधा जनाः ॥ पूज्यन्ते ब्राह्मणा मूर्खा दानमानादिकैरपि ॥ ३९ ॥ आसने पूजने दाने यत्र भेदो न चाण्वपि ॥

ही राजाके द्वारा करदाता माना जाता है ॥३४॥ पितृकार्य तथा देवकार्यमें वह आसन नहीं पाता। अपने शुभ कार्यके फलेच्छुक व्यक्तिको चाहिए कि वह मूर्ख ब्राह्मणको किसी कार्यपर न नियुक्त करे ॥ ३५ ॥ राजाका भी यह कर्तव्य है कि वह मूर्ख ब्राह्मणको शूद्रके समान समझे और किसी काममें न लगाये। ऐसे वेदविहीन ब्राह्मणसे तो साधारण किसानके समान खेती कराना चाहिए ॥ ३६ ॥ यदि विज्ञ ब्राह्मण न मिले तो कुशकी आसनी बिछाकर स्वयं श्राद्ध कर ले, किन्तु मूर्ख ब्राह्मणसे श्राद्ध कदापि न कराये ॥ ३७ ॥ मूर्ख ब्राह्मणको भोजनसे अधिक अन्न न दे। क्योंकि उसे दान देनेसे दाता नरकगामी होता है और दान लेनेवाला मूर्ख ब्राह्मण भी नरकमें जा पड़ता है ॥ ३८ ॥ उस राजाके राज्यको धिक्कार है, जिसमें मूर्ख लोग निवास करते हैं और मूर्ख ब्राह्मण दान-मानसे सम्मानित होते हैं ॥३९॥ जहाँ आसन, पूजन और दानमें अणुमात्र भी भेद न माना जाता हो, वहाँ भी मूर्ख और पंडितमें विद्वानोंको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को अवश्य भेद कर लेना चाहिये ॥ ४० ॥ जिस देशमें दान, मान और परिग्रह पाकर मूर्ख गर्वीले हो गये हों, उस देशमें कोई विद्वान् पंडित कदापि न बसे ॥ ४१ ॥ दुर्जनोंकी सम्पदासे दुर्जन लोगोंका ही भला होता है । जैसे नीमका वृक्ष बहुतेरे फलोंसे लदा ही तो भी वह केवल कौओंके ही उपयोगमें आता है ॥४२॥ वेदज्ञ ब्राह्मण अन्न खाकर वेदाभ्यास करता है । इससे उसके पूर्वज परम प्रसन्न होकर स्वर्गमें विहार करते हैं ॥४३॥ अतएव हे वेदज्ञोंमें उत्तम गोभिल मुनि ! आपने यह क्या कर डाला ? इस संसारमें मूर्ख पुत्रका पिता होना तो मरणसे भी गर्हित बात है ॥४४॥ हे महाभाग ! आप मुझपर कृपा करके इस शापसे छुटकारा दे दीजिये । आप मुझ दीनजनका उद्धार करनेमें समर्थ हैं । मैं आपके पाँव पड़ता हूँ ॥४५॥ लोमश मुनि बोले—ऐसा कहकर देवदत्त गोभिल मुनिके चरणोंमें लोट गया । वह अतिशय दीन तथा असहाय हो और आँखोंमें आँसू भरके स्तुति करने लगा ॥ ४६ ॥ देवदत्तको इस प्रकार व्याकुल

मूर्खपंडितयोर्भेदो ज्ञातव्यो विबुधेन वै ॥ ४० ॥ मूर्खा यत्र सुगर्विष्ठा दानमानपरिग्रहैः ॥ तस्मिन्देशे न वस्तव्यं पंडितेन कथंचन ॥ ४१ ॥ असतामुपकाराय दुर्जनानां विभूतयः ॥ पिचुमंदः फलाढ्योऽपि काकैरेवोपभुज्यते ॥ ४२ ॥ भुक्त्वाऽन्नं वेदविद्विप्रो वेदाभ्यासं करोति वै ॥ क्रीडंति पूर्वजास्तस्य स्वर्गे प्रमुदिताः किल ॥ ४३ ॥ गोभिलातः किमुक्तं वै त्वया वेदविदुत्तम ॥ संसारे मूर्खपुत्रत्वं मरणादतिगर्हितम् ॥ ४४ ॥ कृपां कुरु महाभाग शापस्यानुग्रहं प्रति ॥ दीनोद्धारणशक्तोऽसि पतामि तव पादयोः ॥ ४५ ॥ लोमश उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदत्तस्तु पतितस्तस्य पादयोः ॥ स्तुवन्दीनहृदत्यर्थं कृपणः साश्रुलोचनः ॥ ४६ ॥ गोभिलस्तु तदा तत्र दृष्ट्वा तं दीनचेतसम् ॥ क्षणकोपा महान्तो वै पापिष्ठाः कल्पकोपनाः ॥ ४७ ॥ जलं स्वभावतः शीतं पावकातपयोगतः ॥ उष्णं भवति तच्छीघ्रं तद्विना शिशिरं भवेत् ॥ ४८ ॥ दयावान्गोभिलस्त्वाह देवदत्तं सुदुःखितम् ॥ मूर्खो भूत्वा सुतस्ते वै विद्वानपि भविष्यति ॥ ४९ ॥ इति दत्तवरः सोऽथ मुदितोऽभूद्द्विजर्षभः ॥ इष्टिं समाप्य विप्रान्वै विससर्ज यथाविधि ॥ ५० ॥ कालेन कियता तस्य भार्या रूपवती सती ॥ गर्भं दधार काले सा रोहिणी रोहिणीसमा ॥ ५१ ॥ गर्भाधानादिकं कर्म चकार विधिवद्द्विजः ॥ पुंसवनविधानं च शृंगारकरणं तथा ॥ ५२ ॥ सीमन्तोन्नयनं चैव कृतं वेदविधानतः ॥ ददौ

तथा दुःखित देखकर गोभिल मुनिको दया आ गयी । क्योंकि महापुरुषोंका क्रोध क्षण ही भर टिकता है, किन्तु पापियोंका कोप कल्पपर्यन्त नहीं शान्त होता ॥ ४७ ॥ जैसे जल स्वभावतः शीतल होता है । वही जल अग्नि तथा धूप पाकर गर्म हो जाता है । किन्तु उस अग्नि तथा धूपके हटते ही वह पुनः शीतल हो जाता है ॥ ४८ ॥ तब दयालु गोभिल मुनिने बहुत दुखी देवदत्तसे कहा—हे विप्र ! आप घबड़ायें नहीं । मूर्ख उत्पन्न हो करके भी आपका पुत्र आगे चलकर विद्वान् हो जायगा ॥४९॥ इस प्रकार गोभिल मुनिका वरदान पाकर द्विजश्रेष्ठ देवदत्त बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने विधिवत् यज्ञ समाप्त करके ब्राह्मणोंको विदा कर दिया ॥५०॥ कुछ समय बाद देवदत्तकी रूपवती और सती-साध्वी भार्या रोहिणीने रोहिणीके समान गर्भ धारण किया ॥५१॥ तब ब्राह्मण देवदत्तने बड़े विधि-विधानके साथ गर्भाधान, पुंसवन और शृंगारकरण आदि संस्कार सम्पन्न किया ॥५२ ॥ उन्होंने वैदिक विधिके अनुसार सीमन्तोन्न-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यनसंस्कार करके पुत्रेष्टि यज्ञको सफल मानते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ विविध प्रकारके दान दिये ॥ ५३ ॥ तदनन्तर शुभ दिन तथा रोहिणी नक्षत्रमें रोहिणीने पुत्र प्रसव किया। तब देवदत्तने शुभ दिन एवं अत्यन्त शुभ लग्नमें उस नवजात शिशुका जातकर्म, पुत्रदर्शन तथा नामकरणसंस्कार किया। वेदज्ञ ब्राह्मण देवदत्तने उस बालकका उतथ्य नाम रक्खा ॥५४॥५५॥ अष्टम वर्ष लगनेपर शुभ दिनमें उन्होंने उस बालकका विधिवत् उपनयनसंस्कार भी कर दिया ॥ ५६ ॥ अब बालक उतथ्य ब्रह्मचर्य व्रत लेकर गुरुसे वेदाध्ययन करने लगा, किन्तु वह कुछ भी न बोलकर गूँगेकी तरह चुपचाप बैठा रहता था ॥ ५७ ॥ उसके पिता देवदत्तने उतथ्यको पढ़ानेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उसकी प्रवृत्ति ही नहीं हुई और वह गूँगा ही बना रहा। इससे उसके पिताको अपार कष्ट हुआ ॥५८॥ इस प्रकार वेदाभ्यास करते-करते उतथ्य बारह वर्षका हो गया, किन्तु उसे वैदिक विधिसे संध्यातक करना नहीं आया ॥५९॥ उसके बारेमें सब लोग कहने लगे कि देवदत्तका बालक मूर्ख निकल गया। यह बात बहुत विस्तृतरूपसे सभी तपस्वियों, ब्राह्मणों तथा अन्यान्य लोगोंमें भी फैल गयी ॥६०॥ वह वनमें जहाँ

दानानि मुदितो मत्वेष्टिं सफलां तथा ॥ ५३ ॥ शुभेऽह्नि सुषुवे पुत्रं रोहिणी रोहिणीयुते ॥ दिने लग्ने शुभेऽत्यर्थं जातकर्म चकार सः ॥ ५४ ॥ पुत्रदर्शनकं कृत्वा नामकर्म चकार च ॥ उतथ्य इति पुत्रस्य कृतं नाम पुराविदा ॥ ५५ ॥ स चाष्टमे तथा वर्षे शुभे वै शुभवासरे ॥ तस्योपनयनं कर्म चकार विधिवत्पिता ॥ ५६ ॥ वेदमध्यापयामास गुरुस्तं वै व्रते स्थितम् ॥ नोच्चचार तथोतथ्यः संस्थितो मुग्धवत्तदा ॥ ५७ ॥ बहुधा पाठितः पित्रा न दधार मतिं शठः ॥ मूढवत्तिष्ठतेऽत्यर्थं तं शुशोच पिता तदा ॥ ५८ ॥ एवं कुर्वन्सदाऽभ्यासं जातो द्वादशवार्षिकः ॥ न वेद विधिवत्कर्तुं संध्यावन्दनकं विधिम् ॥ ५९ ॥ मूर्खोऽभूदतिलोकेषु गता वार्ताऽतिविस्तरा ॥ ब्राह्मणेषु च सर्वेषु तापसेष्वितरेषु च ॥ ६० ॥ जहास लोकस्तं विप्रं यत्र तत्र गतं वने ॥ पिता माता निनिंदाथ मूर्खं तमतिभर्त्सयन् ॥ ६१ ॥ निंदितोऽथ जनैः कामं पितृभ्यामथ बांधवैः ॥ वैराग्यमगमद्विप्रो जगाम वनमप्यसौ ॥ ६२ ॥ अन्धो वरस्तथा पंगुर्न मूर्खस्तु वरः सुतः ॥ इत्युक्तोऽसौ पितृभ्यां वै विवेश काननं प्रति ॥ ६३ ॥ गंगातीरे शुभे स्थाने कृत्वोटजमनुत्तमम् ॥ वन्यां वृत्तिं च संकल्प्य स्थितस्तत्र समाहितः ॥ ६४ ॥ नियमं च परं कृत्वा नासत्यं प्रब्रवीम्यहम् ॥ स्थितस्तत्राश्रमे रम्ये ब्रह्मचर्यव्रतो हि सः ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

कहीं भी जाता था तो लोग उसका उपहास किया करते थे। उसके माता-पिता भी उस मूर्खकी निन्दा करते थे ॥६१॥ इस प्रकार जब उसने देखा कि सब लोग, बन्धु-बान्धव और माता-पिता भी मेरा तिरस्कार करते हैं तो उसके मनमें वैराग्य जागृत हुआ और वह घर छोड़कर वनमें चला गया ॥६२॥ उसके माता-पिता बराबर यही कहा करते थे कि अन्धा और पंगु ही पुत्र हुआ होता तो अच्छा था, लेकिन इस बालकका मूर्ख निकलना अच्छा नहीं हुआ। माता-पिताकी यह बात सुनकर उसके हृदयको बड़ी चोट लगी, जिससे वह बीहड़ वनमें चला गया ॥६३॥ वहाँ वह गंगातटके एक उत्तम स्थानमें अच्छी-सी कुटिया बनाकर वन्य वृत्तिसे जीवन यापन करने लगा ॥६४॥ अब उसने झूठ न बोलनेका व्रत भी ले लिया और ब्रह्मचर्य व्रत निभाता हुआ उसी रमणीक कुटियामें रहने लगा ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(सारस्वत बीजमंत्रकी महत्ता) लोमश मुनि बोले–हे जमदग्ने ! उतथ्य वेदाध्ययन, जप, ध्यान और देवाराधन, इनमेंसे कुछ भी नहीं जानता था ॥ १ ॥ वह ब्राह्मण आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, भूतशुद्धि और भगवान तकको नहीं जानता था ॥ २ ॥ मन्त्र, कीलकजप और गायत्रीसे भी वह अनभिज्ञ था । शौच, स्नानविधि और आचमनतक करना उसे नहीं आता था ॥ ३ ॥ वह विप्र अग्निहोत्र, बलिदान, अतिथिसत्कार, सन्ध्या, समिधा और होमसे भी अपरिचित था ॥ ४ ॥ वह सवेरे उठता और मामूली दातौन करके विना किसी मंत्रका उच्चारण किये शूद्रकी तरह गंगाजीमें स्नान कर लिया करता था ॥ ५ ॥ वह दोपहरके समय कुछ वनफल खा लेता था । उस शठको भक्ष्य और अभक्ष्यका भी ज्ञान नहीं था ॥ ६ ॥ हाँ, वह अपनी कुटियामें रहता हुआ सदा सच बोलता था । उसके मुखसे कभी कोई झूठ बात नहीं निकलती थी । उसकी यह सत्यनिष्ठा देखकर लोगोंने उसका 'सत्यतपा' नाम रख दिया

लोमश उवाच ॥ न वेदाध्ययनं किंचिज्जानाति न जपं तथा ॥ ध्यानं न देवतानां च न चैवाराधनं तथा ॥१॥ नासनं वेद विप्रोऽसौ प्राणायामं तथा पुनः ॥ प्रत्याहारं तु नो वेद भूतशुद्धिं च कारणम् ॥ २ ॥ न मंत्रकीलकं जाप्यं गायत्रीं च न वेद सः ॥ शौचं स्नानविधिं चैव तथाचमनकं पुनः ॥ ३ ॥ प्राणाग्निहोत्रं नो वेद बलिदानं च चातिथिम् ॥ न संध्यां समिधो होमं विवेद च तथा मुनिः ॥ ४ ॥ सोऽकरोत्प्रारुत्थाय यत्किंचिद्दन्तधावनम् ॥ स्नानं च शूद्रवत्तत्र गंगायां मंत्रवर्जितम् ॥ ५ ॥ फलान्यादाय वन्यानि मध्याह्नेऽपि यदृच्छया ॥ भक्ष्याभक्ष्यपरिज्ञानं न जानाति शठस्तथा ॥ ६ ॥ सत्यं ब्रूते स्थितस्तत्र नानृतं वदते पुनः ॥ जनैः सत्यतपा नाम कृतमस्य द्विजस्य वै ॥ ७ ॥ नाहितं कस्यचित्कुर्यान्न तथाऽविहितं क्वचित् ॥ सुखं स्वपिति तत्रैव निर्भयश्चिंतयन्निति ॥ ८ ॥ कदा मे मरणं भावि दुःखं जीवामि कानने ॥ जीवितं धिक्च मूर्खस्य तरसा मरणं ध्रुवम् ॥ ९ ॥ दैवेनाहं कृतो मूर्खो नान्योऽत्र कारणं मम ॥ प्राप्य चैवोत्तमं जन्म वृथा जातं ममाधुना ॥ १० ॥ यथा वंध्या सुरूपा च यथा वा निष्फलो द्रुमः ॥ अदुग्धदोह्या धेनुश्च तथाऽहं निष्फलः कृतः ॥११॥ किं नु निन्दाम्यहं दैवं नूनं कर्म ममेदृशम् ॥ न दत्तं पुस्तकं कृत्वा ब्राह्मणाय महात्मने ॥ १२ ॥ न वै विद्या मया दत्ता पूर्वजन्मनि निर्मला ॥ तेनाहं कर्मयोगेन शठोऽस्मि च द्विजाधमः ॥ १३ ॥ न च तीर्थे

॥७॥ वह न कभी किसीका अहित करता था और न हित । वह सदा यही सोचता हुआ निर्मलभावसे उसी कुटियामें सोता था कि मैं कब मरूँगा । इस जंगलमें मैं बड़ा दुखी जीवन बिता रहा हूँ । मुझ जैसे मूर्खके जीवनको धिक्कार है । ऐसे जीवनकी अपेक्षा मरण कहीं अच्छा है ॥ ८ ॥ ९ ॥ दैवने ही मुझे मूर्ख बनाया है । इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है । उत्तम कुलमें जन्म पा करके भी मेरा जीवन व्यर्थ गया ॥ १० ॥ जैसे रूपवती वन्ध्या, फलविहीन वृक्ष और विना दूधकी गाय व्यर्थ होती है, उसी प्रकार मेरा जीवन व्यर्थ होगया ॥ ११ ॥ दैवको भी दोष देना निरर्थक है । मेरे कर्म ही ऐसे थे । मैंने कभी किसी महात्मा ब्राह्मणको पुस्तक लिखकर नहीं दी ॥ १२ ॥ पूर्व जन्ममें मैंने किसीको निर्मल विद्याका दान नहीं दिया । इसीके फलस्वरूप मैं इस जन्ममें शठ और अधम ब्राह्मण हुआ हूँ ॥ १३ ॥ मैंने किसी तीर्थमें तपस्या नहीं की और न साधुओंकी सेवा ही की । द्रव्यदान देकर मैंने ब्राह्मणोंकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूजा भी नहीं की। इसी कारण मैं ऐसा दुर्बुद्धि हुआ हूँ ॥१४॥ मेरे साथके बहुतेरे मुनिकुमार वेद-शास्त्रके पारंगत विद्वान् हो गये, लेकिन किसी दैवयोगसे मैं महामूर्ख हो गया ॥१५॥ मैं तप करना भी नहीं जानता। तब कौनसी साधना करूँ? लेकिन यह सब सोचना भी व्यर्थ है। मेरा भाग्य ही अच्छा नहीं है॥१६॥ मैं भाग्यको ही सर्वोपरि मानता हूँ। पुरुषार्थको मैं निरर्थक समझता हूँ। उसको धिकारता हूँ। क्योंकि कभी-कभी बड़े परिश्रमसे किया हुआ काम दुर्भाग्यसे बिगड़ जाता है और भाग्यके अनुकूल होनेपर बिगड़ा काम बन जाता है॥१७॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र आदि सब देवता कालके वशमें हैं। क्योंकि काल अजेय होता है ॥ १८॥ इस प्रकार भाँति-भाँतिके तर्क-वितर्क करता हुआ वह ब्राह्मण जाह्नवीतटके उस पावन आश्रममें रहता था ॥१९॥ अब वह सर्वथा विरक्त होकर उस निर्जन वनके आश्रममें रहता हुआ शान्त भावसे समय बिताने लगा ॥२०॥ उस विमल जलसम्पन्न वनमें निवास करते-करते चौदह

तपस्तप्तं सेविता न च साधवः ॥ न द्विजाः पूजिता द्रव्यैस्तेन जातोऽस्मि दुष्टधीः ॥ १४ ॥ वर्तन्ते मुनिपुत्राश्च वेदशास्त्रार्थपारगाः ॥ अहं सुमूढः संजातो दैवयोगेन केनचित् ॥ १५ ॥ न जानामि तपस्तप्तुं किं करोमि सुसाधनम् ॥ मिथ्याऽयं मेऽत्र संकल्पो न मे भाग्यं शुभं किल ॥ १६ ॥ दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ वृथा श्रमकृतं कार्यं दैवाद्भवति सर्वथा ॥ १७ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्याः किल देवताः ॥ कालस्य वशगाः सर्वे कालो हि दुरतिक्रमः ॥ १८ ॥ एवंविधान्वितर्कांस्तु कुर्वाणोऽहर्निशं द्विजः ॥ स्थितस्तत्राश्रमे तीरे जाह्नव्याः पावने स्थले ॥ १९ ॥ विरक्तः स तु संजातः स्थितस्तत्राश्रमे द्विजः ॥ कालातिवाहनं शांतश्चकार विजने वने ॥ २० ॥ एवं स्थितस्य तु वने विमलोदकेवै वर्षाणि तत्र नवपंच गतानि कामम् ॥ नाराधनं न च जपं न विवेद मंत्रं कालातिवाहनमसौ कृतवान्वने वै ॥ २१ ॥ जानाति तस्य विततं व्रतमेव लोकः सत्यं वदत्यपि मुनिः किल नामजातम् ॥ जातं यशश्च सकलेषु जनेषु कामं सत्यव्रतोऽयमनिशं न मृषाभिभाषी ॥ २२ ॥ तत्रैकदा तु मृगयां रममाण एव प्राप्तो निषादनिशठो धृतचापबाणः ॥ क्रीडन्वनेऽतिविपुले यमतुल्यदेहः क्रूराकृतिर्हननकर्मणि चातिदक्षः ॥ २३ ॥ तेनातिकृष्टेन शरेण विद्धः कोलः किरातेन धनुर्धरेण ॥ पलायमानो भयविह्वलश्च मुनेः समीपं विद्रुतो जगाम ॥ २४ ॥ विकंपमानो रुधिरार्द्रदेहो यदा जगामाश्रममंडलं वै ॥ कोलस्तदातीव दयार्द्रभावं प्राप्तो मुनिस्तत्र समीक्ष्य दीनम् ॥ २५ ॥ अग्रे व्रजंतं

वर्ष बीत गये। वह न आराधनाकी रीति जानता था और न जप। उसे कोई मंत्र भी नहीं आता था। वह वनमें रहता हुआ केवल समय बिताता था ॥२१॥ आस-पासके निवासी केवल उसके व्रतको जानते थे और उनकी यह धारणा बन गयी थी कि यह सत्य ही बोलता है। कभी भी असत्य संभाषण नहीं करता। इससे सब लोगोंमें उसका यश फैल गया और लोग उसे 'सत्यव्रत' कहने लगे ॥ २२ ॥ एक दिन उसी वनमें मृगया करता हुआ हाथोंमें धनुष-बाण लिये एक अत्यन्त क्रूर बहेलिया आ पहुँचा। यमराजके समान उसकी भीषण आकृति थी और वधकार्यमें वह बहुत ही निपुण था ॥ २३ ॥ उस धनुषधारी किरातने एक सुअरको लक्ष्य करके बड़ी जोरसे खींचकर बाण मारा। वह सुअर भयविह्वलभावसे भागता हुआ सत्यव्रत मुनिके समीप पहुँच गया ॥ २४ ॥ जब वह उस आश्रमपर गया तो भयसे काँप रहा था और रुधिरसे उसका सारा शरीर भींग गया था। उस बेचारेकी यह दीन दशा देखकर सत्यव्रत मुनिका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हृदय दयासे पिघल उठा ॥२५॥ उस घायल सुअरको अपने आगेसे जाते देखकर दयाके अतिरेकसे सत्यव्रत मुनिका शरीर काँपने लगा और उन्होंने बिन्दुविहीन सारस्वत बीजमंत्र ऐऐका उच्चारण किया ॥ २६ ॥ इस मंत्रका न तो पहलेसे उन्हें ज्ञान था और न कभी किसीके मुखसे सुना ही था। एकाएक दैवयोगवश उनके मुखसे यह मंत्र निकल पड़ा। अब भी उन्हें नहीं ज्ञात था कि यह सारस्वत बीजमंत्र है। क्योंकि वे महात्मा मुनि तो उस घायल सुअरके शोकमें डूबे हुए थे ॥ २७ ॥ उधर वह सुअर और कहीं रास्ता न पाकर इनके आश्रममें घुस आया और समीपकी किसी झाड़ीमें छिप गया। वह अब भी बाणके लगनेमें व्यथित था और उसका शरीर काँप रहा था ॥२८॥ क्षण ही भर बाद धनुषपर बाण चढ़ाकर कानतक उसकी प्रत्यञ्चा खींचे हुए दूसरे कालके समान विकराल देहधारी वह किरात भी उत सुअरको खोजता हुआ उन मुनिके समीप आ धमका ॥२९॥ कुशासनपर विराजमान अद्वितीय सत्यव्रत मुनिको देखकर उस व्याधने प्रणाम किया और उनके समक्ष खड़ा होकर पूछने लगा—हे द्विजेश ! वह सुअर कहाँ गया ? ॥३०॥ मैं जानता हूँ कि आप सत्यव्रती हैं। इसीलिए पूछता हूँ कि मेरे बाणसे

रुधिरार्द्रदेहं दृष्ट्वा मुनिः सूकरमाशु विद्धम् ॥ दयाभिवेशादतिकंपमानः सारस्वतं बीजमथोच्चचार ॥ २६ ॥ अज्ञातपूर्वं च तथाऽश्रुतं च दैवान्मुखे वै समुपागतं च ॥ न ज्ञातवान्बीजमसौ विमूढो ममज्ज शोके स मुनिर्महात्मा ॥ २७ ॥ कोलः प्रविश्याश्रममण्डलं तद्गतो निकुंजे प्रविलीय गूढम् ॥ अप्राप्तमार्गो दृढनिर्विण्णचेताः प्रवेपमानः शरपीडितत्वात् ॥ २८ ॥ ततः क्षणादाकरणांतकृष्टं चापं दधानोऽतिकरालदेहः ॥ प्राप्तस्तदन्ते स च मृग्यमाणो निषादराजः किल काल एव ॥२९॥ दृष्ट्वा मुनिं तत्र कुशासने स्थितं नाम्ना तु सत्यव्रतमद्वितीयम् ॥ व्याधः प्रणम्य प्रमुखे स्थितोऽसौ पप्रच्छ कोलः क्व गतो द्विजेश ॥ ३० ॥ जानामि तेऽहं सुव्रतं प्रसिद्धं तेनाद्य पृच्छे मम बाणविद्धः ॥ क्षुधार्दितं मे सकलं कुटुंबं विभर्तुकामः किल आगतोऽस्मि ॥ ३१ ॥ वृत्तिर्ममैषा विहिता विधात्रा नान्याऽस्ति विप्रेन्द्र ऋतं ब्रवीमि ॥ भर्तव्यमेह कुटुम्बमंजसा केनाप्युपायेन शुभाशुभेन ॥ ३२ ॥ सत्यं ब्रवीत्वद्य सत्यव्रतोऽसि क्षुधातुरो वर्तते पोष्यवर्गः ॥ क्वासौ गतः सूकरो बाणविद्धः पृच्छाम्यहं वाडव ब्रूहि तूर्णम् ॥ ३३ ॥ तेनेति पृष्टः स मुनिर्महात्मा वितर्कमग्नः प्रबभूव कामम् ॥ सत्यव्रतं मेऽद्य भवेन्न भग्नं न दृष्ट इत्युच्चरितेन किं वै ॥ ३४ ॥ गतोऽत्र कोलः शरविद्धदेहः कथं ब्रवीम्यद्य मृषाऽमृषा वा ॥ क्षुधार्दितोऽयं परिपृच्छतीह दृष्ट्वा हनिष्यत्यपि सूकरं वै ॥ ३५ ॥ सत्यं न सत्यं खलु

बिंधा हुआ वह सुअर किधर गया है ? मेरा सारा कुटुम्ब भूखसे छटपटा रहा है। उनका पेट भरनेके लिए मैं यहाँ आया हूँ ॥३१॥ हे विप्रेन्द्र ! मैं सच कह रहा हूँ कि विधाताने मेरे लिए यही जीविका निश्चित कर दी है, इसके सिवाय और कोई साधन नहीं है। और फिर किसी भी उपायसे मुझे अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करना ही है ॥ ३२ ॥ आप सत्यव्रत हैं। अतएव मुझे सच-सच बताइए। मेरा सारा परिवार क्षुधासे व्याकुल हो रहा है। हे ब्राह्मण ! मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि मेरे बाणसे घायल वह सूकर किधर गया है ? मुझे शीघ्र बताइए ॥३३॥ उस व्याधके इस प्रकार अनेकशः पूछनेपर महात्मा सत्यव्रत बड़े असमंजमें पड़ गये। वे सोचने लगे—मैं क्या करूँ कि जिससे मेरा सत्यव्रत न टूटे और यह भी न कहना पड़े कि मैंने उसे नहीं देखा है ॥३४॥ 'तुम्हारे बाणसे घायल होकर वह सुअर भाग गया' यह झूठ मैं कैसे बोलूँ। यदि इसे सच बात बताता हूँ तो यह क्षुधासे आतुर होकर पूछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहा है। अतएव उसे अवश्य मार डालेगा ॥३५॥ वह सत्य वास्तविक सत्य नहीं है कि जिसके बोलनेपर किसी प्राणीकी हिंसा होती हो। बल्कि जिस असत्यके बोलनेपर दयाभाव झलके और किसी प्राणीका उपकार होता हो, वह असत्य भी सत्य हो जाता है। जिसके द्वारा मनुष्योंका हित होता हो, वही सत्य है। जो इसके विपरीत हो, वही असत्य है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार परस्परविरोधी प्रसंगमें मैं क्या करूँ कि जिससे मेरा हित हो। निषादको मैं क्या उत्तर दूँ ? जिससे मेरी बात झूठ न हो। महर्षि लोमशने कहा—हे ब्राह्मण जमदग्नि ! ऐसा विचार करते हुए वे सत्यव्रत मुनि धर्मसंकटमें पड़ गये और जल्दी यह नहीं सोच सके कि व्याधको क्या उचित उत्तर दिया जाय ॥ ३७ ॥ बाणसे घायल सुअरको देखकर करुणावश मुनि सत्यव्रतके मुखसे जो 'ऐऐ' इस वाक्यका उच्चारण हो गया था, उस अपने बीजमंत्रके उच्चारणसे भगवती शिवा प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने सत्यव्रतको दुर्लभ ब्रह्मविद्या दे दी ॥ ३८ ॥ देवीके बीजमंत्रका उच्चारण करनेसे सत्यव्रत मुनिके अन्तःकरणमें समस्त विद्यायें एक साथ प्रस्फुटित हो उठीं और जिस तरह पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकि कवि हो गये थे, उसी प्रकार ये

यत्र हिंसा दयान्वितं चानृतमेव सत्यम् ॥ हितं नराणां भवतीह येन तदेव सत्यं न तथाऽन्यथैव ॥ ३६ ॥ हितं कथं स्यादुभयोर्विरुद्धयोस्तदुत्तरं किं न यथा मृषा वचः ॥ विचारयन्वाडव धर्मसंकटे न प्राप वक्तुं वचनं यथोचितम् ॥३७॥ बाणाहतं वीक्ष्य दयान्वितं च कोलं तदंते समुदाहृतं वचः॥ तेन प्रसन्ना निजबीजतः शिवा विद्यां दुरापां प्रददौ च तस्मै ॥ ३८ ॥ बीजोच्चारणतो देव्या विद्या प्रस्फुरिताऽखिला ॥ वाल्मीकेश्च यथा पूर्वं तथा स ह्यभवत्कविः ॥ ३९ ॥ तमुवाच द्विजो व्याधं संमुखस्थं धनुर्धरम् ॥ सत्यकामस्तु धर्मात्मा श्लोकमेकं दयापरः ॥ ४० ॥ या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति ॥ अहो व्याध स्वकार्यार्थिन्किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥ ४१ ॥ इत्युक्तस्तु तदा तेन गतोऽसौ पशुहा पुनः ॥ निराशः सूकरे तस्मिन्परावृत्तो निजालये ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणस्तु कविर्जातः प्राचेतस इवापरः॥ प्रसिद्धः सर्वलोकेषु नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः ॥ ४३ ॥ सारस्वतं ततो बीजं जजाप विधिपूर्वकम् ॥ पंडितश्चातिविख्यातो द्विजोऽसौ धरणीतले ॥ ४४ ॥ प्रतिपर्वसु गायंति ब्राह्मणा यद्यशः सदा ॥ आख्यानं चातिविस्तीर्णं स्तुवंति मुनयः किल ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वा सदनं तस्य समागत्य तदाश्रमे ॥ येन त्यक्तः पुरा तेन गृहं नीतोऽतिमानितः ॥ ४६ ॥ तस्माद्रा-

भी कवि हो गये ॥ ३९ ॥ तब धनुष बाण धारण करके अपने समक्ष खड़े व्याधको उन सत्यकाम, धर्मात्मा तथा दयालु सत्यव्रत मुनिने एक श्लोकमें यह उत्तर दिया—॥४०॥ जो (आँख) देखती है, वह बोल नहीं सकती और जो (वाणी) बोलती है, उसने देखा नहीं। तब हे अपने मतलबकी बात पूछनेवाले व्याध! तुम बार-बार एक ही बात मुझसे क्यों पूछते हो ? ॥४१॥ मुनिके ऐसा कहनेपर वह पशुघातक व्याध उस सुअरसे निराश होकर अपने घर लौट गया ॥ ४२ ॥ इस प्रकार सत्यव्रत ब्राह्मण दूसरे वाल्मीकिके समान कवि हुए और सब लोगोंमें सत्यव्रतके नामसे विख्यात हो गये ॥ ४३ ॥ इसके बाद उन्होंने विधिवत् सारस्वत बीजमंत्रका जप किया, जिससे वे जगतीतलमें अति प्रसिद्ध पण्डित हो गये ॥ ४४ ॥ अब प्रत्येक पर्वपर ब्राह्मणगण उनका यश गाते हैं और मुनिजन उनके विस्तृत आख्यानकी सराहना करते हैं ॥४५॥ उनकी असाधारण ख्याति सुनकर माता-पिता आदि वे ही बान्धव उनके आश्रम-पर गये, जिन्होंने पहले उन्हें घरसे निकाल दिया था। अब बड़े सम्मानके साथ वे उन्हें फिर घरपर ले आये ॥ ४६ ॥ व्यासजीने कहा—हे राजन् ! उस आदिशक्ति, परा देवी तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगत्की कारणस्वरूपा भगवतीकी भक्तिपूर्वक सेवा और पूजा करनी चाहिए ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! जैसा कि मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ, उस सर्वकामप्रद, नित्य और निश्चित अम्बामखको आप वैदिक विधिके अनुसार अवश्य करें ॥४८॥ जो देवी स्मरण करनेसे, पूजन करनेसे, भक्तिके साथ ध्यान करनेसे, नामोच्चारण करनेसे और स्तुति करने मात्रसे सब कामनायें पूर्ण कर देती है, इसी कारण लोग उसे कामदा कहते हैं ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! रोगी, दीन, भूखे, निर्धन, शठ, आर्त, मूर्ख, वैरियोंसे सदा पीड़ित, दास, आज्ञाकारी, क्षुद्र, विकल, विह्वल, भोजन तथा भोगसे अतृप्त, सदा आर्त, अजितेन्द्रिय, अधिक तृष्णायुक्त, अशक्त और सदा मानसिक व्याधिसे पीड़ित मनुष्योंको देखकर यह अनुमान करना कर लेना चाहिए कि उन्होंने देवीकी आराधना नहीं की थी ॥ ५०–५२ ॥ इसी प्रकार वैभवसम्पन्न, पुत्र-पौत्र आदिसे भरे-पूरे, पुष्टशरीर, भोगयुक्त, वेदवादी, राजलक्ष्मीसे सम्पन्न, वीर, बहुतेरे लोगोंको वशमें रखनेवाले,

जन्सदा सेव्या पूजनीया च भक्तितः ॥ आदिशक्तिः परा देवी जगतां कारणं हि सा ॥४७॥ तस्या यज्ञं महाराज कुरु वेदविधानतः ॥ सर्वकामप्रदं नित्यं निश्चयं कथितं पुरा ॥ ४८ ॥ स्मृता सम्पूजिता भक्त्या ध्याता चोच्चारिता स्तुता ॥ ददाति वांछितानर्थान्कार्यदा तेन कीर्त्यते ॥ ४९ ॥ अनुमानमिदं राजन्कर्तव्यं सर्वथा बुधैः ॥ दृष्ट्वा रोगयुतान्दीनान्क्षुधितान्निर्धनाञ्छठान् ॥ ५० ॥ जनानार्तांस्तथा मूर्खान्पीडितान्वैरिभिः सदा ॥ दासानाज्ञाकरान्क्षुद्रान्विकलान्विह्वलानथ ॥५१॥ अतृप्तान्भोजने भोगे सदार्तानजितेंद्रियान् ॥ तृष्णाधिकानशक्तांश्च सदाधिपरिपीडितान् ॥ ५२ ॥ तथा विभवसंपन्नान्पुत्रपौत्रविवर्धनान् ॥ पुष्टदेहांश्च संभोगैः संयुतान्वेदवादिनः ॥ ५३ ॥ राजलक्ष्म्या युताञ्छूरान्वशीकृतजनानथ ॥ स्वजनैरवियुक्तांश्च सर्वलक्षणलक्षितान् ॥ ५४ ॥ व्यतिरेकान्वयाभ्यां च विचेतव्यं विचक्षणैः ॥ एभिर्न पूजिता देवी सर्वार्थफलदा शिवा ॥ ५५ ॥ समाराधिता च तथा नृभिरेभिः सदाऽम्बिका ॥ यतोऽमी सुखिनः सर्वे संसारेऽस्मिन्न संशयः ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ इति राजञ्छ्रुतं तत्र मया मुनिसमागमे ॥ लोमशस्य मुखात्कामं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥५७॥ इति संचिंत्य राजेन्द्र कर्तव्यं च सदार्चनम् ॥ भक्त्या परमया देव्याः प्रीत्या च पुरुषर्षभ ॥५८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अपने परिवारमें रहनेवाले और सभी सुलक्षणोंसे युक्त मनुष्योंको देखकर अनुमान कर लेना चाहिए कि इन्होंने भगवतीका आराधन किया है । इस प्रकार अन्वय-व्यतिरेकके क्रमसे अर्थ लगा लेना विद्वानोंका काम है । इनके विपरीत लक्षणवालोंने सब अर्थ और फल देनेवाली भगवतीकी आराधना नहीं की है ॥ ५३–५५ ॥ सब प्रकारसे सम्पन्न मनुष्योंको देखकर समझ लेना चाहिए कि इन मनुष्योंने सदा अम्बिका भगवतीका आराधन किया है । इसी कारण ये संसारमें इतने सुखी हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥५६॥ व्यासजीने कहा—हे राजन् ! नैमिषारण्यकी उस मुनिमण्डलीमें मैंने महर्षि लोमशके मुखसे देवीमाहात्म्यविषयक यह आख्यान सुना ॥ ५७ ॥ इसपर विचार करके हे राजन् ! उच्च कोटिकी भक्ति तथा प्रेमपूर्वक देवीकी अर्चना करनी चाहिए ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अम्बायज्ञकी-विधि) राजा जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन् ! अब मुझे भली-भाँति उन भगवतीके यज्ञकी विधि बताइए। जिसे सुनकर मैं निश्छलभावसे यथाशक्ति वह यज्ञ करूँगा॥१॥ उसकी पूजाविधि, उसके मंत्र, होमद्रव्य, ब्राह्मणोंकी संख्या और दक्षिणा भी बतलानेकी कृपा कीजिए॥ २॥ व्यासजी कहने लगे—हे राजन् ! अब मैं विधिवत् देवीयज्ञका विधान बता रहा हूँ। अनुष्ठानभेदसे वह यज्ञ तीन प्रकारका होता है—॥ ३॥ सात्त्विक, राजस और तामस। मुनियोंके लिए सात्त्विक और राजाओंके लिए राजस यज्ञ कहा गया है॥ ४॥ राक्षसोंके लिए तामस यज्ञ करनेका विधान है। ज्ञानियोंके लिए निर्गुण यज्ञकी व्यवस्था है और वैराग्यसम्पन्न लोगोंके लिए ज्ञानमय यज्ञ विहित होता है। अब मैं उपर्युक्त सभी यज्ञोंका विस्तृत वर्णन कर रहा हूँ॥ ५॥ जिस यज्ञमें देश, काल, द्रव्य, मंत्र तथा ब्राह्मण ये सभी उत्तम हों और यजमानमें सात्त्विकी श्रद्धा विद्यमान हो, वह सात्त्विक यज्ञ कहा जाता है॥ ६॥ हे राजन् ! यज्ञमें जब द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मंत्रशुद्धि ये तीनों कार्य ठीकसे किये जाते हैं, तभी पूर्ण फल मिलता है—नहीं तो पूर्ण फल नहीं प्राप्त होता॥ ७॥ यदि चोरी, ठगी,

॥ राजोवाच॥ वद यज्ञविधिं सम्यग्देव्यास्तस्याः समंततः॥ श्रुत्वा करोम्यहं स्वामिन् यथाशक्ति ह्यतंद्रितः॥ १॥ पूजाविधिं च मंत्रांश्च होमद्रव्यमसंशयम्॥ ब्राह्मणाः कतिसंख्याश्च दक्षिणाश्च तथा पुनः॥ २॥ व्यास उवाच॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्या यज्ञं विधानतः॥ त्रिविधं तु सदा ज्ञेयं विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ३॥ सात्त्विकं राजसं चैव तामसं च तथा परम्॥ मुनीनां सात्त्विकं प्रोक्तं नृपाणां राजसं स्मृतम्॥ ४॥ तामसं राक्षसानां वै ज्ञानिनां तु गुणोज्झितम्॥ विमुक्तानां ज्ञानमयं विस्तरात्प्रब्रवीमि ते॥ ५॥ देशः कालस्तथा द्रव्यं मंत्राश्च ब्राह्मणास्तथा॥ श्रद्धा च सात्त्विकी यत्र तं यज्ञं सात्त्विकं विदुः॥ ६॥ द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मंत्रशुद्धिश्च भूमिप॥ भवेद्यदि तथा पूर्णं फलं भवति नान्यथा॥७॥ अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्॥ न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥ ८॥ तस्मान्न्यायार्जितेनैव कर्तव्यं सुकृतं सदा॥ यशसे परलोकाय भवत्येव सुखाय च॥ ९॥ प्रत्यक्षं तव राजेंद्र पांडवैस्तु मखः कृतः॥ राजसूयः क्रतुवरः समाप्तवरदक्षिणः॥ १०॥ यत्र साक्षाद्धरिः कृष्णो यादवेन्द्रो महामनाः॥ ब्राह्मणाः पूर्णविद्याश्च भारद्वाजादयस्तथा॥ ११॥ कृत्वा यज्ञं सुसंपूर्णं मासमात्रेण पांडवैः॥ प्राप्तं महत्तरं कष्टं वनवासश्च दारुणः॥ १२॥ पीडनं चैव पांचाल्यास्तथा द्यूते पराजयः॥ वनवासो महत्कष्टं क्व गतं मखजं फलम्॥ १३॥ दासत्वं च विराटस्य कृतं सर्वैर्मे-

बेईमानी आदि अन्याय्य रीतिसे कमाये हुए धनके द्वारा जो यज्ञ किया जाता है, उससे न इस लोकमें यश मिलता है और न परलोकमें ही उसका कोई फल होता है॥ ८॥ अतएव न्यायोपार्जित (ईमानदारीसे प्राप्त) धनसे ही पुण्यकार्य करना चाहिए। ऐसा करनेसे इहलोकमें यश और परलोकमें सुख प्राप्त होता है॥९॥ हे राजेन्द्र ! इसका प्रमाण प्रत्यक्ष देख लीजिए। आपके पूर्वज पाण्डवोंने सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ किया और पुष्कल दक्षिणा देकर उसकी समाप्ति की॥ १०॥ जिसमें महामनस्वी यादवेन्द्र साक्षात् भगवान कृष्ण विद्यमान थे। भारद्वाज आदि पूर्ण विद्वान् ब्राह्मणोंने उस यज्ञका सम्पादन किया था॥११॥ इस प्रकार उस यज्ञको भली-भाँति सम्पन्न करनेके बाद एक महीनेके भीतर ही पाण्डवोंपर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी, जिससे उन्हें वनवासका कष्ट सहना पड़ा॥ १२॥ उसीके फलस्वरूप द्रौपदीका अपमान हुआ, युधिष्ठिर जुएमें हार गये और वनवासकी विपत्ति झेलनी पड़ी। तब कहिए तो सही,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस समय महायज्ञका फल कहाँ चला गया ? ॥१३॥ उन पाँचों पाण्डव महात्माओंको राजा विराटकी नौकरी करनी पड़ी और परम सुन्दरी द्रौपदीको कीचकसे कष्ट मिला ॥१४॥ उन पूतात्मा पाण्डवोंको ब्राह्मणोंसे प्राप्त पर्याप्त आशीर्वाद कहाँ गायब हो गया ? उस संकटके समय भगवान वासुदेवकी भक्तिका फल कहाँ चला गया ? ॥१५॥ जिस समय परम सुन्दरी और सती-साध्वी द्रौपदीका केश पकड़कर खींचा गया, उस समय किसीने उसे नहीं बचाया ॥ १६ ॥ जो यज्ञ भगवान कृष्णके नेतृत्वमें हो और जिसके यजमान धर्मपुत्र युधिष्ठिर हों, उस यज्ञके बाद ऐसा फल भोगना पड़े तो यही कहा जा सकता है कि उसमें अवश्य कोई धार्मिक व्यतिक्रम हो गया होगा ॥ १७ ॥ यदि यह कहा जाय कि होनहार ही ऐसा था तो सब शास्त्र निष्फल और वैदिक मंत्र व्यर्थ सिद्ध हो जायँगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ यदि होनहारको ही प्रबल मान लिया जाय तो सभी साधन निष्फल और सारे उपाय निरर्थक हो जायँगे ॥ १९ ॥ भाग्यका सिद्धान्त स्वीकार कर लेनेपर सब वेद और शास्त्र अर्थवाद (वितण्डावाद) के रूपमें परिणत हो जायँगे और सब क्रियायें निरर्थक हो जायँगी। स्वर्गके लिए तप

हात्मभिः ॥ कीचकेन परिक्लिष्टा द्रौपदी च प्रमद्वरा ॥ १४ ॥ आशीर्वादा द्विजातीनां क्व गताः शुद्धचेतसाम् ॥ भक्तिर्वा वासुदेवस्य क्व गता तत्र संकटे ॥ १५ ॥ न रक्षिता तदा बाला केनापि द्रुपदात्मजा ॥ प्राप्तकेशग्रहा काले साध्वी च वरवर्णिनी ॥ १६ ॥ किमत्र चिंतनीयं वै धर्मवैगुण्य-कारणम् ॥ केशवे सति देवेशे धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ॥ १७॥ भवितव्यमिति प्रोक्ते निष्फलः स्यात्तदागमः ॥ वेदमंत्रास्तथाऽन्ये च वितथाः स्युरसंशयम् ॥ १८ ॥ साधनं निष्फलं सर्वमुपायश्च निरर्थकः ॥ भवितव्यं भवत्येव वचने प्रतिपादके ॥ १९ ॥ आगमोऽप्यर्थवादः स्यात्क्रियाः सर्वा निरर्थकाः ॥ स्वर्गार्थं च तपो व्यर्थं वर्णधर्मश्च वै तथा ॥ २० ॥ सर्वं प्रमाणं व्यर्थं स्याद्भवितव्ये कृते हृदि ॥ उभयं चापि मंतव्यं दैवं चोपाय एव च ॥ २१ ॥ कृते कर्मणि चेत्सिद्धिर्विपरीता यदा भवेत् ॥ वैगुण्यं कल्पनीयं स्यात्प्राज्ञैः पण्डितमौलिभिः ॥ २२ ॥ तत्कर्म बहुधा प्रोक्तं विद्वद्भिः कर्मकारिभिः ॥ कर्तृभेदान्मंत्रभेदाद्द्रव्यभेदात्तथा पुनः ॥ २३ ॥ यथा मघवता पूर्वं विश्वरूपो वृतो गुरुः ॥ विपरीतं कृतं तेन कर्म मातृहिताय वै ॥ २४ ॥ देवेभ्यो दानवेभ्यस्तु स्वस्तीत्युक्त्वा पुनः पुनः ॥ असुरा मातृपक्षीयाः कृतं तेषां च रक्षणम् ॥ २५ ॥ दैत्यान् दृष्ट्वाऽतिसंपुष्टांश्चुकोप मघवा तदा ॥ शिरांसि तस्य वज्रेण चिच्छेद तरसा हरिः ॥ २६ ॥ क्रियावैगुण्यमत्रैव कर्तृभेदादसंशयम् ॥ नोचेत्पंचालराजेन रोषेणापि कृता क्रिया ॥ २७ ॥

करना व्यर्थ हो जायगा और वर्णधर्म भी निरर्थक समझा जाने लगेगा ॥ २० ॥ होनहारको हृदयमें स्थान देनेसे सब प्रमाण व्यर्थ हो जायँगे। अतएव भाग्य और उपाय दोनोंपर समान दृष्टिसे विचार करना आवश्यक है ॥ २१ ॥ यदि उपाय करनेपर भी विपरीत फल मिले तो उच्चकोटिके पण्डितों और विद्वानोंको अपने किये हुए कर्मके विषयमें यह विचार करना चाहिए कि उसमें त्रुटि कहाँ हुई है ? ॥ २२ ॥ कर्म करनेवाले विद्वानोंने कर्तृभेद, मन्त्रभेद और द्रव्यभेदसे अनेक भेद बतलाये हैं ॥ २३ ॥ जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने विश्वरूपको अपना गुरु बनाया। विश्वरूपने अपने मातृपक्षवाले दैत्योंका हित करनेके लिए विपरीत कर्म किया ॥२४॥ उसने यज्ञमें देवताओं और दानवों दोनोंके लिए स्वस्तिवाक्यका उपयोग किया। ऐसा करके उसने मातृपक्षके असुरोंकी रक्षा की ॥ २५ ॥ इन्द्रने जब दैत्योंको अतिशय हृष्ट-पुष्ट देखा तो क्रुद्ध हो उठे और अपने वज्रसे तत्काल विश्वरूपका सिर काट लिया ॥ २६ ॥ यहाँ कर्ता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थात् विश्वरूपके कारण कर्ममें वैगुण्य आया। इसमें कोई संशय नहीं है। यदि कर्मवैगुण्यको नहीं माना जाय तो पश्चालराज राजा द्रुपदने रोषपूर्वक इस आशयसे यज्ञ किया था कि भरद्वाजतनय द्रोणाचार्यका नाश हो और मुझे एक पुत्र प्राप्त हो। सो उस यज्ञकी वेदीसे धृष्टद्युम्न नामका एक पुत्र और द्रौपदी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ २७ ॥ २८ ॥ पूर्वकालमें महाराज दशरथने जब पुत्रेष्टि यज्ञ किया तो उन पुत्रहीन राजाके चार पुत्र जायमान हुए ॥ २९ ॥ अतएव हे नृपसत्तम! यदि युक्तिपूर्वक कर्म किया जाय तो वह सर्वथा सिद्धिदायक होता है और युक्तिहीन कर्मका फल उलटा होता है ॥ ३० ॥ इसी प्रकार पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें अवश्य कोई गड़बड़ी हुई, जिससे उनको जुएमें हारना पड़ा ॥ ३१ ॥ हे राजन्! सत्यवादी धर्मपुत्र युधिष्ठिर, साध्वी द्रौपदी तथा धर्मपुत्रके चारों भाई जो दुर्गतिको प्राप्त हुए तो उसका यही कारण ज्ञात होता है कि उनके यज्ञमें कुद्रव्यका उपयोग हुआ। जिससे वैगुण्य आया। या कि उन्होंने अभिमानपूर्वक वह यज्ञ किया था ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे महाराज! सात्त्विक यज्ञका होना दुर्लभ है। ऐसा महान् यज्ञ वैखानस अर्थात् वानप्रस्थ मुनियोंके

भारद्वाजविनाशाय पुत्रस्योत्पादनाय च ॥ धृष्टद्युम्नः समुत्पन्नो वेदिमध्याच्च द्रौपदी ॥ २८ ॥ पुरा दशरथेनापि पुत्रेष्टिस्तु कृता यदा ॥ अपुत्रस्य सुतास्तस्य चत्वारः संप्रजज्ञिरे ॥२९॥ अतः क्रिया कृता युक्त्या सिद्धिदा सर्वथा भवेत् ॥ अयुक्त्या विपरीता स्यात्सर्वथा नृपसत्तम ॥३०॥ पांडवानां यथा यज्ञे किंचिद्वैगुण्ययोगतः ॥ विपरीतं फलं प्राप्तं निर्जितास्ते दुरोदरे ॥ ३१ ॥ सत्यवादी तथा राजन्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ द्रौपदी च तथा साध्वी तथाऽन्येप्यनुजाः शुभाः ॥३२॥ कुद्रव्ययोगाद्वैगुण्यं समुत्पन्नं मखेऽथवा ॥ साभिमानैः कृताद्वापि दूषणं समुपस्थितम् ॥३३॥ सात्त्विकस्तु महाराज दुर्लभो वै मखः स्मृतः ॥ वैखानसमुनीनां हि विहितोऽसौ महामखः ॥ ३४॥ सात्त्विकं भोजनं ये वै नित्यं कुर्वीत तापसाः ॥ न्यायार्जितं च वन्यं च तथा ऋष्यं सुसंस्कृतम् ॥ ३५ ॥ पुरोडाशपरा नित्यं वियूपा मंत्रपूर्वकाः ॥ श्रद्धाधिका मखा राजन्सात्त्विकाः परमाः स्मृताः ॥ ३६ ॥ राजसा द्रव्यबहुलाः सयूपाश्च सुसंस्कृताः ॥ क्षत्रियाणां विशां चैव साभिमानाश्च वै मखाः ॥ ३७ ॥ तामसा दानवानां वै सक्रोधा मदवर्धकाः ॥ सामर्षाः संस्कृताः क्रूरा मखाः प्रोक्ता महात्मभिः ॥ ३८ ॥ मुनीनां मोक्षकामानां विरक्तानां महात्मनाम् ॥ मानसस्तु स्मृतो यागः सर्वसाधनसंयुतः ॥ ३९ ॥ अन्येषु सर्वयज्ञेषु किंचिन्न्यूनं भवेदपि ॥ द्रव्येण श्रद्धया वाऽपि क्रियया ब्राह्मणैस्तदा ॥४०॥ देशकालपृथग्द्रव्यसाधनैः सकलैस्तथा ॥

लिए ही विहित माना जाता है ॥ ३४ ॥ जो तपस्वी नित्य न्यायोपार्जित वन्य फल-मूल और ऋषियों द्वारा निर्मित पुरोडाश (यज्ञशिष्ट अन्न) का सात्त्विक भोजन करते और अत्यधिक श्रद्धाके साथ पशुबलिविहीन समन्त्रक यज्ञ करते हैं, उनका किया हुआ यज्ञ सात्त्विक यज्ञ कहलाता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ राजस यज्ञ वे कहलाते हैं कि जिनमें बहुत धन खर्च किया जाय। उनमें पशुबलिके लिए बड़े सुन्दर यूप (खम्भे) बनाये जाते हैं और वे यज्ञ अभिमानपूर्वक किये जाते हैं ॥ ३७ ॥ महात्मा मुनियोंने तामस यज्ञ दानवोंके लिए बतलाया है। तामस यज्ञ मदवर्धक होते हैं। वे यज्ञ कोपपूर्वक किये जाते हैं। क्योंकि वे अमर्ष (लाग-डाँट) के साथ होते हैं और बड़ी सज-धज तथा क्रूरताके साथ किये जाते हैं ॥३८॥ मोक्ष चाहनेवाले मुनियों और विरक्त महात्माओंके लिए सभी साधनोंसे पूर्ण मानस यज्ञका विधान किया गया है ॥ ३९ ॥ अन्य सब यज्ञोंमें कुछ न्यूनता भी हो तो द्रव्यसे, कर्मसे, ब्राह्मणोंसे अथवा देश-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काल तथा द्रव्यके अन्यान्य साधनोंसे इतनी अच्छी पूर्ति नहीं हो सकती, जितनी कि इस मानस यज्ञसे हो सकती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ यह यज्ञ करनेके लिए सर्वप्रथम मनःशुद्धिकी आवश्यकता पड़ती है। मनके शुद्ध और निर्गुण हो जानेपर देह स्वतः शुद्ध हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४२ ॥ जब मन शुद्ध होकर इन्द्रियोंके विषयोंमें रमण करना छोड़ देता है, तभी प्राणी इस मानस यज्ञको करनेका अधिकारी होता है ॥ ४३ ॥ मनःशोधनके पश्चात् मानस यज्ञ करनेका इच्छुक प्राणी मन ही मन अनेक योजन विस्तृत बहुतेरे यज्ञीय वृक्षोंके खम्भोंसे अलंकृत यज्ञमण्डपकी रचना करे ॥ ४४ ॥ मन ही मन खूब लम्बी-चौड़ी वेदी बनाये और उसपर मानसिक अग्निकी स्थापना करे ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणोंका वरण भी मनसे ही कल्पित करके ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता और सभ्योंकी कल्पना करके मनसे ही प्रयत्नपूर्वक उनका पूजन करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान इन पाँचों शारीरिक वायुओंकी अग्निरूपसे कल्पना करके उसी मनःकल्पित वेदीपर स्थापित करे ॥ ४८ ॥ उन पाँचोंमें प्राणवायुको गार्हपत्य अग्नि, अपान वायुको आहवनीयक,

नान्यो भवति पूर्णो वै यथा भवति मानसः ॥ ४१ ॥ प्रथमं तु मनः शोध्यं कर्तव्यं गुणवर्जितम् ॥ शुद्धे मनसि देहो वै शुद्ध एव न संशयः ॥ ४२ ॥
इन्द्रियार्थपरित्यक्तं यदा जातं मनः शुचि ॥ तदा तस्य मखस्यासौ प्रभवेदधिकारवान् ॥ ४३ ॥ तदाऽसौ मंडपं कृत्वा बहुयोजनविस्तृतम् ॥ स्तम्भैश्च
विपुलैः श्लक्ष्णैर्यज्ञियद्रुमसंभवैः ॥ ४४ ॥ वेदीं च विशदां तत्र मनसा परिकल्पयेत् ॥ अग्नयोऽपि तथा स्थाप्या विधिवन्मनसा किल ॥ ४५ ॥
ब्राह्मणानां च वरणं तथैव प्रतिपाद्य च ॥ ब्रह्माऽध्वर्युस्तथा होता प्रस्तोता विधिपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ उद्गाता प्रतिहर्ता च सभ्याश्चान्ये यथाविधि ॥
पूजनीयाः प्रयत्नेन मनसैव द्विजोत्तमाः ॥ ४७ ॥ प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानोदान एव ॥ पावकाः पञ्च एवैते स्थाप्या वेद्यां विधानतः ॥ ४८ ॥
गार्हपत्यस्तदा प्राणोऽपानश्चाहवनीयकः ॥ दक्षिणाग्निस्तथा व्यानः समानश्चावसथ्यकः ॥ ४९ ॥ सभ्योदानः स्मृता ह्येते पावकाः परमोत्कटाः ॥
द्रव्यं च मनसा भाव्यं निर्गुणं परमं शुचि ॥ ५० ॥ मन एव तदा होता यजमानस्तथैव तत् ॥ यज्ञाधिदेवता ब्रह्म निर्गुणं च सनातनम् ॥ ५१ ॥
फलदा निर्गुणा शक्तिः सदा निर्वेददा शिवा ॥ ब्रह्मविद्याऽखिलाधारा व्याप्य सर्वत्र संस्थिता ॥ ५२ ॥ तदुद्देशेन तद्द्रव्यं हुनेत्प्राणाग्निषु द्विजः ॥
पश्चाच्चित्तं निरालंबं कृत्वा प्राणानपि प्रभो ॥ ५३ ॥ कुण्डलीमुखमार्गेण हुनेद् ब्रह्मणि शाश्वते ॥ स्वानुभूत्या स्वयं साक्षात्स्वात्मभूतां महेश्वरीम्

व्यानवायुको दक्षिणाग्नि, समानवायुको आवसथ्य अग्नि और उदानवायुको सभ्यके रूपमें कल्पित करे। ये पाँचों अग्नि बड़े उत्कृष्ट माने गये हैं। उसके लिए निर्दोष और परम पवित्र सामग्रियोंकी भी मानसिक कल्पना करे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस यज्ञमें मन ही होता और मन ही यजमान बनता है। इस यज्ञका अधिदेवता सनातन और निर्गुण ब्रह्म होता है। जो फलदायिनी, निर्गुणा, वैराग्यदायिनी, सदा कल्याणकारिणी, ब्रह्मविद्या और समस्त विश्वकी आधारस्वरूपा है और जो सबमें व्याप्त होकर सर्वत्र विराजमान है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उसी जगदम्बाके प्रीत्यर्थ उन मनःकल्पित हवनसामग्रियोंकी अपने प्राणरूपी अग्निमें आहुति दे। हे महाराज ! इस प्रकार मानस हवन करनेके बाद अपने मनको विषयमुक्त करके कुण्डलिनीके मुखमार्गसे सुषुम्ना रन्ध्र द्वारा उस प्राणाग्निको भी शाश्वत अग्निमें होम दे। इस प्रकार प्राणके भी लय हो जानेपर समाधिकी स्थिति आती है। इस स्थितिमें देवीको अपनेसे अभिन्न समझता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ साक्षात् महेश्वरीदेवीका शान्त चित्तसे ध्यान करे। ऐसा करनेसे साधक जब सब प्राणियोंमें अपने आपको और सबको अपनेमें विद्यमान देखने लगता है, तब उस भूतात्मा प्राणीको भगवती शिवाका दर्शन प्राप्त होता है। उस सच्चिदानन्दरूपिणी भगवतीका दर्शन पाकर वह ब्रह्मज्ञानी हो जाता है॥ ५३-५६॥ हे राजन्! ब्रह्मज्ञानीकी सब मायायें जलकर भस्म हो जाती हैं। केवल प्रारब्ध कर्म ही देहस्थिति तक शेष रहता है॥ ५७॥ बादमें वह शीघ्र जीवन्मुक्त हो जाता है। हे तात! जो प्राणी जगदम्बाका भजन करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है॥ ५८॥ अतएव गुरुके आदेशानुसार सभी उपायों द्वारा श्रीभुवनेश्वरी देवीका ध्यान, श्रवण और मनन करना चाहिए॥ ५९॥ हे राजन्! इस प्रकार किया हुआ मानस यज्ञ मोक्षदायक होता है। इसमें संशय नहीं है। और-और यज्ञ सकाम होनेके कारण विनाशशील होते हैं॥६०॥ जो मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करना चाहता हो, वह विधिवत् अग्निष्टोम यज्ञ करे। विद्वान् मनीषियों कथन है कि यही वेदोंकी आज्ञा है॥ ६१॥ वे ही यह भी कहते हैं कि पुण्य समाप्त हो जानेपर दिवंगत प्राणी पुनः अपनी बुद्धिके अनुसार मृत्युलोकमें आकर जन्म

॥ ५४॥ समाधिनैव योगेन ध्यायेच्चेतस्यनाकुलः॥ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि॥ ५५॥ यदा पश्यति भूतात्मा तदा पश्यति तां शिवाम्॥ दृष्ट्वा तां ब्रह्मविद्भूयात्सच्चिदानंदरूपिणीम्॥ ५६॥ तदा मायादिकं सर्वं दग्धं भवति भूमिप॥ प्रारब्धं कर्ममात्रं तु यावद्देहं च तिष्ठति॥ ५७॥ जीवन्मुक्तस्तदा जातो मृतो मोक्षमवाप्नुयात्॥ कृतकृत्यो भवेत्तात यो भजेज्जगदम्बिकाम्॥ ५८॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ध्येया श्रीभुवनेश्वरी॥ श्रोतव्या चैव मंतव्या गुरुवाक्यानुसारतः॥५९॥ राजन्नेवं कृतो यज्ञो मोक्षदो नात्र संशयः॥ अन्ये यज्ञाः सकामास्तु प्रभवंति क्षयोन्मुखाः॥ ६०॥ अग्निष्टोमेन विधिवत्स्वर्गकामो यजेदिति॥ वेदानुशासनं नैतत्प्रवदंति मनीषिणः॥ ६१॥ क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं विशंति च यथामति॥ तस्मात्तु मानसः श्रेष्ठो यज्ञोऽप्यक्षय एव सः॥६२॥ न राज्ञा साधितुं योग्यो मखोऽसौ जयमिच्छता॥ तामसस्तु कृतः पूर्वं सर्पयज्ञस्त्वयाऽधुना॥६३॥ वैरं निर्वाहितं राजंस्तक्षकस्य दुरात्मनः॥ यत्कृते निहताः सर्पास्त्वयाऽग्नौ कोटिशः परे॥ ६४॥ देवीयज्ञं कुरुष्वाद्य विततं विधिपूर्वकम्॥ विष्णुना यः कृतः पूर्वं सृष्ट्यादौ नृपसत्तम॥ ६५॥ तथा त्वं कुरु राजेन्द्र विधिं ते प्रब्रवीम्यहम्॥ ब्राह्मणाः संति राजेन्द्र विधिज्ञा वेदवित्तमाः॥ ६६॥ देवीबीजविधानज्ञा मन्त्रमार्गविचक्षणाः॥ याजकास्ते भविष्यन्ति यजमानस्त्वमेव हि॥ ६७॥ कृत्वा यज्ञं विधानेन दत्त्वा पुण्यं मखार्जितम्॥

लेते हैं। अतएव मानस यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है। क्योंकि उसका फल अविनाशी होता है॥ ६२॥ विजयाभिलाषी राजा इस मानस यज्ञकी साधना नहीं कर सकता। कुछ ही समय पूर्व आप तामस सर्पयज्ञ कर चुके हैं॥ ६३॥ हे राजन्! आपने उसमें दुरात्मा तक्षकसे वैरका बदला चुकाया था। जिसमें अकेले तक्षक नागसे वैर होनेके कारण आपने करोड़ों सर्पोंको अग्निकुण्डमें झोंक दिया॥६४॥ हे नृपसत्तम! अब आप विधिके साथ वह विस्तृत देवीयज्ञ करिए, जिसे पूर्वकालमें सृष्टिके पहले विष्णु भगवान्ने किया था॥६५॥ हे राजेन्द्र! आप भी वैसा ही देवीयज्ञ करिए। उसकी विधि मैं आपको बता रहा हूँ। हे नृपेन्द्र! आपके यहाँ वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ और विधि-विधानके अभिज्ञ बहुतेरे ब्राह्मण हैं। वे देवीबीजके विधानसे अभिज्ञ और मंत्रमार्गके धुरन्धर विद्वान् हैं। वे आपके याजक होंगे और आप यजमान॥ ६६॥ ६७॥ सो आप वह देवीयज्ञ करके उससे प्राप्त फल अपने पिताजीको देकर उन्हें ब्रह्मशापकी दुर्गतिसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उबारिए ॥ ६८ ॥ किसी ब्राह्मणके अपमानका पाप बड़ा भयानक और नरकदायक होता है। हे अनघ! आपके पिताको वैसा ही विप्रशापका दोष प्राप्त हुआ था ॥ ६९ ॥ जिसके कारण उन्हें सर्पके काटनेसे अकाल मृत्यु प्राप्त हुई। सो भी न भूमिमें और न कुशासनपर, बल्कि आकाशमें उनका मरण हुआ ॥ ७० ॥ न तो क्षात्रधर्मके अनुसार रणभूमिमें और न गङ्गातटपर ही उनकी मृत्यु हुई, बल्कि एक बहुत ऊँची अटारीपर बिना कुछ दान-पुण्य किये ही वे मर गये ॥७१॥ हे सम्राट्! उपर्युक्त सभी कारण नरक भेजनेमें सहायक होते हैं। इनमेंसे एक भी कारण ऐसा नहीं था कि जो उन्हें दुर्गतिसे बचा पाता ॥ ७२ ॥ क्योंकि प्राणी चाहे जहाँ रहे, किन्तु जब कालको समीप समझे, तब साधनोंके अभावमें अत्यधिक कष्टके कारण त्रस्त हो जाय ॥ ७३ ॥ साथ ही मनको सर्वथा निर्मल करके आत्मामें वैराग्यकी भावनाको प्रश्रय दे और सोचे कि शरीर तो पृथिवी-जल आदि पञ्चतत्त्वों द्वारा निर्मित एक दुःखदायी पींजरा है। मेरा इसमें क्या है? ॥७४॥ यह शरीर चाहे आज ही नष्ट हो जाय। क्योंकि मैं तो निर्गुण और अविनाशी हूँ और ये पञ्चतत्त्व नाशवान् हैं। तब इनके जानेमें मुझे क्या क्लेश?

समुद्धर महाराज पितरं दुर्गतिं गतम् ॥ ६८ ॥ विप्रावमानजं पापं दुर्घटं नरकप्रदम् ॥ तथैव शापजो दोषः प्राप्तः पित्रा तवानघ ॥ ६९ ॥ तथा दुर्मरणं प्राप्तं सर्पदंशेन भूभुजा ॥ अन्तराले तथा मृत्युर्न भूमौ कुशसंस्तरे ॥ ७० ॥ न संग्रामे न गंगायां स्नानदानादिवर्जितम् ॥ मरणं ते पितुस्तत्र सौधे जातं कुरूद्वह ॥७१॥ कृपणानि च सर्वाणि नरकस्य नृपोत्तम॥ तत्रैकं कारणं तस्य न जातं चातिदुर्लभम् ॥७२॥ यत्र यत्र स्थितः प्राणी ज्ञात्वा कालं समागतम् ॥ साधनानामभावेऽपि ह्यवशश्चातिसंकटे ॥७३॥ यदा निर्वेदमायाति मनसा निर्मलेन वै ॥ पंचभूतात्मको देहो मम किं चात्र दुःखदम् ॥७४॥ पतत्वद्य यथाकामं मुक्तोऽहं निर्गुणोऽव्ययः ॥ नाशात्मकानि तत्त्वानि तत्र का परिदेवना ॥७५॥ ब्रह्मैवाहं न संसारी सदा मुक्तः सनातनः ॥ देहेन मम संबंधः कर्मणा प्रतिपादितः ॥ ७६ ॥ तानि सर्वाणि मुक्तानि शुभानि चेतराणि च ॥ मनुष्यदेहयोगेन सुखदुःखानुसाधनात् ॥ ७७ ॥ विमुक्तोऽतिभयाद्घोरादस्मात्संसारसंकटात् ॥ इत्येवं चिंत्यमानस्तु स्नानदानविवर्जितः ॥ ७८ ॥ मरणं चेदवाप्नोति स मुच्येज्जन्मदुःखतः ॥ एषा काष्ठा परा प्रोक्ता योगिनामपि दुर्लभा ॥ ७९ ॥ पिता ते नृपशार्दूल श्रुत्वा शापं द्विजोदितम् ॥ देहे ममत्वं कृतवान्न निर्वेदमवाप्तवान् ॥ ८० ॥ नीरोगो मम देहोऽयं राज्यं निहतकंटकम् ॥ कथं जीवाम्यहं कामं मंत्रज्ञानानयंतु वै ॥ ८१ ॥ औषधं मणिमन्त्रं च यंत्रं परमकं तथा ॥ आरोहणं

मैं तो सदा मुक्त और सनातन ब्रह्म हूँ। मैं कोई संसारी जीव नहीं हूँ। कर्मसे निर्मित देहके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ शरीरके किये हुए शुभ तथा अशुभ कार्योंसे मुझे छुटकारा मिल गया। सुख-दुःखके साधनस्वरूप देह धारण करनेके अत्यन्त भयानक संसारसंकटसे मेरा पिण्ड छूट गया। यदि मनमें ऐसी दिव्य भावनायें उठ रही हों तो स्नान-दानहीन मृत्यु भी मुक्तिके रूपमें परिणत हो जाती है और उसे फिर जन्मका संकट नहीं झेलना पड़ता। लेकिन यह दिशा (मार्ग) कठिन होनेके कारण योगियोंको भी दुर्लभ है ॥ ७७–७९ ॥ हे नृपतिशार्दूल! आपके पिताने उस ब्राह्मणका शाप सुन करके भी अपनी देहपर ममता की। वैराग्य भावको प्रोत्साहन देनेका कोई उपाय नहीं किया, जिससे उन्हें मुक्ति नहीं मिल सकी ॥ ८० ॥ उनकी तो यह इच्छा थी कि मेरा शरीर सदा नीरोग बना रहे और मैं चिरकालतक अकण्टक राज्य करता रहूँ। उनकी यही लालसा थी कि मैं बहुत दिनों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक जीऊँ। इसी लिए उन्होंने मंत्रियोंको आज्ञा दी कि सर्पविष उतारनेका मंत्र जाननेवालोंको बुलाओ ॥८१॥ योजनानुसार उन्होंने औषधि, मणि, मन्त्र और यन्त्रसे सुसज्जित एक बहुत ऊँचा महल बनवाया और उसके ऊपरी भागमें जाकर रहने अगे ॥८२॥ उन्होंने न स्नान किया, न दान दिया और न कभी भगवतीका स्मरण किया। दैवको प्रधान मानकर भूमिपर भी नहीं सोये ॥ ८३ ॥ कलिके सम्पर्कमें आ जानेके कारण उन्हें एक तपस्वीके अपमानका पाप करना पड़ा। जिससे विषम मोहरूपी समुद्रमें डूबकर अटारीके ऊपर सर्पके डसनेसे मरे ॥ ८४ ॥ हे नृपोत्तम ! ऐसा आचरण करनेवालोंको अवश्य नरकगामी होना पड़ता है। अतएव हे नृपोत्तम ! आप अपने पिताका उस पापसे उद्धार करिए ॥८५॥ सूतजीने कहा कि अमित तेजस्वी व्यासजीके वचन सुनकर राजा जनमेजय बहुत दुखी हुए और उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी ॥८६॥ उन्होंने कहा—मेरे जीवनको धिक्कार है। आज मेरे पिता नरकमें पड़े हुए हैं। मैं अब ऐसा उपाय करूँगा कि जिससे महारानी उत्तराके पुत्र राजा परीक्षित नरकसे निकलकर स्वर्गमें चले जायँ ॥८७॥ इति श्रीदेवीभागवते तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

तथा सौधे कृतवान्नृपतिस्तदा ॥ ८२ ॥ न स्नानं न कृतं दानं न देव्याः स्मरणं कृतम् ॥ न भूमौ शयनं चैव दैवं मत्वा परं तथा ॥ ८३ ॥ मग्नो महार्णवे घोरे मृतः सौधेऽहिना हतः ॥ कृत्वा पापं कलेर्योगत्तापसस्यावमानजम् ॥ ८४ ॥ अवश्यमेव नरक एतैराचरणैर्भवेत् ॥ तस्मात्तं पितरं पापात्समुद्धर नृपोत्तम ॥८५॥ सूत उवाच॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामिततेजसः ॥ साश्रुकंठोऽतिदुःखार्तो बभूव जनमेजयः ॥८६॥ धिगिदं जीवितं मेऽद्य पिता मे नरके स्थितः ॥ तत्करोमि यथैवाद्य स्वर्गं यात्युत्तरासुतः ॥८७॥ इति श्रीदेवीभागवते तृतीयस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

राजोवाच ॥ हरिणा तु कथं यज्ञः कृतः पूर्वं पितामह ॥ जगत्कारणरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १ ॥ के सहायास्तु तत्रासन्ब्राह्मणाः के महामते ॥ ऋत्विजो वेदतत्त्वज्ञास्तन्मे ब्रूहि परंतप ॥ २ ॥ पश्चात्करोम्यहं यज्ञं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ श्रुत्वा विष्णुकृतं यागमंबिकायाः समाहितः ॥३॥ व्यास उवाच ॥ राजञ्छृणु महाभाग विस्तरं परमाद्भुतम् ॥ यथा भगवता यज्ञः कृतश्च विधिपूर्वकः ॥४॥ विसर्जिता यदा देव्या दत्त्वा शक्तीश्च तास्त्रयः ॥ काजेशाः पुरुषा जाता विमानवरमास्थिताः ॥ ५ ॥ प्राप्ता महार्णवं घोरं त्रयस्ते विबुधोत्तमाः ॥ चक्रुः स्थानानि वासार्थं समु-

(भगवान विष्णुका देवीयज्ञ) राजा जनमेजय बोले-हे पितामह व्यासजी ! समस्त जगत्के कारणस्वरूप और अखिल विश्वके प्रभु भगवान विष्णुने वह यज्ञ किस प्रकार किया ? ॥१॥ हे महामते ! उस यज्ञमें कौन-कौन महानुभाव सहायक थे ? उनमें ब्राह्मण कौन-कौन थे ? हे परन्तप ! उस यज्ञमें वेदका तत्त्व समझनेवाले कौन-कौन विद्वान् थे ? ॥२॥ भगवानके किये हुए देवीयज्ञका वर्णन सुननेके बाद मैं भी शान्त चित्तसे विधिपूर्वक वह यज्ञ करूँगा ॥ ३ ॥ व्यासजी कहने लगे-हे महाभाग ! हे राजन् ! अब मैं विस्तारके साथ भगवान विष्णुके द्वारा किये हुए देवीज्ञयका वृत्तान्त बताता हूँ ॥४॥ उस समय भगवतीने जब ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवको भिन्न-भिन्न शक्तियाँ देकर विदा कर दिया। तब वे लौटकर विमानमें जाकर बैठ गये। उस विमानपर बैठते ही वे तीनों स्त्रीत्व त्यागकर पुनः पुरुष हो गये ॥५॥ वहाँसे चलकर वे तीनों देवता फिर उसी घोर महासमुद्रमें पहुँच गये। वहाँ उन्होंने पृथिवी उत्पन्न की और उसपर रहनेके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिए निवासस्थान बनाया ॥ ६ ॥ उसी समय भगवतीने पृथिवीको अविचल आधारशक्ति दे दी। उसी शक्तिके आधारपर पृथिवी रुकी हुई है। इसीसे पृथिवीका एक नाम धरा भी है ॥ ७ ॥ मधु-कैटभ नामक दैत्योंके मेद (चर्बी) से संयोग होनेके कारण पृथिवीको मेदिनी कहते हैं। धारणका गुण होनेके कारण इसको धरा तथा विस्तारके कारण पृथ्वी कहते हैं ॥ ८ ॥ अपनी महत्ताके कारण यह मही कहलाती है और यह शेषनागके मस्तकपर धरी हुई है। इसे यथास्थान स्थित रखनेके लिए बड़े-बड़े विशाल पर्वतोंकी रचना की गयी है ॥ ९ ॥ जैसे कहीं किसी काठके तख्तेको जड़नेके लिए कीलें ठोंकी जाती हैं, उसी प्रकार पृथ्वीको रोकनेके लिए स्थान-स्थानपर ये पर्वत स्थापित किये गये हैं। ऐसा विद्वानोंका कथन है ॥१०॥ अनेक योजन विस्तृत सुमेरु पर्वत सोनेका बना हुआ है। उसके शिखर मणियोंके हैं। इस कारण वह बड़ा अद्भुत पर्वत है ॥ ११ ॥ मरीचि, नारद, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष और

त्पाद्य धरां स्थिताः ॥ ६ ॥ आधारशक्तिरचला दत्ता देव्या स्वयं ततः ॥ तदाधारा स्थिता जाता धरा मेदःसमन्विता ॥ ७ ॥ मधुकैटभयोर्मेदः-संयोगान्मेदिनी स्मृता ॥ धारणाच्च धरा प्रोक्ता पृथ्वी विस्तारयोगतः ॥ ८ ॥ मही चापि महीयस्त्वाद्धृता सा शेषमस्तके ॥ गिरयश्च कृताः सर्वे धारणार्थं प्रविस्तराः ॥९॥ लोहकीलं यथा काष्ठे तथा ते गिरयः कृताः ॥ महीधरा महाराज प्रोच्यन्ते विबुधैर्जनैः ॥१०॥ जातरूपमयो मेरुर्बहु-योजनविस्तरः ॥कृतो मणिमयैः शृङ्गैः शोभितः परमाद्भुतः॥ ११ ॥ मरीचिर्नारदोऽत्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ दक्षो वसिष्ठ इत्येते ब्रह्मणः प्रथिताः सुताः ॥१२॥ मरीचेः कश्यपो जातो दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥ ताभ्यो देवाश्च दैत्याश्च समुत्पन्ना ह्यनेकशः ॥ १३ ॥ ततस्तु काश्यपी सृष्टिः प्रवृत्ता चातिविस्तरा ॥ मनुष्यपशुसर्पादिजातिभेदैरनेकधा ॥ १४ ॥ ब्रह्मणश्चार्धदेहात्तु मनुः स्वाम्भुवोऽभवत् ॥ शतरूपा तथा नारी संजाता वामभागतः ॥ १५ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ तस्या बभूवतुः ॥ तिस्रः कन्या वरारोहा ह्यभवन्नतिसुन्दराः ॥ १६ ॥ एवं सृष्टिं समुत्पाद्य भगवान्कमलोद्भवः ॥ चकार ब्रह्मलोकं च मेरुशृंगे मनोहरम् ॥ १७ ॥ वैकुण्ठं भगवान्विष्णू रमारमणमुत्तमम् ॥ क्रीडास्थानं सुरम्यं च सर्वलोकोपरि स्थितम् ॥ १८ ॥ शिवोऽपि परमं स्थानं कैलासाख्यं चकार ह ॥ समासाद्य भूतगणं विजहार यथारुचि ॥ १९ ॥ स्वर्गस्त्रिविष्टपो मेरुशिखरोपरि कल्पितः ॥ तच्च

वसिष्ठ ये ब्रह्माजीके विख्यात पुत्र हैं ॥१२॥ ब्रह्मपुत्र मरीचिके पुत्र कश्यप हुए और दक्षप्रजापतिके तेरह कन्यायें उत्पन्न हुईं। उन तेरहों कन्याओंसे बहुतेरे देवता और दैत्य उत्पन्न हुए ॥१३॥ इसके बाद कश्यपकी अति विस्तृत सृष्टि प्रवृत्त हुई। उस सृष्टिमें मनुष्य, पशु और सर्पजातिके अनेक जीव उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥ ब्रह्माजीके दाहिने भागके आधे शरीरसे स्वायम्भुव मनु और वामभागके आधे शरीरसे शतरूपा नामकी कन्या उत्पन्न हुई ॥१५॥ उस शतरूपासे प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामके दो पुत्र और तीन कन्यायें जायमान हुईं। वे कन्यायें बड़ी ही सुन्दरी थीं ॥ १६ ॥ इस प्रकार सृष्टि करके कमलसे उत्पन्न ब्रह्माजीने सुमेरु पर्वतके शिखरपर बहुत सुन्दर ब्रह्मलोक बसाया ॥ १७ ॥ भगवान विष्णुने लक्ष्मीकी विहारभूमि, सब लोकोंके ऊपर, रमणीक, क्रीडास्थानस्वरूप उत्तम वैकुण्ठधामका निर्माण कराया ॥१८॥ शिवजीने कैलास पर्वतको अपने लिए विहारस्थल चुना और भूतगणोंके साथ वहाँ सानन्द विहार करने लगे ॥१९॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुमेरु पर्वतके विविध रत्नोंसे परिपूर्ण एक शिखरपर त्रिविष्टप नामके स्वर्गकी रचना हुई। वहाँ इन्द्रका निवासस्थान बना ॥२०॥ आगे चलकर समुद्रमन्थनसे उत्पन्न सर्वश्रेष्ठ वृक्ष पारिजात, चार दाँतका ऐरावत हाथी, कामनायें पूर्ण करनेवाली कामधेनु गौ, उच्चैःश्रवा घोड़ा और रम्भा आदि अनेक अतीव सुन्दरी अप्सरायें निकलीं, वे सभी वस्तुयें इन्द्रको मिलीं और स्वर्गकी शोभा बढ़ाने लगीं ॥ २१ ॥ २२ ॥ धन्वन्तरि वैद्य और चन्द्रमा भी उसी समुद्रसे निकले थे। वे दोनों भी बहुतेरे देवताओंसे घिरकर स्वर्गमें रहने लगे ॥ २३ ॥ हे नृपसत्तम ! इस प्रकार देवता, मनुष्य और पशुभेदसे तीन प्रकारकी सृष्टियाँ हुईं ॥ २४ ॥ उसके बाद अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज इन चार जातियोंके भेदसे बहुतेरे जीवोंकी सृष्टि हुई। उन सभी जीवोंके साथ कर्म लगा हुआ था ॥ २५ ॥ इस प्रकार सृष्टि करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपने-अपने लोकोंमें यथेच्छ विहार करने लगे ॥ २६ ॥ इस तरह सृष्टिका क्रम बढ़ जानेपर

स्थानं सुरेन्द्रस्य नानारत्नविराजितम् ॥२०॥ समुद्रमथनात्प्राप्तः पारिजातस्तरूत्तमः ॥ चतुर्दंतस्तथा नागः कामधेनुश्च कामदा ॥२१॥ उच्चैःश्रवास्तथाऽश्वो वै रंभाद्यप्सरसस्तथा ॥ इन्द्रेणोपात्तमखिलं जातं वै स्वर्गभूषणम् ॥ २२ ॥ धन्वंतरिश्चन्द्रमाश्च सागराच्च समुद्भवौ ॥ स्वर्गस्थितौ विराजेते देवौ बहुगणैर्वृतौ ॥ २३ ॥ एवं सृष्टिः समुत्पन्ना त्रिविधा नृपसत्तम ॥ देवतिर्यङ्मनुष्यादिभेदैर्विविधकल्पिता ॥ २४ ॥ अंडजाः स्वेदजाश्चैव चोद्भिज्जाश्च जरायुजाः ॥ चतुर्भेदैः समुत्पन्ना जीवाः कर्मयुताः किल ॥२५॥ एवं सृष्टिं समासाद्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ विहारं स्वेषु स्थानेषु चक्रुः सर्वे यथेप्सितम् ॥ २६ ॥ एवं प्रवर्तिते सर्गे भगवान्प्रभुरच्युतः ॥ महालक्ष्म्या समं तत्र चिक्रीड भुवने स्वके ॥ २७ ॥ एकस्मिन्समये विष्णुर्वैकुण्ठे संस्थितः पुरा ॥ सुधासिन्धुस्थितं द्वीपं सस्मार मणिमंडितम् ॥ २८ ॥ तत्र दृष्ट्वा महामायां मन्त्रश्चासादितः शुभः ॥ स्मृत्वा तां परमां शक्तिं स्त्रीभावं गमितो यया ॥ २९ ॥ यज्ञं कर्तुं मनश्चक्रे अम्बिकाया रमापतिः ॥ उत्तीर्य भुवनात्तस्मात्समाहूय महेश्वरम् ॥ ३० ॥ ब्रह्माणं वरुणं शक्रं कुबेरं पावकं यमम् ॥ वसिष्ठं कश्यपं दक्षं वामदेवं बृहस्पतिम् ॥ ३१ ॥ संभारं कल्पयामास यज्ञार्थं चातिविस्तरम् ॥ महाविभवसंयुक्तं सात्त्विकं च मनोहरम् ॥ ३२ ॥ मंडपं विततं तत्र कारयामास शिल्पिभिः ॥ ऋत्विजो वरयामास सप्तविंशति सुव्रतान् ॥ ३३ ॥ चितिं च कारयामास वेदीश्चैव सुविस्तराः ॥ प्रजेपुर्ब्राह्मणा मंत्रान्देव्या बीजसमन्वितान् ॥ ३४ ॥ जुहुवुस्ते हविः कामं विधिवत्परिकल्पिते ॥ कृते तु वितते होमे वागुवाचाश-

अच्युत भगवान् विष्णु अपने लोकमें विराजमान थे। सहसा उन्हें अमृतके समुद्रमें विद्यमान और मणियोंसे सुशोभित उस द्वीपका स्मरण आया ॥२७॥२८॥ जहाँ उन्हें भगवती महामायाका दर्शन मिला था और जिनकी कृपासे यह शुभ मंत्र प्राप्त हुआ था। उन्हें इस बातका भी स्मरण हुआ कि उन्हीं माहामायाकी महिमासे वे पुरुषसे स्त्री बन गये थे ॥२९॥ तत्काल रमापति भगवान विष्णुने उन देवीका यज्ञ करनेका संकल्प किया। तदनुसार वे अपने धामसे नीचें उतरे और शिवजी, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, कुबेर, अग्नि, यम, वसिष्ठ, कश्यप, दक्ष, वामदेव और बृहस्पतिको आमन्त्रित किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यज्ञकार्यके लिए बहुत अधिक सामग्रियाँ जुटायीं, जो प्रचुर वैभवसे पूर्ण, सात्त्विक और सुन्दर थीं ॥ ३२ ॥ उच्चकोटिके शिल्पियों द्वारा उन्होंने खूब लम्बा-चौड़ा यज्ञमंडप बनवाया और सत्ताईस व्रतधारी ऋत्विजोंका वरण किया ॥ ३३ ॥ मंडपनिर्माणके पश्चात् चैत्य तथा विस्तृत वेदी बनायी गयी। ब्राह्मणगण बीजयुक्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवीमंत्रका जप करने लगे ॥ ३४ ॥ अग्निस्थापन करके उन विप्रोंने हविकी आहुति दी । होमकार्य सम्पन्न हो जानेपर विष्णुभगवानका सम्बोधन करके यह आकाशवाणी हुई– हे विष्णो ! हे हरे ! आप सदा सब देवताओंसे श्रेष्ठ होंगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ आप सब देवताओंके माननीय पूज्य और समर्थ होंगे । ब्रह्मा और इन्द्र समेत सब देवता आपका पूजन करेंगे ॥ ३७ ॥ पृथिवीनिवासी सब मनुष्य आपकी भक्ति करेंगे और आप सभी मनुष्योंको वरदान देंगे ॥३८॥ आप समस्त देवताओंके वरदाता और परम परमेश्वर होंगे । सभी यज्ञोंमें आप मुख्य माने जायँगे और सभी याज्ञिक सर्वप्रथम आपकी ही पूजा करेंगे ॥ ३९ ॥ संसारके जनसाधारण आपकी आराधना करेंगे और आप उन्हें वरदान देंगे । देवता जब दानवोंसे कष्ट पायेंगे, तब वे आपकी ही शरण लेंगे ॥ ४० ॥ हे पुरुषोत्तम ! आप सबको शरण देंगे । सभी वेदों और अतीव विस्तृत अठारह पुराणोंमें आप ही अग्रपूजाके अधिकारी कहे जायँगे । आपकी बड़ी कीर्ति

रीरिणी ॥ ३५ ॥ विष्णुं तदा समाभाष्य सुस्वरा मधुराक्षरा ॥ विष्णो त्वं भव देवानां हरे श्रेष्ठतमः सदा ॥ ३६ ॥ मान्यश्च पूजनीयश्च समर्थश्च सुरेष्वपि ॥ सर्वे त्वामर्चयिष्यंति ब्रह्माद्याश्च सवासवाः ॥ ३७ ॥ प्रभविष्यंति भो भक्त्या मानवा भुवि सर्वतः ॥ वरदस्त्वं च सर्वेषां भविता मानवेषु वै ॥ ३८॥ कामदः सर्वदेवानां परमः परमेश्वरः ॥ सर्वयज्ञेषु मुख्यस्त्वं पूज्यः सर्वैश्च याज्ञिकैः ॥ ३९ ॥ त्वां जनाः पूजयिष्यंति वरदस्त्वं भविष्यसि ॥ श्रयिष्यंति च देवास्त्वां दानवैरतिपीडिताः ॥४०॥ शरणस्त्वं च सर्वेषां भविता पुरुषोत्तम ॥ पुराणेषु च सर्वेषु वेदेषु विततेषु च ॥४१॥ त्वं वै पूज्यतमः कामं कीर्तिस्तव भविष्यति ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूतले ॥ ४२ ॥ तदांशेनावतीर्याशु कर्तव्यं धर्मरक्षणम् ॥ अवताराः सुविख्याताः पृथिव्यां तव भागशः ॥ ४३ ॥ भविष्यंति धरायां वै माननीया महात्मनाम् ॥ अवतारेषु सर्वेषु नानायोनिषु माधव ॥ ४४ ॥ विख्यातः सर्वलोकेषु भविता मधुसूदन ॥ अवतारेषु सर्वेषु शक्तिस्ते सहचारिणी ॥ ४५ ॥ भविष्यति ममांशेन सर्वकार्यप्रसाधिनी ॥ वाराही नारसिंही च नानाभेदैरनेकधा ॥ ४६ ॥ नानायुधाः शुभाकाराः सर्वाभरणमंडिताः ॥ ताभिर्युक्तः सदा विष्णो सुरकार्याणि माधव ॥४७॥ साधयिष्यसि तत्सर्वं मद्दत्तवरदानतः ॥ तास्त्वया नावमंतव्याः सर्वदा गर्वलेशतः ॥ ४८ ॥ पूजनीयाः प्रयत्नेन माननीयाश्च सर्वथा ॥ नूनं ता भारते खंडे शक्तयः सर्वकामदाः ॥ ४९ ॥

होगी । धरतीतलपर जब-जब धर्मका नाश होगा, तब-तब आप अपने अंशसे अवतार लेकर धर्मकी रक्षा करेंगे । पृथिवीपर आपके अनेक सुविख्यात अवतार होंगे ॥ ४१–४३ ॥ संसारके महात्मालोग आपके उन अवतारोंके गुण गायेंगे । हे लक्ष्मीपते ! विविध योनियोंमें अवतार लेनेके कारण आप सब लोकोंमें विख्यात होंगे । उन सब अवतारोंमें मेरी शक्ति सदा आपके साथ रहेगी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वह शक्ति मेरा अंश होगी और आपके सब काम पूरा करेगी । वह वाराही-नारसिंही आदि भेदोंसे कई प्रकारकी होगी ॥४६॥ उन शक्तियोंके पास नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र होंगे । उनका स्वरूप भव्य होगा और वे सभी आभूषणोंसे आभूषित होंगी । हे विष्णो ! हे माधव ! उनके साथ रहनेके कारण और मेरे वरदानके प्रभावसे आप देवताओंके सभी कार्य सम्पन्न करेंगे । कभी तनिक भी अभिमान करके आप उन शक्तियोंका तिरस्कार न करिएगा ॥४७॥४८॥ आप सदा प्रेमपूर्वक उन शक्तियोंका सम्मान तथा पूजन करते रहिएगा ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे शक्तियाँ भरतखण्डके निवासियोंकी समस्त कामनायें पूर्ण करेंगी ॥ ४९ ॥ वे विविध प्रतिमाओंमें स्थित होकर मनुष्योंकी पूजनीया होंगी। हे देवेश! उन शक्तियों और आपकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त हो जायगी ॥ ५० ॥ भूमण्डलके अतिरिक्त सातों द्वीपोंमें वे विख्यात होंगी। अपनी कामनायें पूर्ण करानेके लिए संसार भरके मनुष्य उन शक्तियोंकी और आपकी अर्चना करेंगे। उन अर्चनाओंमें वे विविध भावोंसे युक्त होकर नाना प्रकारके उपहार अर्पण करते हुए वैदिक मंत्रों द्वारा पूजन करके आपका नाम जपेंगे। हे मधुसूदन! समस्त भूमण्डल तथा स्वर्गमें आपकी महिमा गायी जायगी ॥ ५१-५३ ॥ हे देवदेवेश! उनके पूजनसे आपकी कीर्ति और भी अधिक फैलेगी। व्यासजी बोले—इस प्रकार भगवान विष्णुको वरदान देकर वह आकाशवणी चुप हो गयी ॥ ५४ ॥ उसे सुनकर भगवान विष्णु बहुत प्रसन्न हुए और विधिवत् उस यज्ञकी समाप्ति करके देवताओं, ब्रह्मपुत्रों और मुनियोंको विदा किया। तदनन्तर वे

भविष्यन्ति मनुष्याणां पूजिताः प्रतिमासु च ॥ तासां तव च देवेश कीर्तिः स्यादखिलेष्वपि ॥ ५० ॥ द्वीपेषु सप्तस्वपि च विख्याता भुवि मंडले ॥ ताश्च त्वां वै महाभाग मानवा भुवि मंडले ॥५१॥ अर्चयिष्यंति वांछार्थं सकामाः सततं हरे ॥ अर्चासु चोपहारैश्च नानाभावसमन्विताः ॥ ५२ ॥ पूजयिष्यंति वेदोक्तैर्मंत्रैर्नामजपैस्तथा ॥ महिमा तव भूर्लोके स्वर्गे च मधुसूदन ॥ ५३ ॥ पूजनाद्देवदेवेश वृद्धिमेष्यति मानवैः ॥ व्यास उवाच ॥ इति दत्त्वा वरान्वाणी विरराम खसंभवा ॥ ५४ ॥ भगवानपि प्रीतात्मा ह्यभवच्छ्रवणादिव ॥ समाप्य विधिवद्यज्ञं भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ५५ ॥ विसर्जयित्वा तान्देवान्ब्रह्मपुत्रान्मुनीनथ ॥ जगामानुचरैः सार्धं वैकुंठं गरुडध्वजः ॥५६॥ स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि पुनः सर्वे सुरास्ततः॥ मुनयो विस्मिता वार्तां कुर्वंतस्ते परस्परम् ॥ ५७ ॥ ययुः प्रमुदिताः कामं स्वाश्रमान्पावनानथ ॥ ५८ ॥ श्रुत्वा वाणीं परमविशदां व्योमजां श्रोत्ररम्यां सर्वेषां वै प्रकृतिविषये भक्तिभावश्च जातः ॥ चक्रुः सर्वे द्विजमुनिगणाः पूजनं भक्तियुक्तास्तस्याः कामं निखिलफलदं चागमोक्तं मुनींद्राः ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ श्रुतो वै हरिणा क्लृप्तो यज्ञो विस्तरतो द्विज ॥ महिमानं तथाऽम्बाया वद विस्तरतो मम ॥ १ ॥ श्रुत्वा देव्याश्चरित्रं वै कुर्वे मखमनुत्तमम् ॥ प्रसादात्तव विप्रेंद्र भविष्यामि च पावनः ॥२॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ इतिहासं पुराणं च

गरुडध्वज भगवान अपने अनुचरोंके साथ वैकुण्ठधामको चले गये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इसके बाद सब देवता अपने-अपने लोकोंको और मुनिजन विस्मयके साथ यज्ञविषयक वार्ता करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने पावन आश्रमोंको चले गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ वह श्रुतिमधुर तथा परम विशद आकाशवाणी सुनकर सब लोगोंके हृदयमें शक्तिके प्रति भक्तिभाव जागृत हो गया। अतएव उन सभी ब्राह्मणों और मुनियोंने बड़ी उत्कट श्रद्धाके साथ भगवतीका पूजन आरम्भ कर दिया। हे मुनींद्रगण! उस परा प्रकृतिकी आराधना करनेसे सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

(देवीकी महिमा तथा शत्रुजित्-सुदर्शनाख्यान) राजा जनमेजय बोले—हे द्विज! मैंने भगवान विष्णु द्वारा किये हुए देवीयज्ञका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुना। अब आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विस्तृतरूपसे उन जगदम्बाकी महिमाका वर्णन करिए ॥१॥ हे विप्रेन्द्र ! भगवतीका चरित्र सुननेके बाद मैं भी वह श्रेष्ठ देवीयज्ञ करके आपकी कृपासे पवित्र हो जाऊँगा ॥ २ ॥ व्यासजी कहने लगे—हे राजन् ! अब मैं उत्तम देवीचरित्र आपको सुना रहा हूँ, सुनिए। इसके साथ-साथ विस्तृत इतिहास तथा पुराण भी कहूँगा ॥ ३ ॥ सूर्यवंशमें उत्पन्न अवधनरेश महाराज पुष्पपुत्रके महातेजस्वी युवराज ध्रुवसन्धि हुए ॥ ४ ॥ महाराज ध्रुवसन्धि धर्मात्मा, सत्यपरायण और वर्णाश्रमधर्मके रक्षणमें सदा तत्पर रहते थे। वे पुनीत व्रतधारी महाराज समृद्धिशालिनी अयोध्या नगरीमें रहते हुए राज्य करते थे ॥५॥ उनके राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्यान्य जातिके लोग अपने-अपने मार्गसे जीविकोपार्जन करते हुए धर्मका आचरण करते थे ॥ ६ ॥ उनके राज्यमें चोर, चुगलखोर, धूर्त, पाखण्डी, कृतघ्न और मूर्ख मनुष्य कहीं ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलते थे ॥ ७ ॥ हे कुरुसत्तम ! इस प्रकार धर्मपूर्वक शासनकार्य करते हुए महाराज ध्रुवसन्धिकी परम रूपवती तथा कामोपभोगदायिनी दो रानियाँ थीं ॥ ८ ॥ पहली पत्नीका नाम मनोरमा था, जो बड़ी सुन्दरी और विदुषी थी। दूसरी पत्नी लीलावती भी

कथयामि सुविस्तरम् ॥ ३ ॥ कोसलेषु नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ पुष्पपुत्रो महातेजा ध्रुवसंधिरिति स्मृतः ॥ ४ ॥ धर्मात्मा सत्यसंधश्च वर्णाश्रमहिते रतः ॥ अयोध्यायां समृद्धायां राज्यं चक्रे शुचिव्रतः ॥ ५ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये तथा द्विजाः ॥ स्वां स्वां वृत्तिं समास्थाय तद्राज्ये धर्मतोऽभवन् ॥ ६ ॥ न चौराः पिशुना धूर्तास्तस्य राज्ये च कुत्रचित् ॥ दंभाः कृतघ्ना मूर्खाश्च वसंति किल मानवाः ॥ ७ ॥ एवं वै वर्तमानस्य नृपस्य कुरुसत्तम ॥ द्वे पत्न्यौ रूपसम्पन्ने ह्यास्तुः कामभोगदे ॥ ८ ॥ मनोरमा धर्मपत्नी सुरूपाऽतिविचक्षणा ॥ लीलावती द्वितीया च साऽपि रूपगुणान्विता ॥ ९ ॥ विजहार सपत्नीभ्यां गृहेषूपवनेषु च ॥ क्रीडागिरौ दीर्घिकासु सौधेषु विविधेषु च ॥ १० ॥ मनोरमा शुभे काले सुषुवे पुत्रमुत्तमम् ॥ सुदर्शनाभिधं पुत्रं राजलक्षणसंयुतम् ॥ ११ ॥ लीलावत्यपि तत्पत्नी मासेनैकेन भामिनी ॥ सुषुवे सुन्दरं पुत्रं शुभे पक्षे दिने तथा ॥ १२ ॥ चकार नृपतिस्तत्र जातकर्मादिकं द्वयोः ॥ ददौ दानानि विप्रेभ्यः पुत्रजन्मप्रमोदितः ॥१३॥ प्रीतिं तयोः समां राजा चकार सुतयोर्नृप ॥ नृपश्चकार सौहार्देष्वंतरं न कदाचन ॥ १४ ॥ चूडाकर्म तयोश्चक्रे विधिना नृपसत्तमः ॥ यथाविभवमेवासौ प्रीतियुक्तः परंतपः ॥ १५ ॥ कृतचूडौ सुतौ कामं जहतुर्नृपतेर्मनः ॥ क्रीडमानावुभौ कांतौ लोकानामनुरंजकौ ॥ १६ ॥ तयोः सुदर्शनो ज्येष्ठो लीलावत्याः सुतः शुभः ॥ शत्रु-

रूप और गुणोंसे सर्वथा सम्पन्न थी ॥९॥ महाराज ध्रुवसन्धि उन दोनों रानियोंके साथ राजमहल, उपवन, क्रीड़ापर्वत, बावड़ी तथा विविध प्रासादोंमें विहार करते थे ॥१०॥ शुभ समयपर मनोरमाने सुदर्शन नामका एक उत्तम और राजलक्षणोंसे सम्पन्न पुत्र उत्पन्न किया ॥११॥ ठीक एक महीने बाद उनकी दूसरी रानी लीलावतीने भी शुभ दिन तथा शुभपक्षमें एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया ॥ १२ ॥ महाराज ध्रुवसन्धिने उन दोनोंका विधिवत् जातकर्म आदि संस्कार किया और पुत्रजन्मकी खुशीमें ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान दिये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! राजा ध्रुवसन्धि उन दोनों बालकोंपर समान प्रीति रखते थे। वे अपने प्रेममें कभी तनिक भी अन्तर नहीं आने देते थे ॥१४॥ कुछ समय बाद उन्होंने दोनों राजपुत्रोंका चूडाकर्म किया। शत्रुओंको सन्तापदायक राजाने वैभवके अनुकूल पूर्ण उत्साहके साथ उन पुत्रोंके सभी संस्कार किये ॥ १५ ॥ चूडाकर्म हो जानेके बाद उन बालकोंने महाराजका मन अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ओर खींच लिया । वे दोनों जब खेलते थे तो उन्हें देखकर सब लोग आनन्दविभोर हो उठते थे ॥ १६ ॥ उनमें मनोरमाका पुत्र सुदर्शन ज्येष्ठ था । लीलावतीका कनिष्ठ एवं सुंदर पुत्र शत्रुजित् बड़ा ही मधुरभाषी था ॥ १७ ॥ अतएव महाराज ध्रुवसन्धि, मंत्रिगण तथा प्रजाजनके लोग उसे विशेष प्यार करने लगे । क्योंकि वह बहुत सुन्दर और बातें करनेमें बड़ा निपुण था ॥ १८ ॥ उसके गुणोंको देखकर राजाका जितना प्रेम शत्रुजित्पर हो गया, उतना मन्दभाग्य सुदर्शनपर नहीं रहा ॥ १९ ॥ कुछ समय बाद महाराज ध्रुवसन्धि शिकार खेलनेके लिए वनमें गये । क्योंकि सदासे मृगयामें उनकी विशेष आसक्ति थी ॥ २० ॥ वनमें जाकर वे मृग, नीलगाय, साँभर, बनैले हाथी, सूअर, खरहे, भैंसे, आठ पैरवाले पशुओं तथा गैंडोंको मारते हुए शिकार खेलने लगे ॥ २१ ॥ उस बीहड़ वनमें जब महाराज मृगयानिरत थे, उसी समय सहसा झाड़ीसे एक अत्यन्त क्रुद्ध सिंह निकला ॥ २२ ॥

जित्संज्ञकः कामं चाटुवाक्यो बभूव ह ॥ १७ ॥ नृपतेः प्रीतिजनको मंजुवाक्चारुदर्शनः ॥ प्रजानां वल्लभः सोऽभूत्तथा मंत्रिजनस्य वै ॥ १८ ॥ यथा तस्मिन्नृपः प्रीतिं चकार गुणयोगतः ॥ मंदभाग्यान्मंदभावो न तथा वै सुदर्शने ॥ १९ ॥ एवं गच्छति काले तु ध्रुवसंधिर्नृपोत्तमः ॥ जगाम वनमध्येऽसौ मृगयानिरतः सदा ॥ २० ॥ निघ्नन्मृगान् रुरून्कंबून्सूकरान्गवयाञ्छशान् ॥ महिषाञ्छरभान्खड्गाँश्चिक्रीड नृपतिर्वने ॥ २१ ॥ क्रीडमाने नृपे तत्र वने घोरेऽतिदारुणे ॥ उदतिष्ठन्निकुंजात्तु सिंहः परमकोपनः ॥ २२ ॥ राज्ञा शिलीमुखेनादौ विद्धः क्रोधवशं गतः ॥ दृष्ट्वाऽग्रे नृपतिं सिंहो ननाद मेघनिःस्वनः ॥ २३ ॥ कृत्वा चोर्ध्वं स लांगूलं प्रसारितबृहत्सटः ॥ हंतुं नृपतिमाकाशादुत्पपातातिकोपनः ॥ २४ ॥ नृपतिस्तरसा वीक्ष्य दधारासिं करे तदा ॥ वामे चर्म समादाय स्थितः सिंह इवापरः ॥ २५ ॥ सेवकास्तस्य ये सर्वे तेऽपि बाणान्पृथक् पृथक् ॥ अमुंचन्कुपिताः कामं सिंहोपरि रुषान्विताः ॥ २६ ॥ हाहाकारो महानासीत्संप्रहारश्च दारुणः ॥ उत्पपात ततः सिंहो नृपस्योपरि दारुणः ॥ २७ ॥ तं पतंतं समालोक्य खड्गेनाभ्यहनन्नृपः ॥ सोऽपि क्रूरैर्नखाग्रैश्च तत्रागत्य व्यदारयत् ॥ २८ ॥ स नखैराहतो राजा पपात च ममार वै ॥ चुक्रुशुः सैनिकास्ते तु निर्जघ्नुर्विशिखैस्तदा ॥ २९ ॥ मृतः सिंहोऽपि तत्रैव भूपतिश्च तथा मृतः ॥ सैनिकैर्मन्त्रिमुख्याश्च तत्रागत्य निवेदिताः ॥ ३० ॥ परलोकगतं भूपं श्रुत्वा ते मंत्रिसत्तमाः ॥ संस्कारं कारयामासुर्गत्वा तत्र वनांतिके ॥ ३१ ॥ परलोकक्रियां सर्वां वसिष्ठो विधिपूर्वकम् ॥ कारयामास तत्रैव परलोकसुखाव-

महाराजके बाणसे पहले ही आहत वह सिंह उन्हें सामने देखकर मेघके समान गर्जन करने लगा ॥ २३ ॥ तत्काल उसने अपनी पूँछ खड़ी कर ली और मस्तकके केशोंको छितराकर महाराजको मारनेके लिए बड़े वेगसे झपटा ॥ २४ ॥ राजा ध्रुवसन्धि भी तुरन्त तलवार और ढाल लेकर दूसरे सिंहके समान डटकर खड़े हो गये ॥ २५ ॥ उनके जितने सेवक थे, वे भी रोषके साथ उस सिंहपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २६ ॥ अन्तमें वह भयानक सिंह महाराजपर झपट ही पड़ा और बड़ी करारी चोट की । इससे महान् हाहाकार मच गया ॥ २७ ॥ उसे अपने ऊपर झपटते देखकर राजाने अपनी तलवारसे प्रहार किया, किंतु सिंहने भी अपने तीखे नखोंसे उनके शरीरको फाड़ डाला ॥ २८ ॥ इस प्रकार आहत होकर महाराज धरतीपर गिरे और उसी समय उनकी मृत्यु हो गयी । इससे राजसैनिक और भी क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने चारों ओरसे उसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी, जिससे वह सिंह भी वहीं गिरकर मर गया । इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार सिंह भी मर गया और महाराज भी। तदनन्तर सैनिकोंने जाकर मन्त्रियोंको यह खबर दी ॥२९॥३०॥ महाराजकी परलोकयात्राका समाचार सुना तो उन मन्त्रियोंने वनमें जाकर उनका दाह-संस्कार कराया ॥३१॥ गुरु वसिष्ठने परलोकमें सुख देनेवाले सभी पारलौकिक कृत्य बड़े विधि-विधानसे सम्पन्न कराये ॥३२॥ तदनन्तर प्रजाजनों, मंत्रियों तथा गुरु वसिष्ठने परस्पर मंत्रणा करके महाराजके ज्येष्ठपुत्र सुदर्शनको ही राजा बनानेका निर्णय किया ॥३३॥ मंत्रियोंका कथन था कि सुदर्शन महाराजकी बड़ी रानीके पुत्र हैं, शान्तस्वभावके हैं और राजाके योग्य सभी लक्षण इनमें विद्यमान हैं। अतएव राज्यसिंहासन इन्हें ही मिलना चाहिए ॥३४॥ गुरु वसिष्ठका भी यही कहना था कि महाराजका यह पुत्र बालक होते हुए भी बड़ा धर्मात्मा है। इसलिए इस योग्य बालकको ही राज्य मिलना उचित है ॥३५॥ इस प्रकार मन्त्रियोंने जब उसे राज्य देना निश्चित कर लिया, उसी समय उज्जयिनीनरेश युधाजित् आ गये ॥३६॥ वे छोटी रानी लीलावतीके पिता थे। जामाताके मरणका समाचार सुनकर वे अपने नातीकी भलाई करनेके विचारसे आये थे ॥ ३७ ॥ उसी समय सुदर्शनका कल्याण करनेके विचारसे

ह्यम् ॥ ३२ ॥ प्रजाः प्रकृतयश्चैव वसिष्ठश्च महामुनिः ॥ सुदर्शनं नृपं कर्तुं मंत्रं चक्रुः परस्परम् ॥ ३३ ॥ धर्मपत्नीसुतः शांतः पुरुषश्च सुलक्षणः ॥ अयं नृपासनार्हश्च ह्यब्रुवन्मंत्रिसत्तमाः ॥ ३४ ॥ वसिष्ठोऽपि तथैवाह योग्योऽयं नृपतेः सुतः ॥ बालोऽपि धर्मवान्राजा नृपासनमिहार्हति ॥३५॥ कृते मंत्रे मंत्रिवृद्धैर्युधाजिन्नाम पार्थिवः ॥ तत्राजगाम तरसा श्रुत्वा तूज्जयिनीपतिः ॥ ३६ ॥ मृतं जामातरं श्रुत्वा लीलावत्याः पिता तदा ॥ तत्राजगाम त्वरितो दौहित्रप्रियकाम्यया ॥ ३७ ॥ वीरसेनस्तथाऽऽयातः सुदर्शनहितेच्छया ॥ कलिङ्गाधिपतिश्चैव मनोरमापिता नृपः ॥ ३८ ॥ उभौ तौ सैन्य-संयुक्तौ नृपौ साध्वससंस्थितौ ॥ चक्रतुर्मंत्रिमुख्यैस्तैर्मंत्रं राज्यस्य कारणात् ॥३९॥ युधाजित्तु तदाऽपृच्छज्ज्येष्ठः कः सुतयोर्द्वयोः ॥ राज्यं प्राप्नोति ज्येष्ठो वै न कनीयान्कदाचन ॥ ४० ॥ वीरसेनोऽपि तत्राह धर्मपत्नीसुतः किल ॥ राज्यार्हः स यथा राजञ्छास्त्रज्ञेभ्यो मया श्रुतम् ॥ ४१ ॥ युधाजित्पुनराहेदं ज्येष्ठोऽयं च यथा गुणैः ॥ राजलक्षणसंयुक्तो न तथाऽयं सुदर्शनः ॥ ४२ ॥ विवादोऽत्र सुसंपन्नो नृपयोस्तत्र लुब्धयोः ॥ कः संदेहमपाकर्तुं क्षमः स्यादतिसंकटे ॥ ४३ ॥ युधाजिन्मंत्रिणः प्राह यूयं स्वार्थपराः किल ॥ सुदर्शनं नृपं कृत्वा धनं भोक्तुं किलेच्छथ ॥ ४४ ॥ युष्माकं तु विचारोऽयं मया ज्ञातस्तथेंगितैः ॥ शत्रुजित्सबलस्तस्मात्सम्मतो वो नृपासने ॥ ४५ ॥ मयि जीवति कः कुर्यात्कनीयांसं नृपं किल ॥

कलिङ्गाधिपति मनोरमाके पिता महाराज वीरसेन भी आ गये ॥ ३८ ॥ उन दोनों राजाओंके साथ सेना भी आयी हुई थी। आते ही उन दोनोंने राज्यके अधिकारीका निर्णय करनेके लिए मंत्रियोंकी बैठक बुलायी ॥३९॥ युधाजित्ने लोगोंसे पूछा कि इन दोनों राजकुमारोंमें ज्येष्ठ कौन है? यह सदाकी रीति रही है कि राज्यका अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र ही होता है। कनिष्ठ कदापि नहीं ॥ ४० ॥ इसपर राजा वीरसेन बोले कि मैंने बहुतेरे शास्त्रज्ञोंके मुखसे सुना है कि राज्यका अधिकारी पटरानीका पुत्र ही होता है ॥ ४१ ॥ युधाजित्ने कहा कि मेरा नाती जितना गुणी और राजसी ठाट-बाटका अभिज्ञ है, उतना सुदर्शन नहीं है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार अपने-अपने नातीको राज्य दिलानेके लिए उत्सुक उन दोनों राजाओंमें भीषण विवाद खड़ा हो गया। ऐसे महान् संकटके समय दोनों पक्षोंका संशय निवृत्त करनेकी शक्ति किसमें थी? ॥ ४३ ॥ तब राजा युधाजित्ने मंत्रियोंसे कहा कि आपलोग स्वार्थी हैं। इसी लिए सुदर्शनको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजा बनाकर राज्यका धन हड़पना चाहते हैं ॥ ४४ ॥ आप लोगोंके चेहरेके भावको देखकर ही मैंने आपके विचार जान लिये थे कि शत्रुजित् बलवान् है, अतएव उसीको राज्य देना चाहिए ॥ ४५ ॥ लेकिन मेरे जीतेजी कौन ऐसा पुरुष है कि जो गुणवान् और सेनासे सुसज्जित ज्येष्ठ पुत्रको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्य दे सकेगा ॥ ४६॥ उसके लिए मैं युद्ध करूँगा। मेरे खड्गके प्रहारसे धरतीके दो टूक हो सकते हैं। फिर आप लोग किस गिनतीमें हैं ॥४७॥ यह वचन सुनकर वीरसेनने युधाजित्से कहा–हे नीतिशास्त्रज्ञ! दोनों ही बालकोंकी बुद्धि एक जैसी है। इनमें भेद ही क्या है? ॥४८॥ उन दोनों राजाओंको इस प्रकार परस्पर झगड़ते देखकर सभी प्रजाजन तथा ऋषिगण व्यग्र हो उठे ॥४९॥ उधर दोनों पक्षके सामन्त राजे अपनी-अपनी सेना ले-लेकर लड़नेके लिए आ पहुँचे। उनकी यही इच्छा थी कि शीघ्र लड़ाई छिड़ जाय ॥ ५० ॥ उसी समय शृंगवेरके निषाद महाराज ध्रुवसन्धिके मरणका समाचार सुनकर राजकीय खजाना लूटनेके लिए आ धमके ॥ ५१ ॥ जब चोरों और डाकुओंको यह समाचार मिला कि राजाके दोनों पुत्र राज्यके लिए झगड़ रहे हैं तो बहुत बड़ी संख्यामें देश-

त्यक्त्वा ज्येष्ठं गुणार्हं च सेनया च समन्वितम् ॥४६॥ नूनं युद्धं करिष्यामि तस्मिन्खड्गस्य मेदिनी ॥ धारया च द्विधा भूयाद्युष्माकं तत्र का कथा ॥४७॥ वीरसेनस्तु तच्छ्रुत्वा युधाजित्तमभाषत ॥ बालौ द्वौ सदृशप्रज्ञौ को भेदोऽत्र विचक्षण ॥४८॥ एवं विवदमानौ तौ संस्थितौ नृपती तदा ॥ प्रजाश्च ऋषयश्चैव बभूवुर्व्यग्रमानसाः ॥ ४९ ॥ समाजग्मुश्च सामंताः ससैन्याः क्लेशतत्पराः ॥ विग्रहं चाभिकांक्षंतः परस्परमतंद्रिताः ॥ ५० ॥ निषादा ह्याययुस्तत्र शृंगवेरपुराश्रयाः ॥ राजद्रव्यमुपाहर्तुं मृतं श्रुत्वा महीपतिम् ॥५१॥ पुत्रौ च बालकौ श्रुत्वा विग्रहं च परस्परम् ॥ चौरास्तत्र समाजग्मुर्देशदेशांतरादपि ॥५२॥ संमर्दस्तत्र संजातः कलहे समुपस्थिते ॥ युधाजिद्वीरसेनश्च युद्धकामौ बभूवतुः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ संयुगे सति तत्र भूपयोराहवाय समुपात्तशस्त्रयोः ॥ क्रोधलोभवशयोः समंततः संबभूव तुमुलस्तु विमर्दः ॥१॥ संस्थितः स समरे धृतचापः पार्थिवः पृथुलबाहुयुधाजित् ॥ संयुतः स्वबलवाहनादिकैराहवाय कृतनिश्चयो नृपः ॥ २ ॥ वीरसेन इह सैन्यसंयुतः क्षात्रधर्ममनुसृत्य संगरे ॥ पुत्रिकात्मजहिताय पार्थिवः संस्थितः सुरपतेः समतेजाः ॥ ३ ॥ स बाणवृष्टिं विससर्ज पार्थिवो युधाजितं वीक्ष्य रणे स्थितं च ॥

देशान्तरके चोर-डाकू भी वहाँ आ गये ॥५२॥ इस प्रकार जब भयानक कलहकी स्थिति आ गयी, तब राजा युधाजित् और वीरसेनने युद्धके द्वारा ही निर्णय करनेका निश्चय किया ॥५३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीयां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(राजा युधाजित् और राजा वीरसेनका युद्ध) व्यासजी बोले–हे राजन्! युद्धका निश्चय हो जानेपर उन दोनों राजाओंने शस्त्र सम्हाल लिये, तब क्रोध तथा लोभके कारण भयानक संघर्ष आरम्भ हो गया ॥ १ ॥ विशालबाहु राजा युधाजित्ने जब युद्ध करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया, तब वे स्वयं धनुष धारण करके अपनी सेना और वाहन आदिके साथ रणभूमिमें जा डटे ॥२॥ राजा वीरसेन भी क्षात्रधर्मका अनुसरण करते हुए विशाल वाहिनी लेकर अपने नातीकी अधिकाररक्षाके लिए रणभूमिमें पहुँच गये। वे इन्द्रके समान तेजस्वी थे ॥३॥ सत्यपराक्रमी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजा वीरसेनने युद्धभूमिमें महाराज युधाजित्को उपस्थित देखकर इस प्रकार बाणवर्षा आरम्भ कर दी, जैसे मेघ पर्वतोंपर जल बरसाते हैं ॥ ४ ॥ इस तरह राजा वीरसेनने युधाजित्को अपने तीक्ष्ण बाणोंसे ढाँक दिया। तब युधाजित्ने भी अपने बाणोंसे उन शत्रुप्रेरित बाणोंको काटकर वीरसेनपर अतिशय द्रुतगामी बाणोंसे भीषण प्रहार आरम्भ कर दिया ॥ ५ ॥ उधर हाथियों, रथों और घुड़सवारोंमें भयानक संग्राम होने लगा। बहुतेरे देवता, मनुष्य और मुनिगण वह संग्राम देख रहे थे। कौए-गिद्ध आदि मांसलोलुप पक्षियोंसे सारा आकाशमण्डल भर गया और वे मँडराने लगे ॥ ६ ॥ कुछ ही देरके युद्धसे समरभूमिमें कटकर गिरे हुए हाथियों, घोड़ों और सैनिकोंके शरीरसे निकले रुधिरकी भयानक नदी बहने लगी। वह युद्ध देखनेवालोंको रणभूमि इतनी भीषण लगी, जैसे यमलोक जाते समय पापियोंको वैतरणी नदी भयावह दीखती है ॥७॥ जैसे प्रखर बहावके कारण नदीके कगार कटकर गिरने लगते हैं, इसी प्रकार उस रुधिरकी नदीमें कट-कटकर गिरनेवाले नरमुण्ड केशोंके कारण ऐसे लग रहे थे, मानों यमुनाके तटपर खेलनेवाले बालकोंने प्रवाहमें बहुतेरी तुम्बियाँ फेंक दी हों ॥ ८ ॥ किसी वीरको कटकर

गिरिं तडित्वानिव तोयवृष्टिभिः क्रोधान्वितः सत्यपराक्रमोऽसौ ॥ ४ ॥ तं वीरसेनो विशिखैः शिलाशितैः समावृणोदाशुगमैरजिह्मगैः ॥ चिच्छेद बाणैश्च शिलीमुखानसौ तेनैव मुक्तानतिवेगपातिनः ॥ ५ ॥ गजरथतुरगाणां संबभूवातियुद्धं सुरनरमुनिसंघैर्वीक्षितं चातिघोरम् ॥ विततविहगवृन्दैरावृतं व्योम सद्यः पिशितमशितुकामैः काकगृध्रादिभिश्च ॥६॥ तत्राद्भुता क्षतजसिन्धुरुवाह घोरा वृंदेभ्य एव गजवीरतुरंगमाणाम् ॥ त्रासावहा नयनमार्गगता नराणां पापात्मनां रविजमार्गभवेव कामम् ॥७॥ कीर्णानि भिन्नपुलिने नरमस्तकानि केशावृतानि च विभांति यथैव सिंधौ ॥ तुम्बीफलानि विहितानि विहर्तुकामैर्बालैर्यथा रविसुताप्रभवैश्च नूनम् ॥८॥ वीरं मृतं भुवि गतं पतितं रथाद्वै गृध्रः पलार्थमुपरि भ्रमतीति मन्ये ॥ जीवोऽप्यसौ निजशरीरमवेक्ष्य कांतं कांक्षत्यहोऽतिविवशोऽपि पुनः प्रवेष्टुम् ॥ ९ ॥ आजौ हतोऽपि नृवरः सुविमानरूढः स्वांके स्थितां सुरवधूं प्रवदत्यभीष्टम् ॥ पश्याधुना मम शरीरमिदं पृथिव्यां बाणाहतं निपतितं करभोरु कांतम् ॥१०॥ एको हतस्तु रिपुणैव गतोऽन्तरिक्षं देवांगनां समधिगम्य युतो विमाने ॥ तावत्प्रिया हुतवहे सुसमर्प्य देहं जग्राह कांतमबला सबला स्वकीया ॥११॥ युद्धे मृतौ च सुभटौ दिवि संगतौ तावन्योन्यशस्त्रनिहतौ सह संप्रयातौ ॥ यत्रैव जघ्नतुरलं परमाहितास्त्रावेकाप्सरोर्थविहतौ कलहाकुलौ च ॥ १२ ॥ कश्चिद्युवा समधिगम्य सुरांगनां वै रूपाधिकां गुणवतीं किल भक्तियुक्तः ॥ स्वीयान्

रथसे गिरते देखकर मांसके लोभी गिद्ध मँडराने लगते थे, उस समय ऐसा लगता था कि मानो उस वीरका जीव अपने मृत शरीरको बहुत सुन्दर देखकर फिर उसमें प्रविष्ट होनेके लिए मँडरा रहा हो ॥ ९ ॥ रणभूमिमें मरा कोई वीर विमानपर आरूढ़ होकर अपनी गोदमें बैठी हुई सुरसुन्दरीसे कहता था—हे हस्तिशावककी सूँड़के समान सुन्दर जाँघवाली सुन्दरी! उधर देखो, बाणसे आहत होकर मेरा सुन्दर शरीर धरतीपर पड़ा हुआ है ॥ १० ॥ एक वीर युद्धमें मरकर ज्यों ही आकाशमें स्थित विमानपर एक अप्सराके साथ बैठा, त्यों ही उसके मृत शरीरको लेकर उसकी स्त्री अग्निकी चितापर सती हो गयी और पुनः दिव्य शरीर पाकर वह विमानपर विद्यमान अपने पतिके पास जा पहुँची और उसके गलेसे लिपट गयी ॥ ११ ॥ उस युद्धमें दो वीर परस्पर एक दूसरेके शस्त्रसे मरकर स्वर्गमें पहुँचे। वहाँ उन्हें एक ही अप्सरा प्राप्त हुई। उसे पानेके लिए वे दोनों वीर वहाँ भी शस्त्र सम्हालकर परस्पर जूझने लगे ॥१२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोई नौजवान वीर स्वर्गमें अपनेसे अधिक रूपवती और गुणवती अप्सरा पाकर विशेष प्रेम प्रदर्शित करता तथा अपने गुणोंको बढ़ा-चढ़ाकर बखानता हुआ उस प्रेयसीके प्रति अपना मनोगत भाव प्रकट करने लगा। ऐसा करके उसने अतिशीघ्र उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लिया ॥१३॥ रणभूमिमें घोर युद्धके कारण इतनी अधिक धूल उड़ी कि सूर्यके ढँक जानेसे दिनकी रात हो गयी। किन्तु जब युद्धकी भीषणता बढ़ी और रुधिरका समुद्र उमड़ पड़ा तो वह धूल गायब हो गयो, जिससे आकाशमें सूर्यभगवान फिर अपनी पूर्ण किरणोंसे चमकने लगे ॥ १४ ॥ एक कोई अविवाहित नवयुवक रणभूमिमें मरकर स्वर्गमें पहुँचा तो उसे अपनेपर आसक्त एक बहुत ही सुन्दरी देवकन्या प्राप्त हुई। किन्तु उसने अपना ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट होनेके भयसे उसका आलिंगन नहीं किया। क्योंकि उसका ख्याल था कि यदि मैं ऐसा करूँगा तो मेरा 'ब्रह्मचारी' यह विशेषण ही व्यर्थ हो जायगा ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस भीषण युद्धमें राजा युधाजित्ने अपने अति तीक्ष्ण और दारुण बाणोंसे वीरसेनको मार डाला ॥ १६ ॥ बाणोंसे मस्तक कट जानेपर वीरसेनका धड़ जमीनपर गिर पड़ा और उनकी सेना अनाथ होकर चारों ओर भाग

गुणान्प्रविततान्प्रवदंस्तदाऽसौ तां प्रेमदामनुचकार च योगयुक्तः ॥१३॥ भौमं रजोऽतिविततं दिवि संस्थितं च रात्रिं चकार तरणिं च समावृणोद्यत् ॥
मग्नं तदेव रुधिरांबुनिधावकस्मात्प्रादुर्बभूव रविरप्यतिकांतियुक्तः ॥ १४ ॥ कश्चिद्गतस्तु गगनं किल देवकन्यां सम्प्राप्य चारुवदनां किल
भक्तियुक्ताम् ॥ नांगीचकार चतुरो व्रतनाशभीतो यास्यत्ययं मम वृथा ह्यनुकूलशब्दः ॥ १५ ॥ संग्रामे संवृते तत्र युधाजित्पृथिवीपतिः ॥ जघान
वीरसेनं तं बाणैस्तीव्रैः सुदारुणैः ॥ १६ ॥ निहतः स पपातोर्व्यां छिन्नमूर्धा महीपतिः ॥ प्रभग्नं तद्बलं सर्वं निर्गतं च चतुर्दिशम् ॥ १७ ॥ मनोरमा
हतं श्रुत्वा पितरं रणमूर्धनि ॥ भयत्रस्ताऽथ संजाता पितुर्वैरमनुस्मरन् ॥ १८ ॥ हनिष्यति युधाजिद्वै पुत्रं मम दुराशयः ॥ राज्यलोभेन पापात्मा
सेति चिन्तापराऽभवत् ॥ १९ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि पिता मे निहतो रणे ॥ भर्ता चापि मृतोऽद्यैव पुत्रोऽयं मम बालकः ॥ २० ॥ लोभो-
ऽतीव च पापिष्ठस्तेन को न वशीकृतः ॥ किं न कुर्यात्तदाविष्टः पापं पार्थिवसत्तमः ॥ २१ ॥ पितरं मातरं भ्रातॄन्गुरूंस्स्वजनबांधवान् ॥
हंति लोभसमाविष्टो जनो नात्र विचारणा ॥ २२ ॥ अभक्ष्यभक्षणं लोभादगम्यागमनं तथा ॥ करोति किल तृष्णार्तो धर्मत्यागं तथा पुनः ॥२३॥
न सहायोऽस्ति मे कश्चिन्नगरेऽत्र महाबलः ॥ यदाधारे स्थिता चाहं पालयामि सुतं शुभम् ॥ २४ ॥ हते पुत्रे नृपेणाद्य किं करिष्याम्यहं पुनः ॥ न

गयी ॥ १७ ॥ महारानी मनोरमाको जब रणभूमिमें अपने पिताके मरणका समाचार मिला तो पिताके शत्रुओंके भयसे वह काँपने लगी ॥ १८ ॥ उसने सोचा कि राज्यके लोभसे वह दुष्टहृदय युधाजित् मेरे बेटेको भी मार डालेगा ॥१९॥ अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरे पिता युद्धमें मारे गये। पतिदेव भी अभी कुछ ही दिन पहले स्वर्ग चले गये और पुत्र अभी अबोध बालक है ॥२०॥ लोभ बड़ा पापी है। उसने किसको अपने वशमें नहीं कर लिया है ? राजा युधाजित् लोभके वशीभूत होकर क्या नहीं कर सकता ? ॥ २१ ॥ लोभके वशीभूत होकर मनुष्य अपने पिता, माता, भाई, गुरु, स्वजन तथा बन्धु-बान्धवोंका भी वध कर डालता है। इसमें संशय नहीं है ॥ २२ ॥ लोभवश मनुष्य अभक्ष्य भक्षण करता है, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करता है और अपना धर्म तक त्याग देता है ॥ २३ ॥ इस नगरमें मेरा कोई बलवान् सहायक भी नहीं है, जिसके सहारे रहकर मैं अपने सुन्दर बालकको पाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकूँ ॥ २४ ॥ अब यदि युधाजित् मेरे पुत्रको भी मार डाले तो मैं क्या कर सकती हूँ। संसारमें कोई भी तो मेरा संरक्षक नहीं है कि जिसके भरोसे मैं अपनेको सुरक्षित समझूँ ॥ २५ ॥ सौतें सदा सौतसे वैरभाव रखती हैं। अतएव लीलावती कदापि मेरे पुत्रपर दयाभाव न रक्खेगी ॥ २६ ॥ जब युधाजित् रणभूमिसे लौटकर नगरमें आ जायगा, तब मैं यहाँसे भाग भी न सकूँगी। वह आते ही मुझे और मेरे पुत्रको जेल भेज देगा ॥२७॥ ऐसा सुना जाता है कि पूर्वकालमें इन्द्रने अपनी सौतेली माता दितिके गर्भमें पैठकर गर्भस्थ शिशुको काटकर सात टुकड़े कर डाले थे। फिर भी जब वह नहीं मरा, तब फिर एक-एक टुकड़ेके सात-सात खण्ड कर दिये ॥ २८ ॥ इन्द्र अपने वज्रको छोटासा करके दितिके गर्भमें प्रविष्ट हुए थे और गर्भस्थ शिशुके उनचास खण्ड कर दिये थे। जिससे आगे चलकर देवलोकमें वे उनचास मरुत्के नामसे विख्यात हुए ॥ २९ ॥ मैंने एक इतिहास और सुना था कि एक सूर्यवंशी राजाकी रानीने सौतके गर्भस्थ शिशुको मारनेके लिए विष दे दिया था ॥ ३० ॥ बादमें वह बालक विषसहित उत्पन्न हुआ तो संसारमें उसका 'सगर' अर्थात् गर (विष) सहित नाम पड़ा ॥३१॥

मे त्राताऽस्ति भुवने येन वै सुस्थिता ह्यहम् ॥२५॥ साऽपि वैरयुता कामं सपत्नी सर्वदा भवेत् ॥ लीलावती न मे पुत्रे भविष्यति दयावती ॥२६॥ युधाजिति समायाते न मे निःसरणं भवेत् ॥ ज्ञात्वा बालं सुतं सोऽद्य कारागारं नयिष्यति ॥ २७ ॥ श्रूयते हि पुरेंद्रेण मातुर्गर्भगतः शिशुः ॥ कृंतितः सप्तधा पश्चात्कृतास्ते सप्त सप्तधा ॥ २८ ॥ प्रविश्य चोदरं मातुः करे कृत्वाऽल्पकं पविम् ॥ एकोनपंचाशदपि तेऽभवन्मरुतो दिवि ॥२९॥ सपत्न्यै गरलं दत्तं सपत्न्या नृपभार्यया ॥ गर्भनाशार्थमुद्दिश्य पुरैतद्वै मया श्रुतम् ॥ ३० ॥ जातस्तु बालकः पश्चाद्देहे विषयुतः किल ॥ तेनासौ सगरो नाम विख्यातो भुविमंडले ॥ ३१ ॥ जीवमानोऽथ भर्ता वै कैकेय्या नृपभार्यया ॥ रामः प्रव्राजितो ज्येष्ठो मृतो दशरथो नृपः ॥ ३२ ॥ मंत्रिणस्त्ववशाः कामं ये मे पुत्रं सुदर्शनम् ॥ राजानं कर्तुकामा वै युधाजिद्वशगाश्च ते ॥३३॥ न मे भ्राता तथा शूरो यो मां बंधात्प्रमोचयेत् ॥ महत्कष्टं च संप्राप्तं मया वै दैवयोगतः ॥ ३४ ॥ उद्यमः सर्वथा कार्यः सिद्धिर्दैवाद्धि जायते ॥ उपायं पुत्ररक्षार्थं करोम्यद्य त्वरान्विता ॥३५॥ इति संचिन्त्य सा बाला विदल्लं चातिमानिनम् ॥ निपुणं सर्वकार्येषु चिन्त्यं मंत्रिवरोत्तमम् ॥ ३६ ॥ समाहूय तमेकांते प्रोवाच बहुदुःखिता ॥ गृहीत्वा बालकं हस्ते रुदती दीनमानसा ॥ ३७ ॥ पिता मे निहतः संख्ये पुत्रोऽयं बालकस्तथा ॥ युवाजिद्बलवान्राजा किं विधेयं वदस्व मे ॥ ३८ ॥ तामुवाच

महाराज दशरथकी रानी कैकेयीने पतिके जीवनकालमें ही अपनी सौत कौसल्याके ज्येष्ठ पुत्र रामको संन्यासी बनाकर वनमें भेज दिया। जिनके शोकमें राजा दशरथ मर गये ॥३२॥ जो मंत्री मेरे पुत्र सुदर्शनको राजा बनाना चाहते थे, वे अब विवश होकर राजा युधाजित्के अधीन हो गये हैं ॥ ३३ ॥ मेरा कोई भाई भी ऐसा वीर नहीं है कि जो मुझे बन्धनमुक्त करा सके। अभाग्यवश मुझपर बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी है ॥३४॥ फिर भी मनुष्यको उद्यम तो करना ही चाहिए। सफलता भी भाग्यके अनुकूल होनेपर मिल जाती है। सो अब मैं अपने पुत्रकी रक्षाके लिए शीघ्र कोई उपाय करूँगी ॥ ३५ ॥ ऐसा विचार करके उस युवती रानीने अतिशय स्वाभिमानी और सब कार्योंमें निपुण श्रेष्ठ मंत्री विदल्लका स्मरण किया ॥ ३६ ॥ उसे एकान्तमें बुलाकर हाथोंमें बालकको लिये हुए बहुत विषादपूर्वक रुदन करती हुई रानी बोली—॥ ३७ ॥ मेरे पिता युद्धमें मारे गये। मेरा पुत्र अभी अबोध बालक है। राजा युधाजित् बड़ा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वलवान् है । ऐसी परिस्थितिमें मैं क्या करूँ ? आप मुझे उचित सलाह दीजिए ॥ ३८॥ मंत्री विदल्लने कहा कि अब यहाँ रहना ठीक नहीं है । चलिए, हमलोग यहाँसे वनमें भाग चलें। वहाँसे काशी चले चलेंगे ॥ ३९ ॥ वहाँ मेरे मामा सुवाहु रहते हैं । वे बड़े धनाढ्य और बलवान् हैं । वे अवश्य हमारी रक्षा करेंगे ॥ ४० ॥ सबसे अच्छा उपाय यह है कि हमलोग राजा युधाजित्से मिलनेके बहाने रथपर बैठकर नगरसे बाहर हो जायँ । यही एक अचूक उपाय है ॥४१॥ विदल्लके परामर्शानुसार रानी मनोरमा अपनी सौत लीलावतीके पास गयी और कहा–हे सुनयनी ! मैं अपने मृत पिताजीका दर्शन करने जा रही हूँ ॥ ४२ ॥ ऐसा कहकर वह अपने बालक, एक मुख्य दासी तथा विदल्लको साथ लेकर रथपर जा बैठी और नगरके बाहर हो गयी ॥४३॥ उस समय वह बहुत भयभीत, आर्त, अतिशय दीन तथा पिताके मरणसे अत्यन्त शोकाकुल थी । रणभूमिमें पहुँचकर वह राजा युधाजित्से मिली और तुरन्त अपने मृत पिताका दाहसंस्कार करके वह भयभीत रानी वहाँसे चल पड़ी । दो दिन निरन्तर चलनेके बाद गङ्गाजीके तटपर पहुँची ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वहाँके निषादोंने उसका सब धन लूट लिया और

विदल्लोऽसौ नात्र स्थातव्यमेव च ॥ गमिष्यामो वने कामं वाराणस्यां पुनः किल ॥ ३९ ॥ तत्र मे मातुलः श्रीमान्वर्तते बलवत्तरः ॥ सुबाहुरिति
विख्यातो रक्षिता स भविष्यति ॥४०॥ युधाजिद्दर्शनोत्कंठमनसा नगराद्बहिः ॥ निर्गत्य रथमारुह्य गंतव्यं नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ इत्युक्ता तेन सा
राज्ञी गत्वा लीलावतीं प्रति ॥ उवाच पितरं द्रष्टुं गच्छाम्यद्य सुलोचने ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सैरंध्रीसंयुता तदा ॥ विदल्लेन च संयुक्ता
निःसृता नगराद्बहिः ॥ ४३ ॥ त्रस्ता ह्यार्ताऽतिकृपणा पितुः शोकसमाकुला ॥ दृष्ट्वा युधाजितं भूपं पितरं गतजीवितम् ॥ ४४ ॥ संस्कार्य च
त्वरायुक्ता वेपमाना भयाकुला ॥ दिनद्वयेन संप्राप्ता राज्ञी भागीरथीतटम् ॥ ४५ ॥ निषादैर्लुंठिता तत्र गृहीतं सकलं वसु ॥ रथं चापि गृहीत्वा ते
निर्गता दस्यवः शठाः ॥४६॥ रुदती सुतमादाय चारुवस्त्रा मनोरमा ॥ निर्ययौ जाह्नवीतीरे सैरंध्रीकरलंबिता ॥ ४७ ॥ आरुह्य च भयाच्छीघ्रमुडुपं
स भयाकुला ॥ तीर्त्वा भागीरथीं पुण्यां ययौ त्रिकुटपर्वतम् ॥ ४८ ॥ भारद्वाजाश्रमं प्राप्ता त्वरया च भयाकुला ॥ संवीक्ष्य तापसांस्तत्र संजाता
निर्भया तदा ॥ ४९॥ मुनिना सा तत पृष्टा काऽसि कस्य परिग्रहः ॥ कष्टेनात्र कथं प्राप्ता सत्यं ब्रूहि शुचिस्मिते ॥ ५० ॥ देवी वा मानुषी वाऽसि
बालपुत्रा वने कथम् ॥ राज्यभ्रष्टेव वामोरु भासि त्वं कमलेक्षणे ॥५१॥ एवं सा मुनिना पृष्टा नोवाच वरवर्णिनी ॥ रुदती दुःखसंतप्ता विदल्लं च

रथ भी छीनकर वे लुटेरे भाग गये ॥४६॥ तब बालकको गोदमें लिये रुदन करती हुई एकमात्र सुन्दर वस्त्र पहने दासीके हाथोंका सहारा लेकर चलती-चलती मनोरमा गङ्गाजीके किनारे पहुँची ॥४७॥ वहाँ वह भयमीत नारी तत्काल एक डोंगीमें बैठकर गङ्गाजीके पार हो गयी और वहाँसे वह त्रिकूटपर्वतपर चली गयी ॥४८॥ भयसे भागकर चलती हुई वह भारद्वाज ऋषिके आश्रमपर जा पहुँची । वहाँ विद्यमान तपस्वियोंको देखकर वह निर्भय हो गयी ॥४९॥ उस रानीको देखकर महर्षि भारद्वाजने पूछा–हे पवित्र मुसकानवाली नारी ! तुम कौन हो और किसकी पत्नी हो ? इतना कष्ट सहकर तुम यहाँ कैसे आयी हो ? मुझे सब सच-सच बतलाओ ॥ ५० ॥ तुम कोई देवी हो या मानुषी ? तुम नन्हें बालकको लेकर इस विकट वनमें क्यों आयी हो ? हे सुजघने ! हे कमलेक्षणे ! तुम राज्यभ्रष्ट जैसी दिखायी देती हो ॥५१॥ मुनिराजके इन प्रश्नोंका रानीने कोई उत्तर नहीं दिया । दुःखसे सन्तप्त होनेके कारण वह रोती ही रही । उत्तर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देनेके लिए उसने अपने महामन्त्री विदल्लको संकेत कर दिया ॥ ५२ ॥ विदल्लने मुनिराजसे कहा—भगवन् ! महाराज ध्रुवसन्धि एक बहुत बड़े नरेश थे । ये उनकी धर्मपत्नी हैं । इनका नाम मनोरमा है ॥५३॥ उन सूर्यवंशी महाराज ध्रुवसन्धिको वनमें सिंहने मार डाला । यह सुदर्शन उन्हींका पुत्र है ॥५४॥ रानी मनोरमाके अत्यन्त धर्मात्मा पिता अपने इसी दौहित्रकी अधिकाररक्षा करते हुए संग्रामभूमिमें मारे गये । उसके बाद राजा युधाजित्से भयभीत होकर यह निर्जन वनमें भाग आयी है ॥ ५५ ॥ हे महाभाग ! हे मुनिसत्तम ! जिसका पुत्र अभी अबोध बालक है, वह रानी आपकी शरणमें आयी है । आप इसकी रक्षा करें ॥ ५६ ॥ किसी दुखिया मनुष्यकी रक्षा करनेमें यज्ञसे भी अधिक पुण्य होता है । डरे हुए तथा दीनकी रक्षासे तो और भी अधिक फल प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ ऋषि भारद्वाज बोले—हे कल्याणी ! तुम यहाँ निर्भय होकर रहो । हे सुव्रते ! यहाँ रहकर तुम अपने पुत्रको पालो । हे विशालाक्षि ! यहाँ तुम्हें शत्रुका कोई भय नहीं है ॥ ५८ ॥ तुम अपने सुन्दर पुत्रका पालन करो । भविष्यमें यह राजा होगा । यहाँ तुम्हें कभी किसी प्रकारका दुःख और शोक नहीं होगा ॥ ५९ ॥ व्यासजी

समादिशत् ॥ ५२ ॥ विदल्लस्तमुवाचेदं ध्रुवसंधिर्नृपोत्तमः ॥ तस्य भार्या धर्मपत्नी नाम्ना चेयं मनोरमा ॥ ५३ ॥ सिंहेन निहतो राजा सूर्यवंशी महाबलः ॥ पुत्रोऽयं नृपतेस्तस्य नाम्ना चैव सुदर्शनः ॥ ५४ ॥ अस्याः पिताऽतिधर्मात्मा दौहित्रार्थे मृतो रणे ॥ युधाजिद्भयसंत्रस्ता संप्राप्ता विजने वने ॥ ५५ ॥ त्वामेव शरणं प्राप्ता बालपुत्रा नृपात्मजा ॥ त्राता भव महाभाग त्वमस्या मुनिसत्तम ॥ ५६ ॥ आर्तस्य रक्षणे पुण्यं यज्ञाधिकमुदाहृतम् ॥ भयत्रस्तस्य दीनस्य विशेषफलदं स्मृतम् ॥ ५६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ निर्भया वस कल्याणि पुत्रं पालय सुव्रते ॥ न ते भयं विशालाक्षि कर्तव्यं शत्रुसंभवम् ॥ ५८ ॥ पालयस्व सुतं कान्तं राजा तेऽयं भविष्यति ॥ नात्र दुःखं तथा शोकः कदाचित्संभविष्यति ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता मुनिना राज्ञी स्वस्था सा संबभूव ह ॥ उटजे मुनिना दत्ते वीतशोका तदाऽवसत् ॥ ६० ॥ सैरन्ध्रीसहिता तत्र विदल्लेन च संयुता ॥ सुदर्शनं पालयाना न्यवसत्सा मनोरमा ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ युधाजित्त्वथ संग्रामाद्गत्वाऽयोध्यां महाबलः ॥ मनोरमां च पप्रच्छ सुदर्शनजिघांसया ॥ १ ॥ सेवकान् प्रेषयामास क्व गतेति मुहुर्वदन् ॥ शुभे दिनेऽथ दौहित्रं स्थापयामास चासने ॥ २ ॥ मंत्रिभिश्च वसिष्ठेन मंत्रैराथर्वणैः शुभैः ॥ अभिषिक्तश्च संपूर्णैः कलशैर्जल-

बोले—मुनिराज भरद्वाजके ऐसा कहनेपर रानी मनोरमाका मन शान्त हो गया और मुनिराजकी बतायी हुई कुटियामें शोकहीन होकर रहने लगी ॥६०॥ अब महामंत्री विदल्ल तथा अपनी दासीके साथ रहकर अपने पुत्रका पालन-पोषण करती हुई वह उसी आश्रममें जीवनयापन करने लगी ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

(सुदर्शनका वध करनेके लिए युधाजित्का भरद्वाजके आश्रम जाना) व्यासजी कहने लगे—हे राजन् ! महाबली राजा युधाजित् रणभूमिसे लौटकर अयोध्या पहुँचे तो सुदर्शनकी हत्या करनेके विचारसे मनोरमाके विषयमें पूछ-ताछ की ॥१॥ उन्होंने बार बार यही पूछा कि मनोरमा कहाँ गयी और उसे खोजनेके लिए सेवकोंको भेजा । उसके बाद एक शुभ दिन देखकर उन्होंने अपने दौहित्र (नाती) को राजगद्दीपर बिठा दिया ॥ २ ॥ सभी मंत्रियोंके साथ वसिष्ठने अथर्ववेदके मंत्रोंका उच्चारण करके जलभरे कलशोंसे राजकुमार शत्रुजित्का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अभिषेक किया ॥ ३ ॥ उस समय शंख, भेरी और तुरहियाँ बजीं और सारी अयोध्या नगरीमें उत्सव मनाया गया ॥ ४ ॥ विप्रोंके वेदपाठ, बन्दीजनोंके स्तुतिपाठ तथा चारों ओर गूँजते हुए जयघोषसे अयोध्या बड़ी प्रफुल्लित दिखायी देती थी ॥ ५ ॥ हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी और श्रुतिवाक्यों तथा वाद्योंकी ध्वनिसे परिपूर्ण और जयघोषसे मुखरित अयोध्या नगरी नये राजाको पाकर मानो नवीन हो गयी थी ॥ ६ ॥ कुछ सज्जनोंने चुपचाप अपने-अपने घरमें ही शोक भी मनाया। वे सुदर्शनके विषयमें सोचते हुए कह रहे थे कि राजपुत्र सुदर्शन कहाँ गया ॥ ७ ॥ मनोरमा बड़ी साध्वी स्त्री थी। वह अपने पुत्रके साथ कहाँ चली गयी? उसके पिताको राज्यके लोभी वैरी युधाजित्‌ने मार डाला ॥ ८ ॥ ऐसा विचार करते हुए वे समबुद्धि सज्जन नये राजा शत्रुजित्‌के अधीन होकर बड़े दुःखके साथ रहने लगे ॥ ९ ॥ इस प्रकार राजा युधाजित् अपने नातीको विधिवत् राज गद्दीपर बिठा तथा राज्यमन्त्रियोंके हाथों

पूरितैः ॥ ३ ॥ भेरीशंखनिनादैश्च तूर्याणां चाथ निःस्वनैः ॥ उत्सवस्तु नगर्यां वै संबभूव कुरूद्वह ॥ ४ ॥ विप्राणां वेदपाठैश्च बंदिनां स्तुतिभिस्तथा ॥ अयोध्या मुदितेवासीज्जयशब्दैः सुमंगलैः ॥ ५ ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णा स्तुतिवादित्रनिःस्वना ॥ नवे तस्मिन्महीपाले पूर्वभौ नूतनेव सा ॥६॥ केचित्साधुजना ये वै चक्रुः शोकं गृहे स्थिताः ॥ सुदर्शनं विचिंत्याद्य क्व गतोऽसौ नृपात्मजः ॥ ७ ॥ मनोरमाऽतिसाध्वी सा क्व गता सुतसंयुता ॥ पिताऽस्या निहतः संख्ये राज्यलोभेन वैरिणा ॥ ८ ॥ इत्येवं चिंतयानास्ते साधवः समबुद्धयः ॥ अतिष्ठन्दुःखितास्तत्र शत्रुजिद्वशवर्तिनः ॥ ९ ॥ युधाजिदपि दौहित्रं स्थापयित्वा विधानतः ॥ राज्यं च मंत्रिसात्कृत्वा चलितः स्वां पुरीं प्रति ॥१०॥ श्रुत्वा सुदर्शनं तत्र मुनीनामाश्रमे स्थितम् ॥ हंतुकामो जगामाशु चित्रकूटं स पर्वतम् ॥ ११ ॥ निषादाधिपतिं शूरं पुरस्कृत्य बलाधिकम् ॥ दुदर्शाख्यमगादाशु शृङ्गवेरपुराधिपम् ॥ १२ ॥ श्रुत्वा मनोरमा तत्र बभूवातिसुदुःखिता ॥ आगच्छन्तं बालपुत्रा भयार्ता सैन्यसंयुतम् ॥ १३ ॥ तमुवाचातिशोकार्ता मुनिं साश्रुविलोचना ॥ किं करोमि क्व गच्छामि युधाजित्समुपस्थितः ॥ १४ ॥ पिता मे निहतोऽनेन दौहित्रो भूपतिः कृतः ॥ सुतं मे हंतुकामोऽत्र समायाति बलान्वितः ॥ १५ ॥ पुरा श्रुतं मया स्वामिन्पांडवा वै वने स्थिताः ॥ मुनीनामाश्रमे पुण्ये पांचाल्या सहितास्तदा ॥ १६ ॥ गतास्ते मृगयां पार्था भ्रातरः पञ्च एव ते ॥ द्रौपदी संस्थिता तत्र मुनीनामाश्रमे शुभे ॥ १७ ॥ धौम्योऽत्रिर्गालवः पैलो जाबालिर्गौतमो भृगुः ॥ च्यवनश्चात्रिगोत्रश्च कण्वश्चैव जतुः

सौंपकर अपनी उज्जयिनी नगरीको चले गये ॥१०॥ वहाँ पहुँचकर सुना कि सुदर्शन भारद्वाज मुनिके आश्रममें रह रहा है। तब राजा युधाजित् उसे मार डालनेके लिए तत्काल चित्रकूट पर्वतकी ओर चल पड़े ॥ ११ ॥ वहाँसे चलकर शृंगवेरपुर पहुँचे और वहाँके निषादाधिपति राजा दुर्दर्शको भी साथ ले लिया। दुर्दर्श बड़ा बलवान् था और उसके साथ बहुत बड़ी सेना थी ॥ १२ ॥ मनोरमाको जब सेनाके साथ युधाजित्‌के आगमनका समाचार मिला तो वह बहुत दुःखित तथा भयभीत हो उठी ॥ १३ ॥ वह शोकाकुल होकर मुनिराज भारद्वाजसे रोती हुई बोली—युधाजित् आ रहा है। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? ॥ १४ ॥ इसने मेरे पिताको मार डाला और अपने नातीको राजा बना दिया। अब मेरे पुत्रका वध करनेके लिए बड़ी भारी सेनाके साथ यहाँ आ रहा है ॥ १५ ॥ हे स्वामिन्! मैंने सुना था कि पूर्वकालमें मुनियोंके आश्रममें द्रौपदीके साथ जब पाण्डव वनवास कर रहे थे ॥ १६ ॥ तभी एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिन वे पाँचों भाई मृगयाके लिए गये हुए थे और द्रौपदी मुनियोंके उस आश्रममें ही रह गयी थी ॥१७॥ उस आश्रममें धौम्य, अत्रि, गालव, पैल, जाबालि, गौतम, भृगु, अत्रिगोत्र, कण्व, जतु, क्रतु, वीतिहोत्र, सुमन्तु, यज्ञदत्त, वत्सल, राशासन, कहोड, यवक्री, यज्ञकृत्, क्रतु, ये तथा भारद्वाज आदि अन्यान्य पुण्यात्मा ऋषि उस आश्रममें वेदपाठ कर रहे थे ॥१८–२०॥ वहाँ ही उन मुनियोंके बीच परम सुन्दरी महारानी द्रौपदी अपनी दासियोंके साथ निर्भयभावसे रहती थीं ॥ २१ ॥ उधर पाँचों पाण्डव मृगोंका पीछा करते हुए एक वनसे दूसरे वनमें जाते-जाते बहुत दूर निकल गये। वे पाँचों भाई धनुष-बाण धारण किये हुए थे। अतएव शत्रुको हैरान करनेमें समर्थ थे ॥२२॥ उसी समय सिन्धुदेशके महाराज श्रीमान् जयद्रथ अपनी सेनाके साथ उधर ही से आकर उस आश्रमके पास पहुँच गये और कुछ दूरसे ही उन्होंने वेदध्वनि सुनी ॥ २३ ॥ वेदघोष सुनते ही मुनियोंके दर्शनार्थ सिन्धुनरेश रथसे उतर पड़े ॥२४॥ दृढ़निश्चयी राजा जयद्रथ जब अपने दो अंगरक्षकोंके साथ आगे बढ़े तो उन्होंने मुनियोंको वेदपाठ करते देखा ॥ २५ ॥ तब हाथ जोड़कर राजा जयद्रथने कहा—स्वामिन्! यह

क्रतुः ॥ १८ ॥ वीतिहोत्रः सुमंतुश्च यज्ञदत्तोऽथ वत्सलः ॥ राशासनः कहोडश्च यवक्रीर्यज्ञकृत्क्रतुः ॥ १९ ॥ एते चान्ये च मुनयो भारद्वाजादयः शुभाः ॥ वेदपाठ्युताः सर्वे संस्थिताश्चाश्रमे स्थिताः ॥२०॥ दासीभिः सहिता तत्र याज्ञसेनी स्थिता मुने ॥ आश्रमे चारुसर्वांगी निर्भया मुनिसंवृते ॥ २१ ॥ पार्था मृगानुगास्तावत्प्रयाताश्च वनाद्वनम् ॥ धनुर्बाणधरा वीराः पंच वै शत्रुतापनाः ॥ २२ ॥ तावत्सिन्धुपतिः श्रीमान्मार्गस्थो बल-संयुतः ॥ आगतश्चाश्रमाभ्याशे श्रुत्वा तु निगमध्वनिम् ॥२३॥ श्रुत्वा वेदध्वनिं राजा मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ उत्ततार रथात्तूर्णं दर्शनाकांक्षया नृपः ॥ २४ ॥ यदा निरगमत्तत्र भृत्यद्वयसमन्वितः ॥ वेदपाठ्युतान् वीक्ष्य मुनीनुद्यमसंस्थितः ॥ २५ ॥ कृतांजलिपुटः स्वामिन्संस्थितोऽथ जयद्रथः ॥ आश्रमे मुनिभिर्जुष्टे भूपतिः संविवेश ह ॥ २६ ॥ तत्रोपविष्टं राजानं द्रष्टुकामाः स्त्रियस्तदा ॥ आययुर्मुनिभार्याश्च कोऽयमित्यब्रुवन्नृ-पम् ॥ २७ ॥ तासां मध्ये वरारोहा याज्ञसेनी समागता ॥ जयद्रथेन दृष्टा सा रूपेण श्रीरिवापरा ॥ २८ ॥ तां विलोक्यासितापांगीं देवकन्यामिवा-पराम् ॥ पप्रच्छ नृपतिर्धौम्यं केयं श्यामा वरानना ॥ २९ ॥ भार्या कस्य सुता कस्य नाम्ना का वरवर्णिनी ॥ रूपलावण्यसंयुक्ता शचीव वसुधां गता ॥ ३० ॥ बर्बूलवनमध्यस्था लवंगलतिका यथा ॥ राक्षसीवृंदगा नूनं रंभेवाभाति भामिनी ॥ ३१ ॥ सत्यं वद महाभाग कस्येयं वल्लभाऽ-

जयद्रथ आपके दर्शनार्थ उपस्थित है। इसके बाद राजा उस मुनिसेवित आश्रमके भीतर प्रविष्ट हुए ॥२६॥ आश्रममें जाकर जब वे बैठ गये, तब उन्हें देखनेके लिए वहाँकी मुनिपत्नियाँ तथा अन्यान्य स्त्रियाँ आ गयीं और लोगोंसे पूछने लगीं कि यह कौन आया है? ॥ २७ ॥ उन्हीं स्त्रियोंके साथ परम सुन्दरी द्रौपदी भी चली आयी। जयद्रथने देखा तो वे उन्हें दूसरी लक्ष्मीके सदृश सुन्दरी जँचीं ॥२८॥ देवकन्याके समान सौन्दर्यमयी तथा श्यामनयनी द्रौपदीको देखकर राजा जयद्रथने महर्षि धौम्यसे पूछा कि यह सुमुखी श्यामा स्त्री कौन है? ॥ २९ ॥ यह किसकी पत्नी है? किसकी पुत्री है? इस सुन्दरीका नाम क्या है? यह अपने अनुपम सौन्दर्य और लावण्यसे धरतीपर उतरकर आयी हुई इन्द्राणी जैसी लग रही है ॥ ३० ॥ यह बबूलके वनमें लवङ्गलता तथा राक्षसियोंके झुण्डमें रम्भा आपके समान सुन्दरी दीख रही है ॥ ३१ ॥ हे महाभाग! आप सच-सच बताइए कि यह किसकी पत्नी है? हे द्विज! यह तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे किसी राजाकी रानी है। मुनिपत्नी तो यह कदापि नहीं हो सकती ॥३२॥ महर्षि धौम्यने कहा—सिन्धुनरेश! यह शुभलक्षणा स्त्री पाण्डवोंकी प्रिय भार्या पांचाली द्रौपदी है और इस समय इसी आश्रममें रहती है ॥ ३३ ॥ जयद्रथने कहा—इस समयके सबसे अधिक विख्यात वीर पाँचों पाण्डव कहाँ गये हैं? क्या वे महाबली वीर शोकरहित होकर इसी वनमें रह रहे हैं? ॥ ३४ ॥ महर्षि धौम्य बोले—इस समय पाँचों पाण्डव रथपर बैठकर मृगयाके लिए वनमें गये हुए हैं। दोपहर तक शिकार करके लौट आयेंगे ॥ ३५ ॥ ऋषिके वचन सुनकर जयद्रथने आसनसे उठ और द्रौपदीके पास जा तथा प्रणाम करके कहा—हे सुन्दरी! आप सकुशल हैं न? आपके पतिदेव कहाँ गये हैं? आपको वनवास करते ग्यारह वर्ष वीत गये ॥३६॥३७॥ तब द्रौपदीने कहा—राजकुमार! आपका कल्याण हो। तबतक आप आश्रमकी अतिथिशालामें विश्राम करिए। अभी क्षणभरमें पांडव आ जायँगे ॥३८॥ वे ऐसा कह ही रही थीं कि

बला ॥ राजपत्नीव चाभाति नैषा मुनिवधूर्द्विज ॥३२॥ धौम्य उवाच ॥ पांडवानां प्रिया भार्या द्रौपदी शुभलक्षणा ॥ पांचाली सिंधुराजेन्द्र वसत्यत्र वराश्रमे ॥३३॥ जयद्रथ उवाच ॥ क्व गताः पांडवाः पंच शूराः संप्रति विश्रुताः ॥ वसंत्यत्र वने वीरा वीतशोका महाबलाः ॥३४॥ धौम्य उवाच ॥ मृगयार्थं गताः पंच पांडवा रथसंस्थिताः ॥ आगमिष्यंति मध्याह्ने मृगानादाय पार्थिवाः ॥३५॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य उदतिष्ठदसौ नृपः ॥ द्रौपदी सन्निधौ गत्वा प्रणम्येदमुवाच ह ॥ ३६ ॥ कुशलं ते वरारोहे क्व गताः पतयश्च ते ॥ एकादश गतान्यद्य वर्षाणि च वने किल ॥ ३७ ॥ द्रौपदी तु तदोवाच स्वस्ति तेऽस्तु नृपात्मज ॥ विश्रमस्वाश्रमाभ्याशे क्षणादायांति पांडवाः ॥ ३८ ॥ एवं ब्रुवंत्यां तस्यां तु लोभाविष्टः स भूपतिः ॥ जहार द्रौपदीं वीरोऽनादृत्य मुनिसत्तमान् ॥ ३९ ॥ कस्यचिन्नैव विश्वासः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः ॥ कुर्वन्दुःखमवाप्नोति दृष्टांतस्तत्र वै बलिः ॥ ४० ॥ वैरोचनसुतः श्रीमान्धर्मिष्ठः सत्यसंगरः ॥ यज्ञकर्ता च दाता च शरण्यः साधुसम्मतः ॥४१॥ नाधर्मे निरतः क्वापि प्रह्लादस्य च पौत्रकः ॥ एकोनशतयज्ञान् वै स चकार सदक्षिणान् ॥ ४२ ॥ सत्त्वमूर्तिः सदा विष्णुः सेव्यः स योगिनामपि ॥ निर्विकारोऽपि भगवान्देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ४३ ॥ कश्यपाच्च समुद्भूतो विष्णुः कपटवामनः ॥ राज्यं छलेन हृतवान्महीं चैव ससागराम् ॥ ४४ ॥ सोऽभवत्सत्यवाग्राजा बलिर्वैरोचनिस्तदा ॥ कपटं

लोभवश वीर जयद्रथने उन मुनियोंकी कुछ भी परवा न करके द्रौपदीका अपहरण कर लिया ॥३९॥ जिसका निष्कर्ष यह निकला कि समझदार मनुष्य किसीपर भी विश्वास न करे। यदि विश्वास करता है तो उसे विपत्ति प्राप्त होती है। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण राजा बलि हैं ॥ ४० ॥ राजा बलि विरोचनके पुत्र, श्रीमान्, धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञकर्ता, दाता, शरणागतके रक्षक और सज्जनों द्वारा सम्मानित पुरुष थे ॥ ४१ ॥ वे कभी अधर्मका आचरण नहीं करते थे। क्योंकि वे भक्तवर प्रह्लादके पौत्र थे। उन्होंने पुष्कल दक्षिणायें दे-देकर निन्नानवे यज्ञ किये थे ॥ ४२ ॥ वे सत्त्वगुणकी प्रतिमूर्ति थे। इसी कारण योगियोंके भी आराध्य भगवान् विष्णुने सर्वथा निर्विकार होते हुए भी देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए महर्षि कश्यपके पुत्र होकर वामनका कपटवेष धारण किया। उन्होंने छलसे राजा बलिका राज्य और ससागरा पृथिवी ले ली ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ किन्तु विरोचनपुत्र राजा बलि सत्यवादी थे। मैंने सुना है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् विष्णुने इन्द्रके लिए ऐसा कपटव्यवहार किया था ॥ ४५ ॥ जब सत्त्वमूर्ति साक्षात् विष्णुभगवामने बलिका यज्ञ ध्वंस करनेके लिए वामनरूप धारण करके धोखेका काम किया, तब और लोग ऐसा क्यों न करेंगे ? ॥४६॥ हे स्वामिन् ! इसीसे लोग कहते हैं कि कभी किसीपर भी विश्वास न करे। क्योंकि यदि चित्तमें लोभ समाया हुआ है तो किसीको पापका क्या डर ? ॥ ४७ ॥ लोभके चक्करमें पड़े हुए प्राणी सब पाप कर गुजरते हैं। हे मुनिराज! उस समय किसीको परलोकका भी भय नहीं रह जाता ॥ ४८ ॥ मन, वचन तथा कर्मसे लोग सदा पराया धन हस्तगत करनेके लिए सचेष्ट रहते हैं। अन्तमें वे लोभी हृदयवाले प्राणी नरकगामी होते हैं ॥ ४९ ॥ देवताओंकी आराधना करके लोग उनसे धन माँगते हैं, किन्तु यह निश्चित है कि देवता ऐसे आराधकोंके हाथमें कहींसे धन लाकर रख देनेकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥ ५० ॥ वाणिज्य, व्यवसाय, दान, चोरी और डाकेजनीके द्वारा दूसरोंके धन लेकर ही तो वे उन लोभी भक्तोंको दे सकेंगे ॥ ५१ ॥ विक्रय करनेके लिए अनेक प्रकारके धान्य तथा वस्त्रका संचय करके वैश्य अपने देवताकी इस लिए पूजा करता है कि मेरे पास अकूत धन

कृतवान्विष्णुरिंद्रार्थे तु मया श्रुतम् ॥४५॥ अन्यः किं न करोत्येवं कृतं वै सत्त्वमूर्तिना ॥ वामनं रूपमास्थाय यज्ञपातं चिकीर्षता ॥४६॥ न च विश्वसितव्यं वै कदाचित्केनचित्तथा ॥ लोभश्चेतसि चेत्स्वामिन्कीदृक्पापकृतं भयम् ॥४७॥ लोभाहताः प्रकुर्वंति पापानि प्राणिनः किल ॥ परलोकाद्भयं नास्ति कस्यचित्कर्हिचिन्मुने ॥ ४८ ॥ मनसा कर्मणा वाचा परस्वादानहेतुतः ॥ प्रपतंति नराः सम्यग्लोभोपहतचेतसः ॥४९॥ देवानाराध्य सततं वांछंति च धनं नराः ॥ न देवास्तत्करे कृत्वा समर्था दातुमंजसा ॥ ५० ॥ अन्यस्यानीयते वित्तं प्रयच्छंति मनीषितम् ॥ वाणिज्येनाथ दानेन चौर्येणापि बलेन वा ॥ ५१ ॥ विक्रयार्थं गृहीत्वा च धान्यवस्त्रादिकं बहु ॥ देवानर्चयते वैश्यो महर्द्धिर्मे भवेदिति ॥ ५२ ॥ नात्र किं परवित्तेच्छा वाणिज्येन परंतप ॥ ग्रहणकाले तु संप्राप्ते महर्घं चापि कांक्षति ॥ ५३ ॥ एवं हि प्राणिनः सर्वे परस्वादानतत्पराः ॥ वर्तन्ते सततं ब्रह्मन् विश्वासः कीदृशः पुनः ॥ ५४ ॥ वृथा तीर्थं वृथा दानं वृथाऽध्ययनमेव च ॥ लोभमोहावृतानां वै कृतं तदकृतं भवेत् ॥ ५५ ॥ तस्मादेनं महाभाग विसर्जय गृहं प्रति ॥ सपुत्राऽहं वसिष्यामि जानकीवद्द्विजोत्तम ॥ ५६ ॥ इत्युक्तोऽसौ मुनिस्तावद्गत्वा युधाजितं नृपम् ॥ उवाच वचनं राज्ञे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५७ ॥ गच्छ राजन् यथाकामं स्वपुरं नृपसत्तम ॥ नेयं मनोरमाऽभ्येति बालपुत्रा सुदुःखिता ॥ ५८ ॥ युधाजिदुवाच ॥ मुने मुंच

हो जाय ॥५२ ॥ हे परन्तप ! अन्नका संग्रह करते ही व्यापारी यह चाहने लगता है कि अनाजका भाव बहुत मँहगा हो जाय। ऐसा करके वह क्या व्यापार द्वारा औरोंका धन हड़पनेकी चेष्टा नहीं करता ? ॥ ५३ ॥ इसी प्रकार संसारके सभी प्राणी परधन हरनेमें लगे हुए हैं। ऐसी दशामें हे ब्रह्मन् ! किसीपर कैसे विश्वास किया जाय ? ॥ ५४ ॥ जिन प्राणियोंको लोभ और मोह घेरे हुए है, उनका तीर्थ करना व्यर्थ है। उनका दान और स्वाध्याय भी वृथा ही है। वे जो कुछ भी करते हैं, वह सब न करनेके समान होता है ॥ ५५ ॥ अतएव आप किसी तरह इस राजाको यहाँसे लौटा दीजिए। हे द्विजोत्तम ! जनकनन्दिनी सीताके समान अपने पुत्रके साथ मैं अकेली रह लूँगी ॥ ५६ ॥ महारानी मनोरमाके ऐसा कहनेपर परम प्रतापी मुनि भारद्वाज राजा युधाजित्के पास गये और कहा—॥ ५७ ॥ हे राजन् ! हे नृपसत्तम ! आप स्वेच्छासे अपने नगरको लौट जाइए। अतिशय दुःखिनी और जिसका बालक अभी निरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बचा है। रानी मनोरमा आपके समक्ष नहीं आयेगी ॥ ५८ ॥ राजा युधाजित्ने कहा—हे मुने! हे सौम्य! आप हठ त्यागकर मनोरमाको मुझे दे दीजिए। मैं उसे छोड़कर कदापि नहीं जा सकता। यदि आप सीधे न मानेंगे तो मैं बरजोरी उसे पकड़ ले जाऊँगा ॥ ५९ ॥ ऋषि भारद्वाजने कहा कि यदि आपमें शक्ति हो तो मेरे आश्रमसे जबर्दस्ती उसे पकड़ ले जाइए। जैसे राजा विश्वामित्र महर्षि वसिष्ठकी कामधेनुको छीन ले गये थे ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

(विश्वामित्रका वृत्तान्त तथा सुदर्शनको कामबीज मंत्रकी प्राप्ति) व्यासजी बोले–हे राजन् जनमेजय! महामुनि भारद्वाजके वचन सुनकर राजा युधाजित्ने अपने महामंत्रीको बुलाकर कहा—॥१॥ हे सुबुद्धे! अब मुझे क्या करना चाहिए? हे सुव्रत! मैं सुभाषिणी मनोरमाको पुत्र समेत बरजोरी पकड़ ले चलूँ?॥२॥ अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषका यह कर्तव्य है कि वह तुच्छ शत्रुकी भी उपेक्षा न करे। क्योंकि वह राजयक्ष्मा रोगकी तरह बढ़कर एक दिन मृत्युका कारण बन जाता है॥३॥ यहाँ न कोई सेना है और न कोई योद्धा है कि जो मुझे रोके। उसे

हठं सौम्य विसर्जय मनोरमाम् ॥ न च यास्याम्यहं मुक्त्वा नेष्याम्यद्य बलात्पुनः ॥ ५९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ नयस्व यदि शक्तिस्ते बलेनाद्य ममाश्रमात् ॥ विश्वामित्रो यथा धेनुं वसिष्ठस्य मुनेः पुरा ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनेस्तत्रावनीपतिः ॥ मंत्रिवृद्धं समाहूय पप्रच्छ तमतंद्रितः ॥ १ ॥ किं कर्तव्यं सुबुद्धेऽत्र मयाऽद्य वद सुव्रत ॥ बलान्नयामि तां कामं सपुत्रां च सुभाषणीम् ॥ २ ॥ रिपुरल्पोऽपि नोपेक्ष्यः सर्वथा शुभमिच्छता ॥ राजयक्ष्मेव संवृद्धो मृत्यवे परिकल्पयेत् ॥ ३ ॥ नात्र सैन्यं न योद्धाऽस्ति यो मामत्र निवारयेत् ॥ गृहीत्वा हन्मि तं तत्र दौहित्रस्य रिपुं किल ॥ ४ ॥ निष्कंटकं भवेद्राज्यं यताम्यद्य बलादहम् ॥ हते सुदर्शने नूनं निर्भयोऽसौ भवेदिति ॥ ५ ॥ प्रधान उवाच ॥ साहसं न हि कर्तव्यं श्रुतं राजन्मुनेर्वचः ॥ विश्वामित्रस्य दृष्टांतः कथितस्तेन मारिष ॥ ६ ॥ पुरा गाधिसुतः श्रीमान्विश्वामित्रोऽतिविश्रुतः ॥ विचरन्स नृपश्रेष्ठो वसिष्ठाश्रममभ्यगात् ॥ ७ ॥ नमस्कृत्य च तं राजा विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ उपविष्टो नृपश्रेष्ठो मुनिना दत्तविष्टरः ॥ ८ ॥ निमंत्रितो वसिष्ठेन भोजनाय महात्मना ॥ ससैन्यश्च स्थितो राजा गाधिपुत्रो महायशाः ॥९॥ नन्दिन्याऽऽसादितं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिकं च यत् ॥ भुक्त्वा राजा ससैन्यश्च वांछितं तत्र भोजनम् ॥१०॥

पकड़कर मैं अपने नातीके शत्रुको मार डालूँ तो क्या हर्ज है? ॥४॥ यदि मैं आज ऐसा कर लूँ तो शत्रुजित्का राज्य निष्कण्टक हो जायगा। सुदर्शनके मर जानेपर मेरा नाती सदाके लिए निर्भय हो जायगा ॥५॥ प्रधान मन्त्रीने कहा–हे राजन्! ऐसा दुःसाहस मंत करिएगा। अभी आप मुनि भारद्वाजका वचन सुन चुके हैं। हे महीपते! उन्होंने विश्वामित्रका दृष्टान्त दिया है ॥ ६ ॥ पुरातन कालकी बात है। महाराज गाधिके पुत्र विश्वामित्र बड़े विख्यात राजा हो चुके हैं। एक बार नृपश्रेष्ठ विश्वामित्र घूमते-फिरते महर्षि वसिष्ठके आश्रमपर जा पहुँचे ॥ ७ ॥ परम प्रतापी राजा विश्वामित्रने महामुनिको प्रणाम किया और उनके दिये हुए आसनपर बैठ गये ॥ ८ ॥ तब महात्मा वसिष्ठने उन्हें भोजनके लिए निमंत्रित किया। निमंत्रण पाकर महायशस्वी गाधितनय राजा विश्वामित्र अपनी विशाल सेनाके साथ उनके यहाँ गये ॥ ९ ॥ उस समय जितनी भी भक्ष्य तथा भोज्य वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ी, उन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सबको उनकी गौ नन्दिनीने जुटा दिया और सेना समेत राजा विश्वामित्रने अपनी रुचिके अनुकूल पदार्थोंको पाकर यथेच्छ भोजन किया ॥ १० ॥ नन्दिनीकी यह महिमा देखकर राजा विश्वामित्रने महर्षि वसिष्ठसे वह गौ माँगी ॥ ११ ॥ राजा विश्वामित्रने कहा—हे मुने ! मैं आपको घड़ों दूध देनेवाली एक हजार गौवें दूँगा । आप अपनी नन्दिनी गौ मुझे दे दीजिए । हे परन्तप ! आपसे यही मेरी प्रार्थना है ॥१२॥ महर्षि वसिष्ठने कहा—हे राजन् ! आप अपनी हजार गौवें अपने पास रखिए । मैं अपनी नन्दिनीको कदापि नहीं दूँगा ॥ १३ ॥ विश्वामित्रने कहा—हे साधो ! आप दस हजार या एक लाख गौवें लेकर उनके बदले अपनी नन्दिनी मुझे दे दीजिए । यदि आप वैसे न देंगे तो मैं बरियाई उसे यहाँसे ले जाऊँगा ॥ १४ ॥ महात्मा वसिष्ठने कहा—हे नरपते ! आप अपनी रुचिके अनुसार उसे ले जाइए । किन्तु हे राजन् ! मैं अपनी इच्छासे नन्दिनीको नहीं दूँगा ॥ १५ ॥ उनके वचन सुनकर राजा विश्वामित्रने अपने अनुचरोंको आदेश दिया कि अपनी शक्ति तथा दर्पपूर्वक नन्दिनीको पकड़ ले चलो । १६ ॥ उन सेवकोंने राजाके आदेशानुसार हठात् उस गौको पकड़ लिया । तब

प्रतापं तं च नंदिन्याः परिज्ञाय स पार्थिवः ॥ ययाचे नंदिनीं राजा वसिष्ठं मुनिसत्तमम् ॥ ११ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ मुने धेनुसहस्रं ते घटोध्नीनां ददाम्यहम् ॥ नंदिनीं देहि मे धेनुं प्रार्थयामि परंतप ॥ १२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ होमधेनुरियं राजन्न ददामि कथंचन ॥ सहस्रं चापि धेनूनां तवेदं तव तिष्ठतु ॥ १३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ अयुतं वाऽथ लक्षं वा ददामि मनसेप्सितम् ॥ देहि मे नंदिनीं साधो ग्रहीष्यामि बलादथ ॥१४॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ कामं गृहाण नृपते बलादद्य यथारुचि ॥ नाहं ददामि ते राजन्स्वेच्छया नंदिनीं गृहात् ॥१५॥ तच्छ्रुत्वा नृपतिर्भृत्यानादिदेश महाबलान् ॥ नयध्वं नंदिनीं धेनुं बलदर्पसुसंस्थिताः ॥ १६ ॥ ते भृत्या जगृहुस्तां तु हठादाक्रम्य यंत्रिताम् ॥ वेपमाना मुनिं प्राह सुरभिः साश्रुलोचना ॥ १७ ॥ मुने त्यजसि मां कस्मात्कर्षयंति सुयंत्रिताम् ॥ मुनिस्तां प्रत्युवाचेदं त्यजे नाहं सुदुग्धदे ॥ १८ ॥ बलान्नयति राजाऽसौ पूजितोऽद्य मया शुभे ॥ किं करोमि न चेच्छामि त्यक्तुं त्वां मनसा किल ॥ १९ ॥ इत्युक्ता मुनिना धेनुः क्रोधयुक्ता बभूव ह ॥ हंभारवं चकाराशु क्रूरशब्दं सुदारुणम् ॥ २० ॥ उद्गतास्तत्र देहात्तु दैत्या घोरतरास्तदा ॥ सायुधास्तिष्ठ तिष्ठेति ब्रुवंतः कवचावृताः ॥ २१ ॥ सैन्यं सर्वं हतं तैस्तु नंदिनी प्रतिमोचिता ॥ एकाकी निर्गतो राजा विश्वामित्रोऽतिदुःखितः ॥२२॥ हंत पापोऽतिदीनात्मा निंदन्क्षात्रबलं महत् ॥ ब्राह्मं बलं दुराराध्यं

आँखोंमें आँसू भरकर भयसे काँपती हुई नन्दिनीने कहा—॥ १७ ॥ हे मुने ! आप मुझे क्यों त्याग रहे हैं ? ये लोग मुझे जबर्दस्ती क्यों बाँधे लिये जा रहे हैं ? महर्षि वसिष्ठ बोले—हे सुन्दर दूध देनेवाली नन्दिनी ! मैं तुम्हें नहीं त्याग रहा हूँ ॥ १८ ॥ हे शुभे ! मैंने महाराज विश्वामित्रका सत्कार किया था । वे ही तुम्हें हठात् पकड़े लिये जा रहे हैं । मैं क्या करूँ ? अपनी इच्छासे मैं तुम्हें नहीं छोड़ रहा हूँ ॥ १९ ॥ मुनि वसिष्ठके ऐसा कहनेपर धेनु नन्दिनी क्रुद्ध हो गयी और उसने बड़ी ही क्रूर और दारुण 'हम्भा'ध्वनि की ॥ २० ॥ ध्वनि करते ही उसके शरीरसे अगणित शस्त्रसज्ज दैत्य 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए निकल पड़े ॥ २१ ॥ उन्होंने राजा विश्वामित्रकी समस्त सेनाका संहार करके नन्दिनीको छुड़ा लिया । अब अत्यन्त दुःखित होकर राजा विश्वामित्र अकेले ही वहाँसे अपने घरको लौटे ॥ २२ ॥ उन्होंने मन ही मन कहा—अहो ! मैं कितना पापी और दीन आत्मा हूँ । इस महान् क्षात्रबलको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धिक्कार है । अन्तमें ब्रह्मबलको सर्वश्रेष्ठ समझकर वे तप करने लगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार एक भयानक वनमें उन्होंने बहुत वर्षोंतक कठोर तप करके ऋषित्व प्राप्त कर लिया! और उसी समय क्षात्र विधानका परित्याग कर दिया ॥ २४ ॥ राजा युधाजित्‌के प्रधान मंत्रीने कहा—हे राजेन्द्र ! इस कारण आप भी इन मुनियोंसे वैर न करिए । क्योंकि तपस्वियोंके साथ संघर्ष करनेसे कुलका नाश होता है ॥ २५ ॥ आप मुनिराज भारद्वाजके पास जाइए और उन्हें आश्वासन दीजिए । हे राजेन्द्र ! सुदर्शनको यहीं छोड़ दीजिए । जिससे यह यहाँ सुखसे रह सके ॥ २६ ॥ हे नृप ! यह सर्वथा निर्धन और निरीह बालक आपका क्या अहित करेगा ? इस दुर्बल और अनाथ बालकके प्रति आपका वैरभाव व्यर्थ है ॥ २७ ॥ यह संसार सर्वथा दैवके हाथमें रहता है । अतएव सबपर दया करनी चाहिए । हे नृपश्रेष्ठ ! ईर्ष्यासे क्या लाभ ? जो होना है, वह होकर ही रहेगा ॥ २८ ॥ हे राजन ! दैवयोगसे कभी-कभी वज्र भी तिनका बन

मत्वा तपसि संस्थितः ॥ २३ ॥ तप्त्वा बहूनि वर्षाणि तपो घोरं महावने ॥ ऋषित्वं प्राप गाधेयस्त्यक्त्वा क्षात्रं विधिं पुनः ॥ २४ ॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र मा कृथा वैरमद्भुतम् ॥ कुलनाशकरं नूनं तापसैः सह संयुगम् ॥ २५ ॥ मुनिवर्यं व्रजाद्य त्वं समाश्वास्य तपोनिधम् ॥ सुदर्शनोऽपि राजेन्द्र तिष्ठ-त्वत्र यथासुखम् ॥ २६ ॥ बालोऽयं निर्धनः किं ते करिष्यति नृपाहितम् ॥ वृथा ते वैरभावोऽयमनाथे दुर्बले शिशौ ॥ २७ ॥ दया सर्वत्र कर्तव्या दैवाधीनमिदं जगत् ॥ ईर्ष्यया किं नृपश्रेष्ठ यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥ २८ ॥ वज्रं तृणायते राजन्दैवयोगान्न संशयः ॥ तृणं वज्रायते क्वापि समये दैवयोगतः ॥ २९ ॥ शशको हंति शार्दूलं मशको वै तथा गजम् ॥ साहसं मुंच मेधाविन्कुरु मे वचनं हितम् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य युधाजिन्नृपसत्तमः ॥ प्रणम्य तं मुनिं मूर्ध्ना जगाम स्वपुरं ततः ॥ ३१ ॥ मनोरमाऽपि स्वथाऽभूदाश्रमे तत्र संस्थिता ॥ पालयामास पुत्रं तं सुदर्शनमृतव्रतम् ॥ ३२ ॥ दिने दिने कुमारोऽसौ जगामोपचयं ततः ॥ मुनिबालगतः क्रीडन्निर्भयः सर्वतः शुभः ॥ ३३ ॥ एकस्मिन्समये तत्र विदल्लः समुपागतम् ॥ क्लीबेति मुनिपुत्रस्तमामंत्रयत्तदंतिके ॥ ३४ ॥ सुदर्शनस्तु तच्छ्रुत्वा दधारैकाक्षरं स्फुटम् ॥ अनुस्वारयुतं तच्च प्रोवा-चापि पुनः पुनः ॥ ३५ ॥ बीजं वै कामराजाख्यं गृहीतं मनसा तदा ॥ जजाप बालकोऽत्यर्थं धृत्वा चेतसि सादरम् ॥ ३६ ॥ भावियोगान्महाराज

जाता है और कभी तिनका वज्रका रूप धारण कर लेता है ॥ २९ ॥ दैवयोगसे खरहा सिंहको और मच्छड़ हाथीको मार डालता है ! अतएव हे मेधाविन् । आप जोखिमकी राह छोड़कर मेरे हितकारी वचनपर ध्यान दीजिए ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले—मंत्रीकी बातें सुनकर राजा युधाजित् महर्षि भारद्वाजको प्रमाण करके अपने नगरको लौट गये ॥ ३१ ॥ उनके चले जानेपर रानी मनोरमाने भी सुखकी साँस ली और उसी आश्रममें रहती हुई अपने सत्यव्रती पुत्र सुदर्शनका पालन करने लगी ॥ ३२ ॥ सुन्दर राजकुमार दिन-दिन बढ़ता हुआ आश्रमके मुनिबालकोंके साथ निर्भयभावसे खेलता रहा ॥ ३३ ॥ एक दिन मंत्री बिदल्ल उस आश्रममें पहुँच गये । उनकी गतिविधि देखकर हँसी-हँसीमें एक मुनिकुमारने उनको क्लीव अर्थात् नपुंसकके नामसे पुकारा ॥ ३४ ॥ यह नवीन शब्द सुनकर बालक सुदर्शनने उसका आदि अक्षर 'क्ली'को पकड़ लिया और उसको अनुस्वारयुक्त करके बारम्बार जप करने लगा ॥ ३५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसने यह कामराज नामका बीजमंत्र हृदयंगम करके बड़े आदरके साथ उसका जपना आरम्भ कर दिया ॥३६॥ हे महाराज ! दैवयोगसे उसे अचानक यह कामराज नामका अद्भुत महामंत्र प्राप्त हो गया और उस बालकने स्वभावतः उसको अपने हृदयमें उतार लिया ॥ ३७ ॥ जिस समय उस बालकने ऋषि-छन्दविहीन तथा न्यास-ध्यानरहित वह सर्वश्रेष्ठ मंत्र पाया, तब उसकी केवल पाँच वर्षकी अवस्था थी ॥ ३८ ॥ वह नित्य मन ही मन उस मंत्रको जपता हुआ खेलता और सोता था। स्वतः उसने उस मंत्रको सबका मूल तत्त्व समझ लिया था। अतएव वह उसे कभी भी नहीं भूलता था ॥ ३९ ॥ ग्यारहवें वर्षमें मुनिराज भारद्वाजने बालक सुदर्शनका उपनयनसंस्कार करके वेदाध्ययन कराया ॥ ४० ॥ अङ्ग-उपाङ्ग समेत धनुर्वेद और विधिवत् नीतिशास्त्र भी उन्होंने पढ़ाया। सुदर्शनने उसी मंत्रके बलसे सभी विद्याओंका भलीभाँति अभ्यास कर लिया ॥ ४१ ॥ एक बार उसे साक्षात् देवीके स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन भी मिल गया। वे देवी लाल वस्त्र पहने थीं। उनका रंग भी लाल था और वे सभी अंगोंमें लाल अलंकार धारण किये थीं ॥४२॥ वे अद्भुत वैष्णवी शक्ति गरुड़वाहनपर सवार थीं। उनको

कामराजाख्यमद्भुतम् ॥ स्वभावेनैव तेनेत्थं गृहीतं बालकेन वै ॥ ३७ ॥ तदाऽसौ पंचमे वर्षे प्राप्य मंत्रमनुत्तमम् ॥ ऋषिच्छंदोविहीनं च ध्यानन्यासविवर्जितम् ॥३८॥ प्रजपन्मनसा नित्यं क्रीडत्यपि स्वपित्यपि ॥ विसस्मार न तं मंत्रं ज्ञात्वा सारमिति स्वयम् ॥३९॥ वर्षे चैकादशे प्राप्ते कुमारोऽसौ नृपात्मजः ॥ मुनिना चोपनीतोऽथ वेदमध्यापितस्तथा ॥ ४० ॥ धनुर्वेदं तथा सांगं नीतिशास्त्रं विधानतः ॥ अभ्यस्ताः सकला विद्यास्तेन मंत्रबलादिव ॥ ४१ ॥ कदाचित्सोऽपि प्रत्यक्षं देवीरूपं ददर्श ह ॥ रक्ताम्बरं रक्तवर्णं रक्तसर्वांगभूषणम् ॥ ४२ ॥ गरुडे वाहने संस्थां वैष्णवीं शक्तिमद्भुताम् ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नवदनः स बभूव नृपात्मजः ॥ ४३ ॥ वने तस्मिन्स्थितः सोऽथ सर्वविद्यार्थतत्त्ववित् ॥ मातरं सेवमानस्तु विजहार नदीतटे ॥ ४४ ॥ शरासनं च सम्प्राप्तं विशिखाश्च शिलाशिताः ॥ तूणीरकवचं तस्मै दत्तं चाम्बिकया वने ॥ ४५ ॥ एतस्मिन्समये पुत्री काशिराजस्य सुप्रिया ॥ नाम्ना शशिकला दिव्या सर्वलक्षणसंयुता ॥ ४६ ॥ शुश्राव नृपपुत्रं तं वनस्थं च सुदर्शनम् ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नं शूरं काममिवापरम् ॥ ४७ ॥ वंदीजनमुखाच्छ्रुत्वा राजपुत्रं सुसम्मतम् ॥ चकमे मनसा तं वै वरं वरयितुं धिया ॥ ४८ ॥ स्वप्ने तस्याः समागम्य जगदम्बा निशांतरे ॥ उवाच वचनं चेदं समाश्वास्य सुसंस्थिता ॥ ४९ ॥ वरं वरय सुश्रोणि मम भक्तः सुदर्शनः ॥ सर्वकामप्रदस्तेऽस्तु वचनान्मम भामिनि ॥ ५० ॥ एवं

देखते ही उस राजकुमारका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा ॥ ४३ ॥ अब सब विद्याओंका तत्त्वज्ञ सुदर्शन उसी वनमें रहता तथा माताकी सेवा करता हुआ नदीके तटपर विहार करने लगा ॥४४॥ उसी वनमें स्वयं भगवती अम्बिकाने उसे धनुष, तीखे बाण, तरकस और कवच प्रदान किया ॥४५॥ उसी समय काशिराजकी परम प्रिय पुत्री एवं सभी सुलक्षणोंसे युक्त परम सुन्दरी शशिकलाने सुना कि अमुक वनमें सुदर्शन नामका एक राजकुमार रहता है। जो सभी लक्षणोंसे पूर्ण, वीर और कामदेवके समान सुन्दर है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ बन्दीजनोंके मुखसे उसका वृत्तान्त सुनकर राजकुमारीने मन ही मन उसे पतिरूपमें वरण करनेका निश्चय कर लिया ॥ ४८ ॥ उसी रातको भगवती जगदम्बाने राजकुमारीको स्वप्नमें दर्शन दिया और ढाढ़स बँधाते हुए कहा—॥ ४९ ॥ हे सुन्दरी ! सुदर्शन मेरा भक्त है। तुम उसीको अपना पति चुनना। हे भामिनी ! मेरे आशीर्वादसे वह तुम्हारी सब इच्छायें पूर्ण करेगा ॥ ५० ॥ अति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानिनी शशिकला स्वप्नमें भगवतीका मनोहर रूप देख तथा उनकी आश्वासन भरी बातें स्मरण करके बहुत प्रसन्न हुई ॥ ५१ ॥ अब वह बड़े हर्षके साथ सेजसे उठी । उसे इस प्रकार हर्षित देखकर माताने हर्षका कारण पूछा, किन्तु विशेष लजीली होनेके कारण उसने कुछ भी नहीं बताया ॥ ५२ ॥ उस स्वप्नका बारम्बार स्मरण करके वह ठठाकर हँस पड़ती थी । तब उसने अपनी एक सखीको विस्तारपूर्वक स्वप्नका हाल कह सुनाया ॥ ५३ ॥ एक दिन वह विशालनयनी राजकुमारी अपने सखीके साथ चम्पाके सुन्दर बगीचेमें विचरने लगी ॥ ५४ ॥ पुष्पोंको चुनती-चुनती वह बाला एक चम्पाके वृक्षकी छायामें खड़ी हो गयी । उसी समय उसने एक ब्राह्मणको बड़े वेगसे आते देखा ॥५५॥ पास आनेपर शशिकलाने उसे प्रणाम किया और कहा–हे महाभाग ! आप किस देशसे आ रहे हैं ? ॥५६॥ ब्राह्मणने कहा–हे बाले ! मैं कुछ कार्यवश जाकर महर्षि भारद्वाजके आश्रमसे आ रहा हूँ ! आप मुझसे क्या पूछना चाहती हैं,

शशिकला दृष्ट्वा स्वप्ने रूपं मनोहरम् ॥ अंबाया वचनं स्मृत्वा जहर्ष भृशमानिनी ॥ ५१ ॥ उत्थिता सा मुदा युक्ता पृष्टा मात्रा पुनः पुनः ॥ प्रमोदे कारणं बाला नोवाचातित्रपान्विता ॥ ५२ ॥ जहास मुदमापन्ना स्मृत्वा स्वप्नं मुहुर्मुहुः ॥ सखीं प्राह तदाऽन्यां वै स्वप्नवृत्तं सविस्तरम् ॥ ५३ ॥ कदाचित्सा विहारार्थमवापोपवनं शुभम् ॥ सखीयुक्ता विशालाक्षी चंपकैरुपशोभितम् ॥५४॥ पुष्पाणि चिन्वती बाला चंपकाधः स्थिताऽबला ॥ अपश्य-द्ब्राह्मणं मार्गे आगच्छंतं त्वरान्वितम् ॥ ५५ ॥ तं प्रणम्य द्विजं श्यामा बभाषे मधुरं वचः ॥ कुतो देशान्महाभाग कृतमागमनं त्वया ॥ ५६ ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ भारद्वाजाश्रमाद्बाले नूनमागमनं मम ॥ जातं वै कार्ययोगेन किं पृच्छसि वदस्व मे ॥५७॥ शशिकलोवाच ॥ तत्राश्रमे महाभाग वर्णनीयं किमस्ति वै ॥ लोकातिगं विशेषेण प्रेक्षणीयतमं किल ॥ ५८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ध्रुवसंधिसुतः श्रीमानास्ते सुदर्शनो नृपः ॥ यथार्थनामा सुश्रोणि वर्तते पुरुषोत्तमः ॥ ५९ ॥ तस्य लोचनमत्यंतं निष्फलं प्रतिभाति मे ॥ येन दृष्टो न वामोरु कुमारस्तु सुदर्शनः ॥ ६० ॥ एकत्र निहिता धात्रा गुणाः सर्वे सिसृक्षुणा ॥ गुणानामाकरं द्रष्टुं मन्ये तेनैव कौतुकात् ॥ ६१ ॥ तव योग्यः कुमारोऽसौ भर्ता भवितुमर्हति ॥ योगोऽयं विहितो-ऽप्यासीन्मणिकांचनयोरिव ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सो बताइए ॥ ५७ ॥ शशिकला बोली—हे महाभाग ! उस आश्रममें प्रशंसनीय वस्तु क्या है ? और क्या-क्या चीजें विशेष दर्शनीय हैं ? ॥ ५८ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे सुन्दरी ! महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र राजा सुदर्शन वहाँ रहते हैं । जैसे उनका नाम है, वे वैसे ही सुन्दर पुरुष हैं ॥५९॥ हे सुजघने ! जिस प्राणीने उनको नहीं देखा, मैं उसके नेत्रोंको सर्वथा निष्फल समझता हूँ ॥६०॥ मेरा अनुमान है कि सृष्टि करते समय विधाताके मनमें यह भावना हुई होगी कि यदि सब गुण किसी एक व्यक्तिमें निहित कर दिये जायँ तो वह कैसा होगा, यही देखनेके लिए मानो सृष्टिकर्ताने सुदर्शनमें सब गुण एक साथ समाविष्ट कर दिये हैं ॥ ६१ ॥ वह राजकुमार तुम्हारा पति होने योग्य है । जैसे मणि और कंचनका यह संयोग विधाताने पहलेसे ही निर्मित कर दिया है ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(शशिकलाका स्वयम्वर) व्यासजी बोले–उस ब्राह्मणके वचन सुनकर राजकुमारी शशिकला प्रेमविभोर हो गयी और वह ब्राह्मण इतना कहकर वहाँसे चल पड़ा ॥ १ ॥ ब्राह्मणके चले जानेपर पूर्व अनुरागसे तथा इस समय विप्रकी बातोंसे किशोरी शशिकला प्रेमातिरेकके कारण और भी चंचल हो उठी और कामबाणसे घायल हो गयी ॥ २ ॥ विशेष कामपीडित होनेपर उसने अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाली एक सहेलीसे कहा–उस ब्राह्मणकी बातें सुनकर मेरे शरीरमें विकार उत्पन्न हो गया है ॥ ३ ॥ जिसे अभी कामविज्ञानसम्बन्धी रसका ज्ञान नहीं है, उस कुलीन राजकुमारके न मिलनेपर पापी कामदेव मुझे क्यों सता रहा है ? हाय, अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? ॥ ४ ॥ जबसे स्वप्नमें दूसरे कामदेवके समान सुन्दर उस राजकुमारको देखा है, तभीसे मेरा कोमल मन विरहवेदनासे झुलसा जा रहा है ॥५॥ हे भामिनि ! शरीरमें लगा हुआ चन्दन विष सदृश दाह उत्पन्न करता है। यह माला

॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तद्वचनं श्यामा प्रेमयुक्ता बभूव ह ॥ प्रतस्थे ब्राह्मणस्तस्मात्स्थानादुक्त्वा समाहितः ॥ १ ॥ सा तु पूर्वानुरागाद्वै मग्ना प्रेम्णाऽतिचंचला ॥ कामबाणहतेवास गते तस्मिन्द्विजोत्तमे ॥ २ ॥ अथ कामार्दिता प्राह सखीं छंदोनुवर्तनीम् ॥ विकारश्च समुत्पन्नो देहे यच्छ्रवणा-दनु ॥३॥ अज्ञातरसविज्ञानं कुमारं कुलसंभवम् ॥ दुनोति मदनः पापः किं करोमि क्व यामि च ॥४॥ स्वप्नेषु वा मया दृष्टः पंचबाण इवापरः ॥ तपते मे मनोऽत्यर्थं विरहाकुलितं मृदु ॥ ५ ॥ चंदनं देहलग्नं मे विषवद्भाति भामिनि ॥ स्रगियं सर्पवच्चैव चंद्रपादाश्च वह्निवत् ॥ ६ ॥ न च हर्म्ये वने शं मे दीर्घिकायां न पर्वते ॥ न दिवा न निशायां वा न सुखं सुखसाधनैः ॥ ७ ॥ न शय्या न च तांबूलं न गीतं न च वादनम् ॥ प्रीणयन्ति मनो मेऽद्य न तृप्ते मम लोचने ॥ ८ ॥ प्रयाम्यद्य वने तत्र यत्रासौ वर्तते शठः ॥ भीताऽस्मि कुललज्जायाः परतंत्रा पितुस्तथा ॥ ९ ॥ स्वयंवरं पिता मेऽद्य न करोति करोमि किम् ॥ दास्यामि राजपुत्राय कामं सुदर्शनाय वै ॥ १० ॥ संत्यन्ये पृथिवीपालाः शतशः संभृतर्द्धयः ॥ रमणीया न मे तेऽद्य राज्यहीनोऽप्यसौ मतः ॥११॥ व्यास उवाच ॥ एकाकी निर्धनश्चैव बलहीनः सुदर्शनः ॥ वनवासी फलाहारस्तस्याश्चित्ते सुसंस्थितः ॥१२॥ वाग्बीजस्य जपात्सिद्धिस्तस्या एषाऽप्युपस्थिता ॥ सोऽपि ध्यानपरोऽत्यंतं जजाप मंत्रमुत्तमम् ॥१३॥ स्वप्ने पश्यत्यसौ देवीं विष्णुमायामखंडिताम् ॥

मुझे सर्पसदृश और चन्द्रमाकी शीतल किरणें आग जैसा लग रही हैं ॥ ६ ॥ मुझे महलोंमें, उपवनमें, बावलीमें, पर्वतपर, दिनमें, रातमें तथा विविध भाँतिके सुखसाधनोंमें कहीं भी चैन नहीं मिलती ॥७॥ कोमल शय्या, सुगन्धित ताम्बूल तथा वाद्यवादन ये मुझे कुछ भी सुख नहीं देते। क्योंकि मेरे नेत्र तृप्त नहीं होते ॥८॥ मनमें आता है कि मैं अभी उस वनमें चली जाऊँ, जहाँ वह निष्ठुर रहता है। किन्तु कुलकी लाज तथा पिताकी परतंत्रता मुझे ऐसा नहीं करने देती ॥ ९ ॥ मेरे पिता स्वयम्वर भी नहीं रचाते और मैं अपने आपको सुदर्शनके चरणोंमें सौंप चुकी। अब मैं क्या करूँ ? ॥ १० ॥ यद्यपि सैकड़ों समृद्धिसम्पन्न अन्य राजे हैं, किन्तु वे मुझे भले नहीं लगते। लेकिन राज्यहीन हो करके भी सुदर्शन मुझको सबसे सुन्दर दीखते हैं ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले–उस राजकुमारीके मनमें वह निर्धन, सेनाविहीन, वनवासी और फलाहारी सुदर्शन बस गया था ॥ १२ ॥ वाग्बीजके जपसे उसे यह सिद्धि प्राप्त हुई थी। अतएव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह अब भी ध्यानमग्न होकर उस उत्तम मंत्रका जप किया करता था ॥ १३ ॥ सुदर्शनको नित्य स्वप्नमें अखण्डिता, विष्णुमाया, जगन्माता, अव्यक्ता तथा सर्वसम्पत्तिदायिनी भगवती अम्बिकाका दर्शन मिलता था ॥१४॥ उसी समय शृङ्गवेरपुरके अध्यक्ष निषादराजने आकर उसे सब सामग्रियोंसे पूर्ण एक उत्तम रथ प्रदान किया ॥१५॥ उस रथमें चार घोड़े जुते थे और सुन्दर पताका फ़हरा रही थी। सुदर्शनको विजयी राजकुमार समझकर उपहारमें उसे दे दिया ॥ १६ ॥ सुदर्शनने भी उसे मित्रकी सौगात समझकर ले लिया और वनैले फल-मूलसे निषाद-राजका सत्कार किया ॥ १७ ॥ आतिथ्य स्वीकार करके निषादराजके चले जानेपर आश्रमवासी मुनि बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सुदर्शनसे कहा--॥ १८ ॥ हे राजपुत्र। आप थोड़े ही दिनों बाद अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे। क्योंकि आप धैर्यशाली तथा प्रतापी हैं ॥ १९ ॥ हे सुव्रत ! आपके ऊपर विश्वमोहिनी और वरदायिनी भगवती अम्बिका प्रसन्न हैं और सहायक भी अच्छे मिल गये हैं। अब आप किसी बातकी चिन्ता न करें ॥ २० ॥ उन व्रतधारी मुनियोंने मनोरमासे भी यह बात कही—हे शुचिस्मिते ! आपका पुत्र शीघ्र राजा बनेगा ॥ २१ ॥ तब

विश्वमातरव्यक्तां सर्वसंपत्करांबिकाम् ॥ १४ ॥ शृंगवेरपुराध्यक्षो निषादः समुपेत्य तम् ॥ ददौ रथवरं तस्मै सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ १५ ॥ चतुर्भि-स्तुरगैर्युक्तं पताकावरमंडितम् ॥ जैत्रं राजसुतं ज्ञात्वा ददौ चोपायनं तदा ॥ १६ ॥ सोऽपि जग्राह तं प्रीत्या मित्रत्वेन सुसंस्थितम् ॥ वन्यैर्मूलफलैः सम्यगर्चयामास शंबरम् ॥ १७ ॥ कृतातिथ्ये गते तस्मिन्निषादाधिपतौ तदा ॥ मुनयः प्रीतियुक्तास्ते तमूचुस्तापसा मिथः ॥ १८ ॥ राजपुत्र ध्रुवं राज्यं प्राप्स्यसि त्वं च सर्वथा ॥ स्वल्पैरहोभिरव्यग्रः प्रतापान्नात्र संशयः ॥ १६ ॥ प्रसन्ना तेऽम्बिका देवी वरदा विश्वमोहिनी ॥ सहायस्तु सुसंपन्नो न चिन्तां कुरु सुव्रत ॥ २० ॥ मनोरमां तथोचुस्ते मुनयः संशितव्रताः ॥ पुत्रस्तेऽद्य धराधीशो भविष्यति शुचिस्मिते ॥ २१ ॥ सा तानुवाच तन्वंगी वचनं वोऽस्तु सत्फलम् ॥ दासोऽयं भवतां विप्रा किं चित्रं सदुपासनात् ॥२२॥ न सैन्यं सचिवाः कोशो न सहायश्च कश्चन ॥ केन योगेन पुत्रो मे राज्यं प्राप्नुमिहार्हति ॥ २३ ॥ आशीर्वादैश्च वो नूनं पुत्रोऽयं मे महीपतिः ॥ भविष्यति न संदेहो भवंतो मंत्रवित्तमाः ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ रथारूढः स मेधावी यत्र याति सुदर्शनः ॥ अक्षौहिणीसमावृत्त इवाभाति स तेजसा ॥ २५ ॥ प्रतापो मंत्रबीजस्य नान्यः कश्चन भूपते ॥ एवं वै जपतस्तस्य प्रीतियुक्तस्य सर्वथा ॥२६॥ संप्राप्य सद्गुरोर्बीजं कामराजाख्यमद्भुतम् ॥ जपेद्यस्तु शुचिः शांतः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२७॥ न तदस्ति

इकहरे शरीरवाली रानी मनोरमाने कहा-भगवान करें कि आपकी वाणी फलदायिनी हो। हे विप्रगण ! सुदर्शन आप लोगोंका सेवक है और आप सरीखे महानुभावोंकी सेवासे उसे राज्य मिले तो क्या आश्चर्य है ॥ २२ ॥ लेकिन उसके पास न सेना है, न मंत्री हैं, न खजाना है और न कोई प्रबल सहायक है। ऐसी स्थितिमें मेरा पुत्र राज्य कैसे पायेगा ? ॥ २३ ॥ हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि आपके आशीर्वादसे मेरा पुत्र अवश्य राजा होगा। क्योंकि आपलोग असाधारण मंत्रज्ञ हैं ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले--हे राजन् ! बुद्धिमान् सुदर्शन रथपर सवार होकर जब निकलता था तो वह अपने तेजसे सैकड़ों अक्षौहिणी सेनासे घिरा मालूम पड़ता था ॥ २५ ॥ हे राजन् ! यह सब उसी मंत्रबीजका प्रताप था, और किसीका नहीं। क्योंकि सुदर्शन सदा बड़े प्रेमसे वह मंत्र जपता रहता था ॥ २६ ॥ जो मनुष्य किसी सद्गुरुके मुखसे कामराज बीजमंत्र सुनकर शान्ति तथा पवित्रतापूर्वक उस मंत्रका जप करता है, उसकी सब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ २७ ॥ इस पृथिवीतलपर तथा देवलोकमें भी कोई ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं है, जो भगवतीके प्रसन्न होनेपर न प्राप्त हो सके ॥ २८ ॥ वे लोग मतिमन्द, अभागे और रोगी होते हैं, जिनके मनमें भगवतीकी पूजाके प्रति श्रद्धा नहीं होती ॥ २९ ॥ युगके आदिमें वे देवताओंकी माता कही गयी थीं। इसी कारण हे कुरुवंशके धुरन्धर ! वे संसारमें आदिमाताके नामसे विख्यात हैं ॥ ३० ॥ बुद्धि, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी, शक्ति, श्रद्धा, मति और स्मृति ये आठ मातायें सब प्राणियोंको प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं ॥ ३१ ॥ जो लोग मायासे मोहित हैं, वे उन्हें नहीं जान पाते। कुतर्की मनुष्य विश्वेश्वरी शिवा भगवतीका भजन नहीं कर सकते ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, यम, वायु, अग्नि, कुबेर, त्वष्टा (विश्वकर्मा), पूषा, दोनों अश्विनीकुमार, भग, आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुत् आदि सभी देवता सृष्टि, पालन तथा संहारकारिणी भगवतीका ध्यान करते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कौन

पृथिव्यां वा दिवि वाऽपि सुदुर्लभम् ॥ प्रसन्नायाः शिवायाश्च यदप्राप्यं नृपोत्तम ॥ २८ ॥ ते मंदास्तेऽतिदुर्भाग्या रोगैस्ते समभिद्रुताः ॥ येषां चित्ते न विश्वासो भवेदंबार्चनादिषु ॥ २९ ॥ या माता सर्वदेवानां युगादौ परिकीर्तिता ॥ आदिमातेति विख्याता नाम्ना तेन कुरूद्वह ॥ ३० ॥ बुद्धिः कीर्तिर्धृतिर्लक्ष्मीः शक्तिः श्रद्धा मतिः स्मृतिः ॥ सर्वेषां प्राणिनां सा वै प्रत्यक्षं वै विभासते ॥ ३१ ॥ न जानंति नरा ये वै मोहिता मायया किल ॥ न भजन्ति कुतर्कज्ञा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा शंभुर्वासवो वरुणो यमः ॥ वायुरग्निः कुबेरश्च त्वष्टा पूषाऽश्विनौ भगः ॥ ३३ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ सर्वे ध्यायंति तां देवीं सृष्टिस्थित्यंतकारिणीम् ॥ ३४ ॥ को न सेवेत विद्वान्वै तां शक्तिं परमात्मिकाम् ॥ सुदर्शनेन सा ज्ञाता देवी सर्वार्थदा शिवा ॥३५॥ ब्रह्मैव साऽतिदुष्प्रापा विद्याऽविद्यास्वरूपिणी ॥ योगगम्या परा शक्तिर्मुमुक्षूणां च वल्लभा ॥ ३६ ॥ परमात्मस्वरूपं को वेत्तुमर्हति तां विना ॥ या सृष्टिं त्रिविधां कृत्वा दर्शयत्यखिलात्मने ॥ ३७ ॥ सुदर्शनस्तु तां देवीं मनसा परिचिंतयन् ॥ राज्यलाभात्परं प्राप्य सुखं वै कानने स्थितः ॥ ३८ ॥ साऽपि चंद्रकलाऽत्यर्थं कामबाणप्रपीडिता ॥ नानोपचारैरनिशं दधार दुःखितं वपुः ॥ ३९ ॥ तावत्तस्याः पिता ज्ञात्वा कन्यां पुत्रवरार्थिनीम् ॥ सुबाहुः कारयामास स्वयंवरमतंद्रितः ॥ ४० ॥ स्वयंवरस्तु त्रिविधो विद्वद्भिः परि-

ऐसा विद्वान् है, जो उन परमात्मिका शक्तिका भजन नहीं करता। उन्हीं सर्वार्थप्रदायिनी भगवतीको सुदर्शनने जाना ॥ ३५ ॥ वे विद्या और अविद्यास्वरूपिणी भगवती ही सबके लिए दुष्प्राप्य ब्रह्म हैं। वे परा शक्ति केवल योगमार्गसे प्राप्त होती हैं। मुमुक्षु प्राणियोंको वे विशेष प्रिय हैं ॥ ३६ ॥ उन भगवतीकी कृपाके विना परमात्माके स्वरूपको कौन जान सकता है ? वे भगवती ही तीन प्रकारकी सृष्टि करके भगवान् सर्वात्माको दिखलाती हैं ॥ ३७ ॥ मन ही मन भगवतीका ध्यान करता हुआ राजकुमार सुदर्शन वनमें ही राज्यप्राप्तिसे भी अधिक सुख मानकर रहता था ॥ ३८ ॥ उधर राजकुमारी शशिकला कामबाणसे पीडित होकर अनेकानेक उपचारोंसे किसी प्रकार अपना दुःखित जीवन धारण किये हुए थी ॥ ३९ ॥ तभी कन्या शशिकलाके पिता महाराज सुबाहुको पता चल गया कि कन्या वर चाहती है। तब उन्होंने उसके लिए स्वयम्बर रचाया ॥ ४० ॥ विद्वानोंने स्वयम्बरके तीन प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बतलाये हैं। ऐसा विवाह क्षत्रियोंके लिए ही विहित है–अन्य वर्णोंके लिए नहीं ॥ ४१ ॥ पहला 'इच्छास्वयम्वर' जिसमें कन्या अपनी इच्छाके अनुसार वर चुन लेती है। दूसरा 'प्रणस्वयम्वर' जिसमें कोई शर्त रक्खी जाती है। जैसे भगवान रामने भरी सभामें शिवधनुष तोड़ा था ॥ ४२ ॥ तीसरा 'शौर्यशुल्क स्वयम्वर' जिसमें वीरता प्रदर्शित करके वर कन्याको प्राप्त करता है। सो महाराज सुबाहुने 'इच्छास्वयम्वर'का आयोजन किया ॥४३॥ इसके लिए उन्होंने कारीगरोंके द्वारा एक मञ्च बनवाया और उसपर अच्छे-अच्छे बिछौने बिछवाये। इसके बाद विविध आकार-प्रकारके मण्डप बनवाये, जिनमें बैठनेवालोंके लिए सभी सुविधायें थीं ॥४४॥ इस प्रकार विवाहके लिए विस्तृत आयोजन देखकर सुनयनी शशिकलाने बहुत दुःखित होकर अपनी सखीसे कहा—॥ ४५ ॥ सखी! तुम एकान्तमें मेरी मातासे कह दो कि मैंने अपने मनसे महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शनको अपना पति चुन लिया है ॥ ४६ ॥ मैं सुदर्शनको छोड़कर और किसीको अपना पति नहीं बना सकती। स्वयं भगवतीने उस राजकुमारको मेरा पति निश्चित कर दिया है ॥ ४७ ॥ व्यासजी बोले—यह सुनकर वह मधुरभाषिणी सखी

कीर्तितः ॥ राज्ञां विवाहयोग्यो वै नान्येषां कथितः किल ॥ ४१ ॥ इच्छास्वयंवरश्चैको द्वितीयश्च पणाभिधः ॥ यथा रामेण भग्नं वै त्र्यंबकस्य शरासनम् ॥ ४२ ॥ तृतीयः शौर्यशुल्कश्च शूराणां परिकीर्तितः ॥ इच्छास्वयंवरं तत्र चकार नृपसत्तमः ॥ ४३ ॥ शिल्पिभिः कारिता मंचाः शुभैरास्तरणैर्युताः ॥ ततश्च विविधाकाराः सुक्लृप्ताः सभ्यमंडपाः ॥ ४४ ॥ एवं कृतेऽतिसंभारे विवाहार्थं सुविस्तरे ॥ सखीं शशिकला प्राह दुःखिता चारुलोचना ॥ ४५ ॥ इदं मे मातरं ब्रूहि त्वमेकांते वचो मम ॥ मया वृतः पतिश्चित्ते ध्रुवसंधिसुतः शुभः ॥ ४६ ॥ नान्यं वरं वरिष्यामि तमृते वै सुदर्शनम् ॥ स मे भर्ता नृपसुतो भगवत्या प्रतिष्ठितः ॥ ४७ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता सा सखी गत्वा मातरं प्राह सत्वरा ॥ वैदर्भीं विजने वाक्यं मधुरं मञ्जुभाषिणी ॥ ४८ ॥ पुत्री ते दुःखिता प्राह साध्वि त्वां मन्मुखेन यत् ॥ शृणु त्वं कुरु कल्याणि तद्धितं त्वरिताऽधुना ॥ ४९ ॥ भारद्वाजाश्रमे पुण्ये ध्रुवसंधिसुतोऽस्ति यः ॥ स मे भर्ता वृतश्चित्ते नान्यं भूपं वृणोम्यहम् ॥ ५० ॥ व्यास उवाच ॥ राज्ञी तद्वचनं श्रुत्वा स्वपतौ गृहमागते ॥ निवेदयामास तदा पुत्रीवाक्यं यथातथम् ॥ ५१ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विस्मितः प्रहसन्मुहुः ॥ भार्यामुवाच वैदर्भीं सुबाहुस्तु ऋतं वचः ॥ ५२ ॥ सुभ्रु जानासि बालोऽसौ राज्यान्निष्कासितो वने ॥ एकाकी सह मात्रा वै वसते निर्जने वने ॥ ५३ ॥ तत्कृते निहतो राजा वीरसेनो

तत्काल विदर्भराजकुमारी शशिकलाकी माताको एकान्तमें ले जाकर मीठे शब्दोंमें बोली ॥४८॥ उसने कहा–हे साध्वि! आपकी पुत्रीने अत्यन्त दुःखित होकर मेरे द्वारा जो संदेश कहलाया है, उसे सुनिए। उसके बाद हे कल्याणी! जो उचित समझिए, उसे तुरन्त करिए ॥४९॥ उनका कहना है कि महर्षि भारद्वाजके पुनीत आश्रममें जो राजा ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शन रहते हैं, उन्हें मैं पति मान चुकी हूँ। अन्य किसी भी राजाको मैं नहीं वरूँगी ॥५०॥ व्यासजीने कहा–महारानीने यह बात सुन ली और जब महाराज सुबाहु महलमें आये, तब उसने जो कुछ सुना था, सो सब ज्योंका त्यों कह सुनाया ॥५१॥ यह सुनकर महाराजको पहले तो बड़ा विस्मय हुआ, किन्तु बादमें वे हँसने लगे। राजा सुबाहुने रानीसे यह तथ्य बात कही–॥५२॥ हे सुभ्रु! तुम जानती हो कि वह बालक अपने राज्यसे निकाला हुआ है। इस समय उस विजन वनमें अपनी माताके साथ वह अकेला रहता है ॥ ५३ ॥ उसीके लिए राजा वीरसेन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युधाजित्के हाथों मारे गये। हे सुनयनी! ऐसा निर्धन पति क्या मेरी कन्याके योग्य हो सकता है? ॥ ५४ ॥ तुम जाकर पुत्री शशिकलासे कह दो कि स्वयंवरमें बड़े अच्छे-अच्छे राजे आनेवाले हैं। उनके प्रति वह फिर कभी ऐसे दुर्वचन न कहे ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(स्वयम्वरमें सुदर्शनका आगमन) व्यासजी बोले—हे राजन्! अपने पतिके वचन सुनकर महारानीने अपनी पुत्री शशिकलाको गोदमें बैठा लिया और सान्त्वना देती हुई यह मीठी वाणी बोली—॥१॥ हे सुन्दर दाँतोंवाली पुत्री! तुम हमारी मर्यादाके विरुद्ध बातें क्यों कहती हो? हे सुव्रते! ऐसी बातें सुनकर तुम्हारे पिताको बड़ा दुःख होता है ॥२॥ सुदर्शन बड़ा अभागा, राज्यभ्रष्ट और निराधार है। उसके पास न सेना है और न कोश। उसके बन्धु-बान्धवोंने भी उसे त्याग दिया है ॥ ३ ॥ माताके साथ वह वन्य फल-मूलपर जीवन यापन

युधाजिता ॥ स कथं निर्धनो भर्ता योग्यः स्याच्चारुलोचने ॥ ५४ ॥ ब्रूहि पुत्रीं ततो वाक्यं कदाचिदपि विप्रियम् ॥ आगमिष्यंति राजानः स्थिति-मंतः स्वयंवरे ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ भर्त्रा साऽभिहिता बाला पुत्रीं कृत्वाऽङ्कसंस्थिताम् ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं समाश्वास्य शुचिस्मिताम् ॥ १ ॥ किं वृथा सुदति त्वं हि विप्रियं मम भाषसे ॥ पिता ते दुःखमाप्नोति वाक्येनानेन सुव्रते ॥ २ ॥ सुदर्शनोऽतिदुर्भाग्यो राज्यभ्रष्टो निराश्रयः ॥ बलकोशवि-हीनश्च परित्यक्तस्तु बांधवैः ॥ ३ ॥ मात्रा सह वनं प्राप्तः फलमूलाशनः कृशः ॥ न ते योग्यो वरोऽयं वै वनवासी च दुर्भगः ॥ ४ ॥ राजपुत्राः कृतप्रज्ञा रूपवंतः सुसंमताः ॥ तवार्हाः पुत्रि सन्त्यन्ये राजचिह्नैरलंकृताः ॥ ५ ॥ भ्राताऽस्य वर्तते कांतः स राज्यं कोसलेषु वै ॥ करोति रूपसंपन्नः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ ६ ॥ अन्यच्च कारणं सुभ्रु शृणु यच्च मया श्रुतम् ॥ युधाजित्सततं तस्य वधकामोऽस्ति भूमिपः ॥ ७ ॥ दौहित्रः स्थापितस्तेन राज्ये कृत्वाऽतिसंगरम् ॥ वीरसेनं नृपं हत्वा संमंत्र्य सचिवैः सह ॥ ८ ॥ भारद्वाजाश्रमं प्राप्तं हंतुकामः सुदर्शनम् ॥ मुनिना वारितः पश्चाज्जगाम निजमंदिरम् ॥९॥ शशिकलोवाच ॥ मातर्ममेप्सितः कामं वनस्थोऽपि नृपात्मजः ॥ शर्यातिवचनेनैव सुकन्या च पतिव्रता ॥१०॥ च्यवनं च यथा प्राप्य पतिशुश्रूषणे रता ॥ पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां स्वर्गदं मोक्षदं तथा ॥११॥ अकैतवकृतं नूनं सुखदं भवति स्त्रियाः ॥ भगवत्या समादिष्टं स्वप्ने वरमनुत्तमम्

करते-करते बहुत दुर्बल हो गया है। ऐसा अभागा और वनवासी मनुष्य तुम्हारे योग्य वर नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ हे कन्यके! तुम्हारे वर होने योग्य बहुतेरे राजकुमार हैं। जो रूपवान्, बुद्धिमान्, सुसम्मानित और छत्र-चमर आदि राजचिह्नोंसे अलंकृत हैं ॥५॥ इसी सुदर्शनका बड़ा भाई शत्रुजित् बड़ा सुन्दर राजकुमार है। वह अयोध्याका राज्य करता है। वह बहुत सुन्दर तथा सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न है ॥ ६ ॥ हे सुभ्रु! एक दूसरा कारण भी मैंने सुना है। राजा युधाजित् सर्वदा सुदर्शनको मार डालनेके फेरमें रहता है ॥ ७ ॥ उसने भीषण युद्ध करके अपने नातीको राजगद्दीपर बिठाला है। उसने अपने मंत्रियोंके साथ मंत्रणा करके और सुदर्शनके नाना वीरसेनको मारकर ऐसा किया है ॥ ८ ॥ राजा युधाजित् सुदर्शनको मारनेके लिए महर्षि भारद्वाजके आश्रमपर भी पहुँचा था, किन्तु मुनिराजके अनुरोधसे वह लौट गया ॥ ९ ॥ शशिकला बोली—हे माताजी! मैंने उस वनवासी राजकुमारको ही अपना पति मान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया है । पूर्वकालमें अपने पिता राजा शर्यातिकी आज्ञासे पतिव्रता सुकन्या महर्षि च्यवनको पति बनाकर उनकी सेवामें लग गयी थी । क्योंकि पतिकी सेवा करनेसे स्त्रीको स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥ ११ ॥ अपने पतिके प्रति कपटहीन व्यवहार ही स्त्रियोंके लिए सुखदायक होता है । और फिर स्वयं भगवतीने स्वप्नमें सुदर्शनको मेरा पति बनाया है ॥१२॥ ऐसी स्थितिमें मैं किसी अन्य राजकुमारको अपना पति कैसे चुन सकती हूँ ? स्वयं भगवती अम्बिकाने मेरे चित्तरूपी भित्तिपर सुदर्शनका चित्र अंकित कर दिया है ॥१३॥ अतएव ऐसे प्रिय पतिको त्यागकर मैं किसी दूसरेको पतिरूपमें वरण न करूँगी । व्यासजी बोले—इसके बाद उसकी माताने विविध उदाहरण देकर समझाया, किन्तु शशिकलाको उसकी बात नहीं जँची ॥ १४ ॥ इस प्रकार पुत्रीके न माननेपर महारानीने अपने पतिको सब बातें बता दीं । उधर विवाहके कुछ दिनों पहले ही शशिकलाने एक विद्वान् ब्राह्मणको बुलाकर कहा-आप इस तरह यहाँसे जाइए कि मेरे पिताजीको न मालूम हो सके । ऐसा कहकर उसने तत्काल ब्राह्मण देवताको राजकुमार सुदर्शनके पास भेज दिया ॥ १५ ॥ १६ ॥ चलते समय

॥ १२ ॥ तमृतेऽहं कथं चान्यं संश्रयामि नृपात्मजम् ॥ मच्चित्तभित्तौ लिखितो भगवत्या सुदर्शनः ॥ १३ ॥ तं विहाय प्रियं कांतं करिष्येऽहं न चापरम् ॥ व्यास उवाच ॥ प्रत्यादिष्टाऽथ वैदर्भी तया बहुनिदर्शनैः ॥ १४ ॥ भर्तारं सर्वमाचष्ट पुत्र्योक्तं वचनं भृशम् ॥ विवाहस्य दिनादर्वागाप्तं श्रुतसमन्वितम् ॥ १५ ॥ द्विजं शशिकला तत्र प्रेषयामास सत्वरम् ॥ यथा न वेद मे तातस्तथा गच्छ सुदर्शनम् ॥ १६ ॥ भारद्वाजाश्रमे ब्रूहि यद्वाक्यात्तरसा विभो ॥ पित्रा मे संभृतः कामं मदर्थेन स्वयंवरः ॥१७॥ आगमिष्यंति राजानो बलयुक्ता ह्यनेकशः ॥ मया त्वं वै वृतश्चित्ते सर्वथा प्रीतिपूर्वकम् ॥ १८ ॥ भगवत्या समादिष्टः स्वप्ने मम सुरोपम ॥ विषमद्मि हुताशे वा प्रपतामि प्रदीपिते ॥ १९ ॥ वरये त्वदृते नान्यं पितृभ्यां प्रेरिताऽपि वा ॥ मनसा कर्मणा वाचा संवृतस्त्वं मया वरः ॥ २० ॥ भगवत्याः प्रसादेन शर्माावाभ्यां भविष्यति ॥ आगंतव्यं त्वयाऽत्रैव दैवं कृत्वा परं बलम् ॥ २१ ॥ यदधीनं जगत्सर्वं वर्तते सचराचरम् ॥ भगवत्या यदादिष्टं न तन्मिथ्या भविष्यति ॥२२॥ यद्वशे देवताः सर्वा वर्तन्ते शंकरा-दयः॥ वक्तव्योऽसौ त्वया ब्रह्मन्नेकांते वै नृपात्मजः ॥२३॥ यथा भवति मे कार्यं तत्कर्तव्यं त्वयाऽनघ॥ इत्युक्त्वा दक्षिणां दत्त्वा मुनिर्व्यापारितस्तथा

राजकुमारीने ब्राह्मणसे कहा—आप महर्षि भारद्वाजके आश्रमपर जाकर राजकुमार सुदर्शनसे कहिए कि मेरे विवाहके लिए माता-पिताने स्वयम्वरका आयोजन किया है ॥ १७ ॥ उसमें अपनी-अपनी सेनाके साथ बहुतेरे राजे आयेंगे । किन्तु मैं बड़े प्रेमपूर्वक मन से सच्चा आपको अपना पति बना चुकी हूँ ॥ १८ ॥ हे देवोपम राजकुमार ! मुझे स्वप्नमें साक्षात् भगवतीने आपको पतिरूपमें वरण करनेका आदेश दिया है । अतएव मैं जहर खा लूँगी या जलती आगमें जल मरूँगी, पर आपको छोड़कर किसी अन्य पुरुषको पति नहीं चुनूँगी । मेरे माता-पिता चाहे कितना ही जोर दें, लेकिन मैं अपने निश्चयपर दृढ़ रहूँगी । क्योंकि मैंने मनसा, वाचा, कर्मणा आपको अपना पति मान लिया है ॥ १९ ॥ २० ॥ भगवतीकी कृपासे हमारा-आपका कल्याण होगा । सो आप भाग्यको प्रबल मानकर इस स्वयम्वरमें अवश्य सम्मिलित हों ॥ २१ ॥ जिनके अधीन सराचर जगत् है और शंकर आदि देवता जिनके वशवर्ती रहते हैं, उन भगवतीका आदेश कभी व्यर्थ नहीं हो सकता । हे ब्राह्मणदेवता ! आप एकान्तमें सुदर्शनको यह सब बातें बता दीजिएगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे पूतात्मन् ! अब आप ऐसा कुछ करिए कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिससे मेरा काम बन जाय। ऐसा कह और पुष्कल दक्षिणा देकर शशिकलाने ब्राह्मणको भेज दिया ॥ २४ ॥ ब्राह्मण देवता भारद्वाजके आश्रममें जाकर सुदर्शनसे मिले और सब वृत्तान्त बताकर राजकुमारीके पास लौट आये। सुदर्शनने सब समाचार सुनाकर मुनिराज भारद्वाजसे अनुमति माँगी और बड़े आदरके साथ मुनिने उन्हें स्वयंवरमें सम्मिलित होनेकी अनुमति दे दी। तदनुसार राजकुमारने वहाँ जानेका निश्चय कर लिया। व्यासजी बोले—स्वयंवरमें जानेके लिए उद्यत सुदर्शनसे माता मनोरमाने कहा ॥२५॥२६॥ उस समय वह बहुत दुःखित और भयभीत होनेके कारण काँप रही थी और उसके नेत्रोंसे आँसू बह रहा था। वह बोली—पुत्र! तुम उन क्षत्रियोंके जमावड़ेमें क्यों जा रहे हो? ॥२७॥ तुम अकेले हो और वहाँ तुम्हारे बहुतेरे शत्रु आयेंगे। तुम्हारे वधका इच्छुक राजा युधाजित् वहाँ अवश्य जायगा। ऐसी दशामें तुम क्या सोचकर वहाँ जाते हो? ॥ २८ ॥ तुम्हारा कोई सहायक भी नहीं है। अतएव हे पुत्र! तुम

॥२४॥ गत्वा सर्वं निवेद्याशु तत्र प्रत्यागतो द्विजः ॥ सुदर्शनस्तु तज्ज्ञात्वा निश्चयं गमने तदा ॥ २५ ॥ चकार मुनिना तेन प्रेरितः परमादरात् ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ गमनायोद्यतं पुत्रं तमुवाच मनोरमा ॥ २६ ॥ वेपमानाऽतिदुःखार्ता जातत्रासाऽश्रुलोचना ॥ कुत्र गच्छसि तत्राद्य समाजे भूभृता किल ॥२७॥ एकाकी कृतवैरश्च किं विचिन्त्य स्वयंवरे ॥ युधाजिद्धन्तुकामस्त्वां समेष्यति महीपतिः ॥ २८ ॥ न तेऽन्योस्ति सहायश्च तस्मान्मा व्रज पुत्रक ॥ एकपुत्राऽतिदीनाऽस्मि तवाधारा निराश्रया ॥ २९ ॥ नार्हसि त्वं महाभाग निराशां कर्तुमद्य माम् ॥ पिता ते निहतो येन सोऽपि तत्रागतो नृपः ॥ ३० ॥ एकाकिनं गतं तत्र युधाजित्त्वां हनिष्यति ॥ सुदर्शन उवाच ॥ भवितव्यं भवत्येव नात्र कार्या विचारणा ॥ ३१ ॥ आदेशाच्च जगन्मातुर्गच्छाम्यद्य स्वयम्वरे ॥ मा शोकं कुरु कल्याणि क्षत्रियाऽसि वरानने ॥ ३२ ॥ न बिभेमि प्रसादेन भगवत्या निरन्तरम् ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य गन्तुकामं सुदर्शनम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा मनोरमा पुत्रमाशीर्भिश्चान्वमोदयत् ॥ अग्रतस्तेऽम्बिका पातु पार्वती पातु पृष्ठतः ॥ ३४ ॥ अपर्णा पार्श्वयोः पातु शिवा सर्वत्र सांप्रतम् ॥ वाराहो विषमे मार्गे दुर्गा दुर्गेषु कर्हिचित् ॥ कालिका कलहे घोरे पातु त्वां परमेश्वरी ॥ ३५ ॥ मण्डपे तत्र मातंगी तथा सौम्या स्वयंवरे ॥ भवानी भूपमध्ये तु पातु त्वां भवमोचनी ॥ ३६ ॥ गिरिजा गिरिदुर्गेषु चामुण्डा चत्वरेषु च ॥ कामगा काननेष्वेवं रक्षतु त्वां सनातनी ॥ ३७ ॥ विवादे वैष्णवी शक्तिरवतात्त्वां रघूद्वह ॥ भैरवी चरणे सौम्य शत्रूणां वै समागमे

वहाँ मत जाओ। मेरे एकमात्र पुत्र तुम्हीं हो। मुझ गरीबिन और निराधारके अकेले तुम्हीं आधार हो ॥२९॥ अतएव हे महाभाग! तुम मुझे निराश न करो। जिसने मेरे पिताका वध किया है, वह राजा युधाजित् तुम्हें मार डालेगा। सुदर्शनने कहा—हे माताजी! होनी होकर रहती है। इसलिए तुम कुछ चिन्ता न करो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे कल्याणी! मैं भगवती जगदम्बाके आदेशसे वहाँ जा रहा हूँ। हे माता! तुम शोक मत करो। क्योंकि तुम क्षत्राणी हो ॥३२॥ मुझपर भगवतीकी नित्य कृपा रहती है। इसलिए मैं किसीसे नहीं डरता। व्यासजी बोले-ऐसा कहकर सुदर्शन यात्राके लिए रथपर सवार हो गया ॥३३॥ उसे जाते देखकर मनोरमाने आशीर्वाद देते हुए कहा—आगे भगवती अम्बिका और पीछे पार्वती तुम्हारी रक्षा करें ॥ ३४ ॥ दोनों पार्श्वभागमें अपर्णा और शिवा सर्वत्र तुम्हारी रक्षा करें। विषम मार्गमें वाराही, दुर्गम स्थलोंमें दुर्गा और लड़ाईमें कालिका तुम्हारी रक्षा करें ॥३५॥ स्वयंवरके मंडपमें मातङ्गी, स्वयं-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वरमें सौम्या और राजाओंके बीचमें भवमोचनी भवानी तुम्हारी रक्षा करें ॥३६॥ पर्वतीय दुर्गमें गिरिजा, चौराहोंपर चामुण्डा और बनोंमें सनातनी कामगा देवी तुम्हारी रक्षा करें ॥३७॥ हे रघुवंशी वीर ! विवादमें वैष्णवी शक्ति तुम्हारी रक्षा करें । हे सौम्य ! शत्रुओंके समुदायमें भगवती भैरवी तुम्हारे चरणोंकी रक्षा करें ॥ ३८ ॥ सर्वदा और सब देशोंमें भुवनेश्वरी, महामाया, जगद्धात्री एवं सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती तुम्हारी रक्षा करें ॥ ३९ ॥ व्यासजीने कहा—इस प्रकार आशीर्वाद देनेके बाद भयसे काँपती हुई सुदर्शनकी माता मनोरमाने कहा—बेटा ! मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी ॥४०॥ क्योंकि तुम्हारे बिना मैं आधे निमेष भर भी जीवित नहीं रह सकती । अतएव हे तात ! जहाँ तुम जाते हो, वहीं मुझे भी लेते चलो ॥४१॥ यह कहकर धायके साथ माता भी चल पड़ी । तब आश्रमवासी ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिया और परम प्रसन्नतापूर्वक वे तीनों चल दिये ॥४२॥ वह रघुवंशी वीर सुदर्शन जो रथपर बैठा तो काशीमें ही जाकर उतरा । राजा सुबाहुको उनके आगमनका समाचार मिला, तब उन्होंने उन तीनोंका सत्कार किया और रहनेके लिए कोठी तथा खाने-पीनेकी समुचित व्यवस्था कर दी । उनकी

॥ ३८ ॥ सर्वदा सर्वदेशेषु पातु त्वां भुवनेश्वरी ॥ महामाया जगद्धात्री सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ ३९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं तदा माता वेपमाना भयाकुला ॥ उवाचाहं त्वया सार्धमागमिष्यामि सर्वथा ॥ ४० ॥ निमिषार्धं विना त्वां वै नाहं स्थातुमिहोत्सहे ॥ सहैव नय मां वत्स यत्र ते गमने मतिः ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वा निःसृता माता धात्रेयीसंयुता तदा ॥ विप्रैर्दत्ताशिषः सर्वे निर्ययुर्हर्षसंयुताः ॥ ४२ ॥ वाराणस्यां ततः प्राप्तो रथेनैकेन राघवः ॥ ज्ञातः सुबाहुना तत्र पूजितश्चार्हणादिभिः ॥ ४३ ॥ निवेशार्थं गृहं दत्तमन्नपानादिकं तथा ॥ सेवकं समनुज्ञाप्य परिचर्यार्थमेव च ॥ ४४ ॥ मिलितास्त्वथ राजानो नानादेशाधिपाः किल ॥ युधाजिदपि संप्राप्तो दौहित्रेण समन्वितः ॥ ४५ ॥ करूषाधिपतिश्चैव तथा मद्रेश्वरो नृपः ॥ सिंधुराजस्तथा वीरो योद्धा माहिष्मतीपतिः ॥ ४६ ॥ पांचालः पर्वतीयश्च कामरूपोऽतिवीर्यवान् ॥ कार्णाटश्चोलदेशीयो वैदर्भश्च महाबलः ॥ ४७ ॥ अक्षौहिणी त्रिषष्टिश्च मिलिता संख्यया तदा ॥ वेष्टिता नगरी सा तु सैन्यैः सर्वत्र संस्थितैः ॥ ४८ ॥ एते चान्ये च बहवः स्वयंवरदिदृक्षया ॥ मिलितास्तत्र राजानो वरवारणसंयुताः ॥४९॥ अन्योन्यं नृपपुत्रास्त इत्यूचुर्मिलितास्तदा ॥ सुदर्शनो नृपसुतो ह्यागतोऽस्ति निराकुलः ॥ ५० ॥ एकाकी रथमारुह्य मात्रा सह महामतिः ॥ विवाहार्थमिहायातः काकुत्स्थः किं नु सांप्रतम् ॥ ५१ ॥ एतान्राजसुतांस्त्यक्त्वा ससैन्या-

सेवाके लिए सेवकोंको नियुक्त कर दिया ॥४३॥४४॥ उसके बाद वहाँ अनेक देशोंके राजे आ-आकर एकत्र हुए । अपने नाती शत्रुजित्के साथ राजा युधाजित् भी आये ॥४५॥ करूषाधिपति, मद्रदेशके महाराज, वीर सिन्धुनरेश और असाधारण योद्धा माहिष्मतीके महाराज भी वहाँ आये ॥४६॥ पंचालपति, पर्वतीय राजे, कामरूप देशके अतिशय पराक्रमी महाराज, कर्नाटकनरेश, चोलराज और महावीर विदर्भनरेश भी पधारे ॥४७॥ उन सब राजाओंकी कुल मिलाकर तिरसठ अक्षौहिणी सेना वहाँ जुट गयी । उन सेनाओंके पड़ावसे समस्त वाराणसी पुरी घिर गयी ॥ ४८ ॥ उपर्युक्त नरेशोंके अतिरिक्त भी बहुतेरे राजे अच्छे-अच्छे हाथियोंपर चढ़कर स्वयंवर देखनेके लिए वहाँ आये ॥ ४९ ॥ उन राजाओं और राजपुत्रोंकी भेंट हुई तो वे परस्पर कहने लगे कि राजकुमार सुदर्शन भी निर्भीक होकर यहाँ आया है ॥५०॥ वह महाबुद्धिमान् राजकुमार अपनी माताके साथ अकेला ही विवाह करनेके लिए आ पहुँचा है ॥५१॥ विशाल वाहिनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा शस्त्रास्त्रसे सुसंज्जित इन राजकुमारोंको छोड़कर राजकुमारी क्या इसके साथ विवाह करना चाहेगी ? ॥ २ ॥ राजा युधाजित्ने उन राजाओंसे कहा–राजकुमारीको प्राप्त करनेके लिए मैं सुदर्शनको मार डालूँगा। इसमें कोई संशय नहीं है ॥५३॥ तब परम नीतिज्ञ केरलनरेशने कहा कि इस इच्छास्वयंवरमें युद्ध करना अनुचित होगा ५४॥ यह कोई शुल्कस्त्रयंवर नहीं है। अतएव कन्याका अपहरण भी नहीं किया जा सकता। इसमें तो कन्याकी इच्छा ही सर्वोपरि रहेगी। तब झगड़ा किस बातका है ? ॥५५॥ हे नृपसत्तम ! उस समय आपने अन्याय-पूर्वक इसे राज्यसे निकालकर अपने नातीको ज़बर्दस्ती गद्दीपर बिठा दिया ॥५६॥ हे महाभाग! यह ककुत्स्थवंशी वीर अयोध्याका राजकुमार है। इस निरपराध राजपुत्रको आप क्यों मारेंगे? ॥ ५७ ॥ हे नृपोत्तम ! आपको अन्यायका फल भोगना ही पड़ेगा। हे चिरंजीविन् ! इस जगत्का अधिपति परमेश्वर बड़ा कठोर शासक है ॥ ५८ ॥ सदा धर्मकी जय होती है—

न्सायुधानथ ॥ किमेनं राजपुत्री सा वरिष्यति महाभुजम् ॥ ५२ ॥ युधाजिदथ राजेशस्तानुवाच महीपतीन् ॥ अहमेनं हनिष्यामि कन्यार्थे नात्र संशयः ॥ ५३ ॥ केरलाधिपतिः प्राह तं तदा नीतिसत्तमः ॥ नात्र युद्धं प्रकर्तव्यं राजन्निच्छास्वयंवरे ॥ ५४ ॥ बलेन हरणं नास्ति नात्र शुल्कस्वयंवरः ॥ कन्येच्छयाऽत्र वरणं विवादः कीदृशस्त्विह ॥ ५५ ॥ अन्यायेन त्वया पूर्वमसौ राज्यात्प्रवासितः ॥ दौहित्रायार्पितं राज्यं बलवन्नृप-सत्तम ॥ ५६ ॥ काकुत्स्थोऽयं महाभाग कोसलाधिपतेः सुतः ॥ कथमेनं राजपुत्रं हनिष्यसि निरागसम् ॥ ५७ ॥ लप्स्यसे तत्फलं नूनमनयस्य नृपोत्तम ॥ शास्ताऽस्ति कश्चिदायुष्मञ्जगतोऽस्य जगत्पतिः ॥५८॥ धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम् ॥ माऽनयं कुरु राजेन्द्र त्यज पापमतिं किल ॥५९॥ दौहित्रस्तव संप्राप्तः सोऽपि रूपसमन्वितः ॥ राज्ययुक्तस्तथा श्रीमान्कथं तं न वरिष्यति ॥६०॥ अन्ये राजसुताः कामं वर्तंते बल-वत्तराः ॥ कन्यास्वयंवरे कन्या स्वीकरिष्यति सांप्रतम् ॥६१॥ वृते तथा विवादः कः प्रवदंतु महीभुजः ॥ परस्परं विरोधोऽत्र न कर्तव्यो विजानता ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इतिवादिनि भूपाले केरलाधिपतौ तदा ॥ प्रत्युवाच महाभाग युधाजिदपि पार्थिवः ॥१॥ नीतिरेषा महीपाल यद्ब्रवीषि भवानिह ॥ समाजे पार्थिवानां वै सत्यवाग्विजितेंद्रियः ॥ २ ॥ योग्येषु वर्तमानेषु कन्यारत्नं कुलोद्वह ॥ अयोग्योऽर्हति भूपाल न्यायोऽयं तव

अधर्मकी नहीं। सत्यकी विजय होती है—असत्यकी नहीं। हे राजेन्द्र ! आप अन्याय न करिए। यह पापका विचार आप सर्वथा त्याग दीजिए ॥ ५९ ॥ आपका नाती यहाँ आया ही है। वह बड़ा रूपवान्, राज्याधिपति और श्रीमान् है। तब कन्या उसे क्यों न वरण करेगी ? ॥ ६० ॥ और-और भी असाधारण बलवान् राजकुमार यहाँ आये हुए हैं। इस स्वयंवरमें कन्या जिसे चाहेगी, स्वयं अपना वर चुन लेगी ॥६१॥ ऐसे विवाहमें विवादकी क्या आवश्यकता ? हे राजाओं ! आप लोग ही बतायें। इस राजसमाजमें जान-बूझकर परस्पर विरोध करना कदापि उचित नहीं है ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥

(स्वयंवरमण्डपमें राजाओंका वाग्युद्ध और कन्याका सुदर्शनको वरनेकी इच्छा करना) व्यासजी बोले—हे महाभाग ! केरलाधिपतिके ऐसा कहनेपर राजा युधाजित्ने कहा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ १ ॥ हे महाभाग ! जो आप कह रहे हैं, क्या वही नीति है ? राजसमाजमें आप सत्यवादी और जितेन्द्रिय माने जाते हैं ॥ २ ॥ हे कुलभूषण ! योग्य पुरुषोंके रहते हुए एक अयोग्य व्यक्तिका कन्यारत्न पाना क्या आपको न्यायसंगत जान पड़ता है ? ॥ ३ ॥ क्या सिंहके भागको सियार भोगेगा ? उसी प्रकार क्या सुदर्शन उस कन्यारत्नको पानेका अधिकारी हो सकता है ? ॥ ४ ॥ ब्राह्मणोंका बल वेदमें और क्षत्रियोंका बल उनके धनुषमें होता है। हे महाराज ! ऐसा कहकर मैं क्या अन्याय कर रहा हूँ ? ॥ ५ ॥ क्षत्रियोंके विवाहमें बल ही शुल्क होता है। बलवान् क्षत्रिय ही कन्याको पाता है। निर्बल व्यक्ति उसे कदापि नहीं पा सकता ॥ ६ ॥ अतएव कोई शर्त लगाकर ही कन्याके विवाहकी नीति निश्चित की जाय, नहीं तो राजाओंमें परस्पर बहुत बड़ा झगड़ा खड़ा हो जायगा ॥ ७ ॥ उन राजाओंमें इस प्रकार विवाद उपस्थित होनेपर कन्याके पिता नृपसत्तम महाराज सुबाहुको उस राजसभामें बुलवाया गया ॥ ८ ॥ उन्हें बुलवाकर उन तत्त्वदर्शी राजाओंने कहा– राजन् ! इस विवाहके लिए आपको हम लोगों द्वारा निर्धारित पणस्वयम्वरकी नीति अपनानी चाहिए ॥ ९ ॥ हे राजन् ! अब

रोचते ॥ ३ ॥ भागं सिंहस्य गोमायुर्भोक्तुमर्हति वा कथम् ॥ तथा सुदर्शनोऽयं वै कन्यारत्नं किमर्हति ॥ ४ ॥ बलं वेदो हि विप्राणां भूभुजां चापजं बलम् ॥ किमन्याय्यं महाराज ब्रवीम्यहमिहाधुना ॥५॥ बलं शुल्कं यथा राज्ञां विवाहे परिकीर्तितम् ॥ बलवानेव गृह्णातु नाबलस्तु कदाचन ॥ ६ ॥ तस्मात्कन्यार्पणं कृत्वा नीतिरत्र विधीयताम् ॥ अन्यथा कलहः कामं भविष्यति महीभुजाम् ॥ ७ ॥ एवं विवादे संवृत्ते राज्ञां तत्र परस्परम् ॥ आहूतस्तु सभामध्ये सुबाहुर्नृपसत्तमः ॥ ८ ॥ समाहूय नृपाः सर्वे तमूचुस्तत्त्वदर्शिनः ॥ राजन्नीतिस्त्वया कार्या विवाहेऽत्र समाहिता ॥ ९ ॥ किं ते चिकीर्षितं राजंस्तद्वदस्व समाहितः ॥ पुत्र्याः प्रदानं कस्मै ते रोचते नृप चेतसि ॥१०॥ सुबाहुरुवाच ॥ पुत्र्या मे मनसा कामं वृतः किल सुदर्शनः ॥ मया निवारितोऽत्यर्थं न सा प्रत्येति मे वचः ॥ ११ ॥ किं करोमि सुताया मे न वशे वर्तते मनः ॥ सुदर्शनस्तथैकाकी संप्राप्तोऽस्ति निराकुलः ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ संपन्ना भूभुजः सर्वे समाहूय सुदर्शनम् ॥ ऊचुः समागतं शांतमेकाकिनमतंद्रिताः ॥ १३ ॥ राजपुत्र महाभाग केनाहूतोऽसि सुव्रत ॥ एकाकी यः समायातः समाजे भूभृतामिह ॥१४॥ न वै सैन्यं न सचिवा न कोशो न बृहद्बलम् ॥ किमर्थं च समायातस्तत्त्वं ब्रूहि महामते ॥ १५ ॥ युद्धकामा भूपतयो वर्तंतेऽत्र समागमे ॥ कन्यार्थं सैन्यसंपन्नाः किं त्वं कर्तुमिहेच्छसि ॥ १६ ॥ भ्राता ते सुबलः शूरः

यह बताइए कि आप क्या करना चाहते हैं ? हे नृप ! आपने अपने मनमें किसे कन्या देनेका निश्चय किया है ? ॥ १० ॥ राजा सुबाहु बोले—मेरी पुत्रीने मन ही मन सुदर्शनको पति बनानेका निश्चय कर लिया है; मैंने उसे बहुत रोका, पर वह मेरी बात नहीं मानती ॥ ११ ॥ मैं क्या करूँ, मेरी पुत्रीका मन वशमें नहीं है। वैसे ही सुदर्शन भी अकेला ही निडर होकर यहाँ आ पहुँचा है ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले–तब उन श्रेष्ठ राजाओंने सुदर्शनको बुलवाया। उस शान्त और एकाकी सुदर्शनके आ जानेपर उन्होंने पूछा–हे राजपुत्र ! हे महाभाग ! हे सुव्रत ! तुम्हें यहाँ किसने बुलाया, जो तुम अकेले इस राजमण्डलीमें आ पहुचे ? ॥१३॥१४॥ तुम्हारे साथ न सेना है, न मंत्री हैं, न कोश है और न वीर योद्धा ही हैं। फिर तुम यहाँ कैसे पहुँच गये ? तुम यहाँ किस लिए आये हो सो साफ-साफ बताओ ॥१५॥ इस भीड़-भाड़में बहुतेरे राजे उस कन्याको पाने तथा युद्ध करनेके लिए अपनी-अपनी सेनाके साथ आये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुए हैं। तुम क्या करना चाहते हो? ॥ १६ ॥ तुम्हारा बलवान् भाई शत्रुजित् एक अच्छी सेनाके साथ कन्याको प्राप्त करने आया है। उसकी सहायताके लिये महाबाहु राजा युधाजित् भी आ गये हैं ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र! तुम सेनाविहीन हो। इसलिए मैंने सब बातें साफ-साफ बतला दीं। हे सुव्रत! अब तुम रहो या चले जाओ। जो इच्छा हो सो करो ॥ १८ ॥ सुदर्शनने कहा–न मेरे साथ सेना है, न कोई सहायक है, न कोश है, न किला है, न मित्र है, न कोई सगा-सम्बन्धी है और न यहाँ मेरी रक्षा करनेवाला कोई राजा ही है ॥ १९ ॥ यहाँ स्वयम्वर होनेका समाचार सुनकर उसे देखनेके लिए मैं भी चला आया। स्वप्नमें स्वयं भगवतीने मुझे यहाँ आनेकी प्रेरणा दी है ॥ २० ॥ मेरी अपनी कोई भी आकांक्षा नहीं है। यहाँ आनेके लिए भगवतीने कहा है। उन्होंने जो विधान रच दिया होगा, वह होकर ही रहेगा ॥२१॥ हे राजाओं! संसारमें मेरा कोई शत्रु नहीं है। मैं तो सर्वत्र जगदम्बाको विराजमान

संप्राप्तोऽस्ति जिघृक्षया ॥ युधाजिच्च महाबाहुः साहाय्यं कर्तुमागतः ॥१७॥ गच्छ वा तिष्ठ राजेन्द्र याथातथ्यमुदाहृतम्॥ त्वयि सैन्यविहीने च यथेष्टं कुरु सुव्रत ॥ १८ ॥ सुदर्शन उवाच ॥ न बलं न सहायो मे न कोशो दुर्गसंश्रयः ॥ न मित्राणि न सौहार्दो न नृपा रक्षका मम ॥ १९ ॥ अत्र स्वयंवरं श्रुत्वा द्रष्टुकाम इहागतः ॥ स्वप्ने देव्या प्रेरितोऽस्मि भगवत्या न संशयः ॥२०॥ नान्यच्चिकीर्षितं मेऽद्य मामाह जगदीश्वरी ॥ तया यद्विहितं तच्च भविताऽद्य न संशयः ॥२१॥ न शत्रुरस्ति संसारे कोऽप्यत्र जगतीश्वराः ॥ सर्वत्र पश्यतो मेऽद्य भवानीं जगदंबिकाम् ॥ २२ ॥ यः करिष्यति शत्रुत्वं मया सह नृपात्मजाः ॥ शास्ता तस्य महाविद्या नाहं जानामि शत्रुताम् ॥ २३ ॥ यद्भावि तद्धै भविता नान्यथा नृपसत्तमाः ॥ का चिंता ह्यत्र कर्तव्या दैवाधीनोऽस्मि सर्वदा ॥ २४ ॥ देवभूतमनुष्येषु सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ सर्वेषां तत्कृता शक्तिर्नान्यथा नृपसत्तमाः ॥ २५ ॥ सा यं चिकीर्षते भूपं तं करोति नृपाधिपाः ॥ निर्धनं वा नरं कामं का चिंता वै तदा मम ॥ २६ ॥ तामृते परमां शक्तिं ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ न शक्ताः स्पंदितुं देवाः का चिंता, म तदा नृपाः ॥ २७ ॥ अशक्तो वा सशक्तो वा यादृशस्तादृशस्त्वहम् ॥ तदाज्ञया नृपाद्यैव संप्राप्तोऽस्मि स्वयंवरे ॥ २८ ॥ सा यदिच्छति तत्कुर्यान्मम किं चिंतनेन वै ॥ नात्र शंका प्रकर्तव्या सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २९ ॥ जये पराजये लज्जा न मेत्राण्वपि पार्थिवाः ॥ भगवत्यास्तु लज्जाऽस्ति तदधीनोऽस्मि सर्वथा ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य तदाकर्ण्य वचनं राजसत्तमाः ॥ ऊचुः परस्परं प्रेक्ष्य

देख रहा हूँ ॥ २२ ॥ हे राजकुमारगण! जो मेरे साथ शत्रुता करेगा, उसे भवानी महाविद्या दण्ड देंगी। मैं तो शत्रुताको जानता ही नहीं ॥ २३ ॥ हे नृपसत्तमगण! जो होना होगा, वह होगा ही। इस विषयमें विशेष चिन्ता बेकार है। मैं तो सदा भाग्यके भरोसे रहता हूँ ॥२४॥ हे राजाओं! सभी देवताओं, भूतों, मनुष्यों तथा अन्यान्य प्राणियोंमें एकमात्र भगवतीकी ही शक्ति विद्यमान रहती है। उसके सिवाय और कहीं कुछ नहीं है ॥ २५ ॥ हे राजाओं! वे जिसे चाहती हैं, उसीको राजा बना देती हैं। वे निर्धन मनुष्यको धनवान् कर देती हैं। तब मुझे किस बात की चिन्ता है? ॥ २६ ॥ उस परमा शक्तिके बिना ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवता हिल-डुल भी नहीं सकते। हे नरेशो! तब मुझे किस बातकी चिन्ता है? ॥ २७ ॥ मैं सशक्त हूँ या अशक्त, जो कुछ भी हूँ, उन्हीं महामायाकी प्रेरणासे मैं इस स्वयम्वरमें आया हूँ ॥:२८ ॥ वे जो चाहेंगी सो करेंगी। मेरे सोचनेसे क्या होना है। मैंने जो कुछ कहा,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह सर्वथा सत्य है। इस विषयमें शंका नहीं करनी चाहिए ॥ २९ ॥ हे राजाओ ! जय-पराजयमें मुझे अणुमात्र भी लज्जा नहीं है। लज्जा तो उन भगवतीको होगी, जिनके मैं सदा अधीन रहता हूँ ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले कि सुदर्शनके इन वचनोंको सुनकर राजाओंने कहा—हे साधो ! आपका कथन सत्य है। वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता। लेकिन फिर भी उज्जयिनीनरेश महाराज युधाजित् आपको मार डालना चाहते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ आपके प्रति उनके मनमें तनिक भी दया नहीं है। यह मैंने आपको बता दिया। हे अनघ ! आप अपने मनमें विचार करके जो उचित समझिए सो करिए ॥३३॥ सुदर्शनने कहा—आप लोग बड़े कृपालु हैं और बड़े सहृदय पुरुष हैं। आपका कथन यथार्थ है। किन्तु इस बातपर मैं और कह ही क्या सकता हूँ ॥ ३४ ॥ कभी भी किसीके हाथों किसीकी मृत्यु नहीं हो सकती । क्योंकि स्थावर-जंगात्मक समस्त विश्व भाग्यके अधीन रहता है ॥ ३५ ॥ जीव स्वतन्त्र नहीं है। यह सदा अपने कर्मके वशमें रहता है। वह कर्म तत्त्वदर्शी विद्वानोंके कथनानुसार तीन प्रकारका होता है ॥ ३६ ॥ जैसे—सञ्चित, वर्तमान और प्रारब्ध। समस्त

निश्चयज्ञा नराधिपाः ॥ ३१ ॥ सत्यमुक्तं त्वया साधो न मिथ्या कर्हिचिद्भवेत् ॥ तथाप्युज्जयनीनाथस्त्वां हंतुं परिकांक्षति ॥ ३२ ॥ त्वत्कृते न दयाऽऽदिष्टा त्वां ब्रूमो वै महामते ॥ यदुक्तं तत्त्वया कार्यं विचार्य मनसाऽनघ ॥३३॥ सुदर्शन उवाच ॥ सत्यमुक्तं भवद्भिश्च कृपावद्भिः सुहृज्जनैः ॥ किं ब्रवीमि पुनर्वाक्यमुक्त्वा नृपतिसत्तमाः ॥३४॥ न मृत्युः केनचिद्भाव्यः कस्यचिद्वा कदाचन ॥ दैवाधीनमिदं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥३५॥ स्ववशोऽयं न जीवोऽस्ति स्वकर्मवशगः सदा ॥ तत्कर्म त्रिविधं प्रोक्तं विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ३६ ॥ संचितं वर्तमानं च प्रारब्धं च तृतीयकम् ॥ कालकर्मस्वभावैश्च ततं सर्वमिदं जगत् ॥ ३७ ॥ न देवो मानुषं हंतुं शक्तः कालागमं विना ॥ हतं निमित्तमात्रेण हंति कालः सनातनः ॥ ३८ ॥ यथा पिता मे निहतः सिंहेनामित्रकर्षणः ॥ तथा मातामहोऽप्येवं युद्धे युधाजिता हतः ॥३९॥ यत्नकोटिं प्रकुर्वाणो हन्यते दैवयोगतः ॥ जीवेद्वर्षसहस्राणि रक्षणेन विना नरः ॥४०॥ नाहं बिभेमि धर्मिष्ठाः कदाचिच्च युधाजितः ॥ दैवमेव परं मत्वा सुस्थितोऽस्मि सदा नृपाः ॥ ४१ ॥ स्मरणं सततं नित्यं भगवत्याः करोम्यहम् ॥ विश्वस्य जननी देवी कल्याणं सा करिष्यति ॥४२॥ पूर्वार्जितं हि भोक्तव्यं शुभं वाप्यशुभं तथा ॥ स्वकृतस्य च भोगेन कीदृक्शोको विजानताम् ॥ ४३ ॥ स्वकर्मफलयोगेन प्राप्य दुःखमचेतनः ॥ निमित्तकारणे वैरं करोत्यल्पमतिः किल ॥ ४४॥ न तथाऽहं

संसार काल, कर्म और स्वभावके अधीन रहता है ॥ ३७॥ बिना कालके आये कोई देवता भी किसी मनुष्यको नहीं मार सकता। किन्तु कालका मारा हुआ प्राणी एक साधारण बहानेसे मर जाता है ॥ ३८ ॥ शत्रुओंपर शासन करनेवाले मेरे पिताको सिंहने मार डाला । उसी प्रकार मेरे नानाको राजा युधाजित्ने यमपुर पहुँचा दिया ॥ ३९ ॥ जिसका काल समीप आया रहता है, वह करोड़ों यत्न करनेपर भी मर ही जाता है और जिसका ऐसा दैवयोग नहीं आया रहता, वह अपनी रक्षाका कोई प्रबन्ध न करके भी हजारों वर्ष जीवित रहता है ॥ ४० ॥ हे धर्मात्माओ ! मैं महाराज युधाजित्से तनिक भी नहीं डरता। मैं तो भाग्यको सर्वोपरि मानकर सदा सुखी रहता हूँ ॥ ४१ ॥ मैं निरन्तर भगवतीका स्मरण करता रहता हूँ। वे जगदम्बा भगवती मेरा कल्याण करेंगी ॥ ४२ ॥ पूर्वकालमें अर्जित शुभ अथवा अशुभ कर्मका फल भोगना ही पड़ता है। अपनी करनीका फल भोगनेमें ज्ञानियोंको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शोक क्यों हो ? ॥ ४३ ॥ अज्ञानी और अल्पमति मनुष्य अपने कर्मफलके भोगस्वरूप प्राप्त दुःखसे शिक्षा न लेकर निमित्त कारणके प्रति वैर करता है ॥४४॥ मैं वैसा नहीं करता । मेरे मनमें किसीके प्रति वैर, शोक तथा भयका भाव नहीं है । तभी तो निर्भय होकर इस राजसभामें मैं अकेला यह उत्तम स्वयम्वर देखनेके लिए आ उपस्थित हुआ हूँ । मैं भगवती चण्डिकाकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ । अब जो होना होगा, सो होगा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ मैं भगवतीकी आज्ञाको ही सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ—और कुछ नहीं जानता । उन्हींका दिया हुआ दुःख-सुख प्राप्त होगा, यह सर्वथा सत्य है ॥४७॥ हे नृपगण ! महाराज युधाजित् सुखी रहें । मेरे मनमें उनके प्रति तनिक भी वैरभाव नहीं है । जो मेरे साथ वैर करेगा, वह उसका फल पायेगा ॥४८॥ व्यासजी बोले—सुदर्शनके ऐसा कहनेपर वहाँ उपस्थित सब राजे बहुत सन्तुष्ट हुए । इसके बाद सुदर्शन अपने निवासस्थानको लौट गये ॥ ४९ ॥ दूसरे दिन शुभ मुहूर्तमें महाराज सुबाहुने अपने सुन्दर मण्डपमें सभी राजाओंको आमन्त्रित किया ॥ ५० ॥ तब दिव्य बिछौने बिछे हुए मञ्चोंपर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कर-करके वे सब राजे आ विराजे ॥ ५१ ॥ उन सबके वेष

विजानामि वैरं शोकं भयं तथा ॥ निःशंकमिह संप्राप्तः समाजे भूभृतामिह ॥ ४५ ॥ एकाकी द्रष्टुकामोऽहं स्वयंवरमनुत्तमम् ॥ भविष्यति च यद्भाव्यं
प्राप्तोऽस्मि चंडिकाज्ञया ॥ ४६ ॥ भगवत्याः प्रमाणं मे नान्यं जानामि संयतः ॥ तत्कृतं च सुखं दुःखं भविष्यति च नान्यथा ॥ ४७ ॥ युधा-
जित्सुखमाप्नोतु न मे वैरं नृपोत्तमाः ॥ यः करिष्यति मे वैरं स प्राप्स्यति फलं तथा ॥४८॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तास्ते तथा तेन संतुष्टा भूभुजः
स्थिताः ॥ सोऽपि स्वमाश्रमं प्राप्य सुस्थितः संबभूव ह ॥४९॥ अपरेऽह्नि शुभे काले नृपाः संमंत्रिताः किल ॥ सुबाहुना नृपेणाथ रुचिरे वै स्वमंडपे
॥५०॥ दिव्यास्तरणयुक्तेषु मंचेषु रचितेषु च ॥ उपविष्टाश्च राजानः शुभालंकरणैर्युताः ॥५१॥ दिव्यवेषधराः कामं विमानेष्वमरा इव॥ दीप्यमानाः
स्थितास्तत्र स्वयंवरदिदृक्षया ॥५२॥ इति चिंतापराः सर्वे कदा साऽप्यागमिष्यति ॥ भाग्यवन्तं नृपश्रेष्ठं श्रुतपुण्यं वरिष्यति ॥ ५३ ॥ यदा सुदर्शनं
दैवात्स्रजा संभूषयेदिह ॥ विवादो वै नृपाणां च भविता नात्र संशयः ॥ ५४ ॥ इत्येवं चिंत्यमानास्ते भूपा मंचेषु संस्थिताः ॥ वादित्रघोषः सुमहा-
नुत्थितो नृपमंडपे ॥ ५५ ॥ अथ काशीपतिः प्राह सुतां स्नातां स्वलंकृताम् ॥ मधूकमालासंयुक्तां क्षौमवासोविभूषिताम् ॥ ५६ ॥ विवाहोपस्करै-
र्युक्तां दिव्यां सिंधुसुतोपमाम् ॥ चिंतापरां सुवसनां स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ ५७ ॥ उत्तिष्ठ पुत्रि सुनसे करे धृत्वा शुभां स्रजम् ॥ व्रज मंडपमध्येऽद्य

दिव्य थे । अतएव मञ्चपर बैठनेके बाद वे विमानोंपर विराजमान देवताओंके समान दीख रहे थे । सर्वथा देदीप्यमान होते हुए वे स्वयम्वर देखनेके लिए बैठे हुए थे ॥५२॥ उन सबको यह चिन्ता थी कि राजकुमारी कब आयेगी और किस भाग्यवान् एवं पुण्यश्लोक नृपश्रेष्ठको पतिरूपमें वरण करेगी ॥५३॥ दैवात् यदि उसने कहीं सुदर्शनके गलेमें वरमाला डाल दी तो राजाओंमें परस्पर झगड़ा हो जायगा । इसमें सन्देह नहीं है ॥५४॥ ऐसा सोचते हुए वे राजे मंचोंपर बैठे थे । उसी समय मण्डपमें अनेक वाद्योंका घोष सुनायी पड़ा ॥५५॥ तदनंतर स्नान करके भलीभाँति अलंकृत, रेशमी वस्त्र पहने और मधूक (महुए) के पुष्पकी माला हाथोंमें लिये कन्या शशिकलासे महाराज सुबाहुने कहा ॥५६॥ विवाहकी सामग्री लिये, महारानी लक्ष्मीके समान दिव्य, भगवती दुर्गाके ध्यानमें लीन एवं सुन्दर वसनधारिणी शशिकलासे तनिक मुसकाकर महाराज सुबाहु बोले—हे सुन्दर नासिकावाली पुत्री ! अब उठो, हाथमें शुभ माला लेकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मण्डपमें चलो और वहाँ उपस्थित राजाओंके समुदायको देखो ॥५७॥५८॥ हे सुमध्यमे ! इनमेंसे जो नृपश्रेष्ठ तुम्हें गुणवान्, रूपवान् और कुलीन जँचे और जो तुम्हारे मनमें बस सके, उसीके गलेमें यह माला डाल दो ॥ ५९ ॥ हे तन्वङ्गि ! उन सुसज्जित मंचोंपर देश-देशान्तरके राजे बैठे हुए हैं। उन्हें देखो और जो पसन्द आये, उसे पतिरूपमें वरण कर लो ॥ ६० ॥ व्यासजीने कहा—ऐसा कहते हुए अपने पितासे मितभाषिणी शशिकलाने यह धर्मसंगत तथा सुन्दर वचन कहा ॥६१॥ शशिकला बोली—हे पिताजी ! मैं इन राजाओंके समक्ष नहीं जाऊँगी। ऐसे कामी राजाओंके सामने जानेवाली राजकुमारियाँ दूसरी तरहकी होती हैं ॥६२॥ हे तात ! धर्मशास्त्रमें लिखी हुई यह वाणी मैंने सुनी है कि स्त्रीको केवल एक पतिका मुख देखना चाहिए-अन्य किसी पुरुषका नहीं ॥ ६३ ॥ जो स्त्री बहुतेरे पुरुषोंके समक्ष जाती है, उसका सतीत्व नष्ट हो जाता है। क्योंकि उसे देखकर सब पुरुषोंके मनमें यह भावना उठती है कि यह किसी

समाजं पश्य भूभुजाम् ॥ ५८ ॥ गुणवान्रूपसम्पन्नः कुलीनश्च नृपोत्तमः ॥ तव चित्ते वसेद्यस्तु तं वृणुष्व सुमध्यमे ॥ ५९ ॥ देशदेशाधिपाः सर्वे मंचेषु रचितेषु च ॥ संविष्टाः पश्य तन्वंगि वरयस्व यथारुचि॥ ६० ॥ व्यास उवाच ॥ तं तथा भाषमाणं वै पितरं मितभाषिणी ॥ उवाच वचनं बाला ललितं धर्मसंयुतम् ॥ ६१ ॥ शशिकलोवाच ॥ नाहं दृष्टिपथे राज्ञां गमिष्यामि पितः किल ॥ कामुकानां नरेशानां गच्छंत्यन्याश्च योषितः ॥६२॥ धर्मशास्त्रे श्रुतं तात मयेदं वचनं किल ॥ एक एव वरो नार्या निरीक्ष्यः स्यान्न चापरः ॥६३॥ सतीत्वं निर्गतं तस्या या प्रयाति बहूनथ॥ सङ्कल्पयन्ति ते सर्वे दृष्ट्वा मे भवतात्विति ॥६४॥ स्वयम्वरे स्रजं धृत्वा यदागच्छति मंडपे ॥ सामान्या सा तदा जाता कुलटेवापरा वधूः ॥६५॥ वारस्त्रीविपणे गत्वा यथा वीक्ष्य नरान्स्थितान् ॥ गुणागुणपरिज्ञानं करोति निजमानसे ॥ ६६ ॥ नैकभावा यथा वेश्या वृथा पश्यति कामुकम् ॥ तथाऽहं मंडपे गत्वा कुर्वे वारस्त्रिया कृतम् ॥६७॥ वृद्धैरेतैः कृतं धर्मं न करिष्यामि सांप्रतम् ॥ पत्नीव्रतं तथा कामं चरिष्येऽहं धृतव्रता ॥ ६८ ॥ सामान्या प्रथमं गत्वा कृत्वा सङ्कल्पितं बहु ॥ वृणोति चैकं तद्वद्वै वृणोमि कथनद्य वै ॥ ६९ ॥ सुदर्शनो मया पूर्वं वृतः सर्वात्मना पितः ॥ तमृते नान्यथा कर्तुमिच्छामि नृपसत्तम ॥ ७० ॥ विवाहविधिना देहि कन्यादानं शुभे दिने ॥ सुदर्शनाय नृपते यदीच्छसि शुभं मम ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

तरह मेरी बन जाय ॥ ६४ ॥ हाथमें जयमाल लेकर जब वह स्वयम्वरके मण्डपमें जाती है तो एक साधारण स्त्री हो जाती है। उस समय उसमें और व्यभिचारपरायणा कुलटा स्त्रीमें कोई अन्तर नहीं रह जाता ॥ ६५ ॥ जैसे एक वेश्या जब बाजारमें जाती है और वहाँके लोगोंको देखती है तो मन ही मन उनके गुण-दोषको तौलती है ॥ ६६ ॥ जैसे अनेक पुरुषोंमें मन उलझाये हुए किसी वेश्याका किसी कामी पुरुषकी ओर ताकना व्यर्थ होता है, उसी प्रकार उस स्वयंवरमण्डपमें जाकर मुझे भी वेश्याके समान आचरण करना होगा ॥६७॥ कुल-के वृद्धजनोंकी चलायी हुई इस परंपराके अनुसार मैं न चलूँगी। क्योंकि मैं पतिव्रता हूँ। अतएव अपने पत्नीव्रतके धर्मका पालन करूँगी ॥६८॥ जैसे साधारण लड़कियाँ स्वयंवरमंडपमें बहुतेरे पतियोंका संकल्प करके बादमें उनमेंसे किसी एकको चुनती हैं। वैसा मैं क्यों करूँ ? ॥ ६९ ॥ हे पिताजी ! मैंने पहले ही सुदर्शनको पति मान लिया है। हे महाराज ! उनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिवाय मैं और किसीको पति नहीं बना सकती ॥ ७० ॥ हे नृपते ! यदि आप मेरा कल्याण चाहते हों तो वैवाहिक विधिके अनुसार किसी शुभ दिन मुझे सुदर्शनके हाथमें कन्यादान दे दीजिए ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

(सुदर्शनके साथ राजकुमारी शशिकलाका विवाह) व्यासजी बोले—हे राजन् ! महाराज सुबाहु कन्याकी युक्तिसंगत बातें सुनकर बड़ी चिन्तामें पड़ गये और सोचने लगे कि अब क्या किया जाय ॥१॥ अपनी-अपनी सेना तथा वैवाहिक सा...ोंसे सुसज्ज होकर अनेक राजे विभिन्न मंचोंपर बैठे हुए हैं। वे बड़े बलवान् हैं और लड़ना चाहते हैं॥२॥ यदि मैं जाकर उनसे कहूँ कि कन्या स्वयम्वरमण्डपमें नहीं आना चाहती तो वे दुष्ट कुपित होकर मुझे मार डालेंगे ॥ ३ ॥ न मेरे पास वैसा सैन्यबल है और न कोई अद्भुत किला ही है कि जिससे मैं उनके आक्रमणको रोककर प्रत्याक्रमण कर सकूँ ॥ ४ ॥ सुदर्शन भी अकेला, असहाय, निर्धन और निरा शिशु है। मैं महान् दुःखसागरमें डूब रहा हूँ। अब क्या करूँ ? ॥ ५ ॥ इस प्रकार

॥ व्यास उवाच ॥ सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा युक्तमुक्तं तया तदा ॥ चिंताविष्टो बभूवाशु किं कर्तव्यमतः परम् ॥ १ ॥ संगताः पृथिवीपालाः ससैन्याः सपरिग्रहाः ॥ उपविष्टाश्च मंचेषु योद्धुकामा महाबलाः ॥ २ ॥ यदि ब्रवीमि तान्सर्वान्सुता नायाति सांप्रतम् ॥ तथापि कोपसंयुक्ता हन्युर्मां दुष्टबुद्धयः ॥ ३ ॥ न मे सैन्यबलं तादृङ्न दुर्गबलमद्भुतम् ॥ येनाहं नृपतीन्सर्वान् प्रत्यादेष्टुमिहोत्सहे ॥ ४ ॥ सुदर्शनस्तथैकाकी ह्यसहा· योऽधनः शिशुः ॥ किं कर्तव्यं निमग्नोऽहं सर्वथा दुःखसागरे ॥ ५ ॥ इति चिंतापरो राजा जगाम नृपसन्निधौ ॥ प्रणम्य तानुवाचाथ प्रश्रयावनतो नृपः ॥ ६ ॥ किं कर्तव्यं नृपाः कामं नैति मे मंडपे सुता ॥ बहुशः प्रेर्यमाणोऽपि सा मात्राऽपि मयाऽपि च ॥ ७ ॥ मूर्ध्ना पतामि पादेषु राज्ञां दासोऽस्मि सांप्रतम् ॥ पूजादिकं गृहीत्वाऽद्य व्रजंतु सदनानि वः ॥ ८ ॥ ददामि बहुरत्नानि वस्त्राणि च गजान्रथान् ॥ गृहीत्वाऽद्य कृपां कृत्वा व्रजन्तु भवनान्युत ॥९॥ न वशे मे सुता बाला यदि म्रियेत खेदिता ॥ तदा मे स्यान्महद्दुःखं तेन चिंतातुरोऽस्म्यहम् ॥१०॥ भवन्तः करुणावन्तो महाभाग्या महौजसः ॥ किमेतया दुहित्रा मे मंदया दुर्विनीतया ॥११॥ अनुग्राह्योऽस्मि वः कामं दासोऽहमिति सर्वथा ॥ सुता सुतेव मन्तव्या भवद्भिः

चिन्तासे व्याकुल महाराज सुबाहु मण्डपमें विराजमान राजाओंके पास गये। उन सबको प्रणाम करके उन्होंने बड़े विनीत भावसे कहा—॥ ६ ॥ हे महाराजाओं ! मेरी कन्या मण्डपमें नहीं आ रही है। उसकी माता और मैंने उसे बहुत समझाया, किन्तु वह हठ नहीं छोड़ती ॥ ७ ॥ मैं आप लोगोंका दास हूँ और आप सबके चरणोंपर मस्तक रखकर विनती करता हूँ कि मेरी पूजा लेकर आप अपने घर लौट जायँ ॥८॥ मैं आपलोगोंको बहुतेरे रत्न, वस्त्र, हाथी और रथ दूँगा। कृपया उन्हें लेकर आप सब अपने-अपने निवासस्थानको चले जाइए ॥९॥ मेरी पुत्री मेरे वशमें नहीं है। यदि खिन्न होकर वह मर गयी तो मुझे अपार दुःख होगा। यह सोचकर मैं बहुत चिन्तित हूँ ॥१०॥ आपलोग बड़े दयालु, भाग्यवान् और असाधारण तेजस्वी हैं। तब आप मेरी मूर्ख और हठीली पुत्रीको लेकर क्या करेंगे ? ॥ ११ ॥ मैं आपका सेवक हूँ। अतएव आपकी दयाका पात्र हूँ। मेरी कन्याको आपलोग अपनी ही कन्याके समान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समझें ॥ १२ ॥ व्यासजीने कहा—महाराज सुबाहुके वचन सुनकर और-और राजे तो कुछ नहीं बोले । किन्तु राजा युधाजित्ने क्रोधसे लाल आँखे करके रोषपूर्वक कहा—॥ १३ ॥ राजन् ! आप मूर्ख हैं । ऐसा निन्दित कार्य करके अब क्या कह रहे हैं ? यदि संशयकी स्थिति थी, तब अज्ञानवश आपने स्वयम्वर ही क्यों रचाया ? ॥ १४ ॥ स्वयम्वरके लिए आमन्त्रित राजे जब यहाँ आ गये, तब वे सुयोग्य नृपतिगण आपके कहनेसे यों ही अपने घर कैसे चले जायँगे ? ॥१५॥ इन सब राजाओंका अपमान करके आप अपनी पुत्री सुदर्शनको देना चाहते हैं ? इससे बढ़कर दुष्टता और क्या होगी ॥ १६ ॥ मनुष्यको चाहिए कि वह किसी शुभ कार्यको आरम्भ करनेके पहले भलीभाँति आगा-पीछा सोच ले । किन्तु हे राजन् ! आपने कुछ सोचे बिना ही कार्य आरम्भ कर दिया ॥ १७ ॥ सेना और वाहनसम्पन्न इन राजाओंको छोड़कर आप सुदर्शनको क्यों वर बनाना चाहते हैं ? ॥ १८ ॥ अरे ओ पापी ! पहले मैं तुझे और

सर्वथा मम ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा सुबाहुवचनं नोचुः केचन भूमिपाः ॥ युधाजित्क्रोधताम्राक्षस्तमुवाच रुषान्वितः ॥ १३ ॥ राजन्मूर्खोऽसि किं ब्रूषे कृत्वा कार्यं सुनिन्दितम् ॥ स्वयंवरः कथं मोहाद्रचितः संशये सति ॥ १४ ॥ मिलिता भूभुजः सर्वे त्वयाऽऽहूताः स्वयंवरे ॥ कथमद्य नृपा गंतुं योग्यास्ते स्वगृहान्प्रति ॥ १५ ॥ अवमान्य नृपान्सर्वांस्त्वं किं सुदर्शनाय वै ॥ दातुमिच्छसि पुत्रीं च किमनार्यमतः परम् ॥ १६ ॥ विचार्य पुरुषेणादौ कार्यं वै शुभमिच्छता ॥ आरब्धव्यं त्वया तत्तु कृतं राजन्नजानता ॥ १७ ॥ एतान्विहाय नृपतीन्बलवाहनसंयुतान् ॥ वरं सुदर्शनं कर्तुं कथमिच्छसि सांप्रतम् ॥ १८ ॥ अहं त्वां हन्मि पापिष्ठं तथा पश्चात्सुदर्शनम् ॥ दौहित्रायाद्य ते कन्यां दास्यामीति विनिश्चयः ॥ १९ ॥ मयि तिष्ठति कोन्योऽस्ति यः कन्यां हर्तुमिच्छति ॥ सुदर्शनः कियानद्य निर्धनो निर्बलः शिशुः ॥ २० ॥ भारद्वाजाश्रमे पूर्वं मुक्तो मुनिकृते मया ॥ नाद्याहं मोचयिष्यामि सर्वथा जीवितं शिशोः ॥ २१ ॥ तस्माद्विचार्य सम्यक्त्वं पुत्र्या च भार्यया सह ॥ दौहित्राय प्रियां कन्यां देहि मे सुभ्रुवं किल ॥२२॥ सम्बन्धी भव दत्त्वा त्वं पुत्रीमेतां मनोरमाम् ॥ उच्चाश्रयः प्रकर्तव्यः सर्वदा शुभमिच्छता ॥२३॥ सुदर्शनाय दत्त्वा त्वं पुत्रीं प्राणप्रियां शुभाम् ॥ एकाकिनेऽप्यराज्याय किं सुखं प्राप्तुमिच्छसि ॥ २४ ॥ "कुलं वित्तं बलं रूपं राज्यं दुर्गं सुहृज्जनम् ॥ दृष्ट्वा कन्या प्रदातव्या नान्यथा सुखमृच्छति ॥ १ ॥" परिचिंतय धर्मं त्वं राज्यनीतिं च शाश्वतीम् ॥ कुरु कार्यं यथायोग्यं मा कृथा मतिमन्यथा ॥ २५ ॥ सुहृदसि ममात्यर्थं

उसके बाद सुदर्शनको मार डालूँगा । तदनन्तर तेरी कन्या लेकर मैं अपने नाती शत्रुजित्को दे दूँगा ॥१९॥ मेरे रहते दूसरा कोई उस कन्याका हरण कैसे कर सकता है ? रही सुदर्शन-की बात, सो वह सर्वथा निर्धन, निर्बल और निरा बालक है ॥२०॥ उस समय मुनिराजके कहनेपर मैंने भारद्वाजके आश्रममें उसे नहीं मारा । किन्तु आज उस शिशुको जीवित न छोड़ूँगा ॥ २१ ॥ अतएव तुम अपनी स्त्री तथा पुत्रीसे भलीभाँति परामर्श करके वह सुन्दर भौंहोंवाली अपनी कन्या मेरे नातीके लिए मुझे दे दो ॥ २२ ॥ वह मनोरमा कन्या मुझे देकर तुम मेरे समधी बन जाओ । आत्मकल्याण चाहनेवालेका यह कर्तव्य है कि वह किसी बड़ेका सहारा ले ॥ २३ ॥ अपनी प्राणप्रिया सुन्दरी कन्या उस अकेले तथा राज्यहीन बालक सुदर्शनको देकर आप किस सुखकी आशा रखते हैं ? ॥२४॥ "कुल, धन, बल, रूप, राज्य, दुर्ग और सगे-सम्बन्धियोंको देखनेके बाद ही कन्यादान दे । नहीं तो सुख नहीं मिलता ॥१॥" सर्वप्रथम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आप धर्मनीतिपर विचार कीजिए। फिर सनातन राजनीतिपर विचार करके यथोचित कार्य करिए। अपने मनमें और किसी भावनाको प्रश्रय मत दीजिए ॥ २५ ॥ आप मेरे अन्तरंग मित्र हैं। इसी नाते मैंने आपको हितकी बातें बतायी हैं। हे राजन्! अब आप जाकर सखियोंके साथ अपनी कन्याको यहाँ मण्डपमें ले आइए ॥ २६ ॥ यदि वह सुदर्शनको छोड़कर किसी अन्य राजकुमारके गलेमें वरमाला डाल देगी तो मैं विरोध नहीं करूँगा। आप अपने इच्छानुसार उसके साथ विवाह कर दीजिएगा ॥ २७ ॥ हे नृपोत्तम! अन्य सभी राजे कुलीन, सबल और मर्यादामें समान हैं। यदि आपकी कन्या उनमेंसे किसीको पसन्द कर ले तो विरोध किस बातका होगा? ॥२८॥ हे पार्थिवसत्तम! यदि आप मेरी बात न मानेंगे तो मैं जबर्दस्ती आपकी सुन्दरी कन्याका अपहरण कर लूँगा। मेरे साथ विरोध करनेसे अच्छा न होगा ॥ २९ ॥ व्यासजीने कहा–राजा युधाजित्का ऐसा धमकी भरा आदेश पाकर महाराज सुबाहु शोकाकुल हो उठे और ठंढी साँसे लेते हुए भवनके भीतर जाकर उन्होंने अपनी भार्यासे कहा–॥३०॥ हे सुधर्मज्ञे! बड़ा भयानक कलह उपस्थित हो गया है। मैं कुछ भी करने-

हितं ते प्रब्रवीम्यहम्॥ समानय सुतां राजन्मंडपे तां सखीवृताम्॥२६॥ सुदर्शनमृते चेयं वरिष्यति यदाऽप्यसौ॥ विग्रहो मे तदा न स्याद्विवाहोऽस्तु तवेप्सितः ॥२७॥ अन्ये नृपतयः सर्वे कुलीनाः सबलाः समाः ॥ विरोधः कीदृशस्त्वेनं वृणोद्यदि नृपोत्तम ॥२८॥ अन्यथाऽहं हरिष्येऽद्य बलात्कन्यामिमां शुभाम् ॥ मा विरोधं सुदुःसाध्यं गच्छ पार्थिवसत्तम ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ युधाजिता समादिष्टः सुबाहुः शोकसंयुतः ॥ निःश्वसन्भवनं गत्वा भार्यां प्राह शुचा वृतः ॥ ३० ॥ पुत्रीं ब्रूहि सुधर्मज्ञे कलहे समुपस्थिते ॥ किं कर्त्तव्यं मया शक्यं त्वद्वशोऽस्मि सुलोचने ॥ ३१ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ सा श्रुत्वा पतिवाक्यं तु गत्वा प्राह सुतांतिकम्॥ वत्से राजातिदुःखार्तः पिता तेऽद्यापि वर्तते॥३२॥ त्वदर्थे विग्रहः कामं समुत्पन्नोऽद्य भूभृताम्॥ अन्यं वरय सुश्रोणि सुदर्शनमृते नृपम् ॥ ३३ ॥ यदि सुदर्शनं वत्से हठात्त्वं वै वरिष्यसि॥ युधाजित्त्वां च मां चैव हनिष्यति बलान्वितः ॥ ३४ ॥ सुदर्शनं च राजाऽसौ बलमत्तः प्रतापवान् ॥ द्वितीयस्ते पतिः पश्चाद्भविता कलहे सति ॥ ३५ ॥ तस्मात्सुदर्शनं त्यक्त्वा वरयान्यं नृपोत्तमम् ॥ (सुखमिच्छसि चेन्मह्यं तुभ्यं वा मृगलोचने)॥ इति मात्रा बोधितां तां पश्चाद्राजाऽप्यबोधयत् ॥ ३६ ॥ उभयोर्वचनं श्रुत्वा निर्भयोवाच कन्यका ॥ कन्योवाच ॥ सत्यमुक्तं नृपश्रेष्ठ जानासि च व्रतं मम ॥ ३७ ॥ नान्यं वृणोमि भूपाल सुदर्शनमृते क्वचित् ॥ बिभेषि यदि

में असमर्थ हो रहा हूँ। हे सुनयनी! मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ। यह बात तुम जाकर पुत्री शशिकलासे कह दो ॥३१॥ व्यासजी बोले कि तब महारानीने कन्याके पास जाकर कहा–हे वत्से! इस समय तुम्हारे पिता बहुत दुखी हैं ॥ ३२ ॥ तुम्हारे लिए राजाओंमें बहुत बड़ा झगड़ा खड़ा हो गया है। अतएव तुम सुदर्शनको छोड़कर अन्य किसी राजकुमारको वरण कर लो ॥ ३३ ॥ हे वत्से! यदि तुम हठ करके सुदर्शनको ही वरण करोगी तो सेनाके साथ उपस्थित युधाजित् हमें, तुम्हें, सुदर्शन और महाराज सबको मार डालेगा ॥३४॥ वह प्रतापी युधाजित् इस समय बलाधिक्यके कारण मत्त हो रहा है। झगड़ा बढ़ जानेपर भी तुम्हें कोई दूसरा ही पति प्राप्त होगा ॥ ३५ ॥ इस लिए तुम सुदर्शनको त्यागकर अन्य किसी अच्छे राजाको चुन लो। (हे मृगनयनी! यदि तुम अपना और मेरा भला चाहो तो ऐसा ही करो) इस प्रकार माताके समझानेके बाद राजा सुबाहुने भी समझाया ॥ ३६ ॥ उन दोनोंकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बात सुनकर राजकुमारीने निर्भय भावसे कहा। शशिकला बोलीं—हे राजेन्द्र! आपका कथन यथार्थ है। किन्तु आप मेरी प्रतिज्ञाको तो जानते ही हैं ॥ ३७ ॥ हे भूपाल! मैं सुदर्शनके सिवाय और किसीको भी अपना पति नहीं बनाऊँगी। हे राजन्! यदि आप उन राजाओंके भयसे कातर हो रहे हों तो मुझे सुदर्शनके हाथों सौंपकर नगरसे बाहर कर दीजिए। वे मुझे रथमें बिठाकर आपके नगरसे चले जायँगे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जो होनहार होगा, वह बादमें भी होगा ही। अतएव हे नृपोत्तम! आप होनीके विषयमें कोई चिन्ता न करें ॥ ४० ॥ जो होना होगा, वह होकर ही रहेगा। इसमें कोई संशय नहीं है। राजा सुबाहु बोले—बुद्धिमान् मनुष्योंको जोखिममें नहीं पड़ना चाहिए ॥ ४१ ॥ वेदज्ञ विद्वानोंका कथन है कि एक साथ बहुतोंसे विरोध नहीं करना चाहिए। और फिर मैं एक राजकुमारको अपनी कन्या सौंपकर चुपकेसे कैसे भगा दूँ? ॥ ४२ ॥ इस समय बहुतेरे राजे मेरे वैरी हो गये हैं। वे बादमें न जाने क्या कर गुजरें। हे वत्स! यदि तुम पसन्द करो तो मैं तुम्हारी प्राप्तिके लिए कोई पण (शर्त) लगा दूँ ॥४३॥ जैसे कि राजा जनकने सीताके स्वयंवरमें शिवधनुषको चढ़ानेकी शर्त लगा

राजेन्द्र नृपेभ्यः किल कातरः ॥३८॥ सुदर्शनाय दत्त्वा मां विसर्जय पुराद्बहिः ॥ स मां रथे समारोप्य निर्गमिष्यति ते पुरात् ॥३९॥ भवितव्यं तु पश्चाद्वै भविष्यति न चान्यथा ॥ नात्र चिन्ता त्वया कार्या भवितव्ये नृपोत्तम ॥४०॥ यद्भावि तद्भवत्येव सर्वथाऽत्र न संशयः ॥ राजोवाच ॥ न पुत्रि साहसं कार्यं मतिमद्भिः कदाचन ॥ ४१ ॥ बहुभिर्न विरोद्धव्यमिति वेदविदो विदुः ॥ विस्रक्ष्यामि कथं कन्यां दत्त्वा राजसुताय च ॥ ४२ ॥ राजानो वरसंयुक्ताः किं न कुर्युरसांप्रतम् ॥ यदि ते रोचते वत्से पणं संविदधाम्यहम् ॥ ४३ ॥ जनकेन यथा पूर्वं कृतः सीतास्वयम्वरे ॥ शैवं धनुर्यथा तेन धृतं कृत्वा पणं तथा ॥ ४४ ॥ तथाऽहमपि तन्वंगि करोम्यद्य दुरासदम् ॥ विवादो येन राज्ञां वै कृते सति शमं व्रजेत् ॥ ४५ ॥ पालयिष्यति यः कामं स ते भर्ता भविष्यति ॥ सुदर्शनस्तथाऽन्यो वा यः कश्चिद्बलवत्तरः ॥ ४६ ॥ पालयित्वा पणं त्वां वै वरयिष्यति सर्वथा ॥ एवं कृते नृपाणां तु विवादः शमितो भवेत् ॥ ४७ ॥ सुखेनाहं विवाहं ते करिष्यामि ततः परम् ॥ कन्योवाच ॥ संदेहे नैव मज्जामि मूर्खकृत्यमिदं यतः ॥ ४८ ॥ मया सुदर्शनः पूर्वं धृतश्चेतसि नान्यथा ॥ कारणं पुण्यपापानां मन एव महीपते ॥ ४९ ॥ मनसा विधृतं त्यक्त्वा कथमन्यं वृणे पितः ॥ कृते पणे महाराज सर्वेषां वशगा ह्यहम् ॥ ५० ॥ एकः पालयिता द्वौ वा बहवो वा भवन्ति चेत् ॥ किं कर्तव्यं तदा तात विवादे समुपस्थिते ॥ ५१ ॥

रक्खी थी ॥ ४४ ॥ उसी प्रकार मैं भी कठोर शर्त रख दूँगा, जिससे राजाओंका यह विवाद समाप्त हो जायगा ॥ ४५ ॥ फिर चाहे सुदर्शन तथा उससे भी बढ़कर बलवान् जो भी राजा मेरा प्रण पूरा कर देगा, वही तुम्हारा पति हो जायगा ॥ ४६ ॥ मेरी प्रतिज्ञा पूरी करके वह तुम्हें ब्याह ले जायगा। ऐसा करनेसे राजाओंका विवाद शान्त हो जायगा ॥ ४७ ॥ उसके बाद मैं सुखसे तुम्हारा विवाह कर सकूँगा। कन्या शशिकलाने कहा—मैं संशयके सागरमें डूबना नहीं चाहती। क्योंकि ऐसा मूर्ख लोग करते हैं ॥ ४८ ॥ मैं सुदर्शनको अपने हृदयमें बसा चुकी हूँ, उन्हें अब निकाल न सकूँगी। हे महीपते! मन ही पाप और पुण्यका कारण होता है ॥४९॥ जिसको एक बार मनसे वरण कर चुकी, उसकी जगह मैं दूसरेको कैसे वरूँ? हे महाराज! यदि कोई प्रण करेंगे तो मैं उन सबके अधीन हो जाऊँगी ॥ ५० ॥ इनमेंसे किसी एक, दो या कइयोंने आपका प्रण पूरा किया, तब भी तो विवाद होगा। उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समय आप क्या करेंगे ? ॥५१॥ अतएव मैं किसी सन्देहास्पद कार्यका सोच भी नहीं सकती । हे राजेन्द्र ! आप किसी बातकी चिन्ता न करते हुए विधिवत् विवाह करके मुझे सुदर्शनके हाथमें सौंप दीजिए ॥ ५२ ॥ ऐसा करनेपर वे भगवती चण्डिका सब प्रकारसे कल्याण करेंगी, जिनका नाम लेते ही दुःखराशि विलीन हो जाती है ॥ ५३ ॥ उस महाशक्तिका स्मरण करके आप उत्साहपूर्वक यह काम करिए । आप अभी जाइए और उन राजाओंसे हाथ जोड़कर कहिए कि आप सभी महाराजे कल स्वयम्वरमें पधारें । ऐसा कह और सब राजाओंको विदा करके रात्रिमें वैदिक विधिसे मेरा विवाह कर दीजिए । उसके बाद उचित दहेज देकर हम दोनोंको विदा कर दीजिए ॥ ५४–५६ ॥ महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शन मुझे लेकर चले जायँगे । कदाचित् वे राजे कुपित होकर युद्ध करना चाहेंगे तो भगवती हमारी सहायता करेगी । उस समय सुदर्शन भी उनसे लड़ेंगे ॥५७॥५८॥ संयोगवश वे यदि युद्धमें मारे गये

संशयाधिष्ठिते कार्ये मतिं नाहं करोम्यतः ॥ मा चिन्तां कुरु राजेन्द्र देहि सुदर्शनाय माम् ॥५२॥ विवाहं विधिना कृत्वा शं विधास्यति चंडिका ॥ यन्नामकीर्तनादेव दुःखौघो विलयं व्रजेत् ॥५३॥ तां स्मृत्वा परमां शक्तिं कुरु कार्यमतन्द्रितः ॥ गत्वा वद नृपेभ्यस्त्वं कृतांजलिपुटोऽद्य वै ॥५४॥ आगंतव्यं च श्वः सर्वैरिह भूपैः स्वयंवरे ॥ इत्युक्त्वा त्वं विसृज्याशु सर्वं नृपतिमंडलम् ॥५५॥ विवाहं कुरु रात्रौ मे वेदोक्तविधिना नृप ॥ पारिबर्हं यथायोग्यं दत्त्वा तस्मै विसर्जय ॥ ५६ ॥ गमिष्यति गृहीत्वा मां ध्रुवसन्धिसुतः किल ॥ कदाचित्ते नृपाः क्रुद्धाः संग्रामं कर्तुमुद्यताः ॥ ५७ ॥ भविष्यन्ति तदा देवी साहाय्यं नः करिष्यति ॥ सोऽपि राजसुतस्तैस्तु संग्रामं संविधास्यति ॥५८॥ दैवान्मृधे मृते तस्मिन्मरिष्याम्यहमप्युत ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गृहे तिष्ठ दत्त्वा मां सहसैन्यकः ॥ ५९ ॥ एकैवाहं गमिष्यामि तेन सार्धं रिरंसया ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा राजाऽसौ कृतनिश्चयः ॥ मतिं चक्रे तथा कर्तुं विश्वासं प्रतिपद्य च ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा सुतावाक्यमनिंदितात्मा नृपांश्च गत्वा नृपतिर्जगाद ॥ व्रजन्तु कामं शिविराणि भूपाः श्वो वा विवाहं किल संविधास्ये ॥ १ ॥ भक्ष्याणि पेयानि मयाऽर्पितानि गृह्णन्तु सर्वे मयि सुप्रसन्नाः ॥ श्वो भावि कार्यं किल मंडपेऽत्र समेत्य सर्वैरिह संविधेयम् ॥ २ ॥

तो मैं भी मर जाऊँगी । आपका कल्याण हो । मेरी बताई युक्तिके अनुसार कन्यादान देकर आप सेनाके साथ अपने महलमें विहार करिए ॥ ५९ ॥ मैं भी विहार करनेके लिए अकेली ही उनके साथ चली जाऊँगी । व्यासजी बोले–राजकुमारीके वचन सुनकर राजा सुबाहुने भी वैसा ही करनेका निश्चय कर लिया । क्योंकि अब उनके हृदयमें भगवती चण्डिकाके प्रति दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो गया था ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

(सुदर्शन-शशिकलाका विवाह) व्यासजी बोले–हे राजन् ! विशुद्ध अन्तःकरणवाले महाराज सुबाहु कन्याकी बातें सुनकर राजाओंके पास गये और उनसे कहा–हे महाराजगण ! अब आप लोग अपने-अपने शिविरको जाइए । मैं कन्याका विवाह कल करूँगा ॥१॥ मेरे द्वारा अर्पित भक्ष्य तथा पेय पदार्थोंको आप लोग प्रसन्नतासे स्वीकार करें । कल फिर आप लोग इस मण्डपमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पधारिएगा। उसी समय विवाहका कार्य सम्पन्न होगा ॥२॥ हे नरपतिगण! आज मेरी पुत्री मण्डपमें नहीं आ रही हैं। मैं क्या करूँ? सबेरे उसे समझाकर मैं यहाँ लाऊँगा। अतएव अब आप अपने-अपने शिविरमें चलिए ॥ ३ ॥ बुद्धिमानोंको चाहिए कि अपने आश्रितोंके साथ विरोधभाव न रक्खें। बल्कि उनपर कृपा करें। सबेरे समझा-बुझाकर मैं अपनी कन्याको यहीं ले आऊँगा। इस समय आप लोग जायँ ॥ ४ ॥ तबतक मैं भलीभाँति सोचकर इच्छापण भी निर्धारित करके कल मैं उसका विवाह कर दूँगा। आप सब गजे आइएगा। यह स्वयंवर सर्वसम्मतिसे होगा ॥ ५ ॥ राजा सुबाहुका वचन सुनकर उसे सच मानते हुए वे सब राजे अपने-अपने पड़ावपर चले गये। नगरके आस-पास रक्षाका प्रबन्ध करके वे लोग मध्याह्नकालके कृत्योंमें लग गये ॥ ६ ॥ उधर राजा सुबाहु घरके सुसम्मानित लोगोंके साथ वैवाहिक कार्यमें संलग्न हो गये। वैदिक विधामें श्रेष्ठ पण्डितोंको बुलाकर वे राजमहलके गुप्त

नायाति पुत्री किल मंडपेऽत्र समेत्य किं भूपतयोऽत्र कामम् ॥ प्रातः समाश्वास्य सुतां नयिष्ये गच्छन्तु तस्माच्छिविराणि भूपाः ॥ ३ ॥ न विग्रहो बुद्धिमतां निजाश्रिते कृपा विधेया सततं ह्यपत्ये ॥ विधाय तां प्रातरिहानयिष्ये सुतां तु गच्छन्तु नृपा यथेष्टम् ॥४॥ इच्छापणं वा परिचिंत्य चित्ते प्रातः करिष्याम्यथ संविवाहम् ॥ सः सर्वैमेत्यात्र नृपैः समेतैः स्वयम्वरः सर्वमतेन कार्यः ॥ ५ ॥ श्रुत्वा नृपास्तेऽवितथं विदित्वा वाचो ययुः स्वानि निकेतनानि ॥ विधाय पार्श्वे नगरस्य रक्षां चक्रुः क्रिया मध्यदिनोदिताश्च ॥ ६ ॥ सुबाहुरप्यार्यजनैः समेतश्चकार कार्याणि विवाहकाले ॥ पुत्रीं समाहूय गृहे सुगुप्ते पुरोहितैर्वेदविदां वरिष्ठैः ॥ ७ ॥ स्नानादिकं कर्म वरस्य कृत्वा विवाहभूषाकरणं तथैव ॥ आनाय्य वेदीरचितं गृहे वै तस्या-र्हणां भूमिपतिश्चकार ॥ ८ ॥ सविष्टरं चाचमनीयमर्घ्यं वस्त्रद्वयं गामथ कुंडले द्वे ॥ समर्प्य तस्मै विधिवन्नरेन्द्र ऐच्छत्सुतादानमहीनसत्त्वः ॥ ९ ॥ सोऽप्यग्रहीत्सर्वमदीनचेताः शशाम चिंताऽथ मनोरमायाः ॥ कन्यां सुकेशीं निधिकन्यकासमां मेने तदाऽऽत्मानमनुत्तमं च ॥ १० ॥ सुपूजितं भूषणवस्त्रदानैर्वरोत्तमं तं सचिवास्तदानीम् ॥ निन्युश्च ते कौतुकमंडपांतर्मुदान्विता वीतभयाश्च सर्वे ॥११॥ समाप्तभूषां विधिवद्विधिज्ञाः स्त्रियश्च तां राजसुतां सुयाने ॥ आरोप्य निन्युर्वरसन्निधानं चतुष्कयुक्ते किल मंडपे वै ॥ १२ ॥ अग्निं समाधाय पुरोहितः स हुत्वा यथावच्च तदन्तराले ॥

स्थानमें पुत्रीको ले गये ॥ ७ ॥ वहाँ उन्होंने वरको स्नान कराके विवाहके योग्य वस्त्राभूषण पहनाया। तदनन्तर वेदीरचित घरमें ले जाकर वरका पूजन किया ॥ ८ ॥ विष्टर, आचमनीय, जल, अर्घ्य, वस्त्रका जोड़ा, गौ और दो कुण्डल प्रदान करके महामनस्वी राजा सुबाहुने विधिवत् कन्यादानका संकल्प किया ॥ ९ ॥ विशालहृदय सुदर्शनने भी उनकी दी हुई सभी वस्तुयें सादर स्वीकार कर लीं और उनकी माता मनोरमाकी चिन्ता दूर हो गयी। उन्होंने सुन्दर केशोंवाली कन्या शशिकलाको कुबेरकी पुत्रीके समान भाग्यशालिनी समझा ॥ १० ॥ उत्तम वस्त्राभूषण देकर पूजित श्रेष्ठ वरको देखकर राजाके मंत्री बहुत प्रसन्न हुए और निर्भीक होकर वे उन्हें कौतुकमण्डप (कोहबर) में ले गये ॥ ११ ॥ तदनन्तर विवाहकी जानकार सोहागिन स्त्रियोंने कन्याको आभूषण पहनाया। तत्पश्चात् राजकुमारीको एक सुन्दर पालकीमें बिठाकर चबूतरेसे सुसज्जित मड़वेमें वरके पास ले गयीं ॥ १२ ॥ उधर पुरोहितने वेदीपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अग्न्याधान करके वर-वधूके बीचमें अग्नि प्रज्वलित की और कौतुकागारमें कौतुक करके प्रेमरसमें सराबोर वर-वधूको अपने समीप बुलाया ॥ १३ ॥ तदनन्तर विधिवत् लाजाहोम करके वर-वधूने अग्निकी प्रदक्षिणा की और अपने-अपने कुल-गोत्रकी सब रीतियाँ सम्पन्न कीं ॥ १४ ॥ उस विवाहके उपलक्ष्यमें महाराज सुबाहुने बाणभरे तरकस एवं भलीभाँति अलंकृत घोड़ों सहित दो सौ रथ दहेजके रूपमें प्रदान किया ॥१५॥ तदनन्तर राजा सुबाहुने राजपुत्र सुदर्शनको मदमत्त, स्वर्णविभूषित तथा पर्वत सदृश ऊँचे सवा सौ हाथी प्रेमपूर्वक अर्पण किया ॥ १६ ॥ स्वर्णमय आभूषणोंसे लदी सौ दासियाँ और सौ सुन्दर हथिनियाँ भी विवाहके समय परम प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने वरको प्रदान कीं ॥ १७ ॥ सब प्रकारके शस्त्रों और आभूषणोंसे सुसज्ज एक हजार सेवकोंको दिया । नाना प्रकारके रत्न तथा रङ्ग-विरङ्गे सूती और ऊनी वस्त्र भी दिये ॥ १८ ॥ राजा सुबाहुने उन्हें

आह्वाययत्तौ कृतकौतुकौ तु वधूवरौ प्रेमयुतौ निकामम् ॥ १३ ॥ लाजाविसर्गं विधिवद्विधाय कृत्वा हुताशस्य प्रदक्षिणां च ॥ तौ चक्रतुस्तत्र यथोचितं तत्सर्वं विधानं कुलगोत्रजातम् ॥१४॥ शतद्वयं चाश्वयुजां रथानां सुभूषितं चापि शरौघसंयुतम् ॥ ददौ नृपेन्द्रस्तु सुदर्शनाय सुपूजितं पारिबर्हं विवाहे ॥ १५ ॥ मदोत्कटान्हेमविभूषितांश्च गजान्गिरेः शृंगसमानदेहान् ॥ शतं सपादं नृपसूनवेऽसौ ददावथ प्रेमयुतो नृपेन्द्रः ॥ १६ ॥ दासीशतं कांचनभूषितं च करेणुकानां च शतं सुचारु ॥ समर्पयामास वराय राजा विवाहकाले मुदितोऽनुवेलम् ॥ १७ ॥ अदात्पुनर्दाससहस्रमेकं सर्वायुधैः संभृतभूषितं च ॥ रत्नानि वासांसि यथोचितानि दिव्यानि चित्राणि तथाऽऽविकानि ॥१८॥ ददौ पुनर्वासगृहाणि तस्मै रम्याणि दीर्घाणि विचित्रितानि ॥ सिंधूद्भवानां तुरगोत्तमानामदात्सहस्रद्वितयं सुरम्यम् ॥ १९ ॥ क्रमेलकानां च शतत्रयं वै प्रत्यादिशद्भारभृतां सुचारु ॥ शतद्वयं वै शकटोत्तमानां तस्मै ददौ धान्यरसैः प्रपूरितम् ॥२०॥ मनोरमां राजसुतां प्रणम्य जगाद वाक्यं वितताञ्जलिः पुरः ॥ दासोऽस्मि ते राजसुते वरिष्ठे तद्ब्रूहि यत्स्यात्तु मनोगतं ते ॥२१॥ तं चारुवाक्यं निजगाद सापि स्वस्त्यस्तु ते भूप कुलस्य वृद्धिः ॥ संमानिताऽहं मम सूनवे त्वया दत्ता यतो रत्नवरा स्वकन्या ॥ २२ ॥ न बंदिपुत्री नृप मागधी वा स्तौमीह किं त्वां स्वजनं महत्तरम् ॥ सुमेरुतुल्यस्तु कृतः सुतोऽद्य मे संबंधिना भूपतिनोत्तमेन ॥ २३ ॥ अहोऽतिचित्रं नृपतेश्चरित्रं परं पवित्रं तव किं वदामि ॥ यद्भ्रष्टराज्याय सुताय मेऽद्य दत्ता त्वया पूज्यसुता वरिष्ठा ॥ २४ ॥

बहुत सुन्दर और खूब लम्बी-चौड़ी बहुतेरी छोलदारियाँ दीं । सिन्धुदेशमें उत्पन्न उच्चकोटिके दो हजार सुन्दर घोड़े दिये ॥ १९ ॥ उन्होंने बोझा ढोनेमें निपुण तीन सौ ऊँट और विविध प्रकारके अन्न तथा रससे लदी दो सौ बैलगाड़ियाँ प्रदान कीं ॥ २० ॥ दहेजमें इतनी वस्तुयें देनेके बाद महाराज सुबाहु सुदर्शनकी माता मनोरमाके समक्ष हाथ जोड़कर बोले—हे श्रेष्ठ वंशकी राजपुत्री ! मैं आपका दास हूँ । और भी जो कुछ आपकी इच्छा हो सो बताइए ॥ २१ ॥ तब राजमाता मनोरमाने बहुत ही सुन्दर वाणीमें कहा—हे महाराज ! आपने मेरे पुत्रको रत्नस्वरूपा कन्या देकर मुझे निहाल कर दिया । आपका कल्याण हो और वंशवृद्धि होती रहे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! न मैं किसी बन्दीजनकी पुत्री हूँ और न किसी भाँटकी कन्या । तब आप जैसे उत्तम समधीके गुण मैं कैसे गाऊँ ? आज आपने इतना उत्तम सम्बन्ध करके मेरे पुत्रको सुमेरुपर्वतके समान उच्च बना दिया ॥ २३ ॥ अहो ! मेरे महाराज सुबाहुका चरित्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इतना विचित्र है कि उन्होंने मेरे राज्यभ्रष्ट पुत्रको अपनी आदरणीया तथा दुलारी पुत्री प्रदान कर दी। किस मुखसे मैं आपके पवित्र गुणोंका गान करूँ? ॥ २४ ॥ आपने स्वयंवरमें आये हुए बड़े-बड़े राजाओंको त्यागकर वनवासी, निर्धन, पितृहीन, सैन्यरहित, फलाहारी तथा कोशविहीन मेरे पुत्रको अपनी कन्या दे दी। संसारके साधारण लोग भी अपने समान बली और अपने सदृश कुलीन व्यक्तिको ही अपनी कन्या देते हैं। हे राजन्! कोई मनुष्य मेरे निर्धन पुत्रको अपनी रूपवती एवं गुणवती कन्या न देता ॥ २५ ॥ २६ ॥ बड़े-बड़े बलवान् तथा सैन्यसम्पन्न राजाओंके साथ वैर करके आपने मेरे पुत्र सुदर्शनको अपनी कन्या प्रदान की है। आपके इस असाधारण धैर्यकी मैं कितनी सराहना करूँ? ॥ २७ ॥ मनोरमाके इन वचनोंको सुनकर महाराज सुबाहु बहुत प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर कहा कि आप मेरा यह सुप्रसिद्ध काशीका राज्य ले लें। आजसे मैं आपका सेनापति होकर रहूँगा ॥ २८ ॥ यदि यह न चाहें तो मेरा आधा राज्य लेकर आप अपने बेटेके साथ यहाँ ही रहकर राज्यसुखका उपभोग करिए। क्योंकि काशीका निवास त्यागकर

वनाधिवासाय किलाधनाय पित्रा विहीनाय विसैन्यकाय ॥ सर्वानिमान्भूमिपतीन्विहाय फलाशनायार्थविवर्जिताय ॥२५॥ समानवित्तेऽथ कुले बले च ददाति पुत्रीं नृपतिश्च भूयः ॥ न कोऽपि मे भूप सुतेऽर्थहीने गुणान्वितां रूपवतीं च दद्यात् ॥ २६ ॥ वैरं तु सर्वैः सह संविधाय नृपैर्वरिष्ठैर्बलसंयुतैश्च ॥सुदर्शनायाथ सुताऽर्पिता मे किं वर्णये धैर्यमिदं त्वदीयम् ॥२७॥ निशम्य वाक्यानि नृपः प्रहृष्टः कृतांजलिर्वाक्यमुवाच भूयः ॥ गृहाण राज्यं मम सुप्रसिद्धं भवामि सेनापतिरद्य चाहम् ॥ २८ ॥ नोचेत्तदर्धं प्रतिगृह्य चात्र सुतान्वितो राज्यफलानि भुंक्ष्व ॥ विहाय वाराणसिकानिवासं वने पुरे वासमतो न मेऽस्ति ॥२९॥ नृपास्तु सन्त्येव रुषान्विता वै गत्वा करिष्ये प्रथमं तु सांत्वनम् ॥ ततः परं द्वावपरावुपायौ नोचेत्ततो युद्धमहं करिष्ये ॥ ३० ॥ जयाजयौ दैववशौ तथापि धर्मे जयो नैव कृतेऽप्यधर्मे ॥ तेषां किलाधर्मवतां नृपाणां कथं भविष्यत्यनुचिंतितं वै ॥ ३१ ॥ आकर्ण्यं तद्भाषितमर्थवच्च जगाद वाक्यं हितकारकं तम् ॥ मनोरमा मानमवाप्य तस्मात्सर्वात्मना मोदयुता प्रसन्ना ॥ ३२ ॥ राजञ्छिवं तेऽस्तु कुरुष्व राज्यं त्यक्त्वा भयं त्वं स्वसुतैः समेतः ॥ सुतोऽपि मे नूनमवाप्य राज्यं साकेतपुर्यां प्रचरिष्यतीह ॥३३॥ विसर्जयास्मान्निजसद्म गंतुं शिवं भवानी तव संविधास्यति ॥ न काऽपि चिंता मम भूप वर्तते संचिंतयंत्या परमांबिकां वै ॥३४॥ दोषा गता विविधवाक्यपदै रसालैरन्योन्यभाषण-

वनमें आपका रहना मुझे नहीं भायेगा ॥२९॥ ये सब राजे मुझपर क्रुद्ध हैं। अब जाकर मैं पहले उन्हें सान्त्वना देता हुआ सामनीतिका प्रयोग करूँगा। इससे वे यदि न राजी होंगे तो कुछ देने-लेनेकी चर्चा चलाकर दाननीति काममें लाऊँगा। इसपर भी वे यदि न मानेंगे तो युद्ध करूँगा ॥ ३० ॥ जय और पराजय भाग्यके अधीन रहते हैं। किन्तु सदा धर्मकी जय होती है। उन अधर्मी राजाओंकी इच्छा कभी पूर्ण न होगी। वे कदापि विजयी नहीं हो सकते ॥३१॥ महाराज सुबाहुके अर्थसंगत बचन सुनकर मनोरमाने अपना सम्मान समझा और अत्यधिक प्रसन्न होकर यह हितकारी वचन कहा–॥ ३२ ॥ हे राजन्! आपका कल्याण हो। आप अपने पुत्रोंके साथ निर्भय होकर सानन्द काशीका राज्य करिए। एक दिन मेरा पुत्र भी अयोध्याका राज्य पाकर वहाँ जायगा ॥ ३३ ॥ अब आप हमें अपने घर जानेकी अनुमति दीजिए। भवानी आपका कल्याण करेंगी। हे राजन्! निरन्तर परमा अम्बिकाका ध्यान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते रहनेके कारण हम लोगोंको किसी बातकी चिन्ता नहीं रहती ॥ ३४ ॥ इस प्रकार दोनों सम्बन्धियोंके विविध वाक्यों द्वारा नाना प्रकारके सरस तथा अमृतके समान मधुर वार्तालाप करते-करते रात बीत गयी। सवेरा होनेपर सब राजाओंको मालूम हुआ कि कन्याका विवाह हो गया। तब वे सब क्रोधातुर होकर नगरसे बाहर निकल आये और कहने लगे—॥ ३५ ॥ यदि आज ही राजाओंके कलंकस्वरूप सुबाहु तथा उस विवाहके अयोग्य बालकको मारकर हम लोगोंने कन्या शशिकला तथा उस राजाकी राज्यलक्ष्मी न छीन ली तो कौन मुँह लेकर घर जायँगे ? ॥ ३६ ॥ आप लोग सुनें—तुड़हियाँ बज रही हैं, शंखध्वनि सुनाई दे रही है, मृदङ्ग उस ध्वनिको दबा रहा है, व्याहके गीत गाये जा रहे हैं और वेदपाठ किया जा रहा है। इन लक्षणोंसे ज्ञात होता है कि विवाह हो गया ॥ ३७ ॥ हम लोगोंको बातोंमें फँसाकर राजा सुबाहुने वैवाहिक विधिके अनुसार कन्याका विवाह कर दिया है। हे राजाओं ! आप लोग परस्पर मंत्रणा करके यह सर्वसम्मत निश्चय करिए कि अब हमें क्या करना चाहिए ॥ ३८ ॥ जब वे राजे परस्पर ऐसा परामर्श कर रहे थे, उसी समय असाधारण प्रभावशाली काशीनरेश महाराज

पदैरमृतोपमैश्च ॥ प्रातर्नृपाः समधिगम्य कृतं विवाहं रोषान्विता नगरबाह्यगतास्तथोचुः ॥३५॥ अद्यैव तं नृपकलंकधरं च हत्वा बालं तथैव किल तं न विवाहयोग्यम् ॥ गृह्णीम तां शशिकलां नृपतेश्च लक्ष्मीं लज्जामवाप्य निजसद्म कथं व्रजेम ॥३६॥ शृण्वन्तु तूर्यनिनदान्किल वाद्यमानाञ्छंख-स्वनानभिभवंति मृदंगशब्दाः ॥ गीतध्वनिं च विविधं निगमस्वनं च मन्यामहे नृपतिनाऽत्र कृतो विवाहः ॥३७॥ अस्मान्प्रतार्य वचनैर्विधिवच्चकार वैवाहिकेन विधिना करपीडनं वै ॥ कर्तव्यमद्य किमहो प्रविचिंतयंतु भूपाः परस्परमतिं च समर्थयंतु ॥३८॥ एवं वदत्सु नृपतिष्वथ कन्यकायाः कृत्वा विवाहविधिमप्रतिमप्रभावः ॥ भूपान्निमंत्रयितुमाशु जगाम राजा काशीपतिः स्वसुहृदैः प्रथितप्रभावैः ॥३९॥ आगच्छंतं च तं दृष्ट्वा नृपाः काशीपतिं तदा ॥ नोचुः किंचिदपि क्रोधान्मौनमाधाय संस्थिताः ॥४०॥ स गत्वा प्रणिपत्याह कृतांजलिरभाषत ॥ आगंतव्यं नृपैः सर्वैर्भोजनार्थं गृहे मम ॥४१॥ कन्ययाऽसौ वृतो भूपः किं करोमि हिताहितम् ॥ भवद्भिस्तु शमः कार्यो महांतो हि दयालवः ॥४२॥ तन्निशम्य वचस्तस्य नृपाः क्रोधपरिप्लुताः ॥ प्रत्यूचुर्भुक्तमस्माभिः स्वगृहं नृपते व्रज ॥४३॥ कुरु कार्याण्यशेषाणि यथेष्टं सुकृतं कृतम् ॥ नृपाः सर्वे प्रयांत्वद्य स्वानि स्वानि गृहाणि वै ॥४४॥ सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा जगाम शंकितो गृहम् ॥ किं करिष्यंति संविग्नाः क्रोधयुक्ता नृपोत्तमाः ॥४५॥ गते तस्मिन्महीपालाश्चक्रुश्च समयं पुनः ॥ रुद्ध्वा

सुबाहु विवाहसम्बन्धी सब कार्य समाप्त करके अपने प्रतिष्ठित हित-मित्रोंको साथ लेकर उन राजाओंको निमंत्रण देने गये ॥३९॥ काशीनरेशको अपनी ओर आते देखकर वे राजे क्रोधके कारण कुछ नहीं बोले और मौन धारण करके चुपचाप खड़े हो गये ॥४०॥ राजा सुबाहुने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'आज आप लोग भोजन करनेके लिए मेरे घर पधारिए ॥४१॥ कन्याने अपने मनसे राजा सुदर्शनको पतिरूपमें वरण कर लिया। ऐसी स्थितिमें मैं हित-अहित क्या करूँ ? आप लोग शान्त हो जायँ। क्योंकि महापुरुष बड़े दयालु होते हैं ॥ ४२ ॥ राजा सुबाहुके वचन सुनकर वे राजे क्रोधसे बावले हो गये और उन्होंने कहा—हे नृपते ! हम लोग भोजन कर चुके। अब आप अपने घर जाइए ॥ ४३ ॥ विवाहका जो कार्य शेष रह गया हो, उसे जाकर पूरा कर लीजिए। आपने बड़ा भारी पुण्यकार्य कर डाला। अब सब राजे अपने-अपने घर चले जायँगे ॥ ४४ ॥ सुबाहु भी उनकी तानाभरी बातें सुनकर सशंक होते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुए अपने घर लौट गये। वे बार-बार यही सोच रहे थे कि ये क्रुद्ध राजे न जाने क्या करेंगे॥ ४५॥ राजा सुबाहुके चले जानेपर उन राजाओंने प्रतिज्ञा की कि हम लोग रास्तेमें सुदर्शनको मारकर राजकन्याको छीन लेंगे ॥ ४६ ॥ उनमेंसे कुछ राजे बोले—हमें सुदर्शनसे क्या काम ? हमने यहाँका सब कौतुक देख लिया। अब अपने घर जा रहे हैं ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर वे राजे उठकर खड़े हो गये। उधर महाराज सुबाहु अपने घर जाकर विवाहके शेषकार्य सम्पन्न करने लगे॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

(राजाओंके साथ सुदर्शनका युद्ध और देवीकी सहायता) व्यासजी बोले—हे राजन् ! महाराज सुबाहुने सुदर्शनको छ दिन अपने यहाँ रखकर बड़ी श्रद्धासे उच्च कोटिके भोजन बनवा-बनवाकर जिमाया ॥ १ ॥ इस प्रकार राजाने विवाहके सभी कार्य सम्पन्न करके मन्त्रियोंकी सलाहसे समुचित दहेज दिया ॥ २ ॥ उसी समय दूतों द्वारा यह खबर मिली कि

मार्गं ग्रहीष्यामः कन्यां हत्वा सुदर्शनम् ॥४६॥ केचनोचुः किमस्माकं हंत तेन नृपेण वै ॥ दृष्ट्वा तु कौतुकं सर्वं गमिष्यामो यथागतम् ॥४७॥ इत्युक्त्वा ते नृपाः सर्वे मार्गमाक्रम्य संस्थिताः ॥ चकारोत्तरकार्याणि सुबाहुः स्वगृहं गतः ॥४८॥ इति श्रीदेवीभागवते तृतीयस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ व्यास उवाच॥ तस्मै गौरवभोज्यानि विधाय विधिवत्तदा ॥ वासराणि च षड्राजा भोजयामास भक्तितः ॥ १ ॥ एवं विवाहकार्याणि कृत्वा सर्वाणि पार्थिवः ॥ पारिबर्हं प्रदत्त्वाऽथ मन्त्रयन्सचिवैः सह ॥ २ ॥ दूतैस्तु कथितं श्रुत्वा मार्गसंरोधनं कृतम् ॥ बभूव विमना राजा सुबाहुरमितद्युतिः ॥ ३ ॥ सुदर्शनस्तदोवाच श्वशुरं संशितव्रतः ॥ अस्मान्विसर्जयाशु त्वं गमिष्यामो ह्यशंकिताः ॥ ४ ॥ भारद्वाजाश्रमं पुण्यं गत्वा तत्र समाहिताः ॥ निवासाय विचारो वै कर्तव्यः सर्वथा नृप ॥ ५ ॥ नृपेभ्यश्च न कर्तव्यं भयं किंचित्त्वयाऽनघ ॥ जगन्माता भवानी मे साहाय्यं वै करिष्यति ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्येति मतमाज्ञाय जामातुर्नृपसत्तमः ॥ विससर्ज धनं दत्त्वा प्रतस्थे सोऽपि सत्वरः ॥ ७ ॥ बलेन महताऽऽविष्टो ययावनु नृपोत्तमः ॥ सुदर्शनो वृतस्तत्र चचाल पथि निर्भयः ॥ ८ ॥ रथैः परिवृतः शूरः सदारो रथसंस्थितः ॥ गच्छन्ददर्श सैन्यानि नृपाणां रघुनन्दनः ॥ ९ ॥ सुबाहुरपि तान्वीक्ष्य चिंताविष्टो बभूव ह ॥ विधिवत्स शिवां चित्ते जगाम शरणं मुदा ॥ १० ॥ जजापैकाक्षरं मंत्रं कामराज-

सब राजे मार्ग रोककर खड़े हैं। अमित तेजस्वी महाराज सुबाहु यह समाचार सुनकर बहुत उद्विग्न हुए ॥ ३ ॥ तब सुदर्शनने अपने ससुरसे कहा—अब आप हम लोगोंको विदा करिए। हम बेखटके यहाँसे चले जायँगे ॥ ४ ॥ हे नृप ! महर्षि भारद्वाजके पुनीत आश्रममें जाकर वहाँ ही रहनेका हमारा विचार है ॥ ५ ॥ हे अनघ ! उन राजाओंसे तनिक भी न डरिएगा। जगज्जननी भवानी अवश्य हमारी सहायता करेंगी ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा—अपने दामाद सुदर्शनका ऐसा विचार जानकर राजा सुबाहुने पुष्कल धन देकर उनको विदा कर दिया और वे तत्काल चल पड़े ॥७॥ किन्तु महाराज सुबाहु भी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर उनके पीछे-पीछे चले। इस प्रकार उन सैनिकोंसे घिरकर वे निर्भयभावसे चले जा रहे थे ॥ ८ ॥ अगणित रथोंसे घिरे एक रथपर अपनी पत्नीके साथ बैठे हुए रघुनन्दन सुदर्शनने मार्गमें उन राजाओंकी विशाल सेना देखी ॥ ९ ॥ राजा सुबाहु भी वह सेना देखकर चिंतित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुए । उन्होंने मन ही मन भगवती जगदम्बाका ध्यान किया और उनकी शरण गही ॥१०॥ उस समय सपत्नीक सुदर्शन एकाक्षरात्मक कामराजनामक महामंत्रका जप कर रहे थे॥११॥ उधर सब राजे एक साथ हल्ला मचाकर कन्याका अपहरण करनेके लिए अपनी-अपनी सेनाके साथ उनकी ओर बढ़े ॥१२॥ उन्हें ऐसा करते देखकर काशीनरेश सुबाहुने उनको मारनेका विचार किया, किन्तु विजयेच्छुक सुदर्शनने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया ॥ १३ ॥ उस समय महाराज सुबाहु तथा शत्रुराजाओंकी सेनाओंमें शङ्ख, भेरी, नगाड़े और दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ १४ ॥ सुदर्शनका सौतेला भाई शत्रुजित् आक्रमण करनेके लिए बड़ी तत्परतासे तैयार खड़ा था और राजा युधाजित् उसकी सहायताके लिए सन्नद्ध थे ॥ १५ ॥ उनमें कुछ राजे अपनी सेनाके साथ प्रेक्षकके रूपमें खड़े थे । तभी युधाजित् आगे बढ़कर सुदर्शनके समक्ष जा डटा ॥ १६ ॥ उसके साथ उसका नाती शत्रुजित् अपने भाईका वध करनेके लिए खड़ा था।

मनुत्तमम् ॥ निर्भयो वीतशोकश्च पत्न्या सह नवोढया ॥ ११ ॥ ततः सर्वे महीपालाः कृत्वा कोलाहलं तदा ॥ उत्थिताः सैन्यसंयुक्ता हर्तुकामास्तु कन्यकाम् ॥ १२॥ काशिराजस्तु तान्दृष्ट्वा हन्तुकामो बभूव ह ॥ निवारितस्तदाऽत्यर्थं राघवेण जिगीषता ॥ १३ ॥ तत्रापि नेदुः शंखाश्च भेर्यश्चानकदुन्दुभिः ॥ सुबाहोश्च नृपाणां च परस्परजिघांसताम् ॥१४॥ शत्रुजित्तु सुसंवृत्तः स्थितस्तत्र जिघांसया ॥ युधाजित्तत्सहायार्थं सन्नद्धः प्रबभूव ह ॥१५॥ केचिच्च प्रेक्षकास्तस्य सहानीकैः स्थितास्तदा॥ युधाजिदग्रतो गत्वा सुदर्शनमुपस्थितः ॥१६॥ शत्रुजित्तेन सहितो हन्तुं भ्रातरमानुजः॥ परस्परं ते बाणौघैस्ततक्षुः क्रोधमूर्छिताः ॥१७॥ संमर्दः सुमहांस्तत्र संप्रवृत्तः सुमार्गणैः ॥ काशीपतिस्तदा तूर्णं सैन्येन बहुना वृतः ॥१८॥ साहाय्यार्थं जगामाशु जामातरमनिंदितम् ॥ एवं प्रवृत्ते संग्रामे दारुणे लोमहर्षणे ॥ १९॥ प्रादुर्बभूव सहसा देवी सिंहोपरि स्थिता ॥ नानायुधधरा रम्या वराभूषणभूषिता ॥ २० ॥ दिव्यांबरपरीधाना मन्दारस्रक्सुसंयुता ॥ तां दृष्ट्वा तेऽथ भूपाला विस्मयं परमं गताः ॥ २१ ॥ केयं सिंहसमारूढा कुतो वेति समुत्थिता ॥ सुदर्शनस्तु तां वीक्ष्य सुबाहुमिति चाब्रवीत् ॥ २२ ॥ पश्य राजन्महादेवीमागतां दिव्यदर्शनाम् ॥ अनुग्रहाय मे नूनं प्रादुर्भूता दयान्विता ॥ २३ ॥ निर्भयोऽहं महाराज जातोऽस्मि निर्भयादपि ॥ सुदर्शनः सुबाहुश्च तामालोक्य वराननाम् ॥ २४ ॥ प्रणामं चक्रतुस्तस्या मुदितौ दर्शनेन च ॥ ननाद च तदा सिंहो गजास्त्रस्ताश्चकम्पिरे ॥ २५ ॥ ववुर्वाता महाघोरा दिशश्चासन्सुदारुणाः ॥ सुदर्शनस्तदा प्राह निजं

इस प्रकार सामना होते ही क्रुद्ध होकर दोनों पक्ष परस्पर एक दूसरेपर घनघोर बाणवर्षा करने लगे ॥१७॥ इस प्रकारकी बाणवृष्टिसे भयानक संघर्ष उपस्थित हो गया। तत्काल काशीनरेश सुबाहु विशाल वाहिनी लेकर अपने सुप्रशंसित जामाताकी सहायताके लिए जा पहुँचे । अब उनमें और भी दारुण तथा लोमहर्षक संग्राम छिड़ गया ॥ १८ ॥ १९ ॥ उसी समय सहसा भगवती प्रकट हो गयीं । वे सिंहपर सवार थीं, विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र धारण किये थीं और उत्तम आभूषणोंसे आभूषित थीं ॥२०॥ वे भगवती दिव्य वस्त्र पहने थीं । मन्दारकी माला गलेमें पड़ी थी । उन्हें देखकर शत्रुपक्षके राजे चकित हो गये॥२१॥ वे कहने लगे कि सिंहपर सवार यह स्त्री कौन है और कहाँसे आयी है ? वीर सुदर्शनने जगदम्बाको देखकर सुबाहुसे कहा—॥२२॥ राजन् ! देखिए, दिव्यदर्शना भगवती हम लोगोंपर दया करके सहायताके लिए आ पहुँची ॥२३॥ हे महाराज ! मैं निर्भय तो पहले ही था, किन्तु अब और भी निर्भय हो गया। तत्पश्चात

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुदर्शन और सुबाहु उन सुमुखी भगवतीको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उसी समय भगवतीके सिंहने भीषण गर्जन किया, जिससे उस रणभूमिमें विद्यमान सभी हाथी भयसे काँपने लगे ॥२४॥२५॥ एकाएक जोरोंसे आँधी चलने लगी और सब दिशायें बड़ी भयानक दीखने लगीं। तब सुदर्शननें अपने सेनापतिसे कहा–॥२६॥ जहाँ ये राजे मार्ग रोककर खड़े हैं, उधर ही तुम वेगसे आगे बढ़ो। ये दुष्ट राजे कुपित होकर हमारा क्या कर लेंगे? ॥२७॥ अब हमारी सहायताके लिए स्वयं जगदम्बा आ गयी हैं। अतएव निर्भय होकर इन राजाओंकी भीड़वाले मार्गपर आगे बढ़ो ॥२८॥ मैंने स्मरण किया, तैसे ही भगवती महादेवी हमारी रक्षाके लिए आ पहुँचीं। सुदर्शनका वचन सुनकर सेनापति उसी मार्गसे आगे बढ़ा ॥ २९ ॥ तब अतिशय कुपित युधाजित्ने उन राजाओंसे कहा–तुमलोग डर क्यों रहे हो? कन्याके साथ उपस्थित सुदर्शनको मारो ॥३०॥ हम बलवानोंका तिरस्कार करके यह निर्भय बालक कन्याको लिये चला जा रहा है ॥३१॥ सिंहके ऊपर सवार उस स्त्रीको देखकर तुमलोग क्यों डरते हो? हे महाभाग राजाओं! इस समय इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। सावधानीके

सेनापतिं प्रति ॥ २६ ॥ मार्गे व्रज त्वं तरसा भूपाला यत्र संस्थिताः ॥ किं करिष्यन्ति राजानः कुपिता दुष्टचेतसः ॥ २७ ॥ शरणार्थं च संप्राप्ता
देवी भगवती हि नः ॥ निरातंकैश्च गंतव्यं मार्गेऽस्मिन्भूपसंकुले ॥२८॥ स्मृता मया महादेवी रक्षणार्थमुपागता ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सेनापतिस्तेन पथा
व्रजन् ॥२९॥ युधाजित्तु सुसंक्रुद्धस्तानुवाच महीपतीन् ॥ किं स्थिता भयसंत्रस्ता निघ्नंतु कन्यकान्वितम् ॥३०॥ अवमन्य च नः सर्वान्बलहीनो बला-
धिकान् ॥ कन्यां गृहीत्वा संयाति निर्भयस्तरसा शिशुः ॥३१॥ किं भीताः कामिनीं वीक्ष्य सिंहोपरि सुसंस्थिताम् ॥ नोपेक्ष्यो हि महाभाग हंतव्योऽत्र
समाहितैः ॥ ३२ ॥ हत्वैनं संग्रहीष्यामः कन्यां चारुविभूषणाम् ॥ नायं केसरिणाऽऽदत्तं छेत्तुमर्हति जम्बुकः ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वा सैन्यसंयुक्तः शत्रु-
जित्सहितस्तदा ॥ योद्धुकामः सुसंप्राप्तो युधाजित्क्रोधसंवृतः ॥ ३४ ॥ मुमोच विशिखांस्तूर्णं समपुंखाञ्छिलाशितान् ॥ धनुराकृष्य कर्णान्तं कर्मार-
परिमार्जितान् ॥ ३५ ॥ हन्तुकामः सुदुर्मेधाः सुदर्शनमथोपरि ॥ सुदर्शनस्तु तान्बाणैश्चिच्छेदापततः क्षणात् ॥ ३६ ॥ एवं युद्धे प्रवृत्तेऽथ चुकोप
चंडिका भृशम् ॥ दुर्गा देवी मुमोचाथ बाणान्युधाजितं प्रति ॥ ३७ ॥ नानारूपा तदा जाता नानाशस्त्रधरा शिवा ॥ संप्राप्ता तुमुलं तत्र चकार
जगदम्बिका ॥ ३८ ॥ शत्रुजिन्निहतस्तत्र युधाजिदपि पार्थिवः ॥ पतितौ तौ रथाभ्यां तु जयशब्दस्तदाऽभवत् ॥ ३९ ॥ विस्मयं परमं प्राप्ता भूपाः

साथ सब लोग मिलकर इसका वध कर दो ॥३२॥ इसे मारकर हम उस सुन्दर आभूषणधारिणी बालिकाको अपनी मुट्ठीमें कर लेंगे। हम सिंहसदृश वीरोंके भागको यह सियार नहीं ले जा सकता ॥३३॥ ऐसा कह और अत्यन्त क्रुद्ध होकर युधाजित् अपने नाती शत्रुजित् तथा विशाल सेनाको साथ लिये हुए युद्धके निमित्त अग्रसर हुआ ॥३४॥ अब वे लोग सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए, चौकोर, पुच्छयुक्त तथा खरादपर चढ़ाकर माँजे हुए हुए बाणोंको धनुषपर चढ़ा तथा उसके रोदेको कानों तक खींच-खींचकर छोड़ने लगे ॥३५॥ इस प्रकार प्रहार करके वह दुर्बुद्धि युधाजित् सुदर्शनको मार डालना चाहता था। किन्तु वीर सुदर्शनने उसके बाणोंको क्षण भरमें काट डाला ॥ ३६ ॥ वह भीषण युद्ध छिड़ जानेपर भगवती अम्बिका क्रुद्ध हो उठीं और युधाजित्पर बाण बरसाने लगीं ॥३७॥ उस समय भगवती दुर्गा विविध रूप धारण करके नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र लेकर घमासान युद्ध करने लगीं ॥३८॥ कुछ ही क्षणोंमें शत्रुजित् और युधाजित्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मरकर अपने-अपने रथोंसे धरतीपर आ गिरे। उस समय चारों ओरसे जयजयकारका निनाद होने लगा ॥ ३९ ॥ उस युद्धमें मामा और भांजेकी मृत्यु देखकर सब राजे चकपका गये। ॥४०॥ महाराज सुबाहु रणभूमिमें उन दोनोंका मरण देखकर बहुत प्रसन्न हुए और दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गाकी स्तुति करने लगे ॥४१॥ सुबाहु बोले—जगद्धात्री शिवा देवीको नमस्कार है। हे दुर्गे! हे भगवती! हे कामदे! आपको प्रणाम है ॥ ४२ ॥ शिवा, शान्ति, विद्या और मोक्षदायिनीको नमस्कार है। विश्वभरमें व्याप्त, जगन्माता, जगद्धात्री एवं शिवा भवानीको वारम्वार प्रणाम है ॥ ४३ ॥ हे देवि! मैं सगुण प्राणी बहुत प्रकारसे चिन्तन करके भी निर्गुणा भगवतीको जाननेमें असमर्थ हूँ। हे विश्वजननी! जिनका प्रभाव प्रकट है जो सदा अपने भक्तोंकी पीडा दूर करनेमें तत्पर रहती हैं और जो ब्रह्माण्डकी परम शक्ति कहलाती हैं, उनकी स्तुति भला मैं कैसे कर सकूँगा? ॥ ४४ ॥ हे भगवती! आप ही सब प्राणियोंकी वाग्देवता, सर्वगता, बुद्धि, विद्या, गति और वति हैं। आप ही सबके मनका नियन्त्रण करती हैं, तब मैं आपकी स्तुति कैसे करूँगा? सर्वव्यापी आत्माके रूपकी भी स्तुति भला कभी की

सर्वे विलोक्य तान् ॥ निधनं मातुलस्यापि भागिनेयस्य संयुगे ॥ ४० ॥ सुबाहुरपि तं दृष्ट्वा निधनं संयुगे तयोः ॥ तुष्टाव परमप्रीतो दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ ४१ ॥ सुबाहुरुवाच ॥ नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः ॥ दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः ॥ ४२ ॥ नमः शिवायै शांत्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः ॥ विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे ॥४३॥ नाहं गतिं तव धिया परिचिन्तयन् वै जानामि देविः सगुणः किल निर्गुणायाः ॥ किं स्तौमि विश्वजननीं प्रकटप्रभावां भक्तार्तिनाशनपरां परमां च शक्तिम् ॥४४॥ वाग्देवता त्वमसि सर्वगतैव बुद्धिर्विद्या मतिश्च गतिरप्यसि सर्वजंतोः ॥ त्वां स्तौमि किं त्वमसि सर्वमनोनियंत्री किं स्तूयते हि सततं खलु चात्मरूपम् ॥४५॥ ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं स्तुवन्तो नान्तं गताः सुरवराः किल ते गुणानाम् ॥ क्वाहं विभेदमतिरम्ब गुणैर्वृतो वै वक्तुं क्षमस्तव चरित्रमहोऽप्रसिद्धः ॥ ४६ ॥ सत्सङ्गतिः कथमहो न करोति कामं प्रासङ्गिकाऽपि विहिता खलु चित्तशुद्धिः ॥ जामातुरस्य विहितेन समागमेन प्राप्तं मयाऽद्भुतमिदं तव दर्शनं वै ॥ ४७ ॥ ब्रह्माऽपि वांछति सदैव हरो हरिश्च सेन्द्राः सुराश्च मुनयो विदितार्थतत्त्वाः ॥ यद्दर्शनं जननि तेऽद्य मया दुरापं प्राप्तं विना दमशमादिसमाधिभिश्च ॥ ४८ ॥ क्वाहं सुमंदमतिराशु तवावलोकं क्वेदं भवानि भवभेषजमद्वितीयम् ॥ ज्ञाताऽसि देवि सततं किल भावयुक्ता भक्तानुकंपनपराऽमरवर्गपूज्या ॥ ४९ ॥

जा सकती है? ॥४५॥ देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु और शिव निरन्तर आपकी स्तुति करके भी पार नहीं पा सके। ऐसी दशामें हे अम्बे! मैं भेदबुद्धिवाला प्राणी और गुणोंके चक्करमें पड़ा हुआ एक तुच्छ जीव आपके अपार चरित्रका वर्णन कैसे कर सकता हूँ? ॥ ४६ ॥ अहो! सत्सङ्गसे कौनसा मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकता? आपके इस प्रासङ्गिक सङ्गसे ही मेरा चित्त शुद्ध हो गया। अपने जामाता सुदर्शनके अचानक मिलनेसे मैंने अनायास आपका अद्भुत दर्शन पा लिया ॥४७॥ ब्रह्मा, शिव तथा भगवान् विष्णु भी जिनके दर्शनोंके लिए लालायित रहते हैं। इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता तथा तत्त्वज्ञानी मुनि लोग भी जिनकी एक झाँकीके लिए तरसा करते हैं। हे जननी! आपका वह दुर्लभ दर्शन शम, दम तथा समाधि आदि यौगिक क्रियाओं-को किये बिना ही मुझे प्राप्त हो गया ॥ ४८ ॥ कहाँ अतिशय मन्दमति मैं और कहाँ सहसा आपका दर्शन प्राप्त होना। हे भवानी! आप भवरूपी रोगके लिए अद्वितीय औषधि हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे देवि ! अब मुझे ज्ञात हो गया कि आप सदा भावनायुक्त रहती हैं । अमरमण्डल द्वारा पूजित होती हुई भी आप अपने अकिञ्चन भक्तोंपर अनुकम्पा करती हैं ॥ ४९ ॥ हे देवि ! आपने इस भीषण संकटके समय जिस प्रकार सुदर्शनकी रक्षा की है, आपके इस पवित्र चरित्रका मैं किस तरह वर्णन करूँ ? आपने देखते-देखते इसके दो बलवान् शत्रुओंको धराशायी कर दिया । भक्तोंपर अनुकम्पा करनेका यह पुनीत चरित्र सदा गाया जायगा ॥ ५० ॥ हे देवि ! विशेष विचार करनेपर ज्ञात होता है कि आपका ऐसा करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । क्योंकि आप अखिल स्थावर-जंगम जगत्की रक्षा करती हैं । यह आपकी दया है कि जो आपने शत्रुको मारकर ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शनकी रक्षा की ॥ ५१ ॥ हे भवानी ! अपने सतत सेवा-परायण भक्तोंका यश फैलानेके लिए ही आपने इस चरित्रकी रचना की है । नहीं तो परम शीलसम्पन्न सुदर्शन मेरी कन्याका पाणिग्रहण करके इस भयानक युद्धमें सकुशल जीवित कैसे बच सकता था ? ॥ ५२ ॥ जब आप अपने भक्तोंके जन्म-मरणजनित भयको नष्ट करनेमें समर्थ हैं, तब किसी एक भक्तकी अभिलाषा पूर्ण कर देना कौन बड़ी बात है ? हे

किं वर्णयामि तव देवि चरित्रमेतद् यद्रक्षितोऽस्ति विषमेऽत्र सुदर्शनोऽयम् ॥ शत्रू हतौ सुबलिनौ तरसा त्वयाऽद्य भक्तानुकंपि चरितं परमं पवित्रम् ॥ ५० ॥ नाश्चर्यमेतदिति देवि विचारितेऽर्थे त्वं पासि सर्वमखिलं स्थिरजङ्गमं वै ॥ त्रातस्त्वया च विनिहत्य रिपुर्दयातः संरक्षितोऽयमधुना ध्रुवसंधिसूनुः ॥ ५१ ॥ भक्तस्य सेवनपरं स्वयशोऽतिदीप्तं कर्तुं भवानि रचितं चरितं त्वयैतत ॥ नोचेत्कथं सुपरिगृह्य सुतां मदीयां युद्धे भवेत्कुशल-वाननवद्यशीलः ॥ ५२ ॥ शक्ताऽसि जन्ममरणादिभयान्विहंतुं किं चित्रमत्र किल भक्तजनस्य कामम् ॥ त्वं गीयसे जननि भक्तजनैरपारा त्वं पाप-पुण्यरहिता सगुणाऽगुणा च ॥ ५३ ॥ त्वद्दर्शनादहमहो सुकृती कृतार्थो जातोऽस्मि देवि भुवनेश्वरि धन्यजन्मा ॥ बीजं न ते न भजनं किल वेद्मि मातर्ज्ञातस्तवाद्य महिमा प्रकटप्रभावः ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी प्रसन्नवदना शिवा ॥ उवाच तं नृपं देवी वरं वरय सुव्रत ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

व्यास उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भवान्याः स नृपोत्तमः ॥ प्रोवाच वचनं तत्र सुबाहुर्भक्तिसंयुतः ॥ १ ॥ सुबाहुरुवाच ॥ एकतो देवलो-कस्य राज्यं भूमंडलस्य च ॥ एकतो दर्शनं ते वै न च तुल्यं कदाचन ॥ २ ॥ दर्शनात्सदृशं किंचित्त्रिषु लोकेषु नास्ति मे ॥ कं वरं देवि याचेऽहं

जननी ! आपकी लीला अपार है । आप पाप-पुण्यसे रहित तथा सगुणा-निर्गुणा दोनों हैं । इसी कारण भक्तजन सदा आपके गुण गाते रहते हैं ॥ ५३ ॥ हे देवि ! हे भुवनेश्वरी ! आज आपका दर्शन पाकर मैं पवित्र तथा कृतार्थ हो गया और मेरा जन्म धन्य हुआ । हे माता ! मैं आपके भजनका बीजमन्त्र नहीं जानता । हाँ, आपकी अतीव प्रभावसम्पन्न महिमाको अवश्य जान गया ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले—महाराज सुबाहुने जब ऐसी स्तुति की, तब भगवती शिवाका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा । तत्काल उन्होंने राजासे कहा—हे सुव्रत ! अब तुम अपना अभिलषित वर माँगो ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

(भगवतीकी महिमा तथा दुर्गाजीका काशीमें स्थायी निवास) व्यासजी बोले—हे राजन ! भवानीके वचन सुनकर नृपश्रेष्ठ सुबाहुने भक्तिरससे सराबोर यह यह वचन कहा—॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजा सुबाहु बोले—हे माता ! एक ओर देवलोक तथा समस्त भूमण्डलके राज्य और दूसरी ओर आपका दर्शन हो जाय तो दर्शनकी तुलनामें वे राज्य फीके पड़ जायँगे ॥ २ ॥ आपके दर्शनसे बढ़कर समस्त त्रिलोकीमें कोई भी वस्तु नहीं हो सकती । हे देवि ! मैं आपसे क्या वर माँगूँ ? मैं तो इस जगतीतलमें आपके दर्शनसे ही कृतकृत्य हो गया ॥३॥ फिर भी यदि आप देना ही चाहें तो मैं यही वर माँगता हूँ कि मेरे हृदयमें सदा आपकी अनपायिनी और निश्चला भक्ति बनी रहे ॥ ४ ॥ हे माता ! आप मेरी नगरी काशीमें सदा निवास करें । आप शक्तिस्वरूपा होकर दुर्गादेवीके नामसे यहाँ नित्य विराजमान रहें ॥ ५ ॥ इस समय आपने जिस तरह शत्रुदलसे सुदर्शनकी रक्षा की है, उसी तरह आप सदा मेरे नगरकी रक्षा करती रहें ॥६॥ जबतक इस भूलोकमें काशी नगरीका अस्तित्व रहे, तबतक आप यहाँ सुप्रतिष्ठित होकर इसकी रक्षा करें ॥७॥ हे दुर्गे ! हे देवि ! हे दयानिधे ! तबतक आप यहाँ बनी रहे, जब तक काशी रहे । बस, आप मुझे यही वरदान दें । इसके सिवाय मैं आपसे और क्या माँगूँ ? ॥८॥ आप मेरी सब कामनायें पूर्ण करें, मेरे शत्रुओंको नष्ट कर दें और जगत्के जीवमात्रका अमङ्गल

कृतार्थोऽस्मि धरातले ॥ ३ ॥ एतदिच्छाम्यहं मातर्याचितुं वांछितं वरम् ॥ तव भक्तिः सदा मेऽस्तु निश्चला ह्यनपायिनी ॥ ४ ॥ नगरेऽत्र त्वया मातः स्थातव्यं मम सर्वदा ॥ दुर्गादेवीति नाम्ना वै त्वं शक्तिरिह संस्थिता ॥ ५ ॥ रक्षा त्वया च कर्तव्या सर्वदा नगरस्य ह ॥ यथा सुदर्शनस्त्रातो रिपुसंघादनामयः ॥६॥ तथाऽत्र रक्षा कर्तव्या वाराणस्यास्त्वयाऽम्बिके ॥ यावत्पुरी भवेद्भूमौ सुप्रतिष्ठा सुसंस्थिता ॥७॥ तावत्त्वयाऽत्र स्थातव्यं दुर्गे देवि कृपानिधे ॥ वरोऽयं मम ते देयः किमन्यत्प्रार्थयाम्यहम् ॥८॥ विविधान्सकलान्कामान्देहि मे विद्विषो जहि ॥ अभद्राणां विनाशं च कुरु लोकस्य सर्वदा ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संप्रार्थिता देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ तमुवाच नृपं तत्र स्तुत्वा वै संस्थितं पुरः ॥ १० ॥ दुर्गोवाच ॥ राजन्सदा निवासो मे मुक्तिपुर्यां भविष्यति ॥ रक्षार्थं सर्वलोकानां यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥ ११ ॥ अथो सुदर्शनस्तत्र समागत्य मुदान्वितः ॥ प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टाव जगदंबिकाम् ॥१२॥ अहो कृपा ते कथयाम्यहं किं त्रातस्त्वया यत्किल भक्तिहीनः ॥ भक्तानुकंपी सकलो जनोऽस्ति विमुक्तभक्तेरवनं व्रतं ते ॥ १३ ॥ त्वं देवि सर्वं सृजसि प्रपंचं श्रुतं मया पालयति स्वसृष्टम् ॥ त्वमत्सि संहारपरे च काले न तेऽत्र चित्रं मम रक्षणं वै ॥ १४ ॥ करोमि किं ते वद देवि कार्यं क्व वा व्रजामीत्यनुमोदयाशु ॥ कार्ये विमूढोऽस्मि तवाज्ञयाऽहं गच्छामि तिष्ठे विहरामि मातः ॥ १५ ॥

नष्ट कर डालें ॥९॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार राजा सुबाहुके प्रार्थना करनेपर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गाने अपने समक्ष खड़े राजा सुबाहुकी सराहना करके कहा ॥१०॥ दुर्गाजी बोलीं—हे राजन् ! जबतक यह पृथिवी रहेगी, तबतक सब लोगोंकी रक्षा करनेके लिए मैं इस मुक्तिधाम काशीमें निवास करूँगी ॥ ११ ॥ इसके बाद सुदर्शनने बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ जाकर परम भक्तिसे उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ सुदर्शनने कहा—अहो ! मैं आपकी कृपाका वर्णन कहाँतक करूँ ! आपने अपने एक अभक्तकी भी रक्षा कर ली । अपने भक्तोंपर तो सभी अनुकम्पा करते हैं, किन्तु भक्तिहीन प्राणियोंकी भी रक्षा करनेका व्रत आपने ही ले रक्खा है ॥ १३ ॥ मैंने ऐसा सुना है कि आप ही विश्वके प्रपञ्चोंकी सृष्टि करती हैं, उनकी रक्षा करती हैं और अन्तमें संहार करके उदारस्थ कर लेती हैं । ऐसी स्थितिमें जो आपने मेरी रक्षा की, वह कोई विस्मयकी बात नहीं है ॥ १४ ॥ हे देवि !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अब यह बताइए कि मैं आपका कौनसा कार्य करूँ और कहाँ जाऊँ ? मुझे शीघ्र अनुमति दीजिए। मैं इस समय किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा हूँ। हे माता ! मेरा जाना, ठहरना और विहार करना आपकी आज्ञापर निर्भर करता है ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले कि ऐसा कहते हुए सुदर्शनसे दयापूर्वक भगवतीने कहा–हे महाभाग ! अब तुम अयोध्या जाकर अपना कुलोचित राज्य सम्हालो ॥१६॥ हे नपसत्तम ! तुम प्रयत्नके साथ सदा मेरा स्मरण और पूजन करते रहना। मैं तुम्हारे राज्यका सर्वदा कल्याण करती रहूँगी ॥१७॥ अष्टमी, चतुर्दशी और विशेष करके नवमी तिथिको बलिदानकी विधिसे मेरी पूजा करनी चाहिए ॥ १८ ॥ हे अनघ ! तुम अपने नगरमें मेरी प्रतिमा स्थापित करके यत्नके साथ भक्तिपूर्वक तीनों समय मेरा पूजन करते रहना ॥ १९ ॥ शरत्कालमें सर्वदा नवरात्रविधानके अनुसार पूर्ण भक्तिपूर्वक मेरी महापूजा करना ॥ २० ॥ हे महाराज ! चैत्र, आश्विन, आषाढ़ तथा माघ मासमें और विशेष करके नवरात्रमें महान् उत्सव मनाते हुए मेरी पूजा होनी चाहिए ॥ २१ ॥ हे नृपशार्दूल ! विद्वानोंका कथन है कि कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तथा अष्टमीको भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करे ॥ २२ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तं तथा भाषमाणं तु देवी प्राह दयान्विता ॥ गच्छायोध्यां महाभाग कुरु राज्यं कुलोचितम् ॥१६॥ स्मरणीया सदाऽहं ते पूजनीया प्रयत्नतः ॥ शं विधास्याम्यहं नित्यं राज्यं ते नृपसत्तम ॥ १७॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां च विशेषतः ॥ मम पूजा प्रकर्तव्या बलिदानविधानतः ॥१८॥ अर्चा मदीया नगरे स्थापनीया त्वयाऽनघ॥ पूजनीया प्रयत्नेन त्रिकालं भक्तिपूर्वकम् ॥१९॥ शरत्काले महापूजा कर्तव्या मम सर्वदा ॥ नवरात्रविधानेन भक्तिभावयुतेन च ॥२०॥ चैत्रेऽश्विने तथाऽऽषाढे माघे कार्यो महोत्सवः ॥ नवरात्रे महाराज पूजा कार्या विशेषतः ॥२१॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां मम भक्तिसमन्वितैः ॥ कर्तव्या नृपशार्दूल तथाऽष्टम्यां सदा बुधैः ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वांतर्हिता देवी दुर्गतिनाशिनी ॥ नता सुदर्शनेनाथ स्तुता च बहुविस्तरम् ॥२३॥ अन्तर्हितां तु तां दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते ॥ प्रणेमुस्तं समागम्य यथा शक्रं सुरास्तथा ॥२४॥ सुबाहुरपि तं नत्वा स्थितश्चाग्रे मुदान्वितः ॥ ऊचुः सर्वे महीपाला अयोध्याधिपतिं तदा ॥२५॥ त्वमस्माकं प्रभुः शास्ता सेवकास्ते वयं सदा ॥ कुरु राज्यमयोध्यायां पालयास्मा न्नृपोत्तम ॥ २६ ॥ त्वत्प्रसादान्महाराज दृष्टा विश्वेश्वरी शिवा ॥ आदिशक्तिर्भवानी सा चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ २७ ॥ धन्यस्त्वं कृतकृत्योऽसि बहुपुण्यो धरातले ॥ यस्माच्च त्वत्कृते देवी प्रादुर्भूता सनातनी ॥२८॥ न जानीमो वयं सर्वे प्रभावं नृपसत्तम ॥ चंडिकायास्तमोयुक्ता मायया मोहिताः

व्यासजी बोले—राजा सुदर्शनके इस प्रकार स्तुति तथा प्रणाम करनेके बाद ऐसा कहकर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं ॥ २३ ॥ भगवतीको अन्तर्धान होते देखकर वहाँ उपस्थित सभी राजाओंने सुदर्शनको उसी प्रकार जाकर प्रणाम किया, जैसे देवता इन्द्रको प्रणाम करते हैं ॥ २४ ॥ महाराज सुबाहु भी उन्हें प्रणाम करके बड़े हर्षपूर्वक उनके समक्ष खड़े हो गये। तदनन्तर उन सभी राजाओंने अयोध्यापति सुदर्शनसे कहा–॥ २५ ॥ हे राजन् ! आजसे आप हमारे प्रभु और शासक हुए। अब अयोध्या चलकर राज्य करते हुए आप हमारी रक्षा करिए ॥ २६ ॥ हे महाराज ! आपकी कृपासे हमने अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारों पदार्थ देनेवाली विश्वेश्वरी, शिवा और आदिशक्ति भवानीका दर्शन पा लिया ॥ २७ ॥ आप इस धरतीपर धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और बड़े पुण्यात्मा हैं। क्योंकि आपके लिए साक्षात् सनातनी देवी प्रकट हुई हैं ॥ २८ ॥ हे नृपसत्तम ! हम लोग तमोगुणी हैं और सदा मायासे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मोहित रहते हैं। इसी कारण हम भगवती चण्डिकाका प्रभाव नहीं जानते॥२९॥ हम सदा धन, स्त्री और पुत्रोंकी ही चिन्तामें व्यग्र रहकर काम-क्रोधरूपी महामत्स्योंसे भरे घोर संसारमहासागरमें डूबे-उतराते रहते हैं ॥३०॥ हे महाभाग! हे महामते! आप सर्वज्ञ हैं। अतएव हम आपसे यह पूछ रहे हैं कि ये शक्ति कौन हैं? कहाँसे उत्पन्न हुई हैं? और इनका कैसा प्रभाव है? सो बताइए ॥३१॥ साधु पुरुष बड़े दयालु होते हैं। अतएव आप हमारे लिए इस संसारकी नौका बन जाइए। हे काकुत्स्थ! अब आप हमें भगवतीका उत्तम माहात्म्य सुनाइए ॥३२॥ उनका जो प्रभाव हो, जो स्वरूप हो, जहाँसे वे उत्पन्न हुई हों, यह सब इतिहास हम आपसे सुनना चाहते हैं ॥३३॥ व्यासजीने कहा कि उन राजाओंके ऐसे प्रश्न सुनकर ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शनने मन ही मन भगवतीका ध्यान किया। फिर बड़े हर्षपूर्वक बोले ॥३४॥ सुदर्शनने कहा—हे राजाओं! उन जगदम्बाके उत्तम चरित्रको मैं भला क्या कहूँगा? क्योंकि शिवजी समेत ब्रह्मादिक देवता भी उनके चरित्रको भली-भाँति नहीं जानते ॥ ३५ ॥ हे महिपालगण! सबसे श्रेष्ठ सात्त्विकी शक्तिका नाम महालक्ष्मी है। वे ही आद्याशक्ति और सर्वश्रेष्ठ हैं। वे समस्त

सदा ॥ २९ ॥ धनदारसुतानां च चिंतनेऽभिरताः सदा ॥ मग्ना महार्णवे घोरे कामक्रोधझषाकुले ॥ ३० ॥ पृच्छामस्त्वां महाभाग सर्वज्ञोऽसि महामते ॥ केयं शक्तिः कुतो जाता किंप्रभावा वदस्व तत् ॥३१॥ भव त्वं नौश्च संसारे साधवोऽतिदयापराः ॥ तस्मान्नो वद काकुत्स्थ देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३२ ॥ यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वं ब्रूहि नृवरोत्तम ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा तैस्तु ध्रुवसंधिसुतो नृपः ॥ विचिंत्य मनसा देवीं तानुवाच मुदान्वितः ॥३४॥ सुदर्शन उवाच॥ किं ब्रवीमि महीपालास्तस्याश्चरितमुत्तमम् ॥ ब्रह्मादयो न जानंति सेशाः सुरगणास्तथा ॥ ३५ ॥ सर्वस्याद्या महालक्ष्मीर्वरेण्या शक्तिरुत्तमा ॥ सात्त्विकीयं महीपाला जगत्पालनतत्परा ॥३६॥ सृजते या रजोरूपा सत्त्वरूपा च पालने ॥ संहारे च तमोरूपा त्रिगुणा सा सदा मता ॥ ३७ ॥ निर्गुणा परमा शक्तिः सर्वकामफलप्रदा ॥ सर्वेषां कारणं सा हि ब्रह्मादीनां नृपोत्तमाः ॥ ३८ ॥ निर्गुणा सर्वथा ज्ञातुमशक्या योगिभिर्नृपाः ॥ सगुणा सुखसेव्या सा चिंतनीया सदा बुधैः ॥ ३९ ॥ ॥ राजान ऊचुः ॥ बाल एव वनं प्राप्तस्त्वं तु नूनं भयातुरः ॥ कथं ज्ञाता त्वया देवी परमा शक्तिरुत्तमा ॥ ४० ॥ उपासिता कथं चैव पूजिता च कथं नृप ॥ या प्रसन्ना तु साहाय्यं चकार त्वरयान्विता ॥ ४१ ॥ सुदर्शन उवाच ॥ बालभावान्मया प्राप्तं बीजं तस्याः सुसंमतम् ॥ स्मरामि

विश्वका पालन करती हैं ॥३६॥ वे अपने रजोगुणी स्वरूपसे विश्वकी सृष्टि करतीं, सतोगुणी स्वरूपसे पालन करतीं और तमोगुणी स्वरूपसे इसका संहार करती हैं। इसी कारण वे त्रिगुणात्मिका कहलाती हैं ॥३७॥ किन्तु परम शक्तिस्वरूपा निर्गुणा भगवती सबकी सब कामनायें पूर्ण करती हैं। हे श्रेष्ठ राजाओं! वे ही ब्रह्मादिक देवताओंकी कारणस्वरूपा हैं ॥३८॥ हे राजाओं! निर्गुणा भगवती योगियोंके लिए भी अज्ञेय हैं, किन्तु सगुणा भगवती सरलतासे पूजी जा सकती हैं। अतएव विद्वानोंको चाहिए कि वे उन्हींकी उपासना करें ॥३९॥ वे राजे कहने लगे कि बाल्यावस्थामें ही आप वनवासी हो गये थे। तब आपको उन उत्तम परमा शक्तिका ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ? ॥४०॥ आपने उनकी उपासना और पूजा कैसे की, जिससे प्रसन्न होकर इतनी जल्दी उन्होंने आपकी सहायता की ॥४१॥ सुदर्शनने कहा—हे राजाओं! बाल्यकालमें ही मुझे उनका सर्वजनानुमोदित बीजमंत्र प्राप्त हो गया था। उसी कामराज नामके बीजमंत्रका मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सदा स्मरण और जप करता रहता हूँ ॥ ४२ ॥ आगे चलकर जब ऋषियोंने बताया, तब मुझे उन शिवा अम्बिकाके स्वरूपका ज्ञान हुआ। तबसे मैं परम भक्तिके साथ दिन-रात उस परा शक्तिका ध्यान किया करता हूँ ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोले—सुदर्शनका वचन सुनकर उन राजाओंके हृदयमें भी भक्ति जाग गयी और देवीको ही परमा शक्ति मानकर वे अपने-अपने घर चले गये ॥ ४४ ॥ सुदर्शनसे अनुमति लेकर महाराज सुबाहु काशी चले गये और धर्मात्मा सुदर्शन वहाँसे अयोध्याकी ओर चल पड़े ॥ ४५ ॥ अयोध्याके मंत्रियोंको जब यह ज्ञात हुआ कि शत्रुजित् युद्धमें मारा गया और सुदर्शनकी जीत हुई, तब वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४६ ॥ अवधनिवासियोंको जब राजा सुदर्शनके आगमनका समाचार मिला तो वे विविध प्रकारके उपहार ले-लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥४७॥ सब राजकर्मचारीगण भी नाना प्रकारकी भेटें लेकर आये। महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शनको राजाके रूपमें देखकर अयोध्याकी समस्त प्रजा

प्रजपन्नित्यं कामबीजाभिधं नृपाः ॥४२॥ ऋषिभिः कथ्यमाना सा मया ज्ञाताऽम्बिका शिवा ॥ स्मरामि तां दिवारात्रं भक्त्या परमया परम् ॥ ४३ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य राजानो भक्तितत्पराः ॥ तां मत्वा परमां शक्तिं निर्ययुः स्वगृहान्प्रति ॥ ४४ ॥ सुबाहुरगमत्काश्यां तमापृच्छ्य सुदर्शनम् ॥ सुदर्शनोऽपि धर्मात्मा निर्जगाम सुकोसलान् ॥ ४५ ॥ मंत्रिणस्तु नृपं श्रुत्वा हतं शत्रुजितं मृधे ॥ जितं सुदर्शनं चैव बभूवुः प्रेमसंयुताः ॥ ४६ ॥ आगच्छंतं नृपं श्रुत्वा तं साकेतनिवासिनः ॥ उपायनान्युपादाय प्रययुः सम्मुखे जनाः ॥ ४७ ॥ तथा प्रकृतयः सर्वे नानोपायनपाणयः ॥ ध्रुवसन्धिसुतं मत्वा मुदिताः प्रययुः प्रजाः ॥ ४८ ॥ स्त्रियोपसंयुतः सोऽथ प्राप्यायोध्यां सुदर्शनः ॥ सम्मान्य सर्वलोकांश्च ययौ राजा निवेशनम् ॥ ४९ ॥ बंदिभिः स्तूयमानस्तु वंद्यमानश्च मंत्रिभिः ॥ कन्याभिः कीर्यमाणश्च लाजैः सुमनसैस्तथा ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ गत्वाऽयोध्यां नृपश्रेष्ठो गृहं राज्ञः सुहृद्वृतः ॥ शत्रुजिन्मातरं प्राह प्रणम्य शोकसंकुलाम् ॥ १ ॥ मातर्न ते मया पुत्रः संग्रामे निहतः किल ॥ न पिता ते युधाजिच्च शपे ते चरणौ तथा ॥ २ ॥ दुर्गया तौ हतौ सख्ये नापराधो ममात्र वै ॥ अवश्यम्भाविभावेषु प्रतीकारो न विद्यते ॥ ३ ॥ न शोकोऽत्र त्वया कार्यो मृतपुत्रस्य मानिनि ॥ स्वकर्मवशगो जीवो भुंक्ते भोगान्सुखासुखान् ॥ ४ ॥ दासोऽस्मि तव भो

आनन्दविभोर हो गयी ॥ ४८ ॥ अपनी स्त्रीके साथ अयोध्यामें पहुँचकर सुदर्शनने सब लोगोंका सम्मान किया। उसके बाद राजभवनमें पधारे ॥४९॥ उस समय बन्दीजन स्तुति करने लगे। मंत्रियोंने प्रणाम किया। नागरिकोंकी कन्याओंने उनके ऊपर धानका लावा तथा पुष्पोंकी वर्षा की ॥५०॥ इति श्रीदेवीभागवते तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

(अयोध्या और काशीमें दुर्गामन्दिरका निर्माण) व्यासजी बोले—हे महाराज! अयोध्यामें पहुँचकर नृपश्रेष्ठ सुदर्शन अपने मित्रोंके साथ राजभवनमें गये। वहाँपर शत्रुजित्की परम शोकाकुल माताके पास जाकर बोले—हे माता! मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि युद्धमें आपके पुत्र तथा आपके पिताको मैंने नहीं मारा है ॥ १ ॥ २ ॥ स्वयं भगवती दुर्गाने रणभूमिमें उनका वध किया है। इसमें मेरा तनिक भी अपराध नहीं है। होनहारको टालनेका कोई उपाय नहीं है ॥३॥ हे मानिनि! अपने मरे हुए पुत्रके बारेमें आप शोक न करें। क्योंकि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसारके सभी प्राणी अपने कर्मके वशीभूत होकर सुख-दुःख भोगते हैं ॥४॥ हे माताजी ! मैं आपका दास हूँ । जैसे मनोरमा मेरी माँ हैं, वैसे ही आप भी मेरी माता हैं । हे धर्मज्ञे ! आपमें और उनमें कुछ भी भेद नहीं है ॥५॥ अपने किये हुए शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है । अतएव आप सुख-दुःखके विषयमें किसी प्रकारका शोक न करें ॥६॥ जो लोग दुःख आनेपर बहुत घबड़ा जाते हैं और सुख प्राप्त होनेपर और अधिक सुख चाहने लगते हैं, उन्हें चाहिए कि वे अपने आपको हर्ष-शोकरूपी शत्रुओंके हाथों न सौंप दें ॥ ७ ॥ संसारका सारा पसारा दैवके अधीन है । अपने वशकी कोई बात नहीं है । अतएव बुद्धिमान् मनुष्य व्यर्थ शोक करके अपनी आत्माको न सुखायें ॥ ८ ॥ जैसे काठकी बनी कठपुतली बाजीगरके संकेतपर नाचती है, उसी प्रकार जीव भी अपने कर्मके अनुसार आचरण करता है ॥ ९ ॥ हे माताजी ! उस समय जंगलमें जा करके भी मैं दुखी नहीं हुआ । क्योंकि मैं जानता था कि अपने कर्मोंका फल भोगना ही पड़ेगा और यही अनुभव भी हुआ ॥ १० ॥ इसी अयोध्यामें मेरे नाना मारे गये और माता विधवा हो गयी । तब भयभीत भावसे वह मुझे लेकर वनमें

मातर्यथा मम मनोरमा ॥ तथा त्वमपि धर्मज्ञे न भेदोऽस्ति मनागपि ॥ ५ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ तस्मान्न शोचितव्यं ते
सुखे दुःखे कदाचन ॥ ६ ॥ दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम् ॥ आत्मानं शोकहर्षाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् ॥ ७ ॥ दैवाधीनमिदं
सर्वं नात्माधीनं कदाचन ॥ न शोकेन तदात्मानं शोषयेन्मतिमान्नरः ॥ ८ ॥ यथा दारुमयी योषा नटादीनां प्रचेष्टते ॥ तथा स्वकर्मवशगो देही
सर्वत्र वर्तते ॥९॥ अहं वनगतो मातर्नाभवं दुःखमानसः ॥ चिंतयन्स्वकृतं कर्म भोक्तव्यमिति वेद्मि च ॥ १० ॥ मृतो मातामहोऽत्रैव विधुरा जननी
मम ॥ भयातुरा गृहीत्वा मां निर्ययौ गहनं वनम् ॥ ११ ॥ लुंठिता तस्करैर्मार्गे वस्त्रहीना तथा कृता ॥ पाथेयं च हृतं सर्वं बालपुत्रा निराश्रया
॥ १२ ॥ माता गृहीत्वा मां प्राप्ता भारद्वाजाश्रमं प्रति ॥ विदल्लोऽयं समायातस्तथा धात्रेयिकाऽबला ॥ १३ ॥ मुनिभिर्मुनिपत्नीभिर्दयायुक्तैः सम-
न्ततः ॥ पोषितः फलनीवारैर्वयं तत्र स्थितास्त्रयः ॥ १४ ॥ दुःखं न मे तदा ह्यासीत्सुखं नाद्य धनागमे ॥ न वैरं न च मात्सर्यं मम चित्ते तु
कर्हिचित् ॥ १५ ॥ नीवारभक्षणं श्रेष्ठं राजभोगात्परंतपे ॥ तदाशी नरकं याति न नीवाराशनः क्वचित् ॥ १६ ॥ धर्मस्याचरणं कार्यं पुरुषेण विजा-
नता ॥ संजित्येन्द्रियवर्गं वै यथा न नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥ मानुष्यं दुर्लभं मातः खंडेऽस्मिन्भारते शुभे ॥ आहारादिसुखं नूनं भवेत्सर्वासु योनिषु

चली गयी ॥११॥ रास्तेमें चोरोंने सब कुछ छीन लिया । मेरी माताके वस्त्र उतार लिये और कुछ पाथेय अर्थात् राहखर्च तक नहीं छोड़ा । मुझ बालककी माता निराश्रय होकर मुझे लिये हुए महर्षि भारद्वाजके आश्रमपर पहुँची । केवल विदल्ल मंत्री तथा धायने हमारा साथ दिया ॥१२॥१३॥ आश्रमके मुनियों और मुनिपत्नियोंने दया करके नीवार (तिन्नी) से हमारा पालन किया और हम तीनों वहीं रहने लगे ॥१४॥ उस समय निर्धन होनेके कारण न मुझे दुःख था और न अब प्रचुर धन पाकर सुख ही है । कभी भी मेरे मनमें वैर तथा डाहकी भावना नहीं जागी ॥१५॥ हे परन्तपे ! राजभोगकी अपेक्षा नीवारभक्षण श्रेष्ठ है । क्योंकि राजभोग भोगनेवालेको नरकगामी होना पड़ता है । किन्तु नीवारभोजीकी यह दुर्गति नहीं होती ॥ १६ ॥ विज्ञ पुरुषका यह कर्तव्य है कि वह अपनी इन्द्रियोंको जीतकर धर्मका आचरण करे । जिससे उसे नरकमें न जाना पड़े ॥ १७ ॥ हे माताजी ! इस पवित्र भरतखण्डमें मानव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देह पाना दुर्लभ है। आहारादिका सुख तो सभी योनियोंमें मिलता है ॥ १८ ॥ दुर्लभ मनुष्यतन पाकर धर्मसाधन करना चाहिए। जिससे उसे स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त हो सके। क्योंकि अन्य योनियोंमें यह सुविधा नहीं मिलती ॥ १९ ॥ व्यासजी बोले कि महाराज सुदर्शनके वचन सुनकर लीलावती बहुत लज्जित हुई और पुत्रशोक त्याग तथा आँखोंमें आँसू भरके बोली–॥ २० ॥ हे पुत्र ! पिता युधाजित्ने आपके नानाका वध किया और आपके राज्यका हरण करके मुझे भी अपराधिनी बना दिया ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! उस समय मैं अपने पिता तथा पुत्रको रोकनेमें असमर्थ थी। उन्होंने जो कुछ किया, उसका उत्तरदायित्व उन्हींपर था। मेरा कुछ भी अपराध नहीं था ॥ २२ ॥ मेरे पिताजी और पुत्र शत्रुजित् अपनी करनीसे ही मारे गये हैं। तुम्हारा कोई कसूर नही है। अतएव मैं अपने पुत्रके लिए कुछ भी शोक नहीं करती। हाँ, उनकी करतूतोंको सोचकर सन्ताप अवश्य होता है ॥ २३ ॥ हे कल्याण ! अब तुम्हीं मेरे पुत्र हो और तुम्हारी माता मनोरमा मेरी बहिन है। हे पुत्र ! तुम्हारे प्रति मेरे मनमें तनिक भी शोक या क्रोध नहीं है ॥२४॥ हे महाभाग ! अब तुम राज्य करो। हे सुव्रत ! प्रजा-

॥ १८ ॥ प्राप्य तं मानुषं देहं कर्तव्यं धर्मसाधनम् ॥ स्वर्गमोक्षप्रदं नृणां दुर्लभं चान्ययोनिषु ॥ १९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा तेन लीलावत्यतिलज्जिता ॥ पुत्रशोकं परित्यज्य तमाहाश्रुविलोचना ॥२०॥ सापराधाऽस्मि पुत्राहं कृता पित्रा युधाजिता ॥ हत्वा मातामहं तेऽत्र हृतं राज्यं तु येन वै ॥ २१ ॥ न तं वारयितुं शक्ता तदाऽहं न सुतं मम ॥ यत्कृतं कर्म तेनैव नापराधोऽस्ति मे सुत ॥ २२ ॥ तौ मृतौ स्वकृतेनैव कारणं त्वं तयोर्न च ॥ नाहं शोचामि तं पुत्रं सदा शोचामि तत्कृतम् ॥ २३ ॥ पुत्र त्वमसि कल्याण भगिनी मे मनोरमा ॥ न क्रोधो न च शोको मे त्वयि पुत्र मनागपि ॥ २४ ॥ कुरु राज्यं महाभाग प्रजाः पालय सुव्रत ॥ भगवत्याः प्रसादेन प्राप्तमेतदकंटकम् ॥२५॥ तदाकर्ण्य वचो मातुर्नत्वा तां नृपनन्दनः ॥ जगाम भवनं रम्यं यत्र पूर्वं मनोरमा ॥२६॥ न्यवसत्तत्र गत्वा तु सर्वानाहूय मंत्रिणः ॥ दैवज्ञानथ पप्रच्छ मुहूर्तं दिवसं शुभम् ॥ २७ ॥ सिंहासनं तथा हैमं कारयित्वा मनोहरम् ॥ सिंहासने स्थितां देवीं पूजयिष्ये सदाऽप्यहम् ॥ २८ ॥ स्थापयित्वाऽऽसने देवीं धर्मार्थकाममोक्षदाम् ॥ राज्यं पश्चात्करिष्यामि यथा रामादिभिः कृतम् ॥२९॥ पूजनीया सदा देवी सर्वैर्नागरिकैर्जनैः ॥ माननीया शिवाशक्तिः सवकामार्थसिद्धिदा ॥३०॥ इत्युक्ता मंत्रिणस्ते तं चक्रुर्वै राजशासनम् ॥ प्रासादं कारयामासुः शिल्पिभिः सुमनोरमम् ॥ ३१ ॥ प्रतिमां कारयित्वाऽथ मुहूर्तेऽथ शुभे दिने ॥

का पालन करो। भगवतीकी कृपासे ही तुम्हें अकण्टक राज्य प्राप्त हुआ है ॥२५॥ माता लीलावतीके वचन सुनकर सुदर्शनने प्रणाम किया और उस स्थानपर गये, जहाँ पहले उनकी माता मनोरमा रहा करती थी। वहाँ उन्होंने सब मंत्रियों तथा ज्योतिषियोंको बुलाकर शुभ दिन और शुभ मुहूर्त पूछा ॥२६॥२७॥ मुहूर्त उन्होंने यह सोचकर पूछा कि सोनेका सुंदर सिंहासन बनवाकर और उसपर देवीकी स्थापना करके मैं नित्य उनका पूजन करूँगा॥२८॥ उनका यह दृढ़ निश्चय था कि धर्म-अर्थ-काम-मोक्षदायिनी भगवतीकी स्थापना करनेके बाद मैं उसी प्रकार राज्य-कार्य संचालित करूँगा, जैसे मेरे पूर्वज राम आदि महाराजे कर गये हैं ॥२९॥ समस्त अवधनिवासियोंका यह कर्तव्य है कि वे सदा भगवतीकी पूजा करें और सब कामनाओं, अर्थों एवं सिद्धियोंको देनेवाली शिवा शक्तिका सम्मान करें ॥३०॥ राजा सुदर्शनके ऐसा कहनेपर मंत्रियोंने उनका आदेश मानकर कारीगरोंके द्वारा एक बहुत सुन्दर प्रासाद तैयार कराया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजाने प्रतिमा बनवायी। शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें वैदिक विद्वानोंको बुलाकर उस देवीप्रतिमाकी स्थापना की ॥३२॥ उसके उपलक्ष्यमें विधिवत् हवन तथा देवपूजन करनेके बाद बुद्धिमान् राजाने उस प्रासादमें देवीकी प्रतिमा स्थापित की ॥३३॥ हे राजन्! उस समय ब्राह्मणोंके वेदघोष, विविध गायनों तथा बाजोंकी ध्वनिके साथ बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया ॥ ३४ ॥ व्यासजो बोले–इस प्रकार वेदवादी विद्वानों द्वारा देवीकी स्थापना करके राजा सुदर्शनने बड़ी विधिसे नाना प्रकारकी पूजायें कीं ॥ ३५ ॥ इस तरह अपना पैतृक राज्य प्राप्त करके उन्होंने देवीकी पूजा की। तबसे समस्त कोसल देशमें अम्बिका देवी विख्यात हो गयीं ॥ ३६ ॥ राज्य प्राप्त करनेके बाद राजा सुदर्शनने सभी धर्मात्मा सामन्त राजाओंको वशमें कर लिया। उन्होंने केवल सद्धर्मके प्रचारसे उन सबपर विजय पा ली ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार महाराज दिलीप, रघु तथा भगवान रामके राज्यमें प्रजा सुखी थी और उसकी मर्यादा बनी हुई थी। उसी

द्विजानाहूय वेदज्ञान्स्थापयामास भूपतिः ॥३२॥ हवनं विधिवत्कृत्वा पूजयित्वाऽथ देवताम् ॥ प्रासादे मतिमान् देव्याः स्थापयामास भूमिपः ॥ ३३ ॥ उत्सवस्तत्र संवृत्तो वादित्राणां च निःस्वनैः ॥ ब्राह्मणानां वेदघोषैर्गानैस्तु विविधैर्नृप ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ प्रतिष्ठाप्य शिवां देवीं विधिवद्वेद-वादिभिः ॥ पूजां नानाविधां राजा चकारातिविधानतः ॥ ३५ ॥ कृत्वा पूजाविधिं राजा राज्यं प्राप्य स्वपैतृकम् ॥ विख्याता चाम्बिका देवी कोसलेषु बभूव ह ॥ ३६ ॥ राज्यं प्राप्य नृपः सर्वं सामंतकनृपानथ ॥ वशे चक्रेऽतिधर्मिष्ठान्सद्धर्मविजयी नृपः ॥ ३७ ॥ यथा रामः स्वराज्येऽभूद्दिलीपस्य रघुर्यथा ॥ प्रजानां वै सुखं तद्वन्मर्यादाऽपि तथाऽभवत् ॥ ३८ ॥ धर्मो वर्णाश्रमाणां च चतुष्पादभवत्तथा ॥ नाधर्मे रमते चित्तं केषामपि महीतले ॥ ३९ ॥ ग्रामे ग्रामे च प्रासादांश्चक्रुः सर्वे जनाधिपाः ॥ देव्याः पूजा तदा प्रीत्या कोसलेषु प्रवर्तिता ॥ ४० ॥ सुबाहुरपि काश्यां तु दुर्गायाः प्रतिमां शुभाम् ॥ कारयित्वा च प्रासादं स्थापयामास भक्तितः ॥ ४१ ॥ तत्र तस्या जनाः सर्वे प्रेमभक्तिपरायणाः ॥ पूजां चक्रुर्विधानेन यथा विश्वेश्वरस्य ह ॥ ४२ ॥ विख्याता सा बभूवाथ दुर्गा देवी धरातले ॥ देशे देशे महाराज तस्या भक्तिर्व्यवर्धत ॥ ४३ ॥ सर्वत्र भारते लोके सर्ववर्णेषु सर्वथा ॥ भजनीया भवानी तु सर्वेषामभवत्तदा ॥ ४४ ॥ शक्तिभक्तिरताः सर्वे मानिनश्चाभवन्नृप ॥ आगमोक्तैरथ स्तोत्रैर्जपध्यानपरायणाः ॥ ४५ ॥ नवरात्रेषु सर्वेषु चक्रुः सर्वे विधानतः ॥ अर्चनं हवनं यागं देव्या भक्तिपरा जनाः ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते तृतीयस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

प्रकार राजा सुदर्शनके राज्यमें भी प्रजा सुखी और मर्यादासम्पन्न थी ॥३८॥ उनके राज्यमें वर्णाश्रमधर्म चारों चरणोंसे समृद्ध हुआ। उस समय धरतीतलपर किसीका मन अधर्ममें नहीं लिप्त होता था ॥ ३९ ॥ कुछ दिनों बाद गाँव-गाँवमें वहाँके मुखियोंने देवीका मन्दिर बनवा लिया। तबसे समस्त कोसल देशमें बड़े प्रेमपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी ॥४०॥ उधर काशीनरेश सुबाहुने भी काशीमें प्रासाद निर्माण कराके बड़ी भक्तिके साथ दुर्गा देवीकी दिव्य प्रतिमा स्थापित की ॥ ४१ ॥ उस समय सभी काशीवासियोंने बड़े प्रेम और भक्तिके साथ विधिवत् दुर्गादेवीकी वैसी ही पूजा की। जैसी कि विश्वनाथजीकी पूजा करते आ रहे थे ॥ ४२ ॥ तबसे इस धरातलपर दुर्गाजी विख्यात हो गयीं। हे महाराज जनमेजय! उस समयसे देश-देशमें उनकी भक्ति बढ़ने लगी ॥ ४३ ॥ अतएव भारतवर्षके सभी वर्णोंके लोगोंमें सर्वथा भवानी ही पूजनीया हो गयीं ॥ ४४ ॥ हे नृप! उस समयके सब लोग भगवती शक्तिकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भक्तिमें निरत रहने लगे और वैदिक मन्त्रों तथा पौराणिक स्तोत्रोंका पाठ करके वे भगवतीके नामका जप तथा ध्यान करने लगे ॥४५॥ नवरात्रके दिनोंमें सभी देवीभक्त बड़ी विधिसे भगवती-का पूजन, हवन तथा यज्ञ करने लग गये ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतभाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

(शरत्कालीन नवरात्रव्रतका विधान) राजा जनमेजयने कहा—हे द्विजसत्तम व्यासजी! नवरात्र और विशेष करके शारदीय नवरात्रमें मनुष्यको क्या करना चाहिए? उसका विधान आप मुझे भली भाँति बताइए ॥ १ ॥ हे द्विजसत्तम! उस पूजनका क्या फल है और क्या विधि है? कृपया विस्तारके साथ मुझे सब बातें बताइए ॥२॥ व्यासजी बोले-हे राजन्! अब मैं नवरात्रव्रतका विधान बता रहा हूँ, सुनिए। शरत्कालके नवरात्रमें विशेष करके यह व्रत करना चाहिए ॥ ३ ॥ उसी प्रकार प्रेमपूर्वक वसन्त ऋतुके नवरात्रमें भी इस व्रतको करे। ये दोनों ऋतुयें सब प्राणियोंके लिए यमदंष्ट्रा कही गयी हैं ॥ ४ ॥ शरत् तथा वसन्त ये दोनों ऋतुयें संसारमें बड़ी कठिनाई उपस्थित कर देती हैं। अतएव आत्मकल्याणके इच्छुक जनोंको बड़े

॥ जनमेजय उवाच ॥ नवरात्रे तु संप्राप्ते किं कर्तव्यं द्विजोत्तम ॥ विधानं विधिवद् ब्रूहि शरत्काले विशेषतः ॥ १ ॥ किं फलं खलु कस्तत्र विधिः कार्यो महामते ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि कृपया द्विजसत्तम ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि नवरात्रव्रतं शुभम् ॥ शरत्काले विशेषेण कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥ वसन्ते च प्रकर्तव्यं तथैव प्रेमपूर्वकम् ॥ द्वावृतू यमदंष्ट्राख्यौ नूनं सर्वजनेषु वै ॥ ४ ॥ शरद्वसन्तनामानौ दुर्गमौ प्राणि-नामिह ॥ तस्माद्यत्नादिदं कार्यं सर्वत्र शुभमिच्छता ॥ ५ ॥ द्वावेव सुमहाघोरावृतू रोगकरौ नृणाम् ॥ वसन्तशरदावेव सर्वनाशकरावुभौ ॥ ६ ॥ तस्मात्तत्र प्रकर्तव्यं चंडिकापूजनं बुधैः ॥ चैत्राश्विने शुभे मासे भक्तिपूर्वं नराधिप ॥ ७ ॥ अमावास्यां च संप्राप्य संभारं कल्पयेच्छुभम् ॥ हविष्यं चाशनं कार्यमेकभुक्तं तु तद्दिने ॥ ८ ॥ मंडपस्तु प्रकर्तव्यः समे देशे शुभे स्थले ॥ हस्तषोडशमानेन स्तंभध्वजसमन्वितः ॥ ९ ॥ गोमृद्गोमयाभ्यां च लेपनं कारयेत्ततः ॥ तन्मध्ये वेदिका शुभ्रा कर्तव्या च समा स्थिरा ॥ १० ॥ चतुर्हस्ता च हस्तोच्छ्रा पीठार्थं स्थानमुत्तमम् ॥ तोरणानि विचि-त्राणि वितानं च प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥ रात्रौ द्विजानथामंत्र्य देवीतत्त्वविशारदान् ॥ आचारनिरतान्दांतान्वेदवेदांगपारगान् ॥ १२ ॥ प्रतिपद्दिवसे

यत्नके साथ यह नवरात्रव्रत करना चाहिए ॥ ५ ॥ ये दोनों ऋतुयें बड़ी भयानक और जनसमुदायको नष्ट करनेवाली महामारी जैसी बीमारियाँ उत्पन्न करती हैं ॥ ६ ॥ अतएव बुद्धिमान् लोगोंको चैत्र तथा आश्विनमासमें भक्तिपूर्वक चण्डिका देवीका पूजन करना चाहिए ॥७॥ अमावस्याके दिन व्रतकी सब सामग्रियाँ जुटाकर रख ले और केवल एक बार हविष्य खाय ॥८॥ किसी समतल तथा पवित्र स्थानमें सोलह हाथ लम्बा-चौड़ा स्तम्भ तथा ध्वजाओंसे सुसज्जित मण्डप बनाये ॥ ९ ॥ उसको सफेद मिट्टी और गोबरसे लिपवा दे। मण्डपके बीचमें सुन्दर, चौरस और स्थिर वेदी बनाये ॥ १० ॥ वह वेदी चार हाथ लम्बी-चौड़ी और हाथभर ऊँची होनी चाहिए। पीठके लिए उत्तम स्थानका निर्माण करे। विविध रङ्गोंके तोरण तथा बन्दनवार लटकाये और ऊपर चाँदनी टाँग दे ॥११॥ रात्रिके समय देवीका तत्त्व जाननेवाले, सदाचारी, संयमी और वेद-वेदाङ्गके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलावे ॥१२॥ प्रतिपदाके दिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सबेरे नदी, नद, तड़ाग, बावली, कुआँ अथवा घरपर ही विधिवत् स्नान करे ॥ १३ ॥ प्रातःकालके समय नित्यकर्म करके ब्राह्मणोंका वरण करे । उन्हें मधुपर्क तथा अर्घ्य-पाद्य अर्पण करे ॥ १४ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार वस्त्र और अलंकार प्रदान करे । धन रहते हुए इस काममें कृपणता न करे ॥१५॥ क्योंकि सर्वथा सन्तुष्ट ब्राह्मणोंके किये हुए कर्म पूर्ण और सफल होते हैं । देवीभागवत तथा सप्तशतीका पाठ करनेके लिए नौ, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मणको नियुक्त करना चाहिए ॥ १६ ॥ देवीभागवतका पारायण करनेके काममें किसी शान्त ब्राह्मणको लगावे । सर्वप्रथम वैदिक मंत्रोंसे स्वस्त्ययन कराये ॥१७॥ उपर्युक्त वेदीपर सिंहासन रखकर उसपर रेशमी वस्त्र बिछाये । उसके ऊपर चार भुजाओं तथा समस्त आयुधोंयुक्त देवी की प्रतिमा स्थापित करे ॥ १८ ॥ देवीकी प्रतिमा रत्नजटित आभूषणोंयुक्त, मोतियोंके हारसे अलंकृत, दिव्य वस्त्रोंसे सुसज्जित, शुभलक्षणसम्पन्न और सौम्य आकृतिकी होनी चाहिए ॥ १९ ॥

कार्यं प्रातःस्नानं विधानतः ॥ नद्यां नदे तडागे वा वाप्यां कूपे गृहेऽथवा ॥ १३ ॥ प्रातर्नित्यं पुरः कृत्वा द्विजानां वरणं ततः ॥ अर्घ्यपाद्यादिकं सर्वं कर्तव्यं मधुपूर्वकम् ॥ १४ ॥ वस्त्रालङ्करणादीनि देयानि च स्वशक्तितः ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं विभवे सति कर्हिचित् ॥ १५ ॥ विप्रैः सन्तोषितैः कार्यं सम्पूर्णं सर्वथा भवेत् ॥ नवपञ्चत्रयश्चैको देव्याः पाठे द्विजाः स्मृताः ॥१६॥ वरयेद् ब्राह्मणं शांतं पारायणे कृते तदा ॥ स्वस्तिवाचनकं कार्यं वेदमंत्रविधानतः ॥ १७ ॥ वेद्यां सिंहासनं स्थाप्य क्षौमवस्त्रसमन्वितम् ॥ तत्र स्थाप्याऽम्बिका देवी चतुर्हस्तायुधान्विता ॥ १८ ॥ रत्नभूषणसंयुक्ता मुक्ताहारविराजिता ॥ दिव्याम्बरधरा सौम्या सर्वलक्षणसंयुता ॥ १९ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मधरा सिंहे स्थिता शिवा ॥ अष्टादशभुजा वापि प्रतिष्ठाप्या सनातनी ॥ २० ॥ अर्चाभावे तथा यन्त्रं नवार्णमंत्रसंयुतम् ॥ स्थापयेत्पीठपूजार्थं कलशं तत्र पार्श्वतः ॥ २१ ॥ पंचपल्लवसंयुक्तं वेदमन्त्रैः सुसंस्कृतम् ॥ सुतीर्थजलसम्पूर्णं हेमरत्नैः समन्वितम् ॥ २२ ॥ पार्श्वे पूजार्थसंभारान्परिकल्प्य समंततः ॥ गीतवादित्रनिर्घोषान्कारयेन्मंगलाय वै ॥ २३ ॥ तिथौ हस्तान्वितायां च नन्दायां पूजनं वरम् ॥ प्रथमे दिवसे राजन्विधिवत्कामदं नृणाम् ॥ २४ ॥ नियमं प्रथम कृत्वा पश्चात्पूजां समाचरेत् ॥ उपवासेन नक्तेन चैकभक्तेन वा पुनः ॥२५॥ करिष्यामि व्रतं मातर्नवरात्रमनुत्तमम् ॥ साहाय्यं कुरु मे देवि जगदम्ब ममाखिलम् ॥२६॥

अथवा शंख-चक्र-गदा-पद्मधारिणी और सिंहपर सवार चतुर्भुजा देवीकी स्थापना करे अथवा अष्टादश भुजाओंयुक्त सनातनी देवीको प्रतिष्ठित करे ॥ २० ॥ यदि प्रतिमा न स्थापित की जा सके तो उसी वेदीपर नवार्णमंत्रयुक्त दुर्गायंत्रका स्थापन करे । पीठपूजाके लिए वेदीकी दाहिनी ओर कलशकी स्थापना करे ॥ २१ ॥ वह कलश पंचपल्लवयुक्त, वैदिक मंत्रोंसे भलीभाँति संस्कृत, किसी अच्छे तीर्थके जलसे भरा हुआ और सुवर्ण तथा रत्न डाला हुआ होना चाहिए ॥ २२ ॥ वेदीके चारों ओर पूजाकी सब सामग्रियाँ जुटाकर रख ले और मंगलाचारके निमित्त गाने-बजानेका भी प्रबन्ध कर दे ॥२३॥ हे राजन् ! हस्तनक्षत्र युक्त नन्दा (प्रतिपदा) तिथिमें विधिवत् पूजन श्रेष्ठ माना जाता है और इससे सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥२४॥ सबसे पहले संकल्प और उसके बाद पूजन करे । उस दिन बन पड़े तो उपवास रक्खे अथवा केवल एक बार रात्रिमें भोजन करे ॥ २५ ॥ पूजनके पहले प्रार्थना करते हुए कहे कि मैं नवरात्रका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वश्रेष्ठ व्रत करना चाहता हूँ। हे देवि! हे जगदम्बे! इस पवित्र कार्यमें आप सब तरहसे मेरी सहायता करें ॥२६॥ इस व्रतके लिए यथाशक्ति नियम रक्खे। उसके बाद विधिवत् तथा मन्त्रोच्चारणपूर्वक भगवतीका पूजन करे ॥ २७ ॥ चन्दन, अगर, कपूर, सुगन्धित पुष्प, मन्दार, करंज, अशोक, चम्पा, कनैल, मालती, ब्राह्मीके पुष्प, बिल्वपत्र तथा धूप-दीपसे विधिवत् भगवती जगद्धात्रीका पूजन करे ॥२८॥२९॥ उस अवसरपर नाना प्रकारके फलोंसे अर्घ्य प्रदान करे। जैसे—नारियल, नीबू, अनार, केला, नारंगी, कटहल तथा बिल्वफलके साथ भक्तिपूर्वक अन्नदान करे ॥३०॥३१॥ जो लोग मांसाहार करते हों, वे पशुबलि भी दे सकते हैं। भैंसा, बकरा तथा सुअरका बलिप्रदान उत्तम माना जाता है ॥३२॥ हे निष्पाप! देवीके संमुख मरे हुए पशु अविनाशी स्वर्गलोकको चले जाते हैं। भगवतीके निमित्त किये गये बलिदानको पशुहिंसा नहीं कह सकते ॥३३॥ यह सब शास्त्रोंका निर्णय है कि यज्ञके लिए की गयी हिंसा

यथाशक्ति प्रकर्तव्यो नियमो व्रतहेतवे ॥ पश्चात्पूजा प्रकर्तव्या विधिवन्मंत्रपूर्वकम् ॥२७॥ चंदनागुरुकर्पूरैः कुसुमैश्च सुगंधिभिः ॥ मंदारकरजाशोकचंपकैः करवीरकैः ॥२८॥ मालतीब्रह्मिकापुष्पैस्तथा बिल्वदलैः शुभैः ॥ पूजयेज्जगतां धात्रीं धूपैर्दीपैर्विधानतः ॥ २९ ॥ फलैर्नानाविधैरर्घ्यं प्रदातव्यं च तत्र वै ॥ नारिकेलैर्मातुलुंगैर्दाडिमीकदलीफलैः ॥३०॥ नारंगैः पनसैश्चैव तथा पूर्णफलैः शुभैः ॥ अन्नदानं प्रकर्तव्यं भक्तिपूर्वं नराधिप ॥३१॥ मांसाशनं ये कुर्वन्ति तैः कार्यं पशुहिंसनम् ॥ महिषाजवराहाणां बलिदानं विशिष्यते ॥ ३२ ॥ देव्यग्रे निहता यांति पशवः स्वर्गमव्ययम् ॥ न हिंसा पशुजा तत्र निघ्नतां तत्कृतेऽनघ ॥ ३३ ॥ अहिंसा याज्ञिकी प्रोक्ता सर्वशास्त्रविनिर्णये ॥ देवतार्थे निसृष्टानां पशूनां स्वर्गतिर्ध्रुवा ॥ ३४ ॥ होमार्थं चैव कर्तव्यं कुण्डं चैव त्रिकोणकम् ॥ स्थंडिलं वा प्रकर्तव्यं त्रिकोणं मानतः शुभम् ॥३५॥ त्रिकालं पूजनं नित्यं नानाद्रव्यैर्मनोहरैः ॥ गीतवादित्रनृत्यैश्च कर्तव्यश्च महोत्सवः ॥ ३६ ॥ नित्यं भूमौ च शयनं कुमारीणां च पूजनम् ॥ वस्त्रालंकरणैर्दिव्यैर्भोजनैश्च सुधामयैः ॥ ३७ ॥ एकैकां पूजयेन्नित्यमेकवृद्ध्या तथा पुनः ॥ द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि प्रत्येकं नवकं च वा ॥ ३८ ॥ विभवस्यानुसारेण कर्तव्यं पूजनं किल ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं राजञ्छक्तिमखे सदा ॥३९॥ एकवर्षा न कर्तव्या कन्या पूजाविधौ नृप ॥ परमज्ञा तु भोगानां गंधादीनां च बालिका ॥ ४० ॥ कुमारिका तु सा प्रोक्ता द्विवर्षा या भवेदिह ॥ त्रिमूर्तिश्च त्रिवर्षा च कल्याणी चतुरब्दिका ॥ ४१ ॥ रोहिणी पंचवर्षा च षड्वर्षा कालिका स्मृता ॥

भी अहिंसा कहलाती है। देवताओंके लिए छोड़े गये पशुओंको स्थायी रूपसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ३४ ॥ होमके लिए त्रिकोण कुण्ड और हवनकी मात्राके अनुसार बड़ा-सा स्थण्डिल बनवाये ॥ ३५ ॥ विविध प्रकारके सुन्दर उपकरणों द्वारा भगवतीका रोज त्रिकाल (प्रातः-सायं-मध्याह्न) पूजन करे और गायन-वादन तथा नृत्यके द्वारा महोत्सव रचाये ॥ ३६ ॥ नित्य भूमिपर सोये और वस्त्र-अलंकार तथा अमृतके सदृश सुस्वादु भोजन द्वारा कुमारी कन्याओंका पूजन करे ॥ ३७ ॥ नित्य एक ही कुमारीका पूजन करे अथवा रोज एक-एक कुमारीकी संख्या बढ़ाता जाय, या कि नौ कुमारी कन्याओंका पूजन प्रतिदिन करे ॥ ३८ ॥ अपनी जैसी पूँजी हो, उसीके अनुसार भगवतीकी पूजा करे। किन्तु हे राजन्! देवीकी पूजामें कृपणता किसी प्रकारकी न करे ॥ ३९ ॥ हे नृप! एक वर्षकी कन्या कुमारिका कहलाती है। तीन वर्षकी त्रिमूर्ति, चार वर्षकी कन्या कल्याणी, पाँच वर्षकी रोहिणी, छ वर्षकी कालिका, सात वर्षकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चण्डिका, आठ वर्षकी शाम्भवी, नौ वर्षकी दुर्गा और दस वर्षकी कन्या सुभद्रा कहलाती है। दस वर्षके ऊपरकी कन्याओंका पूजन निन्दित माना जाता है ॥ ४०-४३ ॥ ऊपर जितने नाम गिनाये गये हैं, उन्हीं नामोंसे विधिवत् कुमारीका पूजन करे। इन नौ कन्याओंके पूजनसे जो फल प्राप्त होता है, अब उसे सुनिए ॥४४॥ 'कुमारी' नामकी कन्याका पूजन करनेसे दुःख-दरिद्रताका नाश होता है, शत्रु नष्ट हो जाते हैं तथा धन, आयु और बल बढ़ता है ॥ ४५ ॥ 'त्रिमूर्ति' नामकी कन्याका पूजन करनेसे धर्म-अर्थ-कामकी पूर्ति होती है। धन-धान्यका आगम होता है और पुत्र-पौत्र आदि सन्ततियोंकी वृद्धि होती है॥ ४६ ॥ जो मनुष्य विद्यार्थी, विजयार्थी, राज्यार्थी तथा सुखार्थी हो, वह नित्य 'कल्याणी' कन्याका पूजन करे। क्योंकि यह कन्या सर्वकामदा कही गयी है ॥ ४७ ॥ शत्रुओंका नाश करनेके लिए भक्तिपूर्वक 'कालिका'का पूजन करे। यदि धन तथा ऐश्वर्यप्राप्तिकी अभिलाषा हो तो 'चण्डिका' कन्याकी अर्चना

चंडिका सप्तवर्षा स्यादष्टवर्षा च शांभवी ॥ ४२ ॥ नववर्षा भवेद्दुर्गा सुभद्रा दशवार्षिकी ॥ अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या सर्वकार्यविगर्हिता ॥ ४३ ॥
एभिश्च नामभिः पूजा कर्तव्या विधिसंयुता ॥ तासां फलानि वक्ष्यामि नवानां पूजने सदा ॥ ४४ ॥ कुमारी पूजिता कुर्याद्दुःखदारिद्र्यनाशनम् ॥
शत्रुक्षयं धनायुष्यं बलवृद्धिं करोति वै ॥ ४५ ॥ त्रिमूर्तिपूजनादायुस्त्रिवर्गस्य फलं भवेत् ॥ धनधान्यागमश्चैव पुत्रपौत्रादिवृद्धयः ॥ ४६ ॥
विद्यार्थी विजयार्थी च राज्यार्थी यश्च पार्थिवः ॥ सुखार्थी पूजयेन्नित्यं कल्याणीं सर्वकामदाम् ॥ ४७ ॥ कालिकां शत्रुनाशार्थं पूजयेद्भक्तिपूर्वकम् ॥
ऐश्वर्यधनकामश्च चंडिकां परिपूजयेत् ॥ ४८ ॥ पूजयेच्छांभवीं नित्यं नृपसंमोहनाय च ॥ दुःखदारिद्र्यनाशाय संग्रामे विजयाय च ॥ ४९ ॥
क्रूरशत्रुविनाशार्थं तथोग्रकर्मसाधने ॥ दुर्गां च पूजयेद्भक्त्या परलोकसुखाय च ॥ ५० ॥ वांछितार्थस्य सिद्ध्यर्थं सुभद्रां पूजयेत्सदा ॥ रोहिणीं
रोगनाशाय पूजयेद्विधिवन्नरः ॥ ५१ ॥ श्रीरस्त्विति च मंत्रेण पूजयेद्भक्तितत्परः ॥ श्रीयुक्तमंत्रैरथवा बीजमंत्रैरथापि वा ॥ ५२ ॥ कुमारस्य च
तत्त्वानि या सृजत्यपि लीलया ॥ कादीनपि च देवांस्तां कुमारीं पूजयाम्यहम् ॥ ५३ ॥ सत्त्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्या तैर्हि नानास्वरूपिणी ॥ त्रिकालव्या-
पिनी शक्तिस्त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् ॥ ५४ ॥ कल्याणकारिणी नित्यं भक्तानां पूजिताऽनिशम् ॥ पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणीं सर्वकाम-

करे ॥ ४८ ॥ हे राजन्! सम्मोहन, दुःख-दारिद्र्यनाश तथा संग्राममें विजय प्राप्त करनेके लिए 'शम्भवी' कन्याकी पूजा करे ॥४९॥ किसी क्रूर शत्रुका विनाश एवं उग्र कर्मका साधनाके निमित्त और परलोकमें सुख पानेके लिए 'दुर्गा'की भक्तिपूर्वक आराधना करे ॥ ५० ॥ अपनी आकांक्षायें पूर्ण करनेके लिए 'सुभद्रा'की पूजा करे। रोगनाशके निमित्त विधिवत् 'रोहिणी'-की आराधना करे ॥ ५१ ॥ 'श्रीरस्तु' इस मंत्रसे अथवा किसी भी देवीमंत्रके साथ 'श्री'का उपयोग करके तथा 'ऐं' इस बीजमंत्रसे भक्तिपूर्वक भगवतीकी आराधना करे ॥ ५२ ॥ इन कुमारियोंका पूजन इन मंत्रोंसे करे-'जो भगवती लीलाके लिए कार्तिकेयक गूढ़ तत्त्वोंका सृजन करतीं और ब्रह्मादि देवताओंको बनाती हैं, उन 'कुमारी' भगवतीका मैं पूजन करता हूँ ॥५३॥ जो भगवती सत्त्वादि गुणोंकी तीन मूर्तियोंसे विभिन्न स्वरूपोंमें दिखायी पड़ती हैं, जो त्रिकालव्यापिनी शक्ति हैं, उन 'त्रिमूर्ति' भगवतीकी मैं पूजा करता हूँ ॥ ५४ ॥ जो अपना पूजन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेवाले भक्तोंका सर्वदा कल्याण करती है, मैं उस सर्वकामदायिना 'कल्याणी'का पूजन करता हूँ ॥ ५५ ॥ जो सबके पूर्वजन्मके सञ्चित कर्मोंका बीज अङ्कुरित करती है, मैं उस 'रोहिणी' भगवतीकी पूजा करता हूँ ॥५६॥ जो काली प्रलयकालमें सचराचर ब्रह्माण्डको कालके गालमें झोंककर संहारलीला करती है, उस 'कालिका'का मैं पूजन करता हूँ ॥५७॥ जो चण्डिका प्रचण्डरूपधारिणी, चण्ड-मुण्डका नाश करनेवाली और उग्र पापोंका हरण करनेवाली है, मैं उस 'चाण्डका'की पूजा करता हूँ ॥ ५८ ॥ वेदोंमें जिसकी उत्पत्ति अकारण बतायी गयी है, मैं उस सुखदायिनी 'शाम्भवी' देवीका पूजन करता हूँ ॥ ५९ ॥ जो भगवती अपने भक्तोंको दुर्गम्य विपत्तियोंसे उबारती है, सर्वदा उनका कष्ट दूर करती है और देवताओंके लिए भी जिसका स्वरूप दुर्ज्ञेय है, मैं उस 'दुर्गा' देवीका आराधन करता हूँ ॥६०॥ जो पूजित होकर अपने भक्तोंका सदा कल्याण करती है, उस अमङ्गलनाशिनी 'सुभद्रा' देवीका मैं पूजन करता हूँ ॥ ६१ ॥ विद्वानोंको चाहिए कि इन्हीं मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए वस्त्र, अलङ्कार, माला और विविध प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंको अर्पित करके सदा कुमारी कन्याओंका पूजन करें

दाम् ॥ ५५ ॥ रोहयन्तीं च बीजानि प्राग्जन्मसंचितानि वै ॥ या देवी सर्वभूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥ ५६ ॥ काली कालयते सर्वं ब्रह्मांडं सचराचरम् ॥ कल्पांतसमये या तां कालिकां पूजयाम्यहम् ॥ ५७ ॥ चण्डिकां चण्डरूपां च चण्डमुण्डविनाशिनीम् ॥ तां चंडपापहरणीं चंडिकां पूजयाम्यहम् ॥ ५८ ॥ अकारणात्समुत्पत्तिर्यन्मयैः परिकीर्तिता ॥ यस्यास्तां सुखदां देवीं शांभवीं पूजयाम्यहम् ॥ ५९ ॥ दुर्गात्त्रायति भक्तं या सदा दुर्गतिनाशिनी ॥ दुर्ज्ञेया सर्वदेवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम् ॥ ६० ॥ सुभद्राणि च भक्तानां कुरुते पूजिता सदा ॥ अभद्रनाशिनीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥ ६१ ॥ एभिर्मंत्रैः पूजनीयाः कन्यकाः सर्वदा बुधैः ॥ वस्त्रालङ्करणैर्माल्यैर्गंधैरुच्चावचैरपि ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ हीनांगीं वर्जयेत्कन्यां कुष्ठयुक्तां व्रणांकिताम् ॥ गन्धस्फुरितहीनांगीं विशीलकुलसंभवाम् ॥ १ ॥ जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां बहुरोमशाम् ॥ सन्त्यजेद्रोगिणीं कन्यां रक्तपुष्पादिनांकिताम् ॥ २ ॥ क्षामां गर्भसमुद्भूतां गोलकां कन्यकोद्भवाम् ॥ वर्जनीयाः सदा चैताः सर्वपूजादिकर्मसु ॥ ३ ॥ अरोगिणीं सुरूपांगीं सुन्दरीं व्रणवर्जिताम् ॥ एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक्प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ ब्राह्मणी सर्वका-

॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

(कुमारीपूजनविधि तथा सुशील वणिक्की कथा) व्यासजी बोले—हे राजन् ! जिस कन्याके किसी अङ्गका अभाव हो, जो कोढ़ तथा घावयुक्त हो, जिसकी देहसे दुर्गन्धि आती हो और जो आततायीके घरमें उत्पन्न हुई हो, ऐसी कन्याका पूजन न करे ॥ १ ॥ जन्मान्ध, टपंखी (तिरछे ताकनेवाली), कानी, कुरूप, शरीरमें अधिक रोओंवाली, रुग्ण और रजस्वला स्त्रीके चिह्न जिसमें दृष्टिगोचर होते हों, ऐसी कन्याओंका भी पूजन न करे ॥२॥ बहुत दुर्बल, अल्प समय पूर्व गर्भसे उत्पन्न, पतिके मर जानेपर किसी गैरसे उत्पन्न और विवाहके अयोग्य अवस्थावाली किसी कन्यासे उत्पन्न कुमारियाँ पूजनके योग्य नहीं होतीं । इन्हें त्याग देना चाहिए ॥ ३ ॥ सर्वथा स्वस्थ, सुडौल अङ्गोंवाली, सुन्दरी, फोड़ा-फुन्सी आदिके घावोंसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहित और एक ही वंशमें उत्पन्न कन्याका भलीभाँति पूजन करना चाहिए ॥ ४ ॥ सब कार्योंकी सिद्धिके लिए ब्राह्मणकी कन्या, विजय प्राप्त करनेके लिए क्षत्रियकन्या, धनलाभके लिए वैश्यकी कन्या और वंशवृद्धिके निमित्त शूद्रकी कन्याका पूजन करना चाहिए ॥ ५ ॥ ब्राह्मणको केवल ब्राह्मणजातिकी कन्या, क्षत्रियको ब्राह्मण-क्षत्रिय दोनोंकी कन्या, वैश्यको ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तीनों जातियोंकी कन्या और शूद्रको चारों जातियोंकी कन्याका पूजन करना चाहिए ॥ ६ ॥ विविध धन्धोंमें लगे हुए शिल्पियोंके लिए अपनी जातिकी कन्याका ही समुचित पूजन करनेका विधान है। यह पूजन भी नवरात्रकी विधिसे भक्तिपूर्वक करना चाहिए ॥ ७ ॥ यदि किसी व्यक्तिमें पूरे नवरात्रभर पूजन करनेकी सामर्थ्य न हो तो वह केवल अष्टमीको ही विशेषरूपसे भगवतीका पूजन करे ॥ ८ ॥ क्योंकि पूर्वकालमें दक्षके यज्ञको ध्वस्त करनेवाली महाभयानक भगवती भद्रकाली करोड़ों योगिनियोंके साथ अष्टमीको ही उत्पन्न हुई थीं ॥ ९ ॥ अतएव विविध प्रकारके उपहारों तथा गन्ध-माल्य-चन्दन आदि सामग्रियों द्वारा सर्वदा अष्टमीको देवीका विशेषरूपसे पूजन करना चाहिए ॥ १० ॥ अष्टमीको खीर तथा मांसका हवन

येषु जयार्थे नृपवंशजा ॥ लाभार्थे वैश्यवंशोत्था मता वा शूद्रवंशजा ॥ ५ ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मजाः पूज्या राजन्यैर्ब्रह्मवंशजाः ॥ वैश्यैस्त्रिवर्गजाः पूज्याश्चतस्त्रः पादसम्भवैः ॥ ६ ॥ कारुभिश्चैव वंशोत्था यथायोग्यं प्रपूजयेत् ॥ नवरात्रविधानेन भक्तिपूर्वं सदैव हि ॥ ७ ॥ अशक्तो नियतं पूजां कर्तुं चेन्नवरात्रके ॥ अष्टम्यां च विशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा ॥ ८ ॥ पुराऽष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनी कोटिभिः सह ॥ ९ ॥ अतोऽष्टम्यां विशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा ॥ नानाविधोपहारैश्च गंधमाल्यानुलेपनैः ॥ १० ॥ पायसैरामिषैर्होमैर्ब्राह्मणानां च भोजनैः ॥ फलपुष्पोपहारैश्च तोषयेज्जगदम्बिकाम् ॥ ११ ॥ उपवासे ह्यशक्तानां नवरात्रव्रते पुनः ॥ उपोषणत्रयं प्रोक्तं यथोक्तफलदं नृप ॥ १२ ॥ सप्तम्यां च तथाऽष्टम्यां नवम्यां भक्तिभावतः ॥ त्रिरात्रकरणात्सर्वं फलं भवति पूजनात् ॥ १३ ॥ पूजाभिश्चैव होमैश्च कुमारीपूजनैस्तथा ॥ संपूर्णं तद्व्रतं प्रोक्तं विप्राणां चैव भोजनैः ॥ १४ ॥ व्रतानि यानि चान्यानि दानानि विविधानि च ॥ नवरात्रव्रतस्यास्य नैव तुल्यानि भूतले ॥ १५ ॥ धनधान्यप्रदं नित्यं सुखसंतानवृद्धिदम् ॥ आयुरारोग्यदं चैव स्वर्गदं मोक्षदं तथा ॥ १६ ॥ विद्यार्थी वा धनार्थी वा पुत्रार्थी वा भवेन्नरः ॥ तेनेदं विधिवत्कार्यं व्रतं सौभाग्यदं शिवम् ॥ १७ ॥ विद्यार्थी सर्वविद्यां वै प्राप्नोति व्रतसाधनात् ॥ राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं समवाप्नोति सर्वदा ॥ १८ ॥ पूर्वजन्मनि यैर्नूनं न

करके ब्राह्मणोंको भोजन करायें और फल-फूलका उपहार अर्पण करके जगदम्बाको प्रसन्न करे ॥ ११ ॥ जो लोग पूरे नवरात्रभर उपवासव्रत न कर सकें, वे केवल तीन दिनका उपवास करके भी यथोक्त फल प्राप्त कर सकते हैं ॥ १२ ॥ भक्तिभावसे केवल सप्तमी, अष्टमी और नवमी इन तीन रात्रियोंमें देवीके पूजनसे सब फल प्राप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ पूजन, हवन, कुमारीपूजा और ब्राह्मणभोजन करानेसे नवरात्रव्रत पूर्ण हो जाता है ॥ १४ ॥ इस भूतलपर जितने भी व्रत तथा दान प्रचलित हैं, वे इस नवरात्रव्रतको बराबरी नहीं कर सकते ॥ १५ ॥ यह व्रत धन-धान्य देता, सुखसन्तानकी वृद्धि करता, आयु-आरोग्य प्रदान करता और स्वर्ग तथा मोक्ष देता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य धनार्थी अथवा पुत्रार्थी हो, वह इस सौभाग्य तथा कल्याणकारी व्रतको विधिवत् सम्पन्न करे ॥ १७ ॥ इस व्रतको करनेसे विद्यार्थी सब विद्यायें पढ़ लेता है और राज्यच्युत राजा अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लेता है ॥ १८ ॥ पूर्वजन्ममें जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोग नवरात्र व्रत नहीं किये रहते, वे ही इस जन्ममें रुग्ण, दरिद्र तथा सन्तानहीन होते हैं ॥१९॥ जो स्त्री वन्ध्या, विधवा अथवा दरिद्र दिखायी दे तो यह अनुमान कर लेना चाहिए कि उसने पूर्वजन्ममें नवरात्रव्रत नहीं किया था ॥२०॥ जिन्होंने धरतीपर आकर नवरात्रव्रत नहीं किया, उन्हें यहाँ वैभवकी प्राप्ति कैसे होगी और परलोकमें सुख कैसे मिलेगा ? ॥२१॥ जो लोग लाल चन्दनमिश्रित कोमल बेलपत्रके द्वारा भगवतीका पूजन करते हैं, वे ही जन्मान्तरमें राजा होते हैं ॥ २२ ॥ जो मनुष्य सनातनी शिवा, दुःख और पीड़ाको नष्ट करनेवाली, सिद्धिदायिनी और संसारमें सर्वश्रेष्ठ भगवतीकी आराधना नहीं करता, वह विविध दुःखोंसे दुखी रहता हुआ पृथ्वीतलमें अनेक शत्रुओंसे युक्त एवं दरिद्र रहता है ॥२३॥ विष्णु, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा, अग्नि, कुबेर, वरुण और सूर्य समस्त कामनाओंसे परिपूर्ण होकर जिन देवीका ध्यान करते हैं, उन भगवती चण्डिकाका मनुष्य क्यों नहीं ध्यान करते ? ॥२४॥ 'स्वाहा' इस नाममंत्र-

कृतं व्रतमुत्तमम् ॥ ते व्याधिनो दरिद्राश्च भवन्ति पुत्रवर्जिताः ॥ १९ ॥ वन्ध्या च या भवेन्नारी विधवा धनवर्जिता ॥ अनुमा तत्र कर्तव्या नेयं कृतवती व्रतम् ॥ २० ॥ नवरात्रव्रतं प्रोक्तं न कृतं येन भूतले ॥ स कथं विभवं प्राप्य मोदते च तथा दिवि ॥२१॥ रक्तचन्दनसंमिश्रैः कोमलैर्बिल्वपत्रकैः ॥ भवानी पूजिता येन स भवेन्नृपतिः क्षितौ ॥ २२ ॥ नाराधिता येन शिवा सनातनी दुःखार्तिहा सिद्धिकरी जगद्धरा ॥ दुःखावृतः शत्रुयुतश्च भूतले नूनं दरिद्रो भवतीह मानवः ॥ २३ ॥ यां विष्णुरिन्द्रो हरपद्मजौ तथा वह्निः कुबेरो वरुणो दिवाकरः ॥ ध्यायन्ति सर्वार्थसमाप्तिनन्दितास्तां किं मनुष्या न भजन्ति चंडिकाम् ॥२४॥ स्वाहास्वधानाममनुप्रभावैस्तृप्यन्ति देवाः पितरस्तथैव ॥ यज्ञेषु सर्वेषु मुदा हरन्ति यन्नामयुग्मं श्रुतिभिर्मुनीन्द्राः ॥ २५ ॥ यस्येच्छया सृजति विश्वमिदं प्रजेशो नानावतारकलनं कुरुते हरिश्च ॥ नूनं करोति जगतः किल भस्म शम्भुस्तां शर्मदां न भजते नु कथं मनुष्यः ॥ २६ ॥ नैकोऽस्ति सर्वभुवनेषु तया विहीनो देवी नरोऽथ विहगः किल पन्नगो वा ॥ गन्धर्वराक्षसपिशाचनगेषु नूनं यः स्पंदितु भवति शक्तियुतो यथेच्छम् ॥ २७ ॥ तां न सेवेत कश्चण्डीं सर्वकामार्थदां शिवाम् ॥ व्रतं तस्या न कः कुर्याद्वांछन्नर्थचतुष्टयम् ॥ २८ ॥ महापातकसंयुक्तो नवरात्रव्रतं चरेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो नात्र कार्या विचारणा ॥ २९ ॥ पुरा कश्चिद्वणिग्दीनो धनहीनः सुदुःखितः ॥

के प्रभावसे देवता तथा 'स्वधा' इस नाममन्त्रके प्रभावसे पितर तृप्त होते हैं। इसीसे बड़े-बड़े मुनिजन प्रसन्नतापूर्वक सभी यज्ञों तथा श्राद्धोंमें स्वाहा-स्वधा नामोंका उच्चारण करते हैं ॥२५॥ जिसकी इच्छासे ब्रह्माजी इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, भगवान विष्णु जिसकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए विविध अवतार लेते हैं और जिसकी इच्छासे शंकरजी जगत्का संहार करते हैं, उन कल्याणदायिनी भगवतीका भजन मनुष्य क्यों नहीं करता ? सभी भुवनोंमें कोई ऐसा देवता, मनुष्य, सर्प, पक्षी, गंधर्व, राक्षस, पिशाच एवं पर्वत नहीं है कि जो उन भगवतीकी शक्ति प्राप्त किये बिना अपनी इच्छासे तनिक भी हिल-डुल सके। उन सब आकांक्षायें पूर्ण करनेवाली शिवा चंडिका भगवतीकी सेवा कौन न करेगा ? धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी चारों पदार्थोंकी प्राप्तिका इच्छुक कौन मनुष्य उन चंडिका भगवतीके नवरात्रव्रतका पालन न करेगा ? ॥ २६–२८ ॥ जो मनुष्य महापापी हो, वह भी नवरात्रव्रत करके सब पापोंसे मुक्त हो जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ हे राजन् ! पूर्वकालमें कोसलदेशनिवासी एक नितान्त धनहीन, अत्यन्त दुखी और विशाल कुटुम्बयुक्त एक वैश्य था ॥ ३० ॥ उसके बहुतेरी सन्तानें थीं और वे सब धनाभावके कारण प्रायः भूखी रहा करती थीं। बड़ी कठिनाईसे सायंकालके समय उन बालकोंको कुछ खानेके लिए मिल पाता था ॥ ३१ ॥ वह बनिया बेचारा दिन भर भूखा रहकर परायी नौकरी करता था। शामको जो मिलता, उसे उदरमें डाल लेता था। किन्तु वह बड़े धैर्यके साथ अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करता था ॥ ३२ ॥ वह धर्मपरायण, शान्त, सदाचारी, सत्यवादी, क्रोधहीन, धैर्यशाली, मदहीन तथा डाहहीन मनुष्य था ॥ ३३ ॥ वह नित्य देवताओं, पितरों और अतिथियोंका पूजन करता और अपने आश्रित जनोंके भोजन कर लेनेपर जो शेष बचता, वही स्वयं भोजन करके रहता था ॥ ३४ ॥ इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर वह यथार्थ नाम तथा गुणसे सम्पन्न सुशील वैश्य दारिद्र्य तथा भूखसे पीड़ित होकर एक शान्त ब्राह्मणके पास गया और कहा ॥ ३५ ॥ सुशील बोला—हे भूदेव ! हे महामते ! मेरे ऊपर कृपा करके यह बताइए कि मेरा दारिद्र्य किस तरह नष्ट

कुटुम्बी चाभवत्कश्चित्कोसले नृपसत्तम ॥ ३० ॥ अपत्यानि बहून्यस्याभवन्क्षुत्पीडितानि च ॥ भक्ष्यं किंचित्तु सायाह्ने प्रापुस्तस्य च बालकाः ॥३१॥ भुंक्तेस्म कार्यकर्ताऽसौ परस्याथ बुभुक्षितः ॥ कुटुंबभरणं तत्र चकारातिनिराकुलः ॥ ३२ ॥ सदा धर्मरतः शांतः सदाचारश्च सत्यवाक् ॥ अक्रोधनश्च धृतिमान्निर्मदश्चानसूयकः ॥३३॥ संपूज्य देवता नित्यं पितॄनप्यतिथींस्तदा ॥ भुंजाने पोष्यवर्गेऽथ कृतवान्भोजनं वणिक् ॥३४॥ एवं गच्छति काले वै सुशीलो नामतो गुणैः ॥ दारिद्र्यार्तो द्विजं शांतं पप्रच्छातिबुभुक्षितः ॥३५॥ सुशील उवाच ॥ भो भूदेव कृपां कृत्वा वदस्वाद्य महामते ॥ कथं दारिद्र्यनाशः स्यादिति मे निश्चयेन वै ॥३६॥ धनैषणा मे नैवास्ति धनी स्यामिति मानद ॥ कुटुंबभरणार्थं वै पृच्छामि त्वां द्विजोत्तम ॥ ३७ ॥ पुत्री सुतस्तु मे बालो भक्षार्थी रोदते भृशम् ॥ तावन्मात्रं गृहे नान्नं मुष्टिमेकां ददाम्यहम् ॥ ३८ ॥ विसर्जितो यतो गेहाद्गतो बालो रुदन्मया ॥ अतो मे दह्यतेऽत्यर्थं किं करोमि धनं बिना ॥ ३९ ॥ विवाहोऽस्ति सुताया मे नास्ति वित्तं करोमि किम् ॥ दशवर्षाधिकायास्तु दानकालोऽपि यात्यलम् ॥४०॥ तेन शोचामि विप्रेन्द्र सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ॥ तपो दानं व्रतं किंचिद्ब्रूहि मंत्रं जपं तथा ॥४१॥ येनाहं पोष्यवर्गस्य करोमि द्विज

हो सकता है ? ॥३६॥ हे मानद ! मुझे धनकी अभिलाषा नहीं है। मैं धनी नहीं बनना चाहता। हे द्विजोत्तम ! मैं आपसे केवल यह पूछता हूँ कि किसी तरह कुटुम्बके पोषणका कोई उपाय निकल आये ॥ ३७ ॥ मेरी पुत्री और पुत्र भूखसे रोते रहते हैं। मेरे पास इतना भी अन्न नहीं रहता कि मैं एक-एक मुट्ठी उन्हें देकर बहला सकूँ ॥३८॥ भोजनके अभावमें रोते हुए बालकको मैंने घरसे निकाल दिया और वह रोता हुआ चला गया। तभीसे मेरे हृदयमें एक प्रकारकी ज्वाला धधक रही है। धनके बिना मैं कर ही क्या सकता हूँ ? ॥ ३९ ॥ मेरी लड़कीका विवाह ठना हुआ है। किन्तु मेरे पास धन नहीं है। अब मैं क्या करूँ ? वह दस वर्षसे अधिककी हो गयी है और कन्यादानका समय बीता जा रहा है ॥ ४० ॥ हे विप्रेन्द्र ! इसी कारण मैं शोकाकुल हो रहा हूँ। हे दयानिधे ! आप सर्वज्ञ हैं। मुझे आप कोई तप, दान, व्रत, मंत्र तथा जप बताइए ॥ ४१ ॥ जिससे मैं अपने आश्रित पोष्यवर्गका पोषण कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकूँ। मैं केवल इतना ही धन चाहता हूँ। इससे अधिक धनकी आकांक्षा नहीं है ॥ ४२ ॥ आप यदि मुझपर कृपा कर दें तो मेरा कुटुम्ब सुखी हो जाय। हे महाभाग! अपनी ज्ञान-दृष्टिसे देखकर मुझे कोई उपाय बताइए ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोले—हे नृपसत्तम! उस वैश्यके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उस व्रतधारी ब्राह्मणने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—॥ ४४ ॥ हे वैश्यवर्य! तुम कल्याणदायक नवरात्र व्रत करो। उसके साथ ही भगवतीका पूजन, हवन तथा ब्राह्मणभोजन करानेकी भी व्यवस्था करो ॥ ४५ ॥ तुम यथाशक्ति वेदपाठ, शक्तिमंत्रका जप तथा होम आदि करो। ऐसा करनेसे तुम्हारी आकांक्षा पूर्ण हो जायगी ॥ ४६ ॥ हे वैश्यश्रेष्ठ! इस पावन और सुखदायक नवरात्र व्रतसे बढ़कर इस जगतीतलमें कोई भी व्रत नहीं है ॥ ४७ ॥ यह व्रत ज्ञानदायक, मोक्षदायक, सुख-सन्तानवर्द्धक और शत्रुनाशकारी है ॥४८॥ जब राज्यभ्रष्ट भगवान रामचन्द्रकी प्रिय पत्नी सीताका हरण हो गया, तब अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने किष्किन्धा पर्वतपर इस नवरात्र व्रतको किया था ॥ ४९ ॥ सीताके विरहरूपी अग्निमें झुलसते हुए रामने बहुत दुःखातुर होकर किष्किन्धा पर्वतपर यह नवरात्र व्रत

पोषणम् ॥ तावन्मे स्याद्धनप्राप्तिर्नाधिकं प्रार्थये किल ॥ ४२ ॥ त्वत्प्रसादात्कुटुम्बं मे सुखितं प्रभवेदिह ॥ तत्कुरुष्व महाभाग ज्ञानेन परिचिंत्य च ॥ ४३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्टस्तथा तेन ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥ उवाच परमप्रीतस्तं वैश्यं नृपसत्तम ॥ ४४ ॥ पूजनं भगवत्याश्च हवनं भोजनं तथा ॥ ४५ ॥ वेदपारायणं शक्तिजपहोमादिकं तथा ॥ कुरुष्वाद्य यथाशक्ति तव कार्यं भविष्यति ॥ ४६ ॥ एतस्मादपरं किंचिद् व्रतं नास्ति धरातले ॥ नवरात्राभिधं वैश्य पावनं सुखदं तथा ॥ ४७ ॥ ज्ञानदं मोक्षदं चैव सुखसन्तानवर्धनम् ॥ शत्रुनाशकरं कामं नवरात्रव्रतं सदा ॥ ४८ ॥ राज्यभ्रष्टेन रामेण सीताविरहितेन च ॥ किष्किंधायां व्रतं चैतत्कृतं दुःखातुरेण वै ॥ ४९ ॥ प्रतप्तेनापि रामेण सीताविरहवह्निना ॥ विधिवत्पूजिता देवी नवरात्रव्रतेन वै ॥ ५० ॥ तेन प्राप्ताऽथ वैदेही कृत्वा सेतुं महार्णवे ॥ हत्वा मन्दोदरीनाथं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ५१ ॥ मेघनादं सुतं हत्वा कृत्वा भूपं विभीषणम् ॥ पश्चादयोध्यामागत्य प्राप्तं राज्यमकंटकम् ॥ ५२ ॥ नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभावेण विशां वर ॥ सुखं भूमितले प्राप्तं रामेणामिततेजसा ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति विप्रवचः श्रुत्वा स वैश्यस्तं द्विजं गुरुम् ॥ कृत्वा जग्राह सन्मंत्रं मायाबीजाभिधं नृप ॥ ५४ ॥ जजाप परया भक्त्या नवरात्रमतंद्रितः ॥ नानाविधोपहारैश्च पूजयामास सादरम् ॥ ५५ ॥ नवसंवत्सरं चैव मायाबीजपरायणः ॥ नवमे वत्सरांते

किया था। उसके साथ ही उन्होंने नवरात्रव्रतकी विधिके अनुसार भगवतीका पूजन और हवन भी किया ॥ ५० ॥ इसी व्रतके प्रभावसे उन्हें सीताजी मिलीं, महासागरपर रामने सेतुकी रचना करायी और महाबली मन्दोदरीपति रावण तथा कुम्भकर्णका वध किया ॥ ५१ ॥ साथ ही रावणसुत मेघनादको मारकर उन्होंने विभीषणको लंकाका राजा बनाया। उसके बाद अयोध्या आकर उन्होंने निष्कण्टक राज्य पाया ॥५२॥ हे वैश्यश्रेष्ठ! इस नवरात्रव्रतके प्रभावसे अमित तेजस्वी रामने अनुपम सुख प्राप्त किया ॥ ५३ ॥ व्यासजी बोले—हे नृप! इस प्रकार ब्राह्मण देवताके वचन सुनकर उस वैश्यने उन्हें अपना गुरु बना लिया और उनसे मायाबीज नामके उत्तम मंत्रकी दीक्षा ली ॥५४॥ तदनन्तर उसने अत्यन्त तत्परता और पूर्ण भक्तिपूर्वक नवरात्रभर उस महामंत्रका जप किया। साथ ही नाना प्रकारके उपहार अर्पण करते हुए उसने भगवतीका पूजन किया ॥५५॥ इस तरह वह नौ वर्षों तक मायाबीज महामंत्रका जप करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहा। नवें वर्षकी समाप्तिपर महाअष्टमीको आधी रातके समय भगवती महेश्वरीने उस वैश्यको प्रत्यक्ष दर्शन देकर अनेक प्रकारके वरदान दिये। जिससे वह कृतार्थ हो गया ॥ ५६ ॥ ५७ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां सप्तविंशोध्यायः ॥ २७ ॥

(रामचरित्रका वर्णन) राजा जनमेजय बोले--हे महामुने! भगवान रामने किस प्रकार यह सुखदायक व्रत किया? वे राज्यच्युत कैसे हुए और सीताका हरण कैसे हुआ? ॥ १ ॥ व्यासजी बोले—पूर्वकालमें श्रीमान् महाराज दशरथ अयोध्यापुरीके अधिपति थे। वे सूर्यवंशमें श्रेष्ठ माने जाते थे और देवताओं तथा ब्राह्मणोंके उपासक थे ॥ २ ॥ उनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामके चार लोकविख्यात पुत्र हुए ॥ ३ ॥ वे सभी राजकुमार राजा दशरथको प्रिय थे और गुण तथा रूपमें वे चारों एक जैसे थे। उनमें कौशल्याके पुत्र राम

तु महाष्टम्यां महेश्वरी ॥ ५६ ॥ अर्धरात्रे तु संजाते प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ नानावरप्रदानैश्च कृतकृत्यं चकार तम् ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं रामेण तच्चीर्णं व्रतं देव्याः सुखप्रदम् ॥ राज्यभ्रष्टः कथं सोऽथ कथं सीता हृता पुनः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ राजा दशरथः श्रीमानयोध्याधिपतिः पुरा ॥ सूर्यवंशवरश्चासीद्देवब्राह्मणपूजकः ॥ २ ॥ चत्वारो जज्ञिरे तस्य पुत्रा लोकेषु विश्रुताः ॥ रामलक्ष्मण-शत्रुघ्ना भरतश्चेति नामतः ॥ ३ ॥ राज्ञः प्रियकराः सर्वे सदृशा गुणरूपतः ॥ कौशल्यायाः सुतो रामः कैकेय्या भरतः स्मृतः ॥ ४ ॥ सुमित्रातनयौ जातौ यमलौ द्वौ मनोहरौ ॥ ते जाता वै किशोराश्च धनुर्बाणधराः किल ॥ ५ ॥ सूनवः कृतसंस्कारा भूपतेः सुखवर्धकाः ॥ कौशिकेन तदाऽऽगत्य प्रार्थितो रघुनन्दनः ॥ ६ ॥ राघवं मखरक्षार्थं सूनुं षोडशवार्षिकम् ॥ तस्मै सोऽयं ददौ रामं कौशिकाय सलक्ष्मणम् ॥ ७ ॥ तौ समेत्य मुनिं मार्गे जग्मतुश्चारुदर्शनौ ॥ ताटका निहता मार्गे राक्षसी घोरदर्शना ॥ ८ ॥ रामेणैकेन बाणेन मुनीनां दुःखदा सदा ॥ यज्ञरक्षा कृता तत्र सुबाहुर्निहतः शठः ॥ ९ ॥ मारीचोऽथ मृतप्रायो निक्षिप्तो बाणवेगतः ॥ एवं कृत्वा महत्कर्म यज्ञस्य परिरक्षणम् ॥ १० ॥ गतास्ते मिथिलां सर्वे रामलक्ष्मण-कौशिकाः ॥ अहल्या मोचिता शापान्निष्पापा सा कृताऽबला ॥ ११ ॥ विदेहनगरे तौ तु जग्मतुर्मुनिना सह ॥ बभंज शिवचापं च जनकेन

और कैकेयीके पुत्र भरत थे ॥ ४ ॥ रानी सुमित्राके दो सुन्दर पुत्र एक साथ हुए थे–लक्ष्मण और शत्रुघ्न। किशोर अवस्थाको प्राप्त होकर वे चारों बालक धनुष-बाणधारी हो गये ॥ ५ ॥ अब महाराजने सुख बढ़ानेवाले उन राजकुमारोंका संस्कार भी कर दिया। उसी समय महामुनि विश्वामित्रने आकर राजा दशरथसे प्रार्थना की ॥ ६ ॥ तदनुसार महाराजने सोलह वर्षके राम और लक्ष्मणको विश्वामित्रकी रक्षाके लिए दे दिया ॥ ७ ॥ वे सुन्दर राजकुमार विश्वामित्रके साथ चल पड़े। मार्गमें उन्होंने मुनियोंको दुःख देनेवाली भयानक राक्षसी ताड़काका एक ही बाणसे वध करके मुनिके यज्ञकी रक्षा करते हुए दुष्ट सुबाहुको मार डाला। मारीचको अपने बाणसे दूर फेंककर रामने उसे भी मृतप्राय कर दिया। इस प्रकार यज्ञरक्षाका महान् कार्य सम्पन्न करके राम-लक्ष्मण तथा महामुनि विश्वामित्र तीनों मिथिलापुरको चल पड़े। मार्गमें रामने अबला अहल्याको शापसे मुक्त करके निष्पाप कर दिया ॥ ८–११ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदनन्तर वे दोनों भाई मुनि विश्वामित्रके साथ विदेह राजा जनकके नगरमें जा पहुँचे। वहाँ प्रणके रूपमें रक्खे हुए शिवधनुषको रामचन्द्रने तोड़ डाला ॥ १२ ॥ इसके बाद साक्षात् लक्ष्मीकी अंशस्वरूपा जनकतनया सीताके साथ भगवान रामका विवाह हुआ। राजा जनकने अपनी अन्य पुत्री उर्मिलाका विवाह लक्ष्मणके साथ कर दिया ॥ १३ ॥ तदनन्तर राजा जनकके सुशील और शुभ लक्षणसम्पन्न भरत और शत्रुघ्नका विवाह अपने भाई कुशध्वजकी दो कन्याओं श्रुतकीर्ति और माण्डवीके साथ कर दिया ॥ १४ ॥ हे नृप ! इस प्रकार चारों भाइयोंका विवाह उसी मिथिलापुरीमें बड़े विधि-विधानसे सम्पन्न हो गया ॥ १५ ॥ तदनन्तर महाराज दशरथने अपने ज्येष्ठ पुत्र रामको राज्य करने योग्य देखकर उन्हें राज्य देनेका विचार किया ॥ १६ ॥ रामको राजतिलक देनेके लिए सामग्रियाँ जुटती देखकर महारानी कैकेयीने अपने वशीभूत राजा दशरथसे पूर्वकालमें प्राप्त दो वर माँग लिये ॥ १७ ॥ जिनमें पहले वरसे अपने पुत्र भरतके लिए राज्य तथा दूसरे वरसे रामचन्द्रके लिए चौदह वर्षों तकका वनवास माँगा ॥ १८ ॥ कैकेयी के

पणीकृतम् ॥ १२ ॥ उपयेमे ततः सीतां जानकीं च रमांशजाम् ॥ लक्ष्मणाय ददौ राजा पुत्रीमेकां तथोर्मिलाम् ॥ १३ ॥ कुशध्वजसुते कन्ये प्रापतुर्भ्रातरावुभौ ॥ तथा भरतशत्रुघ्नौ सुशीलौ शुभलक्षणौ ॥ १४ ॥ एवं दारक्रियास्तेषां भ्रातॄणां चाभवन्नृप ॥ चतुर्णां मिथिलायां तु यथाविधि-विधानतः ॥ १५ ॥ राज्ययोग्यं सुतं दृष्ट्वा राजा दशरथस्तदा ॥ राघवाय धुरं दातुं मनश्चक्रे निजाय वै ॥ १६ ॥ संभारं विहितं दृष्ट्वा कैकेयी पूर्व-कल्पितौ ॥ वरौ सम्प्रार्थयामास भर्तारं वशवर्तिनम् ॥ १७ ॥ राज्यं सुताय चैकेन भरताय महात्मने ॥ रामाय वनवासं च चतुर्दश समास्तथा ॥ १८ ॥ रामस्तु वचनात्तस्याः सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ जगाम दण्डकारण्यं राक्षसैरुपसेवितम् ॥ १९ ॥ राजा दशरथः पुत्रविरहेण प्रपीडितः ॥ जहौ प्राणानमेयात्मा पूर्वशापमनुस्मरन् ॥ २० ॥ भरतः पितरं दृष्ट्वा मृतं मातृकृतेन वै ॥ राज्यमृद्धं न जग्राह भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥ २१ ॥ पंचवट्यां वसन् रामो रावणावरजां वने ॥ शूर्पणखां विरूपां वै चकारातिस्मरातुराम् ॥ २२ ॥ खरादयस्तु तां दृष्ट्वा छिन्ननासां निशाचराः ॥ चक्रुः संग्राम-मतुलं रामेणामिततेजसा ॥ २३ ॥ स जघान खरादींश्च दैत्यानतिबलान्वितान् ॥ मुनीनां हितमन्विच्छन् रामः सत्यपराक्रमः ॥ २४ ॥ गत्वा शूर्पणखा लंकां खरदूषणघातनम् ॥ दूषिता कथयामास रावणाय च राघवात् ॥ २५ ॥ सोऽपि श्रुत्वा विनाशं तं जातः क्रोधवशः खलः ॥

वचन मानकर भगवान राम सीता और लक्ष्मणके साथ राक्षसोंसे भरे दण्डकारण्य वनको चले गये ॥ १९ ॥ उनके चले जानेपर पुत्रके वियोगसे दुःखी विशालहृदय राजा दशरथने पूर्वकालमें एक ऋषिके शापका स्मरण करके प्राण त्याग दिया ॥ २० ॥ अपनी माताकी करतूतसे पिताका मरण देखकर भरतने अपने बड़े भाई रामकी भलाईको ध्यानमें रखकर अयोध्याका समृद्ध राज्य नहीं स्वीकार किया ॥ २१ ॥ उधर पञ्चवटीमें निवास करते हुए रामने अतिशय कामपीड़ित रावणकी बहिन शूर्पणखाकी नाक-कान काटकर उसे कुरूप कर दिया ॥ २२ ॥ खर आदि राक्षसोंने जब उसे नकटी देखा तो उन्होंने अमित तेजस्वी रामके साथ भीषण संग्राम किया ॥ २३ ॥ तब सत्यपराक्रमी रामने मुनियोंका हित करनेके विचारसे उन अतिशय बलवान् खर-दूषण आदि सभी दैत्योंको मार डाला ॥ २४ ॥ तदनन्तर सूर्पणखा भागकर लंका गयी और रावणसे अपने दूषित होने तथा रामके हाथों खर-दूषणके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निधनका वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २५ ॥ रावण भी राक्षसजातिके विनाशका समाचार सुनकर मारे क्रोधके तलमला उठा । वह तत्काल रथपर सवार होकर मारीचके आश्रमको चल पड़ा ॥ २६ ॥ उसने मायावी मारीचको असम्भव स्वर्णमृग बनाकर सीताको ललचानेके लिए रामके आश्रमपर भेजा ॥ २७ ॥ तदनुसार मायावी मारीच स्वर्णमृग बनकर सीताके समक्ष चरने लगा । उसका शरीर बड़ा विचित्र था । वह चरता-चरता सीताके पास पहुँच गया ॥ २८ ॥ उसे देखकर दैवी प्रेरणावश पतिको अपने अधीन रखनेवाली स्त्रीके समान जनकनन्दिनी सीताने रामसे कहा—हे नाथ ! आप इस सुन्दर मृगका चर्म ले आइए ॥२९॥ भगवान राम भी बिना कुछ सोचे लक्ष्मणको सीताकी सँभालके लिए वहाँ ही छोड़कर धनुष-बाण लिये हुए उस मृगके पीछे दौड़ पड़े ॥ ३० ॥ करोड़ों प्रकारकी मायाका विज्ञ स्वर्णमृगरूपधारी मारीच भगवान्को देखकर भागा और कभी दीखता तथा कभी आँखोंसे ओझल होता हुआ बड़ी दूर एक दूसरे वनमें जा पहुँचा ॥३१॥ उसका पीछा करते हुए रामने जब उसे हस्तगत समझा, तब बड़े क्रोधसे धनुष खींचकर अतिशय तीक्ष्ण बाणसे उन्होंने उस माया-

जगाम रथमारुह्य मारीचस्याश्रमं तदा ॥ २६ ॥ कृत्वा हेममृगं नेतुं प्रेषयामास रावणः ॥ सीताप्रलोभनार्थाय मायाविनमसंभवम् ॥ २७ ॥ सोऽथ हेममृगो भूत्वा सीतादृष्टिपथं गतः ॥ मायावी चातिचित्रांगश्चरन्प्रबलमंतिके ॥ २८ ॥ तं दृष्ट्वा जानकी प्राह राघवं दैवनोदिता ॥ चर्मानयस्व कान्तेति स्वाधीनपतिका यथा ॥ २९ ॥ अविचार्याथ रामोऽपि तत्र संस्थाप्य लक्ष्मणम् ॥ सशरं धनुरादाय ययौ मृगपदानुगः ॥ ३० ॥ सारंगोऽपि हरिं दृष्ट्वा मायाकोटिविशारदः ॥ दृश्यादृश्यो बभूवाथ जगाम च वनान्तरम् ॥ ३१ ॥ मत्वा हस्तगतं रामः क्रोधाकृष्टधनुः पुनः ॥ जघान चातितीक्ष्णेन शरेण कृत्रिमं मृगम् ॥ ३२ ॥ स हतोऽतिबलात्तेन चुक्रोश भृशदुःखितः ॥ हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति मायावी नश्वरः खलः ॥ ३३ ॥ स शब्दस्तुमुलस्तावज्जानक्या संश्रुतस्तदा ॥ राघवस्येति सा मत्वा दीना देवरमब्रवीत् ॥ ३४ ॥ गच्छ लक्ष्मण तूर्णं त्वं हतोऽसौ रघुनन्दनः ॥ त्वामाह्वयति सौमित्रे साहाय्यं कुरु सत्वरम् ॥ ३५ ॥ तत्राह लक्ष्मणः सीतामंब रामवधादपि ॥ नाहं गच्छेऽद्य मुक्त्वा त्वामसहायामिहाश्रमे ॥ ३६ ॥ आज्ञा मे राघवस्यात्र तिष्ठेति जनकात्मजे ॥ तदतिक्रमभीतोऽहं न त्यजामि तवांतिकम् ॥३७॥ दूरं वै राघवं दृष्ट्वा वने मायाविना किल ॥ त्यक्त्वा त्वां नाधिगच्छामि पदमेकं शुचिस्मिते ॥ ३८ ॥ कुरु धैर्यं न मन्येऽद्य रामं हंतुं क्षमं क्षितौ ॥ नाहं त्यक्त्वा गमिष्यामि विलंध्य

मृगको मार डाला ॥ ३२ ॥ भगवानके प्रबल प्रहारसे अत्यन्त दुखी होकर वह मरणोन्मुख मायावी बहुत जोरसे चिल्लाने लगा—हा लक्ष्मण ! मैं मरा ॥ ३३ ॥ उस चीत्कारको महारानी जानकीने सुन लिया । उसे रामजीकी वाणी समझकर सीताने बड़ी दीनताके साथ देवर लक्ष्मणसे कहा–॥३४॥ लक्ष्मण ! तुम शीघ्र जाओ । ऐसा मालूम पड़ता है कि उनपर प्रहार हुआ है । हे सौमित्रे ! वे तुम्हें पुकार रहे हैं, जल्दी जाकर उनकी सहायता करो ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणने सीतासे कहा–हे माता ! यदि रामका वध हो गया हो तो भी मैं तुम्हें यहाँ अकेली छोड़कर न जाऊँगा ॥ ३६ ॥ हे जनकनन्दिनी ! रघुनन्दन रामने मुझे यहीं रहनेकी आज्ञा दे रक्खी है । उस आज्ञाका उल्लंघन करनेमें मुझे भय लगता है । इसी कारण मैं तुम्हारे पाससे नहीं जा रहा हूँ ॥ ३७ ॥ वह मायावी भगवान रामको बहुत दूर दौड़ा ले गया है । अतएव हे पुनीत मुसकानवाली देवी ! मैं आपको छोड़कर यहाँसे एक पग भी नहीं हटना चाहता ॥ ३८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आप धीरज धरें, उन्हें मारनेवाला इस भूमण्डलपर कोई नहीं है। उनके आदेशका उल्लंघन करके और आपको यहाँ छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा ॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले—तब दैवी प्रेरणासे सुन्दर दाँतोंवाली सीताने रोकर शुभ लक्षणसम्पन्न लक्ष्मणसे ये कठोर वचन कहे—॥ ४० ॥ हे लक्ष्मण ! मैं जानती हूँ कि तुम मुझपर मोहित हो और भरतके संकेतपर मुझे हस्तगत करनेके लिए साथ चले आये हो ॥ ४१ ॥ ओ कुलाधम ! अरे नीच ! मैं कोई कुलटा नहीं हूँ। अपने पति रामके मर जानेपर भी विषयभोगके लिए मैं तुम्हें अपना पति नहीं बनाना चाहूँगी ॥ ४२ ॥ यदि राम न लौटेंगे तो मैं अपना तन त्याग दूँगी। उनके बिना मैं दुःखदायी वैधव्य जीवन नहीं बिताना चाहती ॥४३॥ तुम जाओ या रहो। मुझे तुम्हारी इच्छाका पता नहीं है। किन्तु यह तो बताओ कि धर्मात्मा ज्येष्ठ भाईके प्रति रहनेवाला तुम्हारा अनुराग कहाँ गया ? ॥ ४४ ॥ सीताके वचन सुनकर लक्ष्मण बहुत दुखी हुए। रुलाईसे उनका

रामभाषितम् ॥३९॥ व्यास उवाच ॥ रुदती सुदती प्राह तं तदा विधिनोदिता ॥ अक्रूरा वचनं क्रूरं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ ४० ॥ अहं जानामि सौमित्रे सानुरागं च मां प्रति ॥ प्रेरितं भरतेनैव मदर्थमिह संगतम् ॥ ४१ ॥ नाहं तथाविधा नारी स्वैरिणी कुहकाधम ॥ मृते रामे पतिं त्वां न कर्तुमिच्छामि कामतः ॥ ४२ ॥ नागमिष्यति चेद्रामो जीवितं संत्यजाम्यहम् ॥ बिना तेन न जीवामि विधुरा दुःखिता भृशम् ॥४३॥ गच्छ वा तिष्ठ सौमित्रे न जानेऽहं तवेप्सितम् ॥ क्व गतं तेऽत्र सौहार्दं ज्येष्ठे धर्मरते किल ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या लक्ष्मणो दीनमानसः ॥ प्रोवाच रुद्धकंठस्तु तां तदा जनकात्मजाम् ॥४५॥ किमात्थ क्षितिजे वाक्यं मयि क्रूरतरं किल ॥ किं वदस्यत्यनिष्टं ते भावि जाने धिया ह्यहम् ॥ ४६ ॥ इत्युक्त्वा निर्ययौ वीरस्तां त्यक्त्वा प्ररुदन्भृशम् ॥ अग्रजस्य ययौ पश्यञ्शोकार्तः पृथिवीपते ॥ ४७ ॥ गतेऽथ लक्ष्मणे तत्र रावणः कपटाकृतिः ॥ भिक्षुवेषं ततः कृत्वा प्रविवेश तदाश्रमे ॥ ४८ ॥ जानकी तं यतिं मत्वा दत्त्वार्घ्यं वन्यमादरात् ॥ भैक्ष्यं समर्पयामास रावणाय दुरात्मने ॥ ४९ ॥ तां पप्रच्छ स दुष्टात्मा नम्रपूर्वं मृदुस्वरम् ॥ काऽसि पद्मपलाशाक्षि वने चैकाकिनी प्रिये ॥५०॥ पिता कस्तेऽथ वामोरु भ्राता कः कः पतिस्तव ॥ मूढे वैकाकिनी चात्र स्थिताऽसि वरवर्णिनी ॥५१॥ निर्जने विपिने किं त्वं सौधार्हा त्वमसि प्रिये ॥ उटजे मुनिपत्नीवद्देवकन्यासमप्रभा ॥ ५२ ॥

गला भर आया और उन्होंने सीतासे कहा—॥ ४५ ॥ हे भूमिकन्ये ! आप मुझसे ऐसे क्रूर वचन क्यों बोल रही हैं ? मेरा मन कह रहा है कि आपका कोई बहुत बड़ा अनिष्ट होनेवाला है। हे राजा जनमेजय ! ऐसा कहकर रोते हुए शोकार्त वीर लक्ष्मण अपने बड़े भाई रामकी राह देखते हुए चल पड़े। इस प्रकार लक्ष्मणजीके चले जानेपर कपटपूर्ण भिक्षुवेष धारण करके रावण उस आश्रममें प्रविष्ट हुआ ॥ ४६-४८ ॥ जानकीजीने उसे साधु समझा और बड़े आदरके साथ वन्य सामग्रियोंका अर्घ्य प्रदान करनेके बाद वे उसे भिक्षा देने लगीं ॥ ४९ ॥ तब उस दुष्टने बड़ी नम्रतापूर्वक मधुर वाणीमें कहा—हे कमलनयनी ! तुम कौन हो और इस वनमें अकेली क्यों हो ? ॥ ५० ॥ हे सुजघने ! तुम्हारे पिताका क्या नाम है ? तुम्हारे भाई और पतिका क्या नाम है ? हे मुग्धे ! तुम यहाँ अकेली क्यों रहती हो ? देखनेमें तो तुम ऊँचे कुलकी नारी जान पड़ती हो ॥ ५१ ॥ हे प्रिये ! तुम तो महलोंमें रहने योग्य हो, फिर इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayū Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्जन वनमें क्यों रहती हो ? देवकन्याके समान सुन्दरी होती हुई भी तुम एक मुनिपत्नीकी तरह इस कुटियामें क्यों पड़ी हुई हो ? ॥५२॥ व्यासजी बोले कि उसके इन वचनोंकर सुनकर विदेहतनया सीताने मन्दोदरीके पति रावणको दिव्य संन्यासी समझकर कहा-॥ ५३ ॥ अवधनरेश श्रीमान् महाराज दशरथके चार पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े पुत्र राम मेरे पति हैं॥५४॥ महाराजसे वर माँगकर महारानी कैकेयीने उन्हें चौदह वर्षोंका वनवास दे दिया। अतएव वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ यहीं रह रहे हैं॥ ५५ ॥ मैं राजा जनककी पुत्री हूँ। मेरा नाम सीता है। शिवधनुषको तोड़कर रामने मेरा पाणिग्रहण किया है॥ ५६ ॥ उन्हीं रामके बाहुबलसे सुरक्षित होकर निर्भयभावसे मैं इस वनमें निवास करती हूँ। एक स्वर्णमृग देखकर वे उसे मारने गये हैं॥ ५७ ॥ लक्ष्मण भी उनकी आवाज सुनकर उधर ही गये हुए हैं। उन्हीं दोनोंके बाहुबलसे सुरक्षित होकर मैं इस वनमें निर्भय रहती हूँ ॥ ५८ ॥ इस प्रकार मैंने अपने

॥ व्यास उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विदेहजा ॥ दिव्यं दिष्ट्या यतिं ज्ञात्वा मंदोदर्याः पतिं तदा ॥५३॥ राजा दशरथः श्रीमांश्चत्वारस्तस्य वै सुताः ॥ तेषां ज्येष्ठः पतिर्मेऽस्ति रामनामेति विश्रुतः ॥५४॥ विवासितोऽथ कैकेय्या कृते भूपतिना वरे ॥ चतुर्दश समा रामो वसतेऽत्र सलक्ष्मणः ॥५५॥ जनकस्य सुता चाहं सीतानाम्नीति विश्रुता ॥ भंक्त्वा शैवं धनुः कामं रामेणाहं विवाहिता ॥ ५६ ॥ रामबाहुबलेनात्र वसामो निर्भया वने ॥ काञ्चनं मृगमालोक्य हंतुं मे निर्गतः पतिः ॥ ५७ ॥ लक्ष्मणोऽपि पुनः श्रुत्वा रवं भ्रातुर्गतोऽधुना ॥ तयोर्बाहुबलेनात्र निर्भयाऽहं वसामि वै ॥ ५८ ॥ मयेदं कथितं सर्वं वृत्तान्तं वनवासके ॥ तेऽत्रागत्यार्हणां ते वै करिष्यंति यथाविधि ॥५९॥ यतिर्विष्णुस्वरूपोऽसि तस्मात्त्वं पूजितो मया ॥ आश्रमो विपिने घोरे कृतोऽस्ति रक्षसां कुले॥ ६० ॥ तस्मात्त्वां परिपृच्छामि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः॥ कोऽसि त्रिदंडिरूपेण विपिने त्वं समागतः ॥६१॥ रावण उवाच ॥ लंकेशोऽहं मरालाक्षि श्रीमान्मंदोदरीपतिः ॥ त्वत्कृते तु कृत रूपं मयेत्थं शोभनाकृते ॥ ६२ ॥ आगतोऽहं वरारोहे भगिन्या प्रेरितोऽत्र वै ॥ जनस्थाने हतौ श्रुत्वा भ्रातरौ खरदूषणौ ॥६३॥ अंगीकुरु नृपं मां त्वं त्यक्त्वा तं मानुषं पतिम् ॥ हृतराज्यं गतश्रीकं निर्बलं वनवासिनम्॥६४॥ पट्टराज्ञी भव त्वं मे मंदोदर्युपरि स्फुटम्॥ दासोऽस्मि तव तन्वंगि स्वामिनी भव भामिनि॥६५॥ जेताऽहं लोक-

वनवासकी कथा कह सुनायी। वे दोनों भाई अभी आकर आपकी विधिवत् पूजा करेंगे॥ ५९ ॥ साधु साक्षात् विष्णुका स्वरूप होता है। इसी कारण मैंने आपका पूजन किया। हमारा आश्रम बहुत बीहड़ जंगलमें है। यहाँ राक्षसोंकी बस्ती है॥६०॥ अतएव मैं आपसे पूछती हूँ कि आप कौन हैं और इस प्रकार दण्डी स्वामीका वेष धारण करके इस वनमें क्यों आये हैं? ॥ ६१ ॥ रावणने कहा—हे हंससदृश नयनोंवाली सुन्दरी ! मैं रानी मन्दोदरीका पति और लंकाका अधिपति श्रीमान् रावण हूँ। हे सुन्दर आकृतिसम्पन्न भामिनी ! तुम्हें पानेके लिए ही मैंने यह वेष बनाया है॥ ६२ ॥ हे सुजघने ! जनस्थानमें अपने भाई खर-दूषणके मारे जानेका समाचार पाकर अपनी बहिन सूर्पणखाकी प्रेरणासे यहाँ आया हूँ॥ ६३ ॥ अब तुम उस राज्यभ्रष्ट, राज्यलक्ष्मीहीन, निर्बल, वनवासी मनुष्य पतिको त्यागकर मुझ राजाको अपना पति बना लो॥ ६४ ॥ तुम मेरे घर चलकर मन्दोदरीसे भी बड़ी पटरानी बनो। हे तन्वङ्गि !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम मेरी स्वामिनी बन जाओ। मैं तुम्हारा दास हूँ ॥ ६५ ॥ मैं समस्त लोकपालोंका विजेता होता हुआ भी तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ। हे जानकी! तुम मेरी बाँह गहकर मुझे सनाथ कर दो ॥ ६६ ॥ हे अबले! पूर्वकालमें मैंने तुम्हारे पितासे भी तुम्हें माँगा था, किन्तु उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि मैं प्रण कर चुका हूँ ॥ ६७ ॥ शिवधनुषके भयसे मैं तुम्हारे स्वयंवरमें नहीं गया। किन्तु तभीसे विरहव्यथित होकर मेरा मन तुममें लगा रहा ॥ ६८ ॥ हे श्यामनेत्रे! इस वनमें तुम्हारे रहनेका हाल सुनकर पूर्वप्रेमवश मैं यहाँ आया हूँ। अब तुम मेरा यह परिश्रम सफल कर दो ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

(सीताजीका हरण और रामजीका विलाप) व्यासजी बोले—हे राजन्! रावणके ये दुर्वचन सुनकर सीता भयसे काँप उठीं। फिर भी किसी प्रकार मन स्थिर करके बोलीं—॥ १॥ हे पुलस्त्यके वंशज! आप काममोहित होकर ऐसी गन्दी बात क्यों कह रहे हैं? मैं कोई कुलटा स्त्री नहीं हूँ। राजा जनकके कुलमें मेरा जन्म हुआ है ॥२॥ हे दशमुख रावण! आप चटपट

पालानां पतामि तव पादयोः ॥ करं गृहाण मेऽद्य त्वं सनाथं कुरु जानकि॥६६॥ पिता ते याचितः पूर्वं मया वै त्वत्कृतेऽबले ॥ जनको मामुवाचेत्थं पणबंधो मया कृतः ॥६७॥ रुद्रचापभयान्नाहं संप्राप्तस्तु स्वयंवरे ॥ मनो मे संस्थितं तावन्निमग्नं विरहातुरम् ॥ ६८॥ वनेऽत्र संस्थितां श्रुत्वा पूर्वानुरागमोहितः ॥ आगतोऽस्म्यसितापांगि सफलं कुरु मे श्रमम् ॥६९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचो दुष्टं जानकी भयविह्वला ॥ वेपमाना स्थिरं कृत्वा मनो वाचमुवाच ह ॥ १ ॥ पौलस्त्य किमसद्वाक्यं त्वमात्थ स्मरमोहितः ॥ नाहं वै स्वैरिणी किंतु जनकस्य कुलोद्भवा ॥ २ ॥ गच्छ लंकां दशास्य त्वं रामस्त्वां वै हनिष्यति ॥ मत्कृते मरणं तेऽत्र भविष्यति न संशयः ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वा पर्णशालायां गता सा वह्निसन्निधौ ॥ गच्छ गच्छेति वदती रावणं लोकरावणम् ॥४॥ सोऽथ कृत्वा निजं रूपं जगामोटजमंतिकम् ॥ बलाज्जग्राह तां बालां रुदतीं भयविह्वलाम् ॥ ५ ॥ रामरामेति क्रंदंती लक्ष्मणेति मुहुर्मुहुः ॥ गृहीत्वा निर्गतः पापो रथमारोप्य सत्वरः ॥ ६ ॥ गच्छन्नरुणपुत्रेण मार्गे रुद्धो जटायुषा ॥ संग्रामोऽभून्महारौद्रस्तयोस्तत्र वनांतरे ॥ ७ ॥ हत्वा तं तां गृहीत्वा च गतोऽसौ राक्षसाधिपः ॥ लंकायां क्रन्दती तात कुररीव दुरात्मना ॥८॥ अशोकवनिकायां सा स्थापिता राक्षसीयुता ॥ स्ववृत्तान्तैव चलिता साम-

लंका भाग जाइए। नहीं तो राम आपको मार डालेंगे। मेरे लिए यहाँ ही आपका मरण हो जायगा। इसमें संदेह नहीं है ॥३॥ ऐसा कहकर वे अपनी पर्णकुटीके भीतर अग्निके पास चली गयीं और समस्त लोकोंको रुलानेवाले रावणसे कहती गयीं कि तू यहाँसे चला जा ॥ ४ ॥ इसके बाद रावण असली रूपसे कुटियाके भीतर घुस गया और भयसे विह्वल तथा रुदन करती हुई सीताको उसने हठात् पकड़ लिया ॥ ५ ॥ उस समय वे बार-बार 'हे राम! हे राम!' 'हे लक्ष्मण! हे लक्ष्मण!' कहकर चिल्ला रही थीं। वह पापी तत्काल उन्हें रथपर चढ़ाकर निकल भागा ॥६॥ इस प्रकार सीताका हरण करके जब रावण भाग रहा था, तब मार्गमें अरुणपुत्र जटायुने उसे रोका और उसी वन्य प्रदेशमें उन दोनोंका भीषण युद्ध हुआ ॥ ७ ॥ हे तात जनमेजय! अन्तमें जटायुको मार तथा सीताको लेकर वह लंका जा पहुँचा। उस समय सीताजी कुररी पक्षीके समान विलाप कर रही थीं ॥ ८ ॥ रावणने उन्हें ले जाकर राक्षसियोंके साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशोकवाटिकामें रक्खा । वहाँ उस राक्षसके साम-दाम आदि उपायों द्वारा फुसलानेपर भी महारानी सीता अपने सतीत्वसे विचलित नहीं हुईं ॥९॥ उधर भगवान राम भी मृगको मार तथा उसे लेकर लौटे तो मार्गमें लक्ष्मणको देखकर बोले—भैया ! तुमने यह क्या किया ? ॥ १० ॥ मेरी प्रियतमा सीताको अकेली छोड़ तथा पापी मारीचका चीत्कार सुनकर यहाँ क्यों चले आये ? ॥ ११ ॥ सीताके वचनबाणसे पीड़ित लक्ष्मणने कहा—हे प्रभो ! समयकी प्रेरणासे ही मैं आया हूँ । इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ तत्काल दोनों भाई पर्णकुटी पहुँचे और वहाँ सीताको नहीं पाकर बहुत दुखी हुए । अब वे सीताकी खोजका प्रयत्न करनेको सन्नद्ध हो गये ॥१३॥ खोजते-खोजते वे वहाँ पहुँचे, जहाँ जटायु घायल होकर पड़ा हुआ था और उसकी थोड़ी-थोड़ी साँस चल रही थी ॥ १४ ॥ उसने कहा कि अभी रावण सीताको हर ले गया है। मैंने उसे रोका, किन्तु उस पापीने युद्धमें मुझे मारकर गिरा दिया॥ १५ ॥ इतना कहकर वह

दानादिभिः किल ॥ ९ ॥ रामोऽपि तं मृगं हत्वा जगामादाय निर्वृतः ॥ आयांतं लक्ष्मणं वीक्ष्य किं कृतं तेऽनुजासमम् ॥ १० ॥ एकाकिनीं प्रियां हित्वा किमर्थं त्वमिहागतः ॥ श्रुत्वा स्वनं तु रामस्य राघवस्त्वब्रवीदिदम् ॥ ११ ॥ सौमित्रिस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतावाग्बाणपीडितः ॥ प्रभोऽत्राहं समायातः कालयोगान्न संशयः ॥ १२ ॥ तदा तौ पर्णशालायां गत्वा वीक्ष्यातिदुःखितौ ॥ जानक्यन्वेषणे यत्नमुभौ कर्तुं समुद्यतौ ॥ १३ ॥ मार्गमाणौ तु संप्राप्तौ यत्रासौ पतितः खगः ॥ जटायुः प्राणशेषस्तु पतितः पृथिवीतले ॥ १४ ॥ तेनोक्तं रावणेनाद्य हृताऽसौ जनकात्मजा ॥ मया निरुद्धः पापात्मा पातितोऽहं मृधे पुनः ॥१५॥ इत्युक्त्वाऽसौ गतप्राणः संस्कृतो राघवेण वै॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकं रामलक्ष्मणौ निर्गतौ ततः॥१६॥ कबंधं घातयित्वाऽसौ शापाच्चामोचयत्प्रभुः ॥ वचनात्तस्य हरिणा सख्यं चक्रेऽथ राघवः ॥१७॥ हत्वा च वालिनं वीरं किष्किंधाराज्यमुत्तमम् ॥ सुग्रीवाय ददौ रामः कृतसख्याय कार्यतः ॥ १८ ॥ तत्रैव वार्षिकान्मासांस्तस्थौ लक्ष्मणसंयुतः ॥ चिंतयञ्जानकीं चित्ते दशाननहृतां प्रियाम् ॥ १९ ॥ लक्ष्मणं प्राह रामस्तु सीताविरहपीडितः ॥ सौमित्रे केकयसुता जाता पूर्णमनोरथा ॥२०॥ न प्राप्ता जानकी नूनं नाहं जीवामि तां बिना ॥ नागमिष्याम्ययोध्यायामृते जनकनंदिनीम् ॥२१॥ गतं राज्यं वने वासो मृतस्तातो हृता प्रिया ॥ पीडयन्मां स दुष्टात्मा दैवोऽग्रे किं करिष्यति ॥ २२ ॥ दुर्ज्ञेयं भवितव्यं हि प्राणिनां भरतानुज ॥ आवयोः का गतिस्तात भविष्यति सुदुःखदा ॥ २३ ॥ प्राप्य जन्म मनोर्वंशे राजपुत्रावुभौ किल ॥ वनेऽति-

मर गया । तब भगवान रामने स्वयं उसका दाहसंस्कार किया और और्ध्वदैहिक कृत्य सम्पन्न करके राम और लक्ष्मण आगे बढ़े ॥ १६ ॥ मार्गमें कबन्धका वध करके उसे शापमुक्त किया । उसी कबन्धके संकेतपर उन्होंने सुग्रीवसे मैत्री की ॥ १७ ॥ तदनन्तर अपना काम बनानेके लिए वीर वालिको मारकर रामने किष्किन्धाका राज्य सुग्रीवको दे दिया ॥ १८ ॥ लक्ष्मणके साथ रामने दशानन द्वारा अपहृत सीताका स्मरण करते हुए वर्षाके चार महीने प्रवर्षण पर्वतपर बिताये ॥ १९ ॥ सीताके विरहसे दुखी रामने लक्ष्मणसे कहा—सौमित्रे ! कैकेयीकी कामना पूर्ण हो गयी ॥ २० ॥ यदि सीता न मिलीं तो मैं उनके बिना जीवित न रहूँगा । जानकीके बिना मैं अयोध्या भी न लौट सकूँगा ॥ २१ ॥ राज्य गया, वनवास करना पड़ा, पिताजी मर गये और प्रियतमा सीताका अपहरण हुआ। इस प्रकार मुझे सताता हुआ दुष्ट दैव भविष्यमें न जाने क्या करनेवाला है ॥२२॥ हे भरतके छोटे भाई लक्ष्मण ! भविष्यकी बातोंको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जानना बहुत कठिन है। हे तात! अब हम दोनों भाइयोंकी न जाने क्या दुर्गति होनेवाली है॥ २३ ॥ मनुवंशमें जन्म पाकर हम राजपुत्र हुए, किन्तु आज हम वनोंमें मारे-मारे फिर रहे हैं। यह सब पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है॥ २४ ॥ राजसी सुख त्यागकर तुम भी घरसे चल पड़े। हे सौमित्र! अब दैवयोगसे प्राप्त होनेवाला महान् कष्ट भोगो ॥ २५ ॥ मेरे कुलमें मेरे जैसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ, जिसे इतना दुःख झेलना पड़ा हो। मेरे सदृश अकिंचन, असमर्थ और दुःखभागी मनुष्य न कभी कोई हुआ है और न भविष्यमें ही होगा ॥ २६ ॥ हे लक्ष्मण! मैं क्या करूँ? मैं दुःखके समुद्रमें डूब रहा हूँ. मुझ असहायको कोई भी ऐसा उपाय नहीं दिखायी देता, जिससे इसको पार कर सकूँ ॥ २७ ॥ हे वीर! मेरे पास न धन है और न बल। एकमात्र तुम्हीं मेरे सहायक हो। हे अनुज! अपने कर्मका फल भोगते हुए मैं किसपर क्रोध करूँ? ॥ २८ ॥ इन्द्र और यमके राज्यकी तरह हाथमें आया हुआ विशाल राज्य क्षण भरमें चला गया और वनवास करना पड़ा। विधाताके विधानको भला कौन जान सकता है? ॥२९॥ बाल्यस्वभावकी चपलतावश सीता भी हम दोनोंके साथ चली आयी। सो दुष्ट

दुःखभोक्तारौ जातौ पूर्वकृतेन च ॥ २४ ॥ त्यक्त्वा त्वमपि भोगांस्तु मया सह विनिर्गतः ॥ दैवयोगाच्च सौमित्रे भुंक्ष्व दुःखं दुरत्ययम् ॥ २५ ॥ न कोऽप्यस्मत्कुले पूर्वं मत्समो दुःखभाङ्नरः ॥ अकिंचनोऽक्षमः क्लिष्टो न भूतो न भविष्यति ॥ २६ ॥ किं करोम्यद्य सौमित्रे मग्नोऽस्मि दुःखसागरे ॥ न चास्ति तरणोपायो ह्यसहायस्य मे किल ॥ २७॥ न वित्तं न बलं वीर त्वमेकः सहचारकः ॥ कोपं कस्मिन्करोम्यद्य भोगेऽस्मिन्स्वकृतेऽनुज ॥ २८॥ गतं हस्तगतं राज्यं क्षणादिंद्रयमोपमम् ॥ वने वासस्तु संप्राप्तः को वेद विधिनिर्मितम् ॥ २९ ॥ बालभावाच्च वैदेही चलिता चावयोः सह ॥ नीता दैवेन दुष्टेन श्यामा दुःखतरां दशाम् ॥ ३० ॥ लंकेशस्य गृहे श्यामा कथं दुःखे भविष्यति ॥ पतिव्रता सुशीला च मयि प्रीतियुता भृशम् ॥ ३१ ॥ न च लक्ष्मण वैदेही सा तस्य वशगा भवेत् ॥ स्वैरिणीव वरारोहा कथं स्याज्जनकात्मजा ॥ ३२ ॥ त्यजेत्प्राणान्नियंत्रत्वे मैथिली भरतानुज ॥ न रावणस्य वशगा भवेदिति सुनिश्चितम् ॥ ३३ ॥ मृता चेज्जानकी वीर प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ मृता चेदसितापाङ्गी किं मे देहेन लक्ष्मण ॥३४॥ एवं विलपमानं तं रामः कमललोचनम्॥ लक्ष्मणः प्राह धर्मात्मा सांत्वयन्नृतया गिरा ॥३५॥ धैर्यं कुरु महाबाहो त्यक्त्वा कातरतामिह॥ आनयिष्यामि वैदेहीं हत्वा तं राक्षसाधमम् ॥३६॥ आपदि संपदि तुल्या धैर्याद्भवंति ते धीराः॥ अल्पधियस्तु निमग्नाः कष्टे भवंति

दैवने उस सुन्दरीको दुःखकी स्थितिमें पहुँचा दिया ॥३०॥ लंकेश रावणके घरमें सीता कितनी दुःखिनी होगी? वह पतिव्रता है, सुशील है और मुझपर अत्यधिक प्रेम रखती है ॥३१॥ अतएव हे लक्ष्मण! सीता कदापि उस दुष्टके वशमें नहीं होगी। महाराज जनककी पुत्री होकर वह कुलटाके समान आचरण कैसे करेगी? ॥ ३२ ॥ विशेष दबाव पड़नेपर वह प्राण त्याग देगी। किन्तु रावणके वशमें नहीं होगी। यह निश्चित है॥ ३३ ॥ हे वीर! यदि जानकी मरी तो मैं भी प्राण त्याग दूँगा। हे लक्ष्मण! सीताके मर जानेपर मेरे जीवित रहनेसे क्या लाभ? ॥ ३४ ॥ इस प्रकार विलाप करते हुए कमललोचन रामको सान्त्वना देते हुए धर्मात्मा लक्ष्मणने कहा—॥ ३५ ॥ हे महाबाहो! आप कातरता त्यागकर धीरज धरिए। मैं उस अधम राक्षसका वध करके जानकीको लौटा लाऊँगा ॥ ३६ ॥ जो लोग सम्पत्ति तथा विपत्ति दोनों दशाओंमें समान रहते हैं, वे ही धैर्यशाली कहे जा सकते हैं। अल्पबुद्धि मनुष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पत्ति तथा विपत्ति दोनोंमें दुखी रहते हैं ॥ ३७ ॥ संयोग और वियोग दोनों ही दैवके अधीन रहते हैं। जब कि शरीर आत्मासे पृथक् वस्तु है, तब इसके लिए शोक किस बातका ? ॥३८॥ जिस प्रकार हमें राज्यसे निर्वासित होकर वनवास करना पड़ा और सीताका हरण हुआ। उसी प्रकार अच्छा समय आनेपर यह वियोग भी संयोगके रूपमें परिणत हो जायगा ॥३९॥ हे सीतापते! सदा प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखसे भला कभी छुटकारा मिल सकता है ? वह तो भोगना ही पड़ेगा। अतएव आप शोक त्याग दें ॥४०॥ हमारे सहायक बहुतेरे वानर हैं, वे चारों ओर जायँगे और सीताका पता लगायेंगे ॥ ४१ ॥ पता लग जानेपर मार्गकी स्थिति समझकर मैं वहाँ जाऊँगा और अपने पराक्रमसे उस पापीको मारकर सीताको ले आऊँगा ॥ ४२ ॥ हे बड़े भैया ! वैसे न काम चलेगा तो सेना समेत भरतको बुलाऊँगा। इस प्रकार हम लोग शत्रुको समाप्त कर देंगे। आप व्यर्थ शोक क्यों करते हैं ? ॥ ४३ ॥

विभवेऽपि ॥ ३७ ॥ संयोगो विप्रयोगश्च दैवाधीनावुभावपि ॥ शोकस्तु कीदृशस्तत्र देहेऽनात्मनि च क्वचित् ॥ ३८ ॥ राज्याद्यथा वने वासो वैदेह्या हरणं यथा ॥ तथा काले समीचीने संयोगोऽपि भविष्यति ॥३९॥ प्राप्तव्यं सुखदुःखानां भोगान्निर्वर्तनं क्वचित् ॥ नान्यथा जानकीजाने तस्माच्छोकं त्यजाधुना ॥४०॥ वानराः सन्ति भूयांसो गमिष्यंति चतुर्दिशम् ॥ शुद्धिं जनकनन्दिन्या आनयिष्यन्ति ते किल ॥ ४१ ॥ ज्ञात्वा मार्गस्थितिं तत्र गत्वा कृत्वा पराक्रमम् ॥ हत्वा तं पापकर्माणमानयिष्यामि मैथिलीम् ॥ ४२ ॥ ससैन्यं भरतं वाऽपि समाहूय सहानुजम् ॥ हनिष्यामो वयं शत्रुं किं शोचसि वृथाऽग्रज ॥ ४३ ॥ रघुणैकरथेनैव जिताः सर्वा दिशः पुरा ॥ तद्वंशजः कथं शोकं कर्तुमर्हसि राघव ॥ ४४ ॥ एकोऽहं सकलाञ्जेतुं समर्थोऽस्मि सुरासुरान् ॥ किं पुनः ससहायो वै रावणं कुलपांसनम् ॥ ४५ ॥ जनकं वा समानीय साहाय्ये रघुनन्दन ॥ हनिष्यामि दुराचारं रावणं सुरकंटकम् ॥ ४६ ॥ सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ॥ चक्रनेमिरिवैकं तन्न भवेद्रघुनन्दन ॥ ४७ ॥ मनोऽतिकातरं यस्य सुखदुःखसमुद्भवे ॥ स शोकसागरे मग्नो न सुखी स्यात्कदाचन ॥४८॥ इन्द्रेण व्यसनं प्राप्तं पुरा वै रघुनन्दन ॥ नहुषः स्थापितो देवैः सर्वैर्मघवतः पदे ॥ ४९ ॥ स्थितः पंकजमध्ये च बहुवर्षगणानपि ॥ अज्ञातवासं मघवा भीतस्त्यक्त्वा निजं पदम् ॥५०॥ पुनः प्राप्तं निजं स्थानं काले विपरिवर्तिते ॥ नहुषः

हे राघव ! महाराज रघुने पूर्वकालमें एक ही बार रथपर बैठकर सब दिशायें जीत ली थीं। उन्हींके वंशज होकर आप इस प्रकार शोक करते हैं ? ॥४४॥ मैं अकेला ही सब देवताओं और दैत्योंको जीतनेमें समर्थ हूँ। फिर आप जैसे सहायकके रहते उस कुलाधमको मारनेमें क्या कठिनाई है ? ॥४५॥ हे रघुनन्दन ! यदि वैसे काम न बनेगा तो मैं महाराज जनकको सहायताके लिए बुला लूँगा और देवताओंके कण्टकस्वरूप कुलाधम रावण तथा उसके सहायकोंको समाप्त कर दूँगा ॥ ४६ ॥ हे रघुनन्दन ! कभी भी अकेले दुःख अथवा सुखकी ही स्थिति नहीं बनी रहती। बल्कि पहियेकी धुराके समान सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख आता रहता है ॥४७॥ सुख तथा दुःख आ पड़नेपर जो धीरज खो देता है, उसे कदापि सुख नहीं मिलता ॥ ४८ ॥ हे रघुनन्दन ! पूर्वकालमें इन्द्रके ऊपर भी विपत्ति आयी थी और देवताओंने राजा नहुषको इन्द्रासनपर बैठा दिया था ॥ ४९ ॥ उस समय इन्द्रने भयवश अपना पद त्यागकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बहुत दिनों तक कमलवनमें छिपकर अज्ञातवास किया था ॥५०॥ दिन फिरनेपर वे फिर अपने पदपर पहुँच गये और राजा नहुषको शापसे अजगर बनकर भूमिपर गिरना पड़ा ॥५१॥ इन्द्रासन पानेपर नहुषने विप्रोंका अपमान करके इन्द्राणीपर नजर गड़ायी । जिससे महर्षि अगस्त्य कुपित हो गये और उन्होंने शाप देकर उसे अजगर सर्पकी योनिमें भेज दिया ॥ ५२ ॥ अतएव हे राघव ! संकट आ पड़नेपर शोक न करना चाहिए । बल्कि ऐसे समय मनको किसी बहुत अच्छे काममें लगाकर समयकी प्रतीक्षा करना उचित होता है ॥ ५३ ॥ हे महाभाग ! आप सर्वज्ञ हैं । हे जगतीपते ! आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं । तब एक तुच्छ मनुष्यकी तरह आप शोक क्यों करते हैं ? ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले कि लक्ष्मणकी इन बातोंसे भगवान रामको सान्त्वना मिली और शोक त्यागकर वे सर्वथा स्वस्थ हो गये ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

पतितो भूमौ शापादजगराकृतिः ॥ ५१ ॥ इन्द्राणीं कामयानस्तु ब्राह्मणानवमान्य च ॥ अगस्त्यकोपात्संजातः सर्पदेहो महीपतिः ॥ ५२ ॥ तस्माच्छोको न कर्तव्यो व्यसने सति राघव ॥ उद्यमे चित्तमास्थाय स्थातव्यं वै विपश्चिता ॥ ५३ ॥ सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थोऽसि जगत्पते ॥ किं प्राकृत इवात्यर्थं कुरुषे शोकमात्मनि ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति लक्ष्मणवाक्येन बोधितो रघुनन्दनः ॥ त्यक्त्वा शोकं तथाऽत्यर्थं बभूव विगतज्वरः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ एवं तौ संविदं कृत्वा यावत्तूष्णीं बभूवतुः ॥ आजगाम तदाऽऽकाशान्नारदो भगवानृषिः ॥ १ ॥ रणयन्महतीं वीणां स्वरग्रामविभूषिताम् ॥ गायन्बृहद्रथं साम तदा तमुपतस्थिवान् ॥ २ ॥ दृष्ट्वा तं राम उत्थाय ददावथ वृषं शुभम् ॥ आसनं चार्घ्यपाद्यं च कृतवानमितद्युतिः ॥ ३ ॥ पूजां परमिकां कृत्वा कृतांजलिरुपस्थितः ॥ उपविष्टः समीपे तु कृताज्ञो मुनिना हरिः ॥ ४ ॥ उपविष्टं तदा रामं सानुजं दुःखमानसम् ॥ पप्रच्छ नारदः प्रीत्या कुशलं मुनिसत्तमः ॥५॥ कथं राघव शोकार्तो यथा वै प्राकृतो नरः ॥ हृतां सीतां च जानामि रावणेन दुरात्मना ॥ ६ ॥ सुरसद्मगतश्चाहं श्रुतवाञ्जनकात्मजाम् ॥ पौलस्त्येन हृतां मोहान्मरणं स्वमजानता ॥ ७ ॥ तव जन्म च काकुत्स्थ पौलस्त्यनिधनाय वै ॥

(नारदजीका भगवान रामको नवरात्र व्रत करनेकी सलाह देना) व्यासजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार परस्पर परामर्श करके वे दोनों चुप हुए । तभी आकाशमार्गसे देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे ॥ १ ॥ उस समय वे स्वरसमुदायसे विभूषित अपनी महती नामकी वीणाको बजाते हुए बृहद्रथन्तर सामका गान कर रहे थे ॥ २ ॥ उन्हें देखते ही अमिततेजस्वी रामजी उठ खड़े हुए । उन्होंने मुनिराजको आसन देकर अर्घ्य और पाद्य अर्पण किया ॥ ३ ॥ भलीभाँति पूजन करके भगवान राम हाथ जोड़कर खड़े हो गये । बादमें मुनिकी अनुमति पाकर उनके समीप बैठे ॥ ॥ अपने लघु भ्राता लक्ष्मणके साथ भगवान राम जब दुःखित मनसे बैठ गये, तब मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उनसे कुशल-क्षेम पूछा ॥५॥ और कहा – हे राघव ! आप एक साधारण मनुष्यके समान शोकाकुल क्यों हैं ? मैं यह जानता हूँ कि दुष्ट रावण सीताको हर ले गया है ॥ ६ ॥ जब मैं देवलोकमें था तो वहाँ ही सुना कि मोहवश रावणने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी मृत्युस्वरूपा सीताका अपहरण किया है ॥७॥ हे काकुत्स्थ! आपका जन्म ही रावणका वध करनेके लिए हुआ है। हे नराधिप! इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए ही सीताजी हरी गयी हैं ॥८॥ पूर्वजन्ममें महारानी सीता एक मुनिकी तपस्विनी पुत्री थीं। उस निर्दोष मुस्कानवाली मुनिकन्याको रावणने वनमें तप करते देखा ॥९॥ तब हे राघव! रावणने उससे प्रार्थना करते हुए कहा कि तुम मेरी पत्नी बन जाओ। इसपर मुनिकन्याने उसे धिक्कारा। तब रावणने लपककर उसके केश पकड़ लिये ॥ १० ॥ हे राम! उस पापीके स्पर्शसे अपने दूषित शरीरको त्याग देनेका विचार करती हुई उस तपस्विनीने उसे शाप देकर कहा—अरे दुरात्मन्! तेरा विनाश करनेके लिए मैं धरतीपर बिना योनिके ही उत्पन्न हूँगी। ऐसा कहकर उस तापसी स्त्रीने अपना तन त्याग दिया ॥११॥१२॥ सो साक्षात् लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न महारानी सीताका उसी तरह अपहरण किया गया है, जैसे कोई मनुष्य अनजानमें माला समझकर सर्पिणीको पकड़ ले। उस दुष्ट रावणने अपने कुलका नाश करनेके लिए ही ऐसा किया है ॥ १३ ॥ हे काकुत्स्थ! आप अजन्माका जन्म भी देवताओंके प्रार्थना करनेपर साक्षात् विष्णु भगवानके

मैथिलीहरणं जातमेतदर्थं नराधिप ॥ ८ ॥ पूर्वजन्मनि वैदेही मुनिपुत्री तपस्विनी ॥ रावणेन वने दृष्टा तपस्यंती शुचिस्मिता ॥ ९ ॥ प्रार्थिता रावणेनासौ भव भार्येति राघव ॥ तिरस्कृतस्तयाऽसौ वै जग्राह कबरं बलात् ॥ १० ॥ शशाप तत्क्षणं राम रावणं तापसी भृशम् ॥ कुपिता त्यक्तुमिच्छंती देहसंस्पर्शदूषितम् ॥ ११ ॥ दुरात्मंस्तव नाशार्थं भविष्यामि धरातले ॥ अयोनिजा वरा नारी त्यक्त्वा देहं जहावपि ॥ १२ ॥ सेयं रमांशसुभृता गृहीता तेन रक्षसा ॥ विनाशार्थं कुलस्यैव व्यली स्रगिव संभ्रमात् ॥ १३ ॥ तव जन्म च काकुत्स्थ तस्य नाशाय चामरैः ॥ प्रार्थि-तस्य हरेरंशादजवंशेऽप्यजन्मनः ॥ १४ ॥ कुरु धैर्यं महाबाहो तत्र सा वर्ततेऽवशा ॥ सतीधर्मरता सीता त्वां ध्यायंती दिवानिशम् ॥ १५ ॥ कामधेनुपयः पात्रे कृत्वा मघवता स्वयम् ॥ पानार्थं प्रेषितं तस्याः पीतं चैवामृतं यथा ॥ १६ ॥ सुरभीदुग्धपानात्सा क्षुत्तृड् दुःखविवर्जिता ॥ जाता कमलपत्राक्षी वर्तते वीक्षिता मया ॥ १७ ॥ उपायं कथयाम्यद्य तस्य नाशाय राघव ॥ व्रतं कुरुष्व श्रद्धावानाश्विने मासि सांप्रतम् ॥१८॥ नवरात्रोपवासं च भगवत्याः प्रपूजनम् ॥ सर्वसिद्धिकरं राम जपहोमविधानतः ॥ १९ ॥ मेध्यैश्च पशुभिर्देव्या बलिं दत्त्वा विशंकितैः ॥ दशांशं हवनं कृत्वा सुशक्तस्त्वं भविष्यसि ॥ २० ॥ विष्णुनाऽऽचरितं पूर्वं महादेवेन ब्रह्मणा ॥ तथा मघवता चीर्णं स्वर्गमध्यस्थितेन वै ॥ २१ ॥ सुखिना राम कर्तव्यं

अंशसे रावणके विनाशार्थ ही हुआ है ॥ १४ ॥ हे महाबाहो! आप धीरज धरिए। लंकामें सतीधर्मपरायणा सीता विवशभावसे रहती हुई रात-दिन आपका ध्यान किया करती है ॥ १५ ॥ स्वयं देवराज इन्द्रने एक पात्रमें कामधेनुका दूध सीताको पीनेके लिए भेजा था। उसने अमृत जैसा वह दूध पी लिया है ॥१६॥ कामधेनुका दुग्ध पान करनेसे वह भूख-प्यास तथा सब दुःखोंसे छुटकारा पा गयी है। वह कमलनयनी अब सर्वथा स्वस्थ है। मैं उसे स्वयं देख आया हूँ ॥ १७ ॥ हे राघव! अब उस रावणके विनाशका उपाय बताता हूँ। इसके निमित्त आप श्रद्धापूर्वक आश्विन मासमें नवरात्र व्रत करिए ॥ १८ ॥ हे राम! नवरात्रमें उपवास, भगवतीका पूजन तथा विधिवत् जप-होम करनेसे सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ १९ ॥ देवीको पवित्र पशुओंकी बलि अर्पण करके दशांश हवन और दशांश जप करके आप पूर्ण शक्तिसम्पन्न हो जायँगे ॥ २० ॥ सर्वप्रथम भगवान विष्णुने यह व्रत किया था। तत्पश्चात् शंकरजी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और ब्रह्माजीने किया। उन दोनोंके बाद स्वर्गमें विराजमान इन्द्रने इस व्रतका पालन किया ॥२१॥ हे राम! जो लोग सब तरहसे सुखी हों, वे इस व्रतको करें। जो किसी संकटमें हों, उन्हें विशेष रूपसे यह व्रत करना चाहिए ॥ २२ ॥ हे काकुत्स्थ! महर्षि विश्वामित्रने यह व्रत किया था। भृगु, वसिष्ठ तथा कश्यप भी इसे कर चुके हैं ॥२३॥ जब देवगुरु बृहस्पतिकी भार्याको चन्द्रमाने हर लिया, तब उन्होंने भी नवरात्रव्रत किया था। अतएव हे राजेन्द्र! रावणका वध करनेके लिए आप भी यह व्रत करिए ॥२४॥ वृत्रासुरका वध करनेके लिए इन्द्रने और त्रिपुरासुर-के नाशार्थ शंकर भगवानने भी इस उत्तम व्रतको किया था ॥ २५ ॥ मधुदैत्यका वध करनेके लिए विष्णुने सुमेरु पर्वतके शिखरपर इस व्रतका पालन किया था। अतएव हे महामते! हे काकुत्स्थ! आप भी पूर्ण तत्परताके साथ यह व्रत करिए ॥ २६ ॥ श्रीरामजी बोले–हे दयानिधे! वे देवी कौन हैं? उनका कैसा प्रभाव है? वे कहाँ उत्पन्न हुई हैं? उनका नाम क्या है? वह व्रत कौनसा है? सा आप मुझे भलीभाँति बताइए। क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ॥ २७ ॥ देवर्षि नारद बोले–हे राम! सुनिए, वे देवी नित्य सनातनी और आद्या शक्ति हैं। वे अपने

नवरात्रव्रतं शुभम् ॥ विशेषेण च कर्तव्यं पुंसा कष्टगतेन वै ॥ २२ ॥ विश्वामित्रेण काकुत्स्थ कृतमेतन्न संशयः ॥ भृगुणाऽथ वसिष्ठेन कश्यपेन तथैव च ॥ २३ ॥ गुरुणा हृतदारेण कृतमेतन्महाव्रतम् ॥ तस्मात्त्वं कुरु राजेन्द्र रावणस्य वधाय च ॥ २४ ॥ इन्द्रेण वृजनाशाय कृतं व्रतमनुत्तमम् ॥ त्रिपुरस्य विनाशाय शिवेनापि पुरा कृतम् ॥२५॥ हरिणा मधुनाशाय कृतं मेरौ महामते ॥ विधिवत्कुरु काकुत्स्थ व्रतमेतदतंद्रितः ॥२६॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ का देवी किंप्रभावा सा कुतो जाता किमाह्वया ॥ व्रतं किं विधिवद्ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ शृणु राम सदा नित्या शक्तिराद्या सनातनी ॥ सर्वकामप्रदा देवी पूजिता दुःखनाशिनी ॥ २८ ॥ कारणं सर्वजन्तूनां ब्रह्मादीनां रघूद्वह ॥ तस्याः शक्तिं बिना कोऽपि स्पंदितु नक्षमो भवेत् ॥२९॥ विष्णोः पालनशक्तिः सा कर्तृशक्तिः पितुर्मम ॥ रुद्रस्य नाशशक्तिः सा त्वन्या शक्तिः परा शिवा ॥३०॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्भुवनत्रये ॥ तस्य सर्वस्य या शक्तिस्तदुत्पत्तिः कुतो भवेत् ॥ ३१ ॥ न ब्रह्मा न यदा विष्णुर्न रुद्रो न दिवाकरः ॥ न चेन्द्राद्याः सुराः सर्वे न धरा न धराधराः ॥३२॥ तदा सा प्रकृतिः पूर्णा पुरुषेण परेण वै ॥ संयुता विहरत्येव युगादौ निर्गुणा शिवा ॥३३॥ सा भूत्वा सगुणा पश्चात्करोति भुवनत्रयम् ॥ पूर्वं संसृज्य ब्रह्मादीन्दत्त्वा शक्तींश्च सर्वशः ॥३४॥ तां ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ सा विद्या

भक्तोंकी सब इच्छायें पूर्ण करती और पूजा पानेपर सब दुःख नष्ट कर देती है ॥२८॥ हे रघुवंशविभूषण! वे ब्रह्मादि देवताओं तथा सब जीवोंकी कारणस्वरूपा हैं। उनसे शक्ति पाये बिना कोई हिल भी नहीं सकता ॥ २९ ॥ वे भगवान विष्णुकी पालनशक्ति और मेरे पिता ब्रह्माकी सृष्टिशक्ति है। शंकरजीमें जो नाशशक्ति रहती है, वह वे परा भगवती ही हैं ॥ ३० ॥ अखिल त्रिलोकीमें उत्कृष्ट या निकृष्ट जितनी भी वस्तुयें हैं, उन सबमें वे शक्तिरूपा होकर विद्यमान रहती हैं। जब वे स्वतः शक्ति हैं, तब उनकी उत्पत्ति कहाँसे बतायी जाय? ॥३१॥ इस सृष्टिके पहले जब ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्रादि देवता, पृथिवी और पर्वत कुछ भी नहीं रहता ॥ ३२ ॥ तब युगके आरम्भमें वे निर्गुणा शिवा तथा पूर्णा प्रकृति ही परम पुरुषके साथ विहार करती हैं ॥ ३३ ॥ बादमें वे ही सगुणा होकर तीनों भुवनोंकी रचना करती हैं। सबसे पहले वे ब्रह्मा-विष्णु आदि देवताओंको उत्पन्न करके उन्हें विभिन्न शक्तियाँ देती हैं ॥ ३४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन परमा, विद्या, ज्ञेया, वेदाज्ञा और वेदकारिणी भगवतीको जो जान लेता है, वह प्राणी जन्म-मरणरूपी भवबन्धनसे सदाके लिए मुक्त हो जाता है ॥३५॥ ब्रह्मादिक देवताओंने गुण-कर्मके विधानानुसार उनके असंख्य नाम कल्पित किये हैं। मैं कहाँ तक बताऊँ ॥ ३६ ॥ हे रघुनन्दन! 'अ'से 'क्ष'पर्यन्त जितने भी स्वर-व्यञ्जनके अक्षर हैं और स्वर तथा मात्राके संयोगसे जितने नाम बनते हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। उसी प्रकार उन महामायाके नाम भी गणनासे परे हैं ॥३७॥ भगवान राम बोले—हे ब्रह्मर्षे! आप संक्षेपमें इस व्रतकी विधि बताइए। मैं आज ही पूर्ण श्रद्धाके साथ उन देवीकी पूजा करूँगा ॥ ३८ ॥ नारदजी बोले—हे राम! किसी समतल भूमिपर सिंहासन रखकर उसपर भगवती जगदम्बिकाकी स्थापना करके विधिवत् नौ दिन उपवास करिए ॥ ३९ ॥ हे राजन्! उस कार्यमें मैं आपका आचार्य बनूँगा। क्योंकि देवताओंके कार्यमें मेरा अत्यधिक उत्साह रहता है ॥ ४० ॥ व्यासजी बोले—नारदजीके

परमा ज्ञेया वेदाज्ञा वेदकारिणी ॥ ३५ ॥ असंख्यातानि नामानि तस्या ब्रह्मादिभिः किल ॥ गुणकर्मविधानैस्तु कल्पितानि च किं ब्रुवे ॥ ३६ ॥ अकारादिक्षकारांतैः स्वरैर्वर्णैस्तु योजितैः ॥ असंख्येयानि नामानि भवंति रघुनन्दन ॥३७॥ राम उवाच ॥ विधिं मे ब्रूहि विप्रर्षे व्रतस्यास्य समासतः ॥ करोम्यद्यैव श्रद्धावाञ्छ्रीदेव्याः पूजनं तथा ॥३८॥ नारद उवाच ॥ पीठं कृत्वा समे स्थाने संस्थाप्य जगदम्बिकाम् ॥ उपवासान्नवैव त्वं कुरु राम विधानतः ॥ ३९ ॥ आचार्योऽहं भविष्यामि कर्मण्यस्मिन्महीपते ॥ देवकार्यविधानार्थमुत्साहं प्रकरोम्यहम् ॥ ४० ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं मत्वा रामः प्रतापवान् ॥ कारयित्वा शुभं पीठं स्थापयित्वाऽम्बिकां शिवाम् ॥ ४१ ॥ विधिवत्पूजनं तस्याश्चकार व्रतवान् हरिः ॥ संप्राप्ते चाश्विने मासि तस्मिन्गिरिवरे तदा ॥ ४२ ॥ उपवासपरो रामः कृतवान्व्रतमुत्तमम् ॥ होमं च विधिवत्तत्र बलिदानं च पूजनम् ॥ ४३ ॥ भ्रातरौ चक्रतुः प्रेम्णा व्रतं नारदसंमतम् ॥ अष्टम्यां मध्यरात्रे तु देवी भगवती हि सा ॥ ४४ ॥ सिंहारूढा ददौ तत्र दर्शनं प्रतिपूजिता ॥ गिरिशृङ्गे स्थितोवाच राघवं सानुजं गिरा ॥ ४५ ॥ मेघगम्भीरया चेदं भक्तिभावेन तोषिता ॥ देव्युवाच ॥ राम राम महाबाहो तुष्टाऽस्म्यद्य व्रतेन ते ॥ ४६ ॥ प्रार्थयस्व वरं कामं यत्ते मनसि वर्तते ॥ नारायणांशसंभूतस्त्वं वंशे मानवेऽनघे ॥ ४७ ॥ रावणस्य वधायैव प्रार्थितस्त्वममरैरसि ॥ पुरा मत्स्यतनुं कृत्वा हत्वा

वचन सुनकर परम प्रतापी भगवान रामने उन्हें सर्वथा सत्य समझा। नारदजीकी योजनाके अनुसार एक सुन्दर सिंहासनपर उन्होंने अम्बिका शिवाकी स्थापना की ॥४१॥ तब विधिवत् व्रत लेकर भगवानने आश्विनमास लगनेपर उसी प्रवर्षण पर्वतके शिखरपर विधिपूर्वक उनका पूजन किया ॥४२॥ उपवासपरायण रामने वह व्रत करते हुए विधिवत् होम, बलिदान और पूजन किया ॥४३॥ नारदजीके परामर्शानुसार राम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंने बड़े प्रेमके साथ वह व्रत किया। अष्टमीकी मध्यरात्रिके समय देवी भगवतीने सिंहपर सवार होकर उनको दर्शन दिया। तदनन्तर एक पर्वतकी चोटीपर बैठकर लक्ष्मण समेत रामसे उन्होंने कहा ॥४४॥४५॥ उनकी वाणी मेघगर्जनके समान गम्भीर थी और वे उन दोनों भाइयोंके भक्तिभावसे प्रसन्न थीं। भगवती बोलीं—हे राम! हे राम! हे महाबाहो! आज मैं आपके व्रतसे सन्तुष्ट हो गयी ॥ ४६ ॥ आपके मनमें जो हो, वह वर मुझसे माँगिए। आप साक्षात् नारायणके अंशसे पवित्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनुवंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ ४७ ॥ क्योंकि देवताओंने आपसे रावणके वधकी प्रार्थना की थी । पूर्वकालमें आपने मत्स्यरूप धारण करके भयानक राक्षसका वध किया था ॥ ४८ ॥ उस मत्स्यावतारमें देवताओंके कल्याणार्थ आपने वेदोंकी रक्षा की थी । आपने कच्छपरूप धारण करके मन्दर पर्वतको अपनी पीठपर रख लिया था ॥ ४९ ॥ आपने ही समुद्रमन्थन कर तथा अमृत पान कराके देवताओंका पोषण किया था । पूर्वकालमें आपने शूकरका रूप धारण करके अपने दाँतोंपर पृथिवीको रखकर हिरण्याक्षका वध किया था । हे राम ! हे राघव ! पूर्वकालमें आपने नृसिंहका रूप धारण करके प्रह्लादको बचाया और हिरण्यकशिपुका वध किया । एक समय आपने वामनका रूप धारण करके बलिको छला था ॥५०-५२॥ उस समय इन्द्रके छोटे भाई बनकर आपने देवताओंका बहुत बड़ा काम किया था । एक समय आपने भगवान विष्णुके अंशसे महर्षि जमदग्निके पुत्र परशुरामके रूपमें अवतरित होकर क्षत्रियोंका अन्त किया और समस्त पृथिवी दान करके ब्राह्मणोंको दे दी थी । उसी प्रकार हे काकुत्स्थ ! इस समय आप दशरथसुतके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥५३॥५४॥ पूर्वकालमें रावण द्वारा बहुत सताये जानेपर

घोरं च राक्षसम् ॥ ४८ ॥ त्वया वै रक्षिता वेदाः सुराणां हितमिच्छता ॥ भूत्वा कच्छपरूपस्तु धृतवान्मन्दरं गिरिम् ॥ ४९ ॥ अकूपारं प्रमंथानं कृत्वा देवानपोषयः ॥ कोलरूपं परं कृत्वा दशनाग्रेण मेदिनीम् ॥५०॥ धृतवानसि यद्राम हिरण्याक्षं जघान च ॥ नारसिंहीं तनुं कृत्वा हिरण्यकशिपुं पुरा ॥ ५१ ॥ प्रह्लादं राम रक्षित्वा हतवानसि राघव ॥ वामनं वपुरास्थाय पुरा छलितवान्बलिम् ॥ ५२ ॥ भूत्वेंद्रस्यानुजः कामं देवकार्यप्रसाधकः ॥ जमदग्निसुतस्त्वं मे विष्णोरंशेन संगतः ॥ ५३ ॥ कृत्वाऽन्तं क्षत्रियाणां तु दानं भूमेरदाद्द्विजे ॥ तथेदानीं तु काकुत्स्थ जातो दशरथात्मजः ॥ ५४ ॥ प्रार्थितस्तु सुरैः सर्वै रावणेनातिपीडितैः ॥ कपयस्ते सहाया वै देवांशा बलवत्तराः ॥ ५५ ॥ भविष्यन्ति नरव्याघ्र मच्छक्तिसंयुता ह्यमी ॥ शेषांशोऽप्यनुजस्तेऽयं रावणात्मजनाशकः ॥५६॥ भविष्यति न सन्देहः कर्तव्योऽत्र त्वयाऽनघ ॥ वसन्ते सेवनं कार्यं त्वया तत्रातिश्रद्धया ॥ ५७ ॥ हत्वाऽथ रावणं पापं कुरु राज्यं यथासुखम् ॥ एकादश सहस्राणि वर्षाणि पृथिवीतले ॥ ५८ ॥ कृत्वा राज्यं रघुश्रेष्ठ गंतासि त्रिदिवं पुनः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी रामस्तु प्रीतमानसः ॥ ५९ ॥ समाप्य तद्व्रतं चक्रे प्रयाणं दशमीदिने ॥ विजयापूजनं कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥ ६० ॥ कपिपतिबलयुक्तः सानुजः श्रीपतिश्च प्रकटपरमशक्त्या प्रेरितः पूर्णकामः ॥ उदधितटगतोऽसौ सेतुबन्धं विधायात्यहनद-

देवताओंने उसका वध करनेके लिए आपसे प्रार्थना की थी । विभिन्न देवताओंके अंशसे उत्पन्न बलवान् वानर आपकी सहायता करेंगे ॥५५॥ हे नरशार्दूल ! वे आपके सहायक वानर मेरी शक्तिसे सम्पन्न होंगे । साक्षात् शेषभगवान्‌के अंशसे जायमान लक्ष्मण रावणके पुत्रका वध करेंगे ॥ ५६ ॥ मैंने जो बातें कही हैं, वे सब पूर्ण होंगी । इसमें सन्देह नहीं है । हे धूतात्मन् ! वसन्त ऋतु अर्थात् चैत्रके नवरात्रमें भी आप अतिशय श्रद्धापूर्वक मेरी पूजा करिएगा ॥ ५७ ॥ ऐसा करनेसे आप रावणको मारकर इस पृथिवीतलपर ग्यारह हजार वर्षतक सुखपूर्वक राज्य करेंगे ॥ ५८ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! इतने समय राज्य करनेके बाद आप फिर स्वर्गलोकको चले जायँगे । व्यासजी बोले—ऐसा कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और भगवान राम बहुत प्रसन्न हुए॥ ५९ ॥ नवरात्रके अन्तमें आश्विन शुक्ल दशमीको उन्होंने वह व्रत समाप्त किया । फिर विजया भगवतीका पूजन करके अनेक प्रकारका दान दिया और उसी दिन भगवान गमने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लंकाकी ओर प्रस्थान किया ॥६०॥ वानरराज सुग्रीवकी वानरी सेनाके साथ अनुजसमेत लक्ष्मीपति एवं पूर्णकाम भगवान राम उस परमा शक्तिकी प्रेरणासे समुद्रतटपर गये। वहाँ सेतुकी रचना करके उन्होंने देवशत्रु रावणका वध किया। इस महान् कार्यसे उनकी कीर्ति समस्त भुवनमें गायी जाने लगी ॥६१॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देवीके चरित्रको सुनता है, वह बहुतेरे

मरशत्रुं रावणं गीतकीर्तिः ॥ ६१ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ स भुक्त्वा विपुलान्भोगान्प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ६२ ॥ सन्त्यन्यानि पुराणानि विस्तराणि बहूनि च ॥ श्रीमद्भागवतस्यास्य न तुल्यानीति मे मतिः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादश-साहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

सुखदायक भोगोंको भोगकर अन्तमें मोक्षरूपी परम पद प्राप्त कर लेता है ॥ ६२ ॥ यद्यपि अत्यन्त विस्तृत बहुतेरे अन्य पुराण भी हैं, किन्तु वे इस देवीभागवत महापुराणकी बराबरी नहीं कर सकते। ऐसी मेरी धारणा है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ समाप्तोऽयं तृतीयः स्कन्धः ॥

॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा'भाषाटीकासहिते--

श्रीमद्देवीभागवते तृतीयः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा'भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते चतुर्थः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(राजा जनमेजयके कृष्णावतारसम्बन्धी प्रश्न) राजा जनमेजय बोले—हे वासवेय ! हे मुनिश्रेष्ठ ! सर्वज्ञाननिधे ! हे भूतात्मन् ! हे स्वामिन् ! हे मेरे कुलकी वृद्धि करनेवाले महापुरुष ! मैंने ऐसा सुना था कि परम प्रतापशाली श्रीमान् वसुदेव राजा शूरसेनके पुत्र थे और साक्षात् विष्णुभगवान उनके पुत्र होकर अवतरे थे ॥ १ ॥ २ ॥ वे आनकदुन्दुभि वसुदेव देवताओंके भी पूज्य थे । इतने बड़े धर्मात्मा हो करके भी वे कैदी बनकर कंसके कारागारमें क्यों बन्द हुए ? ॥३॥ उन्होंने ऐसा कौनसा अपराध किया था कि जिससे अपनी भार्या देवकीके साथ कैदमें रहते हुए कंसके हाथों उनके छ पुत्र मारे गये ? ॥ ४ ॥ राजा ययातिके वंशमें उत्पन्न कंसने भी इस प्रकार बालहत्याका पाप क्यों किया ? साक्षात् परमात्माने वसुदेवके पुत्र होकर कारागारमें जन्म क्यों लिया ? ॥ ५ ॥ देवताओंके अधिपति भगवान कृष्ण गोकुलमें कैसे पहुँचाये गये ? उनके माता-पिता कारागारमें क्यों पड़े ? ॥ ६ ॥ साक्षात् विष्णुका अवतार होते हुए भी अमित तेजस्वी भगवान श्रीकृष्णने अपने वृद्ध माता-पिता देवकी-वसुदेवको वन्धनमुक्त क्यों नहीं किया ? ॥ ७ ॥ समस्त विश्वकी सृष्टि करनेमें समर्थ होते हुए भी परमात्मा

॥ जनमेजय उवाच ॥ वासवेय मुनिश्रेष्ठ सर्वज्ञाननिधेऽनघ ॥ प्रष्टुमिच्छाम्यहं स्वामिन्नस्माकं कुलवर्धन ॥ १ ॥ शूरसेनसुतः श्रीमान्वसुदेवः प्रतापवान् ॥ श्रुतं मया हरिर्यस्य पुत्रभावमवाप्तवान् ॥ २ ॥ देवानामपि पूज्योऽभून्नाम्ना चानकदुन्दुभिः ॥ कारागारे कथं बद्धः कंसस्य धर्मतत्परः ॥ ३ ॥ देवक्या भार्यया सार्धं किमागः कृतवानसौ ॥ देवक्या बालषट्कस्य विनाशश्च कृतः पुनः ॥ ४ ॥ तेन कंसेन कस्माद्वै ययातिकुलजेन च ॥ कारागारे कथं जन्म वासुदेवस्य वै हरेः ॥ ५ ॥ गोकुले च कथं नीतो भगवान्सात्वतां पतिः ॥ गतो जन्मांतरं कस्मात्पितरौ निगडे स्थितौ ॥ ६ ॥ देवकीवसुदेवौ च कृष्णस्यामिततेजसः ॥ कथं न मोचितौ वृद्धौ पितरौ हरिणाऽमुना ॥ ७ ॥ जगत्कर्तुं समर्थेन स्थितेन जनकोदरे ॥ प्राक्तनं किं तयोः कर्म दुर्विज्ञेयं महात्मभिः ॥ ८ ॥ जन्म वै वासुदेवस्य यत्रासीत्परमात्मनः ॥ के ते पुत्राश्च का बाला या कंसेन विपोथिता ॥ ९ ॥ शिलायां निर्गता व्योम्नि जाता त्वष्टभुजा पुनः ॥ गार्हस्थ्यं च हरेर्ब्रूहि बहुभार्यस्य चानघ ॥१०॥ कार्याणि तत्र तान्येव देहत्यागं च तस्य वै ॥ किंवदन्त्या श्रुतं यत्तन्मनो मोहयतीव मे ॥ ११ ॥ चरितं वासुदेवस्य त्वमाख्याहि यथातथम् ॥ नरनारायणौ देवौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥ १२ ॥ धर्मपुत्रौ महात्मानौ तपश्चेरतुरुत्तमम् ॥ यौ मुनी बहुवर्षाणि पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥ १३ ॥ निराहारौ जितात्मानौ निःस्पृहौ जितषड्गुणौ ॥ विष्णोरंशौ

श्रीकृष्ण माता देवकीके गर्भमें क्यों आये ? वसुदेव-देवकीने पूर्वजन्ममें कौनसे उदात्त कर्म किये थे कि जिन्हें बड़े-बड़े महात्माओंने भी दुर्ज्ञेय जाना ? ॥ ८ ॥ जिनके यहाँ साक्षात् वासुदेव भगवानका जन्म हुआ था, उन महाभाग वसुदेवके छ पुत्र और वह कन्या कौन थी, जिसे कंसने शिलातलपर पटक दिया था और जो उसके हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी और वहाँ अष्टभुजा देवीके रूपमें दृष्टिगोचर हुई ? हे भूतात्मन् ! भगवान कृष्णने बहुतेरी स्त्रियोंके साथ रहकर जिस प्रकार गार्हस्थ्यधर्मका निर्वाह किया हो वह भी बताइए ॥ ९ ॥ १० ॥ उस गृहस्थीकी स्थितिमें किये हुए उनके कार्यों तथा अद्भुत ढंगसे शरीरत्यागकी किम्वदन्ती सुनकर मेरा मन चक्करमें पड़ गया है ॥११॥ सो आप भगवान कृष्णका वास्तविक चरित्र वर्णन करिए । नर-नारायणदेव जो पुरातन ऋषिप्रवर, धर्मपुत्र और महात्मा कहलाते हैं । उन्होंने परम पुनीत बदरिकाश्रममें बहुत वर्षोंतक उच्च कोटिकी तपस्या की ॥१२॥१३॥ वे दोनों ऋषि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सक्षात् विष्णुभगवानके अंशज थे। विश्वकल्याणके निमित्त उन्होंने निराहार, जितेन्द्रिय और निस्पृह रहते हुए काम-क्रोध-मद-मोह-लोभ-मात्सर्य नामके रिपुओंको जीतकर उत्तम तप किया ॥ १४ ॥ नारद आदि सर्वज्ञ मुनियोंने सुविख्यात वीर अर्जुन और कृष्णको ही नर-नारायणका अंशावतार बताया है ॥ १५ ॥ वे नर-नारायणदेव एक शरीर रहते हुए भी दूसरा जन्म लेकर कृष्ण और अर्जुन कैसे हुए ? ॥ १६ ॥ जिन मुनिसत्तम नर-नारायणने मुक्तिके निमित्त कठोर तप किया था, उन्हीं दोनों महामुनियोंने योगसिद्धि प्राप्त करनेके बाद भी देहबन्धनमें बँधना क्यों पसन्द किया ? ॥ १७ ॥ अपने जातिधर्ममें निष्ठा रखनेवाला शूद्र जन्मान्तरमें क्षत्रिय होता है। यदि शूद्र वर्तमान जन्ममें पवित्र आचार-विचारसे सम्पन्न रहता है तो वह जन्मांतरमें ब्राह्मण होता है ॥ १८ ॥ निस्पृह और शान्त जीवन व्यतीत करनेवाला ब्राह्मण पुनर्जन्मके रोगसे छुटकारा पा जाता है। किन्तु उन नर-नारायणके विषयमें यह बात सर्वथा विपरीत दिखायी देती है ॥१९॥ क्योंकि तपस्या द्वारा अपना शरीर सुखा करके भी वे ब्राह्मणसे क्षत्रिय हो गये। वे दोनों शान्त और तपस्वी महापुरुष क्या किसी कर्मवश अथवा किसीके

जगत्स्थेम्ने तपश्चेरतुरुत्तमम् ॥ १४ ॥ तयोरंशावतारौ हि जिष्णुकृष्णौ महाबलौ ॥ प्रसिद्धौ मुनिभिः प्रोक्तौ सर्वज्ञैर्नारदादिभिः ॥ १५ ॥ विद्यमान-शरीरौ तौ कथं देहान्तरं गतौ ॥ नरनारायणौ देवौ पुनः कृष्णार्जुनौ कथम् ॥१६॥ यौ चक्रतुस्तपश्चोग्रं मुक्त्यर्थं मुनिसत्तमौ ॥ तौ कथं प्रापतुर्देहौ प्राप्तयोगौ महातपौ ॥ १७ ॥ शूद्रः स्वधर्मनिष्ठस्तु देहान्ते क्षत्रियस्तु सः ॥ शुभाचारो मृतो यो वै स शूद्रो ब्राह्मणो भवेत् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणो निःस्पृहः शान्तो भवरोगाद्विमुच्यते ॥ विपरीतमिदं भाति नरनारायणौ च तौ ॥ १९ ॥ तपसा शोषितात्मानौ क्षत्रियौ तौ बभूवतुः ॥ केन तौ कर्मणा शान्तौ जातौ शापेन वा पुनः ॥ २० ॥ ब्राह्मणौ क्षत्रियौ जातौ कारणं तन्मुने वद ॥ यादवानां विनाशश्च ब्रह्मशापादिति श्रुतः ॥ २१ ॥ कृष्णस्यापि हि गांधार्याः शापेनैव कुलक्षयः ॥ प्रद्युम्नहरणं चैव शम्बरेण कथं कृतम् ॥ २२ ॥ वर्तमाने वासुदेवे देवदेवे जनार्दने ॥ पुत्रस्य सूतिकागेहाद्धरणं चातिदुर्घटम् ॥ २३ ॥ द्वारकादुर्गमध्याद्वै हरिवेश्मादुदुरत्ययात् ॥ न ज्ञातं वासुदेवेन तत्कथं दिव्यचक्षुषा ॥ २४ ॥ सन्देहोऽयं महान्ब्रह्मन्निःसन्देहं कुरु प्रभो ॥ यत्पत्न्यो वासुदेवस्य दस्युभिर्लुण्ठिता हताः ॥२५॥ स्वर्गते देवदेवे तु तत्कथं मुनिसत्तम ॥ संशयो जायते ब्रह्मंश्चि-त्तान्दोलनकारकः ॥ २६ ॥ विष्णोरंशः समुद्भूतः शौरिर्भूभारहारकृत् ॥ स कथं मथुराराज्यं भयात्त्यक्त्वा जनार्दनः ॥ २७ ॥ द्वारवत्यां गतः साधो

शापसे ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रियकुलमें जायमान हुए ? हे मुनिराज ! मुझे इसका कारण बताइए। मैंने यह भी सुना है कि यादवोंका विनाश ब्राह्मणके शापसे हुआ था ॥ २० ॥ २१ ॥ यह भी कहा जाता है कि गान्धारीके शापसे भगवान कृष्णके कुलका विनाश हुआ था। शम्बरासुरने कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नका अपहरण क्यों किया ? ॥२२॥ देवदेव जनार्दन भगवान कृष्णके रहते सूतिकागृहसे पुत्रके हरणकी बात बड़ी विचित्र लगती है ॥२३॥ द्वारकाके किलेमें भगवान कृष्णके पूर्ण सुरक्षित महलसे बालकका अपहरण हो गया, तब भगवान कृष्णने उसे अपनी दिव्य दृष्टिसे क्यों नहीं देख लिया ? ॥२४॥ हे ब्रह्मन् ! इन बातोंपर मुझे बहुत बड़ा सन्देह हो रहा है। हे प्रभो ! आप इसका निवारण करिए। देवदेव भगवान कृष्णके स्वर्ग चले जाने-पर उनकी पत्नियोंको लुटेरोंने कैसे लूट लिया ? हे मुनिराज ! इन बातोंको सोचकर हृदयको झकझोर देनेवाली शंका उत्पन्न हो रही है ॥२५॥२६॥ भगवान कृष्ण साक्षात् विष्णुके अंशज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे। उन्होंने पृथ्वीका भार उतारा। हे साधो! वे ही भगवान् जनार्दन जरासन्धके भयसे मथुराका राज्य त्यागकर अपनी सेना और परिवार समेत द्वारका क्यों चले गये? ऐसा कहा जाता है कि भगवान कृष्णका अवतार पृथ्वीका भार उतारने, पापियोंका विनाश करने तथा धर्मकी स्थापनाके लिए हुआ था। तब वासुदेव भगवानने भविष्यमें अपनी स्त्रियोंको लूटनेवाले उन लुटेरोंको क्यों नहीं मार डाला? ॥ २७–२९ ॥ जिन लुटेरोंने उनकी स्त्रियोंको लूटा और अपहरण किया, उन चोरोंके विषयमें क्या सर्वज्ञ भगवान कृष्ण अनभिज्ञ थे? ॥ ३० ॥ जब कि गुरु द्रोण और भीष्मपितामह जैसे महापुरुषोंका वध भूभारहरणकार्य माना गया, तब वे डाकू क्यों बच गये? महात्मा, धर्मपरायण और सदाचारी युधिष्ठिर आदि पञ्चपाण्डव श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। उन्होंने विधिवत् यज्ञराज राजसूय यज्ञ किया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उस यज्ञमें उन्होंने ब्राह्मणोंको बड़े प्रेमपूर्वक विविध दक्षिणायें दीं। हे मुने! वे पाँचों पाण्डव देवताओंके अंशज थे और सदा भगवान कृष्णके आश्रित रहते थे ॥३३॥ तब उन्हें इतने महान् दुःख क्यों प्राप्त हुए? उन समय उनके सुकृत कहाँ चले गये थे? उन्होंने ऐसा कौनका भयानक पाप

ससैन्यः ससुहृद्गणः ॥ अवतारो हरेः प्रोक्तो भूभारहरणाय वै ॥ २८ ॥ पापात्मनां विनाशाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ तत्कथं वासुदेवेन चौरास्ते न निपातिताः ॥ २९ ॥ यैर्हृता वासुदेवस्य पत्न्यः संलुंठिताश्च ताः ॥ स्तेनास्ते किं न विज्ञाताः सर्वज्ञेन सता पुनः ॥ ३० ॥ भीष्मद्रोणवधः कामं भूभारहरणे मतः ॥ अर्चिताश्च महात्मानः पांडवा धर्मतत्पराः ॥ ३१ ॥ कृष्णभक्ताः सदाचारा युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ते कृत्वा राजसूयं च यज्ञराजं विधानतः ॥ ३२ ॥ दक्षिणा विविधा दत्त्वा ब्राह्मणेभ्योऽतिभावतः ॥ पाण्डुपुत्रास्तु देवांशा वासुदेवाश्रिता मुने ॥ ३३ ॥ घोरं दुःखं कथं प्राप्ताः क्व गतं सुकृतं च तत् ॥ किं यत्पापं महारौद्रं येन ते पीडिताः सदा ॥३४॥ द्रौपदी च महाभागा वेदीमध्यात्समुत्थिता ॥ रमांशजा च साध्वी च कृष्णभक्तियुता तथा ॥३५॥ सा कथं दुःखमतुलं प्राप घोरं पुनः पुनः ॥ दुःशासनेन सा केशे गृहीता पीडिता भृशम् ॥३६॥ रजस्वला सभायां तु नीता भीतैकवाससा ॥ विराटनगरे दासी जाता मत्स्यस्य सा पुनः ॥ ३७ ॥ धर्षिता कीचकेनाथ रुदती कुररी यथा ॥ हृता जयद्रथेनाथ क्रंदमानाऽतिदुःखिता ॥ ३८ ॥ मोचिता पांडवैः पश्चाद्बलवद्भिर्महात्मभिः ॥ पूर्वजन्मकृतं पापं किं तद्येन च पीडिताः ॥ ३९ ॥ दुःखान्यनेकान्याप्तास्ते कथयाद्य महामते ॥ राजसूयं क्रतुवरं कृत्वा ते मम पूर्वजाः ॥ ४० ॥ दुःखं महत्तरं प्राप्ताः पूर्वजन्मकृतेन वै ॥ देवांशानां कथं तेषां संशयोऽयं महान्हि मे ॥ ४१ ॥

किया था कि जिसके कारण उन्हें सदा दुखी रहना पड़ा? ॥३४॥ महाभागा द्रौपदी यज्ञवेदीसे प्रकट हुई थी। वह साक्षात् लक्ष्मीका अंश थी, बड़ी साध्वी थी और सदा कृष्णकी भक्ति करती थी ॥३५॥ तब उसे बारम्बार क्यों भीषण संकट झेलने पड़े? दुष्ट दुःशासनने उसके केश पकड़कर घसीटा ॥३६॥ रजस्वलावस्थामें केवल एक धोती पहने उस भयभीत नारीको कौरवोंकी सभामें पहुँचाया गया। आगे चलकर वह विराटनगरमें मत्स्यनरेशकी दासी बनी ॥३७॥ वहाँ ही कीचकने उसको अपमानित किया। उस समय वह कुररी पक्षिणीके समान रो रही थी। फिर वनवासके समय जयद्रथने उसका अपहरण किया। तब भी वह अत्यन्त दुःखित होकर बहुत रोयी थी ॥३८॥ तब अत्यन्त बलवान् महात्मा पाण्डवोंने उसे छुड़ाया। यह क्या पाण्डवोंके पूर्वजन्मका पाप था कि जिसके कारण उन्हें इतना दुःख झेलना पड़ा? ॥३९॥ हे महामते! मुझे यह बताइए कि राजसूय जैसा महान् यज्ञ करनेपर भी मेरे पूर्वजोंको अनेक प्रकारके कष्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्यों सहने पड़े ? ॥४०॥ यदि कहा जाय कि पूर्वजन्मके कर्मफलस्वरूप उन्हें ये महान् दुःख मिले थे, तो भी यह संशय होता है कि वे देवताओंके अंश थे। अतएव देवजन्ममें तो उनसे किसी प्रकारका दुष्कृत होना सम्भव नहीं है ॥ ४१ ॥ परम सदाचारी पाण्डवोंने संसारको नाशवान् समझते हुए भी धनके लोभसे छल करके भीष्म-द्रोण आदि महापुरुषोंका वध किया ॥ ४२ ॥ उन पाण्डवोंको ऐसे भयानक पाप करनेके लिए परमात्मा श्रीकृष्णने उकसाया। उन भगवान कृष्णके उभाड़नेपर उन्होंने अपने ही कुलका विनाश कर डाला ॥ ४३ ॥ साधु पुरुष भीख माँगकर अथवा वनमें रहते हुए नीवार (तिन्नी) पर जीवन यापन कर लेना या किसी प्रकारका शिल्पकार्य करके जीवन बिता लेना अच्छा समझेंगे, पर वीरोंकी हत्या न करेंगे ॥४४॥ हे मुनिसत्तम ! एक बार तो मेरा वंश ही समाप्त हो गया था, तब आपने शत्रुओंको नष्ट करनेवाले गोलक (परपुरुषसे उत्पन्न) पुत्रोंको जायमान करके इस वंशकी रक्षा की ॥ ४५ ॥ कुछ ही समय बाद महाराज विराटकी पुत्री उत्तराके गर्भसे उत्पन्न मेरे पिता महाराज परीक्षित्ने एक तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प डाल दिया। यह कितनी अद्भुत घटना थी ॥ ४६ ॥

सदाचारैस्तु कौंतेयैर्भीष्मद्रोणादयो हताः ॥ छलेन धनलाभार्थं जानानैर्नश्वरं जगत् ॥ ४२ ॥ प्रेरिता वासुदेवेन पापे घोरे महात्मना ॥ कुलं क्षयितवंतस्ते हरिणा परमात्मना ॥ ४३ ॥ वरं भिक्षाटनं साधोर्नीवारैर्जीवनं वरम् ॥ योधान्न हत्वा लोभेन शिल्पेन जीवनं वरम् ॥ ४४ ॥ विच्छिन्नस्तु त्वया वंशो रक्षितो मुनिसत्तम ॥ समुत्पाद्य सुतानाशु गोलकाञ्छत्रुनाशनान् ॥ ४५ ॥ सोऽल्पेनैव तु कालेन विराटतनयासुतः ॥ तापसस्य गले सर्पं न्यस्तवान्कथमद्भुतम् ॥ ४६ ॥ न कोऽपि ब्राह्मणं द्वेष्टि क्षत्रियस्य कुलोद्भवः ॥ तापसं मौनसंयुक्तं पित्रा किं तत्कृतं मुने ॥ ४७ ॥ एतैरन्यैश्च संदेहैर्विकलं मे मनोऽधुना ॥ स्थिरं कुरु पितः साधो सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ॥४८॥ इति श्रीदेवीभागवते चतुर्थस्कन्धे जनमेजयप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ सूत उवाच ॥ एवं पृष्टः पुराणज्ञो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ परीक्षितसुतं शांतं ततो वै जनमेजयम् ॥ १ ॥ उवाच संशयच्छेत्तृ वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ व्यास उवाच ॥ राजन्किमेतद्वक्तव्यं कर्मणो गहना गतिः ॥ २ ॥ दुर्ज्ञेया किल देवानां मानवानां च का कथा ॥ यदा समुत्थितं चैतद्ब्रह्माण्डं त्रिगुणात्मकम् ॥ ३ ॥ कर्मणैव समुत्पत्तिः सर्वेषां नात्र संशयः ॥ अनादिनिधना जीवाः कर्मबीजसमुद्भवाः ॥ ४ ॥ नानायोनिषु

क्षत्रियोंके कुलमें जन्म पाकर कोई भी राजा ब्राह्मणसे द्वेष नहीं करता। फिर उन मौनव्रतधारी तपस्वीके साथ मेरे पिताने ऐसा दुर्व्यवहार क्यों किया ? ॥४७॥ हे दयानिधे ! हे साधो ! हे कुरुकुलके पिता ! ऐसी-ऐसी नाना प्रकारकी शंकाओंसे मेरा मन बहुत उद्विग्न हो रहा है। आप सर्वज्ञ हैं। अतएव मेरी शंकाओंका समाधान करके मेरे मनकी व्यग्रताको दूर कर दीजिए ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(गहन कर्मगतिका निरूपण) सूतजी बोले—हे मुनियों ! पुराणोंके विज्ञ सत्यवतीतनय व्यासजीसे जब ऐसे प्रश्न किये गये, तब वाक्यनिपुण व्यासने शान्तस्वभाव परीक्षितपुत्र जनमेजयसे संशय दूर करनेवाले वचन कहे। व्यासजी बोले—हे राजन् ! इस विषयमें मैं कहाँतक कहूँ। कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र होती है ॥१॥२॥ कर्मकी गतिको देवता भी नहीं जानते, तब मनुष्योंकी कौन कहे। जिस समय सत्त्व-रज-तमस्वरूप त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई ॥ ३ ॥ तबसे बराबर सब प्राणियोंका जन्म कर्मसे ही होता आया है। आदि-अन्तहीन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होते हुए भी जीव कर्मबीजसे जायमान होते हैं ॥ ४ ॥ वे विविध योनियोंमें जन्मते और मरते हैं। कर्मसे रहित जीवका देहसे संयोग कभी हो ही नहीं सकता ॥ ५ ॥ सब जीवोंके शुभ, अशुभ और मिश्र, ये तीन प्रकारके कर्म होते हैं और जीव सदा इन्हीं कर्मोंसे आवेष्टित रहता है। ऐसा तत्त्वज्ञानी विद्वानोंका कथन है ॥ ६ ॥ वे कर्म सञ्चित, भविष्य तथा प्रारब्ध इन तीन भागोंमें विभक्त रहते हैं। ये तीनों प्रकारके कर्म सदा देहमें निवास करते हैं ॥७॥ हे राजन्! ब्रह्मादिक देवता आदि सभी प्राणी इन कर्मोंके अधीन रहते हैं। सुख-दुःख, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, हर्ष, काम, क्रोध और लोभ ये सब देहके गुण हैं। हे राजन्! ये सब कर्मके अधीन होकर जीवोंको प्राप्त होते रहते हैं ॥८॥९॥ राग-द्वेष आदि भाव स्वर्गीय प्राणियोंमें भी होते हैं। देवताओं, मनुष्यों और पशु-पक्षियोंमें भी ये भाव विद्यमान रहते हैं ॥१०॥ ये सभी विकार सदा देहसे चिपके रहते हैं। पूर्वकालके वैर तथा प्रेमके संयोगसे ये नित्य नये बने

जायंते म्रियन्ते च पुनः पुनः ॥ कर्मणा रहितो देहसंयोगो न कदाचन ॥ ५ ॥ शुभाशुभैस्तथा मिश्रैः कर्मभिर्वेष्टितं त्विदम् ॥ त्रिविधानि हि तान्या-हुर्बुधास्तत्त्वविदश्च ये ॥ ६ ॥ संचितानि भविष्यन्ति प्रारब्धानि तथा पुनः ॥ वर्तमानानि देहेऽस्मिंस्त्रैविध्यं कर्मणां किल ॥७॥ ब्रह्मादीनां च सर्वेषां तद्वशत्वं नराधिप ॥ सुखं दुःखं जरामृत्युहर्षशोकादयस्तथा ॥८॥ कामक्रोधौ च लोभश्च सर्वे देहगता गुणाः ॥ दैवाधीनश्च सर्वेषां प्रभवंति नराधिप ॥ ९ ॥ रागद्वेषादयो भावाः स्वर्गेऽपि प्रभवंति हि ॥ देवानां मानवानां च तिरश्चां च तथा पुनः ॥ १० ॥ विकाराः सर्व एवैते देहेन सह संगताः ॥ पूर्ववैरानुयोगेन स्नेहयोगेन वै पुनः ॥ ११ ॥ उत्पत्तिः सर्वजंतूनां बिना कर्म न विद्यते ॥ कर्मणा भ्रमते सूर्यः शशांकः क्षयरोगवान् ॥१२॥ कपाली च तथा रुद्रः कर्मणैव न संशयः ॥ अनादिनिधनं चैतत्कारणं कर्म विद्यते ॥१३॥ तेनेह शाश्वतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ नित्यानित्यविचारेऽत्र निमग्ना मुनयः सदा ॥ १४ ॥ न जानन्ति किमेतद्वै नित्यं वाऽनित्यमेव च ॥ मायायां विद्यमानायां जगन्नित्यं प्रतीयते ॥ १५ ॥ कार्याभावः कथं वाच्यः कारणे सति सर्वथा ॥ माया नित्या कारणं च सर्वेषां सर्वदा किल ॥ १६ ॥ कर्मबीजं ततोऽनित्यं चिंतनीयं सदा बुधैः ॥ भ्रमत्येव जगत्सर्वं राजकर्मनियंत्रितम् ॥ १७ ॥ नानायोनिषु राजेन्द्र नानाधर्ममयेषु च ॥ इच्छया च भवेज्जन्म विष्णोरमिततेजसः ॥ १८ ॥ युगे युगेष्वनेकासु नीचयोनिषु तत्कथम् ॥ त्यक्त्वा वैकुंठसंवासं सुखभोगाननेकशः ॥ १९ ॥ विण्मूत्रमंदिरे वासं मंत्रस्तः कोऽभिवांछति ॥ पुष्पावचयलीलां च जल-

रहते हैं ॥११॥ जगत्के सब जीवोंकी उत्पत्ति कर्मके बिना हो ही नहीं सकती। कर्मके प्रभावसे सूर्य नित्य चक्कर काटते हैं और कर्मसे ही चन्द्रमाको सदा क्षयरोग लगा रहता है ॥१२॥ कर्मके फेरसे ही शंकरजी खोपड़ियोंकी माला पहने रहते हैं। इसमें संशय नहीं है। कर्मका कोई आदि-अन्त नहीं है। संसारकी उत्पत्तिमें भी कर्म ही मुख्य कारण है ॥१३॥ बड़े-बड़े मुनि समस्त स्थावर-जंगमात्मक जगत् नित्य है या अनित्य, इसीके अनुसन्धानमें मग्न रहते हैं ॥१४॥ फिर भी वे यह नहीं जान पाते कि जगत् नित्य है या अनित्य। मायाके अस्तित्वकालमें तो जगत् नित्य ही दीखता है ॥१५॥ कारणके रहते कार्यका अभाव कैसे होगा? माया नित्य है और वह सर्वदा सबका कारण मानी जाती है ॥१६॥ विद्वानोंका कर्तव्य है कि वे कर्मबीजकी अनित्यतापर विचार करें। हे राजन्! समस्त जगत् कर्मके द्वारा नियंत्रित होकर चक्कर खाता रहता है ॥१७॥ हे राजेन्द्र! यदि अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुको अपनी इच्छासे अवतार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेना सम्भव होता तो विविध योनियों, नाना प्रकारके धर्मों और युगानुयुग अनेक नीच योनियोंमें जन्म क्यों लेते ? वैकुण्ठका निवास और अनेक प्रकारके सुखभोगोंको त्यागकर मल-मूत्रके घरमें रहनेकी इच्छा कौन करेगा ? पुष्प चुननेकी क्रीड़ा, जलविहार और सुन्दर सिंहासन छोड़कर गर्भरूपी घरमें रहनेकी इच्छा कौन बुद्धिमान् करेगा ? कोमल रुईकी बनी सेजको छोड़कर कौन ऐसा पण्डित है कि जो गर्भमें पैर ऊपर और सिर नीचे करके रहना पसन्द करेगा ? नाना प्रकारके हाव-भावयुक्त गीत, नृत्य और वाद्यका आनन्द त्यागकर कोई तनिक भी यह चाहेगा कि गर्भरूपी नरकमें निवास करे ? भगवती लक्ष्मीके अत्यन्त कठिनाईसे त्यागे जाने योग्य हाव-भावोंके रसको त्यागकर कौन बुद्धिमान् मल-मूत्रका रस पीना चाहेगा ? गर्भवाससे बढ़कर भयानक और कोई नरक समस्त त्रिलोकी नहीं है ॥१८–२४॥ गर्भवासके नरकसे डरकर मुनिलोग कठोर तप करते हैं और उससे भयभीत होकर विविध प्रकारके भोग तथा राज्य त्यागकर बड़े-बड़े मनस्वी राजे वनमें चले जाते हैं। ऐसी दशामें कौन ऐसा मूर्ख है कि जो गर्भवासके नरकमें रहना चाहेगा ? गर्भवासके समय जीवको एक ओर कीड़े काटते रहते हैं और नीचेसे

केलिं सुखासनम् ॥२०॥ त्यक्त्वा गर्भगृहे वासं कोऽभिवांछति बुद्धिमान् ॥ तूलिकां मृदुसंयुक्तां दिव्यां शय्यां विनिर्मिताम् ॥२१॥ त्यक्त्वाऽधोमुखवासं च कोऽभिवांछति पंडितः ॥ गीतं नृत्यं च वाद्यं च नानाभावसमन्वितम् ॥२२॥ मुक्त्वा को नरके वासं मनसाऽपि विचिंतयेत् ॥ सिंधुजाद्भुतभावानां रसं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम् ॥२३॥ विण्मूत्ररसपानं च क इच्छेन्मतिमान्नरः ॥ गर्भवासात्परो नास्ति नरको भुवनत्रये ॥२४॥ तद्भीताश्च प्रकुर्वंति मुनयो दुस्तरं तपः ॥ हित्वा भोगं च राज्यं च वने यांति मनस्विनः ॥२५॥ तद्भीतस्तु विमूढात्मा कस्तं सेवितुमिच्छति ॥ गर्भे तुदंति कृमयो जठराग्निस्तपत्यधः ॥ २६ ॥ वपासंवेष्टनं क्रूरं किं सुखं तत्र भूपते ॥ वरं कारागृहे वासो बन्धनं निगडैर्वरम् ॥ २७ ॥ अल्पमात्रं क्षणं नैव गर्भवासः क्वचिच्छुभः ॥ गर्भवासे महद्दुःखं दशमासनिवासनम् ॥२८॥ तथा निःसरणे दुःखं योनियंत्रेऽतिदारुणे ॥ बालभावे तदा दुःखं मूकाज्ञभावसंयुतम् ॥२९॥ क्षुत्तृष्णा-वेदनाशक्तः परतंत्रोऽतिकातरः ॥ क्षुधिते रुदिते बाले माता चिंतातुरा तदा ॥ ३० ॥ भेषजं पातुमिच्छन्ती ज्ञात्वा व्याधिव्यथां दृढाम् ॥ नानाविधानि दुःखानि बालभावे भवंति वै ॥ ३१ ॥ किं सुखं विबुधा दृष्ट्वा जन्म वांछंति चेच्छया ॥ संग्राममममरैः सार्धं सुखं त्यक्त्वा निरंतरम् ॥ ३२ ॥

जठराग्निकी भट्ठी धधका करती है ॥२५॥२६॥ हे राजन् ! उस समय सारे शरीरमें अतिशय दुर्गन्धित मज्जा पुती रहती है। ऐसी स्थितिमें वहाँ कौन-सा सुख धरा है ? उसकी अपेक्षा तो हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर कारागारमें रहना कहीं अच्छा है ॥२७॥ अति अल्प तथा क्षणभर भी गर्भमें रहना अच्छा नहीं कहा जा सकता। एक तो गर्भवास वैसे ही बड़ा दुखदायी होता है, उसपर भी पूरे दस मास वहाँ रहना तो और भी कष्टदायक है ॥२८॥ उसके बाद अत्यन्त सङ्कुचित योनियन्त्र द्वारा बाहर निकलनेमें भी अपार कष्ट होता है। फिर बाल्यावस्थामें अज्ञानता तथा गूँगेपनके कारण बहुत कष्ट सहना पड़ता है ॥२९॥ उस समय वह परतन्त्र बालक भूख-प्यासकी वेदनासे कातर हो उठता है। जब वह भूखसे रुदन करता है तो माता चिन्तित हो उठती है और सोचती है कि बच्चेको बड़ी व्यथा है, इसीलिए रोता है। तब वह उसे दवा पिलाने लगती है। इस प्रकार बाल्यकालमें भी नाना प्रकारके दुःख सहने पड़ते हैं ॥३०॥३१॥ तब आप ही बताइए कि जन्ममें क्या सुख है, जिसे देखकर देवता अपनी इच्छासे जन्म लेना चाहेंगे। सर्वदा अनायास प्राप्त होनेवाले स्थायी सुखोंको त्यागकर कौन मूर्ख देवताओंके साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लड़नेकी इच्छा करेगा, जिसमें बेकारका श्रम करना पड़े और मिला हुआ धन नष्ट हो जाय। हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मादिक देवता भी अपने किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दुःख पाते हैं। हे नृपोत्तम! सभी देहधारी मनुष्यों, देवताओं ओर पशु-पक्षियोंको अपने किये कर्मोंका शुभ तथा अशुभ फल अवश्य भोगना पड़ता है॥ ३२–३४॥ तप, दान तथा यज्ञों द्वारा यदि मनुष्य इन्द्रपद प्राप्त कर ले, किन्तु पुण्य चुक जानेपर इन्द्र भी स्वर्गसे च्युत हो जाता है। इसमें संशय नहीं है॥३५॥ जैसे रामावतारके समय देवता वानर बने थे। उसी प्रकार भगवान् कृष्णकी सहायता करनेके लिए देवता यादव बन गये थे॥३६॥ इसी प्रकार ब्रह्माजीकी प्रेरणासे भगवान् विष्णु धर्मरक्षार्थ युग-युगमें अनेक अवतार लेते हैं॥३७॥ हे राजन्! भगवान विष्णु भी रथके पहियेकी तरह घूमते हुए बार-बार विविध योनियोंमें अद्भुत अवतार लेते रहते हैं॥ ३८॥ महात्मा विष्णुभगवान् अपने अंशसे पृथिवीपर अवतार लेकर दैत्योंके वधका काम किया

कर्तुमिच्छेच्च को मूढः श्रमदं सुखनाशनम्॥ सर्वथैव नृपश्रेष्ठ सर्वे ब्रह्मादयः सुराः॥ ३३॥ कृतकर्मविपाकेन प्राप्नुवंति सुखासुखे॥ अवश्यमेव
भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ देहवद्भिर्नृभिर्देवैस्तिर्यग्भिश्च नृपोत्तम॥ ३४॥ तपसा दानयज्ञैश्च मानवश्चेन्द्रतां व्रजेत्॥ क्षीणे पुण्येऽथ
शक्रोऽपि पतत्येव न संशयः॥ ३५॥ रामावतारयोगेन देवा वानरतां गताः॥ तथा कृष्णसहायार्थं देवा यादवतां गताः॥ ३६॥ एवं युगे युगे
विष्णुरवतारानेकशः॥ करोति धर्मरक्षार्थं ब्रह्मणा प्रेरितो भृशम्॥ ३७॥ पुनः पुनर्हरेरेवं नानायोनिषु पार्थिव॥ अवतारा भवंत्यन्ये
रथचक्रवदद्भुताः॥ ३८॥ दैत्यानां हननं कर्म कर्तव्यं हरिणा स्वयम्॥ अंशांशेन पृथिव्यां वै कृत्वा जन्म महात्मना॥ ३९॥ तदहं संप्रव-
क्ष्यामि कृष्णजन्मकथां शुभाम्॥ स एव भगवान्विष्णुरवतीर्णो यदोः कुले॥ ४०॥ कश्यपस्य मुनेरंशो वसुदेवः प्रतापवान्॥ गोवृत्तिर-
भवद्राजन्पूर्वशापानुभावतः॥ ४१॥ कश्यपस्य च द्वे पत्न्यौ शापादत्र महीपते॥ अदितिः सुरसा चैवमासतुः पृथिवीपते॥ ४२॥
देवकी रोहिणी चोभे भगिन्यौ भरतर्षभ॥ वरुणेन महाञ्छापो दत्तः कोपादिति श्रुतम्॥ ४३॥ राजोवाच॥ किं कृतं कश्यपेनागो येन शप्तो
महानृषिः॥ सभार्यः स कथं जातस्तद्वदस्व महामते॥ ४४॥ कथं च भगवान्विष्णुस्तत्र जातोऽस्ति गोकुले॥ वासी वैकुण्ठनिलये रमापतिर-
खंडितः॥ ४५॥ निदेशात्कस्य भगवान्वर्तते प्रभुरव्ययः॥ नारायणः सुरश्रेष्ठो युगादिः सर्वधारकः॥ ४६॥ स कथं सदनं त्यक्त्वा कर्मवानिव

करते हैं॥ ३९॥ अब मैं श्रीकृष्णके जन्मकी पुनीत कथा कह रहा हूँ। वे साक्षात् विष्णुभगवान ही यदुकुलमें अवतीर्ण हुए थे॥ ४०॥ परम प्रतापी वसुदेव महामुनि कश्यपके अंशसे उत्पन्न हुए थे। पूर्वजन्मके शापवश वे इस जन्ममें गोपालनका धन्धा करते थे॥ ४१॥ हे पृथिवीपते! महर्षि कश्यपकी दो पत्नियाँ अदिति और सुरसा भी शापवश पृथिवीपर अवतरी थीं॥४२॥ हे भरतवर्षभ! वे ही यहाँ रोहिणी और देवकी नामकी दो बहनें हुईं। ऐसा सुना जाता है कि कोपवश वरुणदेवने उन्हें महान् शाप दे दिया था॥४३॥ राजा जनमेजयने पूछा—महर्षि कश्यपने ऐसा कौन-सा अपराध किया था कि जिसके कारण पत्नीके साथ उन्हें भी शाप मिला? हे महामते! आप इसका भेद बताइए॥ ४४॥ अविनाशी और वैकुण्ठधामनिवासी लक्ष्मीपति भगवान विष्णुको गोकुलमें क्यों जन्म लेना पड़ा? ॥४५॥ सबके प्रभु, अविनाशी, देवश्रेष्ठ, युगके आदि और सबको धारण करनेवाले भगवान् विष्णुने किसके आदेशसे अपना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैकुण्ठधाम छोड़कर मानवी योनिमें जन्म लिया और मनुष्यों जैसा सब काम किया ? इस विषयमें मुझे बहुत बड़ा संशय है ।। ४६ ।। ४७ ।। मनुष्यशरीर धारण करके और मनुष्यके दुष्ट जन्ममें होनेवाले विविध भावोंका अनुसरण करते हुए उन्होंने अपनी विडम्बना क्यों करायी ? ।।४८।। काम, क्रोध, अमर्ष, शोक, वैर, प्रेम, सुख, दुःख, भय, दीनता, कोमलता, सुकृत, दुष्कृत, वचन, मारण, पोषण, चलन, ताप, विचार, विकत्थन (शेखी बघारना), लोभ, पाखण्ड, मोह, कपट और शोक आदि विविध भाव मनुष्यजन्ममें विद्यमान रहते हैं ।।४९-५१।। तब भगवान विष्णु अविनाशी सुख त्यागकर क्यों मानव तन धारण करके उपर्युक्त दूषित भावोंके फेरमें फँसते हैं ? ।। ५२ ।। हे मुनीश्वर ! इस भूतलपर मनुष्यजन्म पाकर कौन-सा सुख मिलता है ? जिसके लिए साक्षात् विष्णुभगवान गर्भवासका दुःख सहते हैं ? ।।५३।। गर्भवासका दुःख, जन्म लेते समयका दुःख, बालकपनका दुःख, यौवनावस्थामें कामजनित क्लेश और

मानुषे ।। करोति जननं कस्मादत्र मे संशयो महान् ।। ४७ ।। प्राप्य मानुषदेहं तु करोति च विडंबनम् ।। भावान्नानाविधांस्तत्र मानुषे दुष्टजन्मनि ।। ४८ ।। कामः क्रोधोऽमर्षशोकौ वैरं प्रीतिश्च कर्हिचित् ।। सुखं दुःखं भयं नृणां दैन्यमार्जवमेव च ।। ४९ ।। दुष्कृतं सुकृतं चैव वचनं हननं तथा ।। पोषणं चलनं तापो विमर्शश्च विकत्थनम् ।। ५० ।। लोभो दंभस्तथा मोहः कपटः शोचनं तथा ।। एते चान्ये तथा भावा मानुष्ये संभवंति हि ।। ५१ ।। स कथं भगवान्विष्णुस्त्यक्त्वा सुखमनश्वरम् ।। करोति मानुषं जन्म भावैस्तैस्तैरभिद्रुतम् ।। ५२ ।। किं सुखं मानुषं प्राप्य भुवि जन्म मुनीश्वर ।। किं निमित्तं हरिः साक्षाद्गर्भवासं करोति वै ।। ५३ ।। गर्भदुःखं जन्मदुःखं बालभावे तथा पुनः ।। यौवने कामजं दुःखं गार्हस्थ्येऽतिमहत्तरम् ।। ५४ ।। दुःखान्येतान्यवाप्नोति मानुषे द्विजसत्तम ।। कथं स भगवान्विष्णुरवतारान्पुनः पुनः ।। ५५ ।। प्राप्य रामावतारं हि हरिणा ब्रह्मयोनिना ।। दुःखं महत्तरं प्राप्तं वनवासेऽतिदारुणे ।। ५६ ।। सीताविरहजं दुःखं संग्रामश्च पुनः पुनः ।। कान्तात्यागोऽप्यनेनैवमनुभूतो महात्मना ।। ५७ ।। तथा कृष्णावतारेऽपि जन्म रक्षागृहे पुनः ।। गोकुले गमनं चैव गवां चारणमित्युत ।। ५८ ।। कंसस्य हननं कष्टाद्द्वारकागमनं पुनः ।। नानासंसारदुःखानि भुक्तवान्भगवान्कथम् ।। ५९ ।। स्वेच्छया कः प्रतीक्षेत मुक्तो दुःखानि ज्ञानवान् ।। संशयं छिंधि सर्वज्ञ मम चित्तप्रशांतये ।। ६० ।। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

गृहस्थीमें नाना प्रकारकी विपत्तियाँ, यह मानव जन्मके दुःखोंकी परम्परा मनुष्यको झेलनी पड़ती है। तब भगवान विष्णु क्यों बार-बार अवतार लेकर इन दुःखोंको सहते हैं ? ।।५४।।५५।। रामावतार लेकर ब्रह्मसे जायमान विष्णुभगवानको अतिशय दारुण वनवासके कष्ट उठाने पड़े ।। ५६ ।। उस अवसरपर उन्हें सीताके वियोगका दुःख सहना पड़ा। बार-बार अनेक युद्ध करने पड़े। अन्तमें उन महात्माको सीताके परित्यागका असह्य दुःख सहना पड़ा ।।५७।। कृष्णावतारमें भी कारागारमें जन्म, शिशुदशामें ही गोकुलगमन और गोचारणका असाधारण दुःख उन्हें झेलना पड़ा ।। ५८ ।। फिर मामा कंसको मारने तथा बड़े दुःखके साथ जन्मभूमि त्यागकर द्वारका जानेका दुःख उठाना पड़ा। उन भगवानने नाना प्रकारके सांसारिक दुःख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्यों भोगा ? ॥ ५९ ॥ ऐसा ज्ञानी पुरुष कौन है कि जो मुक्त होता हुआ भी स्वेच्छासे इन दुःखोंकी बाट जोहेगा ? हे सर्वज्ञ ! आप मेरे चित्तको शान्ति प्रदान करनेके लिए मेरी उपर्युक्त शंकाओंका समाधान करिए ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

(च्यवन-सुकन्याविवाह) व्यासजी बोले—हे राजन् ! भगवान विष्णुके अवतार तथा विभिन्न देवताओंके अंशावतार लेनेमें बहुतेरे कारण हैं ॥१॥ अब आप वसुदेव, देवकी तथा रोहिणीके अवतारोंका कारण भलीभाँति सुनिए ॥२॥ एकबार श्रीमान् महर्षि कश्यप यज्ञकार्यके लिए वरुणदेवकी कामधेनु गौ माँग लाये। यज्ञके बाद वरुणदेवने अनेक तरहसे गौ लौटानेकी प्रार्थना की, परन्तु महर्षि कश्यपने वह गऊ नहीं लौटायी ॥ ३ ॥ तब वरुणदेव जगत्प्रभु ब्रह्माजीके पास गये। उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके बड़े दुःखपूर्वक अपना वृत्तान्त कह सुनाया ॥४॥ फिर बड़े विनीतभावसे उन्होंने कहा—हे महाभाग ! मैं क्या करूँ, कश्यपजी मदमत्त होकर मेरी गऊ नहीं लौटाते हैं। अतएव मैंने भी उन्हें यह शाप दे दिया है कि तुम मनुष्यवंशमें

॥ व्यास उवाच ॥ कारणानि बहून्यत्राप्यवतारे हरेः किल ॥ सर्वेषां चैव देवानामंशावतरणेष्वपि ॥ १ ॥ वसुदेवावतारस्य कारणं शृणु तत्त्वतः ॥ देवक्याश्चैव रोहिण्या अवतारस्य कारणम् ॥ २ ॥ एकदा कश्यपः श्रीमान्यज्ञार्थं धेनुमाहरत् ॥ याचितोऽयं बहुविधं न ददौ धेनुमुत्त-माम् ॥ ३ ॥ वरुणस्तु ततो गत्वा ब्रह्माणं जगतः प्रभुम् ॥ प्रणम्योवाच दीनात्मा स्वदुःखं विनयान्वितः ॥ ४ ॥ किं करोमि महाभाग मत्तोऽसौ न ददाति गाम् ॥ शापो मया विसृष्टोऽस्मै गोपालो भव मानुषे ॥ ५ ॥ भार्ये द्वे अपि तत्रैव भवेतां चातिदुःखिते ॥ यतो वत्सा रुदंत्यत्र मातृ-हीनाः सुदुःखिताः ॥ ६ ॥ मृतवत्साऽदितिस्तस्माद्भविष्यति धरातले ॥ कारागारनिवासा च तेनापि बहुदुःखिता ॥७॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य यादोनाथस्य पद्मभूः ॥ समाहूय मुनिं तत्र तमुवाच प्रजापतिः ॥८॥ कस्मात्त्वया महाभाग लोकपालस्य धेनवः ॥ हृताः पुनर्न दत्ताश्च किमन्यायं करोषि च ॥ ९ ॥ जानन्न्यायं महाभाग परवित्तापहारणम् ॥ कृतवान्कथमन्यायं सर्वज्ञोऽसि महामते ॥ १० ॥ अहो लोभस्य महिमा महतोऽपि न मुंचति ॥ लोभं नरकदं नूनं पापाकरमसंमतम् ॥ ११ ॥ कश्यपोऽपि न तं त्यक्तुं समर्थः किं करोम्यहम् ॥ सर्वदैवाधिकस्तस्माल्लोभो

जन्म लेकर ग्वाले हो जाओ ॥ ५ ॥ तुम्हारी दोनों पत्नियाँ भी मानुषी होकर विविध दुःख भोगेंगी। क्योंकि मेरी गायके बछड़े मातृवियोगसे दुखी होकर रो रहे हैं ॥ ६ ॥ अतः अदिति जब धरातलपर जायगी तो उसके बच्चे मर जाया करेंगे। उसे जेलमें रहना होगा। जिससे वह बड़ा कष्ट पायेगी ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले कि जलजन्तुओंके स्वामी वरुणदेवके वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजीने महर्षि कश्यपको बुलाकर कहा—॥ ८ ॥ हे महाभाग ! आपने क्यों लोकपाल वरुणदेवकी गौ अपहृत कर ली और अब उसे नहीं लौटा रहे हैं ? आप अन्याय क्यों करते हैं ? ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! पराया धन अपहरण करना अनुचित है, यह जानते हुए भी आपने क्यों अन्याय किया ? हे महामते ! आप तो सर्वज्ञ हैं ॥ १० ॥ अहो ! लोभकी बहुत बड़ी महिमा है। वह बड़े-बड़ोंको भी नहीं छोड़ता। लोभ नरकदायक और पापोंकी खान है ॥११॥ महर्षि कश्यप भी लोभको नहीं त्याग सके, तब मैं क्या करूँ ? अन्तमें मैंने यही निष्कर्ष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निकाला है कि लोभ ही सबसे प्रबल पाप है ॥१२॥ उन शान्तप्रकृति मुनियों तथा प्रतिग्रहसे मुँह मोड़ लेनेवाले वानप्रस्थियोंको धन्यवाद है कि जिन्होंने लोभपर विजय प्राप्त कर ली है ॥१३॥ संसारमें मनुष्यका सबसे बड़ा बलवान् शत्रु लोभ है। लोभके समान अपवित्र तथा घृणित वस्तु और कोई भी नहीं है। क्योंकि महर्षि कश्यप भी लोभमें पड़कर दुराचारपरायण हो गये हैं ॥ १४ ॥ अन्तमें मर्यादाकी रक्षाके लिए ब्रह्माजीने अपने परम प्रिय पौत्र महर्षि कश्यपको शाप दिया कि तुम अपनी पत्नीके साथ पृथिवीपर यदुवंशमें जन्म लेकर ग्वालेका धन्धा करोगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले कि अंशावतार लेने तथा पृथिवीका भार उतारनेके लिए लोकपाल वरुणदेव तथा ब्रह्माजीने उन्हें इस प्रकार शाप दिया था ॥ १७ ॥ उधर कश्यप-पत्नी दितिने भी अतिशय शोकाकुल होकर अपनी सौत अदितिको शाप दे दिया कि तुम्हारे सात पुत्र उत्पन्न होते ही मर जायँगे ॥१८॥ राजा जनमेजय बोले—हे महामुने ! दितिने अपनी

वै कलितो मया ॥ १२ ॥ धन्यास्ते मुनयः शांता जितो यैर्लोभ एव च ॥ वैखानसैः शमपरैः प्रतिग्रहपराङ्मुखैः ॥१३॥ संसारे बलवाञ्छत्रुर्लोभोऽमेध्योऽवरः सदा ॥ कश्यपोऽपि दुराचारः कृतस्नेहो दुरात्मना ॥ १४ ॥ ब्रह्माऽपि तं शशापाथ कश्यपं मुनिसत्तमम् ॥ मर्यादारक्षणार्थं हि पौत्रं परमवल्लभम् ॥ १५ ॥ अंशेन त्वं पृथिव्यां वै प्राप्य जन्म यदोः कुले ॥ भार्याभ्यां संयुतस्तत्र गोपालत्वं करिष्यसि ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं शप्तः कश्यपोऽसौ वरुणेन च ब्रह्मणा ॥ अंशावतरणार्थाय भूभारहरणाय च ॥ १७ ॥ तथा दित्याऽदितिः शप्ता शोकसंतप्तया भृशम् ॥ जाता जाता विनश्येरंस्तव पुत्रास्तु सप्त वै ॥ १८ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कस्माद्दित्या च भगिनी शप्तेंद्रजननी मुने ॥ कारणं वद शापे च शोकस्तु मुनिसत्तम ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ परीक्षितेन पृष्टस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ राजानं प्रत्युवाचेदं कारणं सुसमाहितः ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ राजन्दक्षसुते द्वे तु दितिश्चादितिरुत्तमे ॥ कश्यपस्य प्रिये भार्ये बभूवतुरुरुक्रमे ॥ २१ ॥ अदित्यां मघवा पुत्रो यदाऽभूदतिवीर्यवान् ॥ तदा तु तादृशं पुत्रं चकमे दितिरोजसा ॥ २२ ॥ पतिमाहासितापांगी पुत्रं मे देहि मानद ॥ इन्द्रतुल्यबलं वीरं धर्मिष्ठं वीर्यवत्तमम् ॥ २३ ॥ तमुवाच मुनिः कान्ते स्वस्था भव मयोदिते ॥ व्रतांते भविता तुभ्यं शतक्रतुसमः सुतः ॥ २४ ॥ सा तथेति प्रतिश्रुत्य चकार व्रतमुत्तमम् ॥ निषिक्तं मुनिना गर्भं बिभ्राणा सुमनोहरम् ॥ २५ ॥ भूमौ चकार शयनं पयोव्रतपरायणा ॥ पवित्रा धारणायुक्ता बभूव वरवर्णिनी ॥ २६ ॥ एवं जातः सुसंपूर्णो

बहिन और इन्द्रकी माता अदितिको क्यों शाप दिया ? आप इस शाप और दितिके शोकका कारण बताइए ॥१९॥ सूतजीने कहा कि परीक्षितपुत्र राजा जनमेजयके इस प्रकार प्रश्न करनेपर सत्यवतीपुत्र व्यासजी बड़ी सावधानीके साथ उस शापका कारण बताते हुए कहने लगे ॥ २० ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! दक्ष प्रजापतिकी दिति और अदिति नामकी दो कन्यायें महर्षि कश्यपकी प्रिय पत्नियाँ थीं ॥२१॥ जब अदितिके अत्यन्त पराक्रमी पुत्र इन्द्र हुए तो उन्हें देखकर दितिने भी वैसा ही पुत्र प्राप्त करना चाहा ॥२२॥ उसने एकान्तमें अपने पति कश्यपसे कहा—हे मानद ! आप मुझे ऐसा पुत्र दीजिए, जो इन्द्रके समान बलवान्, वीर, धर्मात्मा और अत्यन्त पराक्रमी हो ॥ २३ ॥ मुनि कश्यपने कहा—हे प्रिये ! धैर्य धरो, मैं तुम्हें एक व्रत बता रहा हूँ। यदि उसे कर लोगी तो तुम्हें भी इन्द्रके समान पुत्र प्राप्त हो जायगा ॥ २४ ॥ अदितिने उनकी बात मान ली और वह उत्तम व्रत किया। तदनुसार मुनि कश्यपके वीर्यसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दितिने बड़ा दिव्य गर्भ धारण किया ॥ २५ ॥ अब दिति केवल दूध पीती और भूमिपर शयन करती थी । उस सुन्दरीने अपनी धारणायें भी पवित्र कर लीं ॥२६॥ ऐसा करते-करते जब वह गर्भ अत्यन्त पुष्ट होकर पूर्ण होगया, तब दितिका शुभ्र तथा दीप्तिमान् रूप देखकर अदितिको बड़ा दुःख हुआ ॥ २७ ॥ उसने सोचा कि यदि दितिके गर्भसे इन्द्रके समान महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ तो मेरा पुत्र निस्तेज हो जायगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार चिन्तित मानिनी अदितिने अपने पुत्र इन्द्रसे कहा कि इस समय दितिके गर्भमें अत्यन्त पराक्रमी तुम्हारा शत्रु विद्यमान है ॥ २९ ॥ अभी तुम अपने शत्रुको मारनेका उपाय सोचो । हे पुत्र ! तुम ऐसा करो कि जिससे दितिका पुत्र उत्पन्न होते ही मर जाय ॥३०॥ मुझसे सदा डाह करनेवाली उस सुन्दरी दितिको जब मैं देखती हूँ तो मेरा जी दुःखित हो उठता है और सुखको नष्ट कर देनेवाली चिन्ता घेर लेती है ॥३१॥ जब शत्रु बढ़ जाता है, तब वह राजयक्ष्माकी तरह प्राणान्तक हो जाता है । अतएव बुद्धिमान् मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह अंकुरित होते ही शत्रुको नष्ट कर दे ॥३२॥ हे इन्द्र ! दितिका वह गर्भ मेरे हृदयमें लोहेके सुएकी भाँति चुभ रहा है ।

यदा गर्भोऽतिवीर्यवान् ॥ शुभ्रांशुमतिदीप्तांगीं दितिं दृष्ट्वा तु दुःखिता ॥२७॥ मघवत्सदृशः पुत्रो भविष्यति महाबलः ॥ दित्यास्तदा मम सुतस्तेजोहीनो भवेत्किल ॥ २८ ॥ इति चिंतापरा पुत्रमिदं चोवाच मानिनी ॥ शत्रुस्तेऽद्य समुत्पन्नो दितिगर्भेऽतिवीर्यवान् ॥ २९ ॥ उपायं कुरु नाशाय शत्रोरद्य विचिंत्य च ॥ उत्पत्तिरेव हंतव्या दित्या गर्भस्य शोभन ॥ ३० ॥ वीक्ष्य तामसितापांगीं सपत्नीभावमास्थिताम् ॥ दुनोति हृदये चिंता सुखमर्मविनाशिनी ॥ ३१ ॥ राजयक्ष्मेव संवृद्धो नष्टो नैव भवेद्रिपुः ॥ तस्मादंकुरितं हन्याद्बुद्धिमानहितं किल ॥ ३२ ॥ लोहशंकुरिव क्षिप्तो गर्भो वै हृदये मम ॥ येन केनाप्युपायेन पातयाद्य शतक्रतो ॥ ३३ ॥ सामदानबलेनापि हिंसनीयस्त्वया सुतः ॥ दित्या गर्भो महाभाग मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा मातृवचः शक्रो विचिन्त्य मनसा ततः ॥ जगामापरमातुः स समीपममराधिपः ॥ ३५ ॥ ववंदे विनयात्पादौ दित्याः पापमतिर्नृप ॥ प्रोवाच विनयेनासौ मधुरं विषगर्भितम् ॥ ३६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ मातस्त्वं व्रतयुक्ताऽसि क्षीणदेहाऽतिदुर्बला ॥ सेवार्थमिह संप्राप्तः किं कर्तव्यं वदस्व मे ॥३७॥ पादसंवाहनं तेऽहं करिष्यामि पतिव्रते ॥ गुरुशुश्रूषणात्पुण्यं लभते गतिमक्षयाम् ॥३८॥ न मे किमपि भेदोऽस्ति तथाऽदित्या शपे किल ॥ इत्युक्त्वा चरणौ स्पृष्ट्वा संवाहनपरोऽभवत् ॥ ३९ ॥ संवाहनसुखं प्राप्य निद्रामाप सुलोचना ॥

हे इन्द्र ! तुम जिस किसी भी उपायसे सम्भव हो, उस गर्भको गिरा दो ॥३३॥ साम और दानके बलसे तुम उस पुत्रका वध कर दो । यदि मेरा भला चाहते होओ तो हे महाभाग ! तुम्हें ऐसा करना ही होगा ॥३४॥ व्यासजी बोले कि माताके वचन सुनकर इन्द्रने मनमें कुछ सोचा और तत्काल अपनी सौतेली माता दितिके पास जा पहुँचे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! अपने मनमें पापकी भावना लेकर इन्द्रने दितिके चरणोंकी वन्दना की और भीतरसे जहर भरी तथा ऊपरसे मीठी बाणी बोले ॥३६॥ इन्द्रने कहा—माताजी ! आप व्रतके कारण बहुत दुर्बल हो गयी हैं । आपकी देह जैसे गली जा रही है । इसी कारण मैं आपकी सेवा करने आया हूँ । बताइए, मैं क्या करूँ ॥३७॥ हे पतिव्रते ! मैं आपके पैर दबाऊँगा । क्योंकि बड़ोंकी सेवा करनेसे पुण्य प्राप्त होता है और अविनाशिनी गति मिलती है ॥३८॥ मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि मेरे मनमें माता अदिति तथा आपमें तनिक भी भेदभाव नहीं है । ऐसा कहकर उन्होंने दितिका पैर पकड़ लिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और दबाने लगे ॥३९॥ इस प्रकार पैर दबानेसे उसे सुख मिला और नींद आ गयी। व्रतसे दुर्बल और थकी हुई परम सती दितिने इन्द्रपर विश्वास कर लिया और सो गयी ॥४०॥ दितिको निद्रित देखकर इन्द्रने अतिशय सूक्ष्म रूप धारण किया और हाथमें शस्त्र लेकर योगबलसे उसके उदरमें घुस गये। इस प्रकार पेटमें जाकर उन्होंने वज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर दिये ॥४१॥ ॥ ४२ ॥ वज्रकी चोट खाकर बालक रोने लगा। तब इन्द्रने धीरेसे कहा—'मा रुद' अर्थात् मत रोओ ॥ ४३ ॥ इसके बाद उन्होंने उस एक-एक टुकड़ेके भी सात-सात टुकड़े कर दिये। हे राजन्! वे टुकड़े उनचास मरुत् (पवन) हो गये ॥४४॥ उसी समय सुन्दर दाँतोंवाली दिति जाग गयी और उसे मालूम हो गया कि छल करके इन्द्रने मेरा गर्भ नष्ट कर दिया है। अब वह अत्यन्त दुःखित तथा कुपित हो गयी ॥४५॥ बादमें जब पता चला कि यह करतूत उसकी बहिन अदितिकी है, तब उस सत्यव्रतपरायणा दितिने अदिति तथा इन्द्र दोनोंको शाप देते

श्रांता व्रतकृशा सुप्ता विश्वस्ता परमा सती ॥ ४० ॥ तां निद्रावशमापन्नां विलोक्य प्राविशत्तनुम् ॥ रूपं कृत्वाऽतिसूक्ष्मं च शस्त्रपाणिः समाहितः ॥ ४१ ॥ उदरं प्रविवेशाशु तस्या योगबलेन वै ॥ गर्भं चकर्त वज्रेण सप्तधा पविनायकः ॥ ४२ ॥ रुरोद च तदा बालो वज्रेणाभिहतस्तथा ॥ मा रुदेति शनैर्वाक्यमुवाच मघवानमुम् ॥ ४३ ॥ शकलानि पुनः सप्त सप्तधा कर्तितानि च ॥ तदा चैकोनपंचाशन्मरुतश्चाभवन्नृप ॥ ४४ ॥ तदा प्रबुद्धा सुदती ज्ञात्वा गर्भं तथाकृतम् ॥ इन्द्रेण छलरूपेण चुकोप भृशदुःखिता ॥४५॥ भगिनीकृतं तु सा बुद्ध्वा शशाप कुपिता तदा ॥ अदितिं मघवंतं च सत्यव्रतपरायणा ॥ ४६ ॥ यथा मे कर्तितो गर्भस्तव पुत्रेण छद्मना ॥ तथा तन्नाशमायातु राज्यं त्रिभुवनस्य तु ॥ ४७ ॥ यथा गुप्तेन पापेन मम गर्भो निपातितः ॥ अदित्या पापचारिण्या यथा मे घातितः सुतः ॥४८॥ तस्याः पुत्रास्तु नश्यंतु जाता जाताः पुनः पुनः ॥ कारागारे वसत्वेषा पुत्रशोकातुरा भृशम् ॥ ४९ ॥ अन्यजन्मनि चाप्येव मृतापत्या भविष्यति ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युत्सृष्टं तदा श्रुत्वा शापं मरीचिनंदनः ॥ ५० ॥ उवाच प्रणयोपेतो वचनं शमयन्निव ॥ मा कोपं कुरु कल्याणि पुत्रास्ते बलवत्तराः ॥ ५१ ॥ भविष्यंति सुराः सर्वे मरुतो मघवत्सखा ॥ शापोऽयं तव वामोरु त्वष्टाविंशेऽथ द्वापरे ॥ ५२ ॥ अंशेन मानुषं जन्म प्राप्य भोक्ष्यति भामिनी ॥ वरुणेनापि दत्तोऽस्ति शापः संतापितेन च ॥ ५३ ॥ उभयोः शापयोगेन मानुषीयं भविष्यति ॥ व्यास उवाच ॥ पतिनाऽऽश्वासिता देवी संतुष्टा साऽभवत्तदा ॥५४॥ नोवाच

हुए कहा कि तुम्हारे पुत्रने छल करके जिस तरह मेरे गर्भको काटकर टुकड़े-टुकड़े किये हैं, उसी प्रकार उसके भी त्रिभुवनका राज्य नष्ट हो जायगा। उस पापिनी अदितिने जिस प्रकार मेरे पुत्रकी हत्या करायी है, उसी प्रकार उसके भी पुत्र उत्पन्न हो-होकर मर जाया करेंगे। वह पुत्रशोकसे कातर होकर कारागारमें निवास करेगी ॥ ४६–४९ ॥ दूसरे जन्ममें भी उसके बच्चे नहीं जियेंगे। व्यासजी बोले कि जब मरीचितनय कश्यपने शापप्रदानकी बात सुनी ॥५०॥ तब उन्होंने दितिको सान्त्वना देते हुए बड़े प्रेमपूर्वक कहा—हे कल्याणी! तुम कोप मत करो। तुम्हारे पुत्र बड़े बलवान् होंगे ॥ ५१ ॥ तुम्हारे खण्डित गर्भसे उत्पन्न उनचास मरुत् देवता होकर इन्द्रके मित्र बन जायँगे। हे सुजघने! अट्ठाईसवें मन्वन्तरके द्वापरयुगमें तुम्हारा शाप सार्थक होगा ॥ ५२ ॥ उस समय अदिति मनुष्यका जन्म पाकर अपने कर्मका फल भोगेगी। इसी प्रकार वरुणदेवने भी रुष्ट होकर उसे शाप दिया है ॥ ५३ ॥ इन दोनों शापोंके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण अदिति मनुष्यका जन्म पायेगी। व्यासजी बोले कि इस प्रकार पति कश्यपके समझानेसे देवी दिति प्रसन्न हो गयी ॥ ५४ ॥ उसके बाद उसने फिर कोई अप्रिय बात नहीं कही। हे राजन्! इस प्रकार मैंने अदितिके पूर्वशापका कारण कह सुनाया ॥ ५५ ॥ हे नृपसत्तम! वही अदिति अपने अंशसे देवकीके रूपमें जनमी ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(अधिकारारूढ़ पुरुषोंकी पापमें प्रवृत्ति) राजा जनमेजय बोले—हे महाभाग! हे महामते! यह कथानक सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। आपकी बातोंका तो यह निष्कर्ष निकला कि संसार पापका मूर्त रूप है। तब इसके बन्धनसे मुक्ति कैसे मिलेगी?॥१॥ जब समस्त त्रिलोकीका वैभव पास रहते हुए भी महर्षि कश्यपके पुत्र इन्द्र ऐसा नीच कर्म कर गुजरे, तब संसारी मनुष्य कौन-सा पाप नहीं कर सकते?॥२॥ अद्भुत सौगन्ध खाकर माताकी सेवाके बहाने उसके गर्भमें घुसकर बालककी हत्या करना तो बहुत भयानक पाप है॥३॥ धर्मके शासक तथा

विप्रियं किंचित्ततः सा वरवर्णिनी ॥ इति ते कथितं राजन्पूर्वशापस्य कारणम् ॥ ५५ ॥ अदितिर्देवकी जाता स्वांशेन नृपसत्तम ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ राजोवाच ॥ विस्मितोऽस्मि महाभाग श्रुत्वाऽऽख्यानं महामते ॥ संसारोऽयं पापरूपः कथं मुच्येत बन्धनात् ॥ १ ॥ कश्यपस्यापि दायादस्त्रिलोकीविभवे सति ॥ कृतवानीदृशं कर्म को न कुर्याज्जुगुप्सितम् ॥ २ ॥ गर्भे प्रविश्य बालस्य हननं दारुणं किल ॥ सेवामिषेण मातुश्च कृत्वा शपथमद्भुतम् ॥ ३ ॥ शास्ता धर्मस्य गोप्ता च त्रिलोक्याः पतिरच्युत ॥ कृतवानीदृशं कर्म को न कुर्यादसांप्रतम् ॥ ४ ॥ पितामहा मे संग्रामे कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम् ॥ कृतवंतस्तथाऽऽश्चर्यं दुष्टं कर्म जगद्गुरो ॥ ५ ॥ भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो धर्मांशोऽपि युधिष्ठिरः ॥ सर्वे विरुद्धधर्मेण वासुदेवेन नोदिताः ॥ ६ ॥ असारतां विजानंतः संसारस्य सुमेधसः ॥ देवांशाश्च कथं चक्रुर्निन्दितं धर्मतत्पराः ॥ ७ ॥ काऽऽस्था धर्मस्य विप्रेन्द्र प्रमाणं किं विनिश्चितम् ॥ चलचित्तोऽस्मि संजातः श्रुत्वा चैतत्कथानकम् ॥ ८ ॥ आप्तवाक्यं प्रमाणं चेदाप्तः कः परदेहवान् ॥ पुरुषो विषयासक्तो रागी भवति सर्वथा ॥ ९ ॥ रागो द्वेषो भवेन्नूनमर्थनाशादसंशयम् ॥ द्वेषादसत्यवचनं वक्तव्यं स्वार्थसिद्धये ॥ १० ॥ जरासंधविघातार्थं हरिणा

रक्षक होकर समस्त त्रिलोकीके अधिपति इन्द्रने जब ऐसा कर्म किया, तब और लोग क्यों न करेंगे?॥ ४ ॥ हे जगद्गुरो! मेरे पितामह (दादा) लोगोंने भी कुरुक्षेत्रके संग्राममें ऐसा ही आश्चर्यजनक तथा कुत्सित कर्म किया था ॥ ५ ॥ भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण और साक्षात् धर्मराजके अंश महाराज युधिष्ठिर तकने धर्मके विरुद्ध आचरण करनेवाले भगवान कृष्णकी प्रेरणासे विविध निन्दनीय कार्य किये थे ॥ ६ ॥ संसारकी असारताको जानते हुए भी उन प्रतिभासम्पन्न और देवताओंके अंशावतार धर्मात्माओंने ऐसे गर्हित कर्म क्यों किये?॥ ७ ॥ हे विप्रशिरोमणि! यदि ऐसा है तो धर्मपर किसकी आस्था होगी? धर्मके विषयमें निश्चित प्रमाण ही क्या है? यह कथानक सुनकर तो मेरा मन चंचल हो उठा है ॥८॥ यदि आप (यथार्थवक्ता धर्मात्मा) के वाक्यको प्रमाण मानें तो आप्त किसको कहा जाय? जो लोग महान् बनते हैं, उनका ही हृदय राग-द्वेषपूर्ण तथा विषयासक्त रहता है ॥९॥ स्वार्थसिद्धि न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होनेपर औरोंके प्रति मनमें रागद्वेष उत्पन्न होता है। तब अपना स्वार्थ साधनेके लिए लोग द्वेषवश झूठे बोलते हैं॥१०॥ परम ज्ञानी और सत्त्वगुणके मूतस्वरूप भगवान कृष्णने जरासन्धका वध करनेके लिए छलसे ब्राह्मणका रूप धारण किया था॥ ११॥ जब ऐसे सत्त्वमूर्ति भी ऐसा अनर्थ कर सकते हैं, तब उन आप्त पुरुषोंको प्रमाण कैसे माना जाय? उसी प्रकार राजसूय यज्ञके अवसरपर अर्जुनने भी छल किया था ॥ १२॥ जिस यज्ञमें शिशुपाल जैसा हत्याकाण्ड हुआ, उसे किस श्रेणीका यज्ञ कहेंगे? वह परलोकमें परमपद प्राप्तिके लिए किया गया था, संसारमें यश फैलानेके निमित्त उसका आयोजन हुआ था या और किसी रहस्यमय कार्यको पूर्ण करनेके लिए वह प्रपंच रचा गया था? ॥ १३॥ वेदोंका कथन है कि धर्मका प्रथम चरण सत्य, दूसरा चरण पवित्रता, तीसरा चरण दया और चतुर्थ चरण दान है। पुराणोंके विद्वान् भी यही कहते हैं। इन चारों चरणोंके बिना धर्म कैसे टिक सकता है? ॥१४॥ ॥१५॥ तब मेरे पूर्वजोंने जो वह धर्महीन यज्ञ किया था, उससे क्या फल प्राप्त हुआ होगा? इससे तो यही पता लगता है कि उस समय किसीकी भी धर्ममें आस्था नहीं थी॥१६॥ जब

सत्त्वमूर्तिना॥ छलेन रचितं रूपं ब्राह्मणस्य विजानता॥ ११॥ तदाऽऽप्तः कः प्रमाणं किं सत्त्वमूर्तिरपीदृशः॥ अर्जुनोऽपि तथैवात्र कार्ये यज्ञविनिर्मिते॥ १२॥ कीदृशोऽयं कृतो यज्ञः किमर्थं शमवर्जितः॥ परलोकपदार्थं वा यशसे वाऽन्यथा किल॥ १३॥ धर्मस्य प्रथमः पादः सत्यमेतच्छ्रुतेर्वचः॥ द्वितीयस्तु तथा शौचं दया पादस्तृतीयकः॥ १४॥ दानं पदश्चतुर्थश्च पुराणज्ञा वदन्ति वै॥ तैर्विहीनः कथं धर्मस्ति-ष्ठेदिह सुसंमतः॥ १५॥ धर्महीनं कृतं कर्म कथं तत्फलदं भवेत्॥ धर्मे स्थिरा मतिः क्वापि न कस्यापि प्रतीयते॥ १६॥ छलार्थं च तदा विष्णुर्वामनोऽभूज्जगत्प्रभुः॥ येन वामनरूपेण वंचितोऽसौ बलिर्नृपः॥ १७॥ विहर्ता शतयज्ञस्य वेदानां परिपालकः॥ धर्मिष्ठो दानशीलश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ १८॥ स्थानात्प्रभ्रंशितोऽकस्माद्विष्णुना प्रभविष्णुना॥ जितं केन तयोः कृष्ण बलिना वामनेन वा॥ १९॥ छलकर्म-विदा चायं सन्देहोऽत्र महान्मम॥ वंचयित्वा वंचितेन सत्यं वद द्विजोत्तम॥ २०॥ पुराणकर्ता त्वमसि धर्मज्ञश्च महामतिः॥ व्यास उवाच॥ जितं वै बलिना राजन्दत्ता येन च मेदिनी॥२१॥ त्रिविक्रमोऽपि नाम्ना यः प्रथितो वामनोऽभवत॥ छलनार्थमिदं राजन्वामनत्वं नराधिप॥२२॥

अखिल विश्वके प्रभु भगवान विष्णु स्वयं छल करनेके लिए वामन बने, तब औरोंकी बात ही क्या है। उन्होंने वामनरूप धारण करके राजा बलिको धोखा दिया॥ १७॥ राजा बलिने सौ अश्वमेध यज्ञ किया था। वह वेदोंकी आज्ञाका पालन करता था। वह धर्मात्मा, दानी, सत्यवादी और जितेन्द्रिय था॥१८॥ अकस्मात् परम प्रभावशाली भगवान विष्णुने उस महा-पुरुषको पदभ्रष्ट कर दिया। हे कृष्ण द्वैपायन! अब आप ही बताइए कि बलि और वामन, इन दोनोंमें कौन जीता? बलि जीता या छलिया वामन भगवान जीते? इस विषयमें मुझे बहुत बड़ा सन्देह है कि वञ्चककी विजय हुई या वञ्चितकी? हे द्विजोत्तम! आप मुझे सत्य बात बताइए॥१९॥२०॥ क्योंकि आप पुराणोंके निर्माणकर्ता, धर्मज्ञ और महान् बुद्धिमान् हैं। व्यासजी बोले—हे राजन्! इस द्वन्द्वमें तो जिसने पृथिवीका दान दिया, उस राजा बलिकी ही विजय हुई॥ २१॥ हे महाराज! त्रिविक्रम नामसे विख्यात विष्णुभगवान् वामन बने।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे नराधिपते ! उन्होंने छल-कपटका कार्य किया था। इसी कारण वे वामन अर्थात् बहुत छोटे हो गये ॥२२॥ उस छलका परिणाम यह हुआ कि उन्हें राजा बलिका दरवान बनना पड़ा। हे पृथिवीपते ! सत्यसे बढ़कर धर्मका मूल और कुछ भी नहीं है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! देहधारियोंके लिए सर्वथा सत्यका पालन करना बड़ा कठिन काम है। हे भूप ! त्रिगुणात्मिका और बहुरूपधारिणी माया बड़ी बलवती होती है ॥ २४ ॥ हे महाराज ! जब मायाने अपने तीनों गुणोंके मेलसे समस्त विश्वकी सृष्टि की है, तब छलिया लोगोंसे कभी सत्यकी रक्षा की जा सकती है ? ॥२५॥ सत्त्व, रज और तम इन्हीं तीनों गुणोंके मेलसे सबकी रचना हुई है। इसीसे त्रिगुणात्मक जीवोंमें सत्यका अभाव होता है। यही सनातनी स्थिति सदा रहती आयी है। हाँ, वानप्रस्थी तथा मुनिजन अलबत्ते अनासक्त, प्रतिग्रहशून्य, सत्यपरायण, वीतराग तथा तृष्णारहित होते हैं। किन्तु वे लोग जनसाधारणको दृष्टान्त दिखानेके लिए ही बनाये गये हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजन् ! उनके सिवाय बाकी सब लोग उपर्युक्त तीनों गुणोंके रंगमें रंगे रहते हैं। हे नृपसत्तम ! उन लोगोंको पुराणों, वेदों, धर्मशास्त्रों, वेदाङ्गों एवं सगुण प्राणियों

संप्राप्तं हरिणा भूयो द्वारपालत्वमेव च॥ सत्यादन्यतरन्नास्ति मूलं धर्मस्य पार्थिव ॥ २३ ॥ दुःसाध्यं देहिनां राजन्सत्यं सर्वात्मना किल ॥ माया बलवती भूप त्रिगुणा बहुरूपिणी ॥ २४ ॥ ययेदं निर्मितं विश्वं गुणैः शबलितं त्रिभिः ॥ तस्माच्छलवतां सत्यं कुतोऽविद्धं भवेन्नृप ॥ २५ ॥ मिश्रेण जनिता चैव स्थितिरेषा सनातनी ॥ वैखानसाश्च मुनयो निःसंगा निष्प्रतिग्रहाः ॥२६॥ सत्यक्ता भवन्त्यत्र वीतरागा गतस्पृहाः ॥ दृष्टांत-दर्शनार्थाय निर्मितास्ते च तादृशाः ॥ २७ ॥ अन्यत्सर्वं शबलितं गुणैरेभिस्त्रिभिर्नृप ॥ नैकं वाक्यं पुराणेषु वेदेषु नृपसत्तम ॥ २८ ॥ धर्मशास्त्रेषु चांगेषु सगुणे रचितेष्विह ॥ सगुणः सगुणं कुर्यान्निर्गुणं न करोति वै ॥ २९ ॥ गुणास्ते मिश्रिताः सर्वे न पृथग्भावसंगताः ॥ निर्व्यलीके स्थिरे धर्मे मतिः कस्यापि न स्थिरा ॥ ३० ॥ भवोद्भवे महाराज मायया मोहितस्य वै ॥ इन्द्रियाणि प्रमाथीनि तदासक्तं मनस्तथा ॥ ३१ ॥ करोति विविधान्भावान्गुणैस्तैः प्रेरितो भृशम् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंताः प्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥ ३२ ॥ सर्वे मायावशा राजन्साऽनुक्रीडति तैरिह ॥ सर्वान्वै मोहयत्येषा विकुर्वत्यनिशं जगत् ॥ ३३ ॥ असत्यो जायते राजन्कार्यवान्प्रथमं नरः ॥ इन्द्रियार्थांश्चिंतयानो न प्राप्नोति यदा नरः ॥ ३४ ॥ तदर्थं छलमादत्ते छलात्पापे प्रवर्तते ॥ कामः क्रोधश्च लोभश्च वैरिणो बलवत्तराः ॥३५॥ कृताकृतं न जानन्ति प्राणिनस्तद्वशं गताः॥ विभवे सत्यहंकारः

द्वारा रचित धर्मग्रन्थोंमें एकवाक्यता नहीं दृष्टिगोचर होती। क्योंकि सगुण प्राणी सगुण ही कार्य करते हैं। सगुणसे निर्गुण कार्य नहीं हो सकता ॥२८॥२९॥ क्योंकि वे सब गुण मिश्रित हैं, उनमें पार्थक्यका अभाव है। इसी कारण जनसाधारणकी बुद्धि सत्य और स्थिर धर्ममें नहीं टिक पाती ॥ ३० ॥ हे महाराज ! जगत्की उत्पत्तिके समय मायासे मोहित व्यक्तिकी हलचल मचा देनेवाली प्रबल इन्द्रियाँ और उन इन्द्रियोंमें आसक्त मन उपर्युक्त गुणोंकी प्रेरणा पाकर विविध भावोंका प्रदर्शन करने लगता है। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त स्थावर-जंगम सभी प्राणी मायाके वशमें रहते हैं और माया उनके साथ तरह-तरहके खेल करती रहती है। वह उन्हें मोहित करके जगत्में नित्य नये-नये विकार उत्पन्न किया करती है॥३१–३३॥ हे राजन् ! सर्वप्रथम संसारी लोग इन्द्रियोंकी इच्छापूर्तिके निमित्त असत्यके सहारे अपना-अपना काम करते हैं। किन्तु जब उससे इच्छा पूर्ण नहीं होती, तब वे छलसे काम लेते हैं। छलको अपनानेसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनमें पापकी प्रवृत्ति बढ़ती है। काम, क्रोध और लोभ ये मनुष्यके बड़े बलवान् शत्रु हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इन शत्रुओंके वशीभूत प्राणी कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार नहीं कर पाते। वैभव बढ़ जानेपर अहङ्कार प्रबल हो जाता है ॥ ३६ ॥ अहङ्कारसे मोह उत्पन्न होता है और मोह होनेपर प्राणीका नाश हो जाता है। मोहके कारण प्राणीके मनमें विविध प्रकारके सङ्कल्प-विकल्प उठते हैं ॥ ३७ ॥ मोहसे ही चित्तमें ईर्ष्या, छिद्रान्वेषण और द्वेषके भाव जायमान होते हैं। आशा, तृष्णा, दैन्य, पाखण्ड और अधार्मिक बुद्धि ये सभी भावनायें प्राणियोंके हृदयमें मोहसे ही उत्पन्न होती हैं। यज्ञ, दान, तीर्थाटन, व्रत और नियम ये सभी सत्कर्म भी मनुष्य अहङ्कारके ही वशीभूत होकर करता है। किन्तु उनका फल वैसा नहीं प्राप्त होता, जैसा कि निर्मल अन्तःकरणवाले प्राणियोंके करनेसे प्राप्त होता है ॥३८–४०॥ आसक्ति तथा लोभवश किया हुआ यज्ञादि कर्म सर्वथा अशुद्ध होता है। अतएव विद्वानोंको चाहिए कि सबसे पहले द्रव्यशुद्धि-पर विचार करें ॥ ४१ ॥ यदि किसीके प्रति द्रोहभाव रखकर उपार्जित धनको लोग शुभ कार्यमें लगाते हैं तो हे नृपोत्तम! फलप्राप्तिके समय उसका विपरीत फल मिलता है। जिसका

प्रबलः प्रभवत्यपि ॥ ३६ ॥ अहंकाराद्भवेन्मोहो मोहान्मरणमेव च ॥ संकल्पा बहवस्तत्र विकल्पाः प्रभवन्ति च ॥ ३७ ॥ ईर्ष्याऽसूया तथा द्वेषः प्रादुर्भवति चेतसि ॥ आशा तृष्णा तथा दैन्यं दंभोऽधर्ममतिस्तथा ॥ ३८ ॥ प्राणिनां प्रभवंत्येते भावा मोहसमुद्भवाः ॥ यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतानि नियमास्तथा ॥ ३९ ॥ अहंकाराभिभूतस्तु करोति पुरुषोऽन्वहम् ॥ अहंभावकृतं सर्वं प्रभवेद्वै न शौचवत् ॥ ४० ॥ रागलोभात्कृतं कर्म सर्वाङ्गं शुद्धिवर्जितम् ॥ प्रथमं द्रव्यशुद्धिश्च द्रष्टव्या विबुधैः किल ॥ ४१ ॥ अद्रोहेणार्जितं द्रव्यं प्रशस्तं धर्मकर्मणि ॥ द्रोहार्जितेन द्रव्येण यत्करोति शुभं नरः ॥ ४२ ॥ विपरीतं भवेत्तत्तु फलकाले नृपोत्तम ॥ मनोऽतिनिर्मलं यस्य स सम्यक्फलभाग्भवेत् ॥ ४३ ॥ तस्मिन्विकारयुक्ते तु न यथार्थफलं लभेत् ॥ कर्तारः कर्मणां सर्वे आचार्यर्त्विजादयः ॥ ४४ ॥ स्युस्ते विशुद्धमनसस्तदा पूर्णं भवेत्फलम् ॥ देशकालक्रियाद्रव्य-कर्तॄणां शुद्धता यदि ॥ ४५ ॥ मंत्राणां च तदा पूर्णं कर्मणां फलमश्नुते ॥ शत्रूणां नाशमुद्दिश्य स्ववृद्धिं परमां तथा ॥ ४६ ॥ करोति सुकृतं तद्वद्विपरीतं भवेत्किल ॥ स्वार्थासक्तः पुमान्नित्यं न जानाति शुभाशुभम् ॥ ४७ ॥ दैवाधीनः सदा कुर्यात्पापमेव न सत्कृतम् ॥ प्राजापत्याः सुराः सर्वे ह्यसुराश्च तदुद्भवाः ॥ ४८ ॥ सर्वे ते स्वार्थनिरताः परस्परविरोधिनः ॥ सत्त्वोद्भवाः सुराः सर्वेऽप्युक्ता वेदेषु मानुषाः ॥ ४९ ॥ रजोद्भवास्ताम-

मन भलीभाँति स्वच्छ रहता है, वही पूर्ण फलका भागी होता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जिस व्यक्तिके मनमें काम-क्रोध आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं, वह यथार्थ फल नहीं प्राप्त कर पाता। जब कर्म करनेवाले आचार्य-ऋत्विक् आदि लोगोंका चित्त शुद्ध होता है, तभी यजमानको पूर्ण फलकी प्राप्ति होती है। यदि देश, काल, कर्म, द्रव्य तथा कर्ता सब शुद्ध होते हैं, तभी यज्ञ-दानादि कर्मोंका पूर्ण फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य शत्रुनाश तथा अपनी अभिवृद्धिके लिए यज्ञादि कर्म करता है तो उसे उलटा फल मिलता है। क्योंकि अपने स्वार्थमें लिप्त मनुष्य भले-बुरेकी परख नहीं कर पाते ॥४४–४७॥ वे सदा दैवके भरोसे रहकर पाप ही करते हैं—भला काम उनसे नहीं होता। प्रजापति ब्रह्मासे ही देवता उत्पन्न होते हैं और उन्हींसे असुरोंकी भी उत्पत्ति होती है ॥४८॥ वे देवता और दैत्य स्वार्थपरायण होकर एक दूसरेके विरुद्ध सब काम करते हैं। वेदोंमें कहा गया है कि सतोगुणसे देवताओं, रजोगुणसे मनुष्यों तथा तमोगुणसे पशु-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पक्षी आदि तिर्यग्योनिके जीवोंकी उत्पत्ति होती है। सो जब सतोगुणसे उत्पन्न होनेवाले देवताओंमें परस्पर वैरभाव बना रहता है ॥४९॥५०॥ तब यदि पशु-पक्षियोंमें परस्पर वैरभाव रहे तो क्या आश्चर्य है। जब सतोगुणसे जायमान देवता सदा द्रोहभाव रखते हैं, औरोंकी तपस्यामें विघ्न डालते हैं ॥ ५१ ॥ वे सदा असन्तुष्ट रहते हुए द्वेषपरायण होकर आपसमें ही विरोधभाव रखते हैं। तब हे नृप! अहंकारसे उत्पन्न यह संसार रागद्वेषसे हीन कैसे हो सकता है? ॥५२॥५३॥ इति श्रीदेवीभागवते चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(नर-नारायणकी तपस्या) व्यासजी बोले—हे नृपोत्तम! बहुत कहनेसे कोई काम नहीं, इस संसारमें धर्मात्मा और द्रोहबुद्धिसे रहित मनुष्य कोई विरला ही होता है ॥ १ ॥ स्थावर-जंगमात्मक समस्त विश्व राग-द्वेषसे पूर्ण रहता है। हे राजेन्द्र! सत्ययुगमें भी यह संसार ऐसा ही था। फिर इस समय कलिदूषित समयमें क्या कहना है ॥ २ ॥ जब देवता भी ईर्ष्यालु, द्रोहभावपरिपूर्ण और छल-कपटपरायण रहते हैं, तब मनुष्यों तथा पशु-पक्षियोंकी बात ही क्या है? द्रोहभाव रखनेवालेके प्रति द्रोहभाव रखना तो बराबरीका व्यवहार कहा जा

सास्तु तिर्यंचः परिकीर्तिताः ॥ सत्त्वोद्भवानां तैर्वैरं परस्परमनारतम् ॥ ५० ॥ तिरश्चामत्र किं चित्रं जातिवैरसमुद्भवे ॥ सदा द्रोहपरा देवास्तपोविघ्नकरास्तथा ॥ ५१ ॥ असन्तुष्टा द्वेषपराः परस्परविरोधिनः ॥ अहंकारसमुद्भूतः संसारोऽयं यतो नृप ॥ ५२ ॥ रागद्वेषविहीनस्तु स कथं जायते नृप ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ अथ किं बहुनोक्तेन संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम ॥ धर्मात्माऽद्रोहबुद्धिस्तु कश्चिद्भवति कर्हिचित् ॥ १ ॥ रागद्वेषावृतं विश्वं सर्वं स्थावरजंगमम् ॥ आद्ये युगेऽपि राजेंद्र किमद्य कलिदूषिते ॥ २ ॥ देवाः सेर्ष्याश्च सद्रोहाश्छलकर्मरताः सदा ॥ मानुषाणां तिरश्चां च का वार्ता नृप गण्यते ॥ ३ ॥ द्रोहपरे द्रोहपरो भवेदिति समानता ॥ अद्रोहिणि तथा शांते विद्वेषः खलता स्मृता ॥ ४ ॥ यः कश्चित्तापसः शांतो जपध्यानपरायणः ॥ भवेत्तस्य जपे विघ्नकर्ता वै मघवा परम् ॥ ५ ॥ सतां सत्ययुगं साक्षात्सर्वदैवासतां कलिः ॥ मध्यमो मध्यमानां तु क्रियायोगौ युगे स्मृतौ ॥ ६ ॥ कश्चित्कदाचिद्भवति सत्यधर्मानुवर्तकः ॥ अन्यथाऽन्ययुगानां वै सर्वे धर्मपरायणाः ॥ ७ ॥ वासना कारणं राजन्सर्वत्रधर्मसंस्थितौ ॥ तस्यां वै मलिनायां तु धर्मोऽपि मलिनो भवेत् ॥ ८ ॥ मलिना वासना सत्यं विनाशायेति सर्वथा ॥ ब्रह्मणो हृदयाज्जातः पुत्रो धर्म इति

सकता है। किन्तु द्रोहभाव न रखनेवाले शान्तप्रकृति प्राणियोंसे द्वेष रखना दुष्टताका चिह्न है ॥ ३ ॥ ४ ॥ यदि कोई शान्त तथा जप-ध्यानमें संलग्न तपस्वी होता है तो इन्द्र उसके काममें विघ्न डालनेके लिए सबसे पहले पहुँचते हैं ॥५॥ सज्जन पुरुषोंके लिए सब समय सत्ययुग विद्यमान रहता है, दुष्टोंको सर्वदा कलियुग व्याप्त दीखता है और जिस युगमें कर्म तथा योग-साधनकी सलाह दी गयी है, उस द्वापर तथा त्रेतायुगकी प्रथाके अनुसार मध्यम श्रेणीके लोग चलते हैं। इस प्रकार सज्जन, दुष्ट तथा मध्यम इन तीन श्रेणियोंमें लोग विभक्त रहते हैं ॥ ६ ॥ कभी-कभी कहीं कोई विरला ही मनुष्य सत्यधर्मका आचरण करनेवाला मिलता है। बाकी सब लोग तो युगधर्मका अनुसरण करनेवाले ही दिखायी देते हैं ॥ ७ ॥ हे राजन्! सर्वत्र धर्मपथपर चलनेके लिए वासना ही मुख्य कारण मानी जाती है। उस वासनामें तनिक भी मलिनता आनेपर धर्ममें भी मलिनता आ जाती है ॥८॥ मलिन वासना अवश्यमेव विनाशका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण बन जाती है। ब्रह्माजीके हृदयसे एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई, जिसका नाम धर्म था ॥ ९ ॥ वह ब्राह्मण (ब्रह्माका पुत्र), सत्यवादी तथा वैदिक धर्मका अनुरागी पुरुष था। उसने दक्ष प्रजापतिकी दस कन्याओंके साथ विवाह किया ॥ १० ॥ इस प्रकार उनका विधिवत् पाणिग्रहण करके वह गार्हस्थ्य धर्मका पालन करने लगा। सत्यव्रतियोंमें अग्रणी धर्मने उन कन्याओं द्वारा चार पुत्र उत्पन्न किये ॥११॥ उनके नाम थे—हरि, कृष्ण, नर तथा नारायण। हे राजन्! उन चारोंमें हरि और कृष्ण ये दोनों नित्य योगाभ्यास किया करते थे ॥ १२ ॥ बाकी दो पुत्र नर और नारायण हिमालय पर्वतके बदरिकाश्रममें जाकर उग्र तप करने लगे ॥ १३ ॥ तपस्वियोंमें प्रमुख और परम पुरातन नर-नारायण गंगाजीके विशाल तटपर बैठकर गायत्री-संज्ञक परब्रह्म-मंत्रका जप करने लगे ॥ १४ ॥ साक्षात् विष्णु भगवानके अंशावतार नर-नारायणने उस स्थानपर पूरे एक हजार वर्षतक बहुत उच्च कोटिकी तपस्या की ॥ १५ ॥ उन्होंने अपनी उग्र तपस्यासे सचराचर समस्त विश्वमें खलबली मचा दी। इससे इन्द्रको बहुत क्षोभ हुआ ॥ १६ ॥ हजार नेत्रोंवाले देवराज इन्द्र अपने मनमें सोचने लगे कि इन तपस्वी और

स्मृतः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणः सत्यसंपन्नो वेदधर्मरतः सदा ॥ दक्षस्य दुहितारो हि वृता दश महात्मना ॥ १० ॥ विवाहविधिना सम्यङ्मुनिना गृहधर्मिणा ॥ तास्वजीजनयत्पुत्रान्धर्मः सत्यवतां वरः ॥ ११ ॥ हरिं कृष्णं नरं चैव तथा नारायणं नृप ॥ योगाभ्यासरतो नित्यं हरिः कृष्णो बभूव ह ॥ १२ ॥ नरनारायणौ चैव चेरतुस्तप उत्तमम् ॥ प्रालेयाद्रिं समागत्य तीर्थे बदरिकाश्रमे ॥ १३ ॥ तपस्विषु धुरीणौ तौ पुराणौ मुनिसत्तमौ ॥ गृणंतौ तत्परं ब्रह्म गंगाया विपुले तटे ॥१४॥ हरेरंशौ स्थितौ तत्र नरनारायणावृषी ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं तु चक्राते तप उत्तमम् ॥ १५ ॥ तापितं च जगत्सर्वं तपसा सचराचरम् ॥ नरनारायणाभ्यां च शक्रः क्षोभं तदा ययौ ॥ १६ ॥ चिन्ताविष्टः सहस्राक्षो मनसा समकल्पयत् ॥ किं कर्तव्यं धर्मपुत्रौ तापसौ ध्यानसंयुतौ ॥१७॥ सिद्धार्थौ सुभृशं श्रेष्ठमासनं मे ग्रहीष्यतः ॥ विघ्नः कथं प्रकर्तव्यस्तपो येन भवेन्न हि ॥ १८ ॥ उत्पाद्य कामं क्रोधं च लोभं वाप्यतिदारुणम् ॥ इत्युद्दिश्य सहस्राक्षः समारुह्य गजोत्तमम् ॥ १९ ॥ विघ्नकामस्तु तरसा जगाम गन्धमादनम् ॥ गत्वा तत्राश्रमे पुण्ये तावपश्यच्छतक्रतुः ॥२०॥ तपसा दीप्तदेहौ तु भास्कराविव चोदितौ ॥ ब्रह्मविष्णू किमेतौ वै प्रकटौ वा विभावसुः ॥२१॥ धर्मपुत्रावृषी एतौ तपसा किं करिष्यतः ॥ इति संचिंत्य तौ दृष्ट्वा तदोवाच शचीपतिः ॥२२॥ किं वां कार्यं महाभागौ ब्रूतं धर्मसुतौ किल ॥

ध्यानमग्न धर्मपुत्रोंके विषयमें मैं क्या करूँ? ॥१७॥ उन्होंने यदि तपस्या पूर्ण करके सिद्धि प्राप्त कर ली तो वे मेरा श्रेष्ठ इन्द्रासन छीन लेंगे। अब मैं कैसा विघ्न उपस्थित करूँ कि जिससे उनकी तपस्या न पूर्ण होने पाये ॥१८॥ अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि उन दोनोंके मनमें तीव्र काम-क्रोध-लोभ उत्पन्न करके उन्हें तपस्यासे भ्रष्ट कर दूँ। तदनुसार इन्द्र अपने गजश्रेष्ठ ऐरावतपर सवार होकर उनके तपमें विघ्न डालनेके लेए गन्धमादन पर्वतपर जा पहुँचे। उस पुनीत आश्रममें पहुँचकर उन्होंने नर-नारायणको विराजमान देखा ॥ १९ ॥ २० ॥ तपस्याके प्रभावसे जगमगानेवाले उन दोनों महामुनियोंका शरीर देदीप्यमान सूर्यके समान तेजस्वी था। तब इन्द्रदेव सोचने लगे कि ये ब्रह्मा-विष्णु हैं या स्वयं सूर्यनारायण अथवा चन्द्रमा हैं? ॥२१॥ धर्मके पुत्र ये दोनों ऋषि अपनी तपस्यासे क्या करना चाहते हैं? इस कारण विचार करके इन्द्रने उनसे कहा—हे महाभाग धर्मपुत्रो! आप क्या चाहते हैं? सो बताइए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं आप लोगोंको उत्तम वर देनेके लिए यहाँ आया हूँ ॥२२॥२३॥ मैं आपके तपसे प्रसन्न हूँ। इसलिए आपको अदेय वस्तु भी दे दूँगा। व्यासजी बोले—उन दोनोंके समक्ष इन्द्रने बार-बार यह बात कही ॥२४॥ किन्तु ध्यानमग्न तथा दृढ़चित्त नर-नारायण कुछ नहीं बोले। तब इन्द्रने अपनी भयदायिनी मोहिनी माया फैलायी ॥२५॥ उन्होंने भेड़िये, सिंह और व्याघ्र आदि हिंस्र जन्तुओंको उत्पन्न करके उन्हें डराया। वर्षा, वायु तथा अग्नि उत्पन्न करके अपनी मोहिनी मायाके द्वारा भी उनको बार-बार डरानेकी चेष्टा की। किन्तु देवराज इन्द्र इस प्रकार भय प्रदर्शन करके भी उनको अपने वशमें नहीं कर सके ॥२६॥२७॥ जब इन्द्रने देखा कि ये न वरदानके लोभमें फँसे और न अग्नि तथ वायुके द्वारा ही डर रहे हैं, तब वे अपने घर लौट गये ॥२८॥ व्याघ्र-सिंह आदि हिंसक पशुओंके आक्रमण करनेपर भी वे दोनों अपने आसनसे नहीं हिले। इन सब उत्पातोंमेंसे कोई भी उत्पात उनका ध्यान भंग नहीं कर सका ॥२९॥ इन्द्र

ददामि वां वरं श्रेष्ठं दातुं यातोऽस्म्यहं ऋषी ॥२३॥ अदेयमपि दास्यामि तुष्टोऽस्मि तपसा किल ॥ व्यास उवाच ॥ एवं पुनः पुनः शक्रस्तावुवाच पुरः स्थितः ॥२४॥ नोचतुस्तावृषी ध्यानसंस्थितौ दृढचेतसौ ॥ ततो वै मोहिनीं मायां चकार भयदां वृषः ॥२५॥ वृकान्सिंहांश्च व्याघ्रांश्च समुत्पाद्याविभीषयत् ॥ वर्षं वातं तथा वह्निं समुत्पाद्य पुनः पुनः ॥२६॥ भीषयामास तौ शक्रो मायां कृत्वा विमोहिनीम् ॥ भयतोऽपि वशं नीतौ न तौ धर्मसुतौ मुनी ॥२७॥ नर-नारायणौ दृष्ट्वा शक्रः स्वभवनं गतः ॥ वरदाने प्रलुब्धौ न न भीतौ वह्निवायुतः ॥२८॥ व्याघ्रसिंहादिभिः क्रांतौ चलितौ नाश्रमात्स्वकात् ॥ न तयोर्ध्यानभङ्गं वै कर्तुं कोऽपि क्षमोऽभवत् ॥२९॥ इन्द्रोऽपि सदनं गत्वा चिन्तयामास दुःखितः ॥ चलितौ भयलोभाभ्यां नेमौ मुनिवरोत्तमौ ॥३०॥ चिंतयंतौ महाविद्यामादिशक्तिं सनातनीम् ॥ ईश्वरीं सर्वलोकानां परां प्रकृतिमद्भुताम् ॥३१॥ ध्यायतां कः क्षमो लोके बहुमायाविदप्युत ॥ यन्मूलाः सकला माया देवासुरकृताः किल ॥३२॥ ते कथं बाधितुं शक्ता ध्यायंति गतकल्मषाः ॥ वाग्बीजं कामबीजं च मायाबीजं तथैव च ॥३३॥ चित्ते यस्य भवेत्तं तु बाधितुं कोऽपि न क्षमः ॥ मायया मोहितः शक्रो भूयस्तस्य प्रतिक्रियाम् ॥३४॥ कर्तुं कामवसंतौ तु समाहूयाब्रवीद्वचः ॥ मनोभव वसंतेन रत्या युक्तो व्रजाधुना ॥ ३५ ॥ अप्सरोभिः समायुक्तस्तरसा गंधमादनम् ॥ नरनारायणौ तत्र पुराणावृषिसत्तमौ ॥ ३६ ॥ कुरुतस्तप एकान्ते स्थितौ बद-

अपने घर पहुँचकर बहुत दुःखित होते हुए विचार करने लगे कि वे दोनों मुनिवर भय और लोभसे भी विचलित नहीं हुए ॥ ३० ॥ वे तो महाविद्या, आदिशक्ति, सनातनी, सब लोकोंकी ईश्वरी और अद्भुत परा प्रकृतिका ध्यान कर रहे थे ॥३१॥ देवताओं तथा असुरोंकी समस्त माया उस परा शक्तिसे ही उत्पन्न होती है। अतएव कोई चाहे कितना ही बड़ा मायाका विज्ञ क्यों न हो, वह मूलमायास्वरूपिणी देवीका ध्यान करनेवाले पुरुषके मनको अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥ भगवती जगदम्बाका ध्यान करनेके कारण जिनके पाप कट गये रहते हैं, उनको भला मायावी लोग किस प्रकार विचलित कर सकते हैं ? जिनके मनमें भगवतीका वाग्बीज और मायाबीज घर कर चुका है, उन्हें कौन पथभ्रष्ट कर सकता है ? अब स्वयं मायासे मोहित होकर इन्द्रने उनका प्रतीकार करनेके लिए कामदेव तथा वसन्त ऋतुको बुलाकर कहा—हे कामदेव ! तुम वसन्त और रतिको लेकर बहुतेरी अप्सराओंके साथ गन्धमादन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर्वतपर अभी जाओ। वहाँ नर-नारायण नामके पुरातन श्रेष्ठ ऋषि बदरिकाश्रमके एक एकान्त स्थलमें तप कर रहे हैं। हे मन्मथ! उनके पास जाकर तुम अपने बाणोंकी मारसे उनके चित्तको कामातुर कर दो। मोहन तथा उच्चाटनका प्रयोग करके उन्हें तुम अपने बाणोंसे तपोभ्रष्ट कर डालो ॥ ३३-३८ ॥ हे महाभाग! धर्मके पुत्र उन दोनों मुनियोंको तुम अपने वशमें कर लो। समस्त संसारमें कौन ऐसा देवता, दानव या मानव है, जो तुम्हारे बाणोंके वशीभूत न हो गया हो। ब्रह्माजी, मैं इन्द्र, शंकर भगवान, चन्द्रमा और अग्नि भी तुम्हारे बाणोंकी मारसे मोहित हो चुके हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तब हे काम! इन दोनों ऋषियोंकी क्या गिनती है? तुम्हारे बाणोंके पराक्रमके सम्मुख ये कैसे टिकेंगे? तुम्हारी सहायताके लिए मैं इन अप्सराओंको भी भेज रहा हूँ ॥ ४१ ॥ उनमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी रम्भा आदि प्रमुख अप्सरायें भी रहेंगी। अकेली रम्भा और तिलोत्तमा मेरा काम पूरा कर सकती हैं ॥४२॥ ये भी न हों तो तुम स्वयं सब कुछ कर सकते हो। फिर जब तुम सब एक साथ सुसंगठितरूपसे आगे बढ़ोगे, तब तो सफलता मिलना निश्चित ही है। हे महाभाग! तुम मेरा यह काम कर दो। इसके बदलेमें

रिकाऽऽश्रमे ॥ गत्वा तत्र समीपे तु तयोर्मन्मथ मार्गणैः ॥३७॥ चित्तं कामातुरं कार्यं कुरु कार्यं ममाधुना ॥ मोहयित्वोच्चाटयित्वा विशिखैस्ताडयाशु च
॥ ३८ ॥ वशीकुरु महाभाग मुनी धर्मसुतावपि ॥ को ह्यस्मिन्सर्वसंसारे देवो दैत्योऽथ मानवः ॥३९॥ यस्ते बाणवशं प्राप्तो न याति भृशताडितः ॥
ब्रह्माऽहं गिरिजानाथश्चंद्रो वह्निर्विमोहितः ॥४०॥ गणना काऽनयोः काम त्वद्बाणानां पराक्रमे ॥ वारांगनागणोऽयं ते सहायार्थं मयेरितः ॥४१॥
आगमिष्यति तत्रैव रंभादीनां मनोरमः ॥ एका तिलोत्तमा रंभा कार्यं साधयितुं क्षमा ॥ ४२ ॥ त्वमेवैकः क्षमः कामं मिलितैः कस्तु संशयः ॥
कुरु कार्यं महाभाग ददामि तव वांछितम् ॥ ४३ ॥ प्रलोभितौ मयाऽत्यर्थं वरदानैस्तपस्विनौ ॥ स्थानान्न चलितौ शान्तौ वृथाऽयं मे गतः श्रमः
॥ ४४ ॥ तथा वै मायया कृत्वा भीषितौ तापसौ भृशम् ॥ तथापि नोत्थितौ स्थानाद्देहरक्षापरौ न तौ ॥ ४५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः
श्रुत्वा शक्रं प्राह मनोभवः ॥ वासवाद्य करिष्यामि कार्यं ते मनसेप्सितम् ॥४६॥ यदि विष्णुं महेशं वा ब्रह्माणं वा दिवाकरम् ॥ ध्यायंतौ तौ तदाऽ-
स्माकं भवितारौ वशौ मुनी ॥ ४७ ॥ देवीभक्तं वशीकर्तुं नाहं शक्तः कथंचन ॥ कामराजं महाबीजं चिंतयंतं मनस्यलम् ॥ ४८ ॥ तां देवीं चेन्म-
हाशक्तिं संश्रितौ भक्तिभावतः ॥ न तदा मम बाणानां गोचरौ तापसौ किल ॥ ४९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ गच्छ त्वं च महाभाग सर्वैस्तत्र समुद्यतैः ॥

तुम जो चाहोगे, सो दूँगा ॥४३॥ मैंने उन्हें वरदानोंके लोभमें डालना चाहा, पर वे शान्त तपस्वी अपने आसनसे नहीं चलायमान हुए। इस प्रकार मेरा परिश्रम व्यर्थ हो गया ॥४४॥ उसके बाद मैंने मायाका विस्तार करके उन्हें बहुत डराया, फिर भी वे उस स्थानसे नहीं हटे। जैसे उन्हें अपने शरीरकी रक्षाकी भी चिन्ता नहीं थी ॥४५॥ व्यासजी बोले—इन्द्रके वचन सुनकर कामदेवने कहा—हे वासव (इन्द्र)! मैं अभी आपका काम किये देता हूँ ॥ ४६ ॥ यदि वे दोनों मुनि विष्णु, ब्रह्मा तथा सूर्य किसी भी देवताका ध्यान करते होंगे तो मैं उन्हें अपने वशमें कर लूँगा ॥ ४७ ॥ किन्तु मन ही मन कामराज नामके महाबीजका चिन्तन करनेवाले देवीभक्तको मैं किसी तरह अपने वशमें न कर सकूँगा ॥ ४८ ॥ यदि वे भक्तिभावसे महाशक्तिस्वरूपा देवीकी उपासना कर रहे होंगे तो मेरे बाण उन तपस्वियों तक पहुँच ही न सकेंगे ॥ ४९ ॥ इन्द्र बोले—हे महाभाग! तुम इन सबके साथ वहाँ जाओ। यद्यपि मेरा काम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़ा दुःसाध्य है। फिर भी तुम जैसे शुभचिंतकोंपर मेरा पूर्ण विश्वास है कि उसे पूरा कर ही लोगे ॥ ५० ॥ व्यासजी बोले—इन्द्रका ऐसा आदेश पाकर वे लोग बड़ी तैयारीके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ वे दोनों धर्मपुत्र नर-नारायण दुष्कर तपस्या कर रहे थे ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(नर-नारायणके पास अप्सराओंका पहुँचना) व्यासजी बोले—गन्धमादन पर्वतपर सबसे पहले वसन्त पहुँचा। जिससे वहाँके सभी वृक्ष फल-फूलोंसे लद गये और उनपर भौंरोंके झुण्ड मँडराने लगे ॥ १ ॥ आम, मौलसिरी, तिलक, सुन्दर पलाश, साल, तमाल और महुएके वृक्ष पुष्पित हो गये ॥ २ ॥ उन वृक्षोंकी डालियोंपर कोयलकी मीठी कूक सुनायी देने लगी। आस-पासकी लतायें पुष्पित होकर बड़े-बड़े वृक्षोंपर लस गयीं ॥ ३ ॥ वहाँके सभी प्राणी प्रेमयुक्त, कामातुर तथा मदमत्त होकर अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ रतिक्रीड़ा करने लगे

कार्यं ममातिदुःसाध्यं कर्ता हितमनुत्तमम् ॥ ५० ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेन समादिष्टा ययुः सर्वे समुद्यताः ॥ यत्र तौ धर्मपुत्रौ द्वौ तेपाते दुष्करं तपः ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ प्रथमं तत्र संप्राप्तो वसंतः पर्वतोत्तमे ॥ पुष्पिताः पादपाः सर्वे द्विरेफालिविराजिताः ॥ १ ॥ आम्राश्च बकुला रम्यास्तिलकाः किंशुकाः शुभाः ॥ सालास्तालास्तमालाश्च मधूकाः पुष्पिता बभुः ॥२॥ बभूवुः कोकिलाऽऽलापा वृक्षाग्रेषु मनोहराः ॥ बल्ल्योऽपि पुष्पिताः सर्वाः आलिलिंगुर्नगोत्तमान् ॥ ३ ॥ प्राणिनः स्वासु भार्यासु प्रेमयुक्ताः स्मरातुराः ॥ बभूवुश्चातिमत्ताश्च क्रीडासक्ताः परस्परम् ॥ ४ ॥ ववुर्मन्दाः सुगंधाश्च सुस्पर्शा दक्षिणानिलाः ॥ इन्द्रियाणि प्रमाथीनि मुनीनामपि चाभवन् ॥ ५ ॥ रतियुक्तस्ततः कामः पूरयन्पंच मार्गणान् ॥ चकार त्वरितस्तत्र वासं बदरिकाश्रमे ॥ ६ ॥ रंभा तिलोत्तमाद्याश्च गत्वा तत्र वराश्रमे ॥ गानं चक्रुः सुगीतज्ञाः स्वरतानसमन्वितम् ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा मधुरोद्गीतं कोकिलानां च कूजितम् ॥ भ्रमरालिविरावं च प्रबुद्धौ तौ मुनीश्वरौ ॥ ८ ॥ ऋतुराजमकाले तु दृष्ट्वा तौ पुष्पितं वनम् ॥ जातौ चिंतापरौ तत्र नरनारायणावृषी ॥ ९ ॥ किमद्य शिशिरापायः संवृतः समयं विना ॥ प्राणिनो विह्वलाः सर्वे लक्ष्यंतेऽतिस्मरातुराः ॥ १० ॥ कालधर्मविपर्यासः कथमद्य दुरासदः ॥ नरं नारायणः प्राह विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ११ ॥ नारायण उवाच ॥ पश्य भ्रातरिमे वृक्षाः पुष्पिताः प्रतिभांति वै ॥

॥ ४ ॥ मन्द, सुगन्धित और शीतल दक्षिणी बयार बहने लगी। उस समय मुनियोंकी भी इन्द्रियोंमें हलचल मच गयी ॥५॥ तब रतिके साथ कामदेव भी पञ्चबाणका प्रयोग करता हुआ तत्काल बदरिकाश्रममें जा पहुँचा और वहाँ ही उसने अड्डा जमा लिया ॥ ६ ॥ गायनमें निपुण रम्भा-तिलोत्तमा आदि अप्सरायें उस उत्तम आश्रममें पहुँचकर सुन्दर स्वर-तालके साथ गाने लगीं ॥ ७ ॥ वह मधुर गीत, कोयलोंकी कूक और भौंरोंकी गुनगुनाहट सुनकर उन दोनों मुनियोंका ध्यान भंग हो गया ॥८॥ असमयमें ऋतुराज वसन्तका आगमन तथा समस्त वनको पुष्पित देखकर नर-नारायण ऋषि चिन्तित हो उठे ॥९॥ उन्होंने सोचा कि क्या बिना समय आये ही शिशिर ऋतुका अन्त हो गया? इस समय सभी प्राणी विह्वल और कामातुर दिखाई दे रहे हैं ॥१०॥ एकाएक समय क्यों इतने विचित्र रूपसे परिवर्तित हो गया? विस्मयके कारण विकसित नयनोंवाले नारायण ऋषिने कहा ॥११॥ नारायण बोले—भैया! वह देखो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सभी वृक्ष पुष्पित दिखायी देते हैं। उनके ऊपर कोयलकी कूक और भौंरोंका गुञ्जार हो रहा है ॥ १२ ॥ हे मुने ! शिशिररूपी भयानक हाथीको अपने पलाशपुष्परूपी तीक्ष्ण नखोंसे विदीर्ण करता हुआ वसंतरूपी सिंह आ पहुँचा है ॥ १३ ॥ हे देवर्षे ! इधर देखिए, यहाँ वह वसंतश्रीरूपिणी सुंदरी भी आ गयी है। जिसके हाथ लाल अशोक हैं, पैर पलाशके फूल हैं, केश नील अशोक हैं और जिसका मुख विकसित कमल है ॥ १४ ॥ नीलकमल जिसके नेत्र हैं, बेलके फल स्तन हैं, विकसित कुंदपुष्प जिसके दाँत हैं और जिसके कान आमके बौर हैं ॥१५॥ दुपहरियाके फूल जिसके होंठ हैं, सिंधुवार (सम्हालू) के पुष्प जिसके नख हैं, कोकिला पुनीत स्वर है और कदमके फूल जिसके वस्त्र हैं ॥ १६ ॥ मयूरवृ द जिसके जूड़े हैं, सारसोंका स्वर जिसका नूपुर है, माधवी लता जिसकी करधनी है और मस्त हंस जिसकी चाल हैं ॥ १७ ॥ पुत्रजीव जिसके रोयें हैं, वह वसंतश्री इस समय यहाँ उपस्थित है ॥ १८ ॥ मुझे तो यह सोचकर आश्चर्य होता है कि यह असमयमें यहाँ क्यों आयी ? हे देवर्षे ! आप निश्चित समझिए कि यह हमारे तपमें विघ्न डालनेके लिए ही यहाँ आयी है ॥ १९ ॥ ध्यान

कोकिलाऽऽलापसंघुष्टा भ्रमरालिविराजिताः ॥१२॥ शिशिरं भीममातंगं दारयन्स्वखरैर्नखैः ॥ वसंतकेशरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने ॥१३॥ रक्ताशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकांघ्रिका ॥ नीलाशोककचा श्यामा विकासिकमलाऽऽनना ॥१४॥ नीलेंदीवरनेत्रा सा बिल्ववृक्षफलस्तनी ॥ प्रोत्फुल्लकुन्दरदना मंजरीकर्णशोभिता ॥ १५ ॥ बंधुजीवाधरा शुभ्रा सिंधुवारनखोद्भवा ॥ पुंस्कोकिलस्वरा पुण्या कदंबवसना शुभा ॥ १६ ॥ बर्हिबृंदकलापा च सारसस्वननूपुरा ॥ वासंती बद्धरशना मत्तहंसगतिस्तथा ॥१७॥ पुत्रजीवांशुकन्यस्तरोमराजिविराजिता ॥ वसंतलक्ष्मीः संप्राप्ता ब्रह्मन्बदरिकाश्रमे ॥ १८ ॥ अकाले किमियं प्राप्ता विस्मयोऽयं ममाधुना ॥ तपोविघ्नकरा नूनं देवर्षे परिचिंतय ॥ १९ ॥ श्रूयते सुरनारीणां गानं ध्यानविनाशनम् ॥ आवयोस्तपभंगाय कृतं मघवता किल ॥ २० ॥ ऋतुराडन्यथा काले प्रीतिं संजनयेत्कथम् ॥ विघ्नोऽयं विहितो भाति भीतेनासुरशत्रुणा ॥ २१ ॥ वाताः सुगंधाः शीताश्च समायांति मनोहराः ॥ नान्यत्करणमस्तीह शतक्रतुकृतिं बिना ॥२२॥ इति ब्रुवति विप्राग्र्ये देवे नारायणे विभौ ॥ सर्वे दृष्टिपथं प्राप्ता मन्मथप्रमुखास्तदा ॥ २३ ॥ ददर्श भगवान्सर्वान्नरो नारायणस्तथा ॥ विस्मयाविष्टमनसौ बभूवतुरुभावपि ॥ २४ ॥ मन्मथं मेनकां चैव रम्भां चैव तिलोत्तमाम् ॥ पुष्पगन्धां सुकेशीं च महाश्वेतां मनोरमाम् ॥ २५ ॥ प्रमद्वरां घृताचीं च गीतज्ञां चारुहासिनीम् ॥ चन्द्रप्रभां

भंग करनेवाली सुरसुंदरियोंका गायन सुनायी दे रहा है। इससे ज्ञात होता है कि हम दोनोंकी तपस्या भंग करनेके लिए देवराज इंद्रने ही यह मायाजाल फैलाया है ॥ २० ॥ नहीं तो असमयमें वसंत लोगोंके हृदयमें इस प्रकार प्रीति क्यों उत्पन्न करता ? मालूम होता है कि हम लोगोंसे डरकर असुरशत्रु इन्द्रने ही यह विघ्न उपस्थित किया है ॥२१॥ कितनी सुगन्धित, शीतल और मनोहर हवा चल रही है। इसमें इन्द्रकी करनीके सिवाय मुझे कोई अन्य कारण नहीं दिखायी देता ॥ २२ ॥ विप्रप्रवर नारायण ऐसा कह ही रहे थे कि इतनेमें कामदेव आदि सभी विघ्नकारीगण वहाँ उनके सम्मुख आ उपस्थित हुए ॥२३॥ उन सबको एक साथ देखकर वे दोनों मुनि नर-नारायण बहुत आश्चर्यमें पड़ गये ॥२४॥ कामदेव, मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा, पुष्पगन्धा, सुकेशी. महाश्वेता, मनोरमा, प्रमद्वरा, सुंदर हास्य करनेवाली और गीतनिपुण घृताची, चन्द्रप्रभा, सोमा, कोकिलके समान आलाप करनेवाली विद्युन्माला, अम्बुजाक्षी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और कांचनमालिनी आदि बहुतेरी सुरसुंदरियोंको उन दोनों मुनियोंने अपने पास उपस्थित देखा ॥२५-२७॥ उन सोलह हजार पचास अप्सराओंयुक्त कामदेवकी विशाल सेना देखकर नारायण बहुत विस्मित हुए ॥२८॥ वे सब देवताओंकी वाराङ्गनायें उन्हें प्रणाम करके सामने खड़ी हो गयीं । वे दिव्य आभूषणोंसे आभूषित होकर दिव्य मालायें पहने थीं ॥२९॥ तः. वे विविध हाव-प्रभाव प्रदर्शित करती हुई छलपूर्वक पृथिवीतलमें अतिशय दुर्लभ एवं कामवासनावर्द्धक गायन गाने लगीं ॥३०॥ भगवान् विष्णुके अंशावतार नर और नारायण मुनिने वह गायन सुना । तब नारायण मुनिने बड़े प्रेमपूर्वक उनसे कहा—॥३१॥ तुम लोग आनंदसे बैठो । मैं तुम्हारा अद्भुत आतिथ्यसत्कार करूँगा । क्योंकि हे सुंदरियों ! तुम लोग स्वर्गसे यहाँ आयी हो । अतएव हमारी मेहमान हो ॥३२॥ व्यासजी बोले—महामुनि नारायण यह सोचकर अभिमानमें आगये कि इन्द्रने हमारे तपमें विघ्न डालनेके लिए इन्हें यहाँ भेजा है॥ ३३ ॥ ये बेचारियाँ

च सोमां च कोकिलाऽऽलापमंडिताम् ॥२६॥ विद्युन्मालांबुजाक्षीं च तथा कांचनमालिनीम् ॥ एताश्चान्या वरारोहा दृष्टास्ताभ्यां तदाऽन्तिके ॥२७॥
तासां द्व्यष्टसहस्राणि पंचाशदधिकानि च ॥ वीक्ष्य तौ विस्मितौ जातौ कामसैन्यं सुविस्तरम् ॥२८॥ प्रणम्याग्रे स्थिताः सर्वा देववारांगनास्तदा ॥
दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यमाल्योपशोभिताः ॥२९॥ जगुश्छलेन ताः सर्वाः पृथिव्यामतिदुर्लभम्॥ तत्तथाऽवस्थितं दिव्यं मन्मथादिविवर्धनम् ॥३०॥
शुश्राव भगवान्विष्णुर्नरो नारायणस्तदा॥ श्रुत्वा प्रोवाच तास्तत्र प्रीत्या नारायणो मुनिः॥३१॥ आस्यतां सुखमत्रैव करोम्यातिथ्यमद्भुतम् ॥ भवंत्योऽ-
तिथिधर्मेण प्राप्ताः स्वर्गात्सुमध्यमाः ॥३२॥ व्यास उवाच ॥ साभिमानस्तु संजातस्तदा नारायणो मुनिः ॥ इन्द्रेण प्रेषिता नूनं तथा विघ्नचिकीर्षया
॥३३॥ वराक्यः का इमाः सर्वाः सृजाम्यद्य नवाः किल ॥ एताभ्यो दिव्यरूपाश्च दर्शयामि तपोबलम् ॥३४॥ इति संचिन्त्य मनसा करेणोरुं प्रताड्य वै ॥
तरसोत्पादयामास नारीं सर्वांगसुन्दरीम् ॥ ३५ ॥ नारायणोरुसंभूता ह्युर्वशीति ततः शुभा ॥ ददृशुस्ताः स्थितास्तत्र विस्मयं परमं ययुः ॥ ३६ ॥
तासां च परिचर्यार्थं तावतीश्चातिसुन्दरीः ॥ प्रादुश्चकार तरसा तदा मुनिरसंभ्रमः ॥ ३७ ॥ गायंत्यश्च हसंत्यश्च नानोपायनपाणयः ॥ प्रणेमुस्ता
मुनी सर्वाः स्थिताः कृत्वांजलिं पुरः ॥३८॥ तां वीक्ष्य विभ्रमकरीं तपसो विभूतिं देवांगना हि मुमुहुः प्रविमोहयंत्यः ॥ ऊचुश्च तौ प्रमुदिताननपद्मशोभा रोमोद्गमोल्लसितचारुनिजांगवल्ल्यः ॥३९॥ कुर्युः कथं स्तुतिमहो तपसो महत्त्वं धैर्यं तथैव भवतामभिवीक्ष्य बालाः ॥ अस्मत्कटाक्षवि-

क्या चीज है, अपने तपोबलका प्रदर्शन करते हुए मैं इनसे भी नवीन तथा रूपवती अप्सराओंको उत्पन्न करूँगा ॥३४॥ मनमें ऐसा विचार करके उन्होंने ताल ठोंकी और तत्काल एक सर्वाङ्ग-सुंदरी स्त्री उत्पन्न कर दी ॥३५॥ उन नारायणके ऊरुप्रदेशसे उत्पन्न होनेके कारण उस सुन्दरी स्त्रीका नाम उर्वशी पड़ा । वहाँ उपस्थित इन्द्रप्रेरित अप्सरायें उर्वशीको देखकर चकरा गयीं ॥३६॥ अप्सराओंकी सेवा करनेके लिए उतनी ही अतिशय सुन्दरी परिचारकाओंको भी उन्होंने उत्पन्न किया ॥ ३७ ॥ वे नाना प्रकारके उपहार हाथमें लिये हँसती हुई गा रही थीं । समक्ष आकर उन सबने उन दोनों मुनियोंको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं ॥३८॥ वे इन्द्रप्रेरित अप्सरायें, जो जनसाधारणको मोहमें डालदेती थीं, उस तपस्याकी विभूति उर्वशीको देखकर स्वयं अपनी सुधि-बुधि खो,बैठीं । प्रसन्नतासे उनके मुखकमल खिल उठे । उनकी शरीररूपिणी वल्लरियोंपर रोमांचरूपी अंकुर निकल आये । इन्द्रकी अप्सराओंने कहा—॥३९॥ अहो ! हम मूर्ख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अप्सरायें आपकी स्तुति कैसे करें ? आपके तपका महत्त्व और धैर्य देखकर हम चकरा गयी हैं । संसारमें ऐसा कौन पुरुष है कि जो हमारे कटाक्षरूपी जहरसे बुझे नयनवाणोंकी चोट खाकर बचैन न हो गया हो ? किन्तु उनका आपपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और आपके मनको तनिक भी व्यथा नहीं हुई ॥४०॥ हमने समझ लिया कि आप दोनों देवतास्वरूप मुनि साक्षात् नृसिंहभगवानके परम अंश और शम अर्थात् शान्ति तथा दम यानी इन्द्रियनिग्रहगुणके निधान हैं । आपकी सेवाके लिए ही यहाँ हमारा आगमन नहीं हुआ है, बल्कि देवराज इन्द्रका स्वार्थ साधन करनेको हम यहाँ आयी हैं ॥४१॥ अवश्य हमारे पूर्वजन्ममें संचित किसी पुण्यका यह प्रभाव है कि हमें आप दोनों महापुरुषोंके दर्शन मिल गये । शाप देनेमें समर्थ होते हुए भी आप हम जैसी अपराधिनी वेश्याओंपर तनिक भी कुपित नहीं हुए ॥४२॥ यह भी उचित ही है, क्योंकि असाधारण प्रभावशाली विद्वान् तुच्छ फलदायक शापका उपयोग करके अपनी तपस्या नहीं खर्च करते । व्यासजी बोले—उन विनयावनत सुरसुंदरियोंके विनम्र वचन सुनकर मुनिवर नर-नारायणने कहा ॥४३॥ उस समय वे दोनों मुनि बहुत प्रसन्न थे और उनका मुख

षदिग्धशरेण दग्धः को वा न तत्रभवतां मनसो व्यथा न ॥ ४० ॥ ज्ञातौ युवां नरहरेः परमांशभूतौ देवौ मुनी शमदमादिनिधी सदैव ॥ सेवा-
निमित्तमिह नौ गमनं न कामं कार्यं हरेः शतमखस्य विधातुमेव ॥ ४१ ॥ भाग्येन केन युवयोः किल दर्शनं नः संपादितं न विदितं खलु संचितं
तत् ॥ चित्तं क्षमं निजजने विहितं युवाभ्यामस्मद्विधे किल कृतागसि तापमुक्तम् ॥ ४२ ॥ कुर्वंति नैव विबुधास्तपसो व्ययं वै शापेन तुच्छफलदेन
महानुभावाः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्थं निशम्य वचनं सुरकामिनीनां तावूचतुर्मुनिवरौ विनयानतानाम् ॥ ४३ ॥ प्रीतौ प्रसन्नवदनौ जितकामलोभौ
धर्मात्मकौ निजतपोरुचिशोभितांगौ ॥ नरनारायणावूचतुः ॥ ब्रुवंतु वांछितान्कामान्ददावस्तुष्टमानसौ ॥४४॥ यांतु स्वर्गं गृहीत्वेमामुर्वशीं चारुलो-
चनाम् ॥ उपायनमियं बाला गच्छत्वद्य मनोहरा ॥ ४५ ॥ दत्ताऽऽवाभ्यां मघवतः प्रीणनायोरुसंभवा ॥ स्वस्त्यस्तु सर्वदेवेभ्यो यथेष्टं प्रव्रजंतु च
॥ ४६ ॥ "न कस्यापि तपोविघ्नं प्रकर्तव्यमतः परम्" ॥ देव्य ऊचुः ॥ क्व गच्छामो महाभाग प्राप्तास्ते पादपंकजम् ॥ नारायण सुरश्रेष्ठ भक्त्या
परमया मुदा ॥ ४७ ॥ वांछितं चेद्वरं नाथ ददासि मधुसूदन ॥ तुष्टः कमलपत्राक्ष ब्रवीमो मनसेप्सितम् ॥ ४८ ॥ पतिस्त्वं भव देवेश वरमेनं
परंतप ॥ भवामः प्रीतियुक्तास्त्वां सेवितुं जगदीश्वर ॥४९॥ त्वया चोत्पादिता नार्यः संत्यन्याश्चारुलोचनाः ॥ उर्वश्याद्यास्तथा यांतु स्वर्गं वै भव-

हर्षसे प्रफुल्लित था । काम तथा लोभपर विजय प्राप्त किये हुए, धर्मके पुत्र और अपनी तपस्याके तेजसे देदीप्यमान अङ्गोंवाले नर-नारायण बोले—हम दोनों भ्राता तुम सबपर प्रसन्न हैं । जो वरदान चाहो माँग लो । हम देंगे ॥४४॥ तुम लोग इस सुनयनी उर्वशीको भी अपने साथ स्वर्ग लेती जाओ । यह मनोहारिणी रमणी स्वर्गके लिए उपहार बनकर तुम्हारे साथ जायगी ॥ ४५ ॥ ऊरुप्रदेशसे उत्पन्न यह उर्वशी हम देवराज इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए दे रहे हैं । सब देवताओंका कल्याण हो । अब तुम अपने घर जाओ ॥ ४६ ॥ "लेकिन अब कभी किसीकी तपस्यामें विघ्न न डालना" । उन अप्सराओंने कहा—हे महाभाग ! हे नारायण ! हे सुरश्रेष्ठ ! परम भक्ति और हर्षपूर्वक आपके चरणकमलोंको प्राप्त करनेके बाद अब हम कहाँ जायँ ?॥४७॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हे कमलपत्राक्ष ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न होकर हमें वरदान ही देना चाहते हों तो हम अपनी अभिलाषा प्रकट कर रही हैं ॥ ४८ ॥ हे परन्तप ! हमें यही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वरदान दें कि आप हमारे पति बन जायँ। हे जगदीश! आपकी सेवा करके हमें बड़ी प्रसन्नता होगी ॥ ४९ ॥ आपने जिन सुनयनी स्त्रियोंको उत्पन्न किया है, उन उर्वशी आदि सभी रमणियोंको आप स्वर्ग जानेकी आज्ञा दे दीजिए ॥ ५० ॥ उनके बदलेमें स्वर्गसे आयी हुई हम सोलह हजार पचास सुंदरियाँ यहाँ रहकर आपकी सेवा करेंगी ॥५१॥ हे देवेश! हे माधव! आप हमारा मनोवाञ्छित वर देकर अपना वचन सत्य करिए। क्योंकि स्त्रियोंकी आशा भंग करना हिंसाका कार्य माना गया है ॥ ५२ ॥ बड़े बड़े धर्मज्ञ और तत्त्वज्ञानी मुनियोंका भी यह कथन है कि कामार्त स्त्रियोंकी आशा भंग करनेसे हिंसा होती है। सौभाग्यवश स्वर्गसे यहाँ आकर हम आपके प्रेमपाशमें बँध गयी हैं ॥ ५३ ॥ हे देवेश! हे जगत्पते! आप सर्वसमर्थ हैं। अतएव हमें न त्यागिए। इसपर नारायणने कहा—हमने इन्द्रियोंको जीतकर पूरे एक हजार वर्ष यहाँ तप किया है ॥ ५४ ॥ अतएव हे सुन्दरियों! अब सुखभोगमें लिप्त होकर हम उस तपश्चर्याको कैसे भंग कर दें? पारलौकिक सुख तथा धर्म दोनोंको नष्ट कर देनेवाले विषयभोगमें हमारी तनिक भी रुचि नहीं है ॥ ५५ ॥ विषयभोगका सुख पशुधर्म कहलाता है।

दाज्ञया ॥५०॥ स्त्रीणां षोडशसाहस्रं तिष्ठत्वत्र शतार्धकम् ॥ सेवां तेऽत्र करिष्यामो युवयोस्तापसोत्तमौ ॥ ५१ ॥ वांछितं देहि देवेश सत्यवाग्भव माधव ॥ आशाभंगो हि नारीणां हिंसनं परिकीर्तितम् ॥५२॥ कामार्तानां च मुनिभिर्धर्मज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ भाग्ययोगादिह प्राप्ताः स्वर्गात्प्रेमपरिप्लुताः ॥ ५३ ॥ त्यक्तुं नार्हसि देवेश समर्थोऽसि जगत्पते ॥ नारायण उवाच ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं तु तपस्तप्तं मयाऽत्र वै ॥ ५४ ॥ जितेन्द्रियेण चार्वंग्यः कथं भंगं करोम्यतः ॥ नेच्छा कामे सुखे काचित्सुखधर्मविनाशके ॥ ५५ ॥ पशूनामपि साधर्म्ये रमेत मतिमान्कथम् ॥ अप्सरस ऊचुः ॥ शब्दादीनां च पंचानां मध्ये स्पर्शसुखं वरम् ॥५६॥ आनन्दरसमूलं वै नान्यदस्ति सुखं किल ॥ अतोऽस्माकं महाराज वचनं कुरु सर्वथा ॥ ५७ ॥ निर्भरं सुखमासाद्य चरस्व गंधमादने ॥ यदि वांछसि नाकं त्वं नाधिको गंधमादनात् ॥ ५८ ॥ रमस्वात्र शुभे स्थाने प्राप्य सर्वाः सुरांगनाः ॥५९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तासां धर्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ विमर्शमकरोच्चित्ते किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥१॥ (हास्योऽहं मुनिवृन्देषु भविष्याम्यद्य संगमात् ॥) अहंकारादिदं प्राप्तं दुःखं नात्र विचारणा ॥ मूलं धर्मविनाशस्य प्रथमं यदहंकृतिः ॥२॥ मूलं संसारवृक्षस्य यतः प्रोक्तो महात्मभिः

उस पशुधर्ममें कौन बुद्धिमान् मनुष्य फँसेगा? उन अप्सराओंने कहा—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पाँच सुखोंमें स्पर्शसुख सर्वोत्तम माना जाता है ॥ ५६ ॥ यह आनंदका मूल कारण है। इससे बढ़कर और कोई भी सुख नहीं हो सकता। अतएव हे महाराज! आप हमारी बात मान लीजिए ॥ ५७ ॥ आप हमें अङ्गीकार करके सर्वोत्तम आनंद लेते हुए इसी गन्धमादन पर्वतपर विचरिए। यदि आप स्वर्गकी कामना करते हों तो यह समझ लीजिए कि स्वर्ग गंधनमादनसे अच्छा स्थान नहीं है ॥ ५८ ॥ आप इसी शुभ स्थानमें हम देवाङ्गनाओंके साथ सुखपूर्वक विहार करिए ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे 'पीतम्बरा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(अहंकाररूपी बंधनकी व्याख्या) व्यासजी बोले—उन अप्सराओंके वचन सुनकर प्रतापशाली धर्मपुत्र नारायण मनमें सोचने लगे कि अब हमारा क्या कर्तव्य है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(यदि इनकी बात मानकर मैं विषयभोगमें लिप्त हो जाऊँ तो मुनिमण्डली मेरा उपहास करेगी।) इसमें कोई संदेह नहीं है कि अहंकार धर्मके नाशका प्रधान और मूल कारण होता है ॥२॥ महात्माओंका कथन है कि अहंकार ही संसाररूपी वृक्षकी जड़ है। इन स्त्रियोंके झुण्डको आया देखकर मैं मौन नहीं रह सका ॥३॥ इन वाराङ्गनाओंको देखकर मैंने इनसे वार्तालाप किया। इसी कारण मुझपर यह संकट आया है। अपने धर्मका व्यय करके मैंने व्यर्थ उर्वशी आदि अप्सराओंको उत्पन्न किया ॥४॥ ये कामातुरा अप्सरायें मेरे तपमें बाधा डाल रही हैं। मकड़ीके समान अपने फैलाये हुए जालमें मैं स्वयं फँस गया हूँ ॥५॥ मैं एक विचित्र बन्धनमें बेतरह जकड़ गया। अब मुझे क्या करना चाहिए? यदि मैं निश्चिन्ततापूर्वक इन्हें ठुकरा देता हूँ तो इनकी सब इच्छायें नष्ट हो जायँगी और मुझे शाप देकर ये स्वर्ग लौट जायँगी। तब मैं इनके प्रेमपाशसे मुक्त होकर किसी एकान्त स्थानमें कठोर तप करूँगा ॥६॥७॥ अतएव इनके मनमें क्रोध उत्पन्न करके मैं इन सुन्दरियोंको त्याग ही दूँगा। व्यासजी बोले—नारायण मुनि ऐसा विचार करके अपने मनमें सुख उत्पन्न करनेके किसी साधनका

दृष्ट्वा मौनं समाधाय न स्थितोऽहं समागतम् ॥३॥ वारांगनागणं जुष्टं तेनासं दुःखभाजनम् ॥ उत्पादितास्तथा नार्यो मया धर्मव्ययेन वै ॥४॥ तास्तु मां बाधितुं वृत्ताः कामार्ताः प्रमदोत्तमाः ॥ ऊर्णनाभिरिवाद्याहं जालेन स्वकृतेन वै ॥ ५ ॥ बद्धोऽस्मि सुदृढेनात्र किं कर्तव्यमतः परम् ॥ यदि चिंतां समुत्सृज्य संत्यजाम्यबला इमाः ॥ ६ ॥ शप्त्वा भ्रष्टा व्रजिष्यंति इमा भग्नमनोरथाः ॥ मुक्तोऽहं संचरिष्यामि विजने परमं तपः ॥ ७ ॥ तस्मात्क्रोधं समुत्पाद्य त्यक्ष्यामि सुन्दरीगणम् ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्य मनसा मुनिर्नारायणस्तदा ॥ ८ ॥ विमर्शमकरोच्चित्ते सुखोत्पादनसाधने ॥ द्वितीयोऽयं महाशत्रुः क्रोधः संतापकारकः ॥ ९ ॥ कामादप्यधिको लोके लोभादपि च दारुणः ॥ क्रोधाभिभूतः कुरुते हिंसां प्राणविघातिनीम् ॥ १० ॥ दुःखदां सर्वभूतानां नरकारामदीर्घिकाम् ॥ यथाऽग्निर्घर्षणाज्जातः पादपं प्रदहेत्तथा ॥ ११ ॥ देहोत्पन्नस्तथा क्रोधो देहं दहति दारुणः ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्यमानं तं भ्रातरं दीनमानसम् ॥ १२ ॥ उवाच वचनं तथ्यं नरो धर्मसुतोऽनुजः ॥ नर उवाच ॥ नारायण महाभाग कोपं यच्छ महामते ॥ १३ ॥ शांतं भावं समाश्रित्य नाशयाहंकृतिं पराम् ॥ पुराऽहंकारदोषेण तपो नष्टं किलावयोः ॥ १४ ॥ संग्रामश्चाभवत्ताभ्यां भावाभ्यामसुरेण ह ॥ दिव्यवर्षशतं चैव प्रह्लादेन महाद्भुतम् ॥ १५ ॥ दुःखं बहुतरं प्राप्तं तत्रावाभ्यां सुरोत्तम ॥ तस्मात्क्रोधं परित्यज्य शांतो भव मुनीश्वर ॥ १६ ॥

अन्वेषण करने लगे। उन्होंने सोचा कि क्रोध तो और भी सन्ताप देनेवाला द्वितीय महान् शत्रु है ॥८॥९॥ यह क्रोध काम और लोभसे भी भयानक शत्रु है। क्योंकि क्रोधसे अभिभूत प्राणी प्राणघातक हिंसा कर बैठता है ॥१०॥ नरकरूपी बगीचेकी बावलीके समान भयावनी हिंसासे सबको दुःख सहना पड़ता है। जैसे जंगलमें परस्पर पेड़ोंकी रगड़से उत्पन्न अग्नि उन पेड़ोंको भस्म कर देती है। उसी प्रकार दारुण क्रोध जिस शरीरसे उत्पन्न होता है, उसे ही जला डालता है। व्यासजी बोले कि इस प्रकार अपने भ्राताको विमनस्कभावसे चिन्ता करते देखकर धर्मपुत्र तथा नारायणके लघुभ्राता नर यह तथ्य वचन बोले। नर मुनिने कहा—हे नारायण! हे महाभाग! हे महामते! आप अपना क्रोध शान्त करिए ॥११-१३॥ अब आप शान्तभावका अवलम्बन करके अहंकारको नष्ट कर दीजिए। पूर्वकालमें अहङ्कारके दोषवश हम दोनोंकी तपस्या नष्ट हो गयी थी ॥१४॥ असुरराज प्रह्लादके साथ हमें दिव्य एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सौ वर्षतक महान् अद्भुत युद्ध करना पड़ा था ॥ १५ ॥ हे देवश्रेष्ठ ! उस युद्धमें हम दोनोंको बहुत कष्ट मिला था। अतएव हे मुनीश्वर ! आप क्रोध त्यागकर शांत हो जायँ ॥ १६ ॥ (मुनियोंका कथन है कि शांतभाव तपस्याका मूल कारण है।) व्यासजी बोले—हे राजन् ! महामुनि नरके वचन सुनकर नारायण शांत हो गये। राजा जनमेजयने कहा–हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे मनमें यह बहुत बड़ा संदेह उत्पन्न होगया है कि शांत, विष्णुभक्त तथा महात्मा प्रह्लादने उन दोनों महामुनियोंके साथ संग्राम क्यों किया ? ॥१७॥१८॥ धर्मपुत्र नर-नारायण भी बड़े शान्तस्वभावके तपस्वी थे। तब दैत्यसुत प्रह्लादके साथ उनका समागम कैसे हुआ ? ॥१९॥ महात्मा प्रह्लाद भी बड़े धर्मात्मा, ज्ञानवान् और विष्णुभक्त थे। तब उन्होंने उन महामुनियोंके साथ युद्ध क्यों किया ? ॥ २० ॥ उसी प्रकार परम सात्त्विक उन तपस्वियोंके मनमें यदि उस विष्णुभक्तके प्रति वैरभाव उत्पन्न हुआ तो कहना पड़ेगा कि इस प्रकार तपस्या और धर्मकी साधना श्रममात्र रह जायगी। उस सत्ययुगमें भी यदि ऐसा हुआ तो तप और तपका महत्त्व क्या रहा ? ॥ २१ ॥ २२ ॥ वैसे महापुरुष भी क्रोध और अहंकारसे भरे अपने मनको वशमें नहीं

"शांतत्वं तपसो मूलं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥" ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा शांतोऽभूद्धर्मनन्दनः ॥ जनमेजय उवाच ॥ संशयोऽयं मुनिश्रेष्ठ प्रह्लादेन महात्मना ॥ १७ ॥ विष्णुभक्तेन शांतेन कथं युद्धं कृतं पुरा॥ कृतवंतौ कथं युद्धं नरनारायणावृषी ॥ १८ ॥ तापसौ धर्मपुत्रौ द्वौ सुशांतमानसावुभौ ॥ समागमः कथं जातस्तयोर्दैत्यसुतस्य च ॥ १९ ॥ संग्रामस्तु कथं ताभ्यां कृतस्तेन महात्मना ॥ प्रह्लादोऽप्यतिधर्मात्मा ज्ञानवान्विष्णुतत्परः ॥ २० ॥ नरनारायणौ तद्वत्तापसौ सत्त्वसंस्थितौ ॥ तेन ताभ्यां समुद्भूतं वैरं यदि परस्परम् ॥ २१ ॥ तदा तपसि धर्मे च श्रम एव हि केवलम् ॥ क्व जपः क्व तपश्चर्या परा सत्ययुगेऽपि च ॥ २२ ॥ तादृशैर्न जितं चित्तं क्रोधाहंकारसंवृतम् ॥ न क्रोधो न च मात्सर्यमहङ्कारांकुरं विना ॥ २३ ॥ अहङ्कारात्समुत्पन्नाः कामक्रोधादयः किल ॥ वर्षकोटिसहस्रं तु तपः कृत्वाऽतिदारुणम् ॥ २४ ॥ अहंकारांकुरे जाते व्यर्थं भवति सर्वथा ॥ यथा सूर्योदये जाते तमोरूपं न तिष्ठति ॥ २५ ॥ अहङ्कारांकुरस्याग्रे तथा पुण्यं न तिष्ठति ॥ प्रह्लादोऽपि महाभाग हरिणा समयुध्यत ॥ २६ ॥ तदा व्यर्थं कृतं सर्वं सुकृतं किल भूतले ॥ नरनारायणौ शान्तौ विहाय परमं तपः ॥ २७ ॥ कृतवन्तौ यदा युद्धं क्व शमः सुकृतं पुनः ॥ ईदृग्भ्यां सत्त्वयुक्ताभ्यामजेया यद्यहंकृतिः ॥ २८ ॥ मादृशानां च का वार्ता मुनेऽहङ्कारसंक्षये ॥ अहंकारपरित्यक्तो न कोऽप्यस्ति

कर सके। क्योंकि अहंकाररूपी अंकुरके विना क्रोध और मत्सर (डाह) उत्पन्न नहीं होते ॥२३॥ काम-क्रोध आदि मानस शत्रुओंकी उत्पत्ति अहंकारसे ही होती है। हजार करोड़ वर्षतक अति दारुण तपस्या करनेके बाद भी यदि मनमें अहंकार उत्पन्न हो गया तो सब किया-धरा व्यर्थ हो जाता है। जैसे सूर्यके उदय हो जानेपर अन्धकार नहीं टिक पाता, उसी प्रकार अहंकाररूपी अंकुरके उग जानेपर पुण्यका अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है। तब हे महाभाग! प्रह्लादने क्यों भगवान नर-नारायणके साथ युद्ध किया ? ॥२४-२६॥ ऐसा करके तो भूतलपर उन्होंने जितना पुण्य कमाया था, वह सब व्यर्थ हो गया। परम शान्तप्रकृति नर-नारायण भी उग्र तप त्यागकर यदि युद्धमें संलग्न हो गये, तब उनकी शान्तिनीति और उनका पुण्य कहाँ सफल रहा ? जब वे दोनों सतोगुणी महात्मा अहंकारको नहीं जीत सके, तब मेरे जैसे साधारण लोगोंके लिए तो अहंकार नष्ट करनेकी बात ही क्या है ? समस्त त्रिलोकीमें एक भी ऐसा मनुष्य नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, जो अहंकारसे बचा हुआ हो ॥२७-२९॥ सर्वथा अहंकारसे हीन मनुष्य न कभी कोई हुआ है और न भविष्यमें ही होगा। लोहे तथा काष्ठकी हथकड़ीमें बँधा हुआ मनुष्य छूट सकता है, किन्तु अहंकाररूपी बन्धनमें बँधा हुआ प्राणी कभी नहीं छूटता। स्थावर-जंगमात्मक समस्त विश्व अहंकारसे व्याप्त है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अहंकारी मनुष्य मल-मूत्रसे दूषित संसारमें ही चक्कर काटता रहता है। तब इस मोहसे आवृत संसारमें ब्रह्मज्ञानकी वार्ता कहाँ रह गयी? ॥३२॥ हे सुव्रत! मुझे तो मीमांसकोंका कर्मप्रधान सिद्धान्त ही उचित जँचता है। हे मुने! जब बड़े-बड़े महापुरुष भी काम-क्रोधादिके फेरमें पड़े देखे जाते हैं ॥ ३३ ॥ तब इस कलियुगमें मुझ जैसे साधारण कोटिके मनुष्योंकी बात ही क्या है? व्यासजी बोले—हे भारत! कार्य कारणसे पृथक् कैसे रह सकता है? ॥३४॥ कटक (पहुँची) और कुण्डल आकारमें भिन्न होते हुए भी आखिर रहते तो हैं सुवर्ण ही। उसी प्रकार सचराचर समस्त ब्रह्माण्ड अहंकारसे उत्पन्न हुआ है। तब यह ब्रह्माण्डरूपी कार्य अपने अहंकाररूपी कारणसे पृथक् कैसे रह सकता है? ॥३५॥ वस्त्र धागेसे बनता है। तब वस्त्ररूपी कार्य धागारूपी कारणसे अलग कैसे होगा?

जगत्त्रये ॥ २९ ॥ न भूतो भविता नैव यस्त्यक्तस्तेन सर्वथा ॥ मुच्यते लोहनिगडैर्बद्धः काष्ठमयैस्तथा ॥ ३० ॥ अहंकारनिबद्धस्तु न कदाचिद्वि-
मुच्यते ॥ अहंकारावृतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ३१ ॥ भ्रमत्येव हि संसारे विष्ठामूत्रप्रदूषिते ॥ ब्रह्मज्ञानं कुतस्तावत्संसारे मोहसंवृते ॥ ३२ ॥
मतं मीमांसकानां वै संमतं भाति सुव्रत ॥ महान्तोऽपि सदा युक्ताः कामक्रोधादिभिर्मुने ॥ ३३ ॥ मादृशानां कलावस्मिन्का कथा मुनिसत्तम ॥
॥ व्यास उवाच ॥ कार्यं वै कारणाद्भिन्नं कथं भवति भारत ॥ ३४ ॥ कटकं कुण्डलं चैव सुवर्णसदृशं भवेत् ॥ अहंकारोद्भवं सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्
॥ ३५ ॥ पटस्तंतुवशः प्रोक्तस्तद्वियुक्तः कथं भवेत् ॥ मायागुणैस्त्रिभिः सर्वं रचितं स्थिरजंगमम् ॥ ३६ ॥ सतृणं स्तम्बपर्यंतं का तत्र परिदेवना ॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्ते चाहंकारमोहिताः ॥ ३७ ॥ भ्रमंत्यस्मिन्महाऽगाधे संसारे नृपसत्तम ॥ वसिष्ठनारदद्याश्च मुनयो ज्ञानिनः परम् ॥ ३८ ॥
तेऽभिभूताः संसरंति संसारेऽस्मिन्पुनः पुनः ॥ न कोऽप्यस्ति नृपश्रेष्ठ त्रिषु लोकेषु देहभृत् ॥३९॥ एभिर्मायागुणैर्मुक्तः शांत आत्मसुखे स्थितः ॥ काम-
क्रोधौ तथा लोभो मोहोऽहंकारसंभवः ॥४०॥ न मुंचंति नरं सर्वं देहवंतं नृपोत्तम ॥ अधीत्य वेदशास्त्राणि पुराणानि विचिंत्य च ॥४१॥ कृत्वा तीर्था-
टनं दानं ध्यानं चैव सुरार्चनम् ॥ करोति विषयासक्तः सर्वं कर्म च चौरवत् ॥ ४२ ॥ विचारयति नो पूर्णं काममोहमदान्वितः ॥ कृते युगेऽपि

मायाके तीनों गुणों द्वारा ही तृणसे लेकर तनापर्यन्त इस स्थावर-जंगमात्मक विश्वकी रचना हुई है ॥३६॥ तब मायासे उत्पन्न इस सृष्टिके विषयमें खेद किस बातका? ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी भी अहंकारसे मोहित होकर इस महान् और अगाध संसारसमुद्रमें चक्कर काटते रहते हैं। हे नृपसत्तम! वसिष्ठ-नारद आदि परम ज्ञानी महापुरुष भी अहंकारकी चपेटमें पड़कर बारम्बार इस संसारमें आते-जाते रहते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! तीनों लोकोंमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है कि जो इन मायाके गुणोंसे छुटकारा पाकर पूर्ण शान्तभावसे आत्मसुखका अनुभव करता हुआ जीवन यापन कर सके। काम, क्रोध तथा लोभ ये अहंकारसे ही जायमान होते हैं ॥३७-४०॥ हे नृपोत्तम! ये काम-क्रोधादि रिपु किसी भी देहधारी प्राणीको नहीं छोड़ते। सभी वेदों-शास्त्रोंका अध्ययन, पुराणोंका पर्यालोचन, तीर्थाटन, दान, ध्यान और देवपूजन आदि सभी सत्कर्मोंको विषयासक्त पुरुष चोरोंकी तरह करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ संसारके सब प्राणी काम, मोह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और मदसे युक्त होनेके कारण पहले कुछ नहीं सोच पाते। हे कुरुनन्दन! सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें भी धर्मका विरोध हुआ था। तब कलियुगकी बात ही क्या है? परस्पर स्पर्धा, द्रोहभाव, लोभ और अमर्ष सर्वदा रहे हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ संसारका यह स्वभाव ही है। अतएव इस विषयमें विशेष विचार करना व्यर्थ है। संसारमें ऐसे साधु पुरुष विरले ही होते हैं, जो मत्सर (डाह) से सर्वथा दूर हों ॥४५॥ जिन्होंने क्रोध और अमर्ष (तलमलाहट) पर विजय प्राप्त कर ली है, ऐसे पुरुष केवल दृष्टान्तके लिए ही मिलते हैं। राजा जनमेजय बोले—जिन लोगोंने मद और मोहको जीत लिया है, वे धन्य हैं और वे ही सच्चे अर्थमें पुण्यात्मा हैं ॥४६॥ जिन्होंने इन्द्रियोंको वशमें करके सदाचार व्रत ले लिया है, उन्होंने तीनों लोकोंको जीत लिया। मैं अपने महात्मा पिताके पापका स्मरण करके बहुत दुखी हूँ ॥ ४७ ॥ उन्होंने एक निरपराध तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प डाल दिया था। हे मुनिश्रेष्ठ! अब मेरे आगे उनकी क्या गति होगी? ॥४८॥ बुद्धिके मोहग्रस्त हो जानेपर मेरे द्वारा कैसे कार्य होंगे? मूर्ख मनुष्य केवल मधु देखता है, किंतु उसके पास ही विद्यमान खड्डकी ओर नहीं निहारता ॥ ४९ ॥

त्रेतायां द्वापरे कुरुनन्दन ॥४३॥ विद्धोऽत्रास्ति च धर्मोऽपि का कथाऽद्य कलौ पुनः ॥ स्पर्धा सदैव सद्रोहा लोभामर्षौ च सर्वदा ॥४४॥ एवंवि-
धोऽस्ति संसारो नात्र कार्या विचारणा ॥ साधवो विरला लोके भवंति गतमत्सराः ॥४५॥ जितक्रोधा जितामर्षा दृष्टांतार्थं व्यवस्थिताः ॥ राजोवाच ॥
ते धन्याः कृतपुण्यास्ते मदमोहविवर्जिताः ॥४६॥ जितेन्द्रियाः सदाचारा जितं तैर्भुवनत्रयम् ॥ दुनोमि पातकं स्मृत्वा पितुर्मम महात्मनः ॥ ४७ ॥
कृतस्तपस्विनः कंठे मृतः सर्पो ह्यघं विना ॥ अतस्तस्य मुनिश्रेष्ठ भविता किं ममाग्रतः ॥४८॥ न जाने बुद्धिसंमोहात्किं वा कार्यं भविष्यति ॥ मधु
पश्यति मूढात्मा प्रपातं नैव पश्यति ॥ ४९ ॥ करोति निंदितं कर्म नरकान्न बिभेति च ॥ कथं युद्धं पुरा वृत्तं विस्तरात्तद्वदस्व मे ॥ ५० ॥
प्रह्लादेन यथा चोग्रं नरनारायणस्य वै ॥ प्रह्लादस्तु कथं यातः पातालात्तद्वदस्व मे ॥ ५१ ॥ सारस्वते महातीर्थे पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥ नरनारायणौ
शांतौ तापसौ मुनिसत्तमौ ॥ ५२ ॥ कृतवंतौ तथा युद्धं हेतुना केन मानद ॥ वैरं भवति वित्तार्थं दारार्थं वा परस्परम् ॥ ५३ ॥ एषणारहितौ
कस्माच्चक्रतुः प्रधनं महत् ॥ प्रह्लादोऽपि च धर्मात्मा ज्ञात्वा देवौ सनातनौ ॥५४॥ कृतवन्तौ कथं युद्धं नरनारायणौ मुनी ॥ एतद्विस्तरतो ब्रह्म-
ञ्छ्रोतुमिच्छामि कारणम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

संसारी मनुष्य निन्दनीय कर्म करता है और नरकसे नहीं डरता। हाँ, तो अब आप विस्तारपूर्वक यह बताइए कि भक्तराज प्रह्लाद तथा ईश्वरावतार नर-नारायणमें वह भीषण युद्ध कैसे हुआ? पाताललोकके प्रह्लाद नर-नारायणके पास कैसे जा पहुँचे? ॥ ५० ॥५१॥ शान्त, तपस्वी और महामुनि नर-नारायण तो सारस्वत महातीर्थ पवित्र बदरिकाश्रममें रहते थे ॥५२॥ तब हे मानद! उन्होंने दैत्यराज प्रह्लादसे युद्ध क्यों किया? प्रायः धन और स्त्रीके लिए ही लोगोंमें लड़ाई होती है ॥५३॥ तब समस्त एषणाओं (इच्छाओं) से रहित उन दोनों मुनियोंने वह भीषण युद्ध क्यों किया? धर्मात्मा प्रह्लादने उन दोनों सनातन देवताओंको पहचान करके भी लड़ाई क्यों की? हे ब्रह्मन्! मैं विस्तारपूर्वक उस युद्धका कारण जानना चाहता हूँ ॥५४॥ ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(महर्षि च्यवन द्वारा तीर्थोंका माहात्म्यवर्णन) सूतजी बोले—हे मुनियों ! जब परीक्षितपुत्र राजा जनमेजयने ऐसा प्रश्न किया, तब सत्यवतीतनय व्यासजी विस्तारपूर्वक उस युद्धका वृत्तान्त बताते हुए बोले ॥ १ ॥ धर्मात्मा राजा जनमेजय भी महाराज विराट्की पुत्री उत्तराके पुत्र और अपने पिता परीक्षित्के दुर्व्यवहारको सोचकर बहुत दुखी हुए ॥२॥ विप्रका अपमान करनेके कारण यमलोकको गये हुए अपने पिताका उद्धार करनेकी कामना सदा उनके मनमें बनी रहती थी ॥३॥ हे मुनीश्वरों ! जब बालक अपने पिताको पुं नामक नरकमें जानेसे बचाता है, तभी उसका 'पुत्र' यह नाम सार्थक होता है ॥४॥ सो जब राजा जनमेजयको यह मालूम हुआ कि एक नये महलके सबसे ऊपरी मंजिलमें स्नान-दान त्यागकर विप्रके शापवश सर्पके काटनेसे महाराज परीक्षित्की मृत्यु हुई थी, तब अपने पिताकी यह दुर्गति सुनकर उन्हें बहुत दुःख हुआ वे भयसे विकल हो गये ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनन्तर उन निर्मल अन्तःकरणवाले राजा जनमेजयने स्वतः अपने घरपर आये हुए महामुनि व्याससे नर नारायणकी इस विस्तृत कथाके सम्बन्धमें जिज्ञासा प्रकट की ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! भयानक दैत्य

॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा विप्रो राज्ञा पारीक्षितेन वै ॥ उवाच विस्तरात्सर्वं व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥ जनमेजयोऽपि धर्मात्मा निर्वेदं परमं गतः ॥ चित्तं दुश्चरितं मत्वा वैराटीतनयस्य वै ॥ २ ॥ तस्यैवोद्धरणार्थाय चकार सततं मनः ॥ विप्रावमानपापेन यमलोकं गतस्य वै ॥ ३ ॥ पुन्नामनरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं स्वकम् ॥ पुत्रेति नाम सार्थं स्यात्तेन तस्य मुनीश्वराः ॥ ४ ॥ सर्पदष्टं नृपं श्रुत्वा हर्म्योपरि मृतं तथा ॥ विप्रशापादौत्तरेयं स्नानदानविवर्जितम् ॥ ५ ॥ पितुर्गतिं निशम्यासौ निर्वेदं गतवान्नृपः ॥ पारीक्षितो महाभागः संतप्तो भयविह्वलः ॥ ६ ॥ पप्रच्छाथ मुनिं व्यासं गृहागतमनिंदितः ॥ नरनारायणस्येमां कथां परमविस्तृताम् ॥७॥ व्यास उवाच ॥ स यदा निहतो रौद्रो हिरण्यकशिपुर्नृप ॥ अभिषिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम तत्सुतः ॥ ८ ॥ तस्मिञ्छासति दैत्येंद्रे देवब्राह्मणपूजके ॥ मखैर्भूमौ नृपतयो यजंतः श्रद्धयाऽन्विताः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणाश्च तपोधर्मं तीर्थयात्राश्च कुर्वते ॥ वैश्याश्च स्वस्ववृत्तिस्थाः शूद्राः शुश्रूषणे रताः ॥ १० ॥ नृसिंहेन च पाताले स्थापितः सोऽथ दैत्यराट् ॥ राज्यं चकार तत्रैव प्रजापालनतत्परः ॥ ११ ॥ कदाचिद्भृगुपुत्रोऽथ च्यवनाख्यो महातपाः ॥ जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थं वै व्याहृतीश्वरम् ॥१२॥ रेवां महानदीं दृष्ट्वा ततस्तस्यामवातरत् ॥ उत्तरंतं प्रजग्राह नागो विषभयंकरः ॥ १३ ॥ गृहीतो भयभीतस्तु पाताले मुनिसत्तमः ॥ सस्मार मनसा विष्णुं देवदेवं जना-

हिरण्यकशिपुकी नृसिंह भगवानके हाथों मृत्यु हो गयी । तब राज्यसिंहासनपर उसके पुत्र प्रह्लादका अभिषेक हुआ ॥ ८ ॥ देवताओं तथा ब्राह्मणोंके पूजक दैत्यराज प्रह्लादके शासनकालमें पृथ्वीमण्डलके सभी राजे बड़ी श्रद्धाके साथ यज्ञ करने लगे ॥ ९ ॥ विप्रगण तपस्या, धर्म तथा तीर्थयात्रामें संलग्न हो गये । वैश्यगण वाणिज्य-व्यवसायमें लगे और शूद्र सेवापरायण हो गये ॥ १० ॥ नृसिंह भगवानने दैत्यराज प्रह्लादको पाताललोकका शासनकार्य सौंपा था । अतएव वे वहाँ ही भलीभाँति प्रजापालनमें तत्पर होकर राज्य करने लगे ॥ ११ ॥ एक बार महर्षि भृगुके पुत्र महातपस्वी च्यवन नर्मदामें स्नान करनेके लिए व्याहृतीश्वर नामक तीर्थको गये ॥ १२ ॥ महानदी नर्मदाके तटपर पहुँचकर वे जलमें उतरने लगे । उसी समय एक बड़े भयङ्कर विषधर सर्पने उन्हें पकड़ लिया ॥ १३ ॥ इस प्रकार पकड़ लिये जानेपर भयभीत मुनि च्यवनको वह सर्प पाताललोकमें खींच ले गया । वहाँ पहुँच जानेपर उन्होंने मन ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन देवदेव विष्णु भगवानका स्मरण किया ॥१४॥ पुण्डरीकाक्ष विष्णुका स्मरण करते ही वह सर्प विषहीन हो गया। इस कारण रसातलमें जानेपर भी मुनिराजको कोई क्लेश नहीं हुआ ॥१५॥ तदनंतर अत्यंत दुखी और भयभीत उस सर्पने यह सोचकर उन्हें छोड़ दिया कि महतपस्वी मुनिराज च्यवन कुपित होकर कहीं शाप न दे दें ॥ १६ ॥ अब वहाँकी नागकन्याओं द्वारा पूजित होते हुए मुनिश्रेष्ठ च्यवन वहीं विचरने लगे। वे वहाँसे नागों तथा दानवोंके महानगर तक नित्य आते-जाते थे ॥ १७ ॥ एक दिन परम धर्मप्रेमी दैत्यराज प्रह्लादने उन्हें अपनी राजधानीमें विचरते देखा ॥ १८ ॥ देखते ही दैत्यपतिने महामुनि च्यवनकी पूजा की और कहा कि आप पातालमें अपने आनेका कारण बताइए ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तम ! दैत्योंसे द्वेष रखनेवाले इन्द्रने मेरे राज्यकी टोह लेनेके लिए तो आपको यहाँ नहीं भेजा है ? सच-सच कहिए ॥ २० ॥ महर्षि च्यवन बोले—हे राजन् ! इन्द्रसे मुझे क्या काम ? मैं उनका दूत

र्दनम् ॥ १४ ॥ संस्मृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः ॥ न प्राप च्यवनो दुःखं नीयमानो रसातलम् ॥ १५ ॥ द्विजिह्वेन मुनिस्त्यक्तो निर्विण्णे-नातिशंकिना ॥ मां शपेत मुनिः क्रुद्धस्तापसोऽयं महानिति ॥ १६ ॥ चचार नागकन्याभिः पूजितो मनुसत्तमः ॥ विवेशाप्यथ नागानां दानवानां महत्पुरम् ॥१७॥ कदाचिद्भृगुपुत्रं तं विचरंतं पुरोत्तमे ॥ ददर्श दैत्यराजोऽसौ प्रह्लादो धर्मवत्सलः ॥१८॥ दृष्ट्वा तं पूजयामास मुनिं दैत्यपतिस्तदा ॥ प्रपच्छ कारणं किं ते पातालागमने वद ॥ १९ ॥ प्रेषितोऽसि किमिंद्रेण सत्यं ब्रूहि द्विजोत्तम ॥ दैत्यविद्वेषयुक्तेन मम राज्यदिदृक्षया ॥ २० ॥ च्यवन उवाच ॥ किं मे मघवता राजन् यदहं प्रेषितः पुनः ॥ दूतकार्यं प्रकुर्वाणः प्राप्तवान्नगरे तव ॥ २१ ॥ विद्धि मां भृगुपुत्रं तं स्वनेत्रं धर्मतत्व-रम् ॥ मा शंकां कुरु दैत्येंद्र वासवप्रेषितस्य वै ॥२२॥ स्नानार्थं नर्मदां प्राप्तः पुण्यतीर्थे नृपोत्तम ॥ नद्यामेवावतीर्णोऽहं गृहीतश्च महाऽहिना ॥२३॥ जातोऽसौ निर्विषः सर्पो विष्णोः संस्मरणादिव ॥ मुक्तोऽहं तेन नागेन प्रभावात्स्मरणस्य वै ॥ २४ ॥ अत्रागतेन राजेन्द्र मयाऽऽप्तं तव दर्शनम् ॥ विष्णुभक्तोऽसि दैत्येंद्र तद्भक्तं मां विचिन्तय ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचः श्लक्ष्णं हिरण्यकशिपोः सुतः ॥ पप्रच्छ परया प्रीत्या तीर्थानि विविधानि च ॥२६॥ प्रह्लाद उवाच ॥ पृथिव्यां कानि तीर्थानि पुण्यानि मुनिसत्तम ॥ पाताले च तथाऽऽकाशे तानि नो वद विस्तरात् ॥ २७ ॥ च्यवन उवाच ॥ मनोवाकायशुद्धानां राजंस्तीर्थं पदे पदे ॥ तथा मलिनचित्तानां गंगाऽपि कीकटाधिका ॥ २८ ॥ प्रथमं चेन्मनः शुद्धं

बनकर क्यों आपके नगरमें आऊँगा ? ॥ २१ ॥ आप अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे देखिए, मैं धर्मपरायण महर्षि भृगुका पुत्र च्यवन हूँ। हे दैत्येन्द्र ! आप मेरे प्रति यह शंका मत करिए कि मैं इन्द्रका भेजा हुआ गुप्तचर हूँ ॥ २२ ॥ मैं नर्मदाके पवित्र तीर्थमें स्नान करने आया और नदीमें उतर ही रहा था कि उसी समय एक बड़े भारी नागने मुझे पकड़ लिया ॥ २३ ॥ बादमें विष्णु भगवानका स्मरण करनेसे वह सर्प निर्विष हो गया। उस विष्णुस्मरणका यह प्रभाव हुआ कि सर्पने मुझे छोड़ दिया ॥ २४ ॥ हे राजेन्द्र ! यहाँ आनेपर मुझे आपका दर्शन मिल गया। हे दैत्येन्द्र ! आप भगवान विष्णुके भक्त हैं और मैं भी उनका दास हूँ ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले—महर्षि च्यवनके मधुर वचन सुनकर हिरण्यकशिपुतनय प्रह्लादने बड़े प्रेमपूर्वक विविध तीर्थोंके विषयमें पूछ-ताछ की ॥ २६ ॥ प्रह्लादजी बोले—हे मुनिसत्तम ! पृथिवी, आकाश और पातालमें कौन-कौनसे पुनीत तीर्थ हैं, सो विस्तारके साथ बताइए ॥२७॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महर्षि च्यवन बोले—हे राजन् ! जिन प्राणियोंका मन, वचन और कर्म शुद्ध रहता है, उनके लिए पद-पदपर तीर्थ है। जिन लोगोंका मन मलिन है, उनके लिए गंगाजी भी मगधप्रदेश-में बहनेवाली मामूली नदीसे भी तुच्छ रहती हैं ॥ २८ ॥ अतएव सर्वप्रथम मनका शुद्ध तथा पापरहित होना आवश्यक रहता है। ऐसा होनेपर सभी तीर्थ पावन हो जाते हैं ॥ २९ ॥ गङ्गाजीके तटपर अनेक नगर, गौओंके बाड़े, बाजार, गाँव तथा बहुतेरे कस्बे बसे हुए हैं ॥३०॥ वहाँ ही धीवरों और मल्लाहोंके गाँव भी हैं। हे दैत्यसत्तम ! हूण, वङ्ग, खस तथा म्लेच्छ-जातिके लोग भी वहीं रहते हैं ॥ ३१ ॥ वे सर्वदा ब्रह्मके सदृश निर्मल गङ्गाजल पीते हैं। हे दैत्यपते ! वे इच्छानुसार उसमें त्रिकाल स्नान भी करते हैं ॥ ३२ ॥ किन्तु हे धर्मात्मन् ! उन लोगोंमेंसे किसी एकका भी अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता। तब आप ही बताइए कि विषयवासनालिप्त चित्तवालोंको तीर्थस्नानसे क्या लाभ हुआ ? ॥ ३३ ॥ अतएव हे राजन् ! यह निश्चित हुआ कि मन ही मुख्य है। सो आत्मशुद्धिकी अभिलाषा रखनेवालोंको चाहिए कि वे पहले अपना मन शुद्ध करें ॥३४॥ तीर्थनिवासी मनुष्य स्वयंको ठगकर महापापी बन जाते हैं। किसी

जातं पापविवर्जितम् ॥ तदा तीर्थानि सर्वाणि पावनानि भवंति वै ॥ २९ ॥ गंगातीरे हि सर्वत्र वसंति नगराणि च ॥ व्रजाश्चैवाकरा ग्रामाः सर्वे खेटास्तथापरे ॥ ३० ॥ निषादानां निवासाश्च कैवर्तानां तथापरे ॥ हूणबंगखसानां च म्लेच्छानां दैत्यसत्तम ॥ ३१ ॥ पिबंति सर्वदा गांगं जलं ब्रह्मोपमं सदा ॥ स्नानं कुर्वंति दैत्येन्द्र त्रिकालं स्वेच्छया जनाः ॥३२॥ तत्रैकोऽपि विशुद्धात्मा न भवत्येव मारिष ॥ किं फलं तर्हि तीर्थस्य विषयो-पहतात्मसु ॥ ३३ ॥ कारणं मन एवात्र नान्यद्राजन्विचिन्तय ॥ मनःशुद्धिः प्रकर्तव्या सततं शुद्धिमिच्छता ॥ ३४ ॥ तीर्थवासी महापापी भवेत्तत्रात्मवंचनात् ॥ तत्रैवाचरितं पापमानंत्याय प्रकल्पते ॥ ३५ ॥ यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते ॥ भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुद्ध्यति ॥ ३६ ॥ प्रथमं मनसः शुद्धिः कर्तव्या शुभमिच्छता ॥ शुद्धे मनसि द्रव्यस्य शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ३७ ॥ तथैवाचारशुद्धिः स्यात्तत-स्तीर्थं प्रसिद्ध्यति ॥ अन्यथा तु कृतं सर्वं व्यर्थं भवति तत्क्षणात् ॥३८॥ "हीनवर्णस्य संसर्गं तीर्थे गत्वा सदा त्यजेत्" ॥ भूतानुकंपनं चैव कर्तव्यं कर्मणा धिया ॥ यदि पृच्छसि राजेंद्र तीर्थं वक्ष्याम्यनुत्तमम् ॥ ३९ ॥ प्रथमं नैमिषं पुण्यं चक्रतीर्थं च पुष्करम् ॥ अन्येषां चैव तीर्थानां संख्या

तीर्थमें किया हुआ तनिक भी पाप विशाल समूहका रूप धारण कर लेता है और उसका कभी नाश नहीं होता ॥३५॥ जैसे इन्द्रवारुण (बिम्ब) का फल पककर भी मीठा नहीं होता। उसी प्रकार जिसका मन दूषित विचारोंसे भरा रहता है, वह करोड़ों तीर्थोंमें स्नान करके भी शुद्ध नहीं होता ॥३६॥ अतएव आत्मकल्याणके अभिलाषुकोंका सर्वप्रथम यह कर्तव्य है कि वे अपना मन शुद्ध करें। मनके शुद्ध हो जानेपर द्रव्यशुद्धि स्वतः हो जाती है। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है ॥३७॥ उसके बाद आचारशुद्धिकी आवश्यकता पड़ती है। इन दोनों शुद्धियोंके अनन्तर तीर्थयात्रा करनेसे उसकी सिद्धि होती है। नहीं तो उसका सब किया-धरा व्यर्थ हो जाता है ॥ ३८ ॥ "तीर्थयात्राके अवसरपर हीनवर्णका संसर्ग सर्वदाके लिए त्याग दे।" तीर्थयात्रा करते समय मन और बुद्धिसे सब प्राणियोंपर दयाभाव रक्खे। फिर भी हे राजन् ! आप यदि पूछते ही हैं तो मैं मुख्य-मुख्य तीर्थ बताता हूँ ॥ ३९ ॥ तीर्थोंमें सर्वप्रथम स्थान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नैमिषारण्य, दूसरा चक्रतीर्थ और तीसरा स्थान पुष्कर तीर्थका है। इनके सिवाय भी पृथ्वीपर बहुतेरे तीर्थ हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती ॥४०॥ हे नृपसत्तम ! भूतलपर बहुतसे पुनीत स्थान भी हैं। व्यासजी बोले कि च्यवन मुनिका यह वचन सुनते ही दैत्यराज प्रह्लाद नैमिषारण्य तीर्थ जानेको उद्यत हो गये ॥ ४१ ॥ अत्यन्त हर्षपूर्वक उन्होंने अन्यान्य दैत्योंको भी चलनेके लिए कहा। प्रह्लाद बोले—हे महाभाग दैत्यगण ! उठो, आज हम लोग नैमिषारण्य चलेंगे ॥ ४२ ॥ वहाँ चलकर हम पीताम्बरधारी कमलनेत्र भगवान विष्णुका दर्शन करेंगे। विष्णुभक्त प्रह्लादके ऐसा कहते ही वे सब दानव बड़ी प्रसन्नताके साथ पातालसे चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन सब दैत्यों और महाबली दानवोंने परम भक्त प्रह्लादके साथ हर्षपूर्वक स्नान किया। तदनन्तर दैत्योंके साथ घूमते हुए उन्होंने महापुण्यदायिनी तथा निर्मल जलसे परिपूर्ण सरस्वती नदीका दर्शन किया। हे राजन् ! सरस्वतीके जलमें स्नान करके

नास्ति महीतले ॥४०॥ पावनानि च स्थानानि बहूनि नृपसत्तम ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नैमिषं गंतुमुद्यतः ॥४१॥ नोदयामास दैत्यान्वै हर्षनिर्भरमानसः ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ उत्तिष्ठंतु महाभागा गमिष्यामोऽद्य नैमिषम् ॥ ४२ ॥ द्रक्ष्यामः पुंडरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता विष्णुभक्तेन सर्वे ते दानवास्तदा ॥ ४३ ॥ तेनैव सह पातालान्निर्ययुः परया मुदा ॥ ते समेत्य च दैतेया दानवाश्च महाबलाः ॥४४॥ नैमिषारण्यमासाद्य स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः ॥ प्रह्लादस्तत्र तीर्थेषु चरन्दैत्यैः समन्वितः ॥ ४५ ॥ सरस्वतीं महापुण्यां ददर्श विमलोदकाम् ॥ तीर्थे तत्र नृपश्रेष्ठ प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ ४६ ॥ मनः प्रसन्नं संजातं स्नात्वा सारस्वते जले ॥ विधिवत्तत्र दैत्येन्द्रः स्नानदानादिकं शुभे ॥ ४७ ॥ चकारातिप्रसन्नात्मा तीर्थे परमपावने ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ कुर्वस्तीर्थविधिं तत्र हिरण्यकशिपोः सुतः ॥ न्यग्रोधं सुमहच्छायमपश्यत्पुरतस्तदा ॥ १ ॥ ददर्श बाणानपरान्नानाजातीयकाँस्तदा ॥ गृध्रपक्षयुतांस्तीव्राञ्छिलाधौतान्महोज्ज्वलान् ॥ २ ॥ चिंतयामास मनसा कस्येमे विशिखास्त्विह ॥ ऋषीणामाश्रमे पुण्ये तीर्थे परमपावने ॥ ३ ॥ एवं चिंतयताऽनेन कृष्णाजिनधरौ मुनी ॥ समुन्नतजटाभारौ दृष्टौ धर्मसुतौ तदा ॥ ४ ॥ तयोरग्रे धृते शुभ्रे धनुषी लक्षणान्विते ॥ शार्ङ्गमाजगवं चैव तथाऽक्षय्यौ महेषुधी ॥५॥ ध्यानस्थौ तौ महाभागौ नरनारायणावृषी ॥ दृष्ट्वा धर्मसुतौ तत्र दैत्यानामधिपस्तदा ॥६॥

महात्मा प्रह्लादका मन प्रसन्न हो गया। उस शुभ तथा परम पावन तीर्थमें बड़े हर्षके साथ दैत्यराजने विधिवत् स्नान-दान किया ॥ ४३–४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(प्रह्लाद और नारायणका युद्ध) व्यासजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार तीर्थविधिका सम्पादन करते हुए हिरण्यकशिपुतनय प्रह्लादने बहुत विशाल छायासम्पन्न एक वटवृक्ष देखा ॥१॥ उस वृक्षपर उन्होंने गृध्रपंखसे सुसज्जित, तीव्र, नोकीले और चमकीले विविध प्रकारके बाणोंको देखा ॥२॥ उन्हें देखकर भक्तवर प्रह्लादने मनमें सोचा कि ऋषियोंके इस पुनीत तथा परम पावन आश्रममें ये बाण किसके हैं ॥ ३ ॥ ऐसा चिन्तन करते हुए प्रह्लादने कृष्णमृगचर्मधारी, जटाभारयुक्त और धर्मके पुत्र नर-नारायणको विद्यमान देखा ॥ ४ ॥ उनके समक्ष धनुर्वेदोक्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्षणोंसे युक्त शुभ्र शार्ङ्ग तथा आजगव धनुष और अक्षय तूणीर रक्खे थे ॥ ५ ॥ उस समय वे दोनों महाभाग नर-नारायण मुनि ध्यानमग्न थे। दैत्योंके अधिपति प्रह्लाद उन्हें इस रूपमें देखकर क्षुब्ध होगये। क्रोधसे आँखें लाल करके उन्होंने कहा—आप दोनों मुनियोंने धर्मको नष्ट करनेवाला यह कैसा पाखण्ड फैला रक्खा है ? ॥ ६ ॥ ७ ॥ इस संसारमें मैंने न कभी ऐसा देखा और न सुना ही था। कहाँ तीव्र तपस्या और कहाँ धनुर्धारी बनना ॥ ८ ॥ तपस्या करना ब्राह्मणोंका और धनुष धारण करना क्षत्रियोंका काम है। दोनोंका एकत्र समावेश धर्म-विरुद्ध है। विशेष करके सत्ययुगमें ऐसा कलियुगी काम और भी अनुचित है। ब्राह्मणको धनुष धारण करना नहीं शोभा देता ॥ ९ ॥ कहाँ माथेपर जटा धारण करना और कहाँ तरकस सम्हालना। धर्मकी यह कैसी विडम्बना है ? आप दोनोंको चाहिए कि यह पाखण्ड त्यागकर दिव्यभावसे धर्मका आचरण करें ॥ १० ॥ व्यासजी बोले—हे भारत ! भक्तराज प्रह्लादके वचन सुनकर नर ऋषिने कहा—हे दैत्यपते ! हम दोनोंकी तपस्याके विषयमें आपको व्यर्थ क्यों चिंता हो रही है ? ॥ ११ ॥ अपनेमें सामर्थ्य रखनेवाला मनुष्य सब कुछ कर सकता है।

क्रोधरक्तेक्षणस्तौ तु प्रोवाचासुरपालकः ॥ किं भवद्भ्यां समारब्धो दम्भो धर्मविनाशनः ॥७॥ न श्रुतं नैव दृष्टं हि संसारेऽस्मिन्कदापि हि ॥ तपस-श्चरणं तीव्रं तथा चापस्य धारणम् ॥ ८ ॥ विरोधोऽयं युगे चाद्ये कथं युक्तं कलिप्रियम् ॥ ब्राह्मणस्य तपो युक्तं तत्र किं चापधारणम् ॥ ९ ॥ क्व जटाधारणं देहे क्वेषुधी च विडंबनौ ॥ धर्मस्याचरणं युक्तं युवयोर्दिव्यभावयोः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा नरः प्रोवाच भारत ॥ का ते चिन्ताऽत्र दैत्येन्द्र वृथा तपसि चावयोः ॥ ११ ॥ सामर्थ्ये सति यत्कुर्यात्तत्संपद्येत तस्य हि ॥ आवां कार्यद्वये मन्द समर्थौ लोकवि-श्रुतौ ॥ १२ ॥ युद्धे तपसि सामर्थ्यं त्वं पुनः किं करिष्यसि ॥ गच्छ मार्गे यथाकामं कस्मादत्र विकत्थसे ॥ १३ ॥ ब्रह्मतेजो दुराराध्यं न त्वं वेद विमोहितः ॥ विप्रचर्चा न कर्तव्या प्राणिभिः सुखमीप्सुभिः ॥१४॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तापसौ मन्दबुद्धी स्थो मृषा वां गर्वमोहितौ ॥ मयि तिष्ठति दैत्येन्द्रे धर्मसेतुप्रवर्तके ॥ १५ ॥ न युक्तमेतत्तीर्थेऽस्मिन्नधर्माचरणं पुनः ॥ का शक्तिस्तव युद्धेऽस्ति दर्शयाद्य तपोधन ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तस्य नरस्तं प्रत्युवाच ह ॥ युध्यस्वाद्य मया सार्धं यदि ते मतिरीदृशी ॥ १७ ॥ अद्य ते स्फोटयिष्यामि मूर्धानमसु-राधम ॥ (युद्धे श्रद्धा न ते पश्चाद्भविष्यति कदाचन) ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य दैत्येन्द्रः कुपितस्तदा ॥ १८ ॥ प्रह्लादो बलवानत्र

हे राजन् ! समस्त संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि हम दोनों कार्य कर सकते हैं ॥१२॥ हम युद्ध भी कर सकते हैं और तपस्या भी। आप हमसे पूछकर क्या करेंगे ? आप यहाँ क्यों बहक रहे हैं ? आपको जहाँ जाना हो, वहाँ जाइए ॥ १३ ॥ ब्रह्मतेज बड़ा दुर्धर्ष होता है। आप जैसे अज्ञानी जीव उसके महत्त्वको क्या जानेंगे ? सुखकी अभिलाषा रखनेवाले लोगोंको चाहिए कि ब्राह्मणोंके साथ बकवास न करें ॥ १४ ॥ प्रह्लादने कहा—आप दोनों तपस्वी मंदबुद्धि हैं और व्यर्थ गर्वके मोहमें पड़ गये हैं। धर्मसेतुका निर्माण करनेवाले मुझ दैत्येन्द्रके रहते एक तीर्थमें आपका ऐसा धर्मविरुद्ध कार्य अनुचित है। हे तपोधन ! आपमें युद्ध करनेकी कितनी क्षमता है, उसे आप अभी दिखाइए ॥ १५ ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले—दैत्यराज प्रह्लादके वचन सुनकर देवर्षि नरने कहा—यदि आपका ऐसा ही विचार है तो आइए, मेरे साथ युद्ध करिए ॥ १७ ॥ हे असुराधम ! आज मैं तुम्हारी खोपड़ी चूर-चूर कर दूँगा। (इसके बाद तुम्हें फिर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कभी किसीके साथ युद्ध करनेका हौसला नहीं होगा ।) व्यासजी बोले—महामुनि नरके वचन सुनकर दैत्यराज प्रह्लाद कुपित होगये ॥ १८ ॥ बलवान् दैत्यराजने मनही मन प्रतिज्ञा की कि चाहे जिस तरह सम्भव होगा, मैं इन दोनोंपर विजय प्राप्त करूँगा ॥ १९ ॥ मैं इन जितेन्द्रिय तपस्वी नर-नारायणको युद्धमें हराऊँगा । व्यासजी बोले—ऐसा कहकर दैत्यराजने धनुप उठा लिया ॥ २० ॥ उन्होंने धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाकर टंकोर किया । उधर महर्षि नरने भी धनुप उठा तथा अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रह्लादके ऊपर बहुतेरे तीक्ष्ण और नुकीले बाणोंसे प्रहार किया ॥ २१ ॥ २२ ॥ दैत्यराजने भी अपने सुनहले पुंखयुक्त बाणोंसे तत्काल नरके बाणोंको काट डाला । महामुनि नर अपने बाणोंको व्यर्थ होते देखकर और भी क्षुब्ध होगये और उन्होंने अन्य बाणोंसे उनपर पुनः प्रहार किया ॥ २३ ॥ दैत्यपति प्रह्लादने भी अपने द्रुतगामी बाणोंसे उन्हें काट डाला और मुनिराजकी छातीमें बाण मारा । परम क्रुद्ध नरने भी उन्हें अपने पाँच आशुगामी बाणोंसे काटकर दैत्यराजके भुजदण्डपर प्रहार कर दिया ॥ २४ ॥ इंद्रसमेत समस्त देवता उन दोनोंका युद्ध देखनेके लिए अपने-अपने विमानोंपर बैठकर आकाशमण्डलमें

प्रतिज्ञामारुरोह सः ॥ येन केनाप्युपायेन जेष्यामि तावुभावपि ॥ १९ ॥ नरनारायणौ दांतावृषी तपिसमन्वितौ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं दैत्यः प्रतिगृह्य शरासनम् ॥२०॥ आकृष्य तरसा चापं ज्याशब्दं च चकार ह ॥ नरोऽपि धनुरादाय शरांस्तीव्रान्छिलाशितान् ॥ २१ ॥ मुमोच बहुशः क्रोधात्प्रह्लादोपरि पार्थिव ॥ २२ ॥ तान्दैत्यराजस्तपनीयपुंखैश्चिच्छेद बाणैस्तरसा समेत्य ॥ समीक्ष्य छिन्नांश्च नरः स्वसृष्टानन्यान्मुमोचा-श रुषान्वितो वै ॥ २३ ॥ दैत्याधिपस्तानपि तीव्रवेगैश्छित्त्वा जघानोरसि तं मुनींद्रम् ॥ नरोऽपि तं पञ्चभिराशुगैश्च क्रुद्धोऽहनदैत्यपतिं बाहुदेशे ॥२४॥ सेन्द्राः सुरास्तत्र तयोर्हि युद्धं द्रष्टुं विमानैर्गगनस्थिताश्च ॥ नरस्य वीर्यं युधिसंस्थितस्य ते तुष्टुवुर्दैत्यपतेश्च भूयः ॥२५॥ ववर्ष दैत्याधिप आत्त-चापः शिलीमुखानंबुधरो यथापः ॥ आदाय शार्ङ्गं धनुरप्रमेयं मुमोच बाणान्छितहेमपुङ्खान् ॥२६॥ बभूव युद्धं तुमुलं तयोस्तु जयैषिणोः पार्थिव देवदैत्य-योः ॥ ववर्षुराकाशपथे स्थितास्ते पुष्पाणि दिव्यानि प्रहृष्टचित्ताः ॥२७॥ चुकोप दैत्याधिपतिर्हरौ स मुमोच बाणानतितीव्रवेगान् ॥ चिच्छेद तान्धर्मसुतः सुतीक्ष्णैर्धनुर्विमुक्तैर्विशिखैस्तदाशु ॥२८॥ ततो नारायणं बाणैः प्रह्लादश्चातितर्षितैः ॥ ववर्ष सुस्थितं वीरं धर्मपुत्रं सनातनम् ॥ नारायणोऽपि तं वेगा-न्मुक्तैर्बाणैः शिलाशितैः ॥२९॥ तुतोदातीव पुरतो दैत्यानामधिपं स्थितम् ॥ सन्निपातोऽम्बरे तत्र दिद्दचूर्णां बभूव ह ॥३०॥ देवानां दानवानां च कुर्वतां

मँडराने लगे । वे लोग कभी युद्धनिरत मुनिराज नरके पराक्रमकी और कभी दैत्यराज प्रह्लादके युद्धकौशलकी सराहना करने लगते थे ॥ २५ ॥ उस समय दैत्यराज अपने धनुष द्वारा इस प्रकार बाणोंकी वर्षा कर रहे थे, जैसे मेघ जलकी वर्षा करते हैं । उधर देवर्षि नर भी हाथमें विशाल धनुष लिये हुए तीक्ष्ण तथा स्वर्णपुंख बाण बरसा रहे थे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार विजयके इच्छुक उन देवता नर तथा दैत्यपति प्रह्लादमें घमासान युद्ध होने लगा। उधर आकाशमें विद्यमान देवता हर्षित हो-होकर उनकेऊपर पुष्पवर्षा कर रहे थे ॥२७॥ उसी समय दैत्यराजका कोप बढ़ गया और वे अतिशय आशुगामी बाणोंको भगवान नारायणपर छोड़ने लगे । धर्मपुत्र नारायण भी अपने अति तीक्ष्ण बाणों द्वारा उनके बाणोंको बड़ी तत्परतासे काट रहे थे ॥२८॥ दैत्यराज प्रह्लाद रणभूमिमें डटकर खड़े असाधारण वीर धर्मपुत्र तथा सनातन पुरुप नारायणपर अपने अति तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे । उसके उत्तरमें देवर्षि नारायणने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी सानपर चढ़े हुए तीक्ष्ण वाणोंको बड़ी शीघ्रतासे चलाकर अपने समक्ष खड़े दैत्यपतिको आहत करके लहू-लुहान कर दिया ॥ २९ ॥ वह भीषण युद्ध देखनेके लिए आकाशमें देवताओं और दैत्योंका एक बहुत बड़ा समुदाय एकत्र हो गया। वे दोनों पक्ष अपने-अपने पक्षकी जय मनाने लगे। जब उभयपक्षकी बाणवर्षासे समस्त गगनमण्डल आच्छादित हो गया ॥३०॥३१॥ तब इतना प्रवल अँधेरा छा गया कि दिन भी रात्रि मालूम पड़ने लगा। इससे अतिशय आश्चर्यचकित देवता और दानव परस्पर वार्तालाप करते हुए कहने लगे—॥३२॥ यह बड़ा भयानक युद्ध हो रहा है। ऐसा भीषण संग्राम पहले कभी भी नहीं देखा गया था। बड़े-बड़े देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग, विद्याधर तथा चारणगण बहुत आश्चर्यमें पड़ गये। वह युद्ध देखनेके लिए महामुनि नारद और पर्वतऋषि भी आये हुए थे ॥३३॥३४॥ तब नारदजीने महर्षि पर्वतसे कहा—ऐसा युद्ध तो तारकासुर तथा वृत्रासुरका भी नहीं हुआ था ॥३५॥ मधु-कैटभके साथ विष्णुभगवानका किया हुआ युद्ध भी इसकी तुलनामें तुच्छ था। प्रह्लाद बड़े बलवान्, वीर, अद्भुत पराक्रमी और सिद्ध पुरुष हैं। इसी कारण वे नारायणके साथ बराबरीकी लड़ाई

जयघोषणम् ॥ उभयोः शरवर्षेण छादिते गगने तदा ॥३१॥ दिवाऽपि रात्रिसदृशं बभूव तिमिरं महत् ॥ ऊचुः परस्परं देवा दैत्याश्चातीव विस्मिताः ॥३२॥ अदृष्टपूर्वं युद्धं वै वर्ततेऽद्य सुदारुणम् ॥ देवर्षयोऽथ गंधर्वा यक्षकिन्नरपन्नगाः ॥ ३३ ॥ विद्याधराश्चारणाश्च विस्मयं परमं ययुः ॥ नारदः पर्वतश्चैव प्रेक्षणार्थं स्थितौ मुनी ॥३४॥ नारदः पर्वतं प्राह नेदृशं चाभवत्पुरा ॥ तारकासुरयुद्धं च तथा वृत्रासुरस्य च ॥ ३५ ॥ मधुकैटभयोर्युद्धं हरिणा चेदृशं कृतम् ॥ प्रह्लादः प्रबलः शूरो यस्मान्नारायणेन च ॥३६॥ करोति सदृशं युद्धं सिद्धेनाद्भुतकर्मणा ॥ व्यास उवाच ॥ दिने दिने तथा रात्रौ कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः ॥३७॥ चक्रतुः परमं युद्धं तौ तदा दैत्यतापसौ ॥ नारायणस्तु चिच्छेद प्रह्लादस्य शरासनम् ॥३८॥ तरसैकेन बाणेन स चान्यद्धनुराददे ॥ नारायणस्तु तरसा मुक्त्वाऽन्यं च शिलीमुखम् ॥ ३९ ॥ तदैव मध्यतश्चापं चिच्छेद लघुहस्तकः ॥ छिन्नं छिन्नं पुनर्दैत्यो धनुरन्यत्समाददे ॥ ४० ॥ नारायणस्तु चिच्छेद विशिखैराशु कोपितः ॥ छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रः परिघं तु समाददे ॥ ४१ ॥ जघान धर्मजं तूर्णं बाह्वोर्मध्येऽतिकोपनः ॥ तमायांतं स बलवान्मार्गणैर्नवभिर्मुनिः ॥४२॥ चिच्छेद परिघं घोरं दशमभिस्तमताडयत् ॥ गदामादाय दैत्येंद्रः सर्वायसमयीं दृढाम् ॥ ४३ ॥ जानुदेशे जघानाशु देवं नारायणं रुषा ॥ गदया चापि गिरिवत्संस्थितः स्थिरमानसः ॥ ४४ ॥ धर्मपुत्रोऽतिबलवान्मुमोचाशु

लड़ रहे हैं। व्यासजी बोले—हे जनमेजय ! इस प्रकार प्रतिदिन और प्रतिरात्रि बार-बार वे दोनों दैत्य और तपस्वी तीव्रातितीव्र युद्ध करते चल रहे थे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अवसर पाकर नारायणने एक बाणसे प्रह्लादका धनुष काट दिया। तत्काल दैत्यराजने दूसरा धनुष ले लिया। नारायणने बड़ी फुर्तीसे एक बाण चलाकर प्रह्लादके उस धनुषको भी बीचो-बीच काट डाला। इस प्रकार नारायण बार-बार दैत्यपतिका धनुष काटते थे और प्रह्लाद पुनः पुनः दूसरा धनुष लेते जाते थे ॥ ३८–४० ॥ अन्तमें अतिशय कुपित नारायणने अपने बाणोंसे बड़ी शीघ्रतापूर्वक प्रह्लादके अन्तिम धनुषको भी काट डाला। उस धनुषके भी कट जानेपर दैत्यराजने अपना परिघ (लौहमुद्गर) सम्हाला ॥ ४१ ॥ और बड़े क्रोधके साथ धर्मपुत्र नारायणके भुजदण्डपर प्रहार किया। बलवान् मुनिराज नारायणने उसे अपनी ओर आते देखकर नौ बाणोंसे बीचहीमें काटकर अन्य दस बाणोंसे प्रह्लादपर प्रहार किया। तदनन्तर दैत्यराजने लोहेकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ठोस तथा बहुत मजबूत गदा उठायी और उससे नारायणकी जाँघपर मारा। उस गदाके लगनेपर भी नारायण पर्वतकी तरह अटल होकर खड़े रह गये ॥ ४२-४४ ॥ तब अतिशय बलवान् धर्मपुत्रने एक साथ बहुतेरे बाण छोड़कर दैत्यराजकी उस दृढ़ गदाको भी चूर्ण कर दिया ॥ ४५ ॥ नारायणका यह कौशल देखकर आकाशमें विद्यमान दर्शक आश्चर्यचकित हो गये। अब दैत्यराजने अपनी शक्ति (साँग) उठायी ॥ ४६ ॥ उसे उन्होंने बड़े वेगसे नारायणकी छातीको लक्ष्य करके चला दी। उस शक्तिको अपनी ओर आती देखकर नारायणने केवल एक बाणसे उसे काटकर सात खण्ड कर दिये और अन्य सात बाण चलाकर प्रह्लादपर प्रहार किया। इस प्रकार पूरे एक सौ दिव्य वर्षतक उन दोनोंमें वह भयंकर संग्राम चलता रहा ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! उस आश्रममें होनेवाले युद्धने सबको विस्मित कर दिया। उसी समय पीताम्बरधारी, चतुर्भुजी और गदाधर भगवान विष्णु उस आश्रममें प्रह्लादके पास जा पहुँचे। वे लक्ष्मीपति विष्णु अपनी चारों भुजाओंमें शंख-चक्र-गदा और पद्म लिये हुए थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अपने सम्मुख भगवानको विद्यमान देखकर हिरण्यकशिपुतनय प्रह्लादने

शिलीमुखान् ॥ गदां चिच्छेद भगवांस्तदा दैत्यपतेर्दृढाम् ॥ ४५ ॥ विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षका गगने स्थिताः ॥ स तु शक्तिं समादाय प्रह्लादः परवीरहा ॥ ४६ ॥ चिक्षेप तरसा क्रुद्धो बलान्नारायणोरसि ॥ तामापतन्तीं संवीक्ष्य बाणेनैकेन लीलया ॥ ४७ ॥ सप्तधा कृतवानाशु सप्तभिस्तं जघान ह ॥ दिव्यवर्षशतं चैव तद्युद्धं परमं तयोः ॥ ४८ ॥ जातं विस्मयदं राजन्सर्वेषां तत्र चाश्रमे ॥ तदाऽऽजगाम तरसा पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ४९ ॥ प्रह्लादस्याश्रमं तत्र जगाद च गदाधरः ॥ चतुर्भुजो रमाकांतो रथाङ्गदरपद्मभृत् ॥ ५० ॥ दृष्ट्वा तमागतं तत्र हिरण्यकशिपोः सुतः ॥ प्रणम्य परया भक्त्या प्रांजलिः प्रत्युवाच ह ॥५१॥ प्रह्लाद उवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ भक्तवत्सल माधव ॥ कथं न जितवानाजावहमेतौ तपस्विनौ ॥ संग्रामस्तु मया देव कृतः पूर्णं शतं समाः ॥ ५२ ॥ सुराणां न जितौ कस्मादिति मे विस्मयो महान् ॥ विष्णुरुवाच ॥ सिद्धाविमौ मदंशौ च विस्मयः कोऽत्र मारिष ॥ ५३ ॥ तापसौ न जितात्मानौ नरनारायणौ जितौ ॥ गच्छं त्वं वितलं राजन्कुरु भक्तिं ममाचलाम् ॥ ५४ ॥ नाभ्यां कुरु विरोधं त्वं तापसाभ्यां महामते ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याज्ञप्तो दैत्यराजो निर्ययावसुरैः सह ॥ ५५ ॥ नरनारायणौ भूयस्तपोयुक्तौ बभूवतुः ॥ ५६ ॥ श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे प्रह्लादनरनारायणयुद्धं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

बड़ी श्रद्धाके साथ प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा। प्रह्लाद बोले—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे भक्तवत्सल ! हे माधव ! मैं इन दोनों तपस्वियोंको परास्त क्यों नहीं कर सका ? हे देव ! मैंने पूरे सौ दिव्य वर्षतक इनके साथ संग्राम किया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ फिर भी मैं इन्हें नहीं हरा सका। यह सोचकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। भगवान विष्णु बोले—हे मेरे प्रियभक्त ! ये दोनों मेरे अंशसे जायमान सिद्ध पुरुष हैं। इन्हें न जीतनेमें आश्चर्य किस बातका है ? ॥ ५३ ॥ मेरे अंशज तथा सिद्ध पुरुष होनेके कारण ही आप इन जितेन्द्रिय तपस्वी नर-नारायणको पराजित नहीं कर सके। हे राजन् ! अब आप अपने वितल लोकको जाइए और वहाँ मेरी अविचल भक्तिकी साधना करिए ॥ ५४ ॥ हे महामते ! अब आप कभी भी इन तपस्वियोंके साथ विरोध न करिएगा। व्यासजी बोले—विष्णु भगावानकी ऐसी आज्ञा पाकर दैत्यपति प्रह्लाद अपने साथी असुरोंके साथ वहाँसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चल पड़े। उधर भगवान नर-नारायण फिर अपनी तपस्यामें संलग्न हो गये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

(महर्षि भृगुका नारायणको शाप तथा देवासुरसंग्राममें असुरोंकी पराजय) राजा जनमेजय बोले—हे पराशरतनय व्यासजी! यह कथानक सुनकर मुझे यह बहुत बड़ा संशय हो रहा है कि नर-नारायण शान्तस्वभाव, विष्णुके अंशसे जायमान तथा पूर्ण तपस्वी थे ॥१॥ वे नित्य तीर्थमें रहते थे, सतोगुणी थे, वनैले फल-फूल खाते थे, साक्षात् धर्मके पुत्र थे। वे महात्मा, तपस्वी तथा सत्यनिष्ठ थे॥२॥ तब उनको ऐसा क्रोध क्यों हुआ कि जिससे वे रणभूमिमें उतर आये और संसारकी सर्वोत्तम वस्तु तपस्याको त्यागकर संग्राम करने लगे ॥३॥ उन मुनियोंने शान्तिसुखको ठुकराकर दैत्यराज प्रह्लादके साथ पूरे सौ वर्षतक युद्ध क्यों किया? ॥ ४ ॥ उन महामुनि नर-नारायणने किस अभिप्रायसे प्रह्लादके साथ वह लड़ाई लड़ी? हे महाभाग! आप मुझे उस युद्धका कारण बताइए ॥ ५ ॥ (प्रायः स्त्री, धन तथा कोई कार्यविशेष ही युद्धका कारण बनता है। तब उन विरक्त महापुरुषोंके मनमें युद्धबुद्धि क्यों जागृत हुई? यदि

॥ जनमेजय उवाच ॥ संदेहोऽयं महानत्र पाराशर्य कथानके ॥ नरनारायणौ शांतौ वैष्णवांशौ तपोधनौ ॥ १ ॥ तीर्थाश्रयौ सत्त्वयुक्तौ वन्याशनपरौ सदा ॥ धर्मपुत्रौ महात्मानौ तापसौ सत्यसंस्थितौ ॥ २ ॥ कथं रागसमायुक्तौ जातौ युद्धे परस्परम् ॥ संग्रामं चक्रतुः कस्मात्त्यक्त्वा तपिमनुत्तमाम् ॥ ३ ॥ प्रह्लादेन समं पूर्णं दिव्यवर्षशतं किल ॥ हित्वा शांतिसुखं युद्धं कृतवन्तौ कथं मुनी ॥ ४ ॥ कथं तौ चक्रतुर्युद्धं प्रह्लादेन समं मुनी ॥ कथयस्व महाभाग कारणं विग्रहस्य वै ॥५॥ (कामिनी कनकं कार्यं कारणं विग्रहस्य वै) ॥ युद्धबुद्धिः कथं जाता तयोश्च तद्विरक्तयोः ॥ तथाविधं तपस्तप्तं ताभ्यां च केन हेतुना ॥६॥ मोहार्थं सुखभोगार्थं स्वर्गार्थं वा परन्तप ॥ कृतमत्युत्कटं ताभ्यां तपः सर्वफलप्रदम् ॥७॥ मुनिभ्यां शांतचित्ताभ्यां प्राप्तं किं फलमद्भुतम् ॥ तपसा पीडितो देहः संग्रामेण पुनः पुनः ॥ ८ ॥ दिव्यवर्षशतं पूर्णं श्रमेण परिपीडितौ ॥ न राज्यार्थे धने वाऽपि न दारेषु गृहेषु च ॥ ९ ॥ किमर्थं तु कृतं युद्धं ताभ्यां तेन महात्मना ॥ निरीहः पुरुषः कस्मात्प्रकुर्याद्युद्धमीदृशम् ॥ १० ॥ दुःखदं सर्वथा देहे जानन्धर्मं सनातनम् ॥ सुबुद्धिः सुखदानीह कर्माणि कुरुते सदा ॥११॥ न दुःखदानि धर्मज्ञ स्थितिरेषा सनातनी ॥ धर्मपुत्रौ हरेरंशौ सर्वज्ञौ सर्वभूषितौ ॥१२॥ कृतवंतौ कथं युद्धं दुःखं धर्मविनाशकम् ॥ त्यक्त्वा तपः समाधीतं सुखारामं महत्फलम् ॥१३॥ संयुगं दारुणं कृष्ण नैव मूर्खोऽपि

उनके विचार ऐसे ही थे, तब उन्होंने उतनी कठोर तपस्या क्यों की? ॥ ६ ॥ हे परन्तप! वह तप उन्होंने किसीको मोहित करने, सुख भोगने अथवा स्वर्ग प्राप्त करनेके लिए किया था? इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने सब फल देनेवाली उत्कृष्ट तपस्या की थी ॥ ७ ॥ तब उन शान्तप्रकृति मुनियोंने उससे कौनसा अद्भुत फल प्राप्त किया? हाँ, यही हुआ कि पहले तो उन्होंने तपस्यामें देह सुखायी और बादमें संग्राम करके बार बार शरीरको कष्ट दिया ॥८॥ इस प्रकार पूरे सौ दिव्य वर्षतक परिश्रम द्वारा शरीरको कष्ट देकर राज्य, धन, स्त्री तथा गृहस्थी किसीका सुख नहीं पाया ॥ ९ ॥ तब किस अभिलाषाकी पूर्ति करनेके लिए उन्होंने महात्मा प्रह्लादके साथ वह युद्ध किया? कोई निरीह पुरुष आखिर किस उद्देश्यसे ऐसा युद्ध करेगा? ॥ १० ॥ वे इस सनातन धर्मको जानते थे कि संघर्षसे कष्ट मिलता है। अच्छी बुद्धिवाले लोग तो सदा सबके लिए सुखदायी कर्म ही करते हैं ॥ ११ ॥ हे धर्मज्ञ! यह परम्परा सदासे चली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आ रहीं है कि भले लोग दुःखदायक काम नहीं करते। तब साक्षात् धर्मके पुत्र, भगवान विष्णुके अंशज, सर्वज्ञ और सब गुणोंसे अलंकृत होते हुए भी उन्होंने वह धर्मविनाशक युद्ध क्यों किया? समाधिसम्पन्न, सुखका आगार और महाफलदायी तप त्यागकर कोई मूर्ख मनुष्य भी दारुण युद्ध न करना चाहेगा। मैंने ऐसा सुना था कि महाराज ययाति स्वर्गच्युत हो गये थे॥ १२–१४॥ उन राजा ययातिने बड़े बड़े यज्ञ किये थे, दान दिया था और वे बड़े भारी धर्मात्मा थे। किन्तु अहंकाररूपी पापके कारण उन्हें स्वर्गलोकके राज्यसे भ्रष्ट होकर पृथिवीपर आना पड़ा॥ १५॥ केवल थोड़ेसे अहंकारभरे शब्दोंका उच्चारण करते ही इन्द्रने राजा ययातिको स्वर्गसे पृथिवीपर ढकेल दिया। यदि अहंकार न हो तो युद्ध हो ही नहीं सकता॥१६॥ आखिर उस युद्धसे उन्हें क्या लाभ हुआ? हाँ, उनका तपसे संचित पुण्य अलबत्ते क्षीण होगया। व्यासजी बोले–हे राजन्! इस संसारके मूल कारण अहंकारके तीन प्रकार बतलाये गये हैं॥१७॥ धर्मके दृढ़निश्चयी सर्वज्ञ मुनियोंने सात्त्विक, राजसिक और तामसिक अहंकारको संसारकी उत्पत्तिका मुख्य कारण माना है। ऐसी स्थितिमें वे देहधारी मुनि अहंकारको कैसे त्याग

वांछति॥ श्रुतो मया ययातिस्तु च्युतः स्वर्गान्महीपतिः॥१४॥ अहंकारभवात्पापात्पातितः पृथिवीतले॥ यज्ञकृद्दानकर्ता च धार्मिकः पृथिवीपतिः॥ १५॥ शब्दोच्चारणमात्रेण पातितो वज्रपाणिना॥ अहंकारमृते युद्धं न भवत्येव निश्चयः॥ १६॥ किं फलं तस्य युद्धस्य मुनेः पुण्यविनाशनम्॥ व्यास उवाच॥ राजन्संसारमूलं हि त्रिविधं परिकीर्तितम्॥ १७॥ अहंकारस्तु सर्वज्ञैर्मुनिभिर्धर्मनिश्चये॥ स कथं मुनिना त्यक्तुं योग्यो देहभृतां किल॥ १८॥ कारणेन बिना कार्यं न भवत्येव निश्चयः॥ तपो दानं तथा यज्ञाः सात्त्विकात्प्रभवंति ते॥ १९॥ राजसाद्वा महाभाग तामसात्कलहस्तथा॥ क्रिया स्वल्पाऽपि राजेन्द्र नाहंकारं विना क्वचित्॥ २०॥ शुभा वाऽप्यशुभा वाऽपि प्रभवत्यपि निश्चयः॥ अहंकाराद्बन्धकारी नान्योऽस्ति जगतीतले॥ २१॥ येनेदं रचितं विश्वं कथं तद्रहितं भवेत्॥ ब्रह्मा रुद्रस्तथा विष्णुरहंकारयुतास्त्वमी॥ २२॥ अन्येषां चैव का वार्ता मुनीनां वसुधाधिप॥ अहंकारावृतं विश्वं भ्रमतीदं चराचरम्॥ २३॥ पुनर्जन्म पुनर्मृत्युः सर्वं कर्मवशानुगम्॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणां संसारेऽस्मिन्महीपते॥ २४॥ रथांगवदसर्वार्थं भ्रमणं सर्वदा स्मृतम्॥ विष्णोरप्यवताराणां संख्यां जानाति कः पुमान्॥ २५॥ विततेऽस्मिंस्तु संसार उत्तमा-

पाते?॥ १८॥ यह तो निश्चित ही है कि बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता। तप, दान तथा यज्ञ सात्त्विक अथवा राजस अहंकारसे जायमान होते हैं॥ १९॥ तामसिक अहंकारसे लड़ाई-झगड़ेकी भावना उत्पन्न होती है। हे राजेन्द्र! अहंकारके बिना कभी तनिक भी कोई कार्य नहीं होता॥ २०॥ शुभ या अशुभ कैसा भी कार्य हो, अहंकारके बिना वह सम्पन्न नहीं हो सकता। इस भूतलपर अहंकारके समान बन्धनकारी और कोई भी तत्त्व नहीं है॥ २१॥ जब अहंकारसे ही विश्वकी सृष्टि हुई है तो अहंकारके बिना विश्व कैसे रह सकता है? ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी अहंकारयुक्त रहते हैं॥ २२॥ हे राजन्! तब साधारण प्राणियों और मुनियोंको उससे कैसे छूट मिल सकती है? सचराचर समस्त संसार अहंकारके वशीभूत होकर चक्कर खाया करता है॥ २३॥ हे महीपते! संसारी जीव जन्म लेते हैं, मरते हैं, फिर जन्म लेते हैं और फिर मरते हैं। उनका जैसा कर्म होता है, वैसा ही उन्हें फल मिलता है। इस जगत्में देवता, मनुष्य और तिर्यक् योनिके पशु-पक्षी रथके पहियेकी भाँति बराबर चक्कर काटा करते हैं। औरोंको जाने दीजिए, साक्षात् विष्णुभगवानके अवतारोंको गिनकर कौन मनुष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बता सकता है ? ॥२४॥२५॥ इस विस्तृत संसारकी उत्तम-अधम सभी योनियोंमें भगवानने असंख्य अवतार लिये और अन्तमें उन्हें मछली तकका शरीर धारण करना पड़ा ॥२६॥ कच्छप, वाराह, नृसिंह और वामन अवतार उन्होंने लिया। वे जगन्नाथ, वासुदेव और जनार्दन भगवान विधिकी प्रेरणावश युग-युगमें अगणित अवतार लेते रहते हैं। हे महाराज !'सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान विष्णुने जिन-जिन अवतारोंको लिया था, उन्हें बता रहा हूँ। आप ध्यान देकर सुनिए। हे महाराज! महर्षि भृगुके शापसे उन देवश्रेष्ठ प्रभु और सबके स्वामी भगवान विष्णुने अनेक अवतार लिये थे। राजा जनमेजय बोले—हे महाभाग ! अब मेरे मनमें यह प्रश्न उठता है कि भगवान विष्णुको भृगुने शाप ही क्यों दिया ? हे मुनिराज ! श्रीहरिने उन महर्षि भृगुका क्या बिगाड़ा था ? ॥ २७–३१ ॥ जिससे रुष्ट होकर उन्होंने देवताओं द्वारा नमस्कृत विष्णुभगवानको शाप दे दिया। व्यासजी बोले—हे राजन् ! सुनिए, अब मैं आपको भृगुके

धमयोनिषु ॥ नारायणो हरिः साक्षान्मात्स्यं वपुरुपाश्रितः ॥ २६ ॥ कामठं सौकरं चैव नारसिंहं च वामनम् ॥ युगे युगे जगन्नाथो वासुदेवो जनार्दनः ॥ २७ ॥ अवतारानसंख्यातान्करोति विधियंत्रितः ॥ वैवस्वते महाराज सप्तमे भगवान्हरिः ॥ २८ ॥ मन्वंतरेऽवतारान्वै चक्रे ताञ्छृणु तत्त्वतः ॥ भृगुशापान्महाराज विष्णुर्देववरः प्रभुः ॥ २९ ॥ अवतारानेकांस्तु कृतवानखिलेश्वरः ॥ राजोवाच ॥ संदेहोऽयं महाभाग हृदये मम जायते ॥ ३० ॥ भृगुणा भगवान्विष्णुः कथं शप्तः पितामह ॥ हरिणा च मुनेस्तस्य विप्रियं किं कृतं मुने ॥ ३१ ॥ यद्रोषाद्भृगुणा शप्तो विष्णुर्देवनमस्कृतः ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि भृगोः शापस्य कारणम् ॥ ३२ ॥ पुरा कश्यपदायादो हिरण्यकशिपुर्नृपः ॥ यदा तदा सुरैः सार्धं कृतं संख्यं परस्परम् ॥ ३३ ॥ कृते संख्ये जगत्सर्वं व्याकुलं समजायत ॥ हते तस्मिन्नृपे राजा प्रह्लादः समजायत ॥ ३४ ॥ देवान्स पीडयामास प्रह्लादः शत्रुकर्षणः ॥ संग्रामो ह्यभवद्धोरः शक्रप्रह्लादयोस्तदा ॥ ३५ ॥ पूर्णं वर्षशतं राजँल्लोकविस्मयकारकम् ॥ देवैर्युद्धं कृतं चोग्रं प्रह्लादस्तु पराजितः ॥ ३६ ॥ निर्वेदं परमं प्राप्तो ज्ञात्वा धर्मं सनातनम् ॥ विरोचनसुतं राज्ये प्रतिष्ठाप्य बलिं नृप ॥ ३७ ॥ जगाम स तपस्तप्तुं पर्वते गंधमादने ॥ प्राप्य राज्यं बलिः श्रीमान्सुरैर्वैरं चकार ह ॥ ३८ ॥ ततः परस्परं युद्धं जातं परमदारुणम् ॥ ततः सुरैर्जिता दैत्या इन्द्रेणामिततेजसा ॥ ३९ ॥ विष्णुना च सहायेन राज्यभ्रष्टाः कृता नृप ॥ ततः पराजिता दैत्याः काव्यस्य शरणं गताः ॥ ४० ॥ किं त्वं न कुरुषे ब्रह्मन् साहाय्यं

शापका कारण बताता हूँ ॥ ३२ ॥ पूर्वकालमें कश्यपतनय हिरण्यकशिपुने जब देवताओंके साथ युद्ध छेड़ दिया ॥ ३३ ॥ तब उस संग्रामके छिड़नेसे समस्त संसार व्याकुल हो उठा। बादमें जब हिरण्यकशिपु मारा गया, तब प्रह्लाद राजा बने ॥ ३४ ॥ शत्रुपीडक प्रह्लाद भी देवताओंको सताने लगे। अतएव देवराज इन्द्र और प्रह्लादमें बड़ा भयानक संग्राम हुआ ॥३५॥ हे राजन् ! पूरे सौ वर्षतक देवताओंने उग्र युद्ध करके प्रह्लादको परास्त कर दिया ॥ ३६ ॥ उस युद्धको देखकर सब लोग दहल गये थे। प्रह्लाद भी पराजयसे बहुत दुखी हुए और विरोचन-पुत्र बलिको राज्यसिंहासनपर बैठाकर तप करनेके लिए गन्धमादन पर्वतपर चले गये। राज्य प्राप्त करके श्रीमान् राजा बलिने भी देवताओंसे वैर कर लिया ॥ ३७॥ ३८ ॥ जिससे फिर देवों और दानवोंमें परम दारुण युद्ध हुआ और अन्तमें अमिततेजस्वी इन्द्रने दैत्योंको पराजित कर दिया ॥३९॥ उसके बाद भगवान विष्णुकी सहायतासे उन्होंने उन दैत्योंको राज्यच्युत किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे राजन्! इस प्रकार पराजित होकर दैत्य अपने गुरु शुक्राचार्यकी शरणमें जा पहुँचे ॥ ४० ॥ उन सबने कहा—हे ब्रह्मन्! आप इतने प्रतापशाली होते हुए भी क्यों हमारी सहायता नहीं करते ? अब हम लोग पृथिवीपर नहीं टिक सकते। अतएव रसातलको जा रहे हैं ॥४१॥ हे मंत्रज्ञोंमें श्रेष्ठ! आपकी सहायताके बिना हम यहाँ कदापि न रह सकेंगे। दैत्योंके यह कहनेपर दयालु शुक्राचार्यने कहा-॥४२॥ हे असुरो! तुम लोग मत डरो। मैं अपने तेजसे तुम्हारी रक्षा करूँगा। मंत्रों तथा औषधियोंसे मैं सदा तुम्हारी सहायता करता रहूँगा ॥ ४३ ॥ अब तुम लोग संताप त्यागकर उत्साहसम्पन्न बनो। व्यासजी बोले—इस प्रकार शुक्राचार्यका सहारा पाकर दैत्य निर्भय हो गये ॥ ४४ ॥ उधर जब देवताओंने गुप्तचरोंके द्वारा यह समाचार सुना, तब वे इंद्रके साथ परस्पर मंत्रणा करने लगे ॥४५॥ शुक्राचार्यके मंत्रबलसे अभिज्ञ देवताओंने अन्तमें यह निश्चय किया कि शुक्राचार्य अपने मंत्रबलसे हमें राज्यभ्रष्ट करें, उसके पहले ही हमलोग शीघ्रतापूर्वक दैत्योंपर फिरसे चढ़ाई कर दें ॥ ४६ ॥ उनके सैनिकोंका वध करके बचे-खुचे अच्छे दैत्योंको हमलोग पाताल भेज देंगे। इस निश्चित योजनाके अनुसार रोषमें भरे

नः प्रतापवान् ॥ स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम् ॥ ४१ ॥ यदि त्वं न सहायोऽसि त्रातुं मंत्रविदुत्तम ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः सोऽब्रवीद्दैत्यान्काव्यः कारुणिको मुनिः ॥४२॥ मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन भोऽसुराः ॥ मंत्रैस्तथौषधीभिश्च साहाय्यं वः सदैव हि ॥४३॥ करिष्यामि कृतोत्साहा भवंतु विगतज्वराः ॥ व्यास उवाच ॥ ततस्ते निर्भया जाता दैत्याः काव्यस्य संश्रयात् ॥ ४४ ॥ देवैः श्रुतस्तु वृत्तांतः सर्वैश्चारमुखात्किल ॥ तत्र संमंत्र्य ते देवाः शक्रेण च परस्परम् ॥ ४५ ॥ मंत्रं चक्रुः सुसंविग्नाः काव्यमंत्रप्रभावतः ॥ योद्धुं गच्छामहे तूर्णं यावन्न च्यावयन्ति वै ॥ ४६ ॥ प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे ॥ दैत्याञ्जग्मुस्ततो देवाः संरुष्टाः शस्त्रपाणयः ॥ ४७ ॥ जग्मुस्तान्विष्णुसहिता दानवान् हरिणोदिताः ॥ वध्यमानास्तु ते दैत्याः संत्रस्ता भयपीडिताः ॥ ४८ ॥ काव्यस्य शरणं जग्मू रक्ष रक्षेति चाब्रुवन् ॥ ताञ्छुक्रः पीडितान्दृष्ट्वा देवैर्दैत्यान्महाबलान् ॥ ४९ ॥ मा भैष्टेति वचः प्राह मंत्रौषधिबलाद्विभुः ॥ दृष्ट्वा काव्यं सुराः सर्वे त्यक्त्वा तान्प्रययुः किल ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे देवासुरयुद्धं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

व्यास उवाच ॥ तथा गतेषु देवेषु काव्यस्तान्प्रत्युवाच ह ॥ ब्रह्मणा पूर्वमुक्तं यच्छृणुध्वं दानवोत्तमाः ॥ १ ॥ विष्णुर्दैत्यवधे युक्तो हनि-

हुए देवताओंने शस्त्रास्त्र सम्हालकर दैत्योंपर धावा बोल दिया ॥ ४७ ॥ इन्द्रकी आज्ञासे भगवान विष्णुके साथ देवता दैत्योंपर चढ़ दौड़े और पहुँचते ही भयानक मार-काट आरम्भ कर दिया। तब वे आतङ्कित तथा भयभीत दैत्य भागकर शुक्राचार्यकी शरणमें गये और "हमारी रक्षा करिए—हमें बचाइए" ऐसा कहते हुए चिल्लाने लगे। इस प्रकार देवताओं द्वारा उन महाबली दैत्योंको पिटते देखकर शुक्राचार्यने अपने मंत्र और औषधिके बलसे "तुमलोग मत डरो" ऐसा कहा। शुक्राचार्यको देखते ही सब देवता दैत्योंको त्यागकर वहाँसे खिसक गये ॥ ४८-५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(मन्त्र लेनेके लिए शुक्राचार्यका शिवजीके पास जाना और भगवान विष्णुका शुक्राचार्यकी माताका वध करना) व्यासजी बोले—देवताओंके चले जानेपर शुक्राचार्यने कहा—हे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दानवश्रेष्ठगण ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जो कहा था, उसे आप लोग सुनें ॥१॥ उनका कथन था कि जब-जब जनार्दन भगवान विष्णु दैत्योंका वध करनेके कार्यमें नियुक्त किये जायँगे, तब-तब वे अवश्य उनका वध करेंगे। जैसे वाराहरूप धारण करके उन्होंने हिरण्याक्षको मारा ॥ २ ॥ नृसिंहका रूप धारण करके उन्होंने हिरण्यकशिपु वध किया। उसी प्रकार उत्साहके साथ वे सब दैत्योंका संहार कर देंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ इस समय मेरे पास उतना मंत्रबल नहीं है, जितना कि भगवान विष्णुके पास है। जब मेरे पास भी विष्णुके समान मन्त्रबल हो जायगा, तब मैं आपकी रक्षा तथा सहायता कर सकूँगा। जिससे आप लोग देवताओंपर विजय पा सकेंगे ॥४॥ अतएव आप कुछ दिन प्रतीक्षा करें। आज मैं मंत्र लेनेके लिए शिवजीके पास जा रहा हूँ ॥५॥ महादेवजीसे मंत्र लेकर मैं शीघ्र लौटूँगा और उसे यथावत् रूपमें तुम्हें प्रदान कर दूँगा ॥६॥ दैत्योंने कहा—हे मुनिसत्तम ! देवताओंसे पराजित होकर हम लोग पृथिवीपर कैसे रह सकेंगे ? क्योंकि उनसे परास्त होकर हम अत्यन्त निर्बल हो जायँगे। तब यहाँ रहकर आपकी प्रतीक्षा कैसे करेंगे ? ॥ ७ ॥ मेरे प्रायः सभी बलवान् योद्धा मारे

ष्यति जनार्दनः ॥ वाराहरूपं संस्थाय हिरण्याक्षो यथा हतः ॥ २ ॥ यथा नृसिंहरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ तथा सर्वान्कृतोत्साहो हनिष्यति न चान्यथा ॥३॥ न मे मंत्रबलं सम्यक्प्रतिभाति यथा हरिम् ॥ जेतुं यूयं समर्थाः स्थ त्रातारश्च सुरानथ ॥४॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं कियंतं दानवोत्तमाः ॥ अहमद्य महादेवं मंत्रार्थं प्रव्रजामि वै ॥ ५ ॥ प्राप्य मंत्रान्महादेवादागमिष्यामि सांप्रतम् ॥ युष्मभ्यं तान्प्रदास्यामि यथार्थं दानवोत्तमाः ॥ ६ ॥ दैत्या ऊचुः ॥ पराजिताः कथं स्थातुं पृथिव्यां मुनिसत्तम ॥ शक्ता भवामोऽप्यबलास्तावत्कालं प्रतीक्षितुम् ॥ ७ ॥ निहता बलिनः सर्वे केचिच्छिष्टाश्च दानवाः ॥ नाद्य युक्ताश्च संग्रामे स्थातुमेत्रं सुखावहाः ॥ ८ ॥ शुक्र उवाच ॥ यावदहं मंत्रविद्यामानयिष्यामि शंकरात् ॥ तावद्भवद्भिः स्थातव्यं तपोयुक्तैः शमान्वितैः ॥९॥ सामदानादयः प्रोक्ता विद्वद्भिः समयोचिताः ॥ देशं कालं बलं वीरैर्ज्ञात्वा शक्तिं बलं बुधैः ॥१०॥ सेवाऽथ समये कार्या शत्रूणां शुभकाम्यया ॥ स्वशक्त्युपचये काले हंतव्यास्ते मनीषिभिः ॥ ११ ॥ तदद्य विनयं कृत्वा सामपूर्वं छलेन वै ॥ तिष्ठध्वं स्वनिकेतेषु मदागमनकांक्षया ॥ १२ ॥ प्राप्य मंत्रान्महादेवादागमिष्यामि दानवाः ॥ युध्यामहे पुनर्देवान्मन्त्रमास्थाय वै बलम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाऽथ भृगुस्तेभ्यो जगाम कृतनिश्चयः ॥ महादेवं महाराज मंत्रार्थं मुनिसत्तमः ॥१४॥ दानवाः प्रेषयामासुः प्रह्लादं सुरसंनिधौ ॥ सत्यवादिनमव्यग्रं सुराणां

जा चुके हैं। केवल कुछ शिष्ट नागरिक बचे हैं। वे अब युद्ध चालू रखनेकी स्थितिमें नहीं हैं और वह उनके लिए सुखावह भी नहीं हो सकता ॥ ८ ॥ शुक्राचार्य बोले—जब तक मैं शंकरजीसे मंत्रविद्या लेकर न लौटूँ, तबतक तुम शांत तपस्वियोंकी भाँति रहकर समय बिताओ ॥ ९ ॥ बड़े-बड़े विद्वानोंका कथन है कि देश, काल, बल और शक्तिको देखकर समयानुसार साम, दाम तथा दण्डनीतिका उपयोग करे ॥१०॥ समय पड़नेपर आत्मरक्षाके लिए शत्रुकी सेवकाई भी स्वीकार कर ले और जब अपनी शक्ति बढ़ जाय, तब बुद्धिमान् मनुष्य शत्रुको मार डाले ॥ ११ ॥ सो अब आप विनयावनत होकर ऊपर-ऊपरसे सामनीतिका अवलम्बन करें, किन्तु भीतरसे सदा छलका भाव रखते हुए अपने घरमें रहिए और मेरे आगमनकी प्रतीक्षा करिए ॥१२॥ हे वीर दानवगण ! शंकर भगवानसे मंत्र लेकर जब मैं लौट आऊँ, तब उसी मंत्रबलके सहारे आप फिर देवताओंसे भिड़ जाइएगा ॥ १३ ॥ हे महाराज ! उन दैत्यों ने ऐसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहकर मुनिश्रेष्ठ शुक्राचार्य मंत्र प्राप्त करनेके लिए कैलासकी ओर चल पड़े ॥ १४ ॥ इधर दैत्योंने सत्यवादी, धैर्यशाली तथा देवताओंके विश्वासप्राप्त प्रह्लादको सन्धि करनेके लिए देवराज इन्द्रके पास भेजा ॥ १५ ॥ विनयावनत भावसे दैत्यराज प्रह्लाद कतिपय असुरोंके साथ देवताओंके पास जाकर बड़ी नम्रतापूर्वक बोले—हे देवताओं ! हम लोगोंने शस्त्र तथा कवच त्याग दिया है। युद्धसामग्रियाँ भी अब हमारे पास नहीं हैं। अतएव हमलोग अब बल्कल वसन धारण करके तप करेंगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ दैत्यपति प्रह्लादके वचन सुनकर देवताओंने उसे सच माना और तत्काल युद्ध बन्द कर दिया। इसके बाद देवताओंका क्रोध शान्त हो गया और वे हर्षपूर्वक लौट पड़े ॥ १८ ॥ इस प्रकार जब दैत्योंने शस्त्र त्याग दिया, तब देवता युद्ध बन्द करके अपने घरोंको लौट गये और वहाँ जाकर विलासमें लिप्त हो गये ॥ १९ ॥ उस समय दैत्यगण बनावटी तपस्वी बनकर शुक्राचार्यके लौटनेकी प्रतीक्षा करते हुए महर्षि कश्यपके आश्रममें रहने लगे ॥ २० ॥ उधर शुक्राचार्य कैलास पर्वतपर जा पहुँचे और उन्होंने शंकर भगवानको प्रणाम किया। तब परम प्रभु शंकरजीने उनसे आगमनका प्रयोजन पूछा ॥२१॥

प्रत्ययप्रदम् ॥१५॥ प्रह्लादस्तु सुरान्प्राह प्रश्रयावनतो नृपः ॥ असुरैः सहितस्तत्र वचनं नम्रतायुतम् ॥१६॥ न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसन्नाहास्तथैव च ॥ देवास्तपश्चरिष्यामः संवृता बल्कलैर्युताः ॥ १७॥ प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्याभिव्याहृतं तु तत् ॥ ततो देवा न्यवर्तन्त विज्वरा मुदिताश्च ते ॥१८॥ न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा सुराः ॥ विश्रब्धाः स्वगृहान्गत्वा क्रीडासक्ताः सुसंस्थिताः ॥१९॥ दैत्या दम्भं समालंब्य तापसास्तपिसं-युताः ॥ कश्यपस्याश्रमे वासं चक्रुः काव्यागमेच्छया ॥ २० ॥ काव्यो गत्वाऽथ कैलासं महादेवं प्रणम्य च ॥ उवाच विभुना पृष्टः किं ते कार्य-मिति प्रभुः ॥ २१ ॥ मंत्रानिच्छाम्यहं देव ये न संति बृहस्पतौ ॥ पराजयाय देवानामसुराणां जयाय च ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सर्वज्ञः शंकरः शिवः ॥ चिंतयामास मनसा किं कर्तव्यमतः परम् ॥२३॥ सुरेषु द्रोहबुद्ध्याऽसौ मंत्रार्थमिह सांप्रतम् ॥ प्राप्तः काव्यो गुरुस्तेषां दैत्यानां विजयाय च ॥ २४ ॥ रक्षणीया मया देवा इति संचिंत्य शंकरः ॥ दुष्करं व्रतमत्युग्रं तमुवाच महेश्वरः ॥ २५ ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधू-मपवाक्शिराः ॥ यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मंत्रानवाप्स्यसि ॥ २६ ॥ इत्युक्तोऽसौ प्रणम्येशं बाढमित्यब्रवीद्वचः ॥ व्रतं चराम्यहं देव त्वयाऽऽज्ञप्तः

शुक्राचार्यने कहा—हे देव ! मैं उन मंत्रोंको प्राप्त करना चाहता हूँ कि जिन्हें देवगुरु बृहस्पति न जानते हों। क्योंकि मैं देवताओंकी पराजय और दैत्योंकी विजय चाहता हूँ ॥ २२ ॥ व्यासजी बोले—सर्वज्ञ और कल्याणकारी शिवजी शुक्राचार्यकी बात सुनकर इस सोच-विचारमें पड़ गये कि अब मुझे क्या करना चाहिए ॥ २३ ॥ क्योंकि देवताओंके प्रति द्रोहबुद्धि रख-कर दैत्योंको विजय प्राप्त करानेके लिए मंत्र लेनेको शुक्राचार्य मेरे पास आये हैं ॥ २४ ॥ अतएव देवताओंकी रक्षा करना मेरा प्रधान कर्तव्य है। इस बातको ध्यानमें रखकर शिवजीने शुक्राचार्यको बहुत ही दुष्कर व्रत बता दिया ॥ २५ ॥ उन्होंने कहा—हे दैत्यगुरो ! यदि आप एक सहस्र वर्षतक पैर ऊपर और सिर नीचे करके कन्नेका धुआँ पीते हुए तप करें, तभी आपका कल्याण होगा और उस मंत्रकी प्राप्ति होगी ॥ २६ ॥ शिवजीके ऐसा कहनेपर शुक्राचार्यने उन्हें प्रणाम किया और कहा—हे सुरेश्वर ! बहुत अच्छा, आपने जो आदेश दिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, उसीके अनुसार मैं व्रतका पालन करूँगा ॥२७॥ व्यासजी बोले—शंकरजीसे ऐसा कहकर शुक्राचार्य मंत्रप्राप्तिके लिए शान्तभावसे उलटे लटककर कणका धूम्रपान करने लगे ॥२८॥ उधर देवताओंको शुक्राचार्यके व्रत तथा असुरोंके पाखण्डी तापस होनेकी बातका पता लग गया। तब वे एकत्र होकर मंत्रणा करने लगे ॥ २९ ॥ हे राजन्! भली भाँति विचार करनेके बाद वे फिर युद्धके लिए उद्यत हो गये और शस्त्रास्त्र धारण करके उन श्रेष्ठ दानवोंपर चढ़ाई कर दी ॥ ३० ॥ उन देवताओंको शस्त्रसज्ज होकर कवच धारण किये और अपनेको उनसे घिरा देखकर दैत्यगण भयभीत हो उठे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार बदलिए देवताओंको युद्धके लिए सन्नद्ध देखकर भयभीत दैत्य उनके पास गये और सब बातें सच-सच बताते हुए बोले–॥ ३२ ॥ हे देवताओं! जब कि हमने शस्त्र त्याग दिया है, हम भयभीत हैं, हमारे आचार्य व्रतमें लगे हुए हैं और आप हमें अभयदान दे चुके है, तब आप हमें मारनेके लिए क्यों आये हैं?॥३३॥ इस समय आपका सत्य और श्रुतिसम्मत धर्म कहाँ गया? जिसमें कहा गया है कि जिसने शस्त्र त्याग दिया हो, जो भयभीत हो और शरणागत हो गया हो, उसे नहीं मारना चाहिए

सुरेश्वर ॥ २७ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा शंकरं काव्यश्चकार व्रतमुत्तमम् ॥ धूमपानरतः शांतो मंत्रार्थं कृतनिश्चयः ॥ २८ ॥ ततो देवाः परिज्ञात्वा काव्यं व्रतरतं तदा ॥ दैत्यान्दम्भरतांश्चैव बभूवुर्मंत्रतत्पराः ॥२९॥ विचार्य मनसा सर्वे संग्रामायोद्यता नृप ॥ ययुर्धृतायुधास्तत्र यत्र ते दानवोत्तमाः ॥ ३० ॥ तानागतान्समीक्ष्याथ सायुधान्दंशितांस्तथा ॥ आसंस्ते भयसंविग्ना दैत्या देवान्समंततः ॥ ३१ ॥ उत्पेतुः सहसा ते वै सन्नद्धान्भयकर्शिताः ॥ अब्रुवन्वचनं तथ्यं ते देवान्बलदर्पितान् ॥ ३२ ॥ न्यस्तशस्त्रे भयवति आचार्ये व्रतमास्थिते ॥ दत्त्वाऽभयं पुरा देवाः संप्राप्ता नो जिघांसया ॥ ३३ ॥ सत्यं वः क्व गतं देवा धर्मश्च श्रुतिनोदितः ॥ न्यस्तशस्त्रा न हंतव्या भीताश्च शरणं गताः ॥ ३४ ॥ देवा ऊचुः ॥ भवद्भिः प्रेषितः काव्यो मंत्रार्थं कुहकेन च ॥ तपो ज्ञातं हि युष्माकं तेन युध्याम एव हि ॥ ३५ ॥ सज्जा भवंतु युद्धाय संरब्धाः शस्त्रपाणयः ॥ शत्रुश्छिद्रेण हंतव्य एष धर्मः सनातनः ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्या विचार्य च परस्परम् ॥ पलायनपराः सर्वे निर्गता भयविह्वलाः ॥ ३७ ॥ शरणं दानवा जग्मुर्भीतास्ते काव्यमातरम् ॥ दृष्ट्वा तानतिसंतप्तानभयं च ददावथ ॥३८॥ काव्यमातोवाच ॥ न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः ॥ मत्सन्निधौ वर्तमानान्न भीर्भवितुमर्हति ॥ ३९ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्याः स्थितास्तत्र गतव्यथाः ॥ निरायुधा ह्यसंभ्रान्तास्तत्राश्रमवरेऽसुराः ॥ ४० ॥

॥ ३४ ॥ देवता बोले—आप लोगोंने छलसे शुक्राचार्यको मंत्र प्राप्त करनेके लिए भेजा है और जिस तरह आप तपस्वी बने हैं, उसका भेद भी हमें ज्ञात हो गया है। अतएव हम युद्ध करने आये हैं ॥ ३५ ॥ सो शस्त्रास्त्र लेकर आप लोग युद्धके लिए तैयार हो जायँ। क्योंकि राजनीतिशास्त्रका यह सनातन सिद्धान्त है कि जब शत्रु निर्बल हो, तभी उसपर प्रहार करना चाहिये ॥ ३६ ॥ व्याजीने कहा—देवताओंके वचन सुनकर दैत्योंने परस्पर मंत्रणा करके पलायनका निश्चय किया। तदनुसार वे भयभीत होकर निकल भागे ॥ ३७ ॥ वहाँसे चलकर वे डरे हुए दैत्य शुक्राचार्यकी माताके पास गये। उन दैत्योंको बहुत संतप्त देखकर शुक्राचार्यकी माताने अभयदान दिया ॥ ३८ ॥ शुक्रकी माता बोलीं–हे दानवो! मत डरो, मत डगे। तुम भय त्याग दो। क्योंकि मेरे पास रहते समय तुम्हें किसी प्रकारका भय नहीं रह सकता ॥ ३९ ॥ यह सुनकर दैत्योंका भय भाग गया और वे स्वस्थ तथा निरस्त्र होकर उसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आश्रममें रहने लगे ॥४०॥ इधर जब देवताओंने देखा कि दैत्य भाग गये हैं, तब अपने शत्रुपक्षका बलाबल देखे बिना ही वे उनके पदचिह्नका अनुसरण करते हुए उनका पीछा करने लगे ॥ ४१ ॥ उस आश्रममें पहुँचकर वे दैत्योंका वध करनेको उद्यत हो गये। यद्यपि शुक्राचार्यकी माताने उन्हें रोका, फिर, भी देवता दैत्योंको मारने लगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार देवताओं द्वारा दैत्योंका संहार होते देखकर शुक्राचार्यकी माता काँप उठीं। उन्होंने कहा कि मैं अभी अपने तपोबलसे तुम सबको निद्रित कर दूँगी ॥४३॥ ऐसा कहकर उन्होंने निद्राको प्रेरित कर दिया। उसने जाकर इंद्र आदि सभी देवताओंको निद्रित कर दिया। जिससे वे निद्राके अधीन होकर गूँगेकी भाँति चुपचाप खड़े हो गये ॥४४॥ इंद्रको निद्रित तथा दीन होते देखकर भगवान विष्णुने कहा-हे देवराज! तुम मेरे शरीरमें समा जाओ और मैं तुम्हें अन्यत्र भेज दूँ॥ ४५ ॥ यह सुनकर इंद्र विष्णुभगवानके शरीरमें समा गये। इस प्रकार विष्णुसे रक्षित होनेपर उनकी निद्रा दूर हो गयी और भय भाग गया ॥ ४६ ॥ भगवान विष्णु द्वारा रक्षित इंद्रको स्वस्थ देखकर शुक्राचार्यकी माता कुपित होकर बोलीं–॥४७॥ हे इंद्र! मैं अपने तपोबलसे सब

देवास्तान्विद्रुतान्वीक्ष्य दानवांस्ते पादानुगाः ॥ अभिजग्मुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम् ॥४१॥ तत्रागताः सुराः सर्वे हंतुं दैत्यान्समुद्यताः ॥ वारिताः काव्यमात्राऽपि जघ्नुस्तानाश्रमस्थितान् ॥४२॥ हन्यमानान्सुरैर्दृष्ट्वा काव्यमाताऽतिवेपिता ॥ उवाच सर्वान्सनिद्रांस्तपसा वै करोम्यहम् ॥४३॥ इत्युक्त्वा प्रेरिता निद्रा तानागत्य पपात च ॥ सेंद्रा निद्रावशं याता देवा मूकवदास्थिताः ॥४४॥ इन्द्रं निद्राजितं दृष्ट्वा दीनं विष्णुरभाषत ॥ मां त्वं प्रविश भद्रं ते नये त्वां च सुरोत्तम ॥४५॥ एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरंदरः ॥ निर्भयो गतनिद्रश्च बभूव हरिरक्षितः ॥४६॥ रक्षितं हरिणा दृष्ट्वा शक्रं तत्र गतव्यथम् ॥ काव्यमाता ततः क्रुद्धा वचनं चेदमब्रवीत् ॥४७॥ मघवंस्त्वां भक्षयामि सविष्णुं वै तपोबलात् ॥ पश्यतां सर्वदेवानामीदृशं मे तपोबलम् ॥४८॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तौ तु तया देवौ विष्णिवंद्रौ योगविद्यया ॥ अभिभूतौ महात्मानौ स्तब्धौ तौ संबभूवतुः ॥ ४९ ॥ विस्मितास्तु तदा देवा दृष्ट्वा तावतिबाधितौ ॥ चक्रुः किलकिलाशब्दं ततस्ते दीनमानसाः ॥ ५० ॥ क्रोशमानान्सुरान्दृष्ट्वा विष्णुं प्राह शचीपतिः ॥ विशेषेणाभिभूतोऽस्मि त्वत्तोऽहं मधुसूदन ॥ ५१ ॥ जह्येनां तरसा विष्णो यावन्नौ न दहेत्प्रभो ॥ तपसा दर्पितां दुष्टां मा विचारय माधव ॥ ५२ ॥ इत्युक्तो भगवान् विष्णुः शक्रेण प्रथितेन च ॥ चक्रं सस्मार तरसा घृणां त्यक्त्वाऽथ माधवः ॥ ५३ ॥ स्मृतमात्रं तु संप्राप्तं चक्रं विष्णुवशानुगम् ॥

देवताओंके समक्ष विष्णु समेत तुम्हें खा जाऊँगी। इतना उग्र मेरा तपोबल है ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले कि ऐसा कहकर शुक्राचार्यकी माताने विष्णु और इंद्रपर अपनी योगविद्याका प्रयोग कर दिया। जिससे आक्रांत होकर वे दोनों महात्मा स्तब्ध हो गये ॥ ४९ ॥ उन दोनोंको बहुत बड़े संकटमें देखकर देवताओंको बहुत आश्चर्य हुआ और वे सब बिलख-बिलखकर रोने लगे ॥ ५० ॥ देवताओंको इस प्रकार बिलखते देखकर इंद्रने विष्णुभगवानसे कहा—हे मधुसूदन! आपकी अपेक्षा मुझपर उसकी विद्याका विशेष असर है ॥ ५१ ॥ अतएव हे विष्णो! यह हमें भस्म न कर दे, उसके पहले ही आप इसे तत्काल मार डालिए। हे माधव! आप स्त्रीहत्याकी बात सोचकर असमंजसमें न पड़ें। क्योंकि इसे अपने तपोबलका बड़ा घमण्ड है और यह बड़ी दुष्टा स्त्री है ॥ ५२ ॥ परम कीर्तिशाली इन्द्रने जब भगवान विष्णुसे ऐसा कहा, तब उन्होंने दयाभावको दूर करके अपने सुदर्शन चक्रका स्मरण किया ॥ ५३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्मरण करते ही चक्र आ पहुँचा। तब भगवानने उसे हाथमें ले लिया और इन्द्रकी प्रेरणासे कुपित होकर वे शुक्रकी माताका वध करनेको उद्यत हो गये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उस चक्रसे उन्होंने शुक्रकी माताका सिर काट लिया। उसे मरी देखकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ ५५ ॥ यह देखकर सब देवता विष्णुभगवानकी जयजयकार करते हुए स्तुति करने लगे और उनका दुःख दूर हो गया ॥ ५६ ॥ किन्तु इन्द्र और विष्णुके हृदयमें उस स्त्रीहत्यासे बड़ी व्यथा उत्पन्न हो गयी और उन्हें यह सन्देह होने लगा कि भृगु कहीं हमें भयानक शाप न दे दें ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(भगवान विष्णुको भृगुका शाप) व्यासजी बोले–हे राजन् ! वह भयानक स्त्रीहत्या देखकर भगवान भृगु बहुत कुपित हुए। क्रोध तथा दुःखसे काँपते हुए उन्होंने विष्णुभगवानसे कहा ॥ १ ॥ महर्षि भृगु बोले—हे विष्णो ! हे महामते ! जो न करना चाहिए, वह पाप आपने जान-बूझकर कर डाला है। कोई बुद्धिमान् मनुष्य मनमें भी विप्रस्त्रीकी हत्याका पाप

दधार च करे क्रुद्धो वधार्थं शक्रनोदितः ॥ ५४ ॥ गृहीत्वा तत्करे चक्रं शिरश्चिच्छेद रंहसा ॥ हतां दृष्ट्वा तु तां शक्रो मुदितश्चाभवत्तदा ॥ ५५ ॥ देवाश्चातीव संतुष्टा हरिं जय जयेति च ॥ तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे संजाता विगतज्वराः ॥ ५६ ॥ इंद्रविष्णू तु संजातौ तत्क्षणाद्धृदयव्यथौ ॥ स्त्रीवधाच्छंकमानौ तु भृगोः शापं दुरत्ययम् ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तं दृष्ट्वा तु वधं घोरं चुक्रोध भगवान्भृगुः ॥ वेपमानोऽतिदुःखार्तः प्रोवाच मधुसूदनम् ॥ १ ॥ भृगुरुवाच ॥ अकृत्यं ते कृतं विष्णो जानन्पापं महामते ॥ वधोऽयं विप्रजायाया मनसा कर्तुमक्षमः ॥ २ ॥ आख्यातस्त्वं सत्त्वगुणः स्मृतो ब्रह्मा च राजसः ॥ तथाऽसौ तामसः शंभुर्विपरीतं कथं स्मृतम् ॥ ३ ॥ तामसस्त्वं कथं जातः कृतं कर्मातिनिन्दितम् ॥ अवध्या स्त्री त्वया विष्णो हता कस्मान्निरागसा ॥ ४ ॥ शपामि त्वां दुराचारं किमन्यत्प्रकरोमि ते ॥ विधुरोऽहं कृतः पाप त्वयाऽहं शक्रकारणात् ॥ ५ ॥ न शपेऽहं तथा शक्रं शपे त्वां मधुसूदन ॥ सदा छलपरोऽसि त्वं कीटयोनिर्दुराशयः ॥ ६ ॥ ये च त्वां सात्त्विकं प्राहुस्ते मूर्खा मुनयः किल ॥ तामसस्त्वं दुराचारः प्रत्यक्षं मे जनार्दन ॥ ७ ॥ अवतारा मृत्युलोके संतु मच्छापसंभवाः ॥ प्रायो गर्भभवं दुःखं भुंक्ष्व पापाज्जनार्दन ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ ततस्तेनाथ शापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः ॥

करनेकी बात नहीं सोच सकता ॥ २ ॥ बड़े-बड़े महर्षियोंका कहना है कि आप विष्णु सतोगुणी, ब्रह्मा रजोगुणी तथा शिव तमोगुणी हैं। तब आपने अपने गुणके विपरीत कार्य क्यों किया ? ॥ ३ ॥ आपने तो तमोगुणका अनुसरण करके यह अतिशय निन्दनीय कर्म कर डाला है। हे विष्णो ! स्त्रीजातिको अवध्य समझते हुए भी आपने उस निरपराधिनी स्त्रीकी हत्या क्यों की ? ॥ ४ ॥ आप सरीखे दुराचारीको शाप ही देना न्यायसंगत है। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार इस पापका प्रतीकार सम्भव नहीं है। ओ पापी ! तूने इन्द्रके कहनेसे मुझे सदाके लिए विधुर बना दिया ॥ ५ ॥ हे मधुसूदन ! मैं इन्द्रको शाप न देकर तुम्हें शाप दूँगा। जैसे सर्पके दुरभिप्रायको कोई नहीं जान पाता, उसी प्रकार तुम्हारे छलभरे हृदयके भावको नहीं जाना जा सकता। तुम सदा छल करते रहे ॥ ६ ॥ जो मुनि तुम्हें सात्त्विक कहते हैं, वे मूर्ख हैं। हे जनार्दन ! मैंने आज प्रत्यक्ष देख लिया कि तुम तमोगुणी और दुराचारी हो ॥ ७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे जनार्दन! मेरे शापसे मृत्युलोकमें तुम्हें अनेक जन्म लेने पड़ेंगे और इस महापापके फलस्वरूप तुम्हें बार-बार गर्भवासकी नारकीय यन्त्रणा भोगनी पड़ेगी ॥८॥ व्यासजी बोले—उसी शापके कारण धर्मका ह्रास होनेपर भगवान विष्णु संसारका कल्याण करनेके लिए बार-बार मनुष्यतन धारण करते हैं ॥ ९ ॥ राजा जनमेजयने कहा—अमित तेजस्वी विष्णुचक्रसे जब पत्नीका निधन हो गया, तब भृगुका गार्हस्थ्यधर्म कैसे निभा? ॥ १० ॥ व्यासजी बोले—क्रोधपूर्वक इस प्रकार विष्णुभगवानको शाप देकर महर्षि भृगु तत्काल अपनी स्त्रीका कटा हुआ सिर उसके धड़में जोड़ते हुए बोले-॥ ११ ॥ हे देवि! विष्णुने तुम्हें मार डाला है, किन्तु अभी मैं तुमको फिर जीवित कर दूँगा। यदि मैंने भली-भाँति धर्मके तत्त्वको समझा हो और उसका आचरण किया हो, यदि मैंने सदा सत्य भाषण किया हो तो उसी सत्यके प्रतापसे तुम जीवित हो जाओ। जिससे यहाँ उपस्थित सभी देवता मेरे तेजका महान् बल देख लें ॥१२॥१३॥ यदि मुझमें सत्य, शुचिता, वेदाध्ययन तथा तपका बल विद्यमान होगा तो उन्हींके प्रभावसे इस शीतल जलको छिड़ककर मैं तुम्हें फिर जीवित कर दूँगा॥ १४ ॥ व्यासजी बोले—

लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ भृगुभार्या हता तत्र चक्रेणामिततेजसा ॥ गार्हस्थ्यं च पुनस्तस्य कथं जातं महात्मनः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ इति शप्त्वा हरिं रोषात्तदादाय शिरस्त्वरन्॥ काये संयोज्य तरसा भृगुः प्रोवाच कार्यवित् ॥ ११ ॥ अद्य त्वां विष्णुना देवि हतां संजीवयाम्यहम् ॥ यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा ॥ १२ ॥ तेन सत्येन जीवेत यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ पश्यंतु देवताः सर्वा मम तेजोबलं महत् ॥१३॥ अद्भिस्त्वां प्रोक्ष्य शीताभिर्जीवयामि तपोबलात् ॥ सत्यं शौचं तथा वेदा यदि मे तपसो बलम् ॥१४॥ व्यास उवाच ॥ अद्भिः संप्रोक्षिता देवी सद्यः संजीविता तदा ॥ उत्थिता परमप्रीता भृगोर्भार्या शुचिस्मिता ॥ १५ ॥ ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव ॥ साधु साध्विति तं तां तु तुष्टुवुः सर्वतो दिशम् ॥ १६ ॥ एवं संजीविता तेन भृगुणा वरवर्णिनी ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्देवाः सेन्द्रा विलोक्य तत् ॥ १७ ॥ इन्द्रः सुरानथोवाच मुनिना जीविता सती॥ काव्यस्तप्त्वा तपो घोरं किं करिष्यति मंत्रवित् ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ गता निद्रा सुरेन्द्रस्य देहेऽक्षेममभून्नृप ॥ स्मृत्वा काव्यस्य वृत्तांतं मंत्रार्थमतिदारुणम् ॥ १९ ॥ विमृश्य मनसा शक्रो जयंती स्वसुतां तदा ॥ उवाच कन्यां चार्वंगीं स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ २० ॥ गच्छ पुत्रि मया दत्ता काव्याय त्वं तपस्विने ॥ समाराधय तन्वंगि मत्कृते तं वशं कुरु ॥ २१ ॥ उपचारैर्मुनिं तैस्तैः

ऐसा कहकर महर्षि भृगुने जैसे ही जलका छींटा दिया, उसी समय वह जीवित हो गयी। वह मृदु मुसकानवाली भृगुपत्नी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उठकर खड़ी हो गयी ॥ १५ ॥ सोकर उठी हुईके समान उसे खड़ी देखकर सब ओरसे लोग साधुवाद देते हुए पति-पत्नी दोनोंकी स्तुति करने लगे ॥ १६ ॥ इस प्रकार महर्षि भृगु द्वारा उस मरी हुई सुन्दरीको जीवित देखकर इन्द्र समेत सब देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर इन्द्रने सब देवताओंसे कहा—महर्षि भृगुने तो अपनी सती-साध्वी स्त्रीको जीवित कर लिया। जब शुक्राचार्य कठोर तपस्या द्वारा शिवजीसे मंत्र प्राप्त करके लौटेंगे और माताके वधकी बात सुनेंगे, तब हमारी क्या गति करेंगे? ॥१८॥ व्यासजी कहने लगे–हे राजन्! यद्यपि अब इन्द्रकी निद्रा दूर हो गयी थी, तथापि मंत्रप्राप्तिके लिए शुक्राचार्यके कठोर तपका स्मरण आ जानेपर वे बेचैन हो उठे ॥ १९ ॥ अपने मनमें भली-भाँति विचार करके इन्द्रने अपनी सुंदरी कन्या जयन्तीको बुलाकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़े प्रेमसे मुसकाते हुए कहा—॥ २० ॥ हे पुत्री ! मैं तुम्हें तपस्वी शुक्राचार्यको सौंप रहा हूँ । सो हे तन्वङ्गी ! तुम मेरा काम बनानेके लिए उनके पास जाओ और अपनी सेवासे उन्हें अपने वशमें कर लो ॥२१॥ उनके उत्तम आश्रममें जाकर तुम मुनिको पसंद आनेवाले विविध उपचारोंसे शुश्रूषा करके मेरा भय दूर कर दो ॥ २२ ॥ पिताका वचन सुनकर वह मानो रमणीय कन्या शुक्राचार्यके आश्रमपर गयी और वहाँ उस विशालनयनीने उन्हें उलटे लटककर धूमपान करते देखा ॥२३॥ उनके शरीरकी दुर्दशा देखकर जयन्तीको पिताकी बात याद आ गयी और वह एक केलेका पत्ता लेकर उसीसे उनके ऊपर पंखा झलने लगी ॥ २४ ॥ तबसे वह निर्मल, शीतल और सुगंधित जल बड़ी भक्तिपूर्वक उनके पीनेके लिए ले आती ॥ २५ ॥ सूर्यनारायण जब मध्य आकाशमें आ जाते, तब उनके ऊपर वस्त्रसे छतरी बनाकर छाया कर देती और वह सती स्वयं सदाचारसे रहती थी ॥ २६ ॥ शास्त्रविहित, दिव्य, पके और मीठे फल लाकर खानेके लिए उनके मुनिके समक्ष रख देती थी ॥२७॥ मुनि शुक्राचार्यके नित्यकर्म करनेके लिए बालिश्त भर लम्बे और तोतेके शरीरकी भाँति हरे कुश तथा पुष्प उनके सम्मुख रख देती

समाराध्य मनःप्रियैः ॥ भयं मे तरसा गत्वा हर तत्र वराश्रमे ॥ २२ ॥ सा पितुर्वचनं श्रुत्वा तत्रागच्छन्मनोरमा ॥ तमपश्यद्विशालाक्षी पिबंतं धूममाश्रमे ॥ २३ ॥ तस्य देहं समालोक्य स्मृत्वा वाक्यं पितुस्तदा ॥ कदलीदलमादाय बीजयामास तं मुनिम् ॥ २४ ॥ निर्मलं शीतलं वारि समानीय सुवासितम् ॥ पानाय कल्पयामास भक्त्या परमया लघु ॥ २५ ॥ छायां वस्त्रातपत्रेण भास्करे मध्यगे सति ॥ रचयामास तन्वंगी स्वयं धर्मे स्थिता सती ॥ २६ ॥ फलान्यानीय दिव्यानि पक्वानि मधुराणि च ॥ मुमोचाग्रे मुनेस्तस्य भक्षार्थं विहितानि च ॥ २७ ॥ कुशाः प्रादेशमात्रा हि हरिताः शुकसन्निभाः ॥ दधाराग्रेऽथ पुष्पाणि नित्यकर्मसमृद्धये ॥ २८ ॥ निद्रार्थं कल्पयामास संस्तरं पल्लवान्वितम् ॥ तस्मिन्मुनौ चादरस्था चकार व्यजनं शनैः ॥२९॥ हावभावादिकं किंचिद्विकारजननं च तत् ॥ न चकार जयंती सा शापभीता मुनेस्तदा ॥३०॥ स्तुतिं चकार तन्वंगी गीर्भिस्तस्य महात्मनः ॥ सुभाषिण्यनुकूलाभिः प्रीतिकर्त्रीभिरप्युत ॥ ३१ ॥ प्रबुद्धे जलमादाय दधाराचमनाय च ॥ मनोऽनुकूलं सततं कुर्वन्ती व्यचरत्तदा ॥ ३२ ॥ इन्द्रोऽपि सेवकांस्तत्र प्रेषयामासचातुरः ॥ प्रवृत्तिं ज्ञातुकामो वै मुनेस्तस्य जितात्मनः ॥३३॥ एवं बहूनि वर्षाणि परिचर्यापराऽभवत् ॥ निर्विकारा जितक्रोधा ब्रह्मचर्यपरा सती ॥३४॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु परितुष्टो महेश्वरः ॥ वरेण छंदयामास काव्यं प्रीतमना हरः ॥३५॥

थी ॥२८॥ उनको सोनेसे लिए जयंतीने कोमल-कोमल पत्तोंका बिछौना बिछा दिया । जब वे उसपर शयन करते, तब वह बड़े आदरपूर्वक धीरे-धीरे पंखा झलती थी ॥२९॥ मुनि शुक्राचार्यके शापसे डरकर वह उनके मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला कोई हाव-भाव नहीं प्रदर्शित करती थी ॥३०॥ वह सुकुमार अङ्गोंवाली तथा सुभाषिणी जयंती उन महात्माको प्रिय लगनेवाली मीठी वाणीसे उनकी स्तुति करती थी ॥३१॥ उनके जागनेपर हाथ-मुँह धोने तथा कुल्ला करनेके लिए जल रख देती थी । इस प्रकार सदा उनके मनके अनुकूल सब कार्य करती हुई जयंती उन्हींके पास रहने लगी ॥३२॥ चिंतासे व्याकुल इंद्र भी कभी-कभी उन संयमी मुनिका अभिप्राय जाननेके लिए अपने दूत भेजते रहते थे ॥३३॥ इस प्रकार जयन्ती बहुत वर्षोंतक शुक्राचार्यकी सेवा करती रही । उतने समय उसके मनमें कोई विकार नहीं आया । उसने उतने दिन क्रोधको जीत लिया था और पूर्ण रीतिसे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया था ॥३४॥ हजार वर्ष पूर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होनेपर शिवजी प्रसन्न हुए और बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्होंने शुक्राचार्यसे वर माँगनेके लिए कहा ॥३५॥ शिवजी बोले—हे ब्रह्मन् ! हे भृगुनन्दन ! इस संसारमें जितनी भी वस्तुएँ हैं, जिन्हें आप देख रहे हैं और जो सबकी वाणीसे परे हैं ॥ ३६ ॥ उन सबके आप अभिभावक होंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है। आप सभी प्राणियोंसे अवध्य होंगे अर्थात् आपको कोई मार न सकेगा। आप प्रजापति तथा मंत्रशक्तिके विज्ञ ब्राह्मण होंगे ॥ ३७ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार वरदान देकर शंकर भगवान वहाँ ही अन्तर्धान हो गये। इसके बाद जयन्तीको देखकर शुक्राचार्यने कहा—॥ ३८ ॥ हे सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? तुम क्या चाहती हो ? हे सुजघने ! तुम यहाँ क्यों आयी हो ? मुझे अपना अभिप्राय बताओ ॥ ३९ ॥ हे सुनयनी ! तुम्हारी क्या अभिलाषा है ? यदि वह कार्य दुष्कर भी होगा तो मैं उसे पूर्ण करूँगा। हे सुव्रते ! तुम्हारी सेवासे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। वरदान माँगो ॥ ४० ॥ यह सुनकर परम प्रसन्न जयन्ती बोली—हे भगवन् ! मेरी क्या अभिलाषा है, सो आप अपने तपोबलसे जान लें ॥ ४१ ॥ शुक्राचार्य बोले-वह तो मैं जान गया हूँ। फिर

ईश्वर उवाच ॥ यच्च किंचिदपि ब्रह्मन्विद्यते भृगुनंदन ॥ प्रतिपश्यसि यत्सर्वं तच्च वाच्यं न कस्यचित् ॥ ३६ ॥ सर्वाभिभावकत्वेन भविष्यसि न संशयः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां प्रजेशश्च द्विजोत्तमः ॥ ३७ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं दत्त्वा वराञ्छंभुस्तत्रैवांतरधीयत ॥ काव्यस्तामथ संवीक्ष्य जयंतीं वाक्यमब्रवीत् ॥ ३८ ॥ काऽसि कस्यासि सुश्रोणि ब्रूहि किं ते चिकीर्षितम् ॥ किमर्थमिह संप्राप्ता कार्यं वद वरोरु मे ॥ ३९ ॥ किं वांछसि करोम्यद्य दुष्करं चेत्सुलोचने ॥ प्रीतोऽस्मि त्वत्कृतेनाद्य वरं वरय सुव्रते ॥ ४० ॥ ततः सा तु मुनिं प्राह जयंती मुदितानना ॥ चिकीर्षितं मे भगवंस्तपसा ज्ञातुमर्हसि ॥ ४१ ॥ शुक्र उवाच ॥ ज्ञातं मया तथापि त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम् ॥ करोमि सर्वथा भद्रं प्रीतोऽस्मि परिचर्यया ॥ ४२ ॥ जयंत्युवाच ॥ शक्रस्याहं सुता ब्रह्मन्पित्रा तुभ्यं समर्पिता ॥ जयंती नामतश्चाहं जयंतावरजा मुने ॥ ४३ ॥ सकामाऽस्मि त्वयि विभो वांछितं कुरु मेऽधुना ॥ रंस्ये त्वया महाभाग धर्मतः प्रीतिपूर्वकम् ॥ ४४ ॥ शुक्र उवाच ॥ मया सह त्वं सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि ॥ सर्वैर्भूतैरदृश्या च रमस्वेह यदृच्छया ॥ ४५ ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्त्वा गृहं गत्वा जयंत्याः पाणिमुद्वहन् ॥ तया सहावसद्देव्या दश वर्षाणि भार्गवः ॥ ४६ ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतः प्रभुः ॥ दैत्यास्तमागतं श्रुत्वा कृतार्थं मंत्रसंयुतम् ॥ ४७ ॥ अभिजग्मुर्गृहे तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥ नापश्यन्रममाणं

भी तुम अपनी मनचाही वस्तु बताओ। मैं सर्वथा तुम्हारा कल्याण करूँगा। क्योंकि मैं तुम्हारी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ ॥४२॥ जयन्ती बोली-हे ब्रह्मन् ! मैं इन्द्रकी पुत्री हूँ और पिताजीने मुझे आपको सौंप दिया है। हे मुने ! मेरा नाम जयन्ती है और मैं जयन्तकी छोटी बहिन हूँ ॥ ४३ ॥ हे विभो ! मैं आपपर आसक्त हूँ। आप मेरी इच्छा पूर्ण करिए। हे महाभाग ! मैं पतिव्रतधर्मके अनुसार प्रेमपूर्वक आपके साथ रमण करूँगी ॥ ४४ ॥ शुक्राचार्य बोले—हे भामिनी ! तुम सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहती हुई दस वर्षतक इच्छानुसार मेरे साथ रमण करो ॥ ४५ ॥ व्यासजी बोले—शुक्राचार्य यह कहकर अपने घर गये और विवाह करके इन्द्रपुत्री जयन्तके साथ दस वर्षतक रमण करते रहे ॥ ४६ ॥ उतने दिन वे मायाका विस्तार करके सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहे। उधर दैत्योंने सुना कि गुरुजी मंत्र प्राप्त करके लौट आये हैं ॥ ४७ ॥ तब बड़ी प्रसन्नतासे वे दर्शन करनेके लिए उनके घर गये। किन्तु उस समय शुक्राचार्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जयन्तीके साथ विहार कर रहे थे। इस कारण कोईं उनका दर्शन नही पा सका ।।४८।। इससे उन असुरोंका मन उदास हो गया और उनके सब उद्योग व्यर्थ हो गये। वे बहुत चिन्तित और दीन होकर उनकी खोज करने लगे ।। ४९ ।। उस समय शुक्राचार्य मायाविस्तारके कारण अदृश्य थे। अतएव किसी भी तरह उन्हें न देखकर दैत्यगण जैसे आये थे, वैसे ही अपने घर लौट गये। तबसे वे नितान्त चिन्तित और भयभीत रहने लगे ।।५०।। जब जयन्तीके साथ शुक्राचार्यके रमणका वृतान्त इन्द्रको ज्ञात हुआ, तब वे देवगुरु बृहस्पतिके पास गये और बोले—हे महाभाग! अब क्या किया जाय? ।। ५१ ।। हे ब्रह्मन्! आप दानवोंके पास जाइए और अपनी मायासे उन्हें मोहमें डाल दीजिए। हे मानदायक! अपनी बुद्धिसे भली भाँति विचार करके जैसे भी सम्भव हो, हमारा कार्य पूर्ण करिए ।। ५२ ।। इन्द्रकी बात सुनकर जब देवगुरु बृहस्पतिको यह मालूम हुआ कि इस समय शुक्राचार्य अदृश्य होकर जयन्तीके साथ

ते जयंत्या सह संयुतम् ।। ४८ ।। तदा विमनसः सर्वे जाता भग्नोद्यमाश्च ते ।। चिंतापरातिदीनाश्च वीक्षमाणाः पुनः पुनः ।। ४९ ।। अदृष्ट्वा तं तु संवृत्तं प्रतिजग्मुर्यथागतम् ।। स्वगृहान्दैत्यवर्यास्ते चिंताविष्टा भयातुराः ।। ५० ।। रममाणं तथा ज्ञात्वा शक्रः प्रोवाच तं गुरुम् ।। बृहस्पतिं महाभाग किं कर्तव्यमतः परम् ।। ५१ ।। गच्छाद्य दानवान्ब्रह्मन्मायया त्वं प्रलोभय ।। अस्माकं कुरु कार्यं त्वं बुद्ध्या संचिंत्य मानद ।। ५२ ।। तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यं रममाणं सुसंवृतम् ।। ज्ञात्वा तद्रूपमास्थाय दैत्यान्प्रति ययौ गुरुः ।। ५३ ।। गत्वा तत्रातिभक्त्याऽसौ दानवान्समुपाह्वयत् ।। आगतास्तेऽसुराः सर्वे ददृशुः काव्यमग्रतः ।। ५४ ।। प्रणम्य संस्थिताः सर्वे काव्यं मत्वाऽतिमोहिताः ।। न विदुस्ते गुरोर्मायां काव्यरूपविभाविनीम् ।। ५५ ।। तानुवाच गुरुः काव्यरूपः प्रच्छन्नमायया ।। स्वागतं मम याज्यानां प्राप्तोऽहं वो हिताय वै ।। ५६ ।। अहं वो बोधयिष्यामि विद्यां प्राप्ताममायया ।। तपसा तोषितः शंभुर्युष्मत्कल्याणहेतवे ।। ५७ ।। तच्छ्रुत्वा प्रीतमनसो जातास्ते दानवोत्तमाः ।। कृतकार्यं गुरुं मत्वा जहृषुस्ते विमोहिताः ।। ५८ ।। प्रणेमुस्ते मुदा युक्ता निरातंका गतव्यथाः ।। देवेभ्यश्च भयं त्यक्त्वा तस्थुः सर्वे निरामयाः ।। ५९ ।। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

विहार कर रहे हैं, तब वे शुक्राचार्यका रूप धारण करके दैत्योंके पास गये ।।५३।। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बड़े सम्मानपूर्वक दैत्योंको बुलवाया। उन असुरोंने भी वहाँ जाकर शुक्राचार्यको सम्मुख विद्यमान देखा।।५४।। तब मोहित होकर उन्होंने छद्मवेषधारी बृहस्पतिको अपना गुरु समझकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये, किन्तु उन्हें यह तनिक भी पता नहीं चला कि यह देवगुरुका मायाजाल है ।।५५।। बनावटी शुक्राचार्यने कहा—मैं आप सब यजमानोंका स्वागत करता हूँ। आपका हित करनेके लिए मैं कैलास-पर्वतसे लौट आया ।। ५६ ।। आप लोगोंके कल्याणार्थ मैंने कठोर तप करके शिवजीको प्रसन्न किया और उनसे जो विद्या प्राप्त की है, उसे मैं बिना किसी दुरावके आप लोगोंको बता दूँगा ।। ५७ ।। उनकी यह बात सुनकर सभी दानववीर हर्षसे गद्गद हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि गुरुजीने हमारा काम पूरा कर दिया है।।५८।। बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्होंने पुनःपुनः उन्हें प्रणाम किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनका भय भाग गया और सारी व्यथा दूर हो गयी। अब वे देवताओंसे निर्भय होकर स्वस्थ जीवन व्यतीत करने लगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पाण्डेय-रामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(बृहस्पतिका शुक्ररूपसे दैत्योंको छलना) राजा जनमेजय बोले–हे ब्रह्मन्! शुक्ररूपधारी बुद्धिमान् बृहस्पतिने दैत्योंको धोखा देनेके लिए उनके पुरोहित बननेके बाद क्या किया? ॥ १ ॥ बृहस्पतिजी तो देवताओंके गुरु, सब विद्याओंके निधान और अंगिराके पुत्र थे। फिर उन मुनिराजने इस प्रकार धोखेबाजीका काम क्यों किया? ॥ २ ॥ सभी धर्मशास्त्रोंमें विभिन्न मुनियोंने सत्यको ही धर्मका मूल कारण बतलाया है और कहा कि सत्यसे परमात्मा भी मिल सकते हैं ॥ ३ ॥ जब साक्षात् देवगुरु बृहस्पति दानवोंसे झूठ बोले, तब संसारमें कौन गृहस्थ सत्यवादी हो सकेगा? ॥ ४ ॥ हे मुने! समस्त ब्रह्माण्डका वैभव पास रहते हुए भी कोई पेटभरसे अधिक नहीं खा सकता, उसी पेटको भरनेके लिए मुनिजन असत्य भाषण क्यों

॥ राजोवाच ॥ किं कृतं गुरुणा पश्चाद्भृगुरूपेण वर्तता ॥ छलेनैव हि दैत्यानां पौरोहित्येन धीमता ॥ १ ॥ गुरुः सुराणामनिशं सर्वविद्यानिधिस्तथा ॥ सुतोऽङ्गिरस एवासौ स कथं छलकृन्मुनिः ॥ २ ॥ धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु सत्यं धर्मस्य कारणम् ॥ कथितं मुनिभिर्येन परमात्माऽपि लभ्यते ॥ ३ ॥ वाचस्पतिस्तथा मिथ्या वक्ता चेद्दानवान्प्रति ॥ कः सत्यवक्ता संसारे भविष्यति गृहाश्रमी ॥ ४ ॥ आहारादधिकं भोज्यं ब्रह्मांडविभवेऽपि न ॥ तदर्थं मुनयो मिथ्या प्रवर्तन्ते कथं मुने ॥ ५ ॥ शब्दप्रमाणमुच्छेदं शिष्टाभावे गतं न किम् ॥ छलकर्मप्रवृत्ते वाऽविगीतत्वं गुरौ कथम् ॥ ६ ॥ देवाः सत्त्वसमुद्भूता राजसा मानवाः स्मृताः ॥ तिर्यंचस्तामसाः प्रोक्ता उत्पत्तौ मुनिभिः किल ॥ ७ ॥ अमराणां गुरुः साक्षान्मिथ्यावादी स्वयं यदि ॥ तदा कः सत्यवक्ता स्याद्राजसस्तामसः पुनः ॥ ८ ॥ क्व स्थितिस्तस्य धर्मस्य संदेहोऽयं ममात्मनः ॥ का गतिः सर्वजंतूनां मिथ्याभूते जगत्त्रये ॥ ९ ॥ हरिर्ब्रह्मा शचीकांतस्तथाऽन्ये सुरसत्तमाः ॥ सर्वे छलविधौ दक्षा मनुष्याणां च का कथा ॥ १० ॥ कामक्रोधाभिसंतप्ता लोभोपहतचेतसः ॥ छले दक्षाः सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥ ११ ॥ वसिष्ठो वामदेवश्च विश्वामित्रो गुरुस्तथा ॥ एते पापरताः काऽत्र गतिर्ध-

करने लगते हैं ॥५॥ जब देवगुरुने इस प्रकार असत्य भाषण किया और वे धोखा-धड़ीके मार्गपर उतर गये, तब उनमें शिष्टता कहाँ रही? जब शिष्टता नहीं रह गयी, तब उनके वचनकी प्रामाणिकता भी स्वतः समाप्त हो गयी ॥६॥ देवताओंकी उत्पत्ति सतोगुणसे, मनुष्योंकी रजोगुणसे और पशु-पक्षियोंकी उत्पत्ति तमोगुणसे मुनियोंने बतलायी है ॥७॥ जब साक्षात् देवताओंके गुरु स्वयं बृहस्पतिजी मिथ्यावादी हो गये, तब रजोगुण तथा तमोगुणसे उत्पन्न जीवोंमें पूर्ण सत्यवादी कौन निकलेगा? ॥८॥ उन्हें आदर्श मानकर यदि समस्त त्रिलोकीमें असत्यका प्रचार हो जाय, तब धर्मकी स्थिति कहाँ होगी? ॥९॥ भगवान विष्णु, ब्रह्माजी, शिवजी और इन्द्र आदि देवता छलकर्ममें बड़े निपुण दिखायी देते हैं, तब मनुष्य यदि वैसा करें तो क्या आश्चर्य है? ॥१०॥ प्रायः सभी देवता और तपोधन मुनिलोग काम और क्रोधसे सन्तप्त तथा लोभसे आकुल होकर छलकर्ममें कुशल दीखते हैं ॥११॥ जब वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुरु बृहस्पति सरीखे महापुरुष भी पापकर्ममें लिपट गये, तब हे मानदाता! धर्म कैसे बचेगा?॥१२॥ इंद्र, अग्नि, चन्द्रमा और ब्रह्माजी जैसे उच्चकोटिके देवता परायी स्त्रीके विषयमें लम्पट हो गये, तब हे मुने! आप ही बतायें कि शिष्टता कहाँ रह गयी? ॥१३॥ हे पुण्यात्मन्! जब कि सब देवता और मुनि लोभके चंगुलमें फँसे दिखायी देते हैं, तब उपदेश लेनेके लिए किसकी बातको प्रमाण मानकर चला जाय? ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! चाहे विष्णु हों या ब्रह्मा, शिव हों या इंद्र अथवा देवताओंके गुरु बृहस्पति ही क्यों न हों, जिस किसीने भी देह धारण किया है, उसे काम-क्रोध आदि विकारोंकी चपेटमें पड़ना ही पड़ता है ॥१५॥ विष्णु, शिव तथा ब्रह्माजीमें भी राग (आसक्ति) विद्यमान रहता है। (हे राजन्! आसक्त प्राणी कौनसा अनर्थ नहीं कर सकता?) किंतु कितने ही व्यक्ति राग-द्वेषसे सराबोर रहते हुए भी अपनी चतुराईके कारण ऐसे दीखते हैं, मानो वे जीवन्मुक्त हो गये हों ॥ १६ ॥ लेकिन जब संकटका समय आता है, तब उनकी कलई खुल जाती है। क्योंकि वैसे कार्यका होना संभव है अर्थात् सत्त्व-रज आदि गुणोंमें जिस गुणसे जिसकी उत्पत्ति हुई रहती है, वह तदनुसार कार्य करनेको

र्मस्य मानद ॥ १२ ॥ इन्द्रोऽग्निश्चंद्रमा वेधाः परदाराभिलंपटाः ॥ आर्यत्वं भुवनेष्वेषु स्थितं कुत्र मुने वद ॥ १३ ॥ वचनं कस्य मंतव्यमुपदेश-धियाऽनघ ॥ सर्वे लोभाभिभूतास्ते देवाश्च मुनयस्तदा ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः ॥ देहवान् प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा ॥ १५ ॥ रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्माऽपि रागसंयुतः ॥ (रागवान्किमकृत्यं वै न करोति नराधिप ॥) रागवानपि चातुर्याद्विदेह इव लक्ष्यते ॥ १६ ॥ संप्राप्ते संकटे सोऽपि गुणैः संबाध्यते किल ॥ कारणाद्रहितं कार्यं कथं भवितुमर्हति ॥ १७ ॥ ब्रह्मादीनां च सर्वेषां गुणा एव हि कारणम् ॥ पंचविंशत्समुद्भूता देहास्तेषां न चान्यथा ॥ १८ ॥ काले मरणधर्मास्ते संदेहः कोऽत्र ते नृप ॥ परोपदेशे विस्पष्टं शिष्टाः सर्वे भवन्ति च ॥ १९ ॥ विप्लुतिर्ह्यविशेषेण स्वकार्ये समुपस्थिते ॥ कामः क्रोधस्तथा लोभो द्रोहाहंकारमत्सराः ॥ २० ॥ देहवान्कः परित्यक्तुमीशो भवति तान्पुनः ॥ संसारोऽयं महाराज सदैवैवंविधः स्मृतः ॥ २१ ॥ नान्यथा प्रभवत्येव शुभाशुभमयः किल ॥ कदा-चिद्भगवान्विष्णुस्तपश्चरति दारुणम् ॥ २२ ॥ कदाचिद्विविधान्यज्ञान्वितनोति सुराधिपः ॥ कदाचित्तु रमारंगरंजितः परमेश्वरः ॥ २३ ॥ रमते किल वैकुण्ठे तद्वशस्तरुणो विभुः ॥ कदाचिद्दानवैः सार्धं युद्धं परमदारुणम् ॥ २४ ॥ करोति करुणासिंधुस्तद्बाणापीडितो भृशम् ॥ कदाचि-

बाध्य रहता है ॥ १७ ॥ ब्रह्मा आदि देवताओंकी उत्पत्ति भी इन गुणोंसे ही हुई है और उनका शरीर भी पचीस तत्त्वोंका बना रहता है। इसमें कुछ संशय नहीं है ॥१८॥ क्योंकि समय आनेपर उन्हें भी मरना पड़ता है, तब हे राजन्! संदेहके लिए स्थान ही कहाँ रहा? वैसे तो औरोंको उपदेश देते समय सब लोग भलेमानुस बन जाते हैं ॥ १९ ॥ किंतु जब स्वयं उनपर कोई संकट आ पड़ता है, तब उनके उपदेशका सारा महत्त्व लुप्त हो जाता है। समस्त ब्रह्माण्डमें ऐसा कौन देहधारी प्राणी है कि जो काम, क्रोध, लोभ, द्रोह, अहङ्कार और मत्सर (डाह) को सर्वथा त्यागनेमें समर्थ हुआ हो? हे महाराज! संसार सदासे ही ऐसा रहता आया है ॥ २० ॥ २१ ॥ सर्वदा इसमें भली और बुरी दोनों बाते रहीं। इसमें कभी भगवान विष्णु तपस्या करते दिखायी पड़ते हैं और देवराज इंद्र विविध प्रकारके यज्ञ करते दृष्टिगोचर होते हैं। किंतु किसी समय वे ही भगवान विष्णु भगवती लक्ष्मीके साथ भोग-विलासमें तन्मय हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाते हैं ॥ २२ ॥ २३॥ वे कभी लक्ष्मीके वशीभूत होकर वैकुण्ठमें विहार करते और कभी दानवोंके साथ अत्यन्त भीषण संग्राम करते हैं ॥२४॥ वे दयासागर भगवान विष्णु कभी दैत्योंके तीक्ष्ण बाणोंकी मारसे पराजित हो जाते हैं और कभी वे उनपर विजय प्राप्त करते हैं ॥२५॥ सुख-दुःख दोनों उनपर भी आते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है। वे कभी योगनिद्राके वशवर्ती होकर शेषशय्यापर सोते हैं तो सृष्टिकाल आनेपर योगमायाकी प्रेरणासे जाग भी जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्रादि सभी देवता और मुनिगण अपनी आयुभर जीते हैं और अन्तकाल आनेपर स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त संसार मर जाता है। हे राजन्! इसमें कहीं कुछ भी सन्देंहका अवकाश नहीं है। हे महाराज! आयु समाप्त होनेपर कमलयोनि ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी नष्ट हो जाते हैं ॥ २६–२९ ॥ आगे चलकर सृष्टिकाल आनेपर विष्णु-शिव और इन्द्र आदि देवता फिर उत्पन्न हो जाते हैं। सबका तात्पर्य यह निकला कि प्रत्येक देहधारी प्राणी को काम-क्रोध आदि भावोंके सम्पर्कमें आना ही पड़ता है ॥३०॥ हे महाराज! इस विषयमें आप रंचमात्र सन्देह न करिए। हे राजन्! काम-क्रोध आदि शत्रुओंके कारण यह संसार बहुत ही विकट

जयमाप्नोति दैवात्सोऽपि पराजयम् ॥ २५ ॥ सुखदुःखाभिभूतोऽसौ भवत्येव न संशयः ॥ शेषे शेते कदाचिद्वै योगनिद्रासमावृतः ॥ २६ ॥
काले जागर्ति विश्वात्मा स्वभावप्रतिबोधितः ॥ शर्वो ब्रह्मा हरिश्चेति इन्द्राद्या ये सुरास्तथा ॥ २७ ॥ मुनयश्च विनिर्माणैः स्वायुषो विचरंति हि ॥
निशाऽवसाने संजाते जगत्स्थावरजंगमम् ॥ २८ ॥ म्रियते नात्र संदेहो नृप किंचित्कदापि च ॥ स्वायुषोऽन्ते पद्मजाद्याः क्षयमृच्छंति पार्थिव ॥ २९ ॥
प्रभवंति पुनर्विष्णुहरशक्रादयः सुराः ॥ तस्मात्कामादिकान्भावान्देहवान्प्रतिपद्यते ॥ ३० ॥ नात्र ते विस्मयः कार्यः कदाचिदपि पार्थिव ॥ संसा-
रोऽयं तु संदिग्धः कामक्रोधादिभिर्नृप ॥ ३१ ॥ दुर्लभस्तद्विनिर्मुक्तः पुरुषः परमार्थवित् ॥ यो बिभेतीह संसारे स दारान्न करोत्यपि ॥ ३२ ॥
विमुक्तः सर्वसंगेभ्यो विचरत्यविशंकितः ॥ तस्माद्बृहस्पतेर्भार्या शशिना लंभिता पुरा ॥ ३३ ॥ गुरुणा लंभिता भार्या तथा भ्रातुर्यवीयसः ॥ एवं
संसारेचक्रेऽस्मिन्रागलोभादिभिर्वृतः ॥ ३४ ॥ गार्हस्थ्यं च समास्थाय कथं मुक्तो भवेन्नरः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन हित्वा संसारसारताम् ॥ ३५ ॥
आराधयेन्महेशानीं सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ तन्मायागुणतश्छन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥ ३६ ॥ भ्रमत्युन्मत्तवत्सर्वं मदिरामत्तवन्नृप ॥ तस्या आरा-
धनेनैव गुणान्सर्वान्विमृद्य च ॥ ३७ ॥ मुक्तिं भजेत मतिमान्नान्यः पंथास्त्वितः परः ॥ आराधिता महेशानी न यावत्कुरुते कृपाम् ॥ ३८ ॥

हो जाता है ॥ ३१ ॥ इन शत्रुओंसे मुक्त और परम तत्त्वको जाननेवाला पुरुष बिरला ही होता है। जो कामादिके विकारोंसे डरता है, वह अपना विवाह ही नहीं करता ॥३२॥ वह दुनियादारीके सब झमेलोंसे दूर रहकर निर्द्वन्द्वभावसे विचरता है। इसके विपरीत जो लोग विवाह करनेके बाद गार्हस्थ्यधर्मसे उदासीन रहते हैं, उनकी वही दशा होती है कि जैसे संसारसे विरक्त देवगुरु बृहस्पतिकी भार्या ताराको चंद्रमाने और अपने छोटे भाई उतथ्यकी पत्नीको स्वयं देवगुरुने रख लिया था। इस प्रकार इस संसारमें आकर राग और लोभसम्पन्न मनुष्य गार्हस्थ्य झंझटोंमें पड़नेके बाद भला मुक्त कैसे हो सकता है? अतएव सर्वोत्तम उपाय यही है कि संसारकी वासनाओंसे मन हटाकर सच्चिदानन्दरूपिणी भगवतीकी आराधना करे। यह स्थावर-जंगमात्मक समस्त विश्व उनके मायारूपी गुणोंसे आच्छन्न होकर उन्मत्त तथा मदिरापान करके विक्षिप्त मनुष्यकी भाँति चक्कर काटता रहता है। उन भगवतीकी आराधना द्वारा ही सत्त्व-रज आदि गुणों-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर विजय प्राप्त हो सकती है और तभी कोई बुद्धिमान् मनुष्य मुक्तिका आनन्द प्राप्त कर सकता है। इसके सिवाय और कोई भी मुक्त होनेका मार्ग नहीं है। भक्तके द्वारा आराधित भगवती जबतक कृपा नहीं करतीं, तबतक कोई सुखी कैसे हो सकता है ? उनके जैसा दयालु भला और कौन होगा ? अतएव सभी प्रपञ्च त्यागकर सदा सच्चे हृदयसे उन करुणापारावार भगवतीका ही आराधन करना चाहिए ॥ ३३-३९ ॥ एकमात्र उन्हींके भजनसे मनुष्यका जीवन्मुक्त होना संभव है। जिसने दुर्लभ मानव तन प्राप्त करके भी उन महेश्वरीका भजन नहीं किया। उसके विषयमें तो मेरी यह दृढ़ धारणा है कि जैसे कोई मनुष्य किसी महलकी सब सीढ़ियाँ चढ़कर अंतिम सीढ़ीसे फिसलकर नीचे आ जाय, उसी प्रकार चौरासी लाख योनियोंकी सीढ़ी चढ़ करके मनुष्यजीवन प्राप्त करनेके बाद भी वह फिसल गया। सारा संसार अहङ्कारसे आच्छादित तथा सत्त्व-रज-तम इन तीनों गुणोंसे युक्त है ॥४०॥४१॥ असत्य कभी प्राणीका साथ नहीं छोड़ता, तब वह भला मुक्त कैसे होगा ? इसलिए मैं फिर यही कहता हूँ कि सारा प्रपञ्च त्यागकर भगवती भुवनेश्वरीका भजन करे ॥४२॥ राजा जनमेजय बोले—हे पितामह !

तावद्भवेत्सुखं कस्मात्कोन्योऽस्ति दयया युतः ॥ करुणासागरामेतां भजेत्तस्मादमायया ॥३९॥ यस्यास्तु भजनेनैव जीवन्मुक्तत्वमश्नुते ॥ मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य सेविता न महेश्वरी ॥ ४० ॥ निःश्रेणिकाग्रात्पतित अध इत्येव विद्महे ॥ अहंकारावृतं विश्वं गुणत्रयसमन्वितम् ॥ ४१ ॥ असत्येनापि संबद्धं मुच्यते कथमन्यथा ॥ हित्वा सर्वं ततः सर्वैः संसेव्या भुवनेश्वरी ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ किं कृतं गुरुणा तत्र काव्यरूपधरेण च ॥ कदा शुक्रः समायातस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४३ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यत्कृतं गुरुणा तदा ॥ कृत्वा काव्यस्वरूपं च प्रच्छन्नेन महात्मना ॥ ४४ ॥ गुरुणा बोधिता दैत्या मत्वा काव्यं स्वकं गुरुम् ॥ विश्वासं परमं कृत्वा बभूवुस्तन्मयास्तदा ॥ ४५ ॥ विद्यार्थं शरणं प्राप्ता भृगुं मत्वाऽतिमोहिताः ॥ गुरुणा विप्रलब्धास्ते लोभात्को वा न मुह्यति ॥ ४६ ॥ दशवर्षात्मके काले संपूर्णसमये तदा ॥ जयंत्या सह क्रीडित्वा काव्यो याज्यानचिंतयत् ॥४७॥ आशया मम मार्गं ते पश्यंतः संस्थिताः किल ॥ गत्वा तान्वै प्रपश्येऽहं याज्यानतिभयातुरान् ॥४८॥ मा देवेभ्यो भयं तेषां मद्भक्तानां भवेदिति ॥ संचिंत्य बुद्धिमास्थाय जयंतीं प्रत्युवाच ह ॥ ४९ ॥ देवानेवोपसंयांति पुत्रा मे चारुलोचने ॥ समय-

शुक्राचार्यका रूप धारण करके जब देवगुरु बृहस्पति उन दैत्योंके पास पहुँचे, तब उन्होंने क्या किया ? और शुक्राचार्य कब फिर लौटकर आये ? सो बताइए ॥ ४३ ॥ व्यासजीने कहा—हे राजन् ! सुनिए—छलसे शुक्राचार्यका रूप धारण करके बृहस्पतिजीने क्या किया ॥ ४४ ॥ बृहस्पतिजीने जब दैत्योंको भली भाँति समझाया कि शुक्राचार्य मैं ही हूँ, तब दानवोंको पूर्ण विश्वास हो गया कि मेरे गुरुदेव ये ही हैं और वे सर्वथा उनके ही कहनेपर चलने लगे ॥ ४५ ॥ अब वे अत्यन्त मुग्ध होकर उन्हींसे विद्याध्ययन भी करने लगे और बृहस्पतिने भी उन्हें अपने कामकी विद्या पढ़ाकर खूब ठगा। ठीक ही है, लोभसे भला कौन नहीं मोहमें पड़ जाता ॥ ४६ ॥ जब जयन्तीके साथ रमण करते-करते प्रतिज्ञानुसार दस वर्षका समय पूरा हो गया, तब शुक्राचार्यको अपने यजमानों (दैत्यों) का स्मरण आया ॥४७॥ उन्होंने सोचा कि वे भयभीत दैत्यगण मेरी बाट जोहते हुए बड़ी आशा लगाये बैठे होंगे। जल्दी चलकर देखूँ कि उनका क्या हाल है ॥४८॥ कहीं ऐसा न हो कि मेरे भक्त दैत्योंपर देवताओं द्वारा कोई विभीषिका खड़ी कर दी गयी हो। ऐसा सोचनेके बाद उन्होंने अपनी बुद्धि स्थिर करके जयन्तीसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा–हे सुनयनी ! मेरे पुत्र सदृश प्रिय शिष्य दैत्यगण देवताओंके दास बनते जा रहे हैं और हमारे कौलके अनुसार दस वर्षकी अवधि भी पूरी हो गयी है ॥४९॥५०॥ अतएव हे देवि ! हे सुमध्यमे ! अब मैं अपने उन यजमानोंसे मिलने जा रहा हूँ। उनसे मिलकर फिर लौट आऊँगा ॥ ५१ ॥ पातिव्रत धर्मकी विज्ञा जयन्ती बोली—हे धर्मज्ञ ! बहुत अच्छा, आप जाइए। मैं आपका धर्म नहीं लुप्त होने देना चाहती ॥५२॥ यह सुनकर शुक्राचार्य तत्काल वहाँसे चल पड़े। दैत्योंके पास पहुँचकर उन्होंने देखा कि उनकी बगलमें बृहस्पतिजी विराजमान हैं ॥५३॥ वे छलसे शुक्राचार्य बनकर स्वरचित जैनधर्मकी शिक्षा देते तथा यज्ञोंकी निंदा करते हुए समझा रहे हैं—॥ ५४ ॥ हे देवताओंके शत्रु दैत्यो ! मैं सत्य और आप लोगोंके हितकी बात बताता हूँ। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। अतएव आततायियों (अपनी हिंसा करनेको आये हुए) को भी नहीं मारना चाहिए ॥५५॥ अपनी जिह्वाके स्वादके लिए भोगरत ब्राह्मणोंने वेदोंमें पशुहिंसाका प्रदर्शन किया है। किंतु वास्तविक बात यह है कि अहिंसा ही सबसे ऊँचा धर्म है ॥ ५६ ॥ ऐसी-ऐसी वेद-शास्त्रप्रतिपादित बातें कहते हुए बृहस्पतिको देखकर

स्तेऽद्य संपूर्णो जातोऽयं दशवार्षिकः ॥ ५० ॥ तस्माद्गच्छाम्यहं देवि द्रष्टुं याज्यान्सुमध्यमे ॥ पुनरेवागमिष्यामि तवांतिकमनुद्रुतः ॥ ५१ ॥ तथेति तमुवाचाथ जयंती धर्मवित्तमा ॥ यथेष्टं गच्छ धर्मज्ञ न ते धर्मं विलोपये ॥ ५२ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यो जगाम त्वरितस्ततः ॥ अपश्यद्दानवानां च पार्श्वे वाचस्पतिं तदा ॥ ५३ ॥ छद्मरूपधरं सौम्यं बोधयंतं छलेन तान् ॥ जैनं धर्मं कृतं स्वेन यज्ञनिंदापरं तथा ॥ ५४ ॥ भो देवरिपवः सत्यं ब्रवीमि भवतां हितम् ॥ अहिंसा परमो धर्मोऽहंतव्या ह्याततायिनः ॥ ५५ ॥ द्विजैर्भोगरतैर्वेदे दर्शितं हिंसनं पशोः ॥ जिह्वास्वादपरैः काममहिंसैव परा मता ॥ ५६ ॥ एवंविधानि वाक्यानि वेदशास्त्रपराणि च ॥ ब्रुवाणं गुरुमाकर्ण्य विस्मितोऽसौ भृगोः सुतः ॥ ५७ ॥ चिंतयामास मनसा मम द्वेष्यो गुरुः किल ॥ वंचिताः किल धूर्तेन याज्या मे नात्र संशयः ॥ ५८ ॥ धिग्लोभं पापबीजं वै नरकद्वारमूर्जितम् ॥ गुरुरप्यनृतं ब्रूते प्रेरितो येन पाप्मना ॥ ५९ ॥ प्रमाणं वचनं यस्य सोऽपि पाखंडधारकः ॥ गुरुः सुराणां सर्वेषां धर्मशास्त्रप्रवर्तकः ॥ ६० ॥ किं किं न लभते लोभान्मलिनीकृतमानसः ॥ अन्योऽपि गुरुरप्येवं जातः पाखंडपंडितः ॥ ६१ ॥ शैलूषचेष्टितं सर्वं परिगृह्य द्विजोत्तमः ॥ वंचयत्यतिसंमूढान्दैत्यान्याज्यान्ममाप्यसौ ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

शुक्राचार्यको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५७ ॥ तब उन्होंने मनमें सोचा कि मेरे शत्रु धूर्त बृहस्पतिने मेरे यजमानोंको भुलावेमें डाल दिया है। इसमें कोई संदेह नहीं है ॥५८॥ पापके बीज एवं नरकके मूर्त उग्र रूप उस लोभको धिक्कार है कि जिस पापीकी प्रेरणासे गुरु बृहस्पति सरीखे उद्भट विद्वान् भी झूठ बोलते हैं ॥५९॥ जिसके वचन प्रमाण माने जाते हैं, जो देवताओंका गुरु है और जिसने धर्मशास्त्रका निर्माण किया है, वह भी आज इस प्रकार पाखण्ड किये बैठा हुआ है ॥ ६० ॥ लोभसे जिसका मन मलिन हो जाता है, वह क्या-क्या अनर्थ नहीं कर सकता। औरोंकी बात ही क्या है, जब कि लोभके वशीभूत होकर देवगुरु बृहस्पति भी इस प्रकार पाखण्डके पूर्ण पण्डित हो गये हैं ॥ ६१ ॥ यह उच्चकोटिका ब्राह्मण आज बहुरूपियेके समान रूप बदलकर मेरे भोले-भोले यजमानोंको ठग रहा है ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(शुक्राचार्यका दैत्योंके पास जाना और दैत्योंका उनपर विश्वास न करना) व्यासजी बोले—हे राजन् ! ऐसा मनमें सोचकर शुक्राचार्यने हँसते हुए कहा—हे दैत्यगण ! मेरा
स्वरूप बनाकर आये हुए देवगुरु बृहस्पतिकी बातोंमें आकर आप लोग ठगा गये क्या ? ॥ १ ॥ हे मेरे यजमानों ! असली शुक्राचार्य मैं हूँ। यह तो देवताओंका कार्य साधन करनेके लिए
छद्मवेशमें आया हुआ बृहस्पति है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इसने बहुत बुरी तरह आप सबको ठगा है॥ २ ॥ हे महानुभावगण ! आप लोग इस धूर्तकी बातोंपर विश्वास न करिए।
यह ढोंगी बृहस्पति मेरा वेष बनाकर आप लोगोंको धोखा दे रहा है। अतएव आप मेरी बातोंका अनुसरण करें और इसे त्याग दें॥ ३ ॥ उनकी यह बात सुन और उन दोनोंका समान
आकार-प्रकार देखकर वे दैत्य बड़े असमंजसमें पड़ गये और सोचने लगे कि सम्भव है, ये ही शुक्राचार्य हों॥ ४ ॥ उन सबको चकराया देखकर गुरु बृहस्पतिने कहा कि आप लोगोंका
वास्तविक गुरु मैं ही हूँ। ये तो हमारा रूप बनाये हुए बृहस्पति हैं ॥५॥ ये देवताओंका कार्य सिद्ध करने और आपको धोखा देनेके लिए आये हैं। हे श्रेष्ठ दैत्यो ! आप इनकी बातपर विश्वास

व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्य मनसा तानुवाच हसन्निव ॥ वंचिता मत्स्वरूपेण दैत्याः किं गुरुणा किल ॥ १ ॥ अहं काव्यो गुरुश्चायं
देवकार्यप्रसाधकः ॥ अनेन वंचिता यूयं मद्याज्या नात्र संशयः ॥ २ ॥ मा श्रद्धध्वं वचोऽस्यार्या दांभिकोऽयं मदाकृतिः ॥ अनुगच्छत मां
याज्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम् ॥३॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दृष्ट्वा तौ सदृशौ पुनः ॥ विस्मयं परमं जग्मुः काव्योऽयमिति निश्चिताः ॥ ४ ॥ स तान्वीक्ष्य
सुसंभ्रांतान्गुरुर्वाक्यमुवाच ह ॥ गुरुर्वो वंचयत्येव मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः ॥ ५ ॥ प्राप्तो वंचयितुं युष्मान्देवकार्यार्थसिद्धये ॥ मा विश्वासं वचस्यस्य
कुरुध्वं दैत्यसत्तमाः ॥६॥ प्राप्ता विद्या मया शम्भोर्युष्मानध्यापयामि ताम् ॥ देवेभ्यो विजयं नूनं करिष्यामि न संशयः ॥ ७ ॥ इति श्रुत्वा गुरो-
र्वाक्यं काव्यरूपधरस्य ते ॥ विश्वासं परमं जग्मुः काव्योऽयमिति निश्चयात् ॥ ८ ॥ काव्येन बहुधा तत्र बोधिताः किल दानवाः ॥ बुबुधुर्न गुरोर्मा-
यामोहिताः कालपर्ययात् ॥९॥ एवं ते निश्चयं कृत्वा ततो भार्गवमब्रुवन् ॥ अयं गुरुर्नो धर्मात्मा बुद्धिदश्च हिते रतः ॥ १० ॥ दश वर्षाणि
सततमयं नः शास्ति भार्गवः ॥ गच्छ त्वं कुहको भासि नास्माकं गुरुरप्युत ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वा भार्गवं मूढा निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः ॥ जगृहुस्तं
गुरुं प्रीत्या प्रणिपत्याभिवाद्य च ॥ १२ ॥ काव्यस्तु तन्मयान्दृष्ट्वा चुकोपाथ शशाप च ॥ दैत्यान्विबोधितान्मत्वा गुरुणा चातिवंचितान् ॥१३॥

न करिएगा ॥ ६ ॥ साक्षात् शंकर भगवान्‌से मैंने जो विद्या प्राप्त की है, उसे आप लोगोंको पढ़ा रहा हूँ और इसमें कुछ भी संशय नहीं है कि मैं आपको देवताओंपर विजय दिला दूँगा
॥ ७ ॥ शुक्ररूपधारी गुरु बृहस्पतिकी बातें सुनकर दैत्योंको पूर्ण विश्वास हो गया कि हमारे सच्चे गुरु ये ही हैं॥ ८ ॥ शुक्राचार्यने यद्यपि उन्हें बहुत समझाया, किन्तु समयके फेरसे
गुरु बृहस्पतिकी मायासे मोहित दैत्य किसी तरह प्रबुद्ध नहीं हुए ॥ ९ ॥ ऐसा निश्चय करके दैत्योंने शुक्राचार्यसे कहा—हमारे गुरु ये ही हैं। ये बड़े धर्मात्मा हैं। इन्होंने हमें अच्छी
शिक्षा दी है और सदा हमारे हितमें संलग्न रहते हैं॥ १० ॥ ये शुक्राचार्य दस वर्षसे हमें शिक्षा देते आ रहे हैं। आप हमारे गुरु नहीं हैं, बल्कि कोई ठग हैं। आप यहाँसे चले जाइए
॥ ११ ॥ ऐसा कहकर उन मूर्खोंने शुक्रको बार-बार धिकारा तथा छद्मवेशी गुरु बृहस्पतिको प्रणाम किया और बड़े प्रेमपूर्वक उन्हें अपना गुरु बना लिया ॥ १२ ॥ दैत्योंको इस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बृहस्पतिमें तन्मय देखकर शुक्राचार्यने जब समझ लिया कि इनपर देवगुरुका गहरा रंग चढ़ गया है, तब वे बहुत क्रुद्ध हुए और शाप देते हुए कहा—॥१३॥ हे मूर्खो ! बार-बार समझानेपर भी तुमने मेरी बात नहीं मानी, सो तुम्हारी बुद्धि मारी जायगी और तुम पराधीन हो जाओगे ॥ १४ ॥ बहुत थोड़े ही दिनोंमें तुम मेरी अवज्ञा करनेका फल पा जाओगे। तब तुम्हें इस धूर्तकी चालोंका पता लगेगा ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले—ऐसा कहकर क्रोधमें भरे शुक्राचार्य तत्काल वहाँसे चल पड़े। इससे बृहस्पति बहुत प्रसन्न हुए और बड़े आनन्दसे वहाँ रहने लगे ॥ १६ ॥ गुरु बृहस्पतिको जब ज्ञात हुआ कि दैत्योंको शुक्राचार्यका शाप मिल गया है, तब तुरन्त अपना वास्तविक रूप धारण करके वहाँसे चल पड़े ॥ १७ ॥ वहाँसे वे सीधे देवराज इन्द्रके पास गये और कहा—मैंने भलीभाँति आपका काम बना दिया। एक तो दैत्योंको शुक्रका शाप मिल गया और बादमें मैंने भी उन्हें त्याग दिया ॥ १८ ॥ हे श्रेष्ठ देवताओं ! ऐसा करके मैंने दानवोंको सर्वथा निराधार बना दिया है। अब आपलोग युद्धकी तैयारीमें लग जाइए। हे महाभाग ! मैंने अपनी चालसे दैत्योंको शापाग्निमें भून दिया है ॥ १९ ॥ गुरु बृहस्पतिकी बातें

यस्मान्मया बोधिता वै गृह्णीयुर्न च मे वचः॥ तस्मात्प्रनष्टसंज्ञा वै पराभवमवाप्स्यथ॥ १४॥ मदवज्ञाफलं कामं स्वल्पे काले ह्यवाप्स्यथ ॥ तदाऽस्य कपटं सर्वं परिज्ञातं भविष्यति ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वाऽसौ जगामाशु भार्गवः क्रोधसंयुतः ॥ बृहस्पतिर्मुदं प्राप्य तस्थौ तत्र समाहितः ॥ १६ ॥ ततः शप्तान्गुरुर्ज्ञात्वा दैत्यांस्तान्भार्गवेण हि ॥ जगाम तरसा त्यक्त्वा स्वरूपं स्वं विधाय च ॥ १७ ॥ गत्वोवाच तदा शक्रं कृतं कार्यं मया ध्रुवम् ॥ शप्ता शुक्रेण ते दैत्या मया त्यक्ताः पुनः किल ॥१८॥ निराधाराः कृता नूनं यतध्वं सुरसत्तमाः ॥ संग्रामार्थं महाभाग शापदग्धा मया कृताः ॥१९॥ इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं मघवा मुदमाप्तवान् ॥ जहृषुश्च सुराः सर्वे प्रतिपूज्य बृहस्पतिम् ॥ २० ॥ संग्रामाय मतिं चक्रुः संविचार्य मिथः पुनः ॥ निर्ययुर्मिलिताः सर्वे दानवाभिमुखाः सुराः ॥ २१ ॥ सुरान्समुद्यताञ्ज्ञात्वा कृतोद्योगान्महाबलान् ॥ अन्तर्हितं गुरुं चैव बभूवुश्चिन्तयान्विताः ॥ २२ ॥ परस्परमथोचुस्ते मोहितास्तस्य मायया ॥ संप्रसाद्यो महात्मा च यातोऽसौ रुष्टमानसः ॥२३॥ वंचयित्वा गतः पापो गुरुः कपटपंडितः ॥ भ्रातृस्त्रीलंभनः प्रायो मलिनोऽन्तर्बहिः शुचिः ॥२४॥ किं कुर्मः क्व च गच्छामः कथं काव्यं प्रकोपितम् ॥ कुर्वीमहि सहायार्थं प्रसन्नं हृष्टमानसम् ॥ २५ ॥

सुनकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ उपस्थित सब देवता भी निहाल हो गये। उन्होंने उनकी पूजा की ॥ २० ॥ इसके बाद वे सब एकत्र होकर संग्रामसम्बन्धी मंत्रणा करने लगे। तदनन्तर सब देवता एक साथ दैत्योंसे लड़नेके लिए चल पड़े ॥२१॥ उधर जब दैत्योंको ज्ञात हुआ कि महाबली देवता युद्धकी तैयारी करके चढ़ाई करनेवाले हैं। उसपर भी अपने सम्मानित गुरु छद्मवेशी बृहस्पतिको गायब देखकर दैत्यगण बहुत चिन्तित हुए ॥ २२ ॥ देवगुरुकी मायासे मोहित दैत्य परस्पर कहने लगे कि हमलोग बृहस्पतिकी चालोंमें आगये, जिससे महात्मा शुक्राचार्य रुष्ट होकर हमें छोड़ गये। अतएव अब जैसे भी हो, हमें उन महात्माको मनाना चहिए ॥ २३ ॥ वह पापी और कपटी पण्डित हमारा गुरु बनकर बड़ा करारा धोखा दे गया। अपने भाई उतथ्यकी पत्नीके साथ दुराचार करनेवाला, मनका कपटी और ऊपरसे पवित्र बना रहनेवाला वह असाधारण धूर्त निकला ॥ २४ ॥ अब हम क्या करें ? आखिर हमने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने गुरु शुक्राचार्यको क्यों कुपित किया ? अब क्रुद्ध शुक्राचार्यको हम अपनी सहायताके लिए किस तरह प्रसन्न करें ? ।।२५।। दैत्योंने ऐसा विचार करके दैत्यराज प्रह्लादको अपना नेता बनाया और भयसे काँपते हुए वे भृगुपुत्र शुक्राचार्यके पास गये ।। २६ ।। वहाँ पहुँचकर दैत्योंने चुपचाप बैठे अपने गुरुदेवको साष्टांग प्रमाण किया । चरणस्पर्श करनेपर क्रोधसे लाल आँखें करके शुक्राचार्यने कहा—।। २७ ।। बृहस्पतिकी मायासे मोहित होकर तुम लोगोंने मेरी हितकारी बात नहीं मानी । अब तुम हमें अपना गुरु बनाने आये हो ? ।।२८।। उस समय तुम देवगुरुकी बातमें इस प्रकार आ गये थे कि मेरा अपमानतक करनेको उतारू होगये । मदोन्मत्त होकर तुमने जो मेरा तिरस्कार किया था, अब उसका फल भोगो ।। २९ ।। तुमलोग उसी कपटी, वंचक और देवताओंका काम बनानेवाले बृहस्पतिके पास जाओ। मैं उसकी तरह ठग नहीं हूँ।। ३० ।। व्यासजी बोले–इस प्रकार उखड़ी बातें करते हुए शुक्राचार्यके पैर पकड़-कर दैत्यराज प्रह्लादने कहा ।। ३१ ।। प्रह्लाद बोले—हे सर्वज्ञ ! हे भार्गव ! हम दैत्य आपके यजमान हैं । इस समय बहुत दुखी होकर आपके पास आये हैं। हम आपके हितचिंतक पुत्रके

इति संचिंत्य ते सर्वे मिलिता भयकंपिताः ।। प्रह्लादं पुरतः कृत्वा जग्मुस्ते भार्गवं पुनः ।।२६।। प्रणेमुश्चरणौ तस्य मुनेर्मौनभृतस्तदा ।। भार्गवस्ता-नुवाचाथ रोषसंरक्तलोचनः ।। २७ ।। मया प्रबोधिता यूयं मोहिता गुरुमायया ।। न गृहीतं वचो योग्यं तदा याज्या हितं शुचि ।। २८ ।। तदाऽव-गणितश्चाहं भवद्भिस्तद्वशं गतैः ।। प्राप्तं नूनं मदोन्मत्तैर्ममावमाजनं फलम् ।। २६ ।। तत्र गच्छत सद्भ्रष्टा यत्रासौ कपटाकृतिः ।। वंचकः सुरका-र्यार्थी नाहं तद्वद्धि वंचकः ।। ३० ।। व्यास उवाच ।। एवं ब्रुवंतं शुक्रं तु वाक्यसंदिग्धया गिरा ।। प्रह्लादस्तं तदोवाच गृहीत्वा चरणौ ततः ।। ३१ ।। प्रह्लाद उवाच ।। भार्गवाद्य समायातान्याज्यानस्मांस्तथाऽऽतुरान् ।। त्यक्तुं नार्हसि सर्वज्ञ त्वद्धितांस्तनयान्हि नः ।। ३२ ।। गते त्वयि तु मंत्रार्थं शैलूषेण दुरात्मना ।। त्वद्वेषमधुरालापैर्वयं तेन प्रवंचिताः ।। ३३ ।। अज्ञानकृतदोषेण नैव कुप्यति शांतिमान् ।। सर्वज्ञस्त्वं विजानासि चित्तं नः प्रवणं त्वयि ।। ३४ ।। ज्ञात्वा नस्तपसा भावं त्यज कोपं महामते ।। ब्रुवंति मुनयः सर्वे क्षणकोपा हि साधवः ।। ३५ ।। जलं स्वभावतः शीतं वह्न्यातपसमागमात् ।। भवत्युष्णं वियोगाच्च शीतत्वमनुगच्छति ।। ३६ ।। क्रोधश्चांडालरूपो वै त्यक्तव्यः सर्वथा बुधैः ।। तस्माद्रोषं परित्यज्य प्रसादं कुरु सुव्रत ।।३७।। यदि न त्यजसि क्रोधं त्यजस्यस्मान्सुदुःखितान् ।। त्वया त्यक्ता महाभाग गमिष्यामो रसातलम् ।।३८।। व्यास उवाच।।

समान हैं । सो आप हमें न त्यागिये ।।३२।। आपके चले जानेपर उस बहुरूपिया बृहस्पतिने आपकी वेष-भूषा तथा चाल-ढालकी नकल करके मीठी-मीठी बातोंमें फँसाकर हमको खूब मूर्ख बनाया ।।३३।। शांतिसम्पन्न लोग अज्ञानवश किये हुए दोषको मनपर नहीं लाते और कोप नहीं करते । आप सर्वज्ञ हैं । अतएव जानते हैं कि हमारा चित्त किस प्रकार आपके श्रीचरणोंमें आसक्त है ।। ३४ ।। आप अपने तपोबलसे हमारा मनोभाव जानकर कोप त्याग दीजिए । हे महामते ! सब मुनियोंका कथन है कि साधु पुरुषोंका कोप क्षणभरके लिए ही होता है । ।। ३५ ।। जल स्वभावतः शीतल होता है । किंतु अग्नि और धूपके संयोगसे उसमें गर्मी आ जाती है। लेकिन उस अग्नि तथा धूपका सम्पर्क हटते ही वह पुनः शीतल हो जाता है ।।३६।। हे सुव्रत ! क्रोध चाण्डालरूप होता है । अतएव विद्वान् पुरुषका यह कर्तव्य है कि वह उसे सर्वथा त्याग दे । सो आप कोप त्यागकर हमपर प्रसन्न हो जाइए ।। ३७ ।। यदि आप कोप-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को न त्यागकर हम दुखी सेवकोंकोको त्याग देंगे तो हे महाभाग ! आपसे परित्यक्त होकर हम रसातल चले जायँगे ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले–प्रह्लादके वचन सुनकर शुक्राचार्यने ज्ञानदृष्टिसे सब बीती बातें देख लीं और प्रसन्न होकर मुसकाते हुए बोले—॥ ३९ ॥ हे दानवो ! तुम लोग मत डरो और रसातलको न जाओ । मैं अपने अमोघ मंत्रबलसे तुम्हारी रक्षा करूँगा । क्योंकि तुम लोग हमारे पुराने यजमान हो ॥ ४० ॥ हे धर्मज्ञो ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझसे जो सत्य, निश्चयात्मक तथा हितकर वचन कहे थे, उन्हें सुनो ॥ ४१ ॥ अच्छा या खराब जो बात होनेवाली होती है, वह होकर ही रहती है । इस धरातलपर क्या कोई भी ऐसा पुरुष है कि जो होनीको मेट सके ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज तुमलोग समयके फेरसे निर्बल हो गये हो । जिससे एक बार देवताओंसे परास्त होकर तुम्हें पाताल लोकमें जाना पड़ेगा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ किन्तु एक समय ऐसा भी था कि जब तुमने सब प्रकारसे समृद्ध राज्यसुखका उपभोग किया था । यह ब्रह्माजीने कहा था ॥ ४४ ॥ उस समय तुमने देवताओंपर आक्रमण करके उन्हें हराया और दैवयोगसे पूरे दस युगोंतक समस्त त्रिलोकीपर राज्य किया ॥ ४५ ॥ अब

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा च ज्ञानचक्षुषा ॥ विलोक्य सुमना भूत्वा तानुवाच हसन्निव ॥३९॥ न भेतव्यं न गंतव्यं दानवा वा रसातलम् ॥ रक्षिष्यामि वो याज्यान्मंत्रैरवितथैः किल ॥ ४० ॥ हितं सत्यं ब्रवीम्यद्य शृणुध्वं तत्तु निश्चयम् ॥ वचनं मम धर्मज्ञाः श्रुतं यद्ब्रह्मणः पुरा ॥४१॥ अवश्यंभाविनो भावाः प्रभवंति शुभाशुभाः ॥ दैवं न चान्यथा कर्तुं क्षमः कोऽपि धरातले ॥ ४२ ॥ अद्य मंदबला यूयं कालयोगादसंशयम् ॥ देवैर्जिताः सकृच्चापि पातालं प्रतिपत्स्यथ ॥४३॥ प्राप्तः पर्यायकालो व इति ब्रह्माऽभ्यभाषत ॥ भुक्तं राज्यं भवद्भिश्च पूर्णं सर्वं समृद्धिमत् ॥४४॥ युगानि दश पूर्णानि देवानाक्रम्य मूर्धनि ॥ दैवयोगाच्च युष्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्जितम् ॥ ४५ ॥ सावर्णिके मनौ राज्यं पुनस्तत्तु भविष्यति ॥ पौत्रस्त्रैलोक्यविजयी राज्यं प्राप्स्यति ते बलिः ॥४६॥ यदा वामनरूपेण हृतं देवेन विष्णुना ॥ तदैव च भवत्पौत्रः प्रोक्तो देवेन विष्णुना ॥४७॥ हृतं येन बले राज्यं देववांछार्थसिद्धये ॥ त्वमिन्द्रो भविता चाग्रे स्थिते सावर्णिके मनौ ॥ ४८ ॥ भार्गव उवाच ॥ इत्युक्तो हरिणा पौत्रस्तव प्रह्लाद सांप्रतम् ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां गुप्तश्चरति भीतवत् ॥ ४९ ॥ एकदा वासवेनासौ बलिर्गर्दभरूपभाक् ॥ शून्ये गृहे स्थितः कामं भयभीतः शतक्रतोः ॥ ५० ॥ पृष्टश्च बहुधा तेन वासवेन बलिस्तदा ॥ किमर्थं गार्दभं रूपं कृतवान्दैत्यपुंगव ॥ ५१ ॥ भोक्ता त्वं सर्वलोकस्य दैत्यानां च

सावर्णि मन्वन्तरमें तुम्हारा खोया हुआ राज्य फिर तुम्हारे हाथ आयेगा और तुम्हारा पौत्र बलि तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करके पुनः दैत्योंका साम्राज्य स्थापित करेगा ॥४६॥ पूर्वकालमें जब भगवान् विष्णुने वामनका रूप धारण करके राजा बलिका राज्य छीना, तब कहा था–॥ ४७ ॥ हे राजा बलि ! इस समय देवताओंकी आकांक्षा पूर्ण करनेके लिए मैंने तुम्हारा राज्य छीन लिया है । किन्तु आगे चलकर सावर्णि मन्वन्तरमें तुम्हीं स्वर्गके शासक इन्द्र होओगे ॥४८॥ शुक्राचार्य बोले—हे प्रह्लाद ! भगवान विष्णुके कथनानुसार इस समय तुम्हारा पौत्र बलि सब लोगोंसे अपनेको छिपाता हुआ भयभीत व्यक्तिके समान घूम रहा है ॥४९॥ एक दिन इन्द्रसे भयभीत राजा बलि गधेका रूप धारण करके एक सूने घरमें खड़े थे । उसी समय इंद्र वहाँ पहुँच गये और कहा–हे दैत्यपुंगव ! आपने गधेका रूप क्यों धारण किया ? ॥ ५० ॥ ५१ ॥ किसी समय आप सब लोकोंके राजा और दैत्योंके शासक थे । हे राक्षसश्रेष्ठ ! इस प्रकार गधेका रूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धारण करनेमें आपको लज्जाका अनुभव नहीं होता ? इन्द्रका यह वचन सुनकर दैत्यराज बलि बोले—हे देवराज ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? जैसे महातेजस्वी भगवान विष्णुको मत्स्य और कच्छपका रूप धारण करना पड़ा था। उसी प्रकार समयके फेरसे मैं भी गधेका रूप धारण करके समय बिता रहा हूँ। जिस प्रकार आप ब्रह्महत्यासे डरकर कमलवनमें छिपे बैठे थे ॥ ५२-५४ ॥ उसी तरह मैं भी शत्रुसे पीड़ित होकर गधेका रूप धारण करके जीवनयापन कर रहा हूँ। हे पाकशासन ! भाग्यके अधीन रहनेवाले पुरुषोंके लिए क्या सुख और क्या दुःख ? उनके लिए दोनों समान रहते हैं ॥५५॥ समय जो चाहता है, वह कराता ही है। शुक्राचार्यने कहा—इस प्रकार राजा बलि और इन्द्रने परस्पर वार्तालाप करके आश्वासन प्राप्त किया और वहाँसे अपने-अपने अभिलषित स्थानको चले गये। हे दैत्यों ! इस प्रकार मैंने तुम्हें भाग्यकी प्रबलताका इतिहास बतलाया। देवताओं, दानवों और मानवोंसे परिपूर्ण

प्रशासिता ॥ न लज्जा खररूपेण तव राक्षससत्तम ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैत्यराजो बलिस्तदा ॥ ५२ ॥ प्रोवाच वचनं शक्रं कोऽत्र शोकः शतक्रतो ॥ यथा विष्णुर्महातेजा मत्स्यकच्छपतां गतः ॥ ५३ ॥ तथाऽहं खररूपेण संस्थितः कालयोगतः ॥ यथा त्वं कमले लीनः संस्थितो ब्रह्महत्यया ॥ ५४ ॥ पीडितश्च तथा ह्यद्य स्थितोऽहं खररूपधृक् ॥ दैवाधीनस्य किं दुःखं किं सुखं पाकशासन ॥ ५५ ॥ कालः करोति वै नूनं यदिच्छति यथा तथा ॥ भार्गव उवाच ॥ इति तौ बलिदेवेशौ कृत्वा संविदमुत्तमाम् ॥ ५६ ॥ प्रबोधं प्रापतुः कामं यथास्थानं च जग्मतुः ॥ इत्येतत्ते समाख्याता मया दैवबलिष्ठता ॥ दैवाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥५७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः ॥ प्रह्लादस्तु सुसंहृष्टो बभूव नृपनन्दन ॥ १ ॥ ज्ञात्वा दैवं बलिष्ठं च प्रह्लादस्तानुवाच ह ॥ कृतेऽपि युद्धे न जयो भविष्यति कदाचन ॥ २ ॥ तदा ते जयिनः प्रोचुर्दानवा मदगर्विताः ॥ संग्रामस्तु प्रकर्तव्यो दैवं किं न विदामहे ॥ ३ ॥ निरुद्यमानां दैवं हि प्रधानमसुराधिप ॥ केन दृष्टं क्व वा दृष्टं कीदृशं केन निर्मितम् ॥ ४ ॥ तस्माद्युद्धं करिष्यामो बलमास्थाय सांप्रतम् ॥ भवानग्रे दैत्यवर्य त्वं सर्वज्ञोऽसि महामते ॥५॥ इत्युक्तस्तैस्तदा राजन् प्रह्लादः प्रबलारिहा ॥ सेनानीश्च तदा भूत्वा देवान् युद्धे समाह्वयत् ॥६॥

समस्त संसार सदा दैवके अधीन रहता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(इन्द्र और प्रह्लादका युद्ध तथा देव-दानवसन्धि) व्यासजी बोले–हे राजन् ! महात्मा शुक्राचार्यके वचन सुनकर प्रह्लाद बहुत प्रसन्न हुए ॥१॥ भाग्यको प्रबल समझकर उन्होंने दैत्योंसे कहा–इस समय युद्ध छेड़नेपर भी हमारी विजय न होगी ॥ २ ॥ तब उनमेंसे कुछ विजयी दानवोंने मदमत्त होकर कहा—युद्ध करना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। भाग्य क्या वस्तु है, उसे हम नहीं जानते ॥३॥ हे दैत्यराज ! निरुद्यमी (आलसी) लोग ही भाग्यको प्रबल मानते हैं। भाग्यको किसने देखा है ? कहाँ देखा है ? उसका स्वरूप कैसा है ? उसका निर्माण किसने किया है ? ॥४॥ हे दैत्यश्रेष्ठ ! आप हमारे नेता बनिए। हे महामते ! आप सर्वज्ञ हैं। हमलोग आपके नेतृत्वमें सैन्यसंगठन करके युद्ध करेंगे ॥ ५॥ हे राजन् ! दैत्यों-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के ऐसा कहनेपर प्रबल पराक्रमी तथा शत्रुनाशक प्रह्लाद सेनापति बने और देवताओंको युद्धके लिए ललकारा ॥६॥ दैत्योंको युद्धके लिए तैयार देखकर देवता भी शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होकर दैत्योंपर चढ़ दौड़े ॥ ७ ॥ तब देवराज इन्द्र और प्रह्लादमें पूरे सौ वर्षतक जमकर भीषण युद्ध हुआ। वह संग्राम देखकर मुनिगण भी आश्चर्यचकित हो गये थे ॥ ८ ॥ हे राजन्! उस महायुद्धका संचालन स्वयं शुक्राचार्यने किया था। अतएव प्रह्लाद आदि दैत्योंको उसमें विजय प्राप्त हुई ॥९॥ उस समय गुरु बृहस्पतिके परामर्शसे देवराज इन्द्रने सब दुःख दूर करनेवाली, मुक्तिदायिनी और परम शिवा देवीका मन ही मन स्मरण किया ॥ १० ॥ इन्द्रने कहा—हे देवि! हे महामाये! हे शूलधारिणी! हे अम्बिके! आपकी जय हो। हे शंख-चक्र-गदा तथा खड्गधारिणि! हे अभयदायिनि! आपकी जय हो ॥ ११ ॥ हे भुवनेश्वरि! हे शक्तिदर्शनकी मुख्य नायिके! हे दशतत्त्वात्मिके! हे मातः! हे महाबिन्दुस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है ॥१२॥ हे महाकुण्डलिनीस्वरूपे! हे सच्चिदानन्दरूपिणि! हे प्राण और अग्निहोत्रकी विद्या! हे दीपशिखात्मिके! आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे प्राण-अन्न-मन-विज्ञान तथा आनंदमय

तेऽपि तत्रासुरान्दृष्ट्वा संग्रामे समुपस्थितान् ॥ सर्वे संभृतसंभारा देवास्तान्समयोधयन् ॥ ७ ॥ संग्रामस्तु तदा घोरः शक्रप्रह्लादयोर्भवत् ॥ पूर्णं वर्षशतं तत्र मुनीनां विस्मयावहः ॥ ८ ॥ वर्तमाने महायुद्धे शुक्रेण प्रतिपालिताः ॥ जयमापुस्तदा दैत्याः प्रह्लादप्रमुखा नृप ॥ ९ ॥ तदैवेन्द्रो गुरोर्वाक्यात्सर्वदुःखविनाशिनीम् ॥ सस्मार मनसा देवीं मुक्तिदां परमां शिवाम् ॥ १० ॥ इन्द्र उवाच ॥ जय देवि महामाये शूलधारिणि चांबिके ॥ शंखचक्रगदापद्मखड्गहस्तेऽभयप्रदे ॥ ११ ॥ नमस्ते भुवनेशानि शक्तिदर्शननायिके ॥ दशतत्त्वात्मिके मातर्महाबिन्दुस्वरूपिणि ॥ १२ ॥ महाकुण्डलिनीरूपे सच्चिदानन्दरूपिणि ॥ प्राणाग्निहोत्रविद्ये ते नमो दीपशिखात्मिके ॥ १३ ॥ पञ्चकोशांतरगते पुच्छब्रह्मस्वरूपिणि ॥ आनन्दकलिके मातः सर्वोपनिषदर्चिते ॥ १४ ॥ मातः प्रसीद सुमुखी भव हीनसत्त्वाँस्त्रायस्व नो जननि दैत्यपराजितान् वै ॥ त्वं देवि नः शरणदा भुवने प्रमाणा शक्ताऽसि दुःखशमनेऽखिलवीर्ययुक्ते ॥ १५ ॥ ध्यायंति येऽपि सुखिनो नितरां भवंति दुःखान्विता विगतशोकभयास्तथाऽन्ये ॥ मोक्षार्थिनी विगतमानविमुक्तसंगाः संसारवारिधिजलं प्रतरंति संतः ॥ १६ ॥ त्वं देवि विश्वजननि प्रथितप्रभावा संरक्षणार्थमुदिताऽऽर्तिहरप्रतापा ॥ संहर्तुमेतदखिलं किल कालरूपा को वेत्ति तेऽम्ब चरितं ननु मंदबुद्धिः ॥ १७ ॥ ब्रह्मा हरश्च हरिदश्वरथो हरिश्च इंद्रो यमोऽथ वरुणोऽग्निसमीरणौ च ॥ ज्ञातुं क्षमा

कोशमें विराजनेवाली देवि! हे आनंदमय कोशमें ब्रह्मस्वरूपसे रहनेवाली भगवती! हे आनंदकलिके! हे सभी उपनिषदों द्वारा पूजित तथा पराविद्यास्वरूपिणी माता! आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे माता! आप मुझपर प्रसन्न हों। हे जननी! आप हम निर्बल तथा दैत्योंसे पराजित देवताओंकी रक्षा करें। हे देवि! हम लोगोंके लिए एकमात्र आप ही शरणदायिनी हैं। हे समस्त पराक्रमोंसे युक्त देवी! इस संसारमें एकमात्र आप ही हमारा दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं ॥ १५ ॥ हे भगवती! जो आपका ध्यान करते हैं, वे सर्वथा सुखी हो जाते हैं। जो आपको बिसार देते हैं, उन्हें अपार कष्ट मिलता है। जो लोग मोक्षकी लालसासे आपका भजन करते हैं, वे अभिमान तथा आसक्तिसे छुटकारा पाकर अनायास इस संसारसागरको पार कर लेते हैं ॥१६॥ हे देवि! हे विश्वजननी! आपके प्रभावसे समस्त संसारका रक्षण होता है। इसी कारण आप सदा प्रसन्न रहती हैं। आपकी ही कृपासे लोगोंकी पीड़ा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूर होती है। जब इस विश्वका संहार करना चाहती हैं, तब आप ही कालरूपमें परिणत हो जाती हैं। हे अम्ब ! मुझ जैसा मन्दबुद्धि प्राणी आपके अनोखे चरित्रोंको कैसे जान सकता है ? ॥ १७ ॥ ब्रह्मा, शिव, विष्णु, मैं (इन्द्र), यम, अग्नि, वायु, बड़े-बड़े महानुभाव मुनि, वेद और शास्त्र भी आपके अतुलित प्रभावको नहीं जान पाते ॥ १८ ॥ वे ही लोग धन्य हैं, वे ही महान् हैं, वे ही सांसरिक दुःखोंसे रहित तथा सुखके सागरमें किलोल करनेवाले प्राणी हैं, जो सदा आपकी भक्तिमें लीन रहते हैं। हे उमे ! जो लोग आपके भक्तिभावसे पराङ्मुख रहते हैं, वे जन्म-मरणकी तरंगोंसे परिपूर्ण दुःखरूपी समुद्रको कभी भी नहीं पार कर पाते ॥ १९ ॥ जो धन्य पुरुष पालकीपर चढ़कर चलते हैं और उनके ऊपर श्वेत चमर डुलाया जाता है, जो नाना प्रकारके सुखोंका उपभोग करते हैं, उन्हें देखकर मेरे मनमें यह पुष्ट धारणा उत्पन्न होती है कि पूर्वजन्ममें उन्होंने अवश्य विविध उपहारों द्वारा आपकी पूजा की होगी ॥ २० ॥ जो आज लोकपूज्य हैं, जो अच्छे-अच्छे हाथियोंपर सवारी करते हैं, जो विलासिनी सुन्दरियोंके साथ विहार करते हैं और जिनके आगे-पीछे सामन्तगण हाथ जोड़कर चलते हैं, उन्होंने पूर्व-

न मुनयोऽपि महानुभावा यस्याः प्रभावमतुलं निगमागमाश्च ॥ १८ ॥ धन्यास्त एव तव भक्तिपरा महांतः संसारदुःखरहिताः सुखसिंधुमग्नाः ॥ ये भक्तिभावरहिता न कदापि दुःखांभोधिं जनिक्षयतरङ्गमुमे तरंति ॥ १९ ॥ ये वीज्यमानाः सितचामरैश्च क्रीडंति धन्याः शिविकाधिरूढाः ॥ तैः पूजिता त्वं किल पूर्वदेहे नानोपहारैरिति चिन्तयामि ॥ २० ॥ ये पूज्यमाना वरवारणस्था विलासिनीवृंदविलासयुक्ताः ॥ सामन्तकैश्चोपनतैर्व्रजन्ति मन्ये हि तैस्त्वं किल पूजिताऽसि ॥२१॥ एवं स्तुता मघवता देवी विश्वेश्वरी तदा ॥ प्रादुर्बभूव तरसा सिंहारूढा चतुर्भुजा ॥ २२ ॥ शंखचक्रगदापद्मान्बिभ्रती चारुलोचना ॥ रक्तांबरधरा देवी दिव्यमाल्यविभूषणा ॥ २३ ॥ तानुवाच सुरान्देवी प्रसन्नवदना गिरा ॥ भयं त्यजंतु भो देवाः शं विधास्ये किलाधुना ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढाऽतिसुन्दरी ॥ जगाम तरसा तत्र यत्र दैत्या मदान्विताः ॥ २५ ॥ प्रह्लादप्रमुखाः सर्वे दृष्ट्वा देवीं पुरःस्थिताम् ॥ ऊचुः परस्परं भीताः किं कर्तव्यमितस्तदा ॥ २६ ॥ देवं नारायणं चात्र संप्राप्ता चंडिका किल ॥ महिषांतकरी नूनं चंडमुंडविनाशिनी ॥ २७ ॥ निहनिष्यति नः सर्वानंबिका नात्र संशयः ॥ वक्रदृष्ट्या यया पूर्वं निहतौ मधुकैटभौ ॥ २८ ॥ एवं चिन्तातुरान्वीक्ष्य

जन्ममें अवश्य आपकी उत्कट आराधना की होगी ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार इन्द्रकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवती विश्वेश्वरी चतुर्भुज स्वरूपसे सिंहपर सवार होकर उनके समक्ष प्रकट हो गयीं ॥२२॥ उन देवीके सुन्दर नेत्र थे, चारों भुजाओंमें वे शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये थीं। उनके वस्त्र लाल थे और दिव्य मालायें उनके गलेमें पड़ी थीं ॥ २३ ॥ उन प्रसन्नमुखवाली भगवतीने देवताओंसे कहा—हे देवताओ ! आप लोग भय त्याग दें। मैं आपका कल्याण करूँगी ॥२४॥ ऐसा कहकर वे अतिशय सुन्दरी और सिंहारूढ भगवती तत्काल वहाँ जा पहुँचीं, जहाँ वे मदमाते दैत्य खड़े थे ॥ २५ ॥ भगवतीको समक्ष खड़ी देखकर प्रह्लाद आदि दैत्य भयभीत हो उठे और परस्पर कहने लगे कि अब क्या किया जाय ? ॥ २६ ॥ भगवान् विष्णुकी सहायताके लिए स्वयं चण्डिका देवी आ पहुँची हैं। इन्होंने ही महिषासुर तथा चण्ड-मुण्डका वध किया था ॥ २७ ॥ जिन्होंने अपनी वक्रदृष्टिसे निहारकर ही मधु-कैटभको मार डाला था, वे भगवती अम्बिका हम लोगोंको भी नष्ट कर देंगी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ दैत्योंको इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल देखकर प्रह्लादने कहा—हे दानववीर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गण ! अब लड़नेमें कुशल नहीं है। यहाँसे भागकर प्राण बचाना ही श्रेयस्कर है ॥ २९ ॥ पलायन करनेको उद्यत दैत्योंसे नमुचि नामक दैत्यने कहा—यदि आप लोग भागेंगे तो भगवती रुष्ट होकर अपने त्रिशूलसे मार डालेंगी ॥३०॥ अतएव हे महाभाग ! आप लोग ऐसा करें कि जिससे हमें और अधिक कष्ट न उठाना पड़ जाय। मेरी समझके अनुसार तो सबसे सुन्दर युक्ति यह है कि हम सब इनकी स्तुति करें और इनसे अनुमति लेकर पाताल चले चलें ॥ ३१ ॥ प्रह्लादने कहा—मैं सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली, सबकी जननी, भक्तोंको अभयदान देनेवाली और शक्तिस्वरूपा महामाया भगवतीकी स्तुति करूँगा ॥३२॥ व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परम विष्णुभक्त तथा परमार्थका तत्त्व जाननेवाले प्रह्लाद हाथ जोड़कर जगद्धात्री भगवतीकी स्तुति करते हुए कहने लगे—॥३३॥ जिनके शरीरमें सचराचर विश्व मालामें सर्पकी भ्रान्तिके समान दृष्टिगोचर होता है, उन सर्वाधिष्ठान तथा ह्रींकाररूपा भगवतीको नमस्कार है ॥३४॥ हे माता ! वास्तवमें आप ही इस स्थावर-जङ्गमात्मक विश्वकी सृष्टि करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी सृष्टि-पालन और संहारकार्यमें निमित्तमात्र हैं और आपने ही उन्हें भी बनाया है

प्रह्लादस्तानुवाच ह ॥ योद्धव्यं नाथ गन्तव्यं पलाय्य दानवोत्तमाः ॥ २९ ॥ नमुचिस्तानुवाचाथ पलायनपरानिह ॥ हनिष्यति जगन्माता रुषिता किल हेतिभिः ॥ ३० ॥ तथा कुरु महाभाग यथा दुःखं न जायते ॥ व्रजामोऽद्यैव पातालं तां स्तुत्वा तदनुज्ञया ॥ ३१ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ स्तौमि देवीं महामायां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम् ॥ सर्वेषां जननीं शक्तिं भक्तानामभयंकरीम् ॥ ३२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा विष्णुभक्तस्तु प्रह्लादः परमार्थवित् ॥ तुष्टाव जगतां धात्रीं कृताञ्जलिपुटस्तदा ॥३३॥ माला सर्पवदाभाति यस्यां सर्वं चराचरम् ॥ सर्वाधिष्ठानरूपायै तस्यै ह्रींमूर्तये नमः ॥३४॥ त्वत्तः सर्वमिदं विश्वं स्थावरं जंगमं तथा ॥ अन्ये निमित्तमात्रास्ते कर्तारस्तव निर्मिताः ॥ ३५ ॥ नमो देवि महामाये सर्वेषां जननी स्मृता ॥ को भेदस्तव देवेषु दैत्येषु स्वकृतेषु च ॥ ३६ ॥ मातुः पुत्रेषु को भेदोऽप्यशुभेषु शुभेषु च ॥ तथैव देवेष्वस्मासु न कर्तव्यस्त्वयाऽधुना ॥ ३७ ॥ यादृशास्तादृशा मातः सुतास्ते दानवाः किल ॥ यतस्त्वं विश्वजननी पुराणेषु प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥ तेऽपि स्वार्थपरा नूनं यथैव वयमच्युत ॥ नांतरं दैत्यसुरयोर्भेदोऽयं मोहसंभवः ॥ ३९ ॥ धनदारादिभोगेषु वयं सक्ता दिवानिशम् ॥ तथैव देवा देवेशि को भेदोऽसुरदेवयोः ॥ ४० ॥ तेऽपि कश्यपदायादा वयं तत्संभवाः किल ॥ कुतो विरोधसंभूतिर्जाता मातस्तवाधुना ॥ ४१ ॥ न तथा विहितं मातस्त्वयि सर्वसमुद्भवे ॥ साम्यतैव त्वया

॥३५॥ हे देवि ! हे महाभागे ! आप ही सब जीवोंकी जननी हैं। तब अपने ही द्वारा निर्मित देवताओं और दानवोंमें आप अन्तर क्यों देखती हैं ॥३६॥ पुत्र भला हो या बुरा, किन्तु माता उसपर किसी प्रकारका भेदभाव नहीं रखती। वैसे ही आप भी देवताओं और दैत्योंमें कोई भेदभाव न रक्खें। क्योंकि आप तो दोनोंकी माता हैं ॥ ३७ ॥ दानवगण अच्छे हैं चाहे बुरे, किन्तु वे भी तुम्हारे ही पुत्र हैं। हे माता ! पुराणोंमें बार-बार आपको विश्वजननी कहा गया है। हमारे ही समान देवता भी स्वार्थी हैं। अतएव देवताओं और दैत्योंमें कोई अन्तर नहीं है। यदि कोई उनमें भेद देखता है तो यह उसका अज्ञान है ॥३८॥३९॥ हे देवेशि ! जैसे हमलोग रात-दिन धन और स्त्रीके भोगमें आसक्त रहते हैं, वैसे ही देवता भी तो निरन्तर कामलिप्सामें ही लिप्त रहते हैं। तब देवताओं और दानवोंमें भेद कैसा ? ॥ ४० ॥ हे माता ! देवता महर्षि कश्यपके पुत्र हैं और हम भी उन्हींकी सन्तान हैं। तब आपके मनमें भेदभावकी उत्पत्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्यों हुई ? ॥ ४१ ॥ सबकी जननी होनेके नाते आपका यह भेदभाव शोभा नहीं देता। आप देवताओं और दानवोंको समान दृष्टिसे ही देखें ॥ ४२ ॥ सभी देवता और दानव गुणोंके संयोगसे ही बने हैं। जब देह धारण किया है, तब देवताओंको भी सत्त्वादि गुणोंके घेरेमें रहना ही पड़ेगा ॥ ४३ ॥ काम, क्रोध, मोह और लोभ सब देहधारियोंमें विद्यमान रहते हैं। तब कौन किसका विरोधी होगा ? ॥४४॥ हे माता ! आपने हम दोनोंमें जो भेदभावकी कल्पना की है, यह भी आपकी एक लीला है। हमारा तो ऐसा विश्वास है कि आपको युद्ध देखनेकी अभिलाषा थी। इसीलिए आपने इस भेदभावकी सृष्टि की है ॥ ४५ ॥ हे अनघे ! यदि ऐसा न होता तो भाई-भाईमें विरोध क्यों खड़ा होता ? हे चामुण्डे ! यदि आप कलह न देखना चाहें तो विरोध कभी हो ही नहीं सकता ॥ ४६ ॥ हे धर्मज्ञे ! मैं धर्मको जानता हूँ और इन्द्रसे भी भली-भाँति परिचित हूँ। तथापि हे देवि ! सुखभोगके निमित्त हममें और उनमें सदासे कलह होता चला आ रहा है ॥ ४७ ॥ हे अम्बिके ! आपके सिवाय इस संसारमें कोई भी शासक नहीं है। तब ऐसा कौन विज्ञ होगा, जो किसी लोभीकी बातपर विश्वास कर लेगा ? ॥ ४८ ॥

स्थाप्या देवेष्वस्मासु चैव हि ॥४२॥ गुणव्यतिकरात्सर्वे समुत्पन्नाः सुरासुराः ॥ गुणान्विता भवेयुस्ते कथं देहभृतोऽमराः ॥ ४३ ॥ कामः क्रोधश्च लोभश्च सर्वदेहेषु संस्थिताः ॥ वर्तते सर्वदा तस्मात्को विरोधी भवेज्जनः ॥ ४४ ॥ त्वया मिथो विरोधोऽयं कल्पितः किल कौतुकात् ॥ मन्यामहे विभेदेन नूनं युद्धदिदृक्षया ॥४५॥ अन्यथा खलु भ्रातृणां विरोधः कीदृशोऽनघे ॥ त्वं चेन्नेच्छसि चामुंडे वीक्षितुं कलहं किल ॥ ४६ ॥ जानामि धर्मं धर्मज्ञे वेद्मि चाहं शतक्रतुम् ॥ तथापि कलहोऽस्माकं भोगार्थं देवि सर्वदा ॥ ४७ ॥ एकः कोऽपि न शास्ताऽस्ति संसारे त्वां विनाऽम्बिके ॥ स्पृहावतस्तु कः कर्तुं क्षमते वचनं बुधः ॥४८॥ देवासुरैरयं सिंधुर्मथितः समये क्वचित् ॥ विष्णुना विहितो भेदः सुधारत्नच्छलेन वै ॥४९॥ त्वयाऽसौ कल्पितः शौरिः पालकत्वे जगद्गुरुः ॥ तेन लक्ष्मीः स्वयं लोभाद्गृहीताऽमरसुन्दरी ॥५०॥ ऐरावतस्तथेन्द्रेण पारिजातोऽथ कामधुक् ॥ उच्चैःश्रवाः सुरैः सर्वं गृहीतं वैष्णवेच्छया ॥५१॥ अनयं तादृशं कृत्वा जाता देवास्तु साधवः ॥ (अन्यायिनः सुरा नूनं पश्य त्वं धर्मलक्षणम् ॥) संस्थापिताः सुरा नूनं विष्णुना बहुमानिना ॥ ५२ ॥ नूनं दैत्याः पराभूवन्पश्य त्वं धर्मलक्षणम् ॥ क्व धर्मः कीदृशो धर्मः क्व कार्यं क्व च साधुता ॥ ५३ ॥ कथयामि च कस्याग्रे सिद्धं मैमांसिकं मतम् ॥ तार्किका युक्तिवादज्ञा विधिज्ञा वेदवादकाः ॥ ५४ ॥ उक्ताः सकर्तृकं विश्वं विवदंते जडात्मकाः ॥

एक समय देवताओं और दैत्योंने मिलकर समुद्रमंथन किया। किन्तु उस समय स्वयं भगवान् विष्णुने अमृत और रत्नोंके बँटवारेमें भेदभाव किया ॥ ४९ ॥ आपने ही भगवान् विष्णुको जगद्गुरु तथा लोकपालपदपर बैठाया था। लेकिन लोभवश उन्होंने देवसुन्दरी लक्ष्मीको स्वयं हड़प लिया ॥ ५० ॥ विष्णुके ही इच्छानुसार इन्द्रने ऐरावत हाथी, पारिजात, कामधेनु और उच्चैःश्रवा घोड़ा ले लिया। जो बाकी बचा, उसे सब देवताओंने बाँट लिया ॥ ५१ ॥ ऐसे-ऐसे अन्याय करके देवता साधु बन गये। (यदि आप धर्मकी परिभाषाको भलीभाँति देखें तो स्वतः ज्ञात हो जयगा कि देवता अन्यायी हैं।) अत्यधिक अभिमानी विष्णुने अन्यायी देवताओंको ऊँचे-ऊँचे पदोंपर बिठाल दिया है ॥ ५२ ॥ इसके विपरीत दैत्योंका पराभव हुआ। आप धर्मके लक्षणोंको अच्छी तरह देखें तो पता चल जायगा कि धर्म कहाँ है ? धर्मका स्वरूप कैसा है ? कैसा कार्य हुआ है और साधुता कहाँ है ? ॥ ५३ ॥ हे माता ! मैं किसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आगे अपना विचार रक्खूँ ? मीमांसक विद्वान् निरीश्वरवादका समर्थन करते हैं। तार्किक (नैयायिक) विद्वान् युक्तिवादका पल्ला थाम्हे हुए हैं और वैदिक विद्वान् विधिवादसे चिपके हैं ॥५४॥ एकका कथन है कि विश्वका रचयिता पुरुष है। किन्तु जड़वादियोंने प्रकृतिको ही सब कुछ मान लिया है। यदि इस अत्यन्त विस्तृत संसारका कोई एक कर्ता होता तो विरोध हो ही नहीं सकता था। क्योंकि एक कर्ताके कर्म भी समान होते। वेदोंमें भी ऐकमत्य नहीं दिखायी देता और अन्यान्य शास्त्रोंमें भी विभिन्न मत-मतान्तर विद्यमान हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ वेदान्त तर्कमें परस्परविरोधी वाक्योंकी भरमार है। इन मतभेदोंका प्रधान कारण यही है कि समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक विश्व अपने-अपने स्वार्थसाधनमें लिप्त है ॥ ५७ ॥ पूर्ण रीतिसे निःस्पृह न अब तक कोई हुआ है और न होगा। चन्द्रमाने जान-बूझकर हठात् गुरुपत्नी ताराको छीनकर अपने घरमें रख लिया ॥ ५८ ॥ धर्मके निश्चित तत्त्वको जाननेवाले इन्द्रने महर्षि गौतमकी भार्या अहल्याके साथ व्यभिचार किया। देवगुरु बृहस्पतिने अपने छोटे भाई उतथ्यकी गर्भवती पत्नीके साथ बलात्कार किया ॥५९॥ उस समय जब गर्भमें स्थित शिशुने विरोध

कर्ता भवति चेदस्मिन्संसारे वितते किल ॥ ५५ ॥ विरोधः कीदृशस्तत्र चैककर्मणि वै मिथः ॥ वेदे नैकंमतिस्तद्वच्छास्त्रेष्वपि तथा पुनः ॥ ५६ ॥ नैकवाक्यं वचस्तेषामपि वेदविदां पुनः ॥ यतः स्वार्थपरं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥५७॥ निःस्पृहः कोऽपि संसारे नाभवन्न भविष्यति ॥ शशिनाऽथ गुरोर्भार्या हृता ज्ञात्वा बलादपि ॥ ५८ ॥ गौतमस्य तथेन्द्रेण जानता धर्मनिश्चयम् ॥ गुरुणाऽनुजभार्या च भुक्ता गर्भवती बलात् ॥ ५९ ॥ शप्तो गर्भगतो बालः कृतश्चांधस्तथा पुनः ॥ विष्णुना च शिरश्छिन्नं राहोश्चक्रेण वै बलात् ॥ ६० ॥ अपराधं विना कामं तदा सत्त्ववताऽम्बिके ॥ पौत्रो धर्मवतां शूरः सत्यव्रतपरायणः ॥ ६१ ॥ यज्वा दानपतिः शांतः सर्वज्ञः सर्वपूजकः ॥ कृत्वाऽथ वामनं रूपं हरिणा छलवेदिना ॥ ६२ ॥ वंचि-तोऽसौ बलिः सर्वं हृतं राज्यं पुरा किल ॥ तथापि देवान्धर्मस्थान्प्रवदंति मनीषिणः ॥६३॥ वदंति चाटुवादांश्च धर्मवादाञ्जयं गताः ॥ एवं ज्ञात्वा जगन्मातर्यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६४ ॥ शरणा दानवाः सर्वे जहि वा रक्ष वा पुनः ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सर्वे गच्छत पातालं तत्र वासं यथेप्सितम् ॥ ६५ ॥ कुरुध्वं दानवाः सर्वे निर्भया गतमन्यवः ॥ कालः प्रतीक्ष्यो युष्माभिः कारणं स शुभेऽशुभे ॥ ६६ ॥ सुनिर्वेदपराणां हि सुखं सर्वत्र सर्वदा ॥

किया, तब देवगुरुने उसे शाप देकर अन्धा बना दिया। भगवान विष्णुने बरबस निरपराध राहुका मस्तक अपने चक्रसे काट डाला ॥ ६० ॥ हे अम्बिके ! अब आप ही बताइए कि ऐसा कार्य करनेवाले विष्णुमें सात्त्विकता कहाँ रही ? मुझ जैसे धर्मज्ञके पौत्र वीर, सत्यवादी, यज्ञकर्ता, दानी, शान्त, सर्वज्ञ और सर्वपूजक बलिका कपटनीतिमें पारंगत विष्णुने वामन रूप धारण करके समस्त साम्राज्य छीन लिया। फिर भी विद्वान् लोग देवताओंको धर्मात्मा कहते हैं ॥ ६१-६३ ॥ वे नाना प्रकारकी चापलूसी करते हुए कहते हैं कि धर्ममें आस्था होनेके कारण ही देवताओंकी विजय हुई है। इन सब बातोंपर भली-भाँति विचार करके हे जगन्माता ! आप जो उचित समझें सो करें ॥ ६४ ॥ हम सब दानव आपकी शरणमें हैं। आप चाहे हमें मारिए या जिलाइए। श्रीदेवी बोली—हे असुरो ! तुम लोग पाताललोकमें चले जाओ और वहाँ जैसे चाहो, वैसे रहो ॥ ६५ ॥ हे दानवो ! वहाँपर तुम लोग कोप त्यागकर सर्वथा निर्भय रहते हुए उस कालकी प्रतीक्षा करो, जो शुभ तथा अशुभका कारण है ॥६६॥ जिन लोगोंमें संतोष है, उन्हें सर्वत्र और सर्वदा सुख ही सुख है। इसके विपरीत जिनके हृदयमें लोभ समाया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहता है, उन्हें तीनों लोकोंका राज्य मिल जानेपर भी सुख नहीं मिल सकता ॥ ६७ ॥ लोभी लोगोंको सत्ययुगका पूर्ण फल प्राप्त हो जानेपर भी उन्हें पूर्ण सुख नहीं मिल सका। अतएव तुम लोग अभी पृथिवी त्यागकर पाताललोकमें चले जाओ ॥ ६८ ॥ मेरे आदेशका पालन करनेसे तुम्हारे सब पाप दूर हो जायँगे। व्यासजी बोले—भगवतीकी यह आज्ञा पाकर सब दानव 'बहुत अच्छा' कह और उन्हें प्रणाम करके रसातल लोकको चले गये। वहाँ भगवती उनकी रक्षा करने लगीं। इधर दानवोंके चले जानेपर देवी अन्तर्धान हो गयीं और देवता अपने-अपने लोकोंको चले गये ॥ ६९ ॥ ७० ॥ उसी समयसे देवता और दैत्य पारस्परिक वैरभाव त्यागकर रहने लगे। जो मनुष्य इस कथाको पूर्ण रीतिसे कहते या सुनते हैं, वे सब दुःखोंसे छुटकारा पाकर अन्तमें भगवतीका उत्तम लोक पाते हैं ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

त्रैलोक्यस्य च राज्येऽपि न सुखं लोभचेतसाम् ॥ ६७ ॥ कृतेऽपि न सुखं पूर्णं सस्पृहाणां फलैरपि ॥ तस्मात्त्यक्त्वा महीमेतां प्रयांत्वद्य महीतलम् ॥६८ ॥ ममाज्ञां पुरतः कृत्वा सर्वे विगतकल्मषाः ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्यास्तथेत्युक्त्वा रसातलम् ॥ ६९ ॥ प्रणम्य दानवाः सर्वे गताः शक्त्याऽभिरक्षिताः ॥ अन्तर्दधे ततो देवी देवाः स्वभुवनं गताः ॥७०॥ त्यक्त्वा वैरं स्थिताः सर्वे ते तदा देवदानवाः ॥ एतदाख्यानमखिलं यः शृणोति वदत्यथ ॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्तः प्रयाति पदमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ भृगुशापान्मुनिश्रेष्ठ हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवताराः कथं जाताः कस्मिन्मन्वन्तरे विभो ॥ १ ॥ विस्तराद्वद धर्मज्ञ अवतारकथां हरेः ॥ पापनाशकरीं ब्रह्मञ्छ्रुतां सर्वसुखावहाम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि अवतारान् हरेर्यथा ॥ यस्मिन्मन्वन्तरे जाता युगे यस्मिन्नराधिप ॥ ३ ॥ येन रूपेण यत्कार्यं कृतं नारायणेन वै ॥ तत्सर्वं नृप वक्ष्यामि संक्षेपेण तवाधुना ॥ ४ ॥ धर्मस्यैवावतारोऽभूच्चाक्षुषे मनुसंभवे ॥ नरनारायणौ धर्मपुत्रौ ख्यातौ महीतले ॥ ५ ॥ अथ वैवस्वताख्येऽस्मिन्द्वितीये तु युगे पुनः ॥ दत्तात्रेयावतारोऽत्रेः पुत्रत्वमगमद्धरिः ॥ ६ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयोऽमी देवसत्तमाः ॥ पुत्रत्वमगमन्देवास्तस्यात्रेर्भार्यया वृताः ॥ ७ ॥ अनसूयाऽत्रिपत्नी च सतीनामुत्तमा

(प्रत्येक मन्वन्तरमें होनेवाले भगवान विष्णुके अवतारोंका वर्णन) राजा जनमेजय बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे विभो! महामुनि भृगुके शापसे अद्भुतकर्मा भगवान विष्णुने किस मन्वन्तरमें कौनसा अवतार लिया था? ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ! आप विस्तारके साथ भगवानकी अवतारकथाका वर्णन करिए। क्योंकि इसे सुननेसे सब पाप नष्ट होकर सभी सुख सुलभ हो जाते हैं ॥२॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! हे नराधिप! भगवान विष्णुने जिस-जिस मन्वन्तर और जिस-जिस युगमें जो-जो अवतार लिया था, उसे मैं बता रहा हूँ। सुनिए—॥३॥ हे नृप! उन नारायणने जिस रूपसे जो कार्य सम्पन्न किया, वह सब मैं संक्षेपमें आपको बताता हूँ ॥ ४ ॥ चाक्षुष मन्वन्तरमें धर्मका अवतार हुआ। उन धर्मके नर-नारायण नामसे विख्यात दो पुत्र हुए ॥ ५ ॥ तदनन्तर वैवस्वत मन्वन्तरके त्रेतायुगमें भगवानने दत्तात्रेय अवतार लिया और वे महामुनि अत्रिके पुत्र कहलाये ॥ ६ ॥ अत्रिपत्नी अनुसूयाकी प्रार्थनापर ब्रह्मा, विष्णु और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिव ये तीनों महान् देवता उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे ॥७॥ महर्षि अत्रिकी पत्नी अनुसूया सती-साध्वी स्त्रियोंमें प्रमुख थीं। उनकी प्रार्थनापर उपर्युक्त तीनों देवता पुत्ररूप धारण करके अवतरे थे ॥ ८ ॥ उन तीनोंमें सोम ब्रह्मास्वरूप, दत्तात्रेय विष्णुस्वरूप और दुर्वासा रुद्रस्वरूप पुत्र थे ॥ ९ ॥ चतुर्थ युगमें भगवान विष्णुने एक ही शरीरसे दो रूप धारण करके देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए नृसिंहावतार लिया था। उस समय दैत्यपति हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिए भगवान् विष्णुने देवताओंको भी चकित कर देनेवाला नृसिंहरूप धारण किया था ॥ १० ॥ ११ ॥ उत्तम त्रेतायुगमें दैत्यराज बलिकी बढ़ती हुई शक्तिको कुचलनेके लिए वे महर्षि कश्यपके पुत्र होकर वामनरूपमें अवतरे ॥ १२ ॥ उन वामनरूपधारी भगवानने यज्ञशालामें छल करके बलिसे समस्त दैत्यराज हस्तगत कर लिया और उन्हें पाताल भेज दिया ॥ १३ ॥ उन्नीसवें त्रेतायुगमें भगवान विष्णु महर्षि जमदग्निके महाबलवान् पुत्र परशुरामके रूपमें अवतरे ॥ १४ ॥ वे पूर्ण जितेन्द्रिय, श्रीमान्, सत्यवादी और उस समयकी उद्दण्ड क्षत्रियजातिके विनाशक थे। उन्होंने समस्त पृथिवी क्षत्रियोंसे छीनकर महर्षि कश्यपको

सती ॥ यया संप्रार्थिता देवाः पुत्रत्वमगमंस्त्रयः ॥८॥ ब्रह्माऽभूत्सोमरूपस्तु दत्तात्रेयो हरिः स्वयम् ॥ दुर्वासा रुद्ररूपोऽसौ पुत्रत्वं ते प्रपेदिरे ॥ ९ ॥ नृसिंहस्यावतारस्तु देवकार्यार्थसिद्धये ॥ चतुर्थे तु युगे जातो द्विधारूपो मनोहरः ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपोः सम्यग्वधाय भगवान् हरिः ॥ चक्रे रूपं नारसिंहं देवानां विस्मयप्रदम् ॥ ११ ॥ बलेर्नियमनार्थाय श्रेष्ठे त्रेतायुगे तथा ॥ चकार रूपं भगवान्वामनं कश्यपान्मुनेः ॥ १२ ॥ छलयित्वा मखे भूपं राज्यं तस्य जहार ह ॥ पाताले स्थापयामास बलिं वामनरूपधृक् ॥ १३ ॥ युगे चैकोनविंशेऽथ त्रेताख्ये भगवान् हरिः ॥ जमदग्निसुतो जातो रामो नाम महाबलः ॥ १४ ॥ क्षत्रियांतकरः श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ दत्तवान्मेदिनीं कृत्स्नां कश्यपाय महात्मने ॥ १५ ॥ यो वै परशुरामाख्यो हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारस्तु राजेन्द्र कथितः पापनाशनः ॥ १६ ॥ त्रेतायुगे रघोर्वंशे रामो दशरथात्मजः ॥ नरनारायणांशौ द्वौ जातौ भुवि महाबलौ ॥ १७ ॥ अष्टाविंशे युगे शस्तौ द्वापरेऽर्जुनशौरिणौ ॥ धराभारावतारार्थं जातौ कृष्णार्जुनौ भुवि ॥ १८ ॥ कृतवंतौ महायुद्धं कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम् ॥ एवं युगे युगे राजन्नवतारा हरेः किल ॥ १९ ॥ भवंति बहवः कामं प्रकृतेरनुरूपतः ॥ प्रकृतेरखिलं सर्वं वशमेतज्जगत्त्रयम् ॥ २० ॥ यथेच्छति तथैवेयं भ्रामयत्यनिशं जगत् ॥ पुरुषस्य प्रियार्थं सा रचयत्यखिलं जगत् ॥ २१ ॥ सृष्ट्वा पुरा हि भगवाञ्जगदेतच्चराचरम् ॥

अर्पण कर दी ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र ! अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान परशुरामके पापनाशक अवतारका मैंने वर्णन कर दिया ॥ १६ ॥ त्रेतायुगमें भगवान विष्णुने रघुवंशमें दशरथतनय रामके रूपमें अवतार लिया। उसके बाद वे संसारमें महाबली नर-नारायण होकर अवतरे ॥ १७ ॥ अट्ठाईसवें द्वापर युगमें उन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिए कृष्ण और अर्जुन बनकर अवतार लिया ॥ १८ ॥ उन दोनोंने कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें बड़ा भयानक युद्ध किया था। हे राजन् ! इस प्रकार युग-युगमें भगवान विष्णुने अनेक अवतार लिये ॥ १९ ॥ उनके सभी अवतार प्रकृतिके संसर्गसे होते हैं। तीनों लोक सदा प्रकृतिके वशीभूत रहते हैं ॥ २० ॥ वह जैसा चाहती है, जगत्को वैसा नाच नचाती है। परम पुरुषको प्रसन्न करने लिए ही वह समस्त संसारकी रचना करती है ॥ २१ ॥ प्राचीनकालमें इस चराचर जगत्की सृष्टि करके भगवान सबके आदिरूप, सर्वगामी, दुर्ज्ञेय, परम, अव्यय, निरालम्ब, निराकार, निःस्पृह और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परात्पर बन गये। उन्हींके उपाधिभेदसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव सृष्टिके संचालनकार्यमें नियुक्त हुए। किन्तु इनके भी ऊपरका पद भगवती परा प्रकृतिको मिला ॥ २२ ॥ २३ ॥ जगत्की सृष्टि करनेके कारण वे परा प्रकृति, उसका पालन करनेके कारण शिवा और कल्पान्तमें संहारकार्य कारनेके कारण कामदा कहलाती हैं। इस प्रकार विश्वको मोहमें डालनेवाली भगवतीके तीन रूप होते हैं। प्रकृतिके सम्पर्कसे ब्रह्मा सृष्टिकार्य, विष्णु पालनकार्य और शिव संहारकार्यका सम्पादन करते हैं। पूर्वकालमें उन भगवतीने ही एक काकुत्स्थवंशी महाराजको उत्पन्न किया और दानवोंपर विजय प्राप्त करनेके लिए उन्हें किसी स्थानपर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार संसारके सब प्राणी विधाताके नियममें बँधकर सदा सुख-दुःखयुक्त रहते हैं ॥ २४–२७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

मर्यादिः सर्वगश्चासौ दुर्ज्ञेयः परमोऽव्ययः ॥ २२ ॥ निरालंबो निराकारो निःस्पृहश्च परात्परः ॥ उपाधितस्त्रिधा भाति यस्याः सा प्रकृतिः परा ॥ २३ ॥ उत्पत्तिकालयोगात्सा भिन्ना भाति शिवा तदा ॥ सा विश्वं कुरुते कामं सा पालयति कामदा ॥ २४ ॥ कल्पान्ते संहरत्येव त्रिरूपा विश्वमोहिनी ॥ तया युक्तोऽसृजद्ब्रह्मा विष्णुः पाति तयाऽन्वितः ॥ २५ ॥ रुद्रः संहरते कामं तया संमिलितः शिवः ॥ सा चैवोत्पाद्य काकुत्स्थं पुरा वै नृपसत्तमम् ॥ २६ ॥ कुत्रचित्स्थापयामास दानवानां जयाय च ॥ एवमस्मिंश्च संसारे सुखदुःखान्विताः किल ॥ भवंति प्राणिनः सर्वे विधितंत्रनियंत्रिताः ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ वारांगनास्त्वयाऽऽख्याता नरनारायणाश्रमे ॥ एकं नारायणं शांतं कामयानाः स्मरातुराः ॥ १ ॥ शप्तुकामस्तदा जातो मुनिर्नारायणश्च ताः ॥ निवारितो नरेणाथ भ्रात्रा धर्मविदा नृप ॥ २ ॥ किं कृतं मुनिना तेन व्यसने समुपस्थिते ॥ ताभिः संकल्पिते नाथकामार्थाभिर्भृशं मुने ॥ ३ ॥ शक्रेणोत्पादिताभिश्च बहुप्रार्थनया पुनः ॥ याचितेन विवाहार्थं किं कृतं तेन जिष्णुना ॥ ४ ॥ इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि चरितं तस्य मोक्षदम् ॥ नारायणस्य मे ब्रूहि विस्तरेण पितामह ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यथा तस्य महात्मनः ॥

(नर-नारायणके आश्रमपर इंद्र द्वारा भेजी गयी सुन्दरियोंका वृत्तान्त) राजा जनमेजय बोले—हे महामुने! पहले आप कह आये हैं कि नर-नारायणके आश्रमपर इंद्रके द्वारा प्रेषित अप्सरायें शान्त ऋषि नारायणपर मोहित हो गयी थीं ॥ १ ॥ जिससे कुपित होकर नारायण उन्हें शाप देनेको उद्यत हो गये। तब हे मुने! उनके धर्मज्ञ भ्राता नरने उन्हें रोक दिया ॥ २ ॥ हाँ, तो अब यह बताइए कि ऐसे धर्मसंकटके अवसरपर महामुनि नारायणने क्या किया? उनपर आसक्त सुरसुन्दरियोंने तो उन्हें मनही मन अपना पति मान लिया था ॥३॥ उन अप्सराओंको इंद्रने वहाँ भेजा था। उन सबने विवाह कर लेनेके लिए बहुत अनुनय-विनय किया। उस समय महामुनि नारायणने क्या किया? ॥ ४ ॥ भगवान नारायणके इस मोक्षदायक चरित्रको सुननेकी मेरी प्रबल अभिलाषा है! अतएव हे पितामह! आप विस्तारपूर्वक इस वृत्तांतको कहिए ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! अब धर्मके पुत्र महात्मा नारायणका चरित्र विस्तार-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के साथ बता रहा हूँ, आप सुनें ॥६॥ जब महामुनि नरने देखा कि नारायण शाप दे देनेको सन्नद्ध हैं, तब उन्हें आश्वासन देकर वैसा करनेसे रोक दिया ॥ ७ ॥ कुछ ही क्षणों बाद जब उनका क्रोध शान्त हो गया, तब मन्द-मन्द मुसकाते हुए महामुनि धर्मतनय नारायणने उन अप्सराओंसे बहुत ही मधुर वाणीमें कहा—॥ ८॥ हे सुरसुन्दरियों ! इस जन्ममें हम दोनों भाइयोंने ऐसा संकल्प कर रक्खा है कि किसी तरह विवाह नहीं करेंगे ॥९॥ अतएव हमारे ऊपर कृपा करके अब आप लोग स्वर्ग लौट जायँ । क्योंकि धार्मिक विचारसम्पन्न लोग दूसरोंका व्रतभंग नहीं करते ॥१०॥ हे सुनयनी अप्सराओं ! शृङ्गाररसमें रतिको स्थायी भाव माना जाता है । ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेके कारण हममें उसका अभाव है । तब मैं तुम्हारे साथ सम्बन्ध कैसे कर सकता हूँ ? ॥११॥ बिना कारणके कार्य नहीं होता । विद्वानोंका यह सर्वमान्य सिद्धान्त है । इसी बातको कवियोंने अपने साहित्यशास्त्रमें रसका स्थायीभाव कहा है ॥ १२ ॥

धर्मपुत्रस्य धर्मज्ञ विस्तरेण वदामि ते ॥६॥ शप्तुकामस्तु संदृष्टो नरेणाथ यदा हरिः ॥ वारितोऽसौ समाश्वास्य मुनिर्नारायणस्तदा ॥७॥ शांतकोप-
स्तदोवाच तास्तपस्वी महामुनिः ॥ स्मितपूर्वमिदं वाक्यं मधुरं धर्मनन्दनः ॥८॥ अस्मिञ्जन्मनि चार्वंग्यः कृतसंकल्पवानहम् ॥ आवाभ्यां च न कर्तव्यः
सर्वथा दारसंग्रहः ॥६॥ तस्माद्गच्छंतु त्रिदिवं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ धर्मज्ञा न प्रकुर्वन्ति व्रतभंगं परस्य वै ॥१०॥ शृङ्गारेऽस्मिन्रसे नूनं स्थायीभावो
रतिः स्मृतः ॥ कथं करोमि सम्बन्धं तदभावे सुलोचनाः ॥११॥ कारणेन बिना कार्यं न भवेदिति निश्चयः ॥ कविभिः कथितं शास्त्रे स्थायीभावो रसः
किल ॥१२॥ धन्यः सुचारुसर्वाङ्गः सभाग्योऽहं धरातले ॥ प्रीतिपात्रं यतो जातो भवतीनामकृत्रिमम् ॥१३॥ भवतीभिः कृपां कृत्वा रक्षणीयं व्रतं मम ॥
भविष्यामि महाभागाः पतिरप्यन्यजन्मनि ॥१४॥ अष्टाविंशे विशालाक्ष्यो द्वापरेऽस्मिन्धरातले ॥ देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं प्रभविष्यामि सर्वथा ॥१५॥
तदा भवत्यो मद्दाराः प्राप्य जन्म पृथक्पृथक् ॥ भूपतीनां सुता भूत्वा पत्नीभावं गमिष्यथ ॥ १६ ॥ इत्याश्वास्य हरिस्तास्तु प्रतिश्रुत्य परिग्रहम् ॥
व्यसर्जयत्स भगवाञ्जग्मुश्च विगतज्वराः ॥ १७ ॥ एवं विसर्जितास्तेन गताः स्वर्गं तदांगनाः ॥ शक्राय कथयामासुः कारणं सकलं पुनः ॥ १८ ॥
आश्रुत्य मघवांस्ताभ्यो वृत्तान्तं तस्य विस्तरात् ॥ तुष्टाव तं महात्मानं नारीर्दृष्ट्वा तथोर्वशीः ॥ १९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ अहो धैर्यं मुनेः कामं तथैव च
तपोबलम् ॥ येनोर्वश्यः स्वतपसा तादृग्रूपाः प्रकल्पिताः ॥ २० ॥ इति स्तुत्वा प्रसन्नात्मा बभूव सुरराट् ततः ॥ नारायणोऽपि धर्मात्मा तपस्यभिर-

मैं धन्य हूँ, मेरे सभी अंग बड़े सुन्दर और सुडौल हैं । इस धरातलपर मैं इसलिए और भी भाग्यवान् हूँ कि मैं आप सबका स्वाभाविक प्रेमपात्र बन सका ॥ १३ ॥ आपलोग कृपा करके मेरे ब्रह्मचर्यव्रतकी रक्षा करिए । हे महाभागा रमणियो ! मैं दूसरे जन्ममें आपका पति बनूँगा ॥ १४ ॥ हे विशालनयनी सुंदरियो ! देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए मैं अट्ठाईसवें द्वापर युगमें फिर जगतीतलपर अवतरूँगा ॥१५॥ उस समय तुमलोग विभिन्न राजवंशोंमें जन्म ले-लेकर राजकुमारियाँ होओगी । तभी मेरे साथ तुम्हारा पति-पत्नीसम्बन्ध होगा ॥ १६ ॥ इस प्रकार नारायणने पाणिग्रहणका आश्वासन देकर उन देवाङ्गनाओंको विदा किया । ऐसा आश्वासन पाकर उनका भी कामज्वर शान्त होगया और वे देवलोक चली गयीं । वहाँ पहुँचकर उन्होंने देवराज इंद्रको सब वृत्तांत कह सुनाया ॥ १७ ॥ १८ ॥ उनके द्वारा नारायणका हाल सुन तथा साथ आयी हुई उर्वशी आदि सुंदरियोंको देखकर इंद्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ नारा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यणकी प्रशंसा करते हुए इंद्रने कहा–अहो ! उन मुनिराजमें कितना अदम्य धैर्य है। उसी प्रकार उनका तपोबल भी असाधारण है। तभी तो उन्होंने अपनी जाँघसे उर्वशी जैसी रूप-लावण्यमयी इतनी अधिक सुंदरियोंको उत्पन्न कर दिया ॥२०॥ इस प्रकार नारायणकी स्तुति करते हुए देवराज इंद्र आनन्दविभोर होगये। उधर धर्मात्मा नारायण भी अपनी तपस्यामें लग गये ॥ २१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मैंने आपको महात्मा नर और नारायणका अद्भुत वृत्तान्त सुना दिया ॥ २२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! महामुनि भृगुके शापवश पृथिवीका भार उतारनेके लिए वे ही नर-नारायण कृष्ण और अर्जुनके रूपमें अवतरे थे ॥२३॥ राजा जनमेजय बोले–हे मानदाता ! अब आप हमें विस्तारपूर्वक कृष्णावतारका चरित्र सुनाइए और मेरे मनमें जो शंकायें हैं, उनका निवारण करिए ॥२४॥ श्रीकृष्ण और बलराम जिनके पुत्र होकर जनमे, उन वसुदेव-देवकीको इस प्रकार दुःख क्यों सहना पड़ा ? ॥२५॥ जिनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर स्वयं भगवानको उनका पुत्र बनना पड़ा था, उन वसुदेव-देवकीको हथकड़ी-बेड़ी पहनकर वर्षों कंसके कारागारमें क्यों रहना पड़ा ? ॥२६॥ श्रीकृष्णका जन्म तो मथुरामें हुआ था। फिर वे गोकुल कैसे गये ? उसके

तोऽभवत् ॥ २१ ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं मुनेर्वृत्तांतमद्भुतम् ॥ नारायणस्य सकलं नरस्य च महामुने ॥२२॥ तौ हि कृष्णार्जुनौ वीरौ भूभारहरणाय च ॥ जातौ तौ भरतश्रेष्ठ भृगोः शापवशादिह ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ कृष्णावतारचरितं विस्तरेण वदस्व मे ॥ संदेहो मम चित्तेऽस्ति तं निवारय मानद ॥ २४ ॥ ययोः पुत्रत्वमापन्नौ हर्यनंतौ महाबलौ ॥ देवकीवसुदेवौ तौ दुःखभाजौ कथं मुने ॥ २५ ॥ कंसेन निगडे बद्धौ पीडितौ बहुवत्सरान् ॥ ययोः पुत्रो हरिः साक्षात्तपसा तोषितोऽभवत् ॥ २६ ॥ जातोऽसौ मथुरायां तु गोकुले स कथं गतः ॥ कंसं हत्वा द्वारवत्यां निवासं कृतवान्कथम् ॥ २७ ॥ पित्रादिसेवितं देशं समृद्धं पावनं किल ॥ त्यक्त्वा देशांतरेऽनार्ये गतवान्स कथं हरिः ॥ २८ ॥ कुलं च द्विजशापेन कथमुत्सादितं हरेः ॥ भारावतारणं कृत्वा वासुदेवः सनातनः ॥२९॥ देहं मुमोच तरसा जगाम च दिवं हरिः ॥ पापिष्ठानां च भारेण व्याकुलाऽभूच्च मेदिनी ॥३०॥ ते हता वासुदेवेन पार्थेनामितकर्मणा ॥ लुंठिता यैर्हरेः पत्न्यस्ते कथं न निपातिताः ॥३१॥ भीष्मो द्रोणस्तथा कर्णो बाह्लीकोऽप्यथ पार्थिवः ॥ वैराटोऽथ विकर्णश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्थिवः ॥ ३२ ॥ सोमदत्तादयः सर्वे निहताः समरे नृप ॥ तेषामुत्तारितो भारश्चौराणां न हतः कथम् ॥ ३३ ॥ कृष्णपत्न्यः कथं दुःखं प्राप्ताः प्रान्ते पतिव्रताः ॥ संदेहोऽयं मुनिश्रेष्ठ चित्ते मे परिवर्तते ॥३४॥ वसुदेवस्तु धर्मात्मा पुत्रदुःखेन तापितः ॥ त्यक्त्वान्स

बाद कंसका वध करके वे द्वारकामें क्यों जाकर बसे ? ॥ २७ ॥ मथुरा तो बड़ी पवित्र, समृद्ध और उनके पूर्वजोंकी प्राचीन राजधानी थी। तब उसे त्यागकर भगवान द्वारकाके अनार्य देशमें क्यों गये ? ॥ २८ ॥ भगवानके वंशका एक ब्राह्मणके शापसे क्यों उच्छेद हुआ ? वे सनातन भगवान वासुदेव पृथ्वीका भार हरनेके बाद ही शरीर त्यागकर स्वर्ग क्यों चले गये ? पापियोंके भारसे दबकर पृथिवी व्याकुल थी। सो उन पापियोंको श्रीकृष्ण और अर्जुनने मार-मारकर नष्ट कर दिया। किन्तु जिन चोरोंने साक्षात् भगवानकी स्त्रियोंका अपहरण किया, उन्हें क्यों भगवानने नहीं मारा ? ॥२९–३१॥ भीष्म, द्रोण, कर्ण, बाह्लीकनरेश, विराट, विकर्ण, महाराज धृष्टद्युम्न और सोमदत्त आदि राजे तो समरभूमिमें मार डाले गये। ऐसा करके भगवानने पृथिवीका भार उतारा। किन्तु उन चोरों-डाकुओंके भारसे पृथिवीको उन्मुक्त क्यों नहीं किया ? ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भगवान कृष्णकी पतिव्रता स्त्रियोंको अन्तिम समय उस प्रान्तमें इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार दुःख क्यों सहना पड़ा ? हे मुनिराज ! मेरे मनमें यह बहुत बड़ा संशय है ॥ ३४ ॥ पुत्रमरणके दुःखसे सन्तप्त धर्मात्मा वसुदेवको आत्मघात करके अकालमृत्युकी गोदमें जाना पड़ा ॥ ३५ ॥ हे मुनिसत्तम ! पाण्डव बड़े धर्मात्मा थे और भगवान कृष्णमें उनकी अनन्य भक्ति थी। फिर भी उन्हें क्यों अपार कष्ट सहने पड़े ? ॥ ३६ ॥ साक्षात् लक्ष्मीकी अंशस्वरूपा और वेदीके मध्यसे उत्पन्न द्रौपदीको क्यों दुःख उठाना पड़ा ? ॥३७॥ उस रजस्वला एवं युवती द्रौपदीका केश पकड़कर दुःशासन राजसभामें क्यों ले गया ? ॥ ३८ ॥ वनवासके समय सिन्धुराज जयद्रथने उसे क्यों सताया ? अज्ञातवासके अवसरपर कीचकने उस रोती हुई अबलाको क्यों दुःख दिया ? ॥३९॥ द्रौपदी बेचारीके कुल पाँच पुत्र थे। उन्हें अश्वत्थामाने घरके भीतर घुसकर क्यों मार डाला ? सुभद्राके पुत्र अभिमन्युको रणभूमिमें बाल्यावस्थामें ही क्यों मार डाला गया ? ॥ ४० ॥ महारानी देवकीके छ पुत्रोंको कंसने क्यों मार डाला और सर्वसमर्थ होते हुए भी भगवान् कृष्णने होनी होकी क्यों नहीं पलट दिया ? ॥४१॥ यादवोंको ब्राह्मणका शाप क्यों मिला और प्रभासक्षेत्रमें उनका निधन क्यों हुआ ? इस प्रकार भयानक

कथं प्राणानपमृत्युं जगाम ह ॥ ३५ ॥ पांडवा धर्मसंयुक्ताः कृष्णे च निरताः सदा ॥ ते कथं दुःखभोक्तारो ह्यभवन्मुनिसत्तम ॥ ३६ ॥ द्रौपदी च महाभागा कथं दुःखस्य भागिनी ॥ वेदीमध्याच्च संजाता लक्ष्म्यंशसंभवा किल ॥३७॥ सभायां सा समानीता रजोदोषसमन्विता ॥ बाला दुःशासनेनाथ केशग्रहणकर्शिता ॥ ३८ ॥ पीडिता सिंधुराज्ञाऽथ वनमध्यगता सती ॥ तथैव कीचकेनापि पीडिता रुदती भृशम् ॥ ३९ ॥ पुत्राः पंचैव तस्यास्तु निहता द्रौणिना गृहे ॥ सुभद्रायाः सुतो युद्धे बाल एव निपातितः ॥ ४० ॥ तथा च देवकीपुत्राः षट् कंसेन निषूदिताः ॥ समर्थेनापि हरिणा दैवं न कृतमन्यथा ॥ ४१ ॥ यादवानां तथा शापः प्रभासे निधनं पुनः ॥ कुलक्षयस्तथा तीव्रस्तत्पत्नीनां च लुंठनम् ॥ ४२ ॥ विष्णुना चेश्वरेणापि साक्षान्नारायणेन च ॥ उग्रसेनस्य सेवा वै दासवत्सततं कृता ॥४३॥ संदेहोऽयं महाभाग तत्र नारायणे मुनौ ॥ सर्वजन्तुसमानत्वं व्यवहारे निरंतरम् ॥ ४४ ॥ हर्षशोकादयो भावाः सर्वेषां सदृशाः कथम् ॥ ईश्वरस्य हरेर्जाता कथमप्यन्यथा गतिः ॥ ४५ ॥ तस्माद्विस्तरतो ब्रूहि कृष्णस्य चरितं महत् ॥ अलौकिकेन हरिणा कृतं कर्म महीपते ॥ ४६ ॥ हता आयुःक्षये दैत्याः क्लेशेन महता पुनः ॥ कैश्वर्यशक्तिः प्रथिता हरिणा मुनिसत्तम ॥ ४७ ॥ रुक्मिणीहरणे नूनं गृहीत्वाऽथ पलायनम् ॥ कृतं हि वासुदेवेन चौरवच्चरितं तदा ॥ ४८ ॥ मथुरामंडलं त्यक्त्वा

कुलसंहारके बाद भगवानकी स्त्रियोंका अपहरण क्यों हुआ ? ॥४२॥ जब भगवान कृष्ण स्वयं नारायण, ईश्वर और विष्णु थे, तब उन्होंने दासके समान उग्रसेनकी सदा सेवकाई क्यों की ? ॥४३॥ हे महाभाग ! महामुनि नारायणके विषयमें मुझे यह बड़ा सन्देह है कि उनका आचार-व्यवहार साधारण प्राणियोंके ही समान था ॥ ४४ ॥ जैसे साधारण लोगोंको हर्ष-शोक होते हैं, वैसे ही उन्हें भी होते थे। यदि वे ईश्वर थे तो उनमें कोई विलक्षण बात क्यों नहीं देखी गयी ? ॥४५॥ अतएव अब आप विस्तारपूर्वक भगवान् कृष्णके महान् चरित्रका वर्णन करिए। मैंने सुना था कि लोकोत्तर महापुरुष श्रीकृष्णने पृथ्वीपर बहुत बड़े बड़े कार्य किये थे ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तम ! आयु क्षीण हो जानेपर दैत्योंको इतना महान् कष्ट सहकर श्रीकृष्णने मारा। ऐसा करके उन्होंने कौन बड़ी भारी ईश्वरता दिखायी ? ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार रुक्मिणीस्वयंवरके अवसरपर वे रुक्मिणीको लेकर भाग गये। उस समय तो भगवान् कृष्णने चोरों जैसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आचरण किया था ॥ ४८ ॥ सर्वथा समृद्ध और अपनी कुलपरम्परासे परिपालित मथुरामण्डलको त्यागकर जरासंधके भयसे वे द्वारका चले गये ॥ ४९ ॥ उस समय किसीको यह नहीं ज्ञात हुआ कि ये भगवान् हरि या ईश्वर हैं। हे ब्रह्मन्! उन्होंने व्रजमें भी अपनेको छिपाकर रक्खा। इसका कारण क्या था, सो बताइए ॥ ५० ॥ हे महाराज वसुकी पुत्री सत्यवतीके तनय! मेरे हृदयमें इस प्रकारके बहुतेरे संदेह हैं। आज आप उन्हें नष्ट कर दीजिए। क्योंकि हे महाभाग! हे द्विजोत्तम! आप सर्वज्ञ हैं ॥५१॥ एक गोपनीय संदेह और मेरे मनमें बैठा हुआ है, जो किसी प्रकार नहीं निवृत्त हो रहा है। वह यह कि द्रौपदीके पाँच पति क्यों थे? यह आचरण क्या लोकमें निन्दनीय नहीं माना जायगा? विद्वान् लोग सदाचारको ही प्रमाण मानते हैं। तब समर्थ होते हुए भी उन्होंने पशुधर्मको क्यों अपनाया?॥५२॥५३॥ साक्षात् देवतास्वरूप भीष्मपितामहने अपने छोटे भाईके मर जानेपर उसकी स्त्रीसे अन्य पुरुष द्वारा गर्भाधान कराके गोलक संतान द्वारा अपने वंशकी रक्षा की। क्या उनका यह काम संसारमें प्रशंसनीय माना जायगा? ॥५४॥ विभिन्न मुनियोंने जो यह धार्मिक निर्णय किया है कि जिस किसी भी उपायसे

समृद्धं कुलसंमतम् ॥ जरासंधभयात्तेन द्वारकागमनं कृतम् ॥ ४९ ॥ तदा केनापि न ज्ञातो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ किंचित्प्रब्रूहि मे ब्रह्मन्कारणं व्रजगोपनम् ॥ ५० ॥ एते चान्ये च बहवः संदेहा वासवीसुत ॥ नाशयाद्य महाभाग सर्वज्ञोऽसि द्विजोत्तम ॥ ५१ ॥ गोप्यस्तथैकः संदेहो हृदयान्न निवर्तते ॥ पांचाल्याः पंचभर्तृत्वं लोके किं न जुगुप्सितम् ॥५२॥ सदाचारं प्रमाणं हि प्रवदंति मनीषिणः ॥ पशुधर्मः कथं तैस्तु समर्थैरपि संश्रितः ॥५३॥ भीष्मेणापि कृतं किं वा देवरूपेण भूतले ॥ गोलकौ तौ समुत्पाद्य यत्तु वंशस्य रक्षणम् ॥५४॥ धिग्धर्मनिर्णयः कामं मुनिभिः परिदर्शितः ॥ येन केनाप्युपायेन पुत्रोत्पादनलक्षणः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कृष्णस्य चरितं महत् ॥ अवतारकारणं चैव देव्याश्चरितमद्भुतम् ॥ १ ॥ धरैकदा भराक्रांता रुदती चातिकर्शिता ॥ गोरूपधारिणी दीना भीताऽगच्छत्त्रिविष्टपम् ॥ २ ॥ पृष्टा शक्रेण किं तेऽद्य वर्तते भयमित्यथ ॥ केन वै पीडिताऽसि त्वं किं ते दुःखं वसुन्धरे ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वेला तदोवाच शृणु देवेश मेऽखिलम् ॥ दुःखं पृच्छसि यत्त्वं मे भाराक्रांताऽस्मि मानद ॥ ४ ॥ जरासंधो महापापी मागधेषु पतिर्मम ॥ शिशुपालस्तथा चैद्यः काशिराजः प्रतापवान् ॥ ५ ॥ रुक्मी च बलवान्कंसो नरकश्च महाबलः ॥ शाल्वः सौभपतिः क्रूरः केशी

पुत्र उत्पन्न करना चाहिए। ऐसे निर्णयको धिक्कार है ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

(पापियों और अत्याचारियोंके भारसे त्रस्त पृथिवीका देवलोकको प्रस्थान) व्यासजी बोले—हे राजन्! अब मैं भगवान कृष्णके महान् चरित्र, उनके अवतारका कारण और देवीके चरित्रोंका वर्णन करता हूँ, आप सुनें ॥ १ ॥ एक समय असह्य पापके भारसे दबी, बराबर रोती, अतिशय कृश, दीन तथा भयभीत पृथिवी गौका रूप धारण करके देवलोक गयी ॥२॥ इंद्रने उससे कहा—हे वसुंधरे! तुम्हें किस बातका भय है? क्या किसीने तुम्हें सताया है? आखिर तुम्हें कौनसा कष्ट है? ॥ ३ ॥ यह सुनकर पृथिवी बोली—हे देवेश! जब आप मेरा दुःख ही पूछ रहे हैं तो मैं सब बता दूँगी। हे मानद! इस समय मैं पापके भारसे बुरी तरह दबी हुई हूँ ॥ ४ ॥ मगधदेशका राजा महापापी जरासंध, चेदिराज शिशुपाल, प्रतापशाली काशि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राज, रुक्मी, बलवान् कंस, महाबली नरकासुर, सौभनरेश, शाल्व, क्रूर केशी, धेनुकासुर और वत्सासुर ये सब मेरे (पृथिवीके) पति कहलाते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ किंतु ये सभी राजे धर्म-रहित, सदा आपसमें झगड़नेवाले, पापाचरणसम्पन्न, राजमदसे उन्मत्त और कालके मूर्त रूप हैं ॥ ७ ॥ हे इंद्र ! ये सब मुझे बहुत दुःख देते हैं। हे विभो ! मैं इनका बोझ ढोनेमें अपनेको असमर्थ पा रही हूँ। मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मुझे इस बातकी बड़ी चिंता है ॥ ८ ॥ हे इंद्र ! एक समय सबके प्रभु भगवान् विष्णुने वराहरूप धारण करके मुझे दुःख दिया था। तबसे मैं बराबर दुःखपर दुःख उठाती चली आ रही हूँ ॥ ९ ॥ यद्यपि कश्यपतनय दुष्ट दैत्य हिरण्याक्षने मुझे ले जाकर महासमुद्रमें डाल दिया था और मैं उसमें डूब गयी थी ॥ १० ॥ उस समय भगवान विष्णुने शूकररूप धारण करके उस दैत्यको मारा और मेरा उद्धार करके उन्होंने मुझे अचलभावसे स्थापित किया ॥ ११ ॥ यदि वे ऐसा न करते तो मैं रसातलमें बड़े आन-

धेनुकवत्सकौ ॥ ६ ॥ सर्वे धर्मविहीनाश्च परस्परविरोधिनः ॥ पापाचारा मदोन्मत्ताः कालरूपाश्च पार्थिवाः ॥७॥ तैरहं पीडिता शक्र भाराक्रान्ताऽक्षमा विभो ॥ किं करोमि क्व गच्छामि चिंता मे महती स्थिता ॥ ८ ॥ पीडिताऽहं वराहेण विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ शक्र जानीहि हरिणा दुःखाद् दुःखतरं गता ॥ ६ ॥ याताऽहं दुष्टदैत्येन कश्यपस्यात्मजेन वै ॥ हृताऽहं हिरण्याक्षेण मग्ना तस्मिन्महार्णवे ॥ १० ॥ तदा शूकररूपेण विष्णुना निहतोऽप्यसौ ॥ उद्धृताऽहं वराहेण स्थापिता हि स्थिरा कृता ॥ ११ ॥ नोचेद्रसातले स्वस्था स्थिता स्यां सुखशायिनी ॥ न शक्ताऽस्म्यद्य देवेश भारं वोढुं दुरात्मनाम् ॥ १२ ॥ अग्रे दुष्टः समायाति ह्यष्टाविंशस्तथा कलिः ॥ तदाहं पीडिता शक्र गंताऽस्म्याशु रसातलम् ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वं देवदेवेश दुःखरूपार्णवस्य च ॥ पारदो भव भारं मे हर पादौ नमामि ते ॥ १४ ॥ इन्द्र उवाच ॥ इले किं ते करोम्यद्य ब्रह्माणं शरणं व्रज ॥ अहं तत्रागमिष्यामि स ते दुःखं हरिष्यति ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा त्वरिता पृथ्वी ब्रह्मलोकं गता तदा ॥ शक्रोऽपि पृष्ठतः प्राप्तः सर्वदेवपुरःसरः ॥ १६ ॥ सुरभीमागतां तत्र दृष्ट्वोवाच प्रजापतिः ॥ महीं ज्ञात्वा महाराज ध्यानेन समुपस्थिताम् ॥ १७ ॥ कस्माद्रुदसि कल्याणि किं ते दुःखं वदाधुना ॥ पीडिताऽसि च केन त्वं पापाचारेण भूर्वद ॥ १८ ॥ धरोवाच ॥ कलिरायाति दुष्टोऽयं बिभेमि तद्भयादहम् ॥ पापाचाराः प्रजास्तत्र भविष्यन्ति

न्दसे रहती। हे देवेश ! अब मैं इन दुष्टोंका भार वहन करनेमें असमर्थ हूँ ॥१२॥ आगे चलकर अट्ठाईसवाँ कलियुग आ रहा है। उस समय मेरा कष्ट और बढ़ जायगा। हे इंद्र ! तब तो मैं शीघ्र रसातलमें चली जाऊँगी ॥ १३ ॥ अतएव हे देवेश ! मैं आपके पैरों पड़ती हूँ। आप मेरा यह भार उतारकर मुझे दुःखरूपी महासागरसे पार कर दीजिए ॥ १४ ॥ इंद्र बोले—हे वसुंधरे ! इस विषयमें मैं क्या कर सकता हूँ ? तुम ब्रह्माजीकी शरणमें जाओ। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहा हूँ। वे अवश्य तुम्हारा दुःख दूर कर देंगे ॥१५॥ यह सुनकर पृथिवी तत्काल ब्रह्मलोकमें जा पहुँची। उसके पीछे इंद्र भी बहुतेरे देवताओंको साथ लिये हुए वहाँ पहुँच गये ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी उस समय ध्यानमग्न थे। हे महाराज जनमेजय ! दृष्टि खुलनेपर उन्होंने गोरूपधारिणी पृथिवीको उपस्थित देखकर कहा—॥ १७ ॥ हे कल्याणी ! तुम क्यों रो रही हो ? तुम्हें क्या कष्ट है ? सो बताओ। हे पृथिवी ! तुम्हें किस पापीने सताया है ? साफ-साफ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहो ॥ १८ ॥ पृथिवी बोली-हे जगत्पते ! शीघ्र ही दुष्ट कलियुगका आगमन होनेवाला है । उसीसे मैं भयभीत हूँ । क्योंकि उसके राज्यमें समस्त प्रजा पापिनी हो जायगी ॥ १९ ॥ सब राजे दुराचारी हो जायँगे, वे आपसमें युद्ध करेंगे और प्रजाका धन हड़पनेमें डाकुओंको भी मात कर देंगे । क्योंकि पूर्वजन्मके राक्षस ही इस युगमें राजा होंगे ॥२०॥ सो हे पितामह ! वर्तमान दुष्टोंका वध करके मेरा भार उतारिए । हे महाराज ! इन राजाओंको सेनाके बोझसे मैं दबी जा रही हूँ ॥ २१ ॥ ब्रह्माजीने कहा-हे देवि ! तुम्हारा भार उतारनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। चलो, देवदेव चक्रपाणि भगवान् विष्णुके यहाँ चलें ॥ २२ ॥ भगवान जनार्दन तुम्हारा भार उतार देंगे । तुम्हारे कष्टके बारेमें पहलेसे ही भली भाँति सोचकर मैंने यह मार्ग निकाला है ॥२३॥ हे देवराज ! आप भी हमारे साथ विष्णु भगवान्के पास चलिए । व्यासजी बोले—ऐसा कहकर वेदोंके रचयिता चतुर्मुख ब्रह्माजी अपने वाहन हंसपर सवार हुए और सब देवताओं तथा गोरूप-धारिणी पृथिवीको साथ लिये विष्णुभगवानके वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर वे भक्तिसे गद्गदहृदय होकर वैदिक मंत्रों द्वारा भगवानकी स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी

जगत्पते ॥ १६ ॥ राजानश्च दुराचाराः परस्परविरोधिनः ॥ चौरकर्मरताः सर्वे राक्षसाः पूर्णवैरिणः ॥ २० ॥ तान्हत्वा नृपतीन्भारं हर मेऽद्य पितामह ॥ पीडिताऽस्मि महाराज सैन्यभारेण भूभृताम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नाहं शक्तस्तथा देवि भारावतरणे तव ॥ गच्छावः सदनं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ॥२२॥ स ते भारापनोदं वै करिष्यति जनार्दनः ॥ पूर्वं मयाऽपि ते कार्यं चिंतितं सुविचार्य च ॥२३॥ तत्र गच्छ सुरश्रेष्ठ यत्र देवो जनार्दनः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा वेदकर्ताऽसौ पुरस्कृत्य सुरांश्च गाम् ॥ २४ ॥ जगाम विष्णुसदनं हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ तुष्टाव वेदवाक्यैश्च भक्तिप्रवणमानसः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सहस्रशीर्षास्त्वमसि सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ त्वं वेदपुरुषः पूर्वं देवदेवः सनातनः ॥ २६ ॥ भूतपूर्वं भविष्यच्च वर्तमानं च यद्विभो ॥ अमरत्वं त्वया दत्तमस्माकं च रमापते ॥ २७ ॥ एतावान्महिमा तेऽस्ति को न वेत्ति जगत्त्रये ॥ त्वं कर्ताऽप्यविता हर्ता त्वं सर्वगतिरीश्वरः ॥ २८ ॥ इतीडितः प्रभुर्विष्णुः प्रसन्नो गरुडध्वजः ॥ दर्शनं च ददौ तेभ्यो ब्रह्मादिभ्योऽमलाशयः ॥ २६ ॥ पप्रच्छ स्वागतं देवान्प्रसन्नवदनो हरिः ॥ ततस्त्वागमने तेषां कारणं च सविस्तरम् ॥ ३० ॥ तमुवाचाब्जजो नत्वा धरादुःखं च संस्मरन् ॥ भारावतरणं विष्णो कर्तव्यं ते जनार्दन ॥ ३१ ॥ भुवि धृत्वाऽवतारं त्वं द्वापरान्ते समागते ॥ हत्वा दुष्टान्नृपानुर्व्यां हर भारं दयानिधे ॥ ३२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नाहं

बोले-हे भगवन् ! आपके हजार मस्तक, हजार नेत्र और हजार ही पैर हैं । आप ही वेदपुरुष, देवताओंके भी देवता तथा सनातन पुरुष हैं ॥२६॥ हे विभो ! आप ही भूत, भविष्य तथा वर्तमान हैं । हे लक्ष्मीकान्त ! आपने ही हमको देवत्व प्रदान किया है ॥ २७ ॥ समस्त त्रिलोकीमें कौन ऐसा प्राणी है, जो आपकी महिमाको नहीं जानता ? आप ही विश्वके सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता हैं ॥२८॥ व्यासजी बोले-ब्रह्माजीके स्तुति करनेपर निर्मल अंतःकरण युक्त गरुड़ध्वज विष्णुभगवान प्रसन्न हो गये और उन्होंने ब्रह्मादि देवताओंको दर्शन दिया ॥२९॥ प्रसन्नमुख भगवानने उनका स्वागत किया । तदनन्तर उन्होंने विस्तारपूर्वक उनके आगमनका कारण पूछा ॥३०॥ तब ब्रह्माजीने पृथिवीके संकटकी बातको ध्यानमें रखकर कहा-हे विष्णो ! हे जनार्दन ! अब आप शीघ्र पृथिवीका भार उतारिए ॥ ३१ ॥ हे दयानिधान ! द्वापरयुगके अन्तिम दौरमें आप पृथिवीपर अवतार लें और भूतलके दुष्ट राजाओंका वध करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धरतीका भार उतारें ॥ ३२ ॥ विष्णु भगवान बोले—इस विषयमें न मैं स्वतन्त्र हूँ और आप ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अग्नि, यम, त्वष्टा, सूर्य और वरुण कोई भी स्वतन्त्र नहीं हैं ॥ ३३ ॥ यह स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त विश्व भगवती योगमायाके वशमें रहता है। ब्रह्मसे लेकर तृण-गुल्मपर्यन्त सभी जीव सात्त्विक, राजस और तामस गुणरूपी धागेमें बँधे हुए हैं ॥ ३४ ॥ हे सुव्रत ! वह शुभचिन्तिका भगवती जो चाहती है, सो अपनी इच्छासे कर डालती है। हम सब सदा उसके अधीन रहते हैं ॥ ३५ ॥ आप लोग स्वयं सोचिए कि यदि मैं स्वतन्त्र होता तो महासमुद्रमें मत्स्य और कच्छप क्यों बनता ? ॥ ३६ ॥ मत्स्य-कच्छप-वराह जैसी क्षुद्र तिर्यक् योनिमें जन्म लेनेसे कौनसा सुख भोगनेको मिलता है ? क्या यश मिलता है ? क्या सुख मिलता है ? क्या पुण्य होता है ? क्या फल मिलता है ? कुछ भी मुझे नहीं मिला ॥३७॥ हे पितामह ! यदि मैं स्वतंत्र होता तो सूकर, नृसिंह, वामन और महर्षि जमदग्निका पुत्र परशुराम क्यों बनता ? ॥३८॥ यदि मैं स्वतंत्र होता तो पृथिवीतलपर भीषण नरसंहार जैसा घातक कर्म करके क्षत्रियोंके रुधिरसे अनेक सरोवर क्यों भरता ? ॥३९॥ उस समय महर्षि जमद-

स्वतंत्र एवात्र न ब्रह्मा न शिवस्तथा ॥ नेन्द्रोऽग्निर्न यमस्त्वष्टा न सूर्यो वरुणस्तथा ॥ ३३ ॥ योगमायावशे सर्वमिदं स्थावरजंगमम् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं ग्रथितं गुणसूत्रतः ॥ ३४ ॥ यथा सा स्वेच्छया पूर्वं कर्तुमिच्छति सुव्रत ॥ तथा करोति सहिता वयं सर्वेऽपि तद्वशाः ॥ ३५ ॥ यद्यहं स्यां स्वतंत्रो वै चिंतयंतु धिया किल ॥ कुतोऽभवं मत्स्यवपुः कच्छपो वा महार्णवे ॥ ३६ ॥ तिर्यग्योनिषु को भोगः का कीर्तिः किं सुखं पुनः ॥ किं पुण्यं किं फलं तत्र क्षुद्रयोनिगतस्य मे ॥ ३७ ॥ कोलो वाऽथ नृसिंहो वा वामनो वाऽभवं कुतः ॥ जमदग्निसुतः कस्मात्संभवेयं पितामह ॥ ३८ ॥ नृशंसं वा कथं कर्म कृतवानस्मि भूतले ॥ क्षतजैस्तु ह्रदान्सर्वान्पूरयेयं कथं पुनः ॥ ३९ ॥ तत्कथं जमदग्नेश्च पुत्रो भूत्वा द्विजोत्तमः ॥ क्षत्रियान्हतवानाजौ निर्दयो गर्भगानपि ॥४०॥ रामो भूत्वाऽथ देवेन्द्र प्राविशं दंडकं वनम् ॥ पदातिश्चीरवासाश्च जटावल्कलवान्पुनः ॥४१॥ असहायो ह्यपाथेयो भीषणे निर्जने वने ॥ कुर्वन्नाखेटकं तत्र व्यचरं विगतत्रपः ॥ ४२ ॥ न ज्ञातवान्मृगं हैमं मायया पिहितस्तदा ॥ उटजे जानकीं त्यक्त्वा निर्गतस्तत्पदानुगः ॥ ४३ ॥ लक्ष्मणोऽपि च तां त्यक्त्वा निर्गतो मत्पदानुगः ॥ वारितोऽपि मयाऽत्यर्थं मोहितः प्राकृतैर्गुणैः ॥ ४४ ॥ भिक्षुरूपं ततः कृत्वा रावणः कपटाकृतिः ॥ जहार तरसा रक्षो जानकीं शोककर्शिताम् ॥ ४५ ॥ दुःखार्तेन मया तत्र रुदितं च वने वने ॥ सुग्रीवेण च

ग्निके उत्तम ब्राह्मणकुलमें जन्म लेकर मैं इतना निर्दयी होगया कि क्षत्रियोंको तो मारा ही, उनकी स्त्रियोंके गर्भमें रहनेवाले भ्रूण शिशुओं तकको नहीं छोड़ा ॥४०॥ हे देवेन्द्र ! रामावतारमें ही मुझे कौनसा सुख मिल गया ? उन दिनों मुझे दण्डकवनमें निवास करना पड़ा, पैदल चलना पड़ा, गेरुआ वस्त्र पहनना पड़ा और जटा-वल्कलधारी बनना पड़ा ॥ ४१ ॥ उस समय न मेरा कोई सहायक था और न मेरे पास राहखर्च ही था। उस निर्जन वनमें निर्लज्ज होकर शिकार खेलता हुआ मैं मारा-मारा फिरता था ॥४२॥ उस समय मेरी आँखोंपर मायाका ऐसा पर्दा पड़ा हुआ था कि मैं उस मायावी स्वर्णमृगको भी नहीं पहचान सका। अतएव सीताको झोपड़ीमें छोड़कर मृगके पीछे भाग चला ॥४३॥ यद्यपि जाते जाते मैं मना कर गया था कि सीताको अकेली मत छोड़ना। फिर भी प्रकृतिके गुणोंसे अतिशय मोहित होकर लक्ष्मण भी सीताको छोड़कर मेरा पदचिह्न देखते हुए चल पड़े ॥४४॥ उसी समय संन्यासीका वेष बनाकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रावण मेरी कुटियापर पहुँचा और शोकसे व्याकुल सीताका तत्काल अपहरण कर लिया ॥४५॥ उस भीषण संकटसे दुखी होकर मैं वन-वन रोता फिरा। उसके बाद स्वार्थवश मैंने सुग्रीवसे मित्रता की ॥ ४६ ॥ फिर पेड़की ओटमें छिपकर अन्यायपूर्वक वालिका वध करके उसके शापका अंत किया। तत्पश्चात् वानरोंको सहायक बनाकर लङ्कापर चढ़ाई की ॥ ४७ ॥ वहाँ मुझे और लक्ष्मणको नागपाशमें बँधना पड़ा। उस समय हम दोनों भाई अचेत होकर गिर पड़े। हमारी वह दशा देखकर वानर चकरा गये ॥ ४८ ॥ वह तो कहिये कि गरुड़ने वहाँ पहुँचकर हम दोनोंको नागपाशसे छुड़ाया। नहीं तो उस समय मुझे यह चिंता होने लगी थी कि भाग्य अब न जाने क्या करनेवाला है ॥ ४९ ॥ राज्य छिन गया, वनवास करना पड़ा, पिताका मरण और प्रियतमा सीताका हरण हुआ और भाग्यवश युद्धका कष्ट भोग ही रहा हूँ। अब आगे न जाने क्या अनर्थ होनेवाला है ॥ ५० ॥ हे देवताओ! सर्वप्रथम महान् दुःख तो यह मिला कि राज्य छिन गया और वनमें ठोकर खानी पड़ी। मेरे साथ राजकुमारी सीता थीं किंतु उनका भरण-पोषण करनेके लिए मेरे पास धन नहीं था ॥ ५१ ॥ वनवासके लिए जाते

मित्रत्वं कृतं कार्यवशान्मया ॥४६॥ अन्यायेन हतो वाली शापाच्चैव निवारितः ॥ सहायान्वानरान्कृत्वा लंकायां चलितः पुनः ॥ ४७॥ बद्धोऽहं नागपाशैश्च लक्ष्मणश्च ममानुजः ॥ विसंज्ञौ पतितौ दृष्ट्वा वानरा विस्मयं गताः ॥ ४८ ॥ गरुडेन तदाऽऽगत्य मोचितौ भ्रातरौ किल ॥ चिन्ता मे महती जाता दैवं किं वा करिष्यति ॥ ४९ ॥ हृतं राज्यं वने वासो मृतः तातः प्रिया हृता ॥ युद्धं कष्टं ददात्येवमग्रे किं वा करिष्यति ॥ ५० ॥ प्रथमं तु महद्दुःखमराज्यस्य वनाश्रयम् ॥ राजपुत्र्याऽन्वितस्यैव धनहीनस्य मे सुराः ॥५१॥ वराटिकाऽपि पित्रा मे न दत्ता वननिर्गमे ॥ पदाति-रसहायोऽहं धनहीनश्च निर्गतः ॥ ५२ ॥ चतुर्दशैव वर्षाणि नीतानि च तदा मया ॥ क्षात्रं धर्मं परित्यज्य व्याधवृत्त्या महावने ॥ ५३ ॥ दैवाद्युद्धे जयः प्राप्तो निहतोऽसौ महासुरः ॥ आनीता च पुनः सीता प्राप्ताऽयोध्या मया तथा ॥५४॥ वर्षाणि कतिचित्तत्र सुखं संसारसंभवम् ॥ प्राप्तं राज्यं च संपूर्णं कोसलानधितिष्ठता ॥५५॥ पुरैवं वर्तमानेन प्राप्तराज्येन वै तदा ॥ लोकापवादभीतेन त्यक्ता सीता वने मया ॥५६॥ कांताविरहजं दुःखं पुनः प्राप्तं दुरासदम् ॥ पातालं सा गता पश्चाद्धरां भित्वा धरात्मजा ॥५७॥ एवं रामावतारेऽपि दुःखं प्राप्तं निरंतरम् ॥ परतंत्रेण मे नूनं स्वतंत्रः

समय पिताजीने मुझे एक कौड़ी भी नहीं दी थी। पैदल, असहाय और निर्धन होकर मुझे घरसे निकलना पड़ा ॥ ५२ ॥ इस प्रकार क्षत्रियधर्मका परित्याग करके व्याधवृत्तिका अनुसरण करते हुए मुझे पूरे चौदह वर्ष वनवास करना पड़ा ॥ ५३ ॥ भाग्यसे युद्धमें जीत हुई और वह महान् असुर रावण मारा गया। अतएव मैं सीताको लौटा सका और उसके बाद अयोध्याका राज्य भी फिर प्राप्त हो गया ॥ ५४ ॥ कुछ वर्ष सांसारिक सुखोंका उपभोग किया। क्योंकि उस समय मुझे समस्त कोसलदेशका राज्य मिल गया था ॥ ५५ ॥ पहले रावणने सीताका हरण किया था, किंतु जब राज्य मिला और सुखोपभोगका समय आया, तब लोकनिन्दाके भयसे मैंने स्वयं सीताको वनवास दे दिया ॥ ५६ ॥ इस प्रकार फिर मुझे पत्नीवियोगका असह्य क्लेश सहना पड़ा। उसके बाद भूमितनया सीता पृथिवीका भेदन करके पातालमें समा गयी ॥ ५७ ॥ इस प्रकार परतंत्र होकर रामावतारमें भी मुझे निरन्तर दुःख ही प्राप्त हुआ। यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वतंत्र होता तो ये क्लेश मुझे क्यों सहने पड़ते ? ॥ ५८ ॥ तदनन्तर कालकी प्रेरणासे मुझे अपने भ्राताओंके साथ स्वर्ग लौट जाना पड़ा । इस तरह परतंत्र पुरुषोंकी दुःखगाथा कहाँ तक बतायी जाय ? हे कमलसे जायमान ब्रह्माजी ! यह आप निश्चित समझिए कि मैं पराधीन हूँ। उसी प्रकार आप (ब्रह्मा), शिव और अन्यान्य सब देवता भी सदा परतंत्र रहते हैं ॥५९॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(देवताओं द्वारा महाशक्तिकी स्तुति और अवतार लेनेकी प्रार्थना) व्यासजी बोले-हे राजन् ! ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने प्रजापतिसे फिर कहा-हे ब्रह्मन् ! संसारके सभी लोग भगवती योगमायाकी मायासे मोहित रहते हैं । इसी कारण वे परम तत्त्वको नहीं जान पाते ॥१॥ मायाके अधीन रहनेके कारण ही हम सब देवता भी जगद्गुरु, परम पुरुष, शांत, सच्चिदानंद और अविनाशी परमात्माका स्मरण नहीं कर पाते ॥ २ ॥ 'मैं विष्णु हूँ' 'मैं ब्रह्मा हूँ' और 'मैं शिव हूँ' इस अभिमानवश हम मोहमें पड़ गये हैं । अतएव उस सनातन तत्त्वको नहीं

को भवेत्तदा ॥ ५८ ॥ पश्चात्कालवशात्प्राप्तः स्वर्गो मे भ्रातृभिः सह ॥ परतंत्रस्य का वार्ता वक्तव्या विबुधेन वै ॥ ५९ ॥ परतंत्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने निशामय ॥ तथा त्वमपि रुद्रश्च सर्वे चान्ये सुरोत्तमाः ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह प्रजापतिम् ॥ यन्मायामोहितः सर्वस्तत्त्वं जानाति नो जनः ॥ १ ॥ वयं मायावृताः कामं न स्मरामो जगद्गुरुम् ॥ परमं पुरुषं शान्तं सच्चिदानंदमव्ययम् ॥ २ ॥ अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शिवोऽहमिति मोहिताः ॥ न जानीमो वयं धातः परं वस्तु सनातनम् ॥ ३ ॥ यन्मायामोहितश्चाहं सदा वर्ते परात्मनः ॥ परवान्दारुपांचाली मायिकस्य यथा वशे ॥ ४ ॥ भवताऽपि तथा दृष्टा विभूतिस्तस्य चाद्भुता ॥ कल्पादौ भवयुक्तेन मयाऽपि च सुधार्णवे ॥ ५ ॥ मणिद्वीपेऽथ मंदारविटपे रासमण्डले ॥ समाजे तत्र सा दृष्टा श्रुता न वचसाऽपि च ॥ ६ ॥ तस्मात्तां परमां शक्तिं स्मरंत्वद्य सुराः शिवाम् ॥ सर्वकामप्रदां मायामाद्यां शक्तिं परात्मनः ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता हरिणा देवि ब्रह्माद्या भुवनेश्वरीम् ॥ सस्मरुर्मनसा देवीं योगमायां सनातनीम् ॥ ८ ॥ स्मृतमात्रा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ पाशांकुशवराभीतिधरा देवी जपारुणा ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिता देवास्तुष्टुवुस्तां सुदर्शनाम् ॥ ९ ॥ देवा ऊचुः ॥ ऊर्णनाभाद्यथा तंतुर्विस्फुलिंगा विभावसोः ॥

जान पाते ॥ ३ ॥ उस परमात्माकी मायासे हम सदा वैसे ही मोहित रहते हुए उसीके संकेतपर चलते हैं । जैसे कठपुतली अपने सञ्चालक बाजीगरके संकेतपर नाचती है ॥ ४ ॥ कल्पके आदिमें मैंने, आपने और शिवजीने उस अद्भुत परम तत्त्वकी विभूतिका दर्शन पाया था ॥ ५ ॥ सुधासागरमें, मणिद्वीपमें, मंदार वृक्षके नीचे, रासमण्डलमें और देवताओंकी विशाल सभामें हमें उस विभूतिका दर्शन मिला था, जो श्रवण तथा वचनसे परे है ॥ ६ ॥ अतएव हे देवगण ! आप सब उसी परम तत्त्वकी आद्या शक्ति, सब कामनायें पूर्ण करनेवाली, माया, शिवा एवं परमा शक्तिका स्मरण करें ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले—भगवान विष्णुके ऐसा कहनेपर ब्रह्मादिक सभी देवता मन ही मन सनातनी योगमाया देवीका स्मरण करने लगे ॥ ८ ॥ स्मरण करते ही पाश, अंकुश, वर तथा अभयमुद्रासे सुशोभित चार भुजाओंवाली देवीने उन देवताओंके समक्ष प्रकट होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उन भगवतीका शरीर अड़हुल पुष्पके समान रक्तवर्ण था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्हें देखकर देवता बहुत प्रसन्न हुए और उन परम सुन्दरी देवीकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ देवता बोले—जैसे ऊर्णनाभ (मकड़ी) के मुखसे तन्तु और अग्निसे चिनगारियाँ निकलती हैं। उसी प्रकार जिनसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है, उन जगदम्बाको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥ जिनकी मायाशक्तिके प्रभावसे समस्त चराचर जगत्की उत्पत्ति हुई है, उन चित्स्वरूप-धारिणी, अखिल भुवनाधीश्वरी एवं करुणाकी समुद्रस्वरूपा भगवतीका हम स्मरण करते हैं ॥११॥ जिनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान न होनेपर भवसागरमें जन्म लेना पड़ता है और जिनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान होते ही भवबन्धनसे मुक्ति मिल जाती है, उन पूर्ण ज्ञानस्वरूपा भगवतीका हम स्मरण करते हैं। वे हमें अच्छे मार्गपर चलनेकी प्रेरणा प्रदान करें ॥ १२ ॥ यह हमारा आवश्यक कर्तव्य है कि उन महालक्ष्मीके स्वरूपको जानें। अतएव हम उन सर्वशक्तिसमन्विता भगवतीका ध्यान करते हैं। वे देवी हमें अपने ज्ञान-ध्यानकी ओर अग्रसर होनेकी प्रेरणा दें ॥ १३ ॥ हे समस्त भुवनोंका कष्ट हरनेवाली माता! हम आपको प्रणाम करते हैं। आप हमपर प्रसन्न हों। हे दयासे आर्द्रहृदय जगदम्बा! आप यह कार्य सम्पन्न करके हमारा

तथा जगद्यदेतस्यां निर्गतं तां नता वयम् ॥१०॥ यन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् ॥ तां चितं भुवनाधीशां स्मरामः करुणार्णवाम् ॥११॥ यदज्ञानाद्भवोत्पत्तिर्यज्ज्ञानाद्भवनाशनम् ॥ संविद्रूपां च तां देवीं स्मरामः सा प्रचोदयात् ॥ १२ ॥ महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि ॥ तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ १३ ॥ मातर्नताः स्म भुवनार्तिहरे प्रसीद शन्नो विधेहि कुरु कार्यमिदं दयार्द्रे ॥ भारं हरस्व विनिहत्य सुरारिवर्गं मह्या महेश्वरि सतां कुरु शं भवानि ॥ १४ ॥ यद्यंबुजाक्षि दयसे न सुरान्कदाचित्किं ते क्षमा रणमुखेऽसिशरैः प्रहर्तुम् ॥ एतत्त्वयैव गदितं ननु यक्षरूपं धृत्वा तृणं दह हुताश पदाभिलापैः ॥ १५ ॥ कंसः कुजोऽथ यवनेंद्रसुतश्च केशी बार्हद्रथो बकबकीखरशाल्वमुख्याः ॥ येऽन्ये तथा नृपतयो भुवि संति तांस्त्वं हत्वा हरस्व जगतो भरमाशु मातः ॥ १६ ॥ ये विष्णुना न निहताः किल शंकरेण ये वा विगृह्य जलजाक्षि पुरंदरेण ॥ ते ते मुखं सुखकरं सुसमीक्षमाणाः संख्ये शरैर्विनिहता निजलीलया ते ॥ १७ ॥ शक्तिं विना हरिहरप्रमुखाः सुराश्च नैवेश्वरा विचलितुं तव देवदेवि ॥ किं धारणाविरहितः प्रभुरप्यनंतो धर्तुं धरां च रजनीशकलावतंसे ॥ १८ ॥ इंद्र उवाच ॥ वाचा विना विधिरलं भवतीह विश्वं कर्तुं हरिः किमु रमार-

कल्याण करें। हे महेश्वरी! आप दैत्यसमुदायको मारकर पृथिवीका भार उतार दें। हे भवानी! ऐसा करके आप सज्जनोंका कल्याण करें ॥ १४ ॥ हे कमलनयनी भगवती! यदि आप हम देवताओंपर दया न करेंगी तो हम रणभूमिमें दैत्योंपर तलवारों और बाणोंका प्रहार कैसे कर सकेंगे? इस बातको आप तलवकार उपनिषदके यक्षोपाख्यान-प्रसङ्गमें यक्षरूप धारण करके 'हे अग्नि! आप इस तिनकेको जला दें' इत्यादि मंत्रोंमें स्पष्ट कर चुकी हैं ॥ १५ ॥ हे मातः! कंस, भौमासुर, कालयवन, केशी, राजा बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध, बकासुर, पूतना, धेनुक, शाल्व आदि तथा इनके अतिरिक्त जितने भी दुष्ट राजे हैं, उनका वध करके आप पृथिवीका भार उतारें ॥ १६ ॥ हे कमलनयनी भगवती! जिन दैत्योंको विष्णु, शिव तथा अनेकशः युद्ध करके इन्द्र भी नहीं मार सके थे, आपने उन असुरोंको रणभूमिमें अपने बाणोंसे समाप्त कर दिया था। वे दैत्य आपका आनन्ददायक मुखमण्डल देखते हुए मरकर परम धामको चले गये ॥ १७ ॥ हे देवदेवि! हे चन्द्रकलाको मस्तकपर धारण करनेवाली माता! विष्णु-शिव प्रभृति बड़े-बड़े देवता आपसे शक्ति प्राप्त किये बिना एक पग भी आगे नहीं चल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकते। यहाँ तक कि शेष भगवान भी आपसे शक्ति प्राप्त किये बिना पृथिवीको अपने मस्तकपर धारण नहीं कर सकते ॥ १८ ॥ देवराज इंद्र बोले—हे माता! सरस्वतीजीका सहयोग प्राप्त किये बिना ब्रह्माजी, भगवती लक्ष्मीके बिना भगवान विष्णु और पार्वतीजीके बिना शिवजी क्या सृष्टि, पालन तथा संहारकार्य करनेमें समर्थ हो सकते हैं? कदापि नहीं। उपर्युक्त तीनों महान् देवता क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वतीसे शक्ति प्राप्त करके ही सृष्टि, पालन तथा संहारका कार्य सम्पन्न करते हैं ॥ १९ ॥ भगवान् विष्णु बोले—हे अनघे! आपकी कलासे रहित होकर न ब्रह्माजी इस जगत्‌की सृष्टि कर पाते, न मैं संसारका पालन कर सकता और न शिवजी संहारकार्य करनेमें समर्थ होते। हे समस्त वैभवोंकी ईश्वरी! मेरी तो यह धारणा है कि एकमात्र आप ही इस विश्वकी सृष्टि, पालन तथा संहार करनेकी क्षमता रखती हैं ॥ २० ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकारकी स्तुति सुनकर भगवतीने उन देवेश्वरोंसे कहा—आपका वह कौनसा कार्य है कि जिसे करके मैं आपका कष्ट दूर कर सकती हूँ, उसे बताइए ॥ २१ ॥ आप देवताओंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए मैं असाध्य कार्यको भी सिद्ध कर दूँगी। हे श्रेष्ठ देवताओ! आप

हितोऽथ पातुम् ॥ संहर्तुमीश उभयोज्झित ईश्वरः किं ते ताभिरेव सहिताः प्रभवः प्रजेशाः ॥ १९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ कर्तुं प्रभुर्न द्रुहिणो न कदाचनाहं नापीश्वरस्तव कलारहितस्त्रिलोक्याः ॥ कर्तुं प्रभुत्वमनघेऽत्र तथा विहर्तुं त्वं वै समस्तविभवेश्वरि भासि नूनम् ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी तानाह विबुधेश्वरान् ॥ किं तत्कार्यं वदंत्वद्य करोमि विगतज्वराः ॥ २१ ॥ असाध्यमपि लोकेऽस्मिंस्तत्करोमि सुरेप्सितम् ॥ शंसंतु भवतां दुःखं धरायाश्च सुरोत्तमाः ॥ २२ ॥ देवा ऊचुः ॥ वसुधेयं भराक्रांता संप्राप्ता विबुधान्प्रति ॥ रुदती वेपमाना च पीडया दुष्टभूभुजैः ॥ २३ ॥ भारापहरणं चास्याः कर्तव्यं भुवनेश्वरि ॥ देवानामीप्सितं कार्यमेतदेवाधुना शिवे ॥ २४ ॥ घातितस्तु पुरा मातस्त्वया महिषरूपभृत् ॥ दानवोऽतिबलाक्रांतस्तत्सहायाश्च कोटिशः ॥ २५ ॥ तथा शुम्भो निशुम्भश्च रक्तबीजस्तथापरः ॥ चंडमुंडौ महावीर्यौ तथैव धूम्रलोचनः ॥ २६ ॥ दुर्मुखो दुःसहश्चैव करालश्चातिवीर्यवान् ॥ अन्ये च बहवः क्रूरास्त्वयैव च निपातिताः ॥ २७ ॥ तथैन च सुरारींश्च जहि सर्वान्महीश्वरान् ॥ (भारं हर धरायाश्च दुर्धरं दुष्टभूभुजाम् ॥) व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी देवानाहाम्बिका शिवा ॥ २८ ॥ संप्रहस्यासितापांगी मेघगंभीरया गिरा ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ मयेदं चिंतितं पूर्वमंशावतरणं सुराः ॥ २९ ॥ भारावतरणं चैव यथा स्याद्दुष्टभूभुजाम् ॥ मया

लोग अपना और पृथिवीका जो कष्ट हो, उसे बताइए ॥ २२ ॥ देवता बोले—हे माता! यह पृथिवी दुष्ट राजाओंके अन्याय, अत्याचार तथा उनके भारसे पीड़ित होकर रोती-काँपती हुई हम देवताओंके पास आयी है ॥ २३ ॥ हे भुवनेश्वरी! आप इसका भार उतार दें। हे शिवे! इस समय हम देवताओंका अभिलषित कार्य केवल इतना ही है ॥ २४ ॥ हे माता! पूर्वकालमें आप अतिशय बलवान् महिषासुर तथा उसके करोड़ों साथियोंको मार चुकी हैं ॥ २५ ॥ उनके अतिरिक्त शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, महाबलवान् चण्ड-मुण्ड, धूम्रलोचन, दुःसह, दुर्मुख, अतिशय बलवान् कराल आदि अगणित असुरोंका आपने वध किया था ॥ २६ ॥ २७ ॥ उसी प्रकार आप फिर हम देवताओंके शत्रुस्वरूप इन राजाओंको मार डालिए। (इन दुष्ट राजाओंका वध करके आप पृथिवीके दुर्वह भारको उतार लीजिए)। व्यासजी बोले—हे राजन्! देवताओंके वचन सुनकर भगवती शिवाने कहा ॥ २८ ॥ वे हँसकर मेघ-गम्भीर वाणीमें देवताओंसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बोलीं। देवीने कहा–हे देवताओ ! मैंने पहलेसे ही पृथिवीपर अंशावतार लेनेकी बात सोच रखी थी ॥ २९ ॥ जिस प्रकार पृथिवीपरसे दुष्ट राजाओंका भार उतरे, वैसा उपाय करके मैं उन सभी दैत्य राजाओंको नष्ट कर दूँगी ॥ ३० ॥ जरासंध आदि महाभाग्यशाली राजाओंका तेज अपनी शक्तिसे मंद करके मैं उन्हें सदाके लिए समाप्त कर दूँगी। हे देववृन्द ! आप लोग भी अपने-अपने अंशसे पृथिवीपर अवतार लेकर मेरी शक्तिसे जगत्‌का भार उतारिए। देवताओंके पिता प्रजापति कश्यप अपनी भार्या दितिके साथ पहले ही यदुवंशमें वसुदेव नामसे अवतीर्ण हो चुके हैं। उसी प्रकार महर्षि भृगुके शापसे अविनाशी भगवान विष्णु अपने अंशसे उन वसुदेवके पुत्र होकर अवतार लेंगे। उसी समय मैं भी गोकुलमें यशोदाकी कोखसे जन्म लूँगी ॥ ३१–३४ ॥ हे श्रेष्ठ देवताओ ! ऐसा करके मैं आप लोगोंका सब कार्य सम्पन्न कर दूँगी। कारागारमें अवतीर्ण कृष्णरूपधारी विष्णुको मैं गोकुलमें पहुँचा दूँगी ॥ ३५ ॥ देवकीके गर्भमें विद्यमान शेष भगवानको रोहिणीकी कोखमें पहुचाऊँगी। भविष्यमें मेरी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे दोनों सब दुष्टोंका विनाश कर देंगे ॥ ३६ ॥ द्वापरके अंतमें दुष्ट राजाओंका विनाश

सर्वे निहंतव्या दैत्येशा ये महीभुजः ॥ ३० ॥ मागधाद्या महाभागाः स्वशक्त्या मंदतेजसः ॥ भवद्भिरपि स्वैरंशैरवतीर्य धरातले ॥ ३१ ॥ मच्छक्तियुक्तैः कर्तव्यं भारावतरणं सुराः ॥ कश्यपो भार्यया सार्धं दिविजानां प्रजापतिः ॥ ३२ ॥ यादवानां कुले पूर्वं भविताऽऽनकदुंदुभिः ॥ तथैव भृगुशापाद्वै भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ ३३ ॥ अंशेन भविता तत्र वसुदेवसुतो हरिः ॥ तदाऽहं प्रभविष्यामि यशोदायां च गोकुले ॥ ३४ ॥ कार्यं सर्वं करिष्यामि सुराणां सुरसत्तमाः ॥ कारागारे गतं विष्णुं प्रापयिष्यामि गोकुले ॥ ३५ ॥ शेषं च देवकीगर्भात्प्रापयिष्यामि रोहिणीम् ॥ मच्छक्त्योपचितौ तौ च कर्तारौ दुष्टसंक्षयम् ॥ ३६ ॥ दुष्टानां भूभुजां कामं द्वापरांते सुनिश्चितम् ॥ इन्द्रांशोऽप्यर्जुनः साक्षात्करिष्यति बलक्षयम् ॥ ३७ ॥ धर्मांशोऽपि महाराजो भविष्यति युधिष्ठिरः ॥ वाय्वंशो भीमसेनश्चाश्विन्यंशौ च यमावपि ॥ ३८ ॥ वसोरंशोऽथ गांगेयः करिष्यति बलक्षयम् ॥ व्रजंतु च भवंतोऽद्य धरा भवतु सुस्थिरा ॥ ३९ ॥ भारावतरणं नूनं करिष्यामि सुरोत्तमाः ॥ कृत्वा निमित्तमात्रांस्तान्स्वशक्त्याऽहं न संशयः ॥ ४० ॥ कुरुक्षेत्रे करिष्यामि क्षत्रियाणां च संक्षयम् ॥ असूयेर्ष्यामतिस्तृष्णा ममताऽभिमता स्पृहा ॥ ४१ ॥ जिगीषा मदनो मोहो दोषैर्नंक्ष्यंति यादवाः ॥ ब्राह्मणस्य च शापेन वंशनाशो भविष्यति ॥ ४२ ॥ भगवानपि शापेन त्यक्ष्यत्येतत्कलेवरम् ॥ भवन्तोऽपि निजांगैश्च

सुनिश्चित है। देवराज इंद्रके अंशसे अवतीर्ण अर्जुन भी उन दुष्टोंका पराक्रम समाप्त कर देंगे ॥ ३७ ॥ साक्षात् धर्मराजके अंशसे युधिष्ठिर, वायुके अंशसे भीम और दोनों अश्विनीकुमारोंके अंशसे नकुल-सहदेव उत्पन्न होंगे ॥ ३८ ॥ वसुके अंशसे अवतीर्ण गङ्गासुत भीष्म भी अपने अतुलित बलसे उन दुष्ट राजाओंकी शक्ति नष्ट करेंगे। अब आप लोग जाइए और पृथिवी भी शांतिपूर्वक रहे ॥ ३९ ॥ हे सुरसत्तम ! उपर्युक्त अंशावतारी महापुरुषोंको केवल निमित्त बनाकर मैं अपनी शक्तिसे पृथिवीका भार उतारूँगी। इसमें संदेह नहीं है ॥ ४० ॥ कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें मैं क्षत्रियोंका संहार करूँगी। असूया (गुणमें दोष देखना), ईर्ष्या, तृष्णा (लोभ), अभिमान, व्यर्थकी धाक, स्पृहा (आकांक्षा), विजयेच्छा, कामवासना और अज्ञान जैसे दोषोंके बढ़ जानेपर मैं यदुवंशका भी संहार कर दूँगी। एक ब्राह्मणके शापसे समस्त यदुवंश नष्ट हो जायगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उसी शापवश भगवान कृष्ण भी अपना तन त्याग देंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आप सब देवता भी अपने अंशों तथा अपनी स्त्रियोंके साथ मथुरापुरी और गोकुलमें जन्म लेकर शार्ङ्गपाणि विष्णुभगवानकी सहायता करें। व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परमात्माकी योगमाया अन्तर्धान हो गयी ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तब पृथिवीके साथ-साथ सब देवता भी अपने-अपने धामको चले गये। भगवतीकी वाणी सुनकर पृथिवीको भी संतोष हुआ और उसे शांति मिली ॥ ४५ ॥ हे राजा जनमेजय! उसी समयसे पृथिवीपर भली-भाँति जड़ी-बूटियाँ तथा लता-गुल्म उगने लगे। प्रजाको सुख मिलने लगा, द्विजातियोंकी उन्नति होने लगी और सभी मुनि संतुष्ट होकर धार्मिक कृत्योंमें लग गये ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

(महामायाकी महिमा, वसुदेव-देवकीविवाह और कंसका देवकीकी हत्या करनेको उद्यत होना) व्यासजी बोले—हे राजन्! अब मैं पृथिवीका भार उतारनेका वृत्तान्त बताऊँगा, सुनिए। इसके साथ यह भी बताऊँगा कि कुरुक्षेत्र और प्रभासक्षेत्रमें योगमाया द्वारा सैन्यसंहार किस तरह हुआ ॥ १ ॥ महर्षि भृगुके शापके प्रताप तथा भगवती महामायाके बलसे अमित

सहायाः सार्ङ्गधन्वनः ॥ ४३ ॥ प्रभवन्तु सनारीका मथुरायां च गोकुले ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे देवी योगमाया परात्मनः ॥ ४४ ॥ सधरा वै सुराः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि च ॥ धराऽपि सुस्थिरा जाता तस्या वाक्येन तोषिता ॥ ४५ ॥ ओषधीवीरुधोपेता बभूव जनमेजय ॥ प्रजाश्च सुखिनो जाता द्विजाश्चापुर्महोदयम् ॥ सन्तुष्टा मुनयः सर्वे बभूवुर्धर्मतत्पराः ॥४६॥ इति श्रीदेवीभागवते चतुर्थस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

व्यास उवाच ॥ शृणु भारत वक्ष्यामि भारावतरणं तथा ॥ कुरुक्षेत्रे प्रभासे च क्षपितं योगमायया ॥ १ ॥ यदुवंशे समुत्पत्तिर्विष्णोरमिततेजसः ॥ भृगुशापप्रतापेन महामायाबलेन च ॥ २ ॥ क्षितिभारसमुत्तारनिमित्तमिति मे मतिः ॥ मायया विहितो योगो विष्णोर्जन्म धरातले ॥ ३ ॥ किं चित्रं नृप देवी सा ब्रह्मविष्णुसुरानपि ॥ नर्तयत्यनिशं माया त्रिगुणा न परान्किमु ॥ ४ ॥ गर्भवासोद्भवं दुःखं विण्मूत्रस्नायुसंयुतम् ॥ विष्णोरापादितं सम्यग्यया विगतलीलया ॥ ५ ॥ पुरा रामावतारेऽपि निर्जरा वानराः कृताः ॥ विदितं ते यथा विष्णुर्दुःखपाशेन मोहितः ॥ ६ ॥ अहं ममेति पाशेन सुदृढेन नराधिप ॥ योगिनो मुक्तसंगाश्च मुक्तिकामा मुमुक्षवः ॥ ७ ॥ तामेव समुपासंते देवीं विश्वेश्वरीं

तेजस्वी विष्णु भगवानका अवतार हुआ था ॥ २ ॥ किंतु मेरी मान्यता तो यह है कि भगवती महामायाने ही उनके अवतारका जुगाड़ बैठा दिया था। पृथ्वीका भार उतारना तो एक निमित्तमात्र था ॥ ३ ॥ हे राजन्! इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। जब वे महामाया ब्रह्मा, विष्णु और शिव जैसे महान् देवताओंको भी रात-दिन नचाया करती हैं। तब अन्यान्य त्रिगुणात्मक प्राणी उनसे कैसे बच सकते हैं? ॥४॥ भगवती महामायाकी लीलायें बड़ी अनोखी होती हैं। उन्होंने ही तो भगवान विष्णुको मल-मूत्र तथा झिल्लियोंसे भरे गर्भमें निवास करनेको विवश कर दिया था ॥५॥ पूर्वकालमें रामावतारके अवसरपर भी तो उन्हीं महामायाने देवताओंको वानर बनाया था। रामरूपधारी भगवान विष्णु किस प्रकार दुःखके जालमें फँसकर मोहमें पड़ गये थे, सो तो आप जानते ही हैं ॥६॥ हे महाराज! उस समय सुदृढ़ अहंकार तथा ममताके पाशमें पड़कर उन्हें अपार कष्ट भोगना पड़ा। इसीसे समस्त विषय-वासना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से विरक्त, मोक्षके इच्छुक तथा भोगप्राप्तिकी कामना रखनेवाले लोग उन विश्वेश्वरी शिवा देवीकी ही उपासना करते हैं। जिन महामायाकी भक्तिके लेश-लेशांश एवं लेशलवांशको भी प्राप्त करके प्राणी मुक्त हो जाता है, उन भगवतीका भजन कौन न करेगा ? किसी प्राणीके मुखसे 'भुवनेशी' इस शब्दको सुनते ही वे महामाया उसे तीनों लोक प्रदान कर देती हैं ॥७–९॥ उसके बाद भक्त यदि 'मां पाहि' अर्थात् मेरी रक्षा करो। यह वाक्य कह देता है तो पहले ही सब कुछ दे देनेके कारण उनके पास देनेके लिए कुछ नहीं रह जाता। अतएव वे उसकी ऋणी बन जाती हैं। हे महाराज ! उन भगवतीके विद्या-अविद्याभेदसे दो रूप होते हैं ॥१०॥ विद्यासे प्राणीको मुक्ति मिलती है और अविद्यासे बंधन प्राप्त होता है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव समेत सब देवता उन महामायाके अधीन रहते हैं ॥ ११ ॥ जैसे बन्धनमें बँधे हुए पशु अपने स्वामीके संकेतपर चलते हैं, उसी प्रकार भगवानके सभी अवतार भगवती द्वारा नियंत्रित रहते हैं। अतएव विष्णु कभी वैकुण्ठधाम तथा कभी क्षीरसागरमें आनन्द लेते हैं ॥ १२ ॥ कभी वे अत्यधिक बलवान् दानवोंके साथ युद्ध करते हैं और कभी बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं ॥१३॥ हे सुव्रत ! वे कभी

शिवाम् ॥ यद्भक्तिलेशलेशांशं लेशलेशलवांशकम् ॥ ८ ॥ लब्ध्वा मुक्तो भवेज्जंतुस्तां न सेवेत को जनः ॥ भुवनेशीत्येव वक्त्रे ददाति भुवनत्रयम् ॥ ९ ॥ मां पाहीत्यस्य वचसो देयाभावादृणान्विता ॥ विद्याऽविद्येति तस्या द्वे रूपे जानीहि पार्थिव ॥ १० ॥ विद्यया मुच्यते जंतुर्बद्ध्यतेऽविद्यया पुनः ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे तस्या वशानुगाः ॥ ११ ॥ अवताराः सर्व एव यंत्रिता इव दामभिः ॥ कदाचिच्च सुखं भुंक्ते वैकुण्ठे क्षीरसागरे ॥ १२ ॥ कदाचित्कुरुते युद्धं दानवैर्बलवत्तरैः ॥ हरिः कदाचिद्यज्ञान्वै विततान्प्रकरोति च ॥ १३ ॥ कदाचिच्च तपस्तीव्रं तीर्थे चरति सुव्रत ॥ कदाचिच्छयने शेते योगनिद्रामुपाश्रितः ॥१४॥ न स्वतंत्रः कदाचिच्च भगवान्मधुसूदनः ॥ तथा ब्रह्मा तथा रुद्रस्तथेन्द्रो वरुणो यमः ॥१५॥ कुबेरोऽग्नी रवींदू च तथाऽन्ये सुरसत्तमाः ॥ मुनयः सनकाद्याश्च वसिष्ठाद्यास्तथापरे ॥ १६ ॥ सर्वेऽम्बावशगा नित्यं पांचालीव नरस्य च ॥ नसि प्रोता यथा गावो विचरन्ति वशानुगाः ॥ १७ ॥ तथैव देवताः सर्वाः कालपाशनियंत्रिताः ॥ हर्षशोकादयो भावा निद्रातन्द्रालसादयः ॥ १८ ॥ सर्वेषां सर्वदा राजन्देहिनां देहसंश्रिताः ॥ अमरा निर्जराः प्रोक्ता देवाश्च ग्रन्थकारकैः ॥ १९ ॥ अभिधानतश्चार्थतो न ते नूनं तादृशाः क्वचित् ॥ उत्पत्तिस्थितिनाशाख्या भावा येषां निरंतरम् ॥ २० ॥ अमरास्ते कथं वाच्या निर्जराश्च कथं पुनः ॥ कथं दुःखाभिभूता वा जायन्ते विबुधो-

पावन तीर्थमें कठोर तप करते हैं तो कभी योगनिद्राके वशीभूत होकर सो जाते हैं ॥ १४ ॥ इस प्रकार भगवान् मधुसूदन कभी भी स्वतंत्र नहीं रहते। ब्रह्मा, शिव, इंद्र, वरुण और यम भी सदा उनके अधीन रहते हैं ॥ १५ ॥ कुबेर, अग्नि, सूर्य, चंद्रमा, अन्यान्य देवता, सनकादिक मुनि और वसिष्ठ आदि ब्रह्मर्षि, ये सब सदा उसी तरह उनके वशमें रहते हैं, जैसे कठपुतली बाजीगरके और नथे हुए बैल अपने स्वामीके संकेतपर चलते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसी प्रकार सब देवता कालपाशमें आबद्ध रहते हैं। हे राजन् ! हर्ष, शोक, निद्रा, तन्द्रा जँभाई और आलस्यभाव सभी देहधारी प्राणियोंके शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं। ग्रन्थकारोंने देवताओंको अमर (न मरनेवाले) और निर्जर (बुढ़पा रहित) कहा है ॥ १८ ॥ १९ ॥ किन्तु देवता न तो नामसे अमर हैं और न अर्थसे ही। क्योंकि उनमें भी सदा उत्पत्ति, स्थिति और मरणकी अवस्थायें विद्यमान रहती हैं ॥ २० ॥ ऐसी स्थितिमें उन्हें अमर और निर्जर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कैसे कहा जा सकता है ? और फिर 'विबुध' (पूर्ण पण्डित) होते हुए भी वे विभिन्न प्रकारके कष्ट क्यों उठाते हैं ? ॥ २१ ॥ उन्हें देव (क्रीडापरायण) भी कैसे कहा जायगा, जब कि वे विविध भाँतिके दुःखोंमें स्वयं फँसे रहते हैं । यह भी देखा जाता है कि वे भी सब जीवोंके समान क्षण भरमें उत्पन्न होते और मर जाते हैं ॥२२॥ तब केंचुए, जोंक तथा मच्छड़के साथ उनकी उपमा क्यों न दी जाय और जब मरण अर्थ उनमें भी विद्यमान है, तब अमर न कहकर उन्हें 'मर' क्यों न कहा जाय ? ॥ २३ ॥ जैसे मनुष्योंमें कोई सालभर जीता है और कोई सौ वर्ष । मनुष्योंसे बढ़कर परमायु देवताओंकी, देवताओंसे बढ़कर आयु ब्रह्माकी, ब्रह्माजीसे बढ़कर आयु शंकरजीकी और शिवजीसे भी अधिक आयु भगवान विष्णुकी होती है । अन्तमें वे भी नष्ट हो जाते हैं । इसके बाद क्रमशः वे फिर उत्पन्न होकर धीरे-धीरे बढ़ते हैं ॥२४॥२५॥ हे राजन् ! सभी देहधारी प्राणी मरते हैं। मरे हुए प्राणीका पुनः उत्पन्न होना निश्चित रहता है। इस प्रकार रथचक्रकी तरह सबके जनम-मरणका चक्कर लगा रहता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥२६॥ मोहजालमें आबद्ध जीव कभी बन्धनमुक्त नहीं होता । क्योंकि मायाके विद्यमान

तमाः ॥ २१ ॥ कथं देवाश्च वक्तव्या व्यसने क्रीडनं कथम् ॥ क्षणादुत्पत्तिनाशश्च दृश्यतेऽस्मिन्न संशयः ॥ २२ ॥ जलजानां च कीटानां मशकानां तथा पुनः ॥ उपमा कथं न चैतेषामायुषोऽन्ते मराः स्मृताः ॥ २३ ॥ ततो वर्षायुषश्चापि शतवर्षायुषस्तथा ॥ मनुष्या ह्यमरा देवास्तस्माद् ब्रह्मा परः स्मृतः ॥ २४ ॥ रुद्रस्तथा तथा विष्णुः क्रमशश्च भवंति हि ॥ नश्यंति क्रमशश्चैव वर्द्धन्ते चोत्तरोत्तरम् ॥ २५ ॥ नूनं देहवतां नाशो मृतस्योत्पत्तिरेव च ॥ चक्रवद्भ्रमणं राजन्सर्वेषां नात्र संशयः ॥ २६ ॥ मोहजालावृतो जंतुर्मुच्यते न कदाचन ॥ मायायां विद्यमानायां मोहजालं न नश्यति ॥ २७ ॥ उत्पित्सुकाल उत्पत्तिः सर्वेषां नृप जायते ॥ तथैव नाशः कल्पान्ते ब्रह्मादीनां यथाक्रमम् ॥ २८ ॥ निमित्तं यस्तु यन्नाशे स घातयति तं नृप ॥ नान्यथा तद्भवेन्नूनं विधिना निर्मितं तु यत् ॥ २९ ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखं वा सुखमेव वा ॥ तत्तथैव भवेत्कामं नान्यथेह विनिर्णयः ॥ ३० ॥ सर्वेषां सुखदौ देवौ प्रत्यक्षौ शशिभास्करौ ॥ न नश्यति तयोः पीडा क्वचित्तद्वैरिसंभवा ॥ ३१ ॥ भास्करस्य सुतो मंदः क्षयी चन्द्रः कलंकवान् ॥ पश्य राजन्विधेः सूत्रं दुर्वारं महतामपि ॥ ३२ ॥ वेदकर्ता जगत्स्रष्टा बुद्धिदस्तु चतुर्मुखः ॥ सोऽपि विक्लवतां प्राप्तो

रहते मोहका बन्धन नष्ट नहीं होने आता ॥ २७ ॥ हे राजन् ! सृष्टिके अवसरपर ब्रह्मादिक सब देवताओंकी उत्पत्ति होती है और कल्पके अन्तमें क्रमशः ब्रह्मादि देवताओंका नाश हो जाता है ॥ २८ ॥ जिस निमित्तसे जिसका नाश निश्चित हो चुका रहता है, वह उसी नेमित्तसे मरता है । विधाताने जो जिसके ललाटमें लिख दिया है, वह होता ही है । उसके विपरीत कुछ नहीं होता ॥२९॥३०॥ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण सूर्य और चन्द्रमा हैं । वे दोनों सदा सबको सुख देते हैं । फिर भी उनके वैरी राहुकी दी हुई पीड़ाको कोई नहीं नष्ट कर सका ॥३१॥ सबके लिए सुखदायक सूर्यका पुत्र शनैश्चर है । वह सबको सताता है। इसीसे लोग उसे मन्द कहते हैं। चन्द्रमा क्षयरोगके रोगी और कलङ्की हैं। हे राजन् ! देखिए, विधिका विधान इतना अटल होता है कि इतने बड़े-बड़े देवता भी उससे नहीं बच सके ॥ ३२ ॥ वेदोंके रचयिता, समस्त विश्वके स्रष्टा और सबके बुद्धिदायक ब्रह्माजी भी अपनी पुत्री सरस्वतीके रूपपर रीझकर विकल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो गये ॥३३॥ जब शंकरजीकी पत्नी यज्ञके अग्निकुण्डमें जलकर मर गयीं, तब जनसाधारणका कष्ट दूर करनेवाले होते हुए भी शिवजी दुःखसन्तप्त तथा कामाकुल हो उठे ॥ ३४ ॥ जब कामाग्निसे उनका शरीर जलने लगा, तब वे यमुनाजीमें कूद पड़े। हे राजन्! उनके शरीरकी गर्मीसे यमुनाजीका जल श्यामवर्ण हो गया ॥ ३५ ॥ जब शिवजी भृगुवनमें जाकर काम-पीडित होनेके कारण नंगे होकर रमण करने लगे, तब उनकी कामातुरतासे क्रुद्ध होकर भृगुने शाप देते हुए कहा—'हे निर्लज्ज! अभी तुम्हारा लिङ्ग कटकर गिर जाय'। तब शिवजीने शान्ति पानेके लिए दानवोंकी बनवायी अमृतबावलीका जल पिया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ देवराज इन्द्रको बैल बनना पड़ा और सूर्यवंशी महाराज ककुत्स्थने उनकी पीठपर सवारी की। समस्त विश्वके आदिपुरुष और असाधारण ज्ञानसम्पन्न भगवान विष्णुकी रामावतारमें सर्वज्ञता तथा प्रभुशक्ति कहाँ चली गयी थी, जब वे यह नहीं समझ सके कि कहीं सोनेका भी मृग होता है? ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे राजन्! मायाका बल तो देखिए कि परम पुरुष राम भी कामसे मोहित हो गये और महारानी सीताके वियोगसे दुःखी हो फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ४० ॥ वे

दृष्ट्वा पुत्रीं सरस्वतीम् ॥ ३३ ॥ शिवस्यापि मृता भार्या सती दग्ध्वा कलेवरम् ॥ सोऽभवद्दुःखसंतप्तः कामार्तश्च जनार्तिहा ॥ ३४ ॥ कामाग्निदग्धदेहस्तु कालिंद्यां पतितः शिवः ॥ साऽपि श्यामजला जाता तन्निदाघवशान्नृप ॥ ३५ ॥ कामार्तो रममाणस्तु नग्नः सोऽपि भृगोर्वनम् ॥ गतः प्राप्तोऽथ भृगुणा शप्तः कामातुरो भृशम् ॥ ३६ ॥ पतत्वद्यैव ते लिंगं निर्लज्जेति भृशं किल ॥ पपौ चामृतवापीं च दानवैर्निर्मितां मुदे ॥ ३७ ॥ इन्द्रोऽपि च वृषो भूत्वा वाहनत्वं गतः क्षितौ ॥ आद्यस्य सर्वलोकस्य विष्णोरेव विवेकिनः ॥ ३८ ॥ सर्वज्ञत्वं गतं कुत्र प्रभुशक्तिः कुतो गता ॥ यद्धेममृगविज्ञानं न ज्ञातं हरिणा किल ॥३९॥ राजन्मायाबलं पश्य रामो हि काममोहितः ॥ रामो विरहसंतप्तो रुरोद भृशमातुरः ॥४०॥ योऽपृच्छत्पादपान्मूढः क्व गता जनकात्मजा ॥ भक्षिता वा हृता केन रुदन्नुच्चतरं ततः ॥ ४१ ॥ लक्ष्मणाहं मरिष्यामि कांताविरहदुःखितः ॥ त्वं चापि मम दुःखेन मरिष्यसि वनेऽनुज ॥ ४२ ॥ आवयोर्मरणं ज्ञात्वा माता मम मरिष्यति ॥ शत्रुघ्नोऽप्यतिदुःखार्तः कथं जीवितुमर्हति ॥ ४३ ॥ सुमित्रा जीवितं जह्यात्पुत्रव्यसनकर्शिता ॥ पूर्णकामाऽथ कैकेयी भवेत्पुत्रसमन्विता ॥ ४४ ॥ हा सीते क्व गताऽसि त्वं मां विहाय स्मरातुरा ॥ एह्येहि मृगशावाक्षि मां जीवय कृशोदरि ॥ ४५ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि त्वदधीनं च जीवितम् ॥ समाश्वासय दीनं मां प्रियं जनक-

एकदम बावले बनकर पेड़ोंसे पूछते फिरते थे कि मेरी जानकी कहाँ गयी? वे जोर-जोरसे रो-रोकर कहते थे कि उसे कोई हर ले गया या हिंसक पशु खा गया? ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण! मैं अपनी प्रियतमाके वियोगजनित दुःखसे मर जाऊँगा। हे भैया! तुम भी मेरे दुःखसे दुःखी होकर इसी वनमें मर जाओगे ॥ ४२ ॥ हम दोनोंके मरणका समाचार सुनकर माता कौसल्या तन त्याग देगी। तब ऐसा भीषण दुःख पाकर शत्रुघ्न भी कैसे जीवित रह सकेंगे? ॥४३॥ पुत्रमरणके महान् कष्टसे पीड़ित होकर माता सुमित्रा भी चल बसेंगी। हाँ, तब अपने पुत्र भरतके साथ माता कैकेयीकी कामना अवश्य पूर्ण हो जायगी ॥४४॥ हाय सीते! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गयीं? हे मृगनयनी! आओ, आओ। हे कृशोदरि! मुझे जीवन प्रदान करो ॥ ४५ ॥ अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरा जीवन तो सर्वथा तुम्हारे अधीन है। हे जानकी! मैं इस समय बड़ा दीन हो गया हूँ। तुम आकर अपने प्राणप्रिय पति मुझको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आश्वासन दो ॥४६॥ इस प्रकार अमित तेजस्वी राम विलाप करते हुए वन-वन खोजते फिरे, परन्तु उन्हें सीता नहीं मिलीं ॥४७॥ तब समस्त विश्वके शरणदायक राम मायासे मोहित होकर वानरोंकी शरणमें गये ॥ ४८ ॥ उन वानरोंकी सहायतासे उन्होंने समुद्रपर सेतु बाँधा और लङ्कामें जाकर वीर रावण, कुम्भकर्ण एवं महोदरका वध किया ॥ ४९ ॥ सर्वज्ञ होनेके नाते यद्यपि वे जानते थे कि पापी रावणने हठात् सीताका हरण किया था, फिर भी लङ्कासे लाकर उन्होंने सीताकी अग्निपरीक्षा की ॥५०॥ हे महाराज! मैं कहाँ तक कहूँ, योगमायाकी बड़ी महिमा है। उन्हींके द्वारा नचाया हुआ समस्त विश्व सदैव नाचता रहता है ॥५१॥ इसी प्रकार शापके वशीभूत होकर भगवान विष्णु विविध अवतार लेते और दैवके अधीन होकर नाना प्रकारकी लीलायें करते हैं ॥ ५२ ॥ अब मैं आपको देवकार्यसिद्धिके लिए अवतीर्ण भगवान कृष्णके भी मानव जन्म तथा कर्मका वृत्तान्त बताता हूँ ॥ ५३ ॥ बहुत दिनोंकी बात है, यमुनाजीके

नन्दिनि ॥ ४६ ॥ एवं विलपता तेन रामेणामिततेजसा ॥ वने वने च भ्रमता नेक्षिता जनकात्मजा ॥ ४७ ॥ शरण्यः सर्वलोकानां रामः कमललोचनः ॥ शरणं वानराणां स गतो मायाविमोहितः ॥ ४८ ॥ सहायान्वानरान्कृत्वा बबन्ध वरुणालयम् ॥ जघान रावणं वीरं कुम्भकर्णं महोदरम् ॥ ४६ ॥ आनीय च ततः सीतां रामो दिव्यमकारयत् ॥ सर्वज्ञोऽपि हृतां मत्वा रावणेन दुरात्मना ॥ ५० ॥ किं ब्रवीमि महाराज योगमायाबलं महत् ॥ यया विश्वमिदं सर्वं भ्रामितं भ्रमते किल ॥ ५१ ॥ एवं नानाऽवतारेऽत्र विष्णुः शापवशं गतः ॥ करोति विविधाश्चेष्टा दैवाधीनः सदैव हि ॥ ५२ ॥ तवाहं कथयिष्यामि कृष्णस्यापि विचेष्टितम् ॥ प्रभवं मानुषे लोके देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ५३ ॥ कालिन्दीपुलिने रम्ये ह्यासीन्मधुवनं पुरा ॥ लवणो मधुपुत्रस्तु तत्रासीद्दानवो बली ॥ ५४ ॥ द्विजानां दुःखदः पापी वरदानेन गर्वितः ॥ निहतोऽसौ महाभाग लक्ष्मणस्यानुजेन वै ॥ ५५ ॥ शत्रुघ्नेनाथ संग्रामे तं निहत्य मदोत्कटम् ॥ वासिता मथुरा नाम पुरी परमशोभना ॥ ५६ ॥ स तत्र पुष्कराक्षौ द्वौ पुत्रौ शत्रुनिषूदनः ॥ निवेश्य राज्ये मतिमान्काले प्राप्ते दिवं गतः ॥ ५७ ॥ सूर्यवंशक्षये तां तु यादवाः प्रतिपेदिरे ॥ मथुरां मुक्तिदां राजन् ययातितनयः पुरा ॥ ५८ ॥ शूरसेनाभिधः शूरस्तत्राभून्मेदिनीपतिः ॥ माथुराञ्छूरसेनांश्च बुभुजे विषयान्नृप ॥ ५६ ॥ तत्रोत्पन्नः कश्यपांशः शापाच्च वरुणस्य वै ॥ वसुदेवोऽतिविख्यातः शूरसेनसुतस्तदा ॥ ६० ॥ वैश्यवृत्तिरतः सोऽभून्मृते पितरि माधवः ॥ उग्रसेनो बभूवाथ कंसस्तस्यात्मजो

तटपर विद्यमान मधुवनोंमें मधुदानवका महाबली पुत्र लवण राज्य करता था ॥ ५४ ॥ वह वरप्राप्तिके घमण्डमें आकर ब्राह्मणोंको बहुत सताता था। हे महाभाग! उसे लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्नने संग्राममें मार डाला और वहाँ मथुरा नामकी बड़ी ही सुन्दर नगरी बसायी ॥५५॥५६॥ बुद्धिमान् शत्रुघ्नने सुबाहु तथा श्रुतसेन नामके अपने दो कमलके समान नेत्रवाले राजकुमार राज्यकार्यपर नियुक्त कर दिया और समय आनेपर स्वर्गवासी हो गये ॥ ५७ ॥ सूर्यवंशके नष्ट हो जानेपर वह मुक्तिदायिनी मथुरा नगरी यादवोंके अधिकारमें आ गयी। पूर्वकालमें राजा ययातिके पुत्र वीर शूरसेन वहाँके राजा हुए। हे राजन्! वे मथुरा और शूरसेन दोनों प्रदेशोंपर शासन करते थे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ वरुणदेवके शापवश महर्षि कश्यपके अंशसे राजा शूरसेनके पुत्र एवं अतिशय विख्यात वसुदेव उत्पन्न हुए ॥ ६० ॥ वे कृषि तथा गोपालनकी वैश्यवृत्ति करते थे। पिता शूरसेनके मर जानेपर वसुदेव शूरसेन प्रदेशके तथा उग्रसेन मथुराप्रदेशके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजा हुए। उग्रसेनका परम प्रतापी पुत्र कंस था ॥ ६१ ॥ वरुणके शापवश महर्षि कश्यपकी पत्नी अदिति उग्रसेनके भाई देवककी कन्या देवकीके रूपमें उत्पन्न हुई ॥ ६२ ॥ महात्मा देवकने अपनी पुत्रीका विवाह वसुदेवके साथ कर दिया। विवाहकार्य सम्पन्न होजानेपर आकाशवाणी हुई—॥ ६३ ॥ हे महाभाग कंस ! देवकीके गर्भसे उत्पन्न आठवाँ पुत्र तुम्हारा वध करेगा ॥ ६४ ॥ वह वाणी सुनकर महाबली कंसको बड़ा विस्मय हुआ। उस देववाणीको सत्य समझकर उसे बड़ी चिन्ता हुई ॥ ६५ ॥ अब वह इस विचारमें पड़ गया कि क्या करना चाहिए। अन्तमें वह इस निश्चयपर पहुँचा कि यदि मैं अभी इसे मार डालूँ तो मेरी मृत्यु न होगी ॥ ६६ ॥ इस भयानक मौतसे बचनेके लिए दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। किन्तु देवकी चचेरी बहिन होनेके नाते मेरी पूज्य है। तब इसे कैसे मारूँ ? ॥ ६७ ॥ बादमें फिर सोचा—अहो ! यह मेरी बहिन नहीं, बल्कि यह तो मेरी मृत्यु है। विद्वान् मनुष्योंका

महान् ॥ ६१ ॥ अदितिर्देवकी जाता देवकस्य सुता तदा ॥ शापाद्वै वरुणस्याथ कश्यपानुगता किल ॥ ६२ ॥ दत्ता सा वसुदेवाय देवकेन महात्मना ॥ विवाहे रचिते तत्र वागभूद्गगने तदा ॥६३॥ कंस कंस महाभाग देवकीगर्भसंभवः ॥ अष्टमस्तु सुतः श्रीमांस्तव हंता भविष्यति ॥६४॥ तच्छ्रुत्वा वचनं कंसो विस्मितोऽभून्महाबलः ॥ देववाचं तु तां मत्वा सत्यां चिन्तामवाप सः ॥ ६५ ॥ किं करोमीति संचिन्त्य विमर्शमकरोत्तदा ॥ निहत्यैनां न मे मृत्युर्भवेदद्यैव सत्वरम् ॥ ६६ ॥ उपायो नान्यथा चास्मिन्कार्ये मृत्युभयावहे ॥ इयं पितृष्वसा पूज्या कथं हन्मीत्यचिन्तयत् ॥६७॥ पुनर्विचारयामास मरणं मेऽस्त्यहो स्वसा ॥ पापेनापि प्रकर्तव्या देहरक्षा विपश्चिता ॥ ६८ ॥ प्रायश्चित्तेन पापस्य शुद्धिर्भवति सर्वदा ॥ प्राणरक्षा प्रकर्तव्या बुधैरप्येनसा तथा ॥६९॥ विचिन्त्य मनसा कंसः खड्गमादाय सत्वरः ॥ जग्राह तां वरारोहां केशेष्वाकृष्य पापकृत् ॥ ७० ॥ कोशात्खड्गमुपाकृष्य हंतुकामो दुराशयः ॥ पश्यतां सर्वलोकानां नवोढां तां चकर्ष ह ॥ ७१ ॥ हन्यमानां च तां दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् ॥ वसुदेवानुगा वीरा युद्धायोद्यतकार्मुकाः ॥७२॥ मुञ्च मुञ्चेति प्रोचुस्तं तदा चाद्भुतसाहसाः ॥ कृपया मोचयामासुर्देवकीं देवमातरम् ॥ ७३ ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं वीराणां च परस्परम् ॥ वसुदेवसहायानां कंसेन च महात्मना ॥ ७४ ॥ वर्तमाने तथा युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥ कंसं निवारयामासुर्वृद्धा ये

कथन है कि आवश्यकता आ पड़नेपर पापकर्म करके भी आत्मरक्षा करे ॥ ६८ ॥ क्योंकि बादमें प्रायश्चित्त कर लेनेपर पापकी शुद्धि हो सकती है। अतएव पापकर्म करके भी समझदार मनुष्यको अपने प्राणोंकी रक्षा कर लेनी चाहिए ॥६९॥ ऐसा विचार करके कंसने चटपट तलवार हाथमें ली और सुन्दरी देवकीके केश पकड़ तथा खींचकर मारनेको उद्यत हो गया ॥७०॥ कुत्सित विचारयुक्त कंसने म्यानसे तलवार निकाल ली और सब लोगोंके समक्ष मार डालनेके अभिप्रायसे उसने अपनी बहिन देवकीको रथसे खींच लिया ॥ ७१ ॥ इस प्रकार देवकीका वध होते देखकर चारों ओर हाहाकार मच गया। उधर वसुदेवके साथी वीर धनुष-बाण लेकर युद्ध करनेके लिए तैयार हो गये ॥७२॥ उन अद्भुत साहसी वीरोंने कंसको ललकारते हुए कहा—उसे छोड़ दो—छोड़दो। ऐसा करके दयापूर्वक उन्होंने देवमाता देवकीको छुड़ा लिया ॥ ७३ ॥ तदनन्तर वसुदेवके सहायक वीरों और साहसी कंसमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ ॥ ७४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस दारुण तथा लोमहर्षक युद्धके उग्र रूप धारण करनेपर माननीय बड़े-बूढ़े यादवोंने समझा-बुझाकर कंसको रोक दिया ॥ ७५ ॥ उन्होंने कहा—हे वीर ! यह तुम्हारी पूज्य चचेरी बहिन है । यह अभी अबोध बालिका है । हे वीर ! इस विवाहोत्सव जैसे मांगलिक अवसरपर तुम्हें इसका वध नहीं करना चाहिए ॥ ७६ ॥ हे वीर ! स्त्रीहत्यासे बहुत दुःख मिलता है । इससे कीर्ति नष्ट हो जाती है । यह सबसे महान् पाप है । तुम जैसे समझदार वीरको भूतकी वाणीपर विश्वास करके ऐसा कुत्सित कर्म नहीं करना चाहिए ॥ ७७ ॥ हो सकता है कि तुम्हारे या वसुदेवके किसी शत्रुने ऐसी अनर्थकारिणी नकली आकाशवाणी कर दी हो ॥ ७८ ॥ हे राजा कंस ! तुम्हारी कीर्तिका नाश और वसुदेवकी गृहस्थी चौपट करनेके लिए अवश्य किसी मायावी शत्रुने ही इस कृत्रिम आकाशवाणीकी रचना की है ॥७९॥ तुम इतने बड़े वीर होकर भी किसी भूतकी भविष्यवाणी सुनकर इस तरह डर गये ? यह तो तुम्हारे यशरूपी वृक्षको समूल नष्ट करनेके लिए तुम्हारे किसी शत्रुने ऐसा प्रपंच रचा है ॥ ८० ॥ अपनी बहिनकी हत्या वैसे ही महापाप है, उसपर भी विवाहके समय ऐसा करना तो और भी जघन्य

यदुसत्तमाः ॥७५॥ पितृष्वसेयं ते वीर पूजनीया च बालिशा ॥ न हंतव्या त्वया वीर विवाहोत्सवसंगमे ॥ ७६ ॥ स्त्रीहत्या दुःसहा वीर कीर्तिघ्नी पापकृत्तमा ॥ भूतभाषितमात्रेण न कर्तव्या विजानता ॥ ७७ ॥ अन्तर्हितेन केनापि शत्रुणा तव चास्य वा ॥ उदितेति कुतो न स्याद्वा-गनर्थकरी विभो ॥ ७८ ॥ यशसस्ते विघाताय वसुदेवगृहस्य च ॥ अरिणा रचिता वाणी गुणमायाविदा नृप ॥ ७९ ॥ बिभेषि वीरस्त्वं भूत्वा भूतभाषितभाषया ॥ यशोमूलविघातार्थमुपायस्त्वरिणा कृतः ॥ ८० ॥ पितृष्वसा न हंतव्या विवाहसमये पुनः ॥ भवितव्यं महाराज भवेच्च कथम-न्यथा ॥ ८१ ॥ एवं तैर्बोध्यमानोऽसौ निवृत्तो नाभवद्यदा ॥ तदा तं वसुदेवोऽपि नीतिज्ञः प्रत्यभाषत ॥ ८२ ॥ कंस सत्यं ब्रवीम्यद्य सत्याधारं जगत्त्रयम् ॥ दास्यामि देवकीपुत्रानुत्पन्नांस्तव सर्वशः ॥ ८३ ॥ जातं जातं सुतं तुभ्यं न दास्यामि यदि प्रभो ॥ कुम्भीपाके तदा घोरे पतंतु मम पूर्वजाः ॥ ८४ ॥ श्रुत्वाऽथ वचनं सत्यं पौरवा ये पुरःस्थिताः ॥ ऊचुस्ते त्वरिताः कंसं साधु साधु पुनः पुनः ॥ ८५ ॥ न मिथ्या भाषते क्वापि वसुदेवो महामनाः ॥ केशं मुंच महाभाग स्त्रीहत्यापातकं तथा ॥ ८६ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्रबोधितः कंसो यदुवृद्धैर्महात्मभिः ॥ क्रोधं त्यक्त्वा स्थितस्तत्र सत्यवाक्यानुमोदितः ॥ ततो दुंदुभयो नेदुर्वादित्राणि च सस्वनुः ॥ ८७ ॥ (जयशब्दस्तु सर्वेषामुत्पन्नस्तत्र संसदि ॥)

अपराध है । और फिर हे महाराज ! यदि वैसा होनहार ही होगा तो उसे कोई कैसे टाल सकता है ? ॥८१॥ इस प्रकार उन यादव वृद्धोंके बहुत समझानेपर भी वह अपने निश्चयसे नहीं डिगा । तब नीतिनिपुण वसुदेवने कहा—॥८२॥ हे कंस ! सत्यके ही सहारे तीनों लोक टिके हुए हैं । उसी सत्यको साक्षी मानकर मैं कहता हूँ कि इस देवकीके गर्भसे जितने भी पुत्र उत्पन्न होंगे, उन्हें मैं आपको दे दूँगा ॥ ८३ ॥ हे प्रभो ! यदि उत्पन्न होते ही अपने पुत्र मैं आपको न दे दूँ तो मेरे पूर्वज कुम्भीपाकके घोर नरकमें जा पड़ें ॥८४॥ वसुदेवका वचन सुनकर वहाँ उपस्थित सभी पुरुवंशी यादव 'वाह-वाह वसुदेव ! तुम धन्य हो' ऐसा कहकर वे कंससे बोले –॥८५॥ महातेजस्वी वसुदेव कभी झूठ नहीं बोलते । अतएव हे महाभाग ! अब आप देवकीके केश छोड़ दें और स्त्रीहत्याके महापापसे बच जायँ ॥ ८६ ॥ व्यासजी कहने लगे—उन महात्मा यादव वृद्धोंके इस प्रकार समझानेपर कंसने वसुदेवकी बातपर विश्वास करके देवकीको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छोड़ दिया। अब उसका क्रोध भी शान्त हो गया। यह महासंकट टल जानेपर दुन्दुभियाँ गड़गड़ा उठीं और विभिन्न प्रकारके बाजे बजने लगे ॥ ८७॥ (उस जनसमवायमें अगणित कण्ठोंसे एक साथ जयजयकारकी ध्वनि उच्चरित हो उठी)। राजा शूरसेनके महायशस्वी पुत्र वसुदेवने इस प्रकार कंसको प्रसन्न करके उसके हाथोंसे देवकीको छुड़ा लिया। इसके बाद नवपरिणीता वधू देवकी तथा अपने स्वजनोंके साथ वे तत्काल निर्भयभावसे अपने घरको चल पड़े ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

(वसुदेव-देवकीमें भाग्यसम्बन्धी वार्ता और देवकीके पुत्रका कंस द्वारा वध) व्यासजी बोले–हे महाराज! तदनन्तर समय आनेपर देवरूपिणी देवकीने वसुदेवके साथ संभोग करके विधिवत् गर्भ धारण किया ॥ १ ॥ दसवाँ महीना पूर्ण होनेपर उन्होंने बहुत ही रूपवान् और सुडौल अङ्गोंवाले प्रथम पुत्रको जन्म दिया ॥ २ ॥ तब सत्यप्रतिज्ञाके बन्धनमें बँधे हुए महाभाग वसुदेवने होनहारसे विवश होकर देवमाता देवकीसे कहा–॥३॥ हे सुजघने! तुम इस बातको जानती ही हो कि मैं अपने सभी पुत्र कंसको दे देनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। हे महाभागे!

प्रसाद्य कंसं प्रतिमोच्य देवकीं महायशाः शूरसुतस्तदानीम् ॥ जगाम गेहं स्वजनानुवृत्तो नवोढया वीतभयस्तरस्वी ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ व्यास उवाच ॥ अथ काले तु संप्राप्ते देवकी देवरूपिणी ॥ गर्भं दधार विधिवद्वसुदेवेन संगता ॥ १ ॥ पूर्णेऽथ दशमे मासे सुषुवे सुतमुत्तमम् ॥ रूपावयवसंपन्नं देवकी प्रथमं यदा ॥ २ ॥ तदाऽऽह वसुदेवस्तां सत्यवाक्यानुमोदितः ॥ भावित्वाच्च महाभागो देवकीं देवमातरम् ॥ ३ ॥ वरोरु समयं मे त्वं जानासि स्वसुतार्पणे ॥ मोचिता त्वं महाभागे शपथेन मया तदा ॥ ४ ॥ इमं पुत्रं सुकेशांते दास्यामि भ्रातृसूनवे ॥ (खले कंसे विनाशार्थं दैवे किं वा करिष्यसि ॥) विचित्रकर्मणां पाको दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः ॥ ५ ॥ सर्वेषां किल जीवानां कालपाशानुवर्तिनाम् ॥ भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ ६ ॥ प्रारब्धं सर्वथैवात्र जीवस्य विधिनिर्मितम् ॥ देवक्युवाच ॥ स्वामिन्पूर्वकृतं कर्म भोक्तव्यं सर्वथा नृभिः ॥ ७ ॥ तीर्थैस्तपोभिर्दानैर्वा किं न याति क्षयं हि तत् ॥ लिखितो धर्मशास्त्रेषु प्रायश्चित्तविधिर्नृप ॥ ८ ॥ पूर्वार्जितानां पापानां विनाशाय महात्मभिः ॥ ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ ९ ॥ द्वादशाब्दव्रते चीर्णे शुद्धिं याति यतस्ततः ॥ मन्वादिभिर्यथोद्दिष्टं प्रायश्चित्तं विधानतः

उस समय इस प्रतिज्ञाको करके ही मैंने तुम्हें कंससे छुड़ाया था ॥४॥ अतएव हे सुकेशी! मैं यह पुत्र तुम्हारे चचेरे भाई कंसको दे दूँगा। (यद्यपि मैं जनता हूँ कि वह इसे मार डालेगा, लेकिन भाग्यपर किसीका वश ही क्या है?)। कर्मोंके विचित्र परिणाम साधारण लोगोंके लिए दुर्ज्ञेय होते हैं ॥ ५ ॥ काल कालपाशमें बँधे सभी प्राणियोंको अपने किये भले या बुरे कर्मोंका फल भोगना अनिवार्य रहता है ॥ ६ ॥ प्रत्येक जीवके लिए निर्मित विधिका विधान प्रारब्ध ही रहता है। देवकीने कहा—हे स्वामिन्! यह तो मैं भी जानती हूँ कि मनुष्योंको अपने पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। किन्तु जैसे अन्यान्य पापोंकी निवृत्ति प्रायश्चित्तसे हो जाती है, उसी प्रकार तीर्थ, तप तथा दान करनेसे क्या कर्मफल नष्ट नहीं हो सकता? हे महाराज! धर्मशास्त्रोंमें अनेक प्रकारके प्रायश्चित्तोंकी विधि बतायी गयी है ॥७॥८॥ उन्हीं ग्रंथोंमें पूर्व अर्जित पापोंके विनाशार्थ महात्माओंने बताया है कि ब्रह्महत्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेवाले, सोनेकी चोरी करनेवाले, शराबी और परपत्नीके साथ दुराचार करनेवाले महापापी भी यदि बारह वर्षतक मनु आदिके कहे प्रायश्चित्तके अनुसार विधिवत् व्रतका अनुष्ठान करें तो उनके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥९॥१०॥ तब यदि साधारण मनुष्य उन व्रतोंका पालन करें तो पापमुक्त हो सकते हैं या नहीं ? यदि वे नहीं छूटते तो क्या याज्ञवल्क्य आदि धर्मशास्त्रके रचयिता तत्त्वदर्शी मुनियोंके वचन अकारथ हो जायँगे ? यदि यही निश्चित सिद्धान्त मान लिया जाय कि होनहार होकर ही रहता है ॥११॥१२॥ तब आयुर्वेद और मंत्रशास्त्र व्यर्थ हो जायँगे। क्योंकि बीमारको औषधि तथा मन्त्रजप आदिकी आवश्यकता ही क्या रहेगी ? उसके भाग्यमें जो लिखा होगा, सो होगा। यदि भाग्यको सर्वोपरि मान लें तो सभी प्रयत्न व्यर्थ हो जायँगे। जो भाग्यमें है, वही होता है तो प्रयत्नकी क्या आवश्यकता ? यदि भाग्यको ही प्रबल मानें तो अच्छे कार्यमें प्रवृत होना भी व्यर्थ हो जायगा और स्वर्गप्राप्तिके साधन अग्निष्टोम तथा यज्ञ-यागादि कर्म भी निरर्थक हो जायँगे। क्योंकि यदि भाग्यमें होगा तो स्वर्ग चले ही जायँगे। सुकर्म तथा यज्ञादिकी क्या आवश्यकता ? ॥१३॥१४॥ जब वेदोंके यज्ञप्रतिपादक आदेश ही बेकार हो गये, तब

॥१०॥ तथा कृत्वा नरः पापान्मुच्यते वा न वाऽनघ ॥ विगीतवचनास्ते किं मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥११॥ याज्ञवल्क्यादयः सर्वे धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ भवितव्यं भवत्येव यद्येवं निश्चयः प्रभो ॥ १२ ॥ आयुर्वेदः स मिथ्यैव मंत्रवादास्तथाऽखिलाः ॥ उद्यमस्तु वृथा सर्वमेवं चेद्दैवनिर्मितम् ॥ १३ ॥ भवितव्यं भवत्येव प्रवृत्तिस्तु निरर्थिका ॥ अग्निष्टोमादिकं व्यर्थं नियतं स्वर्गसाधनम् ॥ १४ ॥ यदा तदा प्रमाणं हि वृथैव परिभाषितम् ॥ वितथे तत्प्रमाणे तु धर्मोच्छेदः कुतो न हि ॥ १५ ॥ उद्यमे च कृते सिद्धिः प्रत्यक्षेणैव साध्यते ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यः प्रपंचश्चित्तकल्पितः ॥ १६ ॥ यथाऽयं बालकः क्षेमं प्राप्नोति मम पुत्रकः ॥ मिथ्या यदि प्रकर्तव्यं वचनं शुभमिच्छता ॥ १७ ॥ न तत्र दूषणं किंचित्प्रवदंति मनीषिणः ॥ वसुदेव उवाच ॥ निशामय महाभागे सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १८ ॥ उद्यमः खलु कर्तव्यः फलं दैववशानुगम् ॥ त्रिविधानीह कर्माणि संसारेऽत्र पुराविदः ॥ १९ ॥ प्रवदंतीह जीवानां पुराणेष्वागमेषु च ॥ संचितानि च जीर्णानि प्रारब्धानि सुमध्यमे ॥२०॥ वर्तमानानि वामोरु त्रिविधानीह देहिनाम् ॥ शुभाशुभानि कर्माणि बीजभूतानि यानि च ॥ २१ ॥ बहुजन्मसमुत्थानि काले तिष्ठंति सर्वथा ॥ पूर्वदेहं परित्यज्य जीवः कर्मवशानुगः ॥ २२ ॥ स्वर्ग

धर्म कहाँ रहा ? अतएव यदि भाग्यको प्रधान मानोगे तो धर्मका मूल ही उच्छिन्न हो जायगा ॥१५॥ मेरा तो विचार यह है कि प्रयत्नसे प्रत्यक्ष सिद्धि प्राप्त हो जाती है। अतएव मनमें भलीभाँति विचार करके कोई उपाय खोजिए ॥१६॥ जिससे अभी-अभी जायमान मेरा बच्चा बच जाय। क्योंकि यदि किसीके कल्याणार्थ झूठ बोल दिया जाय तो बड़े-बड़े विद्वान् उसे दूषण नहीं मानते। वसुदेवजी बोले–हे महाभागे ! सुनो, मैं तुम्हें एक बात बता रहा हूँ ॥१७॥१८॥ यह तो मैं भी मानता हूँ कि उद्यम करना चाहिए। किन्तु उसका फल तो दैवके ही अधीन रहता है। पुरातत्त्ववेत्ता मुनियोंने पुराणों-शास्त्रोंके कथनानुसार इस संसारमें प्राणियोंके तीन प्रकारके कर्म बतलाये हैं। जैसे–सञ्चित कर्म, प्रारब्ध कर्म और वर्तमान कर्म। हे सुजघने ! देहधारियोंके ये ही तीन प्रकारके कर्म होते हैं। संसारमें रहकर जो प्राणी अच्छा या बुरा कर्म करता है, वह बीज बन जाता है ॥ १९–२१ ॥ बहुत समय तथा अनेक जन्म-जन्मान्तरके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाद भी वे कर्मके बीज ज्योंके त्यों बने रहते हैं। जीव पहलेका शरीर त्यागकर अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार स्वर्ग अथवा नरकमें जाता है। सुकर्म करनेवालेको दिव्य देह तथा दुष्कर्म करनेवालेको यातनादेह प्राप्त होती है। पुण्यात्मा स्वर्गमें जाकर भाँति-भाँतिके सुख भोगता है और पापी नरकमें पहुँचकर विविध प्रकारके कष्ट सहता है। इस प्रकार स्वर्ग या नरकका भोग समाप्त होनेपर जब पुनः उसके जन्म लेनेका समय आता है ॥ २२–२४ ॥ तब प्राचीन लिङ्गदेहके साथ वह जीव बनता है। उसी समय परमात्मा सञ्चित, प्रारब्ध तथा वर्तमान इन तीनों प्रकारके कर्मोंको उसके साथ लगा देते हैं। हे सुनयनी! प्रत्येक प्राणीको अपने शरीरसे ही पूर्व जन्मके सञ्चित कर्म, इस जन्ममें होनेवाले शुभाशुभ कर्म तथा प्रारब्ध कर्मका फल भोगना ही पड़ता है। हे भामिनी! पूर्वोक्त तीन प्रकारके कर्मोंमेंसे केवल वर्तमान कर्म प्रायश्चित्तके द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं ॥२५–२७॥ यथार्थ रीतिसे विधि-विधानके साथ उपाय करनेपर संचित कर्म भी नष्ट किये जा सकते हैं। किन्तु प्रारब्ध कर्मका नाश तो उन्हें भोग लेनेके बाद ही हो सकता है—अन्यथा नहीं ॥२८॥ अतएव तुम्हारे इस पुत्रको मुझे कंसके पास पहुँचना ही होगा। यदि

वा नरकं वाऽपि प्राप्नोति स्वकृतेन वै ॥ दिव्यं देहं च संप्राप्य यातनादेहमर्थजम् ॥ २३ ॥ भुनक्ति विविधान्भोगान्स्वर्गे वा नरकेऽथवा ॥ भोगांते च यदोत्पत्तेः समयस्तस्य जायते ॥ २४ ॥ लिंगदेहेन सहितं जायते जीवसंज्ञितम् ॥ तदैव संचितेभ्यश्च कर्मभ्यः कर्मभिः पुनः ॥ २५ ॥ योजयत्येव तं कालं कर्माणि प्राकृतानि च ॥ देहेनानेन भाव्यानि शुभानि चाशुभानि च ॥ २६ ॥ प्रारब्धानि च जीवेन भोक्तव्यानि सुलोचने ॥ प्रायश्चित्तेन नश्यंति वर्तमानानि भामिनि ॥ २७ ॥ संचितानि तथैवाशु यथार्थ विहितेन च ॥ प्रारब्धकर्मणां भोगात्संक्षयो नान्यथा भवेत् ॥ २८ ॥ तेनायं ते कुमारो वै देयः कंसाय सर्वथा ॥ न मिथ्यावचनं मेऽस्ति लोकनिंदाऽभिदूषितम् ॥ २९ ॥ अनित्येऽस्मिंस्तु संसारे धर्मसारे महात्मनाम् ॥ दैवाधीनं हि सर्वेषां मरणं जननं तथा ॥ ३० ॥ तस्माच्छोको न कर्तव्यो देहिनां हि निरर्थकः ॥ सत्यं यस्य गतं कांते वृथा तस्यैव जीवितम् ॥ ३१ ॥ इह लोको गतो यस्मात्परलोकः कुतस्ततः ॥ अतो देहि सुतं सुभ्रु कंसाय प्रददाम्यहम् ॥ ३२ ॥ सत्यसंस्तरणाद्देवि शुभमग्रे भविष्यति ॥ कर्तव्यं सुकृतं पुंभिः सुखे दुःखे सति प्रिये ॥३३॥ (सत्यसंरक्षणाद्देवि शुभमेव भविष्यति ॥) व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवति कांते सा देवकी शोकसंयुता ॥ ददौ पुत्रं प्रसूतं च वेपमाना मनस्विनी ॥३४॥ वसुदेवोऽपि धर्मात्मा आदाय स्वसुतं शिशुम् ॥ जगाम कंससदनं मार्गे लोकैरभिष्टुतः ॥३५॥ लोका ऊचुः ॥

तुम हठ करके झूठ बोलाओगी तो बात बिगड़ जायगी और संसारमें मेरी बड़ी निन्दा होगी ॥ २९ ॥ इस अनित्य संसारमें महापुरुषोंके लिए एकमात्र धर्म ही सार है। सबका जीवन और मरण सदा दैवके अधीन रहता है ॥ ३० ॥ अतएव हे प्रिये! किसी भी प्राणीको व्यर्थ शोक न करना चाहिए। इस संसारमें जिसके शरीरसे सत्य चला गया, उसका जीवन ही व्यर्थ हो जाता है ॥ ३१ ॥ जिसका इहलोक बिगड़ गया, उसका परलोक क्या बनेगा? अतएव हे सुभ्रु! यह बच्चा मुझे दे दो। मैं इसे कंसको दे आऊँ ॥ ३२ ॥ हे देवि! सत्यकी राहपर चलनेसे भविष्य कल्याणमय होगा। हे प्रिये! भले मनुष्यका यह कर्तव्य है कि सुख हो या दुःख, बराबर भलाईका काम करते रहना चाहिए ॥ ३३ ॥ (हे देवि! सत्यको रक्षा करनेसे हमारा सर्वथा कल्याण ही होगा)। व्यासजी बोले—अपने प्रिय पतिकी इन बातोंको सुनकर शोकाकुल और मनस्विनी देवकीने अपने काँपते हुए हाथोंमें लेकर वह नवजात शिशु वसुदेवको दे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिया ॥ ३४ ॥ धर्मात्मा वसुदेव भी उस अबोध बालकको लेकर कंसके महलकी ओर चल पड़े। रास्तेमें मिलनेवाले सभी लोग उनकी सराहना कर रहे थे ॥ ३५ ॥ लोग कहते थे—हे दुनियाके लोगों! इन मनस्वनी वसुदेवकी ओर निहारो। अपनी बात रखनेके लिए ही ये अपने नादान बच्चेको मृत्युके मुखमें डालने जा रहे हैं। क्योंकि ये सत्यवादी हैं। इन्हींका जीवन सफल है। इनके इस अद्भुत धर्मपालनका आदर्श देखो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जो मूर्तिमान् कालस्वरूप कंसको अपना पुत्र देने जा रहे हैं। व्यासजो बोले--हे महाराज! इस प्रकार लोगों द्वारा प्रशंसित होते हुए वसुदेव कंसके घर पहुँचे ॥ ३८ ॥ भीतर जाकर उन्होंने वह बच्चा कंसको दे दिया। महात्मा वसुदेवका धैर्य देखकर कंसको भी बहुत आश्चर्य हुआ ॥ ३९ ॥ बालकको हाथमें लेकर मुसकाते हुए कंसने कहा—हे शूरसेनतनय वसुदेव! आप धन्य हैं। इस प्रकार नवजात पुत्रको समर्पण करते देखकर आज मुझे आपका महत्त्व ज्ञात हो गया ॥ ४० ॥ किन्तु यह शिशु मेरा शत्रु नहीं है। क्योंकि आकाशवाणीने देवकीके आठवें बालक द्वारा मेरी मृत्युकी बात कही थी। अतएव मैं इसे नहीं मारूँगा। इसको आप अपने घर ले जाइए ॥४१॥

पश्यंतु वसुदेवं भो लोका एवं मनस्विनम् ॥ स्ववाक्यमनुरुध्यैव बालमादाय यात्यसौ ॥ ३६ ॥ मृत्यवे दातुकामोऽद्य सत्यवागनसूयकः ॥ सफलं जीवितं चास्य धर्मं पश्यंतु चाद्भुतम् ॥ ३७ ॥ यः पुत्रं याति कंसाय दातुं कालात्मनेऽपि हि ॥ इति संस्तूयमानस्तु प्राप्तः कंसालयं नृप ॥ ३८ ॥ ददावस्मै कुमारं तं जातमात्रममानुषम् ॥ कंसोऽपि विस्मयं प्राप्तो दृष्ट्वा धैर्यं महात्मनः ॥३९॥ गृहीत्वा बालकं प्राह स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ धन्यस्त्वं शूरपुत्राद्य ज्ञातः पुत्रसमर्पणात् ॥ ४० ॥ मम मृत्युर्न चायं वै गिरा प्रोक्तस्तु चाष्टमः ॥ न हंतव्यो मया कामं बालोऽयं यातु ते गृहम् ॥ ४१ ॥ अष्टमस्तु प्रदातव्यस्त्वया पुत्रो महामते ॥ इत्युक्त्वा वसुदेवाय ददावाशु खलः शिशुम् ॥४२॥ गच्छत्वयं गृहे बालः क्षेमं व्याहृतवान्नृपः ॥ तमादाय तदा शौरिर्जगाम स्वगृहं मुदा ॥ ४३ ॥ कंसोऽपि सचिवानाह वृथा किं घातये शिशुम् ॥ अष्टमाद्देवकीपुत्रान्मम मृत्युरुदाहृतः ॥ ४४ ॥ अतः किं प्रथमं बालं हत्वा पापं करोम्यहम् ॥ साधु साध्विति तेऽप्युक्त्वा संस्थिता मंत्रिसत्तमाः ॥४५॥ विसर्जितास्तु कंसेन जग्मुस्ते स्वगृहान्प्रति ॥ गतेषु तेषु संप्राप्तो नारदो मुनिसत्तमः ॥ ४६ ॥ अभ्युत्थानार्घ्यपाद्यादि चकारोग्रसुतस्तदा ॥ पप्रच्छ कुशलं राजा तत्रागमनकारणम् ॥ ४७ ॥ नारदस्तं तदोवाच स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ कंस कंस महाभाग गतोऽहं हेमपर्वतम् ॥ ४८ ॥ तत्र ब्रह्मादयो देवा मंत्रं चक्रुः समाहिताः ॥ देवक्यां वसुदेवस्य

हे महामतिमान्! जब आठवाँ पुत्र उत्पन्न हो तो उसे आप यहाँ लाइएगा। वसुदेवजीसे ऐसा कहकर उस खल कंसने तत्काल वह शिशु लौटा दिया ॥४२॥ राजा कंसने कहा—यह बालक अपने घर जाय और सकुशल रहे। तब उस बच्चेको लेकर शूरसेनसुत वसुदेव बड़ी प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चले गये ॥ ४३ ॥ वसुदेवके चले जानेपर कंसने अपने मंत्रियोंसे कहा—जब देवकीके आठवें पुत्रसे मेरी मृत्यु कही गयी है, तब व्यर्थ मैं इस प्रथम शिशुकी हत्या क्यों करूँ और नाहक पाप क्यों कमाऊँ? वहाँ बैठे हुए सभी मंत्रियोंने कंसकी बातका अनुमोदन करते हुए उसे धन्यवाद दिया ॥४४॥४५॥ तदनन्तर कंसकी अनुमति पाकर वे सब मन्त्री अपने-अपने घर चले गये। उनके जाते ही वहाँ मुनिश्रेष्ठ नारदजी आ पहुँचे ॥४६॥ उग्रसेनतनय कंसने बड़ी श्रद्धाके साथ उठकर उनका स्वागत किया और विधिवत् अर्घ्य-पाद्य अर्पण करके कुशल-क्षेम तथा आगमनका कारण पूछा ॥४७॥ तब नारदजीने मुसकाकर कहा—हे कंस! हे महाभाग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कंस ! मैं सुमेरु पर्वतपर गया था ॥ ४८ ॥ वहाँ ब्रह्मा आदि सभी देवता मन्त्रणा करते हुए कह रहे थे कि आप (कंस) का वध करनेके लिए वसुदेवकी भार्या देवकीके गर्भसे साक्षात् विष्णु भगवान अवतार लेंगे । तब इतने प्रबल नीतिज्ञ होते हुए भी आपने वसुदेवके पुत्रको मारा क्यों नहीं ? ॥४९॥ कंसने कहा—भगवन् ! उस समय देववाणीने देवकीके आठवें बालकसे ही मेरी मृत्युकी बात कही थी । सो मैं आठवें पुत्रको अवश्य मार डालूँगा । नारदजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ ! आप राजनीतिके शुभ तथा अशुभ परिणामको नहीं जानते ॥५०॥५१॥ आप देवताओंके मायाबलको तनिक भी नहीं समझते । तब मैं क्या कहूँ ? अपना कल्याण चाहनेवाले वीरका यह कर्तव्य होता है कि वह अपने छोटेसे छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा न करे ॥५२॥ यदि गणितशास्त्रकी सम्मिलित परिपाटीके अनुसार देखा जाय तो सभी पुत्र आठवें हो सकते हैं । यह जानते हुए भी आपने हाथमें आये हुए शत्रुको छोड़कर बड़ी मूर्खता की है ॥ ५३ ॥ यह कहकर श्रीमान् देवदर्शन नारदजी वहाँसे चले गये । उनके जाते ही कंसने उस बालकको मँगवा लिया और उसे पत्थरपर पटककर मार डाला । उसके मर जानेपर मूर्ख

भार्यायां सुरसत्तमः ॥ ४९ ॥ वधार्थं तव विष्णुश्च जन्म चात्र करिष्यति ॥ तत्कथं न हतः पुत्रस्त्वया नीतिं विजानता ॥ ५० ॥ कंस उवाच ॥ अष्टमं च हनिष्येऽहं मृत्युं मे देवभाषितम् ॥ नारद उवाच ॥ न जानासि नृपश्रेष्ठ राजनीतिं शुभाशुभाम् ॥ ५१ ॥ मायाबलं च देवानां न त्वं वेत्सि वदामि किम् ॥ रिपुरल्पोऽपि शूरेण नोपेक्ष्यः शुभमिच्छता ॥५२॥ संमेलनक्रियायां तु सर्वे ते ह्यष्टमाः स्मृताः ॥ मूर्खस्त्वमरिसंत्यागः कृतोऽयं जानता त्वया ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वाऽऽशु गतः श्रीमान्नारदो देवदर्शनः ॥ गतेऽथ नारदे कंसः समाहूयाथ बालकम् ॥ पाषाणे पोथयामास सुखं प्राप च मंदधीः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ किं कृतं पातकं तेन बालकेन पितामह ॥ यज्जातमात्रो निहतस्तथा तेन दुरात्मना ॥ १ ॥ नारदोऽपि मुनिश्रेष्ठो ज्ञानवान्धर्मतत्परः ॥ कथमेवंविधं पापं कृतवान्ब्रह्मवित्तमः ॥ २ ॥ कर्ता कारयिता पापे तुल्यपापौ स्मृतौ बुधैः ॥ स कथं प्रेरयामास मुनिः कंसं खलं तदा ॥ ३ ॥ संशयोऽयं महान्मेऽत्र ब्रूहि सर्वं सविस्तरम् ॥ येन कर्मविपाकेन बालको निधनं गतः ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ नारदः कौतुकप्रेक्षी सर्वदा कलहप्रियः ॥ देवकार्यार्थमागत्य सर्वमेतच्चकार ह ॥ ५ ॥ न मिथ्याभाषणे बुद्धिर्मुनेस्तस्य कदाचन ॥ सत्यवक्ता सुराणां स कर्तव्ये निरतः

कंसको चैन मिली ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

(देवताओंके अंशावतारकी कथा) राजा जनमेजय बोले—हे पितामह ! उस बालकने ऐसा कौनसा पाप किया था कि जिससे जन्म पाते ही उस दुष्ट कंसके हाथों मारा गया ॥१॥ मुनिश्रेष्ठ नारदजी भी असाधारण ज्ञानी और धर्मात्मा थे । इतने बड़े ब्रह्मज्ञानी होते हुए भी उन्होंने वह महान् पाप क्यों किया ? ॥ २ ॥ पाप करनेवाला और करानेवाला, इन दोनोंको विद्वानोंने समान पापी कहा है । तब मुनिराज नारदने उस खल कंसको ऐसी प्रेरणा क्यों दी ? ॥३॥ इस विषयमें मुझे बहुत बड़ा सन्देह है । अतएव कृपया आप विस्तारपूर्वक यह विषय मुझे समझाइए और यह भी बताइए कि किस कर्मके फलसे वह बालक जन्म पाते ही मारा गया ॥४॥ व्यासजी बोले—हे महाराज ! नारदजीको खेलवाड़ करना तथा लड़ाई लगाना बहुत पसन्द था ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतएव देवताओंका काम बनानेके लिए उन्होंने ऐसा कौतुक रच दिया ॥ ५ ॥ मुनिराज नारदको झूठ बोलनेकी इच्छा कभी भी नहीं थी । क्योंकि वे पूर्ण सत्यवादी और पूतात्मा थे । वे सदा देवताओंका कार्य करनेके लिए बद्धपरिकर रहते थे ॥६॥ इस प्रकार कंसने देवकीके छ पुत्रोंको जन्म लेते ही मार डाला । पूर्वजन्मके शापवश वे छहों बालक जन्म पाते ही मार डाले गये थे । हे राजन् ! सुनिए, अब मैं उनके शापका कारण बता रहा हूँ । स्वायम्भुव मन्वन्तरमें महर्षि मरीचिके छ महाबली पुत्र जायमान हुए । ये मुनिराज मरीचिकी पत्नी ऊर्णाके गर्भसे जनमे थे और धर्मशास्त्रके विलक्षण विद्वान् थे । जब ब्रह्माजी अपनी पुत्री सरस्वतीके साथ मैथुन करनेको उद्यत हो गये, तब वे छहों उन्हें देखकर हँसे थे । इससे कुपित होकर ब्रह्माजीने उन्हें शाप दे दिया कि तुम्हारा पतन हो जाय और तुम दैत्ययोनिमें जाकर जन्म लो । हे महाराज ! तदनुसार वे छहों कालनेमिके पुत्र हुए । दूसरे जन्ममें हिरण्यकशिपुके घर जनमे । हे राजन् ! पूर्वजन्मके भयसे छहों इस जन्ममें वड़े ज्ञानी हुए । इस जन्ममें वे सब शान्त भावसे चित्त एकाग्र करके तप करने लगे । उनकी तपस्यासे ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये और आकर उन

शुचिः ॥ ६॥ एवं षड् बालकास्तेन जाता जाता निपातिताः ॥ षड्गर्भाः शापयोगेन संभूय मरणं गताः॥ ७॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तेषां शापस्य कारणम् ॥ स्वायंभुवेऽन्तरे पुत्रा मरीचेः षण्महाबलाः ॥ ८ ॥ ऊर्णायां चैव भार्यायामासन्धर्मविचक्षणाः ॥ ब्रह्माणं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥ ६ ॥ शशाप तांस्तदा ब्रह्मा दैत्ययोनिं विशंत्वधः ॥ कालनेमिसुता जातास्ते षड्गर्भा विशांपते॥१०॥ अवतारे परे ते तु हिरण्यकशिपोः सुताः॥ जातास्ते ज्ञानसंयुक्ताः पूर्वशापभयान्नृप॥११॥ तस्मिञ्जन्मनि शांताश्च तपश्चक्रुः समाहिताः ॥ तेषां प्रीतोऽभवद्ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरान्ददौ ॥ १२॥ ब्रह्मोवाच ॥ शप्ता यूयं मया पूर्वं क्रोधयुक्तेन पुत्रकाः ॥ तुष्टोऽस्मि वो महाभागा ब्रुवंतु वांछितं वरम्॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ ते तु श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः प्रीतमानसाः ॥ ब्रह्माणमब्रुवन्कामं सर्वे कार्यार्थतत्पराः ॥ १४ ॥ गर्भा ऊचुः ॥ पितामहाद्य तुष्टोऽसि देहि नो वांछितं वरम् ॥ अवध्या देवतैः सर्वैर्मानवैश्च महोरगैः ॥१५॥ गंधर्वसिद्धपतिभिर्वधो माभूत्पितामह ॥ व्यास उवाच ॥ तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वमेतद्भविष्यति ॥१६॥ गच्छंतु वो महाभागाः सत्यमेव न संशयः ॥ दत्त्वा वरं ततो ब्रह्मा मुदितास्ते तदाऽभवन् ॥ १७ ॥ हिरण्यकशिपुः क्रुद्धस्तानुवाच कुरूद्वह ॥ यस्माद्विहाय

छहोंको वरदान दिया ॥ ७-१२ ॥ ब्रह्माजी बोले–हे पुत्रो ! उस समय मैंने कुपित होकर तुम्हें शाप दे दिया था । किन्तु हे महाभाग्यशालिन् ! अब मैं तुम सबपर प्रसन्न हूँ । जो तुम्हारी इच्छा हो, वह वर माँगो । ब्रह्माजीके वचन सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और अपनी कामनायें पूर्ण करनेके निमित्त उन्होंने कहा । वे छहों बालक बोले–हे पितामह ! यदि आज आप हमपर प्रसन्न हों तो हमारी इच्छा पूर्ण करनेवाला वरदान दीजिए । हम चाहते हैं कि सब देवता, मनुष्य, महानाग, गन्धर्व और बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष भी हमें न मार सकें । व्यासजी बोले–तदनन्तर उनसे ब्रह्माजीने कहा—तुम जो चाहते हो, वह सब हो जायगा । हे महाभाग पुत्रो ! अब तुम लोग जाओ । मेरा वरदान सत्य होगा । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ब्रह्माजीसे वरदान पाकर वे छहों बालक बहुत प्रसन्न हुए ॥१३-१७॥ हे राजा जनमेजय ! वरदानकी बात सुनकर हिरण्यकशिपु बहुत रुष्ट हुआ और उन छहों पुत्रोंसे कहा–हे पुत्रो ! मेरी अवहेलना करके तुम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोगोंने तप द्वारा ब्रह्माको प्रसन्न किया है ॥ १८ ॥ उनसे वर प्राप्त करके तुम बहुत बलवान् हो गये हो । तुमने पिताके स्नेहको ठुकराया है। अतएव मैं भी तुम्हें त्यागता हूँ ॥ १९ ॥ अब तुम लोग यहाँसे पाताललोकको चले जाओ । इस पृथिवीपर तुम लोग 'षड्गर्भ' इस नामसे विख्यात होओगे। पातालमें तुम लोग बहुत वर्षोंतक नींदमें पड़े रहोगे ॥ २० ॥ तदनन्तर बारी-बारीसे प्रतिवर्ष देवकीके गर्भसे तुम सब उत्पन्न होते रहोगे और पूर्वजन्मका तुम्हारा पिता कालनेमि तब कंसके नामसे उत्पन्न होगा ॥ २१ ॥ वह अत्यन्त भयानक और क्रूर कंस तुम्हें जन्म लेते ही मार डालेगा । व्यासजी बोले—हे महाराज! हिरण्यकशिपुसे इस तरह शाप प्राप्त करके वे एकके बाद एकके क्रमसे देवकीके गर्भमें आते रहे ॥२२॥ कंसने भी पूर्वशापसे प्रेरित होकर देवकीके छ पुत्रोंको मार डाला। जब देवकी माताके गर्भमें शेषनागके अंशावतार बलभद्र आये ॥२३॥ तब भगवती योगमायाने अपने योगबलसे वह गर्भ गिरा दिया और उन्होंने ही हठात् उनके गर्भसे भगवान संकर्षणको खींचकर रोहिणीके गर्भमें पहुँचा दिया ॥२४॥ उधर लोगोंमें यह बात फैल गयी कि पाँचवें महीनेमें ही देवकीका गर्भ गिर गया। देवकीके गर्भपातका

मां पुत्रास्तोषितो वै पितामहः ॥ १८ ॥ वरेण प्रार्थितोऽत्यर्थं बलवन्तो यतोऽभवन् ॥ युष्माभिर्हापितः स्नेहस्ततो युष्मांस्त्यजाम्यहम् ॥ १९ ॥ यूयं व्रजंतु पाताले षड्गर्भा विश्रुता भुवि॥ पाताले निद्रयाविष्टास्तिष्ठंतु बहुवत्सरान् ॥२०॥ ततस्तु देवकी गर्भे वर्षे वर्षे पुनः पुनः॥ पिता वः कालेनेमेस्तु तत्र कंसो भविष्यति ॥२१॥ स एव जातमात्रान् वो वधिष्यति सुदारुणः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं शप्तांस्तदा तेन गर्भे जातान्पुनः पुनः॥२२॥ जघान देवकीपुत्रान्षड्गर्भाञ्छापनोदितः ॥ शेषांशः सप्तमस्तत्र देवकीगर्भसंस्थितः ॥२३॥ विस्रंसितश्च गर्भोऽसौ योगेन योगमायया ॥ नीतश्च रोहिणीगर्भे हृत्वा संकर्षणं बलात् ॥ २४ ॥ पतितः पंचमे मासि लोकख्यातिं गतस्तदा ॥ कंसोऽपि ज्ञातवांस्तत्र देवकीगर्भपातनम् ॥ २५ ॥ मुदं प्राप स दुष्टात्मा श्रुत्वा वार्तां सुखावहाम् ॥ अष्टमे देवकीगर्भे भगवान्सात्वतां पतिः ॥ २६ ॥ उवास देवकार्यार्थं भारावतरणाय च ॥ राजोवाच ॥ वसुदेवः कश्यपांशः शेषांशश्च तदाऽभवत् ॥ २७ ॥ हरेरंशस्तथा प्रोक्तो भवता मुनिसत्तम ॥ अन्ये च येऽञ्शा देवानां तत्र जातास्तु तान् वद ॥ २८ ॥ भारावतारणार्थं वै क्षितेः प्रार्थनयाऽनघ ॥ व्यास उवाच ॥ सुराणामसुराणां च ये येऽञ्शा भुवि विश्रुताः ॥ २९ ॥ तानहं संप्रवक्ष्यामि संक्षेपेण शृणुष्व तान् ॥ वसुदेवः कश्यपांशो देवकी च तथाऽदितिः ॥ ३० ॥ बलदेवस्त्वनंतांशो वर्तमानेषु तेषु च ॥ योऽसौ धर्मसुतः श्रीमान्नारायण

समाचार कंसको भी मिल गया ॥२५॥ अपने लिए सुखदायी समाचार सुनकर कंस बहुत प्रसन्न हुआ। उधर देवकीके आठवें गर्भमें समस्त विश्वके अधिपति स्वयं भगवान विष्णु आ विराजे। वे देवताओंकी कार्यसिद्धि तथा पृथिवीका भार उतारनेके लिए आये थे। राजा जनमेजय बोले—हे महामुने! आप पहले बतला आये हैं कि महर्षि कश्यपके अंशावतार वसुदेव, शेषनागके बलरामजी और साक्षात् नारायणके अंशावतार श्रीकृष्ण थे। अब यह बताइए कि अन्य लोगोंमेंसे किस देवताके अंशसे किसका जन्म हुआ था? ॥२६–२८॥ हे अनघ! पृथिवीकी प्रार्थनापर उसका भार उतारनेके लिए वे लोग कहाँ-कहाँ जनमे? व्यासजी बोले-हे राजन्! देवताओं और दैत्योंके जो अंश संसारमें विख्यात हुए ॥२९॥ उन सबको मैं संक्षेपमें बता रहा हूँ, सुनिए। वसुदेव कश्यपके, देवकी अदितिकी, बलदेव शेष भगवानके और धर्मपुत्र श्रीमान् नारायणके अंशज साक्षात् वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान थे। नारायणके छोटे भ्राता नरके अंशज अर्जुन थे ॥३०॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाराज युधिष्ठिर धर्मके और भीमसेन वायुदेवके अंशज थे। दोनों अश्विनीकुमारोंके अंशसे महारानी माद्रीके दोनों महाबलवान् पुत्र नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए थे ॥३१-३३॥ सूर्य भगवानके अंशसे कर्णका जन्म हुआ था। महात्मा विदुर धर्मके अंशज थे। द्रोणाचार्य बृहस्पतिके अंशज थे और उनका पुत्र अश्वत्थामा शिवजीके अंशसे जायमान हुआ था ॥ ३४ ॥ राजा शन्तनु समुद्रके अंशज थे और उनकी पत्नी गङ्गाजीके अंशसे उत्पन्न हुई थी। पुराणोंमें प्रसिद्ध गन्धर्वराजके अंशसे महाराज देवकका जन्म हुआ था ॥ ३५ ॥ भीष्मपितामह अष्टवसुओंके अंशावतार थे। राजा विराट मरुद्गणोंके अंशसे उत्पन्न हुए थे। अरिष्टनेमितनय हंसके अंशावतार महाराज धृतराष्ट्र थे ॥ ३६ ॥ कृपाचार्य और कृतवर्मा मरुद्गणोंके अंशावतार थे। दुर्योधन कलिका और शकुनी द्वापरयुगका अंशावतार था ॥३७॥ सोमप्ररु नामक यादव सोमतनय सुवर्चाका अंशावतार था। धृष्टद्युम्न अग्निका और शिखण्डी राक्षसका अंशावतार था ॥३८॥ श्रीकृष्णतनय

इति श्रुतः ॥ ३१ ॥ तस्यांशो वासुदेवस्तु विद्यमाने मुनौ तदा ॥ नरस्तस्यानुजो यस्तु तस्यांशोऽर्जुन एव च ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिरस्तु धर्मांशो वाय्वंशो भीम इत्युत ॥ अश्विन्यंशौ ततः प्रोक्तौ माद्रीपुत्रौ महाबलौ ॥ ३३ ॥ सूर्यांशः कर्ण आख्यातो धर्मांशो विदुरः स्मृतः ॥ द्रोणो बृहस्पतेरंशस्तत्सुतस्तु शिवांशजः ॥ ३४ ॥ समुद्रः शंतनुः प्रोक्तो गंगा भार्या मता बुधैः ॥ देवकस्तु समाख्यातो गंधर्वपतिरागमे ॥ ३५ ॥ वसुर्भीष्मो विराटस्तु मरुद्गण इति स्मृतः ॥ अरिष्टस्य सुतो हंसो धृतराष्ट्रः प्रकीर्तितः ॥ ३६ ॥ मरुद्गणः कृपः प्रोक्तः कृतवर्मा तथापरः ॥ दुर्योधनः कलेरंशः शकुनिं विद्धि द्वापरम् ॥ ३७ ॥ सोमपुत्रः सुवर्चाख्यः सोमप्ररुरुदाहृतः ॥ पावकांशो धृष्टद्युम्नः शिखंडी राक्षसस्तथा ॥ ३८ ॥ सनत्कुमारस्यांशस्तु प्रद्युम्नः परिकीर्तितः ॥ द्रुपदो वरुणास्यांशो द्रौपदी च रमांशजा ॥ ३९ ॥ द्रौपदीतनयाः पंच विश्वेदेवांशजाः स्मृताः ॥ कुंती सिद्धिर्धृतिर्माद्री मतिर्गांधारराजजा ॥४०॥ कृष्णपत्न्यस्तथा सर्वा देववारांगनाः स्मृताः ॥ राजानश्च तथा सर्वे असुराः शक्रनोदिताः ॥ ४१ ॥ हिरण्यकशिपोरंशः शिशुपाल उदाहृतः ॥ विप्रचित्तिर्जरासंधः शल्यः प्रह्लाद इत्यपि ॥ ४२ ॥ कालनेमिस्तथा कंसः केशी हयशिरास्तथा ॥ अरिष्टो बलिपुत्रस्तु ककुद्मी गोकुले हतः ॥ ४३ ॥ अनुह्लादो धृष्टकेतुर्भगदत्तोऽथ बाष्कलः ॥ लंबः प्रलंबः संजातः खरोऽसौ धेनुकोऽभवत् ॥ ४४ ॥ वाराहश्च किशोरश्च दैत्यौ परमदारुणौ ॥ मल्लौ तावेव संजातौ ख्यातौ चाणूरमुष्टिकौ ॥ ४५ ॥ दितिपुत्रस्तथाऽरिष्टो गजः कुवलयाभिधः ॥ बलिपुत्री बकी

प्रद्युम्न सनत्कुमारके अंशावतार थे। राजा द्रुपद वरुणदेव और द्रौपदी भगवती लक्ष्मीकी अंशजा थीं ॥ ३९ ॥ द्रौपदीके पाँचों पुत्र विश्वेदेवके अंशज थे। कुन्ती सिद्धिकी, माद्री धृतिकी और गन्धारी मतिकी अंशजा थी ॥ ४० ॥ भगवान कृष्णकी सब पत्नियाँ स्वर्गके देवताओंकी रमणियोंके अंशसे जायमान हुई थीं। इन्द्रके भेजे हुए सब दैत्य द्वापर युगके राजे हुए ॥ ४१ ॥ शिशुपाल हिरण्यकशिपुका अंशावतार था। विप्रचित्तिका अंशावतार जरासन्ध और प्रह्लादका अंशावतार शल्य था ॥ ४२ ॥ कालनेमिका अंशावतार कंस, हयशिराका केशी और बलिपुत्रका अंशावतार अरिष्ट हुआ, जिसने वृषभासुरका रूप धारण किया था और भगवान कृष्णके हाथों मारा गया था ॥ ४३ ॥ अनुह्लादका अंशावतार धृष्टकेतु और बाष्कलका अंशावतार धेनुक था ॥४४॥ वाराह और किशोर नामके दो परम दारुण दैत्य इस युगमें चाणूर और मुष्टिक नामके पहलवान हुए ॥४५॥ दितिका पुत्र अरिष्ट कुवलयापीड़ हाथी हुआ। राजा बलिकी पुत्री पूतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और वलिका अन्यतम पुत्र वकासुर हुआ ॥ ४६ ॥ महाबली द्रोणपुत्र अश्वत्थामा शिवजीका अंशावतार था और उसमें यम, रुद्र, काम और क्रोध इन चारोंके अंश विद्यमान थे ॥ ४७ ॥ पूर्वकालमें जो दैत्य राक्षस थे, वे सब द्वापरयुगमें राजे हुए। अतएव पृथिवीपरसे उनका भार उतारनेके लिए विभिन्न देवताओंको अंशावतार लेकर धरतीपर आना पड़ा था ॥ ४८ ॥ हे राजा जनमेजय ! विभिन्न पुराणोंमें देवताओं और दैत्योंके अंशावतारका जैसा वर्णन किया गया था, वह सब मैंने आपको कह सुनाया ॥ ४९ ॥ जब ब्रह्मादिक देवता प्रार्थना करनेके लिए भगवान विष्णुके पास गये थे, तब भगवानने उन्हें श्वेत और श्याम दो बाल दिये थे ॥ ५० ॥ उनमें काले केशसे भगवान कृष्ण और श्वेत केशसे बलरामजी जायमान हुए थे। वे दोनों क्रमशः विष्णुभगवान तथा शेषभगवानके अंशावतार थे ॥ ५१ ॥ जो प्राणी भक्तिभावसे इस अंशावतारकी कथाको सुनता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह सपरिवार सुखी रहता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ख्याता बकस्तदनुजः स्मृतः ॥ ४६ ॥ यमो रुद्रस्तथा कामः क्रोधश्चैव चतुर्थकः ॥ तेषामंशैस्तु संजातो द्रोणपुत्रो महाबलः ॥ ४७ ॥ अंशावतरणे पूर्वं दैतेया राक्षसास्तथा ॥ जाताः सर्वे सुरांशास्ते क्षितिभारावतारणे ॥ ४८ ॥ एतेषां कथितं राजन्नंशावतरणं नृप ॥ सुराणां चासुराणां च पुराणेषु प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥ यदा ब्रह्मादयो देवाः प्रार्थनार्थं हरिं गताः ॥ हरिणा च तदा दत्तौ केशौ खलु सितासितौ ॥ ५० ॥ श्यामवर्णस्ततः कृष्णः श्वेतः संकर्षणस्तथा ॥ भारावतारणार्थं तौ जातौ देवांशसंभवौ ॥ ५१ ॥ अंशावतरणं चैतच्छृणोति भक्तिभावतः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते स्वजनैर्वृतः ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

व्यास उवाच ॥ हतेषु षट्सु पुत्रेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ सप्तमे पतिते गर्भे वचनान्नारदस्य च ॥ १ ॥ अष्टमस्य च गर्भस्य रक्षणार्थमतंद्रितः ॥ प्रयत्नमकरोद्राजा मरणं स्वं विचिंतयन् ॥ २ ॥ समये देवकीगर्भे प्रवेशमकरोद्धरिः ॥ अंशेन वसुदेवे तु समागत्य यथाक्रमम् ॥ ३ ॥ तदेयं योगमाया च यशोदायां यथेच्छया ॥ प्रवेशमकरोद्देवी देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ४ ॥ रोहिण्यास्तनयो रामो गोकुले समजायत ॥ यतः कंसभयोद्विग्ना संस्थिता सा च कामिनी ॥५॥ कारागारे ततः कंसो देवकीं देवसंस्तुताम् ॥ स्थापयामास रक्षार्थं सेवकान्समकल्पयत् ॥६॥ वसुदेवस्तु कामिन्याः

(श्रीकृष्णके जन्मकी कथा) व्यासजी बोले—हे महाराज ! माता देवकीके छ पुत्रोंका वध तथा सातवाँ गर्भ गिर जानेके बाद उग्रसेनपुत्र कंस नारदजीके कथनानुसार अपनी मृत्युके सम्बन्धमें भली-भाँति विवेचन करके बड़ी सावधानीके साथ आठवें गर्भको गिरनेसे बचानेका उपाय करने लगा ॥ १ ॥ २ ॥ अवतारका समय उपस्थित होनेपर भगवान विष्णु वसुदेवके द्वारा देवकीके गर्भमें अंशरूपसे प्रविष्ट हुए ॥ ३ ॥ उधर भगवती योगमाया देवताओंका उद्देश्य पूर्ण करनेके लिए स्वेच्छासे यशोदाके गर्भमें प्रविष्ट हुई ॥ ४ ॥ गोकुलमें वसुदेवकी दूसरी पत्नी रोहिणीके गर्भसे बलरामजी उत्पन्न हो गये। क्योंकि कंसके डरसे वसुदेवने उसे पहले ही गोकुलमें नन्दजीके घर पहुँचा दिया था ॥ ५ ॥ तदनन्तर देवताओंकी आराधनीया देवकीको कंसने कारागारमें बन्द करके उनकी देख-रेखके लिए बहुतेरे सन्तरियोंको नियुक्त कर दिया ॥ ६ ॥ अपनी प्रियतमा पत्नी देवकीके पुत्रप्रसवकी बात ध्यानमें रख तथा उनके प्रेमपाशमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आबद्ध होकर वसुदेवजी भी उनके साथ कारागारमें ही रहने लगे ॥७॥ देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए देवकीके गर्भमें पहुँचे हुए भगवान विष्णु की देवता स्तुति कर रहे थे और गर्भ क्रमशः धीरे-धीरे बढ़ रहा था ॥ ८ ॥ जब दसवाँ महीना पूरा हो गया और श्रावण (दाक्षिणात्योंके गणनानुसार, किन्तु उत्तर भारतीय गणनानुसार भाद्रपद) मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथि आयी ॥ ९ ॥ तब भयसे विकल कंसने सब दानवोंसे कहा—तुम लोग उस कक्षकी बड़ी चौकसीसे रखवाली करना, जिसमें गर्भवती देवकी रहती है ॥ १० ॥ क्योंकि देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न पुत्र मेरा प्रबलतम शत्रु होगा। मेरे लिए मृत्युके मूर्तिमान् स्वरूप उस बालककी बड़े यत्नके साथ रखवाली करना ॥ ११ ॥ हे दैत्यो ! अभी मैं बड़े संकटमें हूँ। देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न बालकको मार डालनेके बाद ही मेरे चित्तको चैन मिलेगी और तभी मैं अपने महलमें सुखसे सो सकूँगा ॥१२॥ अतएव तुम लोग तलवार, भाले और धनुषसे भली-भाँति सुसज्जित होकर बड़ी चौकसीके साथ पहरा दो। कारागारके चारों ओर कड़ी नजर रखना और यह ख्याल रहे कि तुम्हें नींद या झपकी न आने पाये ॥१३॥ व्यासजी बोले—हे राजन्!

प्रेमतंतुनियंत्रितः ॥ पुत्रोत्पत्तिं च संचिन्त्य प्रविष्टः सह भार्यया ॥ ७ ॥ देवकीगर्भगो विष्णुर्देवकार्यार्थसिद्धये ॥ संस्तुतोऽमरसंघैश्च व्यवर्धत यथा-क्रमम् ॥ ८ ॥ संजाते दशमे तत्र मासेऽथ श्रावणे शुभे ॥ प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ते कृष्णपक्षेऽष्टमीदिने ॥ ९ ॥ कंसस्तु दानवान्सर्वानुवाच भयविह्वलः ॥ रक्षणीया भवद्भिश्च देवकी गर्भमंदिरे ॥ १० ॥ अष्टमो देवकीगर्भः शत्रुर्मे प्रभविष्यति ॥ रक्षणीयः प्रयत्नेन मृत्युरूपः स बालकः ॥ ११ ॥ हत्वैनं बालकं दैत्याः सुखं स्वप्स्यामि मंदिरे ॥ निवृत्तिवर्जिते दुःखे नाशिते चाष्टमे सुते ॥ १२ ॥ खड्गप्रासधराः सर्वे तिष्ठंतु धृतकार्मुकाः ॥ निद्रातंद्रा-विहीनाश्च सर्वत्र निहितेक्षणाः ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्यादिश्यासुरगणान् कृशोऽतिभयविह्वलः ॥ मंदिरं स्वं जगामाशु न लेभे दानवः सुखम् ॥ १४ ॥ निशीथे देवकी तत्र वसुदेवमुवाच ह ॥ किं करोमि महाराज प्रसवावसरो मम ॥ १५ ॥ बहवो रक्षपालाश्च तिष्ठंत्यत्र भयानकाः ॥ नन्दपत्न्या मया सार्धं कृतोऽस्ति समयः पुरा ॥ १६ ॥ प्रेषितव्यस्त्वया पुत्रो मंदिरे मम मानिनि ॥ पालयिष्याम्यहं तत्र तवातिमनसा किल ॥ १७ ॥ अपत्यं ते प्रदास्यामि कंसस्य प्रत्ययाय वै ॥ किं कर्तव्यं प्रभो चात्र विषमे समुपस्थिते ॥ १८ ॥ व्यत्ययः संततेः शौरे कथं कर्तुं क्षमो भवेः ॥ दूरे तिष्ठस्व कांतात्र लज्जा मेऽतिदुरत्यया ॥ १९ ॥ परावृत्य मुखं स्वामिन्नन्यथा किं करोम्यहम् ॥ इत्युक्त्वा तं महाभागं देवकी देवसं-

उन असुरोंको ऐसा आदेश देकर सतत चिन्ताके कारण दुर्बल और भयसे व्याकुल दानवराज कंस अपने महलमें चला गया। किन्तु उसे वहाँ भी चैन नहीं मिला ॥१४॥ ठीक आधी रातके समय देवकीने वसुदेवसे कहा—महाराज ! मेरे प्रसवका समय आ गया। अब मैं क्या करूँ ? ॥१५॥ कारागारके चारों और बड़े भयानक पहरेदार हैं। कारागारमें आनेके पहले ही नन्दकी पत्नी यशोदासे एक बात निश्चित हो चुकी थी ॥१६॥ तदनुसार यशोदाने कहा था—हे मानिनि ! तुम किसी युक्तिसे अपना पुत्र मेरे घर भेज देना। मैं खूब मन लगाकर उसका पालन-पोषण करूँगी ॥ १७ ॥ उसके बदलेमें कंसको विश्वास दिलानेके लिए मैं अपनी सन्तान तुम्हें दे दूँगी। हे प्रभो ! ऐसी विषम परिस्थितिमें हमें क्या करना चाहिए ?॥ १८ ॥ हे प्राण-नाथ ! इन दोनों सन्तानोंकी अदला-बदली आप कैसे करेंगे ? हे प्रियतम ! आप तनिक हटकर बैठें। क्योंकि प्रसवकाल समीप है। जिससे मुझे लाज लग रही है ॥ १९ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे स्वामिन् ! आप मुँह फेर लीजिए। इसके सिवाय यहाँ और कुछ किया भी नहीं जा सकता। देवपूज्य महाभाग वसुदेवसे ऐसा कहकर महारानी देवकीने उसी अर्धरात्रिके समय एक अद्भुत पुत्रको जन्म दिया। उस सुन्दर शिशुको देखकर देवकी चकित हो गयीं ॥२०॥२१॥ मारे हर्षके उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग उत्फुल्ल हो उठे। तब महाभाग देवकीने अपने पति वसुदेवसे कहा–हे नाथ ! तनिक इस बालकका मुँह तो देखिए। हे प्रभो ! इसका दर्शन आपके लिए सर्वथा दुर्लभ हो जायगा ॥२२॥ अभी थोड़ी देर बाद कालरूपधारी मेरा भाई कंस इसे मार डालेगा। तब 'अच्छा' कहकर महाराज वसुदेवने बालकको हाथोंमें ले लिया ॥२३॥ वे उस अद्भुत तेजस्वी पुत्रका मुख देखने लगे। उसे देखते ही वसुदेव चिन्तासे व्याकुल हो उठे॥२४॥ वे सोचने लगे–मैं कौनसा उपाय करूँ कि जिससे मुझे इसके नष्ट होनेका दुःख न भोगना पड़े। जब वे इस चिन्तासे बेहाल हो रहे थे, उसी समय आकाशवाणी हुई ॥ २५ ॥ वसुदेवको सम्बोधित करके उस वाणीने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—हे वसुदेव ! तुम इस बालकको तत्काल गोकुलमें पहुँचा दो ॥ २६ ॥ मैंने सभी पहरेदारोंको नींदसे बेसुध कर दिया है, आठों फाटकोंको

मतम् ॥ २० ॥ बालकं सुषुवे तत्र निशीथे परमाद्भुतम् ॥ तं दृष्ट्वा विस्मयं प्राप देवकी बालकं शुभम् ॥ २१ ॥ पतिं प्राह महाभागा हर्षोत्फुल्लकलेवरा ॥ पश्य पुत्रमुखं कांत दुर्लभं हि तव प्रभो ॥ २२ ॥ अद्यैनं कालरूपोऽसौ घातयिष्यति भ्रातृजः ॥ वसुदेवस्तथेत्युक्त्वा तमादाय करे सुतम् ॥ २३ ॥ अपश्यच्चाननं तस्य सुतस्याद्भुतकर्मणः ॥ वीक्ष्य पुत्रमुखं शौरिश्चिंताविष्टो बभूव ह ॥ २४ ॥ किं करोमि कथं न स्याद्दुःखमस्य कृते मम ॥ एवं चिंतातुरे तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ॥ २५ ॥ वसुदेवं समाभाष्य गगने विशदाक्षरा ॥ वसुदेव गृहीत्वैनं गोकुलं नय सत्वरः ॥ २६ ॥ रक्षपालास्तथा सर्वे कृता निद्राविमोहिताः ॥ विवृतानि कृतान्यष्ट कपाटानि च शृंखलाः ॥ २७॥ मुक्त्वैनं नंदगेहे त्वं योगमायां समानय ॥ श्रुत्वैवं वसुदेवस्तु तस्मिन्कारागृहे गतः ॥ २८ ॥ विवृतं द्वारमालोक्य बभूव तरसा नृप ॥ तमादाय ययावाशु द्वारपालैरलक्षितः ॥ २९ ॥ कालिन्दीतटमासाद्य पुरं दृष्ट्वा सुनिश्चितम् ॥ तदैव कटिदघ्नी सा बभूवाशु सरिद्वरा ॥ ३० ॥ योगमायाप्रभावेण ततारानकदुन्दुभिः ॥ गत्वा तु गोकुलं शौरिर्निशीथे निर्जने पथि ॥ ३१ ॥ नन्दद्वारे स्थितः पश्यन्विभूतिं पशुसंज्ञिताम् ॥ तदैव तत्र संजाता यशोदा गर्भसंभवा ॥ ३२ ॥ योगमायांशजा देवी त्रिगुणा दिव्यरूपिणी ॥ जातां तां बलिकां दिव्यां गृहीत्वा करपंकजे ॥ ३३ ॥ तत्रागत्य ददौ देवी सैरंध्रीरूपधारिणी ॥

खोल दिया है। उनके ताले-ब्योंड़े और जंजीरें भी खोल दी हैं ॥ २७ ॥ इस बालकको नन्दके घर छोड़कर वहाँसे योगमायाको उठा लाओ। यह वाणी सुनकर कारावद्ध वसुदेव उठ खड़े हुए ॥ २८ ॥ हे महाराज ! उन्होंने जब देखा कि सभी फाटक खुले हुए हैं। तब बड़ी शीघ्रतापूर्वक उस बालकको लेकर द्वारपालोंकी नजर बचाते हुए तुरन्त कारागारसे बाहर हो गये ॥ २९ ॥ यमुनाके तटपर पहुँचकर उन्होंने देखा कि यमुनाजी खूब बढ़ी हुई हैं। फिर भी गोकुल जाना सुनिश्चित था। अतएव वे जलमें उतर पड़े। उसी समय यमुनाजीमें केवल कमर भर जल हो गया ॥३०॥ भगवती योगमायाके प्रभावसे वे सकुशल यमुनाके पार पहुँच गये। तदनन्तर आधी रातके समय सुनसान मार्गपर चलते हुए वे गोकुल जा पहुँचे ॥ ३१ ॥ नन्दराजके द्वारपर पहुँचकर उन्होंने उनकी विपुल पशुसम्पदा देखी। उसी समय महारानी यशोदाके गर्भसे योगमायाके अंशसे जायमान, त्रिगुणात्मिका तथा दिव्य रूपधारिणी भगवतीने जन्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया था। जन्म लेते ही उस दिव्य बालिकाको सैरन्ध्री (दाई) रूपधारिणी भगवतीने लाकर वसुदेवजीके हाथमें रख दिया। तब वसुदेवजीने भी अपने बालकको सैरन्ध्रीके हाथोंमें दे दिया॥ ३२-३४॥ उस बालिकाको लेकर वे तत्काल वहाँसे चल पड़े। उनकी अन्तरात्मा निहाल हो रही थी। कारागारमें पहुँचकर वसुदेवजीने उस बालिकाको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और स्वयं चिन्तातुर तथा भयभीत होकर एक ओर बैठ गये। शय्यापर जब कन्या बड़ी जोरसे रोने लगी, तब रात्रिके समय वह रुदन सुनकर राजा कंसके पहरेदारोंको चेतना आयी। बड़े उतावलेपन तथा विह्वलतापूर्वक दौड़कर उन्होंने कंसको समाचार देते हुए कहा—॥ ३५-३७॥ हे महामतिमान् महाराज! देवकीका पुत्र उत्पन्न हो गया। अब आप शीघ्र चलिए। उनके वचन सुनते ही भोजदेशका राजा कंस तत्काल कारागारमें जा पहुँचा॥ ३८॥ द्वार खुला हुआ देखकर कंसने वसुदेवजीको बुलाया। कंस बोला—हे परम बुद्धिमान् वसुदेव! आप देवकीके सद्यःप्रसूत बच्चेको ले आइए॥ ३९॥ देवकीका आठवाँ बालक मेरी मृत्यु है। अतएव मैं उस विष्णुनामधारी अपने शत्रुको अभी समाप्त कर दूँगा। व्यासजी बोले—

वसुदेवः सुतं दत्त्वा सैरंध्री करपंकजे॥ ३४॥ तामादाय ययौ शीघ्रं बालिकां मुदिताशयः॥ कारागारे ततो गत्वा देवक्याः शयने सुताम्॥ ३५॥ निःक्षिप्य संस्थितः पार्श्वे चिन्ताविष्टो भयातुरः॥ रुरोद सस्वरं कन्या तदैवागतसंज्ञकाः॥ ३६॥ उत्तस्थुः सेवका राज्ञः श्रुत्वा तद्रुदितं निशि॥ तमूचुर्भूपतिं गत्वा त्वरितास्तेऽतिविह्वलाः॥ ३७॥ देवक्याश्च सुतो जातः शीघ्रमेहि महामते॥ तदाकर्ण्य वचस्तेषां शीघ्रं भोजपतिर्ययौ॥ ३८॥ प्रावृतं द्वारमालोक्य वसुदेवमथाह्वयत्॥ कंस उवाच॥ सुतमानय देवक्या वसुदेव महामते॥ ३९॥ मृत्युर्मे चाष्टमो गर्भस्तं निहन्मि रिपुं हरिम्॥ व्यास उवाच॥ श्रुत्वा कंसवचः शौरिर्भयत्रस्तविलोचनः॥ ४०॥ तामादाय सुतां पाणौ ददौ चाशु रुदन्निव॥ दृष्ट्वाऽथ दारिकां राजा विस्मयं परमं गतः॥ ४१॥ देववाणी वृथा जाता नारदस्य च भाषितम्॥ वसुदेवः कथं कुर्यादनृतं संकटे स्थितः॥ ४२॥ रक्षपालाश्च मे सर्वे सावधाना न संशयः॥ कुतोऽत्र कन्यका कामं क्व गतः स सुतः किल॥ ४३॥ संदेहोऽत्र न कर्तव्यः कालस्य विषमा गतिः॥ इति संचिंत्य तां बालां गृहीत्वा पादयोः खलः॥ ४४॥ पोथयामास पाषाणे निर्घृणः कुलपांसनः॥ सा करान्निःसृता बाला ययावाकाशमंडलम्॥ ४५॥ दिव्यरूपा तदा भूत्वा तमुवाच मृदुस्वना॥ किं मया हतया पाप जातस्ते बलवान्रिपुः॥ ४६॥

हे महाराज! कंसके वचन सुनकर मारे भयके वसुदेवजीके नेत्र नाचने लगे॥ ४०॥ उसके आदेशानुसार वसुदेवजीने वह बालिका लाकर कंसके हाथोंमें रख दी और रोने लगे। उस बालिकाको देखकर कंस बड़े आश्चर्यमें पड़ गया॥ ४१॥ उसने सोचा कि आकाशवाणी और नारदजीके वचन झूठ हो गये। ऐसे विकट संकटमें पड़े हुए वसुदेव भी कोई चालबाजी नहीं कर सकते॥ ४२॥ मेरे सब रक्षक भी भलीभाँति सावधान थे। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। तो फिर यहाँ यह बालिका कैसे आयी? और देवकीके आठवें गर्भका बालक कहाँ गया?॥ ४३॥ अच्छा, जो हुआ सो हुआ। अब इस विषयमें सन्देह करना बेकार है। कालकी गति बड़ी विचित्र होती है। ऐसा सोचकर उस खल, निर्दयी और अपने कुलके कलंक कंसने बालिकाका पैर पकड़ लिया और बड़ी निर्दयतापूर्वक घुमाकर एक पत्थरपर पटका। किन्तु वह कन्या बीचमें हो उसके हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी॥ ४४॥ ४५॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वहाँ दिव्य रूप धारण करके बड़े कोमल स्वरमें वह कन्या बोली–अरे पापी ! मुझे मारनेसे तुझे क्या लाभ होगा ? तेरा बलवान् शत्रु तो उत्पन्न हो चुका ॥ ४६ ॥ वे दुराराध्य परम पुरुष तुझ नराधमको अवश्य मारेंगे। ऐसा कहकर वे कन्यारूपिणी कामचारिणी एवं कल्याणात्मिका भगवती आकाशमण्डलमें चली गयीं ॥ ४७ ॥ यह सुनकर घबड़ाहट तथा आश्चर्यमें भरा हुआ कंस अपने महलको चला गया। वहाँ सभी दानवोंको बुलाकर उसने कहा ॥ ४८ ॥ वह उस समय बहुत ही क्रुद्ध था और भयके कारण घबड़ा भी रहा था। उसने बकासुर, धेनुकासुर और वत्सासुरसे कहा—हे दानवीर ! तुम सब मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिए तत्काल चल पड़ो ॥ ४९ ॥ जहाँ कहीं तुम्हें कोई भी नवजात शिशु मिले, उसे तुरन्त मार डालो। बालकोंको मारनेमें निपुण पूतना अभी नन्दराजके गोकुलमें चली जाय ॥ ५० ॥ वहाँ जितने भी बालक तुरन्तके उत्पन्नमें मिलें, उन सबको मेरी आज्ञासे यह मार डाले। धेनुक, वत्सक, केशी, प्रलम्ब और बक ये सभी दैत्य मेरा काम पूरा करनेके लिए गोकुलमें ही डटे रहें। इस प्रकार आदेश देकर दुष्ट कंस अपने रनिवासमें चला गया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उस गगनगामिनी

हनिष्यति दुराराध्यः सर्वथा त्वां नराधमम् ॥ इत्युक्त्वा सा गता कन्या गगनं कामगा शिवा ॥४७॥ कंसस्तु विस्मयाविष्टो गतो निजगृहं तदा ॥ आनाय्य दानवान्सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥ बकधेनुकवत्सादीन्क्रोधाविष्टो भयातुरः ॥ गच्छन्तु दानवाः सर्वे मम कार्यार्थसिद्धये ॥ ४९ ॥ जातमात्राश्च हंतव्या बालका यत्र कुत्रचित् ॥ पूतनैषा व्रजत्वद्य बालघ्नी नंदगोकुलम् ॥५०॥ जातमात्रान्विनिघ्नंती शिशूंस्तत्र ममाज्ञया ॥ धेनुको वत्सकः केशी प्रलंबो बक एव च ॥ ५१ ॥ सर्वे तिष्ठंतु तत्रैव मम कार्यचिकीर्षया ॥ इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसो ययौ निजगृहं खलः ॥ ५२ ॥ चिंताविष्टोऽतिदीनात्मा चिंतयित्वैव तं पुनः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ प्रातर्नंदगृहे जातः पुत्रजन्ममहोत्सवः ॥ किंवदंत्यथ कंसेन श्रुता चारमुखादपि ॥ १ ॥ जानाति वसुदेवस्य दारास्तत्र वसंति हि ॥ पशवो दासवर्गश्च सर्वे ते नन्दगोकुले ॥ २ ॥ तेन शंकासमाविष्टो गोकुलं प्रति भारत ॥ नारदेनापि तत्सर्वं कथितं कारणं पुरा ॥ ३ ॥ गोकुले ये च नंदाद्यास्तत्पत्न्यश्च सुरांशजाः ॥ देवकीवसुदेवाद्याः सर्वे ते शत्रवः किल ॥ ४ ॥ इति नारदवाक्येन बोधितोऽसौ कुलाधमः ॥ जातः कोपमना राजन्कंसः परमपापकृत् ॥ ५ ॥ पूतना निहता तत्र कृष्णेनामिततेजसा ॥ बको वत्सासुरश्चापि धेनुकश्च महाबलः ॥ ६ ॥ प्रलंबो

बालिकाके बताये हुए शत्रु बालकको सोचता हुआ वह बहुत चिन्तित और दीन जैसा हो रहा था ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

(श्रीकृष्णचरित्र) व्यासजी बोले—हे महाराज ! प्रातःकाल होनेपर नन्दराजके यहाँ पुत्रजन्मका महोत्सव मनाया गया। कंसने भी अपने गुप्तचरों द्वारा यह समाचार सुना ॥१॥ कंसको यह बात पहलेसे ही मालूम थी कि वसुदेवकी अन्यान्य स्त्रियाँ, सभी पशु और सेवक नन्दके गोकुलमें रह रहे हैं ॥२॥ हे भारत ! इसी कारण कंसका गोकुलपर सन्देह और भी बढ़ गया। देवर्षि नारद भी उसे सब कुछ बता चुके थे ॥ ३ ॥ उन्होंने कहा था कि गोकुलमें नन्द आदि गोप, उनकी पत्नियाँ, देवकी और वसुदेव आदि सभी यादव देवताओंके अंशावतार हैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! नारदजीके इस प्रकार समझानेपर कुलकलंक और महापापी कंस और भी क्रुद्ध हो गया ॥ ५ ॥ जब उसने सुना कि अमिततेजस्वी कृष्णसे पूतना, बकासुर, वत्सा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुर, महाबली धेनुकासुर तथा प्रलम्बासुरको मार डाला और गोवर्धन पर्वतको हाथोंसे उठा लिया, तब कंसको यह विश्वास हो चला कि मैं अवश्य मारा जाऊँगा ॥६॥७॥ जब उसको यह खबर मिली कि उसका अन्तिम सहायक केशी भी कृष्णके हाथों मारा गया। तब उसने धनुषयज्ञके बहाने कृष्णको शीघ्र मथुरामें बुलानेकी योजना बनायी ॥ ८ ॥ तदनुसार क्रूर और पापबुद्धि कंसने अतुलित बलधारी कृष्ण और बलरामको मार डालनेके अभिप्रायसे उन्हें बुलानेके लिए अक्रूरको भेजा ॥ ९ ॥ कंसके आदेशानुसार गान्दिनीतनय अक्रूर गोकुल गये और कृष्ण-बलरामको रथपर बैठाकर मथुरा ले आये ॥१०॥ नगरमें पहुँचते ही उन दोनों वीरोंने यज्ञशालामें रक्खे हुए धनुषको तोड़ डाला। कंसके धोबी तथा कुवलयापीड़ हाथीको यमपुर भेज दिया और कंसके प्रसिद्ध पहलवान चाणूर, मुष्टिक, शल और तोशलको भगवान कृष्णने मार डाला। तदनन्तर खेल-खेलमें उन्होंने केश पकड़कर कंसको मंचसे नीचे घसीटा और मारकर सदाके लिए समाप्त कर दिया ॥ ११ ॥ १२ ॥ तदनन्तर अपने माता-पिताको कारागारसे छुड़ाकर उनका दुःख दूर किया। शत्रुविनाशक कृष्णने अपने नाना उग्रसेनको वहाँके राज्य-

निहतस्तेन तथा गोवर्धनो धृतः ॥ श्रुत्वैतत्कर्म कंसस्तु मेने मरणमात्मनः ॥ ७ ॥ तथा विनिहतः केशी ज्ञात्वा कंसोऽतिदुर्मनाः ॥ धनुर्यागमिषेणाशु तावानेतुं प्रचक्रमे ॥ ८ ॥ अक्रूरं प्रेषयामास क्रूरः पापमतिस्तदा ॥ आनेतुं रामकृष्णौ च वधायामितविक्रमौ ॥ ९ ॥ रथमारोप्य गोपालौ गोकुलाद्गांदिनीसुतः ॥ आगतो मथुरायां तु कंसादेशे स्थितः किल ॥ १० ॥ तावागत्य तदा तत्र धनुर्भंगं च चक्रतुः ॥ हत्वाऽथ रजकं कामं गजं चाणूरमुष्टिकम् ॥ ११ ॥ शलं च तोशलं चैव निजघान हरिस्तदा ॥ जघान कंसं देवेशः केशेष्वाकृष्य लीलया ॥ १२ ॥ पितरौ मोचयित्वाऽथ गतदुःखौ चकार ह ॥ उग्रसेनाय राज्यं तद्ददावरिनिषूदनः ॥१३॥ वसुदेवस्तयोस्तत्र मौंजीबन्धनपूर्वकम् ॥ कारयामास विधिवद् व्रतबंधं महामनाः ॥ १४ ॥ उपनीतौ तदा तौ तु गतौ सांदीपनालयम् ॥ विद्याः सर्वाः समभ्यस्य मथुरामागतौ पुनः ॥ १५ ॥ जातौ द्वादशवर्षीयौ कृतविद्यौ महाबलौ ॥ मथुरायां स्थितौ वीरौ सुतावानदुंदुभेः ॥१६॥ मागधस्तु जरासंधो जामातृवधदुःखितः ॥ कृत्वा सैन्यसमाजं स मथुरामागतः पुरीम् ॥१७॥ स सप्तदशवारं तु कृष्णेन कृतबुद्धिना ॥ जितः संग्राममासाद्य मधुपुर्या निवासिना ॥ १८ ॥ पश्चाच्च प्रेरितस्तेन स कालयवनाभिधः ॥ सर्वम्लेच्छाधिपः शूरो यादवानां भयंकरः ॥ १९ ॥ श्रुत्वा यवनमायांतं कृष्णः सर्वान् यदूत्तमान् ॥ आनाय्य च तथा राममुवाच मधुसूदनः ॥ २० ॥ भयं नोऽत्र

सिंहासनपर बिठाला ॥ १३ ॥ इसके बाद महामना वसुदेवने उन दोनोंका मौञ्जीबन्धन तथा उपनयन-संस्कार कराया ॥१४॥ उपनयन हो जानेके बाद श्रीकृष्ण तथा बलराम गुरु सान्दीपनिके गुरुकुलमें विद्याध्ययन करने गये। अल्पकालमें ही समस्त विद्याओंका अध्ययन करके वे पुनः मथुरा लौट आये ॥ १५ ॥ आनकदुन्दुभि अर्थात् वसुदेवके पुत्र कृष्ण और बलराम बारह वर्षकी अवस्थामें सब विद्याओंके विद्वान् और असाधारण बलवान् होकर मथुरामें ही रहने लगे ॥१६॥ उधर मगधदेशका राजा जरासन्ध अपने दामाद कंसके मरणका समाचार सुनकर बहुत दुखी हुआ और विशाल सेना एकत्र करके उसने मथुरापर चढ़ाई कर दी ॥ १७ ॥ किन्तु मधुपुरनिवासी भगवान कृष्णने अपने बुद्धिबलसे जरासन्धको सत्रह बार युद्धमें परास्त किया ॥१८॥ तब जरासन्धने कालयवनको उभाड़ा। कालयवन सभी म्लेच्छदेशोंका शासक और बहुत बड़ा बलवान् था। यादवगण उससे बहुत डरते थे ॥ १९ ॥ कालयवनके आगमनकी बात सुनकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् कृष्णने सभी यादववीरों तथा बलरामजीको बुलाकर कहा–॥ २० ॥ हे यादववीरो ! अब हमपर दो ओरसे खतरा उपस्थित हो गया है। एक तरफ जरासन्ध अपनी विशाल वाहिनीके साथ मथुराकी ओर बढ़ रहा है तो दूसरी ओर कालयवन विकराल रूपसे चढ़ाई करनेवाला है। अब आप लोग बतायें कि ऐसी स्थितिमें हमें क्या करना चाहिए ॥ २१ ॥ इस अवसरपर सर्वप्रधान कर्तव्य तो यह है कि हम घर, सेना और धन त्यागकर अपने और नागरिकोंके प्राणोंकी रक्षा करें। क्योंकि जहाँ कहीं भी आनन्दपूर्वक रहा जा सके, वही अपना पैतृक देश बन जाता है ॥ २२ ॥ इसके विपरीत जहाँ रहते समय सदा मनमें उद्वेग बना रहे, वह पैतृक देश भी किस कामका ? सुखकी आकांक्षा रखनेवालोंको तो ऐसी जगह बसना चाहिए, जहाँ पर्वत और समुद्र समीप पड़ें ॥ २३ ॥ जहाँ शत्रुका भय न हो, ऐसे ही स्थानपर समझदार मनुष्योंको रहना चाहिए। क्योंकि भगवान विष्णु भी समुद्रमें शेषशय्यापर शयन करते हैं ॥ २४ ॥ इसी तरह शत्रुओंसे भयभीत होकर शङ्करजी कैलास पर्वतपर निवास करते हैं। अतएव शत्रुओं द्वारा सताये हुए हम लोगोंको यहाँ नहीं रहना चाहिए ॥ २५ ॥ अब

समुत्पन्नं जरासंधान्महाबलात् ॥ किं कर्तव्यं महाभाग यवनः समुपैति वै ॥ २१ ॥ प्राणत्राणं प्रकर्तव्यं त्यक्त्वा गेहं बलं धनम् ॥ सुखेन स्थीयते यत्र स देशः खलु पैतृकः ॥ २२ ॥ सदोद्वेगकरः कामं किं कर्तव्यं कुलोचितम् ॥ शैलसागरसान्निध्ये स्थातव्यं सुखमिच्छता ॥ २३ ॥ यत्र वैरिभयं न स्यात्स्थातव्यं तत्र पंडितैः ॥ शेषशय्यां समाश्रित्य हरिः स्वपिति सागरे ॥ २४ ॥ तथैव च भयाद्भीतः कैलासे त्रिपुरार्दनः ॥ तस्मान्नात्रैव स्थातव्यमस्माभिः शत्रुतापितैः ॥ २५ ॥ द्वारवत्यां गमिष्यामः सहिताः सर्व एव वै ॥ कथिता गरुडेनाथ रम्या द्वारावती पुरी ॥ २६ ॥ रैवताचलसान्निध्ये सिंधुकूले मनोहरा ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तथ्यं सर्वे यादवपुङ्गवाः ॥ २७ ॥ गमनाय मतिं चक्रुः सकुटुम्बाः सवाहनाः ॥ शकटानि तथोष्ट्राश्च वाम्यश्च महिषास्तथा ॥ २८ ॥ धनपूर्णानि कृत्वा ते निर्ययुर्नगराद्बहिः ॥ रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सर्वे ते सपरिच्छदाः ॥ २९ ॥ अग्रे कृत्वा प्रजाः सर्वाश्चेलुः सर्वे यदूत्तमाः ॥ कतिचिद्दिवसैः प्रापुः पुरीं द्वारावतीं किल ॥ ३० ॥ शिल्पिभिः कारयामास जीर्णोद्धारं हि माधवः ॥ संस्थाप्य यादवांस्तत्र तावेतौ बलकेशवौ ॥ ३१ ॥ तरसा मथुरामेत्य संस्थितौ निर्जनां पुरीम् ॥ तदा तत्रैव संप्राप्तो बलवान् यवनाधिपः ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वैन-

हमलोग यहाँसे द्वारका पुरी चलेंगे। अभी-अभी गरुडने मुझे बताया है कि द्वारका बड़ी ही रमणीक पुरी है ॥२६॥ वह रैवतक पर्वतके पास और समुद्रके तटपर बड़े सुन्दर ढङ्गसे बसी हुई है। व्यासजी बोले–भगवानकी यह नीतिसङ्गत बात सुनकर सभी यादववीर सहमत हो गये ॥ २७ ॥ वे सब अपने कुटुम्बियों तथा वाहनों समेत द्वारका जानेको तैयार हो गये। उन्होंने बैलगाड़ियों, ऊँटों, घोड़ियों तथा भैंसोंपर अपना सब माल-असबाब लादकर स्त्रियों-बच्चोंको बैठाया और बलराम तथा भगवान कृष्णको अपना अगुआ बनाकर मथुरा नगरीसे बाहर हो गये ॥ २८ ॥ २९ ॥ आगे-आगे प्रजाजनोंको करके सब यदुवंशी वीर उनके पीछे-पीछे चले और कुछ ही दिनोंमें वे लोग द्वारकापुरीमें जा पहुँचे ॥ ३० ॥ वहाँपर भगवान कृष्णने कुशल कारीगरों द्वारा भलीभाँति द्वारकाका जीर्णोद्धार कराया और यादवोंको बसाकर बलराम तथा कृष्ण तुरन्त मथुरा लौट आये और उसी निर्जन मथुरा नगरीमें रहने लगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसी समय परम वीर कालयवन भी वहाँ आ धमका ॥३१॥३२॥ जब कृष्णको उसके आगमन पता चला तो मथुरा त्यागकर वे उस नगरीके बाहर हो गये। अब पैदल ही भगवान कृष्ण कालयवनके आगे-आगे चलने लगे ॥ ३३ ॥ उस समय अतिशय शोभासम्पन्न भगवान कृष्ण पीताम्बर पहने हुए थे और ठहाका मारकर हँस रहे थे। कमललोचन श्रीकृष्णको अपने आगे जाते देखकर दुष्ट कालयवन भी पैदल ही उनके पीछे-पीछे चला। चलते-चलते भगवान उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ महाबली राजा मुचुकुन्द पड़े सो रहे थे। मुचुकुन्दको देखकर भगवान वहाँ ही अन्तर्धान हो गये ॥ ३४-३६ ॥ उसी समय वहाँ कालयवन भी जा पहुँचा और सोते हुए राजा मुचुकुन्दको उसने कृष्ण समझकर बड़ी जोरसे एक लात मारा ॥ ३७ ॥ इससे वे जाग गये और क्रोधसे लाल नेत्र करके उन्होंने ज्यों ही कालयवनकी ओर निहारा, त्यों ही वह जलकर भस्म हो गया। इसके बाद राजा मुचुकुन्दने कमलनयन भगवान कृष्णको अपने समक्ष उपस्थित देखा ॥ ३८ ॥ तब समस्त देवताओंके भी देवता भगवान कृष्णको प्रणाम करके राजा मुचुकुन्द तप करनेके लिए बनको चले गये और भगवान

मागतं कृष्णो निर्ययौ नगराद्बहिः ॥ पदातिरग्रे तस्याभूद्यवनस्य जनार्दनः ॥ ३३ ॥ पीताम्बरधरः श्रीमान्प्राहसन्मधुसूदनः ॥ तं दृष्ट्वा पुरतो यांतं कृष्णं कमललोचनम् ॥ ३४ ॥ यवनोऽपि पदातिः सन्पृष्ठतोऽनुगतः खलः ॥ प्रसुप्तो यत्र राजर्षिर्मुचुकुंदो महाबलः ॥ ३५ ॥ प्रययौ भगवांस्तत्र सकालयवनो हरिः ॥ तत्रैवांतर्दधे विष्णुर्मुचुकुंदं समीक्ष्य च ॥ ३६ ॥ तत्रैव यवनः प्राप्तः सुप्तभूतमपश्यत् ॥ मत्वा तं वासुदेवं स पादेनाताडयन्नृपम् ॥ ३७ ॥ प्रबुद्धः क्रोधरक्ताक्षस्तं ददाह महाबलः ॥ तं दग्ध्वा मुचुकुंदोऽथ ददर्श कमलेक्षणम् ॥ ३८ ॥ वासुदेवं सदेवेशं प्रणम्य प्रस्थितो वनम् ॥ जगाम द्वारकां कृष्णो बलदेवसमन्वितः ॥ ३९ ॥ उग्रसेनं नृपं कृत्वा विजहार यथारुचि ॥ अहरद्रुक्मिणी कामं शिशुपालस्वयंवरात् ॥ ४० ॥ राक्षसेन विवाहेन चक्रे दारविधिं हरिः ॥ ततो जांबवतीं सत्यां मित्रविंदां च भामिनीम् ॥ ४१ ॥ कालिन्दीं लक्ष्मणां भद्रां तथा नाग्नजितीं शुभाम् ॥ पृथक्पृथक्समानीयाप्युयेमे जनार्दनः ॥ ४२ ॥ अष्टावेव महीपाल पत्न्यः परमशोभनाः ॥ प्रासूत रुक्मिणी पुत्रं प्रद्युम्नं चारुदर्शनम् ॥ ४३ ॥ जातकर्मादिकं तस्य चकार मधुसूदनः ॥ हृतोऽसौ सूतिकागेहाच्छंबरेण बलीयसा ॥ ४४ ॥ नीतश्च स्वपुरीं बालो मायावत्यै समर्पितः ॥ वासुदेवो हृतं दृष्ट्वा पुत्रं शोकसमन्वितः ॥ ४५ ॥ जगाम शरणं देवीं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ वृत्रासुरादयो दैत्या लीलयैव यया हताः ॥ ४६ ॥ ततोऽसौ योगमा-

कृष्ण बलरामके साथ द्वारका चल पड़े ॥ ३९ ॥ वहाँ महाराज उग्रसेनको राजा बनाकर वे अपनी रुचिके अनुसार विहार लगे। कुछ समय बाद श्रीकृष्ण महाराज भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीको स्वयंवरसे हर लाये। उसका वाग्दान पहले ही शिशुपालके साथ हो चुका था ॥ ४० ॥ अपने घर लाकर भगवानने रुक्मिणीके साथ राक्षसविधिसे विवाह किया। उसके बाद जाम्बवती, सत्यभामा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, भद्रा, नाग्नजिती आदि सुन्दरियोंको अलग-अलगसे लाकर उन्होंने उनके साथ विवाह किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे महाराज! उनकी परम सुन्दरी ये ही आठ पत्नियाँ थीं। समय आनेपर रुक्मिणीके गर्भसे अत्यन्त सुन्दर पुत्र प्रद्युम्न जायमान हुए ॥ ४३ ॥ मधुसूदन भगवानने बालकका भलीभाँति जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया, किन्तु शम्बर नामके एक असुरने उन्हें सौरीघरसे चुरा लिया ॥ ४४ ॥ वह प्रद्युम्नको अपनी पुरीमें ले गया और अपनी पुत्री मायावतीको सौंप दिया। इधर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् कृष्णको जब पुत्रहरणका समाचार मिला तो बहुत दुःखी हुए ॥ ४५ ॥ तब वे भक्तिभाव भरे चित्तसे उन भगवतीकी शरणमें गये, जिन्होंने वृत्रासुर जैसे बहुतेरे दैत्योंको खेल-खेलमें मार डाला था ॥ ४६ ॥ तदनन्तर कल्याणकारिणी श्रुतियोंसे मिश्रित तथा अत्यन्त मधुर वाणीसे स्तुति करके वे भगवती योगमायाका स्मरण करने लगे ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्ण भगवान बोले—हे माता ! पूर्वजन्ममें धर्मपुत्र नारायणके रूपसे मैंने उग्र तपस्या करके भाँति-भाँतिके फल-पुष्प आदि विभिन्न उपचारोंसे आपकी विधिवत् पूजा की थी । हे जननी ! क्या आप मेरे उस भक्तिभावको एक दम भूल गयीं ? ॥४८॥ किसीने कुत्सित अभिप्रायसे, खेलवाड़के लिए अथवा मेरा अपमान करनेकी इच्छासे आज सौरीघरसे मेरे बालकका अपहरण कर लिया है । यह अपहरण चाहे जैसे भी हुआ हो, किन्तु हे अम्ब ! अपने भक्तकी लाज रखना तो आपका सर्वप्रधान कर्तव्य है॥४९॥ हे दुर्गे ! मेरी द्वारकापुरी सर्वथा सुरक्षित नगरी है, उसके चारों ओर ऊँची-ऊँची चहारदीवारियाँ बनी हुई हैं, उसमें भी मेरा महल सबके मध्यमें पड़ता है और वह सौरीघर रनिवासके भीतर है। यह सब होते हुए भी मेरे दोषसे ही मेरे पुत्रका अपहरण हो गया

यायाश्चकार परमां स्मृतिम् ॥ वचोभिः परमोदारैरक्षरैः स्तवनैः शुभैः ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ मातर्मयाऽतितपसा परितोषिता त्वं प्राग्जन्मनि प्रसुमनादिभिरर्चिताऽसि ॥ धर्मात्मजेन बदरीवनखण्डमध्ये किं विस्मृतो जननि ते त्वयि भक्तिभावः ॥ ४८ ॥ सूतीगृहादपहृतः किमु बालको मे केनापि दुष्टमनसाऽप्यथ कौतुकाद्वा ॥ मानापहारकरणाय ममाद्य नूनं लज्जा तवाम्ब खलु भक्तजनस्य युक्ता ॥ ४९ ॥ दुर्गो महानतितरां नगरी सुगुप्ता तत्रापि मेऽतिसदनं किल मध्यभागे ॥ अन्तःपुरे च पिहितं ननु सूतिगेहं बालो हृतः खलु तथापि ममैव दोषात् ॥ ५० ॥ नाहं गतः परपुरं न च यादवाश्च रक्षावतीव नगरी किल वीरवर्यैः ॥ माया तवैव जननी प्रकटप्रभावा मे बालकः परिहृतः कुहकेन केन ॥ ५१ ॥ नो वेद्म्यहं जननि ते चरितं सुगुप्तं को वेद मंदमतिरल्पविदेव देही ॥ क्वासौ गतो मम भटैर्न च वीक्षितो वा हर्ताऽम्बिके जवनिका तव कल्पितेयम् ॥ ५२ ॥ चित्रं न तेऽत्र पुरतो मम मातृगर्भो नीतस्त्वयाऽर्भसमये किल माययाऽसौ ॥ यं रोहिणी हलधरं सुषुवे प्रसिद्धं दूरे स्थिता पतिपरा मिथुनं विनाऽपि ॥ ५३ ॥ सृष्टिं करोषि जगतामनुपालनं च नाशं तथैव पुनरप्यनिशं गुणैस्त्वम् ॥ को वेद तेऽम्ब चरितं दुरितांतकारि प्रायेण सर्वमखिलं विहितं

है । यह मेरे भाग्यका ही दोष है ॥५०॥ द्वारकासे बाहर किसी नगरको न मैं गया और न यादव ही वहाँसे हटे । बड़े-बड़े वीर सैनिक सदा इस नगरीकी रक्षाके लिए सन्नद्ध रहते हैं । हे जननी ! मुझे तो इस विषयमें आपका ही प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है । जिसके सहारे किसी मायावीने मेरे बालकको उड़ा लिया है ॥ ५१ ॥ हे जगदम्बे ! मैं आपके गुप्त चरित्रोंको नहीं जानता । मैं ही क्या, कोई भी मन्दमति तथा अल्पज्ञ प्राणी ऐसा न होगा कि जो आपके चरित्रको जान सके । उसका अपहरण करनेवाला किधर गया और उसे जब हमारे निपुण सैनिक भी नहीं देख सके तो हे अम्बिके ! ऐसा अनुमान होता है कि आपने ही उनकी आँखोंके आगे मायाका पर्दा डाल दिया था ॥ ५२ ॥ यदि आपने ऐसा किया हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । क्योंकि आप अपनी मायासे माता देवकीके पाँच मासके गर्भको जन्म लेनेके पहले ही उनकी कोखसे निकालकर माता रोहिणीकी कोखमें पहुँचा चुकी हैं । इस बातके प्रत्यक्ष प्रमाण स्वयं बलरामजी हैं । क्योंकि जब वसुदेवजी जेलमें कैद थे, तब बिना पतिके समागमके ही माता रोहिणीने इन्हें जन्म दिया था ॥ ५३ ॥ हे अम्ब ! आप सत्त्व, रज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा तम इन्हीं तीनों गुणोंके द्वारा सदा संसारकी सृष्टि, पालन एवं संहारका कार्य करती रहती हैं। हे माता! पापको नष्ट करनेवाले आपके चरित्रोंको कौन जान सकता है? सच तो यह है कि संसारके सारे कार्यकलाप आपके ही द्वारा सम्पन्न होते हैं ॥५४॥ पहले तो आप पुत्रको जन्म देकर खुशीका अवसर लाती हैं। फिर उसका विछोह कराके दुःखका पहाड़ पटक देती हैं। मालूम होता है कि ऐसा करनेसे आपको सुख मिलता है। तभी तो सुललित प्रपंच रचकर आप उसके साथ खेलवाड़ करती हैं। यदि ऐसा न होता तो मुझे पहले सन्तानोत्पत्तिका सुख देकर बादमें इस प्रकार न सतातीं ॥५५॥ हे अमित प्रभावशालिनी भगवती! उस बालककी माता कुररी पक्षिणीके समान बहुतसे रो रही है। वह सर्वदा मेरे समीप रहती है। अतएव उसका दुःख देखकर मेरा क्लेश और भी बढ़ जाता है। हे ललिते! आप तो विश्वकी माता हैं और भवव्याधिसे पीडित प्राणियोंकी एकमात्र आप ही शरण हैं। यह सब होते हुए भी क्या आपको उसकी दुखियारी माता रुक्मिणीके कष्टका कुछ भी पता नहीं है? ॥५६॥ हे देवि! जिस घरमें पुत्रका जन्म होता है, उसके आनन्दका कोई ठिकाना नहीं रहता और उसके नष्ट

त्वयैतत् ॥५४॥ उत्पाद्य पुत्रजननप्रभवं प्रमोदं दत्त्वा पुनर्विरहजं किल दुःखभारम् ॥ त्वं क्रीडसे सुललितैः खलु तैर्विहारैर्नो चेत्कथं मम सुताप्तिर्वृथा स्यात् ॥ ५५ ॥ माताऽस्य रोदिति भृशं कुररीव बाला दुःखं तनोति मम सन्निधिगा सदैव ॥ कष्टं न वेत्सि ललितेऽप्रतिमप्रभावा मातस्त्वमेव शरणं भवपीडितानाम् ॥ ५६ ॥ सीमा सुखस्य सुतजन्म तदीयनाशो दुःखस्य देवि भवनं विबुधा वदन्ति ॥ तत्किं करोमि जननि प्रथमे प्रनष्टे पुत्रे ममाद्य हृदयं स्फुटतीव मातः ॥ ५७ ॥ यज्ञं करोमि तव तुष्टिकरं व्रतं वा दैवं च पूजनमथाखिलदुःखहा त्वम् ॥ मातः सुतोऽत्र यदि जीवति दर्शयाशु त्वं वै क्षमा सकलशोकविनाशनाय ॥ ५८ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ प्रत्यक्षदर्शना भूत्वा तमुवाच जगद्गुरुम् ॥ ५९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ शोकं मा कुरु देवेश शापोऽयं ते पुरातनः ॥ तस्य योगेन पुत्रस्ते शम्बरेण हृतो बलात् ॥ ६० ॥ अतः स षोडशे वर्षे हत्वा तं शम्बरं बलात् ॥ आगमिष्यति पुत्रस्ते मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ६१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी चंडिका चंडविक्रमा ॥ भगवानपि पुत्रस्य शोकं त्यक्त्वाऽभवत्सुखी ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

हो जानेपर दुःखकी भी सीमा नहीं रहती। ऐसा विद्वानोंका कथन है। हे जननी! अब मैं कहाँ जाऊँ? हे अम्ब! अब मैं क्या करूँ? हे माता! अपने प्रथम पुत्रके जन्मते ही नष्ट हो जानेपर मारे दुःखके मेरा हृदय जैसे फटा जा रहा है ॥ ५७ ॥ हे माता! आपको प्रसन्न करनेके लिए मैं अम्बायज्ञ करूँगा, नवरात्रव्रत करूँगा और विधिवत् अम्बा देवीका पूजन करूँगा। क्योंकि आप समस्त दुःखोंको नष्ट कर देती हैं। हे जननी! यदि मेरा पुत्र जीवित हो तो आप तत्काल मुझे उसे दिखा दीजिए। क्योंकि आपमें सब प्रकारका शोक शमन कर देनेकी सामर्थ्य है ॥ ५८ ॥ व्यासजी बोले-हे राजन्! किसीको भी दुःख न देनेवाले श्रीकृष्णके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती उन जगद्गुरुके समक्ष प्रकट होकर बोलीं ॥ ५९ ॥ श्रीदेवीने कहा—हे देवेश! आप शोक न करें। पूर्वकालमें आपको शाप मिला था। उसीके कारण शम्बरासुर बलपूर्वक आपके पुत्रको हर ले गया है ॥६०॥ सोलह वर्षका होनेपर वह प्रद्युम्न अपनी शक्तिसे शम्बरासुरको मारकर मेरी कृपासे आपके पास लौट आयेगा। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले—ऐसा कहकर प्रचण्ड पराक्रमशालिनी भगवती अन्तर्धान हो गयीं। उनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदेशानुसार भगवान कृष्ण भी पुत्रशोक त्यागकर सुखी हुए ।। ६२ ।। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

(भगवती परा शक्तिकी सर्वज्ञता) राजा जनमेजय बोले–हे मुनिश्रेष्ठ ! साक्षात् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णके कष्टोंको देख तथा आपकी बातें सुनकर मुझे सन्देह हो रहा है ।। १ ।। श्रीकृष्ण नारायणके अंशसे उत्पन्न और परम प्रतापी थे। तब उन भगवानके भी बालकको शम्बर सौरीघरसे हठात् कैसे उठा ले गया ? ।। २ ।। वह रहस्यमयी द्वारकापुरी भलीभाँति सुरक्षित थी। सौरीघर तो और भी गुप्त स्थानमें रहा होगा। तब वह दैत्य वहाँ जाकर बालकका अपहरण करनेमें कैसे समर्थ हुआ ? ।।३।। हे सत्यवतीसुत ! यह बड़ी विचित्र बात है। भगवानको भी इस बातका पता नहीं चल सका। इस बातसे मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य और कुतूहल उत्पन्न हो रहा है ।। ४ ।। हे ब्रह्मन् ! भगवान कृष्णके द्वारकामें विद्यमान रहते सौरीघरसे बालकका अपहरण हो गया और उन्हें मालूम ही नहीं हुआ। इसका क्या कारण है ? बताइए ।।५।। व्यासजी बोले–हे राजन ! माया बड़ी बलवती होती है। वह मनुष्योंकी बुद्धिको मोहमें डाल देती

राजोवाच ।। संदेहो मे मुनिश्रेष्ठ जायते वचनात्तव ।। वैष्णवांशे भगवति दुःखोत्पत्तिं विलोक्य च ।। १ ।। नारायणांशसंभूतो वासुदेवः प्रतापवान् ।। कथं स सूतिकागाराद्धृतो बालो हरेरपि ।।२।। सुगुप्तनगरे रम्ये गुप्तेऽथ सूतिकागृहे ।। प्रविश्य तेन दैत्येन गृहीतोऽसौ कथं शिशुः ।।३।। न ज्ञातो वासुदेवेन चित्रमेतन्ममाद्भुतम् ।। जायते महदाश्चर्यं चित्ते सत्यवतीसुत ।।४।। ब्रूहि तत्कारणं ब्रह्मन्न ज्ञातं केशवेन यत् ।। हरणं तत्र संस्थेन शिशोर्वा सूतिकागृहात् ।। ५ ।। व्यास उवाच ।। माया बलवती राजन्नराणां बुद्धिमोहिनी ।। शांभवी विश्रुता लोके को वा मोहं न गच्छति ।। ६ ।। मानुषं जन्म संप्राप्य गुणाः सर्वेऽपि मानुषाः ।। भवन्ति देहजाः कामं न देवा नासुरास्तदा ।। ७ ।। क्षुत्तृण्निद्रा भयं तंद्रा व्यामोहः शोकसंशयः ।। हर्षश्चैवाभिमानश्च जरामरणमेव च ।। ८ ।। अज्ञानं ग्लानिरप्रीतिरीर्ष्याऽसूया मदः श्रमः ।। एते देहभवा भावाः प्रभवंति नराधिप ।। ९ ।। यथा हेममृगं रामो न बुबोध पुरोगतम् ।। जानक्या हरणं चैव जटायुमरणं तथा ।। १० ।। अभिषेकंदिने रामो वनवासं न वेद च ।। तथा न ज्ञातवान्रामः स्वशोकान्मरणं पितुः ।। ११ ।। अज्ञवद्विचचारासौ पश्यमानो वने वने ।। जानकीं न विवेदाथ रावणेन हृतां बलात् ।। १२ ।। सहायान् वान-

है। विश्वविख्यात शाम्भवी माया ऐसी विकट होती है कि संसारका कोई भी प्राणी उसके वशीभूत हुए विना नहीं रहता ।।६।। मनुष्यका जन्म पानेवाले प्राणीमें मानवीय गुण रहेंगे ही। फिर पहले चाहे वह देवता या दैत्य ही क्यों न रहा हो। जिसने मनुष्यतन धारण किया, उसे मानवीय गुणोंके अधीन रहना होगा ।। ७ ।। भूख, प्यास, निद्रा, भय, तन्द्रा (झपकी), घबड़ाहट, शोक, सन्देह, हर्ष, अभिमान, बुढ़ापा, अज्ञान, ग्लानि, विषाद, ईर्ष्या, असूया (परदोषदर्शन), मद और श्रम (थकावट) ये भाव सभी मनुष्यदेहमें विद्यमान रहते हैं ।।८।।९।। जैसे–रामको यह नहीं मालूम हो सका कि सामने विचरनेवाला स्वर्णमृग मायावी मारीच है। इसी प्रकार वे सीताहरण और जटायुके मरणकी बात भी नहीं जान सके ।।१०।। उन्हें यह भी नहीं पता था कि अभिषेकके दिन ही वनवासके लिए जाना होगा। वे यह भी नहीं जानते थे कि मेरे बिछोहसे पिताका मरण हो गया है ।।११।। रावण हठात् सीताको हर ले गया है। यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी उन्होंने नहीं जाना और एक अज्ञानी मनुष्यकी तरह वन-वन खोजते फिरे ॥१२॥ उन्होंने वानरोंको अपना सहायक बनाया। निरपराध वालिका वध किया और समुद्रपर पुल बाँधकर उसे पार किया ॥ १३ ॥ सीताकी सुधि लेनेके लिए उन्होंने बड़े-बड़े वानरोंको भेजा और संग्रामभूमिमें घोर संग्राम करनेका कष्ट उठाया ॥ १४ ॥ वे महाबली राम नागपाशमें बधे। बादमें गरुड़ने जाकर उन्हें बन्धनमुक्त किया ॥१५॥ कुपित होकर रामने युद्धभूमिमें रावण, महाबली कुम्भकर्ण, मेघनाद और निकुम्भका वध किया ॥ १६ ॥ भगवान जनार्दन होते हुए भी राम सीताकी निर्दोषताको नहीं जान सके और धधकते अग्निकुण्डमें प्रवेश कराके उनकी शुद्धताकी परीक्षा ली ॥ १७ ॥ उन्हीं दशरथतनय रामने परीक्षा लेनेके बाद भी परम पुनीत सीताको दूषित समझकर लोकापवादके भयसे त्याग दिया ॥१८॥ वे ही राम अपने पुत्र लव-कुशको भी नहीं जान सके। बादमें महर्षि वाल्मीकिके बतानेपर उन्हें ज्ञात हुआ कि महाबलवान् लव-कुश

रान्कृत्वा हत्वा शक्रसुतं बलात् ॥ सागरे सेतुबंधं च कृत्वोत्तीर्य सरित्पतिम् ॥ १३ ॥ प्रेषयामास सर्वासु दिक्षु तान्कपिकुञ्जरान् ॥ संग्रामं कृतवान्घोरं दुःखं प्राप रणाजिरे ॥ १४ ॥ बंधनं नागपाशेन प्राप रामो महाबलः ॥ गरुडान्मोक्षणं पश्चादन्वभूद्रघुनन्दनः ॥ १५ ॥ अहनद्रावणं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ मेघनादं निकुम्भं च कुपितो रघुनन्दनः ॥ १६ ॥ अदूष्यत्वं च जानक्या न विवेद जनार्दनः ॥ दिव्यं च कारयामास ज्वलितेऽग्नौ प्रवेशनम् ॥ १७ ॥ लोकापवादाच्च परं ततस्तत्याज तां प्रियाम् ॥ अदूष्यां दूषितां मत्वा सीतां दशरथात्मजः ॥ १८ ॥ न ज्ञातौ स्वसुतौ तेन रामेण च कुशीलवौ ॥ मुनिना कथितौ तौ तु तस्य पुत्रौ महाबलौ ॥ १९ ॥ पातालगमनं चैव जानक्या ज्ञातवान्न च ॥ राघवः कोपसंयुक्तो भ्रातरं हंतुमुद्यतः ॥ २० ॥ कालस्यागमनं चैव न विवेद खरांतकः ॥ मानुषं देहमाश्रित्य चक्रे मानुषचेष्टितम् ॥ २१ ॥ तथैव मानुषान्भावान्नात्र कार्या विचारणा ॥ पूर्वं कंसभयात्प्राप्तो गोकुले यदुनन्दनः ॥ २२ ॥ जरासंधभयात्पश्चाद्द्वारवत्यां गतो हरिः ॥ अधर्मं कृतवान्कृष्णो रुक्मिण्या हरणं च यत् ॥ २३ ॥ शिशुपालहतायाश्च जानन्धर्मं सनातनम् ॥ शुशोच बालकं कृष्णः शंबरेण हृतं बलात् ॥ २४ ॥ मुमोद जानन्पुत्रं तं हर्षशोकयुतस्ततः ॥ सत्यभामाज्ञया यत्तु युयुधे स्वर्गतः किल ॥ २५ ॥ इन्द्रेण पादपार्थं तु स्त्रीजितत्वं प्रकाशयन् ॥ जहार कल्पवृक्षं यः पराभूय

उन्हींके पुत्र हैं ॥ १९ ॥ जानकीके पातालप्रवेशकी बातको भी वे नहीं जान पाये। रघुवंशशिरोमणि राम क्रुद्ध होकर अपने भाईका वध करनेको उद्यत हो गये ॥२०॥ खर दैत्यका विनाश करनेवाले राम कालके आगमनको भी नहीं जान सके। देह धारण करके उन्होंने भी सभी मानवोचित कर्म किये ॥२१॥ जैसे भाव मनुष्यमें होते हैं, वे ही भाव कृष्णमें भी थे। इस विषयमें विशेष विचारकी आवश्यकता नहीं है। श्रीकृष्ण पहले तो कंसके भयसे गोकुल गये ॥ २२ ॥ फिर जरासन्धके भयसे मथुरा छोड़कर द्वारका भागे। रुक्मिणीका हरण करके अधार्मिक कार्य किया ॥ २३ ॥ वे सनातनधर्मसे परिचित थे और उन्हें यह भी ज्ञात था कि शिशुपालके साथ रुक्मिणीके विवाहकी बात पक्की हो चुकी है। फिर भी उन्होंने रुक्मिणीका अपहरण किया। जब शम्बरासुर उनके बालकको चुरा ले गया, तब वे विलाप करने लगे ॥ २४ ॥ भगवतीके द्वारा जब उस बालकके जीवित रहनेका पता चला, तब हर्षसे गद्गद हो गये। महारानी सत्य-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भामाकी आज्ञासे स्वर्गमें जाकर पारिजात वृक्षके लिए जो इन्द्रके साथ युद्ध किया, इससे उनकी स्त्रीपरायणताका पता चल जाता है। अन्तमें इन्द्रको परास्त करके वह पारिजातवृक्ष स्वर्गसे ले आये ॥२५॥२६॥ अपनी मानिनी रानीका मान रखनेके लिए वे तस्वीर बन गये और सत्यभामाने उन्हें वृक्षमें बाँध तथा दान करके नारदजीको दे दिया ॥२७॥ बादमें उन्होंने ही सोनेका कृष्ण दान देकर उन्हें नारदजीसे छुड़ाया। रुक्मिणीके प्रद्युम्न आदि विशिष्ट गुणसम्पन्न पुत्रोंको देखकर जाम्बवतीने जब दीनभावसे सन्तानकी याचना की, तब वे तपस्या करनेके लिए पर्वतपर चले गये ॥२८॥२९॥ जाते-जाते वे उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ शिवभक्त उपमन्यु रहते थे। वहाँ उपमन्युको अपना गुरु बनाकर उनसे शैव मन्त्रकी दीक्षा ली और सन्तानप्राप्तिकी कामनासे मूड़ मुड़ाकर दण्डी बन गये। महीनाभर केवल फलाहार करके उन्होंने कठोर तप किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उन दिनों वे शंकरजीका ध्यान करते हुए शिवमंत्रका जप कर रहे थे। दूसरे महीनेमें केवल जल पीते हुए एक पैरके सहारे खड़े होकर तप करने लगे ॥ ३२ ॥ तीसरे महीने केवल वायु पीकर पैरके अंगूठेके सहारे खड़े होकर तप किया। छठें महीनेमें शंकर

शतक्रतुम् ॥ २६ ॥ मानिनीमानरक्षार्थं हरिश्चित्रधरः प्रभुः ॥ बद्ध्वा वृक्षे हरिं सत्या नारदाय ददौ पतिम् ॥ २७ ॥ दत्त्वाऽथ कानकं कृष्णं मोचयामास भामिनी ॥ दृष्ट्वा पुत्रान्पुरुगुणान्प्रद्युम्नप्रमुखानथ ॥ २८ ॥ कृष्णं जांबवती दीना ययाचे संततिं शुभाम् ॥ स ययौ पर्वतं कृष्णस्तपस्याकृतनिश्चयः ॥ २९ ॥ उपमन्युर्मुनिर्यत्र शिवभक्तः परंतपः ॥ उपमन्युं गुरुं कृत्वा दीक्षां पाशुपतीं हरिः ॥ ३० ॥ जग्राह पुत्रकामस्तु मुंडी दंडी बभूव ह ॥ उग्रं तत्र तपस्तेपे मासमेकं फलाशनः ॥ ३१ ॥ जजाप शिवमंत्रं तु शिवध्यानपरो हरिः ॥ द्वितीये तु जलाहारस्तिष्ठन्नेकपदा हरिः ॥ ३२ ॥ तृतीये वायुभक्षस्तु पदांगुष्ठाग्रसंस्थितः ॥ षष्ठे तु भगवान्रुद्रः प्रसन्नो भक्तिभावतः ॥ ३३ ॥ दर्शनं च ददौ तत्र सोमः सोमकलाधरः ॥ आजगाम वृषारूढः सुरैरिंद्रादिभिर्वृतः ॥३४॥ ब्रह्मविष्णुयुतः साक्षाद्यक्षगंधर्वसेवितः ॥ संबोधयन्वासुदेवं शंकरस्तमुवाच ह ॥ ३५ ॥ तुष्टोऽस्मि कृष्ण तपसा तवोग्रेण महामते ॥ ददामि वांछितान्कामान्ब्रूहि यादवनंदन ॥ ३६ ॥ मयि दृष्टे कामपूरे कामशेषो न संभवेत् ॥ व्यास उवाच ॥ तं दृष्ट्वा शंकरं तुष्टं भगवान्देवकीसुतः ॥ ३७ ॥ पपात पादयोस्तस्य दंडवत्प्रेमसंयुतः ॥ स्तुतिं चकार देवेशो मेघगंभीरया गिरा ॥ ३८ ॥ स्थितस्तु पुरतः शंभोर्वासुदेवः सनातनः ॥ कृष्ण उवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ सर्वभूतार्तिनाशन ॥ ३९ ॥ विश्वयोने सुरारिघ्न

भगवान उनके भक्तिभावसे प्रसन्न हुए ॥३३॥ चन्द्रकलाधारी शंकरजी इन्द्रादि देवताओंके साथ अपने नन्दी बैलपर सवार होकर वहाँ आये और सोमनाथके रूपमें उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा और विष्णु उनके साथ थे। बड़े-बड़े यक्ष तथा गन्धर्व उनकी सेवा कर रहे थे। वासुदेव श्रीकृष्णको सम्बोधित करके शिवजीने कहा—॥३५॥ हे कृष्ण ! हे महामते ! मैं तुम्हारी उग्र तपस्यासे प्रसन्न हूँ। हे यादवनन्दन ! आपकी जो इच्छा हो, वह वरदान माँगिये, मैं दूँगा ॥३६॥ समस्त कामनाओंके पूरक मुझ शिवका दर्शन हो जानेपर भक्तकी कोई कामना अपूर्ण नहीं रह जाती। व्यासजी बोले—शंकरभगवान्को प्रसन्न देखकर देवकीनन्दन कृष्ण प्रेमपूर्वक उनके पाँवोंमें दण्डवत् लोट गये और मेघगर्जन सदृश गंभीर वाणीमें उनकी स्तुति करने लगे ॥३७॥३८॥ सनातन परम पुरुष वासुदेव शंकरजीके समक्ष खड़े हो गये। श्रीकृष्णने कहा—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सब प्राणियोंके कष्टहारिन् ! हे विश्वयोने ! हे दैत्य-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाशन ! हे त्रैलोक्यकारक ! आपको नमस्कार है। हे नीलकण्ठ ! हे त्रिशूलधारिन् ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥३९॥४०॥ हे पार्वतीवल्लभ ! हे दक्षयज्ञविनाशक ! आपको नमस्कार है। हे सुव्रत ! आपका दर्शन पाकर मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया ॥४१॥ आपके चरणोंको प्रणाम करके मेरा जन्म सफल हो गया। हे जगद्गुरो ! इस संसारमें मैं स्त्रीमय बंधनमें बँधा हुआ हूँ ॥४२॥ हे त्रिलोचन ! आज मैं आपके शरणागत हूँ। हे दुःखनाशन ! मानवजन्म पाकर मैं बहुत खिन्न हो गया हूँ ॥४३॥ हे कामदेवको भस्म करनेवाले शंकर ! मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मेरी रक्षा करिए। गर्भमें रहकर मैंने बहुत कष्ट उठाया है ॥४४॥ जन्म लेते ही गोकुलमें रहते हुए मुझे कंससे भयभीत रहना पड़ा। उसके बाद नन्दकी गायें चरानी पड़ीं और ग्वालों-की आज्ञाका पालन करना पड़ा ॥४५॥ उन दिनों सिरके बालोंमें गौओंके खुरसे उड़ी धूल लपेटे मैं वृन्दावनमें चक्कर काटता रहा। उसके बाद कालयवनके भयसे द्वारकापुरीमें भाग जाना

नमस्त्रैलोक्यकारक ॥ नीलकंठ नमस्तुभ्यं शूलिने ते नमो नमः ॥ ४० ॥ शैलजावल्लभायाथ यज्ञघ्नाय नमोऽस्तु ते ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं दर्शनात्तव सुव्रत ॥ ४१ ॥ जन्म मे सफलं जातं नत्वा ते पादपंकजम् ॥ बद्धोऽहं स्त्रीमयैः पाशैः संसारेऽस्मिञ्जगद्गुरो ॥ ४२ ॥ शरणं तेऽद्य संप्राप्तो रक्षणार्थं त्रिलोचन ॥ संप्राप्य मानुषं जन्म खिन्नोऽहं दुःखनाशन ॥ ४३ ॥ त्राहि मां शरणं प्राप्तं भवभीतं भवाधुना ॥ गर्भवासे मह-द्दुःखं प्राप्तं मदनदाहक ॥४४॥ जन्मतः कंसभयजमनुभूतं च गोकुले ॥ जातोऽहं नंदगोपालो बल्लवाज्ञाकरस्तथा ॥ ४५ ॥ गोरजःकीर्णकेशस्तु भूमन्वृन्दावने वने ॥ म्लेच्छराजभयत्रस्तो गतो द्वारवतीं पुनः ॥ ४६ ॥ त्यक्त्वा पित्र्यं शुभं देशं माथुरं दुर्लभं विभो ॥ ययातिशापबद्धेन तस्मै दत्तं भयाद्विभो ॥ ४७ ॥ राज्यं सुपुष्टमपि च धर्मरक्षापरेण च ॥ उग्रसेनस्य दासत्वं कृतं वै सर्वदा मया ॥ ४८ ॥ राजाऽसौ यादवानां वै कृतो नः पूर्वजैः किल ॥ गार्हस्थ्यं दुःखदं शम्भो स्त्रीवश्यं धर्मखंडनम् ॥ ४९ ॥ पारतंत्र्यं सदा बंधो मोक्षवार्ताऽत्र दुर्लभा ॥ रुक्मिण्यास्तनयान्दृष्ट्वा भार्या जाम्बवती मम ॥ ५० ॥ प्रेरयामास पुत्रार्थं तपसे मदनांतक ॥ सकामेन मया तप्तं तपः पुत्रार्थमद्य वै ॥ ५१ ॥ लज्जा भवति देवेश प्रार्थनायां जगद्गुरो ॥ कस्त्वामाराध्य देवेश मुक्तिदं भक्तवत्सलम् ॥५२॥ प्रसन्नं याचते मूढः फलं तुच्छं विनाशि यत् ॥ सोऽयं मायाविमूढात्मा

पड़ा ॥४६॥ हे विभो ! अपना शुभ पैतृक देश मथुरा त्यागकर परदेशमें निवास करना पड़ा। राजा ययातिके शापवश अपने कुलधर्मकी रक्षाके लिए मैंने अपने समृद्धिसम्पन्न मथुरा तथा द्वारका पुरी का राज्य उग्रसेनको सौंप दिया और जीवनभर उनकी सेवकाई की ॥४७॥४८॥ क्योंकि हमारे पूर्वज भी उग्रसेनको ही यादवोंका राजा मानते थे। हे शम्भो ! गृहस्थीका जीवन बड़ा दुखदायी होता है। इसमें सदा स्त्रीके वशमें रहना पड़ता है और धर्म छूट जाता है ॥४९॥ गार्हस्थ्य जीवनमें सदा परतन्त्रता रहती है। स्त्री-पुत्रके प्रेमका बन्धन सदा बाँधे रहता है। यहाँ तो मोक्षकी वार्ता भी दुर्लभ रहती है। रुक्मिणीके पुत्रोंको देखकर मेरी पटरानी जाम्बवतीने पुत्रप्राप्तिके निमित्त तप करनेके लिए आग्रह किया। अतएव हे मदनान्तक ! संतान-लाभके लिए मुझे यह सकाम तपस्या करनी पड़ी ॥५०॥५१॥ हे देवेश ! हे जगद्गुरो ! पुत्र पानेके लिए आपसे प्रार्थना करते हुए मुझे बड़ी लाज लगती है। आप जैसे भक्तवत्सल देवता-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की आराधना करनेके बाद उनके प्रसन्न होनेपर कौन नासमझ प्राणी ऐसा तुच्छ और विनाशशील फल चाहेगा ? हे विभो ! मायासे मूढ़ होकर मैं आपसे पुत्रसुखकी याचना करता हूँ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे शम्भो ! मेरी प्राणप्रिया रानी जाम्बवतीने मुझसे ऐसा अनुरोध किया है । हे जगत्पते ! मैं जानता हूँ कि आप मुक्तिदायक हैं । हे शिवजी ! यह भी मुझे मालूम है कि संसार दुःखोंका आगार है ॥ ५४ ॥ यह अनित्य और नाशवान् है । तब भी मुझे उसके प्रति वैराग्य नहीं होता । साक्षात् नारायणका अंश होते हुए भी शापवश मुझे धरतीपर जन्म लेना पड़ा ॥५५॥ यहाँ मायाके बन्धनमें बँधकर मुझे नाना प्रकारके कष्ट भोगने पड़ रहे हैं । व्यासजी बोले कि ऐसा कहते हुए भगवान कृष्णसे शिवजीने कहा—हे शत्रुनाशन ! आपके बहुतेरे पुत्र होंगे और सोलह हजार पचास स्त्रियाँ होंगी ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उनमेंसे प्रत्येक स्त्रीसे दस-दस महाबलवान् पुत्र जायमान होंगे । ऐसा कहकर भव्यदर्शन शंकरजी चुप हो गये ॥ ५८ ॥ इसके बाद साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए श्रीकृष्णसे भगवती गिरिजा देवीने कहा—हे कृष्ण ! हे महाबाहो कृष्ण ! हे नराधिपते ! इस संसारमें आप सर्वश्रेष्ठ गृहस्थ होंगे । हे जनार्दन ! सौ वर्ष

याचे पुत्रसुखं विभो ॥ ५३ ॥ कामिन्या प्रेरितः शंभो मुक्तिदं त्वां जगत्पते ॥ जानामि दुःखदं शंभो संसारं दुःखसाधनम् ॥ ५४ ॥ अनित्यं नाशधर्माणं तथापि विरतिर्न मे ॥ शापान्नारायणांशोऽहं जातोऽस्मि क्षितिमंडले ॥५५॥ भोक्तुं बहुतरं दुःखं मायापाशेन यंत्रितः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवंतं गोविंदं प्रत्युवाच महेश्वरः ॥ ५६ ॥ बहवस्ते भविष्यंति पुत्राः शत्रुनिषूदन ॥ स्त्रीणां षोडशसाहस्रं भविष्यति शतार्धकम् ॥ ५७ ॥ तासु पुत्रा दश दश भविष्यंति महाबलाः ॥ इत्युक्तोपररामाशु शंकरः प्रियदर्शनः ॥ ५८ ॥ उवाच गिरिजा देवी प्रणतं मधुसूदनम् ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो संसारेऽस्मिन्नराधिप ॥ ५९ ॥ गृहस्थप्रवरो लोके भविष्यति भवानिह ॥ ततो वर्षशतांते तु द्विजशापाज्जनार्दन ॥ ६० ॥ गांधार्याश्च तथा शापाद्भविता ते कुलक्षयः ॥ परस्परं निहत्याजौ पुत्रास्ते शापमोहिताः ॥ ६१ ॥ गमिष्यंति क्षयं सर्वे यादवाश्च तथाऽपरे ॥ सानुजस्त्वं तथा देहं त्यक्त्वा यास्यसि वै दिवम् ॥ ६२ ॥ शोकस्तत्र न कर्तव्यो भवितव्यं प्रति प्रभो ॥ अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते ॥ ६३ ॥ तत्र शोको न कर्तव्यो नूनं मम मतं सदा ॥ अष्टावक्रस्य शापेन भार्यास्ते मधुसूदन ॥ ६४ ॥ चौरेभ्यो ग्रहणं कृष्ण गमिष्यंति मृते त्वयि ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे शंभुः सोमः ससुरमंडलः ॥ ६५ ॥ उपमन्युं प्रणम्याथ कृष्णोऽपि द्वारकां ययौ ॥ यस्माद्ब्रह्मादयो राजन्संति यद्यप्यधी-

व्यतीत होनेपर एक ब्राह्मण तथा गान्धारीके शापसे आपके कुलका नाश हो जायगा । शापवश अज्ञानमें पड़कर आपके पुत्र रणभूमिमें परस्पर एक दूसरेपर प्रहार करते हुए कट मरेंगे ॥ ५९–६१ ॥ इसी प्रकार अन्यान्य यादव भी नष्ट हो जायँगे और आप दोनों भाई (कृष्ण-बलराम) भी यह तन त्यागकर देवलोक चले जायँगे ॥ ६२ ॥ हे प्रभो ! आप भविष्यके विषयमें शोक न करिएगा । क्योंकि अवश्यम्भावी घटनाओंका प्रतीकार नहीं किया जा सकता ॥ ६३ ॥ मेरा तो यही विचार रहा है कि भावीके विषयमें शोक करना ही नहीं चाहिए । हे मधुसूदन ! आपके मर जानेपर महर्षि अष्टावक्रके शापसे आपकी स्त्रियोंको चोर अपहरण कर ले जायँगे । व्यासजी बोले—ऐसा कहकर सब देवताओं और पार्वतीके साथ भगवान शम्भु अन्तर्धान हो गये ॥६४॥६५॥ श्रीकृष्णचन्द्र भी अपने गुरु उपमन्युको प्रणाम करके द्वारका लौट पड़े । हे राजा जनमेजय ! अवतारियोंका हाल तो आपने देख ही लिया । अतएव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्यपि ब्रह्मादिक देवता संसारके अधीश्वर कहलाते हैं, किन्तु वस्तुतः वे अधीश्वर नहीं हैं। क्योंकि मायारूपिणी नदीकी लहरोंके वेगसे उनका अन्तःकरण वैसे ही सदा क्षुब्ध होता रहता है। जैसे काष्ठकी बनी कठपुतली उसे नचानेवाले बाजीगरके अधीन रहती है। वैसे ही सब देवता भी सदा महामायाके अधीन रहा करते हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उनके पूर्वसंचित कर्म जैसे रहते हैं, उसीके अनुरूप परब्रह्मस्वरूपिणी माया सदा उन्हें प्रेरित करती रहती है ॥६८॥ उन महामायाके हृदयमें न विषयभावका स्थान है और न निर्दयता ही है। वे तो करुणामयी कहलाती हैं और सदा सब प्राणियोंको भवबन्धनसे छुटकारा दिलानेके लिए सचेष्ट रहती हैं ॥६९॥ यदि वे भगवती इस चराचर जगत्की रचना न करतीं तो समस्त विश्व चेतनाके अभावमें जड़ बना रहता ॥ ७० ॥ अतएव वे जगत्में जितने जीवोंकी सृष्टि करती हैं, उनपर सदा दयाभाव रखती हैं और उन्हें शुभ प्रेरणा प्रदान करती हैं ॥ ७१ ॥ इसलिए ब्रह्मादिक देवताओंको मोहमें पड़े देखकर किसी प्रकारकी शंका न करनी चाहिए। क्योंकि समस्त ब्रह्माण्डके सब देवता और असुर मायाके ही अन्तर्गत रहते हुए भगवती महामायाके अधीन रहते हैं ॥ ७२ ॥ स्वतंत्र

श्वराः ॥ ६६ ॥ तथापि मायाकल्लोलयोगसंक्षुभितांतराः ॥ तदधीनाः स्थिताः सर्वे काष्ठपुत्तलिकोपमाः ॥ ६७ ॥ यथा यथा पूर्वभवं कर्म तेषां
तथा तथा ॥ प्रेरयत्यनिशं माया परब्रह्मस्वरूपिणी ॥६८॥ न वैषम्यं न नैर्घृण्यं भगवत्यां कदाचन ॥ केवलं जीवमोक्षार्थं यतते भुवनेश्वरी ॥६९॥
यदि सा नैव सृज्येत जगदेतच्चराचरम् ॥ तदा मायां विना भूतं जडं स्यादेव नित्यशः ॥ ७० ॥ तस्मात्कारुण्यमाश्रित्य जगज्जीवादिकं च यत् ॥
करोति सततं देवी प्रेरयत्यनिशं च तत् ॥ ७१ ॥ तस्माद्ब्रह्मादिमोहेऽस्मिन्कर्तव्यः संशयो न हि ॥ मायांतःपातिनः सर्वे मायाधीनाः सुरासुराः
॥ ७२ ॥ स्वतंत्रा सैव देवेशी स्वेच्छाचारविहारिणी ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्सेवनीया महेश्वरी ॥ ७३ ॥ नातः परतरं किंचिदधिकं भुवनत्रये ॥
एतद्धि जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदस्मृतिः ॥ ७४ ॥ माभूत्तत्र कुले जन्म यत्र देवी न दैवतम् ॥ अहं देवी न चान्याऽस्मि ब्रह्मैवाहं न
शोकभाक् ॥ ७५ ॥ इत्यभेदेन तां नित्यां चिंतयेज्जगदंबिकाम् ॥ ज्ञात्वा गुरुमुखादेनां वेदांतश्रवणादिभिः ॥ ७६ ॥ नित्यमेकाग्रमनसा भावये-
दात्मरूपिणीम् ॥ मुक्तो भवति तेनाशु नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥ ७७ ॥ श्वेताश्वतरादयः सर्वे ऋषयो निर्मलाशयाः ॥ आत्मरूपां हृदा ज्ञात्वा

और स्वेच्छानुसार आहार-विहार करनेवाली तो एकमात्र वे जगदम्बा ही हैं। अतएव हे महाराज! तन-मन-धन तथा सच्चे हृदयसे सदा उन महेश्वरीका ही आराधन करना चाहिए॥७३॥ तीनों लोकोंमें उनसे श्रेष्ठ देवता और कोई नहीं है। जो सदा उस परा शक्तिके चरणोंका स्मरण करता है, उसीका जीवन सफल कहना चाहिए ॥ ७४ ॥ जिस कुलमें भगवती कुलदेवी न मानी जाती हों, उस कुलमें मेरा जन्म न हो। मैं न देवी हूँ और न देवता हूँ। मैं शोकसे परे रहनेवाला ब्रह्म हूँ ॥ ७५ ॥ इस प्रकार सोचते हुए बिना किसी भेद-भावके नित्य उन्हीं जगदम्बाका ध्यान करना चाहिए। पहले गुरुके मुखसे मंत्र लेकर वेदान्तश्रवण आदि उपायोंसे भगवतीके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर नित्य एकाग्र मनसे उन आत्मस्वरूपिणी भगवतीका चिन्तन करे। ऐसा करनेसे उसे शीघ्र मुक्ति मिल जाती है। नहीं तो करोड़ों प्रकारके कार्य करनेसे भी मोक्ष नहीं मिलता ॥७७॥ श्वेताश्वतर आदि सभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्मल अन्तःकरणवाले ऋषि अपने हृदयमें उन आत्मस्वरूपिणी भगवतीका ध्यान करके भवबन्धनसे छुटकारा पा चुके हैं ॥ ७८ ॥ ब्रह्मा-विष्णु आदि सब देवता और गौरी-लक्ष्मी आदि देवियाँ निरन्तर उन सच्चिदानन्दरूपिणी देवीकी ही उपासना करती हैं ॥ ७९ ॥ हे राजन् ! हे पुण्यात्मन् ! विविध प्रपंचोंके तापसे सन्तप्त होकर आपने मुझसे जो-जो प्रश्न किये थे, उनका मैंने आपको समुचित उत्तर दे दिया । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ ८० ॥ हे महाराज जनमेजय ! मैंने आपको सर्वपापहारी, पुण्यदायक, परम पुरातन, अतिशय अद्भुत और उत्तम कथानक सुनाया ॥ ८१ ॥ जो मनुष्य वेदके समान माननीय इस पुराणका नित्य श्रवण करता है, उसके सब पाप दूर हो जाते हैं और अन्तमें वह देवीके लोकमें जाकर

विमुक्ता भवबन्धनात् ॥ ७८ ॥ ब्रह्मविष्ण्वादयस्तद्वद्गौरीलक्ष्म्यादयस्तथा ॥ तामेव समुपासंते सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ ७९ ॥ इति ते कथितं राजन् यद्यत्पृष्टं त्वयाऽनघ ॥ प्रपंचतापत्रस्तेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ८० ॥ एतत्ते कथितं राजन्मयाऽऽख्यानमनुत्तमम् ॥ सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं परमाद्भुतम् ॥ ८१ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं पुराणं वेदसंमितम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोके महीयते ॥ ८२ ॥ सूत उवाच ॥ एतन्मया श्रुतं व्यासात्कथ्यमानं सविस्तरम् ॥ पुराणं पञ्चमं नूनं श्रीमद्भागवताभिधम् ॥८३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अर्थाधिकैर्वसुविधुयुगविश्वंभरा(१४१८॥)भिधैः ॥ पद्यैश्चतुर्थस्कन्धोऽयं कथितो व्यासनिर्मितैः ॥

आनन्द प्राप्त करता है ॥ ८२ ॥ सूतजी बोले—हे मुनियो ! इस प्रकार मैंने व्यासजीके मुखारविन्दसे विस्तारपूर्वक श्रीमद्भागवत नामक पञ्चम महापुराण सुना था । सो आप लोगोंको सुना दिया ॥ ८३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ व्यासदेव द्वारा निर्मित एक हजार चार सौ साढ़े अठारह श्लोक (१४१८॥) इस चतुर्थ स्कन्धमें कहे गये हैं ।

॥ समाप्तोऽयं चतुर्थः स्कन्धः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा'भाषाटीकासहिते--

श्रीमद्देवीभागवते चतुर्थः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते पञ्चमः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(विष्णुकी अपेक्षा शिवकी श्रेष्ठताका वर्णन) मुनिगण बोले—हे सूतजी ! आपने यह बहुत ही उत्तम कथा सुनायी, जिसमें सर्वपापनाशक भगवान कृष्णके दिव्य चरित्रोंकी चर्चा थी ॥ १ ॥ किन्तु हे महाभाग ! हे महामते ! आपने भगवान वासुदेवकी कथाओंको बहुत संक्षेपमें कहा है । अतएव मेरे मनमें कई प्रकारके सन्देह उत्पन्न हो गये हैं ॥ २ ॥ सर्वप्रथम सन्देह तो यह है कि साक्षात् विष्णु भगवानके अंशावतार वासुदेव श्रीकृष्णने वनमें जाकर दुष्कर तप करके शिवजीकी आराधना क्यों की ? दूसरा सन्देह यह है कि जगज्जननी, पूर्णा और साक्षात् श्रीदेवीकी अंशस्वरूपा भगवती पार्वतीने श्रीकृष्णको वरदान क्यों दिया ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ जब भगवान कृष्ण स्वयं ईश्वर थे, तब उन्होंने शिव-पार्वतीकी आराधना क्यों की ? क्या उनकी अपेक्षा भगवान कृष्णमें किसी प्रकारकी कमी थी ? यही मेरा सन्देह है ॥ ५ ॥ सूतजी बोले—हे महाभाग मुनियो ! इसका कारण मैंने व्यासजीसे जैसा सुना है, वह भगवान कृष्णकी गुणगरिमासे परिपूर्ण कथा आप लोगोंको सुना रहा हूँ, सुनिए ॥ ६ ॥ व्यासजीके मुखसे उपर्युक्त वृत्तान्त सुनकर राजा जनमेजयका सन्देह और भी बढ़ गया । तब उस परम

॥ ऋषय ऊचुः ॥ भवता कथितं सूत महदाख्यानमुत्तमम् ॥ कृष्णस्य चरितं दिव्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ संदेहोऽत्र महाभाग वासुदेवकथानके ॥ जायते च प्रोच्यमाने विस्तरेण महामते ॥ २ ॥ वने गत्वा तपस्तप्तं वासुदेवेन दुष्करम् ॥ विष्णोरंशावतारेण शिवस्याराधनं कृतम् ॥ ३ ॥ वरप्रदानं देव्या च पार्वत्या यत्कृतं पुनः ॥ जगन्मातुश्च पूर्णायाः श्रीदेव्या अंशभूतया ॥ ४ ॥ ईश्वरेणापि कृष्णेन कुतस्तौ संप्रपूजितौ ॥ न्यूनता वा किमस्त्यस्य तदेवं संशयो मम ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वं कारणं तत्र मया व्यास श्रुतं च यत् ॥ प्रब्रवीमि महाभागाः कथां कृष्णगुणान्विताम् ॥ ६ ॥ वृत्तान्तं व्यासतः श्रुत्वा वैराटीसुतजस्तदा ॥ पुनः पप्रच्छ मेधावी संदेहं परमं गतः ॥ ७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ सम्यक्सत्यवतीसूनो श्रुतं परमकारणम् ॥ तथापि मनसो वृत्तिः संशयं न विमुंचति ॥८॥ कृष्णेनाराधितः शंभुस्तपस्तप्त्वाऽतिदारुणम् ॥ विस्मयोऽयं महाभाग देवदेवेन विष्णुना ॥९॥ यः सर्वात्माऽपि सर्वेशः सर्वसिद्धिप्रदः प्रभुः ॥ स कथं कृतवान्घोरं तपः प्राकृतवद्धरिः ॥ १० ॥ जगत्कर्तुं क्षमः कृष्णस्तथा पालयितुं क्षमः ॥ संहर्तुमपि कस्मात्स दारुणं तप आचरत् ॥११॥ व्यास उवाच ॥ सत्यमुक्तं त्वया राजन्वासुदेवो जनार्दनः ॥ क्षमः सर्वेषु कार्येषु देवानां दैत्यसूदनः ॥ १२ ॥ तथापि मानुषं देहमाश्रितः परमेश्वरः ॥ कृतवान्मानुषान्भावान्वर्णाश्रमसमाश्रितान् ॥ १३ ॥ वृद्धानां

बुद्धिमान् राजाने फिर पूछा ॥ ७ ॥ राजा जनमेजयने कहा—हे सत्यवतीपुत्र व्यासजी ! आपने परम कारणस्वरूपा भगवतीकी महिमासे ओत-प्रोत बड़ी सुन्दर कथा सुनायी । किन्तु तब भी मेरे मनकी वृत्तियाँ सन्देहको नहीं त्याग पातीं ॥८॥ हे महाभाग ! साक्षात् देवदेव विष्णुभगवानके अंशावतार श्रीकृष्णने अतिशय दारुण तपस्या करके शिवजीकी आराधना की । यह सुनकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है ॥९॥ जो जगतीतलनिवासी सब जीवोंके आत्मा थे, जो सबके ईश्वर थे, जो अपने आराधकोंको सिद्धियाँ प्रदान करते थे, उन प्रभु भगवान कृष्णने साधारण प्राणीके समान घोर तपस्या क्यों की ? ॥१०॥ भगवान कृष्ण समस्त विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करनेमें समर्थ थे । तब उन्होंने इतना दारुण तप क्यों किया ? ॥११॥ व्यासजी बोले—हे राजन ! आपका कथन यथाथ है । दैत्योंके नाशक भगवान वासुदेव सब देवताओंका कार्य स्वयं कर सकते थे ॥ १२ ॥ फिर परमेश्वर होते हुए भी उन्होंने मनुष्य-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देह धारण करके वर्णाश्रम धर्मका पालन करते हुए मानव स्वभावके अनुसार ही सब कार्य किया था ॥१३॥ इसी कारण उन्होंने एक आदर्श मनुष्यके समान वृद्धोंकी पूजा की, गुरुजनोंके चरणोंकी वन्दना की, ब्राह्मणोंकी सेवा की और देवताओंका आराधन किया ॥१४॥ शोकके अवसरपर उन्होंने शोकप्रदर्शन किया और हर्षके समय हर्षका भाव दिखलाया। अवसर आनेपर उन्होंने दीनता भी दिखायी, नाना प्रकारके लोकापवाद सहे और अपनी स्त्रियोंके साथ विषयभोगका भी यथेच्छ आनन्द लिया ॥१५॥ जैसे मनुष्योंमें काम, क्रोध और लोभके भाव समय-समयपर उदित होते रहते हैं, उसी प्रकारके भावोदय उनके हृदयमें भी हुए। मनुष्यका शरीर धारण करके वे निर्गुण कैसे हो सकते थे? ॥ १६ ॥ सुबलकन्या पतिव्रता गान्धारी तथा अष्टावक्र ब्राह्मणके शापसे यादवोंका विनाश हुआ और. भगवान कृष्णको शरीर त्यागना पड़ा ॥ १७ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्णकी पत्नियोंका अपहरण हुआ और उनका खजाना लुट गया। लुटेरोंपर वीर अर्जुनके शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग विफल हो गया ॥१८॥ उनके घरसे प्रद्युम्न और अनिरुद्धका अपहरण हो गया, किंतु उन्हें कुछ पता नहीं लगा। मनुष्यदेह धारण करनेपर उनकी

पूजनं चैव गुरुपादाभिवंदनम् ॥ ब्राह्मणानां तथा सेवा देवताराधनं तथा ॥१४॥ शोके शोकाभियोगश्च हर्षे हर्षसमुन्नतिः ॥ दैन्यं नानापवादाश्च स्त्रीषु कामोपसेवनम् ॥१५॥ कामः क्रोधस्तथा लोभः काले काले भवंति हि ॥ तथा गुणमये देहे निर्गुणत्वं कथं भवेत् ॥ १६ ॥ सौवलीशापजा-दोषात्तथा ब्राह्मणशापजात् ॥ निधनं यादवानां तु कृष्णदेहस्य मोचनम् ॥ १७ ॥ हरणं लुण्ठनं तद्वत्तत्पत्नीनां नराधिप ॥ अर्जुनस्यास्त्रमोक्षे च क्लीबत्वं तस्करेषु च ॥ १८ ॥ अज्ञत्वं हरणे गेहात्तत्प्रद्युम्नानिरुद्धयोः ॥ एवं मानुषदेहेऽस्मिन्मानुषं खलु चेष्टितम् ॥ १९ ॥ विष्णोरंशावतारेऽस्मिन्नारायणमुनेस्तथा ॥ अंशजे वासुदेवेऽत्र किं चित्रं शिवसेवने ॥ २० ॥ स हि सर्वेश्वरो देवो विष्णोरपि च कारणम् ॥ सुषुप्तस्थाननाथः स विष्णुना च प्रपूजितः ॥ २१ ॥ तदंशभूताः कृष्णाद्यास्तैः कथं न स पूज्यते ॥ अकारो भगवान्ब्रह्माऽप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम् ॥ २२ ॥ मकारो भगवान् रुद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी ॥ उत्तरोत्तरभावेनाप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः ॥ २३ ॥ अतः सर्वेषु शास्त्रेषु देवी सर्वोत्तमा स्मृता ॥ अर्धमात्रा स्थिता नित्या याऽनुच्चार्या विशेषतः ॥ २४ ॥ विष्णोरप्यधिको रुद्रो विष्णुस्तु ब्रह्मणोऽधिकः ॥ तस्मान्न संशयः कार्यः कृष्णेन शिवपूजने ॥ २५ ॥

सभी चेष्टायें उसी तरह हुईं, जैसे साधारण मनुष्यकी होती हैं ॥१९॥ तब भगवान विष्णु तथा साक्षात् नारायणके अंशज श्रीकृष्णने यदि शंकरजी की आराधना की तो इसमें कोन-सी आश्चर्यकी बात हो गयी? ॥२०॥ भगवान शंकर सबके ईश्वर हैं। वे विष्णुकी उत्पत्तिके भी कारण हैं। वे सुषुप्तस्थान अर्थात् कारणशरीरके स्वामी हैं। इसीसे विष्णु भगवान भी शिवजीकी पूजन करते हैं ॥२१॥ तब उन्हीं विष्णुके अंशावतार राम-कृष्ण आदि अवतारी पुरुष शंकरजीकी पूजा क्यों न करेंगे? ॐकारका 'अ' ब्रह्माका रूप है, 'उ' विष्णुका स्वरूप है, 'म्' भगवान रुद्रका रूप है और अर्धमात्रा अर्थात् चन्द्रबिन्दु साक्षात् भगवती महेश्वरीका स्वरूप है। विद्वानोंके कथनानुसार ब्रह्मासे श्रेष्ठ विष्णु, विष्णुसे श्रेष्ठ शिव और शिवजीसे श्रेष्ठ भगवती हैं ॥२२॥२३॥ इसीलिए सब शास्त्रोंमें देवीजीको ही सर्वोत्तम बताया गया है। क्योंकि भगवती मूर्धन्य स्थानमें विराजमान अनुच्चरित अर्धमात्रा (चद्रबिन्दु) स्वरूप तथा नित्य हैं ॥२४॥ शंकरजी विष्णुसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रेष्ठ हैं और विष्णु ब्रह्माजीसे श्रेष्ठ हैं। अतएव श्रीकृष्ण द्वारा शिवपूजनके विषयमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिए ॥२५॥ पूर्वकालमें सृष्टिकार्यके लिए जब ब्रह्माजीने शिवजीकी उपासना की, तब वरदान देनेके लिए शिवजी उन्हींके मुखसे प्रकट हो गये। वे रुद्रमूल कहलाये। उनके अंशसे द्वितीय रुद्र उत्पन्न हुए। वे रुद्रदेव भी सबके पूज्य हैं। तब मूलरुद्रके विषयमें क्या कहना है? देवीतत्त्वके निकट रहनेके कारण ही शिवजीको इतना महत्त्व मिला है ॥२६॥२७॥ भगवती योगमायाकी प्रेरणासे भगवान विष्णु प्रत्येक युगमें विभिन्न अवतार लिया करते हैं। इस विषयमें विशेष विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ २८ ॥ भगवती अप्रत्यक्षरूपसे पलक गिरने जितने थोड़े समयमें भली भाँति विश्वका सृजन, पालन और संहार कर देती हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजीको विविध अवतार लेनेके लिए प्रेरित करती रहती हैं ॥ २९ ॥ भगवती योगमायाने ही कृष्णको सौरीघर (कारागार) से निकालकर गोपराज नन्दके भवनमें पहुँचाया और उनकी रक्षा की। वे ही कंसका विनाश करानेके लिए उन्हें मथुरा ले गयीं। जब श्रीकृष्ण जरासन्धसे भयभीत हो गये, तब भगवतीने ही उन्हें

सोऽपि पूज्योऽस्ति सर्वेषां मूलरुद्रस्य का कथा ॥
इच्छया ब्रह्मणो वक्त्राद्वरदानार्थमुद्भवौ ॥ मूलरुद्रस्यांशभूतो रुद्रनामा द्वितीयकः ॥ २६ ॥ सोऽपि पूज्योऽस्ति सर्वेषां मूलरुद्रस्य का कथा ॥
देवीतत्त्वस्य सान्निध्यादुत्तमत्वं स्मृतं शिवे ॥ २७ ॥ अवतारा हरेरेवं प्रभवन्ति युगे युगे ॥ योगमायाप्रभावेण नात्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥ या
नेत्रपक्ष्मपरिसंचलनेन सम्यग्विश्वं सृजत्यवति हन्ति निगूढभावा ॥ सैषा करोति सततं द्रुहिणाच्युतेशान्नानावतारकलने परिभूयमानान् ॥ २९ ॥
सूतीगृहाद्व्रजनमप्यनया नियुक्तं संगोपितश्च भवने पशुपालराज्ञः ॥ संप्रापितश्च मथुरां विनियोजितश्च श्रीद्वारकाप्रणयने ननु भीतचित्तः ॥ ३० ॥
निर्माय षोडशसहस्रशतार्धकास्ता नार्योऽष्टसंमततराः स्वकलासमुत्थाः ॥ तासां विलासवशगं तु विधाय कामं दासीकृतो हि भगवाननयाप्यनंतः ॥३१॥
एकाऽपि बंधनविधौ युवती समर्था पुंसो यथा सुदृढलोहमयं तु दाम ॥ किं नाम षोडशसहस्रशतार्धकाश्च तं स्वीकृतं शुकमिवातिनिबंधयंति ॥ ३२ ॥
सात्राजितीवशगतेन मुदान्वितेन प्राप्तं सुरेन्द्रभवनं हरिणा तदानीम् ॥ कृत्वा मृधं मघवता विहृतस्तरूणामीशः प्रियासदनभूषणतां य आप ॥३३॥
यो भीमजां हि हतवाञ्छिशुपालकादीञ्जित्वा विधिं निखिलधर्मकृतो विधित्सुः ॥ जग्राह तां निजबलेन च धर्मपत्नीं कोऽसौ विधिः परकलत्रहृतौ

द्वारका बनानेकी प्रेरणा प्रदान की ॥३०॥ उन्होंने ही अपनी शक्तिसे सोलह हजार पचास रानियों तथा आठ पटरानियोंकी रचना करके उनके हाव-भाव तथा प्रेमालापमें फँसाकर भगवान कृष्णको स्त्रियोंका दास बना दिया ॥३१॥ केवल एक सुंदरी नवयुवती मनुष्यको अपने हाव-भावसे वासनारूपिणी लौहमयी सुदृढ़ जंजीरसे बाँध सकती है। फिर जिसके पास सोलह हजार पचास सुंदरियाँ हों, तब क्या कहना। उस पुरुषको तो वे पालतू सुग्गेकी तरह मनमाना नाच नचा सकती हैं ॥३२॥ सत्राजित्की पुत्री सत्यभामाके तो वे इतने वशीभूत हो गये कि उनके कहते ही प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रभवनमें जा पहुँचे। वहाँ इन्द्रके साथ लड़ाई करके तरुराज कल्पवृक्ष छीन लाये और उससे उन्होंने अपनी प्रियतमाके महलकी शोभा बढ़ायी ॥३३॥ धर्मोंके प्रवर्तक और सब प्रकारके धार्मिक कृत्योंको विधिवत् करनेके इच्छुक भगवान कृष्णने शिशुपाल आदि वीरोंको परास्त करके पहलेसे ही वाग्दत्ता रुक्मिणीका अपहरण कर लिया और अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बलके भरोसे उन्हें अपनी धर्मपत्नी बना ली। कोई बताये तो सही कि परस्त्री अपहरण करनेकी यह कौनसी नवीन विधि निकल पड़ी ? ॥३४॥ इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि भयानक अधःपतन करानेवाले मोहजालमें पड़ तथा अहंकारके वशवर्ती होकर सभी मनुष्योंको उत्कृष्ट या निकृष्ट काम करना ही पड़ता है ॥ ३५ ॥ क्योंकि मूलप्रकृतिसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि प्रधान देवताओंकी उत्पत्ति हुई है । उसी प्रकृतिके तामस अहंकारसे इस स्थावर-जङ्गमात्मक जगत्की सृष्टि होती है ॥ ३६ ॥ जब ब्रह्माजी अहंकारको सर्वथा त्याग देते हैं, तब वे सृष्टि-रचनाके प्रपंचसे मुक्त हो जाते हैं । जब अहंकारके वशमें होते हैं, तब सृष्टि करते हैं ॥ ३७ ॥ जो प्राणी अहंकार त्याग देता है, वह सांसारिक बन्धनसे मुक्त हो जाता है । जो अहंकारके अधीन होता है, वह बन्धनमें पड़ जाता है। स्त्री, धन, गृहस्थी और सहोदर भाई बन्धनके कारण नहीं होते । बल्कि मुख्य बन्धनकारी तो प्राणीका अहंकार ही होता है । 'मैं ही सब कुछ करता हूँ, मैं ही बलवान हूँ और अपने पराक्रमसे मैंने अमुक काम कर लिया' ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ 'अमुक कार्य बाकी है, उसे भी मैं पूर्ण करूँगा' ऐसी-ऐसी अहंकार भरी धारणायें कर-करके

विजातः ॥ ३४ ॥ अहंकारवशः प्राणी करोति च शुभाशुभम् ॥ विमूढो मोहजालेन तत्कृतेनातिपातिना ॥ ३५ ॥ अहंकाराद्धि संजातमिदं स्थावरजंगमम् ॥ मूलाद्धरिहरादीनामुग्रात्प्रकृतिसंभवात् ॥ ३६ ॥ अहंकारपरित्यक्तो यदा भवति पद्मजः ॥ तदा विमुक्तो भवति नोचेत्संसारकर्मकृत् ॥३७॥ तन्मुक्तस्तु विमुक्तो हि बद्धस्तद्वशतां गतः ॥ न नारी न धनं गेहं न पुत्रा न सहोदराः ॥ ३८ ॥ बंधनं प्राणिनां राजन्नहंकारस्तु बंधकः ॥ अहं कर्ता मया चेदं कृतं कार्यं बलीयसा ॥३९॥ करिष्यामि करोम्येवं स्वयं बध्नाति प्राणभृत् ॥ कारणेन बिना कार्यं न संभवति कर्हिचित् ॥४०॥ यथा न दृश्यते जातो मृत्पिंडेन विना घटः ॥ विष्णुः पालयिता विश्वस्याहंकारसमन्वितः ॥ ४१ ॥ अन्यथा सर्वदा चिंताम्बुधौ मग्नः कथं भवेत् ॥ अहंकारविमुक्तस्तु यदा भवति मानवः ॥४२॥ अवतारप्रवाहेषु कथं मज्जेच्छुभाशयः ॥ मोहमूलमहंकारः संसारस्तत्समुद्भवः ॥ ४३ ॥ अहंकारविहीनानां न मोहो न च संसृतिः ॥ त्रिविधः पुरुषः प्रोक्तः सात्त्विको राजसस्तथा ॥ ४४ ॥ तामसस्तु महाराज ब्रह्मविष्णुशिवादिषु ॥ त्रिविधस्त्रिषु राजेंद्र काजेशादिषु सर्वदा ॥ ४५ ॥ अहंकारः सदा प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ अहंकारेण तेनैव बद्धा एते न संशयः ॥४६॥ मायाविमोहिता

प्राणी स्वयं अपने आपको बन्धनमें बाँध लेता है । बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता ॥४०॥ जैसे मिट्टीके लौंदेके बिना घड़ा नहीं बन पाता । उसी प्रकार जब विष्णु अहंकारके वशवर्ती होते हैं, तभी वे विश्वका पालन कर पाते हैं ॥ ४१ ॥ जब वे अङ्कारहीन हो जाते हैं, तब चिन्तारूपी समुद्रमें डूबे रहते हैं । उसी प्रकार जो प्राणी अहङ्कारसे छुटकारा पा जाता है तो वह भी चिन्तापरायण हो जाता है ॥४२॥ यदि ऐसा न होता तो भगवान् कृष्ण जैसे निर्मल अन्तःकरणवाले परम पुरुष अवतारके प्रवाहोंमें पड़कर क्यों डूबते-उतराते ? अज्ञानका मूल कारण अहङ्कार ही है और अहङ्कारसे ही संसारकी उत्पत्ति हुई है ॥ ४३ ॥ जो प्राणी अहङ्कार त्याग देता है, उसके पास न अज्ञानकी पहुँच होती है और न सांसारिक बन्धन ही बाँध पाते हैं । इस जगत्में तीन प्रकारके पुरुष होते हैं—सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी । हे महाराज जनमेजय ! ये तीनों गुण सृष्टि, पालन तथा संहारकार्यका सम्पादन करनेके लिए क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीमें पाये जाते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इन्हीं तीनों महान् देवताओंमें अहंकार भी निहित रहता है । ऐसा तत्त्वज्ञानी महर्षि कहते हैं । अतएव यह बात निर्विवाद सिद्ध हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गयी कि ये तीनों देवता अहंकारके बन्धनमें आबद्ध हैं ॥ ४६ ॥ मायासे मोहित और बुद्धिहीन कुछ वैष्णव विद्वान् कहते हैं कि भगवान विष्णु स्वेच्छासे अनेक अवतार लेते हैं ॥ ४७ ॥ किंतु जब कोई मूर्ख मनुष्य भी अतिशय दुःखपरिपूर्ण गर्भमें निवास करना नहीं पसन्द करता, तब भगवान् विष्णु स्वेच्छासे अवतार लेना कैसे पसन्द करेंगे ? ॥४८॥ उन्हीं विद्वानोंका यह भी कहना है कि भगवान् विष्णु स्वेच्छासे कौसल्या तथा देवकीके मल-मूत्रसे परिपूर्ण गर्भमें आये थे ॥ ४९ ॥ तनिक सोचिए तो सही, वैकुण्ठभवन त्यागकर गर्भवासमें उन्हें कौनसा सुख प्राप्त हुआ होगा ? विषतुल्य दुखदायी गर्भवासके समय तो उन्हें करोड़ों प्रकारकी चिन्तायें सताती रही होंगी ॥५०॥ जब एक साधारण प्राणी भी तप करके, विविध यज्ञ करके और नाना प्रकारके दान देकर उनका यही फल चाहता है कि अत्यन्त दुखदायी गर्भमें फिर न निवास करना पड़े ॥ ५१ ॥ तब यदि भगवान विष्णु स्वतंत्र होते तो भला गर्भवासको क्यों पसन्द करते ? उनका वश चलता तो वे अपनेको ऐसे संकटमें क्यों डालते ? ॥ ५२ ॥ अतएव हे महाराज ! आप यह बात निश्चित समझिए कि समस्त जगत् भगवती योगमायाके ही अधीन

मन्दाः प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ करोति स्वेच्छया विष्णुरवताराननेकशः ॥४७॥ मन्दोऽपि दुःखगहने गर्भवासेऽतिसंकटे ॥ न करोति मतिं विद्वान्कथं कुर्यात्स चक्रभृत् ॥ ४८ ॥ कौसल्यादेवकीगर्भे विष्ठामलसमाकुले ॥ स्वेच्छया प्रवदंत्यद्धा गतो हि मधुसूदनः ॥ ४९ ॥ वैकुण्ठसदनं त्यक्त्वा गर्भवासे सुखं नु किम् ॥ चिंताकोटिसमुत्थाने दुःखदे विषसंमिते ॥ ५० ॥ तपस्तप्त्वा क्रतून्कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥ न वांछन्ति यतो लोका गर्भवासं सुदुःखदम् ॥ ५१ ॥ स कथं भगवान्विष्णुः स्ववशश्चेज्जनार्दनः ॥ गर्भवासरुचिर्भूयाद्भवेत्स्ववशता यदि ॥ ५२ ॥ जानीहि त्वं महाराज योगमायावशे जगत् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं देवमानुषतिर्यगम् ॥५३॥ मायातंत्रीनिबद्धा ये ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ भ्रमंति बन्धमायान्ति लीलया चोर्णनाभवत् ॥५४॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ राजोवाच ॥ योगेश्वर्याः प्रभावोऽयं कथितश्चातिविस्तरात् ॥ ब्रूहि तच्चरितं स्वामिञ्छ्रोतुं कौतूहलं मम ॥ १ ॥ महादेवीप्रभावं वै श्रोतुं को नाभिवांछति ॥ यो जानाति जगत्सर्वं तदुत्पन्नं चराचरम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महामते ॥ श्रद्धनाय शांताय न ब्रूयात्स तु मंदधीः ॥ ३ ॥ पुरा युद्धमभूद्घोरं देवदानवसेनयोः ॥ पृथिव्यां पृथिवीपाल महिषाख्ये महीपतौ ॥ ४ ॥ महिषो नाम राजेन्द्र चकार तप

रहता है। ब्रह्मासे लेकर तृण-गुल्म पर्यन्त सभी देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी योगमायाके वशवर्ती रहते हैं ॥५३॥ जैसे मकड़ी स्वयं जाल बनाती और उसीमें फँस जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता उन भगवतीके मायारूपी बन्धनमें पड़कर सदा चक्कर काटा करते हैं ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(महिषासुरका जन्म और वरप्राप्ति) राजा जनमेजय बोले—हे स्वामिन् ! आपने भगवती योगेश्वरीका चरित्र विस्तारके साथ बताया। अब आप फिर उन महामायाका चरित्र वर्णन करिए। उसे सुननेकी मेरी प्रबल आकांक्षा है ॥१॥ और फिर जो इस बातको जानता है कि स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त जगत् महामायासे ही उत्पन्न हुआ है, वह उन महादेवीके प्रभावको क्यों न सुनना चाहेगा ? ॥२॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! मैं विस्तारपूर्वक महामायाका चरित्र वर्णन करता हूँ, सुनिए। हे महामते ! जो वक्ता श्रद्धालु तथा शांत श्रोताको भगवतीकी कथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं सुनाता, वह मूर्ख है ॥ ३ ॥ हे भूपाल ! जिस समय पृथिवीपर महिषासुर राज्य करता था, तब देवताओं और दानवोंमें बड़ा विकट युद्ध हुआ ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र ! एक समय उस महिष नामके दानवने सुमेरुपर्वतपर जाकर उग्र तपस्या की । जिसे देखकर देवतातक चकित हो गये ॥ ५ ॥ उसने पूरे दस हजार वर्षतक मनमें अपने इष्टदेवका ध्यान करते हुए तप किया । हे महाराज ! तब ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ हंसपर आरूढ़ चतुर्मुख ब्रह्माजीने उसके पास जाकर कहा—हे धर्मात्मन् ! वरदान माँगो । मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा ॥ ७ ॥ महिषासुरने कहा–हे देवदेव ! हे प्रभो ! हे लोकपितामह ! मैं अमर होना चाहता हूँ। हे पितामह ! आप ऐसा वर दीजिये कि जिससे मुझे मृत्युका भय न रह जाय ॥८॥ ब्रह्माजी बोले—जो जन्म लेता है, उसे मरना ही पड़ता है और जो मरता है उसका पुनर्जन्म निश्चित है । संसारके सभी प्राणियोंमें जन्म और मरण अवश्य विद्यमान रहते हैं ॥ ९ ॥ हे दैत्यवर्य ! समय आनेपर सब प्राणियोंका विनाश होता है । यहाँ तक कि बड़े-बड़े पर्वत और समुद्र भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ अतएव हे राजन् ! अमर होनेकी बात छोड़कर और तुम्हारी जो भी

उत्तमम् ॥ गत्वा हेमगिरौ चोग्रं देवविस्मयकारकम् ॥५॥ वर्षाणामयुतं पूर्णं चिंतयन्हृदि देवताम् ॥ तस्य तुष्टो महाराज ब्रह्मा लोकपितामहः ॥६॥ तत्रागत्याब्रवीद्वाक्यं हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ वरं वरय धर्मात्मन्ददामि तव वांछितम् ॥ ७ ॥ महिष उवाच ॥ अमरत्वं देवदेव वांछामि द्रुहिण प्रभो ॥ यथा मृत्युभयं न स्यात्तथा कुरु पितामह ॥८॥ ब्रह्मोवाच ॥ उत्पन्नस्य ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ सर्वथा मरणोत्पत्ती सर्वेषां प्राणिनां किल ॥ ९ ॥ नाशः कालेन सर्वेषां प्राणिनां दैत्यपुङ्गव ॥ महामहीधराणां च समुद्राणां च सर्वथा ॥ १० ॥ एकं स्थानं परित्यज्यामरणस्य महीपते ॥ प्रब्रूहि तं वरं साधो यस्ते मनसि वर्तते ॥११॥ महिष उवाच ॥ न देवान्मानुषाद्दैत्यान्मरणं मे पितामह ॥ पुरुषान्न च मे मृत्युर्योषा मां का हनिष्यति ॥१२॥ तस्मान्मे मरणं नूनं कामिन्याः कुरु पद्मज ॥ अबला हंत मां हंतुं कथं शक्ता भविष्यति ॥१३॥ ब्रह्मोवाच॥ यदा कदाऽपि दैत्येन्द्र नार्यास्ते मरणं ध्रुवम् ॥ न नरेभ्यो महाभाग मृतिस्ते महिषासुर ॥ १४॥ व्यास उवाच॥ एवं दत्त्वा वरं तस्मै ययौ ब्रह्मा निजालयम् ॥ सोऽपि दैत्यवरः प्राप निजं स्थानं मुदान्वितः ॥१५॥ राजोवाच॥ महिषः कस्य पुत्रोऽसौ कथं जातो महाबली ॥ कथं च माहिषं रूपं प्राप्तं तेन महात्मना ॥ १६ ॥ व्यास उवाच॥ दनोः पुत्रौ महाराज विख्यातौ क्षितिमंडले ॥ रम्भश्चैव करम्भश्च द्वावास्तां दानवोत्तमौ ॥१७॥ तावपुत्रौ महाराज पुत्रार्थं तेपतुस्तपः ॥ बहून्वर्ष-

इच्छा हो, वह बरदान माँग लो ॥ ११ ॥ महिषासुरने कहा–हे पितामह ! यदि अमर होना सम्भव न हो तो आप मुझे यह बरदान दें कि मैं पुरुषजातिके किसी भी देवता, दानव तथा मनुष्यके हाथों न मरूँ । इस प्रकार कोई पुरुष मुझे न मार सकेगा, तब भला कोई स्त्री क्या मारेगी ? ॥ १२ ॥ अतएव हे कमलयोनि ! यदि मृत्यु अनिवार्य ही हो तो किसी स्त्रीके हाथों मेरी मृत्यु निश्चित कर दीजिए । अबलायें मुझे क्या मार सकेंगी ? ॥१३॥ ब्रह्माजी बोले–हे दैत्येन्द्र ! किसी समय स्त्रीके हाथोंसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी । हे महाभाग महिषासुर ! किसी पुरुषसे तुम नहीं मरोगे ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार वर देकर ब्रह्माजी चले गये और महिषासुर भी अपने स्थानपर जा पहुँचा ॥ १५ ॥ राजा जनमेजय बोले—वह महिषासुर किसका पुत्र था ? वह इतना बलवान क्यों था और उसे महिष (भैंसे) का रूप क्यों मिला था ? ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा–हे महाराज ! दनुके रम्भ और करम्भ नामके दो विश्ववि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ख्यात पुत्र थे ॥ १७ ॥ उन दोनोंके कोई सन्तान नहीं थी। अतएव सन्तति प्राप्त करनेके लिए करम्भने पुनीत पञ्चनदके जलमें डूबकर बहुत वर्षोंतक कठिन तप किया और रम्भनामक दानव रसातलमें वटवृक्षके नीचे पंचाग्नि तापता हुआ तप करता रहा ॥१८॥१९॥ बहुत समयतक रम्भने पंचाग्नि तापा तो इस बातको जानकर देवराज इन्द्रको बहुत दुःख हुआ और वे उन दोनों दानवोंके पास गये ॥ २० ॥ पञ्चनदके जलमें इन्द्र ग्राह (मगर) रूपसे घुसे और तपःपरायण करम्भका पैर पकड़ लिया ॥ २१ ॥ तत्पश्चात् उस दुष्ट करम्भको वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रने मार डाला। अपने भ्राताके निधनका समाचार सुनकर रम्भ दानव बहुत कुपित हुआ ॥२२॥ अतएव उसने अपने हाथों अपना सिर काटकर अग्निमें होम कर देनेकी इच्छा की। इस विचारके अनुसार उसने अत्यन्त क्रोधके साथ बायें हाथसे केश पकड़कर दाहिनी भुजामें तलवार ले ली और मस्तक काटनेको उद्यत हुआ, तैसे ही अग्निदेवने प्रकट होकर उसे ऐसा

गणान्कामं पुण्ये पञ्चनदे जले॥ १८॥ करम्भस्तु जले मग्नश्चकार परमं तपः ॥ वृक्षं रसालवटं प्राप्य रंभोऽग्निमसेवयत् ॥१९॥ पञ्चाग्निसाधनासक्तः स रंभस्तु यदाऽभवत् ॥ ज्ञात्वा शचीपतिर्दुःखमुद्ययौ दानवौ प्रति ॥ २० ॥ गत्वा पंचनदे तत्र ग्राहरूपं चकार ह ॥ वासवस्तु करंभं तं तदा जग्राह पादयोः ॥२१॥ निजघान च तं दुष्टं करंभं वृत्रसूदनः ॥ भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रंभः कोपं परं गतः ॥२२॥ स्वशीर्षं पावके होतुमैच्छच्छित्वा करेण ह ॥ केशपाशे गृहीत्वाऽऽशु वामेन क्रोधसंयुतः ॥ २३ ॥ दक्षिणेन करेणाग्रं गृहीत्वा खड्गमुत्तमम् ॥ छिनत्ति शीर्षं तत्तावद्वह्निना प्रतिबोधितः ॥ २४ ॥ उक्तश्च दैत्य मूर्खोऽसि स्वशीर्षं छेत्तुमिच्छसि ॥ आत्महत्याऽतिदुःसाध्या कथं त्वं कर्तुमुद्यतः ॥ २५ ॥ वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ॥ मा म्रियस्व मृतेनाद्य किं ते कार्यं भविष्यति ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं रंभः पावकस्य सुभाषितम् ॥ ततोऽब्रवीद्वचो रंभस्त्यक्त्वा केशकलापकम् ॥ २७ ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश देहि मे वांछितं वरम् ॥ त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्मे परबलार्दनः ॥ २८ ॥ अजेयः सर्वथा स स्याद्देवदानवमानवैः ॥ कामरूपी महावीर्यः सर्वलोकाभिवन्दितः ॥ २९ ॥ पावकस्तं तथेत्याह भविष्यति तवेप्सितम् ॥ पुत्रस्तव महाभाग मरणाद्विरमाधुना ॥ ३० ॥ यस्यां चित्तं तु रंभ त्वं प्रमदायां करिष्यसि ॥ तस्यां पुत्रो महाभाग भविष्यति बलाधिकः॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो

करनेसे रोका ॥२३॥२४॥ उन्होंने कहा–हे दैत्यवर! तुम बड़े मूर्ख हो, जो अपना सिर काटना चाहते हो। आत्महत्या बहुत दुःखसाध्य काम है, किंतु तुम उसे भी करनेको उद्यत हो गये ॥ २५ ॥ तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान माँगो। मरो मत। मरनेसे तुम्हारा क्या बनेगा ? ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले- अग्निदेवके सुन्दर वचन सुनकर रम्भने बायें हाथसे पकड़ा हुआ केशकलाप छोड़ दिया और कहा–॥ २७ ॥ हे देवेश ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तो यही वरदान दीजिए कि मुझे त्रैलोक्यविजयी और शत्रुसेनाका विनाश करनेवाला पुत्र प्राप्त हो। देवता-दानव-मानव इनमें कोई भी उसे परास्त न कर सके। वह जब जैसा रूप धारण करना चाहे, कर ले। वह असाधारण बलवान् हो और सब लोग उसकी वन्दना करें ॥२८॥ अग्निदेव बोले–हे महाभाग ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी और तुमको वैसा ही पुत्र प्राप्त होगा। अब तुम मरनेका विचार त्याग दो ॥२९॥३०॥ हे रम्भ ! जिस स्त्रीपर तुम्हारा मन आसक्त होगा, उसीसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम्हें वह बलवान् पुत्र प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! अग्निदेवके इस प्रकार मनभावने वचन सुनकर रम्भने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और वहाँसे चल पड़ा ॥३२॥ चलते-चलते वह एक ऐसे रमणीक और श्रीसम्पन्न स्थानपर पहुँचा, जहाँ यक्षोंका निवास था । वहाँ ही एक महिषीको देखकर वह उसपर आसक्त हो गया ॥ ३३ ॥ यद्यपि वहाँ बहुतेरी रूपवती युवती और मदमाती स्त्रियाँ थीं, किन्तु उन सबको त्यागकर वह उसीपर आसक्त हुआ और वह भैंस भी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक चाहती हुई उसके साथ सम्भोग करनेको तैयार हो गयी ॥ ३४ ॥ भाग्यसे प्रेरित होकर रम्भने उसीके साथ संभोग किया । जिससे वह गर्भवती हो गयी ॥ ३५ ॥ तदनन्तर वह उसे लेकर मनोहर पाताललोकमें चला गया । वह वहाँके महिषोंसे अपनी प्रियतमाकी रक्षा करता हुआ रहने लगा ॥ ३६ ॥ एकदिन एक महिष कामातुर होकर उस महिषीकी ओर लपका । यह देखकर रम्भ दानव उसे मारने दौड़ा और अपनी पत्नीकी रक्षाके लिए उसपर कठोर प्रहार किया । कामार्त महिषने भी अपनी सींगोंसे रंभको मारना आरंभ किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उसने अपनी तीखी सींगोंसे रम्भके हृदय प्रदेश-

वह्निना रम्भो वचनं चित्तरंजनम् ॥ श्रुत्वा प्रणम्य प्रययौ वह्निं तं दानवोत्तमः ॥ ३२ ॥ यक्षैः परिवृतं स्थानं रमणीयं श्रियान्वितम् ॥ दृष्ट्वा चक्रे तदा भावं महिष्यां दानवोत्तमः ॥ ३३ ॥ मत्तायां रूपपूर्णायां विहायान्यां च योषितम् ॥ सा समागाच्च तरसा कामयन्ती मुदान्विता ॥ ३४ ॥ रम्भोऽपि गमनं चक्रे भवितव्यप्रणोदितः ॥ सा तु गर्भवती जाता महिषी तस्य वीर्यतः ॥ ३५ ॥ तां गृहीत्वाऽथ पातालं प्रविवेश मनोहरम् ॥ महिषेभ्यश्च तां रक्षन्प्रियामनुमतां किल ॥३६॥ कदाचिन्महिषश्चान्यः कामार्तस्तामुपाद्रवत् ॥ स्वयमागत्य तं हन्तुं दानवः समुपाद्रवत् ॥ ३७ ॥ स्वरक्षार्थं समागत्य महिषं समताडयत् ॥ सोऽपि तं निजघानाशु शृङ्गाभ्यां काममोहितः ॥ ३८ ॥ ताडितस्तेन तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां हृदये भृशम् ॥ भूमौ पपात तरसा ममार च विमूर्छितः ॥ ३९ ॥ मृते भर्तरि सा दीना भयार्ता विद्रुता भृशम् ॥ सा वेगात्तं वटं प्राप्य यक्षाणां शरणं गता ॥ ४० ॥ पृष्ठतस्तु गतस्तत्र महिषः कामपीडितः ॥ कामयानस्तु तां कामी बलवीर्यमदोद्धतः ॥४१॥ रुदती सा भृशं दीना दृष्ट्वा यक्षैर्भयातुरा ॥ धावमानं च तं वीक्ष्य यक्षास्त्रातुं समाययुः ॥ ४२ ॥ युद्धं समभवद्घोरं यक्षाणां च हयारिणा ॥ शरेण ताडितस्तूर्णं पपात धरणीतले ॥ ४३ ॥ मृतं रम्भं समानीय यक्षास्ते परमं प्रियम् ॥ चितायां रोपयामासुस्तस्य देहस्य शुद्धये ॥४४॥ महिषी सा पतिं दृष्ट्वा चितायां रोपितं तदा ॥ प्रवेष्टुं सा मतिं चक्रे पतिना

पर ऐसा कठिन प्रहार किया कि जिससे वह मूर्च्छित होकर गिरा और मर गया ॥ ३९ ॥ पतिके मर जानेपर वह दीन महिषी भयभीत होकर वहाँसे भागी । बड़े वेगसे भागती हुई वह एक वटवृक्षके निकट निवास करनेवाले यक्षोंकी शरणमें जा पहुँची ॥ ४० ॥ वह कामार्त महिष भी उसका पीछा करता हुआ उस स्थानपर पहुँचा और बल-वीर्यकी अधिकताके कारण मदोद्धत होकर उस महिषीके साथ छेड़-छाड़ करने लगा ॥ ४१ ॥ उस महिषके अनाचारसे पीड़ित तथा भयभीत होकर वह महिषी रोने लगी । इस दशामें बहुतेरे यक्ष उसकी रक्षाके लिए आगे बढ़े ॥ ४२ ॥ तब उस महिषके साथ यक्षोंका घनघोर युद्ध हुआ और अन्तमें यक्षोंके बाणसे घायल होकर महिष धराशायी हो गया ॥४३॥ तदनन्तर यक्षगण परमप्रिय रंभके मृत शरीर-को उठा लाये और शुद्धिके निमित्त उसे चितापर रख दिया ॥ ४४ ॥ वह महिषी अपने मृत पतिको चितापर सुलाया देख स्वयं भी अग्निमें जलकर उसके साथ सती होनेको तैयार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो गयी ॥ ४५ ॥ यक्षोंके बार-बार रोकनेपर भी वह अपने प्रिय पतिके शवको लेकर ऊँची-ऊँची विकराल लपटोंवाली धधकती चितामें कूद पड़ी ॥४६॥ उसी समय चितासे एक महिष तथा अन्य शरीर प्राप्त करके पुत्रप्रेमी महाबली रम्भ भी निकल पड़ा ॥४७॥ वह संसारमें रक्तबीज नामसे विख्यात हुआ । उसका पुत्र महिष भी असाधारण वीर हुआ । कुछ समय बाद दानवोंने महिषासुरका राज्याभिषेक कर दिया ॥४८॥ हे महाराज ! रक्तबीज महान् पराक्रमी दैत्य हुआ । देवता, दैत्य और मनुष्य इनमेंसे कोई भी उसका बध नहीं कर सकता था ॥४९॥ हे राजन् ! इस प्रकार मैंने आपको महात्मा रक्तबीजके जन्म तथा वरप्राप्तिका वृत्तान्त विस्तृतरूपसे कह सुनाया ॥५०॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्याय:॥२॥

(देवताओंके साथ युद्धकी तैयारी) व्यासजी बोले—हे राजन् ! वरदान पाये रहनेके कारण महिषासुर बड़ा अभिमानी हो गया । उस महाबली दानवने राज्य पाकर कुछ ही

सह पावकम् ॥ ४५ ॥ वार्यमाणाऽपि यक्षैः सा प्रविवेश हुताशनम् ॥ ज्वालामालाकुलं साध्वी पतिमादाय वल्लभम् ॥ ४६ ॥ महिषस्तु चितामध्यात्समुत्तस्थौ महाबलः ॥ रम्भोऽप्यन्यद्वपुः कृत्वा निःसृतः पुत्रवत्सलः ॥४७॥ रक्तबीजोऽप्यसौ जातो महिषोऽपि महाबलः ॥ अभिषिक्तस्तु राज्येऽसौ हयारिरसुरोत्तमैः ॥४८॥ एवं स महिषो जातो रक्तबीजश्च वीर्यवान् ॥ अवध्यस्तु सुरैर्दैत्यैर्मानवैश्च नृपोत्तम ॥४९॥ इत्येतत्कथितं राजञ्जन्म तस्य महात्मनः ॥ वरप्रदानं तथा च प्रोक्तं सर्वं सविस्तरम् ॥५०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे महिषासुरोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

॥ व्यास उवाच ॥ एवं स महिषो नाम दानवो वरदर्पितः ॥ प्राप्य राज्यं जगत्सर्वं वशे चक्रे महाबलः ॥ १ ॥ पृथिवीं पालयामास सागरान्तां भुजार्जिताम् ॥ एकच्छत्रां निरातङ्कां वैरिवर्गविवर्जिताम् ॥ २ ॥ सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य महावीर्यो मदोत्कटः ॥ धनाध्यक्षस्तथा ताम्रः सेनाऽयुतसमावृतः ॥ ३ ॥ असिलोमा तथोदर्को बिडालाख्यश्च बाष्कलः ॥ त्रिनेत्रोऽथ तथा कालबंधको बलदर्पितः ॥ ४ ॥ एते सैन्ययुताः सर्वे दानवा मेदिनीं तदा ॥ आवृत्य संस्थिताः काममृद्धां सागरमेखलाम् ॥ ५ ॥ करदाश्च कृताः सर्वे भूमिपालाः पुरातनाः ॥ निहता ये बलोदग्राः क्षात्रधर्मव्यवस्थिताः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणा वशगा जाता यज्ञभागसमर्पकाः ॥ महिषस्य महाराज निखिले क्षितिमंडले ॥ ७ ॥ एकातपत्रं तद्राज्यं कृत्वा स महिषासुरः ॥

समयमें समस्त विश्वको अपने वशमें कर लिया ॥ १ ॥ वह अपने भुजबलसे समुद्र पर्यन्त समस्त पृथिवीपर एकछत्र राज्य करने लगा । उसे वैरियोंका कुछ भी भय नहीं रह गया था ॥ २ ॥ उसका सेनापति चिक्षुर बड़ा मदमत्त और पराक्रमी था । उसका कोपाध्यक्ष ताम्र था, जिसके पास दस हजार सेना रहती थी ॥ ३ ॥ असिलोमा, उदर्क, बिडालाख्य, बाष्कल, त्रिनेत्र और बलसे उन्मत्त कालबन्धक, इन प्रधान-प्रधान दानवोंने अपनी-अपनी सेनाओं द्वारा सारी ससागरा पृथिवीको घेरकर अत्यन्त समृद्ध राज्य स्थापित किया ॥ ४ ॥ ५ ॥ जितने भी पुराने राजे थे, उन सबसे वे कर लेने लगे । उनमें भी जो स्वाभिमानी थे और क्षात्रधर्मके अनुसार जिन राजाओंने उनका सामना किया, वे मार डाले गये ॥६॥ हे महाराज! महिषासुरके साम्राज्यमें रहनेवाले सब ब्राह्मण उसके अधीन हो गये और उसे यज्ञका भाग देने लगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार एकछत्र राज्य स्थापित करनेके बाद वरदानसे गर्वित महिषासुरने स्वर्गपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विजय प्राप्त करनेका मंसूबा बाँधा ॥८॥ तदनुसार शीघ्र दूतको बुलाकर दैत्यपति महिषने कहा–हे वीर ! हे महाबाहो ! हे अनघ ! तुम मेरा दूतकार्य करो । तुम बेखटके स्वर्गमें जाकर देवताओंके स्वामी इन्द्रसे मेरी जबानी कहो—॥ ९ ॥ १० ॥ हे सहस्राक्ष ! तुम शीघ्र स्वर्ग छोड़कर जहाँ इच्छा हो, वहाँ चले जाओ या कि महात्मा महिषासुरकी नौकरी करो ॥ ११ ॥ यदि तुम उनकी शरणमें चले जाओगे तो वे अवश्य तुम्हारी रक्षा करेंगे । हे शचीपते ! अच्छा तो यही हो कि तुम उनकी शरणमें चले जाओ ॥ १२ ॥ यदि महिषासुरका आदेश स्वीकार न हो तो हे बलसूदन (बल दैत्यके नाशक) ! अपना वज्र सम्हालकर युद्धके लिए तैयार हो जाओ । हमारे पूर्वजोंने तुम्हें कई वार परास्त किया है । हम तुम्हारा पुरुषार्थ जानते हैं ॥ १३ ॥ अहल्याके साथ व्यभिचार करनेवाले और देवसंघके अधिपति हे इन्द्र ! तुम्हारे बलको मैं भलीभाँति जानता हूँ । अब तुम या तो मेरे साथ युद्ध करो अथवा स्वर्ग त्यागकर जहाँ जी चाहे, वहाँ भाग जाओ ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले—दूतके वचन सुनकर इन्द्र क्रुद्ध हो गये । फिर भी हे नृपश्रेष्ठ ! उन्होंने मुसकाकर कहा—॥ १५ ॥ हे अतिशय तुच्छबुद्धि दैत्य ! मुझे इस बातका

स्वर्गं जेतु मनश्चक्रे वरदानेन गर्वितः ॥ ८ ॥ प्रणिधिं प्रेषयामास हयारिस्तु शचीपतिम् ॥ स संदेशहरं शीघ्रमाहूयोवाच दैत्यराट् ॥ ९ ॥ गच्छ वीर महाबाहो दूतत्वं कुरु मेऽनघ ॥ ब्रूहि शक्रं दिवं गत्वा निःशंकः सुरसन्निधौ ॥१०॥ मुञ्च स्वर्गं सहस्राक्ष यथेष्टं गच्छ माचिरम् ॥ सेवां वा कुरु देवेश महिषस्य महात्मनः ॥ ११ ॥ स त्वां संरक्षयेन्नूनं राजा शरणमागतम् ॥ तस्मात्त्वं शरणं याहि महिषस्य शचीपते ॥ १२ ॥ नोचेद्वज्रं गृहाणाशु युद्धाय बलसूदन ॥ पूर्वैर्जितोऽसि चास्माकं जानामि तव पौरुषम् ॥ १३ ॥ अहल्याजार विज्ञातं बलं ते सुरसंघप ॥ युध्यस्व व्रज वा कामं यत्र ते रमते मनः ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शक्रः क्रोधसमन्वितः ॥ उवाच तं नृपश्रेष्ठ स्मितपूर्वं वचस्तदा ॥ १५ ॥ न जानेऽहं सुमंदात्मन् यतस्त्वं मददर्पितः ॥ चिकित्सां च करिष्यामि रोगस्यास्य प्रभोस्तव ॥ १६ ॥ अतः परं करिष्यामि मूलस्यास्य निकृन्तनम् ॥ गच्छ दूत तथा ब्रूहि तस्याग्रे मम भाषितम् ॥ १७ ॥ शिष्टैर्दूता न हंतव्यास्तस्मात्त्वां विसृजाम्यहम् ॥ युद्धेच्छा चेत्समागच्छ त्वरितो महिषीसुत ॥ १८ ॥ हयारे त्वद्बलं ज्ञातं तृणादस्त्वं जडाकृतिः ॥ शृंगयोस्ते करिष्यामि सुदृढं च शरासनम् ॥ १९ ॥ दर्पः शृंगबलात्तेऽस्ति विदितं कारणं मया ॥ विषाणे ते परिच्छित्त्वा संहरिष्यामि तद्बलम् ॥ २० ॥ यद्बलेनातिपूर्णस्त्वं जातोऽसि बलदर्पितः ॥ कुशलस्त्वं तदाघाते न युद्धे महिषाधम ॥ २१ ॥

पता नहीं कि तुम्हें इतना घमण्ड क्यों हो गया है । लेकिन फिर भी मैं तुम्हारे स्वामी महिषासुरका अभिमानज्वर उतारनेकी चिकित्सा करूँगा ॥ १६ ॥ इसके बाद मैं उस रोगको जड़से नष्ट करनेका उपाय करूँगा । हे दूत ! अब तुम अपने स्वामीके पास लौट जाओ और मैंने जो कहा है, सो उससे कह दो ॥१७॥ भले लोग दूतका वध नहीं करते । इसीलिए मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ । तुम मेरी ओरसे कह देना–हे महिषीपुत्र ! यदि लड़नेकी इच्छा हो तो आ जाओ ॥ १८ ॥ हे महिषासुर ! तुम घास खानेवाले जड़ प्रकृतिके पशु हो । सो तुम्हारा बल मुझे मालूम है । मैं तुम्हें मारकर तुम्हारी सींगोंसे एक सुपुष्ट धनुष बनाऊँगा ॥१९॥ तुम्हें अपनी सींगोंके बलपर बड़ा अभिमान है, यह भी मुझे ज्ञात है । सो उन सींगोंको काटकर मैं तुम्हारा गर्व खर्व कर दूँगा ॥ २० ॥ अरे अधम महिष ! उन सींगोंके बूतेपर तू इतना इतराता है, किन्तु केवल उन्हींसे आघात करनेका कौशल तुझमें है । तू युद्ध करनेमें निपुण नहीं हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकता ॥२१॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! देवराज इन्द्रके वचन सुनकर दूत तत्काल लौट पड़ा और उन्मत्त महिषासुरके पास जा तथा प्रणाम करके बोला ॥२२॥ दूतने कहा—हे राजन्! देवराज इन्द्र आपको किसी गिनतीमें नहीं मानते। देवसेनासे सम्पन्न होनेके कारण वे अपनेको पूर्ण शक्तिशाली समझते हैं॥२३॥ उस मूर्खने जो बातें कही हैं, उन्हें मैं कैसे कहूँ? क्योंकि सेवकका यह धर्म है कि वह अपने स्वामीसे मृदु और सत्य वाणी बोले ॥२४॥ अपना कल्याण चाहनेवाले भृत्यको चाहिये कि स्वामीके समक्ष प्रिय लगनेवाली हो सच्ची बात कहे। यही नीति सुखदायिनी होती आयी है ॥ २५ ॥ लेकिन यदि केवल चिकनी-चुपड़ी बात ही कहूँ तो आपका काम नहीं बनेगा। क्योंकि नीतिशास्त्र कहता है कि अपना भला चाहनेवाला भृत्य प्रभुके समक्ष कोई अप्रिय बात न बोले ॥ २६ ॥ हे नाथ! जिस तरह शत्रुके मुखसे विषैली बातें निकलती हैं, वैसी बातें किसी सेवकके मुखसे कैसे निकलेंगी? ॥ २७ ॥ हे महाराज! इन्द्रने जैसी-जैसी बातें कही हैं, उन्हें मेरी जिह्वा कदापि न कह सकेगी ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले—दूतके रहस्यभरे वचन सुनकर उस घास खानेवाले महिषासुरका सारा शरीर

व्यास उवाच ॥ इत्युक्तोऽसौ सुरेन्द्रेण स दूतस्त्वरितो गतः ॥ जगाम महिषं मत्तं प्रणम्य प्रत्युवाच ह ॥ २२ ॥ दूत उवाच ॥ राजन्देवाधिपः कामं न त्वां विगणयत्यसौ ॥ मन्यते स्वबलं पूर्णं देवसैन्यसमावृतः ॥ २३ ॥ यदुक्तं तेन मूर्खेण कथमन्यद्ब्रवीम्यहम् ॥ प्रियं सत्यं च वक्तव्यं भृत्येन पुरतः प्रभोः ॥ २४॥ प्रियं सत्यं च वक्तव्यं प्रभोरग्रे शुभेच्छुना ॥ इति नीतिर्महाराज जागर्ति शुभकारिणी ॥ २५॥ केवलं चेत्प्रियं ब्रूयां न ते कार्यं भविष्यति॥ परुषं च न वक्तव्यं कदाचिच्छुभमिच्छता॥ २६ ॥ यथा रिपुमुखाद्वाचः प्रसरंति विषोपमाः ॥ तथा भृत्यमुखान्नाथ निःसरंति कथं गिरः ॥ २७ ॥ यादृशानीह वाक्यानि तेनोक्तानि महीपते ॥ तादृशानि न मे जिह्वा वक्तुमर्हति कर्हिचित्॥ २८ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हेतुगर्भं तृणाशनः ॥ भृशं कोपपरीतात्मा बभूव महिषासुरः ॥२९॥ समाहूयाब्रवीद्दैत्यान्क्रोधसंरक्तलोचनः॥ लांगूलं पृष्ठदेशे च कृत्वा मूत्रं परित्यजन् ॥ ३० ॥ भो भो दैत्याः सुरेंद्रोऽसौ युद्धकामोऽस्ति सर्वथा ॥ बलोद्योगं कुरुध्वं वै जेतव्योऽसौ सुराधमः ॥ ३१ ॥ मदग्रे को भवेच्छूरः कोटिशश्चेत्तथाविधाः ॥ न बिभेम्येकतः कामं हनिष्याम्यद्य सर्वथा ॥ ३२ ॥ शूरः शान्तेष्वसौ नूनं तपस्विषु बलाधिकः ॥ बलकर्ता हि कुहको लंपटः परदारहृत् ॥ ३३ ॥ अप्सरोबलसंमत्तस्तपोविघ्नकरः खलः॥ छिद्रप्रहरणः पापो नित्यं विश्वासघातकः॥ ३४ ॥ नमुचिर्निहतो येन

क्रोधसे लाल हो गया ॥ २९ ॥ मारे क्रोधके उसके नेत्र अरुण हो उठे। उसने पूँछ उठाकर पीठपर रख ली और मूत्रत्याग करने लगा। तत्काल उसने दैत्योंको बुलाकर कहा—॥ ३० ॥ हे दैत्यों! देवराज इन्द्र हमसे लड़ना चाहता है। सो आप शीघ्र सेनाका संगठन करिए। हमें उस देवाधमको जीतना होगा ॥ ३१ ॥ उसके जैसे करोड़ों वीर मेरे समक्ष आ जायँ, तो भी मैं न डरूँगा, तब उस अकेले इन्द्रको क्या समझता हूँ। अब मैं उसे अवश्य मार डालूँगा ॥ ३२ ॥ वह शान्त पुरुषोंपर अपनी वीरताका प्रदर्शन और तपस्वियोंपर बलप्रयोग करता है। परस्त्री-अपहरण, व्यभिचार और छल करनेमें ही वह कुशल है ॥ ३३ ॥ उसे अपनी अप्सराओंके बलपर बड़ा अभिमान है, वह तपस्वियोंकी तपस्यामें विघ्न डालता है, शत्रुकी कमजोरी देखकर प्रहार करता है, वह सदाका पापी और विश्वासघाती है ॥ ३४ ॥ पहले तो भयके मारे उस छलियाने विश्वास उत्पन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेके लिए विविध प्रकारकी शपथें खायीं। जिससे नमुचि दैत्यने उससे सन्धि कर ली। बादमें वह सन्धि तोड़ डाली और विश्वासघात करके उसने नमुचिको मार डाला॥ ३५॥ उसके छोटे भाई विष्णु कपटके आचार्य, छलिया और झूठी शपथें खानेमें बड़े बहादुर हैं। वे तरह-तरहके रूप बना लेते हैं, धीरे-धीरे शक्ति संचय करते रहते हैं और ढोंगियोंके सरदार हैं॥३६॥ उन्होंने सूकरका रूप धरके हिरण्याक्षका वध किया और नृसिंहका रूप धारण करके हिरण्यकशिपुको मार डाला॥ ३७॥ हे दनुके वंशजो! मैं तो निश्चय कर चुका हूँ कि उसका वशवर्ती कदापि न होऊँगा और कभी भी देवताओंपर विश्वास न करूँगा॥ ३८॥ विष्णु और बलवान् इन्द्र, वे दोनों ही मेरा क्या कर लेंगे। जिस समय मैं रणभूमिमें डट जाऊँगा, उस समय रुद्र भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे॥ ३९॥ मैं इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, चन्द्रमा और सूर्यको जीतकर स्वर्गपर अधिकार कर लूँगा॥४०॥ इस प्रकार सब देवताओंको परास्त करके हमलोग यज्ञका भाग पायेंगे और सोमरस पान करके दानवोंके साथ स्वर्गमें विहार करेंगे॥ ४१॥ हे दानवो! वरदान प्राप्त किये रहनेके कारण मुझे देवताओंका कुछ भी

कृत्वा संधिं दुरात्मना॥ शपथान्विविधानादौ कृत्वा भीतेन छद्मना॥३५॥ विष्णुस्तु कपटाचार्यः कुहकः शपथाकरः॥ नानारूपधरः कामं बलकृद्दंभपंडितः॥ ३६॥ कृत्वा कोलाकृतिं येन हिरण्याक्षो निपातितः॥ हिरण्यकशिपुर्येन नृसिंहेन च घातितः॥ ३७॥ नाहं तद्वशगो नूनं भवेयं दनुनंदनाः॥ विश्वासं नैव गच्छामि देवानां कुत्र कर्हिचित्॥ ३८॥ किं करिष्यति मे विष्णुरिंद्रो वा बलवत्तरः॥ रुद्रो वापि न मे शक्तः प्रतिकर्तुं रणांगणे॥ ३९॥ त्रिविष्टपं ग्रहीष्यामि जित्वेन्द्रं वरुणं यमम्॥ धनदं पावकं चैव चंद्रसूर्यौ विजित्य च॥ ४०॥ यज्ञभागभुजः सर्वे भविष्यामोऽद्य सोमपाः॥ जित्वा देवसमूहं च विहरिष्यामि दानवैः॥ ४१॥ न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानेन दानवाः॥ मरणं न नरेभ्यश्च नारी किं मे करिष्यति॥ ४२॥ पातालपर्वतेभ्यश्च समाहूय वरान्वरान्॥ दानवान्मम सैन्येशान्कुर्वंतु त्वरिताश्चराः॥ ४३॥ एकोऽहं सर्वदेवेशान्विजेतुं दानवाः क्षमः॥ शोभार्थं वः समाहूय नयामि सुरसंगमे॥ ४४॥ शृंगाभ्यां च खुराभ्यां च हनिष्येऽहं सुरान्किल॥ न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानप्रभावतः॥ ४५॥ अवध्योऽहं सुरगणैरसुरैर्मानवैस्तथा॥ तस्मात्सज्जा भवंत्वद्य देवलोकजयाय वै॥ ४६॥ जित्वा सुरालयं दैत्या विहरिष्यामि नंदने॥ मंदारकुसुमापीडा देवयोषित्समन्विताः॥४७॥ कामधेनुपयोसिक्ताः सुधापानप्रमोदिताः॥ देवगंधर्वगीतादिनृत्यलास्यसमन्विताः॥४८॥ उर्वशी मेनका रंभा

भय नहीं है। पुरुषमात्र मेरा वध नहीं कर सकते। फिर स्त्री मेरा क्या बिगाड़ सकेगी?॥ ४२॥ हे मेरे गुप्तचरो! जो उच्चकोटिके दानवसरदार पाताल तथा पर्वतोंपर रहते हों, उन्हें तत्काल यहाँ बुलवा लो और उनको सेनाध्यक्ष बनाकर मेरी सेना तैयार करो॥४३॥ हे दानवो! यद्यपि मैं अकेला ही सब देवताओंको पराजित करनेमें समर्थ हूँ। तथापि रणभूमिकी शोभा-वृद्धिके लिए आप सबको इस लड़ाईमें बुलाकर ले चलूँगा॥४४॥ मैं अपनी तीक्ष्ण सींगों और अपने खुरोंसे देवताओंको मारूँगा। वरदानके प्रभावसे मैं देवताओंसे तनिक भी नहीं डरता॥ ४५॥ मैं सभी देवताओं, दैत्यों और मनुष्योंसे अवध्य हूँ। अतएव आप लोग शीघ्र देवलोकपर विजय प्राप्त करनेके लिए सुसज्जित हो जायँ॥४६॥ हम देवलोकपर विजय प्राप्त करनेके बाद मन्दारपुष्पकी मालायें पहनकर देवाङ्गनाओंके साथ नन्दन वनमें विहार करेंगे॥ ४७॥ वहाँ कामधेनुका दुग्ध पान करके अमृत पीयेंगे। उसके बाद देवताओं और गन्धर्वोंका विविध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हाव-भावपूर्ण नृत्य देखेंगे ॥ ४८ ॥ उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा, प्रमद्वरा, महासेना, मिश्रकेशी, मदोत्कटा और विप्रचित्ति आदि जितनी भी नृत्य-गीतमें निपुण अप्सरायें हैं, वे सब नाना प्रकारकी मदिरायें पिला-पिलाकर आप लोगोंका मनोरंजन करेंगी ॥ ४ ॥५० ॥ यदि आप लोगोंको पसन्द आये तो देवलोकपर आक्रमण करने तथा देवताओंके साथ युद्ध करनेके लिए उत्तम प्रकारका मंगलाचार करके आप सब सुसज्जित हो जायँ ॥ ५१ ॥ भृगुवंशी मुनिराज शुक्राचार्यको बुलवाकर उनका पूजन करें और इस युद्धमें विजय प्राप्त करने तथा दैत्योंकी रक्षाके लिए यज्ञ आरम्भ करके उन्हें उसका आचार्य बना दें ॥ ५२ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! पापी महिषासुर इस प्रकार दैत्योंको आदेश देकर बड़ी प्रसन्नताके साथ जल्दीसे अपने घर चला गया ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(देवसभामें देव-दानवयुद्धसम्बन्धी विचार) व्यासजी बोले—हे महाराज ! दूतके चले जानेपर इन्द्रने यम, वायु, धनपति कुबेर और वरुण आदि देवताओंको बुलाकर कहा—

घृताची च तिलोत्तमा ॥ प्रमद्वरा महासेना मिश्रकेशी मदोत्कटा ॥४९॥ विप्रचित्तिप्रभृतयो नृत्यगीतविशारदाः ॥ रंजयिष्यंति वः सर्वान्नानासवनिषेवणैः ॥ ५० ॥ सर्वे सज्जा भवंत्वद्य रोचतां गमनं दिवि ॥ संग्रामार्थं सुरैः सार्धं कृत्वा मंगलमुत्तमम् ॥ ५१ ॥ रक्षणार्थं च सर्वेषां भार्गवं मुनिसत्तमम् ॥ समाहूय च संपूज्य स्थाप्य यज्ञे गुरुं परम् ॥५२॥ व्यास उवाच ॥ इति संदिश्य दैत्येन्द्रान्महिषः पापधीस्तदा ॥ जगाम त्वरितो राजन्भवनं स्वं मुदान्वितः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे दैत्यसैन्योद्योगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ गते दूते सुरेंद्रोऽपि समाहूय सुरानथ ॥ यमवायुधनाध्यक्षवरुणानिदमूचिवान् ॥ १ ॥ महिषो नाम दैत्येन्द्रो रंभपुत्रो महाबलः ॥ वरदर्पमदोन्मत्तो मायाशतविचक्षणः ॥ २ ॥ तस्य दूतोऽद्य संप्राप्तः प्रेषितस्तेन भोः सुराः ॥ स्वर्गकामेन लुब्धेन मामुवाचेदृशं वचः ॥ ३ ॥ त्यज देवालयं शक्र यथेच्छं व्रज वासव ॥ सेवां वा कुरु दैत्यस्य महिषस्य महात्मनः ॥ ४ ॥ दयावान्दानवेन्द्रोऽसौ स ते वृत्तिं विधास्यति ॥ नतेषु भृत्यभूतेषु न कुप्यति कदाचन ॥ ५ ॥ नोचेद्युद्धाय देवेश सेनोद्योगं कुरु स्वयम् ॥ गते मयि स दैत्येंद्रस्त्वरितः समुपेष्यति ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वा स गतो दूतो दानवस्य दुरात्मनः ॥ किं कर्तव्यमतः कार्यं चिन्तयध्वं सुरोत्तमाः ॥ ७ ॥ दुर्बलोऽपि न चोपेक्ष्यः शत्रुर्बलवता सुराः ॥

॥ १ ॥ रम्भपुत्र महाबली दैत्यराज महिषासुर वरदान पाकर बड़ा उद्धत हो गया है । वह सैकड़ों प्रकारकी माया जानता है ॥ २ ॥ हे देवताओं ! उसका भेजा हुआ दूत आज मेरे पास आया था । उस राज्यलोभी दैत्यको अब स्वर्गपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छा हुई है ॥ ३ ॥ उसने कहलाया है—हे इन्द्र ! तुम देवलोक त्याग दो । हे वासव ! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ जाओ अथवा महात्मा महिषासुरके यहाँ नौकरी कर लो ॥४॥ दानवराज महिष बड़े दयालु हैं । यदि तुम उनकी शरणमें चले जाओगे तो वे तुम्हारी जीविकाका कोई प्रबन्ध अवश्य कर देंगे । जो लोग नतमस्तक होकर उनकी शरणमें जाते हैं और सेवकाई स्वीकार कर लेते हैं, उनपर वे कोप नहीं करते ॥ ५ ॥ हे देवराज ! यदि मेरा प्रस्ताव स्वीकार न हो तो युद्धके लिए आप शीघ्र सेनाका संग्रह करिए । क्योंकि मेरे वापस लौटते ही दैत्यराज महिष तुरन्त देवलोकपर आक्रमण कर देंगे ॥ ६ ॥ ऐसा कहकर उस दुरात्मा दानवका दूत चला गया ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे श्रेष्ठ देवताओ ! अब हमें क्या करना चाहिए ? इस विषयपर आप लोग विचार करें ॥७॥ हे देवताओ ! बलवान् राजाको चाहिए कि अत्यन्त निर्बल शत्रुकी भी उपेक्षा न करे। विशेष करके ऐसे शत्रुसे तो और भी सतर्क रहना चाहिए जो सदा युद्धोद्योगमें लिप्त रहे, बलवान् हो और अपने बलपर अभिमान करता हो ॥८॥ अतएव अब अपने बल और अपनी बुद्धिके अनुसार हमें उद्योग करना चाहिए। वैसे तो जय-पराजय सदा दैवके अधीन रहता है॥९॥ इस विषयमें संधिकी भी संभावना नहीं है। क्योंकि दुष्ट राजाके साथ की हुई संधि व्यर्थ हो जाती है। अतएव भलीभाँति विचार करके अच्छे लोगोंके साथ ही संधि करनी चाहिए ॥१०॥ सहसा आक्रमण कर देना भी उचित न होगा। अतएव पहले शत्रुके मर्मकी टोह लेनेवाले गुप्तचर भेजे जायँ, जो जाकर उन दैत्योंमें घुल-मिल जायँ और शीघ्र सब बातें मालूम करके लौट आयें ॥ ११ ॥ वे गुप्तदूत ऐसे होने चाहिए जो संकेतको समझते हों, सब तरह बेलाग हों, लालची न हों और सत्यवादी हों। वे वहाँ जाकर यह देखें कि सेनाकी गति-विधि कैसी है, कहाँ-कहाँ उनका जमाव हो रहा है और सेनाकी सही संख्या कितनी है ॥ १२ ॥ वे यह भी देखें कि शत्रुके

विशेषेण सदोद्योगी बलवान्बलदर्पितः ॥ ८ ॥ उद्यमः किल कर्तव्यो यथाबुद्धिर्यथाबलम् ॥ दैवाधीनो भवेन्नूनं जयो वाऽथ पराजयः ॥ ९ ॥
संधियोगो न चात्रास्ति खले संधिर्निरर्थकः ॥ सर्वथा साधुभिः कार्यं विचार्य च पुनः पुनः ॥ १० ॥ यानमप्यधुना नैव कर्तव्यं सहसा पुनः ॥
प्रेक्षकाः प्रेषणीयाश्च शीघ्रगाः सुप्रवेशकाः ॥११॥ इङ्गितज्ञाश्च निःसंगा निःस्पृहाः सत्यवादिनः॥ सेनाभियोगं प्रस्थानं बलसंख्यां यथार्थतः॥१२॥
वीराणां च परिज्ञानं कृत्वा यांतु त्वरान्विताः ॥ ज्ञात्वा दैत्यपतेस्तस्य सैन्यस्य च बलाबलम् ॥१३॥ करिष्यामि ततस्तूर्णं यानं वा दुर्गसंग्रहम् ॥
(विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं बुद्धिमता सदा ॥) सहसा विहितं कार्यं दुःखदं सर्वथा भवेत् ॥ १४ ॥ तस्माद्विमृश्य कर्तव्यं सुखदं सर्वथा बुधैः ॥
नात्र भेदविधिर्न्याय्यो दानवेषु च सर्वथा ॥१५॥ एकचित्तेषु कार्येऽस्मिंस्तस्माच्चारा व्रजंतु वै ॥ ज्ञात्वा बलाबलं तेषां पश्चान्नीतिर्विचार्य च ॥ १६ ॥
विधेया विधिवत्तज्ज्ञैस्तेषु कार्यपरेषु च ॥ अन्यथा विहितं कार्यं विपरीतफलप्रदम् ॥ १७ ॥ सर्वथा तद्भवेन्नूनमज्ञातमौषधं यथा ॥ व्यास उवाच ॥
इति संचिंत्य तैः सर्वैः प्रणिधिं कार्यवेदिनम् ॥१८॥ प्रेषयामास देवेंद्रः परिज्ञानाय पार्थिवः ॥ दूतस्तु त्वरितो गत्वा समागम्य सुराधिपम् ॥ १९ ॥

पास कितने वीर योद्धा हैं। इस प्रकार उस दैत्यपतिकी सेनाके बलाबलका पता लगाकर वे शीघ्र लौट आयें ॥१३॥ इन बातोंकी भली भाँति जानकारी हो जानेपर यदि उचित जँचेगा तो हम अपनी किलेबन्दीके काममें जुट जायँगे। (बुद्धिमान् मनुष्यका कर्तव्य है कि सदा भलीभाँति विचार करके ही कोई काम करे।) क्योंकि सहसा कोई काम कर डालनेसे दुःख ही उठाना पड़ता है ॥१४॥ अतएव बुद्धिमानोंको चाहिए कि खूब सोच-विचारकर सुखदायक काम करें। दानवोंमें फूट डालनेकी भेदनीति भी सफल होनेकी आशा नहीं है। क्योंकि वे सब संघबद्ध हैं। अतएव पहले गुप्तचर ही भेजे जायँ। उनके द्वारा शत्रुका बलाबल जान लेनेके बाद विचार करके नीति निर्धारित कर ली जायगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ हम देवताओंमें जो बड़े-बड़े नीति-शास्त्रके धुरन्धर विद्वान् हैं, वे उन कर्मठ दैत्योंपर अपनी नीतिका विधिवत् उपयोग करें। यदि हम नीतिपथसे विचलित होंगे तो हमको वैसे ही विपरीत फल भोगना पड़ेगा ॥१७॥ जैसे कोई किसी औषधिका गुण जाने बिना उसका प्रयोग करके दुःख उठाता है। व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार देवताओंसे परामर्श करके देवराज इन्द्रने शत्रुपक्षकी टोह लेनेके लिए एक कार्य-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुशल गुप्तचरको भेजा। तदनुसार दूत तत्काल चल पड़ा और वहाँके सैनिक बलाबलका भेद लेकर इन्द्रके पास लौट आया ॥१८॥१९॥ उसने दैत्यपक्षका समस्त वृत्तान्त यथार्थ रीतिसे कह सुनाया। दैत्योंके युद्धोद्योगका हाल सुनकर इन्द्रको बहुत आश्चर्य हुआ ॥२०॥ तुरन्त उन्होंने देवताओंको सैनिक तैयारी करनेकी आज्ञा दे दी और मंत्रणानिपुण देवगुरु बृहस्पतिको बुलाकर उनसे सलाह करने लगे ॥ २१ ॥ जब अंगिरागोत्रके सर्वश्रेष्ठ कर्णधार बृहस्पति आसनपर विराजमान हो गये, तब इन्द्रने कहा। इन्द्र बोले–हे देवगुरो ! हे विद्वन् ! अब हमें क्या करना चाहिए ? सो बताइए ॥२२॥ आप सर्वज्ञ हैं। ऐसी विकट परिस्थितिमें एकमात्र आप ही मेरे सहायक हैं। महिषासुर बड़ा वीर और बड़ा अभिमानी है ॥ २३ ॥ वह बहुतेरे दानवोंको साथ लेकर हमपर आक्रमण करने आ रहा है। आप मंत्रणाकार्यमें अत्यन्त निपुण हैं। अतएव कोई ऐसा उपाय बताइए कि जिससे उनके आक्रमणका प्रतीकार किया जा सके। यह सर्वसम्मत बात है कि जैसे दैत्योंपर आये संकटको शुक्राचार्य टालते हैं, उसी प्रकार देवताओंपर आयी बाधाओंको आप दूर करते हैं। व्यासजी बोले–इन्द्रकी यह बात सुनकर देवगुरु

निवेदयामास तदा सर्वसैन्यबलाबलम् ॥ ज्ञात्वा तद्बलमुद्योगं तुराषाडतिविस्मितः ॥ २० ॥ देवानचोदयत्तूर्णं समाहूय पुरोहितम् ॥ मंत्रं मंत्रविदां श्रेष्ठं चकार त्रिदशेश्वरः ॥ २१ ॥ उवाचांगिरसं श्रेष्ठं समासीनं वरासने ॥ इन्द्र उवाच ॥ भो भो देवगुरो विद्वन्किं कर्तव्यं वदस्व नः ॥ २२ ॥ सर्वज्ञोऽसि समुत्पन्ने कार्ये त्वं गतिरद्य नः ॥ दानवो महिषो नाम महावीर्यो मदान्वितः ॥ २३ ॥ योद्धुकामः समायाति बहुभिर्दानवैर्वृतः ॥ तत्र प्रतिक्रिया कार्या त्वया मंत्रविदाऽधुना ॥ २४ ॥ तेषां शुक्रस्तथा त्वं मे विघ्नहर्ता सुसंयतः ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह तुरासाहं बृहस्पतिः ॥ २५ ॥ विचिन्त्य मनसा कामं कार्यसाधनतत्परः ॥ गुरुरुवाच ॥ स्वस्थो भव सुरेन्द्र त्वं धैर्यमालंब्य मारिष ॥ २६ ॥ व्यसने च समुत्पन्ने न त्याज्यं धैर्यमाशु वै ॥ जयाजयौ सुराध्यक्ष दैवाधीनौ सदैव हि ॥ २७ ॥ स्थातव्यं धैर्यमालंब्य तस्माद्बुद्धिमता सदा ॥ भवितव्यं भवत्येव जानन्नेव शतक्रतो ॥ २८ ॥ उद्यमः सर्वथा कार्यो यथापौरुषमात्मनः ॥ मुनयोऽपि हि मुक्त्यर्थमुद्यमैकरताः सदा ॥ २९ ॥ दैवाधीनं च जानन्तो योगध्यानपरायणाः ॥ तस्मात्सदैव कर्तव्यो व्यवहारोदितोद्यमः ॥ ३० ॥ सुखं भवतु वा मा वा दैवे का परिदेवना ॥ बिना पुरुषकारेण कदाचित्सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ अंधवत्पंगुवत्कामं न तथा मुदमावहेत् ॥ कृते पुरुषकारेऽपि यदि सिद्धिर्न जायते ॥ ३२ ॥ न तत्र दूषणं तस्य

बृहस्पतिने कार्य-कारणके सम्बन्धमें मन ही मन भलीभाँति विचार करके कहा। बृहस्पति बोले–हे देवराज ! आप चिन्ता त्याग दीजिए। हे महानुभाव ! धीरज धरिए ॥ २४–२६ ॥ विपत्ति आ पड़नेपर सहसा धैर्य नहीं खो देना चाहिए। हे सुरेन्द्र ! जय और पराजय सदा दैवके अधीन रहते आये हैं ॥ २७ ॥ अतएव हे देवराज ! बुद्धिमान्का यह कर्तव्य है कि सदा धैर्यका अवलम्बन करके सब कार्य करे। यह तो आप जानते ही हैं कि होनी होकर रहती है ॥ २८ ॥ अपनेमें जितना पौरुष हो, उसीके अनुसार कार्य करना चाहिए। बड़े-बड़े मुनि भी मोक्षप्राप्तिके निमित्त सदा उद्योग करते रहते हैं ॥ २९ ॥ यद्यपि वे भी जानते हैं कि मुक्ति दैवके अधीन रहती है, फिर भी वे योग तथा ध्यानमें लगे ही रहते हैं। अतएव अपनी सामर्थ्यके अनुसार जहाँतक सम्भव हो, वहाँतक सदा उद्योगमें लगा रहे ॥ ३० ॥ सुख मिले या दुःख, दैवके भरोसे रहना तथा विपत्तिमें पड़कर झंखना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ठीक नहीं है। यदि आप सोचें कि पुरुषार्थ न करना पड़े और सफलता मिल जाय तो सिद्धि प्राप्त होना असम्भव है ॥ ३१ ॥ जैसे अन्धे और पंगुको सफलताका सुख शायद ही कभी मिलता हो। इसी प्रकार पुरुषार्थ करनेपर भी यदि सफलता न मिले तो उसमें अपना कोई अपराध नहीं है। क्योंकि प्रत्येक शरीरधारी सदा दैवके अधीन रहता है। सिद्धि न सेनासे मिलती है, न मन्त्रसे मिलती है और न मंत्रणासे मिलती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे देवेन्द्र ! रथों और आयुधोंसे भी सफलता नहीं मिलती। क्योंकि सफलता सदा भाग्यके अधीन रहती है। संसारमें प्रायः देखा जाता है कि बलवान् दुःख भोगता है और निर्बल सुख पाता है ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् भूखा सोता है और निर्बुद्धि आनन्द भोगता है। कायर विजय प्राप्त कर लेता है और शूरवीर पराजित हो जाता है ॥३५॥ जब समस्त संसार दैवके अधीन रहता है, तब इसके लिए विषाद करना व्यर्थ है। अतएव हे सुराधीश ! सबसे उत्तम उपाय तो यह है कि उद्योगमें ही भाग्यको जोड़ दे ॥ ३६ ॥ फिर उसके बाद उद्योग करनेसे दुःख प्राप्त हो या सुख, उसपर कुछ ध्यान न दे। दुःख पड़नेपर

दैवाधीने शरीरिणि ॥ कार्यसिद्धिर्न सैन्येऽस्ति न मंत्रे न च मंत्रणे ॥ ३३ ॥ न रथे नायुधे नूनं दैवाधीना सुराधिप ॥ बलवान्क्लेशमाप्नोति निर्बलः सुखमश्नुते ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान्क्षुधितः शेते निर्बुद्धिर्भोगवान्भवेत् ॥ कातरो जयमाप्नोति शूरो याति पराजयम् ॥ ३५ ॥ दैवाधीने तु संसारे कामं का परिदेवना ॥ उद्यमे योजयेन्नूनं भवितव्यं सुराधिप ॥ ३६ ॥ दुःखदे सुखदे वाऽपि तत्र तौ न विचिंतयेत् ॥ दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम् ॥ ३७ ॥ आत्मानं हर्षशोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् ॥ धैर्यमेवावगंतव्यं हर्षशोकोद्भवे बुधैः ॥ ३८ ॥ अधैर्याद्यादृशं दुःखं न तु धैर्येऽस्ति तादृशम् ॥ दुर्लभं सहनत्वं वै समये सुखदुःखयोः ॥ ३९ ॥ हर्षशोकोद्भवो यत्र न भवेद्बुद्धिनिश्चयात् ॥ किं दुःखं कस्य वा दुःखं निर्गुणोऽहं सदाऽव्ययः ॥ ४० ॥ चतुर्विंशातिरिक्तोऽस्मि किं मे दुःखं सुखं च किम् ॥ प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे मनसः शोकमूर्च्छने ॥ ४१ ॥ जरामृत्यू शरीरस्य षड्र्मिरहितः शिवः ॥ शोकमोहौ शरीरस्य गुणौ किं मेऽत्र चिंतने ॥ ४२ ॥ शरीरं नाहमथवा तत्सम्बन्धी न चाप्यहम् ॥ सप्तैकषोडशादिभ्यो विभिन्नोऽहं सदा सुखी ॥ ४३ ॥ प्रकृतिर्विकृतिर्नाहं किं मे दुःखं सदा पुनः ॥ इति मत्वा सुरेश त्वं मनसा

यह न सोचे कि मुझपर संकटका पहाड़ टूट पड़ा है। इसी प्रकार सुख मिलनेपर यह भी न सोचे कि मुझे बहुत सुख मिल रहा है ॥३७॥ जैसे वीर पुरुष पौरुष रहते शत्रुके हाथमें आत्मसमर्पण नहीं करता। उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष अपने आपको सुख और दुःखके हाथों न सौंप दे ॥३८॥ घबड़ाहटसे जितना दुःख मिलता है, उतना दुःख धैर्य धारण करनेसे नहीं होता। किन्तु समय आ जानेपर सुख और दुःख झेलना बड़ा कठिन हो जाता है ॥ ३९ ॥ अतएव प्राणीको चाहिए कि अपनी बुद्धि इतनी दृढ़ कर ले कि उसपर सुख और दुःखका कोई प्रभाव न पड़े। अपने मनमें यह सोचे कि दुःख क्या वस्तु है और किसे दुःख होता है ? मैं तो गुणोंसे पृथक् अविनाशी तत्त्व हूँ ॥४०॥ मैं चौबीस तत्त्वोंसे भिन्न आत्मतत्त्व हूँ। तब सुख-दुःख मेरे लिए क्या चीज हैं ? क्योंकि प्राणको भूख-प्यास लगती है और मनको शोक और मोहका सामना करना पड़ता है ॥ ४१ ॥ शरीरको वृद्धावस्था तथा मरणका क्लेश भोगना पड़ता है, किन्तु मैं तो प्राण-मन तथा शरीरसे भिन्न और शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और पिपासासे रहित शिवस्वरूप हूँ। शोक और मोह तो शरीरके गुण हैं। मुझे उनके विषयमें कुछ सोचनेकी क्या आव-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्यकता ? ॥४२॥ मैं न शरीर हूँ और न उसका सम्बन्धी जीव हूँ। मैं तो महदादि सातों विकृतियों, एक प्रकृति और षोडश विकारोंसे परे रहनेवाला सुखस्वरूप हूँ॥४३॥ जब मैं न प्रकृति हूँ और न विकृति। तब मुझे दुःख किस बातका ? हे देवेश ! ऐसा निश्चय करके आप अपने मनसे ममता दूर करके निर्मल बन जाइए॥४४॥ हे सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! आपके दुःख नष्ट होनेका यह प्रधान उपाय है। ममता ही सबसे बड़ा दुःख है॥ ४५ ॥ हे शचीपते ! सन्तोषसे बढ़कर सुखका कोई भी स्थान नहीं है। अथवा यदि ममता दूर करनेमें आपका ज्ञान असमर्थ हो तो हे देवराज ! आप अपने ज्ञानको भाग्यपर केन्द्रित करिए। यह निश्चित समझिए कि भोगे बिना प्रारब्ध कर्मका नाश नहीं हो सकता॥४६॥ ४७॥ जो होना होता है, वह होकर ही रहता है। तब सुख-दुःखके विषयमें क्या चिंता ? यदि सब देवता आपकी सहायता करें या केवल आपकी बुद्धि ही सहायता करे। फिर भी होनहार नहीं टलनेका॥४८॥ हे लोक-पूज्य ! सुखप्राप्तिसे पुण्यका नाश होता है और दुःखसे पापका नाश होता है। अतएव सुखका नाश होनेपर बुद्धिमान् लोगोंको सर्वथा हर्षित ही होना चाहिए॥ ४९ ॥ अथवा यदि आपकी

भव निर्ममः ॥ ४४ ॥ उपायः प्रथमोऽयं ते दुःखनाशे शतक्रतो ॥ ममता परमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम् ॥ ४५ ॥ संतोषादपरं नास्ति सुखस्थानं शचीपते ॥ अथवा यदि न ज्ञानं ममत्वनाशने किल ॥ ४६ ॥ ततो विवेकः कर्तव्यो भवितव्ये सुराधिप ॥ प्रारब्धकर्मणां नाशो न भोगाल्लक्ष्यते किल ॥ ४७ ॥ यद्भावि तद्भवत्येव का चिन्ता सुखदुःखयोः ॥ सुरैः सर्वैः सहायैर्वा बुद्ध्या वा तव सत्तम ॥ ४८ ॥ सुखं क्षयाय पुण्यस्य दुःखं पापस्य मारिष ॥ तस्मात्सुखक्षये हर्षः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः ॥ ४९ ॥ अथवा मंत्रयित्वाऽद्य कुरु यत्नं यथाविधि ॥ कृते यत्ने महाराज भवितव्यं भविष्यति ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा सहस्राक्षः पुनराह बृहस्पतिम् ॥ युद्धोद्योगं करिष्यामि हयारेर्नाशनाय वै ॥ १ ॥ नोद्यमेन बिना राज्यं न सुखं न च वै यशः ॥ निरुद्यमं च शंसंति कातरा न च सोद्यमाः ॥ २ ॥ यतीनां भूषणं ज्ञानं संतोषो हि द्विजन्मनाम् ॥ उद्यमः शत्रुहननं भूषणं भूतिमिच्छताम् ॥ ३ ॥ उद्यमेन हतस्त्वाष्ट्रो नमुचिर्बल एव च ॥ तथैनं निहनिष्यामि महिषं मुनिसत्तम ॥ ४ ॥ बलं देवगुरुस्त्वं मे वज्रमायुध-

इच्छा हो तो मन्त्रणा करके विधिवत् प्रयत्न करिए। लेकिन हे महाराज ! प्रयत्न करनेपर भी जो होनहार होगा, वह होकर ही रहेगा॥५०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(देव-दानवसंग्राम और ताम्रकी पराजय) व्यासजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! ये बातें सुनकर हजार नेत्रोंवाले इन्द्रने बृहस्पतिसे कहा—हे गुरुदेव ! मैं तो महिषासुरका विनाश करनेके लिए युद्धकी तैयारी करूँगा॥ १ ॥ क्योंकि उद्योगके बिना न राज्य मिलता है, न आनन्द प्राप्त होता है और न यश ही मिलता है। कायर लोग ही निरुद्योगिताकी सराहना करते हैं, किन्तु उद्योगपरायण लोग ऐसा नहीं करते॥ २ ॥ जैसे साधु-संन्यासियोंके लिए ज्ञान आभूषण होता है और ब्राह्मणोंका सन्तोष भूषण होता है। उसी प्रकार अपनी उन्नति चाहनेवाले राजाओंके लिए शत्रुविनाशका उद्योग ही भूषण होता है॥ ३ ॥ क्योंकि उद्योगसे ही मैंने पूर्वकालमें वृत्रासुर, नमुचि तथा बलनामक राक्षसका वध किया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसी प्रकार उद्योग करके मैं उस महिषासुरका भी वध करूँगा ॥४॥ आप देवगुरु और सर्वश्रेष्ठ शस्त्र वज्र ये दोनों मेरे प्रधान बल हैं। अवसर आनेपर विष्णुभगवान और अविनाशी शिवजी अवश्य हमारी सहायता करेंगे ॥ ५ ॥ हे महात्मन्! मैं तो अब युद्धोद्योग कर रहा हूँ और महिषासुरके साथ युद्ध करनेके लिए उपयुक्त स्थलोंपर सैनिक शिविर स्थापित करनेका आदेश देने जाता हूँ। अतएव हे मानद! अब आप विघ्न दूर करनेवाले मांगलिक वेदमंत्रोंका पाठ करिए ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले–हे राजन्! देवराजके ऐसा कहनेपर युद्धके लिए सर्वथा सन्नद्ध इंद्रसे बृहस्पतिजीने मुस्कुराते हुए यह बात कही ॥ ७ ॥ बृहस्पतिने कहा–लड़ाई लड़नेसे आपकी जीत होगी या हार–यह विषय अभी सन्देहास्पद है। इसलिए न तो मैं आपको लड़नेके लिए कहूँगा और न इसी बातपर जोर दूँगा कि आप लड़ाई न लड़िए ॥ ८ ॥ हे इन्द्राणीपति! ऐसा होनहार है, इसलिए आपका कोई दोष नहीं है। जो सुख या दुःख भाग्यमें लिखा होगा, उसे भोगना ही पड़ेगा ॥९॥ आपने जो मुझे सर्वज्ञ कहा, उसके सम्बन्धमें मुझे यह कहना है कि भविष्यमें आपको सुख मिलेगा या दुःख–इसकी जानकारी मुझे नहीं है। यदि मैं सर्वज्ञ

मुत्तमम् ॥ सहायस्तु हरिर्नूनं तथोमापतिरव्ययः ॥ ५॥ रक्षोघ्नान्पठ मे साधो करोम्यद्य समुद्यमम् ॥ स्वसैन्याभिनिवेशं च महिषं प्रति मानद ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो देवराजेन वाचस्पतिरुवाच ह ॥ सुरेन्द्रं युद्धसंसक्तं स्मितपूर्वं वचस्तदा ॥ ७ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ प्रेरयामि न चाहं त्वां न च निर्वारयाम्यहम् ॥ संदिग्धेऽत्र जये कामं युध्यतश्च पराजये ॥ ८ ॥ न तेऽत्र दूषणं किंचिद्भवितव्ये शचीपते ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं विहितं च भविष्यति ॥ ९ ॥ न मया तत्परिज्ञातं भावि दुःखं सुखं तथा ॥ यद्भार्याहरणे प्राप्तं पुरा वासव वेत्सि हि ॥ १० ॥ शशिना मे हृता भार्या मित्रेणामित्रकर्शन ॥ स्वाश्रमस्थेन सम्प्राप्तं दुःखं सर्वसुखापहम् ॥ ११ ॥ बुद्धिमान्सर्वलोकेषु विदितोऽहं सुराधिप ॥ क्व मे गता तदा बुद्धिर्यदा भार्या हृता बलात् ॥ १२ ॥ तस्मादुपायः कर्तव्यो बुद्धिमद्भिः सदा नरैः ॥ कार्यसिद्धिः सदा नूनं दैवाधीना सुराधिप ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं गुरोः सार्थं शचीपतिः ॥ ब्रह्माणं शरणं गत्वा नत्वा वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥ पितामह सुराध्यक्ष दैत्यो महिषसंज्ञकः ॥ ग्रहीतुकामः स्वर्गं मे बलोद्योगं करोत्यलम् ॥ १५ ॥ अन्ये च दानवाः सर्वे तत्सैन्यं समुपस्थिताः ॥ योद्धुकामा महावीर्याः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १६ ॥

या भविष्यवेत्ता होता तो पूर्व समयमें अपनी स्त्रीके हरणके अवसरपर मुझे जो जितना कष्ट उठाना पड़ा था, वह न उठाना पड़ता। सो तो आप जानते ही हैं ॥१०॥ हे शत्रुनिषूदन! चन्द्रमाने मेरी स्त्रीको रख लिया। जिससे गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करनेमें मेरे सुखोंकी इतिश्री होगयी और मुझे अपरम्पार कष्ट उठाना पड़ा ॥११॥ हे देवसेनानायक! संसारमें मैं बड़ा बुद्धिमान् गिना जाता हूँ, लेकिन जब मेरी स्त्रीको चन्द्रमाने बरबस हर लिया तो मेरी बुद्धि कहाँ चली गयी थी? ॥१२॥ इसलिए हे पुरन्दर! समझदार लोगोंको चाहिए कि उपाय करनेमें न चूकें। क्योंकि कार्यकी सिद्धि तो दैवके अधीन है ॥ १३ ॥ व्यासजीने कहा कि जब इन्द्रने गुरु बृहस्पतिकी मतलबसे भरी हुई सच्ची बात सुनी तो ब्रह्माजीकी शरणमें जाकर सिर नवाया और यह बात बोले–॥ १४ ॥ हे पितामह! हे देवताओंके अध्यक्ष! महिष नामका दैत्य मेरे स्वर्गको हड़पनेके लिए बड़ी भारी सेना जुटा रहा है ॥ १५ ॥ जितने बड़े-बड़े दानव हैं, वे सभी लड़नेके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिए उसकी सेनामें भरती हो चुके हैं। वे सभी युद्ध-सञ्चालनकलामें निपुण हैं और एकसे एक बढ़कर महाबलशाली हैं ॥१६॥ इसी कारण मैं अत्यन्त भयभीत होकर आपके पास आया हूँ। हे विशाल बुद्धिमान्! आप सर्वज्ञ हैं। अतएव मेरी सहायता करिए ॥ १७ ॥ ब्रह्माने कहा—अभी हमलोग कैलास चलें और शिवजीको साथ लेकर उनके नेतृत्वमें बलशालियोंमें अग्रगण्य विष्णुके पास जायँ ॥ १८ ॥ तब सर्व-देवसम्मेलनमें सबकी सलाह लेकर और देश-कालका विचार करके निर्णय किया जायगा कि युद्ध करना चाहिए या नहीं ॥ १९ ॥ क्योंकि जो लोग अपनी शक्ति तथा दुर्बलताको नहीं जानते और न उसपर विचार ही करते हैं, फिर भी जोखिमका काम उठा लेते हैं तो उनके पतनकी पूरी सम्भावना बनी रहती है ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा—यह बात सुनकर इन्द्र ब्रह्माजीके नेतृत्वमें (यम, अग्नि, कुबेर आदि) लोकपालोंको साथ लेकर कैलासकी ओर चले ॥ २१ ॥ वहाँ जाकर रुद्राध्यायके वेद-मन्त्रोंसे शंकरजीकी स्तुति की। भगवान आशुतोषको प्रसन्न करके वे उनके नेतृत्वमें विष्णुलोक गये ॥ २२ ॥ उन देवाधिपतिकी स्तुति करनेके बाद अपने आनेका उद्देश्य बतलाते हुए

तेनाहं भीतभीतोऽस्मि त्वत्सकाशमिहागतः ॥ सर्वज्ञोऽसि महाप्राज्ञ साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥१७॥ ब्रह्मोवाच ॥ गच्छामः सर्व एवाद्य कैलासं त्वरिता वयम् ॥ शंकरं पुरतः कृत्वा विष्णुं च बलिनां वरम् ॥१८॥ ततो युद्धं प्रकर्तव्यं सर्वैः सुरगणैः सह ॥ मिलित्वा मंत्रमाधाय देशं कालं विचिंत्य च ॥१९॥ बलाबलमविज्ञाय विवेकमपहाय च ॥ साहसं तु प्रकुर्वाणो नरः पतनमृच्छति ॥२०॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य सहस्राक्षः कैलासं निर्जगाम ह ॥ ब्राह्मणं पुरतः कृत्वा लोकपालसमन्वितः ॥२१॥ तुष्टाव शंकरं गत्वा वेदमंत्रैर्महेश्वरम् ॥ प्रसन्नं पुरतः कृत्वा ययौ विष्णुपुरं प्रति ॥२२॥ स्तुत्वा तं देवदेवेशं कार्यं प्रोवाच चात्मनः ॥ महिषात्तद्भयं चोग्रं वरदानमदोद्धतात् ॥२३॥ तदाकर्ण्य भयं तस्य विष्णुर्देवानुवाच ह ॥ करिष्यामो वयं युद्धं हनिष्यामस्तु दुर्जयम् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति ते निश्चयं कृत्वा ब्रह्मविष्णुहरीश्वराः ॥ स्वानि स्वानि समारुह्य वाहनानि ययुः सुराः ॥ २५ ॥ ब्रह्मा हंससमारूढो विष्णुर्गरुडवाहनः ॥ शंकरो वृषभारूढो वृत्रहा गजसंस्थितः ॥२६॥ मयूरवाहनः स्कंदो यमो महिषवाहनः ॥ कृत्वा सैन्यसमायोगं यावत्ते निर्ययुः सुराः ॥२७॥ तावद्दैत्यबलं प्राप्तं दृप्तं महिषपालितम् ॥ तत्राभूत्तुमुलं युद्धं देवदानवसैन्ययोः ॥२८॥ बाणैः खड्गैस्तथा प्रासैर्मुसलैश्च परश्वधैः ॥ गदाभिः पट्टिशैः शूलैश्चक्रैश्च शक्तितोमरैः ॥ २९ ॥ मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च हलैश्चैवातिदारुणैः ॥ अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥ ३० ॥ सेनानीश्चि-

इन्द्रने कहा कि महिषके कारण देवलोकको बड़ा खतरा पैदा हो गया है और वरदान पा जानेसे उस दैत्यके मदका कोई ठिकाना नहीं है ॥२३॥ जनसंकटकी यह बात सुनकर विष्णुभगवान्ने देवताओंसे कहा कि हम देवताओंको महिषसे युद्ध करके उसका वध कर डालना चाहिए ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा—देव-सम्मेलनमें युद्ध करनेका ऐसा निर्णय करके ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि देवता अपने-अपने वाहनोंपर बैठकर चले ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी हंसपर, विष्णु गरुड़पर, शिवजी बैलपर और इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठे ॥ २६ ॥ स्कन्दकुमार मोरपर और यमराज भैंसेपर बैठे। इधर सेनाकी पूरी तैयारी करके देवता लोग समर-भूमिमें आये ॥ २७ ॥ उधर महिषके प्रधान सेनापतित्वमें अहङ्कारसे भरे हुए दैत्योंकी सेना आयी। तब देवसेना और दानवसेनामें बड़ी घमासान लड़ाई छिड़ गयी ॥२८॥ तीर, तलवार, गदा, भाला, मूसर, फरसा, पटा, बनेठी, त्रिशूल, चक्र, बर्छी, गँड़ासा, ॥२९॥ मुँगरा, ढेलवाँस, हल और दूसरे-दूसरे बड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भयंकर हथियारोंसे एक दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥ ३० ॥ तब महिषका सेनापति चिक्षुर हाथीपर चढ़कर लड़ने आया। उसने इन्द्रके ऊपर पाँच बाण चलावे ॥ ३१ ॥ इन्द्रने भी बड़ी फुरतीके साथ अपने बाणोंसे उसपर और उसके हाथीकी सूँड़पर अपने वज्रका प्रहार किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वज्रके आघातसे घायल होकर हाथी भागा तो सारी सेनामें भगदड़ मच गयी। सेनाको भागते देखकर महिषासुर क्रुद्ध हो उठा और उसने उपसेनापति बिडालसे कहा–॥ ३४ ॥ हे वीर! हे महाबाहो! तुम जाओ और उस मदगर्वित इन्द्र तथा वरुण आदि अन्यान्य देवताओंको मारकर मेरे पास लौट आओ ॥ ३५ ॥ व्यासजी बोले–बलवान् बिडाल अपने स्वामीका वचन सुनकर एक मतवाले हाथीपर सवार होकर इन्द्रकी ओर चला ॥ ३६॥ उसे अपनी तरफ आते देख इन्द्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नागोंकी तरह भयानक विषैले बाणोंसे उसपर प्रहार किया ॥ ३७ ॥ किन्तु वीर बिडालने अपने धनुषपर चढ़े बाणोंसे इन्द्रके

चिक्षुरस्तस्य गजारूढो महाबलः ॥ मघवंतं पंचभिस्तैः सायकैः समताडयत् ॥ ३१ ॥ तुराषाडपि तांश्छित्वा बाणैर्बाणांस्त्वरान्वितः ॥ हृदये चार्धचंद्रेण ताडयामास तं कृती ॥ ३२ ॥ बाणाहतस्तु सेनानीः प्राप मूर्च्छां गजोपरि ॥ करिणं वज्रघातेन स जघान करे ततः ॥ ३३ ॥ तद्वज्राभिहतो नागो भग्नः सैन्यं जगाम ह ॥ दृष्ट्वा तं दैत्यराट् क्रुद्धो बिडालाख्यमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ गच्छ वीर महाबाहो जहीन्द्रं मदगर्वितम् ॥ वरुणादीन्परान्हत्वा त्वमागच्छ ममांतिकम् ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य बिडालाख्यो महाबलः ॥ आरुह्य वारणं मत्तं जगाम त्रिदशाधिपम् ॥ ३६ ॥ वासवस्तं समायांतं दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ॥ जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ३७ ॥ स तु छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः ॥ पंचाशद्भिर्जघानाशु वासवं च शिलीमुखैः ॥ ३८ ॥ तथेन्द्रोऽपि च तान्बाणांश्छित्त्वा कोपसमन्वितः ॥ जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ३९ ॥ स तु छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः ॥ गदया ताडयामास गजं तस्य करोपरि ॥ ४० ॥ स्वकरे निहतो नागश्चकारार्तस्वरं मुहुः ॥ परिवृत्य जघानाशु दैत्यसैन्यं भयातुरम् ॥ ४१ ॥ दानवस्तु गजं वीक्ष्य परावृत्य गतं रणात् ॥ समाविश्य रथे रम्ये जगामाशु सुरात्रणे ॥ ४२ ॥ तुराषाडपि तं वीक्ष्य रथस्थं पुनरागतम् ॥ अहनद्विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ४३ ॥ सोऽपि क्रुद्धश्चकारोग्रां बाणवृष्टिं महाबलः ॥ बभूव तुमुलं युद्धं तयोस्तत्र जयैषिणोः ॥ ४४ ॥ इन्द्रस्तु बलिनं दृष्ट्वा कोपेनाकुलितेन्द्रियः ॥

बाणोंको काट डाला और बड़ी फुरतीके साथ देवराजपर एक साथ पचास बाण छोड़े ॥३८॥ तब क्रुद्ध होकर इन्द्रने भी उसके बाणोंको काटकर सर्पके समान भयानक बाणोंकी वर्षा की ॥३९॥ किन्तु बिडालने अपने बाणोंसे इन्द्रकी बाणवर्षा व्यर्थ कर दी। तब अपनी गदासे इन्द्रने उसके हाथीकी सूँड़पर मारा ॥४०॥ सूँड़पर गदाका आघात लगनेसे वह चिंघाड़ता हुआ भागा। उसके पैरोंसे कुचलकर बहुतेरे दैत्य मर गये और समस्त दानवी सेनामें खलबली मच गयी ॥ ४१ ॥ जब बिडालने देखा कि हाथी भाग खड़ा हुआ है, तब वह रथपर सवार होकर पुनः युद्धभूमिमें पहुँचा ॥ ४२ ॥ इन्द्रने उसे पुनः उपस्थित देखा तो सर्पके समान भयानक और तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर आघात किया ॥ ४३ ॥ महाबली दानव बिडालने भी क्रुद्ध होकर भयावह बाणवर्षा की। इस प्रकार विजयके इच्छुक उन दोनों योद्धाओंमें घनघोर युद्ध हुआ ॥ ४४ ॥ जब इन्द्र ने देखा कि बिडाल बहुत प्रबल पड़ रहा है, तब इन्द्र अत्यधिक कुपित हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उठे। अब उन्होंने अपने पुत्र जयन्तको भी साथ ले लिया और बिडाल दैत्यसे लड़ने लगे ॥४५॥ जयन्तने भी अपने पाँच तीक्ष्ण बाणोंसे मदमत्त बिडालके वक्षःस्थलपर प्रहार किया ॥४६॥ उन बाणोंके आघातसे बिडाल मूर्छित होकर रथपर ही लोट गया। तब उसका सारथी रथको रणभूमिसे बाहर भगा ले गया ४७॥ इस प्रकार घायल होकर बिडालके चले जानेपर चारों ओर देवताओंकी जयजयकार और दुन्दुभीकी गड़गड़ाहट सुनायी देने लगी ॥४८॥ सब लोग प्रसन्न होकर शचीपति इन्द्रकी स्तुति करने लगे। इस प्रसन्नताके उपलक्ष्यमें गन्धर्व गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४९ ॥ इस प्रकार देवताओंके जयजयकारका निनाद सुनकर महिष बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने शत्रुका मद चूर्ण करनेवाले ताम्र नामके महान् असुरको इन्द्रसे लड़नेके लिए भेजा ॥ ५० ॥ बहुतेरे दानवसैनिकोंके साथ रणभूमिमें पहुँचते ही ताम्रने इस प्रकार बाणवर्षा आरम्भ कर दी, जैसे मेघ समुद्रमें जलवृष्टि करते हैं ॥ ५१ ॥ उसी समय

जयंतमग्रतः कृत्वा युयुधे तेन संयुतः ॥ ४५ ॥ जयंतस्तु शितैर्बाणैस्तं जघान स्तनांतरे ॥ पंचभिः प्रबलाकृष्टैरसुरं मदगर्वितम् ॥ ४६ ॥ स बाणाभिहतस्तावन्निपपात रथोपरि ॥ अतिवाह्य रथं सूतो निर्जगाम रणाजिरात् ॥ ४७ ॥ तस्मिन्विनिर्गते दैत्ये बिडालाख्येऽथ मूर्छिते ॥ जयशब्दो महानासीद्दुन्दुभीनां च निःस्वनः ॥ ४८ ॥ सुराः प्रमुदिताः सर्वे तुष्टुवुस्तं शचीपतिम् ॥ जगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४९ ॥ चुकोप महिषः श्रुत्वा जयशब्दं सुरैः कृतम् ॥ प्रेषयामास तत्रैव ताम्रं परमदापहम् ॥ ५० ॥ ताम्रस्तु बहुभिः सार्धं समागत्य रणाजिरे ॥ शरवृष्टिं चकाराशु तडित्वानिव सागरे ॥ ५१ ॥ वरुणः पाशमुद्यम्य जगाम त्वरितस्तदा ॥ यमश्च महिषारूढो दंडमादाय निर्ययौ ॥ ५२ ॥ तत्र युद्धमभूद्घोरं देवदानवयोर्मिथः ॥ बाणैः खड्गैश्च मुसलैः शक्तिभिश्च परश्वधैः ॥ ५३ ॥ दंडेन निहतस्ताम्रो यमहस्तोद्यतेन च ॥ न चचाल महाबाहुः संग्रामांगणतस्तदा ॥ ५४ ॥ चापमाकृष्य वेगेन मुक्त्वा तीव्राञ्छिलीमुखान् ॥ इन्द्रादीनहनत्तूर्णं ताम्रस्तस्मिन्रणाजिरे ॥ ५५ ॥ तेऽपि देवाः शरैर्दिव्यैर्निशितैश्च शिलाशितैः ॥ निजघ्नुर्दानवान्क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति चुक्रुशुः ॥ ५६ ॥ निहतस्तैः सुरैर्दैत्यो मूर्च्छामाप रणांगणे ॥ हाहाकारो महानासीद्दैत्यसैन्ये भयातुरे ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे दैत्यसैन्यपराजयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

वरुणदेव पाश लिये और दंडधारी यमराज भैंसेपर सवार होकर आगे बढ़े ॥५२॥ उस समय देवताओं और दानवोंमें परस्पर बाण, खड्ग, मुशल तथा बर्छियोंका आघात-प्रत्याघात करते हुए भयानक युद्ध हुआ ॥ ५३ ॥ यमराजने अपने दण्डसे ताम्रपर भरपूर प्रहार किया, किन्तु उससे वह हिला भी नहीं ॥ ५४ ॥ उसने शीघ्र धनुषपर चढ़ा-चढ़ाकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे इन्द्र आदि देवताओंपर एक साथ प्रहार किया ॥ ५५ ॥ तब देवगण भी कुपित होकर सानपर चढ़े हुए अपने तीखे बाणोंकी वर्षा करके दानवोंको मारते हुए 'खड़े रहो-खड़े रहो' कहकर चिल्लाने लगे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार देवताओंके सम्मिलित प्रहारसे घायल होकर ताम्र मूर्च्छित हो गया और उस भयानक दैत्यसेनामें हाहाकार मच गया ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अनेक देव-दानवसेनापतियोंका युद्ध) ताम्र दैत्यके मूर्छित हो जानेपर महिषासुर मारे क्रोधके बौखला उठा और एक बहुत बड़ी गदा लेकर स्वयं समरभूमिमें देवताओंके समक्ष जा डटा ॥ १ ॥ उसने कहा—ओ देवताओं ! ठहरो । मैं अपनी गदासे तुम सबको मार डालूँगा । बलिभाग खानेवाले कौओंमें बल ही कितना है ? तुम सदासे निर्बल रहे हो ॥ २ ॥ ऐसा कहकर वह महागर्वित दैत्य हाथीपर बैठे हुए इन्द्रके समीप पहुँचा और उनके पखौरेपर अपनी गदाका निर्मम प्रहार कर दिया ॥ ३ ॥ देवराजने भी अपने वज्रकी मारसे उसकी गदाको चूर्ण कर दिया और मारनेकी इच्छासे तत्काल महिषके समक्ष जा पहुँचे ॥ ४ ॥ तब अतिशय कुपित महिषासुर भी अपनी चमकती तलवार लेकर महाबली इन्द्रपर प्रहार करनेके लिए झपटा ॥ ५ ॥ अब उन दोनों वीरोंमें विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करते हुए इतना भीषण युद्ध हुआ कि सब लोग दहल गये और मुनियोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ६ ॥ उसी

व्यास उवाच ॥ ताम्रेऽथ मूर्छिते दैत्ये महिषः क्रोधसंयुतः ॥ समुद्यम्य गदा गुर्वीं देवानुपजगाम ह ॥ १ ॥ तिष्ठन्त्वद्य सुराः सर्वे हन्म्यहं गदया किल ॥ सर्वे बलिभुजः कामं बलहीनाः सदैव हि ॥ २ ॥ इत्युक्त्वाऽसौ गजारूढं सम्प्राप्य मदगर्वितः ॥ जघान गदया तूर्णं बाहुमूले महाभुजः ॥ ३ ॥ सोऽपि वज्रेण घोरेण चिच्छेदाशु गदां च ताम् ॥ प्रहर्तुकामस्त्वरितो जगाम महिषं प्रति ॥ ४ ॥ हयारिरपि कोपेन खड्गमादाय सुप्रभम् ॥ ययाविंद्रं महावीर्यं प्रहरिष्यन्निवांतकम् ॥ ५ ॥ बभूव च तयोर्युद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ आयुधैर्विविधैस्तत्र मुनिविस्मयकारकम् ॥ ६ ॥ चकाराशु तदा दैत्यो मायां मोहकरीं किल ॥ शांबरीं सर्वलोकघ्नीं मुनीनामपि मोहिनीम् ॥ ७ ॥ कोटिशो महिषास्तत्र तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ददृशु सायुधाः सर्वे निघ्नन्तो देववाहिनीम् ॥ ८ ॥ मघवा विस्मितस्तत्र दृष्ट्वा तां दैत्यनिर्मिताम् ॥ बभूवातिभयोद्विग्नो मायां मोहकरीं किल ॥ ६ ॥ वरुणोऽपि सुसंत्रस्तस्तथैव धननायकः ॥ यमो हुताशनः सूर्यः शीतरश्मिर्भयातुरः ॥ १० ॥ पलायनपराः सर्वे बभूवुर्मोहिताः सुराः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्मरणं चक्रुरुद्यताः ॥ ११ ॥ तत्राजग्मुश्च काजेशाः स्मृतमात्राः सुरोत्तमाः ॥ हंसतार्क्ष्यवृषारूढास्त्रातुकामा वरायुधाः ॥ १२ ॥ शौरिस्तां मोहिनीं दृष्ट्वा सुदर्शनमथोज्ज्वलम् ॥ मुमोच तत्तेजसैव माया सा विलयं गता ॥ १३ ॥ वीक्ष्य तान्महिषस्तत्र

समय दैत्यपति महिषासुरने सब लोगोंको मोहमें डालकर नष्ट कर देनेवाली और मुनिजनोंको भी विस्मित करनेवाली शाम्बरी माया फैलायी ॥ ७ ॥ उस मायाके फैलते ही महिषासुर जैसे आकार-प्रकारवाले और वैसे ही पराक्रमी करोड़ों महिषासुर विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र ले-लेकर देवसेनाका संहार करते दिखायी पड़े ॥८॥ उस दानवी मायाको देखकर इन्द्र चकरा गये और उन्हें भय लगने लगा ॥ ९ ॥ वरुण, कुबेर, यम, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा भी भयभीत हो गये ॥ १० ॥ इस प्रकार सभी देवता मोहग्रस्त हो-होकर भागने और ब्रह्मा-विष्णु-महेशका स्मरण करने लगे ॥ ११ ॥ उनके स्मरण करते ही देवताओंको बचानेके लिए उत्तम आयुध धारण किये और हंस, गरुड़ तथा बैलपर सवार ब्रह्मा-विष्ण-महेश ये तीनों सर्वश्रेष्ठ देवता वहाँ पहुँच गये ॥ १२ ॥ उस मोहिनी मायाको देखते ही विष्णुभगवानने अपने चमकीले सुदर्शन चक्रको चला दिया । जिसके तेजसे तत्काल वह माया विनष्ट हो गयी ॥१३॥ महिषासुर उन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले तीनों देवताओंको देखते ही उनसे लड़नेके लिए अपना विशाल परिघ (मुद्गर) लेकर दौड़ा ॥ १४ ॥ तभी महावीर महिषासुर, सेनापति चिक्षुर, उग्रास्य, उग्रवीर्य, असिलोमा, त्रिनेत्र, बाष्कल तथा अन्धक आदि बहुतेरे वीर युद्ध करनेके लिए एक साथ चल पड़े ॥१५॥१६॥ जैसे भेड़ियोंका झुण्ड छोटे-छोटे बच्चोंको घेर ले, ठीक उसी प्रकार उन कवचधारी, धनुर्धर, रथारूढ़ तथा मदमत्त दैत्योंने चारों ओरसे देवताओंको घेर लिया ॥ १७ ॥ मदसे गर्वीले उन दानवोंने देवताओंपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी। उसके उत्तरमें देवता भी बाण बरसाने लगे। दोनों ही पक्षके वीर एक दूसरेको समाप्त कर देनेके लिए उतावले हो रहे थे ॥ १८ ॥ उसी समय अन्धकासुर विष्णुभगवानके समक्ष जा पहुँचा और उसने सानपर चढ़े, जहरमें बुझे और कानतक धनुपकी डोरी खींचकर वेगसे छोड़े हुए पाँच बाणोंको उनपर चलाया ॥ १९ ॥ भगवान विष्णुने भी बड़ी फुर्तीके साथ उन बाणोंको काटकर अन्धक-

सृष्टिस्थित्यंतकारिणः ॥ योद्धुकामः समादाय परिघं समुपाद्रवत् ॥ १४ ॥ महिषाख्यो महावीरः सेनानीश्चिक्षुरस्तथा ॥ उग्रास्यश्चोग्रवीर्यश्च दुद्रुवुर्युद्धकामुकाः ॥ १५ ॥ असिलोमा त्रिनेत्रश्च बाष्कलांधक एव च ॥ एते चान्ये च बहवो योद्धुकामा विनिर्ययुः ॥ १६ ॥ सन्नद्धा धृतचापास्ते रथारूढा मदोद्धताः ॥ परिवव्रुः सुरान्सर्वान्वृका इव सुवत्सकान् ॥ १७ ॥ बाणवृष्टिं ततश्चक्रुर्दानवा मदगर्विताः ॥ सुराश्चापि तथा चक्रुः परस्परजिघांसवः ॥ १८ ॥ अन्धको हरिमासाद्य पञ्च बाणाञ्छिलाशितान् ॥ मुमोच विषसंदिग्धान्कर्णाकृष्टान्महाबलान् ॥ १९ ॥ वासुदेवोऽप्यसंप्राप्तान्विशिखानाशुगैस्तदा ॥ चिच्छेद तान्पुनः पञ्च मुमोच रिपुनाशनः ॥ २० ॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूव हरिदैत्ययोः ॥ बाणासिचक्रमुसलैर्गदाशक्तिपरश्वधैः ॥ २१ ॥ महेशांधकयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ पंचाशद्दिनपर्यंतं बभूव च परस्परम् ॥ २२ ॥ इन्द्रबाष्कलयोस्तद्वन्महिषासुररुद्रयोः ॥ यमत्रिनेत्रयोस्तद्वन्महाहनुधनेशयोः ॥ २३ ॥ असिलोमावरुणयोर्युद्धं परमदारुणम् ॥ गरुडं गदया दैत्यो जघान हरिवाहनम् ॥ २४ ॥ स गदापातखिन्नांगो निःश्वसन्नवतिष्ठत ॥ शौरिस्तं दक्षिणेनाशु हस्तेन परिसांत्वयन् ॥ २५ ॥ स्थिरं चकार देवेशो वैनतेयं महाबलम् ॥ समाकृष्य धनुः शार्ङ्गं मुमोच विशिखान्बहून् ॥ २६ ॥ अंधकोपरि कोपेन हंतुकामो जनार्दनः ॥ दानवोऽपि च तान्बाणांश्चिच्छेद स्वशरैः शितैः ॥ २७ ॥

को अपने पाँच बाणोंका लक्ष्य बनाया ॥२०॥ इस प्रकार भगवान विष्णु और अन्धकासुर परस्पर तीर, तलवार, चक्र, मूसल, गदा, बर्छी तथा फरसेका प्रहार करते हुए लड़ने लगे ॥२१॥ इस तरह भगवान विष्णु और अन्धकासुरमें निरन्तर पचास दिनों तक रोंगटे खड़े कर देनेवाला भीषण युद्ध हुआ ॥ २२ ॥ उधर इन्द्र तथा बाष्कल, महिषासुर तथा शंकरजी, यमराज और त्रिनेत्र, महाहनु और कुबेरमें जमकर लड़ाई होने लगी ॥२३॥ असिलोमा और वरुणका युद्ध बड़ा ही भीषण था। उधर विष्णु भगवानसे भिड़े हुए अन्धक ने गरुड़पर अपनी गदाका प्रहार कर दिया ॥२४॥ उसके आघातसे गरुड़ तिलमिला उठे और लम्बी साँस खींचकर रह गये। तब भगवानने दाहिने हाथसे सहलाकर उन्हें सांत्वना दी ॥२५॥ महाबली गरुड़को इस प्रकार स्वस्थ करके विष्णुने अपना शार्ङ्ग धनुष उठाया और अत्यन्त कुपित होकर अन्धकासुरको मार डालनेके विचारसे एक साथ बहुतेरे बाणोंको चला दिया। किन्तु अन्धकासुरने अपने तीक्ष्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाणोंसे उन सबको काट डाला ॥२६॥२७॥ इसके बाद उसने भगवानपर एक साथ पचास बाण छोड़े। भगवान विष्णुने तत्काल उन उत्तम बाणोंको भी विफल कर दिया ॥ २८ ॥ तब भगवानने अपना हजार धारवाला सुदर्शन चक्र अन्धकासुरपर चलाया, किन्तु उसने अपने चक्रकी मारसे सुदर्शनको विफल कर दिया ॥२९॥ हे महाराज जनमेजय! सुदर्शनचक्रको व्यर्थ करके अन्धकासुरने देवताओंको चकरानेके लिए बड़े जोरसे गर्जन किया। शार्ङ्गधनुर्धारी विष्णुके सुदर्शनचक्रको विफल होते देखकर सब देवता शोकाकुल हो उठे और दानवोंमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। जब भगवान वासुदेवने देवताओंको शोकाकुल देखा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तब अपनी कौमोदकी गदा लेकर अन्धकासुरपर झपटे और बड़े वेगसे उस मायावीके मस्तकपर वह गदा पटक दी ॥३२॥ उसके आघातसे अन्धकासुर जमीनपर गिरकर अचेत हो गया। उसे धराशायी देखकर महिषासुरका क्रोध भभक उठा ॥ ३३ ॥ अब वह अपने घनघोर गर्जनसे डराता हुआ भगवानकी ओर बढ़ा।

पंचाशद्भिर्हरिं कोपाज्जघान च शिलाशितैः ॥ वासुदेवोऽपि तांस्तूर्णं वंचयित्वा शरोत्तमान् ॥ २८ ॥ चक्रं मुमोच वेगेन सहस्रारं सुदर्शनम् ॥ त्यक्तं सुदर्शनं दूरात्स्वचक्रेण न्यवारयत् ॥ २९ ॥ ननाद च महाराज देवान्संमोहयन्निव ॥ दृष्ट्वा तु विफलं जातं चक्रं देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ ३० ॥ जग्मुः शोकं सुराः सर्वे जहर्षुर्दानवास्तथा ॥ वासुदेवोऽपि तरसा दृष्ट्वा देवाञ्छुचाऽऽवृतान् ॥ ३१ ॥ गदां कौमोदकीं धृत्वा दानवः समुपाद्रवत् ॥ तं जघानातिवेगेन मूर्ध्नि मायाविनं हरिः ॥ ३२ ॥ स गदाभिहतो भूमौ निपपातातिमूर्च्छितः॥ तं तथा पतितं वीक्ष्य हयारिरतिकोपनः ॥ ३३ ॥ आजगाम रमानाथं त्रासयन्नतिगर्जितैः ॥ वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा समायान्तं क्रुधान्वितम् ॥ ३४ ॥ चापज्यानिनदं चोग्रं चकार नंदयन्सुरान् ॥ शरवृष्टिं चकाराशु भगवान्महिषोपरि ॥ ३५ ॥ सोऽपि चिच्छेद बाणौघैस्ताञ्छरान्गगनेरितान् ॥ तयोर्युद्धमभूद्राजन्परस्परभयावहम् ॥ ३६ ॥ गदया ताडयामास केशवो मस्तकोपरि ॥ स गदाभिहतो मूर्ध्नि पपातोर्व्यां सुमूर्छितः ॥ ३७ ॥ हाहाकारो महानासीत्सैन्ये तस्य सुदारुणः ॥ स विहाय व्यथां दैत्यो मुहूर्तादुत्थितः पुनः ॥ ३८ ॥ गृहीत्वा परिघं शीर्षे जघान मधुसूदनम् ॥ परिघेणाहतस्तेन मूर्छामाप जनार्दनः ॥ ३९ ॥ मूर्छितं तमुवाहाशु जगाम गरुडो रणात् ॥ परावृत्ते जगन्नाथे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ४० ॥ भयं प्रापुः सुदुःखार्ताश्चुक्रुशुश्च रणाजिरे ॥ क्रंदमानान्सुरान्वीक्ष्य शंकरः शूलभृत्तदा ॥ ४१ ॥ महिषं तरसाऽभ्येत्य प्राहरद्रोषसंयुतः ॥ सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ शंकरस्योरसि स्फुटम् ॥ ४२ ॥

भगवानने भी उसे अति क्रुद्धभावसे अपनी ओर आते देख देवताओंको हर्षित करते हुए अपने धनुषका भयानक टंकोर किया और महिषासुरके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥३४॥३५॥ उस दैत्यने अपने बाणोंकी मारसे भगवानके बाणोंको आकाशमें काट डाला। इस प्रकार हे राजन्! भगवान विष्णु और महिषासुरमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ ॥३६॥ मौका पाकर भगवानने अपनी गदासे महिषासुरके मस्तकपर प्रहार किया। उस आघातसे मूर्छित होकर वह धरतीपर गिर पड़ा ॥३७॥ उसके गिरनेपर दैत्यसेनामें भीषण हाहाकार मच गया। किन्तु कुछ ही क्षणोंमें व्यथा भूलकर महिषासुर फिर उठ खड़ा हुआ ॥ ३८ ॥ तत्काल उसने एक परिघ लेकर विष्णुभगवान्के मस्तकपर प्रहार कर दिया। उस प्रहारसे व्यथित होकर भगवान् मूर्छित हो गये ॥३९॥ मूर्छित दशामें ही गरुड़ उन्हें रणभूमिसे बाहर निकाल ले गये। इस प्रकार जगत्पति विष्णुके रणभूमिसे लौट जानेपर इन्द्र आदि देवता भयभीत हो उठे और दुखी होकर रोने-चिल्लाने लगे। देवता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ओंको इस प्रकार विकल देखकर शूलधारी शंकरजी बड़ी तीव्र गतिसे महिषासुरके पास जा पहुँचे और बड़े क्रोधसे उसपर प्रहार कर दिया। उस असुरने भी शंकरजीपर अपनी शक्ति (बर्छीका) प्रहार किया ॥ ४०–४२ ॥ उस दुष्टने शंकरजीके त्रिशूलप्रहारको व्यर्थ कर दिया और जोरसे गर्जन करने लगा । उधर शंकरजी उस बर्छीकी चोट खा करके भी भयभीत नहीं हुए ॥ ४३ ॥ बल्कि वे और भी अधिक कुपित हो गये और आँखें लाल करके महिषासुरपर फिर अपने त्रिशूलसे प्रहार कर दिया । शंकरजीको इस प्रकार महिषासुरके साथ जूझते देखकर महिषके प्रहारसे उत्पन्न मूर्छा दूर हो जानेपर भगवान विष्णु भी वहाँ जा पहुँचे । उधर उन युद्धोत्सुक विष्णुभगवान एवं शिवजीको शूल-चक्र धारण करके लड़नेको तैयार देखकर महिषासुर मारे क्रोध-के तिलमिला उठा ॥ ४४–४६ ॥ वह विशालबाहु दैत्य महिषासुर महिषरूप धारण करके पूँछ हिलाता हुआ संग्राम करनेके लिए उनके सम्मुख जा उपस्थित हुआ ॥ ४७ ॥ उसने देवताओंको भयभीत करते हुए भी.षण गर्जन किया । मेघकें समान भीमकाय वह दैत्य बार-बार अपनी सींगें फटकार-फटकारकर पर्वतोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें फेंकने लगा । उसे देखते

जगर्ज स च दुष्टात्मा वंचयित्वा त्रिशूलकम् ॥ शंकरोऽपि तदा पीडां न प्रापोरसि ताडितः ॥ ४३ ॥ तं जघान त्रिशूलेन कोपादरुणलोचनः ॥ संलग्नं शंकरं दृष्ट्वा महिषेण दुरात्मना ॥ ४४ ॥ आजगाम हरिस्तावत्त्यक्त्वा मूर्छा प्रहारजाम् ॥ महिषस्तु तदा वीक्ष्य संप्राप्तौ हरिशंकरौ ॥ ४५ ॥ युद्धकामौ महावीर्यौ चक्रशूलधरौ वरौ ॥ कोपयुक्तो बभूवासौ दृष्ट्वा तौ समुपागतौ ॥ ४६ ॥ जगाम संमुखस्तावत्संग्रामार्थं महाभुजः ॥ माहिषं वपुरास्थाय धुन्वन्पुच्छं समुत्कटम् ॥४७॥ चकार भैरवं नादं त्रासयन्नमरानपि ॥ धुन्वञ्छृङ्गं महाकायो दारुणो जलदो यथा ॥४८॥ शृंगाभ्यां पार्वतांञ्छृ-ङ्गांश्चिक्षेप भृशमुत्कटान् ॥ दृष्ट्वा तौ तु महावीर्यौ दानवं देवसत्तमौ ॥४९॥ चक्रतुर्बाणवृष्टिं च दानवोपरि दारुणाम् ॥ कुर्वाणौ बाणवृष्टिं तौ दृष्ट्वा हरिहरौ हरिः ॥ ५० ॥ चिक्षेप गिरिशृंगं तु पुच्छेनावृत्य दारुणम् ॥ आपतंतं गिरिं वीक्ष्य भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ५१ ॥ विशिखैः शतधा चक्रे चक्रेणा-शु जघान तम् ॥ हरिचक्राहतः संख्ये मूर्छामाप स दैत्यराट् ॥५२॥ उत्तस्थौ च क्षणान्नूनं मानुषं वपुरास्थितः ॥ गदापाणिर्महाघोरो दानवः पर्वतोपमः ॥५३॥ मेघनादं ननादोच्चैर्भीषयन्नमरानपि ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् विष्णुः पांचजन्यं समुज्ज्वलम् ॥५४॥ पूरयामास तरसा शब्दं कर्तुं खरस्वरम् ॥ तेन शब्देन शंखस्य भयत्रस्ताश्च दानवाः ॥५५॥ बभूवुर्मुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

ही विष्णु और शिव दोनों उसके ऊपर दारुण बाणवृष्टि करने लगे । विष्णु और शिवको बाणवर्षा करते देख महिषासुरने अपनी पूँछमें लपेटकर एक गिरिशृङ्ग उनके ऊपर फेंका । उस शिखरको आते देखकर भगवान विष्णुने उसे अपने बाणोंसे छिन्न-भिन्न करके उसपर अपना चक्र चला दिया । भगवानके चक्रसे आहत होकर दैत्यराज महिषासुर मूर्छित हो गया ॥४८–५२॥ क्षण ही भर बाद वह पर्वताकार महादारुण दैत्य हाथमें गदा लिए मनुष्यरूप धारण करके उठ खड़ा हुआ ॥ ५३ ॥ वह देवताओंको डराता हुआ बड़ी जोरसे मेघके समान गर्जन करने लगा। सो सुनकर भगवान विष्णुने अपना देदीप्यमान पाञ्चजन्य शंख उठाया । उसे बजाकर उन्होंने उसकी कर्कश ध्वनिसे समस्त समरभूमिको गुंजित कर दिया। उस शब्दसे सभी दानव दहल उठे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ किन्तु देवता और तपोधन मुनिगण आनन्दित हो गये ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(देवताओंका परास्त होकर कैलासपर्वतपर जाना) व्यासजी बोले—हे महाराज ! महिषासुरने जब अपनी दैत्यसेनामें विषाद फैला देखा, तब महिषरूप त्यागकर उसने सिंहका रूप धारण कर लिया ॥१॥ वह भीषणरूपसे दहाड़ करके अयाल फड़फड़ाता और पंजे दिखलाता हुआ भयभीत देवसेनापर झपटा ॥ २ ॥ तत्काल उसने गरुड़को अपने नाखूनोंके आघातसे लहूलुहान कर दिया । तदनन्तर उस सिंहरूपधारी दानवने भगवान विष्णुकी भुजापर भी पञ्जा मारा ॥ ३ ॥ यह देखकर भगवान विष्णुने क्रोधपूर्वक अपना सुदर्शन चक्र उठाया और उसे बड़े वेगसे उस दैत्यपर चला दिया ॥ ४ ॥ महिषासुरको मारनेके लिए उन्होंने ज्यों ही चक्र चलाया, त्यों ही उसने सिंहरूप त्यागकर पुनः महिषरूप धारण कर लिया और बड़े वेगसे भगवानकी छातीपर सींग मारी ॥ ५ ॥ छातीपर सींगकी चोट लगनेसे भगवान विकल हो गये और बड़े वेगसे भागकर अपने विष्णुलोकको चले गये ॥ ६ ॥ विष्णुको भागते देखकर शंकरजी भी

व्यास उवाच ॥ असुरान्महिषो दृष्ट्वा विषण्णमनसस्तथा ॥ त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव मृगराडसौ ॥ १ ॥ कृत्वा नादं महाघोरं विस्तार्य च महासटाम् ॥ पपात सुरसेनायां त्रासयन्नखदर्शनैः ॥ २ ॥ गरुडं च नखाघातैः कृत्वा रुधिरविप्लुतम् ॥ जघान च भुजे विष्णुं नखाघातेन केसरी ॥ ३ ॥ वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य वेगवान् ॥ हंतुकामो हरिः काममवापाशु क्रुधान्वितः ॥ ४ ॥ यावद्धयरिपुं वेगाच्चक्रेणाभिजघान तम् ॥ तावत्सोऽतिबलः शृङ्गी शृंगाभ्यां न्यहनद्धरिम् ॥ ५ ॥ वासुदेवो विषाणाभ्यां ताडितोरसि विह्वलः ॥ पलायनपरो वेगाज्जगाम भुवनं निजम् ॥ ६ ॥ गतं दृष्ट्वा हरिं कामं शंकरोऽपि भयान्वितः ॥ अवध्यं तं परं मत्त्वा ययौ कैलासपर्वतम् ॥ ७ ॥ ब्रह्माऽपि च निजं धाम त्वरितः प्रययौ भयात् ॥ मघवा वज्रमालंब्य तस्थावाजौ महाबलः ॥८॥ वरुणः शक्तिमालंब्य धैर्यमालंब्य संस्थितः ॥ यमोऽपि दंडमादाय यत्तः समरतत्परः ॥९॥ ततो यक्षाधिपः कामं बभूव रणतत्परः ॥ पावकः शक्तिमादाय तत्राभूद्युद्धमानसः ॥ १० ॥ नक्षत्राधिपतिः सूर्यः समवेतौ स्थितावुभौ ॥ वीक्ष्य तं दानवश्रेष्ठं युद्धाय कृतनिश्चयौ ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नंतरे क्रुद्धं दैत्यसैन्यं समभ्यगात् ॥ विसृजन्बाणजालानि क्रूराहिसदृशानि च ॥ १२ ॥ कृत्वा हि माहिषं रूपं भूपतिः संस्थितस्तदा ॥ देवदानवयोधानां निनादस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥ ज्याघातश्च तलाघातो मेघनादसमोऽभवत् ॥ संग्रामे

डर गये । उन्होंने समझ लिया कि महिषासुर मारा नहीं जा सकता । अतएव वे भी कैलास पर्वतपर चले गये ॥७॥ मारे डरके ब्रह्माजी भी तत्काल ब्रह्मलोक चले गये । किंतु महाबली इंद्र वज्र लिये समरभूमिमें डटे रह गये ॥८॥ वरुणदेव भी अपना पाशास्त्र लेकर रणभूमिमें खड़े रहे । यमराज अपना दण्ड सम्हाले युद्ध करनेके लिए सन्नद्ध होकर खड़े थे ॥ ९ ॥ यक्षोंके अधिपति कुबेरजी भी लड़नेको तैयार थे । अग्निदेव बर्छी लेकर युद्ध करनेको उत्सुक खड़े थे ॥१०॥ नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमा और सूर्यदेव भी रणभूमिमें डटे थे और उस दानवको देखकर मारे क्रोधके लड़नेको तैयार हो रहे थे ॥११॥ उसी समय क्रूर सर्पोंके समान विषैले बाणोंकी वर्षा करती हुई क्रुद्ध दैत्यसेना भी वहाँ आ पहुँची ॥१२॥ राजा महिषासुर उस समय महिष-रूप धारण करके दैत्यसैनाका नेतृत्व कर रहा था । उस समय देवताओं तथा दैत्यवीरोंके गर्जनसे बड़ा कोलाहल मच गया ॥ १३ ॥ देव-दानवसेनाके उस भयानक युद्धमें धनुषके टंकोर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और ताल ठोकनेकी ध्वनि मेघगर्जन जैसी लग रही थी ॥१४॥ मदगर्वित और महाबली दैत्य महिषासुर देवसमूहपर अपनी सींगोंसे पर्वतशिखर बरसा-बरसाकर उन्हें मार रहा था ॥ १५ ॥
रोषमें भरे हुए उस परम अद्भुत दैत्य महिषासुरने कितने ही देवताओंको अपने खुरोंसे कुचलकर कितनोंको पूँछसे मार डाला ॥ १६ ॥ ऐसी दशामें सभी देवता और गन्धर्व भयभीत
हो-होकर भागने लगे। अन्तमें इन्द्र भी महिषासुरके समक्ष टिके नहीं रह सके और वे भी भाग खड़े हुए ॥ १७ ॥ इस प्रकार जब शचीपति इन्द्र समरभूमिसे हट गये। तब यमराज, कुबेर
और वरुण भी भयभीत होकर निकल भागे ॥१८॥ इसपर महिषासुरने अपनी बहुत बड़ी विजय मानी और अपने घर चला गया। जाते समय इंद्र ऐरावत हाथी और उच्चैःश्रवा घोड़ा छोड़
गये थे। इन सबको उसने हस्तगत कर लिया। तदनन्तर अपनी सेनाके साथ जाकर उसने देवलोकपर अधिकार करनेका विचार किया ॥१९॥२०॥ तदनुसार तुरंत देवलोकमें घुसकर उसने
देवताओंके राज्यपर निर्विरोध कब्जा कर लिया। क्योंकि देवता पहले ही डरके मारे वहाँसे भाग गये थे ॥२१॥ अब महिष दानव परम रमणीक इन्द्रासनपर बैठा तो उसने स्वर्गके राज्यमें

सुमहाघोरे देवदानवसेनयोः ॥ १४॥ शृङ्गाभ्यां पार्वताञ्छृगांश्चिक्षेप च महाबलः ॥ जघान सुरसंघांश्च दानवो मदगर्वितः ॥ १५ ॥ खुराघातैस्तथा
देवान्पुच्छस्य भ्रामणेन च ॥ स जघान रुषाविष्टो महिषः परमाद्भुतः ॥ १६ ॥ ततो देवाः सगंधर्वा भयमाजग्मुरुद्यताः ॥ मघवा महिषं दृष्ट्वा
पलायनपरोऽभवत् ॥ १७ ॥ संगरं संपरित्यज्य गते शक्रे शचीपतौ ॥ यमो धनाधिपः पाशी जग्मुः सर्वे भयातुराः ॥ १८ ॥ महिषोऽपि जयं
मत्वा जगाम स्वगृहं ततः ॥ ऐरावतं गजं प्राप्य त्यक्तमिन्द्रेण गच्छता ॥ १९ ॥ तथोच्चैःश्रवसं भानोः कामधेनुं पयस्विनीम् ॥ स्वसैन्यसंवृतस्तूर्णं
स्वर्गं गन्तुं मनो दधे ॥ २० ॥ तरसा देवसदनं गत्वा स महिषासुरः ॥ जग्राह सुरराज्यं वै त्यक्तं देवैर्भयातुरैः ॥ २१ ॥ इन्द्रासने तथा रम्ये
दानवः समुपाविशत् ॥ दानवान्स्थापयामास देवानां स्थानकेषु सः ॥ २२ ॥ एवं वर्षशतं पूर्णं कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ॥ अवापैंद्रं पदं कामं दानवो
मदगर्वितः ॥२३॥ निर्जरा निर्गता नाकात्तेन सर्वेऽतिपीडिताः ॥ एवं बहूनि वर्षाणि बभ्रमुर्गिरिगह्वरे ॥२४॥ श्रांताः सर्वे तदा राजन्ब्रह्माणं शरणं
ययुः ॥ प्रजापतिं जगन्नाथं रजोरूपं चतुर्मुखम् ॥ २५ ॥ पद्मासनं वेदगर्भं सेवितं मुनिभिः स्वजैः ॥ मरीचिप्रमुखैः शांतैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ २६ ॥
किन्नरैः सिद्धगंधर्वैश्चारणोरगपन्नगैः ॥ तुष्टुवुर्भयभीतास्ते देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ २७ ॥ देवा ऊचुः ॥ धातः किमेतदखिलार्तिहरांबुजन्म जन्मा-

देवताओंके पदोंपर दानवोंको नियुक्त कर दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार पूरे सौ वर्षतक देवताओंसे दारुण युद्ध करके उस मदमत्त दानवने इन्द्रपद प्राप्त किया ॥ २३ ॥ स्वर्गमें जो थोड़ेसे
देवता रह गये थे, वे भी महिषासुरके सतानेपर भाग गये और बहुत वर्षोंतक पर्वतकन्दराओंमें छिपते फिरते रहे ॥२४॥ हे महाराज जनमेजय [illegible] प्रकार चक्कर काटते-काटते देवता जब
बहुत थक गये। तब वे रजोगुणके मूर्तरूप, जगत्के नाथ, चतुर्मुख, प्रजापति ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी कमलके आसनपर [illegible] थे और हृदयमें वेद धारण किये
हुए थे। उनके पुत्र मरीचि आदि वेद-वेदाङ्गके पारंगत और शान्त मुनि उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए थे ॥२६॥ किन्नर, सिद्ध, गन्धर्व, चारण, उरग और पन्नगगण उनकी सेवा कर रहे थे।
दैत्योंसे डरे हुए देवता वहाँ पहुँचकर देवदेव एवं जगद्गुरु ब्रह्माकी स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ देवगण बोले—हे धातः! हे कमलयोने! हे समस्त संसारके दुखियोंका दुःख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूर करनेवाले! असुरराज महिषासुरने रणमें पराजित करके हमें पराधीन कर दिया है। वह हमको बहुत सताता है। उसने हम सबको स्वर्गसे निकाल दिया है। इस समय हम पर्वतकी कंदराओंमें रहते हैं। हमारी यह दशा देखकर आपको दया नहीं आती? ॥ २८ ॥ पुत्र सैकड़ों अपराध करके कहीं किसी संकट जाकर फँस गया हो तो क्या पिता निर्दयी होकर उसे त्याग देता है? आज हम देवता भी दैत्यों द्वारा बहुत सताये जा रहे हैं। हमारा सर्वस्व छीन लिया गया है। यह सब देखते हुए भी क्या आप हमपर दया न करेंगे? हमें केवल आपके चरणोंका ही सहारा है। आप हमारी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? ॥ २९ ॥ महिषासुर स्वर्गराज्यकी राजधानी अमरावतीपर अधिकार करके खूब आनन्द ले रहा है। ब्राह्मणों द्वारा किये हुए यज्ञकी हविको वह स्वयं हड़प जाता है। वह पारिजातके पुष्पोंको उपयोगमें लाता है और क्षीरसागरसे उत्पन्न कामधेनुके दूधका उपभोग करता है ॥ ३० ॥ हे देवेश! इस समय हम देवताओंपर जो बीत रही है, उसका वर्णन कहाँ तक करें? आप दैत्योंकी गति-विधिसे भलीभाँति परिचित हैं। क्योंकि आप अपनी ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ देख लेते हैं। अतएव हे प्रभो! हम सब

भिवीक्ष्य न दयां कुरुषे सुरान् यत् ॥ संपीडितात्रणजितानसुराधिपेन स्थानच्युतान्गिरिगुहाकृतसन्निवासान् ॥ २८ ॥ पुत्रान्पिता किमपराधशतैः समेतान्संत्यज्य लोभरहितः कुरुतेऽतिदुःस्थान् ॥ यस्त्वं सुरांस्तव पदांबुजभक्तियुक्तान्दैत्यार्दितांश्च कृपणान् यदुपेक्षसेऽद्य ॥ २९ ॥ अमरभुवनराज्यं तेन भुक्तं नितांतं मखहविरपि योग्यं ब्रह्मणैराददाति ॥ सुरतरुवरपुष्पं सेवतेऽसौ दुरात्मा जलनिधिनिधिभूतां गामसौ सेवते ताम् ॥ ३० ॥ किं वा गृणीमः सुरकार्यमद्भुतं जानासि देवेश सुरारिचेष्टितम् ॥ ज्ञानेन सर्वं त्वमशेषकार्यवित्तस्मात्प्रभो ते प्रणताःस्म पादयोः ॥ ३१ ॥ यत्रापि कुत्रापि गतान्सुरानसौ नानाचरित्रः खलुः पापमानसः ॥ पीडां करोत्येव स दुष्टचेष्टितस्त्राताऽसि देवेश विधेहि शं विभो ॥३२॥ नो चेद्वयं दावमहाग्निपीडिताः कं शांतिकर्तारमनंततेजसम् ॥ यामः प्रजेशं शरणं सुरेष्टं धातारमाद्यं परिमुच्य कं शिवम् ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति स्तुत्वा सुराः सर्वे प्रणेमुस्तं प्रजापतिम् ॥ बद्धांजलिपुटाः सर्वे विषण्णवदना भृशम् ॥ ३४ ॥ तांस्तथा पीडितान्दृष्ट्वा तदा लोकपितामहः ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा सुखं संजनयन्निव ॥३५॥ ब्रह्मोवाच ॥ किं करोमि सुराः कामं दानवो वरदर्पितः ॥ स्त्रीवध्योऽसौ न पुंवध्यो विधेयं तत्र किं पुनः ॥३६॥ व्रजामोऽद्य सुराः सर्वे

देवता आपके श्रीचरणोंमें आ पड़े हैं ॥३१॥ हमलोग आत्मरक्षाके लिए जहाँ कहीं जाते हैं, वहीं वह पापमय विचार भरा एवं विचित्र चरित्रवाला दुष्ट दैत्य पहुँचकर हमें बहुत सताता है। अतएव हे देवताओंके प्रभु! हमारे तो एकमात्र आप ही रक्षक है। हे विभो! हमारा कल्याण करिए ॥३२॥ यदि आप हमारी चीख-पुकारपर ध्यान नहीं देंगे तो दैत्योंके दारुण दावानलरूपी कष्टपरम्परासे सताये हुए हम देवता आपके सदृश शान्तिदाता, अनन्त तेजस्वी, प्रजापति, देवताओंके पूज्य, आदिपिता तथा कल्याणकारी प्रभुको छोड़कर अन्य किस प्रभुकी शरणमें जायँ? ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार हाथ जोड़े और उदासमुख उन देवताओंने ब्रह्माजीकी स्तुति की और साष्टांग प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ देवताओंको इस प्रकार पीड़ित देखकर लोकपितामह ढाढ़स बँधाते हुए मधुर वाणी बोले ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजीने कहा—हे देवताओ! मैं क्या करूँ? वरदान पाये रहने कारण ही वह दैत्य इतना उद्धत हो गया है। उसका वध स्त्री ही कर सकती है—पुरुष नहीं? ऐसी स्थितिमें क्या किया जाय? ॥ ३६ ॥ हे देवताओ! अच्छा तो यह हो कि हम सब देवता कैलास पर्वतपर चलें। सब कार्योंमें निपुण शंकरजीको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वहाँसे अपने साथ लेकर वैकुण्ठ धामको चलें। जहाँ भगवान विष्णु निवास करते हैं। वहाँ ही हम सब सम्मिलितरूपसे कार्यसिद्धिके लिए मंत्रणा करेंगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ यह कह और हंसपर सवार होकर ब्रह्माजी वह महान् कार्य संपन्न करनेके लिए देवताओंके आगे-आगे कैलास पर्वतकी ओर चले ॥ ३९ ॥ उसी समय शिवजीको भी ध्यानयोगसे यह ज्ञात हो गया कि देवताओंके साथ ब्रह्माजी आ गये हैं, तब वे अपने भवनसे बाहर निकल आये॥४०॥ परस्पर एक दूसरेको देखकर उन्होंने प्रणाम किया। वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए और सब देवताओंने उन दोनोंको प्रणाम किया ॥४१॥ तब गिरिजापति शंकर भगवान्‌ने अलग-अलग सब देवताओंको आसन दिया। उसके बाद वे स्वयं अपने आसनपर विराजमान हुए ॥४२॥ शिवजीने ब्रह्माजीसे कुशलप्रश्न किया और देवताओंके कैलास आनेका कारण पूछा ॥ ४३ ॥ शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! आप इन्द्रादि देवताओंके साथ यहाँ किस लिए आये हैं? इसका कारण बताइए ॥ ४४ ॥

कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥ शंकरं पुरतः कृत्वा सर्वकार्यविशारदम् ॥३७॥ ततो व्रजाम वैकुंठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ मिलित्वा देवकार्यं च विमृशामो विशेषतः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा हंसमारुह्य ब्रह्मा कार्यसमुच्चये ॥ देवांश्च पृष्ठतः कृत्वा कैलासाभिमुखो ययौ ॥ ३९ ॥ तावच्छिवोऽपि तरसा ज्ञात्वा ध्यानेन पद्मजम् ॥ आगच्छंतं सुरैः सार्धं निर्गतः स्वगृहाद्बहिः ॥ ४० ॥ दृष्ट्वा परस्परं तौ तु कृत्वाऽभिवादनौ भृशम् ॥ प्रणतौ च सुरैः सर्वैः संतुष्टौ संबभूवतुः ॥ ४१ ॥ आसनानि पृथग्दत्त्वा देवेभ्यो गिरिजापतिः ॥ उपविष्टेषु तेष्वेव निषसादासने स्वके ॥ ४२ ॥ कृत्वा तु कुशलप्रश्नं ब्रह्माणं वृषभध्वजः ॥ पप्रच्छ कारणं देवान्कैलासागमने विभुः ॥ ४३ ॥ शिव उवाच ॥ किमत्रागमनं ब्रह्मन्कृतं देवैः सवासवैः ॥ भवता च महाभाग ब्रूहि तत्कारणं किल ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ महिषेण सुरेशान पीडिताः स्वर्निवासिनः ॥ भ्रमंति गिरिदुर्गेषु भयत्रस्ताः सवासवाः ॥ ४५ ॥ यज्ञभुङ्महिषो जातस्तथाऽन्ये सुरशत्रवः ॥ पीडिता लोकपालाश्च त्वामद्य शरणं गताः ॥ ४६ ॥ मया ते भवनं शम्भो प्रापिताः कार्यगौरवात् ॥ यद्युक्तं तद्विधत्स्वाद्य सुरकार्यं सुरेश्वर ॥४७॥ त्वयि भारोऽस्ति सर्वेषां देवानां भूतभावन ॥ व्यास उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा शंकरः प्रहसन्निव ॥४८॥ वचनं श्लक्ष्णया वाचा प्रोवाच पद्मजं प्रति ॥ शिव उवाच ॥ भवतैव कृतं कार्यं वरदानात्पुरा विभो ॥ ४९ ॥ अनर्थदं च देवानां किं कर्तव्यमतः परम् ॥ ईदृशो बलवाञ्छूरः सर्वदेवभयप्रदः ॥ ५० ॥ का समर्था वरा नारी तं हंतुं मददर्पितम् ॥ न मे भार्या न ते भार्या संग्रामं गंतुमर्हति ॥ ५१ ॥

ब्रह्माजीने कहा—हे सुरेशान! स्वर्गनिवासी इन्द्र आदि देवताओंको महिषासुर बहुत सता रहा है। इस समय ये उससे भयभीत होकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें छिपते फिर रहे हैं ॥ ४५ ॥ महिषासुर तथा अन्यान्य दानव इस समय यज्ञका भाग स्वयं ले लेते हैं और लोकपालगण सताये जाते हैं। इसी कारण ये सब आपकी शरणमें आये हैं ॥४६॥ हे शम्भो! कार्यके महत्त्वको ध्यानमें रखकर मैं ही इन्हें आपके घर लाया हूँ। हे सुरेश्वर! अब आप जैसे उचित समझिए, उस तरह देवताओंकी कार्यसिद्धि करिए ॥४७॥ हे भूतभावन! इन सब देवताओंका भार आपही पर है। व्यासजीने कहा—ब्रह्माजीके वचन सुनकर शंकरजी मुसकाते हुए मधुर वाणी बोले। शिवजीने कहा—हे प्रिय ब्रह्माजी! आपने ही तो महिषको वरदान देकर यह बखेड़ा खड़ा किया है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इसीसे वह देवताओंपर अत्याचार कर रहा है। अब आप ही उपाय पूछ रहे हैं? महिषासुर इतना बलवान् और शक्तिशाली हो गया है कि सब देवता उससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भयभीत हो उठे हैं ॥५०॥ उस मदमत्त दानवको मारनेमें कौन-सी स्त्री समर्थ हो सकती है? न हमारी और न आपकी ही स्त्री समरभूमिमें जा सकती है। क्योंकि वे युद्धविद्यासे अनभिज्ञ हैं ॥५१॥ यदि हम दोनों अपनी-अपनी स्त्रियोंको भेजें ही तो वे रणभूमिमें जाकर लड़ेंगी कैसे? महाभागा इन्द्राणी भी युद्धनिपुण नहीं हैं ॥ ५२ ॥ तब उस पापी और मदमत्त दानवका वध करनेमें कौनसी स्त्री समर्थ होगी? मेरा तो यही मन्तव्य है कि अभी हमलोग भगवान विष्णुके पास चलें ॥५३॥ वैकुण्ठमें विष्णुकी स्तुति करके उन्हें शीघ्र देवकार्यसिद्धिके लिए तैयार कर लें। क्योंकि वे सबसे अधिक बुद्धिमान् और सब कुछ करनेमें समर्थ हैं ॥ ५४ ॥ भगवान् वासुदेवसे मिलनेके बाद ही हमलोग इस बातपर विचार करेंगे कि यह काम कैसे किया जाय। वे अवश्य कोई उपाय खोज लेंगे। यदि वैसे काम न बनेगा तो वे अपने बुद्धिबलसे कोई साधन जुटायेंगे ॥ ५५ ॥ व्यासजी बोले—शंकरजीके वचन सुनकर 'यही उपाय ठीक है' यह कहकर सब देवता शिवजीके साथ चटपट उठ खड़े हुए ॥५६॥ और अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो-होकर प्रसन्नतापूर्वक कार्यसिद्धि करनेवाले शुभ शकुन देखते हुए विष्णुलोकको चल

गत्वैव ते महाभागे युयुधाते कथं पुनः ॥ इन्द्राणी च महाभागा न युद्धकुशलाऽस्ति हि ॥ ५२ ॥ काऽन्या हंतुं समर्थाऽस्ति तं पापं मददर्पितम् ॥ ममेदं मतमद्यैव गत्वा देवं जनार्दनम् ॥ ५३ ॥ स्तुत्वा तं देवकार्याय प्रेरयामः सुसत्वरम् ॥ सोऽस्ति बुद्धिमतां श्रेष्ठो विष्णुः सर्वार्थसाधने ॥ ५४ ॥ मिलित्वा वासुदेवं वै कर्तव्यं कार्यचिंतनम् ॥ प्रपञ्चेन च बुद्ध्या स संविधास्यति साधनम् ॥ ५५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति रुद्रवचः श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ॥ उत्थितास्ते तथेत्युक्त्वा शिवेन सह सत्वराः ॥५६॥ स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे ययुर्विष्णुपुरं प्रति ॥ मुदिताः शकुनान्दृष्ट्वा कार्यसिद्धिकराञ्छुभान् ॥ ५७ ॥ ववुर्वाताः शुभाः शांताः सुगंधाः शुभशंसिनः ॥ पक्षिणश्च शिवा वाचस्तत्रोचुः पथि सर्वशः ॥ ५८ ॥ निर्मलं चाभवद्व्योम दिशश्च विमलास्तथा ॥ गमने तत्र देवानां सर्वं शुभमिवाभवत् ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

व्यास उवाच ॥ तरसा तेऽथ संप्राप्य वैकुंठं विष्णुवल्लभम् ॥ ददृशुः सर्वशोभाढ्यं दिव्यसद्मविराजितम् ॥ १ ॥ सरोवापीसरिद्भिश्च संयुतं सुखदं शुभम् ॥ हंससारसचक्राह्वैः कूजद्भिश्च विराजितम् ॥ २ ॥ चंपकाशोककह्लारमंदारवकुलावृतैः ॥ मल्लिकातिलकाम्रातयुतैः कुरबकादिभिः

पड़े ॥ ५७ ॥ उस समय शुभदायक, शीतल, सुगन्धित और शुभ सन्देश देनेवाली बयार बह रही थी। रास्तेभर पक्षिवृन्द शुभ वचन बोल रहे थे ॥ ५८ ॥ समस्त आकाशमण्डल तथा सभी दिशायें निर्मल थीं। विष्णुलोक जाते समय देवताओंके लिए सब कुछ शुभदायक दीख रहा था ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(देवताओंके तेजसे देवीकी उत्पत्ति) व्यासजी बोले—हे महाराज! द्रुतगतिसे चलकर वे सभी देवता विष्णु भगवान्के प्रिय वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि सर्वशोभासम्पन्न अगणित दिव्य भवन विद्यमान हैं ॥ १ ॥ वे बड़े सुन्दर और सुखदायी थे। उनके आस-पास सरोवर, बावली और कृत्रिम नदियाँ बह रही थीं। जिनमें हंस, सारस और चकवे कलरव कर रहे थे ॥ २ ॥ वहाँवाले महलोंके उपवनोंमें चम्पा, अशोक, कह्लार (श्वेतकमल), मन्दार, मौलसिरी, मल्लिका, तिलक, आमड़ा और कुरबक (कठसरै) के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वृक्ष लगे हुए थे ॥ ३ ॥ चारों ओर कोयलकी कूक सुनायी दे रही थी और मोर नाच रहे थे। वहाँके उपवनोंमें भौंरोंकी गुंजार सुनायी दे रही थी ॥ ४ ॥ त्यागवृत्तिसम्पन्न अनन्य भक्त तथा नन्द-सुनन्द आदि पार्षद बड़े भक्तिभावसे विष्णुभगवानकी स्तुति कर रहे थे ॥ ५ ॥ उस वैकुण्ठधाममें रत्नजटित भवन बने हुए थे। उनपर सुनहले काम किये गये थे। ऊँचाईमें वे आकाशको चूम रहे थे और उनमें अच्छे-अच्छे कमरे बने हुए थे ॥ ६ ॥ देवता और गन्धर्व गा रहे थे, अप्सरायें नाच रही थीं और किन्नरगण अपनी सुरीली तानसे लोगोंका मन मोह रहे थे ॥ ७ ॥ शान्त और वेदपाठपरायण मुनिगण वैदिक सूक्तोंके द्वारा भगवानके उस सुन्दर धाममें स्तुति कर रहे थे ॥ ८ ॥ भगवान् विष्णुके द्वारपर पहुँचकर देवताओंने सुन्दर स्वरूपके दो द्वारपालों अर्थात् जय-विजयको पहरा देते देखा। जो सोनेकी छड़ी हाथमें लिये हुए थे ।. ९ ॥ उनसे देवताओंने कहा कि आप दोनोंमेंसे कोई एक जाकर भगवानसे यह

॥ ३ ॥ कोकिलारावसन्नादैः शिखंडैर्नृत्यरंजितैः ॥ भ्रमरारावरम्यैश्च दिव्यैरुपवनैर्युतम् ॥ ४ ॥ सुनंदनंदनाद्यैश्च पार्षदैर्भक्तितत्परैः ॥ संस्तुवद्भिर्युतं भक्तैरनन्यभववृत्तिभिः ॥ ५ ॥ प्रासादै रत्नखचितैः कांचनैश्चित्रमंडितैः ॥ अभ्रंलिहैर्विराजद्भिः संयुतं शुभसद्मकैः ॥ ६ ॥ गायद्भिर्देवगंधर्वैर्नृत्यद्भिर-प्सरोगणैः ॥ रंजितं किन्नरैः शश्वद्रक्तकण्ठैर्मनोहरैः ॥ ७ ॥ मुनिभिश्च तथा शान्तैर्वेदपाठकृतादरैः ॥ स्तुवद्भिः श्रुतिसूक्तैश्च मंडितं सदनं हरेः ॥ ८ ॥ ते च विष्णुगृहं प्राप्य द्वारपालौ शुभाकृती ॥ वीक्ष्योचुर्जयविजयौ हेमयष्टिधरौ स्थितौ ॥ ९ ॥ गत्वैकोऽप्युभयोर्मध्ये निवेदयतु संगतान् ॥ द्वार-स्थान्ब्रह्मरुद्रादीन्विष्णुदर्शनलालसान् ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ विजयस्तद्वचः श्रुत्वा गत्वाऽथ विष्णुसन्निधौ ॥ सर्वान्समागतान्देवान्प्रणम्योवाच सत्वरः ॥ ११ ॥ विजय उवाच ॥ देवदेव महाराज रमाकांत सुरारिहन् ॥ समागताः सुराः सर्वे द्वारि तिष्ठन्ति वै विभो ॥ १२ ॥ ब्रह्मा रुद्रस्तथेंद्रश्च वरुणः पावको यमः ॥ स्तुवन्ति वेदवाक्यैस्त्वाममरा दर्शनार्थिनः ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुर्विजयस्य रमापतिः ॥ निर्जगाम गृहात्तूर्णं सुरान्समधिकोत्सवः ॥ १४ ॥ गत्वा वीक्ष्य हरिर्देवान्द्वारस्थाञ्छ्रमकर्शितान् ॥ प्रीतिप्रवणया दृष्ट्या प्रीणयामास दुःखितान् ॥ १५ ॥ प्रणेमुस्ते सुराः सर्वे देवदेवं जनार्दनम् ॥ तुष्टुवुश्च सुरारिघ्नं वाग्भिर्वेदविनिश्चितम् ॥ १६ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यंतकारक ॥

निवेदन कर दे कि आपके दर्शनार्थ ब्रह्मा-शिव आदि बहुतेरे देवता द्वारपर खड़े हैं ॥ १० ॥ व्यासजी बोले—विजय उनकी बात सुनकर भगवान विष्णुके पास गये और प्रणाम करके उन्हें देवताओंके आगमनकी बात बतायी ॥ ११ ॥ द्वारपाल विजयने कहा—हे देवदेव! हे महाराज! हे लक्ष्मीकान्त! हे दैत्यनाशन! हे विभो! सब देवता आपके द्वारपर खड़े हैं ॥ १२ ॥ ब्रह्मा, शिव, वरुण, अग्नि, यम आदि देवता आपके दर्शनोंकी अभिलाषासे वेदवाक्यों द्वारा स्तुति कर रहे हैं ॥ १३ ॥ व्यासजीने कहा—हे महाराज! लक्ष्मीपति विष्णु विजयकी बात सुनते ही देवताओंसे मिलनेके लिए आतुर होकर अपने भवनसे बाहर निकल आये ॥ १४ ॥ द्वारपर आकर भगवानने उन देवताओंको श्रमसे कृश देखा। तब उन्होंने अपनी प्रेमभरी दृष्टिसे निहारकर उन्हें आनन्दित किया ॥ १५ ॥ वे देवता देवदेव, जनार्दन, वेदों द्वारा जानने योग्य और दैत्यविनाशक भगवान् विष्णुको प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥ १६ ॥ देवता बोले-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सृष्टिपालनसंहारकारी ! हे दयासिन्धो ! हे महाराज ! आप हम शरणागतोंकी रक्षा करिए ॥ १७ ॥ विष्णुभगवानने कहा—हे देवताओ ! आप लोग बैठ जाइए, फिर अपना कुशल-क्षेम कहकर यह बात बताइए कि किस उद्देश्यसे आप सब एक साथ यहाँ आये हैं ? ॥ १८ ॥ ब्रह्मा-शिव आदि आप सभी देवता चिन्ताकुल, दुःखित और उदास क्यों दीख रहे हैं ? मेरे योग्य यदि कोई कार्य हो तो तुरन्त बताइए ॥१९॥ देवता बोले—हे महाराज ! पापी महिषासुर हमें बहुत दुःख दे रहा है। वह बहुत बड़ा दुष्ट है। वर प्राप्त किये रहनेके कारण वह अपनेको अमर समझकर किसीको कुछ नहीं गिनता ॥ २० ॥ ब्राह्मणोंके द्वारा देवताओंको प्रदत्त यज्ञभाग वह स्वयं खा लेता है। देवता उसके डरसे पर्वतोंकी कन्दराओंमें छिपते फिरते हैं ॥ २१ ॥ हे मधुसूदन ! ब्रह्माजीसे वरदान पाकर वह दुर्जय हो उठा है। उसपर प्रभाव डालनेका कार्य गुरुतर समझकर हमलोग आपकी शरणमें आये हैं ॥ २२ ॥ हे दैत्योंकी मायाके विशेषज्ञ ! आप ही हमारा उद्धार करनेमें समर्थ हैं। अतएव हे कृष्ण ! हे दानवमदमर्दन ! आप उसके वधका कोई उपाय करिए ॥ २३ ॥ ब्रह्माजीने उसे ऐसा

दयासिंधो महाराज त्राहि नः शरणागतान् ॥ १७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ विशंतु निर्जराः सर्वे कुशलं कथयंतु वः ॥ आसनेषु किमर्थं वै मिलिताः समुपागताः ॥ १८ ॥ चिंताऽऽतुराः कथं जाता विषण्णा दीनमानसाः ॥ ब्रह्मरुद्रेण सहिताः कार्यं प्रब्रूत सत्वरम् ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः ॥ महिषेण महाराज पीडिताः पापकर्मणा ॥ असाध्येनातिदुष्टेन वरदृप्तेन पापिना ॥ २० ॥ यज्ञभागानसौ भुंक्ते ब्राह्मणैः प्रतिपादितान् ॥ अमरा गिरिदुर्गेषु भ्रमंति च भयातुराः ॥ २१ ॥ वरदानेन धातुः स दुर्जयो मधुसूदन ॥ तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता ज्ञात्वा तत्कार्यगौरवम् ॥ २२ ॥ समर्थोऽसि समुद्धर्तुं दैत्यमायाविशारद ॥ कुरु कृष्ण वधोपायं तस्य दानवमर्दन ॥२३॥ धात्रा तस्मै वरो दत्तो ह्यवध्योऽस्ति नरैः किल ॥ का स्त्री त्वेवंविधा बाला या हन्यात्तं शठं रणे ॥ २४ ॥ उमा मा वा शची विद्या का समर्थाऽस्य घातने ॥ महिषस्यातिदुष्टस्य वरदानबलादपि ॥ २५ ॥ विचिन्त्य बुद्ध्या तत्सर्वं मरणस्यास्य कारणम् ॥ कुरु कार्यं च देवानां भक्तवत्सल भूधर ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तद्वचनं विष्णुस्तानुवाच हसन्निव ॥ युद्धं कृतं पुराऽस्माभिस्तथापि न मृतो ह्यसौ ॥ २७ ॥ अद्य सर्वसुराणां वै तेजोभी रूपसंपदा ॥ उत्पन्ना चेद्वरारोहा सा हन्यात्तं रणे बलात् ॥ २८ ॥ हयारिं वरदृप्तं च मायाशतविशारदम् ॥ हन्तुं योग्या भवेन्नारी शक्त्यंशैर्निर्मिता हि नः ॥ २९ ॥ प्रार्थयंतु च तेजोंशान्स्त्रियोऽस्माकं तथा

वरदान दे रक्खा है कि जिससे वह पुरुषमात्रके हाथों नहीं मारा जा सकता। तब ऐसी स्त्री कौन होगी, जो रणमें उस शठको मार सके ? ॥ २४ ॥ क्या भगवती पार्वती, लक्ष्मी, इन्द्राणी अथवा सरस्वती, उस अत्यन्त दृप्त तथा वरदानकी प्राप्तिसे गर्वित महिषासुरका वध कर सकेंगी ? ॥ २५ ॥ हे भक्तवत्सल ! हे भूधर (पृथ्वीको धारण करनेवाले) ! आप अपनी बुद्धिसे अच्छी तरह विचार करके उसके मरणका कोई उपाय सोचिए और हम देवताओंका काम पूरा कर दीजिए॥ २६ ॥ व्यासजी बोले—यह वचन सुनकर मुसकाते हुए भगवान लक्ष्मीकांतने कहा कि पहले भी तो हम उससे लड़ चुके हैं। फिर भी वह नहीं मरा ॥ २७ ॥ अब केवल एक ही उपाय है कि, हम सब देवताओंके सम्मिलित तेजसे कोई सुन्दरी और वीर स्त्री जायमान हो तो वही अपने पराक्रमसे रणभूमिमें उसका वध कर सकती है ॥ २८ ॥ हम सबकी शक्तिके अंशसे निर्मित कोई वीर रमणी ही उस सैकड़ों मायामें निपुण और वरप्राप्तिके कारण मद-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मत्त महिषासुरको मार सकेगी ॥ २९ ॥ अतएव अब आप लोग उस परा शक्तिसे ऐसी प्रार्थना करिए कि जिससे वह हम लोगोंके तेजांशसे एक तेजःपुञ्जरूपिणी स्त्री बन जाय ॥३०॥ उस स्त्रीको रुद्र आदि सभी देवता दिव्य त्रिशूल-चक्र आदि सब आयुध दे देंगे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सब शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित और सर्वथा तेजोयुक्त वह नारी उस मदमत्त, पापी और दुराचारी दानवको मार डालेगी ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले—भगवान विष्णुके ऐसा कहते ही ब्रह्माजीके मुखसे अपने आप एक असह्य तेजोराशि निकल पड़ी ॥ ३३ ॥ उस तेजोराशिका आकार बड़ा सुंदर था । पद्मराग (पुखराज) मणिके सदृश उसकी दीप्ति थी और उसका लाल रंग था । वह तेजोराशि कुछ ठंढी और कुछ गरम थी । उसकी किरणें चारों ओर फैल रही थीं ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! भगवान विष्णु और शंकरजीने भी उस तेजको निकलते देखा । उसे देखकर वे दोनों आश्चर्यचकित हो गये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर शंकरजीके भी शरीरसे चाँदी जैसा चम-

पुनः ॥ उत्पन्नैस्तैश्च तेजोंशैस्तेजोराशिर्भवेद्यथा ॥ ३० ॥ आयुधानि वयं दद्मः सर्वे रुद्रपुरोगमाः ॥ तस्य सर्वाणि दिव्यानि त्रिशूलादीनि यानि च ॥ ३१ ॥ सर्वायुधधरा नारी सर्वतेजःसमन्विता ॥ हनिष्यति दुरात्मानं तं पापं मदगर्वितम् ॥ ३२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवति देवेशे ब्रह्मणो वदनात्ततः ॥ स्वयमेवोद्बभौ तेजोराशिश्चातीव दुःसहः ॥ ३३ ॥ रक्तवर्णं शुभाकारं पद्मरागमणिप्रभम् ॥ किंचिच्छीतं तथा चोष्णं मरीचिजालमंडितम् ॥ ३४ ॥ निःसृतं हरिणा दृष्टं हरेण च महात्मना ॥ विस्मितौ तौ महाराज बभूवतुरुरुक्रमौ ॥ ३५ ॥ शंकरस्य शरीरात्तु निःसृतं महदद्भुतम् ॥ रौप्यवर्णमभूत्तीव्रं दुर्दर्शं दारुणं महत् ॥ ३६ ॥ भयंकरं च दैत्यानां देवानां विस्मयप्रदम् ॥ घोररूपं गिरिप्रख्यं तमोगुणमिवापरम् ॥ ३७ ॥ ततो विष्णुशरीरात्तु तेजोराशिमिवापरम् ॥ नीलं सत्त्वगुणोपेतं प्रादुरास महाद्युति ॥ ३८ ॥ ततश्चेन्द्रशरीरात्तु चित्ररूपं दुरासदम् ॥ आविरासीत्सुसंवृत्तं तेजः सर्वगुणात्मकम् ॥ ३९ ॥ कुबेरयमवह्नीनां शरीरेभ्यः समंततः ॥ निश्चक्राम महत्तेजो वरुणस्य तथैव च ॥ ४० ॥ अन्येषां चैव देवानां शरीरेभ्योऽतिभास्वरम् ॥ निर्गतं तन्महातेजोराशिरासीन्महोज्ज्वलः ॥ ४१ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ तेजोराशिं महादिव्यं हिमाचलमिवापरम् ॥ ४२ ॥ पश्यतां तत्र देवानां तेजःपुञ्जसमुद्भवा ॥ बभूवातिवरा नारी सुन्दरी

कीला, अद्भुत, तीव्र, विशाल, दारुण तथा नेत्रोंमें चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला तेज निकला ॥ ३६ ॥ वह तेज दैत्योंके लिए भयानक था और देवताओंके हृदयमें आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था । उसका बड़ा भयानक और पर्वतके समान विशाल स्वरूप था । वह तमोगुणका मूर्तिमान् रूप था ॥ ३७ ॥ तत्पश्चात् भगवान विष्णुके शरीरसे सत्त्वगुणमय, श्यामवर्ण और अतिशय दीप्तिमान् तेज प्रकट हुआ ॥ ३८ ॥ कुछ क्षणों बाद इन्द्रके शरीरसे भी विचित्र आकार-प्रकारका असह्य, गोलाकार और त्रिगुणात्मक तेज प्रकटा ॥ ३९ ॥ उसके बाद कुबेर, यम, अग्नि तथा वरुणके शरीरसे भी एक साथ महान् तेजका आविर्भाव हुआ ॥४०॥ इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके भी शरीरसे अत्यन्त देदीप्यमान तथा प्रज्वलित तेजसमूह निकला ॥४१॥ दूसरे हिमवान् पर्वतके समान विशालकाय उस महादिव्य तेजपुञ्जको देखकर विष्णु आदि सभी देवता चकरा गये ॥ ४२ ॥ उन सब देवताओंके देखते-देखते उस तेजपुञ्जसे एक अत्यन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूपवती, सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी और सब लोगोंको आश्चर्यमें डाल देनेवाली एक स्त्री प्रकट हो गयी ॥४३॥ सब देवताओंके तेजसे उत्पन्न त्रिगुणात्मिका, त्रिवर्णा एवं परम रमणीक नारी साक्षात् महालक्ष्मी थीं। उनके अठारह भुजायें थीं ॥ ४४ ॥ उनका श्वेत मुख था। काले-काले नेत्र थे। उनका अधरोष्ठ (नीचेका होंठ) लाल था। उनकी हथेली ताम्रवर्णकी थी। वे देखनेमें बड़ी ही सुन्दर लग रही थीं और दिव्य आभूषण पहने थीं ॥ ४५ ॥ वे भगवती सहस्रभुजधारिणी होती हुई भी दैत्योंका विनाश करनेके लिए अष्टादश भुजाओं युक्त होकर उन देवताओंके तेजसे निकली थीं ॥ ४६ ॥ राजा जनमेजय बोले—हे कृष्ण द्वैपायन ! हे देव ! हे महाभाग ! हे सर्वज्ञ ! हे मुनिसत्तम ! आप उनकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन करिए ॥ ४७ ॥ उन सब देवताओंके शरीरसे निकला हुआ तेज बादमें एकत्र हो गया अथवा अलग ही अलग रहा ? क्या महालक्ष्मीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग उन विभिन्न देवताओंके तेजसे उत्पन्न विभिन्न रूप-रङ्गके थे या एक जैसे ही थे ? ॥ ४८ ॥ उनके शरीरके विभिन्न अङ्ग मुँह, नाक, आँख आदि अलग-अलग देवताके तेजसे बने थे अथवा सब तेज एक साथ मिलकर बने थे ?

विस्मयप्रदा ॥ ४३ ॥ त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः सर्वदेवशरीरजा ॥ अष्टादशभुजा रम्या त्रिवर्णा विश्वमोहिनी ॥ ४४ ॥ श्वेतानना कृष्णनेत्रा संरक्ताधरपल्लवा ॥ ताम्रपाणितला कांता दिव्यभूषणभूषिता ॥ ४५ ॥ अष्टादशभुजा देवी सहस्रभुजमंडिता ॥ संभूताऽसुरनाशाय तेजोराशिसमुद्भवा ॥ ४६ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कृष्ण देव महाभाग सर्वज्ञ मुनिसत्तम ॥ विस्तरं ब्रूहि तस्यास्त्वं शरीरस्य समुद्भवम् ॥ ४७ ॥ एकीभूतं च सर्वेषां तेजः किं वा पृथीक्स्थतम् ॥ अंगानि चैव तस्यास्तु सर्वतेजोमयानि वा ॥४८॥ भिन्नभागविभागेन जातान्यंगानि यानि तु ॥ मुखनासाक्षिभेदेन सर्वत्रैकभवानि च ॥ ४९ ॥ ब्रूहि तद्विस्तरं व्यास शरीरांगसमुद्भवम् ॥ बभूव यस्य देवस्य तेजसोऽङ्गं यदद्भुतम् ॥ ५० ॥ आयुधाभरणादीनि दत्तानि यैर्यथा यथा ॥ तत्सर्वं श्रोतुकामोऽस्मि त्वन्मुखांबुजनिर्गतम् ॥ ५१ ॥ न हि तृप्याम्यहं ब्रह्मन्सुधामयरसं पिबन् ॥ चरितं च महालक्ष्म्यास्त्वन्मुखांभोजनिःसृतम् ॥५२॥ सूत उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञः सत्यवतीसुतः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रीणयन्निव भूपतिम् ॥५३॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्महाभाग विस्तरेण ब्रवीमि ते ॥ यथामति कुरुश्रेष्ठ तस्या देहसमुद्भवम् ॥ ५४ ॥ न ब्रह्मा न हरिः साक्षान्न रुद्रो न च वासवः ॥ याथातथ्येन तद्रूपं वक्तुमीशः कदाचन ॥५५॥ कथं जानाम्यहं देव्या यद्रूपं यादृशं यतः ॥ वाचारंभणमात्रं तदुत्पन्नेति ब्रवीमि यत् ॥५६॥

॥ ४९ ॥ हे व्यासजी ! महालक्ष्मीके शरीर तथा अङ्गोंमेंसे जो-जो अङ्ग जिस-जिस देवताके तेजसे बने हों, वह सब विवरण विस्तारके साथ बताइए ॥ ५० ॥ उन्हें जिन-जन देवताओंने जो-जो शस्त्रास्त्र तथा आभूषण प्रदान किये हों, सो सब बातें मैं आपके मुखारविन्दसे सुनना चाहता हूँ ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं आपकी वाणीरूपिणी सुधाका पान करके और भगवती महालक्ष्मीके चरित्रको सुनकर तृप्त नहीं हो पाता ॥ ५२ ॥ सूतजी कहते हैं—हे मुनिवृन्द ! राजा जनमेजयके वचन सुनकर सत्यवतीसुत व्यासजी उनको प्रसन्न करते हुए मधुर वाणी बोले ॥५३॥ व्यासजीने कहा—हे राजन् ! हे महाभाग ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार विस्तारपूर्वक सब बातें बता रहा हूँ। हे कुरुश्रेष्ठ ! भगवती महालक्ष्मीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त आप सुनें ॥ ५४ ॥ उन भगवतीके वास्तविक स्वरूपको ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र भी यथार्थ रीतिसे नहीं बतला सकते ॥ ५५ ॥ तब भला मैं कैसे जान सकता हूँ कि देवीका सच्चा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वरूप कैसा था ? क्योंकि वे भगवान विष्णुके संकल्पसे जायमान हुई थीं। फिर भी जहाँतक मेरी पहुँच है, मैं कह रहा हूँ ॥ ५६ ॥ वे भगवती नित्या हैं और सदा विद्यमान रहती हैं। वे एक होती हुई भी देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए अनेक रूप धारण कर लेती हैं ॥ ५७ ॥ जैसे नाटकका कोई नट एक होता हुआ भी रंगमंचपर जाकर लोगोंका मनोरंजन करनेके लिए अनेक रूप धारण कर लेता है ॥ ५८ ॥ उसी प्रकार निर्गुण (रूपरहित) होती हुई भी वे भगवती देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिए अपनी लीलासे अनेक सगुण रूप धारण कर लिया करती हैं ॥ ५९ ॥ किये जानेवाले कर्मके अनुसार धात्वर्थ-गुणयुक्त उनके बहुतेरे गौण नाम पड़ जाते हैं ॥ ६० ॥ हे नरपते ! देवताओंके तेजसमूहसे जिस प्रकार उन भगवतीका वह मनोहर रूप उत्पन्न हुआ था, वह मैं अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार बता रहा हूँ ॥६१॥ शंकरजीके मुखसे जो तेज निकला था, उससे भगवतीका गौरवर्ण, सुंदर और विशाल मुखकमल बना ॥ ६२ ॥ उनके कोमल, सुचिक्कण, घुँघराले, काले-काले और सुन्दर केशपाश यमराजके तेजसे बने ॥ ६३ ॥ अग्निके तेजसे महालक्ष्मीके तीनों नेत्र बने थे। वे तीनों नेत्र काले,

सा नित्या सर्वदैवास्ते देवकार्यार्थसिद्धये ॥ नानारूपा त्वेकरूपा जायते कार्यगौरवात् ॥ ५७ ॥ यथा नटो रंगगतो नानारूपो भवत्यसौ ॥ एकरूपस्वभावोऽपि लोकरंजनहेतवे ॥५८॥ तथैषा देवकार्यार्थमरूपाऽपि स्वलीलया ॥ करोति बहुरूपाणि निर्गुणा सगुणानि च ॥ ५९ ॥ कार्यकर्मानुसारेण नामानि प्रभवंति हि ॥ धात्वर्थगुणयुक्तानि गौणानि सुबहून्यपि ॥ ६० ॥ तद्वै बुद्ध्यनुसारेण प्रब्रवीमि नराधिप ॥ यथा तेजः समुद्भूतं रूपं तस्या मनोहरम् ॥ ६१ ॥ शंकरस्य च यत्तेजस्तेन तन्मुखपंकजम् ॥ श्वेतवर्णं शुभाकारमजायत महत्तरम् ॥ ६२ ॥ केशास्तस्यास्तथा स्निग्धा याम्येन तेजसाऽभवन् ॥ वक्राग्राश्चातिदीर्घा वै मेघवर्णा मनोहराः ॥ ६३ ॥ नयनत्रितयं तस्या जज्ञे पावकतेजसा ॥ कृष्णं रक्तं तथा श्वेतं वर्णत्रयविभूषितम् ॥ ६४ ॥ वक्रे स्निग्धे कृष्णवर्णे संध्ययोस्तेजसा भ्रुवौ ॥ जाते देव्याः सुतेजस्के कामस्य धनुषीव ते ॥ ६५ ॥ वायोश्च तेजसा शस्तौ श्रवणौ संबभूवतुः ॥ नातिदीर्घौ नातिह्रस्वौ दोलाविव मनोभुवः ॥६६॥ तिलपुष्पसमाकारा नासिका सुमनोहरा ॥ संजाता स्निग्धवर्णा वै धनदस्य च तेजसा ॥ ६७ ॥ दंताः शिखरिणः श्लक्ष्णाः कुंदाग्रसदृशाः समाः ॥ संजाताः सुप्रभा राजन्प्राजापत्येन तेजसा ॥ ६८ ॥ अधरश्चातिरक्तोऽस्याः संजातोऽरुणतेजसा ॥ उत्तरोष्ठस्तथा रम्यः कार्तिकेयस्य तेजसा ॥ ६९ ॥ अष्टादशभुजाकारा बहवो विष्णुतेजसा ॥ वसूनां तेजसांगुल्यो रक्तवर्णा-

लाल और श्वेत वर्णके थे। इस प्रकार वे तीनों तीन वर्णके थे ॥ ६४ ॥ दोनों संध्याओंके तेजसे महालक्ष्मीकी टेढ़ी, चिकनी तथा काली-काली दोनों भौंहें बनीं। उन भौंहोंसे तेज बरस रहा था और वे कामदेवके धनुष जैसी सुंदर थीं ॥६५॥ कामदेवके झूलेकी तरह सुन्दर, न बहुत लम्बे और न बहुत छोटे उनके दोनों कान वायुदेवके तेजसे बने थे ॥ ६६ ॥ तिलपुष्पके आकार-प्रकारकी, सुन्दर और स्निग्ध उनकी नासिका कुबेरके तेजसे बनी थी ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! नोकीले, चिकने, चमकीले, कुन्दपुष्पके समान उज्ज्वल और परस्पर सँटे हुए उनके दाँत दक्ष प्रजापतिके तेजसे बने थे ॥ ६८ ॥ उनका अतिशय लाल अधरोष्ठ अरुणके तेजसे और परम रमणीक उत्तरोष्ठ (ऊपरी होंठ) स्वामिकार्तिकेयके तेजसे बना था ॥ ६९ ॥ भगवान् विष्णुके तेजसे अठारहों भुजायें और वसुओंके तेजसे उनकी लाल-लाल उँगलियाँ बनीं थीं। चन्द्रमाके तेजसे उनके दोनों ऊँचे-ऊँचे स्तन और इन्द्रके तेजसे उनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रिवलीयुक्त शरीरका मध्यभाग बना था ॥ ७० ॥ ७१ ॥ वरुणके तेजसे जंघा तथा ऊरुप्रदेश और पृथिवीके तेजसे उनका सुविस्तृत नितम्ब बना था ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार अन्यान्य देवताओंके तेजसे सुन्दर आकृतिवाली, सुरूपवती और मीठे स्वरवाली एक भव्य नारी जायमान हुई ॥ ७३ ॥ उस सर्वाङ्गसुन्दरी, सुन्दर दाँतों और आकर्षक नयनोंवाली स्त्रीको देखकर महिषासुरके द्वारा सताये हुए देवता निहाल हो गये ॥ ७४ ॥ उसी समय भगवान विष्णुने कहा—हे देवताओ ! आप लोग इन्हें सब प्रकारके शुभदायक आभूषण और शस्त्रास्त्र अर्पण करिए ॥ ७५ ॥ आप सब अपने-अपने आयुधोंसे विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र उत्पन्न करें और उनको अपने तेजसे युक्त करके इन्हें प्रदान कर दें ॥ ७६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

स्तथाऽभवन् ॥७०॥ सौम्येन तेजसा जातं स्तनयोर्युग्ममुत्तमम् ॥ ऐन्द्रेणास्यास्तथा मध्यं जातं त्रिबलिसंयुतम् ॥७१॥ जंघोरू वरुणस्याथ तेजसा संबभूवतुः ॥ नितंबः स तु संजातो विपुलस्तेजसा भुवः ॥७२॥ एवं नारी शुभाकारा सुरूपा सुस्वरा भृशम् ॥ समुत्पन्ना तथा राजंस्तेजोराशिसमुद्भवा ॥ ७३ ॥ तां दृष्ट्वा सुष्ठु सर्वांगीं सुदतीं चारुलोचनाम् ॥ मुदं प्रापुः सुरा सर्वे महिषेण प्रपीडिताः ॥ ७४ ॥ विष्णुस्त्वाह सुरान्सर्वान्भूषणान्यायुधानि च ॥ प्रयच्छन्तु शुभान्यस्यै देवाः सर्वाणि सांप्रतम् ॥ ७५ ॥ स्वायुधेभ्यः समुत्पाद्य तेजोयुक्तानि सत्वराः ॥ समर्पयन्तु सर्वेऽद्य देव्यै नानायुधानि वै ॥ ७६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे देव्याः स्वरूपोद्भवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ देवा विष्णुवचः श्रुत्वा सर्वे प्रमुदितास्तदा ॥ ददुश्च भूषणान्याशु वस्त्राणि स्वायुधानि च ॥ १ ॥ क्षीरोदश्चांबरे दिव्ये रक्ते सूक्ष्मे तथाऽजरे ॥ निर्मलं च तथा हारं प्रीतस्तस्यै सुमंडितम् ॥ २ ॥ ददौ चूडामणिं दिव्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ कुंडले च तथा शुभ्रे कटकानि भुजेषु वै ॥ ३ ॥ केयूरान्कङ्कणान्दिव्यान्नानारत्नविराजितान् ॥ ददौ तस्यै विश्वकर्मा प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥ ४ ॥ नूपुरौ सुस्वरौ कांतौ निर्मलौ रत्नभूषितौ ॥ ददौ सूर्यप्रतीकाशौ त्वष्टा तस्यै सुपादयोः ॥ ५ ॥ तथा ग्रैवेयकं रम्यं ददौ तस्यै महार्णवः ॥ अंगुलीयकरत्नानि तेजोवन्ति च सर्वशः ॥६॥ अम्लानपङ्कजां मालां गन्धाढ्यां भ्रमरानुगाम् ॥ तथैव वैजयन्तीं च वरुणः सम्प्रयच्छत ॥७॥ हिमवानथ सन्तुष्टो रत्नानि विविधानि

(देवताओं द्वारा देवीकी स्तुति) व्यासजी बोले—हे महाराज ! विष्णुभगवानके वचन सुनकर देवता बहुत प्रसन्न हुए और तुरन्त महालक्ष्मीको विविध वस्त्र, आभूषण और आयुध प्रदान करने लगे ॥१॥ क्षीरसागरने भगवतीको महीन, नयी तथा लाल रंगकी साड़ी और दुपट्टा दिया । उसके साथ ही जड़ाऊ और निर्मल हार भी प्रदान किया ॥ २ ॥ विश्वकर्माने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें करोड़ों सूर्यके समान चमकीला दिव्य चूड़ामणि, एक जोड़ा सुन्दर कुण्डल, स्वर्णनिर्मित बाजूबन्द, केयूर (तोड़ा) और विविध रत्नजटित कंकण प्रदान किया ॥३॥४॥ त्वष्टा देवताने सुन्दर आवाजवाले, चमकीले, रत्नजटित और सूर्यके समान प्रकाशसम्पन्न दो पायजेब पैरोंमें पहननेके लिए दिये ॥५॥ महासमुद्रने गलेमें पहननेका हार और अत्यधिक चमकीली रत्नजटित अंगूठी प्रदान की ॥६॥ वरुणदेवने कभी भी न कुम्हलानेवाले, सुगन्धित तथा जिसपर भौंरे मँडरा रहे थे, ऐसे कमलपुष्पकी माला और उपर्युक्त गुणोंसे अलंकृत वैजयन्तीमाला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दी ॥७॥ हिमवान् पर्वतने प्रसन्नतापूर्वक विविध प्रकारके रत्न तथा सुवर्णके समान चमकीले रंगका सिंह सवारीके लिए अर्पण किया ॥८॥ सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न सुन्दर जाँघवाली वह दिव्य रमणी देवताओं द्वारा प्रदत्त आभूषण पहन तथा सिंहपर सवार होकर बड़ी ही सुन्दर दीखने लगी ॥ ९ ॥ तब भगवान विष्णुने अपने चक्रसे उत्पन्न करके उन्हें एक ऐसा चक्र दिया, जिसमें सहस्र धारें थीं, जो अतीव तेजस्वी था और जिसमें अगणित दैत्योंके सिर काट लेनेकी सामर्थ्य थी ॥ १० ॥ शंकरजीने अपने त्रिशूलसे उत्पन्न करके एक ऐसा त्रिशूल प्रदान किया, जो देवताओंका भय दूर करनेमें समर्थ था ॥११॥ वरुणदेवने अपने शंखसे उत्पन्न करके उन्हें एक ऐसा शंख दिया-जो मंगलमय, अत्यन्त उज्ज्वल तथा घनघोर शब्द करनेवाला था ॥१२॥ अग्निदेवने उन्हें ऐसी शक्ति (बर्छी) दी, जो मनके समान वेगसे चलती थी और सैकड़ों शत्रुओंको नष्ट कर देने तथा अगणित दैत्योंका विनाश करनेमें समर्थ थी ॥१३॥ भगवान विष्णुने महालक्ष्मीको बाणोंसे भरा तरकस तथा देखनेमें अद्भुत ढंगका ऐसा धनुष दिया, जो बड़ी कठिनाईसे खींचा जा सकता था और जिसका टंकोर बहुत कर्कश था ॥ १४ ॥ देवराज इन्द्रने

च ॥ ददौ च वाहनं सिंहं कनकाभं मनोहरम् ॥ ८ ॥ भूषणैर्भूषिता दिव्यैः सा रराज वरा शुभा ॥ सिंहारूढा वरारोहा सर्वलक्षणसंयुता ॥ ९ ॥
विष्णुश्चक्रात्समुत्पाद्य ददावस्यै रथांगकम् ॥ सहस्रारं सुदीप्तं च देवारिशिरसां हरम् ॥ १० ॥ स्वत्रिशूलात्समुत्पाद्य शंकरः शूलमुत्तमम् ॥ ददौ
देव्यै सुरारीणां कृन्तनं भयनाशनम् ॥ ११ ॥ वरुणश्च प्रसन्नात्मा ददौ शंखं समुज्ज्वलम् ॥ घोषवन्तं स्वशंखात्तु समुत्पाद्य सुमङ्गलम् ॥ १२ ॥
हुताशनस्तथा शक्तिं शतघ्नीं सुमनोजवाम् ॥ प्रायच्छत्तु प्रसन्नात्मा तस्यै दैत्यविनाशिनम् ॥ १३ ॥ इषुधिं बाणपूर्णं च चापं चाद्भुतदर्शनम् ॥
मारुतो दत्तवांस्तस्यै दुराकर्षं खरस्वरम् ॥ १४॥ स्ववज्राद्वज्रमुत्पाद्य ददाविन्द्रोऽतिदारुणम् ॥ घंटामैरावतात्तूर्णं सुशब्दां चातिसुन्दराम् ॥ १५ ॥
ददौ दंडं यमः कामं कालदंडसमुद्भवम् ॥ येनांतं सर्वभूतानामकरोत्काल आगते ॥ १६ ॥ ब्रह्मा कमण्डलुं दिव्यं गङ्गावारिप्रपूरितम् ॥ ददावस्यै
मुदा युक्तो वरुणः पाशमेव च ॥ १७ ॥ कालः खड्गं तथा चर्म प्रायच्छत्तु नराधिप ॥ परशुं विश्वकर्मा च तीक्ष्णमस्यै ददावथ ॥ १८ ॥ धनदस्तु
सुरापूर्णं पानपात्रं सुवर्णजम् ॥ पंकजं वरुणश्चादाद्देव्यै दिव्यं मनोहरम् ॥ १९ ॥ गदां कौमोदकीं त्वष्टा घंटाशतनिनादिनीम् ॥ अदात्तस्यै प्रस-
न्नात्मा सुरशत्रुविनाशिनीम् ॥ २० ॥ अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाऽभेद्यं च दंशनम् ॥ ददौ त्वष्टा जगन्मात्रे निजरश्मीन्दिवाकरः ॥ २१ ॥ सायुधा

अपने वज्रसे उत्पन्न करके एक अति भयंकर वज्र और ऐरावत हाथीका घण्टा दिया, जो बड़ा सुन्दर था और उसकी ध्वनि बहुत तेज थी ॥ १५ ॥ यमराजने अपने कालदण्डसे उत्पन्न ऐसा दण्ड प्रदान किया, जिससे कालदेव सब प्राणियोंका अन्त करते थे ॥ १६ ॥ ब्रह्माजीने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें गंगाजलसे भरा हुआ एक दिव्य कमण्डल प्रदान किया और वरुणदेवने अपना पाश दे दिया ॥ १७ ॥ हे महाराज जनमेजय ! कालने महालक्ष्मीको तलवार और ढाल दी । विश्वकर्माने उन्हें अतिशय तीक्ष्ण फरसा दिया ॥ १८ ॥ कुबेरने मदिरासे भरा हुआ पानपात्र (गिलास) दिया । वरुणने उन्हें मनोहर कमलपुष्प प्रदान किया ॥ १९ ॥ परम प्रसन्न त्वष्टा देवताने उन्हें कौमोदकी गदा प्रदान की, जिसमें सैकड़ों घण्टेकी आवाज हो रही थी और जो दैत्योंका विनाश करती थी ॥ २० ॥ त्वष्टाने ही भगवतीको अनेक अस्त्र तथा अभेद्य कवच दिया और सूर्यदेवने अपनी किरणें प्रदान कीं ॥ २१ ॥ इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार सभी आयुधों और आभूषणोंको धारण किये देखकर देवता बहुत विस्मित हुए और त्रैलोक्यमोहिनी उन कल्याणमयी देवीकी स्तुति करने लगे ॥२२॥ देवता बोले—हे शिवे ! आप कल्याणी, शान्ति और पुष्टि हैं। आपको नमस्कार है। आप भगवती, देवी और रुद्राणीको हमारा नमस्कार है ॥ २३ ॥ आप कालरात्रि, अम्बा और इन्द्राणी हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। आप ही सिद्धि तथा वैष्णवी हैं। आपको पुनः पुनः नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे देवि ! आप पृथिवीपर स्थित रहती हैं। फिर भी पृथिवी आपको नहीं जानती। आप ही पृथिवीके भीतर रहकर पृथिवीका नियंत्रण करती हैं। सो आप परमेश्वरीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥२५॥ जो नित्य मायामें ही विद्यमान रहती हैं। फिर भी माया जिसे नहीं जानती। जो मायाके अन्तस्तलमें विराजमान होकर उसे प्रेरणा देती है, उस शिवा भगवतीको हम नमस्कार करते हैं ॥२६॥ हे माता ! आप हमारा कल्याण करिए। शत्रुसे सताये हुए हम देवताओंकी रक्षा करिए। आप अपने तेजसे महिषासुरको मोहित करके मार डालिए ॥२७॥ महिषासुर बड़ा खल, भयानक मायावी, केवल स्त्रीके हाथों मरनेवाला; वरदान प्राप्त करनेसे अभिमानी, सब देवताओंको

भूषणैर्युक्तां दृष्ट्वा ते विस्मयं गताः ॥ तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं त्रैलोक्यमोहिनीं शिवाम् ॥ २२ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमः शिवायै कल्याण्यै शांत्यै पुष्ट्यै नमो नमः ॥ भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः ॥ २३ ॥ कालरात्र्यै तथांबायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः ॥ सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः ॥ २४ ॥ पृथिव्यां या स्थिता पृथ्व्या न ज्ञाता पृथिवीं च या ॥ अन्तःस्थिता यमयति वंदे तामीश्वरीं पराम् ॥ २५ ॥ मायायां या स्थिता ज्ञाता मायया न च तामजाम् ॥ अन्तःस्थिता प्रेरयति प्रेरयित्रीं नुमः शिवाम् ॥२६॥ कल्याणं कुरु भो मातस्त्राहि नः शत्रुतापितान् ॥ जहि पापं हयारिं त्वं तेजसा स्वेन मोहितम् ॥ २७ ॥ खलं मायाविनं घोरं स्त्रीवध्यं वरदर्पितम् ॥ दुःखदं सर्वदेवानां नानारूपधरं शठम् ॥ २८ ॥ त्वमेका सर्वदेवानां शरणं भक्तवत्सले ॥ पीडितान्दानवेनाद्य त्राहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी सुरैः सर्वसुखप्रदा ॥ तानुवाच महादेवी स्मितपूर्वं शुभं वचः ॥३०॥ देव्युवाच ॥ भयं त्यजंतु गीर्वाणा महिषान्मन्दचेतसः ॥ हनिष्यामि रणेऽद्यैव वरदृप्तं विमोहितम् ॥३१॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा सुरान्देवी जहासातीव सुस्वरम् ॥ चित्रमेतच्च संसारे भ्रममोहयुतं जगत् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सेंद्राश्चान्ये सुरास्तथा ॥ कंपयुक्ता भयत्रस्ता वर्तन्ते महिषात्किल ॥ ३३ ॥ अहो दैवबलं घोरं दुर्जयं सुरसत्तमाः ॥ कालः कर्ताऽस्ति दुःखानां सुखानां प्रभु-

दुखदायी, विविध रूपधारी और शठ है ॥२८॥ हे भक्तवत्सले ! हम देवताओंके लिए एकमात्र आप ही शरण हैं। दानवराज महिषासुरसे पीडित हम देवताओंकी आप रक्षा करें। हम सब आपको नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार सब देवताओंके स्तुति करनेपर सर्वसुखदायिनी महादेवी मुसकाकर उन देवताओंसे यह शुभ वाणी बोलीं ॥ ३० ॥ देवीने कहा—हे देवताओ ! आप लोग उस मन्दबुद्धि महिषासुरका भय त्याग दें। आज ही मैं उस वरदर्पित दानवको मोहमें डालकर रणमें मार डालूँगी ॥३१॥ व्यासजी बोले कि देवताओंसे ऐसा कहकर देवी बहुत जोरसे ठठाकर हँसने लगीं। वे यह सोचकर हँसीं कि संसारमें यह बड़ी विचित्र बात है, जो समस्त विश्व भ्रम और मोहमें पड़ा हुआ है ॥३२॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता महिषासुरसे डरते हैं—उसके नामसे काँपते हैं ॥ ३३ ॥ अहो श्रेष्ठ देवताओ ! दैवबल बड़ा भयानक और दुर्जय है। काल ही दुःख और सुख देनेवाला प्रभु तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सबका ईश्वर है ॥३४॥ क्योंकि सृष्टि, पालन और संहारकी क्षमता रखते हुए भी आपलोग घबड़ा जाते हैं, नाना प्रकारके कष्ट भोगते हैं और महिषासुर द्वारा सताये जाते हैं ॥३५॥ ऐसा कहकर मुसकाती हुई वे देवी ठठाकर हँसने लगीं। उनके अट्टहासका शब्द बड़ा भयानक था। उसे सुनकर दैत्य दहल गये ॥ ३६ ॥ वह शब्द सुनकर पृथिवी डगमगाने लगी, सब पर्वत चलायमान हो गये और परम पराक्रमी समुद्रमें खलबली मच गयी ॥३७॥ उस शब्दसे सुमेरु पर्वत हिल गया और वह शब्द दसों दिशाओंमें गूँज उठा। उस घनघोर निनादको सुनकर दैत्यगण भयभीत हो गये ॥३८॥ देवता प्रसन्न होकर 'जय' और 'पाहि' शब्दका उच्चारण करने लगे। मदगर्वित महिषासुर वह शब्द सुनकर क्रुद्ध हो उठा ॥३९॥ सशंक होकर उसने दैत्योंसे पूछा कि यह कैसी आवाज है? तुमलोग दूतोंको भेजकर शीघ्र पता लगाओ कि यह शब्द कहाँसे आ रहा है ॥४०॥ कानोंको कष्ट देनेवाला यह शब्द किसने उच्चरित किया है? देवता या दानव जिसने भी ऐसा किया हो, उस दुष्टको पकड़कर मेरे पास ले आओ। मैं उस अभिमानी और व्यर्थ गर्जन करनेवाले दुराचारीको मार डालूँगा ॥४१॥४२॥ उस मूर्खकी आयु समाप्त

रीश्वरः ॥ ३४ ॥ सृष्टिपालनसंहारे समर्था अपि ते यदा ॥ मुह्यंति क्लेशसंतप्ता महिषेण प्रपीडिताः ॥ ३५ ॥ इति कृत्वा स्मितं देवी साऽट्टहासं चकार ह ॥ उच्चैः शब्दं महाघोरं दानवानां भयप्रदम् ॥ ३६ ॥ चकम्पे वसुधा तत्र श्रुत्वा तच्छब्दमद्भुतम् ॥ चेलुश्च पर्वताः सर्वे चुक्षोभाब्धिश्च वीर्यवान् ॥ ३७ ॥ मेरुश्चचाल शब्देन दिशः सर्वाः प्रपूरिताः ॥ भयं जग्मुस्तदा श्रुत्वा दानवास्तत्स्वनं महत् ॥ ३८ ॥ जय पाहीति देवास्तामूचुः परमहर्षिताः ॥ महिषोऽपि स्वनं श्रुत्वा चुकोप मदगर्वितः ॥ ३९ ॥ किमेतदिति तान्दैत्यान्पप्रच्छ स्वनशंकितः ॥ गच्छंतु त्वरिता दूता ज्ञातुं शब्दसमुद्भवम् ॥ ४० ॥ कुतः केनायमत्युग्रः शब्दः कर्णव्यथाकरः ॥ देवो वा दानवो वापि यो भवेत्स्वनकारकः ॥ ४१ ॥ गृहीत्वा तं दुरात्मानं मत्समीपं नयंत्विह ॥ हनिष्यामि दुराचारं गर्जन्तं स्मयदुर्मदम् ॥ ४२ ॥ क्षीणायुष्यं मंदमतिं नयामि यमसादनम् ॥ पराजिताः सुराः कामं न गर्जन्ति भयातुराः ॥ ४३ ॥ नासुरा मम वश्यास्ते कस्येदं मूढचेष्टितम् ॥ त्वरिता मामुपायांतु ज्ञात्वा शब्दस्य कारणम् ॥ ४४ ॥ अहं गत्वा हनिष्यामि पं पापं वितथश्रमम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तास्तेन ते दूता देवीं सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ ४५ ॥ अष्टादशभुजां दिव्यां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नां वरायुधधरां शुभाम् ॥ ४६ ॥ दधतीं चषकं हस्ते पिबंतीं च मुहुर्मधु ॥ संवीक्ष्य भयभीतास्ते जग्मुस्त्रस्ताः सुशङ्किताः ॥ ४७ ॥

हो गयी है। मैं उसको यमपुरी भेज दूँगा। देवता मुझसे पराजित होकर भयभीत हो गये हैं। सो उनमेंसे तो कोई गर्जन कर नहीं सकता ॥ ४३ ॥ कोई दैत्य भी ऐसा नहीं कर सकता। क्योंकि वे सब मेरे वशवर्ती हैं। तब आखिर यह किसकी मूर्खता है? सो तुम लोग उस शब्दके कारणका पता लगाकर शीघ्र मेरे पास लौट आओ ॥ ४४ ॥ तब मैं स्वयं जाकर उस पापीको मार डालूँगा, जिसने व्यर्थकी यह विभीषिका खड़ी की है। व्यासजी बोले—महिषासुरका यह आदेश पाकर वे दूत शब्दके कारणका पता लगाते-लगाते उन सर्वाङ्गसुंदरी देवीके पास जा पहुँचे ॥ ४५ ॥ उन्होंने देखा कि उनके अठारह भुजायें हैं, भुजाओंमें उच्चकोटिके शस्त्रास्त्र विद्यमान हैं, उनका दिव्य स्वरूप हैं, उनके अङ्गोंमें सब प्रकारके आभूषण सुशोभित हो रहे हैं, वे सभी शुभ लक्षणोंसे सपम्न हैं ॥४६॥ उनके हाथमें मदिराका पानपात्र है और वे बारम्बार मदिरा पी रही हैं। उन्हें देखकर वे दूत भयभीत हो गये और सशंक होकर निकल भागे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ४७ ॥ भागते हुए वे दूत महिषासुरके पास पहुँचे और उसे उस शब्दका कारण बताया। दूतोंने कहा—हे दैत्येश्वर! वह कोई अपरचित प्रौढ़ा स्त्री है और देखनेमें देवी जैसा लगती है ॥ ४८ ॥ उसके सब अङ्गोंमें आभूषण हैं और उन आभूषणोंमें सब प्रकारके रत्न जड़े हुए हैं। वह न मानवी स्त्री है और न असुरवंशकी ही है। उसका रूप बड़ा दिव्य और मनोहर है ॥ ४९ ॥ वह विविध आयुधोंको धारण करके सिंहपर सवार है। उसके अठारह भुजायें हैं। ऐसा लगता है कि वह मदमाती स्त्री ही गर्जन करती है ॥५०॥ वह बराबर मधु पान कर रही है और ऐसा ज्ञात होता है कि अभी उसका विवाह नहीं हुआ है। आकाशमंडलमें विद्यमान देवता बहुत प्रसन्न होकर उसकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ हे स्वामिन्! वे देवता बार-बार 'जय' और 'पाहि' शब्दका उच्चारण करते हुए उससे कहते हैं कि 'हमारे शत्रुको मार डालो।' पता नहीं कि वह स्त्री कौन है और किसकी पत्नी है ॥५२॥ यह भी नहीं मालूम कि वह सुन्दरी किस लिए यहाँ आयी है और क्या करना चाहती है। हम उसे देखते ही उसके असाधारण तेजसे चकपका गये। अच्छी तरह उसकी ओर निहार भी नहीं सके ॥५३॥ उस अकेली

सकाशे महिषस्याशु तमूचुः स्वनकारणम् ॥ दूता ऊचुः ॥ देवी दैत्येश्वर प्रौढा दृश्यते काचिदंगना ॥४८॥ सर्वाङ्गभूषणा नारी सर्वरत्नोपशोभिता॥
न मानुषी नासुरी सा दिव्यरूपा मनोहरा ॥ ४९ ॥ सिंहारूढाऽऽयुधधरा चाष्टादशकरा वरा ॥ सा नादं कुरुते नारी लक्ष्यते मदगर्विता ॥ ५० ॥
सुरापानरता कामं जानीमो न सभर्तृका ॥ अन्तरिक्षस्थिता देवास्तां स्तुवंति मुदान्विताः ॥ ५१ ॥ जयेति पाहि नश्चेति जहि शत्रुमिति प्रभो ॥
न जाने का वरारोहा कस्य वा सा परिग्रहः ॥५२॥ किमर्थमागता चात्र किं चिकीर्षति सुन्दरी॥ द्रष्टुं नैव समर्थाः स्मस्तत्तेजःपरिधर्षिताः ॥ ५३ ॥
शृंगारवीरहासाढ्या रौद्राद्भुतरसान्विता ॥ दृष्ट्वैवैवंविधां नारीमसंभाष्य समागताः ॥५४॥ वयं त्वदाज्ञया राजन्किं कर्तव्यमतः परम् ॥ महिष उवाच ॥
गच्छ वीर मयाऽऽदिष्टो मंत्रिश्रेष्ठ बलान्वितः ॥ ५५ ॥ सामादिभिरुपायैस्त्वं समानय शुभाननाम् ॥ नायाति यदि सा नारी त्रिभिः सामादिभि-
स्त्विह ॥५६॥ अहत्वा तां वरारोहां त्वमानय ममान्तिकम् ॥ करोमि पट्टमहिषीं तामरालभ्रुवं मुदा ॥५७॥ प्रीतियुक्ता समायाति यदि सा मृगलोचना॥
रसभंगो यथा न स्यात्तथा कुरु ममेप्सितम् ॥ ५८ ॥ श्रवणान्मोहितोऽस्म्यद्य तस्य रूपस्य संपदा ॥ व्यास उवाच ॥ महिषस्य वचः श्रुत्वा पेशलं

नारीमें शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र और अद्भुत इन सभी रसोंका समावेश है। इस प्रकार उस ललनाको देख तथा बिना कुछ बात किये हमलोग लौट आये ॥५४॥ क्योंकि शीघ्र लौटनेके लिए आपका आदेश था। हे राजन्! इसके बाद हमें क्या करना है? महिषासुरने कहा—हे वीर! हे मुख्य मंत्री! मेरे आदेशसे तुम सेना लेकर जाओ ॥ ५५ ॥ और साम-दानादि नीतियोंका उपयोग करके उस सुमुखीको यहाँ ले जाओ। यदि वह साम-दाम-भेद इन तीनों उपायोंका उपयोग करनेपर भी न आये तो उसे बिना मारे बंदिनी बनाकर मेरे पास ले आओ। मैं उस तीखी भौंहोंवाली सुन्दरीको प्रसन्नतापूर्वक अपनी पटरानी बना लूँगा ॥५६॥५७॥ मेरी इच्छा है कि तुम कोई ऐसा उपाय करो कि जिससे वह मृगनयनी राजी-खुशी यहाँ चली आये, जिससे रसभंग न हो ॥५८॥ क्योंकि उसके रूपका बखान सुन करके ही मैं उसपर मोहित हो गया हूँ। व्यासजी बोले—महिषासुरकी इन सरस बातोंको सुनकर प्रधान मंत्री हाथी, घोड़े और रथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ लेकर शीघ्र चल पड़ा। वहाँ पहुचा तो कुछ दूर ही खड़ा होकर उस मनस्विनी नारीसे बोला ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उसने बड़ी नम्रताके साथ मीठी वाणीमें पूछा। प्रधानमंत्री बोला–हे मधुरभाषिणी! तुम कौन हो? यहाँ क्यों आयी हो? ॥६१॥ हे महाभागे! यह बात मेरी जबानी मेरे स्वामीने पूछी है। वे सब देवताओंपर विजय प्राप्त कर चुके हैं ॥६२॥ हे सुनयनी! ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त किये रहनेके कारण उन्हें बहुत गर्व है। दैत्यराज महिष बड़े बलवान् हैं और जब जैसा चाहें, वैसा रूप धारण कर सकते हैं ॥ ६३ ॥ आप जैसी सुन्दर वेषवाली महिलाकी खबर पाकर मेरे प्रभु महाराज महिषासुर आपको देखना चाहते हैं ॥ ६४ ॥ यदि आप कहें तो वे स्वयं मनुष्यका रूप धारण करके आपके पास चले आयें। आपकी जैसी इच्छा हो, उसीके अनुसार काम करनेके लिए मैं तैयार हूँ ॥६५॥ हे बालमृग सरीखे निर्दोष नयनोंवाली सुन्दरी! तो आओ, उन बुद्धिमान् राजा महिषके पास चलें। यदि आप न चल सकें तो मैं

मंत्रिसत्तमः ॥ ५९ ॥ जगाम तरसा कामं गजाश्वरथसंयुतः ॥ गत्वा दूरतरं स्थित्वा तामुवाच मनस्विनीम् ॥ ६० ॥ विनयावनतः श्लक्ष्णं मंत्री मधुरया गिरा ॥ प्रधान उवाच ॥ काऽसि त्वं मधुरालापे किमत्रागमनं कृतम् ॥ ६१ ॥ पृच्छति त्वां महाभागे मन्मुखेन मम प्रभुः ॥ स जेता सर्वदेवानामवध्यस्तु नरैः किल ॥ ६२ ॥ ब्रह्मणो वरदानेन गर्वितश्चारुलोचने ॥ दैत्येश्वरोऽसौ बलवान्कामरूपधरः सदा ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा त्वां समुपायातां चारुवेषां मनोहराम् ॥ प्रष्टुमिच्छति राजा मे महिषो नाम पार्थिवः ॥ ६४ ॥ मानुषं रूपमादाय त्वत्समीपं समेष्यति ॥ यथा रुच्येत चार्वङ्गि तथा मन्यामहे वयम् ॥ ६५ ॥ तदेहि मृगशावाक्षि समीपं तस्य धीमतः ॥ नो चेदिहानयाम्येनं राजानं भक्तितत्परम् ॥ ६६ ॥ तथा करोमि देवेशि यथा ते मनसेप्सितम् ॥ वशगोऽसौ तवात्यर्थं रूपसंश्रवणात्तव ॥ ६७ ॥ करभोरु वदाशु त्वं संविधेयं मया तथा ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे देवीमाहात्म्ये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य प्रमदोत्तमा ॥ तमुवाच महाराज मेघगंभीरया गिरा ॥१॥ देव्युवाच ॥ मंत्रिवर्य सुराणां वै जननीं विद्धि मां किल ॥ महालक्ष्मीमिति ख्यातां सर्वदैत्यनिषूदिनीम् ॥२॥ प्रार्थिताऽहं सुरैः सर्वैर्महिषस्य वधाय च ॥ पीडितैर्द्रानवेन्द्रेण यज्ञभाग-

जाकर आपके भक्त महाराज महिषको ही यहाँ बुला ले आऊँ ॥६६॥ हे देवेशि! आपकी जैसी रुचि हो, मैं वही करूँगा। आपके रूपकी प्रशंसा सुनकर ही वे आपके वशीभूत हो गये हैं ॥६७॥ हे हाथीके बच्चेकी सूँड़ सदृश जाँघोंवाली सुंदरी! आप बताइए कि क्या चाहती हैं, जो कहेंगी मैं वही करूँगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीदे० भा० पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥९॥

(देवी और दैत्यके प्रधान मन्त्रीका संवाद) व्यासजी बोले–हे महाराज जनमेजय! दैत्यप्रधानमन्त्रीके वचन सुनकर सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी भगवती मेघके समान गंभीर वाणीमें बोलीं। देवीने कहा—हे मन्त्रिवर्य! मैं देवताओंकी माता हूँ। मेरा नाम महालक्ष्मी है। मेरा काम दैत्योंका नाश करना है ॥ १ ॥ २ ॥ दानवराज महिषासुरके अत्याचारसे पीड़ित और यज्ञभागसे बहिष्कृत देवताओंने मुझसे महिषासुरका वध करनेकी प्रार्थना की है। हे प्रधानमन्त्री! तदनुसार मैं बिना कोई सेना साथ लिये अकेली ही उसका वध करनेके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ आयी हूँ ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे पूतात्मन् ! तुमने जो शान्तिपूर्ण और मीठी वाणीमें मेरा सादर स्वागत किया है, उससे मैं तुमपर प्रसन्न हूँ ॥५॥ यदि तुम अकड़कर बात करते तो मैं अपनी कालाग्निसदृश भीषण नेत्रोंसे निहारकर ही तुम्हें भस्म कर देती। ठीक ही है, मीठे वचन किसको प्रिय नहीं लगते ॥६॥ अब तुम जाओ और मेरी जबानी उस पापी महिषासुरसे कह दो कि यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो तुम अभी पाताललोकमें चले जाओ ॥ ७ ॥ नहीं तो मैं तुझ महान् अपराधीको रणभूमिमें मारूँगी। मेरे बाणोंके आघातसे तेरा शरीर छिन्न-भिन्न हो जायगा और तू सीधे यमपुर जा पहुँचेगा ॥ ८ ॥ यह मेरी दया है कि मैं तुझसे ऐसा कह रहो हूँ। सो तू शीघ्र यहाँसे चला जा। नहीं तो तू मारा जायगा और स्वर्ग राज्य शीघ्र देवताओंको वापस मिल जायगा ॥ ९ ॥ ओ मूर्ख ! मेरे बाण तुझपर नहीं छूटते, उसके पहले ही तू तत्काल ससागरा पृथिवीको त्यागकर अकेला ही पाताल चला जा ॥ १० ॥ अरे

बहिष्कृतैः ॥ ३ ॥ तस्मादिहागताऽस्म्यद्य तद्वधार्थं कृतोद्यमा ॥ एकाकिनी न सैन्येन संयुता मंत्रिसत्तम ॥ ४ ॥ यत्त्वयाऽहं सामपूर्वं कृत्वा स्वागतमादरात् ॥ उक्ता मधुरया वाचा तेन तुष्टाऽस्मि तेऽनघ ॥ ५ ॥ नोचेद्धन्मि दृशा त्वां वै कालाग्निसमया किल ॥ कस्य प्रीतिकरं न स्यान्माधुर्यवचनं खलु ॥ ६ ॥ गच्छ तं महिषं पापं वद मद्वचनादिदम् ॥ गच्छ पातालमधुना जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ ७ ॥ नोचेत्कृतागसं दुष्टं हनिष्यामि रणांगणे ॥ मद्बाणक्षुण्णदेहस्त्वं गन्तासि यमसादनम् ॥ ८ ॥ दयालुत्वं ममेदं त्वं विदित्वा गच्छ सत्वरम् ॥ हते त्वयि सुरा मूढ स्वर्गं प्राप्स्यन्ति सत्वरम् ॥ ९ ॥ तस्माद्गच्छस्व त्यक्त्वैको मेदिनीं च ससागराम् ॥ पातालं तरसा मन्द यावद्बाणा न मेऽपतन् ॥१०॥ युद्धेच्छा चेन्मनसि ते तर्ह्येहि त्वरितोऽसुर ॥ वीरैर्महाबलैः सर्वैर्नयामि यमसादनम् ॥ ११ ॥ युगे युगे महामूढ हतास्त्वत्सदृशाः किल ॥ असंख्यातास्तथा त्वां वै हनिष्यामि रणांगणे ॥१२॥ साफल्यं कुरु शस्त्राणां धारणे तु श्रमोऽन्यथा ॥ तद्युद्धयस्व मया सार्धं समरे स्मरपीडितः ॥१३॥ मा गर्वं कुरु दुष्टात्मन् यन्मेऽस्ति ब्रह्मणो वरः ॥ स्त्रीवध्यत्वे त्वया मूढ पीडिताः सुरसत्तमाः ॥ १४ ॥ कर्तव्यं वचनं धातुस्तेनाहं त्वामुपागता ॥ स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा सत्यं हन्तुं कृतागसम् ॥ १५ ॥ यथेच्छं गच्छ वा मूढ पातालं पन्नगावृतम् ॥ हित्वा भूसुरसद्माद्य जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः स ततो देव्या मन्त्रिश्रेष्ठो बलान्वितः ॥ प्रत्युवाच निशम्यासौ वचनं हेतुगर्भितम् ॥ १७ ॥ देवि स्त्रीसदृशं वाक्यं ब्रूषे त्वं मदगर्विता ॥ क्वासौ

असुर ! यदि युद्धकी ही इच्छा हो तो अपने महाबली वीरोंको साथ लेकर शीघ्र आ जा। मैं सबको यमपुर भेज दूँगी ॥११॥ अरे ओ महामूर्ख ! युग-युगमें मैंने तुझ जैसे असंख्य दैत्योंका वध किया है। उसी तरह तुझे भी समरभूमिमें मार डालूँगी ॥१२॥ मेरा सामना करके तू मेरे शस्त्र धारण करनेके परिश्रमको सफल कर। नहीं तो यह श्रम व्यर्थ हो जायगा। यदि तू कामपीड़ित है तो आ, रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध कर ॥ १३ ॥ अरे दुष्ट ! तू यह सोचकर गर्व न कर कि मुझे ब्रह्माका वरदान प्राप्त है। ओ मूढ़ ! स्त्रीके द्वारा वध्य होनेके कारण तूने देवताओंको बहुत सताया है ॥१४॥ ब्रह्माजीका वचन पूर्ण करनेके लिए ही यह अनुपम स्त्रीका रूप धारण करके मैं तुझ अपराधीका वध करने आयी हूँ ॥१ ॥ अतएव यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो अभी स्वर्ग त्यागकर सर्पोंसे भरे पाताललोकको चला जा ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले—देवीके वाक्य सुनकर अपनी सेनाके साथ उपस्थित महिषके मंत्रीने यह सहेतुक वचन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा—॥ १७ ॥ हे देवि ! आप मदसे चूर होकर एक अल्हड़ स्त्रीके समान बात कर रही हैं । कहाँ आप और कहाँ महिषासुर । मुझे तो यह युद्ध असम्भव ही दीखता है ॥ १८ ॥ आप अकेली कोमल बाला हैं और अभी जवानी आ रही है । इसके विपरीत महिषासुर भीमकाय दैत्य हैं । तब उनकी और आपकी तुलना कैसे हो सकती है ? ॥ १९ ॥ उनके पास हाथी, घोड़े, रथ और विविध आयुधधारी पैदल सैनिकोंकी अपार सेना है ॥२०॥ जैसे किसी गजराजको मालतीका फूल मसल देनेमें कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता । उसी प्रकार हे सुजघने ! आपको मारनेमें वीर महिषको कुछ भी आयास न करना पड़ेगा ॥ २१ ॥ यदि मैं आपको कुछ कठोर वचन कह दूँ तो वह शृंगाररसके प्रतिकूल होगा और मैं रसभङ्गसे डरता हूँ ॥ २२ ॥ हमारे महाराज महिषासुर देवताओंके वैरी हैं । फिर भी आप देवीपर वे मोहित हो गये हैं । इस लिए मुझे आपसे साम और दामनीतिपूर्ण बातें ही कहनी हैं ॥२३॥ यदि ऐसा न होता तो व्यर्थ डींग मारनेवाली, मिथ्या अभिमानमें भरी, रूप तथा यौवनके भारसे गर्विता तुम जैसी नारीको मैं अभी अपने बाणसे समाप्त कर चुका होता ॥ २४ ॥ तुम्हारे अलौकिक रूपकी

क्व त्वं कथं युद्धमसंभाव्यमिदं किल ॥ १८ ॥ एकाकिनी पुनर्बाला प्रारब्धयौवना मृदुः ॥ महिषोऽसौ महाकायो दुर्विभाव्यं हि सङ्गतम् ॥ १९ ॥ सैन्यं बहुविधं तस्य हस्त्यश्वरथसंकुलम् ॥ पदातिगणसंविद्धं नानायुधविराजितम् ॥ २० ॥ कः श्रमः करिराजस्य मालतीपुष्पमर्दने ॥ मारणे तव वामोरु महिषस्य तथा रणे ॥ २१ ॥ यदि त्वां परुषं वाक्यं ब्रवीमि स्वल्पमप्यहम् ॥ शृंगारे तद्विरुद्धं हि रसभङ्गाद्बिभेम्यहम् ॥ २२ ॥ राजाऽस्माकं सुररिपुर्वर्तते त्वयि भक्तिमान् ॥ साममेव मया वाच्यं दानयुक्तं तथा वचः ॥ २३ ॥ नोचेद्धन्म्यहमद्यैव बाणेन त्वां मृषावदाम् ॥ मिथ्याऽभिमानचतुरां रूपयौवनगर्विताम् ॥ २४ ॥ स्वामी मे मोहितः श्रुत्वा रूपं ते भुवनातिगम् ॥ तत्प्रियार्थं प्रियं कामं वक्तव्यं त्वयि यन्मया ॥ २५ ॥ राज्यं तव धनं सर्वं दासस्ते महिषः किल ॥ कुरु भावं विशालाक्षि त्यक्त्वा रोषं मृतिप्रदम् ॥२६॥ पतामि पादयोस्तेऽहं भक्तिभावेन भामिनि ॥ पट्टराज्ञी महाराज्ञो भव शीघ्रं शुचिस्मिते ॥२७॥ त्रैलोक्यविभवं सर्वं प्राप्स्यसि त्वमनाविलम् ॥ सुखं संसारजं सर्वं महिषस्य परिग्रहात् ॥२८॥ देव्युवाच ॥ शृणु साचिव वक्ष्यामि वाक्यानां सारमुत्तमम् ॥ शास्त्रदृष्टेन मार्गेण चातुर्यमनुचिंत्य च ॥ २९ ॥ महिषस्य प्रधानस्त्वं मया ज्ञातं धिया किल ॥ पशुबुद्धिस्वभावोऽसि वचनात्तव सांप्रतम् ॥ ३० ॥ मन्त्रिणस्त्वादृशा यस्य स कथं बुद्धिमान्भवेत् ॥ उभयोः सदृशो योगः कृतोऽयं विधिना

प्रशंसा सुनकर मेरे महाराज महिष तुमपर आसक्त हो गये हैं । उनको प्रसन्न रखनेके लिए ही मैं मीठी-मोठी बातें कर रहा हूँ ॥२५॥ जब महाराज महिष स्वयं आपके दास हो चुके हैं, तब उनका समस्त राज्य और धन आपका ही है । अतएव हे विशालनयनी ! आप मृत्युदायक रोष त्यागकर उनके प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित करिए ॥ २६ ॥ हे भामिनी ! मैं भक्तिभावसे आपके पैरों पड़ता हूँ । हे सुन्दर मुसकानवाली सुंदरी ! आप महाराज महिषकी पटरानी बन जायँ ॥२७॥ क्योंकि उनके पाणिग्रहण करते ही तीनों लोककी संपदा तथा संसार भरका सुख आपको अनायास प्राप्त हो जायगा ॥ २८ ॥ देवी बोलीं—हे मंत्री ! सुनो, अब मैं शास्त्रप्रतिपादित मार्गसे तुम्हारी चातुर्यपूर्ण बातोंका सारांशरूपमें उत्तर दे रही हूँ ॥ २९ ॥ तुम्हारी बातें सुनकर ही मैंने समझ लिया कि तुम महिषासुरके प्रधानमंत्री होनेके कारण पशु स्वभावके पुरुष हो ॥ ३० ॥ जिसके पास तुम्हारे जैसे मंत्री हों, वह राजा बुद्धिमान् कैसे हो सकता है ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विधाताने तुम दोनों मूर्खोंकी अच्छी जोड़ी मिलाई है ॥ ३१ ॥ हे मूढ़! जो तुमने कहा कि 'तुम स्त्रीस्वभाव हो' । इस बातपर तनिक विचार तो करो कि क्या मैं पुरुष नहीं हूँ ? वस्तुतः मैं स्त्रीवेषमें पुरुष ही हूँ ॥ ३२ ॥ तुम्हारे महाराज महिषने पूर्वकालमें जो स्त्रीके हाथों मरनेका वरदान माँगा था । उसीसे मैंने समझ लिया कि वह महामूर्ख है और वीरतासे बहुत दूर है ॥ ३३ ॥ स्त्रीके हाथों मरनेसे नपुंसक सुख मानता है, किन्तु वीर पुरुषको तो इससे महान् दुःख होता है । महिष अर्थात् भैंसेकी जैसी बुद्धि हो सकती है, उसीके अनुसार उसने ऐसा बेढंगा वरदान माँगा था ॥ ३४ ॥ इसी कारण मैं स्त्रीका वेष धारण करके अपना काम पूरा करनेके लिए यहाँ आयी हूँ । तुम्हारे धर्मशास्त्रविरोधी वचनोंसे मैं डरनेवाली नहीं हूँ ॥३५॥ जब भाग्य विपरीत होता है, तब एक तृण भी वज्र बन जाता है । जब वह अनुकूल होता है, तब वज्र भी रुई सरीखा कोमल हो जाता है ॥ ३६ ॥ जिसकी मृत्यु समीप आ गयी हो, उसके लिए सेना तथा किलेबन्दी बेकार है । उसका सैनिक जमावड़ा किस काम आयेगा ? ॥ ३७ ॥ जब जीव और देहका सम्बन्ध होता है, उसी समय सुख, दुःख तथा

किल ॥ ३१ ॥ यदुक्तं स्त्रीस्वभावाऽसि तद्विचारय मूढ किम् ॥ पुमान्नाहं तत्स्वभावाऽभवं स्त्रीवेषधारिणी ॥ ३२ ॥ याचितं मरणं पूर्वं स्त्रिया त्वत्प्रभुणा यथा ॥ तस्मान्मन्येऽतिमूर्खोऽसौ न वीररसवित्तमः ॥ ३३ ॥ कामिन्या मरणं क्लीबरतिदं शूरदुःखदम् ॥ प्रार्थितं प्रभुणा तेन महिषेणात्मबुद्धिना ॥ ३४ ॥ तस्मात्स्त्रीरूपमाधाय कार्यं कर्तुमुपागता ॥ कथं बिभेमि त्वद्वाक्यैर्धर्मशास्त्रविरोधकैः ॥ ३५ ॥ विपरीतं यदा दैवं तृणं वज्रसमं भवेत् ॥ विधिश्चेत्सुमुखः कामं कुलिशं तूलवत्तदा ॥ ३६ ॥ किं सैन्यैरायुधैः किं वा प्रपञ्चैर्दुर्गसेवनैः ॥ मरणं सांप्रतं यस्य तस्य सैन्यैस्तु किं फलम् ॥ ३७ ॥ यदाऽयं देहसंबंधो जीवस्य कालयोगतः ॥ तदैव लिखितं सर्वं सुखं दुःखं तथा मृतिः ॥ ३८ ॥ यस्य येन प्रकारेण मरणं दैवनिर्मितम् ॥ तस्य तेनैव जायेत नान्यथेति विनिश्चयः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मादीनां यथा काले नाशोत्पत्ती विनिर्मिते ॥ तथैव भवतः कामं किमन्येषां विचार्यते ॥ ४० ॥ ये मृत्युधर्मिणस्तेषां वरदानेन दर्पिताः ॥ मरिष्यामो न मन्यंते ते मूढा मन्दचेतसः ॥ ४१ ॥ तस्माद्गच्छ नृपं ब्रूहि वचनं मम सत्वरम् ॥ यदाज्ञापयते भूपस्तत्कर्तव्यं त्वया किल ॥ ४२ ॥ मघवा स्वर्गमाप्नोतु देवाः सन्तु हविर्भुजः ॥ यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥ ४३ ॥ अन्यथा चेन्मतिर्मंद महिषस्य दुरात्मनः ॥ तद्युध्यस्व मया सार्धं मरणाय कृतादरः ॥ ४४ ॥ मन्यसे संगरे भग्ना देवा विष्णु-

मृत्युको विधाता निश्चित कर देते हैं ॥ ३८ ॥ दैवने जिसकी जिस तरह मृत्यु निश्चित कर दी है, उसकी मृत्यु उसी प्रकार होगी । उसमें उलट-फेर नहीं हो सकता ॥ ३९ ॥ औरोंकी बात ही क्या है, ब्रह्मादिक देवताओंका भी जिस प्रकार जन्म-मरण निश्चित रहता है, समय आनेपर वैसा ही जन्म-मरण होता है ॥४०॥ जो उन मरणधर्मा ब्रह्मादिक देवताओंके वरदानसे अपनेको अमर समझकर घमण्ड करते हैं, वे मूर्ख हैं और उनकी बुद्धि मारी गयी है । ४१॥ अतएव अब तुम लौट जाओ और अपने महाराजको मेरा अभिप्राय बता दो । उसके बाद वह जो आज्ञा दे, उसका पालन करो ॥ ४२ ॥ मेरा मन्तव्य है कि इन्द्रको स्वर्गका राज्य और देवताओंको यज्ञका भाग मिले । अतएव यदि तुम लोग जीवित रहना चाहते होओ तो अभी पाताललोकको चले जाओ ॥ ४३ ॥ हे मूर्ख ! यदि दुष्ट महिषासुरका विचार विपरीत हो तो मरनेके लिए तैयार होकर मेरे साथ युद्ध करने आये ॥ ४४ ॥ यदि वह सोचता हो कि मैं विष्णु आदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवताओंको युद्धमें हरा चुका हूँ तो तबकी बात दूसरी थी। उस पराजयके दो कारण थे–एक तो विपरीत भाग्य, दूसरे ब्रह्माजीका वरदान ॥४५॥ व्यासजी बोले कि देवीकी बातें सुनकर मंत्री यह सोचने लगा कि अब मैं देवीके साथ युद्ध करूँ या जाकर राजा महिषको सब हाल कह सुनाऊँ ? ॥४६॥ क्योंकि कामातुर होकर महाराजने यह आज्ञा दी थी कि जैसे भी हो, उसे विवाहके लिए राजी करना। सो उस बातको नीरस करके मैं उनके पास लौटकर कैसे जाऊँ ? ॥ ४७ ॥ किन्तु मुझे तो यही ठीक जँचता है कि बिना झगड़ा बढ़ाये मैं महाराजके पास लौट जाऊँ और उन्हें सब बातें बता दूँ ॥४८॥ उसके पश्चात् बुद्धिमान् राजा महिष अपने चतुर मंत्रियोंसे मंत्रणा करके जो उचित समझें, सो करें ॥४९॥ सहसा उस स्त्रीके साथ लड़ना उचित नहीं है। क्योंकि जय और पराजय दोनोंसे महाराजको दुःख होगा ॥ ५० ॥ यदि यह सुंदरी मुझे मार डाले या मैं ही किसी उपायसे इसका वध कर दूँ तो राजा महिष कुपित होंगे ॥ ५१ ॥

पुरोगमाः ॥ दैवं हि कारणं तत्र वरदानं प्रजापतेः ॥ ४५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति देव्या वचः श्रुत्वा चिंतयामास दानवः ॥ किं कर्तव्यं मया युद्धं गन्तव्यं वा नृपं प्रति ॥ ४६ ॥ विवाहार्थमिहाज्ञप्तो राज्ञा कामातुरेण वै ॥ तत्कथं विरसं कृत्वा गच्छेयं नृपसन्निधौ ॥ ४७ ॥ इयं बुद्धिः समीचीना यद्व्रजामि कलिं विना ॥ यथाऽऽगतं तथा शीघ्रं राज्ञे संवेदयाम्यहम् ॥ ४८ ॥ स प्रमाणं पुनः कार्ये राजा मतिमतां वरः ॥ करिष्यति विचार्यैव सचिवैर्निपुणैः सह ॥ ४९ ॥ सहसा न मया युद्धं कर्तव्यमनया सह ॥ जये पराजये वापि भूपतेरप्रियं भवेत् ॥ ५० ॥ यदि मां सुन्दरी हन्यादहं वा हन्मि तां पुनः ॥ येन केनाप्युपायेन स कुप्येत्पार्थिवः किल ॥ ५१ ॥ तस्मात्तत्रैव गत्वाऽहं बोधयिष्यामि तं नृपम् ॥ यथाद्याभिहितं देव्या यथारुचि करोतु सः ॥५२॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्य मेधावी जगाम नृपसन्निधौ ॥ प्रणम्य तमुवाचेदं कृतांजलिरमात्यजः ॥५३॥ मंत्र्युवाच ॥ राजन्देवी वरारोहा सिंहस्योपरि संस्थिता ॥ अष्टादशभुजा रम्या वरायुधधरा परा ॥ ५४ ॥ सा मयोक्ता महाराज महिषं भज भामिनि ॥ महिषी भव राज्ञस्त्वं त्रैलोक्याधिपतेः प्रिया ॥ ५५ ॥ पट्टराज्ञी त्वमेवास्य भविता नात्र संशयः ॥ स तवाज्ञाकरो जातो वशवर्ती भविष्यति ॥ ५६ ॥ त्रैलोक्यविभवं भुक्त्वा चिरकालं वरानने ॥ महिषं पतिमासाद्य योषितां सुभगा भव ॥ ५७ ॥ इति मद्वचनं श्रुत्वा सा स्मया-

अतएव मैं वहाँ जाकर इस सुन्दरीकी कही हुई बातें बता दूँ। उसके बाद उनकी जैसी रुचि हो, वैसा करें ॥ ५२ ॥ व्यासजी बोले–ऐसा विचार करके मुख्यमन्त्री राजा महिषके पास लौट गया। उसको प्रणाम करनेके बाद हाथ जोड़कर उसने कहा ॥ ५३ ॥ मन्त्री बोला—हे राजन् ! वह सुन्दरी देवी सदा सिंहपर सवार रहती है। उस परम रम्य नारीकी अठारह भुजाओंमें उच्चकोटिके शस्त्रास्त्र विद्यमान रहते हैं ॥ ५४ ॥ हे महाराज ! मैंने उस नारीसे कहा—हे भामिनी ! तुम महाराज महिषसे प्रेम करो। ऐसा करके तुम उन त्रिलोकीके राजाकी प्रिय पटरानी बन जाओगी। क्योंकि तुम्हीं उनकी पटरानी बनने योग्य हो। इसमें कुछ सन्देह नहीं है। महाराज महिष आज्ञाकारी दास बनकर सदा तुम्हारे अधीन रहेंगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे सुमुखी ! राजा महिषको पतिरूपमें पाकर तीनों लोककी सम्पदाका उपभोग करती हुई तुम समस्त स्त्रीजातिमें भाग्यवती समझी जाओगी ॥ ५७ ॥ मेरी बातें सुनकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह विशालनयनी सुन्दरी आवेशमें आकर मन्द-मन्द मुसकाती हुई बोली–॥५८॥ महिषके गर्भसे जायमान उस अधम पशु महिष (भैंसे) को देवताओंके कल्याणार्थ बलिदान करके मैं देवीको अर्पण कर दूँगी ॥ ५९ ॥ संसारमें ऐसी कौन मूर्ख स्त्री होगी, जो महिषको अपना पति बनाना चाहेगी ? हे मन्दबुद्धे ! मुझ जैसी स्त्री उस पशुकी प्रेमपात्री कैसे बन सकती है ? ॥६०॥ सींगवाली और डकराती हुई भैंस ही उस शृंगधारी भैंसेकी स्त्री बन सकती है । मैं उसके योग्य शठ स्त्री नहीं हूँ ॥६१॥ मैं तो देवताओंके शत्रु महिषासुरको रणभूमिमें युद्ध करके मारूँगी । अरे दुष्ट ! यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो अभी स्वर्ग त्यागकर पाताललोकको चला जा ॥६२॥ हे राजन् ! उस मदमत्त रमणीने ऐसी-ऐसी बहुतेरी कठोर बातें कहीं । उन्हें सुनकर बारम्बार विचार करनेके बाद मैं आपके पास चला आया ॥ ६३ ॥ आपका रस न भङ्ग हो जाय, यही सोचकर मैंने उसके साथ युद्ध नहीं किया । और फिर आपकी आज्ञाके

वेशमोहिता ॥ मामुवाच विशालाक्षी स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ ५८ ॥ महिषीगर्भसम्भूतं पशूनामधमं किल ॥ बलिं दास्याम्यहं देव्यै सुराणां हितकाम्यया ॥ ५९ ॥ का मूढा कामिनी लोके महिषं वै पतिं भजेत् ॥ मादृशी मन्दबुद्धे किं पशुभावं भजेदिह ॥ ६० ॥ महिषी महिषं नाथं सशृंगा शृंगसंयुतम् ॥ कुरुते क्रन्दमाना वै नाहं तत्सदृशी शठ ॥ ६१ ॥ करिष्येऽहं मृधे युद्धं हनिष्ये त्वां सुराप्रियम् ॥ गच्छ वा दुष्ट पातालं जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ ६२ ॥ परुषं तु तया वाक्यमित्युक्तं नृप मत्तया ॥ तच्छ्रुत्वाऽहं समायातः प्रविचिंत्य पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ रसभङ्गं विचिंत्यैव न युद्धं तु मया कृतम् ॥ आज्ञां विना तवात्यन्तं कथं कुर्यां वृथोद्यमम् ॥६४॥ साऽतीव च बलोन्मत्ता वर्तते भूप भामिनी ॥ भवितव्यं न जाने मे किं वा भावि भविष्यति ॥ ६५ ॥ कार्येऽस्मिंस्त्वं प्रमाणं नो मन्त्रोऽतीव दुरासदः ॥ युद्धं पलायनं श्रेयो न जानेऽहं विनिश्चयम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ व्यास उवाच॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा महिषो मदविह्वलः ॥ मन्त्रिवृद्धान् समाहूय राजा वचनमब्रवीत् ॥१॥ राजोवाच ॥ मन्त्रिणः किं च कर्तव्यं विश्रब्धं ब्रूत मा चिरम् ॥ आगता देवविहिता मायेयं शाम्बरीव किम् ॥२॥ कार्येऽस्मिन्निपुणा यूयमुपायेषु विचक्षणाः ॥ सामादिषु चकर्तव्यः कोऽत्र

बिना मैं व्यर्थकी लड़ाई कर ही कैसे सकता था ? ॥६४॥ हे राजन् ! उस रमणीको अपने पराक्रमपर बहुत अभिमान है । मैं भविष्यकी बात नहीं जानता कि क्या होनेवाला है ॥६५॥ इस विषयमें आप जो निर्णय कर दें, वह मुझे मान्य होगा । मैं नहीं समझ पाता कि इस प्रसंगमें युद्ध करना या स्वर्ग त्यागकर पलायन कर जाना चाहिए । इन दोनों बातोंमें क्या करना श्रेयस्कर होगा, इस विषयमें कुछ परामर्श देना भी मेरे लिए दुरूह है ॥६६॥ इति श्रीदेवीभागवते पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(दैत्योंकी मंत्रणा और युद्धके लिए ताम्रका प्रस्थान) व्यासजी बोले—हे महाराज ! मुख्य मन्त्रीके वचन सुनकर मदमत्त महिषने अपने बड़े-बूढ़े मन्त्रियोंको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ राजा महिष बोला—हे मन्त्रिगण ! आप लोग शीघ्र यह निर्णय करें कि अब हमें क्या करना चाहिए । शाम्बरी माया सदृश विकराल उस स्त्रीको भेजकर देवताओंने कोई माया तो नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फैलायी है ? ॥ २ ॥ आपलोग मंत्रणाके कार्यमें पूर्ण निपुण हैं । अतएव अब बताइए कि इस अवसरपर साम-दान आदि नीतियोंमें किस नीतिका उपयोग किया जाय ? ॥३॥ मंत्रियोंने कहा—हे नृपसत्तम ! सदा सत्य और प्रिय बात ही कहनी चाहिए । विद्वान्का यह कर्तव्य है कि जिससे आत्मकल्याण होता हो, उसी बातको स्वीकार करे ॥४॥ हे राजन् ! सत्य वचन हितकारी होता है और प्रिय वचनसे हानि होती है । जैसे औषधि अप्रिय होती हुई भी रोगनाश करती है ॥ ५ ॥ हे पृथिवीपते ! सत्य वचन सुनने और माननेवाले प्राणी दुर्लभ होते हैं । क्योंकि मीठी बातें कहनेवालोंकी ही संख्या अधिक होती है ॥६॥ हे राजन् ! इस गहन विषयमें हमलोग कह ही क्या सकते हैं ? फिर समस्त त्रिलोकीमें ऐसा कौन प्राणी है, जो भविष्यमें होनेवाले शुभ या अशुभ परिणामको पहलेसे बता सके ॥ ७ ॥ राजा महिषने कहा—आप लोग अलग-अलग अपना विचार बतलायें । उन्हें सुनकर मैं स्वयं विचार करूँगा ॥ ८ ॥ क्योंकि कार्यकालमें विद्वान्का यह कर्तव्य होता है कि बहुतेरे विद्वानोंके मन्तव्य सुन तथा उनपर पुनः पुनः विचार करके जिसमें अपना कल्याण देखे, वही कार्य करे ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले

मह्यं ब्रुवंतु च ॥ ३ ॥ मन्त्रिण ऊचुः ॥ सत्यं सदैव वक्तव्यं प्रियं च नृपसत्तम ॥ कार्यं हितकरं नूनं विचार्यं विबुधैः किल ॥ ४ ॥ सत्यं च हितकृद्राजन्प्रियं चाहितकृद्भवेत् ॥ यथौषधं नृणां लोके ह्यप्रियं रोगनाशनम् ॥ ५ ॥ सत्यस्य श्रोता मंता च दुर्लभः पृथिवीपते ॥ वक्ताऽपि दुर्लभः कामं बहवश्चाटुभाषकाः ॥ ६ ॥ कथं ब्रूमोऽत्र नृपते विचारे गहने त्विह ॥ शुभं वाऽप्यशुभं वाऽपि को वेत्ति भुवनत्रये ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ स्वस्वमत्यनुसारेण ब्रुवंत्वद्य पृथक्पृथक् ॥ येषां हि यादृशो भावस्तच्छ्रुत्वा चिंतयाम्यहम् ॥८॥ बहूनां मतमाज्ञाय विचार्यं च पुनः पुनः ॥ यच्छ्रेयस्तद्धि कर्तव्यं कार्यं कार्यविचक्षणैः ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यैवं वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षो महाबलः ॥ उवाच तरसा वाक्यं रंजयन्पृथिवीपतिम् ॥ १० ॥ राजन्नारी बराकीयं सा ब्रूते मदगर्विता ॥ विभीषिकामात्रमिदं ज्ञातव्यं वचनं त्वया ॥ ११ ॥ को बिभेति स्त्रियो वाक्यैर्दुरुक्तै रजदुर्मदैः ॥ अनृतं साहसं चेति जानन्नारीविचेष्टितम् ॥ १२ ॥ जित्वा त्रिभुवनं राजन्नद्य कांताभयेन वै ॥ दीनत्वेऽप्ययशो नूनं वीरस्य भुवने भवेत् ॥ १३ ॥ तस्माद्याम्यहमेकाकी युद्धाय चंडिकां प्रति ॥ हनिष्ये तां महाराज निर्भयो भव सांप्रतम् ॥ १४ ॥ सेनावृतोऽहं गत्वा तां शस्त्रास्त्रैर्विविधैः किल ॥ निषूदयामि दुर्मर्षां चंडिकां चंडविक्रमाम् ॥ १५ ॥ बद्ध्वा सर्पमयैः पाशैरानयिष्ये तवांतिकम् ॥ वशगा तु सदा ते स्यात्पश्य राजन्बलं मम ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥

कि महिषकी बात सुनकर महाबली विरूपाक्षने राक्षसराजको प्रसन्न करते हुए कहा ॥१०॥ विरूपाक्ष बोला—हे राजन् ! वह बेचारी नारी मदमत्त होकर जो ऐसी बढ़ी-चढ़ी बातें कहती है, वह केवल धमकी है ॥११॥ झुठाई और साहस ये दुर्गुण स्त्रियोंमें सदा पाये जाते हैं । इस बातको जानता हुआ भी कौन प्राणी उनकी युद्धसम्बन्धी तुच्छ धमकियोंसे डरेगा ? ॥१२॥ हे राजन् ! तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करके आप उस स्त्रीसे मत डरिए । यदि उसकी अधीनता स्वीकार करिएगा तो संसारमें आपका बड़ा अपयश होगा ॥ १३ ॥ अतएव हे महाराज ! मैं अकेला उस चण्डिकासे युद्ध करने जा रहा हूँ । अब आप निर्भय हों, मैं उसे मारकर ही लौटूँगा ॥१४॥ अपनी सेनाके साथ विविध शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर मैं जाऊँगा और उस प्रचंड पराक्रमसम्पन्न स्त्रीको सदाके लिए समाप्त कर दूँगा ॥१५॥ अथवा नागपाशमें बाँधकर जीवित दशामें ही उसे आपके पास ले आऊँगा । जिससे वह सर्वदाके लिए आपके वशमें हो जायगी ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे राजन् ! आप मेरा पराक्रम तो देखिए॥१६॥ व्यासजी बोले कि विरूपाक्षके वचन सुनकर दुर्धर दैत्यने कहा–हे महाराज! बुद्धिमान् विरूपाक्षने ठीक ही कहा है ॥१७॥ आप स्वयं बुद्धिमान् हैं। अब मैं भी कुछ सुन्दर बातें कह रहा हूँ, सुनिए। अनुमानसे ऐसा ज्ञात होता है कि वह सुन्दर दाँतोंवाली सुन्दरी कामातुरा है ॥ १८ ॥ प्रायः देखा जाता है कि ऐसी रूपगर्विता नायिकायें धमकाकर अपने चहीतेको वशमें करनेका उद्योग करती हैं। वैसे ही वह आपको अपने वशमें करना चाहती है ॥१९॥ शृंगाररसके अभिज्ञ लोग ऐसी मानिनी स्त्रियोंके हाव-भावको भली भाँति जानते हैं। अपनेपर आसक्त पुरुषके प्रति सुन्दरियाँ ऐसी उल्टी-सीधी बातें करती ही हैं ॥ २० ॥ कामशास्त्रके जानकार विरले ही पुरुष उनका अभिप्राय समझ पाते हैं। जैसे उसने कहा है कि 'मैं युद्धभूमिमें तुम्हें बाणोंसे मारूँगी' ॥ २१ ॥ सो इस बातमें बहुत बड़ा भेद छिपा हुआ है। जिसे हेतुविद्याके निपुण विद्वान् ही समझ सकते हैं। उनके कथनानुसार तो सुन्दरियोंके बाण कटाक्ष ही होते हैं ॥ २२ ॥ उनके व्यंग्य वचनोंको पुष्पाञ्जलि समझना चाहिए। हे राजन् ! कटाक्षके सिवाय आपपर अन्य प्रकारके बाण भला वह क्या चलायेगी?

विरूपाक्षवचः श्रुत्वा दुर्धरो वाक्यमब्रवीत् ॥ सत्यमुक्तं वचो राजन्विरूपाक्षेण धीमता ॥ १७ ॥ ममापि वचनं श्लक्ष्णं श्रोतव्यं धीमता त्वया ॥ कामातुरैषा सुदती लक्ष्यतेऽप्यनुमानतः ॥ १८ ॥ भवत्येवंविधा कामं नायिका रूपगर्विता ॥ भीषयित्वा वरारोहा त्वां वशे कर्तुमिच्छति ॥ १९ ॥ हावोऽयं मानिनीनां वै तं वेत्ति रसवित्तमः ॥ वक्रोक्तिरेषा कामिन्याः प्रियं प्रति परायणम् ॥ २० ॥ वेत्ति कोऽपि नरः कामं कामशास्त्रविचक्षणः ॥ यदुक्तं नाम बाणैस्त्वां वधिष्ये रणमूर्धनि ॥२१॥ हेतुगर्भमिदं वाक्यं ज्ञातव्यं हेतुवित्तमैः ॥ बाणास्तु मानिनीनां वै कटाक्षा एव विश्रुताः ॥ २२ ॥ पुष्पांजलिमयाश्चान्ये व्यंग्यानि वचनानि च ॥ का शक्तिरन्यबाणानां प्रेरणे त्वयि पार्थिव ॥ २३ ॥ तादृशीनां न सा शक्तिर्ब्रह्मविष्णुहरादिषु ॥ ययोक्तं नेत्रबाणैस्त्वां हनिष्ये मन्द पार्थिवम् ॥ २४ ॥ विपरीतं परिज्ञातं तेनारसविदा किल ॥ पातयिष्यामि शय्यायां रणमय्यां पतिं तव ॥ २५ ॥ विपरीतरतिक्रीडाभाषणं ज्ञेयमेव तत् ॥ करिष्ये विगतप्राणं यदुक्तं वचनं तया ॥ २६ ॥ वीर्यं प्राणा इति प्रोक्तं तद्विहीनं न चान्यथा ॥ व्यंग्याधिक्येन वाक्येन वरयत्युत्तमा नृप ॥ २७ ॥ तद्वै विचारतो ज्ञेयं रसग्रन्थविचक्षणैः ॥ इति ज्ञात्वा महाराज कर्तव्यं रससंयुतम् ॥२८॥ सामदानद्वयं

॥ २३ ॥ जब ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपपर बाण नहीं चला सके, तब वह अबला कैसे चला सकेगी? उसके कथनका तात्पर्य यह है कि हे मन्द (कामशास्त्रके अनभिज्ञ) ! मैं तुम्हें अपने कटाक्षबाणोंसे समाप्त कर दूँगी ॥ २४ ॥ यहाँसे गये हुए मुख्यमंत्री महोदय अरसिक थे। इसीसे उन्होंने उसकी बातका अर्थ उलटा समझा। उसने जो कहा कि मैं तुम्हारे स्वामीको रणमयी शय्यापर सुलाऊँगी ॥ २५ ॥ इस वचनका तात्पर्य यह हुआ कि मैं महिषासुरके साथ विपरीत रतिक्रीडा करूँगी। उसने जो कहा कि मैं उन्हें प्राणहीन कर दूँगी ॥ २६ ॥ इस बातका मतलब यह हुआ कि मैं उन्हें वीर्यहीन कर दूँगी। क्योंकि पुरुषमें वीर्य ही प्राण होता है। हे राजन् ! इन व्यंग्यभरी बातोंसे वह उत्तम कोटिकी स्त्री आपको पतिरूपमें वरण करना चाहती है ॥२७॥ उसकी बातोंका मैंने जो मतलब बताया है, उसे कामशास्त्रके विद्वान् पुरुष सूक्ष्मरूपसे विचार करके ही समझ सकते हैं। हे महाराज ! इस प्रकार आपने उसका अभिप्राय समझ लिया। अब आप उसके प्रति सरस व्यवहार करिए ॥२८॥ हे भूपते ! मधुर वचन तथा प्रलोभन ये ही दो उपाय मानिनी स्त्रियोंको वशमें करनेके हैं–तीसरा उपाय नहीं है। रुष्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा मदगर्विता स्त्रियाँ इन्हीं दो उपायोंसे वशमें होती हैं ॥ २९ ॥ सो मैं अपनी मीठी-मीठी बातोंसे भुलावेमें डालकर उसे आपके पास ले आऊँगा । हे राजन् ! बहुत कहनेसे क्या लाभ, जैसे भी होगा—उसे मैं वशमें कर लूँगा ॥३०॥ अभी जाकर ऐसा उपाय करूँगा कि जिससे वह सदाके लिए आपकी दासी बन जायगी । व्यासजी बोले कि दुर्धरकी बातें सुनकर तत्त्वज्ञानी ताम्रने कहा–हे महाराज ! आप मेरी बात सुनिए। क्योंकि मेरी बातोंमें आपको तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र, वीररस तथा राजनीतिकी झलक मिलेगी ॥३१॥३२॥ हे मानद ! वह बुद्धिमती रमणी न कामातुरा है, न आपपर आसक्त है और न उसने व्यंग्यभरी बातें ही कही हैं ॥ ३३ ॥ हे महाबाहो ! सबसे विचित्र बात तो यह है कि वह अत्यधिक रूपवती और मनोहारिणी युवती बिना किसीसे सहायता लिये अकेली युद्ध करनेके लिए यहाँ चली आयी है ॥ ३४ ॥ आजतक तीनों लोकमें अठारह भुजाओंवाली पराक्रमसम्पन्न कोई स्त्री न कभी देखी और न सुनी ही गयी है ॥३५॥ उसकी सभी भुजाओंमें बड़े-बड़े सुदृढ़ शस्त्रास्त्र विद्यमान रहते हैं। हे राजन् ! इन लक्षणोंसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अब समय हमारे विपरीत हो गया है ॥३६॥

तस्या नान्योपायोऽसि भूपते ॥ रुष्टा वा गर्विता वाऽपि वशगा मानिनी भवेत् ॥ २९ ॥ तादृशैर्मधुरैर्वाक्यैरानयिष्ये तवांतिकम् ॥ किं बहूक्तेन मे राजन्कर्तव्या वशवर्तिनी ॥ ३० ॥ गत्वा मयाऽधुनैवेयं किंकरीव सदैव ते ॥ व्यास उवाच ॥ इत्थं निशम्य तद्वाक्यं ताम्रस्तत्त्वविचक्षणः ॥ ३१ ॥ उवाच वचनं राजन्निशामय मयोदितम् ॥ हेतुमद्धर्मसहितं रसयुक्तं नयान्वितम् ॥ ३२ ॥ नैषा कामातुरा बाला नानुरक्ता विचक्षणा ॥ व्यंग्यानि नैव वाक्यानि तयोक्तानि तु मानद ॥ ३३ ॥ चित्रमत्र महाबाहो यदेका वरवर्णिनी ॥ निरालम्बा समायाति चित्ररूपा मनोहरा ॥ ३४ ॥ अष्टादशभुजा नारी न श्रुता न च वीक्षिता ॥ केनापि त्रिषु लोकेषु पराक्रमवती शुभा ॥ ३५ ॥ आयुधान्यपि तावंति धृतानि बलवंति च ॥ विपरीतमिदं मन्ये सर्वं कालकृतं नृप ॥ ३६ ॥ स्वप्नानि दुर्निमित्तानि मया दृष्टानि वै निशि ॥ तेन जानाम्यहं नूनं वैशसं समुपागतम् ॥ ३७ ॥ कृष्णाम्बरधरा नारी रुदती च गृहांगणे ॥ दृष्टा स्वप्नेऽप्युषःकाले चिंतितव्यस्तदत्ययः ॥३८॥ विकृताः पक्षिणो रात्रौ रोरुवंति गृहे गृहे ॥ उत्पाता विविधा राजन्प्रभवंति गृहे गृहे ॥ ३९ ॥ तेन जानाम्यहं नूनं कारणं किंचिदेव हि ॥ यत्त्वां प्रार्थयते बाला युद्धाय कृतनिश्चया ॥ ४० ॥ नैषाऽस्ति मानुषी नो वा गांधर्वी न तथाऽऽसुरी ॥ देवैः कृतेयं ज्ञातव्या माया मोहकरी विभो ॥४१॥ कातरत्वं न कर्तव्यं ममैतन्मतमित्यलम् ॥ कर्तव्यं सर्वथा युद्धं यद्भाव्यं

आजकल मैं रातको बड़े भयंकर सपने देखता हूँ । इससे ऐसा ज्ञात होता है कि अब हमारा विनाश शीघ्र ही होनेवाला है ॥३७॥ आज ही तड़के मैंने स्वप्नमें देखा है कि एक स्त्री काली धोती पहने घरके आँगनमें खड़ी रो रही है । इससे आपपर आनेवाले अमंगलकी सूचना मिलती है ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! रात्रिके समय आजकल घर-घर बड़े विचित्र स्वरमें पक्षी रोया करते हैं । प्रत्येक दैत्यके घर नाना प्रकारके उत्पात होते दिखाई देते हैं ॥३९॥ इन सब लक्षणोंसे मेरा अनुमान है कि कोई अनर्थ अवश्य होनेवाला है। तभी तो युद्धका दृढ़ निश्चय करके वह युवती आपको निर्भीकभावसे चुनौती दे रही है ॥४०॥ हे विभो ! वह न मानवी, न गान्धर्वी और न आसुरी ही माया है। बल्कि वह देवताओं द्वारा निर्मित दैवी माया है । जो हम सबको मोहमें डालनेके लिए यहाँ आयी है ॥ ४१ ॥ अतएव मेरा यह दृढ़ मत है कि इस समय कायर न बनकर तत्काल युद्धघोषणा कर देनी चाहिए । बादमें जो होना होगा, सो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होगा ।।४२।। भविष्यमें विधाता शुभ या अशुभ क्या करनेवाला है, इसे कौन जानता है ? अतएव विज्ञ लोगोंका कर्तव्य है कि धैर्य धारण करके समयकी प्रतीक्षा करें ।। ४३ ।। हे महाराज ! जीवन और मरण सदा दैवके अधीन रहता है । तीनों लोकमें कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है, जो दैवके काममें उलट-फेर कर सके ।।४४।। तब महिषासुरने कहा—हे महाभाग ताम्र ! युद्धके लिए तैयार होकर तुम्हीं जाओ और धर्मयुद्ध करके उस मानिनी सुन्दरीको पकड़ लाओ ।।४५।। जब देखो कि युद्धमें हराकर वह नहीं पकड़ी जा सकती, तब उसे मार डालना । नहीं तो जहाँ तक सम्भव हो, तहाँ तक उसका सम्मान करना ।। ४६ ।। हे सर्वज्ञ ! तुम असाधारण वीर और कामशास्त्रके पंडित हो । अतएव जिस किसी भी उपायसे सम्भव हो, उस सुन्दरीपर अवश्य विजय प्राप्त करो ।।४७।। हे वीर ! हे महाबाहो ! तुम विशाल सेना लेकर शीघ्र वहाँ जाओ और बारम्बार इस बातका अनुसन्धान करो कि वह सुन्दरी यहाँ किस लिए आयी है ? यह भी

तद्भविष्यति ।। ४२ ।। को वेद दैवकर्तव्यं शुभं वाऽप्यशुभं तथा ।। अवलंव्य धिया धैर्यं स्थातव्यं विचक्षणैः ।। ४३ ।। जीवितं मरणं पुंसां दैवाधीनं नराधिप ।। कोऽपि नैवान्यथा कर्तुं समर्थो भुवनत्रये ।। ४४ ।। महिष उवाच ।। गच्छ ताम्र महाभाग युद्धाय कृतनिश्चयः ।। तामानय वरारोहां जित्वा धर्मेण मानिनीम् ।। ४५ ।। न भवेद्वशगा नारी संग्रामे यदि सा तव ।। हंतव्या नान्यथा कामं माननीया प्रयत्नतः ।। ४६ ।। वीरस्त्वमसि सर्वज्ञ कामशास्त्रविशारदः ।। येन केनाप्युपायेन जेतव्या वरवर्णिनी ।। ४७ ।। त्वरन्वीर महाबाहो सैन्येन महता वृतः ।। तत्र गत्वा त्वया ज्ञेया विचार्य च पुनः पुनः ।। ४८ ।। किमर्थमागता चेयं ज्ञातव्यं तद्धि कारणम् ।। कामाद्वा वैरभावाद्व माया कस्येयमित्युत ।। ४९ ।। आदौ तन्निश्चयं कृत्वा ज्ञातव्यं तच्चिकीर्षितम् ।। पश्चाद्युद्धं प्रकर्तव्यं यथायोग्यं यथाबलम् ।। ५० ।। कातरत्वं न कर्तव्यं निर्दयत्वं तथा न च ।। यादृशं हि मनस्तस्याः कर्तव्यं तादृशं त्वया ।। ५१ ।। व्यास उवाच ।। इति तद्भाषितं श्रुत्वा ताम्रः कालवशं गतः ।। निर्गतः सैन्यसंयुक्तः प्रणम्य महिषं नृपम् ।। ५२ ।। गच्छन्मार्गे दुरात्माऽसौ शकुनान्वीक्ष्य दारुणान् ।। विस्मयं च भयं प्राप यममार्गप्रदर्शकान् ।। ५३ ।। स गत्वा तां समालोक्य देवीं सिंहोपरि स्थिताम् ।। स्तूयमानां सुरैः सर्वैः सर्वायुधविभूषिताम् ।। ५४ ।। तामुवाच विनीतः सन्वाक्यं मधुरया गिरा ।। सामभावं समाश्रित्य विनयावनतः

देखना कि वह कामातुरा है या हमसे वैरभाव रखती है ? यह भी पता लगाना कि यह किसकी माया है ।। ४८ ।। ४९ ।। ऊपर कही हुई बातोंका पता लगानेके बाद यह सोचना कि वह क्या करना चाहती है । उसका बलाबल ज्ञात हो जानेके बाद ही उससे युद्ध करना ।।५०।। उसके समक्ष न कायरता दिखाना और न एकदम निर्दयी बन जाना । जैसा उसका मनोभाव देखना, उसीके अनुसार सब काम करना ।। ५१ ।। व्यासजी बोले—महिषासुरकी बातें सुनकर ताम्रने उसे प्रणाम किया और कालके वशीभूत होकर सेनाके साथ चल पड़ा ।।५२।। चलते समय रास्तेमें उस दुष्टको यममार्ग दिखानेवाले बड़े भयानक अशकुन दिखायी पड़े । उन्हें देखकर वह बहुत विस्मित और भयभीत हुआ ।।५३।। भगवतीके समीप पहुँचकर उसने देखा कि देवी सिंहपर सवार हैं, विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र उनकी भुजाओंमें विद्यमान हैं और सब देवता उनकी स्तुति कर रहे हैं ।।५४।। तब सामनीतिका अवलम्बन करके बड़े विनीत भावसे शांति-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्वक मधुर वाणीमें उसने भगवतीसे कहा—॥५५॥ दैत्योंके अधिपति तथा विशाल श्रृङ्गधारी राजा महिष आपके रूप और गुणपर मोहित होकर आपके साथ विवाह करना चाहते हैं ॥५६॥ हे विशालनयनी ! देवताओंके भी अजेय महाराज महिषसे आप प्रेम करिए । हे कोमल अङ्गोंवाली सुंदरी ! उन्हें पति बनाकर आप अद्भुत नन्दन वनमें विहार करिए ॥ ५७ ॥ सब सुखोंके आगारस्वरूप इस सर्वाङ्गसुन्दर शरीरको पाकर आनन्द लीजिए और दुःखको ठोकर मारिए ॥५८॥ हे करिशावक सदृश जाँघोंवाली सुंदरी ! आपके कमलजैसे कोमल हाथ तो फूलके गेंद खेलने योग्य हैं । तब उनमें इन शस्त्रास्त्रोंको क्यों धारण कर रक्खा है ? ॥५९॥ भौंहरूपी धनुषके रहते आप यह दूसरा धनुष क्यों सम्हाले हुए हैं ? कटाक्षरूपी स्वाभाविक बाण तो पास थे ही, फिर आप बाण क्यों लिये हैं ? ॥ ६० ॥ इस संसारमें युद्ध बड़ी दुखदायी वस्तु है । जो इसका तत्त्व जानते हैं, वे युद्धसे सदा दूर रहते हैं । अधिकांश साम्राज्यलोभी लोग ही परस्पर युद्ध

स्थितः ॥ ५५ ॥ देवि दैत्येश्वरः शृंगी त्वद्रूपगुणमोहितः ॥ स्पृहां करोति महिषस्त्वत्पाणिग्रहणाय च ॥ ५६ ॥ भावं कुरु विशालाक्षि तस्मिन्नमर-
दुर्जये ॥ पतिं तं प्राप्य मृद्वंगि नन्दने विहराद्भुते ॥ ५७ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरं देहं प्राप्य सर्वसुखास्पदम् ॥ सुखं सर्वात्मना ग्राह्यं दुःखं हेयमिति
स्थितिः ॥ ५८ ॥ करभोरु किमर्थं ते गृहीतान्यायुधान्यलम् ॥ पुष्पकंदुकयोग्यास्ते कराः कमलकोमलाः ॥ ५९ ॥ भ्रूचापे विद्यमानेऽपि धनुषा किं
प्रयोजनम् ॥ कटाक्षा विशिखाः संति किं बाणैर्निष्प्रयोजनैः ॥ ६० ॥ संसारे दुःखदं युद्धं न कर्तव्यं विजानता ॥ लोभासक्ताः प्रकुर्वंति संग्रामं च
परस्परम् ॥ ६१ ॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥ भेदनं निजगात्राणां कस्य तज्जायते मुदे ॥ ६२ ॥ तस्मात्त्वमपि तन्वंगि प्रसादं
कर्तुमर्हसि ॥ भर्तारं भज मे नाथं देवदानवपूजितम् ॥ ६३ ॥ स तेऽत्र वांछितं सर्वं करिष्यति मनोरथम् ॥ त्वं पट्टमहिषी राज्ञः सर्वथा नात्र
संशयः ॥ ६४ ॥ वचनं कुरु मे देवि प्राप्स्यसे सुखमुत्तमम् ॥ संग्रामे जयसंदेहः कष्टं प्राप्य न संशयः ॥ ६५ ॥ जानासि राजनीतिं त्वं यथावद्वर-
वर्णिनि ॥ भुंक्ष्व राज्यसुखं पूर्णं वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ६६ ॥ पुत्रस्ते भविता कान्तः सोऽपि राजा भविष्यति ॥ यौवने क्रीडयित्वाऽन्ते वार्धक्ये
सुखमाप्स्यसि ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

करते हैं ॥६१॥ अतएव पुष्पोंसे भी युद्ध नहीं करना चाहिए । फिर तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धकी तो बात ही क्या है । व्यर्थ अपना शरीर बिंधवाना भला किसको पसन्द आयेगा ? ॥ ६२ ॥ अतएव हे तन्वङ्गि! तुम कृपा करो और देवताओं तथा दानवों द्वारा पूजित मेरे स्वामीको पतिरूपमें स्वीकार कर लो ॥६३॥ वे तुम्हारी सब कामनायें पूरी कर देंगे । उनसे प्रेम करके तुम महाराज महिषकी पटरानी बन जाओगी । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ६४ ॥ हे देवि ! तुम मेरी बात मानो । इससे उत्तम सुख प्राप्त करोगी । संग्रामसे विजयमें सन्देह रहता है और कष्टका कोई वारापार नहीं है ॥ ६५ ॥ हे वरवर्णिनि ! आप राजनीति जानती हैं । अतः महिषको राजी करके हजारों वर्षतक राज्यसुख भोगिए ॥६६॥ आपका सुन्दर पुत्र उत्पन्न होकर राज्यसिंहासनपर बैठेगा । इस प्रकार जवानीमें सुख भोगकर वृद्धावस्थामें भी आप बड़ा आनन्द पायेंगी ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(राजा महिषके युद्धमंत्रिमण्डलका निश्चय) व्यासजी बोले–असुर ताम्रका वचन सुनकर जगदम्बाने मेघके समान गम्भीर वाणीमें हँसकर कहा ॥ १ ॥ देवी बोलीं–हे ताम्र ! तुम मरनेको उद्यत उस मन्दबुद्धि अपने स्वामी महिषके पास लौट जाओ। उसका ज्ञान लुप्त हो गया है। वह बड़ा कामी पुरुष है ॥२॥ तुम जाकर उससे कह दो कि जिस प्रकार घास खानेवाली प्रौढा महिषी तुम्हारी माता थी, उस तरह लम्बी पूँछ, महान् उदर और बड़ी-बड़ी सींगवाली भैंस मैं नहीं हूँ ॥३॥ जब मैंने देवराज इन्द्र, विष्णु, शिवजी, कुबेर, वरुण और ब्रह्माजी जैसे बड़े-बड़े देवताओंको नहीं चाहा, तब एक पशुके किस गुणपर रीझकर मैं उसे अपना पति बनाऊँगी ? ऐसा करनेसे तो संसारमें मेरी भर्त्सना ही की जायगी ॥ ४ ॥ ५ ॥ मैं पति खोजनेवाली साधारण स्त्री नहीं हूँ। मेरे पति तो विद्यमान हैं। वे स्वयंप्रभु, विश्वकर्ता, सर्वसाक्षी, अकर्ता, निःस्पृह, स्थायी, निर्गुण, निर्मम, अनंत, निरालम्ब, निराश्रय, सर्वज्ञ, सर्वग, सर्वसाक्षी, पूर्ण, पूर्णाशय, शिव, सर्वावास, सर्वक्षम, शान्त, सर्वदृक् और सर्वभावगम्य हैं! उन्हें त्यागकर मैं उस मूर्ख महिषको क्यों अपना पति बनाना चाहूँगी ? ॥ ६–८ ॥ अतएव अब तू उठ और युद्ध कर।

॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य ताम्रस्य जगदंबिका ॥ मेघगंभीरया वाचा हसंती तमुवाच ह ॥ १ ॥ देव्युवाच ॥ गच्छ ताम्र पतिं ब्रूहि मुमूर्षुं मंदचेतसम् ॥ महिषं चातिकामार्तं मूढं ज्ञानविवर्जितम् ॥ २ ॥ यथा ते महिषी माता प्रौढा यवसभक्षिणी ॥ नाहं तथा शृंगवती लंबपुच्छा महोदरी ॥ ३ ॥ न कामयेऽहं देवेशं नैव विष्णुं न शङ्करम् ॥ धनदं वरुणं नैव ब्रह्माणं न च पावकम् ॥ ४ ॥ एतान्देवगणान्हित्वा पशुं केन गुणेन वै ॥ वृणोम्यहं वृथा लोके गर्हणा मे भवेदिति ॥ ५ ॥ नाहं पतिंवरा नारी वर्तते मे पतिः प्रभुः ॥ सर्वकर्ता सर्वसाक्षी ह्यकर्ता निःस्पृहः स्थिरः ॥ ६ ॥ निर्गुणो निर्ममोऽनंतो निरालंबो निराश्रयः ॥ सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णः पूर्णाशयः शिवः ॥ ७ ॥ सर्वावासः क्षमः शांतः सर्वदृक्सर्वभावनः ॥ तं त्यक्त्वा महिषं मंदं कथं सेवितुमुत्सहे ॥८॥ प्रबुध्य युध्यतां कामं करोमि यमवाहनम् ॥ अथवा मनुजानां वै करिष्ये जलवाहकम् ॥ ९ ॥ जीवितेच्छाऽस्ति चेत्पाप गच्छ पातालमाशु वै ॥ समस्तैर्दानवैर्युक्तस्त्वन्यथा हन्मि संगरे ॥ १० ॥ कामं सदृशयोर्योगः संसारे सुखदो भवेत् ॥ अन्यथा दुःखदो भूयादज्ञानाद्यदि कल्पितः ॥११॥ मूर्खस्त्वमसि यद्ब्रूषे पतिं मे भज भामिनि ॥ क्वाहं क्व महिषः शृंगी सम्बंधः कीदृशो द्वयोः ॥१२॥ गच्छ युध्यस्व वा कामं हनिष्येऽहं सबांधवम् ॥ यज्ञभागं देवलोकं नोचेत्त्यक्त्वा सुखी भव ॥१३॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा

मैं तुझे या तो यमलोक भेज दूँगी या मनुष्योंके लिए पानी ढोनेवाली गाड़ीका भैंसा बना दूँगी ॥ ९ ॥ अरे पापी महिष ! यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो शीघ्र पाताललोकको चला जा और अपने सभी साथी दानवोंको भी लेता जा। नहीं तो मैं उन सबको मार डालूगी ॥१०॥ और फिर संसारमें समान कुल-शीलवाले पुरुषके साथ ही सम्बन्ध होनेपर सुख होता है। इसके विपरीत यदि किसीके दबावसे या बिना सोचे-समझे सम्बन्ध होता है तो वह बड़ा दुःख देता है ॥११॥ ओ महिष ! तू मूर्ख है, जो कहता है कि 'हे भामिनी ! तुम मुझे अपना पति बना लो।' कहाँ मैं और कहाँ तू सींग-पूँछवाला महिष (भैंसा) ? हम दोनोंमें सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? ॥१२॥ अतएव अब तू भाग जा। अथवा युद्ध करनेकी अभिलाषा हो तो आ जा। मैं तुझे सपरिवार यमलोक भेज दूँगी। सबसे अच्छा उपाय तो यह है कि यज्ञके भागका अधिकार देवताओंको दे दे और देवलोक त्यागकर चला जा ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले–ऐसा कहकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवतीने खूब जोरसे अद्भुत प्रकारका गर्जन किया। वह प्रलयकालके समान भीषण गर्जन सुनकर दैत्यगण भयभीत हो उठे ॥१४॥ उस गर्जनको सुनकर पृथ्वी हिलने लगी और पर्वत डगमगा उठे। उस गर्जनके शब्दसे कितने ही दैत्योंकी पत्नियोंके गर्भ गिर गये॥ १५ ॥ ताम्र भी उस शब्दको सुनकर इतना डर गया कि वहाँसे भागकर सीधे महिषासुरके पास जा पहुँचा ॥१६॥ हे महाराज जनमेजय! उसके नगरमें जितने दैत्य थे, उनके मनमें बड़ी चिन्ता समा गयी और वे नगर छोड़-छोड़कर भागने लगे॥१७॥ उसी समय क्रुद्ध होकर देवीके सिंहने भी भयानक ढंगसे गर्जन किया। सिंहकी दहाड़से दैत्योंका हृदय और भी दहल गया॥ १८ ॥ ताम्रको अपने समक्ष उपस्थित देखकर महिषासुर चकरा गया। तत्काल वह मंत्रियोंको बुलाकर यह मंत्रणा करने लगा कि अब क्या किया जाय॥ १९ ॥ उसने कहा—हे दानववीरो! अब हमें किलेके भीतर रहकर आत्मरक्षा करनी चाहिए या रणभूमिमें जाकर लड़ना चाहिए अथवा निकल भागना उचित होगा?॥ २० ॥ आप लोग बड़े बुद्धिमान्, दुराधर्ष (किसीसे न दबनेवाले) और सभी शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। सो कार्यसिद्धिके लिए आपलोग गुप्तरूपसे परामर्श

सा तदा देवी जगर्ज भृशमद्भुतम् ॥ कल्पांतसदृशं नादं चक्रे दैत्यभयावहम् ॥ १४ ॥ चकंपे वसुधा चेलुस्तेन शब्देन भूधराः ॥ गर्भाश्च दैत्यपत्नीनां सस्रंसुर्गर्जितस्वनात् ॥ १५ ॥ ताम्रः श्रुत्वा च तं शब्दं भयत्रस्तमनास्तदा ॥ पलायनं ततः कृत्वा जगाम महिषांतिकम् ॥ १६ ॥ नगरे तस्य ये दैत्यास्तेऽपि चिन्तामवाप्नुवन् ॥ बधिरीकृतकर्णाश्च पलायनपरा नृप ॥ १७ ॥ तदा क्रोधेन सिंहोऽपि ननाद भृशमुत्सटः ॥ तेन नादेन दैतेया भयं जग्मुरपि स्फुटम् ॥ १८ ॥ ताम्रं समागतं दृष्ट्वा हयारिरपि मोहितः ॥ चिन्तयामास सचिवैः किं कर्तव्यमतः परम् ॥ १९ ॥ दुर्गग्रहो वा कर्तव्यो युद्धं निर्गत्य वा पुनः ॥ पलायने कृते श्रेयो भवेद्वा दानवोत्तमाः ॥ २० ॥ बुद्धिमंतो दुराधर्षाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ मंत्रः खलु प्रकर्तव्यः सुगुप्तः कार्यसिद्धये ॥ २१ ॥ मंत्रमूलं स्मृतं राज्यं यदि स स्यात्सुरक्षितः ॥ मंत्रिभिश्च सदाचारैर्विधेयः सर्वथा बुधैः ॥२२॥ मंत्रभेदे विनाशः स्याद्राज्यस्य भूपतेस्तथा ॥ तस्माद्भेदभयाद्गुप्तः कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥ २३ ॥ तदत्र मंत्रिभिर्वाच्यं वचनं हेतुमद्धितम् ॥ कालदेशानुसारेण विचिंत्य नीतिनिर्णयम् ॥२४॥ या योषाऽत्र समायाता प्रबला देवनिर्मिता ॥ एकाकिनी निरालंबा कारणं तद्विचिंत्यताम् ॥ २५ ॥ युद्धं प्रार्थयते बाला किमाश्चर्यमतः परम् ॥ श्रेयोऽत्र विपरीतं वा को वेत्ति भुवनत्रये ॥ २६ ॥ न बहूनां जयोऽप्यस्ति नैकस्य च पराजयः ॥ दैवाधीनौ सदा ज्ञेयौ युद्धे जयपरा-

करें॥ २१ ॥ क्योंकि मंत्रणा ही राज्यकी नीव होती है। अतएव सदाचारी मंत्रियोंका यह कर्तव्य है कि उस मंत्रणाको सदा गुप्त रक्खें। उसके सुरक्षित रहनेसे ही राज्यकी रक्षा होती है ॥ २२ ॥ मंत्रभेद होनेपर समस्त राज्य और राजा दोनों नष्ट हो जाते हैं। अतएव राज्यका अभ्युदय चाहनेवाले मंत्रियोंको चाहिए कि मंत्रणाकी बातोंको सदा गुप्त रक्खें॥ २३ ॥ इस समय आप मन्त्रिगण इस बातपर विचार करें कि देश-कालके अनुकूल अब हमें कौनसी नीति अपनानी चाहिए? इस बातका निर्णय करके आप हितकारी और सार्थक सलाह दें॥ २४ ॥ साथ ही इस विषयपर भी विचार करें कि देवताओं द्वारा निर्मित वह प्रबल महिला बिना किसीकी सहायताके जो अकेली ही मेरे दानवराज्यमें घुस आयी है, उसका क्या रहस्य है?॥२५॥ वह ललना होती हुई भी हमें युद्धके लिए ललकार रही है। इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या हो सकती है? युद्धमें किस पक्षको विजय होगी और किसको पराजय, इस बातको तीनों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकमें कोई नहीं जानता ॥ २६ ॥ न किसीको बहुसंख्यक होनेसे विजय मिलती हैं और न अकेला होता हुआ कोई पक्ष पराजित होता है । क्योंकि युद्धमें जय और पराजय सदा दैवके अधीन रहती है ॥२७ ॥ उपायवादी विद्वानोंका यह तर्क है कि भाग्य क्या वस्तु है ? भाग्यवादी पण्डित जिसे अदृष्ट कहते हैं, उसे भला कभी किसीने देखा भी है ? ॥ २८ ॥ यदि कोई कहे कि भाग्यका अस्तित्व है तो उसका प्रमाण क्या है ? भाग्य तो केवल कायर पुरुषोंकी आशाका सहारामात्र है । समर्थ्यसम्पन्न लोगोंको वह कभी नहीं दिखायी देता ॥२९॥ वीर पुरुष उद्यमको प्रधान मानते हैं और कायर भाग्यपर भरोसा रखते हैं । इन सब बातोंपर आप लोग भली-भाँति विचार करके आदरपूर्वक कार्य करें ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले—दैत्यराज महिषके सारगर्भित वचन सुनकर महायशस्वी दैत्य बिडालाक्षने हाथ जोड़कर कहा–॥ ३१ ॥ हे महाराज ! इस बातका पूर्ण तत्परतांके साथ पता लगाना चाहिए कि वह त्रिशालनयनी रमणी यहाँ क्यों आयी है ? कहाँ से आयी है और किसकी पत्नी है ? ॥ ३२ ॥ मेरा तो यह विचार है—जब देवताओंको यह बात भली भाँति मालूम हो गयी कि स्त्रीके हाथों ही आपकी मृत्यु

जयौ ॥ २७ ॥ उपायवादिनः प्राहुर्दैवं किं केन वीक्षितम् ॥ अदृष्टमिति यन्नाम प्रवदंति मनीषिणः ॥ २८ ॥ तत्सत्त्वेऽपि प्रमाणं किं कातराशावलंबनम् ॥ न समर्थजनानां हिं दैवं कुत्रापि लक्ष्यते ॥ २९ ॥ उद्यमो दैवमेतौ हि शूरकातरयोर्मतम् ॥ विचिंत्याद्य धिया सर्वं कर्तव्यं कार्यमादरात् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा हेतुगर्भं महायशाः ॥ बिडालाक्षो महाराजमित्युवाच कृतांजलिः ॥ ३१ ॥ राजन्नेषा विशालाक्षी ज्ञातव्या यत्नतः पुनः ॥ किमर्थमिह संप्राप्ता कुतः कस्य परिग्रहः ॥३२॥ मरणं ते परिज्ञाय स्त्रिया सर्वात्मना सुरैः ॥ प्रेषिता पद्मपत्राक्षी समुत्पाद्य स्वतेजसा ॥ ३३ ॥ तेऽपि छन्नाः स्थिताः खेऽत्र सर्वे युद्धदिदृक्षवः ॥ समयेऽस्याः सहायास्ते भविष्यंति युयुत्सवः ॥ ३४ ॥ पुरतः कामिनीं कृत्वा ते वै विष्णुपुरोगमाः ॥ वधिष्यन्ति च नः सर्वान्सा त्वां युद्धे हनिष्यति ॥ ३५॥ एतच्चिकीर्षितं तेषां मया ज्ञातं नराधिप ॥ भवितव्यस्य न ज्ञानं वर्तते मम सर्वथा ॥ ३६ ॥ योद्धव्यं न त्वयाऽद्येति नाहं वक्तुं क्षमः प्रभो ॥ प्रमाणं त्वं महाराज कार्येऽत्र देवनिर्मिते ॥ ३७ ॥ त्वदर्थेऽस्माभिरनिशं मर्तव्यं कार्यगौरवात् ॥ विहर्तव्यं त्वया सार्धमेष धर्मोऽनुजीविनाम् ॥ ३८ ॥ विचारोऽत्र महानस्ति यदेका कामिनी नृप ॥ युद्धं प्रार्थयतेऽस्माभिः ससैन्यैर्ब-

होगी, तब उन्होंने अपने तेजसे उस कमलनयनी रमणीका निर्माण करके यहाँ भेजा है ॥३३॥ सब देवता युद्ध देखनेकी लालसासे आकाशमण्डलमें छिपकर विद्यमान हैं । अवसर आनेपर वे युद्धमें उसको सहायता देंगे ॥ ३४ ॥ उस कामिनीको आगे करके विष्णु आदि देवता हम सब दैत्योंको मार डालेंगे और वह्र महिला युद्धभूमिमें आपका वध करेगी ॥ ३५ ॥ यही उन देवताओंकी योजना है, मुझे ऐसा आभास मिला है । किन्तु भवितव्य (होनी) के विषयमें मुझे कुछ भी पता नहीं है ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! मैं यह नहीं कह सकता कि आप लड़ें या न लड़ें । अपनी समझके अनुसार मैंने देवताओंकी योजना बता दी । अब आप प्रभु हैं । हमें आदेश दें ॥ ३७ ॥ हम आपका गौरवपूर्ण कार्य सम्पन्न करनेके लिए मर मिटेंगे और सफलता मिल जानेपर आपके साथ सानन्द विहार करेंगे । क्योंकि अनुजीवियों (राजकर्मचारियों) का यही सच्चा धर्म है ॥३८॥ हे राजन् ! सबसे प्रबल विचारणीय बात तो यह है कि बलके मदमें चूर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और विशाल सेनासे सम्पन्न हम लोगोंको वह अकेली महिला युद्धके लिए ललकार रही है ॥३९॥ दुर्मुखने कहा—हे राजन्! मुझे पूर्ण विश्वास है कि युद्धमें विजय नहीं मिल सकेगी। फिर भी हमें भागना नहीं चाहिए। क्योंकि ऐसा करनेसे वीरोंकी कीर्तिपर धब्बा लगता है ॥४०॥ पूर्वकालमें जब इन्द्र आदि देवताओंके साथ युद्ध छिड़ा था, तब हमने पलायन जैसा निन्दनीय काम नहीं किया। तब उस अकेली स्त्रीके सामनेसे क्यों भागें ॥४१॥ अतएव अब युद्ध छेड़ देना चाहिए। युद्धमें हमें मृत्यु मिले या विजय। इसपर विचार करना व्यर्थ है। जो होना होगा, सो होगा ॥ ४२ ॥ क्योंकि रणभूमिमें मरनेसे यश मिलेगा और जीत होगी तो अपार सुख प्राप्त होगा। इन दोनों बातोंको मनमें रखकर हमें आज ही युद्ध छेड़ देना चाहिए ॥ ४३ ॥ युद्धसे भागनेपर हमको अपयश मिलेगा। आयु क्षीण होनेपर एक दिन हमें मरना पड़ेगा ही, तब युद्धभूमिमें मरनेका क्या भय ? अतएव जीवन-मरणके लिए शोक करना व्यर्थ है ॥ ४४ ॥

लदर्पितैः ॥३९॥ दुर्मुख उवाच ॥ राजन् युद्धे जयं नोऽद्य भविता वेद्म्यहं किल ॥ पलायनं न कर्तव्यं यशोहानिकरं नृणाम् ॥ ४० ॥ इन्द्रादीनां संयुगेऽपि न कृतं यज्जुगुप्सितम् ॥ एकाकिनीं स्त्रियं प्राप्य को हि कुर्यात्पलायनम् ॥ ४१ ॥ तस्माद्युद्धं प्रकर्तव्यं मरणं वा रणे जयः ॥ यद्भावि तद्भवत्येव काऽत्र चिंता विपश्यतः ॥ ४२ ॥ मरणेऽत्र यशःप्राप्तिर्जीवने च तथा सुखम् ॥ उभयं मनसा कृत्वा कर्तव्यं युद्धमद्य वै ॥ ४३ ॥ पलायने यशोहानिर्मरणं चायुषः क्षये॥ तस्माच्छोको न कर्तव्यो जीविते मरणे वृथा ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ दुर्मुखस्य वचः श्रुत्वा बाष्कलो वाक्यमब्रवीत् ॥ प्रणतः प्रांजलिर्भूत्वा राजानं वाक्यकोविदः ॥४५॥ बाष्कल उवाच ॥ राजंश्चिन्ता न कर्तव्या कार्येऽस्मिन्कातरप्रिये ॥ अहमेको हनिष्यामि चंडीं चंचल-लोचनाम् ॥ ४६ ॥ उत्साहस्तु प्रकर्तव्यः स्थायीभावो रसस्य च ॥ भयानको भवेद्वैरी वीरस्य नृपसत्तम ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्यक्त्वा भयं भूप करिष्ये युद्ध-मद्भुतम् ॥ नयिष्यामि नरेन्द्राहं चंडिकां यमसादनम् ॥ ४८ ॥ न बिभेमि यमादिंद्रात्कुबेराद्वरुणादपि ॥ वायोर्वह्नेस्तथा विष्णोः शंकराच्छशिनो रवेः ॥ ४९ ॥ एकाकिनी तथा नारी किं पुनर्मदगर्विता ॥ अहं तां निहनिष्यामि विशिखैश्च शिलाशितैः ॥ ५० ॥ पश्य बाहुबलं मेऽद्य विहरस्व यथासुखम् ॥ भवताऽत्र न गंतव्यं संग्रामेऽप्यनया समम् ॥ ५१ ॥ व्यास उवाच॥ एवं ब्रुवति राजेन्द्रं बाष्कले मदगर्विते ॥ प्रणम्य नृपतिं तत्र दुर्धरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥ दुर्धर उवाच ॥ महिषाहं विजेष्यामि देवीं देवविनिर्मिताम् ॥ अष्टादशभुजां रम्यां कारणाच्च समागताम् ॥ ५३ ॥

व्यासजी बोले—दुर्मुखके विचार सुनकर बात करनेमें निपुण बाष्कलने विनम्रभावसे हाथ जोड़कर राजा महिषसे कहा ॥ ४५ ॥ बाष्कल बोला—हे राजन्! इस अप्रिय कार्यके विषयमें कायर बनकर आप विशेष चिन्ता न करें। मैं अकेला उस चञ्चलनयनी चण्डीको मार डालूँगा ॥ ४६ ॥ हे नृपसत्तम! वीररसका स्थायीभाव उत्साह है। भयानक रस वीररसका वैरी है। अतएव हमें उत्साही होना चाहिए ॥४७॥ मैं यम, इन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, अग्नि, विष्णु, शिव, चन्द्रमा और सूर्यसे भी नहीं डरता ॥ ४८॥ ४९॥ तब उस अकेली मदभरी स्त्रीसे क्यों डरूँगा। पत्थरकी सानपर चढ़े हुए अपने तीखे तीरोंकी ही मारसे मैं उसे समाप्त कर दूँगा ॥ ५० ॥ आप सुखपूर्वक विहार करिए और मेरा बाहुबल देखिए। आपको रणभूमिमें उस अबलाके समक्ष जानेकी कोई आवश्यकता न पड़ेगी ॥ ५१ ॥ व्यासजी बोले—मदमत्त बाष्कलके ऐसा कहनेपर दुर्धरने राजा महिषको प्रणाम करके कहा ॥ ५२ ॥ दुर्धर बोला—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे महाराज महिष ! मैं उस देवनिर्मित, अष्टादशभुजधारिणी, सुन्दरी और रहस्यमय ढंगसे आयी हुई रमणीपर विजय प्राप्त करूँगा ॥५३॥ हे राजन् ! आपको डरानेके लिए ही देवताओंने उस मायाका निर्माण किया है। उसे विभीषिकामात्र समझकर आप अपने चित्तकी बेचैनी दूर कर दीजिए ॥५४॥ हे राजन् ! यह हुई राजनीतिकी बात। अब मंत्रियोंका कर्तव्य सुनिए। मंत्री तीन प्रकारके होते हैं–सात्त्विक, राजस और तामस। सात्त्विक मंत्री पूर्ण शक्तिसे अपने प्रभुका कार्यसाधन करते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ वे अपने प्रभुके कार्यमें बिना कोई बाधा डाले अपना कर्तव्य निभाते हैं, एकाग्र चित्तसे कार्य करते हैं, वे धर्मपरायण और मंत्रणाकार्यमें पूर्ण निपुण होते हैं ॥ ५७ ॥ राजस प्रकृतिके मंत्रीका मन सदा डाँवाडोल रहता है। वे सदा अपने स्वार्थसाधनमें लिप्त रहते हैं। जब कभी मनमें आता है, तब थोड़ा-बहुत स्वामीका कार्य भी कर देते हैं ॥५८॥ तामस स्वभावके मंत्री लोभी होते हैं और स्वार्थसाधन ही उनका मुख्य उद्देश्य होता है। वे अपने स्वामीका काम नष्ट करके अपना काम बनाते रहते हैं ॥५९॥ समय आनेपर वे परपक्षसे घूस खाकर राजाका भेद खोल देते हैं और अपने घरमें बैठे-बैठे अपनी

राजन्भीषयितुं त्वां वै प्रायैषा निर्मिता सुरैः ॥ विभीषिकेयं विज्ञाय त्यज मोहं मनोगतम् ॥ ५४ ॥ राजनीतिरियं राजन्मंत्रिकृत्यं तथा शृणु ॥
सात्त्विका राजसा केचित्तामसाश्च तथापरे ॥५५॥ मंत्रिणस्त्रिविधा लोके भवंति दानवाधिप ॥ सात्त्विकाः प्रभुकार्याणि साधयंति स्वशक्तिभिः ॥५६॥
आत्मकृत्यं प्रकुर्वन्ति स्वामिकार्याविरोधतः ॥ एकचित्ता धर्मपरा मंत्रशास्त्रविशारदाः ॥ ५७ ॥ राजसा भिन्नचित्ताश्च स्वकार्यनिरताः सदा ॥ कदा-
चित्स्वामिकार्यं ते प्रकुर्वन्ति यदृच्छया ॥ ५८ ॥ तामसा लोभनिरताः स्वकार्यनिरताः सदा ॥ प्रभुकार्यं विनाश्यैव स्वकार्यं साधयन्ति ते ॥ ५९ ॥
समये ते विभिद्यंते परैस्तु परिवंचिताः ॥ स्वच्छिद्रं शत्रुपक्षीयान्निर्दिशंति गृहस्थिताः ॥ ६० ॥ कार्यभेदकरा नित्यं कोशगुप्तासिवत्सदा ॥ संग्रा-
मेऽथ समुत्पन्ने भीषयन्ति प्रभुं सदा ॥ ६१ ॥ विश्वासस्तु न कर्तव्यस्तेषां राजन्कदाचन ॥ विश्वासे कार्यहानिः स्यान्मंत्रहानिः सदैव हि ॥ ६२ ॥
खलाः किं किं न कुर्वन्ति विश्वस्ता लोभतत्पराः ॥ तामसाः पापनिरता बुद्धिहीनाः शठास्तथा ॥६३॥ तस्मात्कार्यं करिष्यामि गत्वाऽहं रणमस्तके ॥
चिन्ता त्वया न कर्तव्या सर्वथा नृपसत्तम ॥६४॥ गृहीत्वा तां दुराचारामागमिष्यामि सत्वरम् ॥ पश्य मेऽद्य बलं धैर्यं प्रभुकार्यं स्वशक्तितः ॥६५॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

कमजोरियाँ शत्रुको बता देते हैं ॥ ६० ॥ जैसे तलवार म्यानमें छिपी रहती है, उसी प्रकार वे भी छिपे-छिपे अपने प्रभुके कार्यमें बाधा डालते हैं। जब युद्ध छिड़ जाता है, तब वे प्रभुको डराया करते हैं ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! ऐसे मंत्रियोंपर राजाको कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए। क्योंकि उनपर विश्वास करनेसे काम बिगड़ जाता है और मन्त्रभेद तो सदा होता ही रहता है ॥ ६२ ॥ विश्वासप्राप्त, लोभी, तमोगुणी, पापपरायण, बुद्धिहीन, शठ तथा खल मंत्री क्या-क्या अनर्थ नहीं कर गुजरते ? ॥ ६३ ॥ हे नृपसत्तम ! अतएव मैं स्वयं रणभूमिमें जाकर आपका कार्य सम्पन्न करूँगा। आप किसी बातकी चिंता न करें ॥ ६४ ॥ मैं उस दुराचारिणी रमणीको शीघ्र पकड़कर आपके पास ले आऊँगा। मैं अपनी पूरी शक्तिसे आपका काम करूँगा। आप मेरा बल और धैर्य देखें ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(देवीके हाथों बाष्कल और दुर्मुखका वध) व्यासजी बोले—हे महाराज ! ऐसा कहकर मदान्ध और सभी शस्त्रास्त्रोंके उपयोगमें निपुण महाबाहु दैत्य बाष्कल और दुर्मुख चल पड़े
॥ १ ॥ वे मदोन्मत्त दानव देवीके पास पहुँचकर मेघसदृश गंभीर वाणीमें बोले—॥ २ ॥ हे देवि ! जिन महात्मा महिषने सब देवताओंको परास्त कर दिया है, उन सर्वदैत्याधिपति महा-
राज महिषको आप अपना पति बना लें ॥ ३ ॥ वे सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त मनुष्यका रूप धारण करके दिव्य आभूषण पहनकर आयेंगे और आपसे एकान्तमें मिलेंगे ॥ ४ ॥ हे
सुन्दर मुसकानवाली सुन्दरी ! उन्हें पति बना लेनेपर आपको तीनों लोकोंका वैभव प्राप्त हो जायगा । अतएव हे कान्ते ! आप उनसे आन्तरिक प्रेम करें ॥ ५ ॥ हे कोकिलवयनी !
महावीर राजा महिषको अपना पति बनाकर आप संसारका अद्भुत सुख प्राप्त करेंगी । क्योंकि स्त्रियोंको यही प्राप्त करनेकी लालसा रहती है ॥६॥ देवी बोलीं—क्या तूने मुझे कोई कामातुरा
स्त्री समझा है ? क्या मेरी बुद्धि और शक्ति लुप्त हो गयी है कि जो मैं उस शठ महिषको अपना पति बना लूँ ॥७॥ कुल, शील और गुण समान तथा रूप, चातुर्य, बुद्धि, शील, क्षमा आदि गुण

॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तौ महाबाहू दैत्यौ बाष्कलदुर्मुखौ ॥ जग्मतुर्मददिग्धांगौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ ॥ १ ॥ तौ गत्वा समरे देवीमूच-
तुर्वचनं तदा ॥ दानवौ च मदोन्मत्तौ मेघगंभीरया गिरा ॥ २ ॥ देवि देवा जिता येन महिषेण महात्मना ॥ वरय त्वं वरारोहे सर्वदैत्याधिपं
नृपम् ॥ ३ ॥ स कृत्वा मानुषं रूपं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ भूषितं भूषणैर्दिव्यैस्त्वामेष्यति रहः किल ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यविभवं कामं त्वमेष्यसि शुचि-
स्मिते ॥ महिषे परमं भावं कुरु कांते मनोगतम् ॥ ५ ॥ कृत्वा पतिं महावीरं संसारसुखमद्भुतम् ॥ त्वं प्राप्स्यसि पिकालापे योषितां खलु
वांछितम् ॥ ६ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जाल्म त्वं किं विजानासि नारीयं काममोहिता ॥ मंदबुद्धिबलाऽत्यर्थं भजेयं महिषं शठम् ॥ ७ ॥ कुलशीलगुणै-
स्तुल्यं तं भजंति कुलस्त्रियः ॥ अधिकं रूपचातुर्यबुद्धिशीलक्षमादिभिः ॥ ८ ॥ का नु कामातुरा नारी भजेच्च पशुरूपिणम् ॥ पशूनामधमं नूनं
महिषं देवरूपिणी ॥ ९ ॥ गच्छ तं महिषं तूर्णं भूपं बाष्कलदुर्मुखौ ॥ वदतं मद्वचो दैत्यं गजतुल्यं विषाणिनम् ॥ १० ॥ पातालं गच्छ वाऽभ्येत्य
संग्रामं कुरु वा मया ॥ रणे जाते सहस्राक्षो निर्भयः स्यादिति ध्रुवम् ॥ ११ ॥ हत्वाऽहं त्वां गमिष्यामि नान्यथा गमनं मम ॥ इत्थं ज्ञात्वा सुदुर्बुद्धे
यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १२ ॥ मामनिर्जित्य भूभागे न स्थानं ते कदाचन ॥ भविष्यति चतुष्पाद दिवि वा गिरिकंदरे ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥

अधिक होनेपर ही कुलवन्ती नारियाँ किसीको अपना पति बनाती हैं ॥ ८ ॥ और फिर कोई देवीस्वरूपा नारी कामपीडिता होनेपर भी उस पशुरूपधारी तथा पशुओंमें भी अधम महिषको
कैसे अपना पति बनायेगी ? ॥ ९ ॥ हे बाष्कल और दुर्मुख ! तुम तत्काल राजा महिषके पास जाकर हाथी सदृश भीमकाय तथा शृंगधारी उस दैत्यको मेरा सन्देश कह सुनाओ ॥ १० ॥
उससे कहो—तुम या तो पाताल चले जाओ अथवा यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करो । युद्ध छिड़ जानेपर इन्द्र अवश्य निर्भय हो जायँगे ॥११॥ मैं तो तेरा वध करके ही यहाँसे लौटूँगी—
अन्यथा नहीं । ऐसा समझकर अरे दुर्बुद्धे ! जैसी तेरी इच्छा हो, वह कर ॥ १२ ॥ मुझे पराजित किये बिना तुझे पृथिवी, देवलोक तथा गिरिकन्दरामें कहीं भी अपने चारों पाँव रखनेकी
जगह न मिलेगी ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले—देवीके ऐसा कहनेपर क्रोधसे उन दोनों दैत्योंके नेत्र लाल हो गये । तत्काल धनुष-बाण धारण करके वे दोनों युद्ध करनेको तैयार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो गये। घोर गर्जन करके भगवती निर्भय खड़ी रहीं। तभी उन दैत्योंने तीव्र बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥ १४ ॥ १५ ॥ तब देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए भगवती भी बहुत ही मधुर निनाद करके उन दैत्योंपर बाणवर्षा करने लगीं ॥ १६ ॥ उन दोनों दैत्योंमेंसे पहले बाष्कल देवीके सामने गया और दुर्मुख प्रेक्षकरूपसे अलग खड़ा रहा ॥ १७ ॥ तब महालक्ष्मी तथा बाष्कलमें बाण, तलवार और मुद्गरके प्रहार द्वारा बड़ा भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। जिसे देखकर निर्बल हृदयवाले लोग काँप उठे ॥१८॥ कुछ देर बाद क्रुद्ध होकर जगदम्बाने पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए पाँच बाणोंसे युद्धके लिए मतवाले बाष्कलपर प्रहार किया ॥१९॥ उस दानवने भी अपने तीखे बाणोंसे उन बाणोंको काटकर सिंहपर सवार भगवतीपर सात बाण चलाये ॥ २० ॥ देवीने भी उसके बाणोंको काटकर पानी चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए दस बाणोंसे बाष्कलपर प्रहार किया और बार-बार ठठाकर हँसने लगीं ॥ २१ ॥ तदनन्तर देवीने अपने

इत्युक्तौ तौ तया दैत्यौ कोपाकुलितलोचनौ ॥ धनुर्बाणधरौ वीरौ युद्धकामौ बभूवतुः ॥ १४ ॥ कृत्वा सुविपुलं नादं देवी सा निर्भया स्थिता ॥ उभौ च चक्रतुस्तीव्रां बाणवृष्टिं कुरूद्वह ॥ १५ ॥ भगवत्यपि बाणौघान्मुमोच दानवौ प्रति ॥ कृत्वाऽतिमधुरं नादं देवकार्यार्थसिद्धये ॥ १६ ॥ ययोस्तु बाष्कलस्तूर्णं संमुखोऽभूद्रणांगणे ॥ दुर्मुखः प्रेक्षकस्तत्र देवीमभिमुखः स्थितः ॥ १७ ॥ तयोर्युद्धमभूद्घोरं देवीबाष्कलयोस्तदा ॥ बाणासिपरिघाघातैर्भयदं मंदचेतसाम् ॥ १८ ॥ ततः क्रुद्धा जगन्माता दृष्ट्वा तं युद्धदुर्मदम् ॥ जघान पंचभिर्बाणैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ १९ ॥ दानवोऽपि शरान्देव्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ सप्तभिस्ताडयामास देवीं सिंहोपरि स्थिताम् ॥२०॥ साऽपि तं दशभिस्तीक्ष्णैः सुपीतैः सायकैः खलम् ॥ जघान तच्छरांश्छित्त्वा जहास च मुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥ अर्धचन्द्रेण बाणेन चिच्छेद च शरासनम् ॥ बाष्कलोऽपि गदां गृह्य देवीं हंतुमुपाययौ ॥ २२ ॥ आगच्छंतं गदापाणिं दानवं मदगर्वितम् ॥ चंडिका स्वगदापातैः पातयामास भूतले ॥ २३ ॥ बाष्कलः पतितो भूमौ मुहूर्तादुत्थितः पुनः ॥ चिक्षेप च गदां सोऽपि चंडिकां चंडविक्रमः ॥ २४ ॥ तमागच्छंतमालोक्य देवी शूलेन वक्षसि ॥ जघान बाष्कलं क्रुद्धा पपात च ममार सः ॥ २५ ॥ पतिते बाष्कले सैन्यं भग्नं तस्य दुरात्मनः ॥ जयेति च मुदा देवाश्चक्रुर्गगने स्थिताः ॥ २६ ॥ तस्मिंश्च निहते दैत्ये दुर्मुखोऽतिबलान्वितः ॥ आजगाम रणे देवीं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २७ ॥ तिष्ठ तिष्ठाबले सोऽपि भाषमाणः पुनः पुनः ॥ धनुर्बाणधरः श्रीमान्रथस्थः कवचावृतः ॥ २८ ॥

अर्धचन्द्राकार बाणसे बाष्कलका धनुष काट डाला। तब बाष्कल गदा लेकर देवीको मारने दौड़ा ॥२२॥ हाथमें गदा लिये उस मदमत्त दानवको अपनी ओर आते देखकर भगवतीने अपनी गदाका प्रहार करके उसे धराशायी कर दिया ॥२३॥ किंतु मुहूर्त भर बाद वह फिर उठ खड़ा हुआ और उस प्रचण्ड पराक्रमी वीरने भगवतीपर गदा चला दी ॥ २४ ॥ गदाको आती देखकर कुपित जगदम्बाने उसके वक्षस्थलमें त्रिशूल भोंक दिया, जिससे वह गिरकर मर गया ॥ २५ ॥ बाष्कलके गिरते ही उस दुष्टकी सेना भाग गयी और आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता भगवतीकी जयजयकार करने लगे ॥ २६ ॥ इस प्रकार बाष्कलका प्राणान्त हो जानेपर महाबली दुर्मुख क्रोधसे आँखें लाल करके रणभूमिमें देवीके समक्ष आया ॥ २७ ॥ उस समय वह 'अरी अबले ! खड़ी रह-खड़ी रह' ऐसा कह रहा था। वह धनुष-बाण तथा कवच धारण करके रथपर सवार था ॥२८॥ उसे अपनी ओर आते देखकर देवीने शंखध्वनि की और उसको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुपित करनेके लिए धनुषका टंकोर किया ॥२९॥ उनके समक्ष पहुँचते ही दुर्मुख सर्पके समान विषैले बाणोंको वर्षा करने लगा। महामायाने उसके बाणोंको व्यर्थ कर दिया और गर्जन करने लगीं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उन दोनोंमें परस्पर बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें बाण, बर्छी, गदा, मुशल और तोमर (गँड़ासा) का खुलकर प्रयोग किया गया ॥३१॥ कुछ ही देर बाद रणभूमिमें रुधिरकी नदी बह चली। उसके तटपर गिरे हुए सैनिकोंके सिर ऐसे लग रहे थे, जैसे नये आगन्तुकोंको उस रणनदीमें तैरना सीखनेके लिए यमदूतोंने बहुतेरी तुम्बियाँ लाकर रख दी हों ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ रणमें कटकर गिरे शवोंको भेड़िये आदि मांसाहारी पशु नोच-नोचकर खाने लगे और शवोंकी अधिकतासे रास्तेपर चलना दूभर हो गया ॥ ३४ ॥ सियार, कुत्ते, कौवे, कंकपक्षी, लौहचंचु गिद्ध और बाज उन्हें खा रहे थे ॥ ३५ ॥ मुर्दोंके शरीरका स्पर्श करके बहनेवाली हवा बड़ी दुर्गन्धित थी और मांसाहारी पक्षियोंकी किलकारी सुनायी

तमागच्छंतमालोक्य देवी शंखमवादयत् ॥ कोपयन्ती दानवं तं ज्याघोषं च चकार ह ॥ २६ ॥ सोऽपि बाणान्मुमोचाशु तीक्ष्णानाशीविषोपमान् ॥
स्वबाणैस्तान्महामाया चिच्छेद च ननाद च ॥ ३० ॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं नृप ॥ बाणशक्तिगदाघातैर्मुसलैस्तोमरैस्तथा ॥ ३१ ॥
रणभूमौ तदा जाता रुधिरौघवहा नदी ॥ पतितानि तदा तीरे शिरांसि प्रबभुस्तदा ॥ ३२ ॥ यथा संतरणार्थाय यमकिंकरनायकैः ॥ तुंबीफलानि
नीतानि नवशिक्षापरैर्मुदा ॥ ३३ ॥ रणभूमिस्तदा घोरा बभूवातीव दुर्गमा ॥ शरीरैः पतितैर्भूमौ खाद्यमानैर्वृकादिभिः ॥ ३४ ॥ गोमायुसार-
मेयाश्च काकाः कंका अयोमुखाः ॥ गृध्राः श्येनाश्च खादंति शरीराणि दुरात्मनाम् ॥ ३५ ॥ ववौ वायुश्च दुर्गंधो मृतानां देहसंगतः ॥ अभूत्किल-
किलाशब्दः खगानां पलभक्षिणाम् ॥ ३६ ॥ तदा चुकोप दुष्टात्मा दुर्मुखः कालमोहितः ॥ देवीमुवाच गर्वेण कृत्वा चोर्ध्वकरं शुभम् ॥ ३७ ॥
गच्छ चंडि हनिष्यामि त्वामद्यैव सुबालिशे ॥ दैत्यं वा भज वामोरु महिषं मदगर्वितम् ॥ ३८ ॥ देव्युवाच ॥ आसन्नमरणः कामं प्रलपस्यद्य
मोहितः ॥ अद्यैव त्वां हनिष्यामि यथाऽयं बाष्कलो हतः ॥ ३६ ॥ गच्छ वा तिष्ठ वा मन्द मरणं यदि रोचते ॥ हत्वा त्वां वै वधिष्यामि बालिशं
महिषीसुतम् ॥ ४० ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या दुर्मुखो मर्तुमुद्यतः ॥ मुमोच बाणवृष्टिं तु चंडिकां प्रति दारुणाम् ॥ ४१ ॥ साऽपि तां तरसा छित्त्वा
बाणवृष्टिं शितैः शरैः ॥ जघान दानवं क्रुद्धा वृत्रं वज्रधरो यथा ॥ ४२ ॥ तयोः परस्परं युद्धं संजातं चातिकर्कशम् ॥ भयदं कातराणां च शूराणां

दे रही थी ॥ ३६ ॥ तब कालके वशीभूत दुष्ट दुर्मुख अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। उसने गर्वके साथ दाहिनी भुजा उठाकर देवीसे कहा—॥ ३७ ॥ हे चण्डिके ! तुम यहाँसे भाग जाओ। नहीं तो ओ मूर्ख नारी ! मैं तुझे अभी मार डालूँगा। अथवा चलकर हे सुजंघे ! मदसे मत्त हमारे स्वामी राजा महिषकी सेवकाई कर ॥३८॥ देवी बोलीं—ऐसा मालूम होता है कि तेरी मृत्यु समीप है। तभी तू इस प्रकार प्रलाप कर रहा है। अभी मैं तुझे उसी प्रकार मार डालूँगी, जैसे बाष्कलको मारा है ॥३९॥ अच्छा तो यह हो कि तू अभी भाग जा और यदि मरनेकी ही इच्छा हो तो खड़ा रहा। तुझे मारनेके बाद मैं मूर्ख महिषासुरको भी समाप्त कर दूँगी ॥ ४० ॥ देवीके वचन सुनकर मरणोन्मुख दुर्मुख भगवती चण्डिकाके ऊपर प्रबल बाणवृष्टि करने लगा ॥४१॥ भगवतीने भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसका प्रहार व्यर्थ करके उस दुष्टपर उसी प्रकार आघात किया, जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने वृत्रासुरपर वज्रप्रहार किया था ॥ ४२ ॥ अब उन दोनोंमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़ा भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। जिसे देखकर कायर काँप उठे और वीरोंका उत्साह बढ़ गया ॥ ४३ ॥ उसी समय देवीने बड़ी फुर्तीके साथ पाँच बाणोंसे दुर्मुखका धनुष काट डाला और उसके रथको चूर-चूर कर दिया ॥४४॥ रथ भग्न हो जानेपर महाबाहु दुर्मुख अपनी भयानक गदा लेकर पैदल ही भगवतीकी ओर झपटा ॥ ४५ ॥ उनके पास पहुँचकर उसने सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया। किन्तु महाबली सिंह उसके गदाघातसे तनिक भी विचलित नहीं हुआ ॥४६॥ उसी समय जगदम्बाने गदा लिये हुए दुर्मुखको समीप उपस्थित देखकर अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे उसका किरीटमण्डित मस्तक काटकर गिरा दिया ॥ ४७ ॥ इस प्रकार मस्तक कट जानेपर वह दैत्य ज़मीनपर गिर पड़ा। उस समय देवताओंने मुदित होकर देवीको जयजयकार की ॥४८॥ दुष्ट दुर्मुखके मर जानेपर आकाशमें विद्यमान देवताओंने स्तुति करते हुए जय-जयकार किया और देवीपर पुष्पवर्षा की ॥ ४९ ॥ रणभूमिमें उस महान् दानवका

बलवर्धनम् ॥ ४३ ॥ देवी चिच्छेद तरसा धनुस्तस्य करे स्थितम् ॥ तथैव पञ्चभिर्बाणैर्बभञ्ज रथमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ रथे भग्ने महाबाहुः पदातिर्दुर्मुखस्तदा ॥ गदां गृहीत्वा दुर्धर्षां जगाम चण्डिकां प्रति ॥ ४५ ॥ चकार स गदाघातं सिंहमौलौ महाबलः ॥ न चचाल हरिः स्थानात्ताडितोऽपि महाबलः ॥ ४६ ॥ अम्बिका तं समालोक्य गदापाणिं पुरः स्थितम् ॥ खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद मौलिमत् ॥ ४७ ॥ छिन्ने च मस्तके भूमौ पपात दुर्मुखो मृतः ॥ जयशब्दं तदा चक्रुर्मुदिता निर्जरा भृशम् ॥ ४८ ॥ तुष्टुवुस्तां तदा देवीं दुर्मुखे निहतेऽमराः ॥ पुष्पवृष्टिं तथा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः ॥ ४९ ॥ ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरकिन्नराः ॥ जहृषुस्तं हतं दृष्ट्वा दानवं रणमस्तके ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ दुर्मुखं निहतं श्रुत्वा महिषः क्रोधमूर्छितः ॥ उवाच दानवान्सर्वान्किं जातमिति चासकृत् ॥ १ ॥ निहतौ दानवौ शूरौ रणे दुर्मुखबाष्कलौ ॥ तन्व्या तत्परमाश्चर्यं पश्यन्तु दैवचेष्टितम् ॥२॥ कालो हि बलवान्कर्ता सततं सुखदुःखयोः ॥ नराणां परतन्त्राणां पुण्यपापानुयोगतः ॥ ३ ॥ निहतौ दानवश्रेष्ठौ किं कर्तव्यमतः परम् ॥ ब्रुवन्तु मिलिताः सर्वे सद्युक्तं कार्यसङ्कटे ॥ ४ ॥ एवं ब्रुवति राजेन्द्रे महिषेऽतिबला-

मरण देखकर ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नर आनन्दित हो उठे ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

(भगवती द्वारा ताम्र और चिक्षुरका वध) व्यासजी बोले—हे महाराज ! दुर्मुखके निधनका समाचार सुनकर महिष मारे क्रोधके पागल हो गया। तत्काल सब दानवोंको बुलाकर वह बारम्बार यही कहने लगा कि यह क्या हो गया ? ॥ १ ॥ मेरे प्रमुख दानववीर उस दुबली-पतली महिलाके हाथों मारे गये। भाग्यका खेल तो देखिए। यह कितने आश्चर्यकी बात है ॥ २ ॥ समय बड़ा बलवान् होता है और वही सुख-दुःखका निर्माण करता है। मनुष्य तो पाप-पुण्यके प्रपंचमें पड़कर सदा परतंत्र रहता है ॥ ३ ॥ हाँ, तो वे दोनों श्रेष्ठ दानव मारे जा चुके। अब इसके बाद हमें क्या करना चाहिए ? ऐसे संकटकालमें जो कर्तव्य हो, उसे आप सब मिलकर निर्धारित कर लें और मुझे बतायें ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजेन्द्र !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाबली महिषके ऐसा कहनेपर महारथी सेनापति चिक्षुरने कहा–हे राजन् ! मैं उसे मारूँगा। स्त्रीको मारना कौन बड़ी बात है ? ऐसा कहकर चिक्षुर रथपर सवार हुआ और अपने साथ विशाल सेना लेकर चल पड़ा ॥ ५ ॥ ६ ॥ अपने पृष्ठपोषकके रूपमें उसने महाबली ताम्रको भी साथ ले लिया। उसकी सेनाके कोलाहलसे समस्त आकाश और दसों दिशायें गूँज उठीं ॥ ७ ॥ उसे आते देखकर भगवती शिवाने अपना शंख तथा घण्टा बजाया और धनुषका विकराल टंकोर किया ॥ ८ ॥ उन तीनोंके एक साथ उठे हुए घनघोर निनादसे सभी दैत्य भयभीत हो गये। 'यह कैसा शब्द है ?' यों कहकर भयसे काँपते हुए वे सब भागने लगे ॥ ९ ॥ उन्हें इस प्रकार भागते देख चिक्षुरने अत्यन्त कुपित होकर कहा–तुम लोगोंके हृदयमें इतना आतंक क्यों समा गया है ? ॥१०॥ मैं अभी इस मदोद्धत युवतीको अपने बाणोंसे मार डालूँगा। हे दैत्यवीरो ! तुम लोग निर्भय होकर समरभूमिमें डट जाओ' ॥११॥ ऐसा कहकर दानववीर चिक्षुर हाथमें धनुष लेकर अपनी सेनाके साथ रणभूमिमें पहुँचा और निर्भय होकर उसने देवीसे कहा—॥ १२ ॥ हे विशालनयनी ! तुम असैनिक लोगोंपर आतंक फैलाती हुई क्यों

न्विते ॥ चिक्षुराख्यस्तु सेनानीस्तमुवाच महारथः ॥ ५ ॥ राजन्नहं हनिष्यामि का चिन्ता स्त्रीविहिंसने ॥ इत्युक्त्वा स्वबलैर्युक्तः प्रययौ रथसंयुतः ॥ ६ ॥ द्वितीयं पार्ष्णिरक्षं तु कृत्वा ताम्रं महाबलम् ॥ महता सैन्यघोषेण पूरयन्गगनं दिशः ॥ ७ ॥ तमागच्छन्तमालोक्य देवी भगवती शिवा ॥ चकार शङ्खज्याघोषं घण्टानादं महाद्भुतम् ॥ ८ ॥ तत्रसुस्तेन शब्देन ते च सर्वे सुरारयः ॥ किमेतदिति भाषन्तो दुद्रुवुर्भयकम्पिताः ॥ ९ ॥ चिक्षुराख्यस्तु तान्दृष्ट्वा पलायनपरायणान् ॥ उवाचातीव संक्रुद्धः किं भयं वः समागतम् ॥ १० ॥ अद्यैवाहं हनिष्यामि बाणैर्बालां मदोन्नताम् ॥ तिष्ठन्त्वत्र भयं त्यक्त्वा दैत्याः समरमूर्धनि ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठश्चापपाणिर्बलान्वितः ॥ आगत्य सङ्गरे देवीमित्युवाच गतव्यथः ॥ १२ ॥ किं गर्जसि विशालाक्षि भीषयन्तीतरान्नरान् ॥ नाहं बिभेमि तन्वङ्गि श्रुत्वा तेऽद्य विचेष्टितम् ॥ १३ ॥ स्त्रीवधे दूषणं ज्ञात्वा तथैवाकीर्तिसम्भवम् ॥ उपेक्षां कुरुते चित्तं मदीयं वामलोचने ॥ १४ ॥ स्त्रीणां युद्धं कटाक्षैश्च तथा हावैश्च सुन्दरि ॥ न शस्त्रैर्विहितं क्वापि त्वादृशीनां कदाचन ॥ १५ ॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥ भवादृशीनां देहेषु दुनोति मालतीदलम् ॥ १६ ॥ धिग्जन्म मानुषे लोके क्षात्रधर्मानुजीविनाम् ॥ लालितोऽयं प्रियो देहः कृन्तनीयः शितैः शरैः ॥१७॥ तैलाभ्यंगैः पुष्पवातैस्तथा मिष्टान्नभोजनैः ॥ पोषितोऽयं प्रियो देहो घातनीयः

गर्जन कर रही हो ? हे कोमलाङ्गी ! तुम्हारी इन चेष्टाओंको मैंने पहलेसे ही सुन रक्खा है। इसी कारण मैं तुमसे तनिक भी नहीं डरता ॥१३॥ हे सुनयनी ! स्त्रीका वध करनेसे दोष होता है और अपयश मिलता है। इसी कारण तुम्हें मारनेको मन नहीं करता ॥ १४ ॥ हे सुन्दरी ! स्त्रियोंका युद्ध तो कटाक्षों तथा हाव-भावोंसे होता है। किंतु तुम जैसी सुंदरी महिलाका इस प्रकार शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होकर युद्ध करनेकी बात मैंने कभी नहीं सुनी ॥१५॥ तुम्हें तो पुष्पोंसे भी युद्ध नहीं करना चाहिए। फिर तीक्ष्ण बाणोंसे लड़नेकी तो बात ही क्या है ? तुम जैसी सुंदरियोंका कोमल शरीर तो मालतीकी पंखुड़ीसे भी दुखने लगता है ॥ १६ ॥ इस मनुष्यलोकमें क्षात्रधर्मका अनुगमन करनेवाले लोगोंके जीवनको धिक्कार है। क्योंकि वे बड़े प्यारसे पले हुए अपने शरीरको तीक्ष्ण बाणोंसे छेदवाते हैं ॥ १७ ॥ तेलकी मालिश, फूलोंकी हवा और सुस्वादु अन्नके भोजनसे पले हुए अपने प्रिय शरीरको वे शत्रुके तीखे बाणोंसे बिंधवाते हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥१८॥ लोग कहते हैं कि तलवारकी धारसे देह कटवानेवाले लोग ही धनका संचय कर पाते हैं। किन्तु ऐसे धनको धिक्कार है। जो पहले ही इतना दुखदायी होता है, वह धन बादमें भला क्या सुख देगा ? ॥ १९ ॥ हे सुजंघे ! आप भी एकदम अज्ञ हैं। क्योंकि युद्ध करना चाहती हैं। सम्भोगजनित सुख त्यागकर आप युद्धमें कौन-सा गुण देखती हैं ? ॥२०॥ युद्धमें तलवारकी मार खानी पड़ती है, गदाकी चोट सहनी पड़ती है और बाणोंसे शरीर विंधवाना पड़ता है और अन्तमें मर जानेपर सियारोंके मुखसे शरीर नोचवाकर अन्तिम संस्कार कराना होता है ॥२१॥ ऐसे दुखदायी युद्धकी प्रशंसा करते हुए धूर्त कवि कहते हैं कि रणभूमिमें मरनेवालोंको स्वर्ग प्राप्त होता है। लेकिन उनके कथनमें कुछ भी तथ्य नहीं है ॥२२॥ अतएव हे सुन्दरी ! आपका जहाँ जी चाहे, वहाँ चली जायँ। अथवा इच्छा हो तो मेरे स्वामी और देवताओंके विजेता महाराज महिषको अपना पति बनाकर उनकी सेवा करिए ॥२३॥ व्यासजी बोले–ऐसा कहते हुए दैत्य चिक्षुरसे भगवती जगदम्बाने कहा–अरे मूढ़ ! तू किसी बुद्धिमान् पण्डितके समान व्यर्थ क्यों बकवास कर रहा है ? ॥ २४ ॥ न तू नीतिशास्त्र जानता है और न तुझे

परेषुभिः ॥ १८ ॥ देहं छित्त्वाऽसिधाराभिर्धनभृज्जायते नरः ॥ धिग्धनं दुःखदं पूर्वं पश्चात्किं सुखदं भवेत् ॥ १९ ॥ त्वमप्यज्ञैव वामोरु युद्धमाकांक्षसे यतः ॥ सुखं संभोगजं त्यक्त्वा कं गुणं वेत्सि संगरे ॥ २० ॥ खड्गपातं गदाघातं भेदनं च शिलीमुखैः ॥ मरणांते तु संस्कारो गोमायुमुखकर्षणम् ॥ २१ ॥ तस्यैव कविभिर्धूर्तैः कृतं चातीव शंसनम् ॥ रणे मृतानां स्वःप्राप्तिरर्थवादोऽस्ति केवलः ॥ २२ ॥ तस्माद्गच्छ वरारोहे यत्र ते रमते मनः ॥ भज वा भूपतिं नाथं हयारिं सुरमर्दनम् ॥ २३ ॥ एवं ब्रुवाणं तं दैत्यं प्रोवाच जगदंबिका ॥ किं मृषा भाषसे मूढ बुद्धिमानिव पंडितः ॥ २४ ॥ नीतिशास्त्रं न जानासि विद्यां चान्वीक्षिकीं तथा ॥ न सेवितास्त्वया वृद्धा न धर्मे मतिरस्ति ते ॥ २५ ॥ मूर्खसेवापरो यस्मात्तस्मात्त्वं मूर्ख एव हि ॥ राजधर्मं न जानासि किं ब्रवीषि ममाग्रतः ॥ २६ ॥ संग्रामे महिषं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ॥ यशःस्तम्भं स्थिरं कृत्वा गमिष्यामि यथासुखम् ॥ २७ ॥ देवानां दुःखदातारं दानवं मदगर्वितम् ॥ हनिष्येऽहं दुराचारं युद्धं कुरु स्थिरो भव ॥ २८ ॥ जीवितेच्छाऽस्ति चेन्मूढ महिषस्य तथा तव ॥ तदा गच्छंतु पातालं दानवाः सर्व एव ते ॥ २९ ॥ मुमूर्षा यदि वश्चित्ते युद्धं कुर्वन्तु सत्वराः ॥ सर्वानेव वधिष्यामि निश्चयोऽयं ममाधुना ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दानवो बलदर्पितः ॥ मुमोच बाणवृष्टिं तां घनवृष्टिमि-

आन्वीक्षिकी विद्या (आत्मशास्त्र) का ज्ञान है, न तूने वृद्धजनोंका सत्सङ्ग किया है और न धर्ममें ही तेरी आस्था है ॥ २५ ॥ तू सदा मूर्ख महिषकी सेवा करता है। अतएव तू भी मूर्ख हो गया है। तुझे राजधर्मका भी कुछ ज्ञान नहीं है। तब तू मेरे आगे क्या बक रहा है ? ॥ २६ ॥ समरभूमिमें महिषकी मार उसके रुधिरसे पृथ्वीपर कीचड़ करके उसी स्थानपर अपना कीर्तिस्तम्भ गाड़कर मैं सानन्द लौट जाऊँगी ॥२७॥ देवताओंको दुःख देनेवाले मदमत्त और दुराचारी महिषको मैं अवश्य मारूँगी। तू यहीं खड़ा रह और मेरे साथ युद्ध कर ॥ २८ ॥ ओ मूढ़ ! यदि दुष्ट महिष तथा तेरी जीवित रहनेकी इच्छा हो तो सभी दानव तत्काल पाताल चले जायँ ॥ २९ ॥ यदि तुम सब मरना ही चाहते हो तो शीघ्र आकर मेरे साथ युद्ध करो। मेरा यह दृढ़ संकल्प है कि मैं सभी दानवोंको मार डालूँगी ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले–देवीके वचन सुनकर बलमदसे चूर दानव चिक्षुर इस प्रकार भीषण बाणवर्षा करने लगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि जैसे कोई बादल जल बरसा रहा हो ॥३१॥ किन्तु भगवती जगदम्बाने अपने बाणोंसे उसके सभी बाणोंको काट डाला और सर्पके समान विषैले तथा भयानक बाणोंसे उसपर प्रहार किया ॥ ३२ ॥ उस समय उन दोनोंमें विस्मयजनक युद्ध हुआ। अवसर पाकर जगदम्बाने उसके ऊपर अपनी गदाका प्रहार करके उसे रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ३३ ॥ इस गदाप्रहारसे आहत होकर चिक्षुर मूर्छित हो गया और दो मुहूर्ततक रथके पास अचेत पड़ा रहा ॥ ३४ ॥ उसे इस प्रकार मूर्छित देखकर शत्रुसेनाका मान मर्दन करनेवाला ताम्र उतावला होकर चंडिकाके साथ युद्ध करनेके लिए रणभूमिमें जा पहुँचा ॥ ३५ ॥ उसे आते देखकर भगवती चण्डिकाने हँसकर कहा—आओ, हे दानवश्रेष्ठ ! आओ, मैं तुम्हें भी यमलोक भेज दूँ ॥ ३६ ॥ तुम जैसे निर्बल और गतायु (जिनके जीवनके दिन पूरे हो चुके हैं) सैनिक रणभूमिमें क्यों आते हैं ? वह मूर्ख पशु महिष घरमें बैठा-बैठा जीनेकी कौनसी तदवीर कर रहा है ॥३७॥ जबतक वह

वापराम् ॥ ३१ ॥ चिच्छेद तस्य सा बाणान्स्वबाणैर्निशितैस्तदा ॥ जघान तं तथा घोरैराशीविषसमैः शरैः ॥३२॥ युद्धं परस्परं तत्र बभूव विस्मयप्रदम् ॥ गदया पातयामास तं रथाज्जगदंबिका ॥ ३३ ॥ मूर्छां प्राप स दुष्टात्मा गदयाऽभिहतो भृशम् ॥ मुहूर्तद्वयमात्रं तु रथोपस्थ इवाचलः ॥ ३४ ॥ तं तथा मूर्छितं दृष्ट्वा ताम्रः परबलार्दनः ॥ आजगाम रणे योद्धुं चंडिकां प्रति चापलात् ॥ ३५ ॥ आगच्छंतं तु तं वीक्ष्य हसंती प्राह चंडिका ॥ एह्येहि दानवश्रेष्ठ यमलोकं नयाम्यहम् ॥ ३६ ॥ किं भवद्भिः समायातैरबलैश्च गतायुषैः ॥ महिषः किं गृहे मूढः करोति जीवनोद्यमम् ॥ ३७ ॥ किं भवद्भिर्हतैर्मे दैर्ममापि विफलः श्रमः ॥ अहते महिषे पापे सुरशत्रौ दुरात्मनि ॥ ३८ ॥ तस्माद्यूयं गृहं गत्वा महिषं प्रेषयंत्विह ॥ पश्येन्मां सोऽपि मंदात्मा यादृशीं तादृशीं स्थिताम् ॥ ३९ ॥ ताम्रस्तद्वचनं श्रुत्वा बाणवृष्टिं चकार ह ॥ चंडिकां प्रति कोपेन कर्णाकृष्टशरासनः ॥ ४० ॥ भगवत्यपि ताम्राक्षी समाकृष्य शरासनम् ॥ बाणान्मुमोच तरसा हंतुकामा सुराहितम् ॥ ४१ ॥ चिक्षुराख्योऽपि बलवान्मूर्छां त्यक्त्वोत्थितः पुनः ॥ गृहीत्वा सशरं चापं तस्थौ तत्संमुखः क्षणात् ॥ ४२ ॥ चिक्षुराख्यश्च ताम्रश्च द्वावप्यतिबलोत्कटौ ॥ युयुधाते महावीरौ सह देव्या रणांगणे ॥ ४३ ॥ कुपिता च महामाया ववर्ष शरसंततिम् ॥ चकार दानवान्सर्वान्बाणक्षततनुच्छदान् ॥ ४४ ॥ असुराः क्रोधसंमूढा बभूवुः

देवशत्रु, दुराचारी और पापी महिष नहीं मरता, तबतक तुम जैसे मूर्खोंको मारनेसे मेरा परिश्रम व्यर्थ जा रहा है ॥३८॥ अतएव तुम लोग लौट जाओ और महिषासुरको यहाँ भेज दो। जिससे वह दुष्ट भी देख ले कि अभी मैं ज्योंकी त्यों खड़ी हूँ ॥३९॥ भगवतीके वचन सुनकर ताम्रने कानतक धनुषकी डोरी खींचकर अतिशय क्रोधपूर्वक उनके ऊपर विकराल बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥४०॥ तब भगवतीने भी आँखें लाल करके अपने धनुषकी डोरी चढ़ायी और उस असुरको मारनेके लिए बड़े वेगसे बाण छोड़ने लगीं ॥४१॥ क्षणभर बाद ही बलवान् चिक्षुरकी भी मूर्छा दूर हो गयी और वह धनुष-बाण लेकर फिर भगवतीके सम्मुख जा डटा ॥ ४२ ॥ चिक्षुर और ताम्र दोनों बड़े बलवान् थे। वे दोनों महावीर दानव रणभूमिमें एक साथ भगवतीसे युद्ध करने लगे ॥४३॥ उस समय भगवती महामायाने ऐसी भीषण बाणवर्षा की कि जिससे सभी दानवोंके कवच छिन्न-भिन्न हो गये ॥ ४४ ॥ उन बाणोंकी मारसे वे सब असुर क्रोध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से पागल हो गये और किटकिटाकर देवीपर बाण बरसाने लगे ॥४५॥ उस रणभूमिमें भगवतीके बाणसे घायल राक्षस वसन्तकालमें पुष्पित किंशुक (टेसू) पुष्पके समान लाल दीखने लगे ॥४६॥ इस प्रकार ताम्रके साथ महामायाका बड़ा भीषण संग्राम हुआ। उसे देखकर आकाशमें प्रेक्षकरूपसे विद्यमान देवता चकित हो गये ॥४७॥ उसी समय ताम्र लोहेका एक भयानक मुसल लेकर झपटा और भगवतीके सिंहके मस्तकपर प्रहार करके गर्जन करने लगा ॥ ४८ ॥ उसे दहाड़ते देखकर भगवती कुपित हो उठीं और उन्होंने अपनी तीखी तलवारसे उसका मस्तक काट डाला ॥ ४९ ॥ मस्तक कट जानेपर भी वह वीर क्षणभर बिना मस्तकके ही हाथमें मुसल लिये घूमता रहा। उसके बाद वह रणभूमिमें गिर गया ॥ ५० ॥ ताम्रको इस प्रकार गिरते देखकर महाबली चिक्षुर हाथमें तलवार लेकर बड़े वेगसे महामायाकी ओर झपटा ॥ ५१ ॥ हाथमें तलवार लिये चिक्षुरको रणभूमिमें आते देखकर देवीने बड़ी फुर्तीसे पाँच बाण

शरताडिताः ॥ चिक्षिपुः शरजालानि देवीं प्रति रुषान्विताः ॥४५॥ बभुस्ते राक्षसास्तत्र किंशुका इव पुष्पिणः ॥ शिलीमुखक्षताः सर्वे वसन्ते च वने रणे ॥ ४६ ॥ बभूव तुमुलं युद्धं ताम्रेण सह संयुगे ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्देवा ये प्रेक्षकाः स्थिताः ॥ ४७ ॥ ताम्रो मुसलमादाय लोहजं दारुणं दृढम् ॥ जघान मस्तके सिंहं जहास च ननर्द च ॥४८॥ नर्दमानं तदा तं तु दृष्ट्वा देवी रुषान्विता॥ खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद सत्वरा ॥४९॥ छिन्ने शिरसि ताम्रस्तु विशीर्षो मुसली बली ॥ बभ्राम क्षणमात्रं तु पपात रणमस्तके ॥ ५० ॥ पतितं ताम्रमालोक्य चिक्षुराख्यो महाबलः ॥ खड्गमादाय तरसा दुद्राव चण्डिकां प्रति ॥ ५१ ॥ भगवत्यपि तं दृष्ट्वा खड्गपाणिमुपागतम् ॥ दानवं पञ्चभिर्बाणैर्जघान तरसा रणे ॥ ५२ ॥ एकेन पातितं खड्गं द्वितीयेन तु तत्करः ॥ कण्ठाच्च मस्तकं तस्य कृन्तितं चापरैः शरैः ॥ ५३ ॥ एवं तौ निहतौ क्रूरौ राक्षसौ रणदुर्मदौ ॥ भग्नं सैन्यं तयोस्तूर्णं दिक्षु संत्रस्तमानसम् ॥ ५४ ॥ देवाश्च मुदिताः सर्वे दृष्ट्वा तौ निहतौ रणे ॥ पुष्पवृष्टिं मुदा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः ॥ ५५ ॥ ऋषयो देवगन्धर्वा वेतालाः सिद्धचारणाः ॥ ऊचुस्ते जय देवीति चाम्बिकेति पुनः पुनः ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते पञ्चमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

॥ व्यास उवाच ॥ तौ तया निहतौ श्रुत्वा महिषो विस्मयान्वितः ॥ प्रेषयामास दैतेयांस्तद्वधार्थं महाबलान् ॥ १ ॥ असिलोमबिडालाक्ष-

मारा ॥५२॥ उन पाँचोंमेंसे एक बाण द्वारा उसकी तलवार और दूसरेसे उसका हाथ काट गिराया। बाकी तीन बाणोंसे उसका मस्तक काटकर धड़से अलग कर दिया ॥५३॥ इस प्रकार रणोन्मत्त क्रूर चिक्षुर तथा ताम्र दोनों भगवतीके हाथों मारे गये। इससे असुरसैनिकोंमें आतंक छा गया और वे दसों दिशाओंमें भाग गये ॥५४॥ रणभूमिमें उन दोनोंका निधन देखकर देवता बहुत प्रसन्न हुए और भगवतीकी जयजयकार करते हुए आकाशमण्डलसे उनपर फूल बरसाने लगे ॥ ५५ ॥ सभी ऋषि, गन्धर्व, वैताल, सिद्ध और चारण कहने लगे—हे देवि ! हे अम्बिके ! आपकी जय हो, जय हो ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(भगवती द्वारा असिलोमा और बिडालाक्षका वध) व्यासजी बोले—हे महाराज ! चिक्षुर और ताम्रके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर महिषासुरको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब उसने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्य महाबली दैत्योंको भगवतीका वध करनेके लिए भेजा ॥ १ ॥ उनमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले असिलोमा तथा बिडालाक्ष प्रमुख थे। वे अपने साथ बहुत बड़ी सेना, नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र और युद्धके अन्यान्य सरंजाम लेकर रणभूमिमें गये ॥ २ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि जगदम्बा सिंहपर सवार हैं, उनका दिव्य स्वरूप है, उनके अठारह भुजायें हैं और उन भुजाओंमें ढाल-तलवार आदि आयुध विद्यमान हैं ॥ ३ ॥ तब बड़े विनीत भावसे मुसकाता हुआ असिलोमा दैत्योंका वध करनेके लिए उद्यत भगवतीके समक्ष जाकर शांत बाणीमें बोला ॥४॥ असिलोमाने कहा—हे देवि ! आप मुझे सच-सच बताइए कि यहाँ किस लिए आयी हैं ? हे सुन्दरी ! आप निरपराध दैत्योंको क्यों मार रही हैं ? ॥५॥ यदि सही-सही कारण बता दें तो मैं आपके साथ सन्धि कर लूँगा। हे सुन्दरी ! तब आप तत्काल यहाँसे चली जायँ। आखिर आप युद्ध क्यों करना चाहती हैं ? इससे तो दुःख और संताप ही बढ़ता है॥ ६ ॥ ७ ॥ बड़े-बड़े महात्मा युद्धको सब सुख नष्ट करनेवाला रोग कहते हैं। आप फूलोंकी चोट भी सहनेमें असमर्थ अपने कोमल शरीरपर शस्त्रास्त्रोंका आघात क्यों सहती हैं ? यह देखकर मुझे आश्चर्य

प्रमुखान् युद्धदुर्मदान् ॥ सैन्येन महता युक्तान्सायुधान्सपरिच्छदान् ॥ २ ॥ ते तत्र ददृशुर्देवीं सिंहस्योपरि संस्थिताम् ॥ अष्टादशभुजां दिव्यां खड्गखेटकधारिणीम् ॥ ३ ॥ असिलोमाऽग्रतो गत्वा तामुवाच हसन्निव ॥ विनयावनतः शांतो देवीं दैत्यवधोद्यताम् ॥ ४ ॥ असिलोमोवाच ॥ देवि ब्रूहि वचः सत्यं किमर्थमिह सुन्दरि ॥ आगताऽसि किमर्थं वा हंसि दैत्यान्निरागसः ॥ ५ ॥ कारणं कथयाद्य त्वं त्वया सन्धिं करोम्यहम् ॥ काञ्चनं मणिरत्नानि भाजनानि वराणि च ॥ ६ ॥ यानीच्छसि वरारोहे गृहीत्वा गच्छ मा चिरम् ॥ किमर्थं युद्धकामाऽसि दुःखसन्तापवर्धनम् ॥ ७ ॥ कथयन्ति महात्मानो युद्धं सर्वसुखापहम् ॥ कोमलेऽतीव ते देहे पुष्पघातासहे भृशम् ॥ ८ ॥ किमर्थं शस्त्रसम्पातान्सहसीति विसिस्मिये ॥ चातुर्यस्य फलं शांतिः सततं सुखसेवनम् ॥ ९ ॥ तत्किमर्थं दुःखहेतुं संग्रामं कर्तुमिच्छसि ॥ संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ॥ १० ॥ तत्सुखं द्विविधं प्रोक्तं नित्यानित्यप्रभेदतः ॥ आत्मज्ञानं सुखं नित्यमनित्यं भोगजं स्मृतम् ॥ ११ ॥ नाशात्मकं तु तत्त्याज्यं वेदशास्त्रार्थचिंतकैः ॥ सौगतानां मतं चेत्त्वं स्वीकरोषि वरानने ॥ १२ ॥ तथापि यौवनं प्राप्य भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ परलोकस्य सन्देहो यदि तेऽस्ति कृशोदरि ॥ १३ ॥ स्वर्गभोगपरा नित्यं भव भामिनि भूतले ॥ अनित्यं यौवनं देहे ज्ञात्वेति सुकृतं चरेत् ॥ १४ ॥ परोपतापनं कार्यं वर्जनीयं सदा बुधैः ॥ अविरोधेन

होता है। चतुराईका फल शान्ति है और शान्तिसे बड़ा आनन्द मिलता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ अतएव आप दुःखका मूल कारण संग्राम क्यों करना चाहती हैं ? इस संसारमें आकर सुख लेना और दुःखको त्यागना चाहिए। यही प्राचीन परिपाटी है ॥ १० ॥ वह सुख भी दो प्रकारका होता है—नित्य और अनित्य। जिसमें आत्मज्ञानका सुख नित्य और भोगजनित सुख अनित्य होता है ॥११॥ वेद-शास्त्रका यथार्थ तत्त्व जाननेवाले विद्वान् नाशात्मक, अनित्य और भोगजनित सुखसे दूर भागते हैं। हे सुमुखी ! यदि आप परलोकपर आस्था न रखनेवाले बौद्धोंके मतको मानती हों तो आपको ऐसी सुन्दर जवानी पाकर उच्चकोटिके भोग भोगना चाहिए। हे कृशोदरि (पतली कमरवाली) ! यदि आपको परलोकमें सन्देह हो तो इस पृथिवीपर ही सदाचारसे रहकर स्वर्गीय सुख भोगिए। यौवन अनित्य होता है, यह समझकर सदा भला काम करना चाहिए ॥ १२–१४ ॥ समझदार विद्वानोंका कर्तव्य है कि ऐसे कामोंसे सदा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बचें, जिससे किसी दूसरे प्राणीको कष्ट होता हो। उन्हें चाहिए कि उचित रीतिसे धर्म, अर्थ और कामका सेवन करें ॥ १५ ॥ अतएव हे कल्याणी ! आप भी अपनी बुद्धि धर्मकार्यमें लगाइए। हे अम्बिके ! आप बिना किसी अपराधके दैत्योंको क्यों मार रही हैं ? ॥१६॥ प्रत्येक पुरुषके शरीरमें दयारूपी धर्म विद्यमान रहता है और सत्यमें प्राण टिके रहते हैं। अतएव बुद्धिमान् लोगोंको चाहिए कि सत्य और दयाकी रक्षा करते रहें ॥ १७॥ हे सुजघने ! अब बताइए कि आप दानवोंका वध क्यों करती हैं ? देवी बोलीं–हे महाबाहो ! तुमने पूछा कि मैं यहाँ क्यों आयी हूँ ? ॥१८॥ सो मैं अपने आने और दैत्योंके वधका कारण बता रही हूँ। हे दैत्य ! मैं प्राणिमात्रका न्याय और अन्याय देखती हुई सबकी साक्षी बनकर सब लोकोंमें सदा विचरती रहती हूँ। न कभी मुझे भोगकी इच्छा होती है, न लोभ सताता है और न कभी किसीके प्रति वैरभाव रहता है ॥१९॥२०॥ मैं संसारमें धर्म तथा साधुजनोंकी रक्षा करनेके लिए विचरण करती

कर्तव्यं धर्मार्थकामसेवनम् ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वमपि कल्याणि मतिं धर्मे सदा कुरु ॥ अपराधं विना दैत्यान्कस्मान्मारयसेऽम्बिके ॥ १६ ॥ दया धर्मोऽस्य देहोऽस्ति सत्ये प्राणाः प्रकीर्तिताः ॥ तस्माद्दया तथा सत्यं रक्षणीयं सदा बुधैः ॥ १७ ॥ कारणं वद सुश्रोणि दानवानां वधे तव ॥ देव्युवाच ॥ त्वया पृष्टं महाबाहो किमर्थमिह चागता ॥ १८॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि हनने च प्रयोजनम् ॥ विचरामि सदा दैत्य सर्वलोकेषु सर्वदा ॥१९॥ न्यायान्यायौ च भूतानां पश्यंती साक्षिरूपिणी ॥ न मे कदाऽपि भोगेच्छा न लोभो न च वैरिता ॥ २० ॥ धर्मार्थं विचराम्यत्र संसारे साधुरक्षणम् ॥ व्रतमेतत्तु नियतं पालयामि निजं सदा ॥ २१ ॥ साधूनां रक्षणं कार्यं हंतव्या येऽप्यसाधवः ॥ वेदसंरक्षणं कार्यमवतारैरनेकशः ॥ २२ ॥ युगे युगे तानेवाहमवतारान्बिभर्मि च ॥ महिषस्तु दुराचारो देवान्वै हंतुमुद्यतः ॥ २३ ॥ ज्ञात्वाऽहं तद्वधार्थं भोः प्राप्ताऽस्मि राक्षसाधुना ॥ तं हनिष्ये दुराचारं सुरशत्रुं महाबलम् ॥ २४ ॥ गच्छ वा तिष्ठ कामं त्वं सत्यमेतदुदाहृतम् ॥ ब्रूहि वा तं दुरात्मानं राजानं महिषीसुतम् ॥ २५ ॥ किमन्यान्प्रेषयस्यत्र स्वयं युद्धं कुरुष्व ह ॥ संधिश्चेत्कर्तुमिच्छाऽस्ति राज्ञस्तव मया सह ॥ २६॥ सर्वे गच्छन्तु पातालं वैरं त्यक्त्वा यथासुखम् ॥ देवद्रव्यं तु यत्किंचिद्धृतं जित्वा रणे सुरान् ॥ २७ ॥ तद्दत्त्वा यांतु पातालं प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या असि-

हूँ। यह मेरा निश्चित व्रत है और मैं सदा इसका पालन करती हूँ ॥२१॥ मैं समय-समयपर अनेक अवतार लेकर सज्जनोंकी रक्षा, दुष्टोंका संहार और वेदोंका संरक्षण करती हूँ ॥ २२ ॥ मैं प्रत्येक युगमें अवतार लेती हूँ। दुराचारी महिष देवताओंको समाप्त कर डालना चाहता है ॥२३॥ जब मुझे यह खबर मिली तो मैं यहाँ आ गयी। हे दैत्य ! मैं उस महाबली, देवताओंके शत्रु तथा दुराचारी महिषको अवश्य मारूँगी ॥२४॥ अब तुम जाओ या रहो। मैंने तुम्हें यथार्थ बात बता दी। अच्छा तो यह हो कि उस मलिनहृदय एवं महिषीपुत्र राजाको मेरा सन्देश सुना दो कि रणभूमिमें तुम अन्य दैत्योंको क्यों भेजते हो ? तुम स्वयं आकर मेरे साथ लड़ो। यदि तुम्हारे राजा महिष सन्धि करना चाहते हों ॥२५॥२६॥ तब देवताओंके प्रति वैरभाव त्यागकर सानन्द पाताल चले जायँ। पूर्वकालमें देवताओंको परास्त करके उनका जितना द्रव्य उन्होंने छीना है, वह सब लौटाकर पातालमें प्रह्लादके पास चले जायँ। व्यासजी बोले—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवीके वचन सुनकर अपने समक्ष उपस्थित महाबली बिडालाक्षसे असिलोमाने बड़े प्रेमपूर्वक कहा। असिलोमा बोला–हे बिडालाक्ष! भवानीने जो कहा, उसे तुमने सुना? ॥ २७–२९ ॥
ऐसी परिस्थितिमें हमें युद्ध या सन्धि इन दोनोंमें क्या करना चाहिए? बिडालाक्षने कहा—युद्धमें मृत्युको निश्चित जानते हुए भी अभिमानी राजा महिष सन्धि नहीं करना चाहते
॥ ३० ॥ नित्य हम दैत्योंका संहार होते देखकर भी वे बराबर हम लोगोंको भेजते रहते हैं। दैवका अतिक्रमण कौन कर सकता है? (आज्ञाकारी, नित्य वशवर्ती और मानापमानहीन
सेवकोंका धर्म बड़ा दुःसाध्य होता है। जैसे कठपुतली डोरेके सहारे नचायी जाती है, उसी प्रकार सेवक स्वामीके संकेतपर नाचते हैं।) और हम लोग राजा महिषके पास चलकर
ऐसे कठोर सन्देशको कैसे कह सकते हैं?–॥ ३१ ॥ कि देवताओंके अपहृत समस्त धन-रत्न लौटाकर तुम पाताल चले जाओ। क्योंकि राजाके समक्ष सदा मीठी बात ही कहनी

लोमा पुरःस्थितः ॥ २८ ॥ बिडालाक्षं महावीरं पप्रच्छ प्रीतिपूर्वकम् ॥ असिलोमोवाच ॥ श्रुतं तेऽद्य बिडालाक्ष भवान्या कथितं च यत् ॥ २६ ॥
एवं गते किं कर्तव्यो विग्रहः संधिरेव वा ॥ बिडालाक्ष उवाच ॥ न संधिकामोऽस्ति नृपोऽभिमानी युद्धे च मृत्युं नियतं हि जानन् ॥ दृष्ट्वा हता-
न्प्रेरयते तथाऽस्मान्दैवं हि कोऽतिक्रमितुं समर्थः ॥३०॥ (दुःसाध्य एवास्त्विह सेवकानां धर्मः सदा मानविवर्जितानाम् ॥ आज्ञापराणां वशवर्ति-
कानां पांचालिकानामिव सूत्रभेदात् ॥) गत्वा कथं तस्य पुरस्त्वया च मयाऽपि वक्तव्यमिदं कठोरम् ॥ गच्छंतु पातालमितश्च सर्वे दत्त्वाऽथ रत्नानि
धनं सुराणाम् ॥ ॥३१॥ (प्रियं हि वक्तव्यमसत्यमेव न च प्रियं स्याद्धितकृत्तु भाषितम् ॥ सत्यं प्रियं नो भवतीह कामं मौनं ततो बुद्धिमतां प्रति-
ष्ठितम् ॥) न फल्गुवाक्यैः प्रतिबोधनीयो राजा तु वीरैरिति नीतिशास्त्रम् ॥ ३२ ॥ न नूनं तत्र गंतव्यं हितं वा वक्तुमादरात् ॥ प्रष्टुं वाऽपि गते
राजा कोपयुक्तो भविष्यति ॥ ३३ ॥ इति संचिन्त्य कर्तव्यं युद्धं प्राणस्य संशये ॥ स्वामिकार्यं परं मत्वा मरणं तृणवत्तथा ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥
इति संचिंत्य तौ वीरौ संस्थितौ युद्धतत्परौ ॥ धनुर्बाणधरौ तत्र सन्नद्धौ रथसंगतौ ॥ ३५ ॥ प्रथमं तु बिडालाक्षः सप्त बाणान्मुमोच ह ॥ असि-
लोमा स्थितो दूरे प्रेक्षकः परमास्त्रवित् ॥३६॥ चिच्छेद तांस्तथा प्राप्तानम्बिका स्वशरैः शरान् ॥ बिडालाक्षं त्रिभिर्बाणैर्जघान च शिलाशितैः ॥३७॥

चाहिए। फिर वह चाहे असत्य ही क्यों न हो। हितकारी बात बड़ी तीखी होती है। सत्य वचन कभी मीठा नहीं हो सकता। अतएव बुद्धिमानोंके लिए सबसे सुन्दर नीति यही है कि
वे मौन रह जायँ ॥) नीतिशास्त्र भी यही कहता है कि राजाके हृदयमें कोई कर्कश बात उतारनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए ॥ ३२ ॥ हमें राजाके हितकी बात कहनेके लिए आदरपूर्वक भी
उनके पास न जाना चाहिए। क्योंकि ऐसा करनेसे वे कुपित हो जायँगे ॥ ३३ ॥ ऐसा विचारकर प्राणसंशय रहते हुए भी हमें युद्ध ही करना चाहिए। स्वामीके कार्यको प्रधान मानकर
हमको अपने प्राण तृणवत् समझना चाहिए ॥ ३४ ॥ व्यासजी बोले–इस प्रकार परस्पर विचार करके वे दोनों धनुर्धर रथपर सवार हो तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्ज होकर युद्धके लिए तत्पर
हो गये ॥ ३५ ॥ पहले बिडालाक्षने आगे बढ़कर देवीपर सात बाण छोड़े। अस्त्रविद्याका परम मर्मज्ञ असिलोमा प्रेक्षककी तरह दूर जाकर खड़ा हो गया ॥ ३६ ॥ भगवती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महामायाने अपने बाणोंसे उनके सातों बाण व्यर्थ करके सानपर चढ़े तीन तीक्ष्ण बाणोंसे बिडालाक्षपर प्रहार किया ॥ ३७॥ उन बाणोंके आघातसे पीडित होकर वह रणभूमिमें गिर पड़ा और दैवयोगसे उसीकी वेदनासे अचेत होकर वह मर गया ॥ ३८॥ इस प्रकार देवीके बाणोंसे बिडालाक्षका मरण देखकर असिलोमा धनुष-बाण लेकर युद्धके लिए आगे बढ़ा ॥३९॥ उसने अपनी दाहिनी भुजा उठाकर कहा—हे देवि ! मैं जानता हूँ कि सभी दुराचारी दानव मारे जायँगे ॥४०॥ फिर भी पराधीन होनेके कारण हमें युद्ध ही करना पड़ेगा। क्योंकि मूर्ख महिष अपना हित-अहित नहीं जानता ॥४१॥ मैं उसके पास जाकर हितकारिणी, किंतु कड़वी बात न कहूँगा। अब शुभ हो या अशुभ, मैं वीरधर्मका पालन करता हुआ यहीं मर मिटूँगा॥४२॥ आपके बाणोंकी चोट खाते ही दैत्य धराशायी हो जाते हैं। अतएव मैं दैवको ही प्रधान मानता हूँ। व्यर्थके पुरुषार्थको धिक्कार है ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर दानवश्रेष्ठ असिलोमा बाणवर्षा

प्राप्य बाणव्यथां दैत्यः पपात समरांगणे ॥ मूर्छितोऽथ ममाराशु दानवो दैवयोगतः ॥ ३८ ॥ बिडालाक्षं हतं दृष्ट्वा रणे शक्तिशरोत्करैः ॥ असिलोमा धनुष्पाणिः संस्थितो युद्धतत्परः ॥ ३९ ॥ ऊर्ध्वं सव्यं करं कृत्वा तामुवाच मितं वचः ॥ देवि जानामि मरणं दानवानां दुरात्म-नाम् ॥ ४० ॥ तथापि युद्धं कर्तव्यं पराधीनेन वै मया ॥ महिषो मन्दबुद्धिश्च न जानाति प्रियाप्रिये ॥ ४१ ॥ तदग्रे नैव वक्तव्यं हितं चैवाप्रियं मया ॥ मर्तव्यं वीरधर्मेण शुभं वाऽप्यशुभं भवेत् ॥ ४२ ॥ दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ पतन्ति दानवास्तूर्णं तव बाणहता भुवि ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वा शरवृष्टिं स चकार दानवोत्तमः ॥ देवी चिच्छेद ताान्बाणैरप्राप्तांस्तु निजान्तिके ॥ ४४ ॥ अन्यैर्विव्याध तं तूर्णमसिलोमानमाशुगैः ॥ वीक्षिताऽमरसंघैश्च कोपपूर्णानना तदा ॥ ४५ ॥ शुशुभे दानवः कामं बाणैर्विद्धतनुः किल ॥ स्रवद्रुधिरधारः स प्रफुल्लः किंशुको यथा ॥ ४६ ॥ असिलोमा गदां गुर्वीं लौहीमुद्यम्य वेगतः ॥ दुद्राव चण्डिकां कोपात्सिंहं मूर्ध्नि जघान ह ॥ ४७ ॥ सिंहोऽपि नखराघातैस्तं ददार भुजांतरे ॥ अगणय्य गदाघातं कृतं तेन बलीयसा ॥ ४८ ॥ उत्पत्य तरसा दैत्यो गदापाणिः सुदारुणः ॥ सिंहमूर्ध्नि समारुह्य जघान गदयाऽम्बिकाम् ॥ ४९ ॥ कृतं तेन प्रहारं तु वञ्चयित्वा विशांपते ॥ खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद कण्ठतः ॥ ५० ॥ छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रः पपात तरसा क्षितौ ॥ हाहा-

करने लगा। किन्तु अपने पास आनेके पहले ही देवीने उन बाणोंको काटकर व्यर्थ कर दिया॥४४॥ उसके बाद भगवतीने अन्य बाणोंसे असिलोमाके शरीरको बींधा। उस समय देवताओंने देखा कि भगवतीका मुख कोपसे लाल हो गया है ॥४५॥ उन बाणोंसे बिंधकर प्रबल रुधिरधारा बहाता हुआ दानव असिलोमा, पुष्पित टेसूके वृक्ष सदृश सुन्दर दिखायी देने लगा ॥ ४६ ॥ उसी समय असिलोमा एक बड़ी भारी लौहमयी गदा लेकर बड़े वेगसे भगवतीकी ओर झपटा। समीप पहुँचकर उसने गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया ॥ ४७ ॥ देवीके बलवान् सिंहने उस गदाघातकी कुछ भी परवाह न करके अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसकी छाती फाड़ डाली ॥४८॥ तथापि वह गदाधारी दैत्य उछलकर सिंहके मस्तकपर चढ़ गया और वहींसे भगवतीके मस्तकपर गदाका प्रहार कर दिया॥४९॥ हे महाराज! उस आघातको बचाकर भगवतीने अपने तीखे खड्गसे उसका सिर काट लिया॥५०॥ इस प्रकार मस्तक कट जानेपर वह बड़े वेगसे धरतीपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गिर पड़ा। उसके गिरते ही उस दुष्टकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥५१॥ हे महाराज! आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता देवीकी जयजयकार करके उनकी स्तुति करने लगे। देवदुन्दुभियाँ बजने लगीं और किन्नरगण उनके गुण गाने लगे ॥ ५२ ॥ बिडालाक्ष तथा असिलोमा इन दोनों दैत्योंको रणभूमिमें मरा हुआ देखकर देवीके सिंहने उनके सैनिकोंको अपने पराक्रमसे मार डाला ॥ ५३ ॥ उनमेंसे बहुतेरे दैत्योंको वह खा गया। जिससे बड़ी भगदड़ मची और कुछ ही देरमें समस्त रणभूमि खाली हो गयी। कुछ अभागे दैत्य दुःखित होकर महिषके पास जा पहुँचे ॥ ५४ ॥ वहाँ जाकर वे त्राहि-त्राहि करते हुए बड़ी जोरसे रोने-चिल्लाने लगे। उन्होंने कहा—हे महाराज! असिलोमा और बिडालाक्ष दोनों वीर युद्धमें मारे गये ॥ ५५ ॥ हे राजन्! जो बचे-खुचे दैत्यसैनिक थे, उन्हें देवीका सिंह खा गया। ऐसा कहकर वे सब रोने लगे ॥ ५६ ॥ सैनिकोंके वचन सुनकर महिष अनमना हो गया। अब उसे चिंता सताने लगी

कारो महानासीत्सैन्ये तस्य दुरात्मनः ॥ ५१ ॥ जय देवीति देवास्तां तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्जगुश्च नृप किन्नराः ॥ ५२ ॥ निहतौ दानवौ वीक्ष्य पतितौ च रणांगणे ॥ निहताः सैनिकाः सर्वे तत्र केसरिणा बलात् ॥ ५३ ॥ भक्षिताश्च तथा केचिन्निःशेषं तद्रणं कृतम् ॥ भग्नाः केचिद्गता मन्दा महिषं प्रति दुःखिताः ॥ ५४ ॥ चुक्रुशू रुरुदुश्चैव त्राहि त्राहीति भाषणैः ॥ असिलोमबिडालाक्षौ निहतौ नृपसत्तम ॥ ५५ ॥ अन्ये ये सैनिका राजन्सिंहेन भक्षिताश्च ते ॥ एवं ब्रुवन्तो राजानं तदा चक्रुश्च वैशसम् ॥ ५६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां महिषो दुर्मनास्तदा ॥ बभूव चिन्ताकुलितो विमना दुःखसंयुतः ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधयुक्तो नराधिपः ॥ दारुकं प्राह तरसा रथमानय मेऽद्भुतम् ॥१॥ सहस्रखरसंयुक्तं पताकाध्वजभूषितम् ॥ आयुधैः संयुतं शुभ्रं सुचक्रं चारुकूबरम् ॥ २ ॥ सूतोऽपि रथमानीय तमुवाच त्वरान्वितः ॥ राजन्नथोऽयमानीतो द्वारि तिष्ठति भूषितः ॥ ३ ॥ सर्वायुधसमायुक्तो वरास्तरणसंयुतः ॥ आनीतं तं रथं ज्ञात्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥ ४ ॥ मानुषं देहमास्थाय संग्रामं गन्तुमुद्यतः ॥ विचार्य मनसा चेति देवी मां प्रेक्ष्य दुर्मुखम् ॥ ५ ॥ शृङ्गिणं महिषं नूनं विमना सा भविष्यति ॥ नारीणां च प्रियं रूपं तथा चातुर्यमित्यपि ॥ ६ ॥

और दुःखकी अधिकताके कारण उसके चेहरेपर उदासी छा गयी ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

(देवी-महिषसंवाद) व्यासजी बोले—हे महाराज! उन सैनिकोंकी बात सुनकर राजा महिष क्रोधसे लाल हो गया। तत्काल उसने दारुकसे कहा कि मेरा अद्भुत रथ ले आओ ॥१॥ उसके रथमें एक हजार गधे जुतते थे। वह ध्वजा-पताकाओंसे सजा रहता था। उसमें सब प्रकारके शस्त्रास्त्र विद्यमान रहते थे। उसके पहिये और जुए बड़े ही सुंदर थे ॥ २ ॥ सारथीने तत्काल रथ लाकर कहा—हे महाराज! रथ आ गया और वह सुसज्जित होकर द्वारपर खड़ा है ॥ ३ ॥ उसमें सब आयुध धरे हैं और सुन्दर बिछौना बिछा हुआ है। रथके आनेकी बात सुनकर दानवराज महिष मनुष्यका रूप धारण करके युद्धभूमिमें जानेको तैयार हुआ। उसने अपने मनमें सोचा कि यदि मैं अपने महिषरूपसे जाऊँगा तो देवी मेरा श्रृंगयुक्त रूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखकर घृणा करेगी। क्योंकि स्त्रियोंको सुन्दर रूप और चतुराई ही भाती है ॥ ४–६ ॥ इसलिए अपना बहुत ही आकर्षक रूप बना तथा चतुरतापूर्वक बन-सँवरकर मैं उसके पास जाऊँगा। जिससे देखते ही वह युवती मुझपर मोहित हो जाय ॥७॥ अन्य किसी स्वरूपसे मुझे आनन्द नहीं मिलेगा। मन ही मन यह सोचता हुआ वह महाबली दानवेन्द्र महिषरूप त्यागकर बड़ा सुन्दर मनुष्य बन गया। उसने सभी शस्त्रास्त्र तथा उत्तम आभूषण धारण कर लिये ॥ ८ ॥ ९ ॥ शरीरपर दिव्य रेशमी कपड़े, भुजाओंमें विजायठ और गलेमें फूलोंकी माला पहन तथा हाथमें धनुष-बाण लेकर जब वह रथपर बैठा, तब दूसरे कामदेवके समान सुन्दर दीखने लगा ॥ १० ॥ मानिनी सुन्दरियोंका मन हरनेवाला ऐसा सुन्दर रूप बनाकर वह मदोन्मत्त दैत्य अपनी विशाल सेनाके साथ देवीकी ओर चला ॥ ११ ॥ बहुतेरे वीरोंके साथ दैत्यराज महिषासुरको आते देखकर देवीने अपना शंख बजाया ॥ १२ ॥ शङ्खध्वनि सुनकर दानवोंको बड़ा विस्मय हुआ। तब मन्द-मन्द मुसकाता हुआ महिष देवीके पास पहुँचा और कहने लगा–हे देवि ! इस संसारमें रहनेवाले सभी स्त्री-पुरुष सर्वथा सुख चाहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

तस्माद्रूपं च चातुर्यं कृत्वा यास्यामि तां प्रति ॥ यथा मां वीक्ष्य सा बाला प्रेमयुक्ता भविष्यति ॥ ७ ॥ ममापि च तदैव स्यात्सुखं नान्यस्वरूपतः ॥ इति संचिंत्य मनसा दानवेन्द्रो महाबलः ॥ ८ ॥ त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव पुरुषः शुभः ॥ सर्वायुधधरः श्रीमांश्चारुभूषणभूषितः ॥ ९ ॥ दिव्यांबरधरः कांतः पुष्पबाण इवापरः ॥ रथोपविष्टः केयूरस्रग्वी बाणधनुर्धरः ॥ १० ॥ सेनापरिवृतो देवीं जगाम मदगर्वितः ॥ मनोज्ञं रूपमास्थाय मानिनीनां मनोहरम् ॥११॥ तमागतं समालोक्य दैत्यानामधिपं तदा ॥ बहुभिः संवृतं वीरैर्देवी शंखमवादयत ॥ १२ ॥ स शंखनिनदं श्रुत्वा जनविस्मयकारकम् ॥ समीपमेत्य देव्यास्तु तामुवाच हसन्निव ॥ १३ ॥ देवि संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानो जनः किल ॥ नरो वाऽथ तथा नारी सुखं वांछति सर्वथा ॥ १४ ॥ सुखं संयोगजं नणां नासंयोगे भवेदिह ॥ संयोगो बहुधा भिन्नस्तान्ब्रवीमि शृणुष्व ह ॥ १५ ॥ भेदान्सुप्रीतिहेतूत्थान्स्वभावोत्थाननेकशः ॥ तत्र प्रीतिंभवानादौ कथयामि यथामति ॥ १६ ॥ मातापित्रोस्तु पुत्रेण संयोगस्तूत्तमः स्मृतः ॥ भ्रातुर्भ्रात्रा तथा योगः कारणान्मध्यमो मतः ॥ १७ ॥ उत्तमस्य सुखस्यैव दातृत्वादुत्तमः स्मृतः ॥ तस्मादल्पसुखस्यैव प्रदातृत्वाच्च मध्यमः ॥ १८ ॥ नाविकानां तु संयोगः स्मृतः स्वाभाविको बुधैः ॥ विविधावृतचित्तानां प्रसंगपरिवर्तिनाम् ॥१९॥ अत्यल्पसुखदातृत्वात्कनिष्ठोऽयं स्मृतो बुधैः ॥ अत्युत्तमस्तु संयोगः संसारे

यहाँ मनुष्योंके परस्पर संयोगसे ही सुख मिलता है। दूर-दूर रहनेसे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। उस संयोगके अनेक भेद होते हैं। उन्हें मैं बता रहा हूँ, सुनिए ॥१५॥ उनमें सुप्रीति-संयोग प्रेमसे जायमान होता है। हेतूत्थ-संयोग कोई कार्य सिद्ध करनेके लिए उत्पन्न होता है। स्वभावोत्थ-संयोग अपने आप उत्पन्न हो जाता है। अब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार प्रेमसे जायमान होनेवाले संयोगका विश्लेषण कर रहा हूँ ॥१६॥ माता-पिताका पुत्रके साथ होनेवाला संयोग नैसर्गिक प्रेमके कारण होता है। अतएव वह सर्वोत्तम माना जाता है। भाई-भाईका संयोग किसी मतलबसे होता है। इसलिए वह संयोग मध्यम श्रेणीका कहलाता है ॥१७॥ उपर्युक्त माता-पिताका पुत्रके साथ होनेवाला संयोग उत्तम प्रकारका सुख प्रदान करता है। इसलिए वह उत्तम कहा गया है। भाई-भाईके संयोगसे कुछ कम सुख मिलता है। अतएव उसे मध्यम दर्जेका संयोग कहा जाता है ॥ १८ ॥ विविध धन्धोंमें व्यस्त लोगोंका नाव आदिमें प्रसंगवश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिलन स्वाभाविक संयोग कहलाता है ॥ १९ ॥ उस संयोगसे बहुत अल्प सुख प्राप्त होता है। अतएव उसे लोग निकृष्ट श्रेणीका संयोग कहते हैं। तात्पर्य यह निकला कि अति उत्तम संयोग ही प्राणीको स्थायी सुख देता है ॥ २० ॥ हे कान्ते! समान अवस्थावाले स्त्री-पुरुषके मिलनको लोग अति उत्तम संयोग कहते हैं ॥ २१ ॥ क्योंकि उससे अति उत्तम सुख प्राप्त होता है और उसमें चातुर्य, रूप, वेश-भूषा, कुल, शील और गुणोंका भली भाँति समावेश रहता है ॥२२॥ उसमें प्रिया और प्रियतम दोनों एक दूसरेके गुणोंका बखान करते हैं। अतएव यदि उस उत्तम संयोगकी आकांक्षा हो तो आप मेरे साथ सम्बन्ध करिए ॥ २३ ॥ ऐसा करनेसे आपको उत्तम प्रकारका सुख प्राप्त होगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे प्रिये! मैं अपनी इच्छासे नाना प्रकारके रूप धारण कर सकता हूँ ॥२४॥ इन्द्र आदि सभी देवताओंको मैंने जीत लिया है। संसारमें जितने दिव्य रत्न हैं, वे सब मेरे घरमें भरे हुए हैं ॥ २५ ॥ हे सुन्दरी! तुम मेरी पटरानी बनकर उन रत्नोंका मनमाना उपभोग करो और जिसे जो चाहो, सो दे दो। हे प्रिये! मेरे ऊपर कृपा करो। मैं तुम्हारा दास हूँ ॥ २६ ॥ यदि तुम कहो

सुखदु:खद: ॥ २० ॥ नारीपुरुषयो: कांते समानवयसो: सदा ॥ संयोगो य: समाख्यात: स एवात्युत्तम: स्मृत: ॥ २१ ॥ अत्युत्तमसुखस्यैव दातृत्वात्स तथाविध: ॥ चातुर्यरूपवेषाद्यै: कुलशीलगुणैस्तथा ॥ २२ ॥ परस्परसमुत्कर्ष: कथ्यते हि परस्परम् ॥ तं चेत्करोषि संयोगं वीरेण च मया सह ॥ २३ ॥ अत्युत्तमसुखस्यैव प्राप्ति: स्यात्ते न संशय: ॥ नानाविधानि रूपाणि करोमि स्वेच्छया प्रिये ॥ २४ ॥ इन्द्रादय: सुरा: सर्वे संग्रामे विजिता मया ॥ रत्नानि यानि दिव्यानि भवनेऽस्मिन्ममाधुना ॥ २५ ॥ भुंक्ष्व त्वं तानि सर्वाणि यथेष्टं देहि वा तथा ॥ पट्टराज्ञी भवाद्य त्वं दासोऽस्मि तव सुन्दरि ॥ २६ ॥ वैरं त्यजेऽहं देवैस्तु तव वाक्यान्न संशय: ॥ यथा त्वं सुखमाप्नोषि तथाऽहं करवाणि वै ॥ २७ ॥ आज्ञापय विशालाक्षि तथाऽहं प्रकरोम्यथ ॥ चित्तं मे तव रूपेण मोहितं चारुभाषिणि ॥ २८ ॥ आतुरोऽस्मि वरारोहे प्राप्तस्ते शरणं किल ॥ प्रपन्नं पाहि रंभोरु कामबाणै: प्रपीडितम् ॥ २९ ॥ धर्माणामुत्तमो धर्म: शरणागतरक्षणम् ॥ त्वदीयोऽस्म्यसितापांगि सेवकोऽहं कृशोदरि ॥ ३० ॥ मरणांतं वच: सत्यं नान्यथा प्रकरोम्यहम् ॥ पादौ नतोऽमि तन्वंगि त्यक्त्वा नानायुधानि ते ॥ ३१ ॥ दयां कुरु विशालाक्षि तप्तोऽस्मि काममार्गणै: ॥ जन्मप्रभृति चार्वंगि दैन्यं नाचरितं मया ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादीनीश्वरान्प्राप्य त्वयि तद्विदधाम्यहम् ॥ चरितं मम जानंति रणे ब्रह्मादय: सुरा: ॥ ३३ ॥

तो मैं देवताओंसे वैर रखना छोड़ दूँ। क्योंकि जिसमें तुम्हें सुख मिलेगा, मैं वही काम करूँगा ॥ २७ ॥ हे विशालनयनी! तुम मुझे आज्ञा दो और मैं उसका पालन करूँ। हे सुनयनी! मेरा मन तुम्हारे रूपपर मोहित हो गया है ॥२८॥ हे सुजघने! मैं तुम्हें पानेके लिए बेचैन हूँ और इसी लिए इस समय तुम्हारी शरणमें आया हूँ। हे कदलीस्तम्भके सदृश जाँघोंवाली सुन्दरी! मैं कामबाणसे घायल होकर यहाँ आया हूँ। मुझ शरणागतकी रक्षा करो ॥ २९ ॥ शरणागतकी रक्षा सब धर्मोंमें उत्तम धर्म है। हे श्यामनयनी! मैं सब तरहसे तुम्हारा हूँ। हे कृशोदरी! मैं तुम्हारा सेवक हूँ ॥३०॥ मैं मरण पर्यन्त कभी भी तुम्हारी कोई बात न टालूँगा। हे सुकुमारी! अपने सब आयुधोंको त्यागकर मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ ॥ ३१ ॥ हे विशालनयनी! मैं कामदेवके बाणोंसे झुलसा जा रहा हूँ। तुम मेरे ऊपर दया करो। हे सुन्दरी! जन्मसे लेकर आजतक मैंने कभी किसीके आगे दीनता नहीं दिखायी ॥३२॥ ब्रह्मादिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़े-बड़े देवताओंके समक्ष भी कभी मेरा मस्तक नहीं झुका। उसे आज तुम्हारे आगे झुका रहा हूँ। ब्रह्मा आदि सब देवता मेरे चरित्र और युद्धके पराक्रमको भलीभाँति जानते हैं ॥३३॥ हे भामिनी! इतना बड़ा वीर होते हुए भी मैं तुम्हारी दासता स्वीकार करता हूँ। एक बार मेरा मुख तो देखो। उसमें तुम्हारे लिए कितनी आकुलता निहित है। व्यासजी बोले—ऐसा कहते हुए दैत्य महिषासुरसे तनिक हँसकर भगवतीने कहा। देवी बोलीं—मैं परम पुरुष परमात्माके सिवाय और किसी पुरुषको नहीं चाहती ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे दैत्य! मैं उस परम पुरुषकी इच्छाशक्ति हूँ। मैं ही समस्त विश्वकी सृष्टि करती हूँ। वह विश्वात्मा मुझे देख रहा है। क्योंकि मैं उसकी शिवा प्रकृति हूँ ॥३६॥ वे सदा मेरे समीप रहते हैं। इसीसे तो मुझमें चेतनाशक्ति विद्यमान रहती है। वैसे वास्तवमें मैं जड़ हूँ। उन्हींके संयोगसे मुझमें उसी प्रकार चेतना आती है ॥३७॥ जैसे चुम्बकके संयोगसे साधारण लोहमें भी चेतना आ जाती है। मेरे मनमें कभी भी ग्राम्यसुख (मैथुन) की इच्छा नहीं जागृत होती ॥ ३८ ॥ अरे मन्दबुद्धि! तू मूर्ख है। इसी कारण स्त्रीसंग करना चाहता है। क्योंकि स्त्री पुरुषको बन्धनमें

सोऽप्यहं तव दासोऽस्मि मन्मुखं पश्य भामिनि ॥ व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं तं दैत्यं देवी भगवती हि सा ॥ ३४॥ प्रहस्य सस्मितं वाक्यमुवाच वरवर्णिनी ॥ देव्युवाच ॥ नाहं पुरुषमिच्छामि परमं पुरुषं बिना ॥ ३५॥ तस्य चेच्छाऽस्म्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत् ॥ स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा ॥ ३६ ॥ तत्सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम् ॥ जडाऽहं तस्य संयोगात्प्रभवामि सचेतना ॥ ३७ ॥ अयस्कांतस्य सान्निध्यादयसश्चेतना यथा ॥ न ग्राम्यसुखवांछा मे कदाचिदपि जायते ॥३८॥ मूर्खस्त्वमसि मन्दात्मन् यत्स्त्रीसङ्गं चिकीर्षसि ॥ नरस्य बन्धनार्थाय शृंखला स्त्री प्रकीर्तिता ॥ ३९ ॥ लोहबद्धोऽपि मुच्येत स्त्रीबद्धो नैव मुच्यते ॥ किमिच्छसि च मन्दात्मन्मूत्रागारस्य सेवनम् ॥ ४० ॥ शमं कुरु सुखाय त्वं शमात्सुखमवाप्स्यसि ॥ नारीसंगे महद्दुःखं जानन्किं त्वं विमुह्यसि ॥ ४१ ॥ त्यज वैरं सुरैः सार्धं यथेष्टं विचरावनौ ॥ पातालं गच्छ वा कामं जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥४२॥ अथवा कुरु संग्रामं बलवत्यस्मि सांप्रतम् ॥ प्रेषिताऽहं सुरैः सर्वैस्तव नाशाय दानव ॥४३॥ सत्यं ब्रवीमि येनाद्य त्वया वचनसौहृदम् ॥ दर्शितं तेन तुष्टाऽस्मि जीवन्गच्छ यथासुखम् ॥ ४४ ॥ सतां सप्तपदी मैत्री तेन मुंचामि जीवितम् ॥ मरणेच्छाऽस्ति

बाँधनेवाली जंजीर कही गयी है ॥ ३९ ॥ लोहेकी हथकड़ी-बेड़ीमें बँधा हुआ मनुष्य कदाचित् बन्धनमुक्त हो भी सकता है, किन्तु स्त्रीके बन्धनमें बँधा प्राणी कभी नहीं छूटता। अरे मूर्ख! क्या तू स्त्रीके मूत्रागार (योनि) का सेवन करना चाहता है? ॥ ४० ॥ यदि तू सुख चाहता हो तो मनमें शान्ति रख। शान्तिसे सच्चा सुख मिलता है। स्त्रीसंगसे बहुत दुःख मिलता है। इस बातको जानता हुआ भी तू पागल क्यों बनता है? ॥ ४१ ॥ तू देवताओंके साथ वैरभाव रखना छोड़ दे और पृथिवीपर इच्छानुसार विचरण कर। अथवा जीवित रहनेकी अभिलाषा हो तो अभी पाताल चला जा ॥४२॥ अथवा अरे दानव! आ, मेरे साथ संग्राम कर। क्योंकि इस समय मुझमें पूर्ण शक्ति विद्यमान है। सब देवताओंने मुझे तुझको मारनेके लिए ही यहाँ भेजा है ॥ ४३ ॥ तूने सद्भाव रखकर बात की है। इसलिए मैंने तुझे सच्ची बातें बता दी हैं। मेरी बात मानकर तू जीवित दशामें सुखपूर्वक पाताल जा सकता है ॥ ४४ ॥ केवल सात शब्दोंकी बातचीत होनेपर ही सज्जनोंके साथ मैत्री हो जाती है। इसी कारण मैं तुझे छोड़ दे रही हूँ। इसके विपरीत यदि मरनेकी इच्छा हो तो हे वीर! तुम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेरे साथ सानन्द युद्ध कर सकते हो ॥ ४५ ॥ हे महाबाहो ! मैं तुम्हें युद्धमें मार डालूँगी । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । व्यासजी बोले–भगवतीके इन वचनोंको सुनकर वह कामातुर दानव सुन्दर शब्दावलीमें मीठी-मीठी बातें करता हुआ बोला—हे सुजघने ! हे सुमुखी ! मुझे तुम्हारे ऊपर प्रहार करनेमें भय लगता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ क्योंकि तुम बड़ी कोमल हो । तुम्हारे अङ्ग बहुत सुन्दर हैं । शिव-विष्णु आदि बड़े-बड़े देवताओं और सब लोकपालोंपर विजय प्राप्त करके समस्त पुरुषजातिको मोह लेनेवाली तुम जैसी नारीपर मैं प्रहार कैसे करूँ ? ॥४८॥ हे कमलनयनी ! क्या तुम्हारे साथ मेरा युद्ध करना उचित होगा ? हे सुन्दर अङ्गोंवाली सुन्दरी ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम मेरे साथ विवाह कर लो और मौज करो ॥४९॥ नहीं तो तुम जहाँसे आयी हो, वहीं लौट जाओ । मैं तुम्हारे साथ मैत्री कर चुका हूँ । इसलिए तुमपर प्रहार नहीं करूँगा ॥५०॥ यह मैंने तुम्हारे हितकी बात बतायी है । सबसे अच्छा उपाय यही है कि तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ चली जाओ । तुम जैसी सुनयनी और सुन्दरी रमणीका वध करनेसे मेरी कौन प्रतिष्ठा बढ़ जायगी ? ॥ ५१ ॥ स्त्रीहत्या और बालहत्याका

चेद्युद्धं कुरु वीर यथासुखम् ॥४५॥ हनिष्यामि महाबाहो त्वामहं नात्र संशयः ॥ व्यास उवाच॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा दानवः काममोहितः ॥४६॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा मधुरं वचनं ततः ॥ बिभेम्यहं वरारोहे त्वां प्रहर्तुं वरानने ॥ ४७ ॥ कोमलां चारुसर्वांगीं नारीं नरविमोहिनीम् ॥ जित्वा
हरिहरादींश्च लोकपालांश्च सर्वशः ॥ ४८ ॥ किं त्वया सह युद्धं मे युक्तं कमललोचने ॥ रोचते यदि चार्वंगि विवाहं कुरु मां भज ॥ ४९ ॥ नोचे-
द्गच्छ यथेष्टं ते देशं यस्मात्समागता ॥ नाहं त्वां प्रहरिष्यामि यतो मैत्री कृता त्वया ॥ ५० ॥ हितमुक्तं शुभं वाक्यं तस्माद्गच्छ यथासुखम् ॥ का
शोभा मे भवेदन्ते हत्वा त्वां चारुलोचनाम् ॥५१॥ स्त्रीहत्या बालहत्या च ब्रह्महत्या दुरत्यया ॥ गृहीत्वा त्वां गृहं नूनं गच्छाम्यद्य वरानने ॥५२॥
तथापि मे फलं न स्याद्बलाद्भोगसुखं कुतः ॥ प्रब्रवीमि सुकेशि त्वां विनयावनतो यतः ॥ ५३ ॥ पुरुषस्य सुखं न स्यादृते कांतामुखाम्बुजात् ॥
तत्तथैव हि नारीणां तस्माच्च पुरुषं विना ॥ ५४ ॥ संयोगे सुखसम्भूतिर्वियोगे दुःखसम्भवः ॥ कांताऽसि रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ ५५ ॥
चातुर्यं त्वयि किं नास्ति यतो मां न भजस्यहो ॥ तवोपदिष्टं केनेदं भोगानां परिवर्जनम् ॥ ५६ ॥ वञ्चिताऽसि प्रियालापे वैरिणा केनचित्त्विह ॥
मुंचाग्रहमिमं कांते कुरु कार्यं सुशोभनम् ॥ ५७ ॥ सुखं तव ममापि स्याद्विवाहे विहिते किल ॥ विष्णुर्लक्ष्म्या सहाभाति सावित्र्या च सहात्मभूः

पाप बड़ा भीषण होता है और उस पापका फल भोगना ही पड़ता है । हे वरानने ! वैसे तो मैं यदि चाहूँ तो तुम्हें बरजोरी पकड़कर अपने घर ले जा सकता हूँ ॥५२॥ लेकिन बलात्कारसे वास्तविक सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? अतएव हे शुकेशी ! मैं बहुत विनीतभावसे कह रहा हूँ कि जैसे पुरुषको अपनी प्रियतमाका मुख देखे बिना चैन नहीं मिलती । उसी प्रकार स्त्रियों-को भी अपने प्रियतमको निरखे बिना कल नहीं पड़ता ॥५३॥५४॥ स्त्री-पुरुषके संयोगसे सुख उत्पन्न होता है और बिछोह होनेपर अपार दुःख मिलता है । तुम सुन्दरी हो, रूपवती हो और सभी आभूषणोंसे आभूषित हो ॥५५॥ यह सब होते हुए भी तुम चतुर नहीं हो । तभी तो मुझ जैसे प्रेमीको पाकर भी तुम प्रेम नहीं करतीं । आखिर किसने तुम्हें इस प्रकार भोगोंको त्याग देनेकी सलाह दी है ? ॥ ५६ ॥ हे मधुरभाषिणी ! ऐसा करके किसी वैरीने तुम्हें धोखा दिया है । हे कान्ते ! तुम यह दुराग्रह त्याग तथा सुखकी उपलब्धि करके अपनी भलाई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करो ॥ ५७ ॥ यदि तुम मेरे साथ विवाह कर लो तो तुम्हें भी सुख मिले और मुझे भी । भगवान विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्माजी सावित्रीके साथ, शंकरजी पार्वतीके साथ और इन्द्र शची (इन्द्राणी) के साथ विहार करते हैं । पतिके विना कौन स्त्री शाश्वत सुख प्राप्त कर सकती है ? ॥५८॥५९॥ हे श्यामनयनी ! किस लिए मुझ जैसे सुंदर पुरुषको तुम अपना पति नहीं बना रही हो ? हे कान्ते ! न जाने मन्दबुद्धि कामदेव कहाँ चला गया, जो उन्माद उत्पन्न कर देनेवाले अपने सुकोमल पंचबाणोंका प्रहार करके तुम्हें पीड़ित नहीं कर रहा है । हे सुंदरी ! मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि कामदेव भी तुम्हारे ऊपर दयालु हो गया है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ वह तुम्हें अबला समझ रहा है ! इसी कारण अपने बाणोंसे प्रहार नहीं करता । समझमें नहीं आता कि वह मेरे साथ क्यों वैर साध रहा है ॥ ६२ ॥ तभी तो हे तिरछी चितवनवाली सुन्दरी ! वह तुम्हारे ऊपर अपने बाण नहीं छोड़ता । यह भी हो सकता है कि मेरे वैरी देवताओंने कामदेवको मना कर दिया हो ॥६३॥ मेरा सुख विध्वंस करनेवाले देवताओंने ही ऐसा कुछ कर दिया है कि कामदेव तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करता । हे मृगशावकनयनी ! मुझे ठुकरा-

॥ ५८ ॥ रुद्रो भाति च पार्वत्या शच्या शतमखस्तथा ॥ का नारी पतिहीना च सुखं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ ५९ ॥ येन त्वमसितापांगि न करोषि पतिं शुभम् ॥ कामः क्वाद्य गतः कांते यस्त्वां बाणैः सुकोमलैः ॥६०॥ मादनैः पञ्चभिः कामं न ताडयति मन्दधीः ॥ मन्येऽहमिव कामोऽपि दया-वांस्त्वयि सुन्दरि ॥ ६१ ॥ अबलेति च मन्वानो न प्रेरयति मार्गणान् ॥ मनोभवस्य वैरं वा किमप्यस्ति मया मह ॥ ६२ ॥ तेन च त्वय्यरालाक्षि न मुञ्चति शिलीमुखान् ॥ अथवा मेऽहितैर्देवैर्वारितोऽसौ झषध्वजः ॥ ६३ ॥ सुखविध्वंसिभिस्तेन त्वयि न प्रहरत्यपि ॥ त्यक्त्वा मां मृगशावाक्षि पश्चात्तापं करिष्यसि ॥ ६४ ॥ मन्दोदरीव तन्वङ्गि परित्यज्य शुभं नृपम् ॥ अनुकूलं पतिं पश्चात्सा चकार शठं पतिम् ॥ कामार्ता च यदा जाता मोहेन व्याकुलांतरा ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे देवीचरित्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवी पप्रच्छ दानवम् ॥ का सा मन्दोदरी नारी कोऽसौ त्यक्तो नृपस्तया ॥ १ ॥ शठः को वा नृपः पश्चात्तन्मे ब्रूहि कथानकम् ॥ विस्तारेण यथा प्राप्तं दुःखं वनितया पुनः ॥ २ ॥ महिष उवाच ॥ सिंहलो नाम देशोऽस्ति विख्यातः पृथिवीतले ॥ घनपादपसंयुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान् ॥ ३ ॥ चन्द्रसेनाभिधस्तत्र राजा धर्मपरायणः ॥ न्यायदण्डधरः शांतः प्रजापालनतत्परः ॥ ४ ॥ सत्यवादी

कर तुम जन्म भर पछताओगी ॥ ६४ ॥ हे तन्वङ्गि ! मन्दोदरीने अपनी प्रकृतिके अनुकूल एक सुन्दर राजकुमारको पति नहीं बनाया । किंतु बादमें जब वह कामपीड़ासे व्याकुल हुई, तब उसे एक शठ पुरुषको अपना पति बनाकर पछताना पड़ा ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

(मन्दोदरीकी कथा) व्यासजी बोले—हे महाराज ! महिषासुरकी यह बात सुनकर भगवतीने कहा—वह मन्दोदरी कौन थी ? उसने किस राजाको त्यागा था ? ॥ १ ॥ बादमें उसने जिसे पति बनाया, वह शठ पुरुष कौन था ? तत्पश्चात् उस महिलाको जो दुःख मिले हों, वह सब विस्तारके साथ बताओ ॥ २ ॥ महिषासुरने कहा—पृथिवीतलपर विख्यात सिंहल नामका एक देश है । उस देशमें बहुतेरे घने-घने वृक्ष हैं और वह धन-धान्यसे सर्वथा समृद्ध रहता है ॥ ३ ॥ वहाँ चन्द्रसेन नामका राजा राज्य करता था । जो बड़ा धर्मात्मा, शान्तस्व-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माव, प्रजापालनमें तत्पर और न्यायपूर्वक शासनकार्य करनेवाला राजा था ॥४॥ वह सत्यवादी, कोमल, वीर, सहिष्णु, नीतिशास्त्रका सागर, शास्त्र वेत्ता, सब धर्मोंका जानकार और धनुर्वेदका प्रकाण्ड पंडित था ॥५॥ उसकी भार्या भी बड़ी सुंदरी, रूपवती, सौभाग्यशालिनी, गुणसम्पन्ना, सदाचारिणी, सुमुखी और पूर्ण पतिपरायणा थी ॥६॥ उसका नाम गुणवती था। उसमें सभी अच्छे लक्षण विद्यमान थे। प्रथम गर्भसे उसने एक अतीव सुंदरी कन्याको जन्म दिया ॥ ७ ॥ उसका पिता चन्द्रसेन भी उस मनोहारिणी कन्याको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और बड़े हर्षके साथ उसने उसका मन्दोदरी नाम रक्खा ॥ ८ ॥ वह कन्या चन्द्रमाकी कलाके समान दिन-दिन बढ़ने लगी। वह अत्यन्त सुंदरी कुमारी जब दस वर्षकी हुई ॥ ९ ॥ तभीसे उसके वरके लिए राजा चन्द्रसेनकी चिन्ता अहर्निशि बढ़ने लगी। मद्रदेशका अधिपति और असाधारण वीर सुधन्वा नामका राजा था ॥१०॥ उस राजाका कम्बुग्रीव नामसे विख्यात पुत्र था। वह बड़ा बुद्धिमान् और लोकप्रसिद्ध पुरुष था। ब्राह्मणोंने राजा चन्द्रसेनसे कहा कि कम्बुग्रीव मन्दोदरीके योग्य वर है ॥ ११ ॥ क्योंकि उसमें सभी सुलक्षण विद्यमान हैं और वह सब विद्याओंका

मृदुः शूरस्तितिक्षुर्नीतिसागरः ॥ शास्त्रवित्सर्वधर्मज्ञो धनुर्वेदेऽतिनिष्ठितः ॥ ५ ॥ तस्य भार्या वरारोहा सुन्दरी सुभगा शुभा ॥ सदाचाराऽतिसुमुखी पतिभक्तिपरायणा ॥ ६ ॥ नाम्ना गुणवती कांता सर्वलक्षणसंयुता ॥ सुषुवे प्रथमे गर्भे पुत्रीं सा चातिसुन्दरीम् ॥ ७ ॥ पिता चातीव सन्तुष्टः पुत्रीं प्राप्य मनोरमाम् ॥ मन्दोदरीति नामास्याः पिता चक्रे मुदान्वितः ॥ ८ ॥ इन्दोः कलेव चात्यर्थं ववृधे सा दिने दिने ॥ दशवर्षा यदा जाता कन्या चातिमनोहरा ॥ ९ ॥ वरार्थं नृपतिश्चिन्तामवाप च दिने दिने ॥ मद्रदेशाधिपः शूरः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥ १० ॥ तस्य पुत्रोऽतिमेधावी कम्बुग्रीवोऽतिविश्रुतः ॥ ब्राह्मणैः कथितो राज्ञे संयुक्तोऽस्या वरः शुभः ॥ ११ ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वविद्यार्थपारगः ॥ राज्ञा पृष्टा तदा राज्ञी नाम्ना गुणवती प्रिया ॥१२॥ कम्बुग्रीवाय कन्यां स्वां दास्यामि वरवर्णिनीम् ॥ सा तु पत्युर्वचः श्रुत्वा पुत्रीं पप्रच्छ सादरम् ॥ १३ ॥ विवाहं ते पिता कर्तुं कम्बुग्रीवेण वांछति ॥ तच्छ्रुत्वा मातरं प्राह वाक्यं मन्दोदरी तदा ॥ १४ ॥ नाहं पतिं करिष्यामि नेच्छा मेऽस्ति परिग्रहे ॥ कौमारं व्रतमास्थाय कालं नेष्यामि सर्वथा ॥१५॥ स्वातन्त्र्येण चरिष्यामि तपस्तीव्रं सदैव हि ॥ पारतन्त्र्यं परं दुःखं मातः संसारसागरे ॥१६॥ स्वातन्त्र्यान्मोक्षमित्याहुः पण्डिताः शास्त्रकोविदाः ॥ तस्मान्मुक्ता भविष्यामि पत्या मे न प्रयोजनम् ॥ १७ ॥ विवाहे वर्तमाने तु पावकस्य च सन्निधौ ॥ वक्तव्यं

पारंगत विद्वान् है। यह सुनकर राजा चन्द्रसेनने अपनी रानी गुणवतीसे इस बातकी चर्चा की और कहा कि मैं अपनी सुंदरी कन्या उस राजकुमारके साथ ब्याह दूँगा। पतिके वचन सुनकर महारानी गुणवतीने बड़े आदरपूर्वक पुत्री मन्दोदरीसे पूछा ॥१२॥१३॥ उसने कहा—मन्दोदरी! तुम्हारे पिताजी राजकुमार कम्बुग्रीवके साथ तुम्हारा ब्याह करना चाहते हैं। मंदोदरी बोली—॥१४॥ माताजी! मैं विवाह नहीं करना चाहती। पतिप्राप्तिके लिए मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं जन्मभर कुँवारी रहकर समय बिताऊँगी ॥१५॥ हे माताजी! इस संसार-सागरमें परतन्त्रतासे बढ़कर और कोई दुःख नहीं है। अतएव मैं स्वतंत्रतापूर्वक सदा कठोर तप करूँगी ॥१६॥ शास्त्रोंके जानकार विद्वानोंका कथन है कि स्वाधीनतासे ही मुक्ति मिलती है। अतएव मैं सदा मुक्त रहूँगी। पतिकी मुझे आवश्यकता नहीं है ॥ १७ ॥ विवाहके अवसरपर अग्निको साक्षी बनाकर कन्याको यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि 'मैं सदा आप पतिदेवके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधीन रहूँगी' ॥१८॥ ससुरालमें सास और देवरकी गुलामी करनी पड़ती है। सदा पतिके इच्छानुसार चलना पड़ता है। यह कोई साधारण दुःख नहीं है ॥१९॥ पतिदेवने यदि किसी दूसरी लड़कीके साथ ब्याह कर लिया तो सौतसे मिलनेवाला महान् दुःख झेलना पड़ता है ॥२०॥ तब पतिसे ईर्ष्या होने लगती है और झगड़ा होने लग जाता है। हे माताजी! संसारमें सुख कहाँ है? विशेष करके स्त्रियोंको कौन-सा सुख मिलता है? ॥ २१ ॥ यह संसार स्वप्ननगरके समान मिथ्या है। इस जगत्में नारीजाति स्वभावतः परतंत्र रहती है। हे माताजी! मैंने सुना था कि पूर्वकालमें महाराज उत्तानपादके पुत्र राजकुमार उत्तम थे। वे सब धर्मोंके ज्ञाता और ध्रुवके छोटे-भाई थे। उन्होंने अपनी धर्मपरायणा, पतिव्रता, पतिकी सेवामें संलग्न और प्राणोंसे भी प्रिय सुन्दरी पत्नीको बिना किसी अपराधके वनमें छोड़वा दिया था। इस प्रकार कभी-कभी पतिके रहते हुए भी स्त्रीको तरह-तरहके कष्ट उठाने पड़ते हैं ॥ २२-२४ ॥ दैवयोगसे यदि पतिकी मृत्यु हो जाती है तो विधवा बनकर महान् दुःख सहना और यावज्जीवन शोक और सन्तापकी आगमें जलते रहना पड़ता है ॥२५॥ यदि पति परदेश चला जाता

वचनं सम्यक्त्वदधीनाऽस्मि सर्वदा ॥ १८ ॥ श्वश्रूदेवरवर्गाणां दासीत्वं श्वशुरालये ॥ पतिचित्तानुवर्तित्वं दुःखाद्दुःखतरं स्मृतम् ॥ १९ ॥ कदाचित्पतिरन्यां वा कामिनीं च भजेद्यदि ॥ तदा महत्तरं दुःखं सपत्नीसंभवं भवेत् ॥ २० ॥ तदेर्ष्या जायते पत्यौ क्लेशश्चापि भवेदथ ॥ संसारे क्व सुखं मातर्नारीणां च विशेषतः ॥ २१ ॥ स्वभावात्परतन्त्राणां संसारे स्वप्नधर्मिणि ॥ श्रुतं मया पुरा मातरुत्तानचरणात्मजः ॥ २२ ॥ उत्तमः सर्वधर्मज्ञो ध्रुवादवरजो नृपः ॥ पत्नीं धर्मपरां साध्वीं पतिभक्तिपरायणाम् ॥ २३ ॥ अपराधं विना कांतां त्यक्तवान्विपिने प्रियाम् ॥ एवंविधानि दुःखानि विद्यमाने तु भर्तरि ॥ २४ ॥ कालयोगान्मृते तस्मिन्नारी स्याद्दुःखभाजनम् ॥ वैधव्यं परमं दुःखं शोकसंतापकारकम् ॥ २५ ॥ परोषितपतित्वेऽपि दुःखं स्यादधिकं गृहे ॥ मदनाग्निविदग्धायाः किं सुखं पतिसंगजम् ॥२६॥ तस्मात्पतिर्न कर्तव्यः सर्वथेति मतिर्मम ॥ एवं प्रोक्ता तदा माता पतिं प्राह नृपात्मजा ॥२७॥ न च वांछति भर्तारं कौमारव्रतधारिणी ॥ व्रतजाप्यपरा नित्यं संसाराद्विमुखी सदा ॥ २८ ॥ न कांक्षति पतिं कर्तुं बहुदोषविचक्षणा ॥ भार्याया भाषितं श्रुत्वा तथैव संस्थितो नृपः ॥२९॥ विवाहो न कृतः पुत्र्या ज्ञात्वा भावविवर्जिताम् ॥ वर्तमाना गृहेष्वेव पित्रा मात्रा च रक्षिता ॥ ३० ॥ यौवनस्यांकुरा जाता नारीणां कामदीपकाः ॥ तथापि सा वयस्याभिः प्रेरिताऽपि पुनः पुनः ॥ ३१ ॥ चकमे न

है, तब भी घरमें अकेली रहनेके कारण बड़ा दुःख होता है। स्त्री बेचारी कामाग्निमें जलती रहती है। तब आप ही बतायें कि उसे पतिके समागमका कौनसा सुख मिला? ॥२६॥ अतएव मेरी तो यही सम्मति है कि कन्याको कभी विवाह न करना चाहिए। पुत्रीके विचार सुनकर मन्दोदरीकी माता राजरानी गुणवतीने अपने पतिसे कहा—॥ २७ ॥ मन्दोदरी बालब्रह्मचारिणी रहना चाहती है। उसे पतिकी कोई आवश्यकता नहीं है। वह संसारसे विरक्त रहकर सदा व्रत और जप करेगी ॥ २८ ॥ विवाहके अनेक दोष दिखलाकर वह किसीको अपना पति नहीं बनाना चाहती। भार्याके द्वारा कन्याका अभिप्राय जानकर राजा चन्द्रसेन भी चुप रह गये ॥ २९ ॥ विवाहके सम्बन्धमें अपनी पुत्रीका रुख न पाकर राजाने उसके विवाहका विचार त्याग दिया और मन्दोदरी अपने माता-पिताके संरक्षणमें घरपर ही रहने लगी ॥ ३० ॥ कुछ समय बाद उसके शरीरमें कामवासना जागृत करनेवाले यौवन-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के लक्षण उभड़ने लगे। उस समय उसकी सखियोंने पति चुननेका बारम्बार आग्रह किया ॥३१॥ किन्तु उसने ज्ञान-वैराग्यकी बातें करके साफ इनकार कर दिया। एक दिन वह सुन्दरी बड़े उमंगसे अपनी दासियोंके साथ बगीचेमें सैर करने गयी। वहाँ बहुतेरे वृक्ष थे और उनपर लतायें फूली हुई थीं। उन्हें देखकर वह पतली कमरवाली सुन्दरी मंदोदरी वहाँ ही खेलने लगी ॥३२॥३३॥ वह अपनी सखियोंके साथ दौड़-दौड़कर फूल चुन रही थी। संयोगवश उसी समय अवधनरेश वीरसेन नामसे अतिविख्यात राजा वहाँ जा पहुँचे। वे अपने रथपर अकेले बैठे थे और कुछ सेवक उनके साथ थे ॥३४॥३५॥ पीछे उनकी सेना धीरे-धीरे आ रही थी। मंदोदरीकी सखियोंने दूरसे ही राजाको देख लिया ॥३६॥ वे भागकर मन्दोदरीके पास गयीं और कहने लगीं कि दूसरे कामदेवके समान सुन्दर, रूपवान् तथा विशालबाहु एक मनुष्य रथपर सवार होकर इधर ही आ रहा है। हमारा ख्याल है कि वह कोई राजा है। जो संयोगवश

पतिं कर्तुं ज्ञानार्थपदभाषिणी ॥ एकदोद्यानदेशं सा विहर्तुं बहुपादपे ॥ ३२ ॥ जगाम सुमुखी प्रेम्णा सैरंध्रीगणसेविता ॥ रेमे कृशोदरी तत्रापश्य-
त्कुसुमिता लताः ॥ ३३ ॥ पुष्पाणि चिन्वती रम्या वयस्याभिः समावृता ॥ कोसलाधिपतिस्तत्र मार्गे दैववशात्तदा ॥ ३४ ॥ आजगाम महावीरो
वीरसेनोऽतिविश्रुतः ॥ एकाकी रथमारूढः कतिचित्सेवकैर्वृतः ॥ ३५ ॥ सैन्यं च पृष्ठतस्तस्य समायाति शनैः शनैः ॥ दृष्टस्तस्या वयस्याभिर्दूरतः
पार्थिवस्तदा ॥ ३६ ॥ मंदोदर्यै तथा प्रोक्तं समायाति नरः पथि ॥ रथारूढो महाबाहू रूपवान्मदनोऽपरः ॥ ३७ ॥ मन्येऽहं नृपतिः कश्चित्प्राप्तो
भाग्यवशादिह ॥ एवं ब्रुवत्यां तत्रादौ कोसलेन्द्रः समागतः ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा तामसितापांगीं विस्मयं प्राप भूपतिः ॥ उत्तीर्य स रथात्तूर्णं पप्रच्छ
परिचारिकाम् ॥ ३९ ॥ केयं बाला विशालाक्षी कस्य पुत्री वदाशु मे ॥ एवं पृष्टा तु सैरंध्री तमुवाच शुचिस्मिता ॥ ४० ॥ प्रथमं ब्रूहि मे वीर
पृच्छामि त्वां सुलोचन ॥ कोऽसि त्वं किमिहायातः किं कार्यं वद सांप्रतम् ॥ ४१ ॥ इति पृष्टस्तु सैरंध्र्या तामुवाच महीपतिः ॥ कोसलो नाम
देशोऽस्ति पृथिव्यां परमाद्भुतः ॥ ४२ ॥ तस्य पालयिता चाहं वीरसेनाभिधः प्रिये ॥ वाहिनी पृष्ठतः कामं समायाति चतुर्विधा ॥ ४३ ॥ मार्ग-
भ्रमादिह प्राप्तं विद्धि मां कोसलाधिपम् ॥ सैरंध्र्युवाच ॥ चंद्रसेनसुता राजन्नाम्ना मंदोदरी किल ॥ ४४ ॥ उद्याने रंतुकामेयं प्राप्ता कमललोचना ॥
श्रुत्वा तद्भाषितं राजा प्रत्युवाच प्रसाधिकाम् ॥४५॥ सैरंध्रि चतुराऽसि त्वं राजपुत्रीं प्रबोधय ॥ ककुत्स्थवंशजश्चाहं राजाऽस्मि चारुलोचने ॥४६॥

इस राह आ निकला है। वे सखियाँ ऐसा कह ही रही थीं कि इतनेमें कोसलनरेश वहाँ आ गये ॥३७॥३८॥ उस श्यामनयनी मंदोदरीको देखकर राजाको बहुत आश्चर्य हुआ। तत्काल रथसे उतरकर उन्होंने एक दासीसे पूछा—॥३९॥ यह विशालनयनी सुन्दरी कौन है? यह किसकी पुत्री है? मुझे शीघ्र बताओ। राजाके पूछनेपर दासीने मुसकाकर कहा-आप कौन हैं? यहाँ क्यों आये हैं? क्या काम है? यह बताइए॥ ४० ॥ ४१ ॥ दासीके यह पूछनेपर राजाने कहा—पृथिवीपर कोसल नामका एक परम अद्भुत देश है ॥ ४२ ॥ हे प्रिये! उसका मैं शासक हूँ। मेरा नाम वीरसेन है। पीछे मेरी चतुरंगिणी सेना आ रही है ॥ ४३ ॥ रास्ता भूल जानेके कारण मैं इधर आ निकला हूँ। दासीने कहा—हे राजन्! यह महाराज चन्द्रसेनकी पुत्री है। इसका नाम मन्दोदरी है ॥ ४४ ॥ इस समय यह कमलनयनी बागमें सैर करने आयी है। दासीकी बात सुनकर राजाने उस सैरन्ध्री (रनिवासमें चोटी गूँथनेवाली दासी) से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा—॥ ४५ ॥ हे सैरन्ध्री ! तुम बड़ी चतुर हो । अतएव राजकुमारीको बताओ कि मैं ककुत्स्थवंशमें उत्पन्न एक राजा हूँ ॥ ४६ ॥ हे कामिनी ! मेरी इच्छा है कि तुम मेरे साथ गान्धर्वविवाह करके मुझे अपना पति बना लो । हे शोभननितम्बे ! मैंने अभी विवाह नहीं किया है और आपकी भी जवानी उभड रही है ॥ ४७ ॥ मैं किसी रूपवती और कुलीन कन्याकी खोजमें था । सो तुम मिल गयीं । यदि गान्धर्वविवाह पसन्द न हो तो तुम्हारे पिता मुझे विधिवत् कन्यादान दे सकते हैं ॥ ४८ ॥ मैं सर्वथा तुम्हारे अनुकूल पति होऊँगा । महिषने कहा—राजा वीरसेनकी सब बातें सुनकर सैरन्ध्री मन्दोदरीके पास गयी ॥ ४९ ॥ कामशास्त्रमें निपुण सैरन्ध्रीने हँसकर मधुर वाणीमें कहा—हे मन्दोदरी ! ये सूर्यवंशमें जायमान राजा हैं ॥ ५० ॥ ये रूपवान्, बलवान्, सुंदर और आपकी उम्रके हैं । हे सुंदरी ! ये आपके ऊपर अत्यन्त मोहित हो गये हैं ॥ ५१ ॥ हे विशालनयनी ! आपके पिता भी आपकी विवाह योग्य अवस्था देख और विवाहसे विरागकी बात सुनकर बहुत दुःखी रहा करते हैं ॥ ५२ ॥ उन्होंने वारंवार लंबी साँस लेकर मुझसे कहा था—

गांधर्वेण विवाहेन पतिं मां कुरु कामिनि ॥ न मे भार्याऽस्ति सुश्रोणि वयसोऽद्भुतयौवनाम् ॥४७॥ वांछामि रूपसम्पन्नां सुकुलां कामिनीं किल ॥ अथवा ते पिता मह्यं विधिना दातुमर्हति ॥ ४८ ॥ अनुकूलः पतिश्चाहं भविष्यामि न संशयः ॥ महिष उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सैरन्ध्री प्राह तां तदा ॥ ४९ ॥ प्रहस्य मधुरं वाक्यं कामशास्त्रविशारदा ॥ मन्दोदरि नृपः प्राप्तः सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ ५० ॥ रूपवान्बलवान्कांतो वयसा त्वत्समः पुनः ॥ प्रीतिमान्नृपतिर्जातस्त्वयि सुन्दरि सर्वथा ॥ ५१ ॥ पिताऽपि ते विशालाक्षि परितप्यति सर्वथा ॥ विवाहकालं ते ज्ञात्वा त्वां च वैराग्यसंयुताम् ॥ ५२ ॥ इत्याहास्मान्स नृपतिर्विनिःश्वस्य पुनः पुनः ॥ पुत्रीं प्रबोधयंत्वेतां सैरन्ध्र्यः सेवने रताः ॥ ५३ ॥ वक्तुं शक्ता वयं न त्वां हठधर्मरतां पुनः ॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मोऽब्रवीन्मनुः ॥ ५४ ॥ भर्तारं सेवमाना वै नारी स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ तस्मात्कुरु विशालाक्षि विवाहं विधिपूर्वकम् ॥ ५५ ॥ मन्दोदर्युवाच ॥ नाहं पतिं करिष्यामि चरिष्ये तप अद्भुतम् ॥ निवारय नृपं बाले किं मां पश्यति निस्त्रपः ॥ ५६ ॥ सैरंध्र्युवाच ॥ दुर्जयो देवि कामोऽसौ कालोऽसौ दुरतिक्रमः ॥ तस्मान्मे वचनं पथ्यं कर्तुमर्हसि सुंदरि ॥ ५७ ॥ अन्यथा व्यसनं नूनमापतेदिति निश्चयः ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा कन्योवाचाथ तां सखीम् ॥५८॥ यद्यद्भवेत्तद्भवतु दैवयोगादसंशयम् ॥ न विवाहं करिष्येऽहं सर्वथा परिचारिके

हे दासियों ! तुम सदा मन्दोदरीकी सेवामें रहती हो । सो तुम्हीं उसे समझाओ ॥५३॥ किंतु आपकी हठ देखकर हम कुछ नहीं कह सकीं । महाराज मनुने कहा है कि पतिसेवासे बढ़कर स्त्रीके लिए और कोई भी धर्म नहीं है ॥५४॥ पतिकी सेवा करनेवाली स्त्रीको स्वर्ग प्राप्त होता है । अतएव हे विशालाक्षी ! आप इनके साथ विधिवत् विवाह कर लीजिए ॥५५॥ मंदोदरीने कहा—मैं विवाह न करके अद्भुत तप करूँगी। हे बाले ! तुम जाकर राजा वीरसनको मना कर दो । वे निर्लज्ज होकर मेरी ओर क्यों निहार रहे हैं ? ॥ ५६ ॥ सैरन्ध्रीने कहा—हे देवि ! कामदेवको जीतना बड़ा कठिन होता है और यौवनावस्था स्त्रीको विवश कर देती है । अतएव हे सुन्दरी ! आप मेरी उचित सलाह मान लीजिए ॥ ५७ ॥ नहीं तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपको बडे सकटका सामना करना पड़ेगा । सैरन्ध्रीके वचन सुनकर कन्या मन्दोदरीने कहा—॥ ५८ ॥ हे परिचारिके ! जो होनहार होगा, वह होकर ही रहेगा । फिर भी मैं विवाह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कदापि नहीं करूँगी ॥ ५९ ॥ महिष बोला—मन्दोदरीकी हठभरी बातसुनकर सैरन्ध्रीने राजा वीरसेनसे जाकर कहा-महाराज ! आप जाइए । कन्या आप जैसे अच्छे पतिको नहीं चाहती ॥ ६० ॥ दासीकी बात सुनकर राजाने उधरसे अपना मन हटा लिया और उदास होकर अपनी सेनाके साथ कोसलदेशको चले गये ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

(महिषासुरके वधकी कथा) महिषासुर बोला—मन्दोदरीकी एक छोटी बहिन थी, उसका नाम था इन्दुमती । वह सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्नऔर अनुपम रूपवती थी । जब वह विबाहके योग्य हुई, तब उसका स्वयंवर रचाया गया । उस स्वयंवरमण्डपमें अनेक देशके राजे आये ॥ १ ॥ २ ॥ इन्दुमतीने उनमेंसे एक बलवान् , सुंदर, कुलीन, शीलवान् और सभी शुभ लक्षणों युक्त राजाको पतिरूपमें चुन लिया ॥ ३ ॥ उसी समय दैवयोगसे मन्दोदरी एक धूर्त राजाको देखकर कामातुर हो उठी। वह उस शठ और चतुर राजापर मोहित हो गयी ॥ ४ ॥

॥५६॥ महिष उवाच ॥ इति तस्यास्तु निर्बन्धं ज्ञात्वा प्राह नृपं पुनः ॥ गच्छ राजन्यथाकामं नेयमिच्छति सत्पतिम् ॥ ६० ॥ नृपस्तु तद्वचः श्रुत्वा निर्गतः सह सेनया ॥ कोसलान्विमना भूत्वा कामिनीं प्रति निःस्पृहः ॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

॥ महिष उवाच ॥ तस्यास्तु भगिनी कन्या नाम्ना चेंदुमती शुभा ॥ विवाहयोग्या संजाता सुरूपाऽवरजा यदा ॥१॥ तस्या विवाहः संवृत्तः सञ्जातश्च स्वयम्वरः ॥ राजानो बहुदेशीयाः संगतास्तत्र मण्डपे ॥२॥ तया वृतो नृपः कश्चिद्बलवान्रूपसंयुतः ॥ कुलशीलसमायुक्तः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ ३ ॥ तदा कामातुरा जाता विटं वीक्ष्य नृपं तु सा॥ चकमे दैवयोगात्तु शठं चातुर्यभूषितम् ॥४॥ पितरं प्राह तन्वङ्गी विवाहं कुरु मे पितः ॥ इच्छा मेऽद्य समुद्भूता दृष्ट्वा मद्राधिपं त्विह ॥ ५ ॥ चन्द्रसेनोऽपि तच्छ्रुत्वा पुत्र्या यद्भाषितं रहः ॥ प्रसन्नेन च मनसा तत्कार्ये तत्परोऽभवत् ॥६॥ तमाहूय नृपं गेहे विवाहविधिना ददौ ॥ कन्यां मन्दोदरीं तस्मै पारिबर्हं तथा बहु ॥७॥ चारुदेष्णोऽपि तां प्राप्य सुन्दरीं मुदितोऽभवत्॥ जगाम स्वगृहं तुष्टो राजाऽपि सहितः स्त्रिया ॥८॥ रेमे नृपतिशार्दूलः कामिन्या बहुवासरान्॥ कदाचिद्दासपत्न्या स रममाणो रहः किल ॥ ९ ॥ सैरन्ध्र्या कथितं तस्यै तया दृष्टः पतिस्तथा॥उपालम्भं ददौ तस्मै स्मितपूर्वं रुषान्विता॥ १० ॥ कदाचिदपि सामान्यां रहो रूपवतीं नृपः ॥ क्रीडयँल्लालय-

उस सुंदरीने अपने पितासे कहा-हे पिताजी ! अब आप मेरा भी विवाह कर दीजिए । मद्रदेशके नरेशको देखकर मेरी भी विवाह करनेकी इच्छा हो गयो है ॥ ५ ॥ राजा चंद्रसेन एकान्तमें पुत्रीकी बात सुनकर मन ही मन हँसे और तत्काल ब्याहकी तैयारीमें लग गये । ६ ॥ तदनन्तर मद्रनरेशको अपने घर बुलाकर उन्होंने वैवाहिक विधिके अनुसार उसे मन्दोदरी सौंप दी और दहेजमें बहुत दहेज दिया ॥ ७ ॥ मद्रनरेश चारुदेष्ण भी सुन्दरी मन्दोदरीको आकर बहुत प्रसन्न हुआ और सर्वथा सन्तुष्ट होकर नवपरिणीता वधूके साथ अपनी राजधानीको चला गया । महाराज चारुदेष्णने बहुत समय तक मन्दोदरीके साथ भोग-विलास किया । एक दिन वह राजा किसी दासीके साथ भोग कर रहा था ॥ ८ ॥ ९ ॥ यह बात सैरन्ध्रीने मन्दोदरीको बता दी और उसे ले जाकर दिखा भी दिया । यह देखा तो मुसकाकर गुस्सेके साथ उसने राजाको उलाहना दिया ॥ १० ॥ तब भी उसकी कुटेव नहीं छूटी और दूसरे समय मन्दोदरीने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर एक रूपवती दासीके साथ दुराचार करते और उसे दुलराते देख उसको बहुत दुःख हुआ ॥ ११ ॥ उसने सोचा–स्वयवरमें जब मैंने इसे देखा था, तब नहीं समझ सकी थी कि यह इतना बड़ा दुष्ट होगा। मोहवश मैंने यह क्या किया ? इस राजाने मुझे धोखा दिया ॥ १२ ॥ यह तो बड़ा निर्लज्ज, क्रूर और दुराचारी मनुष्य है। इसके साथ मेरी प्रीति कैसे निभ सकती है। मेरे जीवनको धिक्कार है ॥ १३ ॥ आजसे मैं पतिसहवासके सांसारिक सुखको त्याग रही हूँ। अब मैंने सन्तोष कर लिया है ॥ १४ ॥ जो मुझे नहीं करना चाहिए, मैं वह काम कर गुजरी। इसी कारण मुझे यह दुःख देखना पड़ा। यदि मैं पिताके घर चली जाऊँ तो वहाँ भी चैन न मिलेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वहाँ सखियाँ मेरी हँसी उड़ायेंगी ॥१५॥१६॥ अतएव वैराग्य धारण करके भोगविलाससे दूर रहते हुए यहीं जीवन बिताना ठीक होगा ॥१७॥ महिषने कहा–ऐसा विचार करके वह नारी सांसारिक सुख तथा पतिका रङ्ग-

न्दृष्टः खेदं प्राप तदैव सा ॥ ११ ॥ न ज्ञातोऽयं शठः पूर्वं यदा दृष्टः स्वयम्वरे ॥ किं कृतं तु मया मोहाद्वंचिताऽहं नृपेण ह ॥१२॥ किं करोम्यद्य सन्तापं निर्लज्जे निर्घृणे शठे ॥ का प्रीतिरीदृशे पत्यौ धिगद्य मम जीवितम् ॥ १३ ॥ अद्यप्रभृति संसारे सुखं त्यक्तं मया खलु ॥ पतिसंभोगजं सर्वं सन्तोषोऽद्य मया कृतः ॥ १४ ॥ अकर्तव्यं कृतं कार्यं तज्जातं दुःखदं मम ॥ देहत्यागः क्रियते चेद्धत्याऽतीव दुरत्यया ॥ १५ ॥ पितृगेहं व्रजाम्याशु तत्रापि न सुखं भवेत् ॥ हास्ययोग्या सखीनां तु भवेयं नात्र संशयः ॥ १६ ॥ तस्मादत्रैव संवासो वैराग्ययुतया मया ॥ कर्तव्यः कालयोगेन त्यक्त्वा कामसुखं पुनः ॥१७॥ महिष उवाच ॥ इति सञ्चिंत्य सा नारी दुःखशोकपरायणा ॥ स्थिता पतिगृहं त्यक्त्वा सुखं संसारजं ततः ॥१८॥ तस्मात्त्वमपि कल्याणि मामनादृत्य भूपतिम् ॥ अन्यं कापुरुषं मन्दं कामार्ता संश्रयिष्यसि ॥ १९ ॥ वचनं कुरु मे तथ्यं नारीणां परमं हितम् ॥ अकृत्वा परमं शोकं लप्स्यसे नात्र संशयः ॥ २० ॥ देव्युवाच ॥ मन्दात्मन्गच्छ पातालं युद्धं वा कुरु सांप्रतम् ॥ हत्वा त्वामसुरान्सर्वान्गमिष्यामि यथासुखम् ॥ २१ ॥ यदा यदा हि साधूनां दुःखं भवति दानव ॥ तदा तेषां च रक्षार्थं देहं संधारयाम्यहम् ॥ २२ ॥ अरूपायाश्च मे रूपमजन्मायाश्च जन्म च ॥ सुराणां रक्षणार्थाय विद्धि दैत्य विनिश्चितम् ॥ २३ ॥ सत्यं ब्रवीमि जानीहि प्रार्थिताऽहं सुरैः किल ॥ त्वद्धधार्थं हयारे त्वां हत्वा

महल त्यागकर दुःख और शोकसे सन्तप्त रहती हुई क्लेशमय जीवन बिताने लगी ॥१८॥ उसी प्रकार हे कल्याणी ! मुझ जैसे अच्छे पतिको ठुकराकर कामार्त होनेपर तुम भी किसी कायर और मूर्ख पुरुषको पति बनाकर जीवनभर पछताओगी ॥ १९ ॥ अतएव स्त्रीजातिके लिए अत्यन्त हितकारी मेरी सलाहको तुम मान लो। यदि न मानोगी तो बादमें बहुत दुःख उठाओगी ॥ २० ॥ देवी बोलीं—अरे मन्दबुद्धि ! अब या तो तू पाताललोकको चला जा या मेरे साथ युद्ध कर। तुझे और तेरे साथके सब असुरोंको मारकर मैं सुखपूर्वक यहाँसे चली जाऊँगी। अरे दानव ! जब-जब साधु पुरुषोंपर संकट आता है, तब-तब उनकी रक्षा करनेके लिए मैं अवतार लेती हूँ ॥२१॥२२॥ हे दैत्य ! वास्तवमें मैं निराकार और अजन्मा हूँ। तथापि देवताओं-की रक्षा करनेके लिए साकार होकर जन्म लेती हूँ। यह तू निश्चित समझ ले ॥ २३ ॥ देवताओंने तेरा वध करनेके लिए मुझसे प्रार्थना की थी। ओ महिष ! तुझे मारकर मैं सर्वथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निश्चिन्त हो जाऊँगी ॥२४॥ अतएव अब तू मेरे साथ युद्ध कर अथवा असुरोंकी निवासभूमि पाताललोकको चला जा। नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगी। यह बात मैं सच कह रही हूँ ॥२५॥ व्यासजी बोले कि देवीके ऐसा कहनेपर महिषने हाथमें धनुष लिया और लड़नेके लिए मैदानमें जा डटा ॥ २६ ॥ देवीपर वह तत्काल बड़े वेगसे बाणवर्षा करने लगा। तब भगवतीने अपने लौहमुख बाणोंसे उसके बाणोंको व्यर्थ कर दिया ॥ २७ ॥ अब देवी और दानव महिषमें भीषण संग्राम आरम्भ हो गया। उस युद्धको देखकर अपनी-अपनी विजय चाहनेवाले देवता और दानव दोनों दहल गये ॥ २८ ॥ उसी समय दुर्धर नामका दैत्य रणभूमिमें आकर भगवतीको कुपित करता हुआ उनपर अतिशय दारुण और विषैले बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २९ ॥ तब भगवतीने बड़े क्रोधके साथ उसपर बड़े ही तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा प्रहार किया, जिससे दुर्धर धराशायी हो गया और उसके प्राण निकल गये ॥ ३० ॥ दुर्धरको मरते देखकर शस्त्रनिपुण त्रिनेत्र रणभूमिमें आया और आते ही उसने देवीपर सात बाण चलाये ॥ ३१ ॥ वे देवीके पास पहुँच भी नहीं पाये थे कि बीच हीमें उन्होंने अपने बाणोंसे उसके सब बाण व्यर्थ कर दिये।

स्थास्यामि निश्चला ॥ २४॥ तस्माद्युध्यस्व वा गच्छ पातालमसुरालयम् ॥ सर्वथा त्वां हनिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥
इत्युक्तः स तया देव्या धनुरादाय दानवः ॥ युद्धकामः स्थितस्तत्र संग्रामांगणभूमिषु ॥ २६ ॥ मुमोच तरसा बाणान्कर्णाकृष्टाञ्छिलाशितान् ॥
देवीं चिच्छेद तान्बाणैः क्रोधान्मुक्तैरयोमुखैः ॥ २७ ॥ तयोः परस्परं युद्धं संबभूव भयप्रदम् ॥ देवानां दानवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥ २८ ॥
मध्ये दुर्धर आगत्य मुमोच च शिलीमुखान् ॥ देवीं प्रति विषासक्तान्कोपयन्नतिदारुणान् ॥ २९ ॥ ततो भगवती क्रुद्धा तं जघान शितैः शरैः ॥
दुर्धरस्तु पपातोर्व्यां गतासुर्गिरिशृंगवत् ॥ ३० ॥ तं तथा निहतं दृष्ट्वा त्रिनेत्रः परमास्त्रवित् ॥ आगत्य सप्तभिर्बाणैर्जघान परमेश्वरीम् ॥ ३१ ॥
अनागतांस्तु चिच्छेद देवी तान्विशिखैः शरान् ॥ त्रिशूलेन त्रिनेत्रं तु जघान जगदंबिका ॥ ३२ ॥ अन्धकस्त्वाजगामाशु हतं दृष्ट्वा त्रिलोचनम् ॥
गदया लोहमय्याशु सिंहं विव्याध मस्तके ॥ ३३ ॥ सिंहस्तु नखघातेन तं हत्वा बलवत्तरम् ॥ चखाद तरसा मांसमंधकस्य रुषान्वितः ॥ ३४ ॥
तान्रणे निहतान्वीक्ष्य दानवो विस्मयं गतः ॥ चिक्षेप तरसा बाणानतितीक्ष्णाञ्छिलाशितान् ॥३५॥ द्विधा चक्रे शरान्देवी तानप्राप्ताञ्छिलीमुखैः ॥
गदया ताडयामास दैत्यं वक्षसि चांबिका ॥ ३६ ॥ स गदाऽभिहतो मूर्छामवापामरबाधकः ॥ विषह्य पीडां पापात्मा पुनरागत्य सत्वरः ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् जगदम्बाने त्रिनेत्रपर अपने त्रिशूलसे ऐसा भीषण प्रहार किया कि उसी आघातसे वह सदाके लिए समाप्त हो गया ॥ ३२ ॥ त्रिनेत्रका मरण देखकर अन्धक आया और आते ही उसने अपनी लौहमयी गदासे सिंहके मस्तकपर चोट की ॥३३॥ किंतु उस प्रहारकी कुछ भी चिन्ता न करके सिंहने उसको अपने तीक्ष्ण नखोंसे फाड़ डाला और उसका मांस खाने लगा ॥३४॥ ऐसे-ऐसे सेनापतियोंका अविलंब वध होते देखकर महिषासुरको बहुत आश्चर्य हुआ। अतएव वह और भी वेगके साथ अति तीक्ष्ण और पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३५ ॥ किन्तु वे बाण भगवतीके पास पहुँचनेके पहले ही उनके बाणोंसे कटकर दो-दो टुकड़े हो गये। इसी समय जगदम्बाने महिषासुरकी छातीपर अपनी गदाका प्रहार कर दिया ॥ ३६ ॥ गदाके आघातसे देवताओंको दुःख देनेवाला महिष दानव मूर्छित हो गया। किन्तु उस वेदनाको सहन करके वह पापी फिर उठ खड़ा हुआ और अतिशय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रोधपूर्वक बड़े वेगसे आकर उसने अपनी गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया। सिंहने भी अपने नखाघातसे उस महान् असुरको आहत कर दिया ॥३७॥३८। तब महिषासुरने मानव रूप त्यागकर सिंहका रूप धारण कर लिया और नाखूनोंसे नोचकर भगवतीके सिंहको घायल कर दिया ॥३९॥ उसे सिंहरूपमें देखकर क्रुद्ध देवी अपने लौहमुख, तीक्ष्ण एवं सर्प जैसे क्रूर बाणोंसे बींधने लगीं ॥४०॥ तब सिंहरूप त्यागकर महिषासुरने मद बहाते हुए हाथीका रूप धारण कर लिया और अपनी सूँड़से एक विशाल शैलशिखर उठाकर चंडिकापर फेंका ॥४१॥ उसे अपने ऊपर आते देखकर भगवतीने अपार बाणवृष्टि की और उस शैलको तिल-तिल करके काट डाला और बड़ी जोरसे अट्टहास करके हँसीं ॥ ४२ ॥ उस समय देवीका सिंह उछलकर उस गजरूपधारी महिषके मस्तकपर चढ़ गया और अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसे फाड़ डाला ॥४३॥ अब महिषने उस सिंहको मारनेके लिए हाथीका रूप त्यागकर अतिशय दारुण और बलवान्

जघान गदया सिंहं मूर्ध्नि क्रोधसमन्वितः । सिंहोऽपि नखघातेन तं ददार महासुरम् ॥ ३८ ॥ विहाय पौरुषं रूपं सोऽपि सिंहो बभूव ह ॥
नखैर्विदारयामास देवीसिंहं मदोत्कटम् ॥ ३९ ॥ तं च केसरिणं वीक्ष्य देवी क्रुद्धा ह्ययोमुखैः ॥ शरैरवाकिरत्तीक्ष्णैः क्रूरैराशीविषैरिव ॥ ४० ॥
त्यक्त्वा स हरिरूपं तु गजो भूत्वा मदस्रवः॥ शैलशृङ्गं करे कृत्वा चिक्षेप चण्डिकां प्रति॥४१॥ आगच्छन्तं गिरेः शृङ्गं देवी बाणैः शिलाशितैः ॥
चकार तिलशः खण्डाञ्जहास जगदम्बिका ॥४२॥ उत्पत्य च तदा सिंहस्तस्य मूर्ध्नि व्यवस्थितः ॥ नखैर्विदारयामास महिषं गजरूपिणम् ॥४३॥
विहाय गजरूपं च बभूवाष्टापदी तथा ॥ हंतुकामो हरिं कोपाद्दारुणो बलवत्तरः ॥ ४४ ॥ तं वीक्ष्य शरभं देवी खड्गेन सा रुषान्विता ॥ उत्तमांगे
जघानाशु सोऽपि तां प्राहरत्तदा ॥ ४५ ॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयप्रदम् ॥ माहिषं रूपमास्थाय-शृङ्गाभ्यां प्राहरत्तदा ॥ ४६ ॥ पुच्छप्र-
भ्रमणेनाशु शृङ्गाघातैर्महासुरः ॥ ताडयामास तन्वंगीं घोररूपो भयानकः ॥ ४७ ॥ पुच्छेन पर्वताञ्छृङ्गे गृहीत्वा भ्रामयन्बलात् ॥ प्रेषयामास
पापात्मा प्रहसन्परया मुदा ॥ ४८ ॥ तामुवाच बलोन्मत्तस्तिष्ठ देवि रणांगणे ॥ अद्याहं त्वां हनिष्यामि रूपयौवनभूषिताम् ॥ ४९ ॥ मूर्खाऽसि
मदमत्ताद्य यन्मया सह सङ्गरम् ॥ करोषि मोहिताऽतीव मृषा बलवती खरा ॥ ५० ॥ हत्वा त्वां निहनिष्यामि देवान्कपटपंडितान् ॥ ये नारीं पुरतः

आठ पैरोंवाले शरभका रूप धारण कर लिया ॥ ४४ ॥ महिषासुरको शरभरूपमें देखकर जगदम्बाने अतिशय क्रोधपूर्वक उसके मस्तकपर तलवार चलायी। तब बड़े वेगके साथ उसने भी भगवतीपर प्रहार किया ॥ ४५ ॥ अब उन दोनोंमें भीषण युद्ध होने लगा। उसी समय सहसा महिषरूप धारण करके उसने अपनी सींगोंसे देवीके ऊपर आघात किया॥ ४६ ॥ वह भयानक रूपधारी महान् असुर पूँछ घुमा-घुमाकर अपनी सींगोंसे कोमलाङ्गी भगवतीको पुनः पुनः मारने लगा ॥ ४७ ॥ वह अपनी पूँछसे पर्वतोंको उठाकर सींगपर रखता और बड़े वेगसे घुमाकर भगवतीके ऊपर फेंकता हुआ ठठाकर हँस पड़ता था ॥ ४८ ॥ बलसे उन्मत्त उस दानवने भगवतीसे कहा—हे देवि! तुम थोड़ी देर रणभूमिमें ठहरो। अभी मैं रूप और यौवनसे मदमाती तुमको मार डालूँगा ॥ ४९ ॥ तुम मूर्ख और मदमत्त हो, जो मेरे साथ युद्ध कर रही हो। तुम व्यर्थ अपनेको बलवती समझकर डींग मारती हो ॥ ५० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम्हें मारनेके बाद मैं उन सब कपटपंडित देवताओंको मार डालूँगा, जो शठ एक स्त्रीको आगे करके मेरे ऊपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं ॥५१॥ देवी बोलीं—ठहर जा, अरे मूर्ख! व्यर्थ गर्व न करके रणभूमिमें कुछ देर और ठहर! आज तुझे मारकर मैं देवताओंको सदाके लिए निर्भय कर दूँगी ॥५२॥ अरे अधम! मैं अभी मधुकी बनी मीठी मदिरा पीकर देवताओंके लिए दुखदायी और मुनियोंको भयभीत करनेवाले तुझ दानवको काट डालूँगी ॥ ५३ ॥ व्यासजी बोले—ऐसा कहकर अतिशय कुपित होकर भगवती उस दैत्यको मार डालनेके विचारसे मद्यभरा सोनेका पानपात्र (प्याला) लेकर बारम्बार उसे पीने लगीं ॥ ५४ ॥ वह मीठा द्राक्षासव पीकर बड़े वेगसे उन्होंने अपना त्रिशूल सम्हाला और देवताओंको हर्षित करती हुई उस दानवपर झपटीं ॥ ५५ ॥ उस समय देवता प्रेमपूर्वक स्तुति करते हुए फूल बरसाते और दुन्दुभी बजाते हुए देवीकी जयजयकार करने लगे ॥ ५६ ॥ सभी ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व,

कृत्वा जेतुमिच्छंति मां शठाः ॥ ५१ ॥ देव्युवाच ॥ मा गर्वं कुरु मंदात्मंस्तिष्ठ तिष्ठ रणाङ्गणे ॥ करिष्यामि निरातंकान्हत्वा त्वां सुरसत्तमान् ॥ ५२ ॥ पीत्वाऽद्य माधवीं मिष्टां शातयामि रणेऽधम ॥ देवानां दुःखदं पापं मुनीनां भयकारकम् ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा चषकं हैमं गृहीत्वा सुरया युतम् ॥ पपौ पुनः पुनः क्रोधाद्धंतुकामा महासुरम् ॥५४॥ पीत्वा द्राक्षासवं मिष्टं शूलमादाय सत्वरा ॥ दुद्राव दानवं देवी हर्षयन्देवतागणान् ॥ ५५ ॥ देवास्तां तुष्टुवुः प्रेम्णा चक्रुः कुसुमवर्षणम् ॥ जय जीवेति ते प्रोचुर्दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ॥ ५६ ॥ ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः पिशाचोरगचारणाः ॥ किन्नराः प्रेक्ष्य संग्रामं मुदिता गगने स्थिताः ॥ ५७ ॥ सोऽपि नानाविधान्देहान्कृत्वा कृत्वा पुनःपुनः ॥ मायामयाञ्जघानाजौ देवीं कपटपंडितः ॥५८॥ चंडिकाऽपि च तं पापं त्रिशूलेन बलाद्धृदि ॥ ताडयामास तीक्ष्णेन क्रोधादरुणलोचना ॥५९॥ ताडितोऽसौ पपातोर्व्यां मूर्छामाप मुहूर्तकम् ॥ पुनरुत्थाय चामुंडां पद्भ्यां वेगादताडयत् ॥६०॥ विनिहत्य पदाघातैर्जहास च मुहुर्मुहुः ॥ रुराव दारुणं शब्दं देवानां भयकारकम् ॥६१॥ ततो देवी सहस्रारं सुनाभं चक्रमुत्तमम् ॥ करे कृत्वा जगादोच्चैः संस्थितं महिषासुरम् ॥ ६२ ॥ पश्य चक्रं मदांधाद्य तव कंठनिकृंतनम् ॥ क्षणमात्रं स्थिरो भूत्वा यमलोकं व्रजाधुना ॥ ६३ ॥ इत्युक्त्वा दारुणं चक्रं मुमोच जगदम्बिका ॥ शिरश्छिन्नं रथांगेन दानवस्य तदा रणे ॥ ६४ ॥

पिशाच, नाग, चारण और किन्नरगण आकाशमंडलमें स्थित होकर हर्षपूर्वक वह महायुद्ध देखने लगे ॥ ५७ ॥ उधर वह कपटशास्त्रका पंडित महिषासुर रणभूमिमें त्रिविध प्रकारके रूप बदल-बदलकर महामायाके ऊपर प्रहार करने लगा ॥५८॥ तब क्रोधसे लाल नेत्र करके चण्डिकाने अपने तीक्ष्ण त्रिशूलसे उसकी छातीपर बड़ा करारा आघात किया ॥५९॥ उस आघातसे व्यथित होकर महिषासुर जमीनपर गिर पड़ा और उसे मूर्छा आ गयी। किन्तु मुहूर्त भर बाद वह फिर उठ खड़ा हुआ और पूर्ण शक्तिसे उसने देवीपर लात चलायी ॥ ६० ॥ इस प्रकार पदाघात करके वह बारम्बार हँसने लगा। फिर वह इतने भीषण रूपसे चिल्लाया कि उसे सुनकर सब देवता डर गये ॥६१॥ तदनन्तर भगवतीने हजार धार और सुन्दर नाभि (छिद्र) वाला एक उत्कृष्ट चक्र उठाया और अपने समक्ष खड़े महिषासुरसे कड़ककर कहा—॥६२॥ अरे मदान्ध! इस चक्रको देख ले। इसीसे मैं तेरा गला काटूँगी। तनिक देर और ठहरकर यहाँसे तू

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सीधे यमपुरको पयान कर जायगा ॥६३॥ ऐसा कहकर जगदम्बाने वह दारुण चक्र चलाया। उस चक्रने दैत्यराज महिषका सिर काटकर रणभूमिमें गिरा दिया ॥ ६४ ॥ बरसातमें जैसे गेरूके पर्वतसे लाल पानीका झरना बहता है, उसी प्रकार उस असुरके गलेसे गरम रुधिरकी धारा बहने लगी ॥६५॥ उसका धड़ भी चक्कर खाकर जमीनपर गिर पड़ा। उस समय देवताओंने देवीकी सुखवर्धक जयजयकार की ॥ ६६ ॥ उधर भगवतीका अति बलवान् सिंह मानों भूखसे व्याकुल होकर रणभूमिसे भागते हुए दानवोंको पकड़-पकड़कर खाने लगा ॥६७॥ हे नृप ! क्रूर महिषासुरके मर जानेपर मरनेसे बाकी बचे हुए भयभीत दानव भागकर पाताल चले गये ॥६८॥ उसके मर जानेपर सभी देवता, मुनिगण, मनुष्य और पृथिवीतलके सब साधुजन बहुत आनन्दित हुए ॥ ६९ ॥ तब भगवती चण्डिका रणभूमिसे हटकर एक सुंदर प्रदेशमें चली गयीं। देवता भी उनकी स्तुति करनेके लिए तत्काल वहाँ जा पहुँचे ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवी-

सुस्राव रुधिरं चोष्णं कंठनालाद्गिरेर्यथा ॥ गैरिकायरुणं प्रौढं प्रवाहमिव नैर्झरम् ॥ ६५ ॥ कबंधस्तस्य दैत्यस्य भ्रमन्वै पतितः क्षितौ ॥ जयशब्दश्च देवानां बभूव सुखवर्धनः ॥ ॥ ६६ ॥ सिंहस्त्वतिबलस्तत्र पलायनपरानथ ॥ दानवान्भक्षयामास क्षुधार्त इव संगरे ॥ ६७ ॥ मृते च महिषे क्रूरे दानवा भयपीडिताः ॥ मृतशेषाश्च ये केचित्पातालं ते ययुर्नृप ॥ ६८ ॥ आनंदं परमं जग्मुर्देवास्तस्मिन्निपातिते ॥ मुनयो मानवाश्चैव ये चान्ये साधवः क्षितौ ॥ ६९ ॥ चंडिकाऽपि रणं त्यक्त्वा शुभे देशेऽथ संस्थिता ॥ देवास्तत्रायायुः शीघ्रं स्तोतुकामाः सुखप्रदाम् ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे महिषासुरवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

व्यास उवाच ॥ अथ प्रमुदिताः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ महिषं निहतं दृष्ट्वा तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ १ ॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेशः शक्त्या तवैव हरते ननु चांतकाले ॥ ईशा न तेऽपि च भवंति तया विहीनास्तस्मात्त्वमेव जगतः स्थितिनाशकर्त्री ॥ २ ॥ कीर्तिर्मतिः स्मृतिगती करुणा दया त्वं श्रद्धा धृतिश्च वसुधा कमला जया च ॥ पुष्टिः कलाऽथ विजया गिरिजा जया त्वं तुष्टिः प्रभा त्वमसि बुद्धिरुमा रमा च ॥ ३ ॥ विद्या क्षमा जगति कांतिरपीह मेधा सर्वं त्वमेव विदिता भुवनत्रयेऽस्मिन् ॥ आभिर्विना तव तु शक्तिभिराशु कर्तुं को वा

भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(देवताओं द्वारा देवीकी स्तुति) व्यासजी बोले—महिषासुरका संहार देखकर इन्द्र आदि देवता बहुत प्रसन्न हुए और जगदम्बाकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले—हे जगदम्बे ! आपसे ही शक्ति पाकर ब्रह्मा जगत्की सृष्टि करते, विष्णु पालन करते और शिवजी प्रलयकालमें संहार करते हैं। यदि आपकी शक्ति न प्राप्त हो तो वे कुछ भी नहीं कर सकते। अतएव वास्तवमें आप ही देशकी सृष्टि, पालन और संहार करती हैं ॥२॥ आप ही कीर्ति, मति, स्मृति, करुणा, दया, श्रद्धा, धृति, वसुधा, कमला, जया, पुष्टि, कला, विजया, गिरिजा, जया, तुष्टि, प्रभा, बुद्धि, उमा और रमा हैं ॥ ३ ॥ इस त्रिलोकीमें आप ही विद्या, क्षमा, कान्ति और मेधा आदि समस्त शक्तियाँ हैं। यह बात तीनों लोकमें विख्यात है। हे समस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकोंकी निवासभूमि ! इन शक्तियोंके अभावमें क्या कोई प्राणी कुछ कर सकता है ? ॥ ४ ॥ यदि आप धारणाशक्तिके रूपमें सहायता न करतीं तो कच्छपराज और शेषनाग पृथिवीको कैसे धारण करते ? यदि आप पृथिवीशक्तिके रूपमें विद्यमान न रहतीं तो इतने अधिक भारयुक्त यह संसार कहाँ टिकता ? ॥ ५ ॥ जो आपकी मायासे मोहमें पड़े हुए मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, अग्नि, यम, वायु तथा गणेश आदि देवताओंकी स्तुति करते हैं। हे जननी ! क्या वे देवता आपकी कृपाके बिना कोई कार्य कर सकते हैं ? ॥६॥ हे अम्ब ! जो अग्निहोत्री लोग सुविस्तृत यज्ञमें इन्द्रादि देवताओंको पुष्कल हविकी आहुति देते हैं। वे मूर्ख हैं। क्योंकि यज्ञमें यदि स्वाहाके नामसे आपका आवाहन न किया जाय तो यह निश्चित है कि देवता आहुतिमें प्रदान किये हुए द्रव्यको नहीं पा सकते। तब वे मूढ़ श्रोत्रिय आपके अम्बायज्ञको ही क्यों नहीं करते ? ॥ ७ ॥ हे माता ! आप ही अपने अंशसे जगतीतलके समस्त चराचर जीवोंको जीवन प्रदान करती हैं। जिस प्रकार आप अपने प्रिय देवताओंका पोषण करती हैं, उसी प्रकार देवशत्रु दैत्योंका भी पालन करती हैं। इससे यह निश्चित हो गया कि आप

क्षमः सकललोकनिवासभूमे ॥ ४ ॥ त्वं धारणा ननु च चेदसि कूर्मनागौ धर्तुं क्षमौ कथमिलामपि तौ भवेताम् ॥ पृथ्वी न चेत्त्वमसि वा गगने कथं स्थास्यत्येतदंब निखिलं बहुभारयुक्तम् ॥ ५ ॥ ये वा स्तुवंति मनुजा अमरान्विमूढा मायागुणैस्तव चतुर्मुखविष्णुरुद्रान् ॥ शुभ्रांशुवह्नियमवायुगणेशमुख्यान्किं त्वामृते जननि ते प्रभवंति कार्ये ॥ ६ ॥ ये जुह्वति प्रविततेऽल्पधियोऽम्ब यज्ञे वह्नौ सुरान्समधिकृत्य हविः समृद्धम् ॥ स्वाहा न चेत्त्वमसि ते कथमापुरद्धा त्वामेव किं न हि यजंति ततो हि मूढाः ॥७॥ भोगप्रदाऽसि भवतीह चराचराणां स्वांशैर्ददासि खलु जीवनमेव नित्यम् ॥ स्वीयान्सुराञ्जननि पोषयसीह यद्वत्तद्वत्परानपि च पालयसीति हेतोः ॥ ८ ॥ मातः स्वयं विरचितान्विपिने विनोदाद्वंध्यान्पलाशरहितांश्च कटूंश्च वृक्षान् ॥ नोच्छेदयंति पुरुषा निपुणाः कथंचित्तस्मात्त्वमत्यतितरां परिपासि दैत्यान् ॥ ९ ॥ यत्त्वं तु हंसि रणमूर्ध्नि शरैररातीन्देवांगनासुरतकेलिमतीन्विदित्वा ॥ देहांतरेऽपि करुणारसमाददाना तत्ते चरित्रमिदमीप्सितपूरणाय ॥ १० ॥ चित्रं त्वमी यदसुभी रहिता न संति त्वच्चिंतितेन दनुजाः प्रथितप्रभावाः ॥ येषां कृते जननि देहनिबंधनं ते क्रीडारसस्तव न चान्यतरोऽत्र हेतुः ॥ ११ ॥ प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले न त्वां

ही देवता, दैत्य एवं सब चराचर प्राणियोंके लिए भोगदायिनी हैं ॥ ८ ॥ हे अम्बिके ! बगीचेमें मनोरंजनके लिए अपने हाथसे लगाये हुए वृक्षोंमेंसे यदि कुछ वृक्षोंमें फल अथवा पत्ते न लगें या किसी वृक्षका रस कड़ुवा निकल जाय तो बुद्धिमान् मनुष्य किसी भी तरह अपने हाथों उन वृक्षोंको काट डालनेके लिए तैयार न होगा। उसी प्रकार आप भी अपने ही बनाये हुए दैत्योंके अवगुण देख करके भी उनकी रक्षा करती हैं ॥ ९ ॥ हे माता ! आपका हृदय सदा करुणारससे ओत-प्रोत रहता है। आप जो रणभूमिमें अपने बाणोंसे असुरोंका वध करती हैं, वह भी उनका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए ही वैसा करती हैं। क्योंकि उनकी यह इच्छा रहती है कि मरनेके बाद परलोकमें स्वर्गीया अप्सराओंके साथ सम्भोगका आनन्द प्राप्त हो ॥ १० ॥ हे जननी ! आश्चर्य तो इस बातका है कि आपके सोचते ही वे दैत्य नहीं मर गये और उन्हें मारनेके लिए आपको अवतार लेना पड़ा। इससे मालूम पड़ता है कि यह देह धारण करके आप उसके सहारे लीला करना चाहती थीं। इसके सिवाय और कोई कारण नहीं दिखायी देता ॥ ११ ॥ अहो ! ऐसे विकराल कलिकालमें भी जो लोग आपकी आराधना नहीं करते, इससे स्पष्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञात होता है कि धूर्त पुराणरचयिताओंने आपके ही द्वारा निर्मित विष्णु-शिव आदि देवताओंकी आराधनामें उलझाकर उन्हें बहुत बड़ा धोखा दिया है ॥ १२ ॥ जो लोग यह जानते हुए कि देवता दैत्यों द्वारा सताये जाते हैं और वे सदा भगवतीके अधीन रहते हैं, फिर भी श्रद्धापूर्वक जो उन्हीं देवताओंकी आराधना करते हैं। वे उसी प्रकार संसाररूपी अन्धकूपमें गिरते हैं, जैसे कोई मनुष्य हाथमें प्रकाश लिये हुए भी किसी जलविहीन भयानक कूपमें जा गिरे ॥१३॥ हे माता! आप ही प्राणियोंको सुखदायिनी विद्या और दुःखदायिनी अविद्या हैं। जो लोग आपकी आराधना करते हैं, वे जन्म-मरणके संकटसे छूट जाते हैं। हे अम्बे! मोक्ष प्राप्त करनेकी लालसासे मुनिगण आपकी उपासना करते हैं और विषयभोगपरायण प्राणी आपकी आराधनासे दूर रहते हैं। क्योंकि उन मूर्खोंकी बुद्धि मारी गयी रहती है ॥ १४ ॥ स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं अन्य देवता आपके शरणदायक चरणकमलोंका भजन करते हैं। किन्तु जो अल्पबुद्धि प्राणी आपकी मानसिक आराधना नहीं करते, वे पथभ्रष्ट होकर सदा भवसागरमें डूबते-उतराते रहते हैं॥१५॥ हे चंडिके! आपके चरणोंकी धूलि माथे चढ़ाकर ब्रह्माजी समस्त विश्वकी रचना

भजंति मनुजा ननु वंचितास्ते ॥ धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम् ॥ १२ ॥ ज्ञात्वा सुरांस्तव वशानसुरार्दितांश्च ये वै भजंति भुवि भावयुता निमग्नान् ॥ धृत्वा करे सुविमलं खलु दीपकं ते कूपे पतंति मनुजा विजलेऽतिघोरे ॥१३॥ विद्या त्वमेव सुखदाऽसुखदाऽप्यविद्या मातस्त्वमेव जननार्तिहरा नराणाम् ॥ मोक्षार्थिभिस्तु कलिता किल मंदधीभिर्नाराधिता जननि भोगपरैस्तथाऽज्ञैः ॥ १४ ॥ ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं शरण्यं पादांबुजं तव भजंति सुरास्तथाऽन्ये ॥ तद्वै न येऽल्पमतयो मनसा भजंति भ्रांताः पतंति सततं भवसागरे ते ॥ १५ ॥ चंडि त्वदंघ्रिजलजोत्थरजःप्रसादैर्ब्रह्मा करोति सकलं भुवनं भवादौ ॥ शौरिश्च पाति खलु संहरते हरस्तु त्वां सेवते न मनुजस्त्विह दुर्भगोऽसौ ॥१६॥ वाग्देवता त्वमसि देवि सुरासुराणां वक्तुं न तेऽमरवराः प्रभवंति शक्ताः ॥ त्वं चेन्मुखे वससि नैव यदैव तेषां यस्माद्भवंति मनुजा न हि तद्विहीनाः ॥ १७ ॥ शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु ॥ पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद्धरायां तां सेवतां जननि मृत्युभयं न किं स्यात् ॥ १८ ॥ शंभोः पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धं शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य ॥ तं ये नरा भुवि भजंति कपालिनं तु तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः ॥ १९ ॥ योऽभूद्गजाननगणाधिपतिर्महेशात्तं ये भजंति मनुजा वितथप्रपन्नाः ॥ जानंति ते न सकलार्थफलप्रदात्रीं त्वां

करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिवजी संहार करते हैं। आपकी इतनी महिमा होते हुए भी जो लोग इस संसारमें आपका भजन नहीं करते, वे अभागे हैं ॥ १६ ॥ हे देवि! सभी देवताओं और दैत्योंकी एकमात्र आप ही वाग्देवता हैं। यदि आप मुखमें बैठकर वाक्शक्ति न प्रदान करें तो बड़े-बड़े देवता भी कुछ नहीं बोल सकते। फिर साधारण कोटिके प्राणी आपसे वाक्शक्ति प्राप्त किये बिना कैसे बोल सकेंगे? ॥ १७ ॥ हे जननी! महर्षि भृगुने कुपित होकर भगवान विष्णुको शाप दे दिया। जिससे उन्हें बारम्बार मत्स्य, कूर्म, वराह, छलिया वामन और नृसिंहका अवतार लेना पड़ा। तब विष्णु जैसे देवताकी उपासना करनेवाले लोगोंको मृत्युका भय क्यों न बना रहेगा? तात्पर्य यह है कि जब भगवान विष्णु महर्षि भृगुके साधारण शापबन्धनसे अपने आपको मुक्त नहीं कर सके, तब वे भला अपने भक्तोंको भवबन्धनसे मुक्ति कैसे प्रदान कर सकते हैं? ॥ १८ ॥ हे माता! समस्त संसारमें यह बात प्रसिद्ध है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि एक समय शिवजी भृगुवनमें नंगे घूम रहे थे। उन्हें महामुनि भृगुने शाप दे दिया। जिससे उनका लिंग कटकर गिर पड़ा। अतएव जो लोग ऐसे कापालिककी आराधना करते हैं, उन्हें इहलोक तथा परलोकमें सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? ॥१९॥ हे देवि! जो लोग उन शिवजीसे जायमान गणेशजीका पूजन करते हैं, उनकी भी बुद्धि भ्रममें पड़ी हुई है। क्योंकि वे नहीं जानते कि आप ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूपी चारों पदार्थ प्रदान करनेवाली समस्त विश्वकी माता हैं और आपकी आराधना बड़ी आसानीसे हो सकती है ॥ २० ॥ हे माता! आपमें यह बड़ी विचित्र बात देखी गयी कि आपने अपने शत्रु दैत्योंपर भी दया करके उन्हें तीखे बाणोंसे मारकर सीधे स्वर्गलोक भेज दिया। यदि आप ऐसा न करतीं तो वे नरकोंमें जाकर अपने कर्मफलको भोगते हुए भयानकसे भयानक यन्त्रणायें सहते रहते। उस नरकसे कभी उन्हें छुटकारा न मिलता ॥ २१ ॥ अहंकारवश जब ब्रह्मा-विष्णु-शिव भी भलीभाँति आपकी महिमा नहीं जानते, तब आपके अमित प्रभावशाली सत्त्वादि गुणोंसे मोहित मनुष्य भला आपकी महिमाको कैसे जान सकेंगे? ॥ २२ ॥ जो मुनिगण भ्रमवश आपके पावन चरणकमलोंका ध्यान करते हुए आपकी उपसना नहीं करते। बल्कि सूर्य और अग्निको प्रत्यक्ष देवता मानकर उन्हींकी पूजामें तल्लीन रहते हैं। वे नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं। क्योंकि वेदोंने

देवि विश्वजननीं सुखसेवनीयाम् ॥ २० ॥ चित्रं त्वयाऽरिजनताऽपि दयार्द्रभावाद्धत्वा रणे शितशरैर्गमिता द्युलोकम् ॥ नोचेत्स्वकर्मनिचिते निरये नितांतं दुःखातिदुःखगतिमापदमापतेत्सा ॥ २१ ॥ ब्रह्मा हरश्च हरिरप्युत गर्वभावाज्जानंति तेऽपि विबुधा न तव प्रभावम् ॥ केऽन्ये भवंति मनुजा विचितुं समर्थाः संमोहितास्तव गुणैरमितप्रभावैः ॥२२॥ क्लिश्यंति तेऽपि मुनयस्तव दुर्विभाव्यं पादांबुजं नहि भजंति विमूढचित्ताः ॥ सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्त्वं ज्ञातं न तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम् ॥ २३ ॥ मन्ये गुणास्तव भुवि प्रथितप्रभावाः कुर्वन्ति ये हि विमुखान्ननु भक्तिभावात् ॥ लोकान्स्वबुद्धिरचितैर्विविधागमैश्च विष्णवीशभास्करगणेशपरान्विधाय ॥ २४ ॥ कुर्वन्ति ये तव पदाद्विमुखान्नराग्रयान्स्वोक्तागमैर्हरिहरार्चनभक्तियोगैः ॥ तेषां न कुप्यसि दयां कुरुषेऽम्बिके त्वं तान्मोहमंत्रनिपुणान्प्रथयस्यलं च ॥ २५ ॥ तुर्ये युगे भवति चातिबलं गुणस्य तुर्यस्य तेन मथितान्यसदागमानि ॥ त्वां गोपयंति निपुणाः कवयः कलौ वै त्वत्कल्पितान्सुरगणानपि संस्तुवन्ति ॥२६॥ ध्यायंति मुक्तिफलदां भुवि योगसिद्धां

जिस परमार्थ तत्त्व अर्थात् ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन किया है, उसे वे नहीं समझ पाते ॥ २३ ॥ मेरा तो ऐसा अनुमान है कि आपके सत्त्व, रज और तमोगुण मानव बुद्धिसे निर्मित विविध शास्त्रोंके झमेलेमें फँसाकर मनुष्योंको विष्णु-शिव-सूर्य-गणपति आदि देवताओंका उपासक बना देते हैं। ऐसा करके वे उन्हें आपके भक्तिभावसे सर्वथा विमुख कर देते हैं ॥ २४ ॥ हे अम्बिके! जो मनुष्य विष्णु तथा शिवकी पूजाको महत्त्व देनेवाले शास्त्रका उपदेश देकर ब्राह्मणोंको आपके चरणोंकी पूजासे पराङ्मुख कर देते हैं। उनके ऊपर आप कुपित नहीं होतीं। बल्कि उनपर भी दया करती हैं और उन मारण-मोहन-उचाटनमय मंत्रशास्त्रके ज्ञाताओंको संसारमें अत्यधिक विख्यात कर देती हैं ॥२५॥ सत्ययुगमें सतोगुणका प्राबल्य था। अतएव उस युगमें असत् शास्त्रोंका लोप हो गया था और सर्वत्र आपकी पूजा होती थी। किन्तु इस कलियुगमें कवित्वका अभिमान रखनेवाले ब्राह्मण आपको भूलकर आपके द्वारा निर्मित ब्रह्मा-विष्णु आदि देवताओंकी आराधनामें लग जाते हैं ॥ २६ ॥ इस जगतीतलमें शुद्ध सतोगुणी मुनि लोग ही मुक्तिफल देनेवाली तथा योग द्वारा सिद्धि प्रदान करनेवाली आप परा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विद्याका ध्यान करते हैं। जो लोग आपमें ध्यानमग्न रहते हैं, उन्हें फिर माताके गर्भमें नहीं आना पड़ता अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं ॥ २७॥ आप ही चैतन्यस्वरूपा होकर परम पुरुष परमात्मामें निवास करती हैं। तभी तो उनका नाम और उनकी आकृति व्यक्त होती है। उसके बाद वे सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता रूपमें प्रसिद्ध होते हैं। उन परमात्माके सिवाय और कौन ऐसा पुरुष है कि जो आपसे शक्ति प्राप्त किये बिना अपने ही पुरुषार्थसे जगत्की सृष्टि, पालन तथा संहारका काम सम्पन्न कर सके ? ॥२८॥ हे जगदम्बे! यदि कहा जाय कि तत्त्व ही जगत्की उत्पत्तिके कारण हैं तो मैं कहूँगा कि यदि तत्त्वोंमें चैतन्यशक्ति न हो तो क्या वे जगत्की रचना करनेमें समर्थ हो सकेंगे ? क्योंकि तत्त्व तो स्वयं जड़ हैं। हे देवी! गुण तथा मन आदि इन्द्रियाँ भी आपसे चैतन्यशक्ति प्राप्त किये बिना क्या सांसारिक कार्य सम्पन्न करने और शुभ-अशुभ कर्मोंका फल प्रदान करनेमें समर्थ हो सकती हैं ? कदापि नहीं ॥२९॥ हे अम्ब! यदि स्वाहारूपसे आप मुख्य साधन न बनतीं तो क्या हम देवता मुनियों द्वारा विधिवत् किये गये यज्ञोंमें दी हुई आहुति एवं यज्ञभाग प्राप्त कर पाते ? अतएव यह निश्चित हो

विद्यां परां च मुनयोऽतिविशुद्धसत्त्वाः ॥ ते नाप्नुवंति जननीजठरे तु दुःखं धन्यास्त एव मनुजास्त्वयि ये विलीनाः ॥ २७ ॥ चिच्छक्तिरस्ति परमात्मनि येन सोऽपि व्यक्तो जगत्सु विदितो भवकृत्यकर्ता ॥ कोऽन्यस्त्वया विरहितः प्रभवत्यमुष्मिन्कर्तुं विहर्तुमपि संचलितुं स्वशक्त्या ॥ २८ ॥ तत्त्वानि चिद्विरहितानि जगद्विधातुं किं वा क्षमाणि जगदम्ब यतो जडानि ॥ किं चेन्द्रियाणि गुणकर्मयुतानि संति देवि त्वया विरहितानि फलं प्रदातुम् ॥ २९ ॥ देवा मखेष्वपि हुतं मुनिभिः स्वभागं गृह्णीयुरम्ब विधिवत्प्रतिपादितं किम् ॥ स्वाहा न चेत्त्वमसि तत्र निमित्तभूता तस्मात्त्वमेव ननु पालयसीव विश्वम् ॥ ३० ॥ सर्वं त्वयेदमखिलं विहितं भवादौ त्वं पासि वै हरिहरप्रमुखान्दिगीशान् ॥ कालेऽत्सि विश्वमपि ते चरितं भवाद्ये जानंति नैव मनुजाः क्व नु मंदभाग्याः ॥ ३१ ॥ हत्वाऽसुरं महिषरूपधरं महोग्रं मातस्त्वया सुरगणः किल रक्षितोऽयम् ॥ कां ते स्तुतिं जननि मंदधियो विदामो वेदा गतिं तव यथार्थतया न जग्मुः ॥ ३२ ॥ कार्यं कृतं जगति नो यदसौ दुरात्मा वैरी हतो भुवनकंटकदुर्विभाव्यः ॥ कीर्तिः कृता ननु जगत्सु कृपा विधेयाऽप्यस्मांश्च पाहि जननि प्रथितप्रभावे ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्देवी तानुवाच मृदुस्वरा ॥ अन्यत्कार्यं

जाता है कि वस्तुतः आप ही समस्त विश्वका पालन करती हैं ॥ ३० ॥ हे संसारकी आदि! सृष्टिके आरम्भकालमें आपने ही अखिल विश्वकी सृष्टि की है। आप ही ब्रह्मा-विष्णु आदि प्रमुख देवताओं तथा दसों दिक्पालोंकी रक्षा करती हैं। प्रलयकालमें आप ही इसे उदरस्थ कर लेती हैं। हे भगवती! जब देवता भी आपके चरित्रको नहीं जान पाते, तब मन्दभाग्य मनुष्य भला उसे कैसे जान सकते हैं ? ॥ ३१ ॥ हे मातः! आपने महिषरूपधारी इस दुष्टका वध करके हम देवताओंकी रक्षा की है। हे जननि! सब वेद भी यथार्थ रीतिसे आपकी अगम्य गतिको नहीं जान सके, तब हम मन्दबुद्धि उसे कैसे जानेंगे और कैसे आपकी स्तुति करेंगे ? ॥ ३२ ॥ हे जननी! हे विख्यात प्रभावशालिनी जगदम्बे! आपने दुराचारी, तीनों लोकोंके लिए कण्टकस्वरूप तथा समस्त विश्वमें आतङ्क फैलानेवाले वैरी महिषासुरका वध करके देवताओंका बहुत बड़ा उपकार किया है। इससे आपकी कीर्ति दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गयी है। अब आप सारे संसारपर कृपा रक्खें और हमारी रक्षा करें ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले—हे महाराज जनमेजय! इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवतीने मधुर वाणीमें उनसे कहा—हे सुर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रेष्ठगण ! यांद आपका और भी कोई कष्टसाध्य कार्य हो तो बताइए ॥ ३४ ॥ जब कभी भी आप देवताओंपर कोई संकट आये तो मेरा स्मरण करिएगा । मैं तत्काल आपका दुःख दूर कर दूँगी ॥ ३५ ॥ देवता बोले—हे देवी ! इस समय आपने हमारे शत्रु महिषासुरको मारकर हमारा सब काम बना दिया है ॥ ३६ ॥ हे अम्ब ! अब आप हमें ऐसी शक्ति दें कि जिससे हम निरन्तर आपके चरणोंका स्मरण करते रहें और हमारे हृदयमें आपकी स्थिर भक्ति बनी रहे ॥३७॥ अपनी सन्तानके हजारों अपराध माता ही सहती है । ऐसा समझकर लोग आप जगदम्बाका भजन क्यों नहीं करते ? ॥ ३८ ॥ इस देहरूपी वृक्षपर जीवत्मा और परमात्मारूपी दो पक्षी निवास करते हैं । उन दोनोंमें बड़ी घनिष्ठ मैत्री है । लेकिन उनका कोई ऐसा तीसरा मित्र नहीं है, जो उनके अपराधको सह सके ॥३९॥ अतएव जीव यदि आप जैसे मित्रको पा करके भी आपका साथ छोड़ दे तो वह क्या करेगा ? आपसे बिछुड़कर वह पापी और

च दुःसाध्यं ब्रुवंतु सुरसत्तमाः ॥ ३४ ॥ यदा यदा हि देवानां कार्यं स्याददतिदुर्घटम् ॥ स्मर्तव्याऽहं तदा शीघ्रं नाशयिष्यामि चापदम् ॥ ३५ ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वं कृतं त्वया देवि कार्यं नः खलु सांप्रतम् ॥ यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥ ३६ ॥ स्मरिष्यामो यथा तेऽम्ब सदैव पदपङ्कजम् ॥ तथा कुरु जगन्मातर्भक्तिं त्वय्यप्यचंचलाम् ॥ ३७ ॥ अपराधसहस्राणि मातैव सहते सदा ॥ इति ज्ञात्वा जगद्योनिं न भजंते कुतो जनाः ॥ ३८ ॥ द्वौ सुपर्णौ तु देहेऽस्मिंस्तयोः सख्यं निरंतरम् ॥ नान्यः सखा तृतीयोऽस्ति योऽपराधं सहेत हि ॥ ३९ ॥ तस्माज्जीवः सखायं त्वां हित्वा किं नु करिष्यति ॥ पापात्मा मन्दभाग्योऽसौ सुरमानुषयोनिषु ॥ ४० ॥ प्राप्य देहं सुदुष्प्रापं न स्मरेत्त्वां नराधमः ॥ मनसा कर्मणा वाचा ब्रूमः सत्यं पुनः पुनः ॥ ४१ ॥ सुखे वाप्यथ वा दुःखे त्वं नः शरणमद्भुतम् ॥ पाहि नः सततं देवि सर्वैस्तव वरायुधैः ॥ ४२ ॥ अन्यथा शरणं नास्ति त्वत्पदांबुजरेणुतः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्देवी तत्रैवांतरधीयत ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्देवास्तां वीक्ष्य निर्गताम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

जनमेजय उवाच ॥ अथाद्भुतं वीक्ष्य मुने प्रभावं देव्या जगच्छांतिकरं परं च ॥ न तृप्तिरस्ति द्विजवर्य शृण्वतः कथाऽमृतं ते मुखपद्म-

अभागा जीव देवताओं और मनुष्योंकी योनिमें बार-बार जन्म लेता और मरता रहेगा ॥४०॥ जो मनुष्य दुर्लभ नरतन पाकर मनसा वाचा कमणा आपका स्मरण नहीं करता, वह मनुष्योंमें अधम मनुष्य है । इस बातको हम बारम्बार तथा सच कह रहे हैं ॥४१॥ हे देवी ! सुख और दुख दोनों समय आप हमारी अद्भुत ढंगसे रक्षा करती आयी हैं । अतएव आप अपने श्रेष्ठ आयुधों द्वारा सदा हमारी रक्षा करती रहें ॥ ४२ ॥ क्योंकि आपके चरणोंकी धूलिके सिवाय अन्यत्र कहीं शरण नहीं है । व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंकी स्तुति सुनकर भगवती वहाँ ही अन्तर्धान हो गयीं । इस प्रकार देवीको अन्तर्हित देखकर देवता बहुत विस्मित हुए ॥ ४३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

(नवीन स्वातंत्र्यका प्रभाव) राजा जनमेजय बोले—हे मुने ! भगवतीके अद्भुत एवं समस्त संसारके लिए परम शान्तिदायक प्रभावको तो मैंने देख लिया । तथापि हे द्विजश्रेष्ठ !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आपके मुखारविन्दसे निःसृत पावन कथारूपी अमृतको अपने कर्णपुटसे पुनः पुनः पान करके भी मैं तृप्त नहीं होने आ रहा हूँ ॥ १ ॥ अब यह बताइए कि भगवतीके अन्तर्धान हो जानेपर देवताओंने क्या किया ? भगवतीका चरित्र बहुत पवित्र है । वह अल्प पुण्यवाले मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ रहता है ॥ २ ॥ अभागे मनुष्योंको छोड़कर जिनके श्रवणपुट सत्कथायें सुननेको आकुल रहते हैं, वे जगदम्बाकी पुनीत कथाको बारम्बार सुनकर भी क्या कभी तृप्त हो सकते हैं ? जिस कथारूपी अमृतका पान करके प्राणो मनुष्यसे देवता बन सकता है। उसे जो लोग आदरके साथ नहीं पीते, उन मनुष्योंके जीवनको धिक्कार है ॥ ३ ॥ उन जगदम्बाकी अनोखी लीलायें और उनके पावन चरित्र समस्त देवताओं तथा महर्षियोंकी रक्षाके अमोघ साधन हैं। मनुष्योंको संसारसागर पार करानेके लिए तो वे जहाजके सदृश हैं। ऐसे कृतज्ञ पुरुष उन लीलाओं और चरित्रोंको कैसे त्याग सकते हैं ? ॥ ४ ॥ वेदोंके विज्ञ विद्वानोंका कथन है कि जो जीवन्मुक्त हो चुके हों, जो मोक्ष पाना चाहते हों और जो रोगग्रस्त हों, उन्हें चाहिए कि भगवतीकी यह सर्वार्थदायिनी कथारूपी अमृत अपने श्रवणों द्वारा पान करते रहें॥ ५ ॥

जातम् ॥ १ ॥ अन्तर्हितायां च तदा भवान्यां चक्रुश्च किं देवपुरोगमास्ते ॥ देव्याश्चरित्रं परमं पवित्रं दुरापमेवाल्पपुण्यैर्नराणाम् ॥ २ ॥ कस्तृप्तिमाप्नोति कथामृतेन भिन्नोऽल्पभाग्यात्पटुकर्णरंध्रः ॥ पीतेन येनामरतां प्रयाति धिक्तान्नरान् ये न पिबंति सादरम् ॥ ३ ॥ लीलाचरित्रं जगदंबिकाया रक्षान्वितं देवमहामुनीनाम् ॥ संसारवार्धेस्तरणं नराणां कथं कृतज्ञा हि परित्यजेयुः ॥ ४ ॥ मुक्ताश्च ये चैव मुमुक्षवश्च संसारिणो रोगयुताश्च केचित् ॥ तेषां सदा श्रोत्रपुटैश्च पेयं सर्वार्थदं वेदविदो वदन्ति ॥ ५ ॥ तथा विशेषेण मुने नृपाणां धर्मार्थकामेषु सदा रतानाम् ॥ मुक्ताश्च यस्मात्खलु तत्पिबंति कथं न पेयं रहितैश्च तेभ्यः ॥ ६ ॥ यैः पूजिता पूर्वभवे भवानी सत्कुन्दपुष्पैरथ चंपकैश्च ॥ बैल्वैर्दलैस्ते भुवि भोगयुक्ता नृपा भवन्तीत्यनुमेयमेवम् ॥ ७ ॥ ये भक्तिहीनाः समवाप्य देहं तं मानुषं भारतभूमिभागे ॥ यैर्नार्चिता ते धनधान्यहीना रोगान्विताः संततिवर्जिताश्च ॥ ८ ॥ भ्रमंति नित्यं किल दासभूता आज्ञाकराः केवलभारवाहाः ॥ दिवानिशं स्वार्थपराः कदाऽपि नैवाप्नुवंत्यौदरपूर्तिमात्रम् ॥ ९ ॥ अन्धाश्च मूका बधिराश्च खंजाः कुष्ठान्विता ये भुवि दुःखभाजः ॥ तत्रानुमानं कविभिर्विधेयं नाराधिता तैः सततं भवानी ॥ १० ॥ ये राजभोगा-

हे मुने ! धर्म-अर्थ-काम-परायण राजाओंको तो विशेष करके यह देवीचरित्र सुनना चाहिए। जब जीवन्मुक्त पुरुष भी सदा इस कथामृतका पान करते रहते हैं, तब मुक्तिविहीन संसारी जीव ऐसा क्यों न करें ? ॥६॥ मेरा अनुमान तो यह है कि पूर्वजन्ममें जो लोग सुन्दर कुन्दपुष्प, चम्पाके फूल तथा विल्वपत्रसे भगवतीका पूजन किये रहते हैं, वे ही इस जन्ममें समस्त भोग्य पदार्थोंसे सम्पन्न राजा होते हैं ॥७॥ जो भारतवर्षकी इस पावन भूमिमें दुर्लभ मनुष्यशरीर पाकर धन-धान्यसे हीन, रोगी और निःसन्तान रहते हैं । उनके विषयमें मेरा अनुमान यह है कि उन भक्तिभावसे हीन लोगोंने पूर्वजन्ममें भगवतीकी आराधना नहीं की थी । इसीसे उनकी ऐसी दुर्गति हो रही है। इसी कारण वे औरोंके सेवक, आज्ञाकारी और भारवाही होकर सदा स्वार्थसाधनमें संलग्न रहते हैं । फिर भी उन्हें कभी इतना अन्न-धन नहीं मिलता कि जिससे वे अपना पेट पाल सकें॥८॥९॥ इस संसारमें जितने अन्धे, गूँगे, बहरे, लूले, लँगड़े, कोढ़ी और नाना प्रकारके दुःखोंसे विकल लोग दिखायी देते हैं, उन्हें देखकर कवियोंको यह अनुमान कर लेना चाहिए कि उन प्राणियोंने कभी भी भगवतीकी उपासना नहीं की थी ॥१०॥ इसके विपरीत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसारमें जो लोग राजभोगयुक्त, सर्वथा समृद्ध और बहुतेरे सेवकोंके प्रभु होते हैं। जिनके पास समस्त वैभव विद्यमान रहता है, उन्हें देखकर यह अनुमान कर लेना चाहिए कि उन्होंने भली-भाँति जगदम्बाका पूजन किया है ॥११॥ अतएव हे सत्यवतीतनय ! अब कृपा करके मुझे देवीकी और कोई पुनीत कथा सुनाइए। क्योंकि आप बड़े दयालु पुरुष हैं ॥१२॥ उस पापी महिषासुरको मारनेके बाद देवताओं द्वारा पूजित होकर वे सब देवताओंके तेजसे उत्पन्न भगवती महालक्ष्मी कहाँ चली गयीं ? ॥ १३ ॥ हे महाभाग ! अभी आपने कहा है कि भगवती तुरन्त अन्तर्धान हो गयीं। तब वे वहाँसे स्वर्गलोकको चली गयीं या मृत्युलोकमें ही कहीं रह गयीं ? ॥ १४ ॥ अथवा वे वहीं विलीन हो गयीं या वैकुण्ठधामको चली गयीं ? या कि वहाँसे चलकर सुमेरु पर्वतपर जा विराजीं ? ॥१५॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! पहले तृतीय स्कन्धमें ही मैं रमणीक मणिद्वीपका वर्णन कर चुका हूँ। वह द्वीप उन्हें विशेष प्रिय है। इसलिए

न्वितऋद्धिपूर्णाः संसेव्यमाना बहुभिर्मनुष्यैः ॥ दृश्यंति ये वा विभवैः समेतास्तैः पूजिताऽम्बेत्यनुमेयमेव ॥ ११ ॥ तस्मात्सत्यवतीसूनो देव्याश्चरि-
तमुत्तमम् ॥ कथयस्व कृपां कृत्वा दयावानसि सांप्रतम् ॥ १२ ॥ हत्वा तं महिषं पापं स्तुता संपूजिता सुरैः ॥ क्व गता सा महालक्ष्मीः सर्वतेजः-
समुद्भवा ॥ १३ ॥ कथितं ते महाभाग गतांतर्धानमाशु सा ॥ स्वर्गे वा मृत्युलोके वा संस्थिता भुवनेश्वरी ॥ १४ ॥ लयं गता वा तत्रैव वैकुण्ठे
वा समाश्रिता ॥ अथवा हेमशैले सा तत्त्वतो मे वदाधुना ॥ १५ ॥ व्यास उवाच ॥ पूर्वं मया ते कथितं मणिद्वीपं मनोहरम् ॥ क्रीडास्थानं सदा
देव्या वल्लभं परमं स्मृतम् ॥ १६ ॥ यत्र ब्रह्मा हरिः स्थाणुः स्त्रीभावं ते प्रपेदिरे ॥ पुरुषत्वं पुनः प्राप्य स्वानि कार्याणि चक्रिरे ॥ १७ ॥ यः सुधा-
सिन्धुमध्येऽस्ति द्वीपः परमशोभनः ॥ नानारूपैः सदा तत्र विहारं कुरुतेऽम्बिका ॥ १८ ॥ स्तुता संपूजिता देवैः सा तत्रैव गता शिवा ॥ यत्र
संक्रीडते नित्यं मायाशक्तिः सनातनी ॥ १९ ॥ देवास्तां निर्गतां वीक्ष्य देवीं सर्वेश्वरीं तथा ॥ रविवंशोद्भवं चक्रुर्भूमिपालं महाबलम् ॥ २० ॥
अयोध्याऽधिपतिं वीरं शत्रुघ्नं नाम पार्थिवम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं महिषस्यासने शुभे ॥ २१ ॥ दत्त्वा राज्यं तदा तस्मै देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ स्वकी-
यैर्वाहनैः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि ते ॥ २२ ॥ गतेषु तेषु देवेषु पृथिव्यां पृथिवीपते ॥ धर्मराज्यं बभूवाथ प्रजाश्च सुखितास्तथा ॥ २३ ॥

वे सदा वहाँ ही विहार करती रहती हैं ॥१६॥ वहाँ ही पहुँचकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव पुरुषसे स्त्री हो गये थे और भगवतीकी कृपासे पुनः पुरुषत्व प्राप्त करके अपने-अपने काममें लगे थे ॥१७॥ वह परम रमणीक द्वीप सुधासमुद्रके मध्यमें विराजमान है। जगदम्बा विविध रूपोंमें नित्य वहाँ विहार किया करती हैं ॥ १८ ॥ महिषासुरका वध करनेके बाद जब देवता उनकी स्तुति और पूजा कर चुके, तब भगवती शिवा उसी मणिद्वीपमें चली गयीं। वहाँ वे सनातनी मायाशक्तिस्वरूपा जगदम्बा नित्य विहार करती रहती हैं ॥१९॥ सर्वेश्वरी भगवतीको अलक्षित देखकर देवताओंने सूर्यवंशमें उत्पन्न, महाबली एवं सर्वसुलक्षणसम्पन्न शत्रुघ्न नामके वीर राजाको महिषासुरके सुंदर राजसिंहासनपर बैठाया ॥२०॥२१॥ इस प्रकार शत्रुघ्नका राज्याभिषेक करके इन्द्रादि देवता अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर अपने-अपने स्थानको चले गये ॥२२॥ हे भूपाल ! देवताओंके चले जानेके बाद पृथिवीपर धर्मराज्यकी स्थापना हुई। जिससे समस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रजा बहुत सुखी हुई ॥ २३ ॥ मेघ ठीक समयपर जल बरसाने लगे । जिससे पृथिवीपर अन्नका उत्पादन बढ़ गया । वृक्ष फल-फूलसे लद गये । जिससे लोगोंको अपार सुख मिलने लगा ॥ २४ ॥ गौओंका दूध इतना बढ़ गया कि जब जिसकी इच्छा होती, तब दुह लेता था । नदियाँ सीधी राह बहने लगीं । उनका जल स्वच्छ और शीतल हो गया । उनके तटोंपर पक्षियों-की जमघट रहने लगी ॥ २५ ॥ ब्राह्मण वैदिक तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके यज्ञ-याग करने लगे । क्षत्रिय धर्मपरायण होकर दान और स्वाध्यायके काममें लग गये ॥ २६ ॥ वे शस्त्रविद्या-के पारंगत होकर नित्य प्रजाका पालन करने [illegible] तब उनका दण्डविधान न्यायके आधारपर चलने लगा और सभी राजे शांतिके उपासक बन गये ॥ २७ ॥ सब प्राणियोंके हृदयसे वैर-विरोधका भाव जाता रहा । खानोंसे लोगोंको अपार धनराशि प्राप्त होने लगी और गोशालाओंमें गायोंका झुण्ड दिखायी देने लगा ॥२८॥ हे महाराज! उस समय धरातलमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णके लोग देवीके भक्त हो गये ॥ २९ ॥ उन दिनों ब्राह्मणों और क्षत्रियों द्वारा किये गये यज्ञोंसे समस्त पृथिवी व्याप्त हो गयी । सर्वत्र यज्ञस्तम्भ तथा सुन्दर

पर्जन्यः कालवर्षी च धरा धान्यगुणावृता ॥ पादपाः फलपुष्पाढ्या बभूवुः सुखदाः सदा ॥ २४ ॥ गावश्च क्षीरसंपन्ना घटोध्न्यः कामदा नृणाम् ॥ नद्यः सुमार्गगाः स्वच्छाः शीतोदाः खगसंयुताः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणा वेदतत्त्वाश्च यज्ञकर्मरतास्तथा ॥ क्षत्रिया धर्मसंयुक्ता दानाध्ययनतत्पराः ॥ २६ ॥ शस्त्रविद्यारता नित्यं प्रजारक्षणतत्पराः ॥ न्यायदंडधराः सर्वे राजानः शमसंयुताः ॥ २७ ॥ अविरोधस्तु भूतानां सर्वेषां संबभूव ह ॥ आकरा धन-दा नृणां व्रजा गोयूथसंयुताः ॥ २८ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम ॥ देवीभक्तिपराः सर्वे संबभूवुर्धरातले ॥ २९ ॥ सर्वत्र यज्ञयू-पाश्च मंडपाश्च मनोहराः ॥ मखैः पूर्णा धराश्चासन् ब्राह्मणैः क्षत्रियैः कृतैः ॥ ३० ॥ पतिव्रतधरा नार्यः सुशीलाः सत्यसंयुताः ॥ पितृभक्तिपराः पुत्रा आसन्धर्मपरायणाः ॥ ३१ ॥ न पाखण्डं न वाऽधर्मः कुत्रापि पृथिवीतले ॥ वेदवादाः शास्त्रवादा नान्ये वादास्तथाऽभवन् ॥ ३२ ॥ कलहो नैव केषांचिन्न दैन्यं नाशुभा मतिः ॥ सर्वत्र सुखिनो लोकाः काले च मरणं तथा ॥ ३३ ॥ सुहृदां न वियोगश्च नापदश्च कदाचन ॥ नोऽनावृ-ष्टिर्न दुर्भिक्षं न मारी दुःखदा नृणाम् ॥ ३४ ॥ न रोगो न च मात्सर्यं न विरोधः परस्परम् ॥ सर्वत्र सुखसंपन्ना नरा नार्यः सुखान्विताः ॥ ३५ ॥ क्रीडंति मानवाः सर्वे स्वर्गे देवगणा इव ॥ न चोरा न च पाखण्डा वंचका दंभकास्तथा ॥ ३६ ॥ पिशुना लम्पटाः स्तब्धा न बभूवुस्तदा नृप ॥

यज्ञमण्डप दिखायी देने लगे ॥३०॥ स्त्रियाँ पतिव्रता, सुशील और सत्यवादिनी हो गयीं और पुत्र धर्मपरायण होकर अपने मात-पिताकी सेवा करने लगे ॥३१॥ उस समय पृथिवीतलपर अधर्म तथा पाखण्ड कहीं भी नहीं रह गया । उन दिनों वेदवाद तथा शास्त्रवादके अतिरिक्त अन्य सभी वाद लुप्त हो गये ॥३२॥ न परस्पर किसीसे लड़ाई-झगड़ा होता था, न कोई गरीब था और न किसीकी अशुभ बुद्धि रह गयी थी । सब लोग सब तरहसे सुखी रहते थे और कभी किसीकी अकालमृत्यु नहीं होती थी ॥३३॥ मित्रोंमें बिछोह नहीं होता था और उनपर कभी कोई विपत्ति नहीं आती थी । अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और महामारीका भय भी नहीं रहता था—जिससे मनुष्योंको बहुत दुःख होता है ॥ ३४ ॥ न किसीको रोग होता था, न परस्पर विरोध होता था और न कोई किसीसे डाह करता था । सर्वत्र सभी स्त्री-पुरुष सुखी थे ॥ ३५ ॥ जैसे स्वर्गमें देवता सानन्द विचरा करते थे, उसी प्रकार उन दिनों सभी मनुष्य पृथिवीतलपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुखसे विचरते थे। चोर, पाखण्डी, धोखेबाज, ढोंगी, चुगलखोर और जड़ प्रकृतिके मनुष्य कहीं नहीं दिखाई देते थे। हे राजन्! वेदसे द्वेष करनेवाले पापी भी कहीं नहीं रह गये थे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उन दिनों सब लोग धर्मात्मा और ब्राह्मणोपासक थे। सृष्टिधर्म तीन प्रकारके होते हैं। अतएव तीन ही प्रकारके ब्राह्मण भी थे ॥ ३८ ॥ जैसे–सात्त्विक ब्राह्मण, राजस प्रकृतिके ब्राह्मण एवं तामस स्वभावके ब्राह्मण। सात्त्विक ब्राह्मण सत्त्ववृत्तिमें लगे हुए वेद और यज्ञ-यागादि कार्योंमें पूर्ण निपुण होते थे ॥ ३९ ॥ वे दान नहीं लेते थे, दयालु और संयमी होते थे। वे सदा धर्मपरायण रहते हुए सात्त्विक अन्नसे यज्ञ करते थे ॥ ४० ॥ वे यज्ञमें सदा पुरोडाश (खीरका) उपयोग करते थे और पशुहिंसा कभी नहीं करते थे। दान, अध्ययन और यज्ञ ये तीनों कर्म सात्त्विक ब्राह्मणोंमें बराबर दिखायी देते थे। हे राजन्! रजोगुणी ब्राह्मण वेदवेत्ता होकर राजाओंकी पुरोहिताई करते थे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ वे विधि-विधानका पालन करते हुए ही मांसभक्षण करते थे। यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, वेदोंका अध्ययन करना और अध्ययन कराना, इन छहों ब्राह्मणकर्मोंका वे सदा पालन करते थे। तमोगुणी ब्राह्मण

न वेदद्वेषिणः पापा मानवाः पृथिवीपते ॥ ३७ ॥ सर्वधर्मरता नित्यं द्विजसेवापरायणाः ॥ त्रिधात्वात्सृष्टिधर्मस्य त्रिविधा ब्राह्मणास्ततः ॥ ३८ ॥ सात्त्विका राजसाश्चैव तामसाश्च तथाऽपरे ॥ सर्वे वेदविदो दक्षाः सात्त्विकाः सत्त्ववृत्तयः ॥ ३९ ॥ प्रतिग्रहविहीनाश्च दयादमपरायणाः ॥ यज्ञांस्ते सात्त्विकैरन्नैः कुर्वाणा धर्मतत्पराः ॥ ४० ॥ पुरोडाशविधानैश्च पशुभिर्न कदाचन ॥ दानमध्ययनं चैव यजनं तु तृतीयकम् ॥ ४१ ॥ त्रिकर्मरसिकास्ते वै सात्त्विका ब्राह्मणा नृप ॥ राजसा वेदविद्वांसः क्षत्रियाणां पुरोहिताः ॥ ४२ ॥ षट्कर्मनिरताः सर्वे विधिवन्मांसभक्षकाः ॥ यजनं याजनं दानं तथैव च प्रतिग्रहः ॥ ४३ ॥ अध्ययनं तु वेदानां तथैवाध्यापनं तु षट् ॥ तामसाः क्रोधसंयुक्ता रागद्वेषपराः पुनः ॥ ४४ ॥ राज्ञां कर्मकरा नित्यं किञ्चिदध्ययने रताः ॥ महिषे निहते सर्वे सुखिनो वेदतत्पराः ॥ ४५ ॥ बभूवुर्व्रतनिष्णाता दानधर्मपरास्तथा ॥ क्षत्रियाः पालने युक्ता वैश्या वणिजवृत्तयः ॥ ४६ ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षाकुसीदवृत्तयः परे ॥ एवं प्रमुदितो लोको महिषे विनिपातिते ॥ ४७ ॥ अनुद्वेगः प्रजानां वै सम्बभूव धनागमः ॥ बहुक्षीराः शुभा गावो नद्यश्चैव बहूदकाः ॥ ४८ ॥ वृक्षा बहुफलाश्चासन्मानवा रोगवर्जिताः ॥ नाधयो नेतयः क्वापि प्रजानां दुःखदायकाः ॥ ४९ ॥ न निधनमुपयान्ति प्राणिनस्तेऽप्यकाले सकलविभवयुक्ता रोगहीनाः सदैव ॥ निगमविहितधर्मे तत्पराश्चंडिकायाश्चरणसर-

क्रोधी और राग-द्वेषपरायण रहते थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वे कुछ पढ़-लिखकर राज्यकी सेवा करने लग जाते थे। महिषासुरके मर जानेपर सभी ब्राह्मण सुखी और वेदपरायण हो गये ॥४५॥ उस समय ब्राह्मण व्रतनिष्ठ, दानी और धर्मात्मा होने लगे। क्षत्रिय प्रजाका पालन करने लगे और वैश्य वाणिज्य कर्ममें लग गये ॥ ४६ ॥ बाकी सब लोग खेती, व्यापार, गोरक्षा तथा सूदपर धन देनेके व्यवसायमें लग गये। इस प्रकार महिषासुरके मारे जानेपर सब लोग अपने-अपने धन्धोंमें लगकर सुखी हो गये ॥ ४७ ॥ प्रजाकी घबराहट दूर हो गयी और उसे प्रचुर धन मिलने लगा। गौओंका दूध और नदियोंका जल बढ़ गया ॥ ४८ ॥ वृक्ष अधिक फल देने लगे और मनुष्य नीरोग हो गये। प्रजाको दुःख देनेवाली मानसिक अशान्ति और ईति (अर्थात् अतिवृष्टि, अवर्षण, टिड्डियों तथा चूहोंसे खेतीकी हानि, पक्षियोंसे गलोंको हानि, दंगे तथा विदेशी शत्रुओंके आक्रमणकी चिन्ता) दूर हो गयी ॥ ४९ ॥ उस समय प्राणियोंकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अकालमृत्यु नहीं होती थी । सभी लोग सब प्रकारके वैभवसें सम्पन्न और नीरोग रहते थे । वेदविहित धर्मके अनुसार वे सर्वदा भगवतीके चरणकमलोंका एकाग्रचित्तसे आराधन करते थे ॥५०॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

(शुम्भ-निशुम्भका तप करके स्वर्गपर विजय प्राप्त करना) व्यासजी बोले—हे राजन् ! अब मैं सब प्राणियोंके लिए सुखदायी और सर्वपापनाशक देवीका चरित्र सुना रहा हूँ ॥ १ ॥ पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामके दो भाई बड़े बलवान् और असाधारण वीर थे । वे इतने महान् पराक्रमी थे कि उन्हें कोई नहीं मार सकता था ॥२॥ उनके पास बड़ी विशाल सेना थी । वे दोनों स्वयं भी बड़े वीर थे । वे देवताओंको सदा बहुत दुख देते थे । वे बड़े दुराचारी और मदमत्त थे । उनके बहुतेरे दानव साथी थे ॥३॥ देवताओंका उपकार करनेके लिए अनुचरों समेत उन दोनोंको भी भगवतीने ही भयानक संग्राम करके मारा था ॥४॥ महाबाहु चण्ड-मुण्ड, अतिशय दारुण रक्तबीज और धूम्रलोचन दैत्यका भी भगवतीने ही रणभूमिमें वध

सिजानां सेवने दत्तचित्ताः ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ सुखदं सर्वजंतूनां सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यथा शुम्भो निशुम्भश्च भ्रातरौ बलवत्तरौ ॥ बभूवतुर्महावीरौ अवध्यौ पुरुषैः किल ॥ २ ॥ बहुसेनावृतौ शूरौ देवानां दुःखदौ सदा ॥ दुराचारौ मदोत्सिक्तौ बहुदानवसंयुतौ ॥ ३ ॥ हतावम्बिकया तौ तु संग्रामेऽतीव दारुणे ॥ देवानां च हितार्थाय सर्वैः परिचरैः सह ॥ ४ ॥ चंडमुंडौ महाबाहू रक्तबीजोऽतिदारुणः ॥ धूम्रलोचननामा च निहतास्ते रणाङ्गणे ॥ ५ ॥ तान्निहत्य सुराणां सा जहार भयमुत्तमम् ॥ स्तुता संपूजिता देवैर्गिरौ हेमाचले शुभे ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ कथितावसुरावादौ कथं तौ बलिनां वरौ ॥ केन संस्थापितौ चेह स्त्रीवध्यत्वं कुतो गतौ ॥ ७ ॥ तपसा वरदानेन कस्य जातौ महाबलौ ॥ कथं च निहतौ सर्वं कथयस्व सविस्तरम् ॥८॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ देव्याश्चरितसंयुक्तां सर्वार्थफलदां शुभाम् ॥९॥ पुरा शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ भूमिमंडले ॥ पातालतश्च संप्राप्तौ भ्रातरौ शुभदर्शनौ ॥ १० ॥ तौ प्राप्तयौवनौ चैव चेरतुस्तप उत्तमम् ॥ अन्नोदकं परित्यज्य पुष्करे लोकपावने ॥ ११ ॥ वर्षाणामयुतं यावद्योगविद्यापरायणौ ॥ एकत्रैवासनं कृत्वा तेपाते परमं तपः ॥ १२ ॥ तयोस्तुष्टोऽभवद्

किया था ॥ ५ ॥ उन असुरोंको मारकर देवीने देवताओंका बहुत बड़ा भय दूर कर दिया । उसके बाद देवताओंने सुमेरु पर्वतपर उनका पूजन किया था ॥ ६ ॥ राजा जनमेजयने पूछा—वे शुम्भ-निशुम्भ कौन थे ? वे कैसे सर्वश्रेष्ठ बलवान् हुए ? उन्हें राजसिंहासनपर किसने बिठाला और स्त्रीके हाथों उनका वध क्यों हुआ ? ॥ ७ ॥ तप करके उन्होंने किस देवतासे वरदान पाया था, जिससे वे इतने बड़े बलवान् हो गये ? किस प्रकार उनका निधन हुआ ? यह सब वृत्तान्त आप विस्तारपूर्वक बताइए ॥८॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! अब मैं आपको वह कथा सुना रहा हूँ, जिसे सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं, जिसमें देवीके अनुपम चरित्रका वर्णन है, जो शुभ और सर्वार्थदायक है ॥ ९ ॥ पूर्वकालमें शुम्भ-निशुम्भ नामके दो दैत्य पाताललोकसे भूमण्डलपर आ पहुँचे । वे दोनों देखनेमें बड़े सुन्दर थे ॥ १० ॥ वयस्क होनेपर वे संसारके सबसे पवित्र पुष्कर तीर्थमें अन्न-जल त्यागकर उग्र तपस्या करने लगे ॥ ११ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे दोनों योगविद्यामें इतने निपुण थे कि पूरे दस हजार वर्षतक एक ही आसनसे बैठकर तप करते रहे ॥१२॥ उनकी कठोर तपस्यासे सर्वलोकपितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये और अपने वाहन हंसपर सवार होकर उनके पास गये ॥ १३ ॥ समस्त संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीने उन्हें ध्यानमग्न देखकर कहा—हे दोनों महाभाग ! उठो, मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ ॥ १४ ॥ अतएव मैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार वरदान देनेको प्रस्तुत हूँ । तुम्हारे तपोबलसे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ और तुम्हारी कामना पूर्ण करना चाहता हूँ ॥१५॥ व्यासजी बोले–ब्रह्माजीके वचन सुनकर उन दोनोंका ध्यान भंग हो गया । तब उठकर उन्होंने ब्रह्माकी प्रदक्षिणा की और प्रणाम किया ॥१६॥ दुर्बल शरीरवाले दोनों दानवोंने ब्रह्माजीको साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और बड़ी दीनतापूर्वक गद्गद भावसे मधुर वचन बोले–॥ १७ ॥ हे देवदेव ! हे दयासिन्धो ! हे भक्तोंको अभयदान देनेवाले ! हे ब्रह्मन् ! हे विभो ! यदि आप हमपर प्रसन्न हों तो हमें अमर हो जानेका वरदान दे दीजिए ॥१८॥ क्योंकि इस धरातलपर मरणसे बढ़कर और कोई भय नहीं है । उसी भयसे सन्त्रस्त होकर हम दोनों भाई आपकी शरणमें आये हैं ॥ १९ ॥

ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ तत्रागतश्च भगवानारुह्य वरटापतिम् ॥ १३ ॥ तावुभौ च जगत्स्रष्टा दृष्ट्वा ध्यानपरौ स्थितौ ॥ उत्तिष्ठतं महाभागौ तुष्टोऽहं तपसा किल ॥ १४ ॥ वाञ्छितं वा वरं कामं ददामि ब्रुवतामिह ॥ कामदोऽहं समायातो दृष्ट्वा वां तपसो बलम् ॥ १५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रबुद्धौ तौ समाहितौ ॥ प्रदक्षिणक्रियां कृत्वा प्रणामं चक्रतुस्तदा ॥ १६ ॥ दंडवत्प्रणिपातं च कृत्वा तौ दुर्बलाकृती ॥ ऊचतुर्मधुरां वाचं दीनौ गद्गदया गिरा ॥ १७ ॥ देवदेव दयासिंधो भक्तानामभयप्रद ॥ अमरत्वं च नौ ब्रह्मन्देहि तुष्टोऽसि चेद्विभो ॥ १८ ॥ मरणादपरं किंचिद्भयं नास्ति धरातले ॥ तस्माद्भयाच्च संत्रस्तौ युष्माकं शरणं गतौ ॥ १९ ॥ त्राहि त्वं देवदेवेश जगत्कर्तः क्षमानिधे ॥ परिस्फोटय विश्वात्मन्सद्यो मरणजं भयम् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किमिदं प्रार्थनीयं वो विपरीतं तु सर्वथा ॥ अदेयं सर्वथा सर्वैः सर्वेभ्यो भुवनत्रये ॥ २१ ॥ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ मर्यादा विहिता लोके पूर्वं विश्वकृता किल ॥ २२ ॥ मर्तव्यं सर्वथा सर्वैः प्राणिभिर्नात्र संशयः ॥ अन्यं प्रार्थयतं कामं ददामि यच्च वांछितम् ॥ २३ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तस्य सुविमृश्य च दानवौ ॥ ऊचतुः प्रणिपत्याथ ब्रह्माणं पुरतः स्थितम् ॥२४॥ पुरुषैरमराद्यैश्च मानवैर्मृगपक्षिभिः ॥ अवध्यत्वं कृपासिंधो देहि नौ वांछितं वरम् ॥२५॥ नारी बलवती काऽस्ति या नौ नाशं

हे देवदेवेश ! हे जगत्स्रष्टा ! हे दयानिधान ! आप हमारी रक्षा करें । हे विश्वात्मन् ! हम दोनोंका मरणभय तत्काल दूर कर दीजिए ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा—तुमने यह कैसा विपरीत वरदान माँगा है ? तीनों लोकमें कोई ऐसा वरदान नहीं दे सकता ॥ २१ ॥ जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है । जिसकी मृत्यु होती है, उसका जन्म भी अवश्य होता है । विश्वके विधाताने ही संसारकी ऐसी मर्यादा बना दी है ॥ २२ ॥ सब प्राणियोंको मरना ही पड़ता है । इसमें तनिक भी संशय नहीं है । इसको छोड़कर तुम कोई दूसरा वर माँग लो । मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण कर दूँगा ॥ २३ ॥ ब्रह्माजीके वचन सुनकर उन दोनों दानवोंने परस्पर भली भाँति विचार किया । उसके बाद प्रणाम करके उन्होंने कहा—॥ २४ ॥ भगवन् ! तब आप हमें यह वर प्रदान कीजिए कि पुरुष जातिके देवता, मनुष्य, मृग अथवा पक्षी हमें न मार सकें ॥२५॥ क्योंकि कौन स्त्री इतनी बलवती होगी, जो हम दोनोंको मार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सके। हम तीनों लोकोंके सचराचर प्राणियोंकी स्त्रीजातिसे नहीं डरते ॥२६॥ हे कमलयोने! आप ऐसा वरदान दीजिए कि जिससे हम पुरुषजातिके हाथों न मर सकें। स्त्रियोंसे हमें कोई डर नहीं है। क्योंकि वे स्वभावसे ही अबला होती हैं ॥२७॥ व्यासजी बोले—उन दोनोंके वचन सुनकर ब्रह्माजीने उन्हें उनका मनचाहा वरदान दे दिया। इसके बाद ब्रह्माजी प्रसन्न मनसे अपने स्थानको चले गये ॥ २८ ॥ ब्रह्माजीके चले जानेपर वे दोनों दानव भी अपने घर चले गये। वहाँ उन्होंने शुक्राचार्यको पुरोहित बनाकर उनका पूजन किया ॥ २९ ॥ तब शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें सोनेका एक दिव्य सिंहासन बनवाकर शुक्राचार्यने राज्यको भेंट किया ॥ ३० ॥ ज्येष्ठ होनेके कारण उन्होंने शुम्भको उस सुन्दर राजसिंहासनपर बिठाया। उसी समय उन दोनोंकी चाकरी करनेके लिए बहुतेरे दानववीर आ गये ॥ ३१ ॥ बलाधिक्यके कारण अभिमानी महावीर चण्ड और मुण्ड भी विशाल सेना तथा रथ-हाथी-घोड़ोंको लेकर उनसे आ

करिष्यति ॥ न बिभीवः स्त्रियः कामं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥२६॥ अवध्यौ भ्रातरौ स्यातां नरेभ्यः पंकजोद्भव ॥ भयं न स्त्रीजनेभ्यश्च स्वभावादबला हि सा ॥ २७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं प्रददौ वांछितं वरम् ॥ ब्रह्मा प्रसन्नमनसा जगामाथ स्वमालयम् ॥२८॥ गतेऽथ भवने तस्मिन्दानवौ स्वगृहं गतौ ॥ भृगुं पुरोहितं कृत्वा चक्रतुः पूजनं तदा ॥ २९ ॥ शुभे दिने सुनक्षत्रे जातरूपमयं शुभम् ॥ कृत्वा सिंहासनं दिव्यं राज्यार्थं प्रददौ मुनिः ॥३०॥ शुभाय ज्येष्ठभूताय ददौ राज्यासनं शुभम् ॥ सेवनार्थं तदैवाशु संप्राप्ता दानवोत्तमाः ॥३१॥ चंडमुंडौ महावीरौ भ्रातरौ बलदर्पितौ ॥ संप्राप्तौ सैन्यसंयुक्तौ रथवाजिगजान्वितौ ॥ ३२ ॥ धूम्रलोचननामा च दूतप्रपञ्चंडविक्रमः ॥ शुम्भं च भूपतिं श्रुत्वा तदाऽगाद्बलसंयुतः ॥ ३३ ॥ रक्तबीजस्तथा शूरो वरदानबलाधिकः ॥ अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तस्तत्रैवागत्य संगतः ॥ ३४ ॥ तस्यैकं कारणं राजन्संग्रामे युध्यतः सदा ॥ देहाद्रुधिरसंपातस्तस्य शस्त्राहतस्य च ॥ ३५ ॥ जायते च यदा भूमावुत्पद्यंते ह्यनेकशः ॥ तादृशाः पुरुषाः क्रूरा बहवः शस्त्रपाणयः ॥ ३६ ॥ संभवंति तदाकारास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ युद्धं पुनस्ते कुर्वंति पुरुषा रक्तसंभवाः ॥ ३७ ॥ अतः सोऽपि महावीर्यः संग्रामेऽतीव दुर्जयः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां रक्तबीजो महासुरः ॥ ३८ ॥ अन्ये च बहवः शूराश्चतुरंगसमन्विताः ॥ शुम्भं च नृपतिं मत्वा बभूवुस्तस्य सेवकाः ॥ ३९ ॥ असंख्याता तदा

मिले ॥ ३२ ॥ उसी प्रकार प्रचण्ड पराक्रमी धूम्रलोचन दैत्य भी शुम्भ दानवके राजा होनेका समाचार सुनकर अपनी सेनाके साथ आ गया ॥ ३३ ॥ वरदान प्राप्त रहनेके कारण अतिशय बलवान् रक्तबीज भी अपने साथ दो अक्षौहिणी सेना लेकर उनसे आ मिला ॥३४॥ हे महाराज जनमेजय! उस रक्तबीजके अजेय होनेका मुख्य कारण यह था कि युद्धमें लड़ते समय शस्त्रास्त्रके आघातसे घायल होनेपर उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें गिरती थीं, तत्काल उसीके समान क्रूर और शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित उतने ही वीर उत्पन्न हो जाते थे ॥३५॥३६॥ उनकी आकृति, रूप और पराक्रम ठीक उसीके समान रहता था और वे उत्पन्न होते ही लड़ने लग जाते थे ॥३७॥ इसीसे उस महापराक्रमी दानवको रणभूमिमें कोई मार नहीं पाता था। अतएव वह महान् असुर रक्तबीज सभी प्राणियोंसे अवध्य हो गया था ॥ ३८ ॥ अन्यान्य शूरवीर दानव भी अपनी-अपनी चतुरंगिणी सेना ले-लेकर आये और शुम्भको अपना सम्राट् मानकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके सेवक बन गये ॥ ३९ ॥ इससे शुम्भ-निशुम्भके पास असंख्य सेना हो गयी और उन्होंने भूमण्डलके सभी राज्योंपर बरबस अधिकार कर लिया ॥ ४० ॥ तदनन्तर प्रचुर सेना जुटाकर निशुम्भने इन्द्रको जीतनेके लिए बड़े वेगसे स्वर्गपर आक्रमण कर दिया ॥ ४१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने लोकपालोंके साथ प्रबल युद्ध किया। अन्तमें इन्द्रने उसकी छातीपर वज्रका प्रहार कर दिया ॥ ४२ ॥ उस वज्राघातसे शुम्भका छोटा भाई निशुम्भ पृथिवीपर गिर पड़ा और उस महात्माकी सारी सेना तितर-बितर हो गयी ॥ ४३ ॥ अपने भाईके मूर्छित होनेकी खबर पाकर शत्रुसेनाको मटियामेट कर देनेवाला शुम्भ स्वयं मोर्चेपर जा डटा और उसने पहुँचते ही अपने बाणोंसे देवताओंको मारना आरम्भ कर दिया ॥४४॥ इस प्रकार युद्धसे कभी भी न घबड़ानेवाले शुम्भने भीषण युद्ध छेड़ दिया और अन्तमें इन्द्र और सभी लोकपालों तथा देवताओंको उसने परास्त कर दिया ॥ ४५ ॥ इस प्रकार अपने अदम्य पराक्रमसे उसने बरबस इन्द्रकी पदवी प्राप्त कर ली। अब कल्पवृक्ष और कामधेनुपर भी उसका अधिकार हो गया ॥४६॥ उस महात्मा असुर शुम्भने तीनों लोकोंके राज्यपर कब्जा कर लिया और यज्ञभाग भी स्वयं लेने

जाता सेना शुम्भनिशुम्भयोः ॥ पृथिव्याः सकलं राज्यं गृहीतं बलवत्तया ॥४०॥ सेनायोगं तदा कृत्वा निशुम्भः परवीरहा ॥ जगाम तरसा स्वर्गे शचीपतिजयाय च ॥ ४१ ॥ चकारासौ महायुद्धं लोकपालैः समं ततः ॥ वृत्रहा वज्रपातेन ताडयामास वक्षसि ॥ ४२ ॥ स वज्राभिहतो भूमौ पपात दानवानुजः ॥ भग्नं बलं तदा तस्य निशुम्भस्य महात्मनः ॥४३॥ भ्रातरं मूर्छितं श्रुत्वा शुम्भः परबलार्दनः ॥ तत्रागत्य सुरान्सर्वांस्ताडयामास सायकैः ॥४४॥ कृतं युद्धं महत्तेन शुम्भेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ निर्जितास्तु सुराः सर्वे सेन्द्राः पालाश्च सर्वशः ॥४५॥ ऐन्द्रं पदं तदा तेन गृहीतं बलवत्तया ॥ कल्पपादपसंयुक्तं कामधेनुसमन्वितम् ॥४६॥ त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृतास्तेन महात्मना ॥ नन्दनं च वनं प्राप्य मुदितोऽभून्महासुरः ॥४७॥ सुधायाश्चैव पानेन सुखमाप महासुरः ॥ कुबेरं स च निर्जित्य तस्य राज्यं चकार ह ॥ ४८ ॥ अधिकारं तथा भानोः शशिनश्च चकार ह ॥ यमं चैव विनिर्जित्य जग्राह तत्पदं तथा ॥४९ ॥ वरुणस्य तथा राज्यं चकार वह्निकर्म च ॥ वायोः कार्यं निशुम्भश्च चकार स्वबलान्वितः ॥ ५० ॥ ततो देवा विनिर्धूता हृतराज्या हृतश्रियः ॥ संत्यज्य नंदनं सर्वे निर्ययुर्गिरिगह्वरे ॥५१॥ हृताधिकारास्ते सर्वे बभ्रमुर्विजने वने ॥ निरालंबा निराधारा निस्तेजस्का निरायुधाः ॥ ५२ ॥ विचेरुरमराः सर्वे पर्वतानां गुहासु च ॥ उद्यानेषु च शून्येषु नदीनां गह्वरेषु च ॥ ५३ ॥ न प्रापुस्ते सुखं

लगा। नन्दनवनमें पहुँचकर वह महान् असुर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ४७ ॥ अमृत पीकर उसे असीम प्रसन्नता हुई और कुबेरको भी परास्त करके उसने उनके राज्यपर अधिकार कर लिया ॥ ४८ ॥ उसने सूर्य-चन्द्रमाका अधिकार छीन तथा यमराजको पराजित करके उनका पद स्वयं सम्हाल लिया ॥ ४९ ॥ धीरे-धीरे वह वरुणका राज्य हस्तगत करके राज्यकार्यका संचालन करता हुआ अग्निका काम भी स्वयं करने लगा। उधर निशुम्भ अपनी सेनाके साथ वायुका कार्य करने लगा ॥ ५० ॥ इस प्रकार सब देवता पददलित कर दिये गये। उनका राज्य और उनकी श्री चली गयी। नन्दनवन त्यागकर वे पर्वतोंकी गुफाओंमें छिपनेको विवश हो गये ॥ ५१ ॥ उनके सभी अधिकार छिन चुके थे। अतएव वे एक निर्जन वनसे दूसरे वनमें फिरने लगे। उन्हें रहनेकी कोई जगह नहीं रह गयी। कोई सहायक नहीं रहा। उनका चेहरा कुम्हला गया और उनके शस्त्रास्त्र छिन गये ॥५२॥ अब देवता पर्वतकी कन्दराओं, सूने बगीचों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और नदियोंकी कगारोंमें रहने लगे ॥५३॥ हे महाराज ! उन बेचारे लोकपालोंको कहीं भी चैन नहीं मिल रही थी। क्योंकि वे अपने ही राज्यसे निर्वासित हो चुके थे। और फिर सुख तो सदा भाग्यके अधीन रहता है ॥५४॥ हे नरपते ! बड़े बलवान्, असाधारण भाग्यशाली, बहुज्ञ और उच्चकोटिके धनाढ्य पुरुष भी कुसमय आनेपर दुःख भोगते हैं और उनका आर्थिक ढाँचा एकदम लड़खड़ा जाता है ॥५५॥ हे महाराज ! समयका फेर बड़ा विचित्र होता है। वह राजाको भिक्षुक और भिक्षुकको राजा बना देता है ॥ ५६ ॥ समय प्राणीको दानी बनाता है और वही उसे औरोंके आगे हाथ पसारनेको विवश कर देता है। वह एक ही व्यक्तिको कभी बलवान् और कभी निर्बल बनाता है। वही किसीको कभी विद्वान् बनाता और बादमें उसीको विवेकशून्य बना देता है। वही किसी व्यक्तिको वीर और किसीको कायर कर देता है ॥५७॥ सौ अश्वमेध यज्ञ करनेके बाद इन्द्रने सर्वोत्तम इन्द्रासन प्राप्त किया और समयके फेरसे उसे खोकर उन्हें महान् कष्ट झेलना पड़ा। समयकी ऐसी विचित्र गति होती है ॥५८॥ समय ही पुरुषको धर्मात्मा और ज्ञानी बनाता है। किंतु वही उसे पापी और निपट अज्ञानी भी बना देता

क्वापि स्थानभ्रष्टा विचेतसः ॥ लोकपाला महाराज दैवाधीनं सुखं किल ॥ ५४ ॥ बलवंतो महाभाग बहुज्ञा धनसंयुताः ॥ काले दुःखं तथा दैन्यमाप्नुवंति नराधिप ॥ ५५ ॥ चित्रमेतन्महाराज कालस्यैव विचेष्टितम् ॥ यः करोति नरं तावद्राजानं भिक्षुकं ततः ॥ ५६ ॥ दातारं याचकं चैव बलवंतं तथाऽबलम् ॥ पंडितं विकलं कामं शूरं चातीव कातरम् ॥ ५७ ॥ मखानां च शतं कृत्वा प्राप्येंद्रासनमुत्तमम् ॥ पुनर्दुःखं परं प्राप्तं कालस्य गतिरीदृशी ॥५८॥ कालः करोति धर्मिष्ठं पुरुषं ज्ञानसंयुतम् ॥ तमेवातीव पापिष्ठं ज्ञानलेशविवर्जितम् ॥ ५९ ॥ न विस्मयोऽत्र कर्तव्यः सर्वथा कालचेष्टिते ॥ ब्रह्मविष्णुहरादीनामपीदृक्कष्टचेष्टितम् ॥६०॥ विष्णुर्जननमाप्नोति सूकरादिषु योनिषु ॥ हरः कपाली संजातः कालेनैव बलीयसा ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भगवतीमाहात्म्ये एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

व्यास उवाच ॥ पराजिताः सुराः सर्वे राज्यं शुम्भः शशास ह ॥ एवं वर्षसहस्रं तु जगाम नृपसत्तम ॥ १ ॥ भ्रष्टराज्यास्ततो देवाश्चिंतामापुः सुदुस्तराम् ॥ गुरुं दुःखातुरास्ते तु पप्रच्छुरिदमादृताः ॥२॥ किं कर्तव्यं गुरो ब्रूहि सर्वज्ञस्त्वं महामुनिः ॥ उपायोऽस्ति महाभाग दुःखस्यापि निवृत्तये ॥३॥ उपचारपरा नूनं वेदमंत्राः सहस्रशः ॥ वांछितार्थकरा नूनं सूत्रैः संलक्षिताः किल ॥४॥ इष्टयो विविधाः प्रोक्ताः सर्वकामफलप्रदाः ॥

है ॥ ५९ ॥ समयके कार्यकलापपर कुछ आश्चर्य नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि प्रमुख देवताओंको भी इसी प्रकार संकटमें डाल देता है ॥ ६० ॥ समयके ही फेरसे भगवान विष्णु सूकर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं और शिवजी खप्पर लेकर श्मशानमें घूमते हैं। यह सब बलवान् समयकी ही महिमा है ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

(हिमालयपर देवताओं द्वारा देवीकी स्तुति एवं उनका प्रादुर्भाव) व्यासजी बोले—हे नृपसत्तम ! जब सभी देवता पराजित हो गये, तब शुम्भ एकछत्र राज्य करने लगा। इस तरह राज्य करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये ॥ १ ॥ तदनन्तर वे राज्यभ्रष्ट देवता अत्यन्त चिन्तित होकर गुरु बृहस्पतिके पास गये और बहुत दुखी होकर उन्होंने बड़े आदरपूर्वक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह प्रश्न किया–॥२॥ हे गुरो ! अब हम क्या करें ? सो बताइए । क्योंकि आप सर्वज्ञ महामुनि हैं । हे महाभाग ! इस दुखसे छुटकारा पानेका कोई उपाय है ? ॥३॥ हमने सुना था कि हजारों वेदमंत्र ऐसे हैं कि जिनसे उपचारका काम लिया जा सकता है । उनके विषयमें सूत्रग्रन्थोंका कहना है कि यदि विधिवत् उनका प्रयोग किया जाय तो सब कामनायें पूर्ण हो सकती हैं ॥ ४ ॥ ऐसे अनेक यज्ञ हैं कि जिन्हें करनेसे अर्थकी प्राप्ति होती है और सब इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं । हे मुने ! आप उनका अनुष्ठान करिए । क्योंकि आप उनको करनेकी विधियोंसे भली भाँति परिचित हैं ॥ ५ ॥ आगम (शास्त्रों) में शत्रुका संहार करनेके लिए जो उपाय बताया गया हो, तदनुसार आजसे अनुष्ठान आरम्भ कर दीजिए। जिससे शीघ्र हमारे दुःख दूर हो जायँ ॥ ६ ॥ हे आङ्गिरस ! दानवोंका विनाश करनेके लिए अपनी बुद्धिके अनुसार आजसे ही आप अभिचारकर्मका पुरश्चरण प्रारम्भ कर दीजिए ॥ ७ ॥ बृहस्पति बोले–हे देवराज इन्द्र ! सभी वेदोक्त मंत्रोंका फल सदा दैवके अधीन रहता है । वे फल देनेमें स्वतंत्र नहीं हैं । केवल नियमके बन्धनमें पड़कर ही वे फलदायक होते हैं ॥ ८ ॥ उन सभी वैदिक

ताः कुरुष्व मुने नूनं त्वं जानासि च तत्क्रियाः ॥ ५॥ विधिः शत्रुविनाशाय यथोद्दिष्टः सदागमे ॥ तं कुरुष्वाद्य विधिवद्यथा नो दुःखसंक्षयः ॥६॥ भवेदांगिरसाद्यैव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ दानवानां विनाशाय अभिचारं यथामति ॥ ७ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ सर्वे मन्त्राश्च वेदोक्ता दैवाधीनफलाश्च ते ॥ न स्वतन्त्राः सुराधीश तथैकान्तफलप्रदाः ॥८॥ मंत्राणां देवता यूयं ते तु दुःखैकभाजनम् ॥ जाताःस्म कालयोगेन किं करोमि प्रसाधनम् ॥९॥ इन्द्राग्निवरुणादीनां यजनं यज्ञकर्मसु ॥ ते यूयं विपदं प्राप्ताः करिष्यंति किमिष्टयः ॥१०॥ अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते ॥ उपायस्त्वथ कर्तव्य इति शिष्टानुशासनम् ॥ ११ ॥ दैवं हि बलवत्केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ उपायवादिनो दैवं प्रवदंति निरर्थकम् ॥ १२ ॥ दैवं चैवाप्युपायश्च द्वावेवाभिमतौ नृणाम् ॥ केवलं दैवमाश्रित्य न स्थातव्यं कदाचन ॥ १३ ॥ उपायः सर्वथा कार्यो विचार्य स्वधिया पुनः ॥ तस्माद्ब्रवीमि वः सर्वान्संविचार्य पुनः पुनः ॥ १४॥ पुरा भगवती तुष्टा जघान महिषासुरम् ॥ युष्माभिस्तु स्तुता देवी वरदानं ददावथ ॥ १५ ॥ आपदं नाशयिष्यामि संस्मृता वा सदैव हि ॥ यदा यदा वो देवेशा आपदो दैवसम्भवाः ॥१६॥ प्रभवंति तदा कामं स्मर्तव्याऽहं सुरैः सदा ॥ स्मृताऽहं नाशयिष्यामि

मन्त्रोंके देवता आप ही लोग हैं । तब आप लोग जब स्वयं ऐसे महान् कष्टमें पड़े हुए हैं तो मैं कौन-सा उपाय करूँ ? ॥ ९ ॥ यज्ञोंमें इन्द्र, अग्नि और वरुण आदि देवताओंकी पूजा की जाती है । सो आप लोग स्वयं महाविपत्तिमें पड़े हुए हैं, तब यज्ञोंसे क्या लाभ होगा ? ॥ १० ॥ जो अवश्यम्भावी है, वह होकर ही रहता है । उसका कोई प्रतीकार नहीं हो सकता । फिर भी शिष्ट पुरुषोंका यह उपदेश है कि संकटसे बचनेके लिए उपाय अवश्य करना चाहिए ॥ ११ ॥ कुछ विचारक विद्वानोंका कहना है कि दैव सबसे अधिक बलवान् होता है । किंतु उपायवादी पण्डित दैवकी ओर न देखकर उपायको मुख्य बताते हैं ॥ १२ ॥ किन्तु मेरा विचार ऐसा है कि दैव और उपाय दोनोंके सहारे चलना चाहिए । केवल भाग्यके भरोसे रहनेसे काम नहीं चलता ॥१३॥ अतएव अपनी बुद्धिसे पुनः पुनः सोच करके उपाय करना चाहिए । भलीभाँति बारम्बार विचार करके मैं आपसे यही कहता हूँ ॥१४॥ पूर्वकालमें आपके कल्याणार्थ जब भगवतीने महिषासुरका वध किया था, तब आप लोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर यह वरदान दिया था ॥१५॥ कि जब कभी भी आप मेरा स्मरण करेंगे, तभी मैं आपका संकट काट दूँगी ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे देवेश्वरो ! जब-जब आपपर दैविक विपत्तियाँ आयें, तब आप लोग मेरा ध्यान करिएगा। इस प्रकार आपके स्मरण करते ही मैं सब विपत्तियोंको दूर कर दूँगी ॥ १६ ॥ १७ ॥ अब आप लोग अतीव रमणीक हिमालय पर्वतपर जाकर प्रेमपूर्वक भगवती चण्डिकाकी आराधना करिए ॥ १८ ॥ मायाबीजके तत्त्वको समझकर यदि आपलोग उसका पुरश्चरण करेंगे तो वे अवश्य प्रसन्न होंगी। क्योंकि मैंने योगबलसे यह देख लिया है ॥१९॥ अब आपके दुःखोंके अन्त होनेका समय आ गया है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। मैंने ऐसा सुना है कि वे भगवती सदा हिमालय पर्वतपर निवास करती हैं ॥ २० ॥ उनकी स्तुति और पूजा की जाती है तो वे आराधना करनेवालेकी सब कामनायें पूर्ण कर देती हैं। अतएव आप उनके पूजनका दृढ़ संकल्प करके हिमालय पर्वतपर जायँ ॥२१॥ हे देवताओ! वे महामाया आपका सब काम बना देंगी'। व्यासजी बोले—गुरु बृहस्पतिके वचन सुनकर देवता हिमवान् पर्वतपर चले गये ॥ २२ ॥ हे महाराज जनमेजय ! वहाँ पहुँचकर वे सदा देवीका ध्यान करते हुए एकाग्र मनसे मायाबीज मंत्रका जप करने लगे। ॥ २३ ॥ उसके साथ ही भक्तोंके लिए अभयदायिनी

युष्माकं परमापदः ॥१७॥ तस्माद्धिमाचले गत्वा पर्वते सुमनोहरे ॥ आराधनं चंडिकायाः कुरुध्वं प्रेमपूर्वकम् ॥१८॥ मायाबीजविधानज्ञास्तत्पुरश्चरणे रताः ॥ जानाम्यहं योगबलात्प्रसन्ना सा भविष्यति ॥ १९ ॥ दुःखस्यांतोऽद्य युष्माकं दृश्यते नात्र संशयः ॥ तस्मिञ्छैले सदा देवी तिष्ठतीति मया श्रुतम् ॥ २० ॥ स्तुता सम्पूजिता सद्यो वांछितार्थान्प्रदास्यति ॥ निश्चयं परमं कृत्वा गच्छध्वं वै हिमालयम् ॥ २१ ॥ सुराः सर्वाणि कार्याणि सा वः कामं विधास्यति ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवास्ते प्रययुर्गिरिम् ॥२२॥ हिमालयं महाराज देवीध्यानपरायणाः ॥ मायाबीजं हृदा नित्यं जपंतः सर्व एव हि ॥ २३ ॥ नमश्चक्रुर्महामायां भक्तानामभयप्रदाम् ॥ तुष्टुवुः स्तोत्रमन्त्रैश्च भक्त्या परमया युताः ॥ २४ ॥ नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे सदानंदरूपे सुरानन्ददे ते ॥ नमो दानवांतप्रदे मानवानामनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे ॥२५॥ न ते नामसंख्या न ते रूपमीदृक्तथा कोऽपि वेदादिदेवादिरूपे ॥ त्वमेवासि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव ॥ २६ ॥ स्मृतिस्त्वं धृतिस्त्वं त्वमेवासि बुद्धिर्जरा पुष्टितुष्टी धृतिः कांतिशांती ॥ सुविद्या सुलक्ष्मीर्गतिः कीर्तिमेधे त्वमेवासि विश्वस्य बीजं पुराणम् ॥ २७ ॥ यदा यैः स्वरूपैः करोषीह कार्यं सुराणां च तेभ्यो नमामोऽद्य शांत्यै ॥ क्षमा योगनिद्रा दया त्वं विवक्षा स्थिता सर्वभूतेषु शस्तैः स्वरूपैः ॥ २८ ॥ कृतं कार्यमादौ त्वया यत्सुराणां हतोऽसौ

महामाया देवीको नमस्कार करके पूर्ण भक्तिपूर्वक इन स्तोत्रमंत्रोंसे उनकी स्तुति करते हुए बोले—॥२४॥ हे देवि ! हे विश्वेश्वरी ! हे प्राणोंकी स्वामिनी! हे सदा आनंदरूपमें रहनेवाली! हे देवताओंको आनंद प्रदान करनेवाली माता! आपको नमस्कार है। हे दानवोंका अन्त करनेवाली ! हे मनुष्योंकी समस्त कामनायें पूर्ण करनेवाली! हे एकमात्र भक्तिके द्वारा अनेक स्वरूपका दर्शन करानेवाली ! आपको नमस्कार है ॥२५॥ हे वेदादि एवं देवादिस्वरूपे! न कोई आपके अगणित नामोंकी संख्या बतला सकता है और न यही कह सकता है कि आपका वास्तविक स्वरूप कैसा है। प्रजाकी सृष्टि और संहारके समय आप ही सब प्राणियोंके अन्तस्तलमें शक्तिरूपसे निवास करती हैं ॥ २६ ॥ हे जननी ! आप ही स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, पुष्टि, तुष्टि, धृति, कान्ति, शान्ति, सुविद्या, सुलक्ष्मी, गति, कीर्ति, मेधा और पुरातन बीजप्रकृति हैं ॥ २७ ॥ आप जिस समय जिन रूपोंसे देवताओंका कार्य सम्पन्न करती हैं, हम उन स्वरूपोंका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसलिए नमस्कार करते हैं कि जिससे संसारमें शान्ति स्थापित हो । क्योंकि आप ही क्षमा, योगनिद्रा, दया, विवक्षा और दयारूपसे सब जीवोंमें निवास करती हैं ॥ २८ ॥ हे देवि ! पूर्वकालमें महिषासुरको मारकर आपने देवताओंका कार्य किया था, इससे सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो गयी है कि देवताओंपर सर्वदा आपकी दया बनी रहती है । सभी वेदों और पुराणोंमें भी यही बात कही गयी है ॥ २९ ॥ हे महामाये ! यदि माता अपने बालकका प्रसन्नतापूर्वक पालन-पोषण करती है तो यह कौन बड़ी विचित्र बात हो गयी ? आप हम देवताओंकी जननी तथा सहायिका हैं । अतएव एकाग्र मनसे हमारा सब काम पूरा कर दीजिए ॥३०॥ हे देवि ! हम न तो आपके गुणोंकी सीमासे परिचित हैं और न आपके स्वरूपको ही जानते हैं । हे विश्ववन्दनीये ! हमको अपना कृपापात्र समझकर ही आप इस संकटसे उबारिए । क्योंकि आप सब विपत्तियोंसे बचानेमें समर्थ हैं ॥ ३१ ॥ आप बिना बाणवर्षा, बिना घूँसे, त्रिशूल, खड्ग, बर्छी और दण्ड चलाये ही शत्रुओंको मार सकती हैं । फिर भी केवल लोकोपकारके लिए उनके साथ युद्धकी लीला करती हैं ॥ ३२ ॥ जगत्‌के मूढ़ जीवोंको यह नहीं मालूम

महारिर्मदांधो हयारिः ॥ दया ते सदा सर्वदेवेषु देवि प्रसिद्धा पुराणेषु देवेषु गीता ॥२९॥ किमत्रास्ति चित्रं यदंबा सुतं स्वं मुदा पालयेत्पोषयेत्सम्यगेव ॥ यतस्त्वं जनित्री सुराणां सहाया कुरुष्वैकचित्तेन कार्यं समग्रम् ॥ ३० ॥ न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं वयं देवि जानीमहे विश्ववंद्ये ॥ कृपापात्रमित्येव मत्वा तथाऽस्मान्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे ॥ ३१ ॥ विना बाणपातैर्विना मुष्टिघातैर्विना शूलखड्गैर्विना शक्तिदंडैः ॥ रिपून्हंतुमेवासि शक्ता विनोदात्तथाऽपीह लोकोपकाराय लीला ॥ ३२ ॥ इदं शाश्वतं नैव जानंति मूढा न कार्यं विना कारणं संभवेद्वा ॥ वयं तर्कयामोऽनुमानं प्रमाणं त्वमेवासि कर्तास्य विश्वस्य चेति ॥ ३३ ॥ अजः सृष्टिकर्ता मुकुंदोऽविताऽयं हरो नाशकृद्वा पुराणे प्रसिद्धः ॥ न किं त्वत्प्रसूतास्त्रयस्ते युगादौ त्वमेवासि सर्वस्य तेनैव माता ॥ ३४ ॥ त्रिभिस्त्वं पुराऽऽराधिता देवि दत्ता त्वया शक्तिरुग्रा च तेभ्यः समग्रा ॥ त्वया संयुतास्ते प्रकुर्वन्ति कामं जगत्पालनोत्पत्तिसंहारमेव ॥ ३५ ॥ ते किं न मंदमतयो यतयो विमूढास्त्वां ये न विश्वजननीं समुपाश्रयंति ॥ विद्यां परां सकलकामफलप्रदां तां मुक्तिप्रदां विबुधवृंदसुवन्दितांघ्रिम् ॥ ३६ ॥ ये वैष्णवाः पाशुपताश्च सौरा दंभास्त एव प्रतिभांति नूनम् ॥ ध्यायन्ति न त्वां कमलां च लज्जां

है कि यह विश्व नित्य नहीं है । वे यह भी नहीं जानते कि बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता । किन्तु अनुमानप्रमाणके आधारपर यह कल्पना करते हैं कि वास्तवमें आपके ही द्वारा विश्वकी सृष्टि हुई है ॥ ३३ ॥ पुराणोंकी यह बात लोकप्रसिद्ध है कि ब्रह्माजी जगत्‌की सृष्टि करते हैं, विष्णु रक्षा करते हैं और शिवजी संहार करते हैं । किन्तु क्या यह सच नहीं है कि युगके अन्तमें आपने ही उन्हें उत्पन्न किया था ? अतएव आप ही सबकी माता हैं ॥ ३४ ॥ हे देवि ! पूर्वकालमें उपर्युक्त तीनों महान् देवताओंने आपकी आराधना की थी । तब आपने उन्हें अपनी समस्त उग्र शक्तियाँ दे डालीं । आपकी दी हुई उन्हीं शक्तियोंके आधारपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश संसारकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ॥ ३५ ॥ सभी देवता जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं । जिनकी उपासना करनेसे सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं । ऐसी मुक्तिदायिनी पराविद्यास्वरूपा जगज्जननीकी जो यति आराधना नहीं करते, उनकी मति मारी गयी रहती है और वे नितांत मूर्ख होते हैं ॥ ३६ ॥ जो वैष्णव, शिवोपासक और सूर्योपासक कमला, लज्जा, कान्ति, स्थिति, कीर्ति और पुष्टिस्वरूपाका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यान नहीं करते। वे ढोंगी ही जान पड़ते हैं ॥३७॥ हे जननी ! विष्णु-शिवप्रभृति प्रमुख देवता तथा बड़े-बड़े असुरगण भी जब आपकी आराधना करते हैं। तब जो अल्पबुद्धि आपका भजन नहीं करते, उन्हें विधाताने अवश्य भ्रममें डाल रक्खा है ॥ ३८ ॥ भगवान विष्णु समुद्रपुत्री लक्ष्मीजीके चरणोंको अपने हाथों महावर लगाकर रँगते हैं। इसी प्रकार शिवजी भी पार्वतीजीके चरणकमलोंकी धूलि माथे चढ़ाते हैं ॥३९॥ जब वे प्रमुख देवता ऐसा करते हैं, तब साधारण मनुष्योंकी बात ही क्या है ? वे आपके चरणोंको क्यों न भजेंगे ? जो राग-द्वेषसे परे हो गये हैं और गृहस्थीको जिन्होंने सर्वथा त्याग दिया है। ऐसे ज्ञानी महात्मा मुनिजन भी आपकी दया-क्षमा आदि शक्तियोंकी उपासनामें संलग्न रहते हैं ॥ ४० ॥ हे देवि ! जो लोग आपके चरणोंका भजन नहीं करते, वे बार-बार संसाररूपी कुएँमें गिरते रहते हैं। वे कुष्ठ, तिल्ली तथा सिरदर्द जैसी बीमारियोंसे पीड़ित रहते हैं और उन्हें कभी सुखका मुख भी नहीं दिखायी देता ॥४१॥ हे जननी ! मेरा ऐसा विश्वास है कि जो लोग लकड़ीका बोझ ढोते या घास छीलते हैं, वे अपने काममें बड़े निपुण होते हैं। तथापि धन-स्त्रीसे रहित रहते हैं। उन अल्पबुद्धि

कांतिं स्थितिं कीर्तिमथापि पुष्टिम् ॥ ३७ ॥ हरिहरादिभिरप्यथ सेविता त्वमिह देववरैरसुरैस्तथा ॥ भुवि भजन्ति न येऽल्पधियो नरा जननि ते विधिना खलु वंचिताः ॥३८॥ जलधिजापदपंकजरंजनं जतुरसेन करोति हरिः स्वयम् ॥ त्रिनयनोऽपि धराधरजांघ्रिपङ्कजपरागनिषेवणतत्परः ॥३९॥ किमपरस्य नरस्य कथानकैस्तव पदाब्जयुगं न भजंति के ॥ विगतरागगृहाश्च दयां क्षमां कृतधियो मुनयोऽपि भजंति ते ॥४०॥ देवि त्वदंघ्रिभजने न जना रता ये संसारकूपपतिताः पतिताः किलामी ॥ ते कुष्ठगुल्मशिरआधियुता भवन्ति दारिद्र्यदैन्यसहिता रहिताः सुखौघैः ॥ ४१ ॥ ये काष्ठभारवहने यवसावहारे कार्ये भवन्ति निपुणा धनदारहीनाः ॥ जानीमहेऽल्पमतिभिर्भवदंघ्रिसेवा पूर्वे भवे जननि तैर्न कृता कदाऽपि ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैः सर्वैरंबिका करुणान्विता ॥ प्रादुर्बभूव तरसा रूपयौवनसंयुता ॥ ४३ ॥ दिव्यांबरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता ॥ दिव्यमाल्यसमायुक्ता दिव्यचन्दनचर्चिता ॥ ४४ ॥ जगन्मोहनलावण्या सर्वलक्षणलक्षिता ॥ अद्वितीयस्वरूपा सा देवानां दर्शनं गता ॥ ४५ ॥ जाह्नव्यां स्नातुकामा सा निर्गता गिरिगह्वरात् ॥ दिव्यरूपधरा देवी विश्वमोहनमोहिनी ॥ ४६ ॥ देवान्स्तुतिपरानाह मेघगंभीरया गिरा ॥ प्रेमपूर्णं स्मितं कृत्वा कोकिलामंजुवादिनी ॥४७॥ देव्युवाच॥ भो भोः सुरवराः काऽत्र भवद्भिः स्तूयते भृशम् ॥ किमर्थं ब्रूत वः कार्यं चिंताविष्टाः कुतः पुनः ॥४८॥

प्राणियोंने पूर्वजन्ममें कभी भी आपके चरणोंकी सेवा नहीं की होगी ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले—जब देवताओंने इस प्रकार भगवतीकी स्तुति की। तब रूप-यौवनसम्पन्ना वे दयामयी जगदम्बा तत्काल उनके समक्ष प्रकट हो गयीं ॥ ४३ ॥ वे दिव्य वस्त्र धारण किये, दिव्य आभूषणोंसे आभूषित, दिव्य मालायें पहने और दिव्य चन्दनसे चर्चित थीं ॥ ४४ ॥ उनका लावण्य समस्त विश्वको मोहित करनेमें समर्थ था। उनमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान थे। उनका स्वरूप अद्वितीय था। इन गुणोंयुक्त भगवती उन देवताओंके समक्ष प्रकट हुईं ॥ ४५ ॥ अनुपम सौन्दर्यमयी और सारे संसारको मोहमें डाल देनेवाले कामदेवको भी मोहित करनेवाली भगवती गंगास्नानके निमित्त गिरिकन्दरासे बाहर निकली थीं ॥४६॥ देवताओंकी स्तुति करते देखकर भगवतीने तनिक मुसकाकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें कोकिलाके समान मधुर वचन बोलीं ॥ ४७ ॥ देवीने कहा—हे देवश्रेष्ठगण ! आप लोग किस लिए ऐसी तन्मयताके साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्तुति कर रहे हैं ? आप किस कार्यसे यहाँ आये हैं और इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल क्यों हैं ? ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले—देवीके इन वचनोंको सुनकर उनकी रूपसम्पदासे मोहित देवताओंके हृदयमें उत्साहका संचार हुआ। जिससे वे प्रेमविभोर होकर जगदम्बासे कहने लगे ॥ ४९ ॥ देवताओंने कहा—हे देवि! हे विश्वेश्वरी! हे कृपासागरी! हम आपकी स्तुति करते हुए प्रणाम करते हैं। हम लोगोंको दैत्योंने बहुत दुःख दिया है। अतएव हम बहुत उद्विग्न हैं। आप हमें इस महान् संकटसे उबारिए ॥५०॥ हे महादेवि! पूर्वकालमें आपने देवताओंके कंटकस्वरूप महिषासुरका वध करके हम लोगोंको वरदान देते हुए कहा था कि किसी विपत्तिके आनेपर आप मेरा स्मरण करिएगा। स्मरण करते ही मैं दैत्योंकी ओरसे आयी हुई विपत्तिको नष्ट कर दूँगी। इसमें कुछ संशय नहीं है। हे देवि! इसी कारण इस समय हमने आपका स्मरण किया है ॥५१॥५२॥ हे जननी! इस समय शुम्भ और निशुम्भ नामके दो बड़े भयानक आकारके दानव उत्पन्न हुए हैं। वे बहुत ऊधम मचा रहे हैं क्योंकि किसी भी पुरुषके हाथों उनका वध नहीं हो सकता ॥५३॥ उन्हींके साथी रक्तबीज, चण्ड-मुण्ड तथा

व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मोहिता रूपसंपदा ॥ प्रेमपूर्वं हृदुत्साहास्तामूचुः सुरसत्तमाः ॥४९॥ देवा ऊचुः ॥ देवि स्तुमस्त्वां विश्वेशि प्रणताःस्म कृपार्णवे ॥ पाहि नः सर्वदुःखेभ्यः संविग्नान्दैत्यतापितान् ॥ ५० ॥ पुरा त्वया महादेवि निहत्यासुरकंटकम् ॥ महिषं नो वरो दत्तः स्मर्तव्याऽहं सदाऽऽपदि ॥५१॥ स्मरणाद्दैत्यजां पीडां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ तेन त्वं संस्मृता देवि नूनमस्माभिरित्यपि ॥५२॥ अद्य शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ घोरदर्शनौ ॥ उत्पन्नौ विघ्नकर्तारावहन्यौ पुरुषैः किल ॥ ५३ ॥ रक्तबीजश्च बलवांश्चंडमुंडौ तथाऽसुरौ ॥ एतैरन्यैश्च देवानां हृतं राज्यं महाबलैः ॥ ५४ ॥ गतिरन्या न चास्माकं त्वमेवासि महाबले ॥ कुरु कार्यं सुराणां वै दुःखितानां सुमध्यमे ॥ ५५ ॥ देवास्त्वदंघ्रिभजने निरताः सदैव ते दानवैरतिबलैर्विपदं सुनीताः ॥ तान्देवि दुःखरहितान्कुरु भक्तियुक्तान्मातस्त्वमेव शरणं भव दुःखितानाम् ॥ ५६ ॥ सकलभुवनरक्षा देवि कार्या त्वयाऽद्य स्वकृतमिति विदित्वा विश्वमेतद्युगादौ ॥ जननि जगति पीडां दानवा दर्पयुक्ताः स्वबलमदसमेतास्ते प्रकुर्वन्ति मातः ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अन्यान्य बहुतेरे महाबली दैत्योंने देवताओंके राज्य स्वर्गपर अधिकार कर लिया है ॥ ५४ ॥ हे महाबले! आपके सिवाय हमारी और कोई गति नहीं है। हे सुमध्यमे! आप हम दुखिया देवताओंका कार्य सम्पन्न कर दीजिए ॥५५॥ हे देवी! हम सब देवता सदा आपके भजनमें लीन रहते हैं। फिर भी बलवान् दानव हमको सताते हैं। हे माता! सांसारिक दुःखोंसे पीडित प्राणियोंकी आप ही रक्षा करती हैं। अतएव हे देवि! अपने चरणोंमें अनुराग रखनेवाले हम देवताओंका दुःख दूर करिए ॥ ५६ ॥ हे देवि! युगके आदिमें आपने ही विश्वकी रचना की थी। हे जननी! आपके रचित उसी विश्वको दैत्यगण अहंकारपूर्वक पीस रहे हैं। क्योंकि उन्हें अपनी दानवी सेनापर बड़ा अभिमान है। अतएव समस्त विश्वकी रक्षाका भार आपपर ही है। ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(कौशिकी देवीका आविर्भाव और चण्ड-मुण्डकी ओरसे शुम्भको सूचना) व्यासजी बोले— हे महाराज ! शत्रुओंसे त्रस्त देवताओंने जब इस प्रकार स्तुति की । तब भगवतीने अपने शरीरसे परम उग्र रूपधारिणी अम्बिका देवीको उत्पन्न किया ॥ १ ॥ उन पार्वती देवीके शरीरकोशसे जायमान भगवती अम्बिका संसारमें 'कौशिकी' नामसे विख्यात हुईं ॥ २ ॥ पार्वतीजीके शरीरसे उत्पन्न होते ही अम्बिकाका शरीर काला हो गया । अतएव वे 'कालिका' कहलाने लगीं ॥ ३ ॥ भगवती कालिकाका रंग एकदम काला था । जिससे वे देखनेमें बड़ी डरावनी लगती थीं । उनसे दैत्यमण्डलीमें भयका संचार हो गया । आगे चलकर वे ही सब कामनायें पूर्ण करनेवाली देवी 'कालरात्रि'के नामसे प्रसिद्ध हुईं ॥ ४ ॥ समस्त आभूषणोंसे आभूषित, दिव्य और रमणीक भगवतीका वह परम सौन्दर्यमय रूप जगमगा उठा ॥ ५ ॥ तदनन्तर मन्द मुसकान करके अम्बिकाने देवताओंसे कहा—अब आप लोग निर्भय रहें । मैं

॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी दैवतैः शत्रुतापितैः ॥ स्वशरीरात्परं रूपं प्रादुर्भूतं चकार ह ॥ १ ॥ पार्वत्यास्तु शरीराद्वै निःसृता चांबिका यदा ॥ कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु पठ्यते ॥ २ ॥ निःसृतायां तु तस्यां सा पार्वतीतनुव्यत्ययात् ॥ कृष्णरूपाऽथ संजाता कालिका सा प्रकीर्तिता ॥ ३ ॥ मषीवर्णा महाघोरा दैत्यानां भयवर्धिनी ॥ कालरात्रीति सा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ॥ ४ ॥ अम्बिकायाः परं रूपं विरराज मनोहरम् ॥ सर्वभूषणसंयुक्तं लावण्यगुणसंयुतम् ॥ ५ ॥ ततोऽम्बिका तदा देवानित्युवाच ह सस्मिता ॥ तिष्ठंतु निर्भया यूयं हनिष्यामि रिपूनिह ॥ ६ ॥ कार्यं वः सर्वथा कार्यं विहरिष्याम्यहं रणे ॥ निशुंभादीन्वधिष्यामि युष्माकं सुखहेतवे ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढा मदोत्कटा ॥ कालिकां पार्श्वतः कृत्वा जगाम नगरे रिपोः ॥ ८ ॥ सा गत्वोपवने तस्थावंबिका कालिकान्विता ॥ जगावथ कलं तत्र जगन्मोहन-मोहनम् ॥ ९ ॥ श्रुत्वा तन्मधुरं गानं मोहमीयुः खगा मृगाः ॥ मुदं च परमामापुरमरा गगने स्थिताः ॥ १० ॥ तस्मिन्नवसरे तत्र दानवौ शुम्भ-सेवकौ ॥ चण्डमुण्डाभिधौ घोरौ रममाणौ यदृच्छया ॥ ११ ॥ आगतौ ददृशाते तु तौ तदा दिव्यरूपिणीम् ॥ अंबिकां गानसंयुक्तां कालिकां पुरतः स्थिताम् ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा तां दिव्यरूपां च दानवौ विस्मयान्वितौ ॥ जग्मतुस्तरसा पार्श्वं शुंभस्य नृपसत्तम ॥ १३ ॥ तौ गत्वा तं समासीनं दैत्यानामधिपं गृहे ॥

आपके शत्रुओंका वध करूँगी ॥ ६ ॥ आप लोग अपना काम करें । मैं रणाङ्गणमें विहार करूँगी और आपके कल्याणार्थ निशुम्भ आदि सब दानवोंको मारूँगी ॥ ७ ॥ ऐसा कहकर वे मद-माती देवी सिंहपर सवार हो गयीं और अपने साथ कालिकाको लेकर वे शुम्भकी राजधानीमें जा पहुँचीं ॥ ८ ॥ नगरीके बाहर ही वे एक उपवनमें रुक गयीं और वहाँ ही समस्त विश्वको मोहमें डालनेवाले कामदेवको भी मोहित कर लेनेवाली धुनमें गाने लगीं ॥ ९ ॥ वह गायन सुनकर उपवनके पशु-पक्षी तक बेसुध हो गये । उधर आकाशमण्डलमें विराजमान देवता जगदम्बाकी यह लीला देखकर हर्षित हो उठे ॥ १० ॥ उसी समय शुम्भके दो भयानक अनुचर दानव चण्ड और मुण्ड स्वेच्छासे घूमते हुए वहाँ पहुँच गये ॥ ११ ॥ समीप जाकर उन्होंने देखा कि दिव्य रूपवती अम्बिका गा रही हैं और कालिका उनके संमुख खड़ी हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! भगवतीका वह दिव्य रूप देखकर वे दोनों दानव बहुत चकराये और तुरंत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुम्भके पास पहुँचे ॥ १३ ॥ अपने महलमें बैठे हुए दैत्यराज शुम्भके पास जाकर उन्होंने प्रणाम किया और मीठी वाणीमें कहने लगे—॥१४॥ हे राजन् ! हिमवान् पर्वतसे एक बहुत सुन्दरी स्त्री अपने मनसे यहाँ आयी हुई है। वह सिंहकी पीठपर सवार है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं। उसका रूप इतना सुंदर है कि उसे देखकर कामदेव भी मोहित हो जाय ॥ १५ ॥ वैसी महिला न स्वर्गमें है, न गन्धर्वनगरमें है और न पृथिवीपर ही ऐसी उत्तम सुंदरी कभी कहीं देखी या सुनी गयी है ॥१६॥ हे महाराज शुम्भ ! उसका गायन इतना लोकप्रिय है कि जनता ही नहीं वनैले मृग आदि पशुतक उसकी सुरीली धुनपर मुग्ध होकर तन्मय भावसे खड़े-खड़े सुनते रह जाते हैं ॥१७॥ आप यह पता लगवाइए कि वह किसकी पुत्री है और यहाँ किस लिए आयी है ? इसके बाद हे राजशार्दूल ! आप उसे रख लीजिए। वह सुन्दरी सर्वथा आपके ही योग्य है ॥१८॥ सब बातोंका पता लगाकर आप उसे घर ले आइए और उसके साथ विवाह कर लीजिए। क्योंकि यह निश्चित है कि ऐसी रूपवती स्त्री सारे संसारमें न मिलेगी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! आपने देवताओंके सब रत्न हस्तगत कर लिये हैं। तब

ऊचतुर्मधुरां वाणीं प्रणम्य शिरसा नृपम् ॥ १४ ॥ राजन्हिमालयात्कामं कामिनी काममोहिनी ॥ संप्राप्ता सिंहमारूढा सर्वलक्षणसंयुता ॥ १५ ॥
नेदृशी देवलोकेऽस्ति न गंधर्वपुरे तथा ॥ न दृष्टा न श्रुता क्वापि पृथिव्यां प्रमदोत्तमा ॥ १६ ॥ गानं च तादृशं राजन्करोति जनरंजनम् ॥
मृगास्तिष्ठन्ति तत्पार्श्वे मधुरस्वरमोहिताः ॥ १७ ॥ ज्ञायतां कस्य पुत्रीयं किमर्थमिह चागता ॥ गृह्यतां राजशार्दूल तव योग्याऽस्ति कामिनी ॥१८॥
ज्ञात्वाऽऽनय गृहे भार्यां कुरु कल्याणलोचनाम् ॥ निश्चितं नास्ति संसारे नारी त्वेवंविधा किल ॥१९॥ देवानां सर्वरत्नानि गृहीतानि त्वया नृप ॥
कस्मान्नेमां वरारोहां प्रगृह्णासि नृपोत्तम ॥ २० ॥ इन्द्रस्यैरावतः श्रीमान्पारिजाततरुस्तथा ॥ गृहीतोऽश्वः सप्तमुखस्त्वया नृप बलात्किल ॥ २१ ॥
विमानं वैधसं दिव्यं मरालध्वजसंयुतम् ॥ त्वयाऽऽत्तं रत्नभूतं तद्बलेन नृप चाद्भुतम् ॥ २२ ॥ कुबेरस्य निधिः पद्मस्त्वया राजन्समाहृतः ॥ छत्रं
जलपतेः शुभ्रं गृहीतं तत्त्वया बलात् ॥ २३ ॥ पाशश्चापि निशुंभेन भ्रात्रा तव नृपोत्तम ॥ गृहीतोऽस्ति हठात्कामं वरुणस्य जितस्य च ॥ २४ ॥
अम्लानपंकजां तुभ्यं मालां जलनिधिर्ददौ ॥ भयात्तव महाराज रत्नानि विविधानि च ॥ २५ ॥ मृत्योः शक्तिर्यमस्यापि दण्डः परमदारुणः ॥
त्वया जित्वा हृतः कामं किमन्यद्वर्ण्यते नृप ॥२६॥ कामधेनुर्गृहीताऽद्य वर्तते सागरोद्भवा ॥ मेनकाद्या वशे राजंस्तव तिष्ठन्ति चाप्सराः ॥ २७ ॥

हे नृपसत्तम ! उस सुजघना सुन्दरीको आप क्यों नहीं हस्तगत कर लेते ? ॥ २० ॥ हे नृप ! श्रीमान्ने अपने पराक्रमसे इन्द्रका ऐरावत, कल्पवृक्ष और सात मुखवाले घोड़ेको बलात् छीन लिया है ॥ २१ ॥ हे महाराज ! हंसध्वजसम्पन्न और रत्नतुल्य कीमती ब्रह्माजीके विमानपर आपने बलपूर्वक अधिकार कर लिया है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! आप कुबेरके खजानेको लूट चुके हैं। आपने अपने पराक्रमसे वरुणका श्वेत छत्र भी प्राप्त कर लिया है ॥२३॥ हे नृपोत्तम ! आपके छोटे भाई निशुम्भने वरुणको पराजित करके उनके पाशको बरबस छीन लिया था ॥ २४ ॥ हे महाराज ! समुद्रने भयभीत होकर कभी भी न मुरझानेवाले कमलपुष्पोंकी माला और उसके साथ विविध प्रकारके रत्न आपको उपहारमें दिया था ॥ २५ ॥ हे नृप ! मैं आपके गुण और पराक्रमका वर्णन कहाँतक करूँ ? जब आपने मृत्युको पराजित करके उसकी शक्ति छीन ली और यमराजको जीतकर उनके परम भयंकर दण्डको हथिया लिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ २६ ॥ महासागरसे उत्पन्न कामधेनु आज आपके पास है और मेनका आदि उच्चकोटिकी अप्सरायें आपके अधीन हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार जब आपने अपने पराक्रमसे समस्त रत्नोंका संग्रह कर लिया हैं। तब नारीजातिमें रत्नस्वरूपा उस वनिताको अपनी मुट्ठीमें क्यों नहीं कर लेते ? ॥ २८ ॥ हे भूपते ! उस महिलारत्नके घरमें पहुँच जानेपर सब रत्नोंकी शोभा बढ़ जायगी और वास्तवमें तभी आप रत्नवान् कहलानेके अधिकारी होंगे ॥२९॥ हे दैत्यराज! तीनों लोकोंमें ऐसी सुन्दरी स्त्री न मिलेगी। अतएव आप उसे शीघ्र घरमें लाकर अपनी मनोहारिणी पत्नी बना लीजिए ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले—चण्ड-मुण्डकी मधुर बातें सुनकर शुम्भका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। तत्काल उसने पास ही बैठे हुए सुग्रीवसे कहा—॥३१॥ हे सुग्रीव ! तुम बड़े प्रतिभावान् हो। अतएव मेरा दूतकार्य कर दो। उस कामिनीके पास जाकर तुम इस तरह लुभावनी बातें करो कि जिससे वह पतली कमरवाली सुन्दरी स्वयं यहाँ चली आये ॥३२॥ श्रृंगाररसके विद्वानोंका कहना है कि समझदार लोगोंको चाहिए कि स्त्रियोंको काबूमें करनेके लिए साम (मीठी बातें) और दान (धनकी लालच) इन्हीं दो नीतियोंका उपयोग करे

एवं सर्वाणि रत्नानि त्वयाऽऽत्तानि बलादपि ॥ कस्मान्न गृह्यते कांतारत्नमेषा वराङ्गना ॥ २८ ॥ सर्वाणि ते गृहस्थानि रत्नानि विशदान्यथ ॥ अनया सम्भविष्यन्ति रत्नभूतानि भूपते ॥ २९ ॥ त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्र नेदृशी वर्तते प्रिया ॥ तस्मात्तामानयाशु त्वं कुरु भार्यां मनोहराम् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम् ॥ प्रसन्नवदनः प्राह सुग्रीवं सन्निधौ स्थितम् ॥ ३१ ॥ गच्छ सुग्रीव दूतत्वं कुरु कार्यं विचक्षण ॥ वक्तव्यं च तथा तत्र यथाऽभ्येति कृशोदरी ॥ ३२ ॥ उपायौ द्वौ प्रयोक्तव्यौ कांतासु सुविचक्षणैः ॥ सामदाने इति प्राहुः श्रृंगाररसकोविदाः ॥ ३३ ॥ भेदे प्रयुज्यमानेऽपि रसाभासस्तु जायते ॥ निग्रहे रसभंगः स्यात्तस्मात्तौ दूषितौ बुधैः ॥ ३४ ॥ सामदानमुखैर्वाक्यैः श्लक्ष्णैर्नर्मयुतैस्तथा ॥ का न याति वशे दूत कामिनी कामपीडिता ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ सुग्रीवस्तु वचः श्रुत्वा शुंभोक्तं सुप्रियं पटु ॥ जगाम तरसा तत्र यत्रास्ते जगदम्बिका ॥ ३६ ॥ सोऽपश्यत्सुमुखीं कांतां सिंहस्योपरि संस्थिताम् ॥ प्रणम्य मधुरं वाक्यमुवाच जगदम्बिकाम् ॥ ३७ ॥ दूत उवाच ॥ वरोरु त्रिदशारातिः शुंभः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ त्रैलोक्याधिपतिः शूरः सर्वजिद्राजते नृपः ॥ ३८ ॥ तेनाहं प्रेषितः कामं त्वत्सकाशं महात्मना ॥ त्वद्रूपश्रवणासक्तचित्तेनातिविदूयता ॥ ३९ ॥ वचनं तस्य तन्वंगि शृणु प्रेमपुरःसरम् ॥ प्रणिपत्य यथा प्राह दैत्यानामधि-

॥३३॥ भेद (कपटनीतिसे फोड़ना) नीतिका प्रयोग करनेसे रसका आभास भर मिलता है और दण्डनीतिका उपयोग करनेसे तो सब खेल ही बिगड़ जाता है ॥ ३४ ॥ हे दूत ! कामसे पीड़ित ऐसी कौन स्त्री होगी, जो साम-दानकी नीतिसे सराबोर, प्यारभरी तथा कुछ परिहासके पुटसे परिपूर्ण मीठी बातें सुनकर वशमें न हो जाय ॥ ३५ ॥ व्यासजीने कहा—शुम्भकी भलीभाँति चातुर्यपूर्ण बातें सुनकर सुग्रीव तत्काल बड़े वेगसे उधर चल पड़ा, जहाँ जगदम्बा विराजमान थी ॥ ३६ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि वास्तवमें एक बहुत ही सुंदरी स्त्री सिंहपर सवार है। जगदम्बाके समक्ष जाकर उसने प्रणाम किया और मधुर वाणीमें कहा ॥ ३७ ॥ दूत सुग्रीव बोला—हे सुजघने ! देवताओंके शत्रु महाराज शुम्भ सर्वाङ्ग सुन्दर और बड़े वीर पुरुष हैं। जगत्के सब वीरोंको पराजित करके वे इस समय तीनों लोकके सम्राट् बने हुये हैं॥ ३८ ॥ किसीसे आपके अनुपम सौन्दर्यका हाल सुनकर वे आपपर आसक्त हो गये हैं और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तभीसे बेचैन हो रहे हैं। उन्होंने ही मुझे आपके पास भेजा है ॥ ३९ ॥ हे कोमलाङ्गि! दैत्यपति शुम्भने आपको प्रणाम करके जिस प्रकार प्रेमभरे वचन कहे हैं, उन्हें सुनिए ॥ ४० ॥ उनका कहना है—हे कान्ते! मैंने सब देवताओंको पराजित कर दिया है। इस समय मैं तीनों लोकोंका सम्राट् हूँ और यहाँ रहते हुए सदा यज्ञभाग प्राप्त करता हूँ ॥ ४१ ॥ देवताओंके पास जितने रत्न थे, उन्हें मैंने छीन लिया है। ऐसा करके मैंने स्वर्गलोकको रत्नहीन और कंगाल बना दिया है ॥४२॥ हे भामिनि! तीनों लोकमें जितने रत्न हैं, उनका एकमात्र उपभोक्ता मैं हूँ। सब देवता, दानव और मानव मेरे अधीन हैं ॥४३॥ किन्तु सहसा तुम्हारे गुणगण कानोंकी राह मेरे हृदयमें उतर गये हैं और उन्होंने बरबस मुझे तुमपर आसक्त कर दिया है। अब क्या करूँ? मैं तो तुम्हारा दास बन गया हूँ ॥४४॥ हे केलेके खम्भे जैसी कोमल जाँघवाली सुन्दरी! अब तुम मुझे जो आज्ञा दोगी, मैं उसका पालन करूँगा। हे सुंदरी! मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हो गया हूँ। तुम कामदेवके बाणोंसे मेरी रक्षा करो ॥ ४५ ॥ हे हंसगमने! मुझे कामदेव बहुत सता रहा है। जिससे मैं तुम्हारे ऊपर आसक्त हो गया हूँ। अतएव तुम सदाके

पस्त्वयि ॥४०॥ देवा मया जिताः सर्वे त्रैलोक्याधिपतिस्त्वहम् ॥ यज्ञभागानहं कान्ते गृह्णामीह स्थितः सदा ॥ ४१ ॥ हृतसारा कृता नूनं द्यौर्मया रत्नवर्जिता ॥ यानि रत्नानि देवानां तानि चाहृतवानहम् ॥ ४२ ॥ भोक्ताऽहं सर्वरत्नानां त्रिषु लोकेषु भामिनि ॥ वशानुगाः सुराः सर्वे मम दैत्याश्च मानवाः ॥ ४३ ॥ त्वद्गुणैः कर्णमागत्य प्रविश्य हृदयांतरम् ॥ त्वदधीनः कृतः कामं किंकरोऽस्मि करोमि किम् ॥ ४४ ॥ त्वमाज्ञापय रंभोरु तत्करोमि वशानुगः ॥ दासोऽहं तव चार्वंगि रक्ष मां कामबाणतः ॥ ४५ ॥ भज मां त्वं मरालाक्षि तवाधीनं स्मराकुलम् ॥ त्रैलोक्य-स्वामिनी भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ ४६ ॥ तव चाज्ञाकरः कान्ते भवामि मरणावधि ॥ अवध्योऽस्मि वरारोहे सदेवासुरमानुषैः ॥ ४७ ॥ सदा सौभाग्यसंयुक्ता भविष्यसि वरानने ॥ यत्र ते रमते चित्तं तत्र क्रीडस्व सुंदरि ॥ ४८ ॥ इति तस्य वचश्चित्ते विमृश्य मदमंथरे ॥ वक्तव्यं यद्भवेत्प्रेम्णा तद्ब्रूहि मधुरं वचः ॥ ४९ ॥ शुम्भाय चंचलापांगि तद्ब्रवीम्यहमाशु वै ॥ व्यास उवाच ॥ तद्दूतवचनं श्रुत्वा स्मितं कृत्वा सुपेशलम् ॥ ५० ॥ तं प्राह मधुरां वाचं देवी देवार्थसाधिका ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जानाम्यहं निशुम्भं च शुम्भं चातिबलं नृपम् ॥ ५१ ॥ जेतारं सर्वदेवानां हंतारं चैव विद्विषाम् ॥ राशिं सर्वगुणानां च भोक्तारं सर्वसंपदाम् ॥ ५२ ॥ दातारं चातिशूरं च सुंदरं मन्मथाकृतिम् ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तमवध्यं

लिए मेरी बन जाओ और त्रिलोकस्वामिनी बनकर उच्चकोटिके भोगोंका उपभोग करो ॥ ४६ ॥ हे कान्ते! मैं मरणपर्यन्त तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करूँगा। हे सुजघने! देवता, दानव और मानव कोई भी मेरा वध नहीं कर सकता ॥४७॥ अतएव हे सुमुखी! मुझे पति बनाकर तुम सदा सोहागिन बनी रहोगी। हे सुन्दरी! मेरे पास रहकर तुम जहाँ चाहो, वहाँ विहार कर सकती हो ॥ ४८ ॥ हे मदसे अलसायी हुई कामिनी! मेरे प्रभु शुंभकी इन बातोंपर अपने मनमें भली-भाँति विचार करके जो कुछ कहना हो, वह प्रेमपूर्वक मधुर वाणीमें कहो ॥४९॥ हे चंचलकटाक्षवाली रमणी! मैं तुरन्त शुम्भके पास जाकर उन्हें तुम्हारा सन्देश सुना दूँगा। व्यासजी बोले—दूतके इन वचनोंको सुनकर भगवती बड़े सुंदर ढंगसे मुसकाने लगीं ॥ ५० ॥ देवताओंका कार्य साधन करनेके लिए कृतसंकल्प भगवतीने मधुर वाणीमें कहा। श्रीदेवी बोली—मैं अतिशय बलवान् राजा शुम्भ और निशुंभ दोनोंको जानती हूँ। उन्होंने सब देवताओं-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को जीत लिया है और अपने सभी शत्रुओंको समाप्त कर दिया है। वे सब गुणोंकी राशि हैं और सब सम्पदाओंके भोक्ता हैं ॥५१॥५२॥ वे बड़े दानी, वीर, कामदेव सदृश सुन्दर, बत्तीसों सुलक्षणोंसे सम्पन्न और देवताओं तथा मनुष्योंके अवध्य हैं ॥५३॥ इन गुणोंकी चर्चा सुनकर मैं वैसे ही उस महान् असुरका दर्शन करने आयी हूँ, जैसे रत्न अपनी शोभाको बढ़ानेके लिए सुवर्णके पास जाता है ॥५४॥ अपने लिए पति खोजती हुई बहुत दूरसे मैं यहाँ आयी हूँ। मैंने स्वर्गके सब देवताओं और पृथिवीतलके सब मनुष्योंको देख लिया है ॥५५॥ गन्धर्वों और राक्षसोंमें भी जितने सुन्दर पुरुष थे, उन सबको मैं देख चुकी। उन सबको मैंने शुम्भके भयसे काँपते हुए और उद्विग्न पाया॥५६॥ दैत्यराज शुम्भके गुणोंको सुनकर मैं उन्हें देखनेके लिए ही यहाँ आयी हूँ। हे दूत! हे महाभाग! अब तुम जाओ और एकान्तमें मेरी जबानी मधुर वाणीमें महाबली शुंभसे कहो कि तुम्हें बलवानोंमें श्रेष्ठ, सुन्दरोंमें सबसे सुन्दर, दानी, गुणवान्, सब विद्याओंके पारंगत, सब देवताओंके विजेता, कार्यकुशल, कुलीन, सब रत्नोंके भोक्ता, पूर्ण स्वाधीन राजा तथा अपने पराक्रमसे उन्नति करनेवाला महापुरुष समझकर ही मैं यहाँ आयी

सुरमानुषैः ॥ ५३ ॥ ज्ञात्वा समागताऽस्म्यत्र द्रष्टुकामा महासुरम् ॥ रत्नं कनकमायाति स्वशोभाधिकवृद्धये ॥ ५४ ॥ तत्राहं स्वपतिं द्रष्टुं दूरादेवागताऽस्मि वै ॥ दृष्टा मया सुराः सर्वे मानवा भुवि मानदाः ॥ ५५ ॥ गंधर्वा राक्षसाश्चान्ये ये चातिप्रियदर्शनाः ॥ सर्वे शुम्भभयाद्भीता वेपमाना विचेतसः ॥ ५६ ॥ श्रुत्वा शुम्भगुणानत्र प्राप्ताऽस्म्यद्य दिदृक्षया ॥ गच्छ दूत महाभाग ब्रूहि शुम्भं महाबलम् ॥ ५७ ॥ निर्जने श्लक्ष्णया वाचा वचनं वचनान्मम ॥ त्वां ज्ञात्वा बलिनां श्रेष्ठं सुन्दराणां च सुन्दरम् ॥ ५८ ॥ दातारं गुणिनं शूरं सर्वविद्याविशारदम् ॥ जेतारं सर्वदेवानां दक्षं चोग्रं कुलोत्तरम् ॥ ५९ ॥ भोक्तारं सर्वरत्नानां स्वाधीनं स्वबलोन्नतम् ॥ पतिकामाऽस्म्यहं सत्यं तव योग्या नराधिप ॥ ६० ॥ स्वेच्छया नगरे तेऽत्र समायाता महामते ॥ ममास्ति कारणं किंचिद्विवाहे राक्षसोत्तम ॥ ६१ ॥ बालभावाद्व्रतं किंचित्कृतं राजन्मया पुरा ॥ क्रीडंत्या च वयस्याभिः सहैकान्ते यदृच्छया ॥ ६२ ॥ स्वदेहबलदर्पेण सखीनां पुरतो रहः ॥ मत्समानबलः शूरो रणे मां जेष्यति स्फुटम् ॥ ६३ ॥ तं वरिष्याम्यहं कामं ज्ञात्वा तस्य बलाबलम् ॥ जहसुर्वचनं श्रुत्वा सख्यो विस्मितमानसाः ॥ ६४ ॥ किमेतया कृतं क्रूरं व्रतमद्भुतमाशु वै ॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र ज्ञात्वा मे हीदृशं बलम् ॥ ६५ ॥ जित्वा मां स्वबलेनात्र वांछितं कुरु चात्मनः ॥ त्वं वा तवानुजो भ्राता समेत्य समरांगणे ॥ जित्वा मां

हूँ! मैं पतिकी खोजमें हूँ। हे महाराज! सच तो यह है कि मैं सर्वथा आपके योग्य हूँ ॥ ५७-६० ॥ हे महामते! मैं अपनी इच्छासे तुम्हारे नगरमें आयी हुई हूँ। किन्तु हे राक्षसराज! मेरे विवाहमें कुछ प्रतिबन्ध है ॥ ६१ ॥ हे राजन्! बालसुलभ चञ्चलतावश पूर्वकालमें अपनी सखियोंके साथ खेलती-खेलती एकान्तमें मैं स्वेच्छासे एक प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ ॥ ६२ ॥ उस समय शरीरमें बल अधिक होनेके कारण एकान्तमें अपनी सखियोंके समक्ष मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो पुरुष मेरे समान बलवान् होगा और रणमें मुझे स्पष्टरूपसे परास्त कर देगा। उसका बलाबल देखकर मैं उसीके साथ विवाह करूँगी। मेरी प्रतिज्ञा सुनकर सखियाँ पहले तो चकरायीं, किंतु बादमें ठठाकर हँसने लगीं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ फिर उन्होंने कहा कि इसने इतनी जल्दी ऐसी अद्भुत और क्रूर प्रतिज्ञा क्यों कर ली? अतएव हे राजेन्द्र! तुम भी समझ लो कि मुझे अपने बलपर कितना घमण्ड है ॥६५॥ सो तुम अपने पराक्रमसे मुझे पराजित करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी कामना पूर्ण कर लो। हे सुन्दर! अब चाहे तुम या तुम्हारा छोटा भाई निशुंभ समरभूमिमें आये और मुझे परास्त करके मेरे साथ विवाह कर ले ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

(देवी-दूतसम्वाद) व्यासजी बोले—हे महाराज! देवीके वचन सुनकर दूत सुनकर चकपका गया और बोला—हे सुनयनी! स्त्रीस्वभावकी चञ्चलतावश आप यह क्या कह रही हैं? ॥ १ ॥ हे देवी! इन्द्र आदि देवता और बड़े-बड़े असुर जिससे हार गये। हे सुन्दरी! उसे आप समरमें परास्त करनेकी इच्छा कर रही हैं? ॥२॥ समस्त त्रिलोकीमें कोई ऐसा वीर नहीं है, जो शुम्भको संग्राममें हरा सके। तब हे कमलनयनी! आप युद्धमें उनके आगे कैसे टिकेंगी? ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी! कभी भी बिना विचारे कोई बात न कहनी चाहिए। अपना और प्रतिपक्षीका बल जान लेनेके बाद ही कोई समयोचित बात मुँहसे निकालनी चाहिए ॥ ४ ॥ हे प्रिये! तीनों लोकोंके अधिपति महाराज शुंभ आपके रूपपर मोहित होकर प्रार्थना कर

समरेणात्र विवाहं कुरु सुन्दर ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स दूतः प्राह विस्मितः ॥ किं ब्रूषे रुचिरापांगि स्त्रीस्वभावाद्धि साहसात् ॥ १ ॥ इन्द्राद्या निर्जिता येन देवा दैत्यास्तथाऽपरे ॥ तं कथं समरे देवि जेतुमिच्छसि भामिनि ॥ २ ॥ त्रैलोक्ये तादृशो नास्ति यः शुम्भं समरे जयेत् ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि तस्याग्रे युधि सांप्रतम् ॥ ३ ॥ अविचार्य न वक्तव्यं वचनं क्वापि सुन्दरि ॥ बलं स्वपरयोर्ज्ञात्वा वक्तव्यं समयोचितम् ॥ ४ ॥ त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भस्तव रूपेण मोहितः ॥ त्वां च प्रार्थयते राजा कुरु तस्येप्सितं प्रिये ॥ ५ ॥ त्यक्त्वा मूर्खस्वभावं त्वं सम्मान्य वचनं मम ॥ भज शुम्भं निशुम्भं वा हितमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥ शृङ्गारः सर्वथा सर्वैः प्राणिभिः परया मुदा ॥ सेवनीयो बुद्धिमद्भिर्नवानामुत्तमो यतः ॥७॥ नागमिष्यसि चेद्बाले संक्रुद्धः पृथिवीपतिः ॥ अन्यानाज्ञाकरान्प्रेष्य बलान्नेष्यति सांप्रतम् ॥८॥ केशेष्वाकृष्य ते नूनं दानवा बलदर्पिताः ॥ त्वां नयिष्यंति वामोरु तरसा शुम्भसन्निधौ ॥ ९ ॥ स्वलज्जां रक्ष तन्वङ्गि साहसं सर्वथा त्यज ॥ मानिता गच्छ तत्पार्श्वे मानपात्रं यतोऽसि वै ॥ १० ॥ क्व युद्धं निशितैर्बाणैः क्व सुखं रतिसंगजम् ॥ सारासारं परिच्छेद्य कुरु मे वचनं पटु ॥ ११ ॥ भज शुम्भं निशुंभं वा लब्धाऽसि परमं सुखम् ॥ देव्युवाच ॥

रहे हैं। अतएव आप उनकी इच्छा पूर्ण कर दें ॥५॥ आप ऐसी मूर्खता न करके मेरी बात मानिए और शुंभ या निशुंभ जिसके साथ चाहें, विवाह कर लें। यह मैं आपके हितकी बात कह रहा हूँ ॥६॥ सभी बुद्धिमान् प्राणियोंका यह कर्तव्य होता है कि वे बड़े हर्षके साथ शृंगाररसका आनन्द लें। क्योंकि उभड़ती जवानीमें यह रस सब रसोंसे उत्तम माना जाता है ॥७॥ हे बाले! यदि आप मेरे साथ न चलेंगी तो महाराज शुंभ क्रुद्ध हो जायँगे और अपने अन्य सेवकोंको भेजकर जबर्दस्ती पकड़वा मँगायेंगे ॥ ८ ॥ तब हे सुजघने! बलके घमण्डमें चूर दानव-सैनिक आपके केश पकड़कर घसीटते हुए शुम्भके पास ले जायँगे ॥ ९ ॥ हे कोमलाङ्गी! आप दुःसाहस त्यागकर अपनी लाज बचाइए। अच्छा तो यह हो कि आप सम्मानपूर्वक उनके पास चलें। क्योंकि आप सम्मानके योग्य हैं ॥१०॥ कहाँ तीखे बाणों द्वारा लड़ी जानेवाली लड़ाई और कहाँ रतिजनित आनन्द। इस दोनोंकी सारता और असारतापर भलीभाँति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विचार करके आप मेरी सलाह मान लें ॥ ११ ॥ तदनुसार शुंभ अथवा निशुम्भ इनमेंसे जिसको चाहें, अपना पति बना लें । इससे आपको बहुत सुख मिलेगा । देवी बोलीं—हे दूत! हे महाभाग ! तुम्हारा कथन यथार्थ है । बात करनेमें तुम बड़े निपुण हो ॥१२॥ मैं जानती हूँ कि शुम्भ-निशुम्भ बड़े बलवान् हैं । लेकिन बाल्यकालमें मैंने जो प्रतिज्ञा की थी । उसे आज कैसे त्याग दूँ ? ॥ १३ ॥ तुम जाकर बलवान् शुम्भ और निशुम्भसे कह दो कि कोई केवल सुन्दरताके नाते मेरा पति नहीं हो सकता ॥१४॥ युद्धमें मुझे पराजित करके उन दोनोंमें जो चाहे, वह मेरे साथ विवाह कर ले । उनसे मेरी जबानी कहो—हे नृप ! मैं अबला युद्ध करनेकी इच्छासे ही यहाँ आयी हूँ ॥१५॥ आप सर्वसमर्थ हैं । अतएव मुझे युद्धदान देकर आप वीरधर्मका पालन करें । यदि मेरे त्रिशूलसे डर लगता हो तो आप तत्काल पाताललोकको चले जायँ ॥ १६ ॥ यदि जीवित रहनेकी कामना हो तो स्वर्ग और पृथिवी को अभी छोड़ दें । हे दूत ! तुम शीघ्र जाकर आदरपूर्वक अपने स्वामीको मेरा सन्देश सुना दो ॥ १७ ॥ उसके बाद तुम्हारे महाबली प्रभु जो उचित समझेंगे, वह करेंगे । हे धर्मज्ञ ! संसार भरके दूतोंका यह सर्व-

सत्यं दूत महाभाग प्रवक्तुं निपुणो ह्यसि ॥१२॥ निशुम्भशुम्भौ जानामि बलवंताविति ध्रुवम् ॥ प्रतिज्ञा मे कृता बाल्यादन्यथा सा कथं भवेत् ॥१३॥
तस्माद्ब्रूहि निशुम्भं च शुम्भं वा बलवत्तरम् ॥ बिना युद्धं न मे भर्ता भविता कोऽपि सौष्ठवात् ॥१४॥ जित्वा मां तरसा कामं करं गृह्णातु सांप्रतम् ॥
युद्धेच्छया समायातां विद्धि मामबलां नृप ॥ १५ ॥ युद्धं देहि समर्थोऽसि वीरधर्मं समाचर ॥ बिभेषि मम शूलाच्चेत्पातालं गच्छ माचिरम् ॥ १६॥
त्रिदिवं च धरां त्यक्त्वा जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ इति दूत वदाशु त्वं गत्वा स्वपतिमादरात् ॥ १७ ॥ स विचार्य यथा युक्तं करिष्यति महा-
बलः ॥ संसारे दूतधर्मोऽयं यत्सत्यं भाषणं किल ॥ १८ ॥ शत्रौ पत्यौ च धर्मज्ञ तथा त्वं कुरु मा चिरम् ॥ व्यास उवाच ॥ अथ तद्वचनं श्रुत्वा
नीतिमद्बलसंयुतम् ॥ १९ ॥ हेतुयुक्तं प्रगल्भं च विस्मितः प्रययौ तदा ॥ गत्वा दैत्यपतिं दूतो विचार्य च पुनः पुनः ॥ २० ॥ प्रणम्य पादयोः
प्रह्वः प्रत्युवाच नृपं च तम् ॥ राजनीतिकरं वाक्यं मृदुपूर्वं प्रियं वचः ॥ २१ ॥ दूत उवाच ॥ सत्यं प्रियं च वक्तव्यं तेन चिंतातुरो ह्यहम् ॥ सत्यं
प्रियं च राजेन्द्र वचनं दुर्लभं किल ॥ २२ ॥ अप्रियं वदतां कामं राजा कुप्यति सर्वथा ॥ साक्षात्कुतः समायाता कस्य वा किंबलाऽबला ॥ २३ ॥

सम्मत धर्म है कि वे शत्रुपक्ष और अपने स्वामीके समक्ष सच्ची बात कहें । अतएव तुम भी ऐसा ही करो । व्यासजी बोले— देवीके नीतिसंगत, सारगर्भित, सार्थक और निर्भीक वचन सुनकर दूत सुग्रीव आश्चर्यचकित होता हुआ लौट पड़ा । उनकी बातोंपर बारम्बार विचार करता हुआ वह दैत्यपति शुम्भके पास जा पहुँचा ॥ १८–२० ॥ उसके चरणोंको प्रणाम करके सुग्रीव बड़ी नम्रतापूर्वक राजनीतिमिश्रित मधुर वाणी बोला ॥ २१ ॥ दूतने कहा—हे राजेन्द्र ! इस समय मुझे सत्य और प्रिय बात कहनी है । इसीसे मैं बड़े असमंजसमें पड़ा हुआ हूँ । क्योंकि सत्य और साथ ही प्रिय लगनेवाली बात बोलना बहुत कठिन काम है ॥ २२ ॥ यदि राजाकी प्रतिष्ठाके विरुद्ध कोई बात मुँहसे निकल गयी तो उसके कुपित होनेका भय रहता है । तथापि अपना धर्म पालन करते हुए मैं सच्ची बात कह रहा हूँ । हे राजन् ! वह स्त्री कहाँसे आयी है, किसकी पुत्री है, वह सबल है या निर्बल, इन बातोंको मैं नहीं जान सका ॥२३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तब मैं उसके मनकी बात कैसे समझ सकता हूँ ? हाँ, यह मैंने अवश्य देखा कि उसे बड़ा गर्व है, वह बड़ी कड़ुई बातें करती है और लड़नेको तैयार है ॥ २४ ॥ हे महामते ! उसने जो कुछ कहा है, उसे आप अच्छी तरह सुनिए। वह कहती है—बाल्यकालमें सखियोंके साथ खेलते-खेलते मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो पुरुष युद्धमें मुझे पछाड़कर मेरा दर्प चूर्ण कर देगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं अपने समान बलवान् उसी पुरुषके साथ अपना विवाह करूँगी। अतएव हे नृपसत्तम ! आप मेरी वह प्रतिज्ञा तोड़वानेका आग्रह मत कीजिए ॥ २७ ॥ सो हे धर्मज्ञ! आप मेरे साथ युद्ध करिए और पराजित करके अपने वशमें कर लीजिए। उसने ऐसा कहा और उसकी बात सुनकर मैं लौट आया ॥ २८ ॥ हे महाराज ! अब जो आपकी इच्छा हो, वह करिए। शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित और सिंहकी पीठपर सवार वह सुंदरी युद्धके लिए दृढ़ संकल्प किये हुए है ॥ २९ ॥ हे भूपाल ! वह अपनी प्रतिज्ञापर अटल है। अब जो उचित समझें

न ज्ञानगोचरं किंचित्किं ब्रवीमि विचेष्टितम् ॥ युद्धकामा मया दृष्टा गर्विता कटुभाषिणी ॥ २४ ॥ तया यत्कथितं सम्यक्तच्छृणुष्व महामते ॥
मया बाल्यात्प्रतिज्ञेयं कृता पूर्वं विनोदतः ॥ २५ ॥ सखीनां पुरतः कामं विवाहं प्रति सर्वथा ॥ यो मां युद्धे जयेदद्धा दर्पं च विधुनोति वै ॥ २६ ॥
तं वरिष्याम्यहं कामं पतिं समबलं किल ॥ न मे प्रतिज्ञा मिथ्या सा कर्तव्या नृपसत्तम ॥ २७ ॥ तस्माद्युद्ध्यस्व धर्मज्ञ जित्वा मां स्ववशं कुरु ॥
तयेति व्याहृतं वाक्यं श्रुत्वाऽहं समुपागतः ॥२८॥ यथेच्छसि महाराज तथा कुरु तव प्रियम् ॥ सा युद्धार्थं कृतमतिः सायुधा सिंहगामिनी ॥२९॥
निश्चला वर्तते भूप उद्योगं तद्विधीयताम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सुग्रीवस्य नराधिपः ॥३०॥ पप्रच्छ भ्रातरं शूरं समीपस्थं महा-
बलम् ॥ शुम्भ उवाच॥ भ्रातः किमत्र कर्तव्यं ब्रूहि सत्यं महामते ॥ ३१ ॥ नार्येका योद्धुकामाऽस्ति मामाह्वयति सांप्रतम् ॥ अहं गच्छामि संग्रामे
त्वं वा गच्छ बलान्वितः ॥३२॥ यद्रोचते निशुम्भात्र तत्कर्तव्यं मया किल॥ निशुम्भ उवाच ॥ न मया न त्वया वीर गन्तव्यं रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥
प्रेषयस्व महाराज त्वरितं धूम्रलोचनम् ॥ स गत्वा तां रणे जित्वा गृहीत्वा चारुलोचनाम् ॥३४॥ आगमिष्यति शुम्भात्र विवाहः संविधीयताम् ॥
व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य शुम्भो भ्रातुः कनीयसः ॥ ३५ ॥ कोपात्संप्रेषयामास पार्श्वस्थं धूम्रलोचनम् ॥ शुम्भ उवाच ॥ धूम्रलोचन
गच्छामुं सैन्येन महताऽऽवृतः ॥३६॥ गृहीत्वाऽऽनय तां मुग्धां स्ववीर्यमदमोहिताम् ॥ देवो वा दानवो वाऽपि मनुष्यो वा महाबलः ॥ ३७ ॥

सो करें। व्यासजी बोले—दूत सुग्रीवके वचन सुनकर राजा शुम्भने पास बैठे हुए परम वीर और महाबली निशुम्भसे पूछा। शुंभने कहा—हे महामति भ्राता ! इस अवसरपर क्या करना चाहिए ? जो कर्तव्य हो, वह सच-सच बताओ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ एक स्त्री संग्राम करना चाहती है और अभी युद्धके लिए ललकार रही है। तब मैं जाऊँ या तुम अपनी सेनाके साथ उससे लड़ने जाओगे ? ॥ ३२ ॥ हे निशुंभ ! तुम्हारी जो सम्मति होगी, मैं उसीके अनुसार चलूँगा। निशुंभने कहा—हे भाई ! इस समय रणभूमिमें आपका जाना ठीक नहीं है ॥३३॥ हे महाराज ! आप तत्काल धूम्रलोचनको भेज दीजिए। वह रणभूमिमें पराजित करके उस सुनयनीको पकड़ लायेगा। यहाँ आ जानेपर उसके साथ विवाह कर लीजिएगा। व्यासजी बोले—अपने छोटे भाईकी बात सुनकर पास ही बैठे धूम्रलोचनसे बड़े क्रोधपूर्वक शुम्भ बोला—हे धूम्रलोचन ! तुम अपने साथ विशाल सेना लेकर जाओ और बलके घमण्डसे चूर उस महिला-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को पकड़ लाओ। यदि कोई महाबली देवता, दानव या मानव उसकी सहायता करे तो उसे तुरन्त मार डालना। उसके पास रहनेवाली कालीको भी मारकर उसे शीघ्र यहाँ ले आओ। हाँ, कोमल बाण छोड़ती हुई भी उस साध्वीको बचाना ॥ ३४-३९ ॥ हे वीर! उसकी हर उपायसे रक्षा करना। क्योंकि उसका शरीर बहुत कोमल है और कमर पतली है। लेकिन शस्त्र लेकर उसके जितने भी सहायक आयें, उन सबको समाप्त कर देना ॥ ४० ॥ किन्तु उस सुन्दरीको कदापि न मारना। बल्कि बड़े यत्नके साथ उसकी रक्षा करना। व्यासजी बोले—राजा शुम्भकी आज्ञा पाकर धूम्रलोचन अपने प्रभुको प्रणाम करके विशाल वाहिनीके साथ युद्ध करनेके लिए चल पड़ा। उसके साथ पूरे साठ हजार दानव सैनिक थे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ पास पहुँचकर उसने एक दिव्य उपवनमें भगवतीको विराजमान देखा। उस मृगनयनी देवीको देखकर धूम्रलोचनने बड़े विनीतभावसे सहेतुक, सरस तथा मधुर वाणीमें कहा—हे देवि! हे महाभागे! महाराज शुंभ आपके वियोगसे व्याकुल हैं ॥४३॥४४॥ नीतिनिपुण महाराज शुंभने रसभंग होनेके भयसे बड़ी शांतिपूर्वक समझाकर एक दूतको आपके पास भेजा था ॥४५॥

तत्पार्ष्णिग्राहतां प्राप्तो हंतव्यस्तरसा त्वया ॥ तत्पार्श्ववर्तिनीं कालीं हत्वा संगृह्य तां पुनः ॥ ३८ ॥ शीघ्रमत्र समागच्छ कृत्वा कार्यमनुत्तमम् ॥ रक्षणीया त्वया साध्वी मुंचंती मृदुमार्गणान् ॥ ३९ ॥ यत्नेन महता वीर मृदुदेहा कृशोदरी ॥ तत्सहायाश्च हंतव्या ये रणे शस्त्रपाणयः ॥ ४० ॥ सर्वथा सा न हंतव्या रक्षणीया प्रयत्नतः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्यादिष्टस्तदा राज्ञा तरसा धूम्रलोचनः ॥ ४१ ॥ प्रणम्य शुम्भं सैन्येन वृतः शीघ्रं ययौ रणे ॥ असाधूनां सहस्राणां षष्ट्या तेषां वृतस्तथा ॥ ४२ ॥ स ददर्श ततो देवीं रम्योपवनसंस्थिताम् ॥ दृष्ट्वा तां मृगशावाक्षीं विनयेन समन्वितः ॥ ४३ ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुमद्रसभूषितम् ॥ शृणु देवि महाभागे शुम्भस्त्वद्विरहातुरः ॥ ४४ ॥ दूतं प्रेषितवान्पार्श्वे तव नीतिविशारदः ॥ रसभंगभयोद्विग्नः सामपूर्वं त्वयि स्वयम् ॥ ४५ ॥ तेनागत्य वचः प्रोक्तं विपरीतं वरानने ॥ बचसा तेन मे भर्ता चिंताविष्टमना नृपः ॥ ४६ ॥ बभूव रसमार्गज्ञे शुम्भः कामविमोहितः ॥ दूतेन तेन न ज्ञातं हेतुगर्भं वचस्तव ॥ ४७ ॥ यो मां जयति संग्रामे यदुक्तं कठिनं वचः ॥ न ज्ञातस्तेन संग्रामो द्विविधः खलु मानिनि ॥४८॥ रतिजोऽथोत्साहजश्च पात्रभेदे विवक्षितः ॥ रतिजस्त्वयि वामोरु शत्रोरुत्साहजः स्मृतः ॥४९॥ सुखदः प्रथमः कांते दुःखदश्चारिजः स्मृतः ॥ जानाम्यहं वरारोहे भवत्या मानसं किल ॥ ५० ॥ रतिसंग्रामभावस्ते हृदये परिवर्तते ॥ इति तज्ज्ञं

हे सुन्दरमुखी! उस दूतने लौटकर विपरीत बात बतायी। उसकी बातें सुनकर मेरे स्वामी बहुत चिन्तित हो गये हैं ॥४६॥ हे श्रृंगाररसकी अभिज्ञ सुंदरी! महाराज शुंभ कामपीडासे बहुत व्याकुल हैं। किन्तु वह दूत आपके सहेतुक वचनोंका मतलब नहीं समझ सका ॥४७॥ हे भामिनी! आपने जो यह कठोर वचन कहा कि 'जो मुझे संग्राममें जीतेगा' इत्यादि। उसका तात्पर्य वह नहीं समझ सका। संग्राम दो प्रकारका होता है—॥४८॥ पहला कामवासनाजनित और दूसरा उत्साहजनित। पात्रभेदसे समय-समयपर उनका उपयोग होता है। उन दोनोंमें आप जैसी सुन्दरीके साथ तो रतिजनित संग्राम ही हो सकता है। शत्रुके साथ उत्साहजनित संग्राम किया जाता है ॥४९॥ हे कामिनी! प्रथम अर्थात् रतिजनित युद्धसे सुख प्राप्त होता है और शत्रुके साथ उत्साहजनित संग्राममें अपार दुःख भोगना पड़ता है। हे सुजघने! मैं आपके मनकी बात जानता हूँ ॥५०॥ आपके मनमें रतियुद्ध करनेकी ही इच्छा है। स्त्रियोंका अभिप्राय जाननेमें निपुण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समझकर ही महाराज शुंभने इतनी बड़ी सेनाके साथ मुझे आपके पास भेजा है। हे महाभागे ! आप बड़ी चतुर हैं। अब मेरी मधुर बातें सुनिए ॥५१॥५२॥ आप तीनों लोकोंके अधिपति और देवताओंका भी गर्व खर्व करनेवाले राजा शुंभको अपना पति बना लें और उनकी पटरानी बनकर उत्तम प्रकारके भोगोंका उपभोग करें ॥ ५३ ॥ महाबाहु शुंभ कामशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता हैं। वे रतियुद्धमें आपको अवश्य परास्त कर देंगे। जब आप तरह-तरहके हाव-भाव (नखरे) करेंगी, तब वे भी आपके प्रति कामुकभावका प्रदर्शन करेंगे ॥ ५४ ॥ आपकी संगिनी कालिका हाव-भाव-विलासकी साक्षिणी बनकर आपके साथ रहेगी। इस प्रकार कामशास्त्रमें निपुण हमारे महाराज रतियुद्धके द्वारा जीतकर थक जानेपर आपको सुखकी सेजपर सुलायेंगे। वे अपने नखाघातसे आपकी देहपर नखोंसे लाल-लाल दाग बना देंगे और दाँतोंसे काट-काटकर आपके अधरोष्ठको खण्डित कर देंगे ॥५५॥५६॥ मेरे महाराज जब आपको पसीनेसे तर कर देंगे, तब आपकी रतियुद्धकी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी ॥ ५७ ॥ हे प्रिये ! आपको देखते ही महाराज शुंभ सर्वथा आपके वशीभूत हो जायँगे। अतएव आप मेरी उचित, कल्याणकारी

विदित्वा मां त्वत्सकाशं नराधिपः ॥५१॥ प्रेषयामास शुम्भोऽद्य बलेन महताऽऽवृतम् ॥ चतुराऽसि महाभागे शृणु मे वचनं मृदु॥५२॥ भज शुम्भं त्रिलोकेशं देवदर्पनिबर्हणम् ॥ पट्टराज्ञी प्रिया भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ ५३ ॥ जेष्यति त्वां महाबाहुः शुम्भः कामबलार्थवित् ॥ विचित्रान्कुरु हावांस्त्वं सोऽपि भावान्करिष्यति ॥ ५४ ॥ भविष्यति कालिकेयं तत्र वै नर्मसाक्षिणी ॥ एवं संगरयोगेन पतिर्मे परमार्थवित् ॥ ५५ ॥ जित्वा त्वां सुखशय्यायां परिश्रांतां करिष्यति ॥ रक्तदेहां नखाघातैर्दन्तैश्च खंडिताधराम् ॥ ५६ ॥ स्वेदक्लिन्नां प्रभग्नां त्वां संविधास्यति भूपतिः ॥ भविता मानसः कामो रतिसंग्रामजस्तव ॥ ५७ ॥ दर्शनाद्वश एवास्ते शुम्भः सर्वात्मना प्रिये ॥ वचनं कुरु मे पथ्यं हितकृच्चापि पेशलम् ॥ ५८ ॥ भज शुम्भं गणाध्यक्षं माननीयातिमानिनी ॥ मंदभाग्याश्च ते नूनं ह्यस्त्रयुद्धप्रियाश्च ये ॥ ५९ ॥ न तदर्हाऽसि कान्ते त्वं सदा सुरतवल्लभे ॥ अशोकं कुरु राजानं पादाघातविकासितम् ॥ ६० ॥ बकुलं सीधुसेकेन तथा कुरबकं कुरु ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा विररामासौ वचनं धूम्रलोचनः ॥ प्रत्युवाच तदा काली प्रहस्य ललितं वचः ॥ १ ॥ विदूषकोऽसि जाल्म त्वं

तथा नेक सलाह अवश्य मान लीजिए ॥५८॥ आप बहुत ही मानवती महिला हैं। अतएव गणराज्यके अधिपति महाराज शुंभके साथ विवाहसंबंध करके आप समस्त संसारकी माननीया बन जायँगी। जिन्हें शस्त्रयुद्ध प्रिय है, वे बड़े अभागे प्राणी हैं ॥ ५९ ॥ हे कान्ते ! आप शस्त्रयुद्धके योग्य नहीं हैं। क्योंकि आप जैसी सुंदरीको तो रतियुद्ध ही प्रिय होना चाहिये। जैसे कामिनीके पदप्रहारसे अशोक विकसित हो जाता है, उसी प्रकार आप मेरे महाराजकी सारी कामपीड़ा दूर करके उन्हें सब तरहसे शोकरहित कर दें। जैसे मदिराके कुल्लेसे मौलसिरी और आलिङ्गनसे कुरबक (कटसरैया) विकसित हो जाता है, उसी प्रकार आपके मुखका आसव तथा आलिंगन पाकर वे भी कृतकृत्य हो जायँगे ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

(भगवती द्वारा धूम्रलोचनका वध) व्यासजी बोले-हे राजन् ! इतनी बातें कहकर धूम्रलोचन चुप हो गया। तब बड़ी जोरसे हँसकर भगवती काली बोलीं—॥ १ ॥ अरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धूर्त ! तू तो पूरा विदूषक (हँसोड़) है और नटों जैसी बात करता है । तू व्यर्थ चिकनी-चुपड़ी बातें करके हमारे हृदयमें कामवासना जगाना चाहता है ? ॥२॥ अरे मूढमति ! तू बलवान् है और तेरे साथ बड़ी भारी सेना आर्य हुई है । दुष्ट शुंभने तुझे लड़नेके लिए भेजा है । अतएव अब व्यर्थको बकवास छोड़कर युद्ध कर ॥ ३ ॥ ये देवी कुपित होकर शुंभ, निशुंभ, तुझे तथा अन्य सभी बलवान् दैत्योंको मारकर अपने स्थानको लौट जायँगी ॥४॥ कहाँ वह मूर्ख शुंभ और कहाँ विश्वमोहिनी जगदंबा । संसारमें इन दोनोंका विवाह सर्वथा असंभव है ॥५॥ कितनी ही कामार्त सिंहिनी क्या सियारको अपना पति बना सकती है ? इसी प्रकार कामातुरा हथिनी गधेको और गाय क्या गवय (लीलगाय) को पतिरूपमें चुन सकती है ? कदापि नहीं ॥६॥ तू जाकर शुंभ-निशुंभसे मेरी यह सच्ची बात कह दे कि तुम या तो मेरे साथ युद्ध करो अथवा यह भूमि त्यागकर तत्काल पाताल चले जाओ ॥ ७॥ व्यासजी बोले—हे महाभाग !

शैलूष इव भाषसे ॥ वृथा मनोरथांश्चित्ते करोषि मधुरं वदन् ॥ २ ॥ बलवान्बलसंयुक्तः प्रेषितोऽसि दुरात्मना ॥ कुरु युद्धं वृथा वादं मुंच मूढम-तेऽधुना ॥ ३ ॥ हत्वा शुम्भं निशुम्भं च त्वदन्यान्वा बलाधिकान् ॥ देवी क्रुद्धा शराघातैर्व्रजिष्यति निजालयम् ॥ ४ ॥ क्वासौ मंदमतिः शुम्भः क्व वा विश्वविमोहिनी ॥ अयुक्तः खलु संसारे विवाहविधिरेतयोः ॥ ५ ॥ सिंही किं त्वतिकामार्ता जंबुकं कुरुते पतिम् ॥ करिणी गर्दभं वापि गवयं सुरभिः किमु ॥ ६ ॥ गच्छ शुम्भं निशुम्भं च वद सत्यं वचो मम ॥ कुरु युद्धं न चेद्याहि पातालं तरसाऽधुना ॥७॥ व्यास उवाच ॥ कालि-कायाः वचः श्रुत्वा स दैत्यो धूम्रलोचनः ॥ तामुवाच महाभागः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ८ ॥ दुर्दर्शे त्वां निहत्याजौ सिंहं च मदगर्वितम् ॥ गृहीत्वैतां गमिष्यामि राजानं प्रत्यहं किल ॥९॥ रसभङ्गभयात्कालि बिभेमि त्विह सांप्रतम् ॥ नोचेत्त्वां निशितैर्बाणैर्हन्म्यद्य कलहप्रिये ॥१०॥ कालिकोवाच॥ किं निकत्थसि मंदात्मन्नायं धर्मो धनुष्मताम् ॥ स्वशक्त्या मुंच विशिखान्गंताऽसि यमसंसदि ॥११॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्यः संगृह्य कार्मुकं दृढम् ॥ कालिकां तां शरासारैर्ववर्षातिशिलाशितैः ॥ १२ ॥ देवास्तु प्रेक्षकास्तत्र विमानवरसंस्थिताः ॥ तां स्तुवन्तो जयेत्यूचुर्देवीं शक्रपुरोगमाः ॥ १३ ॥ तयोः परस्परं युद्धं प्रवृत्तं चातिदारुणम् ॥ बाणखड्गगदाशक्तिमुसलादिभिरुत्कटम् ॥ १४ ॥ कालिका बाणपातैस्तु हत्वा

कालिकाके वचन सुननेके बाद आँखें लाल करके धूम्रलोचनने कहा—॥ ८॥ अरी काली-कलूटी महिला ! अभी तुझे और इस सिंहको मारकर मैं इन्हें पकड़कर राजा शुंभके पास ले जाऊँगा ॥ ९ ॥ अरी काली ! मैं शृंगाररस नीरस हो जानेके भयसे डरता हूँ । नहीं तो ओ कलहप्रिये ! अभी तुझे अपने बाणोंसे मार डालता ॥ १० ॥ भगवती कालिका बोलीं—अरे मन्दबुद्धि ! क्यों व्यर्थ डींग मारता है ? धनुर्धारी वीरोंको ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं । तू पूरी शक्तिके साथ बाण चला । मैं अभी तुझको यमलोक भेज दूँगी ॥११॥ व्यासजीने कहा कि यह वचन सुनते ही धूम्रलोचन दैत्यने धनुष सम्हाला और कालिकापर अपने अति तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १२ ॥ उस समय देवता अपने-अपने विमानोंमें बैठकर वह युद्ध देखने लगे । सहसा इन्द्र आदि देवताओंने स्तुति करके भगवतीकी जयजयकार की ॥१३॥ इधर कालिका और धूम्रलोचनमें तीर, तलवार, गदा, बर्छी तथा मुसल आदि शस्त्रों द्वारा भयानक युद्ध होने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगा ॥ १४ ॥ भगवती कालिकाने पहले अपने बाणोंसे उसके रथमें जुते खच्चरोंको मार डाला । उसके बाद बाणवर्षा करके रथको भी चूर्ण कर दिया और अट्टहास करके बारंबार हँसने लगीं ॥ १५ ॥ हे जनमेजय ! तब वह दैत्य दूसरे रथपर सवार हो गया और बड़े क्रोधके साथ कालिकापर बाणवर्षा करने लगा ॥ १६ ॥ भगवती कालिका भी बड़ी फुर्तीके साथ उसके बाणोंको काटती हुई उस दानवपर अपने बाण बरसाने लगीं ॥ १७ ॥ उन बाणोंकी मारसे उसके पृष्ठपोषक हजारों दैत्य मारे गये । उसी समय कालिकाने उसके खच्चरों तथा सारथीको मारकर वह दूसरा रथ भी नष्ट कर दिया । तदनन्तर कालिकाने अपने सर्पसदृश बाणोंसे उसका धनुष काट डाला । ऐसा करके देवताओंको हर्षित करती हुई भगवतीने शंख बजाया ॥ १८ ॥ १९ ॥ रथ नष्ट हो जानेपर अत्यन्त क्रुद्ध धूम्रलोचन एक लौहमय तथा बहुत मजबूत परिघ लेकर दौड़ता हुआ पैदल ही चला । कालके समान भयंकर वह दैत्य वचनोंसे धम-

पूर्वं खरानथ ॥ बभञ्ज तद्रथं व्यूढं जहास च मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ स चान्यं रथमारूढः कोपेन प्रज्वलन्निव ॥ बाणवृष्टिं चकारोग्रां कालिकोपरि भारत ॥ १६ ॥ साऽपि चिच्छेद तरसा तस्य बाणानसङ्गतान् ॥ मुमोचान्यानुग्रवेगान्दानवोपरि कालिका ॥ १७ ॥ तैर्बाणैर्निहतास्तस्य पार्ष्णिग्राहाः सहस्रशः ॥ बभंज च रथं वेगात्सूतं हत्वा खरानपि ॥ १८ ॥ चिच्छेद तद्धनुः सद्यो बाणैरुरगसन्निभैः ॥ मुदं चक्रे सुराणां सा शङ्खनादं तथाऽकरोत् ॥ १९ ॥ विरथः परिघं गृह्य सर्वलोहमयं दृढम् ॥ आजगाम रथोपस्थं कुपितो धूम्रलोचनः ॥ २० ॥ वाचा निर्भर्त्सयन्कालीं करालः कालसन्निभः ॥ अद्यैव त्वां हनिष्यामि कुरूपेपिं गलोचने ॥ २१ ॥ इत्युक्त्वा सहसाऽऽगत्य परिघं क्षिपते यदा ॥ हुंकारेणैव तं भस्म चकार तरसाऽम्बिका ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा भस्मीकृतं दैत्यं सैनिका भयविह्वलाः ॥ चक्रुः पलायनं सद्यो हा तातेति ब्रुवन्पथि ॥ २३ ॥ देवास्तं निहतं दृष्ट्वा दानवं धूम्रलोचनम् ॥ मुमुचुः पुष्पवृष्टिं ते मुदिता गगने स्थिताः ॥ २४ ॥ रणभूमिस्तदा राजन्दारुणा समपद्यत ॥ निहतैर्दानवैरश्वैः खरैश्च वारणैस्तथा ॥ २५ ॥ गृध्राः काका वटाः श्येना वरफा जंबुकास्तथा ॥ ननृतुश्चुक्रुशुः प्रेतान्पतितान्रणभूमिषु ॥ २६ ॥ अंबिका तद्रणस्थानं त्यक्त्वा दूरस्थलांतरे ॥ गत्वा चकार चाप्युग्रं शङ्खनादं भयप्रदम् ॥ २७ ॥ तं श्रुत्वा दरशब्दं तु शुम्भः सद्मनि संस्थितः ॥ दृष्ट्वाऽथ दानवान्भग्नानागता-

काता हुआ भगवती कालिकासे कहने लगा—अरी कुरूपा और कंजी आँखोंवाली नारी ! अभी मैं तुझे मार डालूँगा ॥ २० ॥ २१ ॥ ऐसा कहकर वह ज्यों ही कालिकापर परिघ चलानेको उद्यत हुआ, त्यों ही भगवती अंबिकाने अपने हुङ्कारसे उसे भस्म कर दिया ॥२२॥ इस प्रकार धूम्रलोचनको भस्म देखकर बाकी दैत्यसैनिक भयभीत होकर 'हाय बाप' कहते हुए तत्काल निकल भागे ॥ २३ ॥ धूम्रलोचन दानवका निधन देखकर आकाशमें विद्यमान देवता प्रमुदित होकर अंबिकापर पुष्पवर्षा करने लगे ॥२४॥ हे राजन् ! उस समय रणभूमि बड़ी भयानक दीखने लगी । क्योंकि वहाँ मरे हुए दानवों, घोड़ों, खच्चरों और हाथियोंसे सारी जमीन पट गयी थी ॥ २५ ॥ गिद्ध, कौए, बाज, सियार, पिशाच और प्रेत युद्धभूमिमें पड़े मुर्दोंको देख-देखकर नाचते हुए चिल्लाने लगे ॥ २६ ॥ तब भगवती अंबिका रणस्थली त्यागकर कुछ दूर चली गयीं और उन्होंने भयदायक शंखनाद किया ॥ २७ ॥ अपने महलमें बैठे हुए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुम्भको भी वह निनाद सुनायी पड़ा। उसी समय उसने रुधिरसे भींगे बहुतेरे दैत्योंको भी भागकर आते देखा ॥२८॥ बहुतसे दैत्योंके हाथ-पैर कट गये थे। वे खटियापर लदकर आ रहे थे। बहुतसे दैत्योंकी पीठ, कमर और गर्दन टूट गयी थी। अतएव वे जोरोंसे चीख रहे थे॥ २९॥ उन्हें देखकर शुंभ-निशुंभने पूछा कि धूम्रलोचन कहाँ गया? तुम लोग भाग क्यों आये? उस सुमुखी महिलाको क्यों नहीं लाये?॥ ३०॥ ओ मूर्खों! बताओ तो सही कि मेरी सेना कहाँ है? और यह भयदायिनी शंखध्वनि कौन कर रहा है॥३१॥ सैनिक बोले—कालिकाने रणभूमिमें सारी असुरसेना नष्ट कर दी और धूम्रलोचनको मार डाला। उसने ऐसा काम किया है कि जिसे कोई मनुष्य नहीं कर सकता॥ ३२॥ यह शंखध्वनि अंबिकाकी है, जो समस्त गगनमण्डलमें गूँज उठी है। इसे सुनकर देवता प्रमुदित हो रहे हैं और दैत्योंमें शोक छा गया है॥ ३३॥ हे राजन्! जब देवीके सिंह और कालिकाकी बाणवर्षाने सब

न्रुधिरोक्षितान् ॥२८॥ छिन्नपादकराक्षांश्च मञ्चकारोपितानपि ॥ भग्नपृष्ठकटिग्रीवान्क्रन्दमानाननेकशः ॥ २९॥ वीक्ष्य शुम्भो निशुम्भश्च क्व गतो धूम्रलोचनः ॥ कथं भग्नाः समायाता नानीता किं वरानना ॥ ३०॥ सैन्यं कुत्र गतं मन्दाः कथयन्तु यथोचितम् ॥ कस्यायं शङ्खनादोऽद्य श्रूयते भयवर्धनः ॥ ३१॥ गणा ऊचुः ॥ बलं च पातितं सर्वं निहतो धूम्रलोचनः ॥ कृतं कालिकया कर्म रणभूमावमानुषम् ॥ ३२॥ शङ्खनादोऽम्बिकायास्तु गगनं व्याप्य राजते ॥ हर्षदः सुरसङ्घानां दानवानां च शोककृत् ॥३३॥ यदा निपातिताः सर्वे तेन केसरिणा विभो ॥ रथा भग्ना हयाश्चैव बाणपातैर्विनाशिताः ॥ ३४॥ गगनस्थाः सुराश्चक्रुः पुष्पवृष्टिं मुदान्विताः ॥ दृष्ट्वा भग्नं बलं सर्वं पातितं धूम्रलोचनम् ॥ ३५॥ निश्चयस्तु कृतोऽस्माभिर्जयो नैव भवेदिति ॥ विचारं कुरु राजेन्द्र मन्त्रिभिर्मंत्रवित्तमैः ॥ ३६॥ विस्मयोऽयं महाराज यदेका जगदम्बिका ॥ भवद्भिः सह युद्धाय संस्थिता सैन्यवर्जिता ॥ ३७॥ निर्भयैकाकिनी बाला सिंहारूढा मदोत्कटा ॥ चित्रमेतन्महाराज भासतेऽद्भुतमंजसा ॥ ३८॥ सन्धिर्वा विग्रहो वाऽद्य स्थानं निर्याणमेव च ॥ मन्त्रयित्वा महाराज कुरु कार्यं यथारुचि ॥ ३९॥ तत्सन्निधौ बलं नास्ति तथापि शत्रुतापन ॥ पार्ष्णिग्राहाः सुराः सर्वे भविष्यन्ति किलापदि ॥४०॥ समये तत्समीपस्थौ ज्ञातौ च हरिशङ्करौ ॥ लोकपालाः समीपेऽद्य वर्तन्ते गगने स्थिताः ॥ ४१॥

दैत्यसैनिकोंको मार डाला, रथ चूर कर दिया और घोड़े मार डाले। तब देवताओंने बहुत प्रसन्न होकर उनपर पुष्पवर्षा की। समस्त सेनाका विनाश और धूम्रलोचनका वध देखकर हम लोगोंको विश्वास हो गया है कि हमें विजय नहीं प्राप्त हो सकती। बिना किसी सेनाके वह मदमत्त महिला सिंहपर सवार होकर निर्भय भावसे अकेली खड़ी दूसरे युद्धकी प्रतीक्षा कर रही है। हे महाराज! यह बड़े विस्मयकी बात है। अतएव आप अच्छे-अच्छे मन्त्रियोंके साथ इस विषयपर विचार करिए। हे राजन्! हमें उस देवीके सभी कार्य विचित्र और अद्भुत दिखायी देते हैं॥ ३४-३८॥ हे महाराज! मन्त्रियोंसे परामर्श करके आप अपनी रुचिके अनुसार सन्धि, युद्ध या पलायनका निर्णय करिए॥ ३९॥ हे शत्रुको सन्ताप देनेवाले प्रभु! यद्यपि उसके पास सेना नहीं है, किन्तु यह निश्चय समझिए कि उस देवीपर कोई विपत्ति आते ही सब देवता उसकी सहायताके लिए आ पहुँचेंगे॥ ४०॥ समय आनेपर विष्णु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और शिव उसकी सहायताके लिए उपस्थित हो जायँगे। सब लोकपाल उसके पास ही आकाशमें विद्यमान हैं ॥ ४१ ॥ हे सुरतापन ! सभी देवता, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य ये सब समय आनेपर उसके सहायक हो जायँगे ॥ ४२ ॥ हमारा ख्याल तो ऐसा है कि अम्बिका किसीसे सहायता अथवा कोई कार्य करानेकी आशा नहीं करती ॥ ४३ ॥ वह अकेली सचराचर समस्त संसारको नष्ट कर सकती है। तब सब दानवोंको नष्ट करनेमें कितनी देर लगेगी ? ॥ ४४ ॥ ऐसा समझकर आपको जैसी रुचि हो, वैसा करिए। सेवकोंका यह कर्तव्य है कि वे अपने स्वामीके समक्ष हितकारी, सत्य और परिमित बात कहें। सो हमने अपना कर्तव्य पालन कर दिया ॥ ४५ ॥ व्यासजी बोले—शत्रुसेनाको पीस देनेवाले शुंभने सैनिकोंके वचन सुनकर अपने लघु भ्राता निशुंभको बुलाया और एकान्तमें लेजाकर कहा—॥ ४६ ॥ भाई ! आज अकेली कालिकाने धूम्रलोचनको मार डाला और सारी असुरसेना नष्ट कर दी। जो थोड़ेसे सैनिक बचे थे, वे भी भाग आये हैं ॥४७॥ उधर मदमाती अंबिका शंखनाद कर रही है। बड़े-बड़े ज्ञानी भी कालकी दुर्ज्ञेय गतिको नहीं जान सकते ॥४८॥ समयके

रक्षोगणाश्च गन्धर्वाः किन्नरा मानुषास्तथा ॥ तत्सहायाश्च मन्तव्याः समये सुरतापन ॥४२॥ अस्माकं मतिमानेन ज्ञायते सर्वथेदृशम् ॥ अम्बिकायाः सहायाशा तत्कार्याशा न काचन ॥ ४३ ॥ एका नाशयितुं शक्ता जगत्सर्वं चराचरम् ॥ का कथा दानवानां तु सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ४४ ॥ इति ज्ञात्वा महाभाग यथारुचि तथा कुरु ॥ हितं सत्यं मितं वाक्यं वक्तव्यमनुयायिभिः ॥ ४५ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शुम्भः परबलार्दनः ॥ कनीयांसं समानीय पप्रच्छ रहसि स्थितः ॥४६॥ भ्रातः कालिकयाऽद्यैव निहतो धूम्रलोचनः ॥ बलं च शातितं सर्वं गणाः भग्नाः समागताः ॥ ४७ ॥ अम्बिका शंखनादं वै करोति मदगर्विता ॥ ज्ञानिनां चैव दुर्ज्ञेया गतिः कालस्य सर्वथा ॥ ४८ ॥ तृणं वज्रायते नूनं वज्रं चैव तृणायते ॥ बलवान्बलहीनः स्याद्दैवस्य गतिरीदृशी ॥ ४९ ॥ पृच्छामि त्वां महाभाग किं कर्तव्यमतः परम् ॥ अभोग्या चाम्बिका नूनं कारणादत्र चागता ॥५०॥ युक्तं पलायनं वीर युद्धं वा वद सत्वरम् ॥ लघुं ज्येष्ठं विजानामि त्वामहं कार्यसंकटे ॥५१॥ निशुंभ उवाच ॥ न वा पलायनं युक्तं न दुर्गग्रहणं तथा ॥ युद्धमेव परं श्रेयः सर्वथैवानयाऽनघ ॥ ५२ ॥ ससैन्योऽहं गमिष्यामि रणे तु प्रवराश्रितः ॥ हत्वा तामागमिष्यामि तरसा त्वबलामिमाम् ॥ ५३ ॥ अथवा बलवद्दैवादन्यथा चेद्भविष्यति ॥ मृते मयि त्वया कार्यं विमृश्य च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा

फेरसे तृण वज्र बन जाता है, वज्र तृण हो जाता है और बलवान् निर्बल बन जाता है। दैवकी ऐसी विचित्र गति है ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! प्रश्न यह है कि अब क्या करना चाहिए ? मुझे ऐसा लगता है कि अंबिका किसी विशेष उद्देश्यसे यहाँ आयी हुई है। वह हमारे भोग करने योग्य नहीं है ॥५०॥ हे वीर ! तुम मुझे शीघ्र यह बताओ कि अब हम निकल भागें या उसके साथ लड़ें ? यद्यपि तुम मेरे छोटे भाई हो, तथापि इस संकटके समय मैं तुम्हें अपना बड़ा भाई समझता हूँ ॥५१॥ निशुंभने कहा—हे अनघ ! इस समय न पलायन करना उचित होगा और न किलेमें छिपना ही ठीक होगा। अब तो युद्ध ही श्रेयस्कर मार्ग है ॥ ५२ ॥ नामी-नामी सेनापतियोंको लेकर मैं अपनी सेनाके साथ रणभूमिमें जाऊँगा और कालिकाको मारकर अंबिकाको पकड़कर यहाँ ले आऊँगा ॥ ५३ ॥ कदाचित् दैवकी प्रबलतावश विपरीत परिणाम निकले तो मेरे मर जानेपर आप जो उचित समझें, सो सोचकर करिएगा ॥ ५४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये वचन सुनकर शुंभने अपने छोटे भाई निशुंभसे कहा कि अभी तुम ठहरो। पहले चण्ड-मुण्ड ये दोनों भाई अपनी सेनाके साथ जायँ ॥५५॥ शशक (खरगोश) को पकड़नेके लिए हाथीका जाना उचित न होगा। चण्ड-मुंड बड़े बलवान हैं। वे दोनों कालिकाको मारनेमें सर्वथा समर्थ होंगे ॥ ५६ ॥ अपने भाईसे ऐसा कह और उससे परामर्श करके राजा शुंभने सामने ही बैठे हुए चण्ड-मुण्डसे कहा—॥५७॥ हे चण्ड-मुण्ड! तुम दोनों अपनी सेना लेकर उस निर्लज्ज और मदमाती अबलाका वध करनेके लिए जाओ ॥ ५८ ॥ हे सेनापतियो! तुम रणभूमिमें जाओ और उस कंजी आँखोंवाली कालिकाको मारकर अंबिकाको यहाँ पकड़ लाओ। यह महान् कार्य तुम्हीं दोनोंको करना होगा ॥ ५९ ॥ पकड़ी जानेपर भी यदि वह मदगर्विता अंबिका न आये तो अतिशय तीक्ष्ण बाणोंसे उस युद्धलोलुपा अबलाको भी मार डालना ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

शुम्भः प्रोवाच चानुजम् ॥ तिष्ठ त्वं चंडमुंडौ द्वौ गच्छेतां बलसंयुतौ ॥ ५५ ॥ शशकग्रहणायात्र न युक्तं गजमोचनम् ॥ चण्डमुण्डौ महावीरौ तां हंतुं सर्वथा क्षमौ ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वा भ्रातरं शुम्भः संभाष्य च महाबलौ ॥ उवाच वचनं राजा चंडमुंडौ पुरःस्थितौ ॥ ५७ ॥ गच्छतं चंडमुंडौ द्वौ स्वसैन्यपरिवारितौ ॥ हंतुं तामबलां शीघ्रं निर्लज्जां मदगर्विताम् ॥ ५८ ॥ गृहीत्वाऽथ निहत्याजौ कालिकां पिंगलोचनाम् ॥ आगम्यतां महाभागौ कृत्वा कार्यं महत्तरम् ॥ ५९ ॥ सा नायाति गृहीताऽपि गर्विता चाम्बिका यदि ॥ तदा बाणैर्महातीक्ष्णैर्हन्तव्याऽऽहवमंडिता ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इत्याज्ञप्तौ तदा वीरौ चण्डमुण्डौ महाबलौ ॥ जग्मतुस्तरसैवाजौ सैन्येन महताऽन्वितौ ॥ १ ॥ दृष्ट्वा तत्र स्थितां देवीं देवानां हितकारिणीम् ॥ ऊचतुस्तौ महावीर्यौ तदा सामान्वितं वचः ॥ २ ॥ बाले त्वं किं न जानासि शुम्भं सुरबलार्दनम् ॥ निशुम्भं च महावीर्यं तुराषाड्विजयोद्धतम् ॥ ३ ॥ त्वमेकाऽसि वरारोहे कालिकासिंहसंयुता ॥ जेतुमिच्छसि दुर्बुद्धे शुम्भं सर्वबलान्वितम् ॥ ४ ॥ मतिदः कोऽपि ते नास्ति नारी वाऽपि नरोऽपि वा ॥ देवास्त्वां प्रेरयंत्येव विनाशाय तवैव ते ॥ ५ ॥ विमृश्य कुरु तन्वंगि कार्यं स्वपरयोर्बलम् ॥ अष्टादशभुजत्वात्त्वं गर्वं च कुरुषे मृषा ॥ ६ ॥ किं भुजैर्बहुभिर्व्यर्थैरायुधैः किं श्रमप्रदैः ॥ शुंभस्याग्रे सुराणां वै जेतुः समरशालिनः ॥ ७ ॥ ऐरावतकरच्छेत्तुर्दंतिदा-

(चण्ड-मुण्डका वध) व्यासजी बोले—हे राजन्! जब महाबली चंड-मुंडको शुंभने ऐसी आज्ञा दी, तब वे दोनों अपनी विशाल सेना सजाकर बड़े वेगसे रणभूमिकी ओर चल पड़े ॥ १ ॥ वहाँ देवताओंकी हितकारिणी देवीको विद्यमान देखकर वे दोनों महाबलवान् दानव मीठी-मीठी बातोंमें समझाते हुए अंबिकासे कहने लगे—॥ २ ॥ हे बाले! क्या आप देव-सेनाके विनाशक शुम्भ तथा इन्द्रपर विजय प्राप्त करनेके कारण उद्धत निशुंभको नहीं जानतीं? ॥ ३ ॥ हे सुजघने! कालिका और सिंहके साथ आप अकेली हैं। ऐसी स्थितिमें हे दुर्बुद्धे! आप उन्हीं दोनोंकी सहायतासे सब प्रकारकी सेनासे सुसज्जित शुंभको जीतना चाहती हैं? ॥ ४ ॥ कोई स्त्री या पुरुष क्या आपको सलाह देनेवाला नहीं है? रही देवताओंकी बात, सो वे तो आपको नष्ट करा डालनेके लिए ही उभाड़ रहे हैं ॥५॥ हे तन्वङ्गि! अपना और शत्रुका बल देखकर ही युद्ध करना चाहिए। अठारह भुजाओंपर यदि आपको अभिमान हो तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह भी व्यर्थ है ॥ ६ ॥ क्योंकि देवताओंको पराजित करने और रणभूमिमें जूझनेवाले शुम्भके समक्ष आपकी ये भुजायें बेकार हो जायँगी । इन्हें शस्त्रास्त्र ढोनेका व्यर्थ परिश्रम करना पड़ेगा । ७ ॥ हे कान्ते ! तुम वृथा गर्व करती हो । हे विशालनयनी ! ऐरावतकी सूँड़ काटने और दाँत तोड़नेवाले तथा देवताओंके विजेता शुम्भकी रुचिके अनुकूल कार्य करिए । आप मेरी भली बात मान लें । यदि ऐसा करेंगी तो आपको सुख मिलेगा और सब दुःख नष्ट हो जायँगे ॥८॥९॥ बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिए कि दुःखदायी कामोंको दूरसे ही त्याग दे । क्योंकि शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले विद्वान् सुखदायक कार्य ही करते हैं ॥१०॥ हे कोकिलाके समान मधुर बाणी बोलनेवाली सुन्दरी ! आप बड़ी चतुर नारी हैं । आप शुम्भके महान् बलको प्रत्यक्ष देखें । समस्त देवताओंको पीसकर उन्होंने कितना साम्राज्य बढ़ा लिया है ? ॥ ११ ॥ अतएव प्रत्यक्ष प्रमाणको त्यागकर अनुमानका पीछा करना व्यर्थ है, विद्वान् लोग किसी सन्देहात्मक कार्यमें हस्तक्षेप नहीं करते ॥ १२ ॥ युद्धमें कठिनाईसे पराजित होनेवाले शुम्भ देवताओंके सबसे बड़े शत्रु हैं । इसी कारण दैत्यराजके द्वारा सताये हुए देवता आपको युद्धके लिए उभाड़

रणकारिणः ॥ जयिनः सुरसंघानां कार्यं कुरु मनोगतम् ॥ ८ ॥ वृथा गर्वायसे कान्ते कुरु मे वचनं प्रियम् ॥ हितं तव विशालाक्षि सुखदं दुःखना-
शनम् ॥ ६ ॥ दुःखदानि च कार्याणि त्याज्यानि दूरतो बुधैः ॥ सुखदानि च सेव्यानि शास्त्रतत्त्वविशारदैः ॥ १० ॥ चतुराऽसि पिकालापे पश्य
शुंभबलं महत् ॥ प्रत्यक्षं सुरसंघानां मर्दनेन महोदयम् ॥ ११ ॥ प्रत्यक्षं च परित्यज्य वृथैवानुमितिः किल ॥ संदेहसहिते कार्ये न विपश्चित्प्रवर्तते
॥ १२ ॥ शत्रुः सुराणां परमः शुंभः समरदुर्जयः ॥ तस्मात्त्वां प्रेरयंत्यत्र देवा दैत्येशपीडिताः ॥ १३ ॥ तस्मात्तद्वचनैः स्निग्धैर्वंचिताऽसि शुचि-
स्मिते ॥ दुःखाय तव देवानां शिक्षा स्वार्थस्य साधिका ॥ १४ ॥ कार्यमित्रं परिक्षिप्य धर्ममित्रं समाश्रयेत् ॥ देवाः स्वार्थपराः कामं त्वामहं सत्यम-
ब्रवम् ॥१५॥ भज शुम्भं सुरेशानं जेतारं भुवनेश्वरम् ॥ चतुरं सुन्दरं शूरं कामशास्त्रविशारदम् ॥१६॥ ऐश्वर्यं सर्वलोकानां प्राप्स्यसे शुम्भशासनात् ॥
निश्चयं परमं कृत्वा भर्तारं भज शोभनम् ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा चंडस्य जगदम्बिका ॥ मेघगम्भीरनिनदं जगर्ज पुनर-
ब्रवीत् ॥ १८ ॥ गच्छ जाल्म मृषा किं त्वं भाषसे वंचकं वचः ॥ त्यक्त्वा हरिहरादींश्च शुम्भं कस्माद्भजे पतिम् ॥ १६ ॥ न मे कश्चित्पतिः कार्यो

रहे हैं ॥१३॥ हे सुन्दर मुसकानवाली देवी ! आप देवताओंकी मीठी-मीठी बातें सुनकर धोखेमें आ गयी हैं । उन्होंने अपना स्वार्थ साधने और आपको संकटमें डालने लिए ही ऐसी शिक्षा दी है ॥ १४ ॥ अपना काम बनानेके लिए मैत्री करनेवाले व्यक्तिको त्यागकर धर्ममार्गपर अग्रसर करनेवाले मित्रपर ही भरोसा करना चाहिए । यह सच्ची बात मैं आपको पहले हो बता चुका हूँ कि देवता बड़े स्वार्थी हैं ॥ १५ ॥ अतएव आप देवनायकोंके विजेता, तीनों लोकोंके अधिपति, चतुर, सुन्दर, वीर और कामशास्त्रके विशेषज्ञ शुम्भका साथ दें ॥ १६ ॥ एकमात्र शुम्भके ही राज्यमें आप समस्त विश्वका वैभव प्राप्त कर सकेंगी । अतएव दृढ़ निश्चय करके आप परम सुन्दर शुंभको अपना पति बना लें ॥१७॥ व्यासजी बोले—चण्डके इन वचनोंको सुनकर जगदंबाने मेघके समान घोर गर्जन किया । फिर बोलीं—अरे धूर्त ! जा, भाग जा । तू फूट डालनेवाली व्यर्थकी बातें क्यों करता है ? विष्णु-शिव आदि महान् देवताओंको छोड़कर मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुम्भको अपना पति क्यों बनाऊँ ? ॥ १८ ॥ १९ ॥ न मुझे किसीको पति बनाना है और न मुझको पतिकी आवश्यकता ही है। क्योंकि मैं स्वयं जगत्के सब प्राणियोंकी अधीश्वरी हूँ ॥२०॥ मैंने बहुतेरे शुम्भ और हजारों निशुम्भ देखे हैं। पूर्वकालमें मैंने सैकड़ों दानवोंका वध किया है ॥ २१ ॥ मेरे देखते-देखते युग-युगमें अगणित देवताओंके समूह नष्ट हो चुके हैं। आज दैत्यसमूहके नष्ट होनेका समय आ उपस्थित हुआ है ॥ २२ ॥ आज यहाँ दैत्योंका संहार करनेवाला काल आ पहुँचा है। अतएव तू अपनी सन्ततिकी रक्षाके लिए व्यर्थ प्रयत्न कर रहा है ॥ २३ ॥ हे महामते ! तुम वीरधर्मकी रक्षा करनेके लिए मेरे साथ युद्ध करो। क्योंकि मरण तो निश्चित ही है। इसी कारण महात्मा लोग अपने यशकी रक्षाके लिए प्रयत्नशील रहते हैं ॥ २४ ॥ अब दुष्ट शुंभ तथा निशुंभसे तुम्हारा कोई मतलब न निकलेगा। अब तो वीरधर्मका पालन करो और मरकर सीधे स्वर्ग चले जाओ ॥ २५ ॥ शुंभ-निशुंभ तथा

न कार्यं पतिना सह ॥ स्वामिनी सर्वभूतानामहमेव निशामय ॥२०॥ शुम्भा मे बहवो दृष्टा निशुम्भाश्च सहस्रशः ॥ घातिताश्च मया पूर्वं शतशो दैत्यदानवाः ॥ २१ ॥ ममाग्रे देववृन्दानि विनष्टानि युगे युगे ॥ नाशं यास्यन्ति दैत्यानां यूथानि पुनरद्य वै ॥ २२ ॥ काल एवागतोऽस्त्यत्र दैत्यसंहारकारकः ॥ वृथा त्वं कुरुषे यत्नं रक्षणायात्मसन्ततेः ॥ २३ ॥ कुरु युद्धं वीरधर्मं रक्षार्थं त्वं महामते ॥ मरणं भावि दुस्त्याज्यं यशो रक्ष्यं महात्मभिः ॥ २४ ॥ किं ते कार्यं निशुंभेन शुम्भेन च दुरात्मना ॥ वीरधर्मं परं प्राप्य गच्छ स्वर्गं सुरालयम् ॥ २५ ॥ शुंभो निशुंभश्चैवान्ये ये चात्र तव बांधवाः ॥ सर्वे तवानुगाः पश्चादागमिष्यन्ति सांप्रतम् ॥ २६ ॥ क्रमशः सर्वदैत्यानां करिष्याम्यद्य संक्षयम् ॥ विषादं त्यज मन्दात्मन्कुरु युद्धं विशांपते ॥ २७ ॥ त्वामहं निहष्यामि भ्रातरं तव सांप्रतम् ॥ ततः शुम्भं निशुम्भं च रक्तबीजं मदोत्कटम् ॥ २८ ॥ अन्यांश्च दानवान्सर्वा-न्हत्वाऽहं समरांगणे ॥ गमिष्यामि यथास्थानं तिष्ठ वा गच्छ वा द्रुतम् ॥ २९ ॥ गृहाणास्त्रं वृथा दुष्ट कुरु युद्धं मयाऽधुना ॥ किं जल्पसि मृषा वाक्यं सर्वथा कातरप्रियम् ॥३०॥ व्यास उवाच ॥ तयेत्थं प्रेरितौ दैत्यौ चंडमुंडौ क्रुधान्वितौ ॥ ज्याशब्दं तरसा घोरं चक्रतुर्बलदर्पितौ ॥ ३१ ॥ साऽपि शङ्खस्वनं चक्रे पूरयन्ती दिशो दश ॥ सिंहोऽपि कुपितस्तावन्नादं समकरोद्बली ॥३२॥ तेन नादेन शक्राद्या जहर्षुरमरास्तदा ॥ मुनयो यक्ष-

उनके अन्यान्य बन्धु-बान्धव भी तुम्हारे ही पथका अनुसरण करते हुए वहाँ पहुँचेंगे ॥२६॥ हे मन्दबुद्धि ! आज मैं क्रमशः सब दैत्योंका संहार कर डालूँगी। हे सेनापति ! अब विषाद त्यागकर युद्ध करो ॥ २७ ॥ मैं अभी तुम्हे और तुम्हारे भाईको समाप्त कर दूँगी। उसके बाद शुंभ, निशुंभ, रक्तबीज तथा सभी अन्य दानवोंको समरभूमिमें मारकर मैं अपने स्थानको चली जाऊँगी। मेरी इन बातोंको सुन करके भी तुम्हारी इच्छा हो तो ठहरो, नहीं तो भागकर अपने प्राण बचा लो ॥ २८ ॥ २९ ॥ अरे व्यर्थ मोटाई ढोनेवाले दैत्य ! शस्त्र सम्हाल और अभी मेरे साथ युद्ध कर। कायरोंको प्रिय लगनेवाली व्यर्थकी बातें करके तू क्यों समय नष्ट कर रहा है ? ॥३०॥ व्यासजी बोले—भगवतीके इस प्रकार ललकारनेपर बलवान् चण्ड-मुण्ड बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने धनुषका बड़ा भीषण टंकोर किया ॥३१॥ उसी समय दसों दिशाओंको गुंजायमान करती हुई भगवतीने शंखध्वनि की और बलवान् सिंहने भी कुपित होकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भयानक गर्जन किया ॥ ३२ ॥ भगवतीका शंखनाद सुनकर सब देवता, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, साध्य और किन्नर बहुत प्रसन्न हुए॥ ३३ ॥ उसी समय चंडिका और चंडमें तीर, तलवार तथा गदाप्रहार द्वारा भीषण संग्राम होने लगा । जिसे देखकर कायर पुरुष भयभीत हो गये ॥ ३४ ॥ चंडके छोड़े हुए बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटकर चंडिकाने उग्र रूप धारण किया । फिर चंडपर सर्पकी भाँति भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार वर्षा ऋतुके बाद किसानोंके लिए भयदायक टिड्डियोंका दल आकाशमें छा जाता है। उसी प्रकार रणभूमिका समस्त आकाशमण्डल बाणोंसे भर गया ॥ ३६ ॥ उसी अवसरपर मुण्ड भी अपने सैनिकोंके साथ रणभूमिमें आ धमका । पहुँचते ही वह अत्यन्त क्रोधपूर्वक भयानक बाणवर्षा करने लगा ॥ ३७ ॥ उन अगणित बाणोंके समूहको देखकर भगवती बहुत क्रुद्ध हो गयीं । मारे क्रोधके उनका मुख बादलके समान काला हो गया ॥ ३८ ॥ उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं और आँखें केलेके फूलकी तरह लाल हो उठीं । तब देवीके ललकारसे सहसा काली प्रकट हो गयीं ॥३९॥ वे काली बाघकी खाल पहने और हाथीका चमड़ा ओढ़े थीं।

गन्धर्वाः सिद्धाः साध्याश्च किन्नराः ॥ ३३ ॥ युद्धं परस्परं तत्र जातं कातरभीतिदम् ॥ चण्डिकाचण्डयोस्तीव्रं बाणखड्गगदादिभिः ॥ ३४ ॥ चण्डमुक्ताञ्छरान्देवी चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ मुमोच पुनरुग्रान्सा बाणांश्च पन्नगानिव ॥ ३५ ॥ गगनं छादितं तत्र संग्रामे विशिखैस्तदा ॥ शलभैरिव मेघान्ते कर्षकाणां भयप्रदैः ॥ ३६ ॥ मुण्डोऽपि सैनिकैः सार्धं पपात तरसा रणे ॥ मुमोच बाणवृष्टिं वै क्रुद्धः परमदारुणः ॥ ३७ ॥ बाणजालं महद्दृष्ट्वा क्रुद्धा तत्राम्बिका भृशम् ॥ कोपेन वदनं तस्या बभूव घनसन्निभम्॥३८॥ कदलीपुष्पनेत्रं च भ्रुकुटीकुटिलं तदा॥ निष्क्रान्ता च तदा काली ललाटफलकाद् द्रुतम् ॥३९॥ व्याघ्रचर्माम्बरा क्रूरा गजचर्मोत्तरीयका ॥ मुंडमालाधरा घोरा शुष्कवापीसमोदरा ॥४०॥ खड्गपाशधराऽतीव भीषणा भयदायिनी ॥ खट्वांगधारिणी रौद्रा कालरात्रिरिवापरा ॥ ४१ ॥ विस्तीर्णवदना जिह्वां चालयंती मुहुर्मुहुः ॥ विस्तारजघना वेगाज्जघानासुरसैनिकान् ॥ ४२ ॥ करे कृत्वा महावीरांस्तरसा सा रुषान्विता ॥ मुखे चिक्षेप दैतेयान्पिपेष दशनैः शनैः ॥ ४३ ॥ गजान्घंटान्वितान्हस्ते गृहीत्वा निदधौ मुखे ॥ सारोहान्भक्षयित्वाऽऽजौ साऽट्टहासं चकार ह ॥४४॥ तथैव तुरगानुष्ट्रांस्तथा सारथिभिः सह ॥ निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥ ४५ ॥ हन्यमानं बलं प्रेक्ष्य चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ छादयामासतुर्देवीं बाणासारैरनन्तरैः ॥ ४६ ॥ चण्डश्चण्डकरच्छायं

उनके गलेमें मुण्डोंकी माला पड़ी थी । उनका पेट सूखी बावलीके समान विशाल था । उनका स्वरूप बड़ा क्रूर और भयानक था ॥ ४० ॥ उनकी भीषण आकृति देखकर डर लगता था । वे तलवार, पाश (फाँसीकी रस्सी) और खट्वाङ्ग (अस्त्रविशेष) लिये थीं । उनका भयानक रूप देखकर यही मालूम पड़ता था कि वे मानो दूसरी कालिरात्रि हैं ॥ ४१ ॥ वे मुँह खोलकर बार-बार जीभ लपलपा रही थीं । उसी समय वे विस्तृतजघना देवी वेगसे असुरसैनिकोंका संहार करने लगीं ॥ ४२ ॥ बड़े क्रोधके साथ वे बड़े-बड़े वीरोंको पकड़-पकड़कर अपने मुँहमें डाल-डालकर दाँतोंसे चबा रही थीं ॥ ४३ ॥ कितने ही घण्टा और आरोही समेत हाथियोंको उन्होंने मुखमें रखकर चबा लिया और उसके बाद अट्टहास करती हुई हँसने लगीं ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार वे घोड़ों, घोड़सवारों, ऊँटों और उनके आरोहियोंको मुखमें डाल-डालकर बड़े भयानक ढंगसे चबा रही थीं ॥४५॥ अपनी सेनाका संहार होते देखकर महान् असुर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चण्ड-मुण्डने बाणोंकी वर्षा करके देवीको ढाँक दिया ॥ ४६ ॥ उधर चण्डने प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यके समान तेजस्वी तथा विष्णु भगवानके सुदर्शन चक्रकी भाँति भीषण चक्र उठाकर बड़े वेगसे देवीपर चला दिया और बारम्बार गर्जन करने लगा ॥ ४७ ॥ उसे गर्जन करते तथा सूर्यसदृश तेजस्वी चक्र चलाते देखकर कालीने अपने एक ही बाणसे उसके उस सुदर्शन चक्र सरीखे तेजस्वी चक्रको काट डाला ॥ ४८ ॥ उसके बाद चण्डिकाने पत्थरकी सानपर चढ़ाये हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंसे चण्डपर प्रहार किया। देवीके बाणोंसे बहुत घायल होकर वह मूर्छित हो गया और धरतीपर गिर पड़ा ॥ ४९ ॥ अपने भाईको इस प्रकार गिरते देखकर मुण्डको बहुत दुःख हुआ और अन्यंत कुपित होकर वह कालीके ऊपर बाणवर्षा करने लगा ॥ ५० ॥ भगवती चण्डिकाने मुण्डके द्वारा की हुई उस भीषण बाणवर्षाको अपने ईषिकास्त्रसे तिल-तिल करके क्षणभरमें नष्ट कर दिया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर उन्होंने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे मुण्डपर प्रहार किया। उस बाणके लगते ही वह मदहीन होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥५२॥ उसे गिरते देखकर दानवोंमें हाहाकार मच गया। उधर आकाशमें विद्यमान

चक्रं चक्रधरायुधम् ॥ चिक्षेप तरसा देवीं ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥ नदंतं वीक्ष्य तं काली रथांगं च रविप्रभम् ॥ बाणेनैकेन चिच्छेद सुप्रभं तत्सुदर्शनम् ॥ ४८ ॥ तं जघान शरैस्तीक्ष्णैश्चण्डं चंडी शिलाशितैः ॥ मूर्छितोऽसौ पपातोर्व्यां देवीबाणार्दितो भृशम् ॥ ४६ ॥ पतितं भ्रातरं वीक्ष्य मुण्डो दुःखार्दितस्तदा ॥ चकार शरवृष्टिं च कालिकोपरि कोपतः ॥ ५० ॥ चंडिका मुंडनिर्मुक्तां शरवृष्टिं सुदारुणाम् ॥ ईषिकास्त्रैर्बलान्मुक्तैश्चकार तिलशः क्षणात् ॥ ५१ ॥ अर्धचंद्रेण बाणेन ताडयामास तं पुनः ॥ पतितोऽसौ महावीर्यो मेदिन्यां मदवर्जितः ॥ ५२ ॥ हाहाकारो महानासीद्दानवानां बले तदा ॥ जहर्षुरमराः सर्वे गगनस्था गतव्यथाः ॥५३॥ विहाय मूर्छां चंडस्तु संगृह्य महतीं गदाम् ॥ तरसा ताडयामास कालिकां दक्षिणे भुजे ॥ ५४ ॥ वंचयित्वा गदाघातं तं बबंध महासुरम् ॥ तरसा बाणपाशेन मंत्रमुक्तेन कालिका ॥ ५५ ॥ उत्थितस्तु तदा मुण्डो बद्धं दृष्ट्वाऽनुजं बलात् ॥ आजगाम सुसन्नद्धः शक्तिं कृत्वा करे दृढाम् ॥५६॥ आगच्छंतं तदा काली दानवं वीक्ष्य सत्वरम् ॥ बबंध तरसा तं तु द्वितीयं भ्रातरं भृशम् ॥ ५७ ॥ गृहीत्वा तौ महावीर्यौ चंडमुंडौ शशाविव ॥ कुर्वती विपुलं हासमाजगामांबिकां प्रति ॥ ५८ ॥ आगत्य तामथोवाच गृहाणेमौ पशू प्रिये ॥ रणयज्ञार्थमानीतौ दानवौ रणदुर्जयौ ॥ ५६ ॥ तावानीतौ तदा वीक्ष्य चंडिका तौ वृकाविव ॥ अम्बिका कालिकां प्राह

देवताओंकी सारी व्यथा दूर हो गयी और वे आनन्दविभोर हो उठे ॥ ५३ ॥ उसी समय चण्डकी मूर्छा दूर हुई। तब तत्काल एक बहुत भारी गदा लेकर बड़े वेगसे वह कालिकाके पास पहुँचा और उनकी दाहिनी भुजापर प्रहार कर दिया ॥५४॥ उसके गदाघातको बचाकर कालिकाने मंत्रशक्तिसे संचालित पाशास्त्रसे उस महान् असुरको बाँध लिया ॥५५॥ उधर मुण्डकी मूर्छा भंग हुई। उसने जब अपने भाईको पाशास्त्रमें मजबूतीसे जकड़ा देखा, तब बड़ी तैयारीके साथ हाथमें एक बर्छी लेकर कालिकाकी ओर बढ़ा ॥ ५६ ॥ बड़े वेगसे मुण्ड दानवको अपनी ओर आते देखकर भगवती कालीने उस दूसरे भाईको भी पाशास्त्रमें लपेटकर बाँध लिया ॥ ५७ ॥ इस प्रकार महाबली चण्ड-मुण्डको खरहेकी तरह बाँधकर विपुल अट्टहास करती हुई कालिका अम्बिकाके पास जा पहुँचीं ॥५८॥ उनके समीप जाकर कालिकाने कहा–प्रिय बहिन! रणयज्ञमें पूर्णाहुतिस्वरूप बलि देनेके लिए मैं इन रणदुर्जय दानवोंको पशुरूपमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ ले आयी हूँ। इन्हें स्वीकार करिए ॥ ५९ ॥ मोंड़येकी तरह क्रूर उन दोनों दानवोंको अपने समक्ष उपस्थित देखकर भगवती अम्बिकाने मधुर शब्दोंमें कालिकासे कहा–॥ ६० ॥ हे युद्धप्रिये ! तुम दोनोंको न मारो और न छोड़ो। तुम बड़ी चतुर हो। अतएव अब शीघ्र कोई ऐसा उपाय करो कि जिससे देवताओंका कार्य सिद्ध हो जाय ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले कि भगवती अम्बिकाके वचन सुनकर कालिकाने कहा–जिस प्रकार यज्ञभूमिमें पशुबलिके लिए खम्मे गाड़े जाते हैं। उसी प्रकार रणयज्ञका बलिदानस्तम्भ तलवार मानी जाती है ॥६२॥ सो मैं इस ढंगसे इनकी बलि चढ़ाऊँगी कि जिससे हिंसा न होगी। ऐसा कहकर देवी कालिकाने तलवारसे उन दोनोंका सिर काट लिया और बड़े आनंदपूर्वक उनका रुधिर पान करने लगीं। इस प्रकार उन दोनों दैत्योंका विनाश देखकर अम्बिका बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगीं–॥६३॥६४॥ तुमने इन्हें मारकर देवताओंका बहुत बड़ा काम किया है। इस लिए मैं तुम्हें एक शुभ वरदान दे रही हूँ। हे कालिके ! तुमने चण्ड-मुण्डका वध किया है। अतएव अब तुम संसारमें 'चामुण्डा' नामसे विख्यात होओगी ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चम-स्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

माधुरीसंयुतं वचः ॥ ६० ॥ वधं मा कुरु मा मुंच चतुराऽसि रणप्रिये ॥ देवानां कर्यसंसिद्धिः कर्तव्या तरसा त्वया ॥ ६१ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा कालिका प्राह तां पुनः ॥ युद्धयज्ञेऽतिविख्याते खड्गयूपे प्रतिष्ठिते ॥ ६२ ॥ आलंभं च करिष्यामि यथा हिंसा न जायते ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी खड्गेन शिरसी तयोः॥६३॥ चकर्त तरसा काली पपौ च रुधिरं मुदा ॥ एवं दैत्यौ हतौ दृष्ट्वा मुदितोवाच चांबिका ॥६४॥ कृतं कार्यं सुराणां ते ददाम्यद्य वरं शुभम् ॥ चंडमुंडौ हतौ यस्मात्तस्मात्ते नाम कालिका ॥ चामुण्डेति सुविख्यातं भविष्यति धरातले ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे चंडमुण्डवधो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ हतौ तौ दानवौ दृष्ट्वा हतशेषाश्च सैनिकाः ॥ पलायनं ततः कृत्वा जग्मुः सर्वे नृपं प्रति ॥ १ ॥ भिन्नांगा विशिखैः केचित्केचिच्छिन्नकरास्तथा ॥ रुधिरस्रावदेहाश्च रुदंतोऽभिययुः पुरे ॥ २ ॥ गत्वा दैत्यपतिं सर्वे चक्रुर्बुंबारवं मुहुः ॥ रक्ष रक्ष महाराज भक्षयत्यद्य कालिका ॥ ३ ॥ तया हतौ महावीरौ चंडमुंडौ सुरार्दनौ ॥ भक्षिताः सैनिकाः सर्वे वयं भग्ना भयातुराः ॥ ४ ॥ भीतिदं च रणस्थानं कृतं कालि-कया प्रभो ॥ पातितैर्गजवीराश्वैर्दासेरकपदातिभिः ॥ ५ ॥ शोणितौघवहा कुल्या कृता मांसातिकर्दमा॥ केशशैवलिनी भग्नरथचक्रविराजिता ॥ ६ ॥

(रक्तबीजका युद्धभूमिके लिए प्रस्थान) व्यासजो बोले—हे महाराज ! उन दोनों महादैत्योंका विनाश देखकर बाकी बचे हुए सैनिक भाग खड़े हुए और वे सब दैत्यराज शुंभके पास गये ॥ १ ॥ बाणोंके आघातसे कुछ सैनिकोंके अंग कट गये थे और कुछके हाथ उड़ गये थे। अतएव रुधिरसे सराबोर वे सैनिक रोते-कलपते हुए नगरमें पहुँचे ॥२॥ दैत्यराज शुंभके समक्ष पहुँचकर घिघियाते हुए वे सैनिक कहने लगे—हे महाराज ! हमारी रक्षा करिए–हमें बचाइए। वह कालिका हम सबको खाये जा रही है ॥ ३ ॥ देवताओंको सतानेवाले महावीर चण्ड-मुण्डको कालिकाने मार डाला। कितने ही सैनिकोंको उसने खा लिया, तब भयभीत होकर हम लोग भाग आये ॥ ४ ॥ हे स्वामिन् ! कालिकाने हाथीसवार, घुड़सवार, ऊँटसवार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा पैदल सैनिकोंको काट-काटकर रणभूमिको मुर्दोंसे इस तरह पाट दिया है कि वह इस समय बड़ी डरावनी लग रही है ॥ ५ ॥ संग्रामभूमिमें रुधिरकी नदी बह चली है। उस नदीमें मांसका कीचड़, मस्तकके केश सेवार और टूटे रथोंके पहिये भँवरका काम कर रहे हैं ॥६॥ सैनिकोंके कटे हुए हाथ-पैर मछली और मस्तक तुम्बीके फल प्रतीत होते हैं। उस रुधिरनदीको देखकर कायर भयभीत हो उठते हैं और वीरोंका हर्ष बढ़ जाता है ॥७॥ हे महाराज! आप अपने दैत्यकुलकी रक्षा करिए और तत्काल पातालको चले जाइए। नहीं तो वह क्रुद्ध देवी अवश्य सब दानवोंका विनाश कर डालेगी ॥ ८ ॥ हे दानवेश्वर! अंबिकाका सिंह भी दानवोंको खाये जा रहा है और कालिका देवी तो असुरसैनिकोंको अपने बाणोंका लक्ष्य बना-बनाकर दैत्योंका वध कर ही रही है। अतएव हे राजेन्द्र! आप भी कोपके वशीभूत होकर अपने भाई निशुम्भके साथ अपनी मृत्युको व्यर्थ बुलाना चाहते हैं ॥९॥१०॥ हे महाराज! जिसके लिए आप अपने बन्धु-बान्धवोंका वध करा रहे हैं, उस कुलनाशिनी स्त्रीको लेकर आप क्या करेंगे ? ॥ ११ ॥ हे महाराज! संसारमें जय और पराजय दैवके अधीन रहता है। अतएव थोड़े लाभके लिए बड़ी

छिन्नबाह्वादिमत्स्याढ्या शीर्षतुंबीफलान्विता ॥ भयदा कातराणां वै सुराणां मोदवर्धिनी ॥ ७ ॥ कुलं रक्ष महाराज पातालं गच्छ सत्वरम् ॥ क्रुद्धा देवी क्षयं सद्यः करिष्यति न संशयः ॥ ८ ॥ सिंहोऽपि भक्षयत्याजौ दानवान्दनुजेश्वर ॥ तथैव कालिका देवी हन्ति बाणैरनेकधा ॥ ९ ॥ तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र मरणाय मृषा मतिम् ॥ करोषि सहितो भ्रात्रा शुम्भेन कुपिताशयः ॥ १० ॥ किं करिष्यति नार्येषा क्रूरा कुलविनाशिनी ॥ यस्या हेतोर्महाराज हन्तुमिच्छसि बांधवान् ॥ ११ ॥ दैवाधीनौ महाराज लोके जयपराजयौ ॥ अल्पार्थाय महद्दुःखं बुद्धिमान्न प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥ चित्रं पश्य विधेः कर्म यदधीनं जगत् प्रभो ॥ निहता राक्षसाः सर्वे स्त्रिया पश्यैकयाऽनया ॥ १३ ॥ जेता त्वं लोकपालानां सैन्ययुक्तो हि सांप्रतम् ॥ एका प्रार्थयते बाला युद्धायेति सुसंभ्रमः ॥ १४ ॥ पुरा त्वया तपस्तप्तं पुष्करे देवतायने ॥ वरदानाय संप्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ १५ ॥ धात्रोक्तस्त्वं महाराज वरं वरय सुव्रत ॥ तदा त्वयाऽमरत्वं च प्रार्थितं ब्रह्मणः किल ॥१६॥ देवदैत्यमनुष्येभ्यो न भवेन्मरणं मम ॥ सर्पकिन्नरयक्षेभ्यः पुंलिङ्गवाचकादपि॥ १७ ॥ तस्मात्त्वां हन्तुकामैषा प्राप्ता योषिद्वरा प्रभो ॥ युद्धं मा कुरु राजेन्द्र विचार्यैवं धियाऽधुना ॥ १८ ॥ देवी ह्येषा महामाया

भारी विपत्ति मोल लेना बुद्धिमानीका काम नहीं है ॥१२॥ हे प्रभो! जिसके अधीन विश्व रहता है, उस विधाताकी विचित्रता तो देखिए कि एक अकेली स्त्रीने सभी राक्षसोंका सफाया कर दिया ॥ १३ ॥ आप सब लोकपालोंको हरा चुके हैं और इस समय आपके पास सैनिक शक्ति भी पहलेसे बहुत अधिक है। तथापि एक स्त्री आपको युद्धके लिए ललकार रही है। यही देखकर तो हम सब चकित हो रहे हैं ॥१४॥ पूर्वकालमें आपने जब देवभूमि पुष्करतीर्थमें जाकर तप किया था, तब आपको वर देनेके लिए स्वयं लोकपितामह ब्रह्माजी आये थे ॥१५॥ ब्रह्माजीने कहा—हे सुव्रत! वर माँगो। तब ब्रह्माजीसे आपने अमर हो जानेका वरदान माँगा ॥१६॥ और कहा कि मैं देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, किन्नर, यक्ष तथा पुरुषवाचक जितने प्राणी हैं, उनमेंसे किसीके हाथों न मरूँ ॥१७॥ इसी कारण हे प्रभो! यह श्रेष्ठ स्त्री आपका वध करने आयी है। ऐसा विचारकर हे राजेन्द्र! आप उससे युद्ध मत करिए ॥ १८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे राजेश्वर ! वह रमणी साक्षात् महामाया और परमा प्रकृति है। प्रलयकालमें वही समस्त विश्वका संहार करती है ॥ १९ ॥ वही सब बालकोंको उत्पन्न करती है। वह सब देवताओंकी स्वामिनी है। वह त्रिगुणा और तामसी देवी सर्वशक्तिसम्पन्न है ॥२०॥ वह देवी अजेया, अक्षया, नित्या और सर्वज्ञा कही गयी है। वही वेदमाता, गायत्री, सन्ध्या और सब देवताओंकी आश्रयदायिनी है ॥ २१ ॥ वह निर्गुणा,-सगुणा, सिद्धा, सर्वसिद्धिप्रदा और अविनाशिनी कहलाती है। वह आनन्ददायिनी गौरी सबको आनन्द प्रदान करती है। वह सब देवताओंको अभयदान देती है ॥२२॥ ऐसा समझकर हे महाराज ! आप उसके साथ वैरभाव रखना छोड़ दें। हे राजेन्द्र ! आप उसकी शरणमें चले जाइए। वह देवी आपकी रक्षा करेगी ॥ २३ ॥ आप उसके आज्ञाकारी बनकर अपने कुलका जीवन बचा लीजिए। जिससे मरनेसे बाकी बचे हुए दैत्य दीर्घजीवी हो सकें ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले—उन सैनिकोंके वचन सुनकर देवसेनाके

प्रकृतिः परमा मता ॥ कल्पांतकाले राजेन्द्र सर्वसंहारकारिणी ॥ १९ ॥ उत्पादयित्री लोकानां देवानामीश्वरी शुभा ॥ त्रिगुणा तामसी देवी सर्वशक्तिसमन्विता ॥ २० ॥ अजय्या चाक्षया नित्या सर्वज्ञा च सदोदिता ॥ वेदमाता च गायत्री सन्ध्या सर्वसुरालया ॥ २१ ॥ निर्गुणा सगुणा सिद्धा सर्वसिद्धप्रदाऽव्यया ॥ आनन्दाऽऽनन्ददा गौरी देवानामभयप्रदा ॥ २२ ॥ एवं ज्ञात्वा महाराज वैरभावं त्यजानया ॥ शरणं व्रज राजेन्द्र देवी त्वां पालयिष्यति ॥ २३ ॥ आज्ञाकारी भवैतस्याः संजीवय निजं कुलम् ॥ हतशेषाश्च ये दैत्यास्ते भवन्तु चिरायुषः ॥ २४॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भः सुरबलार्दनः ॥ उवाच वचनं तथ्यं वीरवर्यं गुणान्वितम् ॥ २५ ॥ शुम्भ उवाच ॥ मौनं कुर्वन्तु भो मन्दा यूयं भग्ना रणाजिरात् ॥ शीघ्रं गच्छत पातालं जीविताशा बलीयसी ॥ २६ ॥ दैवाधीनं जगत्सर्वं का चिन्ताऽत्र जये मम ॥ देवास्तथैव ब्रह्माद्या दैवाधीना वयं यथा ॥ २७ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रोऽथ यमोऽग्निर्वरुणस्तथा ॥ सूर्यश्चन्द्रस्तथा शक्रः सर्वे दैववशाः किल ॥ २८ ॥ का चिन्ता तर्हि मे मन्दा यद्भावि तद्भविष्यति ॥ उद्यमस्तादृशो भूयाद्यादृशी भवितव्यता ॥ २९ ॥ सर्वथैवं विचार्यैव न शोचन्ति बुधाः क्वचित् ॥ स्वधर्मं न त्यजन्तीह ज्ञानिनो मरणाद्भयात् ॥ ३० ॥ सुखं दुःखं तथैवायुर्जीवितं मरणं नृणाम् ॥ काले भवति संप्राप्ते सर्वथा दैवनिर्मितम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा पतति काले

विनाशक शुंभने तड़पकर ऐसे वचन कहे कि जिनके एक-एक शब्दसे वीररस टपक रहा था ॥२५॥ शुंभ बोला—अरे मूर्खो ! चुप रहो। तुम लोग रणभूमिसे भाग आये हो। तुम्हें यदि जीवित रहनेकी प्रबल अभिलाषा हो तो अभी पाताललोकको चले जाओ ॥२६॥ यह समस्त संसार दैवके अधीन रहता है। तब विजयके विषयमें मुझे क्या चिन्ता हो सकतो है ? जैसे ब्रह्मादिक देवता सदा दैवके अधीन रहते हैं। उसी प्रकार मैं भी सदा दैवके अधीन रहता हूँ ॥ २७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्र ये सब देवता दैवके वशवर्ती हैं ॥ २८ ॥ तब हे मूर्खो ! मुझे किस बातकी चिन्ता है ? जो होना होगा, सो होगा। जैसा होनहार होता है, मनुष्यको उसी प्रकारका उद्योग भी सूझता है ॥ २९ ॥ ऐसा विचार करके विद्वान् पुरुष शोक नहीं करते। ज्ञानी पुरुष मरणके भयसे अपना धर्म कदापि नहीं त्यागते ॥३०॥ समय आनेपर लोगोंको जो सुख, दुःख, आयु, जीवन और मरण प्राप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है, वह दैवका अमिट विधान रहता है ॥३१॥ समय पूरा हो जानेपर ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र आदि सब देवताओंका भी विनाश हो जाता है ॥ ३२ ॥ उसी तरह हम सब दैत्य भी सदा कालके अधीन रहते हैं । अपने वीरधर्मका पालन करते हुए हमें विजय और विनाश जो भी प्राप्त होगा, उसे हम स्वीकार करेंगे ॥ ३३ ॥ उस स्त्रीने जब मुझे युद्धके लिए ललकारा है, तब उसके भयसे भागकर हम सैकड़ों वर्ष क्यों जियें ? ॥३४॥ आज ही मैं उसके साथ संग्राम करने जाऊँगा । फिर जो होना होगा, सो होगा । उस समय विजय या विनाश जो भी प्राप्त होगा, उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा ॥३५॥ उद्यमवादी विद्वान् भाग्यको मिथ्या कहते हैं । जो लोग उनके कथनका तात्पर्य समझते हैं, वे वीर पुरुष उनकी बातको युक्तिसंगत मानकर उसीके अनुसार चलते हैं ॥३६॥३७॥ मूर्ख लोग ही बारम्बार भाग्यको बड़ा मानकर उसका बखान करते हैं । लेकिन जब अदृष्ट (भाग्य) अदृश्य है, तब उसके अस्तित्वका प्रमाण ही

स्वे विष्णुश्च पार्वतीपतिः ॥ नाशङ्गच्छन्त्यायुषोऽन्ते सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ३२ ॥ तथाऽहमपि कालस्य वशगः सर्वथाऽधुना ॥ नाशं जयं वा
गन्ताऽस्मि स्वधर्मपरिपालनात् ॥ ३३ ॥ आहूतोऽप्यनया कामं युद्धायाबलया किल ॥ कथं पलायनपरो जीवेयं शरदां शतम् ॥३४॥ करिष्याम्यद्य
संग्रामं यद्भावि तद्भवत्विह ॥ जयो वा मरणं वाऽपि स्वीकरोमि यथा तथा ॥ ३५ ॥ दैवं मिथ्येति विद्वांसो वदन्त्युद्यमवादिनः ॥ युक्तियुक्तं वचस्तेषां
ये जानंत्यभिभाषितुम् ॥ ३६ ॥ उद्यमेन विना कामं न सिद्ध्यन्ति मनोरथाः ॥ कातरा एव जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥ ३७॥ अदृष्टं बलव-
न्मूढाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ॥ प्रमाणं तस्य सत्त्वे किमदृश्यं दृश्यते कथम् ॥ ३८ ॥ अदृष्टं क्वापि दृष्टं स्यादेषा मूर्खविभीषिका ॥ अवलम्बम्वि-
नैवैषा दुःखे चित्तस्य धारणा ॥ ३९ ॥ चक्रीसमीपे संविष्टा संस्थिता पिष्टकारिणी ॥ उद्यमेन विना पिष्टं न भवत्येव सर्वथा ॥ ४० ॥ उद्यमे च कृते
कार्यं सिद्धिं यात्येव सर्वथा ॥ कदाचित्तस्य न्यूनत्वे कार्यं नैव भवेदपि ॥ ४१ ॥ देशं कालं च विज्ञाय स्वबलं शत्रुजं बलम् ॥ कृतं कार्यं भवत्येव
बृहस्पतिवचो यथा ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ इति निश्चित्य दैत्येन्द्रो रक्तबीजं महासुरम् ॥ प्रेषयामास संग्रामे सैन्येन महताऽऽवृतम् ॥ ४३ ॥
शुंभ उवाच ॥ रक्तबीज महाबाहो गच्छ त्वं समरांगणे ॥ कुरु युद्धं महाभाग यथा ते बलमाहितम् ॥ ४४ ॥ रक्तबीज उवाच ॥ महाराज न ते

क्या है ? ॥३८॥ अदृष्टको कभी किसीने देखा भी है ? वह तो मूर्खोंके लिए विभीषिकामात्र है । उसका कोई आधार नहीं है । हाँ, कष्ट पड़नेपर मनको ढाढ़स बँधानेके लिए वह सहारा अलबत्ते बन जाता है ॥३९॥ कोई पिसान पीसनेवाली स्त्री भाग्यका भरोसा करके चक्कीके पास चुपचाप बैठ जाय तो क्या चक्की चलानेका उपाय किये बिना अपने आप गेहूँ पिसकर आटा तैयार हो जायगा ? नहीं ॥४०॥ अतएव उद्योग करनेसे ही सफलता मिलती है । उद्योगमें किसी भी प्रकारकी कमी होनेपर कार्य नहीं सिद्ध होता ॥४१॥ आचार्य बृहस्पतिका कथन है कि देश,काल अपना बल और शत्रुका बल देखकर युद्ध आरम्भ किया जाय तो उसका परिणाम बड़ा अच्छा होता है ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा–दैत्यराज शुंभने ऐसा निश्चय करके बहुत बड़ी सेनाके साथ असुरसेनापति रक्तबीजको युद्धभूमिमें भेजा ॥ ४३ ॥ चलते समय शुम्भने कहा– हे रक्तबीज ! हे महाबाहो ! अब तुम समरभूमिमें जाओ । हे महाभाग ! अपनी शक्तिपर खूब जमकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युद्ध करो ॥४४॥ रक्तबीज बोला—हे महाराज ! आप तनिक भी चिन्ता न करें। मैं उस अवलाको या तो आपके वशमें कर दूँगा या मार डालूँगा ॥४५॥ आप मेरा युद्धचातुर्य देखें। मेरे आगे देवताओंकी प्रिय वह रमणी किस गिनतीमें है ? मैं रणभूमिमें हराकर उस युवतीको सदाके लिए आपकी दासी बना दूँगा ॥४६॥ व्यासजीने कहा—हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! ऐसा कहकर महान् असुर रक्तबीज रथपर सवार होकर अपनी विशाल सेनाके साथ चला ॥४७॥ हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकोंकी सेना सुसज्जित करके रथपर बैठा हुआ वह उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ देवी एक पर्वतके शिखरपर बैठी हुई थीं। ४८ ॥ सदलबल रक्तबीजको आते देखकर देवीने शंख बजाया। उसकी ध्वनि सुनकर दैत्योंमें भय व्याप गया और देवता प्रमुदित हो उठे ॥४९॥ वह बहुत तेज शंखध्वनि सुनकर असुरसेनापति रक्तबीज द्रुतगतिसे भगवती चामुण्डाके पास जा पहुँचा और मृदु वाणीमें बोला॥ ५० ॥ रक्तबीजने कहा—हे बाले !

कार्या चिन्ता स्वल्पतराऽपि वा ॥ अहमेनां हनिष्यामि करिष्यामि वशे तव ॥ ४५ ॥ पश्य मे युद्धचातुर्यं क्वेयं बाला सुरप्रिया ॥ दासीं तेऽहं करिष्यामि जित्वेमां समरे बलात् ॥४६॥ व्यास उवाच ॥ इत्याभाष्य कुरुश्रेष्ठ रक्तबीजो महासुरः ॥ जगाम रथमारुह्य स्वसैन्यपरिवारितः ॥४७॥ हस्त्यश्वरथपादातवृन्दैश्च परिवेष्टितः ॥ निर्जगाम रथारूढो देवीं शैलोपरि स्थिताम् ॥ ४८ ॥ तमागतं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ॥ भयदं सर्वदैत्यानां देवानां मोदवर्धनम् ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा शंखस्वनं चोग्रं रक्तबीजोऽतिवेगवान् ॥ गत्वा समीपे चामुण्डां बभाषे वचनं मृदु ॥ ५० ॥ रक्तबीज उवाच ॥ बाले किं मां भीषयसि मत्वा त्वं कातरं किल ॥ शङ्खनादेन तन्वङ्गि वेत्सि किं धूम्रलोचनम् ॥५१॥ रक्तबीजोऽस्मि नाम्नाऽहं त्वत्सकाशमिहागतः ॥ युद्धेच्छा चेत्पिकालापे सज्जा भव भयं न मे ॥ ५२ ॥ पश्याद्य मे बलं कान्ते दृष्टा ये कातरास्त्वया ॥ नाहं पंक्तिगतस्तेषां कुरु युद्धं यथेच्छसि ॥ ५३ ॥ वृद्धाश्च सेविताः पूर्वं नीतिशास्त्रं श्रुतं त्वया ॥ पठितं चार्थविज्ञानं विद्वद्गोष्ठीकृताऽथ वा ॥ ५४ ॥ साहित्यतंत्रविज्ञानं चेदस्ति तव सुन्दरि ॥ शृणु मे वचनं पथ्यं तथ्यं प्रमितिबृंहितम् ॥ ५५ ॥ रसानां च नवानां वै द्वावेव मुख्यतां गतौ ॥ शृंगारकः शांतिरसो विद्वज्जनसभासु च ॥५६॥ तयोः शृंगार एवादौ नृपभावे प्रतिष्ठितः ॥ विष्णुर्लक्ष्म्या सहास्ते वै सावित्र्या चतुराननः ॥५७॥ शच्येंद्रः शैलसुतया

क्या आप मुझे कायर समझती हैं, जो इस प्रकार शंख बजाकर मुझे डरा रही हैं। हे कोमलांगी ! क्या आपने मुझे भी धूम्रलोचन समझ लिया है ? ॥ ५१ ॥ मेरा नाम रक्तबीज है। मैं आपके पास आया हूँ। यदि युद्धकी इच्छा हो तो तैयार हो जाइए। मुझे कुछ भी भय नहीं है ॥५२॥ हे कान्ते ! आज आप मेरा पराक्रम देखिए। अबतक जितने दैत्य आये, वे सब कायर थे। मैं उन कायरोंकी श्रेणीमें नहीं हूँ। आपकी जैसी इच्छा हो, उस तरह लड़ लीजिए ॥५३॥ किन्तु यदि आपने वृद्धजनोंकी सेवा की हो, नीतिशास्त्रका स्वाध्याय किया हो, अर्थशास्त्र पढ़ा हो, विद्वानोंकी सभामें सम्मिलित हुई हों और साहित्य तथा तंत्रशास्त्रका ज्ञान प्राप्त किया हो तो हे सुन्दरी ! आप मेरे हितकारी, सत्य और प्रामाणिक वचन सुन लें ॥५४॥५५॥ विद्वन्मण्डलीने नौ रसोंमें शृंगार और शान्ति इन्हीं दो रसोंको मुख्य माना है ॥५६॥ इन दोनोंमें भी शृंगाररस राजा समझा गया है। देखिए न विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सावित्रीके साथ, इन्द्र शचीके साथ और शिव शैलपुत्री उमाके साथ सोते हैं। उसी प्रकार वृक्ष लताओंके साथ, मृग मृगीके साथ और कपोत कपोतीके साथ आनन्द करता है ॥५७॥५८॥ इस तरह संसारके सभी प्राणी संयोगजनित सुखका उपभोग करते हैं। जिन्हें भोग तथा वैभवका सुख नहीं प्राप्त हो सका है, वे पुरुष कायर हैं ॥ ५९ ॥ वे अधम मनुष्य ही संन्यासी होते हैं, जिन्हें भाग्यने धोखा दिया है। उन्हें संसारके रसका कुछ भी ज्ञान नहीं हो पाता और धूर्त वंचक उन्हें ठग लेते हैं ॥६०॥ वे बेचारे साधु-संतरूपधारी ठगोंकी मीठी-मीठी बातोंमें आकर अहितकारी शांतिरसमें निमग्न हो जाते हैं। लेकिन जब उनके मनमें वासनाका तूफान उठता है, तब उनको ज्ञान-वैराग्यका उपदेश याद नहीं रहता ॥६१॥ लोभ, क्रोध एवं दुर्धर्ष तथा बुद्धिनाशक मोहको जीतना बड़ा कठिन काम है। अतएव हे कल्याणी ! आप भी परम सुन्दर तथा मन मोह लेनेवाले देवविजयी शुम्भ तथा निशुम्भको अपना पति बना लीजिए। व्यासजी बोले–इतना कहकर रक्तबीज देवीके समक्ष चुपचाप खड़ा हो गया। उसकी इन बातोंको सुनकर चामुण्डा, कालिका तथा अम्बिका ठठाकर हँसने लगीं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

शंकरः सह शेरते ॥ वल्ल्या वृक्षो मृगो मृग्या कपोत्या च कपोतकः ॥ ५८ ॥ एवं सर्वे प्राणभृतः संयोगरसिका भृशम् ॥ अप्राप्तभोगविभवा ये चान्ये कातरा नराः ॥ ५९ ॥ भवन्ति यतयस्ते वै मूढा दैवेन वंचिताः ॥ [illegible] रसज्ञास्ते वञ्चिता वञ्चनापरैः ॥ ६० ॥ मधुरालापनिपुणै रताः शांतिरसे हि ते ॥ क्व ज्ञानं क्व च वैराग्यं वर्तमाने मनोभवे ॥६१॥ लोभे क्रोधे च दुर्धर्षे मोहे मतिविनाशके ॥ तस्मात्त्वमपि कल्याणि कुरु कांतं मनोहरम् ॥ ६२ ॥ शुंभं सुराणां जेतारं निशुंभं वा महाबलम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा रक्तबीजोऽसौ विरराम पुरः स्थितः ॥ श्रुत्वा जहास चामुंडा कालिका चांबिका तथा ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ कृत्वा हास्यं ततो देवी तमुवाच विशांपते ॥ मेघगंभीरया वाचा युक्तियुक्तमिदं वचः ॥ १ ॥ पूर्वमेव मया प्रोक्तं मंदात्मन्किं विकत्थसे ॥ दूतस्याग्रे यथायोग्यं वचनं हितसंयुतम् ॥ २ ॥ सदृशो मम रूपेण बलेन विभवेन च ॥ त्रिलोक्यां यदि कोऽपि स्यात्तं पतिं प्रवृणोम्यहम् ॥ ३ ॥ ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च प्रतिज्ञा मे पुरा कृता ॥ तस्माद्युद्धयस्व जित्वा मां विवाहं विधिवत्कुरु ॥ ४ ॥ त्वं वै तदाज्ञया प्राप्तस्तस्य कार्यार्थसिद्धये ॥ संग्रामं कुरु पातालं गच्छ वा पतिना सह ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः स दैत्योऽमर्षपूरितः ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

(रक्तबीजका मूर्छित होना और मातृगणों द्वारा असुरसेनाका संहार) व्यासजी बोले–हे जननायक राजा जनमेजय ! हास्यके बाद मेघसदृश गंभीरवाणीमें वे देवी यह युक्तिसंगत वचन बोलीं–॥ १ ॥ अरे मूढ ! मुझे जो उचित और हितकारी बात कहनी थी, सो तेरे दूत सुग्रीवसे मैं पहले ही कह चुकी हूँ। अब तू क्या मेरे आगे डींग मारता है ? ॥ २ ॥ मैंने उससे स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि समस्त त्रिलोकीमें जो पुरुष रूप, बल और वैभवमें मेरे समान होगा, मैं उसीको अपना पति बनाऊँगी ॥ ३ ॥ तुम जाकर शुंभ-निशुंभसे कह दो कि मैं पूर्वकालमें प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। अतएव वे मेरे साथ युद्ध करें और रणमें मुझे पराजित करके मेरे साथ विधिवत् विवाह कर लें ॥४॥ तुम दैत्यपति शुंभकी आज्ञासे उनका उद्देश्य पूर्ण करनेके लिए यहाँ आये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो। अतएव तुम चाहो तो मेरे साथ युद्ध करो अथवा अपने स्वामी शुंभ-निशुंभके साथ पाताललोकको भाग जाओ ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले—देवीके वचन सुनते ही रक्तबीज मारे क्रोधके बौखला उठा और बड़े वेगसे देवीके सिंहपर एक साथ कई बाण चला दिया ॥ ६ ॥ भगवती अंबिकाने आकाशमें सर्पके समान उड़ते हुए उन बाणोंको ज्यों ही देखा, त्यों ही बड़ी फुर्तीके साथ अपने अति तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें क्षणभरमें काटकर गिरा दिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर कानतक धनुषकी डोरी खींचकर अम्बिकाने पत्थरपर घिसे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे महान् असुर रक्तबीजके ऊपर प्रहार किया ॥ ८ ॥ देवीके बाणोंसे घायल होकर वह पापी रथपर मूर्छित हो गया। इस प्रकार रक्तबीजके गिर जानेपर हाहाकार मच गया ॥ ९ ॥ उसके साथवाले असुरसैनिक 'हाय, हम मारे गये' ऐसा कहकर चिल्लाने लगे। अपने सैनिकोंका करुण क्रंदन सुनकर दैत्यराज शुंभने सब दैत्ययोद्धाओंको शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो जानेका आदेश दिया। शुंभने कहा—कंबोज देशके सभी दानववीर अपनी-अपनी सेना साथ लेकर रणभूमिमें जायँ ॥१०॥११॥ उनके अतिरिक्त अन्य महाबली विशेष करके कालकेय जातिके योद्धा भी रणभूमिको प्रस्थान कर दें।

मुमोच तरसा बाणान् सिंहस्योपरि दारुणान् ॥६॥ अम्बिका ताञ्छरान्वीक्ष्य गगने पन्नगोपमान् ॥ चिच्छेद सायकैस्तीक्ष्णैर्लघुहस्ततया क्षणात् ॥७॥ अन्यैर्जघान विशिखै रक्तबीजं महासुरम् ॥ अम्बिका चापनिर्मुक्तैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ ८ ॥ देवीबाणहतः पापो मूर्च्छामाप रथोपरि ॥ पतिते रक्तबीजे तु हाहाकारो महानभूत् ॥ ९ ॥ सैनिकाश्चुक्रुशुः सर्वे हताः स्म इति चाब्रुवन् ॥ ततो बुम्बारवं श्रुत्वा शुम्भः परमदारुणम् ॥ १० ॥ उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ शुंभ उवाच ॥ निर्यांतु दानवाः सर्वे कांबोजाः स्वबलैर्वृताः ॥ ११ ॥ अन्येऽप्यतिबलाः शूराः कालकेया विशेषतः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याज्ञप्तं बलं सर्वं शुंभेन च चतुर्विधम् ॥ १२ ॥ निर्जगाम मदाविष्टं देवी समरमण्डले ॥ तमागतं समालोक्य चण्डिका दानवं बलम् ॥ १३ ॥ घण्टानादं चकाराशु भीषणं भयदं मुहुः ॥ ज्यास्वनं शङ्खनादं च चकार जगदम्बिका ॥ १४ ॥ तेन नादेन सा जाता काली विस्तारितानना ॥ श्रुत्वा तन्निनदं घोरं सिंहो देव्याश्च वाहनम् ॥१५॥ जगर्ज सोऽपि बलवाञ्जनयन् भयमद्भुतम् ॥ तन्निनादमुपश्रुत्य दानवाः क्रोधमूर्छिताः ॥ १६ ॥ सर्वे चिक्षिपुरस्त्राणि देवीं प्रति महाबलाः ॥ तस्मिन्नेवायते युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥ १७ ॥ ब्रह्मादीनां च देवानां शक्तयश्चंडिकां ययुः ॥ यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् ॥ १८ ॥ तादृग्रूपास्तदा देव्यः प्रययुः समरांगणे ॥ ब्रह्माणी वरटारूढा साक्षसूत्र-

व्यासजी बोले—दैत्यराज शुंभके आदेश देते ही वह मदमत्त चतुरंगिणी सेना युद्धभूमिकी ओर चल पड़ी। उस विशाल दानवी सेनाको आती देखकर भगवती चण्डिका बारंबार कर्कश तथा भयङ्कर घण्टा बजाने लगीं। जब भगवती अम्बिका धनुषका टंकोर तथा शंखनाद कर रही थीं ॥ १२–१४ ॥ उसी समय कालीजी भी अपना मुँह फैलाकर भयंकर शब्द करने लगीं। वह निनाद सुनकर देवीका वाहन बलवान् सिंह भी शत्रुसैनिकोंमें भयसंचार करता हुआ अद्भुत ढंगसे गर्जन करने लगा। वह गर्जन सुनकर दानव अत्यधिक क्रुद्ध हो उठे ॥ १५ ॥ १६ ॥ अतएव सब महाबली दैत्य एक साथ मिलकर देवीपर नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा करने लगे। उस भयानक और लोमहर्षक युद्धमें ब्रह्मादिक देवताओंकी विभिन्न शक्तियाँ भी जा पहुँचीं। जिस देवताका जैसा रूप था, जैसा भूषण और वाहन था। ठीक वैसे ही रूप, भूषण और वाहनसे युक्त देवियाँ संग्राममभूमिमें उतर आयीं। जैसे हंसपर सवार ब्रह्माणी, रुद्राक्षकी माला धारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किये और कमण्डल लेकर ब्रह्माजीकी ब्रह्माणी आयीं। गरुड़पर आरूढ़, शंख-चक्र-गदा धारण किये, हाथमें कमल लिये और पीताम्बर पहने भगवान् विष्णु की वैष्णवी शक्ति आयीं। बैलपर सवार, त्रिशूल हाथमें लिये, मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये और सर्पोंके कंगन पहने शिवाशक्ति वहाँ आ उपस्थित हुई। मयूरपर सवार, हाथमें शक्ति लिये स्वामिकार्तिकेयका रूप धारण करके सुमुखी कौमारी शक्ति वहाँ आयी। अतिशय उज्ज्वल हाथीपर सवार एवं सुन्दर मुखवाली ऐन्द्री शक्ति हाथमें वज्र लिये बड़े रोषके साथ संग्रामभूमिमें आयीं। सूकरका रूप धारण करके अत्यन्त उच्च प्रेतपर सवार वाराही शक्ति वहाँ आयीं ॥१७-२४॥ इसो प्रकार नारसिंही शक्ति नृसिंहके समान रूप धारण करके और यमराजकी भयदायिनी याम्या शक्ति महिषपर सवार हो तथा हाथमें दण्ड लिये वहाँ आयीं ॥२५॥ ठीक यमराजके समान उनका स्वरूप था। इसी तरह वरुणदेवकी वारुणी तथा कुबेरकी मदमत्त कौवेरी शक्ति भी आयीं ॥ २६ ॥ इसी

कमंडलुः ॥ १९ ॥ आगता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीति प्रतिश्रुता ॥ वैष्णवी गरुडारूढा शंखचक्रगदाधरा ॥ २० ॥ पद्महस्ता समायाता पीतांबर-
विभूषिता ॥ शांकरी तु वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ॥ २१ ॥ अर्धचन्द्रधरा देवी तथाऽहिवलया शिवा ॥ कौमारी शिखिसंरूढा शक्तिहस्ता
वरानना ॥ २२ ॥ युद्धकामा समायाता कार्तिकेयस्वरूपिणी ॥ इन्द्राणी सुष्ठुवदना सुश्वेतगजवाहना ॥ २३ ॥ वज्रहस्ताऽतिरोषाढ्या संग्रामाभि-
मुखी ययौ ॥ वाराही सूकराकारा प्रौढप्रेतासना मता ॥ २४ ॥ नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ॥ याम्या च महिषारूढा दण्डहस्ता भय-
प्रदा ॥ २५ ॥ समायाताऽथ संग्रामे यमरूपा शुचिस्मिता ॥ तथैव वारुणी शक्तिः कौबेरी च मदोत्कटा ॥ २६ ॥ एवंविधास्तथाकाराययुः स्वस्व-
बलैर्वृताः ॥ आगतास्ताः समालोक्य देवी मुदवाप च ॥ २७ ॥ स्वस्था मुमुदिरे देवा दैत्याश्च भयमाययुः ॥ ताभिः परिवृतस्तत्र शङ्करो लोक-
शङ्करः ॥ २८ ॥ समागम्य च संग्रामे चण्डिकामित्युवाच ह ॥ हन्यन्तामसुराः शीघ्रं देवानां कार्यसिद्धये ॥ २९ ॥ निशुम्भं चैव शुम्भं च ये
चान्ये दानवाः स्थिताः ॥ हत्वा दैत्यबलं सर्वं कृत्वा च निर्भयं जगत् ॥ ३० ॥ स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि समागच्छन्तु शक्तयः ॥ देवा यज्ञ-
भुजः सन्तु ब्राह्मणा यजने रताः ॥ ३१ ॥ प्राणिनः सन्तु सन्तुष्टाः सर्वे स्थावरजंगमाः ॥ शमं यांतु तथोत्पाता ईतयश्च तथा पुनः ॥ ३२ ॥
घनाः काले प्रवर्षन्तु कृषिर्बहुफला तथा ॥ व्यास उवाच ॥ एवं ब्रुवति देवेशे शङ्करे लोकशङ्करे ॥ ३३ ॥ चण्डिकायाः शरीरात्तु निर्गता शक्ति-

प्रकार अन्यान्य देवताओंकी शक्तियाँ भी विभिन्न रूप धारण करके अपनी-अपनी सेनाके साथ रणभूमिमें आ पहुँचीं। उन्हें देखकर भगवती अम्बिका बहुत प्रसन्न हुईं ॥२७॥ यह देखकर देवताओंकी चिन्ता दूर हुई और वे प्रसन्न हो उठे। किन्तु दैत्यगण भयभीत हो गये। उन शक्तियोंके बीचमें लोककल्याणकारी शंकरजी भी जा पहुँचे। उन्होंने चण्डिकासे कहा—देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिए आप लोग असुरोंका शीघ्र संहार कर दें ॥ २८ ॥ २९ ॥ शुम्भ-निशुम्भ तथा अन्य जितने दानव हैं, उन सबको और उनकी सेनाको नष्ट करके संसारका भय दूर करें ॥३०॥ इतना कार्य सम्पन्न करके आप सब अपने-अपने स्थानको लौट जायँ। आपके ऐसा करनेसे देवताओंको यज्ञभाग मिलने लगेगा और ब्राह्मण यज्ञ करने लगेंगे ॥ ३१ ॥ स्थावर-जङ्गमात्मक सभी प्राणियोंको सन्तोष होगा। सब प्रकारके उत्पात और अकाल सदाके लिए समाप्त हो जायँगे ॥ ३२ ॥ मेघ समयपर जल बरसायेंगे और खेतोंकी उपज बढ़ जायगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यासजी बोले–लोककल्याणमें तत्पर शङ्करजीके ऐसा कहते ही चंडिकाके शरीरसे एक अद्भुत शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ। वह शक्ति बड़ी भीषण और बड़ी प्रचण्ड थी। सैकड़ों सियारिनोंका झुंड उसके साथ था। उन देवियोंकी सम्मिलित ध्वनिके समान उस शक्तिकी ध्वनि थी॥३३॥३४॥ उसका रूप बहुत भयानक था। मंद-मंद मुसकाती हुई उस चण्डिका शक्तिने शङ्करजीसे कहा–हे देवदेव! आप शीघ्र दैत्यराज शुम्भके पास जाइए॥ ३५॥ हे कामदेवके शत्रु शङ्करजी! इस समय आप मेरे दूतका कार्य कर आइए और कामपीडित शुम्भ तथा मदमत्त निशुम्भसे मेरी जवानी कहिए–॥ ३६॥ तुमलोग स्वर्ग त्यागकर तत्काल पाताल चले जाओ। जिससे देवगण सुखपूर्वक स्वर्गलोकमें प्रविष्ट हों और इन्द्र अपने इन्द्रासनपर विराजें॥ ३७॥ देवता स्वर्गराज्यको पुनः प्राप्त करें और उन्हें यज्ञभाग फिरसे मिलने लगे। यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो तुम लोग दानवोंकी निवासभूमि पातालपुरीको चले जाओ। इसके विपरीत

रद्भुता॥ भीषणाऽतिप्रचंडा च शिवाशतनिनादिनी॥ ३४॥ घोररूपाऽथ पंचास्यमित्युवाच स्मितानना॥ देवदेव व्रजाशु त्वं दैत्यानामधिपं प्रति॥ ३५॥ दूतत्वं कुरु कामारे ब्रूहि शुंभं स्मराकुलम्॥ निशुंभं च मदोत्सिक्तं वचनान्मम शङ्कर॥ ३६॥ मुक्त्वा त्रिविष्टपं यात यूयं पातालमाशु वै॥ देवाः स्वर्गे सुसंयांतु तुराषाट् स्वासनं शुभम्॥ ३७॥ प्राप्नोतु त्रिदिवं स्थानं यज्ञभागाँश्च देवताः॥ जीवितेच्छा च युष्माकं यदि स्यात्तु महत्तरा॥ ३८॥ तर्हि गच्छत पातालं तरसा यत्र दानवाः॥ अथवा बलमास्थाय युद्धेच्छा मरणाय चेत्॥ ३९॥ तदाऽऽगच्छंतु तृप्यंतु मच्छिवाः पिशितेन वः॥ व्यास उवाच॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः शूलपाणिस्त्वरान्वितः॥ ४०॥ गत्वाऽऽह दैत्यराजानं शुंभं सदसि संस्थितम्॥ शिव उवाच॥ राजन्दूतोऽहमंबायास्त्रिपुरांतकरो हरः॥ ४१॥ त्वत्सकाशमिहायातो हितं कर्तुं तवाखिलम्॥ त्यक्त्वा स्वर्गं तथा भूमिं यूयं गच्छत सत्वरम्॥ ४२॥ पातालं यत्र प्रह्लादो बलिश्च बलिनां वरः॥ अथवा मरणेच्छा चेत्तर्ह्यागच्छत सत्वरम्॥ ४३॥ संग्रामे वो हनिष्यामि सर्वानेवाहमाशु वै॥ इत्युवाच महाराज्ञी युष्मत्कल्याणहेतवे॥४४॥ व्यास उवाच॥ इति दैत्यवरान्देवीवाक्यं पीयूषसन्निभम्॥ हितकृच्छ्रावयित्वा स प्रत्यायातश्च शूलभृत्॥ ४५॥ ययाऽसौ प्रेरितः शंभुर्दूतत्वे दानवान्प्रति॥ शिवदूतीति विख्याता जाता त्रिभुवनेऽखिले॥ ४६॥ तेऽपि श्रुत्वा

यदि तुम सब मरनेके लिए हो तैयार होओ॥३८॥३९॥ तब आओ, मरो। जिससे मेरे साथकी सियारिनें तुम्हारा मांस खाकर तृप्त हों। व्यासजी बोले–चण्डिकाके वचन सुनकर शंकरजी तत्काल हाथमें त्रिशूल लेकर बड़े वेगसे चल पड़े॥ ४०॥ अपनी राजसभामें बैठे हुए शुम्भके पास जाकर उन्होंने कहा। शिवजी बोले–हे राजन्! मैं भगवती अम्बिकाका दूत और त्रिपुरासुरका वध करनेवाला शिव हूँ॥ ४१॥ इस समय मैं तुम्हारा हित करनेके लिए यहाँ आया हूँ। वह हित इस बातमें है कि तुमलोग स्वर्ग त्यागकर शीघ्र पातालको चले जाओ॥४२॥ जहाँ तुम्हारे पूर्वज प्रह्लाद तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलि रहते हैं। अथवा यदि मरनेकी ही इच्छा हो तो अतिशीघ्र युद्धभूमिमें आ जाओ। वहाँपर देवी तुम सबको तुरंत मार डालेंगी। तुम लोगोंके कल्याणार्थ महारानी अम्बिकाका यही आदेश है॥ ४३॥ ४४॥ व्यासजी बोले–इस प्रकार अमृतके समान हितकारी देवीका सन्देश उन प्रमुख दैत्योंको सुनाकर शूलधारी शंकरजी लौट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आये ॥ ४५ ॥ जिस महाशक्तिने शिवजीको दूत बनाकर दानवोंके पास भेजा था, वह तीनों लोकमें 'शिवदूती' नामसे विख्यात हो गयी ॥ ४६ ॥ दानवोंने जब शङ्करजीके मुखसे देवीका आदेश सुना तो उसे स्वीकार करना दुष्कर समझा और कवच तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो-होकर युद्धके लिए निकल पड़े ॥४७॥ वे बड़े वेगसे रणभूमिमें चंडिकाके समक्ष जा पहुँचे और पहुँचते ही कानोंतक धनुषकी डोरी खींच-खींचकर अतिशय तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ ४८ ॥ उस समय भगवती कालिका उन दैत्योंको गदा, बर्छी तथा शूलप्रहार द्वारा मारती तथा उन्हें चबाती हुई समरभूमिमें विचरने लगीं ॥४९॥ उधर भगवती ब्रह्माणी अपने कमंडलसे जल फेंक-फेंककर उन महाबली दानवोंका संहार करने लगीं ॥५०॥ भगवती माहेश्वरी बैलपर सवार होकर रणभूमि बड़े वेगसे त्रिशूलका प्रहार करती हुई दानवोंको मार-मारकर धराशायी करने लगीं ॥ ५१ ॥ वैष्णवी देवीने अपने चक्र तथा गदाके आघातसे अगणित दानवोंके सिर काटकर

वचो देव्याः शङ्करोक्तं तु दुष्करम् ॥ युद्धाय निर्ययुः शीघ्रं दंशिताः शस्त्रपाणयः ॥ ४७ ॥ तरसा रणमागत्य चंडिकां प्रति दानवाः ॥ निर्जघ्नुश्च शरैस्तीक्ष्णैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ ४८ ॥ कालिका शूलपातैस्तान् गदाशक्तिविदारितान् ॥ कुर्वती व्यचरत्तत्र भक्षयन्ती च दानवान् ॥ ४९ ॥ कमण्डलुजलाक्षेपगतप्राणान् महाबलान् ॥ ब्रह्माणी चाकरोत्तत्र दानवान्समरांगणे ॥ ५० ॥ माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलेनातिरंहसा ॥ जघान दानवान्संख्ये पातयामास भूतले ॥ ५१ ॥ वैष्णवी चक्रपातेन गदापातेन दानवान् ॥ गतप्राणांश्चकाराशु चोत्तमांगविवर्जितान् ॥ ५२ ॥ ऐन्द्री वज्रप्रहारेण पातयामास भूतले ॥ ऐरावतकराघातपीडितान्दैत्यपुंगवान् ॥ ५३ ॥ वाराही तुण्डघातेन दंष्ट्राग्रपातनेन च ॥ जघान क्रोध-संयुक्ता शतशो दैत्यदानवान् ॥ ५४ ॥ नारसिही नखैस्तीव्रैर्दारितान्दैत्यपुङ्गवान् ॥ भक्षयन्ती चचाराजौ ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ ५५ ॥ शिवदूती साट्टहासैः पातयामास भूतले ॥ तांश्चखादाथ चामुण्डा कालिका च त्वरान्विता ॥५६॥ शिखिसंस्था च कौमारी कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ निज-घान रणे शत्रून्देवानां च हिताय वै ॥ ५७ ॥ वारुणी पाशसंबद्धान्दैत्यान्समरमस्तके ॥ पातयामास तत्पृष्ठे मूर्च्छितान्गतचेतनान् ॥ ५८ ॥ एवं मातृगणेनाजावतिवीर्यपराक्रमम् ॥ मर्दितं दानवं सैन्यं पलायनपरं ह्यभूत् ॥ ५९ ॥ बुम्बारवस्तु सुमहानभूत्तत्र बलार्णवे ॥ पुष्पवृष्टिं तदा देवाश्च-

मार डाला ॥५२॥ एक ओर इन्द्रकी शक्ति ऐन्द्री देवी ऐरावतकी सूँड़के प्रहारसे घायल दैत्योंपर वज्रप्रहार करती हुई उन्हें धराशायी कर रही थीं ॥ ५३ ॥ वाराही देवीने अलग अतिशय कुपित होकर अपने मुख तथा दाँतोंके प्रहारसे बहुतेरे दैत्यों और दानवोंको साफ कर दिया ॥ ५४ ॥ भगवती नारसिंही अपने तीक्ष्ण नखोंसे बड़े-बड़े दैत्योंको फाड़-फाड़कर खाती हुई बारम्बार गर्जन कर रही थीं ॥ ५५ ॥ शिवादेवी अपने अट्टहाससे दैत्योंको अचेत करके भूमिपर गिरा देती थीं और चामुण्डा तथा कालिका उनका भक्षण करती चलती थीं ॥५६॥ मयूर वाहनपर सवार कौमारी देवी देवताओंके कल्याणार्थ अति तीक्ष्ण बाणों द्वारा शत्रुओंका संहार कर रही थीं ॥५७॥ भगवती वारुणी अपने पाशमें बाँध-बाँधकर दैत्योंको अचेत कर-करके एकके ऊपर एकके क्रमसे गिराती हुई मार रही थीं ॥ ५८ ॥ इस प्रकार जब ब्रह्माणी-वैष्णवी आदि मातृशक्तियोंने पराक्रमी दैत्योंकी सेनाका सफाया कर दिया। तब बाकी बचे दानवसैनिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाग खड़े हुए ॥ ५९ ॥ इससे उस सेनारूपी समुद्रमें बड़ी जोरसे चीत्कारका करुण स्वर गूँज उठा। देवतागण उन देवियोंपर पुष्पवर्षा करने लगे ॥ ६० ॥ दैत्योंका हाहाकार और देवताओंकी जयजयकारका भयानक कोलाहल सुन तथा दैत्योंको पलायन करते देखकर रक्तबीज बहुत क्रुद्ध हुआ ॥६१॥ उन देवताओंका गर्जन सुनकर वह तेजस्वी क्रोधके मारे बौखला उठा और स्वयं रणभूमिमें उतर आया ॥ ६२ ॥ वह विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर रथपर सवार था और बारंबार धनुषका टंकोर कर रहा था। रणभूमिमें पहुँचते ही वह आँखें लाल करके बड़े वेगसे देवीपर झपटा ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

(देवीके हाथों रक्तबीजका वध) व्यासजी बोले—हे राजा जनमेजय ! किसी समय शङ्करजीने रक्तबीजको बड़ा अद्भुत वर दे डाला था। वह वृत्तान्त बताता हूँ, सुनिए ॥ १ ॥

क्रुद्देव्या गणोपरि ॥ ६० ॥ तच्छ्रुत्वा निनदं घोरं जयशब्दं च दानवाः ॥ रक्तबीजश्चुकोपाशु दृष्ट्वा दैत्यान्पलायितान् ॥ ६१ ॥ गर्जमानांस्तथा देवान्वीक्ष्य दैत्यो महाबलः ॥ रक्तबीजस्तु तेजस्वी रणमभ्याययौ तदा ॥ ६२ ॥ सायुधो रथसंविष्टः कुर्वञ्ज्याशब्दमद्भुतम् ॥ आजगाम तदा देवीं क्रोधरक्तेक्षणोद्यतः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

व्यास उवाच॥ वरदानमिदं तस्य दानवस्य शिवार्पितम् ॥ अत्यद्भुततरं राजञ्छृणु तत्प्रब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥ तस्य देहाद्रक्तबिंदुर्यदा पतति भूतले ॥ समुत्पतंति दैतेयास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ २ ॥ असंख्याता महावीर्या दानवा रक्तसंभवाः ॥ प्रभवन्त्विति रुद्रेण दत्तोऽस्त्यत्यद्भुतो वरः ॥ ३ ॥ स तेन वरदानेन दर्पितः क्रोधसंयुतः ॥ अभ्यगात्तरसा संख्ये हन्तुं देवीं सकालिकाम् ॥ ४ ॥ स दृष्ट्वा वैष्णवीं शक्तिं गरुडोपरि संस्थिताम् ॥ शक्त्या जघान दैत्येंद्रस्तां वै कमललोचनाम् ॥ ५ ॥ गदया वारयामास शक्तिः सा शक्तिसंयुता ॥ अताडयच्च चक्रेण रक्तबीजं महासुरम् ॥ ६ ॥ रथांग-क्षतदेहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥ वज्राहतगिरेः शृंगान्निर्झरा इव गैरिकाः ॥ ७ ॥ यत्र यत्र यदा भूमौ पतंति रक्तबिंदवः ॥ समुत्तस्थुस्तदाकाराः पुरुषाश्च सहस्रशः ॥ ८ ॥ ऐन्द्री तमसुरं घोरं वज्रेणाभिजघान च ॥ रक्तबीजं क्रुधाविष्टा निःससार च शोणितम् ॥ ९ ॥ ततस्तत्क्षतजाज्जाता

रुद्र भगवानने उसे यह विचित्र वरदान दे दिया था कि उसके शरीरसे जितनी रक्तकी बूँदें धरतीपर गिरेंगी, उतने ही महाबली रक्तबीज तत्काल उत्पन्न हो जायँगे। उन सबका आकार और पराक्रम रक्तबीजके ही समान होगा ॥ २ ॥ ३ ॥ उस वरप्राप्तिके कारण अतिशय अभिमानमें भरा और अत्यन्त क्रुद्ध रक्तबीज कालिका समेत अम्बिकाको मारनेके लिए बड़े वेगसे रणभूमिमें आया ॥ ४ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने वैष्णवी शक्तिको गरुड़पर विराजमान देखा। तत्काल उस दैत्यसेनापतिने उन कमलनयनी भगवतीपर बर्छी चला दी ॥ ५ ॥ किंतु देवीने अपनी गदासे वह प्रहार व्यर्थ करके उस महान् असुरपर अपना अमोघ चक्र चला दिया ॥६॥ वह चक्र लगनेपर रक्तबीजके शरीरसे उसी प्रकारकी रक्तकी धारा बह चली, जैसे वज्रके आघात-से क्षत-विक्षत पर्वतसे गेरूकी धारा बह रही हो ॥ ७ ॥ धरतीपर जहाँ-जहाँ रक्तकी बूँदें गिरीं, वहाँ-वहाँ उसीके समान आकारवाले हजारों योद्धा उत्पन्न हो गये ॥ ८ ॥ तदनन्तर भगवती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्द्राणीने रक्तबीजपर वज्रका प्रहार किया। उस समय भी उसके शरीरसे बहुत रक्त निकला ॥ ९ ॥ अतएव उसके रक्तसे बहुतेरे रक्तबीज उत्पन्न हो गये। उनका भी उसीके समान आकार-प्रकार था। वे भी उसीके समान पराक्रमी, शस्त्रास्त्रसम्पन्न तथा युद्धके लिए उत्सुक थे ॥१०॥ उसी समय ब्रह्माणीने ब्रह्मदण्डसे मारा और माहेश्वरीने अपने त्रिशूलसे उस रक्तबीजका शरीर विदीर्ण कर दिया ॥११॥ नारसिंहीने नखाघातसे और वाराही देवीने क्रुद्ध होकर उस अधम दैत्यपर दाँतोंका प्रहार किया ॥ १२ ॥ कौमारी शक्तिने उसकी छातीमें बर्छी घुसेड़ दी। तब उस दानवने भी कुपित होकर उन देवियोंपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥१३॥ गदा और शक्तिके प्रहारसे उसने अलग-अलग करके सब देवियोंपर चोट की। उसके आघातसे क्रुद्ध होकर वे सब देवियाँ भी उसपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगीं ॥ १४ ॥ भगवती चंडिकाने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके सभी प्रहार व्यर्थ कर दिये और अन्य बाणोंसे उसपर कठोर आघात

रक्तबीजा ह्यनेकशः ॥ तद्वीर्याश्च तदाकाराः सायुधा युद्धदुर्मदाः ॥ १० ॥ ब्रह्माणी ब्रह्मदण्डेन कुपिता ह्यहनद्भृशम् ॥ माहेश्वरी त्रिशूलेन
दारयामास दानवम् ॥ ११ ॥ नारसिंही नखाघातैस्तं विव्याध महासुरम् ॥ अहनत्तुण्डघातेन क्रुद्धा तं राक्षसाधमम् ॥ १२ ॥ कौमारी च तथा
शक्त्या वक्षस्येनमताडयत् ॥ सोऽपि क्रुद्धः शरासारैर्बिभेद निशितैश्च ताः ॥ १३ ॥ गदाशक्तिप्रहारैस्तु मातॄः सर्वाः पृथक्पृथक् ॥ शक्तयस्तं
शराघातैर्विव्यधुस्तत्प्रकोपिताः ॥ १४ ॥ तस्य शस्त्राणि चिच्छेद चंडिका स्वशरैः शितैः ॥ जघानान्यैश्च विशिखैस्तं देवी कुपिता
भृशम् ॥ १५ ॥ तस्य देहाच्च सुस्राव रुधिरं बहुधा तु यत् ॥ तस्मात्तत्सदृशाः शूराः प्रादुरासन्सहस्रशः ॥ १६ ॥ रक्तबीजैर्जगद्व्याप्तं
रुधिरौघसमुद्भवैः ॥ सन्नादैः सायुधैः कामं कुर्वद्भिर्युद्धमद्भुतम् ॥ १७ ॥ प्रहरन्तश्च तान्दृष्ट्वा रक्तबीजाननेकशः ॥ भयभीताः सुरास्त्रेसुर्विषण्णाः
शोककर्षिताः ॥ १८ ॥ कथमद्य क्षयं दैत्या गमिष्यन्ति सहस्रशः ॥ महाकाया महावीर्या दानवा रक्तसंभवाः ॥ १९ ॥ एकैव चण्डिकाऽत्रास्ति
तथा काली च मातरः ॥ एताभिर्दानवाः सर्वे जेतव्याः कष्टमेव तत् ॥ २० ॥ निशुम्भो वाऽथ शुम्भो वा सहसा बलसंवृतः ॥ आगमिष्यति संग्रामे
ततोऽनर्थो महान्भवेत् ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं देवा भयोद्विग्नाश्चिंतामापुर्महत्तराम् ॥ यदा तदांबिका प्राह कालीं कमललोचनाम् ॥ २२ ॥

किया ॥ १५ ॥ इससे भी रक्तबीजके शरीरसे बहुतेरा रक्त निकला और उससे उसीके समान हजारों वीर उत्पन्न हो गये ॥ १६ ॥ इस प्रकार उसकी रुधिरधारासे इतने अधिक रक्तबीज उत्पन्न हुए कि उनसे सारा संसार भर गया। वे सब कवच तथा अस्त्र धारण किये हुए थे और अद्भुत रीतिसे युद्ध कर रहे थे ॥ १७ ॥ उन अगणित रक्तबीजोंको प्रहार करते देखकर देवता त्रस्त और भयभीत हो गये। उस समय समस्त देवसमुदायपर विषाद और शोक छा गया ॥१८॥ वे सोचने लगे कि रक्तबीजके रक्तसे उत्पन्न इन हजारों महाकाय और महापराकमी दानवोंका संहार कैसे होगा? ॥१९॥ रणभूमिमें चंडिका, काली तथा मातृकायें हैं। इनका कोई सहायक भी नहीं है। तब ये थोड़ी-सी देवियाँ इन अगणित दानवोंको कैसे परास्त करेंगी? ॥२०॥ इसी समय यदि सहसा शुम्भ और निशुम्भ भी अपनी सेनाके साथ रणाङ्गणमें उतर आयें तो बहुत बड़ा अनर्थ हो जायगा ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले—उधर जब देवता भयभीत एवं उद्विग्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होकर विविध तर्कनायें कर रहे थे। उसी समय भगवती अम्बिकाने कमलनयनी कालीसे कहा—॥२२॥ हे चामुण्डे! तुम अभी अपना मुख खूब फैला लो और मेरे शस्त्रोंकी मारसे रक्तबीजके शरीरसे जितना रुधिर गिरे, वह सब तुम तुरन्त पीती जाओ ॥२३॥ अब तुम इच्छानुसार दानवोंको खाती हुई रणभूमिमें विचरो। इधर मैं अपने तीक्ष्ण बाण, गदा, तलवार तथा मुशलसे उन दानवोंका संहार कर रही हूँ ॥ २४ ॥ हे विशालाक्षि! तुम इस ढंगसे रुधिर पान करो कि अब रक्तबीजका एक बूँद भी रुधिर पृथिवीपर न गिरने पाये ॥ २५ ॥ इस रीतिसे प्रबन्ध करके यदि दैत्योंका भक्षण किया जायगा तो अन्य दानव न उत्पन्न हो सकेंगे। ऐसा ही करनेपर उनका संहार हो सकेगा। अन्य कोई उपाय नहीं है॥ २६ ॥ शत्रुनाशका पूर्ण प्रयत्न करती हुई तुम रक्तबीजका रुधिर पीती चलो और हे चामुण्डे! मैं जिस दैत्यका वध करूँ, उसे तुम तत्काल खा लो ॥ २७ ॥ इस प्रकार सब दैत्योंका संहार करनेके बाद इन्द्रको स्वर्गका राज्य देकर हम सानन्द अपने-अपने स्थानको लौट चलेंगी ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले—भगवती अम्बिकाका यह आदेश पाकर प्रचंड पराक्रमसम्पन्ना चामुण्डा रक्तबीजके शरीरसे

चामुण्डे कुरु विस्तीर्णं वदनं त्वरिता भृशम् ॥ मच्छस्त्रपातसंभूतं रुधिरं पिब सत्वरा ॥ २३ ॥ भक्षयंती चर रणे दानवानद्य कामतः ॥ हनिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्गदाऽसिमुसलैस्तथा ॥ २४ ॥ तथा कुरु विशालाक्षि पानं तद्रुधिरस्य च ॥ बिंदुमात्रं यथा भूम्यां न पतेदपि सांप्रतम् ॥ २५ ॥ भक्ष्यमाणास्तदा दैत्या न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ॥ एवमेषां क्षयो नूनं भविष्यति न चान्यथा ॥ २६ ॥ घातयिष्याम्यहं दैत्यं त्वं भक्षय च सत्वरा ॥ पिबंती क्षतजं सर्वं यतमानाऽरिसंक्षये ॥ २७ ॥ इत्थं दैत्यक्षयं कृत्वा दत्त्वा राज्यं सुरालयम् ॥ इन्द्राय सुस्थिरं सर्वं गमिष्यामो यथासुखम् ॥ २८ ॥ इत्युक्ताऽम्बिकया देवी चामुंडा चंडविक्रमा ॥ पपौ च क्षतजं सर्वं रक्तबीजशरीरजम् ॥ २९ ॥ अंबिका तं जघानाशु खड्गेन मुसलेन च ॥ चखाद देहशकलांश्चामुंडा तान्कृशोदरी ॥ ३० ॥ सोऽपि क्रुद्धो गदाघातैश्चामुंडां समघातयत् ॥ तथापि सा पपावाशु क्षतजं तमभक्षयत् ॥ ३१ ॥ येऽन्ये रुधिरजाः क्रूरा रक्तबीजा महाबलाः ॥ तेऽपि निष्पातिताः सर्वे भक्षिता गतशोणिताः ॥ ३२ ॥ कृत्रिमा भक्षिताः सर्वे यस्तु स्वाभाविकोऽसुरः ॥ सोऽपि प्रपातितो हत्वा खड्गेनातिविखंडितः ॥३३॥ रक्तबीजे हते रौद्रे ये चान्ये दानवा रणे ॥ पलायनं ततः कृत्वा गतास्ते भयकंपिताः ॥३४॥ हाहेति विब्रुवंतस्ते शुम्भं प्रोचुः सुविह्वलाः ॥ रुधिरारक्तदेहाश्च विगतास्त्रा विचेतसः ॥ ३५ ॥ राजन्नंबिकया रक्तबीजोऽसौ विनिपातितः ॥ चामुण्डा

निकला हुआ रक्त पीने लगीं ॥ २९ ॥ अब अम्बिका तलवार और मुसल द्वारा बड़ी तेजीसे रक्तबीजपर प्रहार करने लगीं और कृशोदरी चामुण्डा उसके शरीरके कटे टुकड़ोंको खाने लगीं ॥ ३० ॥ तब रक्तबीजने भी कुपित होकर चामुण्डापर अपनी गदाका प्रहार किया। किन्तु तब भी वे उसके शरीरसे निकले रुधिरको पीती और शरीरके कटे हुए टुकड़ोंको खाती रहीं ॥ ३१ ॥ उसके रुधिरसे जो अन्यान्य महाबली और क्रूर रक्तबीज उत्पन्न हुए थे, उनका भी रुधिर कालिकाने पी लिया और रुधिरके अभावमें जब वे निर्बल हो गये। तब उन्होंने उन कृत्रिम रक्तबीजोंको मारकर खा लिया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार जब देवीने उन बनावटी रक्तबीजोंको खा डाला, तब असली रक्तबीजको अम्बिकाने अपनी तलवारसे काटकर खंड-खंड कर दिया ॥ ३३ ॥ इस तरह उस भयानक रक्तबीजके मर जानेपर अन्य दानव भयसे काँपते हुए रणभूमि छोड़कर भाग खड़े हुए ॥३४॥ हाहाकार करते हुए वे सब शुम्भके पास गये। उन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सबका शरीर रुधिरसे भींगा था। उनके शस्त्रास्त्र गायब थे और उनका होश ठिकाने नहीं था ॥३५॥ उन भगोड़े सैनिकोंने कहा–हे राजन्! अंबिकाने रक्तबीजको मार डाला और चामुंडाने उसके शरीरसे निकला हुआ सब रक्त पी लिया ॥३६॥ अन्य दानववीरोंको देवीके सिंहने बड़ी तेजीसे मार डाला और कालिकाने उन सबको खा लिया ॥३७॥ हे राजन्! हम लोग युद्धका वृत्तान्त तथा उस देवीके परम अद्भुत चरित्र सुनानेके लिए आपके पास भाग आये हैं ॥ ३८ ॥ हे महाराज! वह देवी सभी दैत्यों, दानवों, गन्धर्वों, सर्पों और असुरोंसे अजेय है ॥३९॥ हे राजन्! अब इन्द्राणी आदि अन्य देवियाँ भी विविध वाहनोंपर सवार हो तथा नाना प्रकारके शस्त्र धारण करके आयी हैं और लड़ रही हैं ॥४०॥ हे राजेन्द्र! उन देवियांने उच्च कोटिके शस्त्रोंसे दानवोंकी सब सेना नष्ट कर दी है और रक्तबीजको भी मार डाला है ॥४१॥ पहले तो उनमेंसे केवल एक देवी हमारे लिए असह्य थो। अब जब कि बहुतेरी देवियोंका झुण्ड एकत्र हो गया है, तब क्या कहना। वह अमित तेजस्वी सिंह भी रणभूमिमें दैत्योंको मार रहा हैं ॥ ४२ ॥ अतएव आप मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करके जो उचित समझिए, सो कीजिए।

तस्य देहात्तु पपौ सर्वं च शोणितम् ॥ ३६ ॥ ये चान्ये दानवाः शूरा वाहनेनातिरंहसा ॥ सिंहेन निहताः सर्वे काल्या च भक्षिताः परे ॥ ३७ ॥ वयं त्वां कथितुं राजन्नागता युद्धचेष्टितम् ॥ चरितं च तथा देव्याः संग्रामे परमाद्भुतम् ॥ ३८ ॥ अजेयेयं महाराज सर्वथा दैत्यदानवैः ॥ गन्धर्वासुरयक्षैश्च पन्नगोरगराक्षसैः ॥ ३९ ॥ अन्यास्तत्रागता देव्य इन्द्राणीप्रमुखा भृशम् ॥ युध्यमाना महाराज वाहनैरायुधैर्युताः ॥ ४० ॥ ताभिः सर्वं हतं सैन्यं दानवानां वरायुधैः ॥ रक्तबीजोऽपि राजेंद्र तरसा विनिपातितः ॥ ४१ ॥ एकाऽपि दुःसहा देवी किं पुनस्ताभिरन्विता ॥ सिंहोऽपि हन्ति संग्रामे राक्षसानमितप्रभः ॥ ४२ ॥ अतो विचार्य सचिवैर्यद्युक्तं तद्विधीयताम् ॥ न वैरमनया युक्तं संधिरेव सुखप्रदः ॥ ४३ ॥ आश्चर्यमेतदखिलं यन्नारी हन्ति राक्षसान् ॥ रक्तबीजोऽपि निहतः पीतं तस्यापि शोणितम् ॥ ४४ ॥ अन्ये निपातिता दैत्याः संग्रामेऽम्बिकया नृप ॥ चामुंडया च मांसं वै भक्षितं सकलं रणे ॥ ४५ ॥ वरं पातालगमनं तस्याः सेवाऽथवा वरा ॥ न तु युद्धं महाराज कार्यमम्बिकया सह ॥ ४६ ॥ न नारी प्राकृता ह्येषा देवकार्यार्थसाधिनी ॥ मायेयं प्रबला देवी क्षपयंतीयमुत्थिता ॥ ४७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचस्तथ्यं श्रुत्वा कालविमोहितः ॥ मुमूर्षुः प्रत्युवाचेदं शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ॥ ४८ ॥ शुम्भ उवाच ॥ यूयं गच्छत पातालं

किंतु उस देवीके साथ वैर करनेसे भला न होगा। सुख तो उसके साथ सन्धि करके ही प्राप्त किया जा सकता है ॥ ४३ ॥ यह कितने आश्चर्यकी बात है कि एक स्त्री राक्षसोंका वध कर रही है। रक्तबीज मार डाला गया और वह देवी उसका रक्त पी गयी ॥ ४४ ॥ हे नृप! अन्य दैत्योंको अंबिकाने मारा और चामुण्डा उन सबका मांस खा गयी ॥४५॥ हे महाराज! अच्छा हो कि हम लोग पातालको भाग चलें या नतमस्तक होकर उसकी अधीनता स्वीकार कर लें। लेकिन अम्बिकाके साथ युद्ध न करें ॥ ४६ ॥ देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिए आयी हुई वह कोई साधारण स्त्री नहीं है। वह प्रबला माया दैत्यकुलका नाश करनेके लिए ही उत्पन्न हुई है ॥४७॥ व्यासजी बोले—हे महाराज! उन सैनिकोंके वचन सुनकर कालसे मोहित एवं मरनेको उद्यत शुंभने कहा। मारे क्रोधके उसके होंठ काँप रहे थे ॥ ४८ ॥ शुंभ बोला—तुम डरपोक लोग पाताल चले जाओ या उसकी सेवकाई स्वीकार कर लो। किन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं तो आज पूरी तैयारी करके जाऊँगा और अम्बिका तथा उसके साथकी देवियोंको मार डालूँगा ॥ ४९ ॥ रणभूमिमें पहुँचकर मैं सब देवताओंको पराजित करके अपने राज्यका विस्तार करूँगा। एक स्त्रीसे भयभीत होकर मैं पातालको क्यों चला जाऊँ ? ॥ ५० ॥ रक्तबीज सदृश अपने प्रमुख पार्षदोंका वध कराके अब प्राण बचानेके लिए अपनी विपुल कीर्तिपर पानी फेर-कर मैं भागूँ ? ॥५१॥ कभी न कभी मरना तो निश्चित है। क्योंकि कालने सब प्राणियोंके लिए ऐसा विधान ही बना दिया है। जन्मके साथ ही मृत्युका भय प्राणीके साथ लग जाता है। ऐसी स्थितिमें कौन व्यक्ति कठिनाईसे प्राप्त यशको छोड़ना चाहेगा ? ॥५२॥ हे भाई निशुंभ ! अब मैं स्वयं रथपर बैठकर रणभूमिमें जाऊँगा और उसे मारकर ही लौटूँगा। कदाचित् ऐसा न कर सका तो लौटकर तुम्हें मुँह न दिखाऊँगा ॥ ५३ ॥ हे वीर ! तुम अपनी सेनाके साथ मेरे सहायकके रूपमें चलो और अपने द्रुतगामी बाणोंसे मारकर उस स्त्रीको यमपुर भेज दो ॥ ५४ ॥ निशुंभने कहा—भैया ! आज मैं रणमें जाऊँगा और उस दुष्ट कालीको मार तथा अंबिकाको पकड़कर आपके पास ले आऊँगा ॥ ५५ ॥ हे राजेन्द्र ! आप उस तुच्छ महिलाके

शरणं वा भयातुरः ॥ हनिष्याम्यहमद्यैव तां च ताश्च समुद्यतः ॥ ४६ ॥ जित्वा सर्वान्सुरानाजौ कृत्वा राज्यं सुपुष्कलम् ॥ कथं नारीभयोद्विग्नः पातालं प्रविशाम्यहम् ॥ ५० ॥ निहत्य पार्षदान्सर्वान्रक्तबीजमुखान्रणे ॥ प्राणत्राणाय गच्छामि हित्वा किं विपुलं यशः ॥ ५१ ॥ मरणं त्वनिवार्यं वै प्राणिनां कालकल्पितम् ॥ तद्भयं जन्मनोपात्तं त्यजेत्को दुर्लभं यशः ॥ ५२ ॥ निशुम्भाहं गमिष्यामि रथारूढो रणाजिरे ॥ हत्वा तामागमिष्यामि नागमिष्यामि चान्यथा ॥५३॥ त्वं तु सेनायुतो वीर पार्ष्णिग्राहो भवस्व मे ॥ तरसा तां शरैस्तीक्ष्णैर्नारीं नय यमालये ॥ ५४ ॥ निशुंभ उवाच ॥ अहमद्य हनिष्यामि गत्वा दुष्टां च कालिकाम् ॥ आगमिष्याम्यहं शीघ्रं गृहीत्वा तामथांबिकाम् ॥ ५५ ॥ मा चिंता कुरु राजेंद्र वराकायास्तु कारणे ॥ क्वैषा बाला क्व मे बाहुवीर्यं विश्ववशंकरम् ॥ ५६ ॥ त्यक्त्वार्तिं विपुलां भ्रातर्भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ आनयिष्याम्यहं कामं मानिनीं मानसंयुताम् ॥ ५७ ॥ मयि तिष्ठति ते राजन्न युक्तं गमनं रणे ॥ गत्वाऽहमानयिष्यामि तवार्थे वै जयश्रियम् ॥ ५८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा भ्रातरं ज्येष्ठं कनीयान्बलगर्वितः ॥ रथमास्थाय विपुलं सन्नद्धः स्वबलावृतः ॥ ५६ ॥ जगाम तरसा तूर्णं सङ्गरे कृतमंगलः ॥ संस्तुतो वन्दिसूतैश्च सायुधः सपरिष्करः ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

लिए किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। कहाँ वह बेचारी स्त्री और कहाँ समस्त विश्वको काबूमें कर लेनेवाला मेरा बाहुबल ॥ ५६ ॥ अब यह भारी सन्ताप त्यागकर आप उत्तम प्रकारके भोगोंका उपभोग करिए। मैं उस अभिमानभरी नारीको अवश्य मारूँगा ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! मेरे रहते आपका रणभूमिमें जाना अनुचित है। मैं वहाँ जाकर आपके लिए विजयश्री प्राप्त करके ही लौटूँगा ॥ ५८ ॥ व्यासजी बोले—अपने बड़े भाई शुंभसे ऐसा कहकर बलसे मदमत्त निशुंभने सेना सुसज्जित की और कवच पहनकर रथपर सवार हुआ ॥ ५९ ॥ उस समय मंगलाचार किया गया। बन्दियों और सूतोंने स्तुति की। तब शस्त्रास्त्र लेकर वह पूरी तैयारीके साथ रणभूमिकी ओर चला ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(निशुम्भवधकी कथा) व्यासजी बोले—हे महाराज ! वीर निशुंभ मरण अथवा विजयका पक्का निश्चय करके अपनी विशाल वाहिनीके साथ देवीसे लड़नेके निमित्त रणभूमिकी ओर चल पड़ा ॥ १ ॥ निशुंभके चल देनेपर शुम्भ भी लड़नेके लिए अपनी सेनाके साथ किलेसे बाहर निकला । वह संग्रामरसका ज्ञाता था । अतएव प्रेक्षकरूपमें युद्ध देखने लगा ॥ २ ॥ आकाशमण्डलके बादलोंकी ओटमें छिपे हुए इन्द्र आदि देवता तथा यक्षगण भी वह युद्ध देखने लगे ॥३॥ उसी समय निशुंभ सींगका बना धनुष लेकर रणभूमिमें उतरा और पहुँचते ही जगदम्बाको डराता हुआ उग्र बाणवर्षा करने लगा ॥ ४ ॥ भगवती चण्डिकाने इस प्रकार बाण बरसाते हुए निशुम्भको देखकर अपना श्रेष्ठ धनुष सम्हाला और बड़े मीठे स्वरमें बारम्बार हँसने लगीं ॥ ५ ॥ उन्होंने भगवती कालिकासे कहा—हे काली ! इन दानवोंकी मूर्खता तो देखो । ये दोनों मरनेके लिए इस समय स्वयं मेरे पास आ पहुँचे हैं ॥ ६ ॥ दैत्योंका भीषण

॥ व्यास उवाच ॥ निशुम्भो निश्चयं कृत्वा मरणाय जयाय वा ॥ सोद्यमः सबलः शूरो रणे देवीमुपाययौ ॥१॥ तमाजगाम शुम्भोऽपि स्वबलेन समावृतः ॥ प्रेक्षकोऽभूद्रणे राजा संग्रामरसपण्डितः ॥२॥ गगने संस्थिता देवास्तदाभ्रपटलावृताः ॥ दिदृक्षवस्तु संग्रामे सेन्द्रा यक्षगणास्तथा ॥३॥ निशुम्भोऽथ रणे गत्वा धनुरादाय शार्ङ्गकम् ॥ चकार शरवृष्टिं स भीषयञ्जगदम्बिकाम् ॥ ४ ॥ मुंचंतं शरजालानि निशुम्भं चण्डिका रणे ॥ वीक्ष्यादाय धनुःश्रेष्ठं जहास सुस्वरं मुहुः ॥ ५ ॥ उवाच कालिका देवी पश्य मूर्खत्वमेतयोः ॥ मरणायागतौ कालि मत्समीपमिहाधुना ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा दैत्यवधं घोरं रक्तबीजात्ययं तथा ॥ जयाशां कुरुतस्त्वेतौ मोहितौ मम मायया ॥ ७ ॥ आशा बलवती ह्येषा न जहाति नरं क्वचित् ॥ भग्नं हतं बलं नष्टं गतपक्षं विचेतनम् ॥ ८ ॥ आशापाशनिबद्धौ द्वौ युद्धाय समुपागतौ ॥ निहन्तव्यौ मया कालि रणे शुम्भनिशुंभकौ ॥ ९ ॥ आसन्नमरणावेतौ संप्राप्तौ दैवमोहितौ ॥ पश्यतां सर्वदेवानां हनिष्याम्यहमद्य तौ ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा कालिकां चंडी कर्णाकृष्टशरोत्करैः ॥ छादयामास तरसा निशुंभं पुरतः स्थितम् ॥११॥ दानवोऽपि शरांस्यस्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ तया परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम् ॥ १२ ॥ केसरी केशजालानि धुन्वानः सैन्यसागरम् ॥ गाहयामास बलवान्सरसीं वारणो यथा ॥१३॥ नखैर्दन्तप्रहारैस्तु दानवान्पुरतः स्थितान् ॥

वध तथा रक्तबीजका मरण देख करके भी मेरी मायासे मोहित होकर ये विजय प्राप्त करनेकी आशा कर रहे हैं ॥७॥ आशा बड़ी बलवती होती है । वह कभी प्राणीका पिण्ड नहीं छोड़ती। दानवी सेना पलायन कर गयी । कितने मर-कट गये । बहुतेरे अचेत हो गये । फिर भी आशापाशमें बँधे ये दोनों लड़ने आये हैं । हे काली ! मैं आज रणमें शुम्भ-निशुम्भ दोनोंको मार डालूँगी ॥८॥९॥ इनकी मृत्यु समीप आयी हुई है । तभी तो दैवसे मोहित होकर ये यहाँ आये हैं । आज सब देवताओंके समक्ष मैं इन दोनोंका वध करूँगी ॥ १० ॥ व्यासजी बोले—कालिकासे ऐसा कहकर चंडिकाने कानोंतक धनुषकी डोरी खींचकर विकराल बाणोंसे अपने समक्ष उपस्थित निशुंभको ढाँक दिया ॥११॥ निशुम्भ दानवने भी अपने तीखे बाणोंसे देवीके बाणोंको काट डाला । इस प्रकार उन दोनोंमें बड़ा भयानक युद्ध आरम्भ हो गया ॥ १२ ॥ उधर भगवतीका सिंह अयाल छितराकर उस दानवसेनारूपी समुद्रमें कूद पड़ा और उसे इस तरह मथने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगा, जैसे कोई हाथी तालाबमें घुसकर उसको मथे ॥१३॥ जैसे सिंह मतवाले हाथियोंको फाड़ डालता है, उसी प्रकार देवीका सिंह सामने पड़नेवाले सभी दैत्योंको फाड़-फाड़कर खाने लगा ॥१४॥ वह सिंह जब इस प्रकार दानबी सेनाका विनाश करने लगा। तब निशुम्भ एक मजबूत धनुष चढ़ाकर दौड़ा ॥१५॥ उसा समय और-और दानव भी क्रोधसे लाल नेत्र किये और दाँतोंसे हांठ चबाते हुए देवीको मारनेके लिए झपटे ॥ १६ ॥ उसी अवसरपर अत्यन्त कुपित होकर शुम्भ भी कालिकाको मारने तथा अम्बिकाको पकड़नेके लिए अपनी सेनाके साथ रणभूमिमें उतर आया ॥ १७ ॥ युद्धस्थलीमें पहुँचकर शुम्भने देखा कि जगदम्बा सामने खड़ी हैं। वे शृङ्गाररससे परिपूर्ण सुन्दरी होती हुई भी रौद्ररस युक्त थीं ॥ १८ ॥ विशालनयनी, त्रिभुवनसुन्दरी, स्वभावतः लाल नेत्र होनेपर भी क्रोधसे और भी लाल नयनोंवाली रमणीको देखकर उसने विवाहकी इच्छा तथा विजयकी आशा दूरहीसे त्याग दी और अपने मरणका

चखाद च विशीर्णाङ्गान् गजानिव मदोत्कटान् ॥१४॥ एवं विमथ्यमाने तु सैन्ये केसरिणा तदा ॥ अन्वधावन्निशुम्भोऽथ विकृष्टवरकार्मुकः ॥१५॥
अन्येऽपि क्रुद्धा दैत्येन्द्रा देवीं हन्तुमुपाययुः ॥ सन्दष्टदन्तरसना रक्तनेत्रा ह्यनेकशः ॥ १६ ॥ तत्राजगाम तरसा शुम्भः सैन्यसमावृतः ॥ निहत्य
कालिकां कोपाद्ग्रहीतुं जगदम्बिकाम् ॥ १७ ॥ तत्रागत्य ददर्शाजावंबिकां च पुरःस्थिताम् ॥ रौद्ररसयुतां कांतां शृंगाररससंयुताम् ॥ १८ ॥
तां वीक्ष्य विपुलापांगीं त्रैलोक्यवरसुंदरीम् ॥ सुरक्तनयनां रम्यां क्रोधरक्तेक्षणां तथा ॥ १९ ॥ विवाहेच्छां परित्यज्य जयाशां दूरतस्तथा ॥ मरणे
निश्चयं कृत्वा तस्थावाहितकार्मुकः ॥ २० ॥ तं तथा दानवं देवी स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ बभाषे शृण्वतां तेषां दैत्यानां रणमस्तके ॥ २१ ॥ गच्छध्वं
पामरा यूयं पातालं वा जलार्णवम् ॥ जीविताशां स्थिरां कृत्वा त्यक्त्वाऽत्रैवायुधानि च ॥ २२ ॥ अथवा मच्छराघातहतप्राणा रणाजिरे ॥ प्राप्य
स्वर्गसुखं सर्वे क्रीडंतु विगतज्वराः ॥ २३ ॥ कातरत्वं च शूरत्वं न भवत्येव सर्वथा ॥ ददाम्यभयदानं वै यांतु सर्वे यथासुखम् ॥ २४ ॥ व्यास
उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्या निशुम्भो मदगर्वितः ॥ निशितं खड्गमादाय चर्म चैवाष्टचंद्रकम् ॥२५॥ धावमानस्तु तरसाऽसिना सिंहं मदोत्कटम् ॥
जघानातिबलान्मूर्ध्नि भ्रामयञ्जगदम्बिकाम् ॥ २६ ॥ ततो देवी स्वगदया वंचयित्वाऽसिपातनम् ॥ ताडयामास तं बाहोर्मूले परशुना तदा ॥ २७॥

निश्चय करके धनुष लेकर खड़ा हो गया ॥ १९ ॥ २० ॥ युद्धभूमिमें आये हुए शुम्भको देखकर वहाँके सब दैत्योंको सुनाती हुई देवी बोलीं—॥ २१ ॥ हे अधम दानवो! यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो अभी अपने शस्त्रास्त्र यहीं छोड़कर तुम सब पाताललोक अथवा समुद्रके उस पार भाग जाओ ॥ २२ ॥ यह पसन्द न हो तो रणांगणमें मेरे बाणोंके आघातसे अपने प्राण गवाँकर स्वर्गमें जाओ और वहाँ निर्भयभावसे विहार करो ॥ २३ ॥ कायरता और वीरता दोनों एक साथ नहीं रह सकती। मैं तुम्हें अभयदान देती हूँ। तुम लोग आरामसे चले जाओ ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले–मदमत्त निशुम्भने भगवतीके वचन सुनकर तीक्ष्ण तलवार निकाली और ढाल लेकर द्रुतगतिसे दौड़ा। समीप पहुँचकर उसने मदगर्वित सिंहके मस्तकपर तलवार चला दी और तुरन्त ही जगदम्बापर भी वार कर दिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ भगवतीने अपनी गदासे उसका प्रहार बचाकर उस दैत्यके कन्धेपर फरसेसे प्रहार किया ॥ २७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कन्धेपर असाधारण चोट खाकर भी वह महाबली दैत्य वह पीड़ा सह गया और उसने फिरसे चण्डिकापर प्रहार कर दिया ॥२८॥ तब भगवतीन अपना भयदायक घंटा बजाया और निशुंभको मारनेके लिए बारम्बार मदिरा पीने लगीं ॥ २९ ॥ इस प्रकार परस्पर एक दूसरेपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे देवताओं और दैत्योंमें बड़ा भयानक युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ३० ॥ कच्चा मांस खानेवाले पक्षी, क्रूर कुत्ते, सियार, गृध्र, कङ्क और कौए प्रसन्न होकर नाचने लगे ॥ ३१ ॥ रुधिरसे सराबोर दैत्यसेनाके सैनिक कट-कटकर गिरने लगे। उन सैनिकों तथा हाथी-घोड़ोंकी लाशोंसे सारी रणभूमि भर गयी ॥ ३२ ॥ दानवोंको बेतरह कटते देखकर निशुम्भ क्रोधसे तलमला उठा और एक भयानक गदा लेकर बड़े वेगसे चण्डिकापर टूट पड़ा ॥ ३३ ॥ समीप पहुँचकर उसने पहले सिंहके मस्तकपर प्रहार किया और उसके बाद मुसकाकर देवीके ऊपर गदा चला दी ॥ ३४ ॥ इससे देवी अत्यन्त कुपित हो गयीं। प्रहार करते

खड्गेन निहतः सोऽपि बाहुमूले महामदः ॥ संस्तभ्य वेदनां भूयो जघान चण्डिकां तदा ॥ २८ ॥ साऽपि घण्टास्वनं घोरं चकार भयदं नृणाम् ॥ पपौ पुनः पुनः पानं निशुंभं हन्तुमिच्छती ॥ २९ ॥ एवं परस्परं युद्धं बभूवातिभयप्रदम् ॥ देवानां दानवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥ ३० ॥ पलादाः पक्षिणः क्रूराः सारमेयाश्च जम्बुकाः ॥ ननृतुश्चातिसन्तुष्टा गृध्राः कंकाश्च वायसाः ॥ ३१ ॥ रणभूर्भाति भूयिष्ठपतितासुरवर्ष्मकैः ॥ रुधिरस्रावसंयुक्तैर्गजाश्वदेहसंकुला ॥ ३२ ॥ पतितान्दानवान्दृष्ट्वा निशुम्भोऽतिरुषान्वितः ॥ प्रययौ चण्डिकां तूर्णङ्गदामादाय दारुणाम् ॥ ३३ ॥ सिंहं जघान गदया मस्तके मदगर्वितः ॥ प्रहृत्य च स्मितं कृत्वा पुनर्देवीमताडयत् ॥ ३४ ॥ साऽपि तं कुपिताऽतीव निशुम्भं पुरतः स्थितम् ॥ प्रहरन्तं समीक्ष्याथ देवी वचनमब्रवीत् ॥३५॥ श्रीदेव्युवाच ॥ तिष्ठ मंदमते तावद्यावत्खड्गमिदं तव ॥ ग्रीवायां प्रेरयाम्यस्माद्गन्ताऽसि यमसादनम् ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तरसा देवी कृपाणेन समाहिता ॥ चिच्छेद मस्तकं तस्य निशुम्भस्याथ चण्डिका ॥ ३७ ॥ स छिन्नमस्तको देव्या कबन्धोऽतीव दारुणः ॥ बभ्राम च गदापाणिस्त्रासयन्देवतागणान् ॥ ३८ ॥ देवी तस्य शितैर्बाणैश्चिच्छेद चरणौ करौ ॥ पपातोर्व्यां ततः पापी गतासुः पर्वतोपमः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्निपतिते दैत्ये निशुम्भे भीमविक्रमे ॥ हाहाकारो महानासीत्तत्सैन्ये भयकंपिते ॥ ४० ॥ त्यक्त्वाऽऽयुधानि सर्वाणि सैनिकाः क्षतजाप्लुताः ॥ जग्मुर्बुम्बारवं सर्वे कुर्वाणा राजमन्दिरम् ॥ ४१ ॥ तानागतान्सुसंप्रेक्ष्य शुम्भः शत्रुनिषूदनः ॥ पप्रच्छ क्व

देखकर उन्होंने अपने समक्ष खड़े निशुम्भसे कहा ॥ ३५ ॥ देवी बोलीं—अरे मन्दबुद्धि! ठहर जा, अभी मैं अपनी तलवारसे तेरा गला काटकर तुझे यमपुर भेज रही हूँ ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवती चण्डिकाने बड़ी शीघ्रतापूर्वक अपनी तलवारसे निशुम्भका सिर काट लिया ॥ ३७ ॥ इस प्रकार देवीके हाथों मस्तक कट जानेपर निशुम्भका भयंकर धड़ हाथमें गदा लिये हुए देवताओंको डराता हुआ चक्कर लगाने लगा ॥३८॥ यह देखकर देवीने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके हाथ-पैर भी काट दिये। तब कहीं जाकर उस पर्वताकार पापीका शरीर धरतीपर गिरा ॥३९॥ इस प्रकार निशुम्भ दैत्यके धराशायी होनेपर चारों ओर हाहाकार मच गया और सारी दैत्यसेना भयसे काँप उठी ॥४०॥ रुधिरसे सराबोर कितने दैत्यसैनिक हथियार डालकर शुम्भकी दुहाई देते हुए राजप्रासादकी ओर भागे ॥४१॥ शत्रुसेनाके विनाशक शुम्भने उन भगोड़े सैनिकोंको देखकर पूछा—निशुम्भ कहाँ है? तुम लोग रणभूमिसे भाग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्यों आये ? ॥४२॥ राजा शुम्भका प्रश्न सुनकर सैनिकोंने विनम्रभावसे कहा–हे महाराज ! आपके भाई निशुम्भ मारे गये। वे इस समय रणभूमिमें सोये हुए हैं ॥ ४३ ॥ आपके लघु भ्राताकी सहायताको जितने भी वीर गये थे, उन सबको देवीने मार डाला। हम लोग किसी तरह बचकर आपको वहाँका समाचार बतानेके लिए भाग आये हैं ॥४४॥ अभी-अभी चण्डिकाने निशुम्भका वध किया है। अतएव हमारा तो यह विचार है कि अभी आपके रणाङ्गणमें उतरनेका अवसर नहीं है ॥४५॥ आप इस बातपर विचार करिए कि यह कोई असाधारण महिला है, जो देवताओंका उद्देश्य पूरा करनेके लिए यहाँ आयी हुई है ॥४६॥ वह मामूली स्त्री नहीं है। बल्कि कोई दैवी शक्ति है। उसके चरित्र बड़े अनोखे हैं। जिन्हें देवता भी नहीं जान सकते ॥ ४७ ॥ वह अनेक रूप धारण करती है और मायाके मूल तत्त्वको जानती है। वह विचित्र आभूषणोंको धारण करके भी शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित है ॥ ४८ ॥ उसके गहन चरित्रोंको

निशुम्भोऽसौ कथं भग्नाः पलायिताः ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्ते प्रोचुः प्रणता भृशम् ॥ राजंस्ते निहतो भ्राता शेते समरमूर्धनि ॥ ४३ ॥
तया निपातिताः शूरा ये च तेऽप्यनुजानुगाः ॥ वयं त्वां कथितुं सर्वं वृत्तांतं समुपागताः ॥ ४४ ॥ निशुम्भो निहतस्तत्र तया चण्डिकयाऽधुना ॥
न हि युद्धस्य कालोऽद्य तव राजन्रणांगणे ॥ ४५ ॥ देवकार्यं समुद्दिश्य काऽपीयं परमांगना ॥ हन्तुं दैत्यकुलं नूनं प्राप्तेति परिचिंतय ॥ ४६ ॥
नैषा प्राकृतयोषैव दैवी शक्तिरनुत्तमा ॥ अचिंत्यचरिता कापि दुर्ज्ञेया दैवतैरपि ॥ ४७ ॥ नानारूपधरातीव मायामूलविशारदा ॥ विचित्रभूषणा
देवी सर्वायुधधरा शुभा ॥ ४८ ॥ गहना गूढचरिता कालरात्रिरिवापरा ॥ अपारपारगा पूर्णा सर्वलक्षणसंयुता ॥ ४९ ॥ अन्तरिक्षस्थिता देवास्तां
स्तुवंत्यकुतोभयाः ॥ देवकार्यं च कुर्वाणां श्रीदेवीं परमाद्भुताम् ॥ ५० ॥ पलायनं परो धर्मः सर्वथा देहरक्षणम् ॥ रक्षिते किल देहेऽस्मिन्कालेऽस्म-
त्सुखताङ्गते ॥ ५१ ॥ संग्रामे विजयो राजन्भविता ते न संशयः ॥ कालः करोति बलिनं समये निर्बलं क्वचित् ॥ ५२ ॥ तं पुनः सबलं कृत्वा
जयायोपदधाति हि ॥ दातारं याचकं कालः करोति समये क्वचित् ॥ ५३ ॥ भिक्षुकं धनदातारं करोति समयांतरे ॥ विष्णुः कालवशे नूनं ब्रह्मा
वा पार्वतीपतिः ॥ ५४ ॥ इन्द्राद्या निर्जराः सर्वे काल एव प्रभुः स्वयम् ॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षस्व विपरीतं तवाधुना ॥ ५५ ॥ संमुखो देवतानां च

समझना बहुत कठिन है। वह दूसरी कालरात्रिके समान डरावनी दीखती है और समस्त शुभलक्षणसम्पन्न पूर्ण प्रकृति है। वह असाध्य कार्यको भी सिद्ध कर लेती है ॥ ४९ ॥ वह परम अद्भुत श्रीदेवी तन्मयतापूर्वक देवताओंका काम करती है। आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता निर्भय भावसे उसकी स्तुति करते हैं ॥ ५० ॥ इस समय तो भागकर शरीर बचा लेना ही सबसे बड़ा धर्म है। यदि शरीर बचा रहेगा तो अनुकूल समय आनेपर हम संग्राममें अवश्य विजय प्राप्त करेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। क्योंकि समय ही प्राणीको बलवान् और निर्बल बनाता है ॥५१॥५२॥ समय ही निर्बलको बलवान् बनाकर विजयश्री दिलाता है। कभी-कभी वह दाताको भी भिक्षुक बना देता है ॥५३॥ कालान्तरमें समय ही भिक्षुकको धनदाताके पदपर बिठाल देता है। विष्णु, ब्रह्मा और शिव सभी समयके वशीभूत हैं ॥ ५४ ॥ इन्द्रादिक देवता भी सदा उसके अधीन रहते हैं। अतएव समय ही सबका स्वामी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसलिए हमारी तो यही सलाह है कि अच्छे अवसरकी प्रतीक्षा करिए। अभी समय आपके प्रतिकूल है॥ ५५॥ वह इस समय देवताओंके अनुकूल है और दैत्योंके लिए विनाशकारी है। हे महाराज! कभी भी समयकी गति एक जैसी नहीं रहती॥ ५६॥ समय नाना प्रकारके रूप धारण करता रहता है। अतएव शान्तिके साथ उसकी गतिविधिको देखते रहिए। यह कालका ही खेल है कि वह एक समय मनुष्योंको उत्पन्न करता है और वही उनका विनाश भी कर देता है॥ ५७॥ उत्पत्तिका कारणस्वरूप काल अन्य होता है और विनाशकारी काल उससे भिन्न होता है। हे महाराज! यह तो आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि ये इन्द्र आदि देवता वे ही हैं॥५८॥ जिन्हें आपने अपने अनुकूल समयमें करदाता (प्रजाजन) बना लिया था। आज समय हमारे विपरीत है, तब एक स्त्री प्रबल पराक्रमी हम असुरवीरोंको मार रही है। समय ही प्राणीको उन्नत तथा अवनत बनाता है। इस पराजयमें काली या देवता कारण नहीं हैं॥ ५९॥ ६०॥ हमारा बातोंपर भली-भाँति विचार करके आपको जो जँचे, वैसा करिए! किन्तु इतना हम फिर कहेंगे कि यह समय दानवोंके अनुकूल नहीं है॥ ६१॥ एक समय वह

दैत्यानां नाशहेतुकः॥ एकैव च गतिर्नास्ति कालस्य किल भूपते॥ ५६॥ नानारूपधरोऽप्यस्ति ज्ञातव्यं तस्य चेष्टितम्॥ कदाचित्संभवो नृणां कदाचित्प्रलयस्तथा॥ ५७॥ उत्पत्तिहेतुः कालोऽन्यः क्षयहेतुस्तथाऽपरः॥ प्रत्यक्षं ते महाराज देवाः सर्वे सवासवाः॥ ५८॥ करदास्ते कृताः पूर्वं कालेन सम्मुखेन च॥ तेनैव विमुखेनाद्य बलिनोऽबलयाऽसुराः॥ ५९॥ निहता नितरां कालः करोति च शुभाशुभम्॥ नैवात्र कारणं काली नैव देवाः सनातनाः॥ ६०॥ यथा ते रोचते राजंस्तथा कुरु विमृश्य च॥ कालोऽयं नात्र हेतुस्ते दानवानां तथा पुनः॥ ६१॥ त्वदग्रतो गतः शक्रो भग्नः संख्ये निरायुधः॥ तथा विष्णुस्तथा रुद्रो वरुणो धनदो यमः॥ ६२॥ तथा त्वमपि राजेन्द्र वीक्ष्य कालवशं जगत्॥ पातालं गच्छ तरसा जीवन्भद्रमवाप्स्यसि॥ ६३॥ मृते त्वयि महाराज शत्रवस्ते मुदान्विताः॥ मंगलानि प्रगायंतो विचरिष्यंति सर्वतः॥ ६४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

व्यास उवाच॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भो दैत्यपतिस्तथा॥ उवाच सैनिकानाशु कोपाकुलितलोचनः॥ १॥ शुम्भ उवाच॥ जाल्माः किं ब्रूत दुर्वाच्यं कृत्वा जीवितुमुत्सहे॥ निहत्य सचिवान्भ्रातॄन्निर्लज्जो विचरामि किम्॥ २॥ कालः कर्ता शुभानां वाऽशुभानां बलवत्तरः॥

भी था कि जब रणभूमिमें शस्त्र त्यागकर इन्द्र, विष्णु, शिव, वरुण, कुबेर और यम आदि देवता पीठ दिखाकर आपके सामनेसे भाग गये थे॥ ६२॥ उसी प्रकार हे महाराज! आप भी संसारको समयके अधीन समझकर तुरन्त पाताललोकको चल दीजिए। यदि जीवन बचा रहेगा तो फिर अच्छे दिन देखनेको मिलेंगे॥ ६३॥ कदाचित् रणभूमिमें जाकर आप मर गये तो देवता मंगलगीत गाते हुए बड़े हर्षपूर्वक निर्भयभावसे सर्वत्र विचरेंगे॥ ६४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

(शुम्भवधकी कथा) व्यासजी बोले—उन सैनिकोंकी बात सुनकर दैत्यपति शुम्भके नेत्र कोपसे आकुल हो उठे। उसने उन भगोड़े सैनिकोंसे कहा॥ १॥ शुम्भ बोला—अरे धूर्तो! यह क्या कह रहे हो? जो तुम कहते हो, वैसा करके मैं अपने प्राण बचाऊँ? अपने भ्राता तथा मंत्रियोंका वध कराके मैं निर्लज्ज बनकर विचरूँ? ॥ २॥ परम बलवान् काल ही भला-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुरा सब कुछ करता है। यदि वह काल ही प्रभु है, तब मेरे चिन्ता करनेसे क्या लाभ होगा ? ॥ ३ ॥ जो होना है, वह होगा। कालकी जो इच्छा हो, वह करे। अब मुझे जीवन और मरणके विषयमें कुछ भी चिन्ता नहीं है ॥४॥ किन्तु विधिके विधानको मेटनेकी सामर्थ्य कालमें भी नहीं है। ऐसा भी देखनेमें आता है कि श्रावणमें जल नहीं बरसता ॥५॥ बल्कि कभी-कभी अगहन, पौष, माघ तथा फाल्गुनमें वर्षा होने लगती है। इससे पता चलता है कि सब कार्योंमें कालका भी वश नहीं है ॥६॥ काल तो केवल निमित्तमात्र है, बल्कि दैव ही कालकी अपेक्षा अधिक बलवान् है। सब कुछ बनाने-बिगाड़नेवाला दैव ही है ॥७॥ अतएव मैं तो दैवको ही सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ। उसके आगे पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि जिसने सब देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली थी, वह निशुम्भ दैववश एक स्त्रीके हाथों मारा गया ॥ ८ ॥ जब महाबली रक्तबीज मर गया, तब अपनी कीर्तिको धूलमें मिलाकर मैं जीवित रहनेकी आशा

का चिंता मम दुर्वारे तस्मिन्नीशेऽप्यरूपके ॥ ३ ॥ यद्भवति तद्भवतु यत्करोति करोतु तत् ॥ न मे चिंताऽस्ति कुत्रापि मरणाज्जीवनात्तथा ॥ ४ ॥
स कालोऽप्यन्यथा कर्तुं भावितो नेशते क्वचित् ॥ न वर्षति च पर्जन्यः श्रावणे मासि सर्वदा ॥ ५ ॥ कदाचिन्मार्गशीर्षे वा पौषे माघेऽथ फाल्गुने ॥
अकाले वर्षतीवाशु तस्मान्मुख्यो न चास्त्ययम् ॥ ६ ॥ कालो निमित्तमात्रं तु दैवं हि बलवत्तरम् ॥ दैवेन निर्मितं सर्वं नान्यथा भवतीत्यदः ॥ ७ ॥
दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ जेता यः सर्वदेवानां निशुम्भोऽप्यनया हतः ॥ ८ ॥ रक्तबीजो महाशूरः सोऽपि नाशं गतो यदा ॥ तदाऽहं
कीर्तिमुत्सृज्य जीविताशां करोमि किम् ॥ ९ ॥ प्राप्ते काले स्वयं ब्रह्मा परार्धद्वयसंमिते ॥ निधनं याति तरसा जगत्कर्ता स्वयं प्रभुः ॥ १० ॥
चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो दिवसे किल ॥ पतंति भवनात्पंच नव चेन्द्रास्तथा पुनः ॥ ११ ॥ तथैव द्विगुणे विष्णुर्मरणायोपकल्पते ॥ तथैव द्विगुणे
काले शंकरः शांतिमेति च ॥ १२ ॥ का चिंता मरणे मूढा निश्चले दैवनिर्मिते ॥ महीमहीधराणां च नाशः सूर्यशशांकयोः ॥ १३ ॥ जातस्य
हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ अध्रुवेऽस्मिञ्छरीरे तु रक्षणीयं यशः स्थिरम् ॥ १४ ॥ रथो मे कल्प्यतां शीघ्रं गमिष्यामि रणाजिरे ॥
जयो वा मरणं वापि भवत्वद्यैव दैवतः ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा सैनिकाञ्छुम्भो रथमास्थाय सत्वरः ॥ प्रययावम्बिका यत्र संस्थिता तु हिमाचले ॥ १६ ॥

क्यों करूँ ? ॥ ९ ॥ समस्त विश्वकी रचना करनेवाले और सबके प्रभु ब्रह्माजी भी दो परार्धका समय बीतनेपर मर जाते हैं ॥ १० ॥ ब्रह्माजीके एक दिनमें चार हजार युग बीतते हैं और इतनी ही देरमें चौदह इन्द्रोंका पतन हो जाता है ॥ ११ ॥ इसी प्रकार ब्रह्माजीके जीवनकालकी अपेक्षा दूना समय बीतनेपर विष्णु और उससे दुगुना समय व्यतीत होनेपर शिवजी भी शान्त हो जाते हैं ॥१२॥ तब पृथिवी, पर्वत, सूर्य और चन्द्रमा भी नष्ट हो जाते हैं। जब दैवने मृत्युको अनिवार्य बना दिया है, तब हे मूर्खो ! मरणके विषयमें चिन्ता करनेसे क्या लाभ ? ॥ १३ ॥ जिसका जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा और जो मरा है उसका जन्म पाना निश्चित है। तब इस विनाशशील शरीरके द्वारा अर्जित चिरस्थायी यशकी रक्षा करना आवश्यक है ॥१४॥ मेरा रथ तैयार कराओ। मैं रणाङ्गणमें जाऊँगा। भाग्यवश विजय या मृत्यु इन दोनोंमें जो मिलना हो, वह मिल जाय ॥१५॥ सैनिकोंसे यह कहकर शुम्भ तत्काल रथपर सवार हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गया और हिमालयके उस प्रदेशकी ओर चल पड़ा, जहाँ अंविका विराजमान थीं ॥ १६ ॥ उसके साथ रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंकी चतुरंगिणी सेना चली। उसके पास विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र थे ॥ १७ ॥ हिमवान् पर्वतपर पहुँचकर शुंभने सिंहवाहिनी और त्रैलोक्यसुन्दरी जगदंबाको विराजमान देखा ॥ १८ ॥ वे देवी सभी आभूषणोंसे आभूषित और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं। आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ १९ ॥ वे स्वर्गीय मन्दार पुष्पसे देवीकी अर्चना कर रहे थे। भगवती मनोहर घण्टानाद करती हुई बारंबार शंख बजा रही थीं ॥२०॥ उन जगदम्बाका अनुपम रूप देखकर शुंभ कामान्ध हो उठा। कामबाणसे पीडित होकर वह मन ही मन सोचने लगा-॥२१॥ ओह! इस रमणीका कितना सुन्दर रूप है! इसमें कितनी चतुराई भरी हुई है। इसमें कोमलता और धैर्य इन दोनों परस्परविरोधी भावोंका अनोखा समावेश है ॥२२॥ यह बहुत सुकुमार है। इसके अंग कितने सूक्ष्म हैं। अभी यौवन उभड़ रहा है, किंतु यह सब होते हुए भी इसमें कामवासनाके जागृत होनेका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता। यह बड़ी विचित्र बात है

सैन्यं प्रचलितं तस्य सङ्गे तत्र चतुर्विधम् ॥ हस्त्यश्वरथपादातिसंयुतं सायुधं बहु ॥१७॥ तत्र गत्वाऽचले शुम्भः संस्थितां जगदम्बिकाम् ॥ त्रैलोक्यमोहिनीं कांतामपश्यत्सिंहवाहिनीम् ॥ १८ ॥ सर्वाभरणभूषाढ्यां सर्वलक्षणसंवृताम् ॥ स्तूयमानां सुरैः खस्थैर्गंधर्वयक्षकिन्नरैः ॥ १९ ॥ पुष्पैश्च पूज्यमानां च मन्दारपादपोद्भवैः ॥ कुर्वाणां शङ्खनिनदं घंटानादं मनोहरम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा तां मोहमगमच्छुम्भः कामविमोहितः ॥ पञ्चबाणाहतः कामं मनसा समचिंतयत् ॥ २१ ॥ अहो रूपमिदं सम्यगहो चातुर्यमद्भुतम् ॥ सौकुमार्यं च धैर्यं च परस्परविरोधि यत् ॥ २२ ॥ सुकुमाराऽतितन्वङ्गी सद्यः प्रकटयौवना ॥ चित्रमेतदसौ बाला कामभावविवर्जिता ॥ २३ ॥ कामकांतासमा रूपे सर्वलक्षणलक्षिता ॥ अम्बिकेयं किमेतत्तु हन्ति सर्वान्महाबलान् ॥ २४ ॥ उपायः कोऽत्र कर्तव्यो येन मे वशगा भवेत् ॥ न मन्त्रा वा मरालाक्षीसाधने सन्निधौ मम ॥ २५ ॥ सर्वमन्त्रमयी ह्येषा मोहिनी मदगर्विता ॥ सुन्दरीयं कथं मे स्याद्वशगा वरवर्णिनी ॥ २६ ॥ पातालगमनं मेऽद्य न युक्तं समरांगणात् ॥ सामदानविभेदैश्च नेयं साध्या महाबला ॥ २७ ॥ किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं विषमे समुपस्थिते ॥ मरणं नोत्तमं नात्र स्त्रीकृतं तु यशोऽपहृत् ॥ २८ ॥ मरणं ऋषिभिः प्रोक्तं सङ्गरे मङ्गलास्पदम् ॥ यत्तत्समानबलयोर्योधयोर्युध्यतोः किल ॥ २९ ॥ प्राप्तेयं दैवरचिता नारी नरशतोत्तमा ॥ नाशायास्मत्कुलस्येह सर्वथाऽति-

॥ २३ ॥ यह कामदेवकी पत्नी रतिके समान सुन्दर है। इसमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं। तब यह अंबिका हमारे महाबली योद्धाओंका वध क्यों कर रही है? ॥२४॥ अब मैं ऐसा कौन उपाय करूँ कि जिससे यह मेरे वशमें हो जाय। मेरे पास कोई वशीकरण मंत्र भी नहीं है कि जिसका प्रयोग करके मैं इसे अपने वशमें कर लूँ ॥२५॥ यह कुलीन और परम सुन्दरी महिला तो स्वयं सब मंत्रोंकी अधीश्वरी है। तब मन्त्रके प्रभावसे मदमाती यह मोहिनी नारी मेरे वशमें कैसे होगी? इस समय रणभूमि त्यागकर पातालको भाग जाना भी उचित न होगा। सामनीति द्वारा मीठी-मीठी बातें करने, दाननीति द्वारा प्रलोभन देने और भेदनीति द्वारा फूट डालनेपर भी यह सुन्दरी मेरे वशमें न होगी ॥२६॥२७। ऐसी विषम परिस्थितिमें मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? यहाँ इसके हाथों मर जाना भी उचित न होगा। क्योंकि मुझ जैसे वीरका स्त्रीके हाथों मरण होनेपर बड़ा अपयश होगा ॥ २८ ॥ मुनियोंने रणभूमिमें मरणको मंगलदायक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बताया है। किन्तु वह भी जब अपने समान वीरोंके साथ युद्ध करते-करते मरण हो जाय, तभी ठीक हो सकता है ॥२९॥ दैवने इस रमणीको सैकड़ों वीरोंसे भी बड़ी बलवती बनाया है। अतएव यह अबला होती हुई भी अतिबला है और दैत्यवशको निर्मूल करनेके लिए ही यह यहाँ आयी हुई है ॥ ३० ॥ इससे सामनीतिकी चिकनी-चुपड़ी बातें करना भी व्यर्थ होगा। क्योंकि जब यह हमें मारनेके लिए आयी हुई है, तब बातोंसे कैसे प्रसन्न होगी ? ॥३१॥ यह विविध शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित और बलसे सम्पन्न है। अतएव प्रलोभनमें भी यह नहीं फँसेगी। सब देवता इसके वशीभूत रहते हैं। अतएव (फूट डालनेकी) नीति भी कुछ न कर सकेगी ॥३२॥ सो मेरा मर जाना ही उचित है, लेकिन रणमें पीठ दिखाकर भागना ठीक न होगा। अब चाहे विजय प्राप्त हो या मरण मिले। जो होना हो, वह हो जाय ॥ ३३ ॥ ऐसा विचार करके शुम्भने धैर्यका अवलम्बन किया। तदनुसार युद्ध करनेका निश्चय करके अपने समक्ष विराजमान देवीसे उसने कहा—हे देवि ! अब आप युद्ध करें। किंतु हे कांते ! आपका यह परिश्रम व्यर्थ है। आप मूर्ख हैं। क्योंकि युद्ध करना स्त्रीका काम नहीं है ॥३४॥३५॥ स्त्रियोंके

बलाऽबला ॥३०॥ वृथा किं सामवाक्यानि मया योज्यानि सांप्रतम् ॥ हननायागता ह्येषा किं नु साम्ना प्रसीदति ॥३१॥ न दानैश्चालितुं योग्या नानाशस्त्रविभूषिता ॥ भेदस्तु विफलः कामं सर्वदेववशानुगा ॥ ३२ ॥ तस्मात्तु मरणं श्रेयो न संग्रामे पलायनम् ॥ जयो वा मरणं वाऽद्य भवत्वेव यथाविधि ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्य मनसा शुम्भः सत्त्वाश्रितोऽभवत् ॥ युद्धाय सुस्थिरो भूत्वा तामुवाच पुरःस्थिताम् ॥ ३४॥ देवि युध्यस्व कान्तेऽद्य वृथाऽयं ते परिश्रमः ॥ मूर्खाऽसि किल नारीणां नायं धर्मः कदाचन ॥ ३५ ॥ नारीणां लोचने बाणा भ्रुवावेव शरासनम् ॥ हावभावास्तु शस्त्राणि पुमाँल्लक्ष्यं विचक्षणः ॥ ३६ ॥ सन्नाहश्चांगरागोऽत्र रथश्चापि मनोरथः ॥ मन्दप्रजल्पितं भेरीशब्दो नान्यः कदाचन ॥ ३७ ॥ अन्यास्त्रधारणं स्त्रीणां विडम्बनमसंशयम् ॥ लज्जैव भूषणं कान्ते न च धाष्टर्यं कदाचन ॥ ३८ ॥ युध्यमाना वरा नारी कर्कशेवाभिदृश्यते ॥ स्तनौ सङ्गोपनीयौ वा धनुषः कर्षणे कथम् ॥ ३९ ॥ क्व मन्दगमनं कुत्र गदामादाय धावनम् ॥ बुद्धिदा कालिका तेऽत्र चामुंडा परनायिका ॥ ४० ॥ चण्डिका मन्त्रमध्यस्था लालनेऽसुस्वरा शिवा ॥ वाहनं मृगराडास्ते सर्वसत्त्वभयङ्करः ॥ ४१ ॥ वीणानादं

तो नैन ही बाण होते हैं। उनकी भौंहें धनुषका काम करती हैं। उनके हाव-भाव शस्त्र तथा कामी पुरुष उनके लक्ष्य (शिकार) होते हैं ॥ ३६ ॥ सुरभित अंगराग कवच, मनोकामना रथ और फुसफुसाहटकी बोली ही भेरीका शब्द बन जाता है। अतएव स्त्रियोंको अन्य शस्त्रोंकी कोई आवश्यकता नहीं रहती ॥३७॥ इन स्वाभाविक शस्त्रोंके रहते हुए भी वे यदि अन्य अस्त्र धारण करती हैं तो यह विडम्बना ही कही जायगी। हे सुन्दरी ! स्त्रियोंके लिए तो लज्जा ही आभूषणका काम करती है। उन्हें धृष्टता शोभा नहीं देती ॥३८॥ कोई भी स्त्री जब युद्ध करती है तो वह बड़ी कठोर दीखने लगती है। आप ही बताइए कि जब आप धनुषकी डोरी खींचने लगेंगी, तब अपने स्तनोंको कैसे छिपाये रह सकेंगी ? ॥३९॥ कहाँ सुंदरियोंकी मन्थर गति और कहाँ गदा लेकर दौड़ना ? ऐसा प्रतीत होता है कि कालिका और परनायिका चामुण्डाकी ही सलाहपर आप चलती हैं ॥ ४० ॥ मंत्रणाके अवसरपर चण्डिका मध्यस्थ बनती है। इस शिवाका स्वर तो बड़ा कर्कश है। तब यह भला आपका लालन कैसे करती होगी ? सब पशुओंसे भयङ्कर पशु सिंह आपका वाहन है ॥ ४१ ॥ हे सुन्दरी ! वीणावादन त्यागकर आप जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घण्टानाद करती रहती हैं, वह आपके रूप और यौवनके सर्वथा विपरीत है।।४२।। हे भामिनी! यदि युद्ध ही करना हो तो पहले आप कुरूप बनिए। लम्बे-लम्बे होंठ हों, बढ़े हुए नख हों, क्रूर प्रकृति हो, कौए जैसी कानी आँख हो, बड़े-बड़े पैर हों, टेढ़े-टेढ़े दाँत हों और बिल्ली जैसी भूरी-भूरी आँखें हों। ऐसा भयानक रूप बनाकर आयें, तब आप युद्धभूमिमें स्थिरभावसे खड़ी हो जायँ तो ठीक है ।। ४३ ।। ४४ ।। आप कठोर बातें करें, तभी मैं आपके साथ युद्ध कर सकूँगा। आपका अनुपम सौन्दर्य और सुन्दर दाँत देखकर आपके ऊपर प्रहार करनेके लिए मेरे हाथ ही नहीं उठ सकेंगे ।। ४५ ।। हे मृगके बच्चोंकी तरह भोली आँखोंवाली ! हे कामदेवकी प्रेयसी रतिके सदृश सुन्दरी ! आपके मोहक रूपको देखकर मैं शस्त्र नहीं उठा सकूँगा। व्यासजी बोले—हे भरतोत्तम ! उस कामार्त दानवको ऐसा कहते देख जगदंबाने मुसकाकर कहा। देवी बोलीं—अरे मन्दबुद्धि ! तू कामबाणसे मोहित होकर इस प्रकार

परित्यज्य घंटानादं करोषि यत् ।। रूपयौवनयोः सर्वं विरोधि वरवर्णिनि ।।४२।। यदि ते संगरेच्छाऽस्ति कुरूपा भव भामिनि ।। लम्बोष्ठी कुनखी क्रूरा ध्वांक्षवर्णा विलोचना ।। ४३ ।। लम्बपादा कुदन्ती च मार्जारनयनाकृतिः ।। ईदृशं रूपमास्थाय तिष्ठ युद्धे स्थिरा भव ।। ४४ ।। कर्कशं वचनं ब्रूहि ततो युद्धं करोम्यहम् ।। ईदृशीं सुदतीं दृष्ट्वा न मे पाणिः प्रसीदति ।। ४५ ।। हन्तुं त्वां मृगशावाक्षि कामकांतोपमे मृधे ।। व्यास उवाच ।। इति ब्रुवाणं कामार्तं वीक्ष्य तं जगदम्बिका ।। ४६ ।। स्मितपूर्वमिदं वाक्यमुवाच भरतोत्तम ।। देव्युवाच ।। किं विषीदसि मन्दात्मन्कामबाणविमोहितः ।। ४७ ।। प्रेक्षिकाऽहं स्थिता मूढ कुरु कालिकया मृधम् ।। चामुण्डया वा कुर्वेते तव योग्ये रणांगणे ।। ४८ ।। प्रहरस्व यथाकामं नाहं त्वां योद्धुमुत्सहे ।। इत्युक्त्वा कालिकां प्राह देवी मधुरया गिरा ।। ४९ ।। जह्येनं कालिके क्रूरे कुरूपप्रियमाहवे ।। व्यास उवाच ।। इत्युक्ता कालिका कालप्रेरिता कालरूपिणी ।। ५० ।। गदां प्रगृह्य तरसा तस्थावाजौ कृतोद्यमा ।। तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम् ।। ५१ ।। पश्यतां सर्वदेवानां मुनीनां च महात्मनाम् ।। गदामुद्यम्य शुम्भोऽथ जघान कालिकां रणे ।। ५२ ।। कालिका दैत्यराजानं गदया न्यहनद्भृशम् ।। बभंजास्य रथं चण्डी गदया कनकोज्ज्वलम् ।। ५३ ।। खरान्हत्वा जघानाशु दारुकं दारुणस्वना ।। स पदातिर्गदां गुर्वीं समादाय क्रुधा-

विषाद क्यों कर रहा है ? ।। ४६ ।। ४७ ।। ओ मूढ़ ! मैं प्रेक्षिका बनकर अलग बैठती हूँ। तू कालिका या चामुण्डाके साथ युद्ध कर। ये दोनों तेरे लिए सर्वथा उपयुक्त हैं ।। ४८ ।। तू इन दोनोंपर मनमाना प्रहार कर। मैं तुझसे नहीं लड़ना चाहती। शुंभसे ऐसा कहकर अंबिकाने बड़ी मधुर वाणीमें कालिकासे कहा—।। ४९ ।। हे कालिके ! हे क्रूरे ! तुम इस कुरूपप्रिय दानवको रणभूमिमें मार डालो। व्यासजी बोले—जब भगवती अंबिकाने कालिकाको ऐसा आदेश दिया, तब कालप्रेरित कालिका गदा लेकर रणभूमिमें जा डटीं और दोनोंमें भीषण युद्ध होने लगा ।। ५० ।। ५१ ।। उस समय सब देवता, महात्मा और मुनिगण वह युद्ध देखने लगे। उसी समय शुंभने अपनी गदासे कालिकापर प्रहार किया ।। ५२ ।। उस प्रहारको व्यर्थ करके कालिकाने गदासे उसे मारा और गदाके प्रहारसे ही उसके सुनहले रथको भी चूर्ण कर दिया ।। ५३ ।। उसी सिलसिलेमें उसके घोड़ों तथा दारुक सारथीको भी समाप्त कर दिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तब अतिशय कुपित होकर शुंभ पैदल ही गदा लेकर दौड़ा ॥ ५४ ॥ समीप जाकर उसने कालिकाकी छातीपर प्रहार कर दिया। उस गदाघातको बचाकर कालिकाने तलवार ले ली। और उसीसे शुंभकी शस्त्रविभूषित तथा चन्दनचर्चित बायीं भुजा काट डाली। यद्यपि उसकी भुजा कट गयी थी, फिर भी दायें हाथमें गदा लिये हुए रुधिरसे सराबोर शुम्भ कालिकाके समीप पहुँचा और उनके ऊपर प्रहार कर दिया। तत्काल कालिकाने गदाके आघातको बचाकर अपनी करौलीसे उसका दाहिना हाथ भी काट डाला ॥ ५५–५७ ॥ उसकी उस भुजामें गदा तथा बिजायठ अब भी विद्यमान था। तब बड़े क्रोध और वेगसे शुंभ कालिकापर पादप्रहार करनेके लिए झपटा ॥ ५८ ॥ उसी समय कालिकाने बड़ी फुर्तीसे तलवार द्वारा उसके दोनों पैर भी काट डाले। इस प्रकार हाथ-पैर कट जानेपर भी शुम्भ 'ठहर जा–ठहर जा' ऐसा कहता और उन्हें धमकाता हुआ चला। उसे अपनी ओर आते देखकर कालिकाने उसके कमल

न्वितः ॥ ५४ ॥ कालिका भुजयोर्मध्ये प्रहसन्नहनत्तदा ॥ वंचयित्वा गदाघातं खड्गमादाय सत्वरा ॥ ५५ ॥ चिच्छेदास्य भुजं सव्यं सायुधं चन्दनार्चितम् ॥ स छिन्नबाहुर्विरथो गदापाणिः परिप्लुतः ॥ ५६ ॥ अचिरेण समागम्य कालिकामहनत्तदा ॥ काली च करवालेन भुजं तस्याथ दक्षिणम् ॥ ५७ ॥ चिच्छेद प्रहसन्ती सा सगदं किल सांगदम् ॥ कर्तुं पादप्रहारं स कुपितः प्रययौ जवात् ॥ ५८ ॥ काली चिच्छेद चरणौ खड्गेनास्य त्वरान्विता ॥ स च्छिन्नकरपादोऽपि तिष्ठ तिष्ठेति च ब्रुवन् ॥ ५९ ॥ धावमानो ययावाशु कालिकां भीषयन्निव ॥ तमागच्छंतमालोक्य कालिका कमलोपमम् ॥ ६० ॥ चकर्त मस्तकं कंठाद्रुधिरौघवहं भृशम् ॥ छिन्नेऽसौ मस्तके भूमौ पपात गिरिसन्निभः ॥ ६१ ॥ प्राणा विनिर्ययु-स्तस्य देहादुत्क्रम्य सत्वरम् ॥ गतासुं पतितं दैत्यं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥६२॥ तुष्टुवुस्तां तदा देवीं चामुंडां कालिकां तया ॥ ववुर्वाताः शिवा-स्तत्र दिशश्च विमला भृशम् ॥ ६३ ॥ बभूवुश्चाग्नयो होमे प्रदक्षिणशिखाः शुभाः ॥ हतशेषाश्च ये दैत्याः प्रणम्य जगदम्बिकाम् ॥ ६४ ॥ त्यक्त्वा-ऽऽयुधानि ते सर्वे पातालं प्रययुर्नृप ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ शुम्भादीनां वधं चैव सुराणां रक्षणं तथा ॥ एतदाख्यानकं सर्वं पठन्ति भुवि मानवाः ॥ ६६ ॥ शृण्वंति च सदा भक्त्या ते कृतार्था भवंति हि ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनश्च धनं बहु ॥ ६७ ॥ रोगी च

सदृश मस्तकको भी काटकर धड़से अलग कर दिया। मस्तक कटते ही उसके शरीरसे रुधिरकी धारा बह चली। उसका पर्वताकार शरीर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ५९–६१ ॥ तत्काल उसके प्राण निकल गये। शुम्भको मरा हुआ देखकर इन्द्र आदि सब देवता भगवती अंबिका, कालिका तथा चामुण्डाकी स्तुति करने लगे। उस समय सुखदायी वायु बहने लगी और सभी दिशायें निर्मल हो गयीं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ हवनकुण्डकी अग्नि शुभ सूचना देने लगी और उसकी लपटें दाहिनी ओरसे उठने लगीं। जो दैत्य मरनेसे बच गये थे, उन्होंने जगदंबाको प्रणाम किया और शस्त्रास्त्र त्यागकर पाताल चले गये। व्यासजी कहते हैं कि इस प्रकार मैंने आपको देवीका यह उत्तम चरित्र कह सुनाया ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इसमें शुम्भ आदि दैत्योंके वध तथा देवी द्वारा देवताओंकी रक्षाका भी वर्णन हो गया है। इस भूतलपर जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक सदा इस आख्यानको सुनते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं। पुत्र-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हीन मनुष्य पुत्रोंको प्राप्त करता है और निर्धन पुष्कल धन पाता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इसे पढ़ने-सुननेसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है। इस प्रकार लोगोंकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। जो मनुष्य नित्य इस शुभ चरित्रका पठन-श्रवण करता है, उसे शत्रुका भय नहीं रह जाता और अन्तमें मुक्ति तक प्राप्त हो जाती है ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

(राजा सुरथ और समाधि वैश्यकी कथा) राजा जनमेजय बोले—हे मुनिराज! आपने चण्डिकाकी महिमाका बड़ा सुन्दर वर्णन किया। अब कृपया यह बताइए कि देवीके तीनों चरित्रोंका मनन करके किसने उनकी आराधना की ? ॥ १ ॥ वे भगवती किसके ऊपर प्रसन्न हुईं और देवीकी पूजा करके किसने महान् फल प्राप्त किया ? हे कृपानिधान! कृपया यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहिए ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्! उसके साथ ही देवीके पूजनकी विधि भी बताइए। हे महाभाग! होमकी विधि भी विस्तारपूर्वक कहिए ॥३॥ सूतजी बोले—हे मुनिवृन्द!

मुच्यते रोगात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ शत्रुतो न भयं तस्य य इदं चरितं शुभम् ॥ शृणोति पठते नित्यं मुक्तिमाज्ञायते नरः ॥६८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे चंडमुंडवधो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ महिमा वर्ण्यते सम्यक्चण्डिकायास्त्वया मुने ॥ केन चाराधिता पूर्वं चरित्रत्रययोगतः ॥ १ ॥ प्रसन्ना कस्य वरदा केन प्राप्तं फलं महत् ॥ आराध्य कामदां देवीं कथयस्व कृपानिधे ॥ २ ॥ उपासनाविधिं ब्रह्मंस्तथा पूजाविधिं वद ॥ विस्तरेण महाभाग होमस्य च विधिं पुनः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इति भूपवचः श्रुत्वा प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ प्रत्युवाच नृगं कृष्णो महामायाप्रपूजनम् ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं सुरथो नाम पार्थिवः ॥ बभूव परमोदारः प्रजापालनतत्परः ॥ ५ ॥ सत्यवादी कर्मपरो ब्राह्मणानां च पूजकः ॥ गुरुभक्तिरतो नित्यं स्वदारगमने रतः ॥ ६ ॥ दानशीलोऽविरोधी च धनुर्वेदैकपारगः ॥ एवं पालयतो राज्यं म्लेच्छाः पर्वतवासिनः ॥ ७ ॥ बलाच्छत्रुत्वमापन्नाः सैन्यं कृत्वा चतुर्विधम् ॥ हस्त्यश्वरथपादातिसहितास्ते मदोत्कटाः ॥ ८ ॥ कोलाविध्वंसिनः प्राप्ताः पृथ्वीग्रहणतत्पराः ॥ सुरथः सैन्यमादाय संमुखः समपद्यत ॥ ९ ॥ युद्धं समभवद्धोरं तस्य तैरतिदारुणैः ॥ म्लेच्छानां तु बलं स्वल्पं राज्ञस्तद्बलमद्भुतम् ॥ १० ॥ तथापि तैर्जितो युद्धे दैवाद्राजा

राजा जनमेजयके प्रश्न सुनकर सत्यवतीसुत श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास बहुत प्रसन्न हुए और भगवती महामायाकी पूजाविधि कहने लगे ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! पूर्वकालके स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ नामके एक राजा थे। वे बड़े उदार थे और सदा प्रजापालनके कार्यमें संलग्न रहते थे ॥५॥ वे सत्यवादी, कर्मनिष्ठ, ब्राह्मणोंके आराधक, गुरुभक्तिपरायण तथा अपनी ही पत्नीके साथ सहवास करनेवाले महापुरुष थे ॥६॥ वे बड़े दानी, किसीसे वैर न करनेवाले और धनुर्वेदके पारंगत वीर थे। इस प्रकार वे न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करते थे। किन्तु कुछ पहाड़ी म्लेच्छोंने बरबस उनके साथ शत्रुता ठान ली और उन मदमत्त पहाड़ियोंने हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदलसैनिकोंकी चतुरंगिणी सेना संगठित करके धावा बोल दिया। वे कोला राज्य ध्वस्त करके समस्त पृथिवीपर अधिकार करनेकी लालसावश राजा सुरथके राज्यमें जा पहुँचे। तब राजा सुरथ भी अपनी सेना लेकर लड़नेको आगे बढ़े ॥७–९॥ उनका उन म्लेच्छोंके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ भीषण युद्ध हुआ। यद्यपि म्लेच्छोंके पास बहुत कम और राजा सुरथके पास प्रचुर सेना थी ॥ १० ॥ तथापि दैवयोगसे महाराज पराजित हो गये और म्लेच्छोंकी विजय हुई। तब वे भागकर अपनी दुर्गवेष्टित राजधानीमें चले गये ॥ ११ ॥ राजनीतिके विज्ञ और बुद्धिमान् राजा सुरथने देखा कि उनके मुख्य-मुख्य अधिकारी शत्रुपक्षमें मिल गये हैं। तब वे बहुत खिन्न हुए और सोचने लगे कि अब खाईं तथा किलेसे सुरक्षित किसी लम्बी-चौड़ी जमीनपर टिककर अच्छे समयकी प्रतीक्षा की जाय या युद्ध करूँ? ॥ १२ ॥ १३ ॥ मेरे सब मंत्री शत्रुसे मिल गये हैं। अतएव उनके साथ मंत्रणा नहीं की जा सकती। तब आखिर मैं क्या करूँ? मन ही मन राजा सुरथ यही बात सोचने लगे— ॥ १४ ॥ कदाचित् मेरे पापी और पराधीन अधिकारियोंने शत्रुसे घूस लेकर मुझे उनके हाथों सौंप दिया, तब क्या होगा? ॥ १५ ॥ जिनके मनमें पाप बस गया हो, ऐसे लोगोंपर कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए। लोभके वशीभूत मनुष्य क्या-क्या अनर्थ नहीं कर सकते? ॥ १६ ॥ लोभी मनुष्य अपने भाई, पिता, मित्र, सगे-सम्बन्धी और ब्राह्मणोंसे भी द्वेष करते हैं ॥ १७ ॥ अतएव शत्रुपक्षसे मिले

पराजितः ॥ भग्नश्च स्वपुरं प्राप्तः सुरक्षं दुर्गमंडितम् ॥ ११ ॥ चिंतयामास मेधावी राजा नीतिविचक्षणः ॥ प्रधानान्विमना दृष्ट्वा शत्रुपक्षसमाश्रितान् ॥ १२ ॥ स्थानं गृहीत्वा विपुलं परिखादुर्गमंडितम् ॥ कालप्रतीक्षा कर्तव्या किं वा युद्धं वरं मतम् ॥ १३ ॥ मंत्रिणः शत्रुवशगा मंत्रयोग्या न ते किल ॥ किं करोमीति मनसा भूपतिः समचिंतयत् ॥१४॥ कदाचित्ते गृहीत्वा मां पापाचाराः पराश्रिताः ॥ शत्रुभ्योऽथ प्रदास्यन्ति तदा किं वा भविष्यति ॥ १५ ॥ पापबुद्धिषु विश्वासो न कर्तव्यः कदाचन ॥ किं न ते वै प्रकुर्वंति ये लोभवशगा नराः ॥ १६ ॥ भ्रातरं पितरं मित्रं सुहृदं बांधवं तथा ॥ गुरुं पूज्यं द्विजं द्वेष्टि लोभाविष्टः सदा नरः ॥ १७ ॥ तस्मान्मया न कर्तव्यो विश्वासः सर्वथाऽधुना ॥ मन्त्रिवर्गेऽतिपापिष्ठे शत्रुपक्षसमाश्रिते ॥ १८ ॥ इति संचिन्त्य मनसा राजा परमदुर्मनाः ॥ एकाकी हयमारुह्य निर्जगाम पुरात्ततः ॥ १९ ॥ असहायोऽथ निर्गत्य गहनं वनमाश्रितः ॥ चिंतयामास मेधावी क्व गंतव्यं मया पुनः ॥ २० ॥ योजनत्रयमात्रे तु मुनेराश्रममुत्तमम् ॥ ज्ञात्वा जगाम भूपालस्तापसस्य सुमेधसः ॥ २१ ॥ बहुवृक्षसमायुक्तं नदीपुलिनसंश्रितम् ॥ निर्वैरश्वापदाकीर्णं कोकिलारावमंडितम् ॥ २२ ॥ शिष्याध्ययनशब्दाढ्यं मृगयूथशतावृतम् ॥ नीवारान्नसुपक्वाढ्यं सुपुष्पफलपादपम् ॥२३॥ होमधूमसुगंधेन प्रीतिदं प्राणिनां सदा ॥ वेदध्वनिसमाक्रांतं स्वर्गादपि मनोहरम् ॥२४॥ दृष्ट्वा

हुए उन पापी मंत्रियोंपर तो विश्वास नहीं ही करना चाहिए ॥ १८ ॥ ऐसा विचार करके अतिशय खिन्न राजा सुरथ अकेले ही घोड़ेपर सवार होकर अपने नगरसे बाहर निकल पड़े ॥१९॥ वे बिना किसीको साथ लिये नगरसे चलकर एक बीहड़ वनमें जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर बुद्धिमान् महाराज यह सोचने लगे कि अब कहाँ जायँ? ॥२०॥ जब उन्हें ध्यान आया कि यहाँसे तीन योजनपर सुमेधा मुनिका आश्रम है, तब वे उधर ही चल पड़े ॥२१॥ आश्रमकी भूमिपर पहुँचकर उन्होंने देखा कि वहाँ भाँति-भाँतिके वृक्ष उगे हुए हैं, पास ही नदी बह रही है, भयानक हिंसक पशु परस्परका वैरभाव भूलकर साथ-साथ रहते हैं और सब ओर कोयलकी कूक सुनाई दे रही है ॥ २२ ॥ वहाँपर उन्होंने देखा कि मुनिके शिष्यगण अध्ययन कर रहे हैं और उनका वेदघोष सुनायी दे रहा है। मृगोंके सैकड़ों झुण्ड विचर रहे हैं, भलीभाँति पके हुए नीवार लहलहा रहे हैं और सभी वृक्ष फल-फूलसे लदे हुए हैं ॥ २३ ॥ हवनकुण्डसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उठता हुआ सुगन्धित धुआँ वहाँके लोगोंको आनन्दित कर रहा था। स्वर्गसे भी उत्तम उस आश्रममें वेदपाठकी ध्वनि गूँज रही थी ॥ २४ ॥ वह आश्रम देखकर राजा सुरथको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने सब भय त्यागकर उस आश्रममें ही रहनेका निश्चय किया ॥२५॥ अपने घोड़ेको उन्होंने एक वृक्षमें बाँध दिया और बड़े विनीतभावसे आश्रमके भीतर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि मुनिराज सुमेधा एक सालवृक्षके नीचे मृगछालापर बैठे हुए हैं। उनकी शांत आकृति है। शरीर दुर्बल है, किन्तु स्वभाव बहुत कोमल है। सभी वेदों और शास्त्रोंके पारदर्शी होनेके नाते वे बहुतेरे शिष्योंको पढ़ा रहे हैं ॥२६॥२७॥ महामुनि सुमेधा क्रोध-लोभ आदिसे रहित और सुख-दुःख आदि द्वंद्वोंसे परे थे। वे किसीसे डाह नहीं करते थे। वे सदा सत्यकी खोजमें लगे रहते थे। वे पूर्ण सत्यवादी और शांतिके मूर्त रूप थे ॥ २८ ॥ उन मुनिराजको देखकर राजा सुरथके नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये और बड़ी श्रद्धाके साथ वे दण्डवत् उनके चरणोंपर लोट गये ॥ २९ ॥ तब मुनिराजने कहा—आपका कल्याण हो। उठिए-उठिए। तदनन्तर गुरुदेवके संकेतपर एक शिष्यने महाराजके लिए आसनी बिछा दी ॥३०॥ तब वे उठकर मुनिराजकी

तमाश्रमं राजा बभूवासौ मुदान्वितः ॥ भयं त्यक्त्वा मतिं चक्रे विश्रामाय द्विजाश्रमे ॥ २५ ॥ आसज्य पादपेऽश्वं तु जगाम विनयान्वितः ॥ दृष्ट्वा तं मुनिमासीनं सालच्छायासु संश्रितम् ॥२६॥ मृगाजिनासनं शांतं तपसाऽतिकृशं ऋजुम्॥ अध्यापयंतं शिष्यांश्च वेदशास्त्रार्थदर्शिनम्॥२७॥ रहितं क्रोधलोभाद्यैर्द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् ॥ आत्मज्ञानरतं सत्यवादिनं शमसंयुतम् ॥ २८ ॥ तं वीक्ष्य भूपतिर्भूमौ पपात दण्डवत्तदा ॥ तदग्रेऽश्रुजलापूर्णनयनः प्रेमसंयुतः ॥ २९ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तमुवाच तदा मुनिः ॥ शिष्यो ददौ बृसीं तस्मै गुरुणा नोदितस्तदा ॥ ३० ॥ उत्थाय नृपतिस्तस्यां समासीनस्तदाज्ञया ॥ अर्घ्यपाद्यार्हणं चक्रे सुमेधा विधिपूर्वकम् ॥ ३१ ॥ पप्रच्छात्र कुतः प्राप्तः कस्त्वं चिंतापरः कथम् ॥ कथयस्व यथाकामं संवृतं कारणं त्विति ॥ ३२ ॥ किमागमनकृत्यं ते ब्रूहि कार्यं मनोगतम् ॥ करिष्ये वांछितं काममसाध्यमपि यत्तव ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ सुरथो नाम राजाऽहं शत्रुभिश्च पराजितः ॥ त्यक्त्वा राज्यं गृहं भार्यामहं ते शरणं गतः ॥३४॥ यदाज्ञापयसे ब्रह्मंस्तदहं भक्तितत्परः ॥ करिष्यामि न मे त्राता त्वदन्यः पृथिवीतले॥३५॥ शत्रुभ्यो मे भयं घोरं प्राप्तोऽस्म्यद्य तवांतिकम्॥ त्रायस्व मुनिशार्दूल शरणागतवत्सल॥३६॥ ऋषिरुवाच॥ निर्भयं वस राजेन्द्र नात्र ते शत्रवः किल ॥ आगमिष्यंति बलिनो निश्चयं तपसो बलात् ॥ ३७ ॥ नात्र हिंसा प्रकर्तव्या वनवृत्त्या नृपोत्तम ॥

अनुमतिसे उस आसनपर बैठ गये। तब महर्षि सुमेधाने अर्घ्य-पाद्य आदि सामग्रियोंसे राजाका सत्कार किया ॥ ३१ ॥ इसके बाद उन्होंने पूछा—आप कौन हैं ? कहाँसे आ रहे हैं ? आप चिन्तित क्यों हैं ? और यह भी बताइए कि आपकी क्या अभिलाषा है ? ॥३२॥ आप यहाँ किस कामसे आये हैं ? आपकी जो इच्छा हो, उसे स्पष्टरूपसे बताइए। यदि आपकी कामना असाध्य होगी तो भी मैं उसे पूर्ण करनेकी चेष्टा करूँगा॥३३॥ राजा सुरथने कहा—शत्रुओंसे पराजित मैं सुरथ नामका राजा हूँ। अपना राज्य, घर और स्त्रीको छोड़कर मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप मुझे जो भी आज्ञा देंगे, मैं भक्तिपूर्वक उसका पालन करूँगा। इस समय समस्त भूतलपर आपके सिवाय और कोई भी मेरा रक्षक नहीं है ॥ ३५ ॥ हे मुनिशार्दूल ! हे शरणागतवत्सल ! मुझे शत्रुओंसे बहुत भय है। इसी कारण मैं आपके पास आया हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिए ॥ ३६ ॥ ऋषि सुमेधाने कहा—हे राजेन्द्र ! आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ निर्भय होकर निवास करिए। मेरे तपोबलके प्रभावसे आपके बलवान् शत्रु यहाँ न आ सकेंगे। यह निश्चित समझिए ॥ ३७ ॥ हे नृपोत्तम ! आप यहाँ किसी प्रकारकी हिंसा न करिए, अपितु वनवासियोंके समान नीवार तथा फल-मूलपर जीवन निर्वाह कीजिएगा ॥३८॥ व्यासजी बोले—महर्षि सुमेधाके वचन सुनकर राजा सुरथ निर्भय हो गये और फल-मूल खाते हुए उसी आश्रममें रहने लगे ॥ ३९ ॥ एक दिन वे एक वृक्षकी छायामें बैठे हुए बड़े चिन्ताकुलभावसे अपनी घर-गृहस्थी और राज्यके विषयमें सोचने लगे—॥ ४० ॥ उन म्लेच्छ और पापपरायण शत्रुओंने मेरा राज्य छीन लिया। उन दुराचारियों और निर्लज्जोंने मेरी प्रजाको बहुत सताया होगा ॥४१॥ आहार न मिलनेके कारण मेरे सब हाथी और घोड़े दुर्बल हो गये होंगे। शत्रुओं द्वारा निरन्तर कष्ट पानेके कारण वे बहुत कमजोर हो गये होंगे ॥ ४२ ॥ जिन सेवकोंका मैंने पालन-पोषण किया था, वे शत्रुके अधीन होकर बहुत दुखी होंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥ उन दुराचारियोंने मेरा सारा धन जुए, मदिरा और वेश्यागमन आदि कुत्सित कर्मोंपर खर्च कर डाला होगा ॥ ४४ ॥ वे पापी मेरा समस्त राजकोष

कर्तव्यं जीवनं शस्तैर्नीवारफलमूलकैः ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा निर्भयः स नृपस्तदा ॥ उवासाश्रम एवासौ फलमूलाशनः शुचिः ॥ ३९ ॥ कदाचित्स नृपस्तत्र वृक्षच्छायां समाश्रितः ॥ चिंतयामास चिंतार्तो गृह एव गताशयः ॥ ४० ॥ राज्यं मे शत्रुभिः प्राप्तं म्लेच्छैः पापरतैः सदा ॥ संपीडिताः स्युर्लोकास्तैर्दुराचारैर्गतत्रपैः ॥ ४१ ॥ गजाश्च तुरगाः सर्वे दुर्बला भक्ष्यवर्जिताः ॥ जाताः स्युर्नात्र संदेहः शत्रुणा परिपीडिताः ॥४२॥ सेवका मम सर्वे ते शत्रूणां वशवर्तिनः ॥ दुःखिता एव जाताः स्युः पालिता ये मया पुरा ॥४३॥ धनं मे सुदुराचारैरसद्व्ययपरैः परैः ॥ द्यूतासवभुजिष्यादिस्थाने स्यात्पापितं किल ॥ ४४ ॥ कोशक्षयं करिष्यन्ति व्यसनैः पापबुद्धयः ॥ न पात्रदाननिपुणा म्लेच्छास्ते मन्त्रिणोऽपि मे ॥ ४५ ॥ इति चिन्तापरो राजा वृक्षमूलस्थितो यदा ॥ तदाऽऽजगाम वैश्यस्तु कश्चिदार्तिपरस्तथा ॥ ४६ ॥ नृपेण पुरतो दृष्टः पार्श्वे तत्रोपवेशितः ॥ पप्रच्छ तं नृपः कोऽसि कुत एवागतो वनम् ॥ ४७ ॥ कोऽसि कस्माच्च दीनोऽसि हरिणः शोकपीडितः ॥ ब्रूहि सत्यं महाभाग मैत्री साप्तपदी मता ॥४८॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्तमुवाच विशोत्तमः ॥ उपविश्य स्थिरो भूत्वा मत्वा साधुसमागमम् ॥४९॥ वैश्य उवाच ॥ मित्राहं वैश्यजातीयः समाधिर्नाम विश्रुतः ॥ धनवान्धर्मनिपुणः सत्यवागनसूयकः ॥ ५० ॥ पुत्रदारैर्निरस्तोऽहं धनलुब्धैरसा-

नष्ट कर देंगे। क्योंकि वे म्लेच्छ तथा इस समय उनके अधीन रहनेवाले मेरे मंत्री पात्र देखकर दान देनेमें निपुण नहीं हैं ॥ ४५ ॥ जब राजा सुरथ वृक्षकी छायामें बैठे इस प्रकारकी उधेड़-बुनमें पड़े हुए थे। उसी समय एक दुखिया वैश्य वहाँ जा पहुँचा ॥ ४६ ॥ वह राजाके सम्मुख पहुँचा, तब उन्होंने उसे अपनी बगलमें बैठा लिया। तदनन्तर उन्होंने वैश्यसे पूछा—आप कौन हैं ? इस वनमें कहाँसे आ रहे हैं ? ॥ ४७ ॥ इस प्रकार दीनदशाको प्राप्त आप कौन हैं और शोक करनेके कारण आप पीले क्यों पड़ गये हैं ? हे महाभाग ! आप मुझे सच-सच सब बातें बता दीजिए। क्योंकि केवल सात शब्दोंमें बातचीत होनेपर ही मैत्री हो जाती है ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले—राजा सुरथके वचन सुनकर उस सौम्य वैश्यने सोचा कि एक सज्जनसे भेंट हो गयी है। अतएव वह स्थिरचित्त होकर उनके पास बैठ गया ॥ ४९ ॥ वैश्यने कहा—हे मित्र ! मैं वैश्यजातिमें जायमान हुआ हूँ। लोग मुझे समाधिके नामसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जानते हैं। मैं धनाढ्य, धर्मकार्यमें निपुण और सत्यवादी हूँ। मैं किसीके दोष नहीं देखता ॥ ५० ॥ तथापि धनके लोभी और कुटिल प्रकृतिवाले स्त्री-पुत्रादिकोंने मुझे घरसे निकाल दिया है। (उन्होंने मुझे कृपण कहकर कठिनाईसे टूटनेवाली मायाका बन्धन भी तोड़ दिया है)। सो अपने कुटुम्बियोंसे परित्यक्त होकर मैं अभी-अभी इस वनमें आया हूँ ॥ ५१ ॥ हे प्रिय मित्र ! आप कौन हैं ? यह बताइए। देखनेमें तो आप भाग्यवान् मालूम पड़ते हैं। राजाने कहा—मैं सुरथ नामका राजा हूँ। मुझे लुटेरोंने लूट लिया है। इस समय मैं अपने मंत्रियों द्वारा ठगे जानेपर यहाँ चला आया हूँ। हे वैश्यश्रेष्ठ ! यह भाग्यकी बात है कि आप जैसे मित्र यहाँ मिल गये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अब हम दोनों बड़े आनन्दसे इस सुन्दर वृक्षोंवाले वनमें विचरेंगे। हे महाबुद्धिमान् ! आप शोक त्याग दें। हे वैश्यवर्य ! अपने मनको शान्त करिए ॥ ५४ ॥ (अब आप मेरे साथ आनन्दपूर्वक यहाँ रहिए)। समाधि वैश्यने कहा—मेरा कुटुम्ब असहाय है। मेरे विना घरवाले बहुत दुखी होंगे। मेरे विषयमें सोचते-सोचते लोग और भी रोग-शोकसे व्याकुल हो जायँगे ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! भार्याका शरीर कैसा है।

धुभिः ॥ (कृपणेति मिषं कृत्वा त्यक्त्वा मायां सुदुस्त्यजाम्) ॥ स्वजनेन च संत्यक्तः प्राप्तोऽस्मि वनमाशु वै ॥ ५१ ॥ कोऽसि त्वं भाग्यवान्भासि कथयस्व प्रियाधुना ॥ राजोवाच ॥ सुरथो नाम राजाऽहं दस्युभिः पीडितोऽभवम् ॥ ५२ ॥ प्राप्तोऽस्मि गतराज्योऽत्र मंत्रिभिः परिवंचितः ॥ दिष्ट्या त्वमत्र मित्रं मे मिलितोऽसि विशोत्तम ॥५३॥ सुखेन विहरिष्यावो वनेऽत्र शुभपादपे ॥ शोकं त्यज महाबुद्धे स्वस्थो भव विशोत्तम ॥५४॥ (अत्रैव च यथाकामं सुखं तिष्ठ मया सह) ॥ वैश्य उवाच॥ कुटुम्बं मे निरालंबं मया हीनं सुदुःखितम्॥ भविष्यति च चिन्तार्तं व्याधिशोकोपतापितम् ॥ ५५ ॥ भार्यादेहे सुखं नो वा पुत्रदेहे न वा सुखम् ॥ इति चिन्तातुरं चेतो न मे शाम्यति भूमिप ॥ ५६ ॥ कदा द्रक्ष्ये सुतं भार्यां गृहं स्वजनमेव च ॥ स्वस्थं न मन्मनो राजन्गृहचिन्ताकुलं भृशम् ॥ ५७ ॥ राजोवाच ॥ यैर्निरस्तोऽसि पुत्राद्यैरसद्वृत्तैः सुबालिशैः ॥ तान्दृष्ट्वा किं सुखं तेऽद्य भविष्यति महामते ॥ ५८ ॥ हितकारी वरः शत्रुर्दुःखदाः सुहृदः कुतः ॥ तस्मात्स्थिरं मनः कृत्वा विहरस्व मया सह ॥ ५९ ॥ वैश्य उवाच॥ मनो मे न स्थिरं राजन्भवत्यद्य सुदुःखितम्॥ चिन्तयाऽत्र कुटुम्बस्य दुस्त्यजस्य दुरात्मभिः ॥६०॥ राजोवाच॥ ममापि राज्यजं दुःखं दुनोति किल मानसम् ॥ पृच्छावोऽद्य मुनिं शान्तं शोकनाशनमौषधम् ॥६१॥ व्यास उवाच ॥ इति कृत्वा मतिं तौ तु राजा वैश्यश्च जग्मतुः ॥ मुनिं तौ

पुत्रका स्वास्थ्य कैसा है। इन्हीं चिन्ताओंके कारण मेरे मनको शान्ति नहीं मिल रही है ॥५६॥ हे महाराज ! घर जाकर पुत्र, स्त्री, घर और कुटुम्बियोंको कब देखूँगा। मेरा मन विकल है। मैं अपने घरकी चिन्तामें घुला जा रहा हूँ ॥ ५७ ॥ राजा सुरथ बोले—हे महामते ! जिन मूर्ख और दुराचारी पुत्र आदि कुटुम्बियोंने आपको घरसे निकाल दिया है। उन्हें देखकर आप सुखी होंगे ? ॥ ५८ ॥ अपना हित करनेवाला शत्रु अच्छा, किन्तु दुखदायी कुटुम्ब अच्छा नहीं कहा जा सकता। अतएव हे महामते ! आप अपना मन शान्त करके मेरे साथ आनन्द करिए ॥ ५९ ॥ वैश्यने कहा—हे राजन् ! मेरा मन स्थिर नहीं है। आज मैं बहुत दुखी हूँ। कोई मनुष्य कितना ही क्रूर क्यों न हो, वह अपने कुटुम्बियोंकी चिन्ता नहीं त्याग सकता ॥६०॥ तब राजाने कहा—राज्यसम्बन्धी चिन्तायें मुझे भी सताया करती हैं। अतएव आइए चलें, हम दोनों उन शांतप्रकृति महर्षि सुमेधासे ही इस शोकरूपी रोगको कोई औषधि पूछें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार परस्पर परामर्श करके शोकका कारण पूछनेके लिए वे दोनों बड़े विनम्रभावसे मुनिराजके पास गये ॥ ६२ ॥ उनके पास पहुँचकर उन्होंने मुनिको प्रणाम किया। वहाँ भलीभाँति आसनपर बैठनेके बाद उन्हें बड़ी शान्तिका अनुभव हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने उन शान्त महामुनिसे कहा—॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

(देवीमाहात्म्य, ब्रह्मविष्णुविवाद, शिवलिंगके छोरका पता लगानेकी चेष्टा और ब्रह्माजीका मिथ्या भाषण) राजा सुरथने कहा–हे महर्षे! ये सज्जन एक वैश्य हैं। अभी इसी वनमें इनके साथ मेरी मित्रता हुई है। इनके स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बियोंने इन्हें घरसे निकाल दिया है। यहाँ आनेपर इनसे भेंट हुई है ॥ १ ॥ ये बेचारे अपने कुटुम्बके वियोगसे बहुत दुखी हैं। इनका मन बहुत उदास रहता है। इन्हें किसी प्रकार चैन नहीं मिलती। हे महामते! ठीक ऐसी ही मेरी भी दशा है। मुझे अपना राज्य चले जानेकी चिन्ता सताया करती है। इसीसे

विनयोपेतौ प्रष्टुं शोकस्य कारणम् ॥ ६२ ॥ गत्वा तं प्रणिपत्याह राजा ऋषिमनुत्तमम् ॥ आसीनं सम्यगासीनः शांतः शांतिमुपागतः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ राजोवाच ॥ मुने वैश्योऽयमधुना वने मे मित्रतां गतः ॥ पुत्रदारैर्निरस्तोऽयं प्राप्तोऽत्र मम सङ्गमम् ॥ १ ॥ कुटुम्बविरहेणासौ दुःखितोऽतीव दुर्मनाः ॥ न शांतिमुपयात्येष तथैव मम सांप्रतम् ॥ २ ॥ गतराज्यस्य दुःखेन शोकार्तोऽस्मि महामते ॥ निष्कारणं च मे चिंता हृदयान्न निवर्तते ॥ हया मे दुर्बलाः स्युः किं गजाः शत्रुवशं गताः ॥३॥ भृत्यवर्गस्तथा दुःखी जातः स्यात्तु मया विना॥ कोशक्षयं करिष्यंति रिपवोऽतिबलात्क्षणात् ॥ ४ ॥ इत्येवं चिंतयानस्य न मे निद्रा तनौ सुखम् ॥ जानामीदं जगन्मिथ्या स्वप्नवत्सर्वमेव हि ॥ ५ ॥ जानतोऽपि मनो भ्रान्तं न स्थिरं भवति प्रभो ॥ कोऽहं केऽश्वा गजाः केऽमी न ते मे च सहोदराः ॥ ६ ॥ न पुत्रा न च मित्राणि येषां दुःखं दुनोति माम् ॥ भ्रमोऽयमिति जानामि तथापि मम मानसः ॥ ७ ॥ मोहो नैवापसरति किं तत्कारणमद्भुतम् ॥ स्वामिंस्त्वमसि सर्वज्ञः सर्वसंशयनाशकृत् ॥ ८ ॥ कारणं ब्रूहि

मैं भी शोकाकुल रहता हूँ। अकारण उत्पन्न होनेवाली चिंतायें किसी तरह मनसे निकलती ही नहीं हैं। मुझे चिंता होती है कि शत्रुके कब्जेमें पड़कर मेरे हाथी-घोड़े दुर्बल हो गये होंगे ॥२॥३॥ मेरे बिना मेरे सेवकगण बहुत दुःखी होंगे। मेरे शत्रु क्षणभरमें न जाने कितना खजाना खाली कर देते होंगे ॥४॥ ऐसी अगणित चिंतायें करते-करते राजको नींद नहीं आती और शरीरको सुख नहीं मिलता। यद्यपि मैं इस बातको जानता हूँ कि संसार स्वप्नके समान मिथ्या है, तब भी हे प्रभो! मेरा चित्त बराबर चक्कर खाता रहता है! वह नहीं स्थिर होता। मैं कौन हूँ? वे हाथी-घोड़े क्या हैं? ये सब कौन हैं? सभी सगे-सहोदर मेरे कोई भी तो नहीं हैं॥५॥६॥पुत्र और मित्र भी मेरे कोई नहीं हैं, जिनके कारण दुखी होना पड़े। मैं जानता हूँ कि यह सब भ्रम है। फिर भी मेरे मनसे मोह नहीं दूर होता। इस मोहका कौनसा अद्भुत कारण है? हे स्वामिन्! आप सर्वज्ञ हैं और सब प्रकारका संशय निवृत्त कर सकते हैं ॥७॥८॥ हे दयानिधान!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आप कृपया यह बताइए कि मेरे और वैश्यके मोहका कारण क्या है ? व्यासजी बोले–इस प्रकार राजा सुरथके प्रश्न करनेपर मुनिसत्तम सुमेधाने ऐसे उच्चकोटिके ज्ञानका उपदेश दिया कि जिससे सब शोक और मोह नष्ट हो जाता है। ऋषि सुमेधाने कहा—हे राजन्! मैं बन्धन और मोक्षका कारण बता रहा हूँ। सुनिए–॥ ९ ॥ १० ॥ सत्त्वादि तीनों गुणोंकी साम्यावस्था-स्वरूपा प्रकृति ही महामाया कहलाती हैं, वे ही अखिल विश्वमें सब प्राणियोंके बन्धन तथा मुक्तिकी कारणस्वरूपा हैं ॥११॥ सब देवता, मनुष्य, गंधर्व, नाग, राक्षस, वृक्ष, विविध लतायें, पशु, मृग, पक्षी, ये सभी प्राणी मायाके अधीन रहकर ही बन्धन और मोक्ष प्राप्त करते हैं। मूलप्रकृतिस्वरूपा उन महामायानें ही स्थावर-जङ्गमात्मक विश्वकी सृष्टि की है ॥१२॥१३॥ संसारके सब प्राणी मोहरूपी जालमें फँसकर सदा उन्हींके अधीन रहते हैं। तब आप मोहसे बचनेवाले कौन हैं ? साधारण मनुष्योंमें आप क्षत्रिय हैं और आपका चित्त रजोगुणसे मलिन हो रहा

मोहस्य ममास्य च दयानिधे ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा राज्ञा सुमेधा मुनिसत्तमः ॥९॥ तमुवाच परं ज्ञानं शोकमोहविनाशनम् ॥ऋषिरुवाच ॥
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कारणं बंधमोक्षयोः ॥१०॥ महामायेति विख्याता सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानस्तुराषाड्वरुणोऽनिलः ॥११॥
सर्वे देवा मनुष्याश्च गंधर्वोरगराक्षसाः ॥ वृक्षाश्च विविधा वल्ल्यः पशवो मृगपक्षिणः ॥ १२ ॥ मायाधीनाश्च ते सर्वे भाजनं बंधमोक्षयोः ॥ तया
सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ १३ ॥ तद्वशे वर्तते नूनं मोहजालेन यंत्रितम् ॥ त्वं कियान्मानुषेष्वेकः क्षत्रियो रजसाऽऽविलः ॥ १४ ॥
ज्ञानिनामपि चेतांसि मोहयत्यनिशं हि सा ॥ ब्रह्मेशवासुदेवाद्या ज्ञाने सत्यपि शेषतः ॥ १५ ॥ तेऽपि रागवशाल्लोके भ्रमंति परिमोहिताः ॥ पुरा
सत्ययुगे राजन्विष्णुर्नारायणः स्वयम् ॥ १६ ॥ श्वेतद्वीपं समासाद्य चकार विपुलं तपः ॥ वर्षाणामयुतं यावद्ब्रह्मविद्याप्रसक्तये ॥ १७ ॥ अनश्वर-
सुखायासौ चिंतयानस्ततः परम् ॥ एकस्मिन्निर्जने देशे ब्रह्माऽपि परमाद्भुते ॥१८॥ स्थितस्तपसि राजेन्द्र मोहस्य विनिवृत्तये ॥ कदाचिद्वासुदेवोऽसौ
स्थलांतरमतिर्हरिः ॥ १९ ॥ तस्माद्देशात्समुत्थाय जगामान्यदिदृक्षया ॥ चतुर्मुखोऽपि राजेंद्र तथैव निःसृतः स्थलात् ॥ २० ॥ मिलितौ मार्गमध्ये
तु चतुर्मुखचतुर्भुजौ ॥ अन्योन्यं पृष्टवंतौ तौ कस्त्वं कस्त्वमिति स्म ह ॥२१॥ ब्रह्मा प्रोवाच तं देवं कर्ताऽहं जगतः किल ॥ विष्णुस्तमाह भो मूर्ख

है ॥ १४ ॥ वे बड़े-बड़े ज्ञानियोंके हृदयको भी सदा मोहमें डाले रहती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी परम ज्ञानी होते हुए भी रागके वशीभूत होकर संसारमें चक्कर काटा करते हैं। हे राजन ! पूर्वकालमें सत्ययुगके समय स्वयं नारायण विष्णुभगवानने ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेके लिए श्वेतद्वीपमें जाकर बड़ी कठोर तपस्या की ॥ १५-१७ ॥ अविनाशी सुख प्राप्त करनेके लिए ही उन्हांने ऐसा तप किया था। हे राजेन्द्र ! अपना अज्ञान दूर करनेके लिए ब्रह्माजी भी परम अद्भुत एक निर्जन प्रदेशमें तप करने लगे। हे महाराज ! किसी समय विष्णु भगवानने दूसरे स्थानपर जानेका विचार किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ अतएव वहाँसे वे अन्य देश देखनेके लिए चल पड़े। हे राजेन्द्र ! उसी प्रकार ब्रह्माजी भी अपने स्थानसे चले ॥ २० ॥ मार्गमें चतुर्मुख ब्रह्माजी तथा चतुर्भुज विष्णुसे भेंट हो गयी। तब वे दोनों परस्पर एक दूसरेसे आप कौन हैं–आप कौन हैं, करके पूछने लगे ॥ २१ ॥ ब्रह्माजीने कहा—मैं जगत्का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रचयिता हूँ। भगवान विष्णु बोले—ओ मूर्ख ! जगत्कर्ता तो मैं विष्णु हूँ ॥२२॥ तुम्हारा अस्तित्व ही क्या है ? रजोगुणका आधिक्य होनेके कारण तुम सर्वथा निर्बल हो। यह समझ लो कि मैं सतोगुणप्रधान सनातन विष्णु हूँ ॥ २३ ॥ तुम्हें क्या यह नहीं मालूम कि आज ही मैंने दारुण युद्ध करके तुम्हारी रक्षा की है। क्योंकि मधु-कैटभ नामके दो दानवों द्वारा सताये जानेपर तुम मेरी शरणमें आये थे ॥ २४ ॥ मैंने ही मधु-कैटभ नामधारी दोनों दानवोंका वध किया है। तब हे मूर्ख ! तुम व्यर्थ गर्व क्यों करते हो ? शीघ्र अपना यह अज्ञान त्याग दो ॥ २५ ॥ इस विस्तृत संसारमें मुझसे बढ़कर और कोई नहीं है। ऋषि सुमेधा बोले—इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए ब्रह्मा और विष्णु दोनों अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन दोनोंके होंठ फड़कने लगे, उनका शरीर काँपने लगा और आँखें लाल हो गयीं। जब वे दोनों विवादसे व्याकुल थे, उसी समय सहसा उन दोनोंके बीचमें एक चूनेके समान श्वेत, विशाल, लम्बा, मोटा और अद्भुत लिङ्ग प्रकट हो गया। तत्काल यह आकाशवाणी हुई ॥ २६–२८ ॥ परस्पर झगड़ते हुए उन दोनों महानुभावोंको सम्बोधित करके आकाश-

जगत्कर्ताऽहमच्युतः ॥ २२ ॥ त्वं कियान्बलहीनोऽसि रजोगुणसमाश्रितः ॥ सत्त्वाश्रितं हि मां विद्धि वासुदेवं सनातनम् ॥ २३ ॥ मया त्वं रक्षितोऽद्यैव कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ॥ शरणं मे समायातो दानवाभ्यां प्रपीडितः ॥ २४ ॥ मया तौ निहतौ कामं दानवौ मधुकैटभौ ॥ कथं गर्वायसे मंद मोहोऽयं त्यज सांप्रतम् ॥ २५ ॥ न मत्तोऽप्यधिकः कश्चित्संसारेऽस्मिन्प्रसारिते ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं प्रवदमानौ तौ ब्रह्मविष्णू परस्परम् ॥२६॥ स्फुरदोष्ठौ वेपमानौ लोहिताक्षौ बभूवतुः ॥ प्रादुर्बभूव सहसा तयोर्विवदमानयोः ॥ २७॥ मध्ये लिंगं सुधाश्वेतं विपुलं दीर्घमद्भुतम् ॥ आकाशे तरसा तत्र वाग्बुवाचाशरीरिणी ॥ २८ ॥ तौ संबोध्य महाभागौ विवदंतौ परस्परम्॥ ब्रह्मन्विष्णो विवादं मा कुरुतां वां परस्परम् ॥ २९॥ लिंगस्यास्य परं पारमधस्तादुपरि ध्रुवम् ॥ यो याति युवयोर्मध्ये स श्रेष्ठो वां सदैव हि ॥ ३० ॥ एकः प्रयातु पातालमाकाशमपरोऽधुना ॥ प्रमाणं मे वचः कार्यं त्यक्त्वा वादं निरर्थकम् ॥ ३१ ॥ मध्यस्थः सर्वदा कार्यो विवादेऽस्मिन्द्वयोरिह ॥ ऋषिरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं दिव्यं सज्जीभूतौ कृतोद्यमौ ॥ ३२ ॥ जग्मतुर्मातुमग्रस्थं लिंगमद्भुतदर्शनम् ॥ पातालमगमद्विष्णुर्ब्रह्माऽप्याकाशमेव च ॥ ३३ ॥ परिमातुं महालिंगं स्वमहत्त्वविवृद्धये ॥

वाणीने कहा—हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! आप लोग आपसमें न लड़ें ॥ २९ ॥ आप दोनोंमें जो भी इस लिङ्गके ऊपरी या निचले छोरका पता लगा लेगा, वही सदाके लिए श्रेष्ठ माना जायगा ॥ ३० ॥ अतएव आप दोनोंमेंसे एक सज्जन नीचे और दूसरे महानुभाव ऊपरकी ओर इसके छोरका पता लगानेके लिए जायँ। अब परस्परका वाद-विवाद त्यागकर मेरी बातको प्रमाण मानें और तदनुसार कार्य करें ॥ ३१ ॥ इस विवादमें आप किसीको अपना मध्यस्थ मान लें। ऋषि सुमेधा बोले—वह दिव्य आकाशवाणी सुनकर वे दोनों देवता उस लिङ्गके छोरका पता लगानेके लिए तैयार हो गये ॥ ३२ ॥ तदनुसार सम्मुख विद्यमान उस विचित्र लिङ्गको नापनेके लिए वे दोनों आगे बढ़े। भगवान् विष्णु पातालको और ब्रह्माजी आकाशमें गये ॥ ३३ ॥ अपना-अपना महत्त्व बढ़ानेके लिए उस लिङ्गको नापनेके काममें दोनों व्यस्त हो गये। किन्तु पातालमें कुछ दूर जाते ही भकवान विष्णुको बड़ी थकावट आ गयी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ३४ ॥ इस प्रकार लिङ्गके छोरका पता न पाकर विष्णु भगवान अपने स्थानपर लौट आये। किन्तु ब्रह्माजी बराबर ऊपर बढ़ते ही गये। कुछ दूर जानेपर उन्हें शिवजीके मस्तकसे गिरा हुआ केतकीका एक फूल मिला। उसे पाकर ब्रह्माजी बड़े हर्षपूर्वक लौट आये। बड़े वेगसे आकर उन्होंने वह केतकीकुसुम विष्णुको दिखाते हुए झूठ-मूठ कह दिया कि मैं लिङ्गके मस्तकपर चढ़ा हुआ यह फूल ले आया हूँ ॥३५॥३६॥ तुम्हारी पहचान तथा चित्तको शान्ति देनेके लिए ही यह निशानी लेता आया हूँ। ब्रह्माजीके वचन सुन और केतकीका पुष्प देखकर विष्णुने पूछा कि इसका साक्षी कौन है ? कृपया यह भी बता दीजिए। यथार्थवक्ता, बुद्धिमान्, सदाचारी और समदर्शी व्यक्ति ही सर्वत्र विवादके अवसरपर साक्षी हुआ करते हैं। ब्रह्माजी बोले—इस समय उतनी दूरसे कौन साक्षी आ सकेगा ? ॥ ३७–४० ॥ जो सच्ची बात होगी, उसे यह केतकी स्वयं बता देगी। तब ब्रह्माजीने केतकीसे गवाही देनेका आग्रह किया

विष्णुर्गत्वा कियद्देशं श्रांतः सर्वात्मना यतः ॥ ३४ ॥ न प्रापान्तं स लिंगस्य परिवृत्य ययौ स्थलम् ॥ ब्रह्माऽगच्छत्ततश्चोर्ध्वं पतितं केतकीदलम् ॥३५॥ शिवस्य मस्तकात्प्राप्य परावृत्तो मुदावृतः ॥ आगत्य तरसा ब्रह्मा विष्णवे केतकीदलम् ॥३६॥ दर्शयित्वा च वितथमुवाच मदमोहितः ॥ लिंगस्य मस्तकादेतद्गृहीतं केतकीदलम् ॥३७॥ अभिज्ञानाय चानीतं तव चितप्रशांतये ॥ श्रुत्वा तद्ब्रह्मणो वाक्यं दृष्ट्वा च केतकीदलम् ॥३८॥ हरिस्तं प्रत्युवाचेदं साक्षी कः कथयाधुना ॥ यथार्थवादी मेधावी सदाचारः शुचिः समः ॥ ३९ ॥ साक्षी भवति सर्वत्र विवादे समुपस्थिते ॥ ब्रह्मोवाच॥ दूरदेशात्समायाति साक्षी कः समयेऽधुना ॥४०॥ यत्सत्यं तद्वचः सेयं केतकी कथयिष्यति ॥ इत्युक्त्वा प्रेरिता तत्र ब्रह्मणा केतकी स्फुटम् ॥ ४१ ॥ वचनं प्राह तरसा शार्ङ्गिणं प्रत्यबोधयत् ॥ शिवमूर्ध्नि स्थितां ब्रह्मा गृहीत्वा मां समागतः ॥ ४२ ॥ संदेहोऽत्र न कर्तव्यस्त्वया विष्णो कदाचन ॥ मम वाक्यं प्रमाणं हि ब्रह्मा पारं गतोऽस्य ह ॥ ४३ ॥ गृहीत्वा मां समायातः शिवभक्तैः समर्पिताम् ॥ केतक्या वचनं श्रुत्वा हरिराह स्मयन्निव ॥४४॥ महादेवः प्रमाणं मे यद्यसौ वचनं वदेत् ॥ ऋषिरुवाच ॥ तदाकर्ण्य हरेर्वाक्यं महादेवः सनातनः ॥ ४५ ॥ कुपितः केतकीं प्राह मिथ्यावादिनि मा वद ॥ गच्छतो मध्यतः प्राप्ता पतिता मस्तकान्मम ॥ ४६ ॥ मिथ्याभिभाषिणी त्यक्ता मया त्वं सर्वदैव हि ॥ ब्रह्मा लज्जापरो

॥ ४१ ॥ तब केतकीने भगवान विष्णुको सम्बोधित करके कहा कि शिवजीके मस्तकपर चढ़ी हुई मुझे लेकर ब्रह्माजी लौट आये हैं ॥ ४२ ॥ हे विष्णो ! इस विषयमें आप कभी तनिक भी सन्देह न करिएगा। मेरी बात ही सबसे प्रबल प्रमाण है कि ब्रह्माजी इस लिङ्गका पार पा गये हैं ॥४३॥ इस शिवलिङ्गपर किसी भक्तने मुझे चढ़ाया था और ब्रह्माजी यहाँ उठा लाये। केतकीके वचन सुनकर मुसकाते हुए विष्णुभगवानने कहा—॥४४॥ मैं तो शिवजीको ही साक्षी मानता हूँ। यदि वे केतकीकी बातको सही कह दें तो मैं मान जाऊँगा। ऋषि सुमेधाने कहा—विष्णुकी बात सुनकर सनातन देवता शंकरजी क्षुब्ध हो उठे। शिवजीने केतकीसे कहा—अरी झूठी ! असत्य बात मत बोल। तू मेरे मस्तकसे गिरी थी और ब्रह्माजी तुझे रास्तेमें ही पा गये थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तूने झूठ बात कही है। इसलिए आजसे मैं तुझे सदाके लिए त्यागता हूँ। यह सुनकर ब्रह्माजी लज्जित हो गये और उन्होंने विष्णुभगवानको प्रणाम किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥४७॥ उसी दिनसे शिवजीने केतकीको अपनी पूजाके फूलोंमेंसे बहिष्कृत कर दिया। इस प्रकार माया बड़ी प्रबल होती है। वह बड़े-बड़े ज्ञानियोंको भी भ्रममें डालदेती है॥४८॥ हे राजन्! बड़े-बड़ोंका यह हाल है, तब साधारण प्राणियोंके मोहकी बात ही क्या है? स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए पापका भय त्यागकर दैत्योंको धोखा देते रहते हैं। वे विविध योनियोंमें जन्म लेकर अपने सुखपर लात मारते हुए दैत्योंके साथ जूझते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सर्वज्ञ, देवाधिदेव और जगद्गुरु स्वयं विष्णुभगवान् भी सदा माया-शक्तिके अधीन रहते हैं। तब अन्य प्राणियोंके विषयमें क्या कहा जाय? हे महाराज! वह परमा प्रकृतिस्वरूपा महामाया बड़े-बड़े ज्ञानियोका मन भी बरबस खींचकर मोहके हाथों सौंप देती है। उसी महामायासे यह सचराचर विश्व व्याप्त है॥४९-५३॥ वे महामाया मोहदायिनी और ज्ञानदायिनी दोनों हैं। वे लोगोंको बंधन तथा मोक्ष दोनों प्रदान करती हैं। राजा सुरथ

भूत्वा ननाम मधुसूदनम् ॥४७॥ शिवेन केतकी त्यक्ता तद्दिनात्कुसुमेषु वै ॥ एवं मायाबलं विद्धि ज्ञानिनामपि मोहदम् ॥ ४८ ॥ अन्येषां प्राणिनां राजन्का वार्ता विभ्रमं प्रति ॥ देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सर्वदैव रमापतिः ॥ ४९ ॥ दैत्यान्वंचयते चाशु त्यक्त्वा पापभयं हरिः ॥ अवतारकरो देवो नानायोनिषु माधवः ॥ ५० ॥ त्यक्त्वाऽऽनंदसुखं दैत्यैर्युद्धं चैवाकरोद्विभुः ॥ नूनं मायाबलं चैतन्माधवेऽपि जगद्गुरौ ॥ ५१ ॥ सर्वज्ञे देवकार्यांशे का वार्ताऽन्यस्य भूपते ॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि परमा प्रकृतिः किल ॥ ५२ ॥ बलादाकृष्य मोहाय प्रयच्छति महीपते ॥ यया व्याप्तमिदं सर्वं भगवत्या चराचरम् ॥ ५३ ॥ मोहदा ज्ञानदा सैव बंधमोक्षप्रदा सदा ॥ राजोवाच ॥ भगवन्ब्रूहि मे तस्या स्वरूपं बलमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ उत्पत्तिकारणं वापि स्थानं परमकं च यत् ॥ ऋषिरुवाच ॥ न चोत्पत्तिरनादित्वान्नृप तस्याः कदाचन ॥ ५५ ॥ नित्यैव सा परा देवी कारणानां च कारणम् ॥ वर्तंते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप ॥ ५६ ॥ शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वथा ॥ चिच्छक्तिः सर्वभूतेषु रूपं तस्यास्तदेव हि ॥ ५७ ॥ आविर्भावतिरोभावौ देवानां कार्यसिद्धये ॥ यदा स्तुवंति तां देवा मनुजाश्च विशांपते ॥ ५८ ॥ प्रादुर्भवति भूतानां दुःखनाशाय चांबिका ॥ नानारूपधरा देवी नानाशक्तिसमन्विता ॥ ५९ ॥ आविर्भवति कार्यार्थं स्वेच्छया परमेश्वरी ॥ दैवाधीना न सा देवी यथा सर्वे सुरा नृप ॥ ६० ॥ न कालवशगा

बले-हे राजन्! कृपया आप मुझे उनके स्वरूप तथा बलके विषयमें कुछ बताइए॥५४॥ उनकी उत्पत्ति कैसे हुई और उनका सर्वश्रेष्ठ स्थान कौनसा है?! ऋषि सुमेधा बोले-हे नृप! उनकी उत्पत्ति कभी नहीं होती। क्योंकि वे अनादि हैं॥५५॥ वे परा प्रकृतिस्वरूपा देवी सब कारणोंका भी कारण हैं। उनकी शक्ति सदा सब प्राणियोंमें विद्यमान रहती है॥५६॥ वे जिस प्राणीकी शक्ति खींच लेती हैं, वह शवकी तरह निर्जीव हो जाता है। वे चित् शक्तिरूपसे सभी देहधारियोंमें विराजती हैं और वे ही ब्रह्मरूपा हैं॥५७॥ हे नरपते! उनका आविर्भाव और तिरोभाव देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए ही होता है। जब तन्मयतापूर्वक देवता या मनुष्य उनकी स्तुति करते हैं। तब वे प्राणियोंका दुःख दूर करनेके लिए प्रकट हो जाती हैं। वे भगवती परमेश्वरी अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेके लिए विविध रूपसे और नाना प्रकारकी शक्तियोंके साथ प्रकट होती हैं। हे राजन्! जैसे सब देवता दैवके अधीन रहते हैं। उस प्रकार वे दैवके अधीन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं रहतीं ॥५८-६०॥ वे कालके भी वशमें नहीं रहतीं। वे सदा अपनी शक्तिके भरोसे सब काम करती हैं। यह सम्पूर्ण जगत् दृश्य पदार्थ है और पुरुष द्रष्टा है। अतएव वह विश्वका स्रष्टा नहीं हो सकता ॥६१॥ इस दृश्यमान जगत्की जननी वे सत् और असत्स्वरूपा देवी ही हैं। वे स्वयं इस ब्रह्माण्डरूपी नाटककी रचना करके परम पुरुषको प्रसन्न किया करती हैं ॥६२॥ उनका यह कौतुक देखकर जब वह परम पुरुष प्रसन्न हो जाता है। तब बड़ी शीघ्रतापूर्वक वे समस्त विश्वका संहार कर देती हैं। यद्यपि ब्रह्माजी सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता और शिव संहारकर्ता कहे जाते हैं, किंतु वे तीनों निमित्तमात्र हैं॥६३॥ क्योंकि वे देवी लीलाके निमित्त उन तीनों देवताओंकी रचना करके उन्हें सृष्टि, पालन और संहारका काम सौंप देती हैं। वे ही उन तीनोंको अपना अंश प्रदान करके बलवान् बनाती हैं ॥६४॥ उन्होंने ब्रह्माजीको सरस्वती, विष्णुको लक्ष्मी और शिवको गिरिजारूपिणी शक्ति प्रदान करके शक्तिशाली बनाया है। इसी कारण वे तीनों देवता बड़े हर्षके साथ उन महादेवीका ध्यान और पूजन करते हैं ॥६५॥ क्योंकि उन्हें पूर्णरूपसे यह विश्वास है कि जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेकी शक्ति

नित्यं पुरुषार्थप्रवर्तिनी ॥ अकर्ता पुरुषो द्रष्टा दृश्यं सर्वमिदं जगत ॥ ६१ ॥ दृश्यस्य जननी सैव देवी सदसदात्मिका ॥ पुरुषं रंजयत्येका कृत्वा ब्रह्मांडनाटकम् ॥ ६२ ॥ रंजिते पुरुषे सर्वं संहरत्यतिरंहसा ॥ तया निमित्तभूतास्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ६३ ॥ कल्पिताः स्वस्वकार्येषु प्रेरिता लीलया त्वमी ॥ स्वांशं तेषु समारोप्य कृतास्ते बलवत्तराः ॥ ६४ ॥ दत्ताश्च शक्तयस्तेभ्यो गीर्लक्ष्मीर्गिरिजा तथा ॥ ते तां ध्यायंति देवेशाः पूजयंति परां मुदा ॥ ६५ ॥ ज्ञात्वा सर्वेश्वरीं शक्तिं सृष्टिस्थितिविनाशिनीम् ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ मम बुद्ध्यनुसारेण नांतं जानामि भूपते ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

॥ राजोवाच ॥ भगवन्ब्रूहि मे सम्यक्तस्या आराधने विधिम् ॥ पूजाविधिं च मन्त्रांश्च तथा होमविधिं वद ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तस्याः पूजाविधिं शुभम् ॥ कामदं मोक्षदं नृणां ज्ञानदं दुःखनाशनम् ॥ २ ॥ आदौ स्नानविधिं कृत्वा शुचिः शुक्लांबरो नरः ॥ आचम्य प्रयतः कृत्वा शुभमायतनं निजम् ॥ ३ ॥ ततोऽवलिप्तभूम्यां तु संस्थाप्यासनमुत्तमम् ॥ तत्रोपविश्य विधिवत्त्रिराचम्य मुदान्वितः ॥ ४ ॥

केवल भगवतीमें ही है। हे राजन्! इस प्रकार मैंने अपनी सामान्य बुद्धिके अनुसार यथासामर्थ्य देवीका उत्तम माहात्म्य आपको सुनाया। क्योंकि उनकी महिमाका मैं अन्त नहीं पा सकता ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

(भगवतीकी आराधना, पूजा और हवनकी विधि) राजा सुरथ बोले—हे भगवन्! आप मुझे उन देवीकी आराधनाविधि, पूजाविधि, मन्त्र और हवनकी विधि बताइए ॥ १ ॥ ऋषि सुमेधा बोले—हे राजन्! सुनिए, मैं आपको उनकी शुभ पूजाविधि बताता हूँ। उस विधिसे पूजन करनेपर प्राणियोंकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। मोक्ष प्राप्त हो जाता है, ज्ञान मिलता है और सब दुःख दूर हो जाते हैं ॥ २ ॥ आराधकको चहिए कि स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण करे और आचमन करके पूजाके स्थानको शुद्ध कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूजाद्रव्यं सुसंस्थाप्य यथाशक्त्यनुसारतः ॥ प्राणायामं ततः कृत्वा भूतशुद्धिं विधाय च ॥ ५ ॥ कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां तु संभारं प्रोक्ष्य मंत्रतः ॥ कालज्ञानं ततः कृत्वा न्यासं कुर्याद्यथाविधि ॥ ६ ॥ शुभे ताम्रमये पात्रे चन्दनेन सितेन च ॥ षट्कोणं विलिखेद्यंत्रं चाष्टकोणं ततो बहिः ॥ ७ ॥ नवाक्षरस्य मंत्रस्य बीजानि विलिखेत्ततः ॥ कृत्वा यंत्रप्रतिष्ठां च वेदोक्तां संविधाय च ॥ ८ ॥ अर्चां वा धातवीं कुर्यात्पूजामंत्रैः शिवोदितैः ॥ पूजनं पृथिवीपाल भगवत्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ कृत्वा वा विधिवत्पूजामागमोक्तां समाहितः ॥ जपेन्नवाक्षरं मंत्रं सततं ध्यानपूर्वकम् ॥ १० ॥ होमं दशांशतः कुर्याद्दशांशेन च तर्पणम् ॥ भोजनं ब्राह्मणानां च तद्दशांशेन कारयेत् ॥ ११ ॥ चरित्रत्रयपाठं च नित्यं कुर्याद्विसर्जयेत् ॥ नवरात्रव्रतं चैव विधेयं विधिपूर्वकम् ॥ १२ ॥ आश्विने च तथा चैत्रे शुक्ले पक्षे नराधिप ॥ नवरात्रोपवासो वै कर्तव्यः शुभमिच्छता ॥ १३ ॥ होमः सुविपुलः कार्यो जप्यमंत्रैः सुपायसैः ॥ शर्कराघृतमिश्रैश्च मधुयुक्तैः सुसंस्कृतैः ॥ १४ ॥ छागमांसेन वा कार्यो बिल्वपत्रैस्तथा शुभैः ॥ हयारिकुसुमै रक्तैस्तिलैर्वा शर्करायुतैः ॥ १५ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां च विशेषतः ॥ कर्तव्यं पूजनं देव्या ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ १६ ॥ निर्धनो धनमाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥ अपुत्रो लभते पुत्राञ्छुभांश्च वशवर्तिनः ॥ १७ ॥ राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं प्राप्नोति सार्वभौमिकम् ॥ शत्रुभिः

ले ॥ ३ ॥ तदनन्तर गोबरसे लिपी भूमिपर उत्तम आसन बिछाकर बैठे। फिर हर्षपूर्वक तीन बार आचमन करे ॥ ४ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार पूजनसामग्री जुटाकर उन्हें यथास्थान रक्खे। तदनन्तर प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे ॥५॥ फिर मंत्रोचारणपूर्वक उन जुटी हुई सामग्रियोंपर जल छिड़के और देवीकी प्राणप्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् मास-तिथि आदिका उल्लेख करता हुआ संकल्प और विधिवत् मातृकान्यास करे ॥ ६ ॥ इसके बाद किसी सुन्दर ताम्रपात्रपर सफेद तथा लाल चन्दनसे षट्कोण अथवा अष्टकोण यन्त्र लिखे ॥ ७ ॥ उस यन्त्रके प्रत्येक दलमें नवाक्षर मंत्रके एक-एक अक्षर लिखकर नवाँ अक्षर उस यंत्रकी कर्णिका (बीच) में लिखे। तदनन्तर वेदोक्त प्रतिष्ठामंत्रोंसे उसकी प्रतिष्ठा करे ॥८॥ हे राजन्! उपर्युक्त यंत्रके अभावमें सोने-चाँदी आदि धातुओंकी बनी हुई प्रतिमाका यामल आदि शिवोक्त तन्त्रमें कथित मन्त्रसे पूर्ण प्रयत्नपूर्वक पूजन करे ॥९॥ अथवा एकाग्र मनसे वेदोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करके विधिवत् देवीका पूजन और ध्यान करे। तबसे नवाक्षर मंत्रका बराबर जप करता रहे ॥१०॥ जितना जप किया गया हो, उसकी दशांश आहुति देकर हवन करे। होमका दशांश तर्पण और तर्पणका दशांश ब्रह्मणभोजन करावे ॥ ११ ॥ इस प्रकार जप करनेके बाद विसर्जन करे। उन भक्तोंको विधिवत् नवरात्रव्रत भी करना चाहिए ॥ १२ ॥ हे राजन्! आश्विन (कुवार) तथा चैत्रमासके शुक्लपक्षमें आत्मकल्याणके इच्छुक मनुष्यको नौ दिनोंके उपवासका व्रत अवश्य करना चाहिए ॥ १३ ॥ तदनन्तर नवरात्र भर जिस मन्त्रका जप किया हो, उसी मंत्रसे भली-भाँति बनायी हुई खीरमें शक्कर, घी तथा मधु मिलाकर श्रद्धापूर्वक हवन करे ॥ १४ ॥ अथवा बकरेके मांस, बिल्वपत्र तथा लाल कनेरके फूलमें तिल और शक्कर मिलाकर होम करे ॥ १५ ॥ अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी तिथिको विशेष करके देवीका पूजन और ब्राह्मणभोजन कराना चाहिए ॥१६॥ ऐसा करनेसे निर्धनको धन मिलता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है। अपुत्री पुरुष सुंदर तथा वशवर्ती पुत्र पाता है ॥ १७ ॥ राज्यभ्रष्ट राजा यह व्रत करके सार्वभौम राज्य प्राप्त करता है। शत्रु द्वारा सताया हुआ मनुष्य उन महामायाकी कृपासे अपने शत्रुओंको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाप्त कर देता है ॥१८॥ जो विद्यार्थी संयमपूर्वक देवीका पूजन करता है, उसे सराहनीय और शुभ विद्या प्राप्त होती है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १९ ॥ जो भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र श्रद्धापूर्वक जगद्धात्रीका पूजन करता है, वह सब तरहसे सुखी हो जाता है ॥ २० ॥ जो स्त्री या पुरुष भक्तिके साथ नवरात्र व्रत करता है, वह वांछित फल प्राप्त कर लेता है ॥२१॥ जो भी प्राणी श्रद्धाके साथ आश्विन मासके शुक्लपक्षमें नवरात्र व्रत करता है, उसकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥२२॥ नवरात्र व्रत करनेकी विधि यह है कि खेतकी मिट्टीसे चौकोर वेदी बनाकर पूजास्थान निश्चित करे। तदनन्तर वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करता हुआ वेदीपर कलशकी स्थापना करे ।२३॥ पूर्वोक्त यन्त्रविधिके अनुसार यंत्रका निर्माण करके उसे कलशकी बगलमें स्थापित करे। कलशके चारों ओर उलटे जौ बो दे ॥२४॥ ऊपर चाँदनी टाँगकर चारों ओर फूलमाला लटकाये। इस प्रकार चण्डिका देवीका मण्डप बनाकर भली-

पीडितो हन्ति रिपुं मायाप्रसादतः ॥१८॥ विद्यार्थी पूजनं यस्तु करोति नियतेन्द्रियः॥ अनवद्यां शुभां विद्यां बिंदते नात्र संशयः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा भक्तिसंयुतः ॥ पूजयेज्जगतां धात्रीं स सर्वसुखभाग्भवेत् ॥ २० ॥ नवरात्रव्रतं कुर्यान्नरनारीगणश्च यः ॥ वांछितं फलमाप्नोति सर्वदा भक्तितत्परः ॥ २१ ॥ आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रव्रतं शुभम् ॥ करोति भावसंयुक्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ विधिवन्मंडलं कृत्वा पूजास्थानं प्रकल्पयेत् ॥ कलशं स्थापयेत्तत्र वेदमंत्रविधानतः ॥ २३ ॥ यन्त्रं सुरुचिरं कृत्वा स्थापयेत्कलशोपरि ॥ वापयित्वा यवांश्चारून्पार्श्वतः परिवर्तितान् ॥२४॥ कृत्वोपरि वितानं च पुष्पमालासमावृतम् ॥ धूपदीपसुसंयुक्तं कर्तव्यं चण्डिकागृहम् ॥२५॥ त्रिकालं तत्र कर्तव्या पूजा शक्त्यनुसारतः ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं चण्डिकायाश्च पूजने ॥ २६ ॥ धूपैर्दीपैः सुनैवेद्यैः फलपुष्पैरनेकशः ॥ गीतवाद्यैः स्तोत्रपाठैर्वेदपारायणैस्तथा ॥ २७ ॥ उत्सवस्तत्र कर्तव्यो नानावादित्रसंयुतैः ॥ कन्यकानां पूजनं च विधेयं विधिपूर्वकम् ॥ २८ ॥ चंदनैर्भूषणैर्वस्त्रैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा ॥ सुगंधतैलमाल्यैश्च मनसो रुचिकारकैः ॥ २९ ॥ एवं संपूजनं कृत्वा होमं मंत्रविधानतः ॥ अष्टम्यां वा नवम्यां च कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ३० ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्पारणं दशमीदिने ॥ कर्तव्यं शक्तितो दानं देयं भक्तिपरैर्नृपैः ॥ ३१ ॥ एवं यः कुरुते भक्त्या नवरात्रव्रतं

भाँति धूप-दीप जलाये ॥ २५ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार प्रातः मध्याह्न तथा सायंकाल तीनों समय पूजन करे । चण्डिकापूजनके अवसरपर किसी प्रकारकी कृपणता न करे ॥ २६ ॥ धूप, दीप, सुन्दर नैवेद्य और अनेक प्रकारके फल-पुष्प जुटाकर पूजा करनी चाहिए। गायन, वाद्य, स्तोत्रपाठ तथा वेदघोषका आयोजन करके विविध प्रकारके बाजे बजाता हुआ महान् उत्सव करे। उस अवसरपर विधिवत् कन्यापूजन भी करना चाहिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ उन कन्याओंका चन्दन, आभूषण, वस्त्र, विविध प्रकारकी भोजनसामग्री, सुगन्धित तेल तथा मनको प्रसन्न करनेवाली मालाओंसे पूजन करनेका विधान है ॥ २९ ॥ उपर्युक्त पूजन करनेके बाद अष्टमी या नवमीको विधिवत् मन्त्रोच्चारणपूर्वक होम करे ॥ ३० ॥ होम करनेके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराये। दशमीको व्रती स्वयं पारण करे और यथाशक्ति ब्राह्मणोंको दान दे ॥३१॥ इस प्रकार जो पुरुष तथा पतिव्रता सधवा या विधवा स्त्री भक्तिपूर्वक नवरात्र व्रत करती है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह इस लोकमें नाना प्रकारके मनचाहे सुखों एवं भोगोंका उपभोग करके देहत्यागके बाद परम दिव्य देवीके लोकमें जाकर निवास करती है ॥३२॥३३॥ देवीके उपासकको जन्मान्तरमें अनपायिनी देवीभक्ति प्राप्त होती है। उसे उत्तम कुलमें जन्म मिलता है और वह स्वभावतः सदाचारी होता है ॥ ३४ ॥ सब व्रतोंमें उत्तम यह नवरात्रव्रत मैंने आपको बतलाया है। उन भगवती शिवाका आराधन करनेसे सब प्रकारके सुख सुलभ हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ हे राजन्! इसी विधिके अनुसार आप भगवती चण्डिकाकी आराधना करिए। ऐसा करनेसे आप अपने शत्रुओंको जीतकर अकण्टक राज्य प्राप्त कर लेंगे ॥ ३६ ॥ हे राजन्! अपने पुत्र-स्त्री आदि स्वजनोंको प्राप्त करके आप अपने घरमें इसी शरीरसे अवश्य परम सुखका उपभोग करेंगे ॥ ३७ ॥ हे वैश्यवर्य! आप भी आजसे ही उन कामदायिनी, विश्वेश्वरी तथा सृष्टिऔर संहार करनेवाली महामायाका आराधन आरम्भ कर दीजिए ॥ ३८ ॥ ऐसा करनेसे आप अपने

नरः ॥ नारी वा सधवा भक्त्या विधवा वा पतिव्रता ॥ ३२ ॥ इह लोके सुखं भोगान्प्राप्नोति मनसेप्सितान् ॥ देहांते परमं स्थानं प्राप्नोति व्रत-तत्परः ॥ ३३ ॥ जन्मांतरेऽम्बिकाभक्तिर्भवत्यव्यभिचारिणी ॥ जन्मोत्तमकुले प्राप्य सदाचारो भवेद्धि सः ॥ ३४ ॥ नवरात्रव्रतं प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ आराधनं शिवायास्तु सर्वसौख्यकरं परम् ॥ ३५ ॥ अनेन विधिना राजन्समाराधय चंडिकाम् ॥ जित्वा रिपूनस्खलितं राज्यं प्राप्स्यस्यनुत्तमम् ॥ ३६ ॥ सुखं च परमं भूप देहेऽस्मिन्स्वगृहे पुनः ॥ पुत्रदारान्समासाद्य लप्स्यसे नात्र संशयः ॥ ३७ ॥ वैश्योत्तम त्वमप्यद्य समाराधय कामदाम् ॥ देवीं विश्वेश्वरीं मायां सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ ३८ ॥ स्वजनानां च मान्यस्त्वं भविष्यसि गृहे गतः ॥ सुखं सांसारिकं प्राप्य यथाभिलषितं पुनः ॥ ३९ ॥ देवीलोके शुभे वासो भविता ते न संशयः ॥ नाराधिता भगवती यैस्ते नरकभागिनः ॥ ४० ॥ इह लोकेऽतिदुःखार्ता नानारोगैः प्रपीडिताः ॥ भवंति मानवा राजञ्छत्रुभिश्च पराजिताः ॥ ४१ ॥ निष्कलत्रा ह्यपुत्राश्च तृष्णार्ताः स्तब्धबुद्धयः ॥ बिल्वीदलैः करवीरैः शतपत्रैश्च चंपकैः ॥ ४२ ॥ अर्चिता जगतां धात्री यैस्तेऽतीव विलासिनः ॥ भवंति कृतपुण्यास्ते शक्तिभक्तिपरायणाः ॥ ४३ ॥ धनविभवसुखाढ्या मानवा मानवंतः सकलगुणगणानां भाजनं भारतीशाः ॥ निगमपठितमंत्रैः पूजिता यैर्भवानी नृपतितिलकमुख्यास्ते भवंतीह लोके ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

घरमें माननीय माने जाने लगेंगे। इस लोकके सभी अभिलषित सांसारिक सुख प्राप्त करके अन्तमें आपको देवीके सुंदर लोकमें निवास प्राप्त होगा। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो लोग भगवतीकी आराधना नहीं करते, उन्हें मरनेके बाद नरक भोगना पड़ता है ॥३९॥४०॥ वे इस संसारमें सदा दुखी और नाना प्रकारकी व्याधियोंसे पीड़ित रहते हैं। उनको पद-पद-पर शत्रुओंसे पराजय प्राप्त होती रहती है ॥४१॥ वे सदा स्त्री-पुत्रसे हीन रहते हैं। उन्हें सदा तृष्णा घेरे रहती है और उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। इसके विपरीत जो लोग बिल्वपत्र, करनेके पुष्प, कमल तथा चम्पाके फूलसे उन जगज्जननीका पूजन करते हैं, वे पुण्यात्मा मनुष्य शक्तिकी भक्तिमें संलग्न होनेके कारण विविध प्रकारका भोग-विलास करते हैं ॥४२॥४३॥ हे राजा सुरथ! जो लोग तंत्रोक्त मंत्रों द्वारा भवानीका पूजन करते हैं, वे इस संसारमें सब प्रकारके धन-वैभव प्राप्त करके सुखी होते हैं। वे संसारमें सम्मानित तथा सतोगुणसे अलंकृत विद्वान् होते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं और वे ही सब राजाओंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

(राजा सुरथ और समाधि वैश्यको देवीका प्रत्यक्ष दर्शन तथा वरकी प्राप्ति) व्यासजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! महर्षि सुमेधाके वचन सुनकर परम दुखी राजा सुरथ और समाधि वैश्यने विनम्रभावसे मुनिके चरणोंपर मस्तक रख दिया ॥ १ ॥ हर्षातिरेकसे उनके नेत्र खिल गये। भगवतीकी भक्तिका उदय हो जानेसे उनका हृदय गद्गद हो गया। तदनन्तर बातें करनेमें निपुण राजा सुरथ और समाधि वैश्यने हाथ जोड़कर कहा–हे भगवन् ! दुखी, शोकाकुल तथा अशान्त हम दोनों व्यक्तियोंको आपने अपनी सूक्तिरूपिणी सरस्वतीसे उसी प्रकार पवित्र कर दिया है। जैसे महाराज भगीरथने गंगाजीको धरतीपर उतारकर सब संसारी जनोंको पवित्र किया था ॥२॥३॥ इस संसारमें साधु पुरुष परोपकारके लिए ही अवतरित होते हैं। वे स्वाभाविक गुणोंके अखण्ड भण्डार होते हैं। वे ऐसे ही काम करते हैं कि जिससे प्राणियोंको सुख प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हम दोनोंके पूर्वजन्मार्जित पुण्योंकी महिमासे ही हमें

॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा दुःखितौ वैश्यपार्थिवौ ॥ प्रणिपत्य मुनिं प्रीत्या प्रश्रयावनतौ भृशम् ॥ १ ॥ हर्षेणोत्फुल्लनयनावू-
चतुर्वाक्यकोविदौ ॥ कृतांजलिपुटौ शान्तौ भक्तिप्रवणचेतसौ ॥ २ ॥ भगवन्पावितावद्य शान्तौ दीनौ शुचान्वितौ ॥ तव सूक्तिसरस्वत्या गंगयेव
भगीरथः ॥३॥ साधवः संभवंतीह परोपकृतितत्पराः ॥ अकृत्रिमगुणारामाः सुखदाः सर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥ पूर्वपुण्यप्रसंगेन प्राप्तोऽयमाश्रमः शुभः ॥
तवावाभ्यां महाभाग महादुःखविनाशकः ॥ ५ ॥ भवंति मानवा भूमौ बहवः स्वार्थतत्पराः ॥ परार्थसाधने दक्षाः केचित्क्वापि भवादृशाः ॥ ६ ॥
दुःखितोऽहं मुनिश्रेष्ठ वैश्योऽयं चातिदुःखितः ॥ उभौ संसारसंतप्तौ तवाश्रमपदे मुदा ॥ ७ ॥ दर्शनादेव हे विद्वन्गतं दुःखमिहावयोः ॥
देहजं मानसं वाक्यश्रवणादेव सांप्रतम् ॥ ८ ॥ धन्यावावां कृतकृत्यौ जातौ सूक्तिसुधारसात् ॥ पावितौ भवता ब्रह्मन्कृपया करुणार्णव ॥ ९ ॥
गृहाणास्मत्करौ साधो नय पारं भवार्णवे ॥ मग्नौ श्रांताविति ज्ञात्वा मंत्रदानेन सांप्रतम् ॥ १० ॥ तपः कृत्वाऽतिविपुलं समाराध्य सुखप्रदाम् ॥
संप्राप्य दर्शनं भूयो यास्यावो निजमंदिरम् ॥ ११ ॥ वदनात्तव संप्राप्य देवीमंत्रं नवाक्षरम् ॥ स्मरणं च करिष्यावो निराहारौ धृतव्रतौ ॥ १२ ॥

महान् दुःखनाशक आपका यह आश्रम मिल गया है ॥५॥ इस भूतलपर अपना कार्य साधनेवाले मनुष्य तो बहुतेरे होते हैं, किन्तु पराया उपकार करनेमें निपुण आप सरीखे महात्मा बिरले ही मिलते हैं ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं दुखी हूँ और ये वैश्य महाशय भी बहुत दुखी हैं। सो हम दोनों सांसारिक सन्तापसे सन्तप्त होकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक आपके इस पुनीत आश्रममें आये थे ॥७॥ हे विद्वन् ! आपका दर्शन करते ही हमारा शारीरिक क्लेश दूर हो गया था। किन्तु आज आपकी बातें सुनकर हमारे मनका दुःख भी दूर हो गया ॥ ८ ॥ आपके वचनरूपी अमृतरसका पान करके हम दोनों धन्य और कृतकृत्य हो गये। हे ब्रह्मन् ! हे दयाके समुद्र ! आपने कृपा करके हमें पवित्र कर दिया ॥ ९ ॥ हे साधो ! हम दोनों थककर संसाररूपी महासागरमें डूब रहे हैं। अब आप हमारा हाथ पकड़िए और मन्त्रदान देकर भवसागरसे पार कर दीजिए ॥१०॥ हम कठोर तपस्या करके उन सुखदायिनी जगदम्बाकी आराधना करेंगे। जब उनका दर्शन मिल जायगा, तब अपने-अपने घर चले जायँगे ॥११॥ आपके मुखारविन्दसे देवीका नवाक्षर मन्त्र प्राप्त करके हम दोनों निराहार रहकर नवरात्र व्रत करते हुए उस मन्त्र-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का जप करेंगे ॥१२॥ व्यासजी बोले–इस प्रकार उन दोनोंके आग्रह करनेपर मुनिश्रेष्ठ सुमेधाने उन्हें ध्यान तथा बीज समेत देवीका शुभ नवाक्षर मन्त्र प्रदान किया ॥१३॥ इसी प्रकार मंत्र, मंत्रके ऋषि, बीज, छन्द, शक्ति तथा देवताका ज्ञान प्राप्त करके राजा सुरथ और समाधि वैश्य दोनों नदीके तटपर चले गये ॥ १४ ॥ जिनका उदर बहुत कृश और चित्त शान्त हो गया था, वे दोनों राजा तथा वैश्य नदीतटके एक निर्जन स्थानमें आसन लगाकर बैठ गये । वे अपना मन शान्त करके नवाक्षर मंत्रका जप तथा दुर्गासप्तशतीके तीनों चरित्रोंका पाठ करने लगे । इस प्रकार ध्यानपरायण होकर उन्होंने एक महीनेका समय बिताया ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस एक मासके व्रतसे ही उनके मनमें भगवतीके चरणोंमें अति उत्तम भक्ति प्रकटी और उनकी बुद्धि स्थिर हो गयी ॥ १७ ॥ वे दोनों नित्य एक बार महात्मा सुमेधाके श्रीचरणोंके समीप जाते, उन्हें प्रणाम करते और वहाँसे लौटकर फिर अपने कुशासनपर बैठ

व्यास उवाच ॥ इति संचोदितस्ताभ्यां सुमेधा मुनिसत्तमः ॥ ददौ मंत्रं शुभं ताभ्यां ध्यनबीजपुरःसरम् ॥ १३ ॥ तौ च प्राप्य मुनेर्मन्त्रं संमंत्र्य गुरुदैवतौ ॥ जग्मतुर्वैश्यराजानौ नदीतीरमनुत्तमम् ॥१४॥ एकांते विजने स्थाने कृत्वासनपरिग्रहम् ॥ उपविष्टौ स्थितप्रज्ञौ तावतीव कृशोदरौ ॥१५॥ मंत्रजाप्यरतौ शांतौ चरित्रत्रयपाठकौ ॥ निन्यतुर्मासमेकं तु तत्र ध्यानपरायणौ ॥ १६ ॥ तयोर्मासव्रतेनैव जाता प्रीतिरनुत्तमा ॥ पादांबुजे भवान्यास्तु स्थिरा बुद्धिस्तथाप्यलम् ॥ १७ ॥ कदाचित्पादयोर्गत्वा मुनेस्तस्य महात्मनः ॥ कृतप्रणामावागत्य तस्थतुश्च कुशासने ॥ १८ ॥ नान्यकार्यपरौ क्वापि बभूवतुः कदाचन ॥ देवीध्यानपरौ नित्यं जपमंत्ररतौ सदा ॥ १९ ॥ एवं जाते तदा पूर्णे तत्र संवत्सरे नृप ॥ बभूवतुः फलाहारं त्यक्त्वा पर्णाशनौ नृप ॥ २० ॥ वर्षमेकं तपस्तत्र चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ शुष्कपर्णाशनौ दांतौ जपध्यानपरायणौ ॥ २१ ॥ पूर्णे वर्षद्वये जाते कदाचिद्दर्शनं च तौ ॥ प्रापतुः स्वप्नमध्ये तु भगवत्या मनोहरम् ॥ २२ ॥ रक्तांबरधरां देवीं चारुभूषणभूषिताम् ॥ कदाचिन्नृपतिः स्वप्नेऽप्यपश्यज्जगदम्बिकाम् ॥ २३ ॥ वीक्ष्य स्वप्ने च तौ देवी प्रीतियुक्तौ बभूवतुः ॥ जलाहारैस्तृतीये तु स्थितौ संवत्सरे तु तौ ॥ २४ ॥ एवं वर्षत्रयं कृत्वा ततस्तौ वैश्यपार्थिवौ ॥ चक्रतुस्तौ तदा चिंतां चित्ते दर्शनलालसौ ॥ २५ ॥ प्रत्यक्षदर्शनं देव्या न

जाते थे ॥ १८ ॥ उन दिनों वे दोनों देवीके ध्यान तथा मन्त्रजपके सिवाय और कोई कार्य नहीं करते थे ॥ १९ ॥ हे राजा जनमेजय ! इस प्रकार देवीकी आराधना करते-करते जब एक वर्ष पूरा हो गया । तब हे नृप ! उन दोनोंने फलाहार भी त्याग दिया और केवल हरे पत्ते खाकर रहते हुए उपासना करने लगे ॥२०॥ इस प्रकार वर्षभर तप करनेके बाद राजा सुरथ और समाधि वैश्य हरे पत्ते खाना छोड़ सूखी पत्तियोंको खाकर रहते और इन्द्रियदमनपूर्वक जप-ध्यान करते हुए तप करने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार तप करते-करते जब दो वर्ष व्यतीत हो गये, तब उन दोनोंको स्वप्नमें भगवतीका मनोहारी दर्शन प्राप्त हुआ ॥२२॥ उस स्वप्नमें उन्होंने देखा कि भगवती लाल वस्त्र पहने हैं और उच्चकोटिके आभूषणोंसे उनके अंग सुशोभित हो रहे हैं ॥ २३ ॥ इस तरह स्वप्नमें भगवतीके दर्शन पाकर उन दोनोंका हृदय भर आया । अब वे सूखी पत्तियाँ भी त्यागकर केवल जल पीते हुए तृतीय वर्षकी तपस्या करने लगे ॥२४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार लगातार तीन वर्षतक तप करनेपर भी जब देवीका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं मिला। तब राजा और वैश्य दोनों बहुत चिन्तित हुए ॥ २५ ॥ उन्होंने सोचा कि जिनका दर्शन पाकर प्राणियोंको स्थायी शान्ति प्राप्ति हो जाती है। उन भगवतीका दर्शन हमें अब तक नहीं मिला। अतएव इस दुखसे अत्यन्त दुखी होकर हम दोनों अपने प्राण त्याग देंगे ॥ २६ ॥ तब अत्यन्त भक्तिमान् राजाने हाथ भरका लम्बा, सुन्दर और सुस्थिर अग्निकुण्ड अपने समक्ष प्रस्तुत किया और अपने शरीरका मांस काट-काटकर हवन करने लगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसी प्रकार वैश्यने भी धधकती आगमें अपने शरीरके मांसकी आहुति दी। इसके बाद जब वे अपने शरीरके रुधिरकी भी बलि देने लगे ॥ २९ ॥ तब तत्काल भगवतीने प्रकट होकर उन दोनोंको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। अत्यन्त दुःखी और देवीकी भक्तिमें तन्मय देखकर उन दोनोंसे भगवती कहने लगीं ॥ ३० ॥ देवी बोलीं—हे राजन्! आपकी जो इच्छा हो, वह वर माँगिए। मैं आपकी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ। अब मुझे विश्वास हो गया कि आप मेरे अनन्य भक्त हैं ॥ ३१ ॥ इसके बाद उन्होंने समाधि वैश्यसे कहा—हे महामते! मैं आपकी भक्तिसे

प्राप्तं शांतिदं नृणाम् ॥ देहत्यागं करिष्यावो दुःखितौ भृशमातुरौ ॥ २६ ॥ इति संचिन्त्य मनसा राजा कुण्डं चकार ह ॥ त्रिकोणं सुस्थिरं सौम्यं हस्तमात्रप्रमाणतः ॥ २७ ॥ संस्थाप्य पावकं राजा तथा वैश्योऽतिभक्तिमान् ॥ जुहावासौ निजं मांसं छित्त्वा छित्त्वा पुनः पुनः ॥ २८ ॥ तथा वैश्योऽपि दीप्तेऽग्नौ स्वमांसं प्राक्षिपत्तदा ॥ रुधिरेण बलिं चास्यै ददतुस्तौ कृतोद्यमौ ॥ २९ ॥ तदा भगवती दत्त्वा प्रत्यक्षं दर्शनं तयोः ॥ प्राह प्रीतिभरोद्भ्रांतौ दृष्ट्वा तौ दुःखितौ भृशम् ॥३०॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वरं वरय भो राजन् यत्ते मनसि वांछितम् ॥ तुष्टाऽहं तपसा तेऽद्य भक्तोऽसि त्वं मतो मम ॥ ३१ ॥ वैश्यं प्राह ततो देवी प्रसन्नाऽहं महामते ॥ किं तेऽभीष्टं ददाम्यद्य प्रार्थयाशु मनोगतम् ॥ ३२ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा तामुवाच मुदान्वितः ॥ देहि मेऽद्य निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ ३३ ॥ तमुवाच तदा देवी गच्छ राजन्निजं गृहम् ॥ शत्रवः क्षीणसत्त्वास्ते गमिष्यंति पराजिताः ॥ ३४ ॥ मंत्रिणस्ते समागम्य ते पतिष्यंति पादयोः ॥ कुरु राज्यं महाभाग नगरे स्वं यथासुखम् ॥ ३५ ॥ कृत्वा राज्यं सुविपुलं वर्षाणामयुतं नृप ॥ देहान्ते जन्म संप्राप्य सूर्याच्च भविता मनुः ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ वैश्यस्तामप्युवाचेदं कृतांजलिपुटः शुचिः ॥ न मे गृहेण कार्यं वै न पुत्रेण धनेन वा ॥ ३७ ॥ सर्वं बंधकरं मातः स्वप्नवन्नश्वरं स्फुटम् ॥ ज्ञानं मे देहि विशदं मोक्षदं वंधनाशनम्

बहुत प्रसन्न हूँ। आपकी जो इच्छा हो, वह वर माँगिए। मैं अभी वरदान दूँगी ॥३२॥ व्यासजी बोले कि तब राजा सुरथने बड़े हर्षपूर्वक कहा—हे माता! अपनी सेना द्वारा शत्रुसेनाको पराजित करके मैं अपना गया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर सकूँ। मुझे यही वरदान चाहिए ॥ ३३ ॥ तब भगवतीने कहा—हे महाराज! अब आप अपने राज्यको लौट जाइए। वहाँ शत्रुओंकी शक्ति क्षीण हो जायगी और वे पराजित होकर भाग जायँगे ॥ ३४ ॥ हे महाभाग! आपके विपक्षी मन्त्रीगण आकर आपके पैरों पड़ेंगे। अब आप जाकर सुखपूर्वक राज्य करिए ॥३५॥ हे राजन्! अपने सुविस्तृत साम्राज्यका दस हजार वर्ष शासन करनेके बाद आप भगवान सूर्यके पुत्र मनु होकर जन्म लेंगे ॥३६॥ व्यासजी बोले—शुद्धहृदय वैश्यने हाथ जोड़कर कहा—माता! अब न मुझे घरकी आवश्यकता है और न धन तथा पुत्र ही चाहिए ॥ ३७ ॥ ये सभी बन्धनमें डालनेवाले हैं। हे जननी! ये सब स्वप्नके समान नाशवान् हैं। अतएव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुझे ऐसा निर्मल ज्ञान दीजिए कि जिससे मैं भवबन्धनसे छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त कर लूँ। इस असार संसारसागरमें अज्ञानी डूब जाते हैं और ज्ञानी पार उतर जाते हैं। इसी कारण ज्ञानी पुरुष संसारमें फिर जन्म नहीं लेना चाहते ॥३८॥३९॥ व्यासजी बोले—वैश्यकी प्रार्थना सुनकर भगवती महामायाने अपने समक्ष खड़े समाधिसे कहा—हे वैश्यवर्य ! तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥४०॥ ऐसा वरदान देकर भगवती महामाया वहाँ ही अन्तर्धान हो गयीं। देवीके अन्तर्धान हो जानेपर वे दोनों महामुनि सुमेधाके पास गये ॥ ४१ ॥ राजाने उनको प्रणाम किया और अनुमति लेकर अपने राज्यमें जानेके लिए घोड़ेपर सवार होने चले। त्यों ही उनके प्रजाजन तथा पुराने मंत्रिगण आ पहुँचे ॥४२॥ उन्होंने विनीतभावसे महाराज सुरथको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—हे राजन् ! आपके शत्रुओंने जनतापर बड़ा अत्याचार किया। यह पाप देखकर रणभूमिमें हमने उन सबको मार डाला ॥ ४३ ॥ हे भूप ! अब आप नगरको वापस चलिए और वहाँका निष्कण्टक राज्य करिए। मन्त्रियोंके वचन सुनकर राजा सुरथने महामुनि सुमेधाको प्रणाम किया और अनुमति माँगकर उन

॥ ३८ ॥ असारेऽस्मिंश्च संसारे मूढ़ा मज्जंति पामराः ॥ पण्डिताः संतरंतीह तस्मान्नेच्छंति संसृतिम् ॥ ३९ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य महामाया वैश्यं प्राह पुरःस्थितम् ॥ वैश्यवर्य तव ज्ञानं भविष्यति न संशयः ॥ ४० ॥ इति दत्त्वा वरं ताभ्यां तत्रैवांतरधीयत ॥ अदर्शनं गतायां तु राजा तं मुनिसत्तमम् ॥ ४१ ॥ प्रणम्य हयमारुह्य गमनाय मनो दधे ॥ तदैव तस्य सचिवास्तत्रागत्य नृपं प्रजाः ॥ ४२ ॥ प्रणेमुर्विनयोपेतास्तमूचुः प्रांजलिस्थिताः ॥ राजंस्ते शत्रवः सर्वे पापाच्च निहता रणे ॥ ४३ ॥ राज्यं निष्कंटकं भूप कुरुष्व पुरमास्थितः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नत्वा तं मुनिसत्तमम् ॥ ४४ ॥ आपृच्छ्य निर्ययौ तत्र मंत्रिभिः परिवारितः ॥ संप्राप्य च निजं राज्यं दारान्स्वजनबांधवान् ॥ ४५ ॥ बुभुजे पृथिवीं सर्वां ततः सागरमेखलाम् ॥ वैश्योऽपि ज्ञानमासाद्य मुक्तसंगः समंततः ॥ ४६ ॥ कालाऽतिवाहनं तत्र मुक्तबंधश्चकार ह ॥ तीर्थेषु विचरन्गायन्भगवत्या गुणानथ ॥ ४७ ॥ एतत्ते कथितं देव्याश्चरितं परमाद्भुतम् ॥ आराधनफलप्राप्तिर्यथावद्भूपवैश्ययोः ॥ ४८ ॥ दैत्यानां हननं प्रोक्तं प्रादुर्भावस्तथा शुभः ॥ एवंप्रभावा सा देवी भक्तानामभयप्रदा ॥४९॥ यः शृणोति नरो नित्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ॥ संप्राप्नोति नरः सत्यं संसारसुखमद्भुतम् ॥५०॥ ज्ञानदं मोक्षदं चैव कीर्तिदं सुखदं तथा ॥ पावनं श्रवणान्नूनमेतदाख्यानमद्भुतम् ॥ ५१ ॥ अखिलार्थप्रदं नृणां सर्वधर्मसमावृतम् ॥ धर्मार्थकाममो-

मंत्रियोंके साथ अपने नगरको चल पड़े। वहाँ अपना राज्य, रानी तथा बांधवोंको पाकर वे समुद्रपर्यंत पृथिवीका शासन करने लगे। उधर समाधि वैश्यको ज्ञान प्राप्त हो गया और उसकी सभी आसक्तियाँ निवृत्त हो गयीं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वह भारतवर्षके सभी तीर्थोंकी यात्रा करके भगवतीके गुणोंकी महिमाका गान करता हुआ प्रचार करने लगा ॥४७॥ इस प्रकार मैंने आपको देवीका परम अद्भुत चरित्र कह सुनाया। साथ ही यह भी बता दिया कि राजा सुरथ और समाधि वैश्यको किस तरह सिद्धि प्राप्त हुई ॥४८॥ इसी प्रसंगमें दैत्योंके संहार तथा भगवतीके लोककल्याणकारी अवतार लेनेका वृत्तान्त भी बता दिया। भक्तोंको अभयदान देनेवाली देवीका ऐसा प्रभाव है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य इस कथानकको नित्य श्रद्धाके साथ सुनता है, उसे संसारका वास्तविक सुख प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ यह पावन कथा सुननेसे प्राणीको ज्ञान, मोक्ष, यश और अद्भुत सुख प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ इस आख्यानमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सभी धर्मोंका समावेश हैं। इसमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थोंकी प्राप्तिका साधन बताया गया है ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले—हे मुनिवृन्द ! महाराज जनमेजयके आग्रहपर सत्यवतीसुत एवं सब तत्त्वोंके विज्ञ व्यासने उन्हें यह दिव्य देवीभागवतसंहिता सुनायी ॥ ५३ ॥ हे मुनीश्वरगण ! करुणाके सागर महामुनि कृष्णद्वैपायन व्यासने शुम्भ दैत्यके वधकी गाथाके

क्षाणां कारणं परमं मतम् ॥५२॥ सूत उवाच॥ जनमेजयेन राज्ञाऽसौ पृष्टः सत्यवतीसुतः ॥ उवाच संहितां दिव्यां व्यासः सर्वार्थतत्त्ववित् ॥५३॥ चरितं चंडिकायास्तु शुंभदैत्यवधाश्रितम् ॥ कथयामास भगवान्कृष्णः कारुणिको मुनिः ॥ ५४ ॥ इति वः कथितः सारः पुराणानां मुनीश्वराः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

व्योमांकाभ्रद्विसंख्यातैः २०९० श्लोकैर्व्यासेन धीमता ॥ देवीभागवतस्यास्य पञ्चमस्कन्ध ईरितः ॥ १ ॥

साथ भगवती चण्डिकाका जो इतिहास सुनाया था, समस्त पुराणोंका सारस्वरूप वही इतिहास मैंने आप लोगोंको सुनाया है ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ बुद्धिमान् व्यासदेवने कुल दो हजार नब्बे श्लोकोंमें यह पञ्चम स्कन्ध कहा है ॥ १ ॥

॥ समाप्तोऽयं पञ्चमः स्कन्धः ॥

॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते पञ्चमः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा'भाषाटीकासहिते--

श्रीमद्देवीभागवते षष्ठः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीसच्चिदानन्दरूपिण्यै नमः ॥ (विश्वरूप और त्रिशिराका तप, उसमें इन्द्रका विघ्न डालना) ऋषिगण बोले–हे सूत ! हे महाभाग ! महामुनि व्यास द्वारा वर्णित परम कल्याण-दायक देवीभागवतकी कथायें आपके मुखारविन्दसे सुननेपर हमें इतनी मीठी लगती हैं कि उन्हें बारम्बार सुन करके भी तृप्ति नहीं होती ॥ १ ॥ अतएव आप पुराणोक्त, लोकविख्यात, पापनाशक एवं रमणीक वह कथा सुनाइए, जिसका वर्णन वेदोंमें भी हुआ है॥ २ ॥ अब हमारी आपसे यह जिज्ञासा है कि विश्वकर्माके बलवान् पुत्र वृत्रासुरको महात्मा इन्द्रने युद्धभूमिमें क्यों मारा ? ॥३॥ त्वष्टा (विश्वकर्मा) तो देवपक्षके समर्थक थे। उनका पुत्र वृत्रासुर बड़ा बलवान् था। वह ब्राह्मणवंशमें जायमान हुआ था। तब उसको इन्द्रने क्यों मार डाला ? ॥४॥ पुराणोंके ज्ञाता और शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ पण्डितोंका कथन है कि देवताओंकी उत्पत्ति सतोगुणसे, मनुष्योंकी रजोगुणसे और पशु-पक्षी आदिकी उत्पत्ति तमोगुणसे होती है ॥ ५ ॥ लेकिन वृत्रा-सुरके वधकी बात सुनकर यह बड़ा भारी संशय उपस्थित हो जाता है कि सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाले सत्त्वगुणविशिष्ट इन्द्रने धोखेसे वृत्रासुरको क्यों मारा ? ॥६॥ इतना ही नहीं, सत्त्वगुणके

॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभाग मिष्टं ते वचनामृतम् ॥ न तृप्ताः स्मो वयं पीत्वा द्वैपायनकृतं शुभम् ॥ १ ॥ पुनस्त्वां प्रष्टुमिच्छामः कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ वेदेऽपि कथितां रम्यां प्रसिद्धां पापनाशिनीम् ॥ २ ॥ वृत्रासुर इति ख्यातो वीर्यवांस्त्वष्टुरात्मजः ॥ स कथं निहतः संख्ये वासवेन महात्मना ॥ ३ ॥ त्वष्टा वै सुरपक्षीयस्तत्पुत्रो बलवत्तरः ॥ शक्रेण घातितः कस्माद्ब्रह्मयोनिर्महाबलः ॥ ४ ॥ देवाः सत्त्वगुणोत्पन्ना मानुषा राजसाः स्मृताः ॥ तिर्यञ्चस्तामसाः प्रोक्ताः पुराणागमवादिभिः ॥ ५ ॥ विरोधोऽत्र महान्भाति नूनं शतमखेन ह ॥ छलेन बलवान्वृत्रः शक्रेण विनिपातितः ॥ ६ ॥ विष्णुः प्रेरयिता तत्र स तु सत्त्वधरः परः ॥ प्रविष्टः पविमध्ये स छद्मना भगवान्प्रभुः ॥ ७ ॥ सन्धिं विधाय स ह्येवं मंत्रितोऽसौ महाबलः ॥ हरिभ्यां सत्यमुत्सृज्य जलफेनेन शातितः॥ ८ ॥ कृतमिंद्रेण हरिणा किमेतत्सूत साहसम् ॥ महान्तोऽपि च मोहेन वंचिताः पापबुद्धयः ॥ ९ ॥ अन्यायवर्तिनोऽत्यर्थं भवंति सुरसत्तमाः ॥ सदाचारेण युक्तेन देवाः शिष्टत्वमागताः ॥ १० ॥ एवंविशिष्टधर्मेण शिष्टत्वं कीदृशं पुनः ॥ हत्वा वृत्रं तु विश्वस्तं शक्रेण छद्मना पुनः ॥ ११ ॥ प्राप्तं पापफलं नो वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम् ॥ किं च त्वया पुरा प्रोक्तं वृत्रासुरवधः

मूर्त रूप भगवान विष्णुने इन्द्रको ऐसा करनेके लिए प्रोत्साहित किया। छल करके वे सबके प्रभु और साक्षात् भगवान् विष्णु इन्द्रके वज्रमें प्रविष्ट हो गये ॥७॥ परस्पर सन्धि हो जानेके कारण वृत्रासुर निश्चिन्त हो गया था। किन्तु भगवान विष्णु और इन्द्रने सन्धिकी अवहेलना करके जलफेनसे उसको मार डाला ॥ ८ ॥ हे सूत ! इन्द्र और विष्णुने यह दुःसाहस क्यों किया ? ठीक ही है, कभी-कभी बड़े लोग भी इस प्रकार मोहजालमें फँस जाते हैं कि उनकी बुद्धि पापकर्ममें लग जाती है ॥९॥ देवताओंके अग्रणी विष्णु-इन्द्र जैसे सुरसत्तम भी अन्याय-पथके पथिक बन जाते हैं। किन्तु सदाचारपरायण होनेके नाते ही देवताओंको गौरव प्राप्त हुआ था ॥१०॥ इस प्रकार जब उनके धर्ममें पापको प्रधानता मिली, तब उनका सदाचार कहाँ रह गया ? इसके सिवाय इन्द्रने वृत्रको विश्वास दिलाकर बादमें विश्वासघात और छल करके मार डाला ॥ ११ ॥ इसके कारण उन्हें ब्रह्महत्याके पापका फल भी मिला या नहीं ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकिन एक बात और है। वह यह कि आप पहलेकह चुके हैं—वृत्रासुरको स्वयं भगवतीने मारा था। यह सुनकर हमारा चित्त और भी भ्रममें पड़ गया है। सूतजी बोले-हे मुनिगण! अब आप लोग वृत्रासुरके वधकी कथा सुनें॥ १२॥ १३॥ साथ ही यह भी समझ लें कि इन्द्रको इस ब्रह्महत्याके बदलेमें बड़ा दुःख भोगना पड़ा था। इसी प्रकार सत्यवतीसुत व्याससे महाराज परीक्षित्के पुत्र जनमेजयने भी प्रश्न किया था। राजा जनमेजयने कहा–हे मुनिराज! देवराज इन्द्रने वृत्रासुरका वध क्यों किया? ॥ १४॥ १५॥ इन्द्र तो सात्त्विक वृत्तिके देवता थे। तब उन्होंने भगवान् विष्णुकी सहायतासे छलपूर्वक वृत्रासुरका वध क्यों किया? अथवा भगवतीने ही उस दैत्यको क्यों मारा? ॥१६॥ हे मुनिपुंगव! यह कैसे सम्भव हो सकता है कि एक ही व्यक्तिको दो भिन्न-भिन्न देवता मारें? यह वृत्तान्त सुननेके लिए मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है ॥ १७॥ ऐसा कौन मनुष्य है कि जो महापुरुषोंके पावन चरित्रको न सुनना चाहेगा? अतएव आप मुझे जगदम्बा द्वारा वृत्रासुरके वधकी कथा सुनाइए॥ १८॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! पुराणश्रवणके विषयमें आप इतने अधिक उत्सुक रहते हैं।

कृतः ॥ १२ ॥ श्रीदेव्या इति तच्चापि चित्तं मोहयतीह नः ॥ सूत उवाच ॥ शृण्वन्तु मुनयो वृत्तं वृत्रासुरवधाश्रयम् ॥ १३ ॥ यथेन्द्रेण च संप्राप्तं दुःखं हत्यासमुद्भवम् ॥ एवमेव पुरा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १४ ॥ पारीक्षितेन राज्ञाऽपि स यदाह च तद्ब्रुवे ॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं वृत्रासुरः पूर्वं हतो मघवता मुने ॥ १५ ॥ सहायं विष्णुमासाद्य छद्मना सात्त्विकेन ह ॥ कथं स देव्या निहतो दैत्योऽसौ केन हेतुना ॥१६॥ कथमेकवधो द्वाभ्यां कृतः स्यान्मुनिपुंगव ॥ तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे ॥ १७ ॥ महतां चरितं शृण्वन्को विरज्येत मानवः ॥ कथयाम्बावैभवं त्वं वृत्रासुरवधाश्रितम् ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ धन्योऽसि राजंस्तव बुद्धिरीदृशी जाता पुराणश्रवणेऽतिसादरा ॥ पीत्वाऽमृतं देववरास्तु सर्वथा पाने वितृष्णाः प्रभवन्ति वै पुनः ॥ १९ ॥ दिने दिने तेऽधिकभक्तिभावः कथासु राजन्महनीयकीर्तेः ॥ श्रोता यदैकप्रवणः शृणोति वक्ता तदा प्रीतमना ब्रवीति ॥ २० ॥ युद्धं पुरा वासववृत्रयोर्यद्वेदे प्रसिद्धं च तथा पुराणे ॥ दुःखं सुरेन्द्रेण तथैव लब्धं हत्वा रिपुं त्वाष्ट्रमपापमेव ॥ २१ ॥ चित्रं किमत्र नृपते हरिवज्रभृद्भ्यां यच्छद्मना विनिहतस्त्रिशिरोऽथ वृत्रः ॥ मायाबलेन मुनयोऽपि विमोहितास्ते चक्रुश्च निंद्यमनिशं किल पापभीताः ॥२२॥ विष्णुः सदैव कपटेन जघान दैत्यान्सत्त्वात्ममूर्तिरपि मोहमवाप्य कामम् ॥ कोन्योऽस्ति तां भगवतीं मनसाऽपि जेतुं शक्तः

अतएव आप धन्य हैं। बड़े-बड़े देवता भी अमृत पीकर तृप्त हो गये थे। किन्तु आप विविध कथायें सुनकर भी तृप्त नहीं होते॥ १९॥ हे राजन्! इन कथाओंको सुनकर दिनों-दिन आपकी उत्सुकता बढ़ती ही जाती है। अतएव आप असाधारण पुरुष हैं। जब श्रोता एकाग्रमनसे कथा सुनता है, तब वक्ता भी बड़े प्रेमसे कहता है। २०॥ प्राचीन कालमें इन्द्र और वृत्रासुरका भीषण युद्ध हुआ था। वेदों और पुराणोंमें यह कथा प्रसिद्ध है। अपने शत्रु और त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका वध करके देवराज इन्द्रको पराधीन होकर बड़ा दुःख उठाना पड़ा था ॥ २१॥ जब मायाके बलसे मोहमें पड़कर पापभीरु मुनिगण भी पापकर्म करने लग जाते हैं। तब यदि मायाके वशीभूत होकर भगवान विष्णु और वज्रधारी इन्द्रने धोखा देकर त्रिशिरा और वृत्रासुरको मार डाला तो कौनसी आश्चर्यकी बात हो गयी? ॥ २२॥ सतोगुणके मूर्तिमान् अवतार होते हुए भी भगवान विष्णुने मायासे मोहित होकर सदैव छलसे दैत्योंका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वध किया है। तब भला ऐसा कौन प्राणी होगा कि जो सब लोगोंको मोहमें डाल देनेवाली महामाया भगवती भवानीको अपने मनोबलसे जीतनेमें सफल हो सके ? ॥२३॥ उन्हीं भगवती महामायाकी प्रेरणासे भगवान अनन्त और नरके सखा नारायण हजारों युगोंसे संसारमें मत्स्य-कूर्म आदि योनियोंमें अवतार लेते आ रहे हैं। उन्हींके प्रेरणानुसार वे कभी शास्त्रके अनुकूल और कभी शास्त्रके प्रतिकूल कर्म किया करते हैं॥२४॥ अत्यंत बलवती मायाके फेरमें पड़कर सभी जीव विकल हो जाते हैं। 'यह मेरा शरीर है, यह मेरा धन है, मेरा घर-द्वार है, मेरे स्त्री-पुत्र और भाई-बन्धु हैं' आदिके मोहमें पड़कर वे लोग कभी पुण्य और कभी पापकर्म कर गुजरते हैं ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इस भूतलपर कार्य और कारणका विज्ञ कोई भी व्यक्ति मोहसे छुटकारा नहीं पा सकता। क्योंकि वह तो भगवती महामायाके सत्त्वादि तीनों गुणोंसे मोहित होकर सदा उन्हींके अधीन रहता है ॥२६॥ यही कारण है कि मायासे मोहित होकर भगवान विष्णु और इन्द्रने अपना स्वार्थ साधन करनेके लिए छलपूर्वक वृत्रासुरका वध किया था ॥ २७ ॥ हे पृथिवीपाल ! अब मैं वृत्रासुर तथा इन्द्रके पारस्परिक वैरका कारणसम्बन्धी वृत्तान्त

समस्तजनमोहकरीं भवानीम् ॥ २३ ॥ मत्स्यादियोनिषु सहस्रयुगेषु सद्यः साक्षाद्भवत्यपि यया विनियोजितोऽत्र ॥ नारायणो नरसखो भगवाननंतः कार्यं करोति विहिताविहितं कदाचित् ॥२४॥ देहं धनं गृहमिदं स्वजना मदीयाः पुत्राः कलत्रमिति मोहमुपेत्य सर्वः ॥ पुण्यं करोत्यथ च पापचयं करोति मायागुणैरतिबलैर्विकलीकृतो यत् ॥ २५ ॥ न जातु मोहं क्षपितुं नरः क्षमः कश्चिद्भवेद्भूप परावरार्थवित् ॥ विमोहितस्तैस्त्रिभिरेव मूलतो वशीकृतात्मा जगतीतले भृशम् ॥ २६ ॥ अथ तौ मायया विष्णुवासवौ मोहितौ भृशम् ॥ जघ्नतुश्छद्मना वृत्रं स्वार्थसाधनतत्परौ ॥ २७ ॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि वृत्तांतमवनीपते ॥ कारणं पूर्ववैरस्य वृत्रवासवयोर्मिथः ॥ २८ ॥ त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः ॥ देवानां कार्यकर्ता च निपुणो ब्राह्मणप्रियः ॥ २९ ॥ स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्वेषात्किलासृजत् ॥ विश्वरूपेति विख्यातं नाम्ना रूपेण मोहनम् ॥ ३० ॥ त्रिभिः स वदनैः श्रेष्ठैर्व्यरोचत मनोहरैः ॥ त्रिभिर्भिन्नानि कार्याणि मुखैः समकरोन्मुनिः ॥ ३१ ॥ वेदानेकेन सोऽधीते सुरां चैकेन सोऽपिबत् ॥ तृतीयेन दिशः सर्वा युगपच्च निरीक्षते ॥ ३२ ॥ त्रिशिरा भोगमुत्सृज्य तपश्चक्रे सुदुष्करम् ॥ तपस्वी स मृदुर्दांतो धर्ममेव समाश्रितः ॥ ३३ ॥ पंचाग्निसाधनं काले पादपाग्रे निवेशनम् ॥ जलमध्ये निवासं च हेमंते शिशिरे तथा ॥ ३४ ॥ निराहारो जितात्माऽसौ त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ तपश्चचार मेधावी दुष्करं

बता रहा हूँ ॥२८॥ देवताओंमें श्रेष्ठ त्वष्टा प्रजापति महान् तपस्वी, ब्राह्मणोंके प्रिय और देवताओंके निपुण कार्यकर्ता थे ॥ २९ ॥ वे सदा इन्द्रसे द्वेषभाव रखते थे। अतएव उन्होंने तीन सिरवाला एक बहुत ही सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। जिसका नाम था–विश्वरूप ॥ ३० ॥ वह अपने परम मनोहर तीनों मुखोंसे बड़ा भव्य दीखता था। वह अपने उन तीनों मुखोंसे भिन्न-भिन्न तीन कार्य एक साथ करता था ॥३१॥ उसका एक मुख वेद पढ़ता था। दूसरा मद्यपान करता था। तीसरा मुख सब दिशाओंको एक साथ देखता था ॥३२॥ बादमें उस त्रिशिराने सब भोगोंको ठुकरा दिया और परम मृदु, संयमी तथा धर्मपरायण होकर वह कठोर तप करने लगा ॥ ३३ ॥ वह गर्मियोंमें पञ्चाग्नि तापता, बरसातमें वृक्षकी डालियोंपर पैर बाँधकर उलटा लटका रहता और हेमन्त तथा शरद् ऋतु आनेपर जलमें खड़े-खड़े तप किया करता था ॥ ३४ ॥ उसने आहार त्याग दिया, आत्मा (मन) को जीत लिया और सभी वासनाओंको ठुकरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिया। ऐसा करके उस बुद्धिमान् दैत्यने ऐसा कठोर तप किया, जैसा कि मन्दबुद्धि प्राणी नहीं ही कर सकते थे॥ ३५ ॥ उसे ऐसी तपस्या करते देखकर इन्द्र बहुत खिन्न हुए। उन्हें यह सोचकर बड़ा विषाद हुआ कि यह कहीं इन्द्र न बन जाय॥३६॥ उस अमित तेजस्वी विश्वरूपका तप, पराक्रम और सत्य देखकर देवराज सदा चिंतित रहने लगे॥३७॥ उन्होंने सोचा कि त्रिशिराके बल आदि गुण उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे हैं। अधिक आगे बढ़कर संभव है कि यह किसी दिन हमींको समाप्त कर दे। इसीसे नीतिज्ञ विद्वान् जब शत्रुका बल बढ़ रहा हो तो उसकी उपेक्षा नहीं करें॥ ३८॥ अतएव अब इसकी तपस्या भंग करनेका कोई उपाय करना आवश्यक है। सो कामदेव तपका शत्रु है और कामसे ही तप क्षीण होता है॥३९॥ अब मुझे कोई ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे यह तप त्यागकर भोगमें आसक्त हो जाय। बल दैत्यके नाशक इन्द्रने ऐसा विचार करके उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची और तिलोत्तमा आदि अप्सराओंको त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको प्रलोभनमें डालनेकी आज्ञा दी॥ ४०॥ ४१॥ अपने रूपपर गर्व करनेवाली अप्सराओंको बुलाकर इन्द्रने कहा—इस समय

मंदबुद्धिभिः॥ ३५॥ तं च दृष्ट्वा तपस्यंतं खेदमाप शचीपतिः॥ विषादमगमत्तत्र शक्रोऽयं मास्मभूदिति॥ ३६॥ दृष्ट्वा तस्य तपोवीर्यं सत्यं चामिततेजसः॥ चिंतां च महतीं प्राप ह्यनिशं पाकशासनः॥ ३७॥ विवर्धमानस्त्रिशिरा मामयं शातयिष्यति॥ नोपेक्ष्यः सर्वथा शत्रुर्वर्धमानबलो बुधैः॥ ३८॥ तस्मादुपायः कर्तव्यस्तपोनाशाय सांप्रतम्॥ कामस्तु तपसां शत्रुः कामान्नश्यति वै तपः॥ ३९॥ तथैवात्र प्रकर्तव्यं भोगासक्तो भवेद्यथा॥ इति संचिंत्य मनसा बुद्धिमान्बलमर्दनः॥ ४०॥ आज्ञापयत्सोऽप्सरसस्त्वाष्ट्रपुत्रप्रलोभने॥ उर्वशीं मेनकां रंभां घृताचीं च तिलोत्तमाम्॥ ४१॥ समाहूयाब्रवीच्छक्रस्तास्तदा रूपगर्विताः॥ प्रियं कुरुध्वं मे सर्वाः कार्येऽद्य समुपस्थिते॥ ४२॥ यतो मेऽद्य महाञ्छत्रुस्तपस्तपति दुर्जयः॥ कार्यं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयंत माचिरम्॥ ४३॥ शृंगारवेषैर्विविधैर्हावैर्देहसमुद्भवैः॥ प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं ज्वरं मम॥ ४४॥ अस्वस्थोऽहं महाभागास्तस्य ज्ञात्वा तपोबलम्॥ बलवानासनं मेऽद्य ग्रहीष्यत्यविलंबितम्॥ ४५॥ भयं मे समुपायातं क्षिप्रं नाशयताबलाः॥ उपकुर्वन्तु सहिताः कार्येऽद्य समुपस्थिते॥ ४६॥ तच्छ्रुत्वा वचनं नार्य ऊचुस्तं प्रणताः पुरः॥ मा भयं कुरु देवेश यतिष्यामः प्रलोभने॥ ४७॥ यथा न स्याद्भयं तस्मात्तथा कार्यं महाद्युते॥ नृत्यगीतविहारैश्च मुनेस्तस्य प्रलोभने॥ ४८॥ कटाक्षैरंगभेदैश्च मोहयित्वा मुनिं विभो॥ लोलुपं

मेरा एक बहुत आवश्यक कार्य आ पड़ा है। उसे तुम लोग पूरा कर दो॥४२॥ कार्य यह है कि हमारा एक बहुत बड़ा शत्रु तप कर रहा है। सो तुम लोग तत्काल उसे मोहमें डालकर उसका तप भंग कर दो॥ ४३॥ तुम बहुत सुन्दर शृंगार करके उसके पास जाओ और विविध शारीरिक हाव-भाव दिखाकर उसे अपनेपर आसक्त कर लो। ऐसा करनेसे मेरा मानसिक संताप दूर हो जायगा और तुम्हारा कल्याण होगा॥४४॥ हे महाभागाओ! उसके तपोबलको जानकर मैं विकल हो उठा हूँ। मुझे भय है कि वह बलवान् शीघ्र मेरा आसन छीन लेगा॥४५॥ हे अबलाओ! मुझे यही भय है। इसे तुम शीघ्र नष्ट कर दो। यह विकट कार्य पूरा करके तुम मेरा उपकार करो॥ ४६॥ देवराजके वचन सुनकर उन नारियोंने बड़े विनीत भावसे कहा—हे देवेश! आप तनिक भी न डरें। हम उसे तपोभ्रष्ट करनेका पूर्ण प्रयत्न करेंगी॥ ४७॥ हे महातेजस्विन्! जिस तरह आपका भय दूर होगा, उसे लुभाकर हम वैसा ही करेंगी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नृत्य, गीत तथा विहार जिस किसी भी तरह वह मोहित हो सकेगा, हम वही करेंगी। कटाक्षपात तथा शरीरकी लचकसे हम उस मुनिको अपनेपर आसक्त कर लेंगी और वह हमारे फंदेसे बाहर न जा सकेगा ॥४८॥४९॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! इन्द्रसे ऐसा कहकर वे अप्सरायें त्रिशिराके पास गयीं और कामशास्त्रमें कहे हुए नाना प्रकारके हाव-भाव प्रदर्शित करने लगीं ॥५०॥ उस मुनिके समक्ष वे कभी मधुर स्वरमें गातीं और कभी विविध तालोंपर नाचने लगती थीं। उसे मोहित करनेके लिए वे तरह-तरहके भाव दिखाने लगीं ॥ ५१ ॥ किन्तु उस तपस्वीने उनकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके गूँगे, अन्धे और बहरेकी तरह चुपचाप ध्यानमग्न होकर बैठा रहा ॥ ५२ ॥ इस प्रकार मोहमें डालनेवाले नृत्य-गान आदि करती हुई वे वारांगनायें कुछ दिन उस मुनिके सुन्दर आश्रममें रहीं ॥५३॥ लेकिन यह सब करनेपर भी मुनि त्रिशिरा ध्यानसे विचलित नहीं हुए। तब वे सभी नारियाँ इन्द्रके पास लौट गयीं ॥ ५४ ॥ वे थकी हुई थीं। उनके चेहरेसे दीनता टपक रही थी। वे भयभीत थीं और उनका मुख उदास हो गया था। उन्होंने हाथ जोड़कर इन्द्रसे

वशमस्माकं करिष्यामो नियंत्रितम् ॥ ४९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याभाष्य हरिं नार्यो ययुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम् ॥ कुर्वंत्यो विविधान्भावान्कामशास्त्रोदितानपि ॥ ५० ॥ गायंत्यस्तालभेदैस्ता नृत्यंत्यः पुरतो मुनेः ॥ तं प्रलोभयितुं चक्रुर्नानाभावान्वरांगनाः ॥५१॥ नापश्यत्स तपोराशिरंगनानां विडम्बनम् ॥ इन्द्रियाणि वशे कृत्वा मूकांधबधिरः स्थितः ॥ ५२ ॥ दिनानि कतिचित्तस्थुर्नार्यस्तस्याश्रमे वरे ॥ कुर्वन्त्यो गाननृत्यादि प्रपंचानतिमोहदान् ॥ ५३ ॥ न चचाल यदा कामं ध्यानाच्च त्रिशिरा मुनिः ॥ परावृत्य तदा देव्यः पुनः शक्रमुपस्थिताः ॥ ५४ ॥ कृतांजलिपुटाः सर्वा देवराजमथाब्रुवन् ॥ श्रांता दीना भयत्रस्ता विवर्णवदना भृशम् ॥ ५५ ॥ देवदेव महाराज यत्नश्च परमः कृतः ॥ न स शक्यो दुराधर्षो धैर्याच्चालयितुं विभो ॥ ५६ ॥ उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यः सर्वथा पाकशासन ॥ नास्माकं बलमेतस्मिंस्तापसे विजितेंद्रिये ॥ ५७ ॥ दिष्ट्या वयं न शप्ताः स्म यदनेन महात्मना ॥ मुनिना वह्नितुल्येन तपसा द्योतितेन हि ॥ ५८ ॥ विसृज्याप्सरसः शक्रश्चिंतयामास मन्दधीः ॥ तस्यैव च वधोपायं पापबुद्धिरसांप्रतम् ॥ ५९ ॥ विसृज्य लोकलज्जां स तथा पापभयं भृशम् ॥ चकार पापबुद्धिं तु तद्वधाय महीपते ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कहा—हे देवदेव! हे महाराज! हे विभो! हमने बहुत प्रयत्न किया। किन्तु उस दुर्धर्ष मुनिको- धैर्यसे विचलित नहीं कर सकीं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे पाकशासन! अब आप कोई दूसरा उपाय करिए। उस संयमी तापसपर हमारा बल कुछ काम नहीं कर सका ॥५७॥ अग्निके समान तेजस्वी और तपस्यासे जाज्वल्यमान उस मुनिने हमें शाप नहीं दे दिया। यही हमारा बड़ा भाग्य था ॥५८॥ तब उन अप्सराओंको विदा करके क्षुद्रबुद्धि इन्द्र त्रिशिराके वध करनेका उपाय सोचने लगे। क्योंकि उनके मनमें पाप समा गया था ॥५९॥ हे राजन्! स्वार्थवश उन्होंने लोकलाज और पापके भयको भी भुला दिया और त्रिशिराको मारनेके लिए पापबुद्धिका अवलम्बन किया ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेय-रामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(इन्द्र द्वारा त्रिशिराका वध) व्यासजी बोले—हे महाराज ! इन्द्रासनके लोभवश पापबुद्धि देवराज इन्द्र मुनिको मारनेका निश्चय करके ऐरावत हाथीपर सवार होकर उस स्थानपर गये, जहाँ त्रिशिरा तप कर रहा था। उन्होंने वहाँ देखा कि मुनि त्रिशिरा दृढ़ आसनसे बैठे हुए हैं। उन्होंने वाणीको अपने वशमें कर लिया है और पूर्ण समाधिस्थ हैं। उनका तेज सूर्य और चन्द्रमाके समान देदीप्यमान था। उन्हें देखकर इन्द्र बड़े असमंजसमें पड़ गये ॥१॥२॥ उन्होंने सोचा—अहो ! ये मुनिराज तो बड़े निर्मल स्वभावके हैं। इन्हें मैं कैसे मारूँ ? किन्तु नहीं, इनका तपोबल बराबर बढ़ता जा रहा है। ये मेरे इन्द्रासनको छीनना चाहते हैं। तब ऐसे शत्रुको मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ? ॥ ३ ॥ देवसंघके अधिनायक इन्द्रने ऐसा विचार करके तपस्यामें संलग्न और सूर्य-चन्द्रमाके समान तेजस्वी त्रिशिरा मुनिके ऊपर अपना द्रुतगामी और अमोघ वज्र चला दिया ॥४॥ उस आघातसे तपस्वी त्रिशिरा वैसे ही घायल होकर गिर पड़े और मर

॥ व्यास उवाच ॥ अथ स लोभमुपेत्य सुराधिपः समधिगम्य गजासनसंस्थितः ॥ त्रिशिरसं प्रति दुष्टमतिस्तदा मुनिमपश्यदमेयपराक्रमम् ॥१॥ तमभिवीक्ष्य दृढासनसंस्थितं जितगिरं सुसमाधिवशं गतम् ॥ रविविभावसुसन्निभमोजसा सुरपतिः परमापदमभ्यगात् ॥ २ ॥ कथमसौ विनिहंतुमहो मया मुनिरपापमतिः किल सम्मतः ॥ रिपुरयं सुसमिद्धतपोबलः कथमुपेक्ष्य इहासनकामुकः ॥ ३ ॥ इति विचिंत्य पविं परमायुधं प्रतिमुमोच मुनिं तपसि स्थितम् ॥ शशदिवाकरसन्निभमाशुगं त्रिशिरसं सुरसंघपतिः स्वयम् ॥ ४ ॥ तदभिघातहतः स धरातले किल पपात ममार च तापसः ॥ शिखरिणः शिखरं कुलिशार्दितं निपतितं भुवि चाद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ तं निहत्य मुदमाप सुरेशश्चुक्रुशुश्च मुनयस्तु संस्थिताः ॥ हा हतेति भृशमार्तनिस्वनाः किं कृतं शतमखेन पापिना ॥ ६ ॥ विनापराधं तपसां निधिर्हतः शचीपतिः पापमतिर्दुरात्मा ॥ फलं किलायं तरसा कृतस्य प्राप्नोतु पापी हननोद्भवस्य ॥ ७ ॥ तं निहत्य तरसा सुरराजो निर्जगाम निजमंदिरमाशु ॥ स हतोऽपि विरराज महात्मा जीवमान इव तेजसां निधिः ॥ ८ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ जीवंतमिव वृत्रहा ॥ चिंतामापातिखिन्नांगः किं वा जीवेदयं पुनः ॥ ९ ॥ विमृश्य मनसाऽतीव तक्षाणं पुरतः स्थितम् ॥ मघवा वीक्ष्य तं प्राह स्वकार्यसदृशं वचः ॥ १० ॥ तक्षंश्छिंधि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम ॥ मा जीवतु

गये। जैसे पूर्वकालमें इन्द्रके वज्रप्रहारसे बड़े-बड़े पर्वत चूर्ण हो गये थे ॥५॥ उसी प्रकार उन्हें मारकर इन्द्र तो प्रसन्न हुए। किन्तु मुनि त्रिशिराके आस-पास रहनेवाले मुनि आर्त्त स्वरसे हाहाकार करके चिल्लाते हुए कहने लगे कि पापी इन्द्रने यह क्या कर डाला ? ॥६॥ इस तपोनिधिको पापी और दुष्ट इन्द्रने बिना किसी अपराधके मार डाला है। अतएव उस पापीको मुनिकी हत्याका फल शीघ्र मिलेगा ॥७॥ त्रिशिरा मुनिको मारकर इन्द्र तुरन्त अपने घर चले जानेको उद्यत हो गये। किन्तु वज्रके आघातसे मर जानेपर भी मुनि त्रिशिरा अपने शारीरिक तेजसे जीवित जैसे लग रहे थे ॥८॥ जमीनपर गिर जानेपर भी जीवित सदृश दीखते हुए त्रिशिराको देखकर इन्द्रको चिंता हुई कि यह कहीं फिर न जीवित हो जाय ॥९॥ अपने मनमें बड़ी देरतक विचार करनेके बाद सामने खड़े एक बढ़ईको देखकर इन्द्रने अपना काम बनानेके लिए कहा ॥ १० ॥ इन्द्र बोले—हे बढ़ई ! तुम मेरी बात मानकर इन मुनिका सिर काट लो। ये महातेजस्वी अभी जीवित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे दीखते हैं। किन्तु मैं नहीं चाहता कि ये जियें ॥११॥ यह वचन सुनकर धिक्कारते हुए उसने कहा। वढ़ई बोला—इनकी गर्दन बहुत मोटी है। वह मेरी कुल्हाड़ीसे न कट सकेगी ॥१२॥ अतएव मैं यह पाप न करूँगा। आपने तो बड़ा भारी लोकनिंद्य और सत्पुरुषों द्वारा गर्हित पाप कर डाला है ॥१३॥ एक तो मैं वैसे ही पापसे डरता हूँ। तिसपर भी मरे हुएको मैं क्यों मारूँ? ये मुनि तो आपके वज्रप्रहारसे ही मर गये हैं। अब इनका सिर काटनेसे क्या लाभ? ॥१४॥ हे देवराज! अब आपको इनसे क्या भय है? यदि हो तो बताइए। इन्द्र बोले—इनका आकार अब भी बहुत निर्मल है और इनका शरीर सजीव जैसा लगता है ॥१५॥ मुझे यही भय है कि मेरा शत्रु यह मुनि फिर न जी जाय। बढ़ईने कहा—हे विद्वन्! आपको क्रूर कर्म करते लज्जा नहीं आती ॥ १६ ॥ इस ऋषिपुत्रकी हत्या करनेसे आपको ब्रह्महत्याके पापका भय नहीं है? इन्द्रने कहा—बादमें पापको नष्ट करनेके लिए मैं प्रायश्चित्त कर लूँगा

महातेजा भाति जीवन्निव स्वयम् ॥ ११ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षोवाच विगर्हयन् ॥ तक्षोवाच ॥ महास्कन्धो भृशं भाति परशुर्न तरिष्यति ॥१२॥ ततो नाहं करिष्यामि कार्यमेतद्विगर्हितम् ॥ त्वया वै निंदितं कर्म कृतं सद्भिर्विगर्हितम् ॥ १३ ॥ अहं बिभेमि पापाद्वै मृतस्यैव च मारणे ॥ मृतोऽयं मुनिरस्त्येव शिरसः कृंतनेन किम् ॥ १४ ॥ भयं किं तेऽत्र संजातं पाकशासन कथ्यताम् ॥ इंद्र उवाच ॥ सजीव इव देहोऽयमाभाति विशदाकृतिः ॥ १५ ॥ तस्माद्बिभेमि मा जीवेन्मुनिः शत्रुरयं मम ॥ तक्षोवाच ॥ नात्र किं त्रपसे विद्वन्क्रूरेणानेन कर्मणा ॥ १६ ॥ ऋषि-पुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न किम् ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चात्पापक्षयाय वै ॥ १७ ॥ शत्रुस्तु सर्वथा वध्यश्छलेनापि महामते ॥ तक्षोवाच ॥ त्वं लोभाभिहतः पापं करोषि मघवन्निह ॥ १८ ॥ तं विनाऽहं कथं पापं करोमि वद मे विभो ॥ इन्द्र उवाच ॥ मखेषु खलु भागं ते करिष्यामि सदैव हि ॥ १९ ॥ शिरः पशोस्तु ते भागं यज्ञे दास्यंति मानवाः ॥ शुल्केनानेन छिंधि त्वं शिरांस्यस्य कुरु प्रियम् ॥ २० ॥ व्यास उवाच॥ एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्य वचस्तक्षा मुदान्वितः ॥ कुठारेण शिरांस्यस्य चकर्त सुदृढेन हि ॥ २१ ॥ छिन्नानि त्रीणि शीर्षाणि पतितानि यदा भुवि ॥ तेभ्यस्तु पक्षिणः क्षिप्रं विनिष्पेतुः सहस्रशः ॥२२॥ कलविंकास्तित्तिरयस्तथैव च कपिंजलाः ॥ पृथक्पृथग्विनि-ष्पेतुर्मुखतस्तरसा तदा ॥ २३ ॥ येन वेदानधीते स्म सोमं च पिबते तथा ॥ तस्माद्वक्त्रात्किलोत्पेतुः सद्य एव कपिंजलाः ॥ २४ ॥ येन सर्वा

॥१७॥ हे महामते! छल करके भी शत्रुका वधकर देना चाहिए। वढ़ई बोला—हे इन्द्र! आप तो लोभके वशीभूत होकर यह पाप कर रहे हैं ॥१८॥ किन्तु इनका सिर काटनेसे मुझे क्या लाभ होगा कि जिसके लिये मैं यह पाप करूँ। इन्द्रने कहा—मैं यज्ञोंमें सदाके लिए तुम्हारे भागकी व्यवस्था कर दूँगा ॥१९॥ अबसे पशुयागमें सब मनुष्य पशुका मस्तक तुम्हें दे देंगे। इस पुरस्कारके बदलेमें इसका सिर काटकर तुम मेरा प्रिय काम कर दो ॥२०॥ व्यासजी बोले—देवराज इन्द्रका वचन सुनकर बढ़ईने सहर्ष अपनी मजबूत कुल्हाड़ीसे त्रिशिराके मस्तक काटकर धड़से अलग कर दिये ॥२१॥ उसके तीनों मस्तक कटकर धरतीपर गिरे, तैसे ही उनमेंसे हजारों पक्षी एक साथ निकल पड़े ॥२२॥ कलविङ्क (गौरैया), तित्तिर और कपिञ्जल (बया) ये तीन जातिके पक्षी उस मुनिके तीनों मुखोंसे निकले ॥२३॥ त्रिशिरा जिस मुखसे वेदाध्ययन तथा सोमपान करता था, उस मुखसे तत्काल बहुतसे बया पक्षी निकल आये ॥२४॥ जिस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुखसे वह सब दिशाओंका निरीक्षण करता था, उस मुखसे अति तेजस्वी तीतर पक्षी निकले ॥२५॥ हे राजन्! जिस मुखसे वह मद्यपान करता था, उससे गौरैया पक्षी निकले ॥ २६ ॥ त्रिशिराके मुखोंसे विभिन्न पक्षियोंको निकलते देखकर इन्द्र मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए और वहाँसे स्वर्गलोकको चले गये ॥ २७ ॥ इन्द्रके चले जानेपर बढ़ई भी शीघ्र अपने घरको चल पड़ा। हे राजन्! श्रेष्ठ यज्ञभाग पाकर उस बढ़ईको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥२८॥ इस प्रकार शत्रुको मारकर इन्द्रने ब्रह्महत्याकी कुछ भी चिंता न करते हुए अपनेको कृतार्थ मान लिया ॥२९॥ अपने परम धर्मात्मा पुत्रके मरणका समाचार पाक त्वष्टा (विश्वकर्मा) मन ही मन बहुत कुपित हुए और उन्होंने कहा-॥३०॥ इन्द्रने मेरे निरपराध पुत्र मुनि त्रिशिराको मार डाला है। अतएव इन्द्रका वध करनेके लिए मैं दूसरा पुत्र उत्पन्न करूँगा ॥३१॥ उन्होंने कहा-हे देवताओं! आप सब मेरा पराक्रम और तपोबल देखें, वह पापी इंद्र भी अपनी करनीका भयानक फल

दिशः कामं पिबन्निव निरीक्षते ॥ तस्मात्तु तित्तिरास्तत्र निःसृतास्तिग्मतेजसः ॥ २५ ॥ यत्सुरापं तु तद्वक्त्रं तस्मात्तु चटकाः किल ॥ विनिष्पेतु-
स्त्रिशिरस एवं ते विहगा नृप ॥ २६ ॥ एवं विनिःसृतान्दृष्ट्वा तेभ्यः शक्रस्तदाऽण्डजान् ॥ मुमोद मनसा राजञ्जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ २७ ॥ गते
शक्रे तु तक्षाऽपि स्वगृहं तरसा ययौ ॥ यज्ञभागं परं लब्ध्वा मुदमाप महीपते ॥ २८ ॥ इन्द्रोऽथ स्वगृहं गत्वा हत्वा शत्रुं महाबलम् ॥ मेने
कृतार्थमात्मानं ब्रह्महत्यामचिन्तयन् ॥ २९ ॥ तं श्रुत्वा निहतं त्वष्टा पुत्रं परमधार्मिकम् ॥ चुकोपातीव मनसा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३० ॥ अनागसं
मुनिं यस्मात्पुत्रं निहतवान्मम ॥ तस्मादुत्पादयिष्यामि तद्वधार्थं सुतं पुनः ॥३१॥ सुराः पश्यंतु मे वीर्यं तपसश्च बलं तथा ॥ जानातु सर्वं पापात्मा
स्वकृतस्य फलं महत् ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वाऽग्निं जुहावाथ मंत्रैराथर्वणोदितैः ॥ पुत्रस्योत्पादनार्थाय त्वष्टा क्रोधसमाकुलः ॥ ३३ ॥ कृते होमेऽष्टरात्रं
तु संदीप्ताच्च विभावसोः ॥ प्रादुर्बभूव तरसा पुरुषः पावकोपमः ॥ ३४ ॥ तं दृष्ट्वाऽग्रे सुतं त्वष्टा तेजोबलसमन्वितम् ॥ वेगात्प्रकटितं वह्नेर्दीप्यमान-
मिवानलम् ॥ ३५ ॥ उवाच वचनं त्वष्टा सुतं वीक्ष्य पुरःस्थितम् ॥ इन्द्रशत्रो विवर्धस्व प्रतापात्तपसो मम ॥ ३६ ॥ इत्युक्ते वचने त्वष्टा क्रोध-
प्रज्वलितेन च ॥ सोऽवर्धत दिवं स्तब्ध्वा वैश्वानरसमद्युतिः ॥ ३७ ॥ जातः स पर्वताकारः कालमृत्युसमः स्वराट् ॥ किं करोमीति तं प्राह पितर
परमातुरम् ॥ ३८ ॥ कुरु मे नामकं नाथ कार्यं कथय सुव्रत ॥ चिंतातुरोऽसि कस्मात्त्वं ब्रूहि मे शोककारणम् ॥ ३९ ॥ नाशयाम्यद्य ते शोकमिति

पायेगा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर क्रोधसे व्याकुल त्वष्टा पुत्र उत्पन्न करनेके लिए अथर्ववेदोक्त मंत्रोंका उच्चारण करते हुए अग्निमें हवन करने लगे ॥३३॥ इस तरह लगातार आठ राततक हवन करनेके बाद उस प्रज्वलित अग्निसे सहसा एक पुरुष प्रकटा, जो अग्निके समान तेजस्वी था ॥ ३४ ॥ धधकती अग्निके समान तेजस्वी, बलवान् और हवनकुण्डसे जायमान पुत्रको सम्मुख उपस्थित देखकर त्वष्टाने कहा-हे इन्द्रके शत्रु पुत्र! तुम मेरे तपोबलसे शीघ्र बड़े हो जाओ ॥३५॥३६॥ क्रोधसे जाज्वल्यमान त्वष्टाके ऐसा कहते ही वह अग्निसदृश तेजस्वी पुत्र बढ़ने लगा। उसको बढ़ते देखकर सब देवता स्तब्ध हो गये ॥३७॥ कुछ ही क्षणोंमें बढ़ते-बढ़ते वह पुत्र पर्वताकार तथा विशालकाय होकर कालपुरुषके समान भयानक दीखने लगा। इसके बाद उसने अपने परम आतुर पितासे कहा-मैं क्या करूँ! ॥३८॥ हे नाथ! आप मेरा नामकरण करिए। हे सुव्रत! शीघ्र मुझे काम बताइए। आप इतने चिंतित क्यों हैं? मुझे अपने शोकका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण बताइए ॥ ३९ ॥ जिससे मैं तत्काल आपका शोक दूर कर दूँ। मेरा यह दृढ़ संकल्प है। जिस पुत्रके रहते पिता दुखी रहे तो उस पुत्रसे क्या लाभ ? ॥४०॥ आपकी आज्ञा पाते ही मैं समुद्र पी जाऊँगा और पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँगा। प्रचण्ड तेजस्वी सूर्यका उदय भी मैं रोक दूँगा ॥४१॥ मैं यम आदि सब देवताओंके साथ इन्द्रको मार डालूँगा। आप कहें तो मैं सारी पृथिवी उठाकर समुद्रमें फेंक दूँ ॥ ४२ ॥ पुत्रके मधुर वचन सुनकर त्वष्टा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने उस पर्वताकार पुत्रसे कहा—॥ ४३ ॥ हे पुत्र ! तुम अभी वृजिन (कष्ट) से त्राण (रक्षा) करनेमें समर्थ हो। अतएव तुम्हारा 'वृत्र' यह नाम प्रसिद्ध होगा ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे एक भाई त्रिशिरा नामके तपस्वी थे। उनके बड़े ही दृढ़ तीन मस्तक थे ॥ ४५ ॥ वे वेद-वेदान्तके मर्मज्ञ और सभी विद्याओंके ज्ञाता थे। उन दिनों वे इतनी उग्र तपस्यामें संलग्न थे कि जिसे देखकर तीनों लोकके प्राणी चकित हो गये थे ॥४६॥

मे व्रतमाहितम् ॥ तेन जातेन किं भूयः पिता भवति दुःखितः ॥ ४० ॥ पिबामि सागरं सद्यश्चूर्णयामि धराधरान् ॥ उद्यंतं वारयाम्यद्य तरणिं तिग्मतेजसम् ॥ ४१ ॥ हन्मीन्द्रं ससुरं सद्यो यमं वा देवतांतरम् ॥ क्षिपामि सागरे सर्वान्समुत्पाट्य च मेदिनीम् ॥ ४२ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्वष्टा पुत्रस्य पेशलम् ॥ प्रत्युवाचातिमुदितस्तं सुतं पर्वतोपमम् ॥ ४३ ॥ बृजिनात्त्रातुमधुना यस्माच्छक्तोऽसि पुत्रक ॥ तस्माद्वृत्र इति ख्यातं तव नाम भविष्यति ॥ ४४ ॥ भ्राता तव महाभाग त्रिशिरा नाम तापसः ॥ त्रीणि तस्य च शीर्षाणि ह्यभवन् वीर्यवंति च ॥४५॥ वेदवेदांगतत्त्वज्ञः सर्वविद्याविशारदः ॥ संस्थितस्तपसि प्रायस्त्रिलोकीविस्मयप्रदे ॥४६॥ शक्रेण तु हतः सोऽद्य वज्राघातेन साम्प्रतम् ॥ विनाऽपराधं सहसा छिन्नानि मस्तकानि च ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र जहि शक्रं कृतागसम् ॥ ब्रह्महत्यायुतं पापं निस्त्रपं दुर्मतिं शठम् ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वा च तदा त्वष्टा पुत्रशोकसमाकुलः ॥ आयुधानि च दिव्यानि चकार विविधानि च ॥ ४९ ॥ ददावस्मै सहस्राक्षवधाय प्रबलानि च ॥ खड्गशूलगदाशक्तितोमर-प्रमुखानि वै ॥ ५० ॥ शार्ङ्गं धनुस्तथा बाणं परिघं पट्टिशं तथा ॥ चक्रं दिव्यं सहस्रारं सुदर्शनसमप्रभम् ॥ ५१ ॥ तूणीरौ चाक्षयौ दिव्यौ कवचं चातिसुंदरम् ॥ रथं मेघप्रतीकाशं दृढं भारसहं जवम् ॥ ५२ ॥ युद्धोपकरणं सर्वं कृत्वा पुत्राय पार्थिव ॥ दत्त्वाऽसौ प्रेरयामास त्वष्टा क्रोधसमन्वितः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

बिना किसी अपराधके इन्द्रने उसे वज्रप्रहार करके मार डाला और उसके तीनों मस्तक काट लिये ॥ ४७ ॥ अतएव हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम उस पापी, ब्रह्मघाती, निर्लज्ज, कलुषितहृदय और शठ इंद्रको मार डालो ॥ ४८ ॥ पुत्रशोकसे व्याकुल त्वष्टाने ऐसा कहकर विविध प्रकारके दिव्य शस्त्रास्त्रोंका निर्माण किया ॥ ४९ ॥ उन सभी शस्त्रास्त्रोंको इन्द्रका वध करनेके लिए उन्होंने वृत्रको दे दिया। उन शस्त्रोंमें ये थे—तलवार, त्रिशूल, गदा, बर्छी, गँड़ासा, सींगसे निर्मित धनुष, बाण, परिघ, पट्टिश और सुदर्शन जैसा तेजस्वी हजार धारवाला दिव्य चक्र, जिनमेंसे बाण कभी भी नहीं चुकते थे ऐसे दो तरकस, अतिशय सुन्दर कवच और मेघके समान श्यामवर्ण तथा तेज चलने और ज्यादा भार सहनेमें समर्थ था ॥ ५०–५२ ॥ हे राजा जनमेजय ! क्रोधसे व्याकुल त्वष्टाने इन युद्धसामग्रियोंको देकर इन्द्रका वध करनेके लिए वृत्रको प्रेरित किया ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(देवताओंके साथ वृत्रका युद्ध और इन्द्रकी पराजय) व्यासजी बोले—हे राजन् ! वेदपारंगत ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक वेदमंत्रोंका पाठ कराके वृत्र रथपर सवार हुआ और इन्द्रको मारनेके लिए चला ॥ १ ॥ उसी समय पूर्वकालमें देवताओंसे पराजित क्रूर राक्षसगण वृत्रको महाबली जानकर उसकी सेवकाई करनेके लिए आ पहुँचे ॥ २ ॥ जब इन्द्रके दूतोंने देखा कि वृत्र आक्रमण कर देनेको उद्यत है। तब भाग करके वे इन्द्रके पास गये और उन्हें शत्रुपक्षकी गति-विधिका हाल बताया ॥ ३ ॥ दूतोंने कहा—हे स्वामिन् ! आपका बलवान् शत्रु रथपर सवार होकर शीघ्र यहाँ आ रहा है। क्रोधाभिभूत और पुत्रशोकसे सन्तप्त त्वष्टाने आपका विनाश करनेके लिए उसे अभिचारिकी क्रिया द्वारा उत्पन्न किया है। वह वृत्र बड़ा भयानक है और उसके साथ विशाल राक्षसी सेना भी है ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! सुमेरु और मन्दर पर्वतके समान विशालकाय और देखनेमें बड़ा भयानक वृत्र घोर गर्जन करता हुआ शीघ्र यहाँ

॥ व्यास उवाच ॥ कृतस्वस्त्ययनो वृत्रो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ निर्जगाम रथारूढो हंतुं शक्रं महाबलः ॥ १ ॥ तदैव राक्षसाः क्रूराः पुरा देवपराजिताः ॥ समाजग्मुश्च सेवार्थं वृत्रं ज्ञात्वा महाबलम् ॥ २ ॥ इन्द्रदूतास्तु तं दृष्ट्वा युद्धाय तु समागतम् ॥ वेगादागत्य वृत्तांतं शशंसुस्तस्य चेष्टितम् ॥ ३ ॥ दूता ऊचुः ॥ स्वामिञ्छीघ्रमिहायाति वृत्रो नाम रिपुस्तव ॥ बलवान्स्यंदने रूढस्त्वष्ट्रा चोत्पादितः किल ॥ ४ ॥ अभिचारेण नाशार्थं तव क्रोधान्वितेन वै ॥ पुत्रघाताभितप्तेन दुःसहो राक्षसैर्युतः ॥ ५ ॥ यत्नं कुरु महाभाग शीघ्रमायाति सांप्रतम् ॥ मेरुमंदरसंकाशो घोरशब्दोऽतिदारुणः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र भीता देवगणा भृशम् ॥ आगत्योचुः सुरपतिं शृण्वंतं दूतभाषितम् ॥ ७ ॥ गणा ऊचुः ॥ मघवन्दुर्निमित्तानि भवंति त्रिदशालये ॥ बहूनि भयशंसीनि पक्षिणां विरुतानि च ॥ ८ ॥ काकगृध्रास्तथा श्येनाः कंकाद्या दारुणाः खगाः ॥ रुदंति विकृतैः शब्दैरुत्कारैर्भवनोपरि ॥ ९ ॥ चीचीकूचीति निनदान्कुर्वंति विहगा भृशम् ॥ वाहनानां च नेत्रेभ्यो जलधाराः पतंत्यधः ॥ १० ॥ श्रूयतेऽतिमहाञ्छब्दो रुदतीनां निशासु च ॥ राक्षसीनां महाभाग भवनोपरि दारुणः ॥ ११ ॥ प्रपतंति ध्वजास्तूर्णं विना वातेन मानद ॥ प्रभवंति महोत्पाता दिवि भूम्यंतरिक्षजाः ॥ १२ ॥ कृष्णांबरधरा नार्यो भ्रमंति च गृहे गृहे ॥ यांतु यांतु गृहात्तूर्णं कुर्वंत्यो विकृताननाः ॥ १३ ॥

आना चाहता है। अतएव अपने बचावके लिए कोई उपाय करिए ॥ ६ ॥ देवराज जब दूतोंकी बात सुन रहे थे। उसी समय बहुतेरे भयभीत देवता भी वहाँ जा पहुँचे ॥ ७ ॥ देवगण बोले–हे देवराज ! इस समय देवताओंके घरोंमें नाना प्रकारके अशकुन हो रहे हैं। पक्षियोंके बड़े ही डरावने शब्द सुनायी देते हैं ॥८॥ कौए, गिद्ध, बाज और चील आदि क्रूर पक्षी हमारे घरोंपर बैठकर बड़े करुण स्वरसे रोते हैं ॥ ९ ॥ अन्य पक्षी बारम्बार चीची-कूची जैसे शब्द कर रहे हैं । हाथी-घोड़े आदि वाहनोंकी आँखोंसे बराबर अश्रुधारा बह रही है ॥ १० ॥ हे महाभाग ! हमारे मकानोंके ऊपरी भागमें रात्रिके समय रोती हुई राक्षसियोंका बड़ा भीषण कोलाहल सुनायी देता है ॥ ११ ॥ हे मानद ! हवाके बिना ही ध्वजायें टूट-टूटकर गिर रही हैं। स्वर्ग, भूमि और आकाशमें बड़े-बड़े उत्पात होते दिखायी देते हैं ॥१२॥ भयानक मुखवाली नारियाँ काले कपड़े पहनकर घर-घर घूमती हुई कहती हैं कि 'तुम लोग घरसे शीघ्र निकल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'जाओ।' ॥ १३ ॥ रातको सोते समय स्त्रियाँ यह स्वप्न देखती हैं कि राक्षसियाँ उनके केश नोचती और डराती हैं ॥ १४ ॥ हे देवराज ! इसी प्रकार भूकम्प और उल्कापात आदि उत्पात भी बराबर हो रहे हैं। सियारोंके झुण्ड हमारे घरोंके आँगनमें आ-आकर रोते हैं ॥१५॥ घर-घरमें इस समय गिरगिटोंकी टोली घूमती दीखती है । हमारे अंग इस प्रकार फड़कते हैं कि जिनसे किसी भावी अशुभकी सूचना मिलती है ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले—उन देवताओंकी बात सुनकर इन्द्रको बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने तत्काल गुरु बृहस्पतिको बुलाकर अपनी मानसिक अशान्तिका कारण पूछा ॥ १७ ॥ इन्द्रने कहा-हे ब्रह्मन् ! क्या कारण है कि ऐसे-ऐसे भयंकर अशकुन दिखायी देते हैं ? जैसे-अचानक आँधी-बवंडर उड़ते रहते हैं । आकाशसे उल्काओंकी वर्षा होती है ॥१८॥ हे महाभाग ! सर्वज्ञ होनेके कारण आप इन विघ्नोंको नष्ट करनेकी सामर्थ्य रखते हैं। आप बुद्धिमान्, शास्त्रोंके मर्मज्ञ और देवताओंके गुरु हैं ॥१९॥ अतएव

रात्रौ स्वप्नेषु कांतानां सुप्तानां निजमंदिरे ॥ केशाँल्लुनंति राक्षस्यो भीषयंत्यो भृशातुराः ॥ १४ ॥ एवंविधानि देवेश भूकंपोल्कादयस्तथा ॥
गोमायवो रुदंतिस्म निशायां भवनांगणे ॥ १५ ॥ सरटानां च जालानि प्रभवंति गृहे गृहे ॥ अंगप्रस्फुरणादीनि दुर्निमित्तानि सर्वशः ॥ १६ ॥
॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा चिंतामाप सुरेश्वरः ॥ बृहस्पतिं समाहूय पप्रच्छ च मनोगतम् ॥ १७ ॥ इन्द्र उवाच ॥ ब्रह्मन्किमुत
घोराणि निमित्तानि भवंति वै ॥ वाताश्च दारुणा वांति प्रपतंत्युलकाः खतः ॥ १८ ॥ सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थो विघ्ननाशने ॥ बुद्धिमाञ्छास्त्र-
तत्त्वज्ञो देवतानां गुरुस्तथा ॥१९॥ कुरु शांतिं विधानज्ञ शत्रुक्षयविधायिनीम् ॥ यथा मे न भवेद्दुःखं तथा कार्यं विधीयताम् ॥२०॥ बृहस्पतिरुवाच ॥
किं करोमि सहस्राक्ष त्वयाऽद्य दुष्कृतं कृतम् ॥ अनागसं मुनिं हत्वा किं फलं समुपार्जितम् ॥ २१ ॥ अत्युग्रं पुण्यपापानां फलं भवति सत्वरम् ॥
विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं तद्भूतिमिच्छता ॥ २२ ॥ परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन ॥ न सुखं बिंदते प्राणी परपीडापरायणः ॥ २३ ॥
मोहाल्लोभाद्ब्रह्महत्या कृता शक्र त्वयाऽधुना ॥ तस्य पापस्य सहसा फलमेतदुपागतम् ॥ २४ ॥ अवध्यः सर्वदेवानां जातोऽसौ वृत्रसंज्ञकः ॥ हंतुं
त्वां स समायाति दानवैर्बहुभिर्वृतः ॥ २५ ॥ आयुधानि च सर्वाणि वज्रतुल्यानि वासव ॥ त्वष्ट्रा दत्तानि दिव्यानि गृहीत्वा समुपस्थितः ॥ २६ ॥

हे विधानके ज्ञाता ! आप शान्तिके लिए कोई ऐसा अनुष्ठान करिए कि जिससे शत्रुका नाश हो और हमें दुःख न उठाना पड़े ॥२०॥ गुरु बृहस्पति बोले–हे सहस्राक्ष! तुमने बहुत बड़ा पाप कर डाला है । उस निरपराध मुनिकी हत्या करके तुम्हें क्या मिला ? ॥२१॥ अपनी उन्नति चाहनेवालोंका यह कर्तव्य है कि समझकर कोई काम करें। क्योंकि प्राणीको अपने किये हुए उग्र पुण्य तथा पापका फल भोगना ही पड़ता है ॥२२॥ कोई ऐसा काम कदापि न करे कि जिससे किसीको कष्ट पहुँचे। क्योंकि औरोंको कष्ट देनेवाले प्राणियोंको कभी सुख नहीं मिलता॥२३॥ हे इन्द्र! तुमने मोह और लोभवश ब्रह्महत्या कर डाली है । उसीका फल सहसा आज हमारे सामने आ उपस्थित हुआ है ॥ २४ ॥ जन्मसे ही वृत्र देवताओं द्वारा अवध्य है । इस समय वह बड़ी भारी दानवी सेनाके साथ तुम्हें मारने आ रहा है ॥२५॥ हे इन्द्र! उसके सभी शस्त्रास्त्र तुम्हारे वज्रके समकक्ष हैं । वे सब दिव्य शस्त्रास्त्र त्वष्टाके दिये हुए हैं । उन्हींको लेकर वह चढ़ा आ रहा है ॥२६॥ वह प्रताप-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वान् और दुर्धर्ष वीर वृत्रासुर रथपर बैठकर अब आने ही वाला है। हे देवेंद्र! आप यदि प्रलयकाल उपस्थित कर दें, फिर भी वह न मरेगा ॥२७॥ बृहस्पति ऐसा कह ही रहे थे कि उसी समय स्वर्गमें घोर हाहाकार मच गया। जिससे गंधर्व, किन्नर, यक्ष, मुनि, तपस्वी और सभी देवता अपना-अपना घर छोड़कर भाग गये। यह आश्चर्यजनक घटना घटती देखकर इंद्र घबड़ा उठे ॥ २८ ॥ २९ ॥ तब उन्होंने अपने सेवकोंको सेना जुटानेकी आज्ञा दी और कहा—वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों, आदित्यों, पूषा, आदित्य, भग, वायु, वरुण और यम ये सभी प्रमुख देवता अपने-अपने शस्त्रास्त्र ले तथा विमानोंपर सवार होकर शीघ्र यहाँ आ जायँ। क्योंकि शत्रु बड़े वेगसे चढ़ा चला आ रहा है। सेवकोंको ऐसा आदेश देकर इंद्र अपने गजराज ऐरावतपर सवार हो गये ॥ ३०–३२ ॥ तब पुरोहित देवगुरु बृहस्पतिको आगे करके वे अपने भवनसे बाहर निकले। अन्य देवता भी अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो-होकर वहाँ आ पहुँचे ॥ ३३ ॥

समागच्छति दुर्धर्षो रथारूढः प्रतापवान् ॥ देवेन्द्र प्रलयं कुर्वन्नास्य मृत्युर्भविष्यति ॥ २७ ॥ कोलाहलस्तदा जातस्तथा ब्रुवति वाक्पतौ ॥ गंधर्वाः किन्नरा यक्षा मुनयश्च तपोधनाः ॥ २८ ॥ सदनानि विहायैवामराः सर्वे पलायिताः ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं शक्रश्चिंतापरायणः ॥ २९ ॥ आज्ञापयामास तदा सेनोद्योगाय सेवकान् ॥ आनयध्वं वसून्रुद्रानश्विनौ च दिवाकरान् ॥ ३० ॥ पूषाणं च भगं वायुं कुबेरं वरुणं यमम् ॥ विमानेषु समारुह्य सायुधाः सुरसत्तमाः ॥ ३१ ॥ समागच्छंतु तरसा शत्रुरायाति सांप्रतम् ॥ इत्याज्ञाप्य सुरपतिः समारुह्य गजोत्तमम् ॥ ३२ ॥ बृहस्पतिं पुरोधाय निर्गतो निजमंदिरात् ॥ तथैव त्रिदशाः सर्वे स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ ३३ ॥ युद्धाय कृतसंकल्पा निर्ययुः शस्त्रपाणयः ॥ वृत्रोऽथ दानवैर्युक्तः संप्राप्तो मानसोत्तरम् ॥ ३४ ॥ पर्वतं देवतावासं रम्यं पादपशोभितम् ॥ इन्द्रोऽप्यागत्य संग्रामं चकार मानसोत्तरे ॥ ३५ ॥ पर्वते देवतायुक्तो वाचस्पतिपुरःसरः ॥ तत्राभूद्दारुणं युद्धं वृत्रवासवयोस्तदा ॥ ३६ ॥ गदासिपरिघैः पाशैर्बाणैः शक्तिपरश्वधैः ॥ मानुषेण प्रमाणेन संग्रामः शरदां शतम् ॥ ३७ ॥ बभूव भयदो नृणामृषीणां भावितात्मनाम् ॥ वरुणः प्रथमं भग्नस्ततो वायुगणः किल ॥ ३८ ॥ यमो विभावसुः शक्रः सर्वे ते निर्गता रणात् ॥ पलायनपरान्दृष्ट्वा देवानिंद्रपुरोगमान् ॥ ३९ ॥ वृत्रोऽपि पितरं प्रागादाश्रमस्थं मुदान्वितम् ॥ प्रणम्य प्राह त्वष्टारं पितः कार्यं मया

युद्धका संकल्प करके हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए वे सब देवता अपनी-अपनी राजधानीसे चल पड़े। उधर वृत्र भी विशाल दानवी सेनाके साथ मानसरोवरके उत्तरी तटपर आ गया ॥३४॥ उस पर्वतपर देवताओंकी आबादी थी। अतएव वह प्रदेश बड़ा रमणीक था और सुन्दर वृक्षोंकी पंक्तियाँ सुशोभित थीं। देवराजने वहीं पड़ाव डाल दिया। उस स्थानपर वृत्र और इन्द्रमें भयानक युद्ध हुआ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ गदा, तलवार, परिघ, बाण, बर्छी और फरसे आदि शस्त्रोंके द्वारा वह युद्ध मानवगणनाके अनुसार पूरे सौ वर्षतक चला ॥ ३७ ॥ वह भीषण युद्ध देखकर मनुष्यों और भावुक हृदयवाले ऋषियोंपर आतंक छा गया। उस युद्धमें सर्वप्रथम वरुण और उसके बाद वायुगणके पैर उखड़े और वे निकल भागे ॥ ३८ ॥ तदनंतर यमराज, अग्नि और इन्द्र आदि सभी सेनानायक भाग खड़े हुए। इन्द्र आदि देवताओंको भागते देखकर वृत्र भी आश्रमवासी तथा प्रसन्नचित्त अपने पिताके पास गया और कहा—हे पिताजी! मैंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आपकी आज्ञाका पालन कर दिया ॥३९॥४०॥ समरभूमिमें आये हुए इन्द्र आदि सभी देवता मुझसे पराजित होकर उसी प्रकार भाग गये, जैसे सिंहके डरसे मृग और हाथी भाग जाते हैं ॥४१॥ इन्द्र तो पैदल ही रणभूमिसे भाग गये और उनका गजराज ऐरावत मैं पकड़ लाया हूँ। हे भगवन्! उस श्रेष्ठ हाथीको अब आप स्वीकार करें ॥४२॥ मैंने उन भगोड़े देवताओंको इस लिए नहीं मारा कि डरसे भागते हुएको मारना अनुचित था। हे पिताजी! अब आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी और कौनसी अभिलाषा पूर्ण करूँ ॥४३॥ सब देवता भयभीत हो तथा युद्धके परिश्रमसे थककर भाग गये। इन्द्र भी मारे डरके ऐरावत त्यागकर निकल भागे ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले–अपने पुत्र वृत्रके वचन सुने तो त्वष्टाने बहुत हर्षित होकर कहा–आज मैं अपनेको पुत्रवान् समझ रहा हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया ॥ ४५ ॥ हे पुत्र! तुमने मुझे पवित्र कर दिया। मेरी मानसिक व्यथा मिट गयी और तुम्हारा अद्भुत पराक्रम देखकर मेरा मन शान्त तथा

कृतम् ॥४०॥ देवा विनिर्जिताः सर्वे सेन्द्राः समरसंस्थिताः ॥ विद्रुतास्ते गताः स्थानं यथा सिंहान्मृगा गजाः ॥४१॥ इन्द्रः पदातिरगमन्मयाऽऽ-
नीतो गजोत्तमः ॥ ऐरावतोऽयं भगवन्गृहाण द्विरदोत्तमम् ॥ ४२ ॥ न हतास्ते मया यस्मादयुक्तं भीतमारणम् ॥ आज्ञापय पुनस्तात किं करोमि
तवेप्सितम् ॥ ४३ ॥ निर्जरा निर्गताः सर्वे भयभीताः श्रमातुराः ॥ इन्द्रोऽप्यैरावतं त्यक्त्वा भयभीतः पलायितः ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति
पुत्रवचः श्रुत्वा त्वष्टा प्राह मुदान्वितः ॥ पुत्रवानद्य जातोऽस्मि सफलं मम जीवितम् ॥ ४५ ॥ त्वयाऽहं पावितः पुत्र गतो मे मानसो ज्वरः ॥
निश्चलं मे मनो जातं दृष्ट्वा वीर्यं तवाद्भुतम् ॥४६॥ शृणु वक्ष्याम्यहं पुत्र हितं तेऽद्य निशामय ॥ तपः कुरु महाभाग सावधानः स्थिरासनः ॥४७॥
विश्वासो नैव कर्तव्यः केषांचित्पाकशासनः ॥ शत्रुस्ते छलकर्ताऽस्ति नानाभेदविशारदः ॥ ४८ ॥ तपसा प्राप्यते लक्ष्मीस्तपसा राज्यमुत्तमम् ॥
तपसा बलवृद्धिः स्यात्संग्रामे विजयस्तथा ॥ ४९ ॥ आराध्य द्रुहिणं देवं लब्ध्वा वरमनुमत्तमम् ॥ जहि शक्रं दुराचारं ब्रह्महत्यासमावृतम् ॥ ५० ॥
सावधानः स्थिरो भूत्वा दातारं भज शङ्करम् ॥ वांछितं स वरं दद्यात्संतुष्टश्चतुराननः ॥ ५१ ॥ तोषयित्वा विश्वयोनिं ब्रह्माणममितौजसम् ॥
अविनाशित्वमासाद्य जहि शक्रं कृतागसम् ॥५२॥ वैरं मनसि मे पुत्र वर्तते सुतघातजम् ॥ न शांतिमनुगच्छामि न स्वपामि सुखेन ह ॥ ५३ ॥

निश्चल हो गया ॥ ४६ ॥ हे पुत्र! अब मैं तुम्हारे हितकी बात बता रहा हूँ। उसे ध्यानसे सुनो। हे महाभाग! अब तुम पूर्ण सावधानीके साथ दृढ़ आसनसे बैठकर तप करो ॥४७॥ तुम किसीपर विश्वास मत करना। क्योंकि छलिया तथा भेदनीतिमें पूर्ण निपुण इन्द्र अभी भी जीवित है ॥ ४८ ॥ तपसे लक्ष्मी मिलती है, तपसे उत्तम राज्य प्राप्त होता है, तपसे बल बढ़ता है और तपसे ही संग्राममें विजय प्राप्त होती है ॥४९॥ तपस्या द्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके तुम उनसे उत्तम वर प्राप्त करो और उस दुराचारी तथा ब्राह्मणके हत्यारे इन्द्रको मार डालो ॥ ५० ॥ जब तुम सावधान होकर दृढ़ आसनसे ब्रह्माजीकी आराधना करोगे तो चार मुखवाले ब्रह्माजी प्रसन्न होकर तुम्हें अभिलषित वरदान देंगे ॥ ५१ ॥ इस प्रकार अमित तेजस्वी तथा समस्त जगत्के रचयिता ब्रह्माजीको प्रसन्न करके तुम किसीके हाथों न मारे जानेका वर माँग लो। उसके बाद इन्द्रका वध कर डालो ॥५२॥ हे पुत्र! अब भी पुत्रहत्याका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैर मेरे मनमें उथल-पुथल मचाये रहता है। जिससे न मुझे शान्ति मिलती है और न रातको सुखसे नींद आती है ॥५३॥ हे पुत्र! उस पापी इन्द्रने मेरे निरपराध और तपस्वी पुत्रको मार डाला है। अतएव मुझे किसी तरह चैन नहीं मिलती। अब तुम्हीं मुझ दुखियाको इस संकटसे उबार सकते हो ॥५४॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! पिताके वचन सुनकर वृत्र मारे क्रोधके तलमला उठा और पितासे आज्ञा लेकर वह प्रसन्नतापूर्वक तपस्या करनेको चल पड़ा ॥ ५५ ॥ वहाँसे चलकर उसने गन्धमादन पर्वतपर पुनीत गङ्गामें स्नान किया। फिर कुशकी आसनीपर दृढ़ आसनसे बैठ गया ॥ ५६ ॥ वहाँ अन्न-जल त्यागकर वह योगाभ्यास करता हुआ अपने मनमें जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीका ध्यान करने लगा ॥ ५७ ॥ उसको तप करते देखकर इन्द्र घबड़ा गये और उसमें विघ्न डालनेके लिए उन्होंने गन्धर्वोंको भेजा ॥ ५८ ॥ उनके पीछे यक्ष, नाग, सर्प, किन्नर, विद्याधर, अप्सरा तथा अनेक देवदूतोंकी टोलियाँ भेजीं ॥ ५९ ॥

तापसो मे हतः पुत्रो निरागाः पाप्मना यतः ॥ न विंदामि सुखं वृत्र त्वं मामुद्धर दुःखितम् ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं वृत्रः क्रोधयुतस्तदा ॥ आज्ञामादाय च पितुर्जगाम तपसे मुदा ॥ ५५ ॥ गंधमादनमासाद्य पुण्यां देवधुनीं शुभाम् ॥ स्नात्वा कुशासनं कृत्वा संस्थितश्च स्थिरासनः ॥ ५६ ॥ त्यक्त्वाऽन्नं वारिपानं च योगाभ्यासपरायणः ॥ ध्यायन्विश्वसृजं चित्ते सोपविष्टः स्थिरासने ॥ ५७ ॥ मघवा तं तपस्यंतं ज्ञात्वा चिंतातुरो ह्यभूत् ॥ गंधर्वान्प्रेषयामास विघ्नार्थं पाकशासनः ॥ ५८ ॥ यक्षांश्च पन्नगान्सर्पान्किन्नरानमितौजसः ॥ विद्याधरानप्सरसो देवदूतान-नेकशः ॥ ५९ ॥ उपायास्तैः कृताः सम्यक्तपोविघ्नाय मायिभिः ॥ न चचाल ततो ध्यानात्त्वाष्ट्रः परमतापसः ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ निर्गतास्ते परावृत्तास्तपोविघ्नकराः सुराः ॥ निराशाः कार्यसंसिद्ध्यै तं दृष्ट्वा दृढचेतसम् ॥ १ ॥ जाते वर्षशते पूर्णे ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ तत्राजगाम तरसा हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ २ ॥ आगत्य तमुवाचेदं त्वष्टृपुत्र सुखी भव ॥ त्यक्त्वा ध्यानं वरं ब्रूहि ददामि तव वांछितम् ॥ ३ ॥ तपसा तेऽद्य तुष्टोऽस्मि त्वां दृष्ट्वा चातिकर्शितम् ॥ वरं वरय भद्रं ते मनोऽभिलषितं तव ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ वृत्र-

वहाँ जाकर उन मायावियोंने उसकी तपस्यामें विघ्न डालनेके बहुतेरे उपाय किये। किन्तु परम तपस्वी वृत्र ध्यानसे तनिक भी विचलित नहीं हुआ ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(वृत्रको ब्रह्माजीसे वरप्राप्ति और देवताओंको पराजित करके उसका स्वर्गराज्यपर शासन) व्यासजी बोले—हे महाराज! वृत्रको दृढ़प्रतिज्ञ देखकर विघ्न डालनेके लिए गये हुए देवता अपने कार्यमें असफल होनेकी आशंकासे लौट गये ॥ १ ॥ इस प्रकार वृत्रको तप करते-करते जब सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब लोकपितामह तथा चतुर्मुख ब्रह्मा हंसपर सवार होकर उसके पास आये ॥ २ ॥ आते ही उन्होंने कहा—हे त्वष्टाके पुत्र! तुम सुखी होओ। ध्यान त्यागकर बोलो। मैं तुम्हें अभिलषित वर प्रदान करूँगा ॥ ३ ॥ तुम्हें इतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुर्बल देखकर मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हो गया हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपना इच्छित वरदान माँगो ॥ ४॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! अपने समक्ष खड़े समस्त संसारके एकमात्र रचयिता ब्रह्माजीकी अतिशय स्पष्ट तथा अमृतरससे सराबोर वाणी सुनकर वृत्रने ध्यान भंग कर दिया और उठकर खड़ा हो गया। मारे हर्षके उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी ॥५॥ बड़े प्रेमपूर्वक उसने उनके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम किया। तदनन्तर अपनी तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न तथा उत्तम वरदान देनेमें समर्थ ब्रह्माजीसे हाथ जोड़कर प्रेमके कारण गद्गद वाणीमें वृत्र बोला—॥ ६ ॥ हे नाथ! आपका दुर्लभ दर्शन पाकर ही मैंने सभी देवताओंका पद प्राप्त कर लिया। हे प्रभो! आप तो सबके मनकी बात जानते हैं। फिर भी मैं अपने मनकी एक दुर्लभ अभिलाषा आपके समक्ष प्रकट कर रहा हूँ ॥ ७॥ मेरी यह इच्छा है कि मैं लोह, काष्ठ, सूखे या गीले बाँसों द्वारा निर्मित तथा अन्य किसी शस्त्रसे मारे जानेपर न मरूँ। मेरा बल इतना बढ़ जाय कि मैं उन सबल देवताओंसे सर्वथा अजेय हो जाऊँ ८॥ व्यासजी बोले—वृत्रके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर मुसकाते हुए ब्रह्माजीने कहा—अच्छा, वत्स!

स्तदाऽतिविशदां पुरतो निशम्य वाचं सुधासमरसां जगदेककर्तुः ॥ संत्यज्य योगकलनां सहसोदतिष्ठत्संजातहर्षनयनाश्रुकलाकलापः ॥ ५ ॥ पादौ प्रणम्य शिरसा प्रणयाद्विधातुर्बद्धांजलिः पुरत एव समाससाद ॥ प्रोवाच तं सुवरदं तपसा प्रसन्नं प्रेम्णाऽतिगद्गदगिरा विनयेन नम्रः ॥ ६ ॥ प्राप्तं मया सकलदेवपदं प्रभोऽद्य यद्दर्शनं तव सुदुर्लभमाशु जातम् ॥ वाञ्छाऽस्ति नाथ मनसि प्रवणे दुरापा तां प्रब्रवीमि कमलासन वेत्सि भावम् ॥ ७ ॥ मृत्युश्च मा भवतु मे किल लोहकाष्ठशुष्कार्द्रवंशनिचयैरपरैश्च शस्त्रैः ॥ वृद्धिं प्रयातु मम वीर्यमतीव युद्धे यस्माद्भवामि सबलैरमरैरजेयः ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्थं संप्रार्थितो ब्रह्मा तमाह प्रहसन्निव ॥ उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते वांछितं सफलं सदा ॥ ९ ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण न पाषाणेन दारुणा ॥ भविष्यति च ते मृत्युरिति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ १० ॥ इति दत्त्वा वरं ब्रह्मा जगाम भुवनं परम् ॥ वृत्रस्तु तं वरं लब्ध्वा मुदितः स्वगृहं ययौ ॥ ११ ॥ शशंस पितुरग्रे तद्वरदानं महामतिः ॥ त्वष्टा तु मुदितः प्राप्तं पुत्रं प्राप्तवरं तदा ॥ १२ ॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग जहि शक्रं रिपुं मम ॥ हत्वा गच्छ त्रिशिरसो हंतारं पापसंयुतम् ॥ १३ ॥ भव त्वं त्रिदशाधीशः संप्राप्य विजयं रणे ॥ ममाधिं छिंधि विपुलं पुत्रनाशसमुद्भवाम् ॥ १४ ॥ जीवतो वाक्यकरणात्क्षयाहे भूरिभोजनात् ॥ गयायां पिंडदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥ १५ ॥ तस्मात्पुत्र ममात्यर्थं दुःखं नाशितुम-

तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम उठो और अपने घर जाओ। तुम्हारी सभी इच्छायें पूर्ण हो जायँगी ॥ ९ ॥ किसी सूखी या गीली सामग्रीसे निर्मित अथवा लकड़ी तथा पत्थरसे बने शस्त्र द्वारा तुम्हारी मृत्यु न हो सकेगी। यह मैं सच कह रहा हूँ ॥ १० ॥ ऐसा वरदान देकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और वृत्र परम प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट गया ॥ ११ ॥ महामति वृत्रने घर जाकर अपने पिताको वरप्राप्तिका सब वृत्तान्त कह सुनाया। त्वष्टाने भी अपने पुत्रके वरदान पानेकी बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की ॥ १२ ॥ उन्होंने कहा—हे महाभाग! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम जाकर मेरे पुत्र त्रिशिरा मुनिके हत्यारे और मेरे शत्रु पापी इन्द्रको मार आओ ॥१३॥ ऐसा करनेसे रणमें विजय प्राप्त करके तुम देवताओंके राजा बन जाओगे। इस प्रकार पुत्रहत्यासे जायमान मेरी मानसिक पीड़ा दूर कर दोगे ॥ १४ ॥ जीवित पिताकी आज्ञा मानने, मर जानेपर गयाश्राद्ध करने तथा क्षयाहके दिन भरपूर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भोजन करानेसे ही पुत्रकी पुत्रता सार्थक होती है ॥ १५ ॥ अतएव हे पुत्र ! तुम मेरी आज्ञाका पालन करके मेरा बहुत बड़ा दुःख दूर कर सकते हो । त्रिशिरा मेरे चित्तसे किसी तरह दूर नहीं हो रहा है ॥१६॥ वह बड़ा सुशील, सत्यवादी, तपस्वी और वैदिक विद्वानोंमें अग्रणी था । बिना किसी अपराधके ही पापी इन्द्रने उसे मार डाला ॥१७॥ व्यासजी बोले—अपने पिता त्वष्टाके वचन सुनकर परम दुर्जय वृत्र रथपर सवार होकर घरसे निकल पड़ा ॥१८॥ मदमत्त वृत्रने रणदुंदुभी तथा दूरतक जिसकी ध्वनि जाती थी, ऐसा शंख बजाकर रणयात्रा आरम्भ की ॥ १९ ॥ चलते समय उस राजनीतिज्ञने अपने सैनिकोंके बीच भाषण करते हुए कहा कि मैं इन्द्रको मारकर अकण्टक देवराज्यपर अधिकार कर लूँगा ॥ २० ॥ ऐसा कहकर वह अपनी विशाल सेनाके साथ चल पड़ा । चलते समय मार्गमें सैनिकोंका इतना कोलाहल हुआ कि इन्द्रकी राजधानी अमरावतीपुरी भयसे दहल उठी ॥ २१ ॥ हे राजा जनमेजय ! वृत्रकी चढ़ाईका समाचार पाकर भयभीत इन्द्रने घबड़ाकर अपनी सेना तैयार करनेका आदेश दिया ॥ २२ ॥ शत्रुका दमन करनेमें निपुण इन्द्रने सब लोकपालोंको बुलवाकर जब सैनिक

र्हसि ॥ त्रिशिरा मम चित्तात्तु नापसर्पति कर्हिचित् ॥१६॥ सुशीलः सत्यवादी च तापसो वेदवित्तमः ॥ अपराधं विना तेन निहतः पापबुद्धिना ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा वृत्रः परमदुर्जयः ॥ रथमारुह्य तरसा निर्जगाम पितुर्गृहात् ॥ १८ ॥ रणदुन्दुभिनिर्घोषं शंख-नादं महाबलम् ॥ कारयित्वा प्रयाणं स चकार मदगर्वितः ॥ १९ ॥ निर्ययौ नयसंयुक्तः सेवकानिति संवदन् ॥ हत्वा शक्रं ग्रहीष्यामि सुरराज्यम-कटकम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा निर्जगामाशु स्वसैन्यपरिवारितः ॥ महता सैन्यनादेन भीषयन्नमरावतीम् ॥ २१ ॥ तमागच्छंतमाज्ञाय तुराषाडपि सत्वरः ॥ सेनोद्योगं भयत्रस्तः कारयामास भारत ॥२२॥ सर्वानाहूय तरसा लोकपालानरिन्दमः ॥ युद्धार्थं प्रेरयन्सर्वान्व्यरोचत महाद्युतिः ॥ २३ ॥ गृध्रव्यूहं ततो कृत्वा संस्थितः पाकशासनः ॥ तत्राजगाम वेगात्तु वृत्रः परबलार्दनः ॥ २४ ॥ देवदानवयोस्तावत्संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ॥ वृत्रवा-सवयोः संख्ये मनसा विजयैषिणोः ॥ २५ ॥ एवं परस्परं युद्धे संदीप्ते भयदे भृशम् ॥ आकूतं देवताः प्रापुर्दैत्याश्च परमां मुदम् ॥ २६ ॥ तोमरै-र्भिन्दिपालैश्च खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ जघ्नुः परस्परं देवदैत्याः स्वस्ववरायुधैः ॥ २७ ॥ एवं युद्धे वर्तमाने दारुणे लोमहर्षणे ॥ शक्रं जग्राह सहसा वृत्रः क्रोधसमन्वितः ॥ २८ ॥ अपावृत्य मुखे क्षिप्त्वा स्थितो वृत्रः शतक्रतुम् ॥ मुदितोऽभून्महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २९ ॥ शक्रे ग्रस्तेऽथ

तैयारीका आदेश दे दिया, उस समय वे बड़े ही दीप्तिमान् दीख रहे थे ॥ २३ ॥ इस प्रकार देवसेना एकत्र करके इन्द्रने गृध्रव्यूहकी रचना की और रणभूमिमें डट गये । उसी समय बड़े वेगसे शत्रुकी सेना ध्वस्त करनेमें समर्थ वृत्र भी वहाँ पहुँच गया ॥ २४ ॥ सामना होते ही देवताओं और दानवोंमें भीषण युद्ध होने लगा । क्योंकि इन्द्र और वृत्र दोनोंको अपनी-अपनी विजयमें पूर्ण विश्वास था ॥ २५ ॥ धीरे-धीरे जब युद्ध भयावह स्थितिमें जाकर पहुँच गया, तब देवता दहलने लगे । किन्तु दानवसैनिक प्रसन्न थे ॥२६॥ देवता तथा दैत्य उभयपक्षके सैनिक अपने तोमर (गँड़ासा), भिन्दिपाल (ढेलवाँस), खड्ग (तलवार), पट्टिश (पटा-बनेठी) आदि उच्चकोटिके शस्त्रास्त्रोंसे परस्पर एक दूसरेपर निर्मम प्रहार करने लगे ॥ २७ ॥ अब वह युद्ध इतना भीषण हो उठा कि देखनेवालोंके रोयें खड़े हो गये । तभी क्रुद्ध वृत्रासुरने अचानक इन्द्रको पकड़ लिया ॥२८॥ तत्पश्चात् उनके कपड़े-लत्ते उतरवाकर वृत्रासुरने उन्हें अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुखमें रख लिया। उस समय इन्द्रके पूर्ववैरका स्मरण करके वृत्रको बड़ी प्रसन्नता हुई॥२९॥ देवराज इन्द्रको वृत्रके मुखमें समा गया देखकर देवताओंको बहुत दुःख हुआ और वे 'हाय इन्द्र-हाय इन्द्र !' कहकर चिल्लाने लगे ॥ ३० ॥ देवताओंको जब यह विश्वास हो गया कि इन्द्रको नंगा करके वृत्रासुरने अपने मुखमें रख लिया है। तब बहुत आर्त होकर वे देवगुरु बृहस्पतिके पास गये और कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ ! देवसेनासे सुरक्षित इन्द्रको वृत्रासुरने मुखमें रख लिया है। अब हम क्या करें ? आप ही एकमात्र हमारे गुरु हैं॥३१॥३२॥ हे देवगुरो ! इन्द्रके बिना हम लोग कुछ नहीं कर सकते। क्योंकि हमारा पराक्रम नष्ट हो गया है। अतएव उन्हें छुड़ानेके लिए आप तत्काल कोई अभिचार कर्म (तान्त्रिक कृत्य) आरम्भ कर दें ॥ ३३ ॥ बृहस्पति बोले—हे देवताओ ! क्या किया जाय ? इन्द्रको वृत्रासुरने मुखमें रख लिया है। किन्तु यह निश्चित है कि इन्द्र वहाँ भी अभी जीवित हैं ॥ ३४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! इन्द्रकी यह दुर्गति देखकर चिन्तित देवताओंने भलीभाँति विचार करके उनकी मुक्तिके लिए एक युक्ति सोच ली॥३५॥ तदनुसार उन्होंने वृत्रके शरीरमें शत्रुका विनाश करनेमें

वृत्रेण संभ्रांता निर्जरास्तदा ॥ चक्रुशुः परमार्तास्ते हा शक्रेति मुहुर्मुहुः ॥ ३० ॥ अपावृतं मुखे शक्रं ज्ञात्वा सर्वे दिवौकसः ॥ बृहस्पतिं प्रणम्योचुर्दीना व्यथितचेतसः ॥ ३१ ॥ किं कर्तव्यं द्विजश्रेष्ठ त्वमस्माकं गुरुः परः ॥ शक्रो ग्रस्तस्तु वृत्रेण रक्षितो देवतांतरैः ॥ ३२ ॥ बिना शक्रेण किं कुर्मः सर्वे हीनपराक्रमाः ॥ अभिचारं कुरु विभो सत्वरः शक्रमुक्तये ॥३३॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ किं कर्तव्यं सुराः क्षिप्तो मुखमध्येऽस्ति वासवः ॥ वृत्रेणोत्सादितो जीवन्नस्ति कोष्ठांतरे रिपोः ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ देवाश्चिंतातुराः सर्वे तुरासाहं तथाकृतम् ॥ दृष्ट्वा विमृश्य तरसा चक्रुर्यत्नं विमुक्तये ॥ ३५ ॥ असृजंत महासत्त्वां जृम्भिकां रिपुनाशिनीम् ॥ ततो विजृम्भमाणः स व्यावृतास्यो बभूव ह ॥ ३६ ॥ विजृम्भाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादवापतत् ॥ स्वान्यंगान्यपि संक्षिप्य निष्क्रांतो बलसूदनः ॥ ३७ ॥ ततः प्रभृति लोकेषु जृम्भिका प्राणिसंस्थिता ॥ जहृषुश्च सुराः सर्वे शक्रं दृष्ट्वा विनिर्गतम् ॥ ३८ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तयोर्लोकभयप्रदम् ॥ वर्षाणामयुतं यावद्दारुणं लोमहर्षणम् ॥ ३९ ॥ एकतश्च सुराः सर्वे युद्धाय समुपस्थिताः ॥ एकतो बलवांस्त्वाष्ट्रः संग्रामे समवर्तत ॥ ४० ॥ यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो वरमदावृतः ॥ पराजितस्तदा शक्रस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥ ४१ ॥ विव्यथे मघवा युद्धे ततः प्राप्य पराजयम् ॥ विषादमगमन्देवा दृष्ट्वा शक्रं पराजितम् ॥ ४२ ॥ जग्मुस्त्यक्त्वा रणं सर्वे देवा

समर्थ और असाधारण शक्तिसम्पन्न जँभाई उत्पन्न की। जँभाई आते ही वृत्रका मुख खुल गया॥३६॥ इस प्रकार मुख खुलते ही इन्द्र अपने अंगोंको संकुचित करके उसके मुखसे बाहर निकल आये॥३७॥ इन्द्रको बाहर देखकर देवताओंको अपार हर्ष हुआ। उसी समयसे संसारके प्राणिमात्रके शरीरमें जँभाई विद्यमान रहने लगी ॥ ३८ ॥ तदनन्तर इन्द्र और वृत्रासुरका जो दारुण तथा रोमांचक युद्ध आरम्भ हुआ, वह पूरे दस हजार वर्षतक चलता रहा। वह युद्ध देखकर सब लोग काँप उठे ॥ ३९ ॥ एक ओर सब देवता डटे थे और दूसरी ओर बलवान् वृत्रासुर रणभूमिमें जमा हुआ था॥४०॥ उस संग्राममें वरदानके मदसे मत्त वृत्रासुरका बढ़ाव जब प्रबल पड़ गया, तब उसके तेजके समक्ष इन्द्र नहीं टिक सके और उनकी पराजय हो गयी ॥ ४१ ॥ इस पराजयसे इन्द्रको बहुत कष्ट हुआ। इन्द्रकी पराजय देखकर देवता भी बहुत दुःखी हुए ॥ ४२ ॥ अब इन्द्र आदि सभी देवता रणभूमि त्यागकर भाग गये और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वृत्रने द्रुतगतिसे आगे बढ़कर देवराज्यपर अधिकार कर लिया ॥४३॥ अब वह देवताओंके सभी उद्यानोंका बलपूर्वक उपभोग करने लगा। इन्द्रके ऐरावतको भी उसने अपने कब्जेमें कर लिया ॥ ४४ ॥ हे महाराज जनमेजय! उसने सभी विमानों और इन्द्रके सर्वश्रेष्ठ घोड़े उच्चैःश्रवापर भी अधिकार कर लिया ॥४५॥ त्वष्टाके पुत्र वृत्रने कामधेनु, पारिजात, अप्सराओंके समूह आदि जितने भी रत्न थे, उन सबको हस्तगत कर लिया ॥४६॥ इस प्रकार राज्य छिन जानेपर सब देवता भागकर पर्वतकी कन्दराओंमें जा छिपे। क्योंकि अब उनका घर तथा यज्ञ-भाग दोनों शत्रुके कब्जेमें चले गये थे ॥ ४७ ॥ देवराज्यपर अधिकार हो जानेसे वृत्रासुरका घमण्ड और भी बढ़ गया। तदनन्तर त्वष्टा (विश्वकर्मा) बड़े आनन्दपूर्वक अपने पुत्रके साथ देवराज्यमें विहार करने लगे ॥ ४८ ॥ हे राजन्! अब देवता मुनिमण्डलीमें जा-जाकर अपने कल्याणार्थ विचार-विमर्श करने लगे। किन्तु बारम्बार विचार करनेपर भी दैत्योंके डरसे वे यह नहीं सोच पाते थे कि अब क्या करना चाहिए ॥ ४९ ॥ अन्तमें इन्द्र आदि सब देवता कैलास पर्वतपर गये। वहाँ शंकरजीको प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए वे कहने लगे—॥ ५० ॥

इन्द्रपुरोगमाः ॥ गृहीतं देवसदनं वृत्रेणागत्य रंहसा ॥ ४३ ॥ देवोद्यानानि सर्वाणि भुंक्तेऽसौ दानवो बलात् ॥ ऐरावतोऽपि दैत्येन गृहीतोऽसौ गजोत्तमः ॥ ४४ ॥ विमानानि च सर्वाणि गृहीतानि विशांपते ॥ उच्चैःश्रवा हयवरो जातस्तस्य वशे तदा ॥ ४५ ॥ कामधेनुः पारिजातो गणश्चाप्सरसां तथा ॥ गृहीतं रत्नमात्रं तु तेन त्वष्टृसुतेन ह ॥ ४६ ॥ स्थानभ्रष्टाः सुराः सर्वे गिरिदुर्गेषु संस्थिताः ॥ दुःखमापुः परिभ्रष्टा यज्ञभागात्सुरालयात् ॥ ४७ ॥ वृत्रः सुरपदं प्राप्य बभूव मदगर्वितः ॥ त्वष्टाऽतीव सुखं प्राप्य मुमोद सुतसंयुतः ॥ ४८ ॥ अमंत्रयन्हितं देवा मुनिभिः सह भारत ॥ किं कर्तव्यमिति प्राप्ते विचिन्त्य भयमोहिताः ॥ ४९ ॥ जग्मुः कैलासमचलं सुराः शक्रसमन्विताः ॥ महादेवं प्रणम्योचुः प्रह्वाः प्राञ्जलयो भृशम् ॥ ५० ॥ देवदेव महादेव कृपासिन्धो महेश्वर ॥ रक्षास्मान्भयभीतांस्तु वृत्रेणातिपराजितान् ॥ ५१ ॥ गृहीतं देवसदनं तेन देवबलीयसा ॥ कि कर्तव्यमतः शंभो ब्रूहि सत्यं शिवाय नः ॥ ५२ ॥ किं कुर्मः क्व च गच्छामः स्थानभ्रष्टा महेश्वर ॥ दुःखस्य नाधिगच्छामि विनाशोपायमीश्वर ॥ ५३ ॥ साहाय्यं कुरु भूतेश व्यथिताः स्म कृपानिधे ॥ वृत्रं जहि मदोत्सिक्तं वरदानबलाद्विभो ॥ ५४ ॥ शिव उवाच ॥ ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा वयं सर्वे हरेः क्षयम् ॥ गत्वा समेत्य तं विष्णुं चिंतयामो वधोद्यमम् ॥ ५५ ॥ स शक्तश्च छलज्ञश्च बलवान्बुद्धिमत्तरः ॥ शरण्यश्च

हे देवदेव! हे महादेव! हे कृपाके समुद्र! हे महेश्वर! वृत्रासुरने हमें अत्यन्त पराजित कर दिया है। अतएव हम बहुत ही भयभीत हैं। आप हमारी रक्षा करें ॥ ५१ ॥ हे देव! उस महाबली वृत्रने हमारा देवराज्य छीन लिया है। अतएव हे शम्भो! अब हमें क्या करना चाहिए? हे शिव! हमारे कल्याणार्थ कोई सही मार्ग बताइए ॥ ५२ ॥ हे महेश्वर! स्थानभ्रष्ट होकर हम लोग क्या करें? कहाँ जायँ? हे ईश्वर! बहुत कुछ विचार करनेपर भी हमें इस दुःखको दूर करनेका कोई उपाय नहीं सूझता ॥ ५३ ॥ हे समस्त प्राणियोंके प्रभु! आप हमारी सहायता करें। हे कृपानिधान! हम सब बहुत कष्टमें हैं। हे विभो! वरप्राप्तिके अभिमानसे मदमत्त वृत्रका आप ही वध करिए ॥ ५४ ॥ शिवजी बोले—ब्रह्माजीको अग्रणी बनाकर हम लोग विष्णु भगवानके पास चलें। वहाँ विष्णुसे मिलकर वृत्रवधके विषयमें मंत्रणा की जाय ॥ ५५ ॥ क्योंकि विष्णु सशक्त, कपटनीतिके विज्ञ, बलवान्, सबसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधिक बुद्धिमान् , शरणागतपालक और दयाके समुद्र हैं ॥ ५६ ॥ उन देवदेवेश विष्णु भगवानकी सहायता प्राप्त किये बिना हमारा प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा । अतएव अपने सब कार्य
पूरा करनेके लिए हमें उनके पास अवश्य चलना चाहिए ॥५७॥ व्यासजी बोले–ऐसा विचार करके ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि सब देवता भक्तवत्सल तथा शरणागतप्रतिपालक विष्णु
भगवान्के पास गये ॥ ५८ ॥ वैकुण्ठ धाममें पहुँचकर देवताओंने उन परमेश्वर तथा जगद्गुरु विष्णुभगवानकी वेदोक्त पुरुषसूक्तके मंत्रोंसे स्तुति की ॥ ५९ ॥ उनकी करुण स्तुति सुनकर
जगत्के नाथ कमलापति भगवान विष्णु उनके सम्मुख उपस्थित हो गये । सब देवताओंका सम्मान करके उन्होंने कहा–॥ ६० ॥ हे लोकपालगण ! आप लोग ब्रह्मा तथा शिवजीके साथ
यहाँ किस लिए आये हैं ? हे सुरसत्तम ! आप लोग अपने आगमनका कारण बताइए ॥६१॥ व्यासजी बोले-भगवान् विष्णुका यह प्रश्न सुनकर भी वे सब देवता कुछ नहीं बोल पाये और
चिन्तातुर भावसे हाथ जोड़े खड़े रहे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दयाब्धिश्च वासुदेवो जनार्दनः ॥५६॥ विना तं देवदेवेशं नार्थसिद्धिर्भविष्यति ॥ तस्मात्तत्र च गंतव्यं सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ ५७॥ व्यास उवाच ॥
इति संचिंत्य ते सर्वे ब्रह्मा शक्रः सशंकरः ॥ जग्मुर्विष्णोः क्षयं देवाः शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥ ५८ ॥ गत्वा विष्णुपदं देवास्तुष्टुवु· परमेश्वरम् ॥
हरिं पुरुषसूक्तेन वेदोक्तेन जगद्गुरुम् ॥ ५९ ॥ प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्नाथस्तेषां स कमलापतिः ॥ सम्मान्य च सुरान्सर्वानित्युवाच पुरःस्थितः ॥ ६० ॥
किमागताः स्म लोकेशा हरब्रह्मसमन्विताः ॥ कारणं कथयध्वं वः सर्वेषां सुरसत्तमाः ॥ ६१ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नोचुर्देवा
रमापतिम् ॥ चिन्ताविष्टाः स्थिताः प्रायः सर्वे प्रांजलयस्तदा ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
॥ व्यास उवाच ॥ तथा चिन्तातुरान्वीक्ष्य सर्वान्सर्वार्थतत्त्ववित् ॥ प्राह प्रेमभरोद्भ्रांतान्माधवो मेदिनीपते ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच ॥ किं मौन-
माश्रिता यूयं ब्रुवंतु कारणं सुराः ॥ सदसद्वाऽपि तच्छ्रुत्वा यतिष्ये तन्निवारणे ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ किमज्ञातं तव विभो त्रिषु लोकेषु वर्तते ॥
सर्वं वेद भवान्कार्यं किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥ ३ ॥ त्वया पूर्वं बलिर्बद्धः शक्रो देवाधिपः कृतः ॥ वामनं वपुरास्थाय क्रांतं त्रिभुवनं पदैः ॥ ४ ॥
अमृतं त्वाहृतं विष्णो दैत्याश्च विनिपातिताः ॥ त्वं प्रभुः सर्वदेवानां सर्वापद्विनिवारणे ॥ ५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ न भेतव्यं सुरवरा वेद्म्युपायं सुसंम-

(भगवान विष्णुका वृत्रनाशके लिए उपाय बताना और देवताओंको देवीसे वरप्राप्ति) व्यासजी बोले–हे महाराज जनमेजय ! सभी मूल तत्त्वोंके अभिज्ञ भगवान विष्णु देवताओंको
चिंतासे विकल और प्रेमसे अत्यन्त अधीर देखकर बोले ॥ १ ॥ विष्णुने कहा—हे देवताओ ! आप लोग मौन क्यों हैं ? आपके इस महान् क्लेशका जो भी कारण हो, उसे बताइए
तो उसके निवारणका कोई उपाय करूँ ॥ २ ॥ देवता बोले—हे विभो ! तीनों लोकमें आपसे कोई बात छिपी नहीं है । आप सब कुछ जानते हैं । तब हमसे बार-बार क्यों पूछते हैं ?
पूर्वकालमें आपने वामन बनकर अपने पैरोंसे तीनों लोक नाप लिया था और राजा बलिको बाँधकर इन्द्रको पुनः देवराज बनाया था ॥३॥४॥ हे विष्णो ! आपने ही अमृत छीनकर दैत्योंका
पतन किया था । आप सब देवताओंको समस्त विपत्तियाँ दूर करनेमें समर्थ हैं ॥५॥ विष्णु भगवान बोले–हे देवगण ! आप लोग भय त्याग दें । मैं वृत्रासुरके विनाशका सुसम्मत उपाय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जानता हूँ। उसे मैं बताऊँगा और सुनकर आप प्रसन्न होंगे ॥ ६ ॥ बुद्धि, बल, धन तथा छल-कपट जिस किसी उपायसे आपका कल्याण हो सकेगा, वह मुझे करना ही होगा ॥७॥ राजनीतिके मर्मज्ञ विद्वानोंने मित्रों और विशेष करके शत्रुओंके प्रति प्रयोग करनेके लिए साम, दाम, दण्ड और भेद, ये ही चार नीतियाँ बतायी हैं ॥ ८ ॥ वृत्रने कठोर तपस्या द्वारा आराधना करके ब्रह्माजीसे वर प्राप्त कर लिया था। उसी वरदानके प्रभावसे वह इस समय दुर्जय हो उठा है ॥९॥ पहले तो त्वष्टाने ही उसे उत्पन्न करके सब प्राणियों द्वारा अजेय बना दिया था। तत्पश्चात् अपनी सैनिकशक्ति बढ़ाकर वह और भी प्रबल हो गया ॥१०॥ हे देवताओ! सामनीतिका उपयोग करके विश्वास उत्पन्न करनेके बाद ही कूटनीति सफल होगी। अतएव सर्वप्रथम उसे प्रलोभन द्वारा अपने वशमें करना होगा। उसके बाद अवसर देखकर उसे मार डाला जायगा ॥११॥ इस योजनाके अनुसार सब गन्धर्व उस स्थानपर जायँ, जहाँ वह महाबलवान् वृत्र रहता है। वहाँ पहुँचकर वे सामनीतिका प्रयोग करके उसे अपने वशमें करें ॥ १२ ॥ वे पहले उनसे मिलाकर उसकी बात मानते हुए सन्धि कर लें और उसके मनमें विश्वास उत्पन्न

तम् ॥ तद्ब्रवीमि प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं भविष्यति ॥ ६ ॥ अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमात्मना ॥ युद्धया बलेन चार्थेन येन केन बलेन वा ॥७॥
उपायाः खलु चत्वारः कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ सामादयः सुहृत्स्वेव दुर्हृदेषु विशेषतः ॥ ८ ॥ ब्रह्मणाऽस्य वरो दत्तस्तपसाऽऽधितेन च ॥ दुर्ज-
यत्वं च संप्राप्तं वरदानप्रभावतः ॥ ९ ॥ अजेयः सर्वभूतानां त्वष्ट्रा समुपपादितः ॥ ततो बलेन वृद्धिं स प्राप्तः परपुरंजयः ॥ १० ॥
दुःसाध्योऽसौ सुराः शत्रुर्बिना सामप्रतारणम् ॥ प्रलोभ्य वशमानेयो हन्तव्यस्तु ततः परम् ॥ ११ ॥ गच्छध्वं सर्वगन्धर्वा यत्रास्ति बलवत्तरः ॥
साम तस्य प्रयुञ्जध्वं तत एनं विजेष्यथ ॥ १२ ॥ संगम्य शपथान्कृत्वा विश्वास्य समयेन हि ॥ मित्रत्वं च समाधाय हंतव्यः प्रबलो रिपुः ॥ १३ ॥
अदृश्यः संप्रवेक्ष्यामि वज्रमस्य वरायुधम् ॥ साहाय्यं च करिष्यामि शक्रस्याहं सुरोत्तमाः ॥ १४ ॥ समयं च प्रतीक्षध्वं सर्वथैवायुषः क्षये ॥ मरणं
विबुधास्तस्य नान्यथा संभविष्यति ॥ १५ ॥ गच्छध्वमृषिभिः सार्धं गन्धर्वाः कपटावृताः ॥ इन्द्रेण सह मित्रत्वं कुरुध्वं वाक्यदानतः ॥ १६ ॥ यथा
स याति विश्वासं तथा कार्यं प्रतारणम् ॥ गुप्तोऽहं संप्रवेक्ष्यामि पविं संछादितं दृढम् ॥ १७ ॥ विश्वस्तं मघवा शत्रुं हनिष्यति न चान्यथा ॥
विश्वासस्य कृते पापं कृत्वा शक्रस्तु पृष्ठतः ॥ १८ ॥ मत्सहायोऽथ वज्रेण शातयिष्यति पापिनम् ॥ न दोषोऽत्र शठे शत्रौ शाठ्यमेव प्रकुर्वतः ॥ १९ ॥

करें। इस प्रकार मित्रता प्राप्त करके ही बलवान् शत्रुका वध किया जा सकता है ॥ १३ ॥ हे सुरसत्तमगण! मैं भी गुप्तरूपसे इन्द्रके सर्वश्रेष्ठ शस्त्र वज्रमें प्रविष्ट हो जाऊँगा और अवसर आनेपर इनकी सहायता करूँगा ॥ १४ ॥ हे देवताओ! अब आपलोग कुछ समय प्रतीक्षा करिए। जब वृत्रकी आयु क्षीण हो जायगी, तभी उसकी मृत्यु हो सकेगी ॥ १५ ॥ अतएव अब सभी गन्धर्व वेष बदल करके ऋषियोंके साथ उसके पास जायँ और वचनबद्ध होकर इन्द्रके साथ उसकी मित्रता करा दें ॥१६॥ बीच-बीचमें आपलोग ऐसा कुछ करते रहें, जिससे आपपर उसका विश्वास दृढ़ होता जाय। उसी समय मैं गुप्तरूपसे इन्द्रके सर्वश्रेष्ठ शस्त्र वज्रमें प्रविष्ट हो जाऊँगा ॥ १७ ॥ जब वृत्रासुरको पूर्ण विश्वास हो जाय, तभी इन्द्र उसका वध करें। उस समय विश्वासघातके पापको मनपर न लायें। उसे मारनेके लिए और कोई उपाय नहीं है ॥१८॥ अवसर आनेपर इन्द्र मेरी सहायतासे अपने वज्र द्वारा वृत्रका वध कर देंगे। शत्रुके प्रति इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकारकी शठता करनेमें कोई दोष नहीं है ॥ १९ ॥ वह बलवान् वीरधर्मसे नहीं मारा जा सकेगा । पूर्वकालमें मैंने भी वामनका रूप धारण करके बलिके साथ छल किया था ॥ २० ॥ एक बार मोहिनीका रूप धारण करके भी मैंने दैत्योंको छला था । अतएव आप सब लोग एक साथ भगवती शिवा देवीकी शरणमें जायँ और भावपूर्ण स्तोत्रमंत्रोंसे उनकी स्तुति करें । ऐसा करनेसे भगवती योगमाया आपकी सहायता करेंगी ॥२१॥२२॥ हम सभी उस सात्त्विकी परा प्रकृतिस्वरूपा देवीकी सदा वन्दना करते हैं, जो सिद्धियाँ प्रदान करती तथा कामनायें पूर्ण करती है । जिसे अज्ञ जीव कदापि नहीं प्राप्त कर सकते ॥२३॥ ये इन्द्र भी उन भगवतीकी आराधना करके अपने शत्रुको रणमें मार डालेंगे । वह मोहिनी महामाया उस दानवको मोहमें डाल देगी ॥ २४ ॥ भगवती महामायाके मोहित कर देनेपर वृत्रको मारनेमें सुविधा होगी । उस परा अम्बाके प्रसन्न हो जानेपर सब काम बन जायगा ॥२५॥ अन्य किसी भी उपायसे

नान्यथा बलवान्वध्यः शूरधर्मेण जायते ॥ वामनं रूपमाधाय मयाऽयं वञ्चितो बलिः ॥ २० ॥ कृत्वा च मोहिनीवेषं दैत्याः सर्वेऽपि वञ्चिताः ॥ भवन्तः सहिताः सर्वे देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ २१ ॥ गच्छध्वं शरणं भावैः स्तोत्रमंत्रैः सुरोत्तमाः ॥ साहाय्यं सा योगमाया भवतां संविधास्यति ॥२२॥ वन्दामहे सदा देवीं सात्त्विकीं प्रकृतिं पराम् ॥ सिद्धिदां कामदां कामां दुरापामकृतात्मभिः ॥ २३ ॥ इन्द्रोऽपि तां समाराध्य हनिष्यति रिपुं रणे ॥ मोहिनी सा महामाया मोहयिष्यति दानवम् ॥२४॥ मोहितो मायया वृत्रः सुखसाध्यो भविष्यति॥ प्रसन्नायां पराम्बायां सर्वं साध्यं भविष्यति ॥२५॥ नोचेन्मनोरथावाप्तिर्न कस्यापि भविष्यति ॥ अन्तर्यामिस्वरूपा सा सर्वकारणकारणा ॥ २६ ॥ तस्मात्तां विश्वजननीं प्रकृतिं परमादृताः ॥ भजध्वं सात्त्विकैर्भावैः शत्रुनाशाय सत्तमाः ॥ २७ ॥ पुरा मयाऽपि संग्रामं कृत्वा परमदारुणम् ॥ पंचवर्षसहस्राणि निहतौ मधुकैटभौ ॥ २८ ॥ स्तुता मया तदाऽत्यर्थं प्रसन्ना प्रकृतिः परा ॥ मोहितौ तौ तदा दैत्यौ छलेन च मया हतौ ॥२९॥ विप्रलब्धौ महाबाहू दानवौ मदगर्वितौ ॥ तथा कुरुध्वं प्रकृतेर्भजनं भावसंयुताः ॥३०॥ सर्वथा कार्यसिद्धिं सा करिष्यति सुरोत्तमाः ॥ एवं ते दत्तमतयो विष्णुना प्रभविष्णुना ॥३१॥ जग्मुस्ते मेरुशिखरं मन्दारद्रुममण्डितम् ॥ एकान्ते संस्थिता देवाः कृत्वा ध्यानं जपं तपः ॥ ३२ ॥ तुष्टुवुर्जगतां धात्रीं सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ भक्तकामदुघामम्बां

आप लोगोंकी कामना नहीं पूर्ण होगी । वह सबके मनकी बात जानती है और समस्त कारणोंकी कारणस्वरूपा है ॥२६॥ अतएव हे महापुरुषो ! आप लोग परम आदरपूर्वक शत्रुका विनाश करनेके लिए सात्त्विक भावसे उन विश्वजननीका भजन करिए ॥२७॥ पूर्वकालमें मैंने भी पाँच हजार वर्षतक दारुण युद्ध करके मधु-कैटभको मारा था ॥२८॥ उस समय मैंने भी जब बड़ी प्रबल श्रद्धासे स्तुति की, तब वे परा प्रकृतिस्वरूपा महामाया प्रसन्न हुई । उन्होंने उन दोनों दानवोंको मोहमें डाल दिया और मैंने कपट करके उन्हें मार डाला ॥२९॥ उन विशालबाहु तथा मदगर्वित दानवोंको धोखा देकर ही मैं मार सका था । अतएव आप सब पूर्ण भक्तिभावसे उन प्रकृतिस्वरूपा भगवतीका भजन करिए ॥३०॥ हे देवताओ ! ऐसा करनेसे वह देवी आपके सब कार्य सिद्ध कर देगी । समस्त विश्वके प्रभु भगवान विष्णुके इस प्रकार सलाह देनेपर सब देवता मंदारके वृक्षोंसे शोभित सुमेरु पर्वतपर चले गये । वहाँ एकांतमें रहते हुए वे ध्यान, जप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा तप करके विश्वजननी, सृष्टि और संहार करनेवाली, भक्तोंके लिए कामधेनु एवं समस्त संसारका क्लेश हरण करनेवाली भगवतीकी स्तुति करने लगे ॥३१–३३॥ देवता बोले–हे देवि! आप हमपर प्रसन्न हों। क्योंकि वृत्रासुरने हम देवताओंको बहुत सताकर रणमें पराजित किया है। हे दीनोंका दुःख दूर करनेवाली दुर्गे! हे परमार्थतत्त्वस्वरूपे! हम सदा आपके शरणागत हैं ॥३४॥ हे मातः! आप जगज्जननी हैं। हम इस समय शत्रुसंकटमें पड़े हुए हैं। पुत्र समझकर आप हमारी रक्षा करें। तीनों लोकमें कोई ऐसी बात नहीं है, जो आपसे छिपी हो। फिर भी हे अम्बिके! असुरों द्वारा दलित देवताओंकी आप उपेक्षा क्यों कर रही हैं? ॥३५॥ हे माता! आपने ही तीनों लोकोंकी रचना की है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपके संकल्पसे जायमान होकर आपकी ही भौंहोंके संकेतपर सृष्टि, पालन और संहारकार्य सम्पन्न करते हैं। वे स्वतंत्र कभी नहीं रहते ॥३६॥ हे देवि! जब पुत्रोंपर किसी प्रकारका संकट आ पड़ता है, तब अपराधी समझती हुई भी माता सब शक्ति लगाकर उनकी रक्षा करती है। यह रीति आपकी ही चलायी हुई है। तब हे करुणरसकी समुद्रस्वरूपा माता! अपने चरणोंकी शरणमें पड़े हुए हम निरपराध

संसारक्लेशनाशिनीम् ॥ ३३ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवि प्रसीद परिपाहि सुरान्प्रतप्तान्वृत्रासुरेण समरे परिपीडितांश्च ॥ दीनार्तिनाशनपरे परमार्थतत्त्वे प्राप्तांस्त्वदंघ्रिकमलं शरणं सदैव ॥ ३४ ॥ त्वं सर्वविश्वजननी परिपालयास्मान्पुत्रानिवातिपतितान्रिपुसंकटेऽस्मिन् ॥ मातर्न तेऽस्त्यविदितं भुवनत्रयेऽपि कस्मादुपेक्षसि सुरानसुरप्रतप्तान् ॥ ३५ ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलं विहितं त्वयैव ब्रह्मा हरिः पशुपतिस्तव वासनोत्थाः ॥ कुर्वन्ति कार्यमखिलं स्ववशा न ते ते भ्रूभंगचालनवशाद्विहरन्ति कामम् ॥ ३६ ॥ माता सुतान्परिभवात्परिपाति दीनान्रीतिस्त्वयैव रचिता प्रकटा-पराधान् ॥ कस्मान्न पालयसि देवि विनापराधानस्मांस्त्वदंघ्रिशरणान्करुणारसाब्धे ॥ ३७ ॥ नूनं मदंघ्रिभजनाप्तपदाः किलैते भक्तिं विहाय विभवे सुखभोगलुब्धाः ॥ नेमे कटाक्षविषया इति चेन्न चैषा रीतिः सुते जननकर्तरि चापि दृष्टा ॥ ३८ ॥ दोषो न नोऽत्र जननि प्रतिभाति चित्ते यत्ते विहाय भजनं विभवे निमग्नाः ॥ मोहस्त्वया विरचितः प्रभवत्यसौ नस्तस्मात्स्वभावकरुणे दयसे कथं न ॥ ३९ ॥ पूर्वं त्वया जननि दैत्यपतिर्बलिष्ठो व्यापादितो महिषरूपधरः किलाजौ ॥ अस्मत्कृते सकललोकभयावहोऽसौ वृत्रं कथं न भयदं विधुनोषि मातः ॥ ४० ॥ शुम्भस्तथाऽतिबलवान्-

देवताओंकी आप रक्षा क्यों नहीं करतीं? ॥३७॥ हे जननी! यदि आप सोचती हों कि मेरे चरणोंकी आराधना करके देवता अपना राज-पाट पा जायँगे तो मेरी भक्तिसे विमुख होकर सुख भोगनेमें तन्मय हो जायँगे। तब इन्हें मेरे कृपाकटाक्षकी कोई आवश्यकता न रह जायगी। यह बात भली भाँति जाननेवाली कोई माता अपने पुत्रके प्रति ऐसी भावना रखती हुई नहीं देखी जाती ॥३८॥ हे जननी! हम जो आपका भजन त्यागकर वैभव भोगने लगते हैं, उसमें हमारा कुछ भी दोष नहीं है। क्योंकि मोहकी रचना आपने ही की है। वही मोह हमें अपने प्रभावमें फँसा लेता है। ऐसी परिस्थितिमें हे स्वाभाविक करुणामयी माता! आप हमपर दया क्यों नहीं करतीं? ॥३९॥ हे जननी! पूर्वकालमें आप हम लोगोंके उपकारार्थ महिषरूपधारी बहुत बड़े बलवान् दैत्यपति महिषासुरका वध कर चुकी हैं। वह दैत्य तीनों लोकोंके लिए भयावह हो उठा था। तब हे माता! इस समय सबके लिए भयदायक वृत्रासुरको आप क्यों नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मारतीं ? ॥४०॥ पूर्वकालमें आप जैसे शुम्भ-निशुम्भ और उनके अनुयायियोंका वध कर चुकी हैं। हे दयासे आर्द्रहृदय माता! उसी प्रकार इस समय प्रबल अत्याचारी वृत्रासुरको भी मार डालिए। हे जननी! राज्यमदसे उन्मत्त वृत्रको आप इस प्रकार मोहमें डाल दीजिए कि वह अपनी शक्तिका प्रदर्शन न कर सके ॥ ४१ ॥ हे माता! अब देवजातिकी रक्षा आपके ही हाथमें है। हमें असुरोंने बहुत सताया है और हम भयसे विह्वल हो रहे हैं। तीनों लोकमें ऐसा कोई नहीं दिखायी देता, जो देवताओंका कष्ट दूर करके अपनी शक्तिसे उनके सब क्लेशोंको नष्ट कर दे ॥ ४२ ॥ यदि वृत्रको भी अपना पुत्र समझकर दया प्रदर्शित करना चाहती हों तो भी आप उसे मार डालिए। क्योंकि वह दुराचारी बहुत बड़ा खल है और जनसाधारणको बहुत दुःख देता है। वैसे अपने इन पापोंसे ही वह पापी नरकमें जायगा। अतएव आप उसे अपने बाणोंसे मारकर पवित्र कर दीजिए। आपके ऐसा करनेसे उसका उद्धार हो जायगा ॥४३॥ प्राचीनकालमें आपने जिन दैत्योंका वध किया था, वे आज देवताओंके नन्दन वनमें विहार कर रहे हैं। हे दयामयी माता! क्या आपने हमारे वैरी होते हुए भी उन दानवोंको नरकमें जानेके

नुजो निशुम्भस्तौ भ्रातरौ तदनुगा निहता हतौ च ॥ वृत्रं तथा जहि खलं प्रबलं दयार्द्रे मत्तं विमोहय तथा न भवेद्यथाऽसौ ॥ ४१ ॥ त्वं पालयाद्य विबुधानसुरेण मातः संतापितानतितरां भयविह्वलांश्च ॥ नान्योऽस्ति कोऽपि भुवनेषु सुरार्तिहंता यः क्लेशजालमखिलं निदहेत्स्वशक्त्या ॥४२॥ वृत्रे दया तव यदि प्रथिता तथापि जह्येनमाशु जनदुःखकरं खलं च ॥ पापात्समुद्धर भवानि शरैः पुनाना नोचेत्प्रयास्यति तमो ननु दुष्टबुद्धिः ॥ ४३ ॥ ते प्रापिताः सुरवनं विबुधारयो ये हत्वा रणेऽपि विशिखैः किल पावितास्ते ॥ त्राता न किं निरयपातभयाद्दयार्द्रे यच्छत्रवोऽपि न हि किं विनिहंसि वृत्रम् ॥४४॥ जानीमहे रिपुरसौ तव सेवको न प्रायेण पीडयति नः किल पापबुद्धिः ॥ यस्तावकस्त्विह भवेदमरः[illegible]सौ किन्त्वत्पादपंकजरतान्ननु पीडयेद्वा ॥ ४५ ॥ कुर्मः कथं जननि पूजनमद्य तेऽम्ब पुष्पादिकं तव विनिर्मितमेव यस्मात् ॥ मन्त्रा वयं च सकलं परशक्तिरूपं तस्माद्भवानि चरणे प्रणताः स्म नूनम् ॥ ४६ ॥ धन्यास्त एव मनुजा हि भजंति भक्त्या पादांबुजं तव भवाब्धिजलेषु पोतम् ॥ यं योगिनोऽपि मनसा सततं स्मरंति मोक्षार्थिनो विगतरागविकारमोहाः ॥ ४७ ॥ ये याज्ञिकाः सकलवेदविदोऽपि नूनं त्वां संस्मरंति सततं किल

भयसे मुक्त नहीं किया है? यदि ऐसा है, तब आप वृत्रासुरको क्यों नहीं मारतीं? जिससे उसका भी उद्धार हो जाय ॥ ४४ ॥ हमलोग यह भली भाँति जानते हैं कि वह आपका सेवक नहीं, बल्कि वैरी है। क्योंकि वह पापभरे हृदयवाला असुर सदा हम सबको सताया करता है। निरन्तर आपके चरणोंकी भक्तिमें लीन रहनेवाले हम देवताओंको सतानेवाला प्राणी आपका भक्त कैसे हो सकता है? ॥४५॥ हे जननी! हम आपकी पूजा कैसे करें? क्योंकि हे अम्ब! पूजनकी पुष्पादि सामग्रियाँ आपकी ही बनायी हुई हैं। इनके अतिरिक्त मंत्र और हम पूजक आपकी पराशक्तिस्वरूप हैं। अतएव हे भवानी! हमलोग आपके चरणोंको केवल प्रणाम भर कर सकते हैं ॥४६॥ जो लोग भवसागरसे पार उतारनेवाले जहाजस्वरूप आपके चरणोंका भक्तिपूर्वक भजन करते हैं, वे ही धन्य हैं। क्योंकि वीतराग, कामादि विकारोंसे परे पहुँचे हुए तथा मोहसे पराङ्मुख योगीजन भी मोक्षलाभकी कामनासे आपके पावन चरणोंका अपने हृदयमें ध्यान करते हैं ॥ ४७ ॥ समस्त वेदोंके विज्ञ वे यज्ञकर्ता भी धन्य हैं, जो होमके अवसरपर आहुति देते समय देवताओंको तृप्ति प्रदान करनेवाली स्वाहा तथा पितरोंको तृप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेवाली स्वधाका उच्चारण करके आपका स्मरण करते हैं। हे माता! आप प्रतिभा हैं, प्रभा हैं, शान्ति हैं और आपही मनुष्यकी विमल बुद्धि हैं। तीनों लोकमें आप इन सभी वैभवोंको अपना भजन करनेवाले भक्तोंको सदा उदारतापूर्वक वितरित करती रहती हैं ॥४८॥४९॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार तन्मयतापूर्वक देवताओंके स्तुति करनेपर सुन्दर रूपधारिणी और सब प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित कोमलाङ्गी भगवती प्रत्यक्ष प्रकट हो गयीं ॥ ५० ॥ उनकी भुजाओंमें पाश और अंकुश सुशोभित थे। उनकी तीसरी भुजा वरदानमुद्रामें और चौथी भुजा अभयदायिनी मुद्रामें थी। उनकी कमरमें बँधी करधनीके घुँघुरू बज रहे थे ॥ ५१ ॥ उनके हाथमें जगमगाते कंगन और पाँवमें पायजेब थे। जो कोयलके समान मीठे स्वरमें रुनझुनकी ध्वनि कर रहे थे। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्र तथा रत्नजटित मुकुट अपूर्व शोभा दे रहा था ॥५२॥ उनके कमल जैसे मुखारविन्दपर मन्द-मन्द मुसकराहट विराज रही थी। उनके तीन नेत्र थे। पारिजात कुसुमके डंटल जैसी लाल उनके शरीरकी कान्ति थी ॥५३॥ वे लाल वस्त्र पहने थीं और लाल ही चन्दन उनके शरीरमें लगा हुआ था। उनका मुख प्रसन्न था और वे करुणा-

होमकाले ॥ स्वाहां तु तृप्तिजननीमसुरेश्वराणां भूयः स्वधां पितृगणस्य च तृप्तिहेतुम् ॥ ४८ ॥ मेधाऽसि कांतिरसि शांतिरपि प्रसिद्धा बुद्धिस्त्वमेव विशदार्थकरी नराणाम् ॥ सर्वं त्वमेव विभवं भुवनत्रयेऽस्मिन्कृत्वा ददासि भजतां कृपया सदैव ॥ ४९ ॥ व्यास उवाच॥ एवं स्तुता सुरैर्देवी प्रत्यक्षा साऽभवत्तदा ॥ चारुरूपधरा तन्वी सर्वाभरणभूषिता ॥५०॥ पाशांकुशवराभीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥ रणत्किंकिणिकाजालरशनाबद्धसत्कटिः ॥ ५१ ॥ कलकंठीरवा कांता क्वणत्कंकणनूपुरा ॥ चन्द्रखंडसमाबद्धरत्नमौलिविराजिता ॥ ५२ ॥ मंदस्मिताऽरविन्दास्या नेत्रत्रयविभूषिता ॥ पारिजातप्रसूनाच्छनीलवर्णसमप्रभा ॥ ५३ ॥ रक्तांबरपरीधाना रक्तचंदनचर्चिता ॥ प्रसादसुमुखी देवी करुणारससागरा ॥ ५४ ॥ सर्वशृंगारवेषाढ्या सर्वद्वैतारणिः परा ॥ सर्वज्ञा सर्वकर्त्री च सर्वाधिष्ठानरूपिणी ॥ ५५ ॥ सर्ववेदान्तसंसिद्धा सच्चिदानंदरूपिणी ॥ प्रणेमुस्तां समालोक्य सुरा देवीं पुरःस्थिताम् ॥५६॥ तानाह प्रणतानंबा किं वः कार्यं ब्रुवन्तु माम् ॥ देवा ऊचुः ॥ मोहयैनं रिपुं वृत्रं देवानामतिदुःखदम् ॥५७॥ यथा विश्वसते देवांस्तथा कुरु विमोहितम् ॥ आयुधे च बलं देहि हतः स्याद्येन वा रिपुः ॥ ५८ ॥ व्यास उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा भगवती तत्रैवांतरधीयत ॥ स्वानि स्वानि निकेतानि जग्मुर्देवा मुदान्विताः ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे देवीमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

रसकी समुद्र थीं ॥५४॥ उनकी दिव्य देहपर शृंगार विद्यमान था। वे द्वैतभावके लिए अरणीस्वरूपा थीं। वे वरा, सर्वज्ञा, सर्वकर्त्री और साक्षात् ब्रह्मरूपिणी थीं ॥ ५५ ॥ वे सभी वेदान्तों द्वारा प्रतिपादित सच्चिदानन्दरूपिणी थीं। अपने सम्मुख प्रकट भगवतीको देखकर पूर्ण श्रद्धापूर्वक देवताओंने उन्हें प्रणाम किया ॥५६॥ देवताओंसे जगदम्बाने कहा कि आपलोग अपना काम बताइए। देवता बोले—हे अम्बे! देवताओंके लिए अत्यन्त दुःखदायक वृत्रको आप मोहमें डाल दें ॥५७॥ आप उसे इतना मोहग्रस्त कर दें कि जिससे वह हम देवताओंपर विश्वास करने लगे और हमारे शस्त्रास्त्रोंमें इतनी शक्ति भर दीजिए कि जिससे हम उनके द्वारा उसका विनाश कर सकें ॥५८॥ व्यासजी बोले—'तथास्तु' अर्थात् आपकी इच्छापूर्ण हो, यह कहकर भगवती वहाँ ही अन्तर्धान हो गयीं और देवता मुदित मनसे अपने-अपने घरोंको चले गये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(इन्द्रका वृत्रासुरके हृदयमें विश्वास उत्पन्न करके उसका वध करना) व्यासजी बोले–हे महाराज! इस प्रकार जगदम्बासे वर प्राप्त करके सभी देवता और तपस्वी ऋषिगण (परस्पर मन्त्रणा करके सब लोग एक साथ वृत्रके उत्तम आश्रमपर गये)। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि वृत्र अपने असाधारण तेजसे जगमगा रहा है ॥ १ ॥ उस समय ऐसा लग रहा था कि जैसे वह तीनों लोक भस्म कर देगा और सब देवताओंको निगल जायगा। उसके समीप जाकर ऋषियोंने देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए सामनीतिपूर्ण मधुर वाणीमें कहा। ऋषि बोले—हे वृत्र! हे महाभाग! हे सब लोकोंके लिए भयङ्कर! आप अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो गये हैं। किन्तु इन्द्रके साथ आपका जो वैर चल रहा है, वह आपके सुखमें बाधक है ॥२–४॥ उस वैरसे आप तथा इन्द्र दोनों सदा चिन्तित रहते हैं। न आप सुखकी नींद सो पाते हैं और न इन्द्र ही सुखसे सो सकते हैं। क्योंकि आप दोनोंको वैरीका भय सताया करता है। और फिर आप दोनोंको परस्पर युद्ध करते हुए भी बहुत दिन बीत गये ॥ ५ ॥ ६ ॥ आप दोनोंके संघर्षसे देवता, दानव और मानव सभी प्रजाजन पीड़ित हैं। इस संसारमें

॥ व्यास उवाच॥ एवं प्राप्तवरा देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ (जग्मुः सर्वे च संमंत्र्य वृत्रस्याश्रममुत्तमम् ॥) ददृशुस्तत्र तं वृत्रं ज्वलंतमिव तेजसा ॥ १ ॥ धक्ष्यंतमिव लोकांस्त्रीन्ग्रसंतमिव चामरान् ॥ ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रमूचुः प्रियं वचः ॥ २ ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं सामयुक्तं रसात्मकम् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वृत्र वृत्र महाभाग सर्वलोकभयंकर ॥ ३ ॥ व्याप्तं त्वयैतत्सकलं ब्रह्मांडमखिलं किल ॥ शक्रेण तव वैरं यत्तत्तु सौख्यविधातकम् ॥४॥ युवयोर्दुःखदं कामं चिंतावृद्धिकरं परम् ॥ न त्वं स्वपिषि संतुष्टो न चापि मघवा तथा ॥ ५ ॥ सुखं स्वपिति चिन्तार्तो द्वयोर्यद्वैरजं भयम् ॥ युवयोर्युध्यतोः कालो व्यतीतस्तु महानिह ॥ ६ ॥ पीड्यन्ते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानवाः ॥ संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ॥७॥ न सुखं कृतवैरस्य भवतीति विनिर्णयः ॥ संग्रामरसिकाः शूरान्प्रशंसंति न पंडिताः ॥८॥ युद्धं शृंगारचतुरा इन्द्रियार्थविघातकम् ॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥ ९ ॥ युद्धे विजयसंदेहो निश्चयं बाणताडनम् ॥ दैवाधीनमिदं विश्वं तथा जयपराजयौ ॥ १० ॥ दैवाधीनाविति ज्ञात्वा न योद्धव्यं कदाचन ॥ कालेऽथ भोजनं स्नानं शय्यायां शयनं तथा ॥ ११ ॥ परिचर्यापरा भार्या संसारे सुखसाधनम् ॥ किं

सुखको स्वीकार करके दुःखको सर्वथा त्याग देना चाहिए ॥ ७ ॥ वैर करनेवाले व्यक्तिको कदापि सुख नहीं मिलता। संग्रामरसके रसिक वीर भले ही वैरभावकी प्रशंसा करें। पंडितजन उनकी सराहना नहीं करते ॥ ८ ॥ क्योंकि विद्वान् लोग शृंगाररसके प्रेमी होते हैं। वे इंद्रियसुखमें बाधा डालनेवाले युद्धसे दूर भागते हैं। उनका तो कथन है कि फूलोंसे भी युद्ध न करना चाहिए–शस्त्रास्त्रोंसे युद्धकी तो बात ही व्यर्थ है ॥९॥ युद्धमें विजय सदा सन्दिग्ध रहती है, किन्तु बाणोंसे शरीर बिंधवाना निश्चित रहता है। जैसे समस्त विश्व सदा दैवके अधीन रहता है। उसी प्रकार जय और पराजय भी दैवके अधीन रहती है ॥ १० ॥ जब यह निश्चित है कि जय-पराजय दैवके हाथमें रहती है। तब युद्ध कदापि न करना चाहिए। बल्कि समय-पर स्नान, भोजन और शय्यापर शयन करना उचित है ॥ ११ ॥ यदि स्त्री सेवामें संलग्न रहे तो वह संसारमें सुखका सर्वश्रेष्ठ साधन होती है। भयंकर बाणवर्षाके बीच रणभूमिमें युद्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेसे कौनसा सुख प्राप्त हो सकता है ? ॥१२॥ जिसमें भयानक तलवारोंकी मार होती है, उस युद्धसे तो शत्रुको ही सुख मिलता है। कुछ लोग कहते हैं कि संग्राममें मरनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है ॥१३॥ सो यह बात केवल फुसलाने और उभाड़नेके लिए ही कही जाती है। युद्धमें अपना शरीर कटवाये, उसकी पीड़ा सहे और कौओं तथा सियारों द्वारा शरीर नोचवानेके बाद यदि स्वर्गसुख प्राप्त हो तो ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो वह सुख पाना चाहेगा ? हे वृत्र ! हमारी यही इच्छा है कि इन्द्रके साथ आपकी स्थायी मैत्री हो जाय ॥ १४ ॥ १५ ॥ ऐसा करनेसे आप तथा इन्द्र दोनों निरन्तर सुख पायेंगे। हम सब तपस्वी तथा गन्धर्वगण भी अपने-अपने आश्रमपर सुखसे रह सकेंगे ॥१६॥ आप दोनोंका वैर शान्त हो जानेपर हम सबको अपार सुख मिलेगा। हे वीर ! जब आप दोनोंमें अहर्निश युद्ध चलता है तो मुनि, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य बड़ा कष्ट पाते हैं। अतएव हमलोग सर्वसाधारणकी शान्तिके निमित्त आप

सुखं युध्यतः संख्ये बाणवृष्टिभयंकरे ॥ १२ ॥ खड्गपातातिरौद्रे च तथाऽरातिसुखप्रदे ॥ संग्रामे मरणात्स्वर्गसुखप्राप्तिरिति स्फुटम् ॥ १३ ॥ प्रलोभ-नपरं वाक्यं नोदनार्थं निरर्थकम् ॥ छित्त्वा देहं व्यथां प्राप्य शृगालकरटादिभिः ॥ १४ ॥ पश्चात्स्वर्गसुखावाप्तिं को वा वांछति मंदधीः ॥ सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा ॥ १५ ॥ अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रश्चापि निरंतरम् ॥ वयं च तापसाः सर्वे गंधर्वाश्च निजाश्रमे ॥ १६ ॥ सुखवासं गमिष्यामः शांते वैरेऽधुनैव वाम् ॥ संग्रामे युवयोर्वीर वर्तमाने दिवानिशम् ॥ १७ ॥ पीडयन्ते मुनयः सर्वे गंधर्वाः किन्नरा नराः ॥ सर्वेषां शांतिकामानां सख्यमिच्छामहे वयम् ॥ १८ ॥ मुनयस्त्वं च शक्रश्च प्राप्नुवंतु सुखं किल ॥ मध्यस्थाश्च वयं वृत्र युवयोः सख्यकारणे ॥ १९ ॥ शपथं कारयित्वाऽत्र योजयामो मिथः प्रियम् ॥ शक्रस्तु शपथान्कृत्वा यथोक्तांश्च तवाग्रतः ॥ २० ॥ चित्तं ते प्रीतिसंयुक्तं करिष्यति तु सांप्रतम् ॥ सत्याधारा धरा नूनं सत्येन च दिवाकरः ॥२१॥ तपत्ययं यथाकालं वायुः सत्येन वाप्यथ॥ उदन्वानपि मर्यादां सत्येनैव न मुंचति॥२२॥ तस्मात्स-त्येन सख्यं वां भवत्वद्य यथासुखम् ॥ एकत्र शयनं क्रीडा जलकेलिः सुखासनम्॥२३॥ युवाभ्यां सर्वथा कार्यं कर्तव्यं सख्यमेत्य च ॥ व्यास उवाच ॥ महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महामतिः ॥ २४ ॥ अवश्यं भगवंतो मे माननीयास्तपस्विनः ॥ भवंतो मुनयः क्वापि न मिथ्यावादिनो भृशम् ॥ २५ ॥

दोनोंमें मैत्री चाहते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ ऐसा होनेसे सब मुनियोंको, आपको और इन्द्रको सुख प्राप्त होगा। हे महाभाग ! आप दोनोंमें सन्धि करानेके लिए हम मध्यस्थका काम करेंगे ॥ १९ ॥ हम शपथ कराके आप दोनोंको मित्र बना देंगे। आप जैसा चाहेंगे, वैसा इन्द्र भी आपके समक्ष शपथ लेंगे ॥ २० ॥ ऐसा करके इंद्र आपके हृदयमें प्रेम भर देंगे। सत्यके सहारे पृथिवी टिकी हुई है। सत्यसे ही सूर्य नित्य तपते हैं। सत्यसे ही समयपर वायु चलती है। सत्यके ही कारण समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता ॥२१॥२२॥ अतएव सत्यके ही आधारपर आप दोनोंमें सन्धि हो जाय। जिससे आप और इन्द्र दोनों एक साथ सोयें, खेलें, जलविहार करें और सुखपूर्वक एक साथ बैठें ॥२३॥ इस प्रकार मित्रताके बंधनमें बँधकर आप दोनों अपने-अपने कर्तव्यका पालन करें। व्यासजी बोले—उन महर्षियोंके वचन सुनकर अत्यन्त बुद्धिमान् वृत्रने कहा—॥ २४ ॥ हे भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है। आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोग हमारे माननीय तपस्वी हैं। आप मुनिगण कभी झूठ नहीं बोलते ॥ २५ ॥ आप लोग सदाचारी हैं तथा शान्त जीवन वितानेके अभ्यस्त हैं। अतएव आप छल-कपटकी बात नहीं
जानते। किंतु जिसके साथ शत्रुता हो जाय, जो शठ हो, जड़ हो, कामी हो, कलंकित हो और निर्लज्ज हो, उसके साथ बुद्धिमान् लोगोंको मित्रता नहीं करनी चाहिए। सो इन्द्र बड़ा
निर्लज्ज, दुराचारी, ब्रह्महत्यारा, कामी और शठ प्राणी है ॥ २६ ॥ २७ ॥ ऐसे व्यक्तिके ऊपर कदापि विश्वास न करना चाहिए। आप लोग शान्तिके उपासक हैं। अतएव आप बकवादी
धूर्तोंके मलिन हृदयकी बात नहीं जान सकते। मुनियोंने कहा—संसारका प्रत्येक प्राणी अपने किये हुए शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल भोगता है ॥ २८ ॥ २९ ॥ जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो
जाती है, वह द्रोह करके भी क्या कभी शान्ति प्राप्त कर सकता है ? जो लोग विश्वासघात करते हैं, वे अवश्य नरकगामी होते हैं ॥ ३० ॥ विश्वासघाती प्राणियोंको विविध कष्ट भोगने
पड़ते हैं। ब्रह्महत्या करनेवाले तथा मदिरा पीनेवालेके लिए भी प्रायश्चित्तका विधान है। किन्तु विश्वासघाती और मित्रदोहीके लिए कोई भी प्रायश्चित्त नहीं कहा गया है। अतएव हे

सदाचाराः सुशांताश्च न विदुश्छलकारणम् ॥ कृतवैरे शठे स्तब्धे कामुके च गतत्विषि ॥ २६ ॥ निर्लज्जे नैव कर्तव्यं सख्यं मतिमता सदा ॥
निर्लज्जोऽयं दुराचारो ब्रह्महा लंपटः शठः ॥ २७ ॥ न विश्वासस्तु कर्तव्यः सर्वथैवेदृशे जने ॥ भवंतो निपुणाः सर्वे न द्रोहमतयः सदा ॥ २८ ॥
अनभिज्ञास्तु शांतत्वाच्चित्तानामतिवादिनाम् ॥ मुनय ऊचुः ॥ जंतुः कृतस्य भोक्ता वै शुभस्य त्वशुभस्य च ॥२९॥ द्रोहं कृत्वा कुतः शांतिमाप्नु-
यान्नष्टचेतनः ॥ विश्वासघातकर्तारो नरकं यांति निश्चयम् ॥३०॥ दुःखं च समवाप्नोति नूनं विश्वासघातकः ॥ निष्कृतिर्ब्रह्महंतॄणां सुरापानां च
निष्कृतिः ॥ ३१ ॥ विश्वासघातिनां नैव मित्रद्रोहकृतामपि ॥ समयं ब्रूहि सर्वज्ञ यथा ते चेतसि ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ तेनैव समयेनाद्य संधिः स्यादुभयोः
किल ॥ वृत्र उवाच ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा ॥ ३३ ॥ न वज्रेण महाभाग न दिवा निशि नैव च ॥ वध्यो भवेयं विप्रेंद्राः
शक्रस्य सह दैवतैः ॥ ३४ ॥ एवं मे रोचते संधिः शक्रेण सह नान्यथा ॥ व्यास उवाच ॥ ऋषयस्तं तदा प्राहुर्बाढमित्येव चादृताः ॥ ३५ ॥
समयं श्रावयामासुस्तत्रानीय सुरेश्वरम् ॥ इन्द्रोऽपि शपथांस्तत्र चकार विगतज्वरः ॥३६॥ साक्षिणं पावकं कृत्वा मुनीनां सन्निधौ किल ॥ वृत्रस्तु
वचनैस्तस्य विश्वासमगमत्तदा ॥ ३७ ॥ बभूव मित्रवच्छक्रे सहचर्यापरायणः ॥ कदाचिन्नंदने चोभौ कदाचिद्गंधमादने ॥३८॥ कदाचिदुदधेस्तीरे

सर्वज्ञ ! आप मैत्रीसन्धिके लिए अपने मनमें जो शर्त सोचे हों, उसे हमारे समक्ष रखिए ॥३१॥३२॥ उसी शर्तके अनुसार आज आप दोनोंमें सन्धि हो जाय। वृत्रने कहा—हे महाभाग! मेरी
शर्त यही है कि न किसी शुष्क पदार्थसे, न किसी गीली वस्तुसे, न काष्ठसे, न वज्रसे, न दिनमें और न रातमें इन्द्रके साथ मिलकर देवतालोग मेरा वध कर सकें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥
इसी शर्तपर मैं इन्द्रके साथ सन्धि कर सकता हूँ—अन्यथा नहीं। व्यासजी बोले—हे राजन् ! ऋषियोंने वृत्रकी शर्त आदरपूर्वक स्वीकार कर ली ॥ ३५ ॥ तदनन्तर उन लोगोंने इन्द्रको
वहाँ बुलवाया और उन्हें वृत्रासुरकी शर्त बता दी। तब इन्द्रने शपथपूर्वक वह शर्त मंजूर की। ऐसा करनेसे उनकी मानसिक चिन्ता दूर हो गयी ॥ ३६ ॥ तत्पश्चात् उन्हीं मुनियोंके समक्ष
अग्निको साक्षी बनाकर इन्द्रने सन्धिके नियमोंपर चलनेकी शपथ ली। इससे वृत्रको उनकी बातोंपर दृढ़ विश्वास हो गया ॥ ३७ ॥ उसके बाद इन्द्र और वृत्र साथ-साथ घूमने-फिरने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगे । वे कभी नंदनवनमें और कभी गन्धमादन पर्वतपर जाकर साथ-साथ विहार करते थे ॥३८॥ कभी-कभी वे दोनों मुदित मनसे समुद्रतटपर विचरते थे । इस प्रकार सन्धि हो जानेसे वृत्रको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥३९॥ लेकिन इन्द्र सदा उसे मार डालनेका ही उपाय सोचते रहते थे और सदा उसकी कमजोरी ढूँढ़ा करते थे। इसी कारण उनका मन सदा उद्विग्न रहा करता था ॥ ४० ॥ इस प्रकार सोचते-विचारते कुछ वर्ष बीत गये । इस बीच वृत्रको इन्द्रपर भलीभाँति विश्वास हो गया ॥ ४१ ॥ इस तरह सन्धिके बाद जब कुछ वर्ष व्यतीत हो गये, तब इन्द्रने मन ही मन वृत्रको मारनेका उपाय सोच लिया ॥ ४२ ॥ उधर एक दिन वृत्रके पिता त्वष्टाने अपने पुत्रको इन्द्रपर अधिक विश्वस्त देखकर कहा—हे पुत्र वृत्र ! मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ, उसे सुनो ॥ ४३ ॥ जिसके साथ पहले वैर रह चुका हो, उसके ऊपर कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए । इन्द्र तुम्हारा पुराना शत्रु है । वह अब भी औरोंके गुणोंमें दोष खोजा करता है ॥ ४४ ॥ वह सदा लोभसे उन्मत्त रहता है, सबसे द्वेष रखता है, औरोंको दुःखमें देखकर सुखी होता है, वह परस्त्रीके साथ व्यभिचार करता है और मनमें कुत्सित

मोदमानौ विचेरतुः ॥ एवं कृते च संधाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत् ॥३९॥ शक्रोऽपि वधकामस्तु तदुपायानचिंतयत् ॥ रंध्रान्वेषी समुद्विग्नस्तदासीन्मघवा भृशम् ॥ ४० ॥ एवं चिंतयतस्तस्य कालः समभिवर्तत ॥ विश्वासं परमं प्राप वृत्रः शक्रेऽतिदारुणे ॥ ४१ ॥ एवं कतिचिदब्दानि गतानि समये कृते ॥ वृत्रस्य मारणोपायान्मनसींद्रोऽप्यचिंतयत् ॥४२॥ त्वष्टैकदा सुतं प्राह विश्वस्तं पाकशासने॥ पुत्र वृत्र महाभाग शृणु मे वचनं हितम् ॥४३॥ न विश्वासस्तु कर्तव्यः कृतवैरे कथंचन ॥ मघवा कृतवैरस्ते सदाऽसूयापरः परैः ॥ ४४ ॥ लोभान्मत्तो द्वेषरतः परदुःखोत्सवान्वितः ॥ परदारलंपटः स पापबुद्धिः प्रतारकः ॥ ४५ ॥ रंध्रान्वेषी द्रोहपरो मायावी मदगर्वितः ॥ यः प्रविश्योदरे मातुर्गर्भच्छेदं चकार ह ॥ ४६ ॥ सप्तकृत्वः सप्तकृत्वः क्रंदमानमनातुरः ॥ तस्मात्पुत्र न कर्तव्यो विश्वासस्तु कथंचन ॥४७॥ कृतपापस्य का लज्जा पुनः पुत्र प्रकुर्वतः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्रबोधितः पित्रा वचनैर्हेतुसंयुतैः ॥ ४८ ॥ न बुबोध तदा वृत्र आसन्नमरणः किल ॥ स कदाचित्समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम् ॥ ४९ ॥ संध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्तेऽतीव दारुणे ॥ ततः संचिंत्य मघवा वरदानं महात्मनाम् ॥५०॥ संध्येयं वर्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसो न च ॥ हंतव्योऽयं मया चाद्य बलेनैव न

वासनायें रखनेवाला कपटी जीव है ॥४५॥ वह सदा मौकेकी खोजमें रहता है, तुमसे द्रोह करता है, मायावी है और मदमत्त रहता है। उसने एक बार माताके पेटमें घुसकर उसका गर्भ काट डाला था ॥४६॥ उसने बिना किसी भयके उस गर्भस्थ शिशुको काटकर सात टुकड़े कर दिये और जब वे सातों रोने लगे, तब फिर एक-एक टुकड़ेके सात-सात खण्ड कर दिये । अतएव हे पुत्र ! उसके ऊपर तुम कभी भी विश्वास न करना ॥४७॥ हे पुत्र ! जो एक बार पाप कर चुका, उसे फिर पाप करनेमें लज्जा क्यों आने लगी ? व्यासजी कहते हैं कि इस प्रकार मतलब भरी बातें कहकर त्वष्टाने अपने पुत्रको भलीभाँति समझाया ॥ ४८ ॥ किंतु वृत्रकी मृत्यु समीप आ चुकी थी । इसलिए इन बातोंका उसपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । अन्तमें एक दिन इन्द्रने वृत्रको समुद्रतटपर विचरते देखा ॥ ४९ ॥ उस समय अतीव दारुण सन्ध्याकाल उपस्थित था । तब इन्द्रने महात्मा मुनियोंके वरदानका स्मरण किया (कि तुम न दिनमें मरोगे और न रातको) ॥ ५० ॥ उन्होंने यह सोचा कि यह भीषण सन्ध्याका समय है । न इस समय दिन है और न रात । अतएव अब मैं इसे अपनी शक्तिसे मार डालूँगा । इसमें कोई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संशय नहीं है। इस समय यह अकेला है और समय भी अनुकूल है। ऐसा विचार करके इन्द्रने मन ही मन अविनाशी विष्णुभगवानका स्मरण किया ॥५१॥५२॥ स्मरण करते ही भगवान विष्णु अदृश्यरूपसे वहाँ जा पहुँचे और तत्काल इन्द्रके वज्रमें प्रविष्ट हो गये ॥ ५३ ॥ अब इन्द्र वृत्रको मारनेकी युक्ति सोचने लगे। उन्होंने विचार किया कि अपने शत्रुको मैं कैसे मारूँ ? ॥ ५४ ॥ क्योंकि मेरा शत्रु सभी देवताओं और दैत्योंसे अजेय है। अतएव सम्मुख युद्धमें मैं इसे न मार सकूँगा। यदि महाबली वृत्रको मैं धोखेसे नहीं मार डालता और यह जीवित बच जाता है तो मेरा कल्याण नहीं होगा। उसी समय इन्द्रकी दृष्टि पर्वतके समान ढेरके ढेर समुद्रफेनपर पड़ी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उन्होंने सोचा कि ऋषियोंकी शर्तके अनुसार न यह गीला है, न सूखा है और न कोई शस्त्र ही है। ऐसा विचार करके उन्होंने वह फेन उठा लिया ॥ ५७ ॥ और परम भक्तिके साथ परा शक्तिका स्मरण किया। स्मरण करते ही देवीने उस फेनमें अपना अंश स्थापित कर दिया ॥ ५८ ॥ तब जिसमें भगवान विष्णु पहले प्रविष्ट हो चुके थे, उस वज्रको उसी फेनसे ढाँककर इन्द्रने वृत्रपर चला दिया

संशयः ॥ ५१ ॥ एकाकी विजने चात्र संप्राप्तः समयोचितः ॥ एवं विचार्य मनसा सस्मार हरिमव्ययम् ॥ ५२ ॥ तत्राजगाम भगवानदृश्यः पुरुषोत्तमः ॥ वज्रमध्ये प्रविश्यासौ संस्थितो भगवान्हरिः ॥ ५३ ॥ इन्द्रो बुद्धिं चकाराशु तदा वृत्रवधं प्रति ॥ इति संचिन्त्य मनसा कथं हन्यां रिपुं रणे ॥ ५४ ॥ अजेयं सर्वथा सर्वदेवैश्च दानवैस्तथा ॥ यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वंचयित्वा महाबलम् ॥ ५५ ॥ न श्रेयो मम नूनं स्यात्सर्वथा रिपुरक्षणात् ॥ अपां फेनं तदाऽपश्यत्समुद्रे पर्वतोपमम् ॥ ५६ ॥ नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा ॥ अपां फेनं तदा शक्रो जग्राह किल लीलया ॥ ५७ ॥ परां शक्तिं च सस्मार भक्त्या परमया युतः ॥ स्मृतमात्रा तदा देवी स्वांशं फेने न्यधापयत् ॥ ५८ ॥ वज्रं तदावृतं तत्र चकार हरिसंयुतम् ॥ फेनावृतं पविं तत्र शक्रश्चिक्षेप तं प्रति ॥ ५९ ॥ सहसा निपपाताशु वज्राहत इवाचलः ॥ वासवस्तु प्रहृष्टात्मा बभूव निहते तदा ॥ ६० ॥ ऋषयश्च महेंद्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः ॥ हतशत्रुः प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः ॥ ६१ ॥ देवीं संपूजयामास यत्प्रसादाद्धतो रिपुः ॥ प्रसादयामास तदा स्तोत्रैर्नानाविधैरपि ॥ ६२ ॥ देवोद्याने पराशक्तेः प्रासादमकरोद्धरिः ॥ पद्मरागमयीं मूर्तिं स्थापयामास वासवः ॥ ६३ ॥ त्रिकालं महतीं पूजां चक्रुः सर्वेऽपि निर्जराः ॥ तदाप्रभृति देवानां श्रीदेवी कुलदैवतम् ॥ ६४ ॥ विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास वासवः ॥ ततो

॥५९॥ वज्रके लगते ही वृत्र वज्रसे आहत पर्वतके समान छिन्न-भिन्न होकर छितरा गया। इस प्रकार वृत्रके मर जानेपर इन्द्रकी अन्तरात्मा निहाल हो गयी ॥६०॥ उस समय अन्यान्य ऋषियोंने आकर विविध स्तोत्रों द्वारा इन्द्रकी स्तुति की। इस प्रकार वैरीका विनाश हो जानेपर देवताओं समेत इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ ६१ ॥ तदनन्तर जिन महामायाकी कृपासे उस महान् शत्रुका संहार हुआ था, उन देवीकी पूजा सब देवताओंके साथ इन्द्रने की और अनेक स्तोत्रोंसे उन्होंने भगवतीकी स्तुति की ॥६२॥ देवताओंके उद्यान नंदनवनमें विष्णु भगवानने महामायाका विशाल मन्दिर बनवाया। देवराज इन्द्रने उस प्रासादमें पद्मराज (पुखराज) मणिकी मूर्ति स्थापित की ॥ ६३ ॥ तबसे देवगण बराबर तीनों समय बड़ी धूमधामसे भगवतीका पूजन करने लगे। तभीसे वे महादेवी देवताओंकी कुलदेवी बन गयीं ॥ ६४ ॥ तदनन्तर इन्द्रने तीनों लोकमें श्रेष्ठ भगवान विष्णुकी पूजा की। उधर देवताओंको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सतानेवाले महाबली वृत्रके मरते ही शीतल-मन्द बयार बहने लगी। देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर वृत्रके मर जानेपर बहुत हर्षित हुए ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ क्योंकि भगवती परा शक्तिके समुद्रफेनमें प्रविष्ट होनेसे उन्हींके कारण वृत्रको मतिभ्रम हो गया था। जिससे अचानक वह इन्द्रके हाथों मार डाला गया ॥ ६७ ॥ इसीसे वे भगवती संसारमें 'वृत्रनिहन्त्री' इस नामसे विख्यात हुईं। प्रकटरूपमें इन्द्रने वृत्रका वध किया था। अतएव वे 'वृत्रहन्ता' इस नामसे विख्यात हुए ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(वृत्रकी हत्यासे भयभीत इन्द्रका भागकर मानसरोवरके कमलनालमें छिपना और नहुषका इन्द्रपद पाना) व्यासजीने कहा–हे महाराज ! वृत्रको धरतीपर गिरा देखकर भगवान विष्णु अपनी विष्णुपुरीको चले गये। किन्तु उन्हें ब्रह्महत्याका डर बना रहा ॥१॥ इन्द्र भी ब्रह्महत्यासे डरते हुए अपने घर गये। सब मुनिगण भी वृत्रके मारे जानेपर भयभीत हो उठे

हते महावीर्ये वृत्रे देवभयंकरे ॥ ६५ ॥ प्रववौ च शिवो वायुर्जहृषुर्देवतास्तथा ॥ हते तस्मिन्सगंधर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ ६६ ॥ इत्थं वृत्रः पराशक्तिप्रवेशयुतफेनतः ॥ तया कृतविमोहाच्च शक्रेण सहसा हतः ॥ ६७ ॥ ततो वृत्रनिहंत्रीति देवी लोकेषु गीयते ॥ शक्रेण निहतत्वाच्च शक्रेण हत उच्यते ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ अथ तं पतितं दृष्ट्वा विष्णुर्विष्णुपुरीं ययौ ॥ मनसा शंकमानस्तु तस्य हत्याकृतं भयम् ॥ १ ॥ इन्द्रोऽपि भयसंत्रस्तो ययाविंद्रपुरी ततः ॥ मुनयो भयसंविग्ना ह्यभवन्निहते रिपौ ॥ २ ॥ किमस्माभिः कृतं पापं यदसौ वंचितः किल ॥ मुनिशब्दो वृथा जातः सुरेशस्य च संगमात् ॥ ३ ॥ अस्माकं वचनाद्वृत्रो विश्वासमगमत्किल ॥ विश्वासघातिनः संगाद्वयं विश्वासघातकाः ॥ ४ ॥ धिगियं ममता पापमूलमेवमनर्थकृत् ॥ यदस्माभिश्छलं कृत्वा शपथैर्वंचितोऽसुरः ॥ ५ ॥ मंत्रकृद्बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम् ॥ पापभाक्स भवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च ॥ ६ ॥ विष्णुनाऽपि कृतं पापं यत्साहाय्यमवाप्तवान् ॥ वज्रे प्रविश्य येनासौ पातितः सत्त्वमूर्तिना ॥ ७ ॥ नूनं स्वार्थपरः प्राणी न पापात्रा-

॥२॥ वे सोचने लगे कि हमने वृत्रको धोखा देकर बहुत बड़ा पाप किया। इन्द्रका साथ करनेसे हमारा मुनि नाम व्यर्थ हो गया ॥ ३ ॥ हमारी ही बातोंमें आकर वृत्रने इन्द्रपर विश्वास किया था। सो विश्वासघातीका सङ्ग करनेसे हम सब भी विश्वासघाती हो गये ॥ ४ ॥ इस ममताको धिक्कार है। क्योंकि ममता ही सब अनर्थोंकी जड़ है। इसीके फेरमें पड़कर हमने छलपूर्वक शपथ ली और बादमें उस असुरको धोखा दिया॥५॥ यह शास्त्रीय विधान है कि अपराध करनेकी सलाह देनेवाले, रास्ता बतानेवाले, प्रेरणा देनेवाले और उसका पक्ष लेनेवाले भी वैसे ही दण्डके भागीदार होते हैं, जैसे वास्तविक अपराधी दोषके भागी होते हैं॥६॥ इसे सहायता देने तथा वज्रमें प्रविष्ट होकर वृत्रका वध करनेके कारण सतोगुणके मूर्तरूप भगवान विष्णु भी इस पापके भागी हैं ॥७॥ विष्णु भगवानने इन्द्रकी सहायताके लिए ऐसा काम किया है, जो उन्हें नहीं करना चाहिए। जब उन्होंने ऐसा किया तो यह निश्चित हो जाता है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वार्थी प्राणी पापकर्मसे नहीं डरते ॥ ८ ॥ इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस समय संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थोंमेंसे त्रिलोकदुर्लभ पहला धर्म और चौथा मोक्ष ये दोनों पदार्थ लुप्त हो गये हैं। अब तो अर्थ और काम ही प्रशस्त माने जाते हैं। तब जो बड़े लोग धर्म और अधर्मकी विवेचना करते हैं, वह केवल वाचिक दम्भमात्र है ॥९॥१०॥ इस प्रकार वारम्वार पश्चात्ताप करके वे विमनस्क मुनिगण अपने-अपने आश्रमको चले गये। उनका सब कार्यक्रम स्थगित हो गया ॥११॥ हे महाराज जनमेजय! जब त्वष्टा (विश्वकर्मा) को पता लगा कि उनके पुत्र वृत्रको इन्द्रने मार डाला है तो वे दुखी होकर रोने लगे। इससे उन्हें बड़ी वेदना हुई ॥१२॥ तदनन्तर वे उस स्थानपर गये, जहाँ वृत्र मरकर पड़ा हुआ था। उसे देखकर बड़े दुखी हृदयसे त्वष्टाने उसका दाहकर्म तथा समस्त पारलौकिक क्रिया सम्पन्न की ॥ १३ ॥ तत्पश्चात् स्नान करके उन्होंने जलाञ्जलि देकर पुत्रका और्ध्वदैहिक कर्म पूर्ण किया। उसके बाद शोकसे आर्त त्वष्टाने मित्रघाती पापी इंद्रको शाप दिया कि-॥१४॥ जिस तरह इंद्रने मेरे पुत्रको झूठी शपथसे फुसलाकर मार डाला है। उसी प्रकार इंद्रको भी विधाताके द्वारा दिये हुए

समश्नुते ॥ हरिणा हरिसंगेन सर्वथा दुष्कृतं कृतम् ॥ ८ ॥ द्वावेव स्तः पदार्थानां द्वावेव निधनं गतौ ॥ प्रथमश्च तुरीयश्च यौ त्रिलोक्यां तु दुर्लभौ ॥ ९ ॥ अर्थकामौ प्रशस्तौ द्वौ सर्वेषां संमतौ प्रियौ ॥ धर्माधर्मेति वाग्वादो दम्भोऽयं महतामपि ॥ १० ॥ मुनयोऽपि मनस्तापमेवं कृत्वा पुनः पुनः ॥ जग्मुः स्वानाश्रमानेव विमनस्का हतोद्यमाः ॥ ११ ॥ त्वष्टा तु निहतं श्रुत्वा पुत्रमिंद्रेण भारत ॥ रुरोद दुःखसंतप्तो निर्वेदमगमत्पुनः ॥ १२ ॥ यत्रासौ पतितस्तत्र गत्वा वीक्ष्य तथागतम् ॥ संस्कारं कारयामास विधिवत्पारलौकिकम् ॥ १३ ॥ स्नात्वाऽस्य सलिलं दत्त्वा कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम् ॥ शशापेंद्रं स शोकार्तः पापिष्ठं मित्रघातकम् ॥ १४ ॥ यथा मे निहतः पुत्रः प्रलोभ्य शपथैर्भृशम् ॥ तथेंद्रोऽपि महद्दुःखं प्राप्नोतु विधिनिर्मितम् ॥ १५ ॥ इति शप्त्वा सुरेशानं त्वष्टा तापसमन्वितः ॥ मेरोः शिखरमास्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ १६ ॥ जनमेजय उवाच ॥ हत्वा त्वाष्ट्रं सुरेशोऽथ कामवस्थामवाप्तवान् ॥ सुखं वा दुःखमेवाग्रे तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ किं पृच्छसि महाभाग संदेहः कीदृशस्तव ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ १८ ॥ बलिष्ठैर्दुर्बलैर्वाऽपि स्वल्पं वा बहु वा कृतम् ॥ सर्वथैव हि भोक्तव्यं सदेवासुरमानुषैः ॥ १९ ॥ शक्रायेत्थं मतिर्दत्ता हरिणा वृत्रघातिने ॥ प्रविष्टोऽथ पविं विष्णुः सहायः प्रत्यपद्यत ॥ २० ॥ न चापदि सहायोऽ-

अपार कष्ट भोगने पड़ेंगे ॥१५॥ इंद्रको इस प्रकारका शाप देकर पुत्रशोकसे सन्तप्त त्वष्टा सुमेरुपर्वतपर चले गये। वहाँ जाकर वे अति कठोर तप करने लगे ॥१६॥ राजा जनमेजय बोले-हे मुनिराज! वृत्रका वध करनेके पश्चात् इंद्रकी क्या दशा हुई। आगे वे दुःख ही भोगते रहे अथवा कभी उन्हें सुखका अवसर भी सुलभ हुआ? मुझे यह प्रसंग बतानेकी कृपा करें ॥१७॥ व्यासजीने कहा-हे महाभाग! प्राणीको अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है। तब आपको सन्देह क्यों हुआ? ॥१८॥ यह नियम देवता, दानव और मानव-सभीके लिए अनिवार्य है। बलवान् हो अथवा दुर्बल-उसके द्वारा जो भी थोड़ा या बहुत कर्म बन गया है, उसका फल भोगना उसके लिए सर्वथा अनिवार्य है ॥१९॥ वृत्रासुरके वधकी सलाह स्वयं विष्णुभगवान्ने दी थी और उनके वज्रमें प्रविष्ट होकर उनकी सहायता की थी ॥ २० ॥ किन्तु इन्द्र जब विपत्तिमें पड़ गये, तब विष्णुने उनकी सहायता नहीं की। क्योंकि संसारमें प्रायः देखा जाता है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अच्छे समयमें सभी अपने सगे बन जाते हैं। परन्तु जब दैव प्रतिकूल हो जाता है, तब कोई किसीका सहायक नहीं होता। दुर्भाग्यके अवसरपर माता, पिता, भाई, स्त्री, सेवक, मित्र अथवा पुत्र–इनमेंसे किसीके द्वारा कोई सहायता नहीं मिलती ॥ २१–२३ ॥ कर्ताको ही पाप और पुण्यके फल भोगने पड़ते हैं। वृत्रवधके बाद सब लोग अपने-अपने स्थानोंपर चले गये। उस समय इन्द्रका तेज बहुत क्षीण हो गया था ॥ २४ ॥ 'यह इन्द्र ब्रह्मघाती है' धीरे-धीरे यों कहकर सब देवता उनकी निन्दा करने लगे। 'कौन ऐसा व्यक्ति है, जो प्रतिज्ञापूर्वक सत्य वचनसे बँध जानेपर भी अपने विश्वस्त एवं मित्र बने हुए मनुष्यके प्राण हरनेको उद्यत हो जाय'–यह बात देवताओंके समाजमें, दिव्य उपवनोंमें तथा गंधर्वोंकी गोष्ठीमें-सर्वत्र विस्तारके साथ फैल गयी। सब लोग कहने लगे–'वृत्रवधकी कामनामें फँसकर इन्द्रने यह कैसा दुष्कर्म कर डाला ? ॥ २५–२७ ॥ उन विश्वस्त मुनियोंके द्वारा प्रसादित वृत्रके साथ कपट-

भूद्रायुदेवः कथंचन ॥ समये स्वजनः सर्वः संसारेऽस्मिन्नराधिप ॥ २१ ॥ दैवे विमुखतां प्राप्ते न कोऽप्यस्ति सहायवान् ॥ पिता माता तथा भार्या भ्राता वाऽथ सहोदरः ॥ २२ ॥ सेवको वाऽपि मित्रं वा पुत्रश्चैव तथौरसः ॥ प्रतिकूले गते दैवे न कोऽप्येति सहायताम् ॥ २३ ॥ भोक्ता पापस्य पुण्यस्य कर्ता भवति सर्वथा ॥ वृत्रं हत्वा गताः सर्वे निस्तेजस्कः शचीपतिः ॥ २४ ॥ शेपुस्तं त्रिदशाः सर्वे ब्रह्महेत्यब्रुवञ्छनैः ॥ को नाम शपथान्कृत्वा सत्यं दत्त्वा वचः पुनः ॥ २५ ॥ जिघांसति सुविश्वस्तं मुनिं मित्रत्वमागतम् ॥ देवगोष्ठ्यां सुरोद्याने गंधर्वाणां समागमे ॥ २६ ॥ सर्वत्रैव कथा तस्य विस्तारमगमत्किल ॥ किं कृतं दुष्कृतं कर्म शक्रेणाद्य जिघांसता ॥ २७ ॥ वृत्रं छलेन विश्वस्तं मुनिभिश्च प्रतारितम् ॥ वेदप्रमाणमुत्सृज्य स्वीकृतं सौगतं मतम् ॥ २८ ॥ यदयं निहतः शत्रुर्वंचयित्वाऽतिसाहसात् ॥ को नाम वचनं दत्त्वा विपरीतमथाचरेत् ॥ २९ ॥ बिना शक्रं हरिं वाऽऽपि यथाऽयं विनिपातितः ॥ एवंविधाः कथाश्चान्याः समाजेष्वभवन्भृशम् ॥ ३० ॥ शुश्रावेंद्रोऽपि विविधाः स्वकीर्तेर्हानिकारकाः ॥ यस्य कीर्तिर्हता लोके धिक्तस्यैव कुजीवितम् ॥ ३१ ॥ यं दृष्ट्वा पथि गच्छंतं शत्रुः स्मेरमुखो भवेत् ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः पतितः कीर्तिसंक्षयात् ॥ ३२ ॥ स्वर्गादकृतपापोऽसौ पापकृत्किं न पात्यते ॥ स्वल्पेऽपराधेऽपि नृपो ययातिः पतितः किल ॥ ३३ ॥ नृपः कर्कटतां प्राप्तो युगान-

व्यवहार करके इन्द्रने वेदकी प्रामाणिकता त्यागकर बौद्धमत स्वीकार कर लिया ॥ २८ ॥ इन्द्रने अपने शत्रुको धोखा देकर बड़े साहसके साथ मारा है। पहले अभयदान देकर बादमें ऐसे विश्वासघातका काम कौन करेगा ? ॥ २९ ॥ ऐसे छलपूर्ण व्यवहार इन्द्र और विष्णुभगवानके सिवाय और कोई नहीं कर सकता। जनसाधारणमें ऐसी-ऐसी चर्चायें बराबर होने लगीं ॥ ३० ॥ अपनी कीर्ति नष्ट करनेवाली तरह-तरहकी बातें इन्द्र भी सुनते रहे। जगत्में जिसकी कीर्ति नष्ट हो गयी, उस व्यक्तिके कलुषित जीवनको धिक्कार है ॥ ३१ ॥ रास्तेमें जाते हुए ऐसे व्यक्तिको देखकर शत्रु हँस पड़ते हैं। इन्द्रद्युम्न राजर्षि माने जाते थे। उन्होंने कुछ भी पाप नहीं किया था, किन्तु कीर्ति नष्ट हो जानेके कारण वे भी स्वर्गसे ढकेल दिये गये। फिर जो स्वयं पापकर्म कर चुका है, वह कैसे नहीं गिरेगा ? राजा ययाति भी बहुत थोड़े अपराधपर स्वर्गसे बहिष्कृत कर दिये गये थे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसे ही एक राजा थे, जिन्हें अठारह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युगोंतक केकड़ेकी योनिमें रहना पड़ा। महर्षि जमदग्निकी पत्नी एवं अपनी माता रेणुकाका मस्तक काटनेपर परशुरामरूपधारी भगवान्‌को भी मकर आदि पशुओंकी योनिमें जन्म लेना पड़ा था। विष्णुको भी वामन बनकर राजा बलिके घर भीख माँगने जाना पड़ा ॥३४॥३५॥ तब यदि कुकर्मी मनुष्य दुःख पाये तो क्या आश्चर्य है? हे राजन्! भृगुके शापसे भगवान रामको भी सीताके विरहका घोर संकट झेलना पड़ा था। उसी प्रकार इन्द्रके समक्ष भी ब्रह्महत्याका महान् भय उपस्थित था ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ घरमें सम्पूर्ण सिद्धियोंके रहते हुए भी इन्द्रके मनमें शान्ति नहीं थी। वे सभामें बिल्कुल बैठते ही नहीं थे। वे भयसे घबराकर जोर-जोरसे श्वास लिया करते और कभी-कभी मूर्छित भी हो जाते थे। यह स्थिति देखकर इन्द्राणीने उनसे पूछा—'प्रभो! आपका भयंकर शत्रु वृत्र तो मर ही गया, फिर आप इतने भयभीत क्यों हैं? हे शत्रुपर विजय प्राप्त करनेवाले स्वामिन्! कौन-सी चिन्ता आपको बेचैन कर रही है? हे लोकेश! आप एक साधारण प्राणीकी भाँति क्यों लम्बी साँस खींचते हुए सदा सोचमें डूबे रहते हैं? ॥ ३८–४० ॥ दूसरा कोई बलवान् शत्रु तो दीखता भी नहीं, जिससे आप इतने

त्वादशैव तु ॥ भृगुपत्निशिरश्छेदाद्भगवान्हरिरच्युतः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मशापात्पशोर्योनौ संजातो मकरादिषु ॥ विष्णुश्च वामनो भूत्वा याचनार्थं बलेर्गृहे ॥ ३५ ॥ गतः किमपरं दुःखं प्राप्नोति दुष्कृतो नरः ॥ रामोऽपि वनवासेषु सीताविरहजं बहु ॥ ३६ ॥ दुःखं च प्राप्तवान्घोरं भृगुशापेन भारत ॥ तथेंद्रोऽपि ब्रह्महत्याकृतं प्राप्य महद्भयम् ॥ ३७ ॥ न स्वास्थ्यं प्राप गेहेऽसौ सर्वसिद्धिसमन्विते ॥ पौलोमी तं सभाहीनं दृष्ट्वा प्रोवाच वासवम् ॥ ३८ ॥ निःश्वसंतं भयत्रस्तं नष्टसंज्ञं विचेतसम् ॥ किं प्रभोऽद्य भयार्तोऽसि मृतस्ते दारुणो रिपुः ॥ ३९ ॥ का चिंता वर्तते कांत तव शत्रुनिषूदन ॥ कस्माच्छोचसि लोकेश निःश्वसन्प्राकृतो यथा ॥ ४० ॥ नान्योऽस्ति बलवाञ्छत्रुर्येन चिंतापरो भवान् ॥ इन्द्र उवाच ॥ नारातिर्बलवान्मेऽस्ति म शांतिर्न सुखं तथा ॥ ४१ ॥ ब्रह्महत्याभयाद्राज्ञि बिभेमि सततं गृहे ॥ न नंदनं सुखकरं नामृतं न गृहं वनम् ॥ ४२ ॥ किं गंधर्वाणां तथा गेयं नृत्यमप्सरसां पुनः ॥ न त्वं सुखकरा नारी नाना च सुरयोषितः ॥ ४३ ॥ न तथा कामधेनुश्च देववृक्षः सुखप्रदः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि क्व शर्म मम जायते ॥ ४४ ॥ इति चिंतापरः कान्ते न लभे सुखमात्मनि ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं शक्रः प्रियां परमकातराम् ॥ ४५ ॥ निर्जगाम गृहान्मन्दो मानसं सर उत्तमम् ॥ पद्मनाले प्रविष्टोऽसौ भयार्तः शोककर्षितः ॥ ४६ ॥ न प्राज्ञायत देवेन्द्र-

चिन्तातुर हो गये।' इन्द्रने कहा—हे राज्ञी! अब यद्यपि मेरा कोई बलवान् शत्रु नहीं है, तथापि ब्रह्महत्याके भयसे मैं इतना डर गया हूँ कि घरमें रहते हुए भी न मुझे सुख है और न शान्ति है। मुझको न तो नन्दनवन सुखदायी प्रतीत हो रहा है, न अमृत तथा यह देवप्रासाद ही। गन्धर्वोंके गान और अप्सराओंके नृत्य भी मुझे सुखकर नहीं प्रतीत होते। तुम जैसी सहधर्मिणी तथा अन्य देवाङ्गनायें भी मुझे सुखी नहीं कर सकतीं। कामधेनु गौ और कल्पवृक्षसे भी मैं सुख नहीं पा रहा हूँ। क्या करूँ? कहाँ जानेसे मेरा कल्याण होगा? प्रिये! इसी चिंतासे व्यग्र रहनेके कारण मेरे अन्तःकरणमें आग धधक रही है। व्यासजी बोले—हे राजन्! अत्यन्त घबरायी हुई अपनी प्रेयसी भार्या शचीसे उपर्युक्त बातें कहकर इन्द्र घरसे निकलकर मानसरोवर चले गये। भयसे उनका हृदय काँप रहा था। शोकके कारण उनकी शक्ति क्षीण हो गयी थी। वे उस उत्तम सरोवरमें जाकर एक कमलनालमें छिप गये ॥ ४१–४६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस समय इन्द्रको अपने कर्तव्यका ज्ञान नहीं रहा । क्योंकि घृणित कर्म करनेसे उनकी प्रतिभा नष्ट हो चुकी थी । वे जलमें छिपकर वैसे ही समय व्यतीत कर रहे थे, जैसे कोई साँप जीवन-रक्षाके लिये प्रयत्नशील हो ॥४७॥ उस अवसरपर उनका कोई भी सहायक नहीं था । चिन्तासे व्याकुलता बढ़ गयी थी ; इन्द्रियोंमें क्षोभ उत्पन्न हो गया था । हे राजन् ! जब ब्रह्महत्याके भयसे दुखो होकर इन्द्र चले गये ॥ ४८ ॥ तब देवताओंका मन चिन्तासे संतप्त हो उठा । ऋषि, सिद्ध और गन्धर्व सभी भयभीत हो उठे ॥ ४९ ॥ अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे । उपद्रवोंसे अभिभूत सारे जगत्में कोई शासक नहीं रहा । मेघोंने पानी बरसाना बंद कर दिया और पृथ्वीमें धान्य उपजानेकी शक्ति नहीं रह गयी । नदियोंकी धारायें सूख गयीं । तालाब बिना जलके हो गये । इस प्रकारकी अराजकता फैल जानेपर सब देवताओं और मुनियोंने परस्पर विचार करके नहुषको स्वर्गका शासक बना दिया । नहुष धर्मात्मा था । फिर भी इन्द्र बन जानेपर उसके मनमें राजसी वृत्ति उत्पन्न हो गयी । फलस्वरूप वह कामबाणसे आहत होकर विषयोंमें आसक्त हो गया और अप्सराओंके साथ देवोद्यानोंमें विहार करने लगा ॥५०–५३॥

स्त्वभिभूतश्च कल्मषैः ॥ प्रतिच्छन्नो वसत्यप्सु चेष्टमान इवोरगः ॥ ४७ ॥ असहायस्तुराषाडैच्चिन्तार्तो विकलेंद्रियः ॥ ततः प्रनष्टे देवेन्द्रे ब्रह्महत्या-भयार्दिते ॥ ४८ ॥ सुराश्चिंतातुराश्चासन्नुत्पाताश्चाभवन्नथ ॥ ऋषयः सिद्धगन्धर्वा भयार्ताश्चाभवन्भृशम् ॥ ४९ ॥ अराजकं जगत्सर्वमभिभू-तमुपद्रवैः ॥ अवर्षणं तदा जातं पृथिवी क्षणवैभवा ॥ ५० ॥ विच्छिन्नस्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि वै ॥ एवं त्वराजके जाते देवता मुनयस्तथा ॥ ५१ ॥ विचार्य नहुषं चक्रुः शक्रं सर्वे दिवौकसः ॥ संप्राप्य नहुषो राजा धर्मिष्ठोऽपि रजोबलात् ॥५२॥ बभूव विषयासक्तः पंचबाणशराहतः ॥ अप्सरोभिर्वृतः क्रीडन्देवोद्यानेषु भारत ॥५३॥ शक्रपत्नीगुणाञ्छ्रुत्वा चकमे तां स पार्थिवः ॥ ऋषीनाह किमिंद्राणी नोगच्छति मां किल ॥ ५४ ॥ भवद्भिश्चामरैः सर्वैः कृतोऽहं वासवस्त्विह ॥ प्रेषयध्वं सुराः कामं सेवार्थं मम वै शचीम् ॥५५॥ प्रियं चेन्मम कर्तव्यं सर्वथा मुनयोऽमराः॥ अहमिंद्रोऽद्य देवानां लोकानां च तथेश्वरः ॥ ५६ ॥ आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम् ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा देवर्षयस्तथा ॥ ५७ ॥ गत्वा चिन्तातुराः प्रोचुः पौलोमीं प्रणतास्ततः ॥ इन्द्रपत्नि दुराचारी नहुषस्त्वामिहेच्छति ॥ ५८ ॥ कुपितोऽस्मानुवाचेदं प्रेषयध्वं शचीमिह ॥ किं कुर्मस्तदधीनाः स्मो येनेन्द्रोऽयं कृतः किल ॥ ५९ ॥ तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह ॥ रक्ष मां नहुषाद्ब्रह्मँस्तवास्मि शरणं

एक समय शचीके गुणोंको सुनकर उन्हें पानेके लिए नहुषके मनमें इच्छा उत्पन्न हो गयी । अतः उसने ऋषियोंसे कहा–'मेरे पास इन्द्राणी क्यों नहीं आती ? ॥ ५४ ॥ हे देवताओ ! आप लोगोंने ही मुझे इन्द्र बनाया है । अतः मेरी सेवा करनेके लिए आप शचीको यहाँ भेज दें ॥ ५५ ॥ इस अवसरपर देवताओं और मुनियोंको सम्यक् प्रकारसे मेरा आदेश मानना चाहिये । क्योंकि मैं उनका इन्द्र हूँ । सभी लोकोंपर मेरा शासन है ॥ ५६ ॥ अतएव मुझे प्रसन्न करनेके लिए शची शीघ्र मेरे महलमें आ जाय ।' नहुषकी यह दोषपूर्ण बात सुनकर देवताओं और ऋषियोंके मनमें चिन्ता और घबराहट उत्पन्न हो गयी । वे इन्द्राणीके पास गये और मस्तक झुकाकर कहने लगे—इन्द्राणीजी ! दुरात्मा नहुष अब आपको पानेकी इच्छा कर रहा है ॥५७॥५८॥ उसने कुपित होकर हमसे यह वचन कहा है कि शचीको यहाँ भेज दो । उसके अधीन रहनेवाले हम कर ही क्या सकते हैं ? क्योंकि उस दुरात्माको इन्द्र बना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिया गया है ॥५९॥ देवताओं और ऋषियोंसे नहुषकी यह अप्रिय बात सुनकर शचीका मुख मुरझा गया। वे बृहस्पतिजीसे कहने लगीं—हे ब्रह्मन्! मैं आपकी शरणमें हूँ। नहुषसे मेरी रक्षा कीजिए ॥ ६० ॥ बृहस्पतिजीने कहा—हे देवी! पापान्ध नहुषसे तुम किंचिन्मात्र भय मत करो। हे वत्से! सनातन धर्मका परित्याग करके मैं तुम्हें उसके पास नहीं जाने दूँगा ॥६१॥ शरणमें आये हुए दुखी व्यक्तिको जो नीच मानव आश्रय नहीं देता, उसे युगपर्यन्त नरककी यातना भोगनी पड़ती है। हे पृथुश्रोणि! तुम शान्तचित्त होकर बैठी रहो। मैं कभी भी तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(देवताओंका बृहस्पतिसे परामर्श) व्यासजी बोले—हे राजन्! तदनन्तर जब कामार्त नहुषने सुना कि शची बृहस्पतिकी शरणमें चली गयीं है, तब वह उनके ऊपर भी झल्ला उठा ॥१॥ उसने देवताओंसे कहा—'यह सर्वथा निश्चित है कि मेरे हाथों बृहस्पतिका वध होकर रहेगा। कारण, मैंने सुना है कि उस मूर्खने अपने घरमें शचीको सुरक्षित रहनेकी व्यवस्था कर

गता ॥ ६० ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ न भेतव्यं त्वया देवि नहुषात्पापमोहितात् ॥ न त्वां दास्याम्यहं वत्से त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥ ६१ ॥ शरणागतमार्तं च यो ददाति नराधमः ॥ स एव नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ स्वस्था भव पृथुश्रोणि न त्यक्ष्ये त्वां कदाचन ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ नहुषस्त्वथ तां श्रुत्वा गुरोस्तु शरणं गताम् ॥ चुक्रोध स्मरबाणार्तस्तमांगिरसमाशु वै ॥ १ ॥ देवानाहांगिरासूनुर्हतव्योऽयं मया किल ॥ इतींद्राणीं गृहे मूढो रक्षतीति मया श्रुतम् ॥२॥ इति तं कुपितं दृष्ट्वा देवाः सर्षिपुरोगमाः ॥ अब्रुवन्नहुषं घोरं सामपूर्वं वचस्तदा ॥३॥ क्रोधं संहर राजेन्द्र त्यज पापमतिं प्रभो ॥ निंदन्ति धर्मशास्त्रेषु परदाराभिमर्शनम् ॥ ४ ॥ शक्रपत्नी सदा साध्वी जीवमाने पतौ पुनः ॥ कथमन्यं पतिं कुर्यात्सुभगाऽतिपतिव्रता ॥ ५ ॥ त्रिलोकीशस्त्वमधुना शास्ता धर्मस्य वै विभो ॥ त्वादृशोऽधर्ममातिष्ठेत्तदा नश्येत्प्रजा ध्रुवम् ॥ ६ ॥ सर्वथा प्रभुणा कार्यं शिष्टाचारस्य रक्षणम् ॥ वारमुख्यश्च शतशो वर्तन्तेऽत्र शचीसमाः ॥ ७ ॥ रतिस्तु कारणं प्रोक्तं शृंगारस्य महात्मभिः ॥ रसहानिर्ब-

रक्खी है ॥ २ ॥ उस समय नहुषकी आकृति महाभयंकर हो गयी थी। वह क्रोधसे भभक उठा था। उसकी स्थिति देखकर देवता और ऋषि सामनीतिका प्रयोग करते हुए नहुषसे कहने लगे—॥ ३ ॥ 'हे राजेन्द्र! हे प्रभो! तुम क्रोध दूर करो। यह खोटी बुद्धि सर्वथा त्याज्य है। धर्मशास्त्रमें परायी स्त्रीके साथ प्रेम करनेकी घोर निन्दा की गयी है ॥४॥ शची परम पतिव्रता हैं। उनका आचरण बड़ा ही पवित्र है। तब अपने पतिके जीवित रहते वे अन्य पुरुषको अपना पति कैसे बना सकती हैं? ॥५॥ हे राजन्! इस समय तुम्हें त्रिलोकीका राज्य सुलभ है। तुम बड़े धार्मिक राजा हो। यदि तुम-जैसा नरेश धर्मसे विचलित हो जायगा तो निश्चित है कि सारी प्रजा नष्ट हो जायगी ॥६॥ राजाको चाहिये कि सम्यक् प्रकारसे सदाचारका पालन करे। और फिर आनन्द लेनेके लिए तो शची जैसी सैकड़ों सुन्दरी वारवनितायें आपके पास हैं ही ॥७॥ बड़े लोगोंका कहना है कि रति ही शृंगाररसका मूल उद्देश्य होता है। किन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बलात्कार करनेपर तो सब रस ही नष्ट हो जाता है । हे राजेन्द्र ! जब पति-पत्नी दोनोंमें समान प्रेम होता है, तभी दोनों अत्यन्त सुखी होते हैं ॥ ९ ॥ अतएव हे देवेन्द्र ! तुम्हारे मनमें परायी स्त्रीसे मिलनेकी जो इच्छा उत्पन्न हुई है, उसे त्याग दो । श्रेष्ठ आचरणका पालन करो । क्योंकि इस समय तुम एक बहुत बड़े पदपर प्रतिष्ठित हो ॥१०॥ हे राजन् ! पापकर्म करनेसे सम्पत्ति क्षीण होती है और पुण्य करनेसे बढ़ती है । इसलिए नीच कर्मका परित्याग करके तुम्हें सात्त्विक बुद्धिका आश्रय लेना चाहिये ॥११॥ नहुषने कहा—जब इन्द्रने महर्षि गौतमकी भार्या अहल्याके साथ दुराचार किया था और जब चन्द्रमाने बरबस गुरु बृहस्पतिकी भार्याको हड़प लिया था । तब आप लोग कहाँ थे ? ॥ १२ ॥ औरोंको उपदेश देनेमें कुशल तो सभी होते हैं, किन्तु उस उपदेशका पालन करनेवाले पुरुष दुर्लभ हैं ॥ १३ ॥ नहुषने कहा—हे देवताओ ! शची मेरे पास आ जाय । ऐसा करनेसे तुम्हारी तो भलाई होगी ही, वह भी

लात्कारे कृते सति तु जायते ॥ ८ ॥ उभयोः सदृशं प्रेम यदि पार्थिवसत्तम ॥ तदा वै सुखसंपत्तिरुभयोरुपजायते ॥ ९ ॥ तस्माद्भावमिमं मुंच परदाराभिमर्शने ॥ सद्भावं कुरु देवेन्द्र पदं प्राप्तोऽस्यनुत्तमम् ॥ १० ॥ ऋद्धिक्षयस्तु पापेन पुण्येनातिविवर्धनम् ॥ तस्मात्पापं परित्यज्य सन्मतिं कुरु पार्थिव ॥ ११ ॥ नहुष उवाच ॥ गौतमस्य यदा भुक्ता दाराः शक्रेण देवताः ॥ वाचस्पतेस्तु सोमेन क्व यूयं संस्थितास्तदा ॥ १२॥ परोपदेशे कुशलाः प्रभवंति नराः किल ॥ कर्ता चैवोपदेष्टा च दुर्लभः पुरुषो भवेत् ॥ १३ ॥ मामागच्छतु सा देवी हितं स्यादद्भुतं हि वः ॥ एतस्याः परमं देवाः सुखमेव भविष्यति ॥ १४ ॥ अन्यथा न हि तुष्येऽहं सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ विनयाद्वा बलाद्वाऽपि तामाशु प्रापयंत्विह ॥ १५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाश्च मुनयस्तथा ॥ तमूचुश्चातिसंत्रस्ता नहुषं मदनातुरम् ॥ १६ ॥ इन्द्राणीमानयिष्यामः सामपूर्वं तवांतिकम् ॥ इत्युक्त्वा ते तदा जग्मुर्बृहस्पतिनिकेतनम् ॥ १७॥ व्यास उवाच ॥ ते गत्वांगिरसः पुत्रं प्रोचुः प्रांजलयः सुराः ॥ जानीमः शरणं प्राप्तामिंद्राणीं तव वेश्मनि ॥१८॥ सा देया नहुषायाद्य वासवोऽसौ कृतो यतः ॥ वृणोत्वियं वरारोहा पतित्वे वरवर्णिनी ॥ १९ ॥ बृहस्पतिः सुरानाह तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः ॥ नाहं त्यक्ष्ये तु पौलोमीं सतीं च शरणागताम् ॥२०॥ देवा ऊचुः॥ उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यो येन सोऽद्य प्रसीदति ॥ अन्यथा कोपसंयुक्तो दुराराध्यो भविष्यति

परम सन्तुष्ट हो जायगी ॥१४॥ ऐसा न होगा तो मेरी अशान्तिका शमन नहीं हो सकता । यह मैं तुम्हारे सामने बिल्कुल सच्ची बात कह रहा हूँ । विनय अथवा बल—किसी भी उपायका प्रयोग करके तुम अति शीघ्र शचीको यहाँ लानेका प्रयत्न करो ॥ १५ ॥ उस समय नहुष कामसे आतुर हो गया था । उसकी यह बात सुनकर अत्यन्त भयभीत देवताओं और मुनियोंने उससे कहा—॥ १६ ॥ 'ठीक है, शान्तिपूर्वक इन्द्राणीको हम तुम्हारे पास ले आयेंगे' । यों कहकर वे देवता बृहस्पतिजीके आश्रमपर गये ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले—वहाँ पहुँचकर देवताओंने कहा—हे गुरो ! हमें पता चला है कि इन्द्राणी आपके घरमें शरणार्थिनी बनकर आयी हैं ॥ १८ ॥ उन्हें इन्द्र बने हुए नहुषको देना आवश्यक है । वह सुंदरी उसे पतिरूपमें वरण कर ले ॥ १९ ॥ देवताओंकी बात सुनकर बृहस्पतिजीने उत्तर दिया–"परम साध्वी शची मेरे यहाँ शरणार्थिनी बनकर आयी हैं । मैं इनका त्याग नहीं करूँगा" ॥२०॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवता बोले—तो फिर कोई दूसरा उपाय करिए, जिससे नहुष प्रसन्न हो जाय । नहीं तो कुपित होकर वह बड़ा अनर्थ करेगा ॥२१॥ बृहस्पति बोले-एक उपाय है । वह यह कि एक बार शची राजा नहुषके सामने जायँ और उससे कहें कि 'मैं तुम्हारी सेवा अवश्य करूँगी, परन्तु पहले यह पता लगा लूँ कि मेरे पति जीवित तो नहीं हैं। सम्भव है कि मेरे पतिदेव जीवित हों, ऐसी स्थितिमें मैं दूसरेको कैसे स्वामी बना सकती हूँ । अतः उन महाभागको खोजनेके लिए एक बार मेरा वापस लौटना आवश्यक है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इन्द्राणीको चाहिए कि इस प्रकार कहकर नहुषको धोखेमें डाल दें । फिर जैसा मैं बताऊँ, उसके अनुसार इनके पतिदेवको ले आनेका प्रयत्न किया जाय ॥२४॥ इस प्रकार परस्पर परामर्श करके जितने भी देवता थे, वे सब-के-सब शचीको साथ लेकर नहुषके पास पहुँचे ॥२५॥ जब बनावटी इन्द्र नहुषने देखा कि देवता आ गये हैं और साथमें शची भी है, तब उसके हर्षकी सीमा नहीं रही। वह ठहाका मारकर हँसा और शचीसे कहने लगा—॥२६॥ 'प्रिये ! चारुलोचने ! इस समय मैं इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित हूँ। देवताओंने ही मुझे यह गौरव प्रदान किया है। अखिल भूमण्डलका शासनसूत्र

॥ २१ ॥ गुरुरुवाच ॥ तत्र गत्वा शची भूपं प्रलोभ्य वचसा भृशम् ॥ करोतु समयं बाला पतिं ज्ञात्वा मृतं भजे ॥ २२ ॥ इन्द्रे जीवति मे कांते कथमन्यं करोम्यहम् ॥ अन्वेषणार्थं गंतव्यं मया तस्य महात्मनः ॥२३॥ इति सा समयं कृत्वा वंचयित्वा च भूपतिम् ॥ भर्तुरानयने यत्नं करोतु मम वाक्यतः ॥ २४ ॥ इति संचिंत्य ते सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ नहुषं सहिता जग्मुरिंद्रपत्न्या दिवौकसः ॥ २५ ॥ तानागतान्समीक्ष्याह तदा कृत्रिमवासवः ॥ जहर्ष च मुदायुक्तस्तां वीक्ष्य मुदितोऽब्रवीत् ॥२६॥ अद्यास्मि वासवः कांते भज मां चारुलोचने ॥ पतित्वे सर्वलोकस्य पूज्योऽहं विहितः सुरैः ॥ २७ ॥ इत्युक्ता सा नृपं प्राह वेपमाना त्रपायुता ॥ वरमिच्छाम्यहं राजंस्त्वत्तः प्राप्तं सुरेश्वर ॥ २८ ॥ किंचित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्कुर्वे विनिर्णयम् ॥ इन्द्रोऽस्तीति न वाऽस्तीति संदेहो मे हृदि स्थितः ॥२९॥ ततस्त्वां समुपस्थास्ये कृत्वा निश्चयमात्मनि ॥ तावत्क्षमस्व राजेन्द्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥ न हि विज्ञायते शक्रो नष्टः किं वा क्व वा गतः ॥ एवमुक्तः स इन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत् ॥ ३१ ॥ व्यसर्जयत्तां देवीं तथेत्युक्त्वा मुदान्वितः ॥ सा विसृष्टा नृपेणाशु गत्वा प्राह सुरान्सती ॥ ३२ ॥ इन्द्रस्यागमने यत्नं कुरुताद्य कृतोद्यमाः ॥ श्रुत्वा

मेरे हाथमें है। अतः अब तुम मेरी सेवामें आ जाओ।' ॥२७॥ नहुषके यों कहनेपर इन्द्राणीके शरीरमें कँपकँपी आ गयी । उनका हृदय आतंकित हो गया । फिर भी सँभलकर वे उससे कहने लगीं—'देवेश्वरके पदपर शोभा पानेवाले हे नरेश ! आपसे मैं एक अभिलषित वरकी याचना करती हूँ ॥२८॥ उस समयतक आप प्रतीक्षा करें, जबतक कि मैं यह निर्णय न कर लूँ कि मेरे पति इन्द्र जीवित हैं या नहीं । क्योंकि इस बातका सन्देह मेरे मनमें बना हुआ है । अभी तक मुझे ठीक-ठीक पता ही नहीं कि उनका मरण हो गया है अथवा वे कहीं चले गये हैं ॥२९॥ यह निश्चय हो जानेपर मैं आपकी सेवा करूँगी । तबतक क्षमा करें । हे राजेन्द्र ! यह मैं सच कह रही हूँ ॥ ३० ॥ पता नहीं कि इन्द्र मर गये या कहीं चले गये ।' शचीने जब इस प्रकार नहुषसे कहा, तब उसके मुखपर प्रसन्नता छा गयी ॥ ३१ ॥ 'बहुत ठीक है, ऐसा ही हो' यह कहकर बड़े उत्साहके साथ नहुषने शची देवीको वहाँसे जानेकी आज्ञा दे दी । उससे छुटकारा पानेपर इन्द्राणी तुरन्त देवताओंके पास गयीं और उनसे कहा—'आपलोग बड़े उद्यमी पुरुष हैं । अतएव आपलोग मेरे पतिदेवको यहाँ लौटा लानेका प्रयत्न कीजिये । शची-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवीके इस पवित्र एवं मधुर वचनको सुनकर देवता बड़ी सावधानीके साथ इन्द्रके विषयमें विचार करने लगे। हे राजेन्द्र! कर्तव्य निश्चित हो जानेपर वे भगवान् विष्णुके धाममें गये और उनकी स्तुति करते हुए कहने लगे—॥ ३२–३४ ॥ आदिदेव भगवान् विष्णु अखिल जगत्के स्वामी हैं। शरणमें आये हुए व्यक्तिपर कृपा करना उनका स्वभाव ही है। अपनी वाणी व्यक्त करनेमें परम कुशल देवताओंने अत्यन्त उदास होकर उनसे यह वचन कहा—॥ ३५ ॥ भगवन्! देवराज इन्द्र ब्रह्महत्याके दुःखसे अत्यन्त दुखी होकर कहीं अन्यत्र कालक्षेप कर रहे हैं ॥ ३६ ॥ आपके ही परामर्शसे ब्राह्मण वृत्रको मारकर इन्द्र ब्रह्महत्याकी लपेटमें आ गये हैं। अब आप ही उनकी और हम सबकी एकमात्र गति हैं॥ ३७॥ हमपर घोर संकट आ पड़ा है, इससे आप हमारी रक्षा करें और साथ ही इन्द्र ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जायँ—इसका उपाय भी बतलानेकी कृपा करें। देवताओंकी यह करुण प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णुने उनसे कहा—॥३८॥ 'देवताओं! इस अवसरपर ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होनेके लिए इन्द्रको अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए। इस परम पावन यज्ञके प्रभावसे सम्पूर्ण कल्मष धुल जानेपर वे फिर

तद्वचनं देवा इन्द्राण्या रसवच्छुचि ॥ ३३ ॥ मंत्रयामासुरेकाग्राः शक्राय नृपसत्तम ॥ ते गत्वा वैष्णवं धाम तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ ३४ ॥ आदिदेवं जगन्नाथं शरणागतवत्सलम् ॥ ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥ ३५ ॥ देवदेवः सुरपतिर्ब्रह्महत्याप्रपीडितः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां क्वापि तिष्ठति वासवः ॥ ३६ ॥ त्वद्धिया निहते विप्रे ब्रह्महत्यावृतः प्रभो ॥ त्वं गतिस्तस्य भगवन्नस्माकं च तथैव हि ॥ ३७ ॥ त्राहि नः परमापन्नान्मोक्षं तस्य विनिर्दिश ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा कातरं विष्णुरब्रवीत् ॥ ३८ ॥ यजतामश्वमेधेन शक्रपापनिवृत्तये ॥ पुण्येन हयमेधेन पावितः पाकशासनः ॥३९॥ पुनरेष्यति देवानामिंद्रत्वमकुतोभयः ॥ हयमेधेन संतुष्टा देवी श्रीजगदंबिका ॥४०॥ ब्रह्मत्यादिपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम् ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण पापजालं विनश्यति ॥ ४१ ॥ किं पुनर्वाजिमेधेन तत्प्रीत्यर्थं कृतेन च॥ इन्द्राणी कुरुतान्नित्यं भगवत्याः प्रपूजनम् ॥ ४२ ॥ आराधनं शिवायास्तु सुखकारि भविष्यति ॥ नहुषोऽपि जगन्मातुर्मायया मोहितः किल ॥ ४३ ॥ विनाशं स्वकृतेनाशु गमिष्यत्येनसा सुराः ॥ पावितश्चाश्वमेधेन तुराषाडपि वैभवम् ॥ ४४ ॥ प्राप्स्यत्यचिरकालेन स्वमासनमनुत्तमम् ॥ ते तु श्रुत्वा शुभां वाणीं विष्णोरमिततेजसः ॥ ४५ ॥ जग्मुस्तं देशमनिशं यत्रास्ते पाकशासनः ॥ तमाश्वास्य सुराः शक्रं बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ४६ ॥ कारयामासुरखिलं हयमेधं महाक्रतुम् ॥ विभज्य

तुम्हारे इन्द्र बन जायँगे। फिर किसी प्रकारका कोई भय नहीं रह सकेगा। अश्वमेध यज्ञ भगवती जगदम्बाको संतुष्ट करनेके लिए एक अचूक साधन है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ यह निश्चित है कि इस यज्ञसे संतुष्ट होकर वे भगवती जगदम्बा ब्रह्महत्या प्रभृति सारे पापोंको नष्ट कर देंगी। जिनका स्मरणमात्र कर लेनेसे पापसमूह नष्ट हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ तब अश्वमेध यज्ञ द्वारा पूजा करनेपर उनकी प्रसन्नताका क्या कहना है। इन्द्राणी भी नियमपूर्वक भगवती जगदम्बाकी आराधनामें लग जायँ ॥ ४२ ॥ भगवती जगदम्बा कल्याणमयी हैं। इनकी आराधना करनेपर सुखी होनेमें कोई सन्देह नहीं है। हे देवताओं! जगदम्बाकी मायासे मोहित हो जानेके कारण तथा अपने ही किये हुए पापसे नहुषका बहुत शीघ्र संहार हो जायगा। इन्द्र भी अश्वमेध यज्ञके प्रभावसे पुण्यात्मा बनकर अपनी सम्पत्ति प्राप्त कर लेंगे। उन्हें अपना सर्वोत्तम आसन पुनः सुलभ हो जायगा।' अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुकी यह पवित्र वाणी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुनते ही बृहस्पतिजीको अपना अगुआ बनाकर वे उस स्थानपर चले गये, जहाँ इन्द्र कालक्षेप कर रहे थे। उन्होंने वहाँ पहुँचकर इन्द्रको आश्वासन दिया और सर्वोत्तम यज्ञ करानेकी समुचित व्यवस्था की। उस यज्ञके सम्पन्न हो जानेपर भगवान् श्रीहरि पधारे और उनके द्वारा ब्रह्महत्याको विभाजित करके वृक्षों, नदियों, पर्वतों और स्त्रियोंको बाँट दिया गया। यों ब्रह्महत्यासे मुक्त होकर इन्द्र पुनः शुद्ध हो गये ॥ ४३–४८ ॥ यद्यपि उनकी चिन्ता शान्त हो गयी थी, फिर भी अपने अच्छे दिनकी प्रतीक्षा करते हुए वे जलमें ही ठहरे रहे। एक कमलका नाल उनका आश्रय बना हुआ था ॥४९॥ कोई भी प्राणी उन्हें देख नहीं सकता था। अतः इन्द्राणीके दुःखका अंत नहीं हुआ। इन्द्रके विरहमें व्याकुल होकर वे बृहस्पतिजीसे कहने लगीं— ॥५०॥ हे महाराज! अश्वमेध यज्ञ कर चुकनेपर भी मेरे पतिदेव सामने क्यों नहीं आते? मैं अपने उन प्राणनाथको कैसे देख सकूँगी? इसका कोई उपाय मुझे बतानेकी कृपा करें ॥५१॥ बृहस्पतिजीने कहा—हे पौलोमि! अब तुम कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी आराधना करो। उन्हींकी कृपासे तुम्हारे पुण्यात्मा पतिदेव सामने आ सकेंगे ॥ ५२ ॥ तुम्हारे द्वारा

ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च ॥ ४७ ॥ पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैवाक्षिपद्विभुः ॥ तां विसृज्य च भूतेषु विपापः पाकशासनः ॥ ४८ ॥ विज्वरः समभूद्भूयः कालाकांक्षी स्थितो जले ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां पद्मनाले व्यतिष्ठत ॥ ४९ ॥ देवास्तु निर्गताः स्थाने कृत्वा कार्यं तदद्भुतम् ॥ पौलोमी तु गुरुं प्राह दुःखिता विरहाकुला ॥५०॥ कृतयज्ञोऽपि मे भर्ता किमदृश्यः पुरंदरः ॥ कथं द्रक्ष्ये प्रियं स्वामिंस्तमुपायं वदस्व मे ॥ ५१ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ त्वमाराधय पौलोमि देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ दर्शयिष्यति ते नाथं देवी विगतकल्मषम् ॥ ५२ ॥ आराधिता जगद्धात्री नहुषं वारयिष्यति ॥ मोहयित्वा नृपं स्थानात्पातयिष्यति चांबिका ॥ ५३ ॥ इत्युक्ता सा तदा तेन पुलोमतनया नृप ॥ जग्राह मंत्रं विधिवद्गुरोर्देव्याः ससाधनम् ॥ ५४ ॥ विद्यां प्राप्य गुरोर्देवी देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ सम्यगाराधयामास बलिपुष्पार्चनैः शुभैः ॥ ५५ ॥ त्यक्तान्यभोगसंभारा तापसीवेषधारिणी ॥ चकार पूजनं देव्याः प्रियदर्शनलालसा ॥ ५६ ॥ कालेन कियता तुष्टा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ सौम्यरूपधरा देवी वरदा हंसवाहिनी ॥ ५७ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशा चंद्रकोटिसुशीतला ॥ विद्युत्कोटिसमानाभा चतुर्वेदसमन्विता ॥ ५८ ॥ पाशांकुशाभयवरान्दधती निजबाहुभिः ॥

सुपूजित होनेपर भगवती जगदम्बा नहुषकी शक्ति कुण्ठित कर देंगी। अम्बिकाके प्रयाससे मोहित होकर वह नरेश इन्द्रपदसे च्युत हो जायगा ॥ ५३ ॥ हे राजन्! बृहस्पतिजीके यह कहनेपर इन्द्राणीने उनसे मंत्रका पूर्ण ज्ञान प्रप्त कर लिया और पूजनकी विधियाँ भी समझ लीं ॥५४॥ यों गुरुके अनुग्रहसे मंत्रका ज्ञान हो जानेपर शचीने बलि-पुष्प आदिके द्वारा भगवती भुवनेश्वरीकी सम्यक् प्रकारसे आराधना आरम्भ कर दी ॥५५॥ उस समय इन्द्राणी पूर्ण तपस्विनी बन गयी थीं। उन्होंने विभिन्न प्रकारके समस्त भोग त्याग दिये थे। अपने प्राणनाथके दर्शनकी लालसासे देवीपूजनमें ही उनका सारा समय व्यतीत होने लगा ॥५६॥ कुछ दिनोंतक आराधना करनेके पश्चात् भगवती जगदम्बा प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने इन्द्राणीको साक्षात् दर्शन दिया। वर देनेके लिए पधारी हुई देवीका रूप बड़ा ही मनोहर था। वे हंसपर विराजमान थीं ॥५७॥ उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान तेज फैल रहा था। उनमें इतनी शीतलता थी, मानो करोड़ों चंद्रमा उदित हों। करोड़ों बिजलियोंके एक साथ चमकनेके समान उनके शरीरसे चमचमाहट निकल रही थी। उन्हें चारों वेद पूर्ण अभ्यस्त थे ॥५८॥ उनकी भुजाएँ पाश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अङ्कुश और अभयमुद्रासे शोभित थीं। उन्होंने मोतीका स्वच्छ हार पहन रखा था, जिसकी लम्बाई पैरोंतक थी ॥ ५९ ॥ उनका मुख मुसकानसे भरा था। तीन नेत्र मस्तककी शोभा बढ़ा रहे थे। ब्रह्मासे लेकर कीटतक जितने प्राणी हैं, उन सबकी जननी कहलानेका सौभाग्य एकमात्र उन्हींको प्राप्त है। वे करुणारूपी अमृतकी अगाध समुद्र हैं ॥ ६० ॥ अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंपर उन परमेश्वरीका नियन्त्रण रहता है। उनमें अनन्त सौम्य रस भरे पड़े हैं। ६१ ॥ जो सबकी स्वामिनी, सर्वज्ञ, कूटस्थ एवं अक्षरमयी हैं। वे भगवती जगदम्बा प्रसन्न होकर अत्यन्त हर्ष प्रकट करती हुई मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें इन्द्राणीसे कहने लगीं। देवीने कहा—सुंदर कटिभागसे शोभा पानेवाली हे इन्द्रप्रिये! अपना अभिलषित वर माँगो ॥६२॥६३॥ मैं प्रसन्नतापूर्वक देनेके लिए तैयार हूँ। क्योंकि तुमने सम्यक् प्रकारसे मेरी आराधना की है। तुम्हें वर देनेके लिए ही मेरा यहाँ आना हुआ है। मैं सुगमतासे किसीके सामने प्रकट नहीं होती ॥६४॥ अनन्त कोटि जन्मोंके पुण्य संचित होनेपर ही प्राणी मेरे दर्शनका अधिकारी होता है। उस समय इन्द्राणी भगवती जगदम्बाके सामने हाथ जोड़े खड़ी

आपादलंबिनीं स्वच्छां मुक्तामालां च बिभ्रती ॥५९॥ प्रसन्नस्मेरवदना लोचनत्रयभूषिता ॥ आब्रह्मकीटजननी करुणामृतसागरा ॥ ६० ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडनायिका परमेश्वरी ॥ सौम्यानंतरसैर्युक्तस्तनद्वयविराजिता ॥ ६१ ॥ सर्वेश्वरी च सर्वज्ञा कूटस्थाऽक्षररूपिणी ॥ तामुवाच प्रसन्ना सा शक्रपत्नीं कृतोद्यमाम् ॥ ६२ ॥ मेघगंभीरशब्देन मुदमाददती भृशम् ॥ देव्युवाच ॥ परं वरय सुश्रोणि वांछितं शक्रवल्लभे ॥ ६३ ॥ ददाम्यद्य प्रसन्नाऽस्मि पूजिता सुभृशं त्वया ॥ वरदाऽहं समायाता दर्शनं सहजं न मे ॥ ६४ ॥ अनेककोटिजन्मोत्थपुण्यपुंजैर्हि लभ्यते ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी तामाह प्रणतां पुरः ॥ ६५ ॥ शक्रपत्नीं भगवतीं प्रसन्नां परमेश्वरीम् ॥ वांछामि दर्शनं मातः पत्युः परमदुर्लभम् ॥ ६६ ॥ नहुषाद्भयनाशं च स्वपदप्रापणं तथा ॥ देव्युवाच ॥ गच्छ त्वमनया दूत्या सार्द्धं श्रीमानसं सरः ॥ ६७ ॥ यत्र मे मूर्तिरचला विश्वकामाभिधा मता ॥ तत्र द्रक्ष्यसि शक्रं त्वं दुःखितं भयविह्वलम् ॥ ६८ ॥ मोहयिष्यामि राजानं कालेन कियता पुनः ॥ स्वस्था भव विशालाक्षि करोमि तव चेप्सितम् ॥ ६९ ॥ भ्रंशयिष्यामि भूपालं मोहितं त्रिदशासनात् ॥ व्यास उवाच ॥ देवीदूती तां गृहीत्वा शक्रपत्नीं त्वरान्विता ॥ ७० ॥ प्रापयामास

थीं। देवीके आज्ञा देनेपर अत्यन्त प्रसन्न होकर विराजमान उन परमेश्वरीसे इन्द्राणीने कहा–'हे माता! मेरे पतिदेवका दर्शन मुझे परम दुर्लभ हो गया है। मैं उसीको प्राप्त करना चाहती हूँ। साथ ही पापी नहुषसे मुझे तनिक भी भय न रहे और मुझको पूर्ववत् अपना स्थान प्राप्त हो जाय।' देवीने कहा–तुम मेरी इस दूतीके साथ मानसरोवर जाओ ॥६५–६७॥ जहाँ मेरी एक अचल मूर्ति प्रतिष्ठित है। मेरी उस मूर्तिको लोग 'विश्वकामा' कहते हैं। वहाँ इन्द्रसे तुम्हारी भेंट हो जायगी। इस समय वे भयसे घबराकर महान् दुःखका अनुभव कर रहे हैं ॥६८॥ हे विशालाक्षी! कुछ ही समयके बाद मैं राजा नहुषको मोहित करनेकी व्यवस्था करूँगी। अब तुम स्वस्थ हो जाओ। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेको मैं सचेष्ट हूँ ॥ ६९ ॥ मेरे प्रयाससे मोहित होकर राजा नहुष शीघ्र इन्द्रासनसे च्युत हो जायगा। व्यासजी बोले–हे राजन्! तदनन्तर भगवती जगदम्बाकी एक दूती इन्द्राणीको साथ लेकर तुरंत उनके पतिदेवके पास पहुँच गयी। वहाँ शचीने पतिदेवका साक्षात्कार किया। भगवती परमेश्वरीका वह विग्रह भी उन्हें दृष्टिगोचर हुआ। उस समय वहीं देवराज छिपकर कालक्षेप कर रहे थे। इन्द्राणीके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनमें बहुत दिनोंसे पतिदेवके दर्शनकी लालसा थी। सो वह अभीष्ट कार्य सिद्ध हो गया, इससे इन्द्राणी प्रसन्नतासे गद्गद हो गयीं ॥ ७० ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(नहुषका पतन) व्यासजी बोले–हे राजन्! विशाल नेत्रवाली इन्द्राणीका हृदय चिंतासे भरा था। ऐसी अपनी प्राणप्रियाको सामने उपस्थित देखकर इन्द्र आश्चय प्रकट करते हुए उनसे कहने लगे–॥ १ ॥ प्रिये! तुम यहाँ कैसे आ गयीं? मैं यहाँ हूँ–यह रहस्य तुम्हें कैसे मालूम हो गया? हे शुभानने! मेरे यहाँ रहनेकी बात जाननेमें सभी प्राणी असमर्थ हैं ॥ २ ॥ शचीने कहा–प्रभो! इस समय भगवती जगदम्बाके कृपाप्रासादसे मुझे आपकी जानकारी प्राप्त हुई है। हे देवेश्वर! उन्हींकी कृपाके सहारे मैं आपके पास आ सकी हूँ ॥ ३ ॥ देवताओं और मुनियोंने नहुष नामधारी एक राजर्षिको आपके स्थानपर नियुक्त कर दिया है। उसके द्वारा मैं अत्यन्त कष्ट पा रही हूँ ॥ ४ ॥ हे बलार्दन! वह नीच मुझसे कहता है—

सान्निध्यं स्वपत्युः परमेश्वरीम् ॥ सा दृष्ट्वा तं पतिं बाला सुरेशं गुप्तसंस्थितम् ॥ मुदिताऽभूद्वरं वीक्ष्य बहुकालाभिवांछितम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे शक्रदर्शनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तां वीक्ष्य विपुलापांगीं रहः शोकसमन्विताम् ॥ आखण्डलः प्रियां भार्यां विस्मितश्चाब्रवीत्तदा ॥ १ ॥ कथमत्रागता कान्ते कथं ज्ञातस्त्वया ह्यहम् ॥ दुर्ज्ञेयः सर्वभूतानां संस्थितोऽस्मि शुभानने ॥ २ ॥ शच्युवाच ॥ देव देव्याः प्रसादेन ज्ञातोऽस्यद्य भवानिह ॥ पुनस्तस्याः प्रसादेन प्राप्ताऽस्मि त्वां दिवस्पते ॥३॥ नहुषो नाम राजर्षिः स्थापितो भवदासने ॥ त्रिदशैर्मुनिभिश्चैव स मां बाधति नित्यशः ॥ ४ ॥ पतिं मां कुरु चार्वंगि तुरासाहं सुराधिपम् ॥ एवं वदति मां पाप्मा किं करोमि बलार्दन ॥ ५ ॥ इन्द्र उवाच ॥ कालाकांक्षी वरारोहे संस्थितोऽस्मि यदृच्छया ॥ तथा त्वमपि कल्याणि सुस्थिरं स्वमनः कुरु ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता तेन सा देवी पतिनाऽतिप्रशंसिना ॥ निःश्वसंत्याह तं शक्रं वेपमानाऽतिदुःखिता ॥ ७ ॥ कथं तिष्ठे महाभाग पापात्मा मां वशानुगाम् ॥ करिष्यति मदोन्मत्तो वरदानेन गर्वितः ॥ ८ ॥ देवाश्च मुनयः सर्वे मामूचुस्तद्भयाकुलाः ॥ तं भजस्व वरारोहे देवराजं स्मरातुरम् ॥ ९ ॥ बृहस्पतिस्तु शत्रुघ्न वाडवो बलवर्जितः ॥ कथं मां रक्षितुं शक्तो भवेदे-

'हे सुंदरी! तुम मुझे पतिरूपमें स्वीकार कर लो। मैं ही देवताओंका अध्यक्ष इन्द्र हूँ।' हे पतिदेव! अब मैं क्या करूँ? ॥५॥ इन्द्रने कहा–हे वरारोहे! हे कल्याणी! जैसे अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करते हुए मैं यहाँ टिका हुआ हूँ, वैसे ही तुम भी अपने मनमें धैर्य रखकर कालक्षेप करो ॥६॥ व्यासजी बोले–हे राजन्! परम आदरणीय पतिदेवके यों कहनेपर भी इन्द्राणीके मनका सन्ताप दूर नहीं हुआ। काँपती तथा लम्बी साँस खींचती हुई वे इन्द्रसे कहने लगीं–॥ ७ ॥ हे महाभाग! मैं कैसे रहूँ? नहुष अत्यन्त दुराचारी है। वह मुझे अवश्य अपने वशमें कर लेगा। वर पा जानेसे वह अभिमानसे प्रमत्त रहता है। अब इस आपत्तिकालमें पतिहीन रहकर मैं कैसे समय व्यतीत करूँगी? ॥ ८ ॥ उससे भयभीत देवताओं और मुनियोंने मुझसे कहा—हे सुन्दरी! उस कामातुर नवीन इन्द्रको तुम अपना पति बना लो ॥ ९ ॥ हे शत्रुनाशन! निर्बल ब्राह्मण बृहस्पति मुझे कैसे नहुषके चंगुलसे बचा सकेंगे? क्योंकि वे भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवताओंके वशीभूत हैं ॥१०॥ हे विभो ! मुझे यही चिंता है कि मैं नारी हूँ और आपकी वशवर्तिनी हूँ। विधाताके विपरीत होनेपर असहाय दशामें मैं क्या करूँगी ? ॥ ११ ॥ मैं कोई कुलटा स्त्री न होकर रात-दिन तुम्हारा ही ध्यान करनेवाली पतिव्रता नारी हूँ। कोई भी तो ऐसा नहीं है कि जो मुझ दुखियारीकी रक्षा करे ॥१२॥ इन्द्र बोले—हे वरानने ! मैं तुम्हें उपाय बताता हूँ, उसे करो। तभी इस दुःखप्रद समयमें तुम्हारे शीलकी रक्षा हो सकेगी ॥ १३ ॥ अन्य किसीके द्वारा रक्षित होकर स्त्री करोड़ों उपाय करनेपर भी अपने पातिव्रत धर्मकी रक्षा नहीं कर सकती। क्योंकि उसका चंचल चित्त बड़ी जल्दी डोल जाता है ॥ १४ ॥ एकमात्र शील ही नारीको पापसे बचाता है। अतएव तुम शीलका अवलम्बन करके धैर्य धारण करो ॥१५॥ राजा नहुष बड़ा पापी है। वह जब बलपूर्वक तुम्हें प्राप्त करनेकी चेष्टा करे, तब प्रतिज्ञा करवाकर उसको धोखेमें डाल देना ॥१६॥ हे मदालसे ! तुम एकान्तमें नहुषके पास जाकर

वानुगः सदा ॥ १० ॥ तस्माच्चिंताऽस्ति महती नार्यहं वशवर्तिनी ॥ अनाथा किं करिष्यामि विपरीते विधौ विभो ॥ ११ ॥ नार्यस्म्यहं न कुलटा त्वच्चिन्ताऽतिपतिव्रता ॥ नास्ति मे शरणं तत्र यो मां रक्षति दुःखिताम् ॥ १२ ॥ इन्द्र उवाच ॥ उपायं प्रब्रवीम्यद्य तं कुरुष्व वरानने ॥ शीलं ते दुःखिते काले परित्राणं भविष्यति ॥ १३ ॥ परेण रक्षिता नारी न भवेच्च पतिव्रता ॥ उपायैः कोटिभिः कामं भिन्नचित्ताऽतिचंचला ॥ १४ ॥ शीलमेव हि नारीणां सदा रक्षति पापतः ॥ तस्मात्त्वं शीलमास्थाय स्थिरा भव शुचिस्मिते ॥ १५ ॥ यदा त्वां नहुषो राजा बलादाकर्षयेत्खलः ॥ तदा त्वं समयं कृत्वा गुप्तं वंचय भूपतिम् ॥ १६ ॥ एकान्ते तत्समीपे त्वं गत्वा वद मदालसे ॥ ऋषियानेन दिव्येन मामुपैहि जगत्पते ॥ १७ ॥ एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति मे व्रतम् ॥ इति तं वद सुश्रोणि तदा तु परिमोहितः ॥ १८ ॥ कामांधः स मुनीन् याने योजयिष्यति पार्थिवः ॥ अवश्यं तापसो भूपं शापदग्धं करिष्यति ॥ १९ ॥ साहाय्यं जगदंबा ते करिष्यति न संशयः ॥ जगदंबापदस्मर्तुः संकटं न कदाचन ॥ २० ॥ यदि जायेत तच्चापि ज्ञेयं तत्स्वस्तये किल ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मणिद्वीपाधिवासिनीम् ॥ २१ ॥ भज त्वं भुवनेशानीं गुरुवाक्यानुसारतः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याख्याता शची तेन जगाम नहुषं प्रति ॥ २२ ॥ तथेत्युक्त्वाऽतिविश्वस्ता भाविकार्ये कृतो-

कहना—हे जगत्प्रभो ! आप ऐसी दिव्य सवारीसे पधारकर एकान्तमें मुझे स्वीकार कीजिए, जिसे ऋषि ढोते हों ॥ १७ ॥ ऐसा होनेपर मैं प्रसन्नतापूर्वक आपके वशमें हो जाऊँगी, मैं ऐसा प्रण कर चुकी हूँ।' तब उस कामान्ध नरेश द्वारा मुनिलोग पालकी ढोनेके कामपर नियुक्त किये जायँगे। ऐसी स्थितिमें यह निश्चित है कि उन तपस्वियोंके शापसे नहुष जलकर भस्म हो जायगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस कार्यमें भगवती जगदम्बा तुम्हारी सहायता करेंगी। भगवती जगदम्बाका स्मरण करनेवाला प्राणी कभी भी संकटमें नहीं पड़ सकता ॥ २० ॥ तथापि यदि कभी कोई दुःखदायी प्रसंग सामने आ जाय तो यही समझना कि इसमें भी हमारा कल्याण ही होना है। अतएव तुम मणिपर्वतपर विराजमान रहनेवाली भगवती भुवनेश्वरीकी सम्यक् प्रकारसे आराधनामें तत्पर हो जाओ और बृहस्पतिजीके कथनानुसार उनका पूजन करती रहो। व्यासजी बोले—हे राजन् ! इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर शची नहुषके पास चली गयी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ २१ ॥ २२ ॥ अत्यन्त आत्मविश्वासके साथ वह जब अपना कार्य साधनेके लिए पहुँची । इससे नहुष बहुत प्रसन्न होकर कहने लगा–। २३॥ हे कामिनी ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ । तुमने अपनी बात निभायी है । अतएव मैं तुम्हारा दास हो गया हूँ ॥ २४ ॥ हे मितभाषिणी ! जो तुम स्वेच्छासे आ गयीं । इससे मैं प्रसन्न हूँ । अब लज्जा त्याग करके मेरी सेवा करो ॥ २५ ॥ हे विशालाक्षि ! अपना कोई प्रिय कार्य बताओ, जिसे मैं करूँ । तब देवराजके कथनानुसार वे नहुषसे बोलीं—इन्द्रके वेषमें विराजनेवाले हे राजन् ! तुम्हारे कृपाप्रसादसे मेरे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो गये हैं ॥ २६ ॥ परन्तु हे देव ! तुम बड़े शक्तिशाली पुरुष हो । मेरे मनमें एक मनोरथ छिपा हुआ है, उसे सुनो । हे राजन् ! मेरी यह अभिलाषा पूर्ण कर दो । तब मैं तुम्हारे अधीन रहना स्वीकार कर लूँगी ॥ २७ ॥ नहुषने कहा–'हे चन्द्रवदनी ! तुम अपना वह कार्य बतलाओ । तुम्हारा मनोरथ सिद्ध करनेके लिए मैं अभी तैयार हूँ ॥ २८॥ हे सुभ्रु ! तुम मुझे बता भर दो, मैं परम दुर्लभ वस्तु भी तुम्हारे लिए सुलभ कर दूँगा ।' शचीने कहा–राजेन्द्र ! मैं कैसे कहूँ, क्योंकि तुम्हारे प्रति मेरे मनमें अभी पूरा

द्यमा ॥ नहुषस्तां समालोक्य मुदितो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥ स्वागतं सत्यवचनैस्त्वदधीनोऽस्मि कामिनि ॥ दासोऽहं तव सत्येन पालितं वचनं त्वया ॥ २४ ॥ यदागता समीपे मे तुष्टोऽस्मि मितभाषिणि ॥ न च व्रीडा त्वया कार्या भक्तं मां भज सुस्मिते ॥ २५ ॥ कार्यं वद विशालाक्षि करिष्यामि तव प्रियम् ॥ शच्युवाच ॥ सर्वं कृतं त्वया कार्यं मम कृत्रिमवासव ॥ २६ ॥ मनोरथोऽस्ति मे देव शृणु चित्तेऽधुना विभो ॥ वांछितं कुरु कल्याण त्वद्वशाऽहमतः परम् ॥ २७ ॥ ब्रवीमि मानसोत्साहं त्वं तं कर्तुमिहार्हसि ॥ नहुष उवाच ॥ कार्यं त्वं ब्रूहि चन्द्रास्ये करोमि तव वांछितम् ॥ २८ ॥ अलभ्यमपि दास्यामि तुभ्यं सुभ्रु वदस्व माम् ॥ शच्युवाच ॥ कथं ब्रवीमि राजेंद्र प्रत्ययो नास्ति मे तव ॥ २९ ॥ शपथं कुरु राजेन्द्र यत्करोमि प्रियं तव ॥ राजानः सत्यवचसो दुर्लभा एव भूतले ॥ ३० ॥ पश्चाद्ब्रवीम्यहं राजञ्ज्ञात्वा सत्येन यंत्रितम् ॥ कृते चेद्वांछिते भूप सदा ते वशवर्तिनी ॥ ३१ ॥ भविष्यामि तुराषाड् वै सत्यमेतद्वचो मम ॥ नहुष उवाच ॥ अवश्यमेव कर्तव्यं वचनं तव सुंदरि ॥ ३२ ॥ शपामि सुकृतेनाहं यज्ञदानकृतेन वै ॥ शच्युवाच ॥ इन्द्रस्य हरयो वाहा गजश्चैव रथस्तथा ॥ ३३ ॥ गरुडो वासुदेवस्य यमस्य महिषस्तथा ॥ वृषभः शंकरस्यापि ब्रह्मणो वरटापतिः ॥ ३४ ॥ मयूरः कार्तिकेयस्य गजास्यस्य तु मूषकः ॥ इच्छाम्यहमपूर्वं वै वाहनं ते सुराधिप ॥ ३५ ॥ यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नासुराणां न

विश्वास नहीं है । हे राजन् ! संसारमें सत्यवादी राजा दुर्लभ होते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ अतएव तुम प्रतिज्ञा करके सत्यके बन्धनमें बँध जाओ, तभी मैं अपना अभिप्राय व्यक्त करूँगी । हे राजन् ! यदि तुम्हारे द्वारा मेरी साध पूर्ण हो गयी तो मैं सदाके लिए तुम्हारी दासी बन जाऊँगी । यह मैं सत्य कह रही हूँ । नहुषने कहा–हे सुन्दरी ! मैं तुम्हारे वचनका पालन अवश्य करूँगा–इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ यदि मैं तुम्हारी बातोंका अनादर करूँ तो आजतक यज्ञ और दानके फलस्वरूप मेरा जो संचित पुण्य है, वह सब नष्ट हो जाय । शचीने कहा–हे राजन् ! हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहन इंद्रकी सवारीमें काम आते हैं ॥ ३३ ॥ विष्णुके गरुड़, यमराजके महिष, शंकरके वृषभ और ब्रह्माके हंस वाहन हैं ॥ ३४ ॥ कार्तिकेय मोरपर तथा गणेश चूहेपर चढ़कर यात्रा करते हैं । हे सुराधिप ! मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा वाहन इन सभी वाहनोंसे विलक्षण हो ॥ ३५ ॥ तुम्हारा वाहन वह होना चाहिए, जो आजतक विष्णु,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रुद्र तथा असुरों और राक्षसोंके लिए भी अलभ्य रहा हो। हे महाराज! मैं चाहती हूँ कि अपने व्रतपर अटल रहनेवाले प्रधान-प्रधान मुनिगण तुम्हारी पालकी ढोयें। हे राजन्! ये सभी मुनि सवारीमें जोत दिये जायँ। बस, यही मेरा मनोरथ है। क्योंकि हे नरेन्द्र! मेरी समझसे तुम्हारी प्रभुता सब देवताओंसे बढ़-चढ़कर है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ऐसा करनेसे तुम्हारा तेज निखर उठेगा। व्यासजी बोले—हे राजन्! शची देवीकी उक्त बातें सुनकर वह प्रचण्ड मूर्ख नहुष हँस पड़ा ॥ ३८ ॥ क्योंकि महामायाके प्रभावसे उसकी बुद्धि मारी जा चुकी थी। उसने तुरन्त इन्द्राणीकी प्रशंसा करते हुए कहा ॥ ३९ ॥ नहुषने कहा—हे सुन्दरी! तुमने बहुत ठीक कहा है। मुझे भी यही सवारी पसन्द है। मैं सम्यक् प्रकारसे तुम्हारे कथनका पालन करूँगा ॥४०॥ जिसमें थोड़ा पराक्रम हो, वह भले ही मुनियोंको सवारी ढोनेके काममें न लगा सके। किन्तु मैं तो ऐसा नहीं हूँ। अतः हे शुचिस्मिते! मैं उसी सवारीपर चढ़कर तुम्हारे पास आऊँगा ॥ ४१ ॥ मुझमें तपस्याका अपार बल है। मैं त्रिलोकीभरमें सबसे अधिक सामर्थ्य रखता हूँ। मेरे विषयमें यह जानकारी प्राप्त हो जानेपर सब देवता तथा

रक्षसाम् ॥ वहंतु त्वां महाराज मुनयः शंसितव्रताः ॥ ३६ ॥ सर्वे शिबिकया राजन्नेतद्धि मम वांछितम् ॥ सर्वदेवाधिकं त्वां वै जानामि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥ तेन ते तेजसो वृद्धिं वांछाम्यहमतंद्रिता ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानदुर्बलः ॥ ३८ ॥ मोहितस्तु महादेव्या कृतं मोहेन तत्क्षणम् ॥ उवाच वचनं भूपः संस्तुवन्वासवप्रियाम् ॥ ३९ ॥ नहुष उवाच ॥ सत्यमुक्तं त्वया तन्वि वाहनं रुचिरं मम ॥ करिष्यामि सुकेशांते वचनं तव सर्वथा ॥ ४० ॥ न ह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान्कुरुते मुनीन् ॥ अहमारुह्य यानेन त्वामेष्यामि शुचिस्मिते ॥ ४१ ॥ सप्तर्षयो मां वक्ष्यंति सर्वे देवर्षयस्तथा ॥ समर्थं त्रिषु लोकेषु ज्ञात्वा मां तपसाऽधिकम् ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तां सुसंतुष्टो विससर्ज हरिप्रियाम् ॥ मुनीनाहूय सर्वांस्तानित्युवाच स्मरान्वितः ॥ ४३ ॥ नहुष उवाच॥ अहमिन्द्रोऽद्य भो विप्राः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥ कार्यमत्र प्रकुर्वन्तु भवंतो विगतस्मयाः ॥ ४४ ॥ इन्द्रासनं मया प्राप्तं नेंद्राणी मामुपैति च ॥ आकारिता च मां ब्रूते प्रेमपूर्वमिदं वचः ॥ ४५ ॥ मुनियानेन देवेंद्र मामुपैहि सुराधिप ॥ देवदेव महाराज मत्प्रियं कुरु मानद ॥ ४६ ॥ एतत्कार्यं मुनिश्रेष्ठा ममात्यंतं दुरासदम् ॥ भवद्भिस्तु प्रकर्तव्यं सर्वथैव दयालुभिः ॥ ४७ ॥ मनो दहति मे कामः शक्रपत्न्यां प्रवर्तितम् ॥ भवंतः शरणं मेऽद्य कुरुध्वं कार्यमद्भुतम् ॥ ४८ ॥ अगस्तिप्रमुखास्तस्य श्रुत्वा

सप्तर्षिगण मेरी प्रशंसा करेंगे ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार वार्तालाप करनेके पश्चात् उस परम सन्तुष्ट नहुषने शचीको अपने स्थानपर जानेकी आज्ञा दे दी। वह कामान्ध व्यग्र हो रहा था। सो उसने समस्त मुनियोंको बुलाकर उनके सामने अपनी बात रख दी ॥४३॥ नहुषने कहा—हे विप्रो! अब इन्द्र कहलानेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है। मेरे पास सारी शक्तियाँ हैं तो इस अवसरपर आपलोग प्रसन्नतापूर्वक मेरे कार्यसाधनमें तत्पर हो जायँ ॥ ४४ ॥ इन्द्रका आसन मुझे मिल चुका है, परन्तु इन्द्राणी अभी मेरे पास नहीं आ सकी है। उसका कहना है— ॥४५॥ 'हे देवेन्द्र! मुनिगण जिस सवारीको ढोयें, उसपर चढ़कर आप मुझे पानेके लिए पधारिये' ॥४६॥ हे आदर्णीय मुनियों! मेरा यह कार्य अत्यन्त कठिन है। पर आप लोग बड़े दयालु हैं। शचीके लिए मेरा मन निरन्तर सन्तप्त रहता है। इस अवसरपर मेरे परम आश्रय केवल आप ही हैं। अतः इस महान् कार्यको सम्पन्न करनेकी अवश्य कृपा करें ॥४७॥४८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे राजन् ! उन श्रेष्ठ ऋषियोंमें अगस्त्यजी प्रमुख थे। कृपालु होनेके कारण अथवा होनहारवश नहुषकी यह खोटी बात सुनकर वे वैसा ही करनेके लिए सहमत हो गये ॥४९॥ जब उन तत्त्वदर्शी मुनियोंने इंद्राणीपर आसक्त उस नरेशकी बात स्वीकार कर ली, तब तो उसके हर्षकी सीमा नहीं रही ॥५०॥ वह तुरंत एक परम मनोहर पालकीपर बैठा और दिव्य मुनियोंको उसे ढोनेके लिए नियुक्त करके 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'चलो-चलो' यों कहने लगा ॥ ५१ ॥ उस समय कामातुर हो जानेसे नहुषकी बुद्धि मारी जा चुकी थी। उसने अगस्त्यजीके मस्तकपर अपने पैरसे मार दिया। लोपामुद्राके प्राणपति अगस्त्यजी परम श्रेष्ठ तपस्वी माने जाते थे ॥ ५२ ॥ वातापी नामका राक्षस उनका भक्ष्य बन चुका था। एक बार वे समुद्रको पी गये थे। पापी नहुषने ऐसे सुयोग्य अगस्त्यजीपर कोड़े भी चला दिये ॥५३॥ इन्द्राणीके चिन्तनमें अत्यन्त व्याकुल उस नरेशके मुखसे मुनियोंके प्रति 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'चलो-चलो' यह शब्द बारम्बार

वाक्यमसत्करम् ॥ अंगीचक्रुश्च भावित्वात्कृपया परमर्षयः ॥ ४९ ॥ अंगीकृतेऽथ तद्वाक्ये मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ मुदं प्राप नृपः कामं पौलोमी-
कृतमानसः ॥ ५० ॥ आरुह्य शिबिकां रम्यां संस्थितस्त्वरयाऽन्वितः ॥ वाहान्कृत्वा मुनीन्दिव्यान्सर्प सर्पेति चाब्रवीत् ॥ ५१ ॥ कामार्तः सोऽस्पृ-
शन्मूढः पादेन मुनिमस्तकम् ॥ अगस्तिं तापसश्रेष्ठं लोपामुद्रापतिं तदा ॥ ५२ ॥ वातापिभक्षकर्तारं समुद्रस्यापि शोषकम् ॥ कशया ताडया-
मास पंचबाणशराहतः ॥ ५३ ॥ इन्द्राणीहृतचित्तोऽसौ सर्पेति प्रब्रुवन्मुनिम् ॥ तं शशाप मुनिः क्रुद्धः कशाघातमनुस्मरन् ॥ ५४ ॥ सर्पो भव
दुराचार वने घोरवपुर्महान् ॥ बहुवर्षसहस्राणि तत्र क्लेशो महान्भवेत् ॥ ५५ ॥ विचरिष्यसि वीर्येण पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ दृष्ट्वा युधिष्ठिरं नाम
तव मोक्षो भविष्यति ॥ ५६ ॥ प्रश्नानामुत्तरं श्रुत्वा धर्मपुत्रमुखात्ततः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं शप्तः स राजर्षिः स्तुत्वा तं मुनिसत्तमम् ॥ ५७ ॥
स्वर्गात्पपात सहसा सर्परूपधरोऽभवत् ॥ बृहस्पतिस्ततो गत्वा तरसा मानसं प्रति ॥ ५८ ॥ इन्द्राय सर्ववृत्तांतं कथयामास विस्तरात् ॥ तच्छ्रुत्वा
मघवा राज्ञः स्वर्गात्प्रच्यवनादिकम् ॥ ५९ ॥ मुदितोऽभून्महाराज स्थितस्तत्रैव वासवः ॥ देवाश्च मुनयो दृष्ट्वा नहुषं पतितं भुवि ॥ ६० ॥ जग्मुः
सर्वेऽपि तत्रैव यत्रेंद्रः सरसि स्थितः ॥ तमाश्वास्य सुराः सर्वे मुनिभिः सहितास्तदा ॥ ६१ ॥ स्वर्गं समानयामासुर्मानपूर्वं शचीपतिम् ॥ समागतं

निकल रहे थे। फिर तो अगस्त्यजीने कोड़ेकी मारसे कुपित होकर नहुषको शाप दे दिया ॥ ५४ ॥ वे बोले—अरे नीच ! तू वनमें भयंकर शरीरवाला महान् सर्प बन जा। उस सर्पयोनिमें अनेक हजार वर्षों तक तुझे अपार कष्ट भोगने पड़ेंगे ॥ ५५ ॥ तू शक्तिसम्पन्न होकर वनमें विचरेगा। धर्मके अंशसे युधिष्ठिर नामके एक पुण्यात्मा पुरुष प्रकट होंगे। उनसे तेरी भेंट होगी। तब उनके मुखसे प्रश्नोंके उत्तर सुन लेनेके पश्चात् तू शापमुक्त हो जायगा।' व्यासजी बोले—इस प्रकार मुनिवर अगस्त्यजीके शाप देनेपर राजर्षि नहुषने उनकी स्तुति की ॥५६॥५७॥ तुरन्त ही उसकी आकृति सर्पके समाम बन गयी और वह स्वर्गसे गिर पड़ा। तदनन्तर बृहस्पतिजी बड़ी शीघ्रताके साथ मानसरोवर गये और उन्होंने वहाँके सब समाचार विस्तारपूर्वक इंद्रको सुना दिये। नहुष स्वर्गसे गिर गया इत्यादि बातें सुनकर देवराजके मनमें प्रसन्नता छा गयी। हे राजन् ! नहुष अब धरातलपर चला गया—यह देखकर सब देवता भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुनियोंसहित उसी मानसरोवरपर इन्द्रके पास गये और आश्वासन देकर उन्होंने इन्द्रको स्वर्ग ले आनेकी व्यवस्था की। उनके द्वारा प्राप्त बड़े सम्मानके साथ इन्द्र स्वर्ग लौट आये। इसके बाद देवताओं और मुनियोंने उन्हें आसनपर विराजमान करके मङ्गल-अभिषेक किया। इन्द्र भी अब अपने आसनके अधिकारी बनकर शचीके साथ स्वर्गमें रहने लगे ॥ ५८–६३ ॥ व्यासजी बोले–हे राजन्! इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महामुनि विश्वरूप असुरको मारकर इन्द्रको अत्यन्त भयंकर कष्ट सहने पड़े थे। फिर भगवती जगदम्बाके कृपाप्रसादसे इन्द्र पुनः अपने स्थानपर प्रतिष्ठित हुए ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हे राजन्! वृत्रासुरके वधसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी कथायें मैं सुना चुका। तुमने जिस विषयमें प्रश्न किया है, वह कथा बड़ी ही विलक्षण है ॥ ६६ ॥ जो जैसा कर्म करता है, उसके सामने वैसे फल आते हैं। क्योंकि अपने किये हुए शुभ अथवा अशुभ कर्मका फल भोगना प्राणियोंके लिए अनिवार्य है। इसे कोई टाल नहीं सकता ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

ततः शक्रं सर्वे ते मुनयः सुराः ॥ ६२ ॥ स्थापयित्वाऽऽसने पश्चादभिषेकं दधुः शिवम् ॥ इन्द्रोऽपि स्वासनं प्राप्य शच्या सह सुरालये ॥ ६३ ॥ चिक्रीड नंदने रम्ये कानने प्रेमयुक्तया ॥ व्यास उवाच ॥ एवमिंद्रेण संप्राप्तं दुःखं परमदारुणम् ॥ ६४ ॥ हत्वाऽसुरं कामरूपं विश्वरूपं महामुनिम् ॥ पुनर्देव्याः प्रसादेन स्वस्थानं प्राप्तवान्नृप ॥ ६५ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वृत्रासुरवधाश्रयम् ॥ यत्पृष्टोऽहं त्वया राजन्कथानकमनुत्तमम् ॥ ६६ ॥ यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात् ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे नहुषस्य स्वर्गात्पतनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

जनमेजय उवाच ॥ कथितं चरितं ब्रह्मञ्छक्रस्याद्भुतकर्मणः ॥ स्थानभ्रंशस्तथा दुःखप्राप्तिरुक्ता विशेषतः ॥ १ ॥ यत्र देवाधिदेव्याश्च महिमाऽतीव वर्णितः ॥ संदेहोऽत्र ममाप्यस्ति यच्छक्रोऽपि महातपाः ॥ २ ॥ देवाधिपत्यमासाद्य दुःसहं दुःखमन्वभूत् ॥ मखानां तु शतं कृत्वा प्राप्तं स्थानमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ देवेशत्वं च संप्राप्य भ्रष्टः स्थानादसौ कथम् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व कारणं करुणानिधे ॥ ४ ॥ सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ पुराणानां प्रवर्तकः ॥ नावाच्यं महतां किञ्चिच्छिष्ये च श्रद्धयाऽन्विते ॥ ५ ॥ तस्मात्कुरु महाभाग मत्संदेहापनोदनम् ॥ सूत उवाच ॥ इति

(विविध कर्म और युगधर्म) राजा जनमेजयने पूछा–हे ब्रह्मन्! आपने अद्भुत कर्म करनेवाले इन्द्रकी कथा सुनायी। इन्द्र अपने स्थानके अनधिकारी हो गये थे और उन्हें भी कष्ट भोगना पड़ा था–इसका विशेष रूपसे विवेचन किया है ॥ १ ॥ उसी प्रसंगमें देवताओंपर नियंत्रण रखनेवाली भगवती जगदम्बाकी महिमा भी वर्णित हुई है। परन्तु अब मुझे यह सन्देह हो रहा है कि महान् तपस्वी एवं देवराजके पदपर प्रतिष्ठित होते हुए भी इन्द्र दुःसह दुःखके चपेटमें कैसे पड़े? सौ अश्वमेध यज्ञ करनेके पश्चात् उन्हें वह आसन प्राप्त हुआ था ॥२॥३॥ सभी देवता उनका अनुशासन मानते थे। फिर अपने स्थानसे वे कैसे च्युत हो गये? हे करुणानिधे! आप इसका सम्पूर्ण कारण बतलानेकी कृपा करें ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आप सर्वज्ञ तथा पुराणोंके रचयिता हैं। महापुरुष लोग श्रद्धालु शिष्यको ज्ञानदान देते समय कोई भी बात अकथनीय नहीं समझते ॥ ५ ॥ अतएव आप मेरा सन्देह निवृत्त कर दीजिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूतजी कहते हैं—हे शौनकादि ऋषियो! जब राजा जनमेजयने सत्यवतीनन्दन व्यासजीसे यों पूछा, तब वे बड़ी प्रसन्नताके साथ क्रमशः उनके प्रश्नोंका उत्तर देने लगे। व्यासजी बोले—हे राजेन्द्र! मैं इसका परम अद्भुत कारण बताता हूँ, सुनो ॥ ६ ॥ ७ ॥ तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने संचित, वर्तमान और प्रारब्धके भेदसे कर्मकी तीन गतियाँ बतलायी हैं ॥ ८ ॥ अनेक जन्मोंसे संचय किये हुए पुराने कर्मको 'संचित' कर्म कहते हैं। फिर वे कर्म भी तीन प्रकारके होते हैं—सात्त्विक, राजस और तामस ॥ ९ ॥ हे राजन्! बहुत समयसे संचित किया हुआ शुभ तथा अशुभ कर्म वर्तमान जन्ममें पुण्य एवं पापके रूपमें सामने आता है। उसे भोगनेमें प्राणी परवश है, उन्हें अवश्य भोगना पड़ता है ॥१०॥ प्रत्येक जन्ममें प्राणियों द्वारा कर्मका संचय होता रहता है। उन्हें भोगे बिना करोड़ कल्पमें भी उनका नाश नहीं होता ॥ ११ ॥ जो क्रियमाण कर्म है, उसीको 'वर्तमान' कर्म कहते हैं। देहधारी जीव शुभ अथवा अशुभ कर्ममें प्रवृत्त हो जाते हैं। शरीर धारण कर लेनेपर कालकी प्रेरणासे कर्मके क्रम चालू हो जाते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रारब्धकर्म उसे समझना चाहिए, जिसका फल भोग लेनेपर फिर कुछ

पृष्टः स राज्ञा वै तदा सत्यवतीसुतः ॥६॥ तमाहातिप्रसन्नात्मा यथानुक्रममुत्तरम् ॥व्यास उवाच ॥ निबोध नृपतिश्रेष्ठ कारणं परमाद्भुतम् ॥ ७॥
कर्मणस्तु त्रिधा प्रोक्ता गतिस्तत्त्वविदां वरैः॥ संचितं वर्तमानं च प्रारब्धमिति भेदतः॥ ८ ॥ अनेकजन्मसंजातं प्राक्तनं संचितं स्मृतम् ॥
सात्त्विकं राजसं कर्म तामसं त्रिविधं पुनः ॥ ९ ॥ शुभं वाऽप्यशुभं भूप संचितं बहुकालिकम् ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं सुकृतं दुष्कृतं तथा ॥ १० ॥
जन्मजन्मनि जीवानां संचितानां च कर्मणाम् ॥ निःशेषस्तु क्षयो नाभूत्कल्पकोटिशतैरपि ॥ ११ ॥ क्रियमाणं च यत्कर्म वर्तमानं तदुच्यते ॥
देहं प्राप्य शुभं वाऽपि ह्यशुभं वा समाचरेत् ॥ १२॥ संचितानां पुनर्मध्यात्समाहृत्य कियान्किल ॥ देहारंभे च समये कालः प्रेरयतीव तत् ॥ १३ ॥
प्रारब्धं कर्म विज्ञेयं भोगात्तस्य क्षयः स्मृतः ॥ प्राणिभिः खलु भोक्तव्यं प्रारब्धं नात्र संशयः॥ १४॥ पुरा कृतानि राजेन्द्र ह्यशुभानि शुभानि च॥
अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चयः ॥ १५ ॥ देवैर्मनुष्यैरसुरैर्यक्षगंधर्वकिन्नरैः ॥ कर्मैव हि महाराज देहारंभस्य कारणम् ॥ १६ ॥ कर्मक्षये
जन्मनाशः प्राणिनां नात्र संशयः ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र इन्द्राद्याश्च सुरास्तथा ॥ १७ ॥ दानवा यक्षगंधर्वाः सर्वे कर्मवशाः किल ॥ अन्यथा
देहसंबंधः कथं भवति भूपते ॥ १८ ॥ कारणं यस्तु भोगस्य देहिनः सुखदुःखयोः ॥ तस्मादनेकजन्मोत्थसंचितानां च कर्मणाम् ॥ १९ ॥ मध्ये

शेष नहीं रह जाता। प्राणियोंको प्रारब्धकर्म अवश्य भोगना पड़ता है—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १४ ॥ हे राजेन्द्र! यह बिल्कुल निश्चित है कि पूर्वजन्ममें किये गये जितने अच्छे और बुरे कर्म हैं, उनके फल वर्तमान जन्ममें सामने आते हैं। उन्हें भोगना प्राणियोंके लिए अनिवार्य हो जाता है ॥ १५ ॥ हे महाराज! मनुष्य, देवता, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और किंनर सबके सब कर्मभोगमें परवश हैं। देह धारण करनेमें कर्म ही मुख्य कारण है ॥ १६ ॥ कर्मके पूर्णतया समाप्त हो जानेपर प्राणियोंके जन्मकी गति समाप्त हो जाती है। इस विषयमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं करना चाहिए। हे राजन्! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादि देवता, दानव, यक्ष और गन्धर्व ये सबके सब कर्मके अधीन रहते हैं। यदि ऐसा न होता तो ये लोग देह ही क्यों धारण करते ? ॥ १७ ॥ १८ ॥ प्राणी जीवनमें जो सुख और दुःख भोगता है, इसमें पूर्वजन्मकृत कर्मजनित प्रारब्ध ही कारण है ॥ १९ ॥ इससे यह सिद्ध होता है कि अनेक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जन्मोंमें संचित जितने कर्म हैं, उनमेंसे क्रमशः एक-एक कर्मका भोग प्राणीके सामने समयानुसार आया ही करता है । यही नियम देवताओंके लिए भी है । प्रारब्धके इसी नियमके अनुसार इन्द्रको कष्ट भोगने पड़े ॥ २० ॥ हे राजन् ! नर और नारायण ये दोनों धर्मके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार ले चुके हैं । भगवान् नारायणके वे अंश हैं । उन्हींका श्रीकृष्ण और अर्जुनके रूपमें जन्म हुआ है । मुनिगण इस पौराणिक कथाका विवेचन कर चुके हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ जिसमें अधिक शक्ति हो, उसे किसी देवताका अंश समझना चाहिए । जो ऋषि नहीं होता, वह काव्यकी रचना नहीं कर सकता और अरुद्र रुद्रकी अर्चना नहीं करता ॥२३॥ जो देवांश नहीं होता, वह अन्नदान नहीं देता । जो विष्णु नहीं होता, वह राजा नहीं हो सकता । इन्द्र, अग्नि, यम, विष्णु और कुबेरसे क्रमशः प्रभुत्व, प्रभाव, कोप एवं पराक्रम प्राप्त करके ही शरीर बनता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ जगत्में जो कोई भी बलवान्, भाग्यवान्, भोगवान्, विद्वान् अथवा दानशील होता है, उसे लोग देवताका अंश कहते हैं ॥२६॥ हे राजन् ! यही बात पाण्डवोंके विषयमें कही गयी है । साक्षात् नारायणके समान दीप्तिमान् श्रीकृष्ण भी देवांश

वेगः समायाति कस्यचित्कालपाकतः ॥ तत्प्रारब्धवशात्पुण्यं करोति च यथा तथा ॥ २० ॥ पापं करोति मनुजस्तथा देवादयोऽपि च ॥ तथा नारायणो राजन्नरश्च धर्मजावुभौ ॥ २१ ॥ जातौ कृष्णार्जुनौ काममंशौ नारायणस्य तौ ॥ पुराणे पीठिकेयं वै मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ २२ ॥ देवांशः स तु विज्ञेयो यो भवेद्विभवाधिकः ॥ नानृषिः कुरुते काव्यं नारुद्रो रुद्रमर्चते ॥ २३ ॥ नादेवांशो ददात्यन्नं नाविष्णुः पृथिवीपतिः ॥ इन्द्रादग्नेर्यमाद्विष्णोर्धनदादिति भूपते ॥ २४ ॥ प्रभुत्वं च प्रभावं च कोपं चैव पराक्रमम् ॥ आदाय क्रियते नूनं शरीरमिति निश्चयः ॥ २५ ॥ यः कश्चिद्बलवाँल्लोके भाग्यवानथ भोगवान् ॥ विद्यावान्दानवान्वाऽपि स देवांशः प्रपठ्यते ॥ २६ ॥ तथैवैते मयाख्याताः पांडवाः पृथिवीपते ॥ देवांशो वासुदेवोऽपि नारायणसमद्युतिः ॥ २७ ॥ शरीरं प्राणिनां नूनं भाजनं सुखदुःखयोः ॥ शरीरी प्राप्नुयात्कामं सुखं दुःखमनन्तरम् ॥ २८ ॥ देही नास्ति वशः कोऽपि दैवाधीनः सदैव हि ॥ जननं मरणं दुःखं सुखं प्राप्नोति चावशः ॥२९॥ पांडवास्ते वने जाताः प्राप्तास्तु स्वगृहं पुनः ॥ स्वबाहुबलतः पश्चाद्राजसूयं क्रतूत्तमम् ॥ ३० ॥ वनवासं पुनः प्राप्ता बहुदुःखकरं परम् ॥ अर्जुनेन तपस्तप्तं दुष्करं ह्यजितेन्द्रियैः ॥ ३१ ॥ संतुष्टैस्तु सुरैर्दत्तं वरदानं पुनः शुभम् ॥ नरदेहकृतं पुण्यं क्व गतं वनवासजम् ॥ ३२ ॥ नरदेहे तपस्तप्तं चोग्रं बदरिकाश्रमे ॥ नार्जुनस्य शरीरे तत्फलदं

थे ॥२७॥ केवल सुख और दुःख भोगनेके लिए ही प्राणियोंको देह धारण करना पड़ता है । शरीर पाकर सुख और दुःखके पचड़ेसे प्राणी कभी नहीं बच सकता ॥ २८ ॥ कोई भी प्राणी स्वतन्त्र नहीं है । प्रायः प्रतिक्षण दैव अपना शासन जमाये रहता है । अतः पराधीन प्राणी जन्मने और मरनेके सुख एवं दुःख भोगते रहते हैं ॥ २९ ॥ यह दैवका ही प्रभाव है कि पाण्डव वनवासी हुए थे । फिर उन्हें घरपर रहनेका सुअवसर प्राप्त हुआ । इसके बाद उन्होंने अपनी भुजाओंके बलसे राजसूय यज्ञ किया, जो सम्पूर्ण यज्ञोंमें श्रेष्ठ माना जाता है । फिर वनमें जानेकी समस्या सामने आ गयी । उस समय उन्हें अपार कष्ट झेलने पड़े । वहाँ अर्जुनने ऐसा कठोर तप किया, जो अजितेन्द्रियोंके लिए दुष्कर था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस तपसे देवता सन्तुष्ट हुए और उन्होंने अर्जुनको कल्याणकारी वरदान दिया । अब यह बतलाइए कि 'नर'के रूपमें उन्होंने जो पुण्य संचित किया था और वनवासके समय जो पुण्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया था—वे दोनों पुण्य अब कहाँ चले गये ? ॥ ३२ ॥ पूर्व समयमें 'नर' नामक धर्म-तनय होकर उन्होंने बदरिकाश्रममें जो उग्र तपस्या की थी, वह अर्जुनके शरीरमें फलदायक नहीं सिद्ध हुई ॥३३॥ इससे यह स्पष्ट है कि प्राणियोंके देहसम्बन्धी कर्मकी गति नहीं जानी जा सकती। जब देवता भी कर्मकी गति नहीं जान पाते, तब साधारण मनुष्यकी बात ही क्या है ? ॥ ३४ ॥ स्वयं नारायण कृष्ण जेलखानेकी तंग जगहमें पैदा हुए। जहाँसे वसुदेव उन्हें गोकुलमें नन्दगोपके यहाँ पहुँचा आये ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! गोकुलमें वे ग्यारह वर्षकी अवस्था तक रहे। फिर मथुरामें आकर उन्होंने उग्रसेन-तनय कंसको बलपूर्वक मारा ॥३६॥ बादमें अत्यन्त दुःखित माता-पिता देवकी और वसुदेवको बंधनसे छुड़ाकर मथुरापुरीका राज्य उग्रसेनको दिया ॥३७॥ फिर म्लेच्छराज कालयवनके भयसे वे द्वारकापुरी चले गये। दैवके वशीभूत होकर कृष्णने अपने पुरुषार्थका प्रदर्शन किया ॥३८॥ द्वारकामें जनार्दन कृष्णने अनेक अलौकिक चरित्र किये। फिर प्रभासतीर्थमें देह त्यागकर वे कुटुम्बके साथ स्वर्ग चले गये ॥ ३९ ॥ प्रभासतीर्थमें विप्रके शापसे यादव वीर अपने पुत्र, पौत्र, मित्र, भाई, बहन

संबभूव ह ॥ ३३ ॥ प्राणिनां देहसंबंधे गहना कर्मणो गतिः ॥ दुर्ज्ञेया सर्वथा दैवैर्मानवानां तु का कथा ॥ ३४ ॥ वासुदेवोऽपि संजातः कारा-
गारेऽतिसङ्कटे ॥ नीतोऽसौ वासुदेवेन नंदगोपस्य गोकुलम् ॥ ३५ ॥ एकादशैव वर्षाणि संस्थितस्तत्र भारत ॥ पुनः स मथुरां गत्वा जघानोग्रसुतं
बलात् ॥ ३६ ॥ मोचयामास पितरौ बंधनाद्भृशदुःखितौ ॥ उग्रसेनं च राजानं चकार मथुरापुरे ॥ ३७ ॥ जगाम द्वारवत्यां स म्लेच्छराजभया-
त्पुनः ॥ सर्वं भाविवशात्कृष्णः कृतवान्पौरुषं महत् ॥ ३८ ॥ कृत्वा कार्याण्यनेकानि द्वारवत्यां जनार्दनः ॥ देहं त्यक्त्वा प्रभासे तु सकुटुंबो दिवं
गतः ॥ ३९ ॥ पुत्राः पौत्राश्च सुहृदो भ्रातरो जामयस्तथा ॥ प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः ॥ ४० ॥ एवं ते कथिता राजन्कर्मणो
गहना गतिः ॥ वासुदेवोऽपि व्याधस्य बाणेन निधनं गतः ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
॥ जनमेजय उवाच ॥ भारावतारणार्थाय कथितं जन्म कृष्णयोः ॥ संशयोऽयं द्विजश्रेष्ठ हृदये मम तिष्ठति ॥ १ ॥ पृथिवी गोस्वरूपेण
ब्रह्माणं शरणं गता ॥ द्वापरान्तेऽतिदीनाऽऽर्ता गुरुभारप्रपीडिता ॥ २ ॥ वेधसा प्रार्थितो विष्णुः कमलापतिरीश्वरः ॥ भूभारोत्तारणार्थाय साधूनां
रक्षणाय च॥३॥ भगवान्भारते खंडे देवैः सह जनार्दनः॥ अवतारं गृहाणाशु वसुदेवगृहे विभो ॥ ४ ॥ एवं संप्रार्थितो धात्रा भगवान्देवकीसुतः ॥

आदिके साथ नष्ट हो गये ॥ ४० ॥ स्वयं भगवान् कृष्णको भी व्याधके बाणसे मरकर परलोक जाना पड़ा। हे जनमेजय ! इस तरह मैंने आपके समक्ष कर्मकी गहन गतिका विवेचन किया ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(युगधर्म) जनमेजय बोले—हे व्यासजी ! आपने कहा कि पृथिवीका भार उतारनेके लिए राम और कृष्णका जन्म हुआ था। लेकिन मेरे चित्तमें एक शंका है ॥ १ ॥ वह यह कि द्वापर युगके अन्तमें अत्यन्त दीन तथा आतुर हो और भारी बोझसे दबी हुई पृथिवी गौका स्वरूप धारण करके ब्रह्माजीकी शरणमें गयी ॥२॥ तब ब्रह्माजीने भूमिका भार उतारने तथा साधु जनोंकी प्राणरक्षाके लिए कमलापति विष्णुसे प्रार्थना करते हुए कहा—॥ ३ ॥ हे भगवन् ! हे विभो ! आप भारतवर्षमें वसुदेवके घर देवताओंके साथ तुरन्त अवतार लीजिए ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब विधाताने इस तरह भगवानसे प्रार्थना की तो पृथिवीका बोझ उतारनेके लिए बलरामके साथ देवकीके पुत्ररूपमें उन्होंने जन्म लिया ॥५॥ तदनन्तर दुराचारी एवं अत्याचारी अनेक राजाओंको मारकर उन्होंने पृथ्वीका कितना भार उतारा ? ॥ ६ ॥ इसी प्रसंगमें भीष्मपितामह मारे गये, द्रोणाचार्यका वध हुआ, विराटका नाश हुआ, द्रुपद मरे, बाह्लीक, सोमदत्त, कर्ण तथा वैकर्तन आदि राजे मारे गये ॥ ७ ॥ लेकिन जिन्होंने राज्यका खजाना लूट लिया और कृष्णकी रानियोंका अपहरण किया, वे दुष्ट क्यों नहीं मारे गये ? वे पृथिवीतलपर क्यों छोड़ दिये गये ? जब आभीर, शक, म्लेच्छ और निषाद आदि जातिके करोड़ों विदेशी भारतवर्षमें रह गये, तब राजनीति-विशारद कृष्णने पृथ्वीका भार उतारा ? ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! इस कलियुगमें जितने प्रजाजन हैं, वे सब पापकर्ममें लगे हुए हैं । इन्हें देखकर सन्देह चित्तसे किसी प्रकार दूर नहीं होने आता ॥ १० ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! जैसा युग होता है, वैसी ही प्रजा

बभूव सह रामेण भूभारोत्तारणाय वै ॥ ५ ॥ कियानुत्तारितो भारो हत्वा दुष्टाननेकशः ॥ ज्ञात्वा सर्वान्दुराचारान्पापबुद्धिनृपानिह ॥ ६ ॥ हतो भीष्मो हतो द्रोणो विराटो द्रुपदस्तथा ॥ बाह्लीकः सोमदत्तश्च कर्णो वैकर्तनस्तथा ॥ ७ ॥ यैर्लुंठितं धनं सर्वं हृताश्च हरियोषितः ॥ कथं न नाशिता दुष्टा ये स्थिताः पृथिवीतले ॥ ८ ॥ आभीराश्च शका म्लेच्छा निषादाः कोटिशस्तथा ॥ भारावतरणं किं तत्कृतं कृष्णेन धीमता ॥ ९ ॥ संदेहोऽयं महाभाग न निवर्तति चित्ततः ॥ कलावस्मिन्प्रजाः सर्वाः पश्यतः पापनिश्चयाः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ राजन् यस्मिन्युगे यादृक्प्रजा भवति कालतः ॥ नान्यथा तद्भवेन्नूनं युगधर्मोऽत्र कारणम् ॥ ११ ॥ ये धर्मरसिका जीवास्ते वै सत्ययुगेऽभवन् ॥ धर्मार्थरसिका ये तु ते वै त्रेतायुगेऽभवन् ॥ १२ ॥ धर्मार्थकामरसिका द्वापरे चाभवन्युगे ॥ अर्थकामपराः सर्वे कलावस्मिन्भवंति हि ॥ १३ ॥ युगधर्मस्तु राजेन्द्र न याति व्यत्ययं पुनः ॥ कालः कर्तास्ति धर्मस्य ह्यधर्मस्य च वै पुनः ॥ १४ ॥ राजोवाच ॥ ये तु सत्ययुगे जीवा भवंति धर्मतत्पराः ॥ कुत्र तेऽद्य महाभाग तिष्ठंति पुण्यभागिनः ॥ १५ ॥ त्रेतायुगे द्वापरे वा ये दानव्रतकारकाः ॥ वर्तन्ते मुनयः श्रेष्ठाःकुत्र ब्रूहि पितामह ॥ १६ ॥ कलावद्य दुराचारा येऽत्र सन्ति गतत्रपाः ॥ आद्ये युगे क्व यास्यंति पापिष्ठा देवनिन्दकाः ॥ १७ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥ सर्वथा श्रोतुकामोऽस्मि यदेतद्धर्मनिर्णयम् ॥ १८ ॥

होती है । इसमें 'युगधर्म' ही मुख्य कारण होता है ॥ ११ ॥ सत्ययुगमें प्रजा धर्म-परायण होती है । त्रेतायुगमें 'धर्म'के साथ-साथ 'अर्थ' कमानेवाली प्रजा होती है ॥ १२ ॥ द्वापर युगमें धर्म, अर्थ और कामकी लोलुप प्रजा उत्पन्न होती है । लेकिन इस कलियुगमें तो सभी लोग एकमात्र 'अर्थ' और 'काम'के ही चक्करमें पड़े रहते हैं ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र ! युगधर्मका प्रभाव नहीं बदलता । काल ही कभी धर्म और कभी अधर्मकी ओर लोगोंको प्रेरित करता है ॥ १४ ॥ राजा जनमेजयने कहा—हे महाभाग ! सत्ययुगमें जो धर्मपरायण लोग हुए थे, वे पुण्यात्मा जीव इस समय कहाँ हैं ? ॥ १५ ॥ हे पितामह ! त्रेता और द्वापर युगके दानी और नियमव्रत करनेवाले मुनि लोग इस युगमें कहाँ चले गये हैं ? ॥ १६ ॥ इस कलियुगमें जो दुराचारी और निर्लज्ज लोग आज विद्यमान हैं, वे देवनिन्दक पापी सत्ययुगमें कहाँ जायँगे ? ॥ १७ ॥ हे महामति ! मैं धर्म-निर्णयकी बातें सुनना चाहता हूँ । इसलिए आप इसके हर अंगों-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर प्रकाश डालते हुए विस्तारके साथ बतलाइए ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! इस धरतीपर जो लोग सत्ययुगमें उत्पन्न होते हैं, वे पुण्यकर्म करके देवलोक चले जाते हैं ॥१९॥ हे नृपश्रेष्ठ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने वर्णाश्रमधर्ममें संलग्न रहनेवाले प्राणी अपने-अपने कर्मसे अर्जित लोकोंमें चले जाते हैं ॥२०॥ सत्य, दया, दान, केवल अपनी पत्नीसे विषय-भोग, समस्त प्राणिमात्रसे वैर न रखना और जीवमात्रको समदृष्टिसे देखना ये साधारण धर्म हैं। इनका आचरण करके सत्ययुगमें धर्मके बलसे धोबी आदि अन्त्यज वर्णके लोग भी स्वर्ग चले जाते हैं ॥२१।२२॥ हे महाराज! इसी तरह त्रेता युग और द्वापर युगमें लोग अपने वर्णाश्रमधर्मका पालन करके स्वर्ग लोकको जाते हैं। किन्तु कलियुगके मनुष्य पापका आचरण करके नरकगामी होते हैं ॥ २३ ॥ वे लोग युगकी समाप्ति तक नरकमें ही रहते हैं। उसके बाद भूतलके नरलोकमें उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥ हे राजन्! जब कलियुगका अन्त और सत्ययुगका आरम्भ होता है तो स्वर्गलोकके पुण्यवान् प्राणी मनुष्यरूपमें धरतीपर जन्म लेते हैं ॥ २५ ॥ जब द्वापर युगका अन्त और कलियुग आरम्भ होता है, तब

व्यास उवाच ॥ ये वै कृतयुगे राजन्संभवंतीह मानवाः॥ कृत्वा ते पुण्यकर्माणि देवलोकान्व्रजंति वै ॥१९॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम ॥ स्वधर्मनिरता यांति लोकान्कर्मार्जिजितान्किल ॥ २० ॥ सत्यं दया तथा दानं स्वदारगमनं तथा॥ अद्रोहः सर्वभूतेषु समता सर्वजन्तुषु ॥ २१ ॥ एतत्साधारणं धर्मं कृत्वा सत्ययुगे पुनः ॥ स्वर्गं यांतीतरे वर्णा धर्मतो रजकादयः ॥ २२ ॥ तथा त्रेतायुगे राजन्द्वापरेऽथ युगे तथा ॥ कलावस्मिन्युगे पापा नरकं यांति मानवाः ॥ २३ ॥ तावत्तिष्ठन्ति ते तत्र यावत्स्याद्युगपर्ययः ॥ पुनश्च मानुषे लोके भवन्ति भुवि मानवः ॥ २४ ॥ यदा सत्ययुगस्यादिः कलेरंतश्च पार्थिव ॥ तदा स्वर्गात्पुण्यकृतो जायन्ते किल मानवाः ॥२५॥ यदा कलियुगस्यादिर्द्वापरस्य क्षयस्तथा ॥ नरकात्पापिनः सर्वे भवन्ति भुवि मानवाः ॥ २६ ॥ एवं कालसमाचारो नान्यथाऽभूत्कदाचन ॥ तस्मात्कलिरसत्कर्ता तस्मिंस्तु तादृशी प्रजा ॥ २७ ॥ कदाचिद्दैवयोगात्तु प्राणिनां व्यत्ययो भवेत् ॥ कलौ ये साधवः केचिद्द्वापरे संभवन्ति ते ॥ २८ ॥ तथा त्रेतायुगे केचित्केचित्सत्ययुगे तथा ॥ दुष्टाः सत्ययुगे ये तु ते भवन्ति कलावपि ॥ २९ ॥ कृतकर्मप्रभावेण प्राप्नुवंत्यसुखानि च ॥ पुनश्च तादृशं कर्म कुर्वंति युगभावतः ॥ ३० ॥ जनमेजय उवाच ॥ युगधर्मान्महाभाग ब्रूहि सर्वानशेषतः ॥ यस्मिन्वै यादृशो धर्मो ज्ञातुमिच्छामि तं तथा ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ निबोध नृपशार्दूल

नरकके पापी भूतलपर मानवरूपमें जन्म लेते हैं ॥ २६ ॥ इस तरह युगके अनुरूप सारा आचार होता है, उसके विपरीत आचार-विचार कभी नहीं पाया जाता। प्रायः कलियुग असत्की ओर अग्रसर होता है, इसी लिए इस युगमें प्रजाजन भी पापाचारी होते हैं ॥ २७ ॥ दैवयोगसे कभी-कभी इन प्राणियोंके जन्म लेनेमें व्यतिक्रम भी हो सकता है। कलियुगमें जो सदाचारी होते हैं, वे द्वापरके मनुष्य होते हैं ॥२८॥ इसी प्रकार सत्कार्य करके द्वापरके मनुष्य त्रेतामें और त्रेताके मनुष्य सत्ययुगमें जन्म लेते हैं। लेकिन सत्ययुगके दुराचारी कलियुगके मनुष्य होते हैं ॥२९॥ वे अपने किये हुए कर्मके प्रभावसे दुःख भोगते हैं। फिर भी युगके प्रभावसे वे पाप ही करते हैं ॥३०॥ जनमेजय बोले—हे भाग्यशालिन्! आप भलीभाँति युगधर्मोंका वर्णन करिए और बताइए कि किस युगमें कैसा धर्म होता है? मैं इसे जानना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! अब मैं युगधर्मका वर्णन करता हूँ। युगधर्मके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रभावसे सत्पुरुषोंका चित्त भी चक्करमें पड़ जाता है। हे राजेन्द्र! आपके पिता परीक्षित महात्मा और धर्मके ज्ञाता थे। लेकिन कलिने उनकी बुद्धि ब्राह्मणका अपमान करनेकी ओर प्रेरित कर दी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वैसे तो वे क्षत्रिय राजा थे और राजर्षि ययातिके कुलमें जनमे थे। तब उन्होंने एक तपस्वीके गलेमें मरा हुआ साँप क्यों डाला? ॥ ३४ ॥ हे राजन्! विद्वज्जन इसे युगका ही प्रभाव समझें। इसलिए धर्म-कर्ममें विशेष सावधानी रखनी चाहिए ॥ ३५ ॥ हे राजन्! सत्ययुगमें ब्राह्मण वेदके ज्ञाता होते थे और देवीके दर्शनकी लालसासे परा शक्तिकी पूजा करते थे ॥ ३६ ॥ वे गायत्री और प्रणवमन्त्रमें अनुराग रखते थे, गायत्रीका ध्यान करते थे, गायत्री मन्त्रका जप करते थे और एकमात्र मायाबीजके जपमें संलग्न रहते थे ॥ ३७ ॥ वे गाँव-गाँवमें जगदम्बाका मन्दिर बनवाते थे। सत्यता, पवित्रता और दया आदि दैवी गुणोंसे युक्त होकर वे सदा अपने कर्ममें लगे रहते थे ॥ ३८ ॥ क्षत्रिय

दृष्टांतं ते ब्रवीम्यहम् ॥ साधूनामपि चेतांसि युगभावाद्भ्रमंति हि ॥ ३२ ॥ पितुर्यथा ते राजेन्द्र बुद्धिर्विप्रावहेलने ॥ कृता वै कलिना राजन्धर्मज्ञस्य महात्मनः ॥ ३३ ॥ अन्यथा क्षत्रियो राजा ययातिकुलसंभवः ॥ तापसस्य गले सर्पं मृतं कस्मादयोजयत् ॥ ३४ ॥ सर्वं युगबलं राजन्वेदितव्यं विजानता ॥ प्रयत्नेन हि कर्तव्यं धर्मकर्म विशेषतः ॥३५॥ नूनं सत्ययुगे राजन्ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ पराशक्त्यर्चनरता देवीदर्शनलालसाः ॥३६॥ गायत्रीप्रणवासक्ता गायत्रीध्यानकारिणः ॥ गायत्रीजपसंसक्ता मायाबीजैकजापिनः ॥ ३७ ॥ ग्रामे ग्रामे पराम्बायाः प्रासादकरणोत्सुकाः ॥ स्वकर्मनिरताः सर्वे सत्यशौचदयान्विताः ॥ ३८ ॥ त्रय्युक्तकर्मनिरतास्तत्त्वज्ञानविशारदाः ॥ अभवन्क्षत्रियास्तत्र प्रजाभरणतत्पराः ॥ ३९ ॥ वैश्यास्तु कृषिवाणिज्यगोसेवानिरतास्तथा ॥ शूद्राः सेवापरास्तत्र पुण्ये सत्ययुगे नृप ॥ ४० ॥ परांबापूजनासक्ताः सर्वे वर्णाः परे युगे ॥ तथा त्रेतायुगे किंचिन्न्यूना धर्मस्य संस्थितिः ॥ ४१ ॥ द्वापरे च विशेषेण न्यूना सत्ययुगस्थितिः ॥ पूर्वं ये राक्षसा राजँस्ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ४२ ॥ पाखंडनिरताः प्रायो भवन्ति जनवंचकाः ॥ असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः ॥४३॥ दांभिका लोकचतुरा मानिनो वेदवर्जिताः ॥ शूद्रसेवापराः केचिन्नानाधर्मप्रवर्तकाः ॥४४॥ वेदनिन्दाकराः क्रूरा धर्मभ्रष्टातिवादुकाः ॥ यथा यथा कलिर्वृद्धिं याति राजँस्तथा तथा ॥४५॥ धर्मस्य सत्यमूलस्य

लोग प्रजाका पालन करते हुए वेदत्रयीविहित कर्म करते थे और परम तत्त्वज्ञानी होते थे ॥ ३९ ॥ वैश्य लोग खेती, व्यापार और गोसेवा करते थे। शूद्र तीनों वर्णोंकी सेवा करते थे। हे राजन्! उस पवित्र सत्ययुगमें सभी वर्णके लोग परा शक्तिकी पूजा करते थे। त्रेतायुगमें सत्ययुगकी अपेक्षा धर्मकी मर्यादा कुछ कम हो गयी ॥४०॥४१॥ द्वापरमें सत्ययुगकी अपेक्षा धर्मकी मर्यादामें विशेष रूपसे कमी आयी। हे राजन्! पूर्व समयके राक्षस कलियुगमें ब्राह्मण हुए हैं ॥ ४२ ॥ वे तरह तरहके पाखण्ड फैलाकर जनताको ठगते हैं, झूठ बोलते हैं और वैदिक धर्मसे दूर रहते हैं ॥ ४३ ॥ वे ढोंगी होते हैं, लोगोंके बीच चतुराईकी बात कहते-सुनते हैं, वे बड़े अभिमानी होते हैं, वेदाध्ययन त्याग देते हैं, शूद्रोंकी सेवा करते हैं और तरह तरहके सम्प्रदाय चलाते हैं ॥ ४४ ॥ वे वेदकी निन्दा करते हैं। वे क्रूर, हिंसक, धर्मभ्रष्ट और बकवादी होते हैं। हे राजन्! जैसे-जैसे कलि (पाप) की वृद्धि होती जाती है, वैसे वैसे सत्यमूलक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्मका विनाश होता जाता है। ब्राह्मणोंकी ही तरह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी अधार्मिक बन जाते हैं, ॥४५॥४६॥ कलियुगमें लोग बड़े झूठे और पापी होते हैं। ब्राह्मण शूद्रोंके धर्मके अनुसार चलते हैं और दान लेनेमें बड़े निपुण होते हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन्! ज्यों-ज्यों कलियुगका प्रभाव बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी होती जायँगी। उनकी काम-वासना, लोभ और मोह बराबर बढ़ता जायगा ॥ ४८ ॥ वे दुराचारिणी होंगी, बात-बातमें झूठ बोलेंगी और समाजके लिए क्लेशकारिणी होंगी। हे राजन्! वे अपने पतिको ठगेंगी और नित्य धार्मिक विषयपर भाषण देनेमें निपुण होंगी ॥४९॥ हे राजन्! आहारकी शुद्धिसे ही अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। जब अन्तःकरण शुद्ध होता है, तभी उसमें धर्मका प्रकाश फैलता है। वर्णाश्रमके आचार-विचारमें अन्तर पड़नेसे धर्ममें व्यतिक्रम आ जाता है ॥५०॥५१॥ धर्ममें गड़बड़ी होनेसे वर्णसंकरता फैलती है। हे भूप! इस तरह कलियुगमें समस्त धर्मके लोप हो जानेसे अपने-अपने वर्णाश्रम धर्मकी चर्चा भी कहीं नहीं सुनाई देती। हे राजन्! बड़े-बड़े धर्मके ज्ञाता और महान् पुरुष भी कलियुगमें अधर्म करने लग जाते हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यह

क्षयः सर्वात्मना भवेत् ॥ तथैव क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च धर्मवर्जिताः ॥ ४६ ॥ असत्यवादिनः पापास्तथा वर्णेतराः कलौ ॥ शूद्रधर्मरता विप्राः प्रतिग्रहपरायणाः ॥ ४७ ॥ भविष्यंति कलौ राजन्युगे वृद्धिं गताः किल ॥ कामचाराः स्त्रियः कामलोभमोहसमन्विताः ॥ ४८ ॥ पापा मिथ्याभिवादिन्यः सदा क्लेशरता नृप ॥ स्वभर्तृवंचका नित्यं धर्मभाषणपंडिताः ॥ ४९ ॥ भवंत्येवंविधा नार्यः पापिष्ठाश्च कलौ युगे ॥ आहारशुद्धया नृपते चित्तशुद्धिस्तु जायते ॥ ५० ॥ शुद्धे चित्ते प्रकाशः स्याद्धर्मस्य नृपसत्तम ॥ वृत्तसंकरदोषेण जायते धर्मसंकरः ॥ ५१ ॥ धर्मस्य संकरे जाते नूनं स्याद्वर्णसंकरः ॥ एवं कलियुगे भूप सर्वधर्मविवर्जिते ॥५२॥ स्ववर्णधर्मवार्तैषा न कुत्राप्युपलभ्यते ॥ महांतोऽपि च धर्मज्ञा अधर्मं कुर्वते नृप ॥५३॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥५५॥ कलावधर्मबहुले नराणां का गतिर्भवेत् ॥ यद्यस्ति तदुपायश्चेद्दयया तं वदस्व मे ॥५६॥ व्यास उवाच॥ एक एव महाराज तत्रोपायोऽस्ति नापरः ॥ सर्वदोषनिरासार्थं ध्यायेद्देवीपदांबुजम् ॥५७॥ न संत्यघानि तावंति यावती शक्तिरस्ति हि ॥ नाम्नि देव्याः पापदाहे तस्माद्भीतिः कुतो नृप ॥५८॥ अवशेनापि यन्नाम लीलयोच्चारितं यदि ॥ किं किं ददाति तज्ज्ञातुं समर्था न हरादयः ॥५९॥ प्रायश्चित्तं तु कलिस्वभाव एवैष परिहार्यो न केनचित् ॥ तस्मादत्र मनुष्याणां स्वभावात्पापकर्मणाम् ॥५४॥ निष्कृतिर्न हि राजेन्द्र समान्योपायतो भवेत् ॥

कलिका स्वभाव ही है, इसका प्रतीकार नहीं किया जा सकता। हे राजेन्द्र! कलियुगमें मनुष्योंके पापी स्वभावके कारण साधारण उपायसे उनके पाप नहीं छूट सकते। राजा जनमेजय बोले—हे भगवन्! हे समस्त धर्मोंके ज्ञाता! हे सम्पूर्ण शास्त्रोंके विज्ञ! इस अधर्मविशिष्ट कलियुगमें मनुष्योंकी क्या गति होगी? यदि उनके निस्तारका कोई उपाय हो तो दया करके मुझे बतलाइए ॥५४–५६॥ व्यासजी बोले—हे महाराज! इस कलियुगमें पापसे बचावका केवल एक ही उपाय है, सो यह कि समस्त दोषोंको दूर करनेके लिए देवीके चरणकमलकी आराधना की जाय ॥५७॥ हे महाराज! महामायाके पापदाहक नाममें जितनी पापनाशिनी शक्ति है, उतने पाप इस संसारमें हैं ही नहीं। इसलिए डरनेका कोई कारण नहीं है ॥५८॥ कोई अशक्त व्यक्ति भी अनायास भगवतीका नाम ले लेता है तो भगवती उसे क्या-क्या दे डालती हैं, यह शिव आदि देवता भी नहीं जान सकते ॥५९॥ समस्त पापोंका एकमात्र प्रायश्चित्त है—श्री

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवीका नामस्मरण। हे राजन्! कलियुगके डरसे बचनेके लिए मनुष्यको चाहिए कि वह किसी पुण्यक्षेत्रमें निवास करे ॥ ६० ॥ वहाँ वह लगातार पराशक्तिस्वरूपा जगदम्बाके नामका स्मरण करता रहे। ऐसा करनेवाले लोगोंको किसीका अङ्गच्छेद, शिरश्छेद और सारे विश्वकी हत्या करनेसे भी कोई पाप नहीं लगता। हे राजन्! यह मैंने आपको सम्पूर्ण शास्त्रोंका गूढ़ रहस्य बतलाया है ॥६१॥६२॥ इन बातोंपर भली भाँति विचार करके आप देवीके चरणकमलकी आराधना करिए। वैसे तो सभी लोग 'अजपा' गायत्रीका जप करते हैं ॥६३॥ लेकिन वे मायासे मोहित होनेके कारण उनका माहात्म्य नहीं जानते और न उन्हें यही मालूम है कि यह महामायाका ही महान् वैभव है। ब्राह्मण लोग अपने हृदयमें गायत्रीको जपते हैं ॥६४॥ लेकिन वे भी उनकी महिमा नहीं जानते कि यह सब भगवती महामायाका ही महान् वैभव है। इस प्रकार आपने युगधर्मकी व्यवस्थाके बारेमें जितना प्रश्न किया था, उन सबका उत्तर मैंने दे

पापानां श्रीदेवीनामसंस्मृतिः ॥ तस्मात्कलिभयाद्राजन्पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः ॥ ६० ॥ निरंतरं परांबाया नामसंस्मरणं चरेत् ॥ छित्वा भित्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ६१ ॥ देवीं नमति भक्त्या यो न स पापैर्विलिप्यते ॥ रहस्यं सर्वशास्त्राणां मया राजन्नुदीरितम् ॥ ६२ ॥ विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदांबुजम् ॥ अजपां नाम गायत्रीं जपंति निखिला जनाः ॥६३॥ महिमानं न जानंति मायाया वैभवं महत् ॥ गायत्रीं ब्राह्मणाः सर्वे जपंति हृदयांतरे ॥ ६४ ॥ महिमानं न जानंति मायाया वैभवं महत् ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं तत्त्वया नृप ॥ युगधर्मव्यवस्थायां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६५ ॥ श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ राजोवाच ॥ तीर्थानि भुवि पुण्यानि ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥ गम्यानि मानवैर्देवैः क्षेत्राणि सरितस्तथा ॥ १ ॥ फलं च यादृशं यत्र तीर्थेषु स्नानदानतः ॥ विधिं तु तीर्थयात्राया नियमांश्च विशेषतः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तीर्थानि विविधानि च ॥ येषु तीर्थेषु देवीनां प्रशस्तान्ययनानि च ॥ ३ ॥ नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा यमुना च सरस्वती ॥ नर्मदा गंडकी सिंधुर्गोमती तमसा तथा ॥ ४ ॥ कावेरी चंद्रभागा च पुण्या वेत्रवती शुभा ॥ चर्मण्वती च सरयूस्तापी साभ्रमती तथा ॥ ५ ॥ एताश्च कथिता राजन्नन्याश्च शतशः पुनः ॥ तासां समुद्रगाः

दिया। इसके अतिरिक्त आप और क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(पृथ्वीतलके तीर्थ और उनका माहात्म्य) राजा जनमेजय बोले—हे मुनिराज! आप यह बतलाइए कि मनुष्यों तथा देवताओंको पृथिवीतलके किन-किन पवित्र तीर्थोंकी यात्रा करने तथा किन नदियोंमें स्नानके लिए जाना चाहिए? ॥१॥ उन तीर्थोंमें स्नान और दान करनेसे जो फल प्राप्त होता हो, तीर्थयात्रा करनेकी जो विधि और जो नियम हो, वह विशेष रूपसे बतलाइए ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा—हे राजन्! वैसे तो तीर्थ बहुत हैं, किन्तु जिन तीर्थोंमें देवीके विशाल मन्दिर हैं उनके ही बारेमें मैं वर्णन करता हूँ, सुनिए ॥३॥ सम्पूर्ण नदियोंमें गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिन्धु, गोमती, तमसा, ॥ ४ ॥ कावेरी, चन्द्रभागा, वेत्रवती (बेतवा), चर्मण्वती (चम्बल), सरयू, ताप्ती, साभ्रमती (साबरमती) ये नदियाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुख्य और पवित्र हैं ॥५॥ इनके अतिरिक्त भारतमें सैकड़ों नदियाँ हैं । हे राजन् ! जो नदियाँ समुद्रमें गिरतीं और सदा बहती हैं, वे बहुत पवित्र हैं । जो नदियाँ समुद्रमें नहीं गिरतीं, वे उनकी अपेक्षा कम पवित्र हैं ॥६॥ समुद्रगामिनी नदियोंमें भी वे ही पवित्र हैं, जिनमें सदा भरपूर जल बहता रहता है, श्रावण और भाद्रपद इन दो महीनोंमें समस्त नदियाँ रजस्वला रहती हैं ॥७॥ कितनी नदियाँ केवल बरसातमें बहती हैं और केवल गाँव भरके लिए जल देती हैं । क्षेत्रोंमें पुष्करक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, पवित्र धर्मारण्य क्षेत्र, ॥ ८ ॥ प्रभासक्षेत्र, प्रयाग, नैमिषारण्य और अर्बुदारण्य ये क्षेत्र पुण्यदायक रूपमें विख्यात हैं । पर्वतोंमें पवित्र हैं—श्रीशैल, सुमेरु और गन्धमादन । पुण्यदायक सरोवरोंमें सर्वत्र विख्यात मानससरोवर ॥९॥१०॥ बिन्दुसरोवर और अच्छोद सरोवर । इसी तरह अनेक आत्मदर्शी मुनियोंके आश्रम भी पुण्यस्थल हैं । इनमें पुण्यदायक बदरिकाश्रम सबसे अधिक विख्यात है । क्योंकि वहाँ ही 'नर' और 'नारायण'ने तपस्या की

भवंति पुण्याः स्वल्पपुण्या ह्यनब्धिगाः ॥ ६ ॥ समुद्रगानां ताः पुण्याः सर्वदौघवहास्तु याः ॥ मासद्वयं श्रावणादौ ताश्च सर्वा रजस्वलाः ॥ ७ ॥ वृष्टियोगेन ग्राम्यवारिवहास्तथा ॥ पुष्करं च कुरुक्षेत्रं धर्मारण्यं सुपावनम् ॥ ८ ॥ प्रभासं च प्रयागं च नैमिषारण्यमेव च ॥ विश्रुतं चार्बुदारण्यं शैलाश्च पावनास्तथा ॥ ९ ॥ श्रीशैलश्च सुमेरुश्च पर्वतो गंधमादनः ॥ सरांसि चैव पुण्यानि मानसं सर्वविश्रुतम् ॥ १० ॥ तथा बिन्दुसरः श्रेष्ठमच्छोदं नाम पावनम् ॥ आश्रमास्तु तथा पुण्या मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ११ ॥ विश्रुतस्तु सदा पुण्यः ख्यातो बदरिकाश्रमः ॥ नरनारायणौ यत्र तेपाते तौ मुनी तपः ॥ १२ ॥ वामनाश्रम आख्यातः शतयूपाश्रमस्तथा ॥ येन यत्र तपस्तप्तं तस्य नाम्नाऽतिविश्रुतः ॥ १३ ॥ एवं पुण्यानि स्थानानि ह्यसंख्यातानि भूतले ॥ मुनिभिः परिगीतानि पावनानि महीपते ॥ १४॥ एषु स्थानेषु सर्वत्र देवीस्थानानि भूपते ॥ दर्शनात्पापहारीणि वसंति नियमेन च ॥ १५ ॥ कथयिष्यामि तान्यग्रे प्रसंगेन च कानिचित् ॥ तीर्थानि नृप दानानि व्रतानि च मखास्तथा ॥ १६ ॥ तपांसि पुण्यकर्माणि सापेक्षाणि महीपते ॥ द्रव्यशुद्धिं क्रियाशुद्धिं मनःशुद्धिमपेक्ष्य च ॥ १७ ॥ पावनानि हि तीर्थानि तपांसि च व्रतानि च ॥ कदाचिद्द्रव्यशुद्धिः स्यात्क्रियाशुद्धिः कदाचन ॥ १८ ॥ दुर्लभा मनसः शुद्धिः सर्वेषां सर्वदा नृप ॥ मनस्तु चंचलं राजन्ननेकविषयाश्रितम् ॥ १९ ॥ कथं शुद्धं

थी । वामनाश्रम और शतयूपाश्रम भी विख्यात हैं । जिस ऋषिने जहाँ तपस्या की, वह आश्रम उसके नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥११–१३॥ हे महीपते ! इस भूतलपर इतने पुण्यदायक स्थल हैं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती । मुनियोंने वहाँ निवास करके उन्हें पुनीत बना दिया है ॥ १४ ॥ हे भूपते ! उपर्युक्त सभी स्थलोंमें देवीके मन्दिर बने हुए हैं, जिनका दर्शनमात्र कर लेनेसे सब पाप कट जाते हैं । जहाँ बहुतेरे देवीभक्त नियमपूर्वक निवास करते हैं ॥१५॥ उनमेंसे कुछके सम्बन्धमें मैं प्रसङ्गके अनुसार आगे चलकर सप्तम स्कन्धमें वर्णन करूँगा । हे नृप ! तीर्थ, दान, व्रत, मख (यज्ञ), ॥१६॥ तपस्या और सभी पुण्यकर्म शुद्धि 'सापेक्ष' हैं । अर्थात् द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और चित्तशुद्धिकी अपेक्षा करके ही वे तीर्थ, तपस्या और व्रत फलदायक होते हैं । कहीं द्रव्यशुद्धि होती है तो कहीं क्रियाशुद्धि होती है ॥१७॥१८॥ लेकिन हे नृप ! चित्तशुद्धि बड़ी दुर्लभ वस्तु है और बिरले ही प्राणीको यह प्राप्त होती है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्योंकि हे राजन् ! मन बड़ा चञ्चल है। यह अनेक विषयोंमें भटकता रहता है ॥१९॥ जो मन तरह-तरहकी भावनाओंमें दौड़ता है, वह कभी शुद्ध हो सकता है ? इसके अतिरिक्त काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, मद, मत्सर ये षड्रिपु भी तपस्या, तीर्थ और व्रतमें पूरी तरह विघ्न उत्पन्न किया करते हैं। अहिंसा (किसी जीवकी हत्या न करना), सच बोलना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियोंको अपने अधीन रखना, ॥२०॥२१॥ स्वधर्मका पालन करना, ये व्रत सम्पूर्ण तीर्थयात्राओंका फल देते हैं। हे राजन् ! तीर्थयात्राके समय राहमें नित्यकर्मके छूट जाने और अन्यान्य व्यक्तियोंके सम्पर्कसे यात्रा व्यर्थ हो जाती है, केवल पाप ही हाथ लगता है। और फिर तीर्थका जल केवल शारीरिक मैल धोता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे महाराज ! वह मानसिक मैल नहीं धो सकता। यदि तीर्थके जलमें मानसिक मैल धोनेकी क्षमता होती तो गङ्गाजीके तटके निवासी और ईश्वरचिन्तक मुनि परस्पर द्रोहभाव क्यों रखते ? वसिष्ठ जैसे विनम्र और विश्वामित्र जैसे तपस्वी ऋषि सदा राग, द्वेष, काम और क्रोधसे व्याकुल पाये जाते हैं। अतएव चित्तशुद्धिका तीर्थ गङ्गा आदि तीर्थोंसे बहुत ही अधिक पवित्र होता है ॥२४–२६॥

भवेद्राजन्नानाभावसमाश्रितम् ॥ कामक्रोधौ तथा लोभो ह्यहंकारो मदस्तथा ॥ २० ॥ सर्वविघ्नकरा ह्येते तपस्तीर्थव्रतेषु च ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं
शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥ २१ ॥ स्वधर्मपालनं राजन्सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ नित्यकर्मपरित्यागान्मार्गे संसर्गदोषतः ॥ २२ ॥ व्यर्थं तीर्थाधिगमनं पापमे-
वावशिष्यते ॥ क्षालयंति हि तीर्थानि सर्वथा देहजं मलम् ॥ २३ ॥ मानसं क्षालितुं तानि न समर्थानि वै नृप ॥ शक्तानि यदि चेत्तानि गंगातीर-
निवासिनः ॥ २४ ॥ मुनयो द्रोहसंयुक्ताः कथं स्युर्भावितेश्वराः ॥ वसिष्ठसदृशाः प्रह्वा विश्वामित्रादयः किल ॥ २५ ॥ रागद्वेषरताः सर्वे कामक्रोधा-
कुलाः सदा ॥ चित्तशुद्धिमयं तीर्थं गंगादिभ्योऽतिपावनम् ॥ २६ ॥ यदि स्याद्दैवयोगेन क्षालयत्यांतरं मलम् ॥ विशेषेण तु सत्संगो ज्ञाननिष्ठस्य
भूपते ॥ २७ ॥ न वेदा न च शास्त्राणि न व्रतानि तपांसि न ॥ न मखा न च दानानि चित्तशुद्धेस्तु कारणम् ॥ २८ ॥ वसिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रो
वेदविद्याविशारदः ॥ रागद्वेषान्वितः कामं गंगातीरसमाश्रितः ॥ २९ ॥ आडीबकं महायुद्धं विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ जातं निरर्थकं द्वेषाद्देवानां
विस्मयप्रदम् ॥ ३० ॥ विश्वामित्रो बकस्तत्र जातः परमतापसः ॥ शप्तः स तु वसिष्ठेन हरिश्चंद्रस्य कारणात् ॥ ३१ ॥ कौशिकेन वसिष्ठोऽपि
शप्त्वाऽऽडीदेहभाक्कृतः ॥ शापादाडीबकौ जातौ तौ मुनी विशदप्रभौ ॥ ३२ ॥ निवासं प्रापतुस्तीरे सरसो मानसस्य च ॥ चक्रतुर्दारुणं युद्धं

हे राजन् ! यदि दैवयोगसे ज्ञानी पुरुषोंका सत्सङ्ग लगातार सुलभ रहे तो उससे आंतरिक मैल भी धुल सकती है ॥२७॥ इसके सिवाय वेद, शास्त्र, व्रत, तपस्या, यज्ञ और दानमें भी इतनी शक्ति नहीं है कि वे चित्तको शुद्ध कर सकें ॥२८॥ वसिष्ठ मुनि ब्रह्माके पुत्र थे, वेद-विद्याके ज्ञाता थे और गङ्गाजीके पवित्र तटपर रहते थे, किंतु वे भी राग-द्वेषके फेरमें पड़ गये ॥२९॥ विश्वामित्र और वसिष्ठ बक और आडी अर्थात् शरारि पक्षीके रूपमें द्वेपके कारण व्यर्थ महान् युद्ध कर बैठे, जिसे देखकर देवता भी चकित हो गये ॥ ३० ॥ बात यह हुई कि राजा हरिश्चन्द्रके कारण वसिष्ठने विश्वामित्र जैसे परम तपस्वी मुनिको शाप दे दिया, जिससे वे बगुला बन गये ॥ ३१ ॥ विश्वामित्रने भी वसिष्ठको शाप दे दिया, जिससे वे आडी पक्षी हुए। इस तरह शापके कारण वे निर्मल कांतिसम्पपन्न मुनि आड़ी और बकके रूपमें जनमे ॥३२॥ वे दोनों मानसरोवरके तटपर रहने लगे। उन्होंने नख और चोंचका प्रहार करते हुए लगातार दस हजार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्षतक रोषमें भरकर भीषण युद्ध किया। जैसे मदमें भरे हुए दो सिंह परस्पर लड़ें, उसी तरह वे दोनों ऋषि लड़े ॥३३॥३४॥ राजा जनमेजय बोले—वे दोनों तो मुनियोंमें अग्रणी थे, तपस्वी थे और धर्मपरायण थे। तब उनका परस्पर वैर क्यों हुआ ? ॥३५॥ वे दोनों बड़े बुद्धिमान् थे और यह जानते थे कि शाप देनेसे मनुष्योंको बड़ा दुःख उठाना पड़ता है। फिर भी उन्होंने एक दूसरेको क्यों शाप दिया ? ॥ ३६ ॥ व्यासजीने कहा—प्राचीन कालमें महाराज त्रिशंकुके पुत्र सम्राट् हरिश्चन्द्र हो चुके हैं। वे सूर्यवंशी और रामचन्द्रके पूर्वज थे ॥ ३७ ॥ उन राजर्षि हरिश्चंद्रको कोई संतति नहीं थी। अतः पुत्रकी कामनासे वरुणको प्रसन्न करनेके लिए उन्होंने दुष्कर 'नरमेध' यज्ञ करनेकी प्रतिज्ञा की ॥३८॥ यज्ञका शपथ ले लेनेपर वरुणदेव उनपर प्रसन्न हुए। अतएव राजा हरिश्चंद्रकी परम रूपवती रानीने गर्भ धारण किया ॥३९॥ रानीको गर्भवती देखकर राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने गर्भाधानसंस्कार कराया ॥४०॥ हे राजन् ! जब रानीने

नखचंचुप्रताडनैः ॥ ३३ ॥ वर्षाणामयुतं यावत्तावृषी रोषसंयुतौ ॥ युयुधाते मदोन्मत्तौ सिंहाविव परस्परम् ॥ ३४ ॥ राजोवाच ॥ कथं तौ मुनिशार्दूलौ तापसौ धर्मतत्परौ ॥ परस्परं वैरपरौ संजातौ केन हेतुना ॥ ३५ ॥ शापं परस्परं केन कारणेन महामती ॥ दत्तवंतौ मिथः क्लेशकारकौ दुःखदौ नृणाम् ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ हरिश्चंद्रो नृपश्रेष्ठस्त्रिशंकुतनयः पुरा ॥ बभूव रविवंशीयो रामचंद्रस्य पूर्वजः ॥ ३७ ॥ अनपत्यः स राजर्षिर्वरुणाय महाक्रतुम् ॥ प्रतिजज्ञे पुत्रकामो नरमेधं दुरासदम् ॥ ३८ ॥ वरुणस्तस्य संतुष्टो यज्ञस्य नियमे कृते ॥ दधार गर्भं राज्ञस्तु भार्या परमसुंदरी ॥ ३९ ॥ राजा बभूव संतुष्टो दृष्ट्वा भार्यां सदोहदाम् ॥ चकार विधिवत्कर्म गर्भसंस्कारकारकम् ॥ ४० ॥ सुषुवे तनयं नारी सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ मुदं प्राप नृपस्तत्र पुत्रे जाते विशांपते ॥ ४१ ॥ कृतवाञ्जातकर्मादि संस्कारविधिमुत्तमम् ॥ ददौ हिरण्यं गा दोग्ध्रीर्ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ ४२ ॥ जन्मोत्सवेऽतिसंवृत्ते गेहे वै यादसां पतिः ॥ आजगाम महाराज विप्रवेषधरस्तदा ॥ ४३ ॥ पूजितः पार्थिवेनाथ दत्त्वा विधिवदासनम् ॥ कार्ये पृष्टेऽब्रवीद्वाक्यं वरुणोऽस्मीति भूपतिम् ॥ ४४ ॥ कुरु यज्ञं सुतं कृत्वा पशुं परमपावनम् ॥ सत्यवाग्भव राजेंद्र संकल्पस्तु त्वया कृतः ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विह्वलोऽतिव्यथाकुलः ॥ संस्तभ्याधिं नृपः प्राह वरुणं सत्कृतांजलिः ॥ ४६ ॥ स्वामिन्करोमि तं यज्ञं

समस्त सुलक्षणोंसे सम्पन्न पुत्रको जन्म दिया तो राजाके हर्षका ठिकाना नहीं रहा ॥४१॥ उन्होंने उस पुत्रका जातकर्म आदि संस्कार कराया। ब्राह्मणोंको दूध देनेवाली गौवें और सुवर्ण-दान दिया ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! जब राजमहलमें जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय ब्राह्मणका रूप धारण करके वरुणदेव आये ॥४३॥ महाराज हरिश्चंद्रने उन्हें आसन दिया और विधिपूर्वक पूजा करनेके बाद पूछा कि आप किस कार्यसे पधारे हैं ? तब उन्होंने कहा—मैं वरुण हूँ ॥४४॥ हे राजेंद्र ! अब आप अपने पुत्रको परम पवित्र पशु बनाकर नरमेध यज्ञ करिए। क्योंकि पहले आप उसका सङ्कल्प कर चुके हैं। अतएव उसे पूरा करके अपनी सत्यवादिताका परिचय दीजिए ॥४५॥ वरुणदेवकी यह बात सुनकर राजा विह्वल हो उठे। बादमें मानसिक व्यथा रोक तथा हाथ जोड़कर वे वरुणसे बोले—॥४६॥ हे देव ! मैंने जो सङ्कल्प किया है, तदनुसार विधि-विधानके साथ वह यज्ञ करके मैं आपके समक्ष अपनी सत्यवादिताका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिचय दूँगा ॥ ४७ ॥ हे देवशिरोमणि ! एक महीना पूरा होनेपर मेरी रानी जननाशौचसे शुद्ध होगी । जब वह शुद्ध हो जायगी तो मैं नरमेध यज्ञ कर दूँगा ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा—जब राजाने यह बात कही तो वरुणदेव अपने घर चले गये । उनके चले जानेपर महाराज हरिश्चन्द्र सन्तुष्ट तो हुए, किन्तु भावी अनिष्टकी आशङ्कासे कुछ चिन्तित थे ॥ ४९ ॥ एक महीने बाद वरुण एक सुन्दर ब्राह्मणका वेश धारण करके राजाकी परीक्षा लेनेके लिए फिर राजमहलमें आ धमके ॥ ५० ॥ तब राजाने उन श्रेष्ठ देवता वरुणकी पूजा की और उन्हें बैठनेके लिए आसन दिया । जब वे आरामसे बैठ गये तो बड़ी नम्रतापूर्वक राजा हरिश्चन्द्र यह सारगर्भित वचन बोले-॥ ५१ ॥ हे स्वामिन् ! मेरा पुत्र अभी संस्कारहीन है । तब मैं उसे यूप-स्तम्भमें कैसे बाँधू ? ग्यारहवें वर्ष जब उसका संस्कार हो जायगा, तब वह क्षत्रिय होगा । उस समय मैं उत्तम नरमेध यज्ञ करूँगा ॥ ५२ ॥ हे प्रभो ! संस्कारहीन बालक किसी भी धार्मिक कार्यका अधिकारी नहीं होता । अतएव यदि आप मुझे अपना दीन सेवक मानते हों तो दया करके थोड़े दिन और ठहर जाइए ॥५३॥ वरुणने कहा—महाराज ! आप पहले भी

सर्वथा विधिपूर्वकम् ॥ मया ते यत्प्रतिज्ञातं भवामि सत्यवागहम् ॥४७॥ पूर्णे मासे विशुद्धयेत धर्मपत्नी सुरोत्तम ॥ विशुद्धायां तु भार्यायां कर्तव्यः स पशोर्मखः ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ते वचने राज्ञा वरुणः स्वगृहं गतः ॥ राजा बभूव संतुष्टः किंचिच्चिंतातुरस्तथा ॥ ४९ ॥ पूर्णे मासि पुनः पाशी परीक्षार्थं नृपालये ॥ आजगाम द्विजो भूत्वा सुवेषः सुष्ठुभाषकः ॥ ५० ॥ कृतार्हणं सुखासीनं भूपतिस्तं सुरोत्तमम् ॥ उवाच विनयोपेतो हेतुगर्भं वचस्तदा ॥५१॥ असंस्कृतं सुतं स्वामिन् यूपे बध्नामि तं कथम् ॥ संस्कृत्य क्षत्रियं कृत्वा यजेऽहं यज्ञमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ दयसे यदि देव त्वं ज्ञात्वा दीनं स्वसेवकम् ॥ असंस्कृतस्य बालस्य नाधिकारोऽस्ति कुत्रचित् ॥५३॥ वरुण उवाच ॥ प्रतारयसि राजेन्द्र कृत्वा समयमग्रतः ॥ दुस्त्यजस्तव जानामि सुतस्नेहो ह्यपुत्रिणः ॥५४॥ गृहं व्रजामि भूपाल वचनात्तव कोमलात् ॥ कियत्कालं प्रतीक्ष्याहमागमिष्यामि ते गृहम् ॥५५॥ भवितव्यं त्वया तात तदा सत्यवचोऽन्वितम् ॥ अन्यथा त्वयि मुंचामि कोपं शापसमन्वितम् ॥५६॥ राजोवाच ॥ समावर्तनकर्मांते सर्वथा यादसांपते ॥ कृत्वा पुत्रपशुं यज्ञे यजिष्ये विधिपूर्वकम् ॥५७॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणः प्रीतमानसः ॥ तथेत्युक्त्वा ययौ तूर्णं नृपस्तु सुस्थितोऽभवत् ॥५८॥ रोहिताख्य इति ख्यातः सुतस्तस्य विवृद्धिमान् ॥ संजातश्चतुरः सर्वविद्यानां च विशारदः ॥ ५९ ॥ यज्ञस्य कारणं तेन ज्ञातं सर्वं सविस्तरम् ॥ भयभीतस्ततः

वादा कर चुके हैं और अब फिर वादा करके मुझे धोखा देना चाहते हैं । मैं समझ गया कि निपूता होनेके कारण आपका दुस्त्यज पुत्रवात्सल्य छूट नहीं रहा है ॥५४॥ अस्तु, इस समय आपकी विनम्र वाणीसे सन्तुष्ट होकर मैं अपने घर लौट जाता हूँ, लेकिन हे भूपाल ! कुछ समय प्रतीक्षा करके मैं फिर आपके यहाँ आऊँगा ॥५५॥ हे तात ! उस समय आप अपनी प्रतिज्ञाको अवश्य सत्य कीजिएगा । अन्यथा कुपित होकर मैं आपको शाप दे दूँगा ॥५६॥ राजाने कहा—हे जलजंतुओंके स्वामी ! समावर्तन संस्कार हो जानेपर मैं अपने पुत्रको यज्ञीय पशु बनाकर विधिवत् नरमेध यज्ञ करूँगा ॥ ५७ ॥ व्यासजीने कहा—राजाकी यह प्रतिज्ञा सुनकर वरुणदेव प्रसन्न हो गये और तथास्तु कहकर तुरंत चले गये । उनके चले जानेपर राजाका चित्त शान्त हुआ ॥ ५८ ॥ इधर उनका पुत्र रोहित दिन-दिन बढ़ने लगा । चतुर होनेके कारण वह शीघ्र सारी विद्याओंको पढ़कर विद्वान् हो गया ॥ ५९ ॥ जब उसे नरमेध यज्ञका वृत्तान्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विस्तारके साथ ज्ञात हुआ तो अपनी मृत्यु निकट समझकर वह बहुत डरा ॥ ६० ॥ एक दिन वह घरसे भागकर राजमहलसे बड़ी दूर पहाड़की एक गुफामें जाकर डरता हुआ रहने लगा ॥ ६१॥ इधर जब अवधि पूरी हो गयी तो यज्ञकी अभिलाषासे वरुणदेव राजमहलमें आये और राजा हरिश्चन्द्रसे कहने लगे-हे जनाधिपते ! अब तो वह यज्ञ करिए। ६२ ॥ यह सुनकर राजाको असीम कष्ट हुआ और उनका चेहरा उतर गया। व्यथित होकर उन्होंने कहा—हे सुरसत्तम ! मैं क्या करूँ ? मेरा पुत्र न जाने कहाँ भाग गया है ॥ ६३ ॥ यह बात सुनकर वरुणदेव बहुत कुपित हुए और उसी आवेशमें असत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रको शाप देते हुए कहा—॥६४॥ अरे कपटी ! तूने मुझे बार बार धोखा दिया है। इसलिए अरे नीच राजा ! जा, तेरे शरीरमें जलोदर रोग हो जाय ॥६५॥ ऐसा शाप देकर पाशधारी वरुण अपने घर चले गये। इधर राजा हरिश्चन्द्रको जलोदर रोग हो गया और वे महलमें पड़े हुए बड़े चिन्तित रहने लगे ॥ ६६ ॥ उस शापके कारण जब राजाकी व्याधि उत्तरोत्तर बढ़ने लगी, तब उनके पुत्र रोहितको यह खबर मिली कि मेरे पिता रुग्ण होकर बड़ा कष्ट पा रहे हैं ॥६७॥ किसी पथिकने

सोऽपि मत्वा मरणमात्मनः ॥ ६० ॥ कृत्वा पलायनं वीरो गतोऽसौ गिरिगह्वरे ॥ अगम्ये नृपतिस्थाने स्थितस्तत्र भयातुरः ॥ ६१ ॥ प्राप्ते कालेऽथ वरुणो यज्ञार्थी नृपतेर्गृहम् ॥ गत्वा तमाह भूपालं कुरु यज्ञं विशांपते ॥ ६२ ॥ प्रम्लानवदनो राजा तमाह व्यथितेंद्रियः ॥ किं करोमि गतः क्वापि सुतो मे सुरसत्तम ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं राज्ञः कुपितो यादसांपतिः ॥ शशाप तं नृपं कोपादसत्यवादिनं भृशम् ॥ ६४ ॥ जलोदराभिधो व्याधिर्देहे भवतु ते नृप ॥ यतः प्रतारितश्चाहं कृत्वा कपटपंडित ॥ ६५ ॥ इति शप्त्वा ययौ धाम स्वकं पाशधरस्तदा ॥ राजा चिंतातुरस्तस्थौ भवने व्याधिपीडितः ॥ ६६ ॥ यदातिव्याधितो राजा रोगेण शापजेन ह ॥ तदा शुश्राव पुत्रोऽपि पितरं व्याधिपीडितम् ॥ ६७ ॥ पांथिकः प्राह पुत्रं हि पिता ते भृशदुःखितः ॥ जलोदरविकारेण शापजेन नृपात्मज ॥ ६८ ॥ विनष्टं जीवितं तेऽद्य वृथा जातस्य दुर्मते ॥ यत्त्यक्त्वा पितरं दुःस्थं प्राप्तोऽसि गिरिगह्वरम् ॥ ६९ ॥ किमनेन शरीरेण प्राप्तं ते जन्मनः फलम् ॥ देहदं दुःखितं कृत्वा स्थितोऽस्यत्र सुताधम ॥ ७० ॥ प्राणास्त्याज्याः पितुः कार्ये सत्पुत्रेणेति निश्चयः ॥ त्वदर्थे दुःखितो राजा क्रंदति व्याधिपीडितः ॥ ७१ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं पांथिकाद्धर्मसंयुतम् ॥ यदा चक्रे मनो गंतुं द्रष्टुं तातं व्यथातुरम् ॥ ७२ ॥ तदा विप्रवपुर्भूत्वा वासवस्तमुपागमत् ॥ रहः प्राह हितं वाक्यं दयावानिव

उससे कहा—हे राजकुमार ! आपके पिताको वरुणने शाप दे दिया है। अतएव वे जलोदर रोगसे बहुत दुःखित हैं ॥६८॥ हे दुर्बुद्धे ! तुम्हारा जन्म लेना व्यर्थ हुआ और जीवन नष्ट हो गया। क्योंकि तुम सङ्कटमें पड़े पिताका साथ छोड़कर अपने प्राण बचानेके लिए इस पहाड़की गुफामें छिपे हुए हो ॥ ६९ ॥ तुम्हारे इस शरीरसे किसीको क्या लाभ हुआ ? तुम्हारे पिताको पुत्रके जन्म लेनेका क्या फल मिला ? जिनसे यह देह मिली, उन्हींको क्लेशमें डालकर हे कुपूत ! तुम यहाँ दिन बिता रहे हो ? ॥ ७० ॥ यदि पिताके लिए प्राणोंको भी छोड़ना पड़े तो कोई हर्ज नहीं। ऐसा सपूतोंका ध्येय होना चाहिए। राजा हरिश्चन्द्र व्याधिपीड़ित होकर भी तुम्हारे लिए बड़े दुःखित रहते हैं और नित्य विलाप किया करते हैं ॥ ७१ ॥ व्यासजी बोले-रोहितने जब उस पथिककी यह धार्मिक और सही सलाह सुनी तो उसे कष्टमें पड़े हुए अपने पिताके दर्शनकी इच्छा हुई ॥ ७२ ॥ उसी समय इन्द्र ब्राह्मणका वेश धारण करके उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पास आये और एकान्तमें दयालुके समान उसे हितकारी बात बताने लगे ॥७३॥ इन्द्रने कहा—हे राजकुमार ! तुम बड़े नासमझ हो, जो वहाँ जानेकी इच्छा कर रहे हो । इस समय तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारे पिता केवल तुम्हारे जीवित रहनेके लिए कितने दुःखित हैं ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(वसिष्ठ-विश्वामित्रका कलह) इन्द्र बोले—पूर्वकालमें राजा हरिश्चन्द्रने वरुणसे जो यह प्रतिज्ञा की थी कि 'अपने प्रिय राजकुमारको मैं पशु बनाकर नरमेध यज्ञ करूँगा' वह बड़े साहसका काम था ॥ १ ॥ हे बड़े बुद्धिमान् बननेवाले बालक ! यदि तुम वहाँ जाओगे तो तुम्हारे व्याधिपीड़ित पिता निर्भय भावसे तुम्हें यज्ञीय स्तम्भमें बाँधकर मार डालेंगे ॥ २ ॥ जब असाधारण तेजस्वी इन्द्रने राजकुमारको ऐसा कहकर रोका तो महामायाकी मायासे मोहित होकर वह वहीं रुक गया ॥३॥ इस प्रकार अपने पिताके रोगग्रस्त होनेका समाचार जब-जब उसे मिलता और वह जानेकी इच्छा करता, तब-तब इन्द्र आकर उसे वहाँ जानेसे रोक देते थे ॥ ४ ॥ एक दिन राजा हरिश्चन्द्रने भूत-भविष्य-वर्तमानके ज्ञाता, मानवमात्रके

भारत ॥ ७३ ॥ मूर्खोऽसि राजपुत्र त्वं गमनाय मतिं वृथा ॥ करोषि पितरं त्वद्य न जानासि व्यथायुतम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ इन्द्र उवाच ॥ साहसं कृतवान्राजा पूर्वं यत्कथितो मखः ॥ वरुणाय प्रतिज्ञातः पुत्रं कृत्वा पशुं प्रियम् ॥ १ ॥ गते त्वयि पिता पुत्रं बद्ध्वा यूपेऽघृणः पुनः ॥ पशुं कृत्वा महाबुद्धे वधिष्यति व्यथातुरः ॥ २ ॥ इत्थं निषिद्धस्तत्पुत्रः शक्रेणामिततेजसा ॥ स्थितस्तत्रैव मायेशीमायया मोहितो भृशम् ॥ ३ ॥ यदा पुनः पुनः श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम् ॥ गमनाय मतिं चक्रे तदेंद्रः प्रत्यषेधयत् ॥ ४ ॥ हरिश्चन्द्रोऽतिदुःखार्तः पप्रच्छ गुरुमंतिके ॥ स्थितं वसिष्ठमेकान्ते सर्वज्ञं हिततत्परम् ॥ ५ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्किं करोम्यद्य कातरोऽस्मि व्यथाकुलः ॥ त्राहि मां दुःखमनसं महाव्याधिभयातुरम् ॥ ६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु राजन्नुपायोऽस्ति रोगनाशं प्रति स्तुतः ॥ त्रयोदशविधाः पुत्राः कथिता धर्मसंग्रहे ॥ ७ ॥ तस्मात्क्रीतं सुतं कृत्वा यजस्व मखमुत्तमम् ॥ द्रव्यं दत्त्वा यथोद्दिष्टमानयस्व द्विजोत्तमम् ॥ ८ ॥ एवं कृते मखे भूप रोगनाशो भविष्यति ॥ वरुणोऽपि प्रसन्नात्मा भविष्यति यथासुखम् ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा प्रोवाच मंत्रिणम् ॥ अन्वेषय महाबुद्धे विषयेष्व-

कल्याणकारी और एकान्तमें बैठे हुए गुरु वसिष्ठसे जाकर पूछा । उस समय राजा बड़े दुःखित थे ॥५॥ उन्होंने कहा—भगवन् ! एक ओर तो मैं पुत्रके लिए विह्वल हूँ और दूसरी ओर अपने रोगके कारण बेचैन हो रहा हूँ । अब मैं क्या करूँ ? जलोदररूपी असाध्य रोगके भयसे बहुत विकल हूँ । मेरे चित्तमें बड़ा क्लेश समा गया है । मुझे अब आप ही बचा सकते हैं ॥ ६ ॥ वसिष्ठजीने कहा—हे राजन् ! आपका रोग दूर करनेके लिए एक उपाय है, सो सुनिए । पुत्र तेरह तरहके कहे गये हैं । जैसे– औरस, क्षेत्रज, कृत्रिम, दत्तक, गूढोत्पन्न, क्रीतक आदि ॥ ७ ॥ इसलिए उचित मूल्य देकर आप किसी ब्राह्मणके अच्छे बालकको खरीद लीजिए और उस क्रीतक पुत्र द्वारा उत्तम नरमेध यज्ञ कर डालिए ॥८॥ हे राजन् ! एसा करनेसे वरुणदेव संतुष्ट हो जायँगे और आपका रोग दूर हो जायगा ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले—गुरु वसिष्ठकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने अपने मन्त्रीसे कहा—हे महाबुद्धिमान् मंत्री ! हमारे राज्यमें पता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे भी हो, तुम लगाओ कि कहीं कोई द्रव्यका लोभी ऐसा ब्राह्मण पिता है, जो अपने पुत्रको बेच दे ॥१०॥ वह जितना भी धन माँगे, उतना देकर उसके पुत्रको ले आओ ॥ ११ ॥ तुम प्रत्येक ब्राह्मणसे कहो कि 'आप धन लेकर अपने पुत्रको राजाका यज्ञ पूर्ण करनेके लिए सौंप दीजिए' ॥१३॥ राजाने जब अपने कार्यकी पूर्तिके लिए मन्त्रीको ऐसा आदेश दिया तो वह राज्यके हर गाँवमें जा-जाकर घर-घर इस बातका पता लगाने लगा ॥१४॥ इस प्रकार खोज करते-करते उसे अपने राज्यमें एक दुःखी और गरीब ब्राह्मण अजीगर्त मिले, जिनके तीन पुत्र थे ॥१५॥ उनके मझले पुत्र शुनःशेपको पिताके कहे हुए मूल्यपर खरीदकर मन्त्री ले आया ॥१६॥ इस प्रकार शुनःशेपको राजाके पास लाकर उस कार्यकुशल मन्त्रीने कहा—यह द्विजपुत्र नरमेधयज्ञके योग्यपशु है ॥ १७ ॥ यह सुनकर यज्ञके लिए एक ब्राह्मणबालकको अवश्य ले आओ। मेरे इस कार्यकी पूर्तिके निमित्त तुम किसी तरहकी कृपणता न करना ॥ १२ ॥

सर्वथैव समानेयो यज्ञार्थे
तियत्नतः ॥ १० ॥ कदाचित्कोऽपि लोभार्थी ददाति स्वसुतं पिता ॥ समानय धनं दत्त्वा यावत्प्रार्थयतेऽप्यसौ ॥ ११ ॥ द्रव्येण देहि यज्ञार्थं कर्तव्योऽसौ
द्विजबालकः ॥ न कार्या कृपणा बुद्धिस्त्वया मत्कार्यहेतवे ॥ १२ ॥ प्रार्थनीयस्त्वया पुत्रः कस्यचिद्द्विजवादिनः ॥ एवमन्वेषतस्तस्य विषये कश्चिदा-
पशुः किल ॥ १३ ॥ इति संचोदितस्तेन सचिवः कार्यहेतवे ॥ अन्वेषयामास पुरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे ॥ १४ ॥ आनयामास दत्त्वाऽर्थं प्रार्थितं तद्धनं तदा ॥१६॥
तुरः ॥ निर्धनस्त्रिसुतश्चासीदजीगर्तेति नामतः ॥१५॥ तस्य पुत्रं शुनःशेपं मध्यमं मंत्रिसत्तमः ॥ राजाऽतिमुदितस्तेन विप्रानानीय सर्वतः ॥ कारया-
समानीय शुनःशेपं सचिवः कार्यतत्परः ॥ राज्ञे निवेदयामास पशुयोग्यं द्विजात्मजम् ॥ १७ ॥ बद्धं दृष्ट्वा शुनःशेपं निषिषेध नृपं तदा ॥ १९ ॥ राजन्मा
मास संभारान्यज्ञार्थं वेदवित्तमान् ॥ १८ ॥ प्रारब्धे तु मखे तत्र विश्वामित्रो महामुनिः ॥ क्रन्दत्ययं शुनःशेपः करुणा मां दुनोत्यपि ॥ दयावान्भव
साहसं कार्षीर्मुंचैनं द्विजबालकम् ॥ प्रार्थयाम्यहमायुष्मन्सुखं तेऽद्य भविष्यति ॥ २० ॥ ददति क्षत्रियाः पूर्वं स्वर्गकामाः शुचिव्रताः ॥ २२ ॥ त्वं स्वदेहस्य
राजेंद्र कुरु मे वचनं नृप ॥ २१ ॥ परदेहस्य रक्षार्थं स्वदेहं ये दयापराः ॥ सर्वेषां सदृशी प्रीतिर्देहे वेत्सि स्वयं नृप ॥ मुंचैनं बालकं तस्मा-
रक्षार्थं हंसि द्विजसुतं बलात् ॥ पापं मा कुरु राजेंद्र दयावान्भव बालके ॥ २३ ॥

राजा बहुत प्रसन्न हुए और वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलवाकर यज्ञ करनेके लिए उन्होंने सारी सामग्री जुटाई ॥१८॥ जब नरमेध यज्ञ आरम्भ हुआ तो महामुनि विश्वामित्रने शुनःशेपको यज्ञीय स्तम्भ-में बँधा देखकर मना करते हुए कहा—॥१९॥ हे राजन्! ऐसा साहस मत करिए। इस विप्रपुत्रको छोड़ दीजिए। हे आयुष्मन्! मैं इसकी प्राणभिक्षाके लिए आपसे प्रार्थना करता हूँ। इसे छोड़नेसे आपका कल्याण होगा ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र! हे आयुष्मन्! यह शुनःशेप बहुत रो रहा है, जिससे करुणावश मुझे अपार दुःख होता है। हे राजन्! मेरी बात मानकर आप इस बालकके ऊपर दया करिए ॥२१॥ पहलेके समय दयालु, पवित्र नियमावलम्बी और स्वर्गके इच्छुक ऐसे क्षत्रिय होते थे, जो दूसरेके जीवनकी रक्षा करनेमें अपना प्राण दे देते थे ॥२२॥ एक क्षत्रिय आप हैं, जो अपने प्राण बचानेके लिए एक ब्राह्मणके बालकको बरबस मार रहे हैं। हे महाराज! आप ऐसा पाप न करके इस बालकपर दया कीजिए ॥२३॥ सब जीवोंको अपने-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने प्राण प्रिय होते हैं। हे राजन्! यह बात आप स्वयं जानते हैं। इसलिए यदि आप मेरी बातको विश्वसनीय मानते हों तो इस बालकको छोड़ दीजिए ॥२४॥ व्यासजी बोले-राजा हरिश्चन्द्र जलोदर रोगसे पीड़ित थे। अतएव उन्होंने विश्वामित्रकी बात ठुकराकर उस बालकको नहीं छोड़ा। इससे तपस्वी विश्वामित्र उनके ऊपर कुपित हो गये ॥२५॥ तब वेदवेत्ताओंमें अग्रणी और दयालु विश्वामित्रने शुनःशेपको वरुणसूक्तका उपदेश दिया ॥२६॥ तदनुसार शुनःशेप अपनी हत्याके भयसे कातर होकर वरुणदेवका स्मरण करते हुए उच्च स्वरसे उस सूक्तका उच्चारण करता हुआ रोने लगा ॥ २७ ॥ दयाके सागर वरुणदेव शुनःशेप द्वारा अपनी स्तुति सुनकर वहाँ प्रकट हो गये और उसे बन्धनमुक्त कर दिया ॥ २८ ॥ बादमें राजा हरिश्चन्द्रको भी रोगमुक्त करके वरुणदेव अपने लोक चले गये। तब विश्वामित्रने मृत्युके मुखसे छूटे हुए शुनःशेपको अपना पुत्र बना लिया ॥ २९ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने महर्षि विश्वामित्रकी बात नहीं मानी थी। इससे वे गाधितनय मन ही मन राजाके ऊपर बहुत रुष्ट हुए ॥३०॥ एक समय राजा घोड़ेपर सवार होकर जंगलमें शिकार खेलने गये। जंगली सूअर मारनेकी इच्छासे वे ठीक

त्प्रमाणं यदि मे वचः ॥ २४॥ व्यास उवाच ॥ अनादृत्य च तद्वाक्यं राजा दुःखातुरो भृशम् ॥ न मुमोच मुनिस्तस्मै चुकोपातीव तापसः ॥ २५॥ उपदेशं ददौ तस्मै शुनःशेपाय कौशिकः ॥ मंत्रं पाशधरस्याथ दयावान्वेदवित्तमः ॥ २६ ॥ शुनःशेपोऽपि तं मंत्रमसकृद्भयकर्शितः ॥ प्लुतस्वरेण चुक्रोश संस्मरन्वरुणं भृशम् ॥ २७ ॥ स्तुवंतं मुनिपुत्रं तं ज्ञात्वा वै यादसां पतिः ॥ तत्रागत्य शुनःशेपं मुमोच करुणार्णवः ॥ २८ ॥ रोगहीनं नृपं कृत्वा वरुणः स्वगृहं ययौ ॥ विश्वामित्रस्तु तं पुत्रं कृतवान्मोचितं मृतेः ॥ २९ ॥ न कृतं वचनं राज्ञा कौशिकस्य महात्मनः ॥ रोषं दधार मनसा राजोपरि स गाधिजः ॥ ३० ॥ एकस्मिन्समये राजा हयारूढो वनं गतः ॥ सूकरं हंतुकामस्तु मध्याह्ने कौशिकीतटे ॥ ३१ ॥ वृद्धब्राह्मण-वेषेण विश्वामित्रेण वंचितः ॥ सर्वस्वं प्रार्थितं तस्य गृहीतं राज्यमद्भुतम् ॥ ३२ ॥ पीडितोऽसौ हरिश्चन्द्रो यजमानो यतो भृशम् ॥ वसिष्ठः कौशिकं प्राह वने प्राप्तं यदृच्छया ॥ ३३ ॥ क्षत्रियाधम दुर्बुद्धे वृथा ब्राह्मणवेषभृत् ॥ बकधर्म वृथा किं त्वं गर्वं वहसि दांभिक ॥ ३४ ॥ कस्मात्त्वया नृपश्रेष्ठो यजमानो ममाप्यसौ ॥ अपराधं विना जाल्म गमितो दुःखमद्भुतम् ॥ ३५ ॥ बकध्यानपरो यस्मात्तस्मात्त्वं वै बको भव ॥ इति शप्तो वसिष्ठेन कौशिकः प्राह तं पुनः ॥ ३६ ॥ त्वमप्याडिर्भवायुष्मन्बकोऽहं यावदेव हि ॥ व्यास उवाच ॥ एवं परस्परं दत्त्वा शापं तौ

दोपहरके समय कौशिकी नदीके तटपर पहुँचे ॥ ३१ ॥ उसी समय विश्वामित्रने वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारण करके राजा हरिश्चन्द्रको छलकर उनका सर्वस्व माँग लिया और सारे राजपाटपर अधिकार कर लिया ॥३२॥ उसी दिनसे यजमान हरिश्चन्द्र दर-दरकी ठोकरें खाने लगे। एक दिन वनमें सहसा विश्वामित्रसे वसिष्ठ मुनिकी भेंट हो गयी ॥३३॥ तब वसिष्ठने कहा—अरे दुर्बुद्धे! तूने झूठ-मूठ ब्राह्मणका स्वरूप बना रक्खा है। तेरी बगुलाभगती ठीक नहीं है। अरे ढोंगी! तू व्यर्थ गर्व करता है ॥ ३४ ॥ तू हमारे निरपराध यजमान क्षत्रियकुलशिरोमणि हरिश्चन्द्रको क्यों महान् कष्ट दे रहा है? ॥३५॥ तुमने बगुलेकी तरह समाधि लगा रक्खी है, अतएव तुम बगुला हो जाओ। जब वसिष्ठने इस तरह शाप दे दिया। तब विश्वामित्रने कहा— ॥३६॥ हे आयुष्मन्! यदि मैं बगुलेका जन्म पाऊँगा तो तुम भी मेरे उस जीवनतक आडी (तीतर) का जन्म पाकर रहोगे। व्यासजी बोले-हे जनमेजय! क्रोधवश उन्होंने परस्पर एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरेको शाप दे दिया ॥३७॥ तदनन्तर एक सरोवरके किनारे अण्डोंमेंसे वे दोनों मुनि 'आडी' और 'बक' रूपमें उत्पन्न हुए। बादमें पेड़पर घोंसला बनाकर बगुला रूपधारी विश्वामित्र दिव्य मानसरोवरके किनारे रहने लगे। इसी तरह एक दूसरे पेड़पर घोसला बनाकर तीतररूपधारी वसिष्ठजी भी रहते थे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तब भी दोनोंमें बड़ी प्रबल शत्रुता चल रही थी। वे कुपित होकर नित्य आपसमें जूझते रहते थे ॥४०॥ इतनी जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर वे लड़ते थे कि जिससे सब लोगोंको बहुत व्यथा होती थी। उनमेंसे एक चोंच और पंखके द्वारा लड़ता तो दूसरा पंजोंसे नोचता था ॥४१॥ इससे वे इतने लहू-लुहान हो जाते कि खिले हुए टेसूके फूल जैसे दीखने लगते थे। हे महाराज! इस प्रकार पक्षिरूपधारी वसिष्ठ और विश्वामित्र बहुत वर्षोंतक शापग्रस्त होकर वहाँ पड़े रहे। इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजयने कहा—हे ब्रह्मन्! आगे चलकर वे वसिष्ठ और महर्षि विश्वामित्र किस तरह शापमुक्त हुए? ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

क्रोधपीडितौ ॥ ३७॥ अंडजौ तरसा जातौ सरस्याडीबकौ मुनी ॥ एकस्मिन्पादपे नीडं कृत्वाऽसौ बकरूपभाक् ॥ ३८ ॥ विश्वामित्रः स्थितस्तत्र दिव्ये सरसि मानसे ॥ अन्यस्मिन्पादपे कृत्वा वसिष्ठो नीडमुत्तमम्॥ ३९ ॥ आडीरूपधरस्तस्थावन्योन्यं द्वेषतत्परौ ॥ दिने दिने तौ संग्रामं चक्रतुः क्रोधसंयुतौ ॥ ४० ॥ दुःखदं सर्वलोकानां क्रंदमानावुभौ भृशम् ॥ चंचुपक्षप्रहारैस्तु नखाघातैः परस्परम् ॥ ४१ ॥ जघ्नतू रुधिरक्लिन्नौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ एवं बहूनि वर्षाणि पक्षिरूपधरौ मुनी॥ ४२ ॥ स्थितौ तत्र महाराज शापपाशेन यंत्रितौ ॥ राजोवाच ॥ कथं मुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ शापाद्वसिष्ठकौशिकौ ॥४३॥ तन्ममाचक्ष्व विप्रर्षे परं कौतूहलं हि मे ॥ व्यास उवाच ॥ युध्यमानावुभौ दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४४ ॥ तत्राजगामानिमिषैर्वृतः सर्वैर्दयापरैः ॥ तावाश्वास्य जगत्कर्ता युद्धतो विनिवार्य च ॥ ४५ ॥ शापं संमोचयामास तयोः क्षिप्तं परस्परम् ॥ ततो जग्मुः सुराः सर्वे स्वानि धिष्ण्यानि पद्मभूः ॥ ४६ ॥ सत्यलोकं जगामाशु हंसारूढः प्रतापवान् ॥ विश्वामित्रोऽप्यगात्तूर्णं वसिष्ठः स्वाश्रमं गतः ॥ ४७ ॥ मिथः स्नेहं ततः कृत्वा प्रजापत्युपदेशतः ॥ मैत्रावरुणिनाऽप्येवं कृतं युद्धमकारणम् ॥ ४८ ॥ कौशिकेन समं भूप दुःखदं च परस्परम् ॥ को नाम मानवो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ॥ ४९ ॥ अहंकारजयं कृत्वा सर्वदा सुखभाग्भवेत्॥ तस्माद्राजंश्चित्तशुद्धिर्महतामपि दुर्लभा ॥ ५० ॥ यत्नेन साधनीया सा तद्विहीनं निरर्थकम् ॥ तीर्थदानतपःसत्यं यत्किंचिद्धर्मसाधनम् ॥५१॥ (श्रद्धाऽत्र त्रिविधा प्रोक्ता सात्त्विकी राजसी तथा ॥ तामसी

हे महर्षे! मेरे चित्तमें यह जाननेकी बड़ी प्रबल आकांक्षा है। व्यासजी बोले—जब लोकपितामह ब्रह्माजीने उन्हें लड़ते देखा ॥ ४४ ॥ तब करुणाके सागर ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ वहाँ गये। उन्होंने उन दोनोंको आश्वासन देकर संग्राम रोका ॥ ४५ ॥ बादमें परस्पर दिये हुए शापसे भी उन दोनोंको मुक्त कर दिया। इसके बाद देवता अपने-अपने आश्रमको चल पड़े ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ प्रजापति ब्रह्माजीके उपदेशानुसार अब वे दोनों मित्रतापूर्वक रहने लगे। हे राजन्! इस तरह मैत्रावरुणि वसिष्ठने विश्वामित्रके साथ वह निष्प्रयोजन लड़ाई लड़ी, जिससे दोनोंको अपार कष्ट मिला। हे महाराज! इस प्रकार ऐसा कौन देवता, दानव या मानव है कि जो अहंकारको जीतकर सदा सुखी रहे? हे राजन्! विश्वामित्र और वसिष्ठके इस दृष्टान्तसे यह स्पष्ट हो गया कि महापुरुषोंकी भी चित्तशुद्धि दुर्लभ होती है ॥४८–५०॥ इसलिए प्रयत्नपूर्वक चित्तको शुद्ध रक्खे। क्योंकि चित्त शुद्ध न रहनेपर तीर्थ, दान, तपस्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्य और धर्मके सभी साधन बेकार हो जाते हैं ॥ ५१ ॥ (सात्त्विकी, राजसी और तामसी, तीन तरहकी श्रद्धा होती है ॥१॥ इनमें सात्त्विकी श्रद्धा बड़ी दुर्लभ होती है। यह धर्मकर्मका पूरा फल देती है। यदि राजसी श्रद्धाके साथ विधिवत् धर्मकर्म किया जाय तो वह आधा फल देती है ॥ २ ॥ हे राजन्! कामी और क्रोधी पुरुषोंकी श्रद्धा तामसी होती है। हे महाराज! इस श्रद्धासे न तो कर्मका कोई फल मिलता है और न उससे कीर्ति ही मिलती है ॥३॥) अतः चित्तको सभी वासनाओंसे हटाकर सत्संग करे। ऐसा करनेसे जब चित्त शुद्ध हो जाय, तब तीर्थ आदिमें निवास करता हुआ नित्य भगवतीकी आराधना करे ॥ ५२ ॥ कलियुगके दोषसे भयभीत मनुष्योंको चाहिए कि ऐसा कुछ करें, जिससे उनकी जिह्वा सदा भगवतीका नाम लेती हुई उनके गुणोंका कीर्तन करती रहे और उनका चित्त सदा भगवतीके चरणकमलके ध्यानमें मग्न रहे ॥ ५३ ॥ यदि वे इस प्रकार भगवतीकी आराधना करेंगे तो कलियुगका तनिक भी भय नहीं रहेगा और पापी प्राणी भी अनायास संसारसे छुटकारा पा जायँगे ॥५४॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

सर्वदेहेषु देहिनां धर्मकर्मसु ॥ १ ॥ सात्त्विकी दुर्लभा लोके यथोक्तफलदा सदा ॥ तदर्धफलदा प्रोक्ता राजसी विधिसंयुता ॥ २ ॥ तामसी त्वफला राजन्न तु कीर्तिकरी पुनः ॥ कामक्रोधाभिभूतानां जनानां नृपसत्तम ॥ ३ ॥) वासनारहितं कृत्वा तच्चित्तं श्रवणादिना ॥ तीर्थादिषु वसेन्नित्यं देवीपूजनतत्परः ॥५२॥ देवीनामानि वचसा गृह्णंस्तस्या गुणान्स्तुवन् ॥ ध्यायंस्तस्याः पदांभोजं कलिदोषभयार्दितः ॥५३॥ एवं तु कुर्वतस्तस्य न कदाचित्कलेर्भयम् ॥ अनायासेन संसारान्मुच्यते पातकी जनः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ मैत्रावरुणिरित्युक्तं नाम तस्य मुनेः कथम् ॥ वसिष्ठस्य महाभाग ब्रह्मणस्तनुजस्य ह ॥१॥ किमसौ कर्मतो नाम प्राप्तवान्गुणतस्तथा ॥ ब्रूहि मे वदतां श्रेष्ठ कारणं तस्य नामजम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ निबोध नृपतिश्रेष्ठ वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ॥ निमिशापात्तनुं त्यक्त्वा पुनर्जातो महाद्युतिः ॥ ३ ॥ मित्रावरुणयोर्यस्मात्तस्मात्तन्नाम विश्रुतम् ॥ मैत्रावरुणित्यस्मिँल्लोके सर्वत्र पार्थिव ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ कस्माच्छप्तः स धर्मात्मा राज्ञा ब्रह्मात्मजो मुनिः ॥ चित्रमेतन्मुनिं लग्नो राज्ञः शापोऽतिदारुणः ॥ ५ ॥ अनागसं मुनिं राजा किमसौ शप्तवान्मुने ॥

(वसिष्ठजीके मैत्रावरुणि नाम पड़नेका कारण) राजा जनमेजयने पूछा—हे महाभाग! वसिष्ठजी तो ब्रह्माजीके पुत्र थे। तब उनका नाम मैत्रावरुणि कैसे पड़ गया? ॥१॥ क्या उन्होंने ऐसा कोई काम किया था अथवा उनमें ऐसे ही गुण थे, जिससे उनकी यह संज्ञा पड़ गयी? हे मुनिवर! आप सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं। वसिष्ठजी मैत्रावरुणि क्यों कहलाते हैं? इसका कारण मुझे बतानेकी कृपा करें ॥२॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजेन्द्र! सुनो, वसिष्ठजी ब्रह्माके पुत्र होते हुए भी निमिके शापसे पुनर्जन्म लेनेके लिए विवश हो गये और उन महान् तेजस्वी मुनिको वह शरीर त्याग देना पड़ा ॥३॥ हे राजन्! अब मित्र और वरुणके यहाँ उनकी उत्पत्ति हुई थी। इसीसे इस जगत्में वे सर्वत्र 'मैत्रावरुणि' के नामसे विख्यात हुए ॥ ॥ राजाने पूछा—ब्रह्माजीके पुत्र मुनिवर वसिष्ठ धार्मिक पुरुष थे। उन्हें राजा निमिने क्यों दारुण शाप दे दिया? ॥ ५ ॥ हे मुने! वसिष्ठजी कभी किसीका कुछ भी अनिष्ट नहीं करते थे, तब राजाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्हें क्यों शाप दिया ? हे प्रभो ! आप बड़े धर्मज्ञ पुरुष हैं। सो शापका मूल कारण बतानेकी कृपा कीजिए ॥ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! इसका निर्णीत कारण तो मैं तुम्हें पहले ही बता
चुका हूँ। तीन प्रकारके मायिक गुणोंसे यह सारा जगत् व्याप्त है ॥ ७ ॥ राजे धर्मपूर्वक राज्य करें और तपस्वी लोग तपस्या करें—यह स्वाभाविक कर्म हैं। किन्तु मायिक गुणोंसे विद्ध
होनेके कारण जैसा शुद्ध भाव होना चाहिये, वैसा नहीं हो पाता ॥ ८ ॥ शासक राजाओंमें काम और क्रोध भरे रहते हैं। कठिन तपस्या करनेवाले मुनियोंके हृदयसे भी लोभ और अहं-
कारकी मात्रा पूरी तरह नष्ट नहीं हो पाती। फिर उत्तम फल कैसे मिले ? हे राजन् ! जैसे ब्राह्मण थे, वैसे ही क्षत्रिय। दोनों राजस गुणोंसे ओतप्रोत होकर यज्ञ कर रहे थे। इसी बीच वसिष्ठने
निमिको और निमिने वसिष्ठको शाप दे दिया और ऐसा करके वे दोनों बड़े संकटमें पड़ गये ॥ ९-११ ॥ हे भूपाल ! इस त्रिगुणात्मक संसारमें द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मनःशुद्धि
प्राणियोंके लिए बड़ी दुर्लभ वस्तु है ॥१२॥ महामायाकी अदम्य शक्तिका ही यह प्रभाव है। कोई कभी भी उस शक्तिका उल्लंघन नहीं कर सकता ! जिसके हृदयमें जिस क्षण भगवतीकी कृपापर

कारणं वद धर्मज्ञ तस्य शापस्य मूलतः ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ कारणं तु मया प्रोक्तं तव पूर्वं विनिश्चितम् ॥ संसारोऽयं त्रिभिर्व्याप्तो राजन्मायागुणैः
किल ॥ ७ ॥ धर्मं करोतु भूपालश्चरंतु तापसास्तपः ॥ सर्वेषां तु गुणैर्विद्धं नोज्ज्वलं तद्भवेदिह ॥८॥ कामक्रोधाभिभूताश्च राजानो मुनयस्तथा ॥
लोभाहंकारसंयुक्ताश्चरन्ति दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥ भवंति क्षत्रिया राजन्रजोगुणसमावृताः ॥ ब्राह्मणास्तु तथा राजन्न कोऽपि सत्त्वसंयुतः ॥ १० ॥
ऋषिणाऽसौ निमिः शप्तस्तेन शप्तो मुनिः पुनः ॥ दुःखाद्दुःखतरं प्राप्तावुभावपि विधेर्बलात् ॥ ११ ॥ द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मनसः शुद्धिरुज्ज्वला ॥
दुर्लभा प्राणिनां भूप संसारे त्रिगुणात्मके ॥ १२ ॥ पराशक्तिप्रभावोऽयं नोल्लंघ्यः केनचित्क्वचित् ॥ यस्यानुग्रहमिच्छेत्सा मोचयत्येव तं क्षणात्
॥ १३ ॥ महांतोऽपि न मुच्यंते हरिब्रह्महरादयः ॥ पामरा अपि मुच्यंते यथा सत्यव्रतादयः ॥ १४ ॥ तस्यास्तु हृदयं कोऽपि न वेत्ति भुवनत्रये ॥
तथापि भक्तवश्येयं भवत्येव सुनिश्चितम् ॥ १५ ॥ तस्मात्तद्भक्तिरास्थेया दोषनिर्मूलनाय च ॥ रागदंभादियुक्ता चेत्सा भक्तिर्नाशिनी भवेत् ॥ १६ ॥
इक्ष्वाकुकुलसंभूतो निमिर्नाम नराधिपः ॥ रूपवान्गुणसंपन्नो धर्मज्ञो लोकरंजकः ॥१७॥ सत्यवादी दानपरो याजको ज्ञानवाञ्छुचिः ॥ द्वादशस्तनयो
धीमन्प्रजापालनतत्परः ॥ १८ ॥ पुरं निवेशयामास गौतमाश्रमसन्निधौ ॥ जयंतपुरसंज्ञं तु ब्राह्मणानां हिताय सः ॥ १९ ॥ बुद्धिस्तस्य समुत्पन्ना

विश्वास होता है, उसका उसी क्षण उद्धार हो जाता है ॥१३॥ कभी-कभी ब्रह्मा, विष्णु और शिव जैसे महान् देवता मुक्त नहीं होते और सत्यव्रत जैसे पामर प्राणी मुक्त हो जाते हैं ॥१४॥
त्रिलोकीमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो भगवती महामायाका रहस्य पूरी समझता हो। तथापि वे भक्तके वशमें हो ही जाती हैं—यह बात निश्चित है ॥१५॥ अतएव भगवती जगदम्बाकी भक्ति
करना परम आवश्यक है। इससे अन्तःकरणका दोष समूल नष्ट हो जाता है। हाँ, यदि कहीं भक्तिमें राग-द्वेष और दम्भ आ गया, तब तो वह उलटे नाशका कारण बन जाती है ॥ १६ ॥
इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न एक राजा थे, उनका नाम था निमि। वे बड़े सुन्दर, गुणी, धर्मज्ञ और प्रजाके प्रेमी थे ॥१७॥ वे कभी झूठ नहीं बोलते थे। दान करना उनका नित्य-नियम था।
यज्ञ करनेमें उनकी विशेष रुचि थी। वे बड़े दानी, ज्ञानी और पुण्यात्मा थे। उन बुद्धिमान् निमिको इक्ष्वाकुका बारहवाँ पुत्र माना जाता था। वे सदा प्रजापालनमें तत्पर रहते थे ॥१८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गौतम मुनिके आश्रमके पास ही उन्होंने जयन्तपुर नामका एक नगर बसाया था। उसीमें उन्होंने अपने निवासकी व्यवस्था की थी। क्योंकि वे ब्राह्मणोंके बड़े शुभचिन्तक थे। सहसा जिसमें प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटी जाती हैं तथा जो बहुत समयमें पूरा होता है, ऐसा राजसी यज्ञ करनेका उनके मनमें विचार उत्पन्न होगया। हे राजन्! तब निमिने अपने पिता इक्ष्वाकुसे आज्ञा लेकर महात्माओंके कथनानुसार यज्ञकी सारी सामग्री एकत्र करवा ली ॥१९-२१॥ भृगु, अङ्गिरा,वामदेव, गौतम, वसिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह और क्रतु आदि जितने विशेषज्ञ, वेदके पारगामी और यज्ञ करानेमें कुशल तपस्वी मुनि थे, उन सबके यहाँ उन्होंने निमन्त्रण भेज दिया ॥२२॥२३॥ जब सम्पूर्ण उपयोगी सामान एकत्रित हो गया, तब धर्मज्ञ राजा निमिने अपने गुरु वसिष्ठजीकी पूजा की और बड़ी नम्रताके साथ कहा-॥२४॥ हे मुनिवर! हे कृपासिन्धो! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। आप इसके आचार्य बनिए। सर्वज्ञानी होनेके नाते आप मेरे गुरु हैं। अतः अब मेरा यह कार्य आपके ऊपर निर्भर है ॥२५॥ यज्ञसम्बन्धी वस्तुओंका संग्रह कराकर मैंने इनकी शुद्धि करा ली है। मेरा ऐसा विचार है कि मैं पाँच हजार वर्षके लिए यज्ञमें दीक्षित हो

यजेयमिति राजसी ॥ यज्ञेन बहुकालेन दक्षिणासंयुतेन च ॥ २० ॥ इक्ष्वाकुं पितरं दृष्ट्वा यज्ञकार्याय पार्थिवः ॥ कारयामास संभारं यथोद्दिष्टं महात्मभिः ॥ २१ ॥ भृगुमंगिरसं चैव वामदेवं च गौतमम् ॥ वसिष्ठं च पुलस्त्यं च ऋचीकं पुलहं क्रतुम् ॥ २२ ॥ मुनीनामंत्रयामास सर्वज्ञान्वेद-पारगान् ॥ यज्ञविद्याप्रवीणांश्च तापसान् वेदवित्तमान् ॥ २३ ॥ राजा संभृतसंभारः संपूज्य गुरुमात्मनः ॥ वसिष्ठं प्राह धर्मज्ञो विनयेन समन्वितः ॥ २४ ॥ यजेयं मुनिशार्दूल याजयस्व कृपानिधे ॥ गुरुस्त्वं सर्ववेत्ताऽसि कार्यं मे कुरु सांप्रतम् ॥ २५ ॥ यज्ञोपकरणं सर्वं समानीतं सुसंस्कृतम् ॥ पंचवर्षसहस्रं तु दीक्षां कर्तुं मतिश्च मे ॥ २६ ॥ यस्मिन्यज्ञे समाराध्या देवी श्रीजगदम्बिका ॥ तत्प्रीत्यर्थमहं यज्ञं करोमि विधिपूर्वकम् ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वाऽसौ निमेर्वाक्यं वसिष्ठः प्राह भूपितम् ॥ इन्द्रेणाहं वृतः पूर्वं यज्ञार्थं नृपसत्तम ॥ २८ ॥ पराशक्तिमखं कर्तुमुद्युक्तः पाकशासनः ॥ स दीक्षां गमितो देवः पंचवर्षशतात्मिकाम् ॥ २९ ॥ तस्मात्त्वमंतरं तावत्प्रतिपालय पार्थिव ॥ इन्द्रयज्ञे समाप्तेऽत्र कृत्वा कार्यं दिवस्पतेः ॥ ३० ॥ आगमिष्याम्यहं राजंस्तावत्त्वं प्रतिपालय ॥ राजोवाच ॥ मया निमंत्रिताश्चान्ये मुनयो यज्ञकारणात् ॥ ३१ ॥ संभाराः संभृताः सर्वे पालयामि कथं गुरो ॥

जाऊँ ॥ २६ ॥ मैं विधिपूर्वक वह यज्ञ करना चाहता हूँ, जिसमें भगवती जगदम्बाकी विशेषरूपसे आराधना की जाय। क्योंकि उनकी प्रसन्नता ही मेरे यज्ञका उद्देश्य है ॥२७॥ राजा निमिकी उपर्युक्त बातें सुनकर वसिष्ठजीने कहा-'हे राजेन्द्र! तुमसे पहले ही मुझको इन्द्रने यज्ञ करानेके लिए वरण कर लिया है ॥ २८ ॥ पराशक्ति नामक यज्ञ करनेके लिए वे तैयार हैं। उन्होंने पाँच सौ वर्ष तक चलनेवाले यज्ञकी दीक्षा ले ली है ॥२९॥ अतएव हे राजन्! तबतक तुम इन सामग्रियोंको सुरक्षित रखो। इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर उस कार्यसे निवृत्त होकर मैं तुरन्त तुम्हारे यहाँ आ जाऊँगा। उस समयतक तुम्हें प्रतीक्षा करनी होगी। राजाने कहा-हे ब्रह्मन्! यज्ञके निमित्त मैं बहुतसे अन्य मुनियोंको भी निमन्त्रित कर चुका हूँ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यज्ञकी सारी वस्तुएँ जुट गयी हैं। तब इतने लंबे समय तक मैं कैसे उन्हें रोके रहूँगा। हे गुरुदेव! आप इस इक्ष्वाकुवंशके आचार्य हैं। वेदोंका कोई भी अंश आपसे अविदित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं है ॥ ३२ ॥ हे द्विजवर ! आप क्यों इस समय मेरा यज्ञ न कराकर अन्यत्र जानेके लिए तैयार हैं ? ऐसा करना आपको शोभा नहीं देता ॥ ३३ ॥ धनके लोभसे ही आप वहाँ जाना चाहते हैं। इस प्रकार राजा निमिके रोकनेपर भी वे इन्द्रके यज्ञमें चले गये। इससे राजाका मन एक दम उदास हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने गौतम मुनिको अपना आचार्य बनाया और हिमालय पर्वतके संनिकट समुद्रके किनारे जाकर वे यज्ञमें दीक्षित हो गये। हे राजन् ! महाराज निमिने उस पाँच हजार वर्ष व्यापी यज्ञमें ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटीं। उन्होंने बहुतसा धन और गौएँ देकर ऋत्विजोंकी पूजा की। इससे प्रायः सभी बड़े प्रसन्न थे। इधर पाँच सौ वर्षोंकी अवधिवाला इन्द्रका यज्ञ जब समाप्त हो गया, तब वसिष्ठजी राजा निमिका यज्ञ देखनेके विचारसे वहाँ गये॥३४-३८॥ 'राजासे भेंट कर लूँ' यो सोचकर कुछ देरतक वे वहाँ रुके रहे। उस समय राजा निमि सोये हुए थे। उन्हें गहरी नींद आ गयी थी। सेवकोंने राजाको जगाया नहीं, जिससे वे मुनिके पास नहीं आ सके ॥ ३९ ॥ इससे वसिष्ठजीने सोचा कि राजा मेरा अपमान कर रहा है। अतः उनके मनमें क्रोध उत्पन्न हो गया।

इक्ष्वाकूणां कुले ब्रह्मन्गुरुस्त्वं वेदवित्तमः ॥ ३२ ॥ कथं त्यक्त्वाऽद्य मे कार्यमुद्यतो गंतुमाशु वै ॥ न ते युक्तं द्विजश्रेष्ठ यदुत्सृज्य मखं मम ॥३३॥ गंताऽसि धनलोभेन लोभाकुलितचेतनः ॥ निवारितोऽपि राज्ञा स जगामेंद्रमखं गुरुः ॥३४॥ राजाऽपि विमना भूत्वा गौतमं प्रत्यपूजयत् ॥ इयाज हिमवत्पार्श्वे सागरस्य समीपतः ॥ ३५ ॥ दक्षिणा बहुला दत्ता विप्रेभ्यो मखकर्मणि ॥ निमिना पंचसाहस्री दीक्षा तत्र कृता नृप ॥३६॥ ऋत्विजः पूजिताः कामं धनैर्गोभिर्मुदा युतः ॥ शक्रयज्ञसमाप्ते तु पंचवर्षशतात्मके ॥३७॥ आजगाम वसिष्ठस्तु राज्ञः सत्रदिदृक्षया ॥ आगत्य संस्थितस्तत्र दर्शनार्थं नृपस्य च ॥ ३८ ॥ तदा राजा प्रसुप्तस्तु निद्रयाऽपहृतो भृशम् ॥ नासौ प्रबोधितो भृत्यैर्नागतस्तु मुनिं नृपः ॥ ३९ ॥ वसिष्ठस्य ततो मन्युः प्रादुर्भूतोऽवमानतः ॥ अदर्शनान्निमेस्तत्र चुकोप मुनिसत्तमः ॥४०॥ शापं च दत्तवांस्तस्मै राज्ञे मन्युवशं गतः ॥ यस्मात्त्वं मां गुरुं त्यक्त्वा कृत्वाऽन्यं गुरुमात्मनः ॥४१॥ दीक्षितोऽसि बलान्मंद मामवज्ञाय पार्थिव ॥ वारितोऽपि मया तस्माद्विदेहस्त्वं भविष्यसि ॥ ४२ ॥ पतत्विदं शरीरं ते विदेहो भव भूपते ॥ व्यास उवाच ॥ इति तद्व्याहृतं श्रुत्वा राज्ञस्तु परिचारकाः ॥ ४३ ॥ सद्यः प्रबोधयामासुर्मुनिमाहुः प्रकोपितम् ॥ कुपितं तं समागत्य राजा विगतकल्मषः ॥ ४४ ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुगर्भं च युक्तिमत् ॥ मम दोषो न धर्मज्ञ गतस्त्वं तृष्णयाऽऽकुलः ॥ ४५ ॥ हित्वा

निमिकी सेवामें उपस्थित न होना ही मुनिके रोषका कारण बन गया ॥ ४० ॥ उस क्रोधके वशीभूत होकर उन्होंने राजाको शाप दे दिया। वसिष्ठने कहा-तुमने मुझ जैसे अपने गुरुको छोड़कर दूसरेको गुरु बना लिया ? हे राजन् ! यों मेरा अपमान करके तुम यज्ञमें दीक्षित हो गये हो। हे मूर्ख ! मेरे मना करनेपर भी तुम न रुक सके। अतः आजसे तुम विदेह हो जाओगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा यह शरीर नष्ट हो जाय और तुम विदेह हो जाओ। व्यासजी कहते हैं-हे राजन् ! मुनिका यह शाप सुनकर सेवकोंने तुरन्त महाराज निमिको जगाया और वसिष्ठजी बड़े कुपित हो गये हैं-उन्हें इसकी सूचना दी। राजाके अन्तःकरणमें कोई दुर्भावना नहीं थी। वे तुरन्त क्रोधमें भरे हुए मुनिके पास आ गये ॥४३॥४४॥ उन्होंने मीठे शब्दोंमें युक्तिपूर्वक और सारगर्भित बातें आरम्भ कीं। निमिने कहा-हे धर्मके पूर्ण ज्ञाता गुरुदेव ! मेरा कोई अपराध नहीं है। मैं आपका यजमान हूँ। मेरे बार बार प्रार्थना करनेपर भी आपने मुझे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ठुकरा दिया और लोभमें पड़कर अन्यत्र चले गये ॥ ४५ ॥ मेरे बार बार प्रार्थना करनेपर भी आप मुझ यजमानको छोड़कर चले गये। हे द्विजवर ! ऐसा निन्दित कर्म करनेपर भी आपको लज्जा नहीं आयी ? ॥ ४६ ॥ हे विप्रवर ! ब्राह्मणको सदा संतुष्ट रहना चाहिए–इस धार्मिक सिद्धान्तको आप भली भाँति जानते हैं। आप साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र हैं। वेद और वेदाङ्गका सर्वोत्कृष्ट ज्ञान आपको प्राप्त है ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणधर्मकी गति बड़ी गहन है–इसे समझना अत्यन्त कठिन कार्य है। आप इस सूक्ष्म धर्मको न समझनेके कारण ही मुझे अपना अपराधी जानकर व्यर्थ शाप दे बैठे ॥ ४८ ॥ विद्वान् पुरुषको चाहिये कि क्रोधको सदाके लिए त्याग दे। क्योंकि यह चण्डालसे भी बढ़कर अस्पृश्य है। इस क्रोधका ही परिणाम है कि आपने अकारण मुझे शाप दे दिया ॥ ४९ ॥ अतः मैं भी आपको शाप दे रहा हूँ कि 'आपका भी यह क्रोधभाजन शरीर शीघ्र नष्ट हो जाय'। इस प्रकार मुनिवर वसिष्ठ और राजा निमि दोनों परस्पर शापके भागी बन गये ॥ ५० ॥ शाप लग जानेपर उन दोनोंके चित्त चिन्तित हो उठे। वसिष्ठजीके मनमें बड़ी खलबली मच गयी। अतः वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये

मां यजमानं वै प्रार्थितोऽपि मया भृशम् ॥ न लज्जसे द्विजश्रेष्ठ कृत्वा कर्म जुगुप्सितम् ॥ ४६ ॥ संतोषं ब्राह्मणश्रेष्ठ जानन्धर्मस्य निश्चयम् ॥ पुत्रोऽसि ब्रह्मणः साक्षाद्वेदवेदांगवित्तमः ॥४७॥ न वेत्सि विप्रधर्मस्य गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् ॥ आत्मदोषं मयि ज्ञात्वा मृषा मां शप्तुमिच्छसि ॥४८॥ त्याज्यस्तु सुजनैः क्रोधश्चंडालादधिको यतः ॥ वृथा क्रोधपरीतेन मयि शापः प्रपातितः ॥ ४९ ॥ तवापि च पतत्वद्य देहोऽयं क्रोधसंयुतः ॥ एवं शप्तो मुनी राज्ञा राजा च मुनिना तथा ॥ ५० ॥ परस्परं प्राप्य शापं दुःखितौ तौ बभूवतुः ॥ वसिष्ठस्त्वतिचिंतार्तो ब्रह्माणं शरणं गतः ॥ ५१ ॥ निवेदयामास तथा शापं भूपकृतं महत् ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ राज्ञा शप्तोऽस्मि देहोऽयं पतत्वद्य तवेति वै ॥ ५२ ॥ किं करोमि पितः प्राप्तं कष्टं कायप्रपातजम् ॥ अन्यदेहसमुत्पत्तौ जनकं वद सांप्रतम् ॥ ५३ ॥ तथा मे देहसंयोगः पूर्ववत्समपद्यताम् ॥ यादृशं ज्ञानमेतस्मिन्देहे तत्रास्तु तत्पितः ॥ ५४ ॥ समर्थोऽसि महाराज प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा प्रोवाच तं सुतम् ॥ ५५ ॥ मित्रावरुणयोस्तेजस्त्वं प्रविश्य स्थिरो भव ॥ तस्मादयोनिजः काले भविता त्वं न संशयः ॥ ५६ ॥ पुनर्देहं समासाद्य धर्मयुक्तो भविष्यसि ॥ भूतात्मा वेदवित्कामं सर्वज्ञः

और राजाने जो कठिन शाप दे दिया था, वह उनसे प्रार्थनापूर्वक कह सुनाया। वसिष्ठजीने कहा–पिताजी ! राजा निमिने मुझे शाप दे दिया है कि तुम्हारा यह शरीर नष्ट हो जाय ॥५१॥ ॥ ५२ ॥ शरीरका अंत होनेमें कष्ट होना स्वाभाविक है, किंतु यह विषम परिस्थिति मेरे सामने आ ही गयी। सो अब मुझे क्या करना चाहिए ? मैं पुनः शरीर धारण करूँगा तो उस समय मेरे पिता कौन होंगे–यह बतानेकी कृपा करें ॥५३॥ मैं चाहता हूँ कि दूसरे शरीरसे सम्बन्ध होनेपर भी मेरी स्थिति पूर्ववत् बनी रहे। मेरे इस शरीरमें जैसा ज्ञान सुलभ है, वैसा ही दूसरा शरीर पानेपर भी मुझे प्राप्त रहे ॥ ५४ ॥ हे महाराज ! आप बड़े शक्तिशाली हैं। अतः मेरी प्रसन्नताके लिए आप ऐसी ही व्यवस्था करनेकी कृपा करें। वसिष्ठजीकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उन अपने मानस पुत्र वसिष्ठसे कहा–॥५५॥ हे मुने ! तुम मित्रावरुणके तेजमें प्रविष्ट होकर शांत पड़े रहो। समय आनेपर उन्हींके द्वारा प्रकट हो जाओगे। तुम अयोनिज पुत्र होओगे–इसमें कुछ भी संशय नहीं है। नवीन देह पानेपर भी तुम्हें ऐसी ही धार्मिक बुद्धि प्राप्त होगी। तुम प्राणियोंके सुहृद्, वेदवेत्ता, सर्वज्ञानी और सबसे सम्मान प्राप्त करनेके अधिकारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होओगे ॥५६॥५७॥ लोकपितामह ब्रह्माजीके श्रीमुखसे इस प्रकारकी बाते सुनकर वसिष्ठजीने प्रसन्नतापूर्वक उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और प्रदक्षिणा करके वरुणके आश्रमपर चले गये। वहाँ सदा एक साथ रहनेवाले मित्र और वरुण दोनों ऋषि विराजमान थे। अवसर पाकर वसिष्ठ अपने श्रेष्ठ एवं स्थूल शरीरका परित्याग करके केवल सूक्ष्म शरीरसे मित्रावरुणके शरीरमें प्रवेश कर गये ॥५८॥५९॥ हे राजन्! एक समयकी बात है कि उर्वशी नामकी परम सुंदरी अप्सरा अपनी सखियोंके साथ स्वेच्छापूर्वक मित्रावरुणके आश्रमपर आयी ॥६०॥ उसे देखकर मित्रावरुणका चित्त चलायमान हो गया। वे उससे कहने लगे–॥६१॥ 'हे सुन्दरी! तुम्हारा रूप बड़ा ही आकर्षक है। तुम देवकन्या हो। अतः तुम हमें वरण कर लो। हे वर-वर्णिनी! इस आश्रमपर स्वच्छन्दभावसे मेरे साथ आनन्दका अनुभव करो'। यह कहनेपर उर्वशी अप्सरा विवश होकर कुछ समयके लिए वहाँ ठहर गयी ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ उस सुन्दरी अप्सराको मुनिका अभिप्राय अविदित न रहा। उनके प्रति प्रेम प्रकट करती हुई उसने वहाँ रहना स्वीकार कर लिया ॥६४॥ संयोगवश वहीं एक खुले मुखका घड़ा पड़ा हुआ था। उर्वशीसे

सर्वपूजितः ॥ ५७ ॥ एवमुक्तस्तदा पित्रा प्रययौ वरुणालयम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं प्रीत्या प्रणम्य च पितामहम् ॥ ५८ ॥ विवेश स तयोर्देहे मित्राव-रुणयोः किल ॥ जीवांशेन वसिष्ठोऽथ त्यक्त्वा देहमनुत्तमम् ॥ ५९ ॥ कदाचित्तूर्वशी राजन्नागता वरुणालयम् ॥ यदृच्छया वरारोहा सखीगणस-मावृता ॥ ६० ॥ दृष्ट्वा तामप्सरां दिव्यां रूपयौवनसंयुताम् ॥ जातौ कामातुरौ देवौ तदा तामूचतुर्नृप ॥ ६१ ॥ विवशौ चारुसर्वांगीं देवकन्यां मनोरमाम् ॥ आवां त्वमनवद्यांगि वरयस्व समाकुलौ ॥ ६२ ॥ विहरस्व यथाकामं स्थानेऽस्मिन्वरवर्णिनि ॥ तथोक्ता सा ततो देवी ताभ्यां तत्र स्थिताऽवशा ॥ ६३ ॥ कृत्वा भावं स्थिरं देवी मित्रावरुणयोर्गृहे ॥ सा गृहीत्वा तयोर्भावं संस्थिता चारुदर्शना ॥ ६४ ॥ तयोस्तु पतितं वीर्यं कुंभे दैवादनावृते ॥ तस्माज्जातौ मुनी राजन्द्वावेवातिमनोहरौ ॥ ६५ ॥ अगस्त्यः प्रथमस्तत्र वसिष्ठश्चापरस्तथा ॥ मित्रावरुणयोर्वीर्यात्तापसावृषिसत्तमौ ॥ ६६ ॥ प्रथमस्तु वनं प्राप्तो बाल एव महातपाः ॥ इक्ष्वाकुस्तु वसिष्ठं तं बालं वव्रे पुरोहितम् ॥ ६७ ॥ वंशस्यास्य सुखार्थं ते पालयामास पार्थिव ॥ विशेषेण मुनिं ज्ञात्वा प्रीत्या युक्तो बभूव ह ॥ ६८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वसिष्ठस्य च कारणम् ॥ शापाद्देहांतरप्राप्तिर्मित्रावरुणयोः कुले ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

बातचीत हो ही रही थी, इतनेमें मित्रावरुणका वीर्य स्खलित होकर उस घड़ेमें गिर पड़ा। हे राजन्! उसीसे दो सुंदर मुनिकुमार प्रकट हो गये। प्रथम बालकका नाम पड़ा अगस्त्य और दूसरेका वसिष्ठ। मित्रावरुणके वीर्यसे उत्पन्न ये दोनों मुनि महान् तपस्वी एवं ऋषियोंमें प्रधान ऋषि हुए ॥६५॥६६॥ अगस्त्यकी तपस्यापर अटूट श्रद्धा थी। अतः बचपनमें ही वे वनमें चले गये। दूसरे बालक वसिष्ठको इक्ष्वाकुने पुरोहितके रूपमें वरण कर लिया॥६७॥ हे राजन्! तुम्हारा यह वंश सुखी रहे। इस विचारसे महाराज इक्ष्वाकुने वसिष्ठके पालन-पोषणकी समुचित व्यवस्था कर दी। मुनिके वीर्यसे उस बालककी उत्पत्ति जानकर महाराज इक्ष्वाकु प्रसन्न हुए ॥ ६८ ॥ हे राजन्! ये सब कथाएँ मैं तुम्हें सुना चुका। इस प्रकार शाप लग जानेके कारण वसिष्ठजीको मित्रावरुणके कुलमें दूसरा शरीर धारण करना पड़ा–यह प्रसंग इससे स्पष्ट हो जाता है ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(निमिका नेत्रकी पलकोंपर निवास) राजा जनमेजयने कहा—हे मुने ! आपने वसिष्ठके देह धारण करनेकी बात बतला दी । निमिको पुनः शरीर कैसे मिला, अब यह प्रसंग भी मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ १ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे वसिष्ठजीको पुनः शरीर प्राप्त हो गया, वैसे शाप मिलनेके पश्चात् राजा निमि पुनः शरीरधारी नहीं हुए ॥ २ ॥ जिस समय मुनिने शाप दिया, उस समय राजा यज्ञमें दीक्षित थे । उन्होंने जितने ब्राह्मणोंको ऋत्विजके रूपमें वरण किया था, वे सभी आपसमें विचार करने लगे–'अहो ! ये धर्मात्मा नरेश यज्ञमें दीक्षित हैं । अभी यज्ञका काम अधूरा ही है । इसी बीच ये मुनिके शापसे जले जा रहे हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ अब हम क्या करें ? अचानक ऐसी विषम स्थिति आ उपस्थित हुई । अवश्यम्भावी परिस्थितिके कारण हम इसका निवारण भी नहीं कर सकते ॥५॥ तदनन्तर उन ऋत्विजोंने अनेक प्रकारके मंत्रोंका प्रयोग करके महात्मा निमिके शरीरको सुरक्षित रक्खा । उनके श्वासकी गति समाप्त नहीं हो सकी थी ॥६॥ मन्त्रकी शक्तिसे निर्विकार आत्मा उनके शरीरमें प्रतिष्ठित रही । ब्राह्मणोंने भाँति-भाँतिकी पुष्पमालाओं और चन्दनोंसे उस आत्माको सुपूजित कर रक्खा था ॥७॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ देहप्राप्तिर्वसिष्ठस्य कथिता भवता किल ॥ निमिः कथं पुनर्देहं प्राप्तवानिति मे वद ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ वसिष्ठेन च संप्राप्तः पुनर्देहो नराधिप ॥ निमिना न तथा प्राप्तो देहः शापादनंतरम् ॥ २ ॥ यदा शप्तो वसिष्ठेन तदा ते ब्राह्मणाः क्रतौ ॥ ऋत्विजो ये वृता राज्ञा ते सर्वे समचिंतयन् ॥ ३ ॥ किं कर्तव्यमहोऽस्माभिः शापदग्धो महीपतिः ॥ अस्मिन्यज्ञे त्वसम्पूर्णे दीक्षायुक्तश्च धार्मिकः ॥ ४ ॥ किं कर्तव्यं कार्यमेतद्विपरीतमभूत्किल ॥ अवश्यंभाविभावत्वादशक्ताः स्म निवारणे ॥ ५ ॥ मंत्रैर्बहुविधैर्देहं तदा तस्य महात्मनः ॥ रक्षितं धारयामासुः किंचिच्छ्वसनसंयुतम् ॥ ६ ॥ गंधैर्माल्यैश्च विविधैः पूज्यमानं मुहुर्मुहुः ॥ मंत्रशक्त्या प्रतिष्टभ्य निर्विकारं सुपूजितम् ॥ ७ ॥ समाप्ते च क्रतौ तत्र देवाः सर्वे समागताः ॥ ऋत्विग्भिस्तु स्तुताः सर्वे सुप्रीताश्चाभवन्नृप ॥ ८ ॥ विज्ञप्ता मुनिभिः स्तोत्रैर्निर्विण्णात्मानमब्रुवन् ॥ प्रसन्नाः स्म महीपाल वरं वरय सुव्रत ॥ ९ ॥ यज्ञेनानेन राजर्षे वरं जन्म विधीयतें ॥ देवदेहं नृदेहं वा यत्ते मनसि वांछितम् ॥ १० ॥ दृष्टः कामं पुरोधास्ते मृत्युलोके यथासुखम् ॥ एवमुक्तो निमेरात्मा संतुष्टस्तानुवाच ह ॥ ११ ॥ न देहे मम वांछाऽस्ति सर्वदैव विनश्वरे ॥ वासो मे सर्वसत्त्वानां दृष्टा-

यज्ञ समाप्त हो जानेपर इन्द्रादि समस्त देवता वहाँ पधारे । हे राजन् ! ऋत्विजोंने आये हुए उन सम्पूर्ण देवताओंकी समुचित स्तुति की । इससे वे प्रसन्न हो गये ॥८॥ तब ब्राह्मणोंने प्रार्थनापूर्वक राजाकी स्थिति देवताओंके सामने उपस्थित कर दी । अतएव दुखी नरेशके प्रति देवताओंने कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे राजन् ! हम प्रसन्न हैं, तुम वर माँग लो ॥९॥ हे राजन् ! तुम्हारे इस यज्ञके प्रभावसे तुम्हें सर्वोत्तम जन्म मिल सकता है । देवशरीर अथवा मानवशरीर जो भी तुम्हें अभीष्ट हो, उसे प्राप्त कर सकते हो ॥१०॥ जैसे तुम्हारे पुरोहित वसिष्ठ अपने सुख-सुविधाके अनुसार मर्त्यलोकमें शरीर धारण किये हुए हैं ।' देवताओंके यों कहनेपर निमिकी आत्मा परम सन्तुष्ट होकर बोल उठी— ११ ॥ 'हे महाभाग देवताओ ! मैं सदा जन्मने और मरनेवाले इस शरीरमें रहना तनिक भी पसन्द नहीं करता । मैं चाहता हूँ कि सम्पूर्ण प्राणी जिसके द्वारा देखते हैं, उसी दृष्टिमें रहनेका सुअवसर मुझे प्राप्त हो और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सभी प्राणियोंके नेत्रोंमें वायु बनकर मैं विचरा करूँ !' हे राजन् ! जब निमिकी आत्माने देवताओंके सामने यों अपनी अभिलाषा प्रकट की, तब वे उनसे कहने लगे—॥ १२ ॥ १३ ॥ हे महाराज ! इसके लिए तुम सबपर शासन करनेवाली कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी प्रार्थना करो । तुम्हारे इस यज्ञसे वे परम प्रसन्न हैं । उन्हींकी कृपासे तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण होगा ॥ १४ ॥ देवताओंके यह कहनेपर निमिने अनेक प्रकारके दिव्य स्तोत्रों द्वारा भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें देवीसे प्रार्थना की ॥ १५ ॥ इससे प्रसन्न होकर देवीने राजा निमि को प्रत्यक्ष दर्शन दिया । उनके विग्रहसे ऐसा प्रकाश फैल रहा था, मानो करोड़ों सूर्य एक साथ चमक रहे हों । उनके प्रत्येक अंगमें सुन्दरता प्रकट हो रही थी ॥१६॥ देवीकी ऐसी अपूर्व झाँकी पाकर सब-के-सब आनन्दमें निमग्न हो गये । सभी अपनेको सफल-मनोरथ समझने लगे । हे राजन् ! देवीको प्रसन्न जानकर निमिने उनसे वर माँगा—॥ १७ ॥ 'हे माता ! आप मुझे ऐसा निर्मल ज्ञान देनेकी कृपा कीजिए, जिससे मैं मुक्त हो सकूँ । मेरी यह अभिलाषा है कि मुझे सब प्राणियोंके नेत्रोंमें ठहरनेका सुयोग प्राप्त हो' ॥ १८ ॥ भगवती जगदम्बिका निमिपर

वस्तु सुरोत्तमाः ॥ १२ ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चराम्यहम् ॥ एवमुक्ताः सुरास्तत्र निमेरात्मानमब्रुवन् ॥ १३ ॥ प्रार्थय त्वं महाराज देवीं सर्वेश्वरीं शिवाम् ॥ मखेनानेन संतुष्टा सा तेऽभीष्टं विधास्यति ॥ १४ ॥ स देवैरेवमुक्तस्तु प्रार्थयामास देवताम् ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्भक्त्या गद्गदया गिरा ॥ १५ ॥ प्रसन्ना सा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं रूपं लावण्यदीपितम् ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे कृत-कृत्याश्च चेतसि ॥ प्रसन्नायां देवतायां राजा बव्रे वरं नृप ॥ १७ ॥ ज्ञानं तद्विमलं देहि येन मोक्षो भवेदपि ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासो मे भवे-दिति ॥ १८ ॥ ततः प्रसन्ना देवेशी प्रोवाच जगदंबिका ॥ ज्ञानं ते विमलं भूयात्प्रारब्धस्यावशेषतः ॥ १९ ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासोऽपि भविष्यति ॥ निमिषं यांति चक्षूंषि त्वत्कृतेनैव देहिनाम् ॥ २० ॥ तव वासात्सनिमिषा मानवाः पशवस्तथा ॥ पतंगाश्च भविष्यंति पुनश्चानिमिषाः सुराः ॥ २१ ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै तदा श्रीवरदेवता ॥ आमंत्र्य च मुनीन्सर्वांस्तत्रैवांतर्हिताऽभवत् ॥ २२ ॥ अंतर्हितायां देव्यां तु मुनयस्तत्र संस्थिताः ॥ विचिंत्य विधिवत्सर्वं निमेर्देहं समाहरन् ॥२३॥ अरणिं तत्र संस्थाप्य ममंथुर्मन्त्रवत्तदा ॥ मंत्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेरथ ॥२४॥ अरण्यां मथ्यमानायां पुत्रः प्रादुरभूत्तदा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नः साक्षान्निमिरिवापरः ॥ २५ ॥ अरण्या मथनाज्जातस्तस्मान्मिथिरिति स्मृतः ॥ येनायं

प्रसन्न तो थीं ही । उन्होंने कहा—राजन् ! भविष्यमें तुम्हें शुद्ध ज्ञान अवश्य प्राप्त होगा । अभी तुम्हारा प्रारब्ध-भोग समाप्त नहीं हुआ है। अतः समस्त चराचर प्राणियोंके नेत्रोंमें तुम्हें रहना होगा । तुम्हारे प्रभावसे ही प्राणियोंकी आँखोंमें पलक गिरनेकी शक्ति रहेगी ॥ १९ ॥ २० ॥ अतएव मनुष्य, पशु और पक्षी—ये पलक गिरानेवाले प्राणी कहलायेंगे । देवता इस स्थितिसे पृथक् रहेंगे—पलकें न गिरनेसे उनकी 'अनिमिष' संज्ञा होगी ॥२१॥ हे राजन् ! वर देनेके लिए पधारी हुई भगवती जगदम्बा यों निमिका मनोरथ पूर्ण करके मुनियोंसे मिलनेके पश्चात् वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥२२॥ देवीके चली जानेपर वहाँ उपस्थित मुनियोंने सम्यक् प्रकारसे परामर्श करके निमिके नष्ट होते हुए स्थूल शरीरको रखा और उससे कोई राजकुमार उत्पन्न हो जाय, इस विचारसे उस शरीरपर अरणी रखकर मन्त्र पढ़ते हुए उसे मथने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ साथ-ही-साथ मंत्रोच्चारणपूर्वक हवन भी होता रहा । यों अरणि-मन्थन करनेपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक सर्वसुलक्षणसम्पन्न बालककी उत्पत्ति हुई। वह ऐसा ज्ञान पड़ता था, मानो दूसरे निमि ही स्वयं प्रकट हो गये हों ॥ २५ ॥ वह बालक अरणिमन्थनसे प्रकट होनेके कारण 'मिथि' और पिताके शरीरसे जन्मनेके कारण 'जनक' नामसे जगत्में विख्यात हुआ ॥ २६ ॥ निमिके विदेह होनेसे उनके कुलमें जितने नरेश हुए, वे सभी 'विदेह' कहलाने लगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार निमिसे राजा जनककी उत्पत्ति कही गयी। उन्होंने गङ्गाके तटपर एक नगरी बसायी, जो बड़ी ही मनोहर थी ॥ २८ ॥ मिथिला नामसे वह नगर जगत्प्रसिद्ध था। वह नगर गोपुर, अट्टालिका, धन-धान्य तथा बड़ी-बड़ी बाजारोंसे परिपूर्ण था ॥२९॥ उस वंशमें जो राजे उत्पन्न होते थे, उन सभीको 'जनक'की उपाधि मिलती थी। उन परम ज्ञानी राजाओंको लोग 'विदेह' भी कहते थे ॥ ३० ॥ हे राजन्! निमिकी उत्तम कथाका मैं वर्णन कर चुका। उन्हें शाप मिल जानेसे विदेह हो जाना पड़ा था। ये बातें भी विशदरूपसे बतला दीं ॥३१॥ राजा जनमेजयने कहा—भगवन्! निमिने वसिष्ठजीको शाप दे दिया था, उसका कारण अभी आप बता चुके हैं। परन्तु ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी ब्राह्मण थे और राजाने उन्हें अपना पुरोहित

जनकाज्जातस्तेनासौ जनकोऽभवत् ॥ २६ ॥ विदेहस्तु निमिर्जातो यस्मात्तस्मात्तदन्वये ॥ समुद्भूतास्तु राजानो विदेहा इति कीर्तिताः ॥ २७ ॥ एवं निमिसुतो राजा प्रथितो जनकोऽभवत् ॥ नगरी निर्मिता तेन गंगातीरे मनोहरा ॥ २८ ॥ मिथिलेति सुविख्याता गोपुराट्टालसंयुता ॥ धन-धान्यसमायुक्ता हट्टशालाविराजिता ॥२९॥ वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्तथा ॥ विख्याता ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्तिताः ॥३०॥ एतत्ते कथितं राजन्निमेराख्यानमुत्तमम् ॥ शापाद्यस्य विदेहत्वं विस्तरादुदितं मया ॥३१॥ राजोवाच ॥ भगवन्भवता प्रोक्तं निमिशापस्य कारणम् ॥ श्रुत्वा संदेहमापन्नं मनो मेऽतीव चञ्चलम् ॥ ३२ ॥ वसिष्ठो ब्राह्मणश्रेष्ठो राज्ञश्चैव पुरोहितः ॥ पुत्रः पंकजयोनेस्तु राज्ञा शप्तः कथं मुनिः ॥ ३३ ॥ गुरुं च ब्राह्मणं ज्ञात्वा निमिना न कृता क्षमा ॥ यज्ञकर्म शुभं कृत्वा कथं क्रोधमुपागतः ॥ ३४ ॥ ज्ञात्वा धर्मस्य विज्ञानं कथमिक्ष्वाकुसंभवः ॥ क्रोधस्य वशमापन्नः शप्तवान्ब्राह्मणं गुरुम् ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ क्षमाऽतिदुर्लभा राजन्प्राणिभिरजितात्मभिः ॥ क्षमावान्दुर्लभो लोके सुसमर्थो विशेषतः ॥ ३६ ॥ सर्वसंगपरित्यागी मुनिर्भवतु तापसः ॥ निद्राक्षुधोर्विजेता च योगाभ्यासे सुनिष्ठितः ॥ ३७ ॥ कामः क्रोधस्तथा लोभो ह्यहं-कारश्चतुर्थकः ॥ दुर्ज्ञेया देहमध्यस्था रिपवस्तेन सर्वथा ॥ ३८ ॥ न भूतपूर्वः संसारे न चैव वर्ततेऽधुना ॥ भविता न पुमान्कश्चिद्यो जयेत रिपू-

बना रक्खा था। फिर ऐसे मुनिको उन्होंने शाप क्यों दे दिया? वसिष्ठजीको ब्राह्मण और गुरु समझकर राजा निमि क्षमाभाव नहीं प्रकट कर सके? इतना बड़ा यज्ञ करके भी उन्होंने क्रोध क्यों किया? ॥३२-३४॥ इक्ष्वाकुकुलभूषण उन नरेशने धर्मके रहस्यको जानते हुए भी क्रोधवश वसिष्ठजीको, जो ब्राह्मण एवं गुरुके पदपर प्रतिष्ठित थे, शाप क्यों दे दिया? ॥३५॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! अजितेन्द्रिय व्यक्तिके लिए क्षमा बड़ी ही दुर्लभ वस्तु है। जगत्में क्षमाशील पुरुष मिल जायँ, यह कठिन बात है। सो भी अपकार करनेकी शक्ति रखते हुए क्षमावान् होना और कठिन है ॥३६॥ मुनिको चाहिए कि वह किसीमें आसक्ति न रखकर तपस्या करे। निद्रा और भूख-प्यासको जीतकर योगके अभ्यासमें तत्पर रहे ॥३७॥ काम, क्रोध, लोभ और अहंकार ये प्रबल शत्रु मानव शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं। मानव इन्हें समझ नहीं पाते ॥ ३८ ॥ संसारमें कभी कोई ऐसा नहीं हुआ और न इसी समय कोई ऐसा है कि जो इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काम-क्रोध आदि शत्रुओंको जीत सका हो ॥३९॥ स्वर्गलोक, भूलोक, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठधाम और कैलासमें भी कोई इन शत्रुओंको जीतनेवाला पुरुष नहीं है॥४०॥ अनेक मुनि, ब्रह्माजीके पुत्र तथा अन्य बहुतसे तपस्वी हो चुके हैं। परन्तु वे भी तीनों गुणोंसे अछूते नहीं रह सके। फिर मर्त्यलोकके मानवोंकी क्या चर्चा करें? ॥४१॥ महात्मा कपिल सांख्यशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता माने जाते थे। योगाभ्यासमें ही उनका सब समय व्यतीत होता था, किन्तु दैवका विधान टाल न सकनेके कारण उनके द्वारा भी सगरके पुत्र जलकर भस्म हो गये ॥ ४२ ॥ अतएव हे राजन्! कार्य-कारणस्वरूप अहंकारसे ही त्रिलोकीकी उत्पत्ति होती है तो फिर मानव उसके गुणोंसे कैसे मुक्त हो सकता है? ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिवके भी मनोभावोंमें अन्तर होता है। जब कि एकमात्र सतोगुणके मूर्तरूप उपर्युक्त देवताओंमें भी तीनों गुणोंका मेल दिखायी देता है, तब मनुष्योंके विषयमें क्या कहा जाय? ॥४४॥४५॥ प्राणियोंमें कभी सत्त्व-गुणकी अधिकता रहती है, कभी राजोगुणकी तथा कभी तमोगुणकी। कभी सभी गुण समान होकर रहते हैं॥ ४६ ॥ वह परम प्रभु परमात्मा ही निर्गुण, निर्लेप, अविनाशी, अप्रमेय और

निमान् ॥ ३९ ॥ न स्वर्गे न च भूलोके ब्रह्मलोके हरेः पदे ॥ कैलासे नेदृशः कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान् ॥ ४० ॥ मुनयो ब्रह्मपुत्राश्च तथाऽन्ये तापसोत्तमाः ॥ तेऽपि गुणत्रयाविद्धाः किं पुनर्मानवा भुवि ॥ ४१ ॥ कपिलः सांख्यवेत्ता च योगाभ्यासरतः शुचिः ॥ तेनापि दैवयोगाद्धि प्रदग्धा सगरात्मजाः ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन्नहंकारात्संजातं भुवनत्रयम् ॥ कार्यकारणभावात्तु तद्वियुक्तं कथं भवेत् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा गुणत्रयाविष्टो विष्णुश्चै-वाथ शंकरः ॥ प्रभवन्ति शरीरेषु तेषां भावाः पृथक्पृथक् ॥ ४४ ॥ मानवानां च का वार्ता सत्त्वैकांतव्यवस्थितौ ॥ गुणानां संकरो राजन्सर्वत्र समवस्थितः ॥ ४५ ॥ कदाचित्सत्त्ववृद्धिः स्यात्कदाचिद्रजसः किल ॥ कदाचित्तमसो वृद्धिः समभावः कदाचन ॥ ४६ ॥ निर्गुणः परमात्माऽसौ निर्लेपः परमोऽव्ययः ॥ अलक्ष्यः सर्वसत्त्वानामप्रमेयः सनातनः ॥ ४७ ॥ तथैव परमा शक्तिर्निर्गुणा ब्रह्मसंस्थिता ॥ दुर्ज्ञेया चाल्पमतिभिः सर्वभूतव्यवस्थितिः ॥ ४८ ॥ परात्मनस्तथा शक्तेस्तयोरैक्यं सदैव हि ॥ अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते सर्वदोषतः ॥ ४९ ॥ तज्ज्ञानादेव मोक्षः स्यादिति वेदांतडिंडिमः ॥ यो वेद स विमुक्तोऽस्मिन्संसारे त्रिगुणात्मके ॥ ५० ॥ ज्ञानं तु द्विविधं प्रोक्तं शाब्दिकं प्रथमं स्मृतम् ॥ वेदशास्त्रार्थविज्ञानात्तद्भवेद्बुद्धियोगतः ॥ ५१ ॥ विकल्पास्तत्र बहवो भवन्ति मतिकल्पिताः ॥ (कुतर्ककल्पिताः केचित्सुतर्ककल्पिताः

और सनातन स्वरूप है ॥४७॥ उनकी झाँकी पानेमें सम्पूर्ण प्राणियोंकी आँखें प्रायः असफल रहती हैं। उन्हींके समान उनके साथ विराजमान रहनेवाली परमा शक्ति भी हैं। चराचर जगत्की व्यवस्था करनेवाली उन देवीके मनपर तीनों गुणोंका प्रभाव नहीं पड़ सकता। अल्पबुद्धि मानवोंके लिए वे दुर्ज्ञेय हैं ॥४८॥ परब्रह्म परमात्मा और परा शक्ति-इनमें किंचिन्मात्र भेद नहीं है। ये सदासे एक स्वरूप हैं। यह जानकर मानव सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो जाता है। यह ज्ञान मुक्तिका अचूक साधन है। वेदांत इसे मुक्त कण्ठसे कह रहा है। इस त्रिगुणात्मक संसारमें जो इस रहस्यको जान गया, उसके मुक्त होनेमें कोई संदेह नहीं रहता ॥४९॥५०॥ ज्ञान भी दो प्रकारके बताये गये हैं। इनमें शाब्दिक ज्ञानको प्रथम माना गया है। वेद और शास्त्रके आधारपर बुद्धिपूर्वक पूर्ण विचार किया जाय तो यह ज्ञान सुलभ हो जाता है॥ ५१ ॥ बुद्धिकी कल्पनाके अनुसार इस ज्ञानके भी बहुतसे अवान्तर भेद हो जाते हैं। (इनमेंसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ ज्ञान कुतर्क तथा कुछ सुतर्कसे कल्पित होते हैं । विशेष तर्क करनेसे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और ज्ञान नष्ट हो जाता है ॥१॥) हे राजन् ! 'अनुभव' नामक दूसरे ज्ञानको लोग बड़ा दुर्लभ मानते हैं ॥५२॥ वह ज्ञान तब मिल सकता है, जब उसके जानकार पुरुषके साथ रहनेका सुअवसर प्राप्त हो । हे भारत ! केवल शब्दज्ञानसे कार्य सिद्ध होना असम्भव है ॥५३॥ अतएव अनुभव ज्ञानको दिव्य माना जाता है । शब्दज्ञानमें ऐसी योग्यता नहीं है कि उसके द्वारा अन्तःकरणका अन्धकार नष्ट हो सके ॥५४॥ जैसे केवल दीपककी चर्चा करनेसे अन्धकारका अभाव असम्भव होता है । कर्म वह है, जिससे प्राणी बन्धनमें न पड़े और विद्या उसे कहते हैं, जो मुक्तिकी साधिका हो ॥५५॥ अन्य कर्म करनेसे केवल परिश्रम ही हाथ लगता है और विद्या केवल कारीगरीमात्र सिखा देती है—प्राणी उससे वास्तविक लाभ नहीं उठा पाते । सदाचार पालन करना, दूसरेके हितमें तत्पर रहना, मनमें क्रोध न आने देना क्षमा, धैर्य एवं सन्तोष रखना—ये विद्याके उत्तम फल माने गये हैं । हे राजन् ! विद्या तपस्या अथवा योगाभ्यासके बिना कामादि शत्रुओंका संहार कदापि नहीं हो सकता । काम-क्रोधादिका उद्गमस्थान चित्त बतलाया गया

परे ॥ वितर्कैर्विभ्रमोत्पत्तिर्विभ्रमाद्बुद्धिभ्रंशता ॥ बुद्धिभ्रंशाज्ज्ञाननाशः प्राणिनां परिकीर्तितः ॥ १ ॥) अनुभवाख्यं द्वितीयं तु ज्ञानं
तद्दुर्लभं नृप ॥ ५२ ॥ तत्तदा प्राप्यते तस्य वेत्तुः संगो यदा भवेत् ॥ शब्दज्ञानान्न कार्यस्य सिद्धिर्भवति भारत ॥ ५३ ॥ तस्मान्नानुभवज्ञानं
संभवत्यतिमानुषम् ॥ अंतर्गतं तमश्छेत्तुं शाब्दबोधो हि न क्षमः ॥ ५४ ॥ यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया ॥ तत्कर्म यन्न बंधाय सा
विद्या या विमुक्तये ॥ ५५ ॥ आज्ञायापरं कर्म विद्याऽन्या शिल्पनैपुणम् ॥ शीलं परहितत्वं च कोपभावः क्षमा धृतिः ॥ ५६ ॥ संतोषश्चेति
विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम् ॥ विद्यया तपसा वाऽपि योगाभ्यासेन भूपते ॥ ५७ ॥ विना कामादिशत्रूणां नैव नाशः कदाचन ॥ (मनस्तु
चंचलं राजन्स्वभावादतिदुर्ग्रहम् ॥ तद्वशः सर्वथा प्राणी त्रिविधो भुवनत्रये ॥२॥) कामक्रोधादयो भावाश्चित्तजाः परिकीर्तिताः ॥५८॥ ते तदा न
भवंत्येव यदा वै निर्जितं मनः ॥ तस्मात्तु निमिना राजन्न क्षमा विहिता मुनौ ॥ ५९ ॥ यथा ययातिना पूर्वं कृता शुक्रे कृतागसि ॥
भृगुपुत्रेण शप्तोऽपि ययातिर्नृपसत्तमः ॥ ६० ॥ न शशाप मुनिं क्रोधाज्जरां राजा गृहीतवान् ॥ कश्चित्सौम्यो भवेत्कश्चित्क्रूरो भवति
पार्थिवः ॥ ६१ ॥ स्वभावभेदान्नृपते कस्य दोषोऽत्र कल्प्यते ॥ हैहया भार्गवान्पूर्वं धनलोभात्पुरोहितान् ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणान्मूलतः सर्वांश्चिच्छिदुः

है ॥५६–५८॥ (हे राजन् ! मन चञ्चल रहनेके कारण स्वभावतः दुर्ग्रह होता है । त्रिलोकीके सभी प्राणी मनके ही वशमें रहते हैं) जब मन वशमें रहता है, तब ये सब विकार उत्पन्न नहीं हो पाते । हे राजन् ! यही कारण है कि राजा निमि मुनिवर वसिष्ठको क्षमा नहीं कर सके । जिस प्रकार राजा ययातिने अपराध करनेपर भी शुक्राचार्यको शाप नहीं दिया, वैसी स्थिति निमिकी नहीं थी ॥ ५९ ॥ पूर्व समयकी बात है—शुक्राचार्यने महाराज ययातिको शाप दे दिया कि 'तुमपर अभी बुढ़ापा आ जाय' । राजाने कुछ भी न कहकर उनके शापजनित बुढ़ापेको स्वीकार कर लिया । ठीक ही है—कुछ राजे शान्त स्वभावके होते हैं और कुछका हृदय बड़ा क्रूर होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! सबका स्वभाव एक सरीखा नहीं होता । अतः किसको दोषी ठहराया जाय । प्राचीन समयकी बात है—बहुतसे भृगुवंशी ब्राह्मण हैहय-वंशज क्षत्रियोंके पुरोहित थे । क्रोधमें आकर उन क्षत्रियोंने कुछ भी नहीं सोचा और धनके लोभसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सब ब्राह्मणोंका संहार कर डाला। ब्रह्महत्या करनेसे महान् पाप होगा, इसपर भी उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया॥ ६२॥ ६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे
पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

(हैहय क्षत्रियों द्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार) राजा जनमेजयने पूछा—हे पितामह! जिन्होंने ब्राह्मणहत्याकी बिल्कुल परवा न करके भृगुवंशी ब्राह्मणोंका वध कर दिया,
वे किस कुलमें उत्पन्न हुए थे? उन क्षत्रियोंमें पुरोहितोंके प्रति ऐसा वैरभाव क्यों उत्पन्न हो गया था? आदरणीय व्यक्ति अकारण क्रोध कैसे कर सकते हैं? ॥१।२॥ इस वैरमें कोई महान्
कारण रहा होगा। अन्यथा पापसे डरनेवाले वे शूरवीर क्षत्रिय निरपराध एवं पूज्य ब्राह्मणोंकी हत्या करनेमें क्यों तत्पर होते? अतः उक्त घटनामें क्या कारण है? सो बतानेकी कृपा कीजिए
॥३-५॥ सूतजी कहते हैं—इस प्रकार राजा जनमेजयके पूछनेपर सत्यवतीनन्दन व्यास परम प्रसन्न होकर कहने लगे ॥६॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! क्षत्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली यह

क्रोधमूर्च्छिताः॥ पातकं पृष्ठतः कृत्वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम्॥ ६३॥ इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पंचदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ जनमेजय उवाच॥ कुले कस्य समुत्पन्नाः क्षत्रिया हैहयाश्च ते॥ ब्रह्महत्यामनादृत्य निजघ्नुर्भार्गवांश्च ये॥ १॥ वैरस्य कारणं तेषां
किं मे ब्रूहि पितामह॥ निमित्तेन विना क्रोधं कथं कुर्वंति सत्तमाः॥ २॥ वैरं पुरोहितैः सार्धं कस्मात्तेषामजायत॥ नाल्पहेतोर्हि तद्वैरं क्षत्रि-
याणां भविष्यति॥ ३॥ अन्यथा ब्राह्मणान्पूज्यान्कथं जघ्नुरनागसः॥ बाहुजा बलवन्तोऽपि पापभीताः कथं न ते॥ ४॥ स्वल्पेऽपराधे को
हन्याद्बाडवान्क्षत्रियर्षभः॥ संदेहो मे मुनिश्रेष्ठ कारणं वक्तुमर्हसि॥५॥ सूत उवाच॥ इति पृष्टस्तदा तेन राज्ञा सत्यवतीसुतः॥ उवाच परमप्रीतः
कथां संस्मृत्य चेतसा॥ ६॥ व्यास उवाच॥ शृणु पारीक्षिते वार्तां क्षत्रियाणां पुरातनीम्॥ आश्चर्यकारिणीं सम्यग्विदितां च पुरा मया॥ ७॥
कार्तवीर्येति नाम्नाऽभूद्धैहयः पृथिवीपतिः॥ सहस्रबाहुर्बलवानर्जुनो धर्मतत्परः॥ ८॥ दत्तात्रेयस्य शिष्योऽभूदवतारो हरेरिव॥ सिद्धः सर्वार्थदः
शाक्तो भृगूणां याज्य एव सः॥ ९॥ यज्वा परमधर्मिष्ठः सदादानपरायणः॥ ददौ वित्तं भृगुभ्योऽसौ कृत्वा यज्ञाननेकशः॥ १०॥ धनिनस्ते
द्विजा जाता भृगवो नृपदानतः॥ हयरत्नसमृद्ध्याढ्याः संजाताः प्रथिता भुवि॥ ११॥ स्वर्याते नृपशार्दूले कार्तवीर्यार्जुने पुनः॥ हैहया निर्धना

परम प्राचीन एवं आश्चर्यजनक कथा सम्यक् प्रकारसे मुझे ज्ञात है। उसे कहता हूँ, सुनो॥ ७॥ हैहयवंशमें एक राजा हो चुके हैं। उनका नाम था 'कार्तवीर्य'। धर्ममें सदा तत्पर
रहनेवाले उन बलशाली राजाके हजार भुजाएँ थी॥ ८॥ उन्होंने दत्तात्रेयसे मन्त्रकी दीक्षा ली थी। उस समय दत्तात्रेय विष्णुके अवतार माने जाते थे। भगवती जगदम्बा उन नरेशकी
इष्ट देवता थीं। वे परम सिद्ध, सब कुछ देनेमें समर्थ एवं भृगुवंशी ब्राह्मणोंके यजमान थे॥ ९॥ उन परम धार्मिक नरेशका अधिकतर समय दान करनेमें ही व्यतीत होता था। उन्होंने
बहुत-से यज्ञ करके अपनी प्रचुर सम्पत्ति ब्राह्मणोंमें बाँट दी। उस समय राजा कार्तवीर्यके दानसे वे भृगुवंशी ब्राह्मण बड़े धनी कहलाने लगे। घोड़े और रत्न आदि प्रचुर सम्पत्तिसे जगत्में
उनकी अपार ख्याति हो गयी थी ॥१०॥११॥ हे राजन्! सहस्रार्जुनने बहुत समयतक पृथिवीपर राज्य किया। उनके स्वर्गवासी होनेके पश्चात् हैहयवंशी क्षत्रिय बिलकुल निर्धन हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गये ॥१२॥ एक समयकी बात है, उन क्षत्रियोंको धनकी विशेष आवश्यकता पड़ी। तब हे नरेन्द्र! धन माँगनेके विचारसे वे उन भृगुवंशी ब्राह्मणोंके पास गये ॥१३॥ नम्रतापूर्वक उन्होंने ब्राह्मणोंसे अत्यधिक धनकी याचना की, किन्तु उन लोभी ब्राह्मणोंने कुछ भी नहीं दिया। वे बार बार यही कहते रहे कि 'हमारे पास धन नहीं है' ॥१४॥ ये हैहयवंशी क्षत्रिय हमें अवश्य आघात पहुँचायेंगे—यह समझकर कितने ही ब्राह्मणोंने तो अपनी प्रचुर सम्पत्ति जमीनमें गाड़ दी और बहुतोंने दूसरे ब्राह्मणोंके यहाँ छिपाकर रख दी ॥ १५ ॥ इस तरह लोभके कारण उन ब्राह्मणोंका सद्भाव नष्ट हो चुका था। अतएव भयवश अपना-अपना धन स्थानान्तरित करके वे लोभी भृगुवंशी ब्राह्मण आश्रम छोड़-छोड़कर अन्यत्र चले गये ॥१६॥ अपने यजमानोंको दुखी देखकर भी वे धन देनेके लिए प्रस्तुत नहीं हुए और भागकर गिरिकन्दराओंमें रहने लगे ॥ १७ ॥ हे तात! तदनन्तर बहुतसे हैहयवंशी प्रमुख क्षत्रिय, जो धनके अभावसे महान् कष्ट पा रहे थे, द्रव्यप्राप्तिके लिये भृगुवंशी ब्राह्मणोंके आश्रमोंपर पहुँचे ॥ १८ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि ब्राह्मण आश्रम छोड़कर चले गये हैं। तब उन क्षत्रियोंने द्रव्य पानेके लिए वहाँकी

जाताः कालेन महता नृप ॥ १२॥ धनकार्यं समुत्पन्नं हैहयानां कदाचन ॥ याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तान्भृगूँस्ते हैहया नृप ॥ १३ ॥ विनयं क्षत्रियाः कृत्वाऽप्ययाचंत धनं बहु ॥ न ददुस्तेऽतिलोभार्ता नास्ति नास्तीतिवादिनः ॥ १४ ॥ भूमौ च निदधुः केचिद्भृगवो धनमुत्तमम् ॥ ददुः केचिद्द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्रियतो भयम् ॥१५॥ कृत्वा स्थानांतरे द्रव्यं ब्राह्मणा भयविह्वलाः ॥ त्यक्त्वाऽऽश्रमान्ययुः सर्वे भृगवस्तृष्णयाऽन्विताः ॥ १६ ॥ याज्यांश्च दुःखितान्दृष्ट्वा न ददुर्लोभमोहिताः ॥ पलायित्वा गताः सर्वे गिरिदुर्गानुपाश्रिताः ॥१७॥ ततस्ते हैहयास्तात दुःखिताः कार्यगौरवात् ॥ भृगूणामाश्रमाञ्जग्मुर्द्रव्यार्थं क्षत्रियर्षभाः ॥१८॥ भृगूँस्तु निर्गतान्वीक्ष्य शून्यांस्त्यक्त्वा गृहानथ ॥ चखनुर्भूतलं तत्र द्रव्यार्थं हैहया भृशम् ॥१९॥ खनताऽधिगतं वित्तं केनचिद्भृगुवेश्मनि ॥ ददृशुः क्षत्रियाः सर्वे तद्वित्तं श्रमकर्शिताः ॥ २० ॥ यत्र यत्र समुत्पन्नं भूरि द्रव्यं महातलात् ॥ तदा ते पार्श्वभागस्थब्राह्मणानां गृहाण्यपि ॥ २१ ॥ निर्भिद्य हैहया द्रव्यं ददृशुर्धनलिप्सया ॥ ब्राह्मणाश्चुक्रुशुः सर्वे भीताश्च शरणं गताः ॥ २२ ॥ अतिचिन्वत्सु विप्राणां भवनान्निःसृतं बहु ॥ निजघ्नुस्ताञ्छरैः कोपाद्बाडवाञ्छरणागतान् ॥ २३ ॥ ययुस्ते गिरिदुर्गांश्च यत्र वै भृगवः स्थिताः ॥ आगर्भादनुकृंतंतश्चेरुश्चैव महीमिमाम् ॥ २४ ॥ प्राप्तान् प्राप्तान्भृगून्सर्वान्निजघ्नुर्निशितैः शरैः ॥ आबालवृद्धानपरानवमन्य च पातकम् ॥ २५ ॥

जमीन खोदना आरम्भ कर दिया ॥१९॥ उस समय किसी एक व्यक्तिकी दृष्टि घरमें गाड़े हुए धनपर पड़ गयी। अब सबने धन देख लिया। तबसे जहाँ भी पता चलता, वहाँ जमीन खोदकर वे सारा धन ले लेते थे। धनके लोभसे उन क्षत्रियोंने पास-पड़ोसवाले ब्राह्मणोंके घर भी खोद डाले और वहाँ भी उन्हें प्रचुर सम्पत्ति मिली। तब बेचारे ब्राह्मण रोने-गिड़गिड़ाने लगे। अन्तमें उन्होंने क्षत्रियोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। क्योंकि उनके घरसे प्रायः सभी धन निकल चुका था ॥ २०-२२ ॥ यद्यपि वे ब्राह्मण शरणमें चले गये थे, फिर भी क्रोधी क्षत्रियों द्वारा उनपर मार पड़ती रही और क्षत्रियगण बराबर उनपर बाण बरसाते रहे ॥२३॥ तब भृगुवंशी ब्राह्मण भागकर पर्वतोंकी कंदरामें चले गये। किंतु हैहयवशी क्षत्रिय वहाँ भी पहुँच गये और भृगुकुलका संहार करते हुए इस भूमंडलपर घूमने लगे ॥२४॥ जहाँ कहीं भी भृगुके वंशज विप्र मिलते थे, उन्हें तीखे तीरांसे मारकर मृत्युके मुखमें डाल देना उनका प्रधान कर्तव्य बन गया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे हत्यारे क्षत्रिय पाप करनेपर ही तुले हुए थे। उनके घृणित कर्मसे जिन स्त्रियोंका गर्भ नष्ट हो जाता था, वे बेचारी अत्यन्त दुःखिनी होकर कुररी पक्षीकी भाँति विलाप करने लगती थीं ॥ २५–२७ ॥ तब तीर्थवासी अन्य मुनियोंने उन अभिमानी हैहयोंसे कहा—'हे क्षत्रियो ! तुम ब्राह्मणोंपर इतना भयंकर क्रोध मत करो ॥ २८ ॥ यह बड़ा ही अनुचित कर्म है। तुम्हें ऐसा निन्द्य कर्म नहीं करना चाहिये। तुम भृगुकुलकी स्त्रियोंके गर्भका भी उच्छेद करनेको तत्पर हो गये हो ॥ २९ ॥ हे क्षत्रियो ! जब पुण्य अथवा पाप उग्र और असीम हो उठता है, तब उसका फल इस जन्ममें ही सामने आ जाता है। अतः कल्याणकामी पुरुषको ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥ तब क्रोधमें भरे वे हैहयवंशी क्षत्रिय उन परम दयालु मुनियोंसे कहने लगे—'आप सब लोग साधु पुरुष हैं। ये पापकर्म क्यों किये जाते हैं, इसका रहस्य आप नहीं जानते ॥ ३१ ॥ हमारे पूर्वज बड़े महात्मा पुरुष थे। कूटनीतिके विशेषज्ञ इन ब्राह्मणोंने उन्हें धोखेमें डालकर उनका सारा धन इस प्रकार छीन लिया, जैसे किसी पथिककी सम्पत्ति कोई बटमार छीन ले ॥ ३२ ॥ हमने प्रार्थनापूर्वक इनसे

रुरुदुस्ताः स्त्रियः कामं कुरर्य इव दुःखिताः ॥ गर्भाश्च
एवमुत्पाद्यमानेषु भार्गवेषु यतस्ततः ॥ हन्युर्गर्भांश्च नारीणां गृहीत्वा हैहया भृशम् ॥ २६ ॥ रुरुदुस्ताः स्त्रियः कामं कुरर्य इव दुःखिताः ॥ गर्भाश्च
कृंतिता यासां क्षत्रियैः पापनिश्चयैः ॥ २७ ॥ अन्येऽप्याहुश्च तान्दृष्टान्मुनयस्तीर्थवासिनः ॥ मुंचंतु क्षत्रियाः क्रोधं ब्राह्मणेषु भयावहम् ॥ २८ ॥
अयुक्तमेतदारब्धं भवद्भिः कर्म गर्हितम् ॥ यद्गर्भान्भृगुपत्नीनां निहन्युः क्षत्रियर्षभाः ॥२९॥ अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमाप्नुयात् ॥ तस्माज्जुगु-
प्सितं कर्म त्यक्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ३० ॥ तानाहुर्हैहयाः क्रुद्धा मुनीनथ दयापरान् ॥ भवंतः साधवः सर्वे नार्यज्ञाः पापकर्मणाम् ॥ ३१ ॥
एभिर्हृतं धनं सर्वं पूर्वजानां महात्मनाम् ॥ वंचयित्वा छलाभिज्ञैर्मार्गे पाटच्चरैरिव ॥३२॥ एते प्रतारका दंभास्तादृशा बकवृतयः ॥ उत्पन्ने च महा-
कार्ये प्रार्थिता विनयेन ते ॥३३॥ न ददुः प्रार्थितं विप्राः पादवृद्ध्याऽपि याचिताः ॥ नास्तीतिवादिनः स्तब्धा दुःखितान् वीक्ष्य याजकान् ॥ ३४ ॥
धनं प्राप्तं कार्तवीर्याद्रक्षितं केन हेतुना ॥ न कृताः क्रतवः किं तैर्दानं चार्थिषु भूरिशः ॥ ३५ ॥ न संचितव्यं विप्रैस्तु धनं क्वापि कदाचन ॥ यष्टव्यं
विधिवद्देयं भोक्तव्यं च यथासुखम् ॥३६॥ द्रव्ये चौरभयं प्रोक्तं तथा राजभयं द्विजाः ॥ वह्नेर्भयं महाघोरं तथा धूर्तभयं महत् ॥३७॥ येन केनाप्यु-

धन माँगा, किन्तु इन्होंने देना स्वीकार नहीं किया। हम इनके यजमान हैं। हम महान् कष्ट भोग रहे थे। यह बात इनसे छिपी नहीं थी। हमने सवाई सूदपर धन माँगा, किन्तु उनके मुखसे बारबार यही निकलता रहा कि 'हमारे पास कुछ भी नहीं है।' धन पास रहनेपर भी हमारी प्रार्थनाको इन्होंने बिल्कुल ठुकरा दिया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ महाराज कार्तवीर्यने जब इन्हें अपनी सम्पत्ति सौंप दी, तब किस प्रयोजनसे ये उस धनकी इतनी सँभाल करते रहे। न इन्होंने कोई यज्ञ किया और न माँगनेपर याचक ही इनसे कुछ पा सके ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणोंका तो कर्तव्य यह है कि कभी किसी प्रकार भी धनका संचय न करें। विधिपूर्वक यज्ञ करें, दान दें तथा सुख-सुविधाके लिए खाने-पीनेमें व्यय करें ॥ ३६ ॥ हे विप्रो ! ऐसा बताया गया है कि धन रहनेपर राजा, चोर, अग्नि और धूर्तों द्वारा महान् भय उपस्थित हुआ करता है ॥ ३७ ॥ जिस किसी भी प्रकारसे धन अपने रक्षकको त्याग ही देना चाहता है। अथवा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धनका संग्रह करनेवाला व्यक्ति स्वयं मरकर उससे अलग हो जाता और कठिन दुर्गति भोगता है ॥३८॥ हमने बड़ी विनती करके सवाई सूदपर धन माँगा, फिर भी लोभवश संदेहमें पड़कर उन पुरोहितोंने हमें धन नहीं दिया ॥ ३९ ॥ दान, भोग और नाश—धनकी तीन गतियाँ होती हैं। पुण्यात्मा पुरुषोंका धन दान और भोगमें खर्च होता है और पापी यों ही अपनी सम्पत्तिसे वंचित हो जाते हैं ॥४०॥ जो कृपण मानव न तो धनका दान करता है, न खाने-पीनेमें खर्च करता है और केवल संचय करता रहता है, उसे महान् क्लेश भोगने पड़ते हैं। राजाको चाहिये कि ऐसे संचयीको भलीभाँति दंड दे ॥ ४१॥ इसीलिए गुरु कहलानेवाले इन अधम ब्राह्मणोंको मारनेके लिए हम प्रस्तुत हुए हैं। ये बड़े ही धूर्त हैं। आप लोग महात्मा पुरुष हैं। इस विषयमें क्रोध न करें ॥४२॥ व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार सहेतुक वचन कहकर मुनियोंको आश्वासन देनेके बाद वे फिर भृगुपत्नियोंको खोजते हुए घूमने लगे ॥४३॥ उधर वे भयभीत भृगुपत्नियाँ हिमवान् पर्वतकी कन्दराओंमें जा छिपीं। भागते-भागते वे दुर्बल हो गयी थीं और भयसे काँपती हुई बहुत रो रही थीं ॥ ४४ ॥ धनके लोभी उन क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंको

पायेन धनं त्यजति रक्षकम् ॥ अथवाऽसौ मृतो याति द्रव्यं त्यक्त्वा ह्यसद्गतिम् ॥३८॥ पादवृद्ध्या तथाऽस्माभिः प्रार्थितं विनयान्वितैः ॥ तथापि लोभसंदिग्धैर्न दत्तं नः पुरोहितैः ॥ ३९ ॥ दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी ॥ दानभोगौ कृतीनां च नाशः पापात्मनां किल ॥ ४० ॥ न दाता न च यो भोक्ता कृपणो गुप्तितत्परः ॥ राज्ञाऽसौ सर्वथा दंड्यो वंचको दुःखभाङ्नरः ॥४१॥ तस्माद्वयं गुरूनेतान्वंचकान्ब्राह्मणाधमान् ॥ हंतुं समुद्यताः सर्वे न क्रोद्धव्यं महात्मभिः ॥४२॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा हेतुमद्वाक्यं तानाश्वास्य मुनीनथ ॥ विचेरुश्च विचिन्वाना भृगुदारान-नेकशः ॥ ४३ ॥ भयार्ता भृगुपत्न्यस्तु हिमवंतं धराधरम् ॥ प्रपेदिरे रुदंत्यश्च वेपमानाः कृशा भृशम् ॥४४॥ एवं ते हैहयैर्विप्राः पीडिता धनका-मुकैः ॥ निहताश्च यथाकामं संरब्धैः पापकर्मभिः ॥ ४५ ॥ लोभ एवं मनुष्याणां देहसंस्थो महारिपुः ॥ सर्वदुःखाकरः प्रोक्तो दुःखदः प्राणना-शकः ॥ ४६ ॥ सर्वपापस्य मूलं हि सर्वदा तृष्णयान्वितः ॥ विरोधकृत्त्रिवर्णानां सर्वार्तेः कारणं तथा ॥ ४७ ॥ लोभात्त्यजंति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि ॥ मातरं भ्रातरं हंति पितरं बांधवं तथा ॥ ४८ ॥ गुरुं मित्रं तथा भार्यां पुत्रं च भगिनीं तथा ॥ लोभाविष्टो न किं कुर्यादकृत्यं पाप-मोहितः ॥ ४९ ॥ क्रोधात्कामादहंकाराल्लोभ एव महारिपुः ॥ प्राणांस्त्यजति लोभेन किं पुनः स्यादनावृतम् ॥ ५० ॥ पूर्वजास्ते महाराज धर्मज्ञाः

बहुत सताया। अन्तमें पापकर्म करनेवाले वे दुष्ट क्षत्रिय ब्राह्मणोंका संहार करनेमें सफल हो गये ॥४५॥ मनुष्योंके अन्तःकरणमें रहनेवाला लोभ ही महान् शत्रु है। इसे सम्पूर्ण दुःखोंकी खानि कहा गया है। यह दुःखदायी लोभ प्राणोंतकका वियोग करा देता है ॥ ४६ ॥ सम्पूर्ण पापोंकी जड़ लोभ ही है। लोभमें पड़कर मानव तीनों वर्णोंका सदा शत्रु बना रहता है। इसीके कारण उसे सम्पूर्ण दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ ४७ ॥ लोभसे मानव अपने सदाचार और कुलधर्मका त्याग कर देते हैं। माता-पिता और भाई-बन्धुओंको भी मार डालते हैं ॥४८॥ गुरु, मित्र, भार्या और बहनके प्राण हरनेमें भी लोभी मानव नहीं हिचकते। लोभमें भरे हुए मानवकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। वह पापी व्यक्ति कौनसा ऐसा दुष्कर्म है, जो नहीं कर सकता ॥ ४९ ॥ काम, क्रोध और अहंकार—ये तीनों शत्रु हैं। किन्तु लोभ इनसे भी बढ़कर शत्रु है। इसके वशीभूत होकर मानव प्राणतक खो देता है। फिर इसकी विशेषता कहाँ-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक बतलायी जाय ॥ ५० ॥ हे राजा जनमेजय ! आपके पूर्वज बड़े धर्मज्ञ और सत्पथगामी थे। किन्तु वे कौरव और पाण्डव लोभके कारण मारे गये ॥ ५१ ॥ जहाँ भीष्म, द्रोण, कृप, बाह्लिक, भीमसेन, युधिष्ठिर, अर्जुन और श्रीकृष्ण थे ॥ ५२ तथापि उन लोभियोंने परस्पर उग्र युद्ध करके सारे कुटुम्बको नष्ट कर डाला ॥ ५३ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्म, पाण्डवके पुत्र भाई, पिता, पुत्र सब रणमें मारे गये ॥ ५४ ॥ लोभी मनुष्य क्या नहीं कर सकता। तभी तो खोटी बुद्धिवाले हैहयवंशी क्षत्रियोंने समस्त भार्गव ब्राह्मणोंका संहार कर डाला ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः॥ १६ ॥

(एक ब्राह्मणकी जाँघसे भार्गव विप्रकी उत्पत्ति) राजा जनमेजयने पूछा–हे मुने ! फिर भार्गववंशकी स्त्रियोंका दुःखरूपी समुद्रसे कैसे उद्धार हुआ ? उन ब्राह्मणोंकी वंशपरम्परा जगत्में

सत्पथे स्थिताः ॥ पांडवाः कौरवाश्चैव लोभेन निधनं गताः॥ ५१ ॥ यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णश्च बाह्लिकः ॥ भीमसेनो धर्मपुत्रस्तथैवार्जुनकेशवौ ॥५२॥ तथापि युद्धमत्युग्रं कृतं तैश्च परस्परम् ॥ कुटुम्बकदनं भूरि कृतं लोभातुरैरिह ॥ ५३ ॥ हतो द्रोणो हतो भीष्मस्तथैव पांडवात्मजाः ॥ भ्रातरः पितरः पुत्राः सर्वे वै निहता रणे ॥ ५४ ॥ तस्माल्लोभाभिभूतस्तु किं न कुर्यान्नरः किल ॥ हैहयैर्निहताः सर्वे भृगवः पापबुद्धिभिः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं ताश्च स्त्रियः सर्वा भृगूणां दुःखसागरात् ॥ मुक्तो वंशः पुनस्तेषां ब्राह्मणानां स्थितोऽभवत् ॥ १ ॥ हैहयैः किं कृतं कार्यं हत्वा तान्ब्राह्मणानपि ॥ क्षत्रियैर्लोभसंयुक्तैः पापाचारैर्वदस्व तत् ॥ २ ॥ न तृप्तिरस्ति मे ब्रह्मन्पिबतस्ते कथामृतम् ॥ पावनं सुखदं नृणां परलोके फलप्रदम् ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ यथा स्त्रियस्तु ता मुक्ता दुःखात्तस्माद्दुरत्ययात् ॥ ४ ॥ भृगुपत्न्यो यदा राजन्हिमवन्तं गिरिं गताः ॥ भयत्रस्ता विभग्नाशा हैहयैः पीडिता भृशम् ॥ ५ ॥ गौरीं तत्र सुसंस्थाप्य मृन्मयीं सरितस्तटे ॥ उपोषणपराश्चक्रुर्निश्चयं मरणं प्रति ॥ ६ ॥ स्वप्ने गत्वा तदा देवी प्राह ताः प्रमदोत्तमाः ॥ युष्मासु मध्ये कस्याश्चिद्भविता चोरुजः पुमान् ॥ ७ ॥

कैसे बनी रही ? ॥१ लोभमें रचे-पचे वे हैहयवंशी बड़े ही दुराचारी थे। ब्राह्मणोंको मारनेके पश्चात् उन्होंने कौनसा कार्य किया ? उसे बतानेकी कृपा करें ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! आपके द्वारा कथित कथामृतको पीते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। क्योंकि वह कथा पवित्र, सुखदायी और परलोकमें फलप्रद होती है ॥३॥ अब अन्य पापनाशिनी यह कथा कहता हूँ कि वे स्त्रियाँ उस भीषण दुःखसे कैसे छूटीं ॥४॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन् ! सुनो, जब हैहयवंशी क्षत्रिय भार्गववंशकी स्त्रियोंको अपार कष्ट पहुँचाने लगे, तब वे भयके कारण अत्यन्त घबरा और जीवनसे निराश होकर हिमालय पर्वतपर चली गयीं ॥५॥ वहीं नदीके तटपर उन्होंने मिट्टीकी गौरी बनाकर स्थापित की और निराहार रहकर उनकी उपासना करने लगीं। उन्हें अपने मरणमें अब तनिक सन्देह नहीं रहा ॥ ६ ॥ उस समय उन श्रेष्ठ स्त्रियोंके पास स्वप्नमें देवी पधारीं और उनसे बोलीं—तुम लोगोंमेंसे किसी स्त्रीकी जाँघसे एक पुत्र उत्पन्न होगा। मेरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अंशभूत वह पुत्र तुम लोगोंका कार्य सम्पन्न करेगा।' यों कहकर भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं ॥७॥८॥ नींद टूटनेपर उन सभी स्त्रियोंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। उनमेंसे किसी एक चतुर स्त्रीने अपनी जाँघमें गर्भ धारण किया। उसका हृदय भयसे त्रस्त था। वंशवृद्धिके लिए वह वहाँसे भाग निकली और क्षत्रियोंने उसे भागते देख लिया ॥९॥१०॥ जब उन्होंने देखा कि तेजसे उस ब्राह्मणीका मुखमण्डल चमक रहा है, तब वे उसके पीछे दौड़ पड़े और कहने लगे—शीघ्र इस नारीको पकड़ो और मार डालो। क्योंकि गर्भ धारण करके यह यहाँसे भागी जा रही है' ॥ ११ ॥ इस प्रकार कहते हुए हाथमें तलवार लेकर वे उस स्त्रीके निकट पहुँच गये। भयसे अत्यन्त घबरायी हुई वह स्त्री सामने आये हुए उन क्षत्रियोंको देखकर रोने लगी ॥ १२ ॥ गर्भमें रहनेवाले बालकने सुना कि माता रो रही है। इसकी अवस्था बड़ी ही दयनीय है। कोई भी इसका रक्षक नहीं है। यह सर्वथा निराधार है। क्षत्रियोंसे संतप्त होनेके कारण इसके नेत्र जलकी धारा बहा रहे हैं। जैसे कोई असहाय और गर्भवती हिरनी सिंहके पंजेमें पड़ गयी हो। यों आँखोंमें आँसू भरके काँपती हुई माताको देखकर गर्भस्थित बालकके

मदंशशक्तिसंभिन्नः स वः कार्यं विधास्यति ॥ इत्यादिश्य पराम्बा सा पश्चादंतर्हिताऽभवत् ॥ ८ ॥ जागृतास्तु ततः सर्वा मुदमापुर्वरांगनाः ॥
काचित्तासां भयोद्विग्ना कामिनी चतुरा भृशम् ॥ ९ ॥ दधार चोरुणैकेन गर्भं सा कुलवृद्धये ॥ पलायनपरा दृष्टा क्षत्रियैर्ब्राह्मणी यदा ॥ १० ॥
विह्वला तेजसा युक्ता तदा ते दुद्रुवुर्भृशम् ॥ गृह्यतां वध्यतां नारी सगर्भा याति सत्वरा ॥ ११ ॥ इति ब्रुवंतः संप्राप्ताः कामिनीं खड्गपाणयः ॥
सा भयार्ता तु तान्दृष्ट्वा रुरोद समुपागतान् ॥१२॥ गर्भस्य रक्षणार्थं सा चुक्रोशातिभयातुरा ॥ रुदतीं मातरं श्रुत्वा दीनां प्राणविवर्जिताम् ॥१३॥
निराधारां क्रंदमानां क्षत्रियैर्भृशतापिताम् ॥ गृहीतामिव सिंहेन सगर्भां हरिणीं यथा ॥ १४ ॥ साश्रुनेत्रां वेपमानां संक्रुध्य बालकस्तदा ॥ भित्त्वोरुं
निर्जगामाशु गर्भः सूर्य इवापरः ॥ १५ ॥ मुष्णन्दृष्टीः क्षत्रियाणां तेजसा बालकः शुभः ॥ दर्शनाद्बालकस्याशु सर्वे जाता विलोचनाः ॥ १६ ॥
बभ्रमुर्गिरिदुर्गेषु जन्मांधा इव क्षत्रियाः ॥ चिन्तितं मनसा सर्वैः किमेतदिति सांप्रतम् ॥ १७ ॥ सर्वे चक्षुर्विहीना यज्जाताः स्म बालदर्शनात् ॥
ब्राह्मण्यास्तु प्रभावोऽयं सतीव्रतबलं महत् ॥१८॥ क्षणाद्वा मोघसंकल्पाः किं करिष्यंति दुःखिताः॥ इति संचिंत्य मनसा नेत्रहीना निराश्रयाः ॥१९॥
ब्राह्मणीं शरणं जग्मुर्हैहया गतचेतसः ॥ प्रणेमुस्तां भयत्रस्तां कृतांजलिपुटाश्च ते ॥ २० ॥ ऊचुश्चैनां भयोद्विग्ना दृष्ट्यर्थं क्षत्रियर्षभाः ॥ प्रसीद

क्रोधकी सीमा नहीं रही। वह जाँघ चीरकर तुरन्त बाहर निकल आया, तब ऐसा लगा कि जैसे कोई दूसरा सूर्य प्रकट हो गया हो ॥१३—१५॥ उस मनोहर बालकने अपने तेजसे तुरन्त क्षत्रियोंके नेत्रकी ज्योति हर ली। उस बालककी ओर देखते ही वे सबके सब क्षत्रिय अन्धे हो गये ॥१६॥ अब जन्मान्ध प्राणीकी भाँति वे पर्वतकी गुफाओंमें इधर-उधर भटकने लगे। तब सबने मनमें विचार किया कि इस समय यह विचित्र परिस्थिति किस कारण हमारे सामने आ गयी है ॥ १७ ॥ हम लोग इस बालकको देखते ही अन्धे हो गये। इससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मणीका ही यह प्रभाव है। क्योंकि इसके पास सतीत्वका महान् बल है ॥१८॥ पतिव्रताओंका संकल्प कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। दुखी होनेपर वे क्षणभरमें ही क्या नहीं कर सकतीं। वह सोचकर वे दृष्टिहीन एवं निराश्रय हैहय-वंशके क्षत्रिय उस पतिव्रता ब्राह्मणीके शरणागत हो गये। उन्होंने अपनी सुध-बुध खोकर दोनों हाथ जोड़ लिये और भयसे घबरायी हुई उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्राह्मणीको प्रणाम किया ॥१९॥२०॥ साथ ही अपने नेत्रोंकी ज्योति पानेके लिए उन्होंने उस ब्राह्मणीसे प्रार्थना करते हुए कहा–हे महासुभगे! हे माता! तुम प्रसन्न हो जाओ। हम तुम्हारे सेवक हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥२१॥ हे रम्भोरु! पापमयी बुद्धि हो जानेके कारण हम क्षत्रियों द्वारा महान् अपराध हो गया है। इसीके फलस्वरूप तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही हम सबके सब अन्धे हो गये ॥२२॥ हे भामिनि! जन्मान्ध व्यक्तिकी भाँति हम तुम्हारे मुखको भी देखनेमें असमर्थ हो गये हैं। तुम अद्भुत तपोबलसे सम्पन्न हो। अतः हम पापी तुम्हारा सामना कैसे कर सकते हैं? ॥२३॥ हे मानदे! अब हम तुम्हारी शरणमें आये हैं। अन्धा हो जाना मरणसे भी अधिक कष्टप्रद है। अतः हमें नेत्र प्रदान करनेकी कृपा करो ॥२४॥ पुनः दृष्टिप्रदान करके तुम हम सब क्षत्रियोंको अपना सेवक बना लो। अब खोटी बुद्धिवाले हम लोग शान्त होकर अपने स्थानपर चले जायँगे ॥२५॥ इसके बाद कभी भी हम ऐसा घृणित कार्य नहीं करेंगे। आजसे हम सब भार्गवोंके सेवक हो गये। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥२६॥ अज्ञानवश हमारे द्वारा जो अपराध हो गया है, उसे क्षमा करो। अबसे कभी भी भार्गवोंके साथ क्षत्रियोंका वैरभाव

सुभगे मातः सेवकास्ते वयं किल ॥ २१ ॥ कृतापराधा रंभोरु क्षत्रियाः पापबुद्धयः ॥ दर्शनात्तव तन्वङ्गि जाताः सर्वे विलोचनाः ॥ २२ ॥ मुखं
ते नैव पश्यामो जन्मांधा इव भामिनि ॥ अद्भुतं ते तपोवीर्यं किं कुर्मः पापकारिणः ॥ २३ ॥ शरणं ते प्रपन्नाः स्मो देहि चक्षूंषि मानदे ॥
अंधत्वं मरणादुग्रं कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥ २४ ॥ पुनर्दृष्टिप्रदानेन सेवकान्क्षत्रियान्कुरु ॥ उपरम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मणः ॥ २५ ॥ अतः
परं न कर्तव्यमीदृशं कर्म कर्हिचित् ॥ भार्गवाणां तु सर्वेषां सेवकाः स्मो वयं किल ॥२६॥ अज्ञानाद्यत्कृतं पापं क्षंतव्यं तत्त्वयाऽधुना ॥ वैरं नातः
परं कापि भृगुभिः क्षत्रियैः सह ॥ २७ ॥ कर्तव्यं शपथैः सम्यग्वर्तितव्यं तु हैहयैः ॥ सपुत्रा भव सुश्रोणि प्रणताःस्मो वयं च ते ॥ २८ ॥ प्रसादं
कुरु कल्याणि न द्विष्यामः कदाचन ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्राह्मणी विस्मयान्विता ॥ २९ ॥ तानाह प्रणतान्दुःस्थानाश्वास्य
गतलोचनान् ॥ गृहीता न मया दृष्टिर्युष्माकं क्षत्रियाः किल ॥ ३० ॥ नाहं रुषान्विता सत्यं कारणं शृणुताद्य यत् ॥ अयं च भार्गवो नूनमूरुजः
कुपितोऽद्य वः ॥ ३१ ॥ चक्षूंषि तेन युष्माकं स्तंभितानि रुषावता ॥ स्वबंधून्निहताञ्ज्ञात्वा गर्भस्थानपि क्षत्रियैः ॥ ३२ ॥ अनागसो धर्मपरां-

नहीं रहेगा ॥२७॥ हमारे यह प्रतिज्ञा कर लेनेके पश्चात् हम हैहयवंशी क्षक्षियोंके साथ तुम्हें सुखपूर्वक समय व्यतीत करना चाहिए। हे सुश्रोणि! तुम पुत्रवती होकर रहो। हम तुम्हारे शरणापन्न हैं। हे कल्याणी! तुम प्रसन्न हो जाओ। अब हम कभी भी तुमसे द्वेष नहीं करेंगे।' व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! हैहयवंशी क्षत्रियोंकी उपर्युक्त बातें सुनकर ब्राह्मणीके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही ॥ २८ ॥ २९ ॥ हाथ जोड़कर सामने खड़े नेत्रहीन क्षत्रियोंको आश्वासन देकर क्षमाशीला ब्राह्मणीने कहा—'हे क्षत्रियो! मेरे द्वारा तुम्हारी दृष्टि नहीं हरी गयी है–यह निश्चित है ॥ ३० ॥ मैं तुमपर कुपित भी नहीं हूँ। इसका वास्तविक कारण बता रही हूँ, सुनो। इस समय यह जो भृगुकुलका दीपक बालक मेरी जाँघसे उत्पन्न हुआ है, तुम इसीके कोपभाजन बन गये हो ॥ ३१ ॥ रोषमें आकर इस बालकने ही तुम्हारे नेत्र स्तम्भित कर दिये हैं। क्योंकि इसे पता चल गया है कि मेरे सभी बान्धव–यहाँ तक कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गर्भमें रहनेवाले बालक भी इन क्षत्रियोंके हाथों मृत्युके ग्रास बन गये हैं ॥३२॥ भृगुके वे वंशज निरपराध, धर्मात्मा तथा तपस्वी थे। जब तुम उनको मार रहे थे, तभी मेरे गर्भमें यह बालक आ गया था। इसे सौ वर्षोंसे मैं अपने जाँघमें धारण किये रही। गर्भमें ही इसने छहों अङ्गोंसहित संपूर्ण वेदोंका अध्ययन बड़ी सुगमतासे कर लिया है ॥३३॥३४॥ भृगुवंशका उत्थान करनेके लिए प्रकट यह बालक गर्भमें ही सुशिक्षित हो चुका है। यह अपने पितरोंके वधसे कुपित होकर तुम्हें मारनेके लिए उद्यत है ॥ ३५ ॥ मेरा यह पुत्र भगवती जगदम्बाकी कृपासे उत्पन्न हुआ है। इसीके दिव्य तेजसे तुम्हारी आँखें देखनेमें असमर्थ हो गयी हैं ॥ ३६ ॥ अतएव तुम लोग मेरे इस पुत्रसे ही बड़ी नम्रताके साथ नेत्र पानेकी प्रार्थना करो। यदि यह बालक प्रसन्न हो गया तो तुम्हें नेत्रज्योति अवश्य प्राप्त हो जायगी ॥३७॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! वह बालक एक श्रेष्ठ मुनिके रूपमें बिराजमान था। ब्राह्मणीकी बात सुनकर हैहयसंज्ञक क्षत्रियोंने उसके चरणोंमें मस्तक झुका दिया और वे बड़ी नम्रतापूर्वक नेत्रोंमें ज्योति पानेके लिए उस बालकसे प्रार्थना करने लगे ॥ ३८ ॥ इससे वह मुनिकुमार प्रसन्न हो गया

स्तापसान् धनकाम्यया ॥ गर्भानपि यदा यूयं भृगूनिघ्नंस्तु पुत्रकाः ॥३३॥ तदाऽयमूरुणा गर्भो मया वर्षशतं धृतः ॥ षडंगश्चाखिलो वेदो गृहीतोऽनेन चांजसा ॥ ३४ ॥ गर्भस्थेनापि बालेन भृगुवंशविवृद्धये ॥ सोऽपि पितृवधान्नूनं क्रोधेद्धो हंतुमिच्छति ॥ ३५ ॥ भगवत्याः प्रसादेन जातोऽयं मम बालकः ॥ तेजसा यस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि वः ॥ ३६ ॥ तस्मादौर्वं सुतं मेऽद्य याचध्वं विनयान्विताः ॥ प्रणिपातेन तुष्टोऽसौ दृष्टिं वः प्रतिमोक्ष्यति ॥ ३७ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या हैहयास्तुष्टुवुश्च तम् ॥ प्रणेमुर्विनयोपेता ऊरुजं मुनिसत्तमम् ॥ ३८ ॥ स संतुष्टो बभूवाथ तानुवाच विचक्षुषः ॥ गच्छध्वं स्वगृहान्भूपा ममाख्यानकृतं वचः ॥ ३९ ॥ अवश्यंभाविभावास्ते भवंति दैवनिर्मिताः ॥ नात्र शोकस्तु कर्तव्यः पुरुषेण विजानता ॥ ४० ॥ पूर्ववद्दृषयः सर्वे प्राप्नुवंतु यथासुखम् ॥ व्रजंतु विगतक्रोधा भवनानि यथासुखम् ॥ ४१ ॥ इति तेन समादिष्टा हैहयाः प्राप्तलोचनाः ॥ और्वमामंत्र्य जग्मुरते सदनानि यथारुचि ॥४२॥ ब्राह्मणी तं सुतं दिव्यं गृहीत्वा स्वाश्रमं गता ॥ पालयामास भूपाल तेजस्विनमतंद्रिता ॥ ४३ ॥ एवं ते कथितं राजन्भृगूणां तु विनाशनम् ॥ लोभाविष्टैः क्षत्रियैश्च यत्कृतं पातकं किल ॥ ४४ ॥

और अन्धे क्षत्रियोंसे बोला—'हे राजाओ! ठीक है, तुम मेरी कही हुई बातपर विश्वास करके लौट जाओ ॥ ३९ ॥ देखो, दैवने जो कुछ निश्चित कर दिया है, वह अवश्य होकर रहता है। इस विषयमें विद्वान् पुरुषको शोक नहीं करना चाहिए ॥ ४० ॥ सभी ऋषि पहलेकी ही भाँति सुखपूर्वक समय व्यतीत करें और जितने क्षत्रिय हैं, वे क्रोध त्यागकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर जायँ ॥४१॥ इस प्रकार उस तेजस्वी बालकके उपदेश देनेपर वे हैहयसंज्ञक क्षत्रिय उसकी आज्ञा लेकर इच्छानुसार अपने घर चले गये। अब उनके नेत्रोंमें पूर्ववत् ज्योति आ गयी थी ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणी भी तेजस्वी एवं विप्रोंके रक्षकरूपमें उत्पन्न उस दिव्य बालकको लेकर अपने आश्रमपर लौटी और बड़ी सावधानीके साथ उसका पालन-पोषण करने लगी ॥ ४३ ॥ हे राजन्! इस प्रकार भार्गवोंके विनाशकी कथा मैं तुम्हें सुना चुका। लोभके वशीभूत होकर क्षत्रियोंने जो कर्म कर डाला, वह अवश्य ही घोर पाप था ॥ ४४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजा जनमेजयने कहा—अत्यन्त लोभमें पड़कर क्षत्रियोंने जो महान् नीच एवं भयंकर कर्म कर डाला था, वह सब मैंने सुन लिया। ऐसे कर्मके फलस्वरूप इहलोक और परलोकमें भी दुःख भोगने पड़ते हैं। हे सत्यवतीनन्दन व्यासजी! इस विषयमें मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि ये जो हैहयसंज्ञक क्षत्रिय थे, वे जगत्में इस नामसे क्यों विख्यात हुए? ॥ ८॥४६॥ जैसे यदुसे यादवोंकी तथा भरतसे भारतकी प्रसिद्धि हुई है, वैसे ही हैहय भी कोई राजा रहे होंगे, जिनके वंशमें उत्पन्न होनेसे वे हैहय कहलाये ॥४७॥ हे करुणानिधे! उन हैहयोंकी उत्पत्ति कैसे हुई और किस कर्मके प्रभावसे उनका यह नाम पड़ा? इसका कारण मैं जानना चाहता हूँ ॥४८॥ व्यासजी बोले—हे महाराज! मैं हैहयोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तारके साथ कह रहा हूँ, सुनिए। यह बड़ा प्राचीन उपाख्यान है। इसको सुननेसे पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्यका उदय होता है ॥४९॥ हे राजन्! किसी समय सूर्यके पुत्र रेवन्त बड़े सुलक्षणसम्पन्न, रूपवान्

जनमेजय उवाच ॥ श्रुतं मया महत्कर्म क्षत्रियाणां च दारुणम् ॥ कारणं लोभ एवात्र दुःखदश्चोभयोस्तु सः ॥ ४५ ॥ किंचित्प्रष्टुमिहेच्छामि संशयं वासवीसुत ॥ हैहयास्ते कथं नाम्ना ख्याता भुवि नृपात्मजाः ॥ ४६ ॥ यदोस्तु यादवाः कामं भरताद्भारतास्तथा ॥ हैहयः कोऽपि राजाऽभूत्तेषां वंशे प्रतिष्ठितः ॥ ४७ ॥ तदहं श्रोतुमिच्छामि कारणं करुणानिधे ॥ हैहयास्ते कथं जाताः क्षत्रियाः केन कर्मणा ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ हैहयानां समुत्पत्तिं शृणु भूप सविस्तराम् ॥ पुरातनीं सुपुण्यां च कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ ४९ ॥ कस्मिंश्चित्समये भूप सूर्यपुत्रः सुशोभनः ॥ रेवन्तेति च विख्यातो रूपवानमितप्रभः ॥ ५० ॥ उच्चैःश्रवसमारुह्य हयरत्नं मनोहरम् ॥ जगाम विष्णुसदनं वैकुण्ठं भास्करात्मजः ॥ ५१ ॥ भगवद्दर्शनाकांक्षी हयारूढो यदाऽऽगतः ॥ हयस्थस्तु तदा दृष्ट्वा लक्ष्म्याऽसौ रविनंदनः ॥५२॥ रमा वीक्ष्य हयं दिव्यं भ्रातरं सागरोद्भवम् ॥ रूपेण विस्मिता तस्य तस्थौ स्तंभितलोचना ॥ ५३ ॥ भगवानपि तं दृष्ट्वा हयारूढं मनोहरम् ॥ आगच्छन्तं रमां विष्णुः पप्रच्छ प्रणयात्प्रभुः ॥ ५४ ॥ कोऽयमायाति चार्वंगि हयारूढ इवापरः ॥ स्मरतेजस्तनुः कान्ते मोहयन् भुवनत्रयम् ॥ ५५ ॥ प्रेक्षमाणा तदा लक्ष्मीस्तच्चित्ता दैवयोगतः ॥ नोवाच वचनं किंचित्पृष्टाऽपि च पुनः पुनः ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ अश्वासक्तमतिं वीक्ष्य कामिनीमतिमोहिताम् ॥ पश्यंतीं परमप्रेम्णा चंचलाक्षीं च

और अपरिमित प्रभावशाली युवक थे। एक बार वे भास्करनन्दन रेवन्त अश्वरत्न उच्चैःश्रवा घोड़ेपर सवार होकर भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें गये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ जब वे घोड़ेपर बैठकर भगवान् विष्णुके दर्शनकी आकांक्षासे वहाँ पहुँचे तो उन सूर्यकुमारपर भगवती लक्ष्मीकी दृष्टि पड़ी ॥५२॥ लक्ष्मीजीने जब सागरसे जायमान अपने भाई उच्चैःश्रवाको देखा तो उसके सौंदर्यपर मुग्ध होकर एकटक उसे देखती रह गयीं ॥५३॥ भगवान् विष्णुने लावण्यसम्पन्न रेवन्तको घोड़ेपर बैठकर आता हुआ देखकर बड़े स्नेहके साथ लक्ष्मीजीसे पूछा—॥ ५४ ॥ हे सुन्दर अंगोंवाली! हे प्रिये! यह कौन है, जो घोड़ेपर सवार होकर इधर चला आ रहा है? यह अपने शरीरके सौंदर्यसे त्रिभुवनको मोहित करता हुआ जैसे साक्षात् कामदेव ही हो ॥ ५५ ॥ उस समय लक्ष्मीजी घोड़ेको एकटक देख रही थीं। अतएव भगवान्के बारबार पूछनेपर भी ये कुछ नहीं बोलीं॥५६॥ व्यासजी बोले-हे राजन्! जब भगवानने देखा कि मेरी प्रिया कामिनी, चपलनयनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और चंचला लक्ष्मी घोड़ेपर आसक्त एवं मोहित होकर बड़े प्रेमसे उसे देख रही हैं ।।५७।। तब कुपित होकर भगवानने कहा—हे सुनयनी ! तुम क्या देख रही हो ! घोड़ेको देखकर तुम इतना मुग्ध हो गयीं कि पूछनेपर मेरी बातका जवाब तक नहीं देतीं ! ।।५८।। इस समय तुम्हारा चित्त चारों ओर रमण कर रहा है, इसलिए 'रमा' और तुम्हारा मन बड़ा चञ्चल हो रहा है, इसलिए अबसे तुम 'चञ्चला' कहलाओगी । इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।५९।। जैसे साधारण नारियाँ चञ्चल होती हैं, उसी तरह हे कल्याणी ! तुम भी कहीं स्थिर न रहोगी ।।६०।। मेरे समीप रहनेपर भी तुम एक घोड़ेको देखकर मोहित हो गयी हो तो हे सुजघने ! अत्यन्त दारुण मृत्युलोकमें तुम घोड़ी होकर जन्म लो ।। ६१ ।। दैवयोगसे जब भगवानने लक्ष्मीजीको ऐसा शाप दे दिया, तब लक्ष्मी डरीं। वे अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगीं ।। ६२ ।। सुन्दर मुस्कराहटवाली लक्ष्मीजी बड़ी दुविधामें पड़ गयीं । अपने पति विष्णुभगवानको उन्होंने विनयपूर्वक मस्तक नवाकर प्रणाम किया और कहने लगीं—।।६३।। हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे करुणाकर ! हे केशव ! हे गोविन्द ! एक साधारण अपराधपर आपने मुझे ऐसा शाप क्यों दे दिया ? ।।६४।।

चंचलाम् ।।५७।। तामाह भगवान्क्रुद्धः किं पश्यसि सुलोचने ।। मोहिता च हरिं दृष्ट्वा पृष्टा नैवाभिभाषसे ।।५८।। सर्वत्र रमसे यस्माद्रमा तस्माद्भविष्यसि ।। चंचलत्वाच्चलेत्येवं सर्वथैव न संशयः ।।५९।। प्राकृता च यथा नारी नूनं भवति चंचला ।। तथा त्वमपि कल्याणि स्थिरा नैव कदाचन ।। ६० ।। त्वं हयं मत्समीपस्था समीक्ष्य यदि मोहिता।। वडवा भव वामोरु मर्त्यलोकेऽतिदारुणे ।। ६१ ।। इति शप्ता रमा देवी हरिणा दैवयोगतः ।। रुरोद वेपमाना सा भयभीताऽतिदुःखिता ।। ६२ ।। तमुवाच रमा नाथं शंकिता चारुहासिनी ।। प्रणम्य शिरसा देवं स्वपतिं विनयान्विता ।। ६३ ।। देवदेव जगन्नाथ करुणाकर केशव ।। स्वल्पेऽपराधे गोविंद कस्माच्छापं ददासि मे ।। ६४ ।। न कदाचिन्मया दृष्टः क्रोधस्ते हीदृशः प्रभो ।। क्व गतस्ते मयि स्नेहः सहजो न तु नश्वरः ।। ६५ ।। वज्रपातस्तु शत्रौ वै कर्तव्यो न सुहृज्जने।। सदाऽहं वरयोग्या ते शापयोग्या कथं कृता ।। ६६ ।। प्राणांस्त्यक्ष्यामि गोविन्द पश्यतोऽद्य तवाग्रतः ।। कथं जीवे त्वया हीना विरहानलतापिता ।। ६७ ।। प्रसादं कुरु देवेश शापादस्मात्सुदारुणात् ।। कदा मुक्ता समीपं ते प्राप्नोमि सुखदं विभो ।।६८।। हरिरुवाच ।। यदा ते भविता पुत्रः पृथिव्यां मत्समः प्रिये ।। तदा मां प्राप्य तन्वंगि सुखिता त्वं भविष्यसि ।। ६९ ।। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

हे स्वामिन् ! मैंने आपको ऐसा क्रोध करते कभी नहीं देखा था । मुझपर आपका जो स्थायी और नैसर्गिक स्नेह था, वह अचानक कहाँ चला गया ? ।। ६५ ।। आपका वज्र तो शत्रुपर गिरना चाहिए, न कि अपने स्नेहीपर । मैं तो आपसे सदा वर पानेकी अधिकारिणी रही । फिर एकाएक आपने मुझे शाप पानेकी अधिकारिणी क्यों बना दिया ? ।। ६६ ।। हे गोविन्द ! मैं अभी देखते-देखते आपके समक्ष अपने प्राण त्याग दूँगी । क्योंकि आपसे पृथक् हो और आपकी वियोगाग्निमें झुलस-झुलसकर मैं कैसे जीवित रहूँगी ? ।।६७।। हे देवेश ! मुझपर प्रसन्न होइए और यह बतलाइए कि इस अत्यन्त भीषण शापसे छूटकर मैं फिर कब आपकी सुखदायिनी शरणमें पहुँचूँगी ? ।। ६८ ।। भगवान विष्णु बोले—हे प्रियतमे ! पृथिवीतलपर जब मेरे समान तुम्हें एक गुणी पुत्र प्राप्त हो जायगा, तब हे तन्वङ्गि ! तुम मुझे पाकर आनन्दित होओगी ।।६९।। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(शंकरजीसे लक्ष्मीको वरदानप्राप्ति) राजा जनमेजय बोले—हे भगवन् ! भगवान विष्णुने कोपवश लक्ष्मीजीको जब इस तरह शाप दे दिया, तब सागरतनया लक्ष्मीजीने कैसे घोड़ी होकर जन्म लिया ? और फिर सूर्यपुत्र रेवन्तने क्या किया ? ॥ १ ॥ जैसे किसी युवती नायिकाका प्यारा प्रियतम परदेशमें रहे और वह उसके वियोगमें अकेली रहती हुई दिन काटे, उसी तरह घोड़ीका जन्म पाकर अपने पतिके वियोगमें सागरतनया लक्ष्मीने अकेली रहकर किस देशमें दिन काटा ? ॥ २ ॥ हे आयुष्मन् ! लक्ष्मीजीको अपने पतिसे वियुक्त रहकर कितना समय बिताना पड़ा ? और निर्जन वनमें उन्होंने क्या किया ? ॥ ३ ॥ भगवानके साथ फिर उनका समागम कब हुआ ? अपने पतिदेव भगवान् नारायणसे अलग रहकर भी उन्हें पुत्र कैसे प्राप्त हुआ ? ॥ ४ ॥ हे आर्येश ! विस्तारपूर्वक आप इस वृत्तान्तको बताइए । हे ब्रह्मन् ! इस उत्तम उपाख्यानको सुननेकी मेरी उत्कट अभिलाषा है ॥ ५ ॥ सूतजी बोले— हे ऋषियो ! जब परीक्षितपुत्र जनमेजयने वेदव्याससे ऐसा प्रश्न पूछा, तब वे विस्तारके साथ इस कथाको कहने लगे । व्यासजी बोले—हे राजन् ! मैं वह शुभ और पौराणिक उपाख्यान कह रहा

॥ जनमेजय उवाच ॥ इति शप्ता भगवता सिंधुजा कोपयोगतः ॥ कथं सा वडवा जाता रेवंतेन च किं कृतम् ॥ १ ॥ कस्मिन्देशेऽब्धिजा देवी वडवारूपधारिणी ॥ संस्थितैकाकिनी बाला परोषितपतिका यथा ॥ २ ॥ कालं कियंतमायुष्मन्वियुक्ता पतिना रमा ॥ संस्थिता विजनेऽरण्ये किं कृतं च तया पुनः ॥ ३ ॥ समागमं कदा प्राप्ता वासुदेवस्य सिंधुजा ॥ पुत्रः कथं तया प्राप्तो नारायणवियुक्तया ॥ ४ ॥ एतद्वृत्तांतमार्येश कथयस्व सविस्तरम् ॥ श्रोतुकामोऽस्मि विप्रेंद्र कथाख्यानमनुत्तमम् ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा व्यासः परीक्षित्तनयेन वै ॥ कथयामास भो विप्रा कथामेतां सुविस्तराम् ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ पावनीं सुखदां कर्णे विशदाक्षरसंयुताम् ॥ ७ ॥ रेवंतस्तु रमां दृष्ट्वा शप्तां देवेन कामिनीम् ॥ भयतः प्रययौ दूरात्प्रणम्य जगतां पतिम् ॥८॥ पितुः सकाशं त्वरितो वीक्ष्य कोपं जगत्पतेः ॥ निवेदयामास कथां भास्कराय स शापजाम् ॥ ९ ॥ दुःखिता सा रमा देवी प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥ आज्ञप्ता मानुषं लोकं प्राप्ता कमललोचना ॥१०॥ सूर्यपत्न्या तपस्तप्तं यत्र पूर्वं सुदारुणम् ॥ तत्रैव सा ययावाशु वडवारूपधारिणी ॥ ११ ॥ कालिंदीतमसासंगे सुपर्णाक्षस्य चोत्तरे ॥ सर्वकामप्रदे

हूँ, सुनिए । यह बड़ा पवित्र है और निर्मल शब्दोंके सम्मिश्रणसे कानोंको बड़ा मधुर लगता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ सूर्यपुत्र रेवन्तने जब देखा कि विष्णुभगवानने कामिनी कमलाको शाप दे दिया है तो भयभीत होकर वे भगवान् जगदीश्वरको दूर ही से नमस्कार करके लौट पड़े ॥ ८ ॥ संसारके अधिपति विष्णुभगवान्का रोष देखकर वे तुरन्त अपने पिता सूर्यके पास गये और लक्ष्मीजीके शाप पानेकी घटना कह सुनायी ॥ ९ ॥ इधर कमलनयनी लक्ष्मीदेवी भगवानसे आज्ञा पा तथा दुःखित मनसे उन्हें नमस्कार करके मनुष्यलोकमें चली आयीं ॥ १० ॥ श्रीलक्ष्मीजीको इससे क्लेश तो बहुत हुआ, परन्तु वे भगवानको प्रणाम करके तथा उनकी आज्ञा लेकर मर्त्यलोकमें वहाँ जा पहुँचीं, जहाँ सूर्यकी पत्नीने पूर्व समयमें अत्यन्त कठिन तप किया था । वहीं भगवती लक्ष्मी घोड़ीका रूप धारण करके रहने लगीं ॥ ११ ॥ वहीं सुपर्णाक्ष नामक स्थानकी उत्तर दिशामें यमुना और तमसा नदीका संगम था । सम्पूर्ण मनोरथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्ण करनवाले उस स्थानको सुन्दर वन सुशोभित कर रहे थे ॥१२॥ वहाँ रहकर भगवती लक्ष्मी, जो सबकी कामनायें पूर्ण करते हैं तथा जिनका मस्तक चन्द्रमासे अलंकृत रहता है, उन त्रिशूलधारी भगवान् शंकरका एकाग्रचित्तसे ध्यान करने लगीं ॥ १३ ॥ जिनके पाँच मुख और दस भुजायें हैं, भगवती गौरी अर्धाङ्गिनी बनकर जिनकी शोभा बढ़ा रही हैं, जिनका कपूरके समान गौर शरीर अत्यन्त प्रकाशमान है, जिनका कण्ठ नीला है और तीन आँखें हैं ॥ १४ ॥ जो बाघम्बर पहने और हाथीके चमड़ेकी चादर ओढ़े हुए हैं, जिनके गलेमें नरमुण्डको माला सुशोभित है तथा जो साँपका यज्ञोपवीत पहने हुए हैं, उन भगवान् शंकरके ध्यानमें लक्ष्मीजी संलग्न हो गयीं ॥ १५ ॥ उस पावन तीर्थमें सुन्दर घोड़ीका रूप धारण करके उन्होंने बड़ी कठोर तपस्या की ॥ १६ ॥ हे राजन् ! भगवान शंकरका ध्यान करते-करते लक्ष्मीके मनमें पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हो गया । देवताओंके वर्षसे हजार वर्षतक उनकी तपस्या चलती रही ॥ १७ ॥ तदनन्तर तीन नेत्रवाले भगवान् शंकर प्रसन्न होकर बैलपर चढ़े हुए पधारे और उन्हें साक्षात् दर्शन दिया । उनके साथ पार्वतीजी भी विराजमान थीं ॥१८॥ उस समय

स्थाने सुरम्यवनमंडिते ॥ १२ ॥ तत्र स्थिता महादेवं शंकरं वांछितप्रदम् ॥ दध्यौ चैकेन मनसा शूलिनं चंद्रशेखरम् ॥ १३ ॥ पञ्चाननं दशभुजं गौरीदेहार्धधारिणम् ॥ कर्पूरगौरदेहाभं नीलकंठं त्रिलोचनम् ॥१४॥ व्याघ्राजिनधरं देवं गजचर्मोत्तरीयकम् ॥ कपालमालाकलितं नागयज्ञोपवीति-नम्॥१५॥ सागरस्य सुता कृत्वा हयीरूपं मनोहरम् ॥ तस्मिंस्तीर्थे रमादेवी चकार दुश्चरं तपः ॥१६॥ ध्यायमाना परं देवं वैराग्यं समुपाश्रिता ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं तत्र महीपते ॥१७॥ ततस्तुष्टो महादेवो वृषारूढस्त्रिलोचनः ॥ प्रत्यक्षोऽभून्महेशानः पार्वतीसहितः प्रभुः ॥ १८ ॥ तत्रैत्य सगणः शम्भुस्तामाह हरिवल्लभाम् ॥ तपस्यंतीं महाभागामश्विनीरूपधारिणीम् ॥ १९ ॥ किं तपस्यसि कल्याणि जगन्मातर्वदस्व मे ॥ सर्वार्थदः पतिस्तेऽस्ति सर्वलोकविधायकः ॥ २० ॥ हरिं त्यक्त्वाऽद्य मां कस्मात्स्तौषि देवि जगत्पतिम् ॥ वासुदेवं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ २१ ॥ वेदोक्तं वचनं कार्यं नारीणां देवता पतिः ॥ नान्यस्मिन्सर्वथा भावः कर्तव्यः कर्हिचित्क्वचित् ॥ २२ ॥ पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः ॥ यादृशस्तादृशः सेव्यः सर्वथा शुभकाम्यया ॥ २३ ॥ नारायणस्तु सर्वेषां सेव्यो योग्यः सदैव हि ॥ तं त्यक्त्वा देवदेवेशं किं मां ध्यायसि सिंधुजे ॥ २४ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ आशुतोष महेशान शप्ताऽहं पतिना शिव ॥ मां समुद्धर देवेश शापादस्माद्दयानिधे ॥ २५ ॥ तदोक्तं हरिणा शम्भो

विष्णुप्रिया महामाया लक्ष्मी घोड़ीके रूपमें रहकर तप कर रही थीं । भगवान शंकरने अपने गणों सहित वहाँ पहुँचकर उनसे कहा—॥ १९ ॥ 'हे कल्याणी ! हे जगदम्बे ! तुम क्यों तपस्या कर रही हो ? मुझे इसका कारण बताओ । क्योंकि तुम्हारे पतिदेव सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेमें समर्थ एवं अखिल लोकके अध्यक्ष हैं ॥२०॥ हे देवि ! श्रीपतिको जगत्का स्वामी माना जाता है । ऐसे भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करनेवाले जगत्प्रभु भगवान वासुदेवको छोड़कर तुम मेरी आराधना क्यों कर रही हो ? ॥२१॥ पतिकी सेवा स्त्रियोंके लिए सनातन धर्म माना गया है । पति चाहे कैसा भी हो, कल्याणकी अभिलाषा रखनेवाली स्त्री उसकी सेवामें सदा तत्पर रहे । फिर नारायण तो सबके लिए सदा परम पूज्य हैं । हे सिन्धुजे ! ऐसे देवेश्वर श्रीहरिको छोड़कर तुम मेरी उपासना क्यों कर रही हो ? ॥ २२-२४ ॥ लक्ष्मीजीने कहा—हे आशुतोष, महेशान, शिव और देवेश कहलानेवाले दयासिंधो ! मेरे पतिदेवने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुझे शाप दे दिया है । आप उस शापसे मेरा उद्धार करनेकी कृपा कीजिए। हे शंभो! उन्होंने दया करके शापसे छुटकारा पानेका उपाय भी बतला दिया है। उन्होंने कहा–'हे कमलालये! जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो जायगा, तब शापसे मुक्त होकर तुम वैकुंठमें फिर स्थान पा जाओगी' ॥२५-२७॥ हे भगवन्! पतिदेवके यों कहनेपर मैं तपस्या करनेके विचारसे इस तपोवनमें आ गयी और सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले आप परम प्रभुको मैंने अपना आराध्य बना लिया॥२८॥ हे देवदेव! इस समय मैं पतिदेवके सांनिध्यसे वञ्चित हूँ। मुझ निपराध पत्नीको छोड़कर वे वैकुण्ठमें विराज रहे हैं। तब उनके अभावमें मैं पुत्रवती कैसे हो सकती हूँ?॥२९॥ हे देवेश शंकर! यदि आप प्रसन्न हों तो मुझे वर देनेकी कृपा करें। आपमें और श्रीहरिमें किंचिन्मात्र भेदभाव नहीं है ॥ ३० ॥ गिरिजाको प्रेम प्रदान करनेवाले हे प्रभो! मैं पतिदेवके पास थी, तभीसे मुझे यह रहस्य ज्ञात है । जो आप हैं, वही वे हैं और जो वे हैं, वही आप हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥३१॥ हे महादेव! आप दोनों महानुभाव एक ही हैं–यह समझकर ही मैंने आपका चिन्तन किया है । अन्यथा आपकी सेवा करनेसे मैं दोषकी भागिनी

शापानुग्रहकारणम् ॥ विज्ञप्तेन मया कामं दयायुक्तेन विष्णुना ॥२६॥ यदा ते भविता पुत्रस्तदा शापस्य मोक्षणम् ॥ भविष्यति च वैकुण्ठवासस्ते कमलालये ॥२७॥ इत्युक्ताऽहं तपस्तप्तुमागताऽस्मि तपोवने॥ आराधितो मया देव त्वं सर्वार्थप्रदायकः ॥ २८ ॥ पतिसंगं विना पुत्रं देवदेव लभे कथम् ॥ स तु तिष्ठति वैकुण्ठे त्यक्त्वा वामामनागसम् ॥ २९ ॥ वरं मे देहि देवेश यदि तुष्टोऽसि शङ्कर ॥ तव तस्य द्विधाभावो नास्ति नूनं कदाचन ॥३०॥ मयैतद्गिरिजाकांत ज्ञातं पत्युः पुरो हर ॥ यस्त्वं सोऽसौ पुनर्योऽसौ स त्वं नास्त्यत्र संशयः ॥३१॥ एकत्वं च मया ज्ञात्वा सम्यक् ते स्मरणं कृतम् ॥ अन्यथा मम दोषस्त्वामाश्रयंत्या भवेच्छिव ॥ ३२ ॥ शिव उवाच ॥ कथं ज्ञातस्त्वया देवि मम तस्य च सुंदरि ॥ ऐक्यभावो हरेर्नूनं सत्यं मे वद सिंधुजे ॥ ३३ ॥ एकत्वं च न जानंति देवाश्च मुनयस्तथा॥ ज्ञानिनो वेदतत्त्वज्ञाः कुतर्कोपहताः किल ॥३४॥ मद्भक्ता वासुदेवस्य निंदका बहवस्तथा ॥ विष्णुभक्तास्तु बहवो मम निंदापरायणाः ॥ ३५ ॥ भवन्ति कालभेदेन कलौ देवि विशेषतः ॥ कथं ज्ञातस्त्वया भद्रे दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः ॥३६॥ सर्वथा त्वैक्यभावस्तु हरेर्मम च दुर्लभः ॥ व्यास उवाच ॥ इति सा शम्भुना पृष्टा तुष्टेन हरिवल्लभा ॥ ३७ ॥ वृत्तांतं तस्य विज्ञातं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ शिवं प्रति रमा तत्र प्रसन्नवदना भृशम् ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ एकदा देवदेवेश विष्णुर्ध्यानपरो रहः ॥ दृष्टो

बन जाती ॥ ३२ । भगवान शिव बोले–हे देवी! मैं और श्रीहरि बिल्कुल एक हैं-तुमको इस रहस्यका कैसे पता लगा? हे सुंदरी सिंधुजे! मुझे सच्ची बात बतानेकी कृपा करो ॥ ३३ ॥ देवता, मुनि, ज्ञानी और वेदके पारगामी पुरुष भी तर्क-वितर्कमें पड़े रहकर इस एकत्वके रहस्यको नहीं समझ पाते ॥ ३४ ॥ मेरे बहुतसे भक्त भगवान् विष्णुकी और उनके भक्त मेरी निन्दा करनेमें सदा तत्पर रहते हैं ॥३५॥ हे देवी! कलियुगमें इस बातकी बड़ी विशेषता रहेगी । समयके भेदभावसे यह भेद बढ़ता चला जायगा । हे भद्रे! मुझमें और श्रीहरिमें सम्यक् प्रकारसे एकता है–यह भाव जानना प्रायः सबके लिए बहुत कठिन है । फिर तुम कैसे जान गयीं? व्यासजी बोले–इस प्रकार प्रसन्न होकर जब भगवान शंकरने लक्ष्मीसे पूछा, तब लक्ष्मीने इस प्रसंगको बतलाना आरम्भ किया । उस समय वे भी कम प्रसन्न नहीं थीं ॥३६–३८॥ लक्ष्मीने कहा–हे देवदेवेश! एक समयकी बात है, भगवान विष्णु एकान्तमें पद्मासन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगाकर बैठे ध्यान कर रहे थे। जब वे यों तप कर रहे थे, तब उन्हें देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। थोड़ी देरके बाद उनकी समाधि टूट गयी तो उनके मुखपर प्रसन्नताकी किरणें झलक रही थीं। तब मैंने अनुकूल जानकर विनयपूर्वक उनसे पूछा–॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे प्रभो! आप सभी देवताओंके अध्यक्ष एवं जगत्के स्वामी हैं। जिस समय देवता, दानव और ब्रह्मा प्रभृतिने मिलकर समुद्रका मन्थन किया था और जब मैं उससे निकली, तब मेरे मनमें विचार आया कि किसीको पति चुन लूँ। अतः मैंने सब ओर दृष्टि दौड़ायी। उस समय आप ही सम्पूर्ण देवताओंसे श्रेष्ठ हैं–इस निर्णयपर पहुँचकर मैंने आपको अपना पति बना लिया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे सर्वेश! अब आप किसका ध्यान कर रहे हैं? यह प्रसंग मेरे मनको बड़े आश्चर्यमें डाल रहा है। हे कैटभारे! आप मेरे परम प्रेमी हैं। अतः मेरी इस मानसिक उलझनको दूर करनेकी कृपा कीजिए॥४ ॥ भगवान विष्णु बोले—प्रिये! मैं हृदयमें जिनका ध्यान कर रहा हूँ, उनका परिचय देता हूँ, सुनो। पार्वतीपति भगवान् शंकर सबसे प्रधान देवता माने जाते हैं। तुरन्त प्रसन्न हो जाना उनका स्वाभाविक गुण है ॥४४॥ उन देवाधिदेवके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है। कभी

मया तपः कुर्वन्पद्मासनगतो यदा ॥ ३९ ॥ तदाऽहं विस्मिता देवं तमपृच्छं पतिं किल ॥ प्रबुद्धं सुप्रसन्नं च ज्ञात्वा विनयपूर्वकम् ॥ ४० ॥ देवदेव जगन्नाथ यदाऽहं निर्गताऽर्णवात् ॥ मथ्यमानात्सुरैर्दैत्यैः सर्वैर्ब्रह्मादिभिः प्रभो ॥ ४१ ॥ वीक्षिताश्च मया सर्वे पतिकामनया तदा ॥ वृतस्त्वं सर्वदेवेभ्यः श्रेष्ठोऽसीति विनिश्चयात् ॥ ४२ ॥ त्वं कं ध्यायसि सर्वेश संशयोऽयं महान्मम ॥ प्रियोऽसि कैटभारे मे कथयस्व मनोगतम् ॥ ४३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शृणु कांते प्रवक्ष्यामि यं ध्यायामि सुरोत्तमम् ॥ आशुतोषं महेशानं गिरिजावल्लभं हृदि ॥ ४४ ॥ कदाचिद्देवदेवो मां ध्यायत्यमितविक्रमः ॥ ध्यायाम्यहं च देवेशं शंकरं त्रिपुरान्तकम् ॥ ४५ ॥ शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरस्तु तथा मम ॥ उभयोरंतरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसोः ॥ ४६ ॥ नरकं यांति ते नूनं ये द्विषंति महेश्वरम् ॥ भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्तं देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ एकांते किल पृष्टेन मया शैलसुताप्रिय ॥ ४८ ॥ तस्मात्त्वां वल्लभं विष्णोर्ज्ञात्वा ध्यातवती ह्यहम् ॥ तथा कुरु महेशान यथा मे प्रियसंगमः ॥ ४९ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रियो वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः ॥ तामाश्वास्य प्रियैर्वाक्यैर्यथार्थं वाक्यकोविदः ॥ ५० ॥ स्वस्था भव पृथुश्रोणि तुष्टोऽहं तपसा

ऐसा होता है कि त्रिपुरासुरका वध करनेवाले वे देवेश मेरा ध्यान करते हैं और मैं उनका ध्यान करता हूँ ॥ ४५ ॥ उनका प्रिय प्राण मैं हूँ और मेरे प्रिय प्राण वे हैं। हम दोनोंका चित्त परस्पर गुँथा हुआ है। अतः हम दोनोंमें किंचिन्मात्र भेद नहीं समझना चाहिये ॥ ४६ ॥ हे विशाललोचने! जो लोग भगवान् शंकरसे द्वेष करते हैं, वे मेरे भक्त ही क्यों न हों, उनका नरकमें जाना अनिवार्य है। यह मैं बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ ॥ ४७ ॥ हे पार्वतीपते! एकान्तमें मेरे पूछनेपर सर्वसमर्थ देवाधिदेव भगवान विष्णु यह प्रसंग स्पष्टरूपसे मुझे सुना चुके हैं। अतएव श्रीहरिका अभिन्न प्रेमी जानकर मैं आपका ध्यान कर रही हूँ। हे महेशान! आप ऐसा कीजिए कि जिससे मेरे पतिदेवका मिलन सुलभ हो जाय ॥४८॥४९॥ व्यासजी बोले–लक्ष्मीका यह कथन सुनकर निपुण वक्ता भगवान शंकरने मधुर वचनोंसे आश्वासन देते हुए कहा–हे सुन्दरी! धैर्य धरो। मैं तुम्हारी तपस्यासे परम सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे पतिदेव तुम्हें अवश्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिलेंगे—इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥५०॥५१॥ वे जगदीश्वर मुझसे प्रेरित होकर तुम्हारी कामना पूर्ण करनेके लिए अश्वका रूप धारण करके यहीं पधारेंगे ॥५२॥ मैं उन मधुसूदन श्रीहरिको इसप्रकार उत्साहित करूँगा कि जिससे वे अश्वरूप धारण करके यहाँ आ जायँ ॥५३॥ हे सुभ्रु ! तुम उन्हीं जैसे पुत्रकी जननी अवश्य होओगी। तुम्हारे पुत्रके सामने सभी लोग मस्तक झुकायेंगे और वह भूमण्डलका राजा होगा ॥ ५४ ॥ हे महाभागे ! पुत्र प्रसव करनेके पश्चात् तुम तुरन्त अपने पतिदेवके साथ वैकुण्ठ चली जाओगी और तुम्हें उनकी प्राणप्रियाके रूपमें रहनेका सौभाग्य सुलभ हो जायगा ॥५५॥ तुम्हारा वह पुत्र 'एकवीर' नामसे प्रसिद्ध होगा। उसीसे भूमण्डलपर हैहयसंज्ञक क्षत्रियोंकी वंशावली विस्तृत होगी ॥ ५६ ॥ हे लक्ष्मी ! तुमने मदान्ध एवं प्रमत्त होकर सदा हृदयमें विराजनेवाली परमेश्वरीको भुला दिया था। इसीसे तुम्हारी यह दशा हुई है ॥५७॥ उस दोषकी शान्तिके लिए हे सिन्धुजे ! तुम हृदयमें विराजमान रहनेवाली

तव ॥ समागमस्ते पतिना भविष्यति न संशयः ॥ ५१ ॥ अत्रैव हयरूपेण भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ आगमिष्यति ते कामं पूर्णं कर्तुं मयेरितः ॥ ५२ ॥ तथाऽहं प्रेरयिष्यामि तं देवं मधुसूदनम् ॥ यथाऽसौ हयरूपेण त्वामेष्यति मदातुरः ॥५३॥ पुत्रस्ते भविता सुभ्रु नारायणसमः क्षितौ ॥ भविष्यति स भूपालः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ५४॥ सुतं प्राप्य महाभागे त्वं तेन पतिना सह ॥ गंताऽसि दिवि वैकुण्ठं प्रिया तस्य भविष्यसि ॥ ५५ ॥ एकवी-रेति नाम्नाऽसौ ख्यातिं यास्यति ते सुतः ॥ तस्मात्तु हैहयो वंशो भुवि विस्तारमेष्यति ॥ ५६ ॥ परन्तु विस्मृताऽसि त्वं हृदिस्थां परमेश्वरीम् ॥ मदांधा मत्तचित्ता च तेन ते फलमीदृशम् ॥५७॥ अतस्तद्दोषशांत्यर्थं हृदिस्थां परदेवताम् ॥ शरणं याहि सर्वात्मभावेन जलधेः सुते ॥५८॥ अन्यथा तव चित्तं तु कथं गच्छेद्धयोत्तमे ॥ व्यास उवाच॥ इति दत्त्वा वरं देव्यै भगवाञ्छैलजापतिः ॥ ५९ ॥ अंतर्धानं गतः साक्षादुमया सहितः शिवः ॥ साऽपि तत्रैव चार्वंगी संस्थिता कमलासना ॥६०॥ ध्यायंती चरणाम्भोजं देव्याः परमशोभनम् ॥ देवासुरशिरोरत्ननिघृष्टनखमंडलम् ॥६१॥ प्रेमगद्गदया वाचा तुष्टाव च मुहुर्मुहुः ॥ प्रतीक्षमाणा भर्तारं हयरूपधरं हरिम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तस्यै दत्त्वा वरं शंभुः कैलासं त्वरितो ययौ ॥ रम्यं देवगणैर्जुष्टमप्सरोभिश्च मंडितम् ॥ १ ॥ तत्र गत्वा चित्ररूपं गणं कार्यविशारदम् ॥ प्रेषयामास वैकुंठे लक्ष्मीकार्यार्थसिद्धये ॥ २ ॥ शिव उवाच ॥ चित्ररूप हरिं गत्वा ब्रूहि त्वं वचनान्मम ॥ यथाऽसौ दुःखितां

परम देवी भगवती जगदम्बाकी सम्यक् प्रकारसे शरण ग्रहण करो। यदि पहले ऐसा किया होता तो तुम्हारा मन उस घोड़ेपर क्यों जाता ? व्यासजी बोले—इस प्रकार लक्ष्मीजीको वरदान देकर गौरीपति भगवान शंकर पार्वती सहित अन्तर्धान हो गये और लक्ष्मी वहीं रहकर भगवती जगदंबाके अत्यन्त मनोहर चरणकमलका ध्यान करनेमें तत्पर हो गयीं। पतिदेव हयका रूप धारण करके यहाँ कब पधारेंगे—इस प्रतीक्षामें प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीसे वे बार-बार श्रीहरिकी स्तुति करती रहीं ॥ ५८—६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(अश्वीरूपधारिणी लक्ष्मीको अश्वरूपधारी विष्णु द्वारा पुत्रप्राप्ति) व्यासजी कहते हैं—लक्ष्मीको वर देकर भगवान् शंकर तुरन्त देवताओं और अप्सराओं सहित कैलास चले गये। वहाँ जाते ही भगवान् शंकरने परम बुद्धिमान् चित्ररूपको दूत बनाकर लक्ष्मीका कार्य सिद्ध करनेके लिए वैकुण्ठ भेजा ॥ १ ॥ २ ॥ भगवान् शिवने कहा—हे चित्ररूप! तुम श्रीहरिके पास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाकर उनसे मेरी बात कह आओ। तुम्हें ऐसा यत्न करना चाहिए कि जिससे वे अपनी पत्नी लक्ष्मीदेवीका शोक दूर करनेमें संलग्न हो जायँ ॥ ३ ॥ भगवान् शंकरके कहनेपर चित्ररूप तुरंत वहाँसे वैकुंठके लिए चल पड़ा। वैकुंठ बड़ा ही उत्तम धाम है। वहाँ बहुतसे वैष्णव पुरुष निवास करते हैं ॥४॥ भाँति-भाँतिके दिव्य वृक्षों और सैकड़ों बावलियोंसे उसकी अनुपम शोभा होती रहती है। वहाँ सर्वत्र दिव्य हंस, सारस, मोर, सुग्गे और कोयलें दृष्टिगोचर होती हैं ॥ ५ ॥ पताकाओंसे सुशोभित ऊँचे-ऊँचे भवन उसकी शोभा बढ़ाते हैं। नाचने और गानेवाले दिव्य कलाकारोंसे वह स्थान परिपूर्ण रहता है। पारिजात वृक्ष उसे सुशोभित किये हुए है ॥६॥ बकुल, अशोक, तिलक और चंपाकी पंक्तियाँ उसे मनोहर बनाये हुए हैं। पक्षीगण कानोंको सुख देनेवाली मीठी बोली बोलते हैं ॥७॥ वहाँ जानेपर चित्ररूपको भगवान् विष्णुका भव्य भवन दिखायी पड़ा। वहाँ जय और विजय नामके दो द्वारपाल हाथोंमें छड़ी लेकर विराजमान थे। चित्ररूप उन्हें प्रणाम करके कहने लगा ॥८॥ चित्ररूपने कहा–हे द्वारपालो ! तुमलोग शीघ्र परम प्रभु श्रीहरिको समाचार दो कि शंकरजीका भेजा हुआ दूत द्वारपर खड़ा है ॥९॥ चित्ररूपकी बात सुनकर

पत्नीं विशोकां च करिष्यति ॥ ३ ॥ इत्युक्तश्चित्ररूपोऽथ निर्जगाम त्वरान्वितः ॥ वैकुंठं परमं स्थानं वैष्णवैश्च गणैर्वृतम् ॥ ४ ॥ नानाद्रुमगणाकीर्णं वापीशतविराजितम् ॥ संजुष्टं हंसकारंडमयूरशुककोकिलैः ॥ ५ ॥ उच्चप्रासादसंयुक्तं पताकाभिरलंकृतम् ॥ नृत्यगीतकलापूर्णं मंदारद्रुमसंयुतम् ॥ ६ ॥ बकुलाशोकतिलकचंपकालिविमंडितम् ॥ कूजितैर्विहगानां तु कर्णाह्लादकरैर्युतम् ॥ ७ ॥ संवीक्ष्य भवनं विष्णोर्द्वाःस्थौ प्राह प्रणम्य च ॥ जयविजयनामानौ वेत्रपाणी स्थितावुभौ ॥ ८ ॥ चित्ररूप उवाच ॥ भो निवेदयतं शीघ्रं हरये परमात्मने ॥ दूतं प्राप्तं हरस्यात्र प्रेरितं शूलपाणिना ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य जयः परमबुद्धिमान् ॥ गत्वा हरिं प्रणम्याह कृतांजलिपुटः पुरः ॥ १० ॥ देवदेव रमाकांत करुणाकर केशव ॥ द्वारि तिष्ठति दूतोऽत्र शंकरस्य समागतः ॥ ११ ॥ आज्ञापय प्रवेष्टव्यो न वेति गरुडध्वज ॥ चित्ररूपधरोऽप्यस्ति न जाने कार्यगौरवम् ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्य हरिः प्राह जयं प्रज्ञातकारणः ॥ प्रवेशयात्र रुद्रस्य भृत्यं समयसंस्थितम् ॥ १३ ॥ इत्याकर्ण्य जयस्तूर्णं गत्वा तं परमाद्भुतम् ॥ एहीत्याकारयामास जयः शंकरसेवकम् ॥ १४ ॥ प्रवेशितो जयेनाथ चित्ररूपस्तथाकृतिः ॥ प्रणम्य दंडवद्विष्णुं कृतांजलिपुटः स्थितः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वा तं विस्मयं प्राप भगवान्गरुडध्वजः ॥ चित्ररूपधरं शम्भोः सेवकं विनयान्वितम् ॥ १६ ॥ पप्रच्छ तं स्मितं कृत्वा चित्ररूपं

परम बुद्धिमान् द्वारपाल जय अंदर गया। वह श्रीहरिको प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर कहने लगा–॥१०॥ 'हे देवदेव! हे रमाकांत ! हे करुणाकर ! हे केशव ! भगवान् शंकरका दूत द्वारपर आकर खड़ा है ॥११॥ हे गरुडध्वज! आप आज्ञा दीजिए कि उसे यहाँ आने दिया जाय या नहीं। वह किस कामसे आया है, यह मैं नहीं जानता। उसका नाम चित्ररूप है ॥१२॥ भगवान् विष्णु अंतर्यामी हैं दूतके आनेका कारण उनसे छिपा नहीं रहा। जयकी बात सुनकर उन्होंने कहा–'ठीक है, उसे यहाँ ले आओ।' ॥१३॥ भगवान् शंकरके सेवक चित्ररूप बड़े ही विलक्षण पुरुष थे। श्रीहरिकी आज्ञा पाकर जय तुरंत बाहर गये और चित्ररूपसे बोले–'आइये, अंदर पधारिये।' ॥१४॥ चित्ररूपका जैसा नाम था, वैसी ही आकृति थी। जयके साथ भीतर जानेपर उन्होंने भगवान् विष्णुको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥१५॥ चित्ररूपने अत्यंत अद्भुत रूप बना रक्खा था। उनके प्रत्येक अङ्गसे नम्रता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

टपक रही थो। यह देखकर विस्मित भगवान् विष्णुने हँसकर चित्ररूपसे पूछा—'हे अनघ! देवाधिदेव भगवान् शंकर सपरिवार कुशलपूर्वक हैं न ? ॥१६॥१७॥ उन्होंने तुम्हें यहाँ क्यों भेजा है ? स्वयं उनका कोई कार्य है अथवा देवताओंका कोई कार्य सामने उपस्थित हो गया है ?' ॥१८॥ दूतने कहा—हे गरुडध्वज ! इस जगत्की कौन-सी बात आपसे छिपी है । आप तीनों कालकी बातें जानते हैं। फिर भी इस समय जो समस्या उपस्थित है, वह आपसे कहता हूँ ॥१९॥ हे विभो ! भगवान् शंकरने आपको उसे बतानेके लिए ही मुझे यहाँ भेजा है। हे प्रभो! मैं उन्हींके कथनानुसार आपसे कह रहा हूँ ॥ २० ॥ हे देवेश ! उन्होंने यह कहा है कि 'हे विभो ! आपकी भार्या लक्ष्मीदेवी यमुना और तमसा नदीके संगमपर तपस्या कर रही हैं ॥२१॥ सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध करनेवाली वे देवी घोड़ीका रूप धारण करके इस समय वहाँ पधारी हैं । देवता, मानव, यक्ष और किन्नर प्रायः सभी उनका ध्यान करते हैं ॥२२॥ जगत्में कोई भी मनुष्य उनकी कृपाके बिना सुखी नहीं हो सकता । हे पुण्डरीकाक्ष! हे हरे ! तब आप अपनी पत्नीका परित्याग करके क्या सुख पा रहे हैं ? ॥२३॥ हे जगत्पते ! दुर्बल और निर्धन व्यक्ति

रमापतिः ॥ कुशलं देवदेस्य सकुटुम्बस्य चानघ ॥ १७ ॥ कस्मात्त्वं प्रेषितोऽस्यत्र ब्रूहि कार्यं हरस्य किम् ॥ अथवा देवतानां च किंचित्कार्यं समुत्थितम् ॥ १८ ॥ दूत उवाच ॥ किमज्ञातं तवास्तीह संसारे गरुडध्वज ॥ वर्तमानं त्रिकालज्ञ यदहं प्रब्रवीमि वै ॥ १९ ॥ प्रेषितोऽस्मि भवेनात्र विज्ञप्तं त्वां जनार्दन ॥ हरस्य वचनाद्वाक्यं प्रब्रवीमि त्वयि प्रभो ॥ २० ॥ तेनोक्तमेतद्देवेश भार्या ते कमलालया ॥ तपस्तपति कालिंदीतमसासंगमे विभो ॥ २१ ॥ हयीरूपधरा देवी सर्वार्थसिद्धिदायिनी ॥ ध्यातुं योग्याऽमरगणैर्मानवैर्यक्षकिन्नरैः ॥ २२ ॥ विना तया नरः कोऽपि सुखभागी भवेन्न हि ॥ तां त्यक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्राप्नोषि किं सुखं हरे ॥ २३ ॥ दुर्बलोऽपि स्त्रियं पाति निर्धनोऽपि जगत्पते ॥ विनाऽपराध च विभो किं त्यक्ता जगदीश्वरी ॥ २४ ॥ दुःखं प्राप्नोति संसारे यस्य भार्या जगद्गुरो ॥ धिक्तस्य जीवितं लोके निंदितं त्वरिमंडले ॥ २५ ॥ सकामा रिपवस्तेऽद्य दृष्ट्वा तां दुःखितां भृशम् ॥ त्वां वियुक्तं च रमया हसिष्यंति दिवानिशम् ॥ २६ ॥ रमां रमय देवेश त्वदुत्संगगतां कुरु ॥ सर्वलक्षणसंपन्नां सुशीलां च सुरूपिणीम् ॥ २७ ॥ सुखितो भव तां प्राप्य वल्लभां चारुहासिनीम् ॥ कांताविरहजं दुःखं स्मराम्यहमनातुरः ॥ २८ ॥ मम भार्या मृता विष्णो दक्षयज्ञे सती यदा ॥ तदाऽहं दुःसहं दुःखं भुक्तवानंबुजेक्षण ॥ २९ ॥ संसारेऽस्मिन्नरः कोऽपि माभून्मत्सदृशोऽपरः ॥ मनसाऽ-

भी अपनी स्त्रीकी रक्षा करता है। हे विभो ! फिर आपने जगत्पर प्रभुत्व करनेवाली लक्ष्मीदेवीका त्याग क्यों कर दिया है ? ॥२४॥ हे जगद्गुरो ! जिसकी भार्या जगत्में दुःखसे समय व्यतीत करती हो, संसारमें उसके जीवनको धिक्कार है । शत्रु भी ऐसे व्यक्तिकी निंदा करते हैं ॥ २५ ॥ आप अपनी पत्नीसे दूर हैं । ऐसी स्थितिमें अत्यंत खिन्न उन देवीको तथा आपको देखकर स्वार्थी शत्रु रात-दिन हँसेंगे ॥२६॥ हे देवेश ! लक्ष्मीमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं । वे बड़ी सुन्दरी और सुशीला हैं । उचित तो यही है कि वे आपके पास रहें और उनके साथ आपका आनन्दपूर्वक समय व्यतीत हो । सुन्दर मुसकानवाली पत्नी लक्ष्मीको पाकर आप सुखसे रहें । स्त्रीके वियोगमें पुरुषपर क्या बीतती है, यह मैं जानता हूँ ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे कमलनयन ! दक्षके यज्ञमें मेरी प्रिया सती हो गयी थी, तब मुझे असह्य दुःख भोगना पड़ा था ॥ २९ ॥ उसके विरहजनित शोकसे व्याकुल होकर मैं मन ही मन यह मनाया करता था कि मेरे जैसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुखिया संसारमें कोई न हो ॥३०॥ बहुत समय तक कठोर तप करनेके बाद मैंने गिरिजाके रूपमें उसे पाया, जो क्रोधवश दक्षके यज्ञकुण्डमें जल मरी थी ॥ ३१ ॥ हे हरे ! हजार वर्षके लिए अपनी पत्नीको त्यागकर एकाकी रहते हुए आपने कौन-सा सुख प्राप्त कर लिया ? ॥ ३२ ॥ अब आप महाभागा लक्ष्मीके पास जायँ और उन्हें आश्वासन देकर अपने घर ले आयें। जगत्में किसीकी भी सत्ता लक्ष्मीके बिना स्थिर नहीं रह सकती ॥ ३३ ॥ आप कृपया अभी अश्वका रूप धारण करके रमादेवीके पास पधारें। पुत्र उत्पन्न हो जानेके पश्चात् उन देवीको लेकर वैकुण्ठ चले जायँ ॥३४॥ व्यासजी बोले—हे जनमेजय ! चित्ररूपकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—बहुत ठीक, ऐसा ही होगा। फिर उन्होंने चित्ररूपको शंकरके पास जानेकी आज्ञा दी ॥३५॥ दूतके चले जानेपर भगवान् विष्णु सुन्दर अश्वका रूप धारण करके वैकुण्ठसे चल पड़े और जहाँ लक्ष्मीजी अश्वीका रूप धारण करके तपस्या कर रही थीं, वे वहाँ पहुँच

करवं शोकं यस्या विरहपीडितः ॥ ३० ॥ कालेन महता प्राप्ता मया गिरिसुता पुनः ॥ तपस्तप्त्वाऽतिदुःसाध्यं या दग्धा तु रुषाऽध्वरे ॥३१॥ हरे किं सुखमापन्नं त्वया संत्यज्य कामिनीम् ॥ एकाकी तिष्ठता कालं सहस्रवत्सरात्मकम् ॥ ३२ ॥ गत्वाऽऽश्वास्य महाभागां समानय निजालयम् ॥ माभूत्कोऽपीह संसारे विमुक्तो रमया तया ॥३३॥ कृत्वा तुरगरूपं त्वं भजतां कमलालयाम् ॥ उत्पाद्य पुत्रमायुष्मंस्तामानय शुचिस्मिताम् ॥३४॥ व्यास उवाच ॥ हरिराकर्ण्य तद्वाक्यं चित्ररूपस्य भारत ॥ तथेत्युक्त्वा तु तं दूतं प्रेषयामास शंकरम् ॥ ३५ ॥ गते दूतेऽथ भगवान्वैकुंठात्काम-संयुतः ॥ जगाम धृत्वा तत्राशु वाजिरूपं मनोहरम् ॥ ३६ ॥ यत्र सा वडवारूपं कृत्वा तपति सिंधुजा ॥ विष्णुस्तं देशमासाद्य तामपश्यद्धयीं स्थिताम् ॥ ३७ ॥ साऽपि तं वीक्ष्य गोविन्दं हयरूपधरं पतिम् ॥ ज्ञात्वा वीक्ष्य स्थिता साध्वी विस्मिता साश्रुलोचना ॥ ३८ ॥ तयोस्तु सङ्गमस्तत्र प्रवृत्तो मन्मथार्तयोः ॥ कालिन्दीतमसासंगे पावने लोकविश्रुते ॥ ३९ ॥ सगर्भा सा तदा जाता वडवा हरिवल्लभा ॥ सुषुवे सुंदरं बालं तत्रैव सगुणोत्तरम् ॥ ४० ॥ तामाह भगवान्वाक्यं प्रहस्य समयाश्रितम् ॥ त्यजाद्य वाडवं देहं पूर्वदेहा भवाधुना ॥ ४१ ॥ गमिष्यावः स्ववैकुण्ठमावां कृत्वा निजं वपुः ॥ तिष्ठत्वत्र कुमारोऽयं त्वया जातः सुलोचने ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ स्वदेहसंभवं पुत्रं कथं हित्वा व्रजाम्यहम् ॥ स्नेहः सुदुस्त्यजः कामं स्वात्मजस्य सुरर्षभ ॥ ४३ ॥ का गतिः स्यादमेयात्मन्बालस्यास्य नदीतटे ॥ अनाथस्यासमर्थस्य विजनेऽल्पतनोरिह ॥ ४४ ॥

गये। उन्होंने जाकर देखा तो लक्ष्मीदेवी वहाँ अश्वीरूपमें विराजमान थीं ॥३६॥३७॥ लक्ष्मीकी दृष्टि भी भगवान विष्णुपर पड़ी। वे तुरन्त पहचान गयीं कि मेरे साक्षात् पतिदेव ही मुझपर कृपा करके अश्व रूपमें यहाँ पधारे हैं तो उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये ॥ ३८ ॥ यमुना और तमसाके संगमको सब लोग पवित्र मानते हैं। उसी स्थानपर भगवान विष्णु और लक्ष्मीका परस्पर मिलन हुआ ॥३९॥ अतः अश्वीरूपधारिणी लक्ष्मीजी गर्भवती हो गयीं। वहीं उन्होंने एक अनुपम गुणसम्पन्न और सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया ॥४०॥ तदनन्तर भगवान् विष्णुने हँसकर लक्ष्मीजीसे कहा—अब तुम अश्वीका शरीर त्यागकर पूर्ववत् दिव्य देह धारण कर लो ॥ ४१ ॥ हम दोनों दिव्य शरीर धारण करके यहाँसे वैकुण्ठ चलेंगे। हे सुलोचने ! तुमसे उत्पन्न यह कुमार यहीं रहेगा ॥४२॥ लक्ष्मी बोलीं-हे देवसत्तम! आपके अंशज पुत्रको यहाँ छोड़कर मैं कैसे जाऊँ अपने पुत्रका स्नेह त्यागना बड़ा कठिन काम है ॥४३॥ इस सूने नदी तटपर इस अनाथ और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असमर्थ बालककी क्या गति होगी ? ॥ ४४ ॥ हे कमललोचन ! इस निराश्रित बच्चेको छोड़कर चलनेके लिए मेरा दयालु हृदय कैसे उद्यत होगा ? ॥ ४५ ॥ तब भगवती लक्ष्मी और नारायण दोनों दिव्य शरीर धारण करके उत्तम विमानपर विराजमान हुए। तब देवताओंने यशोगान आरंभ किया ॥४६॥ भगवान अपने परमधाममें पधारना ही चाहते थे कि भगवती लक्ष्मीने प्राणपति श्रीहरिसे कहा-'नाथ! इस बालकको भी साथ ले लीजिए। मैं इसका त्याग नहीं करना चाहती ॥४७॥ हे प्रभो ! आपके समान प्रतिभायुक्त यह मेरा पुत्र प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। हे मधुसूदन ! इसे लेकर ही हम वैकुण्ठ चलें ॥४८॥ श्रीहरि बोले-हे प्रिये! हे वरानने! इस अवसरपर खेद प्रकट करना तुम्हारे लिए अवांछनीय है। यह सानन्द यहाँ रह सकता है। क्योंकि इसके भरण-पोषणकी व्यवस्था मैं पहले ही कर चुका हूँ ॥४९॥ हे वामोरु! इस पुत्रके त्यागमें जो प्रधान कारण है,उसे मैं बताता हूँ,सुनो ॥५०॥ भूमंडलपर ययातिके पुत्र तुर्वसु नामके एक

अनाश्रयं सुतं त्यक्त्वा कथं गंतुं मनो मम ॥ समर्थं सदयं स्वामिन्भवेदम्बुजलोचन ॥ ४५ ॥ दिव्यदेहौ ततो जातौ लक्ष्मीनारायणावुभौ ॥ विमानवरसंविष्टौ स्तूयमानौ सुरैर्दिवि ॥ ४६ ॥ गंतुकामं पतिं प्राह कमला कमलापतिम् ॥ गृहाणेमं सुतं नाथ नाहं शक्ताऽस्मि हापितुम् ॥ ४७ ॥ प्राणप्रियोऽस्ति मे पुत्रः कांत्या त्वत्सदृशः प्रभो ॥ गृहीत्वैनं गमिष्यावो वैकुण्ठं मधुसूदन ॥ ४८ ॥ हरिरुवाच ॥ मा विषादं प्रिये कर्तुं त्वमर्हसि वरानने ॥ तिष्ठत्वयं सुखेनात्र रक्षा मे विहिता त्विह ॥ ४९ ॥ कार्यं किमपि वामोरु वर्तते महदद्भुतम् ॥ निबोध कथयाम्यद्य सुतस्यात्र विमोचने ॥ ५० ॥ तुर्वसुर्नाम विख्यातो ययातितनुजो भुवि ॥ हरिवर्मेति पित्राऽस्य कृतं नाम सुविश्रुतम् ॥ ५१ ॥ स राजा पुत्रकामोऽद्य तपस्तपति पावने ॥ तीर्थे वर्षशतं जातं तस्य वै कुर्वतस्तपः ॥ ५२ ॥ तस्यार्थे निर्मितः पुत्रो मयाऽयं कमलालये ॥ तत्र गत्वा नृपं सुभ्रु प्रेरयिष्यामि सांप्रतम् ॥ ५३ ॥ तस्मै दास्याम्यहं पुत्रं पुत्रकामस्य कामिनी ॥ गृहीत्वा स्वगृहं राजा प्रापयिष्यति बालकम् ॥५४॥ व्यास उवाच ॥ इत्याश्वास्य प्रियां पद्मां कृत्वा रक्षां च बालके ॥ विमानवरमारुह्य प्रययौ प्रियया सह ॥५५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

जनमेजय उवाच ॥ संशयोऽयं महानत्र जातमात्रः शिशुस्तथा ॥ मुक्तः केन गृहीतोऽसावेकाकी विजने वने ॥ १ ॥ का गतिस्तस्य

राजा हैं। उनके पिताने उनका लोकप्रसिद्ध नाम हरिवर्मा रक्खा था ॥५१॥ इस समय वे नरेश पुत्रकी इच्छासे एक पवित्र तीर्थमें तपस्या कर रहे हैं। उन्हें तप करते पूरे एक सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ॥५२॥ उन्हीं राजा हरिवर्माके लिए मैंने यह पुत्र उत्पन्न किया है। हे सुभ्रु ! राजाके पास चलकर हमलोग उन्हें यहाँ भेज देंगे ॥ ५३ ॥ हे प्रिये ! पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाले उन्हीं नरेशको यह बालक सौंप देना है। वे स्नेहपूर्वक इसे अपने पर ले जायँगे ॥५४॥ व्यासजी कहते हैं-इस प्रकार प्रेयसी भार्या लक्ष्मीको आश्वासन देकर तथा बालककी रक्षाका समुचित प्रवन्ध करके भगवान् विष्णु उत्तम विमानपर बैठकर चले। श्रीलक्ष्मीजी भी उनके साथ विराजमान थीं ॥५५॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

जनमेजयने कहा—हे मुनिवर व्यासजी ! इस विषयमें मुझे महान् आश्चर्य है कि भगवानके द्वारा जन्मते ही बालक त्याग दिया गया। निर्जन वनमें उस असहाय पुत्रको किसने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्हाला ? ॥१॥ उस छोटेसे बालकको बाघ-सिंह आदि हिंसक पशु क्यों नहीं उठा ले गये ? उसकी क्या गति हुई ? कृपया बतलाइए ॥२॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! ज्यों ही भगवान् लक्ष्मीनारायण उस स्थानसे ओझल हुए, त्यों ही चम्पक विद्याधर वहाँ जा पहुँचा। उसकी सुंदरी पत्नी भी साथ थी। घूमते-फिरते हुए ही उत्तम रथपर बैठा हुआ वह वहाँ आया था ॥३॥४॥ उसने देखा कि एक अनुपम बालक पृथिवीपर पड़ा हुआ ॥५॥ तब चम्पकने रथसे उतरकर तुरंत उस बालकको उठा लिया। उस समय उसे इतना हर्ष हुआ, जैसे कोई निर्धन व्यक्ति धनकी निधि पाकर प्रसन्न हो गया हो ॥ ६ ॥ कामदेवके समान सुन्दर वह बालक उत्पत्तिके समय ही अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था। चम्पकने उसे उठाकर अपनी पत्नी मदालसाको सौंप दिया ॥७॥ मदालसाने जब उस बालकको लिया, तब प्रेमसे उसका शरीर पुलकित हो गया। उसके आनन्दकी सीमा नहीं रही। उसने मुँह चूमकर उस बालकको हृदयसे चिपका लिया ॥८॥

बालस्य जाता सत्यवतीसुत ॥ व्याघ्रसिंहादिभिर्हिंस्रैर्गृहीतो नातिबालकः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ लक्ष्मीनारायणौ तस्मात्स्थानाच्च चलितौ यदा ॥ तदैव तत्र चंपाख्यः प्राप्तो विद्याधरः किल ॥ ३ ॥ विमानवरमारूढः कामिन्या सहितो नृप ॥ मदनालसया कामं क्रीडमानो यदृच्छया ॥ ४ ॥ विलोक्य तं शिशुं भूमावेकाकिनमनुत्तमम् ॥ देवपुत्रप्रतीकाशं रममाणं यथासुखम् ॥ ५ ॥ विमानात्तरसोत्तीर्य चंपकस्तं शिशुं जवात् ॥ जग्राह च मुदं प्राप निधिं प्राप्य यथाऽधनः ॥ ६ ॥ गृहीत्वा चंपकः प्रादाद्देव्यै तं मदनोपमम् ॥ मदालसायै तं बालं जातमात्रं मनोहरम् ॥ ७ ॥ सा गृहीत्वा शिशुं प्रेम्णा सरोमांचा सविस्मया ॥ मुखं चुचुम्ब बालस्य कृत्वा तु हृदये भृशम् ॥ ८ ॥ आलिंगितश्चुंबितश्च तयाऽसौ प्रीतिपूर्वकम् ॥ उत्संगे च कृतस्तन्व्या पुत्रभावेन भारत ॥ ९ ॥ कृत्वांके तौ समारूढौ विमानं दंपती मुदा ॥ प्रतिं पप्रच्छ चार्वंगी प्रहस्य मदनालसा ॥ १० ॥ कस्यायं बालकः कान्तः त्यक्तः केन च कानने ॥ पुत्रोऽयं मम देवेन दत्तस्त्र्यंबकधारिणा ॥११॥ चंपक उवाच ॥ प्रिये गत्वाऽद्य पृच्छेयं शक्रं सर्वज्ञमाशु वै ॥ देवो वा दानवो वाऽपि गंधर्वो वा शिशुः किल ॥ १२ ॥ तेनाज्ञप्तः करिष्यामि पुत्रं प्राप्तं वनादमुम् ॥ अपृष्ट्वा नैव कर्तव्यं कार्यं किंचिन्मया ध्रुवम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा तं विमानेनाथ चंपकः ॥ ययौ शक्रपुरं तूर्णं हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥ १४ ॥ प्रणम्य पादयोः प्रीत्या चंपकस्तु शचीपतिम् ॥ निवेद्य बालकं प्राह कृतांजलिपुटः स्थितः ॥१५॥ देवदेव मया लब्धस्तीर्थे परमपावने ॥ कालिंदीतमसासंगे बालकोऽयं स्मरप्रभः ॥१६॥

हे भारत ! प्रसन्नतापूर्वक हृदयसे चिपकाने और चूमनेके पश्चात् मदालसाने उसे अपना पुत्र मानकर गोदमें ले लिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर वे दोनों स्त्री-पुरुष रथपर जा बैठे। बालक मदालसाकी गोदमें था। तब उस सुन्दरी भार्याने हँसकर अपने पतिदेव चम्पकसे पूछा—॥ १० ॥ 'हे कान्त ! यह बालक किसका है ? किसने इसे वनमें छोड़ दिया है ? मुझे तो इसे शिवजीने दिया है' ॥११॥ चम्पकने कहा—प्रिये ! इन्द्र सर्वज्ञ हैं। मैं अभी चलकर उनसे पूछता हूँ कि यह बालक देवता है, दानव है अथवा गन्धर्व है ? ॥१२॥ उनसे आज्ञा पाकर ही इस बालकको मैं अपना पुत्र बनाऊँगा। मेरे विचारमें उनसे बिना पूछे कोई कार्य करना अनुचित है ॥ १३ ॥ यों कहकर चम्पक अपनी स्त्री और उस बालकके सहित तुरन्त अमरावतीको चल पड़ा। हर्षके उद्रेकसे उसके नेत्र खिल उठे थे ॥ १४ ॥ वहाँ पहुँचकर चम्पकने इन्द्रके चरणोंमें प्रीतिपूर्वक मस्तक झुकाया और बालकको सामने उपस्थित करके हाथ जोड़कर बैठ गया ॥ १५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसने उनसे कहा—'हे देवेश्वर ! यमुना और तमसा नदीके संगमको लोग परम पावन तीर्थ मानते हैं। वहीं कामदेवके समान कांतिवाला यह बालक मुझे प्राप्त हुआ है ॥१६॥ हे शचीपते ! यह बालक किसका पुत्र है ? इसे क्यों वहाँ छोड़ दिया गया था ? आपकी आज्ञा हो तो मैं इस बालकको अपना पुत्र बना लूँ ॥१७॥ इस अत्यन्त सुन्दर बालकसे मेरी पत्नी भी स्नेह करती है। धर्मशास्त्रमें ऐसा कथन है कि कृत्रिम पुत्र भी अपना बनाया जा सकता है ॥१८॥ इन्द्र बोले–हे महाभाग! यह बालक अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुका पुत्र है। इसकी जननी स्वयं भगवती लक्ष्मी हैं। इस परम तपस्वी बालकका नाम 'हैहय' है ॥ १९ ॥ श्रीविष्णु ययातिके वंशज राजा हरिवर्माको यह पुत्र देना चाहते हैं। हरिवर्मा बड़े धार्मिक नरेश हैं। श्रीहरि उन्हें पुत्र-प्राप्तिके लिए अभी उस पवित्र तीर्थमें जानेकी आज्ञा देंगे। भगवान्की आज्ञा पाकर हरिवर्माके वहाँ पहुँचनेसे पहले ही तुम इस मनोहर बालकको लेकर वहाँ पहुँच जाओ और इसे वहीं रख

कस्यायं बालकः कांतः कथं त्यक्तः शचीपते ॥ आज्ञा चेत्तव देवेश कुर्वेऽहं बालकं सुतम् ॥ १७ ॥ अतीव सुंदरो बालः प्रियाया वल्लभः सुतः ॥ कृत्रिमस्तु सुतः प्रोक्तो धर्मशास्त्रेषु सर्वथा ॥ १८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ पुत्रोऽयं वासुदेवस्य वाजिरूपधरस्य ह ॥ हैहयोऽयं महाभाग लक्ष्म्या जातः परंतपः ॥१९॥ उत्पादितो भगवता कार्यार्थं किल बालकः ॥ दातुं नृपतये नूनं ययातितनयाय च ॥२०॥ हरिणा प्रेरितः सोऽद्य राजा परमधार्मिकः ॥ आगमिष्यति पुत्रार्थं तीर्थे तस्मिन्मनोरमे ॥ २१ ॥ तावत्त्वं गच्छ तत्रैव गृहीत्वा बालकं शुभम् ॥ यावन्न याति नृपतिर्गृहीतुं हरिणेरितः ॥२२॥ गत्वा तत्र विमुंचैनं विलंबं मा कृथा वर ॥ अदृष्ट्वा बालकं राजा दुःखितश्च भविष्यति ॥२३॥ तस्माच्चंपक मुंचैनं राजा प्राप्नोतु पुत्रकम् ॥ एकवीरेति नाम्नाऽयं ख्यातः स्यात्पृथिवीतले ॥२४॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा चंपकस्त्वरयान्वितः ॥ जगाम पुत्रमादाय स्थले तस्मिन्महीपते ॥ २५ ॥ मुमोच बालकं तत्र यत्र पूर्वं स्थितो ह्यभूत् ॥ आरुह्य स्वविमानं तु ययौ स्वाश्रममंडलम् ॥ २६ ॥ तदैव कमलाकांतो लक्ष्म्या सह जगद्गुरुः ॥ विमानवरमारूढो जगाम नृपतिं प्रति ॥२७॥ दृष्टस्तदा तेन नृपेण विष्णुः समुत्तरंस्तत्र विमानमुख्यात् ॥ जहर्ष राजा हरिदर्शनेन पपात भूमौ खलु दंडवच्च ॥२८॥ उत्तिष्ठ वत्सेति हरिः पतंतमाश्वासयद्भूमिगतं स्वभक्तम् ॥ सोऽप्युत्सुको वासुदेवं पुरःस्थं तुष्टाव भक्त्या मुखरीकृतोऽथ ॥ २९ ॥ देवाधिदेवाखिललोकनाथ कृपानिधे लोकगुरो रमेश ॥ मंदस्य मे ते किल दर्शनं यत्सुदुर्लभं योगिजनैरलभ्यम् ॥३०॥ ये निःस्पृ-

दो। विलम्ब करनेसे ठीक नहीं होगा। क्योंकि वहाँ बालक न मिलेगा तो राजा अत्यन्त दुखी हो जायँगे। भूमंडलपर यह बालक 'एकवीर' नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ २०–२४ ॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन् ! देवराज इन्द्रकी बातें सुनकर चम्पक उसी क्षण बालकको लेकर वहाँसे चल पड़ा और उसे जहाँसे उठाया था, वहीं ले जाकर रख दिया। तदनन्तर विमानपर बैठकर वह अपने घर लौट गया ॥ २५ ॥ २६ ॥ उसी समय लक्ष्मीजीके साथ विमानपर बैठकर जगद्गुरु भगवान् नारायण तप करते हुए राजाके पास पधारे ॥२७॥ राजा हरिवर्माने देखा—'भगवान विमानसे उतर रहे हैं। अब राजाके हर्षकी सीमा नहीं रही। वे दण्डके समान भगवान्के सामने पृथ्वीपर गिर पड़े ॥२८॥ पृथ्वीपर पड़े हुए अपने उस भक्तको भगवान्ने आश्वासन दिया और कहा–'वत्स! उठो !' तब राजा हरिवर्माने भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति की–॥ २९ ॥ 'हे देवेश्वर ! हे अखिललोकप्रभो ! हे कृपानिधे ! हे जगद्गुरो ! हे रमेश ! मुझ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अज्ञानी जनके लिए आपका दर्शन अवश्य ही अत्यन्त दुर्लभ था। क्योंकि योगीलोग भी इसे पानेमें असफल रहते हैं ॥ ३० ॥ जिनको स्पृहा शान्त हो चुकी है तथा जो विषयोंसे विरक्त हैं, उन्हींको आपका दर्शन मिलना सम्भव है। हे अनन्त ! हे देवदेव ! मैं आशा लगाये बैठा था। वस्तुतः मैं आपके दर्शन पानेका अधिकारी नहीं था ॥ ३१ ॥ इस प्रकार राजा हरिवर्माके स्तुति करनेपर भगवान् विष्णुने अमृतमयी वाणीमें उनसे कहा–'राजन् ! मैं तुम्हारी तपस्यासे परम संतुष्ट हूँ और तुम्हें अभिलिषित वर दे रहा हूँ, इसे स्वीकार करो' ॥३२॥ उस समय भगवान राजा हरिवर्माके सामने विराजमान थे। राजाने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर कहा–'हे मुरारे ! मैंने आप जैसा पुत्र पानेके लिए तप किया है' ॥३३॥ राजा हरिवर्माकी प्रार्थना सुनकर देवाधिदेव भगवान् श्रीविष्णुने उनसे कहा–'हे ययातिनन्दन ! तुम यमुना और तमसा नदीके पावन संगमतीर्थपर अभी चले जाओ ॥३४॥ तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही पुत्र मैंने वहाँ रख छोड़ा है। हे राजन् ! मेरे वीर्यसे उत्पन्न उस पुत्रमें असीम शक्ति है। लक्ष्मी स्वयं उसकी जननी हैं। तुम्हारे ही लिए उसे उत्पन्न किया गया है। अतः तुम उसे स्वीकार करो ॥३५॥

हास्ते विषयैरपेतास्तेषां त्वदीयं खलु दर्शनं स्यात् ॥ आशापरोऽहं भगवन्ननन्त योग्यो न ते दर्शने देवदेव ॥ ३१ ॥ इति स्तुतस्तेन नृपेण विष्णु-
स्तमाह वाक्येन सुधामयेन ॥ वृणीष्व राजन्मनसेप्सितं ते ददामि तुष्टस्तपसा तवेति ॥ ३२ ॥ ततो नृपस्तं प्रणिपत्य पादयोः प्रोवाच विष्णुं पुरतः
स्थितं च ॥ तपस्तु तप्तं हि मया सुतार्थे पुत्रं ददस्वात्मसमं मुरारे ॥ ३३ ॥ श्रुत्वा नृपप्रार्थितमादिदेवस्तमाह राजानममोघवाक्यम् ॥ ययातिसूनो
व्रज तेऽत्र तीर्थे कलिंदकन्यातमसाप्रसंगे ॥ ३४ ॥ मयाऽद्य पुत्रस्तु यथेप्सितस्ते तत्रैव मुक्तोऽस्त्यमितप्रभावः ॥ लक्ष्म्याः प्रसूतो मम वीर्यजश्च
कृतस्तवार्थेऽथ गृहाण राजन् ॥ ३५ ॥ श्रुत्वा हरेर्वाक्यमतीव मृष्टं संतुष्टचित्तः प्रबभूव राजा ॥ हरिस्तु दत्त्वेति वरं जगाम वैकुण्ठलोकं रमया
युतश्च ॥३६॥ गते हरौ सोऽथ ययातिसूनुर्ययावनुद्धातरथेन राजा ॥ प्रेमान्वितस्तत्र सुतोऽस्ति यत्र वचो निशम्येति जनार्दनस्य ॥ ३७ ॥ स तत्र
गत्वाऽतिमनोहरं तं ददर्श बालं भुवि खेलमानम् ॥ मुखे निवेश्यैककरेण कृत्वा श्लक्ष्णं पदांगुष्ठमनन्यसत्त्वः ॥ ३८ ॥ तं वीक्ष्य पुत्रं मदनस्वरूपं
नारायणांशं कमलाप्रसूतम् ॥ हरिप्रभावं हरिवर्मनामा हर्षप्रफुल्लाननपंकजोऽभूत् ॥ ३९ ॥ गृह्णन्सुवेगात्करपंकजाभ्यां बभूव प्रेमार्णवमग्नदेहः ॥

भगवान् विष्णुकी वाणी बड़ी ही मधुर थी। उसे सुनकर राजा हरिवर्माके मनमें प्रसन्नताकी लहरें उठने लगीं। उधर भगवान् उन्हें वर देकर लक्ष्मीजीके साथ वैकुण्ठ चले गये ॥ ३६ ॥ भगवान्के चले जानेपर ययातिनन्दन राजा हरिवर्मा एक अत्यन्त सुदृढ़ रथपर सवार होकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये, जहाँ वह बालक विराजमान था। भगवानके मुखारविन्दसे वे सब बातें सुन ही चुके थे ॥३७॥ वहाँ जानेपर हरिवर्माने उस अत्यन्त मनोहर बालकको देखा, जो जमीनपर खेलता हुआ एक हाथसे पैरके अँगूठेको पकड़कर धीरे-धीरे चूस रहाथा ॥३८॥ उसकी कामदेवके समान कान्ति थी। लक्ष्मीके उदरसे उत्पन्न वह बालक भगवान नारायणका अंश था। श्रीहरिके तुल्य ही उसमें भी शक्ति थी। उसे देखकर हरिवर्माके नेत्रकमल हर्षसे खिल उठे ॥ ३९ ॥ प्रेमके समुद्रमें गोता खाते हुए उन नरेशने तुरन्त उस बालकको अपने करकमलोंसे उठा लिया। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसका मस्तक सूँघा और उसे गोदमें लेकर वे अत्यन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आनन्दित हुए। उसके अत्यन्त सुन्दर मुखको देखते ही उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रु गिरने लगे। राजाने उस बालकसे कहा–'पुत्र! माता लक्ष्मी और भगवान विष्णुके कृपाप्रसादसे तुम मुझे प्राप्त हुए हो। क्योंकि नरक-भोगके दुःखसे डरकर मैंने तुम जैसे पुत्रके लिए कठिन तपस्या की है। तपस्याके सौ वर्ष पूरे होनेपर लक्ष्मीकान्त भगवान् नारायणने सांसारिक सुख भोगनेके लिए तुमको पुत्र बनाकर मुझे सौंपा है ॥४०॥४१॥ लक्ष्मी तुम्हारी जननी हैं। उन्होंने तुम्हें उत्पन्न करके मेरे लिए छोड़ दिया है। स्वयं भगवान विष्णुके साथ वे वैकुण्ठ चली गयी हैं। उस माताको धन्यवाद है, जो तुम-जैसे हँसमुख बालकको गोदमें लेकर आनन्द मनायेगी ॥४२॥४३॥ हे पुत्र! तुम संसारसागरको पार करनेके लिए नौका-स्वरूप हो। भगवान नारायण तुम्हारे निर्माता हैं।' इस प्रकार कहकर राजा हरिवर्मा प्रसन्नतापूर्वक उस पुत्रको लेकर नगरके लिए प्रस्थित हुए ॥ ४४ ॥ अभी राजा नगरके निकट पहुँचे ही थे कि यह समाचार पाकर उनका मंत्रिमंडल और प्रजावर्ग अगवानीके लिए तैयार हो गया। पुरोहितोंको साथ लेकर भेंटकी सामग्री लिये सूत-बंदीजन और गायकोंके साथ वे सब उनकी अगवानीके लिए पहुँचे।

मूर्धन्युपाघ्राय मुदान्वितोऽसौ ननंद राजा सुतमालिलिंग ॥ ४० ॥ मुखं समीक्ष्यातिमनोहरं तमुवाच नेत्रांबुनिरुद्धकंठः ॥ दत्तोऽसि देवेन जनार्दनेन मात्रा हि पुत्रावमदुःखभीतेः ॥४१॥ तप्तं मया पुत्र तपस्तवार्थे सुदुष्करं वर्षशतं च पूर्णम् ॥ तेनैव तुष्टेन रमाप्रियेण दत्तोऽसि संसारसुखोदयाय ॥४२॥ माता रमा त्वां तनुजं मदर्थे त्यक्त्वा गता सा हरिणा समेता ॥ धन्या तु सा या प्रहसंतमंके कृत्वा सुतं त्वां मुदितानना स्यात् ॥४३॥ त्वमेव संसारसमुद्रनौकारूपः कृतः पुत्र लक्ष्मीवरेण ॥ इत्येव मुक्त्वा नृपतिः सुतं तं मुदा समादाय ययौ गृहाय ॥४४॥ पुरीसमीपे नृपमागतं तमाकर्ण्य सर्वे सचिवास्तु राज्ञः ॥ ययुः समीपं नृपतेश्च लोकाः सोपायनास्ते सपुरोहिताश्च ॥४५॥ बंदीजना गायनकाश्च सूताः समाययुः संमुखमाशु राज्ञः ॥ नृपः पुरं प्राप्य पुरः समागतं जनं समाश्वास्य वाक्यैश्च दृष्ट्या ॥४६॥ संपूजितः पौरजनेन राजा विवेश पुत्रेण युतो नगर्याम् ॥ मार्गेषु लाजैः कुसुमैः समंताद्विकीर्यमाणो नृपतिर्जगाम ॥४७॥ गृहं समृद्धं सचिवैः समेतः सुतं समादाय मुदा कराभ्याम् ॥ राज्ञ्यै ददौ चाथ सुतं मनोज्ञं सद्यः प्रसूतं च मनोभवाभम् ॥ ४८ ॥ राज्ञी गृहीत्वाऽभिनवं तनूजं पप्रच्छ राजानमनिंदिता सा ॥ राजन्कुतश्चैष सुतः सुजन्मा प्राप्तस्त्वया मन्मथतुल्यरूपः ॥ ४९ ॥ केनैष दत्तः कथयाशु कान्त चेतो मदीयं प्रहृतं सुतेन ॥ नृपस्तदोवाच मुदान्वितोऽसौ प्रिये रमेशेन सुतो हि मह्यम् ॥५०॥ लोलाक्षि दत्तः कमलासमुत्थो जनार्दनांशोऽयमहीनसत्त्वः ॥

नगरमें पहुँचनेपर राजा हरिवर्माने बातचीत करके तथा सबकी ओर दृष्टि दौड़ाकर प्रायः सबको आश्वासित किया ॥४५॥४६॥ नागरिक सम्यक् प्रकारसे उनका स्वागत करनेके लिए तैयार थे। जब राजा हरिवर्माने पुत्रको लेकर नगरमें प्रवेश किया, तब मार्गमें उनके ऊपर चारों ओरसे धानका लावा और फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥४७॥ प्रजाके द्वारा यों सम्मानित होकर वे नरेश मंत्रियोंके साथ अपने समृद्धिशाली महलमें गये। हर्षपूर्वक उस अभिनव पुत्रको हाथमें लेकर उन्होंने रानीको सौंप दिया। उस सद्यःप्रसूत पुत्रकी कांति कामदेवकी तुलना कर रही थी ॥४८॥ महाराज हरिवर्माकी रानी भी बड़ी साध्वी थीं। उन्होंने उस अभिनव पुत्रको गोदमें लेकर राजासे पूछा–हे महाराज! कामदेवके समान सुंदर यह सुजन्मा पुत्र आपको कहाँसे प्राप्त हुआ है? ॥ ४९ ॥ हे कान्त! आप शीघ्र बतानेकी कृपा करें कि आपको किसने यह सुंदर पुत्र प्रदान किया है? इसको देखकर मेरा मन अपने वशमें नहीं है। तब राजाने बड़ी प्रसन्नताके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ रानीसे कहा–'प्रिये ! भगवान् लक्ष्मीनारायणने मुझे यह पुत्र प्रदान किया है ॥५०॥ हे लोलाक्षी ! इस महान् शक्तिशाली पुत्रकी जननी साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं। भगवान् विष्णुके अंशसे इसका प्राकट्य हुआ है।' अब रानी उस बालकको लेकर आनन्दमग्न हो गयीं। राजाने बड़े समारोहके साथ अद्भुत उत्सव मनाया ॥ ५१ ॥ याचकोंको प्रचुर दान दिया। बहुतेरे बाजे बजे और गीत गाये गये। यों उत्सव करके हरिवर्माने अपने पुत्रका नाम 'एकवीर' रक्खा ॥ ५२ ॥ महाराज हरिवर्मा इन्द्रके समान पराक्रमी थे। विष्णुके सदृश गुणवाले पुत्रको पाकर उनके मनमें अपार हर्ष हुआ। अब पितृऋणसे मुक्त होकर वे आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार सभी गुणोंके भंडार भगवानके द्वारा प्रदत्त एवं सर्वगुणसम्पन्न पुत्र प्राप्त करके अपनी पत्नीसे सेवित राजा हरिवर्मा विविध सुखोंको भोगते हुए सानन्द रहने लगे ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

(एकवीरचरित्र) व्यासजी बोले–हे राजन् ! तदनन्तर महाराज हरिवर्माने बालकके जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किये। उसके लालन-पालनकी पूर्ण व्यवस्था की और वह बालक बड़ी

सा तं गृहीत्वा मुदमाप राज्ञी राजा चकारोत्सवमद्भुतं च ॥ ५१ ॥ ददौ च दानं किल याचकेभ्यो गीतानि वाद्यानि बहूनि नेदुः ॥ कृत्वोत्सवं भूपतिरात्मजस्य नामैकवीरेति चकार विश्रुतम् ॥ ५२ ॥ सुखं च संप्राप्य मुदान्वितोऽसौ ननन्द देवाधिपतुल्यवीर्यः ॥ पुत्रं हरे रूपगुणानुरूपं संप्राप्य वंशस्य ऋणाच्च मुक्तः ॥ ५३ ॥ इति सकलसुराणामीश्वरेणार्पितं तं सकलगुणगणाढ्यं पुत्रमासाद्य राजा ॥ विविधसुखविनोदैर्भार्यया सेव्यमाने व्यहरत निजगेहे शक्रतुल्यप्रतापः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ व्यास उवाच ॥ जातकर्मादिसंस्कारांश्चकार नृपतिस्तदा ॥ दिने दिने जगामाशु वृद्धिं बालः सुलालितः ॥ १ ॥ नृपः संसारजं प्राप्य सुखं पुत्रसमुद्भवम् ॥ ऋणत्रयविमोक्षं च मेने तेन महात्मना ॥ २ ॥ षष्ठेऽन्नप्राशनं तस्य कृत्वा मासि यथाविधि ॥ तृतीयेऽथ तथा वर्षे चूडाकरणमुत्तमम् ॥ ३ ॥ चकार ब्राह्मणान्द्रव्यैः संपूज्य विविधैर्धनैः ॥ गोभिश्च विविधैर्दानैर्याचकानितरानपि ॥ ४ ॥ वर्षे चैकादशे तस्य मौंजीबंधनकर्म वा ॥ कारयित्वा धनुर्वेदमध्यापयत पार्थिवः ॥ ५ ॥ अधीतवेदं पुत्रं तं राजधर्मविशारदम् ॥ दृष्ट्वा तस्याभिषेकाय मतिं चक्रे जनाधिपः ॥ ६ ॥ पुष्यार्कयोगसंयुक्ते दिवसे नृपसत्तमः ॥ कारयामास संभारानभिषेकार्थमादरात् ॥ ७ ॥ द्विजानाहूय वेदज्ञान्सर्वशास्त्रविचक्षणान् ॥ अभिषेकं चका-

शीघ्रतासे दिन-दिन बढ़ने लगा ॥ १ ॥ इस प्रकार पुत्रजनित सांसारिक सुख पाकर उन महात्मा नरेशने अपने मनमें यह अनुभव किया कि अब मेरे तीनों ऋण चुक गये ॥ २ ॥ छठें महीनेमें बालकका विधिपूर्वक अन्नप्राशन किया। तीसरे वर्ष उसका मुण्डन-संस्कार हुआ ॥३॥ प्रत्येक संस्कारमें ब्राह्मणोंकी सम्यक् प्रकारसे पूजा की गयी। उन्हें तरह-तरहके दान दिये गए। गौएँ दी गयीं। विविध दानोंसे अन्य याचकोंको भी संतुष्ट किया गया ॥४॥ ग्यारहवें वर्षमें राजाने यज्ञोपवीत-संस्कार कराकर उसको धनुर्वेद पढ़ानेकी व्यवस्था की ॥५॥ जब राजा हरिवर्माने देखा कि राजकुमारने धनुर्विद्या सीख ली और राजधर्मके सभी अङ्ग इसे भली-भाँति अवगत हो गये, तब उनके मनमें आया कि अब इसका राज्याभिषेक कर देना चाहिए ॥ ६ ॥ तदनुसार पुष्यार्क योगमें बड़े आदरके साथ अभिषेकमें काम आनेवाली सभी सामग्रियाँ एकत्र की गयीं ॥७॥ सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारगामी वेदज्ञ बुलाये गये। यों उन नरेशने राजकुमारका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विधिवत् अभिषेक सम्पन्न किया ॥ ८ ॥ उस शुभ अवसरपर स्वयं राजाने तीर्थों और समुद्रोंके जलसे राजकुमारका अभिषेक किया ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंको धन देनेके पश्चात् राजाने कुमारको राजगद्दीपर बैठानेकी व्यवस्था की। यों एकवीरको राजा बनाकर और सुयोग्य मंत्रियोंको नियुक्त करके महाराज हरिवर्मा रानीसहित वनमें चले गये। उन्होंने इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था ॥१०॥११॥ अब मैनाकपर्वतके शिखरपर उनका तृतीय वानप्रस्थ आश्रम व्यतीत होने लगा। वहाँके जंगली पत्ते और फल खाकर वे निरन्तर भगवती पार्वतीकी आराधनामें जुटे रहे ॥१२॥ इस प्रकार रानीसहित राजाकी दिनचर्या चलने लगी। प्रारब्ध-कर्म शेष होनेपर उनका पाञ्चभौतिक शरीर शांत हो गया। अपने शुभ कर्मके प्रभावसे उन्होंने स्वर्गलोकमें स्थान प्राप्त किया ॥१३॥ पिताजीका स्वर्गवास हो गया—यह सुनकर हैहय (एकवीर) ने वैदिक विधिके अनुसार उनका और्ध्वदैहिक संस्कार किया ॥१४॥ पिताकी सभी क्रियाएँ सम्पन्न हो जानेपर मेधावी राजकुमार उनसे मिले हुए राज्यपर शासन करने लगे ॥१५॥ वे बड़े धर्मज्ञ पुरुष थे। सर्वोत्कृष्ट राज्यके अधिकारी होनेपर उन्हें तरह-तरहके भोग सुलभ हो गये। मंत्रि-

रासौ विधिवत्स्वात्मजस्य ह ॥ ८ ॥ जलमानीय तीर्थेभ्यः सागरेभ्यश्च पार्थिवः ॥ स्वयं चकार विधिवदभिषेकं शुभे दिने ॥ ९ ॥ धनं दत्त्वाऽथ विप्रेभ्यो राज्यं पुत्रे निवेश्य सः ॥ जगाम वनमेवाशु स्वर्गकामः स भूपतिः ॥ १० ॥ एकवीरं नृपं कृत्वा संमान्य सचिवानथ ॥ भार्यया सह भूपालः प्रविवेश वनं वशी ॥ ११ ॥ मैनाकशिखरे राजा कृत्वा तार्तीयमाश्रमम् ॥ नित्यं पत्रफलाहारश्चिंतयामास पार्वतीम् ॥ १२ ॥ एवं स नृपतिः कृत्वा दिष्टांते सह भार्यया ॥ मृतोऽसौ वासवं लोकं गतः पुण्येन कर्मणा ॥ १३ ॥ इन्द्रलोकं पिता प्राप्त इति श्रुत्वाऽथ हैहयः ॥ चकार वेदनिर्दिष्टं कर्म चैवौर्ध्वदैहिकम् ॥ १४ ॥ कृत्वोत्तराः क्रियाः सर्वाः पितुः पार्थिवनन्दनः ॥ राज्यं चकार मेधावी पित्रा दत्तं सुसंमतम् ॥ १५ ॥ एकवीरोऽथ धर्मज्ञः प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ॥ बुभुजे विविधान्भोगान्सचिवैश्च सुमानितः ॥ १६ ॥ एकस्मिन्दिवसे राजा मंत्रिपुत्रैः समन्वितः जगाम जाह्नवीतीरे हयारूढः प्रतापवान् ॥ १७ ॥ संपश्यन्पादपान्रम्यान्कोकिलालापसंश्रुतान् ॥ पुष्पितान्फलसंयुक्तान्षट्पदालिविराजितान् ॥ १८ ॥ मुनीनामाश्रमान्दिव्यान्वेदध्वनिनिनादितान् ॥ होमधूमावृताकाशान्मृगशावसमावृतान् ॥ १९ ॥ केदाराञ्छालिसम्पक्वान्गोपिकाभिः सुरक्षितान् ॥ प्रफुल्लपङ्कजारामान्निकुञ्जांश्च मनोरमान् ॥ २० ॥ प्रेक्षमाणः प्रियालांस्तु चम्पकान्पनसद्रुमान् ॥ बकुलांस्तिलकान्नीपान्मन्दारांश्च प्रफुल्लि-

मण्डल उनका बड़ा सम्मान करता था ॥१६॥ एक समयकी बात है—प्रतापी राजा एकवीर बहुत-से मंत्रिकुमारोंके साथ घोड़ेपर सवार होकर गंगाके तटपर गये ॥१७॥ उन्होंने देखा, फलों और फूलोंसे लदे हुए मनोहर वृक्ष वहाँ शोभा पा रहे थे। कोकिलोंकी ध्वनि और भौंरोंकी गुनगुनाहटसे उन वृक्षोंकी अनुपम शोभा हो रही थी ॥१८॥ वहाँ मुनियोंके अनेक दिव्य आश्रम थे। निरन्तर वेदध्वनि हो रही थी। हवनके धुएँसे आकाश भर गया था। जहाँ-तहाँ मृगोंके छोटे-छोटे बच्चे छलाँग मार रहे थे ॥१९॥ धानकी बहुतसी पकी हुई क्यारियाँ थीं। ग्वालिनियाँ उन खेतोंकी रक्षापर नियुक्त थीं। फूले हुए कमलोंसे सुशोभित बहुतसे सरोवर और मनको लुभानेवाले वन भी दृष्टिगोचर हुए ॥२०॥ अशोक, चम्पा, कटहल, बकुल, तिलक, कदम्ब, फूले हुए पारिजात, साखू, ताल, तमाल, आम और जामुन आदि वृक्षोंपर उनकी दृष्टि पड़ी। कुछ दूर आगे बढ़नेपर उन्हें एक खिला हुआ शतपत्र कमल दिखायी दिया। उस कमलसे बड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्कृष्ट गन्ध निकल रही थी। राजा एकवीरने देखा, वहीं कमलके दक्षिण भागमें कमलके समान नेत्रवाली एक सुन्दरी कन्या रो रही है। उसके शरीरकी कान्ति सुवर्ण-जैसी थी। मनोहर केश थे। शंखके समान ग्रीवा थी। होंठ ऐसे जान पड़ते थे, मानो बिम्बाफल हों। कमर पतली थी। नासिका बड़ी सुन्दर थी। उसके प्रायः सभी अंग मनोहर थे। वह अपनी सखीसे बिछुड़कर अत्यन्त दुःखपूर्वक विलाप कर रही थी ॥२१-२५॥ उसकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। उस निर्जन वनमें वह फूट-फूटकर रो रही थी। जान पड़ता था, मानो कोई कुररी पक्षिणी विलाप कर रही हो। ऐसी स्थितिमें पड़ी हुई उस कन्याको देखकर राजा एकवीरने उससे शोकका कारण पूछते हुए कहा—॥ २६ ॥ 'हे सुनसे! तुम कौन हो? हे शुभानने! तुम्हारे पिता कौन हैं? हे सुन्दरी! तुम किसी गन्धर्व अथवा देवताकी कन्या तो नहीं हो? तुम्हारे रोनेका क्या कारण है? ॥२७॥ हे बाले! तुम अकेली क्यों खड़ी हो? हे पिकस्वरे! तुम्हें यहाँ किसने छोड़

तान् ॥ २१ ॥ शालांस्तालांस्तमालांश्च जम्बूचूतकदम्बकान् ॥ स गच्छञ्जाह्नवीतोये प्रफुल्लं शतपत्रकम् ॥ २२ ॥ पंकजं चाऽतिगंधाढ्यमपश्यद-वनीपतिः ॥ दक्षिणे जलजस्याथ पार्श्वे कमलोचनाम् ॥ २३ ॥ कनकाभां सुकेशीं च कंबुग्रीवां कृशोदरीम् ॥ बिंबोष्ठीं सुंदरीं किंचित्समुद्यत्सुपयो-धराम् ॥ २४ ॥ सुनासां चारुसर्वांगीमपश्यत्कन्यकां नृपः ॥ रुदतीं तां सखीं त्यक्त्वा विह्वलां दुःखपीडिताम् ॥ २५ ॥ साश्रुनेत्रां क्रंदमानां विजने कुररीमिव ॥ संवीक्ष्य राजा पप्रच्छ कन्यकां शोककारणम् ॥ २६ ॥ सुनसे ब्रूहि काऽसि त्वं कस्य पुत्री शुभानने ॥ गंधर्वी देवकन्याऽथ कथं रोदिषि सुंदरि ॥ २७ ॥ कथमेकाकिनी बाले त्यक्ता केन पिकस्वरे ॥ पतिस्ते क्व गतः कांते पिता वा ब्रूहि सांप्रतम् ॥ २८ ॥ किं ते दुःखमरालभ्रु कथयाद्य ममांतिके ॥ करोमि दुःखनाशं ते सर्वथैव कृशोदरि ॥ २९ ॥ न राज्ये मम तन्वंगि पीडां कोऽपि करोत्यलम् ॥ न भयं चौरजं कांते न राक्षसभयं तथा ॥ ३० ॥ मयि शासति भूपाले नोत्पाता दारुणा भुवि ॥ भयं न व्याघ्रसिंहेभ्यो न भयं कस्यचिद्भवेत् ॥ ३१ ॥ वद वामोरु कस्मात्त्वं विलापं जाह्नवीतटे ॥ करोषि त्राणहीनाऽत्र किं ते दुःखं वदस्व मे ॥ ३२ ॥ हन्म्यहं दुःखमत्युग्रं प्राणिनां पृथिवीतले ॥ दैवं च मानुषं कांते व्रतमेतन्ममाद्भुतम् ॥ ३३ ॥ विशाललोचने ब्रूहि करोमि तव चिंतितम् ॥ इत्युक्ते वचने राज्ञा श्रुत्वोवाच मृदुस्वना ॥ ३४ ॥ शृणु राजेंद्र

दिया है? इस समय तुम्हारे पतिदेव अथवा पिता कहाँ चले गये हैं? ॥ २८ ॥ अब तुम मेरे सामने अपने दुःखका कारण व्यक्त करनेकी कृपा करो। मैं सम्यक् प्रकारसे तुम्हारा दुःख दूर करनेके लिए तैयार हूँ ॥२९॥ हे तन्वङ्गी! यह निश्चित है कि मेरे राज्यमें किसीको भी दुःख नहीं सताते। इसमें न चोरका भय है और न राक्षसका ही ॥३०॥ मैं इस भूमंडलका नरेश हूँ। मेरे शासनकालमें भयंकर उत्पातोंका होना असंभव है। कहीं किसीको बाघ अथवा सिंह भी किञ्चिन्मात्र कष्ट नहीं पहुँचा सकते ॥ ३१ ॥ हे वामोरु! असहाय होकर गंगातटपर तुम क्यों बिलख रही हो? तुम्हें क्या दुःख है—मुझको बतलाओ ॥३२॥ हे कान्ते! जगत्में प्राणियोंके दैविक एवं मानुषिक अत्यन्त कठिन दुःखको भी दूर करना मेरा प्रधान कर्त्तव्य है। इस अद्भुत व्रतका मैं बड़ी तत्परतासे पालन करता हूँ ॥३३॥ हे विशाललोचने! बताओ, तुम्हारी मानसिक चिंताको मैं अवश्य दूर कर दूँगा।' राजा एकवीरके 'यह कहनेपर उनकी बात सुनकर उस मधुर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाषिणी कन्याने कहा–॥३४॥ 'हे राजेन्द्र ! सुनिये, मैं अपने शोकका कारण बता रही हूँ । हे राजन् ! विपत्ति न हो तो प्राणी क्यों रोये ? ॥३५॥ हे महाबली ! मैं अपने रोनेका कारण बता रही हूँ । आपके राज्यसे अन्यत्र एक परम धार्मिक राजा रहते हैं । उनका नाम 'रैभ्य' है । उनकी स्त्री रुक्मरेखा नामसे प्रसिद्ध है । उस राजाको कोई संतान नहीं थी ॥३६॥३७॥ रानी रुक्मरेखा बड़ी सुंदरी, कार्यकुशल, पतिव्रता और संपूर्ण सुलक्षणोंसे संपन्न हैं । पुत्रके अभावमें दुःखी होकर उन्होंने राजा रैभ्यसे बार बार कहा–॥३८॥ 'हे स्वामिन् ! मेरे इस जीवनसे क्या प्रयोजन है ? इस व्यर्थ जीवनको धिक्कार है । क्योंकि सन्तानहीन वन्ध्या स्त्री जगत्में कभी सुख नहीं पा सकती' ॥३९॥ इस प्रकार पत्नीसे प्रेरणा पाकर राजा रैभ्य उत्तम पुत्रेष्टि यज्ञ करनेके लिए तत्पर हुए । उन्होंने यज्ञके विशेषज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाया और विधिपूर्वक सब यज्ञ-क्रियाएँ सम्पन्न कीं ॥ ४० ॥ पुत्रकी अभिलाषासे उन नरेशने शास्त्रोक्त रीतिसे प्रचुर धन दान दिया । यज्ञमें निरन्तर घीकी आहुतियाँ दी जाती थीं । अग्निदेव बड़ी तेजीसे प्रज्वलित हो रहे थे ॥४१॥ तदनन्तर यज्ञाग्निसे एक सुन्दरी कन्या निकल आयी । वह सभी शुभ लक्षणोंसे

वक्ष्यामि मम शोकस्य कारणम् ॥ विपत्तिरहितः प्राणी कथं रुदति भूपते ॥ ३५ ॥ प्रब्रवीमि महाबाहो यदर्थं रुदती त्वहम् ॥ तव राज्यादन्यदेशे
राजा परमधार्मिकः ॥ ३६ ॥ रैभ्यो नाम महाराजः संतानरहितो भृशम् ॥ तस्य भार्या सुविख्याता रुक्मरेखेति नामतः ॥ ३७ ॥ सुरूपा चतुरा
साध्वी सर्वलक्षणसंयुता ॥ अपुत्रा दुःखिता कांतमित्युवाच पुनः पुनः ॥३८॥ किं जीवितेन मे नाथ धिग्वृथा जीवितं मम ॥ वंध्यायाः सुखहीनाया
ह्यपुत्राया धरातले ॥ ३९ ॥ इत्येवं भार्यया भूपः प्रेरितो मखमुत्तमम् ॥ चकार ब्राह्मणांस्तज्ज्ञानाहूय विधिवत्तदा ॥ ४० ॥ पुत्रकामो धनं भूरि
ददावथ यथोदितम् ॥ हूयमाने घृतेऽत्यर्थं पावकादतिसुप्रभात् ॥ ४१ ॥ आविर्बभूव चार्वङ्गी कन्यका शुभलक्षणा ॥ बिंबोष्ठी सुदती सुभ्रूः पूर्णचन्द्र-
निभानना ॥ ४२ ॥ कनकाभा सुकेशांता रक्तपाणितला मृदुः ॥ सुरक्तनयना तन्वी रक्तपादतला भृशम् ॥ ४३ ॥ हुताशनात्समुद्भूता होत्रा सा
स्वीकृता तदा ॥ होता प्रोवाच राजानं गृहीत्वा तां सुमध्यमाम् ॥ ४४ ॥ राजन्पुत्रीं गृहाणेमां सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ एकावलीव संभूता हूयमानाद्धु-
ताशनात् ॥ ४५ ॥ नाम्ना चैकावली लोके ख्याता पुत्री भविष्यति ॥ सुखितो भव भूपाल पुत्र्या पुत्रसमानया ॥ ४६ ॥ संतोषं कुरु राजेन्द्र दत्ता
देवेन विष्णुना ॥ होतुर्वाक्यं नृपः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कन्यकां शुभाम् ॥ ४७ ॥ जग्राह परमप्रीतो होत्रा दत्तां सुसंमताम् ॥ गृहीत्वा नृपतिस्तां तु

पूर्णतया सम्पन्न थी । पके बिम्बफल जैसे उसके होंठ थे, सुन्दर दाँत और कटीली भौंहें थीं और पूर्णचन्द्र सदृश उसका मुख था ॥४२॥ सुवर्णसरीखा उसके शरीरका रंग था । सुन्दर केश थे । लाल-लाल और बड़े मुलायम उसके हाथ थे । लाल आँखें थीं और लाल ही पैरका तलवा था ॥ ४३ ॥ जब वह मनोहर कन्या अग्निसे प्रकट हो गयी, तब होताने उसे अपने पास बैठा लिया । तत्पश्चात् उन्होंने उस सुंदरी कन्याको लेकर राजा रैभ्यसे कहा–॥ ४४ ॥ "राजन् ! इस पुत्रीको लीजिए । यह सभी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न है । हवन करते समय अग्निसे इसकी उत्पत्ति हुई है । यह ऐसी जान पड़ती है कि मानो मणियोंकी एक लड़ी हो ॥ ४५ ॥ जगत्में यह कन्या 'एकावली' नामसे प्रसिद्ध होगी । हे भूपाल ! पुत्रके समान इस कन्याको पाकर तुम सुखी हो जाओगे ॥४६॥ हे राजेन्द्र ! भगवान् विष्णुने तुम्हें यह कन्या प्रदान की है । इसे पाकर सन्तुष्ट होना तुम्हारे लिए श्रेयस्कर होगा ।" होताकी बात सुनकर राजा रैभ्यने उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुन्दरो कन्याकी ओर देखा और उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर गोदमें ले लिया और उसे अपनी पत्नी रुक्मरेखाको सौंप दिया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ देते समय उन्होंने कहा—'सुभगे ! तुम इस कन्याको स्वीकार करो ।' मनको मुग्ध कर देनेवाली उस कन्याकी आँखें कमलके समान सुन्दर थीं ॥ ४९ ॥ उसे पाकर रानी रुक्मरेखाके मनको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ । वे ऐसी सुखी हुई कि मानो पुत्र ही उत्पन्न हो गया हो । जातकर्म आदि सभी शुभ एवं माङ्गलिक संस्कार विधिपूर्वक कराये गये ॥५०॥ यज्ञान्तमें राजाने ब्राह्मणोंको अच्छी-अच्छी वस्तुएँ दक्षिणामें प्रदान कीं । तदनन्तर ब्राह्मण वहाँसे विदा हो गये । राजा रैभ्यके हर्षकी सीमा नहीं रही । पुत्रके सयाने होनेसे जैसे प्रतिदिन माताको हर्ष होता है, रानी रुक्मरेखा भी वैसे ही आनन्दका अनुभव करने लगीं ॥५१॥५२॥ उस समय रानीके मनमें हर्षका पार नहीं था । राजाके महलमें ऐसा उत्सव मनाया गया, जैसा पुत्रके जन्मपर मनाया जाता है ॥५३॥ पुत्री और पुत्रमें किञ्चिन्मात्र भेद नहीं है—यह मानकर माता-पिता उस कन्याको अत्यन्त स्नेहकी दृष्टिसे देखने लगे । हे सुबुद्धे ! मैं उन्हीं राजा रैभ्यके मंत्रीकी कन्या हूँ ॥ ५४ ॥ मेरा नाम यशोवती है ।

ददौ पत्न्यै वराननाम् ॥ ४८ ॥ आभाष्य रुक्मरेखायै गृहाण सुभगे सुताम् ॥ सा तां कमलपत्राक्षीं प्राप्य कन्यां मनोरमाम् ॥ ४९ ॥ जहर्ष
मुदिता राज्ञी पुत्रं प्राप्य यथासुखम् ॥ चकार मंगलं कर्म जातकर्मादिकं शुभम् ॥ ५० ॥ पुत्रजन्मसमुत्थं यत्तत्सर्वं विधिवत्ततः ॥ समाप्य च मखं
राजा द्विजेभ्यो दक्षिणां शुभाम् ॥ ५१ ॥ दत्त्वा विसृज्य विप्रेंद्रान्मुदं प्राप महीपतिः ॥ दिने दिनेऽसितापांगी पुत्रवृद्धया भृशं बभौ ॥ ५२ ॥
मुदं न परमां प्राप नृपभार्या सुतान्विता ॥ उत्सवस्तद्दिने तस्य प्रवृत्तः सुतजन्मजः ॥ ५३ ॥ पुत्री पुत्रसमाऽत्यर्थं बभूव वल्लभा किल ॥ राज्ञो
मंत्रिसुता चाहं सुबुद्धे मन्मथाकृते ॥ ५४ ॥ यशोवती च मे नाम समानं वय आवयोः ॥ वयस्थाऽहं कृता राज्ञा क्रीडनाय तया सह ॥ ५५ ॥
सदा सहचरी जाता प्रेमयुक्ता दिवानिशम् ॥ एकावली गंधवंति यत्र पद्मानि पश्यति ॥ ५६ ॥ तत्र सा रमते बाला नान्यत्र सुखमाप्नुयात् ॥
सुदूरे जाह्नवीतीरे भवंति कमलान्यपि ॥ ५७ ॥ रममाणा तत्र याता मत्समेता सखीयुता ॥ मया निवेदितं राजन्पुत्री ते कमलाकरान् ॥ ५८ ॥
प्रेक्षमाणाऽतिदूरे सा प्रयाति निर्जने वने ॥ निषेधिताऽथ पित्राऽसौ गृहे कृत्वा जलाशयान् ॥ ५९ ॥ कमलान्वापयित्वाऽथ पुष्पितान्भ्रमरावृतान् ॥

एकावली और मैं दोनों समान अवस्थाकी हूँ । महाराज रैभ्यने राजकुमारीके साथ खेलनेके लिए मुझे नियुक्त कर रखा था ॥ ५५ ॥ एकावली सदा मेरे साथ रहती थी । हम दोनों रात-दिन प्रेमपूर्वक जहाँ-तहाँ घूमा करती थीं । एकावलीको जहाँ सुगन्धित कमल दिखायी पड़ते, वह प्रायः वहीं चली जाती थी ॥ ५६ ॥ अन्यत्र कहीं भी उसे सुख नहीं मिलता था । एक समयकी बात है—गङ्गाके तटपर बहुत दूर कमल खिले हुए थे ॥५७॥ राजकुमारी सखियोंसहित मेरे साथ घूमती हुई वहाँ चली गयी । तब मैंने महाराज रैभ्यसे कहा—'हे राजन् ! आपकी लाडली कन्या एकावली कमलोंको देखती हुई बहुत दूर निर्जन वनमें चली जाती है ।' इससे राजा रैभ्यने अपनी कन्याको दूर जानेसे मना कर दिया । साथ ही, उन्होंने घरपर ही बहुत-से जलाशय तैयार करवाकर उनमें कमल लगवा दिये । कमल खिल गये । उनपर चारों ओर भौंरे गूँजने लगे । इतनेपर भी कमलोंपर आसक्ति होनेके कारण राजकुमारी बाहर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चली जाती थी ॥५८–६०॥ उस समय राजा रैभ्यकी आज्ञासे बहुत-से रक्षक हाथोंमें शस्त्र लेकर उसके साथ जाया करते थे। मैं तथा दूसरी सखियाँ भी साथ रहती थीं। इस प्रकार वह सुन्दरी राजकन्या मनोरंजनके लिए गङ्गाके तटपर निरन्तर आती-जाती रहती थी ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

(राजकुमारी एकावलीका चरित्र) यशोवतीने कहा—एक समयकी बात है, सुन्दरी एकावली प्रातःकाल अपनी सखियोंके साथ महलसे निकल पड़ी। उसके ऊपर चँवर डुलाये जा रहे थे। रक्षकोंकी पूर्ण व्यवस्था थी ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र! उस सुन्दरी राजकुमारीके साथ चलनेवाले रक्षक पूरे सावधान थे। उनकी भुजाएँ आयुधोंसे सुशोभित थीं। मैं भी साथ थी। सुन्दर कमल देखकर मनोरंजनके लिए राजकुमारीका यहाँ गङ्गातटपर आना हुआ था ॥२॥ उसके साथ बहुत-सी अप्सरायें भी थीं। जब मैं और एकावली कमलसे खेलनेमें व्यस्त थी, उसी समय अकस्मात एक प्रचण्ड दानव यहाँ आ पहुँचा। उसका नाम कालकेतु था। बहुत-से राक्षस उसके साथ थे। उसके साथी राक्षसोंकी भुजाएँ परिघ, तलवार, गदा, धनुष-बाण और गँड़ासोंसे

तथापि निर्ययौ बाला कमलासक्तचेतना ॥६०॥ तदा राज्ञा रक्षपालाः प्रेरिताः शस्त्रपाणयः ॥ एवं रक्षायुता तन्वी मत्समेता सखीयुता ॥ क्रीडार्थं जाह्नवीतोये नित्यमायाति याति च ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ यशोवत्युवाच ॥ प्रातरुत्थाय तन्वंगी चलिता च सखीयुता ॥ चामरैर्वीज्यमाना सा रक्षिता बहुरक्षिभिः ॥ १ ॥ सायुधैश्चातिसन्नद्धैः सहिता वरवर्णिनी ॥ क्रीडार्थमत्र राजेन्द्र संप्राप्ता नलिनीं शुभाम् ॥ २ ॥ अहमप्यनया सार्धं गंगातीरे समागता ॥ अप्सरोभिः समेता च कमलैः क्रीडमानया ॥ ३ ॥ एकावली तथा चाहं जाते क्रीडापरे यदा ॥ सहसैव तदाऽऽयातो दानवो बलसंयुतः ॥ ४ ॥ कालकेतुरिति ख्यातो राक्षसैर्बहुभिर्युतः ॥ परिघासिगदाचापबाणतोमरपाणिभिः ॥५॥ दृष्टा चैकावली तेन रूपयौवनशालिनी ॥ द्वितीया कामपत्नीव क्रीडमाना सुपंकजैः ॥६॥ मयोक्तैकावली राजन्कोऽयं दैत्यः समागतः ॥ गच्छावो रक्षपालानां मध्ये पंकजलोचने ॥ ७ ॥ विमृश्यैवं सखी चाहं त्वरयैव गते भयात् ॥ मध्ये वै सैनिकानां तु सायुधानां नृपात्मज ॥ ८ ॥ कालकेतुस्तु तां दृष्ट्वा मोहिनीं मदनातुरः ॥ गदां गुर्वीं गृहीत्वा तु धावमानः समागतः ॥ ९ ॥ रक्षकान्दूरतः कृत्वा जग्राहांबुजलोचनाम् ॥ त्रस्तां वेपथुसंयुक्तां क्रंदमानां कृशोदरीम् ॥ १० ॥ त्यजैनां मां गृहाणेति मया चोक्तोऽपि दानवः ॥

सुसज्जित थीं ॥३–५॥ राजकुमारी एकावलीका रूप बड़ा मनोहर था। वह कामपत्नी जैसी सुन्दरी कमलोंसे खेल रही थी ॥ ६ ॥ तभी दुष्ट कालकेतुकी दृष्टि उसपर पड़ गयी। हे राजन्! उस समय मैंने एकावलीसे कहा—'हे कमललोचने! देखो, यह कोई दानव आ गया है। अतः हमलोग रक्षकोंके बाच भाग चलें' ॥७॥ हे राजन्! यों विचार करके सखी एकावली और मैं भयभीत होकर तुरन्त भागी और जहाँ अस्त्र-शस्त्र लिये सैनिक खड़े थे, उनके बीच चली गयी ॥८॥ तभी कालकेतुने हाथमें विशाल गदा उठायी और वह दौड़कर हमारे पास आ गया। उस दानवके प्रभावसे रक्षक दूर हट गये। फिर तो, कमलनयनी एकावली उसके हाथ लग गयी। उस समय राजकुमारीके हृदयपर अत्यन्त आतंक छा गया। उसका शरीर काँपने लगा और वह रोने लगी ॥९॥१०॥ मैंने उस दानव कालकेतुसे कहा—'तुम इस राजकुमारीको छोड़ दो। मैं साथ चलनेको तैयार हूँ—मुझे स्वीकार करो।' परन्तु मेरी बातें अनसुनी करके एकावलीको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकर वह दैत्य चल पड़ा ॥ ११ ॥ रक्षकोंने 'ठहरो-ठहरो' कहकर जब महाबली कालकेतुको रोका, तब भयंकर लड़ाई छिड़ गयी ॥ १२ ॥ उस दैत्यके साथ बहुतेरे भयंकर राक्षस हाथमें शस्त्र लिये प्रस्तुत थे। अपने स्वामीका कार्य सिद्ध करनेके लिए बड़ी तत्परताके साथ वे युद्धभूमिमें उतर आये ॥ १३ ॥ तब हमारे रक्षकोंके साथ कालकेतुका युद्ध होने लगा। किन्तु उस महाबली दैत्यने रणमें सभी रक्षकोंको मार डाला और राजकुमारी उसके अधिकारमें आ गयी। तदनन्तर दानवी सेनाके साथ वह राक्षस राजकुमारीको लेकर अपने नगरको जाने लगा। कालकेतुके अधिकारमें पड़ी हुई राजकुमारी रो रही थी। उसे देखकर मैं भी साथ लग गयी। कालकेतु उसे जहाँ ले जाता था, मैं भी वहाँ चली जाती थी। मेरा अभिप्राय था, जैसे भी हो, रोती हुई सखी मुझे देखकर धैर्य धारण कर सके ॥१४--१६॥ हुआ भी ऐसा ही। जब सखी एकावलीने मुझे अपने साथ देखा, तब उसके हृदयमें कुछ शांति आ गयी। अब मैं राजकुमारीके पास चली गयी। उससे बार-बार बातें करने लगी ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र! मेरी सखी एकावली दुःखसे अत्यन्त घबरा गयी थी। उसके शरीरसे पसीना टपक रहा था। मेरे

न मां जग्राह कामार्तस्तां गृहीत्वा विनिःसृतः ॥११॥ तिष्ठ तिष्ठेति भाषंतो रक्षकास्तं महाबलम् ॥ प्रतिषिध्य तु संग्रामं चक्रुर्विस्मयकारकम् ॥१२॥
तस्यापि राक्षसाः क्रूराः सर्वतः शस्त्रपाणयः ॥ युयुधू रक्षकैः सार्धं स्वामिकार्ये कृतोद्यमाः ॥ १३ ॥ संग्रामस्तु तदा जातः कालकेतोस्तथा रणे ॥
निहत्य रक्षकान्सर्वान्गृहीत्वैनां महाबलः ॥ १४ ॥ युक्तो राक्षससैन्येन निर्जगाम पुरं प्रति ॥ वीक्ष्य तां रुदतीं बालां गृहीतां दानवेन तु ॥ १५ ॥
पृष्ठतोऽहं गता तत्र यत्र नीता सखी मम ॥ विक्रोशंती यथा सा मां पश्येदिति पदानुगा ॥१६॥ साऽपि मामागतां वीक्ष्य किंचित्स्वस्थाऽभवत्तदा ॥
गताऽहं तत्समीपे तु तामाभाष्य पुनः पुनः ॥ १७ ॥ सा मां प्राप्यातिदुःखार्ता स्तंभस्वेदसमाकुला ॥ कंठे गृहीत्वा मां भूप रुरोद भृशदुःखिता
॥ १८ ॥ स मामाह कालकेतुः प्रीतिपूर्वमिदं वचः ॥ समाश्वासय भीतां त्वं सखीं चंचललोचनाम् ॥ १९ ॥ प्राप्तं ममाद्य नगरं देवलोकसमं प्रिये ॥
दासोऽस्मि तव रत्या हि कस्मात्क्रंदसि कातरा ॥ २० ॥ कथयैनां सखीं तेऽद्य स्वस्था भव सुलोचने ॥ इत्युक्त्वा मां सखीं पार्श्वे समारोप्य रथोत्तमे
॥ २१ ॥ जगाम तरसा दुष्टः पुरे स्वस्य मनोहरे ॥ सैन्येन महता युक्तः प्रफुल्लवदनांबुजः ॥ २२ ॥ एकावलीं तथा मां च संस्थाप्य धवले गृहे ॥
राक्षसान्गृहरक्षार्थं कल्पयामास कोटिशः ॥ २३ ॥ द्वितीये दिवसे सोऽथ मामुवाच रहो नृप ॥ प्रबोधय सखीं बालां शोचंतीं विरहातुराम् ॥ २४ ॥

जानेपर कण्ठसे चिपटकर बड़े दुःखके साथ वह विलाप करने लगी ॥१८॥ उधर कालकेतुने प्रीति प्रदर्शित करते हुए मुझसे कहा–'चञ्चल नेत्रवाली तुम्हारी सखी एकावली डर गयी है। तुम उसे आश्वासन देकर मेरा यह संदेश कहो–॥१९॥ 'प्रिये! मेरा नगर स्वर्गके समान सुखदायी है। अब तुम उसके समीप आ गयी हो। मैं तुम्हारा दास बन गया हूँ। फिर तुम इतनी करुणाके साथ क्यों विलाप कर रही हो? ॥२०॥ हे सुलोचने! स्वस्थ हो जाओ।' इस प्रकार कहकर दुरात्मा कालकेतु एकावलीके पास खड़ी मुझको भी उसी उत्तम रथपर बैठाकर बड़ी उतावलीके साथ अपनी मनोहर नगरीको चल पड़ा। बड़ी भारी सेना उसके साथ थी। उस दैत्यका मुख ऐसा प्रसन्न था, मानो खिला हुआ कमल हो ॥२१॥२२॥ वहाँ पहुचनेपर उस दानवने मुझे और एकावलीको एक भव्य भवनमें ठहराया। उस भवनकी रक्षाके लिए उसके द्वारा बहुसंख्यक राक्षस नियुक्त कर दिये गये ॥ २३ ॥ हे राजन्! दूसरे दिनकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बात है—कालकेतुने मुझसे कहा कि 'तुम्हारी सखी एकावली माता-पिताके विरहसे घबरा गयी है। यह निरन्तर चिंतामें डूबी रहती है। तुम इसे मेरी जबानी समझा दो—॥२४॥ 'हे सुंदर कमरवाली कांते! तुम मेरी पत्नी बनकर इच्छानुसार सुख भोगो। हे चंद्रवदने! अब इस राज्यपर तुम्हारा अधिकार रहेगा। मैं सदाके लिए तुम्हारा सेवक बन गया हूँ' वह दानव बार-बार यही वाक्य कह रहा था। उसे सुनकर मैंने खरा जवाब दे दिया। मैंने कहा—राजन्! ऐसी अप्रिय बात मेरे मुखसे नहीं निकल सकती। तुम स्वयं ही इससे कहो ॥२५॥२६॥ मेरे इस कथनके पश्चात् उस दुरात्माने मेरी प्यारी सखी एकावलीसे विनयपूर्वक कहा—॥ २७ ॥ हे कृशोदरी! तुमने मुझपर मन्त्रप्रयोग कर रखा है। हे कान्ते! उस मन्त्रसे अत्यन्त आहत मेरा हृदय अब तुम्हारे अधीन है। अतएव मैं तुम्हारे वशीभूत हो चुका हूँ—इसमें कोई संशय नहीं है। अब कामबाणसे पीड़ित मुझ भक्तसे प्रेम करो। हे रम्भोरु! तुम्हारा चंचल और दुर्लभ यौवन व्यर्थ बीता जा रहा है। तो मेरा आलिंगन करके और मुझे पति बनाकर तुम अपना जीवन सफल करो ॥ २८–३० ॥ एकावलीने कहा—राजकुमार, हैहय बड़े भाग्यशाली

पत्नी मे भव सुश्रोणि सुखं भुंक्ष्व यथेप्सितम् ॥ राज्यं त्वदीयं चंद्रास्ये सेवकोऽहं सदा तव ॥ २५ ॥ पुनरुक्तं मया वाक्यं श्रुत्वा तद्भाषितं खरम् ॥
नाहं क्षमाऽप्रियं वक्तुं त्वमेनां कथय प्रभो ॥ २६ ॥ इत्युक्ते वचने दुष्टो मदनक्षतमानसः ॥ उवाच विनयादेनां सखीं क्षामोदरीं प्रियाम् ॥ २७ ॥
कृशोदरि त्वया मंत्रो निक्षिप्तोऽस्ति ममोपरि ॥ तेन मे हृदयं कांते हृतं ते वशतां गतम् ॥ २८ ॥ तेनाहं तव दासोऽद्य कृतोऽस्मीति विनिश्चयः ॥
भज मां कामबाणेन पीडितं विवशं भृशम्॥ २९ ॥ यौवनं याति रंभोरु चंचलं दुर्लभं तथा ॥ सफलं कुरु कल्याणि पतिं मां परिरभ्य च ॥ ३० ॥
एकावल्युवाच ॥ पित्राऽहं कल्पिता पूर्वं दातुं राजसुताय वै ॥ हैहयस्तु महाभागः स मया मनसा वृतः ॥ ३१ ॥ कथमन्यं भजे कांतं त्यक्त्वा
धर्मं सनातनम् ॥ कन्याधर्मं विहायाद्य वेत्सि शास्त्रविनिश्चयम् ॥ ३२ ॥ यस्मै दद्यात्पिता कामं कन्या तं पतिमाप्नुयात् ॥ परतंत्रा सदा कन्या न
स्वातंत्र्यं कदाचन ॥ ३३ ॥ इत्युक्तोऽपि तया पापी विरराम न मोहितः ॥ न मुमोच विशालाक्षीं मां च पार्श्वस्थितां तथा ॥ ३४ ॥ पातालविवरे
तस्य पुरं परमसंकटे ॥ राक्षसै रक्षितं दुर्गं मंडितं परिखावृतम् ॥ ३५ ॥ तत्र तिष्ठति दुःखार्ता सखी मे प्राणवल्लभा ॥ तेनाहं विरहेणात्र रारटीमि

पुरुष हैं। उन्हींके साथ मेरा विवाह करनेके लिए पिताजीने निश्चय कर लिया है। मैं भी अपने मनमें उन्हें वरण कर चुकी हूँ ॥ ३१ ॥ फिर कन्याके लिए जिस सनातनधर्मका पालन करना अनिवार्य है, उसका परित्याग करके अब मैं कैसे दूसरेको पति बनाऊँ?। हमारा यह शास्त्रीय सिद्धान्त तुमसे भी छिपा नहीं है कि पिता कन्याको जिसे सौंपना चाहे, उसीको कन्या अपना पति बनाये। कन्या सदाके लिए परतन्त्र रहती है। अपनी इच्छासे वह कभी कुछ नहीं कर सकती ॥३२॥३३॥ हे राजन्! एकावलीके यह कहनेपर भी दुरात्मा कालकेतु अपने निश्चयसे नहीं डिगा। कारण, वह राजकुमारीपर आसक्त हो चुका था। अतः विशाल नेत्रोंवाली एकावली और उसके पास रहनेवाली मैं—दोनों उस पापीके हाथसे मुक्त नहीं हो सकीं ॥ ३४ ॥ कालकेतुका नगर पातालकी एक कंदरामें है। वहाँ अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं। वहीं कालकेतुका किला है। उसके चारों तरफ खाइयाँ खुदी हैं। अनेकों पहरेदार पहरा दे रहे हैं ॥ ३५ ॥ वहीं मेरी प्राणप्यारी सखी एकावली अत्यन्त कष्टके साथ समय व्यतीत कर रही है। उसीके विरहसे असीम दुःखमें पड़ी हुई मैं यहाँ इस प्रकार विलख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रही हूँ ॥३६॥ एकवीरने कहा—हे वरानने ! मुझे महान् आश्चर्य तो यह हो रहा है कि उस दुराचारी कालकेतुके नगरसे तुम यहाँ कैसे आ सकीं ? मैं इसका रहस्य तुमसे जानना चाहता हूँ । राजकुमारीका कथन है कि मेरे पिताने हैहयके साथ विवाह करनेकी बात निश्चित कर ली है । तुम्हारी यह उक्ति भी मुझे महान् सन्देहास्पद प्रतीत हो रही है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ मेरा ही नाम राजा हैहय है । इस नामका दूसरा कोई नरेश नहीं है । तुम्हारी सुन्दर आँखोंवाली सखी मेरे लिए ही तो ऐसा नहीं कह रही है ? ॥३९॥ हे सुभ्रु ! हे भामिनी ! तुम मेरे इस संदेहको दूर करो । तदनन्तर मैं उस अधम राक्षसको मारकर एकावलीको अवश्य ले आऊँगा ॥४०॥ हे सुव्रते ! यदि तुम कालकेतुका स्थान जानती होओ तो उसे मुझे दिखा दो । एकावलीके पिता राजा रैभ्यको तुमने यह समाचार सुनाया है या नहीं ? राजकुमारी बड़ा कष्ट सह रही है ॥ ४१ ॥ जिसकी ऐसी प्यारी कन्याका अपहरण हो जाय और वह जान न सके—यह कितने आश्चर्य तथा दुःखकी बात है । अथवा राजा रैभ्य यदि जानते हैं तो फिर उन्होंने राजकुमारीको छुड़ानेके लिए यत्न क्यों नहीं किया ? ॥ ४२ ॥ कन्या कारागारमें कष्ट भोग रही है—यह

सुदुःखिता ॥ ३६ ॥ एकवीर उवाच ॥ कथं त्वमत्र संप्राप्ता पुरात्तस्य दुरात्मनः ॥ विस्मयो मे महानत्र तत्त्वं ब्रूहि वरानने ॥ ३७ ॥ त्वया च कथितं वाक्यं सन्दिग्धं भाति भामिनि ॥ हैहयार्थे कल्पिता सा पित्रेति मम सांप्रतम् ॥ ३८ ॥ हैहयो नाम राजाऽहं नान्योऽस्ति पृथिवीपतिः ॥ मदर्थे कथिता सा किं सखी तव सुलोचना ॥ ३९ ॥ एतन्मे संशयं सुभ्रु छेत्तुमर्हसि भामिनि ॥ अहं तामानयिष्यामि तं हत्वा राक्षसाधमम् ॥ ४० ॥ स्थानं दर्शय मे तस्य यदि जानासि सुव्रते ॥ राज्ञे निवेदितं किं वा तत्पित्रे चातिदुःखिता ॥ ४१ ॥ यस्यैषा वल्लभा पुत्री न किं जानाति तां हृताम् ॥ नोद्यमः किं कृतस्तेन ततो मोचनहेतवे ॥ ४२ ॥ बन्दीकृतां सुतां ज्ञात्वा कथं तिष्ठति सुस्थिरः ॥ असमर्थो नृपः किं वा कारणं ब्रूहि सत्वरम् ॥ ४३ ॥ त्वया मेऽपहृतं चेतो गुणानुक्त्वा ह्यमानुषान् ॥ सख्याः पङ्कजपत्राक्षि कृतः कामवशो भृशम् ॥ ४४ ॥ कदा पश्यामि तां कांतां मोचयित्वाऽतिसङ्कटात् ॥ इति मे हृदयं चाद्य करोत्यतिमनोरथम् ॥४५॥ ब्रूहि मे गमनोपायं पुरे तस्यातिदुर्गमे ॥ कथं त्वमागता तस्मात्सङ्कटादत्र तद्वद ॥४६॥ यशोवत्युवाच ॥ बालभावान्मया मंत्रो भगवत्या विशांपते ॥ प्राप्तोऽस्ति ब्राह्मणात्सिद्धात्सबीजध्यानपूर्वकः ॥ ४७ ॥ तत्रावस्थितया राजन्मया चित्ते विचारितम् ॥ आराधयामि सततं चंडिकां चंडविक्रमाम् ॥ ४८ ॥ सा देवी सेविता कामं बन्धमोक्षं करिष्यति ॥ भक्तानुकम्पिनी

जानकर भी राजा कैसे चुप बैठे हैं ? वे शक्तिहीन तो नहीं हो गये हैं ? हे सुव्रते ! तुम शीघ्र इसका कारण बतानेकी कृपा करो ॥४३॥ तुम्हारी सखीके मानवोत्तर गुणोंका बखान सुनकर मेरा मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया है और मैं कामातुर हो उठा हूँ ॥४४॥ अब मेरे हृदयमें यह इच्छा जाग उठी है कि मैं उस सुन्दरीको भीषण संकटसे छुड़ाकर कब सुखी देखूँगा ॥४५॥ मैं तुमसे यह जानना चाहता हूँ कि कालकेतुकी अत्यन्त दुर्गम नगरीमें जानेका क्या उपाय है ? पर पहले यह तो बताओ कि तुम उस असीम कष्टको पार करके यहाँ कैसे आ गयीं ? ॥४६॥ यशोवती बोली—राजन् ! मैं बचपनसे ही भगवती जगदम्बाके बीजमंत्रका ध्यानपूर्वक जप करना जानती हूँ । एक सिद्ध ब्राह्मणकी कृपासे मुझे यह मंत्र प्राप्त हुआ था ॥४७॥ हे राजन् ! मैं जब कालकेतुके बन्दीगृहमें थी, तभी मैंने इस बीजमन्त्रका चिन्तन आरम्भ कर दिया था । यों तो प्रचण्ड पराक्रमवाली देवी चण्डिकाका आराधन मैं निरन्तर करती रहती हूँ ॥ ४८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपासना करनेपर वे भगवती बन्धनसे मुक्त कर देंगी—यह निश्चित है। भक्तोंपर कृपा करनेवाली वे शक्ति देवी सब कुछ देनेमें पूर्ण समर्थ हैं'॥ ४९॥ जो अपनी सामर्थ्यसे जगत्का सृजन और पालन करती हैं तथा कल्पके अन्तमें संहार भी जिनपर ही निर्भर है, वे भगवती निराकार और निराश्रय हैं—वे सर्वरूपमयी एवं सर्वव्यापक भी हैं॥ ५०॥ ऐसा मनमें सोचकर कि जो विश्वकी अधिष्ठात्री हैं, जिनका कल्याणमय सौम्य विग्रह है, जो लाल रंगके वस्त्र धारण किये रहती हैं तथा जिनकी आँखोंमें लालिमा झलकती रहती है, उन भगवती जगदम्बाका ध्यान करने लगी॥५१॥ मन-ही-मन भगवतीके उक्त रूपका स्मरण करके मैं बीजमन्त्रको जपने लगी और समाधि लगाकर देवीकी उपासना करती हुई एक महीनेतक बैठी रही॥ ५२॥ अतएव मेरी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर भगवती चण्डिकाने स्वप्नमें मुझे दर्शन दिया। उन्होंने अमृतमयी वाणीमें मुझसे कहा—'क्यों सोयी हो?॥ ५३॥ उठो और अभी गङ्गाजीके पावन तटपर चली जाओ। नरेशप्रधान हैहय वहीं आनेवाले हैं॥ ५४॥ उन महाबाहु नरेशका नाम एकवीर है। सम्पूर्ण शत्रुओंको कुचल देनेकी शक्ति रखनेवाले वे नरपति बड़े अच्छे विद्वान् भी हैं।

शक्तिः समर्था सर्वसाधने॥ ४९॥ या विश्वं सृजते शक्त्या पालयत्येव सा पुनः॥ कल्पान्ते संहरत्येव निराकारा निराश्रया॥ ५०॥ इति संचिंत्य मनसा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम्॥ ध्यात्वा रक्ताम्बरां सौम्यां सुरक्तनयनां हृदि॥ ५१॥ संस्मृत्य मनसा रूपं मन्त्रजाप्यपराऽभवम्॥ उपासिता मया देवी मासमेकं समाधिना॥ ५२॥ स्वप्ने मम समायाता भक्तिभावेन तोषिता॥ मामाहामृतया वाचा किं सुप्ताऽसीति चंडिका॥ ५३॥ उत्तिष्ठ याहि तरसा गंगातीरं मनोहरम्॥ आगमिष्यति तत्रासौ हैहयो नृपपुंगवः॥ ५४॥ एकवीरो महाबाहुः सर्वशत्रुविमर्दनः॥ दत्तात्रेयेण मन्मन्त्रो महाविद्याभिधः परः॥ ५५॥ दत्तोऽस्मै सोऽपि सततं मामुपास्तेऽतिभक्तितः॥ मय्यासक्तमतिर्नित्यं मम पूजापरायणः॥ ५६॥ मामेव सर्वभूतेषु ध्यायन्नास्ते च मत्परः॥ स ते दुःखविनाशं वै करिष्यति महामतिः॥ ५७॥ मासुतो विहरंस्तत्र तव त्राता भविष्यति॥ हत्वा तं राक्षसं घोरं मोचयिष्यति मानिनीम्॥ ५८॥ एकावलीमेकवीरः सर्वशास्त्रविशारदः॥ पश्चात्सैव पतिः कार्यस्त्वया राजसुतः शुभः॥ ५९॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी प्रबुद्धाऽहं तदैव हि॥ कथितं स्वप्नवृत्तान्तं देव्याश्चाराधनं तथा॥ ६०॥ प्रसन्नवदना जाता श्रुत्वा सा कमलेक्षणा॥ विशेषेण च सन्तुष्टा

मुनिवर दत्तात्रेयने मेरे बीजमंत्रका उन्हें भली भाँति अभ्यास करा दिया है॥५५॥ अतः अपार भक्तिके साथ राजा एकवीर मेरी उपासनामें संलग्न रहते हैं। उनके मनसे मैं कभी अलग नहीं होती। वे सदा मेरी पूजामें लगे रहते हैं॥५६॥ सम्पूर्ण प्राणियोंमें एकमात्र मुझे ही देखना उनकी निश्चित धारणा है। मेरी उपासनाके सिवा वे और कुछ जानते ही नहीं। उन्हीं महामति भूपालके द्वारा तुम्हारा संकट दूर होगा॥५७॥ भगवती लक्ष्मी उनकी माता हैं। वे घूमते हुए गङ्गाके तटपर आकर तुम्हारे रक्षक बन जायँगे। उन राजा एकवीरके हाथों कालकेतु मृत्युका ग्रास बन जायगा और माननीया एकावली बन्धनसे मुक्त हो जायगी॥५८॥ तत्पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्रके पारगामी उन्हीं सुन्दर राजकुमारके साथ तुम एकावलीके विवाहकी व्यवस्था करवा देना'॥ ५९॥ इस प्रकार स्वप्नमें मुझसे कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और मेरी नींद टूट गयी। तदनन्तर स्वप्नकी सारी घटना तथा देवीके आराधनकी बातें मैंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजकुमारी एकावलीको कह सुनायीं ॥६०॥ सो सुनकर उस कमलनयनीका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा। अत्यन्त सन्तुष्ट होकर पवित्र मुसकानवाली सखी एकावलीने मुझसे कहा— ॥ ६१ ॥ प्रिये! तुम शीघ्र वहाँ पहुँचकर मेरा कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर हो जाओ। भगवतीकी वाणी अमोघ है। उनकी कृपासे हम दोनों अवश्य बन्धनसे मुक्त हो जायँगी ॥ ६२ हे राजन्! सखी एकावलीके यों प्रेमपूर्वक आदेश देनेपर मैंने निश्चय कर लिया कि अब इस स्थानसे चल देना ही श्रेयस्कर है ॥ ६३ ॥ हे राजकुमार! फिर मैं उसी क्षण वहाँसे चल पड़ी। मुझे किसीने रोका-टोका नहीं। परम आराध्या भगवतीकी कृपासे मार्गकी जानकारी तथा शीघ्र चलनेकी शक्ति भी मुझे तुरन्त प्राप्त हो गयी थी ॥ ६४ ॥ ये ही सब मेरे दुःखके कारण हैं, जो मैं बता चुकी। हे वीर! जैसे मैंने अपना परिचय दिया, वैसे ही अब तुम भी बताओ कि कौन हो और तुम्हारे पिताका क्या नाम है? ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मामुवाच शुचिस्मिता ॥ ६१ ॥ गच्छ तत्र त्वरायुक्ता कुरु कार्यं मम प्रिये ॥ सत्यवाक्या भगवती साऽऽवां मोक्षं विधास्यति ॥ ६२ ॥ इत्याज्ञप्ता तया चाहं सख्या वै प्रेमयुक्तया ॥ मत्वोपसरणं युक्तं तस्मात्स्थानात्तदा नृप ॥ ६३ ॥ चलिताऽहं ततः शीघ्रं महादेवीप्रसादतः ॥ मार्गज्ञानं शीघ्रगतिर्मया प्राप्ता नृपात्मज ॥ ६४ ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं मम दुःखजम् ॥ कस्त्वं कस्य सुतश्चेति वद वीर यथा तथा ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रमापुत्रः प्रतापवान् ॥ प्रफुल्लवदनाम्भोजस्तामुवाच विशाम्पते ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ रम्भोरु यस्त्वया पृष्टो वृत्तान्तो विशदाक्षरः ॥ हैहयोऽहं चैकवीरनाम्ना सिन्धुसुतासुतः ॥ २ ॥ मनो मे यत्त्वया नूनं परतन्त्रं कृतं किल ॥ किं करोमि क्व गच्छामि विरहेणातिपीडितः ॥ ३ ॥ प्रथमं रूपमाख्यातं सर्वलोकातिगं त्वया ॥ तेन मे विह्वलं जातं कामबाणहतं मनः ॥ ४ ॥ ततस्तस्य गुणाः प्रोक्तास्तैस्तु चित्तं हृतं पुनः ॥ यत्त्वयोक्तं पुनर्वाक्यं तेन मे विस्मयोऽभवत् ॥ ५ ॥ एकावल्या वचः प्रोक्तं दानवाग्रे मया वृतः ॥ हैहयस्तं विना नान्यं वृणोमीति विनिश्चयः ॥ ६ ॥ तेन वाक्येन तन्वंगि भृत्योऽहमधुना कृतः ॥ त्वया तस्याः सुकेशांते ब्रूहि किं करवाणि वाम् ॥ ७ ॥ स्थानं

(कालकेतुका वध) व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! प्रतापी नरेश एकवीर भगवती लक्ष्मीके सुपुत्र थे। यशोवतीकी बात सुनकर उनका कमल-जैसा मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उससे कहने लगे ॥ १ ॥ राजा एकवीरने कहा—हे रम्भोरु! तुमने विशदरूपसे जो मेरा वृत्तान्त पूछा है, वह सुनो—मैं ही हैहय हूँ। मेरा नाम एकवीर है। लक्ष्मीजो मेरी माता हैं ॥ २ ॥ तुमने सर्वप्रथम अपनी सखी एकावलीके सम्पूर्ण जगत्‌के रूपको तिरस्कृत करनेवाले जिस रूपका वर्णन किया है, उससे मेरा मन विह्वल हो उठा है। उनके विरहमें व्यथित होनेके कारण मुझे यही नहीं सूझ रहा है कि मैं क्या करूँ और कहा जाऊँ? ॥३॥ तदनन्तर तुमने जो यह कहा कि 'कालकेतु दैत्यके सामने एकावलीने कहा कि मैं हैहयको वरण कर चुकी हूँ। उनके सिवा दूसरे किसीको मैं स्वीकार नहीं कर सकती—यह बिल्कुल निश्चित है।' हे तन्वङ्गी! राजकुमारीके इस कथनसे तो मैं अब उनका दास बन गया हूँ। हे सुकेशान्ते! बताओ, इस अवसर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर मुझे क्या करना चाहिए ? ॥४-७॥ हे सुलोचने ! दुरात्मा कालकेतुके स्थानसे मैं बिल्कुल अपरिचित हूँ । हे विशालाक्षी ! मैं तुमसे उपाय जानना चाहता हूँ ॥८॥ मुझे वहाँ पहुँचानेमें तुम पूर्ण समर्थ हो । अतः तुम्हारी सुन्दरी सखी एकावली जहाँ रहती है, वहाँ मैं शीघ्र जा सकूँ—ऐसी व्यवस्था करो ॥९॥ राजकुमारी एकावली तुम्हारी प्रिय सखी है । राक्षसके अधीन होकर उसे अत्यन्त दुःख सहने पड़ रहे हैं । तुम निश्चय समझो कि मैं क्रूर राक्षसको मारकर उसे छुड़ा लाऊँगा ॥१०॥ मेरे प्रयाससे राजकुमारीके सभी संकट टल जायँगे और वह तुम्हारे नगरमें लौट आयेगी । फिर मैं राजकुमारी एकावलीको उसके पिताके पास पहुँचा दूँगा ॥११॥ इसके बाद परम तपस्वी राजा रैभ्य अपनी पुत्रीका विधिवत् विवाह कर सकेंगे । हे प्रियवदे ! तुम्हारे सहयोगसे मेरी ये मनचाही बातें पूर्ण हो सकती हैं । अतः तुम शीघ्र कालकेतुकी नगरी दिखाकर मेरा पराक्रम देख लो ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे वरर्णिनी ! परायी स्त्रीको अपनानेवाले उस पापी राक्षसको जिस किसी प्रकार भी मारनेमें सफल हो सकूँ, वैसा ही यत्न करो । सबसे पहले तो तुम कालकेतुके दुर्गम नगरका मार्ग मुझे दिखा दो । व्यासजी कहते हैं—राजकुमार

तस्य न जानामि राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ गतिर्मे नास्ति गमने पुरे तस्मिन्सुलोचने ॥८॥ वद मां त्वं विशालाक्षि तत्र प्रापयितुं क्षमा ॥ प्रापयाशु सखी ते सा यत्र तिष्ठति सुन्दरी ॥ ९ ॥ हत्वा तं राक्षसं क्रूरं मोचयिष्यामि सांप्रतम् ॥ विवशां शोकसन्तप्तां राजपुत्रीं तव प्रियाम् ॥ १० ॥ विमुक्तदुःखां कृत्वाऽऽशु प्रापयिष्यामि ते पुरम् ॥ पित्रे चास्याः प्रदास्यामि कन्यामेकावलीमहम् ॥ ११ ॥ पश्चाद्विवाहं कर्ताऽसौ राजा पुत्र्याः परन्तपः ॥ एवं ते मनसः कामो मम चापि प्रियंवदे ॥ १२ ॥ भविष्यति स सम्पूर्णः साधनेन तवाधुना ॥ दर्शयाशु पुरं तस्य पश्य मे त्वं पराक्रमम् ॥ १३ ॥ यथा हन्मि दुराचारं परदारापहारकम् ॥ तथा कुरु प्रियङ्कर्तुं शक्ताऽसि वरवर्णिनि ॥ १४ ॥ मार्गं दर्शय तस्याद्य पुरस्य दुर्गमस्य च ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य प्रियं वाक्यं मुदिता च यशोवती ॥ १५ ॥ तमुवाच रमापुत्रं गमनोपायमादरात् ॥ मन्त्रं गृहाण राजेंद्र भगवत्यास्तु सिद्धिदम् ॥ १६ ॥ दर्शयिष्यामि तस्याद्य पुरं राक्षसपालितम् ॥ सज्जो भव महाभाग गमनाय मया सह ॥ १७ ॥ सैन्येन महता युक्तस्तत्र युद्धं भविष्यति ॥ कालकेतुर्महावीरो राक्षसैर्बलिभिर्वृतः ॥ १८ ॥ तस्मान्मन्त्रं गृहीत्वा त्वं व्रज तत्र मया सह ॥ दर्शयिष्यामि ते मार्गं पुरस्यास्य दुरात्मनः ॥ १९ ॥ हत्वा तं पापकर्माणं मोचयाशु च मे सखीम् ॥ श्रुत्वा तद्वचनं वीरो मन्त्रञ्जग्राह सत्वरः ॥ २० ॥ दत्तात्रेया-

एकवीरकी यह प्रिय वाणी सुनकर यशोवतीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा ॥ १४ ॥ १५ ॥ कालकेतुकी नगरीमें जानेके लिए अब यशोवती बड़े आदरके साथ एकवीरको उपाय बतलाने लगी । उसने कहा—हे राजेन्द्र ! भगवतीका बीजमन्त्र सिद्धि प्रदान करनेवाला है । तुम उसकी दीक्षा ले लो ॥ १६ ॥ तत्पश्चात् मैं अभी तुम्हें कालकेतुकी नगरी जिसमें बहुत-से राक्षस पहरा दे रहे हैं, दिखाऊँगी । हे महाभाग ! वहाँ मेरे साथ चलनेके लिए तुम्हें तैयार हो जाना चाहिए ॥ १७ ॥ साथमें विशाल सेना भी ले लीजिए । क्योंकि वहाँ युद्ध होनेकी निश्चित सम्भावना है । कालकेतु बड़ा पराक्रमी दैत्य है । बहुत-से बलवान् राक्षस उसके पास हैं ॥ १८ ॥ अतएव यह मन्त्र ले करके ही तुम मेरे साथ चलो । मैं पापी कालकेतुकी नगरीका मार्ग दिखाऊँगी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! अब उस दुराचारीका शीघ्र मारकर मेरी सखीको बन्धनसे मुक्त कराना तुम्हारा परम कर्तव्य है । 'यशोवतीका कथन सुनकर एकवीरने उसी क्षण मन्त्रकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीक्षा ले लो ॥ २० ॥ दत्तात्रेयजी ज्ञानियोंमें शिरोमणि माने जाते हैं। संयोगवश वहाँ उनका शुभागमन हो गया था। उन्होंने योगेश्वरीके महामन्त्रका उपदेश दिया था। भगवतीके इस मन्त्रको त्रिलोकीका तिलक कहते हैं ॥ २१ ॥ इस मन्त्रके प्रभावसे राजा एकवीरको सब कुछ जानने तथा सर्वत्र जानेकी योग्यता प्राप्त हो गयी। अतः कालकेतुके अत्यन्त दुर्गम नगरके लिये वे तुरंत प्रस्थित हो गये॥२२॥ वह नगर राक्षसों द्वारा इस प्रकार सुरक्षित था, जैसे सर्प पातालकी रक्षा कर रहे हों। यशोवती और विशाल सेनाके साथ एकवीर उसके नगरमें पहुँच गये ॥२३॥ उन्हें आते देखकर कालकेतुके दूत भयसे घबरा गये। अतः बड़ी उतावलीके साथ चिल्लाते हुए वे सब कालकेतुके पास पहुँचे ॥ २४ ॥ उस समय वह दैत्य एकावलीके पास बैठकर तरह-तरहसे प्रार्थना कर रहा था। दूतोंने समझ लिया, हमारा स्वामी कामसे मोहित हो गया है। अतः उससे वे कहने लगे ॥२५॥ दूत बोले—हे राजन्! इस कामिनीके साथ आनेवाली यशोवती नामकी एक स्त्री आ रही है। उसके साथ कोई एक राजकुमार भी है। हे महाराज! पता नहीं, वह इन्द्रपुत्र जयंत है अथवा शंकरकुमार कार्तिकेय। एक बड़ी भारी

दैवयोगात्प्राप्ताज्ज्ञानिवराच्छुभात् ॥ योगेश्वरीमहामंत्रं त्रिलोकीतिलकाभिधम् ॥२१॥ तेन सर्वज्ञता जाता सर्वान्तश्चारिता तथा ॥ तया सह जगामाशु पुरं तस्य सुदुर्गमम् ॥ २२ ॥ रक्षितं राक्षसैर्घोरै पातालमिव पन्नगैः ॥ यशोवत्या च सैन्येन महता संयुतो नृपः ॥ २३ ॥ तमायांतं समालोक्य दूतास्तस्य भयातुराः ॥ क्रोशंतोऽभिययुः पार्श्वं कालकेतोस्तरस्विनः ॥ २४ ॥ तमूचुः सहसा मत्वा राक्षसं काममोहितम् ॥ एकावलीसमीपस्थं कुर्वन्तं विनयान्बहून् ॥ २५ ॥ दूता ऊचुः ॥ राजन् यशोवती नारी कामिन्याः सहचारिणी ॥ आयाति सह सैन्येन राजपुत्रेण संयुता ॥ २६ ॥ जयन्तो वा महाराज कार्तिकेयोऽथवा नु किम् ॥ आगच्छति बलोन्मत्तो वाहिनीसहितः किल ॥ २७॥ संयतो भव राजेन्द्र संग्रामः समुपस्थितः ॥ देवपुत्रेण युध्यस्व त्यज वा कमलेक्षणाम् ॥ २८ ॥ इतो दूरेऽस्ति सैन्यं तद्योजनत्रयमात्रतः ॥ सज्जो भव महीपाल दुंदुभिं घोषयाशु वै ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसः क्रोधमूर्छितः ॥ राक्षसान्प्रेरयामास सायुधान्सबलान्बहून् ॥ ३० ॥ गच्छध्वं राक्षसाः सर्वे सम्मुखाः शस्त्रपाणयः ॥ तानाज्ञाप्य कालकेतुः पप्रच्छ प्रणयान्वितः ॥ ३१ ॥ एकावलीं समीपस्थां विवशां भृशदुःखिताम् ॥ कोऽयमायाति तन्वङ्गि पिता ते वाऽपरः पुमान् ॥ ३२ ॥ त्वदर्थे सैन्यसंयुक्तो ब्रूहि सत्यं कृशोदरि ॥ पिता ते यदि संप्राप्तो नेतुं त्वां विरहातुरः ॥ ३३ ॥ ज्ञात्वा ते पितरं सम्य-

सेना लेकर बलके अभिमानसे मत्त होकर वह आ रहा है ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र! अब आप सावधान हो जायँ। युद्धका अवसर सामने आ गया है। उस देवपुत्रके साथ युद्ध कीजिये अथवा इस कमलनयनीसे स्नेह छोड़िये ॥२८॥ हे राजन्! शत्रुसेना निकट आ गयी है। केवल तीन ही योजन दूर है। आप शीघ्र सजग हो जाइये। रणदुंदुभी बजानेकी आज्ञा दे दीजिये ॥२९॥ व्यासजी कहते हैं—दूतोंकी बात सुनकर कालकेतु क्रोधसे मूर्छित-सा हो गया। उसके पास बहुतसे राक्षस शस्त्रधारी सैनिकोंके साथ विद्यमान थे ॥ ३० ॥ उनसे उसने कहा—'राक्षसों! तुम सब लोग हाथमें अस्त्र-शस्त्र लेकर शत्रुके सामने जाओ।' यों राक्षसोंको जानेकी आज्ञा देकर कालकेतुने बड़ी नम्रताके साथ एकावलीसे पूछा ॥ ३१ ॥ उस समय वह राजकुमारी अत्यन्त दुःखिनी होकर विवशतापूर्वक उसके निकट ही बैठी हुई थी। कालकेतुने उससे कहा—'हे तन्वङ्गी! यह कौन आ रहा है? ये तुम्हारे पिता हैं अथवा कोई अन्य पुरुष? ॥३२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे कृशोदरी! तुम्हें लेनेके लिए सेनासहित आनेवाले इस व्यक्तिका सच्चा परिचय बतानेकी कृपा करो। सम्भव है कि तुम्हारे पिता विरहसे आतुर होकर तुम्हें लेनेके लिए आ रहे हों। मैं यदि जान जाऊँगा कि ये तुम्हारे पिताजी हैं तो मैं संग्राम नहीं करूँगा। बल्कि, उन्हें सादर घरपर ले जाऊँगा और बहुतेरे रत्न, वस्त्र एवं सुंदर घोड़े भेंट देकर उनका स्वागत करूँगा ॥३३॥३४॥ मेरे घर पधारनेपर सम्यक् प्रकारसे उनका आतिथ्य-सत्कार होगा। यदि अन्य व्यक्ति होगा तो तीखे तीरोंसे उसके प्राण हर लिये जायँगे ॥३५॥ यह निश्चित है कि कालकी प्रेरणासे मरनेके लिये ही वह यहाँ आ रहा है। अतएव हे विशालाक्षी! मैं साक्षात् काल हूँ, मुझमें अपार बल है और कोई मुझे जीत नहीं सकता। मेरे इस प्रभावको न जानकर भी किस मूर्खका आना हो गया? सो बताओ' एकावलीने कहा–हे महाभाग! इतनी शीघ्रतासे यह कौन आ रहा है, मैं नहीं जानती ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अभीतक किसीको मालूम नहीं कि मैं तुम्हारे यहाँ बन्धनमें पड़ी हूँ। न ये मेरे पिता हैं और न मेरे भाई ही। दूसरा ही कोई महान् पराक्रमी पुरुष हो सकता है ॥ ३८ ॥ किस उद्देश्यसे वह यहाँ आ रहा है-- यह भी निश्चितरूपसे मैं नहीं जानती।

त्संग्रामं न करोम्यहम् ॥ आनयित्वा गृहे पूजां रत्नैर्वस्त्रैर्हयैः शुभैः ॥ ३४ ॥ करोमि तस्य चातिथ्यं गृहे प्राप्तस्य सर्वथा ॥ अन्यश्चेद्यदि संप्राप्तस्तं हन्मि निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥ आनीतः किल कालेन मरणाय महात्मना ॥ तस्माद्वद विशालाक्षि कोऽयमायाति मंदधीः ॥ ३६ ॥ अज्ञात्वा मां दुराधर्षं कालरूपं महाबलम् ॥ एकावल्युवाच ॥ न जानेऽहं महाभाग कोऽयमायाति सत्वरः ॥ ३७ ॥ न मेऽस्ति विदितः कोऽपि स्थितायास्तव बंधने ॥ नायं पिता मे न भ्राता कोऽप्यन्योऽस्ति महाबलः ॥ ३८ ॥ किमर्थमिह चायाति नाहं वेद विनिश्चयम् ॥ दैत्य उवाच ॥ एवं वदन्त्यमी दूता वयस्या ते यशोवती ॥ ३९ ॥ समानीय च तं वीरमागतेति कृतोद्यमा ॥ क्व गता सा सखी कान्ते विदग्धा कार्यनिश्चये ॥ ४० ॥ नान्यः कोऽपि ममारातिर्यो मे प्रतिबलो भवेत् ॥ व्यास उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे दूतास्तत्रान्ये वै समागताः ॥ ४१ ॥ ते होचुस्त्वरिता भीताः कालकेतुं गृहे स्थितम् ॥ किं स्वस्थोऽसि महाराज समीपे सैन्यमागतम् ॥ ४२ ॥ निर्गच्छ नगरात्तूर्णं सैन्येन महता वृतः ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा कालकेतुर्महाबलः ॥ ४३ ॥ रथमारुह्य त्वरितो निर्ययौ स्वपुराद्बहिः ॥ एकवीरोऽपि सहसा हयारूढः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥ आगतस्तत्र कामिन्या विरहेण समाकुलः ॥ युद्धं तयोरभूत्तत्र वृत्रवासवयोरिव ॥ ४५ ॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तम् ॥ वर्तमाने तदा युद्धे कातराणां भयावहे ॥ ४६ ॥

कालकेतु दैत्यने कहा–ये दूत कह रहे हैं कि तुम्हारी सखी यशोवतीका ही यह सारा प्रयत्न है। वही इस वीरको साथ लेकर आ रही है। हे कांते! तुम्हारी वह सखी कार्य करनेमें बड़ी कुशल जान पड़ती है। वह कहाँ गयी? ॥ ३९ ॥ ४० ॥ दूसरे किसीसे तो मेरी शत्रुता है नहीं, जो मेरे विरोधमें खड़ा हो सके। व्यासजी कहते हैं–इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि दूसरे दूत वहाँ आ पहुँचे ॥ ४१ ॥ कालकेतु घरपर बैठा था। अत्यन्त भयके साथ उन दूतोंने उससे कहा–'हे महाराज! आप कैसे निश्चिन्त बैठे हुए हैं? अब शत्रुसेना बिल्कुल संनिकट आ पहुँची है ॥४२॥ आप एक बहुत विशाल सेनाके साथ शीघ्र नगरसे बाहर पधारिए।' दूतोंकी बात सुननेके पश्चात् महाबली कालकेतु तुरन्त रथपर सवार होकर अपने नगरसे निकल पड़ा। इतनेमें प्रतापी एकवीर घोड़ेपर चढ़े हुए सामने आ पहुँचे ॥४३॥४४॥ अब दोनोंमें इस प्रकार युद्ध छिड़ गया, मानो इन्द्र और वृत्रासुर लड़ रहे हों ॥ ४५ ॥ युद्ध आरम्भ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होनेपर भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। उन शस्त्रास्त्रोंसे दिशायें चमकने लगीं। उस समय कातरोंके हृदयमें महान् आतङ्क छा गया ॥४६॥ तदनन्तर एकवीरने गदासे मारकर कालकेतुके प्राण हर लिये। वह दानव इस प्रकार पृथ्वीपर गिरा, मानो वज्रका मारा हुआ पर्वत गिरा हो ॥४७॥ कालकेतुकी मृत्यु होते ही शेष सभी राक्षस भागकर जहाँ-तहाँ छिप गये। भयसे उनका कलेजा काँप रहा था। तब यशोवती शीघ्र ही एकावलीके पास जा पहुँची ॥४८॥ उसके मनमें असीम आनन्द भरा हुआ था। उसने मधुर वाणीमें एकावलीसे यह आश्चर्ययुक्त वचन कहा–'हे सखी! इधर आओ। देखो, यह दानव महाभाग एकवीरके प्रयाससे सदाके लिए सो गया ॥ ४९ ॥ वे बड़े बुद्धिमान् पुरुष हैं। उन्होंने बड़ी कठिन लड़ाई लड़ी है। इस समय वे राजा एकवीर अत्यन्त थक जानेके कारण अपने शिविरमें विराज रहे हैं ॥५०॥ उनके मनमें तुम्हें देखनेकी उत्सुकता जागी हुई है। कारण, तुम्हारे रूप और गुणोंकी बात वे सुन चुके हैं। हे राजकुमारी! उन कामदेव सरीखे सुन्दर राजकुमारको देखनेकी कृपा करो ॥५१॥ उन राजकुमारसे तुम्हारे विषयमें गंगाके तटपर मैं बात कर चुकी हूँ। बातचीतके प्रभावसे ही वे तुमपर पूर्ण अनुरक्त

गदया ताडयामास दैत्यं सिंधुसुतासुतः ॥ स गतासुः पपातोर्व्यां वज्राहत इवाचलः ॥ ४७ ॥ पलायित्वा गताः सर्वे राक्षसा भयपीडिताः ॥ यशोवती ततो गत्वा वेगादेकावलीं तदा ॥ ४८ ॥ उवाच मधुरां वाणीं विस्मितां मुदिता भृशम् ॥ एह्यालि नृपपुत्रेण दानवोऽसौ निपातितः ॥ ४९ ॥ एकवीरेण धीरेण युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ॥ स्कन्धावारेऽप्यसौ राजा तिष्ठत्यद्य श्रमातुरः ॥ ५० ॥ दर्शनं कांक्षमाणस्ते श्रुतरूपगुणस्तव ॥ पश्य तं कुटिलापांगि मनोभवसमं नृपम् ॥ ५१ ॥ कथिता त्वं मया पूर्वं तस्याग्रे जाह्नवीतटे ॥ पूर्णानुरागः संजातस्तेनासौ विरहातुरः ॥ ५२ ॥ वांछति त्वां चारुरूपां द्रष्टुं नृपतिनन्दनः ॥ सा तस्य वचनं श्रुत्वा गमनाय मनो दधे ॥ ५३ ॥ लज्जमाना भृशं भीत्या कौमारं प्राप्तया तया ॥ कथं तस्य मुखं द्रक्ष्ये कुमारी ह्यवशा भृशम् ॥ ५४ ॥ स मां गृह्णाति कामार्त इति चिंताकुला सती ॥ यशोवत्या युता तत्र नरयानस्थिता ययौ ॥ ५५ ॥ स्कंधावारेऽतिमलिना मलिनांबरधारिणी ॥ तामागतां विशालाक्षीं दृष्ट्वा राजसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥ दर्शनं देहि तन्वंगि तृषिते नयने मम ॥ कामातुरं च तं वीक्ष्य तां च लज्जाभरावृताम् ॥ ५७ ॥ नीतिज्ञा शिष्टमार्गज्ञा तमुवाच यशोवती ॥ राजपुत्र पिताऽप्यस्यास्त्वामेनां दातु-

हो गये हैं और तुमको देखनेके लिए अत्यन्त उत्सुक हैं'। यशोवतीकी बात सुनकर राजकुमारी एकावलीके मनमें जानेकी बात तो जँच गयी, परन्तु अभी वह कुमारी थी। अतएव भयसे घबरा उठी। उसके मनमें यह संकोच था कि मैं कुमारी कन्या राजकुमारका मुख कैसे देखूँगी?।५२–५४॥ यों वह साध्वी चिन्तामें व्यस्त हो यशोवतीको साथ लेकर पालकीपर बैठी और चल पड़ी। किन्तु उसे यही चिन्ता सता रही थी कि कहीं कामातुर होकर वह राजा मुझे पकड़ न ले ॥५५॥ वह द्वारपर पहुँच गयी। उसका मुख उदास था। वह मैली साड़ी पहने थी। विशाल नेत्रोंवाली राजकुमारी आ गयी, यह देखकर राजकुमार एकवीरने उससे कहा–हे तन्वङ्गी! दर्शन दो, तुम्हें देखनेके लिए मेरे नेत्र प्यासे हैं।' एकवीर अत्यन्त आतुर थे और एकावली लज्जासे गड़ी जा रही थी ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ यह देखकर नीतिकी पूर्ण जानकर तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करनेवाली यशोवतीने एकवीरसे कहा–हे राजकुमार! इसके पिता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी इसे तुम्हींको देना चाहते हैं ॥५८॥ यह राजकुमारी तुम्हारे अधीन होगी और इसके साथ तुम्हारा मिलन होगा—यह निश्चित है ! किन्तु हे राजेन्द्र ! कुछ समय प्रतीक्षा करके तुम पहले इसे इसके पिताके पास पहुँचानेकी व्यवस्था करो ॥५९॥ इसके पिता ही वैवाहिक विधि सम्पन्न करके तुम्हारे साथ इसका विवाह कर देंगे।' यशोवतीकी बात धर्मात्मा एकवीरने सत्य मान ली। अतः यशोवती और एकावलीको साथ लेकर सेना सहित वे राजा रैभ्यके स्थानपर गये। पुत्रीके आनेका समाचार सुनकर रैभ्य प्रेमपूर्वक मन्त्रियोंके साथ उसकी अगवानीके लिए आगे आये। बहुत दिनोंके पश्चात् मलिन वस्त्रधारिणी वह पुत्री उन्हें दृष्टिगोचर हुई ॥६०-६२॥ फिर यशोवतीने विस्तारपूर्वक सभी बातें महाराजको बतलायीं। तदनन्तर एकवीर और राजा रैभ्यका परस्पर मिलन हुआ और राजा उन्हें लेकर अपने घर गये ॥६३॥ शुभ मुहूर्तमें विवाहका आयोजन किया गया और विधिपूर्वक पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न हुआ। दहेज देकर राजाने भलीभाँति एकवीरका सम्मान किया। तत्पश्चात् कन्याको विदा कर दिया। साथमें यशोवतीको भी भेजा। इस प्रकार विवाह हो जानेपर लक्ष्मीतनय महाराज

मिच्छति ॥ ५८ ॥ एषाऽपि त्वद्वशा नूनं भविता संगमस्तव ॥ कालं प्रतीक्ष्य राजेन्द्र नयैनां पितुरन्तिकम् ॥ ५९ ॥ स विवाहविधिं कृत्वा दास्य-
तीति विनिश्चयः ॥ स तस्या वचनं तथ्यं मत्वा सैन्यसमन्वितः ॥ ६० ॥ समेतः कामिनीभ्यां तु ययौ तत्पितुराश्रमम् ॥ राजपुत्रीं तथाऽऽयातां
श्रुत्वा प्रेमसमन्वितः ॥ ६१ ॥ प्रययौ सम्मुखस्तूर्णं सचिवैः परिवेष्टितः ॥ बहुभिर्दिवसैर्दृष्टा पुत्री सा मलिनाम्बरा ॥ ६२ ॥ यशोवत्या तु वृत्तान्तः
कथितो विस्तरात्पुनः ॥ एकवीरं मिलित्वाऽसौ गृहमानीय चादरात् ॥ ६३ ॥ पुण्येऽह्नि कारयामास विवाहं विधिपूर्वकम् ॥ पारिबर्हं ततो दत्त्वा
संपूज्य विधिवत्तदा ॥ ६४ ॥ पुत्रीं विसर्जयामास यशोवत्या समन्विताम् ॥ एवं विवाहे संवृत्ते रमापुत्रो मुदान्वितः ॥ ६५ ॥ गृहं प्राप्य बहून्भोगा-
न्बुभुजे प्रियया समम् ॥ बभूव तस्याः पुत्रस्तु कृतवीर्याभिधः किल ॥ तत्सुतः कार्तवीर्यस्तु वंशोऽयं कथितो मया ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते
महापुराणे षष्ठस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वन्मुखांभोजाच्च्युतं दिव्यकथारसम् ॥ न तृप्तिमधिगच्छामि पिबंस्तु सुधया समम् ॥ १ ॥ विचित्रमिदमाख्यानं
कथितं भवता मम ॥ हैहयानां समुत्पत्तिर्विस्तराद्विस्मयप्रदा ॥२॥ परं कौतूहलं मेऽत्र यद्विष्णुः कमलापतिः ॥ देवदेवो जगन्नाथः सृष्टिस्थित्यंतकारकः

एकवीरके हर्षकी सीमा नहीं रही ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ अब वे अपने भवन पहुँचे और प्रेयसी भार्या एकावलीके साथ रहकर भाँति-भाँतिके भोग भोगने लगे। उन्होंने एकावलीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न किया, जो 'कृतवीर्य' नामसे विख्यात हुआ। उन्हीं कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य हुए। इस प्रकार मैं इस वंशावलीका वर्णन कर चुका ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

(व्यासजीकी आत्मकथा) राजा जनमेजयने कहा—भगवन् ! आपके मुखकमलसे निकला हुआ दिव्य कथारूपी रस अमृतके समान मधुर है। इसका निरंतर पान करते रहनेपर भी मैं तृप्त नहीं हो पाता ॥ १ ॥ आपने हैहयवंशी राजाओंकी उत्पत्तिका जो प्रसंग मुझसे विस्तारपूर्वक कहा है, वह बड़ा ही विचित्र एवं आश्चर्यजनक है ॥ २ ॥ इस विषयमें मुझे सबसे बढ़कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आश्चर्ययुक्त शंका तो यह हो रही है कि लक्ष्मीकान्त देवदेव जगन्नाथ एवं जगत्की सृष्टि तथा संहार करनेमें समर्थ भगवान विष्णु अश्व क्यों बने? वे सर्वतंत्रस्वतंत्र भगवान पुरुषोत्तम परतन्त्र कैसे बन गये? ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आप सर्वज्ञ हैं। अतएव मेरे इस संशयको निवृत्त कर दीजिए। इस वृत्तान्तको भलीभाँति समझाकर कहिए ॥ ५ ॥ व्यासजी कहते हैं— हे राजन्! सुनो, इस शंकाका निर्णीत उत्तर पूर्व समयमें मैंने मुनिवर नारदजीके मुखसे जैसा सुना है, ठीक वैसा हो बता रहा हूँ ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीके मानस पुत्रका नाम नारद है। वे परम तपस्वी, सर्वज्ञानी, शान्तस्वरूप, सर्वत्र जानेकी योग्यता रखनेवाले, सम्पूर्ण जगत्के प्रेमी एवं प्रकाण्ड विद्वान् हैं ॥७॥ एक समयकी बात है, मुनिवर नारदजी ताल और स्वरके साथ वीणा बजाते हुए इस भूमण्डलपर विचर रहे थे ॥८॥ साथ ही उनके द्वारा बृहद्रथन्तर और साम आदि अनेक प्रकारके भेदसे अमृतमयी गायत्रीका गान चल रहा था। यों गाते-बजाते वे मेरे आश्रमपर पहुँचे ॥ ९ ॥ उस समय मैं शम्याप्रास नामक महान् तीर्थमें था। वह परम पावन स्थान सरस्वती नदीके तटपर है। कल्याण और ज्ञान प्रदान करनेवाले उस तीर्थमें बहुतसे

॥ ३ ॥ सोऽप्यश्वभावमापन्नो भगवान्हरिरच्युतः ॥ परतंत्रः कथं जातः स्वतंत्रः पुरुषोत्तमः ॥४॥ एतन्मे संशयं ब्रह्मञ्छेत्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥ सर्वज्ञस्त्वं मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि वृत्तान्तमद्भुतम् ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि संदेहस्यास्य निर्णयम् ॥ यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदान्मुनिसत्तमात् ॥६॥ ब्रह्मणो मानसः पुत्रो नारदो नाम तापसः ॥ सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सर्वलोकप्रियः कविः ॥७॥ स चैकदा मुनिश्रेष्ठो विचरन्पृथिवीमिमाम् ॥ वादयन्महतीं वीणां स्वरतानसमन्विताम् ॥ ८ ॥ बृहद्रथंतरादीनां साम्नां भेदाननेकशः ॥ गायन्गायत्रममृतं संप्राप्तोऽथ ममाश्रमम् ॥ ९ ॥ शम्याप्रासं महातीर्थं सरस्वत्याः सुपावनम् ॥ निवासं मुनिमुख्यानां शर्मदं ज्ञानदं तथा ॥ १० ॥ तमागतमहं प्रेक्ष्य ब्रह्मपुत्रं महाद्युतिम् ॥ अभ्युत्थानादिकं सर्वं कृतवानर्चनादिकम् ॥ ११ ॥ अर्घ्यपाद्यविधिं कृत्वा तस्यासनस्थितस्य च ॥ उपविष्टः समीपेऽहं मुनेरमिततेजसः ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा विश्रमिणं शान्तं नारदं ज्ञानपारदम् ॥ तमपृच्छमहं राजन्यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ॥ १३ ॥ असारेऽस्मिंस्तु संसारे प्राणिनां किं सुखं मुने ॥ न पश्यामि विनिश्चित्य कदाचित्कुत्रचित्क्वचित् ॥१४॥ द्वीपे जातो जनन्याऽहं संत्यक्तस्तत्क्षणादपि ॥ अनाश्रयो वने वृद्धिं प्राप्तः कर्मानुसारतः ॥ १५ ॥ तपस्तप्तं मया चोग्रं पर्वते बहुवार्षिकम् ॥ पुत्रकामेन देवर्षे शंकरः समुपासितः ॥१६॥ ततो मया शुकः प्राप्तः पुत्रो ज्ञानवतां वरः ॥ पाठितस्तु मया

सुप्रसिद्ध मुनि निवास करते हैं ॥ १० ॥ ब्रह्माजीके मानस पुत्र महान् तेजस्वी मुनिवर नारदजीका आगमन देखा तो मैं उठकर खड़ा हो गया और सम्यक् प्रकारसे मैंने उनकी पूजा की ॥११॥ जब पाद्य-अर्घ्य आदि स्वीकार करके नारदजी शान्तभावसे आसनपर विराज गये, तब मैं भी उनके पास बैठ गया ॥१२॥ हे राजन्! जब मैंने देखा कि ज्ञानकी चरम सीमातक पहुँचानेमें कुशल मुनि नारदका मार्गश्रम दूर हो गया है और उनका चित्त शान्त है, तब अभी जो प्रश्न तुमने मुझसे किया है वही मैंने उनसे किया। मैंने कहा—'हे मुने! इस मिथ्या जगत्में प्राणियोंको क्या सुख मिलता है? सम्यक् प्रकारसे विचार करनेपर कहीं किंचिन्मात्र सुख मुझे नहीं दिखायी पड़ता ॥ १३ ॥ १४ ॥ देखिए न, मेरा ही जन्म एक द्वीपमें हुआ। जन्म लेते ही मुझे मेरी माताने त्याग दिया। तब असहाय होकर एक जङ्गलमें मैं अपने कर्मके अनुसार धीरे-धीरे बढ़ने लगा ॥ १५ ॥ तदनन्तर पुत्रप्राप्तिके निमित्त एक पहाड़पर कई वर्षोंतक तप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करके देवाधिदेव शङ्करजीकी उपासना की ॥१६॥ तब ज्ञानी शुकदेव मुझे पुत्ररूपमें मिले। उन्हें मैंने चारों वेदोंका सारांश भलीभाँति पढ़ाया। जिससे वे ज्ञानियोंमें अग्रणी हुए ॥ १७ ॥ हे देवर्षि नारद ! आपके ही उपदेशसे मेरा शुक ज्ञानी हुआ और पुत्र-विरहसे कातर मुझे रोता छोड़ वह अन्य लोकके मार्गका पथिक बनकर न जाने कहाँ चला गया ॥१८॥ तब पुत्रशोकसे अर्ध र होकर मैं पर्वतराज सुमेरुसे उतर आया। अब मुझे पुत्रप्रेमके कारण सदा दुःखित रहनेवाली अपनी माताकी सुधि हुई। अतएव मैं तुरन्त 'कुरुजाङ्गल' प्रदेशमें जा पहुँचा ॥ १९ ॥ यह जानते हुए भी कि संसार मिथ्या है, फिर भी मायाके फंदेमें फँसकर मैं सदा शोकसन्तप्त रहने लगा। इसीसे मैं बहुत दुर्बल हो गया ॥ २० ॥ जब मुझे यह पता चला कि वसुराजकी राजकुमारी अर्थात् मेरी कल्याणमयी माताको राजा शन्तनुने अपनी रानी बना लिया है, तब सरस्वती नदीके पवित्र तटपर मैं आश्रम बनाकर रहने लगा ॥ २१ ॥ तदनन्तर जब महाराज शन्तनु स्वर्गवासी हो गये, तब मेरी माता विधवा हो गयी और राजकुमार भीष्म दो राजकुमारों और मेरी पतिव्रता माताका पालन करने लगे ॥ २२ ॥ बादमें बुद्धिमान् गंगातनय भीष्मने

सम्यग्वेदानां सार आदितः ॥ १७ ॥ स त्यक्त्वा मां गतः क्वापि रुदन्तं विरहातुरम् ॥ लोकाल्लोकांतरं साधो वचनात्तव बोधितः ॥ १८ ॥ ततोऽहं पुत्रसंतप्तस्त्यक्त्वा मेरुं महागिरिम् ॥ मातरं मनसा कृत्वा संप्राप्तः कुरुजांगलम् ॥ १९ ॥ पुत्रस्नेहादतितरां कृशांगः शोकसंयुतः ॥ जानन्मिथ्येति संसारं मायापाशनियंत्रितः ॥ २० ॥ ततो राज्ञा वृतां ज्ञात्वा मातरं वासवीं शुभाम् ॥ स्थितोऽत्रैवाश्रमं कृत्वा सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥ २१ ॥ शंतनुः स्वर्गतिं प्राप्तो विधुरा जननी स्थिता ॥ पुत्रद्वययुता साध्वी भीष्मेण प्रतिपालिता ॥ २२ ॥ चित्रांगदः कृतो राजा गंगापुत्रेण धीमता ॥ कालेन सोऽपि मे भ्राता मृतः कामसमद्युतिः ॥२३॥ ततः सत्यवती माता निमग्ना शोकसागरे ॥ चित्रांगदं मृतं पुत्रं रुरोद भृशमातुरा ॥ २४ ॥ संप्राप्तोऽहं महाभाग ज्ञात्वा तां दुःखितां सतीम् ॥ आश्वासिता मयाऽत्यर्थं भीष्मेण च महात्मना ॥२५॥ विचित्रवीर्यस्त्वपरो वीर्यवान्पृथिवीपतिः ॥ कृतो भीष्मेण भ्राता वै स्त्रीराज्यविमुखेन ह ॥ २६ ॥ काशिराजसुते रम्ये विजित्य पृथिवीपतीन् ॥ भीष्मेणानीय स्वबलात्कन्यके द्वे समर्पिते ॥ २७ ॥ सत्यवत्यै शुभे काले विवाहः परिकल्पितः ॥ भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य तदाऽहं सुखितोऽभवम् ॥ २८ ॥ पुनः सोऽपि मृतो भ्राता

चित्राङ्गदको राजा बनाया। लेकिन कुछ ही समय बाद कामदेव सरीखे कांतिमान् मेरे भाई चित्रांगद भी मर गये ॥ २३ ॥ अपने पुत्र चित्रांगदको मृत देखकर मेरी माता बहुत विकल होकर रोने लगी। तभीसे वह नित्य शोकके सागरमें निमग्न रहने लगी ॥२४॥ हे महाभाग ! जब मुझे यह पता चला कि वह सती बड़े दुःखमें है, तब मैं राजमहलमें गया। वहाँ मैंने तथा महात्मा भीष्मने उन्हें आश्वस्त किया ॥२५॥ महात्मा भीष्म न अपना विवाह करना चाहते थे, न राज्याधिकारी होनेकी ही उनकी इच्छा थी। अतएव उन्होंने अपने छोटे भाई परम पराक्रमी विचित्रवीर्यको राजा बना दिया ॥२६॥ तदुपरांत अपने बाहुबलसे बहुतेरे राजाओंको परास्त करके भीष्मने काशिराजकी दो पुत्रियोंको लाकर राजमाता सत्यवतीके चरणोंको समर्पित किया। शुभ दिन एवं शुभ मुहूर्तमें अपने भाई विचित्रवीर्यका विवाह हो जानेपर मैं बहुत प्रसन्न हुआ ॥२७॥२८॥ कुछ ही दिनों बाद मेरे धनुर्धारी भाई विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा रोगसे ग्रस्त होकर मरी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जवानीमें निःसन्तान मर गये। इससे मेरी माता विशेष दुःखित हुई ॥ २९ ॥ अपने पतिको मृत देखकर काशिराजकी उन दोनों राजकुमारियोंने उसके साथ सती हो जानेका निश्चय किया ॥३०॥ उन दोनोंने अपनी अत्यन्त दुःखिता तथा विलखता हुई पतिव्रता साससे कहा कि हम दोनों पतिके शवके साथ चितामें जलकर सती हो जायँगी ॥३१॥ हे आर्ये! आपके पुत्रके साथ स्वर्गलोकमें जाकर हम दोनों पतिके सङ्ग नन्दनकाननमें विहार करेंगी ॥ ३२ ॥ तब अत्यन्त प्रेमभाव दिखलाती हुई मेरी माताने भीष्मकी सलाहसे उन दोनों बहुओंको यह महान् कार्य करनेसे रोक दिया ॥ ३३ ॥ जब दिवंगत राजा विचित्रवीर्यकी सारी और्ध्वदैहिक क्रिया संपन्न हो गयी, तब भीष्मसे सलाह लेकर मेरी माताने मुझे हस्तिनापुर बुलवाया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार स्मरण करते ही मुझे माताके मनोगत भावकी बात ज्ञात हो गयी और मैं तुरन्त हस्तिनापुर जा पहुँचा ॥ ३५ ॥ वहाँ मस्तक नवाकर मैंने माताको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़ा होगया। फिर पुत्रशोकसे दुर्बल अपनी माताजीसे कहा—॥ ३६ ॥ हे माता! आपने अपने मनमें स्मरण करके मुझे यहाँ किसलिए बुलाया है? हे

यक्ष्मणा पीडितो भृशम् ॥ अनपत्यो युवा धन्वी माता मे दुःखिताऽभवत् ॥ २९ ॥ काशिराजसुते द्वे तु मृतं दृष्ट्वा पतिं तदा ॥ पतिव्रताधर्मपरे भगिन्यौ संबभूवतुः ॥ ३० ॥ ते ऊचतुः सतीं श्वश्रूं रुदतीं भृशदुःखिताम् ॥ पतिना सहगामिन्यौ भविष्यावो हुताशने ॥ ३१ ॥ पुत्रेण सह ते श्वश्रूः स्वर्गे गत्वाऽथ नंदने ॥ सुखेन विहरिष्यावः पतिना सह संयुते ॥ ३२ ॥ निवारिते तदा मात्रा वध्वौ तस्मान्महोद्यमात् ॥ स्नेहभावं समाश्रित्य भीष्मस्य वचनात्तदा ॥ ३३ ॥ गांगेयेन च मात्रा मे संमंत्र्य च परस्परम् ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं संस्मृतोऽहं गजाह्वये ॥ ३४ ॥ स्मृतमात्रस्तु मात्रा वै ज्ञात्वा भावं मनोगतम् ॥ तरसैवागतश्चाहं नगरं नागसाह्वयम् ॥ ३५ ॥ प्रणम्य मातरं मूर्ध्ना संस्थितोऽथ कृतांजलिः ॥ तामब्रुवं सुतक्षांगीं पुत्रशोकेन कर्शिताम् ॥ ३६ ॥ मातस्त्वया किमाहूतो मनसाऽहं तपस्विनि ॥ आज्ञापय महत्कार्ये दासोऽस्मि करवाणि किम् ॥ ३७ ॥ त्वं मे तीर्थं परं मातर्देवश्च प्रथितः परः ॥ आगतश्चिंतितश्चात्र ब्रूहि कृत्यं तव प्रियम् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽहं स्थितस्तत्र मातुरग्रे यदा मुने ॥ तदा सा मामुवाचेदं पश्यती भीष्ममंतिके ॥ ३९ ॥ पुत्र तेऽद्य मृतो भ्राता पीडितो राजयक्ष्मणा ॥ तेनाहं दुःखिता जाता वंशच्छेदभयादिह ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वमद्य मेधाविन्मयाऽऽहूतः समाधिना ॥ गांगेयस्य मतेनात्र पाराशर्यार्थसिद्धये ॥ ४१ ॥ कुलं स्थापय नष्टं त्वं शंतनोर्नामकार-

तपस्विनी! यदि मेरे करने योग्य कोई काम हो तो उसे बताइए, मैं आपका आज्ञाकारी पुत्र हूँ। कहिए, मैं कौन-सा कार्य करूँ? ॥ ३७ ॥ हे माताजी! मेरा परम तीर्थ और परम देवता आप ही हैं। आपके स्मरण करते ही मैं आ गया हूँ। अब बताइए कि आपका कौनसा प्रिय कार्य मुझे करना है ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले—हे नारद! माताजीसे इतना कहनेके बाद मैं जब चुप हो गया, तब पास ही बैठे हुए भीष्मकी ओर निहारती हुई माताजी मुझसे कहने लगीं-॥ ३९ ॥ हे पुत्र! तुम्हारे भाई विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा रोगसे पीडित होकर अभी हाल ही में मरे हैं। अतएव अपना वंश नष्ट होनेके डरसे मैं बड़ी दुःखित हूँ ॥४०॥ हे प्रतिभाशाली! हे पराशरतनय! इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए मैंने भीष्मकी सलाहसे समाधि द्वारा तुम्हें यहाँ बुलाया है ॥ ४१ ॥ जिससे महाराज शन्तनुका नाम चलता रहे, अतएव इस नष्ट होते हुए राजवंशको तुम स्थापित करो। हे द्वैपायन कृष्ण! वंश लोप होनेके भयसे मैं जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुःखित हो रही हूँ, उससे तुम मुझे शीघ्र बचाओ ॥ ४२ ॥ तुम्हारे सदाचारी छोटे भाई विचित्रवीर्यकी दो रानियाँ हैं, जो काशीनरेशकी पुत्री और रूप तथा यौवनसे सम्पन्न हैं ॥ ४३ ॥ हे मतिमान् ! उन दोनोंके समागम द्वारा पुत्र उत्पन्न करके तुम हमारे भरतवंशकी रक्षा करो। ऐसा करनेमें तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले—हे नारद ! अपनी माताका ऐसा आदेश पाकर मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गया और लज्जासे व्याकुल होकर मैंने नम्रतापूर्वक कहा—॥ ४५ ॥ हे माताजी ! परायी स्त्रीके साथ संभोग करनेसे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं होता। इस बातको जानता हुआ भी मैं ऐसा दुष्कर्म कैसे कर सकता हूँ ? ॥४६॥ और फिर वे दोनों हमारे छोटे भाईकी स्त्री हैं। छोटे भाईकी स्त्री तो कन्याके तुल्य होती है। फिर चारों वेदोंका अध्ययन करके भी मैं ऐसा व्यभिचार कैसे करूँ ? ॥४७॥ यदि अधर्मके द्वारा कुलकी रक्षा होती हो तो उसे कदापि नहीं करना चाहिए। क्योंकि पापियोंके पितर कभी भी भवसागर पार नहीं कर सकते ॥ ४८ ॥ और फिर मैं वेदव्यास तथा अट्ठारहों पुराणोंका रचयिता हूँ। तब जान-बूझकर मैं ऐसे निंद्य कर्मको कैसे कर सकता हूँ ? ॥ ४९ ॥ यद्यपि

णात् ॥ रक्ष मां दुःखतः कृष्ण वंशच्छेदोद्भवाद्द्रुतम् ॥ ४२ ॥ काशिराजसुते भार्ये भ्रातुस्तव यवीयसः ॥ साधोर्विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनभूषिते ॥ ४३ ॥ ताभ्यां संगम्य मेधाविन्पुत्रोत्पादनकं कुरु ॥ रक्ष त्वं भारतं वंशं नात्र दोषोऽस्ति कर्हिचित् ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति मातुर्वचः श्रुत्वा जातश्चिन्तातुरो ह्यहम् ॥ लज्जयाऽऽकुलचित्तस्तामब्रवं विनयानतः ॥४५॥ मातः पापाधिकं कर्म परदाराभिमर्शनम् ॥ ज्ञात्वा धर्मपथं सम्यक्-रोमि कथमादरात् ॥ ४६ ॥ तथा यवीयसो भ्रातुर्वधूः कन्या प्रकीर्तिता ॥ व्यभिचारं कथं कुर्यामधीत्य निगमानहम् ॥ ४७ ॥ अन्यायेन न कर्तव्यं सर्वथा कुलरक्षणम् ॥ न तरंति हि संसारात्पितरः पापकारिणः ॥ ४८ ॥ लोकानामुपदेष्टा यः पुराणानां प्रवर्तकः ॥ स कथं कुत्सितं कर्म ज्ञात्वा कुर्यान्महाद्भुतम् ॥ ४९ ॥ पुनरुक्तो ह्यहं मात्रा रुदत्या भृशमंतिके ॥ पुत्रशोकातितप्ताया वंशरक्षणकाम्यया ॥ ५० ॥ पाराशर्य न ते दोषो वचनान्मम पुत्रक ॥ गुरूणां वचनं तथ्यं सदोषमपि मानवैः ॥ ५१ ॥ कर्तव्यमविचार्यैव शिष्टाचारप्रमाणतः ॥ वचनं कुरु मे पुत्र न ते दोषोऽस्ति मानद ॥ ५२ ॥ पुत्रस्य जननं कृत्वा सुखिनीं कुरु मातरम् ॥ विशेषेण तु संतप्तां मग्नां शोकार्णवे सुत ॥ ५३ ॥ इति तां ब्रुवतीं श्रुत्वा तदा सुरनदीसुतः ॥ मामुवाच विशेषज्ञः सूक्ष्मधर्मस्य निर्णये ॥ ५४ ॥ द्वैपायन विचारोऽत्र न कर्तव्यस्त्वयाऽनघ ॥ मातुर्वचनमादाय विहरस्व यथासुखम्

मैंने इतनी बातें कहीं, तथापि मातापर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ। क्योंकि वे पुत्रशोकसे विकल थीं और उन्हें वंशरक्षाकी चिन्ता सता रही थी। अब वे सिसकी भरती हुई मेरे पास खिसक आयीं और बड़ी आतुरताके साथ कहने लगीं—॥ ५० ॥ हे पराशर-नन्दन ! हे पुत्र ! मेरी बात मानकर यदि तुम यह कार्य करोगे तो तुम्हें परस्त्रीगमनका दोष नहीं लगेगा। क्योंकि मनुष्योंको चाहिए कि अपने गुरुजनोंकी सदोष बातको भी प्रामाणिक मानें और उसे बिना विचारे कर डालें। इसमें शिष्ट पुरुषोंका आचार ही प्रमाण है। अतः हे सम्मानदाता पुत्र ! तुम मेरी बात मान लो। हे बेटा ! इससे तुमको कोई दोष नहीं लगेगा ॥५१॥५२॥ पुत्र उत्पन्न करके तुम अपनी माताको सुखी करो। हे बेटे ! मैं अत्यन्त सन्तप्त होकर शोक-सागरमें पड़ी हुई हूँ। माताकी बात सुनकर सूक्ष्म धर्मका निर्णय करनेवालोंमें निपुण गंगातनय भीष्म बोले—॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे कृष्ण द्वैपायन ! तुम्हें इस सम्बन्धमें कुछ भी सोचनेकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आवश्यकता नहीं है। हे पूतात्मन्! माताका आदेश मानकर तुम सुखपूर्वक विहार करो ॥ ५५ ॥ व्यासजी बोले—हे नारद! भीष्मकी यह बात सुनकर और माताकी प्रार्थनापर मैं निःशङ्क चित्तसे उस निन्द्य कर्ममें प्रवृत्त हो गया ॥५६॥ अम्बिकाके ऋतुस्नान करनेपर रात्रिके समय मैं प्रसन्नतापूर्वक उसके साथ भोग करने लगा। किंतु मुझ तपस्वीकी कुरूपता देखकर वह मुझपर तनिक भी अनुरक्त नहीं हुई ॥ ५७ ॥ जिससे मैंने उस नितम्बिनीको यह शाप दे दिया कि तुमने सहवासके समय अपनी आँखें बन्द कर लीं—इससे तुम्हारा पुत्र जन्मान्ध होगा ॥ ५८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ नारद! सवेरा होनेपर एकान्तमें माताने मुझसे पूछा—बेटा! क्या काशिराजकुमारीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न होगा? ॥ ५९ ॥ तब लज्जाके कारण सिर झुकाये हुए ही मैंने कहा—हे माता! मेरे शापके कारण वह पुत्र जन्मान्ध होगा ॥ ६० ॥ हे मुने! तब माताने मुझे डाँटते हुए कहा—बेटा! अम्बिकाको तुमने क्यों ऐसा शाप दिया कि जिससे उसका पुत्र अन्धा हो? ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ ५५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा मातुश्च प्रार्थनं तथा ॥ निःशंकोऽहं तदा जातः कार्ये तस्मिन्जुगुप्सिते ॥ ५६ ॥ अम्बिकायां प्रवृत्तोऽहमृतुमत्यां मुदा निशि ॥ तस्यां मयि विमनस्कायां तापसे कुत्सिते भृशम् ॥ ५७ ॥ शप्ता मया सा सुश्रोणी प्रसंगे प्रथमे तदा ॥ अंधस्ते भविता पुत्रो यतो नेत्रे निमीलिते ॥ ५८ ॥ द्वितीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पृष्टो मात्रा रहः पुनः ॥ भविष्यति सुतः पुत्र काशिराजसुतोदरे ॥ ५९ ॥ मयोक्ता जननी तत्र व्रीडानम्रमुखेन ह ॥ विनेत्रो भविता पुत्रो मातः शापान्ममैव हि ॥ ६० ॥ तया निर्भर्त्सितस्तत्र कठोरवचसा मुने ॥ कथं पुत्र त्वया शप्तः पुत्रस्तेऽन्धो भविष्यति ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ वासवी चकिता जाता श्रुत्वा मे वाक्यमीदृशम् ॥ दाशेयी मामुवाचेदं पुत्रार्थे भृशमातुरा ॥ १ ॥ अम्बालिका वधूर्धन्या काशिराजसुता सुत ॥ भार्या विचित्रवीर्यस्य विधवा शोकसंयुता ॥ २ ॥ सर्वलक्षणसंपन्ना रूपयौवनशालिनी ॥ तस्यां जनय संगं त्वं कृत्वा पुत्रं सुसंमतम् ॥ ३ ॥ नान्धो राजाधिकारी स्यात्तस्मात्पुत्रं मनोहरम् ॥ उत्पादय राजपुत्र्यां वचनान्मम मानद ॥ ४ ॥ इत्युक्तोऽहं तदा मात्रा स्थितस्तत्र गजाह्वये ॥ यावदृतुमती जाता काशिराजसुता मुने ॥ ५ ॥ एकांते शयनागारे प्राप्ता सा मम सन्निधौ ॥ लज्जमाना सुकेशांता स्वश्वश्रुवचना-

(व्यासजीकी आत्मकथा) व्यासजी बोले—हे भारत! मेरी बात सुनकर वासवराजकुमारी एवं दासतनया सत्यवती चकित हो गयीं और पुत्रके लिए अत्यन्त व्यग्र होकर मुझसे कहने लगीं—॥ १ ॥ बेटा! विचित्रवीर्यकी दूसरी विधवा रानी अम्बालिका है, जो पतिके शोकसे व्याकुल है। वह भी काशीनरेशकी ही राजकुमारी है और बड़ी गुणवती है ॥ २ ॥ वह सारे सुलक्षणोंसे संपन्न एवं सौन्दर्य तथा यौवनसे युक्त है। उसके साथ भोग करके तुम विधिसंमत पुत्र उत्पन्न करो ॥ ३ ॥ क्योंकि राजनीतिशास्त्रके अनुसार जन्मान्ध राजकुमार राज्यसिंहासनका अधिकारी नहीं हो सकता। अतएव हे सम्मान देनेवाले पुत्र! तुम मेरे कथनानुसार उस राजपुत्रीके गर्भसे एक सुंदर पुत्र उत्पन्न करो ॥ ४ ॥ माताजीके ऐसा कहनेपर मैं हस्तिनापुरमें ठहर गया और जब काशिराजकी पुत्री अम्बालिका ऋतुमती हुई तो अपनी सासके कहनेपर निर्जन शयनागारमें मेरे पास आकर लज्जाके मारे गड़ गयी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ५ ॥ ६ ॥ मुझ जटाधारी, इन्द्रियनिग्रही एवं भृङ्गाररससे अनभिज्ञ तपस्वीको देखकर उसके मुँहपर पसीना आ गया, शरीर पीला पड़ गया और उसका जी टूट गया ॥ ७ ॥ रातके समय भोग-विलासके लिये आयी हुई उस नवयुवतीको अपनी बगलमें काँपती हुई बैठी देखकर मुझे बड़ा क्रोध आया और मैंने कुपित होकर उससे कहा–॥८॥ हे सुन्दर कटिवाली सुन्दरी ! तुम मेरी कुरूपता देखकर अपनी सुन्दरताके गर्वसे पीली पड़ गयी हो तो तुम्हारा पुत्र पाण्डु अर्थात् पीले रंगका होगा ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर मैं राजमहलमें रातको उस नवयुवतीके साथ सम्भोग करनेके बाद सवेरे अपनी मातासे अनुमति लेकर अपने आश्रमको लौट गया ॥ १० ॥ दस महीना बीतनेपर उन दोनों राजरानियोंने अन्ध और पाण्डुवर्णके दो पुत्र उत्पन्न किये । उनमेंसे अम्बिकाका पुत्र 'धृतराष्ट्र' और अम्बालिकाका पुत्र 'पाण्डु'के नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ उन दोनों राजकुमारोंको इस रूपमें देखकर मेरी माता बड़ी अनमनी हुई और साल भर बाद मुझे बुलाकर बोली–॥ १२ ॥ हे द्वैपायन ! दो राजकुमार उत्पन्न तो हुए, लेकिन वे राज्य करनेके योग्य नहीं हैं । अतएव तुम एक ऐसा सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो, जिसे देखकर मेरा

तदा ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा मां जटिलं दांतं तापसं रसवर्जितम् ॥ सा स्वेदवदना जाता पांडुरा विमना भृशम् ॥ ७ ॥ कुपितोऽहं तदा दृष्ट्वा कामिनीं
निशि संगताम् ॥ वेपमानां स्थितां पार्श्वे ह्यब्रवं तामहं रुषा ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा मां यदि गर्वेण पांडुवर्णा समावृता ॥ अतस्ते तनयः पांडुर्भविष्यति
सुमध्यमे ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा निशि तत्रैव स्थितो बालिकया युतः ॥ भुक्त्वा तां निशि निर्यातः स्थानमापृच्छ्य मातरम् ॥१०॥ ततस्ताभ्यां सुतौ
काले प्रसूतावंधपांडुरौ ॥ धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च प्रथितौ संबभूवतुः ॥ ११ ॥ माता मे विमना जाता तादृशौ वीक्ष्य तौ सुतौ ॥ ततः संवत्सरस्यांते
मामाहूय तदाऽब्रवीत् ॥ १२ ॥ द्वैपायन सुतौ जातौ राज्ययोग्यौ न तादृशौ ॥ अन्यं मनोहरं पुत्रं समुत्पादय मे प्रियम् ॥ १३ ॥ तथेति सा मया
प्रोक्ता मुदिता जननी तदा ॥ अंबिकां प्रार्थयामास सुतार्थे काल आगते ॥ १४ ॥ पुत्रि व्यासं समालिंग्य पुत्रमुत्पादयाद्भुतम् ॥ कुरु वंशस्य कर्तारं
राज्ययोग्यं वरानने ॥ १५ ॥ वधूर्लज्जान्विता किंचिन्नोवाच वचनं तदा ॥ गतोऽहं शयनागारे मातुस्तद्वचनान्निशि ॥ १६ ॥ दासी विचित्रवीर्यस्य
रूपयौवनसंयुता ॥ प्रेषिताऽम्बिकया त्वत्र विचित्राभरणांबरा ॥१७॥ चंदनारक्तदेहा सा पुष्पमालाविभूषिता ॥ आयाता हावसंयुक्ता सुकेशी हंसगा-
मिनी ॥ १८ ॥ पर्यंके मां समावेश्य संस्थिता प्रेमसंयुता ॥ प्रसन्नोऽहं तदा तस्या विलासेनाभवं मुने ॥ १९ ॥ रात्रौ संक्रीडितां प्रेम्णा तया सह

मन प्रसन्न हो जाय ॥ १३ ॥ मैंने कहा—'बहुत अच्छा' ऐसा ही करूँगा । इससे माताजी बड़ी प्रसन्न हुईं । ऋतुकालमें उन्होंने अम्बिकासे कहा–॥ १४ ॥ हे बेटी ! हे सुमुखी ! व्यासको आलिङ्गन करके तुम ऐसे अद्वितीय राजकुमारको उत्पन्न करो, जिससे कुरुवंश चल सके और उसे राजगद्दी मिले ॥१५॥ उस समय तो बहू लज्जाके मारे अपनी सासस कुछ नहीं कह सकी । किन्तु रातके समय जब मैं अपनी माताके आदेशसे शयनागारमें पहुँचा तो अम्बिकाने विचित्रवीर्यकी एक दासीको–जो परम सुन्दरी और युवती थी, उसे विविध आभूषण और वस्त्र पहनाकर मेरे पास भेज दिया ॥१६॥१७॥ उसने शरीरपर लाल चन्दन लगा रक्खा था। वह फूलोंकी माला पहने थी । उसके बाल बड़े सुन्दर थे । वह हंसकी तरह धीरे-धीरे चलती हुई बड़े हाव-भावके साथ मटकती हुई मेरे समीप आयी ।। १८ ॥ वह मुझे पलङ्गपर बैठाकर बड़े प्रेमके साथ मेरे शरीरसे लिपट गयी । हे नारद ! मैं उसके इन विलास भरे कार्योंसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १९ ॥ रातभर मैंने उसके साथ बड़े प्रेमपूर्वक खूब जी भरकर भोग किया । तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर मैंने उसे वरदान दिया—॥ २० ॥ हे सौभाग्यवती ! तुम्हारे गर्भसे सब सुलक्षणोंसे सम्पन्न, सुन्दर, समस्त धर्मोंका ज्ञाता, सत्यवादी और शान्त पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २१ ॥ तदनुसार दस महीने बाद उसने 'विदुर' नामके पुत्रको जन्म दिया । हे नारद ! इस प्रकार पराये क्षेत्रमें मैंने अपने वीर्यसे तीन पुत्र उत्पन्न किये । जिन्हें देखकर मेरे मनमें मायाकी भावना बढ़ने लगी ॥ २२ ॥ उन तीनों पुत्रोंको वीर्यवान्, पराक्रमी और शूर-वीरोंसे सम्मानित देखकर मैं अपने शोकका एकमात्र कारण 'शुक'के वियोगकी बात एकदम भूल गया ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन् ! माया बड़ी प्रबल होती है । जिन्हें आत्मज्ञान नहीं हुआ रहता, वे इसे अपने काबूमें नहीं कर सकते । बल्कि वे सदा उसके फन्देमें फँसे रह जाते हैं । माया आकारहीन और आलम्बन रहित होती हुई भी बड़े-बड़े ज्ञानियोंके चित्तको मोहित कर देती है ॥२४॥ हे मुनिवर ! एक ओर तो मेरा मन माताके प्रेममें और दूसरी ओर उन पुत्रोंमें लगा रहता था । इसलिए वनमें भी मेरे मनको शान्ति नहीं मिल पाती थी ॥२५॥ अब मेरा मन

मया भृशम् ॥ वरो दत्तः पुनस्तस्यै प्रसन्नेन तु नारद ॥२०॥ सुभगे भविता पुत्र सर्वलक्षणसंयुतः ॥ सुरूपः सर्वधर्मज्ञः सत्यवादी शमे रतः ॥ २१ ॥ स तदा विदुरो जातस्त्रयः पुत्रा मयाऽभवन् ॥ माया वृद्धिं गता साधो परक्षेत्रोद्भवे मम ॥ २२ ॥ विस्मृतः शुकसंबन्धी विरहः शोककारणम् ॥ दृष्ट्वा त्रीन्स्वसुतान्कामं बलिनो वीर्यसंमतान् ॥२३॥ माया बलवती ब्रह्मन्दुस्त्यजा ह्यकृतात्मभिः ॥ अरूपा च निरालंबा ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥२४॥ मातरि स्नेहसंबद्धं तथा पुत्रेषु संवृतम् ॥ न मे चित्तं वने शांतिमगान्मुनिवरोत्तम ॥ २५ ॥ दोलारूढं मनो जातं कदाचिद्धस्तिनापुरे ॥ पुनः सरस्वतीतीरे न चैकत्र व्यवस्थितिः ॥२६॥ कदाचिच्चिंतयन् ज्ञानं मानसे प्रतिभाति वै ॥ केऽमी पुत्राः क्व मोहोऽयं न श्राद्धार्हा मृतस्य मे ॥ २७ ॥ व्यभिचारोद्भवाः किं मे सुखदाः स्युः सुताः किल ॥ माया बलवती मोहं वितनोति हि मानसे ॥ २८ ॥ जानन्मोहांधकूपेऽस्मिन्पतितोऽहं मृषा मुने ॥ इत्यकुर्वं रहस्तापं कदाचित्सुसमाहितः ॥२९॥ राज्यं प्राप ततः पांडुर्बलवान्भीष्मसंमतः ॥ तदा मम मनो जातं प्रसन्नं सुतकारणात् ॥३०॥ कुंती माद्री सुरूपे द्वे भार्ये तस्य बभूवतुः ॥ शूरसेनसुता कुंती मद्रराजसुताऽपरा ॥ ३१ ॥ स शापं द्विजतः प्राप्य कामिनीद्वयसंयुतः ॥ पांडुर्निर्वे-

सन्देहके झूलेपर झूलता रहता था । अब मैं कभी हस्तिनापुरमें रहता तो कभी सरस्वतीके तटपर चला आता था । इस प्रकार मैं कहीं शान्तिसे नहीं रह सका ॥२६॥ जब कभी मनमें ज्ञानका उदय होता था तो यह भावना जागृत हो जाती थी कि ये पुत्र किसके हैं ? यह तो केवल मोह है । मेरे मर जानेपर ये पुत्र मेरा श्राद्ध भी तो नहीं कर सकेंगे ॥२७॥ क्योंकि ये व्यभिचारसे उत्पन्न हुए हैं । तब ये मुझे कौनसा सुख देंगे ? माया बड़ी प्रबल होती है, वह मनमें मोह पैदा कर देती है ॥२८॥ हे महामुनि नारद ! मैं जान-बूझकर मोहरूपी अन्ध-कूपमें गिर गया हूँ । कभी-कभी शान्तचित्तसे एकान्तमें बैठकर मैं इस विषयमें सन्ताप किया करता था ॥ २९ ॥ भीष्मकी सम्मतिसे जब बलवान् पाण्डुको राजगद्दी मिली, तब मन इसलिए प्रसन्न हुआ कि मेरा पुत्र गद्दीपर बैठा है ॥ ३० ॥ बादमें पाण्डुने दो रानियोंसे विवाह किया । जिनमेंसे एक राजा शूरसेनकी कन्या कुन्ती और दूसरी मद्रदेशके राजाकी राजकुमारी माद्री थी ॥ ३१ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे आपकी मृत्यु हो जायगी'—इस विप्रशापसे दुःखित होकर राजा पाण्डु राजपाट छोड़ और दोनों रानियोंको साथ लेकर वनमें चले गये ॥३२॥ अपने पुत्रके वनवासी जीवन व्यतीत करनेकी बात सुनकर मुझे बड़ा क्लेश हुआ और मैं उस वनमें गया, जहाँ वे अपनी दोनों रानियोंके साथ रहते थे ॥३३॥ वहाँ उन्हें समझा-बुझाकर मैं फिर हस्तिनापुर लौट आया और धृतराष्ट्रके साथ बातचीत करके फिर सरस्वती नदीके तटपर चला गया ॥ ३४ ॥ जब पाण्डु वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय उन्होंने धर्म, वायु, इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमारोंसे पाँच क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराये ॥३५॥ उनमें कुन्तीके गर्भसे धर्म, वायु तथा इन्द्रके वीर्य द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन—ये तीन पुत्र जायमान हुए ॥३६॥ दोनों अश्विनीकुमारों द्वारा माद्रीके गर्भसे नकुल एवं सहदेव उत्पन्न हुए। एक दिन राजा पाण्डुने एकान्तमें माद्रीका आलिंगन कर लिया ॥३७॥ अतएव पूर्वशापके कारण उनका प्राणान्त हो गया। तब मुनियोंने उनका दाहसंस्कार किया और माद्री चितापर बैठकर प्रज्वलित अग्निमें अपने पतिके साथ सती हो गयी ॥ ३८ ॥ पुत्रोंका पालन-पोषण करनेके निमित्त कुन्ती

दमापन्नस्त्यक्त्वा राज्यं वनं गतः ॥ ३२ ॥ तदा मामाविशच्छोकः श्रुत्वा पुत्रं वने स्थितम् ॥ गतोऽहं तत्र यत्रासौ भार्याभ्यां सह संस्थितः ॥ ३३ ॥
तमाश्वास्य वने पांडुं पुनः प्राप्तो गजाह्वये ॥ धृतराष्ट्रं समाभाष्य ह्यगमं ब्रह्मजातटे ॥ ३४ ॥ क्षेत्रजान्पंचपुत्रान्स समुत्पाद्य वनाश्रमे ॥ धर्मतो
वायुतः शक्रादश्विभ्यां पंच पांडवान् ॥ ३५ ॥ युधिष्ठिरो भीमसेनस्तथैवार्जुन इत्यपि ॥ कुंतीपुत्राः समाख्याता धर्मानिलसुरेशजाः ॥ ३६ ॥
नकुलः सहदेवश्च मद्रराजसुतासुतौ ॥ कदाचित्तु रहो माद्रीं समालिंग्य महीपतिः ॥ ३७ ॥ मृतः शापात्तु मुनिभिः संस्कृतो हुतभुङ्मुखे ॥ माद्री
तत्र सती भूत्वा प्रविष्टा पतिना सह ॥ ३८ ॥ स्थिता पुत्रयुता कुन्ती ज्वलिते जातवेदसि ॥ मुनयः सुतसंयुक्तां शूरसेनसुतां तदा ॥ ३९ ॥
दुःखितां पतिहीनां तामानिन्युर्गजसाह्वये ॥ समर्पिताऽथ भीष्माय विदुराय महात्मने ॥ ४० ॥ श्रुत्वाऽहं सुखदुःखाभ्यां पीडितस्तु परात्मभिः ॥
भीष्मेण पालिताः पुत्राः पांडोरिति विचिन्त्य ते ॥४१॥ विदुरेण तथा प्रीत्या धृतराष्ट्रेण धीमता ॥ दुर्योधनादयस्तस्य पुत्रा ये क्रूरमानसाः ॥४२ ॥
एकत्र स्थितिमापन्ना विरोधं चक्रुरद्भुतम् ॥ द्रोणाचार्यस्तु संप्राप्तस्तत्र भीष्मेण मानितः ॥ ४३ ॥ अध्यापनाय पुत्राणां पुरे तस्मिन्निवासितः ॥
कर्णः कुन्त्या परित्यक्तो जातमात्रः शिशुर्यदा ॥ ४४ ॥ सूतेन पालितो नद्यां प्राप्तश्चाधिरथेन ह ॥ दुर्योधनप्रियश्चाभूत्कर्णः शूरतम-

सती नहीं हुई। तदनन्तर मुनि लोग उस पुत्रवती एवं शूरसेनकी पुत्री कुंतीको दुःखित और वैधव्य जीवन व्यतीत करते देखकर हस्तिनापुर ले गये और भीष्म तथा महात्मा विदुरको सौंप दिया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ यह सुना तो मेरा मन पराये पुत्र उन पाण्डवोंके कारण सुख-दुःखके चक्करमें व्यस्त हो गया। ये मेरे पुत्र पाण्डुके बेटे हैं। ऐसा सोचकर भीष्म, विदुर और बुद्धिमान् धृतराष्ट्र बड़े प्रेमसे उनका लालन-पालन करने लगे। लेकिन धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि जितने कुटिल हृदयवाले पुत्र थे, वे सब एक गुट बनाकर एक विचित्र प्रकारका विरोध करने लगे। बादमें वहाँ द्रोणाचार्य आये और भीष्मने उनका उचित सम्मान किया ॥ ४१–४३ ॥ उन्होंने उन राजकुमारोंको पढ़ाने-लिखाने तथा धनुर्वेदकी शिक्षा देनेके लिए उन्हें राजधानीमें ही रख लिया। कुन्तीने उत्पन्न होते ही बालक कर्णको त्याग दिया था ॥ ४४ ॥ नदीमें बहते हुए उस कर्णको अधिरथ नामके सारथीने पाया और उसका पालन-पोषण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया। सर्वश्रेष्ठ वीर होनेके कारण कर्ण दुर्योधनका प्रिय मित्र बन गया ॥ ४५ ॥ आगे चलकर भीम और दुर्योधन आदि भाइयोंमें आपसी विरोध बहुत बढ़ गया। तब धृतराष्ट्रने उन पाण्डवोंके कष्टोंका विचार करके और विरोध बचानेकी इच्छासे वारणावत नगरमें उनके रहनेके लिए महल बनवानेका निश्चय किया ॥४६॥४७॥ लेकिन दुर्योधनने अपने मित्र पुरोचनको भेजकर उनके लिए दिव्य लाक्षागृह (लाहका घर) बनवा दिया ॥ ४८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ नारदजी ! जब मुझे यह समाचार मिला कि अपनी माता कुन्तीके साथ पाँचों पाण्डव उस लाहके मकानमें जल गये तो मैं दुःखके सागरमें निमग्न हो गया। क्योंकि वे हमारे पौत्र थे ॥४९॥ ऐसी दशामें शोकाकुल होकर मैं उस सुनसान वनमें दिनरात उन्हें ढूँढ़ता रहा। तब मैंने एकचक्रा नगरीमें दुःखके कारण दुर्बल दशामें पाण्डवोंको देखा ॥ ५० ॥ उनको देखकर मेरे मनको बड़ी शान्ति मिली और मैंने उन्हें तुरन्त महाराज द्रुपदके नगरमें भेज दिया ॥ ५१ ॥ तब दुबले-पतले पाण्डव ब्राह्मणका वेश धारण करके मृगछाला पहनकर वहाँ रहने लगे। एक दिन वे राजा द्रुपदकी स्वयम्बर-सभामें जा पहुँचे ॥ ५२ ॥ वहाँपर अर्जुन मत्स्यका लक्ष्य-भेदपूर्वक

स्तथा ॥ ४५ ॥ परस्परं विरोधोऽभूद्भीमदुर्योधनादिषु ॥ धृतराष्ट्रस्तु संचिंत्य क्लेशं पुत्रेषु तेषु च ॥ ४६ ॥ निवासं कल्पयामास पांडवानां महात्मनाम् ॥ विरोधशमनायैव नगरे वारणावते ॥ ४७ ॥ दुर्योधनेन तत्रैव द्रोहाज्जतुगृहाणि वै ॥ कारितानि च दिव्यानि प्रेष्य मित्रं पुरोचनम् ॥ ४८ ॥ श्रुत्वा जतुगृहे दग्धान्पांडवान्पृथया युतान् ॥ पौत्रभावान्मुनिश्रेष्ठ मग्नोऽहं व्यसनार्णवे ॥ ४९ ॥ शोकातुरो भृशं शून्ये वने पश्यन्नहर्निशम् ॥ दृष्टा मयैकचक्रायां पांडवा दुःखकर्शिताः ॥ ५० ॥ ततस्तुष्टमनाश्चाहं जातः पार्थान्विलोक्य च ॥ प्रेरितास्ते मया तूर्णं द्रुपदस्य पुरं प्रति ॥ ५१ ॥ ते गतास्तत्र दुःखार्ता विप्रवेषधराः कृशाः ॥ मृगचर्मपरीधानाः सभायां संस्थितास्तदा ॥ ५२ ॥ कृत्वा पराक्रमं जिष्णुः स जित्वा द्रुपदात्मजाम् ॥ चक्रुर्विवाहं मानिन्या पञ्चैव मातृवाक्यतः ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वा विवाहं तेषां तु मुदितोऽहं भृशं तदा ॥ ततो नागाह्वये प्राप्ताः पाञ्चालीसहिता मुने ॥ ५४ ॥ निवासं खांडवप्रस्थं धृतराष्ट्रेण कल्पितम् ॥ पांडवानां द्विजश्रेष्ठ वसुदेवसुतेन वै ॥ ५५ ॥ तर्पितः पावकस्तत्र विष्णुना सह जिष्णुना ॥ राजसूयः कृतो यज्ञस्तदाऽहं मुदितोऽभवम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वाऽथ विभवं तेषां तथा मयकृतां सभाम् ॥ दुर्योधनोऽतिसंतप्तो दुरोदरमथाकरोत् ॥ ५७ ॥ दुर्द्यूतवेदी शकुनिरनक्षज्ञश्च धर्मजः ॥ हृतं राज्यं धनं सर्वं याज्ञसेनी च क्लेशिता ॥ ५८ ॥ वने द्वादश वर्षाणि पांडवास्ते

अपना पराक्रम दिखलाकर द्रुपदराजकुमारी द्रौपदीको ले आये। तदनन्तर माता कुन्तीके आदेशसे मानिनी पांचाल-राजकुमारी द्रौपदीका विवाह पाँचों पाण्डवोंके साथ हुआ ॥५३॥ अपने उन पौत्रोंका विवाह देखकर मेरे हर्षका ठिकाना नहीं रहा। हे मुनिवर नारद ! बादमें वे द्रौपदीके साथ हस्तिनापुरमें चले आये ॥ ५४ ॥ तब धृतराष्ट्रने उन पाण्डवोंको रहनेके लिए खाण्डव वन दे दिया। हे द्विजश्रेष्ठ नारद! वसुदेवजीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ अग्निदेवको सन्तुष्ट किया। जिससे अग्निने श्रीकृष्णकी सहायतासे खाण्डव वनको जला डाला। पांडवोंने जब राजसूय यज्ञ किया तो मैं बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ५ ॥ ५६ ॥ उन पाण्डवोंके वैभव और मयदानवकी बनायी हुई राजसभा देखकर दुर्योधनके मनमें बड़ी डाह हुई और उसने एक षड्यन्त्र रचा ॥ ५७ ॥ शकुनी कपटपूर्ण जुआ खेलनेमें बड़ा निपुण था और धर्मराज युधिष्ठिर पाँसेका हाल नहीं जानते थे। अतएव दुर्योधनने शकुनीके द्वारा पाण्डवोंका राजपाट तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धन सब कुछ ले लिया। बादमें द्रौपदी भी अपमानित की गयी ॥५८॥ उसके बाद द्रौपदीके साथ पाँचों पाण्डव बारह वर्ष तक वनमें रहनेके लिए निर्वासित कर दिये गये। यह सुनकर मुझे बहुत कष्ट हुआ ॥ ५९ ॥ हे नारद! यद्यपि मैं यह सनातन धर्म जानता था कि संसार मिथ्या है और सुखी या दुःखी होना कोरा भ्रम है। तथापि सुख-दुःखसे परिपूर्ण इस संसारके चक्करमें मैं पड़ गया ॥ ६० ॥ मैं कौन हूँ? ये किसके पुत्र हैं? यह किसकी माता है? सुख क्या चीज है? जिससे मोहके फाँसमें पड़कर मेरा अन्तःकरण सदा इसी उधेड़-बुनमें पड़ा रहता है ॥६१॥ हे नारदजी! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? कहीं भी चैन नहीं मिलती। मेरा मन सदा अशान्त बना रहता है। सन्देहके झूलेपर बैठा हुआ यह अशांत मन कहीं नहीं टिक पाता ॥६२॥ हे मुनिवर! आप सर्वज्ञ पुरुष हैं। अतएव मेरा सन्देह दूर करनेकी कृपा कीजिए। जिससे मैं सुखी रह सकूँ ॥६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

विवासिताः ॥ पाञ्चालीसहितास्तेन दुःखं मे जनितं भृशम् ॥ ५९ ॥ एवं नारद संसारे सुखदुःखात्मके भृशम् ॥ निमग्नोऽहं भ्रमेणैव जानन्धर्मं सनातनम् ॥ ६० ॥ कोऽहं कस्य सुतास्तेऽमी का माता किं सुखं पुनः ॥ येन मे हृदयं मोहाद्भ्रमतीति दिवानिशम् ॥ ६१ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि संतोषो नाधिगच्छति ॥ दोलारूढं मनो मेऽत्र चञ्चलं न स्थिरं भवेत् ॥ ६२ ॥ सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ संदेहं मे निवर्तय ॥ तथा कुरु यथाऽहं स्यां सुखितो विगतज्वरः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति मे वचनं श्रुत्वा नारदः परमार्थवित् ॥ मामाह च स्मितं कृत्वा पृच्छन्तं मोहकारणम् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पाराशर्य पुराणज्ञ किं पृच्छसि सुनिश्चितम् ॥ संसारेऽस्मिन्विना मोहं कोऽपि नास्ति शरीरवान् ॥२॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः सनकः कपिलस्तथा ॥ मायया वेष्टिताः सर्वे भ्रमंति भववर्त्मनि ॥३॥ ज्ञानिनं मां जनो वेत्ति भ्रांतोऽहं सर्वलोकवत् ॥ शृणु मे पूर्ववृत्तान्तं प्रब्रवीमि सुनिश्चितम् ॥४॥ दुःखं मया यथा पूर्वमनुभूतं महत्तरम् ॥ स्वकृतेन च मोहेन भार्यार्थे वासवीसुत ॥ ५ ॥ एकदा पर्वतश्चाहं देवलोकान्महीतलम् ॥ प्राप्तो विलोकनार्थाय भारतं

(नारदजीको पर्वत मुनिका शाप) व्यासजी बोले—हे राजन्! परमार्थके ज्ञाता नारदजी मेरी बात सुननेके पश्चात् मुसकराकर मुझसे प्राणियोंको मोह होनेका कारण बताने लगे ॥१॥ नारदजीने कहा—हे पराशरनन्दन व्यास! आप क्या पूछते हैं? हे पुराणवेत्ता मुनिवर! यह बिल्कुल निश्चित है कि इस संसारमें रहनेवाला कोई भी प्राणी मोहसे अछूता नहीं रह सकता ॥२॥ बड़े-बड़े देवता तथा कपिल-सनक आदि ऋषि-मुनि सबके सब मोहके अधीन होकर संसारमार्गमें निरन्तर चक्कर काटते रहते हैं ॥ ३ ॥ यद्यपि लोग मुझे ज्ञानी समझते हैं, तथापि सब लोगोंकी तरह मैं भी एक बार मोहमें पड़ गया था। सो मैं स्वयं अपने ऊपर बीती हुई बातें बताता हूँ, सुननेकी कृपा करें ॥४॥ हे व्यासजी! मुझे जैसे महान् दुःखका अनुभव करना पड़ा था, उसमें मोहवश स्त्रीप्राप्तिके उद्योगमें फँस जाना ही प्रमुख कारण था ॥ ५ ॥ एक समयकी बात है—मैं और पर्वत मुनि उत्तम भारतवर्षको देखनेके विचारसे पृथ्वीपर उतरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥६॥ विभिन्न तीर्थोंको देखते हुए हम दोनों साथ-साथ धरातलपर घूमने लगे। हमें मुनियोंके बहुतसे पवित्र आश्रम दीखे ॥ ७ ॥ स्वर्गसे चलते समय हम दोनोंने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'जिसके मनमें जैसा विचार उत्पन्न हो, वह एक दूसरेसे कह दे'। मनोभाव चाहे पवित्र हो अथवा अपवित्र, किन्तु एक दूसरेसे कभी उसे छिपाकर न रखा जाय ॥ ८ ॥ ९ ॥ स्त्री, धन तथा भोजनविषयक जैसी भी इच्छा जिसके मनमें उत्पन्न हो, वह परस्पर एक दूसरेसे अवश्य कह दे' ॥ १० ॥ इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करके हम दोनों स्वर्गसे पृथ्वीपर आये और एकचित्त होकर इच्छानुसार भूमण्डलपर विचरने लगे ॥ ११ ॥ हम इस लोकमें भ्रमण कर ही रहे थे—इतनेमें ग्रीष्मऋतु समाप्त होकर वर्षाऋतुका आगमन हो गया। तब हमलोग राजा संजयकी सुरम्य नगरीमें चले गये ॥ १२ ॥ राजा संजय बड़े सज्जन पुरुष थे। उन्होंने भक्तिपूर्वक हमारा भली भाँति स्वागत-सम्मान किया। उन्हींके भवनमें रहकर हमारा चौमासा व्यतीत होने

खंडमुत्तमम् ॥ ६ ॥ भ्रमंतौ सहितावुर्व्यां पश्यंतौ तीर्थमण्डलम् ॥ पावनानि च स्थानानि मुनीनामाश्रमाञ्छुभान् ॥ ७ ॥ शपथं देवलोकात्तु कृत्वा पूर्वं परस्परम् ॥ चलितौ समयं चेमं संमंत्र्य निश्चयेन वै ॥ ८ ॥ चित्तवृत्तिस्तु वक्तव्या यादृशी यस्य जायते ॥ शुभा वाऽप्यशुभा वाऽपि न गोप्तव्या कदाचन ॥ ९ ॥ भोजनेच्छा धनेच्छाऽपि रतीच्छा वा भवेदपि ॥ यादृशी यस्य चित्ते तु कथनीया परस्परम् ॥ १० ॥ इत्यावां समयं कृत्वा स्वर्गाद्भूलोकमागतौ ॥ एकचित्तौ मुनीभूतौ विचरन्तौ यथेच्छया ॥ ११ ॥ एवं भ्रमंतौ लोकेऽस्मिन्ग्रीष्मान्ते समुपागते ॥ संजयस्य पुरं रम्यं संप्राप्तौ नृपतेः पुनः ॥ १२ ॥ तेन संपूजितौ भक्त्या राज्ञा संमानितौ भृशम् ॥ स्थितौ तत्र गृहे तस्य चातुर्मास्यं महात्मनः ॥ १३ ॥ वार्षिकाश्चतुरो मासा दुर्गमाः पथि सर्वदा ॥ तस्मादेकत्र विबुधैः स्थातव्यमिति निश्चयः ॥ १४ ॥ अष्टौ मासांस्तु प्रवसेत्सदा कार्यवशाद्द्विजः ॥ वर्षाकाले न गंतव्यं प्रवासे सुखमिच्छता ॥१५॥ इति संचिंत्य मनसा संजयस्य गृहे तदा ॥ संस्थितौ मानितौ राज्ञा कृतातिथ्यौ महात्मना ॥१६॥ दमयंतीति विख्याता तस्य पुत्री महीपतेः ॥ आज्ञप्ता परिचर्यार्थं सुदती सुन्दरी भृशम् ॥ १७ ॥ विवेकज्ञा विशालाक्षी राजपुत्री कृतोद्यमा ॥ सेवनं सर्वकाले च व्यदधादुभयोरपि ॥ १८ ॥ स्नानार्थमुदकं काले भोजनं मृष्टमायतम् ॥ मुखवासं तथा चान्यं यदिष्टं तद्ददाति सा ॥ १९ ॥

लगा ॥ १३ ॥ वर्षाऋतुके चार महीने मार्गमें बहुत कष्टप्रद होते हैं। अतएव विज्ञ पुरुष उतने समयतक एक जगह रहना ही उचित समझते हैं ॥ १४ ॥ सुखकी आशा रखनेवाला पुरुष कार्यवश आठ महीने सदा विदेशकी यात्रा कर सकता है, किंतु वह वर्षाऋतुमें बाहर जानेका दुःसाहस न करे ॥ १५ ॥ इस प्रकार मनमें सोचकर हम दोनों व्यक्ति राजा संजयके यहाँ टिक गये। उन महानुभाव नरेशने बड़े आदरके साथ हमारा आतिथ्य किया ॥१६॥ राजा सञ्जयकी एक सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम दमयन्ती था। राजाकी आज्ञासे वह परम सुन्दरी कन्या सदा हमारे सत्कारमें संलग्न रहती थी ॥१७॥ वह बड़ी विदुषी थी। उसके नेत्र बड़े विशाल थे। उसका उद्यमी स्वभाव था। वह किसी भी समय हम दोनोंकी सेवासे मुख नहीं मोड़ती थी ॥ १८ ॥ वह हमारे स्नानके लिए जल, समयपर दिव्य भोजन, मुखशुद्धिके लिए पान-इलायची तथा सभी आवश्यक वस्तुयें बराबर जुटा दिया करती थी ॥ १९ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम दोनोंके सामने वह सदा अभिलषित पदार्थ उपस्थित किया करती थी। उसके द्वारा मनके अनुकूल भोजन, आसन, पंखा, शय्या आदिका पूरा प्रबन्ध हो जाया करता था ॥२०॥ इस प्रकार हम दोनों मुनि राजा सञ्जयके भवनमें सत्कृत होकर रहने लगे। वेदका स्वाध्याय करना हमारा स्वाभाविक गुण है ही। अतः हम अपने वेदव्रतमें सदा संलग्न रहते थे ॥२१॥ मैं हाथमें वीणा लेकर उत्तम स्वरसे सामवेद गाया करता था। कानको सुख पहुँचानेवाले उस गानमें मधुरता भरी रहती थी ॥ २२ ॥ मेरे मनोहर सामगानको सुनकर राजकुमारी दमयन्ती मुझपर आसक्त हो गयी। उस परम विदुषीके मनमें मेरे प्रति प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न हो गया और उस प्रेमकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गयी। ऐसी स्थितिमें प्रेम करनेवाली उस सुन्दरीके प्रति मेरा मन भी चलायमान हो गया ॥ २३ ॥ २४ ॥ अब तो मुझपर विशेष अनुराग रखनेवाली राजकुमारी मेरे और पर्वत मुनिके लिए जो भी सेवा-कार्य या वस्तु उपस्थित करती थी, उसमें कुछ भेदभाव होने लगा ॥ २५ ॥ अब वह मेरे स्नानके लिए गर्म और पर्वतके लिए ठंढे जलकी व्यवस्था करती थी। मेरे लिए दही, किन्तु पर्वतके लिए मठेका प्रबन्ध करती थी

मनोऽभिलाषितान्कामानुभयोरपि कन्यका ॥ व्यजनासनशय्यादीन्वांछितानप्यकल्पयत् ॥ २० ॥ एवं संसेव्यमानौ तु स्थितौ राज्ञो गृहे किल ॥
वेदाध्ययनसंशीलावावां वेदव्रते रतौ ॥ २१ ॥ अहं वीणां करे कृत्वा साधयित्वा स्वरोत्तमम् ॥ गायत्रं साम सुखदमगां कर्णरसायनम् ॥ २२ ॥
राजपुत्री तु तच्छ्रुत्वा सामगानं मनोहरम् ॥ बभूव मयि रागाढ्या प्रीतियुक्ता विशारदा ॥ २३ ॥ दिने दिनेऽनुरागोऽस्या मयि वृद्धिं गतः परः ॥
ममापि प्रीतियुक्तायां मनो जातं स्पृहापरम् ॥ २४ ॥ मम तस्य च सा कन्या भोजनादिषु कर्हिचित् ॥ अकरोदंतरं किञ्चित्सेवाभेदं रसान्विता
॥ २५ ॥ स्नानायोष्णजलं मह्यं पर्वताय च शीतलम् ॥ दधि मह्यं तथा तक्रं पर्वतायाप्यकल्पयत् ॥ २६ ॥ शयनास्तरणं शुभ्रं मदर्थे पर्यकल्पयत् ॥
प्रीत्या परमया यद्वत्पर्वताय न तादृशम् ॥ २७ ॥ विलोकयति मां प्रेम्णा सुंदरी न च पर्वतम् ॥ ततोऽस्यास्तादृशं दृष्ट्वा पर्वतः प्रेमकारणम् ॥२८॥
मनसा चिंतयामास किमेतदिति विस्मितः ॥ पप्रच्छ मां रहः सम्यग्ब्रूहि नारद सर्वथा ॥ २९ ॥ राजपुत्री त्वयि प्रेम करोति मुदिता भृशम् ॥
ददाति भक्ष्यभोज्यानि स्नेहयुक्ता समंततः ॥ ३० ॥ न तथा मयि भेदोऽत्र सन्देहं जनयत्यसौ ॥ मन्यते त्वां पतिं कर्तुं सर्वथा संजयात्मजा ॥ ३१ ॥
तवापि तादृशं भावं जानामि लक्षणैरहम् ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च ज्ञायते प्रीतिकारणम् ॥ ३२ ॥ सत्यं वद न ते मिथ्या वक्तव्यं वचनं मुने ॥ स्वर्गतः

॥२६॥ वह मेरे लिए जैसा बिछौना बिछाती थी, वैसा पर्वतके लिए नहीं। जितने प्रेमसे वह मुझे देखती थी, उतने प्रेमसे पर्वतको नहीं देखती थी। उसका वह ढंग देखकर पर्वत मुनिने मनमें विचार किया कि ऐसा क्यों हो रहा है। उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। तदनन्तर उन्होंने एकान्तमें मुझसे पूछा—'नारद ! बात क्या है ? स्पष्टरूपसे बतानेकी कृपा करो ॥२७–२९॥ राजकुमारी तुम्हारे प्रति जैसा अनुराग रखती है, मेरे प्रति उसका वैसा प्रेम नहीं है। वह तुम्हें जितना अच्छा भक्ष्य-भोज्य जितने प्रेमसे देती है, वैसा मुझे नहीं देती ॥३०॥ यह भेदभाव मेरे मनमें सन्देह उत्पन्न कर रहा है। जान पड़ता है कि राजकुमारीके मनमें तुम्हें पति बनानेकी भावना सुदृढ़ हो गयी है ॥ ३१ ॥ इन लक्षणोंको देखकर मेरी समझमें आ रहा है कि तुम्हारा अभिप्राय भी वैसा ही है। क्योंकि आँख और मुखके भाव प्रेमके कारणको सूचित कर देते हैं ॥ ३२ ॥ हे मुने ! सच्ची बात कहो। स्वर्गसे चलते समय हम लोगोंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो प्रतिज्ञा की थी, इस समय तुम्हें उसका स्मरण करना चाहिये' ॥ ३३ ॥ नारदजी कहते हैं—जब पर्वत मुनिने अत्यन्त आग्रहके साथ मुझसे कारण पूछा, तब बड़े संकोचमें पड़कर मैं उनसे कहनेके लिए उद्यत हुआ ॥ ३४ ॥ मैंने कहा—'पर्वत ! विशाल नेत्रोंवाली राजकुमारी मुझे पति बनाना चाहती है, यह सत्य है और उसके प्रति मेरी भी मानसिक भावना वैसी ही बन चुकी है' ॥ ३५ ॥ मेरे इस सत्य वचनको सुनकर मुनिवर पर्वतके मनमें क्रोध उत्पन्न हो गया। उन्होंने मुझसे कहा—'नारद ! तुम्हें बार-बार धिक्कार है। क्योंकि पहले प्रतिज्ञा करके तुमने मुझे बड़े भारी धोखेमें डाल दिया है। हे मित्रद्रोही ! मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ कि 'तुम अभी बंदरके मुखवाले हो जाओ' ॥३६॥३७॥ पर्वत मुनि महात्मा पुरुष थे। जब रोषमें भरकर उन्होंने शाप दे दिया, तब तुरंत मेरे मुखकी आकृति बंदर जैसी हो गयी ॥३८॥ वे मुनि सम्बन्धमें मेरी बहिनके लड़के अर्थात् भांजे थे। पर क्रोधवश मैं भी उन्हें क्षमा न कर सका। मैंने भी शाप दे दिया कि 'अबसे तुम भी स्वर्गके अनधिकारी हो जाओ ॥३९॥ हे पर्वत! तुम्हारी बुद्धि बड़ी खोटी है। इतने थोड़े-से अपराधपर तुमने मुझे शाप दे दिया ? अतएव तुम भी

समयं कृत्वा चलितौ संस्मराधुना ॥ ३३ ॥ नारद उवाच ॥ पृष्टोऽहं पर्वतेनेदं कारणं तु हठाद्यदा ॥ तदाऽहं ह्रीसमाक्रांतः संजातश्चाब्रवं पुनः
॥३४॥ पर्वतैषा विशालाक्षी पतिं मां कर्तुमुद्यता ॥ ममापि मानसो भावो वर्ततेऽस्यां विशेषतः ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं पर्वतः कोपसंयुतः ॥
मामुवाच मुनिर्वाक्यं धिग्धिगिति पुनः पुनः ॥३६॥ प्रथमं शपथान्कृत्वा वञ्चितोऽहं त्वया यतः ॥ भव वानरवक्त्रस्त्वं शापाच्च मम मित्रध्रुक् ॥३७॥
इति शप्तस्तु तेनाहं कुपितेन महात्मना ॥ सहसा ह्यभवं क्रूरः शाखामृगमुखस्तदा ॥ ३८ ॥ मयाऽपि न कृता तस्मिन्क्षमा तु भगिनीसुते ॥
सोऽपि शप्तोऽतिकोपाद्वै मा स्वर्गे ते गतिः किल ॥ ३९ ॥ स्वल्पेऽपराधे यस्मान्मां शप्तवानसि पर्वत ॥ तस्मात्तवापि मन्दात्मन्मृत्युलोके स्थितिः
किल ॥ ४० ॥ पर्वतस्तु गतस्तस्मान्नगराद्विमना भृशम् ॥ अहं वानरवक्त्रस्तु संजातस्तत्क्षणादपि ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा मां वानरं क्रूरं राजपुत्री विल-
क्षणा ॥ विमनाऽतीव संजाता वीणाश्रवणलालसा ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ ततः किमभवद्ब्रह्मन्कथं शापो निवर्तितः ॥ मानुषास्यः पुनर्जातो
भवान्ब्रूहि यथाविधि ॥ ४३ ॥ पर्वतः क्व गतो भूयः संगमो युवयोरभूत् ॥ कदा कुत्र कथं सर्वं विस्तरेण वदस्व ह ॥ ४४ ॥ नारद उवाच ॥ किं
ब्रवीमि महाभाग मायायाश्चरितं महत् ॥ दुःखितोऽहं भृशं तत्र पर्वते रुषिते गते ॥ ४५ ॥ पुनः सेवांपराऽत्यर्थं राजपुत्री ममाभवत् ॥ गतेऽथ

अब मर्त्यलोकमें निवास करो' ॥ ४० ॥ तदनन्तर पर्वत मुनि अत्यन्त उदास होकर नगरसे निकल पड़े। मेरा मुख भी तत्काल बंदरके मुँह-जैसा हो गया ॥ ४१ ॥ राजकुमारी परम विदुषी थी। वीणाका स्वर सुननेमें वह बड़ा उत्साह रखती थी। जब उसने मुझ क्रूर बन्दरको देखा, तब उसके मुखपर अप्रसन्नताकी घनी घटाएँ छा गयीं ॥ ४२ ॥ व्यासजीने पूछा—हे ब्रह्मन् ! इसके बाद क्या हुआ ? आपने शापसे छुटकारा कैसे पाया ? फिर आपकी मुखाकृति मानवाकार कैसे हुई ? यह प्रसंग पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें ॥४३॥ आप दोनों महानुभावोंका फिर कब, कहाँ और कैसे मिलन हुआ ? ये सभी बातें विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करिए ॥४४॥ नारदजीने कहा—हे महाभाग! क्या कहूँ, मायाकी गति बड़ी विचित्र होती है। कुपित होकर पर्वत मुनिके चले जानेपर मैं प्रायः दुःख ही भोगता रहा ॥४५॥ यद्यपि राजकुमारी दमयन्ती सेवामें तत्पर होकर सदा मेरा सहयोग करती रही। पर्वत मुनि चले गये और मैं स्वेच्छासे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वहीं ठहर गया ॥ ४६ ॥ वानरके समान मुख हो जानेके कारण मेरे मनपर दीनता छा गयी। मेरे दुःखका पार नहीं रहा। अब क्या होगा? यह कैसी घटना घट गयी—इस प्रकारकी चिन्ता मुझे सदा कष्ट देने लगी ॥ ४७ ॥ उधर अब राजकुमारी दमयन्तीके शरीरमें कुछ जवानीके चिह्न स्पष्ट होने लगे थे। राजा संजयने उसे देखकर अपने मन्त्रीसे कहा—॥४८॥ 'अब मेरी कन्या विवाहके योग्य हो गयी है। आप मुझे कोई सुयोग्य वर बतलाइये। इसके लिए ऐसा राजकुमार चाहिये, जो सब प्रकारसे श्रेष्ठ हो ॥ ४९ ॥ उसे सुन्दर, उदार, गुणी, शूरवीर और कुलीन होना चाहिये।' ऐसा वर मिलनेपर मैं उसके साथ अपनी कन्याका विधिवत् पाणिग्रहण-संस्कार कर दूँगा ॥ ५० ॥ संजयकी बात सुनकर प्रधान मन्त्रीने कहा—'राजन्! आपकी पुत्रीके अनुरूप बहुत-से सुयोग्य एवं संपूर्ण गुणोंसे युक्त राजकुमार भूमण्डलपर विद्यमान हैं ॥५१॥ हे महाराज! जो राजकुमार आपको पसन्द हो, उसीको बुलाकर बहुत-से हाथी, घोड़े, रथ और धन आदिके साथ कन्यादान कर दीजिये ॥ ५२ ॥ नारदजी कहते हैं—राजकुमारी दमयन्ती बातचीत करनेमें बड़ी कुशल थी। राजाका अभिप्राय जानकर

पर्वते कामं स्थितस्तत्रैव सद्मनि॥४६॥ अहं दुःखान्वितो दीनस्तथा वानरवन्मुखः॥ विशेषेण तु चिन्तार्तः किं मे स्यादिति चिंतयन्॥४७॥ संजयोऽथ सुतां दृष्ट्वा किञ्चित्प्रकटयौवनाम्॥ विवाहार्थे राजसुतामपृच्छत्सचिवं तदा॥४८॥ विवाहकालः संप्राप्तः सुताया मम सांप्रतम्॥ योग्यं वरं मम ब्रूहि राजपुत्रं सुसंमतम् ॥ ४६ ॥ रूपौदार्यगुणैर्युक्तं शूरं सुकुलसंभवम् ॥ विवाहं विधिवत्पुत्र्याः करोमि किल सांप्रतम् ॥ ५० ॥ प्रधानस्त्वब्रवीद्राजन् राजपुत्रा ह्यनेकशः ॥ वर्तंते भुवि पुत्र्यास्ते योग्याः सर्वगुणान्विताः ॥५१॥ यस्मिन् रुचिस्ते राजेंद्र तमाहूय नृपात्मजम् ॥ देहि कन्यां धनं भूरि हस्त्यश्वरथ-संयुतम् ॥५२॥ नारद उवाच ॥ पितुश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा दमयंती तदा नृपम्॥ धात्र्या मुखेन वाक्यज्ञा तमुवाच रहःस्थितम्॥ ५३ ॥ धात्र्युवाच ॥ दमयंती महाराज पुत्री ते मामथाब्रवीत् ॥ पितरं ब्रूहि धात्रेयि वचनान्मे सुखान्वितम् ॥ ५४ ॥ मया वृतोऽथ मेधावी नारदो महतीयुतः ॥ नादमोहितया कामं नान्यः कोऽपि प्रियो मम ॥ ५५ ॥ कुरु मे वांछितं तात विवाहं मुनिना सह ॥ नान्यं वरिष्ये धर्मज्ञ नारदं तु पतिं विना ॥ ५६ ॥ मग्नाहं नादसिंधौ वै नक्रहीने रसात्मके ॥ अक्षारे सुखसंपूर्णे तिमिङ्गिलविवर्जिते ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

उसने अपनी धायके द्वारा एकान्तमें राजासे कहलाया ॥५३॥ धायने कहा—महाराज! आपकी कन्या दमयन्तीने मुझसे कहा है कि धाय माँ! तुम मेरे पिताजीसे विनयपूर्वक मेरी हित-कर बातें कह दो ॥५४॥ उसका कथन है—'मैं बुद्धिमान् नारदजीका वरण कर चुकी हूँ। उनकी वीणाके स्वरने मेरे मनको मोहित कर लिया है। अतः अब दूसरा कोई पुरुष मुझे अभीष्ट नहीं है ॥ ५५ ॥ पिताजी! आप मेरी रुचिके अनुसार इन मुनिवरके साथ ही मेरा विवाह कर दीजिये। हे धर्मज्ञ! मैं इनके सिवा दूसरे किसीको पति नहीं बनाऊँगी ॥ ५६ ॥ क्योंकि मुनिके रसस्वरूप नादमय मधुर समुद्रमें मैं डूब चुकी हूँ। यह सुखदायी समुद्र खारे पानी, नाक-घड़ियाल तथा मत्स्य आदि जन्तुओंसे बिल्कुल शून्य है' ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(नारदका दमयन्तीके साथ विवाह) नारदजी बोले–धाय द्वारा कहलायी हुई पुत्री दमयन्तीकी बात सुनकर राजा संजयने पास ही बैठी अपनी सुन्दर नेत्रोंवाली रानी कैकेयीसे कहा ॥ १ ॥ राजा बोले–हे प्रिये ! धायने जो बात कही है, वह तो तुम सुन ही चुकी हो। बन्दर जैसे मुखवाले नारदमुनिको उसने पतिरूपमें वरण कर लिया है ॥ २ ॥ उसकी यह मूर्खता-पूर्ण दुश्चेष्टा है। भला बन्दरके समान मुखवाले उस मुनिको मैं अपनी कन्या कैसे दूँगा ॥ ३ ॥ कहाँ भीख माँगनेवाला वह कुरूप मुनि और कहाँ मेरी लाडली तथा परम सुन्दरी कन्या दमयन्ती। ऐसा बेमेल सम्बन्ध कभी भी नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥ हे प्रिये ! तुम्हारी भोली कन्या मुनिपर आसक्त हो गयी है। तुम उसे एकान्तमें शास्त्रकी आज्ञा तथा वृद्ध पुरुषों-की मर्यादा बतलाती हुई युक्तिपूर्वक समझाकर इस हठसे मुक्त करो ॥ ५ ॥ पतिदेवकी यह बात सुनकर रानी कैकेयीने राजकुमारी दमयन्तीसे कहा—'बेटी ! कहाँ तो तुम जैसी रूपवती राजकन्या और कहाँ वह बंदरमुहाँ निर्धन मुनि ॥ ६ ॥ तुम्हारा शरीर लताके समान कोमल है और वह मुनि सदा देहमें राख लपेटे रहता है। तब तुम इतनी चतुर होती हुई भी उस भिक्षुक

॥ नारद उवाच ॥ तत्पुत्र्या वचनं श्रुत्वा राजा धात्रीमुखात्ततः ॥ भार्यां प्रोवाच कैकेयीं समीपस्थां सुलोचनाम् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ यदुक्तं वचनं कांते धात्र्या तत्तु त्वया श्रुतम् ॥ वृतोऽयं नारदः कामं मुनिर्वानरवक्त्रभाक् ॥ २ ॥ किमिदं चिंतितं पुत्र्या बुद्धिहीनं विचेष्टितम् ॥ कथमस्मै मया देया कन्या हरिमुखाय सा ॥ ३ ॥ क्वासौ भिक्षुः कुरूपः क्व दमयंती ममात्मजा ॥ विपरीतमिदं कार्यं न विधेयं कदाचन ॥ ४ ॥ तामेकान्ते सुकेशांते निवारय हठात्सुताम् ॥ युक्त्या मुनिरतां मुग्धां शास्त्रवृद्धानुसारया ॥ ५ ॥ इति भर्तृवचः श्रुत्वा जननी तामथाब्रवीत् ॥ क्व ते रूपं मुनिः क्वासौ वानरास्योऽधनः पुनः ॥ ६ ॥ कथं मोहमवाप्ताऽसि भिक्षुके चतुरा पुनः ॥ लताकोमलदेहा त्वं भस्मरूपतनुस्त्वयम् ॥ ७ ॥ वार्ता वानरवक्त्रेण कथं युक्ता तवानघे ॥ का प्रीतिः कुत्सिते पुंसि भविष्यति शुचिस्मिते ॥ ८ ॥ वरस्ते राजपुत्रोऽस्तु मा कुरु त्वं वृथा हठम् ॥ पिता ते दुःखमाप्नोति श्रुत्वा धात्रीमुखाद्वचः ॥ ९ ॥ लग्नां बुब्बूलवृक्षेण कोमलां मालतीलताम् ॥ दृष्ट्वा कस्य मनः खेदं चतुरस्य न गच्छति ॥ १० ॥ दासेरकाय ताम्बूलीदलानि कोमलानि कः ॥ ददाति भक्षणार्थाय मूर्खोऽपि धरणीतले ॥ ११ ॥ वीक्ष्य त्वां करसंलग्नां नारदस्य समीपतः ॥ विवाहे वर्तमाने तु कस्य चेतो न दह्यति ॥ १२ ॥ कुमुखेन समं वार्ता न रुचिं जनयत्यतः ॥ आमृतेस्तु कथं कालः क्षपितव्यस्त्वयाऽमुना ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥ इति

मुनिपर कैसे आसक्त हो गयी हो ? ॥ ७ ॥ हे अनघे ! इस बन्दरमुँहके साथ तुम्हारा सम्बन्ध कैसे शोभा पा सकता है ? हे शुचिस्मिते ! इस निन्दनीय पुरुषपर तुम्हारी प्रीति कैसे हो सकेगी ? ॥ ८ ॥ तुम्हारा वर तो कोई सुन्दर राजकुमार होना चाहिये। हे बेटी ! तुम व्यर्थ हठ मत करो। धायके मुखसे तुम्हारी बात सुनकर तुम्हारे पिता बड़ा दुःख प्रकट कर रहे हैं ॥ ९ ॥ ठीक ही है, बबूरके वृक्षपर फैली हुई कोमल मालती-लताको देखकर किस चतुर पुरुषका मन दुखी न होगा ॥ १० ॥ जगत्में मूर्ख कहलानेवाला मानव भी ऊँटको खानेके लिए कोमल पानके पत्ते नहीं देता ॥ ११ ॥ विवाहके अवसरपर तुम इस नारदके पास बैठो और यह तुम्हारा पाणिग्रहण करे, इसे देखकर किसका जी नहीं जलेगा ? ॥ १२ ॥ ऐसे घृणित मुखवालेके साथ तो बातचीतमें भी रुचि उत्पन्न होनेकी सम्भावना नहीं होती। इस कुरूप नारदके साथ अन्ततक तुम अपना जीवन कैसे व्यतीत कर सकोगी ?' ॥ १३ ॥ नारदजी कहते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किन्तु सुकुमारी दमयन्ती मेरे विषयमें अपनी पक्की धारणा बना चुकी थी ! माताकी बात सुनकर अत्यन्त घबराहटके साथ उसने कहा—॥१४॥ हे माताजी ! जब ये मुनि रसमार्गसे बिल्कुल अनभिज्ञ हैं और सांसारिक विषय-वासनाका इन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है, तब इन्हें सुन्दर मुख, धन और राज्यसे क्या प्रयोजन ? ॥ १५ ॥ हे माताजी ! वनमें रहनेवाली उन हरिणियोंको धन्यवाद है, जो वीणाका मधुर स्वर सुनकर प्राणतक देनेको तैयार हो जाती हैं। जो मूर्ख मानव स्वरसे प्रेम नहीं करते, वे जगत्में धिक्कारके पात्र समझे जाते हैं ॥१६॥ माँ ! नारदजी-को जिस सप्तस्वरमयी विद्याका ज्ञान है, उसे शिवजीको छोड़कर तीसरा कोई भी पुरुष नहीं जानता ॥१७॥ माताजी ! मूर्खके साथ रहनेपर तो प्रतिक्षण मृत्युका सामना करना पड़ता है। अतः रूपवान् और धनवान् होनेपर भी यदि कोई मूर्ख हो तो उस पुरुषको सदाके लिए त्याग देना चाहिये ॥१८॥ व्यर्थ गर्व करनेवाले मूर्ख राजाकी मैत्रीको धिक्कार है। गुणी भिक्षुककी मैत्रीको मैं श्रेष्ठ मानती हूँ। कारण, उसके वचनमात्रसे सुखकी अनुभूति होती रहती है ॥१९॥ स्वर, ग्राम और मूर्च्छना आदि आठ प्रकारके भेदोंको जाननेवाले दुर्बल रसज्ञ पुरुषका भी मिलना

मातुर्वचः श्रुत्वा दमयन्ती भृशातुरा ॥ मातरं प्राह तन्वङ्गी मयि सा कृतनिश्चया ॥ १४ ॥ किं मुखेन न रूपेण मूर्खस्य च धनेन किम् ॥ किं राज्येनाविदग्धस्य रसमार्गाविदोऽस्य च ॥ १५ ॥ हरिण्योऽपि वने धन्या या नादेन विमोहिताः ॥ मातः प्राणान्प्रयच्छंति धिङ्मूर्खान्मानुषान्भुवि ॥१६॥ नारदो वेत्ति यां विद्यां मातः सप्तस्वरात्मिकाम् ॥ तृतीयः कोऽपि नो वेद शिवादन्यः पुमान्किल ॥१७॥ मूर्खेण सह संवासो मरणं तत्क्षणे क्षणे ॥ रूपवान्धनवांस्त्याज्यो गुणहीनो नरः सदा ॥ १८ ॥ धिङ्मैत्रीं मूर्खभूपाले वृथा गर्वसमन्विते ॥ गुणज्ञे भिक्षुके श्रेष्ठा वचनात्सुखदायिनी ॥ १९ ॥ स्वरज्ञो ग्रामवित्कामं मूर्छनाज्ञानभेदभाक् ॥ दुर्लभः पुरुषश्चाष्टरसज्ञो दुर्बलोऽपि वै ॥ २० ॥ यथा नयति कैलासं गंगा चैव सरस्वती ॥ तथा नयति कैलासं स्वरज्ञानविशारदः ॥ २१ ॥ स्वरमानं तु यो वेद स देवो मानुषोऽपि सन् ॥ सप्तभेदं न यो वेद स पशुः सुरराडपि ॥ २२ ॥ मूर्छनातानमार्गं तु श्रुत्वा मोदं न याति यः ॥ स पशुः सर्वथा ज्ञेयो हरिणाः पशवो न हि ॥ २३ ॥ वरं विषधरः सर्पः श्रुत्वा नादं मनोहरम् ॥ अश्रोत्रोऽपि मुदं याति धिक्सकर्णांश्च मानवान् ॥ २४ ॥ बालोऽपि सुस्वरं गेयं श्रुत्वा मुदितमानसः ॥ जायते किंतु ते वृद्धा न जानंति धिगस्तु तान् ॥ २५ ॥ पिता मे किं न जानाति नारदस्य गुणान्बहून् ॥ द्वितीयः सामगो नास्ति त्रिषु लोकेषु तत्समः ॥ २६ ॥ तस्मादसौ

कठिन होता है ॥ २० ॥ स्वरके ज्ञानमें प्रवीण पुरुष कैलासतक पहुँचनेवाली गङ्गा और सरस्वतीकी तुलना कर सकता है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य स्वरके प्रमाणको जानता है, उसे मनुष्य होते हुए भी देवता समझना चाहिये। स्वरभेदसे अनभिज्ञ इन्द्र भी पशुके तुल्य होता है ॥ २२ ॥ मूर्छना आदि स्वरोंको सुनकर जिसके मनमें आह्लाद उत्पन्न नहीं होता, उसे ही सर्वथा पशु समझना चाहिये, न कि हिरणोंको ॥२३॥ मैं तो विषधर सर्पको भी श्रेष्ठ मानती हूँ। क्योंकि कान न रहनेपर भी मनोहर नाद सुनकर वह मस्त हो जाता है। तब कानवाले मानव यदि मनोहर नाद सुनकर हर्षित नहीं होते तो उन्हें धिक्कार है ॥२४॥ बालक भी उत्तम स्वरसे गाये हुए गीतको सुनकर प्रसन्न हो जाता है। अतः गानके रहस्यको न समझनेवाले वृद्धतक अधम समझे जाते हैं ॥ २५ ॥ क्या मुनिवर नारदके इन अपार और अप्रतिम गुणोंको पिताजी नहीं जानते ? त्रिलोकीमें नारदके समान सामवेदका दिव्य गान करनेवाला दूसरा कोई भी पुरुष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं है ॥२६॥ अतएव मैंने अच्छी तरह समझ-बूझकर ही इन मुनिका वरण किया है। सुप्रसिद्ध गुणी इन नारद मुनिके मुखकी आकृति पहले बन्दर जैसी नहीं थी। बादमें शापके कारण इनका ऐसा मुँह हो गया है और वह भी मेरे ही कारण हुआ है ॥ २७ ॥ अतएव मैं कैसे दूसरा विचार कर सकती हूँ। किन्नर घोड़े-जैसे मुखवाले होनेपर भी किसको प्रिय नहीं होते—उनसे सभी प्रेम करते हैं। क्योंकि सामवेदके वे बड़े अच्छे जानकार होते हैं। किसीके सुन्दर मुखसे ही क्या प्रयोजन है ॥२८॥ माँ! तुम पिताजीसे कह दो, मैं निश्चितरूपसे मुनिवरको वर चुकी हूँ। अतः आग्रह छोड़कर वे प्रसन्नतापूर्वक मेरा विवाह इन मुनिके साथ कर दें ॥ २९ ॥ नारदजी कहते हैं—पुत्रीकी बात सुनकर रानीने राजासे सब हाल कह सुनाया। मेरी पुत्री दमयन्तीका नारदमुनिमें पूर्ण अनुराग हो चुका है, यह समझकर उस परम सुन्दरी रानी कैकेयीने सञ्जयसे कहा—'आप किसी शुभ मुहूर्तमें नारद मुनिके साथ ही दमयन्तीका विवाह कर दीजिये। क्योंकि अपनी कन्या उन सर्वज्ञानी मुनिको मन ही मन वर चुकी है' ॥ ३० ॥ ३१ ॥ नारदजी कहते हैं—इस प्रकार रानी कैकेयीके प्रेरित करनेपर राजा संजय विधिपूर्वक

मया नूनं वृतः पूर्वं समागमात् ॥ पश्चाच्छापवशाज्जातो वानरास्यो गुणाकरः ॥ २७ ॥ किन्नरा न प्रियाः कस्य भवंति तुरगाननाः ॥ गानविद्यासमायुक्ताः किं मुखेन वरेण ह ॥ २८ ॥ पितरं ब्रूहि मे मातर्वृतोऽयं मुनिसत्तमः ॥ तस्मात्त्वमाग्रहं त्यक्त्वा देहि तस्मै च मां मुदा ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा राज्ञी राज्ञे न्यवेदयत् ॥ आग्रहं सुन्दरी ज्ञात्वा सुताया नारदे मुनौ ॥३०॥ विवाहं कुरु राजेन्द्र दमयन्त्याः शुभे दिने ॥ मुनिना स च सर्वज्ञो वृतोऽसौ मनसाऽनया ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ इति संचोदितो राज्ञ्या संजयः पृथिवीपतिः ॥ चकार विधिवत्सर्वं विधिं वैवाहिकं ततः ॥ ३२ ॥ एवं दारग्रहं कृत्वा वानरास्यः परंतप ॥ स्थितस्तत्रैव मनसा दह्यमानेन चान्वहम् ॥ ३३ ॥ यदाऽऽगच्छद्राजसुता सेवार्थं मम सन्निधौ ॥ अभवं दुःखसंतप्तस्तदाऽहं वानराननः ॥ ३४ ॥ दमयंती तु मां वीक्ष्य प्रफुल्लवदनांबुजा ॥ शोकं वानरवक्त्रत्वान्न चकार कदाचन ॥ ३५ ॥ एवं गच्छति काले तु सहसा पर्वतो मुनिः ॥ कुर्वंस्तीर्थान्यनेकानि द्रष्टुं मां समुपागतः ॥ ३६ ॥ मयाऽतिमानितः प्रेम्णा पूजितश्च यथाविधि ॥ आसीन आसने दिव्ये वीक्ष्य मां दुःखितो ह्यभूत् ॥ ३७ ॥ कृतदारं वानरास्यं दीनं चिंतातुरं भृशम् ॥ दयावान्मामुवाचेदं

विवाह करनेको प्रस्तुत हो गये और उन्होंने सम्पूर्ण विधि सम्पन्न करके मेरे साथ दमयन्तीका विवाह कर दिया ३२॥ हे परम तपस्वी व्यासजी! इस तरह विवाह हो जानेके पश्चात् मैं वहीं रहने लगा। बन्दरका मुख होनेके कारण मेरी मानसिक चिंता सीमाको पार कर रही थी ॥ ३३ ॥ जब राजकुमारी दमयन्ती सेवा करनेके लिए मुझ वानरमुख मुनिके पास आती, तब मैं दुःखसे संतप्त हो उठता था ॥३४॥ परन्तु खिले हुए कमलके समान मुखवाली वह राजकुमारी मुझे देखकर कभी कहीं तनिक-सा भी खेद नहीं प्रकट करती थी। मेरे बन्दर जैसे मुखसे उसके मनमें कुछ भी उद्वेग नहीं उत्पन्न होता था ॥ ३५ ॥ यों कुछ समय व्यतीत होनेके पश्चात् सहसा एक दिन पर्वतमुनि मेरे स्थानपर पधारे। अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए मुझसे मिलनेके विचारसे ही वे आ गये थे ॥३६॥ मैंने उनका पर्याप्त सम्मान किया। उनकी विधिवत् पूजा की। जब वे आसनपर बैठे, उस समय मुझे और दमयन्तीको देखकर उनका मन दुखी हो उठा ॥३७॥ क्योंकि मेरी बड़ी दयनीय दशा थी। बन्दरका मुख होनेके कारण विवाह करके मैं अत्यन्त चिन्तित भावसे कालक्षेप कर रहा था। मुझे अपने मामाको ऐसा दुखी देखकर उन परम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दयालु पर्वत मुनिने कहा—॥३८॥' मुनिवर नारद! क्रोधमें आकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया था। किंतु सुनो, मैं अब उसे दूर किये देता हूँ ॥३९॥ हे नारद! अब तुम मेरे पुण्यके प्रभावसे पुनः सुन्दर मुखवाले बन जाओ। क्योंकि इस समय राजकुमारीको देखकर मेरा मन करुणासे ओतप्रोत हो गया है' ॥४०॥ नारदजी कहते हैं—मुनिवर पर्वतकी बात सुनकर मेरा मन नम्रता और कृतज्ञतासे भर गया। उसी क्षण मैंने भी जो उन्हें शाप दिया था, उसका मार्जन कर दिया ॥४१॥ मैंने कहा—'मुनिवर पर्वत! तुम मेरी बहिनके सुयोग्य पुत्र हो। तुमको मैंने शाप दे दिया था, उसे स्वेच्छापूर्वक सानन्द वापस ले रहा हूँ। अतः अब तुम स्वर्गमें जा सकते हो' ॥ ४२ ॥ फिर तुरंत पर्वत मुनिके कथनानुसार उनके देखते-देखते मेरा मुख अत्यन्त सुंदर हो गया। अब राजकुमारीके हर्षकी सीमा नहीं रही। उसने तुरन्त अपनी मातासे कहा—॥४३॥ हे माँ! तुम्हारे परम तेजस्वी जामाता अब सुन्दर मुखवाले हो गये हैं। पर्वत मुनिकी आज्ञाके अनुसार

पर्वतो मातुलं क्रुशम् ॥ ३८ ॥ मया नारद कोपात्त्वं शप्तोऽसि मुनिसत्तम ॥ निष्कृतिं तस्य शापस्य करोम्यद्य निशामय ॥ ३९ ॥ भव त्वं चारुवदनो मन पुण्येन नारद ॥ दृष्ट्वा राजसुतां चित्ते कृपा जाता ममाधुना ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ मयाऽपि प्रवणं चित्तं कृत्वा श्रुत्वाऽस्य भाषितम् ॥ अनुग्रहः कृतः सद्यस्तस्य शापस्य तत्क्षणात् ॥ ४१ ॥ भागिनेय तवाप्यस्तु गमनं सुरसद्मनि ॥ शापस्यानुग्रहः कामं कृतोऽयं पर्वताधुना ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ जातोऽहं चारुवदनो वचनात्तस्य पश्यतः ॥ राजपुत्री तु संतुष्टा मातरं प्राह सत्वरम् ॥ ४३ ॥ मातस्ते सुमुखो जातो जामाता च महाद्युतिः ॥ वचनात्पर्वतस्याद्य मुक्तशापो मुनेरभूत् ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञ्या कथितं तत्तु राजनि ॥ ययौ द्रष्टुं मुनिं तत्र संजयः प्रीतिमांस्तदा ॥४५॥ धनं समर्पितं राज्ञा संतुष्टेन तदा महत् ॥ मह्यं च भागिनेयाय पारिबर्हं महात्मना ॥ ४६ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वर्तनं यत्पुरातनम् ॥ मायाया बलमाहात्म्यं ह्यनुभूतं यथा मया ॥ ४७ ॥ संसारेऽस्मिन्महाभाग मायागुणकृतेऽनृते ॥ तनुभृत्तु सुखी नास्ति न भूतो न भविष्यति ॥४८॥ कामक्रोधौ तथा लोभो मत्सरो ममता तथा ॥ अहंकारो मदः केन जिताः सर्वे महाबलाः ॥ ४९ ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्त्रय इमे किल ॥ कारणं प्राणिनां देहसंभवे सर्वथा मुने ॥ ५० ॥ कस्मिंश्चित्समये व्यास वनेऽहं विष्णुना सह ॥ गच्छन्हास्यविनोदेन स्त्रीभावं

उनके शापसे इनका उद्धार हो गया है ॥ ४४ ॥ पुत्रीकी बातें सुनकर रानीने राजासे यह प्रसंग कह सुनाया। सो सुनते ही राजा संजय परम प्रसन्न होकर मुझे देखनेके लिए पधारे ॥४५॥ उस समय उन महाभाग नरेशके मनमें अपार आनन्द हो रहा था। उन्होंने मुझे उपहारमें बहुतसा धन दिया और मेरे भागिनेय पर्वत मुनिको भी सादर उपहार समर्पित किया ॥४६॥ मेरे इसी जीवनमें ये सब प्रसंग आ चुके हैं। मेरे अनुभवसे तो यह महामायाका ही प्रभाव एवं माहात्म्य है ॥ ४७ ॥ हे महाभाग! मायाके गुणसे विरचित यह संसार बिल्कुल असत् है। इसमें आसक्त होकर रहनेवाला कोई भी प्राणी न सुखी हो सका है, न है और न होगा ॥४८ ॥ काम, क्रोध, लोभ, ममता, अहंकार और मद—ये सभी असीम बलशाली हैं। इनपर किसने विजय पायी है? ॥४९॥ हे मुने! सत्त्व, रज, तम—ये तीन गुण ही प्राणियोंके देह धारण करनेमें सर्वथा कारण होते हैं ॥ ५० ॥ हे व्यासजी! एक समयकी बात है—मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् विष्णुके साथ वनमें घूम रहा था। आपसमें कुछ विनोदकी बातें चल रहीं थीं। उसी क्षण मुझे अनायास स्त्री हो जाना पड़ा ॥ ५१ ॥ प्रभुकी मायाके बलसे मोहित हो जानेके कारण मैं एक राजाकी स्त्री बन गया और उसके राजभवनमें रहकर मैंने बहुतसे पुत्र प्रसव किये ॥ ५२ ॥ व्यासजीने पूछा—हे मुने! आप इतने बड़े ज्ञानी पुरुष होते हुए भी स्त्री-रूपमें कैसे परिणत हो गये? ॥ ५३ ॥ हे साधो! आपकी बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। बताइए, आप पुनः पुरुष कैसे हुए? ये सभी बातें बतानेकी कृपा करें। साथ ही यह भी बतायें कि किस राजाके घरमें रहकर आपने कैसे पुत्र उत्पन्न किये? आप महामायाके अद्भुत चरित्रको कहनेकी कृपा कीजिये, जिसने चराचरसहित इस अखिल विश्वको मोहित कर रखा है। आपके कथित कथामृतको सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती। क्योंकि इसमें सभी ग्रन्थोंके अर्थका तत्त्व समाया हुआ है और इससे सब संशय नष्ट हो जाते हैं ॥ ५४–५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

गमितः क्षणात् ॥ ५१ ॥ राजपत्नीत्वमापन्नो मायाबलविमोहितः ॥ पुत्राः प्रसूता बहवो गेहे तस्य नृपस्य ह ॥ ५२ ॥ व्यास उवाच ॥ संशयोऽयं महान्साधो श्रुत्वा ते वचनं किल ॥ कथं नारीत्वमापन्नस्त्वं मुने ज्ञानवान्भृशम् ॥ ५३ ॥ कथं च पुरुषो जातो ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ कथं पुत्रास्त्वया जाताः कस्य राज्ञो गृहेऽञ्जसा ॥ ५४ ॥ एतदाख्याहि चरितं मायाया महदद्भुतम् ॥ मोहितं च यया सर्वमिदं स्थावरजंगमम् ॥ ५५ ॥ न तृप्तिमधिगच्छामि शृण्वंस्तव कथामृतम् ॥ सर्वग्रंथार्थतत्त्वं च सर्वसंशयनाशनम् ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

नारद उवाच ॥ निशामय मुनिश्रेष्ठ गदतो मम सत्कथाम् ॥ मायाबलं सुदुर्ज्ञेयं मुनिभिर्योगवित्तमैः ॥ १ ॥ मायया मोहितं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतमजया दुर्विभाव्यया ॥ २ ॥ कदाचित्सत्यलोकाद्वै श्वेतद्वीपे मनोहरे ॥ गतोऽहं दर्शनाकांक्षी हरेरद्भुतकर्मणः ॥ ३ ॥ वादयन्महतीं वीणां स्वरतानविभूषिताम् ॥ गायनं गायमानस्तु साम सप्तस्वरान्वितम् ॥ ४ ॥ दृष्टो मया देवदेवश्चक्रपाणिर्गदाधरः ॥ कौस्तुभोद्भासितोरस्को मेघश्यामश्चतुर्भुजः ॥ ५ ॥ पीतांबरपरीधानो मुकुटाङ्गदराजितः ॥ लक्ष्म्या सह विलासिन्या क्रीडमानो मुदा युतः ॥ ६ ॥ वीक्ष्य मां

(नारदको स्त्रीरूपकी प्राप्ति) नारदजी कहते हैं—हे मुनिवर! मैं वह पावन कथाप्रसंग कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिए। वस्तुतः मायाके अत्यन्त गूढ़ रहस्यको योगवेत्ता मुनि भी जाननेमें असमर्थ हैं ॥१॥ चर-अचर सम्पूर्ण जगत् तथा ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त—सबके सब प्राणी मायाके अधीन हैं। क्योंकि वह अजेय और दुश्चिन्त्य है ॥ २ ॥ एक समयकी बात है—अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् विष्णुके दर्शनकी इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न हुई। अतः मैं स्वर्गसे चलकर मनोहर श्वेतद्वीपमें जा रहा था। मेरे द्वारा स्वर और तालसे सुशोभित विशाल वीणा बज रही थी। निषाद आदि सात स्वरों और तालोंके साथ मैं सामवेदका गान कर रहा था ॥३॥४॥ श्वेतद्वीपमें पहुँचनेपर मुझे देवाधिदेव भगवान् विष्णुके दर्शन मिले। वे हाथमें चक्र और गदा धारण किये हुए थे। कौस्तुभमणि उनके वक्षस्थलकी शोभा बढ़ा रही थी। मेघके समान श्याम वर्णवाले श्रीहरि चार भुजाओंसे सुशोभित थे ॥५॥ उन्होंने पीताम्बर पहन रखा था। मुकुट और बाजूबन्द उनके श्रीविग्रहको विभूषित किये हुए थे। उस समय मनोहारिणी लक्ष्मीके साथ वे क्रीड़ा कर रहे थे ॥६॥ सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा समस्त अलंकारोंसे अलंकृत भगवती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मी मुझे देखकर वहाँसे हट गयीं ॥७॥ वे नारीजातिमें सबसे श्रेष्ठ नारी थीं। वे सबको प्रिय थीं। उन्हें अपने रूप और यौवनपर गर्व था। भगवानका उनपर असाधारण अनुराग था और सोनेके समान दमकता हुआ उनके शरीरका रङ्ग था ॥ ८ ॥ लक्ष्मीजीको भवनमें गयी देखकर मैंने वनमाला धारण करनेवाले देवाधिदेव जगत्प्रभु विष्णुसे पूछा—॥ ९ ॥ 'हे देवशत्रुओंका संहार करनेवाले पद्मनाभ भगवान्! मुझे आते देखकर भगवती लक्ष्मीजी आपके पास क्यों चली गयीं? ॥ १० ॥ हे जगद्गुरो! मैं न कोई नीच हूँ और न धूर्त। हे जनार्दन! मैं एक तपस्वी हूँ। इन्द्रियाँ मेरे वशमें रहती हैं। मैंने क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली है। मायाका मुझपर कभी कुछ भी वश नहीं चलता ॥११॥ मैंने उस समय जो कुछ भी कहा, उसके प्रत्येक शब्दमें अभिमान भरा था। उसे सुनकर भगवान श्रीहरिका मुखमण्डल मुसकानसे भर गया। वीणाके समान मधुर वाणीमें वे मुझसे कहने लगे ॥ १२ ॥ भगवान् विष्णुने कहा—हे नारद! यह काम नीतिके विरुद्ध है। स्त्रीको चाहिये कि पतिके सिवा कभी किसी दूसरे पुरुषके समक्ष न जाय ॥ १३ ॥ हे विद्वन्! जो पवनपर अधिकार पा चुके हैं, जिन्होंने

कमला देवी गताऽन्तर्धानमंतिकात् ॥ सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वभूषणभूषिता ॥ ७ ॥ नारीणां प्रवरा कांता रूपयौवनगर्विता ॥ सुप्रिया वासुदेवस्य वरचामीकरप्रभा ॥ ८ ॥ अंतर्गृहं गतां दृष्ट्वा सिंधुजां व्यञ्जनान्विताम् ॥ मया पृष्टो देवदेवो वनमाली जगत्प्रभुः ॥ ९ ॥ भगवन्देवदेवेश पद्मनाभ सुरारिहन् ॥ कथं च मा गता दृष्ट्वा मामगच्छंतमंतिकात् ॥ १० ॥ नाहं विटो न वा धूर्तः तापसोऽहं जगद्गुरो ॥ जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितमायो जनार्दन ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ निशम्य वचनं किंचिद्गर्वयुक्तं जनार्दनः ॥ उवाच मां स्मितं कृत्वा वीणावन्मधुरां गिरम् ॥ १२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नारदैवंविधा नीतिर्न स्थातव्यं कदाचन ॥ पतिं विनाऽन्यसान्निध्ये कस्यचिद्योषया क्वचित् ॥ १३ ॥ माया सुदुर्जया विद्वन्योगिभिर्जितमारुतैः ॥ सांख्यविद्भिर्निराहारैस्तापसैश्च जितेन्द्रियैः ॥ १४ ॥ देवैश्च मुनिशार्दूल यत्त्वयोक्तं वचोऽधुना ॥ जितमायोऽस्मि गीतज्ञ नैवं वाच्यं कदाचन ॥ १५ ॥ नाहं शिवो न वा ब्रह्मा जेतुं तां प्रभवोऽप्यजाम् ॥ मुनयः सनकाद्याश्च कस्त्वं केऽन्ये क्षमा जये ॥ १६ ॥ देवदेहं नृदेहं वा तिर्यग्देहमथापि वा ॥ बिभृयाद्यः शरीरं च स कथं तां जयेदजाम् ॥ १७ ॥ त्रियुतस्तां कथं मायां जेतुं शक्तः पुमान्भवेत् ॥ वेदविद्योगविद्वाऽपि सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः ॥ १८ ॥ कामोऽपि तस्या रूपं हि रूपहीनः स्वरूपकृत् ॥ तद्वशे वर्तते देही विद्वान्मूर्खोऽथ मध्यमः ॥ १९ ॥

सांख्यशास्त्रका गहरा अध्ययन किया है, जो बिना कुछ खाये-पीये निरन्तर तपस्यामें रत रहते हैं तथा इन्द्रियाँ सदा जिनके वशमें रहती हैं, उन योगियोंके लिए भी माया अत्यन्त अजेय है ॥ १४ ॥ संगीतकी उत्तम जानकारी रखनेवाले हे मुनिवर! आपने अभी जो कहा है कि मैं मायापर विजय पा चुका हूँ, सो यह बात कभी किसीके भी सामने नहीं कहनी चाहिए। जब मैं (विष्णु) शिव, ब्रह्मा तथा सनकादि मुनि भी मायाको जीतनेमें असफल रहे, तब तुम तथा दूसरे किसी देवताकी क्या गणना की जाय? ॥१५॥१६॥ देवता, मानव अथवा पशुका शरीर धारण करनेवाला प्राणी भला अजन्मा मायाको कैसे जीत सकता है? ॥ १७ ॥ वेदके ज्ञाता, योगसाधनमें निपुण, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय एवं सत्त्व-रज-तमोमय किसी भी पुरुषके लिए मायापर विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं है॥१८॥ काम भी मायाका ही एक रूप है। उसकी कोई पृथक् आकृति नहीं है। छिपे रूपमें रहकर वह विद्वान्, मूर्ख अथवा मध्यम श्रेणीके सभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राणियोंको अपने वशमें किये रहता है ॥ १९ ॥ कभी-कभी तो काम धर्मज्ञ पुरुषके चित्तमें भी क्षोभ उत्पन्न कर देता है । फिर स्वाभाविक कर्मसे उसकी चेष्टा समझ ली जाय—यह बड़ी ही कठिन बात है ॥ २० ॥ नारदजी कहते हैं—ऐसा कहकर भगवान् विष्णु चुप हो गये और मेरा मन सन्देहसे भर गया । अतः उन जगत्प्रभु सनातन श्रीहरिसे मैंने पूछा—॥ २१ ॥ रमापते ! मायाका कैसा रूप है, उसकी कैसी आकृति है, उसमें कितनी शक्ति है, वह कहाँ रहती है और वह किसके आधारपर ठहरी हुई है ? ॥२२॥ यह मुझे बतानेकी कृपा करें। जगत्को धारण करनेवाले हे लक्ष्मीकान्त ! मुझे उस मायाको देखने और जाननेकी उत्कट इच्छा है । आप शीघ्र ही उसे दिखा और समझाकर मुझे प्रसन्न करनेकी कृपा करें ॥ २३ ॥ भगवान् विष्णु बोले—अखिल जगत्को धारण करनेकी शक्ति रखनेवाली वह माया त्रिगुणात्मिका, सर्वज्ञा, सर्वसम्मता, अजेया और अनेकरूपा है । वह सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त होकर रहती है ॥ २४ ॥ हे नारद ! तुम्हें यदि उसे देखनेकी इच्छा हो तो अभी गरुड़पर चढ़ो, हम दोनों अन्य लोकमें चलें ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मपुत्र नारदजी ! वहाँ मैं तुम्हें अजितात्माओंके लिए अजेय

कामः करोति धर्मज्ञं कदाचिद्विकलं पुनः ॥ स्वभावात्कर्मतो वाऽपि दुर्ज्ञेयं तस्य चेष्टितम् ॥२०॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा विरतो विष्णुरहं विस्मितमानसः ॥ तमब्रवं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम् ॥ २१ ॥ रमापते कथंरूपा माया सा कीदृशी पुनः ॥ कियद्बला क्वसंस्थाना कस्याधारा वदस्व मे ॥ २२ ॥ द्रष्टुकामोऽस्मि तां मायां दर्शयाशु महीधर ॥ ज्ञातुमिच्छामि तां सम्यक्प्रसादं कुरु मापते ॥ २३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्रिगुणा साऽखिलाधारा सर्वज्ञा सर्वसंमता ॥ अजेयाऽनेकरूपा च सर्वं व्याप्य स्थिता जगत् ॥ २४ ॥ दिदृक्षा यदि ते चित्ते नारदारोहणं कुरु ॥ गरुडे मत्समेतोऽद्य गच्छावोऽन्यत्र सांप्रतम् ॥२५॥ दर्शयिष्यामि ते मायां दुर्जयामजितात्मभिः ॥ दृष्ट्वा तां ब्रह्मपुत्र त्वं मा विषादे मनः कृथाः ॥ २६ ॥ इत्युक्त्वा देवदेवो मां सस्मार विनतासुतम् ॥ स्मृतमात्रस्तु गरुडस्तदाऽगाद्धरिसन्निधौ ॥ २७ ॥ आगतं गरुडं वीक्ष्य आरुरोह जनार्दनः ॥ समारोप्य च मां पृष्ठे गमनाय कृतादरः ॥ २८ ॥ चलितो विनतापुत्रो वैकुण्ठाद्वायुवेगवान् ॥ प्रेरितो यत्र कृष्णेन गन्तुकामेन काननम् ॥ २९ ॥ महावनानि दिव्यानि सरांसि सरितस्तथा ॥ पुरग्रामाकरादींश्च खेटखर्वटगोव्रजान् ॥ ३० ॥ मुनीनामाश्रमान्रम्यान्वापीश्च सुमनोहराः ॥ पल्वलानि विशालानि ह्रदान्पंकजभूषितान् ॥ ३१ ॥ मृगाणां च वराहाणां वृन्दान्यप्यवलोक्य च ॥ गतावावां कान्यकुब्जसमीपं

उस महामायाका दर्शन कराऊँगा । किन्तु उसे देखनेके पश्चात् तुम अपने मनमें विषादको स्थान न देना ॥ २६ ॥ इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् विष्णुने मुझसे कहकर विनतानन्दन गरुड़को याद किया । स्मरण करते ही गरुड़ उनके सामने आ गये ॥ २७ ॥ गरुड़को आये देखकर भगवान् विष्णु उनपर सवार हुए और मुझे भी बड़े आदरपूर्वक अपने पीछे बैठा लिया ॥ २८ ॥ वायुके समान तीव्रगामी गरुड़ने अब वैकुण्ठसे यात्रा कर दी । भगवान् श्रीहरि जिस ओर जाना चाहते, उधरके लिए संकेत कर देते और वहीं गरुड़का लक्ष्य बन जाता था ॥२९॥ यों बहुतसे विशाल वन, दिव्य सरोवर, नदियाँ, ग्राम, नगर, पर्वतके आस-पासके गाँव, गौओंके गोष्ठ, मुनियोंके मनोहर आश्रम, सुन्दर बावलियाँ, छोटे-बड़े अनेक तालाब, कमलसे सुशोभित अगाध जलवाली अनेक झीलें तथा मृगों एवं वराहोंके बहुतसे झुण्ड हमें दृष्टिगोचर हुए । गरुड़पर बैठकर इन सबपर दृष्टि डालते हुए हम दोनों कान्यकुब्ज नगरके पास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जा पहुँचे ॥३०-३२॥ वहाँ एक दिव्य सरोवर दिखायी पड़ा । कमल उस सरोवरकी शोभा बढ़ा रहे थे । हंस, सारस और चक्रवाकोंसे वह बड़ा ही मनोहर जान पड़ता था ॥३३॥ अनेक प्रकारके विकसित कमलोंसे वह शोभित था । उसका जल बड़ा ही पवित्र एवं मधुर था । झुण्डके झुण्ड भ्रमर गूँज रहे थे । उस सरोवरका मधुर जल क्षीरसागरके दूधसे होड़ कर रहा था । उसे देखकर भगवान् श्रीहरिने मुझसे कहा ॥३४॥३५॥ श्रीभगवान् बोले—हे नारद ! सारसोंकी बोलीसे शोभा पानेवाले इस अगाध सरोवरको देखो । इसमें चारों ओर कमल खिले हुए हैं । यह निर्मल जलसे परिपूर्ण है ॥ ३६ ॥ यहाँ स्नान करनेके पश्चात् हम लोग श्रेष्ठ नगर कान्यकुब्जमें चलें । यों कहकर भगवान् श्रीहरि हँसे और गरुड़से उतरकर मेरी तर्जनी अँगुली पकड़ ली । उस सरोवरकी बार बार प्रशंसा करते हुए वे मुझे तीरपर ले गये ॥३७॥३८॥ अत्यन्त मनोहर वृक्षोंकी छायासे उसका तट शोभित था । कुछ समय तक वहाँ विश्राम किया । तद-

गरुडासनो ॥ ३२ ॥ तत्र रम्यं सरो दिव्यं दृष्टं पंकजमंडितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ३३ ॥ नानावर्णैः प्रफुल्लैश्च पंकजैरुपरंजितम् ॥ शुचि मिष्टजलं भृङ्गयूथनादविराजितम् ॥ ३४ ॥ मामाह भगवान्वीक्ष्य तडागं परमाद्भुतम् ॥ स्पर्धकं चोदधेः क्षीरं मिष्टं वारि विशेषतः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पश्य नारद गंभीरं सरः सारसनादितम् ॥ सर्वत्र पंकजैश्छन्नं स्वच्छनीरप्रपूरितम् ॥ ३६ ॥ अत्र स्नात्वा गमिष्यावः कान्यकुब्जं पुरोत्तमम् ॥ इत्युक्त्वा गरुडादाशु मामुत्तार्य व्यतारयत् ॥ ३७ ॥ विहस्य भगवांस्तत्र जग्राह मम तर्जनीम् ॥ स्तुवन्सरोवरं भूयस्तीरे मामनयत्प्रभुः ॥ ३८ ॥ विश्रम्य तटभागे तु स्निग्धच्छाये मनोहरे ॥ मामुवाच मुने स्नानं कुरु त्वं विमले जले ॥ ३९ ॥ पश्चादहं करिष्यामि तडागेऽस्मिन्सुपावने ॥ साधूनामिव चेतांसि जलानि निर्मलानि च ॥ ४० ॥ सुरभीणि परागैस्तु पङ्कजानां विशेषतः ॥ इत्युक्तोऽहं भगवता मुक्त्वा वीणां मृगाजिनम् ॥ ४१ ॥ स्नानाय कृतधीस्तीरे गतः प्रेमसमन्वितः ॥ पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च शिखां बद्ध्वा कुशग्रहम् ॥ ४२ ॥ कृताऽऽचम्य शुचिस्तोये स्नातवानस्मि तज्जले ॥ यदा तस्मिञ्जले रम्ये स्नातोऽहं पश्यतो हरेः ॥ ४३ ॥ विहाय पौरुषं रूपं प्राप्तः स्त्रीत्वमनुत्तमम् ॥ हरिर्गृहीत्वा वीणां मे तथा कृष्णाजिनं शुभम् ॥ ४४ ॥ आरुह्य गरुडं तूर्णं जगाम स्वगृहं क्षणात् ॥

नन्तर भगवान्ने कहा—'हे मुने ! तुम पहले इस स्वच्छ जलमें स्नान करो ॥ ३९ ॥ उसके बाद मैं इस पावन सरोवरमें स्नान करूँगा । साधु पुरुषोंके चित्तकी भाँति इसका जल अत्यन्त स्वच्छ है । विशेषता यह है कि कमलोंके परागसे इसका जल सुवासित हो चुका है । इस प्रकार कहकर भगवान्ने मुझसे वीणा और मृगचर्म ले लिया । स्नान करनेकी बात मेरे भी मनमें जँच गयी । मैं प्रेमपूर्वक तटपर चला गया । हाथ-पैर धोनेके पश्चात् मैंने शिखा बाँधी और हाथमें कुश ले लिया ॥४ -४२॥ फिर आचमन करके मैं उस पवित्र जलमें स्नान करनेको उतरा । भगवान् श्रीहरि मेरे सामने विराजमान थे ॥४३॥ उस मनोहर जलमें मैंने ज्यों ही डुबकी लगायी, त्यों ही मेरी पुरुषाकृति विलुप्त हो गयी और मैं एक सुन्दरी रमणीके रूपमें परिणत हो गया । उसी क्षण भगवान मेरी वीणा और पवित्र मृगचर्म लेकर आकाशमार्गसे अपने धाम चले गये । तदनन्तर सुन्दर भूषणोंसे भूपित होकर मैं स्त्रीके रूपमें समय व्यतीत करने लगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥४४॥४५॥ उसी क्षण मेरे मनसे पूर्व शरीरकी स्मृति भी जाती रही। जगत्प्रभु भगवान् विष्णु और वीणाकी भी मुझे याद नहीं रही। मनमें अपार अज्ञान छा गया ॥४६ अत्यन्त लुभावने स्त्रीवेषको पाकर मैं उस सरोवरसे बाहर निकला। कमलसे भरे-पूरे शुद्ध जलवाले उस सरोवरपर मेरी आँखें चक्कर काटने लगीं ॥ ४७ ॥ नारीके वेषमें परिगत होकर मैं विचार कर रहा था कि यह क्या हो गया ? इतनेमें राजा तालध्वज अकस्मात् मेरे सामने पधारे। उनके साथ बहुतसे हाथी, घोड़े और रथ थे। वे रथपर बैठे थे ॥ ४८॥ ४९॥ उनकी युवावस्था थी। वे भूषण पहने हुए थे। जिससे ऐसा जान पड़ता था कि मानो कामदेव ही शरीर धारण करके सामने आ उपस्थित हुआ हो। मैं अलौकिक आभूषणोंसे अलंकृत था। सुन्दरी स्त्रीकी मेरी आकृति थी। चन्द्रमाके समान मेरा मुखमण्डल था। मुझे देखकर राजा तालध्वजके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। उन्होंने मुझसे पूछा–'हे कल्याणी ! तुम कौन हो ? कौन देवता तुम्हारे पिता हैं ? ॥५०॥५१॥ हे कान्ते ! मानव, गन्धर्व अथवा उरग–किसे तुम्हारा पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त है ? रूप और यौवनसे शोभा पानेवाली तुम अबला अकेली भटक रही हो ? ॥५२॥

ततोऽहं स्त्रीत्वमापन्नश्चारुभूषणभूषितः ॥४५॥ तत्क्षणान्मनसो जाता पूर्वदेहस्य विस्मृतिः ॥ विस्मृतोऽसौ जगन्नाथो महती विस्मृता पुनः ॥ ४६ ॥ संप्राप्य मोहिनीरूपं तडागान्निर्गतो बहिः ॥ अपश्यं नलिनीजुष्टं सरस्तद्विमलोदकम् ॥ ४७ ॥ किमेतदिति मनसाऽकरवं विस्मयं मुहुः ॥ एवं चिन्तयमानस्य नारीरूपधरस्य मे ॥४८॥ सहसा दृक्पथं प्राप्तस्तत्र तालध्वजो नृपः ॥ गजाश्वरथवृन्दैश्च संवृतो रथसंस्थितः ॥४९॥ युवा भूषण-संवीतो देहवानिव मन्मथः ॥ वीक्ष्य मां भूपतिस्तत्र दिव्यभूषणभूषिताम् ॥५०॥ राकाचंद्रमुखीं योषां विस्मयं परमं गतः ॥ पप्रच्छ काऽसि कल्याणि कस्य पुत्री सुरस्य वा ॥५१॥ मानुषस्य च वा कान्ते गंधर्वस्योरगस्य च ॥ एकाकिनी कथं बाला रूपयौवनभूषिता ॥ ५२ ॥ विवाहिताऽथ कन्या वा सत्यं वद सुलोचने ॥ किं पश्यसि सुकेशांते तडागेऽस्मिन्सुमध्यमे ॥५३॥ चिकीर्षितं पिकालापे ब्रूहि मन्मथमोहिनि ॥ भुंक्ष्व भोगान्मरालाक्षि मया सह कृशोदरि ॥ वांछितान्मनसा नूनं कृत्वा मां पतिमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तोऽहं तदा तेन राज्ञा तालध्वजेन च ॥ विमृश्य मनसाऽत्यर्थं तमुवाच विशांपते ॥ १ ॥ राजन्नाहं विजानामि पुत्री कस्येति निश्चयम् ॥ पितरौ क्व च मे केन स्थापिता च सरोवरे ॥ २ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे सुकृतं भवेत् ॥ निराधाराऽस्मि राजेन्द्र

हे सुलोचने ! तुम्हारा विवाह हो चुका है अथवा तुम अभी कुमारी हो ? सच्ची बात बताना। उत्तम वेणीसे शोभा पानेवाली हे सुमध्यमे ! तुम इस तालाबपर क्या देख रही हो ? ॥ ५३ ॥ कामदेवको मोहित करनेकी योग्यता रखनेवाली हे पिकवयनी प्रिये ! तुम अपना अभिप्राय व्यक्त करो। हे मरालाक्षी ! हे कृशोदरी ! यदि तुम कुमारी हो तो मुझ श्रेष्ठ पतिको पाकर मेरे सहयोगसे मनोऽभिलषित भोग प्राप्त कर सकती हो–इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५४॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

(स्त्रीरूपधारी नारदका राजा तालध्वजके साथ विवाह) नारदजी कहते हैं—इस प्रकार राजा तालध्वजके पूछनेपर मैंने अपने मनमें सम्यक् प्रकारसे विचार किया। तदनन्तर उनसे कहा—॥ १ ॥ राजन् ! मैं निश्चितरूपसे नहीं जानती कि किसकी कन्या हूँ। मेरे माता-पिता कहाँ हैं और कौन हैं। मुझे इस तालाबपर कौन लाया है—इसका भी मुझे कुछ पता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं है ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कैसे मुझे सुखकी घड़ी सुलभ हो सकेगी, मेरा कोई भी आश्रय नहीं है–इस प्रकारकी चिन्ताएँ मेरे मनमें समायी हुई हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दैवकी महिमा सर्वोपरि है। मेरा कोई भी पुरुषार्थ काम नहीं कर पाता। हे भूपाल ! आप धर्मज्ञ पुरुष हैं। जो इच्छा हो, सो कर सकते हैं ॥ ४ ॥ मैं आपके अधीन हूँ। दूसरा कोई भी मेरा रक्षक नहीं हैं। मेरे न पिता हैं, न बन्धु-बान्धव हैं और न कोई स्थान ही है ॥ ५ ॥ इस तरह मुझसे बातें होनेके पश्चात् एक बार उन्होंने मेरे विशाल नेत्रोंपर दृष्टि डाली, फिर अपने सेवकोंसे कहा–॥ ६ ॥ तुमलोग एक उत्तम पालकी ले आओ। उसे ढोनेवाले चार कहाँर होने चाहिये। वह पालकी रेशमी ओहारसे ढँकी हुई हो। कारण, उसीपर यह सुन्दरी स्त्री सवार होगी ॥ ७ ॥ उसमें कोमल विस्तर बिछे हों। सोनेकी बनी हुई वह चौकोर शिबिका खूब लम्बी-चौड़ी होनी चाहिये ॥ ८ ॥ राजा तालध्वजकी बात सुनकर शीघ्रगामी सेवकोंने मेरे लिए ओहारयुक्त दिव्य पालकी तुरन्त लाकर उपस्थित कर दी ॥ ९ ॥ उन नरेशका प्रिय कार्य करनेके विचारसे मैं उस शिबिकापर जा बैठी। मुझे अपने घर ले जाकर बड़े

चिंतयामि चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ दैवमेव परं राजन्नास्त्यत्र पौरुषं मम ॥ धर्मज्ञोऽसि महीपाल यथेच्छसि तथा कुरु ॥४॥ तवाधीनाऽस्म्यहं भूप न मे कोऽप्यस्ति पालकः ॥ न पिता न च माता च न स्थानं न च बांधवाः ॥५॥ इत्युक्तोऽसौ मया राजा बभूव मदनातुरः॥ मां निरीक्ष्य विशालाक्षीं सेवकानित्युवाच ह ॥ ६ ॥ नरयानमानयध्वं चतुर्वाह्यं मनोहरम् ॥ आरोहणार्थमस्यास्तु कौशेयांबरवेष्टितम् ॥ ७ ॥ मृद्वास्तरणसंयुक्तं मुक्ताजाल-विभूषितम् ॥ चतुरस्रं विशालं च सुवर्णरचितं शुभम् ॥ ८ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भृत्याः सत्वरगामिनः ॥ आनिन्युः शिबिकां दिव्यां मदर्थे वस्त्रवेष्टिताम् ॥ ९ ॥ आरूढोऽहं तदा तस्यां तस्य प्रियचिकीर्षया ॥ मुदितोऽसौ गृहे नीत्वा मां तदा पृथिवीपतिः ॥ १० ॥ विवाहविधिना राजा शुभे लग्ने शुभे दिने ॥ उपयेमे च मां तत्र हुतभुक्सन्निधौ ततः ॥११॥ तस्याहं वल्लभा जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ सौभाग्यसुन्दरीत्येवं नाम तत्र कृतं मम ॥ १२ ॥ रममाणो मया सार्धं सुखमाप महीपतिः ॥ नानाभोगविलासैश्च कामशास्त्रोदितैस्तथा ॥ १३ ॥ राजकार्याणि संत्यज्य क्रीडासक्तो दिवानिशम् ॥ नासौ विवेद गच्छंतं कालं कामकलारतः ॥ १४ ॥ उद्यानेषु च रम्येषु वापीषु च गृहेषु च ॥ हर्म्येषु वरशैलेषु दीर्घिकासु वरासु च ॥१५॥ वारुणीमदमत्तोऽसौ विहरन्कानने शुभे ॥ विसृज्य सर्वकार्याणि मदधीनो बभूव ह ॥ १६ ॥ व्यासाहं तेन संसक्ता क्रीडारसवशी-

आनन्दित हुए ॥ १० ॥ उत्तम दिन और लग्न उपस्थित होनेपर वैवाहिक विधिके अनुसार अग्निके साक्षित्वमें राजाने मेरे साथ विवाह कर लिया ॥ ११ ॥ उस समय मैं परम सुन्दरी स्त्रीके वेषमें था। राजा तालध्वज प्राणोंसे भी बढ़कर प्रेम करते थे। उन्होंने मेरा नाम रख दिया–'सौभाग्यसुन्दरी' ॥ १२ ॥ मेरे साथ रमण करते हुए राजाके सुखकी सीमा नहीं रही। कामशास्त्रके अनुसार भाँति-भाँतिके भोग-विलास हमें सुलभ रहे ॥ १३ ॥ राज्यका प्रबन्ध छोड़कर मेरे साथ क्रीड़ा करनेमें ही राजाका सारा समय व्यतीत होने लगा। कामकलामें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण बीतते हुए समयपर उनका कुछ भी ध्यान नहीं रहा ॥ १४ ॥ अनेकों उपवन, मनोहर बावलियाँ, सुन्दर भवन और उत्तम अटारियाँ–ये सभी हमारे विहार-स्थलका काम देते थे ॥ १५ ॥ मधु पान करके राजा तालध्वज अपना सारा काम-काज छोड़कर नित्य विभिन्न वनोंमें घूमते रहते थे। इस प्रकार वे सर्वथा मेरे अधीन हो गये थे ॥ १६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे व्यासजी ! उस समय राजा तालध्वजपर मेरा असीम अनुराग हो गया था। क्रीड़ाके रसने मेरी सारी विवेकशक्ति नष्ट कर दी थी। पहले मेरा शरीर पुरुषका था एवं मुनिकुलमें मेरी उत्पत्ति हुई थी—यह मुझे तनिक भी ध्यान नहीं रहा ॥ १७ ॥ 'ये मेरे पतिदेव हैं, मैं इनकी भार्या हूँ, अनेक स्त्रियोंकी अपेक्षा मैं इन्हें अधिक प्रिय हूँ, मुझे पटरानी होनेका सौभाग्य प्राप्त है, मैं सती-साध्वी एवं विलासज्ञा हूँ, मेरा जीवन सफल है' ॥ १८ ॥ प्रेममें आबद्ध होकर इस प्रकारके विचार मैं रात-दिन किया करता था। उन नरेशके साथ क्रीड़ामें आसक्त होकर सुखका अनुभव करना ही मेरा स्वभाव बन गया था ॥ १९ ॥ राजा तालध्वजके पास रहते समय मनमें प्रबल आसक्ति आ जानेके कारण ब्रह्म-सम्बन्धी सनातन ज्ञान-विज्ञान एवं धर्मशास्त्रका रहस्य मुझे बिल्कुल भूल गया था ॥ २० ॥ हे मुने ! इस प्रकार क्रीड़ामें आसक्त मेरे बारह वर्ष एक क्षणके समान बीत गये ॥ २१ ॥ मेरे गर्भवती होनेपर राजा तालध्वजको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने विधिपूर्वक गर्भाधानसंस्कार कराया ॥ २२ ॥ गर्भके समय मेरी किस चीजपर इच्छा है—इस विषयमें प्रेमपूर्वक राजा बार बार मुझसे पूछा करते थे,

कृता ॥ स्मृतवान्पूर्वदेहं न पुंभावं मुनिजन्म च ॥ १७ ॥ ममैवायं पतिर्योषाऽहं पत्नीषु प्रिया सती ॥ पट्टराज्ञी विलासज्ञा सफलं जीवितं मम ॥ १८ ॥ इति चिंतयती तस्मिन्प्रेमबद्धा दिवानिशम् ॥ क्रीडासक्ता सुखे लुब्धा तं स्थिता वशवर्तिनी ॥ १९ ॥ विस्मृतं ब्रह्मविज्ञानं ब्रह्मज्ञानं च शाश्वतम् ॥ धर्मशास्त्रपरिज्ञानं तदासक्तमनाः स्थिता ॥ २० ॥ एवं विहरतस्तत्र वर्षाणि द्वादशैव तु ॥ गतानि क्षणवत्कामक्रीडासक्तस्य मे मुने ॥ २१ ॥ जाता गर्भवती चाहं मुदं प्राप नृपस्तदा ॥ कारयामास विधिवद्गर्भसंस्कारकर्म च ॥ २२ ॥ अपृच्छद्दोहदं राजा प्रीणयन्मां पुनः पुनः ॥ नाब्रवं लज्जमानाऽहं नृपं प्रीतमना भृशम् ॥ २३ ॥ संपूर्णे दशमे मासि पुत्रो जातस्ततो मम ॥ शुभेऽह्नि ग्रहनक्षत्रलग्नताराबलान्विते ॥ २४ ॥ बभूव नृपतेर्गेहे पुत्रजन्ममहोत्सवः ॥ राजा परमसन्तुष्टो बभूव सुतजन्मतः ॥ २५ ॥ सूतकांते सुतं वीक्ष्य राजा मुदमवाप ह ॥ अहं भूमिपतेश्चासं प्रिया भार्या परंतप ॥ २६ ॥ ततो वर्षद्वयांते वै पुनर्गर्भो मया धृतः ॥ द्वितीयस्तु सुतो जातः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ २७ ॥ सुधन्वेति सुतस्याथ नाम चक्रे नृपस्तदा ॥ वीरवर्मेति ज्येष्ठस्य ब्राह्मणैः प्रेरितस्स्वयम् ॥ २८ ॥ एवं द्वादश पुत्राश्च प्रसूता भूपसंमताः ॥ मोहितोऽहं तदा तेषां प्रीत्या पालनलालने ॥ २९ ॥ पुनरष्ट सुताः काले काले जाताः सरूपिणः ॥ गार्हस्थ्यं मे ततः पूर्णं सम्पन्नं सुखसाधनम् ॥ ३० ॥ तेषां दारक्रियाः काले कृता

किन्तु लज्जाके कारण मैं कुछ कह नहीं सकता था ॥ २३ ॥ दस महीने पूरे होनेपर पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय दिन, ग्रह, नक्षत्र, लग्न और तारा—सभी श्रेष्ठ थे ॥ २४ ॥ राजभवनमें बड़े समारोहके साथ पुत्रजन्मोत्सव मनाया गया। पुत्रजन्मसे राजाके मनमें असीम प्रसन्नता हुई ॥ २५ ॥ सूतक समाप्त हो जानेपर जब राजाने पुत्रका मुख देखा, तब उनके हर्षकी सीमा नहीं रही। हे परम तपस्वी व्यासजी ! यों मैं राजा तालध्वजकी पत्नी बन गया ॥ २६ ॥ दो वर्षके बाद मुझे पुनः गर्भ रह गया। समयानुसार सर्वलक्षणसम्पन्न दूसरे पुत्रकी उत्पत्ति हुई ॥ २७ ॥ ब्राह्मणोंकी आज्ञासे राजाने बड़े पुत्रका नाम वीरवर्मा और छोटे पुत्रका नाम सुधन्वा रखा ॥ २८ ॥ इस प्रकार राजाके सम्पर्कमें रहकर मैंने बारह पुत्र उत्पन्न किये। उस समय मोहवश मैं उन बच्चोंके लालन-पालनमें प्रेमपूर्वक लगा रहा ॥ २९ ॥ समय-समयपर मेरे द्वारा और आठ सुन्दर पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर तो सुखका साधनभूत मेरा गार्हस्थ्य जीवन साङ्गोपाङ्ग पूरा हो गया ॥ ३० ॥ राजाने समयानुसार उचित रूपसे लड़कोंके विवाह कर दिये । घरमें बहुएँ आ गयीं । पुत्रों और बहुओंको मिलाकर मेरा एक महान् परिवार बन गया ॥३१॥ फिर लड़कोंके भी लड़के हुए । खेलने-कूदने एवं नाना प्रकारके भोग भोगनेको हम नित्य विभिन्न वनोंमें घूमते रहते थे । मेरा अच्छा समय व्यतीत होने लगा । निरन्तर मेरे मोहकी वृद्धि हो रही थी ॥३२॥ कभी सुख और सम्पत्ति सामने उपस्थित होती और कभी लड़के बीमार पड़ते तथा उन्हें कष्ट भोगना पड़ता तो मेरे मनमें अत्यन्त अशान्ति फैल जाती थी ॥३३॥ कभी-कभी पुत्रों और बहुओंमें परस्पर अत्यन्त दारुण कलह मच जाता था, जिससे मैं दुखी हो उठता था ॥ ३४ ॥ हे मुनिवर ! संकल्पसे उत्पन्न सुख एवं दुःखमयी चिन्ता बिल्कुल व्यर्थ और दुष्परिणामी है । फिर भी मैं उसीमें उलझा रहता था ॥३५॥ पूर्व समयकी उत्तम जानकारी और शास्त्र-ज्ञान कुछ भी नहीं रहा । स्त्री बनकर घरेलू कार्योंमें मैं सर्वथा व्यस्त रहता था ॥३६॥ मोह बढ़ानेवाले अहंकारकी सीमा नहीं रही । मैं सोचता था, ये मेरे पराक्रमी पुत्र हैं और ये कुलीन घरमें उत्पन्न होनेवाली

राज्ञा यथोचिताः ॥ स्नुषाभिश्च तथा पुत्रैः परिवारो महानभूत् ॥३१॥ ततः पौत्रादिसंभूतास्तेऽपि क्रीडारसान्विताः ॥ आसन्नानारसोपेता मोहवृद्धिकरा भृशम् ॥ ३२ ॥ कदाचित्सुखमैश्वर्यं कदाचिद्दुःखमद्भुतम् ॥ पुत्रेषु रोगजनितं देहसंतापकारकम् ॥ ३३ ॥ परस्परं कदाचित्तु विरोधोऽभूत्सुदारुणः ॥ पुत्राणां वा वधूनां च तेन संतापसंभवः ॥ ३४ ॥ सुखदुःखात्मके घोरे मिथ्याचारकरे भृशम् ॥ संकल्पजनिते क्षुद्रे मग्नोऽहं मुनिसत्तम ॥ ३५ ॥ विस्मृतं पूर्वविज्ञानं शास्त्रज्ञानं तथा गतम् ॥ योषाभावे विलीनोऽहं गृहकार्येषु सर्वथा ॥ ३६ ॥ अहंकारस्तु संजातो भृशं मोहविवर्धकः ॥ एते मे बलिनः पुत्राः स्नुषाः सुकुलसंभवाः ॥३७॥ एते पुत्राः सुसन्नद्धाः क्रीडंति मम वेश्मसु ॥ धन्याऽहं खलु नारीणां संसारेऽस्मिन्नहो भृशम् ॥ ३८ ॥ नारदोऽहं भगवता वंचितो मायया किल ॥ न कदाचिन्मयाप्येवं चिन्तितं मनसा किल ॥ ३९ ॥ राजपत्नी शुभाचारा बहुपुत्रा पतिव्रता ॥ धन्याऽहं किल संसारे कृष्णैवं मोहितस्त्वहम् ॥ ४० ॥ अथ कश्चिन्नृपः कामं दूरदेशाधिपो महान् ॥ अरातिभावमापन्नः पतिना सह मानद ॥ ४१ ॥ कृत्वा सैन्यसमायोगं रथैश्च वारणैर्युतम् ॥ आजगाम कान्यकुब्जे पुरे युद्धमचिंतयत् ॥ ४२ ॥ वेष्टितं नगरं तेन राज्ञा सैन्ययुतेन च ॥ मम पुत्राश्च पौत्राश्च निर्गता नगरात्तदा ॥ ४३ ॥ संग्रामस्तुमुलस्तत्र कृतस्तैस्तेन पुत्रकैः ॥ हता रणे सुताः सर्वे वैरिणा कालयोगतः ॥ ४४ ॥ राजा भग्नस्तु

मेरी बहुएँ हैं ॥ ३७ ॥ मेरे ये लड़के बढ़िया वस्त्र पहनकर घरपर खेल-कूद रहे हैं । अहो ! जगत्में जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सबमें मैं अवश्य ही बहुत भाग्यशालिनी हूँ ॥ ३८ ॥ मैं नारद हूँ, भगवान्की मायाने मेरी बुद्धि हर ली है—इस प्रकारका विचार मेरे मनमें कभी उठता ही नहीं था ॥ ३९ ॥ हे व्यासजी ! मायासे मोहित होनेके कारण मेरी यही धारणा बनी रहती थी कि मैं उत्तम आचरणवाली एक पतिव्रता रानी हूँ, मेरे बहुतसे पुत्र हैं और इस जगत्में मेरा जीवन धन्य है ॥ ४० ॥ हे मानद ! इसके बाद दूरदेशवासी कोई प्रसिद्ध नरेश मेरे स्वामीके साथ शत्रुता ठानकर नगरपर चढ़ आया । उसने हाथियों और रथोंके द्वारा अपनी सेना सजा ली थी । वह युद्ध करनेकी बात सोच रहा था ॥४१॥४२॥ अपनी सेनासे उसने मेरा नगर घेर लिया । तब मेरे लड़के और पोते भी नगरसे बाहर निकल पड़े ॥ ४३ ॥ अब उस शत्रुनरेशसे भयंकर संग्राम छिड़ गया । विकराल कालके प्रभावसे मेरे सभी पुत्र संग्राममें शत्रुके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वारा मार डाले गये ॥४४॥ तब राजा तालध्वज हतोत्साह होकर युद्धस्थलसे घर लौट आये। मैंने सुना कि उस अत्यन्त भयावह संग्राममें मेरे सब लड़के-पोते मर मिटे ॥४५॥ शत्रु राजा बड़ा बलवान् था। मेरे पुत्रों और पौत्रोंको मारकर वह चला गया। अब मेरी आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा गिरने लगी। मैं युद्धभूमिमें जा पहुँचा ॥४६॥ जमीनपर पड़े हुए पुत्रों और पौत्रोंको देखकर मेरे दुःखकी सीमा नहीं रही। हे आयुष्मन्! तब शोकरूपी सागरमें डूबकर मैं जोर-जोरसे रोने लगा ॥४७॥ हाय पुत्रो! तुम कहाँ चले गये? इस दुष्ट नरेशने मेरी निर्मम हत्या कर दी। हाय! दैव अत्यन्त दुर्दान्त है। उसे कोई भी नहीं टाल सकता ॥४८॥ इस प्रकार मैं विलाप कर ही रहा था-इतनेमें भगवान् विष्णु एक बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ पधारे। देखनेमें वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे ॥४९॥ हे वेदज्ञ! उन प्रभुका विग्रह सुन्दर वस्त्रसे शोभित था। उन्होंने स्वयं मेरे सामने आनेकी कृपा की थी। मैं अत्यन्त कातर होकर रो रहा था। वे मुझसे कहने लगे ॥५०॥ ब्राह्मणरूपधारी भगवानने कहा–'कोयलके समान मधुर बोलनेवाली हे सुन्दरी! तुम क्यों रो रही हो? यह एकमात्र भ्रम है। पति-पुत्रादियुक्त गृहस्थीमें मोहवश ऐसी

संग्रामादागतः स्वगृहं पुनः ॥ श्रुतं मया मृताः पुत्राः संग्रामे भृशदारुणे ॥ ४५ ॥ स हत्वा मे सुतान्पौत्रान्गतो राजा बलान्वितः ॥ क्रंदमाना ह्यहं तत्र गता समरमण्डले ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा तान्पतितान्पुत्रान्पौत्रांश्च दुःखपीडिता ॥ विललापाहमायुष्मञ्छोकसागरसंप्लवे ॥ ४७॥ हा पुत्राः क्व गता मेऽद्य हा हताऽस्मि दुरात्मना ॥ दैवेनातिबलिष्ठेन दुर्वारेणातिपापिना ॥ ४८ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र भगवान्मधुसूदनः ॥ कृत्वा रूपं द्विजस्यागाद्वृद्धः परमशोभनः ॥ ४९ ॥ सुवासा वेदवित्कामं मत्समीपं समागतः ॥ मामुवाचातिदीनां संक्रंदमानां रणाजिरे ॥ ५० ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किं विषीदसि तन्वंगि भ्रमोऽयं प्रकटीकृतः ॥ मोहेन कोकिलालापे पतिपुत्रगृहात्मके ॥ ५१ ॥ का त्वं कस्याः सुताः केऽमी चिंतयात्मगतिं पराम् ॥ उत्तिष्ठ रोदनं त्यक्त्वा स्वस्था भव सुलोचने ॥५२॥ स्नानं च तिलदानं च पुत्राणां कुरु कामिनि ॥ परलोकगतानां च मर्यादारक्षणाय वै ॥ ५३ ॥ कर्तव्यं सर्वथा तीर्थे स्नानं तु न गृहे क्वचित् ॥ मृतानां किल बन्धूनां धर्मशास्त्रविनिर्णयः ॥ ५४ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तेन विप्रेण वृद्धेन प्रतिबोधिता ॥ उत्थिताऽहं नृपेणाथ युक्ता बंधुभिरावृता ॥ ५५ ॥ अग्रतो द्विजरूपेण भगवान् भूतभावनः ॥ चलिताऽहं ततस्तूर्णं तीर्थं परमपावनम् ॥ ५६ ॥ हरिर्मां कृपया तत्र पुंतीर्थे सरसि प्रभुः ॥ नीत्वा मां भगवान्विष्णुर्द्विजरूपी जनार्दनः ॥ ५७ ॥ स्नानं कुरु तडागेऽस्मिन्पावने

स्थिति आ ही जाती है, तुम अपने परम आत्मस्वरूपके ऊपर तो विचार करो। सोचो, तुम कौन हो? ये किसके पुत्र हैं और ये कौन हैं? हे सुलोचने! उठो और रोना-धोना छोड़कर स्वस्थ हो जाओ ॥५१॥ ५२॥ हे कामिनी! मर्यादाकी रक्षाके लिये स्नान करके परलोकवासी पुत्रोंको तिलाञ्जलि देनी चाहिये। धर्मशास्त्रका निर्णय है कि मृत बान्धवोंके निमित्त तीर्थमें स्नान करके तर्पण करे। यह कार्य घरपर कभी नहीं किया जा सकता ॥ ५३ ॥ ५४॥ नारदजी कहते हैं–वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें पधारे हुए भगवान विष्णुने यों कहकर मुझे समझाया। तब मैं राजाको साथ लेकर चल पड़ा। बहुत-से बन्धु-बान्धव भी हमारे साथ हो लिये। विप्र-वेषधारी भूतभावन भगवान् विष्णु आगे-आगे चले। तत्पश्चात् मैं तुरन्त पावन तीर्थके लिये चल पड़ा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ द्विजरूपधारी भगवान विष्णु कृपापूर्वक मुझे पुंतीर्थमें ले गये। वहाँ एक पवित्र सरोवर था। भगवान श्रीहरिने मुझसे कहा–॥५७॥ 'हे गजगामिनी! कार्य करनेका समय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपस्थित है। इस पवित्र तीर्थमें स्नान करके तुम पुत्र-सम्बन्धी निरर्थक शोकसे रहित हो जाओ ॥ ५८ ॥ जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हारे करोड़ों पुत्र, पिता, पति, भ्राता और जामाता मर चुके हैं ॥ ५९ ॥ उनमें तुम किसका शोक मनाती हो ? यह सब मनका भ्रम है। स्वप्नकी तुलना करनेवाला यह व्यर्थ चिन्तन प्राणियोंको केवल कष्ट ही देनेवाला है ॥ ६० ॥ नारदजी कहते हैं–भगवान विष्णुके मुखसे निकली हुई इस बातको सुनकर उनकी प्रेरणाके अनुसार मैं पुरुषसंज्ञक तीर्थमें स्नान करनेके लिये उतरा ॥६१॥ उस तीर्थमें डुबकी लगाते ही मेरी आकृति तुरन्त पुरुषाकार बन गयी। भगवान् विष्णु मेरी वीणा लेकर तटपर विराजमान थे ॥६२॥ हे द्विजवर! स्नान करनेके पश्चात् मुझे कमललोचन भगवान विष्णुके साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए। फिर तो मेरे मनकी विस्मृति दूर हो गयी ॥६३॥ सोचने लगा, भगवानके साथ मैं नारद यहाँ उपस्थित हूँ। मायाके प्रभावसे मेरी स्त्री जैसी आकृति हो गयी थी। मैं इस प्रकारकी बातें सोच

गजगामिनि ॥ त्यज शोकं क्रियाकालः पुत्राणां च निरर्थकम् ॥ ५८ ॥ कोटिशस्ते मृताः पुत्रा अन्यजन्मसमुद्भवाः ॥ पितरः पतयश्चैव भ्रातरो जामयस्तथा ॥ ५९ ॥ केषां दुःखं त्वया कार्यं भ्रमेऽस्मिन्मानसोद्भवे ॥ वितथे स्वप्नसदृशे तापदे देहिनामिह ॥ ६० ॥ नारद उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तीर्थे पुरुषसंज्ञके ॥ प्रविष्टा स्नातुकामाऽहं प्रेरिता तत्र विष्णुना ॥ ६१ ॥ मज्जनादेव तीर्थेषु पुमाञ्जातः क्षणादपि ॥ हरिर्वीणां करे कृत्वा स्थितस्तीरे स्वदेहवान् ॥ ६२ ॥ उन्मज्ज्य च मया तीरे दृष्टः कमललोचनः ॥ प्रत्यभिज्ञा तदा जाता मम चित्ते द्विजोत्तम ॥ ६३ ॥ संचिंतितं मया तत्र नारदोऽहमिहागतः ॥ हरिणा सह स्त्रीभावं प्राप्तो मायाविमोहितः ॥ ६४ ॥ इति चिंतापरश्चाहं यदा जातस्तदा हरिः ॥ मामाह नारदागच्छ किं करोषि जले स्थितः ॥ ६५ ॥ विस्मितोऽहं तदा स्मृत्वा स्त्रीभावं दारुणं भृशम् ॥ पुनः पुरुषभावश्च संपन्नः केन हेतुना ॥ ६६ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

॥ नारद उवाच ॥ मां दृष्ट्वा नारदं विप्रं विस्मितोऽसौ महीपतिः ॥ क्व गता मम भार्या सा कुतोऽयं मुनिसत्तमः ॥ १ ॥ विललाप नृपस्तत्र हा प्रियेति मुहुर्मुहुः ॥ क्व गता मां परित्यज्य विलपन्तं वियोगिनम् ॥२॥ विना त्वां विपुलश्रोणि वृथा मे जीवितं गृहम् ॥ राज्यं कमलपत्राक्षि किं करोमि शुचिस्मिते ॥ ३ ॥ न प्राणा मे बहिर्यान्ति विरहेण तवाधुना ॥ गतो वै प्रीतिधर्मस्तु त्वामृते प्राणधारणात् ॥ ४ ॥ विलपामि विशालाक्षि

ही रहा था कि भगवान श्रीहरिने मुझसे कहा–'नारद ! यहाँ आओ, जलमें खड़े होकर क्या कर रहे हो ?' ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ मैंने सोचा, मैं अभी अत्यन्त दारुण स्त्रीके वेषमें था, फिर कैसे पुरुष हो गया ? मेरे आश्चर्यकी सीमा नहीं रही ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

(महामायाकी महिमा) नारदजी बोले–मुझ ब्राह्मण नारदको देखकर राजा तालध्वज अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये। सोचा, मेरी पत्नी कहाँ चली गयी और ये मुनिवर नारद कहाँसे आ गये ॥ १ ॥ उन्होंने बारम्बार विलाप करना आरम्भ किया। उन्होंने कहा–'हा प्रिये ! मैं तेरे वियोगमें पड़कर विलाप कर रहा हूँ। मुझे छोड़कर तू कहाँ चली गयी ? ॥ २ ॥ हे शुचिस्मिते ! तेरे नेत्र कमलपत्रके समान विशाल हैं। हे विपुलश्रोणी ! मैं अब क्या करूँ। तेरे विना मेरा जीवन, गृह और राज्य सब-के-सब व्यर्थ हैं ॥ ३ ॥ तेरे विरहसे मेरे प्राण क्यों नहीं निकल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहे हैं ? तू न रही तो जीवन धारण करनेसे भी मुझे कोई प्रयोजन नहीं रहा । ४।। हे विशालाक्षी ! मैं रो रहा हूँ । तू प्रिय उत्तर देनेकी कृपा कर । तूने प्रथम मिलनमें मेरे प्रति जो प्रेम दिखलाया था, वह अब कहाँ चला गया ? ।।५।। हे सुभ्रु ! क्या तू जलमें डूब गयी अथवा तुझको मछली या कछुए खा गये ? या कि मेरे दुर्भाग्यवश तू वरुणके हाथ लग गयी ।। ६ ।। अमृतके समान मधुर भाषण करनेवाली हे प्रिये ! तेरे सभी अंग बड़े मनोहर थे । तुझे धन्यवाद है, जो पुत्रोंके प्रति तूने सच्चा प्रेम दिखलाया ।।७।। मैं तेरा पति होकर दीनभावसे विलाप कर रहा हूँ और तू पुत्रस्नेहके पाशसे बँधी है । ऐसी स्थितिमें मुझे छोड़कर तेरा स्वर्ग सिधारना शोभा नहीं देता ।। ।। हे कान्ते ! मेरे दोनों ही सर्वस्व छिन गये । पुत्र मर ही चुके थे और तू प्राणप्यारी भी मेरे साथ न रह सकी । हे प्रिये ! मैं अत्यन्त दुखी हूँ । फिर भी मेरे प्राण शरीरसे अलग नहीं हो रहे हैं ।।९।। मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? इस समय संसारमें राम भी नहीं हैं । क्योंकि स्त्रीके वियोगका दुःख जाननेवाले वे ही हैं ।।१०।। जगत्‌में प्रतिकूल घटना उपस्थित करनेवाले ब्रह्मा अवश्य ही बड़े निष्ठुर हैं । वे समान चित्तवाले स्त्रीपुरुषका मरण

देहि प्रत्युत्तरं प्रियम् ।। क्व गता सा मयि प्रीतिर्याऽभूत्प्रथमसङ्गमे ।। ५ ।। निमग्ना किं जले सुभ्रूर्भक्षिता मत्स्यकच्छपैः ।। गृहीता वरुणेनाथ मम दौर्भाग्ययोगतः ।। ६ ।। धन्या सुचारुसर्वाङ्गि या त्वं पुत्रैः समागता ।। अकृत्रिमस्तु पुत्रेषु स्नेहस्तेऽमृतभाषिणि ।।७।। न युक्तमधुना यन्मां विहाय त्रिदिवं गता ।। विलपन्तं पतिं दीनं पुत्रस्नेहेन यन्त्रिता ।।८।। उभयं मे गतं कान्ते पुत्रस्त्वं प्राणवल्लभे ।। तथापि मरणं नास्ति दुःखितस्य भृशं प्रिये ।। ९ ।। किं करोमि क्व गच्छामि रामो नास्ति महीतले ।। रामाविरहजं दुःखञ्जानाति रघुनन्दनः ।। १० ।। विधिना निष्ठुरेणात्र विपरीतं कृतम्भुवि ।। दम्पत्योर्मरणं भिन्नं सर्वथा समचित्तयोः ।। ११ ।। उपकारस्तु नारीणां मुनिभिर्विहितः किल ।। यदुक्तं धर्मशास्त्रेषु ज्वलनं पतिना सह ।।१२।। एवं विलपमानं तं राजानम्भगवान्हरिः ।। निवारयामास तदा वचनैर्युक्तियोजितैः ।।१३।। श्रीभगवानुवाच ।। किं विषीदसि राजेंद्र क्व गता ते प्रियाऽङ्गना ।। न श्रुतं किं त्वया शास्त्रं न कृतोऽसौ बुधाश्रयः ।। १४ ।। का सा कस्त्वं क्व संयोगः वियोगः कीदृशस्तव ।। प्रवाहरूपे संसारे नृणां नौतरतामिव ।।१५।। गृहे गच्छ नृपश्रेष्ठ वृथा ते रुदितेन किम् ।। संयोगश्च वियोगश्च दैवाधीनः सदा नृणाम् ।। १६ ।। अनया सह ते राजन्संयोगस्त्विह संवृतः ।। भुक्ता त्वया विशालाक्षी सुन्दरी तनुमध्यमा ।। १७ ।। न दृष्टौ पितरावस्यास्त्वया प्राप्ता सरोवरे ।। काकतालीप्रसंगेन यद्भूतं तत्तथा

विभिन्न समयमें क्यों किया करते हैं ।। ११ ।। मुनियोंने स्त्रियोंका अवश्य ही बड़ा उपकार करते हुए यह स्पष्ट कह दिया है कि 'पतिके मर जानेपर स्त्री उसके साथ चितामें जल जाय' ।।१२।। इस प्रकार राजा तालध्वज विलख रहे थे । तब भगवान् श्रीहरिने अनेक प्रकारके युक्तिपूर्ण वचन कहकर उन्हें चुप कराया ।।१३।। श्रीभगवान् बोले—हे राजेन्द्र ! क्यों रोते हो ? तुम्हारी प्राणप्यारी स्त्री कहाँ गयी ? क्या तुम्हें शास्त्रश्रवणका अवसर नहीं मिला अथवा तुम ज्ञानी पुरुषोंके सम्पर्कसे सदा वंचित ही रहे ? ।।१४।। वह स्त्री कौन थी, तुम कौन हो, कैसा संयोग और कैसा वियोग ? वेगपूर्वक बहनेवाले इस संसाररूपी समुद्रमें मनुष्योंका सम्बन्ध वैसा ही है, जैसे नौकापर चढ़े हुए पथिकोंका ।।१५।। हे महाराज ! अब तुम घर जाओ । तुम्हारे इस रोने-धोनेसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता । मनुष्योंका संयोग-वियोग सदा दैवके विधानपर निर्भर है ।। १६ ।। हे राजन् ! विशाल नेत्रोंवाली इस सुन्दरीसे सम्बन्ध होनेपर भोग-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विलास करनेका काफी अवसर तुम्हें प्राप्त हो चुका है ॥१७॥ एक सरोवरपर इसके साथ तुम्हारा संयोग हुआ था। उस समय इसके माता-पिता तुम्हें दिखायी नहीं पड़े थे। यह अवसर काकतालीय न्यायसे जैसे आया था, वैसे ही अब चला भी गया ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र! शोक मत करो। कालकी गतिको रोकना बड़ा ही कठिन काम है। अब तुम घर जाओ और वहाँ यथेच्छ भोग भोगो ॥१९॥ उस सुन्दरीसे जैसे तुम्हारा संयोग हुआ था, वैसे ही वियोग भी हो गया। तुम जैसेके तैसे रह गये। हे राजन्! अब घर जाकर राज-काज सँभालो ॥२०॥ हे भूपेन्द्र! इस समय तुम्हारे रोनेसे वह स्त्री आ जाय—यह सर्वथा असम्भव है। तुम व्यर्थ ही इस शोकके पचड़ेमें पड़े हुए हो। अब कुछ योगयुक्त बननेका यत्न करो ॥२१॥ भोग समयानुसार जैसे आता है, उसी प्रकार चला भी जाता है। अतः इस असार संसारमार्गमें शोक करना अनुचित है ॥ २२ ॥ न तो एक साथ सर्वथा सुख ही रहता है और न दुःख ही। घटिका-यन्त्रकी भाँति सुख और दुःखका आना-जाना लगा रहता है ॥ २३ ॥ हे राजन्! स्वस्थचित्त होकर तुम सुखपूर्वक राज्य करो। अथवा बन्धु-बान्धवोंको राजकाज सौंपकर वनमें

गतम् ॥ १८ ॥ मा शोकं कुरु राजेन्द्र कालोऽतिदुरतिक्रमः ॥ कालयोगं समासाद्य भुंक्ष्व भोगान्गृहे यथा॥ १९ ॥ यथाऽऽगता गता सा तु तथैव वरवर्णिनी ॥ यथा पूर्वं तथा तत्र गच्छ कार्यं कुरु प्रभो ॥ २० ॥ रुदितेन तवाद्यैव नागमिष्यति कामिनी ॥ वृथा शोचसि पृथ्वीश योगयुक्तो भवाधुना ॥ २१ ॥ भोगः कालवशादेति तथैव प्रतियाति च ॥ नात्र शोकस्तु कर्तव्यो निष्फले भववर्त्मनि ॥ २२ ॥ नैकत्र सुखसंयोगो दुःखयोगस्तु नैकतः ॥ घटिकायन्त्रवत्कामं भ्रमणं सुखदुःखयोः ॥ २३ ॥ मनः कृत्वा स्थिरं भूप कुरु राज्यं यथासुखम् ॥ अथवा न्यस्य दायादे वनं सेवय सांप्रतम् ॥ २४ ॥ दुर्लभो मानुषो देहः प्राणिनां क्षणभंगुरः ॥ तस्मिन्प्राप्ते तु कर्तव्यं सर्वथैवात्मसाधनम् ॥ २५ ॥ जिह्वोपस्थरसो राजन्पशुयोनिषु वर्तते ॥ ज्ञानं मानुषदेहे वै नान्यासु च कुयोनिषु ॥ २६ ॥ तस्माद्गच्छ गृहं त्यक्त्वा शोकं कान्तासमुद्भवम् ॥ मायेयं भगवत्यास्तु यया संमोहितं जगत् ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तो हरिणा राजा प्रणम्य कमलापतिम् ॥ कृत्वा स्नानविधिं सम्यग्जगाम निजमंदिरम् ॥ २८ ॥ दत्त्वा राज्यं स्वपौत्राय प्राप्य निर्वेदमद्भुतम् ॥ वनं जगाम भूपालस्तत्त्वज्ञानमवाप च ॥ २९ ॥ गते राजन्यहं वीक्ष्य भगवन्तमधोक्षजम् ॥ तमब्रवं

रहनेकी व्यवस्था कर लो ॥२४॥ प्राणियोंके लिए दुर्लभ मानव-देह क्षणभंगुर है। इसके प्राप्त होनेपर सम्यक् प्रकारसे आत्मकल्याण कर लेना चाहिये ॥२५॥ जिह्वा और जननेन्द्रियके भोग तो पशुयोनियोंमें भी मिल जाते हैं, ज्ञान अधिक होनेसे ही लोग मानव-योनिको उत्तम मानते हैं। अन्य योनियोंमें वह शक्ति सुलभ नहीं रहती ॥२६॥ सो तुम स्त्रीजनित शोकका परित्याग करके घर चले जाओ। यह भगवती जगदम्बाकी माया है कि जिससे सम्पूर्ण जगत् मोहित है ॥ २७ ॥ नारदजी बोले—हे व्यासजी! इस प्रकार लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके कहनेपर राजा तालध्वजने उन्हें प्रणाम करके भलीभाँति स्नानकी विधि सम्पन्न की। तत्पश्चात् वे अपने घर चले गये ॥२८॥ अब उन नरेशके अन्तःकरणमें अद्भुत वैराग्योदय हो चुका था। अतः अपने पौत्रको राज्य सौंपकर वे वनको चले गये। वहाँ उन्होंने तत्त्वज्ञानकी पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली ॥२९॥ राजा तालध्वजके चले जानेपर मधुर मुसकानसे भरे मुखमंडलवाले, जगत्प्रभु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् विष्णुके दर्शन प्राप्त करके मैंने उनसे कहा—॥३०॥ हे भगवन्! आपने मुझे ठग लिया। किन्तु मायाकी असीम शक्तिकी बात अब मेरी समझमें आ गयी। स्त्रीका शरीर प्राप्त होनेपर मेरे द्वारा जो घटनाएँ घटी थीं, उन सबको अब मैं याद कर रहा हूँ॥३१॥ हे हरे! आप देवाधिदेव और परम पुरुष हैं। मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि जब मैं सरोवरमें प्रवेश करके स्नान करने लगा, तब गोता लगाते ही मेरी पूर्वस्मृति क्यों नष्ट हो गयी?॥३२॥ स्त्रीका शरीर पाकर मैं मोहित हो गया था। हे जगद्गुरो! उस प्रतापी नरेशको पाकर मैंने पतिरूपमें उसे ऐसे वरण कर लिया, मानो इन्द्रको पति बनानेवाली शची होऊँ॥३३॥ हे देवेश! उस समयका वह मन, चित्त, देह और चिह्न स्मृतिसे दूर कैसे हो सकता है? वे बार-बार याद आते रहते हैं॥३४॥ हे रमाकान्त! हे प्रभो! इस विषयमें मुझे महान् आश्चर्य तो यह हो रहा है कि मेरा ज्ञान उस समय सर्वथा विलीन हो गया था। अब आप इसका कारण बतानेकी कृपा करें॥३५॥ स्त्रीका शरीर पाकर मैंने अनेक प्रकारके भोग भोगे। मैं निरन्तर मदिरा पान करता रहा। निषिद्ध भोजन करनेमें भी मुझे कोई हिचक नहीं रही॥३६॥ मैं यह कभी भी स्पष्ट नहीं जान सका

जगन्नाथं हसन्तं मां पुनः पुनः ॥ ३० ॥ वञ्चितोऽहं त्वया देव ज्ञातं मायाबलं महत् ॥ स्मरामि चरितं सर्वं स्त्रीदेहे यत्कृतं मया ॥ ३१ ॥ ब्रूहि मे देवदेवेश प्रविष्टोऽहं सरोवरे ॥ विगतं पूर्वविज्ञानं स्नानादेव कथं हरेः ॥३२॥ योषिद्देहं समासाद्य मोहितोऽहं जगद्गुरो ॥ पतिं प्राप्य नृपश्रेष्ठ पुलोमी वासवं यथा ॥३३॥ मनस्तदेव तच्चित्तं देहः स च पुरातनः ॥ लिंगं तदेव देवेश स्मृतेर्नाशः कथं हरे ॥ ३४ ॥ विस्मयोऽयं महान्मेऽत्र ज्ञाननाशं प्रति प्रभो ॥ कथयाद्य रमाकान्त कारणं परमं च यत् ॥ ३५ ॥ नारीदेहं मया प्राप्य भुक्ता भोगा ह्यनेकशः ॥ सुरापानं कृतं नित्यं विधिहीनं च भोजनम् ॥३६॥ मया तदेव न ज्ञातं नारदोऽहमिति स्फुटम् ॥ जानाम्यद्य यथा सर्वं विविक्तं न तथा तदा ॥३७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पश्य नारद मायावी विलासोऽयं महामते ॥ देहेषु सर्वजंतूनां दशाभेदा ह्यनेकशः ॥३८॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीया देहिनां दशा ॥ तथा देहान्तरे प्राप्ते सन्देहः कीदृशः पुनः ॥ ३९ ॥ सुप्तो नरो न जानाति न शृणोति वदत्यपि ॥ पुनः प्रबुद्धो जानाति सर्वं ज्ञातमशेषतः ॥ ४० ॥ निद्रया चाल्यते चित्तं भवन्ति स्वप्नसंभवाः ॥ नानाविधा मनोभेदा मनोभावा ह्यनेकशः ॥ ४१ ॥ गजो मां हन्तुमायाति न शक्तोऽस्मि पलायने ॥ किं करोमि न मे स्थानं यत्र गच्छामि सत्वरः ॥४२॥ मृतं पितामहं स्वप्ने पश्यति स्वगृहागतम् ॥ संयोगस्तेन वार्ता च भोजनं सह मन्यते ॥४३॥ प्रबुद्धः खलु जानाति स्वप्ने

कि मैं नारद हूँ। उस समय जो घटनाएँ घटित हुईं, वे सभी मुझे आद्योपान्त याद आ रही हैं॥ ३७ ॥ भगवान् विष्णु बोले—हे महामते नारद! देखो, यह सब महामायाका खेल है। उन्हींके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें अनेक प्रकारकी दशाएँ उपस्थित होती रहती हैं॥ ३८ ॥ जैसे शरीरधारियोंमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया इन चार प्रकारकी दशाओंका क्रम निरन्तर चालू रहता है, वैसे ही दूसरा शरीर प्राप्त होना भी स्वाभाविक है। इसमें सन्देह कैसा?॥ ३९ ॥ सोया हुआ मनुष्य जानने-सुनने और बोलनेमें असमर्थ रहता है। वही जब जाग जाता है, तब उसे सारी वस्तुयें ज्ञात हो जाती हैं॥ ४० ॥ नींदसे उसका चित्त विचलित हो जाता है। मनमें अनेक प्रकारके बहुतसे भाव उठा करते हैं॥ ४१ ॥ मनुष्य स्वप्नमें देखता है कि हाथी मुझे मारने आ रहा है। मैं भागनेमें असमर्थ हूँ, क्या करूँ? मेरे लिए दूसरा कोई स्थान नहीं है, जहाँ तुरन्त भाग चलूँ॥४२॥ वह कभी स्वप्नमें देखता है कि मेरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पितामह अपने घरपर पधारे हुए हैं। मैं उनसे मिलता हूँ। परस्पर बातचीत होती है और एक साथ बैठकर हम लोग भोजन करते हैं ॥ ४३ ॥ जागनेपर उसे मालूम हो जाता है कि ये सुख-दुःखसम्बन्धी बातें मैंने स्वप्नमें देखी हैं। उन सभी बातोंको याद करके वह लोगोंके समक्ष विस्तारपूर्वक कहता भी है ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार कोई भी व्यक्ति स्वप्नमें यह नहीं जान पाता कि यह भ्रम है, वैसे ही महामायाका ऐश्वर्य समझमें आ जाना बड़ा ही कठिन काम है ॥ ४५ ॥ हे नारद ! महामायाके गुणोंकी दुर्लंघ्य सीमाको जाननेमें मैं, शंकर और ब्रह्मा भी असफल रहे ॥ ४६ ॥ फिर मन्दबुद्धिवाला दूसरा कौन मनुष्य उसके वास्तविक रहस्यको जान सकता है ? जगत्में महामायाके गुणोंकी इयत्ता किसीकी समझमें नहीं आ सकी है ॥ ४७ ॥ उन्होंने इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणों द्वारा रचा है। उक्त गुणोंके अभावमें यह संसार तनिक देर भी स्थित नहीं रह सकता ॥ ४८ ॥ मुझमें सत्त्वगुण प्रधान है। रजोगुण और तमोगुण गौणरूपसे रहते हैं। यदि तीनों गुण न रहें तो मैं कभी भी भूमण्डलका शासक नहीं बन सकता ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे पिता

दृष्टं सुखासुखम् ॥ स्मृत्वा सर्वं जनेभ्यस्तु विस्तरात्प्रवदत्यपि ॥ ४४ ॥ स्वप्ने कोऽपि न जानाति भ्रमोऽयमिति निश्चयः ॥ तथा तथैव विभवो मायाया मन्दधीः किल ॥ ४५ ॥ नाहं नारद जानामि पारं परमदुर्घटम् ॥ गुणानां किल मायाया नैव शम्भुर्न पद्मजः ॥४६॥ कोऽन्यो ज्ञातुं समर्थोऽभून्मानवो मन्दधीः पुनः ॥ मायागुणपरिज्ञानं न कस्यापि भवेदिह ॥४७॥ गुणत्रयकृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ विना गुणैर्न संसारो वर्तते किंचिदप्यदः ॥ ४८ ॥ अहं सत्त्वप्रधानोऽस्मि रजस्तमसमन्वितः ॥ न कदाचित्त्रिभिर्हीनो भवामि भुवनेश्वरः ॥ ४९ ॥ तथा ब्रह्मा पिता तेऽत्र रजोमुख्यः प्रकीर्तितः ॥ तमःसत्त्वसमायुक्तो न ताभ्यामुज्झितः किल ॥ ५० ॥ शिवस्तथा तपोमुख्यो रजःसत्त्वसमावृतः ॥ गुणत्रयविहीनस्तु नैव कोऽपि मया श्रुतः ॥ ५१ ॥ तस्मान्मोहो न कर्तव्यः संसारेऽस्मिन्मुनीश्वर ॥ मया विनिर्मितेऽसारेऽपारे परमदुर्घटे ॥ ५२ ॥ दृष्टा माया त्वयाऽद्यैव भुक्ता भोगा ह्यनेकशः ॥ किं पृच्छसि महाभाग तस्याश्चरितमद्भुतम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज ब्रवीमि विशदाक्षरम् ॥ माहात्म्यं खलु मायाया नारदात्तु मया श्रुतम् ॥ १ ॥ मया पुनर्मुनिः पृष्टो

ब्रह्मामें रजोगुण प्रधान है। तमोगुण और सत्त्वगुण भी उनमें हैं ही। इन दोनों गुणोंसे रहित होकर वे कुछ भी नहीं कर सकते ॥ ५० ॥ वैसे ही शिवमें तमोगुणकी विशेषता है। रजोगुण और सत्त्वगुण उनमें अप्रधान रूपसे रहते हैं। कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है कि जिसमें ये तीनों गुण न हों ॥५१॥ हे मुनीश्वर ! इस संसारमें मोहसे सदा दूर रहना चाहिए। क्योंकि मेरे द्वारा निर्मित यह संसार अपार असार और दुर्घट है ॥ ५२ ॥ अभी-अभी मायाका प्रभाव तुम देख चुके हो। तुम्हारे सामने अनेक प्रकारके भोग उपस्थित हुए और तुम्हारे द्वारा भोगे गये। हे महाभाग ! फिर महामायाके इस अद्भुत चरित्रके विषयमें तुम मुझसे क्या पूछते हो ? ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

(भगवतीमाहात्म्य) व्यासजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! मैंने योगमायाके जिस माहात्म्यको नारदजीसे सुना है, उसे कहता हूँ, सुनो ॥ १ ॥ मुनिवर नारदजी सर्वज्ञ-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिरोमणि हैं। स्त्रीका शरीर प्राप्त होनेपर उनके सामने जो प्रसंग उपस्थित हुआ था, उसे सुन लेनेके पश्चात् मैंने पूछा—॥ २ ॥ 'हे नारदजी! अब आप यह बतानेकी कृपा करें कि इसके बाद जगत्प्रभु भगवान् विष्णुने आपसे क्या कहा तथा आपके साथ वे कहाँ गये?' ॥ ३ ॥ नारदजी बोले—उस अत्यन्त मनोहर सरोवरपर बातचीत होनेके पश्चात् भगवान् विष्णु गरुड़पर बैठे और उन्होंने वैकुण्ठ जानेकी बात सोची ॥४॥ [illegible] उन्होंने मुझसे कहा—'हे नारद! अब तुम अपने अभीष्ट स्थानपर पधारो, अथवा मेरे परम धाममें चल सकते हो या तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वह करनेमें स्वतन्त्र हो' ॥ ५ ॥ तब मैं श्रीहरिसे आज्ञा लेकर ब्रह्मलोक चला गया। भगवान् भी मुझे उपदेश देनेके उपरान्त तुरन्त गरुड़पर बैठे और आनन्दपूर्वक वैकुण्ठ चले गये। जब भगवान् विष्णु चले गये, तब परम अद्भुत सुख-दुःखके सम्बन्धमें विचार करता हुआ मैं अपने पिता ब्रह्माजीके भवनपर जा पहुँचा। वहाँ जाकर मैंने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और सामने बैठ गया ॥६–८॥ हे मुने! उस समय मुझे चिन्ताके कारण आतुर देखकर पिताजीने पूछा। ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग! तुम कहाँ गये थे? बेटा! तुम क्यों इतने

नारदः सर्ववित्तमः ॥ श्रुत्वा कथां मुनेस्तस्य नारीदेहसमुद्भवाम् ॥ २ ॥ ब्रूहि नारद पश्चात्किं कथितं हरिणा तदा ॥ क्व गतश्च जगन्नाथो भवता सह माधवः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवांस्तस्मिंस्तडागेऽतिमनोहरे ॥ आरुह्य गरुडं गन्तुं वैकुण्ठं च मनो दधे ॥ ४ ॥ मामुवाच रमाकान्तो यथेष्टं गच्छ नारद ॥ एहि वा मम लोकं त्वं यथा रुचि तथा कुरु ॥ ५ ॥ ब्रह्मलोकं गतश्चाहमापृच्छ्य मधुसूदनम् ॥ भगवानपि देवेशस्तत्क्षणाद्गरुडासनः ॥ ६ ॥ वैकुण्ठमगमत्तूर्णं मामादिश्य यथासुखम् ॥ ततोऽहं पितृसदनं गतो याते जनार्दने ॥ ७ ॥ चिंतयन्सकलं दुःखं सुखं च परमाद्भुतम् ॥ गत्वा प्रणम्य पितरं स्थितो यावत्पुरः पितुः ॥ ८ ॥ तावत्पृष्टो मुने पित्रा वीक्ष्य चिंतातुरं तु माम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्व गतोऽसि महाभाग कस्माच्चिंतातुरः सुत ॥ ९ ॥ स्वस्थं नैवाद्य पश्यामि मनस्ते मुनिसत्तम ॥ केनापि वञ्चितोऽसि त्वं दृष्टं वा किंचिदद्भुतम् ॥१०॥ विषण्णं गतविज्ञानं पश्यामि त्वां कथं सुत ॥ नारद उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा पित्रा बृस्यां समुपवेश्य च ॥ ११ ॥ तमब्रवं स्ववृत्तान्तं मायाबलसमुद्भवम् ॥ वञ्चितोऽहं पितः कामं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १२ ॥ स्त्रीभावङ्गमितः कामं वर्षाणि सुबहून्यपि ॥ अनुभूतं महद्दुःखं पुत्रशोकसमुद्भवम् ॥ १३ ॥ प्रबोधितोऽहं तेनैव मृदुवाक्यामृतेन च ॥ पुनः सरोवरे स्नात्वा जातोऽहं नारदः पुमान् ॥ १४ ॥ किमेतत्कारणं ब्रह्मन् यन्मोहमग-

घबराये हुए हो? ॥९॥ हे मुनिवर! तुम्हारे मनको मैं इस समय स्थिर नहीं देख रहा हूँ। किसीने तुम्हें धोखेमें डाल दिया है? क्या कोई अद्भुत दृश्य तुम्हारे सामने आ उपस्थित हुआ है? बेटा! मैं देखता हूँ कि तुम अत्यन्त उदास हो। तुम्हारी विवेक-शक्ति कुंठित है। इसका क्या कारण है? नारदजी बोले—जब मेरे पिता ब्रह्माजीने मुझसे इस प्रकार पूछा ॥१०॥११॥ तब मैंने आसनपर बैठकर मायाके प्रभावसे उत्पन्न सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। मैंने कहा—'पिताजी! अपार शक्तिशाली भगवान् विष्णुकी प्रवञ्चनामें मैं फँस गया था ॥१२॥ बहुत वर्षोंतक स्त्रीके वेषमें रहनेकी विवशता मेरे सामने उपस्थित थी। पुत्र-शोकसे उत्पन्न महान् क्लेश मुझे भोगने पड़े। फिर उन्हीं विष्णुकी अमृतमयी वाणीने मेरे अन्तःकरणमें ज्ञानका संचार भी किया है। उनकी आज्ञासे सरोवरमें स्नान करते ही मैं फिर पुरुषाकार नारदके रूपमें परिणत हो गया ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन्! उस समय मेरे मनमें जो इस प्रकारका मोह उत्पन्न हो गया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था, उसका क्या कारण है ? स्त्री-वेष प्राप्त होते ही मेरा पूर्वज्ञान पता नहीं कि कहाँ चला गया ॥१५॥ हे ब्रह्मन् ! यह मायाबल मेरी समझसे बाहर है। क्योंकि माया अत्यन्त दुरूह, ज्ञान-संहारिणी एवं मोहकी स्पष्ट प्रवर्तिका है ॥ १६ ॥ सम्पूर्ण शुभ और अशुभ परिस्थितियाँ सामने आयीं और उनका अनुभव करके मैं सम्यक् प्रकारसे समझ भी गया। हे पिताजी ! आपने इस मायाको कैसे जीता ? इसका उपाय बतानेकी कृपा करें ॥ १७ ॥ नारदजी कहते हैं—हे व्यासजी ! जब मैंने अपने पिता ब्रह्माजीको ये सारी बातें बतला दीं, तब वे हँसकर प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कहने लगे ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने कहा—सम्पूर्ण देवता, महात्मा, मुनि, तपस्वी, ज्ञानी तथा वायु पीकर योगके अभ्यासमें तत्पर योगी भी इस मायाको सुगमतापूर्वक जीतनेमें असमर्थ हैं ॥१९॥ उस असीम शक्तिशालिनी मायाको सम्यक् प्रकारसे जाननेमें मेरी बुद्धि भी असफल रही। विष्णु और शिव भी उसे जाननेमें सर्वथा असमर्थ रहे ॥२०॥ सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली महामाया प्रायः सभीके लिए दुर्विज्ञेय है। काल, कर्म और स्वभाव आदि निमित्त कारण इसके सहयोगी हैं ॥२१॥ हे विद्वन् ! इस प्रकारकी अपरिमित शक्ति रखने-

मं तदा ॥ विस्मृतं पूर्वविज्ञानं तन्मयस्तरसा कृतः ॥ १५ ॥ एतन्मायाबलं ब्रह्मन्न जानेऽहं दुरत्ययम् ॥ ज्ञानहानिकरं जातं मूलं मोहस्य विस्फु-
टम् ॥ १६ ॥ अनुभूतं मया सम्यग्ज्ञातं सर्वं शुभाशुभम् ॥ कथं त्वं जितवांस्तात तमुपायं वदस्व मे ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ विज्ञप्तोऽसौ मया
धाता प्रीतिपूर्वमतः परम् ॥ मामुवाच स्मितं कृत्वा पिता मे वासवीसुत ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दुर्जयैषा सुरैः सर्वैर्मुनिभिश्च महात्मभिः ॥ तापसै-
र्ज्ञानयुक्तैश्च योगिभिः पवनाशनैः ॥ १९ ॥ नाहं तां सर्वथा ज्ञातुं शक्तो मायां महाबलाम् ॥ विष्णुर्ज्ञातुं न शक्तश्च तथा शंभुरुमापतिः ॥ २० ॥
दुर्ज्ञेया सा महामाया सृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥ कालकर्मस्वभावाद्यैर्निमित्तकारणैर्वृता ॥ २१ ॥ शोकं मा कुरु मेधाविंस्तत्र मायामहाबले ॥ न चैव
विस्मयः कार्यो वयं सर्वे विमोहिताः ॥ २२ ॥ नारद उवाच ॥ पित्रेत्युक्तस्तदा व्यास तमापृच्छ्य गतस्मयः ॥ आगतोऽस्म्यत्र पश्यन्वै तीर्थानि च
वराणि च ॥ २३ ॥ तस्मात्त्वमपि सन्त्यज्य मोहं कौरवनाशजम् ॥ कालक्षयं सुखासीनः स्थानेऽस्मिन्कुरु सत्तम ॥ २४ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं
कर्म शुभाशुभम् ॥ निश्चयं हृदये कृत्वा विचरस्व यथासुखम् ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा नारदो राजन्गतो मां प्रतिबोध्य च ॥ अहं तद्वि-
तयन्वाक्यं यदुक्तं मुनिना तदा ॥ २६ ॥ स्थितः सरस्वतीतीरे कल्पे सारस्वते वरे ॥ कालातिवाहनायैतत्कृतं भागवतं मया ॥ २७ ॥ पुराणमुत्तमं

वाली महामायाके विषयमें तुम शोक मत करो। साथ ही, तुम्हें आश्चर्य भी नहीं करना चाहिए। कारण, हम सभी इसके प्रभावसे मोहित हैं ॥ २२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे व्यासजी ! पिताजीके वचन सुनकर मेरा आश्चर्य दूर हो गया। तब मैं उनसे आज्ञा लेकर उत्तम तीर्थोंको देखता हुआ यहाँ आ पहुँचा ॥ २३ ॥ अतएव हे कौरवोंमें सर्वोत्तम व्यासजी ! तुम भी कौरवोंके नाशसे उत्पन्न मोहका परित्याग करके भगवती जगदम्बामें चित्त लगाकर यहाँ सुखपूर्वक समय व्यतीत करो ॥ २४ ॥ अपने द्वारा ऊँच-नीच जो कर्म हो चुके हैं, उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है—इस बातको हृदयमें निश्चित करके आनन्दपूर्वक विचरण करो ॥ २५ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! ऐसा कहकर मुझे समझानेके बाद नारदजी वहाँसे चले गये और उनकी कही हुई बातोंपर विचार करता हुआ मैं सरस्वती नदीके तटपर ठहर गया। उस समय उत्तम सारस्वत कल्प चल रहा था। समय व्यतीत करनेके विचारसे मैंने श्रीमद्-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वीभागवतको रचना आरम्भ कर दी ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यह श्रेष्ठ पुराण सम्पूर्ण संदेहोंको दूर करनेवाला, अनेक प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त तथा वैदिक प्रमाणोंसे ओतप्रोत है ॥ २८ ॥ हे राजेन्द्र ! इसमें सन्देह करना सर्वथा अनुचित है। जिस प्रकार कोई इन्द्रजाल करनेवाला मदारी काठकी पुतली हाथमें लेकर उसे अपने इच्छानुसार नचाया करता है ॥२९॥ वैसे ही यह माया चराचर सम्पूर्ण जगत्को नचानेमें लगी रहती है ॥ ३० ॥ ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी पाँच इन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले देवता, दानव एवं मानव हैं, वे सभी मन और चित्तका अनुसरण करते हैं ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! सत्त्व, रज और तम-ये तीन गुण ही सब कार्योंके कारण होते हैं। कार्य कारणको लेकर ही होता है-यह बिल्कुल निश्चित है ॥३२॥ मायासे उत्पन्न तीनों गुण पृथक्-पृथक् स्वभावके होते हैं। क्योंकि इनमें शान्त, रौद्र और मूढ-तीन प्रकारका भेद पाया जाता है ॥३३॥ भला, सर्वदा इन तीनों गुणोंका आश्रित

नृप सर्वसंशयनाशनम् ॥ नानाख्यानसमायुक्तं वेदप्रामाण्यसंश्रितम् ॥ २८ ॥ सन्देहोऽत्र न कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम ॥ यथेन्द्रजालिकः कश्चित्पांचालीं दारवीं करे ॥ २९ ॥ कृत्वा नर्तयते कामं स्वेच्छया वशवर्तिनीम् ॥ तथा नर्तयते माया जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ३० ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं सदेवासुरमानुषम् ॥ पंचेन्द्रियसमासुक्तं मनश्चित्तानुवर्तनम् ॥ ३१ ॥ गुणास्तु कारणं राजन्सर्वेषां सर्वथा त्रयः ॥ कार्यं कारणसंयुक्तं भवतीति विनिश्चयः ॥ ३२ ॥ भिन्नभिन्नस्वभावास्ते गुणा मायासमुद्भवाः ॥ शांतो घोरस्तथा मूढस्त्रयस्तु त्रिविधा यतः ॥ ३३ ॥ तत्समेतः पुमान्नित्यं तद्विहीनः कथं भवेत् ॥ न भवत्येव संसारे रहितस्तंतुभिः पटः ॥३४॥ तथा गुणैस्त्रिभिर्हीनो न देहीति विनिश्चयः॥ देवदेहो मनुष्यो वा तिरश्चो वा नराधिप ॥ ३५ ॥ गुणैर्विरहितो न स्यान्मृद्विहीनो घटो यथा ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयश्चामी गुणाश्रयाः ॥ ३६ ॥ कदाचित्प्रीतियुक्तास्ते तथाऽप्रीतियुताः पुनः ॥ तथा विषादयुक्तास्ते भवन्ति गुणयोगतः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मा कदाचित्सत्त्वस्थस्तदा शांतः समाधिमान् ॥ प्रीतियुक्तो भवेत्सर्वभूतेषु ज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥ पुनः सत्त्वविहीनस्तु रजोगुणसमावृतः ॥ तदा भवेद्घोररूपः सर्वत्राप्रीतिसंयुतः ॥ ३९ ॥ यदा तमोगुणाविष्टो बाहुल्येन भवेद्विधिः ॥ तदा विषादसम्पन्नो मूढो भवति नान्यथा ॥ ४० ॥ माधवोऽपि सदा सत्त्वसंश्रितः सर्वथा भवेत् ॥ यदा शांतः प्रीतियुक्तो भवेज्ज्ञान-

पुरुष इनके अभावमें कैसे जीवित रह सकता है ? जिस प्रकार संसारमें तन्तुविहीन पटकी सत्ता मानना असम्भव है ॥३४॥ वैसे ही तीनों गुणोंसे हीन प्राणीके विषयमें भी समझना चाहिए-यह बात बिलकुल निश्चित है। हे नरेन्द्र ! देवता, मानव अथवा पशु किसीका भी शरीर गुणरहित होनेपर वैसे ही कायम नहीं रह सकता, जैसे मिट्टीके बिना घड़ा नहीं रह सकता। गुणोंका संयोग होनेसे ही इन ब्रह्मादि प्रधान देवताओंके मनमें कभी प्रसन्नता होती है, कभी उदासीनता आ जाती है और कभी ये विषादग्रस्त हो जाते हैं ॥ ३५-३७ ॥ जब कभी ब्रह्मा सत्त्वगुणमें स्थित रहते हैं तब वे शान्त, समाधिस्थ, ज्ञानवान् एवं सब प्राणियोंपर प्रसन्न रहते हैं ॥ ३८ ॥ जब रजोगुणाविष्ट होते हैं, तब उनमें झुंझलाहट बढ़ जाती है और उनका रूप भयानक हो जाता है ॥ ३९ ॥ वे ही जब तमोगुणाविष्ट होते हैं, तब खिन्न तथा मूढ हो जाते हैं ॥ ४० ॥ विष्णु जब सतोगुणयुक्त होते हैं, तब शान्त तथा प्रीतिमान् रहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥४१॥ रजोगुणके अधीन होनेपर वे क्रुद्ध एवं घोररूपी हो जाते हैं। इसी प्रकार रुद्र भी सतोगुणयुक्त होनेपर प्रीतिमान् तथा शान्तिमान् रहते हैं। रजोगुणाविष्ट होनेपर वे भयानक एवं कठोर हो जाते हैं॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वे जब तमोगुणाविष्ट होते हैं, तब खिन्न तथा मूढ़ हो जाते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवता सदा सत्त्वादि गुणोंके अधीन रहा करते हैं॥ ४४ ॥ ऐसे ही सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी चौदहों मनु प्रत्येक युगमें गुणोंके अधीन रहकर कार्यभार सँभालते हैं॥ ४५ ॥ तब फिर हे राजेन्द्र! इस जगत्में रहनेवाले अन्य साधारण व्यक्तियोंके लिए कौन-सी बात है? देवता, दानव, मानव आदि सारा प्राणि-जगत् मायाके अधीन रहता है॥४६॥ अतएव हे राजन्! इस विषयमें कदापि सन्देह नहीं करना चाहिए। प्राणी मायाकी अधीनतामें रहकर उसीके आज्ञानुसार सब काम करता है॥ ४७ ॥ वह माया सदा परम तत्त्वमें सम्मिलित रहती है। उस परम तत्त्वकी आज्ञा पाकर प्राणियोंको प्रेरित करना

शमान्वितः ॥ ४१ ॥ स एव रजआधिक्यादप्रीतिसंयुतो भवेत् ॥ घोरश्च सर्वभूतेषु गुणाधीनो रमापतिः ॥ ४२ ॥ रुद्रोऽपि सत्त्वसंयुक्तः प्रीतिमाञ्छांतिमान्भवेत् ॥ रजोनिमीलितः सोऽपि घोरः प्रीतिविवर्जितः ॥ ४३ ॥ तमोगुणयुतः सोऽपि मूढो विषादयुग्भवेत् ॥ एते यदि गुणाधीना ब्रह्मविष्णुनरादयः ॥ ४४ ॥ सूर्यवंशोद्भवास्तद्वत्सोमवंशभवा अपि ॥ मन्वादयश्च ये प्रोक्ताश्चतुर्दश युगे युगे ॥ ४५ ॥ अन्येषां चैव का वार्ता संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम ॥ मायाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४६ ॥ तस्माद्राजन्न कर्तव्यः संदेहोऽत्र कदाचन ॥ देही मायापराधीनश्चेष्टते तद्वशानुगः ॥ ४७ ॥ सा च माया परे तत्त्वे संविद्रूपेऽपि सर्वदा ॥ तदधीना प्रेरिता च तेन जीवेषु सर्वदा ॥ ४८ ॥ ततो मायाविशिष्टां तां संविदं परमेश्वरीम् ॥ मायेश्वरीं भगवतीं सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥४९॥ ध्यायेत्तथाऽऽराधयेच्च प्रणमेच्च जपेदपि ॥ तेन सा सदया भूत्वा मोचयत्येव देहिनम् ॥ ५० ॥ स्वमायां संहरत्येव स्वानुभूतिप्रदानतः ॥ भुवनं खलु माया स्यादीश्वरी तस्य नायिका ॥ ५१ ॥ भुवनेशी ततः प्रोक्ता देवी त्रैलोक्यसुन्दरी ॥ तद्रूपे यदि सक्तं स्याच्चित्तं भूमिपते सदा ॥५२॥ मायया किं भवेत्तत्र सदसद्भूतया नृप ॥ तस्मान्मायानिरासार्थं नान्यद्वै देवतान्तरम् ॥५३॥ समर्थं तु विना देवीं सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ तमोराशिं नाशयितुं शक्तं नैव तमो भवेत् ॥ ५४ ॥ किंतु भानुप्रभाचंद्रविद्युद्वह्नि-

उसका नित्यका कार्य है॥ ४८ ॥ उस मायाको सहचरीके रूपमें स्वीकार करनेवाली भगवती परमेश्वरी सदा उसे साथ लिये रहती हैं। इसीलिए सच्चिदानन्दमय विग्रह धारण करनेवाली उन भगवतीको 'मायेश्वरी' कहा जाता है॥४९॥ उनके ध्यान, पूजन, नमस्कार और जपमें सदा तत्पर रहना चाहिए। इससे अपनी दयालुताके कारण वे प्राणीको मायारहित बना देती हैं और अपनी अनुभूति प्रदान करके वे मायाको हर लेती हैं। अतएव इन भगवती परमेश्वरीको 'भुवनेशी' भी कहा गया है। इनके समान त्रिलोकीमें कोई सुंदरी नहीं है। हे राजन्! यदि इनके रूपका निरंतर ध्यान करनेमें चित्त लग जाय तो सदसत्स्वरूपिणी माया अपना क्या प्रभाव डाल सकती है? अतएव यदि मायाको दूर करनेकी इच्छा हो तो सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी आराधना छोड़कर अन्य किसीकी उपासना करना अनुचित है॥५०–५३॥ जिस प्रकार एक अन्धकार किसी दूसरे सघन अन्धकारको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बल्कि उसे मिटानेमें सूर्य, चन्द्रमा, बिजली अथवा अग्निके तेज ही समर्थ हैं । उसी प्रकार मायेश्वरी भगवती ही अपनी प्रभासे मायाको दूर कर सकती हैं–ऐसा जानना चाहिये । अतः मायिक गुणोंसे निवृत्त होनेके लिए प्रसन्नतापूर्वक भगवतीकी उपासना करनी चाहिये । हे राजेन्द्र ! वृत्रासुर-वध आदि कथाके विषयमें तुमने जो प्रश्न किया था, उसका वर्णन मैं भली भाँति कर चुका । अब दूसरा कौन-सा प्रसग सुनना चाहते हो ? हे सुव्रत ! श्रीमद्देवीभागवत-पुराणके पूर्वार्द्धको मैंने कह सुनाया ॥ ५४–५७ ॥ इसमें देवीकी महिमा विस्तारपूर्वक गायी गयी है । भगवती जगदम्बाका यह रहस्य जिस किसीको नहीं सुनाना चाहिये ॥ ५८ ॥ जो भक्त, शान्तस्वभाव, देवीभक्तिका प्रेमी, शिष्य, अपना बड़ा पुत्र अथवा गुरुभक्तिसे युक्त हो, उसके

प्रभादयः ॥ तस्मान्मायेश्वरीमम्बां स्वप्रकाशां तु संविदम् ॥५५॥ आराधयेदतिप्रीत्या मायागुणनिवृत्तये ॥ इति सम्यङ्मयाऽऽख्यातं वृत्रासुरवधादिकम् ॥५६॥ यत्पृष्टं राजशार्दूल किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ पूर्वार्धोऽयं पुराणस्य कथितस्तव सुव्रत ॥ ५७ ॥ यत्र देव्यास्तु महिमा विस्तरेणोपपादितः ॥ एतद्रहस्यं श्रीमातुर्न देयं यस्य कस्यचित् ॥ ५८ ॥ देयं भक्ताय शान्ताय देवीभक्तिरताय च ॥ शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय गुरुभक्तियुताय च ॥ ५९ ॥ इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम् ॥ पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भगवतीमाहात्म्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

वेदाष्टवसुभूसंख्यैः (१८८४) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्य षष्ठस्कन्धः समाप्तवान् ॥ १ ॥

सामने ही इसका वर्णन करे ॥५९॥ यह पुराण सम्पूर्ण पुराणोंका सार, समस्त वेदोंकी तुलना करनेवाला एवं विविध प्रमाणोंसे परिपूर्ण है। जो मानव भक्तिपूर्वक उच्च विचारसे इसका पाठ एवं श्रवण करता है, वह निश्चय ही जगत्‌में ज्ञानी और धनी होनेका सुअवसर प्राप्त कर लेता है ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'-भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ भगवान वेदव्यासनिर्मित अठारह सौ चौरासी शुभ श्लोकों द्वारा देवीभागवतके इस षष्ठ स्कन्धका निर्माण हुआ है ॥ १ ॥

॥ समाप्तोऽयं षष्ठः स्कन्धः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते--

श्रीमद्देवीभागवते षष्ठः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा'भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते सप्तमः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(व्यासजीसे जनमेजयका सृष्टिविषयक प्रश्न) सूतजी बोले–हे तपस्वियो ! इस दिव्य कथाको सुननेके पश्चात् परीक्षितनन्दन धर्मात्मा राजा जनमेजयने प्रसन्नतापूर्वक पुनः व्यासजीसे पूछा ॥१॥ जनमेजयने कहा–हे स्वामिन् ! सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके वंशका विशद वर्णन मैं सम्यक् प्रकारसे सुनना चाहता हूँ ॥२॥ हे अनघ ! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव पाप शमन करनेवाली यह कथा कहनेकी कृपा कीजिए। इन दोनों वंशोंके राजाओंका मुझे परिचय कराइए। मैंने सुना है कि वे भगवती जगदम्बाके उपासक थे। देवीके भक्तोंकी गाथा सुननेसे कौन मुँह मोड़ेगा ? ॥३॥४॥ इस प्रकार राजर्षि जनमेजयके पूछनेपर सत्यवतीनन्दन मुनिवर व्यासजी उनसे कहने लगे ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले–हे महाराज ! सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा अन्य वंशोंसे भी सम्बन्ध रखनेवाली कथाओंका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥६॥ भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे चार मुखवाले ब्रह्माजी प्रकट हुए। तपस्या करनेके पश्चात् उन्होंने अत्यन्त कठिनतासे

॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वैतां तापसाद्दिव्यां कथां राजा मुदान्वितः ॥ व्यासं पप्रच्छ धर्मात्मा परीक्षितसुतः पुनः ॥ १ ॥ जनमेजय उवाच ॥ स्वामिन्सूर्यान्वयानां च राज्ञां वंशस्य विस्तरम् ॥ तथा सोमान्वयानां च श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ २ ॥ कथयानघ सर्वज्ञ कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ चरितं भूपतीनां च विस्तराद्वंशयोर्द्वयोः ॥ ३ ॥ ते हि सर्वे पराशक्तिभक्ता इति मया श्रुतम् ॥ देवीभक्तस्य चरितं शृण्वन्कोऽस्ति विरक्तिभाक् ॥ ४ ॥ इति राजर्षिणा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रसन्नवदनो मुनिः ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज विस्तराद्वदतो मम ॥ सोमसूर्यान्वयानां च तथाऽन्येषां समुद्भवम् ॥६॥ विष्णोर्नाभिसरोजाद्वै ब्रह्माऽभूच्चतुराननः ॥ तपस्तप्त्वा समाराध्य महादेवीं सुदुर्गमाम् ॥ ७ ॥ तथा दत्तवरो धाता जगत्कर्तुं समुद्यतः ॥ नाशकन्मानुषीं सृष्टिं कर्तुं लोकपितामहः ॥ ८ ॥ विचिंत्य बहुधा चित्ते सृष्ट्यर्थं चतुराननः ॥ न विस्तारं जगामाशु रचिताऽपि महात्मना ॥ ९ ॥ (ससर्ज मानसान्पुत्रान्सप्तसंख्यान्प्रजापतिः) ॥ मरीचिरंगिराऽत्रिश्च वसिष्ठः पुलहः क्रतुः ॥ पुलस्त्यश्चेति विख्याताः सप्तैते मानसाः सुताः ॥१०॥ रुद्रो रोषात्समुत्पन्नोऽप्युत्संगान्नारदोऽभवत् ॥ दक्षोऽङ्गुष्ठात्तथाऽन्येऽपि मानसाः सनकादयः ॥ ११ ॥ वामांगुष्ठाद्दक्षपत्नी जाता सर्वांगसुंदरी ॥ वीरिणी नाम विख्याता पुराणेषु महीपते ॥ १२ ॥ असिक्नीति च नाम्ना सा यस्यां जातोऽथ नारदः ॥ देवर्षिप्रवरः कामं ब्रह्मणो मानसः सुतः ॥ १३ ॥ जनमेजय उवाच ॥ अत्र मे संशयो ब्रह्मन् यदुक्तं भवता वचः ॥ वीरिण्यां

साक्षात्कार होनेवाली महादेवीकी उपासना की ॥७॥ भगवतीने उन लोकपितामह ब्रह्माजीको वर प्रदान किया। तब वे सृष्टि करनेमें समर्थ हुए। फिर भी, मानवी सृष्टिमें उन्हें सफलता नहीं मिल सकी ॥ ८ ॥ इस सृष्टिके लिए उनके मनमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न हुए। किन्तु तुरन्त विस्तार कर देना उनकी शक्ति : बाहर ही रहा ॥ ९ ॥ (तब ब्रह्माजीने सात मानस पुत्र उत्पन्न किये) मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु और पुलस्त्य–इन नामोंसे उन सातों मानस पुत्रोंकी प्रसिद्धि हुई ॥१०॥ ब्रह्माजीके रोषसे रुद्रका और गोदसे नारदका प्राकट्य हुआ। अंगूठेसे दक्ष प्रजापति प्रकटे। ऐसे ही अन्य भी सनकादि मानस पुत्रोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥११॥ बायें हाथके अँगूठेसे दक्षपत्नी प्रकट हुई, जिसके सभी अङ्ग बड़े ही सुन्दर थे। हे राजन् ! पुराणोंमें वे 'वीरिणी' नामसे विख्यात हैं ॥ १२ ॥ उन्हें असिक्नी भी कहा जाता है। ब्रह्माजीके मानस पुत्र देवर्षिप्रवर नारदजी उस असिक्नीके उदरसे ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥ राजा जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन् ! इस विषयमें मुझे संदेह हो रहा है। अभी आप कह चुके हैं कि दक्षके साथ रहकर वीरिणी महान् तपस्वी नारदजीकी जननी बनी थी ॥१४॥ यह बात कैसे संगत हुई ? क्योंकि धर्मके पूर्ण वेत्ता और परम तपस्वी नारदजी तो ब्रह्माजीके मानस पुत्र कहे जाते हैं। फिर दक्षपत्नी वीरिणी उनकी माता कैसे हुई ? आप इसे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिए ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे मुने ! बहुज्ञ महात्मा नारदजीने किसके शापसे अपने पूर्वशरीरका त्याग करके किस कारण पुनः जन्म धारण किया ? ॥१७॥ व्यासजी बोले—स्वयम्भू ब्रह्माजीने सर्वप्रथम दक्ष-प्रजापतिको सृष्टिके लिए आज्ञा दी और कहा कि तुम प्रजाकी रचनामें तत्पर हो जाओ, जिससे बहुसंख्यक प्रजा उत्पन्न हो जाय ॥ १८ ॥ उनकी आज्ञा पाकर दक्ष प्रजापतिने वीरिणीके गर्भसे अत्यन्त पराक्रमी पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ १९ ॥ उन सभी पुत्रोंमें प्रजाकी सृष्टिका अदम्य उत्साह भरा हुआ था।

नारदो जातो दक्षादिति महातपाः ॥ १४ ॥ कथं दक्षस्य पत्न्यां तु वीरिण्यां नारदो मुनिः ॥ जातो हि ब्रह्मणः पुत्रो धर्मज्ञस्तापसोत्तमः ॥ १५ ॥ विचित्रमिदमाख्यातं भवता नारदस्य च ॥ दक्षाज्जन्मास्य भार्यायां तद्वदस्व सविस्तरम् ॥ १६ ॥ पूर्वदेहः कथं मुक्तः शापात्कस्य महात्मनः ॥ नारदेन बहुज्ञेन कस्माज्जन्म कृतं मुने ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मणाऽसौ समादिष्टो दक्षः सृष्ट्यर्थमादितः ॥ प्रजाः सृजेति सुभृशं वृद्धिहेतोः स्वयंभुवा ॥ १८ ॥ ततः पञ्चसहस्रांश्च जनयामास वीर्यवान् ॥ दक्षः प्रजापतिः पुत्रान्वीरिण्यां बलवत्तरान् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा तान्नारदः पुत्रान्सर्वान्वर्धयिषून्प्रजाः ॥ उवाच प्रहसन्वाचं देवर्षिः कालनोदितः ॥ २० ॥ भुवः प्रमाणमज्ञात्वा स्रष्टुकामाः प्रजाः कथम् ॥ लोकानां हास्यतां यूयं गमिष्यथ न संशयः ॥ २१ ॥ पृथिव्या वै प्रमाणं तु ज्ञात्वा कार्यः समुद्यमः ॥ कृतोऽसौ सिद्धिमायाति नान्यथेति विनिश्चयः ॥ २२ ॥ बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवस्तलम् ॥ समुद्यताः प्रजाः कर्तुं कथं सिद्धिर्भविष्यति ॥२३॥ व्यास उवाच॥ नारदेनैवमुक्तास्ते हर्यश्वा दैवयोगतः ॥ अन्योन्यमूचुः सहसा सम्यगाह मुनिः किल ॥ २४ ॥ ज्ञात्वा प्रमाणमुर्व्यास्तु सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ॥ इति संचिन्त्य ते सर्वे प्रयाताः प्रेक्षितुं भुवः ॥ २५ ॥ तलं सर्वं परिज्ञातुं वचनान्नारदस्य च ॥ प्राच्यां केचिद्गताः कामं दक्षिणस्यां तथाऽपरे ॥ २६ ॥ प्रतीच्यामुत्तरस्यां तु कृतोत्साहाः समंततः ॥ दक्षः

बलवान् कालकी प्रेरणाके अनुसार देवर्षि नारद उन पुत्रोंको देखकर हँसते हुए कहने लगे—॥ २० ॥ 'अजी ! यह पृथ्वी कितनी लम्बी-चौड़ी है—इसका पता लगाये विना ही प्रजाकी सृष्टिमें तुम कैसे तत्पर हो गये ? ऐसा करनेसे जगत्‌में तुम्हारा बड़ा उपहास होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ अतएव पहले पृथ्वीकी सीमा जानकर ही तुम्हें इस कार्यमें लगना चाहिये। ऐसा करनेसे ही तुम्हें अपने कार्यमें सफलता प्राप्त होगी। अन्यथा तुम्हारा सारा प्रयास व्यर्थ हो जायगा' ॥ २२ ॥ २३ ॥ व्यासजी कहते हैं—नारदजीके यों कहनेपर दैववश दक्षकुमार हर्यश्वोंके मनमें यह बात जँच गयी। वे एक दूसरेकी ओर देखते हुए सहसा कहने लगे—'मुनिवरने बहुत ठीक कहा है ॥२४॥ अतः पृथ्वीका प्रमाण जान लेनेके पश्चात् ही हम प्रजाकी सृष्टिमें सुखपूर्वक लगेंगे।' इस प्रकार परामर्श करके वे सब पृथ्वीका पता लगानेके लिए चल पड़े ॥२५॥ नारदजीके कथनानुसार पृथ्वीके सर्वाङ्गकी जानकारी प्राप्त करनेके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ लोग पूर्व दिशामें, कुछ पश्चिम और कुछ उत्तर दिशाकी ओर उत्साहपूर्वक चल पड़े। पुत्रोंको गया देखकर दक्षप्रजापतिको महान् कष्ट हुआ ॥ २६ ॥ २७ ॥ वे बड़े दृढ़प्रतिज्ञ थे। अतः प्रजा-सृष्टिके विचारसे उन्होंने पुनः बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये। वे लड़के भी प्रजाकी सृष्टि करनेके प्रयत्नमें सलग्न हो गये ॥ २८ ॥ तब नारदजीने पहलेकी ही भाँति उन पुत्रोंको भी समझाते हुए कहा—तुम लोग बड़े मूर्ख हो, जो भूमण्डलका विस्तार जाने बिना सन्ततिके उत्पादनकार्यमें लग गये। तुम इस कार्यमें क्यों प्रवृत्त हुए हो? यह सुन-कर उन पुत्रोंकी भी मति फिर गयी। जिससे वे भूमण्डलका विस्तार जाननेको चल पड़े। उन पुत्रोंको भी चला गया देखकर दक्षके मनमें रोष उत्पन्न हो गया और उन्होंने क्रोधमें आकर नारदजीको शाप दे दिया। दक्षने कहा—हे नारद! तुमने जिस प्रकार मेरे बहुतसे पुत्रोंको नष्ट कर दिया है, उसी प्रकार तुम भी नष्ट हो जाओगे ॥ २९–३२ ॥ इस पापके परिणामस्वरूप तुम्हें गर्भमें रहकर मेरा पुत्र बनना पड़ेगा। कारण तुमने मेरे बहुत-से पुत्र नष्ट कर दिये हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकारके शापसे ग्रस्त होकर नारदजी वीरिणीके गर्भसे

पुत्रान्गतान्दृष्ट्वा पीडितस्तु शुचा भृशम् ॥ २७ ॥ अन्यानुत्पादयामास प्रजार्थं कृतनिश्चयः ॥ तेऽपि तत्रोद्यताः कर्तुं प्रजार्थमुद्यमं सुताः ॥ २८ ॥
नारदः प्राह तान्दृष्ट्वा पूर्वं यद्वचनं मुनिः ॥ बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवः किल ॥२९॥ प्रमाणं तु प्रजाः कर्तुं प्रवृत्ताः केन हेतुना॥ श्रुत्वा
वाक्यं मुनेस्तेऽपि मत्वा सत्यं विमोहिताः ॥३०॥ जग्मुः सर्वे यथापूर्वं भ्रातरश्चलितास्तथा ॥ तान्सुतान्प्रस्थितान्दृष्ट्वा दक्षः कोपसमन्वितः ॥३१॥
दक्ष उवाच ॥ नाशिता मे सुता यस्मात्तस्मान्नाशमवाप्नुहि ॥ ३२ ॥ पापेनानेन दुर्बुद्धे गर्भवासं व्रजेति च ॥ पुत्रो मे भव कामं त्वं यतो मे
भ्रंशिताः सुताः ॥ ३३ ॥ इति शप्तस्ततो जातो वीरिण्यां नारदो मुनिः ॥ षष्टिर्भूयोऽसृजत्कन्या वीरिण्यामिति नः श्रुतम् ॥ ३४ ॥ शोकं
विहाय पुत्राणां दक्षः परमधर्मवित् ॥ तासां त्रयोदश प्रादात्कश्यपाय महात्मने ॥ ३५ ॥ दश धर्माय सोमाय सप्तविंशति भूपते ॥ द्वे चैव भृगवे
प्रादाच्चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ ३६ ॥ द्वे चैवांगिरसे कन्ये तथैवांगिरसे पुनः ॥ तासां पुत्राश्च पौत्राश्च देवाश्च दानवास्तथा ॥ ३७ ॥ जाता बलसमा-
युक्ताः परस्परविरोधकाः ॥ रागद्वेषान्विताः सर्वे परस्परविरोधिनः ॥ सर्वे मोहावृताः शूरा ह्यभवन्नतिमायिनः ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा-
पुराणे सप्तमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्रकट हुए। इसके बाद दक्ष-प्रजापतिने वीरिणीके उदरसे साठ कन्यायें उत्पन्न कीं ॥ ३४ ॥ प्रजापति दक्ष परम धर्मज्ञ पुरुष थे। उन्होंने उन साठ कन्याओंमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह महात्मा कश्यपके साथ कर दिया ॥३५॥ हे राजन्! उनकी आज्ञासे दस धर्मकी, सत्ताईस चन्द्रमाकी, दो भृगुकी और चार पुत्रियाँ अरिष्टनेमिकी पत्नी बनीं ॥ ३६ ॥ दो कन्याओंका विवाह अङ्गिराके साथ किया। शेष दो रहीं। उन्हें भी अङ्गिराको ही सौंप दिया। सभी देवता और दानव उन्हीं कन्याओंके पुत्र-पौत्र हैं ॥ ३७ ॥ वे सभी पुत्र-पौत्र उड़े पराक्रमी हुए। किन्तु किसीको किसीसे प्रेम नहीं था। द्वेषके कारण उनमें परस्पर शत्रुता ठनी रहती थी और वे सभी शूरवीर थे। किन्तु मायाके अत्यन्त प्रभाववश वे सदा मोहमें पड़े रहते थे ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(राजा शर्यातिकी कथा) जनमेजयने कहा–हे महाभाग ! अब आप राजाओंके वंशका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनानेकी कृपा कीजिये । धर्मके पूर्ण वेत्ता सूर्यवंशी राजाओंकी वंशावलीका विशदरूपसे वर्णन करिये ॥१॥ व्यासजी बोले–हे भारत ! ऋषिसत्तम नारदजीके मुखसे मैं जो सुन चुका हूँ, उसीके अनुसार सूयवंशका वणन करता हूँ । ध्यानपूवक सुनिए ॥ २ ॥ एक समयकी बात है, श्रीमान् नारदजी स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हुए सरस्वती नदीके पावन तटपर पधारे । वहीं एक पवित्र आश्रमपर मैं रहता था ॥ ३ ॥ मैंने सामने उपस्थित हो और सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया । बैठनेके लिए सामने आसन विछा दिया और आदरपूर्वक मुनिकी पूजा की ॥ ४ ॥ विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् मैंने उनसे कहा—'मुनिवर ! आप मेरे परम पूज्य हैं । आपके यहाँ पधारनेसे मैं पवित्र हो गया ॥ ५ ॥ हे मुने ! आपसे कोई बात छिपी नहीं है । इन सातवें मनुके वंशमें जो विख्यात राजे हो चुके हैं, उनके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाली पवित्र कथा सुनाइये ॥ ६ ॥ क्योंकि उनकी उत्पत्तिकी कथायें और चरित्र अद्भुत हैं । अतएव हे ब्रह्मन् ! मैं सूर्यवंशका सविस्तार

जनमेजय उवाच ॥ ममाख्याहि महाभाग राज्ञां वंशं सविस्तरम् ॥ सूर्यान्वयप्रसूतानां धर्मज्ञानां विशेषतः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु भारत वक्ष्यामि रविवंशस्य विस्तरम् ॥ यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदादृषिसत्तमात् ॥ २ ॥ एकदा नारदः श्रीमान्सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥ आजगामाश्रमे पुण्ये विचरन्स्वेच्छया मुनिः ॥ ३ ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ तस्याग्रे संस्थितस्तदा ॥ ततस्तस्यासनं दत्त्वा कृत्वाऽर्हणमथादरात् ॥ ४ ॥ विधिवत्पूजयित्वा तमुक्तवान्वचनं त्विदम् ॥ पावितोऽहं मुनिश्रेष्ठ पूज्यस्यागमनेन वै ॥५॥ कथां कथय सर्वज्ञ राज्ञां चरितसंयुताम् ॥ राजानो ये समाख्याताः सप्तमेऽस्मिन्मनोः कुले ॥ ६ ॥ तेषामुत्पत्तिरतुला चरितं परमाद्भुतम् ॥ श्रोतुकामोऽस्म्यहं ब्रह्मन्सूर्यवंशस्य विस्तरम् ॥ ७ ॥ ममाख्याहि मुनिश्रेष्ठ समासव्यासपूर्वकम् ॥ इति पृष्टो मया राजन्नारदः परमार्थवित् ॥८॥ उवाच प्रहसन्प्रीतः समाभाष्य मुदाऽव्ययम् ॥ नारद उवाच॥ शृणु सत्यवतीसूनो राज्ञां वंशमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ पावनं कर्णसुखदं धर्मज्ञानादिभिर्युतम् ॥ ब्रह्मा पूर्वं जगत्कर्ता नाभिपंकजसम्भवः ॥ १० ॥ विष्णोरिति पुराणेषु प्रसिद्धः परिकीर्तितः ॥ सर्वज्ञः सर्वकर्ताऽसौ स्वयंभूः सर्वशक्तिमान् ॥ ११ ॥ तपस्तप्त्वा स विश्वात्मा वर्षाणामयुतं पुरा ॥ सृष्टिकामः शिवां ध्यात्वा प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम् ॥ १२ ॥ पुत्रानुत्पादयामास मानसाञ्शुभलक्षणान् ॥ मरीचिः प्रथितस्तेषामभवत्सृष्टिकर्मणि ॥ १३ ॥ तस्य पुत्रोऽतिविख्यातः

वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥ ७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! संक्षिप्त या विस्तृत जिस रूपमें आप चाहें, मुझे यह वृत्तान्त सुनाइए । हे राजन् ! मेरे ऐसा कहनेपर परमार्थके विज्ञ नारद हँसकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक बोले । नारदजी कहते हैं—हे सत्यवतीनन्दन व्यासजी ! राजाओंकी अत्यन्त उत्तम वंशावली सुनो ॥ ८ ॥ ९ ॥ कानोंको सुख पहुँचानेवाला यह प्रसंग धर्म और ज्ञान आदिसे सम्पन्न है । पुराणोंमें ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि सर्वप्रथम भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी प्रकट हुए । सम्पूर्ण जगत्के रचयिता स्वयम्भू ब्रह्माजी सर्वज्ञानी एवं सर्वशक्तिसम्पन्न थे ॥ १० ॥ ११ ॥ सृष्टि करनेके विचारसे उन विश्वात्मा विभुसे पहले श्रेष्ठ शक्तिकी आधारभूता भगवती जगदंबाका ध्यान करते हुए दस हजार वर्षोंतक तप किया ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन्होंने उत्तम लक्षणवाले मानस-पुत्रोंको प्रकट किया । उन मानस पुत्रोंमें सर्वप्रथम मरीचि प्रकट हुए ॥१३॥ मरीचिसे परम प्रसिद्ध कश्यपजीका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जन्म हुआ। दक्ष-प्रजापतिकी तेरह कन्याएँ उन कश्यपजीकी पत्नी हुईं ॥१४॥ देवता, दानव, यक्ष, सर्पगण, पशु और पक्षी—सब उन्हींसे उत्पन्न हुए। अतएव यह 'काश्यपी सृष्टि' कही जाती है ॥१५॥ देवताओंमें श्रेष्ठ सूर्य हुए। उन्हींका नाम विवस्वान् भी है। उन्हींके पुत्र वैवस्वत मनुको जगत्का शासनकार्य सौंपा गया ॥१६॥ वैवस्वत मनुसे सूर्यवंशकी वृद्धि करनेमें परम कुशल इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए। फिर उनके नौ भाई और जायमान हुए ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! उन भाइयोंका नाम बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो ; वे थे—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, करूष और पृषध्र। ये ही नौ 'मनुपुत्र' नामसे विख्यात हैं ॥१८॥१९॥ इन मनुपुत्रोंमें सर्वप्रथम इक्ष्वाकुका जन्म हुआ था। अतएव वे सबसे बड़े कहे जाते हैं ; इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए। उन सबमें आत्मज्ञानी विकुक्षि श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥२०॥ मनुके वे नवों पुत्र बड़े शूरवीर थे। मनुके पश्चात् उनके पुत्रोंकी जो वंशावली बढ़ी, उसका संक्षेपमें

कश्यपः सर्वसम्मतः ॥ त्रयोदशैव तस्यासन्भार्या दक्षसुताः किल ॥ १४ ॥ देवाः सर्वे समुत्पन्ना दैत्या यक्षाश्च पन्नगाः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तस्मात्सृष्टिस्तु काश्यपी ॥ १५ ॥ देवानां प्रथितः सूर्यो विवस्वान्नाम तस्य तु ॥ तस्य पुत्रः स विख्यातो वैवस्वतमनुर्नृप ॥ १६ ॥ तस्य पुत्रस्तथेक्ष्वाकुः सूर्यवंशविवर्धनः ॥ नवाभवन्सुतास्तस्य मनोरिक्ष्वाकुपूर्वजाः ॥ १७ ॥ तेषां नामानि राजेन्द्र शृणुष्वैकमनाः पुनः ॥ इक्ष्वाकुरथ नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ १८ ॥ नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नृगो दिष्टश्च सप्तमः ॥ करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः ॥ १९ ॥ इक्ष्वाकुस्तु मनोः पुत्रः प्रथमः समजायत ॥ तस्य पुत्रशतं चासीज्ज्येष्ठो विकुक्षिरात्मवान् ॥ २० ॥ नवानां वंशविस्तारं संक्षेपेण निशामय ॥ शूराणां मनुपुत्राणां मनोरंतरजन्मनाम् ॥ २१ ॥ नाभागस्य तु पुत्रोऽभूदंबरीषः प्रतापवान् ॥ धर्मज्ञः सत्यसधश्च प्रजापालनतत्परः ॥ २२ ॥ धृष्टात्तु धार्ष्टकं क्षत्रं ब्रह्मभूतमजायत ॥ संग्रामकातरं सम्यग्ब्रह्मकर्मरतं तथा ॥ २३ ॥ शर्यातेस्तनयश्चाभूदानर्तो नाम विश्रुतः ॥ सुकन्या च तथा पुत्री रूपलावण्यसंयुता ॥ २४ ॥ च्यवनाय सुता दत्ता राज्ञाऽप्यंधाय सुन्दरी ॥ मुनिः सुलोचनो जातस्तस्याः शीलगुणेन ह ॥ २५ ॥ विहितो रविपुत्राभ्यामश्विभ्यामिति नः श्रुतम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ संदेहोऽयं महान्ब्रह्मन्कथायां कथितस्त्वया ॥२६॥ यद्राज्ञा मुनयेऽन्धाय दत्ता पुत्री सुलोचना ॥ कुरूपा गुणहीना वा नारी लक्षणवर्जिता ॥२७॥ पुत्री यदा भवेद्राजा तदांधाय प्रयच्छति ॥ ज्ञात्वाऽन्धं सुमुखीं कस्माद्दत्तवान्नृ-

वर्णन करता हूँ ॥२१॥ नाभागके पुत्र परम प्रतापी अंबरीष हुए। ये धर्मज्ञानी, सत्यवादी और प्रसिद्ध प्रजापालक थे ॥२२॥ धृष्टसे धार्ष्टका जन्म हुआ। धार्ष्ट क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मण बन गये। अतः संग्राम-विषयक उत्साह उनके हृदयसे जाता रहा। उनके द्वारा सम्यक् प्रकारसे ब्राह्मणका कर्म होने लगा ॥२३॥ शर्यातिसे आनर्तका जन्म हुआ, जिनका नाम सभी जानते हैं। सुकन्या नामकी एक परम सुंदरी पुत्री भी उत्पन्न हुई ॥२४॥ राजा शर्यातिने अपनी उस सुंदरी कन्याका विवाह नेत्रहीन च्यवन मुनिके साथ कर दिया। बादमें उसी कन्याके शील और गुणके प्रभावसे मुनिको आँखें प्राप्त हो गयीं। सूर्यनन्दन अश्विनीकुमारोंने मुनिको नेत्र प्रदान किये थे। राजा जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! आपने इस कथाके प्रसंगमें जो यह बात कही कि राजा शर्यातिने अन्धे मुनिके साथ अपनी सुलोचना कन्याका विवाह कर दिया। सो यह विषय बहुत संदेह उत्पन्न कर रहा है। उनकी वह कन्या कुरूप' गुणहीन और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुभ लक्षणोंसे रहित होती, तब तो राजा उसका सम्बन्ध एक अन्धेके साथ कर भी सकते थे। परन्तु ऐसी परम सुन्दरी कन्याका विवाह नेत्रहीन जानते हुए भी च्यवन मुनिके साथ क्यों कर दिया? हे ब्रह्मन्! मुझे इसका कारण बतानेकी कृपा करें। सूतजी कहते हैं–परीक्षितनन्दन राजा जनमेजयकी बात सुनकर व्यासजी कहने लगे। व्यासजी बोले—हे राजन्! वैवस्वत मनुके पुत्रका नाम श्रीमान् राजा शर्याति था॥ २८–३०॥ उनके चार हजार भार्याएँ थीं। वे सभी रानियाँ अत्यन्त सुन्दरी एवं सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंमेंसे सम्पन्न थीं॥ ३१॥ उन सबके बीचमें एक परम सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम था–सुकन्या॥३२॥ वह कन्या पिता तथा समस्त माताओंके लिए अत्यन्त स्नेहपात्र थी। नगरसे थोड़ी दूरपर मानसरोवरकी तुलना करनेवाला एक सुन्दर सरोवर था॥३३॥ उसमें उतरनेके लिए सीढ़ियाँ बँधी थीं। वह निर्मल जलसे परिपूर्ण था। हंस और चक्रवाक पक्षी उसकी अनुपम शोभा बढ़ा रहे थे। जलकाक

पसत्तमः॥ २८॥ कारणं ब्रूहि मे ब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मि सर्वदा॥ सूत उवाच॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा परीक्षितसुतस्य वै॥ २९॥ द्वैपायनः प्रसन्नात्मा तमुवाच हसन्निव॥ व्यास उवाच॥ वैवस्वतसुतः श्रीमाञ्छर्यातिर्नाम पार्थिवः॥ ३०॥ तस्य स्त्रीणां सहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहाः॥ राजपुत्र्यः सरूपाश्च सर्वलक्षणसंयुताः॥ ३१॥ पत्न्यः प्रेमयुताः सर्वाः प्रिया राज्ञः सुसंमताः॥ एका पुत्री तु तासां वै सुकन्या नाम सुन्दरी॥ ३२॥ पितुः प्रिया च मातॄणां सर्वासां चारुहासिनी॥ नगरान्नातिदूरेऽभूत्सरो मानससन्निभम्॥ ३३॥ बद्धसोपानमार्गं च स्वच्छपानीयपूरितम्॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्॥ ३४॥ दात्यूहसारसाकीर्णं सर्वपक्षिगणावृतम्॥ पंचधा कमलोपेतं चंचरीकसुसेवितम्॥ ३५॥ पार्श्वतश्च द्रुमाकीर्णं वेष्टितं पादपैः शुभैः॥ सालैस्तमालैः सरलैः पुन्नागाशोकमंडितम्॥ ३६॥ वटाश्वत्थकदंबैश्च कदलीखंडराजितम्॥ जंबीरैर्बीजपूरैश्च खर्जूरैः पनसैस्तथा॥३७॥ क्रमुकैर्नारिकेलैश्च केतकैः कांचनद्रुमैः॥ यूथिकाजालकैः शुभ्रैः संवृतं मल्लिकागणैः॥३८॥ जंब्वाम्रतितिणीभिश्च करंजकुटजावृतम्॥ पलाशनिंबखदिरबिल्वामलकमंडितम्॥ ३९॥ बभूव कोकिलारावः केकास्वनविराजितम्॥ तत्समीपे शुभे देशे पादपानां गणावृते॥ ४०॥ भार्गवश्च्यवनः शान्तस्तापसः संस्थितो मुनिः॥ ज्ञात्वाऽसौ विजनं स्थानं तपस्तेपे समाहितः॥ ४१॥

और सारस आदि पक्षियोंसे उस तालाबका सारा भाग भरा रहता था। उसमें पाँच प्रकारके कमल खिले रहते थे। बहुत-से सुन्दर वृक्ष उस सरोवरके तटको घेरे हुए थे॥ ३४॥ ३५॥ साल, तमाल, देवदारु, जायफल और अशोकके वृक्ष उस स्वच्छ सरोवरको भली भाँति अलंकृत कर रहे थे॥ ३६॥ वट, पीपल, कदम्ब, केला, नीबू, अनार, खजूर, कटहल, सुपारी, नारियल, केतकी, कचनार, जूही, मालती जैसी सुन्दर एवं स्वच्छ लताओं तथा वृक्षोंसे वह सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न था॥ ३७॥ ३८॥ जामुन, आम, इमली, करंज, कोरैया, पलाश, नीम, खैर और बेल आदिके वृक्षोंसे उसकी शोभा बढ़ रही थी॥ ३९॥ कोकिलों और मोरोंकी ध्वनिसे वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। उस सरोवरके बिल्कुल पासमें ही वृक्षोंसे घिरे हुए एक पवित्र स्थानपर च्यवन मुनि निवास करते थे। उन तपस्वी मुनिके चित्तमें सदा शान्ति बनी रहती थी। उस स्थानको निर्जन समझकर उन्होंने मनको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एकाग्र करके तपस्या आरम्भ कर दी ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वे आसन जमाकर बैठे थे । उन्होंने मौन धारण कर रखा था । प्राणोंपर उनका पूरा अधिकार था । सभी इन्द्रियाँ उनके वशमें थीं ! उन तपोनिधिने भोजन भी बन्द कर दिया था ॥४२॥ वे निर्जल रहकर भगवती जगदम्बाका ध्यान करते थे । हे राजन् ! उनके शरीरपर चारों ओरसे लताएँ लस गयी थीं । दीमकोंने उनपर अपना घर बना लिया था ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! बहुत दिनोंतक यों बैठे रहनेके कारण उनपर चींटियाँ चढ़ गयीं और उनसे वे घिर गये । ऐसा जान पड़ता था कि वे मानो मिट्टीके ढूह हों ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! एक समयकी बात -राजा शर्याति अपनी रानियोंके साथ विहार करनेके लिए उस श्रेष्ठ स्थानपर आये ॥ ४५ ॥ सरोवरका जल सर्वथा स्वच्छ था । कमल खिले हुए थे । अतएव राजा शर्याति सुन्दरियोंको साथ लेकर जलक्रीड़ा करने लगे ॥ ४६ ॥ लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली सुकन्या बालसुलभ चपलताके कारण अपनी सखियोंके साथ वनमें जाकर पुष्प तोड़ती हुई घूमने लगी ॥४७॥ इधर-उधर चक्कर काटती हुई वह राजकुमारी च्यवन मुनिके निकट पहुँच गयी । मुनिका शरीर दीमकोंका घर बन गया था । उसीके

कृत्वा दृढासनं मौनमाधाय जितमारुतः ॥ इन्द्रियाणि च संयम्य त्यक्ताहारस्तपोनिधिः ॥ ४२ ॥ जलपानादिरहितो ध्यायन्नास्ते पराम्बिकाम् ॥ सवल्मीकोऽभवद्राजँल्लताभिः परिवेष्टितः ॥ ४३ ॥ कालेन महता राजन्समाकीर्णः पिपीलिकैः ॥ तथा स संवृतो धीमान्मृत्पिंड इव सर्वतः ॥ ४४ ॥ कदाचित्स महीपालः कामिनीगणसंवृतः ॥ आजगाम सरो राजन्विहर्तुमिदमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ शर्यातिः सुंदरीवृंदसंयुतः सलिलेऽमले ॥ क्रीडासक्तो महीपालो बभूव कमलाकरे ॥ ४६ ॥ सुकन्या वनमासाद्य विजहार सखीवृता ॥ सुमनांसि विचिन्वंती चञ्चला चञ्चलोपमा ॥ ४७ ॥ सर्वाभरण-संयुक्ता रणच्चरणनूपुरा ॥ चंक्रममाणा वल्मीकं च्यवनस्य समीपगा ॥ ४८ ॥ क्रीडासक्तोपविष्टा सा वल्मीकस्य समीपतः ॥ ददर्श चास्य रंध्रे वै खद्योत एव ज्योतिषी ॥ ४९ ॥ किमेतदिति संचिन्त्य समुद्धर्तुं मनो दधे ॥ गृहीत्वा कंटकं तीक्ष्णं त्वरमाणा कृशोदरी ॥ ५० ॥ सा दृष्टा मुनिना बाला समीपस्था कृतोद्यमा ॥ विचरंती सुकेशांता मन्मथस्येव कामिनी ॥५१॥ तां वीक्ष्य सुदतीं तत्र क्षामकंठस्तपोनिधिः ॥ तामभाषत कल्याणीं किमेतदिति भार्गवः ॥ ५२ ॥ दूरं गच्छ विशालाक्षि तापसोऽहं वरानने ॥ मा भिंदस्वाद्य वल्मीकं कंटकेन कृशोदरि ॥५३॥ तेनेदं प्रोच्यमानाऽपि सा चास्य न श्रृणोति वै ॥ किमु खल्विदमित्युक्त्वा निर्बिभेदास्य लोचने ॥५४॥ दैवेन नोदिता भित्त्वा जगाम नृपकन्यका ॥ क्रीडंती शंकमाना

समीप सुकन्या खेल रही थी । सहसा उसे वल्मीकके छिद्रसे जुगनूकी भाँति चमकनेवाली दो ज्योतियाँ दिखाई पड़ीं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ यह क्या है—ऐसी जिज्ञासा उठनेपर उस सुन्दरी राजकुमारीके मनमें आया कि आवरण हटाकर देखा जाय । फिर तो तुरन्त ही एक नोकदार काँटा लेकर उससे वह ऊपरकी मिट्टी हटाने लगी ॥ ५० ॥ अब पास आकर उद्यम करनेवाली उस कन्यापर मुनिकी दृष्टि पड़ी । वह रति जैसी सुन्दरी राजकुमारी च्यवन मुनिके देखनेमें आ गयी ॥ ५१ ॥ अन्न और जलका परित्याग कर देनेसे परम तपस्वी मुनिवर च्यवनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो चुका था । कल्याणी सुकन्याको देखकर वे उससे कहने लगे—॥ ५२ ॥ 'हे सुंदरी ! दूर चली जाओ । मैं एक तपस्वी हूँ । इस दीमककी मिट्टीको काँटेसे हटाना ठीक नहीं है ।' ॥ ५३ ॥ मुनिके यह कहनेपर भी राजकुमारीने उनकी बातें नहीं सुनीं । यह कौन-सी अद्भुत वस्तु झलक रही है—यह कहकर उसने काँटेसे मुनिके नेत्र फोड़ दिये ॥५४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दैवकी प्रेरणासे खेल-ही खेलमें राजकुमारीके द्वारा यह अप्रिय घटना घट गयी। तदनन्तर सशङ्कभावसे खेलती और 'मैंने क्या कर डाला' यह सोचती हुई सुकन्या वहाँसे चली आयी। इस प्रकार आँखें फूट जानेसे महर्षि च्यवनको बड़ा क्रोध आया और बड़ी तीव्र वेदना हुई ॥५५॥५६॥ फिर तो उसी क्षणसे राजाके समस्त सैनिकोंका मल-मूत्र बन्द हो गया। मन्त्रीसहित राजापर भी यह कष्ट छा गया। यहाँतक कि हाथी, घोड़े और ऊँट आदि जितने प्राणी थे, सभी इस व्याधिसे ग्रस्त हो गये। ऐसी स्थितिमें राजा शर्याति बहुत दुखी हुए ॥५७॥५८॥ तब उन्होंने इस कष्टके कारणपर विचार किया। कुछ समय विचार करनेके पश्चात् राजा घरपर आये और अपने परिजनों तथा सैनिकोंसे अत्यन्त आतुर होकर पूछने लगे—'किसके द्वारा यह अप्रिय कार्य हुआ है? उस तालाबके पश्चिमी तटवाले वनमें महान् तपस्वी मुनिवर च्यवन कठिन तपस्या कर रहे हैं ॥५९-६१॥ वे अग्निके समान तेजस्वी हैं। हो न हो, हममेंसे किसीके द्वारा

सा किं कृतं तु मयेति च ॥५५॥ चुक्रोध स तथा विद्धनेत्रः परममन्युमान् ॥ वेदनाभ्यर्दितः कामं परितापं जगाम ह ॥५६॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां तु तत्क्षणात् ॥ विशेषेण तु भूपस्य सामात्यस्य समंततः ॥ ५७ ॥ गजोष्ट्रतुरगाणां च सर्वेषां प्राणिनां तदा ॥ ततो रुद्धे शकृन्मूत्रे शर्यातिर्दुःखितोऽभवत् ॥ ५८ ॥ सैनिकैः कथितं तस्मै शकृन्मूत्रनिरोधनम् ॥ चिंतयामास भूपालः कारणं दुःखसंभवे ॥ ५९ ॥ विचिंत्याह ततो राजा सैनिकान्स्वजनांस्तथा ॥ गृहमागत्य चिंतार्तः केनेदं दुष्कृतं कृतम् ॥ ६० ॥ सरसः पश्चिमे भागे वनमध्ये महातपाः ॥ च्यवनस्तापसस्तत्र तपश्चरति दुश्चरम् ॥ ६१ ॥ केनाप्यपकृतं तत्र तापसेऽग्निसमप्रभे ॥ तस्मात्पीडा समुत्पन्ना सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ६२ ॥ तपोवृद्धस्य वृद्धस्य वरिष्ठस्य विशेषतः ॥ केनाप्यपकृतं मन्ये भार्गवस्य महात्मनः ॥ ६३ ॥ ज्ञातं वा यदि वाऽज्ञातं तस्येदं फलमुत्तमम् ॥ कैश्च दुष्टैः कृतं तस्य हेलनं तापसस्य ह ॥ ६४ ॥ इति पृष्टास्तमूचुस्ते सैनिका वेदनार्दिताः ॥ मनोवाकायजनितं न विद्मोऽपकृतं वयम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति पप्रच्छ तान्सर्वान्राजा चिंताकुलस्तथा ॥ पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं साम्ना चोग्रतयाऽपि च ॥ १ ॥ पीड्यमानं जनं वीक्ष्य

उन्हींका कोई अपकार हो गया है। इसीसे सबके शरीरमें ऐसी व्याधि उत्पन्न हो गयी है—यह बिल्कुल निश्चित है ॥ ६२ ॥ भृगुनन्दन महात्मा च्यवन परम वृद्ध एवं विशिष्ट आदरणीय पुरुष हैं। मेरी समझसे अवश्य ही किसीने उनका अनिष्ट कर दिया है ॥६३॥ यह अनिष्ट जानकर किया गया हो अथवा अनजानमें, इसका फल तो भोगना ही पड़ेगा। समझमें नहीं आता कि किन दुष्टोंने उनका अपमान किया है ॥६४॥ राजाके यों कहनेपर दुःखसे घबराये हुए सैनिकोंने कहा—'मन-वाणी और कर्म द्वारा हमसे मुनिका कोई अपकार हुआ है, इसे हम बिल्कुल नहीं जानते' ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

(च्यवनके साथ सुकन्याका विवाह) व्यासजी बोले—हे राजन्! इस वेदनासे राजा शर्याति अत्यन्त चिन्तित हो उठे। अतएव शान्ति तथा उग्रतापूर्वक सबसे पूछनेके पश्चात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्होंने बन्धु-मण्डलसे पूछा। सारी जनता तथा पिताजीको भी दुखी देखकर राजकुमारी सुकन्याने विचार किया कि मेरे द्वारा उन छेदोंमें सुई चुभा दी गयी था, यही कारण हो सकता है। अतः उसने कहा—॥ १ ॥ २ ॥ हे पिताजी! मैं उस वनमें खेल रही थी। वहीं मिट्टीका एक बहुत बड़ा ढूहा-सा दिखायी पड़ा। उसके चारों ओर लताएँ फैली थीं। उसमें दो छिद्र दृष्टिगोचर हो रहे थे॥ ३ ॥ उन छेदोंमेंसे बड़ा प्रकाश निकल रहा था। हे महाराज! मैंने जुगुनू समझकर कौतूहलवश उन छिद्रोंमें सुई चुभो दी ॥४॥ हे पिताजी! उस समय मैंने देखा वह सूई जलसे भींग गयी थी। साथ ही उन वल्मीकमेंसे 'हा हा' की धीमी आवाज भी मुझे सुनायी दी ॥५॥ हे पिताजी! तब मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गयी। यह क्या हो गया—इस शंका-से मेरा हृदय भर आया। पता नहीं, मेरे द्वारा उस वल्मीकमें कौन-सी वस्तु छिद गयी थी ॥ ६ ॥ राजा शर्याति सुकन्याकी यह कोमल वाणी सुनकर समझ गये कि मुनिकी यही अव-हेलना हुई है। अब वे तुरन्त वल्मीकके पास जा पहुँचे ॥ ७ ॥ वहाँ उन्होंने महान् कष्टमें पड़े हुए परम तपस्वी च्यवन ऋषिको देखा। मुनिके शरीरपर दीमककी मिट्टी चढ़ी हुई थी।

पितरं दुःखितं तथा ॥ विचिन्त्य शूलभेदं सा सुकन्या चेदमब्रवीत् ॥ २ ॥ वने मया पितस्तत्र वल्मीको वीरुधावृतः ॥ क्रीडंत्या सुदृढो दृष्टश्छिद्र-द्वयसमन्वितः ॥ ३ ॥ तत्र खद्योतवद्दीप्तज्योतिषी वीक्षिते मया ॥ सूच्या विद्धे महाराज पुनः खद्योतशंकया ॥ ४ ॥ जलक्लिन्ना तदा सूची मया दृष्टा पितः किल ॥ हाहेति च श्रुतः शब्दो मन्दो वल्मीकमध्यतः ॥ ५ ॥ तदाऽहं विस्मिता राजन्किमेतदिति शंकया ॥ न जाने किं मया विद्धं तस्मिन्वल्मीकमण्डले ॥ ६ ॥ राजा श्रुत्वा तु शर्यातिः सुकन्यावचनं मृदु ॥ मुनेस्तद्धेलनं ज्ञात्वा वल्मीकं क्षिप्रमभ्यगात् ॥ ७ ॥ तत्रापश्यत्तपोवृद्धं च्यवनं दुःखितं भृशम् ॥ स्फोटयामास वल्मीकं मुनिदेहावृतं ततः ॥ ८ ॥ प्रणम्य दंडवद्भूमौ राजा तं भार्गवं प्रति ॥ तुष्टाव विनयोपेतस्तमुवाच कृतांजलिः ॥ ९ ॥ पुत्र्या मम महाभाग क्रीडंत्या दुष्कृतं कृतम् ॥ अज्ञानाद्बालया ब्रह्मन्कृतं तत्क्षंतुमर्हसि ॥ १० ॥ अक्रोधना हि मुनयो भवंतीति मया श्रुतम् ॥ तस्मात्त्वमपि बालायाः क्षंतुमर्हसि सांप्रतम् ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य च्यवनो वाक्यमब्रवीत् ॥ विनयोपनतं दृष्ट्वा राजानं दुःखितं भृशम् ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ राजन्नाहं कदाचिद्वै करोमि क्रोधमण्वपि ॥ न मयाऽद्यैव शप्तस्त्वं दुहित्रा पीडने कृते ॥ १३ ॥ नेत्रे पीडा समुत्पन्ना मम चाद्य निरागसः ॥ तेन पापेन जानामि दुःखितस्त्वं महीपते ॥ १४ ॥ अपराधं परं कृत्वा देवीभक्तस्य

उन्होंने उसे धीरेसे दूर हटाया और धरतीपर लोटकर मुनिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया, उनकी स्तुति की और नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे—॥८॥९॥ हे महाभाग! मेरी कन्या खेल रही थी। उसीके द्वारा यह भारी दुष्कर्म हो गया है। हे ब्रह्मन्! वह बिल्कुल अबोध बालिका है। उसने अज्ञानवश ऐसा कर दिया है। आप उसके इस अपराधको क्षमा कर दें ॥१०॥ मुनियोंका स्वभाव ही क्षमा करना है—मैंने यह सुन रखा है। अतः आप भी इस बालिकाका अपराध क्षमा कर दीजिये ॥११॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा शर्याति अत्यन्त दुखी होकर नम्रतापूर्वक सामने खड़े थे। उनकी बात सुनकर च्यवन ऋषि यह वचन बोले ॥ १२ ॥ च्यवन मुनिने कहा—हे राजन्! मैं कभी किञ्चिन्मात्र क्रोध नहीं करता। यद्यपि तुम्हारी पुत्रीने मुझे बड़ा कष्ट पहुँचाया, परन्तु मैंने उसे कोई शाप नहीं दिया ॥१३॥ हे महीपते! मुझ निरपराध व्यक्तिकी आँखोंमें बड़ी पीड़ा हो रही है। मैं जानता हूँ, इस पापकर्मके प्रभावसे तुमपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संकट आ गया है ॥ १४ ॥ ठीक ही है, देवीभक्तके प्रति घोर अपराध करके कौन व्यक्ति सुखी रह सकता है ? यदि स्वयं शंकरजी उसके रक्षक हों, तब भी उसका सुखी रहना असम्भव है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! मैं क्या करूँ ? मेरी आँखोंने जवाब दे दिया। मुझे बुढ़ापा घेरे हुए है। हे भूपाल ! अब मुझ अन्धेकी सेवा कौन करेगा ? ॥ १६ ॥ राजा शर्यातिने कहा—हे मुनिवर ! बहुतसे सेवक रात-दिन आपकी सेवामें उपस्थित रहेंगे। आप अपराध क्षमा करें। कारण, तपस्वीजन अल्पक्रोधी होते हैं ॥ १७ ॥ च्यवनजी बोले—हे राजन् ! मैं नेत्रहीन हो अकेले रहकर अपनी तपस्यामें सफलता कैसे पा सकता हूँ ? तुम्हारे सेवक मेरी मनचाही बातें कैसे कर सकेंगे ? ॥ १८ ॥ हे राजन् ! यदि तुम मुझे क्षमा करनेके लिए कहते हो तो मेरी बात मानो। तुम अपनी कमलनयनी कन्याको मेरी सेवाके लिए मुझे सौंप दो ॥१९॥ हे महाराज ! मैं तुम्हारी उस कन्यापर प्रसन्न हूँ। उसके साथ रहकर मैं तपस्या करूँगा और वह मेरी सेवामें लगी रहेगी ॥२०॥ हे राजन् ! ऐसा करनेसे मैं और तुम—दोनों ही सुखी हो सकते हैं। मेरे सन्तुष्ट हो जानेपर सारे सैनिक भी सुखसे समय व्यतीत करेंगे—इसमें कोई संशय

को जनः ॥ सुखं लभेत यदपि भवेत्राता शिवः स्वयम् ॥ १५ ॥ किं करोमि महीपाल नेत्रहीनो जरावृतः ॥ अन्धस्य परिचर्यां च कः करिष्यति पार्थिव ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ सेवका बह्वः सेवां करिष्यंति तवानिशम् ॥ क्षमस्व मुनिशार्दूल स्वल्पक्रोधा हि तापसाः ॥ १७ ॥ च्यवन उवाच ॥ अन्धोऽहं निर्जनो राजँस्तपस्तप्तुं कथं क्षमः ॥ त्वदीयाः सेवकाः किं ते करिष्यंति मम प्रियम् ॥ १८ ॥ क्षमापायसि चेन्मा त्वं कुरु मे वचनं नृप ॥ देहि मे परिचर्यार्थं कन्यां कमललोचनाम् ॥ १९ ॥ तुष्येऽनया महाराज पुत्र्या तव महामते॥ करिष्यामि तपश्चाहं सा मे सेवां करिष्यति ॥२०॥ एवं कृते सुखं मे स्यात्तव चैव भविष्यति ॥ संतुष्टे मयि राजेन्द्र सैनिकानां न संशयः ॥ २१ ॥ विचिंत्य मनसा भूप कन्यादानं समाचर ॥ न चात्र दूषणं किंचित्तापसोऽहं यतव्रतः ॥२२॥ शर्यातिर्वचनं श्रुत्वा मुनेश्चिन्तातुरोऽभवत् ॥ न दास्येऽप्यथवा दास्ये किंचिन्नोवाच भारत ॥२३॥ कथमंधाय वृद्धाय कुरूपाय सुतामिमाम् ॥ देवकन्योपमां दत्त्वा सुखी स्यामात्मसंभवाम् ॥ २४ ॥ को वाऽऽत्मनः सुखार्थाय पुत्र्याः संसारजं सुखम् ॥ हरतेऽल्पमतिः पापो जानन्नपि शुभाशुभम् ॥ २५ ॥ प्राप्य सा च्यवनं सुभ्रूः पञ्चबाणशरार्दिता ॥ अंधं वृद्धं पतिं प्राप्य कथं कालं नयिष्यति ॥ २६ ॥ यौवने दुर्जयः कामो विशेषेण सुरूपया ॥ आत्मतुल्यं पतिं प्राप्य किमु वृद्धं विलोचनम् ॥ २७ ॥ गौतमं तापसं प्राप्य रूपयौवनसंयुता ॥ अहल्या

नहीं है ॥२१॥ ऐसा करनेसे तुम्हें कुछ भी दोष नहीं लगेगा। कारण, मैं संयमशील तपस्वी हूँ। अतएव सोचकर आप अपनी कन्या मुझे दे दीजिए ॥ २२ ॥ व्यासजी बोले—हे राजा जनमेजय ! च्यवन मुनिकी बात सुनकर राजा शर्याति चिन्तातुर हो गये। दूँगा अथवा नहीं दूँगा—यह कोई भी बात उस समय उनके मुखसे नहीं निकल सकी ॥२३॥ सोचा—'ये मुनि अन्धे, बूढ़े और कुरूप हैं। इन्हें मैं देवकन्याकी तुलना करनेवाली अपनी कन्याको सौंपकर कैसे सुखी हो सकूँगा ? ॥ २४ ॥ भला, ऐसा मूर्ख एवं पापी कौन है, जो शुभाशुभ-कर्मकी जानकारी रखते हुए भी स्वयं सुखी होनेके लिए अपनी पुत्रीके संसारजनित सुखपर आघात पहुँचानेको तत्पर हो जाय ? ॥ २५ ॥ इन अन्धे एवं बूढ़े च्यवन मुनिके समीप मेरी कामिनी कन्या किस प्रकार समय व्यतीत करेगी ॥२६॥ अपने जैसा सुन्दर पति पाकर भी यौवनावस्थामें विशेष करके रूपवती स्त्रीके लिए कामदेवपर काबू पाना बड़ा टेढ़ा काम होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, तब वृद्ध और अन्धे पतिको पाकर क्या दशा होगी ? ॥ २७ ॥ तपस्वी गौतम मुनिकी रूप-यौवनसम्पन्ना पत्नी अहल्याको इन्द्रने शीघ्र ठग लिया था ॥ २८ ॥ जब मुनि गौतमको यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने अहल्याको शाप दे दिया। अतएव मुझे दुःख भले ही हो, किन्तु मैं अपनी सुकन्या इन मुनिको नहीं दे सकता ॥ २९ ॥ इस प्रकार विचार करनेके उपरान्त राजा शर्याति उदास होकर अपने घर लौट आये। उनके मनमें असीम संताप छाया हुआ था। उन्होंने मन्त्रियोंको बुलाकर परामर्श किया और उनसे पूछा—॥ ३० ॥ हे मंत्रियों! तुम सब अपनी सम्मति प्रकट करो। इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये। मुनिको कन्या दे दूँ अथवा दुःख ही सह लूँ ?' मन्त्रियोंने कहा-महाराज! यह बड़े ही संकटकी समस्या सामने उपस्थित है। हम इस अवसरपर क्या कहें? इस अभागे व्यक्तिको परम सुकुमारी सुकन्या देना कैसे उचित हो सकता है? व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर पिता तथा मन्त्रियोंको अत्यन्त चिन्तित देखकर सब रहस्य राजकुमारी सुकन्याकी समझमें आ गया। अतः वह हँसकर बोली—'पिताजी! इस समय आप इतने चिन्तातुर क्यों हो रहे हैं? ॥ ३१-३४ ॥ मैं

वासवेनाशु वंचिता वरवर्णिनी ॥ २८ ॥ शप्ता च पतिना पश्चाज्ज्ञात्वा धर्मविपर्ययम् ॥ तस्माद्भवतु मे दुःखं न ददामि सुकन्यकाम् ॥ २९ ॥ इति संचिन्त्य शर्यातिर्विमनाः स्वगृहं ययौ ॥ सचिवाँश्च समादाय मंत्रं चक्रेऽतिदुःखितः ॥ ३० ॥ भो मंत्रिणो ब्रुवंत्वद्य किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ पुत्री देयाऽथ विप्राय भोक्तव्यं दुःखमेव वा ॥ ३१ ॥ विचारयध्वं मिलिता हितं स्यान्मम वै कथम् ॥ मंत्रिण ऊचुः ॥ किं ब्रूमोऽस्मिन्महाराज संकटेऽतिदुरासदे ॥ ३२ ॥ दुर्भगाय सुकन्यैषा कथं देयाऽतिसुन्दरी ॥ व्यास उवाच ॥ तदा चिंताकुलं वीक्ष्य पितरं मंत्रिणस्तथा ॥ ३३ ॥ सुकन्या त्विङ्गितं ज्ञात्वा प्रहस्येदमुवाच ह ॥ पितः कस्माद्भवानद्य चिंताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ ३४ ॥ मत्कृते दुःखसंविग्नो विषण्णवदनोऽसि वै ॥ अहं गत्वा मुनिं तत्र समाश्वास्य भयार्दितम् ॥ ३५ ॥ करिष्यामि प्रसन्नं तमात्मदानेन वै पितः ॥ इति राजा वचः श्रुत्वा भाषितं यत्सुकन्यया ॥ ३६ ॥ तामुवाच प्रसन्नात्मा सचिवानां च शृण्वताम् ॥ कथं पुत्रि त्वमंधस्य परिचर्यां वनेऽबला ॥ ३७ ॥ करिष्यसि जरार्तस्य क्रोधनस्य विशेषतः ॥ कथमन्धाय चानेन रूपेण रतिसन्निभाम् ॥ ३८ ॥ ददामि जरया ग्रस्तदेहाय सुखवांछया ॥ पित्रा पुत्री प्रदातव्या वयोज्ञातिबलाय च ॥ ३९ ॥ धनधान्यसमृद्धाय नाधनाय कदाचन ॥ क्व ते रूपं विशालाक्षि क्वासौ वृद्धो वनेचरः ॥ ४० ॥ कथं देया मया पुत्री तस्मै नातिवराय च ॥

समझ गयी, आप मेरे लिये इतने दुखी एवं उदास हैं। पिताजी! मैं भयसे घबड़ाये हुए च्यवनमुनिके पास जाकर उन्हें आश्वासन दूँगी और आत्मदान करके उनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करूँगी ॥३५॥ सुकन्याकी बात सुनकर राजा शर्यातिका हृदय द्रवित हो गया, साथ ही उनके मुखपर प्रसन्नताकी रेखा भी दौड़ गयी। मन्त्रियोंके समक्ष वे उससे कहने लगे—'बेटी! तुम अत्यन्त सुकुमारी अबला कन्या वनमें उन अन्धे मुनिकी सेवा कैसे कर सकोगी? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वे अत्यन्त बूढ़े और अत्यन्त क्रोधी भी हैं। भला, रूपमें रतिकी तुलना करनेवाली तुम जैसी कन्याका विवाह मैं उन अन्धे मुनिके साथ कैसे करूँ? अपने सुखके लिए बुढ़ापेसे ग्रस्त शरीरवाले मुनिको तुम्हें सौंपना उचित नहीं है। पिताका कर्तव्य है कि अवस्था, जाति और बलमें समानता रखनेवाले एवं धनधान्यसे सम्पन्न सुयोग्य वरके साथ अपनी कन्याका विवाह करे। निर्धनके साथ सम्बन्ध करना कदापि उचित नहीं है। कहाँ तो तुम्हारा रूप और कहाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वनमें रहनेवाला तथा यह बूढ़ा मुनि ॥३८-४०॥ भला, एक अयोग्य वरके साथ मेरे द्वारा पुत्रीका विवाह कैसे किया जा सकता है ? जो पर्णशालामें रहकर निरन्तर वनवासी जीवन व्यतीत करता है, उसके साथ तुम्हारे सम्बन्धकी कल्पना हो कैसे की जाय ? मेरी तथा सैनिकोंकी मृत्यु मुझे श्रेयस्कर प्रतीत हो रही है ॥४१॥४२॥ किंतु एक अन्धेके हाथों तुम्हें सौंप दूँ, यह हमें पसन्द नहीं है। जो होनेवाला होगा वह होगा ही, मैं अपना धैर्य नहीं छोड़ सकता ॥४३॥ तुम शान्त रहो। मैं तुम्हें नेत्रहीनको कदापि नहीं सौंपूँगा। राज्य एवं यह देह रहे अथवा चला जाय—परवाह नहीं ॥ ४४ ॥ हे बालिके ! उस नेत्रहीनको मैं तुम्हें देनेमें असहमत हूँ।' पिताकी यह बात सुनकर सुकन्या उनसे विनय तथा स्नेहपूर्वक कहने लगी। सुकन्या बोली—हे पिताजी ! आपको मेरे विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अब आप मुझे उन मुनिको सौंप दीजिए। मेरे इस कार्यसे सब प्राणियों तथा परिवारको सुख हो, यह मेरे लिए कितनी अच्छी बात है। मैं सन्तुष्ट रहकर उन परम-पावन मुनिको पति मानकर सेवा करूँगी ॥४५-४७॥ वे वृद्ध मुनि निर्जन वनमें मेरे द्वारा अत्यन्त भक्तिपूर्वक सुसेवित होंगे। क्योंकि

उटजे नियतं वासो यस्य नित्यं मनोहरे ॥ ४१ ॥ कथमंबुजपत्राक्षि कल्पनीयो मया तव ॥ मरणं वै वरं प्राप्तं सैनिकानां तथैव च ॥ ४२ ॥ न ते प्रदानमंधाय रोचते पिकभाषिणि ॥ भवितव्यं भवत्येव धैर्यं नैव त्यजाम्यहम् ॥ ४३ ॥ सुस्थिरा भव सुश्रोणि न दास्येऽन्धाय कर्हिचित् ॥ राज्यं तिष्ठतु वा यातु देहोऽयं च तथैव मे ॥ ४४ ॥ न त्वां दास्याम्यहं तस्मै नेत्रहीनाय बालिके ॥ सुकन्या तं तदा प्राह श्रुत्वा तद्वचनं पितुः ॥ ४५ ॥ प्रसन्नवदनाऽतीव स्नेहयुक्तमिदं वचः ॥ सुकन्योवाच ॥ न मे चिंता पितः कार्या देहि मां मुनयेऽधुना ॥४६॥ सुखं भवतु सर्वेषां लोकानां मत्कृतेन हि ॥ सेवयिष्यामि संतुष्टा पतिं परमपावनम् ॥ ४७ ॥ भक्त्या परमया चापि वृद्धं च विजने वने ॥ सतीधर्मपरा चाहं चरिष्यामि सुसंमतम् ॥ ४८ ॥ न भोगेच्छाऽस्ति मे तात स्वस्थं चित्तं ममानघ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य मंत्रिणो विस्मयं गताः ॥ ४९ ॥ राजा च परमप्रीतो जगाम मुनिसन्निधौ ॥ गत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच तपोधनम् ॥ ५० ॥ स्वामिन्गृहाण पुत्रीं मे सेवार्थं विधिवद्विभो ॥ इत्युक्त्वाऽसौ ददौ पुत्रीं विवाहविधिना नृपः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य मुनिः कन्यां प्रसन्नो भार्गवोऽभवत् ॥ पारिबर्हं न जग्राह दीयमानं नृपेण ह ॥ ५२ ॥ कन्यामेवाग्रहीत्कामं परिचर्यार्थमात्मनः ॥ प्रसन्नेऽस्मिन्मुनौ जातं सैनिकानां सुखं तदा ॥ ५३ ॥ राज्ञश्च परमाह्लादः संजातस्तत्क्षणादपि ॥ दत्त्वा पुत्रीं यदा राजा

मैं सतीधर्मको भली भाँति जानती हूँ। हे पिताजी ! भोगमें मेरी बिल्कुल रुचि नहीं है। हे अनघ ! आप मेरे विषयमें सर्वथा निश्चिन्त हो जाइये। व्यासजी कहते हैं—सुकन्याकी यह बात सुनकर मन्त्रिमण्डल अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अन्तमें राजाने सुकन्याकी बात मान ली और वे मुनिके पास जानेको चल पड़े। उन तपोधन मुनिके निकट पहुँचते ही मस्तक झुकाकर उन्होंने प्रणाम किया और कहा—॥ ५० ॥ 'हे स्वामिन् ! मेरी कन्या आपकी सेवामें उपस्थित है। हे विभो ! आप इसे स्वीकार करनेकी कृपा करें। इस प्रकार कहकर राजा शर्यातिने अपनी पुत्री सुकन्याका विवाह च्यवन मुनिके साथ कर दिया ॥५१॥ उस राजकुमारीको पाकर मुनि परम प्रसन्न हो गये। राजा दहेजकी सामग्री दे रहे थे, किंतु च्यवन मुनिने लेना अस्वीकार कर दिया ॥५२॥ अपनी सेवाका कार्य सम्पन्न हो जाय—इस विचारसे उन्होंने केवल कन्याको ही लेना स्वीकार किया। मुनिके प्रसन्न हो जानेपर सब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सैनिकोंका रोग दूर हो गया ॥५३॥ उसी समयसे राजाका भी मन परम आह्लादित रहने लगा। जब राजा शर्यातिने मुनिको पुत्री सौंपकर घर चलनेका विचार किया, तब सुकन्याके मनमें उनसे कुछ कहनेकी इच्छा हुई। सुकन्याने कहा–पिताजी! आप मेरे वस्त्र और आभूषण ले लें तथा मुझे वृक्षोंकी छालके बने वस्त्र एवं उत्तम मृगचर्म देनेकी कृपा करें। मैं मुनिपत्नियोंका वेष बनाकर तपस्यामें निरत होकर मुनिके सेवा करूँगी। जिससे धरातल, रसातल एवं स्वर्गमें भी आपकी कीर्ति अक्षुण्ण रह सकेगी ॥५४–५७॥ परलोकमें सुखी होनेके लिए मैं निरंतर मुनिकी सेवामें संलग्न रहूँगी। 'मैंने अपनी सुंदरी एवं तरुणी कन्या नेत्रहीन बूढ़े मुनिको सौंप दी और कहीं इसका आचरण भ्रष्ट हो जायगा तो बड़ा ही अनिष्ट होगा।' इस प्रकारकी चिंता आप बिल्कुल न करें। जिस प्रकार वसिष्ठकी पत्नी अरुन्धती तथा अत्रिकी साध्वी भार्या अनसूया स्वर्गमें प्रसिद्ध हैं, वैसे ही मैं भी तप करके आपकी कीर्ति बढ़ाऊँगी। राजा

गमनाय गृहं प्रति ॥ ५४ ॥ मतिं चकार तन्वंगी तदोवाच नृपं सुता ॥ सुकन्योवाच ॥ गृहाण मम वासांसि भूषणानि च मे पितः ॥ ५५ ॥
वल्कलं परिधानाय प्रयच्छाजिनमुत्तमम् ॥ वेषं तु मुनिपत्नीनां कृत्वा तपसि सेवनम् ॥ ५६ ॥ करिष्यामि तथा तात यथा ते कीर्तिरच्युता ॥
भविष्यति भुवः पृष्ठे तथा स्वर्गे रसातले ॥५७॥ परलोकसुखायाहं चरिष्यामि दिवानिशम् ॥ दत्त्वांधाय च वृद्धाय सुन्दरीं युवतीं तु माम् ॥ ५८ ॥
चिंता त्वया न कर्तव्या शीलनाशसमुद्भवा ॥ अरुन्धती वसिष्ठस्य धर्मपत्नी यथा भुवि ॥ ५९ ॥ तथैवाहं भविष्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥
अनसूया यथा साध्वी भार्याऽत्रेः प्रथिता भुवि ॥६०॥ तथैवाहं भविष्यामि पुत्री कीर्तिकरी तव॥ सुकन्यावचनं श्रुत्वा राजा परमधर्मवित् ॥ ६१ ॥
दत्त्वाऽजिनं रुरोदाशु वीक्ष्य तां चारुहासिनीम् ॥ त्यक्त्वा भूषणवासांसि मुनिवेषधरां सुताम् ॥ ६२ ॥ विवर्णवदनो भूत्वा स्थितस्तत्रैव पार्थिवः ॥
राज्ञ्यः सर्वाः सुतां दृष्ट्वा वल्कलाजिनधारिणीम् ॥ ६३ ॥ रुरुदुर्भृशशोकार्ता वेपमाना इवाभवन् ॥ तामापृच्छ्य महीपालो मंत्रिभिः परिवारितः
॥ ययौ स्वनगरं राजन्मुक्त्वा पुत्रीं शुचाऽर्पिताम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
॥ व्यास उवाच ॥ गते राजनि सा बाला पतिसेवापरायणा ॥ बभूव च तथाऽग्नीनां सेवने धर्मतत्परा ॥ १ ॥ फलान्यादाय स्वादूनि मूलानि

शर्याति धर्मज्ञ पुरुष थे। अपनी पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर उन्होंने उसे वल्कल-वस्त्रादि दे दिये, परन्तु उसपर दृष्टि डालते ही उनकी आँखोंमें जल भर आया और वे रोने लगे। सुकन्याने तुरंत वस्त्र और आभूषण उतारकर मुनिपत्नीका वेष धारण कर लिया। महाराज शर्याति उदास होकर कुछ समय तक वहीं ठहरे रहे। राजकुमारी वल्कल वसन और मृगचर्म धारण किये है–यह देख वहाँ उपस्थित सब रानियाँ रो पड़ीं। सब लोग काँपने लगे और सबके मनमें असीम संताप होने लगा। हे राजन्! फिर उस पुण्यमयी साध्वी कन्यासे पूछ और उसे वहीं छोड़कर राजा शर्याति मंत्रियोंके साथ अपने नगरको चले गये ॥ ५८–६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(सुकन्या द्वारा च्यवन मुनिकी सेवा) व्यासजी कहते हैं–राजा शर्यातिके चले जानेपर सुकन्या सर्वतोभावसे च्यवन मुनिकी सेवामें संलग्न हो गयी। धर्मपर तत्पर रहनेवाली उस राज-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुमारीके प्रयत्नसे आश्रमकी आग कभी बुझने नहीं पाती थी ॥१॥ वह स्वादिष्ट फल और भाँति-भाँतिके कन्द-मूल लाकर मुनिको अर्पण करती थी। पतिकी सेवामें ही उसका सारा समय व्यतीत होने लगा ॥ २ ॥ जाड़ेके दिनोंमे वह पानी गरम करके उससे मुनिको स्नान कराती, मृगचर्म पहनाती और पवित्र आसनपर बैठा देती थी ॥ ३ ॥ वह उनके आगे तिल, जौ, कुशा और कमण्डलु रखकर प्रार्थना करती–'मुनिवर ! अब आप नित्यकर्म कीजिये' ॥ ४ ॥ पतिदेवका जब नित्यकर्म समाप्त हो जाता, तब राजकुमारी उनका हाथ पकड़कर उठाती और किसी आसन अथवा पीढ़ेपर बिठा देती थी ॥ ५ ॥ तदनन्तर पके हुए फल एवं भलीभाँति सिद्ध किये गये तिन्नीके चावल लाकर च्यवन मुनिको भोजन कराती थी ॥६॥ जब पतिदेव भोजनसे तृप्त हो जाते, तब आदरपूर्वक वह उन्हें आचमन कराती थी। फिर बड़े प्रेमसे पान और सुपारी देती थी ॥ ७ ॥ मुखशुद्धि कर लेनेके बाद च्यवनजीको वह सुन्दर आसनपर बिठा देती थी। तत्पश्चात् मुनिसे आज्ञा लेकर वह अपनी शारीरिक क्रिया सम्पन्न करती थी ॥ ८ ॥ फलाहार करके फिर वह मुनिके पास जाती और अत्यन्त नम्रताके साथ उनसे कहती–'प्रभो ! मुझे क्या

विविधानि च ॥ ददौ सा मुनये बाला पतिसेवापरायणा ॥ २ ॥ पतिं तप्तोदकेनाशु स्नापयित्वा मृगत्वचा ॥ परिवेष्ट्य शुभायां तु बृस्यां स्थापितवत्यपि ॥ ३ ॥ तिलान् यवकुशानग्रे परिकल्प्य कमंडलुम् ॥ तमुवाच नित्यकर्म कुरुष्व मुनिसत्तम ॥ ४ ॥ तमुत्थाप्य करे कृत्वा समाप्ते नित्यकर्मणि ॥ बृस्यां वा संस्तरे बाला भर्तारं संन्यवेशयत् ॥ ५ ॥ पश्चादानीय पक्वानि फलानि च नृपात्मजा ॥ भोजयामास च्यवनं नीवारान्नं सुसंस्कृतम् ॥ ६ ॥ भुक्तवंतं पतिं तृप्तं दत्त्वाऽऽचमनमादरात् ॥ पश्चाच्च पूगं पत्राणि ददौ चादरसंयुता ॥ ७ ॥ गृहीतमुखवासं तं संवेश्य च शुभासने ॥ गृहीत्वाज्ञां शरीरस्य चकार साधनं ततः ॥८॥ फलाहारं स्वयं कृत्वा पुनर्गत्वा च सन्निधौ ॥ प्रोवाच प्रणयोपेता किमाज्ञापयसे प्रभो ॥९॥ पादसंवाहनं तेऽद्य करोमि यदि मन्यसे ॥ एवं सेवापरा नित्यं बभूव पतितत्परा ॥ १० ॥ सायं होमावसाने सा फलान्याहृत्य सुन्दरी ॥ अर्पयामास मुनये स्वादूनि च मृदूनि च ॥ ११ ॥ ततः शेषाणि बुभुजे प्रेमयुक्ता तदाज्ञया ॥ सुस्पर्शास्तरणं कृत्वा शाययामास तं मुदा ॥ १२ ॥ सुप्ते सुखं प्रिये कांता पादसंवाहनं तदा ॥ चकार पृच्छती धर्मं कुलस्त्रीणां कृशोदरी ॥ १३ ॥ पादसंवाहनं कृत्वा निशि भक्तिपरायणा ॥ निद्रितं च मुनिं ज्ञात्वा सुष्वाप चरणांतिके ॥ १४ ॥ शुचौ प्रतिष्ठितं वीक्ष्य तालवृंतेन भामिनी ॥ कुर्वाणा शीतलं वायुं सिषेवे स्वपतिं तदा ॥ १५ ॥ हेमंते काष्ठ-

आज्ञा दे रहे हैं। आपकी सम्मति हो तो मैं अब चरण दबाऊँ।' इस प्रकार सुकन्या अपने पतिदेव च्यवन मुनिकी सेवामें निरन्तर लगी रहती थी ॥९॥१०॥ सायंकालका हवन समाप्त हो जानेपर वह सुन्दरी कन्या पुनः कोमल एवं स्वादिष्ट फल लाकर मुनिको अर्पण करती थी। मुनिके भोजनसे बचे हुए फल उनकी आज्ञा लेकर स्वयं प्रेमपूर्वक खा लेती थी। फिर सुन्दर बिछौना बिछाकर उसपर बड़े हर्षके साथ मुनिको सुला देती थी ॥११॥१२ परम प्रेमी पति जब सुखपूर्वक शय्यापर लेट जाते, तब सुकन्या उनके पैर दबाने लग जाती। उस समय वह कुलकी स्त्रियोंके विषयमें धार्मिक प्रश्न पूछा करती थी ॥१३॥ पैर दबानेके उपरान्त जब वह पतिभक्तिपरायणा सुकन्या यह जान जाती कि मुनिजी सो गये, तब स्वयं भी उनके चरणोंके पास ही सो जाती थी ॥१४॥ गरमीके दिनोंमें अपने पति च्यवन मुनिको बैठे देखकर राजकुमारी ताड़के पंखेसे ठंढी हवा करती हुई उनकी सेवामें जुटी रहती थी। जाड़ेके दिनोंमें लकड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इकट्ठी करके मुनिके आगे आग जला देती। साथ ही बार-बार पूछा करती–'स्वामिन्! आप सुखसे तो हैं न?' ॥ १६ ॥ वह ब्राह्ममुहूर्तमें उठती और लोटा, जल एवं मिट्टी मुनिके पास उपस्थित करके उन्हें शौच जानेके लिए उठाती ॥१७॥ आश्रमसे कुछ दूर ले जाकर बैठा देती। जब मुनि बैठ जाते, तब स्वयं वहाँसे दूर हटकर उनकी प्रतीक्षामें बैठी रहती। स्वामी शौच कर चुके होंगे–यह जानकर मुनिके पास जाती और हाथ पकड़कर पुनः उन्हें आश्रमपर ले आती और एक पवित्र आसनपर बैठा देती थी। वह जल और मिट्टीसे विधिपूर्वक मुनिके पैर धोती ॥ १८ ॥ १९ ॥ फिर राजकुमारी सुकन्या च्यवन मुनिको कुल्ले कराकर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दतुअन तोड़ लाकर उनके पास रख देती ॥ २० ॥ शुद्ध जल गरम करती और स्नान करनेके लिए मुनिके सामने रख देती। साथ ही बड़ी नम्रताके साथ पूछती–ब्रह्मन्! क्या आज्ञा दे रहे हैं? आपने दंतधावन तो कर ही लिया। अब गरम जल तैयार है। मंत्रका उच्चारण

संभारं कृत्वाऽग्निज्वलनं पुरः ॥ स्थापयित्वा तथाऽपृच्छत्सुखं तेऽस्तीति चासकृत् ॥ १६ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय जलं पात्रं च मृत्तिकाम् ॥ समर्प्-
यित्वा शौचार्थं समुत्थाप्य पतिं प्रिया ॥१७॥ स्थानाद्दूरे च संस्थाप्य दूरं गत्वा स्थिराऽभवत् ॥ कृतशौचं पतिं ज्ञात्वा गत्वा जग्राह तं पुनः ॥१८॥
आनीयाश्रममव्यग्रा चोपवेश्यासने शुभे ॥ मृज्जलाभ्यां च प्रक्षाल्य पादावस्य यथाविधि ॥ १९ ॥ दत्त्वाऽऽचमनपात्रं तु दंतधावनमाहरत् ॥
समर्प्य दंतकाष्ठं च यथोक्तं नृपनंदिनी ॥ २० ॥ चकारोष्णं जलं शुद्धं समानीतं सुपावनम् ॥ स्नानार्थं जलमाहृत्य पप्रच्छ प्रणयान्विता ॥ २१ ॥
किमाज्ञापयसे ब्रह्मन्कृतं वै दंतधावनम् ॥ उष्णोदकं सुसंपन्नं कुरु स्नानं समंत्रकम् ॥ २२ ॥ वर्तते होमकालोऽयं संध्या पूर्वा प्रवर्तते ॥ विधिवद्धवनं
कृत्वा देवतापूजनं कुरु ॥ २३ ॥ एवं कन्या पतिं लब्ध्वा तपस्विनमनिंदिता ॥ नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या तपसा नियमेन च ॥ २४ ॥ अग्नीनामतिथीनां
च शुश्रूषां कुर्वती सदा ॥ आराधयामास मुदा च्यवनं सा शुभानना ॥ २५ ॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु रविजावश्विनावुभौ ॥ च्यवनस्याश्रमाभ्याशे
क्रीडमानौ समागतौ ॥ २६ ॥ जले स्नात्वा तु तां कन्यां निवृत्तां स्वश्रमं प्रति ॥ गच्छंतीं चारुसर्वांगीं रविपुत्रावपश्यताम् ॥ २७ ॥ तां दृष्ट्वा
देवकन्याभां गत्वा चांतिकमादरात् ॥ ऊचतुः समभिद्रुत्य नासत्यावतिमोहितौ ॥ २८ ॥ क्षणं तिष्ठ वरारोहे प्रष्टुं त्वां गजगामिनि ॥ आवां

करते हुए स्नान कर लीजिये ॥ २१ ॥ २२ ॥ हवन और प्रातःसंध्याका समय उपस्थित है। अब विधिवत् हवन करके देवताओंकी उपासना करिये' ॥२३॥ राजकुमारी सुकन्याका अन्तःकरण परम पवित्र था। तपस्वी च्यवन मुनिको पतिके रूपमें वरण करके वह तप एवं नियमकी मर्यादाका पालन करती हुई प्रेमपूर्वक उपर्युक्त रीतिसे उनकी निरंतर सेवा करती रही ॥२४॥ उसके द्वारा अग्नि और अतिथि सदा सम्मान पाते थे। प्रसन्नमुखवाली वह राजकुमारी बड़े हर्षके साथ सदा-सर्वदा च्यवन मुनिकी परिचर्यामें लगी रहती थी ॥२५॥ एक समयकी बात है, सूर्यके पुत्र दोनों अश्विनीकुमार च्यवन मुनिके आश्रमके समीप पधारे ॥ २६ ॥ उन्होंने देखा–सुकन्या जलमें स्नान करके अपने आश्रमपर लौट रही है ॥ २७ ॥ उसके सभी अङ्ग बड़े ही मनोहर थे। देवकन्याकी तुलना करनेवाली उस राजकुमारीको देखकर अश्विनीकुमार उसके पास पहुँच गये और आदरपूर्वक कहने लगे–॥ २८ ॥ 'हे वरारोहे! थोड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देर ठहरो। हमलोग सूर्यदेवके पुत्र हैं। हे शुचिस्मिते! तुमसे कुछ पूछनेके लिए हमारा यहाँ आना हुआ है। तुम सच्ची बात बतानेकी कृपा करो। हे चारुलोचने! तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारे पतिदेव कौन हैं और तुम यहाँ अकेली ही उद्यानमें इस जलाशयपर स्नान करनेके लिए क्यों आयी हो? ॥२९॥३०॥ हे कमललोचने! तुम्हारी प्रभासे ऐसा जान पड़ता है, मानों स्वयं दूसरी लक्ष्मीका ही पदार्पण हो गया है। हे शोभने! हम ये सब बातें जानना चाहते हैं। तुम बतानेकी कृपा करो ॥३१॥ जब तुम्हारे कोमल चरण विषम भूमिपर पड़ते और आगे बढ़ते हैं, तब उन्हें देखकर हमारे हृदयमें पीड़ा होने लगती है ॥३२॥ तुम्हारे लिए समुचित सवारी विमान है। फिर तुम कैसे इस कठोरधरतीपर पैदल चल रही हो? इस वनमें तुम्हारे नंगे पैरों घूमनेका क्या कारण है? ॥३३॥ तुम राजपुत्री अथवा अप्सरा–इन दोनोंमें कौन हो? सच सच कहो। तुम्हारी माता धन्य है, जिससे तुम उत्पन्न हुई हो। तुम्हारे पिताजीको भी धन्यवाद है। हे अनघे! तुम्हारे पति कितने बड़े भाग्यशाली हैं, इसे तो हम कह ही नहीं सकते। हे सुलोचने! यह भूमि देवलोकसे भी बढ़कर मानी जा सकती है। क्योंकि इस

देवसुतौ प्राप्तौ ब्रूहि सत्यं शुचिस्मिते ॥ २९ ॥ पुत्री कस्य पतिः कस्ते कथमुद्यानमागता ॥ एकाकिनी तडागेऽस्मिन्स्नानार्थं चारुलोचने ॥ ३० ॥ द्वितीया श्रीरिवाभासि कांत्या कमललोचने ॥ इच्छामस्तु वयं ज्ञातुं तत्त्वमाख्याहि शोभने ॥ ३१ ॥ कोमलौ चरणौ कांते स्थितौ भूमावनावृतौ ॥ हृदये कुरुतः पीडां चलंतौ चललोचने ॥ ३२ ॥ विमानार्हासि तन्वंगि कथं पद्भ्यां व्रजस्यदः ॥ अनावृताऽत्र विपिने किमर्थं गमनं तव ॥ ३३ ॥ दासीशतसमायुक्ता कथं न त्वं विनिर्गता ॥ राजपुत्र्यप्सरा वाऽसि वद सत्यं वरानने ॥ ३४ ॥ धन्या माता यतो जाता धन्योऽसौ जनकस्तव ॥ वक्तुं त्वां नैव शक्तौ च भर्तुर्भाग्यं तवानघे ॥ ३५ ॥ देवलोकाधिका भूमिरियं चैव सुलोचने ॥ प्रचलंश्चरणस्तेऽद्य संपावयति भूतलम् ॥ ३६ ॥ सौभाग्याश्च मृगाः कामं ये त्वां पश्यन्ति वै वने ॥ ये चान्ये पक्षिणः सर्वे भूरियं चातिपावना ॥ ३७ ॥ स्तुत्याऽलं तव चात्यर्थं सत्यं ब्रूहि सुलोचने ॥ पिता कस्ते पतिः क्वासौ द्रष्टुमिच्छाऽस्ति सादरम् ॥३८॥ व्यास उवाच ॥ तयोरिति वचः श्रुत्वा राजकन्याऽतिसुंदरी ॥ तावुवाच त्रपाक्रांता देवपुत्रौ नृपात्मजा ॥ ३९ ॥ शर्यातितनयां मां वां वित्तं भार्यां मुनेरिह ॥ च्यवनस्य सतीं कान्तां पित्रा दत्तां यदृच्छया ॥ ४० ॥ पतिरंधोऽस्ति मे देवौ वृद्धश्चातीव तापसः ॥ तस्य सेवामहोरात्रं करोमि प्रीतमानसा ॥ ४१ ॥ कौ युवां किमिहायातौ पतिस्तिष्ठति चाश्रमे ॥

समय तुम्हारा पैर इसपर पड़कर इसे गौरवान्वित कर रहा है ॥ ३४-३६ ॥ उन मृगोंका भाग्योदय समझना चाहिए, जो तुम्हें वनमें देख रहे हैं। ये पक्षी भी पूर्ण भाग्यशाली हैं। तुम्हारे पदार्पणसे यहाँकी भूमि परम पवित्र बन गयी है ॥ ३७ ॥ हे सुलोचने! तुम असीम प्रशंसनीय हो। तुम्हारे पिता कौन हैं? तुम्हारे पतिदेव कहाँ रहते हैं? हम आदरपूर्वक उन्हें देखना चाहते हैं' ॥३८॥ व्यासजी कहते हैं–अश्विनीकुमारोंकी यह बात सुननेके पश्चात् परम सुन्दरी राजकुमारी सुकन्या अत्यन्त लज्जित होकर उनसे कहने लगी—॥३९॥ 'मुझे आप राजा शर्यातिकी कन्या समझें। मुनीश्वर च्यवनजी मेरे पतिदेव हैं। मैं एक पतिव्रता स्त्री हूँ। पिताने स्वेच्छासे मुझे इनके हाथों सौंप दिया है ॥४०॥ हे देवताओ! मेरे पतिकी आँखें फूट चुकी हैं। वे परम तपस्वी मुनि बड़े बूढ़े हो गये हैं। अतः मैं प्रसन्न मनसे रात-दिन उन्हीं पतिदेवकी सेवामें लगी रहती हूँ ।।४१॥ आप दोनों कौन हैं और आपका यहाँ कैसे आना हुआ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है ? मेरे पतिदेव आश्रममें विराजमान हैं। आप वहाँ चलकर उस आश्रमको पवित्र कीजिये' ॥४२॥ हे राजन् ! अश्विनीकुमारोंने सुकन्याका कथन सुनकर उससे कहा—'हे कल्याणी ! तुम्हारे पिताने उन तपस्वी मुनिके साथ तुम्हारा विवाह कैसे कर दिया ? ॥ ४३ ॥ तुम तो बादलमें चमकनेवाली बिजलीकी भाँति इस वनमें शोभा पा रही हो। तुम-जैसी सुंदरी स्त्री देवताओंके घरमें भी नहीं दिखायी पड़ती ॥४४॥ तुम्हें दिव्य वस्त्र-आभूषण पहनने चाहिये। ये वल्कल वसन तुम्हें सुशोभित करनेमें असमर्थ हैं॥४५॥ तुम्हें वह नेत्रहीन और बूढ़ा पति कैसे मिल गया ? निश्चय ही जान पड़ता है कि ब्रह्माकी भी बुद्धि कुण्ठित थी, जो उन्होंने तुमको इनकी भार्या बनानेका विधान किया ॥४६॥ आपने मुनिवर च्यवनका व्यर्थ अपना पति बनाया। हे नृत्यविशारदे ! आपकी यह उभड़ती हुई जवानी उस अन्धे और बूढ़े पतिके साथ शोभित नहीं हो सकती। कामदेव अपना शर सन्धान करके जब छोड़ेगा तो उन काम-बाणोंके ऐसे पतिपर गिरनेसे क्या लाभ होगा ? ॥४७॥ विधाता नितान्त मन्दबुद्धि है। नहीं तो आप जैसी नई-नवेली नवयुवतीको एक अन्धेकी स्त्री क्यों बनाता ? हे श्याम तथा विशाल नयनोंवाली

तत्रागत्य प्रकुरुतमाश्रमं चाद्य पावनम् ॥ ४२ ॥ तदाकार्ण्य वचो दस्रावूचतुस्तां नराधिप ॥ कथं त्वमसि कल्याणि पित्रा दत्ता तपस्विने ॥ ४३ ॥ भ्राजसेऽस्मिन्वनोद्देशे विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ न देवेष्वपि तुल्या हि तव दृष्टाऽस्ति भामिनी ॥४४॥ त्वं दिव्याम्बरयोग्याऽसि शोभसे नाजिनैर्वृता ॥ सर्वाभरणसंयुक्ता नीलालकवरूथिनी ॥ ४५ ॥ अहो विधेर्दुष्कलितं विचेष्टितं यदत्र रंभोरु वने विषीदसि ॥ विशालनेत्रेऽन्धमिमं पतिं प्रिये मुनिं समासाद्य जरातुरं भृशम् ॥ ४६ ॥ वृथा वृतस्तेन भृशं न शोभसे नवं वयः प्राप्य सुनृत्यपंडिते ॥ मनोभवेनाशु शराः सुसंधिताः पतंति कस्मिन्पतिरीदृशस्तव ॥ ४७ ॥ त्वमंधभार्या नवयौवनान्विता कृताऽसि धात्रा ननु मंदबुद्धिना ॥ न चैनमर्हस्यसितायतेक्षणे पतिं त्वमन्यं कुरु चारुलोचने ॥ ४८ ॥ वृथैव ते जीवितमंबुजेक्षणे पतिं च संप्राप्य मुनिं गतेक्षणम् ॥ वने निवासं च तथाऽजिनाम्बरप्रधारणं योग्यतरं न मन्महे ॥४९॥ अतोऽनवद्यांग्युभयोस्त्वमेकं वरं कुरुष्वावहिता सुलोचने ॥ किं यौवनं मानिनि संकरोषि वृथा मुनिं सुंदरि सेवमाना ॥ ५० ॥ किं सेवसे भाग्यविवर्जितं तं समुत्थितं पोषणरक्षणाभ्याम् ॥ त्यक्त्वा मुनिं सर्वसुखापवर्जितं भजानवद्यांग्युभयोस्त्वमेकम् ॥ ५१ ॥ त्वं नंदने चैत्ररथे वने च कुरुष्व कांते प्रथितं विहारम् ॥ अंधेन वृद्धेन कथं हि कालं विनेष्यसे मानिनि मानहीनम् ॥ ५२ ॥ भूपात्मजा त्वं शुभलक्षणा च जानासि संसारविहार-

सुन्दरी ! आप उस बूढ़े पतिके योग्य कदापि नहीं हैं। अतएव हे सुलोचने ! आप किसी दूसरे व्यक्तिको अपना पति बना लीजिए ॥४८॥ हे कमलनयनी ! ऐसे अन्धे तपस्वीके साथ रहनेसे आपका जीवन व्यर्थ हो जायगा। आपका इस प्रकार वनवासियों जैसा जीवन बिताना और मृगचर्म पहनना तो हमें ठीक नहीं जँचता ॥४९॥ हे सुडौल अङ्गोंवाली ! आप भलीभाँति सोचकर हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लें। हे सुनयनी ! हे मानवती ! एक अन्धे मुनिकी सेवामें अपनी जवानी क्यों नष्ट कर रही हैं ? ॥५०॥ वह अभागा है और उसमें आपके भरण-पोषण तथा रक्षा करनेकी भी सामर्थ्य नहीं है। तब आप ऐसे व्यक्तिकी सेवा क्यों कर रही हैं ? आपके अङ्ग-प्रत्यङ्ग बड़े सुन्दर हैं। अतः समस्त सुखोपभोगसे विहीन उस मुनिको त्यागकर आप हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लीजिए ॥५१॥ हे कान्ते ! तब आप चाहे तो इन्द्रके नन्दन वनमें अथवा कुबेरके चैत्ररथ उद्यानमें स्वच्छन्द विहार कीजिएगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे मानिनि ! उस अन्धे और बूढ़े पतिके समक्ष आप कैसे मान करेंगी और उसके साथ कैसे जीवनके दिन काटेंगी ? ॥५२॥ हे सुन्दरी ! आप सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और एक राजाकी पुत्री हैं। इसीसे आप सांसारिक हाव-भावोंसे पूर्ण परिचित हैं। तब एक अभागिन नारीकी भाँति आप ऐसे निर्जन वनमें समय कैसे बितायेंगी ? ॥ ५३ ॥ इसलिए हे कोयल जैसी मीठी वाणी बोलनेवाली ! हे सुन्दर मुँह और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली ! हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लीजिए। इससे आपको बड़ा सुख मिलेगा। हे राजकुमारी ! हे पतली कमरवाली ! आप इस जंगली तथा बूढ़े साधुको तुरंत त्यागकर देव-लोकमें चलिए और वहाँ तरह-तरहके भोगोंका उपभोग कीजिए ॥५४॥ हे सुन्दर केशोंवाली ! हे मृगनयनी ! इस निर्जन वनमें एक बूढ़ेके साथ रहते हुए आपको क्या सुख मिल रहा है ? एक तो अभी आपकी उभड़ती जवानी है, उसपर भी अन्धेकी सेवा करनी पड़ती है। हे राजकुमारी ! क्या आपको दुःख उठाना अच्छा लगता है ? ॥५५॥ हे चंचल पलकों और शोभन रूप-रंगवाली सुन्दरी ! जवानी सुखभोग चाहती है। हे चन्द्रमुखी ! आप बहुत सुकुमार हैं। अतएव जंगलसे आपका फल और

भावन् ॥ भाग्येन हीना विजने वनेऽत्र कालं कथं वाहयसे वृथा च ॥ ५३ ॥ तस्माद्भजस्व पिकभाषिणि चारुवक्त्रे एकं द्वयोस्तव सुखाय विशालनेत्रे ॥ देवालयेषु च कृशोदरि भुंक्ष्व भोगांस्त्यक्त्वा मुनिं जरठमाशु नृपेंद्रपुत्रि ॥ ५४ ॥ किं ते सुखं चात्र वने सुकेशि वृद्धेन सार्धं विजने मृगाक्षि ॥ सेवा यथांधस्य नवं वयश्च किं ते मतं भूपतिपुत्रि दुःखम् ॥ ५५ ॥ नववयः सुखभोगसमीहितं चटुलपक्ष्मधरे वरवर्णिनि ॥ शशिमुखि त्वमतीव सुकोमला फलजलाहरणं तव नोचितम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा वेपमाना नृपात्मजा ॥ धैर्यमालंब्य तौ तत्र बभाषे मितभाषिणी ॥ १ ॥ देवौ वां रविपुत्रौ च सर्वज्ञौ सुरसंमतौ ॥ सतीं मां धर्मशीलां च नैव वेदितुमर्हथ ॥ २ ॥ पित्रा दत्ता सुरश्रेष्ठौ मुनये योगधर्मिणे ॥ कथं गच्छामि तं मार्गं पुंश्चलीगणसेवितम् ॥ ३ ॥ द्रष्टाऽयं सर्वलोकस्य कर्मसाक्षी दिवाकरः ॥ कश्यपाच्चैव संभूतो नैवं भाषितुमर्हथः ॥ ४ ॥ कुलकन्या पतिं त्यक्त्वा कथमन्यं भजेन्नरम् ॥ असारेऽस्मिन्हि संसारे जानंतौ धर्मनिर्णयम् ॥ ५ ॥ यथेच्छं गच्छतं देवौ शापं दास्यामि वाऽनघौ ॥ सुकन्याऽहं च शर्यातेः पति-

जल लाना उचित नहीं जँचता ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(अश्विनीकुमारोंकी कृपासे च्यवनको यौवनप्राप्ति) व्यासजी कहते हैं—अश्विनीकुमारोंकी बात सुनकर मितभाषिणी सुकन्याके शरीरमें कँपकँपी आ गयी। उसने धैर्य धारण करके उनसे कहा—॥१॥ हे देवताओ ! आप लोग भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। आप सर्वज्ञ एवं देवशिरोमणि हैं। मैं धर्मकी मर्यादाका पालन करनेवाली एक सती नारी हूँ। मेरे प्रति आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये ॥ २ ॥ हे सुरवरो ! जब पिताजीने मुझे इन योगी मुनिको सौंप दिया, तब दुराचारिणी स्त्रियाँ जिस मार्गका अनुसरण करती हैं, उसपर मैं कैसे पैर रक्खूँ ? ॥ ३ ॥ ये कश्यपनन्दन और भुवनभास्कर सूर्यदेव सब प्राणियोंके कार्योंके साक्षी हैं। ये सब कुछ देखते रहते हैं। इन्हींके साक्षात् पुत्र आपके मुखसे ऐसी बात कभी नहीं निकलनी चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है ! मेरे पतिदेव आश्रममें विराजमान हैं। आप वहाँ चलकर उस आश्रमको पवित्र कीजिये' ॥४२॥ हे राजन् ! अश्विनीकुमारोंने सुकन्याका कथन सुनकर उससे कहा—'हे कल्याणी ! तुम्हारे पिताने उन तपस्वी मुनिके साथ तुम्हारा विवाह कैसे कर दिया ? ॥ ४३ ॥ तुम तो बादलमें चमकनेवाली बिजलीकी भाँति इस वनमें शोभा पा रही हो। तुम-जैसी सुंदरी स्त्री देवताओंके घरमें भी नहीं दिखायी पड़ती ॥४४॥ तुम्हें दिव्य वस्त्र-आभूषण पहनने चाहिये। ये वल्कल वसन तुम्हें सुशोभित करनेमें असमर्थ हैं॥४५॥ तुम्हें वह नेत्रहीन और बूढ़ा पति कैसे मिल गया ? निश्चय ही जान पड़ता है कि ब्रह्माकी भी बुद्धि कुण्ठित थी, जो उन्होंने तुमको इनकी भार्या बनानेका विधान किया ॥४६॥ आपने मुनिवर च्यवनको व्यर्थ अपना पति बनाया। हे नृत्यविशारदे ! आपकी यह उमड़ती हुई जवानी उस अन्धे और बूढ़े पतिके साथ शोभित नहीं हो सकती। कामदेव अपना शर सन्धान करके जब छोड़ेगा तो उन काम-बाणोंके ऐसे पतिपर गिरनेसे क्या लाभ होगा ? ॥४७॥ विधाता नितान्त मन्दबुद्धि है। नहीं तो आप जैसी नई-नवेली नवयुवतीको एक अन्धेकी स्त्री क्यों बनाता ? हे श्याम तथा विशाल नयनोंवाली

तत्रागत्य प्रकुरुतमाश्रमं चाद्य पावनम् ॥ ४२ ॥ तदाकार्ण्य वचो दस्रावूचतुस्तां नराधिप ॥ कथं त्वमसि कल्याणि पित्रा दत्ता तपस्विने ॥ ४३ ॥ भ्राजसेऽस्मिन्वनोद्देशे विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ न देवेष्वपि तुल्या हि तव दृष्टाऽस्ति भामिनी ॥४४॥ त्वं दिव्याम्बरयोग्याऽसि शोभसे नाजिनैर्वृता ॥ सर्वाभरणसंयुक्ता नीलालकवरूथिनी ॥ ४५ ॥ अहो विधेर्दुष्कलितं विचेष्टितं यदत्र रंभोरु वने विषीदसि ॥ विशालनेत्रेऽन्धमिमं पतिं प्रिये मुनिं समासाद्य जरातुरं भृशम् ॥ ४६ ॥ वृथा वृतस्तेन भृशं न शोभसे नवं वयः प्राप्य सुनृत्यपंडिते ॥ मनोभवेनाशु शराः सुसंधिताः पतंति कस्मिन्पतिरीदृशस्तव ॥ ४७ ॥ त्वमंधभार्या नवयौवनान्विता कृताऽसि धात्रा ननु मंदबुद्धिना ॥ न चैनमर्हस्यसितायतेक्षणे पतिं त्वमन्यं कुरु चारुलोचने ॥ ४८ ॥ वृथैव ते जीवितमंबुजेक्षणे पतिं च संप्राप्य मुनिं गतेक्षणम् ॥ वने निवासं च तथाऽजिनाम्बरप्रधारणं योग्यतरं न मन्महे ॥४९॥ अतोऽनवद्यांग्युभयोस्त्वमेकं वरं कुरुष्वावहिता सुलोचने ॥ किं यौवनं मानिनि संकरोषि वृथा मुनिं सुंदरि सेवमाना ॥ ५० ॥ किं सेवसे भाग्यविवर्जितं तं समुत्थितं पोषणरक्षणाभ्याम् ॥ त्यक्त्वा मुनिं सर्वसुखापवर्जितं भजानवद्यांग्युभयोस्त्वमेकम् ॥ ५१ ॥ त्वं नंदने चैत्ररथे वने च कुरुष्व कांते प्रथितं विहारम् ॥ अंधेन वृद्धेन कथं हि कालं विनेष्यसे मानिनि मानहीनम् ॥ ५२ ॥ भूपात्मजा त्वं शुभलक्षणा च जानासि संसारविहार-

सुन्दरी ! आप उस बूढ़े पतिके योग्य कदापि नहीं हैं। अतएव हे सुलोचने ! आप किसी दूसरे व्यक्तिको अपना पति बना लीजिए ॥४८॥ हे कमलनयनी ! ऐसे अन्धे तपस्वीके साथ रहनेसे आपका जीवन व्यर्थ हो जायगा। आपका इस प्रकार वनवासियों जैसा जीवन बिताना और मृगचर्म पहनना तो हमें ठीक नहीं जँचता ॥४९॥ हे सुडौल अङ्गोंवाली ! आप भलीभाँति सोचकर हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लें। हे सुनयनी ! हे मानवती ! एक अन्धे मुनिकी सेवामें अपनी जवानी क्यों नष्ट कर रही हैं ? ॥५०॥ वह अभागा है और उसमें आपके भरण-पोषण तथा रक्षा करनेकी भी सामर्थ्य नहीं है। तब आप ऐसे व्यक्तिकी सेवा क्यों कर रही हैं ? आपके अङ्ग-प्रत्यङ्ग बड़े सुन्दर हैं। अतः समस्त सुखोपभोगसे विहीन उस मुनिको त्यागकर आप हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लीजिए ॥५१॥ हे कान्ते ! तब आप चाहे तो इन्द्रके नन्दन वनमें अथवा कुबेरके चैत्ररथ उद्यानमें स्वच्छन्द विहार कीजिएगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे मानिनि ! उस अन्धे और बूढ़े पतिके समक्ष आप कैसे मान करेंगी और उसके साथ कैसे जीवनके दिन काटेंगी ? ॥५२॥ हे सुन्दरी ! आप सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और एक राजाकी पुत्री हैं। इसीसे आप सांसारिक हाव-भावोंसे पूर्ण परिचित हैं। तब एक अभागिन नारीकी भाँति आप ऐसे निर्जन वनमें समय कैसे वितायेंगी ? ॥ ५३॥ इसलिए हे कोयल जैसी मीठी वाणी बोलनेवाली ! हे सुन्दर मुँह और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली ! हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लीजिए। इससे आपको बड़ा सुख मिलेगा। हे राजकुमारी ! हे पतली कमरवाली ! आप इस जंगली तथा बूढ़े साधुको तुरंत त्यागकर देव-लोकमें चलिए और वहाँ तरह-तरहके भोगोंका उपभोग कीजिए ॥५४॥ हे सुन्दर केशोंवाली ! हे मृगनयनी ! इस निर्जन वनमें एक बूढ़ेके साथ रहते हुए आपको क्या सुख मिल रहा है ? एक तो अभी आपकी उभड़ती जवानी है, उसपर भी अन्धेकी सेवा करनी पड़ती है। हे राजकुमारी ! क्या आपको दुःख उठाना अच्छा लगता है ? ॥५५॥ हे चंचल पलकों और शोभन रूप-रंगवाली सुन्दरी ! जवानी सुखभोग चाहती है। हे चन्द्रमुखी ! आप बहुत सुकुमार हैं। अतएव जंगलसे आपका फल और

भावन् ॥ भाग्येन हीना विजने वनेऽत्र कालं कथं वाहयसे वृथा च ॥ ५३ ॥ तस्माद्भजस्व पिकभाषिणि चारुवक्त्रे एकं द्वयोस्तव सुखाय विशालनेत्रे ॥ देवालयेषु च कृशोदरि भुंक्ष्व भोगांस्त्यक्त्वा मुनिं जरठमाशु नृपेंद्रपुत्रि ॥ ५४ ॥ किं ते सुखं चात्र वने सुकेशि वृद्धेन सार्धं विजने मृगाक्षि ॥ सेवा यथांधस्य नवं वयश्च किं ते मतं भूपतिपुत्रि दुःखम् ॥ ५५ ॥ नववयः सुखभोगसमीहितं चटुलपक्ष्मधरे वरवर्णिनि ॥ शशिमुखि त्वमतीव सुकोमला फलजलाहरणं तव नोचितम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा वेपमाना नृपात्मजा ॥ धैर्यमालंब्य तौ तत्र बभाषे मितभाषिणी ॥ १ ॥ देवौ वां रविपुत्रौ च सर्वज्ञौ सुरसंमतौ ॥ सतीं मां धर्मशीलां च नैव वेदितुमर्हथ ॥ २ ॥ पित्रा दत्ता सुरश्रेष्ठौ मुनये योगधर्मिणे ॥ कथं गच्छामि तं मार्गं पुंश्चलीगणसेवितम् ॥ ३ ॥ द्रष्टाऽयं सर्वलोकस्य कर्मसाक्षी दिवाकरः ॥ कश्यपाच्चैव संभूतो नैवं भाषितुमर्हथः ॥ ४ ॥ कुलकन्या पतिं त्यक्त्वा कथमन्यं भजेन्नरम् ॥ असारेऽस्मिन्हि संसारे जानंतौ धर्मनिर्णयम् ॥ ५ ॥ यथेच्छं गच्छतं देवौ शापं दास्यामि वाऽनघौ ॥ सुकन्याऽहं च शर्यातेः पति-

जल लाना उचित नहीं जँचता ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(अश्विनीकुमारोंकी कृपासे च्यवनको यौवनप्राप्ति) व्यासजी कहते हैं—अश्विनीकुमारोंकी बात सुनकर मितभाषिणी सुकन्याके शरीरमें कँपकँपी आ गयी। उसने धैर्य धारण करके उनसे कहा—॥१॥ हे देवताओ ! आप लोग भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। आप सर्वज्ञ एवं देवशिरोमणि हैं। मैं धर्मकी मर्यादाका पालन करनेवाली एक सती नारी हूँ। मेरे प्रति आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये ॥ २ ॥ हे सुरवरो ! जब पिताजीने मुझे इन योगी मुनिको सौंप दिया, तब दुराचारिणी स्त्रियाँ जिस मार्गका अनुसरण करती हैं, उसपर मैं कैसे पैर रक्खूँ ? ॥ ३ ॥ ये कश्यपनन्दन और भुवनभास्कर सूर्यदेव सब प्राणियोंके कार्योंके साक्षी हैं। ये सब कुछ देखते रहते हैं। इन्हींके साक्षात् पुत्र आपके मुखसे ऐसी बात कभी नहीं निकलनी चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भला एक उत्तम वंशकी कन्या अपने पतिसे विमुख कैसे हो सकती है ? इस मिथ्याभूत जगत्के धार्मिक निर्णयोंको जाननेवाले आप महानुभाव जहाँ इच्छा हो वहाँ चले जायँ। अन्यथा मैं शाप दे दूँगी। मैं पातिव्रत धर्मका पालन करनेवाली शर्यातिकुमारी सुकन्या हूँ ॥ ४–६ ॥ व्यासजी कहते हैं—सुकन्याकी बात सुनकर अश्विनीकुमारोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। मुनिवर च्यवनसे डरते हुए उन्होंने सुकन्यासे पुनः कहा—॥ ७ ॥ उत्तम अंगोंसे शोभा पानेवाली हे राजकुमारी ! तुम्हारे इस धर्मपालनसे हमारा हृदय गद्गद हो गया है। तुम अपने कल्याणार्थ वर माँगो, हम देनेको तैयार हैं। हे प्रमदे ! तुम निश्चय समझ लो कि हम देवताओंके वैद्य हैं। तुम्हारे पतिको सुन्दर युवक पुरुष बना देनेकी हममें सामर्थ्य है ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे परम बुद्धिमती बाले ! तुम्हारे पतिका जब हम अपने समान सुंदर स्वरूप बना दें, तब तुम हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लो ॥ १० ॥ अश्विनीकुमारोंकी यह बात सुनकर सुकन्याको बड़ा आश्चर्य हुआ। तुरंत अपने पति च्यवन मुनिके पास जाकर वह उनसे कहने लगी ॥ ११ ॥ सुकन्याने कहा—हे भार्गववंशको आनन्दित करनेवाले

भक्तिपरायणा ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नासत्यौ विस्मितौ भृशम् ॥ तावब्रूतां पुनस्त्वेनां शंकमानौ भयान्मुनेः ॥ ७ ॥ राजपुत्रि प्रसन्नौ ते धर्मेण वरवर्णिनि ॥ वरं वरय सुश्रोणि दास्यावः श्रेयसे तव ॥ ८ ॥ जानीहि प्रमदे नूनमावां देवभिषग्वरौ ॥ युवानं रूपसंपन्नं प्रकुर्याव पतिं तव ॥ ९ ॥ ततस्त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु ॥ समानरूपदेहानां मध्ये चातुर्यपंडिते ॥ १० ॥ सा तयोर्वचनं श्रुत्वा विस्मिता स्वपतिं तदा ॥ गत्वोवाच तयोर्वाक्यं ताभ्यामुक्तं यदद्भुतम् ॥११॥ सुकन्योवाच ॥ स्वामिन्सूर्यसुतौ देवौ संप्राप्तौ च्यवनाश्रमे ॥ दृष्टौ मया दिव्यदेहौ नासत्यौ भृगुनंदन ॥ १२ ॥ वीक्ष्य मां चारुसर्वाङ्गीं जातौ कामातुरावुभौ ॥ कथितं वचनं स्वामिन्पतिं ते नवयौवनम् ॥१३॥ दिव्यदेहं करिष्यावश्चक्षुष्मंतं मुनिं किल ॥ एतेन समयेनाद्य तं शृणु त्वं मयोदितम् ॥ १४ ॥ समावयवरूपं च करिष्यावः पतिं तव ॥ तत्र त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वाऽहमिहायाता प्रष्टुं त्वां कार्यमद्भुतम् ॥ किं कर्तव्यमतः साधो ब्रूह्यस्मिन्कार्यसंकटे ॥ १६ ॥ देवमायाऽपि दुर्ज्ञेया न जाने कपटं तयोः ॥ यदाज्ञापय सर्वज्ञ तत्करोमि तवेप्सितम् ॥ १७ ॥ च्यवन उवाच ॥ गच्छ कांतेऽद्य नासत्यौ वचनान्मम सुव्रते ॥ आनयस्व

स्वामिन् ! इस समय आपके आश्रमपर सूर्यके सुपुत्र अश्विनीकुमारद्वय पधारे हुए हैं ॥१२॥ मैंने देखा कि उनके शरीरकी आकृति बड़ी ही भव्य है। मुझ सुंदरी स्त्रीको देखकर वे दोनों कामातुर हो गये। हे स्वामिन ! उन्होंने मुझसे कहा–'हम तुम्हारे पतिको नवयुवक, दिव्य शरीरधारी और नेत्रयुक्त बना देंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है। परंतु उनकी यह एक शर्त है कि जब हम तुम्हारे पतिको अपने समान रूपवान् बना देंगे, तब तुम्हें हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लेना होगा ॥१३॥१४॥१५॥ हे साधो ! उनकी बात सुनकर इस अद्भुत कार्यके विषयमें पूछनेके लिए मैं यहाँ आयी हूँ। ऐसे आपत्तियुक्त कार्यके उपस्थित होनेपर मुझे क्या करना चाहिये, यह आप बतानेकी कृपा करें ॥ १६ ॥ देवताओंकी माया शीघ्र समझमें आ जाय—यह असम्भव है। उनका अभिप्राय जाननेमें मैं असमर्थ हूँ। अतः हे सर्वज्ञ प्रभो ! आप मुझे आज्ञा दीजिए। आपके इच्छानुसार मैं काम करनेको तैयार हूँ ॥१७॥ च्यवनजी बोले-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे कान्ते ! मैं कहता हूँ, तुम अभी उन दिव्य चिकित्सक अश्विनीकुमारोंके पास जाओ। हे सुव्रते ! तुम्हें उनको शीघ्र मेरे पास ले आनेकी चेष्टा करनी चाहिए ॥१८॥ तुम उनकी शर्त तुरंत स्वीकार कर लो। इस विषयमें विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार च्यवन मुनिकी आज्ञा पा जानेपर सुकन्या देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमारोंके पास गयी और उसने उनसे कहा—॥१९॥ 'हे देववरो ! आपकी शर्त मुझे स्वीकार है। आप अब कार्य-सम्पादनमें प्रवृत्त हो जायँ।' सुकन्याके वचन सुनकर अश्विनीकुमार आश्रममें गये ॥ २० ॥ उन्होंने राजकुमारीसे कहा—'तुम्हारे पति इस सरोवरके जलमें उतर जायँ।' रूपवान् बननेकी इच्छा थी ही, अतः च्यवनजी तुरंत जलमें उतर गये ॥२१॥ तत्पश्चात् वे अश्विनीकुमार भी उस उत्तम सरोवरमें प्रविष्ट हो गये ! फिर तुरंत वे तीनों व्यक्ति उस तालाबसे बाहर निकल आये ॥ २२ ॥ अब उन तीनोंकी दिव्य आकृतिमें कोई अन्तर नहीं रहा। सभी एक समान नवयुवक बन गये। सबकी एकसी अवस्था थी। दिव्य कुण्डलों और आभूषणोंसे वे तीनों व्यक्ति अनुपम शोभा पा रहे थे ॥२३॥ वे सभी एक साथ बोल उठे—'हे वरवर्णिनि ! हे भद्रे ! हे अमलानन !

समीपं मे शीघ्रं देवभिषग्वरौ ॥ १८ ॥ क्रियतामाशु तद्वाक्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ व्यास उवाच ॥ एवं सा समनुज्ञाता तत्र गत्वा वचोऽब्रवीत् ॥ १९ ॥ क्रियतामाशु नासत्यौ समयेन सुरोत्तमौ ॥ तच्छ्रुत्वा चाश्विनौ वाक्यं तस्यास्तौ तत्र चागतौ ॥ २० ॥ उचतू राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः ॥ रूपार्थं च्यवनस्तूर्णं ततोऽम्भः प्रविवेश ह ॥ २१ ॥ अश्विनावपि पश्चात्तत्प्रविष्टौ सर उत्तमम् ॥ ततस्ते निःसृतास्तस्मात्सरसस्तत्क्षणात्त्रयः ॥ २२ ॥ तुल्यरूपा दिव्यदेहा युवानः सदृशाः किल ॥ दिव्यकुण्डलभूषाढ्याः समानावयवास्तदा ॥ २३ ॥ तेऽब्रुवन्सहिताः सर्वे वृणीष्व वरवर्णिनि ॥ अस्माकमीप्सितं भद्रे पतिं त्वममलानने ॥२४॥ यस्मिन्वाऽप्यधिका प्रीतिस्तं वृणुष्व वरानने ॥ व्यास उवाच ॥ सा दृष्ट्वा तुल्यरूपांस्तान्समानवयसस्तथा ॥ २५ ॥ एकस्वरांस्तुल्यवेषांस्त्रीन्वै देवसुतोपमान् ॥ सा तु संशयमापन्ना वीक्ष्य तान्सदृशाकृतीन् ॥ २६ ॥ अजानंती पतिं सम्यग्व्याकुला समचिंतयत् ॥ किं करोमि त्रयस्तुल्याः कं वृणोमिं न वेद्म्यहम् ॥२७॥ पतिं देवसुता ह्येते संशये पतिताऽस्म्यहम् ॥ इन्द्रजालमिदं सम्यग्देवाभ्यामिह कल्पितम् ॥ २८ ॥ कर्तव्यं किं मया चात्र मरणं समुपागतम् ॥ न मया पतिमुत्सृज्य वरणीयः कथंचन ॥ २९ ॥ देवस्त्वाधुनिकः कश्चिदित्येषा मम धारणा ॥ इति संचिंत्य मनसा परां विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ ३० ॥ दध्यौ भगवतीं देवीं तुष्टाव च कृशोदरी ॥

तुम्हें हम लोगोंमेंसे जो भी पसन्द हो, उसे पति बना लो ॥२४॥ हे वरानने! जिसके प्रति तुम्हारा विशेष प्रेम हो, उसे वरण कर लो। व्यासजी बोले—देवकुमारकी तुलना करनेवाले तीनों व्यक्ति रूप, अवस्था, स्वर और वेषभूषामें बिल्कुल एक जैसे थे। सबकी आकृति एक समान थी। उन्हें देखकर सुकन्या बड़े असमञ्जसमें पड़ गयी ॥ २५ ॥ २६ ॥ मेरे पति कौन हैं—यह भली भाँति वह नहीं समझ पा रही थी। अत्यन्त घबराकर सोचने लगी—'मैं क्या करूँ, तीनों एक समान हैं। समझमें नहीं आता कि किसको पति बनाऊँ ॥२७॥ ओह, मेरे सामने यह बड़ी ही संशयग्रस्त समस्या उपस्थित हो गयी। इन दोनों देवताओं द्वारा फैलाया हुआ यह अच्छा इन्द्रजाल है ॥ २८ ॥ मेरे लिए तो यह मृत्यु ही सामने उपस्थित हो गयी है। इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये—अपने पतिको छोड़कर दूसरेको मैं किसी प्रकार वरण नहीं कर सकती' ॥२९॥ इस प्रकार मनमें सोचकर सुकन्या कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यानमें तत्पर हो गयी। साथ ही उनका स्तवन भी आरम्भ कर दिया। सुकन्या बोली—हे जगन्माता! मैं असीम दुःखसे संतप्त होकर तुम्हारी शरणमें आयी हूँ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कमलके आसनपर विराजनेवाली हे शंकरप्रिये देवि! मैं तुम्हारे चरणोंमें बार बार मस्तक झुकाती हूँ ॥३२॥ अब मेरे सतीधर्मकी रक्षा तुम्हारे ऊपर निर्भर है। हे विष्णुप्रिये! हे लक्ष्मी! हे वेदमाता! हे सरस्वती! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। इस सचराचर सम्पूर्ण जगत्की रचना तुमने ही की है ॥ ३३ ॥ सावधान होकर इस जगत्की रक्षा करना भी तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। जब संसारको शान्त करनेका विचार होता है, तब तुम इसे अपनेमें लीन कर लेती हो। ब्रह्मा, विष्णु और शंकरकी तुम जननी हो—इस बातका सभी अनुमोदन करते हैं ॥३४॥ तुम अज्ञानियोंको उत्तम बुद्धि प्रदान करती हो। ज्ञानीजन तुम्हारी उपासनासे सदाके लिये मुक्त हो जाते हैं। परम पुरुषको प्रिय दीखनेवाली तुम पूर्ण प्रकृतिस्वरूपा देवीको सब लोग नहीं जान सकते ॥३५॥ श्रेष्ठ विचारवाले व्यक्तियोंको तुम्हारी कृपासे भुक्ति और मुक्ति दोनों सुलभ हो जाती हैं। तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके लिए सुखका साधन हो। अज्ञानी जन दुःख पाते हैं-यह भी तुम्हारी ही

सुकन्योवाच ॥ शरणं त्वां जगन्मातः प्राप्ताऽस्मि भृशदुःखिता ॥ ३१ ॥ रक्ष मेऽद्य सतीधर्मं नमामि चरणौ तव ॥ नमः पद्मोद्भवे देवि नमः शंकरवल्लभे ॥ ३२ ॥ विष्णुप्रिये नमो लक्ष्मि वेदमातः सरस्वति ॥ इदं जगत्त्वया सृष्टं सर्वं स्थावरजंगमम् ॥ ३३ ॥ पासि त्वमिदमव्यग्रा तथाऽत्सि लोकशांतये ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां जननी त्वं सुसंमता ॥३४॥ बुद्धिदाऽसि त्वमज्ञानां ज्ञानिनां मोक्षदा सदा ॥ आद्या त्वं प्रकृतिः पूर्णा पुरुषप्रिय-दर्शना ॥ ३५ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदाऽसि त्वं प्राणिनां विशदात्मनाम् ॥ अज्ञानां दुःखदा कामं सत्त्वानां सुखसाधना ॥ ३६ ॥ सिद्धिदा योगिनामंव जयदा कीर्तिदा पुनः ॥ शरणं त्वां प्रपन्नाऽस्मि विस्मयं परमं गता ॥ ३७ ॥ पतिं दर्शय मे मातर्मग्नाऽस्मि शोकसागरे ॥ देवाभ्यां चरितं कूटं कं वृणोमि विमोहिता ॥ ३८ ॥ पतिं दर्शय सर्वज्ञे विदित्वा मे सतीव्रतम् ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥ ३९ ॥ हृदयेऽस्यास्तदा ज्ञानं ददावाशु सुखोदयम् ॥ निश्चित्य मनसा तुल्यवयोरूपधरान्सती ॥ ४० ॥ प्रसमीक्ष्य तु तान्सर्वान्वव्रे बाला स्वकं पतिम् ॥ वृतेऽथ च्यवने देवौ संतुष्टौ तौ बभूवतुः ॥ ४१ ॥ सतीधर्मं समालोक्य संप्रीतौ ददतुर्वरम् ॥ भगवत्याः प्रसादेन प्रसन्नौ तौ सुरोत्तमौ ॥ ४२ ॥

व्यवस्था है ॥ ३६ ॥ हे माता! तुम योगियोंको सिद्धि, विजय और कीर्ति प्रदान करती हो। मैं अत्यन्त विस्मयमें पड़ गयी हूँ। इस अवसरपर केवल तुम्हीं मेरे लिए शरण्य हो ॥ ३७ ॥ हे माता! मैं शोकके अगाध समुद्रमें गोते खा रही हूँ। मुझे मेरे पतिदेवको दिखानेकी कृपा करो। कारण, ये देवतालोग कपट-जाल फैलायें हुए हैं। मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है ॥३८॥ मैं स्वयं किसको पति स्वीकार करूँ? हे सर्वज्ञे! तुम मेरे पतिदेवका साक्षात्कार करा दो। मैं सतीत्व व्रतका पूर्णतया पालन करती हूँ—यह बात तुमसे अविदित नहीं है। व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार जब सुकन्याने त्रिपुरसुंदरी भगवती जगदम्बाकी स्तुति की, तब देवीने शीघ्र सुख पहुँचानेवाला ज्ञान उसके हृदयमें उत्पन्न कर दिया। जिससे वह साध्वी सुकन्या समान रूपवाले उन पुरुषोंमेंसे अपने पतिको पहचाननेमें सफलता पा गयी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ अब उसने उन तीनों पुरुषोंपर दृष्टि दौड़ायी और उनमें जो अपने वास्तविक पति च्यवनजी थे, उन्हें चुन लिया। यों सुकन्या द्वारा पतिरूपमें च्यवन मुनिके स्वीकृत हो जानेपर अश्विनीकुमार संतुष्ट हो गये ॥ ४१ ॥ सुकन्याके सतीधर्मको देखकर उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसे वरदान दिया। कारण, भगवती जगदम्बाकी कृपासे वे प्रधान देवता अश्विनीकुमार परम प्रसन्न थे ॥४२॥ च्यवन मुनिसे आज्ञा लेकर उन दोनों कुमारोंने तुरंत वहाँसे चलनेकी तैयारी कर ली। सुंदर रूप, नेत्र और युवती भार्या पा जानेके कारण च्यवन मुनि भी बड़े ही हर्षित हुए। उन महान् तेजस्वी अश्विनीकुमारोंसे उन्होंने यह वचन कहा–हे देववरो! आप दोनोंने मेरा बड़ा उपकार किया है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ क्या कहूँ, इस संसारमें सर्वोत्तम सुंदरी भार्या पाकर भी मैं कोई सुख नहीं पा रहा था, बल्कि मुझे एकपर एक दुःख ही झेलने पड़ते थे ॥४५॥ क्योंकि मेरे आँख नहीं थी। मैं अत्यन्त बूढ़ा हो गया था। मंदभागी बनकर निर्जन वनमें पड़ा था। ऐसी स्थितिमें आपलोगोंने मुझे नेत्र, युवावस्था और अद्भुत रूप प्रदान किया है ॥४६॥ अतः मैं भी कुछ उपकार करानेके लिए आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। क्योंकि उपकारी मित्रके प्रति जो किसी प्रकारका उपकार नहीं करता, उस मानवको धिक्कार है। संसारमें देवता भी ऋणी हो सकते हैं, तब मानवकी तो बात ही क्या है। अतएव मेरी हार्दिक इच्छा है कि आपलोगोंको कोई अभीष्ट पदार्थ प्रदान करूँ ॥४७॥४८॥ हे देवेश्वरो! आपने मुझे नूतन शरीर

मुनिमामंत्र्य तरसा गमनायोद्यतावुभौ ॥ लब्ध्वा तु च्यवनो रूपं नेत्रे भार्यां च यौवनम् ॥४३॥ हृष्टोऽब्रवीन्महातेजास्तौ नासत्याविदं वचः ॥ उपकारः कृतोऽयं मे युवाभ्यां सुरसत्तमौ ॥ ४४ ॥ किं ब्रवीमि सुखं प्राप्तं संसारेऽस्मिन्ननुत्तमे ॥ प्राप्य भार्यां सुकेशांतां दुःखं मेऽभवदन्वहम् ॥ ४५ ॥ अंधस्य चातिवृद्धस्य भोगहीनस्य कानने ॥ युवाभ्यां नयने दत्ते यौवनं रूपमद्भुतम् ॥ ४६ ॥ संपादितं ततः किंचिदुपकर्तुमहं ब्रुवे ॥ उपकारिणि मित्रे यो नोपकुर्यात्कथंचन ॥ ४७ ॥ तं धिगस्तु नरं देवौ भवेच्च ऋणवान्भुवि ॥ तस्माद्वां वांछितं किंचिद्दातुमिच्छामि सांप्रतम् ॥ ४८ ॥ आत्मनो ऋण-मोक्षाय देवेशौ नूतनस्य च ॥ प्रार्थितं वां प्रदास्यामि यदलभ्यं सुरासुरैः ॥ ४९ ॥ ब्रुवाथां वां मनोद्दिष्टं प्रीतोऽस्मि सुकृतेन वाम् ॥ श्रुत्वा तौ तु मुनेर्वाक्यमभिमंत्र्य परस्परम् ॥ ५० ॥ तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं सुकन्यासहितं स्थितम् ॥ मुने पितुः प्रसादेन सर्वं नो मनसेप्सितम् ॥ ५१ ॥ उत्कण्ठा सोमपानस्य वर्तते नौ सुरैः सह ॥ भिषजाविति देवेन निषिद्धौ चमसग्रहे ॥ ५२ ॥ शक्रेण वितते यज्ञे ब्रह्मणः कनकाचले ॥ तस्मात्त्वमपि धर्मज्ञ यदि शक्तोऽसि तापस ॥ ५३ ॥ कार्यमेतद्धि कर्तव्यं वांछितं नौ सुसंमतम् ॥ एतद्विज्ञाय वा ब्रह्मन्कुरु वां सोमपायिनौ ॥ ५४ ॥ पिपासाऽस्ति सुदुष्प्रापा

प्रदान किया है, इस ऋणसे मुक्त होनेके लिए माँगनेपर मैं आपलोगोंको वह पदार्थ भी दे सकूँगा, जो देवताओं तथा दानवोंके लिए भी अलभ्य है ॥ ४९ ॥ आपके इस उत्तम कार्यसे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। आप अपना मनोरथ व्यक्त करें।' च्यवन मुनिके वचन सुनकर अश्विनीकुमारोंने परस्पर परामर्श किया ॥ ५० ॥ तत्पश्चात् सुकन्याके साथ बैठे हुए उन मुनिश्रेष्ठसे वे कहने लगे—'मुनिवर! पिताजीकी कृपासे हमारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हैं ॥५१॥ परन्तु देवताओंकी पंक्तिमें बैठकर, सोमपान करनेकी हमारी अभिलाषा अभी पूरी नहीं हुई है। जब यज्ञमें सोमरस पीनेका अवसर आता है, तब देवता हमें वैद्य मानकर निषिद्ध कर देते हैं ॥५२॥ सुमेरु पर्वतपर ब्रह्माजीका यज्ञ हो रहा था। इन्द्रके विरोधसे हमें वहाँ सोमरस नहीं मिल सका। अतएव धर्मके जाननेवाले हे तपस्वीजी! आपमें कोई शक्ति हो तो हमारी यह अभिलाषा पूर्ण कर दीजिये ॥ ५३ ॥ हमें सोमरस पीनेका अधिकार प्राप्त हो जाय। हे ब्रह्मन्! हमारी इस सुसम्मत इच्छापर विचार करके आपको इस कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये। सोमरसकी प्यास बुझाना हमारे लिए बड़ा ही कठिन हो गया है। आप चाहेंगे तो वह प्यास बुझ जायगी।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अश्विनीकुमारोंकी बात सुनकर च्यवन मुनिने बड़े मधुर शब्दोंमें कहा— ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ 'मैं अत्यन्त वृद्ध हो गया था । आपलोगोंने मुझे रूपवान् और नवयुवक बना दिया है । आपकी कृपासे गुणवती भार्या भी मेरे पास है ॥ ५६ ॥ अतएव मैं अमिततेजस्वी राजा शर्यातिके विशाल यज्ञमें प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रके समक्ष आप दोनोंको सोमरस पीनेका अधिकारी अवश्य बना दूँगा । मेरी यह बात बिल्कुल सत्य है । शीघ्र ही अमित तेजस्वी राजा शर्यातिके यहाँ यज्ञ होगा । च्यवन मुनिकी यह बात सुनकर अश्विनीकुमार आनन्दपूर्वक स्वर्ग सिधारे और च्यवनजी भी सुकन्याको लेकर अपने आश्रमपर चले गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(च्यवनको नेत्रयुक्त तथा तरुण देखकर शर्यातिका सन्देह) राजा जनमेजयने पूछा—च्यवनने चिकित्सक अश्विनीकुमारोंको किस प्रकार सोमरस पीनेका अधिकारी बनाया ? उनकी बात कैसे सत्य सिद्ध हुई ? ॥१॥ क्या देवराज इन्द्रके बलके सामने मानवी शक्तिकी तुलना की जा सकती है । इन्द्रने जिन्हें सोमरस पीनेका अनधिकारी सिद्ध कर दिया था, उन

त्वत्तः समुपयास्यति ॥ च्यवनस्तु तयोः प्राह तच्छ्रुत्वा वचनं मृदु ॥ ५५ ॥ यदहं रूपसंपन्नो वयसा च समन्वितः ॥ कृतो भवद्भ्यां वृद्धः सन्भार्यां च प्राप्तवानिति ॥ ५६ ॥ तस्माद्युवां करिष्यामि प्रीत्याऽहं सोमपायिनौ ॥ मिषतो देवराजस्य सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ५७ ॥ राज्ञस्तु वितते यज्ञे शर्यातेरमितद्युतेः ॥ इत्याकर्ण्य वचो हृष्टौ तौ दिवं प्रति जग्मतुः ॥ च्यवनस्तां गृहीत्वा तु जगामाश्रममंडलम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ च्यवनेन कथं वैद्यौ तौ कृतौ सोमपायिनौ ॥ वचनं च कथं सत्यं जातं तस्य महात्मनः ॥ १ ॥ मानुषस्य बलं कीदृग्देवराजबलं प्रति ॥ निषिद्धौ भिषजौ तेन कृतौ तौ सोमपायिनौ ॥ २ ॥ धर्मनिष्ठ तदाश्चर्यं विस्तरेण वद प्रभो ॥ चरितं च्यवनस्याद्य श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज चरितं परमाद्भुतम् ॥ च्यवनस्य मखे तस्मिञ्छर्यातेर्भुवि भारत ॥ ४ ॥ सुकन्यां सुन्दरीं प्राप्य च्यवनः सुरसन्निभः ॥ विजहार प्रसन्नात्मा देवकन्यामिवापरः ॥ ५ ॥ कदाचिदथ शर्यातिभार्या चिंतातुरा भृशम् ॥ पतिं प्राह वेपमाना वचनं रुदती प्रिया ॥ ६ ॥ राजन्पुत्री त्वया दत्ता मुनयेऽन्धाय कानने ॥ मृता जीवति वा सा तु द्रष्टव्या सर्वथा त्वया ।' ७ ॥ गच्छ नाथ

वैद्योंको अधिकारी बनानेमें च्यवनमुनि कैसे सफलता पा सके ? ॥ २ ॥ धर्ममें आस्था रखनेवाले हे प्रभो ! इस आश्चर्यपूर्ण विषयको विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये । क्योंकि च्यवनमुनिका वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ ॥३॥ व्यासजी कहते हैं—हे महाराज ! राजा शर्यातिने जब भूमण्डलपर यज्ञ किया, तब च्यवनमुनि उसमें पधारे थे । इस विषयकी पूरी कथा कहता हूँ— सुनो ॥ ४ ॥ च्यवनमुनि देवताके समान तेजस्वी थे । सुंदरी सुकन्याको पाकर उनका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा था । उन्होंने सुकन्यापर इस प्रकार अधिकार जमा लिया, मानो कोई देवता देवकन्याको प्राप्त कर चुका हो ॥ ५ ॥ एक समयकी बात है—महाराज शर्यातिकी पत्नी अपनी कन्याके विषयमें अत्यन्त चिंतातुर हो उठी । काँपती और रोती हुई वह अपने पतिसे बोली—॥६॥ हे राजन् ! आपने एक अंधे मुनिको पुत्री सौंप दी थी । पता नहीं, वनमें वह जीवित है अथवा उसके प्राण निकल गये । आपको सम्यक् प्रकारसे उसे देखना चाहिये ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ७ ॥ हे नाथ ! आप एक बार सुकन्याको देखनेके लिए आदरपूर्वक च्यवन मुनिके आश्रमपर जाइये। देखिये, ऐसे अयोग्य पतिको पाकर वह कैसे अपना जीवन बिता रही है ॥८॥ हे राजर्षे ! पुत्रीके दुःखसे मेरे हृदयमें आग धधक रही है। तपसे दुर्बल शरीरवाली मेरी उस विशालनयनी कन्याको एक बार मेरे पास लानेकी कृपा कीजिये ॥ ९ ॥ नेत्रहीन पति पाकर उसे अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते होंगे। वह वृक्षोंकी छाल पहनती होगी। मैं अपनी उस क्षीणकाय पुत्रीको तुरंत देखना चाहती हूँ ॥ १० ॥ राजा शर्यातिने कहा—हे विशालाक्षी! हे वरारोहे! मैं अभी प्रिय पुत्री सुकन्याको देखनेके लिए उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले च्यवन मुनिके पास जा रहा हूँ ॥ ११ ॥ व्यासजी कहते हैं—शोकसे अत्यन्त घबरायी हुई अपनी पत्नीसे ऐसा कहकर राजा शर्याति उसको साथ लेकर तुरंत रथपर बैठे और मुनिके आश्रमकी ओर चल पड़े ॥१२॥ आश्रमके निकट पहुँचनेपर उन्हें एक नवयुवक मुनि दिखायी पड़े। जान पड़ता था, मानो देवकुमार हों ॥ १३ ॥ देवताके आकारमें च्यवन मुनिको देखकर महाराज शर्याति बड़े विस्मयमें पड़ गये। उन्होंने सोचा—'मेरी पुत्रीने लोकमें निन्दा करानेवाला यह कैसा

मुनेस्तावदाश्रमं द्रष्टुमादरात् ॥ किं करोति सुकन्या सा प्राप्य नाथं तथाविधम् ॥ ८ ॥ पुत्रीदुःखेन राजर्षे दग्धाऽस्मि सर्वथा हृदि ॥ तामानय विशालाक्षीं तपःक्षामां मदंतिके ॥ ९ ॥ पश्यामि सर्वथा पुत्रीं कृशांगीं बल्कलावृताम् ॥ अंधं पतिं समासाद्य दुःखभाजं कृशोदरी ॥ १० ॥ ॥ शर्यातिरुवाच ॥ गच्छामोऽद्य विशालाक्षि सुकन्यां द्रष्टुमादरात् ॥ प्रियपुत्रीं वरारोहे मुनिं तं संशितव्रतम् ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु शर्यातिः कामिनीं शोकसंकुलाम् ॥ जगाम रथमारुह्य त्वरितश्चाश्रमं मुनेः ॥ १२ ॥ गत्वाऽऽश्रमसमीपे तु तमपश्यन्महीपतिः ॥ नवयौवनसंपन्नं देवपुत्रोपमं मुनिम् ॥ १३ ॥ तं विलोक्यामराकारं विस्मयं नृपतिर्गतः ॥ किं कृतं कुत्सितं कर्म पुत्र्या लोकविगर्हितम् ॥ १४ ॥ निहतोऽसौ मुनिर्वृद्धस्त्वनयाऽन्यः पतिः कृतः ॥ कामपीडितया कामं प्रशांतोऽप्यतिनिर्धनः ॥ १५ ॥ दुःसहोऽयं पुष्पधन्वा विशेषेण च यौवने ॥ कुले कलंकः सुमहाननया मानवे कृतः ॥ १६ ॥ धिक्तस्य जीवितं लोके यस्य पुत्री हि कुत्सिता ॥ सर्वपापैस्तु दुःखाय पुत्री भवति देहिनाम् ॥ १७ ॥ मया त्वनुचितं कर्म कृतं स्वार्थस्य सिद्धये ॥ वृद्धायांधाय या दत्ता पुत्री सर्वात्मना किल ॥१८॥ कन्या योग्याय दातव्या पित्रा सर्वात्मना किल॥ तादृशं हि फलं प्राप्तं यादृशं वै कृतं मया ॥१९॥ हन्मि चेदद्य तनयां दुःशीलां पापकारिणीम् ॥ स्त्रीहत्या दुस्तरा स्यान्मे तथा पुत्र्या विशेषतः ॥ २० ॥

नीच कर्म कर डाला है ॥१४॥ च्यवन मुनि बूढ़े थे। सम्भव है, वे मार डाले गये हों और इसने कोई दूसरा पति चुन लिया हो। कोई कितना भी शान्तचित्त अथवा निर्धन क्यों न हो, किंतु कामकी पीड़ासे वह कुत्सित कर्म कर ही बैठता है ॥१५॥ यह कामदेव बड़ा ही दुःसह है। युवास्थामें तो इसका वेग और भी बढ़ जाता है। पवित्र मनुवंशमें इसने यह अत्यन्त अमिट कलङ्क लगा दिया ॥ १६ ॥ जिसकी ऐसा नीच कर्म करनेवाली पुत्री हो, उस पुरुषको धिक्कार है। मेरे द्वारा भी स्वार्थवश ही यह अनुचित कर्म हो गया था। क्योंकि मैंने समझ-बूझकर नेत्रहीन और वृद्ध मुनिको पुत्री सौंप दी। पिताको चाहिये कि भलीभाँति सोच-समझकर किसी योग्य वरके साथ अपनी कन्याका विवाह करे। मैंने जैसा कर्म किया, वैसा ही फल मेरे सामने आया ॥ १७–१९ ॥ अब मैं यदि इस नीच कर्म करनेवाली दुश्चरित्रा कन्याको मार डालता हूँ तो कभी न मिटनेवाली स्त्री-हत्याका दोष लगेगा। विशेष करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह अपनी ही पुत्री है ॥२०॥ इस परम प्रसिद्ध मनुवंशको मैंने कलङ्कित कर दिया। जगत्‌में मेरी घोर निन्दा होगी। एक ओर बलवती लोकनिन्दा और दूसरी ओर दुस्त्यज संततिकी स्नेहशृङ्खला। क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता' ॥२१॥ इस प्रकार राजा शर्याति चिंताके अगाध सागरमें गोते खा रहे थे। संयोगवश उसी समय अपने चिंतित पितापर सुकन्याकी दृष्टि पड़ गयी। फिर तो महाराज शर्यातिकी यह स्थिति देखकर सुकन्या तुरंत उनके पास गयी और आदरपूर्वक उनसे पूछने लगी—॥२२॥२३॥ 'पिताजी! मालूम होता है कि कमलके समान नेत्रवाले इन नवयुवक मुनिको देखकर आपके मनमें संदेह उत्पन्न हो रहा है। चिंतासे आप घबड़ाये हुए जान पड़ते हैं। मनुवंशको शोभित करनेवाले हे राजेन्द्र! आप श्रेष्ठ पुरुष हैं। आइए—मेरे इन पतिदेवको प्रणाम कीजिये। इस समय विषाद करना बिल्कुल बेकार है' ॥ २४ ॥ २५ ॥ व्यासजी कहते हैं—अपनी पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर राजा शर्याति जो दुःख तथा क्रोधसे सन्तप्त हो रहे थे, सामने उपस्थित सुकन्याके प्रति बोले ॥२६॥ राजाने कहा—बेटी! वे परम तपस्वी बूढ़े-अंधे च्यवन मुनि कहाँ गये? यह मदोन्मत्त नवयुवक पुरुष कौन

मनुवंशस्तु विख्यातः सकलंकः कृतो मया ॥ लोकापवादो बलवान्दुस्त्याज्या स्नेहशृंखला ॥ २१ ॥ किं करोमीति चिंताऽब्धौ यदा मग्नः स पार्थिवः ॥ सुकन्यया तदा दैवाद्दृष्टश्चिंताकुलः पिता ॥ २२ ॥ सा दृष्ट्वा तं जगामाशु सुकन्या पितुरंतिके ॥ गत्वा पप्रच्छ भूपालं प्रेमपूरितमानसा ॥२३॥ किं विचारयसे राजंश्चिन्ताव्याकुलिताननः ॥ उपविष्टं मुनिं वीक्ष्य युवानमंबुजेक्षणम् ॥ २४ ॥ एह्येहि पुरुषव्याघ्र प्रणमस्व पतिं मम ॥ मा विषादं नृपश्रेष्ठ सांप्रतं कुरु मानव ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा शर्यातिः क्रोधपीडितः ॥ प्रोवाच वचनं राजा पुरःस्थां तनयां ततः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ क्व मुनिश्च्यवनः पुत्रि वृद्धोऽन्धस्तापसोत्तमः ॥ कोऽयं युवा मदोन्मत्तः संदेहोऽत्र महान्मम ॥ २७ ॥ मुनिः किं निहतः पापे त्वया दुष्कृतकारिणि ॥ नूतनोऽसौ पतिः कामात्कृतः कुलविनाशिनि ॥२८॥ सोऽहं चिन्तातुरस्तं न पश्याम्याश्रमसंस्थितम् ॥ किं कृतं दुष्कृतं कर्म कुलटाचरितं किल ॥ २९ ॥ निमग्नोऽहं दुराचारे शोकाब्धौ त्वत्कृतेऽधुना ॥ दृष्ट्वैनं पुरुषं दिव्यमदृष्ट्वा च्यवनं मुनिम् ॥ ३० ॥ विहस्य तमुवाचाशु सा श्रुत्वा वचनं पितुः ॥ गृहीत्वाऽऽनीय पितरं भर्तुरंतिकमादरात् ॥ ३१ ॥ च्यवनोऽसौ मुनिस्तात जामाता ते न संशयः ॥ अश्विभ्यामीदृशः कांतः कृतः कमललोचनः ॥ ३२ ॥ यदृच्छयाऽत्र संप्राप्तौ नासत्यावाश्रमे मम ॥ ताभ्यां करुणया नूनं च्यवनस्तादृशः कृतः ॥ ३३ ॥ नाहं

है? इस विषयमें मुझे महान् संदेह हो रहा है ॥२७॥ दुराचारमें रत रहनेवाली अरी पापिनी! तूने क्या मुनिको मार डाला है? हे कुलनाशिनी! क्या कामके वशीभूत होकर तू इस नवयुवक पुरुषकी दासी बन गयी है? ॥२८॥ आश्रममें बैठे हुए इस पुरुषको देखना ही मेरे लिए विशेष चिंताका कारण बन गया है। तूने यह कैसा नीच कर्म कर डाला? दुश्चरित्र स्त्रियाँ ही ऐसा व्यवहार किया करती हैं ॥२९॥ अरी दुराचारसे प्रेम रखनेवाली कन्ये! इस समय तेरे पास यह एक नवयुवक पुरुष दिखायी दे रहा है और वृद्ध मुनि कहीं नहीं दीखते ॥ ३० ॥ अपने पिता शर्यातिकी बात सुनकर सुकन्याका मुँह मुसकानसे भर गया। पिताजीको साथ लेकर वह तुरंत च्यवन मुनिके पास पहुँची और आदरपूर्वक राजासे कहने लगी—॥३१॥ 'पिताजी! आपके जामाता ये च्यवन मुनि ही हैं। अश्विनीकुमारोंकी कृपासे इनकी ऐसी कमनीय कांति हो गयी है। उन्होंने ही इन्हें कमल-जैसे नेत्र प्रदान किये हैं ॥ ३२ ॥ दोनों अश्विनीकुमार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वयं मेरे इस आश्रमपर पधारे थे। उन्होंने ही दयालुतावश इन मुनिवरको ऐसा बना दिया है ॥३३॥ पिताजी ! मैं आपकी पुत्री हूँ। हे राजन् ! पतिदेवका रूप देखकर मोहवश आपके मनमें जैसा विचार उत्पन्न हो रहा है, वैसा घृणित कर्म मेरे द्वारा होना सर्वथा असम्भव है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! भृगुवंशको सुशोभित करनेवाले इन च्यवन मुनिको प्रणाम कीजिये। आप इनसे हो पूछ लीजिए। ये सारी बातें आपको विस्तारपूर्वक बतला देंगे। तब आपका संदेह दूर हो जायगा' ॥३५॥ पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर राजा शर्याति तुरन्त मुनिके पास गये। उनके चरणोंपर मस्तक झुकाया। तदनन्तर उन्होंने आदरपूर्वक पूछा ॥३६॥ राजाने कहा—हे भृगुकुलभूषण मुने ! आप शीघ्र अपना समस्त वृत्तांत बतानेकी कृपा करें। आपकी आँखें कैसे ठीक हुईं और कैसे आपका बुढ़ापा चला गया ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके इस अत्यन्त सुन्दर रूपको देखकर मुझे महान् सन्देह हो रहा है। आप विस्तारके साथ इस रहस्यका उद्घाटन कीजिए, जिसे सुनकर मैं सुखी हो सकूँ ॥३८॥ च्यवनजी बोले—हे राजेन्द्र ! अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं। वे यहाँ पधारे थे। उन्होंने ही कृपापूर्वक मेरा यह उपकार किया है। उस उप-

तव सुता तात यथा स्यां पापकारिणी ॥ यथा त्वं मन्यसे राजन्विमूढो रूपसंशये ॥ ३४ ॥ प्रणाम त्वं मुनिं राजन्भार्गवं च्यवनं पितः ॥ आपृच्छ कारणं सर्वं कथयिष्यति विस्तरम् ॥ ३५ ॥ इति श्रुत्वा वचः पुत्र्याः शर्यातिस्त्वरितस्तदा ॥ प्रणनाम मुनिं तत्र गत्वा पप्रच्छ सादरम् ॥ ३६ ॥ ॥ राजोवाच ॥ कथयस्व स्ववृत्तांतं भार्गवाशु यथोचितम् ॥ नयने च कथं प्राप्ते क्व गता ते जरा पुनः ॥३७॥ संशयोऽयं महान्मेऽस्ति रूपं दृष्ट्वाऽतिसुन्दरम् ॥ वद विस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रुत्वाऽहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ३८ ॥ च्यवन उवाच ॥ नासत्यावत्र संप्राप्तौ देवानां भिषजावुभौ ॥ उपकारः कृतस्ताभ्यां कृपया नृपसत्तम ॥ ३९ ॥ मया ताभ्यां वरो दत्त उपकारस्य हेतवे ॥ करिष्यामि मखे राज्ञो भवन्तौ सोमपायिनौ ॥ ४० ॥ एवं मया वयः प्राप्तं लोचने विमले तथा ॥ स्वस्थो भव महाराज संविशस्वासने शुभे ॥ ४१ ॥ इत्युक्तः स तु विप्रेण सभार्यः पृथिवीपतिः ॥ सुखोपविष्टः कल्याणीः कथाश्चक्रे महात्मना ॥ ४२ ॥ अथैनं भार्गवः प्राह राजानं परिसांत्वयन् ॥ याजयिष्यामि राजंस्त्वां संभारानुपकल्पय ॥ ४३ ॥ मया प्रतिश्रुतं ताभ्यां कर्तव्यौ सोमपौ युवाम् ॥ तत्कर्तव्यं नृपश्रेष्ठ तव यज्ञेऽतिविस्तरे ॥ ४४ ॥ इन्द्रं निवारयिष्यामि क्रुद्धं

कारके बदले मैंने उन्हें यह वर दिया है—'आप दोनों सज्जनोंको मैं राजा शर्यातिके यज्ञमें सोमरस पीनेका अधिकारी बना दूँगा'। हे महाराज ! इस प्रकार देववैद्योंके द्वारा मुझे तरुण अवस्था और ये विमल नेत्र प्राप्त हुए हैं। आप शांतचित्त होकर इस पवित्र आसनपर विराजिए ॥३९–४१॥ च्यवन मुनिके यह कहनेपर राजा शर्याति सुखपूर्वक आसनपर बैठ गए। पास ही रानी भी बैठ गयीं। फिर महात्मा च्यवनजीसे कल्याणमयी बातें होने लगीं ॥४२॥ उन्होंने विस्तारके साथ आद्योपांत समस्त वृत्तांत राजाको कह सुनाया। तत्पश्चात् सांत्वना देते हुए मुनिवर च्यवनने राजा शर्यातिसे कहा—'महाराज ! मैं आपके द्वारा यज्ञ कराऊँगा, आप सामग्रीका संग्रह कीजिए ॥४३॥ 'मेरे प्रयाससे आप लोग सोमरसका पान कर सकेंगे' इस प्रकारकी प्रतिज्ञा मैं अश्विनीकुमारोंसे कर चुका हूँ। हे नृपश्रेष्ठ ! आपके सोमयज्ञमें यदि इन्द्र कुपित होंगे तो मैं अपने तपके तेजसे उन्हें शांत कर लूँगा। फिर अश्विनीकुमार सुगमतापूर्वक सोमरस पी सकेंगे। हे महाराज ! उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समय च्यवन मुनिका यह कथन सुनकर राजा शर्यातिका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने मुनिवरके परामर्शका अभिनंदन किया ॥४४-४६॥ तदनंतर च्यवनजीका सन्मान करके रानीके साथ परम संतुष्ट होकर वे अपने नगरको चले गये। मुनिकी बात मिथ्या नहीं हो सकती—यही चर्चा रास्ते भर होती रही ॥४७॥ तदनन्तर सम्पूर्ण कामनाओंसे संपन्न राजा शर्यातिने शुभ मुहूर्तमें एक उत्तम यज्ञशालाका निर्माण कराया ॥४८॥ वसिष्ठ प्रभृति प्रधान मुनिगण उस यज्ञमें निमन्त्रित हुए। इस प्रकार सारी व्यवस्था सम्पन्न हो जानेपर भृगुवंशी च्यवन मुनिने राजा शर्यातिसे यज्ञ कराना आरम्भ किया ॥४९॥ उस महायज्ञमें इन्द्र आदि सभी देवता आए। सोमरस पीनेकी इच्छासे अश्विनीकुमारोंका भी वहाँ आगमन हुआ ॥५०॥ अश्विनीकुमारोंको देखकर वहाँ उपस्थित इन्द्रका मन शङ्कित हो उठा। वे समस्त देवताओंसे पूछने लगे—'ये अश्विनीकुमार यहाँ क्यों आए हैं ? ॥ ५१ ॥ ये चिकित्साका काम करते हैं। अतः सोमरस पीनेका इन्हें अधिकार नहीं है। इनको यहाँ किसने बुलाया है ?' राजा शर्यातिके उस महान् यज्ञमें इस प्रकार पूछनेपर किसी देवताने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ ५२ ॥ इसके बाद जब

तेजोबलेन वै ॥ पाययिष्यामि राजेन्द्र सोमं सोममखे तव ॥ ४५ ॥ ततः परमसंतुष्टः शर्यातिः पृथिवीपतिः ॥ च्यवनस्य महाराज तद्वाक्यं प्रत्यपूजयत् ॥ ४६ ॥ संमान्य च्यवनं राजा जगाम नगरं प्रति ॥ सभार्यश्चातिसंतुष्टः कुर्वन्वार्तां मुनेः किल ॥ ४७ ॥ प्रशस्तेऽहनि यज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमान् ॥ कारयामास शर्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ समानीय मुनीन्पूज्यान्वसिष्ठप्रमुखानसौ ॥ भार्गवो याजयामास च्यवनः पृथिवीपतिम् ॥ ४९ ॥ वितते तु तथा यज्ञे देवाः सर्वे सवासवाः ॥ आजग्मुश्चाश्विनौ तत्र सोमार्थमुपजग्मतुः ॥ ५० ॥ इन्द्रस्तु शंकितस्तत्र वीक्ष्य तावश्विनावुभौ ॥ पप्रच्छ च सुरान्सर्वान्किमेतौ समुपागतौ ॥ ५१ ॥ चिकित्सकौ न सोमार्हौ केनानीताविहेति च ॥ नाब्रुवन्नमरास्तत्र राज्ञस्तु वितते मखे ॥ ५२ ॥ अगृह्णाच्च्यवनः सोममश्विनोर्देवयोस्तदा ॥ शक्रस्तं वारयामास मा गृहाणैतयोर्ग्रहम् ॥ ५३ ॥ तमाह च्यवनस्तत्र कथमेतौ रवेः सुतौ ॥ न ग्रहार्हौ च नासत्यौ ब्रूहि सत्यं शचीपते ॥ ५४ ॥ न संकरौ समुत्पन्नौ धर्मपत्नीसुतौ रवेः ॥ केन दोषेण देवेन्द्र नार्हौ सोमं भिषग्वरौ ॥ ५५ ॥ निर्णयोऽत्र मखे शक्र कर्तव्यः सर्वदैवतैः ॥ ग्राहयिष्याम्यहं सोमं क्रतौ सोमपौ मया ॥ ५६ ॥ प्रेरितोऽसौ मया राजा मखाय मघवन्किल ॥ एतदर्थं करिष्यामि सत्यं मे वचनं विभो ॥ ५७ ॥ आभ्यामुपकृतं शक्र तथा दत्तं नवं वयः ॥ तस्मात्प्रत्युपकारस्तु

मुनिवर च्यवनजी अश्विनीकुमारोंको सोमरस देने लगे, तब इन्द्रने उन्हें रोककर कहा—'इन्हें सोमरस मत दो' ॥ ५३ ॥ तब च्यवन मुनिने देवराज इन्द्रसे कहा—'शचीपते ! ये सूर्यकुमार सोमरसके अनधिकारी कैसे हैं, आप इस बातको सत्यतापूर्वक सिद्ध कीजिए। ये वर्णसंकर नहीं हैं। सूर्यकी धर्मपत्नीके उदरसे इनका जन्म हुआ है। हे देवेन्द्र ! इन प्रधान वैद्योंमें ऐसा कौन-सा दोष है, जिसके कारण आप इन्हें सोमरस पीनेके अयोग्य बता रहे हैं ? ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे शक्र ! यज्ञमें पधारे हुए ये सब देवता ही इस बातका निर्णय कर दें। मैं इन अश्विनीकुमारोंको सोमरस पिलाकर रहूँगा। कारण, मेरे द्वारा ये इसके अधिकारी बनाए जा चुके हैं ॥ ५६ ॥ हे मघवन् ! मेरी ही प्रेरणासे ये नरेश यज्ञ कर रहे हैं। हे विभो ! मैं सत्य कहता हूँ, अश्विनीकुमारोंको सोमरस पान करनेका अवसर प्राप्त हो जाय-इसीलिए मेरा यह समस्त प्रयास है ॥ ५७ ॥ मुझे तरुण अवस्था देकर इन्होंने मेरा महान् उपकार किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे शक्र ! इस उपकारके बदलेमें प्रत्युपकार करना मेरा परम कर्तव्य है ॥५८॥ इन्द्रने कहा-हे मुने ! चिकित्साका व्यवसाय करनेके कारण देवताओंने इन अश्विनीकुमारोंकी घोर निन्दा की है। अतएव ये दोनों सोमरसके अधिकारी नहीं हैं। इसलिये आप इनका भाग मत लगाइए ॥ ५९ ॥ च्यवनजी कहने लगे-हे अहल्याजार ! शान्त रहो ! इस समय तुम्हारा रोष करना बिल्कुल व्यर्थ है। क्योंकि ये देवपुत्र अश्विनीकुमार सोमरसके अधिकारी न समझे जायँ—इसमें मुझे कोई भी कारण नहीं दीखता ॥ ६० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार इन्द्र और च्यवन मुनिमें विवाद छिड़ जानेपर वहाँ उपस्थित कोई भी देवता मुनिसे कुछ नहीं कह सका। फिर तो तपस्याके प्रभावसे अत्यन्त तेजस्वी च्यवनने सोमरसका भाग लेकर अश्विनीकुमारोंको दे ही दिया ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(राजा रेवतका स्वर्गारोहण) व्यासजी बोले—हे राजन् ! च्यवन मुनिने जब अश्विनीकुमारोंको सोमरस दे दिया, तब इन्द्रके क्रोधकी सीमा नहीं रही। अपना पराक्रम दिखाते हुए

कर्तव्यः सर्वथा मया ॥ ५८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ चिकित्सकौ कृतावेतौ नासत्यौ निंदितौ सुरैः ॥ उभावेतौ न सोमार्हौ मा गृहाणैतयोर्ग्रहम् ॥५६॥ च्यवन उवाच ॥ अहल्याजार संयच्छ कोपं चाद्य निरर्थकम् ॥ वृत्रघ्न किं हि नासत्यौ न सोमार्हौ सुरात्मजौ ॥ ६० ॥ एवं विवादे समुपस्थिते च न कोऽपि वाचं तमुवाच भूप ॥ ग्रहं तयोर्भार्गवतिग्मतेजाः संग्राहयामास तपोबलेन ॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

व्यास उवाच ॥ दत्ते ग्रहे तु राजेन्द्र वासवः कुपितो भृशम् ॥ प्रोवाच च्यवनं तत्र दर्शयन्बलमात्मनः ॥१॥ मा ब्रह्मबन्धो मर्यादामिमां त्वं कर्तुमर्हसि ॥ वधिष्यामि द्विषं तं त्वां विश्वरूपमिवापरम् ॥ २ ॥ च्यवन उवाच ॥ मावमंस्था महात्मानौ रूपद्रविणवर्चसा ॥ यौ चक्रतुर्मां मघवन्वृन्दारकमिवापरम् ॥ ३ ॥ ऋते त्वां विबुधाश्चान्ये कथं वाऽऽददते ग्रहम् ॥ अश्विनावपि देवेन्द्र देवौ विद्धि परन्तपौ ॥ ४ ॥ इन्द्र उवाच ॥ भिषजौ नार्हतः कामं ग्रहं यज्ञे कथंचन ॥ यदि दित्ससि मंदात्मन्शिरश्छेत्स्यामि सांप्रतम् ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ अनादृत्य तु तद्वाक्यं वासवस्य च भार्गवः ॥ ग्रहं तु ग्राहयामास भर्त्सयन्निव तं भृशम् ॥ ६ ॥ सोमपात्रं यदा ताभ्यां गृहीतं तु पिपासया ॥ समीक्ष्य बलभिद्देव इदं वचनम-

मुनिसे उन्होंने कहा—॥ १ ॥ हे ब्रह्मबन्धो ! ऐसी मर्यादा स्थापित कर देना तुम्हारे लिए सर्वथा अनुचित है। मेरा विरोध करना ही अभीष्ट हो तो मैं तुम्हें एक दूसरा विश्वरूप समझकर उसीकी भाँति तुम्हारा भी वध कर डालूँगा' ॥ २ ॥ च्यवनजीने कहा—हे मघवन् ! जिन्होंने मुझे दूसरे कामदेवके समान कमनीय बना दिया है, उन रूपकी सम्पत्तिसे अनुपम शोभा पानेवाले महात्मा अश्विनीकुमारोंका आप अपमान मत करें ॥ ३ ॥ हे देवेन्द्र! आपके सिवा ये अन्य देवतालोग क्यों सोमरस पाते हैं ? आपको ध्यान रखना चाहिये कि ये परम तपस्वी अश्विनीकुमार भी देवता हैं ॥ ४ ॥ इन्द्रने कहा—हे मन्दात्मन् ! चिकित्सा करनेवाले वैद्य किसी प्रकार यज्ञमें भाग पानेके अधिकारी नहीं माने जाते। तुम हठ करके इन्हें सोमरस दोगे तो मैं अभी तुम्हारा सिर धड़से अलग कर दूँगा ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले-हे राजन् ! इन्द्रकी बातका अनादर करके उन्हें उपालम्भ देते हुए च्यवन मुनिने अश्विनी-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुमारोंको यज्ञका भाग दे दिया ॥ ६ ॥ अश्विनीकुमार सोमरस पीनेके इच्छुक थे ही, उन्होंने जब सोमपात्र ले लिया, तब इन्द्रने रोषमें भरकर च्यवन मुनिसे कहा—॥ ७ ॥ हे मुने ! तुम इन्हें सोमरस दोगे तो मैं वैसे ही तुमपर वज्र प्रहार करूँगा, जैसे विश्वरूपको मैंने मार डाला था ॥ ८ ॥ इन्द्रके यह कहनेपर तपोऽभिमानी च्यवनजी कुपित हो उठे । उन्होंने विधिपूर्वक सोमरस अश्विनीकुमारोंको दे ही डाला ॥ ९ ॥ तब क्रोधके आवेशमें आकर इन्द्रने भी करोड़ों सूर्योंके समान चमकते हुए अपने वज्रको सम्पूर्ण देवताओंके सामने ही च्यवनजीपर चला दिया ॥ १० ॥ इन्द्रके तेजकी सीमा नहीं थी । फिर भी उनके चलाये हुए वज्रको च्यवनजीने अपने तपके प्रभावसे स्तम्भित कर दिया ॥ ११ ॥ साथ ही उन महातेजा मुनिवरने कृत्या उत्पन्न करके उसके द्वारा इन्द्रको मरवा डालनेके विचारसे अग्निमें मंत्रपूर्वक आहुति देना आरम्भ कर दिया ॥ १२ ॥ उनकी तपस्याके प्रभावसे आहुति पड़ते ही कृत्या उत्पन्न हो गयी । उसका भयंकर एवं प्रबल पुरुषके रूपमें आविर्भाव हुआ था । उस महान् दैत्यके शरीरकी आकृति बड़ी विशाल थी ॥१३॥ उसका नाम 'मद' था । उसकी सूरत बड़ी डरावनी थी ।

ब्रवीत् ॥ ७ ॥ आभ्यामर्थाय सोमं त्वं ग्राहयिष्यसि चेत्स्वयम् ॥ वज्रं तु प्रहरिष्यामि विश्वरूपमिवापरम् ॥ ८ ॥ वासवेनैवमुक्तस्तु भार्गवश्चातिगर्वितः ॥ जग्राह विधिवत्सोममश्विभ्यामतिमन्युमान् ॥ ९ ॥ इन्द्रोऽपि प्राक्षिपत्कोपाद्वज्रमस्मै स्वमायुधम् ॥ पश्यतां सर्वदेवानां सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १० ॥ प्रेरितं चाशनिं प्रेक्ष्य च्यवनस्तपसा ततः ॥ स्तंभयामास वज्रं स शक्रस्यामिततेजसः ॥ ११ ॥ कृत्यया स महाबाहुरिन्द्रं हंतुमिहोद्यतः ॥ जुहावाग्नौ शृतं हव्यं मंत्रेण मुनिसत्तमः ॥ १२ ॥ तत्र कृत्या समुत्पन्ना च्यवनस्य तपोबलात् ॥ प्रबलः पुरुषः क्रूरो बृहत्कायो महासुरः ॥ १३ ॥ मदो नाम महाघोरो भयदः प्राणिनामिह ॥ शरीरे पर्वताकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः ॥ १४ ॥ चतस्रश्चायता दंष्ट्रा योजनानां शतं शतम् ॥ इतरे त्वस्य दशना बभूवुर्दशयोजनाः ॥ १५ ॥ बाहू पर्वतसंकाशावायतौ क्रूरदर्शनौ ॥ जिह्वा तु भीषणा क्रूरा लेलिहाना नभस्तलम् ॥ १६ ॥ ग्रीवा तु गिरिशृङ्गाभा कठिना भीषणा भृशम् ॥ नखा व्याघ्रनखप्रख्याः केशाश्चातीव भीषणाः ॥ १७ ॥ शरीरं कज्जलाभं च तस्य चास्यं भयानकम् ॥ नेत्रे दावानलप्रख्ये भीषणेऽतिभयानके ॥ १८ ॥ हनुरेका स्थिता तस्य भूमावेका दिवं गता ॥ एवंविधः समुत्पन्नो मदो नाम बृहत्तनुः ॥ १९ ॥ तं विलोक्य सुराः सर्वे भयमाजग्मुरंहसा ॥ इन्द्रोऽपि भयसंत्रस्तो युद्धाय न मनो दधे ॥ २० ॥ दैत्योऽपि वदने कामं

संसारके सभी प्राणी उसे देखकर डर गये । पर्वतके समान उसका शरीर था । दाँत बड़े तीखे थे ॥१४॥ उसके चार दाँत तो सौ सौ योजन लम्बे थे । उन चारोंके अतिरिक्त जो अन्य दाँत थे, उनकी लम्बाई भी दस-दस योजन थी ॥ १५ ॥ उसकी दूरतक फैली हुई भयंकर भुजायें पर्वतकी समता कर रही थीं । अत्यन्त भयभीत करनेवाली उसकी जीभ मानो आकाश और पातालको चाट रही थी ॥१६॥ उसकी असीम भयावनी एवं कठोर गर्दन ऐसी जान पड़ती थी कि मानो पर्वतकी चोटी हो । नख बाघके नखकी तुलना कर रहे थे । केशोंकी भयंकरताका पार नहीं था ॥१७॥ उसका शरीर काजलके समान काला था । मुखकी आकृति अत्यन्त भयावनी थी । अत्यन्त भय उपजानेवाले उसके बड़े-बड़े दानों नेत्र ऐसे जान पड़ते थे, मानों दावानल हों ॥१८॥ उसका एक ओंठ पृथ्वीपर और दूसरा आकाशपर पहुँचा हुआ था । इस प्रकार विशाल शरीरवाले उस मद नामक दानवकी उत्पत्ति हो गयी ॥१९॥ उसे देखकर सम्पूर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवता डर गये । इन्द्रके भी मनमें आतङ्क छा गया । अब युद्ध करनेकी बात मनसे जाती रही ।।२०।। वह दैत्य वज्रको मुखमें लेकर सारे आकाशको व्याप्त करता हुआ सामने खड़ा था । जान पड़ता था, मानो क्रूर दृष्टिवाला वह दानव सारी त्रिलोकीको खा जायगा ।।२१।। तभी निगल जानेके विचारसे कुपित होकर वह इन्द्रके ऊपर टूट पड़ा । हा, अब हम मारे गये–यों कहकर सब देवता जोर-जोरसे चिल्लाने लगे ।।२२।। इन्द्र उस दैत्यपर वज्र चलाना चाहते थे, परंतु उनकी भुजाएँ कुण्ठित थीं । अतः वे उसे मारनेमें असमर्थ रहे ।।२३।। अब वज्रधारी देवराजने कालकी तुलना करनेवाले उस दानवको देखकर सामयिक समस्या सुलझानेमें कुशल अपने आचार्य बृहस्पतिका मन-ही-मन स्मरण किया ।। २४ ।। स्मरण करते ही उदारबुद्धि बृहस्पतिजी तुरंत आ गए । उन्होंने वहाँ पहुँचकर देखा कि इन्द्र बड़ी दयनीय दशामें उलझे हुए हैं ।।२५।। कर्तव्यके विषयमें कुछ समयतक मन-ही-मन विचार करके उन्होंने शचीपति इन्द्रसे कहा–'हे वासव ! 'मद' नामधारी यह महान् बलशाली दानव मन्त्रोंसे अथवा वज्रसे मार डाला जाय—यह असम्भव है ।। २६ ।। क्योंकि च्यवन ऋषिकी तपस्याका प्रतीकस्वरूप यह भयानक

वक्त्रमादाय संस्थितः ।। व्याप्तं तमो घोरदृष्टिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् ।। २१ ।। स भक्षयिष्यन्संक्रुद्धः शतक्रतुमुपाद्रवत् ।। चुक्रुशुश्च सुराः सर्वे हा हताः स्मेति संस्थिताः ।। २२ ।। इन्द्रः स्तंभितबाहुस्तु मुमुक्षुर्वज्रमंतिकात् ।। न शशाक पविं तस्मिन्प्रहर्तुं पाकशासनः ।। २३ ।। वज्रहस्तः सुरेशानस्तं वीक्ष्य कालसन्निभम् ।। सस्मार मनसा तत्र गुरुं समयकोविदम् ।। २४ ।। स्मरणादाजगामाशु बृहस्पतिरुदारधीः ।। गुरुस्तत्समयं दृष्ट्वा विपत्ति-सदृशं महत् ।। २५ ।। विचार्य मनसा कृत्यं तमुवाच शचीपतिम् ।। दुःसाध्योऽयं महामंत्रैस्त्वयं वज्रेण वासव ।। २६ ।। असुरो मदसंज्ञस्तु यज्ञ-कुण्डात्समुत्थितः ।। तपोबलमृषेः सम्यक्च्यवनस्य महाबलः ।। २७ ।। अनिवार्यो ह्ययं शत्रुस्त्वया देवैस्तथा मया ।। शरणं याहि देवेश च्यवनस्य महात्मनः ।। २८ ।। स निवारयिता नूनं कृत्यामात्मकृतां किल ।। न निवारयितुं शक्ताः शक्तिभक्तरुषं क्वचित् ।। २९ ।। व्यास उवाच ।। इत्युक्तो गुरुणा शक्रस्तदाऽगच्छन्मुनिं प्रति ।। प्रणम्य शिरसा नम्रस्तमुवाच भयान्वितः ।। ३० ।। क्षमस्व मुनिशार्दूल शमयासुरमुद्यतम् ।। प्रसन्नो भव सर्वज्ञ वचनं ते करोम्यहम् ।। ३१ ।। सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृति भार्गव ।। भविष्यतः सत्यमेतद्वचो विप्र प्रसीद मे ।। ३२ ।। मिथ्या ते नोद्यमो ह्येष भवत्वेव तपोधन ।। जाने त्वमपि धर्मज्ञ मिथ्या नैव करिष्यसि ।। ३३ ।। सोमपावश्विनावेतौ त्वत्कृतौ च सदैव हि ।। भविष्यतश्च शर्यातेः

दानव यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हुआ है ।। २७ ।। हे देवेश ! यह शत्रु मेरे, तुम्हारे तथा देवताओंके रोकनेसे नहीं रुक सकता । अतः तुम महात्मा च्यवनजीकी शरणमें जाओ ।।२८।। वे अवश्य ही अपने द्वारा उत्पन्न की हुई इस कृत्याका शमन कर देंगे । भगवती जगदम्बाके भक्तके रोपको विफल करनेमें कहीं कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ।। २९ ।। व्यासजी बोले–हे राजन् ! इस प्रकार बृहस्पतिके कहनेपर भयभीत इन्द्र च्यवन मुनिके पास गये । उन्होंने नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा–।। ३० ।। 'हे मुनिवर ! क्षमा कीजिए । हे सर्वज्ञ ! आप प्रसन्न हो जाइये । मैं आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये तैयार हूँ ।।३१।। हे भार्गव ! आजसे अश्विनीकुमार सोमरस-पानके अधिकारी मान लिये जायँगे । हे ब्राह्मण देवता ! आप प्रसन्न हो जायँ । मेरी बात सर्वथा सत्य है ।।३२।। हे तपोधन ! आपने अश्विनीकुमारोंको सोमरसका अधिकारी बनानेके लिये जो परिश्रम किया था, वह सफल हो गया । हे धर्मज्ञ ! मैं जानता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं कि आप निष्प्रयोजन कोई कार्य नहीं करेंगे ॥ ३३ ॥ अब ये अश्विनीकुमार आपकी कृपासे यज्ञमें सदा सोमरस पान करेंगे । साथ ही, राजा शर्यातिकी कीर्ति भी जगत्‌में फैल जायगी ॥३४॥ हे मुनिवर ! मेरे द्वारा जो यह कुत्सित कार्य हुआ है, सो आपके प्रचण्ड पराक्रमकी परीक्षा लेना मेरा उद्देश्य था ॥३५॥ हे ब्रह्मन् ! आप मेरे हितचिन्तक होकर इस उन्नतिशील 'मद' नामक असुरको तुरन्त छिपा लीजिये । क्योंकि सम्पूर्ण देवताओंका कल्याण आपके ही ऊपर निर्भर है ॥ ३६ ॥ इन्द्रके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर परम अर्थके ज्ञाता च्यवन मुनिने विरोधसे उत्पन्न अपने प्रचण्ड क्रोधको शान्त कर दिया ॥ ३७ ॥ साथ ही घबराए हुए देवराजको आश्वासन देकर उन्होंने स्त्री, मदिरापान, जूआ और शिकार प्रभृति स्थानोंमें मदके रहनेकी व्यवस्था कर दी ॥३८॥ उस समय इन्द्र भयके कारण चकितसे हो गये थे । यों इन्द्रको आश्वासन देकर सम्पूर्ण देवताओंको अपने-अपने कार्यपर नियुक्त करके च्यवन मुनिने राजा शर्यातिका यज्ञ पूरा किया ॥ ३९ ॥ यज्ञ सम्पन्न हो जानेपर उसमें जो संस्कृत सोमरस था, उसे महान् धर्मात्मा च्यवनजीने पहले महात्मा इन्द्रको पिलाया । इसके बाद अश्विनीकुमारोंको

कीर्तिस्तु विपुला भवेत् ॥ ३४ ॥ मया यद्धि कृतं कर्म सर्वथा मुनिसत्तम ॥ परीक्षार्थं तु विज्ञेयं तववीर्यप्रकाशनम् ॥३५॥ प्रसादं कुरु मे ब्रह्मन्मदं संहर चोत्थितम् ॥ कल्याणं सर्वदेवानां तथा भूयो विधीयताम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्तस्तु शक्रेण च्यवनः परमार्थवित् ॥ संजहार ततः कोपं समुत्पन्नं विरोधजम् ॥३७॥ देवमाश्वास्य संविग्नं भार्गवस्तु मदं ततः ॥ व्यभजत्स्त्रीषु पानेषु द्यूतेषु मृगयासु च ॥३८॥ मदं विभज्य देवेन्द्रमाश्वास्य चकितं भिया ॥ संस्थाप्य च सुरान्सर्वान्मखं तस्य न्यवर्तयत् ॥ ३९ ॥ ततस्तु संस्कृतं सोमं वासवाय महात्मने ॥ अश्विभ्यां सर्वधर्मात्मा पाययामास भार्गवः ॥ ४० ॥ एवं तौ च्यवनेनार्यावश्विनौ रविपुत्रकौ ॥ विहितौ सोमपौ राजन्सर्वथा तपसो बलात् ॥ ४१ ॥ सरस्तदपि विख्यातं जातं यूपविमंडितम् ॥ आश्रमस्तु मुनेः सम्यक्पृथिव्यां विश्रुतोऽभवत् ॥ ४२ ॥ शर्यातिरपि संतुष्टो ह्यभवत्तेन कर्मणा ॥ यज्ञं समाप्य नगरे जगाम सचिवैर्वृतः ॥४३॥ राज्यं चकार धर्मज्ञो मनुपुत्रः प्रतापवान् ॥ आनर्तस्तस्य पुत्रोऽभूदानर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ ४४ ॥ सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुंक्त विषयानानर्तादीनरिंदमः ॥ ४५ ॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ पुत्री च रेवती नाम्ना सुन्दरी शुभ-

पीनेकी आज्ञा दी ॥ ४० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार च्यवन मुनिकी तपस्याके प्रभावसे सूर्यनन्दन महानुभाव अश्विनीकुमारोंको सोमरसपानका अधिकार सम्यक्‌रूपसे प्राप्त हुआ ॥४१॥ यज्ञ-स्तम्भसे शोभा पानेवाला वह सरोवर भी तबसे विख्यात हो गया और च्यवन मुनिके आश्रमकी प्रसिद्धि भूमण्डलपर सर्वत्र फैल गयी ॥ ४२ ॥ इस कार्यसे राजा शर्याति भी बहुत प्रसन्न हुए । यज्ञ समाप्त होनेके पश्चात् उन्होंने अपने मंत्रियोंके साथ नगरकी यात्रा की ॥ ४३ ॥ उन प्रतापी तथा धर्मज्ञ नरेशने राजधानीमें जाकर अपना कार्यभार संभाल लिया । उनके पुत्र आनर्त हुए और आनर्तके रेवत ॥ ४४ ॥ शत्रुओंको परास्त करनेवाले रेवतने बीच समुद्रमें कुशस्थली नामकी नगरी बसायी और वे वहीं रहकर आनर्त देशसे सम्बन्ध रखनेवाले देशों-का शासन करने लगे ॥ ४५ ॥ उनके सौ पुत्र हुए । सबसे बड़े पुत्रका नाम ककुद्मी था । उनके रेवती नामकी एक पुत्री हुई । वह बड़ी सुन्दरी और सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी ॥ ४६ ॥ जब वह विवाहके योग्य हो गयी, तब महाराज रेवत किसी कुलीन राजकुमारीके साथ उसे व्याहनेका विचार करने लगे ॥ ४७ ॥ उस समय राजा रेवत आनर्त देशमें रैवत नामक पर्वतपर रहकर राज्य कर रहे थे ॥ ४८ ॥ उन्होंने मन ही मन सोचा—'यह कन्या किसे देना उचित होगा। अच्छा तो यह हो कि सर्वज्ञ एवं देवपूज्य ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हींसे पूछा जाय' ॥ ४९ ॥ इस प्रकार विचार करके राजा रेवत अपनी कन्या रेवतीको साथ लेकर पितामह ब्रह्माजीसे उसका वर पूछनेके लिए तुरंत ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे ॥ ५० ॥ उस समय ब्रह्मलोकमें देवता, यक्ष, छन्द, पर्वत, समुद्र और नदियाँ दिव्यरूप धारण करके विराजमान थीं। ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग और चारण-सबके सब हाथ जोड़कर ब्रह्माजीकी स्तुति कर रहे थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

लक्षया ॥ ४६ ॥ वरयोग्या यदा जाता तदा राजा च रेवतः ॥ चिंतयामास राजेन्द्रो राजपुत्रान्कुलोद्भवान् ॥ ४७ ॥ रैवतं नाम च गिरिमाश्रितः पृथिवीपतिः ॥ चकार राज्यं बलवानानर्तेषु नराधिपः ॥ ४८ ॥ विचिन्त्य मनसा राजा कस्मै देया मया सुता ॥ गत्वा पृच्छामि ब्रह्माणं सर्वज्ञं सूरपूजितम् ॥ ४९ ॥ इति संचिन्त्य भूपालः सुतामादाय रेवतीम् ॥ ब्रह्मलोकं जगामाशु प्रष्टुकामः पितामहम् ॥ ५० ॥ यत्र देवाश्च यज्ञाश्च छन्दांसि पर्वतास्तथा ॥ अब्धयः सरितश्चापि दिव्यरूपधराः स्थिताः ॥ ५१ ॥ ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः पन्नगाश्चारणास्तथा ॥ तस्थुः प्रांजलयः सर्वे स्तुवंतश्च पुरातनाः ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ संशयोऽयं महान्ब्रह्मन्वर्तते मम मानसे ॥ ब्रह्मलोकगतो राजा रेवतीसंयुतः स्वयम् ॥ १ ॥ मया पूर्वं श्रुतं कृत्स्नं ब्राह्मणेभ्यः कथान्तरे ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मविच्छान्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ राजा कथं गतस्तत्र रेवतीसंयुतः स्वयम् ॥ २ ॥ सत्यलोकेऽतिदुष्प्रापे भूर्लोकादिति संशयः ॥ ३ ॥ मृतः स्वर्गमवाप्नोति सर्वशास्त्रेषु निर्णयः ॥ (मानुषेण तु देहेन ब्रह्मलोके गतिः कथम्) ॥ स्वर्गात्पुनः कथं लोके मानुषे जायते गतिः ॥ ४ ॥ एतन्मे संशयं विद्वंश्छेत्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥ यथा राजा गतस्तत्र प्रष्टुकामः प्रजापतिम् ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ मेरोस्तु शिखरे राजन्सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ इन्द्रलोको वह्निलोको या च संयमिनी पुरी ॥६॥ तथैव सत्यलोकश्च कैलासश्च तथा पुनः ॥ वैकुण्ठश्च

(रेवता-बलरामका विवाह) राजा जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! मेरे मनमें यह सन्देह हो रहा है कि स्वयं राजा रेवत अपनी कन्या रेवतीको लेकर ब्रह्मलोकमें कैसे चले गये? ॥१॥ क्योंकि मैं बहुत बार सुन चुका हूँ कि ब्रह्मज्ञानी तथा शांत स्वभाववाले ब्राह्मण ही ब्रह्मलोकतक पहुँच पाते हैं ॥२॥ सत्यलोक भूलोकसे बहुत दूर और दुष्प्राप्य है। राजा रेवत अपनी पुत्री रेवतीके साथ वहाँ कैसे जा सके? ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण शास्त्रोंका यह निर्णय है कि मृत्युके पश्चात् ही प्राणी स्वर्गमें जाता है। (मानव-शरीरसे ब्रह्मलोकमें कोई कैसे जा सकता है?) और यदि कोई वहाँ चला गया तो फिर वहाँसे लौटकर मनुष्यलोकमें आ जाय—यह कैसे सम्भव है? ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! दिव्य सुमेरु पर्वतके शिखरपर इन्द्रलोक, वह्निलोक, संयमिनीपुरी, सत्यलोक, कैलास और वैकुण्ठ आदि लोक विद्यमान हैं। वैकुण्ठको ही वैष्णवपद कहते हैं। हे विद्वन्! महाराज रेवत जिस तरह अपनी कन्याके पतिको पूछनेके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मलोक गये हों। यह वृत्तान्त वताकर मेरा संदेह निवृत्त कर दीजिए ॥५-७॥ जैसे धनुष धारण करनेवाले कुन्तीनन्दन अर्जुन इन्द्रलोक गये थे और वहाँ पाँच वर्षतक रहे। उनका इस मानव शरीरसे ही इन्द्रके पास जाना हुआ था। ऐसे ही ककुत्स्थ प्रभृति दूसरे बहुतसे नरेश भी सशरीर स्वर्गलोकमें पहुँच चुके हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ इनके अतिरिक्त बहुतेरे दैत्य भी इन्द्रके स्वर्गलोकको जीतकर वहाँ यथेच्छ शासन कर चुके हैं ॥ १० ॥ पूर्वकालमें राजा महाभिष भी स्वर्ग गये थे। तभी उन्होंने अतिशय सुन्दरी गंगाजीको आते देखा ॥११॥ उस समय वायुने उनके कपड़े उड़ा दिये, जिससे राजाने कुछ नग्न स्थितिमें सुन्दरी गंगाजीको देख लिया ॥१२॥ जिससे कामातुर होकर राजा मुसकाने लगे और गंगाजी भी हँस पड़ीं। यह देखकर ब्रह्माने उन दोनोंको शाप दे दिया। जिससे उन दोनोंको धरतीपर जन्म लेना पड़ा ॥ १३ ॥ दैत्यों और दानवोंसे त्रस्त देवता भी वैकुण्ठ धाममें विष्णुभगवानकी स्तुति करने गये थे ॥ १४ ॥

पुनस्तत्र वैष्णवं पदमुच्यते ॥ ७ ॥ यथाऽर्जुनः शक्रलोके गतः पार्थो धनुर्धरः ॥ पञ्च वर्षाणि कौंतेयः स्थितस्तत्र सुरालये ॥ ८ ॥ मानुषेणैव देहेन वासवस्य च सन्निधौ ॥ तथैवान्येऽपि भूपालाः ककुत्स्थप्रमुखाः किल ॥ ९ ॥ स्वर्लोकगतयः पश्चाद्दैत्याश्चापि महाबलाः ॥ जित्वेन्द्रसदनं प्राप्य संस्थितास्तत्र कामतः ॥ १० ॥ महाभिषः पुरा राजा ब्रह्मलोकं गतः स्वराट् ॥ आगच्छंतीं नृपो गंगामपश्यच्चातिसुन्दरीम् ॥ ११ ॥ वायुनांबरमस्यास्तु दैवादपहृतं नृपः ॥ किंचिन्नग्ना नृपेणाथ दृष्टा सा सुन्दरी तथा ॥ १२ ॥ स्मितं चकार कामार्तः सा च किञ्चिज्जहास वै ॥ ब्रह्मणा तौ तदा दृष्टौ शप्तौ जातौ वसुंधराम् ॥ १३ ॥ वैकुण्ठेऽपि सुराः सर्वे पीडिता दैत्यदानवैः ॥ गत्वा हरिं जगन्नाथमस्तुवन्कमलापतिम् ॥ १४ ॥ सन्देहो नात्र कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम ॥ गम्याः सर्वेऽपि लोकाः स्युर्मानवानां नराधिप ॥ १५ ॥ अवश्यं कृतपुण्यानां तापसानां नराधिप ॥ पुण्यसद्भाव एवात्र गमने कारणं नृपं ॥ १६ ॥ तथैव यजमानानां यज्ञेन भावितात्मनाम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ रेवतो रेवतीं कन्यां गृहीत्वा चारुलोचनाम् ॥१७॥ ब्रह्मलोकं गतः पश्चात्किं कृतं तेन भूभुजा ॥ ब्रह्मणा किं समादिष्टं कस्मै दत्ता सुता पुनः ॥ १८ ॥ तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन् कथय त्वं ममाधुना ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महीपाल राजा रेवतकः किल ॥ १९ ॥ पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकं गतो यदा ॥ आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम् ॥ २० ॥ शृन्वन्नतृप्यद्धृष्टात्मा सभायां तु सकन्यकः ॥ समाप्ते तत्र गान्धर्वे प्रणम्य परमेश्वरम् ॥ २१ ॥ दर्श-

अतएव हे राजेन्द्र ! इस विषयमें किसी प्रकारका भी सन्देह नहीं करना चाहिये। पुण्यात्मा, तपस्वी और समर्थ पुरुष प्रायः सभी लोकोंमें आ जा सकते हैं। हे मनुजेन्द्र ! जैसे पुण्य और सद्भाव ही ब्रह्मादि लोकोंमें जानेकी योग्यता प्राप्त होनेका कारण माना जाता है, वैसे ही यज्ञशील पवित्रात्मा पुरुष यज्ञके प्रभावसे वहाँ जानेके अधिकारी हो जाते हैं। राजा जनमेजयने पूछा—हे ब्रह्मन् ! महाराज रेवतने अपनी सुन्दर नेत्रोंवाली कन्या रेवतीको साथ लेकर ब्रह्मलोकमें जानेके पश्चात् क्या किया ? ब्रह्माजीने उन्हें क्या बताया ? ॥१५-१८॥ हे भगवन् ! अब आप इन सब प्रसंगोंको विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिए। व्यासजी बोले--हे राजन् ! सुनो, महाराज रेवत अपनी पुत्रीके वरके विषयमें पूछनेके लिए जब ब्रह्मलोकमें पहुँचे, उस समय वहाँ गन्धर्वोंका संगीत हो रहा था। राजा कुछ देर तक वहाँ ठहर गये। उस संगीतने उन्हें पूर्ण तृप्त और आह्लादित कर दिया। गायन समाप्त होनेपर सभाभवनमें विराज़मान परम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रभु ब्रह्माजीके समक्ष पहुँचकर नरेशने उन्हें प्रणाम किया और कन्या रेवतीको दिखाकर अपना अभिप्राय उनके सामने प्रकट कर दिया। राजा रेवतने कहा—हे देवेश! यह कन्या मेरी पुत्री है ॥ १९-२२ ॥ आप इसके योग्य वर बतानेकी कृपा कीजिए। हे ब्रह्मन्! मैं किसके साथ इसका विवाह करूँ। यही पूछनेके लिए आपके पास आया हूँ। मैंने बहुतसे उत्तम कुलके राजकुमारोंको देखा है, परन्तु मेरे चञ्चल मनके लिए कोई भी कुमार अनुकूल नहीं जान पड़ा। अतएव हे देवेश्वर! इस विषयमें आपसे सम्मति प्राप्त करनेके लिए मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे सर्वज्ञ प्रभो! आप किसी ऐसे सुयोग्य राजकुमारको बतलाइये, जो कुलीन, बलवान्, पूर्ण दानी और धर्मात्मा हो। व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा रेवतकी बात सुनकर संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी मुसकराये। ब्रह्मलोकके थोड़ेसे समयमें ही भूमण्डलका बहुत लम्बा समय बीत चुका था। अतएव ब्रह्माजी राजासे कहने लगे। ब्रह्माजीने कहा—हे राजन्! तुम्हारे हृदयमें जो राजकुमार वरके रूपमें उपस्थित थे, वे सभी अब कालके गालमें चले गये हैं। उनके पुत्र-पौत्र एवं बन्धु-बान्धव भी अब कोई नहीं बचे हैं। क्योंकि

यित्वा सुतां तस्मै स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ राजोवाच ॥ वरं कथय देवेश कन्येयं मम पुत्रिका ॥२२॥ देया कस्मै मया ब्रह्मन्प्रष्टुं त्वां समुपागतः ॥ बहवो राजपुत्रा मे वीक्षिताः कुलसंभवाः ॥२३॥ कस्मिंश्चिन्मे मनः कामं नोपतिष्ठति चंचलम् ॥ तस्मात्त्वां देवदेवेश प्रष्टुमत्रागतोऽस्म्यहम् ॥२४॥ तदाज्ञापय सर्वज्ञ योग्यं राजसुतं वरम् ॥ कुलीनं बलवंतं च सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ २५ ॥ दातारं धर्मशीलं च राजपुत्रं समादिश ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य जगत्कर्ता वचनं नृपतेस्तदा ॥ २६ ॥ तमुवाच हसन् वाक्यं दृष्ट्वा कालस्य पर्ययम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ राजपुत्रास्त्वया राजन्वरा ये हृदये कृताः ॥ २७ ॥ ग्रस्ताः कालेन ते सर्वे सपितृपौत्रबांधवाः ॥ सप्तविंशतिमोऽद्यैव द्वापरस्तु प्रवर्तते ॥ २८ ॥ वंशजास्ते मृताः सर्वे पुरी दैत्यैर्विलुं-ठिता ॥ सोमवंशोद्भवस्तत्र राजा राज्यं प्रशास्ति हि ॥२९॥ उग्रसेन इति ख्यातो मथुराधिपतिः किल ॥ ययातिवंशसंभूतो राजा माथुरमंडले ॥३०॥ उग्रसेनात्मजः कंसः सुरद्वेषी महाबलः ॥ दैत्येशः पितरं सोऽपि कारागारे न्यवेशयत् ॥ ३१ ॥ स्वयं राज्यं चकारासौ नृपाणां मदगर्वितः ॥ मेदिनी चातिभारार्ता ब्रह्माणं शरणं गता ॥ ३२ ॥ दुष्टराजन्यसैन्यानां भारेणातिसमाकुला ॥ अंशावतरणं तत्र गदितं सुरसत्तमैः ॥ ३३ ॥ वासुदेवः समुत्पन्नः कृष्णः कमललोचनः ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां योऽसौ नारायणो मुनिः ॥ ३४ ॥ तपश्चचार दुःसाध्यं धर्मपुत्रः सनातनः ॥ गङ्गातीरे

इस समय वहाँ सत्ताईसवाँ द्वापर युग चल रहा है ॥२५-२८॥ तुम्हारे सभी वंशज कालके कलेवा हो गये हैं। अब वह पुरी भी नहीं है। दैत्योंने उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। इस समय वहाँ चंद्रवंशी राजा राज्य कर रहे हैं ॥ २९ ॥ वह पुरी अब मथुरा कहलाती है। राजा उग्रसेन वहाँके शासक हैं। ययातिके वंशमें उनका जन्म हुआ है। पूरा मथुरा-मण्डल उनके अधीन था, परंतु नरेशका एक पुत्र कंस नामसे विख्यात हुआ। देवताओंसे द्रोह करनेवाला वह महाबली पुत्र दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था। उसने अपने पिता उग्रसेनको कारागारमें डालकर राज्यका प्रबन्ध स्वयं अपने हाथमें ले लिया। राजाओंमें वह सबसे बढ़-चढ़कर अहंकारी था। तब पृथ्वी अत्यन्त असह्य भारसे घबराकर ब्रह्माजीकी शरणमें गयी ॥३०-३२॥ श्रेष्ठ देवताओंका कथन है कि जब पृथ्वी राजाओंके भारसे आक्रान्त हो जाती है, तब भगवान् प्रकट होते हैं ॥ ३३ ॥ अतएव उस समय कमलके समान नेत्रसे शोभित भगवान् श्रीकृष्णका अवतार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ। वे साक्षात् नारायण मुनि थे ॥३४॥ वे सनातन धर्मपुत्र थे और बदरिकाश्रममें गंगाजीके तट पर दुःसाध्य तथा कठोर तप कर रहे थे ॥३५॥ वे अवतरित होकर भगवान् 'वासुदेव' के नामसे प्रसिद्ध हुए। हे राजन्! उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे उस दुराचारी कंसका निधन हुआ ॥३६॥ दुष्ट पुत्रके परलोकवासी हो जानेपर उन भगवान्की आज्ञासे राजा उग्रसेन पुनः राज्यपदपर प्रतिष्ठित हुए। कंसके ससुरका नाम जरासंध था। वह पापात्मा एवं महान् पराक्रमी था ॥३७॥ वह कुपित हो मथुरामें आकर उल्लासपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगा। अंतमें उस महान् पराक्रमी शत्रुको भगवान्के साथ युद्धमें परास्त हो जाना पड़ा ॥ ३८ ॥ तब उसने सेनासहित कालयवनको भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिए भेजा। यवनोंका अध्यक्ष कालयवन महान् शूरवीर है और सेना लेकर वह आ रहा है ॥३९॥ (यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने मथुराको छोड़ दिया और द्वारका चले गये। उस समय वह पुरी नष्टप्राय हो गयी थी। भगवान्ने शिल्पियों द्वारा उसका जीर्णोद्धार कराया ॥१॥ अब उसमें बाजार और दुर्ग बन गये हैं। भगवान्की आज्ञासे उग्रसेन वहाँका प्रबंध करते हैं ॥२॥) यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने यादवोंके लिए द्वार-

नरसखः पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥ ३५ ॥ सोऽवतीर्णो यदुकुले वासुदेवोऽपि विश्रुतः ॥ तेनासौ निहतः पापः कंसः कृष्णेन सत्तम ॥ ३६ ॥ उग्रसेनाय राज्यं वै दत्तं हत्वा खलं सुतम् ॥ कंसस्य श्वशुरः पापो जरासंधो महाबलः ॥ ३७ ॥ आगत्य मथुरां क्रोधाचकार संगरं मुदा ॥ कृष्णेनासौ जितः संख्ये जरासंधो महाबलः ॥ ३८ ॥ प्रेषयामास युद्धाय सबलं यवनं ततः ॥ श्रुत्वायांतं महाशूरः ससैन्यं यवनाधिपम् ॥ ३९ ॥ (कृष्णस्तु मथुरां त्यक्त्वा पुरीं द्वारवतीमगात् ॥ प्रभग्नां तां पुरीं कृष्णः शिल्पिभिः सह संगतैः ॥१॥ कारयामास दुर्गाढ्यां हट्टशालाविमंडिताम् ॥ जीर्णोद्धारं पुरः कृत्वा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ उग्रसेनं च राजानं चकार वशवर्तिनम् ॥ २ ॥) यादवान्स्थापयामास द्वारवत्यां यदूत्तमः ॥ वासुदेवस्तु तत्राद्य वर्तते बांधवैः सह ॥ ४१ ॥ तस्याग्रजः स विख्यातो बलदेवो हलायुधः ॥ शेषांशो मुसली वीरो वरोऽस्तु तव संमतः ॥ ४२ ॥ संकर्षणाय देह्याशु कन्यां कमललोचनाम् ॥ रेवतीं बलभद्राय विवाहविधना ततः ॥ ४२ ॥ दत्त्वा पुत्रीं नृपश्रेष्ठ गच्छ त्वं बदरिकाश्रमम् ॥ तपस्तप्तुं सुरारामं पावनं कामदं नृणाम् ॥४३॥ व्यास उवाच ॥ इति राजा समादिष्टो ब्रह्मणा पद्मयोनिना ॥ जगाम तरसा राजन्द्वारकां कन्ययाऽन्वितः ॥ ४४ ॥ ददौ तां बलदेवाय कन्यां वै शुभलक्षणाम् ॥ ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं नृपतिः कालपर्यये ॥ ४५ ॥ जगाम त्रिदशावासं त्यक्त्वा देहं सरित्तटे ॥ राजोवाच ॥

कामें व्यवस्था कर दी है। इस समय अपने समस्त बंधुओंके साथ वे भगवान् वहीं विराजमान हैं ॥४०॥ उनके बड़े भाईका नाम 'बलराम' है। हल और मूसलको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले बलरामजी महान् शूरवीर और शेषके अवतार माने जाते हैं। इस समय वे ही तुम्हारी इस कन्याके लिए सुयोग्य वर हैं ॥४१॥ उन्हींको तुम अपनी कमलनयनी कन्या रेवती अर्पण कर दो। वैवाहिक विधिके अनुसार बलभद्रजीके साथ इस कन्याका विवाह होना चाहिए ॥४२॥ हे राजेंद्र! इसका कन्यादान होनेके पश्चात् तप करनेके लिए तुम बदरिकाश्रम चले जाओ। क्योंकि तपसे मनुष्योंकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्तःकरण पवित्र हो जाता है ॥ ४३ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! पद्मयोनि ब्रह्माजीके इस प्रकार उपदेश देनेपर राजा रेवत उसी क्षण अपनी कन्या रेवतीके साथ द्वारका चले गये ॥ ४४ ॥ वहाँ जाकर शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्रीका विवाह बलदेवजीके साथ कर दिया। तबतक बहुत समय व्यतीत हो चुका था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदनन्तर गंगाके तटपर रहकर अत्यन्त कठोर तपस्या करके वे नश्वर शरीर त्यागकर दिव्यलोकको चले गये । राजा जनमेजयने कहा—भगवन् ! आपने बतलाया है कि राजा रेवत कन्याके योग्य वर जाननेके उद्देश्यसे ब्रह्मलोक गये और वहाँ वे एक सौ आठ युगतक ठहरे रहे ॥४५-४७॥ मुझे महान् आश्चर्य तो यह हो रहा है कि तबतक वह कन्या तथा वे राजा बूढ़े क्यों नहीं हुए ? अथवा इतने दिनोंकी पूर्ण आयु हो उन्हें कैसे प्राप्त हुई ? ॥४८॥ व्यासजी कहते हैं—हे पूतात्मा नरेश ! ब्रह्मलोकमें भूख, प्यास, मृत्यु, भय, बुढ़ापा एवं ग्लानि—ये विकार कदापि अपना प्रभाव नहीं डाल सकते ॥४९॥ राजा रेवत जब वहाँ चले गये, तब राक्षसोंने शर्याति-वंशकी सत्ता ही नष्ट कर दी । प्रायः सभी लोग अत्यन्त भयभीत हो कुशस्थली छोड़कर इधर-उधर कालक्षेप करने लगे ॥ ५० ॥ फिर क्षुव नामक मनुसे एक अत्यन्त प्रतापी पुत्रका जन्म हुआ । इक्ष्वाकु नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई । वे ही इक्ष्वाकु सूर्यवंशके मुख्य प्रवर्तक माने जाते हैं ॥ ५१ ॥ उन्होंने वंशवृद्धिके लिए भगवतीके ध्यानमें संलग्न होकर कठिन तपस्या की । नारदजी उनके उपदेशक थे । उन्हींसे उन्होंने वह अनुपम दीक्षा प्राप्त की थी ।

भगवन्महदाश्चर्यं भवता समुदाहृतम् ॥ ४६ ॥ रेवतस्तु स्थितस्तत्र ब्रह्मलोके सुतार्थतः ॥ युगानां तु गतं तत्र शतमष्टोत्तरं किल ॥ ४७ ॥ कन्या वृद्धा न संजाता राजा वाऽतितरां नु किम् ॥ एतावंतं तथा कालमायुः पूर्णं तयोः कथम् ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्न भयं पुनः ॥ न तु ग्लानिः प्रभवति ब्रह्मलोके सदाऽनघ ॥ ४९ ॥ मेरुं गतस्य शर्यातेः संतती राक्षसैर्हता ॥ गताः कुशस्थलीं त्यक्त्वा भयभीता इतस्ततः ॥ ५० ॥ मनोश्च क्षुवतः पुत्र उत्पन्नो वीर्यवत्तरः ॥ इक्ष्वाकुरिति विख्यातः सूर्यवंशकरस्तु सः ॥ ५१ ॥ वंशार्थं तप आतिष्ठद्देवीं ध्यात्वा निरंतरम् ॥ नारदस्योपदेशेन प्राप्य दीक्षामनुत्तमाम् ॥ ५२ ॥ तस्य पुत्रशतं राजन्निक्ष्वाकोरिति विश्रुतम् ॥ विकुक्षिः प्रथमस्तेषां बलवीर्यसमन्वितः ॥ ५३ ॥ अयोध्यायां स्थितो राजा इक्ष्वाकुरिति विश्रुतः ॥ शकुनिप्रमुखाः पुत्रा पंचाशद्बलवत्तराः ॥ ५४ ॥ उत्तरापथदेशस्य रक्षितारः कृताः किल ॥ दक्षिणस्यां तथा राजन्नादिष्टास्तेन ते सुताः ॥५५॥ चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च रक्षणार्थं महात्मना ॥ अन्यौ द्वौ संस्थितौ पार्श्वे सेवार्थं तस्य भूपतेः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ कदाचिदष्टकाश्राद्धे विकुक्षिं पृथिवीपतिः ॥ आज्ञापयदसंमूढो मांसमानय सत्वरम् ॥ १ ॥ मेध्यं श्राद्धार्थमधुना वने गत्वा

॥५२॥ हे राजन् ! मैंने सुना है कि उन्हीं इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए । उन सभी पुत्रोंमें सबसे बड़े विकुक्षि थे । उनमें बल और वीर्यका पूर्ण समावेश था ॥५३॥ महाराज इक्ष्वाकु अयोध्याके राजा थे—यह बात प्रसिद्ध है । शकुनि प्रभृति अत्यन्त बलशाली जो उनके पचास पुत्र थे, उन्हें उन्होंने उत्तरी प्रदेशकी रक्षाके लिए नियुक्त कर दिया । हे राजन् ! उनके अड़तालीस लड़के उनकी आज्ञासे दक्षिणी प्रदेशकी रक्षाको उद्यत हो गये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इनके अतिरिक्त जो दो शेष पुत्र थे, वे राजा इक्ष्वाकुकी सेवाके लिए उनके पास रहने लगे ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! इक्ष्वाकुके पुत्र विकुक्षि हुए । किसी समय राजा इक्ष्वाकुने अपने पुत्र विकुक्षिको अष्टकाश्राद्धके लिए शीघ्र मांस लानेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्होंने कहा–पुत्र! वनसे जाकर तुम आदरपूर्वक पवित्र मांस ले आओ। उनके आज्ञानुसार शस्त्र लेकर विकुक्षि तत्काल वनको चल पड़ा ॥ २ ॥ वहाँ जाकर उसने बाणोंसे बहुतेरे सूकरों, मृगों और खरगोशोंको मारा। तब तक वह थक गया और भूख लग गयी ॥ ३ ॥ जिससे उसे अष्टकाश्राद्धकी बात भूल गयी और उसने एक खरगोश खा लिया। शेष मांस लेजाकर उसने अपने पिताको दे दिया ॥ ४ ॥ प्रोक्षणके निमित्त समक्ष आनेपर गुरु वसिष्ठने उस मांसको देखा। देखते ही उसे श्राद्धके अयोग्य समझकर मुनिराज कुपित हो गये ॥ ५ ॥ भोजनसे अवशिष्ट पदार्थ श्राद्धके लिए अनुपयोगी होता है, यह शास्त्रीय नियम है। अतएव उन्होंने राजाको यह बात बतायी ॥ ६ ॥ गुरुके कथनानुसार अपने पुत्र विकुक्षिका दुष्कृत्य जानकर श्राद्धभ्रंशके कारण क्रोधवश उन्होंने उसे अपने राज्यसे निकाल दिया ॥ ७ ॥ जिससे वह 'शशाद' नामसे प्रसिद्ध होकर वनमें चला गया ॥ ८ ॥ वहाँ वन्य आहारपर

सुतादरात् ॥ इत्युक्तोऽसौ तथेत्याशु जगाम वनमस्त्रभृत् ॥ २ ॥ गत्वा जघान बाणैः स वराहान्सूकरान्मृगान् ॥ शशाँश्चापि परिश्रांतो बभूवाथ बुभुक्षितः ॥ ३ ॥ विस्मृता चाष्टका तस्य शशं चाददसौ वने ॥ शेषं निवेदयामास पित्रे मांसमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रोक्षणाय समानीतं मांसं दृष्ट्वा गुरुस्तदा ॥ अनर्हमिति तज्ज्ञात्वा चुकोप मुनिसत्तमः ॥ ५ ॥ भुक्तशेषं तु न श्राद्धे प्रोक्षणीयमिति स्थितिः ॥ राज्ञे निवेदयामास वसिष्ठः पाक-दूषणम् ॥ ६ ॥ पुत्रस्य कर्म तज्ज्ञात्वा भूपतिर्गुरुणोदितम् ॥ चुकोप विधिलोपात्तं देशान्निःसारयत्ततः ॥ ७ ॥ शशाद इति विख्यातो नाम्ना जातो नृपात्मजः ॥ गतो वने शशादस्तु पितृकोपादसंभ्रमः ॥ ८ ॥ वन्येन वर्तयन्कालं नीतिमान्धर्मतत्परः ॥ पितर्युपरते राज्यं प्राप्तं तेन महात्मना ॥ ९ ॥ शशादस्त्वकरोद्राज्यमयोध्यायाः पतिः स्वयम् ॥ यज्ञाननेकशः पूर्णांश्चकार सरयूतटे ॥ १० ॥ शशादस्याभवत्पुत्रः ककुत्स्थ इति विश्रुतः ॥ तस्यैव नामभेदाद्वै इन्द्रवाहः पुरंजयः ॥ ११ ॥ जनमेजय उवाच ॥ नामभेदः कथं जातो राजपुत्रस्य चानघ ॥ कारणं ब्रूहि मे सर्वं कर्मणा येन चाभवत् ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ शशादे स्वर्गते राजा ककुत्स्थ इति चाभवत् ॥ राज्यं चकार धर्मज्ञः पितृपैतामहं बलात् ॥ एत-स्मिन्नंतरे देवा दैत्यैः सर्वे पराजिताः ॥ १३ ॥ जग्मुस्त्रिलोकाधिपतिं विष्णुं शरणमव्ययम् ॥ तान्प्रोवाच महाविष्णुस्तदा देवान्सनातनः ॥ १४ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ पार्ष्णिग्राहं महीपालं प्रार्थयन्तु शशादजम् ॥ स हनिष्यति वै दैत्यान्संग्रामे सुरसत्तम ॥ १५ ॥ आगमिष्यति धर्मात्मा साहाय्यार्थं धनुर्धरः ॥

निर्भर होकर जीवनयापन करने लगा। पिताकी मृत्युके पश्चात् पुनः उन महात्मा विकुक्षिको राज्यका अधिकार प्राप्त हो गया ॥ ९ ॥ स्वयं अयोध्याके राजा होकर वे शासन करने लगे। उस समय शशादके द्वारा सरयूके तटपर बहुत-से साङ्गोपाङ्ग यज्ञ सम्पन्न हुए थे ॥ १० ॥ उनके पुत्रका नाम ककुत्स्थ था–ऐसा सुना जाता है। उन ककुत्स्थके ही दूसरे नाम इन्द्रवाह और पुरंजय भी हैं ॥ ११ ॥ राजा जनमेजयने पूछा–हे निष्पाप मुनिवर! एक ही व्यक्तिके कई नाम कैसे हुए? जिन-जिन कारणोंसे पृथक्-पृथक् नाम रक्खे गये हों, वे सब कारण मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ १२ ॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन्! शशादके स्वर्गवासी हो जानेपर धर्मके ज्ञाता ककुत्स्थ अयोध्याके राजा हुए। उन्होंने पिता और पितामहसे सम्बन्ध रखनेवाले राज्यपर शासन किया। उसी समय सम्पूर्ण देवता दैत्योंसे परास्त होकर त्रिलोकीके स्वामी सनातन भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब भगवान् श्रीहरिने उन्हें आज्ञा दी ॥ १३ ॥ १४ ॥ भगवान् विष्णु बोले–हे प्रधान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवताओ ! तुमलोग शशादकुमार राजा ककुत्स्थसे सहायक बननेके लिए प्रार्थना करो । वे ही संग्राममें दैत्योंको मार सकेंगे ॥१५॥ वे बड़े धर्मात्मा नरेश हैं । भगवती जगदम्बाकी कृपासे उन्हें अतुलित शक्ति प्राप्त है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! भगवान् विष्णुकी यह सुस्पष्ट वाणी सुनते ही इन्द्रसहित सब देवता अयोध्यामें विराजनेवाले शशादकुमार ककुत्स्थके पास जा पहुँचे ॥ १७ ॥ राजाने धर्मपूर्वक बड़ी सावधानीके साथ उनका स्वागत किया और आनेका कारण बतानेके लिए कहा ॥ १८ ॥ राजा ककुत्स्थ बोले—हे देवताओ ! मैं धन्य और पवित्र हो गया । मेरे जीवनकी साध पूरी हो गयी । क्योंकि आज आपने मेरे घरपर पधाकर मुझे दुर्लभ दर्शन दिया है ॥ १९ ॥ हे देवेश्वरो ! अब आप कर्तव्यके विषयमें मुझे आज्ञा दीजिये । आपका बड़े-से-बड़ा कार्य अन्य मनुष्योंके लिए भले ही दुःसाध्य हो, मैं उसे सर्वथा सम्पन्न कर दूँगा ॥ २० ॥ देवता बोले–हे राजेन्द्र ! हम तुमसे सहायता चाहते हैं । तुम इन्द्रके सखा बनकर संग्राममें सुप्रसिद्ध दैत्योंको परास्त करो । इस समय वे दानव देवताओंके लिये अजेय हो गये हैं ॥२१॥ तुम्हें भगवती जगदम्बाकी कृपा प्राप्त है । अतएव कहीं कोई भी ऐसा कार्य

पराशक्तेः प्रसादेन सामर्थ्यं तस्य चातुलम् ॥ १६ ॥ हरेः सुवचनाद्देवा ययुः सर्वे सवासवाः ॥ अयोध्यायां महाराज शशादतनयं प्रति ॥ १७ ॥ तानागतान्सुरात्राजा पूजयामास धर्मतः ॥ पप्रच्छागमने राजा प्रयोजनमतंद्रितः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ धन्योऽहं पावितश्चास्मि जीवितं सफलं मम ॥ यदागत्य गृहे देवा ददुश्च दर्शनं महत् ॥ १९ ॥ ब्रुवंतु कृत्यं देवेशा दुःसाध्यमपि मानवैः ॥ करिष्यामि महत्कार्यं सर्वथा भवतां महत् ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ साहाय्यं कुरु राजेन्द्र सखा भव शचीपतेः ॥ संग्रामे जय दैत्येन्द्रान्दुर्जयांस्त्रिदशैरपि ॥ २१ ॥ पराशक्तिप्रसादेन दुर्लभं नास्ति ते क्वचित् ॥ विष्णुना प्रेरिताश्चैवमागतास्तव सन्निधौ ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ पार्ष्णिग्राहो भवाम्यद्य देवानां सुरसत्तमाः ॥ इन्द्रो मे वाहनं तत्र भवेद्यदि सुराधिपः ॥ २३ ॥ संग्रामं तु करिष्यामि दैत्यैर्देवकृतेऽधुना ॥ आरुह्येंद्रं गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २४ ॥ तदोचुर्वासवं देवाः कर्तव्यं कार्यमद्भुतम् ॥ पत्रं भव नरेंद्रस्य त्यक्त्वा लज्जां शचीपते ॥ २५ ॥ लज्जमानस्तदा शक्रः प्रेरितो हरिणा भृशम् ॥ बभूव वृषभस्तूर्णं रुद्रस्येवापरो महान् ॥ २६ ॥ तमारुरोह राजाऽसौ संग्रामगमनाय वै ॥ स्थितः ककुदि येनास्य ककुत्स्थस्तेन चाभवत् ॥ २७ ॥ इन्द्रो वाहः कृतो येन तेन

नहीं हैं, जो तुमसे असाध्य हो । भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे ही हम तुम्हारे पास आये हैं ॥२२॥ राजाने कहा–हे सुरसत्तमो ! मैं अभी सहायक बननेके लिए तैयार हूँ । परन्तु देवराज इन्द्र युद्धके अवसरपर मेरे वाहन बनें, तभी सफलता मिल सकती है ॥२३॥ इस समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिए मैं इन इन्द्रपर ही चढ़कर संग्राममें जाऊँगा और दैत्योंके साथ मेरा युद्ध होगा । मेरी यह बात बिलकुल सत्य है ॥२४॥ देवताओंने इस अद्भुत कर्तव्यके विषयमें इन्द्रसे कहा–'हे शचीपते ! आप लज्जा छोड़कर इन नरेशका वाहन बननेकी कृपा कीजिये ॥ २५ ॥ यह सुनकर इन्द्र बड़े भारी संकोचमें पड़ गये । फिर भी भगवान् विष्णुके बारम्बार प्रेरणा करनेपर उन्होंने तुरन्त ऐसे वृषभका रूप धारण कर लिया, जैसे भगवान् शिवके कोई दूसरे नन्दीश्वर ही हों ॥ २६ ॥ संग्राममें जानेके लिये राजा उन्हींपर सवार हुए । वे वृषभरूपधारी इन्द्रके ककुद्पर बैठे थे, जिससे उनका एक नाम 'ककुत्स्थ' पड़ गया ॥ २७ ॥ इन्द्रको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपना वाहन बनाया था, इससे उनका एक दूसरा नाम 'इन्द्रवाह' पड़ गया। दैत्योंके पुरपर विजय प्राप्त की थी, जिससे 'पुरंजय' इस तीसरे नामसे भी प्रसिद्ध हुए ॥ २८ ॥ तदनंतर महाबाहु ककुत्स्थने दैत्योंको जीतकर उनकी सम्पत्ति देवताओंको सौंप दी। यों राजर्षि ककुत्स्थकी इन्द्रसे मैत्री हुई और उनके अनेक नाम पड़े। महाराज ककुत्स्थ सुविख्यात नरेश थे। उनके वंशज राजाओंकी भूमण्डलपर 'काकुत्स्थ' के नामसे प्रसिद्धि हुई ॥ २९ ॥ ३० ॥ ककुत्स्थकी धर्मपत्नीके उदरसे महाबली अनेना नामक पुत्रका जन्म हुआ। अनेनाके सुविख्यात पराक्रमी पुत्र पृथु हुए ॥ ३१ ॥ पृथुको भगवान विष्णुका साक्षात् अंश कहा जाता है। भगवती जगदम्बाके चरणोंकी उपासनामें उनकी अटूट श्रद्धा थी। पृथुसे जो पुत्र हुए, उन्हें राजा विश्वरन्धि कहा गया ॥ ३२ ॥ विश्वरन्धिसे चन्द्रका जन्म हुआ। वे चन्द्रवंशके प्रसिद्ध प्रवर्तक माने जाते हैं। चन्द्रके तेजस्वी एवं असीम पराक्रमी पुत्रका नाम युवनाश्व पड़ा ३३ ॥ युवनाश्वसे परम धार्मिक शावन्तकी उत्पत्ति हुई। उन शावन्तने ही शावन्ती नामकी नगरी बसायी, जिसकी तुलना अमरावतीसे की जा सकती थी ॥ ३४ ॥ महात्मा

नाम्नेन्द्रवाहकः ॥ पुरं जितं तु दैत्यानां तेनाभूच्च पुरंजयः ॥ २८ ॥ जित्वा दैत्यान्महाबाहुर्धनं तेषां प्रदत्तवान् ॥ पप्रच्छ चैवं राजर्षेरिति सख्यं बभूव ह ॥ २९ ॥ ककुत्स्थश्चातिविख्यातो नृपतिस्तस्य वंशजः ॥ काकुत्स्था भुवि राजानो बभूवुर्बहुविश्रुताः ॥ ३० ॥ ककुत्स्थस्याभवत्पुत्रो धर्मपत्न्यां महाबलः ॥ अनेना विश्रुतस्तस्य पृथुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ विष्णोरंशः स्मृतः साक्षात्पराशक्तिपदार्चकः ॥ विश्वरंधिस्तु विज्ञयः पृथोः पुत्रो नराधिपः ॥३२॥ चंद्रस्तस्य सुतः श्रीमान्राजा वंशकरः स्मृतः ॥ तत्सुतो युवनाश्वस्तु तेजस्वी बलवत्तरः ॥ ३३ ॥ शावंतो युवनाश्वस्य जज्ञे परमधार्मिकः ॥ शावंती निर्मिता तेन पुरी शक्रपुरीसमा ॥ ३४ ॥ बृहदश्वस्तु पुत्रोऽभूच्छावंतस्य महात्मनः ॥ कुवलाश्वः सुतस्तस्य बभूव पृथिवीपतिः ॥ ३५ ॥ धुंधुनामा हतो दैत्यस्तेनासौ पृथिवीतले ॥ धुंधुमारेति विख्यातं नाम प्रापातिविश्रुतम् ॥ ३६ ॥ पुत्रस्तस्य दृढाश्वस्तु पालयामास मेदिनीम् ॥ दृढाश्वस्य सुतः श्रीमान्हर्यश्च इति कीर्तितः ॥३७॥ निकुंभस्तत्सुतः प्रोक्तो बभूव पृथिवीपतिः ॥ बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वस्तस्य वै सुतः ॥ ३८ ॥ प्रसेनजित्कृशाश्वस्य बलवान्सत्यविक्रमः ॥ तस्य पुत्रो महाभागो यौवनाश्वेति विश्रुतः ॥ ३९ ॥ यौवनाश्वसुतः श्रीमान्मांधातेति महीपतिः ॥ अष्टोत्तरसहस्रं तु प्रासादा येन निर्मिताः ॥४०॥ भगवत्यास्तु तुष्ट्यर्थं महातीर्थेषु मानद ॥ मातृगर्भे न जातोऽसावुत्पन्नो जनकोदरे ॥४१॥

शावन्तके पुत्र बृहदश्व हुए। बृहदश्वसे राजा कुवलाश्वका जन्म हुआ ॥ ३५ ॥ कुवलाश्वने धुंधु नामक दैत्यका संहार कर डाला। तबसे वे धुन्धुमार नामसे विख्यात हुए—यह बात परम प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ कुवलाश्वके पुत्र दृढाश्व हुए, जिन्होंने पृथ्वीकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा की। दृढाश्वके सुयोग्य पुत्र श्रीमान् हर्यश्व कहे गये हैं ॥ ३७ ॥ हर्यश्वके पुत्रको राजा निकुम्भ कहा गया है। निकुम्भके पुत्र बर्हणाश्व और उनके पुत्र कृशाश्व हुए ॥ ३८ ॥ कृशाश्वके बलशाली एवं सत्यपराक्रमी पुत्रका नाम प्रसेनजित् हुआ। प्रसेनजित्के पुत्र महान् भाग्यशाली यौवनाश्व हुए ॥ ३९ ॥ यौवनाश्वसे राजा मान्धाताकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने एक सहस्र आठ भव्य भवनोंका निर्माण कराया था ॥ ४० ॥ हे मानद ! भगवती जगदम्बाको संतुष्ट करनेके लिये उन्होंने प्रमुख तीर्थस्थानोंमें मन्दिर बनवाये थे। माताके गर्भसे न होकर पिताके उदरसे ही उनकी उत्पत्ति हुई थी। पिताके पेटको फाड़कर उन्हें निकाला गया था ॥४१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजा जनमेजयने कहा—हे महाभाग! राजा मान्धाताके जन्मके विषयमें यह कैसी कल्पनातीत बात आपने कही है, जो कहीं भी नहीं देखी या सुनी गयी। अब उन नरेशके जन्मका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये। वह सर्वाङ्गसुन्दर पुत्र राजा यौवनाश्वके उदरसे जैसे उत्पन्न हुआ हो, कृपया वह पूरा प्रसंग स्पष्ट करके कहिये ॥४२॥४३॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! परम धार्मिक राजा यौवनाश्वके सौ रानियाँ थीं, परन्तु किसीसे कोई सन्तान नहीं हुई। इस कारण वे नित्य चिन्तातुर रहते थे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ कालान्तरमें सन्तानके लिए अत्यन्त खिन्न होकर वे वनमें चले गये और ऋषियोंके पवित्र आश्रमपर उनका समय व्यतीत होने लगा ॥ ४६ ॥ वहाँ बहुत-से ब्राह्मण तपस्या कर रहे थे। उन नरेशको उदास देखकर ब्राह्मणोंके हृदयमें दया उत्पन्न हो गयी ॥ ४७ ॥ अतः उन ब्राह्मणोंने राजा यौवनाश्वसे पूछा—'हे नरेश! तुम इतने चिन्तित क्यों हो? कौनसा मानसिक सन्ताप तुम्हें इतना कष्ट दे

निःसारितस्ततः पुत्रः कुक्षिं भित्त्वा पितुः पुनः ॥ राजोवाच ॥ न श्रुतं न च दृष्टं वा भवता यदुदाहृतम् ॥ ४२ ॥ असंभाव्यं महाभाग तस्य जन्म यथोदितम् ॥ विस्तरेण वदस्वाद्य मांधातुर्जन्मकारणम् ॥ ४३ ॥ राजोदरे यथोत्पन्नः पुत्रः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ व्यास उवाच ॥ यौवनाश्वोऽनपत्योऽभूद्राजा परमधार्मिकः ॥ ४४ ॥ भार्याणां च शतं तस्य बभूव नृपतेर्नृप ॥ राजा चिंतापरः प्रायश्चिंतयामास नित्यशः ॥ ४५ ॥ अपत्यार्थे यौवनाश्वो दुःखितस्तु वनं गतः ॥ ऋषीणामाश्रमे पुण्ये निर्विण्णः स च पार्थिवः ॥ ४६ ॥ मुमोच दुःखितः श्वासांस्तापसानां च पश्यताम् ॥ दृष्ट्वा तु दुःखितं विप्रा बभूवुश्च कृपालवः ॥ ४७ ॥ तमूचुर्ब्राह्मणा राजन्कस्माच्छोचसि पार्थिव ॥ किं ते दुःखं महाराज ब्रूहि सत्यं मनोगतम् ॥ ४८ ॥ प्रतीकारं करिष्यामो दुःखस्य तव सर्वथा ॥ यौवनाश्व उवाच ॥ राज्यं धनं सदश्वाश्च वर्तन्ते मुनयो मम ॥ ४९ ॥ भार्याणां शतं शुद्धं वर्तते विशदप्रभम् ॥ नारातिस्त्रिषु लोकेषु कोऽप्यस्ति बलवान्मम ॥ ५० ॥ आज्ञाकरास्तु सामंता वर्तन्ते मंत्रिणस्तथा ॥ एकं संतानजं दुःखं नान्यत्पश्यामि तापसाः ॥५१॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ तस्माच्छोचामि विप्रेन्द्राः संतानार्थं भृशं ततः ॥ ५२ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तापसाश्च कृतश्रमाः ॥ इष्टिं संतानकामस्य युक्तां ज्ञात्वा दिशंतु मे ॥ ५३ ॥ कुर्वंतु मम कार्यं वै कृपा चेदस्ति तापसाः ॥ व्यास

रहा है? अपनी सच्ची बात बतानेकी कृपा करो ॥४८॥ हम तुम्हारा दुःख दूर करनेका यत्न करेंगे।' राजा यौवनाश्वने कहा—हे मुनियो! मेरे पास राज्य, धन एवं उत्तम श्रेणीके बहुत-से घोड़े विद्यमान हैं ॥ ४९ ॥ महलमें सैकड़ों साध्वी रानियाँ हैं। त्रिलोकीभरमें कोई भी ऐसा शत्रु नहीं है, जो मुझसे बलवान् हो ॥ ५० ॥ मन्त्री और सामन्त नरेश—सबके सब मेरी आज्ञाके पालनमें तत्पर रहते हैं। हे तपस्वियो! सन्तान न होनेका ही एकमात्र दुःख मुझे सता रहा है। इसके सिवा दूसरा कोई भी दुःख नहीं है ॥ ५१ ॥ पुत्रहीन मनुष्यको न सद्गति मिलती है और न स्वर्ग ही प्राप्त होता है। अतएव हे विप्रगण! मैं पुत्रके लिए शोकाकुल रहता हूँ ॥५२॥ हे तपस्वियो! आप लोगोंने महान् परिश्रम करके वेद और शास्त्रके रहस्यको जान लिया है। अब आपकी समझमें मुझ सन्तानकामी व्यक्तिके लिए जो उचित हो, वह बतानेकी कृपा करें ॥५३॥ हे तापसो! यदि मुझपर कृपा हो तो आप लोग मेरे इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार्यको सम्पन्न करनेमें तत्पर हो जायँ। व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! महाराज यौवनाश्वकी बात सुनकर उन ब्राह्मणोंका हृदय कृपासे भर गया॥ ५४॥ उन्होंने बड़ी सावधानीके साथ राजासे एक यज्ञ करवाया, जिसमें प्रधान देवता इन्द्र माने गये थे। ब्राह्मणोंने गलेतक जलसे भरा हुआ एक कलश वहाँ रखवाया॥ ५५॥ राजाको सन्तान हो जाय—इस उद्देश्यको लेकर वैदिक मंत्रों द्वारा उस कलशका अभिमंत्रण किया गया। सहसा राजा यौवयाश्वको रातमें बड़ी प्यास लग गयी। जिससे वे यज्ञशालामें चले गये। देखा, सभी ब्राह्मण सोये हैं और कहीं भी जल नहीं है। तब प्यासके मारे वे उस अभिमंत्रित जलको ही पी गये। ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक मंत्रोंसे संस्कृत करके वह जल रानीके लिए रखा था॥५६॥५७॥ हे राजेन्द्र! अज्ञानवश वह जल राजाके पेटमें चला गया। प्रातःकाल जब ब्राह्मणोंने देखा कि कलशमें जल बिल्कुल नहीं है, तब उन्होंने शङ्कित होकर राजासे पूछा-किसने यह जल पिया है? राजाने ही जल पिया है-यह बात जानकर वे समझ गये कि दैव सबसे बढ़कर बलवान् है॥ ५८॥ ५९॥ बादमें यज्ञकी पूर्णाहुति कराकर वे सभी मुनि अपने-अपने घर चले गये।

उवाच॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञः कृपया पूर्णमानसाः॥५४॥ कारयामासुरव्यग्रास्तस्येष्टिमिंद्रदेवताम्॥ कलशः स्थापितस्तत्र गलपूर्णस्तु वाडवैः॥५५॥ मंत्रितो वेदमन्त्रैश्च पुत्रार्थं तस्य भूपतेः॥ राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टस्तृषितो निशि॥ ५६॥ विप्रान्दृष्ट्वा शयानान्स पपौ मन्त्रजलं स्वयम्॥ भार्यार्थं संस्कृतं विप्रैर्मंत्रितं विधिनोद्धृतम्॥ ५७॥ पीतं राज्ञा तृषार्तेन तदज्ञानान्नृपोत्तम॥ व्युदकं कलशं दृष्ट्वा तदा विप्रा विशंकिताः॥ ५८॥ पप्रच्छुस्ते नृपं केन पीतं जलमिति द्विजाः॥ राज्ञा पीतं विदित्वा ते ज्ञात्वा दैवबलं महत्॥५९॥ इष्टिं समापयामासुर्गतास्ते मुनयो गृहान्॥ गर्भं दधार नृपतिस्ततो मंत्रबलादथ॥ ६०॥ ततः काले स उत्पन्नः कुक्षिं भित्त्वाऽस्य दक्षिणाम्॥ पुत्रं निष्कासयामासुर्मन्त्रिणस्तस्य भूपतेः॥६१॥ देवानां कृपया तत्र न ममार महीपतिः॥ कं धास्यति कुमारोऽयं मंत्रिणश्चुक्रुशुर्भृशम्॥६२॥ तदेंद्रो देशिनीं प्रादान्मां धातेत्यवदद्वचः॥ सोऽभवद्बलवान्राजा मान्धाता पृथिवीपतिः॥ तदुत्पत्तिस्तु भूपाल कथिता तव विस्तरात्॥ ६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ व्यास उवाच॥ बभूव चक्रवर्ती स नृपतिः सत्यसंगरः॥ मांधाता पृथिवीं सर्वामजयन्नृपतीश्वरः॥ १॥ दस्यवोऽस्य भयत्रस्ता ययुर्गिरि-

इधर मन्त्रके प्रभावसे स्वयं राजाके पेटमें ही गर्भ स्थित हो गया॥ ६०॥ गर्भ पूर्ण होनेपर महाराज यौवनाश्वकी दाहिनी कोख चीरी गयी, जिससे पुत्रकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार पुत्र निकालनेका सारा श्रेय राजाके सुयोग्य मंत्रियोंके ऊपर निर्भर था॥६१॥ देवताओंकी कृपासे राजाके प्राण नहीं निकले। उस समय मन्त्री लोग बड़े जोरसे चिल्ला उठे—यह कुमार अब दूध किसका पियेगा?॥६२॥ इतनेमें इन्द्रने झट उसके मुखमें अपनी तर्जनी अँगुली देकर कहा कि 'मेरा दूध पियेगा।' समय पाकर वे ही महान् तेजस्वी राजा मान्धाता हुए। हे राजन्! उन नरेशकी उत्पत्तिका यही विस्तृत कथाप्रसंग है॥ ६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः॥ ९॥

(सत्यव्रतके त्रिशंकु नाम पड़नेका कारण) व्यासजी बोले—हे राजन्! महाराज मान्धाता सत्यप्रतिज्ञ और चक्रवर्ती नरेश हुए। सम्पूर्ण भूमण्डलपर उनको विजयपताका फहरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रही थी ॥ १ ॥ उनके डरसे लुटेरे और डाकू पर्वतोंकी गुफाओंमें छिप गये थे। इसी कारण इन्द्रने उन्हें त्रसद्दस्यु नामसे विख्यात कर दिया ॥ २ ॥ मान्धाताकी धर्मपत्नीका नाम बिन्दुमती था। वे शशबिन्दुकी लाड़ली पुत्री थीं। वे पतिव्रता, परम सुन्दरी एवं सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं ॥ ३ ॥ हे राजन्! मान्धाताने बिन्दुमतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न किये। एक पुत्र पुरुकुत्स नामसे परम प्रसिद्ध हुआ और दूसरेका नाम मुचुकुन्द पड़ा ॥ ४ ॥ पुरुकुत्ससे परम धार्मिक पुत्र अरण्यका जन्म हुआ। राजकुमार अरण्य पिताके अनन्य भक्त थे। उनके पुत्रका नाम बृहदश्व हुआ ॥ ५ ॥ बृहदश्वके धर्मात्मा एवं परामर्थज्ञानी हर्यश्व, हर्यश्वके त्रिधन्वा और त्रिधन्वाके अरुण हुए ॥ ६ ॥ अरुणका पुत्र सत्यव्रत नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके पास अटूट सम्पत्ति थी। किन्तु वह स्वेच्छाचारी, कामी, मूर्ख और अत्यन्त लोभी निकला ॥७॥ वह दुराचारी राजा एक ब्राह्मणपुत्रीपर आसक्त हो गया और जिस दिन किसी ब्राह्मणके साथ उसका विवाह होने जा रहा था, उसी समय वह उस विप्रकन्याका विवाह-मण्डपसे अपहरण कर ले गया ॥८॥ हे राजन्! तब एक साथ सभी ब्राह्मण राजा अरुणके दरबारमें जा पहुँचे

गुहासु च ॥ इन्द्रेणास्य कृतं नाम त्रसद्दस्युरिति स्फुटम् ॥ २ ॥ तस्य बिंदुमती भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत् ॥ पतिव्रता सुरूपा च सर्वलक्षण-संयुता ॥ ३ ॥ तस्यामुत्पादयामास मांधाता द्वौ सुतौ नृप ॥ पुरुकुत्सं सुविख्यातं मुचुकुन्दं तथाऽपरम् ॥ ४ ॥ पुरुकुत्सात्ततोऽरण्यः पुत्रः परम-धार्मिकः ॥ पितृभक्तिरतश्चाभूद्बृहदश्वस्तदात्मजः ॥ ५ ॥ हर्यश्वस्तस्य पुत्रोऽभूद्धार्मिकः परमार्थवित् ॥ तस्यात्मजस्त्रिधन्वाऽभूदरुणस्तस्य चात्मजः ॥ ६ ॥ अरुणस्य सुतः श्रीमान्सत्यव्रत इति श्रुतः ॥ सोऽभूदिच्छाचरः कामो मंदात्मा ह्यतिलोलुपः ॥ ७ ॥ स पापात्मा विप्रभार्यां हृतवान्काम-मोहितः ॥ विवाहे तस्य विघ्नं स चकार नृपतेः सुतः ॥ ८ ॥ मिलिता ब्राह्मणास्तत्र राजानमरुणं नृप ॥ ऊचुर्भृशं सुदुःखार्ता हा हताः स्मेति चासकृत् ॥ ९ ॥ पप्रच्छ राजा तान्विप्रान्दुःखितान्पुरवासिनः ॥ किं कृतं मम पुत्रेण भवतामशुभं द्विजाः ॥ १० ॥ तन्निशम्य द्विजा वाक्यं राज्ञो विनयपूर्वकम् ॥ तदोचुस्त्वरुणं विप्राः कृताशीर्वचना भृशम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ राजंस्तव सुतेनाद्य विवाहे प्रहृता किल ॥ विवाहिता विप्रकन्या बलेन बलिनांवर ॥१२॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तेषां वचस्तथ्यं राजा परमधार्मिकः ॥ पुत्रमाह वृथा नाम कृतं ते दुष्टकर्मणा ॥ १३ ॥ गच्छ दूरं सुमन्दात्मदुराचार गृहान्मम ॥ न स्थातव्यं त्वया पाप विषये मम सर्वथा ॥ १४॥ कुपितं पितरं प्राह क्व गच्छामीति वै मुहुः ॥ अरुण-

और बड़े दुःखित हो बार-बार हाहाकार करते हुए कहने लगे—हाय! हम मारे गये ॥ ९ ॥ इस प्रकार कष्टमें पड़े हुए उन अयोध्यावासी ब्राह्मणोंसे राजाने कहा—हे ब्राह्मणो! मेरे राजकुमारने आप लोगोंका क्या बिगाड़ा है? ॥ १० ॥ राजाकी विनम्र वाणी सुनकर ब्राह्मणोंने आशीर्वाद देते हुए कहा ॥ ११ ॥ ब्राह्मण बोले—हे महाराज! आज ही आपके सत्यव्रत विवाहमण्डपसे एक ब्राह्मणकी विवाहित कन्याको हठात् हर ले गये हैं ॥१२॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! परम धर्मात्मा राजा अरुणको जब मालूम हुआ कि ब्राह्मणोंकी बात सत्य है, तब अपने पुत्रको बुलवाकर डाँटते हुए बोले—तुम्हारा नाम सत्यव्रत है और तुमने ऐसा दुराचार किया? इस कुकर्मके कारण तुम्हारा सत्यव्रत नाम व्यर्थ हो गया ॥ १३ ॥ अरे दुर्बुद्धे! ओ दुराचारी! मेरे घरसे निकल जा। अरे पापी! तू मेरे राज्यमें कहीं भी पैर मत रखना ॥१४॥ अपने पिताको कुपित देखकर वह राजकुमार बार-बार कहने लगा कि मैं कहाँ जाऊँ? तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजा अरुणने कहा कि तू जाकर चण्डालोंके साथ रह ॥ १५ ॥ क्योंकि चण्डाल ही द्विजातिवर्णको महिलाओंका अपहरण करते हैं। वही कुकर्म तूने भी किया है। इसलिए उन्हीं लोगोंके साथ मौजसे जीवन बिता ॥ १६ ॥ अरे कुलकलङ्की! तुझ जैसे कुपूतसे मैं पुत्रवान् नहीं बनना चाहता। अरे दुष्ट! तूने मेरी कीर्ति नष्ट कर दी। इसलिए जहाँ तेरी इच्छा हो, वहाँ चला जा ॥१७॥ कुपित महात्मा पिताकी बात सुनकर राजकुमार सत्यव्रत अयोध्या नगरीसे बाहर निकलकर चण्डालोंकी वस्तीमें चला गया ॥ १८ ॥ वहाँ जाकर वह चण्डालोंके साथ रहने लगा। दयाका अवतार और श्रीमान् सत्यव्रत कवच पहन और धनुष-बाण लेकर श्वपचोंके साथ दिन काटने लगा ॥ १९ ॥ महात्मा राजा अरुणने जब क्रोधके वशीभूत होकर अपने उस राजकुमारको निर्वासनका दण्ड दिया था, तब कुलगुरु वसिष्ठने ही उन्हें ऐसा करनेके लिए प्रेरित किया था ॥ २० ॥ इसलिए वसिष्ठके ऊपर राजकुमार सत्यव्रतका क्रोध बढ़ता ही गया। वह सोचता था कि ब्रह्मर्षि धर्मशास्त्रके ज्ञाता हैं। अतएव यदि वे चाहते तो राजाको ऐसा करनेसे रोक सकते थे ॥ २१ ॥ एक समय किसी अज्ञात कारणवश

स्तमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ॥ १५ ॥ श्वपचस्य कृतं कर्म द्विजदारापहारणम् ॥ तस्मात्तैः सह संसर्गं कृत्वा तिष्ठ यथासुखम् ॥ १६ ॥ नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वया च कुलपांसन ॥ यथेष्टं व्रज दुष्टात्मन्कीर्तिनाशः कृतस्त्वया ॥ १७ ॥ स निशम्य पितुर्वाक्यं कुपितस्य महात्मनः ॥ निश्चक्राम पुरात्तस्मात्तरसा श्वपचान् ययौ ॥ १८ ॥ सत्यव्रतस्तदा तत्र श्वपाकैः सह वर्तते ॥ धनुर्बाणधरः श्रीमान्कवची करुणालयः ॥ १९ ॥ यदा निष्कासितः पित्रा कुपितेन महात्मना ॥ गुरुणाऽथ वसिष्ठेन प्रेरितोऽसौ महीपतिः ॥ २० ॥ तस्मात्सत्यव्रतस्तस्मिन्बभूव क्रोधसंयुतः ॥ वसिष्ठे धर्मशास्त्रज्ञे निवारणपराङ्मुखे ॥ २१ ॥ केनचित्कारणेनाथ पिता तस्य महीपतिः ॥ पुत्रार्थेऽसौ तपस्तप्तुं पुरं त्यक्त्वा वनं गतः ॥ २२ ॥ न ववर्ष तदा तस्मिन्विषये पाकशासनः ॥ समा द्वादश राजेंद्र तेनाधर्मेण सर्वथा ॥ २३ ॥ विश्वामित्रस्तदा दारांस्तस्मिंस्तु विषये नृप ॥ संन्यस्य कौशिकीतीरे चचार विपुलं तपः ॥२४॥ कातरा तत्र संजाता भार्या वै कौशिकस्य ह ॥ कुटुम्बभरणार्थाय दुःखिता वरवर्णिनी ॥२५॥ बालकान्क्षुधयाऽऽक्रांतान्रुदतः पश्यती भृशम् ॥ याचमानांश्च नीवारान्कष्टमाप पतिव्रता ॥ २६ ॥ चिंतयामास दुःखार्ता तोकान्वीक्ष्य क्षुधातुरान् ॥ नृपो नास्ति पुरे ह्यद्य कं याचे वा करोमि किम् ॥ २७ ॥ न मे त्राताऽस्ति पुत्राणां पतिर्मे नास्ति सन्निधौ ॥ रुदंति बालकाः कामं धिङ्मे जीवनमद्य वै ॥ २८ ॥

सत्यव्रतके पिता अरुण अयोध्या छोड़कर पुत्रकी कामनासे जंगलमें तप करने चले गये ॥ २२ ॥ हे राजा जनमेजय! इस अधर्मके कारण इन्द्रने उनके राज्यमें लगातार बारह साल तक जल नहीं बरसाया ॥ २३ ॥ हे राजन्! उन्हीं दिनों विश्वामित्र अयोध्या नगरीमें अपनी धर्मपत्नी और पुत्रको छोड़कर कौशिकी नदीके किनारे उग्र तप कर रहे थे ॥ २४ ॥ विश्वामित्रकी स्त्री 'ऐसे अकालके समय अपने कुटुम्बियोंका भरण-पोषण मैं कैसे कर सकूँगी' इस चिन्तासे बड़ी अधीर हो उठी ॥ २५ ॥ उसके बालक भूखसे व्याकुल होकर भोजन माँगते हुए रो रहे हैं, यह दृश्य देख-देखकर उस पतिव्रताको बड़ा कष्ट होता था ॥ २६ ॥ पुत्रोंको भूखसे बेचैन देखकर वह मन-ही-मन सोचने लगी कि इस समय तो अयोध्या-नरेश भी यहाँ नहीं हैं। अब मैं किससे माँगूँ? अथवा दूसरा कौन उपाय करूँ? ॥२७॥ मेरे रक्षक पतिदेव भी यहाँ नहीं हैं। जब बालक इस तरह रोते-चिल्लाते हैं, तब मेरे जीवनको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धिक्कार है ॥ २८ ॥ मेरे पतिदेव जानते थे कि घरमें कुछ भी धन नहीं है—फिर भी वे तपस्या करने चले गये । धनके अभावमें मैं कितना कष्ट भोग रही हूँ, समर्थ होकर भी वे इस बातको नहीं समझते ॥ २९ ॥ पतिके अभावमें मैं किस उपायसे अपने बालकोंका भरण-पोषण करूँ ? किसी दिन भूखसे तड़प-तड़पकर इनकी मृत्यु हो जायगी ॥ ३० ॥ मेरे लिए अब केवल एक उपाय शेष है, वह यह कि इनमेंसे एक पुत्र बेच दूँ । उसके बेचनेसे जो थोड़ा-बहुत धन मिले, उससे बाकी पुत्रोंकी रक्षा करूँ ॥ ३१ ॥ क्योंकि सब पुत्रोंको मार डालना अच्छा नहीं है। अतः संकटके दिन काटनेके लिए एक पुत्रको बेचूँगी ॥३२॥ उस पतिव्रताने मन-ही-मन ऐसा सङ्कल्प करके हृदयको कड़ा किया और अपने एक पुत्रके गलेमें कुशकी रस्सी बाँधकर घरसे निकली ॥ ३३ ॥ वह मुनि-पत्नी बाकी पुत्रोंके रक्षार्थ अपनी कोखसे उत्पन्न मझले पुत्रके गलेमें रस्सी बाँधकर घरसे चली ॥ ३४ ॥ तभी राजकुमार सत्यव्रतने

धनहीनां च मां त्यक्त्वा तपस्तप्तुं गतः पतिः ॥ न जानाति समर्थोऽपि दुःखितां धनवर्जिताम् ॥ २९ ॥ बालानां भरणं केन करोमि पतिना विना ॥ मरिष्यन्ति सुताः सर्वे क्षुधया पीडिता भृशम् ॥ ३० ॥ एकं सुतं तु विक्रीय द्रव्येण कियता पुनः ॥ पालयामि सुतानन्यानेष मे विहितो विधिः ॥ ३१ ॥ सर्वेषां मारणं नाद्धा युक्तं मम विपर्यये ॥ कालस्य कलनायाहं विक्रीणामि तथात्मजम् ॥३२॥ हृदयं कठिनं कृत्वा संचिंत्य मनसा सती ॥ सा दर्भरज्ज्वा बद्ध्वाऽथ गले पुत्रं विनिर्गता ॥ ३३ ॥ मुनिपत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ॥ शेषस्य भरणार्थाय गृहीत्वा चलिता गृहात् ॥ ३४ ॥ दृष्टा सत्यव्रतेनार्ता तापसी शोकसंयुता ॥ पप्रच्छ नृपतिस्तां तु किं चिकीर्षसि शोभने ॥ ३५ ॥ रुदंतं बालकं कंठे बद्ध्वा नयसि काऽधुना ॥ किमर्थं चारुसर्वांगि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥ ३६ ॥ ऋषिपत्न्युवाच ॥ विश्वामित्रस्य भार्याऽहं पुत्रोऽयं मे नृपात्मज ॥ विक्रेतुमौरसं कामं गमिष्ये विषमे सुतम् ॥ ३७ ॥ अन्नं नास्ति पतिर्मुक्त्वा गतस्तप्तुं नृप क्वचित् ॥ विक्रीणामि क्षुधार्तैनं शेषस्य भरणाय वै ॥ ३८ ॥ ॥ राजोवाच ॥ पतिव्रते रक्ष पुत्रं दास्यामि भरणं तव ॥ तावदेव पतिस्तेऽत्र वनाच्चैवागमिष्यति ॥ ३९ ॥ वृक्षे तवाश्रमाभ्याशे भक्ष्यं किञ्चिन्निरंतरम् ॥ बंधयित्वा गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥४०॥ इत्युक्ता सा तदा तेन राज्ञा कौशिककामिनी ॥ विबंधं तनयं कृत्वा जगामाश्रम-

देखा कि एक तपस्विनी शोकाकुल भावसे चली आ रही है। तब उन्होंने पूछा—हे शोभने ! आप क्या करना चाहती हैं ? ॥ ३५ ॥ हे सर्वाङ्गसुन्दरी ! आप क्यों इस रोते हुए बालकका गला बाँधकर लिये जा रही हैं ? आप मुझे सच सच बतायें ॥ ३६ ॥ ऋषिपत्नी बोली—हे राजकुमार ! मैं महर्षि विश्वामित्रकी पत्नी हूँ और यह मेरा पुत्र है। उदर-पोषणके विषम संकटमें पड़कर मैं अपने औरस पुत्रको बेचने जा रही हूँ ॥ ३७ ॥ हे राजकुमार ! मेरे घरमें अन्न नहीं है और पतिदेव मुझे छोड़कर कहीं तपस्या करने चले गये हैं। सो भूखसे व्याकुल होकर बाकी पुत्रोंके रक्षार्थ मैं इसे बेचूँगी ॥ ३८ ॥ राजा सत्यव्रतने कहा—हे साध्वी ! आप अपने पुत्रकी रक्षा करें। जबतक आपके पतिदेव तपस्या करके जंगलसे वापस नहीं आयेंगे, तबतकके लिए मैं आपके भरण-पोषणका प्रबन्ध कर दूँगा ॥ ३९ ॥ आपके आश्रमके पासवाले वृक्षपर मैं नित्य कुछ-न-कुछ खाद्य पदार्थ बाँध आया करूँगा। यह बात मैं सत्य कह रहा हूँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ४० ॥ राजाके इस तरह आश्वासन देनेपर महर्षि विश्वामित्रकी पत्नी पुत्रके गलेसे रस्सी खोलकर अपने आश्रमको लौट गयीं ॥ ४१ ॥ गला बँधनेके कारण उस बालकका नाम 'गालव' पड़ गया और आगे चलकर वह बड़ा भारी तपस्वी हुआ । उधर ऋषिपत्नी अपने बालकोंके साथ सानन्द आश्रममें रहने लगी ॥ ४२ ॥ राजा सत्यव्रत भी भक्ति एवं दयासे पूर्ण होकर विश्वामित्र मुनिकी धर्मपत्नीका पालन-पोषण करने लगे ॥ ४३ ॥ वे नित्य वनमें जाकर जंगली हरिण, सूअर और भैंसोंको मारते थे और उनका मांस विश्वामित्रके तपोवनके पास-वाले पेड़में बाँध देते थे ॥ ४४ ॥ वह ऋषि-नारी नित्य वहाँ जाकर उस मांसको लाती और अपने पुत्रोंको खानेके लिए दे दिया करती थी । वह उत्तम खाद्य पदार्थ पाकर उसे परम तृप्ति प्राप्त होती थी ॥ ४५ ॥ उधर जब महाराज अरुण तप करने चले गये तो महर्षि वसिष्ठ अयोध्याके राज्य और रनिवासकी सँभाल करने लगे ॥ ४६ ॥ सत्यव्रत बड़े धर्मात्मा थे । इसलिए पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए वे नगरसे बाहर जंगलमें जाकर आखेट किया करते थे ॥ ४७ ॥ अकस्मात् सत्यव्रतके मनमें किसी कारण महर्षि वसिष्ठजीके ऊपर क्रोध आ गया

मंडलम् ॥ ४१ ॥ सोऽभवद्गालवो नाम गलबंधान्महातपाः ॥ सा तु स्वस्याश्रमे गत्वा मुमोद बालकैर्वृता ॥ ४२ ॥ सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च परिप्लुतः ॥ विश्वामित्रस्य च मुनेः कलत्रं तद्बभार ह ॥ ४३ ॥ वने स्थितान्मृगान्हत्वा वराहान्महिषांस्तथा ॥ विश्वामित्रवनाभ्याशे मांसं वृक्षे बबंध ह ॥४४॥ ऋषिपत्नी गृहीत्वा तन्मांसं पुत्रानदात्ततः ॥ निर्वृतिं परमां प्राप प्राप्य भक्ष्यमनुत्तमम् ॥४५॥ अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवांतःपुरं मुनिः ॥ गते तप्तुं नृपे तस्मिन्वसिष्ठः पर्यरक्षत ॥ ४६ ॥ सत्यव्रतोऽपि धर्मात्मा ह्यतिष्ठन्नगराद्बहिः ॥ पितुराज्ञां समास्थाय पशुघ्नव्रतवान्वने ॥ ४७ ॥ सत्यव्रतो ह्यकस्माच्च कस्यचित्कारणान्नृपः ॥ वसिष्ठे चाधिकं मन्युं धारयामास नित्यदा ॥ ४८ ॥ त्यज्यमानं वने पित्रा धर्मिष्ठं च प्रियं सुतम् ॥ न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह ॥ ४९ ॥ पाणिग्रहणमंत्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ॥ जानन्नपि स धर्मात्मा विप्रदारपरिग्रहे ॥ ५० ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसेऽरण्ये मृगाभावे महीपतिः ॥ वसिष्ठस्य च गां दोग्ध्रीमपश्यद्वनमध्यगाम् ॥ ५१ ॥ तां जघान क्षुधार्तस्तु क्रोधान्मोहाच्च दस्युवत् ॥ वृक्षे बबंध तन्मांसं नीत्वा स्वयमभक्षयत् ॥५२॥ ऋषिपत्नी सुतान्सर्वान्भोजयामास तत्तदा ॥ शंकमाना मृगस्येति न गोरिति च सुव्रत ॥ ५३ ॥

तो वह नित्य बढ़ता ही गया ॥४८॥ वे बार-बार अपने मनमें यही सोचते रहते थे कि जिस समय महाराज अरुणने मुझ धर्मपरायण तथा प्रिय पुत्रको वनवासका दण्ड दिया, तब मुनि वसिष्ठने उन्हें रोका क्यों नहीं ? ॥४९॥ वसिष्ठ मुनि जानते हैं कि बिना 'सप्तपदी' (सात भाँवर) हुए विवाहकम पूरा नहीं होता, तब सप्तपदीके पहले ही जब मैंने विप्रकन्याका अपहरण किया तो ब्राह्मणकी विवाहिता स्त्रीका अपहरण नहीं हुआ ॥५०॥ एक दिन सत्यव्रत जंगलमें शिकारके लिए घूम रहे थे, लेकिन उन्हें कोई पशु नहीं मिला । घूमते-घूमते जब वे जंगलके बीचमें पहुँचे तो वहाँ महर्षि वसिष्ठकी दुधार गाय दिखायी पड़ी ॥ ५१ ॥ वे भूखे थे और ऋषिके ऊपर क्रोध भी था । अतएव मोहमें पड़ गये और एक डाकूकी तरह वह गाय काट डाली । फिर उसमेंसे कुछ मांस विश्वामित्रकी धर्मपत्नीके लिए पेड़की डालमें बाँधकर बाकी मांस स्वयं खा गये ॥ ५२ ॥ हे संयमी जनमेजय ! विश्वामित्रकी पत्नीने अपने सभी पुत्रोंको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह मांस खिला दिया । उसे तनिक भी सन्देह नहीं हुआ कि यह मृगका नहीं, बल्कि गौका मांस है ॥ ५३ ॥ जब वसिष्ठको यह ज्ञात हुआ कि सत्यव्रतने मेरी दुधार गायकी हत्या कर डाली है तो वे कुपित होकर उससे बोले–अरे दुरात्मन्! गौकी हत्या करके पिशाचकी तरह तूने यह कैसा पाप कर डाला? ॥ ५४ ॥ गोवध, द्विजपत्नीका अपहरण और पिताके विकराल कोप—इन तीन अपराधोंके कारण तेरे मस्तकपर तीन शंकु अर्थात् कोढ़की तरह तीन रेखायें पड़ जायँगी ॥५५॥ फिर अन्यान्य अपराधोंके कारण वसिष्ठजीने उसको यह शाप दे दिया कि 'भूमण्डलपर तेरी त्रिशंकु नामसे प्रसिद्धि होगी। तू सम्पूर्ण प्राणियोंको अपना पैशाचिक रूप ही दिखा सकेगा' ॥ ५६ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार वसिष्ठजीके द्वारा शापग्रस्त होनेपर सत्यव्रतने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी ॥ ५७ ॥ किसी एक मुनिपुत्रने उसे एक श्रेष्ठ देवीमन्त्र बता दिया था। सो परम कल्याणस्वरूपिणी प्रकृतिमयी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए वह उस मन्त्रका जप करने लगा ॥५८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वसिष्ठस्तु हतां दोग्ध्रीं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तमब्रवीत् ॥ दुरात्मान्किं कृतं पापं धेनुघातात्पिशाचवत् ॥ ५४ ॥ एवं ते शंकवः क्रूराः पतंतु त्वरितास्त्रयः ॥ गोवधाद्दारहरणात्पितुः क्रोधात्तथा भृशम् ॥ ५५ ॥ त्रिशंकुरिति नाम्ना वै भुवि ख्यातो भविष्यसि ॥ पिशाचरूपमात्मानं दर्शयन्सर्वदेहिनाम् ॥ ५६ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं शप्तो वसिष्ठेन तदा सत्यव्रतो नृपः ॥ चचार च तपस्तीव्रं तस्मिन्नेवाश्रमे स्थितः ॥ ५७ ॥ कस्माच्चिन्मुनिपुत्रात्तु प्राप्य मंत्रमनुत्तमम् ॥ ध्यायन्भगवतीं देवीं प्रकृतिं परमां शिवाम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

जनमेजय उवाच ॥ वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ त्रिशंकुर्नृपतेः सुतः ॥ कथं शापाद्विनिर्मुक्तस्तन्मे ब्रूहि महामते ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ सत्यव्रतस्तथा शप्तः पिशाचत्वमवाप्तवान् ॥ तस्मिन्नेवाश्रमे तस्थौ देवीभक्तिपरायणः ॥ २ ॥ कदाचिन्नृपतिस्तत्र जप्त्वा मंत्रं नवाक्षरम् ॥ होमार्थं ब्राह्मणान्गत्वा प्रणम्योवाच भक्तितः ॥ ३ ॥ भूमिदेवाः शृणुध्वं वै वचनं प्रणतस्य मे ॥ ऋत्विजो मम सर्वेऽत्र भवंतः प्रभवंतु ह ॥ ४ ॥ जपस्य च दशांशेन होमः कार्यो विधानतः ॥ भवद्भिः कार्यसिद्ध्यर्थं वेदविद्भिः कृपापरैः ॥ ५ ॥ सत्यव्रतोऽहं नृपतेः पुत्रो ब्रह्मविदांवराः ॥ कार्यं मम विधातव्यं सर्वथा सुखहेतवे ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणास्तत्र तमूचुर्नृपतेः सुतम् ॥ शप्तस्त्वं गुरुणा प्राप्तं पिशाचत्वं त्वयाऽधुना ॥ ७ ॥ न यागार्होऽसि

(हरिश्चन्द्रोपाख्यान) राजा जनमेजयने कहा–हे महामते! वसिष्ठजीके शाप दे देनेपर राजकुमार त्रिशंकु उस शापसे कैसे मुक्त हुआ। कृपया यह प्रसंग मुझे बताइए ॥१॥ व्यासजी बोले–हे राजन्! शापके कारण सत्यव्रतमें पिशाचके सभी लक्षण आ गये थे। परन्तु उसी आश्रमपर उसने भगवतीकी आराधना आरम्भ कर दी ॥२॥ एक समयकी बात है–सत्यव्रत नवाक्षर मंत्रका जप समाप्त करके हवन करानेके लिए ब्राह्मणोंके पास गया और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके कहने लगा–॥३॥ 'हे भूदेवो! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप लोग मेरी बात सुनिए। इस समय आप सब मेरे यज्ञमें ऋत्विज होनेकी कृपा कीजिये ॥४॥ आपलोग वेदके ज्ञाता एवं परम कृपालु हैं। कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिए विधिपूर्वक जपके दशांश हवनकी व्यवस्था आपपर निर्भर है ॥५॥ हे वेदज्ञशिरोमणि ब्राह्मणो! मेरा नाम सत्यव्रत है। मैं एक राजकुमार हूँ। मैं सम्यक् प्रकारसे सुखी हो जाऊँ–एतदर्थ मेरे इस कार्यका सम्पादन आप लोगोंको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करना चाहिये' ॥ ६ ॥ राजकुमार सत्यव्रतकी बात सुनकर ब्राह्मणोंने उससे कहा–'भाई ! तुम्हारे गुरुदेव तुम्हें शाप दे चुके हैं । इस समय तुममें पूरी पैशाचिकता विद्यमान है ॥ ७ ॥ तुम्हारा वेदपर अधिकार नहीं रह गया है । अतएव तुम यज्ञ नहीं कर सकते । क्योंकि पैशाचिकता आ जानेपर प्राणी सब लोकोंमें निन्द्य समझा जाता है' ॥ ८ ॥ व्यासजी कहते हैं–हे जनमेजय ! ब्राह्मणोंकी यह बात सुनकर राजा सत्यव्रतके दुःखकी सीमा नहीं रही । उसने सोचा– 'मेरे इस जीवनको धिक्कार है । वनमें रहकर मैं क्या करूँ ? ॥ ९ ॥ पिताने मुझे त्याग दिया है । गुरुसे मैं शापग्रस्त हूँ । राज्यपर मेरा किंचित् भी अधिकार नहीं रहा। घोर पैशाची वृत्ति मुझे घेरे हुए है। ऐसी स्थितिमें अब मैं क्या करूँ ?॥१०॥ यों विचारकर उस राजकुमारने लकड़ी बटोरकर एक बहुत बड़ी चिता तैयार की और भगवती जगदम्बाका स्मरण करके वह उस चितापर बैठनेकी बात सोचने लगा ॥११॥ आग लगा देनेपर चिता प्रज्वलित हो उठी । राजकुमार सत्यव्रतने पहले स्नान किया। तदनन्तर चिताके सामने हाथ जोड़ और भगवती महामायाका स्मरण करके वह चितामें कूदनेके लिए प्रस्तुत हो गया ॥१२॥ राजकुमार मरनेपर

तस्मात्त्वं वेदेष्वनधिकारतः ॥ पिशाचत्वमनुप्राप्तं सर्वलोकेषु गर्हितम् ॥ ८॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तेषां राजा दुःखमवाप ह ॥ धिग्जीवितमिदं मेऽद्य किं करोमि वने स्थितः ॥ ९ ॥ पित्रा चाहं परित्यक्तः शप्तश्च गुरुणा भृशम् ॥ राज्याद्भ्रष्टः पिशाचत्वमनुप्राप्तः करोमि किम् ॥ १० ॥ तदा पृथुतरां कृत्वा चितां काष्ठैर्नृपात्मजः ॥ सस्मार चंडिकां देवीं प्रवेशमनुचिंतयन् ॥ ११ ॥ स्मृत्वा देवीं महामायां चितां प्रज्वलितां पुरः ॥ कृत्वा स्नात्वा प्रवेशार्थं स्थितः प्रांजलिरग्रतः ॥१२॥ ज्ञात्वा भगवती तं तु मर्तुकामं महीपतिम् ॥ आजगाम तदाकाशं प्रत्यक्षं तस्य चाग्रतः ॥१३॥ दत्त्वाऽथ दर्शनं देवी तमुवाच नृपात्मजम् ॥ सिंहारूढा महाराज मेघगंभीरया गिरा ॥१४॥ देव्युवाच॥ किं ते व्यवसितं साधो हुताशे मा तनुं त्यज॥ स्थिरो भव महाभाग पिता ते जरसान्वितः ॥१५॥ राज्यं दत्त्वा वने तुभ्यं गंताऽस्ति तपसे किल ॥ विषादं त्यज हे वीर परश्वोऽहनि भूपते ॥१६॥ नेतुं त्वामागमिष्यन्ति सचिवाश्च पितुस्तव ॥ मत्प्रसादात्पिता च त्वामभिषिच्य नृपासने ॥ १७ ॥ जित्वा कामं ब्रह्मलोकं गमिष्यत्येष निश्चयः ॥ व्यास उवाच॥ इत्युक्त्वा तं तदा देवी तत्रैवांतरधीयत ॥ १८ ॥ राजपुत्रो विरमितो मरणात्पावकात्ततः ॥ अयोध्यायां तदाऽऽगत्य नारदेन महा-

उतारू है–यह जानकर स्वयं भगवती जगदम्बा उसके सामने आकर आकाशमें प्रकट हो गयीं ॥१३॥ हे महाराज ! उस समय भगवती सिंहपर सवार थीं। उन्होंने राजकुमार सत्यव्रतको दर्शन देकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा ॥१४॥ देवी बोलीं–हे साधो ! तुम यह क्या कर रहे हो ? अग्निमें शरीरको मत जलाओ । हे महाभाग ! अभी शांत रहो । अब तुम्हारे पिता वृद्ध हो चुके हैं ॥१५॥ हे वीर ! वे तुम्हें राज्य सौंपकर तपस्या करनेके लिए वनमें जाने ही वाले हैं । हे राजन् ! खेद करना छोड़ दो । आजके तीसरे दिन तुम्हारे पिताके मंत्रीगण तुम्हें ले जानेके लिए आयेंगे। मेरी कृपाके वशीभूत राजा अपने राज्यपदपर तुम्हारा अभिषेक करेंगे ॥ १६ ॥ १७॥ इसके बाद तुम्हारे निष्काम पिता ब्रह्मलोक सिधारेंगे–यह बिल्कुल निश्चित है। व्यासजी कहते है–हे राजन् ! सत्यव्रतसे ऐसा कहकर भगवती वहाँ ही अन्धर्धान हो गयीं ॥१८॥ राजकुमार जो चितामें जलनेके लिए तैयार था, रुक गया । उसी समय महात्मा नारदजी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अयोध्यामें पधारे ॥१९॥ उन्होंने आदिसे अन्ततक सत्यव्रतकी सारी बातें राजाको कह सुनायीं। जब उन महात्मा नरेशने सुना कि पुत्र इस प्रकार जल मरनेको तैयार था, तब उनके मनमें बड़ी ग्लानि हुई। वे तरह-तरहकी बातें सोचने लगे। फिर महाराज अरुणने मन्त्रियोंसे कहा-॥२०॥२१॥ 'आपलोग मेरे पुत्र सत्यव्रतके उग्र कार्यसे पूर्ण परिचित हैं। उस बुद्धिमान् पुत्रको मैंने वनमें जानेकी आज्ञा दे दी थी ॥२२॥ यद्यपि परमा[र्थकी] अच्छी जानकारी रखनेवाला वह पुत्र राज्यका अधिकारी था, फिर भी मेरी आज्ञासे वह तुरंत जंगलमें चला गया। मुझे पता लगा है कि मेरा वह क्षमाशील और निर्धन राजकुमार अभी उस जंगलमें ही कालक्षेप कर रहा है ॥२३॥ वसिष्ठजीने शाप देकर उसे पिशाचके समान बना दिया है। वह दुःखसे अत्यन्त घबराकर आगमें जल जानेके लिए तैयार हो गया था ॥ २४ ॥ परन्तु भगवती जगदम्बाने उसे इस कार्यसे रोक दिया है। वह वहीं रहता है। अतएव आपलोग शीघ्र जाइये और मेरे उस पुत्रको आश्वासन देकर तुरन्त यहाँ लानेका प्रयत्न कीजिये। मेरा वह औरस पुत्र प्रजाकी रक्षा करनेमें पूर्ण कुशल है। मैंने अब तपस्या करनेका निश्चय कर लिया है। अतः राज्यपर सत्यव्रतका

त्मना ॥ १९ ॥ वृत्तांतः कथितः सर्वो राज्ञे सत्वरमादितः ॥ श्रुत्वा राजाऽथ पुत्रस्य तं तथा मरणोद्यमम् ॥ २० ॥ खेदमाधाय मनसि शुशोच बहुधा नृपः ॥ सचिवानाह धर्मात्मा पुत्रशोकपरिप्लुतः ॥ २१ ॥ ज्ञातं भवद्भिरत्युग्रं पुत्रस्य मम चेष्टितम् ॥ त्यक्तो मया वने धीमान्पुत्रः सत्यव्रतो मम ॥ २२ ॥ आज्ञयाऽसौ गतः सद्यो राज्यार्हः परमार्थवित् ॥ स्थितस्तत्रैव विपिने धनहीनः क्षमान्वितः ॥ २३ ॥ वसिष्ठेन तथा शप्तः पिशाचसदृशः कृतः ॥ सोऽद्य दुःखेन संतप्तः प्रवेष्टुं च हुताशनम् ॥२४॥ उद्यतः श्रीमहादेव्या निषिद्धः संस्थितः पुनः ॥ तस्माद्गच्छन्तु तं शीघ्रं ज्येष्ठपुत्रं महाबलम् ॥ २५ ॥ आश्वास्य वचनैरत्र तरसैवानयंत्विह ॥ अभिषिच्य सुतं राज्ये औरसं पालनक्षमम् ॥ २६ ॥ वनं यास्यामि शांतोऽहं तपसे कृतनिश्चयः ॥ इत्युक्त्वा मंत्रिणः सर्वान्प्रेषयामास पार्थिवः ॥ २७ ॥ तस्यैवानयनार्थं हि प्रीतिप्रवणमानसः ॥ ते गत्वा तं समाश्वास्य मन्त्रिणः पार्थिवात्मजम् ॥ २८ ॥ अयोध्यायां महात्मानं मानपूर्वं समानयन् ॥ दृष्ट्वा सत्यव्रतं राजा दुर्बलं मलिनांबरम् ॥ २९ ॥ जटाजूटधरं क्रूरं चिंतातुरमचिंतयत ॥ किं कृतं निष्ठुरं कर्म मया पुत्रो विवासितः ॥ ३० ॥ राज्यार्हश्चातिमेधावी जानता धर्मनिश्चयम् ॥ इति संचिंत्य मनसा तमालिंग्य महीपतिः ॥ ३१ ॥ आसने स्वसमीपस्थे समाश्वास्योपवेशयत् ॥ उपविष्टं सुतं राजा प्रेमपूर्वमुवाच ह ॥ ३२ ॥ प्रेमगद्गदया वाचा नीतिशास्त्र-

अभिषेक करके मैं शान्तिपूर्वक वनमें चला जाऊँगा।' यों कहकर राजा अरुणने मंत्रियोंको भेज दिया ॥२५-२७॥ उस समय राजकुमारको लानेकी ही धुन उन्हें लगी थी। उनके मनमें सत्यव्रतके प्रति अपार प्रेम उमड़ पड़ा था। तदनन्तर मंत्रीगण गये और उन्होंने राजकुमार महात्मा सत्यव्रतको आश्वासन देते हुए सम्मानपूर्वक अयोध्यामें लाकर उपस्थित कर दिया। राजा अरुणने देखा, सत्यव्रत अत्यन्त दुर्बल हो गया है। उसके शरीरपर मैले-कुचैले वस्त्र हैं ॥२८॥२९॥ बढ़े हुए केशोंकी जटा बँध गयी है। वह अत्यन्त चिन्तातुर और भयंकर जान पड़ता है। तब राजाने सोचा कि मैंने इस पुत्रको वनवासी बनाकर कितना निष्ठुर कर्म कर डाला है ॥३०॥ धर्मको निश्चितरूपसे जानते हुए भी मैंने इस विद्वान् एवं राज्यके अधिकारी पुत्रकी कैसी दुर्दशा की है। हे राजन्! इस प्रकार मन-ही-मन सोचनेके पश्चात् महाराज अरुणने राजकुमार सत्यव्रतको हृदयसे लगा लिया ॥ ३१ ॥ सम्यक् प्रकारसे आश्वासन देकर उसे अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पास ही आसनपर बैठाया। जब राजकुमार बैठ गया, तब नीतिशास्त्रके पारंगामी विद्वान् राजा अरुण प्रेमपूर्वक उससे प्रेम-गद्गद वाणीमें बोले। राजा अरुणने कहा—हे पुत्र! तुम्हारी बुद्धि धर्ममें अटल रहे। तुम विप्रोंका सदा सम्मान करना ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ न्यायपूर्वक मिले हुए धनको ही अपने खजानेमें रखना। ऐसा करो कि तुम्हारे प्रयत्नसे प्रजा निरन्तर सुरक्षित रहे। तुम न कभी झूठ बोलना और न निंदित मार्गपर पैर रखना ॥३४॥ श्रेष्ठ पुरुषोंके आज्ञानुसार ही तुम्हें सब कार्य करना चाहिए। तपस्वी लोग तुमसे सदा सम्मान पाते रहें। दुष्टों और लुटेरोंका दमन करना। इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किये रहना ॥३५॥ हे पुत्र! कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिए राजाको चाहिये कि वह मंत्रियोंके साथ सदा आवश्यक गुप्त मंत्रणा करता रहे ॥३६॥ हे पुत्र! राजा सबका आत्मा समझा जाता है। छोटे शत्रुकी भी वह उपेक्षा न करे। विनम्र मंत्री भी यदि शत्रुसे मिला हो तो उसपर विश्वास नहीं करना चाहिए॥ ३७ ॥ शत्रु और मित्र—सर्वत्र सर्वदा गुप्तचर नियुक्त रखे जायँ। तुम सदा धर्ममें आस्था रखना। प्रतिदिन दान करना ॥ ३८ ॥ कोरी बात न करना। दुष्टोंका साथ कभी मत करना। भाँति-भाँतिके यज्ञोंमें

विशारदः ॥ राजोवाच ॥ पुत्र धर्मे मतिः कार्या माननीया मुखोद्भवाः ॥ ३३ ॥ न्यायागतं धनं ग्राह्यं रक्षणीयाः सदा प्रजाः ॥ नासत्यं क्वापि वक्तव्यं नामार्गे गमनं क्वचित् ॥३४॥ शिष्टप्रोक्तं प्रकर्तव्यं पूजनीयास्तपस्विनः ॥ हन्तव्या दस्यवः क्रूरा इन्द्रियाणां तथा जयः ॥ ३५ ॥ कर्तव्यः कार्यसिद्ध्यर्थं राज्ञा पुत्र सदैव हि ॥ मंत्रस्तु सर्वथा गोप्यः कर्तव्यः सचिवैः सह ॥ ३६ ॥ नोपेक्ष्योऽल्पोऽपि कृतिना रिपुः सर्वात्मना सुत ॥ न विश्वसेत्परासक्तं सचिवं च तथा नतम् ॥३७॥ चाराः सर्वत्र योक्तव्याः शत्रुमित्रेषु सर्वथा ॥ धर्मे मतिः सदा कार्या दानं दद्याच्च नित्यशः॥३८॥ शुष्कवादो न कर्तव्यो दुष्टसंगं च वर्जयेत् ॥ यष्टव्या विविधा यज्ञाः पूजनीया महर्षयः ॥ ३९ ॥ न विश्वसेत्स्त्रियं क्वापि स्त्रैणद्यूतरतं नरम् ॥ अत्यादरो न कर्तव्यो मृगयायां कदाचन ॥ ४० ॥ द्यूते मद्ये तथा गेये नूनं वारवधूषु च ॥ स्वयं तद्विमुखो भूयात्प्रजास्तेभ्यश्च रक्षयेत् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते कर्तव्यमुत्थानं सर्वथा सदा ॥ स्नानादिकं सर्वविधिं विधाय विधिवत्तथा ॥४२॥ पराशक्तेः परां पूजां भक्त्या कुर्यात्सुदीक्षितः ॥ पुत्रैतज्जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदार्चनम् ॥४३॥ सकृत्कृत्वा महापूजां देवीपादजलं पिबन् ॥ न जातु जननीगर्भे गच्छेदिति विनिश्चयः ॥४४॥ सर्वं दृश्यं महादेवी द्रष्टा साक्षी च सैव हि ॥ इति तद्भावभरितस्तिष्ठेन्निर्भयचेतसा ॥ ४५ ॥ कृत्वा नित्यविधिं सम्यग्गंतव्यं सदसि द्विजान् ॥ समाहूय च

संलग्न रहना। महर्षिगणका सदा सत्कार करते रहना ॥ ३९ ॥ स्त्री, जुआरी और नपुंसकपर कभी भी विश्वास न करना। शिकारमें अत्यन्त आदरबुद्धि रखना सर्वथा निषिद्ध है ॥ ४० ॥ जुआ, मदिरा, अश्लील गायन और वेश्या- इनसे स्वयं बचना और प्रजाको भी इससे सदा बचाना ॥४१॥ सदा-सर्वदा ब्राह्म मुहूर्तमें उठ जाना। स्नान आदि सभी नित्यनियमोंसे निवृत्त होकर विधिपूर्वक परम आराध्या आद्या शक्ति भगवती जगदम्बाकी पूजा करना। दीक्षित होकर भक्तिके साथ उनका अर्चन करना। हे पुत्र! इन परा शक्तिके चरणोंकी आराधना करना ही इस जन्मकी सफलता है ॥४२॥४३॥ जो एक बार भी भगवतीकी प्रधान पूजा करके चरणोदक पी लेता है, वह पुनः कभी माताके गर्भमें नहीं जाता—यह बिल्कुल निश्चित है ॥ ४४ ॥ सारा जगत् दृश्य है और भगवती जगदम्बा द्रष्टा एवं साक्षी हैं—इस प्रकारके भावसे भावित होकर निर्भीकतापूर्वक स्थित रहना ॥ ४५ ॥ प्रतिदिन नित्य-नियमका सम्यक् प्रकारसे पालन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करके सभामें जाना और ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे धर्मशास्त्रसम्बन्धी निर्णीत विषय पूछना ॥ ४६ ॥ वेद-वेदाङ्गके पारगामी आदरणीय ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन सुयोग्य पात्रोंको गौ-सोना आदि दान देना ॥ ४७ ॥ किसी मूर्ख ब्राह्मणकी कभी पूजा न करना। यदि किसी मूर्ख ब्राह्मणको कुछ देना ही पड़ जाय तो पेटभर भोजनसे अधिक न देना ॥ ४८ ॥ हे पुत्र ! तुम किसी भी परिस्थितिमें लोभवश धर्मका उल्लंघन कभी मत करना। इसके सिवा तुम्हारा एक परम कर्तव्य यह है कि 'तुम्हारे द्वारा कभी ब्राह्मणोंका अपमान न होने पाये ॥ ४९ ॥ क्योंकि ब्राह्मण भूदेव हैं—पृथ्वीपर वे साक्षात् देवता माने जाते हैं। अतः उनका यत्नपूर्वक सम्मान करना ही वांछनीय है। क्षत्रियोंके उत्पादक ब्राह्मण ही हैं—इसमें कोई संदेह नहीं है ॥५०॥ जलसे अग्निकी, ब्राह्मणसे क्षत्रियकी और पत्थरसे लौहकी उत्पत्ति मानी गयी है। उनका सर्वव्यापी तेज अपनी योनिमें ही शान्त होता है ॥ ५१ ॥ अतएव कल्याणकी इच्छा रखनेवाले राजाको

प्रष्टव्यो धर्मशास्त्रविनिर्णयः ॥ ४६ ॥ संपूज्य ब्राह्मणान्पूज्यान्वेदवेदांतपारगान् ॥ गोभूहिरण्यादिकं च देयं पात्रेषु सर्वदा ॥ ४७ ॥ अविद्वान्ब्राह्मणः कोऽपि नैव पूज्यः कदाचन ॥ आहारादधिकं नैव देयं मूर्खाय कर्हिचित् ॥ ४८ ॥ न वा लोभात्त्वया पुत्र कर्तव्यं धर्मलंघनम् ॥ अतः परं न कर्तव्यं क्वचिद्विप्रावमाननम् ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणा भूमिदेवाश्च माननीयाः प्रयत्नतः ॥ कारणं क्षत्रियाणां च द्विजा एव न संशयः ॥ ५० ॥ अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मणः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ५१ ॥ तस्माद्राज्ञा विशेषेण माननीया मुखोद्भवाः ॥ दानेन विनयेनैव सर्वथा भूतिमिच्छता ॥ ५२ ॥ दंडनीतिः सदा कार्या धर्मशास्त्रानुसारतः ॥ कोशस्य संग्रहः कार्यो नूनं न्यायागतस्य ह ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्रबोधितः पित्रा त्रिशंकुः प्रणतो नृपः ॥ तथेति पितरं प्राह प्रेमगद्गदया गिरा ॥ १ ॥ विप्रानाहूय मंत्रज्ञान्वेदशास्त्रविशारदान् ॥ अभिषेकाय संभारान्कारयामास सत्वरम् ॥ २ ॥ सलिलं सर्वतीर्थानां समानाय्य विशांपतिः ॥ प्रकृतीश्च समाहूय सामतान्भूपतींस्तथा ॥ ३ ॥ पुण्येऽह्नि विधिवत्तस्मै ददावासनमुत्तमम् ॥ अभिषिच्य सुतं राज्ये त्रिशंकुं विधिवत्पिता ॥ ४ ॥ तृतीयमाश्रमं पुण्यं जग्राह भार्यया

चाहिये कि वह विशेषरूपसे विनयपूर्वक दान देकर ब्राह्मणोंका सत्कार करे ॥ ५२ ॥ सदा धर्मशास्त्रके अनुसार दण्डनीतिका व्यवहार करते हुए न्यायसे प्राप्त धनका संग्रह करे ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(राजा त्रिशंकुकी कथा) व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार पिताके समझानेपर राजकुमार त्रिशंकुने हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें पितासे कहा—॥१॥ 'बहुत ठीक है। मैं ऐसा ही करूँगा।' फिर महाराज अरुणने वेद-शास्त्रके पारगामी मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुलवाया और अभिषेककी सारी सामग्रियाँ तुरन्त एकत्रित करायीं ॥ २ ॥ सम्पूर्ण तीर्थोंका जल मँगवाया। मंत्रिमंडल तथा सभी सामन्त नरेश आमंत्रित हुए। शुभ मुहूर्तमें राजाने अपने उस कुमारको विधि-विधानके साथ श्रेष्ठ राज्यासनपर बिठा दिया ॥ ३ ॥ ४ ॥ यों पिता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अरुणने पुत्र त्रिशंकुका विधिवत् राज्याभिषेक करके अपनी धर्मपत्नीके साथ पवित्र वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश किया। वे वनमें गंगाके तटपर चले गये और वहाँ उन्होंने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी ॥५॥ आयु समाप्त हो जानेपर वे स्वर्गको चले गये। वहाँ देवताओंने भी उनका स्वागत किया। इन्द्रासनके समीप ही उन्हें स्थान मिला। वहाँ रहकर वे निरंतर सूर्यके समान शोभा पाने लगे ॥ ॥ राजा जनमेजयने कहा-हे प्रभो! आप अभी इस कथाके प्रसङ्गमें बता चुके हैं कि गुरुदेव वसिष्ठने अत्यन्त कुपित होकर सत्यव्रतको शाप दे दिया था ॥७॥ फलस्वरूप सत्यव्रतमें पैशाचिकता आ गयी तो फिर इस पिशाचत्वसे उसका उद्धार कैसे हुआ? यही मेरे प्रश्नका विषय है ॥८॥ शापग्रस्त प्राणी सिंहासनपर बैठनेका अनधिकारी हो जाता है। सत्यव्रतसे दूसरा कौन ऐसा उत्तम कर्म बन गया, जिससे वसिष्ठ उसे शापमुक्त करनेको तैयार हो गये? ॥९॥ हे विप्रर्षे! आप शापसे मुक्त होनेका कारण बतानेके साथ ही कृपापूर्वक यह भी स्पष्ट करें कि ऐसी निन्द्य प्रकृतिवाले पुत्रको पिताने अपने पास फिर क्यों सम्मानपूर्वक बुला लिया? ॥१०॥ व्यासजी कहते हैं-हे राजन्! वसिष्ठका शाप लगते ही सत्यव्रतमें पिशाचके सभी लक्षण

युतः ॥ वने त्रिपथगाकूले चचार दुश्चरं तपः ॥ ५ ॥ काले प्राप्ते ययौ स्वर्गं पूजितस्त्रिदशैरपि ॥ इन्द्रासनसमीपस्थो रराज रविवत्सदा ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ पूर्वं भगवता प्रोक्तं कथायोगेन सांप्रतम् ॥ सत्यव्रतो वसिष्ठेन शप्तो दोग्ध्रीवधात्किल ॥७॥ कुपितेन पिशाचत्वं प्रापितो गुरुणा ततः ॥ कथं मुक्तः पिशाचत्वादित्येतत्संशयः प्रभो ॥८॥ न सिंहासनयोग्यो हि भवेच्छापसमन्वितः ॥ मुनिना मोचितः शापात्केनान्येन च कर्मणा ॥ ९ ॥ एतन्मे ब्रूहि विप्रर्षे शापमोक्षस्य कारणम् ॥ आनीतस्तु कथं पित्रा स्वगृहे तादृशाकृतिः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ सद्यः पैशाचतां गतः ॥ दुर्वेषश्चातिदुर्धर्षः सर्वलोकभयंकरः ॥ ११ ॥ यदैवोपासिता देवी भक्त्या सत्यव्रतेन ह ॥ तया प्रसन्नया राजन्दिव्यदेहः कृतः क्षणात् ॥ १२ ॥ पिशाचत्वं गतं तस्य पापं चैव क्षयं गतम् ॥ विपाप्मा चातितेजस्वी संभूतस्तत्कृपाऽमृतात् ॥ १३ ॥ वसिष्ठोऽपि प्रसन्नात्मा जातः शक्तिप्रसादतः ॥ पिताऽपि च बभूवास्य प्रेमयुक्तस्त्वनुग्रहात् ॥ १४ ॥ राज्यं शशास धर्मात्मा मृते पितरि पार्थिवः ॥ ईजे च विविधैर्यज्ञैर्देवदेवीं सनातनीम् ॥ १५ ॥ तस्य पुत्रो बभूवाथ हरिश्चन्द्रः सुशोभनः ॥ लक्षणैः शास्त्रनिर्दिष्टैः संयुतश्चातिसुन्दरः ॥ १६ ॥ युवराजं सुतं कृत्वा त्रिशङ्कुः पृथिवीपतिः ॥ मानुषेण शरीरेण स्वर्गं भोक्तुं मनो दधे ॥ १७ ॥ वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य विधिवन्नृपः ॥ उवाच वचनं प्रीतः

आ गये। इससे वह अत्यन्त दुर्धर्ष, महान् कुरूप एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके लिए भयप्रद हो गया ॥११॥ परन्तु उसने भगवती जगदम्बाकी भक्तिपूर्वक आराधना आरम्भ कर दी। हे राजन्! देवीके प्रसन्न होते ही उसकी आकृतिमें महान् परिवर्तन हो गया-वह दिव्यरूपसे शोभा पाने लगा ॥१२॥ उसकी पिशाचता सर्वथा नष्ट हो गयी। लेशमात्र भी पाप उसमें नहीं रहा और तेजकी सीमा नहीं रही। क्योंकि भगवतीकी अमृतमयी कृपा उसे सुलभ हो गयी थी ॥१३॥ भगवतीकी कृपासे वसिष्ठ भी प्रसन्न हो गये और वह पिताका भी पूर्ण प्रेमपात्र बन गया ॥ १४ ॥ पिताके मर जानेपर वह धर्मात्मा नरेश राज्यका प्रबन्धक बना। उसने अनेक प्रकारके यज्ञों द्वारा सनातनस्वरूपा देवेश्वरी भगवती जगदम्बाका पूजन किया ॥ १५ ॥ राजा त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए। उनकी आकृति अतीव सुन्दर थी। शास्त्रोक्त सभी शुभ लक्षण उनमें विद्यमान थे ॥ १६ ॥ कुछ दिनों बाद अपने पुत्रको युवराज बनाकर मानव-शरीरसे ही स्वर्गका सुख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भोगनेकी इच्छा राजा त्रिशंकुको व्यग्र करने लगी ॥१७॥ तब वह नरेश वसिष्ठजीके आश्रमपर गया। विधिपूर्वक उन्हें प्रणाम करके प्रीति प्रदर्शित करते हुए हाथ जोड़कर उसने कहा ॥१८॥
राजा त्रिशंकुने कहा—सम्पूर्ण मन्त्रोंके रहस्यवेत्ता हे महाभाग ! हे ब्रह्मपुत्र तापस ! आप प्रसन्नतापूर्वक मेरी आदरयुक्त प्रार्थना सुननेकी कृपा करें ॥ १९ ॥ अब मैं स्वर्गका सुख भोगना
चाहता हूँ। मेरी ऐसी इच्छा है कि उन दिव्य भोगोंको मैं इसी मानव-शरीरसे भोगूँ ॥ २० ॥ मैं चाहता हूँ कि स्वर्गमें अप्सराओंके साथ रहूँ, नन्दन वनमें विचरूँ और देवताओं तथा
गन्धर्वोंका मधुर गायन सुनूँ। अतएव हे महामुने ! आप मुझसे कोई ऐसा यज्ञ कराइए कि जिसके फलस्वरूप इसी शरीरसे मुझे स्वर्गलोकमें रहनेकी सुविधा प्राप्त हो जाय। हे मुनिश्रेष्ठ !
आप सब कुछ कर सकते हैं। अतः मेरा यह कार्य करनेका अवश्य कृपा कीजिये। देवलोकके लिए भी जो कठिन है, ऐसे महान् यज्ञको सम्पन्न कराकर आप शीघ्र ही मुझे स्वर्ग प्राप्त करा
दीजिये ॥२१-२३॥ वसिष्ठजी बोले—राजन् ! मनुष्यदेहसे स्वर्गमें स्थान पाना अत्यन्त दुर्लभ है। कारण, ऐसी स्पष्ट घोषणा है कि मर जानेपर ही पुण्यकर्मके प्रभावसे स्वर्गमें रहनेकी

कृतांजलिपुटस्तदा ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वमंत्रविशारद ॥ विज्ञप्तिं मे सुमनसा श्रोतुमर्हसि तापस ॥ १९ ॥ इच्छा मेऽद्य
समुत्पन्ना स्वर्गलोकसुखाय च ॥ अनेनैव शरीरेण भोगान्भोक्तुममानुषान् ॥ २० ॥ अप्सरोभिश्च संवासः क्रीडितुं नंदने वने ॥ देवगंधर्वगानं च
श्रोतव्यं मधुरं किल ॥ २१ ॥ याजय त्वं मखेनाशु तादृशेन महामुने ॥ यथाऽनेन शरीरेण वसे लोकं त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥ समर्थोऽसि मुनिश्रेष्ठ
कुरु कार्यं ममाधुना ॥ प्रापयाशु मखं कृत्वा देवलोकं दुरासदम् ॥ २३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ राजन्मानुषदेहेन स्वर्गे वासः सुदुर्लभः ॥
मृतस्य हि ध्रुवं स्वर्गः कथितः पुण्यकर्मणा ॥ २४ ॥ तस्माद्बिभेमि सर्वज्ञ दुर्लभाच्च मनोरथात् ॥ अप्सरोभिश्च संवासो जीवमानस्य
दुर्लभः ॥ २५ ॥ कुरु यज्ञान्महाभाग मृतः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राजा परमदुर्मनाः ॥ २६ ॥ उवाच वचनं
भूयो वसिष्ठं पूर्वरोषितम् ॥ न त्वं याजयसे ब्रह्मन्गर्वविशाच्च मां यदि ॥ २७ ॥ अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं किल सांप्रतम् ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं
तस्य वसिष्ठः कोपसंयुतः ॥ २८ ॥ शशाप भूपतिं चेति चंडालो भव दुर्मते ॥ अनेन त्वं शरीरेण श्वपचो भव सत्वरम् ॥ २९ ॥ स्वर्गकृन्तन
पापिष्ठ सुरभीवधदूषित ॥ ब्रह्मपत्नीहरोच्छिन्नधर्ममार्गविदूषक ॥ ३० ॥ न ते स्वर्गगतिः पाप मृतस्यापि कथंचन ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो गुरुणा

सुविधा मिलती है ॥२४॥ अतएव हे सर्वज्ञ नरेश ! तुम्हारे इस दुर्लभ मनोरथको पूर्ण करानेसे मैं डरता हूँ। क्योंकि जीवित पुरुष अप्सराओंके साथ रहनेका सुअवसर प्राप्त हो जाय—यह
कदापि सम्भव नहीं है। हे महाभाग ! तुम यज्ञ करो, इस शरीरके शांत हो जानेपर तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! वसिष्ठजीकी बात सुनकर राजा त्रिशंकुका मन अत्यन्त
उदास हो गया ॥ २५ ॥ २६ ॥ अतः उसने पहलेसे ही कुपित मुनिवरसे पुनः कहा—'ब्रह्मन् ! आप यदि अभिमानवश मेरा यज्ञ नहीं कराना चाहते तो मैं किसी दूसरेको पुरोहित बनाकर
यज्ञ सम्पन्न करूँगा'। त्रिशंकुका यह कथन सुनकर मुनिवर वसिष्ठने उसे शाप देते हुए कहा—'हे दुर्मते ! तू अभी चाण्डाल हो जा। तेरे शरीरमें अभी श्वपचवृत्ति बन जाय ॥ २७-२९ ॥
अरे स्वर्गको नष्ट करनेवाले पापी ! अरे ओ गोघाती ! अरे विप्रभार्यापहारी और धर्ममार्गका दूषक ! मरनेपर भी तू किसी प्रकार स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकता।' व्यासजी कहते हैं—हे राजन् !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुरुदेव वसिष्ठके मुखसे यह वचन निकलते ही उसी शरीरसे त्रिशंकु चाण्डाल हो गया। उसके कानमें जो रत्नजटित कुण्डल थे, उनको पत्थर-जैसे हो जानेमें कुछ भी देर नहीं लगी। देहमें लगा हुआ सुगन्धपूर्ण चंदन तुरंत दुर्गंधित हो गया। उसके पहने हुए दिव्य पीताम्बर काले रंगमें परिणत हो गये ॥३०-३३॥ महात्मा वसिष्ठके शापने उसे गजकर्ण बना दिया। हे राजन्! वसिष्ठजी सदा भगवती जगदम्बाकी उपासना किया करते थे। अतः उनके रोषका यह फल प्रकट हो गया ॥ ३४ ॥ इसीलिए भगवतीके भक्तका कभी भी अपमान नहीं करना चाहिये। मुनिवर वसिष्ठजी बड़ी निष्ठाके साथ गायत्रीका जप करते थे ॥३५॥ हे राजन्! उस समय अपना निंदनीय शरीर देखकर राजा त्रिशंकु खिन्न हो गया। उसकी बड़ी दयनीय दशा हो गयी। अतः मुनिके आश्रमसे घर न लौटकर वह जंगलमें चला गया ॥३६॥ शोकसे विह्वल होकर उसने मन-ही-मन सोचा—'अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मेरा यह शरीर सर्वथा निन्द्य हो गया ॥ ३७॥ मैं कोई भी ऐसा उपाय नहीं देखता कि जिसके प्रभावसे मेरा यह दुःख दूर हो जाय। यदि मैं घर जाता हूँ तो चाण्डालवेषमें देखकर पुत्र दुखी होगा और स्त्री भी

राजंस्त्रिशंकुस्तत्क्षणादपि ॥३१॥ तत्र तेन शरीरेण बभूव श्वपचाकृतिः ॥ कुण्डलेऽश्ममये वापि जाते तस्य च तत्क्षणात् ॥३२॥ देहे चंदनगंधश्च विगंधो ह्यभवत्तदा ॥ नीलवर्णेऽथ संजाते दिव्ये पीताम्बरे तनौ ॥ ३३ ॥ गजवर्णोऽभवद्देहः शापात्तस्य महात्मनः ॥ शक्त्युपासकरोषेण फलमेतद्भून्नृप ॥ ३४ ॥ तस्माच्छ्रीशक्तिभक्तो हि नावमान्यः कदाचन ॥ गायत्रीजपनिष्ठो हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा निंद्यं निजं देहं राजा दुःखमवाप्तवान् ॥ न जगाम गृहे दीनो वनमेवाभितो ययौ ॥ ३६ ॥ चिंतयामास दुःखार्तस्त्रिशंकुः शोकविह्वलः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि देहो मेऽतीव निंदितः ॥ ३७ ॥ कर्तव्यं नैव पश्यामि येन मे दुःखसंक्षयः ॥ गृहे गच्छामि चेत्पुत्रः पीडितोऽद्य भविष्यति ॥ ३८ ॥ भार्याऽपि श्वपचं दृष्ट्वा नांगीकारं करिष्यति ॥ सचिवा नादरिष्यंति वीक्ष्य मामीदृशं पुनः ॥३९॥ ज्ञातयो बंधुवर्गश्च सङ्गतो न भविष्यति ॥ सर्वैस्त्यक्तस्य मे नूनं जीवितान्मरणं वरम् ॥ ४० ॥ विषं वा भक्षयित्वाऽद्य पतित्वा वा जलाशये ॥ कृत्वा वा कंठपाशं च देहत्यागं करोम्यहम् ॥ ४१ ॥ अग्नौ वा ज्वलिते देहं जुहोमि विधिवद्बलात् ॥ कृत्वा वाऽनशनं प्राणांस्त्यजामि दूषितान्भृशम् ॥ ४२ ॥ आत्महत्या भवेन्नून पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥ श्वपचत्वं च शापश्च हत्यादोषाद्भवेदपि ॥४३॥ पुनर्विचार्य भूपालश्चेतसा समचिंतयत् ॥ आत्महत्या न कर्तव्या सर्वथैव मयाऽधुना ॥ ४४ ॥ भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म देहेनानेन

मुझे स्वीकार नहीं करेगी। इस दशामें देखकर मंत्रीलोग भी मेरा अनादर करने लगेंगे ॥३८॥३९॥ जाति और कुटुम्बवाले मेरा साथ छोड़ देंगे। सबसे पृथक् होकर ही मुझे रहना पड़ेगा। ऐसी दशामें जीनेसे मर जाना ही अच्छा है ॥ ४० ॥ अब मैं विष खा लूँ, किसी जलाशयमें डूब मरूँ या गलेमें फाँसी लगाकर मर जाऊँ? ॥ ४१ ॥ अथवा विधिवत् चिता लगाकर बरबस अपने आपको जला दूँ या अनशन करके अपने दूषित प्राणोंको त्याग दूँ' ॥ ४२ ॥ आत्महत्याका विचार आते ही दूसरा विचार यह आया कि 'आत्महत्या तो कर लूँगा, परन्तु यह निश्चय है कि आत्महत्या करनेसे मुझे जन्म-जन्मान्तरमें पुनः चाण्डाल होना पड़ेगा। आत्महत्या-दोषके परिणामस्वरूप मैं शापसे कभी मुक्त नहीं हो सकूँगा।' ॥ ४३ ॥ यों सोचनेके पश्चात् उस नरेशने पुनः सावधान होकर विचार किया कि 'इस समय आत्महत्या करना मेरे लिए सर्वथा अनुचित है। जंगलमें रहकर इस शरीरसे अपना किया हुआ कर्म भोग लेना ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ठीक है। क्योंकि भोग लेनेपर इस कुत्सित कर्मका फल समाप्त हो जायगा ॥४४॥४५॥ भोगसे ही प्रारब्ध-कर्म समाप्त होते हैं । अन्यथा इनसे छुट्टी पाना सर्वथा असम्भव है। इसीलिए किये हुए शुभ और अशुभ कर्म तो मुझे भोग ही लेने चाहिये ॥ ४६ ॥ अतः अब मैं इस पवित्र आश्रमके समीप रहकर ही तीर्थोंका सेवन, भगवती जगदम्बाका स्मरण और सन्त पुरुषोंकी सेवा करूँगा ॥ ४७ ॥ वनमें रहकर इस प्रकार आचरण करनेसे मेरा संचित कर्म अवश्य ही समाप्त हो जायगा और यह भी सम्भव है कि भाग्यवश किसी महात्मा पुरुषसे भी मिलनेका अवसर सुलभ हो जाय' ॥ ४८ ॥ इस प्रकार सोचकर राजा त्रिशंकु अपने नगरका परित्याग करके गङ्गाके तटपर चला गया और उसने वहीं रहनेकी व्यवस्था कर ली ॥ ४९ ॥ उसी समय पिताके शापका कारण जानकर हरिश्चन्द्रके मनमें बड़ी अशान्ति छा गयी । उसने अपने मंत्रियोंको जंगलमें त्रिशंकुके पास भेजा ॥ ५० ॥ मंत्री शीघ्र उस नरेशके समीप पहुँचे और नम्रतापूर्वक प्रणाम करके कहने लगे । उस समय चाण्डाल-वेषधारी त्रिशंकु बार-बार लम्बी साँस ले रहा था ॥५१॥ मंत्री बोले—'हे राजन् ! आपके पुत्रकी आज्ञासे हमलोग यहाँ आये हैं । हम

काननेे ॥ भोगेनास्य विपाकस्य भविता सर्वथा क्षयः ॥ ४५ ॥ प्रारब्धकर्मणां भोगादन्यथा न क्षयो भवेत् ॥ तस्मान्मयाऽत्र भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ४६ ॥ कुर्वन्पुण्याश्रमाभ्याशे तीर्थानां सेवनं तथा ॥ स्मरणं चाम्बिकायास्तु साधूनां सेवनं तथा ॥४७॥ एवं कर्मक्षयं नूनं करिष्यामि वने वसन् ॥ भाग्ययोगात्कदाचित्तु भवेत्साधुसमागमः ॥४८॥ इति संचिन्त्य मनसा त्यक्त्वा स्वनगरं नृपः॥ गंगातीरे गतः कामं शोचंस्तत्रैव संस्थितः ॥४९॥ हरिश्चन्द्रस्तदा ज्ञात्वा पितुः शापस्य कारणम्॥ दुःखितः सचिवांस्तत्र प्रेषयामास पार्थिवः ॥ ५० ॥ सचिवास्तत्र गत्वाऽऽशु तमूचुः प्रश्रयान्विताः ॥ प्रणम्य श्वपचाकारं निःश्वसंतं मुहुर्मुहुः ॥ ५१ ॥ राजन्पुत्रेण ते नूनं प्रेषितान्समुपागतान् ॥ अवेहि सचिवांस्त्वं नो हरिश्चन्द्राज्ञया स्थितान् ॥ ५२ ॥ युवराजसुतः प्राह तच्छृणुष्व नराधिप ॥ आनयध्वं नृपं यूयं संमान्य पितरं मम ॥ ५३ ॥ तस्माद्राजन्समागच्छ राज्यं प्रति गतव्यथः ॥ सेवां सर्वे करिष्यंति सचिवाश्च प्रजास्तथा ॥ ५४ ॥ गुरुं प्रसादयिष्यामः स यथा तु दयेत वै ॥ प्रसन्नोऽसौ महातेजा दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ ५५ ॥ इति पुत्रेण ते राजन्कथितं बहुधा किल ॥ तस्माद्गमनमेवाशु रोचतां निजसद्मनि ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां नृपः श्रुत्वा भाषितं श्वपचाकृतिः ॥ स्वगृहं गमनायासौ न मतिं कृतवानतः ॥५७॥ तानुवाच तदा वाक्यं व्रजन्तु सचिवाः पुरम् ॥ गत्वा पुरं महाभागा

राजा हरिश्चन्द्रके आज्ञापालक मंत्री हैं ॥५२॥ हे राजन् ! आपके पुत्र हरिश्चन्द्र इस समय युवराजके पदपर प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने जो कहा है, वह सुनिए । हमारे प्रति उनका कथन है कि तुम लोग मेरे पिताजीको सम्मानपूर्वक यहाँ ले आओ ॥ ५३ ॥ अतएव हे राजन् ! अब सारी चिन्ताएँ छोड़कर अपने राज्यमें चलनेकी कृपा करें । सब मंत्री और प्रजावर्ग आपकी सेवा करेंगे ॥५४॥ हमलोग गुरु वसिष्ठको भी प्रसन्न करनेकी चेष्टा करेंगे, जिससे उनकी दया प्राप्त हो जाय । सम्भव है कि वे महान् तेजस्वी गुरुदेव प्रसन्न होकर आपका दुःख दूर कर दें ॥५५॥ हे राजन् ! आपके पुत्रने इस बातको बार-बार दुहराया है । अतएव यदि बात जँच जाय तो इसी समय अपने महल लौटनेकी कृपा करिए' ॥५६॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! चाण्डालस्वरूपधारी उस राजा त्रिशंकुने मंत्रियोंकी बातें तो सुन लीं, परन्तु अपने नगरको जानेकी उसके मनमें इच्छा नहीं उत्पन्न हो सकी ॥५७॥ उन्होंने मंत्रियोंसे कहा—'सचिवो ! तुमलोग नगरको लौट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाओ और मेरे कथनानुसार हरिश्चन्द्रसे कह दो–'पुत्र ! मैं नहीं आऊँगा । तुम सावधान होकर राज्यका भार सँभालो । तुम्हें अनेक यज्ञों द्वारा ब्राह्मणोंका सम्मान और देवताओंका पूजन करते रहना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ महात्माओंने श्वपच-वेषकी घोर निन्दा की है । इस शरीरसे मैं अयोध्या नहीं आऊँगा । अतः अब तुमलोग तुरन्त यहाँसे लौट जाओ ॥ ६० ॥ मेरा पुत्र हरिश्चन्द्र महान् पराक्रमी पुरुष है । उसे राज्यासनपर बिठाकर राज्यका समुचित प्रबन्ध करनेका प्रयत्न करो । यही मेरी आज्ञा है' । इस प्रकार त्रिशंकुके उपदेश देनेपर मंत्रियोंकी आँखोंमें आँसू भर आये । तदनन्तर वानप्रस्थ-जीवन व्यतीत करनेवाले राजा त्रिशंकुको प्रणाम करके वे तुरन्त वहाँसे लौट गये ॥६१॥६२॥ अयोध्यामें जाकर उन्होंने राजकुमार हरिश्चन्द्रको तिलकधारी नरेश बना दिया । उनके द्वारा एक परम पवित्र दिनको यह अभिषेकका कार्य सविधि सम्पन्न हुआ ॥ ६३ ॥ राजाके आज्ञानुसार मंत्रियोंने जब हरिश्चन्द्रका अभिषेक कर दिया, तब उस परम तेजस्वी धर्मात्मा नरेशने राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ले ली । उस समय भी पिताकी दयनीय दशापर उसके मनमें बड़ा खेद हो रहा था ॥ ६४ ॥

ब्रुवंतु वचनाच्च मे ॥ ५८ ॥ नागमिष्याम्यहं पुत्र कुरु राज्यमतंद्रितः ॥ मानयन्ब्राह्मणान्देवान् यजन् यज्ञैरनेकशः ॥५९॥ नाहं श्वपचवेषेण गर्हितेन महात्मभिः ॥ नागमिष्याम्ययोध्यायां सर्वे गच्छंतु माचिरम् ॥ ६० ॥ पुत्रं सिंहासने स्थाप्य हरिश्चंद्रं महाबलम् ॥ कुर्वंतु राज्यकर्माणि यूयं तत्र ममाज्ञया ॥ ६१ ॥ इत्यादिष्टास्ततस्ते तु रुरुदुश्चातुरा भृशम् ॥ सचिवा निर्ययुस्तूर्णं नत्वा तं च वनाश्रमम् ॥ ६२ ॥ अयोध्यायामुपागत्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ॥ अभिषेकं तदा चक्रुर्हरिश्चंद्रस्य मूर्ध्नि ते ॥ ६३ ॥ अभिषिक्तस्तु तेजस्वी सचिवैश्च नृपाज्ञया ॥ राज्यं चकार धर्मिष्ठः पितरं चिंतयन्भृशम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ राजोवाच ॥ हरिश्चंद्रः कृतो राजा सचिवैर्नृपशासनात् ॥ त्रिशंकुस्तु कथं मुक्तस्तस्माचांडालदेहतः ॥ १ ॥ मृतो वा वनमध्ये तु गंगातीरे परिप्लुतः ॥ गुरुणा वा कृपां कृत्वा शापात्तस्माद्विमोचितः ॥ २ ॥ एतद्वृत्तांतमखिलं कथयस्व ममाग्रतः ॥ चरितं तस्य नृपतेः श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ अभिषिक्तं सुतं कृत्वा राजा संतुष्टमानसः ॥ कालातिक्रमणं तत्र चकार चिंतयञ्छिवाम् ॥ ४ ॥ एवं गच्छति

इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(त्रिशंकुपर विश्वामित्रकी कृपा) राजा जनमेजय बोले—हे व्यासजी ! राजा त्रिशंकुके आदेशसे मन्त्रियोंने हरिश्चन्द्रको तो गद्दी दे दी, किन्तु स्वयं त्रिशंकु उस चाण्डाल-शरीरसे कैसे छूटे ॥ १ ॥ गंगाजीके तटपर पवित्र जलमें स्नान करके क्या उन्होंने जङ्गलमें ही अपना तन त्याग दिया ? अथवा गुरु वसिष्ठने कृपा करके उन्हें शापमुक्त कर दिया ? यह उपाख्यान विस्तारके साथ आप मुझे बतलाइए । क्योंकि मैं महाराज त्रिशंकुके चरित्रको भली भाँति सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ ३ ॥ व्यासजी बोले–हे राजन् ! अपने पुत्रका राज्याभिषेक हो जानेसे राजा त्रिशंकुका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और वे जंगलमें ही कल्याणस्वरूपिणी देवीका ध्यान करते हुए अपना समय बिताने लगे ॥ ४ ॥ इस तरह कुछ समय बीतनेके बाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कौशिक (विश्वामित्र) मुनि तपस्या पूरी करके अपनी स्त्री और पुत्रोंको देखनेके लिए अपने आश्रममें आये ॥५॥ यहाँ आकर उन्होंने देखा कि स्त्री-पुत्र बड़े आनंदसे हैं तो उनको अपार हर्ष हुआ। जब उनको पत्नी स्वागत करनेके लिए उनके सामने खड़ी हुई तो बुद्धिमान् ऋषिने कहा—॥६॥ हे सुनयनी ! यह तो बताओ कि अकालके समय तुमने कैसे दिन काटा ? घरमें अन्न नहीं था, तुमने किस उपायसे इन बालकोंको पाला ? ॥ ७ ॥ हे सुन्दरी ! मैं तो तपस्यामें फँसा हुआ था। इससे नहीं आ सका। हे प्राणप्रिये ! हे कल्याणी ! तुम्हारे पास धन भी नहीं था, तब तुमने क्या व्यवस्था की ? ॥८॥ वहाँपर जब मैंने सुना कि यहाँ अद्भुत अकाल पड़ा हुआ है, तब मुझे रह-रहकर बड़ी चिन्ता होने लगी। लेकिन मैं यह सोचकर यहाँ नहीं आया कि जब मैं स्वयं निर्धन हूँ, तब वहाँ जाकर क्या करूँगा ! ॥ ९ ॥ हे सुंदर जाँघवाली ! उधर वनमें मैं भी एक दिन भूखसे बड़ा विकल हो गया और जब नहीं रहा गया तो रातके समय चोरकी तरह एक चाण्डालके घरमें घुसा ॥ १० ॥ वहाँ चाण्डालको मैंने सोता हुआ पाया। तब भूखसे बेचैन हो रसोईघर खोजकर कुछ खानेके लिए उसमें पहुँचा ॥ ११ ॥ उसका बर्तन

काले तु तपस्तप्त्वा समाहितः ॥ द्रष्टुं दारान्सुतादींश्च तदाऽगात्कौशिको मुनिः ॥ ५ ॥ आगत्य स्वजनं दृष्ट्वा सुस्थितं मुदमाप्तवान् ॥ भार्यां पप्रच्छ मेधावी स्थितामग्रे सपर्यया ॥ ६ ॥ दुर्भिक्षे तु कथं कालस्त्वया नीतः सुलोचने ॥ अन्नं विना त्विमे बालाः पालिताः केन तद्वद ॥ ७ ॥ अहं तपसि संनद्धो नागतः शृणु सुन्दरी ॥ किं कृतं तु त्वया कान्ते विना द्रव्येण शोभने ॥ ८ ॥ मया चिंता कृता तत्र श्रुत्वा दुर्भिक्षमद्भुतम् ॥ नागतोऽहं विचार्यैवं किं करिष्यामि निर्धनः ॥ ९ ॥ अहमप्यति वामोरु पीडितः क्षुधया वने ॥ प्रविष्टश्चौरभावेन कुत्रचिच्छ्वपचालये ॥ १० ॥ श्वपचं निद्रितं दृष्ट्वा क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ महानसं परिज्ञाय भक्ष्यार्थं समुपस्थितः ॥ ११ ॥ यदा भांडं समुद्घाट्य पक्वं श्वतनुजामिषम् ॥ गृह्णामि भक्षणार्थाय तदा दृष्टस्तु तेन वै ॥१२॥ पृष्टः कस्त्वं कथं प्राप्तो गृहे मे निशि सादरम् ॥ ब्रूहि कार्यं किमर्थं त्वमुद्घाटयसि भांडकम् ॥१३॥ इत्युक्तः श्वपचेनाहं क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ तमवोचं सुकेशान्ते कामं गद्गदया गिरा ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोऽहं महाभाग तापसः क्षुधयाऽर्दितः ॥ चौरभावमनुप्राप्तो भक्ष्यं पश्यामि भांडके ॥ १५ ॥ चौरभावेन सम्प्राप्तोऽस्म्यतिथिस्ते महामते ॥ क्षुधितोऽस्मि ददस्वाज्ञां मांसमद्मि सुसंस्कृतम् ॥ १६ ॥ विश्वामित्र उवाच॥ श्वपचस्तु वचः श्रुत्वा मामुवाच सुनिश्चितम् ॥ भक्षं मा कुरु वर्णाग्र्य जानीहि श्वपचालयम् ॥१७॥ दुर्लभं खलु मानुष्यं तत्रापि

खोलकर भोजन करनेके लिए मैंने ज्यों ही कुत्तेका पका हुआ मांस हाथमें लिया, त्यों ही चाण्डालकी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ गयी ॥१२॥ बड़ी नम्रताके साथ उसने पूछा—आप कौन हैं ? और किस लिए रातके समय मेरे घरमें घुसे हैं ? आपका मतलब क्या है ? आप मेरी हाँड़ीका ढक्कन क्यों खोल रहे हैं ? ॥ १३ ॥ हे सुन्दर केशोंवाली प्रिये ! जब चाण्डालने मुझसे यह बात पूछी, उस समय मुझे बड़ी तेजी भूख लगी हुई थी। अतः मैंने गद्गद वर्णमें अपना अभिप्राय कह सुनाया ॥१४॥ मैंने कहा—हे महाभाग ! मैं एक तपस्वी ब्राह्मण हूँ और भूखसे विकल होकर चोरी करनेके लिए आया हूँ। इस हाँड़ीमें खानेकी कोई चीज खोज रहा हूँ ॥१५॥ हे महामति ! यद्यपि मैं चोरके रूपमें आया हूँ, तथापि आपका अतिथि हूँ। इस समय मैं बहुत भूखा हूँ। इसलिए आपने जो मांस पकाकर रखा है, उसे खानेके लिए मुझे अनुमति दीजिये ॥ १६ ॥ विश्वामित्र बोले—हे सुन्दरी ! मेरी बात सुनकर चाण्डालने कहा—हे चारों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्णोंमें अग्रगण्य ब्राह्मण ! यह चाण्डालका घर है । अतएव आप मेरे यहाँका भोजन मत करिये ॥१७॥ क्योंकि एक तो मनुष्ययोनिमें ही जन्म पाना बड़ा दुर्लभ होता है, मनुष्य होनेपर भी ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यके यहाँ जन्म लेना तो और भी कठिन है । उसमें भी ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होना तो सर्वथा दुर्लभ होता है । क्या आप इस बातको नहीं जानते ? ॥ १८ ॥ जो लोग स्वर्गलोकमें जाना चाहते हों, वे कभी भी दूषित आहार न करें । मनु भगवान्‌ने कर्मके अनुसार सात जातियोंको 'अन्त्यज' मानकर अग्राह्य बतलाया है ॥ १९ ॥ हे विप्र! मैंने चाण्डाल जातिमें जन्म लिया है । अतएव मैं कर्मके अनुसार अछूत हूँ, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे द्विजवर ! मैं अपना धर्म समझकर आपको जो भोजन करनेसे रोक रहा हूँ, इससे आप यह मत समझियेगा कि मुझे अपने पदार्थके लिए लोभ है ॥२०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! आपको वर्णसङ्करताका दोष न लगे । बस, यही मेरा अभिप्राय है। विश्वामित्र बोले–हे धर्मज्ञ ! तुम जो कह रहे हो, वह सच है । हे अन्त्यज ! तुम्हारी बुद्धि बड़ी स्वच्छ है ॥ २१ ॥ अब मैं तुम्हें आपत्कालीन धर्मका सूक्ष्म विचार बतला रहा हूँ । हे मानद ! जिस किसी भी उपायसे शरीरकी रक्षा करनी

च द्विजन्मता ॥ द्विजत्वे ब्राह्मणत्वं च दुर्लभं वेत्सि किं न हि ॥१८॥ दुष्टाहारो न कर्तव्यः सर्वथा लोकमिच्छता ॥ अग्राह्या मनुना प्रोक्ताः कर्मणा सप्त चांत्यजाः ॥ १९ ॥ त्याज्योऽहं कर्मणा विप्र श्वपचो नात्र संशयः ॥ निवारयामि भक्ष्यात्त्वां न लोभेनांजसा द्विज ॥ २० ॥ वर्णसंकरदोषोऽयं मा यातु त्वां द्विजोत्तम ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ सत्यं वदसि धर्मज्ञ मतिस्ते विशदाऽन्त्यज ॥ २१ ॥ तथाप्यापदि धर्मस्य सूक्ष्ममार्गं ब्रवीम्यहम् ॥ देहस्य रक्षणं कार्यं सर्वथा यदि मानद ॥ २२ ॥ पापस्यान्ते पुनः कार्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥ दुर्गतिस्तु भवेत्पापादनापदि न चापदि ॥ २३ ॥ मरणात्क्षुधितस्याथ नरको नात्र संशयः ॥ तस्मात्क्षुधापहरणं कर्तव्यं शुभमिच्छता ॥ २४ ॥ तेनाहं चौर्यधर्मेण देहं रक्षेऽप्यथांत्यज ॥ अवर्षणे च चौर्येण यत्पापं कथितं बुधैः ॥ २५ ॥ यो न वर्षति पर्जन्यस्तत्तु तस्मै भविष्यति ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ इत्युक्ते वचने कान्ते पर्जन्यः सहसाऽपतत् ॥ २६ ॥ गगनाद्धस्तिहस्ताभिर्धाराभिरभिकांक्षितः ॥ मुदितोऽहं घनं वीक्ष्य वर्षंतं विद्युता सह ॥ २७ ॥ तदाऽहं तद्गृहं त्यक्त्वा निःसृतः परया मुदा ॥ कथय त्वं वरारोहे कालो नीतस्त्वया कथम् ॥ २८ ॥ कांतारे परमः क्रूरः क्षयकृत्प्राणिनामिह ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः

चाहिये ॥२२॥ ऐसा करते समय यदि कोई पाप हो जाय तो उससे छुटकारा पानेके लिए प्रायश्चित्त कर डाले । आपत्ति कालमें अधर्म करनेमें कुछ पाप नहीं होता, लेकिन आपत्तिकालके अतिरिक्त साधारण समयमें जो लोग पापकर्म करते हैं तो उनको सद्गति नहीं प्राप्त होती ॥२३॥ जो मनुष्य भूखसे मरते हैं, उन्हें नरक मिलता है–इसमें संदेह नहीं है । अतएव जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता हो, उसे चाहिये कि किसी भी तरह अपनी उदरज्वाला शान्त करे ॥२४॥ अतएव हे अन्त्यज ! मैं भी चोरी करके अपने शरीरकी रक्षा करना चाहता हूँ । विद्वानोंने कहा है कि सूखेवाले अकालके समय जो लोग चोरी करते हैं ॥२५॥ उनका पाप मेघको लगता है । क्योंकि वह पानी नहीं बरसाता । विश्वामित्र अपनी पत्नीसे बोले–हे प्रिये ! जैसे ही मैंने यह बात कही, तैसे ही एकाएक पानी बरसने लगा ॥ २६ ॥ हाथीकी सूँड़की तरह मोटी धारवाला पानी आकाशसे बरस रहा था । इससे सभी प्राणी प्रसन्न थे । जब मैंने बादलसे खूब पानी बरसते और बिजली कड़कते देखा तो मेरे हर्षका ठिकाना नहीं रहा ॥२७॥ उसी समय मैं उस चाण्डालके घरसे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक बाहर निकला । हे नितम्बिनी ! अब यह बताओ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि तुमने अकालका वह भीषण समय वनमें कैसे काटा, जिसमें असंख्य प्राणी मर रहे थे ? व्यासजी बोले-हे राजन् ! अपने पतिकी बात सुनकर प्रियभाषिणी पत्नी बोली-॥२८॥२९॥ हे मुनिवर ! उस महान् अकालके समयको मैंने जैसे बिताया, सो बतला रहा हूँ, सुनिए । जब आप तपस्या करने चले गये, तभी यहाँ दुर्भिक्ष पड़ गया ॥ ३० ॥ अन्नके लिए मेरे छोटे-छोटे बच्चे बड़े दुःखित हुए । उन बालकोंका भूखा देखकर मैं तिन्नीकी खोजमें जङ्गल-जङ्गल फिरती रही। मुझे उस समय थोड़ी-सी तिन्नी मिल गयी। जिसे बच्चोंको खिला-खिलाकर मैंने कुछ महीने बिताये ॥३१॥३२॥ अब वह भी चुक गयी, तब मैंने सोचा कि जङ्गलमें तिन्नी नहीं मिल रही है और ऐसे दुर्भिक्षके समय भिक्षा भी नहीं मिल सकती ॥३३॥ उन दिनों पेड़ोंपर फल नहीं रह गये थे और धरतीमें कन्द-मूल भी नहीं था । बच्चे भूखसे विकल होकर रो रहे थे ॥ ३४ ॥ मैं सोचने लगी कि अब क्या करूँ ? किसके पास जाऊँ ? भूखसे तड़पते हुए

श्रुत्वा पतिमाह प्रियंवदा ॥ २९ ॥ यथा शृणु मया नीतः कालः परमदारुणः ॥ गते त्वयि मुनिश्रेष्ठ दुर्भिक्षं समुपागतम् ॥ ३० ॥ अन्नार्थं पुत्रकाः सर्वे बभूवुश्चातिदुःखिता ॥ क्षुधितान्बालकान्वीक्ष्य नीवारार्थं वने वने ॥ ३१ ॥ भ्रांताऽहं चिंतयाऽऽविष्टा किंचित्प्राप्तं फलं तदा ॥ एवं च कतिचिन्मासा नीवारेणातिवाहिताः ॥ ३२ ॥ तदभावे मया कांत चिंतितं मनसा पुनः ॥ न भिक्षा किल दुर्भिक्षे नीवारा नापि कानने ॥ ३३ ॥ न वृक्षेषु फलान्यासुर्न मूलानि धरातले ॥ क्षुधया पीडिता बाला रुदन्ति भृशमातुराः ॥३४॥ किं करोमि क्व गच्छामि किं ब्रवीमि क्षुधार्दितान् ॥ एवं विचिंत्य मनसा निश्चयस्तु मया कृतः ॥३५॥ पुत्रमेकं ददाम्यद्य कस्मैचिद्धनिने किल ॥ गृहीत्वा तस्य मौल्यं तु तेन द्रव्येण बालकान् ॥३६॥ पालयेऽहं क्षुधार्तांस्तु नान्योपायोऽस्ति पालने ॥ इति संचिंत्य मनसा पुत्रोऽयं प्रहितो मया ॥ ३७ ॥ विक्रयार्थं महाभाग क्रंदमानो भृशातुरः ॥ क्रंदमानं गृहीत्वैनं निर्गताऽहं गतत्रपा ॥ ३८ ॥ तदा सत्यव्रतो मार्गे मामुद्वीक्ष्य भृशातुराम् ॥ पप्रच्छ स च राजर्षिः कस्माद्रोदिति बालकः ॥३९॥ तदाऽहं तमुवाचेदं वचनं मुनिसत्तम ॥ विक्रयार्थं नीयतेऽसौ बालकोऽद्य मया नृप ॥ ४० ॥ श्रुत्वा मे वचनं राजा दयार्द्रहृदयस्ततः ॥ मामुवाच गृहं याहि गृहीत्वैनं कुमारकम् ॥ ४१ ॥ भोजनार्थे कुमाराणामामिषं विहितं तव ॥ प्रापयिष्याम्यहं नित्यं यावन्मुनिसमागमः ॥ ४२ ॥ अहन्यहनि

इन बालकोंको क्या कहकर समझाऊँ ? बादमें मैंने यही निश्चय किया कि आज किसी धनी व्यक्तिके हाथ एक बालक बेंच डालूँ और उस धनसे बाकी बचे हुए बालकोंका पालन करूँ । क्योंकि उन भूखे बच्चोंके पालन-पोषणका कोई दूसरा उपाय नहीं रह गया था । अपने मनमें ऐसा सोचकर मैंने इस पुत्रको बेचनेका पक्का निश्चय किया ॥३५-३७॥ हे महाराज ! उस समय यह बालक व्याकुल होकर रोने-चिल्लाने लगा । लेकिन मैं एक निर्लज्ज नारी बनकर इसके रोने-धोनेकी ओर ध्यान न देती और इसे बरबस घसीटती हुई घरसे बाहर निकली ॥३८॥ रास्तेमें राजकुमार सत्यव्रत मिल गये । मुझे देखकर उन राजर्षिने पूछा कि यह बालक क्यों रो रहा है ? ॥३९॥ तब मैंने कहा-राजन् ! इस बालकको मैं बेचने जा रही हूँ, इसीसे यह रो रहा है ॥४०॥ मेरी बात सुनकर राजकुमारका हृदय दयासे भर गया और उन्होंने कहा-इस बालकको लेकर आप अपने घर लौट जायँ ॥ ४१ ॥ जबतक मुनिवर विश्वामित्र लौट-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर नहीं आयेंगे, तबतक मैं नित्य इन बच्चोंके भोजनके लिए मांसका प्रबन्ध कर दिया करूँगा ॥ ४२ ॥ उसी दिनसे दयालु राजा सत्यव्रत प्रतिदिन हरिण-सूअर आदि मारकर उनका मांस इस पेड़पर रखकर चले जाते थे ॥ ४३ ॥ हे स्वामिन् ! उन्हींकी कृपासे मैं उस सङ्कटके सागरसे इन बालकोंको बचा सकी । लेकिन मेरे ही कारण राजा सत्यव्रतको वसिष्ठने शाप दे दिया ॥ ४४ ॥ बात यह हुई कि एक दिन जंगलमें उन्हें कोई पशु नहीं मिला । तब उन्होंने वसिष्ठजीकी दुधार गाय मार डाली । इससे वसिष्ठजी उनपर बहुत कुपित हुए ॥ ४५ ॥ उसी क्रोधके आवेशमें वसिष्ठने सत्यव्रतका 'त्रिशंकु' नाम रखकर अपने शापसे उन्हें चाण्डाल बना दिया ॥४६॥ हे महर्षि कौशिक ! उनके उपरके यह संकट पड़नेसे मुझे बड़ा क्लेश हो रहा है । क्योंकि वे अयोध्याके राजकुमार हमारा उपकार करने ही के कारण चाण्डाल हो गये हैं ॥ ४७ ॥ अतएव जैसे भी हो, अपने उत्कृष्ट तपोबलसे राजकुमारको इस संकटसे बचाइए ॥ ४८ ॥

भूपालो वृक्षेऽस्मिन्मृगसूकरान् ॥ विन्यस्य याति हत्वाऽसौ प्रत्यहं दययाऽन्वितः ॥४३॥ तेनैव बालकाः कांत पालिता वृजिनार्णवात् ॥ वसिष्ठेनाथ शप्तोऽसौ भूपतिर्मम कारणात् ॥ ४४ ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसे मांसं न प्राप्तं तेन कानने ॥ हता दोग्ध्री वसिष्ठस्य तेनासौ कुपितो मुनिः ॥ ४५ ॥ त्रिशंकुरिति भूपस्य कृतं नाम महात्मना ॥ कुपितेन वधाद्धेतोश्चांडालश्च कृतो नृपः ॥ ४६ ॥ तेनाहं दुःखिता जाता तस्य दुःखेन कौशिक ॥ श्वपचत्वमसौ प्राप्तो मत्कृते नृपनन्दनः ॥ ४७ ॥ येन केनाप्युपायेन भवता नृपतेः किल ॥ तस्माद्रक्षा प्रकर्तव्या तपसा प्रबलेन ह ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ इति भार्यावचः श्रुत्वा कौशिको मुनिसत्तमः ॥ तामाह कामिनीं दीनां सान्त्वपूर्वमरिंदम ॥ ४९ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ मोचयिष्यामि तं शापान्नृपं कमललोचने ॥ उपकारः कृतो येन कांताराद्रक्षिताऽसि वै ॥ ५० ॥ विद्यातपोबलेनाहं करिष्ये दुःखसंक्षयम् ॥ इत्याश्वास्य प्रियां तत्र कौशिकः परमार्थवित् ॥ ५१ ॥ चिंतयामास नृपतेः कथं स्याद्दुःखनाशनम् ॥ संविमृश्य मुनिस्तत्र जगाम यत्र पार्थिवः ॥ ५२ ॥ त्रिशंकुः पक्कणे दीनः संस्थितः श्वपचाकृतिः ॥ आगच्छंतं मुनिं दृष्ट्वा विस्मितोऽसौ नराधिपः ॥ ५३ ॥ दंडवन्निपपातोर्व्यां पादयोस्तरसा मुनेः ॥ गृहीत्वा तं करे भूपं पतितं कौशिकस्तदा ॥ ५४ ॥ उत्थाप्योवाच वचनं सांत्वपूर्वं द्विजोत्तमः ॥ मत्कृते त्वं महीपाल शप्तोऽसि मुनिना यतः ॥ ५५ ॥

व्यासजी बोले—हे शत्रुसूदन ! अपनी पत्नीकी बातें सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी उस दुःखिता महिलाको समझाते हुए कहने लगे ॥ ४९ ॥ विश्वामित्रजी बोले—हे कमलनयनी ! जिन राजकुमार सत्यव्रतने तुम्हारी उस अन्न-संकटसे रक्षा करके उपकार किया है, उनको मैं अवश्य शापमुक्त करूँगा ॥ ५० ॥ अपनी वैज्ञानिक विद्या और तपस्याके प्रभावसे मैं उनका क्लेश दूर कर दूँगा । परम तत्त्ववेत्ता विश्वामित्रजी अपनी प्रियतमाको इस तरह ढाढ़स बँधाकर यह सोचने लगे कि किस तरह उनका दुःख दूर हो सकता है । भलीभाँति विचार-विमर्श करनेके बाद विश्वामित्रजी वहाँ गये, जहाँ राजा सत्यव्रत (त्रिशंकु) रहते थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वे चाण्डालके रूपमें एक गरीबकी भाँति झोपड़ीमें रहते हुए अपना दिन काट रहे थे । राजा त्रिशंकु ऋषि विश्वामित्रको आते देखकर चकरा गये ॥ ५३ ॥ वे तुरन्त मुनिके चरणोंपर डण्डेकी भाँति लोट गये । जमीनपर पड़े हुए राजा त्रिशंकुको हाथ पकड़कर मुनि विश्वामित्रने उठाया और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्हें आश्वासन देते हुए कहा–हे राजन्! मेरे ही कारण वसिष्ठ मुनिने आपको शाप दिया है ॥ ५४ ॥ ५५॥ अतएव मैं वही कार्य करूँगा कि जिससे आपकी कामना पूर्ण हो सके। अब आप बतलाइये कि इस समय कौन-सा कार्य करूँ, जिससे आपका कल्याण हो? राजा त्रिशंकु बोले–भगवन्! मैंने यज्ञ करानेके लिए गुरु वसिष्ठजीकी प्रार्थना की थी ॥५६॥ मैंने कहा–हे मुनिवर! मैं एक ऐसा यज्ञ करना चाहता हूँ कि जिससे मेरी मनोवाञ्छा पूरी हो। आप उसके ऋत्विक् बनें। हे महर्षि! आप कोई ऐसा उपाय करिए कि जिससे मैं सदेह स्वर्ग चला जाऊँ ॥५७॥ मैं इसी शरीरसे आनन्दभूमि इन्द्रलोकमें जाना चाहता हूँ। इसपर कुपित होकर वसिष्ठ मुनिने मुझे उत्तर दिया कि अरे दुर्बुद्धि! कहीं मनुष्यशरीरसे स्वर्ग मिलता है? मुझे तो सदेह स्वर्गमें जानेकी लालसा थी। अतः भगवान् वसिष्ठसे मैंने फिर कहा कि हे निष्पाप! यदि आप ऐसा न करेंगे तो मैं किसी दूसरे व्यक्तिको पुरोहित बनाकर वह सर्वश्रेष्ठ यज्ञ आरम्भ करूँगा। इसपर उन्होंने मुझे शाप देते हुए कहा–अरे पामर! तू चाण्डाल हो जा ॥५८–६०॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने आपको शाप पानेका कारण कह सुनाया। अब एक-

वांछितं ते करिष्यामि ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥ राजोवाच ॥ मया संप्रार्थितः पूर्वं वसिष्ठो मखहेतवे ॥ ५६ ॥ मां याजय मुनिश्रेष्ठ करोमि मखमुत्तमम् ॥ यथेष्टं कुरु विप्रेंद्र यथा स्वर्गं व्रजाम्यहम् ॥ ५७ ॥ अनेनैव शरीरेण शक्रलोकं सुखालयम् ॥ कोपं कृत्वा वसिष्ठोऽसौ मामाहेति सुदुर्मते ॥ ५८ ॥ मानुषेण हि देहेन स्वर्गवासः कुतस्तव ॥ पुनर्मयोक्तो भगवान्स्वर्गलुब्धेन चानघ ॥ ५९ ॥ अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं यज्ञमुत्तमम् ॥ तदा तेनैव शप्तोऽहं चांडालो भव पामर ॥ ६० ॥ इत्येत्कथितं सर्वं कारणं शापसंभवम् ॥ मम दुःखविनाशाय समर्थोऽसि मुनीश्वर ॥६१॥ इत्युक्त्वा विररामासौ राजा दुःखरुजार्दितः ॥ कौशिकोऽपि निराकर्तुं शाप तस्य व्यचिंतयत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ विचिंत्य मनसा कृत्यं गाधिसूनुर्महातपाः ॥ प्रकल्प्य यज्ञसंभारान्मुनीनामंत्रयत्तदा ॥ १ ॥ मुनयस्तं मखं ज्ञात्वा विश्वामित्रनिमंत्रिताः ॥ नागताः सर्वे एवैते वसिष्ठेन निवारिताः ॥ २ ॥ गाधिसूनुस्तदाज्ञाय विमनाश्चातिदुःखितः ॥ आजगामाश्रमं तत्र यत्रासौ नृपतिः स्थितः ॥ ३ ॥ तमाह कौशिकः क्रुद्धो वसिष्ठेन निवारिताः ॥ नागता ब्राह्मणाः सर्वे यज्ञार्थं नृपसत्तम ॥ ४ ॥ पश्य मे तपसः सिद्धिं यथा

मात्र आप ही मेरा क्लेश दूर करनेमें समर्थ हैं ॥ ६१ ॥ उस महान् कष्टकी पीडासे पीडित राजा त्रिशंकु इतना कहकर चुप हो गये। इधर विश्वामित्रजी उन्हें शापसे मुक्त करनेका उपाय सोचने लगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

(विश्वामित्रके तपोबलसे त्रिशंकुका सदेह स्वर्गगमन) व्यासजी बोले–हे महाराज! गाधितनय एवं महातपस्वी विश्वामित्रने सम्पूर्ण कृत्योंका निश्चय करक यज्ञकी सामग्री जुटायी और सभी ऋषियोंको निमन्त्रण भेज दिया ॥ १ ॥ विश्वामित्रकी ओरसे निमन्त्रण द्वारा मुनियोंको यद्यपि यज्ञकी सूचना मिल चुकी थी, तथापि वे लोग नहीं आये। क्योंकि वसिष्ठजीने उन्हें मना कर दिया था ॥ २ ॥ गाधितनय विश्वामित्र यह वृत्तान्त जानकर बड़े दुःखी हुए और उनका चित्त उदास हो गया। तब वे राजा 'त्रिशंकु'के आश्रममें आये ॥ ३ ॥ विश्वामित्रने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोषपूर्वक उनसे कहा–हे नृपश्रेष्ठ ! वसिष्ठजीके मना करनेसे ब्राह्मणगण इस यज्ञमें नहीं आये ॥ ४ ॥ लेकिन हे महाराज ! आप मेरा तपोबल देखिए, मैं अभी सदेह स्वर्ग भेजकर आपकी अभिलाषा पूरी करूँगा ॥ ५ ॥ यह कहकर मुनिवर विश्वामित्रने हाथमें जल लिया और गायत्रीजपसे संचित सारा पुण्य त्रिशंकुको दे दिया ॥६॥ त्रिशंकुको अपना समस्त पुण्य देनेके बाद उनसे कहने लगे–हे राजर्षि ! आप इन्द्रलोकमें जाइए ॥७॥ हे सम्राट् ! बहुत दिनोंसे सञ्चित मेरे पुण्यबल द्वारा आप प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रपुरीमें जायँ और उस देवभूमिमें आपका कल्याण हो ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले––हे राजन् ! विप्रेन्द्र विश्वामित्रके इतना कहते ही राजा त्रिशंकु उनके तपोबलसे बड़ी तेजीसे उड़नेवाले पक्षीकी तरह वेगके साथ तुरंत आकाशकी ओर उड़े ॥ ॥ इस प्रकार उड़कर जब वे इन्द्रपुरीमें पहुँचे तो देवताओंने देखा कि चाण्डालवेशधारी कोई क्रूर व्यक्ति चला आ रहा है ॥ १० ॥ तब उन लोगोंने इन्द्रसे पूछा कि आकाशमार्गमें देवताकी तरह दुर्दर्श जो व्यक्ति बड़ी तेजीके साथ चला आ रहा है, वह कौन है ? इसकी आकृति तो चाण्डाल जैसी है ॥ ११ ॥ तब इन्द्रने हड़बड़ीमें उठकर उस कुरूप मनुष्यकी ओर देखा।

त्वां सुरसद्मनि ॥ प्रापयामि महाराज वांछितं ते करोम्यहम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा जलमादाय हस्तेन मुनिसत्तमः ॥ ददौ पुण्यं तदा तस्मै गायत्रीजपसम्भवम् ॥ ६ ॥ दत्त्वाऽथ सुकृतं राज्ञे तमुवाच महीपतिम् ॥ यथेष्टं गच्छ राजर्षे त्रिविष्टपमतन्द्रितः ॥ ७ ॥ पुण्येन मम राजेंद्र बहुकालार्जितेन च ॥ याहि शक्रपुरीं प्रीतः स्वस्ति तेऽस्तु सुरालये॥ ८॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवति विप्रेंद्रे त्रिशंकुस्तरसा ततः॥ उत्पपात यथा पक्षी वेगवांस्तपसो बलात् ॥९॥ उत्पत्य गगने राजा गतः शक्रपुरीं यदा ॥ दृष्टो देवगणैस्तत्र क्रूरश्चाण्डालवेषभाक् ॥१०॥ कथितोऽसौ सुरेन्द्राय कोऽयमायाति सत्वरः ॥ गगने देववद्भाति दुर्दर्शः श्वपचाकृतिः ॥ ११ ॥ सहसोत्थाय शक्रस्तमपश्यत्पुरुषाधमम् ॥ ज्ञात्वा त्रिशंकुमपि स निर्भर्त्स्य तरसाऽब्रवीत् ॥ १२ ॥ श्वपच क्व समायासि देवलोके जुगुप्सितः ॥ याहि शीघ्रं ततो भूमौ नात्र स्थातुं त्वयोचितम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तः स्खलितः स्वर्गाच्छक्रेणामित्रकर्शन ॥ निपपात तदा राजा क्षीणपुण्यो यथाऽमरः ॥ १४ ॥ पुनश्चुक्रोश भूपालो विश्वामित्रेति चासकृत् ॥ पतामि रक्ष दुःखार्तं स्वर्गाच्चलितमाशुगम् ॥ १५ ॥ तस्य तत्क्रंदितं राजन्पततः कौशिको मुनिः ॥ श्रुत्वा तिष्ठेति होवाच पतंतं वीक्ष्य भूपतिम् ॥ १६ ॥ वचनात्तस्य तत्रैव स्तिथोऽसौ गगने नृप ॥ मुनेस्तपःप्रभावेण चलितोऽपि सुरालयात् ॥ १७ ॥ विश्वामित्रोऽप्यपः स्पृष्ट्वा चकारेष्टिं सुविस्तराम् ॥ विधातुं

जब उन्होंने पहचान लिया कि वे त्रिशंकु हैं तो तत्काल उन्हें डाँटते हुए इन्द्र कहने लगे–॥ १२ ॥ हे चाण्डाल ! तुम इस निन्दनीय शरीरसे देवलोकमें क्यों चले आ रहे हो ? तुम अभी पृथ्वीलोकको लौट जाओ। क्योंकि यहाँ निवास करनेके लिए तुम सर्वथा अनुपयुक्त हो ॥ १३ ॥ हे शत्रुओंको पीस देनेवाले राजा जनमेजय ! जब इन्द्रने ऐसा कहा तो वे स्वर्गसे वैसे ही नीचे गिरने लगे, जैसे पुण्य क्षीण हो जानेपर देवताओंका पतन हो जाता है ॥ १४ ॥ तब राजा त्रिशंकु वहींसे चिल्लाने लगे–हे विश्वामित्र ! हे विश्वामित्र ! मैं स्वर्गसे च्युत होकर बड़ी तेजीसे नीचे गिर रहा हूँ, आप मुझ दुखियाकी रक्षा करें ॥ १५ ॥ हे राजा जनमेजय ! त्रिशंकुका करुण-क्रन्दन सुनकर मुनिवर विश्वामित्रने जब उन्हें मर्त्यलोकमें गिरते देखा तो कहा–वहीं रुक जाइए ॥ १६ ॥ हे राजन् ! यद्यपि त्रिशंकु देवलोकसे निकल पड़े थे, तथापि विश्वामित्रके इतना कहते ही वे उनके तपोबलके प्रतापसे आकाशमें ही रुक गये ॥ १७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदनन्तर विश्वामित्रने नयी सृष्टि द्वारा दूसरा स्वर्गलोक बनानेके लिए आचमन करके एक दीर्घकालीन यज्ञ आरम्भ किया ॥ १८ ॥ जब शचीपति इन्द्रको यह ज्ञात हुआ तो वे तुरन्त गाधि-तनय विश्वामित्र मुनिके पास आये ॥ १९ ॥ इन्द्रने कहा—हे ब्रह्मन् ! यह आप क्या कर रहे हैं ? हे साधो ! आप क्यों इतना कुपित हो गये हैं ? हे मुनिराज ! आप दूसरी सृष्टिका विचार त्यागकर मुझे आज्ञा दीजिए, मैं आपका कौनसा कार्य करूँ ॥ २० ॥ विश्वामित्र बोले—हे विभो ! राजा त्रिशंकु देवलोकसे च्युत होकर बड़े दुःखित हैं । अतः आप प्रेमपूर्वक उनको अपने इन्द्रलोकमें ले जाइए ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! विश्वामित्रके निश्चयको देखकर इन्द्र बड़े भयभीत हुए । लेकिन विश्वामित्रकी दूसरी सृष्टि करनेकी उत्कृष्ट शक्तिको जानकर इन्द्रने उनकी बात स्वीकार कर ली ॥ २२ । तब राजा त्रिशंकुका शरीर दिव्य बना तथा उन्हें एक अच्छे विमानपर बैठाकर इन्द्रने विश्वामित्रजीसे विदा माँगी और उन्हें अपनी पुरीमें ले गये ॥ २३ ॥ इस प्रकार जब त्रिशंकु इन्द्रके साथ स्वर्ग चले गये, तब विश्वामित्रको बड़ा हर्ष हुआ और वे अपने आश्रममें शान्तिपूर्वक रहने लगे ॥ २४ ॥ इधर अयोध्यामें जब

नूतनां सृष्टिं स्वर्गलोकं द्वितीयकम् ॥१८॥ तस्योद्यमं तथा ज्ञात्वा त्वरितस्तु शचीपतिः ॥ तत्राजगाम सहसा मुनिं प्रति तु गाधिजम् ॥ १९ ॥ किं ब्रह्मन्क्रियते साधो कस्मात्कोपसमाकुलः ॥ अलं सृष्ट्या मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि किं करवाणि ते ॥२०॥ कौशिक उवाच ॥ स्वं निवासं महीपालं च्युतं त्वद्भवनाद्विभो ॥ नयस्व प्रीतियोगेन त्रिशंकुं चातिदुःखितम् ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा तुराषाडतिशंकितः ॥ तपोबलं विदित्वोग्रमोमित्युवाच वासवः ॥ २२ ॥ दिव्यदेहं नृपं कृत्वा विमानवरसंस्थितम् ॥ आपृच्छ्य कौशिकं शक्रोऽगमन्निजपुरीं तदा ॥ २३ ॥ गते शक्रे तु वै स्वर्गं त्रिशंकुसहिते ततः ॥ विश्वामित्रः सुखं प्राप्य स्वाश्रमे सुस्थिरोऽभवत् ॥ २४ ॥ हरिश्चंद्रोऽथ तच्छ्रुत्वा विश्वामित्रोपकारकम् ॥ पितुः स्वर्गमनं कामं मुदितो राज्यमन्वशात् ॥ २५ ॥ अयोध्याधिपतिः क्रीडां चकार सह भार्यया ॥ रूपयौवनचातुर्ययुक्तया प्रीतिसंयुतः ॥ २६ ॥ अतीतकाले युवती न सा गर्भवती ह्यभूत् ॥ तदा चिन्तातुरो राजा बभूवातीव दुःखितः ॥ २७ ॥ वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य शिरसा मुनिम् ॥ अनपत्यत्वजां चिंतां गुरवे समवेदयत् ॥२८॥ दैवज्ञोऽसि भवान्कामं मंत्रविद्याविशारदः ॥ उपायं कुरु धर्मज्ञ संततेर्मम मानद ॥ २९ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति जानासि द्विजसत्तम ॥ कस्मादुपेक्षसे जानन्दुःखं मम च शक्तिमान् ॥ ३० ॥ कलविंकास्त्विमे धन्या ये शिशुं लालयंति हि ॥ मंदभाग्योऽहमनिशं चिंतयामि

राजा हरिश्चन्द्रको यह पता लगा कि महर्षि विश्वामित्रके तपोबलसे मेरे पिताको सदेह स्वर्ग मिला है, तब उनको अपार आनन्द प्राप्त हुआ और वे अपने राज्यका शासन करने लगे ॥२५॥ अयोध्यानरेश हरिश्चन्द्र अपनी रूपवती, युवती और कामकेलिकी विज्ञ महारानीके साथ बड़े प्रेमपूर्वक विहार कर रहे थे ॥ २६ ॥ ऐसा करते-करते बहुत समय बीत गया । फिर भी वह युवती रानी गर्भवती नहीं हुई । इससे राजा बड़े चिन्तित और दुखी हुए ॥ २७ ॥ तब वे वसिष्ठजीके आश्रमको गये और मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया । तदनन्तर पुत्र न होनेके कारण जो मानसिक चिन्ता थी, उसे बताते हुए कहा—॥ २८ ॥ हे मानद ! हे धर्मज्ञ ! आप ज्योतिष और मन्त्र दोनों विद्याओंके ज्ञाता हैं । अतः आप कोई ऐसा उपाय कर दीजिए कि जिससे मुझे सन्तान प्राप्त हो जाय ॥ २९ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! आप तो स्वयं जानते हैं कि अपुत्र व्यक्तिकी गति नहीं होती । आप मेरे कष्टको जानते हैं और इस कष्टको दूर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेकी शक्ति भी आपमें है। तथापि ऐसी उपेक्षा आप क्यों कर रहे हैं ? ॥ ३० ॥ देखिए, ये गौरैया चिड़ियायें कितनी भाग्यशालिनी हैं कि अपने बच्चोंका दुलार करती हैं। मैं ही एक ऐसा अभागा हूँ कि पुत्र न होनेके कारण दिन-रात चिन्तित रहता हूँ ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजी हरिश्चन्द्रकी दुःखभरी बाणी सुनकर भलीभाँति सोचनेके बाद उनसे बोले ॥ ३२ ॥ वसिष्ठजीने कहा—हे महाराज! आप ठीक कह रहे हैं। इस संसारमें सन्तान न होनेके कष्टसे बढ़कर और कोई दूसरा कष्ट नहीं है ॥ ३३ ॥ अतएव हे राजेन्द्र! आप प्रयन्नपूर्वक जलाधिनाथ वरुणदेवकी आराधना कीजिए, वे ही आपको सन्तति प्रदान करेंगे ॥ ३४ ॥ उन वरुणदेवसे बढ़कर और कोई दूसरा सन्तानदाता देवता नहीं है। अतः हे धर्मिष्ठ! आप उन्हींकी आराधना करिए। इससे आपका मनोरथ अवश्य पूरा हो जायगा ३५ ॥ मनुष्योंको चाहिए कि वे भाग्य और पुरुषार्थ दोनोंका आदर करें। क्योंकि बिना उद्योग किए सफलता कैसे मिल सकती है ? ॥ ३६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! तत्त्वदर्शी पुरुषोंको चाहिए कि न्यायमार्गका अवलम्बन करके भरपूर उद्योग करें। ऐसा करनेसे अवश्य सफलता

दिवानिशम् ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य मुनिस्तस्य निर्वेदमिश्रितं वचः ॥ संचिंत्य मनसा सम्यक्तमुवाच विधेः सुतः ॥ ३२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ सत्यं ब्रूषे महाराज संसारेऽस्मिन्न विद्यते ॥ अनपत्यत्वजं दुःखं यत्तथा दुःखमद्भुतम् ॥ ३३ ॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र वरुणं यादसां पतिम् ॥ समाराधय यत्नेन स ते कार्यं करिष्यति ॥ ३४ ॥ वरुणादधिको नास्ति देवः संतानदायकः ॥ तमाराधय धर्मिष्ठ कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ ३५ ॥ दैवं पुरुषकारश्च माननीयाविमौ नृभिः ॥ उद्यमेन विना कार्यसिद्धिः संजायते कथम् ॥ ३६ ॥ न्यायतस्तु नरैः कार्यं उद्यमस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ कृते तस्मिन्भवेत्सिद्धिर्नान्यथा नृपसत्तम ॥ ३७ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा गुरोरमिततेजसः ॥ प्रणम्य निर्ययौ राजा तपसे कृतनिश्चयः ॥ ३८ ॥ गंगातीरे शुभे स्थाने कृतपद्मासनो नृपः ॥ ध्यायन्पाशधरं चित्ते चचार दुश्चरं तपः ॥ ३९ ॥ एवं तपस्यतस्तस्य प्रचेता दृष्टिगोचरः ॥ कृपयाऽभून्महाराज प्रसन्नमुखपंकजः ॥ ४० ॥ हरिश्चन्द्रमुवाचेदं वचनं यादसां पतिः ॥ वरं वरय धर्मज्ञ तुष्टोऽस्मि तपसा तव ॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ अनपत्योऽस्मि देवेश पुत्रं देहि सुखप्रदम् ॥ ऋणत्रयापहारार्थमुद्यमोऽयं मया कृतः ॥ ४२ ॥ नृपस्य वचनं श्रुत्वा प्रगल्भं दुःखितस्य च ॥ स्मितपूर्वं ततः पाशी तमाह पुरतः स्थितम् ॥ ४३ ॥ वरुण उवाच ॥ पुत्रो यदि भवेद्राजन्गुणी मनसि वांछितः ॥ सिद्धे कार्ये ततः पश्चात्किं करिष्यसि मे प्रियम् ॥ ४४ ॥

मिलेगी। लेकिन इसके विपरीत चलनेसे कदापि सफलता नहीं मिल सकती ॥ ३७ ॥ अपरिमित तेजस्वी अपने गुरु वसिष्ठकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने तप करनेका निश्चय किया और उन्हें प्रणाम करके चले गये ॥ ३८ ॥ तदनुसार वे गङ्गा नदीके किनारे एक शुभ स्थानमें पद्मासन लगाकर बैठ गये और पाशधारी वरुणदेवका मानसिक ध्यान करते हुए भीषण तप करने लगे ॥ ३९ ॥ हे सम्राट्! इस तरह तपस्या करते-करते बहुत समय बाद वरुणदेवको दया आयी और वे प्रकट हुए। उस समय वरुणजीका मुखकमल प्रसन्नतासे खिला हुआ था ॥ ४० ॥ उन जलाधिदेव वरुणने हरिश्चन्द्रको सम्बोधित करके कहा—हे धर्मके मर्मज्ञ! मैं आपकी तपस्यासे प्रसन्न हूँ, आप मुझसे वर माँग लें ॥ ४१ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे देवराज! मेरे कोई सन्तान नहीं है। सो आप मुझे आनन्ददायक पुत्र प्राप्त होनेका वरदान दीजिये। मैंने देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिए ही तप किया है ॥ ४२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस दु:खित राजाकी यह वाणी सुनकर मुसकराते हुए वरुणदेव अपने सामने खड़े राजा हरिश्चन्द्रसे कहने लगे ॥४३॥ वरुणदेव बोले-हे राजन् ! यदि आपकी इच्छाके अनुसार गुणवान् पुत्र उत्पन्न हो तो मनोरथ पूरा हो जानेके बाद आप मेरा कौनसा प्रिय कार्य करेंगे ? ॥४४॥ हे राजन् ! यदि आप उस पुत्रको बलिपशु बनाकर मेरा यज्ञ करें तो मैं आपको पुत्रप्राप्तिका वरदान दे दूँ । राजा हरिश्चन्द्र बोले–हे देव ! मुझे निपूता होनेके दोपसे बचा लीजिये । हे जलाधिपते ! मैं उस शिशुको पशु बनाकर आपका यज्ञ करूँगा । यह बात मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ । हे मानद ! इस संसारमें मनुष्योंके लिए निःसन्तान होनेसे बढ़कर कोई दूसरा कष्ट नहीं है । अतः ऐसा कल्याणकारी पुत्र आप मुझे दीजिए कि जिससे मेरी शोकाग्नि शान्त हो जाय । वरुणदेवने कहा–हे राजन् ! आपको ऐसा ही पुत्र प्राप्त होगा । अब आप घर लौट जायँ, लेकिन अभी आपने मेरे सामने जो प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य करिएगा ॥४५-४८॥ व्यासजी बोले–वरुणदेवके ऐसा कहनेपर राजा हरिश्चन्द्र घर चले गये और वरदान पानेका समस्त वृत्तान्त अपनी रानीको कह सुनाया ॥ ४९ ॥ राजा हरिश्चन्द्रके एक सौ रानियाँ थीं । वे सब बड़ी सुंदरी

यदि त्वं तेन पुत्रेण मां यजेथाविशंकितः ॥ पशुबंधेन तेनैव ददामि नृपते वरम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ देव मे मास्तु वंध्यत्वं यजिष्येऽहं जलाधिप ॥ पशुं कृत्वा सुतं पुत्रं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४६ ॥ वंध्यत्वे परमं दुःखमसह्यं भुवि मानद ॥ शोकाग्निशमनं नृणां तस्माद्देहि सुतं शुभम् ॥ ४७ ॥ वरुण उवाच ॥ भविष्यति सुतः कामं राजन्गच्छ गृहाय वै ॥ सत्यं तद्वचनं कार्यं यद्ब्रवीषि ममाग्रतः ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो वरुणेनासौ हरिश्चन्द्रो गृहं ययौ ॥ भार्यायै कथयामास वृत्तांतं वरदानजम् ॥ ४९ ॥ तस्य भार्याशतं पूर्णं बभूवातिमनोहरम् ॥ पट्टराज्ञी शुभा शैव्या धर्मपत्नी पतिव्रता ॥ ५० ॥ काले गतेऽथ सा गर्भं दधार वरवर्णिनी ॥ बभूव मुदितो राजा श्रुत्वा दोहदचेष्टितम् ॥ ५१ ॥ कारयामास विधिवत्संस्कारान्नृपतिस्तदा ॥ मासेऽथ दशमे पूर्णे सुषुवे सा शुभे दिने ॥ ५२॥ ताराग्रहबलोपेते पुत्रं देवसुतोपमम् ॥ पुत्रे जाते नृपः स्नात्वा ब्राह्मणैः परिवेष्टितः ॥ ५३ ॥ चकार जातकर्मादौ ददौ दानानि भूरिशः ॥ राज्ञश्चातिप्रमोदोऽभूत्पुत्रजन्मसमुद्भवः ॥ ५४ ॥ बभूव परमोदारो धनधान्यसमन्वितः ॥ विशेषदानसंयुक्तो गीतवादित्रसंकुलः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

थीं । उनमेंसे कल्याणी और पतिव्रता शैव्या ही उनकी मुख्य धर्मपत्नी एवं पटरानी थी ॥ ५० ॥ कुछ समय बाद वह कुलीन महिला गर्भवती हुई । उसके गर्भवती होनेकी बात सुनकर राजाको अपार हर्ष हुआ ॥ ५१ ॥ तब राजाने उसका विधिवत् गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन आदि संस्कार कराया । दसवें महीनेमें महारानी शैव्याने शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और जब शुभग्रह बली थे, उस शुभ मुहूर्तमें देवताओंके पुत्रको तरह अतीव कांतिमान् पुत्र प्रसव किया । उस पुत्रके जन्म लेनेपर राजा हरिश्चन्द्रने ब्राह्मणोंके साथ जाकर स्नान किया ॥५२॥५३॥ सर्वप्रथम बालकका उन्होंने जातकर्मसंस्कार करके ब्राह्मणों और याचकोंको मुँहमाँगा दान दिया । पुत्रका जन्म होनेसे राजा बहुत प्रसन्न हुए ॥ ५४ ॥ उस समय वे बड़े उदार हो गये । जिसने धन माँगा, उसे धन दिया । जिसने खाद्य पदार्थ माँगा, उसे खाद्य पदार्थ दिया और जिसने भूमि माँगी, उसे भूमि मिली । फिर समस्त अयोध्याराज्यमें गायन-वाद्यका आयोजन किया गया ॥५५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(हरिश्चन्द्रोपाख्यान) व्यासजी बोले—हे राजन् ! जब राजा हरिश्चन्द्रके यहाँ पुत्र-जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय सुन्दर ब्राह्मणका वेश धारण करके वरुणदेव वहाँ जा पहुँचे ॥ १ ॥ वे कहने लगे—आपका कल्याण हो, मैं वरुण देवता हूँ। मेरी बात सुनिये। हे राजन् ! आपको पुत्र हो गया है, अब तुरंत उसके द्वारा मेरा यज्ञ करिए ॥ २ ॥ हे राजन् ! मेरे वरदानसे आज आपके निपूतेपनका दोष जाता रहा। अब जो बात आपने पहले कही थी, उसे सच कीजिए ॥३॥ वरुणदेवकी बात सुनकर राजा चिन्तित हो गये। उन्होंने सोचा कि कमलके समान कोमल मुखवाले ऐसे सुकुमार पुत्रके द्वारा मैं नरमेध यज्ञ कैसे करूँ ? ॥ ४ ॥ किंतु स्वयं लोकपाल एवं पराक्रमी वरुणदेव ब्राह्मणका रूप धारण करके आये हुए हैं। यदि इनकी बात न मानूँ तो मेरा अनिष्ट होगा। क्योंकि आत्मकल्याणके इच्छुक व्यक्तिको चाहिये कि वह देवताओंका अनादर कदापि न करे ॥ ५ ॥ लेकिन पुत्रस्नेहको दूर करना भी तो बड़ा टेढ़ा कार्य होता है। अब मैं ऐसा कौन-सा उपाय करूँ कि जिससे मुझे सन्तान-जनित सुख मिले ? ॥ ६ ॥ फिर धैर्य धारणपूर्वक राजा हरिश्चन्द्रने वरुणदेवको नमस्कार किया और विधिवत्

॥ व्यास उवाच ॥ प्रवृत्ते सदने तस्य राज्ञः पुत्रमहोत्सवे ॥ आजगाम तदा पाशी विप्रवेषधरः शुभः ॥ १ ॥ स्वस्तीत्युक्त्वा नृपं प्राह वरुणोऽहं निशामय ॥ पुत्रो जातस्तवाधीश यजानेन नृपाशु माम् ॥ २ ॥ सत्यं कुरु वचो राजन्यत्प्रोक्तं भवता पुरा ॥ वंध्यत्वं तु गतं तेऽद्य वरदानेन मे किल ॥ ३ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा चिंतां चकार ह ॥ कथं हन्मि सुतं जातं जलजेन समाननम् ॥ ४ ॥ लोकपालः समायातो विप्रवेषेण वीर्यवान् ॥ न देवहेलनं कार्यं सर्वथा शुभमिच्छता ॥५॥ पुत्रस्नेहः सुदुश्छेद्यः सर्वथा प्राणिभिः सदा ॥ किं करोमि कथं मे स्यात्सुखं संततिसंभवम् ॥ ६ ॥ धैर्यमालंब्य भूपालस्तं नत्वा प्रतिपूज्य च ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं युक्तं विनयपूर्वकम् ॥ ७ ॥ देवदेव तवानुज्ञां करोमि करुणानिधे ॥ वेदोक्तेन विधानेन मखं च बहुदक्षिणम् ॥ ८ ॥ पुत्रे जाते दशाहेन कर्मयोग्यो भवेत्पिता ॥ मासेन शुद्ध्येज्जननी दंपती तत्र कारणम् ॥ ९ ॥ सर्वज्ञोऽसि प्रचेतस्त्वं धर्मं जानासि शाश्वतम् ॥ कृपां कुरु त्वं वारीश क्षमस्व परमेश्वर ॥१०॥ व्यास उवाच॥इत्युक्तस्तु प्रचेतास्तं प्रत्युवाच जनाधिपम् ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कुरु कार्याणि पार्थिव ॥ ११ ॥ आगमिष्यामि मासांते यष्टव्यं सर्वथा त्वया ॥ कृत्वोत्थानिकमाचारं पुत्रस्य नृप-

उनकी पूजा की। तत्पश्चात् बड़े विनम्रभावसे यह युक्तिसंगत वाक्य बोले ॥ ७ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे देवाधिदेव ! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। हे करुणानिधि ! मैं वैदिक विधिसे प्रचुर दक्षिणायुक्त आपका यज्ञ करूँगा ॥ ८ ॥ अभी यज्ञ न करनेका कारण यह है कि पुत्रजन्म होनेपर दस दिन बाद पिता और एक महीने बाद माता शुद्ध होकर शुभ-कर्म करनेकी अधिकारिणी होती है। अतः जबतक पति-पत्नी दोनों शुद्ध न हो लें, तबतक नरमेध यज्ञ कैसे होगा ? ॥ ९ ॥ हे वरुणदेव ! आप तो स्वयं सब बातोंके विज्ञ हैं और सनातनसे चले आये धर्मको जानते हैं। हे जलेश्वर ! हे परमेश्वर ! अभी आप महीने भरके लिए क्षमा करिए ॥ १० ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! जब राजा हरिश्चन्द्रने यह कहा तो वरुणदेव बोले—हे महाराज ! आपका कल्याण हो। अब मैं जाता हूँ और आप अपने पुत्र-जन्मोत्सवका शेष कर्म पूर्ण करें ॥११॥ हे राजाधिराज ! एक महीनेके बाद मैं फिर आऊँगा। तब आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस बालकका जातकर्म-नामकरण आदि संस्कार करनेके बाद मेरा यज्ञ अवश्य कर दीजिएगा ॥१२॥ जलाधिपति वरुणदेव ऐसी मधुर वाणी कहकर जब चले गये तो महाराज हरिश्चन्द्र बड़े प्रसन्न हुए॥१३॥ उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको तिलपर्वत तथा करोड़ों ऐसी गायें दान करके दीं, जिनके थन कलश जैसे बड़े थे और जो सोनेके आभूषणोंसे आभूषित थीं॥१४॥ अपने पुत्रका मुँह देखकर राजा हरिश्चन्द्रको महान् आनंद प्राप्त हुआ और उन्होंने विधिवत् उस बालकका 'रोहित' नाम रखा ॥१५॥ एक महीनेका समय पूरा होनेपर फिर ब्राह्मणका रूप धारण करके वरुणदेव राजमहलमें आये और बार-बार कहने लगे कि अब वह यज्ञ कीजिए ॥१६॥ उन्हें देखकर राजा हरिश्चन्द्र शोकके समुद्रमें डूब गये। फिर भी उन्हें प्रणाम तथा अतिथिसत्कार करनेके बरद दोनों हाथ जोड़कर बोले-॥ १७ ॥ हे देव ! मैं धन्य हूँ। आज आपने यहाँ पधारकर मेरा समूचा महल पवित्र कर दिया। हे जलाधिदेव ! आपकी अभिलाषाके अनुसार मैं विधिवत् यज्ञ करूँगा ॥१८॥ लेकिन वेदवादी ब्राह्मणोंका कथन है कि यज्ञमें दन्तविहीन पशु श्रेष्ठ नहीं होता। अतः जब पुत्रके दाँत निकल आयेंगे, तब मैं आपका वह महायज्ञ करूँगा ॥१९॥ व्यासजी

सत्तम ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा श्लक्ष्णया वाचा राजानं यादसां पतिः ॥ हरिश्चन्द्रो मुदं प्राप गते पाशिनि पार्थिवः ॥ १३ ॥ कोटिशः प्रददौ गास्ता घटोध्नीर्हेमपूरिताः ॥ विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यश्च तथैव तिलपर्वतान् ॥ १४ ॥ राजा पुत्रमुखं दृष्ट्वा सुखमाप महत्तरम् ॥ नामास्य रोहितश्चेति चकार विधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥ पूर्णे मासे ततः पाशी विप्रवेषेण भूपतेः ॥ आजगाम गृहे सद्यो यजस्वेति ब्रुवन्मुहुः ॥ १६ ॥ वीक्ष्य तं नृपतिर्देवं निमग्नः शोकसागरे ॥ प्रणिपत्य कृतातिथ्यं तमुवाच कृताञ्जलिः ॥ १७ ॥ दिष्ट्या देव त्वमायातो गृहं मे पावितं प्रभो ॥ मखं करोमि वारीश विधिवद्वाञ्छितं तव ॥ १८ ॥ अदन्तो न पशुः श्लाघ्य इत्याहुर्वेदवादिनः ॥ तस्माद्दंतोद्भवे तेऽहं करिष्यामि महामखम् ॥ १९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तस्तेन वरुणस्तथेत्युक्त्वा ययावथ ॥ हरिश्चन्द्रो मुदं प्राप्य विजहार गृहाश्रमे ॥ २० ॥ पुनर्दन्तोद्भवं ज्ञात्वा प्रचेता द्विजरूपवान् ॥ आजगाम गृहे तस्य कुरु कार्यमिति ब्रुवन् ॥ २१ ॥ भूपालोऽपि जलाधीशं वीक्ष्य प्राप्तं द्विजाकृतिम् ॥ प्रणम्यासनसम्मानैः पूजयामास सादरम् ॥ २२ ॥ स्तुत्वा प्रोवाच वचनं विनयानतकंधरः ॥ करोमि विधिवत्कामं मखं प्रबलदक्षिणम् ॥२३॥ बालोऽप्यकृतचौलोऽयं गर्भकेशो न संमतः ॥ यज्ञार्थे पशुकरणे मया वृद्धमुखाच्छ्रुतम् ॥ २४ ॥ तावत्क्षमस्व वारीशं विधिं जानासि शाश्वतम् ॥ कर्तव्यः सर्वथा यज्ञो मुंडनांते शिशोः किल ॥ २५ ॥ तस्येति

बोले-हे राजन् ! जब राजा हरिश्चन्द्रने ऐसा कहा तो वरुणजी बोले-अच्छी बात है, मैं उसी समय आऊँगा। यह कहकर वे लौट गये। तब राजा हरिश्चन्द्र आनन्दित होकर गृहस्थाश्रमके सुखका आनन्द लेने लगे ॥ २० ॥ उसके बाद जब पता चला कि राजकुमारके दाँत निकल आये हैं, तब वे फिर ब्राह्मणका स्वरूप धारण करकें राजमहलमें पहुँचे और कहने लगे कि अब मेरा यज्ञ करिए ॥२१॥ ब्राह्मणके वेशमें जलाधिनाथ वरुणदेवको आया देखकर राजाने प्रणाम किया और आसन तथा अर्घ्य पाद्य आदि अर्पण करके उनकी पूजा की ॥ २२ ॥ फिर स्तुति करके अत्यन्त विनीत भावसे माथा नवाकर बोले-मैं आपका वह विपुल दक्षिणावाला यज्ञ विधिवत् करूँगा ॥ २३ ॥ किन्तु अभी इस बालकका 'चूड़ाकर्म' संस्कार नहीं हुआ है। मैंने बड़े बूढ़ोंके मुखसे सुना है कि यज्ञके लिए पशु बनानेमें गर्भकालीन केशधारी बालक अग्राह्य होते हैं ॥ २४ ॥ अतः हे जलेश्वर ! आप सनातनसे चली आयी हुई विधिको तो जानते ही हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सो चूडाकरण तककी अवधिके लिए क्षमा करिये। इस बालकका मुण्डनसंस्कार कर लेनेके बाद मैं अवश्य आपका यज्ञ करूँगा ॥२५॥ राजाकी बात सुनकर वरुणदेवने कहा—हे राजन्! आप कोई न कोई बहाना करके मुझे बार-बार धोखा देते आ रहे हैं ॥२६॥ हे राजन्! इस समय आपके पास यज्ञकी सारी सामग्री एकत्रित है, लेकिन पुत्रके ममतारूपी बन्धनमें बँधे रहनेके कारण आप अब फिर मुझे धोखा दे रहे हैं ॥ २७ ॥ अस्तु, मुण्डनसंस्कार हो जानेके बाद भी आप यदि मेरा यज्ञ नहीं करेंगे तो मैं कुपित होकर आपको भीषण शाप दे दूँगा ॥ २८ ॥ हे मानद! हे राजेंद्र! इस समय तो मैं आपकी बात मानकर चला जा रहा हूँ। लेकिन हे इक्ष्वाकुवंशज! आप अपनी बातको असत्य न करिएगा ॥ २९ ॥ ऐसा कहकर वरुणदेव तुरन्त राजमहलसे चले गये। तब राजा भी अतीव प्रमुदित होकर अपने राजभवनमें आनन्द करने लगे ॥३०॥ जब चूडाकरणसंस्कारसम्बन्धी महान् उत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय वरुणदेव फिर बड़े वेगसे राजाके पास आये ॥ ३१ ॥ महारानी शैव्या अपनी गोदमें रोहितको लेकर राजा हरिश्चन्द्रकी बगलमें बैठी थीं और ज्योंही मुण्डन होने लगा, त्योंही वरुणदेव पहुँच

वचनं श्रुत्वा प्रचेताः प्राह तं पुनः ॥ प्रतारयसि मां राजन्पुनः पुनरिदं ब्रुवन् ॥ २६ ॥ अपि ते सर्वसामग्री वर्तते नृपतेऽधुना ॥ पुत्रस्नेहनिबद्धस्त्वं वंचयस्येव सांप्रतम् ॥ २७ ॥ क्षौरकर्मविधिं कृत्वा न कर्ताऽसि मखं यदि ॥ तदाऽहं दारुणं शापं दास्ये कोपसमन्वितः ॥ २८ ॥ अद्य गच्छामि राजेंद्र वचनात्तव मानद ॥ न मृषा वचनं कार्यं त्वयेक्ष्वाकुकुलोद्भव ॥ २९ ॥ इत्याभाष्य ययावाशु प्रचेता नृपतेर्गृहात् ॥ राजा परमसंतुष्टो ननंद भवने तदा ॥ ३० ॥ चूडाकरणकाले तु प्रवृत्ते परमोत्सवे ॥ संप्राप्तस्तरसा पाशी भवनं नृपतेः पुनः ॥ ३१ ॥ यदांके सुतमादाय राज्ञी नृपतिसन्निधौ ॥ उपविष्टा क्रियाकाले तदैव वरुणोऽभ्यगात् ॥ ३२ ॥ कुरु कर्मेति विस्पष्टं वचनं कथयन्नृपम् ॥ विप्ररूपधरः श्रीमान्प्रत्यक्ष इव पावकः ॥ ३३ ॥ नृपतिस्तं समालोक्य बभूवातीव विह्वलः ॥ नमश्चकार तं भीत्या कृतांजलिपुटः पुरः ॥ ३४ ॥ विधिवत्पूजयित्वा तं राजोवाच विनीतवान् ॥ स्वामिन्कार्यं करोम्यद्य मखस्य विधिपूर्वकम् ॥ ३५ ॥ वक्तव्यमस्ति तत्रापि शृणुष्वैकमना विभो ॥ युक्तं चेन्मन्यसे स्वामिंस्तद्ब्रवीमि तवाग्रतः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ संस्कृताश्चान्यथा शूद्रा एवं वेदविदो विदुः ॥ ३७ ॥ तस्मादयं सुतो मेऽद्य शूद्रवद्वर्तते शिशुः ॥ उपनीतः क्रियार्हः स्यादिति वेदेषु निर्णयः ॥ ३८ ॥ राज्ञामेकादशे वर्षे सदोपनयनं स्मृतम् ॥ अष्टमे ब्राह्मणानां च वैश्यानां

गये ॥३२॥ वे एक श्रीमान् ब्राह्मणका वेश धारण किये थे और साक्षात् अग्निदेवके समान तेजस्वी थे। वहाँ पहुँचते ही वरुणने राजासे साफ शब्दोंमें कहा कि अब यज्ञ आरम्भ कर दीजिए ॥३३॥ उन्हें देखते ही राजा हरिश्चन्द्र सकपका गये। डरते हुए उन्होंने नमस्कार किया और हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये ॥३४॥ तदनन्तर उन्होंने वरुणकी विधिपूर्वक पूजा की और बड़ी दीनताके साथ कहने लगे—हे प्रभु! अब मैं विधिके साथ आपका यज्ञ करूँगा ॥३५॥ लेकिन इसके सम्बन्धमें मुझे आपसे कुछ कहना है। हे सर्वव्यापी देव! आप एकाग्रचित्तसे सुनें। मैं आपसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ, यदि आप उसे उचित समझें तो स्वीकार कर लें ॥ ३६ ॥ बात यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं। इनका जबतक उपनयनसंस्कार नहीं होता, तबतक ये शूद्र रहते हैं। यह वैदिक विद्वानोंका कथन है ॥ ३७ ॥ इसलिए अभी तो मेरा यह पुत्र शूद्रके समान है। उपनयनसंस्कार हो जानेके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाद ही यह यज्ञ-यागादि कर्मोंका अधिकारी होगा। यही बात वेदोंमें भी कही गयी है कि ब्राह्मणोंका आठवें वर्ष, क्षत्रियोंका ग्यारहवें वर्ष और वैश्योंका बारहवें वर्षमें उपनयन–संस्कार हो जाना चाहिए ॥३८॥३९॥ हे देवराज ! मैं उस उपनीत पशुसे आपका श्रेष्ठ यज्ञ करूँगा ॥४०॥ हे धर्मज्ञ ! हे विभो ! आप लोकपाल हैं। यदि आप मेरी प्रार्थनाको धर्मशास्त्रसम्मत समझें तो अपने लोकको लौट जायँ ॥४१॥ व्यासजी बोले–हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर जलाधिदेव वरुणको दया आ गयी और वे स्वीकृति देकर चले गये। उनके चले जानेपर राजाका चेहरा प्रसन्नतासे खिल उठा ॥ ४२ ॥ वरुणदेवके चले जानेपर राजाके हर्षकी सीमा नहीं रही। राजकुमारकी प्राणरक्षा हो जानेसे उन्हें बड़ा आनंद मिला और अलौकिक प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ ४३ ॥ हे राजा जनमेजय ! महाराज हरिश्चन्द्र अपना राजकाज देखने लगे। इस प्रकार समय कटते-कटते राजकुमारका दस वर्ष पूरा हो गया ॥ ४४ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों और राजमन्त्रियोंकी सम्मतिके अनुसार अपने विभवके अनुरूप राजकुमारकी उपनयन–संस्कारसम्बन्धी सामग्री जुटायी ॥ ४५ ॥ पुत्रका ग्यारहवाँ वर्ष लगते ही उन्होंने विधिपूर्वक उसके

द्वादशे किल ॥ ३९ ॥ दयसे यदि देवेश दीनं मां सेवकं तव ॥ तदोपनीय कर्ताऽस्मि पशुना यज्ञमुत्तमम् ॥ ४० ॥ लोकपालोऽसि धर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ मन्यसे मद्वचः सत्यं तद्गच्छ भवनं विभो ॥ ४१ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा दयावान् यादसां पतिः॥ ओमित्युक्त्वा ययावाशु प्रसन्नवदनो नृपः ॥ ४२ ॥ गतेऽथ वरुणे राजा बभूवातिमुदान्वितः ॥ सुखं प्राप्य सुतस्यैवं राजा मुदमवाप ह ॥ ४३ ॥ चकार राजकार्याणि हरिश्चन्द्रस्तदा नृपः ॥ कालेन व्रजता पुत्रो बभूव दशवार्षिकः ॥ ४४ ॥ तस्योपवीतसामग्रीं विभूतिसदृशीं नृपः ॥ चकार ब्राह्मणैः शिष्टैरन्वितः सचिवैस्तथा ॥ ४५ ॥ एकादशे सुतस्याब्दे व्रतबंधविधौ नृपः ॥ विदधे विधिवत्कार्यं चित्ते चिन्तातुरः पुनः ॥ ४६ ॥ वर्तमाने तथा कार्ये उपनीते कुमारके ॥ आजगामाथ वरुणो विप्रवेषधरस्तदा ॥ ४७ ॥ तं वीक्ष्य नृपतिस्तूर्णं प्रणम्य पुरतः स्थितः ॥ कृतांजलिपुटः प्रीतः प्रत्युवाच सुरोत्तमम् ॥ ४८ ॥ देव दत्तोपवीतोऽयं पशुयोग्योऽस्ति मे सुतः ॥ प्रसादात्तव मे शोको गतो वंध्यापवादजः ॥ ४९ ॥ कर्तुमिच्छाम्यहं यज्ञं प्रभूतवरदक्षिणम् ॥ समये शृणु धर्मज्ञ सत्यमद्य ब्रवीम्यहम् ॥ ५० ॥ समावर्तनकर्मांते करिष्यामि तवेप्सितम् ॥ ममोपरि दयां कृत्वा तावत्त्वं क्षंतुमर्हसि ॥ ५१ ॥ वरुण उवाच ॥ प्रतारयसि मां राजन्पुत्रप्रेमाकुलो भृशम् ॥ मुहुर्मुहुर्मतिं कृत्वा युक्तियुक्तां महामते ॥ ५२ ॥ गच्छाम्यद्य महाराज वचसा

उपनयन-संस्कारका श्रीगणेश किया, किन्तु उनका मन उद्विग्न था ॥ ४६ ॥ ज्यों ही राजकुमारका यज्ञोपवीत-संस्कार होने लगा, त्यों ही वरुणदेव ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ पहुँच गये ॥ ४७ ॥ राजाने उनको देखा, तैसे ही सिर नवाकर सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़कर बड़े प्रेमपूर्वक बोले–॥ ४८ ॥ हे देव ! यज्ञोपवीत हो जानेसे मेरा पुत्र पशुके योग्य हो गया और आपकी कृपासे मेरा निःसन्तान होनेका शोक भी जाता रहा ॥ ४९ ॥ अब मैं चाहता हूँ कि पुष्कल दक्षिणावाला आपका उत्कृष्ट यज्ञ किसी उपयुक्त अवसरपर कर डालूँ। हे धर्मके ज्ञाता ! आज मैं आपसे सच्ची बात कह रहा हूँ, उसे सुन लीजिए ॥५०॥ समावर्तन संस्कारके बाद मैं आपका अभिलषित यज्ञ कर डालूँगा। तब तकके लिए आप मेरे ऊपर दया करके मुझे क्षमा करें ॥ ५१ ॥ वरुण बोले—हे महामते राजन् ! आप पुत्रप्रेमवश हर बार एक न एक तर्कसंगत बात कहकर बराबर मुझे धोखा देते चले आ रहे हैं ॥ ५२ ॥ अस्तु,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे महाराज ! आज तो मैं आपके कथनानुसार चला जा रहा हूँ । लेकिन समावर्तन कर्मके बाद मैं फिर आऊँगा ॥५३॥ हे राजा जनमेजय ! ऐसा कहकर जब वरुणदेव चले गये तो राजा हरिश्चन्द्र हर्षित होकर आगेका काम करने लगे ॥५४॥ राजकुमार रोहित बड़े प्रतिभाशाली थे, इस लिए बार-बार वरुणदेवको आते देख और नरमेध यज्ञका प्रस्ताव जानकर वे चिन्तातुर हो उठे ॥ ५५ ॥ उन्होंने लोगोंसे पूछा कि पिताजीका शोक उत्तरोत्तर क्यों बढ़ता जा रहा है ? हे आयुष्मन् जनमेजय ! जब लोगोंने बतलाया कि आपको मारकर वरुणका यज्ञ होगा, तब रोहिताश्वने भाग जानेका निश्चय कर लिया ॥ ५६ ॥ मन्त्रियोंसे सलाह करके उन्होंने दृढ़ सङ्कल्प किया और एक दिन अयोध्या नगरी छोड़कर वे वनको चल पड़े ॥ ५७ ॥ इस प्रकार पुत्रके भाग जानेपर हरिश्चन्द्र बड़े दुःखित हुए और राजकुमारको ढूँढ़ लानेके लिए अपने दूतोंको भेजा ॥ ५८ ॥ इस तरह कुछ समय बीता । तब एक दिन वरुण उनके घर पहुँचे और शोकसन्तप्त राजासे कहने लगे कि अब वह यज्ञ कर डालिये ॥ ५९ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने सिर नवाकर कहा—हे देवदेव ! अब मैं क्या करूँ ? अपने प्राणके लोभसे व्याकुल होकर कुछ दिन

तव नोदितः ॥ आगमिष्यामि समये समावर्तनकर्मणि ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ पाशी तमापृच्छ्य विशांपते ॥ राजा प्रमुदितः कार्यं चकार च यथोत्तरम् ॥ ५४ ॥ आगतं वरुणं दृष्ट्वा कुमारोऽतिविचक्षणः ॥ यज्ञस्य समयं ज्ञात्वा तदा चिंतातुरोऽभवत् ॥ ५५ ॥ शोकस्य कारणं राज्ञः पर्यपृच्छदितस्ततः ॥ ज्ञात्वाऽऽत्मवधमायुष्मन्गमनाय मतिं दधौ ॥ ५६ ॥ निश्चयं परमं कृत्वा संमंत्र्य सचिवात्मजैः ॥ प्रययौ नगरात्तस्मान्निर्गत्य वनमप्यसौ ॥ ५७ ॥ गते पुत्रे नृपः कामं दुःखितोऽभूद्भृशं तदा ॥ प्रेरयामास दूतान्स्वांस्तस्यान्वेषणकाम्यया ॥ ५८ ॥ एवं गतेऽथ कालेऽसौ वरुणस्तद्गृहं गतः ॥ राजानं शोकसंतप्तं कुरु यज्ञमिति ब्रुवन् ॥ ५९ ॥ राजा प्रणम्य तं प्राह देवदेव करोमि किम् ॥ न जाने क्वापि पुत्रो मे गतस्त्वद्य भयाकुलः ॥ ६० ॥ सर्वत्र गिरिदुर्गेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ अन्वेषितो मे दूतैस्तु न प्राप्तो यादसांपते ॥ ६१ ॥ आज्ञापय महाराज किं करोमि गते सुते ॥ न मे दोषोऽत्र सर्वज्ञ भाग्यदोषस्तु सर्वथा ॥ ६२ ॥ व्यास उवाच ॥ इति भूपवचः श्रुत्वा प्रचेताः कुपितो भृशम् ॥ शशाप च नृपं क्रोधाद्वंचितस्तु पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ नृपतेऽहं त्वया यस्माद्वचसा च प्रवंचितः ॥ तस्माज्जलोदरो व्याधिस्त्वां तुदत्वतिदारुणः ॥ ६४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति शप्तो महीपालः कुपितेन प्रचेतसा ॥ पीडितोऽभूत्तदा राजा व्याधिना दुःखदेन तु ॥ ६५ ॥ एवं शप्त्वा नृपं पाशी

पहले राजपुत्र न जाने कहाँ भाग गया है ॥ ६० ॥ हे जलजन्तुओंके अधिपति ! मैंने पहाड़की कन्दराओं और मुनियोंके आश्रमोंमें सर्वत्र अपने गुप्तचरोंको भेजकर ढुँढ़वाया, लेकिन कहीं भी उसका पता नहीं लगा ॥ ६१ ॥ हे महाराज ! अब आप ही बताइए कि पुत्रके भाग जानेपर मैं क्या करूँ ? हे सर्वज्ञ ! इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं है—यह एकमात्र मेरे भाग्यका दोष है ॥ ६२ ॥ व्यासजी बोले-राजाका यह बात सुनकर वरुणदेव क्रोधसे तमतमा उठे । राजाके बारम्बार धोखा देनेसे उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और उन्होंने राजाको शाप देते हुए कहा—॥ ६३ ॥ हे राजन् ! तरह-तरहकी बातोंसे आप मुझे बराबर धोखा देते आये हैं । इसलिए आप अतीव भयङ्कर जलोदर रोगसे क्लेश पायेंगे ॥ ६४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! वरुणके कुपित होकर इस प्रकार शाप देनेसे महाराज हरिश्चन्द्र उस महान् कष्टदायक जलोदर रोगसे ग्रस्त हो गये ॥ ६५ ॥ इधर पाशधारी वरुणदेव राजाको इस प्रकार शाप देकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने लोक लौट गये। उधर राजा उस भीषण रोगसे आक्रान्त होकर बड़े कष्टमें पड़ गये ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

(हरिश्चन्द्रोपाख्यान) व्यासजी बोले—हे राजन्! वरुणदेवके चले जानेपर महाराज हरिश्चन्द्र जलोदर रागसे अत्यन्त पीड़ित हुए। ज्यों-ज्यों दिन बीतता गया, त्यों-त्यों कष्ट बढ़ता रहा। उनका क्लेश इतना बढ़ा कि वे ऊब उठे ॥ १ ॥ हे राजा जनमेजय! जंगलमें जब राजकुमार रोहिताश्वको अपने पिताके जलोदर रोगसे उत्पन्न कष्टकी बातका पता लगा तो पितृप्रेमके कारण उन्होंने अयोध्या लौट जानेका विचार किया ॥ २ ॥ उधर जब देवराज इन्द्रको मालूम हुआ कि राजकुमारने एक वर्ष बीतनेपर अपने पिताका दर्शन करनेके लिए अयोध्या जानेका निश्चय किया है तो वे रोहितके पास पहुँचे ॥३॥ इन्द्रने तुरत एक ब्राह्मणका रूप धारण करके युक्तिपूर्वक राजकुमार रोहितको जानेसे रोका, जो अपने पिताके दर्शनके लिए बहुत व्यग्र था ॥ ४ ॥ इन्द्र बोले-हे राजपुत्र! आप राजनीतिकी पेंचीदी बातोंको नहीं जानते। इसीलिए अज्ञानतावश आपने व्यर्थ अयोध्या जानेका विचार किया है ॥ ५ ॥ हे

जगाम निजमास्पदम् ॥ राजा प्राप्य महाव्याधिं बभूवातीव दुःखितः ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५॥

॥ व्यास उवाच ॥ गतेऽथ वरुणे राजा रोगेणातीव पीडितः ॥ दुःखाद्दुःखं परं प्राप्य व्यथितोऽभूद्भृशं तदा ॥ १ ॥ कुमारोऽसौ वने श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम् ॥ गमनाय मतिं राजंश्चकार स्नेहयंत्रितः ॥ २ ॥ संवत्सरे व्यतीते तु पितरं द्रष्टुमादरात् ॥ गंतुकामं तु तं ज्ञात्वा शक्रस्तत्रा-जगाम ह ॥ ३ ॥ वासवस्तु तदा रूपं कृत्वा विप्रस्य सत्वरः ॥ वारयामास युक्त्या वै कुमारं गंतुमुद्यतम् ॥ ४ ॥ इन्द्र उवाच ॥ राजपुत्र न जानासि राजनीतिं सुदुर्लभाम् ॥ अतः करोषि मूढस्त्वं गमनाय गतिं वृथा ॥ ५ ॥ पिता तव महाभाग ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ कारयिष्यति होमं ते ज्वलितेऽथ विभावसौ ॥ ६ ॥ आत्मा हि वल्लभस्तात सर्वेषां प्राणिनां खलु ॥ तदर्थे वल्लभाः संति पुत्रदारधनादयः ॥ ७ ॥ आत्मनो देहरक्षार्थं हत्वा त्वां वल्लभं सुतम् ॥ हवनं कारयित्वाऽसौ रोगमुक्तो भविष्यति ॥ ८ ॥ तस्मात्त्वया न गंतव्यं राजपुत्र पितुर्गृहे ॥ मृते पितरि गंतव्यं राज्यार्थे सर्वथा पुनः ॥ ९ ॥ एवं निषेधितस्तत्र वासवेन नृपात्मजः ॥ वनमध्ये स्थितः कामं पुनः संवत्सरं नृपः ॥ १० ॥ अत्यंतं दुःखितं श्रुत्वा हरिश्चंद्रं तदाऽऽत्मजः ॥ गमनाय मतिं चक्रे मरणे कृतनिश्चयः ॥ ११ ॥ तुराषाड् द्विजरूपेण तत्रागत्य च रोहितम् ॥ निवारयामास सुतं युक्तिवाक्यैः पुनः

महाभाग! जब आप वहाँ पहुँच जायँगे तो आपके पिता वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा नरमेध यज्ञ आरम्भ करा देंगे। अग्नि प्रज्वलित हो जानेपर आपको बलिपशु बनाकर वे आपके मांसकी आहुति देंगे ॥ ६ ॥ हे वत्स! सभी प्राणियोंको अपना जीवन बहुत प्रिय होता है। जीवनकी रक्षाके लिए ही पुत्र, स्त्री और धन आदि प्रिय लगते हैं ॥ ७ ॥ अपनी देह बचानेके लिए आप जैसे प्रिय पुत्रको भी मरवाकर वे होम करायेंगे। ऐसा करके वे जलोदर रोगसे मुक्त हो जायँगे ॥८॥ अतएव हे राजपुत्र! अभी आपका पिताके पास जाना उचित नहीं है। हाँ, यदि आपके पिता मर जायँ तो राज्य करनेके लिए अवश्य जाइएगा ॥ ९ ॥ हे राजा जनमेजय! इस प्रकार जब इन्द्रने राजकुमार रोहितको अयोध्या जानेसे रोका तो वे फिर एक साल तक वनमें रुके रह गये ॥ १० ॥ राजपुत्रको जब पता चला कि उनके पिता महाराज हरिश्चन्द्र अब बहुत कष्टमें हैं, तब रोहितने निश्चय किया कि चाहे पिताजी हमारा बलिदान ही क्यों न कर दें, फिर भी मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनका दर्शन करनेके लिए अवश्य जाऊँगा ॥११॥ तब फिर इन्द्र ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ पहुँचे और राजकुमार रोहितको तरह-तरहकी युक्तिसंगत बातोंसे समझाकर रोक दिया। इसी प्रकार जब-जब उसके मनमें घर जानेका संकल्प उठता, तब-तब इन्द्र आकर उसे रोक देते थे ॥ १२ ॥ इधर राजा हरिश्चन्द्र जब कष्टसे बहुत अधीर हो गये, तब उन्होंने गुरु वसिष्ठजीसे कहा कि इस रोगसे छूटनेके लिए कोई निश्चित उपाय बतलाइए ॥१३॥ ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीने कहा—हे राजन्! अपने द्रव्यसे एक बालक खरीद लीजिए और उस 'क्रीतक' पुत्रसे आप वह नरमेध यज्ञ कर डालिए। ऐसा करनेसे आप शापमुक्त हो जायँगे ॥१४॥ हे नरशार्दूल! वेदके पारङ्गत ब्राह्मणोंने औरस-क्षेत्रज आदि दस प्रकारके पुत्र बतलाये हैं। अतएव आप द्रव्यसे एक बालक खरीदकर उसे अपना 'क्रीतक' पुत्र बना लीजिए ॥१५॥ इससे वरुणदेव हर्षित होकर आपको रोगमुक्त कर देंगे। आपके राज्यका ही कोई ब्राह्मण धनके लोभसे अपना पुत्र बेंच देगा ॥१६॥ महात्मा वसिष्ठकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और अपने प्रधान मन्त्रीको वैसा पुत्र ढूँढनेके लिए भेजा ॥ १७ ॥ उसी राज्यमें 'अजीगर्त' नामक

पुनः ॥ १२ ॥ हरिश्चन्द्रोऽतिदुःखार्तो वसिष्ठं स्वपुरोहितम् ॥ प्रपच्छ रोगनाशाय तत्रोपायं सुनिश्चितम् ॥ १३ ॥ तमाह ब्रह्मणः पुत्रो यज्ञं कुरु नृपोत्तम ॥ क्रयक्रीतेन पुत्रेण शापमोक्षो भविष्यति ॥ १४ ॥ पुत्रा दशविधाः प्रोक्ता ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ द्रव्येणानीय तस्मात्त्वं पुत्रं कुरु नृपोत्तम ॥ १५ ॥ वरुणोऽपि प्रसन्नः सन्सुखकारी भविष्यति ॥ लोभात्कोऽपि द्विजः पुत्रं प्रदास्यति स्वराष्ट्रजः ॥ १६ ॥ एवं प्रमोदितो राजा वसिष्ठेन महात्मना ॥ प्रधानं प्रेरयामास तदन्वेषणकाम्यया ॥ १७ ॥ अजीगर्तो द्विजः कश्चिद्विषये तस्य भूपतेः ॥ तस्यासंश्च त्रयः पुत्रा निर्धनस्य विशेषतः ॥ १८ ॥ प्रधानेनाप्यसौ पृष्टः पुत्रार्थं दुर्बलो द्विजः ॥ गवां शतं ददामीति देहि पुत्रं मखाय वै ॥ १९ ॥ शुनःपुच्छः शुनःशेपः शुनोलांगूल इत्यमी ॥ तेषामेकतमं देहि ददामि तु गवां शतम् ॥ २० ॥ अजीगर्तस्तु तच्छ्रुत्वा क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ पुत्रं च कतमं तेभ्यो विक्रेतुं वै मनो दधे ॥ २१ ॥ कार्याधिकारिणं ज्येष्ठं मत्वा नासावदादमुम् ॥ कनिष्ठं नाप्यदान्माता ममैष इतिवादिनी ॥ २२ ॥ मध्यमं च शुनःशेपं ददौ गवां शतेन च ॥ आनिनाय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः ॥ २३ ॥ रुदन्तं दुःखितं दीनं वेपमानं भृशातुरम् ॥ यूपे बद्धं निरीक्ष्यामुं चुक्रुशुर्मुनयस्तदा

एक निर्धन ब्राह्मण रहते थे। उनके तीन पुत्र थे ॥१८॥ पुत्र खरीदनेको गये हुए प्रधानमन्त्रीने उस निर्धन ब्राह्मणके पास जाकर कहा कि मैं आपको एक सौ गाय दूँगा। आप अपना कोई पुत्र यज्ञके निमित्त मुझे दे दीजिए ॥१९॥ 'शुनःपुच्छ', 'शुनःशेप' और 'शुनोलांगूल' नामके जो तीन पुत्र हैं, उनमेंसे कोई एक पुत्र मुझे दे दीजिये। उसके बदले मैं आपको एक सौ गायें दूँगा ॥ २० ॥ निर्धन अजीगर्त भूखसे व्याकुल थे। अतएव यह बात सुनते ही वे उन तीनों पुत्रोंमेंसे किसी एकको बेच डालनेकी बात सोचने लगे ॥२१॥ ज्येष्ठ पुत्र पिण्डा पानी देनेका अधिकारी होता है, यह सोचकर उसे नहीं बेचा। छोटे पुत्रको ममतामयी माताने यह कहकर नहीं दिया कि यह मेरा पुत्र है ॥ २२ ॥ अतः मँझले पुत्र 'शुनःशेप'को अजीगर्तने एक सौ गाय लेकर बेंच दिया। तब मन्त्री उसे राजाके पास ले आये और उन्होंने उसे 'नरमेध' यज्ञका पशु बनाया ॥२३॥ जब शुनःशेप यज्ञीय स्तम्भमें वधके निमित्त बाँधा गया, उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समय वह चिल्लाकर रोने लगा । उस दीन, दुखी, आतुर तथा भयसे काँपते हुए बालकको देखकर ऋषिलोग भी चिल्ला उठे ॥२४॥ तभी राजा हरिश्चन्द्रने नरमेध यज्ञमें वध करनेके लिए शुनःशेपको पशुरूपसे शामिता अर्थात् वधकर्ताको दे दिया । किन्तु उसने उस बालकपर हथियार नहीं चलाया ॥ २५ ॥ शामिता बोला—इस दीन, दुखी और अत्यन्त करुण स्वरसे विलाप करनेवाले बालकको लोभके वशीभूत होकर मैं नहीं मारूँगा ॥२६॥ यह कहकर शामिता (वधकर्ता) उस घृणित कार्यसे अलग हो गया । तब राजाने सभासदोंसे पूछा—हे ब्राह्मणो ! अब क्या किया जाय ? ॥ २७ ॥ शुनःशेप जब बड़े विचित्र ढंगसे चीखने लगा तो अयोध्याकी जनता भी इस प्रसङ्गको लेकर हाहाकार करने लगी ॥ २८ ॥ तब बालकके पिता विप्र अजीगर्तने यज्ञस्थलमें खड़े होकर राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—हे राजन् ! आप घबड़ायँ नहीं, मैं स्वयं आपका काम पूरा करूँगा ॥२९॥ मुझे धन चाहिए । अतएव आप जितना धन शामिताको देते, उससे दूना धन यदि मुझे दीजिए तो मैं अभी इस पशुका वध कर दूँगा, जिससे आपका यज्ञ पूरा हो जायगा ॥३०॥ क्योंकि दुखिया और धनार्थी मनुष्यको कोई भी उत्कृष्ट या निकृष्ट काम

॥ २४ ॥ शामित्राय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः ॥ शामिता नाददे शस्त्रं तमालंभयितुं शिशुम् ॥ २५ ॥ नाहं द्विजसुतं दीनं रुदंतं करुणं भृशम् ॥
हनिष्यामि स्वलोभार्थमित्युवाचाप्यसौ तदा ॥२६॥ इत्युक्त्वा विररामासौ कर्मणो दुष्करादथ ॥ राजा सभासदः प्राह किं कर्तव्यमिति द्विजाः ॥२७॥
जातः किलकिलाशब्दो जनानां क्रोशतां तदा ॥ क्रंदमाने शुनःशेपे सभायां भृशमद्भुतम् ॥ २८ ॥ अजीगर्तस्ततोत्थाय तमुवाच नृपोत्तमम् ॥
राजन्कार्यं करिष्यामि तवाहं सुस्थिरो भव ॥ २९ ॥ वेतनं द्विगुणं देहि हनिष्यामि पशुं किल ॥ कर्तव्यं मखकार्यं वै मया तेऽद्य धनार्थिना ॥ ३० ॥
दुःखितस्य धनार्थस्य सदाऽसूया प्रसूयते ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिश्चन्द्रो मुदान्वितः ॥ ३१ ॥ तमुवाच ददाम्यद्य गवां शतमनुत्तमम् ॥ तदाकर्ण्य पिता तस्य पुत्रं हन्तुं समुद्यतः ॥ ३२ ॥ लोभेनाकुलचित्तोऽसौ शामित्रे कृतनिश्चयः ॥ समुद्यतं च तं दृष्ट्वा जनाः सर्वे सभासदः ॥३३॥ चुक्रुशुर्भृशदुःखार्ता हाहेति जगदुर्वचः ॥ पिशाचोऽयं महापापी क्रूरकर्मा द्विजाकृतिः ॥ ३४ ॥ यत्स्वयं स्वसुतं हन्तुमुद्यतः कुलपांसनः ॥ धिक्चांडाल किमेतत्ते पापकर्म चिकीर्षितम् ॥३५॥ हत्वा सुतं धनं प्राप्य किं सुखं ते भविष्यति ॥ आत्मा वै जायते पुत्र अंगाद्वै वेदभा-

करनेमें हिचक नहीं होती । व्यासजी बोले—हे राजन् ! अजीगर्तकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥३१॥ उन्होंने कहा—अभी एक सौ उत्तम गायें मैं आपको दूँगा । राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर अजीगर्त अपने पुत्र शुनःशेपका वध करनेको तैयार हो गये ॥३२ धनके लोभवश उनकी बुद्धि ठिकाने नहीं रही और उन्होंने शामिता (वधिक) बनना भी स्वीकार कर लिया । जब वे हथियार लेकर प्रहार करनेको उद्यत हुए, तब यज्ञस्थलमें उपस्थित सारी जनता मारे दुःखके हाय-हाय करती हुई कहने लगी कि ब्राह्मणके रूपमें यह पिशाच है, महापापी है और क्रूर कर्म करनेवाला कसाई है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह ब्राह्मणकुलको कलंकित करता हुआ अपने बेटेकी हत्या करनेके लिए सन्नद्ध है । अरे चाण्डाल ! तुझे धिक्कार है । तू क्यों ऐसा पाप कर रहा है ? ॥ ३५ ॥ बेटेकी हत्या करके यदि अपार धनराशि भी प्राप्त हो तो उससे तुझे कौन-सा सुख मिलेगा ? वेदमें कहा गया है कि पुत्ररूपसे अपनी आत्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही उत्पन्न होती है ॥ ३६ ॥ इसलिए अरे पापी ! तू किस कारण अपनी 'आत्मा'का वध करनेपर उतारू है ? यज्ञस्थलमें जब इस प्रकार कोलाहल मचा तो विश्वामित्रजीका हृदय दयासे भर आया और वे राजा हरिश्चन्द्रसे बोले । विश्वामित्रने कहा—हे राजन् ! शुनःशेप बहुत विकल होकर रो रहा है । अतएव इसे आप पाशमुक्त कर दें ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ऐसा करनेसे एक तो यज्ञ पूरा होगा और दूसरे आपका रोग भी अवश्य दूर हो जायगा । क्योंकि दयाके समान कोई दूसरा पुण्य नहीं है और हिंसासे बढ़कर कोई पाप नहीं है ॥ ३९ ॥ जिह्वालालुपोंके जिह्वास्वादकी पूर्तिके लिए यज्ञमें हिंसा करनेका विधिवाद बना, जिससे उनमें यज्ञ करनेकी प्रवृत्ति बढ़े । लेकिन जहाँतक हो सके, हिंसासे निवृत्ति रखना ही शास्त्रका आशय है । अपने शरीरकी रक्षाके लिए दूसरे जीवकी हत्या करना अनुचित है । हे महाराज ! जो मनुष्य अपना कल्याण चाहे, वह अपने जीवनकी रक्षाके लिए दूसरे जीवकी हिंसा न करे । दयालु लोग समस्त प्राणियोंके साथ दयाका बर्ताव करते हैं। जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तोष करते हैं । जो इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, उनके ऊपर भगवान् जगदीश्वर शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं । हे नृपश्रेष्ठ !

पितम् ॥३६॥ तत्कथं पापबुद्धे त्वमात्मानं हन्तुमिच्छसि ॥ एवं कोलाहले तत्र जाते कुशिकनन्दनः ॥३७॥ समीपं नृपतेर्गत्वा तमुवाच दयापरः ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राजन्नमुं शुनःशेपं रुदंतं भृशदुःखितम् ॥ ३८ ॥ क्रतुस्ते भविता पूर्णो रोगनाशश्च सर्वथा ॥ दयासमं नास्ति पुण्यं पापं हिंसासमं नहि ॥ ३९ ॥ रागिणां रोचनार्थाय नोदनेयं विचारय ॥ आत्मदेहस्य रक्षार्थं परदेहनिकृंतनम् ॥ ४० ॥ न कर्तव्यं महाराज सर्वतः शुभमिच्छता ॥ दयया सर्वभूतेषु संतुष्टो येन केन च ॥४१॥ सर्वेन्द्रियोपशांत्या च तुष्यत्याशु जगत्पतिः ॥ आत्मवत्सर्वभूतेषु चिंतनीयं नृपोत्तम ॥ ४२ ॥ जीवितव्यं प्रियं नूनं सर्वेषां सर्वदा किल ॥ त्वमिच्छसि सुखं कर्तुं देहं हत्वा त्वमुं द्विजम् ॥ ४३ ॥ कथं नेच्छेदसौ देहं रक्षितुं स्वसुखास्पदम् ॥ पूर्वजन्मकृतं वैरं नानेन सह ते नृप ॥ ४४ ॥ येनामुं हंतुकामस्त्वं द्विजपुत्रं निरागसम् ॥ यो यं हन्ति विना वैरं स्वकामः सततं पुनः ॥ ४५ ॥ हंतारं हंति तं प्राप्य जननं जननान्तरे ॥ जनकोऽस्य सुदुष्टात्मा येनासौ ते समर्पितः ॥४६॥ स्वात्मजो धनलोभेन पापाचारः सुदुर्मतिः ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् ॥ ४७ ॥ यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ देशमध्ये च यः कश्चित्पापकर्म समाचरेत् ॥ ४८ ॥ षष्ठांशस्तस्य पापस्य राजा भुंक्ते

समस्त प्राणियोंको आप अपने समान ही समझें ॥ ४०–४२ ॥ जैसे अपनेको देह प्यारी होती है, उसी तरह सभी जीवोंको अपने शरीरपर ममता रहती है । अतएव सबको चाहिए कि लोकप्रिय बनकर अपना जीवन बिताये । आप इस ब्राह्मणकुमारकी हत्या करके रोग-मुक्त होकर अपने शरीरको बचाना चाहते हैं ? ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! तब यह ब्राह्मणतनय सुखके साधन-स्वरूप अपना शरीर क्यों न बचाना चाहे ? हे महाराज ! लेकिन यदि यह ब्राह्मणकुमार मरा तो इस जन्ममें आपके इस अपकारको कभी नहीं सहन करेगा ॥ ४४ ॥ क्योंकि आप एक निरपराध ब्राह्मण-बालकको मार डालना चाहते हैं । जो व्यक्ति अपनी कामना-पूर्तिके लिए किसी ऐसे जीवका वध करता है, जिसके साथ उसका वैर-विरोध नहीं रहता तो दूसरी योनिमें जन्म लेकर वह जीव अपने हत्यारेको मारकर उससे पूर्वजन्मका बदला चुकाता है । इस बालकका पिता बड़ा ही निन्दनीय व्यक्ति है । इसलिए उसने आपको इसे दे दिया ॥ ४५ ॥ ॥४६॥ अजीगर्त बड़ी ओछी प्रकृतिका और पापी मनुष्य है । तभी तो थोड़ेसे धनकी लालचमें अपने प्रिय पुत्रको उसने आपके हाथ बेंच डाला । कहाँ तो लोग चाहते हैं कि मेरे बहुतेर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुत्र पदा हों, जिनमेंसे सम्भवतः कोई गयातीर्थ जाय ।।४७।। कोई नील वृषभ (साँड़) छोड़े और कोई अश्वमेध यज्ञ करे। राज्यमें कोई व्यक्ति पाप करे तो उस पापकर्मका षष्ठांश राजाको भागना पड़ता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतएव प्रजाके पापकर्ममें लगनेपर राजाको चाहिए कि उसे वैसा करनेसे रोके ।। ४८ ।। ४९ ।। तब आप ही बताइए कि जब आपके राज्यमें रहनेवाला अजीगर्त अपने बेटेको बेचनेके लिए तैयार हुआ, तब आपने उसे रोका क्यों नहीं ? आप सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं और ज्ञानी हैं ।। ५० ।। हे पृथ्वीनाथ ! आप सदाचारी और आर्य होकर भी अनार्य लोगों जैसा काम करना चाहते हैं ? अब आप मेरी बात मानकर इस ऋषिकुमारको बन्धनमुक्त कर दें। ५१ ।। ऐसा करनेसे आपको सुख मिलेगा। आपके पिता महर्षि वसिष्ठके शापसे चाण्डाल हो गये थे ।। ५२ ।। तब मैंने उस चाण्डालके शरीरसे ही उन्हें स्वर्ग भेज दिया। उस उपकारके सम्बन्धका विचार करके ही आप मेरा अनुरोध मान लीजिए ।। ५३ ।। यह ब्राह्मण-बालक अपने जीवनसे निराश होकर बड़े दैन्यभावसे रो रहा है। अतः आप इसे छोड़ दीजिए। आपके इस राजसूय यज्ञमें मैं इसके प्राणोंको

न संशयः ।। निषेधनीयो राज्ञाऽसौ पापं कर्तुं समुद्यतः ।। ४९ ।। न निषिद्धस्त्वया कस्मात्पुत्रं विक्रेतुमुद्यतः ।। सूर्यवंशे समुत्पन्नस्त्रिशंकुतनयः शुभः ।। ५० ।। आर्यस्त्वनार्यवत्कर्म कर्तुमिच्छसि पार्थिव ।। मोचनान्मुनिपुत्रस्य करणाद्वचनस्य मे ।। ५१ ।। तव देहे सुखं राजन्भविष्यत्यविचारणात् ।। पिता ते शापयोगेन चांडालत्वमुपागतः ।। ५२ ।। मयाऽसौ तेन देहेन स्वर्लोकं प्रापितः किल ।। तेनैव प्रतियोगेन कुरु मे वचनं नृप ।। ५३ ।। मुंचैनं बालकं दीनं रुदंतं भृशमातुरम् ।। याचितोऽसि मया नूनं यज्ञेऽस्मिन्राजसूयकः ।। ५४ ।। प्रार्थनाभंगजं दोषं कथं त्वं नावबुध्यसे ।। प्रार्थितं सर्वदा देयं मखेऽस्मिन्नृपसत्तम ।। ५५ ।। अन्यथा पापमेव स्यात्तव राजन्न संशयः ।। व्यास उवाच ।। इति तस्य वचः श्रुत्वा कौशिकस्य नृपोत्तमः ।। ५६ ।। प्रत्युवाच महाराजः कौशिकं मुनिसत्तमम् ।। जलोदरेण गाधेय दुःखितोऽहं भृशं मुने ।। ५७ ।। तस्मान्न मोचयाम्येनमन्यत्प्रार्थय कौशिक ।। न त्वया विग्रहः कार्यः कार्येऽस्मिन्मम सर्वथा ।। ५८ ।। तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो विश्वामित्रोऽतिकोपनः ।। बभूव दुःखसंतप्तो वीक्ष्य दीनं द्विजात्मजम् ।। ५९ ।। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

भीख माँग रहा हूँ ।। ५४ ।। क्या आप नहीं जानते कि यज्ञकी पूर्तिके लिए प्रार्थीकी प्रार्थना पूर्ण की जानी चाहिए। उसकी पूर्ति न होनेपर दोष होता है। हे राजन् ! इस यज्ञका यही विधान है कि जो जिस वस्तुको माँगे, उसे मुँहमाँगी वस्तु अवश्य मिलनी चाहिये ।। ५५ ।। हे राजन् ! ऐसा न करनेसे बड़ा पाप लगता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। व्यासजीने कहा—महर्षि विश्वामित्रकी बात सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने उनको उत्तर दिया—हे गाधितनय ! हे महर्षि ! मैं जलोदर रोगके कारण बड़ा क्लेश भोग रहा हूँ ।। ५६ ।। ५७ ।। अतएव शुनःशेपको नहीं छोड़ सकता। हे कौशिक ! इसके सिवाय आप कोई दूसरी वस्तु माँग लें। मेरे इस कार्यमें आप किसी तरहका झगड़ा न खड़ा करें ।। ५८ ।। राजा हरिश्चन्द्रकी बात सुन और ब्राह्मणकुमार शुनःशेपकी दीनता देखकर महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त कुपित हो उठे और उनका हृदय दुःखकी आगमें झुलसने लग गया ।। ५९ ।। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(हरिश्चन्द्रोपाख्यान) व्यासजी बोले—हे राजन् ! बालकको रोते देखकर विश्वामित्रको बड़ी दया आयी और वे अतीव दुःखित शुनःशेपके पास जाकर कहने लगे—॥ १ ॥ बेटे ! मैं तुम्हें वरुणदेवका मन्त्र बतला रहा हूँ । तुम इस मन्त्रका मन ही मन जप करो । इसका जप करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ २ ॥ शुनःशेप शोकसे अधीर था । विश्वामित्रकी बात सुनकर वह मन ही मन स्पष्ट अक्षरोंमें उनके बताये हुए मन्त्रको जपने लगा ॥ ३ ॥ हे राजा जनमेजय ! शुनःशेपके मन्त्र जपते ही करुणाके सागर वरुणदेव प्रसन्न होकर एकाएक उसके सामने प्रकट हो गये ॥ ४ ॥ वरुणदेवको देखकर सभी सभासद चकरा गये । उनके दर्शनसे आनन्दित होकर सब लोग उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ जलोदर रोगसे आतुर राजा हरिश्चन्द्र बड़े विस्मित होकर उनके पैरोंपर गिर पड़े । फिर खड़े हो तथा दोनों हाथ जोड़कर अपने सम्मुख खड़े वरुणकी स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—हे देवदेव ! हे कृपासागर ! मेरा हृदय पापोंसे भरा हुआ है और मेरी बुद्धि कलुषित है । मैं अपराधी और बड़ा गरीब हूँ । लेकिन आप दीनदयालने यहाँ आकर मुझे पवित्र कर दिया ॥७॥ मैं पुत्रके अभा-

॥ व्यास उवाच ॥ रुदंतं बालकं वीक्ष्य विश्वामित्रो दयातुरः ॥ शुनःशेपमुवाचेदं गत्वा पार्श्वेऽतिदुःखितम् ॥ १ ॥ मंत्रं प्रचेतसः पुत्र मयोक्तं मनसा स्मरन् ॥ जपतस्तव कल्याणं भविष्यति ममाज्ञया ॥ २ ॥ विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शुनःशेपः शुचाकुलः ॥ मंत्रं जजाप मनसा कौशिकोक्तं स्फुटाक्षरम् ॥ ३ ॥ जपतस्तत्र तस्याशु प्रचेतास्तु कृपाकरः ॥ प्रादुर्बभूव सहसा प्रसन्नो नृप बालकं ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा तमागतं सर्वे विस्मयं परमं गताः ॥ तुष्टुवुर्वरुणं देवं मुदिता दर्शनेन ते ॥ ५ ॥ राजाऽतिविस्मितः पादौ प्रणनाम रुजातुरः ॥ बद्धांजलिपुटो देवं तुष्टाव पुरतः स्थितम् ॥ ६ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ देवदेव कृपासिंधो पापात्माऽहं सुमंदधीः ॥ कृतापराधः कृपणः पावितः परमेष्ठिना ॥ ७ ॥ मया ते पुत्रकामेन दुःखसंस्थेन हेलनम् ॥ कृतं क्षमाप्यं प्रभुणा कोऽपराधः सुदुर्मतेः ॥ ८ ॥ अर्थी दोषं न जानाति तस्मात्पुत्रार्थिना मया ॥ वंचितस्त्वं देवदेव भीतेन नरकाद्विभो ॥ ९ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ भीतोऽहं तेन वाक्येन तस्मात्ते हेलनं कृतम् ॥ १० ॥ नाज्ञस्य दूषणं चिंत्यं नूनं ज्ञानवता विभो ॥ दुःखितोऽहं रुजाक्रांतो वंचितः स्वसुतेन ह ॥११॥ न जानेऽहं महाराज पुत्रो मे क्व गतः प्रभो ॥ वंचयित्वा वने भीतो मरणान्मां कृपानिधे ॥ १२ ॥ प्रययौ द्रविणं दत्त्वा गृहीतो द्विजबालकः ॥ यज्ञोऽयं क्रीतपुत्रेण प्रारब्धस्तव तुष्टये ॥ १३ ॥ दर्शनं तव संप्राप्य गतं दुःखं

वमें दुःखित था और आपकी कृपासे पुत्र होनेपर मैंने आपकी बात ठुकरा दी । आप प्रभु हैं, अतः मेरा अपराध क्षमा कर दें । जिसकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी तो उसका कैसे भला होगा ? ॥८॥ हे देवदेव ! स्वार्थी मनुष्य दोष नहीं देखते । हे प्रभु ! मैं पुत्र पानेका स्वार्थी था । इसीलिए अपना दोष नहीं देख सका । मैंने नरकमें पड़नेके डरसे ही आपको धोखा दिया था ॥ ९ ॥ क्योंकि 'अपुत्र व्यक्तिकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग भी नहीं मिलता' । इसी शास्त्रोक्त वाक्यसे डरकर मैंने आपकी अवहेलना की है ॥१०॥ हे प्रभु ! मैं अज्ञानी हूँ, कष्टमें पड़ा हुआ हूँ, भयङ्कर रोगसे ग्रस्त हूँ और मेरे पुत्रने भी मुझे धोखा दे दिया है । अतएव मुझ अज्ञानीके अपराधका आप कुछ ख्याल न करें ॥११॥ हे महाराज ! हे प्रभु ! हे कृपाके सागर ! मुझे नहीं पता कि मेरा पुत्र कहाँ चला गया है ? ऐसा लगता है कि मारे जानेके डरसे वह मुझे धोखा देकर जंगलमें भाग गया है ॥ १२ ॥ तब मैंने धन देकर इस ब्राह्मणके बालकको खरीदा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और आपको सन्तुष्ट करनेके लिए इस 'क्रीतक' पुत्रसे मैंने नरमेध यज्ञ आरम्भ किया ॥ १३ ॥ आपका दर्शन मिल जानेसे मेरी सारी व्यथा दूर हो गयी और अब आपके प्रसन्न हो जानेसे जलोदर रोगजनित सारे कष्ट दूर हो जायँगे ॥१४॥ व्यासजी बोले–हे राजन् ! रोगग्रस्त महाराज हरिश्चन्द्रकी बातें सुनकर देवाधिदेव वरुण दयालु होकर कहने लगे ॥ १५ ॥ वरुणदेव बोले–हे राजन् ! शुनःशेप बहुत दुखी होकर मेरी स्तुति कर रहा है ! सो आप इसे बन्धनमुक्त कर दीजिए । अब आपका यज्ञ पूरा हो जायगा और आप जलोदर रोगसे भी मुक्त हो जायँगे ॥१६॥ यह कहकर वरुणदेवने तुरन्त सभी सभासदोंके समक्ष राजाको नीरोग कर दिया ॥१७॥ महात्मा वरुणने जब ऋषिकुमार शुनःशेपको बन्धनसे मुक्त करा दिया तो सारा यज्ञमण्डप वरुणदेवकी जयजयकारसे गूँज उठा ॥ १८ ॥ इतना भयङ्कर जलोदर रोग तत्काल दूर हो जानेसे राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए । शुनःशेप भी यज्ञीय स्तम्भके बन्धनसे छूट गया और उसकी विकलता दूर हो गयी ॥ १९ ॥ तदनन्तर राजाने बड़ी नम्रताके साथ यज्ञके अन्तिम कृत्योंको करके उसे पूरा किया । जब यज्ञ समाप्त हो गया तो शुनःशेपने हाथ जोड़कर

ममाद्भुतम् ॥ जलोदरकृतं सर्वं प्रसन्ने त्वयि सांप्रतम् ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञो रोगातुरस्य च ॥ दयावान्देवदेवेशः प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥ १५ ॥ वरुण उवाच ॥ मुंच राजञ्छुनःशेपं स्तुवन्तं मां भृशातुरम् ॥ यज्ञोऽयं परिपूर्णस्ते रोगमुक्तो भवात्मना ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा वरुणस्तूर्णं राजानं विरुजं तथा ॥ चकार पश्यतां तत्र सदस्यानां सुसंस्थितम् ॥ १७ ॥ विमुक्तोऽसौ द्विजः पाशाद्वरुणेन महात्मना ॥ जयशब्दस्ततस्तत्र संजातो मखमण्डपे ॥१८॥ राजा प्रमुदितः सद्यो रोगान्मुक्तः सुदारुणात् ॥ यूपान्मुक्तः शुनशेपो बभूवातीव संस्थितः ॥१९॥ राजा त्विमं मखं पूर्णं चकार विनयान्वितः ॥ शुनःशेपस्तदा सभ्यानित्युवाच कृतांजलिः ॥ २० ॥ भो भो सभ्याः सुधर्मज्ञा ब्रुवंतु धर्मनिर्णयम् ॥ वेदशास्त्रानुसारेण यथार्थवादिनः किल ॥ २१ ॥ पुत्रोऽहं यस्य सर्वज्ञाः पिता मे कोऽग्रतः परम् ॥ भवतां वचनात्तस्य शरणं प्रव्रजाम्यहम् ॥ २२ ॥ इत्युक्ते वचने तत्र सभ्याः प्रोचुः परस्परम् ॥ सभ्या ऊचुः ॥ अजीगर्तस्य पुत्रोऽयं कस्यान्यस्य भवेदसौ ॥ २३ ॥ अंगादंगात्समुद्भूतः पालितस्तेन भक्तितः ॥ अन्यस्य कस्य पुत्रोऽसौ प्रभवेदिति निश्चयः ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वा वामदेवस्तु तानुवाच सभासदः ॥ विक्रीतस्तेन तातेन द्रव्यलोभात्सुतः किल ॥ २५ ॥ पुत्रोऽयं धनदातुश्च राज्ञस्तत्र न संशयः ॥ अथवा वरुणस्यैष पाशान्मुक्तोऽस्त्यनेन वै ॥ २६ ॥ अन्नदाता भयत्राता तथा विद्या-

सब सभासदोंसे कहा—॥ २० ॥ हे सदस्यो ! आपलोग धर्मशास्त्रके ज्ञाता हैं और आपको लोग यथार्थवादी कहते हैं । अतएव आप वेदशास्त्रानुकूल धर्मका निर्णय करिए ॥ २१ ॥ हे सर्वज्ञ महर्षियो ! अब मैं किसका पुत्र हुआ ? अब मेरा पिता कौन होगा ? आपलोग जिसे कहेंगे, मैं उसी पिताकी शरणमें जाऊँगा ॥२२॥ शुनःशेपने जब यह कहा तो वे परस्पर परामर्श करने लगे । कुछ सभ्योंने कहा—यह बालक अजीगर्तका पुत्र है और उन्हींका पुत्र होकर रहेगा । अब यह किसी दूसरे व्यक्तिका पुत्र कैसे हो जायगा? ॥ २३ ॥ क्योंकि यह बालक अजीगर्तके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है और उन्होंने ही प्रेमके साथ इसे पाला-पोसा है । तब यह बालक अजीगर्तके सिवाय और किसका हो सकता है ? ॥२४॥ इस निर्णयसे असहमत होकर महर्षि वामदेवने सभासदोंसे कहा कि अजीगर्तने धनकी लालचसे अपने बेटेको बेंच दिया है ॥ २५ ॥ तब जिसने धन देकर खरीदा, उसीका यह पुत्र हुआ । अतएव यह तो राजा हरिश्चन्द्रका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथवा वरुणका पुत्र होगा। क्योंकि उन्होंने ही इसे बन्धन-मुक्त कराया है ॥ २६ ॥ यह शास्त्रवचन है कि जो अन्न देकर पालन करते हैं, किसी तरहके भयसे बचाते हैं, जो विद्या-दान देते हैं, जो धन देकर खरोद लेते हैं और जो जन्म देते हैं–ये पाँचों व्यक्ति पिता होते हैं ॥ २७ ॥ उसके बाद उसे किसी सभासदने अजीगर्तका पुत्र, किसीने राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र और किसीने वरुणका पुत्र बतलाया। इस प्रकार वे आपसमें कोई निर्णय नहीं कर सके ॥ २८ ॥ इस तरहकी सन्देहात्मक स्थितिमें जब वे लोग परस्पर झगड़ने लगे, तब महर्षि वसिष्ठ बोले। क्योंकि वे सभी ऋषियोंसे पूजित थे ॥ २९ ॥ वसिष्ठजीने कहा—हे महर्षियो ! अब आप लोग मेरा निर्णय सुनिए, जो वेदानुकूल है। जब पिताने अपने पुत्रकी ममता त्यागकर इस बालकको बेंच डाला ॥ ३० ॥ तब धन लेते ही उसके पिता-पुत्रका नाता टूट गया। जब कि महाराज हरिश्चन्द्रने इसे खरीदा, तब यह उनका क्रीतक पुत्र हो गया ॥ ३१ ॥ बादमें राजाने जब शुनःशेपको बलिदानके खम्भेमें बाँध दिया, तब उनका भी सम्बन्ध जाता रहा। जब इसने वरुणदेवकी स्तुति की, तब उन्होंने प्रसन्न होकर इसे बन्धन मुक्त करा दिया ॥३२॥

प्रदश्च यः ॥ तथा वित्तप्रदश्चैव पंचैते पितरः स्मृताः ॥ २७ ॥ तदा केचित्पितुः प्राहुः केचिद्राज्ञस्तथाऽपरे ॥ वरुणस्येति संवादे निर्णयं न ययुश्च
ते ॥ २८ ॥ इत्थं संदेहमापन्ने वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ सभ्यान्विवदतस्तत्र सर्वज्ञः सर्वपूजितः ॥ २९ ॥ शृणुध्वं भो महाभागा निर्णयं श्रुतिसंमतम् ॥
निःस्नेहेन यदा पित्रा विक्रीतोऽयं सुतः शिशुः ॥ ३० ॥ सम्बन्धस्तु गतस्तस्य तदैव धनसंग्रहात् ॥ हरिश्चन्द्रस्य संजातः पुत्रोऽसौ क्रीत एव च
॥३१॥ यूपे बद्धो यदा राज्ञा तदा तस्य न वै सुतः ॥ वरुणस्तु स्तुतोऽनेन तेन तुष्टेन मोचितः ॥३२॥ तस्मान्नायं महाभाग ह्यसौ पुत्रः प्रचेतसः ॥
यो यं स्तौति महामन्त्रैः सोऽपि तुष्टो ददाति च॥ ३३ ॥ धनं प्राणान्पशून्राज्यं तथा मोक्षं निजेप्सितम् ॥ कौशिकस्य सुतश्चायमरिष्टे येन रक्षितः
॥ ३४ ॥ मन्त्रं दत्त्वा महावीर्यं वरुणस्यातिसङ्कटे ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा वाक्यं वसिष्ठस्य वाढमूचुः सभासदः ॥ ३५ ॥ विश्वामित्रस्तु जग्राह तं
करे दक्षिणे तदा ॥ एहि पुत्र गृहं मे त्वमित्युक्त्वा प्रेमपूरितः ॥ ३६ ॥ शुनःशेपो जगामाशु तेनैव सह सत्वरः ॥ वरुणस्तु प्रसन्नात्मा जगाम
च स्वमालयम् ॥ ३७ ॥ ऋत्विजश्च तथा सभ्याः स्वगृहान्निर्ययुस्तदा ॥ राजाऽपि रोगनिर्मुक्तो बभूवातिमुदान्वितः ॥ ३८ ॥ प्रजास्तु पालया-

अतएव हे महर्षियो ! यह वरुणका भी पुत्र नहीं हो सकता। क्योंकि जो लोग महामन्त्रसे जिस देवताकी स्तुति करते हैं तो वह सन्तुष्ट होकर उस व्यक्तिको उसकी कामनाके अनुसार धन, प्राण, हाथो, घोड़े, गाय आदि पशु और मुक्ति प्रदान करता है। प्राणसङ्कटके समय विश्वामित्रने इसकी रक्षा की है। वास्तवमें यह उन्हींका पुत्र हुआ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ क्योंकि उन्होंने भीषण सङ्कटके समय इसे अतीव शक्तिशाली वरुणमंत्र दिया है। व्यासजी बोले–हे राजन् ! महर्षि वसिष्ठका निर्णय सुनकर सभी सभासदोंने उसका समर्थन कर दिया ॥३५॥ यह निर्णय सुनकर विश्वामित्रका प्रेम उमड़ पड़ा और 'आओ पुत्र ! अब तुम मेरे आश्रमपर चलो'। यह कहकर उन्होंने उसका दाहिना हाथ थाम्ह लिया ॥ ३६ ॥ तब शुनःशेप भी तत्काल उनके साथ चल पड़ा। इससे वरुणदेवका भी हृदय प्रसन्न हुआ और वे वरुणलोकको चले गये ॥३७॥ ऋत्विक् और सभ्यगण भी अपने-अपने घर सिधारे। राजा हरिश्चन्द्रका जलोदर रोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छूट गया, जिससे उन्हें अपार हर्ष हुआ ।।३८।। अब वे बड़ी प्रसन्नतासे राजकाज करने लगे । उधर राजकुमार रोहितने जब वरुणके जाने और अपने पिताके रोगमुक्त होनेका वृत्तान्त सुना तो ऊबड़-खाबड़ जंगलों और पहाड़ोंको लाँघते हुए अपने राजमहलके पास आ पहुँचे । तब दूतोंने जाकर महाराज हरिश्चन्द्रको सूचना दी कि राजकुमार रोहित आ गये हैं ।।३९।।४०।। पुत्रके आगमनकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उनकी अगवानी करने गये । जब रोहितने देखा कि पिताजी आ रहे हैं तो उसका पितृप्रेम उमड़ पड़ा और साथ ही घबड़ाहट भी हुई ।।४१।। तत्काल जमीनपर दण्डकी भाँति लोटकर दण्डवत् प्रणाम किया । दीर्घकालीन वियोगजनित शोकके कारण रोहितका मुँह आँसूसे भींग गया और राजाने राजकुमारको उठाकर हृदयसे लगा लिया ।।४२।। उन्होंने बेटेका माथा सूँघा और कुशलसमाचार पूछा । फिर उसे जब गोदमें बैठाया तो राजाका सारा दुःख दूर हो गया ।।४३।। प्रेमातिरेकवश जब महाराजके नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू राजकुमारके मस्तकपर गिरने लगे तो मानों उसके ही द्वारा उन्होंने रोहितका राज्याभिषेक कर दिया । तदनन्तर अपने परम प्रिय राजकुमार रोहितके साथ

मास सुप्रसन्नेन चेतसा ।। रोहिताख्यस्तु तच्छ्रुत्वा वृत्तांतं वरुणस्य ह ।।३९।। आजगाम गृहं प्रीतो दुर्गमाद्गनपर्वतात् ।। दूता राजानमभ्येत्य प्रोचुः पुत्रं समागतम् ।। ४० ।। मुदितोऽसौ जगामाशु सम्मुखः कोसलाधिपः ।। दृष्ट्वा पितरमायांतं प्रेमोद्रिक्तः सुसंभ्रमः ।। ४१ ।। दण्डवत्पतितो भूमावश्रुपूर्णमुखः शुचा ।। राजाऽपि तं समुत्थाप्य परिरभ्य मुदान्वितः ।। ४२ ।। समाघ्राय सुतं मूर्ध्नि पप्रच्छ कुशलं पुनः ।। उत्संगे तं समारोप्य मुदितो मेदिनीपतिः ।। ४३ ।। उष्णैर्नेत्रजलैः शीर्षण्यभिषेकमथाकरोत् ।। राज्यं शशास तेनासौ पुत्रेणातिप्रियेण च ।। ४४ ।। वृत्तांतं नरमेधस्य कथयामास विस्तरात् ।। राजसूयं क्रतुवरं चकार नृपसत्तमः ।। ४५ ।। वसिष्ठं पूजयित्वाऽथ होतारमकरोद्विभुः ।। समाप्ते त्वथ यज्ञेशे वसिष्ठोऽतीव पूजितः ।। ४६ ।। शक्रस्य सदनं रम्यं जगाम मुनिरादरात् ।। विश्वामित्रोऽपि तत्रैव वसिष्ठेन च संगतः ।। ४७ ।। मिलित्वा तौ स्थितौ देवसदने मुनिसत्तम ।। विश्वामित्रोऽपि पप्रच्छ वसिष्ठं प्रतिपूजितम् ।। ४८ ।। वीक्ष्य विस्मयचित्तस्तं सभायां तु शचीपतेः ।। विश्वामित्र उवाच ।। क्वेयं पूजा त्वया प्राप्ता महती मुनिसत्तम ।। ४९ ।। कृता केन महाभाग सत्यं ब्रूहि ममांतिके ।। वसिष्ठ उवाच ।। यजमानोऽस्ति मे राजा हरिश्चन्द्रः प्रतापवान्

वे राज्यका शासन करने लगे ।।४४।। बादमें उन्होंने नरमेधकी सारी बातें विस्तारके साथ बतलायीं । आगे चलकर राजा हरिश्चन्द्रने राजसूय यज्ञका आयोजन किया—जो सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ माना जाता है ।।४५।। महाराज हरिश्चन्द्रने गुरु वसिष्ठकी पूजा करके उन्हें उस यज्ञका 'होता' बनाया । उस सर्वश्रेष्ठ राजसूय यज्ञके समाप्त होनेपर उन्होंने वसिष्ठजीका बहुत बड़ा सम्मान किया ।।४६।। तदनन्तर महर्षि वसिष्ठ बड़ी श्रद्धाके साथ इन्द्रकी रमणीक नगरी अमरावती पुरीमें गये । उसी समय विश्वामित्रजी भी वहाँ जा पहुँचे और दोनोंकी भेंट हो गयी ।।४७।। दोनों ऋषिवर देवलोकमें एक साथ बैठे । विश्वामित्रने पूजा पाये हुए वसिष्ठजीको देखा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा और वे इन्द्रकी सभामें ही पूछने लगे । विश्वामित्रने कहा—हे महाभाग ! आपको इतना बड़ा सम्मान कहाँ मिला ? ।।४८।।४९।। किस महान् व्यक्तिके द्वारा आपकी पूजा हुई है ? सो मुझे सच-सच बतलाइए । वसिष्ठजी बोले—मेरे परम प्रतापी यजमान राजा हरिश्चंद्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं ॥५०॥ उन्होंने ही पुष्कल दक्षिणावाला राजसूय यज्ञ किया है। उनसे बढ़कर कोई दूसरा व्रती, सत्यवादी, दाता, धर्मात्मा और प्रजापालक राजा नहीं है। हे कौशिक! उन्हींके राजसूय यज्ञमें मेरी ऐसी पूजा हुई है ॥ १॥५२॥ हे ब्रह्मर्षि! बार-बार आप मुझसे सच-सच कहनेका क्यों अनुरोध कर रहे हैं? मैं यथार्थ कह रहा हूँ कि राजा हरिश्चंद्र जैसा सत्यवादी, दानी, वीर और परम धार्मिक राजा न पहले हुआ है और न कोई भविष्यमें ही होगा ॥ ५३ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! महर्षि वसिष्ठजीकी यह बात सुनकर विश्वामित्रजी क्रोधसे लाल-लाल आँखें निकालकर उनसे कहने लगे ॥५४॥ विश्वामित्र बोले—अरे, तुम ऐसे झूठे और कपटी राजाकी प्रशंसा कर रहे हो? उसने प्रतिज्ञा करके भी वरुणदेवको बार-बार धोखा दिया है ॥ ५५ ॥ हे महामति! मैंने इस जन्ममें तपस्या और वेदाध्ययन करके जो पुण्य सञ्चित किया है और आपने इस जन्ममें तपस्या और वेदाध्ययन करके जितना पुण्य उपार्जन किया है, हम उसकी बाजी लगा दें ॥५६। यदि मैं आपके उस बखाने हुए राजाको शीघ्र असत्यवादी, दान न देनेवाला और महादुष्ट न प्रमाणित कर दूँ तो मेरा आजन्म-सञ्चित सभी पुण्य नष्ट हो जाय। इसके

॥ ५० ॥ राजसूयः कृतस्तेन राज्ञा प्रवरदक्षिणः ॥ नेदृशोऽस्ति नृपश्चान्यः सत्यवादी धृतव्रतः ॥ ५१ ॥ दाता च धर्मशीलश्च प्रजारञ्जनतत्परः ॥
तस्य यज्ञे मया पूजा प्राप्ता कौशिकनन्दन ॥ ५२ ॥ किं पृच्छसि पुनः सत्यं ब्रवीम्यकृत्रिमं द्विजः ॥ हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति ॥
सत्यवादी तथा दाता शूरः परमधार्मिकः ॥५३॥ व्यास उवाच॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रोऽतिकोपनः ॥ बभूव क्रोधसंरक्तलोचनोऽप्यब्रवीच्च तम्
॥५४॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवं स्तौषि नृपं मिथ्यावादिनं कपटप्रियम् ॥ वञ्चितो वरुणो येन प्रतिश्रुत्य वरं पुनः ॥ ५५ ॥ मम जन्मार्जितं पुण्यं
तपसः पठितस्य च ॥ त्वदीयं वाऽतितपसो ग्लहं कुरु महामते ॥ ५६ ॥ अहं चेत्तं नृपं सद्यो न करोम्यतिसंस्तुतम् ॥ असत्यवादिनं काममदातारं
महाखलम् ॥ ५७ ॥ आजन्म संचितं सर्वं पुण्यं मम विनश्यतु ॥ अन्यथा त्वत्कृतं सर्वं पुण्यं त्विति पणावहे ॥ ५८ ॥ ग्लहं कृत्वा ततस्तौ तु
विवदंतौ मुनी तदा ॥ स्वाश्रमं स्वर्गलोकाच्च गतौ परमकोपनौ ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥
॥ व्यास उवाच ॥ कदाचित्तु हरिश्चन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ ॥ अपश्यद्रुदतीं बालां सुन्दरीं चारुलोचनाम् ॥ १ ॥ तामपृच्छन्महाराजः
कामिनीं करुणापरः ॥ पद्मपत्रविशालाक्षि किं रोदिषि वरानने ॥ २ ॥ केनासि पीडिताऽत्यर्थं किं ते दुःखं वदाशु मे ॥ का च त्वं विजने घोरे

विपरीत यदि आप उसे सत्यवादी, दानवीर और अत्यन्त साधु प्रमाणित न कर सकेंगे तो आपके जीवनभरमें सञ्चित सभी पुण्यकर्म नष्ट हो जायँगे। बस, यही हम दोनोंकी बाजी लग जाय ॥५७॥५८॥ इस तरह परस्पर बाजी लगाकर वे दोनों मुनि विवाद करते और गुस्सासे लाल-पीले होते हुए स्वर्गलोकसे अपने-अपने आश्रमको लौट आये ॥५९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

(हरिश्चन्द्रका विश्वामित्रको राज्यदान) व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! एक समयकी बात है—राजा हरिश्चन्द्र शिकार खेलने जंगलमें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि मनोहर नेत्रोंवाली एक सुन्दरी स्त्री रो रही है ॥ १ ॥ करुणावश उससे उन्होंने पूछा—'कमलपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाली हे वरानने! तुम क्यों रो रही हो? अभी बताओ, किसने तुम्हें कष्ट दिया है?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम क्यों अपार दुःखमें पड़ी हो ? इस निर्जन वनमें रहनेवाली तुम कौन हो और तुम्हारे पिता एवं पति हैं ? ॥ २ ॥ ३ ॥ हे कान्ते ! मेरे राज्यमें तो राक्षस भी दूसरेकी स्त्रीको कष्ट नहीं पहुँचाते । हे सुन्दरी ! तुम्हें जो दुःख देता होगा, उसे मैं अभी मार डालूँगा ॥४॥ हे वरारोहे ! तुम अपना दुःख बताकर शान्तभावसे यहीं रहो । हे सुमध्यमे ! मेरे राज्यमें कोई भी दुराचारी नहीं रह सकता' ॥५॥ महाराज हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर अपने मुखपर फैले हुए आँसुओंको पोंछनेके पश्चात् वह स्त्री उनसे कहने लगी ॥६॥ स्त्रीने कहा–हे राजन् ! मेरे लिए वनमें रहकर जो कठिन तपस्या कर रहे हैं, उन मुनिवर विश्वामित्रसे मैं अत्यन्त दुखी हूँ । वे मुझे बहुत सताते हैं ॥ ७ ॥ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे राजन् ! आपके राज्यमें रहकर मेरे महान् कष्ट पानेका यही कारण है । उन मुनिसे अत्यन्त सतायी जानेवाली मैं कमना नामकी स्त्री हूँ–यही मेरा साधारण परिचय है ॥८॥ राजाने कहा–हे विशालाक्षी ! तुम अपने स्थानपर आनन्दसे रहो । अब तुम्हें कष्टका सामना नहीं करना पड़ेगा । तपस्यामें तत्पर रहनेवाले उन मुनिको मैं मना कर दूँगा ॥९॥ इस प्रकार उस स्त्रीको आश्वासन देकर राजा हरिश्चन्द्र तुरन्त

कस्ते भर्ता पिताऽथवा ॥ ३ ॥ न बाधते च राज्ये मे राक्षसोऽपि परांगनाम् ॥ तं हन्मि तरसा कान्ते यस्त्वां सुन्दरि बाधते ॥ ४ ॥ ब्रूहि दुःखं वरारोहे स्वस्था भव कृशोदरि ॥ विषये मम पापात्मा न तिष्ठति सुमध्यमे ॥ ५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा नारी तमब्रवीन्नृपम् ॥ प्रमृज्याश्रूणि वदनाद्धरिश्चन्द्रं नृपोत्तमम् ॥ ६ ॥ नार्युवाच ॥ राजन्मां बाधतेऽत्यर्थं विश्वामित्रो महामुनिः ॥ तपः करोति यद्घोरं मदर्थं कौशिको वने ॥ ७ ॥ तेनाहं दुःखिता राजन्विषये तव सुव्रत ॥ विद्धि मां कमनां कांतां पीडितां मुनिना भृशम् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ स्वस्था भव विशालाक्षि न ते दुःखं भविष्यति ॥ तमहं वारयिष्यामि मुनिं तापपरायणम् ॥ ९ ॥ इत्याश्वास्य स्त्रियं राजा तरसा मुनिसन्निधौ ॥ नत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच महीपतिः ॥ १० ॥ स्वामिन्किं क्रियतेऽत्यर्थं तपसा देहपीडनम् ॥ किमर्थं ते समारम्भो ब्रूहि सत्यं महामते ॥ ११ ॥ वांछितं तव गाधेय करोमि सफलं किल ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ तरसा तपसाऽलमतः परम् ॥ १२ ॥ विषये मम सर्वज्ञ न कर्तव्यं सुदारुणम् ॥ लोकपीडाकरं घोरं तपः केनापि कर्हिचित् ॥ १३ ॥ इत्थं निषिध्य तं राजा विश्वामित्रं गृहं ययौ ॥ मनसा क्रोधमाधाय गतोऽसौ कौशिको मुनिः ॥ १४ ॥ स गत्वा चिन्तयामास नृप-

विश्वामित्रके पास गये, नम्रतापूर्व सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया । साथ ही कहा–॥१०॥ 'मुनिवर ! आप इतनी कठिन तपस्यासे शरीरको क्यों संकटग्रस्त बना रहे हैं । हे महामते ! किस प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये आपकी यह तैयारी है ? यथार्थ बतानेकी कृपा करें ॥ ११ ॥ हे गाधिनन्दन ! मैं आपका अभिलषित कार्य पूर्ण करनेके लिए तैयार हूँ । अब इससे आगे तपस्या करनेका विचार छोड़कर आप इसी क्षण उठ जानेकी कृपा करें ॥ १२ ॥ हे सर्वज्ञ मुने ! मेरे राज्यमें रहकर कभी किसीको भी इस प्रकारकी कठिन तपस्या नहीं करनी चाहिए । क्योंकि शरीरके लिए ऐसा तप महान् कष्टप्रद होता है ॥१३॥ इस प्रकार विश्वामित्रको तपस्यासे रोककर राजा हरिश्चन्द्र अपने घर चले गए । हरिश्चन्द्रकी इस रोकसे मुनिके मनमें क्रोध आ गया । वे अपने स्थानको चले गए । घर जाकर विश्वामित्रने सोचा कि मुझे तपस्यासे विरत करके राजाने बड़ा जघन्य कार्य किया है । उसी समय उन्हें वसिष्ठकी बात भी याद आ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गयी ॥१४॥१५॥ तब वे बदला लेनेकी बात सोचने लगे। तरह-तरहसे सोचनेके पश्चात् उन्होंने एक भयंकर दानवको राजा हरिश्चन्द्रके पास जानेकी आज्ञा दी। मुनिने अपने प्रयाससे उस समय उस दानवको सूअरके रूपमें परिणत कर दिया। उसके शरीरकी आकृति बड़ी विशाल थी। वह महाकाल-जैसा जान पड़ता था। वह भयंकर शब्द करता हुआ राजा हरिश्चन्द्रके उपवनमें पहुँच गया। रक्षकोंको भयभीत करते हुए उसने मालतीकी झाड़ियों एवं जूहीकी लताओंको रौंदकर दाँतोंसे जमीन खोद डाली और बड़े-बड़े वृक्षोंको धराशायी कर दिया ॥१६–१९॥ चम्पक, केतकी, मल्लिका, कनेर तथा उशीरके कोमल पौधोंको उखाड़ फेंका ॥२०॥ मुचुकुन्द, अशोक, मौलसिरी, तिलक आदि वृक्षोंकी तो उसने भरपूर दुर्गति की ॥२१॥ हाथमें शस्त्र लिये हुये उस उपवनकी रखवाली करनेवाले सभी रक्षक वहाँसे भाग चले। मालियोंने अत्यन्त डरकर 'हाय-हाय'की आवाजके साथ चिल्लाना आरम्भ कर दिया ॥२२॥ कालकी तुलना

कृत्यमसांप्रतम् ॥ वसिष्ठस्य च सम्वादं तपसः प्रतिषेधनम् ॥१५॥ कोपाविष्टेन मनसा प्रतीकारमथाकरोत् ॥ विचिंत्य बहुधा चित्ते दानवं घोरविग्रहम्
॥ १६ ॥ प्रेषयामास तद्देशं विधाय सूकराकृतिम् ॥ सोऽतिकायो महाकालः कुर्वन्नादं सुदारुणम् ॥ १७ ॥ राज्ञश्चोपवने प्राप्तस्त्रासयन्रक्षकांस्तदा ॥
मालतीनां च खंडानि कनकानां तथैव च ॥१८॥ यूथिकानां च वृंदानि कंपयंश्च मुहुर्मुहुः ॥ दन्तेन विलिखन्भूमिं समुन्मूलयते द्रुमान् ॥ १९ ॥
चम्पकान्केतकीखंडान्मल्लिकानां च पादपान् ॥ करवीरानुशीरांश्च निचखान शुभान्मृदून् ॥ २० ॥ मुचुकुन्दानशोकांश्च वकुलांस्तिलकांस्तथा ॥
उन्मूल्य कदनं तत्र चकार सूकरो वने ॥२१॥ वाटिकारक्षकाः सर्वे दुद्रुवुः शस्त्रपाणयः ॥ हाहेति चुक्रुशुस्तत्र मालाकारा भृशातुराः ॥२२॥ बाणैः
संताड्यमानोऽपि यदा त्रस्तो न वै मृगः ॥ रक्षकान्पीडयामास कोलः कालसमद्युतिः ॥ २३ ॥ ते तदाऽतिभयाक्रांता राजानं शरणं ययुः ॥ तमू
चुस्त्राहि त्राहीति वेपमाना भयाकुलाः ॥२४॥ तानागतान्समालोक्य भयार्तान्भूपतिस्तदा ॥ पप्रच्छ किं भयं कस्मान्मां ब्रुवंतु समागताः ॥२५॥
नाहं बिभेमि देवभ्यो राक्षसेभ्यश्च रक्षकाः ॥ कस्माद्भयं समुत्पन्नं तद्ब्रुवंतु ममाग्रतः ॥ २६ ॥ हन्मि चैकेन बाणेन तं शत्रुं दुर्भगं किल ॥ यो
मेऽरातिः समुत्पन्नो लोके पापमतिः खलः ॥२७॥ देवो वा दानवो वापि तं निहन्मि शरैः शितैः ॥ क्व तिष्ठति कियद्रूपः कियद्बलसमन्वितः ॥२८॥
मालाकारा ऊचुः ॥ न देवो न च दैत्योऽस्ति न यक्षो न च किन्नरः ॥ कश्चित्कोलो महाकायो राजंस्तिष्ठति कानने ॥ २९ ॥ पुष्पवृक्षानतिमृदून्दंते-

करनेवाला वह सूअर जब बाणोंसे मारनेपर भी निर्भीकतापूर्वक रक्षकोंको पीड़ित करने लगा, तब तो उन रखवालोंके भयकी सीमा नहीं रही। वे भागकर राजा हरिश्चंद्रकी शरणमें गये। भयसे अधीर होकर काँपते हुये उन्होंने कहा—॥२३॥२४॥ 'हमें बचाइये।' तब डरसे अत्यन्त घबड़ाये हुये और समक्ष उपस्थित रक्षकोंको देखकर राजाने पूछा-'रक्षको! तुम्हें किसके क्या भय है? सो शीघ्र बताओ ॥२५॥ हे रक्षको! मैं देवताओंसे भी नहीं डरता। किसने तुम्हें भय पहुँचाया है, मेरे सामने सब हाल कहो। उस भाग्यहीन शत्रुको अभी एक ही बाणसे मैं मार डालता हूँ, जो पापी और खल शत्रु उत्पन्न हो गया हो ॥२६॥२७॥ फिर चाहे वह देवता या दानव कितना हो भीषण और बलवान् क्यों न हो, मैं उसे अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मार डालूँगा। मालियोंने कहा—हे राजन्! देवता, दानव, यक्ष अथवा किन्नर—इनमेंसे वह कोई नहीं है। वह बड़े विशाल शरीरवाला कोई एक सूअर उपवनमें आ घुसा है ॥२८॥२९॥ उस सूअरने अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दाँतोंसे पुष्पोंके समस्त वृक्षोंको उखाड़ डाला है। उपवनमें पैठते ही उसने सारा उपवन तोड़-ताड़कर चौपट कर दिया है॥३०॥ हे महाराज ! हमारे बाण, लाठी और पत्थरसे चोट पहुँचानेपर भी वह निर्भीकतापूर्वक हमें मारनेके लिये दौड़ पड़ा ॥३१॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन् ! महाराज हरिश्चन्द्र मालियोंका यह वचन सुनकर क्रोधसे तमतमा उठे। फिर उसी क्षण घोड़ेपर चढ़कर वे उपवनकी ओर चल पड़े ॥३२॥ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चलनेवाले सैनिकोंसे युक्त एक विशाल सेना साथ लेकर वे झट उस श्रेष्ठ उपवनमें पहुँच गये ॥३३॥ वहाँ उन्होंने विशाल शरीरवाले एक भयकर सूअरको गुर्राते देखा। उसने उपवनको चौपट कर दिया था–यह देखकर राजा कुपित हो उठे ॥३४॥ तदनन्तर धनुषपर बाण चढ़ाकर उस पापी सूअरको मारनेके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़े ॥ ३५ ॥ क्रोधसे व्याकुल उन धनुर्धर नरेशको देखकर वह सूअर अत्यन्त भयजनक शब्द करता हुआ तुरन्त सामने दौड़ आया ॥ ३६ ॥ उस विकृत मुखवाले

नोन्मूलयत्यसौ ॥ विदीर्णं तद्वनं सर्वं सूकरेणातिरंहसा ॥ ३० ॥ विशिखैस्ताडितोऽस्माभिर्दृषद्भिर्लकुटैस्तथा ॥ न बिभेति महाराज हन्तुमस्मानुपाद्रवत् ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां राजा कोपसमाकुलः ॥ अश्वमारुह्य तरसा जगामोपवनं प्रति ॥ ३२ ॥ सैन्येन महता युक्तो गजाश्वरथसंयुतः ॥ पदातिवृंदसहितः प्रययौ वनमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ तत्रापश्यन्महाकोलं घुर्घुरंतं भयानकम् ॥ वनं भग्नं च संवीक्ष्य राजा क्रोधयुतोऽभवत् ॥ ३४ ॥ चापे बाणं समारोप्य विकृष्य च शरासनम् ॥ तं हंतुं सूकरं पापं तरसा समुपाक्रमत् ॥ ३५ ॥ समालोक्य च राजानं चापहस्तं रुषाकुलम् ॥ संमुखोऽभ्यद्रवत्तूर्णं कुर्वञ्छब्दं सुदारुणम् ॥ ३६ ॥ तमायान्तं समालोक्य वराहं विकृताननम् ॥ मुमोच विशिखं तस्मिन्हंतुकामो महीपतिः ॥ ३७ ॥ वंचयित्वाऽथ तद्बाणं सूकरस्तरसा बलात् ॥ निर्जगाम महावेगात्तमुल्लंघ्य नृपं तदा ॥ ३८ ॥ गच्छन्तं तं समालोक्य राजा कोपसमन्वितः ॥ मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णांश्चापमाकृष्य यत्नतः ॥ ३९ ॥ क्षणं दृष्टिपथं राज्ञः क्षणं चादर्शनं गतः ॥ कुर्वन्बहुविधारावं सूकरः समुपाद्रवत् ॥ ४० ॥ हरिश्चन्द्रोऽतिकुपितो मृगस्यानुजगाम ह ॥ अश्वेन वायुवेगेन विकृष्य च शरासनम् ॥ ४१ ॥ इतस्ततस्ततः सैन्यमगमच्च वनान्तरम् ॥ एकाकी नृपतिः कोलं व्रजन्तं समुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥ मध्याह्नसमये राजा सम्प्राप्तो विजने वने ॥ तृषितः

वराहपर दृष्टि पड़ते ही राजा उसे मारनेके लिए बाणोंका प्रयोग करने लगे ॥ ३७ ॥ उस समय उनके बाणोंको विफल करके बलपूर्वक बड़ी शीघ्रताके साथ वह सूअर वहाँसे निकल भागा ॥३८॥ उसने राजाकी बिल्कुल परवाह नहीं की। अब हरिश्चन्द्रके क्रोधकी सीमा नहीं रही। भागते हुए उस सूअरको देखकर उन्होंने धनुषपर यत्नपूर्वक तीक्ष्ण बाण चढ़ाये और खींच-खींचकर उसपर छोड़ने लगे ॥३९॥ कभी वह दिखाई पड़ता कभी ओझल हो जाता और कभी अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ राजाके पास पहुँच जाता था ॥ ४० ॥ महाराज हरिश्चन्द्र क्रोधवश उस सूअरके पीछे पड़ गये। अब वे वायुकी तुलना करनेवाले शीघ्रगामी घोड़ेपर चढ़े और हाथमें धनुष लेकर उन्होंने उसका पीछा करना आरम्भ किया। एक वनसे दूसरे वनतक तो सेना साथ दे सकी। फिर वह पीछे रह गयी और अकेले राजा उस भागते हुए सूअरका पीछा करते रहे ॥४१॥४२॥ ठीक मध्याह्नकालमें राजा हरिश्चन्द्र एक निर्जन वनमें जा पहुँचे। भूख-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्याससे उनका चित्त घबरा रहा था। उनका वाहन और वे बहुत थक गये थे ॥४३॥ सूअर आँखोंसे ओझल हो चुका था। अतः वे चिन्तासे अधीर हो गये। उस बीहड़ वनमें कौन रास्ता किधर जाता है, यह जाननेमें भी वे असमर्थ हो गये। उनकी दशा बड़ी ही दयनीय हो गयी थी। वे सोचने लगे–'अब क्या करें, किधर जायँ? इस बीहड़ निर्जन वनमें कौन मेरी सहायता करेगा तथा मार्ग भूल जानेसे मैं जा भी कहाँ सकता हूँ' ॥४४॥४५॥ इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्र उस जनशून्य वनमें चिन्ता कर रहे थे। उनकी घबराहटकी सीमा नहीं थी। इतनेमें एक स्वच्छ जलवाली नदी उन्हें दिखाई पड़ी ॥४६॥ उसे देख वे बड़े हर्षित होकर घोड़ेसे उतर गये। अश्वको स्वादिष्ट जल पिलाया और स्वयं भी पीया ॥४७॥ जब जल पी लेनेपर उनका चित्त शान्त हो गया, तब वे नगरमें जानेका विचार करने लगे। परन्तु दिग्भ्रम होनेके कारण कुछ भी निश्चय नहीं कर पाये ॥ ४८ ॥ इतनेमें विश्वामित्र एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके उनके सामने आ गये। श्रेष्ठ ब्राह्मणको सामने देखकर राजाने आदरपूर्वक प्रणाम किया ॥४९॥ वे प्रणाम कर ही रहे थे कि विश्वामित्रने उनसे कहा–'हे महाराज! तुम्हारा कल्याण

क्षुधितोऽत्यर्थं बभूव श्रांतवाहनः ॥ ४३ ॥ सूकरोऽदर्शनं प्राप्तो राजा चिंतातुरोऽभवत् ॥ मार्गभ्रष्टोऽतिविपिने दारुणे दीनवत्स्थितः ॥ ४४ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि न सहायोऽस्ति मे वने ॥ अज्ञातस्वपथः कुत्र व्रजामीति व्यचिंतयत् ॥ ४५ ॥ एवं चिंतयतस्तत्र विपिने जनवर्जिते ॥ राजा चिंतातुरोऽपश्यन्नदीं सुविमलोदकाम् ॥ ४६ ॥ वीक्ष्य तां मुदितो राजा पाययित्वा तुरङ्गकम् ॥ अश्वादुत्तीर्य विमलं पपौ पानीयमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ जलं पीत्वा नृपस्तत्र सुखमाप महीपतिः ॥ इयेष नगरं गंतुं दिग्भ्रमेणातिमोहितः ॥ ४८ ॥ विश्वामित्रस्तु संप्राप्तो वृद्धब्राह्मणरूपधृक् ॥ ननाम वीक्ष्य राजा तं प्रीतिपूर्वं द्विजोत्तमम् ॥ ४९ ॥ तमुवाच गाधिराजः प्रणमंतं नृपोत्तमम् ॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाराज किमर्थमिह चागतः ॥ ५० ॥ एकाकी विजने राजन्किं चिकीर्षितमत्र ते ॥ ब्रूहि सर्वं स्थिरो भूत्वा कारणं नृपसत्तम ॥५१॥ राजोवाच॥ सूकरोऽतिमहाकायो बलवान्पुष्पकाननम् ॥ समुपेत्य ममर्दाशु कोमलान्पुष्पपादपान् ॥५२॥ तं निवारयितुं दुष्टं करे कृत्वा च कार्मुकम् ॥ ससैन्योऽहं स्वनगरान्निर्गतो मुनिसत्तम ॥५३॥ गतोऽसौ दृक्पथात्पापो मायावी क्वापि वेगवान् ॥ पृष्ठतोऽहमपि प्राप्तः सैन्यं क्वापि गतं मम ॥ ५४ ॥ क्षुधितस्तृषितश्चाहं सैन्यभ्रष्टस्त्विहागतः ॥ न जाने पुरमार्गं च तथा सैन्यगतिं मुने ॥ ५५ ॥ पंथानं दर्शय विभो व्रजामि नगरं प्रति ॥ ममात्र भाग्ययोगेन प्राप्तस्त्वं विजने वने ॥ ५६ ॥

हो। यहाँ कैसे आनेका कष्ट किया? ॥५०॥ हे राजन्! किस अभिप्रायसे इस निर्जन वनमें तुम अकेले आ गये? हे राजेन्द्र! शान्तचित्त होकर अपने आगमनका कारण बतानेकी कृपा करो' ॥५१॥ राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे मुनिवर! एक स्थूल शरीरवाला बलवान् सूअर मेरे उपवनमें पहुँचकर पुष्पोंके कोमल वृक्षोंको रौंदने लगा ॥५२॥ उसीको रोकनेके लिये हाथमें धनुष लेकर मैं सेनासहित अपने नगरसे निकल पड़ा ॥५३॥ अब वह मायावी सूअर आँखोंसे ओझल हो गया है। पता नहीं, इतनी शीघ्रतासे वह कहाँ चला गया। मैं भी उसके पीछे लग गया था। तभी मेरी सेना किसी दूसरी ओर चली गयी ॥५४॥ सैनिकोंका साथ छूट जानेपर भूख और प्याससे आतुर होकर मैं यहाँ आ गया। हे मुने! मैं नगरमें जानेका मार्ग भूल गया हूँ। सेना किधर चली गयी–इसका भी मुझे पता नहीं है ॥५५॥ हे विभो! आप कृपया मार्ग बता दें, जिससे मैं नगरमें जा सकूँ। मेरे सौभाग्यसे ही इस जनशून्य वनमें आपका दर्शन हुआ है ॥५६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं अयोध्याका राजा हूँ। मेरा नाम हरिश्चन्द्र है। इस समय मैं राजसूय यज्ञके नियमका पालन करता हूँ। जिसकी जिस वस्तुकी इच्छा हो, वही वस्तु वह मुझसे पा सकता है ॥५७॥ हे ब्रह्मन्! हे द्विजवर! यदि आप यज्ञ करनेके लिये धन चाहते हों तो अयोध्या पधारनेकी कृपा करें। मैं आपको प्रचुर धन दूँगा ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयराम-तेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(विश्वामित्रका दुर्व्यवहार) व्यासजी बोले–हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर विश्वामित्र मुनिके मुखपर मुसकान छा गयी। वे उनसे कहने लगे–॥ १ ॥ हे राजन्! यह पुण्यमय पवित्र तीर्थ पापोंका नाश करनेवाला है। हे महाभाग! इसमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करो ॥२॥ हे भूपते! यह समय भी बहुत उत्तम है। इस शुभ अवसरपर इस परम पावन तीर्थमें स्नान करके अपनी शक्तिके अनुसार दान करो ॥ ३ ॥ स्वायम्भुव मनुने कहा है, जो व्यक्ति महान् पवित्र तीर्थमें पहुँचकर वहाँ स्नान किये बिना ही लौटकर चला जाता है,

अयोध्याधिपतिश्चाहं हरिश्चन्द्रोऽतिविश्रुतः ॥ राजसूयस्य कर्ता च वांछितार्थप्रदः सदा ॥ ५७ ॥ धनेच्छा यदि ते ब्रह्मन्यज्ञार्थं द्विजसत्तम ॥ आगन्तव्यमयोध्यायां दास्यामि विपुलं धनम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा भूपतेः कौशिको मुनिः ॥ प्रहस्य प्रत्युवाचेदं हरिश्चंद्रं तदा नृप ॥ १ ॥ राजंस्तीर्थमिदं पुण्यं पावनं पापनाशनम् ॥ स्नानं कुरु महाभाग पितॄणां तर्पणं तथा ॥ २ ॥ कालः शुभतमोऽस्तीह तीर्थे स्नात्वा विशांपते ॥ दानं ददस्व शक्त्याऽत्र पुण्यतीर्थेऽतिपावने ॥ ३ ॥ प्राप्य तीर्थं महापुण्यमस्नात्वा यस्तु गच्छति ॥ स भवेदात्महा भूप इति स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥ तस्मात्तीर्थवरे राजन्कुरु पुण्यं स्वशक्तितः ॥ दर्शयिष्यामि मार्गं ते गन्ताऽसि नगरं ततः ॥ ५ ॥ आगमिष्याम्यहं मार्गदर्शनार्थं तवानघ ॥ त्वया सहाद्य काकुत्स्थ तव दानेन तोषितः ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मुनेः कपटमंडितम् ॥ वासांस्युत्तार्य विधिवत्स्नातुमभ्याययौ नदीम् ॥ ७ ॥ बंधयित्वा हयं वृक्षे मुनिवाक्येन मोहितः ॥ अवश्यंभावियोगेन तद्वशस्तु तदाऽभवत् ॥ ८ ॥ राजा स्नानविधिं कृत्वा संतर्प्य पितृदेवताः ॥ विश्वामित्रमुवाचेदं स्वामिन्दानं ददामि ते ॥ ९ ॥ यदिच्छसि महाभाग तत्ते दास्यामि सांप्रतम् ॥ गावो भूमिर्हिरण्यं च गजाश्वरथवाहनम् ॥ १० ॥ नादेयं मे

वह आत्मघाती होता है ॥ ४ ॥ अतएव हे राजन्! तुम इस उत्तम तीर्थमें अपनी शक्तिके अनुसार दान-पुण्य अवश्य करो। तुम्हारे दानसे सन्तुष्ट होकर मैं तुम्हें मार्ग दिखला दूँगा, तब तुम अपने नगरको चले जाना ॥ ५ ॥ ६ ॥ विश्वामित्रके इस वचनमें कपट भरा हुआ था। सो सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने अपने वस्त्र उतारे और विधिवत् स्नान करनेके लिए वे नदीके तटपर गये ॥७॥ घोड़ेको उन्होंने एक वृक्षमें बाँध दिया था। विश्वामित्रके कपट-वाक्यसे राजाकी बुद्धि विमोहित हो गयी थी, अथवा होनी टाली नहीं जा सकती–इसे सत्य करनेके लिये उस समय राजा मुनिके वशीभूत हो गये थे ॥ ८ ॥ उन्होंने विधिवत् स्नान करके पितरों और देवताओंका तर्पण किया। तदनन्तर विश्वामित्रसे कहा–हे स्वामिन्! मैं आपको दान देनेके लिये तैयार हूँ ॥९॥ हे महाभाग! आपकी जो इच्छा होगी वही दूँगा। गौ, पृथ्वी, सोना, हाथी, घोड़ा और रथ आदि वाहन–आप चाहे जो ले सकते हैं। मेरे पास कोई भी वस्तु अदेय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं है। सर्वोत्तम राजसूय यज्ञमें बहुतेरे मुनिगण पधारे थे। उनके समक्ष इस व्रतका पालन करनेकी मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ॥१०॥११॥ अतएव हे मुने! इस उत्तम तीर्थमें भाग्यवश आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। आप जो भी वस्तु चाहते हों, उसके लिए आज्ञा दें। मैं आपका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये प्रस्तुत हूँ' ॥ १२ ॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन्! तुम्हारी विपुल कीर्ति संसारमें व्याप्त है—इस बातकी जानकारी मुझे बहुत पहलेसे है। वसिष्ठने कहा था कि 'भूमण्डलपर कोई ऐसा दाता नहीं है। वे महाराज हरिश्चन्द्र सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं। उनके समान दानशील राजा न पहले हुआ है और न आगे होगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ उनके पिताका नाम त्रिशंकु था। पृथ्वीपर वे परम उदार माने जाते हैं।' इसलिये हे राजन्! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे यहाँ पुत्रके विवाहकी समस्या उपस्थित है। हे महाभाग! इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिये मुझे धन देनेकी कृपा करिए। राजाने कहा—विप्रेन्द्र! आप विवाह कीजिये। मैं आपके आज्ञानुसार धन देनेको तैयार हूँ। आप जितना धन चाहते हों, उतना दिया जायगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार हरिश्चन्द्रके कहने-

किमप्यस्ति कृतमेतद्व्रतं पुरा ॥ राजसूये मखश्रेष्ठे मुनीनां सन्निधावपि ॥ ११ ॥ तस्मात्त्वमिह सम्प्राप्तस्तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने ॥ यत्तेऽस्ति वांछितं ब्रूहि ददामि तव वांछितम् ॥ १२ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ मया पूर्वं श्रुता राजन्कीर्तिस्ते विपुला भुवि ॥ वसिष्ठेन च सम्प्रोक्ता दाता नास्ति महीतले ॥ १३ ॥ हरिश्चंद्रो नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशे महीपतिः ॥ तादृशो नृपतिर्दाता न भूतो न भविष्यति ॥ १४ ॥ पृथिव्यां परमोदारस्त्रिशंकुतनयो यथा ॥ अतस्त्वां प्रार्थयाम्यद्य विवाहो मेऽस्ति पार्थिव ॥ १५ ॥ पुत्रस्य च महाभाग तदर्थं देहि मे धनम् ॥ राजोवाच ॥ विवाहं कुरु विप्रेन्द्र ददामि प्रार्थितं तव ॥१६॥ यदिच्छसि धनं कामं दाता तस्यास्मि निश्चितम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः कौशिकस्तेन वंचनातत्परो मुनिः ॥१७॥ उद्भाव्य मायां गांधर्वीं पार्थिवायाप्यदर्शयत् ॥ कुमारः सुकुमारश्च कन्या च दशवार्षिकी ॥ १८ ॥ एतयोः कार्यमप्यद्य कर्तव्यं नृपसत्तम ॥ राजसूयाधिकं पुण्यं गृहस्थस्य विवाहतः ॥ १९ ॥ भविष्यति तवाद्यैव विप्रपुत्रविवाहतः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मायया तस्य मोहितः ॥ २० ॥ तथेति च प्रतिज्ञाय नोवाचाल्पं वचस्तथा ॥ तेन दर्शितमार्गोऽसौ नगरं प्रति जग्मिवान् ॥ २१ ॥ विश्वामित्रोऽपि राजानं वंचयित्वाऽऽश्रमं ययौ ॥ कृतोद्वाहविधिस्तावद्विश्वामित्रोऽब्रवीन्नृपम् ॥ २२ ॥ वेदीमध्ये नृपाद्य त्वं देहि दानं यथेप्सितम् ॥ राजोवाच ॥ किं तेऽभीष्टं द्विज ब्रूहि ददामि

पर उन्हें ठगनेके लिये पूर्ण प्रयत्नशील विश्वामित्रने गान्धर्वी माया सामने उपस्थित कर दी। तदनुसार एक सुकुमार पुत्र और दस वर्षकी कन्या—ये दोनों उन्हें दृष्टिगोचर होने लगे ॥१७॥१८॥ मुनिने कहा—'हे नृपश्रेष्ठ! आज इन्हीं दोनोंका विवाह करना परम आवश्यक हो गया है। किसी गृहस्थके लड़के-लड़कीका विवाह करा दिया जाय तो उसका पुण्य राजसूय यज्ञसे भी बढ़कर होता है ॥ १९ ॥ इस समय तुम यदि इस विवाहकार्यको सम्पन्न कर देते हो तो अवश्य पुण्यके भागी बन जाओगे।' महाराज हरिश्चन्द्र विश्वामित्रकी मायासे अपनी विवेकशक्ति खो चुके थे ॥ २० ॥ उपर्युक्त बात सुनकर उन्होंने दान देनेकी प्रतिज्ञा कर ली और कहा—'बहुत अच्छा, मैंने जो कहा है, उसमें किंचिन्मात्र त्रुटि न होगी।' तब मुनिने मार्ग बता दिया और राजा उसी रास्ते अपने नगरको चले गये ॥ २१ ॥ उन्हें ठगकर विश्वामित्रने भी अपने आश्रमकी राह ली। दूसरे दिन हरिश्चन्द्रके पास पहुँचकर उन्होंने कहा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥२२॥ हे राजन् ! विवाह-वेदीका कार्य पूर्ण करनेके लिए इस सुअवसरपर आज तुम मुझे अभिलषित दान देनेकी कृपा करो।' राजा हरिश्चन्द्रने कहा-हे द्विजवर ! आप क्या चाहते हैं, बताइये। मैं आपको अभिलषित वस्तु अवश्य दूँगा ॥ २३ ॥ मेरे लिए यदि जगत्में कोई अदेय वस्तु है तो वह केवल यश है । क्योंकि जिसने धन पाकर यश नहीं कमाया, उसका जीवन व्यर्थ समझा जाता है ॥ २४ ॥ निर्मल यशके कारण परलोकमें सुख-सुविधाएँ प्राप्त होती हैं । विश्वामित्र बोले-हे महाराज ! परम पुनीत विवाहके इस शुभ अवसरपर आप हाथी, घोड़ा, रथ और रत्नोंसे भरा-पूरा सम्पूर्ण राज्य वरको दहेजके रूपमें दे दीजिये । व्यासजी कहते हैं-हे राजन् ! विश्वामित्रकी मायासे मोहित हो जानेके कारण महाराज हरिश्चन्द्रने उनकी बात सुनकर कुछ भी विचार नहीं किया और झट कह दिया-बहुत ठीक, सारा राज्य मैंने आपको दे दिया ।' तब तुरन्त अत्यन्त कठोर हृदयवाले विश्वामित्र बोले—'हाँ, मैंने पा लिया ॥ २५-२७ ॥ परंतु हे राजेन्द्र ! हे महामते ! अब दानकी साङ्गताके लिए दक्षिणा भी तो चाहिये । क्योंकि मनुने कहा है कि बिना साङ्गताका दान निष्फल समझा जाता है॥२८॥ अतएव दानको सफल

वांछितं किल ॥ २३ ॥ अदेयमपि संसारे यशःकामोऽस्मि सांप्रतम् ॥ व्यर्थं हि जीवितं तस्य विभवं प्राप्य येन वै ॥ २४ ॥ नोपार्जितं यशः शुद्धं परलोकसुखप्रदम् ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राज्यं देहि महाराज वराय सपरिच्छदम् ॥ २५ ॥ गजाश्वरथरत्नाढ्यं वेदीमध्येऽतिपावने ॥ व्यास उवाच ॥ मोहितो मायया तस्य श्रुत्वा वाक्यं मुनेर्नृपः ॥ २६ ॥ दत्तमित्युक्तवान्राज्यमविचार्य यदृच्छया ॥ गृहीतमिति तं प्राह विश्वामित्रोऽतिनिष्ठुरः ॥ २७ ॥ दक्षिणां देहि राजेन्द्र दानयोग्यां महामते ॥ दक्षिणारहितं दानं निष्फलं मनुरब्रवीत् ॥ २८ ॥ तस्माद्दानफलाय त्वं यथोक्तां देहि दक्षिणाम् ॥ इत्युक्तस्तु तदा राजा तमुवाचातिविस्मितः ॥ २९ ॥ ब्रूहि कियद्धनं तुभ्यं देयं स्वामिन्मयाऽधुना ॥ दक्षिणानिष्क्रयं साधो वद तावत्प्रमाणकम् ॥ ३० ॥ दानपूर्त्यै प्रदास्यामि स्वस्थो भव तपोधन ॥ विश्वामित्रस्तु तच्छ्रुत्वा तमाह मेदिनीपतिम् ॥ ३१ ॥ हेमभारद्वयं सार्धं दक्षिणां देहि साम्प्रतम् ॥ दास्यामीति प्रतिश्रुत्य तस्मै राजाऽतिविस्मितः ॥ ३२ ॥ तदैव सैनिकास्तस्य वीक्षमाणाः समागताः ॥ दृष्ट्वा महीपतिं व्यग्रं तुष्टुवुस्ते मुदान्विताः ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तेषां वचो राजा नोक्त्वा किंचिच्छुभाशुभम् ॥ चिंतयन्स्वकृतं कर्म ययावंतःपुरे

बनानेके लिए तुम यथोचित दक्षिणा देनेका प्रबन्ध करो ।' हे राजन् ! जब विश्वामित्रने यों कहा, तब हरिश्चन्द्रके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही । वे उनसे कहने लगे-॥२९॥ 'हे स्वामिन् ! इस समय आपकी सेवामें कितना धन उपस्थित करना चाहिये ? हे साधो ! आप बतायें, जितनी दक्षिणा हो, उसे देनेके लिए मैं तत्पर हूँ । हे तपोधन ! आप शान्त रहिये। दानकी पूर्तिके लिए मैं दक्षिणा अवश्य दूँगा ।' राजा हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर विश्वामित्र बोले-'हे राजन् ! ढाई भार सोना दक्षिणामें दीजिये ।' यह सुनकर विस्मयमुग्ध राजाने उत्तर दिया-'हाँ ठीक है, दूँगा ।' ॥ ३०-३२ ॥ उसी समय राजा हरिश्चन्द्रके सैनिक आ पहुँचे । महाराजको देखकर उनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई, परंतु उन्हें चिंतित देखकर सैनिकोंने प्रार्थनापूर्वक उनसे चिंताका कारण पूछा ॥ ३३ ॥ व्यासजी कहते हैं— हे राजन् ! सैनिकोंके पूछनेपर महाराज हरिश्चन्द्रने भला-बुरा कुछ भी उत्तर नहीं दिया । अपने किये हुए कार्यपर विचार करते हुए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे अन्तःपुरमें चले गये ॥ ३४ ॥ वहाँ सोचा—अरे ! जिसमें अपना सर्वस्व चला जाय, ऐसा दान देना मैंने स्वीकार ही क्यों किया ? इस ब्राह्मणने तो ठगोंकी भाँति वाग्जालमें फँसाकर मुझे ठग लिया ॥३५॥ सामग्रियों सहित सम्पूर्ण राज्य उस ब्राह्मणको देनेके लिए मैं वचनबद्ध हो गया, फिर साथमें ढाई भार सोना दक्षिणा देनेकी भी प्रतिज्ञा कर ली ॥३६॥ मुनिका यह कपट मेरी समझमें नहीं आ सका । अकस्मात् उस तपस्वी ब्राह्मणके धोखेमें मैं पड़ गया ॥ ३७ ॥ निश्चय ही विधिका विधान समझमें नहीं आता । पता नहीं, अब भविष्यमें क्या होनेवाला है । इस प्रकार गहरी चिंतामें पड़े हुए राजा हरिश्चन्द्र अन्तःपुरमें चले गये ॥३८॥ उन्हें चिंताग्रस्त और उदास देखकर रानीने चिंताका कारण पूछा और कहा—'प्रभो ! इस समय आप क्यों इतने उदास हैं ? कौनसी चिंता आपको सता रही हैं ? मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ ३९ ॥ हे राजेन्द्र ! आपका पुत्र सकुशल है । राजसूय यज्ञमें आपको सफलता प्राप्त हो गयी है । फिर शोक क्यों करते हैं ? इसका कारण स्पष्ट करनेकी कृपा कीजिए ॥ ४० ॥ इस समय बलवान् अथवा निर्बल कोई कहीं भी आपका शत्रु नहीं है । वरुणदेव भी आपके व्यवहारसे

ततः ॥ ३४ ॥ किं मया स्वीकृतं दानं सर्वस्वं यत्समर्पितम् ॥ वंचितोऽहं द्विजेनात्र वने पाटच्चरैरिव ॥ ३५ ॥ राज्यं सोपस्करं तस्मै मया सर्वं प्रतिश्रुतम् ॥ भारद्वयं सुवर्णस्य सार्धं च दक्षिणा पुनः ॥ ३६ ॥ किं करोमि मतिर्भ्रष्टा न ज्ञातं कपटं मुनेः ॥ प्रतारितोऽहं सहसा ब्राह्मणेन तपस्विना ॥ ३७ ॥ न जाने दैवकार्यं वै हा दैव किं भविष्यति ॥ इति चिन्तापरो राजा गृहं प्राप्तोऽतिविह्वलः ॥ ३८ ॥ पतिं चिंतापरं दृष्ट्वा राज्ञी पप्रच्छ कारणम् ॥ किं प्रभो विमना भासि का चिंता ब्रूहि सांप्रतम् ॥ ३९ ॥ वनात्पुत्रः समायातो राजसूयः कृतः पुरा ॥ कस्माच्छोचसि राजेन्द्र शोकस्य कारणं वद ॥ ४० ॥ नारातिर्विद्यते क्वापि बलवान्दुर्बलोऽपि वा ॥ वरुणोऽपि सुसंतुष्टः कृतकृत्योऽसि भूतले ॥ ४१ ॥ चिंतया क्षीयते देहो नास्ति चिंतासमा मृतिः ॥ त्यज्यतां नृपशार्दूल स्वस्थो भव विचक्षण ॥ ४२ ॥ तन्निशम्य प्रियावाक्यं प्रीतिपूर्वं नराधिपः ॥ प्रोवाच किंचिच्चिन्तायाः कारणं च शुभाशुभम् ॥ ४३ ॥ भोजनं न चकारासौ चिंताविष्टस्तथा नृपः ॥ सुप्त्वाऽपि शयने शुभ्रे लेभे निद्रां न भूमिपः ॥ ४४ ॥ प्रातरुत्थाय चिंतार्तो यावत्संध्यादिकाः क्रियाः ॥ करोति नृपतिस्तावद्विश्वामित्रः समागतः ॥ ४५ ॥ क्षत्त्रा निवेदितो राज्ञे मुनिः सर्वस्वहारकः ॥ आगत्योवाच राजानं प्रणमंतं पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राजंस्त्यज स्वराज्यं मे देहि वाचा प्रतिश्रुतम् ॥ सुवर्णं स्पृश राजेन्द्र

परम सन्तुष्ट हैं । जगत्में आप धन्यवादके पात्र माने जाते हैं ॥ ४१ ॥ परम बुद्धिमान् हे राजेन्द्र ! चिंतासे शरीर क्षीण हो जाता है । चिंताके समान दूसरी कोई मृत्यु नहीं है । अतः आप इसे छोड़कर स्वस्थ हो जाइए ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! पत्नीके वचन सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने प्रीतिपूवक उसे चिंताका कारण बतलाना चाहा, पर बता नहीं सके । उस समय उनका रोम-रोम चिन्तासे व्याप्त था । भोजन तक छूट गया । वे स्वच्छ शय्यापर सोए थे, परन्तु उन्हें नींद नहीं आ सकी ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ चिन्तातुर महाराज हरिश्चन्द्र प्रातःकाल उठकर जब सन्ध्या-वन्दन आदि क्रियाएँ सम्पन्न कर रहे थे, ठीक उसी समय विश्वामित्र वहाँ आ धमके ॥४५॥ उन सर्वस्वहारी मुनिके आनेकी सूचना द्वारपालोंने राजाके पास पहुँचायी। आज्ञा पाकर मुनि अन्दर आए । राजाने बार-बार प्रणाम किया । उसी क्षण मुनि कहने लगे ॥ ४६ ॥ विश्वामित्रने कहा—हे राजन् ! राज्यकी ममता छोड़कर अब इसे मुझे दे दो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्योंकि तुम इसे मुझे दे चुके हो। हे राजेन्द्र! अब सांगताके लिए सुवर्ण-दक्षिणा देकर तुम्हें अपनी सत्यवादिता सिद्ध करनी चाहिये ॥४७॥ राजा हरिश्चन्द्र बोले—कुशिक-वंशको सुशोभित करनेवाले हे प्रभो! अब यह राज्य मेरा नहीं है। मैं इसे चुका। मैं यहाँसे अन्यत्र चला जाऊँगा, आप चिन्ता न करें ॥ ४८ ॥ हे ब्रह्मन्! हे विभो! हे द्विजवर! मेरा सर्वस्व आपकी सेवामें समर्पित है। आप इसपर अपना अधिकार कर लें। अभी इस समय दक्षिणावाला सुवर्ण देनेमें मैं असमर्थ हूँ। जिस समय मेरे पास धन आयेगा, उसी क्षण मैं आपकी दक्षिणा अवश्य चुका दूँगा ॥४९॥५०॥ इस प्रकार विश्वामित्रसे बातचीत करके राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र रोहित तथा भार्या माधवीसे कहा—'यह सम्पूर्ण राज्य इन ब्राह्मणदेवताको मैं दान कर चुका हूँ ॥ ५१ ॥ हाथी, घोड़े, रथ, रत्न और सुवर्ण आदि सभी समान इस दानके अन्तर्गत आ गए। केवल हम तीन व्यक्तियोंके शरीरोंको छोड़कर और सबका सब इन्हें समर्पित हो गया ॥ ५२ ॥ अतः हम लोगोंको अब अयोध्या छोड़कर किसी गहन वनमें चले चलना चाहिए। ये मुनि इस समृद्धिशाली राज्यका भलीभाँति उपभोग करें' ॥ ५३ ॥

सत्यवाग्भव साम्प्रतम् ॥ ४७ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ स्वामित्राज्यं तवेदं मे मया दत्तं किलाधुना ॥ त्यक्त्वाऽन्यत्र गमिष्यामि मा चिंतां कुरु कौशिक ॥ ४८ ॥ सर्वस्वं मम ते ब्रह्मन्गृहीतं विधिवद्विभो ॥ सुवर्णदक्षिणां दातुमशक्तोऽस्म्यधुना द्विज ॥ ४९ ॥ दानं ददामि ते तावद्यावन्मे स्याद्धनागमः ॥ पुनश्चेत्कालयोगेन तदा दास्यामि दक्षिणाम् ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा नृपतिः प्राह पुत्रं भार्यां च माधवीम् ॥ राज्यमस्मै प्रदत्तं वै मया वेद्यां सुविस्तरम् ॥ ५१ ॥ हस्त्यश्वरथसंयुक्तं रत्नहेमसमन्वितम् ॥ त्यक्त्वा त्रीणि शरीराणि सर्वं चास्मै समर्पितम् ॥ ५२ ॥ त्यक्त्वाऽयोध्यां गमिष्यामि कुत्रचिद्वनगह्वरे ॥ गृह्णात्विदं मुनिः सम्यग्राज्यं सर्वसमृद्धिमत् ॥ ५३ ॥ इत्याभाष्य सुतं भार्यां हरिश्चन्द्रः स्वमंदिरात् ॥ विनिर्गतः सुधर्मात्मा मानयंस्तं द्विजोत्तमम् ॥ ५४ ॥ व्रजंतं भूपतिं वीक्ष्य भार्यापुत्रावुभावपि ॥ चिंतातुरौ सुदीनास्यौ जग्मतुः पृष्ठतस्तदा ॥ ५५ ॥ हाहाकारो महानासीन्नगरे वीक्ष्य तांस्तथा ॥ चुक्रुशुः प्राणिनः सर्वे साकेतपुरवासिनः ॥ ५६ ॥ हा राजन्किं कृतं कर्म कुतः क्लेशः समागतः ॥ वंचितोऽसि महाराज विधिनाऽपंडितेन ह ॥ ५७ ॥ सर्वे वर्णास्तदा दुःखमापुयुस्तं महीपतिम् ॥ विलोक्य भार्यया सार्धं पुत्रेण च महात्मना ॥ ५८ ॥ निनिंदुर्ब्राह्मणं तं तु दुराचारं पुरौकसः ॥ धूर्तोऽयमिति भाषंतो दुःखार्ता ब्राह्मणादयः ॥ ५९ ॥ निर्गत्य नगरात्तस्माद्विश्वामित्रः क्षितीश्वरम् ॥

हे राजन्! अपने पुत्र और पत्नीसे यों कहकर परम धार्मिक राजा हरिश्चन्द्र राजभवनसे निकल पड़े। उस समय भी विश्वामित्रके प्रति उन सदाचारी राजाके मुखसे आदरके ही शब्द निकल रहे थे ॥ ५४ ॥ उन्हें जाते देखकर उदास एवं चिन्तित पुत्र रोहित तथा रानी माधवी भी उनके साथ हो गयीं ॥ ५५ ॥ इन तीनोंकी यह स्थिति देखकर नगरमें हाहाकार मच गया। अयोध्यामें रहनेवाले सब प्राणियोंकी आँखें जल बरसाने लगीं और वे चीत्कार करके रोने लगे—हा राजन्! आपने यह क्या कर डाला? कहाँसे क्लेशकी यह घटा आपके ऊपर घिर आयी? हे महाराज! यह निश्चय है कि आप दैववश इस धूर्त ब्राह्मणके धोखेमें आ गए ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ महात्मा पुत्र तथा साध्वी रानीके सहित राजा हरिश्चन्द्रकी यह दशा देखकर सभी वर्णके लोग अत्यन्त दुःख प्रकट करने लगे ॥५८॥ पुरवासियोंने उस दुराचारी ब्राह्मण विश्वामित्रकी घोर निन्दा आरम्भ कर दी। ब्राह्मण लोग दुःखसे घबराकर कहने लगे—यह महान् धूर्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है ॥ ५९ ॥ महाराज हरिश्चन्द्र नगरसे निकलकर जा रहे थे। इतनेमें विश्वामित्र आ गये और बड़ी निष्ठुरतासे कहने लगे—॥ ६० ॥ हे राजन्! मेरी दक्षिणाका सुवर्ण अभी देकर जाओ, अथवा कह दो कि मैं नहीं दूँगा तो मैं वह सोना छोड़ दूँ ॥ ६१ ॥ हे राजन्! तुम्हारे हृदयमें राज्यका लोभ हो तो इसे भी वापस ले सकते हो। 'देनेके लिए प्रतिज्ञा कर चुका हूँ'—इसपर तुम्हारी मान्यता हो तो फिर देनेमें क्या हिचक है?' ॥ ६२ ॥ विश्वामित्रके यह कहनेपर सत्यप्रतिज्ञ राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त दीनता प्रकट करते हुए प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

(राजा हरिश्चन्द्रका काशीगमन) राजा हरिश्चन्द्रने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे मुनिवर! मेरी प्रतिज्ञा है कि आपको बिना स्वर्ण दिये मैं भोजन नहीं करूँगा। आप विषाद न करें ॥ १ ॥ मेरा जन्म सूर्यवंशमें हुआ है। मैं एक क्षत्रिय–नरेश हूँ। मनुष्योंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला राजसूय यज्ञ मेरे द्वारा सम्पन्न हो चुका है॥ २ ॥ हे स्वामिन्! हे

गच्छंतं तमुवाचेदं समेत्य निष्ठुरं वचः ॥ ६० ॥ दक्षिणायाः सुवर्णं मे दत्त्वा गच्छ नराधिप ॥ नाहं दास्यामि वा ब्रूहि मया त्यक्तं सुवर्णकम् ॥६१॥ राज्यं गृहाण वा सर्वं लोभश्चेद्धि विवर्तते ॥ दत्तं चेन्मन्यसे राजन्देहि यत्तत्प्रतिश्रुतम् ॥ ६२ ॥ एवं ब्रुवंतं गाधेयं हरिश्चन्द्रो महीपतिः ॥ प्रणिपत्य सुदीनात्मा कृतांजलिपुटोऽब्रवीत् ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ अदत्त्वा ते हिरण्यं वै न करिष्यामि भोजनम् ॥ प्रतिज्ञा मे मुनिश्रेष्ठ विषादं त्यज सुव्रत ॥ १ ॥ सूर्यवंशसमुद्भूतः क्षत्रियोऽहं महीपतिः ॥ राजसूयस्य यज्ञस्य कर्ता वांछितदो नृषु ॥ २ ॥ कथं करोमि नाकारं स्वामिन्दत्त्वा यदृच्छया ॥ अवश्यमेव दातव्यमृणं ते द्विजसत्तम ॥ ३ ॥ स्वस्थो भव प्रदास्यामि सुवर्णं मनसेप्सितम् ॥ कंचित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्प्राप्स्याम्यहं धनम् ॥ ४ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ कुतस्ते भविता राजन्धनप्राप्तिरतः परम् ॥ गतं राज्यं तथा कोशो बलं चैवार्थसाधनम् ॥ ५ ॥ वृथाऽऽशा ते महीपाल धनार्थे किं करोम्यहम् ॥ निर्धनं त्वां च लोभेन पीडयामि कथं नृप ॥ ६ ॥ तस्मात्कथय भूपाल न दास्यामीति सांप्रतम् ॥ त्यक्त्वाऽऽशां महतीं कामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥ ७ ॥ यथेष्टं व्रज राजेन्द्र भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ सुवर्णं नास्ति किं तुभ्यं ददामीति वदाधुना॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ गच्छन्वाक्यमिदं

द्विजसत्तम! विप्रोंको इच्छानुसार दान कर मैं 'नाहीं' कैसे कर सकता हूँ? आपका ऋण चुकाना मेरा परम कर्तव्य है ॥३॥ शान्त रहिए। मैं आपको अभीष्ट सुवर्ण अवश्य दूँगा। हाँ, जबतक मुझे धन न मिले, तबतक कुछ समयके लिए आप कृपया प्रतीक्षा करें ॥४॥ विश्वामित्र बोले–राजन्! अब तुम्हें धन कहाँसे मिलेगा? राज्य हाथसे चला गया। खजानोंपर तुम्हारा अधिकार नहीं रहा। अर्थ उपार्जन करनेकी साधनभूता सेना तुम्हारे पास नहीं रही ॥५॥ हे राजन्! अब तुम्हें धनकी आशा करना बिल्कुल व्यर्थ है। मैं क्या करूँ? तुम जैसे निर्धन व्यक्तिको धनके लोभसे मैं पीड़ित भी कैसे करूँ? ॥ ६ ॥ अतएव हे राजन्! कह दो, 'अब मैं नहीं दे सकूँगा।' तब मैं धन पानेकी अपनी बड़ी आशा छोड़कर चला जाऊँगा ॥७॥ हे राजेंद्र! 'मेरे पास सोना नहीं है, आपको क्या दूँ?' यों कहकर स्त्री और पुत्रके साथ अब तुम्हें इच्छानुसार चले जाना चाहिये। ८॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन्! महाराज हरिश्चन्द्रने विश्वामित्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुनिकी यह बात सुनकर उत्तर दिया–'हे ब्रह्मन् ! आप धैर्य रखें। मैं आपको धन अवश्य दूँगा ॥ ९ ॥ हे द्विजवर ! मेरे पास अब और कुछ नहीं बचा है–यह सत्य है, परन्तु स्त्रीका, मेरा और मेरे पुत्रका पवित्र शरीर तो अभी शेष है। इन्हें बेचकर मैं आपका ऋण अवश्य चुकाऊँगा ॥१०॥ हे द्विजेन्द्र! हे प्रभो ! आप काशीपुरीमें किसी ग्राहकको खोजिए। स्त्री एवं पुत्र-सहित मैं उसकी सेवा करूँगा ॥११॥ हे मुने ! हम सब लोग उसके हाथ बिक जायँगे। आप हमारे मूल्यसे ढाई भार सोना लेकर संतुष्ट हो जायँ ॥१२॥ ऐसा कहकर पत्नी और पुत्रके सहित राजा हरिश्चन्द्र उस काशीपुरीमें गये, यहाँ स्वयं भगवान् शंकर अपनी प्राणप्रिया उमाके साथ विराजते हैं ॥१३॥ मनमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाली उस दिव्य पुरीको देखकर राजाने कहा–'यह पुरी बड़ी ही देदीप्यमान है। इसका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया।' ॥१४॥ फिर वे गंगाके तटपर गये। वहाँ स्नान और देवताओंका तर्पण किया। देवार्चन-विधि सम्पन्न करके वे चारों

श्रुत्वा ब्राह्मणस्य च भूपतिः ॥ प्रत्युवाच मुनिं ब्रह्मन्धैर्यं कुरु ददाम्यहम् ॥ ९ ॥ मम देहोऽस्ति भार्यायाः पुत्रस्य च ह्यनामयः ॥ क्रीत्वा देहं तु तं नूनमृणं दास्यामि ते द्विज ॥ १० ॥ ग्राहकं पश्य विप्रेंद्र वाराणस्यां पुरि प्रभो ॥ दासभावं गमिष्यामि सदारोऽहं सपुत्रकः ॥ ११ ॥ गृहाण कांचनं पूर्णं सार्धं भारद्वयं मुने ॥ मौल्येन दत्त्वा सर्वान्नः संतुष्टो भव भूधर ॥ १२ ॥ इति ब्रुवञ्जगामाथ सह पत्न्या सुतान्वितः ॥ उमया कांतया सार्धं यत्रास्ते शंकरः स्वयम् ॥१३॥ यां दृष्ट्वा च पुरीं रम्यां मनसो ह्लादकारिणीम् ॥ उवाच स कृतार्थोऽस्मि पुरीं पश्यन्सुवर्चसम् ॥ १४ ॥ ततो भागीरथीं प्राप्य स्नात्वा देवादितर्पणम् ॥ देवार्चनं च निर्वर्त्य कृतवान्दिग्विलोकनम् ॥ १५ ॥ प्रविश्य वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम् ॥ नैषा मनुष्यभुक्तेति शूलपाणेः परिग्रहः ॥ १६ ॥ जगाम पद्भ्यां दुःखार्तः सह पत्न्या समाकुलः ॥ पुरीं प्रविश्य स नृपो विश्वासमकरोत्तदा ॥१७॥ ददर्शाऽथ मुनिश्रेष्ठं ब्राह्मणं दक्षिणार्थिनम् ॥ तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत् ॥ १८ ॥ प्राह चैवांजलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम् ॥ इमे प्राणाः सुतश्चाथ प्रिया पत्नी मुने मम ॥ १९ ॥ येन ते कृत्यमस्त्याशु गृहाणाद्य द्विजोत्तम ॥ यच्चान्यत्कार्यमस्माभिस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ २० ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ पूर्णः स मासो भद्रं ते दीयतां मम दक्षिणा ॥ पूर्वं तस्य निमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्ना-

ओर घूमकर देखने लगे ॥ १५ ॥ उस दिव्य काशीपुरीमें जानेपर राजाने सोचा, यह पुरी त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करकी सम्पत्ति है। दुःखसे अधीर होकर घबराये हुए राजा हरिश्चन्द्र पैदल ही चलकर नगरमें प्रविष्ट हुये थे। रानी साथ थी। काशीपुरीमें प्रवेश हो जानेपर महाराजका मन कुछ आश्वस्त-सा हो गया ॥ १६ ॥ १७ ॥ इतनेमें दक्षिणा पानेकी अभिलाषा रखनेवाले मुनिवर विश्वामित्र सामने उपस्थित हो गये। मुनिको देखकर महाराज हरिश्चन्द्रने विनयपूर्वक नम्रता प्रदर्शित करते हुए दोनों हाथ जोड़ लिये और कहा–॥ १८ ॥ 'हे मुने ! ये मेरे प्राण, पुत्र और प्रिय पत्नी सबके सब आपकी सेवामें उपस्थित हैं ॥ १९ ॥ इनमेंसे जिससे आपका काम सध सके, उसे ही आप शीघ्र स्वीकार कर लीजिये। हे मुनिवर ! यदि हमसे अन्य कोई कार्य होनेकी सम्भावना हो तो वह भी बतानेकी कृपा करें' ॥ २० ॥ विश्वामित्र बोले–हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो। आज महीना पूरा हो रहा है। तुम्हें यदि अपनी प्रतिज्ञा याद हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो प्रतिश्रुत दक्षिणा देनेका अभी प्रयास करो ॥२१॥ राजाने कहा—ज्ञान और तपके बलसे शोभा पानेवाले हे ब्रह्मन्! आज अवश्य ही महीना पूरा हो जायगा, परन्तु अभी आधा दिन शेष है। तबतक आप प्रतीक्षा करें। दूसरे दिन न रुकियेगा ॥२२॥ विश्वामित्र बोले—हे महाराज! ऐसा ही हो। मैं फिर आ जाऊँगा। परन्तु यदि उस समय भी तुम न दे सके तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा ॥२३॥ जब यों कहकर विश्वामित्र चले गये, तब राजा हरिश्चन्द्रने सोचा—'जिसे देनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, वह दक्षिणा इन मुनिको मैं कैसे चुकाऊँ? ॥ २४ ॥ कहाँसे मेरे धनी-मानी मित्र मिल जायँगे अथवा इतनी सम्पत्ति ही मुझे कहाँ मिल जायगी। किसी दुर्जन व्यक्तिके पास यदि धनका संग्रह हो भी तो मैं उससे माँगूँ कैसे? ॥ २५ ॥ धर्मशास्त्रोंमें राजाओंके लिए निश्चितरूपसे तीन वृत्तियाँ बतायी गयी हैं। किंतु माँगना राजाका कर्त्तव्य नहीं है। यदि दक्षिणा चुकाये बिना ही प्राण त्याग दूँ तो ब्राह्मणकी वृत्ति अपहरण करनेके कारण मुझे अत्यन्त अधम एवं पापीको कीड़ेकी योनिमें जाना पड़ेगा। अथवा मैं प्रेत हो जाऊँगा। इससे अच्छा है कि अपनेको ही बेच डालूँ' ॥ २६ ॥ २७ ॥ सूतजी कहते हैं—राजा

द्यापि संपूर्णो मासो ज्ञानतपोबल ॥ तिष्ठत्येकदिनार्धं यत्तत्प्रतीक्षस्व नापरम् ॥ २२ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ इवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः ॥ शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रयच्छसि ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वाऽथ ययौ विप्रो राजा चाचिंतयत्तदा ॥ कथमस्मै प्रयच्छामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥ २४ ॥ कुतः पुष्टानि मित्राणि कुत्रार्थ सांप्रतं मम ॥ प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे तत्र याञ्चा कथं भवेत् ॥ २५ ॥ राज्ञां वृत्तित्रयं प्रोक्तं धर्मशास्त्रेषु निश्चितम् ॥ यदि प्राणान्विमुञ्चामि ह्यप्रदाय च दक्षिणाम् ॥२६॥ ब्रह्मस्वहा कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः ॥ अथवा प्रेततां यास्ये वर एवात्मविक्रयः ॥ २७॥ सूत उवाच ॥ राजानं व्याकुलं दीनं चिंतयानमधोमुखम् ॥ प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा ॥२८॥ त्यज चिंतां महाराज स्वधर्ममनुपालय ॥ प्रेतवद्वर्जनीयो हि नरः सत्यबहिष्कृतः ॥ २९ ॥ नातः परतरं धर्मं वदंति पुरुषस्य च ॥ यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यस्यानुपालनम् ॥ ३० ॥ अग्निहोत्रमधीतं च दानाद्याः सकलाः क्रियाः ॥ भवंति तस्य वैफल्यं वाक्यं यस्यानृतं भवेत् ॥३१॥ सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम् ॥ तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥ ३२ ॥ शताश्वमेधानाहृत्य राजसूयं च पार्थिवः ॥ कृत्वा राजा सकृत्स्वर्गाद्सत्यवचनाच्च्युतः ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ वंशवृद्धिकरश्चायं पुत्रस्तिष्ठति बालकः ॥ उच्यतां वक्तुकामाऽसि यद्वाक्यं गजगामिनि ॥ ३४ ॥

हरिश्चन्द्र व्याकुल होकर नीचा मुख किये हुए ऐसा सोच रहे थे। उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। उस समय रानी गरम श्वास लेती हुई गद्गद वाणीमें कहा-॥२८॥ 'महाराज! चिंता छोड़कर अपने सत्यधर्मका पालन कीजिये। क्योंकि सत्यरूपी धर्मसे बहिष्कृत मनुष्य प्रेतके समान त्याज्य समझा जाता है ॥ २९ ॥ हे पुरुषव्याघ्र! अपने सत्य वचनका पालन परम श्रेष्ठ धर्म है। पुरुषके लिये इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं है ॥ ३० ॥ जिसकी बात मिथ्या हो उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और दान आदिकी सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं ॥ ३१ ॥ धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है कि विवेकी पुरुषोंके उद्धारमें जैसे सत्य परम कारण है, वैसे ही दुराचारियोंके पतनमें असत्य ॥ ३२ ॥ सौ अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करनेके पश्चात् एक बार झूठ बोल देनेसे एक राजाको स्वर्गसे च्युत हो जाना पड़ा था' ॥ ३३ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे गजगामिनी! वंशकी वृद्धि करनेवाला यह पुत्र विद्यमान है ही। अतः जो भी इच्छा हो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहो। मैं उसे करनेके लिए तैयार हूँ ॥ ३४ ॥ रानीने कहा—राजन्! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये। स्त्रियाँ पुत्र प्रसव कर देनेपर सफल हो जाती हैं। अतः आप मुझे धन लेकर दूसरेको दे दें और उसी वित्तसे ब्राह्मणकी दक्षिणा चुकानेकी कृपा करें ॥ ३५ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! पत्नीकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अचेत हो गये। मूर्छा दूर होनेपर अत्यन्त दुखी होनेके कारण विलापकरते हुए कहने लगे—॥३६॥ हे भद्रे! यह बहुत ही दुःखद विषय है, जो तुम्हारे मुखसे ऐसी बातें निकल रही हैं। तुम्हारे मुसकान भरे वचन क्या मुझ पापीको याद नहीं हैं ॥३७॥ हा हा शुचिस्मिते! 'मैं तुमको बेच डालूँ'—तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। हे भामिनो! तुम यह अप्रिय वचन कैसे कह रही हो? ॥ ३८ ॥ हे राजन्! स्त्रीके बेचनेकी बात सामने आनेपर महाराज हरिश्चन्द्रके धैर्यका बाँध टूट गया। उपर्युक्त बातें कहकर वे भूमिपर गिर पड़े और मूर्छा आ गयी ॥ ३९ ॥ उन्हें पृथ्वीकी गोदमें मूर्च्छित पड़े देखकर राजकुमारीके दुःखकी सीमा नहीं रही। उसने पतिदेवसे करुणापूर्वक यह वचन कहा—॥४०॥ 'महाराज! किसकी असावधानीसे यह संकट उपस्थित हो गया, जिसके

पत्न्युवाच ॥ राजन्माभूदसत्यं ते पुंसां पुत्रफलाः स्त्रियः ॥ तन्मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम् ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः ॥ प्रतिलभ्य च संज्ञां वै विललापातिदुःखितः ॥ ३६ ॥ महद्दुःखमिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि मे ॥ किं तव स्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः ॥ ३७ ॥ हा हा त्वया कथं योग्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते ॥ दुर्वाच्यमेतद्वचनं कथं वदसि भामिनि ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा नृपतिश्रेष्ठो न धीरो दारविक्रये ॥ निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयाऽतिपरिप्लुतः ॥ ३९ ॥ शयानं भुवि तं दृष्ट्वा मूर्च्छयाऽपि महीपतिम् ॥ उवाचेदं सुकरुणं राजपुत्री सुदुःखिता ॥ ४० ॥ हा महाराज कस्येदमपध्यानादुपागतम् ॥ यस्त्वं निपतितो भूमौ रंकवच्छरणोचितः ॥ ४१ ॥ येनैव कोटिशो वित्तं विप्राणामपवर्जितम् ॥ स एव पृथिवीनाथो भुवि स्वपिति मे पतिः ॥ ४२ ॥ हा कष्टं किं तवानेन कृतं दैव महीक्षिता ॥ यदिंद्रोपेंद्रतुल्योऽयं नीतः पापामिमां दशाम् ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वा साऽपि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह ॥ भर्तुर्दुःखमहाभारेणासह्येनातिपीडिता ॥ ४४ ॥ शिशुर्दृष्ट्वा क्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः ॥ तात तात प्रदेह्यन्नं मातर्मे देहि भोजनम् ॥ ४५ ॥ क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रे मेऽतिशुष्यति ॥ ४६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

परिणामस्वरूप शरणदाता होते हुए भी आप दरिद्रकी भाँति धरतीपर पड़े हैं ॥ ४१ ॥ जिन्होंने करोड़ोंकी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको सुगमतापूर्वक दे डाली, वे ही पृथिवीपर शासन करनेवाले मेरे पतिदेव आज पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ ४२ ॥ हा, महान् दुःखकी बात है। हे दैव! इन नरेशने तुम्हारा कौन-सा अप्रिय कार्य कर दिया, जिससे रूठकर तुमसे इन्द्र और उपेन्द्रकी तुलना करनेवाले महाराजके जीवनमें ऐसी दयनीय दशा उपस्थित कर दी? ॥४३॥ यह कहती हुई रानी भी मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। स्वामीके दुःखका भार उसे असह्य हो गया था। इससे वह अत्यन्त संतप्त थी ॥४४॥ उस समय कुमार रोहित भूखसे कष्ट पा रहा था। उसने माता और पिताकी ओर देखकर कहा—'पिताजी! मुझे अन्न दोजिये। माताजी! मुझे भोजन दो। मुझे बहुत जोरकी भूख लगी है। मेरी जीभ सूखी जा रही है' ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(एक ब्राह्मणके हाथ रानी और राजकुमारका विक्रय) सूतजी बोले—हे राजन ! इतनेमें महान् तपस्वी विश्वामित्र आ पहुँचे । वे क्रोधमें यमराजकी तुलना कर रहे थे । अपनी दक्षिणाका धन माँगनेके लिए उनका आना हुआ था ॥ १ ॥ मुनिका देखकर राजा हरिश्चन्द्रको मूर्छा आ गयी । वे पुनः पृथ्वीपर गिर पड़े । तब विश्वामित्रने जलके छींटे देकर उनसे यह वचन कहा–॥२॥ राजेन्द्र ! उठो और मेरी अभीष्ट दक्षिणा देनेका प्रयत्न करो ; क्योंकि ऋणियोंका ऋणभार बराबर बढ़ता ही रहता है' ॥३॥ मुनिने ठंडे जलके जो छींटे दिये थे, उससे होशमें आकर उन्होंने विश्वामित्रकी ओर देखा । तब द्विजवर विश्वामित्र कुपित होकर आश्वासन देनेके साथ हो राजासे कहने लगे ॥४॥ विश्वामित्रने कहा—राजन् ! तुम्हें यदि धैर्य अभीष्ट हो तो मुझे दक्षिणा देनेकी कृपा करो । कारण, सत्यके प्रभावसे ही सूर्य तपते हैं । सत्यके ऊपर ही यह पृथ्वी स्थित है ॥५॥ सत्यपर परम धर्मकी मान्यता निर्भर है तथा स्वर्गकी प्रतिष्ठा

॥ सूत उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः ॥ अन्तकेन समः क्रुद्धो धनं स्वं याचितुं हृदा ॥ १ ॥ तमालोक्य हरिश्चन्द्रः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ स वारिणा तमभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र स्वां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥ ऋणं धारयतां दुःखमहन्यहनि वर्धते ॥ ३ ॥ आप्यायमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा ॥ अवाप्य चेतन राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च ॥ ४ ॥ पुनर्मोहं समापेदे ह्यथ क्रोधं ययौ मुनिः ॥ समाश्वास्य च राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः ॥ ५ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धैर्यमवेक्षसे ॥ सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ॥ ६ ॥ सत्ये चोक्तः परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥ अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् ॥७॥ अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते ॥ अथवा किं ममैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् ॥ ८ ॥ मदीयां दक्षिणां राजन्न दास्यति भवान्यदि ॥ अस्ताचलगते ह्यर्के शप्स्यामि त्वामतो ध्रुवम् ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः ॥ दुःखीभूतोऽवनौ निःस्वो नृशंसं मुनिनाऽर्दितः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं निर्ययौ स्वगृहाद्बहिः ॥ ११ ॥ ततो राज्ञी तु तं दृष्ट्वा आयांतं तापसं स्थितम् ॥ उवाच वाक्यं राजानं धर्मार्थसहितं तदा ॥ १२ ॥ त्रयाणामपि वर्णानां पिता ब्राह्मण उच्यते ॥ पितृद्रव्यं हि पुत्रेण ग्रहीतव्यं न

भी सत्यसे ही है । यदि सौ अश्वमेध यज्ञ और सत्य तराजूके पृथक्-पृथक् पलड़ेपर रख दिये जायँ तो सौ अश्वमेध यज्ञोंसे सत्य बढ़ जायगा । अस्तु, इन सब बातोंके कहने-सुननेसे क्या प्रयोजन ॥६–८॥ मुझे तो तुम तुरन्त मेरी दक्षिणा दे दो । राजन् ! यदि दक्षिणा न मिली तो सूर्यके अस्ताचलपर पधारते ही मैं तुम्हें अवश्य शाप दे दूँगा ॥९॥ यों कहकर विश्वामित्र चले गये । भयसे घबराये हुए राजा हरिश्चन्द्रके दुःखका पार नहीं रहा । इस प्रकार मुनिद्वारा सताए जानेपर निर्धन राजा धरतीपर छटपटानें लगे ॥ १० ॥ सूतजी कहते हैं–उसी समय वेद-पारंगत एक ब्राह्मण अपने घरसे बाहर निकले । बहुत-से ब्राह्मणोंकी मण्डली उनके साथ थी ॥११॥ उस समय वे तपस्वी ब्राह्मण इधर ही आ रहे थे । उन्हें सामने स्थित देखकर रानीने महाराज हरिश्चन्द्रसे धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहा–॥ १२ ॥ 'हे प्रभो ! ब्राह्मण तीन वर्णोंके पिता कहे जाते हैं । पिताके धनपर पुत्रका अधिकार होता ही है–यह बिल्कुल निश्चित है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतः मेरी सम्मति है कि इनसे कुछ धनके लिये प्रार्थना की जाय ।' राजा हरिश्चन्द्रने कहा—सुमध्यमे ! मैं क्षत्रिय हूँ । मुझे दान नहीं लेना है ॥१३॥ १४ ॥ माँगना ब्राह्मणोंके लिए ही शोभा देता है, न कि क्षत्रियोंके लिये । ब्राह्मण चारों वर्णोंके गुरु हैं । उनको तो सदा पूजा करनी चाहिये ॥१५॥ अतः गुरुसे याचना करना उचित नहीं है । क्षत्रिय तो इस नियमके अधिक पोषक होते हैं—दान देना, पढ़ना, यज्ञ करना, शरणमें आये हुएको अभय बनाना और प्रजाकी रक्षा करना—ये ही कर्म क्षत्रियके लिए विहित हैं । क्षत्रिय इस प्रकारका दीन वचन कभी न कहेगा कि 'मुझे कुछ दीजिये ।'॥१६॥१७॥ हे देवी ! 'मैं दाता हूँ' यह आस्था मेरे हृदयके कोने-कोनेमें भरी है । अतः कहींसे भी धनका उपार्जन करके ब्राह्मणोंको देनेके लिए मैं तत्पर हूँ, ॥ १८ ॥ पत्नीने कहा-स्वामिन् ! कालके प्रभावसे पुरुषके सामने सम और विषम परिस्थिति आया ही करती है । काल ही मनुष्यको अपमानित और सम्मानित करता है । पुरुषके दाता और मँगता होनेमें भी कालकी ही महिमा है ॥ १९ ॥ एक विद्वान् एवं शक्तिशाली ब्राह्मण राजापर कुपित हो जाय, फलस्वरूप राजाका राज्यसे निकल जाना पड़े और वह सुखसे हाथ

संशयः ॥१३॥ तस्मादयं प्रार्थनीयो धनार्थमिति मे मतिः ॥ राजोवाच ॥ नाहं प्रतिग्रहं कांक्षे क्षत्रियोऽहं सुमध्यमे ॥१४॥ याचनं खलु विप्राणां क्षत्रियाणां न विद्यते ॥ गुरुर्हि विप्रो वर्णानां पूजनीयोऽस्ति सर्वदा ॥ १५ ॥ तस्माद्गुरुर्न याच्यः स्यात्क्षत्रियाणां विशेषतः ॥ यजनाध्ययनं दानं क्षत्रियस्य विधीयते ॥ १६ ॥ शरणागतानामभयं प्रजानां प्रतिपालनम् ॥ न चाप्येवं तु वक्तव्यं देहीति कृपणं वचः ॥ १७ ॥ ददामीत्येव मे देवि हृदये निहितं वचः ॥ अर्जितं कुत्रचिद्द्रव्यं ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ॥ १८ ॥ पत्न्युवाच ॥ कालः समविषमकरः परिभवसम्मानमानदः कालः ॥ कालः करोति पुरुषं दातारं याचितारं च ॥१९॥ विप्रेण विदुषा राजा क्रुद्धेनातिबलीयसा ॥ राज्यान्निरस्तः सौख्याच्च पश्य कालस्य चेष्टितम् ॥२०॥ राजोवाच ॥ असिना तीक्ष्णधारेण वरं जिह्वा द्विधा कृता ॥ न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति भाषितम् ॥ २१ ॥ क्षत्रियोऽहं महाभागे न याचे किंचिदप्यहम् ॥ ददामि वाऽहं नित्यं हि भुजवीर्यार्जितं धनम् ॥२२॥ पत्न्युवाच ॥ यदि ते हि महाराज याचितुं न क्षमं मनः ॥ अहं तु न्यायतो दत्ता देवैरपि सवासवैः ॥ २३ ॥ अहं शास्या च पत्या च रक्ष्या चैव महाद्युते ॥ मन्मौल्यं संगृहीत्वाथ गुर्वर्थः संप्रदीयताम् ॥ २४ ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः ॥ कष्टं कष्टमिति प्रोच्य विललापातिदुःखितः ॥ २५ ॥ भार्या च भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ॥ विप्रशापाग्निदग्ध-

धो बैठे—यह सब कालकी ही तो करतूत है ॥ २० ॥ राजा बोले—तीखे धारवाली तलवारसे जीभके दो टुकड़े हो जाना ठीक है, परन्तु सम्मानका परित्याग करके 'दीजिये-दीजिये' कहना मैं उचित नहीं समझता ॥२१॥ हे महाभागे ! मैं क्षत्रिय हूँ । किसीसे कुछ भी माँग नहीं सकता । बल्कि अपने बाहुबलसे उपार्जित धन देनेके लिए मैं सदा तत्पर हूँ ॥ २२ ॥ पत्नीने कहा—महाराज ! यदि आपका मन याचना करनेमें समर्थ नहीं है तो मैं आपकी सम्पत्ति हूँ । इन्द्रसहित सभी देवताओंने न्यायपूर्वक मुझे आपको सौंपा है ॥२३॥ आप स्वामी बनकर मुझ आज्ञाकारिणी पत्नीकी रक्षामें सदा तत्पर रहे हैं । अतएव हे महाद्युते ! अब आप मेरा मूल्य लेकर गुरु विश्वामित्रकी दक्षिणा चुका दीजिये ॥ २४ ॥ हे राजन् ! पत्नीकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रके दुःखका पार नहीं रहा । 'महान् कष्ट है, महान् कष्ट है' यों कहकर वे रो पड़े ॥ २५ ॥ तब रानीने उनसे फिर कहा—'आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करनेकी कृपा कीजिए ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्यथा ब्राह्मणके शापरूपी अग्निसे भस्म हो जानेपर नीच योनिमें जन्म लेना पड़ेगा ॥ २६ ॥ जुआ खेलने, शराब पीने, राज्य बढ़ाने तथा भोग भोगनेके लिए तो आप ऐसा करते नहीं हैं। अतः मेरे सहयोगसे गुरुकी दक्षिणा चुकाकर आप अपने सत्यरूपी धर्मको सफल बनाइए' ॥२७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! रानीके द्वारा बार-बार प्रेरित किए जानेपर राजा हरिश्चन्द्रने कहा—'भद्रे! मैं अत्यन्त निष्ठुर होकर तुम्हें बेचनेकी बात स्वीकार करता हूँ ॥ १ ॥ यदि ऐसे परम निर्दय वचन कहनेके लिए तुम्हारी वाणी तत्पर है तो जिसे नीच-से-नीच व्यक्ति भी नहीं कर सकते, वह जघन्य काम मेरे द्वारा होने जा रहा है' ॥२॥ ऐसा कहकर महाराज हरिश्चन्द्र नगरमें चले गए। वहाँ तमाशा दिखानेका एक स्थान निश्चित था। वहीं अपनी धर्मपत्नीको उन्होंने बैठा दिया ॥ ३ ॥ उस समय महाराजकी आँखोंसे आँसू बरस रहे थे। कण्ठ रुँधा जाता था। वे बार-बार लोगोंको सम्बोधित करके बोले—'हे नागरिको! आप सब लोग मेरी बात सुननेकी कृपा करें। मेरी यह पत्नी मुझे प्राणोंके समान प्रिय है, परन्तु यदि किसी-

त्वान्नीचत्वमुपयास्यसि ॥ २६ ॥ न द्यूतहेतोर्न च मद्यहेतोर्न राज्यहेतोर्न च भोगहेतोः ॥ ददस्व गुर्वर्थमतो मया त्वं सत्यव्रतं त्वं सफलं कुरुष्व ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ स तया नोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः ॥ प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं ते सुनिर्घृणः ॥ १ ॥ नृशंसैरपि यत्कर्तुं न शक्यं तत्करोम्यहम् ॥ यदि ते भ्राजते वाणी वक्तुमीदृक्सुनिष्ठुरम् ॥ २ ॥ एवमुक्त्वा ततो राजा गत्वा नगरमातुरः ॥ अवतार्य तदा रंगे तां भार्यां नृपसत्तमः ॥३॥ बाष्पगद्गदकंठस्तु ततो वचनमब्रवीत् ॥ भो भो नागरिकाः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम ॥ ४ ॥ कस्यचिद्यदि कार्यं स्याद्दास्या प्राणेष्टया मम ॥ स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्स्वं धारयाम्यहम् ॥ ५ ॥ तेऽब्रुवन्पंडिताः कस्त्वं पत्नीं विक्रेतुमागतः ॥ राजोवाच ॥ किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ॥ ६ ॥ राक्षसो वाऽस्मि कठिनस्ततः पापं करोम्यहम् ॥ व्यास उवाच ॥ तं शब्दं सहसा श्रुत्वा कौशिको विप्ररूपधृक् ॥ ७ ॥ वृद्धरूपं समास्थाय हरिश्चन्दमभाषत ॥ समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ॥ ८ ॥ अस्ति मे वित्तमतुलं सुकुमारी च मे प्रिया ॥ गृहकर्म न शक्नोति कर्तुमस्मात्प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥ अहं गृह्णामि दासीं तु कति दास्यामि ते धनम् ॥ एवमुक्ते तु विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ॥१०॥ विदीर्णं

को इससे दासीका काम लेनेकी आवश्यकता हो तो कहे। मैं जो भी उचित धन चाहूँ, उतनेमें यह तुरंत बिक सकती है।' वहाँ बहुतसे विद्वान् पुरुष थे। उन्होंने राजासे पूछा—'अजी, पत्नी-को बेचनेके लिए आये हुए तुम कौन हो?' राजा बोले—आपलोग पूछते हैं कि 'तुम कौन हो?' तो सुनिए—'मैं मानवतारहित एक महान् क्रूर व्यक्ति हूँ, अथवा मुझे एक क्रूर राक्षस भी कहा जा सकता है। तभी तो ऐसे नीच कर्ममें मेरी प्रवृत्ति हुई है।' व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! यह शब्द सुनकर विश्वामित्र बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके अकस्मात् सामने आ उपस्थित हुए और बोले—मैं धन देकर इस दासीको खरीदनेके लिए तैयार हूँ। अतः इसे मुझे दे दो ॥४–८॥ मेरे पास अपार धनराशि है। मेरी स्त्री परम सुकुमारी है। वह घरका काम नहीं सँभाल सकती। अतः इसे मुझे दे दो ॥९॥ मैं इस दासीको स्वीकार करता हूँ, परंतु इसके लिये मुझको कितना धन देना पड़ेगा?' यों ब्राह्मणके कहनेपर महाराज हरिश्चन्द्रका हृदय दुःखसे विदीर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो गया। वे कुछ भी बोल नहीं सके। ब्राह्मणने कहा—तुम्हारी स्त्रीके कर्म, अवस्था, रूप और शीलके अनुसार यह धन देता हूँ, सो स्वीकार करो और स्त्री मुझे सौंप दो। धर्मशास्त्रोंमें स्त्री और पुरुषका जो मूल्य निर्दिष्ट है, वह इस प्रकार है-॥१०-१२॥ यदि स्त्री बत्तीसों लक्षणोंसे सम्पन्न, कार्यकुशल, शील एवं गुणोंसे युक्त हो तो उसका मूल्य एक करोड़ मुद्रा होता है। यदि ये सभी शुभलक्षण पुरुषमें हों तो उसका मूल्य दस करोड़ मुद्रा हो जाता है॥ १३॥ ब्राह्मणकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र महान् दुःखसे व्यथित हो जानेके कारण चुप हो गए। उनके मुखसे कोई भी बात नहीं निकल सकी॥ १४॥ तब ब्राह्मणने राजाके सामने मृगचर्मपर धन रखकर रानीके केशोंको हाथसे पकड़ा और उसे खींचना आरम्भ कर दिया। ॥ १५॥ रानी बोलीं—आर्य! अभी मुझे छोड़िए, छोड़िए। जबतक मैं अपने पुत्रको भलीभाँति न देख लूँ, तबतकके लिए क्षमा करें। क्योंकि हे विप्र! फिर मुझे इस पुत्रका दर्शन दुर्लभ हो जायगा॥ १६॥ तदनन्तर रानीने अपने प्रिय पुत्रसे कहा—'बेटा! देख, आज मैं तेरी माता महारानीसे दासी बन गयी। राजपुत्र! अब तू मेरा स्पर्श मत

तु मनी दुःखान्न चैनं किंचिदब्रवीत्॥ विप्र उवाच॥ कर्मणश्च वयोरूपशीलानां तव योषितः ॥ ११॥ अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणापय मेऽबलाम्॥ धर्मशास्त्रेषु यद्दृष्टं स्त्रियो मौल्यं नरस्य च ॥ १२॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता॥ कोटिमौल्यं सुवर्णस्य स्त्रियः पुंसस्तथार्बुदम् ॥ १३॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः॥ दुःखेन महताविष्टो न चैनं किंचिदब्रवीत्॥ १४॥ ततः स विप्रो नृपतेः पुरतो वल्कलोपरि॥ धनं निधाय केशेषु धृत्वा राज्ञीमकर्षयत्॥ १५॥ राज्युवाच॥ मुंच मुंचार्य मां सद्यो यावत्पश्याम्यहं सुतम्॥ दुर्लभं दर्शनं विप्र पुनरस्य भविष्यति॥ १६॥ पश्येह पुत्र मामेवं मातरं दास्यतां गताम्॥ मां मा स्प्राक्षी राजपुत्र न स्पृश्याऽहं त्वयाऽधुना॥ १७॥ ततः स बालः सहसा दृष्ट्वा कृष्टां तु मातरम्॥ समभ्यधावदम्बेति वदन्साश्रुविलोचनः॥ १८॥ हस्ते वस्त्रं समाकर्षन्काकपक्षधरः स्खलन्॥ तमागतं द्विजः क्रोधाद्बलमभ्यहनत्तदा॥ १९॥ वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैव मुंचति मातरम्॥ राज्युवाच॥ प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमं हि बालकम्॥ २०॥ क्रीताऽपि नाहं भविता विनैनं कार्यसाधिका॥ इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादं कुरु मे प्रभो॥२१॥ ब्राह्मण उवाच॥ गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां मम बालकः॥ स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम्॥ २२॥ शतं सहस्रं लक्षं च कोटिमौल्यं तथापरैः॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता॥२३॥

करना। कारण, अब मैं तेरे छूने योग्य नहीं रही॥ १७॥ माताको संकटग्रस्त देखकर वह बालक 'माँ-माँ' कहता हुआ दौड़ पड़ा उसकी आँखोंसे जलकी धाराएँ गिरने लगीं॥ १८॥ जब कौवेके पंखके समान काले केशवाला वह राजकुमार रानीका वस्त्र पकड़कर गिरते-पड़ते साथ चलने लगा, तब ब्राह्मणने उसे पीट दिया। फिर भी वह बालक 'अम्बा, अम्बा' कहता माताको छोड़ न सका। रानीने कहा—नाथ! आप मुझपर कृपा करके इस बालकको भी खरीद लीजिए। क्योंकि मैं खरीदी जानेपर भी इसके बिना सुचारुरूपसे आपका कार्य नहीं कर सकूँगी। हे प्रभो! मैं मन्दभागिनी हूँ। अतः मुझपर इस प्रकारकी कृपा अवश्य करें॥ १९-२१॥ सूतजी कहते हैं—तब ब्राह्मणने राजासे कहा—लो, यह मूल्य लेकर बालक मुझे दे दो। शास्त्रकारोंने स्त्री-पुरुषका मूल्य निर्धारित कर दिया है॥ २२॥ जैसे सौ, हजार, लाख और करोड़। बत्तीस शुभ लक्षणों युक्त स्त्रीका मूल्य एक करोड़ और पुरुषका दस करोड़ मुद्रा होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तब बालकका मूल्य भी सामने एक वस्त्रपर फेंककर माता सहित राजकुमारको ब्राह्मणने खरीदकर एक साथ बाँध दिया । फिर बड़े हर्षके साथ दोनोंको लेकर वह तुरंत अपने घरकी ओर चला ॥ २३--२५ ॥ उस समय रानीकी स्थिति बड़ी दयनीय थी । उसके नेत्र जलसे भर गए थे । उसने जाते समय राजाकी प्रदक्षिणा की और दोनों घुटनोंके सहारे झुककर प्रणाम किया । साथ ही वह यह वचन बोली--॥ २६ ॥ 'यदि मैंने दान दिया हो, यज्ञ किया हो तथा मेरे व्यवहारसे ब्राह्मण तृप्त हुए हों तो उस पुण्यके प्रभावसे ये महाराज हरिश्चन्द्र मुझे पुनः शीघ्र ही पतिरूपसे प्राप्त हो जायँ' ॥२७॥ राजा रानीके प्रति प्राणोंसे भी बढ़कर गौरवबुद्धि रखते थे । ऐसी भार्याको पैरोंमें पड़ी देखकर वे हाहाकार करते हुए रो पड़े । उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियोंपर घबराहट छा गयी ॥२८॥ वे कहने लगे 'सत्य और शील आदि गुणोंसे सम्पन्न यह भार्या मुझसे पृथक् होकर क्यों जा रही है ? वृक्षकी छाया वृक्षको छोड़कर चली जाय--यह कदापि सम्भव नहीं है' ॥ २९ ॥ इस प्रकार परस्पर घनिष्ठ प्रणय प्रकट करके रानीसे यह कहनेके पश्चात् राजाने पुत्रके प्रति यह वचन कहा—बेटा ! तू मुझे छोड़कर कहाँ जायगा ?

कोटिमौल्यं स्त्रियः प्रोक्तं पुरुषस्य तथाऽर्बुदम् ॥ सूत उवाच ॥ तथैव तस्य तद्वित्तं पुरः क्षिप्तं पटे पुनः ॥ २४ ॥ प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थम-
वंधयत् ॥ प्रतस्थे स गृहं क्षिप्रं तया सह मुदान्वितः ॥ २५ ॥ प्रदक्षिणां तु सा कृत्वा जानुभ्यां प्रणता स्थिता ॥ बाष्पपर्याकुला दीना त्विदं वच-
नमब्रवीत् ॥ २६ ॥ यदि दत्तं यदि हुतं ब्राह्मणास्तर्पिता यदि ॥ तेन पुण्येन मे भर्ता हरिश्चन्द्रोऽस्तुवै पुनः ॥ २७ ॥ पादयोः पतितां दृष्ट्वा प्राणे-
भ्योऽपि गरीयसीम् ॥ हाहेति च वदन्राजा विललापाकुलेन्द्रियः ॥ २८ ॥ वियुक्तेयं कथं जाता सत्यशीलगुणान्विता ॥ वृक्षच्छायाऽपि वृक्षं तं न
जहाति कदाचन ॥ २९ ॥ एवं भार्यां वदित्वाऽथ सुसंबद्धं परस्परम् ॥ पुत्रं च तमुवाचेदं मां त्वं हित्वा क्व यास्यसि ॥ ३० ॥ कां दिशं प्रति
यास्यामि को मे दुःखं निवारयेत् ॥ राज्यत्यागे न मे दुःखं वनवासे न मे द्विज ॥ ३१ ॥ यत्पुत्रेण वियोगो मे एवमाह स भूपतिः ॥ सद्भर्तृभोग्या
हि सदा लोके भार्या भवंति हि ॥ ३२ ॥ मया त्यक्ताऽसि कल्याणि दुःखेन विनियोजिता ॥ इक्ष्वाकुवंशसंभूतं सर्वराज्यसुखोचितम् ॥ ३३ ॥
मामीदृशं पतिं प्राप्य दासीभावं गता ह्यसि ॥ ईदृशे मज्जमानं मां सुमहच्छोकसागरे ॥ ३४ ॥ को मामुद्धरते देवि पौराणाख्यानविस्तरैः ॥
सूत उवाच॥ पश्यतस्तस्य राजर्षेः कशाघातैः सुदारुणैः ॥ ३५ ॥ घातयित्वा तु विप्रेशो नेतुं समुपचक्रमे ॥ नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्यापुत्रो

॥३०॥ फिर मैं किस दिशामें जाऊँगा और कौन मेरा दुःख दूर करेगा ? हे द्विजवर ! राज्य छोड़ने तथा वनवासी होनेसे मैं दुखी नहीं हूँ ॥ ३१ ॥ किंतु पुत्रवियोग बड़ा कष्टप्रद हो रहा है ।' यों कहकर राजा हरिश्चन्द्र रानीको लक्ष्य करके कहने लगे--स्त्रियोंका कर्तव्य है कि वे संसारमें पतिके पास रहकर सदा उसके सुखकी सामग्रियाँ बनी रहें ॥३२॥ तब हे कल्याणी ! दुःख-को अपना साथी बनाकर तुम मुझसे अलग हो रही हो ? इक्ष्वाकुके पुनीत वंशमें मेरा जन्म हुआ है । मेरे पास राज्योचित सम्पूर्ण सुखकी सामग्रियाँ थीं ॥३३॥ मुझ जैसे पतिको पाकर भी तुम दासी बन रही हो ? देवी ! मैं पुराण और इतिहासके विशद वाक्यका अनुसरण करके कहता हूँ कि ऐसे शोकरूपी अथाह समुद्रमें डूबे हुए मुझ व्यक्तिका अब कौन उद्धार करेगा ? सूतजी कहते हैं—तदनन्तर हरिश्चन्द्रके सामने ही कोड़ेसे मारते हुए धनिक विप्रदेव राजकुमार और रानीको ले जानेके लिए तत्पर हो गए । स्त्री और पुत्रको जाते देखकर राजाके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुःखकी सीमा नहीं रही ॥ ३४-३६ ॥ वे बार-बार लम्बी साँसें लेते हुए रोने लगे। अबतक जिसे वायु, सूर्य, चन्द्रमा तथा निम्न श्रेणी के मनुष्य नहीं देख सके थे, वही रानी आज दासी बन गयी। जिसके हाथोंकी उँगलियाँ बहुत ही मुलायम थीं, सूर्यवंशमें उत्पन्न वह बालक रोहित बिक गया। मुझ दुर्बुद्धिको धिक्कार है। हा प्रिये! हा पुत्र! जिसकी करनीसे तुम्हारी यह दशा हुई, वह अधम मैं अभी जीवित हूँ-मुझे धिक्कार है। व्यासजी कहते हैं-हे राजन्! इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र विलाप कर रहे थे। इतनेमें ब्राह्मण देवता आँखोंसे ओझल हो गये ॥३७-४०॥ उसी समय महान् तपस्वी मुनिवर विश्वामित्र आ पहुँचे। उनका शिष्य साथ था। निष्ठुर स्वभाववाले वे मुनि देखनेमें बड़े ही क्रूर प्रतीत होते थे। विश्वामित्र बोले-हे राजन्! हे महाबाहो! यदि तुम्हारे हृदयमें सत्यकी तनिक भी मान्यता हो तो उस समय राजसूय यज्ञकी दक्षिणाका जो वचन दिया था, वह पूर्ण करो। हरिश्चन्द्रने कहा-हे निष्पाप राजर्षे! मैं आपको

स पार्थिवः ॥ ३६ ॥ विललापातिदुःखार्तो निःश्वस्योष्णं पुनः पुनः ॥ यां न वायुर्न वाऽऽदित्यो न चन्द्रो न पृथग्जनाः ॥ ३७ ॥ दृष्टवंतः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता ॥ सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकरांगुलिः ॥३८॥ संप्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्मामस्तु सुदुर्मतिम् ॥ हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्यस्य दुर्नयः ॥ ३९ ॥ दैवाधीनदशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक् ॥ व्यास उवाच॥ एवं विलपतो राज्ञोऽग्रे विप्रोऽन्तरधीयत ॥ ४० ॥ वृक्षगेहादिभिस्तुंगैस्तावादाय त्वरान्वितः ॥ अत्रांतरे मुनिश्रेष्ठस्त्वाजगाम महातपाः ॥ ४१ ॥ सशिष्यः कौशिकेंद्रोऽसौ निष्ठुरः क्रूरदर्शनः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ या त्वयोक्ता पुरा राजन्राजसूयस्य दक्षिणा ॥ ४२ ॥ तां ददस्व महाबाहो यदि सत्यं पुरस्कृतम् ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ नमस्करोमि राजर्षे गृहाणेमां स्वदक्षिणाम् ॥ ४३ ॥ राजसूयस्य यागस्य या मयोक्ता पुराऽनघ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ कुतो लब्धमिदं द्रव्यं दक्षिणार्थे प्रदीयते ॥ ४४ ॥ एतदाचक्ष्व राजेन्द्र यथा द्रव्यं त्वयाऽर्जितम् ॥ राजोवाच ॥ किमनेन महाभाग कथितेन तवानघ ॥ ४५ ॥ शोकस्तु वर्धते विप्र श्रुतेनानेन सुव्रत ॥ ऋषिरुवाच ॥ अशस्तं नैव गृह्णामि शस्तमेव प्रयच्छ मे ॥ ४६ ॥ द्रव्यस्यागमनं राजन्कथयस्व यथातथम् ॥ राजोवाच ॥ मया देवी तु सा भार्या विक्रीता कोटिसम्मितैः ॥ ४७ ॥ निष्कैः पुत्रो रोहिताख्यो विक्रीतोऽर्बुदसंख्यया ॥ विप्रैकादश कोट्यस्त्वं सुवर्णस्य गृहाण मे ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ तद्वित्तं स्वल्पमालक्ष्य दारविक्रयसंभवम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥ ४९ ॥

प्रणाम करता हूँ। राजसूय यज्ञके अवसरपर मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, वह आपकी दक्षिणा तैयार है। इसे स्वीकार कीजिये ॥४१-४३॥ विश्वामित्र बोले—हे राजेन्द्र! कहाँसे मिला हुआ यह धन दक्षिणामें दे रहे हो? जिस प्रकार तुमने धन उपार्जन किया हो, वह स्पष्ट बताओ। राजाने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे विप्रवर! उसे कहनेसे क्या प्रयोजन है? हे निष्पाप महाभाग! उसके सुननेमें तो शोक ही बढ़ेगा। ऋषि बोले—हे राजन्! मैं दूषित द्रव्य नहीं लेता, हमें पवित्र धन ही मिलना चाहिए ॥४४-४६॥ अतः द्रव्य आनेका यथार्थ मार्ग मुझे अवश्य बताओ। राजाने कहा—हे मुने! मैंने अपनी परम साध्वी स्त्रीको एक करोड़ मुहर लेकर बेच दिया है ॥४७॥ मेरे पुत्रका नाम रोहित है। उसे बेचनेपर मुझे दस करोड़ मुहरें मिल गयीं हैं। हे विप्र! इस प्रकार मेरे पास ग्यारह करोड़ मुहरें जुटी हैं. आप इन्हें स्वीकार कीजिये ॥ ४८ ॥ सूतजी कहते हैं—स्त्री-पुत्रको बेचनेसे मिला हुआ धन विश्वा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मित्रकी दृष्टिमें थोड़ा जान पड़ा । अतः क्रोधमें भरकर वे शोकाकुल महाराज हरिश्चन्द्रसे कहने लगे ॥४९॥ ऋषिने कहा—हे राजन् ! राजसूय यज्ञकी दक्षिणा इतनी ही नहीं होती । अतः और धन उपार्जन करो, जिससे शीघ्र ही वह दक्षिणा पूर्ण हो सके ॥ ५० ॥ क्षात्र धर्मका पालन करनेसे विमुख हे राजन् ! तुम मेरी दक्षिणाको इतनेमें ही चुक जानेके योग्य मानते होओ तो मैं अभी अपना परम बल प्रकट करता हूँ ॥५१॥ देखो, मैं एक अत्यन्त पवित्र अन्तःकरणवाला तपस्वी ब्राह्मण हूँ । मैंने श्रेष्ठ ग्रंथोंका शुद्ध अध्ययन किया है । मैंने तपस्या की है । मेरे पास सभी शक्तियाँ हैं ॥५२॥ राजाने कहा—भगवन् ! मैं इसके अतिरिक्त भी दक्षिणा दूँगा, परन्तु कुछ समय प्रतीक्षा कीजिये । अभी मैंने पुत्र और स्त्रीको ही बेचा है । मैं स्वयं तो अभी शेष हूँ ॥५३॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! दिनका यह चौथा प्रहर व्यतीत हो रहा है। मेरी प्रतीक्षाका यही अन्तिम समय है । इसके बाद कुछ न कहना ॥५४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ऋषिरुवाच ॥ राजसूयस्य यज्ञस्य नैषा भवति दक्षिणा ॥ अन्यदुत्पादय क्षिप्रं संपूर्णा येन सा भवेत् ॥ ५० ॥ क्षत्रबंधो ममेमां त्वं सदृशीं यदि दक्षिणाम् ॥ मन्यसे तर्हि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे परं बलम् ॥ ५१ ॥ तपसोऽस्य सुतप्तस्य ब्राह्मणस्यामलस्य च ॥ मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च ॥ ५२ ॥ राजोवाच ॥ अन्यद्दास्यामि भगवन्कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥ अधुनैवास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥ ५३ ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप ॥ एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तमेवमुक्त्वा राजानं निर्घृणं निष्ठुरं वचः ॥ तदादाय धनं पूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ॥ १ ॥ विश्वामित्रे गते राजा ततः शोकमुपागतः ॥ श्वासोच्छ्वासं मुहुः कृत्वा प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥ २ ॥ वित्तक्रीतेन यस्यार्तिर्मया प्रेतेन गच्छति ॥ स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यामे तिष्ठति भास्करः ॥ ३ ॥ अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चांडालरूपधृक् ॥ दुर्गन्धो विकृतोरस्कः श्मश्रुलो दंतुरोऽघृणी ॥ ४ ॥ कृष्णो लम्बोदरः स्निग्धः करालः पुरुषाधमः ॥ हस्तजर्जरयष्टिश्च शवमाल्यैरलंकृतः ॥ ५ ॥ चाण्डाल उवाच ॥ अहं गृह्णामि दासत्वे भृत्यार्थः सुमहान्मम ॥ क्षिप्रमाचक्ष्व मौल्यं

(राजाका चाण्डालके हाथ बिकना) व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! हरिश्चन्द्रसे इस प्रकारके करुणाशून्य एवं निष्ठुर वचन कहकर क्रोधी विश्वामित्रने उपस्थित सम्पूर्ण दक्षिणा ले ली और वहाँसे चल पड़े ॥ १ ॥ विश्वामित्रके चले जानेपर राजाके कष्टकी सीमा नहीं रही । वे बारम्बार साँसें खींचते हुए नीचा मुँह करके उच्चस्वरसे कहने लगे—॥ २ ॥ मैं धनसे बिक जानेवाला प्रेत हो गया हूँ । मुझसे जिसका दुःख दूर हो सके, वह अभी—सूर्यके चौथे पहरमें रहते ही मुझसे बात कर ले ॥ ३ ॥ इतनेमें धर्म चाण्डालका रूप धारण करके वहाँ आ गये । उस चाण्डालके शरीरसे दुर्गन्ध निकल रही था । उसके बड़े-बड़े दाँत थे और बढ़ी हुई दाढ़ी थी । उसकी भयङ्कर छाती थी । वह अत्यन्त निर्दयी प्रतीत हो रहा था ॥ ४ ॥ उस अत्यन्त नीच पुरुषकी आकृति काले रंगकी थी । वह हाथमें एक पुरानी लाठी लिये हुए था । मृत व्यक्तियोंकी मालाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं ॥५॥ चाण्डालने कहा—मैं तुम्हें दासके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पदपर नियुक्त करना चाहता हूँ। मुझे एक नौकरकी विशेष आवश्यकता है। बताओ, तुझे तुम्हारे लिए कितना मूल्य देना होगा? ॥६॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन्! उस चण्डालकी आँखें बड़ी ही डरावनी थीं। उसके अङ्ग-अङ्गमें निर्दयता भरी थी। इस प्रकारके दुराचारी चाण्डालको ऊटपटांग बात करते देखकर महाराज हरिश्चन्द्रने उससे पूछा–'अजी, तुम कौन हो?' ॥ ७ ॥ चाण्डाल बोला–हे राजेन्द्र! मैं एक चाण्डाल हूँ। यहाँ सब लोग मुझे प्रवीर कहते हैं। तुम सदा मेरी आज्ञामें रहोगे। मृत व्यक्तिका वस्त्र लेना तुम्हारा काम होगा ॥ ८ ॥ इस प्रकार चाण्डालने जब राजा हरिश्चन्द्रसे कहा, तब वे उससे बोले–'मेरा तो ऐसा विचार है कि ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय—इनमेंसे कोई मुझे अपना दास बना ले ॥ ९ ॥ क्योंकि उत्तम पुरुषके साथ उत्तमका, मध्यमके साथ मध्यमका और अधमके साथ अधम पुरुषका धर्म निभता है। यह विद्वज्जनोंका कथन है ॥ १० ॥ चाण्डाल बोला—हे राजन्! क्या आपका यही धर्मज्ञान है? आपने मेरे समक्ष बिना सोचे-विचारे यह बात कही है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य सोचकर कोई बात कहता है, उसीको अभीष्ट फल प्राप्त होता है।

किमेतत्ते संप्रदीयते ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिर्घृणम् ॥ वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिव ॥ ७ ॥ ॥ चांडाल उवाच ॥ चांडालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति नृपोत्तम ॥ शासने सर्वदा तिष्ठ मृतचैलापहारकः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तदा राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि गृह्णात्विति मतिर्मम ॥ ९ ॥ उत्तमस्योत्तमो धर्मो मध्यमस्य च मध्यमः ॥ अधमस्याधमश्चैव इति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १० ॥ चांडाल उवाच ॥ एवमेव त्वया धर्मः कथितो नृपसत्तम ॥ अविचार्य त्वया राजन्नधुनोक्तं ममाग्रतः ॥११॥ विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः ॥ सामान्यमेव तत्प्रोक्तमविचार्य त्वयाऽनघ ॥ १२ ॥ यदि सत्यं प्रमाणं ते गृहीतोऽसि न संशयः ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ असत्यान्नरके गच्छेत्सद्यः क्रूरे नराधमः ॥१३॥ ततश्चांडालता साध्वी न वरा मे ह्यसत्यता ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥१४॥ क्रोधामर्षविवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम् ॥ चांडालोऽयं मनस्थं ते दातुं वित्तमुपस्थितः ॥ १५ ॥ कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा ॥ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक ॥१६॥ कथं चांडालदासत्वे गमिष्ये वित्तकामतः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ यदि चांडालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम ॥१७॥ न प्रदास्यसि चेत्तर्हि शप्स्यामि त्वामसंशयम् ॥ चांडालादथवा विप्राद्देहि मे दक्षिणाधनम् ॥ १८ ॥ विना चांडाल-

किन्तु आपने जो मनमें आया सो कह डाला ॥ १२ ॥ यदि सत्यको प्रमाण मानते हैं तो आप मेरे हाथ बिक गये। राजा हरिश्चन्द्रने कहा—असत्यभाषी अधम पुरुष क्रूर नरकमें जा पड़ता है ॥ १३ ॥ अतएव असत्यका आश्रय लेनेकी अपेक्षा चाण्डाल बन जाना मैं ज्यादा अच्छा समझता हूँ। व्यासजी कहते हैं—महाराज हरिश्चन्द्र चाण्डालसे यों बातें कर ही रहे थे कि तपोनिधि विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे ॥ १४ ॥ उनकी आँखें क्रोधसे चढ़ी हुई थीं। उन्होंने राजासे क्रूरतापूर्वक कहा—'यह चाण्डाल तुम्हारे मनके अनुसार धन देनेके लिए तैयार है। तब तुम इससे मूल्य लेकर मेरी वह शेष रकम क्यों नहीं चुका देते?' राजाने कहा–हे भगवन्! हे कौशिक! मैं अपनेको सूर्यवंशमें उत्पन्न समझता हूँ। अतः धनके लोभसे चाण्डालकी दासता मैं कैसे करूँगा? विश्वामित्र बोले—यदि तुम स्वयं चाण्डालके हाथ बिककर उससे प्राप्त धन मुझे नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दोगे तो अभी मैं तुम्हें शाप दे दूँगा। चाण्डाल अथवा ब्राह्मण-किसीसे भी लेकर तुम मेरी दक्षिणाकी रकम अभी चुका दो ॥ १५-१८ ॥ इस समय चाण्डालके सिवाय दूसरा कोई व्यक्ति तुम्हें धन नहीं दे सकता और धन पाये बिना मैं जाऊँगा नहीं—यह निश्चित है ॥ १९ ॥ हे मनुजेन्द्र ! यदि तुम अभी मेरा धन नहीं दोगे तो दिनके चौथे पहरकी आधी घड़ी और बीत जानेपर मैं शापरूपी अग्निसे तुम्हें भस्म कर दूँगा ॥ २० ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! उस समय महाराज हरिश्चन्द्र मृतकके समान निश्चेष्ट हो गये। उनके धैर्यका बाँध टूट चुका था। 'प्रसन्न होइये'—यों कहते हुए उन्होंने विश्वामित्रके दोनों चरण पकड़ लिये ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा—हे विप्रर्षे ! मैं आपका अत्यन्त दुखी सेवक हूँ। मेरी स्थिति बड़ी दयनीय है। विशेषता यह है कि मैं आपका भक्त हूँ। चाण्डालके सम्पर्कमें रहना मेरे लिए महान् कष्टप्रद है। अतः मुझपर कृपा कीजिये ॥ २२ ॥ शेष धन चुकानेके लिए मैं आपके अधीन होकर सेवाकार्य सम्पन्न करूँगा। हे मुनिवर ! मैं आपका ही सेवक बनकर रहूँगा और मेरा कार्य आपकी इच्छापर निर्भर रहेगा ॥ २३ ॥ विश्वामित्र बोले—महाराज ! बहुत

मधुना नान्यः कश्चिद्धनप्रदः ॥ धनेनाहं विना राजन्न यास्यामि न संशयः ॥ १९ ॥ इदानीमेव मे वित्तं न प्रदास्यसि चेन्नृप ॥ दिनेऽर्धघटिकाशेषे तत्त्वां शापाग्निना दहे ॥२०॥ व्यास उवाच ॥ हरिश्चन्द्रस्ततो राजा मृतवच्छिन्नजीवितः ॥ प्रसीदेति वदन्पादौ ऋषेर्जग्राह विह्वलः ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ दासोऽस्म्यार्तोऽस्मि दीनोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः ॥ प्रसादं कुरु विप्रर्षे कष्टश्चांडालसंकरः ॥ २२ ॥ भवेयं वित्तशेषेण तव कर्मकरो वशः ॥ तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्तकः ॥ २३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवमस्तु महाराज ममैव भव किंकरः ॥ किंतु मद्वचनं कार्यं सर्वदैव नराधिप ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्तेऽथ वचने राजा हर्षसमन्वितः ॥ अमन्यत पुनर्जातमात्मानं प्राह कौशिकम् ॥ २५ ॥ तवादेशं करिष्यामि सदैवाहं न संशयः ॥ आदेशय द्विजश्रेष्ठ किं करोमि तवानघ ॥ २६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चांडालागच्छ मद्दासमौल्यं किं मे प्रयच्छसि ॥ गृहाण दासं मौल्येन मया दत्तं तवाधुना ॥ २७ ॥ नास्ति दासेन मे कार्यं वित्ताशा वर्तते मम ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्ते तदा तेन श्वपचो हृष्टमानसः ॥ २८ ॥ आगत्य सन्निधौ तूर्णं विश्वामित्रमभाषत ॥ चांडाल उवाच ॥ दशयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य च मण्डले ॥ २९ ॥

ठीक, ऐसा ही हो। तुम मेरे ही सेवक बन जाओ। परन्तु हे राजन् ! शर्त यह है कि तुम्हें सदा मेरी आज्ञाका निर्विरोध पालन करना होगा ॥ २४ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर राजा हरिश्चन्द्रका मुर्झाया हुआ मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने समझा कि मेरा पुनर्जन्म हुआ है। वे विश्वामित्रसे कहने लगे—॥२५॥ 'पवित्र अन्तःकरणवाले हे द्विजवर ! मैं आपकी आज्ञाका निरन्तर पालन करूँगा—इसमें कोई संशय नहीं है। आज्ञा दीजिए, आपका कौनसा कार्य सम्पन्न करूँ ?' ॥ २६ ॥ विश्वामित्रने कहा—चाण्डाल ! इधर आओ, तुम मेरे इस नौकरका क्या मूल्य दोगे ? मूल्य लेकर इसे मैं दे दूँगा ॥ २७ ॥ तुम स्वीकार कर लो। क्योंकि मुझे नौकरसे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तो धन चाहता हूँ। व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! जब विश्वामित्रने इस प्रकार कहा, तब चाण्डालके मनमें प्रसन्नता आ गयी। उसने तुरंत आकर मुनिसे कहा। चाण्डाल बोला—प्रयागकी सीमा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दस योजनके विस्तारमें है ॥२८॥२९॥ हे विप्रवर ! सो वहाँकी सारी भूमि रत्नमयी बनाकर मैं आपको दे दूँगा। आपने इसे बेचकर मेरा महान् दुःख दूर कर दिया ॥३०॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर चाण्डालने सोना, मणि और मोतियोंसे युक्त हजारों प्रकारके रत्न उन द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रको दिये और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया ॥३१॥ इससे राजा हरिश्चन्द्रका मुँह किंचिन्मात्र भी उदास नहीं हुआ। उन्होंने धैर्य धारण करके यह मान लिया कि विश्वामित्र मेरे स्वामी हैं, ये चाहे जो कर सकते हैं ॥३२॥ बस, मुझे तो वही कार्य करना है, जिसे करनेके लिए वे आज्ञा दें। ठीक उसी समय आकाशवाणी हुई—॥३३॥ 'हे महाराज ! तुम दक्षिणा देकर ऋणसे मुक्त हो गये।' इसके बाद राजा हरिश्चन्द्रके मस्तकपर आकाशसे पुष्पवर्षा होने लगी ॥ ३४ ॥ इन्द्रसहित सम्पूर्ण शक्तिशाली देवता महाराजको बार-बार धन्यवाद देने लगे। तब अत्यन्त आनन्दनिमग्न होकर राजा हरिश्चन्द्रने विश्वामित्रसे कहा ॥ ३५ ॥ राजा बोले—हे महामते ! मेरे माता-पिता और बन्धु आप ही हैं। क्योंकि क्षणभरमें ही आपने मेरे ऋणरूपी बन्धनको काट दिया। आपकी कृपासे अब मैं उऋण हो गया ॥३६॥ हे महाबाहो !

भूमिं रत्नमयीं कृत्वा दास्ये तेऽहं द्विजोत्तम ॥ अस्य विक्रयणेनेयमार्तिश्च प्रहता त्वया ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ ततो रत्नसहस्राणि सुवर्णमणि-मौक्तिकैः ॥ चांडालेन प्रदत्तानि जग्राह द्विजसत्तमः ॥ ३१ ॥ हरिश्चंद्रस्तथा राजा निर्विकारमुखोऽभवत् ॥ अमन्यत तथा धैर्याद्विश्वामित्रो हि मे पतिः ॥ ३२ ॥ तत्तदेव मया कार्यं यदयं कारयिष्यति ॥ अथांतरिक्षे सहसा वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३३ ॥ अनृणोऽसि महाभाग दत्ता सा दक्षिणा त्वया ॥ ततो दिवः पुष्पवृष्टिः पपात नृपमूर्धनि ॥ ३४ ॥ साधु साध्विति तं देवाः प्रोचुः सेंद्रा महौजसः ॥ हर्षेण महताऽऽविष्टो राजा कौशिकमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ त्वं हि माता पिता चैव त्वं हि बंधुर्महामते ॥ यदर्थं मोचितोऽहं ते क्षणाच्चैवानृणीकृतः ॥ ३६ ॥ किं करोमि महाबाहो श्रेयो मे वचनं तव ॥ एवमुक्ते तु वचने नृपं मुनिरभाषत ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चांडालवचनं कार्यमद्यप्रभृति ते नृप ॥ स्वस्ति तेऽस्त्विति तं प्रोच्य तदादाय धनं ययौ ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ शौनक उवाच ॥ ततः किमकरोद्राजा चांडालस्य गृहे गतः ॥ तद्ब्रूहि सूतवर्य त्वं पृच्छतः सत्वरं हि मे ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ विश्वामित्रे गते विप्र श्वपचो हृष्टमानसः ॥ विश्वामित्राय तद्द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम् ॥२॥ असत्यो यास्यसीत्युक्त्वा दण्डेनाताडयत्तदा ॥ दंडप्रहारसंभ्रां-

आपका वचन मेरे लिए कल्याणप्रद है। कहिए, कौनसा कार्य सम्पन्न करूँ ? इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्रके कहनेपर उनके प्रति विश्वामित्र बोले ॥३७॥ विश्वामित्रने कहा—हे राजन् ! आजसे इस चाण्डालकी आज्ञाका पालन करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। तुम्हारा कल्याण हो। यों कहकर विश्वामित्रने धन ले लिया और वे वहाँसे चल पड़े ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

(राजा हरिश्चन्द्रकी श्मशानपर नियुक्ति) शौनकने पूछा—हे परम आदरणीय सूतजी ! चाण्डालके घर जाकर राजा हरिश्चन्द्रने क्या किया ? आप मेरे इस प्रश्नका शीघ्र उत्तर देनेकी कृपा कीजिए ॥१॥ सूतजी कहते हैं—हे द्विजवर ! विश्वामित्रके चले जानेपर चाण्डालका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने विश्वामित्रको निश्चित रकम दे दी और राजाको बाँध लिया ॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'तुम फिर झूठ बोलोगे ?'–यों कहकर उस चाण्डालने राजा हरिश्चन्द्रको डंडेसे मारा। डंडेकी चाट लगनेसे उनका चित्त तलमला उठा। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं ॥३॥ प्रिय बंधुओं-का वियोग तो उनके हृदयको संतप्त कर ही रहा था। चाण्डालने उन्हें अपने घर ले जाकर कारागारमें डाल दिया और स्वयं शान्तचित्त होकर सो गया ॥ ४ ॥ अब राजा हरिश्चन्द्रका समय चाण्डालके घररूपी कारागारमें व्यतीत होने लगा। उन्होंने अन्न और जलका परित्याग कर दिया। वे निरन्तर मनमें सोचते थे--॥५॥ "मेरी दुर्बल स्त्री दयाका पात्र है। दीन मुखवाले बालकको देखकर उसे असीम कष्ट होता होगा। वह मुझे याद करके सोचती होगी कि राजा हमें बन्धनसे मुक्त करेंगे ॥ ६ ॥ धन कमाकर प्रतिज्ञा की हुई रकम ब्राह्मणको चुका देंगे। रोते हुए पुत्रको तथा मुझको वे बुलायेंगे। तब मैं उनके पास चली जाऊँगी। फिर मेरा यह बालक 'पिताजी-पिताजी' कहकर रो पड़ेगा। तब वे इसे भी बुला लेंगे ॥७॥८॥ मृग-शावकजैसे नेत्रोंके समान सुन्दर आँखोंवाली मेरी उस प्रियाको पता नहीं है कि मैं चाण्डाल हो गया हूँ। राज्य मेरे हाथसे निकल गया। इष्ट-मित्र सब अलग हो गये। मैंने स्त्री एवं पुत्रको

तमतीवव्याकुलेंद्रियम् ॥ ३ ॥ इष्टबंधुवियोगार्तमानीय निजपक्कणे ॥ निगडे स्थापयित्वा तं स्वयं सुष्वाप विज्वरः ॥ ४ ॥ निगडस्थस्ततो राजा वसंश्चांडालपक्कणे ॥ अन्नपाने परित्यज्य सदा वै तदशोचयत् ॥ ५ ॥ तन्वी दीनमुखी दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः ॥ मां स्मरंत्यसुखाविष्टा मोक्ष-यिष्यति नौ नृपः ॥ ६ ॥ उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तं प्रतिश्रुतम् ॥ रोदमानं सुतं वीक्ष्य मां च सम्बोधयिष्यति ॥ ७ ॥ तातपार्श्वं व्रजामीति रुदंतं बालकं पुनः ॥ तात तातेति भाषंतं तथा संबोधयिष्यति ॥ ८ ॥ न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति चांडालतां गतम् ॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ ९ ॥ ततश्चांडालता चेयमहो दुःखपरंपरा ॥ एवं स निवसन्नित्यं स्मरंश्च दयितां सुतम् ॥ १० ॥ निनाय दिवसान्राजा च-तुरो विधिपीडितः ॥ अथाह्नि पंचमे तेन निगडान्मोचितो नृपः ॥ ११ ॥ चांडालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारणे ॥ क्रुद्धेन परुषैर्वाक्यैर्निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः ॥ १२ ॥ काश्याश्च दक्षिणे भागे श्मशानं विद्यते महत् ॥ तद्रक्षस्व यथान्यायं न त्याज्यं तत्त्वया क्वचित् ॥ १३ ॥ इमं च जर्जरं दंडं गृहीत्वा याहि मा चिरम् ॥ वीरबाहोरयं दंड इति घोषस्व सर्वतः ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु मृतचैलापहारकः ॥ हरिश्चंद्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः ॥ १५ ॥ चांडालेनानुशिष्टस्तु मृतचैलापहारिणा ॥ राजा तेन समादिष्टो जगाम शवमंदिरम् ॥ १६ ॥

बेच दिया ॥९॥ फिर मुझे चाण्डालता स्वीकार करनी पड़ी। अहो ! यह कैसी विधिकी विडंबना सामने आ गयी।" इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्र चाण्डालके घर रहते हुए निरन्तर स्त्री और पुत्रका स्मरण करते रहे ॥१०॥ दैवके विधानसे परम दुखी नरेशके या चार दिन बीत गए। जब पाँचवाँ दिन आया, तब दोपहरके समय चाण्डालने उन्हें कारागारसे निकाला ॥११॥ फिर श्मशानपर मृत व्यक्तियोंके वस्त्र लेनेकी आज्ञा दी। उस क्रोधी चांडालने अत्यन्त कठोर वचनोंका प्रयोग करके बारंबार डाँटते हुए हरिश्चन्द्रसे कहा–॥ १२ ॥ 'देखो, काशीके दक्षिण भागमें एक विशाल श्मशानघाट है। तुम न्यायपूर्वक वहाँकी रखवाली करो। तुम्हें कभी भी वहाँसे हटना नहीं चाहिए ॥१३॥ इस पुराने डंडेको लेकर तुम अभी वहाँ चले जाओ। तुम्हें भली भाँति घोषित करना चाहिए कि यह दण्ड महाबाहु प्रवीरका है' ॥१४॥ सूतजी बोले–हे शौनक ! चांडालके आज्ञानुसार महाराज हरिश्चंद्र मृतकोंका वस्त्र लेनेके लिए श्मशानपर चले गये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥१५॥ वह भयानक श्मशानघाट काशीपुरीके दक्षिण भागमें था। वहीं शव जलाये जाते थे, शवमाल्य बिखरा रहता था और दुर्गन्धित धुआँ निकला करता था ॥ १६ ॥ सर्वत्र भयङ्कर चीत्कार हो रहा था। सैकड़ों सियार अड्डा बनाये हुए थे। कुत्तों, गीधों और गीदड़ोंसे सारा स्थान भरा था ॥१७॥ सर्वत्र मुर्दे-ही-मुर्दे दिखायी पड़ते थे। चारों ओर हड्डियाँ बिखरी पड़ी थी। दुर्गन्धका पार नहीं था। अधजले मुर्दोंके मुख निकले हुए दाँतोंसे हँसते जैसे दीख रहे थे ॥ १८ ॥ १९ ॥ मृतकोंके बन्धु-बान्धव रोते थे, जिससे वहाँ भीषण कोलाहल मचा रहता था। पुत्र, मित्र, बन्धु, भाई वत्स एवं प्रियाको सम्बोधित करके परिवारके मनुष्य कहते–'हा! आज तुम हमें छोड़कर जा रहे हो?' कुछ लोग दादा, नाना, पिता, पौत्र और बन्धु-बान्धवोंको लक्ष्य करके कहते–'हा! तुम कहाँ चले गये–लौट आनेकी कृपा करो।' प्राणियोंके इन हृदयविदारक शब्दोंसे वहाँका सभी स्थान सदा भरा रहता था ॥ २०-२२ ॥ मांस, मज्जा और मेदके जलते समय साँय

पुर्यास्तु दक्षिणे देशे विद्यमानं भयानकम् ॥ शवमाल्यसमाकीर्णं दुर्गन्धं बहुधूमकम् ॥ १७ ॥ श्मशानं घोरसन्नादं शिवाशतसमाकुलम् ॥ गृद्ध-गोमायुसंकीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम् ॥ १८ ॥ अस्थिसंघातसंकीर्णं महादुर्गन्धसंकुलम् ॥ अर्धदग्धशवास्यानि विकसद्दंतपंक्तिभिः ॥ १९ ॥ हसंतीवा-ग्निमध्यस्थकायस्यैवं व्यवस्थितिः ॥ नानामृतसुहृन्नादं महाकोलाहलाकुलम् ॥ २० ॥ हा पुत्र मित्र हा बन्धो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे ॥ हाप्यते भागिनेयाहं हा मातुल पितामह ॥ २१ ॥ मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बांधव ॥ इति शब्दैः समाकीर्णं भैरवैः सर्वदेहिनाम् ॥ २२ ॥ ज्वलन्मांसवसामेदच्छूमिति ध्वनिसंकुलम् ॥ अग्नेश्चटचटाशब्दो भैरवो यत्र जायते ॥ २३ ॥ कल्पांतसदृशाकारं श्मशानं तत्सुदारुणम् ॥ स राजा तत्र संप्राप्तो दुःखादेवमशोचत ॥ २४ ॥ हा भृत्या मंत्रिणो यूयं क्व तद्राज्यं कुलोचितम् ॥ हा प्रिये पुत्र मे बाल मां त्यक्त्वा मंदभाग्यकम् ॥२५॥ ब्राह्मणस्य च कोपेन गता यूयं क्व दूरतः ॥ बिना धर्मं मनुष्याणां जायते न शुभं क्वचित् ॥ २६ ॥ यत्नतो धारयेत्तस्मात्पुरुषो धर्ममेव हि ॥ इत्येवं चिंतयंस्तत्र चांडालोक्तं पुनः पुनः ॥ २७ ॥ मलेन दिग्धसर्वांगः शवानां दर्शने व्रजन् ॥ लकुटाकारकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः ॥ २८ ॥ अस्मिञ्छव इदं मौल्यं शतं प्राप्स्यामि चाग्रतः ॥ इदं मम इदं राज्ञ इदं चांडालकस्य च ॥ २९ ॥ इत्येवं चिन्तयन्राजा व्यवस्थां दुस्तरां गतः ॥

साँयकी ध्वनि निकलती थी। अग्निमेंसे चट-चटानेका भयङ्कर शब्द होता था ॥ २३ ॥ उस समय भय उत्पन्न करनेवाला वह श्मशान ऐसा जान पड़ता था कि मानो प्रलयकाल ही उपस्थित हो। वहाँ पहुँचकर दुखी राजा हरिश्चन्द्र सोचने लगे–॥२४॥ हाय मेरे भृत्य तथा मंत्रीगण! तुम लोग कहाँ हो? कुलपरंपरासे प्राप्त मेरा राज्य कहाँ गया? हाय प्रिये! हाय पुत्र! मुझ अभागेको छोड़कर तुम चले गये? ॥ २५ ॥ ब्राह्मणके कोपसे तुम लोग कहाँ गये? धर्मके बिना मनुष्यका कहीं भी कल्याण नहीं हो सकता ॥ २६ ॥ अतएव मनुष्यको चाहिए कि यत्नपूर्वक धर्मको धारण करे। इन तथा चांडालकी बातोंपर वे बराबर विचार करते रहे ॥ २७ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्र मुर्दोंको देखनेके लिए इधर-उधर घूमने लगे। उनके सम्पूर्ण शरीरपर मैल जम गयी थी। यत्र-तत्र दौड़ते हुए वे लकुटके समान प्रतीत होते थे ॥ २८ ॥ इस शवसे यह मूल्य मिला, पुनः उससे सौ मुद्रा मूल्य मिलेगा। यह मेरा है, यह राजाका और यह चाण्डालका–इस प्रकारको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुस्तर व्यवस्थामें राजा व्यस्त रहने लगे। उनके शरीरपर एक ही पुराना वस्त्र था, जिसमें बहुत-सी गाँठें पड़ी थीं। एक गुदड़ी उनके पास थी। हाथ, पैर, मुख और उदर चिताकी राख एवं धूलसे धूसरित रहते थे। हाथकी अँगुलियाँ तरह-तरहके मांस, रुधिर और मज्जासे सनी रहती थीं ॥२९-३१॥ मुर्दोंके पिण्डदानार्थ जो भात बनता था, उसीके बचे-खुचे भागसे वे अपनी भूख मिटा लेते थे। मुर्दोंकी माला पहनकर अपने मस्तकका शृंगार करते थे ॥३२॥ नित्य हाय-हाय करते हुए न वे दिनमें सोते थे और न रातमें ही। इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्रके बारह महीने सौ वर्षके समान बीते ॥३३॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

(सर्पदंशसे रोहितकी मृत्यु) सूतजी कहते हैं—हे शौनक! एक दिन राजकुमार रोहित खेलनेके लिए काशीसे कुछ दूर बाहर चला गया। उसके साथ बहुतसे लड़के थे ॥ १ ॥ खेलनेके पश्चात् वह कुशा उखाड़ने लगा। अपनी शक्तिके अनुसार जड़ और अग्रभागसे युक्त बहुतसे कोमल कुश उसने उखाड़े ॥ २ ॥ 'इससे मेरे मालिक प्रसन्न होंगे' यह सोचकर दोनों

जीर्णैकपटसुग्रंथिकृतकंथापरिग्रहः ॥ ३० ॥ चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ॥ नानामेदोवसामज्जालिप्तपाण्यंगुलिः श्वसन् ॥ ३१ ॥ नाना-शवौदनकृतक्षुन्निवृत्तिपरायणः ॥ तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमंडनः ॥ ३२ ॥ न रात्रौ न दिवा शेते हाहेति प्रवदन्मुहुः ॥ एवं द्वादश मासास्तु नीता वर्षशतोपमाः ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ सूत उवाच ॥ एकदा तु गतो रंतुं बालकैः सहितो बहिः ॥ वाराणस्या नातिदूरे रोहिताख्यः कुमारकः ॥ १ ॥ क्रीडां कृत्वा ततो दर्भान्गृहीतुमुपचक्रमे ॥ कोमलानल्पमूलांश्च साग्राञ्छक्त्यनुसारतः ॥ २ ॥ आर्यप्रीत्यर्थमित्युक्त्वा हस्तयुग्मेन यत्नतः ॥ सलक्षणाश्च समिधो बर्हिरिध्मं सलक्षणम् ॥ ३ ॥ पलाशकाष्ठान्यादाय त्वग्निहोमार्थमादरात् ॥ मस्तके भारकं कृत्वा भिद्यमानः पदे पदे ॥ ४ ॥ उदकस्थानमासाद्य तदा बाल-स्तृषान्वितः ॥ भुवि भारं विनिक्षिप्य जलस्थाने तदा शिशुः ॥ ५ ॥ कामतः सलिलं पीत्वा विश्रम्य च मुहूर्तकम् ॥ वल्मीकोपरि विन्यस्तभारो हर्तुं प्रचक्रमे ॥ ६ ॥ विश्वामित्राज्ञया तावत्कृष्णसर्पो भयावहः ॥ महाविषो महाघोरो वल्मीकान्निर्गतस्तदा ॥ ७ ॥ तेनासौ बालको दष्टस्तदैव च पपात ह ॥ रोहिताख्यं मृतं दृष्ट्वा ययुर्बाला द्विजालयम् ॥८॥ त्वरिता भयसंविग्नाः प्रोचुस्तन्मातुरग्रतः ॥ हे विप्रदासि ते पुत्रः क्रीडां कर्तुं बहिर्गतः ॥९॥

हाथोंसे यत्नपूर्वक उसने कुशा उखाड़ी। उत्तम लक्षणवाली समिधाओं और कुशका उसने पर्याप्त संग्रह कर लिया ॥३॥ अग्निहोत्रके लिए आदरपूर्वक पलाशकी लकड़ियाँ भी उसने तोड़ लीं। सबको लेकर एक बोझ बनाया और मस्तकपर रखकर वह पैदल ही चलने लगा। सुकुमार था ही, चलते-चलते थक गया ॥ ४ ॥ उसी समय राजकुमार रोहितको प्यास भी लग गयी। अतः वह एक जलाशयपर पहुँचा। जलके समीप जमीनपर बोझ उतारकर उसने रख दिया ॥ ५ ॥ इच्छानुसार जल पीकर कुछ समयतक विश्राम किया। फिर वल्मीकके टीलेपर जो बोझ रक्खा हुआ था, उसे उठाने लगा ॥६॥ इतनेमें विश्वामित्रकी प्रेरणासे एक महान् विषधर काला सर्प बिलसे निकला। उसकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी ॥७॥ उसने राजकुमार रोहितको काट लिया। उसके काटते ही वह जमीनपर गिर पड़ा और मर गया। यह देखकर साथी बालक ब्राह्मणके घर गये ॥ ८ ॥ भयके कारण उन बालकोंके हृदयमें बड़ी घबराहट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्पन्न हो गयी थी। अत्यन्त उतावलीके साथ रोहितकी माताके सामने जाकर वे कहने लगे–'हे विप्रदासी! तुम्हारा पुत्र खेलनेके लिये बाहर गया था। हम सभी साथ थे। वहाँ सर्पने उसको डस लिया। जिससे उसके प्राण निकल गये।' वज्रपातकी तुलना करनेवाली यह बात सुनते ही रानी मूर्छित होकर जमीनपर इस तरह गिर पड़ी, जैसे जड़से कटा हुआ केलेके वृक्ष गिर पड़ा हो। तब ब्राह्मणने कुपित होकर रानीपर जलके छींटे दिये ॥९–११॥ क्षणभरमें रानीको जब चेत हो गया, तब ब्राह्मण उससे कहने लगा। ब्राह्मण बोला–अरी दुष्टे! सायंकालके समय रोना अशुभसूचक होता है ॥१२॥ इससे घरमें दरिद्रता आती है। यह जानती हुई भी तू क्यों रो रही है? क्या तेरे हृदयमें तनिक भी लज्जाको स्थान नहीं है? इस प्रकार ब्राह्मणके डाँटनेपर रानीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। पुत्र-शोकसे संतप्त होकर वह बेचारी रोती ही रही। उसका मुख आँसुओंसे भींग रहा था। सिरके बाल इधर-उधर बिखर गये थे। घोर दयनीय दशाको प्राप्त रानी धूलसे धूसरित हो गयी थी ॥१३॥१४॥ फिर क्रोधके आवेशमें आकर ब्राह्मणने रानीसे कहा–'दुष्टे! तुझे धिक्कार है। क्योंकि अपनी कीमत ले करके भी तू मेरा कार्य करनेमें आनाकानो कर रही है

अस्माभिः सहितस्तत्र सर्पदष्टो मृतस्ततः ॥ इति सा तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा ॥ १० ॥ पपात मूर्छिता भूमौ छिन्नेव कदली यथा ॥ अथ तां ब्राह्मणो रुष्टः पानीयेनाभ्यषिंचत ॥ ११ ॥ मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्ता ब्राह्मणस्तामथाब्रवीत् ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अलक्ष्मीकारकं निंद्यं जानती त्वं निशामुखे ॥ १२ ॥ रोदनं कुरुषे दुष्टे लज्जा ते हृदये न किम् ॥ ब्राह्मणेनैवमुक्ता सा न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ रुरोद करुणं दीना पुत्रशोकेन पीडिता ॥ अश्रुपूर्णमुखी दीना धूसरा मुक्तमूर्द्धजा ॥ १४ ॥ अथ तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत ॥ धिक्त्वां दुष्टे क्रयं गृह्य मम कार्यं विलुंपसि ॥ १५ ॥ अशक्ता चेत्कथं तर्हि गृहीतं मम तद्धनम् ॥ एवं निर्भर्त्सिता तेन क्रूरवाक्यैः पुनः पुनः ॥ १६ ॥ रुदती कारणं प्राह विप्रं गद्गदया गिरा ॥ स्वामिन्मम सुतो बालः सर्पदष्टो मृतो बहिः ॥ १७ ॥ अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व द्रष्टुं यास्यामि बालकम् ॥ दुर्लभं दर्शनं तेन संजातं मम सुव्रत ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा करुणं बाला पुनरेव रुरोद ह ॥ पुनस्तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत ॥ १९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ शठे दुष्टसमाचारे किं न जानासि पातकम् ॥ यत्स्वामिवेतनं गृह्य तस्य कार्यं विलुम्पसि ॥ २० ॥ नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके ॥ उषित्वा नरकं कल्पं

यदि तू इस कामको नहीं कर सकती थी तो मुझसे धन ही क्यों लिया?' इस प्रकार बारंबार निष्ठुर वाक्योंका प्रयोग करके ब्राह्मण रानीको डाँटने लगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ रानीके नेत्रोंसे निरन्तर जल बह रहा था। उसने दुःखभरी वाणीमें अपने रोनेका कारण बताते हुए कहा–'स्वामिन्! मेरा बच्चा खेलने गया था, उसे सर्पने डस लिया। जिससे उसकी मृत्यु हो गयी ॥१७। हे सुव्रत! मैं उस बालकको देखनेके लिए जाना चाहती हूँ। मुझे आज्ञा देनेकी कृपा कीजिए। क्योंकि अब उस पुत्रका दर्शन मेरे लिए परम दुर्लभ हो गया है' ॥१८॥ यों करुणापूर्ण वचन कहकर रानी पुनः रोने लगी। उस क्रोधी ब्राह्मणने उससे फिर कहा ॥१९॥ ब्राह्मण बोला–नीच व्यवहारमें तत्पर रहनेवाली अरी मूर्खे! क्या तुझे पापकी जानकारी नहीं है? देख, जो व्यक्ति स्वामीसे वेतन लेकर उसका कार्य सुचारुरूपसे नहीं करता, उसे अत्यन्त भयङ्कर रौरव नरकमें गिरना पड़ता है। एक कल्प नरक भोगनेके पश्चात् मुर्गेकी योनिमें उसकी उत्पत्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होती है ॥२०॥२१॥ अथवा इस धार्मिक चर्चासे मुझे क्या मतलब। क्योंकि पापी, मूर्ख, क्रूर, मिथ्याभाषी और शठ प्राणियोंके ऊपर उपदेशका कुछ भी असर नहीं होता। जैसे ऊसरमें बीज बोनेपर व्यर्थ हो जाता है। यदि तुझे परलोकका कुछ भी भय हो तो आ अपना काम कर ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस समय इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर भयसे काँपती हुई रानी बोली—'नाथ ! मुझपर कृपा कीजिए। आप प्रसन्न हो जायँ। मैं बालकको देख सकूँ, केवल इतने समयके लिए ही मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दे दीजिये।' यों कहकर रानी ब्राह्मणके पैरपर गिर पड़ी ॥ २४ ॥ २५ ॥ पुत्रके शोकसे अत्यन्त दुःखिनी होनेके कारण वह करुण विलाप करके रो रही थी। तदनन्तर रोषसे आँखें लाल करके वह क्रोधी ब्राह्मण रानीसे पुनः कहने लगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोला--तेरे पुत्रसे मुझे क्या प्रयोजन ? तू पहले घरका काम कर। क्या तू मेरे क्रोधको नहीं जानती ? विशेष देर करेगी तो कोड़े लगाऊँगा ? ॥ २७ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर रानी धैर्यपूर्वक उसके घरका काम करने लगी। पैर दबाने, मालिश करने आदि कार्योंके सम्पादनमें आधी रातका समय व्यतीत हो गया ॥ २८ ॥

ततोऽसौ कुक्कुटो भवेत् ॥ २१ ॥ किमनेनाथवा कार्यं धर्मसंकीर्तनेन मे ॥ यस्तु पापरतो मूर्खः क्रूरो नीचोऽनृतः शठः ॥ २२ ॥ तद्वाक्यं निष्फलं तस्मिन्भवेद्बीजमिवोषरे ॥ एहि ते विद्यते किंचित्परलोकभयं यदि ॥ २३ ॥ एवमुक्ताऽथ सा विप्रं वेपमानाऽब्रवीद्वचः ॥ कारुण्यं कुरु मे नाथ प्रसीद सुमुखो भव ॥ २४ ॥ प्रस्थापय मुहूर्तं मां यावद्द्रक्ष्यामि बालकम् ॥ एवमुक्त्वाऽथ सा मूर्ध्ना निपत्य द्विजपादयोः ॥ २५ ॥ रुरोद करुणं बाला पुत्रशोकेन पीडिता ॥ अथाह कुपितो विप्रः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २६ ॥ विप्र उवाच ॥ किं ते पुत्रेण मे कार्यं गृहकर्म कुरुष्व मे ॥ किं न जानासि मे क्रोधं कशाघातफलप्रदम् ॥२७॥ एवमुक्ता स्थिता धैर्याद्गृहकर्म चकार ह ॥ अर्धरात्रो गतस्तस्याः पादाभ्यंगादिकर्मणा ॥२८॥ ब्राह्मणेनाथ सा प्रोक्ता पुत्रपार्श्वं व्रजाधुना ॥ तस्य दाहादिकं कृत्वा पुनरागच्छ सत्वरम् ॥ २९ ॥ न लुप्येत यथा प्रातर्गृहकर्म ममेति च ॥ ततस्त्वेकाकिनी रात्रौ विलपंती जगाम ह ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा मृतं निजं पुत्रं भृशं शोकेन पीडिता ॥ यूथभ्रष्टा कुरंगीव विवत्सा सौरभी यथा ॥ ३१ ॥ वाराणस्या बहिर्गत्वा क्षणाद्दृष्ट्वा निजं सुतम् ॥ शयानं रंकवद्भूमौ काष्ठदर्भतृणोपरि ॥ ३२ ॥ विललापातिदुःखार्ता शब्दं कृत्वा सुनिष्ठुरम् ॥ एहि मे संमुखं कस्माद्रोषितोऽसि वदाधुना ॥३३॥ आयास्यभिमुखो नित्यमंबेत्युक्त्वा पुनः पुनः ॥ गत्वा स्खलत्पदा तस्य पपातोपरि मूर्च्छिता॥३४॥

तब ब्राह्मणने रानीसे कहा—'अब तू पुत्रके पास जा सकती है। उसका दाहसंस्कार आदि करके बहुत शीघ्र लौटा आना। जिससे मेरे प्रातःकालीन कार्यमें बाधा न उपस्थित हो।' तब रानी अकेली ही उस आधी रातके समय रोती-बिलखती हुई पुत्रके पास गयी ॥ २९ ॥ ३० ॥ अपने मृत बालकको देखकर शोकसे उसका हृदय संतप्त हो उठा। वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो झुण्डसे बिछड़ी हुई हिरनी अथवा बिना बछड़ेकी गाय हो ॥३१॥ काशीसे बाहर निकलनेपर तुरंत उसका मृत कुमार दिखायी पड़ा। काठ, कुशा और तृणके सहारे वह बालक जमीनपर कंगालकी भाँति पड़ा था ॥३२॥ उस समय दुःखके कारण अत्यन्त अधीर होकर परम कर्कश शब्दका प्रयोग करके चिल्लाती हुई रानी विलाप करने लगी—'बेटा ! तू मेरे सामने आ जा। बता तो इस समय तू क्यों रूठ गया है ? ' ३३ ॥ पहले तू बार बार 'अम्बा-अम्बा' कहकर मेरे सामने आया करता था !' यों कहकर रानी कुछ डग आगे बढ़ी और मूर्च्छित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होकर मृत पुत्रके ऊपर गिर पड़ी ॥ ३४ ॥ फिर सचेत होनेपर उसने दोनों हाथोंसे बालकको पकड़ लिया। उसके मुखसे अपना मुख सटानेके पश्चात् अत्यन्त हृदय-विदारक शब्दोंका प्रयोग करती हुई वह घिघियाकर रोने लगी ॥३५॥ हाथोंसे अपना मस्तक और छाती पीटकर वह इस प्रकार करुण विलाप कर रही थी—'हा पुत्र! हा शिशो! हा वत्स! हा मेरे सुकुमार बच्चे! तू कहाँ चला गया? हा राजन्! आप कहाँ चले गये? यहाँ आकर अपने इस बालकको तो देख लें। प्राणोंसे भी बढ़कर प्रेमभाजन आपका पुत्र मरकर जमीनपर पड़ा है ॥ ३६–३८ ॥ फिर वह रानी कहीं बालकके प्राण तो नहीं लौट आये, इस भावनासे मृत पुत्रका मुख निहारने लगी। जब मुखकी चेष्टासे मालूम हो गया कि वह जीवित नहीं है, तब पुनः मूर्च्छित होकर गिर पड़ी ॥३९॥ सचेत होनेपर उसने पुनः हाथमें बालकका मुख रख लिया और कहा—'बेटा! तू इस भयङ्कर निद्राका त्याग कर दे। शीघ्र जाग जा। आधी रातसे भी अधिक समय व्यतीत हो गया है। सैकड़ों सियार बोल रहे हैं। भूत, प्रेत, पिशाच और डाकिनी आदिके झुण्डोंकी भयङ्कर ध्वनि श्रवणगोचर हो रही है ॥४०॥ सूर्यास्त होते ही तेरे सभी मित्र घर चले

पुनः सा चेतनां प्राप्य दोर्भ्यामालिंग्य बालकम् ॥ तन्मुखे वदनं न्यस्य रुरोदार्तस्वनैस्तदा ॥ ३५ ॥ कराभ्यां ताडनं चक्रे मस्तकस्योदरस्य च ॥ हा बाल हा शिशो वत्स हा कुमारक सुन्दर ॥ ३६ ॥ हा राजन्क गतोऽसि त्वं पश्येमं बालकं निजम् ॥ प्राणेभ्योऽपि गरीयांसं भूतले पतितं मृतम् ॥ ३७ ॥ तदाऽपश्यन्मुखं तस्य भूयो जीवितशंकया ॥ निर्जीववदनं ज्ञात्वा मूर्च्छिता निपपात ह ॥ ३८ ॥ हस्तेन वदनं गृह्य पुनरेवमभाषत ॥ शयनं त्यज हे बाल शीघ्रं जागृहि भीषणम् ॥ ३९ ॥ निशार्धं वर्धते चेदं शिवाशतनिनादितम् ॥ भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयूथनादितम् ॥ ४० ॥ मित्राणि ते गतान्यस्तात्त्वमेकस्तु कुतः स्थितः ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा पुनस्तन्वी करुणं प्ररुरोद ह ॥ ४१ ॥ हा शिशो बाल हा वत्स रोहिताख्य कुमारक ॥ हे पुत्र प्रतिशब्दं मे कस्मात्त्वं न प्रयच्छसि ॥ ४२ ॥ तवाहं जननी वत्स किं न जानासि पश्य माम् ॥ देशत्यागाद्राज्यनाशात्पुत्र भर्त्रा स्वविक्रयात् ॥४३॥ यद्दासीत्वाच्च जीवामि त्वां दृष्ट्वा पुत्र केवलम् ॥ ते जन्मसमये विप्रैरादिष्टं यत्त्वनागतम् ॥४४॥ दीर्घायुः पृथिवीराजः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ शौर्यदानरतिः सत्त्वी गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ ४५ ॥ मातापित्रोस्तु प्रियकृत्सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ इत्यादि सकलं जातमसत्यमधुना सुत ॥ ४६ ॥ चक्रमत्स्यावातपत्रश्रीवत्सस्वस्तिकध्वजाः ॥ तव पाणितले पुत्र कलशश्चामरं तथा ॥ ४७ ॥ लक्षणानि

गये। केवल तू ही यहाँ कैसे रह गया? सूतजी बोले—हे शौनक! इस प्रकार विलाप करनेके बाद दुर्बल शरीरवाली रानी फिर रोने लगी ॥४१॥ हा शिशो! तू निरा बालक है। हा सुकुमार वत्स! तुझे लोग रोहित कहते हैं। अरे पुत्र! तू मेरी बातका कुछ उत्तर क्यों नहीं देता? ॥ ४२ ॥ हे वत्स! मैं तेरी माता हूँ, क्या तू यह नहीं जानता? मेरी ओर दृष्टि उठाकर देख। हमें अपने देशसे निकलना पड़ा, राज्यकी सत्ता हाथसे चली गयी, पतिदेवने मुझे दूसरेके हाथ बेच दिया और मैं दासीके कामपर नियुक्त हो गयी—इतनी विपत्तियोंका सामना करके भी मैं केवल तुझे देखकर जीवन काट रही थी। बेटा! तेरे जन्मके समय ब्राह्मणोंने भविष्यकी बात बतायी थी। उन्होंने कहा था कि यह बालक दीर्घायु, पृथ्वीका शासक, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न, शूरवीर, दानी, पराक्रमी, ब्राह्मण, गुरु एवं देवताका उपासक, माता-पितासे प्रेम रखनेवाला, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होगा। हे पुत्र! उनके ये सभी वचन इस समय असत्य हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गये ॥ ४३–४६ । वत्स ! तेरे हाथके तलवेमें चक्र, मछली, छत्र, श्रीवत्स, स्वस्तिक, ध्वजा, कलश एवं चँवर आदिके चिह्न तथा अन्य भी जो शुभ लक्षण विद्यमान हैं, वे सबके-सब इस समय निष्फल सिद्ध हो रहे हैं ॥४७॥४८॥ पृथ्वीपर शासन करनेवाले हा राजन् ! आपका राज्य, मन्त्रिमंडल, सिंहासन, छत्र, तलवार और धन सब कहाँ चले गये ? ॥ ४९ ॥ हे पुत्र ! अयोध्याके गगनचुम्बी महल, हाथी, घोड़े, रथ और प्रजा–इन सबके साथ ही तू भी मुझे छोड़कर कहाँ चला गया ? ॥५०॥ हा कान्त ! हा राजन् ! आप यहाँ पधारकर अपने प्रिय पुत्रको देखें । जो खेलते-खेलते आपकी छातीपर चढ़कर कुङ्कुमसे रँग देता था, जिसके शरीरमें लगे हुए कीचड़से कभी आपकी छाती मलीन हो जाती थी तथा कभी गोदमें बैठकर जो चपलताके कारण आपके मस्तकपर लगे हुए कस्तूरीमिश्रित चन्दनको मिटा दिया करता था, जिसके मिट्टीलगे मुखको स्नेहवश आप चूमा करते थे ॥५१–५३॥ उसीके मुखपर आज मैं देखती हूँ कि

तथाऽन्यानि त्वद्धस्ते यानि संति च ॥ तानि सर्वाणि मोघानि संजातान्यधुना सुत ॥ ४८ ॥ हा राजन्पृथिवीनाथ क्व ते राज्यं क्व मंत्रिणः ॥ क्व ते सिंहासनं छत्रं क्व ते खड्गः क्व तद्धनम् ॥४९॥ क्व साऽयोध्या क्व हर्म्याणि क्व गजाश्वरथप्रजाः ॥ सर्वमेतत्तथा पुत्र मां त्यक्त्वा क्व गतोऽसि रे ॥ ५० ॥ हा कांत हा नृपागच्छ पश्येमं स्वसुतं प्रियम् ॥ येन ते रिंगता वक्षः कुंकुमेनावलेपितम् ॥ ५१ ॥ स्वशरीररजःपंकैर्विशालं मलिनीकृतम् ॥ येन ते बालभावेन मृगनाभिविलेपितः ॥ ५२ ॥ भ्रंशितो भालतिलकस्तवांकस्थेन भूपते ॥ यस्य वक्त्रं मृदा लिप्तं स्नेहार्द्रे चुम्बितं त्वया ॥ ५३ ॥ तन्मुखं मक्षिकालिंग्यं पश्ये कीटैर्विदूषितम् ॥ हा राजन्पश्य तं पुत्रं भुविस्थं रंकवन्मृतम् ॥ ५४ ॥ हा देव किं मया कृत्यं कृतं पूर्वभवान्तरे ॥ तस्य कर्मफलस्येह न पारमुपलक्षये ॥ ५५ ॥ हा पुत्र हा शिशो वत्स हा कुमारक सुंदर ॥ एवं तस्या विलापं ते श्रुत्वा नगरपालकाः ॥ ५६ ॥ जागृतास्त्वरितास्तस्याः पार्श्वमीयुः सुविस्मिताः ॥ जना ऊचुः ॥ का त्वं बालश्च कस्यायं पतिस्ते कुत्र तिष्ठति ॥ ५७ ॥ एकैव निर्भया रात्रौ कस्मात्त्वमिह रोदिषि ॥ एवमुक्ताऽथ सा तन्वी न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५८ ॥ भूयोऽपि पृष्टा सा तूष्णीं स्वब्धीभूता बभूव ह ॥ विललापातिदुःखार्ता शोकाश्रुप्लुतलोचना ॥ ५९ ॥ अथ ते शंकितास्तस्यां रोमांचिततनूरुहाः ॥ संत्रस्ताः प्राहुरन्योन्यमुद्धृतायुधपा-

मक्खियाँ भिनक रही हैं । हा राजन् ! वही आपका पुत्र आज मरकर अकिञ्चनकी भाँति धरतीपर पड़ा है । उसे देख तो लें ॥५४॥ हा दैव ! पूर्व-जन्ममें मेरे द्वारा कौन ऐसा कुकृत्य हो गया था कि जिसके फलभोगका मैं अन्त ही नहीं पा रही हूँ । हा पुत्र ! हा शिशो ! हा वत्स ! हा मेरे सुंदर कुमार ! ऐसा कहकर रानी उच्च स्वरसे विलाप कर रही थी । रोनेके शब्द जब पहरेदारोंके कानमें पड़े तो उनकी नींद उचट गयी । अत्यन्त आश्चर्यमें पड़कर वे दौड़े हुए रानीके पास आये । पहरेदारोंने कहा–तुम कौन हो ? यह बालक किसका है और तुम्हारे पतिदेव कहाँ हैं ? ॥५५–५७॥ रातके समय निर्भीकतापूर्वक तुम अकेली कहाँसे आकर रो रही हो ? ऐसा कहनेपर वे रानीके मुखसे कुछ भी उत्तर नहीं पा सके ॥५८॥ दुबारा पूछनेपर भी वह चुप रही । उसके बाद वह फिर आँसू बहाती हुई बड़े दुःखके साथ रोने लगी ॥५९॥ तब रानीके प्रति पहरेदारोंके मनमें संदेह उत्पन्न हो गया । डरके कारण उनके शरीरके रोंगटे खड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो गये। हाथमें आयुध लेकर वे परस्पर कहने लगे ॥ ६० ॥ 'निश्चय ही यह स्त्री नहीं है। क्योंकि इसके मुखसे कोई बात नहीं निकलती। अवश्य ही यह बालकोंको खा जानेवाली पिशाची है। अतएव यत्न करके इसे मार डालना चाहिये ॥६१॥ यदि कोई अच्छी स्त्री होती तो इस घोर अर्ध रात्रिमें घरसे बाहर रहती ही क्यों ? हो न हो, यह पिशाची किसीके पुत्रको खानेके लिए ही यहाँ ले आयी है' ॥ ६२ ॥ यों आपसमें परामर्श करके कुछ लोगोंने तुरन्त रानीके केश पकड़ लिये, कुछ अन्य व्यक्तियोंने उनकी दोनों भुजायें पकड़ लीं तथा कितनोंके हाथ रानीके गलेमें भिड़ गये ॥६३॥ 'अरी राक्षसी ! अब तू कहाँ जायगी ?!' यों कहकर बहुतसे शस्त्रधारी नागरिक रानीको घसीटकर चाण्डालके स्थानपर चले गये और उसे सौंप दिया। ॥६४॥ साथ ही कहा—'चाण्डाल ! यह बच्चोंको खा जानेवाली राक्षसी है। हमने इसे पकड़ लिया है। तुम कहीं बाहर ले जाकर इसको अभी जानसे मार डालो' ॥ ६५ ॥ तब चाण्डालने रानीको देखकर कहा–'मैं इसे जानता हूँ। बहुतोंके मुखसे इसकी चर्चा सुनी है। प्रायः लोगोंके बच्चोंको यह खा जाया करती है, परन्तु इसके पहले किसीने भी इसे देखा नहीं

णयः ॥ ६० ॥ नूनं स्त्री न भवत्येषा यतः किंचिन्न भाषते ॥ तस्माद्वध्या भवेदेषा यत्नतो बालघातिनी ॥ ६१ ॥ शुभा चेत्तर्हि किं ह्यत्र निशार्धे तिष्ठते बहिः ॥ भक्षार्थमनया नूनमानीतः कस्यचिच्छिशुः ॥ ६२ ॥ इत्युक्त्वा तैर्गृहीता सा गाढं केशेषु सत्वरम् ॥ भुजयोरपरैश्चैव कैश्चापि गलके तथा ॥ ६३ ॥ खेचरी यास्यतीत्युक्तं बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥ आकृष्य पक्कणे नीता चांडालाय समर्पिता ॥ ६४ ॥ हे चांडाल बहिर्दृष्टा ह्यस्माभिर्बालघातिनी ॥ वध्यतां वध्यतामेषा शीघ्रं नीत्वा बहिःस्थले ॥ ६५ ॥ चांडालः प्राह तां दृष्ट्वा ज्ञातेयं लोकविश्रुता ॥ न दृष्टपूर्वा केनापि लोकडिंभान्यनेकधा ॥ ६६ ॥ भक्षितान्यनया भूरि भवद्भिः पुण्यमर्जितम् ॥ ख्यातिर्वः शाश्वती लोके गच्छध्वं च यथासुखम् ॥ ६७ ॥ द्विजस्त्रीबालगोघाती स्वर्णस्तेयी च यो नरः ॥ अग्निदो वर्त्मघाती च मद्यपो गुरुतल्पगः ॥ ६८ ॥ महाजनविरोधी च तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥ द्विजस्यापि स्त्रियो वाऽपि न दोषो विद्यते वधे ॥ ६९ ॥ अस्या वधश्च मे योग्य इत्युक्त्वा गाढबन्धनैः ॥ बद्ध्वा केशेष्वथाकृष्य रज्जुभिस्तामताडयत् ॥७०॥ हरिश्चन्द्रमथोवाच वाचा परुषया तदा ॥ रे दास वध्यतामेषा दुष्टात्मा मा विचारय ॥७१॥ तद्वाक्यं भूपतिः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा ॥ वेपमानोऽथ

था ॥६६॥ आपलोगोंने इसे पकड़कर बहुत बड़ा पुण्य कमाया है। आपकी कीर्ति जगत्में सदा बनी रहेगी। अच्छा, अब आपलोग सुखपूर्वक यहाँसे सिधारें ॥६७॥ जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण, स्त्री और बालकका वध करता हो, सुवर्ण चुराता हो, आग लगाता हो, रास्ता रोकता हो, शराब पीता हो, गुरुकी शय्यापर सोता हो तथा श्रेष्ठ पुरुषोंका विरोध करता हो तो उसका वध करनेसे पुण्य होता है। ऐसे कार्यमें तत्पर रहनेवाली ब्राह्मणकी स्त्रीको भी मार डालनेमें दोष नहीं लगता। अतः इसका वध उचित ही है' ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ इस प्रकार कहकर चाण्डालने मजबूत बन्धनोंसे रानीको बाँध दिया। फिर उसने केश पकड़कर रस्सियोंसे खूब पीटा ॥ ७० ॥ इसके पश्चात् चाण्डालने कठोर वचनका प्रयोग करके हरिश्चन्द्रको बुलाया और उनसे कहा–'अरे दास ! तू बिना कुछ विचारे इस दुराचारिणी स्त्रीका तुरन्त वध कर डाल' ॥७१॥ चाण्डालका यह वचन वज्रपातकी तुलना कर रहा था। उसे सुनकर स्त्री-वधकी आशंकासे राजा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हरिश्चन्द्रका शरीर काँप उठा ॥७२॥ उन्होंने चाण्डालसे कहा–'मैं यह काम करनेमें असमर्थ हूँ । मुझे कोई अन्य कार्य करनेकी आज्ञा दीजिये। इसके सिवा आपके बताये हुए असाध्य कार्यको भी मैं कर डालूँगा' ॥७३॥ राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर चाण्डालने उनसे यह वचन कहा—'अरे, तुम डरो मत । तलवार लेकर इसे मार डालो । क्योंकि इसका वध पुण्यप्रद है ॥७४॥ बालकोंको भय पहुँचानेवाली ऐसी राक्षसीकी कभी भी रक्षा नहीं करनी चाहिये' । चाण्डालकी उपर्युक्त बात सुनकर राजाने उत्तर दिया–॥ ७५ ॥ 'जिस-किसी प्रकारसे भी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये । स्त्रीको कभी भी मारना उचित नहीं है । क्योंकि धर्मपरायण मुनियोंका कथन है कि स्त्रीवध महान् पाप है ॥ ७६ ॥ जो पुरुष जानकर अथवा अनजानमें भी स्त्रीको हत्या करता है, उसे महाभयंकर रौरव नरकमें गिरकर यातना भोगनी पड़ती है' ॥७७॥ चाण्डालने कहा–अरे, इतना कहने-सुननेकी कोई आवश्यकता नहीं है । बिजलीके समान चमकनेवाली

चांडालं प्राह स्त्रीवधशंकितः ॥ ७२ ॥ न शक्तोऽहमिदं कर्तुं प्रेष्यं देहि ममावरम् ॥ असाध्यमपि यत्कर्म तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥ ७३ ॥ श्रुत्वा तदुक्तं वचनं श्वपचो वाक्यमब्रवीत् ॥ माभैषीस्त्वं गृहाणासिं वधोऽस्याः पुण्यदो मतः ॥ ७४ ॥ बालानामेव भयदा नेयं रक्ष्या कदाचन ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ ७५ ॥ स्त्रियो रक्ष्या प्रयत्नेन न हन्तव्याः कदाचन ॥ स्त्रीवधे कीर्तितं पापं मुनिभिर्धर्मतत्परैः ॥ ७६ ॥ पुरुषो यः स्त्रियं हन्याज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥ नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके ॥ ७७ ॥ चांडाल उवाच ॥ मा वदासिं गृहाणैनं तीक्ष्णं विद्युत्समप्रभम् ॥ यत्रैकस्मिन्वधं नीते बहूनां तु सुखं भवेत् ॥ ७८ ॥ तस्य हिंसा कृता नूनं बहुपुण्यप्रदा भवेत् ॥ भक्षितान्यनया भूरि लोके डिंभानि दुष्टया ॥ ७९ ॥ तत्क्षिप्रं वध्यतामेषा लोकः स्वस्थो भविष्यति ॥ राजोवाच ॥ चांडालाधिपते तीव्रं व्रतं स्त्रीवधवर्जनम् ॥ ८० ॥ आजन्मतस्ततो यत्नं न कुर्यां स्त्रीवधे तव ॥ चांडाल उवाच॥ स्वामिकार्यं विना दुष्ट किं कार्यं विद्यतेऽपरम् ॥ ८१ ॥ गृहीत्वा वेतनं मेऽद्य कस्मात्कार्यं विलुम्पसि ॥ यः स्वामिवेतनं गृह्य स्वामिकार्यं विलुम्पति ॥८२॥ नरकान्निष्कृतिस्तस्य नास्ति कल्पायुतैरपि ॥ राजोवाच ॥ चांडालनाथ मे देहि प्राप्यमन्यत्सुदारुणम् ॥ ८३ ॥ स्वशत्रुं ब्रूहि तं क्षिप्रं घातयिष्याम्यसंशयम् ॥ घातयित्वा तु तं शत्रुं तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ८४ ॥ देव-

यह तीखी तलवार पड़ी है, इसे हाथमें ले लो । क्योंकि जिस एकके मार डालनेपर बहुतोंके सुखी होनेकी सम्भावना हो, उसकी हिंसा निश्चय ही पुण्यप्रद होती है ॥७८॥ यह दुष्ट संसारमें बहुतसे बच्चोंको खा चुकी है । अतएव इसको तुरन्त मार डालना चाहिये । इसके मरनेपर जगत्की अशान्ति समाप्त हो जायगी । राजा बोले-चाण्डालराज ! मैं जीवनपर्यन्त कभी भी स्त्री-वध न करनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अतः इस स्त्री-वधरूपी घोर कार्यके लिए मेरे द्वारा प्रयत्न नहीं हो सकता । चाण्डालने कहा–दुष्ट! मुझ स्वामीके इस कार्यको छोड़कर दूसरा क्या काम है ॥ ८१ ॥ तू वेतन लेकर मेरा काम क्यों नहीं करता ? जो स्वामीसे मूल्य लेकर उसका काम अधूरा रखता है, उसका हजारों कल्पोंतक नरकसे उद्धार नहीं होता । राजा बोले—चाण्डालनाथ ! मुझे कोई दूसरा कार्य करनेकी आज्ञा दीजिये, चाहे वह कितना ही कठिन हो ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ आप अपने किसी शत्रुको बतायें, मैं तुरन्त उसे मार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डालूँगा । उसे मारकर उसकी सारी पृथिवी आपको सौंप दूँगा ॥८४॥ देवताओं, नागों, सिद्धों और गन्धर्वोंसे युक्त इन्द्रको भी तीखे तीरोंसे मारकर मैं परास्त कर दूँगा ॥८५॥ महाराज हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर चाण्डाल क्रोधसे तमतमा उठा । राजा काँपने लगे । उसने पुनः कहा ॥८६॥ चाण्डाल बोला–(नौकरोंके लिए जो बात कही गयी है, वैसा तेरा व्यवहार नहीं हुआ) । चांडालकी नौकरी करके तू देवताओंकी-सी बात करता है ? अरे दास ! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन है ? तू मेरी निश्चित बात सुन । ओ निर्लज्ज ! यदि तेरे हृदयमें किंचिन्मात्र भी पापका भय था तो चांडालके घरपर आकर तूने दासता ही क्यों स्वीकार की ? ॥८७॥८८॥ अतः इस तलवारको उठा और तुरंत इस स्त्रीका सिर धड़से अलग कर दे । ऐसा कहकर चांडालने महाराज हरिश्चन्द्रके हाथमें तलवार पकड़ा दी ॥ ८९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

देवोरगैः सिद्धैर्गंधर्वैरपि संयुतम् ॥ देवेन्द्रमपि जेष्यामि निहत्य निशितैः शरैः ॥ ८५ ॥ एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ॥ चांडालः कुपितः प्राह वेपमानं महीपतिम् ॥ ८६ ॥ चांडाल उवाच ॥ (नैतद्वाक्यं सुघटितं यद्वाक्यं दासकीर्तितम् ॥) चांडालदासतां कृत्वा सुराणां भाषसे वचः ॥ दास किं बहुना नूनं शृणु मे गदतो वचः ॥ ८७ ॥ निर्लज्ज तव चेदस्ति किंचित्पापभयं हृदि ॥ किमर्थं दासतां यातश्चांडालस्य तु वेश्मनि ॥ ८८ ॥ गृहाणैनं ततः खड्गमस्याश्छिन्धि शिरोऽम्बुजम् ॥ एवमुक्त्वाऽथ चांडालो राज्ञे खड्गं न्यवेदयत् ॥ ८९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ सूत उवाच॥ ततोऽथ भूपतिः प्राह राज्ञीं स्थित्वा ह्यधोमुखः ॥ अत्रोपविश्यतां बाले पापस्य पुरतो मम ॥ १ ॥ शिरस्ते छेदयिष्यामि हन्तुं शक्नोति चेत्करः ॥ एवमुक्त्वा समुद्यम्य खड्गं हंतुं गतो नृपः ॥ २ ॥ न जानाति नृपः पत्नीं सा न जानाति भूपतिम् ॥ अब्रवीद्भृशदुःखार्ता स्वमृत्युमभिकांक्षती ॥ ३ ॥ स्त्र्युवाच॥ चांडाल शृणु मे वाक्यं किंचित्त्वं यदि मन्यसे ॥ मृतस्तिष्ठति मे पुत्रो नातिदूरे बहिः पुरात् ॥ ४ ॥ तं दहामि हतं यावदानयित्वा तवांतिकम् ॥ तावत्प्रतीक्ष्यतां पश्चादसिना घातयस्व माम् ॥ ५ ॥ तेनाथ बाढमित्युक्त्वा प्रेषिता बालकं प्रति ॥ सा

(महाराज हरिश्चन्द्रका महारानी शैव्याको पहचानना) सूतजी कहते हैं–हे शौनक ! तदनंतर महाराज हरिश्चन्द्र नीचा मुँह करके रानीसे कहने लगे–'हे बाले ! मैं एक पापी व्यक्ति हैं, तुम मेरे सामने बैठ जाओ ॥ १ ॥ यदि मेरा हाथ काम दे सका तो मैं तुम्हारा सिर काट लूँगा ।' यों कहकर राजाने हाथमें तलवार ले ली और वे उसे मारनेको तैयार हो गये ॥ २ ॥ अब तक न राजा रानीको पहचान सके थे और न रानी राजाको ही । उस समय अत्यन्त दुःखसे संतप्त होनेके कारण स्वयं मर जानेकी अभिलाषा रखनेवाली रानीने कहा । रानी बोलीं–चांडाल ! यदि तुम्हें उचित जान पड़े तो मेरी एक बात सुननेकी कृपा करो । इस नगरसे बाहर थोड़ी ही दूरपर मेरा पुत्र मरा पड़ा है ॥ ३ ॥ ४ ॥ उस मरे हुए बालकको तुम्हारे पास लाकर उसका दाह न कर दूँ, तबतकके लिये प्रतीक्षा करः । बादमें मुझे तलवारसे मार डालना ॥ ५ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने रानीकी बात स्वीकार करके उसे बालकके पास जानेकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आज्ञा दे दी। उस समय रानीके दुःखका पार नहीं था। अत्यन्त करुण विलाप करती हुई वह चली गयी ॥६॥ हा पुत्र! हा शिशो! यों बारंबार कहती हुई रानी सर्पदंशसे मृत बालकको लेकर तुरंत श्मशानघाटपर लौट आयी और उसने उसे जमीनपर लिटा दिया। उस समय रानीका प्रत्येक अङ्ग शोककी अग्निसे जल रहा था। उसका शरीर दुर्बल हो गया था। सिरके बाल धूलसे धूमिल हो गये थे ॥७॥८॥ 'हे राजन्! आपका प्रिय पुत्र मित्रोंके साथ खेल रहा था। उसे दुष्ट सर्पने काट लिया, जिससे उसके प्राणपखेरू उड़ गये। वही मरा हुआ बालक अब यहाँ जमीनपर पड़ा है। आप उसे देखते क्यों नहीं?' इस प्रकारके शब्द विलाप करते समय रानीके मुखसे निकल रहे थे। सो सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शवके पास आये और उसके ऊपरका वस्त्र हटाया ॥९॥१०॥ तब भी राजा तरह-तरहसे विलाप करनेवाली रानीको पहचाननेमें असमर्थ रहे। क्योंकि बहुत दिनोंसे प्रवाससम्बन्धी असह्य दुःख भोगनेके कारण रानीका अब दूसरा ही रूप हो गया था ॥११॥ महाराज हरिश्चन्द्रके केश पहले बहुत सुन्दर थे। अब वे भयानक जटाके रूपमें परिणत हो गये थे। ऐसा लगता था कि मानो सूखे हुए वृक्षकी छाल

जगामातिदुःखार्ता विलपन्ती सुदारुणम् ॥ ६ ॥ भार्या तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम् ॥ हा पुत्र हा वत्स शिशो इत्येवं वदती मुहुः ॥ ७ ॥
कृशा विवर्णा मलिना पांसुध्वस्तशिरोरुहा ॥ श्मशानभूमिमागत्य बालं स्थाप्याविशद्भुवि ॥ ८ ॥ राजन्नद्य स्वबालं तं पश्यसीह महीतले ॥ रम-
माणं स्वसखिभिर्दष्टं दुष्टाहिना मृतम् ॥ ९ ॥ तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः ॥ शवसन्निधिमागत्य वस्त्रमस्याक्षिपत्तदा ॥ १० ॥ तां
तथा रुदतीं भार्यां नाभिजानाति भूमिपः ॥ चिरप्रवाससंतप्तां पुनर्जातामिवाबलाम् ॥ ११ ॥ साऽपि तं चारुकेशांतं पुरो दृष्ट्वा जटालकम् ॥ नाभ्य-
जानान्नृपवरं शुष्कवृक्षत्वचोपमम् ॥ १२ ॥ भूमौ निपतितं बालं दृष्ट्वाऽऽशीविषपीडितम् ॥ नरेन्द्रलक्षणोपेतमचिंतयदसौ नृपः ॥ १३ ॥ अस्य पूर्णे-
न्दुवद्वक्त्रं शुभमुन्नसमव्रणम् ॥ दर्पणप्रतिमोत्तुङ्गकपोलयुगशोभितम् ॥ १४ ॥ नीलान्केशान्कुञ्चिताग्रान्सान्द्रान्दीर्घास्तरंगिणः ॥ राजीवसदृशे नेत्रे
ओष्ठौ बिंबफलोपमौ ॥ १५ ॥ विशालवक्षा दीर्घाक्षो दीर्घबाहून्नतांसकः ॥ विशालपादो गंभीरः सूक्ष्मांगुल्यवनीश्वरः ॥१६॥ मृणालपादो गंभीर-
नाभिरुद्धतकंधरः ॥ अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येष कुले शिशुः ॥ १७ ॥ जातो नीतः कृतांतेन कालपाशाद्दुरात्मना ॥ सूत उवाच ॥ एवं दृष्ट्वाऽथ

हों ॥ १२ ॥ अतः रानी भी उन्हें नहीं पहचान सकीं। सर्पके विषसे ग्रस्त होकर मृत बालक धरतीपर पड़ा था। उसे देखकर महाराज हरिश्चन्द्र उसके राजोचित शुभ लक्षणपर विचार करने लगे—इसका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी तुलना कर रहा है। इसकी कितनी सुघड़ नासिका है। दर्पणके समान चमकीले और ऊँचे दोनों कपोल अनुपम शोभा दे रहे हैं ॥१३॥१४॥ इसके घुँघराले और काले केश कुछ भींगकर मस्तकके चारों ओर फैले हैं। आँखें ऐसी मालूम पड़ती हैं, मानो खिले हुए कमल हों। ओठोंकी छवि बिम्बाफलको तुच्छ कर रही है ॥१५॥ चौड़ी छाती, बड़े-बड़े नेत्र, लम्बी भुजाएँ और ऊँचे कन्धोंसे यह विचित्र शोभा पा रहा है। बड़े पैरोंमें छोटी-छोटी अंगुलियाँ हैं। यह कैसा गम्भीर जान पड़ता है। इसके चरण कमलके समान कोमल हैं और नाभि गहरी है। हाय! दुःख तो इस बातका है कि यह बालक किस भाग्यहीन राजाके कुलमें उत्पन्न हुआ और शीघ्र ही दुरात्मा यमराजने अपने कालपाशसे इसे बाँध लिया।' सूतजी कहते हैं—माताकी गोदमें लेटे हुए उस मृत बालकको देखकर यों विचार करनेके उपरान्त महाराज हरिश्चन्द्रको पूर्वकालकी स्मृति हो आयी। तब वे 'हा-हा' कहकर आँखोंसे आँसू

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गिराने लगे। सहसा उनके मुखसे यह आवाज निकल पड़ी कि 'कहीं मेरे बच्चेकी ही तो यह दशा नहीं हो गयी है॥१६-१९॥ वह कहीं क्रूर यमराजके फंदेमें पड़ गया हो तो उसकी भी यही स्थिति हो सकती है।' इस प्रकार सोचकर राजा हरिश्चन्द्र कुछ समयके लिए वहीं ठहर गये॥ २०॥ तब रानी महान् दुःखके आवेशमें आकर कहने लगी। रानीने कहा—हा वत्स! किस पापके परिणामस्वरूप ऐसा महान् दारुण दुःख मेरे सामने आ उपस्थित हुआ है॥२१॥ इसका कारण समझमें नहीं आता। हा नाथ! हा राजन्! आप मुझ अत्यन्त दुःखिनीको छोड़कर कहाँ हैं? आपके चित्तमें कैसे शान्ति है? राज्य हाथसे निकल गया। सुहृद्वर्ग पृथक् हो गये। स्त्री और पुत्रको बेच देना पड़ा। हा दैव! तुमने राजर्षि हरिश्चन्द्रके सामने यह कैसी दशा उपस्थित कर दी? जब महाराज हरिश्चन्द्रने रानीकी यह बात सुनी, तब वे अपने स्थानसे उठकर उसके समीप आ गये॥ २२-२४॥ क्योंकि अब उन्हें अपनी साध्वी पत्नी तथा

तं बालं मातुरंके प्रसारितम् ॥१८॥ स्मृतिमभ्यागतो राजा हाहेत्यश्रूण्यपातयत् ॥ सोऽप्युवाच च वत्सो मे दशामेतामुपागतः ॥ १९ ॥ नीतो यदि च घोरेण कृतांतेनात्मनो वशम् ॥ विचारयित्वा राजाऽसौ हरिश्चंद्रस्तथा स्थितः ॥ २० ॥ ततो राज्ञी महादुःखावेशादिदमभाषत ॥ राज्ञ्युवाच ॥ हा वत्स कस्य पापस्य त्वपध्यानादिदं महत् ॥ २१ ॥ दुःखमापतितं घोरं तद्रूपं नोपलभ्यते ॥ हा नाथ राजन्भवता मामपास्य सुदुःखिताम् ॥ २२॥ कस्मिन्संस्थीयते स्थाने विश्रब्धं केन हेतुना॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ २३ ॥ हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधातः कृतं त्वया ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्थानच्युतस्तदा ॥ २४ ॥ प्रत्यभिज्ञाय देवीं तां पुत्रं च निधनं गतम् ॥ कष्टं ममैव पत्नीयं बालकश्चापि मे सुतः ॥ २५ ॥ ज्ञात्वा पपात संतप्तो मूर्छामतिजगाम ह ॥ सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम् ॥ २६ ॥ मूर्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले ॥ चेतनां प्राप्य राजेंद्रो राजपत्नी च तौ समम् ॥ २७ ॥ विलेपतुः सुसन्तप्तौ शोकभारेण पीडितौ ॥ राजोवाच ॥ हा वत्स सुकुमारं ते वदनं कुञ्चितालकम् ॥ २८ ॥ पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्यते ॥ तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम् ॥ २९ ॥ उपगुह्य कदा वक्ष्ये वत्स वत्सेति सौहृदात् ॥ कस्य जानुप्रणीतेन पिंगेन क्षितिरेणुना ॥ ३० ॥ ममोत्तरीयमुत्संगं तथांगं मलमेष्यति ॥ न बाऽलं मम संभूतं मनो हृदयनन्दन

मरे हुए पुत्रके विषयकी पूर्ण जानकारी हो गयी थी। वे कहने लगे—'हाय! महान् कष्ट है कि यह मेरी पत्नी ही है और यह बालक भी मेरा ही है॥ २५॥ रहस्य खुल जानेपर उनके हृदयमें असीम दुःखज्वाला उत्पन्न हो गयी। जिससे अचेत होकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥२६॥ राजा ऐसी दारुण दशाको प्राप्त हैं—यह जानकर रानी भी बहुत दुःखिनी होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और मूर्छाने उसे धर दबाया। फिर साथ ही राजा और रानी दोनोंको चेत हुआ। तब वे अत्यन्त सन्तप्त होकर विलाप करने लगे। राजाने कहा—हा, वत्स! टेढ़ी अलकावलीसे कुछ घिरे हुए तुम्हारे सुन्दर मुखको मैं देखा करता था। आज यह मृत मुख मेरे कातर हृदयको विदीर्ण क्यों नहीं कर देता? तुम अपनी मधुर भाषामें 'पिताजी' कहकर स्वयं मेरे पास आ जाते थे॥२७-२९॥ अब फिर कब मैं तुम्हें पाकर प्रेमवश 'वत्स-वत्स' कहकर पुकारूँगा। अब पीलीधूलिसे सने हुए किसके घुटने मेरी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चादर, गोद और शरीरको मैलसे भर देंगे। मन और हृदयको प्रफुल्लित करनेवाले हे पुत्र ! तुम मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं कर सके ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जिसने साधारण वस्तुकी भाँति तुम्हें बेच दिया था, उसी मुझ पिताको पाकर तुम पितावाले बने थे। मेरा सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो गया। परिवारमें बहुतसे बन्धु-बान्धव थे, परन्तु दुःखमें किसीने साथ नहीं दिया। प्रतिकूल दैवके कारण ऐसी निर्दयी दशासे सम्पन्न मुझ व्यक्तिसे आज तुम्हारी भेंट हो गयी। आज विषधर सर्पके काटे हुए पुत्रके कमलजैसे मुखको देखता हुआ मैं बड़ी ही विषम परिस्थितिमें पड़ गया हूँ। इस प्रकार विलाप करके राजा हरिश्चन्द्रने मरे हुए पुत्रको उठा लिया। दुःखके कारण उनकी वाणी लड़खड़ा रही थी। राजाने पुत्रको छातीसे लगाया और स्वयं निश्चेष्ट होकर गिर पड़े। उन्हें मूर्छा आ गयी। उस समय पृथ्वीपर पड़े हुए राजाको देखकर रानीके मनमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—ये परम आदरणीय पुरुष वाणीके स्वरसे ही पहचानमें आ जाते हैं। विद्वानोंके मनको आह्लादित करनेवाले चन्द्रमारूपी ये हरिश्चन्द्र ही हैं, इसमें अब सन्देह नहीं रहा। इनकी सुन्दर ऊँची नासिका तिलके पुष्पकी तुलना कर रही है। इन परम यशस्वी

॥ ३१ ॥ मयाऽसि पितृमान्पित्रा विक्रीतो येन वस्तुवत् ॥ गतं राज्यमशेषं मे सबान्धवधनं महत् ॥ ३२ ॥ हीनदैवान्नृशंसेन दृष्टो मे तनयस्ततः ॥
अहं महाहिदष्टस्य पुत्रास्याननपङ्कजम् ॥ ३३ ॥ निरीक्षन्नद्य घोरेण विषेणाधिकृतोऽधुना ॥ एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः ॥ ३४ ॥
परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह ॥ ततस्तं पतितं दृष्ट्वा शैव्या चैवमचिंतयत् ॥ ३५ ॥ अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥ विद्वज्जन-
मनश्चंद्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः ॥ ३६ ॥ तथाऽस्य नासिका तुङ्गा तिलपुष्पोपमा शुभा ॥ दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्तेर्महात्मनः ॥ ३७ ॥
श्मशानमागतः कस्माद्यद्येवं स नरेश्वरः ॥ विहाय पुत्रशोकं सा पश्यन्ती पतितं पतिम् ॥ ३८ ॥ प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्रार्तिपीडिता ॥
वीक्षन्ती सा तदाऽपतन्मूर्च्छया धरणीतले ॥ ३९ ॥ प्राप्य चेतश्च शनकैः सा गद्गदमभाषत ॥ धिक्त्वां दैव ह्यकरुण निर्मर्याद जुगुप्सित ॥ ४० ॥
येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥ राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम् ॥ ४१ ॥ प्रापयित्वाऽपि येनाद्य चांडालोऽयं कृतो नृपः ॥ नाद्य
पश्यामि ते छत्रं सिंहासनमथापि वा ॥ ४२ ॥ चामरव्यजने वाऽपि कोऽयं विधिविपर्ययः ॥ यस्यास्य व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गताः

महात्मा पुरुषके दाँत ऐसे जान पड़ते हैं, मानो फूलोंकी अधखिली कलियाँ हों ॥३२-३७॥ यदि ऐसी बात है तो ये महाराज श्मशानघाटपर कैसे आये ? अब पुत्रशोक छोड़कर रानी गिरे हुए पतिदेवको देखने लगी ॥ ३८ ॥ उस समय पुत्र और पति दोनोंके लिए दुःखसे अत्यन्त घबरायी हुई रानीके मनमें कभी भयङ्कर दुःखभरा आश्चर्य उत्पन्न हो जाता था और कभी प्रसन्नता आ जाती थी। उसके नेत्र पतिकी ओर गये, तैसे ही वह अचेत होकर जमीनपर गिर पड़ी ॥ ३९ ॥ धीरे-धीरे जब मूर्छा दूर हुई, तब वह गद्गद वाणीमें कहने लगी—'अरे निर्दय, मर्यादारहित एवं निन्दाके पात्र दैव ! तुम्हें धिक्कार है ॥ ४० ॥ तुमने देवताके समान लब्धप्रतिष्ठ इन नरेशको चांडाल बना दिया। ये अपने राज्यसे च्युत हो गये, इष्टमित्रोंने इनका साथ छोड़ दिया और स्त्री-पुत्र भी इन्होंने बेच दिये ॥४१॥ तुम्हारे प्रभावसे ऐसी परिस्थितिमें पड़कर ये नरेश चाण्डाल हो गये। आज मैं इनका छत्र अथवा सिंहासन कुछ भी नहीं देखती।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहले जिनके यात्रा करते समय राजा लोग सेवावृत्ति स्वीकार कर लेते थे तथा अपनी चादरोंसे पथपर पड़ी हुई धूल झाड़ देना उन राजाओंका काम था, वे ही ये महाराज आज दुःखसे व्यथित होकर इस अपवित्र श्मशानभूमिमें भटक रहे हैं। यहाँ सर्वत्र खोपड़ियाँ बिखरी हुई हैं। कहीं फूटे घड़े हैं तो कहीं फटे कपड़े। मृतकोंके शरीरसे उतरे सूत्रों तथा बिखरे बालोंसे यह जमीन कितनी भयानक लगती है। चर्बी गिरकर सूख गयी है, जिससे इसकी बड़ी क्रूर शोभा हो रही है ॥४३-४५। राखके ढेरों, अंगारों, अधजली हड्डियों और मज्जाओंसे इस स्थानकी भयंकरता अधिक बढ़ गयी है। गीध और सियार बोल रहे हैं। मोटे-ताजे क्षुद्र पक्षियोंकी भरमार है ॥४६॥ चिताके धुएँसे चारों ओर अन्धकार छाया हुआ है। मुर्दोंके मांस खाकर मस्त निशाचर सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर रानी महाराज हरिश्चन्द्रके कण्ठसे लिपट गयी। दुःख एवं शोकसे रानीका सर्वाङ्ग व्याप्त था। उसने कातर वाणीमें पुनः विलाप आरम्भ करके कहा—हे राजन्! यह स्वप्न है अथवा सत्य, जिसे आप मान्यता दे रहे हैं ॥४८॥४९॥ हे महाभाग! यह आप स्पष्ट बतानेकी कृपा करें। क्योंकि मेरे मनमें बड़ी घबराहट हो रही है।

॥ ४३ ॥ स्वोत्तरीयैः प्रकुर्वंति विरजस्कं महीतलम् ॥ सोऽयं कपालसंलग्ने घटीपटनिरन्तरे ॥ ४४ ॥ मृतनिर्माल्यसूत्रांतर्लग्नकेशसुदारुणे ॥ वसा-निष्पंदसंशुष्कमहापटलमण्डिते ॥ ४५ ॥ भस्मांगारार्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ॥ गृध्रगोमायुनादार्ते पुष्टक्षुद्रविहंगमे ॥ ४६ ॥ चिताधूमायतपटे नीलीकृतदिगन्तरे ॥ कुणपास्वादनमुदा संप्रहृष्टनिशाचरे ॥ ४७ ॥ चरत्यमेध्ये राजेंद्रः श्मशाने दुःखपीडितः ॥ एवमुक्त्वाऽथ संश्लिष्य कंठे राज्ञो नृपात्मजा ॥ ४८ ॥ कष्टं शोकसमाविष्टा विललापार्तया गिरा ॥ राजन्स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान् ॥ ४९ ॥ तत्कथ्यतां महाभाग मनो वै मुह्यते मम ॥ यद्येतदेवं धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता ॥ ५० ॥ तथैव विप्रदेवादिपूजने सत्यपालने ॥ नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृतांशता ॥ ५१ ॥ यत्र त्वं धर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः ॥ सूत उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदः ॥ ५२ ॥ कथयामास तन्वंग्यै यथा प्राप्तः श्वपाकताम् ॥ रुदित्वा सा तु सुचिरं निःश्वस्योष्णं सुदुःखिता ॥ ५३ ॥ स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावत्तं न्यवेदयत् ॥ श्रुत्वा राजा तथा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ५४ ॥ मृतपुत्रं समानीय जिह्वया विलिहन्मुहुः ॥ हरिश्चन्द्रमथो प्राह शैब्या गद्गदया गिरा ॥ ५५ ॥ कुरुष्व स्वामिनः प्रेष्यं

हे धर्मज्ञ! यदि ऐसी बात है तो धर्म और सत्यके पालन तथा ब्राह्मणों और देवताओंके पूजन करनेसे हमें क्या सहायता मिली? अब धर्म, सत्य, सरलता और अनृशंसताके लिए तो कहीं स्थान ही नहीं है ॥५०॥५१॥ यही कारण है कि आप जैसे धर्मपरायण और सज्जन पुरुष अपने राज्यसे हाथ धो बैठे।' सूतजी कहते हैं—हे शौनक! रानीका यह वचन सुनकर राजाने बड़े जोरसे गरम श्वास छोड़ा ॥ ५२ ॥ साथ ही गिड़गिड़ाकर अपने चाण्डाल होनेकी सारी बातें रानीको कह सुनायीं। सो सुनकर उसके दुःखकी सीमा नहीं रही। बहुत देरतक वह रोती रही ॥५३॥ इसके बाद रानीने अपने पुत्रके मरणकी सारी बातें राजाको सुनायीं। सो सुनते ही राजा धड़ामसे धरतीपर गिर पड़े ॥५४॥ फिर उठकर उन्होंने मृत पुत्रको उठा लिया और बार-बार उसका मुँह चूमने लगे। तब धर्मपरायणा रानी शैब्याने गिड़गिड़ाकर महाराज हरिश्चन्द्रसे कहा—॥५५॥ हे राजन्! अब आप अपने स्वामीकी दासता सफल कीजिये। मेरा मस्तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काटकर आप स्वामिद्रोही और असत्यवादी होनेसे बचिये ॥ ५६ ॥ हे राजेन्द्र ! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये । दूसरोंके प्रति द्रोह भी महान् पाप है ।' रानीकी यह बात सुनकर राजा पृथ्वीपर गिर पड़े और उन्हें मूर्च्छा आ गयी ॥५७॥ थोड़ी देरमें जब होश हुआ, तब अत्यन्त खेद प्रकट करते हुए वे विलाप करने लगे । राजा बोले–हे प्रिये ! तुम्हारे मुखसे ऐसा निठुर वचन कैसे निकल गया ? भला जो बात कही भी नहीं जा सकती, उसे कार्यरूपमें कैसे परिणत किया जाय ? पत्नीने कहा–हे प्रभो ! मैंने भगवती गौरीकी आराधना की है । देवता और ब्राह्मण भी सुपूजित हो चुके हैं ॥५८॥५९॥ उनके आशीर्वादसे आप दूसरे जन्ममें पुनः मेरे पति होकर रहेंगे । रानीकी यह बात सुनकर राजा जमीनपर लुढ़क पड़े । उनके दुःखकी सीमा नहीं रही ॥६०॥ तदनन्तर राजाने फिर मृत पुत्रका मुँह चूमा ! राजाने कहा—हा प्रिये ! अब बहुत दिनोंतक इस प्रकारका दुःख भोगना मुझे अभीष्ट नहीं है ॥६१॥ हे तन्वङ्गी ! मैं अब इस

छेदयित्वा शिरो मम ॥ स्वामिद्रोहो न तेऽस्त्वद्य माऽसत्यो भव भूपते ॥ ५६ ॥ माऽसत्यं तव राजेन्द्र परद्रोहस्तु पातकम् ॥ एतदाकर्ण्य राजा तु पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ ५७ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य विललापातिदुःखितः ॥ राजोवाच ॥ कथं प्रिये त्वया प्रोक्तं वचनं त्वतिनिष्ठुरम् ॥ ५८ ॥ यदशक्यं भवेद्वक्तुं तत्कर्म क्रियते कथम् ॥ पत्न्युवाच ॥ मया च पूजिता गौरी देवा विप्रास्तथैव च ॥ ५९ ॥ भविष्यसि पतिस्त्वं मे ह्यन्यस्मिञ्जन्मनि प्रभो ॥ श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ६० ॥ मृतस्य पुत्रस्य तदा चुचुम्ब दुःखितो मुखम् ॥ राजोवाच॥ प्रिये न रोचते दीर्घं कालं क्लेशं मयाऽशितुम् ॥ ६१ ॥ नात्मायत्तोऽस्मि तन्वंगि पश्य मे मन्दभाग्यताम् ॥ चांडालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि ॥ ६२ ॥ चांडालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि ॥ नरकं च वरं प्राप्य खेदं प्राप्स्यामि दारुणम् ॥ ६३ ॥ तापं प्राप्स्यामि संप्राप्य महारौरवरौरवे ॥ मग्नस्य दुःखजलधौ वरं प्राणैर्वियोजनम् ॥ ६४ ॥ एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥ मम दैवानुयोगेन मृतः सोऽपि बलीयसा ॥ ६५ ॥ कथं प्राणान्विमुंचामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः ॥ तथापि दुःखबाहुल्यात्त्यक्ष्यामि तु निजां तनुम् ॥ ६६ ॥ त्रैलोक्ये नास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा ॥ वैतरण्यां कुतस्तद्वद्यादृशं पुत्रविप्लवे ॥ ६७ ॥ सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने ॥ निपतिष्यामि तन्वङ्गि क्षन्तव्यं तन्ममाधुना ॥ ६८ ॥ न वक्तव्यं त्वया किंचिदतः कमललोचने ॥ मम वाक्यं च तन्वंगि निबोधाहतमानसा ॥ ६९ ॥

शरीरको बचाये रखनेमें असमर्थ हूँ । मेरी मंदभाग्यता तो देखो--यदि मैं चांडालसे बिना आज्ञा लिये ही जलती हुई आगमें जल जाता हूँ, तब तो दूसरे जन्ममें भी मुझे इसकी नौकरी करनी पड़ेगी । मैं घोर नरकमें पड़कर भयंकर दुःख भोगूँगा॥६२॥६३॥भीषण रौरव नरकमें पड़नेपर अनेक सन्ताप सामने आ जायँगे । तथापि दुःखसागरमें निमग्न मुझ अभागेका मर जाना ही अच्छा है ॥६४॥ वंशकी वृद्धि करनेवाला मेरा जो यह एक पुत्र था, वह भी आज बलवान् दैवके प्रकोपसे कालका ग्रास बन गया ॥ ६५ ॥ पराधीन होनेके कारण ऐसी दुर्दशा सामने आनेपर भी मैं कैसे प्राणोंका त्याग करूँ ? फिर भी इस असीम दुःखसे ऊबकर मैं अब अपना शरीर त्याग ही दूँगा ॥ ६६ ॥ तीनों लोकोंमें, असिपत्रवनमें और वैतरणी नदीमें भी उतना क्लेश नहीं है, जितना कि दुःख पुत्रशोकमें है ॥६७॥ दुर्बल शरीरवाली हे प्रिये ! मैं इस प्रज्वलित अग्निमें पुत्रकी देहके साथ स्वयं भी कूद पड़ूँगा । इसके लिए तुम मुझे क्षमा करना ॥६८॥ हे कमल-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोचने ! हे तन्वङ्गी ! पुनः कुछ कहना तुम्हें उचित नहीं है । मनको निश्चिन्त करके तुम मेरी बात सुन लो ॥ ६९ ॥ हे शुचिस्मिते ! मेरी आज्ञाके अनुसार अब तुम ब्राह्मणके घर जाओ । यदि तुमने दान-हवन करके ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया है तो उसके फलस्वरूप दूसरे लोकमें अपने पुत्रके साथ फिर तुम्हारा और मेरा समागम होगा । इस लोकमें अभिलषित मिलन अब कैसे हो सकेगा ? ॥७०॥७१॥ हे पवित्र मुसकानवाली प्रिये ! मैं अब इस लोकसे जा रहा हूँ । अतएव एकान्तमें हँसीके रूपमें मैंने तुमसे कभी कुछ अनुचित वचन कह दिया हो तो उन सब बातोंको क्षमा कर देना ॥७२॥ 'हे शुभे ! मैं राजाकी प्रेयसी भार्या हूँ ।' इस प्रकारके अभिमानमें आकर तुम्हें ब्राह्मणदेवताका तिरस्कार नहीं करना चाहिए । क्योंकि स्वामीको देवताके समान समझकर उन्हें सम्यक् प्रकारसे सन्तुष्ट करना ही तुम्हारा कर्तव्य है ॥ ७३ ॥ रानीने कहा—हे राजर्षे ! अब मैं आगकी लपटमें भस्म हो जाऊँगी । कारण, यह दुःखका भार मुझसे नहीं सहा जाता । हे भगवन् ! आपके साथ ही मेरी परलोकयात्रा भी निश्चित है ॥७४॥ निःसन्देह आपके साथ चलनेमें ही मेरा कल्याण है । हे मानद ! आपके साथ रहकर

अनुज्ञाताऽथ गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते ॥ यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ॥ ७० ॥ संगमः परलोके मे निजपुत्रेण चेत्त्वया ॥ इह लोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति समीप्सितम् ॥ ७१ ॥ यन्मया हसता किञ्चिद्रहसि त्वां शुचिस्मिते ॥ अशेषमुक्तं तत्सर्वं क्षन्तव्यं मम यास्यतः ॥ ७२ ॥ राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स मे द्विजः ॥ सर्वयत्नेन तोष्यः स्यात्स्वामी दैवतवच्छुभे ॥ ७३ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ अहमप्यत्र राजर्षे निपतिष्ये हुताशने ॥ दुःखभारासहा देव सह यास्यामि वै त्वया ॥ ७४ ॥ त्वया सह मम श्रेयो गमनं नान्यथा भवेत् ॥ सह स्वर्गं च नरकं त्वया भोक्ष्यामि मानद ॥ ७५ ॥ श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

॥ सूत उवाच ॥ ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम् ॥ भार्यया सहितो राजा बद्धांजलिपुटस्तदा ॥ १ ॥ चिंतयन्परमेशानीं शताक्षीं जगदीश्वरीम् ॥ पञ्चकोशांतरगतां पुच्छब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥ २ ॥ रक्तांबरपरीधानां करुणारससागराम् ॥ नानायुधधरामंबां जगत्पालनतत्पराम् ॥ ३ ॥ तस्य चिंतयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः ॥ धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४ ॥ आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते राजञ्शृणु

स्वर्ग और नरक—सभी कुछ मैं भोग लूँगी । रानीकी बात सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने कहा—हे पतिव्रते ! 'एवमस्तु' अर्थात् ऐसा ही हो ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

(राजा हरिश्चन्द्रका स्वर्गारोहण) सूतजी बोले–तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्रने चिता तैयार की और उसपर अपने पुत्र रोहितको सुला दिया । फिर राजा-रानी दोनों हाथ जोड़कर जो जगत्की अधिष्ठात्री हैं, सौ आँखोंसे जिनकी अनुपम शोभा होती है, पञ्चकोशोंके भीतर जो सदा विराजमान रहती हैं, ब्रह्म जिनका स्वरूप है । जो लाल रङ्गका वस्त्र धारण करती हैं, जो करुणाकी सागर हैं, जिनकी भुजाओंमें भाँति-भाँतिके आयुध शोभा पाते हैं तथा जो जगत्के संरक्षणमें सदा तत्पर रहती हैं, उन परमेश्वरी जगदम्बाका ध्यान करने लगे ॥१–३॥ जब राजा ध्यानमें संलग्न थे, उसी समय इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता धर्मको आगे करके तुरन्त वहाँ पधारे ॥४॥ उन सबने आकर एक स्वरसे कहा–हे राजन् ! हे महाप्रभो ! सुनो, ये साक्षात् ब्रह्मा,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वयं भगवान् धर्म, साध्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेव, चारणोंसहित लोकपाल, नाग, सिद्ध, गन्धर्वोंके साथ रुद्रगण, अश्विनीकुमार तथा ऐसे ही अन्य भी बहुतसे देवता यहाँ आकर उपस्थित हैं। धर्मपूर्वक त्रिलोकीसे मैत्री स्थापित करनेकी इच्छा रखनेके कारण जो 'विश्वामित्र' नामसे विख्यात हैं, वे मुनि भी पधारे हुए हैं और तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करनेकी इच्छा प्रकट करते हैं।' धर्म बोले-हे राजन्! तुम्हें ऐसा साहस नहीं करना चाहिए। क्योंकि तुममें जो सहनशीलता, इन्द्रियोंको वशमें रखनेकी पूर्ण योग्यता तथा सत्त्व आदि सद्गुण हैं, उनसे परम सन्तुष्ट होकर मैं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ। इन्द्रने कहा-हे महाभाग हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ ॥५-९॥ हे राजन्! आज स्त्री-पुत्रसहित तुमने इस सनातन विश्वपर विजय प्राप्त कर ली है। सो रानी और राजकुमारको साथ लेकर अब तुम स्वर्गमें पधारनेकी कृपा करो ॥ १० ॥ तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई कर्मठ मनुष्य स्वर्गपर विजय प्राप्त कर ले, यह परम दुष्कर कार्य है। सूतजी कहते हैं—तदनन्तर आकाशमें विराजमान होकर इन्द्रने चिताके मध्यभागमें सोये हुए राजकुमार रोहितपर अपमृत्युको दूर करनेवाले अमृतकी वर्षा आरम्भ

महाप्रभो ॥ अहं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान्स्वयम् ॥ ५ ॥ साध्याः सविश्वेमरुतो लोकपालाः सचारणाः ॥ नागाः सिद्धा सगंधर्वा रुद्राश्चैव तथाऽश्विनौ ॥-६ ॥ एते चान्येऽथ बहवो विश्वामित्रस्तथैव च ॥ विश्वत्रयेण यो मैत्रीं कर्तुमिच्छति धर्मतः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रः स तेऽभीष्टमाहर्तुं सम्यगिच्छति ॥ धर्म उवाच॥ मा राजन्साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः ॥ ८ ॥ तितिक्षादमसत्त्वाद्यैस्त्वद्गुणैः परितोषितः ॥ इन्द्र उवाच॥ हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम् ॥ ९ ॥ त्वयाऽद्य भार्यापुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः ॥ आरोह त्रिदिवं राजन्भार्यापुत्रसमन्वितः ॥१०॥ सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥ सूत उवाच ॥ ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् ॥ ११ ॥ इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितामध्यगते शिशौ ॥ पुष्पवृष्टिश्च महती दुन्दुभिस्वन एव च ॥ १२ ॥ समुत्तस्थौ मृतः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ सुकुमारतनुः स्वस्थः प्रसन्नः प्रीतमानसः ॥ १३॥ ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं तदा ॥ सभार्यः स्वश्रिया युक्तो दिव्यमाल्यांबरावृतः ॥ १४ ॥ स्वस्थः संपूर्णहृदयो मुदा परमया वृतः ॥ बभूव तत्क्षणादिंद्रो भूपं चैवमभाषत ॥ १५ ॥ सभार्यस्त्वं सपुत्रश्च स्वर्लोकं सद्गतिं पराम् ॥ समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलम् ॥ १६ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच॥ देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन हि ॥ अकृत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्ये वै सुरालयम् ॥१७॥ धर्म उवाच॥ तवैवं भाविनं क्लेश-

कर दी, साथ ही विपुल पुष्पोंकी वर्षा हुई और दुंदुभियाँ बज उठीं ॥ ११ ॥ १२ ॥ महाराज हरिश्चन्द्र बड़े महात्मा पुरुष थे। अब उनके मरे हुए राजकुमार पुत्र रोहितमें चेतना आ गयी और स्वस्थ होकर वह प्रसन्नतापूर्वक उठ बैठा ॥१३॥ तब राजाने अपने पुत्रको हृदयसे लगा लिया। उस समय रानी भी वहाँ थीं ही। सारी सम्पत्तियाँ लौटकर उनके पास आ गयीं। दिव्य माला और वस्त्र महाराजको सुशोभित करने लगे ॥ १४ ॥ उनके मनमें अपार शान्ति छा गयी। उनके हृदयका कोना-कोना परम आनन्दसे भर गया। क्षणमात्रमें ही परिस्थितिमें इस प्रकार अद्भुत परिवर्तन हो गया। फिर इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा-॥ १५ ॥ 'महाराज! अब तुम स्त्री और पुत्रके साथ स्वर्गमें चलो। यह सर्वोत्कृष्ट उत्तम गति तुम्हारे अपने ही कर्मोंका फल है' ॥ १६ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा-देवराज! चाण्डाल मेरा स्वामी है। मैंने उससे आज्ञा नहीं ली है। उससे छुट्टी पाये बिना मैं स्वर्गलोकमें नहीं जाऊँगा ॥ १७ ॥ धर्म बोले-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे राजन् ! तुम्हारे भावी क्लेशके सम्बन्धमें विचार करके मैं ही मायामय चाण्डाल वन गया था । तुम्हें चाण्डालका जो स्थान दिखायी पड़ा था, वह भी मेरी माया थी ॥ १८ ॥ इन्द्रने कहा—हे हरिश्चन्द्र ! भूमण्डलके सम्पूर्ण मनुष्य जिसके लिए कामना करते हैं, तुम उस परम पुनीत स्थानपर पधारो। क्योंकि पुण्यात्मा पुरुष ही उस पदके अधिकारी हो सकते हैं ॥१९॥ महाराज हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज ! आपको नमस्कार है । मेरी एक प्रार्थना सुननेकी कृपा कीजिये । अयोध्यामें रहनेवाले बहुतसे मानव मेरे दुःखसे परम दुखी होकर समय व्यतीत कर रहे हैं । उन्हें ऐसी स्थितिमें छोड़कर मैं स्वर्ग कैसे जाऊँगा ? गोवध, स्त्रीवध और मद्यपान ये घोर पाप हैं ॥२०॥२१॥ अपने भक्तके त्यागको भी इन्हींके समान महापाप कहा गया है । अतः श्रद्धालु व्यक्तिका त्याग नहीं करना चाहिये । उसे छोड़नेवाला कैसे सुखी हो सकता है ? ॥२२॥ अतएव हे इन्द्र ! उन श्रद्धालु मनुष्योंको छोड़कर मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा । अतएव आप सिधारनेकी कृपा करें । हे सुरेश्वर ! यदि मेरे साथ ही उन सबके चलनेकी व्यवस्था हो तो मैं भी चला चलूँगा । उनके साथ यदि नरकमें जाना हो तो वहाँ भी चला जाऊँगा । इन्द्रने कहा—

मत्रगम्यात्ममायया ॥ आत्मा श्वपचतां नीतो दर्शितं तच्च पक्कणम् ॥ १८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रार्थ्यंते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि ॥ तदारोह हरिश्चन्द्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम् ॥ १९ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चेदं निबोध मे ॥ मच्छोकमग्नमनसः कोसले नगरे नराः ॥ २० ॥ तिष्ठंति तानपास्यैवं कथं यास्याम्यहं दिवम् ॥ ब्रह्महत्या सुरापानं गोवधः स्त्रीवधस्तथा ॥२१॥ तुल्यमेभिर्महत्पापं भक्तत्यागादुदाहृतम् ॥ भजंतं भक्तमत्याज्यं त्यजतः स्यात्कथं सुखम् ॥ २२ ॥ तैर्विना न प्रयास्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज ॥ यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यांति सुरेश्वर ॥ २३ ॥ ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वाऽपि तैः सह ॥ इन्द्र उवाच ॥ बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै नृप ॥ २४ ॥ कथं संघातभोज्यं त्वं भूप स्वर्गमभीप्ससि ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ भुंक्ते शक्र नृपो राज्यं प्रभावात्प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २५ ॥ यजते च महायज्ञैः कर्म पूर्तं करोति च ॥ तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ २६ ॥ उपदादान्न संत्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया ॥ तस्माद्यन्मम देवेश किंचिदस्ति सुचेष्टितम् ॥ २७ ॥ दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः ॥ बहुकालोपभोग्यं च फलं यन्मम कर्मगम् ॥२८॥ तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः ॥ सूत उवाच ॥

हे राजन् ! अयोध्याके वे नागरिक भाँति-भाँतिके पुण्य और पाप कर चुके हैं । हे महीपाल ! स्वर्ग सर्वसाधारण जनताके उपभोगमें आ जाय, ऐसी इच्छा आप क्यों प्रकट करते हैं ? हरिश्चन्द्रने कहा—हे देवराज ! प्रजा ही राज्यका अङ्ग है । उसीकी कृपासे राजाको राज्य-भोगका सुअवसर प्राप्त होता है ॥ २३—२५ ॥ प्रजाकी सहायतासे ही बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा देवताओंकी उपासना तथा कुएँ-तालाब आदि धार्मिक प्रतिष्ठानोंकी स्थापनामें राजाको सफलता मिलती है । मैं भी उन नागरिकोंका बल पाकर ही सम्पूर्ण कार्य कर सकता हूँ ॥ २६ ॥ इसीलिए समयानुसार भेंट देनेवाले उन पुरवासियोंको स्वर्गके लोभसे मैं नहीं छोड़ सकता । अतएव हे देवेश ! मैंने जो कुछ भी उत्तम कार्य किया हो—दान, यज्ञ और जप आदि सामान्य कर्मोंके प्रभावसे मुझे जो भी फल मिलनेवाला हो तथा जिस उत्तम कर्मके फलस्वरूप बहुत दिनोंतक स्वर्ग भोगनेका जो मैं अधिकारी बनाया जाता होऊँ, वे सभी सुकृत बाँटकर एक दिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी उन नागरिकोंके साथ स्वर्गमें रहनेका मुझे अवसर मिल जाय–यह आपकी कृपापर निर्भर है। सूतजी कहते हैं–तब सब देवताओंके अधिष्ठाता इन्द्रने कहा–'ऐसा ही होगा' ॥२७-२९॥ यह कहकर राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इससे धर्म और गाधिनन्दन विश्वामित्रके मनमें प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। तदनंतर वे सभी महानुभाव अयोध्यापुरीमें, जो चारों वर्णोंके लोगोंसे खचाखच भरी थी, पहुँच गये ॥३०॥ वहाँ जाकर देवराज इन्द्रने महाराज हरिश्चन्द्रके सामने ही सबसे कहा–'हे नागरिकजनो! तुम सब लोग परम दुर्लभ स्वर्गधाममें चलनेके लिए शीघ्र तैयार हो जाओ ॥३१॥ धर्मकी कृपासे ही तुम सभी व्यक्तियोंको ऐसा सुअवसर प्राप्त हुआ है।' तब धर्ममें अटूट श्रद्धा रखनेवाले महाराज हरिश्चंद्रने भी उन नागरिकोंसे कहा–'हाँ, हम सब लोग अब एक साथ स्वर्गकी यात्रा करेंगे।' सूतजी कहते हैं–देवराज इन्द्रकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रके प्रति नागरिकोंके मनमें अपार श्रद्धा उत्पन्न हो गयी ॥३२॥३३॥ जो नागरिक कार्योंसे विरक्त हो गये थे, वे गृहस्थीका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर स्वर्ग जानेके लिए तैयार हो गये ॥ ३४ ॥ सबकी सवारीके लिए विमान आये हुए थे। उन लोगोंके शरीरोंमें सूर्यके समान

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ २९ ॥ प्रसन्नचेता धर्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः ॥ गत्वा तु नगरं सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाकुलम् ॥ ३० ॥ हरिश्चन्द्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः ॥ आगच्छंतु जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम् ॥३१॥ धर्मप्रसादात्संप्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु ॥ हरिश्चंद्रोऽपि तान्सर्वाञ्जनान्नगरवासिनः ॥३२॥ प्राह राजा धर्मपरो दिवमारुह्यतामिति ॥ सूत उवाच ॥ तदिंद्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीतास्तस्य च भूपतेः ॥ ३३ ॥ ये संसारेषु निर्विण्णास्ते धुरं स्वसुतेषु वै ॥ कृत्वा प्रहृष्टमनसो दिवमारुरुहुर्जनाः ॥ ३४ ॥ विमानवरमारूढाः सर्वे भास्वरविग्रहाः ॥ तदा संभूत-हर्षास्ते हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ॥ ३५ ॥ राज्येऽभिषिच्य तनयं रोहिताख्यं महामनाः ॥ अयोध्याख्ये पुरे रम्ये हृष्टपुष्टजनान्विते ॥ ३६ ॥ तनयं सुहृदश्चापि प्रतिपूज्याभिनंद्य च ॥ पुण्येन लभ्यां विपुलां देवादीनां सुदुर्लभाम् ॥ ३७ ॥ संप्राप्य कीर्तिमतुलां विमाने स महीपतिः ॥ आसांचक्रे कामगमे क्षुद्रघंटाविराजिते ॥३८॥ ततस्तर्हि समालोक्य श्लोकमंत्रं तदा जगौ॥ दैत्याचार्यो महाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ ३९ ॥ शुक्र उवाच॥ अहो तितिक्षामाहात्म्यमहो दानफलं महत् ॥ यदागतो हरिश्चन्द्रो महेंद्रस्य सलोकताम् ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रस्य चेष्टितम् ॥ यः शृणोति च दुःखार्तः स सुखं लभतेऽन्वहम् ॥ ४१ ॥ स्वर्गार्थी प्राप्नुयात्स्वर्गं सुतार्थी सुतमाप्नुयात् ॥ भार्यार्थी

प्रभा उत्पन्न हो गयी। सबके हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो गये। महामना हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र रोहितका अयोध्याके राज्यपर अभिषेक कर दिया। उस समय उस रमणीक पुरीमें कोई भी व्यक्ति दीन-हीन नहीं था ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ फिर राजा अपने पुत्रसे मिले। उन्होंने सुहृदोंका सम्मान और अभिवादन किया। तत्पश्चात् जो पुण्यसे प्राप्त होनेवाली तथा देवताओंके लिए भी परम दुर्लभ है, उस विशद कीर्तिको प्राप्त करके इच्छानुसार चलनेवाले तथा क्षुद्रघण्टिकाओंसे शोभित विमानपर बैठ गये ॥३७॥३८॥ इस आश्चर्यमय दृश्यको देखकर महाभाग शुक्राचार्यने जो दैत्योंके आचार्य एवं सम्पूर्ण शास्त्रोंके प्रकांड विद्वान् थे, एक श्लोक कहा ॥३९॥ शुक्राचार्य बोले–तितिक्षा (सहिष्णुता) की महिमा और दानका फल सबसे श्रेष्ठ है। इसीके कारण राजा हरिश्चन्द्रको इन्द्रके लोकमें जानेकी सुविधा प्राप्त हो गयी ॥ ४० ॥ सूतजी कहते हैं—हे शौनक! इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्रके चरित्रसम्बन्धी सम्पूर्ण प्रसङ्गका वर्णन मैंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम्हारे सामने कह दिया गया। जो दुखी व्यक्ति इसे सुनता है, वह परम सुखी हो जाता है ॥ ४१ ॥ स्वर्गकी अभिलाषासे इसका श्रवण करनेवाला पुरुष स्वर्गको तथा पुत्रार्थी पुत्रको प्राप्त कर सकता है। इसके प्रभावसे स्त्रीकी इच्छा रखनेवाले स्त्री, धन पानेकी इच्छा रखनेवाले धन तथा राज्यके अभिलाषी राज्य पा सकते हैं ॥ २ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

(भगवती दुर्गाके शताक्षी-शाकम्भरी आदि नामोंका इतिहास) राजा जनमेजयने कहा—हे मुने ! आपने राजर्षि हरिश्चन्द्रकी बड़ी अद्भुत कथा सुनायी। आपने बतलाया है कि उन परम धार्मिक नरेशने भगवती शताक्षीके चरणोंकी उपासना की थी ॥ १ ॥ वे कल्याणस्वरूपिणी भगवती शताक्षी कैसे हुईं ? आप इसका कारण बताकर मेरे जन्मको सफल बनानेकी कृपा कीजिये ॥ २ ॥ जिसे सुननेसे पद-पद अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त हो रहा हो—भगवतीका गुणगान सुननेवाला कौन ऐसा शुद्धबुद्धि पुरुष होगा, जो उसे सुनकर तृप्त हो सके ॥ ३ ॥

प्राप्नुयाद्भार्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं हरिश्चन्द्रस्य कीर्तितम् ॥ शताक्षीपादभक्तस्य राजर्षेर्धार्मिकस्य च ॥ १ ॥ शताक्षी सा कुतो जाता देवी भगवती शिवा ॥ तत्कारणं वद मुने सार्थकं जन्म मे कुरु ॥२॥ को हि देव्या गुणाञ्छृण्वंस्तृप्तिं यास्यति शुद्धधीः ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमक्षय्यमश्नुते ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शताक्षीसंभवं शुभम् ॥ तवावाच्यं न मे किंचिद्देवीभक्तस्य विद्यते ॥ ४ ॥ दुर्गमाख्यो महादैत्यः पूर्वं परमदारुणः ॥ हिरण्याक्षान्वये जातो रुरुपुत्रो महाखलः ॥ ५ ॥ देवानां तु बलं वेदो नाशे तस्य सुरा अपि ॥ नंक्ष्यंत्येव न संदेहो विधेयं तावदेव तत् ॥ ६ ॥ विमृश्यैतत्तपश्चर्यां गतः कर्तुं हिमालये ॥ ब्रह्माणं मनसा ध्यात्वा वायुभक्षो व्यतिष्ठत ॥ ७ ॥ सहस्रवर्षपर्यन्तं चकार परमं तपः ॥ तेजसा तस्य लोकास्तु संतप्ताः ससुरासुराः ॥८॥ ततः प्रसन्नो भगवान्हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ ययौ तस्मै वरं दातुं प्रसन्नमुखपङ्कजः ॥९॥ समाधिस्थं मीलिताक्षं स्फुटमाह चतुर्मुखः ॥ वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ॥ १० ॥ तवाद्य तपसा तुष्टो वरदेशोऽहमागतः ॥ श्रुत्वा ब्रह्म-

व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! भगवती शताक्षीके प्रकट होनेका पावन चरित्र कहता हूँ, सुनो। तुम भगवतीके परम उपासक हो। अतः मेरी जानकारीमें कोई भी ऐसी कथा नहीं है, जो तुम्हें न सुनायी जा सके ॥४॥ प्राचीन समयकी बात है—दुर्गम नामका एक महान् दैत्य था। उसकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी। हिरण्याक्षके वंशमें उस महाखलका जन्म हुआ था। उस महानीच दानवके पिता राजा रुरु थे ॥५॥ देवताओंका बल वेद है। वेदके लुप्त हो जानेपर देवता भी नहीं रहेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है। अतः पहले वेदको ही नष्ट कर देना चाहिये ॥६॥ यों सोचकर वह दैत्य तपस्या करनेके विचारसे हिमालय पर्वतपर गया। मनमें ब्रह्माजीका ध्यान करके उसने आसन जमा लिया। वह केवल वायु पीकर रहता था ॥७॥ उसने एक हजार वर्षोंतक बड़ी कठिन तपस्या की। उसके तेजसे देवताओं और दानवोंसहित सम्पूर्ण प्राणी संतप्त हो उठे ॥ ८ ॥ तब विकसित कमलके समान सुंदर मुखसे शोभा पानेवाले चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा प्रसन्नतापूर्वक हंसपर बैठकर वर देनेके लिए दुर्गमके पास पधारे ॥९॥ उस समय दुर्गम समाधि लगाये बैठा था। उसकी आँखें मुँदी हुई थीं। ब्रह्माजीने उससे स्पष्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वरमें कहा—'तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो वर पानेकी इच्छा हो, वह माँग लो ॥ १० ॥ मैं वरदाताओंका स्वामी हूँ। आज तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर यहाँ आया हूँ।' हे राजन्! ब्रह्माजीके मुखसे निकली हुई वाणी सुनी तो दुर्गम सावधान होकर उठा ॥११॥ उसने पितामहकी पूजा करके वर माँगते हुए कहा—'हे सुरेश्वर! मुझे सम्पूर्ण वेद देनेकी कृपा कीजिये। ब्राह्मणों तथा देवताओंके पास जितने मंत्र हों, वे सब मेरे पास आ जायँ। हे महेश्वर! साथ ही मुझे वह बल दीजिये कि जिससे मैं देवताओंको परास्त कर सकूँ ॥ १२ ॥ १३ ॥ दुर्गमकी यह बात सुनकर चारों वेदोंके परम अधिष्ठाता ब्रह्माजी 'ऐसा ही हो' यह कहकर सत्यलोकको चले गये ॥ १४ ॥ तभी ब्राह्मणोंको समस्त वेद विस्मृत हो गये। स्नान, संध्या, नित्य होम, श्राद्ध, यज्ञ और जप आदि वैदिक क्रियाएँ नष्ट हो गयीं ॥१५॥ जिससे सारे भूमण्डलमें भीषण हाहाकार मच गया। ब्राह्मणगण आपसमें आश्चर्यपूर्वक कहने लगे—'यह क्या हो गया? यह क्या हो गया? अब वेदके अभावमें हमें क्या करना चाहिये।' इस प्रकार सारे संसारमें घोर अनर्थ उत्पन्न करनेवाली अत्यन्त भयंकर स्थिति उपस्थित हो गयी ॥१६॥१७॥ देवताओंको हविका

मुखाद्वाणी व्युत्थितः स समाधितः ॥ ११ ॥ पूजयित्वा वरं वव्रे वेदान्देहि सुरेश्वर ॥ त्रिषु लोकेषु ये मंत्रा ब्राह्मणेषु सुरेष्वपि ॥ ॥ १२ ॥ विद्यन्ते ते तु सान्निध्ये मम सन्तु महेश्वर ॥ बलं च देहि येन स्याद्देवानां च पराजयः ॥ १३ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तथाऽस्त्विति वचो वदन् ॥ जगाम सत्यलोकं तु चतुर्वेदेश्वरः परः ॥ १४ ॥ ततःप्रभृति विप्रैस्तु विस्मृता वेदराशयः ॥ स्नानसंध्यानित्यहोमश्राद्धयज्ञजपादयः ॥ १५ ॥ विलुप्ता धरणीपृष्ठे हाहाकारो महानभूत् ॥ किमिदं किमिदं चेति विप्रा ऊचुः परस्परम् ॥ १६ ॥ वेदाभावात्तदस्माभिः कर्तव्यं किमतः परम् ॥ इति भूमौ महानर्थे जाते परमदारुणे ॥ १७ ॥ निर्जराः सजरा जाता हविर्भागाद्यभावतः ॥ रुरोध स तदा दैत्यो नगरीममरावतीम् ॥ १८ ॥ अशक्तास्तेन ते योद्धुं वज्रदेहासुरेण च ॥ पलायनं तदा कृत्वा निर्गता निर्जराः क्वचित् ॥ १९ ॥ निलयं गिरिदुर्गेषु रत्नसानुगुहासु च ॥ संस्थिताः परमां शक्तिं ध्यायंतस्ते परांबिकाम् ॥ २० ॥ अग्नौ होमाद्यभावात्तु वृष्ट्यभावोऽप्यभून्नृप ॥ वृष्टेरभावे संशुष्कं निर्जलं चापि भूतलम् ॥ २१ ॥ कूपवापीतडागाश्च सरितः शुष्कतां गताः ॥ अनावृष्टिरियं राजन्नभूच्च शतवार्षिकी ॥ २२ ॥ मृताः प्रजाश्च बहुधा गोमहिष्यादयस्तथा ॥ गृहे गृहे मनुष्याणामभवच्छवसंग्रहः ॥ २३ ॥ अनर्थे त्वेवमुद्भूते ब्राह्मणाः शांतचेतसः ॥ गत्वा हिमवतः पार्श्वे

भाग मिलना बंद हो गया। अतः निर्जर होते हुए भी वे सजर हो गये अर्थात् स्वभावतः जिनके पास बुढ़ापा नहीं आ सकता था, उन्हें अब बुढ़ापेने ग्रस लिया। फिर उस दैत्यके द्वारा अमरावती नामक नगरी घेर ली गयी ॥ १८ ॥ दुर्गमका शरीर वज्रके समान कठोर था। अतएव देवता उसके साथ युद्ध करनेमें असमर्थ होकर भाग चले। पर्वतकी कन्दराओं और शिखरोंपर—जहाँ कहीं भी स्थान मिला, वहीं रहकर वे परा शक्ति भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए समय बिताने लगे ॥१९॥२०॥ हे राजन्! अग्निमें हवन न होनेके कारण वर्षा भी बन्द हो गयी। वर्षाके अभावमें घोर सूखा पड़ गया। पृथ्वीपर एक बूँद भी जल नहीं रहा ॥२१॥ कुएँ, बावलियाँ, पोखरे और नदियाँ बिल्कुल सूख गयीं। हे राजन्! ऐसी अनावृष्टि सौ वर्षोंतक बनी रही ॥ २२ ॥ बहुत-सी प्रजा तथा गाय-भैंस आदि पशु प्राणोंसे हाथ धो बैठे। घर-घरमें मनुष्योंकी लाशें बिछ गयीं ॥ २३ ॥ इस प्रकारका भीषण और अनिष्टप्रद समय उपस्थित होनेपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी उपासना करनेके विचारसे ब्राह्मणलोग हिमालय पर्वतपर गये ॥२४॥ समाधि, ध्यान और पूजाके द्वारा उन्होंने देवीकी आराधना की । वे निराहार रहते थे । उनका मन एकमात्र भगवतीमें लगा रहता था। देवीके शरणापन्न होकर वे स्तुति करने लगे—॥२५॥ 'हे परमेश्वरी ! हम पामर जनोंपर दया करो । हे अम्बिके ! हम सब तरहसे अपराधी हैं । तथापि हमपर कृपा न करना तुम्हें शोभा नहीं देता ॥२६॥ सबके भीतर निवास करनेवाली हे देवेश्वरी ! तुम्हारी प्रेरणाके अनुसार ही प्राणी सब कुछ करता है, अन्यथा वह कर ही क्या सकता है ? ॥२७॥ हे महेश्वरी ! तुम बारंबार क्या देख रही हो ? तुम जैसा चाहो, वैसा करनेमें पूर्ण समर्थ हो ॥२८॥ हे महेश्वरी ! घोर सङ्कट उपस्थित है। तुम इससे हमारा उद्धार करो । हे अम्बिके ! जीवनके अभावमें हमारी स्थिति कैसे रह सकती है ? ॥२९॥ अनंत कोटि ब्रह्माण्डपर शासन करनेवाली हे महेश्वरी ! हे जगदंबिके ! प्रसन्न हो जाओ, प्रसन्न हो जाओ । हम तुम्हें प्रणाम करते हैं ॥३०॥ हे कूटस्थरूपा, चिद्रूपा, वेदांतवेद्या तथा भुवनेशी ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है । संपूर्ण आगमशास्त्र 'नेति नेति' वाक्योंसे जिनका संकेत करते हैं,

रिराधयिषवः शिवाम् ॥ २४ ॥ समाधिध्यानपूजाभिर्देवीं तुष्टुवुरन्वहम् ॥ निराहारास्तदासक्तास्तामेव शरणं ययुः ॥ २५ ॥ दयां कुरु महेशानि पामरेषु जनेषु हि ॥ सर्वापराधयुक्तेषु नैतच्छ्लाघ्यं तवांबिके ॥ २६ ॥ कोपं संहर देवेशि सर्वांतर्यामिरूपिणि ॥ त्वया यथा प्रेर्यतेऽयं करोति स तथा जनः ॥२७॥ नान्या गतिर्जनस्यास्य किं पश्यसि पुनः पुनः ॥ यथेच्छसि तथा कर्तुं समर्थाऽसि महेश्वरि ॥ २८॥ समुद्धर महेशानि संकटात्परमोत्थितात् ॥ जीवनेन विनाऽस्माकं कथं स्यात्स्थितिरंबिके ॥ २९ ॥ प्रसीद त्वं महेशानि प्रसीद जगदम्बिके ॥ अनन्तकोटिब्रह्मांडनायिके ते नमो नमः ॥ ३० ॥ नमः कूटस्थरूपायै चिद्रूपायै नमो नमः ॥ नमो वेदान्तवेद्यायै भुवनेश्यै नमो नमः ॥ ३१ ॥ नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः ॥ तां सर्वकारणां देवीं सर्वभावेन सन्नताः ॥ ३२ ॥ इति संप्रार्थिता देवी भुवनेशी महेश्वरी ॥ अनंताक्षिमयं रूपं दर्शयामास पार्वती ॥ ३३ ॥ नीलांजनसमप्रख्यं नीलपद्मायतेक्षणम् ॥ सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनम् ॥ ३४ ॥ बाणमुष्टिं च कमलं पुष्पपल्लवमूलकान् ॥ शाकादीन्फलसंयुक्ताननन्तरससंयुतान् ॥ ३५ ॥ क्षुत्तृड्जरापहान्हस्तैर्बिभ्रती च महाधनुः ॥ सर्वसौंदर्यसारं तद्रूपं लावण्यशोभितम् ॥ ३६ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं करुणारससागरम् ॥ दर्शयित्वा जगद्धात्री साऽनंतनयनोद्भवा ॥ ३७ ॥ मोचयामास लोकेषु वारिधाराः सहस्रशः ॥ नवरात्रं

उन सर्वकारणस्वरूपिणी भगवतीके हम सम्यक् प्रकारसे शरणागत हैं' ॥३१॥३२॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंके प्रार्थना करनेपर भगवती पार्वतीने, जो 'भुवनेशी' एवं 'महेश्वरी' नामसे विख्यात हैं, अपनी अनन्त आँखोंसे सम्पन्न दिव्यरूपके दर्शन कराये ॥३३॥ उनका वह विग्रह कज्जलके पर्वतकी तुलना कर रहा था । आँखें ऐसी थीं, मानो कमल हों । कन्धे ऊपर उठे हुए थे । विशाल वक्षःस्थल था ॥३४॥ हाथोंमें बाणोंका मुट्ठा, कमलके पुष्प, पल्लव और मूल शोभित थे । जिनसे भूख, प्यास और बुढ़ापा दूर हो जाते हैं, ऐसे शाक आदि खाद्य-पदार्थोंको उन्होंने हाथमें धारण कर रखा था । अनन्त रसवाले फल भी हाथमें थे । महान् धनुषसे भुजा शोभित थी । सम्पूर्ण सुंदरताका सारस्वरूप भगवतीका वह रूप बड़ा ही कमनीय था ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ करोड़ों सूर्योंके समान चमकनेवाला वह विग्रह करुणरसका अथाह समुद्र था । ऐसी झाँकी सामने उपस्थित करनेके पश्चात् जगत्की रक्षामें तत्पर रहनेवाली करुणार्द्रहृदया भगवती अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आँखोंसे सहस्रों जलधाराएँ गिराने लगीं। इस तरह उनके नेत्रोंसे निकले हुए जलके द्वारा नौ राततक सारी त्रिलोकीमें वृष्टि होती रही ॥३७॥३८॥ सब प्राणियोंको दुखी देखकर भगवती-की आँखोंसे आँसूके रूपमें वह जल गिरा था। इससे सब प्राणियोंको बड़ी तृप्ति प्राप्त हुई। सम्पूर्ण औषधियाँ भी तृप्त हो गयीं ॥३९॥ हे राजन! उस जलसे नदी और समुद्र भर गये। जो देवता पहले लुक-छिपकर रहते थे, वे अब बाहर निकल आये ॥४०॥ तब सब देवता और ब्राह्मण एक साथ मिलकर भगवतीका स्तवन करने लगे—"वेदांतके अध्ययनसे समझमें आनेवाली ब्रह्मस्वरूपिणी हे देवी! तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥४१॥ अपनी मायासे जगत्को धारण करनेवाली तथा भक्तोंके लिए कल्पवृक्ष एवं श्रद्धालु व्यक्तियोंके कल्याणार्थ दिव्य विग्रह धारण करनेवाली हे देवी! तुम्हें अनेक प्रणाम हैं ॥४२॥ सदा तृप्त रहनेवाली और अनुपम रूपोंसे शोभित हे भुवनेश्वरी! तुम्हें नमस्कार है। हे देवी! तुमने हमारा सङ्कट दूर करनेके लिए सहस्रों नेत्रोंसे सम्पन्न अनुपम रूप धारण किया है ॥४३॥ अतएव तुम 'शताक्षी' इस नामसे विराजनेकी कृपा करो। हे माता! भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण तुम्हारी विशेष स्तुति करने-

महावृष्टिरभून्नेत्रोद्भवैर्जलैः ॥ ३८ ॥ दुःखितान्वीक्ष्य सकलान्नेत्राश्रूणि विमुञ्चती ॥ तर्पितास्तेन ते लोका ओषध्यः सकला अपि ॥ ३९ ॥
नदीनदप्रवाहास्तैर्जलैः समभवन्नृप ॥ निलीय संस्थिताः पूर्वं सुरास्ते निर्गता बहिः ॥ ४० ॥ मिलित्वा ससुरा विप्रा देवीं समभितुष्टुवुः ॥
नमो वेदांतवेद्ये ते नमो ब्रह्मस्वरूपिणि ॥ ४१ ॥ स्वमायया सर्वजगद्विधात्र्यै ते नमो नमः ॥ भक्तकल्पद्रुमे देवि भक्तार्थं देहधारिणि ॥ ४२ ॥
नित्यतृप्ते निरुपमे भुवनेश्वरि ते नमः ॥ अस्मच्छान्त्यर्थमतुलं लोचनानां सहस्रकम् ॥ ४३ ॥ त्वया यतो धृतं देवि शताक्षी त्वं ततो
भव ॥ क्षुधया पीडिता मातः स्तोतुं शक्तिर्न चास्ति नः ॥ ४४ ॥ कृपां कुरु महेशानि वेदानप्याहरांबिके ॥ व्यास उवाच ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा शाकान्स्वकरसंस्थितान् ॥ ४५ ॥ स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थं ददौ शिवा ॥ नानाविधानि चान्नानि पशुभोज्यानि
यानि च ॥ ४६ ॥ काम्यानंतरसैर्युक्तान्यानवीनोद्भवं ददौ ॥ शाकंभरीति नामापि तद्दिनात्समभून्नृप ॥ ४७ ॥ ततः कोलाहले जाते दूत-
वाक्येन बोधितः ॥ ससैन्यः सायुधो योद्धुं दुर्गमाख्योऽसुरो ययौ ॥ ४८ ॥ सहस्राक्षौहिणीयुक्तः शरान्मुंचंस्त्वरान्वितः ॥ रुरोध देवसैन्यं तद्य-
द्देव्यग्रे स्थितं पुरा ॥ ४९ ॥ तथा विप्रगणं चैव रोधयामास सर्वतः ॥ ततः किलकिलाशब्दः समभूद्देवमंडले ॥ ५० ॥ त्राहि त्राहीति वाक्यानि

में हम असमर्थ हैं ॥४४॥ हे अम्बिके! हे महेशानी! तुम दुर्गमनामक दैत्यसे वेदोंको छीन लेनेकी कृपा करो।" व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! ब्राह्मणों और देवताओंका यह वचन सुनकर भगवती शिवाने अनेक प्रकारके शाक तथा स्वादिष्ट फल अपने हाथसे उन्हें खानेके लिए दिये। भाँति-भाँतिके अन्न सामने उपस्थित कर दिये और पशुओंके खाने योग्य कोमल एवं अनेक रसोंसे सम्पन्न नवीन तृण भी उन्हें देनेकी कृपा की। हे राजन्! उसी दिनसे भगवतीका एक नाम 'शाकम्भरी' भी पड़ गया ॥४५-४७॥ जगत्में कोलाहल मच जानेपर दूतके कहनेसे दुर्गम नामक दैत्य इस बातको समझ गया। उसने अपनी सेना सजायी और अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर युद्धके लिए चल पड़ा ॥ ४८ ॥ उसके पास एक सहस्र अक्षौहिणी सेना थी। देवताओंकी सारी सेनाको घेरकर वह दैत्य भगवतीके सामने खड़ा हो गया ॥४९॥ ब्राह्मण भी सब प्रकारसे घिर गये और देवताओंकी मंडलीमें कोलाहल मच गया। सभी देवता और ब्राह्मण 'रक्षा करो—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रक्षा करो' इस प्रकारके शब्द उच्चरित करने लगे। तदनन्तर भगवती शिवाने उनकी रक्षा करनेके लिए चारों ओर अपना तेजोमय चक्र खड़ा कर दिया और वे स्वयं बाहर निकल आयीं। तब देवी और दैत्य–दोनोंमें लड़ाई छिड़ गयी ॥५०–५२॥ बाणोंकी वर्षासे सूर्यमंडल ढँक गया। वे बाण जब परस्पर टकराते, तब अग्निको प्रज्वलित चिनगारियाँ निकलने लगती थीं ॥५३॥ धनुषके कठोर टंकोरसे दिशाओंमें बहरापन छा गया। तत्पश्चात् देवीके श्रीविग्रहसे बहुत-सी उग्र शक्तियाँ प्रकट हुईं ॥ ५४ ॥ कालिका, तारिणी, बाला, त्रिपुरा भैरवी, रमा, बगला, मातङ्गी, त्रिपुरसुन्दरी, कामाक्षी, देवी, तुलजा, जम्भिनी, मोहिनी, छिन्नमस्ता, गुह्यकाली और दशसाहस्रबाहुका आदि नामवाली बत्तीस शक्तियोंके पश्चात् चौंसठ, और फिर अनगिनत शक्तियोंका प्रादुर्भाव हुआ। सबकी भुजाएँ आयुधोंसे शोभित थीं ॥५५–५७॥ युद्धस्थलमें मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे। उन शक्तियोंने दानवोंकी सैकड़ों अक्षौहिणी सेना नष्ट कर दी ॥ ५८ ॥ तब

प्रोचुः सर्वे द्विजामराः ॥ ततस्तेजोमयं चक्रं देवानां परितः शिवा ॥ ५१ ॥ चकार रक्षणार्थाय स्वयं तस्माद्बहिः स्थिता ॥ ततः समभवद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥५२॥ शरवर्षसमाच्छन्नं सूर्यमंडलमद्भुतम् ॥ परस्परशरोद्घर्षसमुद्भूताग्निसुप्रभम् ॥५३॥ कठोरज्याटणत्कारबधिरीकृतदिक्तटम् ॥ ततो देवीशरीरात्तु निर्गतास्तीव्रशक्तयः ॥ ५४ ॥ कालिका तारिणी बाला त्रिपुरा भैरवी रमा ॥ बगला चैव मातंगी तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥ ५५ ॥ कामाक्षी तुलजा देवी जंभिनी मोहिनी तथा ॥ छिन्नमस्ता गुह्यकाली दशसाहस्रबाहुका ॥ ५६ ॥ द्वात्रिंशच्छक्तयश्चान्याश्चतुःषष्टिमिताः पराः ॥ असंख्यातास्ततो देव्यः समुद्भूतास्तु सायुधाः ॥ ५७ ॥ मृदंगशंखवीणादिनादितं संगरस्थलम् ॥ शक्तिभिर्दैत्यसैन्ये तु नाशितेऽक्षौहिणीशते ॥५८॥ अग्रेसरः समभवद्दुर्गमो वाहिनीपतिः ॥ शक्तिभिः सह युद्धं च चकार प्रथमं रिपुः ॥ ५९ ॥ महद्युद्धं समभवद्यत्राभूद्रक्तवाहिनी ॥ अक्षौहिण्यस्तु ताः सर्वा विनष्टा दशभिर्दिनैः ॥ ६० ॥ तत एकादशे प्राप्ते दिने परमदारुणे ॥ रक्तमाल्यांबरधरो रक्तगंधानुलेपनः ॥ ६१ ॥ कृत्वोत्सवं महान्तं तु युद्धाय रथसंस्थितः ॥ संरंभेणैव महता शक्तीः सर्वा विजित्य च ॥ ६२ ॥ महादेवीरथाग्रे तु स्वरथं संन्यवेशयत् ॥ ततोऽभवन्महद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥ ६३ ॥ प्रहरद्वयपर्यंतं हृदयत्रासकारकम् ॥ ततः पंचदशात्युग्रबाणान्देवी मुमोच ह ॥ ६४ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान्बाणेनैकेन सारथिम् ॥ द्वाभ्यां नेत्रे भुजौ द्वाभ्यां ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥ ६५ ॥ पंचभिर्हृदयं तस्य विव्याध जगदंबिका ॥ ततो वमन्स रुधिरं ममार पुर

सेनाध्यक्ष दुर्गम स्वयं शक्तियोंके सामने उपस्थित होकर उनसे युद्ध करने लगा ॥ ५९ ॥ जहाँ वह घोर युद्ध हो रहा था, वहाँ रक्त बहानेवाली नदी प्रकट हो गयी। दस दिनोंमें उस राक्षसकी वे संपूर्ण अक्षौहिणी सेनाएँ मर-खप गयीं ॥६०॥ तदनंतर भयंकर ग्यारहवाँ दिन उपस्थित हुआ। उस दिन दुर्गमने स्वयं लड़नेकी तैयारी की। उसने लाल रङ्गकी माला, लाल वस्त्र और लाल चंदनसे शरीरको सजाया ॥ ६१ ॥ महान् उत्सव मनाकर युद्धमें जानेके लिए वह रथपर बैठा और बड़े ही उत्साहके साथ सम्पूर्ण शक्तियोंपर उसने विजय प्राप्त कर ली ॥६२॥ इसके बाद वह देवीके रथके सामने अपना रथ ले गया। अब जगदंबा और दुर्गम दैत्य–इन दोनोंमें भीषण युद्ध होने लगा ॥६३॥ हृदयको आतङ्कित करनेवाला वह युद्ध दो पहरतक होता रहा, इसके बाद देवीने दुर्गमपर पंद्रह कराल बाण चलाये ॥६४॥ उसके चार घोड़े चार बाणोंके लक्ष्य हुए और एक बाण सारथिको लगा। दो बाणोंने दोनों नेत्र, दोनों भुजाओंको और एक बाणने उसकी ध्वजा काट डाली॥६५॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगदंबाके पाँच बाण दुर्गमकी छातीमें जाकर घुस गये। फिर तो रुधिर वमन करता हुआ वह दैत्य भगवती परमेश्वरीके सामने प्राणोंसे हीन होकर गिर पड़ा ॥६६॥ उसके शरीरसे जो तेज निकला, वह भगवतीके रूपमें जाकर समा गया। उस महान् पराक्रमी दैत्यके मर जानेपर त्रिलोकीके अन्तःकरणकी ज्वाला शांत हो गयी ॥६७॥ तब ब्रह्मा प्रभृति समस्त देवता भगवान् विष्णु और शङ्करको अगुआ बनाकर भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें भगवती जगदंबाकी स्तुति करने लगे ॥ ६८ ॥ देवगण बोले—भ्रमणशील जगत्का एकमात्र कारण हे भगवती परमेश्वरी ! हे शाकम्भरी ! हे शतलोचने ! तुम्हें अनेकशः नमस्कार है ॥ ६९ ॥ संपूर्ण उपनिषदोंमें प्रशंसित दुर्गमनामक दैत्यकी संहारिणी एवं पञ्चकोशमें रहनेवाली कल्याणस्वरूपिणी भगवती हे माहेश्वरी ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ७० ॥ मुनीश्वरगण शांतचित्तसे जिनका ध्यान करते हैं तथा जिनका विग्रह ही प्रणवका अर्थ है, उन भगवती भुवनेश्वरीकी हम उपासना करते हैं ॥ ७१ ॥ अनन्त कोटि ब्रह्मांडोंकी जिनसे उत्पत्ति हुई है, जो दिव्य विग्रहसे शोभित हैं एवं जिन्होंने ब्रह्मा-विष्णु आदिको प्रकट किया है, उन भगवती भुवनेश्वरीके चरणोंमें हम सर्वतोभावसे मस्तक

ईशितुः ॥ ६६ ॥ तस्य तेजस्तु निर्गत्य देवीरूपे विवेश ह ॥ हते तस्मिन्महावीर्ये शांतमासीज्जगत्त्रयम् ॥ ६७ ॥ ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ पुरस्कृत्य हरीशानौ भक्त्या गद्गदया गिरा ॥ ६८ ॥ देवा ऊचुः ॥ जगद्भ्रमविवर्तैककारणे परमेश्वरि ॥ नमः शाकंभरि शिवे नमस्ते शतलोचने ॥ ६९ ॥ सर्वोपनिषदुद्घुष्टे दुर्गमासुरनाशिनि ॥ नमो माहेश्वरि शिवे पंचकोशांतरस्थिते ॥ ७० ॥ चेतसा निर्विकल्पेन यां ध्यायंति मुनीश्वराः ॥ प्रणवार्थस्वरूपां तां भजामो भुवनेश्वरीम् ॥ ७१ ॥ अनन्तकोटिब्रह्मांडजननीं दिव्यविग्रहाम् ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिजननीं सर्वभावैर्नता वयम् ॥ ७२ ॥ कः कुर्यात्पामरान्दृष्ट्वा रोदनं सकलेश्वरः ॥ सदयां परमेशानीं शताक्षीं मातरं विना ॥ ७३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति स्तुता सुरैर्देवी ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्वरैः ॥ पूजिता विविधैर्द्रव्यैः संतुष्टाऽभूच्च तत्क्षणे ॥ ७४ ॥ प्रसन्ना सा तदा देवी वेदानाहृत्य सा ददौ ॥ ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण प्रोवाच पिकभाषिणी ॥ ७५ ॥ ममेयं तनुरुत्कृष्टा पालनीया विशेषतः ॥ यया विनाऽनर्थं एव जातो दृष्टोऽधुनैव हि ॥ ७६ ॥ पूज्याऽहं सर्वदा सेव्या युष्माभिः सर्वदैव हि ॥ नातः परतरं किंचित्कल्याणायोपदिश्यते ॥ ७७ ॥ पठनीयं ममैतद्धि माहात्म्यं सर्वदोत्तमम् ॥ तेन तुष्टा भविष्यामि

झुकाते हैं ॥७२॥ सबकी व्यवस्था करनेवाली माता शताक्षी दयासे परिपूर्ण हैं। इनके सिवा कोई भी राजा-महाराजा ऐसा नहीं है, जिसे संकटग्रस्त एवं दीन व्यक्तियोंको देखकर इतना रुलाई आ सके ॥ ७३ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! ब्रह्मा-विष्णु आदि आदरणीय देवताओंके इस प्रकार स्तवन एवं विविध द्रव्योंसे पूजन करनेपर भगवती जगदम्बा तुरंत सन्तुष्ट हो गयीं ॥ ७४ ॥ तब कोयलके समान मधुर भाषण करनेवाली उन देवीने प्रसन्नतापूर्वक दैत्य दुर्गमसे वेदोंको लेकर देवताओंको सौंप दिया। साथ ही ब्राह्मणोंसे विशेषरूपमें कहा—॥७५॥ 'जिसके अभावमें ऐसा अनर्थकारी समय सामने उपस्थित था, वह वेदवाणी मेरे शरीरसे प्रकट हुई है। सम्यक् प्रकारसे इसकी रक्षा करनी चाहिए। मेरी पूजामें सदा संलग्न रहना तुम्हारा परम कर्तव्य है, क्योंकि तुम मेरे सेवक हो। तुम्हारे कल्याणके लिए इससे श्रेष्ठ दूसरा कोई उपदेश नहीं है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ मेरे इस उत्तम माहात्म्यका निरंतर पाठ करना। मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उससे प्रसन्न होकर तुम्हारे सम्पूर्ण संकट दूर करती रहूँगी ॥ ७८ ॥ मेरे हाथसे दुर्गम नामके दैत्यका वध हुआ है। अतः मेरा एक नाम 'दुर्गा' है। मैं 'शताक्षी' भी कहलाती हूँ। जो व्यक्ति मेरे इन नामोंका उच्चारण करता है, वह मायाको छिन्न-भिन्न करके मेरा स्थान प्राप्त कर लेता है ॥ ७९ ॥ विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं। साररूपमें मैं इतना ही कहूँगी कि सुरों और असुरों सभीको मेरी आराधना करनी चाहिए ॥८०॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती जगदम्बा इन वाक्योंसे देवताओंको परम सन्तुष्ट करके उनके सामने ही सहसा अन्तर्धान हो गयीं ॥ ८१ ॥ यह परमोत्तम तथा गोपनीय सम्पूर्ण रहस्य मैं तुम्हें सुना चुका। इसके प्रभावसे समस्त कल्याण सुलभ हो जाते हैं ॥८२॥ जो भक्तिपरायण और बड़भागी पुरुष निरन्तर इस अध्यायका श्रवण करता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और अन्तमें वह देवीके परम धामको प्राप्त कर लेता है ॥ ८३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

हरिष्यामि तथाऽऽपदः ॥ ७८ ॥ दुर्गमासुरहंत्रीत्वाद्दुर्गेति मम नाम यः ॥ गृह्णाति च शताक्षीति मायां भित्त्वा व्रजत्यसौ ॥ ७९ ॥ किमुक्तेनात्र बहुना सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ संसेव्याऽहं सदा देवाः सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ ८० ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्हिता देवी देवानां चैव पश्यताम् ॥ संतोषं जनयंत्येवं सच्चिदानंदरूपिणी ॥ ८१ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यं परमं महत् ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वकल्याणकारकम् ॥ ८२ ॥ य इमं शृणुयान्नित्यमध्यायं भक्तितत्परः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति देवीलोके महीयते ॥८३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

॥ व्यास उवाच ॥ इत्येवं सूर्यवंश्यानां राज्ञां चरितमुत्तमम् ॥ सोमवंशोद्भवानां च वर्णनीयं मया कियत् ॥ १ ॥ पराशक्तिप्रसादेन महत्त्वं प्रतिपेदिरे ॥ राजन्सुनिश्चितं विद्धि पराशक्तिप्रसादतः ॥२॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥ तत्तदेवावगच्छ त्वं पराशक्त्यंशसंभवम् ॥३॥ एते चान्ये च राजानः पराशक्तेरुपासकाः ॥ संसारतरुमूलस्य कुठारा अभवन्नृप ॥ ४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्या भुवनेश्वरी ॥ पलालमिव धान्यार्थी त्यजेदन्यमशेषतः ॥ ५ ॥ आमथ्य वेददुग्धाब्धिं प्राप्तं रत्नं मया नृप ॥ पराशक्तिपदांभोजं कृतकृत्योऽस्म्यहं ततः ॥ ६ ॥ पंचब्रह्मासना-

(भगवतीका तिरोधान तथा पुनः प्राकट्य) व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके कुछ उत्तम चरित्रका मैंने वर्णन कर दिया। अब और क्या कहूँ? ॥१॥ हे मनुजेन्द्र! भगवती परा शक्तिकी कृपासे ही उन राजाओंने महती प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। यह निश्चित समझना कि भगवतीके प्रसन्न हो जानेपर कुछ भी अलभ्य नहीं रह जाता ॥२॥ क्योंकि जो-जो भी विभूतियुक्त, ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त पदार्थ हैं, उस-उसका तुम भगवतीके तेज अंशकी ही अभिव्यक्ति समझो ॥ ३ ॥ हे राजन्! ये तथा ऐसे ही अन्य भी बहुतेरे नरेश भगवती जगदम्बाकी उपासना करके संसाररूपी वृक्षकी जड़ काटनेके लिए कुठारके समान हो चुके हैं ॥ ४ ॥ अतएव सम्यक् प्रकारसे भगवती भुवनेश्वरीकी सेवा करो। जैसे धान्य चाहनेवाला व्यक्ति पुआल छोड़ देता है, वैसे ही अन्य सब व्यवसायोंसे पृथक् रहो ॥ ५ ॥ हे राजन्! देवी परमा शक्ति हैं। इनके चरण-कमल दिव्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रत्न हैं। वेदरूपी क्षीरसमुद्रका मन्थन करके इन्हें पा जानेके कारण मैं कृतार्थ हो गया ॥ ६ ॥ जब अन्य कोई भी देवता पञ्चब्रह्मके मञ्चपर बैठनेके लिए तैयार नहीं हो सका, तब महादेवीने उसपर बैठना स्वीकार कर लिया। एक समय ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर—ये चारों देवता खंभेके रूपमें खड़े हुए। इनके ऊपर मञ्च तैयार हुआ। सदाशिव उन चारोंपर छप्पररूपसे विराजमान हुए—यही 'पञ्चब्रह्म-मञ्च' है ॥७॥ जो इन पाँचों देवताओंसे परेकी वस्तु है, उसे वेदमें 'अव्याकृत' कहते हैं। जिसमें सारा जगत सूत्रमें मणियोंकी तरह ओतप्रोत है, उसी अव्याकृत शक्तिका नाम भगवती भुवनेश्वरी है ॥८॥ हे राजेन्द्र ! उन भगवती भुवनेश्वरीके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त किये बिना मनुष्य संसारसे मुक्त नहीं हो सकता ! यदि मनुष्य चमड़ेकी तरह आकाशको समेट ले, तब भले ही यह संभव हो कि बिना भगवतीका ध्यान किये उसके दुःखोंका अन्त हो जायगा। श्वेताश्वतर-शाखाध्यायी महापुरुषोंने श्रुतिमें इस बातको स्पष्ट कर दिया है ॥ ९ ॥ १० ॥ ध्यान और जप करनेके पश्चात् उन पुरुषोंने परम दिव्य शक्ति भगवती जगदंबाके, जो अपने गुणोंसे सबके सामने व्यक्त नहीं होतीं, दर्शन प्राप्त किये थे।

रूढा नास्त्यन्या काऽपि देवता ॥ तत एव महादेव्या पंचब्रह्मासनं कृतम् ॥ ७ ॥ पंचभ्यस्त्वधिकं वस्तु वेदेऽव्यक्तमितीर्यते ॥ यस्मिन्नोतं च प्रोतं च सैव श्रीभुवनेश्वरी ॥८॥ तामविज्ञाय राजेंद्र नैव मुक्तो भवेन्नरः ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ॥ ९ ॥ तदा शिवामविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति ॥ अतएव श्रुतौ प्राहुः श्वेताश्वतरशाखिनः ॥१०॥ ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ॥११॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जन्मसाफल्यहेतवे ॥ लज्जया वा भयेनापि भक्त्या वा प्रेमयुक्तया ॥ सर्वसंगं परित्यज्य मनो हृदि निरुध्य च ॥ १२ ॥ तन्निष्ठस्तत्परो भूयादिति वेदान्तडिंडिमः ॥ येन केन मिषेणापि स्वपंस्तिष्ठन्व्रजन्नपि ॥ १३ ॥ कीर्तयेत्सततं देवीं स वै मुच्येत बंधनात् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भज राजन्महेश्वरीम् ॥ १४ ॥ विराड्रूपां सूत्ररूपां तथांतर्यामिरूपिणीम् ॥ सोपानक्रमतः पूर्वं ततः शुद्धे तु चेतसि ॥ १५ ॥ सच्चिदानन्दलक्ष्यार्थरूपां तां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ आराधय परां शक्तिं प्रपंचोल्लासवर्जिताम् ॥ १६ ॥ तस्यां चित्तलयो यः स तस्या आराधनं स्मृतम् ॥ राजन्नाज्ञां पराशक्ति-भक्तानां चरितं मया ॥ १७ ॥ धार्मिकाणां सूर्यसोमवंशजानां मनस्विनाम् ॥ पावनं कीर्तिदं धर्मबुद्धिदं सद्गतिप्रदम् ॥ १८ ॥ कथितं पुण्यदं पश्चा-

अतः जन्म सफल करनेके लिए सम्यक् प्रकारसे प्रयत्न करके भगवती भुवनेश्वरीके ध्यानमें तत्पर हो जाना चाहिए। भय, भक्ति, लज्जा अथवा प्रेम—जिस किसी कारणसे भी इस कार्यमें लीन हो—यह वेदान्तकी स्पष्ट घोषणा है। जो जिस किसी भी बहाने सोते-बैठते अथवा चलते समय भगवतीका निरन्तर कीर्तन करता है, उसकी संसार-बन्धनसे मुक्ति हो जाती है। अतः हे राजन् ! तुम भलीभाँति प्रयत्नशील होकर भगवती महेश्वरीकी उपासना करो ॥ ११–१४ ॥ भगवती परा शक्ति विराटरूप, सूत्ररूप, अन्तर्यामीरूप तथा सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपसे विराजती हैं। अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर सोपानक्रमसे इनकी आराधना करो ॥१५॥ ये भगवती जगदंबा जगत्के प्रपञ्चसे आह्लादित नहीं होतीं। भगवतीमें चित्तको लीन करनेका जो कार्य है, वही उनकी 'आराधना' कहलाती है। हे राजन् ! सूर्य और चन्द्रवंशमें उत्पन्न, भगवती परा शक्तिके उपासक, परम धार्मिक तथा मनस्वी जो राजे हो चुके हैं, उनका यह परम पावन चरित्र यश, धर्म, बुद्धि एवं पुण्य प्रदान करनेवाला है। मैंने इसका वर्णन कर दिया। इसके बाद तुम दूसरा कौन-सा प्रसंग सुनना चाहते हो ? राजा जनमेजयने कहा—हे महामुने ! तीसरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्कन्धके छठें अध्यायमें यह प्रसङ्ग आ चुका है कि मणिद्वीप-निवासिनी भगवती जगदंबाने गौरी, लक्ष्मी और सरस्वतीको प्रकट करके उन्हें क्रमशः शंकर, विष्णु एवं ब्रह्माके पास रहनेकी आज्ञा प्रदान की। साथ ही यह भी कहने और सुननेमें आता है कि गौरी हिमालय तथा दक्ष-प्रजापतिकी कन्या हैं एवं महालक्ष्मी क्षीरसमुद्र की। फिर मूलप्रकृति जगदम्बासे उत्पन्न इन देवियोंको दूसरोंकी कन्या होनेका अवसर कैसे प्राप्त हुआ? हे मुनिवर! इसका रहस्य बतलानेकी कृपा करें। यह बात मुझे असम्भव जान पड़ती है। अतः हे महामुने! मुझे सन्देह है। कृपया अपने ज्ञानरूपी खड्गसे इस संशयको काट दीजिए। क्योंकि आप मेरे संशयछेदनके लिए तत्पर हैं ॥१६– २॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन्! सुनो, मैं यह परम अद्भुत रहस्य बतलाता हूँ। तुम भगवती जगदंबाके अनन्य उपासक हो। अतः तुमसे भगवतीका कोई भी रहस्य छिपाने योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ हे राजन्! जब भगवती जगदंबाने तीनों देवियोंको तीनों देवताओंके पास रहनेको व्यवस्था कर दी, तबसे वे देवता सृष्टिके कार्यमें संलग्न हो गये ॥ २४ ॥ हे मनुजेन्द्र! एक समयकी बात है कि

किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ जनमेजय उवाच ॥ गौरीलक्ष्मीसरस्वत्यो दत्ताः पूर्वं परांबया ॥ १९ ॥ हराय हरये तद्वन्नाभिपद्मोद्भवाय च ॥ तुषाराद्रेश्च दक्षस्य गौरी कन्येति विश्रुतम् ॥ २० ॥ क्षीरोदधेश्च कन्येति महालक्ष्मीरिति स्मृतम् ॥ मूलदेव्युद्भवानां च कथं कन्यात्वमन्ययोः ॥ २१ ॥ असंभाव्यमिदं भाति संशयोऽत्र महामुने ॥ छिंधि ज्ञानासिना तं त्वं संशयच्छेदतत्परः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ देवीभक्तस्य ते किंचिदवाच्यं न हि विद्यते ॥२३॥ देवीत्रयं यदा देवत्रयायादात्पराम्बिका॥ तदाप्रभृति ते देवाः सृष्टिकार्याणि चक्रिरे ॥२४॥ कस्मिंश्चित्समये राजन्दैत्या हालाहलाभिधाः ॥ महापराक्रमा जातास्त्रैलोक्यं तैर्जितं क्षणात् ॥ २५ ॥ ब्रह्मणो वरदानेन दर्पिता रजताचलम् ॥ रुरुधुर्निजसेनाभिस्तथा वैकुण्ठमेव च ॥ २६ ॥ कामारिः कैटभारिश्च युद्धोद्योगं च चक्रतुः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणामभूद्युद्धं महोत्कटम् ॥ २७ ॥ हाहाकारो महानासीद्देवदानवसेनयोः ॥ महताऽथ प्रयत्नेन ताभ्यां ते दानवा हताः ॥ २८ ॥ स्वस्वस्थानेषु गत्वा तावभिमानं च चक्रतुः ॥ स्वशक्त्योर्निकटे राजन्यद्वशादेव ते हताः ॥ २९ ॥ अभिमानं तयोर्ज्ञात्वा छलहास्यं च चक्रतुः ॥ महालक्ष्मीश्च गौरी च हास्यं दृष्ट्वा तयोस्तु तौ ॥ ३० ॥ देवावतीव संक्रुद्धौ मोहितावादिमायया ॥ दुरुत्तरं च ददतुरवमानपुरःसरम् ॥ ३१ ॥ ततस्ते देवते तस्मिन्क्षणे त्यक्त्वा तु तौ पुनः ॥ अंतर्हिते

हालाहल नामसे प्रसिद्ध बहुतसे दैत्य उत्पन्न हुए। उन दैत्योंमें अपार बल था। उन्होंने क्षणभरमें ही त्रिलोकीपर विजय प्राप्त कर ली ॥२५॥ ब्रह्माजीसे वर पाकर वे अत्यन्त अभिमानी हो गये थे। बादमें उन्होंने अपने सैनिकोंके साथ कैलास और वैकुण्ठको घेर लिया ॥२६॥ तब भगवान् शङ्कर और विष्णु उनसे युद्ध करनेके लिए प्रस्तुत हो गये और बहुत लम्बे समयतक बड़ी तेजीके साथ युद्ध होता रहा ॥२७॥ देवता दानव–दोनोंकी सेनामें अत्यन्त हाहाकार मच गया। तब अत्यन्त प्रयत्न करनेपर भगवान् शंकर और विष्णु उन दानवोंको मारनेमें सफल हुए ॥ २८ ॥ हे राजन्! महाशक्तिके प्रभावसे हो उन्होंने दानवोंको मारा था, परन्तु वे अपने-अपने घर जाकर शक्तिकी अवहेलना करने लगे। २९ ॥ तब महागौरी तथा महालक्ष्मी दोनोंको हँसी आ गयी। इससे दोनों महान् ईश्वरोंको देवियोंका अभिमान देखकर क्रोध आ गया। जिससे उन्होंने अवहेलनापूर्वक अटपटे उत्तर दिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उसी क्षण गौरी और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महालक्ष्मी दोनों महाशक्तियाँ शंकर और विष्णुसे अलग होकर अन्तर्धान होकर गयीं । शक्तियोंके हटते ही चारों ओर हाहाकार मच गया ॥३२॥ वे दोनों प्रधान देवता शक्ति और तेजसे हीन होनेके कारण विक्षिप्त और अचल हो गये । उनमें कुछ सोचने और विचारनेकी शक्ति नहीं रही ॥ ३३ ॥ तब ब्रह्मा:जी चिन्तासे अधीर हो गये और सोचने लगे कि यह क्या हो गया ? वे दोनों प्रधान देवता इस प्रकार कार्य करनेमें असमर्थ क्यों हो गये ? ॥३४॥ सहसा क्यों इतना बड़ा संकट आ उपस्थित हुआ ? क्या इस निरपराध संमारका प्रलय हो जायगा ? ॥३५॥ जब कोई कारण ही नहीं दीखता, तब इसका प्रतीकार कैसे किया जाय ? तब घबराकर उन्होंने आँखें बन्द करके ध्यान किया ॥ ३६ ॥ अब यह बात उनकी समझमें आ गयी कि यह परा शक्तिके कोपका परिणाम है । हे राजेन्द्र! इस अभिप्रायको जानते ही ब्रह्माजी सावधान हो गये ॥३७॥ तबसे भगवान् शंकर और विष्णुका जो कार्य था, उसकी सँभाल स्वयं ब्रह्माजीने अपने हाथमें ले ली। अपनी शक्तिके बलसे सम्पन्न होकर कुछ समयतक वे इसकार्यको सँभालते रहे ॥३८॥ तदनन्तर शंकर और विष्णुके कल्याणार्थ धर्मात्मा ब्रह्माजीने अपने पुत्र मनु

चाभवतां हाहाकारस्तदा ह्यभूत् ॥ ३२ ॥ निस्तेजस्कौ च निःशक्ती विक्षिप्तौ च विचेतनौ ॥ अवमानात्तयोः शक्त्योर्जातौ हरिहरौ तदा ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा चिन्तातुरो जातः किमेतत्समुपस्थितम् ॥ प्रधानौ देवतामध्ये कथं कार्याक्षमावमू ॥३४॥ अकाण्डे किंनिमित्तेन संकटं समुपस्थितम् ॥ प्रलयो भविता किं वा जगतोऽस्य निरागसः ॥ ३५ ॥ निमित्तं नैव जानेऽहं कथं कार्या प्रतिक्रिया ॥ इति चिंतातुरोऽत्यर्थं दध्यौ मीलितलोचनः ॥ ३६ ॥ पराशक्तिप्रकोपात्तु जातमेतदिति स्म ह ॥ जानंस्तदा सावधानः पद्मजोऽभून्नृपोत्तम ॥३७॥ ततस्तयोश्च यत्कार्यं स्वयमेवाकरोत्तदा ॥ स्वशक्तेश्च प्रभावेण कियत्कालं तपोनिधिः ॥ ३८ ॥ ततस्तयोस्तु स्वस्त्यर्थं मन्वादीन्स्वसुतानथ ॥ आह्वयामास धर्मात्मा सनकादींश्च सत्वरः ॥ ३९ ॥ उवाच वचनं तेभ्यः सन्नतेभ्यस्तपोनिधिः ॥ कार्यासक्तोऽहमधुना तपः कर्तुं न च क्षमः ॥ ४० ॥ पराशक्तेस्तु तोषार्थं जगद्भारयुतोऽस्म्यहम् ॥ शिवविष्णू च विक्षिप्तौ पराशक्तिप्रकोपतः ॥ ४१ ॥ तस्मात्तां परमां शक्तिं यूयं संतोषयंत्वथ ॥ अत्यद्भुतं तपः कृत्वा भक्त्या परमया युताः ॥ ४२ ॥ यथा तौ पूर्ववृत्तौ च स्यातां शक्तियुतावपि ॥ तथा कुरुत मत्पुत्रा यशोवृद्धिर्भवेद्धि वः ॥ ४३ ॥ कुले यस्य भवेज्जन्म तयोः शक्त्योस्तु तत्कुलम् ॥ पावयेज्जगतीं सर्वां कृतकृत्यं स्वयं भवेत् ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ पितामहवचः श्रुत्वा गताः सर्वे

और सनक आदिको बुलाया । तब सभी कुमार मस्तक झुकाये हुए सामने आकर खड़े हो गये ॥ ३९ ॥ तपोनिधि ब्रह्माजीने उनसे कहा--'इस समय मैं बहुतसे कार्योंमें व्यस्त हूँ । परमेश्वरीको संतुष्ट करनेके लिए तपस्या करनेकी क्षमता मुझमें नहीं है ॥४०॥ जगत्का संपूर्ण भार मुझपर लदा है । कारण, इस समय भगवती पराशक्ति परमेश्वरीके कोपके कारण शिव और विष्णुमें विक्षिप्तता आ गयी है ॥४१॥ अतएव परम भक्तिके साथ अद्भुत तप करके तुम उस पराशक्तिको प्रसन्न करो ॥४२॥ हे पुत्रो ! जैसे भी शिव और विष्णु अपनी शक्तियोंसे संपन्न हो सकें, तुम्हें वैसा ही उद्योग करना चाहिये । इससे तुम्हारा यश फैलेगा ॥४३॥ जिस कुलमें महागौरी और महालक्ष्मी-ये दो शक्तियाँ जन्म लेंगी, वह कुल स्वयं कृतकृत्य होनेके साथ ही समस्त संसारको भी पावन बना सकता है ॥४४॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! पितामह ब्रह्माजीकी बात सुनकर उनके दक्ष प्रभृति जितने परम पवित्र पुत्र थे, वे सबके सब भग-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वती जगदंबाकी आराधना करनके लिए वनमें चले गये ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

(सिद्धपीठ और वहाँ विराजनेवाली शक्तियोंकी नामावली) व्यासजी कहते है–हे राजन्! चतुर्मुख ब्रह्माकी आज्ञा पाकर वनमें गये हुए मुनिगण हिमालयके तटपर पहुँचे और चित्तको शान्त करके मायाबीजस्वरूपा भगवती भुवनेश्वरीके मन्त्रका जप करते हुए तप करने लगे ॥ १ ॥ हे राजन्! उनके ध्यानका विषय भगवती परमा शक्ति थीं। एक लाख वर्षतक ध्यान करनेसे भगवती प्रसन्न होकर उनके सामने साक्षात् प्रकट हो गयीं ॥ २ ॥ पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्राको उन्होंने अपने चारों हाथोंमें धारण कर रखा था। उनके नेत्र शोभा बढ़ा रहे थे। करुणाके रससे वे परिपूर्ण थीं। उनका विग्रह सत्, चित् और आनन्दमय था ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण जगत्को उपन्न करनेवाली परमेश्वरीको देखकर पवित्र अन्तःकरणवाले वे मुनि उनकी स्तुति करने लगे—'हे देवी! तुम विश्वरूपा, वैश्वानररूपा, तेजोरूपा और सूत्ररूपा हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारा वह दिव्यरूप है, जिसमें समस्त लिङ्गदेह ओतप्रोत होकर

वनांतरे ॥ रिराधयिषवः सर्वे दक्षाद्या विमलांतराः ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ ततस्ते तु वनोद्देशे हिमाचलतटाश्रयाः ॥ मायाबीजजपासक्तास्तपश्चेरुः समाहिताः ॥ १ ॥ ध्यायतां परमां शक्तिं लक्षवर्षाण्यभून्नृप ॥ ततः प्रसन्ना देवी सा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ २ ॥ पाशांकुशवराभीतिचतुर्बाहुस्त्रिलोचना ॥ करुणारससम्पूर्णा सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा तां सर्वजननीं तुष्टुवुर्मुनयोऽमलाः ॥ नमस्ते विश्वरूपायै वैश्वानरसुमूर्तये ॥ ४ ॥ नमस्तेजसरूपायै सूत्रात्मवपुषे नम ॥ यस्मिन्सर्वे लिंगदेहा ओतप्रोता व्यवस्थिताः ॥५॥ नमः प्राज्ञस्वरूपायै नमोऽव्याकृतमूर्तये ॥ नमः प्रत्यक्स्वरूपायै नमस्ते ब्रह्ममूर्तये ॥६॥ नमस्ते सर्वरूपायै सर्वलक्ष्यात्ममूर्तये ॥ इति स्तुत्वा जगद्धात्रीं भक्तिगद्गदया गिरा ॥ ७ ॥ प्रणेमुश्चरणांभोजं दक्षाद्या मुनयोऽमलाः ॥ ततः प्रसन्ना सा देवी प्रोवाच पिकभाषिणी ॥ ८ ॥ वरं ब्रूत महाभागा वरदाऽहं सदा मता ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा हरिविष्णवोस्तनोः शमम् ॥ ९ ॥ तयोस्तच्छक्तिलाभं च वव्रिरे नृपसत्तम ॥ दक्षोऽथ पुनरप्याह जन्म देवि कुले मम ॥१०॥ भवेत्तवाम्ब येनाहं कृतकृत्यो भवे इति ॥ जपं ध्यानं तथा पूजां स्थानानि विविधानि च ॥ ११ ॥ वद मे परमेशानि स्वमुखेनैव केवलम् ॥ देव्युवाच ॥ मच्छक्त्योरवमानाच्च जातावस्था तयोर्द्वयोः ॥ १२ ॥ नैतादृशः प्रकर्तव्यो

व्यवस्थित हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ प्राज्ञ, अव्याकृत, प्रत्यक् और परब्रह्मके स्वरूपको धारण करनेवाली हे देवी! तुम्हें बार-बार प्रणाम है ॥ ६ ॥ सर्वरूप और सर्वलक्ष्मीरूपमें शोभा पानेवाली तुम भगवतीको प्रणाम है।' इस प्रकार भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीसे भगवती जगदंबाकी स्तुति करके दक्षप्रभृति पुण्यात्मा मुनिगण देवीके चरण-कमलमें मस्तक झुकाये रहे। तब कोयलके समान मधुर वचन बोलनेवाली देवीने प्रसन्न होकर उनसे कहा—॥ ७ ॥ ८ ॥ हे महाभाग मुनियो! वर माँगो, मैं सदा वर देनेके लिए तैयार रहती हूँ। हे राजेन्द्र! भगवतीकी अमर वाणी सुनकर मुनियोंने कहा–हे देवी! आप यह कृपा करें कि जिससे शंकर तथा विष्णु इन महाभाग देवताओंको अपनी शक्तियाँ पुनः प्राप्त हो जायँ। फिर दक्षने प्रार्थना की–हे देवि! हे अम्बे! मेरे कुलमें तुम्हारा अवतार होना चाहिये, जिससे मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। हे भगवती परमेश्वरी! तुम अपने मुखसे केवल जप, ध्यान, पूजा और अपने विविध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थानोंका परिचय देनेकी कृपा करो।' देवीने कहा—मेरी शक्तियोंका अपमान करनेसे ही शिव और विष्णुको ऐसी अप्रिय परिस्थिति प्राप्त हुई है ॥९–१२॥ इस प्रकार शक्तिरूपा मेरा अपराध कभी नहीं करना चाहिये। अच्छा,अब मेरी किंचित् कृपासे उनमें स्वस्थता और शक्ति आ जायगी ॥१३॥ गौरी और लक्ष्मी नामकी मेरी शक्तियोंका तुम्हारे एवं क्षीरसागरके यहाँ जन्म होगा। मेरे प्रेरणा करनेपर वे शक्तियाँ तुम दोनोंके पास चली जायँगी ॥१४॥ मुझे सदा प्रसन्न करनेवाला मायाबीज ही मेरा प्रधान मन्त्र है। मेरे विराट् रूपका अथवा तुम्हारे सामने उपस्थित इस रूपका या सच्चिदानन्दमय रूपका ध्यान करना चाहिये ॥१५॥ मेरी पूजा करनेके लिए उपयुक्त स्थान सारा जगत् ही है। तुम्हें चाहिए कि मेरी पूजा और ध्यानमें सदा संलग्न रहो ॥१६॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! यों कहकर मणिद्वीपमें विराजनेवाली जगदंबा अन्तर्धान हो गयीं। तब दक्ष प्रभृति सभी मुनिगण ब्रह्माजीके पास लौट आये और उनको सम्मानपूर्वक सारा समाचार बतला दिया। हे राजन्! तब भगवान् विष्णु और शिव स्वस्थ हो गये। उनको अपने-अपने कामके सम्पादनकी शक्ति एवं योग्यता पुनः प्राप्त हो गयी

मेऽपराधः कदाचन ॥ अधुना मत्कृपालेशाच्छरीरे स्वस्थता तयोः ॥ १३ ॥ भविष्यति च ते शक्ती त्वद्गृहे क्षीरसागरे ॥ जनिष्यतस्तत्र ताभ्यां
प्राप्स्यतः प्रेरिते मया ॥ १४ ॥ मायाबीजं हि मन्त्रो मे मुख्यः प्रियकरः सदा ॥ ध्यानं विराट्स्वरूपं मेऽथवा त्वत्पुरतः स्थितम् ॥ १५ ॥ सच्चिदा-
नन्दरूपं वा स्थानं सर्वं जगन्मम ॥ युष्माभिः सर्वदा चाहं पूज्या ध्येया च सर्वदा ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे देवी मणिद्वीपाधि-
वासिनी ॥ दक्षाद्या मुनयः सर्वे ब्रह्माणं पुनराययुः ॥ १७ ॥ ब्रह्मणे सर्ववृत्तांतं कथयामासुरादरात् ॥ हरो हरिश्च स्वस्थौ तौ स्वस्वकार्यक्षमौ नृप
॥ १८ ॥ जातौ परांबाकृपया गर्वेण रहितौ तदा ॥ कदाचिदथ काले तु महः शाक्तमवातरत् ॥१९॥ दक्षगेहे महाराज त्रैलोक्येऽप्युत्सवोऽभवत् ॥
देवाः प्रमुदिताः सर्वे पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥ २० ॥ नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे करकोणाहता नृप ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनाममलात्मनाम् ॥ २१ ॥
सरितो मार्गवाहिन्यः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ मंगलायां तु जातायां जातं सर्वत्र मङ्गलम् ॥ २२ ॥ तस्या नाम सतीं चक्रे सत्यत्वात्परसंविदः ॥ ददौ
पुनः शिवायाथ तस्य शक्तिस्तु याऽभवत् ॥ २३ ॥ सा पुनर्ज्वलने दग्धा दैवयोगान्मनोर्नृप ॥ जनमेजय उवाच ॥ अनर्थकरमेतत्ते श्रावितं वचनं

और उनकी कृपासे वे दोनों गर्वशून्य हो गये। हे महाराज! उसके बाद कुछ समय बीत जानेके पश्चात् भगवती जगदम्बाकी एक ज्योतिने दक्षके घर अवतार लिया। उस समय तीनों लोकोंमें बधाई बजने लगी। सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ १७–२० ॥ हे राजन्! स्वर्गके देवताओंने दुन्दुभियाँ बजानी आरम्भ कर दीं। पवित्र अन्तःकरणवाले साधुपुरुषोंका मन प्रसन्नतासे खिल उठा ॥ २१ ॥ नदियाँ निर्मल जलकी धारा बहाने लगीं। भगवान् भास्कर शुद्धरूपसे प्रकाश फैलाने लगे। मङ्गलमयी भगवतीके प्रकट होनेपर सम्पूर्ण जगत् मङ्गलमय हो गया ॥२२॥ परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाके सत्यांश होनेसे उन देवीका नाम 'सती' रख दिया गया। समयानुसार वे सती शिवकी पत्नी बनीं। क्योंकि पहले भी वे उनकी शक्ति रह चुकी थीं ॥२३॥ हे राजन्! दैवके प्रभावसे प्रभावित होकर सतीने अपने शरीरको दक्षके यज्ञमंडपकी प्रज्वलित अग्निमें भस्म कर दिया। जनमेजयने कहा—हे मुने!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह बड़ा ही अप्रिय प्रसंग आपने सुनाया ॥ २४ ॥ भला, जिनके नाम-स्मरणमात्रसे मनुष्य लौकिक अग्निके भयसे मुक्त हो जाते हैं, ऐसी वे परम विभूति सती अग्निमें कैसे भस्म हो गयीं ? ॥ २५ ॥ किस प्रतिकूल कर्मके प्रभावसे दक्ष प्रजापतिके यहाँ ऐसी दुर्घटना घटी ? व्यासजी बोले—हे राजन् ! सतीके भस्म होनेका कारण सुनो । यह कथा बहुत प्राचीन है ॥ २६ ॥ एक समयकी बात है—मुनिवर दुर्वासा जम्बूनदके तटपर विराजनेवाली प्रधान देवता भगवती जाम्बूनदेश्वरी पास गये । वहाँ मुनिको भगवतीके साक्षात् दर्शन मिले । इसके बाद वे मायाबीज नामक मंत्रका जप करने लगे ॥ २७ ॥ इससे देवेश्वरीने प्रसन्न होकर मुनिको अपने गलेकी पुष्पमाला प्रसादस्वरूप दे दी । दिव्य पुष्पोंके परागसे परिपूर्ण होनेके कारण उस मालापर भ्रमर मँड़राते हुए गुनगुना रहे थे ॥ २८ ॥ मुनिने उस मालाको सिर झुकाकर ले लिया । इसके बाद वे परम तपस्वी मुनि वहाँसे तुरन्त निकले और आकाशमार्गसे होते हुए जहाँ सतीके पिता दक्ष प्रजापति विराजमान थे, देवीके दर्शनको वहाँ जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने भगवती सतीके चरणोंकी वन्दना की ॥ २९ ॥ ३० ॥ उस समय दक्षने मुनिसे पूछा—

मुने ॥ २४ ॥ एतादृशं महद्वस्तु कथं दग्धं हुताशने ॥ यन्नामस्मरणान्नृणां संसाराग्निभयं न हि ॥ २५ ॥ केन कर्मविपाकेन मनोर्दग्धं तदेव हि ॥ व्यास उवाच॥ शृणु राजन्पुरा वृत्तं सतीदाहस्य कारणम् ॥ २६ ॥ कदाचिदथ दुर्वासा गतो जाम्बूनदेश्वरीम् ॥ ददर्श देवीं तत्रासौ माया-बीजं जजाप सः ॥ २७ ॥ ततः प्रसन्ना देवेशी निजकण्ठगतां स्रजम् ॥ भ्रमद्भ्रमरसंसक्तां मकरंदमदाकुलाम् ॥ २८ ॥ ददौ प्रसादभूतां तां जग्राह शिरसा मुनिः ॥ ततो निर्गत्य तरसा व्योममार्गेण तापसः ॥ २९ ॥ आजगाम स यत्रास्ते दक्षः साक्षात्सतीपिता ॥ संदर्शनार्थमम्बाया ननाम च सतीपदे ॥ ३० ॥ पृष्टो दक्षेण स मुनिर्माला कस्यास्त्यलौकिकी ॥ कथं लब्धा त्वया नाथ दुर्लभा भुवि मानवैः ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रोवाचाश्रुयुतेक्षणः ॥ देव्याः प्रसादमतुलं प्रेमगद्गदितान्तरः ॥ ३२ ॥ प्रार्थयामास तां मालां तं मुनिं स सतीपिता ॥ अदेयं शक्तिभक्ताय नास्ति त्रैलोक्यमंडले ॥ ३३ ॥ इति बुद्ध्या तु तां मालां मनवे स समर्पयत् ॥ गृहीता शिरसा माला मनुना निजमंदिरे ॥ ३४ ॥ स्थापिता शयनं यत्र दंपत्योरतिसुन्दरम् ॥ पशुकर्मरतो रात्रौ मालागंधेन मोदितः ॥ ३५ ॥ अभवत्स महीपालस्तेन पापेन शङ्करे ॥ शिवे द्वेषमतिर्जातो देव्यां सत्यां

हे प्रभो ! यह दिव्य माला किसकी है ? जगत्के मनुष्योंके लिए यह परम दुर्लभ माला आपने कैसे प्राप्त कर ली ?' ॥ ३१ ॥ दक्ष प्रजापतिका यह वचन सुनकर मुनिवर दुर्वासाकी आँखें आँसुओंसे भर गयीं । प्रेमसे उनका हृदय विह्वल हो उठा । उन्होंने उत्तर दिया—'भगवती जगदम्बाका यह अनुपम प्रसाद है ।' ॥ ३२ ॥ तब सतीके पिता दक्षने मुनिसे प्रार्थना की—'यह माला मुझे दे देनेकी कृपा कीजिये।' त्रिलोकीमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो भगवती जगदम्बाके उपासकका न दी जा सके—यों विचारकर मुनिने वह पुष्पहार दक्षको दे दिया। दक्षने सिर झुकाकर माला ले ली । तदनन्तर अन्तःपुरमें पति-पत्नीके आनन्दके लिए जो अत्यन्त सुन्दर शय्या बिछी थी, उसपर उन्होंने उस मालाको रख दिया और उसकी सुगन्धिसे मस्त होकर उसी शय्यापर रात्रिके समय उन्होंने स्त्री-समागम किया ॥ ३३–३५ ॥ हे राजन् ! इस पापकर्मके प्रभावसे भगवान् शंकर तथा देवी सतीके प्रति दक्षके मनमें द्वेष उत्पन्न हो गया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ३६ ॥ हे मनुजेन्द्र ! उस अपराधका परिणाम यह हुआ कि सतीने सतीधर्मको प्रदर्शित करनेके लिए दक्षसे उत्पन्न अपने शरीरको योगाग्निमें भस्म कर दिया ॥ ३७ ॥ फिर वही ज्योति हिमालयके घर प्रकट हुई । जनमेजयने पूछा—हे मुने ! जो प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थीं, उन सतीके भस्म हो जानेपर उनके वियोगसे कातर होकर भगवान् शिवने क्या किया ? व्यासजी बोले—हे राजन् ! इसके उपरान्त जो कुछ हुआ, उसे पूर्णरूपसे कहनेमें मैं असमर्थ हूँ ॥३८॥३९॥ भगवान् शंकरकी कामाग्निने त्रलोकीमें प्रलय मचा दिया । जब भीरभद्र प्रकट हुए और भद्रकालीको साथ लेकर तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिए प्रस्तुत हो गये, तब ब्रह्मादि देवताओंने भगवान् शंकरकी शरण ली ॥ ४० ॥ ४१ ॥ दक्षको मार दिया गया और उनका यज्ञ सब प्रकारसे नष्ट हो गया । तब करुणाके सागर भगवान् शिवने देवताओंको अभय प्रदान किया । साथ ही बकरेका सिर जोड़कर दक्षके जीवित होनेकी व्यवस्था कर दी

तथा नृप ॥ ३६ ॥ राजंस्तेनापराधेन तज्जन्यो देह एव च ॥ सत्या योगाग्निना दग्धः सतीधर्मदिदृक्षया ॥ ३७ ॥ पुनश्च हिमवत्पृष्ठे प्रादुरासीत्तु तन्महः ॥ जनमेजय उवाच ॥ दह्यमाने सतीदेहे जाते किमकरोच्छिवः ॥ ३८ ॥ प्राणाधिका सती यस्य तद्वियोगेन कातरः ॥ व्यास उवाच॥ ततः परं तु यज्जातं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ३९ ॥ त्रैलोक्यप्रलयो जातः शिवकोपाग्निना नृप ॥ वीरभद्रः समुत्पन्नो भद्रकालीगणान्वितः ॥ ४० ॥ त्रैलोक्यनाशनोद्युक्तो वीरभद्रो यदाऽभवत् ॥ ब्रह्मादयस्तदा देवाः शङ्करं शरणं ययुः ॥ ४१ ॥ जाते सर्वस्वनाशेऽपि करुणानिधिरीश्वरः ॥ अभयं दत्तवांस्तेभ्यो बस्तवक्त्रेण तं मनुम् ॥४२॥ अजीवयन्महात्माऽसौ ततः खिन्नो महेश्वरः ॥ यज्ञवाटमुपागम्य रुरोद भृशदुःखितः ॥४३॥ अपश्यत्तां सतीं वह्नौ दह्यमानां तु चित्कलाम् ॥ स्कन्धेऽप्यारोपयामास हा सतीति वदन्मुहुः ॥४४॥ बभ्राम भ्रांतचित्तः सन्नानादेशेषु शंकरः ॥ तदा ब्रह्मादयो देवाश्चिंतामापुरनुत्तमाम् ॥ ४५ ॥ विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः ॥ चिच्छेदावयवान्सत्यास्तत्तत्स्थानेषु तेऽपतन् ॥ ४६ ॥ तत्तत्स्थानेषु तत्रासीन्नानामूर्तिधरो हरः ॥ उवाच च ततो देवान्स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम् ॥ ४७ ॥ भजंति परया भक्त्या तेषां किंचिन्न दुर्लभम् ॥ नित्यं सन्निहिता यत्र निजांगेषु परांबिका ॥ ४८ ॥ स्थानेष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरणकर्मिणः ॥ तेषां मंत्राः प्रसिद्ध्यंति मायाबीजं विशेषतः ॥ ४९ ॥ इत्यु-

॥४२॥ तत्पश्चात् वे महात्मा महेश्वर अत्यन्त उदास होकर यज्ञ-स्थलपर गये । उन्होंने देखा कि सतीका चिन्मय शरीर अग्निमें जल गया था । तब 'हा सती !' इस शब्दको बार-बार दुहराते हुए शिवने उस शरीरको उठाकर अपने कन्धेपर रख लिया और पागल जैसे होकर वे देश-देशमें भटकने लगे । इससे ब्रह्मा आदि देवताओंके मनमें अत्यन्त चिन्ता व्याप्त हो गयी ॥ ४३–४५ ॥ उस समय भगवान् विष्णुने तुरंत धनुष उठाया और भगवती सतीके अङ्गोंको काट डाला । जिससे वे अङ्ग विभिन्न स्थानोंपर गिरे ॥४६॥ तदनन्तर जहाँ कहीं भी वे शरीरके टुकड़े गिरे थे, वहीं शंकरजीकी अनेक मूर्तियाँ प्रकट हो गयीं । तब शिवने देवताओंसे कहा—'जो इन स्थानोंपर उत्तम भक्तिके साथ भगवती शिवाकी उपासना करेंगे, उनके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा । क्योंकि जहाँ सतीने अपने अङ्ग त्यागे हैं, वहाँ जगदम्बा निरन्तर निवास करेंगी ॥४७॥४८॥ इन स्थानोंमें रहकर जो मनुष्य पुरश्चरण करेंगे, उनके मंत्र सिद्ध होनेमें कोई सन्देह नहीं है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

ये स्थान मायाबीज मन्त्र-जपके लिए विशेष उपयोगी हैं ॥ ४९ ॥ हे राजेन्द्र ! ऐसा कहकर भगवान् शंकरने सतीके विरहसे अधीर हो उन-उन स्थानोंमें जप, ध्यान और समाधिमें संलग्न होकर समय व्यतीत किया ॥ ५० ॥ जनमेजयने पूछा—हे अनघ ! वे सिद्धपीठ कौन-कौनसे हैं, कितने हैं और उनके क्या नाम हैं ? मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ ५१ ॥ हे दयासिन्धो ! हे महामुने ! उन स्थानोंपर विराजनेवाली देवियोंके नाम भी कृपया बता दें, जिससे मैं कृतार्थ हो सकूँ ॥ ५२ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! सुनो, मैं अब देवीपीठोंका परिचय देता हूँ, जिनके श्रवणमात्रसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है ॥ ५३ ॥ जिन-जिन पीठोंमें सिद्धि चाहनेवाले पुरुषोंके द्वारा देवीकी उपासना तथा ऐश्वर्य चाहनेवालोंके द्वारा ध्यान होना चाहिये, उन स्थानोंको मैं तत्त्वपूर्वक बताता हूँ ॥ ५४ ॥ वाराणसीमें गौरीका मुख गिरा था। अतएव उस पीठस्थानपर प्रकटित रूप धारण करनेवाली देवीका नाम 'विशालाक्षी' है। नैमिषारण्य क्षेत्रमें विराजमान देवी 'लिङ्गधारिणी' नामसे प्रसिद्ध हुईं ॥ ५५ ॥ उन देवीको प्रयागमें 'ललिता', गन्धमादन पर्वतपर 'कामुकी', मानसरोवरमें

त्वा शंकरस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः ॥ कालं निन्ये नृपश्रेष्ठ जपध्यानसमाधिभिः ॥५०॥ जनमेजय उवाच॥ कानि स्थानानि तानि स्युः सिद्धपीठानि चानघ ॥ कतिसंख्यानि नामानि कानि तेषां च मे वद ॥५१॥ तत्र स्थितानां देवीनां नामानि च कृपाकर ॥ कृतार्थोऽहं भवे येन तद्वदाशु महामुने ॥५२॥ ॥ व्यास उवाच॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देवीपीठानि सांप्रतम् ॥ येषां श्रवणमात्रेण पापहीनो भवेन्नरः ॥५३॥ येषु येषु च पीठेषूपास्येयं सिद्धिकांक्षिभिः ॥ भूतिकामैरभिध्येया तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥५४॥ वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी ॥ क्षेत्रे वै नैमिषारण्ये प्रोक्ता सा लिंगधारिणी ॥ ५५ ॥ प्रयागे ललिता प्रोक्ता कामुकी गंधमादने ॥ मानसे कुमुदा प्रोक्ता दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥ ५६ ॥ विश्वकामा भगवती विश्वकामप्रपूरणी ॥ गोमन्ते गोमती देवी मन्दरे कामचारिणी ॥ ५७ ॥ मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे ॥ गौरी प्रोक्ता कान्यकुब्जे रम्भा तु मलयाचले ॥ ५८ ॥ एकाम्रपीठे सम्प्रोक्ता देवी सा कीर्तिमत्यपि ॥ विश्वे विश्वेश्वरीं प्राहुः पुरुहूतां च पुष्करे ॥ ५९ ॥ केदारपीठे सम्प्रोक्ता देवी सन्मार्गदायिनी ॥ मन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका ॥ ६० ॥ स्थानेश्वरी भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका ॥ श्रीशैले माधवी प्रोक्ता भद्रा भद्रेश्वरे तथा ॥ ६१ ॥ वाराहशैले तु जया कमला कमलालये ॥ रुद्राणी रुद्रकोट्यां तु काली कालंजरे तथा ॥६२॥ शालग्रामे महादेवी शिवलिंगे जलप्रिया ॥ महालिंगे

'कुमुदा' दक्षिणमें 'विश्वकामा' तथा उत्तरमें भगवतीको 'विश्वकामप्रपूरणी' कहते हैं। गोमन्तपर 'गोमती' तथा मन्दराचलपर वे 'कामचारिणी' नामसे विख्यात हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ चैत्ररथमें देवीको 'मदोत्कटा', हस्तिनापुरमें 'जयन्ती', कान्यकुब्जमें 'गौरी' तथा मलयाचलपर 'रम्भा' कहा गया है ॥ ५८ ॥ एकाम्रपीठपर वे 'कीर्तिमती' कहलाती हैं। विश्वपीठमें वे 'विश्वेश्वरी' तथा पुष्करमें 'पुरुहूता' नामसे विख्यात हुईं ॥ ५९ ॥ केदारपीठमें 'सन्मार्गदायिनी', हिमवान्पीठमें 'मन्दा' तथा गोकर्णपीठमें 'भद्रकर्णिका'—ये नाम देवीके हुए हैं ॥ ६० ॥ स्थानेश्वर पीठमें 'भवानी', बिल्वकपीठमें 'बिल्वपत्रिका', श्रीशैलपर 'माधवी' तथा भद्रेश्वरमें 'भद्रा' नामसे देवीकी प्रसिद्धि हुई ॥ ६१ ॥ वराहपर्वतपर 'जया', कमलालय पीठमें 'कमला', रुद्रकोटिमें 'रुद्राणी' तथा कालञ्जरमें वे 'काली' कहलाती हैं ॥ ६२ ॥ इन्हें शालग्रामपीठमें 'महादेवी', शिवलिङ्गमें 'जलप्रिया', महालिंगमें 'कपिला' और माकोटमें 'मुकुटेश्वरी' कहा जाता है

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मायापुरीमें 'कुमारी', संतानपीठमें 'ललिताम्बिका', गयामें 'मंगला' तथा पुरुषोत्तमपीठमें उन्हें 'विमला' कहा गया है ॥६३॥६४॥ सहस्राक्षमें 'उत्पलाक्षी', हिरण्याक्षमें 'महोत्पला', विपाशामें 'अमोघाक्षी', पुण्ड्रवर्धनपीठमें 'पाडला' ॥ ६५ ॥ सुपार्श्वमें 'नारायणी', त्रिकूटमें 'रुद्रसुन्दरी', विपुलक्षेत्रमें 'विपुला', मलयाचलपर भगवती 'कल्याणी' ॥६६॥ सह्याद्रि पर्वतपर 'एकवीरा' हरिश्चन्द्रपीठपर 'चन्द्रिका', रामतीर्थमें 'रमणा', यमुनापीठमें 'मृगावती' ॥ ६७ ॥ कोटितीर्थमें 'कोटवी', माधववनमें 'सुगन्धा', गोदावरीमें 'त्रिसंध्या', गंगाद्वारमें 'रतिप्रिया' ॥ ६८ ॥ शिवकुण्डमें 'शुभनन्दा', देविकातटपीठमें 'नन्दिनी', द्वारकामें 'रुक्मिणी', वृन्दावनमें 'राधा' ॥ ६९ ॥ मथुरामें 'देवकी', पातालमें 'परमेश्वरी', चित्रकूटमें 'सीता', विन्ध्याचल पर्वतपर 'विन्ध्यवासिनी' ॥७०॥ करवीर (कोल्हापुर) क्षेत्रमें 'महालक्ष्मी', विनायकक्षेत्रमें देवी 'उमा', वैद्यनाथ धाममें 'आरोग्या', महाकालपीठमें 'माहेश्वरी' ॥७१॥ उष्णतीर्थमें 'अभया', विन्ध्यपर्वतपर

तु कपिला माकोटे मुकुटेश्वरी ॥६३॥ मायापुर्यां कुमारी स्यात्संताने ललितांबिका ॥ गयायां मंगला प्रोक्ता विमला पुरुषोत्तमे ॥६४॥ उत्पलाक्षी सहस्राक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला ॥ विपाशायाममोघाक्षी पाडला पुंड्रवर्धने ॥ ६५ ॥ नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे रुद्रसुन्दरी ॥ विपुले विपुला देवी कल्याणी मलयाचले ॥ ६६ ॥ सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका ॥ रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती ॥ ६७ ॥ कोटवी कोटतीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने ॥ गोदावर्यां त्रिसन्ध्या तु गङ्गाद्वारे रतिप्रिया ॥ ६८ ॥ शिवकुंडे शुभानंदा नंदिनी देविकातटे ॥ रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने ॥ ६९ ॥ देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी ॥ चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विंध्याधिवासिनी ॥ ७० ॥ करवीरे महालक्ष्मीरुमा देवी विनायके ॥ आरोग्या वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी ॥ ७१ ॥ अभयेत्युष्णतीर्थेषु नितम्बा विंध्यपर्वते ॥ मांडव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरीपुरे ॥ ७२ ॥ छगलण्डे प्रचण्डा तु चंडिकाऽमरकण्टके ॥ सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती ॥ ७३ ॥ देवमाता सरस्वत्यां पारावारा-तटे स्मृता ॥ महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिंगलेश्वरी ॥ ७४ ॥ सिंहिका कृतशौचे तु कार्तिके त्वतिशांकरी ॥ उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोण-सङ्गमे ॥७५॥ माता सिद्धवने लक्ष्मीरनंगा भरताश्रमे ॥ जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किंधपर्वते ॥७६॥ देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले ॥ भीमा देवी हिमाद्रौ तु तुष्टिर्विश्वेश्वरी तथा ॥ ७७ ॥ कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे ॥ शंखोद्धारे धरा नाम धृतिः पिंडारके तथा ॥७८॥

'नितम्बा', माण्डव्यपीठमें 'मांडवी' तथा माहेश्वरीपुरीमें ये देवी 'स्वाहा' नामसे विख्यात हैं ॥ ७२ ॥ छगलण्डमें 'प्रचण्डा', अमरकण्टकमें 'चंडिका', सोमेश्वरपीठमें 'वरारोहा', प्रभास क्षेत्रमें 'पुष्करावती' ॥ ७३ ॥ सरस्वतीतीर्थमें 'देवमाता' तथा समुद्रतटपर 'पारावारा' नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई । महालयमें 'महाभागा', पयोष्णीमें 'पिंगलेश्वरी' ॥ ७४ ॥ कृतशौचतीर्थमें 'सिंहिका', कार्तिकक्षेत्रमें 'अतिशाङ्करी', वर्तकतीर्थमें 'उत्पला', एवं सोनभद्रनद (शोण)के संगमपर 'सुभद्रा' तथा 'लोला' ॥७५॥ सिद्धवनमें 'माता लक्ष्मी', भरताश्रमतीर्थमें 'अनंगा', जालंधर पर्वतपर 'विश्वमुखी', किष्किन्धा पर्वतपर 'तारा' ॥७६॥ देवदारुवनमें 'पुष्टि', काश्मीर प्रदेशमें 'मेधा', हिमाद्रिपर्वतपर 'देवी भीमा', विश्वेश्वर क्षेत्रमें 'तुष्टि', ॥ ७७ ॥ कपालमोचनतीर्थमें 'शुद्धि', कायावरोहतीर्थमें 'माया', शंखोद्धारतीर्थमें 'धरा' तथा पिण्डारकतीर्थमें 'धृति' नामसे वे प्रसिद्ध हुईं ॥ ७८ ॥ चन्द्रभागा नदीके तटपर 'कला', अच्छोद नामक क्षेत्रमें 'शिवधारिणी'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेणा नदीके किनारे 'अमृता', बदरीवनमें 'उर्वशी', ॥७९॥ उत्तर कुरुप्रदेशमें 'औषधि', कुशद्वीपमें 'कुशोदका', हेमकूट पर्वतपर 'मन्मथा', कुमुदवनमें 'सत्यवादिनी', ॥८०॥ अश्वत्थतीर्थमें 'वन्दनीया', वैश्रवणालय क्षेत्रमें 'निधि', वेदवन तीर्थमें 'गायत्री', भगवान् शिवके संनिकट 'पार्वती', ॥८१॥ देवलोकमें 'इन्द्राणी', ब्रह्मलोकमें 'सरस्वती', सूर्यके बिम्बमें 'प्रभा', मातृकाओंमें 'वैष्णवी', सतियोंमें 'अरुन्धती' तथा रामा प्रभृति अप्सराओंमें 'तिलोत्तमा' नामसे वे देवी विख्यात हुईं। सम्पूर्ण प्राणियोंके चित्तमें सदा विराजनेवाली शक्तिको 'ब्रह्मकला' कहते हैं ॥८२॥८३॥ हे राजा जनमेजय! ये एक सौ आठ सिद्धपीठ और वहाँ विराजनेवाली उतनी ही देवियाँ कही गयीं। देवी सतीके अंगोंसे संबन्धित इन पीठोंका परिचय मैंने बता दिया ॥८४॥ भूमण्डलपर इनके अतिरिक्त जो प्रधान-प्रधान स्थान हैं, प्रसंगवश वे भी बता दिये गये ॥ ८५ ॥ जो पुरुष इन एक सौ आठ सिद्धपीठोंका स्मरण एवं श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे

कला तु चन्द्रभागायामच्छोदे शिवधारिणी ॥ वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा ॥ ७९ ॥ औषधिश्चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका ॥ मन्मथा हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादिनी ॥ ८० ॥ अश्वत्थे वंदनीया तु निधिर्वैश्रवणालये ॥ गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ ॥ ८१ ॥ देवलोके तथेंद्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती ॥ सूर्यबिंबे प्रभा नाम मातृणां वैष्णवी मता ॥ ८२ ॥ अरुन्धती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा ॥ चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् ॥ ८३ ॥ इमान्यष्ट शतानि स्युः पीठानि जनमेजय ॥ तत्संख्याकास्तदीशान्यो देव्यश्च परिकीर्तिताः ॥ ८४ ॥ सतीदेव्यंगभूतानि पीठानि कथितानि च ॥ अन्यान्यपि प्रसंगेन यानि मुख्यानि भूतले ॥ ८५ ॥ यः स्मरेच्छृणुयाद्वापि नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोकं परं व्रजेत् ॥८६॥ एतेषु सर्वपीठेषु गच्छेद्यात्राविधानतः ॥ सन्तर्पयेच्च पित्रादीञ्छ्राद्धादीनि विधाय च ॥ ८७ ॥ कुर्याच्च महतीं पूजां भगवत्या विधानतः ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदम्बां मुहुर्मुहुः ॥ ८८ ॥ कृतकृत्यं स्वमात्मानं जानीयाज्जनमेजय ॥ भक्ष्यभोज्यादिभिः सर्वान् ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥८९॥ सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकादींस्तथा नृप ॥ तस्मिन् क्षेत्रे स्थिता ये तु चांडालाद्या अपि प्रभो ॥ ९० ॥ देवीरूपाः स्मृताः सर्वे पूजनीयास्ततो हि ते ॥ प्रतिग्रहादिकं सर्वं तेषु क्षेत्रेषु वर्जयेत् ॥ ९१ ॥ यथाशक्ति पुरश्चर्यां कुर्यान्मंत्रस्य सत्तमः ॥ मायाबीजेन देवेशीं तत्तत्पीठाधिवासिनीम् ॥ ९२ ॥ पूजयेदनिशं राजन्पुरश्चरणकृद्भवेत् ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत देवीभक्तिपरो नरः ॥ ९३ ॥ य एवं कुरुते यात्रां

मुक्त होकर भगवतीके परम धाममें चला जाता है ॥ ८६ ॥ इन सभी तीर्थोंकी यात्रा विधिके अनुसार करनी चाहिये। वहाँ जाकर पितरोंका तर्पण और श्राद्ध करनेके पश्चात् भगवतीकी विशिष्ट पूजा विधिपूर्वक सम्पन्न करनी चाहिए। पूजनके उपरान्त भगवती जगदंबाके सामने बार-बार अपराध क्षमा करानेका विधान है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे राजा जनमेजय! सम्पूर्ण ब्राह्मणोंका भक्ष्य और भोज्य आदि पदार्थोंसे तृप्त करना चाहिए ॥ ८९ ॥ हे राजन्! सुवासिनी स्त्रियों, कुँआरी कन्याओं तथा ब्रह्मचारियोंको भोजन कराना उचित है। हे प्रभो! उस क्षेत्रमें रहनेवाले जो चाण्डाल हों, उन्हें भी देवीका रूप कहा गया है। अतः उन सबकी भी पूजा करनी चाहिए। उन सिद्धपीठोंमें सभी प्रकारका दानग्रहण निषिद्ध है ॥ ९० ॥ ९१ ॥ शक्तिके अनुसार मन्त्रका अनुष्ठान होना चाहिये। मायाबीज मन्त्रराज माना जाता है। समस्त पीठोंमें विराजनेवाली भगवती जगदंबाका इस मन्त्रसे पुरश्चरण करना चाहिए ॥ ९२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीदेव्याः प्रीतमानसः ॥ सहस्रकल्पपर्यंतं ब्रह्मलोके महत्तरे ॥ ९४ ॥ वसंति पितरस्तस्य सोऽपि देवीपुरे तथा ॥ अंते लब्ध्वा परं ज्ञानं भवेन्मुक्तो भवांबुधेः ॥ ९५ ॥ नामाष्टशतजापेन बहवः सिद्धतां गताः ॥ यत्रैतल्लिखितं साक्षात्पुस्तके वापि तिष्ठति ॥ ९६ ॥ ग्रहमारीभयादीनि तत्र नैव भवन्ति हि ॥ सौभाग्यं वर्धते नित्यं यथा पर्वणि वारिधिः ॥ ९७ ॥ न तस्य दुर्लभं किंचिन्नामाष्टशतजापिनः ॥ कृतकृत्यो भवेन्नूनं देवीभक्तिपरायणः ॥ ९८ ॥ नमन्ति देवतास्तं वै देवीरूपो हि स स्मृतः ॥ सर्वथा पूज्यते देवैः किं पुनर्मनुजोत्तमैः ॥ ९९ ॥ श्राद्धकाले पठेदेतन्नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम् ॥१००॥ इमानि मुक्तिक्षेत्राणि साक्षात्संविन्मयानि च ॥ सिद्धपीठानि राजेन्द्र संश्रयेन्मतिमान्नरः ॥१०१॥ पृष्टं यत्तत्त्वया राजन्नुक्तं सर्वं महेशितुः ॥ रहस्यातिरहस्यं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ धराधराधीशमौलावाविरासीत्परं महः ॥ यदुक्तं भवता पूर्वं विस्तरात्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥ को विरज्येत मतिमान्पिबञ्छक्तिकथामृतम् ॥ सुधां तु पिबतां मृत्युः स नैतच्छृण्वतो भवेत् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि शिक्षितोऽसि महात्मभिः ॥ भाग्य-

हे राजन् ! अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि धन खर्च करनेमें कंजूसी न करके देवीके प्रति अटूट श्रद्धा रक्खे ॥ ९३ ॥ जो पुरुष इस प्रकार श्रीदेवीके सिद्धपीठोंकी प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करता है, उसके पितर एक हजार कल्पोंतक श्रेष्ठ ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं ॥ ९४ ॥ स्वयं वह भी आयु समाप्त होनेपर देवीके लोकमें स्थान पाता है। फिर उत्तम ज्ञान पाकर वह संसारसागरसे मुक्त हो जाता है ॥ ९५ ॥ इस अष्टोत्तरशतनामके जपसे बहुतेरे पुरुष सिद्धि पा चुके हैं। जहाँ यह अष्टोत्तरशतनाम स्वयं लिखा गया हो, अथवा रखी हुई पुस्तकमें अङ्कित हो ॥ ९६ ॥ वहाँ महामारी आदिके उपद्रवका भय नहीं रहता, बल्कि वहाँ इस प्रकार सौभाग्यमें वृद्धि होती है कि जैसे पर्वपर समुद्र बढ़ता है ॥ ९७ ॥ जो भगवतीकी भक्तिमें तत्पर होकर इस अष्टोत्तरशत नामका जप करता है, उसके लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। उसका जीवन निश्चय ही सफल समझना चाहिये ॥९८॥ उस जापकके सामने देवतातक मस्तक झुकानेके लिए तैयार रहते हैं। क्योंकि वह जापक भगवतीका रूप माना जाता है। जो देवताओंकी सर्वथा पूज्य हैं, श्रेष्ठ मानव उनकी पूजा करें—इसमें कहना ही क्या है ॥ ९९ ॥ श्राद्धके अवसर इस अष्टोत्तरशत नामका पाठ किया जाय तो श्राद्धकर्ताके सम्पूर्ण पितर तृप्त होकर उत्तम गति पा जाते हैं ॥ १०० ॥ हे राजेन्द्र ! ये मुक्तिक्षेत्र भगवतीके साक्षात् विग्रह हैं। सिद्धपीठ इनकी संज्ञा है। बुद्धिमान् मनुष्य इनका अवश्य सेवन करें ॥ १०१ ॥ हे राजन् ! तुमने भगवती परमेश्वरीके विषयमें जो कुछ पूछा था, वह सब रहस्य मैं बता चुका। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १०२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीतांबरा'भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

(तारकासुरके द्वारा सताये हुए देवताओं द्वारा भगवतीकी स्तुति) जनमेजयने कहा—हे मुने ! आप पहले कह चुके हैं कि हिमालयके शिखरपर महान् तेजका आविर्भाव हुआ था। उसको अब मुझे विस्तारके साथ बतलानेकी कृपा कीजिये ॥१॥ कौन बुद्धिमान् मनुष्य होगा, जो शक्तिकी कथाको सुनकर तृप्त हो सके। अमृत पीनेवालोंकी मृत्यु हो भी सकती है, किंतु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह कथा सुननेवाला प्राणी अमर हो जाता है ॥२॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन्! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो और परमभाग्यशाली हो। महात्मा पुरुषोंने तुम्हें श्रेष्ठ शिक्षा प्रदान की है। इसीसे भगवती जगदम्बाके प्रति तुम्हारे हृदयमें ऐसी निष्कपट भक्तिका प्रादुर्भाव हुआ है ॥३॥ हे राजन्! अब एक प्राचीन कथा प्रसंग सुना रहा हूँ। जब सतीका शरीर योगाग्निमें भस्म हो गया, तब भगवान् शिव देश-देशान्तरोंमें घूमते हुए अन्तमें किसी एक जगह जाकर ठहर गये ॥४॥ वहाँ मनको सब ओरसे खींचकर वे भगवती जगदम्बाका ध्यान करने लगे। उस समय त्रिलोकीके जितने चराचर प्राणी थे, प्रायः सभी सौभाग्यसे वञ्चित हो गये। द्वीपों और पर्वतोंसहित सारा संसार शक्तिहीन हो गया ॥ ५ ॥ ६ ॥ सबके हृदयमें बहनेवाला आनन्दमय रसस्रोत बिलकुल सूख गया। सबके मुखपर उदासी छा गयी ॥ ७ ॥ सभी लोग दुःखरूपी समुद्रमें डूब गये। रोगोंने सबको धर दबाया। ग्रहों और देवताओंकी चाल विपरीत हो गयी ॥८॥ हे राजन! भगवती सतीकी अनुपस्थितिमें सब देवता और मानव प्रायः उच्छृङ्खल हो गये। उसी समय तारक नामसे प्रसिद्ध एक महान् असुर उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥ त्रिलोकीके अध्यक्ष

वानसि यद्देव्यां निर्व्याजा भक्तिरस्ति ते ॥ ३ ॥ शृणु राजन्पुरावृत्तं सतीदेहेऽग्निभर्जिते ॥ भ्रांतः शिवस्तु बभ्राम क्वचिद्देशे स्थिरोऽभवत् ॥ ४ ॥ प्रपञ्चभानरहितः समाधिगतमानसः ॥ ध्यायन्देवीस्वरूपं तु कालं निन्ये स आत्मवान् ॥५॥ सौभाग्यरहितं जातं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ शक्तिहीनं जगत्सर्वं साब्धिद्वीपं सपर्वतम् ॥ ६ ॥ आनन्दः शुष्कतां यातः सर्वेषां हृदयांतरे ॥ उदासीनाः सर्वलोकाश्चिंताजर्जरचेतसः ॥ ७ ॥ सदा दुःखोदधौ मग्ना रोगग्रस्तास्तदाऽभवन् ॥ ग्रहाणां देवतानां च वैपरीत्येन वर्तनम् ॥ ८ ॥ अधिभूताधिदैवानां सत्यभावान्नृपाभवन् ॥ अथास्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः ॥ ९ ॥ ब्रह्मदत्तवरो दैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायकः ॥ शिवौरसस्तु यः पुत्रः स ते हंता भविष्यति ॥ १० ॥ इति कल्पितमृत्युः स देवदेवैर्महासुरः ॥ शिवौरससुताभावाज्जगर्ज च ननाद च ॥११॥ तेन चोपद्रुताः सर्वे स्वस्थानात्प्रच्युताः सुराः ॥ शिवौरससुताभावाच्चिंतामापुर्दुरत्ययाम् ॥१२॥ नांगना शंकरस्यास्ति कथं तत्सुतसंभवः ॥ अस्माकं भाग्यहीनानां कथं कार्यं भविष्यति ॥ १३ ॥ इति चिंतातुराः सर्वे जग्मुर्वैकुण्ठमण्डले ॥ शशंसुर्हरिमेकांते स चोपायं जगाद ह ॥ १४ ॥ कुतश्चिंतातुराः सर्वे कामकल्पद्रुमा शिवा ॥ जागर्ति भुवनेशानी मणिद्वीपाधिवासिनी

महाभाग ब्रह्माजीने उसे वर दे दिया था कि 'भगवान् शंकरका जो औरस पुत्र होगा, उसीके हाथ तुम्हारी मृत्यु हो सकेगी' ॥१०॥ फिर तो वह महान् असुर देवाधिदेव ब्रह्मा द्वारा कल्पित मृत्युका वर पाकर गरजने और डींग हाँकने लगा। कारण, भगवान् शंकरके औरस पुत्रकी तो कल्पना ही नहीं थी ॥ ११ ॥ इससे व्याकुल होकर सम्पूर्ण देवता अपने स्थानोंसे भाग चले। शिवका कोई औरस पुत्र नहीं था, इससे देवताओंके मनमें अपार चिन्ता समा गयी ॥१२॥ उन्होंने सोचा–शंकरजीकी तो पत्नी ही नहीं है, फिर पुत्रकी सम्भावना कैसे की जाय? ऐसी स्थितिमें हम भाग्यहीनोंका कार्य किस प्रकार सम्पन्न होगा' ॥ १३ ॥ इस प्रकार चिन्तासे अत्यन्त आकुल होकर सभी देवता वैकुण्ठमें गये। एकान्तमें उन्होंने भगवान् विष्णुको अपने दुःखकी कहानी सुनायी। तब श्रीहरिने उनको उपाय बताते हुए कहा—॥ १४॥ 'तुम सब इतने चिंतातुर क्यों हो रहे हो? कामनाओंका पूर्ण करनेवाली भगवती शिवा साक्षात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्पवृक्ष हैं। मणिद्वीपमें विराजनेवाली वे भगवती भुवनेश्वरी सदा जागती रहती हैं ॥१५॥ हमलोगोंके दोषसे ही जगदंबाने हमारी उपेक्षा कर रक्खी है-- दूसरी कोई बात नहीं है। उनका यह कार्य हमें शिक्षा देनेके लिए ही समझना चाहिये ॥१६॥ जिस प्रकार माता बच्चेको डाँटे या प्यार करे, परन्तु प्रत्येक स्थितिमें वह उसपर करुणा ही रखती है। वैसे ही जगदम्बाको भी जानना चाहिये। गुण और दोषके अनुसार उन्हें कार्य करना पड़ता है ॥१७॥ पुत्र तो पद पदपर अपराधी होते हैं। एक माताके सिवाय जगत्में दूसरा कौन है, जो उस अपराधको सह सके ॥ १८ ॥ अतः तुम सब लोग मनको शान्त तथा छल-कपटसे शून्य करके उन भगवती जगदम्बाकी शरण जाओ। देर करना अनुचित है। तुम्हारा कार्य वे अवश्य पूर्ण कर देंगी। हे राजन्! इस प्रकार देवताओंको उपदेश देनेके उपरान्त भगवान् विष्णु देवताओंके साथ वैकुण्ठसे चल पड़े ॥१९॥२०॥ गिरिराज हिमालयपर पहुँचते उन्हें देर नहीं लगी। वहाँ सभी देवताओंने देवीका भजन और आराधन आरम्भ कर दिया ॥ २१ ॥ जिन्हें अम्बायज्ञकी विधि मालूम थी, वे अम्बायज्ञ करने लगे। हे राजन्! समस्त देवताओंके द्वारा उसी समय तृतीयादि

॥ १५ ॥ अस्माकमनयादेव तदुपेक्षाऽस्ति नान्यथा ॥ शिक्षैवेयं जगन्मात्रा कृताऽस्मच्छिक्षणाय च ॥ १६ ॥ लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यं यथाऽर्भके ॥ तद्वदेव जगन्मातुर्नियंत्र्या गुणदोषयोः ॥ १७ ॥ अपराधो भवत्येव तनयस्य पदे पदे ॥ कोऽपरः सहते लोके केवलं मातरं बिना ॥ १८ ॥ तस्माद्यूयं पराम्बां तां शरणं यात मा चिरम् ॥ निर्व्याजया चित्तवृत्त्या सा वः कार्यं विधास्यति ॥ १९ ॥ इत्यादिश्य सुरान्सर्वान्महाविष्णुः स्वजायया ॥ संयुतो निर्जगामाशु देवैः सह सुराधिपः ॥ २० ॥ आजगाम महाशैलं हिमवंतं नगाधिपम् ॥ अभवंश्च सुराः सर्वे पुरश्चरणकर्मिणः ॥ २१ ॥ अम्बायज्ञविधानज्ञा अम्बायज्ञं च चक्रिरे ॥ तृतीयादिव्रतान्याशु चक्रुः सर्वे सुरा नृप ॥२२॥ केचित्समाधिनिष्णाताः केचिन्नामपरायणाः ॥ केचित्सूक्तपराः केचिन्नामपारायणोत्सुकाः ॥ २३ ॥ मंत्रपारायणपराः केचित्कृच्छ्रादिकारिणः ॥ अन्तर्यागपराः केचित्केचिन्न्यासपरायणाः ॥ २४ ॥ हृल्लेखया पराशक्तेः पूजां चक्रुरतंद्रिताः ॥ इत्येवं बहुवर्षाणि कालोऽगाज्जनमेजय ॥ २५ ॥ अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां च भृगोर्दिने ॥ प्रादुर्बभूव पुरतस्तन्महः श्रुतिबोधितम् ॥२६॥ चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुतम् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥२७॥ विद्युत्कोटिसमानाभमरुणं तत्परं महः ॥ नैव चोर्ध्वं न तिर्यक्च न मध्ये परिजग्रभत् ॥२८॥ आद्यंतरहितं तत्तु न हस्ताद्यंगसंयुतम् ॥ न च स्त्रीरूपमथवा न पुंरूपमथो-

व्रतका आयोजन हो गया ॥ २२ ॥ कुछ लोग समाधि लगाकर बैठ गये। कुछ देवताओंने नामजप आरभ कर दिया। कुछ देवता सूक्तपाठ करने लगे। कुछ देवोंने मन्त्रका पारायण आरंभ किया ॥ २३ ॥ कुछ कृच्छ्रव्रती, अन्तर्यागके अभ्यासी और न्यासपरायण बन गये ॥ २४ ॥ कुछ देवता सावधान होकर मायाबीज मन्त्रका प्रयोग करके भगवती परमेश्वरीकी पूजा करने लगे। हे जनमेजय! यों करते-करते बहुत समय बीत गया ॥२५॥ तदनन्तर अपने आप श्रुति द्वारा जानने योग्य एक सर्वोत्कृष्ट ज्योति सबके सामने प्रकट हो गयी। चैत्रशुक्लपक्षकी नवमी तिथि थी और शुक्रवार था ॥२६॥ चारों वेद मूर्तिमान् होकर चारों दिशाओंमें उसकी स्तुति करने लगे। उस ज्योतिमें करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश था। वह शीतल ऐसी थी, मानो करोड़ों चद्रमा उदित हों ॥२७॥ करोड़ों बिजलियोंके समान वह ज्योति चमक रही थी, वह न नीचो और न तिरछी, बल्कि मध्यमें थी ॥ २८ ॥ आदि और अन्तसे रहित उस तेजमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हाथ-पैर भी नहीं थे। स्त्री-पुरुष अथवा नपुंसक किसी भी रूपका स्पष्ट भान नहीं हो रहा था ॥२९॥ हे राजन्! उस तेजके प्रकट होते ही देवताओंकी आँखें मुँद गयीं। फिर धैर्य धारण करके ज्यों ही वे उधर देखनेके लिए उद्यत हुए, तैसे ही उन्हें एक परम दिव्य एवं मनोहर देवी दृष्टिगोचर हुई। उसके सभी अंग अत्यन्त सुन्दर थे। उसकी कुमार अवस्था थी। यौवन अभी-अभी खिल रहा था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ विशाल वक्षःस्थल था। बजती हुई किंकिणी, करधनी और पायजेबसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी ॥ ३२ ॥ दिव्य सुवर्णके बाजूबन्द, कड़े, कण्ठहार आदि आभूषण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। बहुमूल्य मणियोंका चमचमाता हुआ हार उसके गलेमें लटक रहा था॥ ३३ ॥ केतकीके नूतन पत्तोंके समान उज्ज्वल कपोलोंपर भ्रमरकी तुलना करनेवाले काले केश लहरा रहे थे। उसका कटिप्रदेश बड़ा ही सुघड़ था। रोमावलियाँ भी शोभा बढ़ा रही थीं ॥३४॥ कपूरके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे युक्त पानके बीड़े उसके मुखमें भरे थे। कमल जैसे मुखपर सुवर्णमय कुण्डलकी मधुर ध्वनि निकल रही थी ॥ ३५ ॥ ललाटपर फैली हुई भौंह ऐसी जान पड़ती थी, मानो अष्टमीका चन्द्रमा हो। लाल कमलके

भयम् ॥२९॥ दीप्त्या पिधानं नेत्राणां तेषामासीन्महीपते॥ पुनश्च धैर्यमालंब्य यावत्ते ददृशुः सुराः ॥३०॥ तावत्तदेव स्त्रीरूपेणाभादिव्यं मनोहरम्॥ अतीव रमणीयांगीं कुमारीं नवयौवनाम् ॥ ३१ ॥ उद्यत्पीनकुचद्वंद्वनिंदितांभोजकुड्मलाम् ॥ रणत्किंकिणिकाजालशिंजन्मञ्जीरमेखलाम् ॥ ३२ ॥ कनकांगदकेयूरग्रैवेयकविभूषणाम् ॥ अनर्घ्यमणिसंभिन्नगलबंधविराजिताम् ॥ ३३ ॥ तनुकेतकसंराजन्नीलभ्रमरकुंतलाम् ॥ नितम्बबिम्बसुभगां रोमराजिविराजिताम् ॥ ३४ ॥ कर्पूरशकलोन्मिश्रतांबूलपूरिताननाम् ॥ कनत्कनकताटंकविटंकवदनांबुजाम् ॥ ३५ ॥ अष्टमीचन्द्रबिंबाभललाटामायतभ्रुवम् ॥ रक्तारविंदनयनामुन्नसां मधुराधराम् ॥ ३६ ॥ कुन्दकुड्मलदन्ताग्रां मुक्ताहारविराजिताम् ॥ रत्नसम्भिन्नमुकुटां चन्द्ररेखावतंसिनीम् ॥३७॥ मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ॥ काश्मीरबिंदुनिटिलां नेत्रत्रयविलासिनीम् ॥ ३८ ॥ पाशांकुशवराभीतिचतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ॥ रक्तवस्त्रपरीधानां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ॥ ३९ ॥ सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ सर्वाशापूरिकां सर्वमातरं सर्वमोहिनीम् ॥ ४० ॥ प्रसादसुमुखीमम्बां मन्दस्मितमुखांबुजाम् ॥ अव्याजकरुणामूर्तिं ददृशुः पुरतः सुराः ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा तां करुणामूर्तिं प्रणेमुः सादरं सुराः ॥ वक्तुं नाशक्नुबन्

समान नेत्र थे। ऊँची नासिका थी। ओठोंसे अमृत टपक रहा था ॥३६॥ कुन्दकी खिली हुई कलियों जैसे सुन्दर दाँत थे। मोतीकी माला उसके गलेको सुशोभित कर रही थी। मस्तकपर रत्नजटित मुकुट था, जिसमें चन्द्रमाकी रेखा अङ्कित थी ॥ ३७ ॥ मल्लिका और मालतीकी माला केशकी वेणीमें गुँथी थी, इससे परम मनोहरता छा रही थी। केसरकी बिंदीसे ललाट सुशोभित था। तीन नेत्र अपनी छटा छिटका रहे थे ॥ ३८ ॥ पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्रासे युक्त चार भुजाएँ थीं। लाल रंगका दिव्य वस्त्र अनुपम शोभा दे रहा था। शरीरकी कान्ति ऐसी थी, मानो अनारका पुष्प हो ॥ ३९ ॥ शृंगारकी सभी वस्तुओंसे वे अलंकृत थीं। समस्त देवता उन्हें नमस्कार कर रहे थे। वे साधारण स्त्री नहीं थीं, किंतु सबकी आशा पूर्ण करनेवाली, सबको मोहित करनेमें समर्थ तथा सबको जन्म देनेवाली माता जगदम्बा थीं ॥ ४० ॥ उनका मुखकमल प्रसन्नतासे खिला हुआ था। वे मुसकुरा रही थीं। ऐसी शुद्ध तथा करुणाकी साकार पूर्ति भगवती जगदम्बाके देवताओंने भली-भाँति दर्शन किये ॥४१॥ फिर वे आदरपूर्वक उन करुणामयी देवीको प्रणाम करने लगे। हर्षके आँसुओंसे उनके कण्ठ रुँध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गये थे ॥ ४२ ॥ अतः वे कुछ भी बोलनेमें असमर्थ थे। किसी प्रकार चित्तमें स्थिरता प्राप्त करनेपर वे नम्रतापूर्वक कंधे झुकाकर भगवती जगदम्बाकी स्तुति करने लगे। उस समय उनकी आँखें आनन्दके आसुओंसे भरी थीं ॥ ४३ ॥ देवताओंने कहा–देवीको नमस्कार है। महादेवी शिवाको सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्राको नमस्कार तथा प्रणाम है। हमलोग नियमपूर्वक भगवती जगदम्बाको नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥ उन अग्निजैसी वर्णवाली, ज्ञानसे जगमगानेवाली, दीप्तिमती, कर्मफल-प्राप्तिके हेतु सेवन की जानेवाली दुर्गादेवीकी हम शरणमें हैं। हे संसारसागरसे तारनेवाली! तुम्हें नमस्कार है ॥४५॥ प्राणरूप एवं देवरूप देवोंने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणीको उत्पन्न किया, उसीको अनेक प्रकारसे प्राणी बोलते हैं। वे कामधेनुतुल्य आनन्ददायिनी और अन्न तथा बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे संतुष्ट होकर हमारे समीप पधारें ॥४६॥ कालका भी नाश करनेवाली, वेदों द्वारा संस्तुत, विष्णुशक्ति, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मशक्ति), देवमाता, अदिति और दक्षकन्या सती, पापनाशिनी तथा कल्याणकारिणी भगवतीको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४७ ॥

किंचिद्बाष्पपूरितलोचनाः ॥ ४२ ॥ कथंचित्स्थैर्यमालंब्य भक्त्या चानतकंधराः ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयनास्तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ॥ ४३ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ॥ नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥४४॥ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलंती वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ॥ दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः ॥ ४५ ॥ देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ॥ सा नो मन्द्रेषमूर्जं दहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥ ४६ ॥ कालरात्रिं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कंदमातरम् ॥ सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥ ४७ ॥ महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि ॥ तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ ४८ ॥ नमो विराट्स्वरूपिण्यै नमः सूत्रात्ममूर्तये ॥ नमोऽव्याकृतरूपिण्यै नमः श्रीब्रह्ममूर्तये ॥ ४९ ॥ यदज्ञानाज्जगद्भाति रज्जुसर्पस्रगादिवत् ॥ यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोति नुमस्तां भुवनेश्वरीम् ॥ ५० ॥ नुमस्तत्पदलक्ष्यार्थां चिदेकरसरूपिणीम् ॥ अखंडानन्दरूपां तां वेदतात्पर्यभूमिकाम् ॥ ५१ ॥ पञ्चकोशातिरिक्तां तामवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥ नुमस्त्वंपदलक्ष्यार्थां प्रत्यगात्मस्वरूपिणीम् ॥ ५२ ॥ नमः प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये ॥ नानामन्त्रात्मिकायै ते करुणायै नमो नमः ॥ ५३ ॥ इति स्तुता तदा देवैर्म-

हम महालक्ष्मीको जानते हैं, उन सर्वशक्तिरूपिणीका ही ध्यान करते हैं, वे देवी हमें उस विषयमें (ज्ञान-ध्यान) में प्रवृत्त करें ॥४८॥ विराट्रूप धारण करनेवाली देवीको नमस्कार है। सूक्ष्मरूपसे विराजनेवाली देवीको नमस्कार है। अव्याकृतरूपसे शोभा पानेवालीको नमस्कार है। ब्रह्मकी मूर्ति धारण करनेवालीको नमस्कार है ॥ ४९ ॥ जिन्हें न जाननेके कारण रस्सीमें सर्पकी भाँति इस मिथ्या जगत्का भान होता है और जिनके जानते ही वह भ्रान्त-बुद्धि नष्ट हो जाती है, उन भगवती भुवनेश्वरीके चरणोंमें हम मस्तक झुकाते हैं ॥ ५० ॥ जो 'तत्' पदकी लक्ष्यार्थ हैं, जिनका रूप एकमात्र चिन्मय है, जो अखण्ड आनन्दकी मूर्तिमान् रूप हैं तथा वेदके तात्पर्यकी जो भूमिका मानी जाती हैं, उन भगवती भुवनेश्वरीको हम प्रणाम करते हैं ॥५१॥ जो पंचकोशसे अतिरिक्त हैं, तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी हैं, जिनसे 'त्वं' पदका बारम्बार लक्ष्य होता है तथा जो प्रत्यगात्म-स्वरूपा हैं, उन भगवती भुवनेश्वरीको हम प्रणाम करते हैं ॥ ५२ ॥ प्राणस्वरूपा देवीको नमस्कार है। ह्रींकार मूर्तिको नमस्कार है। हे कल्याणमयी देवी! तुम्हें बार बार नमस्कार है ॥५३॥ इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर मणि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वीपमें विराजनेवाली आनन्दनिमग्न भगवती जगदम्बा कोकिल जैसी मधुरवाणीमें यों बोलीं ॥ ५४ ॥ श्रीदेवीने कहा—आप सब देवता किस प्रयोजनसे यहाँ पधारे हैं, सो बताइए। मैं भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिए कल्पवृक्ष हूँ। वर देना मेरा स्वाभाविक गुण है ॥ ५५ ॥ मेरे रहते आप भक्तिपरायण देवताओंको क्या चिंता है ? मैं अपने भक्तोंका इस दुःखमय संसारसागरसे उद्धार किये देती हूँ ॥ ५६ ॥ हे महाभाग देवताओ ! आपको मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य समझनी चाहिये। स्नेहसे विह्वल होकर भगवती जगदम्बा यों कह गयीं। उनकी वाणी सुनकर देवताओंका मन हर्षसे भर गया ॥५७॥ हे राजन् ! अब वे निर्भय होकर अपना दुःख सुनाने लगे। देवता बोले—हे परमेश्वरी ! त्रिलोकीमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो ॥५८॥ क्योंकि तुम सर्वज्ञा एवं सर्वसाक्षिस्वरूपिणी हो। हे शिवे ! तारक नामवाला एक महान् दैत्य हमें दिन-रात कष्ट पहुँचा रहा है। शंकरके पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु होनेकी बात ब्रह्माने निश्चित कर दी है। हे महेश्वरी ! तुमसे छिपा नहीं है कि इस समय शिव विधुर-जीवन व्यतीत कर रहे हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ हम अल्पबुद्धि प्राणी तुम-जैसी सर्वज्ञानसम्पन्न

णिद्वीपाधिवासिनी ॥ प्राह वाचा मधुरया मत्तकोकिलनिःस्वना ॥ ५४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वदंतु विबुधाः कार्यं यदर्थमिह संगताः ॥ वरदाऽहं सदा भक्तकामकल्पद्रुमाऽस्मि च ॥५५॥ तिष्ठन्त्यां मयि का चिंता युष्माकं भक्तिशालिनाम् ॥ समुद्धरामि मद्भक्तान्दुःखसंसारसागरात् ॥५६॥ इति प्रतिज्ञां मे सत्यां जानीथ विबुधोत्तमाः ॥ इति प्रेमाकुलां वाणीं श्रुत्वा संतुष्टमानसाः ॥ ५७ ॥ निर्भया निर्जरा राजन्नूचुर्दुःखं स्वकीयकम् ॥ देवा ऊचुः ॥ नाज्ञातं किंचिदप्यत्र भवत्याऽस्ति जगत्त्रये ॥ ५८ ॥ सर्वज्ञया सर्वसाक्षिरूपिण्या परमेश्वरि ॥ तारकेणासुरेन्द्रेण पीडिताः स्मो दिवानिशम् ॥ ५९ ॥ शिवाङ्गजाद्वधस्तस्य निर्मितो ब्रह्मणा शिवे ॥ शिवाङ्गना तु नैवास्ति जानासि त्वं महेश्वरि ॥६०॥ सर्वज्ञपुरतः किं वा वक्तव्यं पामरैर्जनैः ॥ एतदुद्देशतः प्रोक्तमपरं तर्कयाम्बिके ॥ ६१ ॥ सर्वदा चरणांभोजे भक्तिः स्यात्तव निश्चला ॥ प्रार्थनीयमिदं मुख्यमपरं देहहेतवे ॥ ६२ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रोवाच परमेश्वरी ॥ मम शक्तिस्तु या गौरी भविष्यति हिमालये ॥६३॥ शिवाय सा प्रदेया स्यात्सा वः कार्यं विधास्यति ॥ भक्तिर्मच्चरणांभोजे भूयाद्युष्माकमादरात् ॥ ६४ ॥ हिमालयो हि मनसा मामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ ततस्तस्य गृहे जन्म मम प्रियकरं मतम् ॥ ६५ ॥ व्यास उवाच ॥ हिमालयोऽपि तच्छ्रुत्वाऽत्यनुग्रहकरं वचः ॥ बाष्पैः संरुद्धकंठाक्षो महाराज्ञीं वचोऽब्रवीत् ॥ ६६ ॥ महत्तरं तं कुरुषे यस्यानुग्रहमिच्छसि ॥

मातासे कह ही क्या सकते हैं ? हे अम्बिके ! हे देवी ! तुम्हारे चरणकमलमें हमारी अविचल भक्ति हो। देहके रक्षार्थ दूसरी प्रार्थना यही है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! देवताओंकी बात सुनकर भगवती परमेश्वरीने कहा—हे देवताओ ! मेरी शक्ति जो 'गौरी' नामसे विख्यात है, हिमालयके घर प्रकट होगी ॥ ६३ ॥ आप लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे भगवान् शिवके साथ उसका सम्बन्ध हो जाय। वही आप लोगोंका कार्य सिद्ध करेगी। शर्त यह है कि उसके चरणकमलमें आदरपूर्वक आप लोगोंकी भक्ति बनी रहे ॥ ६४ ॥ हिमालयका भी कर्तव्य है कि भक्तिके साथ मनसे मेरी उपासना करें। तब उनके घर गौरीका जन्म, जो मुझे अत्यन्त रुचिकर है, अवश्य होगा ॥ ६५ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! हिमालय भी परमेश्वरीके इस अत्यन्त कृपापूर्ण वचनको सुन रहे थे। वे गद्गदकण्ठ हो रहे थे। उनकी आँखें डबडबा आयी थीं। वे देवीके प्रति बोले—॥ ६६ ॥ 'हे जगदम्बे ! मुझ जड़पर तुम्हारी कितनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृपा है, जो मुझे एक महान् व्यक्ति बनानेके प्रयत्नमें लगी हो। नहीं तो कहाँ मैं एक जड़ पर्वत और कहाँ तुम सत् एवं चिन्मयी भगवती ॥ ६७ ॥ हे अनघे! सैकड़ों जन्मोंके अश्वमेध यज्ञ तथा ध्यानसे सम्पन्न होकर भी मैं तुम्हारा पिता बन सकूँ—यह बिल्कुल असम्भव है ॥ ६८ ॥ यह तो तुम्हारी अहैतुकी कृपा है। अब जगत्में मेरा सुयश फैल जायगा। लोग कहेंगे कि जगदम्बा हिमालयकी पुत्री हैं। अहो, ये बड़े ही धन्य और भाग्यशाली हैं ॥ ६९ ॥ जिनके उदरमें करोड़ों ब्रह्माण्ड विराजमान हैं, वे ही भगवती जगदम्बा जिसके घर कन्या-रूपसे प्रकट हुई हैं, उसकी तुलना जगत्में कौन कर सकता है? ॥ ७० ॥ मेरे पितर भी ऐसे पुण्यात्मा हैं, जिनके वंशमें मुझ-जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ। मैं नहीं जानता कि उनके रहनेके लिए कौन-सा श्रेष्ठ स्थान बना है ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार तुमने स्नेहपूर्ण कृपाके वश होकर मुझे गौरीके पिता होनेका सुअवसर प्रदान किया, वैसे ही संपूर्ण वेदान्तके सिद्धान्तभूत अपने स्वरूपका भी वर्णन करो ॥७२॥ हे परमेश्वरी! मुझे भक्तियुक्त योग और स्मृतिसम्मत ज्ञानका प्राप्त होना भी तुम्हारी ही कृपापर निर्भर है ॥७३॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! हिमालयकी

नोचेत्क्वाहं जडः स्थाणुः क्व त्वं सच्चित्स्वरूपिणी ॥ ६७ ॥ असंभाव्यं जन्मशतैस्त्वत्पितृत्वं ममानघे ॥ अश्वमेधादिपुण्यैर्वा पुण्यैर्वा तत्समाधिजैः ॥ ६८ ॥ अद्य प्रपंचे कीर्तिः स्याज्जगन्माता सुताऽभवत् ॥ अहो हिमालयस्यास्य धन्योऽसौ भाग्यवानिति ॥ ६९ ॥ यस्यास्तु जठरे संति ब्रह्मां-डानां च कोटयः ॥ सैव यस्य सुता जाता को वा स्यात्तत्समो भुवि ॥ ७० ॥ न जानेऽस्मत्पितृणां किं स्थानं स्यान्निर्मितं परम् ॥ एतादृशानां वासाय येषां वंशेऽस्ति मादृशः ॥ ७१ ॥ इदं यथा च दत्तं मे कृपया प्रेमपूर्णया ॥ सर्ववेदान्तसिद्धं च त्वद्रूपं ब्रूहि मे तथा ॥ ७२ ॥ योगं च भक्तिसहितं ज्ञानं च श्रुतिसम्मतम् ॥ वदस्व परमेशानि त्वमेवाहं यतो भवेः ॥७३॥ व्यास उवाच॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नमुखपंकजा ॥ वक्तु-मारभताम्बा सा रहस्यं श्रुतिगूहितम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच॥ शृण्वन्तु निर्जराः सर्वे व्याहरंत्या वचो मम ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मद्रूपत्वं प्रपद्यते ॥ १ ॥ अहमेवास पूर्वं तु तान्यत्किंचिन्न-गाधिप ॥ तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मैकनामकम् ॥ २ ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम् ॥ तस्य काचित्स्वतः सिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता ॥ ३ ॥ न सती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः ॥ एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूताऽस्ति सर्वदा ॥ ४ ॥ पातकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव

यह बात सुनकर भगवती जगदम्बाका मुखकमल प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो गया। जिससे वे श्रुतियोंमें छिपे हुए रहस्यका प्रतिपादन करनेको उद्यत हो गयीं ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

(हिमालयको भगवतीका ज्ञानोपदेश) श्रीदेवी बोलीं—मैं कह रही हूँ, समस्त देवगण मेरी बात सुन लें। इसके श्रवणमात्रसे मेरा सारूप्य प्राप्त हो जाता है ॥ १ ॥ हे पर्वतराज हिमालय! पहले केवल मैं ही थी। दूसरी किसी वस्तुकी सत्ता नहीं थी। उस समय मेरा रूप सत्, चित् एवं आनन्दमय परब्रह्म था ॥ २ ॥ वह रूप अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य, अनौपम्य और अनामय है। उसी रूपसे कोई एक शक्ति स्वयं प्रकट हो गयी। उसका 'माया' नाम पड़ गया ॥ ३ ॥ वह माया न सती थी और न असती। इस सती और असतीके भेदसे शून्य वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोई एक विलक्षण वस्तु थी ॥ ४ ॥ अग्निमें जो प्रकाश और चन्द्रमामें जो चन्द्रिका है, वह मेरी शक्तिका ही अंश है। उस शक्तिको निश्चितरूपसे मेरी सहचरी समझना चाहिये ॥ ५ ॥ जीवोंका जीना और मरना उसी शक्तिके कर्म हैं। प्रलयके समय कुछ भी भेद नहीं रहा। सबके सब उसी शक्तिमें समा गये ॥ ६ ॥ अपनी उस शक्तिके सहयोगसे मैं बीजरूपमें परिणत हुई। वह शक्ति ही उस समय मेरा आधार और आवरण थी। इसीलिए उसका कुछ दोष मुझमें भी आ गया ॥ ७ ॥ मेरा बीजात्मक रूप चैतन्य ब्रह्मके सहयोगसे निमित्त तथा प्रपंचके परिणामसे 'समवायि कारण' कहलाने लगा ॥ ८ ॥ कुछ लोग शक्तिको 'तप' कहते हैं तथा दूसरे लोग 'तम' एवं 'जड़' भी कहा करते हैं। शैव-शास्त्रके तत्त्वदर्शी पुरुषोंने उस शक्तिके विषयमें परस्पर परामर्श करके कहा कि इसे 'ज्ञान', 'माया', 'प्रकृति', 'शक्ति' अथवा 'अजा' भी कह सकते हैं ॥९॥ शैव सिद्धांतका चिंतन करनेवाले कुछ अन्य महापुरुषोंने कहा कि नहीं, यह 'अविद्या' कहलाती है ॥१०॥ इस प्रकार वेदोंमें उसका विविध नामोंसे वर्णन किया गया। उस शक्तिमें जड़ता और ज्ञाननाशकता स्पष्ट होनेसे उसका 'असतो' नाम भी युक्तिसंगत हो गया।

दीधितिः ॥ चन्द्रस्य चन्द्रिकैवेयं ममेयं सहजा ध्रुवा ॥ ५ ॥ तस्यां कर्माणि जीवानां जीवाः कालाश्च संचरे ॥ अभेदेन विलीनाः स्युः सुषुप्तौ व्यवहारवत् ॥ ६ ॥ स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता ॥ स्वाधारावरणात्तस्या दोषत्वं च समागतम् ॥ ७ ॥ चैतन्यस्य समायोगान्निमित्तत्वं च कथ्यते ॥ प्रपञ्चपरिणामाच्च समवायित्वमुच्यते ॥ ८ ॥ केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे ॥ ज्ञानं मायां प्रधानं च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम् ॥९॥ विमर्श इति तां प्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः ॥ अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिन्तकाः ॥१०॥ एवं नानाविधानि स्युर्नामानि निगमादिषु ॥ तस्या जडत्वं दृश्यत्वाज्ज्ञाननाशात्ततोऽसती ॥ ११ ॥ चैतन्यस्य न दृश्यत्वं दृश्यत्वे जडमेव तत् ॥ स्वप्रकाशं च चैतन्यं न परेण प्रकाशितम् ॥ १२ ॥ अनवस्थादोषसत्त्वान्न स्वेनापि प्रकाशितम् ॥ कर्मकर्तृविरोधः स्यात्तस्मात्तद्दीपवत्स्वयम् ॥ १३ ॥ प्रकाशमानमन्येषां भासकं विद्धि पर्वत ॥ अतएव च नित्यत्वं सिद्धसंवित्तनोर्मम ॥ १४ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौ दृश्यस्य व्यभिचारतः ॥ संविदो व्यभिचारश्च नानुभूतोऽस्ति कर्हिचित् ॥ १५ ॥ यदि तस्याप्यनुभवस्तर्ह्ययं येन साक्षिणा ॥ अनुभूतः स एवात्र शिष्टः संविद्वपुः पुरा ॥ १६ ॥ अतएव च नित्यत्वं प्रोक्तं सच्छा-

॥ ११ ॥ चैतन्य दृश्य नहीं होता। उसमें यदि दृश्यता आ जाय तो उसे जड़ कहेंगे। क्योंकि चैतन्य स्वयं प्रकाश है। वह किसी दूसरेसे प्रकाशित नहीं होता ॥ १२ ॥ यदि कहें कि प्रकाश ही प्रकाशको प्रकाशित करता है तो ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि इसमें अनवस्था दोष आ जायगा। कर्म और कर्ता—ये परस्परविरोधी धर्म एकमें कैसे आ सकते हैं? अतएव मेरा रूप दीपकके समान स्वयंप्रकाश है ॥ १३ ॥ हे पर्वत! प्रकाशक दूसरोंको व्यक्त करनेमें उपयोगी होता है—यह समझ लो। अतएव मेरे संवित् शरीरको नित्यता स्पष्ट सिद्ध है। यदि दृश्य मानें तो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें व्यभिचार-दोष आ जायगा। संवित् और व्यभिचारका कहीं एकमें हो अनुभव होना बिल्कुल असम्भव है ॥१४॥१५॥ यदि संवित्को अनुभवसिद्ध मानें तो जिस साक्षीसे वह अनुभूत होता है, वह साक्षी ही विशिष्ट माना जायगा और वही संवित् अर्थात् ज्ञानमय शरीरका रूप होगा ॥१६। अतएव उत्तम शास्त्रवेत्ता उसे नित्य कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरेका प्रेमभाजन होनेसे उसमें आनन्दरूपता भी आ जाती है ॥ १७ ॥ पहले मेरा अभाव था, सो नहीं । मैं तब भी थी । प्रेमीजन मेरे आस्पद थे । अन्य सभी वस्तुयें मिथ्या हैं । मैं उनका साथ नहीं देती—यह स्पष्ट है ॥ १८ ॥ अतएव मेरे रूपमें अपरिच्छिन्नता भी सिद्ध हो जाती है । ज्ञान कभी आत्माका धर्म नहीं होता । अन्यथा उसमें जड़ता आ सकती है ॥ १९ ॥ ज्ञानके किसी एक अंशमें जड़ता छिपी है—उसको न कभी देखा गया और न देखा जा सकता है । ऐसे ही चिद्धर्मके विषयमें भी समझना चाहिये । एक चिद्धर्ममें दूसरा चित् क्या रहेगा ? ॥२०॥ इससे सिद्ध होता है कि आत्मा ज्ञानरूप, सुखरूप, सत्य, पूर्ण, असंग और द्वैतरहित है ॥२१॥ वही आत्मा काम एवं कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली मायाके साथ होकर पूर्व अनुभूत संस्कार, काल-कर्मके विपाक एवं तत्त्वके अज्ञानवश सृष्टि करनेके विचारसे शरीर धारण कर लेता है । हे पर्वतराज ! यह मैंने अबुद्धिपूर्व सृष्टिक्रम बतलाया है ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे हिमालय !

त्त्वकोविदैः ॥ आनन्दरूपता चास्याः परप्रेमास्पदत्वतः ॥ १७ ॥ मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनि स्थितम् ॥ सर्वस्यान्यस्य मिथ्यात्वादसंगत्वं स्फुटं मम ॥१८॥ अपरिच्छिन्नताऽप्येवमत एव मता मम ॥ तच्च ज्ञानं नात्मधर्मो धर्मत्वे जडतात्मनः ॥१९॥ ज्ञानस्य जडशेषत्वं न दृष्टं न च संभवि ॥ चिद्धर्मत्वं तथा नास्ति चितश्चिन्न हि विद्यते ॥ २० ॥ तस्मादात्मज्ञानरूपा सुखरूपश्च सर्वदा ॥ सत्यः पूर्णोऽप्यसंगश्च द्वैतजालविवर्जितः ॥ २१ ॥ स पुनः कामकर्मादियुक्तया स्वीयमायया ॥ पूर्वानुभूतसंस्कारात्कालकर्मविपाकतः ॥ २२ ॥ अविवेकाच्च तत्त्वस्य सिसृक्षावान्प्रजायते ॥ अबुद्धिपूर्वः सर्गोऽयं कथितस्ते नगाधिप ॥ २३ ॥ एतद्धि यन्मया प्रोक्तं मम रूपमलौकिकम् ॥ अव्याकृतं तदव्यक्तं मायाशबलमित्यपि ॥ २४ ॥ प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु सर्वकारणकारणम् ॥ तत्त्वनामादिभूतं च सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ २५ ॥ सर्वकर्मघनीभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् ॥ ह्रींकारमन्त्रवाच्यं तदादितत्त्वं तदुच्यते ॥ २६ ॥ तस्मादाकाश उत्पन्नः शब्दतन्मात्ररूपकः ॥ भवेत्स्पर्शात्मको वायुस्तेजोरूपात्मकं पुनः ॥ २७ ॥ जलं रसात्मकं पश्चात्ततो गंधात्मिका धरा ॥ शब्दैकगुण आकाशो वायुः स्पर्शरवान्वितः ॥ २८ ॥ शब्दस्पर्शरूपगुणं तेज इत्युच्यते बुधैः ॥ शब्दस्पर्शरूपरसैरापो वेदगुणाः स्मृताः ॥ २९ ॥ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धैः पञ्चगुणा धरा ॥ तेभ्योऽभवन्महत्सूत्रं यल्लिंगं परिचक्षते ॥ ३० ॥ सर्वात्मकं तत्संप्रोक्तं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ॥ अव्यक्तं कारणो देहः स चोक्तः पूर्वमेव हि ॥ ३१ ॥ यस्मिञ्जगद्बीजरूपं स्थितं लिंगोद्भवो यतः ॥ ततः

मैंने अपने जिस रूपका परिचय दिया है, वह रूप अलौकिक, अव्याकृत, अव्यक्त तथा मायाशबल भी है ॥ २४ ॥ समस्त शास्त्रोंमें इसे सम्पूर्ण कारणोंका कारण, तत्त्वोंका आदि तथा सच्चिदानन्दविग्रह बताया जाता है ॥२५॥ कहते हैं कि यह दिव्य रूप सम्पूर्ण कर्मोंका समुदाय, इच्छापूर्वक ज्ञानका आश्रय तथा ह्रींकार-मन्त्रवाच्य आदि तत्त्व है ॥२६॥ मेरे इसी शब्दसे शब्दतन्मात्रक आकाश, स्पर्शतन्मात्रक वायु तथा रूपतन्मात्रक तेजकी क्रमशः उत्पत्ति हुई है ॥२७॥ इसके बाद रसात्मक जल उत्पन्न हुआ । फिर गन्धवाली पृथ्वी प्रकट हुई । आकाशमें केवल एक गुण हुआ—शब्द । स्पर्श और शब्द ये दो गुण वायुमें हुए ॥२८॥ विज्ञ पुरुष शब्द, स्पर्श और रूप-इन तीन गुणोंसे युक्त तेजको बताते हैं । शब्द, स्पर्श, रूप और रस—वे चार गुण जलके कहे गये हैं ॥२९॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध-इन पाँच गुणोंसे युक्त पृथ्वी हुई । उन्हींसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ, जिसे लिङ्ग कहते हैं ॥३०॥ यही आत्माका सूक्ष्म शरीर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है । इसे सर्वात्मक कहते हैं । जिसमें यह जगत् बीजरूपसे स्थित रहता है, जिससे लिङ्ग-देहकी उत्पत्ति हुई है एवं जिसे पहले कह चुके हैं, वह अव्यक्त परब्रह्मका कारणशरीर है ॥ ३१ ॥ तदनन्तर पञ्चीकरणमार्गसे पाँच स्थूल भूत उत्पन्न हुए । अब उनकी स्थितिका वर्णन करते हैं । उपर्युक्त पाँचों भूतोंमें चार-चार भाग पृथक् किये गये । सबका एक इतर अंश था ही, उसे जोड़ देनेपर वे सभी पाँच-पाँच भागवाले बन गये ॥ ३२–३४ ॥ कार्यरूपमें परिणत होकर वह विराट् देह बन गया । यही परमात्माका स्थूल देह है । पाँचों भूतोंके सत्त्वांशसे श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं ॥३५॥ हे राजेन्द्र ! वे सभी इन्द्रियाँ परस्पर सम्बद्ध रहीं । वृत्ति-भेदसे चार प्रकारवाला एक अन्तःकरण उत्पन्न हुआ ॥३६॥ जब संकल्प-विकल्पकी उलझनमें उलझा रहता हैं, तब अन्तःकरणको 'मन' कहते हैं । जिस समय संशयरहित सुनिश्चित वस्तु जाननेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है, तब अन्तःकरण 'बुद्धि' हो जाता है ॥३७॥ अनुसंधान-वृत्तिके आनेपर अन्तःकरणकी 'चित्त' संज्ञा होती है और स्वस्वरूपसे अहंकारवृत्ति उत्पन्न होनेपर इसी अन्तःकरणको 'अहङ्कार' कहते हैं ॥ ३८ ॥ फिर प्रत्येक पञ्चभूतमें जो राजस अंश थे,

स्थूलानि भूतानि पञ्चीकरणमार्गतः ॥ ३२ ॥ पञ्चसंख्यानि जायंते तत्प्रकारस्त्वथोच्यते ॥ पूर्वोक्तानि च भूतानि प्रत्येकं विभजेद्द्विधा ॥ ३३ ॥ एकैकं भागमेकस्य चतुर्धा विभजेद्द्विरे ॥ स्वस्वेतरद्वितीयांशे योजनात्पञ्च पञ्च ते ॥ ३४ ॥ तत्कार्यं च विराड्देहः स्थूलदेहोऽयमात्मनः ॥ पञ्चभूत-स्थसत्त्वांशैः श्रोत्रादीनां समुद्भवः ॥ ३५ ॥ ज्ञानेन्द्रियाणां राजेन्द्र प्रत्येकं मिलितैस्तु तैः ॥ अन्तःकरणमेकं स्याद्वृत्तिभेदाच्चतुर्विधम् ॥ ३६ ॥ यदा तु संकल्पविकल्पकृत्यं तदा भवेत्तन्मन इत्यभिख्यम् ॥ स्याद् बुद्धिसंज्ञं च यदा प्रवेत्ति सुनिश्चितं संशयहीनरूपम् ॥ ३७ ॥ अनुसंधानरूपं तच्चित्तं च परिकीर्तितम् ॥ अहंकृत्यात्मवृत्त्या तु तदहंकारतां गतम् ॥ ३८ ॥ तेषां रजोंशैर्जातानि क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि च ॥ प्रत्येकं मिलितैस्तैस्तु प्राणो भवति पंचधा ॥ ३९ ॥ हृदि प्राणो गुदेऽपानो नाभिस्थस्तु समानकः ॥ कंठदेशेऽप्युदानः स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥ ४० ॥ ज्ञानेन्द्रियाणि पंचैव पंच कर्मेंद्रियाणि च ॥ प्राणादिपञ्चकं चैव धिया च सहितं मनः ॥ ४१ ॥ एतत्सूक्ष्मं शरीरं स्यान्मम लिंगं यदुच्यते ॥ तत्र या प्रकृतिः प्रोक्ता सा राजन्द्विविधा स्मृता ॥ ४२ ॥ सत्त्वात्मिका तु माया स्यादविद्या गुणमिश्रिता ॥ स्वाश्रयं या तु संरक्षेत्सा मायेति निगद्यते ॥ ४३ ॥ तस्यां यत्प्रतिबिंबं स्याद्बिंबभूतस्य चेशितुः ॥ स ईश्वरः समाख्यातः स्वाश्रयज्ञानवान्परः ॥ ४४ ॥ सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वानुग्रहकारकः ॥ अविद्यायां तु

उनसे क्रमशः विभिन्न कर्मेंद्रियोंकी उत्पत्ति हुई । प्रत्येक इन्द्रियका परस्पर सम्बन्ध हो गया । इसके बाद उन्हींके राजस अंशसे पाँच प्रकारके प्राण उत्पन्न हुए ॥ ३९ ॥ 'प्राण' हृदयमें, 'अपान' गुदामें, 'समान' नाभिमें, 'उदान' कण्ठमें तथा 'व्यान' सम्पूर्ण शरीरमें इस प्रकार पाँचों वायु विराजमान हुए ॥ ४० ॥ इस तरह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ तथा बुद्धि सहित मन—ये सत्रह सूक्ष्म शरीरके रूपमें परिणत हो गये । यही सूक्ष्मशरीर लिङ्गशरीर कहलाता है । यों कारण, सूक्ष्म और लिङ्गशरीरके रूपका वर्णन करके अब जीव और ईश्वरके विभागका कारण कहा जाता है । हे राजन् ! उस समय जो प्रकृति नामसे विख्यात थी, उसके भी दो भेद हैं—॥ ४१ ॥ 'माया' और 'अविद्या' । शुद्ध सत्त्वप्रधान माया है और मलिन-गुणप्रधान अविद्या । जो अपने आश्रयमें आनेवालेकी रक्षा करती है, उसे माया कहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ उस शुद्ध-सत्त्वप्रधाना मायाके साथ जो स्थित रहता है, वही 'ईश्वर' कहलाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। उस ईश्वरको सबकी पूरी जानकारी रहती है ॥ ४४ ॥ वह सर्वज्ञ, सबका उत्पादक तथा सबपर कृपा करनेवाला है। हे पर्वतराज! मलिन सत्त्वप्रधान अविद्यापर जो ईश्वरका प्रतिबिम्ब पड़ा, उसे 'जीव' कहते हैं। जीवमें सुख और दुःखका भाग रहा करता है। पूर्वोक्त तीन शरीरोंसे ईश्वर और जीव—दोनोंका नित्य सम्बन्ध है। ये दोनों तीन नामके अभिमान होनेसे तीन कहलाते हैं। जैसे—देहाभिमानी जीव 'प्राज्ञ' कहलाता है, सूक्ष्म-देहाभिमानी 'तैजस' और स्थूल-देहाभिमानी 'विश्व' ॥ ४५–४७ ॥ इसी प्रकार ईश, सूत्र और विराट्भेदसे ईश्वर भी तीन नामसे प्रसिद्ध है। अर्थात् जीव 'व्यक्तिरूप' है और द्वितीय यानी ईश्वर 'समष्टिदेहाभिमानी' माना जाता है। वही सर्वेश्वर स्वयं जीवोंपर कृपा करनेके लिए नाना भोगोंके आश्रयभूत इस विविध जगत्को उत्पन्न करता है। हे राजन्! वह ईश्वर मेरी ही शक्तिसे प्रेरित होकर निरन्तर कार्य करता रहता है ॥ ४८–५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

यत्किंचित्प्रतिबिंबं नगाधिप ॥ ४५ ॥ तदेव जीवसंज्ञं स्यात्सर्वदुःखाश्रयं पुनः ॥ द्वयोरपीह संप्रोक्तं देहत्रयमविद्यया ॥ ४६ ॥ देहत्रयाभिमानाच्चाप्यभून्नामत्रयं पुनः ॥ प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात्सूक्ष्मदेही तु तैजसः ॥ ४७ ॥ स्थूलदेही तु विश्वाख्यस्त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ एवमीशोऽपि संप्रोक्त ईशसूत्रविराट्पदैः ॥ ४८ ॥ प्रथमो व्यष्टिरूपस्तु समष्ट्यात्मा परः स्मृतः ॥ स हि सर्वेश्वरः साक्षाज्जीवानुग्रहकाम्यया ॥ ४९ ॥ करोति विविधं विश्वं नानाभोगाश्रयं पुनः ॥ मच्छक्तिप्रेरितो नित्यं मयि राजन्प्रकल्पितः ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ देव्युवाच ॥ मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् ॥ साऽपि मत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः ॥ १ ॥ व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता ॥ तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् ॥ २ ॥ साऽहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदंतः प्रविशाम्यहम् ॥ माया कर्मादिसहिता गिरे प्राणपुरःसरा ॥ ३ ॥ लोकान्तरगतिर्नोचेत्कथं स्यादिति हेतुना ॥ यथा यथा भवंत्येव मायाभेदास्तथा तथा ॥ ४ ॥ उपाधिभेदाद्भिन्नाऽहं घटाकाशादयो यथा ॥ उच्चनीचादिवस्तूनि भासयन्भास्करः सदा ॥ ५ ॥ न दुष्यति तथैवाहं दोषैर्लिप्ता कदापि न ॥ मयि बुद्ध्यादिकर्तृत्वं मध्यस्यैवापरे जनाः ॥ ६ ॥ वदंति चात्मा कर्मेति विमूढा न सुबुद्धयः ॥ अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायाया भेदतस्तथा ॥ ७ ॥ जीवेश्वरविभागश्च कल्पितो माययैव

(भगवतीका विराटरूप दिखाना) देवीने कहा—हे हिमालय! मेरी मायाशक्तिने सम्पूर्ण चराचर जगत्की रचना की है। परमार्थदृष्टिसे विचार किया जाय तो वह माया भी मुझसे कोई भिन्न वस्तु नहीं है ॥ १ ॥ व्यवहारकी दृष्टिसे यही विद्या एवं माया नामसे प्रसिद्ध है। तत्त्वदृष्टिसे पृथक् कुछ नहीं है। दोनों तत्त्व एक ही हैं ॥ २ ॥ तत्त्व मैं हूँ, जो विलीन हो जाती हूँ। हे पर्वतराज! अपने माया एवं विद्यासंज्ञक कर्मके साथ प्राणोंको आगे करके मेरा प्रवेश होता है ॥३॥ कारण यह है कि यदि मैं ऐसा न करूँ तो प्राणियोंके जन्मने और मरनेकी परम्परा चालू नहीं रहे। मायाके भेदानुसार मेरे विभिन्न कार्य होते हैं ॥ ४ ॥ जैसे एक ही आकाश घटाकाश और महाकाश आदि अनेक नामोंसे व्यवहृत होता है, वैसे ही मैं एक होती हुई भी उपाधिभेदसे भिन्न हूँ। जिस प्रकार सूर्य उत्तम और निकृष्ट सभी वस्तुओंको प्रकाशित करता है, परन्तु वह दूषित नहीं होता। वैसे ही जीव और ईश्वरका विभाग माया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वारा कल्पित है। घटाकाश और महाकाशकी भाँति जीवात्मा और परमात्माके भेदको भी काल्पनिक मानना चाहिये ॥ ५-८ ॥ जैसे मायाके प्रभावसे ही जीव अनेक हैं, न कि अपनी स्वतन्त्रतासे। वैसे ही मायाकी अधीनता स्वीकार करनेवाले ब्रह्मादि शासकोंमें भी विविधताका भान होता है। देह और इन्द्रिय आदि संघातरूपी वासनाके भेदको उत्पन्न करनेवाली अविद्या जीवके भेदमें कारण है। हे हिमालय ! गुणसम्बन्धी वासनाके भेदको जो विभाजित करती है, वह माया है। हे धरणीधर ! मुझमें यह संसार ओतप्रोत है ॥९-१२॥ क्योंकि देहाभिमानी ईश्वर मैं हूँ। लिङ्गदेहाभिमानी विष्णु एवं स्थूलदेहाभिमानी ब्रह्मा मैं हूँ। विष्णु, रुद्र, गौरी, सरस्वती और लक्ष्मी मेरे रूप हैं ॥ १३ ॥ मैं सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्रगण हूँ। पशु, पक्षी, चाण्डाल, तस्कर, व्याध, क्रूरकर्मी, महाजन, स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये सब कुछ मैं ही हूँ—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १४ । १५ ॥ जो कोई भी वस्तु जहाँ भी देखने एवं

तु ॥ घटाकाशमहाकाशविभागः कल्पितो यथा ॥ ८ ॥ तथैव कल्पितो भेदो जीवत्मपरमात्मनोः ॥ यथा जीवबहुत्वं च माययैव न च स्वतः ॥ ९ ॥ तथेश्वरबहुत्वं च मायया न स्वभावतः ॥ देहन्द्रियादिसंघातवासनाभेदभेदिता ॥१०॥ अविद्या जीवभेदस्य हेतुर्नान्यः प्रकीर्तितः ॥ गुणानां वासना-भेदभेदिता या धराधर ॥ ११ ॥ माया सा परभेदस्य हेतुर्नान्यः कदाचन ॥ मयि सर्वमिदं प्रोतमोतं च धरणीधर ॥ १२ ॥ ईश्वरोऽहं च सूत्रात्मा विराडात्माऽहमस्मि च ॥ ब्रह्माऽहं विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी ॥ १३ ॥ सूर्योऽहं तारकाश्चाहं तारकेशस्तथाऽस्म्यहम् ॥ पशुपक्षिस्वरूपाऽहं चांडालोऽहं च तस्करः ॥१४॥ व्याधोऽहं क्रूरकर्माऽहं सत्कर्माऽहं महाजनः ॥ स्त्रीपुन्नपुंसकाकारोऽप्यहमेव न संशयः ॥१५॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्याहं सर्वदा स्थिता ॥ १६ ॥ न तदस्ति मया त्यक्तं वस्तु किंचिच्चराचरम् ॥ यद्यस्ति चेत्तच्छून्यं स्याद्वन्ध्यापुत्रोपमं हि तत् ॥ १७ ॥ रज्जुर्यथा सर्पमालाभेदैरेका विभाति हि ॥ तथैवेशादिरूपेण भाम्यहं नात्र संशयः ॥ १८ ॥ अधिष्ठानातिरेकेण कल्पितं तन्न भासते ॥ तस्मान्मत्सत्तयैवैतत्सत्तावान्नान्यथा भवेत् ॥ १९ ॥ हिमालय उवाच ॥ यथा वदसि देवेशि समष्ट्यात्मवपुस्त्विदम् ॥ तथैव द्रष्टुमिच्छामि यदि देवि कृपा मयि ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवाः सविष्णवः ॥ ननन्दुर्मुदितात्मानः पूजयंतश्च

सुननेमें आती है—चाहे वह भीतर हो या बाहर—उन सबमें व्यापकरूपसे सदा मैं ही स्थित रहती हूँ ॥१६॥ चराचर कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो मुझसे अलग हो। यदि मुझसे रहित मानें तो उसके साथ वन्ध्यापुत्रका उदाहरण संगत हो सकता है ॥१७॥ जिस प्रकार एक ही रस्सी भ्रमवश सर्प अथवा मालाके रूपमें प्रतीत होती है, वस्तुतः वह है एक रस्सी ही। वैसे ही ईशादिरूपसे मेरा केवल भान होता है—इसमें संदेह नहीं करना चाहिए ॥ १८ ॥ अधिष्ठानकी सत्ताके अतिरिक्त कल्पित वस्तुका भान नहीं होता। अतएव मेरी सत्तासे ही यह चराचर जगत् सत्तावान् है, अन्यथा यह कुछ नहीं है ॥१९॥ हिमालयने कहा—हे देवेशि ! तुम अपने इस सर्वाभिमानी विराट् रूपका जैसा वर्णन करती हो, वैसे ही रूपको मैं देखना चाहता हूँ। मुझपर कृपा हो तो दिखा दो ॥२०॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! हिमालयकी यह बात सुनकर संपूर्ण देवताओंका हृदय आनन्दसे भर गया। वे उनके बचनका आदर करते हुए बोले—'हम सब भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यही चाहते हैं।' ॥ २१ ॥ तब देवताओंकी इच्छा जानकर भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली भगवती शिवाने अपना रूप सबके सामने प्रकट किया ॥२२॥ फिर तो महादेवीके सर्वोत्तम विराट्रूपका देवता दर्शन करने लगे। उन्होंने देखा—आकाश देवीका मस्तक था। चन्द्रमा और सूर्य नेत्र थे॥२३॥ दिशाएँ कानके रूपमें परिणत थीं। वेद वाणी और वायु प्राण थे। विश्व हृदय था। पृथ्वी जाँघ थी ॥२४॥ पाताल नाभि, ज्योतिश्चक्र छाती, महर्लोक ग्रीवा और जनलोक मुख था ॥ २५ ॥ सत्यलोकसे नीचे रहनेवाला तपोलोक ललाट था। इन्द्रप्रभृति बाँह थे। शब्द श्रोत्र था ॥ २६ ॥ विद्वान् पुरुषोंका कथन है कि अश्विनीकुमार उस विराट्रूपिणी भगवतीकी नासिका थे। गंध घ्राण-इन्द्रिय था। अग्नि मुख था। दिन और रात दोनों पलकें थीं ॥ २७ ॥ ब्रह्मा भौंहके स्थानपर थे। जल तालु था। रस जिह्वा बना था। यमराज दाढ़ थे ॥ २८ ॥ उन महेश्वरीके दाँत स्नेह थे, माया हँसी और सृष्टि कटाक्ष थे। लज्जा ओंठ थी।

तद्वचः ॥ २१ ॥ अथ देवमतं ज्ञात्वा भक्तकामदुघा शिवा ॥ अदर्शयन्निजं रूपं भक्तकामप्रपूरणी ॥ २२ ॥ अपश्यंस्ते महादेव्या विराड्रूपं परात्परम् ॥ द्यौर्मस्तकं भवेद्यस्य चंद्रसूर्यौ च चक्षुषी ॥ २३ ॥ दिशः श्रोत्रे वचो वेदाः प्राणो वायुः प्रकीर्तितः ॥ विश्वं हृदयमित्याहुः पृथिवी जघनं स्मृतम् ॥ २४ ॥ नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिश्चक्रमुरःस्थलम् ॥ महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनलोको मुखं स्मृतम् ॥ २५ ॥ तपोलोको रराटिस्तु सत्यलोकादधः स्थितः॥ इन्द्रादयो बाहवः स्युः शब्दः श्रोत्रं महेशितुः ॥२६॥ नासत्यदस्रौ नासे स्तौ गंधो घ्राणं स्मृतो बुधैः ॥ मुखमग्निः समाख्यातो दिवारात्री च पक्ष्मणी ॥ २७ ॥ ब्रह्मस्थानं भ्रूविजृम्भोऽप्यापस्तालुः प्रकीर्तितः ॥ रसो जिह्वा समाख्याता यमा दंष्ट्राः प्रकीर्तिताः ॥ २८ ॥ दंताः स्नेहकला यस्य हासो माया प्रकीर्तिता ॥ सर्गस्त्वपांगमोक्षः स्याद्व्रीडोर्ध्वोष्ठो महेशितुः ॥ २९ ॥ लोभः स्यादधरोष्ठोऽस्या धर्ममार्गस्तु पृष्ठभूः ॥ प्रजापतिश्च मेढ्रं स्याद्यः सृष्टा जगतीतले ॥३०॥ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थीनि देव्या महेशितुः ॥ नद्यो नाड्यः समाख्याता वृक्षाः केशाः प्रकीर्तिताः ॥ ३१ ॥ कौमारयौवनजरा वयोऽस्य गतिरुत्तमा ॥ बलाहकास्तु केशाः स्युः संध्ये ते वाससी विभोः ॥ ३२ ॥ राजञ्छ्रीजगदंबायाश्चंद्रमास्तु मनः स्मृतम् ॥ विज्ञानशक्तिस्तु हरी रुद्रोऽन्तःकरणं स्मृतम् ॥३३॥ अश्वादिजातयः सर्वाः श्रोणिदेशे स्थिता विभोः ॥ अतलादिमहालोकाः कट्यधोभागतां गताः ॥ ३४ ॥ एतादृशं महारूपं ददृशुः सुरपुंगवाः ॥ ज्वालमालासहस्राढ्यं लेलिहानं च जिह्वया ॥ ३५ ॥ दंष्ट्राकटकटारावं वमंतं

॥ २९ ॥ उस विराट् महेश्वरीका निचला ओंठ लोभ था। अधर्ममार्ग पीठ कहलाता था। जो जगत्में स्रष्टा कहलाते हैं, वे प्रजापति ब्रह्मा उस विराट्रूपके लिङ्ग थे ॥ ३० ॥ समुद्र पेट था, पर्वत हड्डी थे, उन महेश्वरीकी नाड़ियाँ नदी थीं, वृक्षोंके समूह केश थे ॥३१॥ समुचित रूपसे व्याप्त कुमार, यौवन और बुढ़ापा—ये भगवती महेश्वरीके आयु थे। मेघ सिरके बाल थे। प्रातः और सायं—दोनों संध्याएँ दो वस्त्र थीं ॥ ३२ ॥ हे राजन्! उस समय भगवती जगदम्बाका मन चन्द्रमा था। हरि विवेकशक्ति और रुद्र अन्तःकरण थे ॥ ३३ ॥ अश्वजातिसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने प्राणी हैं, वे सभी महेश्वरीके कटिभाग थे। अतलसे लेकर पातालतक जितने महान् लोक हैं, वे जगदम्बाके कमरसे नीचेके भाग थे ॥३४॥ भगवती जगदम्बाके ऐसे विराट्रूपके उन श्रेष्ठ देवताओंने दर्शन किये। उनके शरीरसे हजारों प्रकारकी ज्वालाएँ निकल रही थीं। जीभसे बार-बार ओंठ चाटते रहना उनका स्वाभाविक गुण था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ३५ ॥ दाँत कटकटाकर चीखना और आँखों द्वारा आग बरसाना कभी बन्द ही नहीं होता था। भाँति-भाँतिके आयुध उनके हाथोंमें शोभा पा रहे थे। उनका अत्यन्त शूरवीर वेष था और ब्राह्मण-क्षत्रिय उनके आहार थे ॥ ३६ ॥ वह विग्रह हजार मस्तक, हजार नेत्र और हजार चरणोंसे सम्पन्न था। करोड़ों विजलियों और सूर्योंके समान उससे प्रभा फैल रही थी ॥३७॥ अत्यन्त भयंकर वह रूप था। अत्यन्त क्रूर आकृति थी। देखते ही हृदय और नेत्र आतङ्कित हा जाते थे। उस रूपको देखकर सब देवता 'हाहाकार' मचाने लगे ॥ ३८ ॥ उनके हृदय काँप उठे। उन्हें घोर मूर्छा आ गयी। उन्हें स्मरण भी न रहा कि यह भगवती जगदम्बा हैं ॥ ३९ ॥ उस समय उन महाविभुके चारों ओर जो वेद विराजमान थे, उन्होंने मूर्छित देवताओंको चेतना प्रदान की ॥ ४० ॥ जब देवता चेतमें आ गये, तब उन्होंने धैर्य धारण करके श्रेष्ठ श्रुतिको याद किया और आँसूसे भरी हुई आँखों तथा गद्गद वाणीमें स्तुति करनेके लिए प्रस्तुत हो गये। देवता बोले—हे माता! हम तुम्हारी दीन संतान हैं। अपराध क्षमा करके हमारी रक्षा करो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे देवेशि! हम तुम्हारे रूपको देखकर डर गये हैं।

वह्निमक्षिभिः ॥ नानायुधधरं वीरं ब्रह्मक्षत्रौदनं च यत् ॥३६॥ सहस्रशीर्षनयनं सहस्रचरणं तथा ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम् ॥३७॥ भयंकरं महाघोरं हृदक्ष्णोस्त्रासकारकम् ॥ ददृशुस्ते सुराः सर्वे हाहाकारं च चक्रिरे ॥ ३८ ॥ विकंपमानहृदया मूर्च्छामापुर्दुरत्ययाम् ॥ स्मरणं च गतं तेषां जगदंबेयमित्यपि ॥३९॥ अथ ते ये स्थिता वेदाश्चतुर्दिक्षु महाविभोः ॥ बोधयामासुरत्युग्रं मूर्छातो मूर्च्छितान्सुरान् ॥४०॥ अथ ते धैर्यमालंब्य लब्ध्वा च श्रुतिमुत्तमाम् ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयना रुद्धकंठास्तु निर्जराः ॥४१॥ बाष्पगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रिरे ॥ देवा ऊचुः ॥ अपराधं क्षमस्वाम्ब पाहि दीनांस्त्वदुद्भवान् ॥ ४२ ॥ कोपं संहर देवेशि सभया रूपदर्शनात् ॥ का ते स्तुतिः प्रकर्तव्या पामरैर्निर्जरैरिह ॥ ४३ ॥ स्वस्याप्यज्ञेय एवासौ यावान्यश्च स्वविक्रमः ॥ तदर्वाग्जायमानानां कथं स विषयो भवेत् ॥४४॥ नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके ॥ सर्ववेदान्तसंसिद्धे नमो ह्रींकारमूर्तये ॥ ४५ ॥ यस्मादग्निः समुत्पन्नो यस्मात्सूर्यश्च चन्द्रमाः ॥ यस्मादोषधयः सर्वास्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ४६ ॥ यस्माच्च देवाः संभूताः साध्याः पक्षिण एव च ॥ पशवश्च मनुष्याश्च तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ४७ ॥ प्राणापानौ व्रीहियवौ तपः श्रद्धा ऋतं तथा ॥ ब्रह्मचर्यं विधिश्चैव यस्मात्तस्मै नमो नमः ॥ ४८ ॥ सप्त प्राणार्चिषो यस्मात्समिधः सप्त एव च ॥ होमाः सप्त तथा लोकास्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ४९ ॥

हम-जैसे मन्दबुद्धि देवताओं द्वारा तुम्हारी कौन-सी स्तुति सम्पन्न हो सकती है? ॥ ४३ ॥ तुम्हारा पराक्रम कितना है और कैसा है—इसे तुम स्वयं भी नहीं जानतीं। तब वह पराक्रम हम आधुनिक देवताओंके जाननेका विषय कैसे हो सकता है? ॥ ४४ ॥ भूमण्डलपर शासन करनेवाली, प्रणवरूपसे सुशोभित, समस्त वेदान्तोंसे संसिद्ध तथा ह्रींकाररूपको धारण करनेवाली हे भगवती भुवनेश्वरी! तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥४५॥ जो अग्निका उद्गमस्थान हैं, जिनसे सूर्य एवं चन्द्रमा उत्पन्न हुए हैं तथा जिनसे ओषधियोंकी उत्पत्ति हुई है, उन सर्वस्वरूपिणी भगवतीको प्रणाम है ॥ ४६ ॥ जिससे समस्त देवता, साध्य, पक्षी, पशु तथा मनुष्य उत्पन्न हुए हैं, उन सर्वात्मिका भगवतीको प्रणाम है ॥ ४७ ॥ प्राण, अपान, व्रीहि, यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधि—ये जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन भगवतीको बार-बार नमस्कार है ॥ ४८ ॥ सातों प्राण, सात समिधाएँ, सात हवन तथा सात लोक–इनका जहाँसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्थान होता है, उन सर्वस्वरूपिणी भगवतीके लिये बार-बार नमस्कार है ॥४९॥ जिनसे समुद्र, पर्वत, औषध और सम्पूर्ण रस उत्पन्न होते हैं, उन भगवतीको बार-बार नमस्कार है ॥५० यज्ञ, दीक्षा, यूप, दक्षिणा, ऋचा, यजुः तथा साममन्त्रकी रचना करनेवाली सर्वात्मा भगवतीको बार-बार नमस्कार है ॥५१॥ हे माता ! आगे, पीछे, अगल-बगल, नीचे-ऊपर चारों ओरसे तुम्हें बार-बार प्रणाम है ॥५२॥ हे देवेशि ! इस अलौकिक रूपका संवरण करके हमें वही परम सुन्दर सौम्य रूप पुनः दिखानेकी कृपा करो ॥५३॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! भगवती जगदम्बा कृपाकी वारिधि हैं । देवताओंको डरे हुए देखकर उन्होंने अपना भयंकर रूप छिपा लिया और उसी क्षण उन्हें अपने मनोहर रूपके दर्शन कराये ॥५४॥ उस समय देवी पाश, अंकुश, वर और अभय-मुद्रा धारण किये हुए थीं । उनके सभी अङ्ग कोमल थे । आँखोंमें करुणा भरी थी । कमल-जैसा मुख मुसकानसे शोभा पा रहा था ॥५५॥ जब देवताओंने देवीके उस कमनीय रूपको देखा, तब उनका सारा भय भाग गया । शान्तचित्त होकर हर्षपूर्वक गद्गद वाणीसे वे भगवतीको प्रणाम करने लगे ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे भापाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

यस्मात्समुद्रा गिरयः सिंधवः प्रचरंति च ॥ यस्मादोषधयः सर्वा रसास्तस्मै नमो नमः ॥५०॥ यस्माद्यज्ञः समुद्भूतो दीक्षा यूपश्च दक्षिणाः ॥ ऋचो यजूंषि सामानि तस्मै सर्वात्मने नमः ॥५१॥ नमः पुरस्तात्पृष्ठे च नमस्ते पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ अध ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षु मातर्भूयो नमो नमः ॥५२॥ उपसंहर देवेशि रूपमेतदलौकिकम् ॥ तदेव दर्शयास्माकं रूपं सुन्दरसुन्दरम् ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा जगदंबा कृपार्णवा ॥ संहृत्य रूपं घोरं तद्दर्शयामास सुन्दरम् ॥ ५४ ॥ पाशांकुशवराभीतिधरं सर्वांगकोमलम् ॥ करुणापूर्णनयनं मंदस्मितमुखांबुजम् ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं तदा भीतिविवर्जिताः ॥ शांतचित्ताः प्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिःस्वनाः ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ क्व यूयं मन्दभाग्या वै क्वेदं रूपं महाद्भुतम् ॥ तथापि भक्तवात्सल्यादीदृशं दर्शितं मया ॥ १ ॥ न वेदाध्ययनैर्योगैर्न दानैस्तपसेज्यया ॥ रूपं द्रष्टुमिदं शक्यं केवलं मत्कृपां बिना ॥२॥ प्रकृतं शृणु राजेन्द्र परमात्माऽत्र जीवताम् ॥ उपाधियोगात्संप्राप्तः कर्तृत्वादिकमप्युत ॥३॥ क्रियाः करोति विविधा धर्माधर्मैकहेतवः ॥ नानायोनिस्ततः प्राप्य सुखदुःखैश्च युज्यते ॥ ४ ॥ पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्मरतः सदा ॥ नानादेहान्समाप्नोति सुखदुःखैश्च युज्यते ॥ ५ ॥ घटीयंत्रवदेतस्य न विरामः कदापि हि ॥ अज्ञानमेव मूलं स्यात्ततः कामः क्रियास्ततः ॥६॥ तस्मादज्ञा-

(देवीका ज्ञानोपदेश) श्रीदेवीने कहा—कहाँ तुम जैसे मन्दभाग्य प्राणी और कहाँ यह मेरा अद्भुत रूप । तथापि भक्तवत्सलताके कारण मैंने तुम्हें यह रूप दिखला दिया है । मेरी कृपाको छोड़कर वेदाध्ययन, योग, दान, तप और यज्ञ कोई भी साधन इस रूपको दिखानेमें समर्थ नहीं हो सकता ॥ १ ॥ २ ॥ हे राजन् ! अब प्राकृत विषय अर्थात् ब्रह्मविद्याका जो उपदेश चल रहा था, उसे सुनो । परमात्मा ही उपाधिभेदसे जीवसंज्ञा प्राप्त करता है । फिर उसमें कर्तव्यगुण आ जाते हैं । धर्म-अधर्महेतुक नाना प्रकारके कर्म करनेकी उसमें क्षमता आ जाती है । जीव होनेके कारण वह नाना योनियोंमें जन्म लेकर सुख-दुःख भोगता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ फिर अपने संस्कारोंके प्रभावसे अनेक योनियों तथा कर्मोंमें उसकी प्रवृत्ति हो जाती है । फलस्वरूप उसे भाँति-भाँतिके शरीर धारण करने पड़ते हैं । सुख-दुःखसे तो कभी भी उसे छुटकारा नहीं मिलता ॥ ५ ॥ घटीयन्त्रकी भाँति इस जीवको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कभी विश्राम करनेका अवसर ही नहीं मिलता। काम और क्रियाका क्रम निरन्तर चालू रहता है। इसमें कारण केवल 'अज्ञान' ही है ॥ ६ ॥ अतः अज्ञानका नाश करनेके लिए मनुष्यको सदा प्रयत्न करना चाहिये। अज्ञानका सर्वथा मिट जाना ही जीवनकी सफलता है ॥ ७ ॥ पुरुषार्थकी समाप्ति तथा जीवन्मुक्त दशाकी उपलब्धि अज्ञाननाशपर ही निर्भर है। इसीको श्रेष्ठ विद्या कहते हैं ॥ ८ ॥ हे हिमालय! अज्ञानसे उत्पन्न कर्म अज्ञानको दूर करनेमें सफल नहीं हो सकता। क्योंकि ये परस्परविरोधी धर्म हैं। बल्कि कर्म द्वारा अज्ञान नष्ट होनेकी आशा करना ही व्यर्थ है ॥ ९ ॥ क्योंकि अनर्थदायी कर्म अकस्मात् होते रहते हैं। राग-द्वेष आदि अनर्थोंका क्रम कभी बन्द नहीं होता ॥ १० ॥ अतः मनुष्यका कर्तव्य है कि सारा प्रयत्न ज्ञानोपार्जनमें लगा दे। समुच्चयवादी कहते हैं—'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'—इस श्रुतिके अनुसार कर्म आवश्यक है ॥ ११ ॥ साथ ही कैवल्यपदकी प्राप्तिमें साधक होनेके कारण ज्ञानकी भी आवश्यकता है। हितचिन्तक कर्म ज्ञानका सहायक होकर रहता है ॥१२॥ पर उनका यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि ज्ञान-कर्म दोनों परस्परविरोधी हैं। हृदयकी ग्रन्थिका

ननाशाय यतेत नियतं नरः ॥ एतद्धि जन्मसाफल्यं यदाऽज्ञानस्य नाशनम् ॥ ७ ॥ पुरुषार्थसमाप्तिश्च जीवन्मुक्तदशाऽपि च ॥ अज्ञाननाशने शक्ता विद्यैव तु पटीयसी ॥ ८ ॥ न कर्म तज्जं नोपास्तिर्विरोधाभावतो गिरे ॥ प्रत्युताशा ज्ञाननाशे कर्मणा नैव भाव्यताम् ॥ ९ ॥ अनर्थदानि कर्माणि पुनः पुनरुशंति हि ॥ ततो रागस्ततो द्वेषस्ततोऽनर्थो महान्भवेत् ॥ १० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानं संपादयेन्नरः ॥ कुर्वन्नेवेह कर्माणीत्यतः कर्माप्यावश्यकम् ॥ ११ ॥ ज्ञानादेव हि कैवल्यमतः स्यात्तत्समुच्चयः ॥ सहायतां व्रजेत्कर्म ज्ञानस्य हितकारि च ॥ १२ ॥ इति केचिद्वदंत्यत्र तद्विरोधान्न संभवेत् ॥ ज्ञानाद्धृद्ग्रंथिभेदः स्याद्धृद्ग्रंथौ कर्मसंभवः ॥ १३ ॥ यौगपद्यं न संभाव्यं विरोधात्तु ततस्तयोः ॥ तमःप्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यं न संभवि ॥ १४ ॥ तस्मात्सर्वाणि कर्माणि वैदिकानि महामते ॥ चित्तशुद्ध्यंतमेव स्युस्तानि कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ शमो दमस्तितिक्षा च वैराग्यं सत्त्वसंभवः ॥ तावत्पर्यंतमेव स्युः कर्माणि न ततः परम् ॥१६॥ तदंते चैव संन्यस्य संश्रयेद्गुरुमात्मवान् ॥ श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च भक्त्या निर्व्याजया पुनः ॥ १७ ॥ वेदान्तश्रवणं कुर्यान्नित्यमेवमतंद्रितः ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य नित्यमर्थं विचारयेत् ॥ १८ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु जीवब्रह्मैक्यबोधकम् ॥ ऐक्ये ज्ञाते निर्भयस्तु मद्रूपो हि प्रजायते ॥ १९ ॥ पदार्थावगतिः पूर्वं वाक्यार्थावगतिस्ततः ॥ तत्पदस्य च वाक्यार्थो गिरेऽहं परि-

छेदन करनेमें 'ज्ञान' साधक है और ग्रन्थिके बननेमें 'कर्म' ॥१३॥ फिर ये दोनों असहकारी होनेसे एक जगह वैसे ही नहीं रह सकते, जैसे अन्धकार और प्रकाशका साथ-साथ रहना नितान्त असम्भव है ॥ १४ ॥ हे महामते! सम्पूर्ण वैदिक कर्मोंकी चरम सीमा अन्तःकरणकी शुद्धि है। अतः उनको यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ १५ ॥ वे कर्म हैं—शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य और सत्त्वसम्भव अर्थात् चित्तशुद्धि। इतने ही कर्म करने योग्य हैं। इसके बाद कुछ शेष नहीं रहता ॥ १६ ॥ उक्त कर्म करनेके पश्चात् ज्ञानी मनुष्य संन्यासी होकर श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास रहे और विशुद्ध भक्तिसे सम्पन्न होकर वेदान्तका श्रवण करे। सदा सावधान रहे। 'तत्त्वमसि' वाक्यके अर्थका विचार करे ॥ १७ ॥ १८ ॥ 'तत्त्वमसि' यह वाक्य जीव और ब्रह्मकी एकताका बोधक है। एकताका बोध होनेपर मनुष्य निर्भय होकर मेरा रूप बन जाता है ॥ १९ ॥ हे हिमालय! पहले पदार्थका ज्ञान होता है, तत्पश्चात् वाक्यार्थका।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'तत्'-पदका जो वाक्यार्थ है, वह मैं ही हूँ ॥२०॥ त्वं-पदका वाक्यार्थ जीव है—इसमें कोई संशय नहीं है । विद्वान् पुरुष 'असि' इस पदसे 'तत्' और 'त्वम्' दोनों पदोंकी एकता बतलाते हैं ॥ २१ ॥ वाच्यार्थ पृथक्-पृथक् होनेसे श्रुतिकथित इन दोनों पदोंमें एकता नहीं घट सकती । अतः लक्षणा कर लेनी चाहिये ॥ २२ ॥ दोनोंका लक्ष्यार्थ चित्त हो, तभी दोनोंकी एकता हो सकती है । इसका बोध हो जानेपर दोनोंमें स्वगत भेद समाप्त होकर एकता आ जाती है ॥ २३ ॥ वही यह देवदत्त है—अर्थात् किसी अन्य समय जिसे देखा था, विपरीत होनेपर भी उसे वही मान लेना लक्षणा कही जाती है ! अतएव स्थूल देहसे रहित ब्रह्मको नर कहते हैं ॥ २४ ॥ पाँच महाभूतोंसे उत्पन्न स्थूल शरीर भोगोंका आश्रय होता है । उसे सम्पूर्ण कामनाओंके भोग भोगनेके लिए वृद्ध एवं रोगी होना पड़ता है ॥ २५ ॥ हे पर्वतराज ! मायाके प्रभावसे स्पष्ट प्रतीत होनेवाला यह जगत् बिल्कुल मिथ्या है । क्योंकि यह स्थूल शरीर मेरे ही आत्माका दूसरा रूप है ॥ २६ ॥ जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन तथा बुद्धिसे युक्त है, उसे विज्ञपुरुष 'सूक्ष्मशरीर' कहते हैं ॥ २७ ॥ अपञ्चीकृत भूतसे उत्पन्न

कीर्तितः ॥ २० ॥ त्वंपदस्य च वाच्यार्थो जीव एव न संशयः ॥ उभयोरैक्यमसिना पदेन प्रोच्यते बुधैः ॥ २१ ॥ वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यं नैव घटेत ह ॥ लक्षणाऽतः प्रकर्तव्या तत्त्वयोः श्रुतिसंस्थयोः ॥ २२ ॥ चिन्मात्रं तु तयोर्लक्ष्यं तयोरैक्यस्य संभवः ॥ तयोरैक्यं तथा ज्ञात्वा स्वाभेदेनाद्वयो भवेत् ॥ २३ ॥ देवदत्तः स एवायमितिवल्लक्षणा स्मृता ॥ स्थूलादिदेहरहितो ब्रह्म संपद्यते नरः ॥ २४ ॥ पञ्चीकृतमहाभूतसंभूतः स्थूलदेहकः ॥ भोगालयो जराव्याधिसंयुतः सर्वकर्मणाम् ॥२५॥ मिथ्याभूतोऽयमाभाति स्फुटं मायामयत्वतः ॥ सोऽयं स्थूल उपाधिः स्यादात्मनो मे नगेश्वर ॥२६॥ ज्ञानकर्मेन्द्रिययुतं प्राणपञ्चकसंयुतम् ॥ मनोबुद्धियुतं चैतत्सूक्ष्मं तत्कवयो विदुः ॥ २७ ॥ अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ॥ द्वितीयोऽयमुपाधिः स्यात्सुखादेरवबोधकः ॥ २८ ॥ अनाद्यनिर्वाच्यमिदमज्ञानं तु तृतीयकः ॥ देहोऽयमात्मनो भाति कारणात्मा नगेश्वर ॥ २९ ॥ उपाधिविलये जाते केवलात्माऽवशिष्यते ॥ देहत्रये पञ्चकोशा अन्तःस्थाः संति सर्वदा ॥ ३० ॥ पञ्चकोशपरित्यागे ब्रह्मपुच्छं हि लभ्यते ॥ नेतिनेतीत्यादिवाक्यैर्मम रूपं यदुच्यते ॥३१॥ न जायते म्रियते तत्कदाचिन्नायं भूत्वा न बभूव कश्चित् ॥ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ ३२ ॥ हतं चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥ उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥ ३३ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयाना-

जो यह सूक्ष्म-शरीर है, उसे आत्माका शरीर मानते हैं । सुख-दुःखका अनुभव करनेवाला दूसरा स्थूल शरीर कहलाता है ॥२८॥ अज्ञान अनादि और अनिर्वचनीय है । हे पर्वतराज ! इसी कारण आत्माके शरीरको तीसरा शरीर कहते हैं । जिस समय सूक्ष्म, स्थूल और कारण—ये तीनों उपाधियाँ समाप्त हो जाती हैं, उस समय केवल परमात्मा ही शेष रह जाता है । तीनों देहोंके भीतर पञ्चकोश सदा स्थित रहते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ पञ्चकोशका परित्याग करनेपर 'ब्रह्मपुच्छ'की उपलब्धि होती है । ब्रह्मपुच्छ मेरे उस रूपको कहते हैं, जिसका परिचय देते समय श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर मौन हो जाती हैं ॥३१॥ आत्मा किसी कालमें न तो जन्मता है और न मरता ही है । यह कभी होकर फिर हुआ भी नहीं । क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है । शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता ॥ ३२ ॥ जो आत्माको मारनेवाला अथवा मरा हुआ मानता है, वे दोनों नहीं जानते । क्योंकि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह न किसीको मारता है और न मरता है ॥ ३३ ॥ यह आत्मा अणुसे भी अणु और महान्से भी महान् है। प्राणीकी बुद्धिमें यह रहता है। संकल्प-विकल्पसे रहित पुरुष परमेश्वरकी कृपासे जब इसकी महिमा देख पाते हैं, तब उनका शोक समाप्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ हे हिमालय! आत्माको रथी समझना चाहिये। शरीर ही रथ है। बुद्धिको सारथि समझे। मन ही लगाम है ॥ ३५ ॥ इन्द्रिय और मनके साथ रहकर इस रथका उपभोक्ता आत्मा इन्द्रियोंके विषयमें विचरता है—ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं ॥ ३६ ॥ जो अज्ञानी, अमनस्वी और अपवित्रात्मा है, उसे परमधामकी प्राप्ति नहीं होती। उसे संसारमें बार-बार जन्म धारण करना पड़ता है ॥३७॥ जिन्हें ज्ञान सुलभ है, जो मनस्वी एवं पवित्र हैं, उन्हें वह उत्तम पद मिल जाता है, जहाँसे लौटकर फिर जगत्में जन्म नहीं लेना पड़ता ॥३८॥ जिसका बुद्धिरूपी सारथि चतुर है, जो मनरूपी लगामको सावधानीसे पकड़े हुए है, वही रथी मार्ग पूरा करके मेरे धाममें पहुँच पाता है ॥ ३९ ॥ इस विवेचनको सुन और जानकर स्वयं अपने आपको निश्चितरूपसे पहचान ले। फिर सावधानीके साथ एक आसनपर बैठकर आत्माका

त्माऽस्य जंतोर्निहितो गुहायाम् ॥ तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमस्य ॥ ३४ ॥ आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥ आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ३६ ॥
यस्त्वविद्वान्भवति चामनस्कः सदाऽशुचिः ॥ न तत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ३७ ॥ यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ॥
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ३८ ॥ विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ॥ सोऽध्वनः पारमाप्नोति मदीयं यत्परं पदम् ॥ ३९ ॥
इत्थं श्रुत्या च मत्या च निश्चित्यात्मानमात्मना ॥ भावयेन्मामात्मरूपां निदिध्यासनतोऽपि च ॥ ४० ॥ योगवृत्तेः पुरा स्वस्मिन्भावयेदक्षरत्रयम् ॥
देवीप्रणवसंज्ञस्य ध्यानार्थं मन्त्रवाच्ययोः ॥४१॥ हकारः स्थूलदेहः स्याद्रकारः सूक्ष्मदेहकः ॥ ईकारः कारणात्माऽसौ ह्रींकारोऽहं तुरीयकम् ॥४२॥
एवं समष्टिदेहेऽपि ज्ञात्वा बीजत्रयं क्रमात् ॥ समष्टिव्यष्ट्योरेकत्वं भावयेन्मतिमान्नरः ॥ ४३ ॥ समाधिकालात्पूर्वं तु भावयित्वैवमादृतः ॥ ततो
ध्यायेन्निलीनाक्षो देवीं मां जगदीश्वरीम् ॥ ४४ ॥ प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥ निवृत्तविषयाकांक्षो वीतदोषो विमत्सरः ॥ ४५ ॥
भक्त्या निर्व्याजया युक्तो गुहायां निःस्वने स्थले ॥ हकारं विश्वमात्मानं रकारे प्रविलापयेत् ॥ ४६ ॥ रकारं तैजसं देवमीकारे प्रविलापयेत् ॥

चिन्तन करे ॥ ४० ॥ हे राजन्! पहले योगका अभ्यास करके अक्षरत्रय मन्त्रका चिन्तन करना चाहिये। यह मन्त्र देवीप्रणव कहलाता है ॥४१॥ इसके मन्त्र और अर्थ—दोनोंका ध्यान आवश्यक है। इस मन्त्रमें 'ह'कार स्थूलदेह 'र'कारको सूक्ष्मदेह एवं 'ई'कारको कारणदेह कहते हैं। 'ह्रीं' यह रूप स्वयं मैं हूँ ॥ ४२ ॥ बुद्धिमान् पुरुष यों समष्टि शरीरमें क्रमशः तीनों बीजोंको समझकर समष्टि और व्यष्टि दोनों रूपोंमें एक मेरा ही चिन्तन करे ॥४३॥ ध्यानके पूर्व ही मेरे ऐसे स्वरूपकी धारणा कर लेना आवश्यक है। इसके बाद दोनों नेत्र बन्द करके मुझ भगवती जगदीश्वरीका ध्यान करे ॥ ४४ ॥ उस समय प्राण और अपान वायुको समान स्थितिमें रक्खे। दृष्टि नासिकाके अग्रभागसे विचलित न हो। ध्यानके समय विषयभोगकी आकांक्षा बिल्कुल नहीं उठनी चाहिये। न तो किसीमें दोष देखे और न किसीसे डाह करे ॥ ४५ ॥ विशुद्ध भक्तिसे सम्पन्न होकर किसी पर्वतकी गुफामें अथवा एकान्त स्थानमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आसन लगाकर बैठना चाहिये। फिर विश्वमय 'ह'कारको 'र'कारमें, परम तेजस्वी दिव्य 'र'कारको 'ई'कारमें तथा परम ज्ञानस्वरूप 'ई'कारको 'ह्रीं'कारमें प्रविलापन करे ॥४६॥४७॥ अन्तमें मेरे सच्चिदानन्दमय अखण्ड रूपका, जो वाच्य और वाचकतासे रहित तथा द्वैतभावसे शून्य है, चिन्तन करे ॥४८॥ हे राजन् ! इस प्रकार ध्यान करके श्रेष्ठ पुरुष मेरा साक्षात्कार कर लेता है। उसे मेरी सारूप्यता प्राप्त हो जाती है। क्योंकि उसकी बुद्धिमें फिर द्वैतभाव नहीं रहता ॥ ४९ ॥ इस प्रकारके योगसे सम्पन्न होकर जो मेरे इस सर्वोत्तम रूपके दर्शन कर लेता है, उसका कर्मसम्बन्धी अज्ञान तुरन्त नष्ट हो जाता है ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

(विविध योगोंका वर्णन) हिमालयने कहा—हे भगवती महेश्वरी ! अब तुम ज्ञान प्रदान करनेवाले साङ्गोपाङ्ग योगका वर्णन करो, जिसके साधनसे मैं तुम्हारे तत्त्वदर्शनका पूर्ण अधिकारी बन सकूँ ॥१॥ श्रीदेवी कहने लगीं—हे गिरिराज ! योग न आकाशमें है, न पृथ्वीमें है और न पातालमें ही है। योगके विशारद लोग कहते हैं कि जीव और आत्माकी जो एकता है,

ईकारं प्राज्ञमात्मानं ह्रींकारे प्रविलापयेत् ॥ ४७ ॥ वाच्यवाचकताहीनं द्वैतभावविवर्जितम् ॥ अखंडं सच्चिदानन्दं भावयेत्तच्छिखांतरे ॥ ४८ ॥
इति ध्यानेन मां राजन्साक्षात्कृत्य नरोत्तमः ॥ मद्रूप एव भवति द्वयोरप्येकता यतः ॥ ४९ ॥ योगयुक्त्याऽनया दृष्ट्वा मामात्मानं परात्परम् ॥
अज्ञानस्य सकार्यस्य तत्क्षणे नाशको भवेत् ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

॥ हिमालय उवाच ॥ योगं वद महेशानि सांगं संवित्प्रदायकम् ॥ कृतेन येन योग्योऽहं भवेयं तत्त्वदर्शने ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ॥ ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ॥२॥ तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्नकरानघ ॥ कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसंज्ञकौ ॥ ३ ॥ योगांगैरेव भित्त्वा तान्योगिनो योगमाप्नुयुः ॥ यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम् ॥ ४ ॥ प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्धं समाधिना ॥ अष्टांगान्याहुरेतानि योगिनां योगसाधने ॥५॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयाऽऽर्जवम् ॥ क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ॥ ६ ॥ तपः संतोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् ॥ सिद्धांतश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ॥ ७ ॥ दशैते नियमाः प्रोक्ता मया पर्वतनायक ॥ पद्मासनं स्वस्तिकं च भद्रं वज्रासनं तथा ॥८॥ वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपंचकम् ॥ ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले शुभे ॥९॥

वही योग है ॥२॥ हे निष्पाप हिमालय ! उस योगमें विघ्न करनेवाले छः दोष हैं। उनके नाम हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ॥३॥ अतएव योगी साधक योगके अङ्गों द्वारा उन विघ्नोंका उच्छेद करके योगमें सफलता प्राप्त करे। योगके ये आठ अङ्ग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। योग-साधकोंको इनका साधन अवश्य करना चाहिये ॥४॥५॥ 'यम' दस कहे गये हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धृति, परिमित आहार और पवित्रता ॥६॥ हे पर्वतराज ! मेरे द्वारा नियम भी दस बतलाये गये हैं— तप, संतोष, आस्तिकभाव, दान, देवताओंका पूजन, शास्त्रसिद्धान्तका श्रवण, असत् कामोंमें लज्जा, सद्बुद्धि, जप और हवन ॥७॥ पद्मासन, स्वस्तिकासन भद्रासन, वज्रासन और वीरासन—क्रमशः ये पाँच आसन बतलाये गये हैं। दोनों पैरोंके दोनों तलुओंको जाँघोंपर रखे, हाथोंको पीठकी ओर ले जाकर दाहिने हाथसे दाहिने पैरके अंगूठेको और बायें हाथसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बायें पैरके अंगूठेको पकड़े। योगीके हृदयमें प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला यह 'पद्मासन' बतलाया गया है ॥ ८-१० ॥ जाँघ और घुटनोंके बीचमें पैरके तलुओंको अच्छी तरह तथा शरीरको सीधा रखकर बैठ जानेको योगीजन 'स्वस्तिकासन' कहते हैं ॥११॥ अण्डकोशकी शिराके नीचे सीवनके दोनों ओर दोनों एड़ियोंको अच्छी तरह अण्डकोशके नीचे रख तथा दोनों पैरोंको हाथोंसे पकड़कर बैठनेका नाम योगियोंने 'भद्रासन' बतलाया है। योगीजन इस आसनका विशेष आदर करते हैं। दोनों पैर क्रमशः दोनों जाँघोंपर रखकर दोनों घुटनोंके निचले भागमें सीधी अँगुलीवाले दोनों हाथ स्थापन करके बैठनेको 'वज्रासन' कहा गया है। योगीजन जो एक जाँघके नीचे एक पैरको रख तथा शरीरको सीधा रखकर बैठते हैं,उसे 'वीरासन' कहते हैं ॥१२-१४॥ सोलह बार प्रणवका उच्चारण कर सके, उतने समयमें इडा यानी बायीं नासिकाके द्वारा बाहरकी वायुको खींचे। यह 'पूरक' प्राणायाम है। फिर इस पूरित वायुको चौंसठ बार प्रणवका उच्चारण करनेमें जितना समय लगे, उतने समयतक सुषुम्णामें रोके रखे तो इसे 'कुम्भक' प्राणायाम कहते हैं। तदनन्तर बत्तीस बार प्रणवके उच्चारणमें जितना समय लगे,

अंगुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः ॥ पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम् ॥ १० ॥ जानूर्वोरंतरे सम्यक्कृत्वा पादतले शुभे ॥ ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ ११ ॥ सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चितम् ॥ वृषणाधः पादपार्ष्णी पार्ष्णिभ्यां परिबन्धयेत् ॥ १२ ॥ भद्रासनमिति प्रोक्तं योगिभिः परिपूजितम् ॥ ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखांगुली ॥ १३ ॥ करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ॥ एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरुं तथोत्तरे ॥ १४ ॥ ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम् ॥ इडयाऽऽकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया ॥ १५ ॥ धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या तु मात्रया ॥ सुषुम्नामध्यगं सम्यग्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ॥ १६ ॥ नाड्या पिङ्गलया चैव रेचयेद्योगवित्तमः ॥ प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ॥ १७ ॥ भूयो भूयः क्रमात्तस्य बाह्यमेवं समाचरेत् ॥ मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश ॥ १८ ॥ जपध्यानादिभिः सार्धं सगर्भं तं विदुर्बुधाः ॥ तदपेतं विगर्भं च प्राणायामं परे विदुः ॥१९॥ क्रमादभ्यस्यतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः ॥ मध्यमः कंपसंयुक्तो भूमित्यागः परो मतः ॥ २० ॥ उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते ॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम्

उतने समयमें धीरे-धीरे पिंगला अर्थात् दक्षिण नासिकाके द्वारा उसको बाहर निकाले। इसे 'रेचक' प्राणायाम कहा जाता है। योगशास्त्रके जानकार पुरुष इसीको 'प्राणायाम' कहते हैं ॥१५-१७॥ इस प्रकार पुनः पुनः बाहरकी वायुको लेकर पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायामका अभ्यास करे और क्रमशः मात्रा (प्रणवके उच्चारणका समय) बढ़ाता रहे। इस प्रकार प्राणायाम पहले बारह बार, तदनन्तर सोलह बार और फिर क्रमशः और भी अधिक बार करे ॥१८॥ प्राणायाम दो प्रकारके होते हैं—'सगर्भ' और 'विगर्भ'। जो इष्टके जप-ध्यानादिसे युक्त होता है, उसे ज्ञानीजन सगर्भ कहते हैं और जप-ध्यानादिसे रहित प्राणायामको विगर्भ जानना चाहिये ॥१९॥ इस प्रकार प्राणायामका अभ्यास करते समय शरीरमें पसीना आ जाय तो उसे 'अधम', कम्प उत्पन्न होनेपर 'मध्यम' और भूमि त्यागकर पृथ्वीसे ऊपर उठ जानेको 'उत्तम' प्राणायाम कहते हैं। जबतक उत्तम प्राणायामतक न पहुँच जाय, तबतक अभ्यास करते रहना चाहिए ॥२०॥ इन्द्रियाँ स्वच्छन्दरूपसे अपने-अपने विषयोंमें विचरती हैं। उनको बलपूर्वक विषयोंसे हटानेका नाम 'प्रत्याहार' है। अंगूठे, एड़ी, घुटने, जाँघ, गुदा, लिङ्ग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कंठ,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भ्रूमध्य (भौंहोंके बीच) और मस्तक-इन बारह स्थानोंमें प्राणवायुको विधिपूर्वक धारण किये रखनेको 'धारणा' कहा जाता है । मनको चेतन आत्मामें समाहित करके उसमें अपने अभीष्ट देवताका ध्यान करनेको 'ध्यान' अर्थात् जीवात्मा और परमात्मामें नित्य समत्वभाव कहा गया है। दोनोंके ऐक्यको मुनियोंने 'समाधि' बतलाया है। यह 'अष्टाङ्गयोग' कहा गया । अब तुम्हारे लिये मैं श्रेष्ठ 'मन्त्रयोग'का वर्णन करती हूँ ।।२१–२६।। हे पर्वतराज ! इस पञ्चभूतात्मक शरीरको (पिण्ड-ब्रह्माण्डकी उक्तिके अनुसार) 'विश्व' कहा जाता है । चन्द्र, सूर्य और अग्निके तेजसे युक्त होनेपर (इडा-पिंगला-सुषुम्णामें योगसाधनसे) जीव-ब्रह्मकी एकता होती है ।। २७ ।। इस शरीरमें साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ हैं। उनमें दस मुख्य हैं । उन दसमें भी तीनको सबसे मुख्य बतलाया गया है ।। २८ ।। ये मेरुदण्डमें चन्द्र, सूर्य और अग्निरूपा होकर रहती हैं । बायीं ओर श्वेतवर्ण चन्द्ररूपिणी 'इडा' नामकी नाड़ी स्थित है ।। २९ ।। यह साक्षात्

।। २१ ।। बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते ।। अङ्गुष्ठगुल्फजानूरुमूलाधोलिंगनाभिषु ।। २२ ।। हृद्ग्रीवाकंठदेशेषु लम्बिकायां ततो नसि ।। भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशांते यथाविधि ।। २३ ।। धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ।। समाहितेन मनसा चैतन्यांतरवर्तिना ।। २४ ।। आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ।। समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ।। २५ ।। समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टांगलक्षणम् ।। इदानीं कथये तेऽहं मंत्रयोगमनुत्तमम् ।। २६ ।। विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं नग ।। चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ।। २७ ।। तिस्रः कोट्य-स्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः ।। तासु मुख्या दश प्रोक्तास्ताभ्यस्तिस्रो व्यवस्थिताः ।।२८।। प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।। इडा वामे स्थिता नाडी शुभ्रा तु चन्द्ररूपिणी ।। २९ ।। शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ।। दक्षिणे या पिंगलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहा ।। ३० ।। सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना वह्निरूपिणी ।। तस्या मध्ये विचित्राख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ।। ३१ ।। मध्ये स्वयंभूलिंगं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ।। तदूर्ध्वं मायाबीजं तु हरात्मा बिंदुनादकम् ।। ३२ ।। तदूर्ध्वं तु शिखाकारा कुण्डली रक्तविग्रहा ।। देव्यात्मिका तु सा प्रोक्ता मदभिन्ना नगाधिप ।। ३३ ।। तद्बाह्ये हेमरूपाभं वादिसांतचतुर्दलम् ।। द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विचिंतयेत् ।।३४।। तदूर्ध्वं त्वनलप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ।। वादि-लांतषड्वर्णेन स्वाधिष्ठानमनुत्तमम् ।।३५।। मूलमाधारषट्कोणं मूलाधारं ततो विदुः ।। स्वशब्देन परं लिंगं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ।। ३६ ।। तदूर्ध्वं

अमृतमयी तथा शक्तिरूपा है। दाहिनी ओर 'पिङ्गला' नामकी नाड़ी है। यह पुरुषरूपा सूर्यमूर्ति है ।।३०।। इनके बीचमें सर्वतेजोमयी अग्निरूपिणी सुषुम्णा नामकी नाड़ी है। इसके मध्यमें विचित्रा नामकी नाड़ी है। उसमें इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक करोड़ों रूपोंके सदृश प्रभासम्पन्न 'स्वयंभू लिङ्ग' हैं। उसके ऊपर ह्रीं मायाबीज है तथा उसके ऊपर लाल वर्णवाली शिखाके आकार-की कुण्डलिनी है । हे हिमालयराज ! वह देवात्मिका कुण्डलिनी मुझसे भिन्न नहीं है ।।३१–३३।। इसके बाहरी भागमें स्वर्णवर्णकी आभावाले कमलका ध्यान करना चाहिये । इसके चार दल हैं । उनमें व, श, ष, स, इन चार अक्षरोंका ध्यान करे । यह 'मूलाधार' चक्र है ।।३४।। इसके ऊपर षट्कोण (छः कोनोंवाले) कमलका ध्यान करे । यह अग्निके सदृश दलोंसे युक्त और हीरेके सामान चमकदार है। यह ब, भ, म, य, र, ल-इन छः अक्षरोंसे सम्पन्न उत्कृष्ट 'स्वाधिष्ठान' चक्र है । 'स्व' शब्दसे इसे 'परम लिङ्ग' रूप जानना चाहिये ।।३५।।३६।। इसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊपर नाभिदेशमें अत्यन्त प्रभासे युक्त मेघ तथा बिजलीके समान कान्तिवाला 'मणिपूरक' नामका अत्यन्त तेजोमय चक्र है ॥३७॥ मणिके सदृश प्रभा होनेसे इसे 'मणिपद्म' भी कहते हैं। यह दस दलोंसे युक्त है और ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ--इन दस अक्षरोंसे समन्वित है ॥३८॥ यह कमल विष्णु द्वारा अधिष्ठित होनेके कारण विष्णुके दर्शनका साधन है। इसके ऊपर सूर्यके समान प्रभासे सम्पन्न 'अनाहत' चक्र है। यह क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ--इन बारह अक्षरोंसे युक्त है। इसके मध्यमें दस हजार सूर्योंके समान प्रभावाला 'बाणलिङ्ग' विराजित है ॥३९॥४०॥ किसी भी आघातके बिना इसमें शब्द होता रहता है। अतः शब्द-ब्रह्ममय इस चक्रको मुनिगण 'अनाहत' कहते हैं ॥४१॥ यह चक्र आनन्द-सदन है और इसमें परम पुरुष अधिष्ठित रहता है। इसके ऊपर 'विशुद्ध' नामक सोलह दलोंसे युक्त कमल है। यह अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओं, औ, अं, अः—इन सोलह स्वरोंसे सम्पन्न है। इसका अत्यन्त प्रभासे युक्त धूम्रवर्ण है। इसमें हंसस्वरूप परमात्माके दर्शनसे जीव विशुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ इसीसे इसको 'विशुद्धाख्य' चक्र

नाभिदेशे तु मणिपूरं महाप्रभम् ॥ मेघाभं विद्युदाभं च बहुतेजोमयं ततः ॥ ३७ ॥ मणिवद्भिन्नं तत्पद्मं मणिपद्मं तथोच्यते ॥ दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफांताक्षरान्वितम् ॥ ३८ ॥ विष्णुनाऽधिष्ठितं पद्मं विष्ण्वालोकनकारणम् ॥ तदूर्ध्वेनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ॥ ३९ ॥ कादिठांतदलैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम् ॥ तन्मध्ये बाणलिंगं तु सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ ४० ॥ शब्दब्रह्ममयं शब्दानाहतं तत्र दृश्यते ॥ अनाहताख्यं तत्पद्मं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् ॥ तदूर्ध्वं तु विशुद्धाख्यं दलं षोडशपङ्कजम् ॥ ४२ ॥ स्वरैः षोडशभिर्युक्तं धूम्रवर्णं महाप्रभम् ॥ विशुद्धं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ॥ ४३ ॥ विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ॥ आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वं तु आत्मनाऽधिष्ठितं परम् ॥ ४४ ॥ आज्ञासंक्रमणं तत्र तेनात्रेति प्रकीर्तितम् ॥ द्विदलं हक्षसंयुक्तं पद्मं तत्सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥ कैलासाख्यं तदूर्ध्वं तु रोधिनी तु तदूर्ध्वतः ॥ एवं त्वाधारचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत ॥४६॥ सहस्रारयुतं बिंदुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम् ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम् ॥४७॥ आदौ पूरकयोगेनाप्याधारे योजयेन्मनः ॥ गुदमेढ्रांतरे शक्तिस्तामाकुंच्य प्रबोधयेत् ॥ ४८ ॥ लिंगभेदक्रमेणैव बिंदुचक्रं च प्रापयेत् ॥ शंभुना तां

कहा जाता है। इस महान् अद्भुत कमलको 'आकाशचक्र' भी कहते हैं। इसके ऊपर परमात्माका अधिष्ठानस्वरूप 'आज्ञाचक्र' है ॥४४॥ इसमें परमात्माकी आज्ञाका संक्रमण होता है। इसीसे इसको 'आज्ञाचक्र' कहा जाता है। यह द्विदल है और ह-क्ष इन दो अक्षरोंसे युक्त एवं अत्यन्त मनोहर है ॥४५॥ इसके ऊपर 'कैलास' नामक चक्र है और उसके ऊपर 'रोहिणी' चक्र है। हे सुव्रत ! इस प्रकार आधार-चक्रोंका तुम्हारे सामने वर्णन किया गया ॥ ४६ ॥ उसके और ऊपर 'सहस्र'चक्र है--यह बिन्दुमूल परमात्माका स्थान है। इसीसे इसको शून्य कहते हैं। इसमें सहस्र दल हैं। यह सर्वश्रेष्ठ योगमार्ग कहा गया ॥ ४७ ॥ अब क्या करना चाहिये सो बताते हैं। पहले पूरक प्राणायामके द्वारा आधारमें मन लगाये। तदनन्तर गुदा और मेढ्रके बीचमें वायुके द्वारा कुण्डलिनी शक्तिको समेटकर उसे जागृत करे ॥ ४८ ॥ फिर लिंग-भेदनचक्रके द्वारा स्वयम्भूलिंगसे आरम्भ करके चक्रोंके द्वारा उस कुण्डलिनी शक्तिको 'शून्य-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चक्र'के सहस्रारतक ले जाय। पश्चात् उस परा शक्तिका सहस्रारमें स्थित परमेश्वर शम्भुके साथ ऐक्यभावसे ध्यान करे ॥ ४९ ॥ वहाँ शिव-शक्तिके सम्मिलनसे लाक्षारसके सदृश बहनेवाले अमृतको लेकर योगमें सिद्धि प्रदान करनेवाली माया नामकी शक्तिको पान कराये ॥ ५० ॥ फिर उस अमृतधाराके द्वारा षट्चक्रोंमें स्थित देवताओंको परितृप्त करे। तदनन्तर उपर्युक्त मार्गसे ही साधक उस कुण्डलिनी शक्तिको मूलाधारतक वापस लौटा लाये ॥५१॥ इस प्रकार जो साधक प्रतिदिन अभ्यास करते हैं, उनके लिए पहलेके दूषित समस्त मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ५२ ॥ इसीसे साधक बुढ़ापा-मृत्यु आदि दुःखोंसे युक्त भवबन्धमसे छूट जाता है और उसे मुझ जगज्जननी देवीमें जो महान् गुण हैं, वे सम्पूर्ण गुण प्राप्त हो जाते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। हे तात ! इस प्रकार वायुके धारण करनेका श्रेष्ठ योग तुमसे कहा गया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ अब तुम मेरे द्वारा सावधानीके साथ चित्तधारण नामक योग सुनो। दिशा, काल और देश आदिके द्वारा अपरिच्छिन्न मेरे देवीस्वरूपमें चित्त स्थिर करके तन्मय हो जानेपर बहुत शीघ्र जीवब्रह्मके एकत्वका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। कदाचित्

परां शक्तिमेकीभूतां विचिंतयेत् ॥ ४९ ॥ तत्रोत्थितामृतं यत्तु द्रुतलाक्षारसोपमम् ॥ पाययित्वा तु तां शक्तिं मायाख्यां योगसिद्धिदाम् ॥ ५० ॥ षट्चक्रदेवतास्तत्र संतर्प्यामृतधारया ॥ आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततः सुधीः ॥ ५१ ॥ एवमभ्यस्याप्यहन्यहनि निश्चितम् ॥ पूर्वोक्ता दूषिता मन्त्राः सर्वे सिद्ध्यन्ति नान्यथा ॥ ५२ ॥ जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ये गुणाः संति देव्या मे जगन्मातुर्यथा तथा ॥ ५३ ॥ ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा ॥ इत्येवं कथितं तात वायुधारणमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इदानीं धारणाख्यं तु शृणुष्वावहितो मम ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नदेव्यां चेतो विधाय च ॥ ५५ ॥ तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात् ॥ अथवा समलं चेतो यदि क्षिप्रं न सिद्ध्यति ॥ ५६ ॥ तदाऽवयवयोगेन योगी योगान्समभ्यसेत् ॥ मदीयहस्तपादादावंगे तु मधुरे नग ॥५७॥ चित्तं संस्थापयेन्मन्त्री स्थानं स्थानजयात्पुनः ॥ विशुद्धचित्तः सर्वस्मिन्रूपे संस्थापयेन्मनः ॥ ५८ ॥ यावन्मनो लयं याति देव्यां संविदि पर्वत ॥ तावदिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समभ्यसेत् ॥ ५९ ॥ मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञेयज्ञानाय कल्पते ॥ न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः ॥ ६० ॥ द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ॥ तमःपरिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ॥ ६१ ॥ एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ॥ इति योगविधिः कृत्स्नः सांगः प्रोक्तो मयाऽधुना ॥

चित्तमें मलदोष रहनेके कारण शीघ्र सिद्धि न प्राप्त हो तो योगी साधकको अवश्य योगका अभ्यास करना चाहिये ॥५५॥-६॥ हे पर्वतराज ! मेरे हस्त-चरणादि मधुर एवं मनोहर अङ्गोंमें चित्तको स्थिर करके एक-एक अङ्गको जब (पूर्णरूपसे अभ्यस्त) करता हुआ विशुद्ध चित्तसे मेरे समग्ररूपमें मनको स्थिर करे और मेरे समस्तरूपका ध्यान करे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ हे हिमालय ! जबतक मेरे स्वरूपमें मनका लय न हो जाय। तबतक इष्टमन्त्रका जप और हवन आदि करता रहे ॥ ५९ ॥ मन्त्राभ्यासयोगके द्वारा ज्ञेय तत्त्वका ज्ञान हो जाता है। योगके बिना मंत्रकी सिद्धि नहीं होती और मंत्रके बिना योग सिद्ध नहीं होता ॥६०॥ अतएव मंत्र और योग दोनोंका समन्वयात्मक अभ्यास ही ब्रह्म-संसिद्धिमें सहायक होता है। जिस घरमें अन्धेरा छाया हुआ हो, उसमें घड़ा दिखाई नहीं देता। परन्तु दीपक जलानेपर दिखाई देने लगता है ॥ ६१ ॥ इसी प्रकार मायासे आवृत आत्मा भी मन्त्रके द्वारा दृष्टिगोचर होने लगता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे पर्वतराज ! इस प्रकार मैंने समस्त अङ्गों सहित सारी योगविधि तुम्हें बतला दी । पर यह विद्या अनुभवी गुरुके उपदेशसे ही जानी जा सकती है। वैसे करोड़ों शास्त्रोंके द्वारा इसकी उपलब्धि नहीं हो सकती । अतएव योगसिद्ध गुरुकी संनिधिमें रहकर ही इसका अभ्यास करना चाहिये ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

(देवीके द्वारा ब्रह्मनिरूपण) श्रीदेवीजी कहने लगीं—हे पर्वतराज ! इस प्रकार योगयुक्त होकर मुझ ब्रह्मस्वरूपा देवीका ध्यान करे । यह ध्यान आसनपर भलीभाँति बैठकर अहैतुकी भक्तिके साथ करना चाहिये ॥ १ ॥ उस ब्रह्मका क्या स्वरूप है—अब यह बतलाया जा रहा है । जो प्रकाशस्वरूप, सबके अत्यन्त समीप स्थित, हृदयरूपिणी गुफामें स्थित होनेके कारण 'गुहाचर' नामसे प्रसिद्ध और महान् पद अर्थात् परम पद है । जितने भी चेष्टा करनेवाले, श्वास लेनेवाले और आँखोंको खोलने-मूँदनेवाले प्राणी हैं, वे सब उस ब्रह्ममें ही समर्पित है—उसीमें स्थित हैं ॥ २ ॥ सत्-असत् सब कुछ वही है और वही सबके द्वारा वरण करने योग्य तथा सर्वोत्कृष्ट है । वह समस्त प्रजाके ज्ञानसे परे है—अर्थात् किसीकी बुद्धिमें आनेवाला नहीं है । यह तुम जानो । जो परम प्रकाशरूप है, जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म है, जिसमें सम्पूर्ण लोक और उन लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणी स्थित हैं॥ ३ ॥ वही

गुरूपदेशतो ज्ञेयो नान्यथा शास्त्रकोटिभिः ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ इत्यादियोगयुक्तात्मा ध्यायेन्मां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ भक्त्या निर्व्याजया राजन्नासने समुपस्थितः ॥ १ ॥ आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम् ॥ अत्रैतत्सर्वमर्पितमेजत्प्राणमिषच्च यत् ॥ २ ॥ एतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च ॥ ३ ॥ यदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः ॥ तदेतत्सत्यममृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि ॥ ४ ॥ धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत ॥ आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥ ५ ॥ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥ अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ६ ॥ यस्मिन्द्यौश्च पृथिवी चांतरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ॥ तमेवैकं जानथात्मानमन्या वाचो विमुंचथा अमृतस्यैष सेतुः ॥ ७ ॥ अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः ॥ स एषोंतश्चरते बहुधा जायमानः ॥ ८ ॥

'अक्षर ब्रह्म' है, वही सबका प्राण है, वही सबकी वाणी है और वही सबका मन है । वह परम सत्य, अमृत तथा अविनाशी तत्त्व है । हे सौम्य ! उस वेधने योग्य लक्ष्यका तुम वेधन करो और मन लगाकर उसमें तन्मय हो जाओ ॥४॥ हे सौम्य ! उपनिषद्में कथित महान् अस्त्ररूपी धनुष लेकर उसपर उपासना द्वारा तीक्ष्ण किया हुआ बाण संधान करो और फिर भावानुगत चित्तके द्वारा उस बाणको खींचकर उस अक्षररूप ब्रह्मको ही लक्ष्य बनाकर उसका बेधन करो ॥ ५ ॥ प्रणव (ॐ) धनुष है, जीवात्मा बाण है और ब्रह्मको उसका लक्ष्य कहा जाता है । प्रमादरहित तथा अत्यन्त तत्परतासे साधन-संलग्न होकर उसका वेधन करना चाहिए और बाणके समान उसमें तन्मय हो जाना चाहिए ॥६॥ जिस ब्रह्ममें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष (स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका आकाश), संपूर्ण प्राणोंके सहित इन्द्रिययुक्त मन-बुद्धिरूप अन्तःकरण ओत-प्रोत है, उस एकमात्र परमात्माको ही जाने, दूसरी बातोंको छोड़ दे । यही अमृतस्वरूप परमात्माके पास पहुँचानेवाला पुल है ॥७॥ संसारसमुद्रसे पार होकर अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त करनेका यही सुलभ साधन है । जिस प्रकार रथके चक्केमें अरे लगे होते हैं, उसी प्रकार शरीरकी संपूर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाड़ियाँ हृदयमें एकत्र स्थित हैं। उस हृदयमें ही विविध रूपोंमें प्रकट होनेवाला परब्रह्म संचरण करता हुआ अन्तर्यामीरूपसे विद्यमान रहता है ॥८॥ इस आत्माका 'ॐ' जपके साथ ध्यान करो। इससे अज्ञानमय अन्धकारसे सर्वथा परे और संसारसमुद्रसे उस पार जो ब्रह्म है, उसको पा जाओगे। तुम्हारा कल्याण हो। जो सदा जागनेवाला और सब ओरसे सब कुछ जाननेवाला है, जिसकी जगत्में यह महिमा है, वह सबका आत्मा ब्रह्म ब्रह्मलोकस्वरूप दिव्य आकाशमें स्थित है ॥९॥ वह मनोमय है और सबके प्राण तथा शरीरका नियमन करता है। सब प्राणियोंके हृदयका आश्रय करके अह अन्नमय स्थूल शरीरमें स्थित है। जो आनन्दस्वरूप, अमृत एवं अविनाशी ब्रह्म सर्वत्र प्रकाशित है, उसको बुद्धिमान् पुरुष विज्ञानके द्वारा भलीभाँति देख लेते हैं ॥१०॥ उस काय-कारणरूप पुरुषोत्तमको देख लेनेपर जीवके हृदयकी गाँठ (अविद्या) खुल जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और शुभाशुभ कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥११॥ वह निर्मल और निष्कल ब्रह्म प्रकाशमय परकोश तथा दिव्य परम धाममें विराजित है। वह शुभ्र, सर्वथा विशुद्ध और सम्पूर्ण प्रकाशमय वस्तुओंका भी प्रकाशक है। उसे आत्मज्ञानी पुरुष ही जानते

ओमित्येव ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि आत्मा संप्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥ मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रति-
ष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ॥ तद्विज्ञानेन परिपश्यंति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ॥ १० ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते
चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ११ ॥ हिरण्मये परे कोशे विराजं ब्रह्म निष्कलम् ॥ तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥१२॥
न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः ॥ तमेव भांतमनुभांति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१३॥ ब्रह्मैवेदममृतं
पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ॥ अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वं वरिष्ठम् ॥ १४ ॥ एतादृगनुभवो यस्य स कृतार्थो नरोत्तमः ॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥१५॥ द्वितीयाद्वै भयं राजंस्तदभावाद्बिभेति न ॥ न तद्वियोगो मेऽप्यस्ति मद्वियोगोऽपि तस्य न ॥१६॥
अहमेव स सोऽहं वै निश्चितं विद्धि पर्वत ॥ मद्दर्शनं तु तत्र स्याद्यत्र ज्ञानी स्थितो मम ॥ १७ ॥ नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुण्ठे वा न कर्हिचित् ॥

हैं ॥१२॥ उस स्वप्रकाशरूप तथा परमधामस्वरूप परमात्मामें न यह सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा या तारे ही प्रकाशित होते हैं और न वहाँ ये बिजलियाँ ही चमकती हैं, फिर इस अग्निकी तो बात ही क्या है? उसके प्रकाशित होनेपर उसीके प्रकाशसे सब प्रकाशित होते हैं—उसीके प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित है ॥१३॥ वह अमृतस्वरूप ब्रह्म ही आगे है। ब्रह्म ही पीछे है और ब्रह्म ही दाहिनी तथा बायीं ओर है। वही नीचे-ऊपर फैला हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है ॥१४॥ जो श्रेष्ठ पुरुष इस प्रकार अनुभव करते हैं, वे ही कृतार्थ हैं। वे ब्रह्मको प्राप्त पुरुष नित्य प्रसन्न अन्तःकरण रहते हैं। न तो वे कोई शोक करते हैं और न किसी विषयकी आकांक्षा ही रखते हैं ॥१५॥ हे पर्वतराज! भय दूसरेसे हुआ करता है। द्वैतभाव न रहनेपर भय नहीं रहता। वास्तविक बात यह है कि मेरा कभी उस ज्ञानीसे वियोग नहीं होता और उसका मुझसे वियोग नहीं होता ॥१६॥ हे पर्वतराज! तुम यह निश्चित समझो कि वह मैं हूँ और मैं वह है। जहाँ ऐसा ज्ञानी रहता है, वहीं मेरे दर्शन हो सकते हैं ॥१७॥ मैं न तीर्थमें निवास करती हूँ, न कैलासमें और न वैकुण्ठमें ही। मैं तो अपने ज्ञानी भक्तके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हृदयकमलमें ही रहती हूँ ॥ १८ ॥ जो मेरे ज्ञानपरायण भक्तकी पूजा करता है, वह मेरी पूजासे कोटिगुना अधिक फल पाता है। जिसका चित्त चित्स्वरूप ब्रह्ममें लय हो गया, उसका सारा कुल पवित्र हो गया। उसकी जननी कृतकृत्य हो गयी और पृथ्वी उसको धारण करके पुण्यवती हो गयी। हे पर्वतश्रेष्ठ! तुमने जो ब्रह्मज्ञानके सम्बन्धमें पूछा था, वह मैंने बता दिया ॥ १९ ॥ इसको भक्तिसम्पन्न तथा शीलवान् ज्येष्ठ पुत्रसे कहना चाहिये और इसी प्रकारके शिष्यको बतलाना चाहियें, किसी दूसरेको नहीं। जिसकी इष्टदेवमें परा भक्ति होती है और जैसी देवताओंमें भक्ति होती है, वैसी ही गुरुमें होती है। ऐसे महात्माजनके लिए ही श्रेष्ठ पुरुष इस ब्रह्मविद्याका उपदेश करते हैं। जिसके द्वारा इस ब्रह्मविद्याका उपदेश होता है, वह परमेश्वर ही है ॥ २०–२३ ॥ इस विद्याका बदला नहीं चुकाया जा सकता। इसलिए गुरुके समीप शिष्य सदा ऋणी ही रहता है। इस प्रकार ब्रह्म-जन्मदाता अर्थात् ब्रह्मको प्राप्त करा देनेवाला गुरु जन्मदाता माता-पितासे भी अधिक पूज्य होता है ॥ २४ ॥ क्योंकि पितासे प्राप्त जीवन तो नष्ट हो जाता है, परन्तु ब्रह्मरूप जन्म कभी नष्ट

वसामि किंतु मज्ज्ञानिहृदयांभोजमध्यमे ॥ १८ ॥ मत्पूजाकोटिफलदं सकृन्मज्ज्ञानिनोऽर्चनम् ॥ कुलं पवित्रं तस्यास्ति जननी कृतकृत्यका ॥ १९ ॥ विश्वंभरा पुण्यवती चिल्लयो यस्य चेतसः ॥ ब्रह्मज्ञानं तु यत्पृष्टं त्वया पर्वतसत्तम ॥ २० ॥ कथितं तन्मया सर्वं नातो वक्तव्यमस्ति हि ॥ इदं ज्येष्ठाय पुत्राय भक्तियुक्ताय शीलिने ॥ २१ ॥ शिष्याय च यथोक्ताय वक्तव्यं नान्यथा क्वचित् ॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥ २२ ॥ तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥ येनोपदिष्टा विद्येयं स एव परमेश्वरः ॥२३॥ यस्यायं सुकृतं कर्तुमसमर्थस्ततो ऋणी ॥ पित्रोरप्यधिकः प्रोक्तो ब्रह्मजन्मप्रदायकः ॥ २४ ॥ पितृजातं जन्म नष्टं नेत्थं जातं कदाचन ॥ तस्मै न द्रुह्येदित्यादि निगमोऽप्यवदन्नग ॥ २५ ॥ तस्माच्छास्त्रस्य सिद्धान्तो ब्रह्मदाता गुरुः परः ॥ शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न शंकरः ॥ २६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं तोषयेन्नग ॥ कायेन मनसा वाचा सर्वदा तत्परो भवेत् ॥ २७ ॥ अन्यथा तु कृतघ्नः स्यात्कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ इन्द्रेणाथर्वणायोक्ता शिरश्छेदप्रतिज्ञया ॥ २८ ॥ अश्विभ्यां कथने तस्य शिरश्छिन्नं च वज्रिणा ॥ अश्वीयं तच्छिरो नष्टं दृष्ट्वा वैद्यौ सुरोत्तमौ ॥ २९ ॥ पुनः संयोजितं स्वीयं ताभ्यां मुनिशिरस्तदा ॥ इति

नहीं होता। अतः हे पर्वतराज! 'तस्मै न द्रुह्येत कृतमस्य जानन्'—इस श्रुतिरूपो शास्त्रसिद्धान्तके अनुसार ब्रह्मदाता परम गुरुसे कभी द्रोह न करे। ब्रह्मदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ होता है। शिवके रुष्ट होनेपर गुरु बचा लेते हैं, पर गुरुके रुष्ट होनेपर शिव नहीं बचा पाते ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसलिए हे पर्वतराज! तन-मन-वचनसे सब प्रकार सदा तत्पर रहकर गुरुको सन्तुष्ट करना चाहिये। ऐसा न होनेपर कृतघ्न होना पड़ता है और कृतघ्नका कहीं भी निस्तार नहीं होता। पूर्व समयकी बात है। इन्द्रसे अथर्वण मुनिने ब्रह्मविद्याकी याचना की। इन्द्रने कहा—'मैं यह विद्या देता हूँ, पर इसे तुम किसी दूसरेको दोगे तो मैं तुम्हारा सिर काट लूँगा।' मुनिने इसके लिए प्रतिज्ञा की ॥२७॥२८॥ अश्विनीकुमारोंने मुनिसे विद्या माँगी और सिर काटनेवाली बात बतलानेपर अश्विनीकुमारोंने कहा कि 'इन्द्र सिर काट देगा तो हम फिरसे जोड़ देंगे।' इसपर मुनिने उनको ब्रह्मविद्या प्रदान कर दी। तब इन्द्रने उनका सिर काट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डाला। तदनन्तर देववैद्य अश्विनीकुमारोंने सिर कटा देख उसको फिरसे जोड़कर मुनिको जीवित कर दिया। इस प्रकार बड़े संकटसे संपादित होनेवाली 'ब्रह्मविद्या'को जिसने प्राप्त कर लिया, वही धन्य है और वही कृतकृत्य है ॥२९॥३०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६॥

(भक्तिके भेद एवं ज्ञानप्राप्तिकी महिमा) हिमालयने कहा—हे माता! आप अपनी वह भक्ति बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे मुझ स्वार्थपरायण साधारण मनुष्यके हृदयमें भी सुगमतापूर्वक ज्ञानोदय हो जाय ॥१॥ देवी बोलीं—हे राजेन्द्र! मोक्षप्राप्तिके साधनभूत मेरे तीन मार्ग परम प्रसिद्ध हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग॥२॥ इन तीनोंमें भक्तियोग सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न किया जा सकता है। क्योंकि यह परम सुलभ एवं मनके अनुकूल है। शरीर एवं चित्तको भी यह किसी प्रकारका कष्ट नहीं पहुँचाता ॥ ३ ॥ मनुष्योंके गुणभेदके

संकटसंपाद्या ब्रह्मविद्या नराधिप ॥ लब्धा येन स धन्यः स्यात्कृतकृत्यश्च भूधर ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

॥ हिमालय उवाच ॥ स्वीयां भक्तिं वदस्वांब येन ज्ञानं सुखेन हि ॥ जायेत मनुजस्यास्य मध्यमस्याविरागिणः ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप ॥ कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम ॥ २ ॥ त्रयाणामप्ययं योग्यः कर्तुं शक्योऽस्ति सर्वथा ॥ सुलभत्वान्मानसत्वात्कायचित्ताद्यपीडनात् ॥ ३ ॥ गुणभेदान्मनुष्याणां सा भक्तिस्त्रिविधा मता ॥ परपीडां समुद्दिश्य दंभं कृत्वा पुरःसरम् ॥ ४ ॥ मात्सर्यक्रोधयुक्तो यस्तस्य भक्तिस्तु तामसी ॥ परपीडादिरहितः स्वकल्याणार्थमेव च ॥५॥ नित्यं सकामो हृदयं यशोर्थी भोगलोलुपः ॥ तत्तत्फलसमावाप्त्यै मामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ ६ ॥ भेदबुद्ध्या तु मां स्वस्मादन्यां जानाति पामरः ॥ तस्य भक्तिः समाख्याता नगाधिप तु राजसी ॥ ७ ॥ परमेशार्पणं कर्म पापसंक्षालनाय च ॥ वेदोक्तत्वादवश्यं तत्कर्तव्यं तु मयाऽनिशम् ॥ ८ ॥ इति निश्चितबुद्धिस्तु भेदबुद्धिमुपाश्रितः ॥ करोति प्रीतये कर्म भक्तिः सा नग सात्त्विकी ॥ ९ ॥ परभक्तेः प्रापिकेयं भेदबुद्ध्यवलंबनात् ॥ पूर्वप्रोक्ते ह्युभे भक्ती न परप्रापिके मते ॥ १० ॥ अधुना

अनुसार वह भक्ति भी तीन प्रकारकी मानी जाती है। जो दूसरेको दुखी बनानेके उद्देश्यसे दम्भपूर्वक डाह एवं क्रोधसे भरकर भक्ति करता है, उसकी वह भक्ति तामसी होती है। हे गिरिराज हिमालय! जो दूसरेको कष्ट तो नहीं देता, परन्तु अपना ही कल्याण चाहता है तथा जिसका हृदय कामनासे कभी खाली नहीं होता, यश एवं भोगकी लालसा बनी रहती है तथा जो फल पानेकी इच्छासे ही श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करता है, उस मन्दबुद्धि मानवके द्वारा की हुई भक्ति राजसी होती है ॥४--७॥ जो अपना कर्म परमात्माको अर्पण कर देता है, पापको धो बहानेके लिए ही कर्म करता है, वेदकी आज्ञाके अनुसार मुझे निरंतर सत्कर्ममें लगे रहना चाहिये--यों मनमें निश्चित करके अभेदबुद्धिका आश्रय लेकर मेरी प्रसन्नताके लिए कर्म करता है, उसकी भक्ति सात्त्विकी होती है ॥८॥९॥ सेव्य-सेवकको भेदबुद्धिसे की हुई सात्त्विकी भक्ति मेरी प्राप्तिमें सहायक होती है। पूर्वोक्त राजसी और तामस भक्तिसे मैं प्राप्त नहीं हो सकती ॥१०॥ अब मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रेष्ठ भक्तिका विवेचन करती हूँ, सुनो—निरन्तर मेरे गुणोंका श्रवण और नामका कीर्तन करता रहे ॥ ११ ॥ मैं कल्याण एवं गुणमय रत्नोंका भण्डार हूँ। मुझमें चित्तको तैलधाराकी भाँति सदा लगाये रखे ॥१२॥ मनमें कभी हेतु अथवा अहेतुकी कल्पना ही न उठने दे। सामीप्य, सायुज्य, सालोक्य और साष्टि—इन चार प्रकारकी मुक्तियोंकी एषणाओंका कभी मनमें उदय न होने दे ॥ १३ ॥ मेरी सेवासे बढ़कर कभी किसी कामको श्रेष्ठ न समझे। सेव्य-सेवकभावकी ऐसी गहरी छाप हो कि जिससे वह कैवल्य मोक्ष भी न चाहे ॥१४॥ अटूट श्रद्धाके साथ सावधान होकर केवल मेरा ही चिंतन करे। मुझमें और अपनेमें निरन्तर अभेदबुद्धि रखे ॥ १५ ॥ 'सभी जीव मेरे रूप हैं'—ऐसी धारणा सदा बनाये रखे। अपने और परायेमें एक समान प्रीति रखे ॥ १६ ॥ चैतन्य परब्रह्म समानरूपसे सर्वत्र विराजमान है-यह जानकर सर्वत्र अभेद दृष्टि रखे। संपूर्ण रूपोंमें सदा मुझे विराजमान समझकर प्रणाम एवं भजन करे। हे पर्वत-

परभक्तिं तु प्रोच्यमानां निबोध मे ॥ मद्गुणश्रवणं नित्यं मम नामानुकीर्तनम् ॥ ११ ॥ कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मयि स्थिरम् ॥ चेतसा वर्तनं चैव तैलधारासमं सदा ॥ १२ ॥ हेतुस्तु तत्र को वापि न कदाचिद्भवेदपि ॥ सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानां न चैषणा ॥ १३ ॥ मत्सेवातोऽधिकं किंचिन्नैव जानाति कर्हिचित् ॥ सेव्यसेवकताभावात्तत्र मोक्षं न वांछति ॥ १४ ॥ परानुरक्त्या मामेव चिंतयेद्यो ह्यतंद्रितः ॥ स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति न विभेदतः ॥ १५ ॥ मद्रूपत्वेन जीवानां चिंतनं कुरुते तु यः ॥ यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिस्तथैव च परात्मनि ॥ १६ ॥ चैतन्यस्य समानत्वान्न भेदं कुरुते तु यः ॥ सर्वत्र वर्तमानानां सर्वरूपां च सर्वदा ॥ १७ ॥ नमते यजते चैवाप्याचांडालांतमीश्वर ॥ न कुत्रापि द्रोहबुद्धिं कुरुते वेदवर्जनात् ॥ १८ ॥ मत्स्थानदर्शनश्रद्धा मद्भक्तदर्शने तथा ॥ मच्छास्त्रश्रवणे श्रद्धा मन्त्रतंत्रादिषु प्रभो ॥ १९ ॥ मयि प्रेमाकुलमती रोमांचिततनुः सदा ॥ प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः कंठगद्गदनिःस्वनः ॥ २० ॥ अनन्येनैव भावेन पूजयेद्यो नगाधिप ॥ मामीश्वरीं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम् ॥ २१ ॥ व्रतानि मम दिव्यानि नित्यनैमित्तिकान्यपि ॥ नित्यं यः कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ २२ ॥ मदुत्सवदिदृक्षा च मदुत्सवकृतिस्तथा ॥ जायते यस्य नियतं स्वभावादेव भूधर ॥२३॥ उच्चैर्गायंश्च नामानि ममैव खलु नृत्यति ॥ अहंकारादिरहितो देहतादात्म्यवर्जितः ॥२४॥ प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत् ॥ न मे चिंतास्ति तत्रापि देहसंरक्षणादिषु ॥ २५ ॥ इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परा भक्तिस्तु सा स्मृता ॥

राज हिमालय ! चांडालतक भगवतीका रूप है—ऐसी भावना होनी चाहिये। भेद त्यागकर कहीं भी द्वेषभाव न रखे ॥१७॥१८॥ हे राजन् ! मेरे स्थानके दर्शन करने, मेरे भक्तसे मिलने, मेरे शास्त्रके सुनने तथा मेरे मन्त्र-तन्त्रादिमें श्रद्धा रखे ॥१९॥ मेरे प्रति प्रेमके आँसू बहते रहें। गद्गद कण्ठ होनेसे शब्द निकलना बन्द हो जाय। इस प्रकार हे पर्वतराज ! अनन्यभावसे मेरी पूजा करे ॥ २० ॥ हे पर्वतराज ! मैं जगत्को उत्पन्न करनेवाली परमेश्वरी हूँ। मैं संपूर्ण कारणोंका मूल कारण हूँ ॥ २१ ॥ मेरे नित्य और नैमित्तिक सभी व्रत दिव्य हैं। धनके व्ययमें कंजूसी न करके भक्तिके साथ निरन्तर मेरे व्रतोंका पालन करे ॥२२॥ हे हिमालय ! मेरे उत्सव देखनेकी अभिलाषा करना तथा उत्सव मनाना उस व्यक्तिका स्वभाव ही बन जाय ॥२३॥ उच्च स्वरसे मेरे नामोंका कीर्तन और नृत्य करे। मनमें अहङ्कार न आने दे। शारीरिक अभिमान छोड़ दे ॥ २४ ॥ मैंने जैसा कर्म किया था, वही प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हो रहा है, यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माने । शरीरके जाने अथवा रहनेकी कुछ चिंता न करे ॥ २५ ॥ उपर्युक्त प्रकारसे जो मेरी भक्ति की जाती है, उसे 'परा भक्ति' कहते हैं । जिसमें देवीके अतिरिक्त अन्य देवताका स्मरणतक न हो, वह परा भक्ति है । हे हिमालय ! इस प्रकारकी विशुद्ध भक्ति जिसके हृदयमें उत्पन्न हो जाती है, वह उसी क्षण मेरे चिन्मय रूपमें स्थान पानेका अधिकारी बन जाता है । ॥२६। २७॥ भक्तिकी जो पराकाष्ठा है, उसीको 'ज्ञान' कहते हैं । वैराग्यकी भी चरम सीमा ज्ञान ही है । क्योंकि ज्ञान प्राप्त हो जानेपर भक्ति और वैराग्य दोनों स्वयं सिद्ध हो जाते हैं ॥२८॥ हे हिमालय ! यदि भक्ति करनेपर भी मेरे किसी भक्तको ज्ञान प्राप्त न हो तो वह मेरे दिव्य मणिद्वीपमें जाता है ॥२९॥ वहाँ जाकर भागोंमें आसक्त न होता हुआ वह अपना समय बिताता है । हे गिरिवर ! अन्तमें उसे मेरे रूपका सम्यक् प्रकारसे ज्ञान हो जाता है ॥३०॥ उस ज्ञानके प्रभावसे वह सदाके लिए मुक्त हो जाता है । ज्ञान मुक्तिका अचूक साधन है— इसमें कोई सन्देह नहीं। सभी मेरे रूप हैं और मैं सबमें विराजमान हूँ। मेरे इस रहस्यको जो समझ जाता है, उसके प्राण उत्क्रमण नहीं कर सकते। जो सबमें ब्रह्मका ही ज्ञान रखता है,वह

यस्यां देव्यतिरिक्तं तु न किंचिदपि भाव्यते ॥२६॥ इत्थं जाता परा भक्तिर्यस्य भूधर तत्त्वतः ॥ तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत् ॥२७॥
भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम् ॥ वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः ॥ २८ ॥ भक्तौ कृतायां यस्यापि प्रारब्धवशतो नग ॥ न
जायते मम ज्ञानं मणिद्वीपं स गच्छति ॥ २९ ॥ तत्र गत्वाऽखिलान्भोगाननिच्छन्नपि चर्च्छति ॥ तदन्ते मम चिद्रूपज्ञानं सम्यग्भवेन्नग ॥ ३० ॥
तेन मुक्तः सदैव स्याज्ज्ञानान्मुक्तिर्न चान्यथा ॥ इहैव यस्य ज्ञानं स्याद्धृद्गतप्रत्यगात्मनः ॥ ३१ ॥ मम संवित्परतनोस्तस्य प्राणा व्रजंति न ॥
ब्रह्मैव संस्तदाप्नोति ब्रह्मैव ब्रह्म वेद यः ॥३२॥ कण्ठचामीकरसममज्ञानात्तु तिरोहितम् ॥ ज्ञानादज्ञाननाशेन लब्धमेव हि लभ्यते ॥३३॥ विदि-
ताऽविदितादन्यन्नगोत्तम वपुर्मम ॥ यथादर्शे तथाऽऽत्मनि यथा जले तथा पितृलोके ॥ ३४ ॥ छायातपौ यथा स्वच्छौ विविक्तौ तद्वदेव हि ॥
मम लोके भवेज्ज्ञानं द्वैतभावविवर्जितम् ॥ ३५ ॥ यस्तु वैराग्यवानेव ज्ञानहीनो म्रियेत चेत् ॥ ब्रह्मलोके वसेन्नित्यं यावत्कल्पं ततः परम् ॥३६॥
शुचीनां श्रीमतां गेहे भवेत्तस्य जनिः पुनः ॥ करोति साधनं पश्चात्ततो ज्ञानं हि जायते ॥ ३७ ॥ अनेकजन्मभी राजञ्ज्ञानं स्यान्नैकजन्मना ॥

ब्रह्मका चिंतन करते-करते स्वयं भी ब्रह्मरूप हो जाता है ॥३१॥३२॥ जैसे सुवर्णका हार गलेमें है, किंतु भ्रमवश समझ लिया जाता है कि वह खो गया । फिर, बुद्धि ठीक हो जानेपर भ्रम मिटते ही वह मिल जाता है, क्योंकि वह मिला हुआ तो पहलेसे था ही ॥ ३३ ॥ ऐसे ही हे पर्वतराज ! वस्तुतः मैं सर्वरूप हूँ, अज्ञानसे ही पृथक्ता प्रतीत होती है । मेरे चित्रूपी शरीरमें घट आदि कार्य मायारूपसे अभिन्न हैं । जैसे दर्पणमें परछाहीं पड़ती है, वैसे ही इस शरीरमें आत्माकी परछाहींका अनुभव होता है । जिस तरह जलमें परछाहीं पहलेसे स्पष्ट दीखता है । वैसे ही पितृलोकके विषयमें भी स्पष्ट अनुभव होता है ॥ ३४ ॥ जैसे धूप और छायाका भेद स्पष्ट दीखता है । वैसे ही मेरे मणिद्वीपमें द्वैतशून्य ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ जिसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो गया, परन्तु ज्ञानका पूर्णोदय नहीं हो सका और मर गया तो वह ब्रह्मलोकमें स्थान पाता है । एक कल्पतक ब्रह्मलोकमें रहनेके बाद उसका पुनः शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म होता है । तत्पश्चात् साधनाके द्वारा वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है ॥३६॥३७॥ हे राजन् ! अनेक जन्मोंके सत्प्रयत्नसे ज्ञानकी उपलब्धि होती है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतः ज्ञान प्राप्त करनेके लिए भलीभाँति यत्न करना चाहिए ॥३८॥ प्रयत्नमें शिथिलता रहनेसे बड़ी भारी हानि होती है। क्योंकि यदि मनुष्यजन्म मिल भी गया तो वर्णोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण और उसमें भी वेदपाठी होना महान् दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ साथ ही शम, दम, तितिक्षा आदि छः सम्पत्तियाँ, योगसिद्धि तथा उत्तम गुरु-इन सबका मिलना तो सुलभ है ही नहीं ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंमें कार्य करनेकी क्षमता आ जाय और शरीरमें सदा पवित्रता बनी रहे-यह भी सहज नहीं है। जब अनेक जन्मोंके पुण्य सहायक होते हैं। तब पुरुषके मनमें मुक्त होनेकी इच्छा उत्पन्न होती है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य इस प्रकारके सफल साधनोंसे सम्पन्न होनेपर भी ज्ञानकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न नहीं करता, उसका जन्म लेना व्यर्थ है ॥ ४२ ॥ अतएव हे राजन्! भक्तिके अनुसार ज्ञान-प्राप्तिके लिए यत्न करनेमें तत्पर हो जाना चाहिये। ज्ञानमार्गपर चलते समय एक-एक पदपर अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। दूधमें छिपे हुए घृतकी भाँति प्रत्येक

ततः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ॥ ३८ ॥ नोचेन्महान्विनाशः स्याज्जन्मैतद्दुर्लभं पुनः ॥ तत्रापि प्रथमे वर्णे वेदप्राप्तिश्च दुर्लभा ॥ ३९ ॥ शमादिषट्कसंपत्तिर्योगसिद्धिस्तथैव च ॥ तथोत्तमगुरुप्राप्तिः सर्वमेवात्र दुर्लभम् ॥ ४० ॥ तथेंद्रियाणां पटुता संस्कृतत्वं तनोस्तथा ॥ अनेकजन्मपुण्यैस्तु मोक्षेच्छा जायते ततः ॥ ४१ ॥ साधने सफलेऽप्येवं जायमानेऽपि यो नरः ॥ ज्ञानार्थं नैव यतते तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन् यथाशक्त्या ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ ४३ ॥ घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति विज्ञानम् ॥ सततं मंथयितव्यं मनसा मंथानभूतेन ॥४४॥ ज्ञानं लब्ध्वा कृतार्थः स्यादिति वेदांतडिंडिमः ॥ सर्वमुक्तं समासेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

॥ हिमालय उवाच ॥ कानि स्थानानि देवेशि द्रष्टव्यानि महीतले ॥ मुख्यानि च पवित्राणि देवीप्रियतमानि च ॥ १ ॥ व्रतान्यपि तथा यानि तुष्टिदान्युत्सवा अपि ॥ तत्सर्वं वद मे मातः कृतकृत्यो यतो नरः ॥ २ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः ॥ उत्सवाः सर्वकालेषु यतोऽहं सर्वरूपिणी ॥३॥ तथापि भक्तवात्सल्यात्किंचित्किंचिदथोच्यते ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वा नगराजवचो मम ॥४॥ कोला-

प्राणीमें विज्ञान रहता है। सो मनरूपी मथानीसे निरन्तर मथकर उसे प्राप्त कर ले। वेदान्तने डुग्गी पीटकर यह घोषणा कर दी है कि ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर मानव कृतार्थ हो जाता है। हे हिमालय! ये सब बातें मैंने संक्षेपसे कह दीं। अब आगे और क्या सुनना चाहते हो? ॥४३-४५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोध्यायः ॥३७॥

(देवीतीर्थ, व्रत, उत्सव तथा पूजनके प्रकार) हिमालयने पूछा-हे देवेशि! आपको परम प्रिय लगनेवाले पवित्र, प्रसिद्ध एवं दर्शनीय स्थान भूमण्डलपर कितने हैं? यह बताइये ॥ १ ॥ हे माताजी! इसीके साथ, आपको संतुष्ट करनेवाले जो व्रत एवं उत्सव हों, उन सबको भी मुझे बतानेकी कृपा कीजिए, जिससे मेरा मानव-जीवन सफल हो जाय ॥२ श्रीदेवी बोलीं-दृष्टिगोचर होनेवाले सभी स्थान मेरे हैं। सम्पूर्ण कालको मेरा व्रत समझना चाहिए तथा सभी समय मेरे उत्सव मनाये जा सकते हैं। क्योंकि मैं सर्वरूपिणी जा ठहरी ॥३॥ फिर भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे पर्वतराज ! मैं भक्तवत्सलतावश अपने कतिपय स्थानोंका परिचय देती हूँ । तुम सावधान होकर सुनो ॥४॥ 'कोलापुर' नामका एक परम प्रसिद्ध स्थान है । जहाँ 'लक्ष्मी' सदा निवास करती हैं । दूसरे स्थानका नाम 'मातृपुर' है, उस पुरीमें भगवती 'रेणुका' रहती हैं॥५॥'तुलजापुर' मेरा तीसरा स्थान है । ऐसे ही एक स्थानका नाम 'सप्तशृङ्ग' है । 'हिंगुला' 'ज्वालामुखी, 'भ्रामरी' 'रक्तदन्तिका' और 'दुर्गा'इन देवियोंके साथ इन्हींके नामसे वे प्रसिद्ध हैं ॥६॥७॥ भगवती 'विन्ध्याचली' देवीका सर्वोत्तम स्थान 'विन्ध्य पर्वत'पर है । 'अन्नपूर्णाका स्थान' और काशी 'कांचीपुर स्थान' अत्यन्त श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥८॥ देवी 'भीमा' और 'विमला' के उत्तम स्थान इन्हींके नामसे विख्यात हैं । 'श्रीचन्द्रला'का महान् स्थान 'कर्णाटक' देशमें है । ऐसे ही एक 'कौशिकी' स्थान है ॥९॥ 'नीलाम्बा' देवीका स्थान 'नील पर्वत'के शिखरपर है । 'जाम्बूनदेश्वरी' श्रीनगरके पास रहती हैं ॥१०॥ भगवती 'गुह्यकाली'का महान् स्थान 'नेपाल' देशमें हैं। भगवती मीनाक्षीका स्थान 'चिदम्बरम्'में हैं ॥ ११ ॥ 'देवी सुन्दरी'का परम उत्तम स्थान 'वेदारण्य'में है । भगवती 'पराशक्ति' 'एकाम्बर' नामक सुप्रसिद्ध स्थानमें हैं ॥ १२ ॥ भगवती 'मदा-

पुरं महास्थानं यत्र लक्ष्मीः सदा स्थिता ॥ मातुःपुरं द्वितीयं च रेणुकाधिष्ठितं परम् ॥ ५ ॥ तुलजापुरं तृतीयं स्यात्सप्तशृङ्गं तथैव च ॥ हिंगुलाया महास्थानं ज्वालामुख्यास्तथैव च ॥ ६ ॥ शाकंभर्याः परं स्थानं भ्रामर्याः स्थानमुत्तमम् ॥ श्रीरक्तदन्तिकास्थानं दुर्गास्थानं तथैव च ॥ ७ ॥ विंध्याचलनिवासिन्याः स्थानं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ अन्नपूर्णामहास्थानं कांचीपुरमनुत्तमम् ॥८॥ भीमादेव्याः परं स्थानं विमलास्थानमेव च ॥ श्रीचन्द्रलामहास्थानं कौशिकीस्थानमेव च ॥ ९ ॥ नीलांबायाः परं स्थानं नीलपर्वतमस्तके ॥ जांबूनदेश्वरीस्थान तथा श्रीनगरं शुभम् ॥ १० ॥ गुह्यकाल्या महास्थानं नेपाले यत्प्रतिष्ठितम् ॥ मदालसा परं स्थानं यच्च प्रोक्तं चिदम्बरे ॥ ११ ॥ वेदारण्यं महास्थानं सुंदर्या समधिष्ठितम् ॥ एकांबरं महास्थानं पराशक्त्या प्रतिष्ठितम् ॥ १२ ॥ मदालसा परं स्थानं योगेश्वर्यास्तथैव च ॥ तथा नीलसरस्वत्याः स्थानं चीनेषु विश्रुतम् ॥१३॥ वैद्यनाथे तु बगलास्थानं सर्वोत्तमं मतम् ॥ श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्या मणिद्वीपं मम स्मृतम् ॥१४॥ श्रीमत्त्रिपुरभैरव्याः कामाख्यायोनिमण्डलम् ॥ भूमंडले क्षेत्ररत्नं महामायाऽधिवासितम् ॥ १५ ॥ नातः परतरं स्थानं क्वचिदस्ति धरातले ॥ प्रतिमासं भवेद्देवी यत्र साक्षाद्रजस्वला ॥ १६ ॥ तत्रत्या देवता सर्वाः पर्वतात्मकतां गताः ॥ पर्वतेषु वसंत्येव महत्यो देवता अपि ॥ १७ ॥ तत्रत्या पृथिवी सर्वा देवीरूपा स्मृता बुधैः ॥ नातः परतरं

लसा' और 'योगेश्वरी'का स्थान इन्हींके नामसे प्रसिद्ध है । देवी 'नीलसरस्वती'का स्थान 'चीन देश'में है ॥ १३ ॥ देवी 'बगला'का सर्वोत्कृष्ट स्थान वैद्यनाथधाममें है । मैं सर्वैश्वर्यसम्पन्न भगवती 'भुवनेश्वरी' हूँ । मेरा स्थान 'मणिद्वीप' पर्वतपर कहा गया है ॥१४॥ शंकरजी सतीका शरीर लेकर घूम रहे थे। उस समय सतीका योनिभाग जहाँ गिरा, वह स्थान 'कामरूप'नामसे देशसे प्रसिद्ध हो गया । वहीं भगवती 'त्रिपुरसुंदरी'का स्थान है। महामायासे शोभित यह स्थान जगत्में जितने क्षेत्र हैं, उन सबका रत्न है। धरातलमें इससे बढ़कर प्रसिद्ध स्थान कहीं कोईभी नहीं है । वह इतना जीता-जागता स्थान है कि प्रत्येक मासमें देवी वहाँ रजस्वला हुआ करती हैं ॥१५॥१६॥ उस समय वहाँके रहनेवाले सभी प्रधान देवता उस पर्वतपर चले आते और वहाँ ठहनेकी व्यवस्था कर लेते हैं ॥ १७ ॥ विद्वान् पुरुषोंका कथन है कि उस अवसरपर वहाँकी सम्पूर्ण भूमि देवीमय हो जाती है । अतः इस 'कामाख्यायोनि-मण्डल' से श्रेष्ठ अन्य कोई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थान नहीं है ॥ १८ ॥ हे हिमालय ! सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न 'पुष्कर' क्षेत्र भगवती 'गायत्री'का उत्तम स्थान कहा गया है। 'अमरकण्टक' क्षेत्रमें भगवती 'चण्डिका'का स्थान है। 'प्रभास'क्षेत्रमें भगवती 'पुष्करेक्षिणी' रहती हैं ॥१९॥ 'नौमिषारण्य' परम प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे शोभा पानेवाली भगवती 'ललिता' विराजती हैं। 'पुष्कराक्ष'में देवी पुरुहूताका तथा 'आषाढी'में देवी 'रति'का उत्तम धाम है ॥ २० ॥ 'चण्डमुण्डी' नामक स्थानमें चण्ड और मुण्डका वध करनेवाली परमेश्वरी 'दण्डिनी' विराजती हैं। 'भारभूति'में देवी 'भूति'का तथा 'नाकुल'में देवी 'नकुलेश्वरी'का धाम है ॥२१॥ 'हरिश्चन्द्र' नामक स्थानमें भगवती 'चन्द्रिका' एवं 'श्रीशैल' पर्वतपर भगवती 'शाङ्करी' रहती हैं। 'जप्येश्वर'में देवी 'त्रिशूला' और 'आम्रातकेश्वर'में देवी 'सूक्ष्मा' विराजती हैं ॥२२॥ महाकाल नामक क्षेत्रमें भगवती 'शांकरी', 'मध्यम' संज्ञक स्थानमें 'शर्वाणी' तथा 'केदार' नामसे प्रसिद्ध महान् क्षेत्रमें देवी 'मार्गदायिनी' शोभा पाती हैं॥२३॥ 'भैरव' नामक स्थानमें भगवती 'भैरवी' तथा 'गया'में भगवती 'मङ्गला'का स्थान कहा गया है। देवी 'स्वायम्भुवी' नाकुलमें, ॥२४॥ 'कनखल'में देवी

स्थानं कामाख्यायोनिमण्डलात् ॥ १८ ॥ गायत्र्याश्च परं स्थानं श्रीमत्पुष्करमीरितम् ॥ अमरेशे चण्डिका स्यात्प्रभासे पुष्करेक्षिणी ॥ १९ ॥
नैमिषे तु महास्थाने देवी सा लिङ्गधारिणी ॥ पुरुहूता पुष्कराक्षे आषाढौ च रतिस्तथा ॥ २० ॥ चण्डमुण्डीमहास्थाने दण्डिनी परमेश्वरी ॥ भार-
भूतौ भवेद्भूतिर्नाकुले नकुलेश्वरी ॥ २१ ॥ चन्द्रिका तु हरिश्चंद्रे श्रीगिरौ शांकरी स्मृता ॥ जप्येश्वरे त्रिशूला स्यात्सूक्ष्मा चाम्रातकेश्वरे ॥ २२ ॥
शांकरी तु महाकाले शर्वाणी मध्यमाभिधे ॥ केदाराख्ये महाक्षेत्रे देवी सा मार्गदायिनी ॥ २३ ॥ भैरवाख्ये भैरवी सा गयायां मंगला स्मृता ॥
स्थाणुप्रिया कुरुक्षेत्रे स्वायंभुव्यपि नाकुले ॥ २४ ॥ कनखले भवेदुग्रा विश्वेशी विमलेश्वरे ॥ अट्टहासे महानन्दा महेंद्रे तु महातका ॥ २५ ॥
भीमे भीमेश्वरी प्रोक्ता स्थाने वस्त्रापथे पुनः ॥ भवानी शांकरी प्रोक्ता रुद्राणी त्वर्धकोटिके ॥ २६ ॥ अविमुक्ते विशालाक्षी महाभागा महालये ॥
गोकर्णे भद्रकर्णी स्याद्भद्रा स्याद्भद्रकर्णके ॥२७॥ उत्पलाक्षी सुवर्णाक्षे स्थाण्वीशा स्थाणुसंज्ञके ॥ कमलालये तु कमला प्रचण्डा छगलंडके ॥२८॥
कुरण्डले त्रिसंध्या स्यान्माकोटे मुकुटेश्वरी ॥ मंडलेशे शांडकी स्यात्काली कालंजरे पुनः ॥२९॥ शंकुकर्णे ध्वनिः प्रोक्ता स्थूला स्यात्स्थूलकेश्वरे॥
ज्ञानिनां हृदयांभोजे हृल्लेखा परमेश्वरी ॥३०॥ प्रोक्तानीमानि स्थानानि देव्याः प्रियतमानि च ॥ तत्तत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा पूर्वं नगोत्तम ॥३१॥

'उग्रा'का, विमलेश्वरमें 'विश्वेशी'का, अट्टहास नामक स्थानमें 'महानन्दा'का, 'महेन्द्र' पर्वतपर 'महान्तका'का ॥२५॥ 'भीमा'पर्वतपर भगवती 'भीमेश्वरी'का, 'वस्त्रापथ' नामक स्थानमें भगवती 'शांकरी'का, 'अर्द्धकोटि' पर्वतपर 'रुद्राणी'का ॥२६॥ 'अविमुक्त' (काशी) क्षेत्रमें 'विशालाक्षी'का, 'महालय'में 'महाभागा'का 'गोकर्ण'में 'भद्रकर्णी'का, 'भद्रकर्णक'में 'भद्रास्या'का ॥२७॥ 'सुवर्णाक्ष' नामक स्थानमें 'उत्पलाक्षी'का, 'स्थाणु' नामके स्थानमें 'स्थाण्वीशा'का, 'कमलालय'में 'कमला'का, 'छगलण्डक'में 'प्रचण्डा'का, ॥२८॥ कुरण्डलमें 'त्रिसंध्या'का 'माकोट'में 'मुकुटेश्वरी'का, 'मण्डलेश'में 'शाण्डकी'का, 'कालंजर' पर्वतपर 'काली'का, 'शङ्कुकर्ण' पर्वतपर 'ध्वनि'का तथा 'स्थूलकेश्वर' पर्वतपर देवी 'स्थूला'का धाम कहा गया है। परमेश्वरी 'हृल्लेखा' सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुषोंके हृदयरूपी कमलपर विराजमान रहती हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे पर्वतराज हिमालय ! उपर्युक्त सभी स्थान देवीको परम प्रिय हैं। पहले इन सम्पूर्ण क्षेत्रोंका माहात्म्य सुने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ३१ ॥ तत्पश्चात् शास्त्रोक्त विधिसे देवीकी पूजामें लग जाय। अथवा हे नगराज ! ये सम्पूर्ण क्षेत्र काशीमें विराजमान हैं ॥ ३२ ॥ अतः देवीमें श्रद्धा रखनेवाला पुरुष निरन्तर काशीमें रहनेका प्रयत्न करे। वहीं रहकर उक्त स्थानोंका दर्शन करते हुए देवीके मंत्रका जप एवं उनके चरण-कमलका ध्यान करे ॥३३॥ इस पुण्यमय कर्मके प्रभावसे पुरुष संसार-बंधनसे मुक्त हो जाता है। हे हिमालय ! जो पुरुष प्रातःकाल उठकर भगवतीके इन नामोंका उच्चारण करता है, उसके सम्पूर्ण पाप उसी क्षण भस्म हो जाते हैं। द्विजमात्रका यह कर्तव्य है कि श्राद्धके अवसरपर सर्वप्रथम इन नामोंका पाठ करे। ऐसा करनेसे उसके समस्त पितर मुक्त होकर परम पद पा जाते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे हिमालय ! अब मैं तुम्हारे सामने व्रतोंकी चर्चा करती हूँ ॥ ३६ ॥ ये सभी व्रत स्त्री और पुरुष—प्रायः सबको यत्नपूर्वक करने चाहिये। व्रतोंमें जो तृतीयाव्रत है, उसके तीन नाम हैं—अनन्ततृतीया

तदुक्तेन विधानेन पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत् ॥ अथवा सर्वक्षेत्राणि काश्यां संति नगोत्तम ॥ ३२ ॥ अतस्तत्र वसेन्नित्यं देवी भक्तिपरायणः ॥ तानि स्थानानि संपश्यञ्जपन्देवीं निरन्तरम् ॥ ३३ ॥ ध्यायंस्तच्चरणांभोजं मुक्तो भवति बंधनात् ॥ इमानि देवीनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ ३४ ॥ भस्मीभवंति पापानि तत्क्षणान्नग सत्वरम् ॥ श्राद्धकाले पठेदेतान्यमलानि द्विजाग्रतः ॥ ३५ ॥ मुक्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमां गतिम् ॥ अधुना कथयिष्यामि व्रतानि तव सुव्रत ॥ ३६ ॥ नारीभिश्च नरैश्चैव कर्तव्यानि प्रयत्नतः ॥ व्रतमनन्ततृतीयाख्यं रसकल्याणिनीव्रतम् ॥ ३७ ॥ आर्द्रानन्दकरं नाम्ना तृतीयाया व्रतं च यत् ॥ शुक्रवारव्रतं चैव तथा कृष्णचतुर्दशी ॥३८॥ भौमवारव्रतं चैव प्रदोषव्रतमेव च ॥ यत्र देवो महादेवो देवीं संस्थाप्य विष्टरे ॥ ३९ ॥ नृत्यं करोति पुरतः सार्धं देवैर्निशामुखे ॥ तत्रोपोष्य रजन्यादौ प्रदोषे पूजयेच्छिवाम् ॥ ४० ॥ प्रतिपक्षं विशेषेण तद्देवीप्रीतिकारकम् ॥ सोमवारव्रतं चैव ममातिप्रियकृन्नग ॥ ४१ ॥ तत्रापि देवीं संपूज्य रात्रौ भोजनमाचरेत् ॥ नवरात्रद्वयं चैव व्रतं प्रीतिकरं मम ॥ ४२ ॥ एवमन्यान्यपि विभो नित्यनैमित्तिकानि च ॥ व्रतानि कुरुते यो वै मत्प्रीत्यर्थं विमत्सरः ॥ ४३ ॥ प्राप्नोति मम सायुज्यं स मे भक्तः स मे प्रियः ॥ उत्सवानपि कुर्वीत दोलोत्सवमुखान्विभो ॥ ४४ ॥ शयनोत्सवं तथा कुर्यात्तदा जागरणोत्सवम् ॥ रथोत्सवं च मे कुर्याद्दमनो-

व्रत, रसकल्याणिनी व्रत एवं आर्द्रानन्दकरी व्रत। शुक्रवार और चतुर्दशीको भी देवीका व्रत किया जाता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ भौमवारको भी देवीव्रत कहते हैं। प्रदोष देवीका वह व्रत है, जिस समय आधी रातमें भगवान् शङ्कर अपनी प्रेयसी प्रियाको आसनपर बैठाकर उनके सामने देवताओंके साथ नृत्य करते हैं। उस दिन उपवास करके सायंकालके प्रदोषमें देवीकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ देवीको विशेषरूपसे संतुष्ट करनेवाला यह व्रत प्रतिपक्षमें मनाया जाता है। हे हिमालय ! सोमवारका व्रत मुझे भी बहुत प्रिय है ॥४१॥ इस व्रतमें दिन-भर उपवास करके देवीका पूजन करनेके पश्चात् रात्रिमें भोजन करना चाहिए। चैत्र और आश्विन-दोनोंके नवरात्र मुझे परम प्रिय हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकार अन्य भी अनेक नित्य और नैमित्तिक व्रत हैं। जो राग-द्वेषसे रहित होकर मेरी प्रसन्नताके लिए इन व्रतोंका अनुष्ठान करता है, उसे मेरा सायुज्यपद प्राप्त हो जाता है। उस पुरुषको मैं अपना भक्त एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रिय मानती हूँ । हे राजन् ! व्रतोंके अवसरपर झूला सजाकर मेरा उत्सव मनाना चाहिये ॥४३॥४४॥ शयनोत्सव, जागरणोत्सव, रथोत्सव तथा दमनोत्सव आदि अनेक उत्सव हैं । इन्हें मनाना आवश्यक है ॥४५॥ श्रावण महीनेमें एक पवित्रोत्सव होता है । उससे मैं बहुत प्रसन्न होती हूँ । मेरा भक्त सदा इस उत्सवका आयोजन करे । ऐसे ही अन्य भी बहुत-से महोत्सव हैं, जिन्हें मनाना चाहिये ॥ ४६ ॥ उत्सवके अवसरपर मेरे भक्तोंको प्रसन्नतापूर्वक भोजन कराये । सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराया जाय । कुमारी कन्याओं और ब्रह्मचारियोंको मेरा ही स्वरूप समझकर उन्हें भोजन कराये ॥ ४७ ॥ खुले हाथसे धन व्यय करते हुए ब्राह्मणकी कुमारी कन्याओं तथा ब्रह्मचारियोंकी पुष्प आदिसे पूजा करे । जो इस प्रकार सावधान मनसे प्रीतिपूर्वक प्रतिवर्ष मेरा पूजन करता है, वह धन्य, कृतकृत्य तथा निःसन्देह मेरा प्रेमपात्र होता है । संक्षेपमें मैंने यह सारी बातें बतला दीं । यह प्रसङ्ग मेरे लिए बहुत ही प्रिय है । जो मेरा अनुशासन न मानता हो तथा मेरे प्रति जिसकी श्रद्धा न हो, उसके सामने यह प्रसङ्ग कभी नहीं कहना चाहिये ॥ ४८ । ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे

त्सवमेव च ॥ ४५ ॥ पवित्रोत्सवमेवापि श्रावणे प्रीतिकारकम् ॥ मम भक्तः सदा कुर्यादेवमन्यान्महोत्सवान् ॥ ४६ ॥ मद्भक्तान्भोजयेत्प्रीत्या तथा चैव सुवासिनीः ॥ कुमारीर्बटुकांश्चापि मद्बुद्ध्या मद्गतांतरः ॥ ४७ ॥ वित्तशाठ्येन रहितो यजेदेतान्सुमादिभिः ॥ य एवं कुरुते भक्त्या प्रतिवर्षमतंद्रितः ॥ ४८ ॥ स धन्यः कृतकृत्योऽसौ मत्प्रीतेः पात्रमंजसा ॥ सर्वमुक्तं समासेन मम प्रीतिप्रदायकम् ॥ नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे देवीगीतायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

॥ हिमालय उवाच॥ देवदेवि महेशानि करुणासागरेऽम्बिके ॥ ब्रूहि पूजाविधिं सम्यग्यथावदधुना निजम् ॥१॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वक्ष्ये पूजाविधिं राजन्नंबिकाया यथा प्रियम् ॥ अत्यन्तश्रद्धया सार्धं शृणु पर्वतपुंगव ॥२॥ द्विविधा मम पूजा स्याद्बाह्या चाभ्यन्तराऽपि च॥ बाह्याऽपि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तांत्रिकी तथा ॥ ३ ॥ वैदिक्यर्चाऽपि द्विविधा मूर्तिभेदेन भूधर॥ वैदिकी वैदिकैः कार्या वेददीक्षासमन्वितैः ॥४॥ तंत्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तांत्रिकी संश्रिता भवेत्॥ इत्थं पूजारहस्यं च न ज्ञात्वा विपरीतकम् ॥५॥ करोति यो नरो मूढः स पतत्येव सर्वथा ॥ तत्र या वैदिकी प्रोक्ता प्रथमा तां वदा-

पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

(देवीपूजनके विविध प्रसंग) हिमालयने कहा—हे देवेश्वरी ! हे महेशानी ! हे करुणानिधे ! हे अम्बिके ! अब अपने पूजनकी समुचित विधि बतानेकी कृपा कीजिये ॥ १ ॥ श्रीदेवीजी कहती हैं—हे राजन् ! हे पर्वतराज! जगदम्बाको यथार्थरूपमें प्रसन्न करनेवाले पूजनकी विधि मैं बताती हूँ । तुम अत्यन्त श्रद्धालु होकर इसका श्रवण करो ॥२॥ मेरी पूजा दो प्रकारकी है—बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य पूजाके भी दो प्रकार बताये गये हैं—'वैदिकी' और 'तांत्रिकी' ॥ ३ ॥ हे हिमालय ! मूर्तिभेदसे वैदिकी पूजा भी दो प्रकारसे सम्पन्न होती है। वैदिक मन्त्रोंके अध्ययनशील पुरुष वेदके मन्त्रोंका उच्चारण करके जो पूजा करते हैं, वह 'वैदिकी' तथा तन्त्रोक्त मन्त्रोंसे जो पूजा सम्पन्न होती है, उसे 'तांत्रिकी' पूजा कहते हैं। इस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूजा-रहस्यको न समझकर जो अज्ञानी मानव उलटे ही ढंगसे पूजनमें संलग्न होता है, वह सर्वथा पतनोन्मुख है। सर्वप्रथम जो वैदिकी पूजा है, उसका प्रकार बताती हूँ ॥ ४--६ ॥ हे हिमालय ! तुम मेरे जिस महान् रूपका साक्षात् दर्शन कर चुके हो, जिसमें अनन्त मस्तक, नेत्र और चरण थे ॥ ७ ॥ जो सम्पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ एवं प्रेरक था, उसी रूपका निरन्तर पूजन, नमन, ध्यान और स्मरण करना चाहिए ॥ ८ ॥ हे पर्वतराज ! प्रथम पूजाका यही रूप बताया गया है। तुम चित्तको शान्त करके सावधान हो तथा दम्भ एवं अहंकारसे शून्य होकर उसकी शरणमें जाओ। यज्ञशील बनकर पूजामें पूरी तत्परता रखना। जिससे चित्तके द्वारा वही रूप दीखता रहे। जप और ध्यानकी शृंखला कभी टूटे नहीं ॥ ९ ॥ १० ॥ अनन्य एवं प्रेमपूर्ण भक्तिसे मेरे उपासक बनकर यज्ञोंके द्वारा मेरा पूजन तथा तप एवं दानके द्वारा मुझे ही सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न करो ॥ ११ ॥ यों करनेसे मेरी कृपा तुम्हें संसार-बन्धनसे अवश्य मुक्त कर देगी। जो सदा मुझपर निर्भर रहते हैं तथा जिनका चित्त निरन्तर मुझमें लगा रहता है, वे मेरे उत्तम भक्त माने जाते हैं। मेरी

म्यहम् ॥ ६ ॥ यन्मे साक्षात्परं रूपं दृष्टवानसि भूधर ॥ अनंतशीर्षनयनमनंतचरणं महत् ॥ ७ ॥ सर्वशक्तिसमायुक्तं प्रेरकं यत्परात्परम् ॥ तदेव
पूजयेन्नित्यं नमेद्ध्यायेत्स्मरेदपि ॥ ८ ॥ इत्येतत्प्रथमार्चायाः स्वरूपं कथितं नग ॥ शांतः समाहितमना दंभाहंकारवर्जितः ॥ ९ ॥ तत्परो
भव तद्याजी तदेव शरणं व्रज ॥ तदेव चेतसा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा ॥ १० ॥ अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रितः ॥ यज्ञैर्यज
तपोदानैर्मामेव परितोषय ॥ ११ ॥ इत्थं ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भवबन्धनात् ॥ मत्परा ये मदासक्तचित्ता भक्तवरा मताः ॥ १२ ॥
प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु ॥ ध्यानेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुनः ॥ १३ ॥ प्राप्याहं सर्वथा राजन्न तु केवलकर्मभिः ॥ धर्मात्सं-
जायते भक्तिर्भक्त्या संजायते परम् ॥१४॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत्स धर्मः प्रकीर्तितः ॥ अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते ॥ १५ ॥
सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेदः समुत्थितः ॥ अज्ञानस्य ममाभावादप्रमाणा न च श्रुतिः ॥१६॥ स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गताः ॥ मन्वादीनां
श्रुतीनां च ततः प्रामाण्यमिष्यते ॥ १७ ॥ क्वचित्कदाचित्तन्त्रार्थं कटाक्षेण परोदितम् ॥ धर्मं वदन्ति सोंशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकैः ॥ १८ ॥

प्रतिज्ञा है कि मैं तुरन्त इस भवसागरसे उनका उद्धार कर दूँ। हे राजन् ! मैं ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग अथवा ज्ञानयोग—इनमेंसे किसीके द्वारा भी प्राप्त हो सकती हूँ, न कि केवल कर्मयोगसे ही। कर्म निरर्थक नहीं हैं। क्योंकि सत्कर्मके प्रभावसे पापका उच्छेद होकर धार्मिक भावना जाग जाती है। धर्मसे भक्तिका प्रादुर्भाव होता है और भक्ति परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त होनेमें प्रमुख साधन है ॥१२--१४॥ श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपादित सत्कर्म ही धर्म कहा गया है। अन्य शास्त्रोंमें कथित धर्मको केवल धर्माभास कहते हैं ॥ १५ ॥ मैं ज्ञान एवं सब कुछ करनेकी योग्यतासे सम्पन्न हूँ। मुझसे उत्पन्न होनेके कारण वेदमें भी ये सभी सद्गुण हैं। वेदसे उत्पन्न श्रुति भी अप्रामाणिक नहीं है ॥ १६ ॥ श्रुतिके ही अर्थको लेकर स्मृतियोंका प्रकाशन हुआ है, जो मनुस्मृति आदिके नामसे विख्यात हैं। अतः श्रुतियों और स्मृतियोंकी प्रामाणिकता स्वयं सिद्ध है ॥ १७ ॥ स्मृतियों और पुराणोंमें कटाक्ष करते हुए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहीं-कहीं वेदके विरुद्ध कुछ अंश पाये जाते हैं और उसे भी धर्म बताया गया है, सो वैदिक विद्वानोंको चाहिए कि उस अंशको न मानें ॥ १८ ॥ क्योंकि अन्य शास्त्रकर्ताओंके वाक्य अज्ञानमूलक हैं। सो अज्ञानदोषसे दूषित होनेके कारण वे प्रामाणिक नहीं माने जा सकते ॥ १९ ॥ अतएव मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको सद्धर्मकी प्राप्तिके लिए सर्वथा वेदका आश्रय लेना चाहिये। जैसे जगत्में राजाकी आज्ञाको कभी कोई नहीं टाल सकता, वैसे ही मुझ सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र शासिकाकी आज्ञा जो श्रुति है, उसे मनुष्य कैसे अमान्य कर सकते हैं? मेरी आज्ञाका पालन हो—एतदर्थ मैंने ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि वर्णोंको उत्पन्न किया है। अब मेरी वाणी जो श्रुति है, उसका अभिप्राय समझ लीजिए। हे हिमालय! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मेरे अवतार हुआ करते हैं। हे राजन्! इसीलिए देवताओं और दैत्योंका विभाग हुआ है ॥२०-२३॥ जो लोग मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले सद्धर्म और सत्-शिक्षाके अनुसार व्यवहार नहीं करते, उनके लिए मैंने नरकोंकी सृष्टि कर रखी है। वे नरक ऐसे वीभत्स हैं कि सुननेमात्रसे हृदय काँप उठता है ॥२४॥ वेदमें कहे गये धर्मका परि-

अन्येषां शास्त्रकर्तॄणामज्ञानं प्रभवत्वतः ॥ अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तदुक्तेर्न प्रमाणता ॥१९॥ तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं सर्वदा वेदमाश्रयेत् ॥ राजाज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन ॥२०॥ सर्वेशान्या ममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या कथं नृभिः ॥ मदाज्ञारक्षणार्थं तु ब्रह्मक्षत्रियजातयः ॥ २१ ॥ मया सृष्टास्ततो ज्ञेयं रहस्यं मे श्रुतेर्वचः ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर ॥ २२ ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान्बिभर्म्यहम् ॥ देवदैत्यविभागश्चाप्यत एवाभवन्नृप ॥२३॥ ये न कुर्वन्ति तद्धर्मं तच्छिक्षार्थं मया सदा ॥ संपादितास्तु नरकास्त्रासो यच्छ्रवणाद्भवेत् ॥२४॥ यो वेदधर्ममुज्झित्य धर्ममन्यं समाश्रयेत् ॥ राजा प्रवासयेद्देशान्निजादेतानधर्मिणः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणैर्न च संभाष्याः पंक्तिग्राह्या न च द्विजैः ॥ अन्यानि यानि शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्विविधानि च ॥ २६ ॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येव सर्वशः ॥ वामं कापालकं चैव कौलकं भैरवागमः ॥ २७ ॥ शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतो नान्यहेतुकः ॥ दक्षशापाद्भृगोः शापाद्दधीचस्य च शापतः ॥ २८ ॥ दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्गबहिष्कृताः ॥ तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमतः सदा ॥ २९ ॥ शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सौराः शाक्तास्तथैव च ॥ गाणपत्या आगमाश्च प्रणीताः शंकरेण तु ॥३०॥ तत्र वेदविरुद्धोंशोऽप्युक्त एव क्वचित्क्वचित् ॥ वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित् ॥ ३१ ॥ सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजो भवेत् ॥ वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्त-

त्याग करके जो अन्य अधर्मका आश्रय लेते हैं, राजाको चाहिये कि उन अधार्मिक व्यक्तियोंको अपने राज्यसे निकाल दे ॥२५॥ ब्राह्मण लोग उन अधार्मिकोंसे न बात करें और न उन्हें अपनी पंक्तिमें बैठायें। इस जगत्में तरह-तरहके अन्य जितने शास्त्र हैं, वे सभी श्रुति और स्मृतिसे विरुद्ध होनेके कारण तामस कहे जाते हैं। उन शास्त्रोंके नाम हैं—वाम, कापाल, कौलक और भैरवागम ॥२६॥२७॥ शिवजीने मोहमें डालनेके लिए इन शास्त्रोंका प्रतिपादन किया है—इसके सिवाय दूसरा कोई कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त दक्ष प्रजापतिके शाप, महर्षि भृगुके शाप और महर्षि दधीचके शापसे जो उच्चकोटिके ब्राह्मण पथभ्रष्ट हो गये थे। उनके उद्धारार्थ सोपानके क्रमसे शङ्करजीने शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त और गाणपत्य आगमका निर्माण किया ॥ २८-३० ॥ उनमें कहीं-कहीं वेदसे अविरुद्ध अंश भी है। वेदज्ञ पुरुष उस अंशको ग्रहण कर लें तो कोई दोष नहीं है ॥ ३१ ॥ वेदसे भिन्न अर्थको स्वीकार करनेके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्विज सर्वथा अनधिकारी होता है। अतएव वैदिक पुरुष सम्यक् प्रकारसे प्रयत्न करके वेदका ही आश्रय ले। यही शाश्वत धर्म है। इसके साथ रहनेवाले ज्ञानसे ही परब्रह्म प्रकाशित हो सकता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जो सम्पूर्ण इच्छाओंका त्याग करके मेरी ही शरण आ गये हैं, समस्त प्राणियोंपर दया करते हैं; मान एवं अहंकारसे रहित हैं ॥ ३४ ॥ जिनका चित्त मुझमें अनुरक्त रहता है, प्राण भी मुझमें लगे रहते हैं, जिनके द्वारा मेरे स्थानोंकी चर्चा होती रहती है। ऐसे संन्यासी, वानप्रस्थी, गृहस्थ तथा ब्रह्मचारी यदि भक्तिपूर्वक मेरे विराटरूपकी सदा उपासना करते हैं तो निरन्तर मुझमें लगे रहनेवाले उन पुरुषोंके अज्ञानजन्य अन्धकारको ज्ञानमय सूर्यके प्रकाश द्वारा मैं तुरन्त नष्ट कर देती हूँ—इसमें कोई संदेह नहीं है। हे हिमालय! इस प्रकार वेदके सिद्धान्तपर निर्भर रहनेवाली मेरी प्रथम पूजा सम्पन्न होती है। इसका स्वरूप मैंने संक्षेपमें बताया है ॥ ३५–३७ ॥ अब दूसरी पूजाका प्रसंग बतलाती हूँ। मूर्ति, वेदी, सूर्य अथवा चन्द्रमाका मण्डल ॥३८॥ जल, बाणाकार चिह्न, यन्त्र; महान् चित्रपट अथवा हृदयरूपी कमलपर मुझ परमेश्वरीका ध्यान करके पूजन करे ॥३९॥ मेरे सगुणरूप

त्राधिकारवान् ॥ ३२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिको वेदमाश्रयेत् ॥ धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥ सर्वैषणाः परित्यज्य मामेव शरणं गताः ॥ सर्वभूतदयावंतो मानाहंकारवर्जिताः ॥३४॥ मच्चित्ता मद्गतप्राणा मत्स्थानकथने रताः ॥ संन्यासिनो वनस्थाश्च गृहस्था ब्रह्मचारिणः ॥ ३५ ॥ उपासंते सदा भक्त्या योगमैश्वरसंज्ञितम् ॥ तेषां नित्याभियुक्तानामहमज्ञानजं तमः ॥ ३६ ॥ ज्ञानसूर्यप्रकाशेन नाशयामि न संशयः ॥ इत्थं वैदिकपूजायाः प्रथमाया नगाधिप ॥ ३७ ॥ स्वरूपमुक्तं संक्षेपाद्द्वितीयाया अथो ब्रुवे ॥ मूर्तौ वा स्थंडिले वापि तथा सूर्येन्दुमण्डले ॥३८॥ जलेऽथ वा बाणलिंगे यन्त्रे वाऽपि महापटे ॥ तथा श्रीहृदयांभोजे ध्यात्वा देवीं परात्पराम् ॥ ३९ ॥ सगुणां करुणापूर्णां तरुणीमरुणारुणाम् ॥ सौंदर्यसारसीमां तां सर्वावयवसुंदरीम् ॥ ४० ॥ शृङ्गाररससम्पूर्णां सदा भक्तार्तिकातराम् ॥ प्रसादसुमुखीमंबां चंद्रखंडशिखंडिनीम् ॥ ४१ ॥ पाशांकुशवराभीतिधरामानन्दरूपिणीम् ॥ पूजयेदुपचारैश्च यथावित्तानुसारतः ॥ ४२ ॥ यावदांतरपूजायामधिकारो भवेन्न हि ॥ तावद्बाह्यामिमां पूजां श्रयेज्जाते तु तां त्यजेत् ॥ ४३ ॥ आभ्यन्तरा तु या पूजा सा तु संविल्लयः स्मृतः ॥ संविदेव परं रूपमुपाधिरहितं मम ॥ ४४ ॥ अतः

का ध्यान यों करना चाहिये—देवी करुणासे परिपूर्ण हैं, इनकी तरुण अवस्था है। संध्याकी लालिमा-जैसे ललित वर्णसे ये शोभा पा रही हैं। इनका श्रीविग्रह सुन्दरताकी सीमा है। इनके सम्पूर्ण अङ्ग परम मनोहर हैं ॥४०॥ कोई भी ऐसा शृंगार नहीं है, जो इनमें न हो। भक्तोंके दुःखसे ये सदा दुखी रहा करती हैं। इन जगदम्बाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे भरा रहता है। मुकुटपर बाल-चन्द्रमा तथा मयूरपंख शोभा बढ़ा रहे हैं ॥४१॥ इन्होंने पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्राको धारण कर रखा है। ये आनन्दमय रूपसे शोभित हैं। इस प्रकार ध्यान करके वित्तके अनुसार सामग्रियाँ जुटाकर उससे मेरी पूजाका कार्य सम्पन्न करे ॥४२॥ जबतक अन्तःपूजाका अधिकार न मिले, तबतक बाह्य पूजा ही करनी चाहिए। अधिकारी होते ही बाह्य पूजा छोड़कर अन्तःपूजामें लग जाय ॥४३॥ क्योंकि मेरी जो आभ्यन्तर पूजा है, वह थोड़े समय बाद ज्ञानमें लीन हो जाती है—ऐसा कथन है। उपाधिशून्य ज्ञान ही मेरा रूप है ॥४४॥ अतः मेरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञानमय रूपमें अपने आश्रयहीन चित्तको लगा देना चाहिये। इस ज्ञानमय रूपके अतिरिक्त यह प्रपञ्चमय जगत् सर्वथा असत् है ॥४५॥ इसीलिए जन्म और मृत्युकी क्रियाको शांत करनेके उद्देश्यसे एकनिष्ठ होकर मेरा चिंतन करना चाहिए ॥४६॥ मैं सर्वसाक्षिणी एवं आत्मस्वरूपिणी हूँ। ध्यानयोगपूर्ण चित्तसे मेरा स्मरण करना चाहिये। हे हिमालय! इसके बाद बाह्य-पूजाका प्रसंग विस्तारपूर्वक मेरे द्वारा वर्णित होगा। तुम अपने मनको सावधान करके सुनो ॥ ४७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

पूजनविधान और फलश्रुति) श्रीदेवी कहती हैं–हे हिमालय! प्रातःकाल उठकर अपने मस्तकमें जो ब्रह्मरन्ध्र है, उसमें एक स्वच्छ सहस्रदल कमलका चिंतन करे। ध्यान यों होना चाहिये–'वह कमल कपूरके समान श्वेत वर्णका है। मेरे लौकिक गुरुके समान आकारवाले महाभाग गुरुदेव इस कमलके आसनपर विराजमान हैं ॥ १ ॥ इनका मुख परम प्रसन्न है। तरह-तरहके आभूषण इनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इनकी शक्ति भी इनके साथ बैठी है। ध्यानोपरान्त प्रणाम करके पण्डितजन कुण्डलिनीमें देवीका ध्यान करें–॥ २ ॥ ये ही देवो प्रथम

संविदि मद्रूपे चेतः स्थाप्यं निराश्रयम् ॥ संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्या मायामयं जगत् ॥ ४५ ॥ अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम् ॥ भावयेन्निर्मनस्केन योगयुक्तेन चेतसा ॥ ४६ ॥ अतः परं बाह्यपूजाविस्तारः कथ्यते मया ॥ सावधानेन मनसा शृणु पर्वतसत्तम ॥ ४७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ देव्युवाच ॥ प्रातरुत्थाय शिरसि संस्मरेत्पद्ममुज्ज्वलम् ॥ कर्पूराभं स्मरेत्तत्र श्रीगुरुं निजरूपिणम् ॥ १ ॥ सुप्रसन्नं लसद्भूषाभूषितं शक्तिसंयुतम् ॥ नमस्कृत्य ततो देवीं कुण्डलीं संस्मरेद्बुधः ॥ २ ॥ प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ॥ अन्तः पदव्यामनु-संचरंतीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ॥ ३ ॥ ध्यात्वैवं तच्छिखामध्ये सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ मां ध्यायेदथ शौचादिक्रियाः सर्वाः समापयेत् ॥ ४ ॥ अग्निहोत्रं ततो हुत्वा मत्प्रीत्यर्थं द्विजोत्तमः ॥ होमांते स्वासने स्थित्वा पूजासंकल्पमाचरेत् ॥ ५ ॥ भूतशुद्धिं पुरा कृत्वा मातृकान्यासमेव च ॥ हृल्लेखामातृकान्यासं नित्यमेव समाचरेत् ॥ ६ ॥ मूलाधारे हकारं च हृदये च रकारकम् ॥ भ्रूमध्ये तद्वदीकारं ह्रींकारं मस्तके न्यसेत् ॥ ७ ॥

प्रयाणमें अथात् जब ब्रह्मरन्ध्रपर पधारी थीं, तब इनका रूप एक प्रकाश-पुञ्ज जैसा था। फिर कुण्डलिनीमें पधारनेपर ये अमृतस्वरूपिणी बन गयीं। अन्तःपदमें अर्थात् सुषुम्णा नाड़ीमें विराजते समय ये ही परम शक्ति एक अबला स्त्रीके रूपमें दर्शन दे रही हैं। इनका रूप परम आनन्दमय है। अतः मैं इनकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥ हे राजन्! इस प्रकार ध्यान करनेके पश्चात् कुण्डलिनी शिखाके मध्यमें मुझ सच्चिदानन्दरूपिणी देवीका ध्यान करे। ये सभी क्रियाएँ संध्या-वन्दनके अन्तमें पूर्ण करनी चाहिये ॥ ४ ॥ इसके बाद श्रेष्ठ द्विज मुझे प्रसन्न करनेके लिए अग्निहोत्र करें। होम करनेके उपरान्त अपने आसनपर बैठकर मेरी पूजामें संलग्न हो जायँ ॥ ५ ॥ पहले भूतशुद्धि करके फिर मातृकान्यास करना चाहिए। मातृकान्यासमें पहले 'र' इस मायाबीजका उल्लेख अनिवार्य है। पूजामें प्रतिदिन यह न्यास होना चाहिए ॥ ६ ॥ मूलाधारमें हकार, हृदयमें रकार, भ्रूमध्यमें ईकार तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मस्तकमें ह्रींकारका न्यास करे ॥ ७ ॥ तत्-तत् मन्त्रोंके कथनानुसार अन्य सभी न्यासोंकी विधि सम्पन्न करनी चाहिये । ऐसी कल्पना करे कि 'मेरे इस शरीरमें ही एक दिव्य पीठ है। जहाँ धर्म आदि सभी सत्कर्म मूर्तिमान् होकर एकसाथ विराजमान हैं' ॥८॥ तत्पश्चात् विज्ञ पुरुष यों ध्यान करे-'प्राणायामके प्रभावसे मेरा हृदयरूपी कमल खिल उठा है। यह पञ्चप्रेतासन है। इस दिव्य आसनपर महादेवी विराजमान हैं।' ॥९॥ हे हिमालय ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पाँचों देवता 'पञ्चमहाप्रेत' कहे जाते हैं। मेरे पादमूलमें ये रहते हैं—अर्थात् मेरे मंचके ये चार पाये हैं और फलक—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच भूतों तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया एवं अतीत—इन पाँच अवस्थाओंके ये व्यवस्थापक हैं। मेरा चिन्तनमय रूप तो अव्यक्त है ॥ १० ॥ ११ ॥ मैं इन अवस्थाओंसे सर्वथा परे हूँ। शक्तितन्त्रमें ब्रह्मा प्रभृतिका विष्टररूपमें परिणत होना प्रसिद्ध है। यों निरन्तर ध्यान करके मानसिक भोगसामग्रियोंसे मेरी पूजा और जप सम्पन्न करे ॥ १२ ॥ फिर मुझ श्रीदेवीको जप अर्पण करके अर्घ्य देनेकी व्यवस्था करे। सर्वप्रथम पूजाके सभी पात्र सामने रख ले।

तत्तन्मंत्रोदितानन्यान्न्यासान्सर्वान्समाचरेत् ॥ कल्पयेत्स्वात्मनो देहे पीठं धर्मादिभिः पुनः ॥ ८ ॥ ततो ध्यायेन्महादेवीं प्राणायामैर्विजृम्भिते ॥ हृदंभोजे मम स्थाने पञ्चप्रेतासने बुधः ॥ ९ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ एते पंच महाप्रेताः पादमूले मम स्थिताः ॥ १० ॥ पञ्चभूतात्मका ह्येते पञ्चावस्थात्मका अपि ॥ अहं त्वव्यक्तचिद्रूपा तदतीताऽस्मि सर्वदा ॥ ११ ॥ ततो विष्टरतां याताः शक्तितंत्रेषु सर्वदा ॥ ध्यात्वैवं मानसैर्भोगैः पूजयेन्मां जपेदपि ॥ १२ ॥ जपं समर्प्य श्रीदेव्यै ततोऽर्घ्यस्थापनं चरेत् ॥ पात्रासादनकं कृत्वा पूजाद्रव्याणि शोधयेत् ॥ १३ ॥ जलेन तेन मनुना चास्त्रमंत्रेण देशिकः ॥ दिग्बंधं च पुरा कृत्वा गुरून्नत्वा ततः परम् ॥१४॥ तदनुज्ञां समादाय बाह्यपीठे ततः परम् ॥ हृदिस्थां भावितां मूर्तिं मम दिव्यां मनोहराम् ॥ १५ ॥ आवाहयेत्ततः पीठे प्राणस्थापनविद्यया ॥ आसनावाहने चार्घ्यं पाद्याद्याचमनं तथा ॥ १६ ॥ स्नानं वासोद्वयं चैव भूषणानि च सर्वशः ॥ गंधं पुष्पं यथायोग्यं दत्त्वा देव्यै स्वभक्तितः ॥ १७ ॥ यन्त्रस्थानामावृतीनां पूजनं सम्यगाचरेत् ॥ प्रतिवारमशक्तानां शुक्रवारो नियम्यते ॥१८॥ मूलदेवीप्रभारूपाः स्मर्तव्या अंगदेवताः ॥ तत्प्रभापटलव्याप्तं त्रैलोक्यं च विचिंतयेत् ॥१९॥ पुनरावृत्ति-

पूजामें काम आनेवाली वस्तुओंको अस्त्रमन्त्र अर्थात् 'ॐफट्' इस मन्त्रका उच्चारण करके शुद्ध करे ॥ १३ ॥ दिग्बन्ध भी इसी मन्त्रसे करना चाहिये। यह सब कृत्य समाप्त करके गुरुदेवको प्रणाम करे। फिर मेरी आज्ञाके अनुसार बाह्यपूजाकी तैयारी करनी चाहिये। हे राजन् ! साधकके हृदयमें मेरी जो दिव्य मनोहर मूर्ति बसी हो, उसीका बाह्य पीठपर आवाहन करे। फिर वेदमन्त्र द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करना आवश्यक है। आसन, आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान और वस्त्रदान—ये विधियाँ क्रमशः सम्पन्न करे। दो वस्त्र अर्पण किये जायँ। भूषणोंसे मूर्तिका श्रृंगार करे। सब प्रकारकी गन्ध-पुष्प आदि वस्तुएँ यथायोग्य अपनी शक्तिके अनुसार देवीको अर्पण करे ॥ १४–१७ ॥ इसके बाद मन्त्रमें लिखित आवरणदेवताओंका सविधि पूजन होना चाहिए। जो प्रतिदिन पूजा न कर सकते हों, वे शुक्रवारको पूजा करनेका अनिवार्य नियम बना लें ॥ १८ ॥ अब उपयुक्त आवरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवताओंके प्रसंगमें बताती हूँ। पहले मूल देवीको भावना करे। ये देवी परम प्रकाशमय हैं। इनका प्रकाशपुंज समस्त त्रिलोकीमें व्याप्त है ॥ १९ ॥ यों चिन्तन करके आसन-पाद्य आदि उपचारोंसे अङ्गदेवताओंको सुपूजित करनेके उपरान्त पुनः मुझ मूल देवीकी पूजा करनी चाहिये। पुष्प, चन्दन, धूप, वस्त्र, नैवेद्य, तर्पण, ताम्बूल और दक्षिणा आदिसे मुझे सन्तुष्ट करना आवश्यक है। तुम्हारे बनाये हुए सहस्रनामसे मैं बहुत प्रसन्न होती हूँ ॥ २० ॥ २१ ॥ हे राजा जनमेजय! कवच तथा 'अहं रुद्रेभिः' इस सूक्त एवं 'देव्यथर्वशीर्ष'के मन्त्रों और महाविद्यासंज्ञक प्रधान मन्त्रोंसे बार-बार मुझे प्रसन्न करे। इसके बाद पूजकको चाहिये कि अपना हृदय प्रेमरससे स्निग्ध करके मुझ जगदम्बाके प्रति अपराध क्षमा करानेके लिए प्रार्थना करे ॥२२॥२३॥ उस समय सम्पूर्ण अङ्गोंके पुलकित होनेसे आँखोंमें आँसू आ जाय। कण्ठसे बोला न जा सके। बारम्बार नाच और गाकर मुझे सन्तुष्ट करे ॥ २४ ॥ सम्पूर्ण वेद और पुराण मेरे ही सुयशका बखान करते हैं। कारण, मैं उनकी अधिष्ठात्री हूँ। अतः उन वेदों एवं पुराणोंके सहयोगसे मुझे संतुष्ट करना चाहिये ॥२५॥ अपना सर्वस्व-यहाँतक कि अपने शरीरको

सहितां मूलदेवीं च पूजयेत् ॥ गंधादिभिः सुगंधैस्तु तथा पुष्पैः सुवासितैः ॥ २० ॥ नैवेद्यैस्तर्पणैश्चैव तांबूलैर्दक्षिणादिभिः ॥ तोषयेन्मां त्वत्कृतेन नाम्नां साहस्रकेण च ॥ २१ ॥ कवचेन च सूक्तेनाहं रुद्रेभिरिति प्रभो ॥ देव्यथर्वशिरोमंत्रैर्हृल्लेखोपनिषद्भवैः ॥ २२ ॥ महाविद्यामहामंत्रैस्तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं प्रेमार्द्रहृदयो नरः ॥ २३ ॥ पुलकांकितसर्वांगैर्बाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः ॥ नृत्यगीतादिघोषेण तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥ वेदपारायणैश्चैव पुराणैः सकलैरपि ॥ प्रतिपाद्या यतोऽहं वै तस्मात्तैस्तोषयेत्तु माम् ॥२५॥ निजं सर्वस्वमपि मे सदेहं नित्यशोऽर्पयेत् ॥ नित्य-होमं ततः कुर्याद्ब्राह्मणांश्च सुवासिनीः ॥२६॥ वटुकान्पामरानन्यान्देवीबुद्ध्या तु भोजयेत् ॥ नत्वा पुनः स्वहृदये व्युत्क्रमेण विसर्जयेत् ॥ २७ ॥ सर्वं हृल्लेखया कुर्यात्पूजनं मम सुव्रत ॥ हृल्लेखा सर्वमंत्राणां नासिका परमा स्मृता ॥२८॥ हृल्लेखदर्पणे नित्यमहं तत्प्रतिबिम्बिता ॥ तस्माद्धृल्ले-खया दत्तं सर्वमंत्रैः समर्पितम् ॥ २९ ॥ गुरुं संपूज्य भूषाद्यैः कृतकृत्यत्वमावहेत् ॥ य एवं पूजयेद्देवीं श्रीमद्भुवनसुंदरीम् ॥ ३० ॥ न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचित्कचिदस्ति हि ॥ देहांते तु मणिद्वीपं मम यात्येव सर्वथा ॥ ३१ ॥ ज्ञेयो देविस्वरूपोऽसौ देवा नित्यं नमंति तम् ॥ इति ते कथितं

भी मुझे अर्पण कर दे। तदनन्तर नित्यहोम करे। ब्राह्मण तथा सुहागिन स्त्रियोंको भोजन कराया जाय ॥ २६ ॥ छोटे-छोटे अबोध बालकोंको भी देवीका रूप मानकर उन्हें भोजन कराना चाहिये। नमस्कारके पश्चात् अपने हृदयमें जिस क्रमसे आवाहन आदि किया हो, ठीक उसके विपरीत क्रमसे विसर्जन करे ॥२७॥ हे उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले हिमालय! मेरी सारी पूजा हृल्लेखा 'ह्रीं' मंत्रसे सम्पन्न हो जाती है। क्योंकि यह मंत्र सम्पूर्ण मंत्रोंका अधिष्ठाता कहा गया है ॥२८॥ यह मंत्र दर्पण-सा है। मेरा प्रतिबिम्ब निरन्तर इसमें झलकता रहता है। अतः इस मंत्रका उच्चारण करके दिया हुआ पदार्थ सम्पूर्ण मंत्रोंसे अर्पित समझा जाता है। फिर भूषण आदि श्रेष्ठ सामग्रियोंसे गुरुदेवकी भलीभाँति पूजा करके स्वयं कृतकृत्य हो जाय। जो इस प्रकार मुझ त्रिभुवनसुन्दरी देवीकी उपासना करता है, उसके लिए कभी कोई वस्तु न दुर्लभ रहती है और न कमी रह सकती है। आयु समाप्त होनेपर वह बड़भागी व्यक्ति सीधे मेरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मणिद्वीपमें जा पहुँचता है। उसे मेरा स्वरूप ही समझना चाहिये। देवता लोग नित्य उस द्वीपको प्रणाम करते हैं। हे राजन्! इस प्रकार महादेवीकी पूजाका प्रसंग मैं तुम्हें सुना चुकी ॥ २९–३२ ॥ तुम इन सभी विषयोंपर भलीभाँति विचार करके अपने अधिकारके अनुसार मेरे पूजनमें संलग्न हो जाओ। इसके उत्तम प्रभावसे तुम कृतकृत्य हो जाओगे ॥ ३३ ॥ यह प्रसंग मेरा गीताशास्त्र कहलाता है। जो मेरी आज्ञा न मानता हो, मेरे प्रति जिसकी श्रद्धा न हो तथा धूर्त एवं दुष्ट विचारका हो, उसके सामने कभी इस प्रसंगका विवेचन नहीं करना चाहिए ॥ ३४ ॥ ऐसे अनधिकारी व्यक्तिके समक्ष इस प्रसंगको उपस्थित करना ठीक वैसे ही है, जैसे कोई अपनी माताके गोप्य स्थान स्तनको उघाड़कर दिखा रहा हो। अतएव यत्नपूर्वक निरन्तर इस रहस्यको गोप्य रखना परम आवश्यक है ॥ ३५ ॥ जो आज्ञाकारी बड़ा पुत्र तथा शिष्य श्रद्धालु, सुशील, सुन्दर तथा देवीभक्त हो, उसीको इसका उपदेश करना चाहिये ॥ ३६ ॥ श्राद्धके अवसरपर ब्राह्मणोंके समीप इसका पाठ किया जाय तो श्राद्धकर्ताके समस्त पितर तृप्त होकर परम धामके अधिकारी बन जाते हैं

राजन्महादेव्याः प्रपूजनम् ॥३२॥ विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपतः ॥ कुरु मे पूजनं तेन कृतार्थस्त्वं भविष्यसि ॥ ३३ ॥ इदं तु गीताशास्त्रं मे नाशिष्याय वदेत्कचित् ॥ नाभक्ताय प्रदातव्यं न धूर्ताय च दुर्हृदे ॥ ३४ ॥ एतत्प्रकाशनं मातुरुद्घाटनमुरोजयोः ॥ तस्मादवश्यं यत्नेन गोपनीयमिदं सदा ॥ ३५ ॥ देयं भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि ॥ सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च ॥ ३६ ॥ श्राद्धकाले पठेदेतद्ब्राह्मणानां समीपतः ॥ तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमं पदम् ॥ ३७ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ॥ देवाश्च मुदिताः सर्वे देवीदर्शनतोऽभवन् ॥ ३८॥ ततो हिमालये जज्ञे देवी हैमवती तु सा ॥ या गौरीति प्रसिद्धाऽऽसीद्दत्ता सा शंकराय च ॥ ३९ ॥ ततः स्कंदः समुद्भूतस्तारकस्तेन पातितः ॥ समुद्रमंथने पूर्वं रत्नान्यासुर्नराधिप ॥ ४० ॥ तत्र देवैः स्तुता देवी लक्ष्मीप्राप्त्यर्थमादरात् ॥ तेषामनुग्रहार्थाय निर्गता तु रमा ततः ॥ ४१ ॥ वैकुण्ठाय सुरैर्दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत् ॥ इति ते कथितं राजन्देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४२ ॥ गौरीलक्ष्म्योः समुद्भूतिविषयं सर्वकामदम् ॥ न वाच्यं त्वेतदन्यस्मै रहस्यं कथितं यतः ॥४३॥ गीता रहस्यभूतेयं गोपनीया प्रयत्नतः ॥ सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वया-

॥ ३७ ॥ व्यासजी कहते हैं– हे राजन्! इस प्रकार कहकर भगवती जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। उनके दर्शन पाकर सम्पूर्ण देवता आनन्दविभोर हो गये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर भगवती सती हिमालयके घर जन्म धारण करके हैमवती नामसे प्रसिद्ध हुईं। ये वे ही देवी हैं, जो पहले गौरी कहलाती थीं और भगवती भुवनेश्वरीने जिन्हें शंकरजीको सौंपा था ॥ ३९ ॥ इसके बाद स्वामिकार्तिकेयका जन्म हुआ और उनके हाथों तारकासुरकी जीवनलीला समाप्त हुई। (अब लक्ष्मीके पुनः प्राकट्यका प्रसंग बताया जाता है) हे राजन्! पूर्व समयकी बात है––जब समुद्रका मन्थन हो रहा था, तब बहुतसे रत्न निकले ॥ ४० ॥ उस समय लक्ष्मीको प्रकट करनेके लिए देवताओंने आदरपूर्वक भगवती जगदम्बाकी स्तुति की। तब उनपर कृपा करनेके लिए देवी ही पुनः लक्ष्मीरूपसे प्रकट हो गयीं ॥ ४१ ॥ अतएव देवताओंके अनुरोधसे भगवान् विष्णुके साथ रहनेका सौभाग्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मीको प्राप्त हो गया। हे राजन्! देवीके इस उत्तम माहात्म्यका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने कर दिया ॥ ४२ ॥ गौरी–लक्ष्मीकी उत्पत्तिका यह प्रसंग संपूर्ण कामनाओंको पूर्ण करने-वाला है। अन्य किसी साधारण व्यक्तिके सामने यह रहस्य नहीं प्रकट करना चाहिए ॥ ४३ ॥ क्योंकि यह रहस्य सम्यक् प्रकारसे गुप्त रखनेकी वस्तु है। हे निष्पाप राजन्! तुमने जो

नघ ॥ पवित्रं पावनं दिव्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

खशरद्वयश्विं (२२५०) पद्यैस्तु द्वैपायनमुखच्युतैः ॥ श्रीमद्भागवतस्यास्य सप्तमस्कन्ध ईरितः ॥ १ ॥

कुछ पूछा था, वह सब मैंने संक्षेपमें बता दिया। यह चरित्र स्वयं पवित्र, दूसरोंको भी पवित्र करनेवाला तथा दिव्य है। अब आगे कौन-सा प्रसग सुनना चाहते हो? ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

भगवान वेदव्यासके मुखसे निकले बाईस सौ पचास श्लोकों द्वारा इस सप्तम स्कन्धको कहा गया है ॥ १ ॥

॥ समाप्तोऽयं सप्तमः स्कन्धः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते--

श्रीमद्देवीभागवते सप्तमः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते अष्टमः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(सृष्टिके आदिमें स्वायम्भुव मनुके द्वारा देवीकी स्तुति) राजा जनमेजयने कहा—हे विप्रर्षे ! आपने सूर्यवंश और चन्द्रवंशमें उत्पन्न राजाओंकी अमृतमयी कथा कही और मैंने सुना ॥ १ ॥ अब मैं भगवती जगदम्बाकी विशुद्ध कथा सुनना चाहता हूँ। सम्पूर्ण मन्वन्तरोंमें जहाँ-जहाँ, जिस-जिस स्थानपर, जिस-जिस कर्मसे तथा जिस बीजमन्त्रके द्वारा देवीकी सद्यः-फलदायिनी पूजा होती है, उन सब प्रसङ्गोंको सुनाइए। जिससे मैं कल्याणका भागी बन सकूँ। साथ ही देवीके विराट् रूपका भी यथार्थ वर्णन करनेकी कृपा कीजिए ॥२॥३॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! सुनो, अब मैं भगवती जगदम्बाकी श्रेष्ठ पूजाका प्रसंग कहता हूँ, जिसे करने अथवा सुननेमात्रसे ही मनुष्यका कल्याण हो जाता है ॥ ४ ॥ प्राचीन कालकी बात है—ऐसे ही प्रसंगको लेकर नारदजीने भगवान् नारायणसे पूछा था। उस समय योगाचार्यके प्रवर्तक भगवान् नारायणने जो उत्तर दिया था, वही मैं सुनाता हूँ ॥ ५ ॥ एक समय

॥ जनमेजय उवाच ॥ सूर्यचंद्रान्वयोत्थानां नृपाणां सत्कथाश्रितम् ॥ चरितं भवता प्रोक्तं श्रुतं तदमृतास्पदम् ॥ १ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि सा देवी जगदम्बिका ॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु यद्यद्रूपेण पूज्यते ॥ २ ॥ यस्मिन्यस्मिंश्च वै स्थाने येन येन च कर्मणा ॥ (शरीरेण च देवेशी पूजनीया फलप्रदा ॥ येनैव मंत्रबीजेन यत्र यत्र च पूज्यते) ॥ देव्या विराट्स्वरूपस्य वर्णनं च यथातथम् ॥ ३ ॥ येन ध्यानेन तत्सूक्ष्मे स्वरूपे स्यान्मतेर्गतिः ॥ तत्सर्वं वद विप्रर्षे येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याराधनमुत्तमम् ॥ यत्कृतेन श्रुतेनापि नरः श्रेयोऽत्र विंदते ॥ ५ ॥ एवमेतन्नारदेन पृष्टो नारायणः पुरा ॥ तस्मै यदुक्तवान्देवो योगचर्याप्रवर्तकः ॥ ६ ॥ एकदा नारदः श्रीमान्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ नारायणाश्रमं प्राप्तो गतखेदश्च तस्थिवान् ॥७॥ तस्मै योगात्मने नत्वा ब्रह्मदेवतनूद्भवः ॥ पर्यपृच्छदिमं चार्थं यत्पृष्टो भवताऽनघ ॥८॥ ॥ नारद उवाच॥ देवदेव महादेव पुराणपुरुषोत्तम ॥ जगदाधार सर्वज्ञ श्लाघनीयोरुसद्गुण ॥ ९ ॥ जगतस्तत्त्वमाद्यं यत्तन्मे वद यथेप्सितम् ॥ जायते कुत एवेदं कुतश्चेदं प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥ कुतोऽन्तं प्राप्नुयात्काले कुत्र सर्वफलोदयः ॥ केन ज्ञातेन मायैषा मोहभूर्नाशमाप्नुयात् ॥ ११ ॥ कयाऽर्चया किं जपेन किं ध्यानेनात्महृत्कजे ॥ प्रकाशो जायते देव तमस्यर्कोदयो यथा ॥१२॥ एतत्प्रश्नोत्तरं देव ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ यथा लोक-

ब्रह्माणीके पुत्र श्रीमान् नारदजी भूमण्डलपर विचरते हुए भगवान् नारायणके आश्रमपर पहुँचे। वहाँ आरामसे बैठ जानेपर योगात्मा नारायणको प्रणाम करके ब्रह्मपुत्र नारदने यही प्रश्न किया था, जो आपने मुझसे पूछा है ॥६–८॥ नारदजीने कहा—हे देवेश्वर ! आप पुराणपुरुषोत्तम, सम्पूर्ण देवताओंके व्यवस्थापक, जगत्‌को धारण करनेवाले, सर्वज्ञानी तथा अशेष सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं ॥९॥ हे भगवन् ! इस जगत्‌का जो आद्य तत्त्व है, उसे मुझे बतानेकी कृपा कीजिये। यह जगत् किससे उत्पन्न हुआ है और कौन इसकी रक्षा करता है ॥१०॥ किसके द्वारा इसका संहार होता है, किस समय कर्मोंके फल उदित होते हैं ? किस ज्ञानके प्रभावमें इस मोहमयी मायाको दूर किया जा सकता है तथा अन्धकारपूर्ण जगत्में सूर्योदयकी भाँति किस जप, ध्यान तथा पूजनसे हृदयमें प्रकाश प्रकट हो सकता है ? ॥११॥१२॥ हे प्रभो ! आप इन संपूर्ण प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर देनेकी कृपा कीजिये, जिसके फलस्वरूप प्राणी इस अत्यन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्धकारमय जगत्को सुगमतापूर्वक पार कर सके ॥१३॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन्! भगवान् नारायण योगीश्वर, मुनियोंके सिरमौर तथा सनातन पुरुष हैं। देवर्षि नारदके इस प्रकार पूछनेपर उन्होंने कहना आरम्भ किया ॥ १४ ॥ भगवान् नारायण बोले–हे देवर्षि नारद! तुम जगत्के उत्तम तत्त्वको सुनो। जिसे जानकर प्राणी भ्रममें नहीं पड़ता ॥ १५ ॥ जगत्में एकमात्र तत्त्व भगवती जगदम्बा हैं। इस बातको मैं पहले ही कह चुका हूँ। देवता, ऋषि, गन्धर्व तथा अन्य विद्वानोंका भी यही कथन है॥१६॥ वे ही जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करती हैं। क्योंकि त्रिगुणात्मिका होनेसे सम्पूर्ण कार्यका भार उन्हींपर निर्भर है॥१७॥ अब मैं देवीके उस रूपका वर्णन करता हूँ, जिसे सिद्ध पुरुष भी पूजते हैं। जो स्मरण करनेवालेके समस्त विघ्नोंको दूर करके उन्हें काम एवं मोक्षतक देनेमें समर्थ है ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र स्वायम्भुव आदिमनु कहे जाते हैं। प्रतापी मनुकी भार्याका नाम शतरूपा है। इन श्रीमान् मनुको सम्पूर्ण मन्वन्तरोंका प्रवर्तक माना गया है ॥ १९ ॥ एक समय स्वायम्भुव मनु अपने पुण्यात्मा पिता प्रजापति ब्रह्माजीके पास भक्तिपूर्वक पधारे। तब ब्रह्माजीने उनसे कहा—

स्तरेदंधतमसं त्वंजसैव हि ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं देवर्षिणा पृष्टः प्राचीनो मुनिसत्तमः ॥ नारायणो महायोगी प्रतिनंद्य वचोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥ नारायण उवाच ॥ शृणु देवर्षिवर्यात्र जगतस्तत्त्वमुत्तमम् ॥ येन ज्ञातेन मर्त्यो हि जायते न जगद्भ्रमे ॥ १५ ॥ जगतस्तत्त्वमित्येव देवी प्रोक्ता मयाऽपि हि ॥ ऋषिभिर्देवगन्धर्वैरन्यैश्चापि मनीषिभिः ॥१६॥ सा जगत्सृजते देवी तया च प्रतिपाल्यते ॥ तया च नाश्यते सर्वमिति प्रोक्तं गुणत्रयात् ॥१७॥ तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि देव्याः सिद्धर्षिपूजितम् ॥ स्मरतां सर्वपापघ्नं कामदं मोक्षदं तथा ॥ १८ ॥ मनुः स्वायम्भुवस्त्वाद्यः ब्रह्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ शतरूपापतिः श्रीमान्सर्वमन्वन्तराधिपः ॥ १९ ॥ स मनुः पितरं देवं प्रजापतिमकल्मषम् ॥ भक्त्या पर्यचरत्पूर्वं तमुवाचात्मभूः सुतम् ॥२०॥ पुत्र पुत्र त्वया कार्यं देव्याराधनमुत्तमम्॥ तत्प्रसादेन ते तात प्रजासर्गः प्रसिद्ध्यति॥२१॥ एवमुक्तः प्रजास्रष्टा मनुः स्वायम्भुवो विराट् ॥ जगद्योनिं तदा देवीं तपसाऽतर्पयद्विभुः॥२२॥ तुष्टाव देवीं देवेशीं समाहितमतिः किल॥ आद्यां मायां सर्वशक्तिं सर्वकारणकारणाम् ॥२३॥ मनुरुवाच॥ नमो नमस्ते देवेशि जगत्कारणकारणे ॥ शङ्खचक्रगदाहस्ते नारायणहृदाश्रिते॥२४॥ वेदमूर्ते जगन्मातः कारणस्थानरूपिणि॥ वेदत्रयप्रमाणज्ञे सर्वदेवनुते शिवे ॥ २५ ॥ महेश्वरि महाभागे महामाये महोदये ॥ महादेवप्रियावासे महादेवप्रियङ्करि ॥ २६ ॥ गोपेंद्रस्य प्रिये ज्येष्ठे महानन्दे महो-

॥२०॥ 'बेटा! तुम्हें भगवती भुवनेश्वरीकी उत्तम उपासना करनी चाहिये। हे तात! उन्हींके प्रसन्न होनेपर तुम्हारी यह प्रजासृष्टि सुचारुरूपसे चल सकती है।' ॥२१॥ परम आदरणीय एवं सर्वसमर्थ स्वायम्भुव मनुसे जब ब्रह्माजीने यों कहा, तब वे तपस्या द्वारा जगत्की रचना करनेवाली देवीको संतुष्ट करनेके प्रयत्नमें लग गये॥२२॥ देवी देवताओंकी अधिष्ठात्री, आद्या, माया, सर्वशक्तिमयी एवं सर्वकारण-कारणा कहलाती हैं। स्वायम्भुवने बड़ी सावधानीके साथ उनकी स्तुति आरम्भ की ॥२३॥ मनुजी बोले–जगत्के कारणके भी कारण, शङ्ख, चक्र एवं गदा हाथमें धारण करनेवाली तथा श्रीहरिके हृदयमें विराजमान हे भगवती देवेश्वरी! तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥ २४ ॥ वेदमय मूर्ति धारण करनेवाली हे भगवती जगदम्बिके! तुम कारणस्थानरूपिणी, तीनों वेदोंके प्रमाणको जाननेवाली, सम्पूर्ण देवताओंकी आराध्या, कल्याणरूपिणी, ॥ २५ ॥ परब्रह्म-परमेश्वरी, परम भाग्यशालिनी, महामाया, महोदया, महादेव-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रियावासा, महादेवप्रियंकरी, ॥ २६ ॥ गोपेन्द्रप्रिया, ज्येष्ठा, महानन्दा, महोत्सवा, महामारीके भयको नष्ट करनेवाली एवं देवताओंके द्वारा सुपूजिता हो । तुम्हें नमस्कार है ॥ २७ ॥ हे नारायणी ! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली और मङ्गलमयी हो । तुम कल्याणदायिनी, शिवा, सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला तथा तीन नेत्रोंवाली गौरी हो । तुम्हें नमस्कार है ॥ २८ ॥ जिनके द्वारा यह जगत् उत्पन्न हुआ । जो अखिल भूमण्डलमें व्याप्त हैं । जो चैतन्य, एक, आदि-अन्तसे रहित एवं तेजका पुञ्ज हैं ॥ २९ ॥ जिनका संकेत पाकर ब्रह्मा संपूर्ण विश्वकी सृष्टि, विष्णु पालन तथा रुद्र संहार करते हैं ॥३०॥ मधु-कैटभके भयसे अत्यन्त घबराये हुए ब्रह्माने जिनकी स्तुति करके भयङ्कर दानवमय संसार-समुद्रसे अपना उद्धार किया था, उन भगवती जगदंबाको नमस्कार है ॥ ३१ ॥ हे देवी ! तुम ही कीर्ति, स्मृति, कान्ति, कमला, गिरिजा, सती, दाक्षायणी, वेदगर्भा, बुद्धिदात्री एवं अभया नामसे प्रसिद्ध हो ॥३२॥ हे माता ! मैं तुम्हारी स्तुति, पूजा, प्रणाम, जप, ध्यान, चिंतन, अवलोकन तथा चरित्र श्रवण करता हूँ । तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ ॥३३॥ महान् मङ्गलमय विग्रह धारण कर

त्सवे ॥ महामारीभयहरे नमो देवादिपूजिते ॥२७॥ सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥ शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२८॥ यतश्चेदं यया विश्वमोतं प्रोतं च सर्वथा ॥ चैतन्यमेकमाद्यन्तरहितं तेजसां निधिम् ॥२९॥ ब्रह्मा तदीक्षणात्सर्वं करोति च हरिः सदा ॥ पालयत्यपि विश्वेशः संहर्ता यदनुग्रहात् ॥ ३० ॥ मधुकैटभसंभूतभयार्तः पद्मसंभवः ॥ यस्याः स्तवेन मुमुचे घोरदैत्यभवाम्बुधेः ॥ ३१ ॥ त्वं ह्रीः कीर्तिः स्मृतिः कांतिः कमला गिरिजा सती ॥ दाक्षायणी वेदगर्भा सिद्धिदात्री सदाऽभया ॥ ३२ ॥ स्तोष्ये त्वां च नमस्यामि पूजयामि जपामि च ॥ ध्यायामि भावये वीक्षे श्रोष्ये देवि प्रसीद मे ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा वेदनिधिः कृष्णो लक्ष्म्यावासः पुरन्दरः ॥ त्रिलोकाधिपतिः पाशी यादसांपतिरुत्तमः ॥ ३४ ॥ कुबेरो निधिनाथोऽभूद्यमो जातः परेतराट् ॥ नैर्ऋतो रक्षसां नाथः सोमो जातो ह्यपोमयः ॥ ३५ ॥ त्रिलोकवंद्ये लोकेशि महामाङ्गल्यरूपिणि ॥ नमस्तेऽस्तु पुनर्भूयो जगन्मातर्नमो नमः ॥ ३६ ॥ नारायण उवाच ॥ एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा ॥ प्रसन्ना प्राह देवर्षे ब्रह्मपुत्रमिदं वचः ॥ ३७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वरं वरय राजेन्द्र ब्रह्मपुत्र यदिच्छसि ॥ प्रसन्नाऽहं स्तवेनात्र भक्त्या चाराधनेन च ॥ ३८ ॥ मनुरुवाच ॥ यदि देवि प्रसन्नाऽसि भक्त्या कारुणिकोत्तमे ॥ तदा निर्विघ्नतः सृष्टिः प्रजायाः स्यात्तवाज्ञया ॥ ३९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रजासर्गः प्रभवतु ममानुग्रहतः

नेवाली हे लोकेश्वरी ! तुम्हारी ही कृपासे ब्रह्मा वेदके भण्डार, श्रीहरि लक्ष्मीके स्वामी, इन्द्र त्रिलोकीके अध्यक्ष, वरुण जलचर जीवोंके नायक, कुबेर धनके अधिपति, यमराज प्रेतोंके शासक, नैर्ऋत राक्षसोंके नाथ, चन्द्रमा रसोंके स्वामी एवं लोकवन्द्य बने हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे त्रिलोकवन्द्ये ! हे लोकेशि ! हे महामंगलरूपे ! हे जगदंबिके ! तुम्हें बार-बार अनेकशः प्रणाम है ॥ ३६ ॥ नारायण कहते हैं—हे नारद ! ब्रह्मपुत्र स्वायम्भुव मनुने जब इस प्रकार भगवती नारायणीकी स्तुति की, तब वे प्रसन्न होकर उनसे बोलीं ॥ ३७ ॥ श्रीदेवीने कहा—हे ब्रह्मपुत्र ! तुम्हें जो इच्छा हो, वह वर माँग लो । मैं इस समय तुम्हारी स्तुति, भक्ति और आराधनासे परम प्रसन्न हूँ ॥ ३८ ॥ मनु बोले—अनुपम कृपा करनेवाली हे देवी ! तुम यदि मेरी भक्तिसे प्रसन्न हो तो ऐसी कृपा करो कि तुम्हारी आज्ञासे यह प्रजासृष्टि निर्विघ्नतापूर्वक संपन्न हो सके ॥ ३९ ॥ श्रीदेवीने कहा—हे राजेन्द्र ! मेरे कृपा-प्रसादसे तुम्हारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रजासृष्टि अवश्य सम्पन्न होगी और विना किंसी विघ्न-बाधाके वह क्रमशः बढ़ती रहेगी ॥ ४० ॥ जो कोई पुरुष मुझमें भक्ति रखकर तुम्हारे बनाये हुए इस स्तोत्रका सदा पाठ करेगा, उसकी विद्या, प्रजा, कीर्ति और कांतिमें निरन्तर वृद्धि होगी—इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! इस स्तोत्रके प्रभावसे मनुष्य धन-धान्यसे संपन्न हो जाते हैं । उनकी शक्ति कभी शिथिल नहीं होती । वे सर्वत्र विजय पाते हैं । उन्हें सुख मिलता है और उनके शत्रु नष्ट हो जाते हैं ॥४२॥ भगवान् नारायण कहते हैं—परम बुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र स्वायम्भुव मनुको इस प्रकारके वर देकर भगवती जगदंबा अन्तर्धान हो गयीं ॥ ४३ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजीके पुत्र महान् प्रतापी राजा स्वायम्भुव मनु उत्तम वर पाकर ब्रह्माजीके पास गये और बोले—'हे पिताजी ! आप मुझे कोई एकान्त स्थान बता दीजिये, जहाँ रहकर मैं प्रचुर प्रजाकी सृष्टि कर सकूँ । मैं यज्ञों द्वारा देवेश्वरकी उपासना करूँगा । अतः शीघ्र आज्ञा देनेकी कृपा कीजिये ।' ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजी प्रजापतियोंके भी स्वामी एवं परम शक्तिशाली पुरुष हैं । अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुकी बात सुनकर उन्होंने बहुत देरतक विचार किया । सोचा, यह कार्य कैसे

किल ॥ निर्विघ्नेन च राजेंद्र वृद्धिश्चाप्युत्तरोत्तरम् ॥४०॥ यः कश्चित्पठते स्तोत्रं मद्भक्त्या त्वत्कृतं सदा ॥ तेषां विद्या प्रजासिद्धिः कीर्तिः कांत्युदयः खलु ॥ ४१ ॥ जायन्ते धनधान्यानि शक्तिरप्रहता नृणाम् ॥ सर्वत्र विजयो राजन्सुखं शत्रुपरिक्षयः ॥ ४२ ॥ नारायण उवाच ॥ एवं दत्त्वा वरान्देवी मनवे ब्रह्मसूनवे ॥ अन्तर्धानं गता चासीत्पश्यतस्तस्य धीमतः ॥४३॥ अथ लब्धवरो राजा ब्रह्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ ब्रह्माणमब्रवीत्तात स्थानं मे दीयतां रहः ॥ ४४ ॥ यत्राहं समधिष्ठाय प्रजाः स्रक्ष्यामि पुष्कलाः ॥ यक्ष्यामि यज्ञैर्देवेशं तत्समादिश माचिरम् ॥ ४५ ॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा प्रजापतिपतिर्विभुः ॥ चिंतयामास सुचिरं कथं कार्यं भवेदिदम् ॥ ४६ ॥ सृजतो मे गतः कालो विपुलोऽनंतसंख्यकः ॥ धरा वार्भिः प्लुता मग्ना रसं याताऽखिलाश्रया ॥ ४७ ॥ इदं मच्चिंतितं कार्यं भगवानादिपूरुषः ॥ करिष्यति सहायो मे यदादेशेऽहमाश्रितः ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भुवनकोशो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ नारायण उवाच ॥ एवं मीमांसतस्तस्य पद्मयोनेः परन्तप ॥ मन्वादिभिर्मुनिवरैर्मरीच्याद्यैः समन्ततः ॥ १ ॥ ध्यायतस्तस्य नासाग्राद्विरिंचेः सहसाऽनघ ॥ वराहपोतो निरगादेकांगुलप्रमाणतः ॥२॥ तस्यैव पश्यतः स्वस्थः क्षणेन किल नारद ॥ करिमात्रं प्रववृधे तदद्भुततमं ह्यभूत् ॥३॥

संपन्न हो ॥ ४६ ॥ मैं चिरकालतक इस जगत्‌की सृष्टि करता रहा। परन्तु यह ठहर नहीं सकी । इसे जल डुबाता रहता है। अतः ऐसी स्थितिमें मेरा यह चिन्तित कार्य तभी संफलतापूर्वक सम्पन्न हो सकता है, जब वे आदिपुरुष भगवान मेरे सहायक बन जायँ कि जिनके आदेशसे मैं इस प्रयत्नमें लगा हुआ हूँ ॥४७॥४८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(वाराहावतारकी संक्षिप्त कथा) नारायण कहते हैं—हे परम तपस्वी नारद ! ब्रह्माके मनमें इस प्रकारकी विचारधारा लहरा रही थी । मनु तथा मरीचि प्रभृति सभी देवता चारों ओर विराजमान थे ॥ १ ॥ हे निष्पाप नारद ! इतनेमें ब्रह्माकी नासिकाके अग्रभागसे एक छोटा-सा वाराहशिशु सहसा प्रकट हो गया । उसका परिमाण केवल एक अंगुल था ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे नारद ! ब्रह्माके सामने ही वह तुरन्त विशाल रूपका हो गया और उसकी आकृति एक हाथी जैसी हो गयी ॥३॥ हे नारद ! उस समय मरीचिप्रभृति सभी प्रमुख विप्र, प्रधान ब्राह्मण तथा सनकादि ऋषियोंके साथ बैठे पद्मयोनि ब्रह्माने वाराहके उस आश्चर्यजनक रूपको देखकर मन-ही-मन विचार किया ॥४॥ अहो ! सूकरके व्याजसे यह कौन दिव्य प्राणी मेरी नासिकासे बाहर निकलकर सामने विराजमान हो गया । यह बड़े ही आश्चर्यका विषय है । अभी-अभी यह अँगूठेकी पोरके बराबर था । क्षणमात्रमें ही इसकी आकृति इतनी विशाल हो गयी कि मानो पर्वतराज हो । अवश्य भगवान् श्रीहरि अथवा यज्ञपुरुष ही मुझे खिन्न करते हुए इस रूपमें प्रकट हो गये हैं ।' ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस प्रकार परम प्रभु ब्रह्माजी तर्क-वितर्क कर रहे थे । ठीक, उसी समय पर्वतकी तुलना करनेवाले वाराहरूपधारी भगवान् श्रीहरि गरज उठे । गर्जनमात्रसे उन्होंने ब्रह्माजी तथा समस्त प्रधान ब्राह्मणोंके हृदयमें आनन्द उत्पन्न कर दिया । सभी दिशाएँ उस तुमुल निनादसे व्याप्त हो गयीं ॥ ७ ॥ ८ ॥ भगवान् वाराहकी ध्वनि घुरघुराहटके साथ होती थी । जब जन, तप और सत्यलोकके निवासी श्रेष्ठ देवताओंने उस शब्दको

मरीचिमुख्यैर्विप्रेन्द्रैः सनकाद्यैश्च नारद ॥ तद्दृष्ट्वा सौकरं रूपं तर्कयामास पद्मभूः ॥४॥ किमेतत्सौकरव्याजं दिव्यं सत्त्वमवस्थितम् ॥ अत्याश्चर्यमिदं जातं नासिकाया विनिःसृतम् ॥ ५ ॥ दृष्टोंगुष्ठशिरोमात्रः क्षणाच्छैलेन्द्रसन्निभः ॥ आहोस्विद्भगवान्किं वा यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥६॥ इति तर्कयतस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ वराहरूपो भगवाञ्जगर्जाचलसन्निभः ॥ ७ ॥ विरिंचिं हर्षयामास संहतांश्च द्विजोत्तमान् ॥ स्वगर्जशब्दमात्रेण दिक्प्रांतमनुनादयन् ॥ ८ ॥ ते निशम्य स्वखेदस्य क्षयिष्णु घुर्घुरस्वनम् ॥ जनस्तपःसत्यलोकवासिनोऽमरवर्यकाः ॥ ९ ॥ छन्दोमयैः स्तोत्रवरैर्ऋक्सामाथर्वसंभवैः ॥ वचोभिः पुरुषं त्वाद्यं द्विजेंद्राः पर्यवाकिरन् ॥ १० ॥ तेषां स्तोत्रं निशम्याद्यो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ कृपावलोकमात्रेणानुगृहीत्वाऽप आविशत् ॥ ११ ॥ तस्यांतर्विशतः क्रूरसटाघातप्रपीडितः ॥ समुद्रोऽथाब्रवीद्देव रक्ष मां शरणार्तिहन् ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्य समुद्रोक्तं वचनं हरिरीश्वरः ॥ विदारयञ्जलचराञ्जगामांतर्जले विभुः ॥ १३ ॥ इतस्ततोऽभिधावन्स विचिन्वन्पृथिवीं धराम् ॥ आघ्रायाघ्राय सर्वेशो धरामासादयच्छनैः ॥ १४ ॥ अन्तर्जलगतां भूमिं सर्वसत्त्वाश्रयां तदा ॥ भूमिं स देवदेवेशो दंष्ट्रयोदाजहार ताम् ॥ १५ ॥ तां समुद्धृत्य दंष्ट्राग्रे यज्ञेशो यज्ञपूरुषः ॥

सुना, तब उन्होंने ऋक्, साम और यजुर्वेदमें कथित उत्तम वैदिक स्तोत्रों द्वारा आदिपुरुष भगवान् वाराहकी स्तुति की ॥ ९ ॥ १० ॥ उनका स्तवन सुनकर सर्वसमर्थ श्रीवाराह अपनी कृपादृष्टिसे उन्हें अनुगृहीत करके जलमें प्रविष्ट हो गये ॥ ११ ॥ जब वे जलके भीतर घुसने लगे, तब उनकी भयङ्कर सटाके आघातसे समुद्रके हृदयमें खलबली मच गयी । तब उसने इस प्रकार प्रार्थना की—'शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले हे भगवन् ! मेरी रक्षा कीजिये ।' ॥ १२ ॥ सर्वव्यापी भगवान् श्रीहरि ही वाराहके रूपमें प्रकट हुए थे । समुद्रकी प्रार्थना सुनकर जलचर जीवोंको इधर-उधर हटाते हुए वे अगाध जलमें चले गये ॥ १३ ॥ पृथ्वीको खोजते हुए उन्होंने चारों ओर चक्कर लगाया । धीरे-धीरे ये सब ओर सूँघ-सूँघकर पृथ्वीको खोज रहे थे । तदनन्तर उन सर्वेशको पृथ्वीका पता चल गया ॥ १४ ॥ उस समय संपूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेवाली पृथ्वी जलके भीतर छिपी थी । वाराहरूपधारी देवाधिदेव भगवान्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीहरिने उसे अपनी दाढ़से उठाया और दाँतके अग्रभागपर रख लिया ॥ १५ ॥ उस अवसरपर उन यज्ञेश एवं यज्ञपुरुष भगवान् वाराहकी ऐसी शोभा हो रही थी, जैसे कोई दिग्गज कमलिनीको दाँतपर लिये हुए हो। देवेश्वर श्रीहरि पृथ्वीको थूथुनपर लेकर विराजमान हुए तो मनुसहित देवाधिदेव ब्रह्मा उनकी झाँकी पाकर स्तुति करने लगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले--भक्तोंका संकट टालनेवाले कमल-लोचन भगवान् हे श्रीहरि! आपकी जय हो। सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हे भगवन्! आपके सामने अन्य सभी देवता तुच्छ हैं॥ १८ ॥ हे प्रभो! यह पृथ्वी आपकी दाढ़पर इस प्रकार शोभा पा रही है, मानो पत्रोंसे भरी-पूरी कमलिनी किसी मतवाले हाथीकी सूँड़पर विराज रही हो ॥ १९ ॥ पृथ्वीको लिये रहनेके कारण आपका यह शरीर ऐसे शोभायमान हो रहा है, जैसे कमलको उखाड़कर सूँड़पर लिये हुए ऐरावत हाथी हो ॥ २० ॥ सृष्टि एवं संहारके प्रवर्तक हे देवेश! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण देवताओंके आश्रयभूत एवं बृहद्धाम कहलानेवाले हे भगवन्! आपको आगे एवं पीछेसे बार-बार नमस्कार है ॥ २१ ॥ २२ ॥ आपने ही मुझे शक्तिशाली बनाकर प्रजाकी सृष्टि करनेके

शुशुभे दिग्गजो यद्वदुद्धृत्याथ सुपद्मिनीम् ॥१६॥ तं दृष्ट्वा देवदेवेशो विरिंचिः समनुः स्वराट् ॥ तुष्टाव वाग्भिर्देवेशं दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जितं ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामार्तिनाशन ॥ खर्वीकृतसुराधार सर्वकामफलप्रद ॥ १८ ॥ इयं च धरणी देव शोभते वसुधा तव ॥ पद्मिनीव सुपत्राढ्या मतङ्गजकरोद्धृता ॥ १९ ॥ इदं च ते शरीरं वै शोभते भूमिसङ्गमात् ॥ उद्धृतांबुजशुण्डाग्रकरींद्रतनुसन्निभम् ॥ २० ॥ नमो नमस्ते देवेश सृष्टिसंहारकारक ॥ दानवानां विनाशाय कृतनानाकृते प्रभो ॥२१॥ अग्रतश्च नमस्तेऽस्तु पृष्ठतश्च नमो नमः ॥सर्वामराधारभूत बृहद्धाम नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥ त्वयाऽहं च प्रजासर्गे नियुक्तः शक्तिबृंहितः ॥ त्वदाज्ञावशतः सर्गं करोमि विकरोमि च ॥ २३ ॥ त्वत्सहायेन देवेशा अमराश्च पुरा हरे ॥ सुधां विभेजिरे सर्वे यथाकालं यथाबलम् ॥ २४ ॥ इन्द्रस्त्रिलोकीसाम्राज्यं लब्धवांस्त्वन्निदेशतः ॥ भुनक्ति लक्ष्मीं बहुलां सुरसंघप्रपूजितः ॥ २५ ॥ वह्निः पावकतां लब्ध्वा जाठरादिविभेदतः ॥ देवासुरमनुष्याणां करोत्याप्यायनं तथा ॥ २६ ॥धर्मराजोऽथ पितॄणामधिपः सर्वकर्मदृक् ॥ कर्मणां फलदाताऽसौ त्वन्नियोगादधीश्वरः ॥ २७ ॥ नैर्ऋतो रक्षसामीशो यज्ञो विघ्नविनाशनः ॥ सर्वेषां प्राणिनां कर्मसाक्षी त्वत्तः प्रजायते ॥२८॥ वरुणो यादसामीशो लोकपालो जलाधिपः ॥ त्वदाज्ञाबलमाश्रित्य लोकपालत्वमागतः ॥ २९ ॥ वायुर्गंधवहः सर्वभूतप्राणनकार-

लिए नियुक्त किया है। मैं तो आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ। सृष्टिका चालू करना या बन्द करना आपकी आज्ञापर निर्भर है ॥२३॥ हे हरे! आपकी सहायतासे ही प्राचीन समयमें सम्पूर्ण देवताओंने बल एवं कालके अनुसार अमृतके विभाजनमें सफलता प्राप्त की थी ॥ २४ ॥ आपकी आज्ञासे इन्द्र त्रिलोकीके राज्यपर प्रतिष्ठित हैं, प्रभूत सम्पत्तियोंके आधिपत्यका सुअवसर उन्हें प्राप्त हुआ है और देवसमाज उनकी पूजामें तत्पर रहता है ॥ २५ ॥ अग्नि आपकी कृपासे जलानेकी शक्ति पाकर जठराग्नि आदिके भेदसे देवताओं, असुरों और मानवोंको तृप्त करती है ॥२६॥ पितरोंके अधिष्ठाता, सम्पूर्ण कर्मोंके साक्षी तथा कर्मोंका फल देनेकी व्यवस्था करनेवाले जो धर्मराज हैं, उनको भी आपने ही नियुक्त किया है ॥२७॥ नैर्ऋत आपके बनानेपर ही राक्षसोंके स्वामी बने हुए हैं। जिनमें सभी विघ्नोंको दूर करनेकी शक्ति है तथा जो सम्पूर्ण प्राणियोंके कर्मको देखते हैं, वे यज्ञ भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २८ ॥ आपकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आज्ञाका बल पाकर ही जलके स्वामी वरुण जलचर प्राणियोंके अध्यक्ष तथा लोकपालोंके पदपर प्रतिष्ठित हैं ॥ २९ ॥ आपकी आज्ञासे ही गंध प्रवाहित करनेवाले वायु समस्त प्राणियोंके प्राण कहलाते हैं। इन्हें लोकपाल और जगद्‌गुरु कहलानेकी योग्यता प्राप्त है ॥ ३० ॥ यक्षों और किन्नरोंके प्राणाधार कुबेर आपकी आज्ञाके अधीन रहनेके कारण ही सम्पूर्ण लोकपालोंमें सम्मान पाते हैं ॥ ३१ ॥ ईशान सभी रुद्रोंमें प्रधान माने जाते हैं। क्योंकि शक्तिसम्पन्न व्यक्तियोंका भी अन्त उनपर निर्भर है। अखिल देवताओंके रक्षक उन ईशानका तीनों लोकोंके स्वामी प्रणाम करते हैं ॥३२॥ यह आपकी ही विभूति है। जगत्पर शासन करनेवाले हे भगवन्! हम आपको प्रणाम करते हैं। क्योंकि आपके ही अंशांशसे हजारों देवता उत्पन्न हुए हैं ॥३३॥ नारदजी कहते हैं--इस प्रकार जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने जब आदिपुरुष भगवान् श्रीहरिकी स्तुति की, तब वे अपनी लीला प्रदर्शित करते हुए उनपर अनुग्रह करनेके लिए तत्पर हो गये ॥३४॥ वहीं महान् दैत्य हिरण्याक्ष आ गया था। उस भयंकर दैत्यने उनका मार्ग रोक रखा था। सो भगवान् श्रीहरिने अपनी गदासे मारकर उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी ॥३५॥ उसके

णम् ॥ जातस्तव निदेशेन लोकपालो जगद्‌गुरुः ॥ ३० ॥ कुबेरः किन्नरादीनां यक्षाणां जीवनाश्रयः ॥ त्वदाज्ञांतर्गतः सर्वलोकपेषु च मान्यभूः ॥ ३१ ॥ ईशानः सर्वरुद्राणामीश्वरांतकरः प्रभुः ॥ जातो लोकेशवंद्योऽसौ सर्वदेवाधिपालकः ॥ ३२ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते जगदीशाय कुर्महे ॥ यस्यांशभागाः सर्वे हि जाता देवाः सहस्रशः ॥३३॥ नारायण उवाच ॥ एवं स्तुतो विश्वसृजा भगवानादिपूरुषः ॥ लीलावलोकमात्रेणाप्यनुग्रहम वासृजत् ॥ ३४ ॥ तत्रैवाभ्यागतं दैत्यं हिरण्याक्षं महासुरम् ॥ रुन्धानमध्वनो भीमं गदयाऽताडयद्धरिः ॥ ३५ ॥ तद्रक्तपंकदिग्धांगो भगवाना- दिपूरुषः ॥ उद्धृत्य धरणीं देवो दंष्ट्रया लीलयाऽप्सु ताम् ॥ ३६ ॥ निवेश्य लोकनाथेशो जगाम स्थानमात्मनः ॥ एतद्भगवतश्चित्रं धरण्युद्धरणं परम् ॥ ३७ ॥ शृणुयाद्यः पुमान्यश्च पठेच्चरितमुत्तमम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं गतिमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्ट- मस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नारायण उवाच ॥ महीं देवः प्रतिष्ठाप्य यथास्थाने च नारद ॥ वैकुण्ठलोकमगमद्ब्रह्मोवाच स्वमात्मजम् ॥ १ ॥ स्वायंभुव महाबाहो

रक्तसे उन आदि पुरुषका दिव्य विग्रह भींग गया। तब उन्होंने दाँतके सहारे पृथ्वीको उठाया और खेल-ही-खेलमें उसे आश्चर्यजनकरूपसे जलके ऊपर टिका दिया ॥ ३६ ॥ तत्पश्चात् वे जगत्प्रभु अपने परम धामको चले गये। भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीको रसातलसे ले आनेके लिए इस प्रकारकी लीला की थी ॥ ३७ ॥ जो पुरुष इस उत्तम चरित्रका अध्ययन एवं श्रवण करेगा, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायँगे। साथ ही वह विष्णुलोकमें जानेका अधिकारी बन जायगा ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेय-रामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

(मनुकी कन्याओंका संक्षिप्त वंशपरिचय) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद! जब भगवान् श्रीहरि इस प्रकार पृथ्वीका यथास्थान स्थापित करके वैकुंठ लौट गये, तब ब्रह्माजीने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुसे कहा–॥ १ ॥ 'हे महाबाहो ! तुम परम तेजस्वी पुरुष हो । अब इस स्थलमय स्थानपर विराजमान होकर समुचितरूपसे प्रजाकी सृष्टि करो ॥ २ ॥ हे विभो ! सर्वप्रथम देश एवं कालके विभागके अनुसार यज्ञमें काम आनेवाले उत्तम तथा मध्यम सभी पदार्थोंको एकत्रित करके उनके द्वारा यज्ञके स्वामी परम पुरुषकी उपासना करो ॥३॥ शास्त्रोक्त धर्मका आचरण करो । वर्णाश्रमकी व्यवस्था मानना परम आवश्यक है । यदि इस कार्यक्रमसे चलोगे तो प्रजाकी वृद्धि अवश्य होगी ॥ ४ ॥ तुम अपने गुण, कीर्ति एवं कान्तिके अनुरूप पुत्रोंको उत्पन्न करना । वे पुत्र विद्वान्, विनयशील, सदाचारी और उदार चित्तके हों ॥५॥ कन्याओंका विवाह सावधानीके साथ गुणी और यशस्वी पुरुषोंके साथ करना । प्रधान पुरुष भगवान् श्रीहरिमें मनको सम्यक् प्रकारसे लगाये रखना ॥६॥ भक्तिपूर्वक साधन करते हुए उन भगवान्‌की उपासनामें लगे रहना । ऐसा करनेसे तुम उस अभीष्ट स्थानको पा जाओगे, जिसके लिए योगीगण प्रार्थना करते रहते हैं ॥७॥ हे नारद ! प्रजापति ब्रह्माजीने अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुको यों उपदेश देकर उन्हें प्रजाकी सृष्टि करनेके कार्यपर नियुक्त कर दिया । तदन-

पुत्र तेजस्विनांवर ॥ स्थाने महीमये तिष्ठ प्रजाः सृज यथोचितम् ॥ २ ॥ देशकालविभागेन यज्ञेशं पुरुषं यज ॥ उच्चावचपदार्थैश्च यज्ञसाधनकैर्विभो ॥ ३ ॥ धर्ममाचर शास्त्रोक्तं वर्णाश्रमनिबंधनम् ॥ एतेन क्रमयोगेन प्रजावृद्धिर्भविष्यति ॥ ४ ॥ पुत्रानुत्पाद्य गुणतः कीर्त्या कांत्याऽऽत्मरूपिणः ॥ विद्याविनयसंपन्नान्सदाचारवतां वरान् ॥ ५ ॥ कन्याश्च दत्त्वा गुणवद्यशोवद्भ्यः समाहितः ॥ मनः सम्यक्समाधाय प्रधानपुरुषे परे ॥ ६ ॥ भक्तिसाधनयोगेन भगवत्परिचर्यया ॥ गतिमिष्टां सदा वंद्यां योगिनां गमिता भवान् ॥ ७ ॥ इत्याश्वास्य मनुं पुत्रं पद्मयोनिः प्रजापतिः ॥ प्रजासर्गे नियम्यासुं स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ८ ॥ प्रजाः सृजत पुत्रेति पितुराज्ञां समादधत् ॥ स्वायंभुवः प्रजासर्गमकरोत्पृथिवीपतिः ॥ ९ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ कन्यास्तिस्रः प्रसूताश्च तासां नामानि मे शृणु ॥ १० ॥ आकूतिः प्रथमा कन्या द्वितीया देवहूतिका ॥ तृतीया च प्रसूतिर्हि विख्याता लोकपावनी ॥ ११ ॥ आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय च मध्यमाम् ॥ दक्षायादात्प्रसूतिं च यासां लोक इमाः प्रजाः ॥१२॥ रुचेः प्रजज्ञे भगवान्यज्ञो नामादिपूरुषः ॥ आकूत्यां देवहूत्यां च कपिलोऽसौ च कर्दमात् ॥ १३ ॥ सांख्याचार्यः सर्वलोके विख्यातः कपिलो विभुः ॥ दक्षात्प्रसूत्यां कन्याश्च बहुशो जज्ञिरे प्रजाः ॥ १४ ॥ यासां संतानसंभूता देवतिर्यङ्नरादयः ॥ प्रसूता लोकविख्याताः सर्वे सर्ग-

न्तर वे अपने धामको चले गये ॥ ८ ॥ 'पुत्र ! तुम प्रजाकी सृष्टि करो'–पिताजीकी यह आज्ञा महाराज स्वायम्भुव मनुके हृदयमें स्थान पा चुकी थी । अतः वे इस कार्यमें संलग्न हो गये ॥९॥ उनसे दो परम तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए–प्रियव्रत और उत्तानपाद । उनके तीन कन्यायें भी हुईं । पहली पुत्रीका नाम आकूति था, दूसरी पुत्री देवहूति नामसे प्रसिद्ध हुई और तीसरी जगत्‌को पवित्र बनानेवाली कन्याका नाम मनुने प्रसूति रखा था ॥ १० ॥ ११ ॥ स्वायम्भुव मनुने अपनी प्रथम कन्या आकूतिका रुचिके साथ, द्वितीय कन्या देवहूतिका कर्दमके साथ तथा तृतीय पुत्री प्रसूतिका दक्ष प्रजापतिके साथ विवाह कर दिया, जिनकी प्रजा सारे जगत्‌में फैली हुई है ॥ १२ ॥ रुचिके यहाँ आकूतिके गर्भसे आदिपुरुष भगवान् प्रकट हुए। उनका नाम 'यज्ञपुरुष' पड़ा । कर्दमजीके सहयोगसे देवहूति भगवान् कपिलकी माता हुई ॥ १३ ॥ वे महाभाग कपिलजी सांख्यशास्त्रके आचार्य हैं । सारा जगत् उनको जानता है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दक्षसे प्रसूतिके द्वारा बहुत-सी कन्यारूपिणी संतानें हुईं ॥ १४ ॥ उन्हीं कन्याओंकी देवता, मानव और पशु आदि संतानें प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥ यों स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् यज्ञ-पुरुषका अवतार हुआ। उस समय उन्होंने सामयिक देवताओंका सहयोग प्राप्त करके अपने पिताजीको राक्षसोंसे बचाया था ॥ १६ ॥ महान् योगी भगवान कपिलने अपने आश्रमपर माता देवहूतिको परम ज्ञानका उपदेश दिया। उनके उस उपदेशके सामने सारी अविद्याएँ शिथिल पड़ गयीं ॥ १७ ॥ उन्होंने ध्यानयोग तथा अध्यात्मज्ञानके सिद्धान्तका विशेषरूपसे प्रतिपादन किया। सम्पूर्ण अज्ञानको दूर करनेवाला उनका वह शास्त्र कपिल-शास्त्रके नामसे विख्यात हुए॥१८॥ कपिलजी महान् योगी, सांख्य-शास्त्रके प्रवर्तक एवं बड़े उदार स्वभावके थे। वे माताको उपदेश देकर पुलह मुनिके आश्रमपर चले गये। इस समय भी वे वहीं विराजमान हैं ॥ १९ ॥ जिनके नामका स्मरण करनेमात्रसे सांख्ययोग सिद्ध हो जाता है, उन समस्त वरदायक योगाचार्य महाभाग कपिलको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २० ॥ हे नारद! इस प्रकार मैंने स्वायम्भुव मनुकी कन्याओंके वंशका उत्तम चरित्र कह दिया। यह पावन प्रसंग अपने

प्रवर्तकाः ॥ १५ ॥ यज्ञश्च भगवान्स्वायंभुवमन्वंतरे विभुः ॥ मनुं ररक्ष रक्षोभ्यो यामैर्देवगणैर्वृतः ॥ १६ ॥ कपिलोऽपि महायोगी भगवान्स्वाश्रमे स्थितः ॥ देवहूत्यै परं ज्ञानं सर्वाविद्यानिवर्तकम् ॥ १७ ॥ सविशेषं ध्यानयोगमध्यात्मज्ञाननिश्चयम् ॥ कापिलं शास्त्रमाख्यातं सर्वाज्ञानविनाशनम् ॥ १८ ॥ उपदिश्य महायोगी स ययौ पुलहाश्रमम् ॥ अद्यापि वर्तते देवः सांख्याचार्यो महायशाः ॥ १९ ॥ यन्नामस्मरणेनापि सांख्ययोगश्च सिद्ध्यति ॥ तं वंदे कपिलं योगाचार्यं सर्ववरप्रदम् ॥ २० ॥ एवमुक्तं मनोः कन्यावंशवर्णनमुत्तमम् ॥ पठतां शृण्वतां चापि सर्वपापविनाशनम् ॥ २१ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि मनुपुत्रान्वयं शुभम् ॥ यदाकर्णनमात्रेण परं पदमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ द्वीपवर्षसमुद्रादिव्यवस्था यत्सुतैः कृता ॥ व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थं सर्वभूतसुखाप्तये ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे भुवनकोशो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ नारायण उवाच ॥ मनोः स्वायंभुवस्यासीज्ज्येष्ठः पुत्रः प्रियव्रतः ॥ पितुः सेवापरो नित्यं सत्यधर्मपरायणः ॥ १ ॥ प्रजापतेर्दुहितरं सुरूपां विश्वकर्मणः ॥ बर्हिष्मतीं चोपयेमे समानां शीलकर्मभिः ॥ २ ॥ तस्यां पुत्रान्दश गुणैरन्वितान्भावितात्मनः ॥ जनयामास कन्यां चोर्ज-

श्रोताओं और वक्ताओंके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर देता है ॥ २१ ॥ अब स्वायम्भुव मनुके पुत्रोंकी वंशावलीका वर्णन करूँगा। जिसके सुननेमात्रसे प्राणी परम पद पा लेता है ॥ २२ ॥ मनुपुत्रोंने द्वीप, वर्ष और समुद्र आदिकी जो व्यवस्था की है, वह प्रसंग भी व्यवहारको जानकारीके लिए अथवा सम्पूर्ण प्राणियोंके सुखार्थ कहा जायगा ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(सातों द्वीपोंके उत्थानका उपक्रम) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद! स्वायम्भुव मनुके बड़े पुत्रका नाम प्रियव्रत था। वे सदा पिताकी सेवामें लगे रहते थे। सत्य-धर्मपर उनकी बड़ी आस्था थी ॥१॥ विश्वकर्मा नामक प्रजापतिकी सुन्दरी कन्या बर्हिष्मतीके साथ प्रियव्रतका विवाह हुआ था। उस कन्याका शील-स्वभाव बिल्कुल उन्हींके समान था ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुण्यात्मा प्रियव्रतने बर्हिष्मतीके गर्भसे दस गुणवान् पुत्र उत्पन्न किये। सबसे पीछे एक कन्याका जन्म हुआ, जो ऊर्जस्वती नामसे विख्यात हुई ॥ ३ ॥ आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, रुक्मशुक्र, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, अग्निहोत्र और कवि—इन नामोंसे ये दसों पुत्र अग्नि कहलाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ इन दस पुत्रोंमेंसे कवि, सवन और महावीर—इन तीन पुत्रोंने तो वैराग्यमार्गका अनुसरण किया ॥ ६ ॥ ये तीनों आत्मविद्याके पारगामी विद्वान् हुए। इन्होंने ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर रखा था। ये निःस्पृह होकर परमहंसाश्रममें सुखपूर्वक रहने लगे ॥७॥ प्रियव्रतकी एक दूसरी भार्या थी। उससे उन्होंने तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया। वे पुत्र उत्तम, तामस और रैवत नामसे प्रसिद्ध हुए ॥८॥ वे महान् प्रतापी पुत्र एक-एक मन्वन्तरके अधिष्ठाता बनाये गये। अखिल भूमण्डलपर महाराज प्रियव्रतका शासन विद्यमान था ॥९॥ उन इन्द्रियविजयी नरेशने ग्यारह अर्बुद वर्ष पृथ्वीपर राज्य किया। एक समयकी बात है—

स्वतीं च यवीयसीम् ॥३॥ आग्नीध्रश्चेध्मजिह्वश्च यज्ञबाहुस्तृतीयकः ॥ महावीरश्चतुर्थस्तु पंचमो रुक्मशुक्रकः ॥ ४ ॥ घृतपृष्ठश्च सवनो मेधातिथिरथाष्टमः ॥ वीतिहोत्रः कविश्चेति दशैते वह्निनामकाः ॥ ५ ॥ एतेषां दशपुत्राणां त्रयोऽप्यासन्विरागिणः ॥ कविश्च सवनश्चैव महावीर इति त्रयः ॥ ६ ॥ आत्मविद्यापरिष्णाताः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥ आश्रमे परमहंसाख्ये निःस्पृहा ह्यभवन्मुदा ॥ ७ ॥ अपरस्यां च जायायां त्रयः पुत्राश्च जज्ञिरे ॥ उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चेति विश्रुताः ॥ ८ ॥ मन्वंतराधिपतय एते पुत्रा महौजसः ॥ प्रियव्रतः स राजेन्द्रो बुभुजे जगतीमिमाम् ॥ ९ ॥ एकादशार्बुदाब्दानामव्याहतबलेंद्रियः ॥ यदा सूर्यः पृथिव्याश्च विभागे प्रथमेऽतपत् ॥ १० ॥ भागे द्वितीये तत्रासीदंधकारोदयः किल ॥ एवं व्यतिकरं राजा विलोक्य मनसा चिरम् ॥ ११ ॥ प्रशास्ति मयि भूम्यां च तमः प्रादुर्भवेत्कथम् ॥ एवं निवारयिष्यामि भूमौ योगबलेन च ॥ १२ ॥ एवं व्यवसितो राजा पुत्रः स्वायंभुवस्य सः ॥ रथेनादित्यवर्णेन सप्तकृत्वः प्रकाशयन् ॥ १३ ॥ तस्यापि गच्छतो राज्ञो भूमौ यद्रथनेमयः ॥ पतितास्ते समुद्राख्यां भेजिरे लोकहेतवे ॥ १४ ॥ जाताः प्रदेशास्ते सप्त द्वीपा भूमौ विभागशः ॥ रथनेमिसमुत्थास्ते परिखाः सप्त सिंधवः ॥१५॥ यत आसंस्ततः सप्त भुवो द्वीपा हि ते स्मृताः ॥ जंबुद्वीपः प्लक्षद्वीपः शाल्मलीद्वीपसंज्ञकः ॥ १६ ॥ कुशद्वीपः क्रौंचद्वीपः शाकद्वीपश्च पुष्करः ॥

जब सूर्य पृथ्वीके प्रथम भागमें उगे, तब प्रकाश था और जब द्वितीय भागमें चले गये, तब अन्धकार हो गया। इस प्रकारकी अड़चनको देखते ही प्रियव्रतके मनमें एक विचार उत्पन्न हो गया ॥ १० ॥ ११ ॥ उन्होंने सोचा-'मेरे शासनकालमें पृथ्वीपर अन्धकार नहीं रहना चाहिये। मैं अपने योगबलसे इसका निवारण कर दूँगा।' ॥१२॥ यों निश्चय करके स्वायम्भुव मनुके पुत्र महाराज प्रियव्रतने सूर्यके समान तेजस्वी रथपर बैठकर प्रकाश फैलाते हुए पृथ्वीकी सात प्रदक्षिणाएँ कीं ॥ १३ ॥ प्रियव्रतके चक्कर लगाते समय उनके रथके पहियोंसे जमीनमें जो गड्ढे हो गये थे, वे ही जगत्के कल्याणार्थ सात समुद्र बन गये ॥ १४ ॥ उस समय परिक्रमाके बीचकी जो पृथ्वी थी, वही सात द्वीपोंके रूपमें परिणत हो गयी और रथके पहियोंसे छिदकर जो समुद्र बने थे, वे उनकी परिखाका काम देने लगे ॥ १५ ॥ तभीसे पृथ्वीपर सात द्वीपोंकी प्रसिद्धि हुई। उन द्वीपोंके नाम हैं—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुष्कर। उन द्वीपोंका परिमाण उत्तर-उत्तरके क्रमसे दुगुना है ॥ १६ ॥ १७ ॥ उनके बाहर-बाहर चारों ओर विभागके क्रमसे समुद्र हैं। वे समुद्र क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, दधिमण्डोद और शुद्धोद नामसे विख्यात हैं। तभीसे भूमण्डलपर इन सातों समुद्रोंकी प्रसिद्धि हुई ॥ १८ ॥ १९ ॥ क्षारसमुद्रसे घिरा हुआ जो पहला द्वीप है, उसे जम्बूद्वीप कहते हैं। महाराज प्रियव्रतने अपने पुत्र आग्नीध्रको इस द्वीपका राजा बना दिया ॥ २० ॥ दूसरे द्वीपका नाम प्लक्षद्वीप है। इस द्वीपको ईखके रससे भरे हुए समुद्रने घेर रक्खा है। प्रियव्रतकुमार इध्मजिह्व वहाँके शासक बने ॥ २१ ॥ शाल्मलीद्वीप मदिराके समुद्रसे घिरा हुआ है। प्रियव्रतने अपने पुत्र यज्ञबाहुको वहाँका अध्यक्ष बना दिया ॥ २२ ॥ कुशद्वीप बड़ा ही रमणीक है। उसके बाहरी हिस्से घृतके समुद्रसे शोभा पा रहे हैं। प्रियव्रतनन्दन हिरण्यरेताने इस द्वीपका प्रबन्ध अपने हाथमें लिया ॥ २३ ॥ पाँचवेंको क्रौञ्चद्वीप कहते हैं। इसके चारों ओर क्षीरसमुद्र

तेषां च परमाणं तु द्विगुणं चोत्तरोत्तरम् ॥ १७ ॥ समंततश्चोपक्लृप्तं बहिर्भागक्रमेण च ॥ क्षारोदेक्षुरसोदौ च सुरोदश्च घृतोदकः ॥ १८ ॥
क्षीरोदो दधिमण्डोदः शुद्धोदश्चेति ते स्मृताः ॥ सप्तैते प्रतिविख्याताः पृथिव्यां सिंधवस्तथा ॥ १९ ॥ प्रथमो जम्बुद्वीपाख्यो यः क्षारोदेन वेष्टितः ॥
तत्पतिं विदधे राजा पुत्रमाग्नीध्रसंज्ञकम् ॥ २० ॥ प्लक्षद्वीपे द्वितीयेऽस्मिन्द्वीपेक्षुरससंप्लुते ॥ जातस्तदधिपः प्रैयव्रत इध्मादिजिह्वकः ॥ २१ ॥
शाल्मलीद्वीप एतस्मिन्सुरोदधिपरिप्लुते ॥ यज्ञबाहुं तदधिपं करोतिस्म प्रियव्रतः ॥ २२ ॥ कुशद्वीपेऽतिरम्ये च घृतोदेनोपवेष्टिते ॥ हिरण्यरेता
राजाऽभूत्प्रियव्रततनूजनिः ॥२३॥ क्रौंचद्वीपे पंचमे तु क्षीरोदधिपरिप्लुते ॥ प्रैयव्रतो घृतपृष्ठः पतिरासीन्महाबलः ॥२४॥ शाकद्वीपे चारुतरे दधि-
मण्डोदसंकुले ॥ मेधातिथिरभूद्राजा प्रियव्रतसुतो वरः ॥२५॥ पुष्करद्वीपके शुद्धोदकसिंधुसमाकुले ॥ वीतिहोत्रो बभूवासौ राजा जनकसंमतः ॥ २६ ॥
कन्यामूर्जस्वतीनाम्नीं ददावुशनसे विभुः ॥ आसीत्तस्यां देवयानी कन्या काव्यस्य विश्रुता ॥ २७ ॥ एवं विभज्य पुत्रेभ्यः सप्तद्वीपान्प्रियव्रतः ॥
विवेकवशगो भूत्वा योगमार्गाश्रितोऽभवत् ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भुवनकोशो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देवर्षे शृणु विस्तारं द्वीपवर्षविभेदतः ॥ भूमण्डलस्य सर्वस्य यथा देवप्रकल्पितम् ॥ १ ॥ समासात्संप्रवक्ष्यामि नालं

है। प्रियव्रतके महाबली पुत्र घृतपृष्ठ इस द्वीपके राजा हुए ॥२४॥ शाकद्वीप सभी द्वीपोंसे बढ़कर सुन्दर है। दधिमण्डोद समुद्रने इसे घेर रखा है। प्रियव्रतके सुप्रसिद्ध पुत्र मेधातिथि इस द्वीपके नायक बने ॥२५॥ पुष्कर द्वीप मीठे जलके समुद्रसे घिरा हुआ है। अपने पिता प्रियव्रतकी अनुमति पाकर वीतिहोत्रने यहाँके शासनकी बागडोर हाथमें ली ॥२६॥ महाराज प्रियव्रतने अपनी कन्या ऊर्जस्वतीका विवाह शुक्राचार्यके साथ कर दिया। शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी ऊर्जस्वतीके ही गर्भसे उत्पन्न हुई थी—यह सभी जानते हैं ॥२७॥ इस प्रकार महाराज प्रियव्रतने अपने पुत्रोंको सातों द्वीप बाँट दिये और स्वयं योगमार्गका आश्रय लेकर संन्यासी बन गये ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(भूमण्डलका विस्तार) भगवान् नारायण कहते हैं—हे देवर्षि नारद! अब उपर्युक्त द्वीपोंके देवताओं द्वारा किये गये देशविभाजन और उसका विस्तार सुनो ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रसंगको मैं बहुत संक्षेपमें कहूँगा—विशेष बढ़ा-चढ़ाकर नहीं। सबसे पहले एक लाख योजनके परिमाणमें विस्तृत जम्बूद्वीपका निर्माण हुआ ॥ २ ॥ इस विशाल द्वीपकी आकृति इस प्रकार गोल है, जैसे कमलकी कर्णिका हो। इस द्वीपमें हजार-हजार योजनतक फैले हुए नौ वर्ष (देश) हैं ॥ ३ ॥ चारों ओरसे पर्वतोंने उन्हें घेर रक्खा है। आठ बड़े-बड़े पर्वतोंसे वे देश विभाजित हैं ॥४॥ दो वर्षोंको धनुषाकार समझना चाहिये, जो दक्षिणसे उत्तरतक फैले हुए हैं। वहीं चार और विशाल देश हैं। एक इलावृत नामका वर्ष (देश) है, जिसमें चार और विशाल वर्ष हैं ॥ ५ ॥ इस इलावृतको मध्यवर्ष कहते हैं। यह जम्बूद्वीपकी नाभिके स्थानपर प्रतिष्ठित है। वहीं लाख योजन ऊँचा सुवर्णका सुमेरु पर्वत है ॥ ६ ॥ वह पर्वत ही गोलाकार पृथ्वीरूपी कमलका बीजकोश है। उसकी चोटी बत्तीस हजार योजनके विस्तारमें है ॥ ७ ॥ उस पर्वतकी जड़ सोलह हजार योजनकी दूरीमें फैली है और इतने ही योजन तक नीचे जमीनमें धँसी हुई है। इलावृत वर्षकी उत्तरी सीमाके रूपमें तीन पर्वत कहे गये हैं। उन पर्वतोंके नाम हैं-नील, श्वेत और शृङ्गवान् ॥ ८ ॥ दूसरा सुवर्णमय देश रम्यकवर्षके

विस्तरतः क्वचित् ॥ जंबुद्वीपः प्रथमतः प्रमाणे लक्षयोजनः ॥ २ ॥ विशालो वर्तुलाकारो यथाऽब्जस्य च कर्णिका ॥ नव वर्षाणि यस्मिंश्च नवसाहस्रयोजनैः ॥ ३ ॥ आयामैः परिसंख्यानि गिरिभिः परितः श्रितैः ॥ अष्टभिर्दीर्घरूपैश्च सुविभक्तानि सर्वतः ॥ ४ ॥ धनुर्वत्संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ॥ दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्रमिलावृतम् ॥ ५ ॥ इलावृतं मध्यवर्षं यन्नाभ्यां सुप्रतिष्ठितः ॥ सौवर्णो गिरिराजोऽयं लक्षयोजनमुच्छ्रितः ॥ ६ ॥ कर्णिकारूप एवायं भूगोलकमलस्य च ॥ मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनैर्विततस्त्वयम् ॥ ७ ॥ मूले षोडशसाहस्रस्तावतांतर्गतः क्षितौ ॥ इलावृतस्योत्तरतो नीलः श्वेतश्च शृङ्गवान् ॥८॥ त्रयो वै गिरयः प्रोक्ता मर्यादावधयस्त्रिषु ॥ रम्यकाख्ये तथा वर्षे द्वितीये च हिरण्मये ॥९॥ कुरुवर्षे तृतीये तु मर्यादां व्यंजयंति ते ॥ प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयस्तथा ॥ १० ॥ द्विसहस्रपृथुतरास्तथा एकैकशः क्रमात् ॥ पूर्वात्पूर्वाच्चोत्तरस्यां दशांशादधिकांशतः ॥ ११ ॥ दैर्घ्य एव ह्रसन्तीमे नानानदनदीयुताः ॥ इलावृताद्दक्षिणतो निषधो हेमकूटकः ॥ १२ ॥ हिमालयश्चेति त्रयः प्राग्विस्तीर्णाः सुशोभनाः ॥ अयुतोत्सेधभाजस्ते योजनैः परिकीर्तिताः ॥ १३ ॥ हरिवर्षं किंपुरुषं भारतं च यथातथम् ॥ विभागात्कथयंत्येते मर्यादागिरयस्त्रयः ॥ १४ ॥ इलावृतात्पश्चिमतो माल्यवान्नामपर्वतः ॥ पूर्वेण च ततः श्रीमान्गन्धमादनपर्वतः ॥ १५ ॥ आनीलनिषधं त्वेतौ चायतौ

नामसे प्रसिद्ध है। तीसरा कुरुवर्ष है। उक्त पर्वत इन सभी वर्षोंकी सीमा व्यक्त करते हैं। वे वर्ष आगेकी ओर फैले हुए हैं। दोनों ओरकी सीमा क्षारसमुद्र है ॥ ९ ॥ १० ॥ उसकी चौड़ाई दो हजार योजनसे अधिक है। वे क्रमशः एक-से-एक पूर्वकी ओर बढ़ते गये हैं। उत्तरमें एक-एक दशांशका अन्तर होता गया है और चौड़ाईमें क्रमशः कमी होती गयी है। ये वर्ष बहुत-सी नदियों और समुद्रोंसे सम्पन्न हैं। इलावृतवर्षके दक्षिण ओर निषध, हेमकूट और हिमालय नामक बहुत लम्बे-चौड़े तीन विशाल पर्वत शोभा पाते हैं। कहा जाता है कि वे पर्वत दस हजार योजन ऊँचे हैं ॥ ११-१३ ॥ हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारतवर्ष—इन तीन वर्षोंका विभागानुसार यथार्थ वर्णन मिलता है। निषध, हेमकूट और हिमालय—ये तीन पर्वत इनकी सीमा हैं ॥ १४ ॥ इलावृतके पश्चिमी भागमें माल्यवान् नामक पर्वत है। पूर्वकी ओर श्रीमान् गन्धमादन पर्वत सुशोभित है ॥ १५ ॥ ये दोनों विशाल पर्वत नीलगिरिसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकर निषधपर्वततक दो हजार योजनकी दूरीमें फैले हुए हैं। इनकी चौड़ाई भी पर्याप्त है। ये दोनों पर्वत उस वर्षकी सीमा निश्चित करते हैं। केतुमाल और भद्राश्व वर्षकी सीमा इन माल्यवान् एवं गन्धमादन पर्वतोंपर निर्भर हैं। मंदर, मेरुमंदर, सुपार्श्व और कुमुद—ये चार पर्वत सुमेरु गिरिके पायेके रूपमें हैं ॥१६-१७॥ दस हजार योजन इनका विस्तार है। सुमेरु गिरिकी चारों दिशाओंमें उसे रोककर ये विराजमान हैं। इन चारों पर्वतोंपर चार वृक्ष हैं—आम, जामुन, कदम्ब और बड़। ये चारों वृक्ष ग्यारह सौ योजन ऊँचे हैं और वृक्षकी ध्वजाका काम देते हैं ॥१८-२०॥ ये चारों वृक्ष और चारों पर्वत समान विस्तारमें फैले हुए हैं। वह स्थान चार अत्यन्त गहरे तालाबोंसे सुशोभित है। वे तालाब दूध, मधु, ईखके रस और स्वादिष्ट जलसे भरे हैं और उनमें स्नान-आचमन आदि करनेवाले देवताओंको यौगिक सम्पत्ति प्राप्त होती है। वहीं स्त्रियोंको परम सुखी बनानेवाले चार दिव्य उपवन हैं ॥२१॥२२॥ उन उपवनोंके नाम हैं—नंदन, चैत्ररथ, वैभ्राज और सर्वभद्र। उनमें अङ्गनाओंसहित देवताओंका निवास होता है ॥२३॥ बड़े-बड़े महाभाग देवता परम स्वतंत्र होकर सुखपूर्वक वहाँ यथेच्छ विहार करते हैं ॥२४॥

द्विसहस्रतः ॥ योजनैः पृथुतां यातौ मर्यादाकारकौ गिरी ॥ १६ ॥ केतुमालाख्यभद्राश्ववर्षयोः प्रथितौ च तौ ॥ मन्दरश्च तथा मेरुमंदरश्च सुपार्श्वकः ॥१७॥ कुमुदश्चेति विख्याता गिरयो मेरुपादकाः ॥ योजनायुतविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशम् ॥१८॥ अवष्टंभकरास्ते तु सर्वतोऽभिविराजिताः ॥ एतेषु गिरिषु प्राप्ताः पादपाश्चूतजंबुनी ॥ १९ ॥ कदंबन्यग्रोध इति चत्वारः पर्वताः स्थिताः ॥ केतवो गिरिराजेषु एकादशशतोच्छ्रयाः ॥ २० ॥ तावद्विटपविस्ताराः शताख्यपरिणाहिनः ॥ चत्वारश्च ह्रदास्तेषु पयोमध्विक्षुसज्जलाः ॥ २१ ॥ यदुपस्पर्शिनो देवा यौगैश्वर्याणि विंदते ॥ देवोद्यानानि चत्वारि भवंति ललनासुखाः ॥२२॥ नंदनं चैत्ररथकं वैभ्राजं सर्वभद्रकम् ॥ येषु स्थित्वाऽमरगणा ललनायूथसंयुताः ॥२३॥ उपदेवगणैर्गीतमहिमानो महाशयाः ॥ विहरंति स्वतंत्रास्ते यथाकामं यथासुखम् ॥२४॥ मंदरोत्संगसंस्थस्य देवचूतस्य मस्तकात् ॥ एकादशशतोच्छ्रायात्फलान्यमृतभांजि च ॥२५॥ गिरिकूटप्रमाणानि सुस्वादूनि मृदूनि च ॥ तेषां विशीर्यमाणानां फलानां सुरसेन च ॥२६॥ अरुणोदसवर्णेन अरुणोदा प्रवर्तते ॥ नदी रम्यजला देवदैत्यराजप्रपूजिता ॥ २७ ॥ अरुणाख्या महाराज वर्तते पापहारिणी ॥ पूजयंति च तां देवीं सर्वकामफलप्रदाम् ॥ २८ ॥ नानोपहारबलिभिः कल्मषघ्न्यभयप्रदाम् ॥ तस्याः कृपावलोकेन क्षेमारोग्यं व्रजंति ते ॥ २९ ॥ आद्या मायाऽतुलाऽनंता पुष्टिरीश्वरमालिनी ॥

मन्दराचलके वक्षःस्थलपर एक दिव्य आमका वृक्ष है। उस वृक्षकी ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है। उसके अमृतमय फल पर्वत शिखरके समान विशाल, अत्यन्त स्वादिष्ट और बड़े कोमल होते हैं। वे फल वृक्षके ऊँचे सिरेसे गिरते ही बिखर जाते हैं और उनका रस बह चलता है। वह रस ऐसा लाल होता है, मानो अरुणसमुद्रका जल हो। उसी रससे देवों और दैत्योंसे पूजित अरुणादा नामकी एक नदी बहती है। उसका जल बड़ा ही रम्य है ॥ २५-२७ ॥ हे महाराज! उसी पर्वतपर पापहरणी भगवती श्रीअरुणा देवी विराजमान हैं। प्रधान-प्रधान देवता और दैत्य उनकी उपासना करते हैं सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे देवी सदा पापोंके संहारमें लगी रहती हैं ॥ २८ ॥ अनेक प्रकारके उपहार एवं बलिसे प्रसन्न होकर वे सारा कल्मष दूर करके भक्तोंको निर्भय बना देती हैं। उनकी कृपादृष्टिसे साधक कुशल एवं नीरोग बन जाते हैं ॥ २९ ॥ आद्या, माया, अतुला, अनन्ता, पुष्टि, ईश्वरमालिनी, दुष्टनाशकरी और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कान्तिदायिनी—इन नामोंसे वे देवी भूमण्डलपर विख्यात हैं। उन्हीं देवीकी पूजाके प्रभावसे जगत्‌में सुवर्ण उत्पन्न हुआ है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे 'पीतांबरा'भापाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(गङ्गावतरण तथा अन्यान्य नदियोंकी उत्पत्ति) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! मैंने जिस नदीका वर्णन किया है, वह अरुणोदा नदी मन्दर पर्वतसे निकलकर इलावृत वर्षके पूर्वभागमें बहती है ॥ १ ॥ भगवती जगदम्बाकी अनुचरी स्त्रियाँ तथा यक्षों एवं गन्धर्वोंकी पत्नियाँ अरुणोदाके जलमें स्नान करती हैं। स्नान करते समय उनके शरीरकी दिव्य गन्धसे उसका जल सुवासित हो जाता है। उस सुगन्धको लेकर बहता हुआ पवन आस-पासकी दस योजन भूमि सुगन्धित कर देता है। इस प्रकार मेरु-मन्दरके वक्षःस्थलपर उगे ऊँचे वृक्षसे गिरे जम्बूफल हाथीके शरीरके समान विशाल थे। वे गिरते ही बिखर गये और उनसे रस बह चला। उसी रससे जम्बू नामकी नदी बनकर सुमेरु तथा मन्दराचलसे भूमण्डलपर उतर आयी

दुष्टनाशकरी कान्तिदायिनीति स्मृता भुवि ॥ ३० ॥ अस्याः पूजाप्रभावेण जाम्बूनदमुदावहत् ॥३१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भुवर्लोकवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अरुणोदा नदी या तु मया प्रोक्ता च नारद ॥ मन्दरान्निपतंती सा पूर्वेणेलावृतं प्लवेत् ॥ १ ॥ यज्जोषणाद्भवान्याश्चानुचरीणां स्त्रियामपि ॥ यक्षगन्धर्वपत्नीनां देहगन्धवहोऽनिलः ॥ २ ॥ वासयत्यभितो भूमिं दशयोजनसंख्यया ॥ एवं जंबूफलानां च तुङ्गदेशनिपातनात् ॥ ३ ॥ विशीर्यतामनस्थीनां कुञ्जरांगप्रमाणिनाम् ॥ रसेन च नदी जंबूनाम्नी मेर्वाख्यमंदरात् ॥ ४ ॥ पतन्ती भूमिभागे च दक्षिणेलावृतं गता ॥ देवी जम्बूफलास्वादतुष्टा जंब्वादिनी स्मृता ॥ ५ ॥ तत्रत्यानां च लोकानां देवनागर्षिरक्षसाम् ॥ पूजनीयपदा मान्या सर्वभूतदयाकरी ॥ ६ ॥ पावनी पापिनां रोगनाशिनी स्मरतामपि ॥ कीर्तिता विघ्नसंहर्त्री माननीया दिवौकसाम् ॥ ७ ॥ कोकिलाक्षी कामकला करुणा कामपूजिता ॥ कठोरविग्रहा धन्या नाकिमान्या गभस्तिनी ॥ ८ ॥ एभिर्नामपदैः कामं जपनीया सदा नृणाम् ॥ जम्बूनदीरोधसोर्या मृत्तिका तीरवर्तिनी ॥ ९ ॥ जम्बूरसेनानुविद्ध्यमाना वाय्वर्कयोगतः ॥ विद्याधरामरस्त्रीणां भूषणं विविधं महत् ॥ १० ॥ जाम्बूनदं सुवर्णं च प्रोक्तं देवविनिर्मि-

यह नदी इलावृत वर्षसे दक्षिणकी ओर बहती है। जम्बूफलके स्वादसे संतुष्ट होनेवाली वहाँकी देवीको 'जम्ब्वादिनी' कहते हैं ॥ २–५ ॥ वहाँ रहनेवाले देवता, नाग, ऋषि और राक्षस सभी प्राणी इन देवीकी उपासना करते हैं। समस्त प्राणियोंपर दया करना इन आदरणीया भगवतीका स्वभाव ही है ॥६॥ इन्हें स्मरण करनेवाले पापी भी शुद्ध हो जाते हैं और रोगियोंके रोग नष्ट हो जाते हैं। इन देववन्द्या देवीका कीर्तन करनेपर विघ्न नहीं रह सकते ॥ ७ ॥ कोकिलाक्षी, कामकला, करुणा, कामपूजिता, कठोरविग्रहा, धन्या, नाकिमान्या और गभस्तिनी देवीके इन नामोंका उच्चारण करके लोग निरन्तर जप करें। जम्बूनदीके दोनों तटोंकी जो मिट्टी है, वह जम्बूके रससे सन जाती है। फिर सूर्य और पवन उसे सुखा देते हैं। उसीसे विद्याधरियों और देवाङ्गनाओंके विविध विशाल भूषण बनते हैं ॥ ८–१० ॥ उसीको जाम्बूनद सुवर्ण कहा जाता है। उसी सुवर्णको अपनी स्त्रियोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले विबुधगण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुकुट-करधनी-केयूर आदिके रूपमें परिणत करते हैं । कदंबका महान् वृक्ष सुपार्श्व पर्वतपर बताया गया है ॥ ११ ॥ १२ ॥ उस वृक्षमें पाँच खोढ़र अर्थात् पोली जगहें थीं । उनसे पाँच धाराएँ निकलीं । वे धाराएँ सुपार्श्व गिरिके शिखरसे गिरकर इस भूमण्डलपर आयी हैं ॥ १३ ॥ उन पाँचोंका नाम मधुधारा है । ये इलावृतवर्षसे पश्चिमको प्रवाहित होती हैं । इस नदीमें स्नान करनेवाले देवताओंके मुखकी सुगन्धि लेकर बहता हुआ पवन आस-पासकी सौ योजन भूमि सुवासित करता है । भक्तोंका काम सिद्ध करनेके लिये धारेश्वरी नामकी महादेवी वहाँ विराजती हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ उस स्थानपर शोभा पानेवाली देवीके नाम हैं–देवपूज्या, महोत्साहा, कालरूपा, महानना, कर्मफलदा, कान्तारग्रहणेश्वरी, करालदेहा, कालाङ्गी और कामकोटिप्रवर्तिनी । इन नामोंसे सर्वदेवेश्वरी भगवती जगदंबाकी पूजा करनी चाहिए ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसी प्रकार कुमुदपर्वतके ऊपर जो शतबल नामसे प्रसिद्ध वटका वृक्ष है, उसकी शाखाओंसे नीचे गिरते हुए बहुतसे नद धरातलपर आये हैं । कुमुदगिरिके शिखरसे ये नीचे गिरते हैं ॥१८॥ ये दूध, दही, घृत, मधु, गुड़, अन्न, वस्त्र, शय्या और आभरण आदि सभी वस्तु-

तम् ॥ यत्सुवर्णं च विबुधा योषिद्भिः कामुकाः सदा ॥ ११ ॥ मुकुटं कटिसूत्रं च केयूरादीन्प्रकुर्वते ॥ महाकदम्बः संप्रोक्तः सुपार्श्वगिरिसंस्थितः ॥१२॥ तस्य कोटरदेशेभ्यः पंच धाराश्च याः स्मृताः॥ सुपार्श्वगिरिमूर्ध्नीह पतंत्येता भुवं गताः ॥१३॥ मधुधाराः पंच तास्तु पश्चिमेलावृतं प्लुताः ॥ याश्चोपभुज्यमानानां देवानां मुखगन्धभृत् ॥ १४ ॥ वायुः समंततो गच्छञ्छतयोजनवासनः ॥ धारेश्वरी महादेवी भक्तानां कार्यकारिणी ॥ १५ ॥ देवपूज्या महोत्साहा कालरूपा महामना ॥ वसते कर्मफलदा कांतारग्रहणेश्वरी ॥ १६ ॥ करालदेहा कालांगी कामकोटिप्रवर्तिनी ॥ इत्येतैर्नामभिः पूज्या देवी सर्वसुरेश्वरी ॥ १७ ॥ एवं कुमुदरूढो यो नाम्ना शतबलो वटः ॥ तत्स्कन्धेभ्योऽधोमुखाश्च नदाः कुमुदमूर्धतः ॥ १८ ॥ पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यंबरादिभिः॥ शय्यासनाद्याभरणैः सर्वे कामदुघाश्च ते ॥१९॥ उत्तरेणेलावृतं ते प्लावयंति समंततः ॥ मीनाक्षी तत्तले देवी देवासुरनिषेविता ॥२०॥ नीलाम्बरा रौद्रमुखी नीलालकयुता च सा ॥ नाकिनां देवसंघानां फलदा वरदा च सा ॥२१॥ अतिमान्याऽतिपूज्या च मत्तमातंगगामिनी ॥ मदनोन्मादिनी मानप्रिया मानप्रियान्तरा ॥ २२ ॥ मारवेगधरा मारपूजिता मारमादिनी ॥ मयूरवरशोभाढ्या शिखिवाहनगर्भभूः ॥ २३ ॥ एभिर्नामपदैर्वंद्या देवी सा मीनलोचना ॥ जपतां स्मरतां मानदात्री चेश्वरसंगिनी ॥ २४ ॥ तेषां नदानां पानीयपानानुगतचेतसाम् ॥ प्रजानां न

ओंसे परिपूर्ण रहते हैं । ये कामदुघा हैं–अर्थात् सभी अभीष्ट पदार्थ देनेमें इनकी पूर्ण योग्यता है ॥१९॥ ये नद इलावृतवर्षसे उत्तर भागमें होकर सब ओरकी भूमिको प्लावित करते हैं । इन्हींके तटपर भगवती मीनाक्षीका मन्दिर है । देवता और दानव–सभी इनकी उपासना करते हैं ॥ २० ॥ स्वर्गवासी देवताओंको फल प्रदान करनेमें तत्पर इन देवीके नाम इस प्रकार हैं–नीलाम्बरा, रौद्रमुखी, नीलालकयुता, नाकिनी, देवसंग, फलदा, वरदा, अतिमान्या, अतिपूज्या, मत्तमातङ्गगामिनी, मदनोन्मादिनी, मानप्रिया, मानप्रियान्तरा, मारवेगधरा, मारमादिनी, मयूरवरशोभाढ्या और शिखिवाहनगर्भभू ॥२१–२३॥ इन नामोंसे युक्त पदों द्वारा देवीकी वन्दना करनी चाहिये । ये मीनलोचना भी कहलाती हैं । परब्रह्मसे सम्पर्क रखनेवाली इन भगवतीका जो जप एवं ध्यान करते हैं, उन्हें सम्मान प्रदान करना इनका स्वाभाविक गुण है॥ ४४ ॥ हे नारद ! उपर्युक्त नदोंका जल पीनेसे रग-रगमें चेतना आ जाती है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसे पीनेवाले प्राणियोंके मुखपर कभी भी झुर्री तथा केशोंको सफेदी आदि बुढ़ापेके चिह्न नहीं आ सकते ॥२५॥ श्रम, पसीनाका दुर्गन्धयुक्त होना, जरा, व्याधि, मृत्यु, भ्रम, शीत, उष्ण एवं किसी बातसे मुखपर उदासी छा जाना तथा अनेक प्रकारकी आपत्ति-जैसी कोई भी विषम परिस्थिति सामने नहीं आ सकती। इस जलके प्रभावसे प्राणी आजीवन सुखी रह सकता है। यह सुख सदा बना रहता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ अब सुमेरुगिरिके अवान्तर पर्वतोंका वर्णन करूँगा । सुमेरुपर्वतको स्वर्णमय पर्वत कहते हैं। इससे पृथक् बीस पर्वतोंका वर्णन आता है। वे पर्वत कर्णिकाके समान हैं। उन सबका मूल सुमेरुपर्वत है । अन्य पर्वतोंने सुमेरुको चारों ओरसे घेर रखा है । उन बीस पर्वतोंके नाम हैं—कुरङ्ग, कुरग, कुसुम्भ, विकङ्कत, शिशिर, त्रिकूट, पतङ्ग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शंख, वैदूर्य, चारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर और नारद ॥ २८-३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे

कदाचित्स्याद्वलीपलितलक्षणम् ॥ २५ ॥ क्लमस्वेदादिदौर्गंध्यं जराभयमृतिभ्रमाः ॥ शीतोष्णवातवैवर्ण्यमुखोपप्लवसंचयाः ॥ २६ ॥ नापदश्चैव जायंते यावज्जीवं सुखं भवेत् ॥ नैरन्तर्येण तत्स्याद्धि सुखं निरतिशायकम् ॥ २७ ॥ तत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि संनिवेशं च तद्गिरेः ॥ सुवर्णमयनाम्नो वै सुमेरोः पर्वताः पृथक् ॥ २८ ॥ गिरयो विंशतिपराः कर्णिकाया इवेह ते ॥ केसरीभूय सर्वेऽपि मेरोर्मूलविभागके ॥ २९ ॥ परितश्चोपक्लृप्तास्ते तेषां नामानि शृण्वतः ॥ कुरङ्गः कुरगश्चैव कुसुम्भोऽथो विकंकतः ॥३०॥ त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा ॥ निषधश्च शिनीवासः कपिलः शंख एव च ॥ ३१ ॥ वैदूर्यश्चारुधिश्चैव हंसो ऋषभ एव च ॥ नागः कालञ्जरश्चैव नारदश्चेति विंशतिः ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभगवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गिरी मेरुं च पूर्वेण द्वौ चाष्टादशयोजनैः ॥ सहस्रैरायतो चोदग्द्विसहस्रं पृथूच्चकौ ॥ १ ॥ जठरो देवकूटश्च तावेतौ गिरवर्यकौ ॥ मेरोः पश्चिमतोऽद्री द्वौ पवमानस्तथापरः ॥२॥ पारियात्रश्च तौ तावद्विख्यातौ तुङ्गविस्तरौ ॥ मेरोर्दक्षिणतः ख्यातौ कैलासकरवीरकौ ॥ ३ ॥ प्रागायतौ पूर्ववृत्तौ महापर्वतराजकौ ॥ एवं चोत्तरतो मेरोस्त्रिशृंगमकरौ गिरी ॥ ४ ॥ एतैश्चाद्रिवरैरष्टसंख्यैः परिवृतो गिरिः ॥ सुमेरुः कांचनगिरिः परिभ्राजत्रविर्यथा ॥ ५ ॥ मेरोर्मूर्धनि धातुर्हि पुरी पंकजजन्मनः ॥ मध्यतश्चोपक्लृप्तेयं दशसाहस्रयोजनैः ॥ ६ ॥ समानचतुरस्रां च

पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! सुमेरु गिरिके पूर्व दो पर्वत हैं। उनकी लम्बाई अठारह हजार योजन और चौड़ाई दो हजार योजन है ॥१॥ इन श्रेष्ठ पर्वतोंके नाम हैं—जठर और देवकूट। दो पर्वत सुमेरुगिरिके पश्चिममें हैं। एकका नाम पवमान है और दूसरा पारियात्र कहलाता है। ये दोनों पर्वत जठर और देवकूटके समान ही लम्बे-चौड़े हैं। सुमेरु गिरिके दक्षिण कैलास और करवीर नामसे विख्यात दो पर्वत हैं ॥२॥३॥ इनका भी विस्तार पहलेके समान ही है। ऐसे ही सुमेरुके उत्तर त्रिश्रृङ्ग और मकर नामवाले दो पहाड़ हैं ॥४॥ इन आठ सुप्रसिद्ध पर्वतोंसे सुमेरुगिरि घिरा हुआ है। सुमेरुगिरिको काञ्चनगिरि भी कहते हैं। सूर्यके समान यह प्रकाशित होता रहता है ॥ ५ ॥ इस सुमेरुगिरिके शिखरपर पद्मयोनि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्माजीकी पुरी है। शिखरके ठीक मध्यभागमें यह पुरी प्रतिष्ठित है। इसका दीर्घ-विस्तार दस हजार योजन है ॥ ६ ॥ इस स्वर्णमयी पुरीके चारों कोने बराबर हैं। तत्त्वके पूर्ण ज्ञाता विद्वान् एवं महात्मा पुरुष इसके विषयमें कहते हैं कि इस पुरीको लक्ष्य करके आठ लोकपालोंकी भिन्न-भिन्न आठ पुरियाँ और हैं। ये प्रसिद्ध पुरियाँ भी स्वर्णमयी हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ जिस दिशामें जिसे रहना चाहिये, वैसे ही इनकी प्रतिष्ठा हुई है। इनका रूप भी लोकपालोंकी योग्यताके अनुसार है। इनकी लम्बाई और चौड़ाई ढाई हजार योजन है। यों सुमेरु गिरिपर नौ पुरियाँ हुईं। इनके नाम हैं—मनोवती, अमरावती, तेजोवती, संयमनी, कृष्णाङ्गना, श्रद्धावती, गन्धवती, महोदया और यशोवती। ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि एवं यम आदि लोकपाल यथाक्रम इन पुरियोंमें विराजते हैं। भगवान् विष्णुने राजा बलिके समय वामन अवतार लिया था ॥९-११॥ उनके बायें पैरके अंगूठेसे ब्रह्माण्डमें छेद हो गया। हे नारद! वह छिद्र ब्रह्माण्डके ऊपरी भागमें हुआ था॥१२॥ उसके मध्य भागसे गंगा प्रकटी और स्वर्गके शिखरपर आकर रुक गयी। इस गंगामें अखिल जगत्‌के कल्मषको दूर करनेकी पूर्ण योग्यता है। यह पापका उच्छेद कर

शातकौंभमयीं पुरीम् ॥ वर्णयन्ति महात्मानः परावरविदो बुधाः ॥ ७ ॥ तां पुरीमनुलोकानामष्टानामीशिषां पराः ॥ पुर्यः प्रख्यातौसवर्णरूपास्ताश्च यथादिशम् ॥ ८ ॥ यथारूपं सार्धनेत्रसहस्रप्रमिताः कृताः ॥ मेरोर्नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती ॥ ९ ॥ तेजोवती संयमनी तथा कृष्णांगनाऽपरा ॥ श्रद्धावती गंधवती तथा चान्या महोदया ॥ १० ॥ यशोवती च ब्रह्मेंद्रवह्न्यादीनां यथाक्रमम् ॥ तत्रैव यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्भगवतो विभोः ॥ ११ ॥ वामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नस्य च नारद ॥ अंडोर्ध्वभागरंध्रस्य मध्यात्संविशती दिवः ॥ १२ ॥ मूर्धन्यवततारेयं गंगा संविशती विभो ॥ लोकानामखिलानां च पापहारिजलाकुला ॥ १३ ॥ इयं च साक्षाद्भगवत्पदी लोकेषु विश्रुता ॥ कालेन महता सा तु युगसाहस्रकेण तु ॥ १४ ॥ दिवो मूर्धानमागत्य देवी देवनदीश्वरी ॥ यत्तद्विष्णुपदं नाम स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १५ ॥ औत्तानपादिर्यत्रास्ते ध्रुवः परमपावनः ॥ भगवत्पादयुगलं पद्मकोषरजो दधत् ॥१६॥ अद्याप्यास्ते स राजर्षिः पदवीमचलां श्रितः ॥ तत्र सप्तर्षयस्तस्य प्रभावज्ञा महाशयाः ॥ १७ ॥ प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति सर्वलोकहितेप्सवः ॥ आत्यंतिका सिद्धिरियं तपतां सिद्धिदायिनी ॥ १८ ॥ आद्रियन्ते च शिरसा जटाजूटोषितेन च ॥ ततो विष्णुपदाद्देवी नैकसाहस्रकोटिभिः ॥ १९ ॥ विमानैराकुले देवयानेऽवतरती च सा ॥ चन्द्रमण्डलमाप्लाव्य पतंती ब्रह्मसद्मनि ॥ २० ॥ चतुर्धा भिद्यमाना सा

देनेवाले जलसे परिपूर्ण है ॥१३॥ समस्त संसारमें गंगा साक्षात् भगवत्पदी कहलाती है। यह सम्पूर्ण दिव्य नदियोंकी स्वामिनी है। बहुत समयके पश्चात् अर्थात् हजार युग बीत जानेपर यह वहाँसे चलकर स्वर्गके शिखरपर—जिसे त्रिलोकीमें विष्णुपदी कहते हैं—आ गयी। यह वह स्थान है, जहाँ उत्तानपादकुमार परम पुण्यात्मा पुरुष ध्रुव रहते हैं। श्रीहरिके दोनों चरणकमलोंके परम पावन परागको धारण किये रहना उनका स्वभाव ही बन गया है ॥१४-१६॥ अब भी राजर्षि ध्रुव उसी अविचल स्थानपर प्रतिष्ठित हैं। वहीं उदार-स्वभाव सप्तर्षि भी रहते हैं। ये सप्तर्षि गंगाके प्रभावसे पूर्ण परिचित हैं ॥ १७ ॥ अखिल जगत्‌के हितकी कामना इनके भीतर भरी रहती है। अतः ये गंगाको प्रदक्षिणा किया करते हैं। ये जानते हैं कि गंगा अत्यन्त सिद्धिस्वरूपिणी है ॥ १८ ॥ इसकी उपासना करनेवाले पुरुष सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। इसलिये जटा-जूट रखकर वे प्रतिदिन गंगामें स्नान करते हैं। तदनन्तर वैकुण्ठसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चलकर असंख्य विमानोंसे भरे हुए देवपथपर होती हुई गंगा चन्द्रमण्डलमें पहुँची। वहाँसे ब्रह्मलोकमें आ गयी ॥ १९ ॥ २० ॥ हे नारद ! ब्रह्मलोकमें आनेपर गंगाके चार भाग हो गये और चार नामोंसे प्रसिद्ध होकर वह चार दिशाओंमें बह चली ॥ २१ ॥ बहते-बहते जाकर वह समुद्रमें मिल जाती है। गंगाके चार नाम हैं—सीता, अलकनन्दा, चक्षुष् और भद्रा ॥ २२ ॥ सम्पूर्ण पापोंका शमन करनेवाली सीता नामसे प्रसिद्ध गङ्गा ब्रह्माण्डसे उतरकर केसर नामक पर्वतके शिखरपर आयी ॥ २३ ॥ वहाँसे गन्धमादन पर्वतके शिखरपर गिरी। उसके बीचसे निकलकर वह पापहारिणी नदी भद्राश्ववर्षकी पूर्व दिशामें आ गयी ॥ २४ ॥ इसके बाद देवताओंसे सुपूजित होकर वह क्षी रसागरमें मिल गयी। तत्पश्चात् चक्षुष् नामसे प्रसिद्ध दूसरी गङ्गा माल्यवान् पर्वतके शिखरसे निकली ॥ २५ ॥ अत्यन्त वेगके साथ बहकर वह केतुमाल वर्षमें आ गयी। वहाँसे इसका प्रवाह पश्चिम दिशामें चला गया ॥ २६ ॥ बादमें जाकर

ब्रह्मलोके च नारद ॥ चतुर्भिर्नामभिर्देवी चतुर्दिशमभिसृता ॥ २१ ॥ सरितां च नदीनां च पतिमेवान्वपद्यत ॥ सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रेति
नामभिः ॥ २२ ॥ सीता च ब्रह्मसदनाच्छिखरेभ्यः क्षमाभृताम् ॥ केसराभिधनाग्ना च प्रस्रवन्ती च स्वर्णदी ॥ २३ ॥ गंधमादनमूर्ध्नीह पतिता
पापहारिणी ॥ अन्तरेण तु भद्राश्ववर्षं प्राच्यां समागता ॥ २४ ॥ क्षारोदधिं गता सा तु द्युनदी देवपूजिता ॥ ततो माल्यवतः शृंगाद्द्वितीया
परिनिर्गता ॥२५॥ ततो वेगवती भूत्वा केतुमालं समागता ॥ चक्षुर्नाम्नी देवनदी प्रतीच्यां दिश्युपागता ॥२६॥ सरितां पतिमाविष्टा सा गंगा
देववन्दिता ॥ ततस्तृतीया धारा तु नाम्ना ख्याता च नारद ॥ २७ ॥ पुण्या चालकनन्दा वै दक्षिणेनाब्जभूपदात् ॥ वनानि गिरिकूटानि समति-
क्रम्य चागता ॥ २८ ॥ हेमकूटं गिरिवरं प्राप्ताऽतोपीह निर्गता ॥ अतिवेगवती भूत्वा भारतं चागता परा ॥ २९ ॥ दक्षिणं जलधिं प्राप्ता तृतीया
सा सरिद्वरा ॥ यस्याः स्नानाय सरतां मनुजानां पदे पदे ॥ ३० ॥ राजसूयाश्वमेधादिफलं तु न हि दुर्लभम् ॥ ततश्चतुर्थी धारा तु शृंगवत्पर्वता-
त्पुनः ॥ ३१ ॥ भद्राभिधा संस्रवंती कुरून्सन्तर्प्य चोत्तरान् ॥ समुद्रं समनुप्राप्ता गंगा त्रैलोक्यपावनी ॥ ३२ ॥ अन्ये नदाश्च नद्यश्च वर्षे वर्षेऽपि
संति हि ॥ बहुशो मेरुमन्दारप्रसूताश्चैव नारद ॥ ३३ ॥ तत्रापि भारतं वर्षं कर्मक्षेत्रमुशंति हि ॥ अन्यानि चाष्टवर्षाणि भौमस्वर्गप्रदानि च

वह देववन्दिता गङ्गा समुद्रमें मिल गयी। हे नारद ! तीसरी धाराको पुण्यमयी अलकनन्दा कहते हैं। यह पवित्र नदी ब्रह्माण्डके दक्षिणसे होती हुई हेमकूट नामक पर्वतपर पहुँची। इसने बीचमें बहुतसे वनों और पहाड़ोंको आप्लावित किया ॥ २७ ॥ २८ ॥ जब वहाँसे निकली, तब अत्यन्त वेगके साथ बहती हुई भारतवर्षमें आ गयी ॥ २९ ॥ इसके बाद इस तीसरी गङ्गा अलकनन्दाका दक्षिणसागरमें संगम हुआ। तत्पश्चात् जिसमें स्नान करनेके लिए चलनेवाले मनुष्योंको पग-पगपर राजसूय यज्ञका फल भी सुलभ है, वह चौथी धारा शृंगवान् पर्वतसे निकली। इसका नाम भद्रा है। तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली यह गङ्गा वहाँसे बहती हुई समुद्रमें पहुँची। इसके प्रवाहसे बीचके उत्तर कुरुप्रदेश परम तृप्त हुए ॥ ३०–३२ ॥ हे नारद ! अन्य भी बहुतसे समुद्र और नदियाँ प्रत्येक देशमें हैं। प्रायः इन सबके उद्गम-स्थान मेरु और मन्दर पर्वत हैं ॥ ३३ ॥ इन नौ वर्षोंमें भारतवर्षको 'कर्मक्षेत्र' कहा जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्य आठ वर्ष पृथ्वीपर रहते हुए भी स्वर्गफल प्रदान करते हैं ॥ ३४ ॥ हे नारद! जब स्वर्गमें रहनेवाले पुरुषोंका पुण्य समाप्त हो जाता है, तब वे भोग भोगनेके लिए यहाँ आते हैं। उनकी आयु दस हजार वर्ष होती है। उनके सभी अंग वज्रके समान कठोर होते हैं और वे देवताओं जैसे रूपवान् होते हैं ॥३५॥ उनमें एक हजार हाथियोंका बल होता है। वे क्रीड़ाके बड़े प्रेमी होते हैं। वे अपनी स्त्रियोंके साथ रहते हैं और उन्हें सभी सुख सुलभ रहते हैं ॥ ३६ ॥ वहाँ आयु समाप्त होनेके एक वर्ष पूर्वतक स्त्रियोंमें गर्भ धारण करनेकी क्षमता बनी रहती है और सदा त्रेता युगके समान समय विद्यमान रहता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते अष्टमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(इलावृत वर्षमें शिवजीके द्वारा श्रीसंकर्षणकी और भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवा द्वारा हयग्रीवकी स्तुति) श्रीनारायण कहते हैं—हे नारद! जम्बूद्वीपमें इलावृत आदि नौ देश हैं। सभी वर्षोंमें ब्रह्मा प्रभृति भिन्न-भिन्न देवताओंका निवास है। ये देवता जप, ध्यान और समाधिमें लगे रहकर पहले बताये हुए स्तोत्रोंके द्वारा श्रीदेवीकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥ उन वर्षोंमें

॥३४॥ स्वर्गिणा पुण्यशेषस्य भोगस्थानानि नारद ॥ पुरुषाणां चायुतायुर्वज्रांगा देवसन्निभाः ॥ ३५ ॥ पुरुषा नागसाहस्रैर्दशभिः परिकल्पिताः ॥ महासौरतसंतुष्टाः कलत्राढ्याः सुखान्विताः ॥ ३६ ॥ एकवर्षोनके चायुष्यास्त गर्भाः स्त्रियोऽपि हि ॥ त्रेतायुगसमः कालो वर्तते सर्वदैव हि ॥३७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीनारायण उवाच ॥ तेषु वर्षेषु देवेशाः पूर्वोक्तैः स्तवनैः सदा ॥ पूजयन्ति महादेवीं जपध्यानसमाधिभिः ॥ १ ॥ सर्वर्तुकुसुमश्रेणी-शोभिता वनराजयः ॥ फलानां पल्लवानां च यत्र शोभा निरन्तरम् ॥२॥ तेषु काननवर्षेषु वर्षपर्वतसानुषु ॥ गिरिद्रोणीषु सर्वासु निर्मलोदकराशिषु ॥ ३ ॥ विकचोत्पलमालासु हंससारससंचयैः ॥ विमिश्रितेषु तेष्वेव पक्षिभिः कूजितेषु च ॥ ४ ॥ जलक्रीडादिभिश्चित्रविनोदैः क्रीडयन्ति च ॥ सुंदरीललितभ्रूणां विलासायतनेषु च ॥ ५ ॥ तत्रत्या विहरन्त्यत्र स्वैरं युवतिभिः सह ॥ नवस्वपि च वर्षेषु भगवानादिपूरुषः ॥६॥ (नारायणाख्यो लोकानामनुग्रहरसैकदृक्) ॥ देवीमाराधयन्नास्ते स च सर्वैश्च पूज्यते ॥ आत्मव्यूहेनेज्ययाऽसौ सन्निधत्ते समाहितः ॥ ७ ॥ इलावृते तु भगवान्पद्मजाक्षिसमुद्भवः ॥ एक एव भवो देवो नित्यं वसति सांगनः ॥ ८ ॥ तत्क्षेत्रे नापरः कश्चित्प्रवेशं वितनोति च ॥ भवान्याः शापतस्तत्र पुमान्स्त्री

कतारके-कतार वन हैं, जो सभी ऋतुओंमें सुगन्धित पुष्पों, फलों एवं पल्लवोंसे सुशोभित रहते हैं ॥ २ ॥ उन वर्षोंमें बहुत-से जंगल, पर्वत और कन्दराएँ हैं। गुफाओंमें स्वच्छ और प्रभूत जल भरा रहता है ॥ ३ ॥ वहाँ विकसित पुष्पोंयुक्त सरोवरोंमें हंस-सारस आदि भिन्न-भिन्न जातिके पक्षी बोलते रहते हैं। उन्हीं सरोवरोंमें देवतागण अपनी सुंदर भौंहोंवाली स्त्रियोंके साथ जलविहार करते हैं। उन नवों वर्षोंमें आदिपुरुष भगवान् नारायण सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेकी दृष्टिसे भगवती श्रीदेवीकी उपासना करते हुए विराजमान रहते हैं। इन्हें सबसे पहले पूजा पानेका सुअवसर प्राप्त रहता है। आगे भी पूजा-पद्धति चालू रहे—एतदर्थ अपनी भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ बनाकर रहना इनका स्वभाव है ॥४-७॥ इलावृत वर्षमें भगवान् श्रीहरि 'रुद्र' रूपसे विराजते हैं। ब्रह्माके नेत्रसे इनका प्रादुर्भाव हुआ है। इनकी प्रेयसी प्रिया सदा साथ रहती है ॥ ८ ॥ उस क्षेत्रमें कोई दूसरा पुरुष नहीं जा सकता और न घूम ही फिर सकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। यदि कोई पुरुष वहाँ चला भी जाय तो भगवतीके शापसे वह तुरन्त स्त्रीके रूपमें परिणत हो जाता है ॥ ९ ॥ वहाँ भवानीकी सेवामें संलग्न रखनेवाली असंख्य स्त्रियाँ रहती हैं। इन स्त्रियोंसे घिरे रहकर भगवान् रुद्र महाभाग संकर्षणकी उपासना करते हैं ॥१०॥ इन संकर्षणको भगवान् श्रीहरिकी तामस प्रकृतिवाली चौथी मूर्ति कहा जाता है। अखिल जगत्के प्राणियों-के कल्याणार्थ रुद्र द्वारा इन संकर्षणकी पूजा होती है। इनके पूजक रुद्रदेव अजन्मा हैं। इनका चित्त सदा शांत रहता है ॥ ११ ॥ भगवान् शङ्कर कहते हैं—ॐजिनसे सभी गुणोंकी अभि-व्यक्ति होती है, उन अनन्त, अव्यक्त और ॐकारस्वरूप परम पुरुष श्रीभगवान्‌को नमस्कार है ॥१२॥ हे भजनीय प्रभो ! आपके चरण-कमल भक्तोंको आश्रय देनेवाले हैं तथा आप स्वयं ऐश्वर्योंके परम आश्रय हैं। भक्तोंके सामने आप अपना भूतभावनस्वरूप पूर्णतया प्रकट कर देते हैं। उन्हें संसार-बन्धनसे भी मुक्त कर देते हैं, किन्तु अभक्तोंको उस बन्धनमें डालते रहते हैं। आप ही सर्वेश्वर हैं। मैं आपका भजन करता हूँ ॥ १३ ॥ हे प्रभो ! हमलोग क्रोधके आवेगको नहीं जीत सके हैं तथा हमारी दृष्टि तत्काल पापसे लिप्त हो जाती है, परन्तु आप ता

भवति स्फुटम् ॥ ९ ॥ भवानीनाथकैः स्त्रीणामसंख्यैर्गणकोटिभिः ॥ संरुध्यमानो देवेशो देवं संकर्षणं भजन् ॥ १० ॥ आत्मना ध्यानयोगेन सर्वभूत-हितेच्छया ॥ तां तामसीं तुरीयां च मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः ॥ ११ ॥ उपधावते चैकाग्रमनसा भगवानजः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॐनमो भगवते महा-पुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥ १२ ॥ भजे भजन्यारणपादपंकजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ॥ भक्तेष्वलं भावित-भूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥१३॥ न यस्य मायागुणकर्मवृत्तिभिर्निरीक्षितो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ॥ ईशे यथा नो जितमन्युरंहसा कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥१४॥ असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीवेन मध्वासवताम्रलोचनः ॥ न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पादयोः स्पर्श-नधर्षितेंद्रियाः ॥१५॥ यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनंतमृषयः ॥ न वेदसिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥१६॥ यस्याद्य आसीद्गुणविग्रहो महान्विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ॥ तत्संभूतोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥ १७ ॥ एते वयं

संसारका नियमन करनके लिए निरन्तर साक्षीरूपसे उसके सारे व्यापरोंको देखते रहते हैं। तथापि हमारी तरह आपकी दृष्टिपर उन मायिक विषयों तथा चित्तकी वृत्तियोंका नाममात्रको भी प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी स्थितिमें अपने मनको वशमें करनेकी इच्छावाला कौन पुरुष आपका आदर न करेगा ? ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! मद्यपान करनेवाले मनुष्यकी आँखें जैसे लाल हो जाती हैं और वह भयंकर दीखने लगता है, उसी प्रकार मायाके कारण आपकी भी दृष्टि वेढंगी हो जाती है। ऐसे शरीरवाले आप भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श करके जिन नागपत्नियोंका मन मोहित हो जाता है और लज्जावश वे अन्य प्रकारसे उपासना नहीं कर पातीं ॥ १५ ॥ वेदमन्त्र जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण बताते हैं। परन्तु आप स्वयं इन तीनोंसे रहित हैं, इसलिए ऋषिगण आपको अनन्त कहते हैं। आपके सहस्र मस्तकोंपर यह भूमण्डल सरसोंके दानेके समान रक्खा हुआ है। आपको तो यह भी नहीं मालूम होता कि वह कहाँ स्थित है ॥ १६ ॥ जिनसे उत्पन्न होकर अहंकाररूप अपने त्रिगुणमय तेजसे देवताओं, इन्द्रियों और भूतोंकी रचना करते हैं, वे विज्ञानके आश्रय भगवान् ब्रह्माजी भी आपके ही महत्तत्त्व-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संज्ञक प्रथम गुणमय स्वरूप हैं ॥ १७ ॥ हे महात्मन् ! महत्तत्त्व, अहंकार, इन्द्रियाभिमानी दवता, इन्द्रियाँ और पञ्चभूत आदि हम सभी लोग डोरीमें बँधे हुए पक्षीके समान आपकी क्रिया-शक्तिके वशीभूत रहकर आपकी ही कृपासे इस जगत्की रचना करते हैं ॥१८॥ सत्त्वादि गुणोंकी सृष्टिसे मोहित यह जीव आपकी ही रची हुई तथा कर्म-बंधनमें बाँधनेवाली मायाको तो कदाचित् जान भी लेता है, किन्तु उससे मुक्त होनेका उपाय उसे सुगमतासे नहीं मालूम होता। इस जगत्की उत्पत्ति और प्रलय भी आपके ही रूप हैं। ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १९ ॥ श्रीनारायण कहते हैं—हे नारद ! इस प्रकार महाभाग रुद्र देवियोंसे समाहित होकर इलावृतवर्षमें भगवान् संकर्षणकी उपासना करते हैं ॥ २० ॥ ऐसे ही भद्राश्ववर्षमें धर्म-पुत्र भद्रश्रवा और उनके कुलके प्रधान-प्रधान सेवक भगवान् वासुदेवकी 'हयग्रीव' संज्ञक सुप्रसिद्ध मूर्तिको अत्यन्त समाधिनिष्ठाके द्वारा हृदयमें धारण करके उनकी स्तुति करते हैं ॥ २१-२३ ॥ सेवकोंसहित भद्रश्रवा कहते हैं—चित्तको विशुद्ध करनेवाले ॐकारस्वरूप भगवान् धर्मको नमस्कार है। अहो ! भगवान्की लीला बड़ी विचित्र है, जिसके कारण यह जीव

यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयंत्रिताः ॥ महानहंवैकृततामसेंद्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥ १८ ॥ यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्म-पर्वणीं मायां जनोऽयं गुरुसर्गमोहितः ॥ न वेद निस्तारणयोगमंजसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥ १९ ॥ नारायण उवाच ॥ एवं स भगवा-न्रुद्रो देवं संकर्षणं प्रभुम् ॥ इलावृतमुपासीत देवीगणसमाहितः ॥ २० ॥ तथैव धर्मपुत्रोऽसौ नाम्ना भद्रश्रवा इति ॥ तत्कुलस्यापि पतयः पुरुषा भद्रसेवकाः ॥ २१ ॥ भद्राश्ववर्षे तां मूर्तिं वासुदेवस्य विश्रुताम् ॥ हयमूर्तिभिदा तां तु हयग्रीवपदांकिताम् ॥ २२ ॥ परमेण समाध्यन्यवारकेण नियंत्रताम् ॥ एवमेव च तां मूर्तिं गृणंत उपयांति च ॥ २३ ॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥ ॐनमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नंतं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ॥ ध्यायन्न सद्यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषुः ॥ २४ ॥ वदंति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ॥ तथापि मुह्यंति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ २५ ॥ विश्वोद्भवस्थाननिरोध-कर्म ते ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ॥ युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥ २६ ॥ वेदान्युगान्ते तमसा तिरस्कृतात्र-सातलाद्यो नृतुरंगविग्रहः ॥ प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्ते वितथेहिताय ते ॥ २७ ॥ एवं स्तुवंति देवेशं हयशीर्षं हरिं च ते ॥ भद्र-

सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेवाले कालको भी नहीं देखता और तुच्छ विषयोंका सेवन करनेके लिये पापमय विचारोंकी उधेड़-बुनमें लगा हुआ अपने ही हाथों अपने पुत्र और पितामहादि-की लाशको जलाकर भी स्वयं जीते रहनेकी इच्छा करता है ॥२४॥ विद्वान् लोग जगत्को नश्वर बताते हैं और सूक्ष्मदर्शी आत्मज्ञानी भी ऐसा ही देखते हैं तो भी जन्मरहित हे प्रभो ! आपकी मायासे लोग मोहित हो जाते हैं। आप अनादि हैं तथा आपके कृत्य बड़े विस्मयजनक हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥ हे परमात्मन् ! आप अकर्ता और मायाके आवरणसे रहित हैं तो भी जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय—ये आपके ही कर्म माने गये हैं। सो ठीक ही है। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि सर्वात्मरूप तथा कार्य-कारणभावसे आप सर्वथा अतीत हैं ॥ २६ ॥ आपका श्रीविग्रह मनुष्य और घोड़ेका संयुक्त रूप है। प्रलयकालमें जब तमःप्रधान दैत्यगण वेदोंको चुरा ले गये थे, तब ब्रह्माजीके प्रार्थना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेपर आपने उन्हें रसातलसे ला दिया था। ऐसी अमोघ लीला करनेवाले सत्यसंकल्प आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार भगवान् हयग्रीवकी स्तुति करते हुए भद्रश्रवस् नामवाले वे महात्मागण भगवान् श्रीहरिके गुणोंका वर्णन करते हैं ॥ २८ ॥ जो पुरुष इनके इस पावन चरित्रको पढ़ता या सुनता है, वह पापरूपी केंचुलसे मुक्त होकर देवीके दिव्य धाममें चला जाता है ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(हरिवर्षमें प्रह्लाद द्वारा नृसिंहकी, केतुमाल वर्षमें लक्ष्मी द्वारा कामदेव स्वरूपकी और रम्यक वर्षमें मनु द्वारा मत्स्यरूपधारी भगवानकी स्तुति) श्रीनारायण कहते हैं—हे नारद ! हरिवर्ष खण्डमें योगयुक्त भगवान् 'नृसिंहकी'रूपसे रहते हैं। पापोंको नष्ट कर देना इनका स्वभाव ही है। भक्तोंपर ये सदा कृपा करते हैं ॥ १ ॥ महाभागवत प्रह्लादके हृदयमें इनके प्रति अनन्य भक्ति है। वे इनके गुणोंको भलीभाँति जानते हैं। अतः परम योगी भगवान् नृसिंहके इस प्रिय रूपके दर्शन करके दानवश्रेष्ठ प्रह्लादजी इनके गुणोंका वर्णन करते हैं ॥२॥ प्रह्लाद

श्रवसनामानो वर्णयंति च तद्गुणान् ॥ २८ ॥ एषां चरितमेतद्धि यः पठेच्छ्रावयेच्च यः ॥ पापकंचुकमुत्सृज्य देवीलोकं व्रजेच्च सः ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भुवनकोशो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ हरिवर्षे च भगवान्नृहरिः पापनाशनः ॥ वर्तते योगयुक्तात्मा भक्तानुग्रहकारकः ॥ १ ॥ तस्य तद्दयितं रूपं महाभागवतोऽसुरः ॥ पश्यन्भक्तिसमायुक्तः स्तौति तद्गुणतत्त्ववित् ॥ २ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ॐनमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रंधय रंधय तमो ग्रस ग्रस ॐस्वाहा ॥ अभयं ममात्मनि भूयिष्ठाः ॥ ॐक्ष्रौं ॥ स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ॥ मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरिप्य हैतुकी ॥३॥ माऽगारदारात्मजवित्तबंधुषु संगो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ॥ यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥४॥ यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ॥ हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥५॥ यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ॥ हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा

कहते हैं—ॐकारस्वरूप भगवान् श्रीनृसिंहको नमस्कार है। आप अग्नि आदि तेजोंके भी तेज हैं, आपको नमस्कार है। हे वज्रनख ! हे वज्रदंष्ट्र ! आप मेरे सामने प्रकट होइये, प्रकट होइये। मेरी कर्मवासनाओंको जला डालिये, जला डालिये। मेरे अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये। ॐ स्वाहा। अभयदान देते हुए मेरे अन्तःकरणमें प्रकाशित होनेकी कृपा कीजिये। ॐ क्ष्रौम्। हे प्रभो ! अखिल जगत्का कल्याण हो, दुष्टोंकी बुद्धिमें शुद्ध भावना उत्पन्न हो, सब प्राणियोंमें परस्पर सद्भावना विद्यमान रहे, सभी एक दूसरेके हितका चिंतन करें, हमारा मन शुभमार्गमें प्रवृत्त हो और हम सबकी बुद्धि निष्कामभावसे भगवान् श्रीहरिमें प्रवेश करे ॥३॥ हे नाथ ! घर, स्त्री, पुत्र, धन और भाई-बन्धुओंमें हमारी आसक्ति न हो। आसक्ति हो तो केवल भगवान्के प्रेमी भक्तोंमें ही। जो संयमी पुरुष केवल शरीर-निर्वाहके योग्य अन्नादिसे संतुष्ट रहता है, उसे जितने शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है, वैसे इन्द्रियलोलुप पुरुषको नहीं होती ॥ ४ ॥ भगवद्भक्तोंके सङ्गसे भगवान्के तीर्थतुल्य पवित्र चरित्र सुननेको मिलते हैं, जो उनकी असाधारण शक्ति एवं प्रभावके सूचक होते हैं। उनका बार-बार सेवन करनेवालोंके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कानोंके रास्ते भगवान् हृदयमें प्रवेश कर जाते हैं और उनके सभी प्रकारके दैहिक और मानसिक मलोंको नष्टकर देते हैं। ऐसे भगवद्भक्तोंका सङ्ग कौन नहीं करना चाहेगा ? ॥५॥ जिस पुरुषकी भगवान्में निष्काम भक्ति रहती है, उसके हृदयमें समस्त देवता धर्म-ज्ञान आदि संपूर्ण सद्गुणोंसे युक्त होकर सदा निवास करते हैं। किंतु जो भगवान्का भक्त नहीं है, उसमें महापुरुषोंके वे गुण आ ही कहाँसे सकते हैं ? वह तो तरह-तरहके संकल्प करके निरन्तर तुच्छ बाहरी विषयोंकी ओर ही दौड़ता रहता है ॥ ६ ॥ जैसे मछलियोंको जल अत्यन्त प्रिय है, क्योंकि उनके जीवनका वह आधार होता है। उसी प्रकार साक्षात् श्रीहरि ही समस्त देहधारियोंके प्रियतम आत्मा हैं। उन्हें त्यागकर यदि कोई महत्त्वाभिमानी पुरुष घरमें आसक्त रहता है तो उस दशामें स्त्री-पुरुषोंका बड़प्पन केवल आयुको लेकर ही माना जाता है, गुणकी दृष्टिसे नहीं ॥७॥ अतः हे असुरगण ! तुम तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, अभिमान, इच्छा, भय, दीनता और मानसिक संतापके मूल तथा जन्म-मरणरूप संसार-चक्रका वहन करनेवाले गृह आदिकी आसक्तिको त्यागकर भगवान् नृसिंहके निर्भय चरणकमलोंका आश्रय लो। क्योंकि उन्हें भजनेवाले लोग निर्भय हो जाते हैं ॥८॥ हे नारद ! इस प्रकार दानवराज प्रह्लाद पापरूपी हाथियोंके लिये सिंहस्वरूप भगवान् नृसिंहको अपने हृदयरूपी कमलपर विराजमान करके भक्तिपूर्वक निरंतर उनकी

मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥ ६ ॥ हरिर्हि साक्षाद्भगवाञ्छरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ॥ हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसां दंपतीनाम् ॥७॥ तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजतां कुतो भयम् ॥८॥ एवं दैत्यपतिः सोऽपि भक्त्याऽनुदिनमीडते ॥ नृहरिं पापमातंगहरिं हृत्पद्मवासिनम् ॥ ९ ॥ केतुमाले च वर्षे हि भगवान्स्मररूपधृक् ॥ आस्ते तद्वर्षनाथानां पूजनीयश्च सर्वदा ॥ १० ॥ एतेनोपासते स्तोत्रजालेन च रमाब्धिजा ॥ सा तद्वर्षनाथा सततं महतां मानदायिका ॥११॥ रमोवाच ॥ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छंदोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय महसे ओजसे बलाय कांताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥ स्त्रियो व्रतैस्त्वां हृषीकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ॥ तासां न ते वै परिपांत्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतंत्राः ॥ १२ ॥ स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वतः समंततः पाति भयातुरं

स्तुति किया करते हैं ॥ ९ ॥ केतुमालवर्षमें भगवान् श्रीहरि 'कामदेव'के रूपमें विराजते हैं। वहाँके अधिकारी पुरुषों द्वारा इनका सदा सम्मान होता है ॥ १० ॥ इस वर्षकी अधीश्वरी समुद्रतनया भगवती लक्ष्मी हैं। महान् पुरुषोंको आदर देना इनका स्वाभाविक गुण है। ये भगवती लक्ष्मी निम्नलिखित स्तोत्रोंसे भगवान् श्रीहरिकी सदा उपासना करती हैं ॥ ११ ॥ भगवती लक्ष्मी कहती हैं—'जो इन्द्रियोंके स्वामी, संपूर्ण श्रेष्ठ गुणोंके आश्रय, ज्ञान, क्रिया, संकल्पशक्ति तथा इनके विषयोंके व्यवस्थापक, सोलह कलाओंसे युक्त, वेदोक्त कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले, अन्नमय, अमृतमय एवं सर्वमय होनेकी योग्यतासे संपन्न हैं, उन मन, इन्द्रिय और शरीरके साकार विग्रह परम कमनीय भगवान् कामदेवको 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं' इन बीजमन्त्रोंके सहित सब ओरसे नमस्कार है।' हे भगवन् ! आप स्वयं इन्द्रियोंके स्वामी हैं। स्त्रियाँ अन्य लौकिक पतिको पानेके लिये अनेक प्रकारके व्रतों द्वारा आपकी उपासना करती हैं, किन्तु वे पति उनके प्रिय पुत्र, धन और आयुकी रक्षामें असफल रहते हैं। क्योंकि वे सर्वथा परतन्त्र होते हैं ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! पति वही है, जो स्वयं निर्भय रहकर दूसरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुखी जनकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा करता है। वैसे पति केवल आप ही हैं। यदि कोई अन्य पति हो भी तो परस्पर भयकी सम्भावना हो सकती है। अतएव आप अपनी प्राप्तिसे बढ़कर और किसी लाभको नहीं मानते ॥१३॥ हे भगवन्! जो स्त्री आपके चरण-कमलोंकी प्राप्ति न चाहकर किसी अन्य वस्तुको पानेके लिए आपकी उपासना करती है तो उसे आप वही अभीष्ट वस्तु देते हैं, जो समय आनेपर नष्ट हो जाती है। अतः उसे तो पछताना ही पड़ता है ॥१४॥ हे कभी न पराजित होनेवाले भगवन्! मुझे पानेकी इच्छासे इन्द्रिय-सुख चाहनेवाले ब्रह्मा-रुद्र आदि बहुतसे देवता कठिन तपस्या करते हैं। किन्तु आपके चरण-कमलोंकी उपासना करनेवालेके सिवा मैं अन्य किसीको सहजमें नहीं प्राप्त हो सकती। क्योंकि मैं सदा आपके हृदयमें रहती हूँ ॥१५॥ हे अच्युत! भक्तोंके मस्तकपर शोभा पानेवाला आपका जो परम पूज्य चरण-कमल है, वह मेरे सिरपर भी सदा विराजित रहे—ऐसी कृपा कीजिये। हे पूजनीय प्रभो! आप श्रीवत्स लाञ्छनरूपसे तो मुझे वक्षःस्थलपर धारण करते ही हैं। आप सर्वसमर्थ हैं। माया द्वारा की हुई आपकी लीलाओंको कौन जान सकता है? हे नारद! कामदेवके रूपमें

जनम् ॥ स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥१३॥ या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं न कामयेत्साऽखिलकामलंपटा ॥ तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाञ्चा भगवन्प्रतप्यते ॥ १४ ॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यंत उग्रं तप ऐन्द्रिये धियः ॥ ऋते भवत्पाद-परायणान्न मां विदंत्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥ १५ ॥ स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वंदितं करांबुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ॥ विभर्षि मां लक्ष्मवरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुः ॥ १६ ॥ एवं कामं स्तुवंत्येव लोकबंधुस्वरूपिणम् ॥ प्रजापतिमुखा वर्षनाथाः कामस्य सिद्धये ॥ १७ ॥ रम्यके नाम वर्षे च मूर्तिं भगवतः पराम् ॥ मात्स्यां देवासुरैर्वंद्यां मनुः स्तौति निरंतरम् ॥ १८ ॥ मनुरुवाच ॥ ॐनमो मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे बलाय महामत्स्याय नमः ॥ अंतर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ॥ स ईश्वरस्त्वं य इदं वशे नयन्नाम्ना यथा दारु-मयीं नरः स्त्रियम् ॥१९॥ यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतंतोऽपि पृथक् समेत्य च ॥ पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणुवदत्र दृश्यते ॥ २० ॥ भवान् युगांतार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ॥ मया सहोरुक्रम तेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने

विराजमान विश्वबन्धु भगवान् श्रीहरिकी लक्ष्मीजी केतुमालवर्षमें उपासना करती हैं। इस वर्षके अन्य प्रजापति प्रभृति अधिकारी देवता भी कामना-सिद्धिके लिए उनकी उपासनामें तत्पर रहते हैं ॥१६॥१७॥ रम्यकवर्षमें भगवान् श्रीहरि मत्स्यरूप धारण करके विराजते हैं। उनकी यह सर्वश्रेष्ठ मूर्ति सम्पूर्ण देवताओंके लिए वन्द्य है। वहाँ मनुजी निरन्तर उनका स्तवन करते हैं ॥ १८॥ मनुजी कहते हैं—'सत्त्वप्रधान मुख्य प्राणसूत्रात्मा तथा मनोबल, शरीरबल और ॐकारके अर्थस्वरूप सर्वश्रेष्ठ भगवान् महामत्स्यको बार-बार नमस्कार है। सबको प्रेरणा प्रदान करनेवाले हे भगवन्! आप सभी प्राणियोंके भीतर और बाहर उच्चस्वरसम्पन्न प्राणरूपसे संचरण करते हैं। आपको देखनेमें असमर्थ सारे लोकपालोंकी दृष्टि कुण्ठित रहती है। ईश्वर नामसे प्रसिद्ध आप वे परम पुरुष हैं, जिनके वश होकर यह अखिल जगत् इस प्रकार नाचता है, जैसे नटके हाथकी कठपुतली ॥ १९ ॥ हे भगवन्! निश्चय ही लोकपालोंके मनमें आपके प्रति डाह उत्पन्न हो गया था। फलस्वरूप वे आपका सहारा न लेकर अलग संघटित हुए और इस प्रयत्नमें लग गये कि हम मनुष्य, पशु, नाग आदि जंगम एवं स्थावर प्राणियोंकी रक्षा स्वयं कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेंगे, परन्तु वे इस कायको सम्पन्न नहीं कर सके ॥ २०॥ हे अजन्मा प्रभो! जब प्रलयकालका समुद्र उत्ताल तरङ्गोंसे सुशोभित था। उस समय आप ओषधियों और लताओंको स्थान देनेवाली पृथ्वी तथा मुझको लेकर समुद्रमें बड़े उत्साहके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। ऐसे जगत्के प्राणस्वरूप आप भगवान् मत्स्यको बारम्बार नमस्कार है ॥ २१ ॥ इस प्रकार राजाओंमें उच्च स्थान प्राप्त करनेवाले मनुजी देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी, जो मत्स्यके रूपमें अवतरित थे तथा जिनकी कृपासे सब संशय समूल नष्ट हो जाते थे—स्तुति करते हैं ॥ २२ ॥ ये मनुजी भगवत्परायण पुरुषोंमें उत्तम माने जाते हैं। इन्होंने योगसाधन करके समस्त पापोंको नष्ट कर दिया है। भक्तिपूर्वक भगवानका ध्यान करते हुए ये इस रम्यकवर्षमें विराजते हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

(हिरण्मयवर्षमें अर्यमा द्वारा कच्छपरूपकी, उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वी द्वारा वाराहकी और किम्पुरुषवर्षमें हनुमानजीके द्वारा रामचन्द्रकी स्तुति) श्रीनारायण कहते हैं—हे नारद! हिरण्मय नामक

नमः ॥२१॥ एवं स्तौति च देवेशं मनुः पार्थिवसत्तमः ॥ मत्स्यावतारं देवेशं संशयच्छेदकारकम् ॥२२॥ ध्यानयोगेन देवस्य निर्धूताशेषकल्मषः ॥ आस्ते परिचरन्भक्त्या महाभागवतोत्तमः ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ हिरण्मये नाम वर्षे भगवान्कूर्मरूपधृक् ॥ आस्ते योगपतिः सोऽयमर्यम्णा पूज्य ईड्यते ॥ १ ॥ अर्यमोवाच ॥ ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥ यद्रूपमेतन्निजमाययाऽर्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ॥ संख्या न यस्यास्त्ययथोपलंभनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ २ ॥ जरायुजं स्वेदजमंडजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैंद्रियम् ॥ द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रं द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥ ३ ॥ यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ॥ संख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते ॥ ४ ॥ एवं स्तुवति देवेशमर्यमा सह वर्षपैः ॥ गायते चापि भजते सर्वभूतभवं प्रभुम् ॥ ५ ॥

वर्षमें योगेश्वर भगवान् श्रीहरि 'कच्छप'रूप धारण करके विराजते हैं। अर्यमाके द्वारा इनको पूजा और स्तुति होती है ॥ १ ॥ अर्यमा कहते हैं—'जो समयकी सीमासे रहित, सम्पूर्ण सत्त्वादि गुणोंके विशेषण तथा अलक्षित स्थानवाले हैं, उन ॐकारस्वरूप सर्वव्यापक भगवान् कच्छपको बार-बार नमस्कार है।' हे प्रभो! अनेक रूपोंमें दीखनेवाला यह जो अर्थस्वरूप जगत् है, सो आपकी ही मायासे भासित होनेके कारण आपका ही रूप है। यथार्थ प्रतीत न होनेसे इसकी गणना नहीं की जा सकती। ऐसे अनिर्वचनीयस्वरूप आप श्रीहरिको नमस्कार है ॥ २ ॥ हे भगवन्! जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जंगम, स्थावर, देवता, ऋषि, पितर, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, सागर, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र आदि नामसे विख्यात जो कुछ है, सो सब एकमात्र आप ही हैं ॥३॥ हे प्रभो! आपके असंख्य नाम, रूप और आकृतियाँ हैं। कविगण आपमें जो चौबीसों तत्त्वोंका निश्चय कर चुके हैं, वह जिस तत्त्वके सामने विस्तृत होता है, वह भी वस्तुतः आपका ही रूप है। ऐसे सांख्यस्वरूप आप भगवान श्रीहरिको नमस्कार है ॥४॥ इस प्रकार अर्यमा हिरण्मय वर्षके अन्य अध्यक्षोंके साथ देवाधिदेव सर्वभूतोत्पादक भगवान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कच्छपकी स्तुति करते, उनका गुणानुवाद गाते और भजन करते हैं ॥ ५ ॥ उत्तरकुरु वर्षमें यज्ञपुरुष भगवान श्रीहरि आदि'वाराह'का रूप धारण करके विराजते हैं । इन भगवान आदिवाराहकी पृथ्वीदेवी निरन्तर उपासना करती हैं ॥६॥ उन देवीका हृदयरूपी कमल कृपारससे परिपूर्ण रहता है । अतः वे परमभक्तिके साथ विधिपूर्वक दैत्योंका उच्छेद करनेवाले भगवान् यज्ञवाराहकी पूजा करके उनके गुणानुवादका कीर्तन करती हैं ॥७॥ 'जिनका तत्त्व मंत्रोंके सहारे समझमें आता है, जो यज्ञस्वरूप हैं, महान् यज्ञ जिनका विग्रह माना जाता है तथा जो शुक्लकर्ममय हैं, उन त्रियुगमूर्ति ॐकारस्वरूप भगवान् वाराहको अनेकशः नमस्कार है ।' ॥८॥ हे भगवन् ! काठमें छिपी हुई अग्निको प्रकाशमें लानेके लिए मन्थन करनेवाले ऋत्विज् गणोंकी भाँति परम प्रवीण विद्वान् पुरुष जिसके दर्शन प्राप्त करनेके विचारसे मनरूपी मथानी द्वारा शरीरको मथ डालते हैं, तब अपने स्वरूपको प्रकट करनेवाले आप श्रीहरिको नमस्कार है ॥९॥ हे प्रभो ! द्रव्य, हेतु, अयन, ईश और कर्त्ता–ये सभी आपके मायिक गुण हैं । इनके द्वारा यम-नियमादिके प्रभावसे निश्चित बुद्धिवाले पुरुष जिनके यथार्थ स्वरूपको समझनेमें सफल होते हैं,

तथोत्तरेषु कुरुषु भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ आदिवाराहरूपोऽसौ धरण्या पूज्यते सदा ॥ ६ ॥ संपूज्य विधिवद्देवं तद्भक्त्याऽऽर्द्रार्द्रहृत्कजा ॥ भूतिः स्तौति हरिं यज्ञवाराहं दैत्यमर्दनम् ॥ ७ ॥ भूरुवाच ॥ ॐ नमो भगवते मंत्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महावराहाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥ ८ ॥ यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ॥ मथ्नंति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ९ ॥ द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुभिरीक्षितात्मने ॥ अन्वीक्षयांगातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥ करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितुमीक्षितुर्गुणैः ॥ माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥ ११ ॥ प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ॥ कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणताऽस्मि तं विभुम् ॥ १२ ॥ किंपुरुषे वर्षेऽस्मिन्भगवंतं दाशरथिं च सर्वेशम् ॥ सीतारामं देवं श्रीहनुमानादिपूरुषं स्तौति ॥ १३ ॥ हनुमानुवाच ॥ ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम इति ॥ आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः ॥ साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाभागाय नम

उन प्रकृतिसे परे आप भगवान् श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है ॥ १० ॥ हे भगवन् ! सृष्टिके सामने आनेकी इच्छा उत्पन्न होते ही जिनके संकेतमात्रसे निःस्पृह होती हुई भी प्रकृति गुणों द्वारा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारमें इस प्रकार व्यस्त हो जाती है, जैसे चुम्बकका संयोग पाकर जड़ लोहा भी चलनेमें समर्थ हो जाता है, उन आप संपूर्ण गुणों एवं कर्मोंके साक्षी श्रीहरिको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! जिन्होंने एक हाथीको पछाड़नेवाले दूसरे हाथीकी भाँति युद्धके अवसरपर प्रतिद्वन्द्वी हिरण्याक्षका लीलापूर्वक हनन करके मुझे अपनी दाढ़ोंके अग्रभागपर उठाया और रसातलसे बाहर निकाल लिया, उन जगत्के आदिकारणस्वरूप सर्वशक्तिमान् भगवान् वाराहको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ १२ ॥ किम्पुरुष वर्षमें चराचर जगत्के शासक दशरथनन्दन भगवान 'श्रीरामचन्द्र' विराजते हैं । भगवती सीता उनके साथ शोभित रहती हैं । हनुमानजी उन आदिपुरुषकी इस प्रकार स्तुति करते हैं–॥१३॥ 'ॐकारस्वरूप पवित्र कीर्तिवाले आप भगवान श्रीरामको नमस्कार है। श्रेष्ठ पुरुषोंके लक्षण, शील और व्रतसे सम्पन्न श्रीरामको नमस्कार है । परम संयत चित्तवाले तथा लोकाराधनमें तत्पर श्रीरामको नमस्कार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीस्वरूप भगवान श्रीरामको नमस्कार है। ब्राह्मणोंके परम भक्त एवं महान् भाग्यशाली आप महापुरुष भगवान् श्रीरामको नमस्कार है।' जो एकमात्र विशुद्ध-बोधस्वरूप हैं, सबके अन्तःकरणमें विराजते हैं, अपने तेजसे गुणोंकी जाग्रत् आदि अवस्थाओंका निरसन करते हैं, जिनकी मूर्ति परम शांत एवं निर्मल बुद्धिके द्वारा ग्रहण करने योग्य है तथा जो नाम और रूपसे रहित हैं उन अहंकारशून्य आप भगवान श्रीरामकी मैं शरण लेता हूँ ॥ १४ ॥ हे भगवन्! मनुष्यके रूपमें आपका अवतार केवल राक्षसवधके निमित्त ही नहीं होता, किंतु प्राणियोंके सामने सुख-दुःख आते रहते हैं—ऐसी शिक्षा देनेके लिये होता है। अन्यथा अपने ही स्वरूपमें रमण करनेवाले आप परम समर्थ प्रभुको सीताके वियोगमें इतने दुःख क्यों सहने पड़ते ? ॥ १५ ॥ हे लक्ष्मणजीके श्रेष्ठ भ्राता भगवान श्रीराम! निश्चय ही उच्च कुलमें जन्म, परम सुन्दरता, वाणीकी कुशलता, निर्मल बुद्धि तथा उत्तम योनिमें जन्म—इनमेंसे कोई भी गुण आपको प्रसन्न करनेका साधन नहीं हो सकता। हे प्रभो! आप आत्मज्ञानी पुरुषोंके आत्मा एवं परम सुहृद् हैं। त्रिलोकीमें अनुरक्त रहनेपर भी उसके गुण आपमें नहीं

इति ॥ यत्तद्विशुद्धानुभवात्ममेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ॥ प्रत्यक् प्रशांतं सुधियोपलंभनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥ १४ ॥ मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभो ॥ कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ १५ ॥ न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ॥ न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥ १६ ॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ॥ तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ १७ ॥ सुरोऽसुरो वाप्यथवा नरोऽनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ॥ भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोसलान्दिवम् ॥ १८ ॥ नारायण उवाच ॥ एवं किंपुरुषे वर्षे सत्यसंधं दृढ-व्रतम् ॥ रामं राजीवपत्राक्षं हनुमन्वानरोत्तमः ॥ १९ ॥ स्तौति गायति भक्त्या च संपूजयति सर्वशः ॥ य एतच्छृणुयाच्चित्रं रामचन्द्रकथान-कम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा याति रामसलोकताम् ॥ २० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

आ सकते। सीताके लिए दुखी होना तथा लक्ष्मणके वियोगसे विषाद प्रकट करना—यह आपके लिए कभी सम्भव नहीं है। फिर भी जगत्को शिक्षा देने तथा प्रेमकी महत्ता प्रकट करनेके लिए आप यह सब कर चुके हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे भगवन्! देवता, दानव, मानव अथवा वानर–कोई भी क्यों न हो, से चाहिए कि मनुष्यका वेष बनाकर रामरूपसे पधारे हुए आप भगवान श्रीहरिका भजन करे। क्योंकि आप उपकारीके थोड़े उपकारको भी बहुत मानते हैं। आपके हृदयमें इतनी असीम दया है कि परम धाम पधारते समय उत्तरकोसलके निवासियोंको भी आप अपने साथ लेते गये ॥१८॥ श्रीनारायण कहते हैं–हे नारद! इस प्रकार किंपुरुषवर्षमें कपिवर हनुमान सत्यप्रतिज्ञ, दृढ़व्रती तथा कमलपत्रके समान विशाल नेत्रवाले भगवान श्रीरामकी स्तुति करते, उनके गुण गाते तथा भक्तिपूर्वक भलीभाँति उनकी पूजा करते हैं। जो पुरुष भगवान श्रीरामके इस अद्भुत कथाप्रसंगको सुनता है, उसके संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और वह श्रीरामके परम धामका अधिकारी बन जाता है ॥ १९ ॥ २० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(भारतवर्षमें नारदजीके द्वारा नारायणरूपकी स्तुति और भारतवर्षकी महिमा) श्रीनारायण कहते हैं–हे नारद ! इस भारतवर्षमें मैं आदिपुरुष सदा विराजमान रहता हूँ । सो तुम निरंतर मेरी स्तुति करते हो ॥१॥ नारदजी कहते हैं–'जो शान्तस्वभाव, अहङ्कारशून्य, निर्धनोंके परम धन, ऋषियोंमें प्रधान, परमहंसोंके श्रेष्ठ गुरु तथा आत्मारामोंके अधीश्वर हैं, उन ॐकारस्वरूप भगवान नारायणको बारम्बार नमस्कार है ।' जो जगत्‌को उत्पत्तिके समय कर्ता होनेपर भी कर्तृत्वाभिमानसे नहीं बँधते, देहमें रहने हुए भी जो दैहिक गुण भूख-प्याससे क्षुब्ध नहीं होते तथा द्रष्टा होते हुए भी जिनकी दृष्टि दृश्यके गुण-दोषोंसे दूषित नहीं होती, उन परम असंग एवं विशुद्ध साक्षीस्वरूप आप भगवान नारायणको नमस्कार है ॥२॥ हे योगिराज प्रभो ! हिण्यगर्भ ब्रह्माजीका कथन है कि योगकी सफलता यही है कि अन्तसमयमें अहंकारशून्य होकर प्राणी आप निर्गुण ब्रह्ममें भक्तिपूर्वक अपना मन लगा दे ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! जिस प्रकार सांसारिक

॥ श्री नारायण उवाच ॥ भारताख्ये च वर्षेऽस्मिन्नहमादिजपूरुषः ॥ तिष्ठामि भवता चैव स्तवनं क्रियतेऽनिशम् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥ कर्ताऽस्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ॥ द्रष्टुर्न दृश्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥ २ ॥ इदं हि योगेश्वरयोगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् ॥ यदंतकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ ३ ॥ यथैहिकामुष्मिककामलंपटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिंतयन् ॥ शंकेत विद्वान्कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥ ४ ॥ तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वं माययाऽहंममतामधोक्षज ॥ भिंद्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावजम् ॥ ५ ॥ एवं स्तौति सदा देवं नारायणमनामयम् ॥ नारदो मुनिशार्दूलः प्रज्ञाताखिलसारदृक् ॥ ६ ॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सरिच्छैलास्तु संति हि ॥ तान्प्रवक्ष्यामि देवर्षे शृणुष्वैकाग्रमानस ॥ ७ ॥ मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकश्च त्रिकूटकः ॥ ऋषभः कुटकः कोल्लः सह्यो देवगिरिस्तथा ॥ ८ ॥ ऋष्यमूकश्च श्रीशैलो वेंकटाद्रिर्महेंद्रकः ॥ वारिधारश्च विंध्यश्च मुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥ ९ ॥ पारियात्रस्तथा द्रोणश्चित्रकूटगिरिस्तथा ॥ गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलपर्वतः ॥ १० ॥

और पारलौकिक भोगोंकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति स्त्री-पुत्र और धनविषयक चिन्ता करते हुए चल बसता है । उसी प्रकार यदि विद्वान् भी अपने इस कुत्सित शरीरके छूट जानेके भयसे भरा रहे तो उसका विद्याभ्यास करना केवल परिश्रममात्र है ॥४॥ अतः इन्द्रियोंके अधिष्ठाता हे प्रभो ! आप अपनेमें स्वाभाविक रूपसे रहनेवाले उस भक्तियोगको मुझे देनेकी कृपा करें, जिसके सहारे मैं मायारचित अत्यन्त सुदृढ़ ममता एवं अहङ्कारको तुरन्त काट सकूँ ॥५॥ इस प्रकार अखिल ज्ञातव्य रहस्योंको देखनेवाले मुनिवर नारदजीके द्वारा मुझ अप्रमेयस्वरूप भगवान नारायणकी सदा स्तुति होती रहती है ॥६॥ हे देवर्षे ! इस भारतवर्षमें जितनी नदियाँ और पर्वत हैं, उनका वर्णन करता हूँ । तुम मन एकाग्र करके सुनो ॥७॥ मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोल्ल, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेङ्कट, अद्रि, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, मुक्तिमान्, ऋक्ष, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गौरमुख,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्द्रकील तथा कामगिरि पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य प्रचुर पुण्य प्रदान करनेवाले असंख्य पर्वत हैं ॥ ८–११ ॥ उनसे निकलती हुई सैकड़ों-हजारों नदियाँ हैं, जिनके जल पीने, स्नान करने, देखने अथवा नामका उच्चारण करनेसे भी तीनों प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। उनके नाम हैं—ताम्रपर्णी, चन्द्रवंशा, कृतमाला, वटोदका, वैहायसी, कावेरी, वेणा, पयस्विनी, तुंगभद्रा, कृष्णवेणा, शर्करावर्तका, गोदावरी, भीमरथी, निर्विन्ध्या, पयोष्णिका, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, सरस्वती, चर्मण्वती, सिन्धु तथा अन्ध-शोण नामवाले दो महान् नद, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, महानदी, वेदस्मृति, कौशिकी, यमुना, मन्दाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधवती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी तथा विश्वा—यों विविध नामोंसे ये नदियाँ प्रसिद्ध हैं ॥१२–१८॥ हे नारद ! भारतवर्षमें जन्म लेनेवाले पुरुषोंको अपने-अपने सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंके प्रभावसे ही दिव्य, मानव एवं

गौरमुखश्चेंद्रकीलो गिरिः कामगिरिस्तथा ॥ एते चान्येऽप्यसंख्याता गिरयो बहुपुण्यदाः ॥ ११ ॥ एतदुत्पन्नसरितः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ पाना-
वगाहनस्नानदर्शनोत्कीर्तनैरपि ॥ १२ ॥ नाशयंति च पापानि त्रिविधानि शरीरिणाम् ॥ ताम्रपर्णी चन्द्रवंशा कृतमाला वटोदका ॥ १३ ॥
वैहायसी च कावेरी वेणा चैव पयस्विनी ॥ तुङ्गभद्रा कृष्णवेणा शर्करावर्तका तथा ॥ १४ ॥ गोदावरी भीमरथी निर्विन्ध्या च पयोष्णिका ॥
तापी रेवा च सुरसा नर्मदा च सरस्वती ॥ १५ ॥ चर्मण्वती च सिंधुश्च अंधशोणौ महानदौ ॥ ऋषिकुल्या त्रिसामा च वेदस्मृतिर्महानदी ॥ १६ ॥
कौशिकी यमुना चैव मंदाकिनी दृषद्वती ॥ गोमती सरयू रोधवती सप्तवती तथा ॥ १७ ॥ सुषोमा च शतद्रुश्च चंद्रभागा मरुद्वृधा ॥ वितस्ता च
असिक्नी च विश्वा चेति प्रकीर्तिताः ॥ १८ ॥ अस्मिन्वर्षे लब्धजन्मपुरुषैः स्वस्वकर्मभिः ॥ शुक्ललोहितकृष्णाख्यैर्दिव्यमानुषनारकाः ॥ १९ ॥
भवंति विविधा भोगाः सर्वेषां च निवासिनाम् ॥ यथावर्णविधानेनापवर्गो भवति स्फुटम् ॥ २० ॥ एतदेव च वर्षस्य प्राधान्यं कार्यसिद्धितः ॥
वदंति मुनयो वेदवादिनः स्वर्गवासिनः ॥ २१ ॥ अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषांस्विदुत स्वयं हरिः ॥ यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुंदसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥ २२ ॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ॥ न यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिः प्रमुष्टाऽ-

नारकी योनियाँ मिलती हैं ॥१९॥ संपूर्ण भारतवासियोंको भाँति-भाँतिके भोग भोगनेको मिलते हैं। अपने वर्णाश्रमधर्मके अनुसार व्यवहार करनेपर भारतवासियोंको मोक्षतक मिल जानेकी बात बिल्कुल स्पष्ट है ॥ २० ॥ इस मोक्षरूपी महान् कार्यकी सिद्धिका साधन होनेके कारण ही इस महादेशको इतना गौरव प्राप्त हुआ है। स्वर्गके निवासी वेदवादी मुनिगण इस विषयमें अपना उद्गार प्रकट करते हैं। उनका कथन है—॥ २१ ॥ अहो ! इन प्राणियोंने कौन-सा ऐसा कार्य किया है। अथवा भगवान श्रीहरिकी स्वयं ही इनपर कृपा हो गयी है, जिनके फल-स्वरूप इन्हें भारतवर्षमें मनुष्यके रूपमें वह जन्म प्राप्त हुआ है, जिसमें रहकर ये भगवान मुकुन्दकी सदा सेवा करते रहें। हमें भी ऐसा ही सुअवसर मिलना चाहिये ॥ २२ ॥ हमने महान यज्ञ, तप, व्रत और दानके प्रभावसे सुन्दर स्वर्गपर अधिकार प्राप्त कर लिया तो इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ, जब कि भगवान नारायणके चरणकमलोंकी हमें स्मृतितक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं रही ॥ २३ ॥ यहाँ इन्द्रियोंके लिए सुखदायी एक-से-एक उत्तम विषय हैं, जिनके भोगसे हमारी विवेकशक्ति ही छिन गयी है। जहाँ रहनेवालोंकी आयु एक कल्प होती है, परन्तु पुनः जन्म लेना पड़ता है, उसकी अपेक्षा भारतवर्षमें थोड़ी आयु लेकर जन्म लेनेको ही हम श्रेष्ठ मानते हैं। क्योंकि यहाँ विद्वान् पुरुष मानव-शरीरसे किये हुए कर्म भगवान् श्रीहरिको समर्पण करके उनके निर्भय पद पानेके परम अधिकारी बन जाते हैं ॥ २४ ॥ जहाँ भगवान् श्रीहरिके अमृतमय गुणानुवादकी सुधासरिता नहीं प्रवाहित होती, जहाँके निवासी परोपकारी तथा भगवद्भक्त नहीं होते, जहाँ श्रेष्ठ यज्ञ एवं महान् महोत्सव नहीं किये जाते, वह इन्द्रका स्वर्गलोक ही क्यों न हो, परन्तु वहाँ रहना उचित नहीं है ॥ २५ ॥ मानव-योनि उत्तम ज्ञान, क्रिया और द्रव्य आदि विविध सामग्रियोंसे सम्पन्न है। भारतवर्षमें ऐसा मानवजन्म प्राप्त करके भी जो प्राणी मुक्त होनेका प्रयत्न नहीं करते, वे फिर जंगली पक्षियोंकी भाँति बन्धनमें ही पड़ना चाहते हैं ॥२६॥ सचमुच भारतवासी बड़े भाग्यशाली हैं। अतएव जब वे यज्ञमें विभिन्न इष्ट देवताओंका भक्तिपूर्वक मन्त्रों द्वारा आवाहन करके उन्हें

तिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥ २३ ॥ कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ॥ क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयांत्यभयं पदं हरेः ॥ २४ ॥ न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ॥ न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्य-ताम् ॥२५॥ प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जंतवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् ॥ न वै यतेरन्न पुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यांति बंधनम् ॥२६॥ यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमंत्रवस्तुतः ॥ एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥ २७ ॥ सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ॥ स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ २८ ॥ (यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य पूर्तस्य कृतस्य शोभनम् ॥ तेनाब्जनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्षे हरिर्भजतां शं तनोति ॥१॥) नारायण उवाच ॥ एवं स्वर्गगता देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ प्रवदंति च माहात्म्यं भारतस्य सुशोभनम् ॥२९॥ जम्बुद्वीपस्य चाष्टौ हि उपद्वीपाः स्मृताः परे ॥ हय-मार्गान्विशोधद्भिः सागरैः परिकल्पिताः ॥ ३० ॥ स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्र आवर्तनरमाणकौ ॥ मन्दरोपाख्यहरिणः पाञ्चजन्यस्तथैव च ॥ ३१ ॥

पृथक्-पृथक् भाग अर्पण करते हैं, तब उनके उस कार्यसे प्रसन्न होकर एकमात्र स्वयं पूर्णब्रह्म परमेश्वर ही उन भाग को ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥ यह सर्वथा सत्य है कि माँगनेपर भगवान् मनुष्योंको अभीष्ट पदार्थ दे देते हैं, परन्तु उनकी वह वास्तविक न नहीं है। क्योंकि उस पदार्थके मिल जानेपर भी कामनाका अभाव नहीं होता। भगवान् श्रीहरिके चरणकमल सम्पूर्ण इच्छाओंको शान्त कर देते हैं। निष्कामभावसे भजन करनेवाले पुरुष स्वयं श्रीहरिकी कृपासे उन्हींके चरणकमलोंको पाकर सदाके लिए पूर्णकाम हो जाते हैं ॥ २८ ॥ (अतः पूर्वजन्मकृत यज्ञ, प्रवचन एवं कर्मके फलस्वरूप हमें इस समय जो स्वर्गका सुख प्राप्त है, उन कर्मोंके फलस्वरूप यदि कुछ भी अंश शेष हो तो उसके प्रभावसे हम इस भारत-वर्षमें भगवच्चिन्तन करनेवाला मानव जन्म प्राप्त करें। क्योंकि इस देशमें श्रीहरि अपने भक्तोंका परम कल्याण कर देते हैं ॥ १ ॥) इस प्रकार वे देवता, सिद्ध और महर्षि स्वर्गलोकमें जाकर भारतवर्षके शोभन महत्त्वका गुण गाते हैं ॥ २९ ॥ हे नारद ! जम्बू द्वीपमें अन्य आठ उपद्वीप हैं। खोये हुए घोड़ेके मार्गका अन्वेषण करनेवाले सगरके पुत्रोंने इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपद्वीपोंकी कल्पना की थी ॥३०॥ इनके नाम हैं–स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मन्दर, हरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल अर्थात् लंका। यों जम्बूद्वीपका परिमाण विस्तारके साथ बता दिया। अब इसके बाद प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन करूँगा ॥ ३१–३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(प्लक्ष, शाल्मलि और कुश द्वीपका वर्णन) भगवान नारायण कहते हैं–हे नारद! यह जम्बूद्वीप जैसा और जितने परिमाणवाला बताया गया है, उतने ही परिमाणवाला वहाँ क्षारसमुद्र है, जिससे वह सब ओरसे घिरा हुआ है ॥१॥ जिस प्रकार मेरुपर्वतके चारों ओर यह जम्बूद्वीप है, वैसे ही इसके सभी भागोंमें खारे जलका समुद्र है। क्षारसमुद्रके दूने परिमाणवाले प्लक्षद्वीपने इसे घेर रखा है ॥ २ ॥ उपवनसे घिरी हुई खाईकी भाँति यह घिरा है। जम्बूद्वीपमें जितना बड़ा जामुनका वृक्ष है, उतना ही बड़ा वहाँ एक पाकड़का पेड़ है। अतएव

सिंहलश्चैव लंकेति उपद्वीपाष्टकं स्मृतम् ॥ जंबुद्वीपस्य मानं हि कीर्तितं विस्तरेण च ॥ ३२ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि प्लक्षादिद्वीपषट्ककम् ॥३३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ जंबुद्वीपो यथा चायं यत्प्रमाणेन कीर्तितः ॥ तावता सर्वतः क्षारोदधिना परिवेष्टितः ॥ १ ॥ जंब्वाख्येन यथा मेरुस्तथा क्षारोदकेन च ॥ क्षारोदधिस्तु द्विगुणः प्लक्षाख्येनोपवेष्टितः ॥ २ ॥ यथैव परिखा बाह्योपवनेन हि वेष्टयते ॥ प्लक्षाख्यश्च स्वयं जंबुप्रमाणो द्वीपरूपधृक् ॥ ३ ॥ हिरण्मयोऽग्निस्तत्रैव तिष्ठतीति विनिश्चयः ॥ प्रियव्रतात्मजस्तत्र सप्तजिह्व इति स्मृतः ॥ ४ ॥ अग्निस्तदधिपस्त्विध्मजिह्वः स्वं द्वीपमेव च ॥ विभज्य सप्त वर्षाणिस्व पुत्रेभ्यो ददौ विभुः ॥ ५ ॥ स्वयमात्मविदां मान्यां योगचर्यां समाश्रितः ॥ तेनैव चात्मयोगेन भगवंतमुपागतः ॥ ६ ॥ शिवं च यवसं भद्रं शांतं क्षेमामृते तथा ॥ अभयं चेति सप्तैव तद्वर्षाणि सदेक्षताम् ॥ ७ ॥ तेषु प्रोक्ता नदीः सप्त गिरयः सप्त चैव हि ॥ अरुणा नृम्णांगिरसी सावित्री सुप्रभातिका ॥ ८ ॥ ऋतंभरा सत्यंभरा इति नद्यः प्रकीर्तिताः ॥ मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनस्तथैव च ॥ ९ ॥ ज्योतिष्मान्वै सुपर्णश्च हिरण्यष्ठीव एव च ॥ मेघमाल इति ख्याता प्लक्षद्वीपस्य पर्वताः ॥ १० ॥ नदीनां जलमात्रेण दर्शनस्पर्श-

इसे प्लक्षद्वीप कहते हैं ॥ ३ ॥ सुवर्णमय अग्निदेवताका यह सुनिश्चित स्थान है। सात जीभवाले ये अग्निदेव महाराज प्रियव्रतके पुत्र हैं। इनका नाम 'इध्मजिह्व' है। ये ही प्लक्षद्वीपमें शासन करते हैं ॥४॥ राजा प्रियव्रतने अपने द्वीपके सात विभाग करके सातों पुत्रोंमें बाँट दिये और स्वयं आत्मज्ञानी पुरुषोंके द्वारा मान्य योगसाधनमें लग गये। उसी आत्मयोगके प्रभावसे उन्हें भगवत्प्राप्ति हो गयी ॥ ५ ॥ ६ ॥ शिव, यवस, भद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय—इन नामोंसे प्रसिद्ध तथा दर्शनीय ये सात वर्ष (देश) प्लक्षद्वीपके हैं ॥ ७ ॥ इन सातों वर्षोंमें सात नदियाँ और सात ही पर्वत हैं। अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभातिका, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा–इन नामोंसे वे नदियाँ विख्यात हैं। मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल—ये नाम प्लक्षद्वीपके पर्वतोंके हैं ॥ ८–१० ॥ उपर्युक्त नदियोंके जलका केवल दर्शन और स्पर्श करनेसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वहाँकी प्रजा पवित्र हो जाती है और उसका सारा कल्मष धुल जाता है ॥ ११ ॥ इस प्लक्षद्वीपमें हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन और सत्यांग नामवाले चार वर्णके लोग रहते हैं ॥ १२ ॥ उनकी आयु एक हजार वर्षकी होती है। देखनेमें वे बड़े ही विलक्षण प्रतीत होते हैं। वे तीनों वेदोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार स्वर्गके द्वारस्वरूप भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं ॥१३॥ वे कहते हैं—'जो सत्य, ऋत, वेद एवं सत्कर्मके अधिष्ठाता हैं, अमृत एवं मृत्यु अर्थात् यम जिनके विग्रह हैं, उन पुराणपुरुष विष्णुमय भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं ॥१४॥ हे नारद! प्लक्ष आदि जो पाँच द्वीप हैं, उन सबमें जन्म लेनेवाले प्राणी आयु, इन्द्रिय, शक्ति, बल, बुद्धि और पराक्रमके साथ उत्पन्न होते हैं। इक्षुरसका समुद्र प्लक्षद्वीपकी अपेक्षा बहुत बड़ा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ प्लक्षद्वीपसे दूने विस्तारवाला शाल्मलिद्वीप है। जितना लम्बा-चौड़ा यह शाल्मलिद्वीप है, उतने ही आकारका वहाँ मदिराका समुद्र है, जिससे यह

नादिभिः ॥ निर्धूताशेषरजसो निस्तमस्काः प्रजास्तथा ॥ ११ ॥ हंसश्चैव पतंगश्च ऊर्ध्वायन इतीव च ॥ सत्यांगसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः प्लक्षस्य द्वीपके ॥ १२ ॥ सहस्रायुःप्रमाणाश्च विविधोपमदर्शनाः ॥ स्वर्गद्वारं त्रयीविद्याविधिनाऽर्कं यजंति ते ॥ १३ ॥ प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यर्तस्य च ब्रह्मणः ॥ अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहि ॥ १४ ॥ प्लक्षादिषु च सर्वेषु पंचद्वीपेषु नारद ॥ आयुरिंद्रियमोजश्च बलं बुद्धिः सहोऽपि च ॥ १५ ॥ विक्रमः सर्वलोकानां सिद्धिरौत्पत्तिकी सदा ॥ प्लक्षद्वीपात्परं चेक्षुरसोदः सरितांपतिः ॥१६॥ प्लक्षद्वीपं समग्रं च परिवार्यावतिष्ठते ॥ शाल्मल्याख्यस्ततो द्वीपश्चास्माद्द्विगुणविस्तरः ॥१७॥ समानेन सुरोदेन सिंधुना परिवेष्टितः ॥ यत्र वै शाल्मलीवृक्षः प्लक्षनामः प्रकीर्तितः॥१८॥ स्थानं तत्पक्षिराजस्य गरुडस्य महात्मनः ॥ तस्य द्वीपस्य नाथो हि यज्ञबाहुः प्रियव्रतात् ॥ १९ ॥ जातः स एव सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो ददौ धराम् ॥ तद्वर्षाणां च नामानि कथितानि निबोधत ॥ २० ॥ सुरोचनं सौमनस्यं रमणं देववर्षकम् ॥ पारिभद्रं तथा चाप्यायनं विज्ञातनामकम् ॥ २१ ॥ तेषु वर्षाद्रयः सप्त सप्तैव सरितः स्मृताः ॥ सरसः शतशृंगश्च वामदेवश्च कंदकः ॥२२॥ कुमुदः पुष्पवर्षश्च सहस्रश्रुतिरेव च ॥ एते च पर्वताः सप्त नदीनामानि चोच्यते ॥ २३ ॥ अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहूस्तथा ॥ रजनी चैव नंदा च राकेति परिकीर्तिताः ॥ २४ ॥ तद्वर्षपुरुषाः सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाह्वयाः ॥ श्रुतधरो वीर्यधरो वसुंधर इषुन्धरः ॥ २५ ॥ भगवंतं वेदमयं यजंते सोममीश्वरम् ॥ स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्ण-

द्वीप घिर गया है। वहाँ ऐसा बड़ा एक सेमरका वृक्ष है, जैसे प्लक्षद्वीपमें पाकड़का है ॥ १७ ॥ १८ ॥ पक्षिराज महात्मा गरुड़जी इस द्वीपमें विराजते हैं। उस शाल्मलिद्वीपका शासन-सूत्र राजा यज्ञबाहुके हाथमें है। ये यज्ञबाहु राजा प्रियव्रतके ही पुत्र हैं। उन्होंने ही अपने सात पुत्रोंको यह पृथ्वी बाँट रखी है। शाल्मलिद्वीपके सात वर्षोंके नाम हैं—॥१९॥२०॥ सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्षक, पारिभद्र, आप्यायन और विज्ञात ॥२१॥ उन सात वर्षोंमें सात पर्वत और सात ही नदियाँ हैं। पर्वतोंके नाम हैं—सरस, शतशृंग, वामदेव, कन्दक, कुमुद, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति। और नदियोंके नाम हैं—अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका ॥ २२–२४ ॥ उन वर्षोंमें रहनेवाले समस्त पुरुष श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषुन्धर संज्ञक चार वर्णोंमें विभक्त हैं ॥ २५ ॥ वेदस्वरूप चन्द्रमाको भगवान् ईश्वर मानकर वे उनकी उपासना करते हैं। वे कहते हैं—'जो अपनी किरणोंसे पितरोंके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुक्र और कृष्ण मार्गका विभाजन कर रहे हैं तथा सम्पूर्ण प्रजा जिनका शासन मानती है; वे भगवान सोम प्रसन्न हो जायँ।' इसी प्रकार मदिराके समुद्रकी अपेक्षा दुगुने विस्तारवाला कुश द्वीप है। यह द्वीप समुद्रसे घिरा हुआ है। यहाँ कुशकी एक सघन झाड़ी है। अतः उसे 'कुशद्वीप' कहते हैं ॥ २६–२८ ॥ अग्निदेव अपनी सुन्दर ज्वालासे दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए सर्वव्यापी होकर विराजते हैं। यह कुशद्वीप प्रियव्रतकुमार राजा हिरण्यरेताके शासनमें है ॥ २९ ॥ हिरण्यरेताने इस द्वीपको सात देशोंके रूपमें विभक्त करके इसे अपने सात पुत्रोंको सौंप दिया है। पुत्रोंके नाम हैं—वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और नामदेव। उन वर्षोंमें उनकी सीमा निश्चित करनेवाले चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा द्रविड़ और नामवाले सात पर्वत प्रसिद्ध हैं। नदियाँ भी सात हैं। उनके नाम हैं—रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतिविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और

शुक्लयोः ॥ २६ ॥ सर्वासां च प्रजानां त्र राजा सोमः प्रसीदतु ॥ एवं सुरोदाद्द्विगुणः स्वमानेन प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ घृतोदेनावृतः सोऽयं कुशद्वीपः प्रकाशते ॥ यस्मिन्नास्ते कुशस्तम्बो द्वीपाख्यकरणो ज्वलन् ॥ २८ ॥ स्वशष्परोचिषा काष्ठा भाम्यन्परितिष्ठते ॥ हिरण्यरेतास्तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतः स्वराट् ॥ २९ ॥ स्वपुत्रेभ्यश्च सप्तभ्यस्तद्द्वीपं सप्तधाऽभजत् ॥ वसुश्च वसुदानश्च तथा दृढरुचिः परः ॥ ३० ॥ नाभिगुप्तस्तुत्यव्रतौ विविक्तनामदेवकौ ॥ तेषां वर्षेषु सप्तैव सीमागिरिवराः स्मृताः ॥ ३१ ॥ नद्यः सप्तैव संतीह तन्नामानि निबोधत ॥ चक्रस्तथा चतुःशृंगः कपिलश्चित्रकूटकः ॥ ३२ ॥ देवानीकश्चोर्ध्वरोमा द्रविणः सप्त पर्वताः ॥ रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा तथैव च ॥ ३३ ॥ श्रुतविंदा देवगर्भा घृतच्युन्मंदमालिके ॥ यत्पयोभिः कुशद्वीपवासिनः सर्व एव ते ॥ ३४ ॥ कुशलः कोविदश्चैवाप्यभियुक्तस्तथैव च ॥ कुलकश्चेति संज्ञाभिश्चतुर्वर्णाः प्रकीर्तिताः ॥ ३५ ॥ जातवेदसरूपं तं देवं कर्मजकौशलैः ॥ यजंते देववर्याभाः सर्वे सर्वविदो जनाः ॥ ३६ ॥ परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ॥ देवानां पुरुषांगानां यज्ञेन पुरुषं यज ॥ एवं यजंते ज्वलनं सर्वे द्वीपाधिवासिनः ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

मन्त्रमालिका। कुशद्वीपके समस्त निवासी इन्हीं नदियोंका जल पीते हैं। कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलकसंज्ञक चार वर्णके लोग वहाँ रहते हैं ॥ ३०–३५ ॥ वे अग्निको भगवान श्रीहरिका विग्रह मानकर अपने यज्ञादि कर्मकौशल द्वारा उनकी उपासना करते हैं। वहाँके सब लोग वेदके ज्ञाता एवं श्रेष्ठ देवताओंके समान तेजस्वी होते हैं ॥ ३६ ॥ अग्निदेवसे वे प्रार्थना करते हैं—जातवेदा कहलानेवाले हे भगवान अग्निदेव! आप परब्रह्म परमात्माको स्वयं हवि पहुँचाते हैं। अतः श्रीहरिके अङ्गभूत देवताओंके यज्ञ द्वारा आप उन परम पुरुष परमात्माका यजन करें।' इस प्रकार कुशद्वीपमें रहनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंके द्वारा अग्निस्वरूप भगवान श्रीहरिकी उपासना होती है ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(क्रौंच, काक और पुष्कर आदि द्वीपोंका वर्णन) नारदजीने कहा–हे सर्वार्थदर्शी प्रभो ! अब आप शेष द्वीपोंके परिमाण बतानेकी कृपा कीजिये । जिन्हें जाननेमात्रसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है ॥१॥ भगवान् नारायण कहते हैं–हे नारद ! कुशद्वीप अत्यन्त विस्तृत घृतसमुद्रके द्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ है । उसके बाहर दुगुने परिमाणवाला क्रौञ्चद्वीप है ॥२॥ इस क्रौंचद्वीपको इतने ही विस्तारवाले क्षीरसमुद्रने घेर रखा है । यह वह द्वीप है, जहाँ क्रौञ्च नामक पर्वत है । इस पर्वतके कारण ही इस द्वीपको क्रौञ्चद्वीप कहते हैं ॥३॥ प्राचीन समय-की बात है–स्वामिकार्तिकेयकी शक्तिके प्रहारसे इसका पेट फट गया था । क्षीरसमुद्रने इसे सींचा और वरुणने रक्षाकी पर्याप्त व्यवस्था की, तब यह पुनः स्थिर हुआ ॥ ४ ॥ प्रियव्रत-कुमार श्रीमान् घृतपृष्ठ इस द्वीपके व्यवस्थापक थे । उन नरेशको अखिल जगत्से सम्मान प्राप्त था ॥ ५ ॥ उन महाराजने उस द्वीपको सात वर्षोंमें विभाजित करके अपने पुत्रोंको दे दिया और इनके पुत्रोंकी संख्या भी सात थी ॥ ६ ॥ इस प्रकार पुत्रोंको वर्षोंकी व्यवस्थापर नियुक्त करके उन्होंने स्वयं भगवान् श्रीहरिकी शरण ले ली । आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ,

॥ नारद उवाच ॥ शिष्टद्वीपप्रमाणं च वद सर्वार्थदर्शन ॥ येन विज्ञातमात्रेण परानंदमयो भवेत् ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ कुशद्वीपस्य परितो घृतोदावरणं महत् ॥ ततो बहिः क्रौंचद्वीपो द्विगुणः स्यात्स्वमानतः ॥ २ ॥ क्षीरोदेनावृतो भाति यस्मिन्क्रौंचाद्रिरस्ति च ॥ नामनिर्वर्तकः सोऽयं द्वीपस्य परिवर्तते ॥ ३ ॥ योऽसौ गुहस्य शक्त्या च भिन्नकुक्षिः पुराऽभवत् ॥ क्षीरोदेनासिच्यमानो वरुणेन च रक्षितः ॥ ४ ॥ घृतपृष्ठो नाम यस्य विभाति किल नायकः ॥ प्रियव्रतात्मजः श्रीमान्सर्वलोकनमस्कृतः ॥५॥ स्वद्वीपं तु विभज्यैव सप्तधा स्वात्मजान्ददौ ॥ पुत्रनामसु वर्षेषु वर्षपान्सन्निवेशयन् ॥ ६ ॥ स्वयं भगवतस्तस्य शरणं संजगाम ह ॥ आमो मधुरुहश्चैव मेघपृष्ठः सुधामकः ॥ ७ ॥ भ्राजिष्ठो लोहितार्णश्च वन-स्पतिरितीव च ॥ नगा नद्यश्च सप्तैव विख्याता भुवि सर्वतः ॥ ८ ॥ शुक्लो वै वर्धमानश्च भोजनश्चोपबर्हणः ॥ नन्दश्च नन्दनः सर्वतोभद्र इति कीर्तिताः ॥ ९ ॥ अभया अमृतौघा चार्यका तीर्थवतीति च ॥ वृत्तिरूपवती शुक्ला पवित्रवतिका तथा ॥ १० ॥ एतासामुदकं पुण्यं चातुर्वर्ण्येन पीयते ॥ पुरुषऋषभौ तद्वद्द्रविणाख्यश्च देवकः ॥ ११ ॥ एते चतुर्वर्णजाताः पुरुषा निवसन्ति हि ॥ तत्रत्याः पुरुषा आपोमयं देवमपां पतिम् ॥ १२ ॥ पूर्णेनांजलिना भक्त्या यजंते विविधक्रियाः ॥ आपः पुरुवीर्या स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः स्वः ॥ १३ ॥ ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामा-

सुधामक, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति–ये पुत्रोंके नाम हैं । पर्वत और नदियाँ भी सात ही हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ पर्वतोंके नाम हैं–शुक्ल, वर्धमान, भाजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र ॥ ९ ॥ अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, शुक्ला और पवित्रवती–इन नामोंसे सातों नदियाँ विख्यात हैं ॥ १० ॥ इन नदियोंके पवित्र जलको चारों वर्णके लोग पीते हैं । पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक–इन चार वर्णों केपुरुष वहाँ रहते हैं । उन पुरुषोंके द्वारा जलके स्वामी वरुणदेवकी उपासना होती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ वे इस प्रकार प्रार्थना करते हैं–'हे भगवान् वरुणदेव ! पुरुषोत्तम श्रीहरिकी कृपासे आपको असीम शक्ति प्राप्त है । भूः भुवः और स्वः–इन तीनों लोकोंको आप पवित्र करते हैं ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण कल्मषोंको दूर कर देना आपका स्वभाव ही है । हम अपने शरीरसे आपका स्पर्श करते हैं । आप हमें पवित्र करनेकी कृपा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करें।' वे इसे मन्त्र मानकर जप भी करते हैं। फिर भाँति-भाँतिके स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुति की जाती है ॥१४॥ इसी प्रकार क्षीरसमुद्रसे आगे शाकद्वीप है। बत्तीस लाख योजन विस्तार-वाला यह द्वीप क्षीरसमुद्रके चारों ओर फैला हुआ है ॥ १५ ॥ इसीके बराबर वहाँ मंठेका समुद्र है, जिसने इसे घेर रखा है। इस विशिष्ट द्वीपमें शाक नामका एक बहुत विशाल वृक्ष है ॥ १६ ॥ हे नारद ! इस वृक्षके कारण ही इस क्षेत्रका नाम शाकद्वीप पड़ गया। प्रियव्रतकुमार मेधातिथि इस द्वीपके राजा थे ॥ १७ ॥ उन्होंने सात देशोंके रूपमें इस द्वीपका विभाजन कर दिया और अपने सात पुत्रोंको प्रत्येक वर्षमें नियुक्त करके स्वयं योगगतिकी प्राप्तिके लिये वनमें चले गये ॥ १८ ॥ राजा मेधातिथिके पुत्रोंके नाम हैं—पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेख, बहुरूप और विश्वरूप ॥ १९ ॥ इसकी सीमा निश्चित करनेवाले सात पर्वत और सात ही समुद्र हैं। ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेशर, सहस्रस्रोत, देवपाल,

त्मना भुवः ॥ इति मंत्रजपांते च स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः ॥ १४ ॥ एवं परस्तात्क्षीरोदात्परितश्चोपवेशितः ॥ द्वात्रिंशल्लक्षसंख्याकयोजनायाम-माश्रितः ॥ १५ ॥ स्वमानेन च द्वीपोऽयं दधिमण्डोदकेन च ॥ शाकद्वीपो विशिष्टोऽयं यस्मिञ्छाको महीरुहः ॥ १६ ॥ स्वक्षेत्रव्यपदेशस्य कारणं स हि नारद ॥ प्रैयव्रतोऽधिपस्तस्य मेधातिथिरिति स्मृतः ॥१७॥ विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु च ॥ सप्त पुत्रान्निजान्स्थाप्य स्वयं योग-गतिं गतः ॥ १८ ॥ पुरोजवो मनःपूर्वजवोऽथ पवमानकः ॥ धूम्रानीकश्चित्ररेखो बहुरूपोऽथ विश्वधृक् ॥ १९ ॥ मर्यादागिरयः सप्त नद्यः सप्तैव कीर्तिताः ॥ ईशान ऊरुशृंगोऽथ बलभद्रः शतकेसरः ॥ २० ॥ सहस्रस्रोतको देवपालोऽप्यन्ते महासनः ॥ एतेऽद्रयः सप्त चोक्ताः सरिन्नामानि सप्त च ॥ २१॥ अनघा प्रथमायुर्दा उभयस्पृष्टिरेव च ॥ अपराजिता पंचपदी सहस्रश्रुतिरेव च ॥२२॥ ततो निजधृतिश्चोक्ताः सप्त नद्यो महोज्ज्वलाः ॥ तद्वर्षपुरुषाः सर्वे सत्यव्रतक्रतुव्रतौ ॥ २३ ॥ दानव्रतानुव्रतौ च चतुर्वर्णा उदीरिताः ॥ भगवंतं प्राणवायुं प्राणायामेन संयुताः ॥ २४ ॥ यजंति निर्धूतरजस्तमसः परमं हरिम् ॥ अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ २५ ॥ अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे इदम् ॥ परस्ताद्द-धिमण्डोदात्तत्तस्तु बहुविस्तरः ॥ २६ ॥ पुष्करद्वीपनामाऽयं शाकद्वीपद्विसंगुणः ॥ स्वसमानेन स्वादूदकेनायं परिवेष्टितः ॥ २७ ॥ यत्रास्ते पुष्करं भ्राजदग्निचूडानिभानि च ॥ पत्राणि विशदानीह स्वर्णपत्रायुतायुतम् ॥ २८ ॥ श्रीमद्भगवतश्चेदमासनं परमेष्ठिनः ॥ कल्पितं लोकगुरुणा सर्वलोक-

और महासन—ये सात पर्वत कहे गये हैं। इसकी सात नदियोंके नाम हैं—अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी, सहस्रश्रुति और निजधृति। उस वर्षके सभी पुरुष महान् प्रतापी होते हैं। उन पुरुषोंके चार वर्ण हैं—सत्यव्रत, क्रतुव्रत, दानव्रत और अनुव्रत। प्रणाम करके ये भगवान् वासुदेवकी उपासना करते हैं। ये यों स्तुति करते हैं—'जो प्राणियोंके भीतर विराजमान होकर प्राणादि वृत्तियोंसे प्राणियोंका धारण-पोषण करते हैं तथा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनके अधीन है, वे अन्तर्यामी भगवान् स्वयं हमारी रक्षा करें।' हे नारद ! इसी प्रकार मंठेके समुद्रसे आगे उससे बहुत लंबा-चौड़ा विस्तारवाला पुष्करद्वीप है ॥ २०-२६ ॥ यह द्वीप शाकद्वीपसे दूने विस्तारमें है। अपने जैसे विस्तारवाले मीठे जलके समुद्र द्वारा यह चारों ओरसे घिरा है ॥ २७ ॥ इस द्वीपमें अत्यन्त प्रकाशमान एक कमल है। उसकी पंखुड़ियाँ ऐसी चमकती हैं, मानो आगकी लपटें हों। लाखों स्वर्णमय पत्र उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कमलकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ २८ ॥ अखिल जगत्‌की सृष्टि करनेका विचार उत्पन्न होनेपर संसारके एकमात्र शासक श्रीहरिने महाभाग ब्रह्माके रहनेके लिये उसी कमलकी स्थापना की है ॥२९॥ इस पुष्करद्वीपमें मानसोत्तर नामका एक ही पर्वत है। पूर्वी और पश्चिमी वर्षोंकी सीमा बताना इसका मुख्य उद्देश्य है ॥ ३० ॥ यह दस हजार योजन ऊँचा और इतना ही विस्तृत है। इसकी चार दिशाओंमें चार पुरियाँ हैं ॥३१॥ इन पुरियोंमें इन्द्र आदि लोकपाल रहते हैं। इसके ऊपर होते हुए सूर्य सुमेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ३२ ॥ सूर्यके रथका चक्का संवत्सरका प्रतीक है। देवयान और पितृयान मार्गसे वह आगे बढ़ता है। प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र यहाँके राजा थे। उन्होंने अपने इस द्वीपको दो भागोंमें बाँट दिया। उनके दो पुत्र थे। दोनोंको क्रमशः दो वर्षोंमें रहनेकी आज्ञा दे दी। पुत्रोंके नाम हैं-रमण और धातकी। ये दो राजकुमार दोनों वर्षोंमें शासन करते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ स्वयं वीतिहोत्र अपने बड़े भाइयोंके साथ समानरूपसे भगवान श्रीहरिके परम भक्त बन गये। इस लोकमें रहनेवाले पुरुष सृष्टि र्ता ब्रह्माको साक्षात् परब्रह्म परमेश्वरका स्वरूप मानकर उनकी

सिसृक्षया ॥ २९ ॥ तद्द्वीप एक एवायं मानसोत्तरनामकः ॥ अर्वाचीनपराचीनवर्षयोरवधिर्गिरिः ॥ ३० ॥ उच्छ्रायायामयोः संख्याऽयुतयोजनसंमिता ॥ यत्र दिक्षु च चत्वारि चतसृषु पुराणि ह ॥ ३१ ॥ इन्द्रादिलोकपालानां यदुपर्यर्कनिर्गमः ॥ मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्भानुः पर्येति यत्र हि ॥ ३२ ॥ संवत्सरात्मकं चक्रं देवाहोरात्रतो भ्रमन् ॥ प्रैयव्रतोऽधिपो वीतिहोत्रः स्वात्मजकद्वयम् ॥ ३३ ॥ वर्षद्वये परिस्थाप्य वर्षनामधरं क्रमात् ॥ रमणो धातकिश्चैव तत्तद्वर्षपती उभौ ॥ ३४ ॥ कृताः स्वयं पूर्वजवद्भगवद्भक्तितत्पराः ॥ तद्वर्षपुरुषा ब्रह्मरूपिणं परमेश्वरम् ॥ ३५ ॥ सकर्मकेन योगेन यजन्ति परिशीलिताः ॥ यत्तत्कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् ॥ एकांतमद्वयं शांतं तस्मै भगवते नमः ॥ ३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ततः परस्तादचलो लोकालोकेति नामकः ॥ अंतराले च लोकालोकयोर्यः परिकल्पितः ॥ १ ॥ यावदस्ति च देवर्षे ह्यंतरं मानसोत्तरात् ॥ सुमेरोस्तावती शुद्धा कांचनी भूमिरस्ति हि ॥ २ ॥ दर्पणोदरतुल्या सा सर्वप्राणिविवर्जिता ॥ यस्यां पदार्थः प्रहितो न किंचित्प्रत्युदीयते ॥ ३ ॥ अतः सर्वप्राणिसंघरहिता सा च नारद ॥ लोकालोक इति व्याख्या यदत्र परिकल्पिता

उपासना करते हैं। सकाम कर्मके द्वारा श्रीहरिकी अराधना करते हुए वे यों कहते हैं-जो कर्ममय, ब्रह्मके साक्षात् विग्रह, जगत्पूज्य, एक एवं अद्वैत हैं तथा जिनका स्वरूप परम शान्त है, उन भगवान् ब्रह्माका हमारा नमस्कार है ॥३५॥३६ इति श्रीदेवीभागवते अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

(लोकालोक पर्वतकी व्यवस्था) भगवान् नारायण कहते हैं-हे देवर्षि नारद ! इसके आगे लोकालोक नामका एक पर्वत है। वहाँ प्रकाशित और अप्रकाशित-दो प्रकारके लोक हैं। इनके मध्यभागमें यह लोकालोकपर्वत है ॥१॥ इन लोकोंकी सीमा बताना इसका प्रयोजन है। मानसोत्तर पर्वतसे लेकर सुमेरुतक जितना अन्तर है, उतना ही इस पर्वतका परिमाण है। वहाँकी भूमि सुवर्णमयी है ॥२॥ वह ऐसी स्वच्छ है, मानो दर्पण हो। सर्वसाधारण प्राणी वहाँ नहीं रह सकते अर्थात् वह स्थान केवल देवताओंके लिये है। वहाँ कोई पदार्थ गिर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाय तो फिर वह उससे अलग नहीं हो सकता ॥३॥ अतएव हे नारद ! वहाँ सब प्रकारके प्राणियोंका समुदाय नहीं ठहरता। इसीसे इसका लोकालोक नाम पड़ा है। सूर्य जिसे प्रकाशित करते और जिसे नहीं करते–उन दोनों लोकोंके ठीक मध्यभागमें इस पर्वतकी स्थिति सदा रहती है। भगवान् श्रीहरिने तीनों लोकोंके ऊपर चारों ओरकी सीमा निर्धारित करनेके लिये इस पर्वतका निर्माण किया है ॥४॥५॥ सूर्यसे लेकर ध्रुव तक–सभी ग्रह इस पर्वतके अधीन हैं। अतः इन ग्रहोंकी किरणें लोकालोक पर्वतके पीछे रहनेवाले तीनों लोकोंको ही प्रकाशित करती हैं। दूसरी ओरके लोक उन किरणोंसे कदापि प्रकाश नहीं प्राप्त कर सकते। हे नारद ! वह महान् पर्वत जितना ऊँचा है, उतना ही लम्बा भी है ॥ ६ ॥ ७ ॥ भूगोलशास्त्रके विज्ञ गणितज्ञोंने समस्त लोकोंका परिमाण इतना ही बतलाया है। यह भूमण्डल कुल मिलाकर पचास करोड़ योजनमें फैला हुआ है ॥ ८ ॥ जिसमें भूगोल भरका चतुर्थांश यह पर्वत ही है। इस पर्वतके ऊपर चारों दिशाओंमें स्वयम्भू ब्रह्माने चार दिग्गज नियुक्त कर दिये हैं। इन गजराजोंके नाम हैं—ऋषभ, पुष्पचूड़, बामन और अपराजित ॥ ९ ॥ १० ॥ समस्त

॥४॥ लोकालोकांतरे चास्य वर्तते सर्वदा स्थितिः ॥ ईश्वरेण स लोकानां त्रयाणामंतगः कृतः ॥ ५ ॥ सूर्यादीनां ध्रुवांतानां रश्मयो यद्वशादिह ॥
अर्वाचीनाश्च त्रींल्लोकानातन्वानाः कदापि हि ॥ ६ ॥ पराचीनत्वभाजो हि न भवन्ति च नारद ॥ तावदुन्नहनायामः पर्वतेन्द्रो महोदयः ॥ ७ ॥
एतावाँल्लोकविन्यासोऽयं संस्थामानलक्षणैः ॥ कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिभिर्गणितस्य च ॥ ८ ॥ भूगोलस्य चतुर्थांशो लोकालोकाचलो मुने ॥
तस्योपरि चतुर्दिक्षु ब्रह्मणा चात्मयोनिना ॥ ९ ॥ निवेशिता दिग्गजा ये तन्नामानि निबोधत ॥ ऋषभः पुष्पचूडोऽथ वामनोऽथापराजितः ॥१०॥
एते समस्तलोकस्य स्थितिहेतव ईरिताः ॥ तेषां च स्वविभूतीनां बहुवीर्योपबृंहणम् ॥ ११ ॥ विशुद्धसत्त्वं चैश्वर्यं वर्धयन्भगवान्हरिः ॥ आस्ते
सिद्धयष्टकोपेतो विष्वक्सेनादिसंवृतः ॥ १२ ॥ निजायुधैः परिवृतो भुजदण्डैः समन्ततः ॥ आस्ते सकललोकस्य स्वस्तये परमेश्वरः ॥ १३ ॥
आकल्पमेवं वेषं स गतो विष्णुः सनातनः ॥ स्वमायारचितस्यास्य गोपीथायात्मसाधनः ॥ १४ ॥ योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणकम् ॥
व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचल इतीरणात् ॥१५॥ ततः परस्ताद्योगेशगतिं शुद्धां वदन्ति हि ॥ अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥१६॥
सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥ मृतेण्ड एव एतस्मिञ्जातो मार्तण्डशब्दभाक् ॥१७॥ हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्यांडसमुद्भवः ॥ सूर्येण

लोकोंको भलीभाँति स्थित रखनेके लिये ही इन दिग्गजोंकी नियुक्ति हुई है। इस लोकालोक पर्वतपर स्वयं भगवान् श्रीहरि विराजते हैं। इनके यहाँ विराजनेका मुख्य उद्देश्य यह है कि इन दिग्गजोंकी तथा अपनी परम विभूति इन्द्रादि देवताओंकी शक्तिका विकास हो। ये सात्त्विक और विशुद्ध गुणसे सम्पन्न हों तथा सदा कल्याणके भागी बने रहें। आठों सिद्धियाँ इनकी सेवामें संलग्न रहती हैं। विष्वक्सेन आदि पार्षद इन्हें घेरकर खड़े रहते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ इनकी चार विशाल भुजाएँ शंख, चक्र, गदा और पद्म आदि आयुधोंसे सुशोभित रहती हैं। सनातन भगवान् श्रीहरि ऐसे वेषमें पूरे कल्पभर यहाँ विराजते हैं। अपनी मायासे रचित इस जगत्की रक्षा इनके यहाँ विराजनेका प्रयोजन है ॥ १३ ॥ १४ ॥ कहा जाता है कि इस लोकालोकपर्वतके भीतरकी भूमि जितनी लंबी-चौड़ी है, उतनी ही बाहर भी है। इसके आगे जो विशुद्ध भूमि है, उसमें परम योगी पुरुष ही जा सकते हैं। हे नारद ! स्वर्ग और पृथ्वीके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बीच जो ब्रह्माण्ड है, उसीके मध्यभागमें सूर्य रहते हैं ॥१५॥१६॥ सूर्यमण्डल और ब्रह्माण्ड पचीस करोड़ योजनकी दूरीपर हैं। मृत अण्ड अर्थात चेतना-शून्य अण्डमें विराजनेके कारण सूर्यको 'मार्तण्ड' कहा जाता है ॥१७॥ हिरण्यमय ब्रह्माण्डसे ये प्रकट हुए हैं। अतः सूर्य 'हिरण्यगर्भ' भी कहे जाते हैं। दिशा, आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वीलोक, स्वर्ग, अपवर्ग, नरक और पाताल–इनका सम्यक् प्रकारसे विभाजित होना सूर्यपर निर्भर है। देवता, मनुष्य, पशु, रेंगकर चलनेवाले जन्तु तथा वृक्ष आदि जितने प्राणी हैं, उन सबके आत्मा ये सूर्य हैं। इन्हें नेत्रेन्द्रियका स्वामी कहा जाता है। हे नारद! भूमण्डलका इतना ही विस्तार है ॥१८–२०॥ इसी परिमाणके अनुसार भूगोलके पण्डित द्युलोकका भी विस्तार बतलाते हैं। जैसे मटरकी दालके दो टुकड़ोंमेंसे एकका परिमाण ज्ञात हो जानेपर दूसरेका अनुमान कर लिया जाता है, उसी तरह भूलोकका विस्तार मालूम हो जानेपर द्युलोकके भी क्षेत्रफलका अनुमान कर लिया गया है ॥२१॥ इन दोनों लोकोंके मध्यभागमें अन्तरिक्षलोक है। प्रकाश फैलानेवाले ग्रहोंमें श्रेष्ठ भगवान सूर्य इसीके मध्यभागमें विराजते हैं। उत्तरायण होनेपर इनकी गति मन्द पड़ जाती है

हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्महीभिदा ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ॥१९॥ सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥ एतावान्भूमण्डलस्य सन्निवेश उदाहृतः ॥ २० ॥ एतेन हि दिवो मानं वर्णयन्ति च तद्विदः ॥ द्विदलानां च निष्पावादीनां च दलयोर्यथा ॥ २१ ॥ अन्तरेण तयोरंतरिक्षं तदुभयसंधितम् ॥ यन्मध्यगश्च भगवान्भानुर्वै तपतां वरः ॥ २२ ॥ आतपेन त्रिलोकी च प्रतपत्येव भासयन् ॥ उत्तरायणमासाद्य गतिमांद्यं वितन्वते ॥ २३ ॥ आरोहणस्थानमसौ गत्वाऽहो दैर्घ्यमाचरेत् ॥ दक्षिणायनमासाद्य गतिशैघ्र्यं वितन्वते ॥ २४ ॥ अवरोहस्थानमसौ गच्छन्ह्रस्वं दिनं चरेत ॥ विषुवत्संज्ञमासाद्य गतिसाम्यं वितन्वते ॥ २५ ॥ समस्थानमथासाद्य दिनसाम्यं करोति च ॥ यदा च मेषतुलयोः संचरेद्धि दिवाकरः ॥ २६ ॥ समानानि त्वहोरात्राण्यातनोति त्रयीमयः ॥ वृषादिपंचसु यदा राशिष्वर्को विरोचते ॥२७॥ तदाऽहानि च वर्धंते रात्रयोऽपि ह्रसंति च ॥ वृश्चिकादिषु सूर्यो हि यदा संचरते रविः ॥२८॥ तदाऽपीमान्यहोरात्राणि भवन्ति विपर्ययात् ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥२२॥२३॥ अपने प्रचण्ड तेजसे त्रिलोकीको प्रकाशित करते हुए ये सदा तपते रहते हैं। इनका यह उत्तरायण स्थान बहुत ऊँचा है। ये जब इस स्थानपर आते हैं, तब दिन बढ़ने लगता है। सूर्य जिस समय दक्षिणायन मार्गपर चलते हैं, तब इनकी गतिमें तीव्रता आ जाती है। इनका यह स्थान नीचा है। जब इस स्थानपर सूर्य चलते हैं, तब दिन छोटे होने लगते हैं। सूर्यका तीसरा स्थान विषुवत् कहलाता है। इसपर चलते समय इनकी गतिमें समानता आ जाती है। क्योंकि यह स्थान सर्वत्र समतल है ॥२४॥२५॥ इसपर चलते समय दिनके परिमाणमें कोई खास अन्तर नहीं रहता। जिस समय सूर्य मेष और तुला राशिपर आते हैं। उस समय दिन और रात्रिमें प्रायः समानता आ जाती है। जब ये वृष आदि पाँच राशियोंमें रहते हैं, तब दिनके मानमें अन्तर आ जाता है और रात्रि छोटी होने लगती है। सूर्य जब वृश्चिक आदि पाँच राशियोंमें चलते हैं, तब दिन और रातमें विपरीत परिवर्तन होने लगता है ॥२६–२९॥ इति श्रीदेवीभागते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(सूर्यकी गतिका वर्णन) भगवान् नारायण कहते हैं–हे नारद ! अब सूर्यकी श्रेष्ठ गतिका वर्णन करूँगा। ये शीघ्र और मन्द आदि तीन प्रकारकी गतिसे चलते हैं ॥ १ ॥ हे मुनिवर ! सभी ग्रहोंके स्थान तीन ही हैं। उन स्थानोंके नाम हैं–जारद्गव, ऐरावत और वैश्वानर। जारद्गव मध्यमें है, ऐरावत उत्तरमें और वैश्वानर दक्षिणमें। प्रत्येक स्थानमें तीन वीथियाँ हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाको 'नागवीथी' कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा–ये 'गजवीथी' कहलाती हैं ॥ ४ ॥ ये तीनों वीथियाँ 'उत्तरमार्ग' कही जाती हैं। मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी 'आर्षभीवीथी' हैं ॥ ५ ॥ हस्त, चित्रा एवं स्वाती 'गोवीथी' कहलाती हैं। विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठाको 'जारद्गवी वीथी' माना गया है ॥ ६ ॥ वे तीनों वीथियाँ 'मध्यमार्ग' कहलाती हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़–इनकी संज्ञा 'अजवीथी' है ॥७॥ श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषाको 'मृगवीथी' मानते हैं। पूर्वाभाद्रपद

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि भानोर्गमनमुत्तमम् ॥ शीघ्रमंदादिगतिभिस्त्रिविधं गमनं रवेः ॥ १ ॥ सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि सुरसत्तम ॥ स्थानं जारद्गवं मध्यं तथैरावतमुत्तरम् ॥ २ ॥ वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिति तत्त्वतः ॥ अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथीति शब्दिता ॥ ३ ॥ रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो गजवीथ्यभिधीयते ॥ पुष्याश्लेषा तथादित्या वीथी चैरावती स्मृता ॥ ४ ॥ एतास्तु वीथयस्तिस्र उत्तरो मार्ग उच्यते ॥ तथा द्वे चापि फल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी मता ॥ ५ ॥ हस्तश्चित्रा तथा स्वाती गोवीथीति तु शब्दिता ॥ ज्येष्ठा विशाखानुराधा वीथी जारद्गवी मता ॥ ६ ॥ एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते ॥ मूलाषाढोत्तराषाढा अजवीथ्यभिशब्दिता ॥ ७ ॥ श्रवणं च धनिष्ठा च मार्गी शतभिषक् तथा ॥ वैश्वानरो भाद्रपदे रेवती चैव कीर्तिता ॥ ८ ॥ एतास्तु वीथयस्तिस्रो दक्षिणो मार्ग उच्यते ॥ उत्तरायणमासाद्य युगाक्षांतनिबद्धयोः ॥ ९ ॥ कर्षणं पाशयोर्वायुबद्धयो रोहणं स्मृतम् ॥ तदाभ्यंतरगान्मंडलाद्रथस्य गतेर्भवेत् ॥ १० ॥ मांद्यं दिवसवृद्धिश्च जायते सुरसत्तम ॥ रात्रिह्रासश्च भवति सौम्यायनक्रमो ह्ययम् ॥ ११ ॥ दक्षिणायनके पाशे प्रेरणादवरोहणम् ॥ बहिर्मंडलवेशेन गतिशैघ्र्यं तदा भवेत् ॥१२॥ तदा दिनाल्पता रात्रिवृद्धिश्च परिकीर्तिता ॥ वैषुवे पाशसाम्यात्तु समावस्थानतो रवेः ॥ १३ ॥ मध्यमंडलवेशश्च साम्यं रात्रिदिना-

उत्तराभाद्रपद और रेवती 'वैश्वानरी वीथी' है ॥८॥ अजवीथी, मृगवीथी और वैश्वानरी वीथी इन तीन वीथियोंको 'दक्षिणमार्ग' कहा जाता है। जब सूर्यका रथ उत्तरायण मार्गपर रहता है और दोनों पहिये पवनरूपी पाशसे बँधकर ध्रुवद्वारा खींचे जाते हैं, उस समय सूर्यकी 'आरोहण' गति कहलाती है। इसमें मण्डलके भीतरसे रथ चलता है ॥ ९ ॥ १० ॥ हे मुनिवर ! इस मान्द्य गतिमें दिन क्रमशः बढ़ने लगता है और रात छोटी होने लगती है। यही सौम्यायनका क्रम है ॥ ११ ॥ इसी प्रकार जब सूर्यका रथ दक्षिणायन मार्गपर पाश द्वारा खींचा जाता है, तब उसे 'अवरोहण' गति कहते हैं। इसमें मण्डलके बाहरसे गति होती है। उस समय सूर्यकी चाल बहुत तेज रहती है ॥१२॥ तब दिनका क्रमशः ह्रास और रात्रिकी वृद्धि आरंभ हो जाती है। विषुव मार्गपर सूर्यका रथ पाशद्वारा किसी ओर नहीं खींचा जाता–अतः साम्य रहता है ॥१३॥ सूर्य मण्डलके मध्यभागमें विराजमान रहते हैं। इसीलिये रात और दिन–दोनोंका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मान बराबर रहता है। जब ध्रुवकी आज्ञा मानकर पवन और पाश सूर्यके रथको खींचते हैं, उस समय भीतरके मण्डलोंमें ही सूर्य चक्कर लगाते हैं। पुनः ध्रुवके पाशसे मुक्त होते ही सूर्यका रथ बाहरके मण्डलोंमें घूमने लगता है। इस मेरुपर्वतके पूर्वभागमें इन्द्रकी पुरी देवधानी है ॥१४–१६॥ यमराजकी महान् पुरी संयमनी मेरुगिरिके दक्षिण भागमें है। निम्लोचनी नामक विशालपुरीमें वरुण रहते हैं। यह पुरी सुमेरुपर्वतके पश्चिम भागमें है ॥ १७ ॥ विभावरी नामसे प्रसिद्ध चन्द्रमाकी पुरी सुमेरुपर्वतसे उत्तर कही गयी है। ब्रह्मवादियोंका ऐसा कथन है कि सूर्य इन्द्रकी पुरीमें उदय होते हैं ॥१८॥ वे जब संयमनी पुरीमें पहुँचते हैं, तब दोपहर हो जाता है। निम्लोचनी पुरीमें पहुँचनेपर सायंकाल हो जाता है और जब विभावरी पुरीमें सूर्य जाते हैं, तब आधी रातका समय हो जाता है ॥१९॥ उन सूर्यका सभी देवता सम्मान करते हैं। उन्हींके नियमको मानकर सम्पूर्ण प्राणी अपने कार्यमें लगते हैं। सुमेरुपर

दिके ॥ आकृष्येते यदा तौ तु ध्रुवेण समधिष्ठितौ ॥ १४ ॥ तदाभ्यंतरतः सूर्यो भ्रमते मंडलानि च ॥ ध्रुवेण मुच्यमानेन पुनः रश्मियुगेन
तु ॥ १५ ॥ तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मंडलानि च ॥ तस्मिन्मेरौ पूर्वभागे पुर्यैन्द्री देवधानिका ॥ १६ ॥ दक्षिणे वै संयमनी नाम याम्या महा-
पुरी ॥ पश्चान्निम्लोचनी नाम वारुणी वै महापुरी ॥१७॥ तदुत्तरे पुरी सौम्या प्रोक्ता नाम विभावरी ॥ ऐन्द्रपुर्या रवेः प्रोक्त उदयो ब्रह्मवादिभिः ॥१८॥
संयमन्यां च मध्याह्ने निम्लोचन्यां निमीलनम् ॥ विभावर्यां निशीथः स्यात्तिग्मांशोः सुरपूजितः ॥ १९ ॥ प्रवृत्तेश्च निमित्तानि भूतानां तानि
सर्वशः ॥ मेरोश्चतुर्दिशं भानोः कीर्तितानि मया मुने ॥ २० ॥ मेरुस्थानां सदा मध्यं गत एव विभाति हि ॥ सव्यं गच्छन्दक्षिणेन करोति स्वर्ण-
पर्वतम् ॥ २१ ॥ उदयास्तमये चैव सर्वकालं तु सन्मुखे ॥ दिशास्वशेषासु तथा सुरर्षे विदिशासु च ॥ २२ ॥ यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः
स्मृतः ॥ तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमनं रवेः ॥२३॥ नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः ॥ उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः ॥२४॥
शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्स्पृशत्येष पुरत्रयम् ॥ विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वे पुरे तथा ॥ २५ ॥ सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थित ॥ यैर्यत्र
दृश्यते भानुः सैव प्राचीति चोच्यते ॥ २६ ॥ तद्वामभागतो मेरुर्वर्ततेति विनिर्णयः ॥ यदि चैंद्र्याः प्रचलते घटिका दशपंचभिः ॥ २७ ॥ याम्यां

रहनेवालोंको सदा मध्याह्नकालके समान ही समय प्रतीत होता है। यद्यपि सूर्यका रथ सुमेरुको बायें करके चलता है, किन्तु प्रवह वायुकी प्रेरणासे दक्षिणको मुड़ जाया करता है। सूर्यके उदय और अस्तका समय सदा सबके सामने पड़ता है। हे नारद! शेष जितनी दिशाएँ और विदिशाएँ हैं, वहाँ रहनेवाले प्राणी जब सूर्यको देखते हैं, तब उनके लिये वही उदय-काल है और जब जहाँ छिप जाते हैं, उसी स्थानको वे अस्तस्थान मानते हैं ॥ २०–२४ ॥ हे नारद! जिस समय सूर्य इन्द्र आदि लोकपालोंकी पुरीमें पहुँचते हैं, उस समय इनके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित होने लगते हैं। दो विकर्ण, उनके तीन कोण तथा दो पुरियाँ—सबमें सूर्यकी किरणसे प्रकाश फैल जाता है। सम्पूर्ण द्वीप और वर्ष सुमेरुगिरिके उत्तर स्थित हैं। जो जहाँ सूर्यको उदय होते देखते हैं, उनके लिये वही पूर्व दिशा कही जाती है ॥२५॥२६॥ ठीक उसके वामभागमें मेरुपर्वत पड़ता है। इसीको सिद्धान्त माना गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हजारों किरणोंवाले सूर्य समय और मार्गके प्रदर्शक हैं। जब ये इन्द्रकी पुरीसे संयमनी पुरीको जाते हैं, तब पंद्रह घड़ीमें सवा दो करोड़, बारह लाख और पचहत्तर हजार योजनका मार्ग इन्हें तय करना पड़ता है ॥२७॥२८॥ इसी प्रकार वरुणलोक, चन्द्रलोक और इन्द्रलोकको जानेमें समय एवं मार्गकी दूरीका नियम है ॥२९॥ सूर्यको काल, चक्रात्मा और द्युमणि कहते हैं। समयकी जानकारी प्राप्त करानेके लिये इनका भ्रमण होता रहता है। चन्द्रमा आदि अन्य जितने आकाशचारी ग्रह हैं, वे नक्षत्रोंके साथ उदय और अस्त होते रहते हैं। शक्तिशाली सूर्यको त्रयीमय कहा जाता है। इनका रथ एक मुहूर्तमें चौंतीस लाख, आठसौ योजनका चक्कर काटता है। इसमें चारों दिशाओंकी चारों पुरियाँ पड़ जाती हैं ॥३०–३२॥ प्रवह नामकी वायु इनके रथके चक्केको सदा घुमाया करती है। जिस रथपर सूर्य बैठते हैं, उसका एक चक्का एक संवत्सरका रूप है, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं। बारह अरों, तीन धुरों छः नेमियोंसे यह

तदा योजनानां सपादं कोटियुग्मकम् ॥ सार्धद्वादशलक्षाणि पंचनेत्रसहस्रकम् ॥२८॥ प्रक्रामति सहस्रांशुः कालमार्ग प्रदर्शकः ॥ एवं ततो वारुणीं च सौम्यामैंद्रीं सहस्रदृक् ॥ २९ ॥ पर्येति कालचक्रात्मा द्युमणिः कालबुद्धये ॥ तथा चान्ये ग्रहाः सोमादयो ये दिविचारिणः ॥ ३० ॥ नक्षत्रैः सह चोद्यंति सह चास्तं व्रजंति ते ॥ एवं मुहूर्तेन रथो भानोरष्टशताधिकम् ॥ ३१ ॥ योजनानां चतुस्त्रिंशल्लक्षाणि भ्रमति प्रभुः ॥ त्रयीमयश्च-तुर्दिक्षु पुरीषु च समीरणात् ॥ ३२ ॥ प्रवहाख्यात्सदा कालचक्रं पर्येति भानुमान् ॥ यस्य चक्रं रथस्यैकं द्वादशारं त्रिनाभिकम् ॥ ३३ ॥ षण्नेमि कवयस्तं च वत्सरात्मकमूचिरे ॥ मेरुमूर्धनि तस्याक्षो मानसोत्तरपर्वते ॥ ३४ ॥ कृतेतरविभागो यः प्रोतं तत्र रथांगकम् ॥ तैलकारकयन्त्रेण चक्रसाम्यं परिभ्रमन् ॥ ३५ ॥ मानसोत्तरनाम्नीह गिरौ पर्येति चांशुमान् ॥ तस्मिन्नक्षे कृतं मूलं द्वितीयोऽक्षो ध्रुवे कृतः ॥ ३६ ॥ तुर्यमानेन तैलस्य यंत्राक्षवदितीरितः ॥ कृतोपरितनो भागः सूर्यस्थ जगतांपतेः ॥ ३७ ॥ रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनमायतः ॥ तत्तुर्यभागतः सोऽयं परिणाहेन कीर्तितः ॥ ३८ ॥ तावानर्करथस्यात्र युगस्तस्मिन्हयाः शुभाः ॥ सप्तच्छंदोऽभिधानाश्च सूरसूतेन योजिताः ॥ ३९ ॥ वहंति देवमादित्यं लोकानां सुखहेतवे ॥ पुरस्तात्सवितुः सूतोऽरुणः पश्चान्नियोजितः ॥ ४० ॥ सौत्ये कर्मणि संयुक्तो वर्तते गरुडाग्रजः ॥ तथैव वालखिल्याख्या

सम्पन्न है। इस रथको एक धुरीका सिरा सुमेरुपर्वतके शिखरपर और दूसरा मानसोत्तर पर्वतपर है ॥३३॥३४॥ सूर्यके रथका पहिया इस प्रकार घूमता है, मानो तेल पेरनेका कोल्हू चक्कर काट रहा हो ॥३५॥ यों मानसोत्तर पर्वतके ऊपर सूर्य परिभ्रमण करते हैं। इस धुरीमें एक अन्य धुरी भी है ॥ ३६ ॥ इसका परिमाण प्रथम धुरीसे चारगुना अधिक है। यह तैलयन्त्रकी भाँति घूमता हुआ ध्रुवलोकतक पहुँच जाता है ॥३७॥ हे नारद ! सूर्यके रथपर बैठनेके स्थानकी लम्बाई नौ लाख योजन है। यों सूर्यके रथका परिमाण कहा गया है ॥३८॥ अरुण इस रथके सारथि हैं। गायत्री आदि सात छन्द उसके उत्तम सात घोड़े कहे जाते हैं। सारथि द्वारा जाते जानेपर ये घोड़े जगत्के कल्याणार्थ महाभाग सूर्यको उन-उन स्थानोंपर पहुँचाया करते हैं। अरुण गरुड़के बड़े भाई हैं। सूर्यने इन्हें सारथिके कामपर नियुक्त कर रक्खा है। ये सूर्यके आगे उन्हींकी ओर मुख करके बैठते हैं। ऐसे ही अँगूठेके पोरवेके बराबर वालखिल्यादि ऋषिगण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूर्यके सामने उपस्थित रहते हैं। उन ऋषियोंकी संख्या साठ हजार हैं। वे सब सूर्यके सम्मुख खड़ होकर परम मनोहर वैदिक मन्त्रों द्वारा उनकी स्तुति करते हैं ॥३९-४२॥ ऐसे ही अन्य भी जो ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता हैं, उनमें से एक देवता एक महीना सूर्यकी उपासना करता है। यों सात महीनोंमें सात देवताओंके द्वारा क्रमशः सूर्यकी आराधना होती रहती है। सूर्य सर्वव्यापी और सुप्रसिद्ध देवता माने जाते हैं। ये नौ करोड़, पचास लाख योजन पृथ्वीमण्डलमें नित्य घूमते हैं। प्रत्येक क्षणमें दो हजार योजन पथ पार कर जाना इनकी गतिका नियम है ॥ ४३-४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

(चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी गति) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद! अब चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी अद्भुत गतिका वर्णन सुनो। इनकी गतिसे ही मनुष्योंको शुभ और अशुभ समयका परिज्ञान होता है ॥ १ ॥ जिस प्रकार कुम्हारका चाक घूमता है, तब उसपर बैठे हुए चींटे आदि कीड़े भी घूमते है। इन घूमनेवाले कीड़ोंकी एक दूसरी गति भी होती

ऋषयोंगुष्ठपर्वकाः ॥ ४१ ॥ प्रमाणेन परिख्याताः षष्टिसाहस्रसंख्यकाः ॥ स्तुवंति पुरतः सूर्यं सूक्तवाक्यैः सुशोभनैः ॥ ४२ ॥ तथा चान्ये च ऋषयो गंधर्वा अप्सरोरगाः ॥ ग्रामण्यो यातुधानाश्च देवाः सर्वे परेश्वरम् ॥ ४३ ॥ एकैकशः सप्त सप्त मासि मासि विरोचनम् ॥ सार्धलक्षोत्तरं कोटिनवकं भूमिमण्डलम् ॥ ४४ ॥ द्विसहस्रं योजनानां स गव्यूत्युत्तरं क्षणात् ॥ पर्येति देवदेवेशो विश्वव्यापी निरन्तरम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां चित्रं सोमादीनां गमादिकम् ॥ तद्गत्यनुसृता नृणां शुभाशुभनिदर्शना ॥ १ ॥ यथा कुलालचक्रेण भ्रमता भ्रमतां सह ॥ तदाश्रयाणां च गतिरन्या कीटादिनां भवेत् ॥ २ ॥ एवं हि राशिवृन्देन कालचक्रेण तेन च ॥ मेरुं ध्रुवं च सरतां प्रादक्षिण्येन सर्वदा ॥ ३ ॥ ग्रहाणां भानुमुख्यानां गतिरन्यैव दृश्यते ॥ नक्षत्रांतरगामित्वाद्भांतरे गमनं तथा ॥ ४ ॥ गतिद्वयं चाविरुद्धं सर्वत्रैष विनिर्णयः ॥ स एव भगवानादिपुरुषो लोकभावनः ॥ ५ ॥ नारायणोऽखिलाधारो लोकानां स्वस्तये भ्रमन् ॥ कर्मशुद्धिनिमित्तं तु आत्मानं वै त्रयीमयम् ॥ ६ ॥ कविभिश्चैव वेदेन विजिज्ञास्योऽर्कधाऽभवत् ॥ षट्सु क्रमेण ऋतुषु वसंतादिषु च स्वयम् ॥ ७ ॥ यथोपजोषमृतुजान्गुणान्वै

है। क्योंकि उस चाकपर ये कीड़े एक स्थानपर नहीं रहते—इधर-उधर चला-फिरा करते हैं ॥२॥ इसी प्रकार राशियोंसे उपलक्षित कालचक्रके अनुसार सुमेरु और ध्रुवको दाहिने करके घूमनेवाले सूर्य प्रभृति प्रधान ग्रहोंकी एक दूसरी भी गति दृष्टिगोचर होती है। इनकी वह गति नक्षत्रपर निर्भर रहती है ॥३ ४॥ अतः जब एक नक्षत्र समाप्त होकर दूसरा आ जाता है, तब इनका गतिमें भी परिवर्तन हो जाता है। ये दोनों गतियाँ परस्पर अविरुद्ध हैं—सर्वत्रके लिये यही निर्णय है। वेद और विद्वान् पुरुष जिन्हें जाननेके लिए सदा उत्सुक रहते हैं, वे ही अखिल जगत्के आधार आदिपुरुष भगवान् नारायण सम्पूर्ण प्राणियोंका कल्याण करनेके लिये जगत्में घूमते हैं ॥५॥६॥ साथ ही कर्मोंकी शुद्धिके लिए अपने वेदमय विग्रहको बारह भागोंमें विभक्त करके वसन्त आदि छः ऋतुओंमें समुचित रूपसे गुणोंकी व्यवस्था करते हैं। वर्णाश्रमधर्मका पालन करनेवाले सम्पूर्ण पुरुष निरन्तर वेदकी आज्ञाके अनुसार छोटे अथवा बड़े कर्मका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पादन करके श्रद्धापूर्वक योगसाधनके द्वारा इन सूर्यरूपी भगवान् नारायणकी उपासना करते हैं। जो ऐसा करते हैं, वे बड़ी सुगमतासे कल्याणके भागी बन जाते हैं—यह सिद्धान्त है। ये भगवान् सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा हैं। द्युलोक और पृथ्वीलोकके मध्य भागसे इनकी गति होती है ॥ ७–१० ॥ ये कालचक्रपर स्थित होकर चलते हैं। बारह महीने वर्षके अङ्ग हैं। मेष आदि राशियोंसे इनकी प्रसिद्धि है। सूर्य क्रमशः इन बारह महीनोंको भोगते हैं। एक महीनेमें दो पक्ष होते हैं— शुक्ल और कृष्ण ॥ ११ ॥ पितृमानसे यह एक दिन और रात कहलाता है। सौरमानसे इसे सवा दो नक्षत्र बताते हैं। सूर्य जितने समयमें वर्षके छठें भागको भोगते हैं, उसे विद्वान् पुरुष 'ऋतु' कहते हैं ॥१२॥ यह ऋतु वर्षका अवयव कहलाती है। सूर्य आकाशमार्गसे होकर जितने समयमें स्वर्ग और पृथ्वी सहित सारे आकाशमण्डलका चक्कर लगा जाते हैं, उतने समयको अयन जानना चाहिये। जितने समयमें वे स्वर्ग और पृथ्वीमण्डल समेत पूरे आकाशका चक्कर लगा लेते हैं, उसे संवत्सर कहते हैं। वर्ष पाँच प्रकारके कहे गये हैं—संवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर। समयकी गति जाननेवाले

विदधाति च ॥ तमेनं पुरुषाः सर्वे त्रय्या च विद्यया सदा ॥ ८ ॥ वर्णाश्रमाचारपथा तथाऽऽम्नातैश्च कर्मभिः ॥ उच्चावचैः श्रद्धया च योगानां च वितानकैः ॥ ९ ॥ अंजसा च यजंते ये श्रेयो विन्दंति ते मतम् ॥ अथैष आत्मा लोकानां द्यावाभूम्यंतरेण च ॥१०॥ कालचक्रगतो भुंक्ते मासान्द्वादशराशिभिः ॥ संवत्सरस्यावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा ॥११॥ नक्तं चेति स पादर्क्षद्वयमित्युपदिश्यते ॥ यावता षष्ठमंशं स भुंजीत ऋतुरुच्यते ॥ १२ ॥ संवत्सरस्यावयवः कविभिश्चोपवर्णितः ॥ यावताऽर्धेन चाकाशवीथ्यां प्रचरते रविः ॥ १३ ॥ तं प्राक्तना वर्णयंति अयनं मुनिपूजिताः ॥ अथ यावन्नभोमंडलं सह प्रतिगच्छति ॥१४॥ कात्स्न्येंन सह भुञ्जीत कालं तं वत्सरं विदुः ॥ संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमेव च ॥१५॥ अनुवत्सरमिद्वत्सरमिति पंचकमीरितम् ॥ भानोर्मांद्यशैघ्र्यसमगतिभिः कालवित्तमैः ॥१६॥ एवं भानोर्गतिः प्रोक्ता चन्द्रादीनां निबोधत ॥ एवं चन्द्रोऽर्करश्मिभ्यो लक्षयोजनमूर्ध्वतः ॥ १७ ॥ उपलभ्यमानो मित्रस्य संवत्सरभुजिं च सः ॥ पक्षाभ्यां चौषधीनाथो भुंक्ते मासभुजिं च सः ॥ १८ ॥ सपादमाभ्यां दिवसभुक्तिं पक्षभुजिं चरेत् ॥ एवं शीघ्रगतिः सोमो भुंक्ते नूनं भचक्रकम् ॥ १९ ॥ पूर्यमाणकलाभिश्चामराणां प्रीतिमावहन् ॥ क्षीयमाणकलाभिश्च पितॄणां चित्तरंजकः ॥ २० ॥ अहोरात्राणि तन्वानः पूर्वापरसुधस्रकैः ॥ सर्वजीवनिकायस्य प्राणो जीवः स एव हिं ॥ २१ ॥ भुंक्ते चैकैकनक्षत्रं

पुरुषोंका कथन है कि सूर्य सदा समान रूपसे नहीं चलते। इनकी चाल कभी मन्द, कभी तीव्र और कभी सम हो जाती है। इस प्रकार सूर्यकी गतिका विवेचन किया गया ॥१३-१६॥ हे नारद! अब चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी गतिका प्रसंग सुनो। ऐसे ही चन्द्रमा भी चलते हैं। सूर्यकी किरणोंसे चन्द्रमा एक लाख योजन ऊपर हैं ॥ १७ ॥ इन्हें औषधियोंका स्वामी कहा जाता है। सूर्यके एक वर्षके मार्गको ये दो पक्षोंमें, एक महीनेके मार्ग को सवा दो दिनोंमें और एक पक्षके मार्गको एक दिनमें पार कर जाते हैं। यों तीव्रगामी चन्द्रमा निश्चितरूपसे भूचक्रमें भ्रमण करते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ ये क्रमशः पूर्ण होती हुई अपनी कलाओंसे देवताओंको और क्षीण होती हुई कलाओंसे पितरोंको स्वाभाविकरूपसे प्रसन्न करते हैं ॥ २० ॥ अपने पूर्व और उत्तर पक्षोंके द्वारा ये देवताओंके दिन और रातका विभाजन करते हैं। समस्त जीवोंके प्राण और जीवन ये ही हैं ॥ २१ ॥ तीस मुहूर्तमें ये प्रत्येक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नक्षत्रको भोगते हैं। इनकी सोलह कलाएँ हैं। इनको अनादि श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है ॥ २२ ॥ मनोमय, अन्नमय, अमृतधामा और सुधाकर–ये इनके नाम हैं। देवता, पितर, मनुष्य, सर्प और वृक्ष आदि प्राणियोंके प्राणोंका पोषण करना इनका स्वभाव है। अतः ये सर्वमय कहलाते हैं। चन्द्रमाके स्थानसे तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्रमण्डल है ॥२३॥२४॥ ये नक्षत्र अभिजित्को लेकर अट्ठाईस माने जाते हैं। भगवान्ने इन्हें कालचक्रमें बाँध रक्खा है। मेरुपर्वतको दाहिने करके ये भ्रमण करते हैं ॥२५॥ हे नारद! इन नक्षत्रोंसे दो लाख योजन ऊपर शुक्र रहते हैं। शुक्र सूर्यके साथ-साथ चलते हैं। कभी उनके पीछे हो जाते हैं तो कभी आगे ॥२६॥ इनकी भी गतियाँ तीन प्रकारकी हैं–शीघ्र, मन्द और सम। प्राणियोंके लिए प्रायः ये अनुकूल ही रहते हैं। इन्हें शुभग्रह कहा जाता है ॥ २७ ॥ हे मुने! ये भार्गव वर्षाके विघ्नोंको सदा दूर करते रहते हैं। इनके स्थानसे बुधका स्थान दो लाख योजन ऊपर बतलाया

मुहूर्तत्रिंशता विभुः ॥ स एव षोडशकलः पुरुषोऽनादिरुत्तमः ॥ २२ ॥ मनोमयोऽप्यन्नमयोऽमृतधामा सुधाकरः ॥ देवपितृमनुष्यादिसरीसृपसवीरुधाम् ॥२३॥ प्राणाप्यायनशीलत्वात्स सर्वमय उच्यते ॥ ततो भचक्रं भ्रमति योजनानां त्रिलक्षतः ॥२४॥ मेरुप्रदक्षिणेनैव योजितं चेश्वरेण तु ॥ अष्टाविंशतिसंख्यानि गणितानि सहाभिजित् ॥ २५ ॥ ततः शुक्रो द्विलक्षेण योजनानामथोपरि ॥ पुरः पश्चात्सहैवासावर्कस्य परिवर्तते ॥ २६ ॥ शीघ्रमंदसमानाभिर्गतिभिर्विचरन्विभुः ॥ लोकानामनुकूलोऽयं प्रायः प्रोक्तः शुभावहः ॥ २७ ॥ वृष्टिविष्टंभशमनो भार्गवः सर्वदा मुने ॥ शुक्राद्बुधः समाख्यातो योजनानां द्विलक्षतः ॥ २८ ॥ शीघ्रमंदसमानाभिर्गतिभिः शुक्रवत्सदा ॥ यदाऽर्काद्व्यतिरिच्येत सौम्यः प्रायेण तत्र तु ॥ २९ ॥ अतिवाताभ्रपातानावृष्ट्यादिभयसूचकः ॥ उपरिष्टात्ततो भौमो योजनानां द्विलक्षतः ॥ ३० ॥ पक्षैस्त्रिभिस्त्रिभिः सोऽयं भुंक्ते राशीनथैकशः ॥ द्वादशापि च देवर्षे यदि वक्रो न जायते ॥ ३१ ॥ प्रायेणाशुभकृत्सोऽयं ग्रहौघानां च सूचकः ॥ ततो द्विलक्षमानेन योजनानां च गीष्पतिः ॥ ३२ ॥ एकैकस्मिन्नयो राशौ भुंक्ते संवत्सरं चरन् ॥ यदि वक्रो भवेन्नैवानुकूलो ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३३ ॥ ततः शनैश्चरो घोरो लक्षद्वयपरोमितः ॥ योजनैः सूर्यपुत्रोऽय त्रिंशन्मासैः परिभ्रमन् ॥ ३४ ॥ एकैकराशौ पर्येति सर्वान्राशीन्महाग्रहः ॥ सर्वेषामशुभो मन्दः प्रोक्तः कालविदां वरैः ॥ ३५ ॥ तत उत्तरतः

जाता है ॥२८॥ ये भी शुक्रके समान ही शीघ्र, मन्द और समान गतियोंसे सदा चलते हैं। जिस समय सूर्यको लाँघकर ये चलते हैं ॥२९॥ उस समय प्रायः आँधी चलने, बादल होकर इधर-उधर बिखर जाने और अवर्षणकी सूचना प्राप्त होती है। बुधसे एक लाख योजन ऊपर मङ्गल रहते हैं ॥३०॥ यदि ये वक्री न हों तो एक-एक राशिको तीन-तीन पक्षोंमें भोगते हैं। हे देवर्षे! यों बारह राशियोंमें मंगलका भ्रमण होता है ॥३१॥ अमंगलसूचक होनेके कारण प्रायः सबके लिए यह ग्रह अनिष्ट ही होता है। मंगलसे दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति रहते हैं ॥३२॥ यदि ये वक्री न हों तो एक राशिपर वर्ष भर रहते हैं। ये प्रायः ब्राह्मणकुलके अनुकुल रहते हैं ॥३३॥ बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर भयङ्कर शनिका स्थान है। यह घोर ग्रह कहलाता है। सूर्य इसके पिता हैं। यह एक राशिमें तीस महीने तक भ्रमण करता है ॥३४॥ यों इसके द्वारा प्रत्येक राशियाँ भोगी जाती हैं। कालज्ञ पुरुषोंका कथन है कि यह ग्रह प्रायः सबके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनिष्टकारक है ॥३५॥ हे नारद ! इससे ग्यारह लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका मण्डल है। सप्तर्षिगण समस्त प्राणियोंका कल्याण करते हुए ध्रुवलोक की, जिसे विष्णुपद भी कहा जाता है, प्रदक्षिणा करते रहते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते अष्टमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

(शिशुमारचक्रका वर्णन) हे नारद ! सप्तर्षियोंके स्थानसे तेरह लाख योजन ऊपर उत्तम ध्रुवलोक है। इसे विष्णुपद भी कहते हैं ॥१॥ महान् भागवत और त्रिलोकवन्दित ध्रुव यहाँ रहते हैं। इनके पिताका नाम उत्तानपाद है। सारा जगत् ध्रुवको मस्तक झुकाता है। इन्द्र, अग्नि, कश्यप और धर्म—ये सब मिलकर इनको देखते हुए अत्यन्त सम्मानके साथ निरन्तर इनकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ये ध्रुव कल्पभरके प्राणियोंके जीवनका आधार बनकर इस लोकमें विराजते हैं। काल कभी सोता नहीं। इसके वेगको सब नहीं देख सकते। इस

प्रोक्तमेकादशसुलक्षकैः ॥ योजनैः परिसंख्यातं सप्तर्षीणां च मण्डलम् ॥ ३६ ॥ लोकानां शं भावयन्तो मुनयः सप्त ते मुने ॥ तद्विष्णुपदं स्थानं दक्षिणं प्रक्रमन्ति ते ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथर्षिमण्डलादूर्ध्वं योजनानां प्रमाणतः ॥ लक्षैस्त्रयोदशमितैः परमं वैष्णवं पदम् ॥१॥ महाभागवतः श्रीमान्वर्ततै लोकवंदितः ॥ औत्तानपादिरिन्द्रेण वह्निना कश्यपेन च ॥ २ ॥ धर्मेण सह चैवास्ते समकालयुजा ध्रुवः ॥ बहुमानं दक्षिणतः कुर्वद्भिः प्रेक्षकैः सदा ॥३॥ आजीव्यः कल्पजीविनामुपास्ते भगवत्पदम् ॥ ज्योतिर्गणानां सर्वेषां ग्रहनक्षत्रभादिनाम् ॥४॥ कालेनानिमिषेणायं भ्राम्यतां व्यक्तरंहसा ॥ अवष्टंभस्थाणुरिव विहितश्चेश्वरेण सः ॥५॥ भाषते भासयन्भाषा स्वीयया देवपूजितः ॥ मेढिस्तंभे यथा युक्ताः पशवः कर्षणार्थकाः ॥६॥ मण्डलानि चरंतीमे सवनत्रितयेन च ॥ एवं ग्रहादयः सर्वे भगणाद्या यथाक्रमम् ॥७॥ अन्तर्बहिर्विभागेन कालचक्रे नियोजिताः ॥ ध्रुवमेवावलंब्याशु वायुनोदीरिताश्च ते ॥ ८ ॥ आकल्पांतं च क्रमंति खे श्येनाद्याः खगा इव ॥ कर्मसारथयो वायुवशगाः सर्व एव ते ॥९॥ एवं ज्योतिर्गणाः सर्वे प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ संयोगानुगृहीतास्ते भूमौ न निपतंति च ॥ १० ॥ ज्योतिश्चक्रं केचिदेतच्छिशुमारस्वरूपकम् ॥ सोपयोगं भगवता योगधारणकर्मणि ॥ ११ ॥ यस्यार्वाक्शिरसः कुंडलीभूतवपुषो मुने ॥ पुच्छाग्रे कल्पितो योऽयं ध्रुव उत्तानपादजः ॥ १२ ॥ लांगूलेऽस्य च संप्रोक्तः प्रजापतिरकल्मषः ॥

प्रभावशाली कालसे प्रेरित होकर ग्रह-नक्षत्र आदि सभी ज्योतिर्गण निरन्तर घूमते रहते हैं। परमेश्वरने ध्रुवको स्तम्भके रूपमें नियुक्त कर रक्खा है ॥ ४ ॥ ५ ॥ देवताओंसे सुपूजित ये ध्रुव स्वयं अपने तेजसे प्रकाशित होते रहते हैं। जिस प्रकार खलिहानके खंभेमें बँधे हुए बैल चारों ओर घूमते हैं, इसी प्रकार इन भगण आदि समस्त ग्रहोंकी भी गति है ॥ ६ ॥ ७ ॥ कालचक्रमें नियुक्त होकर ये क्रमशः भीतर और बाहर घूमते हैं। ध्रुवका आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे पूरे कल्पभर ये इस प्रकार चक्कर लगाते हैं, जैसे बाज आदि पक्षी आकाशमें विचर रहे हों। यों चक्कर काटनेवाले सम्पूर्ण ग्रहोंका प्रकृति और पुरुषसे संयोग सुलभ रहता है। अतः उनकी कृपासे ये जमीनपर नहीं गिरते ॥ ८–१० ॥ हे नारद ! कुछ लोग तो भगवान् श्रीहरिकी योगमायाके आधारपर स्थित इस ज्योतिश्चक्रका शिशुमारके रूपमें वर्णन करते हैं ॥११॥ हे मुने ! वे कहते हैं—वह शिशुमार कुण्डली मारे बैठा है। उसका सिर नीचे है। उसकी पूँछके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मूलभागमें पवित्रात्मा प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म देवताओंसे सत्कृत होकर विराजते हैं ॥१२॥१३॥ धाता और विधाता पूँछके अन्तमें तथा सप्तर्षिगण कटिभागमें शोभा पाते हैं। यह शिशुमार दाहिनी ओर अपने शरीरको मोड़कर बैठा है ॥१४॥ उत्तरायणवाले चौदह नक्षत्र इसके दाहिने भागमें हैं। दक्षिणायनवाले नक्षत्र इसके वामभागमें शोभित हैं ॥१५॥ हे नारद! लौकिक शिशुमार भी जब कुण्डली मारकर बैठता है, तब उसके दोनों पार्श्वभागमें समानसंख्यक अवयव रहते हैं। वैसी ही स्थिति वहाँ भी समझ लेनी चाहिये ॥१६॥ इसके पृष्ठभागमें अज वीथीसंज्ञक नक्षत्र अर्थात् मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़—ये तीन नक्षत्र हैं। उदरमें आकाशगङ्गा हैं। बायें और दाहिने कटिप्रदेशमें पुनवर्सु और पुष्य नक्षत्र हैं ॥१७॥ पिछले बायें और दायें पैरोंमें आर्द्रा और आश्लेषाका निवास है। बायीं और दाहिनी नासिकाओंमें अभिजित् और उत्तराषाढ़ नक्षत्र रहते हैं ॥ १८ ॥ हे देवर्षे! इसके वाम और दक्षिण नेत्रोंमें श्रवण और

अग्निरिंद्रश्च धर्मश्च तिष्ठन्ति सूरपूजिताः ॥ १३ ॥ धाता विधाता पुच्छांते कट्यां सप्तर्षयस्ततः ॥ दक्षिणावर्तभोगेन कुण्डलाकारमीयुषः ॥ १४ ॥ उत्तरायणभानीह दक्षपार्श्वेऽर्पितानि च॥ दक्षिणायनभानीह सव्ये पार्श्वेऽर्पितानि च ॥ १५ ॥ कुण्डलाभोगवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ समसंख्याश्चावयवा भवन्ति कजनंदन ॥१६॥ अजवीथीपृष्ठभागे आकाशसरिदौदरे ॥ पुनर्वसुश्च पुष्यश्च श्रोण्यौ दक्षिणवामयोः ॥ १७ ॥ आर्द्राश्लेषे पश्चिमयोः पादयोर्दक्षवामयोः ॥ अभिजिच्चोत्तराषाढा नासयोर्दक्षवामयोः ॥ १८ ॥ यथासंख्यं च देवर्षे श्रुतिश्च जलभं तथा ॥ कल्पिते कल्पनाविद्भिर्नेत्रयोर्दक्षवामयोः ॥ १९ ॥ धनिष्ठा चैव मूलं च कर्णयोर्दक्षवामयोः ॥ मघादीन्यष्ट भानीह दक्षिणायनगानि च ॥ २० ॥ युञ्जीत वामपार्श्वीयवंक्रिषु क्रमतो मुने ॥ तथैव मृगशीर्षादीन्युदग्भानि च यानि हि ॥ २१ ॥ दक्षपार्श्वे वंक्रिकेषु प्रातिलोम्येन योजयेत् ॥ शततारा तथा ज्येष्ठा स्कन्धयोर्दक्षवामयोः ॥ २२ ॥ अगस्तिश्चोत्तरहनावधरायां हनौ यमः ॥ मुखेष्वंगारकः प्रोक्तो मंदः प्रोक्त उपस्थके ॥ २३ ॥ बृहस्पतिश्च ककुदि वक्षस्यर्को ग्रहाधिपः ॥ नारायणश्च हृदये चन्द्रो मनसि तिष्ठति ॥ २४ ॥ स्तनयोरश्विनौ नाभ्यामुशनाः परिकीर्तितः ॥ बुधः प्राणापानयोश्च गले राहुश्च केतवः ॥ २५ ॥ सर्वांगेषु तथा रोमकूपे तारागणाः स्मृता ॥ एतद्भगवतो विष्णोः सर्वदेवमयं वपुः ॥ २६ ॥ सन्ध्यायां प्रत्यहं ध्यायेत्प्रयतो वाग्यतो मुनिः ॥ निरी-

पूर्वाषाढ़का स्थान है ॥१९॥ धनिष्ठा और मूल दाहिने और बायें कानोंमें रहते हैं। हे मुने! दक्षिणायनके मघा आदि जो आठ नक्षत्र हैं, वे वामपार्श्वकी हड्डियोंके स्थानमें हैं। इसी प्रकार उत्तरायणके मृगशिरा आदि आठ नक्षत्र इसके ठीक विपरीत क्रमसे दक्षिण पार्श्वकी हड्डियोंके स्थानपर हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा दाहिने तथा बायें कन्धोंकी जगह हैं ॥२०–२२॥ ऊपरकी ठोढ़ीमें अगस्त्यका, नीचेकी ठोढीमें यमराजका, मुखमें मंगलका और जननेन्द्रियमें शनिका स्थान कहा गया है ॥ २३ ॥ ककुद्पर बृहस्पति, छातीपर ग्रहराज सूर्य, हृदयमें भगवान् नारायण तथा मनमें चन्द्रमा विराजते हैं ॥ २४ ॥ दोनों स्तनोंमें दोनों अश्विनीकुमारोंका तथा नाभिमें शुक्रका स्थान कहा जाता है। प्राण और अपानमें बुध तथा गलेमें राहु एवं केतु रहते हैं ॥ २५ ॥ ऐसे ही सभी अङ्गों और रोमकूपोंमें नक्षत्रमण्डल कहे गये हैं। हे नारद! भगवान् विष्णुका यह सर्वदेवमय दिव्य विग्रह है ॥ २६ ॥ संयमशील पुरुष प्रतिदिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सायंकालके समय मौन रहकर यत्नपूर्वक इस रूपका ध्यान करें। उस समय 'ॐ नमो ज्योतिर्लोकाय०' इस मन्त्रका जप करना चाहिये। जिसका अर्थ है—हे भगवन्! आप सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय, कालचक्ररूपसे विराजमान, देवताओंके अधिष्ठाता तथा परमपुरुष हैं। हम आपका ध्यान करते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ ग्रह, नक्षत्र और ताराओंके रूपमें भगवान्का जो यह आधिदैविक रूप है, इसका तीनों समय जप करनेवाले पुरुष पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। अथवा जो तीनों कालोंमें इसको नमस्कार करता है, उसका उस समयका किया हुआ पाप तुरंत नष्ट हो जाता है ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

(राहुमण्डल आदिका वर्णन) नारायण बोले—हे नारद! सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहुमण्डल कहा गया है। सिंहिकाके गर्भसे इसकी उत्पत्ति हुई है। योग्यता न होनेपर भी यह नक्षत्रकी भाँति विचरता है ॥१॥ यह चन्द्रमा और सूर्यको कष्ट देता है। किंतु भगवान् विष्णुकी कृपासे इसने अमरत्व और ग्रहत्व प्राप्त कर लिया है ॥२॥ तपते हुए सूर्यका जो यह बिम्ब

क्षमाणश्चोत्तिष्ठेन्मन्त्रेणानेन धीश्वरः ॥ २७ ॥ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥ २८ ॥ ग्रहर्क्षतारामयमाधि-
दैविकं पापापहं मंत्रकृतां त्रिकालम् ॥ नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टम-
स्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच॥ अधस्तात्सवितुः प्रोक्तमयुतं राहुलमण्डलम् ॥ नक्षत्रवच्चरति च सैंहिकेयोऽतदर्हणः ॥ १ ॥ सूर्याचन्द्रमसोरेव मर्दनः
सिंहिकासुतः ॥ अमरत्वं च खेटत्वं लेभे यो विष्ण्वनुग्रहात् ॥ २ ॥ यददस्तरणेर्बिम्बं तपतो योजनायुतम् ॥ तच्छादकोऽसुरो ज्ञेयोऽप्यर्कसाहस्र-
विस्तरम् ॥ ३ ॥ त्रयोदशसहस्रं तु सोमस्याच्छादको ग्रहः ॥ यः पर्वसमये वैरानुबंधी छादकोऽभवत् ॥४॥ सूर्याचन्द्रमसोर्दूराद्धवेच्छादनकारकः ॥
तन्निशम्योभयत्रापि विष्णुना प्रेरितं स्वकम् ॥ ५ ॥ चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालातिभीषणम् ॥ तत्तेजसा दुःसहेन समंतात्परिवारितम् ॥ ६ ॥
मुहूर्तो द्विजमानस्तु दूराच्चकितमानसः ॥ आरान्निवर्तते सोऽयमुपराग इतीव ह ॥७॥ उच्यते लोकमध्ये तु देवर्षे अवबुध्यताम् ॥ ततोऽधस्तात्समा-
ख्याता लोकाः परमपावनाः ॥ ८ ॥ सिद्धानां चारणानां च विद्याध्राणां च सत्तम ॥ योजनायुतविख्याता लोकाः पुण्यनिषेविताः ॥ ९ ॥ ततोऽ-

दृष्टिगोचर हो रहा है, इसका विस्तार दस हजार योजन है। चन्द्रमा बारह हजार योजनके विस्तारमें है। तेरह हजार योजनके विस्तारवाला यह राहु ग्रह सूर्य और चन्द्रमाके बिम्बको ढकनेका प्रयास निरन्तर करता रहता है। क्योंकि पूर्व समयका वैर इसे भूला नहीं है—ऐसा समझना चाहिये ॥३॥४॥ इतनी दूरीसे भी सूर्य और चन्द्रमाके बिम्बको ढँकनेके लिये राहु तत्पर रहता है—यह सुनकर भगवान् विष्णुने सूर्य-चन्द्र दोनोंके पास अपना सुदर्शन चक्र भेज दिया ॥५॥ उस भयङ्कर चक्रमें असीम ज्वाला थी। उसके दुःसह तेजसे सूर्य और चन्द्रमाका मंडल चारों ओरसे घिरा रहता है ॥६॥ राहु पास तो जा नहीं सकता। अतएव वह इनके बिम्बोंके सामने दूर ही रुक जाता है। फिर तुरन्त लौट पड़ता है ॥७॥ हे देवर्षे! इसी स्थितिको जगत्में उपराग (ग्रहण) कहते-यह जाननेका विषय है। हे नारद! राहुसे नीचे सिद्धों, चारणों और विद्याधरोंके परम पावन लोक कहे गये हैं। इन लोकोंका विस्तार दस हजार योजन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बताया जाता है। यहाँ पुण्यात्मा पुरुष निरन्तर निवास करते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे देवर्षे ! इन लोकोंके नीचे यक्षों, राक्षसों, भूतों, प्रेतों एवं पिशाचोंकी श्रेष्ठ विहारस्थली है ॥ १० ॥ इसके नीचे जहाँतक वायु चलती है और बादल दिखायी पड़ते हैं, उसे परम ज्ञानी पुरुषोंने 'अन्तरिक्ष लोक' कहा है ॥११॥ हे द्विजवर ! इसके नीचे सौ योजनकी दूरीपर वह पृथ्वी बतायी जाती है, जहाँतक गरुड़, बाज, सारस और हंस आदि पक्षी उड़ सकते हैं। ये सब पार्थिव पदार्थ हैं। यों पृथ्वीके परिमाण और स्थितिका वर्णन किया गया ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे देवर्षे ! इस पृथ्वीके नीचे सात भूविवर बताये जाते हैं। प्रत्येक विवरकी लम्बाई और ऊँचाई एक हजार योजन है ॥ १४ ॥ ये सभी विवर दस-दस हजार योजनकी दूरीपर हैं। ये भूविवर सभी ऋतुओंके लिए सुखप्रद हैं। हे विप्रवर नारद ! इनमें पहलेको अतल, दूसरेको वितल, तीसरेको सुतल, चौथेको तलातल, पाँचवेंको महातल, छठेंको रसातल और सातवेंको पाताल कहते हैं। इस प्रकार ये सातों विवर प्रसिद्ध हैं। ये विवर एक प्रकारके स्वर्ग ही हैं। इनमें कहीं-कहीं तो स्वर्गसे भी अधिक सुखकी सामग्रियें एकत्र हैं ॥ १५-१७ ॥ ये विषय-भोग, ऐश्वर्य,

प्यधस्ताद्देवर्षे यक्षाणां च सरक्षसाम् ॥ पिशाचप्रेतभूतानां विहाराजिरमुत्तमम् ॥१०॥ अन्तरिक्षं चलत्प्रोक्तं यावद्वायुः प्रवाति हि ॥ यावन्मेघास्तथोद्यन्ति तत्प्रोक्तं ज्ञानकोविदैः ॥ ११ ॥ ततोऽधस्ताद्योजनानां शतं यावद्द्विजोत्तम ॥ पृथिवी परिसंख्याता सुपर्णश्येनसारसाः ॥ १२ ॥ हंसादयः प्रोत्पतंति पार्थिवाः पृथिवीभवाः ॥ भूसन्निवेशावस्थानं यथावदुपवर्णितम् ॥ १३ ॥ अधस्तादवनेः सप्त देवर्षे विवराः स्मृताः ॥ एकैकशो योजनानामायामोच्छ्रायतः पुनः ॥ १४ ॥ अयुतांतरविख्याताः सर्वर्तुसुखदायकाः ॥ अतलं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं वितलं तथा ॥१५॥ तृतीयं सुतलं प्रोक्तं चतुर्थं वै तलातलम् ॥ महातलं पञ्चमं च षष्ठं प्रोक्तं रसातलम् ॥१६॥ सप्तमं विप्र पातालं सप्त ते विवराः स्मृताः ॥ एतेषु विलस्वर्गेषु दिवोऽप्यधिकमेव च ॥१७॥ कामभोगैश्वर्यसुखसमृद्धभुवनेषु च ॥ नित्योद्यानविहारेषु सुखास्वादः प्रवर्तते ॥ १८ ॥ दैत्याश्च काद्रवेयाश्च दानवा बलशालिनः ॥ नित्यप्रमुदिता रक्ताः कलत्रापत्यबंधुभिः ॥ १९ ॥ सुहृद्भिरनुजीवाद्यैः संयुताश्च गृहेश्वराः ॥ ईश्वरादप्रतिहतकामा मायाविनश्च ते ॥ २० ॥ निवसंति सदा हृष्टाः सर्वर्तुसुखसंयुताः ॥ मयेन मायाविभुना येषु येषु च निर्मिताः ॥ २१ ॥ पुरः प्रकामशो भक्ता मणिप्रवरशालिनः ॥ विचित्रभवनाट्टालगोपुराद्याः सहस्रशः ॥ २२ ॥ सभाचत्वरचैत्यादिशोभाढ्याः सुरदुर्लभाः ॥ नागासुराणां मिथुनैः सपारावतसारिकैः ॥ २३ ॥ कीर्णकृत्रिमभूमिश्च

सुख एवं समृद्धिके भुवन हैं। इनमें अनेकों उद्यान और विहार-स्थलियाँ हैं। यहाँ सुख एवं स्वादका अनुभव होता है ॥ १८ ॥ यहाँ रहनेवाले बलशाली दैत्य, दानव एवं नाग अपने स्त्री-पुत्र तथा बान्धवोंके साथ निरन्तर आनन्द करते हैं ॥ १९ ॥ वे अपने घरके स्वामी होते हैं। अनुचरों और सुहृदोंका समाज उनके पास रहता है। ईश्वरकी कृपासे उनकी प्रायः कोई कामना अधूरी नहीं रहती। वे बड़े मायावी होते हैं ॥२०॥ अतः सभी ऋतुओंमें सुखसे सम्पन्न होकर निवास करते हैं। वे सदा हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। उन भू-विवरोंके मायावी वैज्ञानिक मय दानवने बहुत-सी पुरियोंका निर्माण किया। वे पुरियाँ श्रेष्ठ मणियों, अत्यन्त अद्भुत सहस्रों गोपुरों, भवनों तथा अट्टालिकाओंसे सुशोभित हैं ॥२१॥२२॥ सभाभवन, मन्दिर और प्राङ्गण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे पुरियाँ देवताओंके लिए भी दुर्लभ हैं। स्थान-स्थानपर उन्हें विचित्र ढंगसे सजाया गया है। नाग और असुर अपनी स्त्रियोंके साथ वहाँ विहार करते हैं। कबू-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तर और मैना आदि पक्षी इन पुरियोंको मनोहर बना रहे हैं ॥ २३ ॥ विवरके स्वामियोंने इन पुरियामें विशाल भवन बनवा रखे हैं। वहाँ मनको मुग्ध करनेवाले बहुतसे बड़े-बड़े बगीचे हैं ॥२४॥ उन बगीचोंके वृक्ष फूलों और फलोंसे सदा लदे रहते हैं। वहाँ स्त्रियोंके विलासोपयोगी बहुतसे स्थान हैं। अतः उन उद्यानोंकी शोभा अधिक बढ़ गयी है ॥२५॥ अनेक प्रकारके पक्षियोंसे युक्त अगाध जलवाले बहुतसे जलाशय हैं। उनका जल बिल्कुल स्वच्छ है। पाठीन नामकी मछलियाँ उन्हें शोभित कर रही हैं। जलचर जन्तुओंके उछलनेसे जब जल क्षुब्ध हो जाता है, तब कुमुद, कल्हार तथा श्वेत, नील और रक्तवर्णके कमल हिलने लगते हैं ॥२६॥२७॥ वहाँ स्थान बनाकर रहनेवाले पक्षी अनेक प्रकारसे क्रीड़ा करते तथा इन्द्रियोंको उत्साहित करनेके लिए भाँति-भाँतिकी मीठी बोली बोलते रहते हैं ॥२८॥ उस स्थानपर देवताओंका श्रेष्ठ ऐश्वर्य भी किसी गिनतीमें नहीं रहता। वहाँके निवासी कभी भयभीत नहीं होते। बड़े-बड़े सर्पोंके मस्तकोंकी मणियाँ वहाँ निरन्तर इतनी अधिक चमकती रहती हैं कि उनके तेजसे अन्धकार ठहर ही नहीं सकता ॥२९॥३०॥ वहाँके निवासियोंको दिव्य औषधि, रसायन, पदार्थ

विवरेशगृहोत्तमैः ॥ अलङ्कृताश्चकासन्ति उद्यानानि महांति च ॥ २४ ॥ मनःप्रसन्नकारीणि फलपुष्पविशालिभिः ॥ ललनानां विलासार्हस्थानैः शोभितभांजि च॥२५॥ नादैर्विहंगमव्रातसंयुक्तजलराशिभिः॥ स्वच्छार्णःपूरितह्रदैः पाठीनसमलङ्कृतैः ॥२६॥ जलजंतुक्षुब्धनीरनीरजातैरनेकशः॥ कुमुदोत्पलकह्लारनीलरक्तोत्पलैस्तथा ॥२७॥ तेषु कृतनिकेतानां विहारैः संकुलानि च ॥ इन्द्रियोत्सवकारैश्च तथैव विविधैः स्वरैः ॥ २८ ॥ अमराणां च परमां श्रियं चातिशयन्ति च ॥ यत्र नैव भयं क्वापि कालाङ्गर्दिनरात्रिभिः ॥ २९ ॥ यत्राहिप्रवराणां च शिरःस्थैर्मणिरश्मिभिः ॥ नित्यं तमः प्रबाध्येत सदा प्रस्फुटकांतिभिः ॥ ३० ॥ न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसायनैः ॥ रसान्नपानस्नानाद्यैर्नाधयो न च व्याधयः ॥ ३१ ॥ वलीपलितजीर्णत्ववैवर्ण्यस्वेदगंधताः ॥ अनुत्साहवयोऽवस्था न बाधन्ते कदाचन ॥ ३२ ॥ कल्याणानां सदा तेषां न च मृत्युभयं कुतः ॥ भगवत्तेजसोन्यत्र चक्राच्चैव सुदर्शनात् ॥ ३३ ॥ यस्मिन्प्रविष्टे दैतेयवधूनां गर्भराशयः ॥ प्रायो भयात्पतन्त्येव स्रवन्ति ब्रह्मपुत्रक ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ प्रथमे विवरे विप्र अतलाख्ये मनोरमे ॥ मयपुत्रो बलो नाम वर्ततेऽखर्वगर्वकृत् ॥ १ ॥ षण्णवत्यो येन सृष्टा मायाः

रस, अन्न-पान एवं स्नान आदिकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। उन्हें रोग कभी होते ही नहीं ॥ ३१ ॥ बाल पकने, झुर्रियाँ पड़ने, बुढ़ापा आ जाने, शरीर विरूप होने, पसीनेसे दुर्गन्ध निकलने और थकावट आदिके रूपमें कभी उन्हें वृद्धावस्थाके कष्ट नहीं होते ॥ ३२ ॥ उनका समय सदा मंगलमय बीतता है। भगवान श्रीहरिके परम तेजस्वी सुदर्शनचक्रके सिवा उन्हें अन्य किसीसे भी मृत्युका भय नहीं रहता ॥ ३३ ॥ हे नारद ! जब सुदर्शनचक्र उस पुरीमें पहुँचता है, तब भयभीत होनेके कारण प्रायः राक्षसियोंके गर्भ गिर जाते हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अतल, वितल तथा सुतललोक वर्णन) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! अतल नामसे विख्यात प्रथम विवर परम मनोहर है। इस विवरमें बल नामक दानव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहता है। इस अत्यन्त अभिमानी दैत्यके पिताका नाम मय है ॥ १ ॥ इसने छियानवे प्रकारकी मायाएँ रची हैं, जिनसे सभी कामनाओंकी सिद्धिमें सहायता मिलती है। मायावी लोग उनमेंसे कुछ मायाओंको तुरन्त समझ जाते हैं ॥ २ ॥ वह बलवान् दैत्य जब जम्हाई लेता है, उसी समय बहुत-सी स्त्रियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिन्हें देखकर सारी त्रिलोकीके युवकोंका मन चंचल हो जाता है ॥३॥ पुंश्चली (अत्यधिक कामुकी), स्वैरिणी (सवर्ण पुरुषोंके साथ रमण करनेवाली) और कामिनी (असवर्ण पुरुषोंसे भोग करानेवाली) इन तीनों नामोंसे वे प्रसिद्ध हैं। वे अपने यारको बिलमें ले जाती हैं। वहाँ उसे सुवर्णमालती रस देकर सम्भोग योग्य बनाती हैं। तदनन्तर हाव-भाव, आलिंगन, कटाक्ष, मुसकान एवं मधुर वार्तालाप आदिसे मोहित करके उनसे भोग कराती हैं। वहाँ पहुँचे हुए पुरुष अपनेको भाग्यवान्, सिद्धपुरुष, दस सहस्र गजबलसे युक्त एवं महान् मानते हैं॥४-७॥ हे नारद! इस प्रकार मैंने अतललोककी स्थिति बतला दी। हे नारद! अब वितल नामवाले दूसरे विवरका कथा-प्रसंग सुनो। यह विवर अतलसे नीचे है। यहाँ हाटकेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् शंकर रहते हैं। ये अपने पार्षदोंको सदा

सर्वार्थसाधिकाः ॥ मायाविनो याश्च सद्यो धारयन्ति च काश्चन ॥२॥ जृम्भमाणस्य यस्यैव बलस्य बलशालिनः ॥ स्त्रीगणा उपपद्यंते लोकत्रयविमोहनाः ॥३॥ पुंश्चल्यश्चैव स्वैरिण्यः कामिन्यश्चेति विश्रुताः ॥ या वै विलायनं प्रेष्ठं प्रविष्टं पुरुषं रहः ॥४॥ रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा प्रयत्नतः ॥ स्वविलासावलोकानुरागस्मितविगूहनैः ॥ ५ ॥ संलापविभ्रमाद्यैश्च रमयंत्यपि ताः स्त्रियः ॥ यस्मिन्नुपयुक्तो जनो मनुते बहुधा स्वयम् ॥ ६ ॥ ईश्वरोऽहमहं सिद्धो नागायुतबलो महान् ॥ आत्मा मन्यमानः सन्मदांध इव कत्थते ॥ ७ ॥ एवं प्रोक्ता स्थितिश्चात्र अतलस्य च नारद ॥ द्वितीयविवरस्यात्र वितलस्य निबोधत ॥ ८ ॥ भूतलाधस्तले चैव वितले भगवान्भवः ॥ हाटकेश्वरनामाऽयं स्वपार्षदगणैर्वृतः ॥ ९ ॥ प्रजापतिकृतस्यापि सर्गस्य बृंहणाय च ॥ भवान्या मिथुनीभूय आस्ते देवाधिपूजितः ॥ १० ॥ भवयोर्वीर्यसंभूता हाटकी सरिदुत्तमा ॥ समिद्धो मरुता वह्निरोजसा पिबतीव हि ॥ ११ ॥ तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं दैत्यवल्लभम् ॥ दैत्यांगना भूषणार्हं सदा तं धारयंति हि ॥ १२ ॥ तद्बिलाधस्तलात्प्रोक्तं सुतलाख्यं बिलेश्वरम् ॥ पुण्यश्लोको बलिर्नाम आस्ते वैरोचनिर्मुने ॥१३॥ महेन्द्रस्य च देवस्य चिकीर्षुः प्रियमुत्तमम् ॥ त्रिविक्रमोऽपि भगवान्सुतले बलिमानयत् ॥ १४ ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीमाक्षिप्य स्थापितः किल दैत्यराट् ॥ इन्द्रादिष्वप्यलब्धा या सा श्रीस्तमनुवर्तते ॥१५॥ तमेव

साथ रखते हैं ॥८॥९॥ ब्रह्माकी बनायी हुई सृष्टिको बढ़ाना इनका प्रधान उद्देश्य है। देवताओंसे सुपूजित होकर ये हाटकेश्वर शिव भवानीके साथ विराजते हैं ॥१०॥ वहाँ भगवान् शंकर और पार्वतीके तेजसे हाटकी नामकी एक श्रेष्ठ नदी निकली है। वायुकी प्रेरणासे प्रचण्ड अग्निदेव उसका जल पीते रहते हैं ॥ ११ ॥ जल पीते समय अग्निदेव जो जल थूक देते हैं, वही हाटक नामसे प्रसिद्ध सुवर्ण बन जाता है। दैत्य उससे बहुत प्रेम करते हैं। उनकी स्त्रियाँ उससे आभूषण बनवाकर पहना करती हैं ॥ १२ ॥ हे नारद! इस वितलके नीचे सुतल नामका विवर कहा गया है। यह सभी विवरोंसे श्रेष्ठ माना जाता है। यहाँ विरोचनकुमार बलि रहते हैं ॥ १३ ॥ बलि बड़े यशस्वी पुरुष हैं। देवराज इन्द्रका परम प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे भगवान् श्रीहरि वामनरूपसे प्रकट हुए थे। उन्होंने ही बलिके इस लोकमें रहनेकी व्यवस्था की है ॥ १४ ॥ भगवान्ने पहले तीनों लोकोंकी सम्पत्ति यहाँ भेज दी। तत्पश्चात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दानवराज बलिको यहाँ बसाया। जिसे इन्द्रादि देवता भी नहीं पा सकते, वह अमित लक्ष्मी इनके पास है ॥ १५ ॥ बलि उन्हीं देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी आराधना करते हैं। इनका विचार सदा पवित्र रहता है। इस समय भी सुतललाकमें बलिका आधिपत्य है ॥ १६ ॥ हे नारद! महात्मा पुरुषोंका कथन है कि भगवान् वासुदेवमें समस्त पुरुषार्थ प्रदान करनेकी पूर्ण योग्यता है। ये अखिल जगत्के स्वामी श्रीहरि कहलाते हैं। एकबार ये दानपत्र बनकर बलिके पास पधारे और बलिने इन्हें सारी पृथ्वी दान दे दी। अवश्य हो उस दानके फलस्वरूप सुतललोकका राज्य मिल जाना ही सर्वथा समुचित नहीं माना जा सकता ॥ १७ ॥ १८ ॥ क्योंकि यदि कोई उन देवाधिदेवके नामका विवश होकर भी उच्चारण कर लेता है तो वह अपने कर्मरूपी बन्धनकी रस्सियोंको अनायास ही काट देता है ॥ १९ ॥ ये भगवान् सम्पूर्ण संसारके निपुण शासक हैं। योगी पुरुष क्लेशरूपी बन्धनको काटनेके लिये निरन्तर सांख्य-याग आदिका साधन करते हैं ॥२०॥ ऐसे प्रभुके द्वारा बलिको सुतललोकका दान कोई उदारता नहीं कहां जा सकती। हे नारद ! हम लोगोंपर भगवान्की यह महती कृपा समझनी

देवदेवेशमाराधयति भक्तितः ॥ व्यपेतसाध्वसोऽद्यापि वर्तते सुतलाधिपः ॥ १६ ॥ भूमिदानफलं ह्येतत्पात्रभूतेऽखिलश्वरे ॥ वर्णयन्ति महात्मानो नैतद्युक्तं च नारद ॥ १७ ॥ वासुदेवे भगवति पुरुषार्थप्रदे हरौ ॥ एतद्दानफलं विप्र सर्वथा न हि युज्यते ॥ १८ ॥ यस्यैव देवदेवस्य नामापि विवशो गृणन् ॥ स्वकीयकर्मबंधीयगुणान्विधुनुतेऽञ्जसा ॥१९॥ तत्क्लेशबंधहानाय सांख्ययोगादिसाधनम् ॥ कुर्वते यतयो नित्यं भगवत्यखिलेश्वरे ॥ २० ॥ न चायं भगवानस्माननुजग्राह नारद ॥ मायामयं च भोगानामैश्वर्यं व्यतनोत्परम् ॥२१॥ सर्वक्लेशाधिहेतुं तदात्मानुस्मृतिमोषणम् ॥ यं साक्षाद्भगवान्विष्णुः सर्वो[illegible]विदीश्वरः ॥ २२ ॥ याच्ञाच्छलेनापहृतं सर्वस्वं देहशेषकम् ॥ अप्राप्तान्योपाय ईशः पाशैर्वारुणसंभवैः ॥ २३ ॥ बंधयित्वाऽवमुच्यापि गिरिदर्यामिवाब्रवीत् ॥ असाविन्द्रो महामूढो यस्य मन्त्री बृहस्पतिः ॥ २४ ॥ प्रसन्नमिमत्यर्थमयाचल्लोकसम्पदम् ॥ त्रैलोक्य-मिदमैश्वर्यं कियदेवातितुच्छकम् ॥ २५ ॥ आशिषां प्रभवं मुक्त्वा यो मूढो लोकसम्पदि ॥ अस्मत्पितामहः श्रीमान्प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ २६ ॥ दास्यं वव्रे विभोस्तस्य सर्वलोकोपकारकः ॥ पित्र्यमैश्वर्यमतुलं दीयमानं च विष्णुना ॥२७॥ पितर्युपरते पीरे नैवैच्छद्भगवत्प्रियः ॥ तस्यातुलानुभावस्य

चाहिये। उन्होंने भोगोंके मायामय ऐश्वर्य इन्द्रको देनेके लिए यह प्रयत्न किया था ॥ २१ ॥ यह ऐश्वर्य सम्पूर्ण क्लेशोंका हेतु है। इसके आ जानेपर परमात्माका स्मरण मनसे दूर हो जाता है। भगवान् विष्णु साक्षात् ईश्वर हैं। उन्हें समस्त उपायोंका सहज ही पूर्ण ज्ञान है ॥ २२ ॥ छलपूर्वक याचना करके उन्होंने बलिका सब कुछ छीन लिया। केवल देहमात्र छोड़ दी। कारण, दूसरा कोई उपाय उस समय सुलभ नहीं था। भगवान् सर्वसमर्थ तो हैं ही। वे वरुणके पाशोंसे बाँधकर बलिको सुतललोकमें ले गए और उन्होंने उसे वहीं बसा दिया। उस समय बलिने अपना उद्गार इस प्रकार प्रकट किया था—बृहस्पतिके सदृश मन्त्री पाकर भी इन्द्र बड़े ही मूढ़ प्रतीत होते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसीलिए उन्होंने इन परम प्रसन्न श्रीहरिसे सांसारिक सम्पत्तिकी याचना की। भला, यह त्रिलोकीका ऐश्वर्य कितना नगण्य और तुच्छ है ॥ २५ ॥ भगवान्के आशीर्वादकी अपार महिमा है। उसे छोड़कर संसारकी सम्पत्तिमें प्रेम रखनेवाला अवश्य ही मूर्ख है। मेरे पितामह श्रीमान् प्रह्लादजी भगवान्से बहुत प्रेम रखते थे। सम्पूर्ण जगत्का कल्याण करना ही उन्हें अभीष्ट था। अतएव उन्होंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवानसे यही वर माँगा कि मेरे हृदयमें दास्यभावका उदय हो। उनके पिता वीर पुरुष थे। उनकी जीवनलीला समाप्त हो जानेपर भगवान् विष्णु उनकी अतुल सम्पत्ति मेरे पितामह प्रह्लादजीको दे रहे थे, किन्तु भगवत्प्रेमी मेरे पितामहजीने उसे लेना स्वीकार नहीं किया। भगवान्‌के प्रभावकी तुलना नहीं की जा सकती। वे अखिल जगत्‌की उपाधिसे सम्पन्न हैं ॥२६--२८॥ मुझ जैसा दोषोंका भण्डार व्यक्ति भला उनके प्रभावको कैसे जान सकता है। इस प्रकारके विचारसम्पन्न परम आदरणीय दानवराज बलि अब भी सुतललोकमें विराजमान हैं ॥ २९ ॥ स्वयं भगवान् श्रीविष्णुने उनका द्वारपाल होना स्वीकार कर लिया है। एक समयकी बात है—जगतको रुलानेवाला रावण दिग्विजयी होनेके विचारसे सुतललोकमें प्रवेश कर रहा था। इतनेमें भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् श्रीहरिने अपने पैरके अंगूठेसे उसे ऐसा झटका दिया कि वह दस हजार योजन दूर चला गया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ राजा बलि ऐसे परम उदार और श्रेष्ठ पुरुष हैं। सम्पूर्ण सुख भोगनेका सुअवसर उन्हें प्राप्त हैं। देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी कृपासे वे सुतललोकके राजा होकर विराजमान हैं ॥३२॥ इति श्रीदेवी-

सर्वलोकोपधीमतः ॥ २८ ॥ अस्मद्विधो नाल्पपक्वेतरदोषोऽवगच्छति ॥ एवं दैत्यपतिः सोऽयं बलिः परमपूजितः ॥ २९ ॥ सुतले वर्तते यस्य द्वारपालो हरिः स्वयम् ॥ एकदा दिग्जये राजा रावणो लोकरावणः ॥ ३० ॥ प्रविशन्सुतले तेन भक्तानुग्रहकारिणा ॥ पादांगुष्ठेन प्रक्षिप्तो योजनायुतमत्र हि ॥ ३१ ॥ एवंभूतानुभावोऽयं बलिः सर्वसुखैकभुक् ॥ आस्ते सुतलराजस्थो देवदेवप्रसादतः ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ततोऽधस्ताद्विवरकं तलातलमुदीरितम् ॥ दानवेन्द्रो मयो नाम- त्रिपुराधिपतिर्महान् ॥ १ ॥ त्रिलोक्याः शंकरेणायं पालितो दग्धपूस्त्रयः ॥ देवदेवप्रसादात्तु लब्धराज्यसुखास्पदः ॥ २ ॥ आचार्यो मायिनां सोऽयं नानामायाविशारदः ॥ पूज्यते राक्षसैर्घोरैः सर्वकार्यसमृद्धये ॥ ३ ॥ ततोऽधस्तात्सुविख्यातं महातलमिति स्फुटम् ॥ सर्पाणां काद्रवेयाणां गणः क्रोधवशो महान् ॥ ४ ॥ अनेकशिरसां विप्र प्रधानान्कीर्तयामि ते ॥ कुहकस्तक्षकश्चैव सुषेणः कालियस्तथा ॥ ५ ॥ महाभोगा महासत्त्वाः क्रूराः क्रूरस्वजातयः ॥ पतत्रिराजाधिपतेरुद्विग्नाः सर्व एव

भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

(तलातल, महातल, रसातल तथा पातालका वर्णन) भगवान् नारायण कहते हैं--हे नारद! सुतललोकके नीचेके विवरको 'तलातल' कहा जाता है। वहाँ दानवराज मय रहता है। पहले यह महान दैत्य 'त्रिपुर' नामके नगरका स्वामी था ॥१॥ त्रिलोकीकी रक्षाके लिए भगवान शंकरने इसकी तीनों पुरियाँ भस्म करके इसके यहाँ रहनेकी समुचित व्यवस्था कर दी थी। देवाधिदेव शंकर भगवान्‌की कृपासे इसे यहाँ सुखदायी राज्य प्राप्त हो गया है ॥ २ ॥ यह मायावियोंका गुरु है। इसे अनेक प्रकारका मायासम्बन्धी विज्ञान भलीभाँति ज्ञात है। सम्पूर्ण कार्योंमें सिद्धि पानेकी इच्छासे भयङ्कर दानवगण निरन्तर इसका सम्मान-सत्कार करते हैं ॥३॥ इस तालावके नीचे परम प्रसिद्ध 'महातल' नामक विवर है। इस विवरमें कद्रूके वंशज क्रोधवश आदि सर्पोंका समाज रहता है ॥ ४ ॥ हे नारद! इन सर्पोंके बहुतसे मस्तक होते हैं। इनमें प्रधान सर्पोंके नाम तुम्हें बताता हूँ—कुहक, तक्षक, सुषेण और कालिय ॥ ५ ॥ इनके बड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़े फन होते हैं। इनके शरीरमें असीम शक्ति होती है। ये बड़े भयानक होते हैं। इनकी जाति ही भयंकर है। पक्षिराज गरुड़से ये प्रायः उद्विग्न रहते हैं ॥६॥ ये सब भाँति-भाँतिसे क्रीड़ा रचनेकी कला जानते है। अपनी स्त्रियों, बालकों, सुहृदों और सम्बन्धियोंके साथ सदा आनन्दमग्न होकर ये विहार करते है ॥७॥ इस महातलके नीचेके विवरको रसातल कहते हैं। इस विवरमें बहुतसे दैत्य निवास करते हैं। जो 'पणि' नामसे विख्यात थे, उन दानवोंकी यही बस्ती है ॥ ८ ॥ ये दानव निवातकवच, हिरण्यपुरवासी और कालेय नामसे विख्यात हैं। इनकी देवताओंसे सदा शत्रुता बनी रहतो है ॥९॥ जन्मसे ही ये महान् पराक्रमी होते हैं। इनमें असीम साहस रहता है। परन्तु अखिल जगतके स्वामी भगवान् श्रीहरिके तेजसे इनकी शक्ति कुण्ठित रहती है ॥१०॥ अतः बिलमें सोये हुए सर्पोंकी भाँति ये सदा अपने विवरमें ही छिपे रहते है। इन्द्रकी एक दूतीका नाम सरमा हैं ॥ ११ ॥ उसने बहुतसे मन्त्रोंका आविष्कार किया था। उन मन्त्रोंके प्रभावसे बहुतेरे असुर महान दुःख भोग चुके हैं। इस बातको याद करके ये लोग सदा भयभीत रहते हैं। हे नारद! इस रसातलके नीचे 'पाताललोक' हैं।

ते ॥ ६ ॥ स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बस्य च संगताः ॥ प्रमत्ता विहरन्त्येव नानाक्रीडाविशारदाः ॥ ७ ॥ ततोऽधस्ताच्च विवरे रसातलसमाह्वये ॥
देतेया निवसंत्येव पणयो दानवाश्च ये ॥ ८ ॥ निवातकवचा नाम हिरण्यपुरवासिनः ॥ कालेया इति च प्रोक्ताः प्रत्यनीका हविर्भुजम् ॥ ९ ॥
महौजसश्चोत्पत्त्यैव महासाहसिनस्तथा ॥ सकलेशस्य च हरेस्तेजसा हतविक्रमाः ॥१०॥ बिलेशया इव सदा विवरे निवसंति हि ॥ ये वै वाग्भिः
सरमया शक्रदूत्या निरन्तरम् ॥ ११ ॥ मंत्रवर्णाभिरसुरास्ताडिता बिभ्यति स्म ह ॥ ततोऽप्यधस्तात्पाताले नागलोकाधिपालकाः ॥ १२ ॥ वासु-
किप्रमुखाः शंखः चुलिकः श्वेत एव च ॥ धनञ्जयो महाशंखो धृतराष्ट्रस्तथैव च ॥१३॥ शंखचूडः कंबलाश्वतरो देवोपदत्तकः ॥ महामर्षा महाभोगा
निवसन्ति विषोल्बणाः ॥ १४ ॥ पंचमस्तकावंतश्च फणासप्तकभूषिताः ॥ केचिद्दशफणाः केचिच्छतशीर्षास्तथाऽपरे ॥ १५ ॥ सहस्रशिरसः केऽपि
रोचिष्णुमणिधारकाः ॥ पातालरंध्रतिमिरनिकरं स्वमरीचिभिः ॥१६॥ विधमन्ति च देवर्षे सदा संजातमन्यवः ॥ अस्य मूलप्रदेशे हि त्रिशत्साहस्र-
केऽन्तरे ॥ १७ ॥ योजनैः परिसंख्याते तामसी भगवत्कला ॥ अनंताख्या समास्ते हि सर्वदेवप्रपूजिता ॥ १८ ॥ अहमित्यभिमानस्य लक्षणं यं
प्रचक्षते ॥ संकर्षणं सात्वतीयाः कर्षणं द्रष्टृदृश्ययोः ॥ १९ ॥ इदं भूमंडलं यस्य सहस्रशिरसः प्रभोः ॥ अनन्तमूर्तेः शेषस्य ध्रियमाणं च शीर्षके

यहाँ नागलोकके स्वामी बहुतसे सर्प रहते हैं ॥ १२ ॥ उनमें वासुकि सबसे प्रधान माना जाता है। उनके नाम हैं—शंख, कुलिक, श्वेत, धनञ्जय, महाशंख, धृतराष्ट्र, शंखचूड़, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त। इनके बहुत बड़े-बड़े फन हैं। ये बड़े क्रोधी और महान् विषधर हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ इनमेंसे कितने ही सर्प पाँच, सात, दस, सौ एवं हजार मस्तकोंसे सुशोभित हैं। उनके मस्तककी मणियाँ सदा जगमगाती रहती हैं। हे देवर्ष! वे सर्प अपनी मणियोंके तेजसे पातालके घोर अन्धकारको नष्ट कर देते हैं। क्रोधसे उनका शरीर सदा जलता रहता है। हे नारद! इस पाताललोकके नीचे तीस-हजार योजनकी दूरीपर भगवान् श्रीहरिकी एक तामसी कला विराजती है। सम्पूर्ण देवताओंसे सुपूजित इस कलाका नाम 'अनन्त' है ॥१५–१८॥ इस नित्य कलामें विशेपता यह है कि अहंकाररूपा होनेसे यह द्रष्टा और दृश्यको खींचकर एक कर देती है। अतएव इसे 'संकर्पण' कहते हैं ॥ १९ ॥ सहस्र मस्तकसे शोभा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पानेवाले ये भगवान शेष हैं। इन्हें 'अनन्त' कहा जाता है। इनके मस्तकपर टिका हुआ यह गोलाकार भूमण्डल ऐसा दिखायी पड़ता है, मानो सरसोंका दाना हो। समयानुसार जब इन प्रभुके मनमें जगत्के संहारकी इच्छा उत्पन्न होती है, तब इनकी भौंहोंके विवरसे संकर्षण नामक रुद्र प्रकट हो जाते हैं। ग्यारह रुद्रोंसे सुशोभित शिवका यह एक व्यूह है ॥ २० ॥ २१ ॥ ये रुद्र तीन नेत्रोंसे शोभा पाते हैं। ये स्वयं तीन नोकवाले त्रिशूलको हाथमें लेकर खड़े हो जाते हैं। इनकी शक्तिकी सीमा नहीं है। महान् भूतों अर्थात् समस्त जगत्का संहार ही इनका मुख्य उद्देश्य होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे मुने! भगवान् शेषनागके दोनों चरण-कमलोंके नख लाल मणिके समान परम सुन्दर हैं। जब बहुतसे नागराज एकान्त भक्तिसे भावित होकर प्रधान-प्रधान नागोंके साथ भगवान शेषके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं, तब उन्हें भगवानके मणिमय नखोंमें स्वयं अपने मणिनिर्मित कुण्डलोंसे प्रकाशित मुख एवं सुन्दर कपोल तथा गण्डस्थल दीखने लगते हैं ॥ २४–२६ ॥ वहाँ नागराजोंकी बहुत-सी कुमारियाँ भी रहती हैं। उनके सुन्दर अंग शरीरकी कान्ति बढ़ाया करते हैं। उनकी

॥ २० ॥ पृथ्वीगोलमशेषं हि सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥ यस्य कालेन देवस्य संजिहीर्षोः समं विभोः ॥ २१ ॥ चराचरं भ्रुवोरन्तर्विवरादुदपद्यत ॥
सांकर्षणो नाम रुद्रो व्यूहैकादशशोभितः ॥ २२ ॥ त्रिलोचनश्च त्रिशिखं शूलमुत्तंभयन्स्वयम् ॥ उदतिष्ठन्महासत्त्वो महाभूतक्षयङ्करः ॥ २३ ॥
यस्यांघ्रिकमलद्वंद्व शोणाच्छनभमण्डले ॥ विराजन्मणिविवेषु महाहिपतयोऽनिशम् ॥ २४ ॥ एकांतभक्तियोगेन सह सात्त्वतपुङ्गवैः ॥ प्रणमन्तः
स्वमूर्ध्ना ते स्वमुखानि समीक्षते ॥२५॥ स्फुरत्कुण्डलमाणिक्यप्रभामंडलभांज्यपि ॥ सुकपोलानि चारूणि गंडस्थलद्युतिमंति च ॥२६॥ नागराज-
कुलार्योऽपि चार्वंगविलसत्त्विषः ॥ विशदैर्विपुलैस्तद्वद्धवलैः सुभगैस्तथा ॥२७॥ रुचिरैर्भुजदंडैश्च शोभमाना इतस्ततः ॥ चंदनागुरुकाश्मीरपङ्कलेपेन
भूपिताः ॥२८॥ तदभिमर्षसंजातकामवेशसमायुताः ॥ ललितस्मितसंयुक्ताः सव्रीडं लोकयन्ति च ॥ २९ ॥ अनुरागमदोन्मत्तविघूर्णारुणलोचनम् ॥
करुणावलोकनेत्रं च आशासानास्तथाशिषः ॥ ३० ॥ सोऽनन्तो भगवान्देवोऽनन्तसत्त्वो महाशयः ॥ अनंतगुणवार्धिश्च आदिदेवो महाद्युतिः ॥ ३१ ॥
संहृतामर्षरोषादिवेगो लोकशुभाय च ॥ आस्ते महासत्त्वनिधिः सर्वदेवप्रपूजितः ॥ ३२ ॥ ध्यायमानः सुरैः सिद्धैरसुरैश्चोरगैस्तथा ॥ विद्याधरैश्च

भुजाएँ पर्याप्त लंबी, मोटी, सुन्दर, स्वच्छ एवं मनोहर होती हैं। उनसे वे परम सुशोभित होकर इधर-उधर घूमा करती हैं। चन्दन, अगुरु और कस्तूरीके आलेपसे वे अपने शरीरको सजाये रहती हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ भगवान संकर्षणके स्पर्शसे ही नागकन्यायें कामातुर हो जाती हैं। तब वे मन्द-मन्द मुसकाती हुई सलज्जभावसे भगवानको देखती हैं। प्रेममदसे उन्मत्त एवं मदसे विह्वल होकर वे भगवान शेषकी कृपापूर्ण दृष्टि तथा उनके आशीर्वादकी आशा लगाकर वहाँ निवास करती हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ भगवान अनन्तका हृदय अत्यन्त उदार है। उनके बल एवं पराक्रमका परिमाण नहीं किया जा सकता। उन आदिदेव तथा परम तेजस्वी प्रभुमें अनन्त गुण वर्तमान हैं ॥ ३१ ॥ जगत्का कल्याण करनेके लिए उन्होंने अपने अमर्ष और क्रोधके वेगको दूर कर दिया है। ऐसे महाशक्तिके परम आश्रय भगवान वहाँ विराजते हैं। सभी देवता उनकी उपासनामें संलग्न रहते हैं ॥ ३२ ॥ देवताओं, सिद्धों, असुरों,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नागों, विद्याधरों, गन्धर्वों और मुनियों द्वारा निरन्तर उनका ध्यान किया जाता है ॥ ३३ ॥ उनके नेत्र प्रेमके मदसे मुग्ध एवं विह्वल रहते हैं। अपनो अमृतमयी वाणीसे देवताओं तथा अपने पार्षदोंको परम सन्तुष्ट करना उन प्रभुका स्वभाव ही बन गया हैं ॥ ३४ ॥ वे गलेमें वैजयन्तीमाला पहनते हैं। उनकी वह माला कभी कुम्हला न सकनेपाले तुलसीके निर्मल और नवीन दलोंसे सुशोभित रहती है ॥ ३५ ॥ मतवाले भौंरोंका झुण्ड अपनी मधुर गुंजारसे सदा उसकी शोभा बढ़ाया करता है। वे देवाधिदेव भगवान शेष नीले रंगका वस्त्र पहनते और केवल एक कानमें कुण्डल धारण करते हैं ॥ ३६ ॥ उनकी अविनाशिनी और अत्यन्त विशाल भुजा हलके ककुद्पर शोभा पाती है। श्रेष्ठ पुरुषोंका कथन है कि ये भगवान शेष परम प्रधान देवता हैं। इनका हृदय अत्यन्त उदार है। सुवर्णमयी पृथ्वी इनके ऊपर इस प्रकार सुशोभित है, जैसे किसी मतवाले हाथीकी पीठपर हौदा रक्खा हो। इन उदारलीलाधारी शेष भगवान-का बड़े-बड़े देवता भी गुण गाया करते हैं। ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

गंधर्वैर्मुनिसंघैश्च नित्यशः ॥ ३३ ॥ अनारतमदोन्मत्तलोकविह्वललोचनः ॥ वाक्यामृतेन विबुधान्स्वपार्षद्गणानपि ॥ ३४ ॥ आप्यायमानः स विभुर्वैजयन्तीं स्रजं दधत् ॥ अम्लानाभिनवैः स्वच्छैस्तुलसीदलसंचयैः ॥३५॥ माद्यन्मधुकरव्रातघोषश्रीसंयुतां सदा ॥ नीलवासा देवदेव एककुण्डल-भूषितः ॥३६॥ हलस्य ककुदि न्यस्तसुपीवरभुजोऽव्ययः ॥ महेन्द्रः कांचनीं यद्वद्वरत्रां च मतंगमः ॥३७॥ उदारलीलो देवेशो वर्णितः सात्त्वतर्षभैः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ नारायण उवाच ॥ तस्यानुभावं भगवान्ब्रह्मपुत्रः सनातनः ॥ सभायां ब्रह्मदेवस्य गायमान उपासते ॥१॥ उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्याः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् ॥ यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकनामात्मन्नानाधात्कथमुह वेद तस्य वर्त्म ॥२॥ मूर्तिं नःपुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र॥ यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥ ३ ॥ यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्त्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा॥ हंत्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥४॥ मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम्॥ आनं-

(नारद द्वारा भगवान अनन्तका यशोगान तथा नरकोंकी नामावली) भगवान नारायण कहते हैं—महाभाग नारद सनातन पुरुष हैं। उन्हें ब्रह्माका मानस पुत्र कहा जाता है। एक समय वे ब्रह्माकी सभामें गये और भगवान अनन्तको आराधना करते हुए उनकी महिमा गाने लगे— ॥१॥ जिनका दर्शन पाकर इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके हेतुभूत सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंमें अपने कार्य करनेकी क्षमता आती है। जिनका रूप अनन्त एवं अनादि है। जो अपनेमें प्रपञ्चात्मक नाना प्रकारके जगत्को धारण किये हुए हैं, उन भगवान संकर्षणके रहस्यको भला कोई कैसे जान सकता है ? ॥ २ ॥ जिनमें यह सदसदात्मक अर्थात् कार्य-कारणभूत समस्त प्रपञ्च भास रहा है तथा स्वजन व्यक्तियोंको वशीभूत करनेके लिए की हुई जिनकी पराक्रमपूर्ण लीलाको मृगराज सिंहने अपनाया है, उन भगवान संकर्षणने हमपर विशेष कृपा करके यह परम शुद्ध सात्त्विक स्वरूप धारण किया है ॥ ३ ॥ कोई दुखी अथवा पतनोन्मुख व्यक्ति अनायास हँसीके रूपमें भी यदि उनके विख्यात नामका एक बार उच्चारण कर लेता है तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं—फिर, ऐसे भगवान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शेषको छोड़कर मुमुक्षु पुरुष दूसरे किस देवताकी शरणमें जायँ ? ॥ ४ ॥ इन भगवान् शेषके सहस्र मस्तक हैं। अनन्त होनेके कारण इन्हें अमितपराक्रमी कहा जाता है। पर्वतों, नदियों, समुद्रों एवं समस्त प्राणियोंसे सुशोभित यह भूमण्डल इनके एक मस्तकपर इस प्रकार ठहरा हुआ है, मानो धूलका एक सूक्ष्म कण हो। किसीके हजार जीभ हों, तब भी वह इन सर्वव्यापी प्रभुके प्रभावका वर्णन नहीं कर सकता ॥५॥ ऐसी अनुपम शक्तिसे शोभा पानेवाले भगवान् अनन्तके वीर्य अतिशय गुण और प्रभावकी सीमा नहीं पायी जा सकती। ये रसातलके मूलभागमें परम स्वतन्त्र होकर विराजमान हैं। चराचर जगत्की स्थिति बनी रहे--एतदर्थ इन्होंने लीलापूर्वक पृथ्वीको धारण कर रक्खा है ॥६॥ हे मुनिवर मनुष्योंके जैसे कर्म होते हैं, उन्हींके अनुसार उनको उच्च-नीच गतियोंकी प्राप्ति होती है ॥७॥ हे राजन्! भोगेच्छुक पुरुषोंकी ये गतियाँ होती हैं। मनुष्यों, पशुओं और पक्षियोंके प्रवृत्तिधर्मके परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाली ऊँच-नीच गतियाँ ये ही हैं। उन्हें मैंने बता दिया। अब और कुछ पूछो ॥८॥९॥ नारदजीने कहा—हे भगवन्! आप प्राणियोंकी विचित्र गतियोंके यथार्थ रहस्यको हमें सुनानेकी कृपा कीजिये॥१०॥ भगवान नारायण

त्यादनमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥५॥ मूले रसायाः स्थित आत्मतंत्रो यो लीलयाक्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥६॥ एता ह्येवेह तु नृभिर्गतयो मुनिसत्तम ॥ गन्तव्या बहुशो यद्वद्यथाकर्मविनिर्मिताः ॥ ७ ॥ यथोपदेशं च कामान्सदा कामयमानकैः ॥ एतावतीर्हि राजेंद्र मनुष्य-मृगपक्षिषु ॥ ८ ॥ विपाकगतयः प्रोक्ता धर्मस्य वशगातस्था ॥ उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं निबोधत॥९॥ नारद उवाच ॥ विचित्रमेतल्लोकस्य कथं भगवता कृतम् ॥ समानत्वे कर्मणां च तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥१०॥ नारायण उवाच ॥ कर्तुः श्रद्धावशादेव गतयोऽपि पृथग्विधाः ॥ त्रिगुणत्वात्सदा तासां फलं विसदृशं त्विह ॥११॥ सात्त्विक्या श्रद्धया कर्तुः सुखित्वं जायते सदा ॥ दुःखित्वं च तथा कर्तू राजस्या श्रद्धया भवेत् ॥१२॥ दुःखित्वं चैव मूढत्वं तामस्या श्रद्धयोदितम् ॥ तारतम्यात्तु श्रद्धानां फलवैचित्र्यमीरितम् ॥ १३ ॥ अनाद्यविद्याविहितकर्मणां परिणामजाः ॥ सहस्रशः प्रवृत्तास्तु गतयो द्विजपुङ्गव ॥ १४ ॥ तद्भेदान्वर्णयिष्यामि प्राचुर्येण द्विजोत्तम ॥ त्रिजगत्या अन्तराले दक्षिणस्यां दिशीह वै ॥ १५ ॥ भूमेरधस्तादुपरि त्वतलस्य च नारद ॥ अग्निष्वात्ताः पितृगणा वर्तन्ते पितरश्च ह ॥१६॥ वसंति यस्यां स्वीयानां गोत्राणां परमाशिषः ॥ सत्याः समाधिना शीघ्रं त्वाशासानाः परेण वै ॥१७॥ पितृराजोऽपि भगवान्संपरेतेषु जंतुषु॥ विषयं प्रापितेष्वेषु स्वीकीयैः पुरुषैरिह ॥१८॥ सगणो भगवत्प्रो-

कहते हैं--हे नारद! कर्ताकी श्रद्धाके भी सात्त्विक, राजस और तामस तीन भेद हैं। अतः उनके फलमें भी विभिन्नता होना स्वाभाविक है॥११॥ कर्तामें यदि सात्त्विकको श्रद्धा हो तो कर्मके फलस्वरूप उसे सुखप्रद गति मिलती है। राजसी श्रद्धा होनेसे वह कष्टप्रद गतिका अधिकारी होता है। तामसी श्रद्धाके प्रभावसे कर्ता दुखी और मूर्ख बन बैठता है। यों श्रद्धाके तारतम्यसे फलमें भी विचित्रता बतलायी गयी है ॥१२॥१३॥ हे द्विजवर! माया अनादि है। इसके बनाये हुए कर्म ही गतियोंके उत्पादक हैं। ये गतियाँ सहस्रोंकी संख्यामें हैं। अब हम उनके भेदोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे ॥ १४ ॥ हे नारद! त्रिलोकीके भीतर दक्षिण दिशामें अग्निष्वात्ता नामक पितृगण तथा अन्य पितर निवास करते हैं। यह स्थान पृथ्वीसे नीचे और अतललोकसे ऊपर है। ये पितृगण सत्यरूप हैं। ये सदा समाधिस्थ होकर यह आशा लगाये बैठे रहते हैं कि शीघ्र हमारे वंशजोंका कल्याण होगा ॥ १५-१७ ॥ वहीं पितरोंके स्वामी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् यमराज भी रहते हैं। उन्होंने अपना कार्य सम्पादन करानेके लिए बहुत-से पुरुषोंको नियुक्त कर रक्खा है ॥१८॥ उनके द्वारा नियुक्त वे पुरुष मरे हुए प्राणियोंको वहाँ ले जाते हैं। भगवान्की आज्ञाके अनुसार दण्डविधान करना यमराजका प्रधान कर्तव्य है। अपने गणोंके साथ रहकर वे विचारपूर्वक कर्म और दोषके अनुसार प्राणियोंको यथोचित दण्ड दिया करते हैं ॥ १९ ॥ वे परम ज्ञानी हैं। अपने गणोंको सदा सावधान करते रहते हैं। यथास्थान नियुक्त वे समस्त गण भी धर्मके रहस्यसे पूर्ण परिचित तथा परम ज्ञानी हैं ॥ २० ॥ हे नारद! नरकोंकी संख्या इक्कीस बतायी गयी है। कुछ लोग कहते हैं कि इनकी संख्या अट्ठाईस है। मैं क्रमशः इनका वर्णन करता हूँ—॥२१॥ तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, ॥ २२ ॥ कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, ॥ २३ ॥ संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टक-शाल्मली, वैतरणी, ॥२४॥ पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालभक्ष, सारमेयादन, ॥२५॥ अवीचि, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगण-भोजन, शूलप्रोत, ॥२६॥ दन्दशूक, अवटारोध, पर्यावर्तन और सूचीमुख। इन विभिन्न नामवाले अट्ठाईस नरकोंको यातना भोगनेका

त्वाज्ञापरो दमधारकः ॥ यथाकर्म यथादोषं विदधाति विचारदृक् ॥ १९ ॥ स्वान्गणान्धर्मतत्त्वज्ञान्सर्वानाज्ञाप्रवर्तकान् ॥ सदा प्रेरयति प्राज्ञो यथादेशनियोजितान् ॥ २० ॥ नरकानेकविंशत्या संख्यया वर्णयन्ति हि ॥ अष्टाविंशमितान्केचित्ताननुक्रमतो ब्रुवे ॥ २१ ॥ तामिस्र अंधतामिस्रो रौरवोऽपि तृतीयकः ॥ महारौरवनामा च कुंभीपाकोऽपरो मतः ॥ २२ ॥ कालसूत्रं तथा चासिपत्रारण्यमुदाहृतम् ॥ सूकरस्य मुखं चांधकूपोऽथ कृमिभोजनः ॥ २३ ॥ संदंशस्तप्तसूर्मिश्च वज्रकंटक एव च ॥ शाल्मली चाथ देवर्षे नाम्ना वैतरणी तथा ॥ २४ ॥ पूयोदः प्राणरोधश्च तथा विशसनं मतम् ॥ लालाभक्षः सारमेयादनमुक्तमतः परम् ॥२५॥ अवीचिरप्ययः पानं क्षारकर्दम एव च ॥ रक्षोगणाख्यसंभोजः शूलप्रोतोऽप्यतः परम् ॥ २६ ॥ दंदशूकोऽवटारोधः पर्यावर्तनकः परम् ॥ सूचीमुखमिति प्रोक्ता अष्टाविंशतिनारकाः ॥ २७ ॥ इत्येते नरका नाम यातनाभूमयः पराः ॥ कर्मभिश्चापि भूतानां गम्याः पद्मजसंभव ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे एकविंशोध्यायः ॥ २१ ॥

॥ नारद उवाच ॥ कर्मभेदाः कतिविधाः सनातनमुने मम॥ श्रोतव्यः सर्वथैवैते यातनाप्राप्ति भूमयः ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ यो वै परस्य वित्तानि दारापत्यानि चैव हि ॥ हरते स हि दुष्टात्मा यमानुचरगोचरः ॥ २ ॥ कालपाशेन संबद्धो याम्यैरतिभयानकैः ॥ तामिस्रनामनरके पात्यते

स्थान कहा जाता है। सभी प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अनुसार यातना-शरीर प्राप्त करके इनमें जानेको बाध्य होते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

(तामिस्र आदि नरकोंका वर्णन) नारदजीने कहा—हे सनातन मुने! विविध यातनाओंको प्राप्त करानेवाले कर्म भेद कितने प्रकारके होते हैं, मैं उनके बारेमें भली भाँति सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद! जो दूसरोंके धन, स्त्री और पुत्रका अपहरण करता है, उस दुरात्माको यमराजके दूत पकड़कर ले जाते हैं ॥ २ ॥ उन दूतोंकी आकृति बड़ी भयङ्कर होती है। उनके द्वारा कालपाशमें बँधा हुआ प्राणी यातना भोगनेके लिये 'तामिस्र' नामक नरकमें गिराया जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है ॥३॥ यमदूत हाथमें रस्सी लेकर प्राणीको पीटते हैं, उसे घुड़कते हैं और तरह-तरहके दण्ड दिया करते हैं। इस प्रकार उस जीवको महान् क्लेश भोगना पड़ता है ॥४॥ हे नारद! यातना पाते समय नारकी प्राणी विवश एवं मूर्छित हो जाता है। जो व्यक्ति परस्त्रीगमन करता है तो यमराजके दूत उसको 'अन्धतामिस्र' नामक नरकमें गिराते हैं। वहाँ गिरे हुए जीवको असह्य वेदना सहनी पड़ती है ॥ ५ ॥ ६ ॥ उनके नेत्र अन्धे हो जाते हैं। बुद्धि जवाब दे देती है। जड़ कटे हुए वृक्षकी भाँति नरकमें गिरते उसे किञ्चिन्मात्र देर नहीं लगती। इन्हीं विशेषताओंके कारण प्राचीन पुरुषोंने इस नरकका नाम 'अन्धतामिस्र' रखा है। 'यह मेरा है और यह मैं हूँ'—यों ममत्व रखकर जो दूसरेसे द्वेष करता हुआ प्रतिदिन केवल अपने ही परिवारके भरण-पोषणमें व्यस्त रहता है, वह प्राणी मृत्युके पश्चात् अपने अशुभ कर्मके प्रभावसे 'रौरव' नामक नरकमें गिरता है। यह नरक सभी प्राणियोंके लिये भयावह है। इस लोकमें जिन पुरुषोंके हाथसे जिन प्राणियोंकी हिंसा हो गयी रहती है ॥७–१०॥ वे सब भयंकर रुरु नामक जानवर बनकर नरकमें रहते हैं। जब मारनेवाला प्राणी उस नरकमें पहुँचता है, तब

यातनास्पदे ॥३ ॥ ताडनं दण्डनं चैव सन्तर्जनमतः परम्॥ याम्याः कुर्वन्ति पाशाढ्याः कश्मलं याति चैव हि ॥४॥ मूर्च्छामायाति विवशो नारकी पद्मभूसुत ॥ यः पतिं वंचयित्वा तु दारादीनुपभुज्यति ॥५॥ अन्धतामिस्रनरके पात्यते यमकिंकरैः ॥ पात्यमानो यत्र जंतुर्वेदनापरवान्भवेत् ॥६॥ नष्टदृष्टिर्नष्टमतिर्भवत्येवाविलम्बतः ॥ वनस्पतिर्भज्यमानमूलो यद्वद्भवेदिह ॥ ७ ॥ तस्मादप्यंधतामिस्रनाम्ना प्रोक्तः पुरातनैः ॥ एतन्ममाहमिति यो भूतद्रोहेण केवलम् ॥ ८ ॥ पुष्णाति प्रत्यहं स्वीयं कुटुम्बं कार्यलंपटः ॥ एतद्विहाय चात्रैव स्वाशुभेन पतेदिह ॥ ९ ॥ रौरवे नाम नरके सर्वसत्त्वभयावहे ॥ इह लोकेऽमुना ये तु हिंसिता जंतवः पुरा ॥१०॥ त एव रुरवो भूत्वा परत्र पीडयंति तम् ॥ तस्माद्रौरवमित्याहुः पुराणज्ञा मनीषिणः ॥ ११ ॥ रुरुः सर्पादतिक्रूरो जंतुरुक्तः पुरातनैः ॥ एवं महारौरवाख्यो नरको यत्र पूरुषः ॥ १२ ॥ यातनां प्राप्यमाणो हि यः परं देहसंभवः ॥ क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्ये घातयंति च ॥१३॥ य उग्रः पुरुषः क्रूरः पशुपक्षिगणानपि ॥ उपरंधयते मूढो याम्यास्तं रंधयंति च ॥१४॥ कुंभीपाके तप्ततैले उपर्यपि च नारद ॥ यावंति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्रकम् ॥ १५ ॥ पितृविप्रब्राह्मणध्रुक्कालसूत्रे स नारके ॥ अग्न्यर्काभ्यां तप्यमाने नारकी विनिवेशितः ॥ १६ ॥ क्षुत्पिपासादह्यमानोऽन्तःशरीरस्तथा बहिः ॥ आस्ते शेते चेष्टते चावतिष्ठति च धावति ॥१७॥ निजवे-

वे उसे अत्यन्त क्लेश देते हैं। इसी विशेषताके कारण पुराणज्ञ विद्वान् पुरुषोंने इसे 'रौरव' कहा है ॥ ११ ॥ प्राचीन पुरुष बता चुके हैं कि यह रुरुनामक जन्तु सर्पसे भी अधिक भयंकर होता है। इसी प्रकार 'महारौरव' भी है। यातना भोगनेके लिये दूसरा सूक्ष्म यातना-शरीर पाकर प्राणी उस 'महारौरव'में जाता है। मांस खानेवाले रुरु नामक जन्तु उस नारकी जीवके मांसमें बहुत बुरी तरह चोट पहुँचाते हैं ॥१२॥१३॥ हे नारद! जो उग्र स्वभाववाला मूर्ख एवं निर्दयी पुरुष पशु-पक्षी आदि जीवोंको मारकर पकाता है, उसे यमराजके दूत 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें—जहाँ सदा तेल खौलता रहता है—डालकर पकाते हैं। मारे जानेवाले पशुके शरीरमें जितने रोएँ रहते हैं, उतने हजार वर्षोंतक मारनेवाला व्यक्ति इसी कुम्भीपाकमें पकता है ॥१४॥१५॥ पिता और ब्राह्मणसे वैर करनेवाले प्राणीको नारकी कहते हैं। ऐसा व्यक्ति सूर्य एवं अग्निसे सदा संतप्त रहनेवाले 'कालसूत्र' मामक नरकमें स्थान पाता है ॥ १६ ॥ उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भीतर भूख और प्यासकी ज्वाला धधकती रहती है और बाहरसे उसके शरीरको सूर्य एवं अग्निका प्रचण्ड तांप जलाता रहता है। जिससे वह अत्यन्त घबराकर कभी बैठता, कभी लेटता, कभी कोई चेष्टा करता, कभी उठकर खड़ा होता और कभी दौड़ने लगता है ॥ १७ ॥ हे देवर्षे ! किसी विपत्तिका समय न रहनेपर भी जो अपने वेदविहित मार्गसे हटकर पाखण्डका आश्रय लेता है, उस पापी व्यक्तिको यमदूत 'असिपत्र' नामक नरकमें डाल देते हैं। वे जब उसे कोड़ोंसे मारते हैं, तब वह नारकी जीव अत्यन्त उतावला होकर बड़ी तेजीसे इधर-उधर भागने लगता है। ऐसी स्थितिमें 'असिपत्र'से उसका सारा शरीर छिद जाता है। उस असिपत्रमें दोनों ओर तेज धारं रहती है ॥ १८-२० ॥ सम्पूर्ण शरीर छिद जानेपर 'हाय ! मैं मारा गया' ऐसा कहकर वह चीख उठता है। अपार कष्ट भोगनेसे वह पद-पदपर गिरने लगता है ॥२१॥ इस प्रकार उसे अपने कुकर्मका फल भोगना पड़ता है। जो पुरुष राजा अथवा राजकर्मचारी होकर अधर्मपूर्वक शासन करता तथा ब्राह्मणको भी शारीरिक दण्ड देता है, वह नरकका अधिकारी पापी व्यक्ति यमराजके दूतों द्वारा 'सूकरमुख' नामक नरकमें गिराया जाता है।

दपथाद्यो वै पाखंडं चोपयाति च ॥ अनापद्यपि देवर्षे तं पापं पुरुषं भटाः ॥१८॥ असिपत्रवनं नाम नरकं वेशयंति च ॥ कशया प्रहरंत्येव नारकी
तद्गतस्तदा ॥१९॥ इतस्ततो धावमान उत्तालमतिवेगितः ॥ असिपत्रैश्छिद्यमान उभयत्र च धारभिः ॥ २० ॥ संछिद्यमानसर्वांगो हा हतोऽस्मीति
मूर्च्छितः ॥ वेदनां परमां प्राप्तः पतत्येव पदे पदे ॥२१॥ स्वधर्मानुगतं भुक्ते पाखंडफलमल्पधीः ॥ यो राजा राजपुरुषो दंडयेद्वै त्वधर्मतः ॥ २२ ॥
द्विजे शरीरदंडं च पापीयान्नारकी च सः ॥ नरके सूकरमुखे पात्यते यमकिंकरैः ॥ २३ ॥ विनिष्पिष्टावयवको बलद्भिस्तथेक्षुवत् ॥ आर्तस्वरेण
स्वनयन्मूर्च्छितः कश्मलं गतः ॥ २४ ॥ स पीड्यमानो बहुधा वेदनां यात्यतीव हि ॥ विविक्तपरपीडो योऽप्यविविक्तपरव्यथाम् ॥ २५ ॥ ईश्वरां-
कितवृत्तीनां व्यथामाचरते स्वयम् ॥ स चांधकूपे पतति तदभिद्रोहयंत्रिते ॥ २६ ॥ तत्रासौ जंतुभिः क्रूरैः पशुभिर्मृगपक्षिभिः ॥ सरीसृपैश्च मश-
कैर्यूकामत्कुणजातिभिः ॥ २७ ॥ मक्षिकाभिश्च तमसि दंदशूकैश्च पीड्यते ॥ परिक्रामति चैवात्र कुशरीरे च जंतुवत् ॥ २८ ॥ यस्तु संविहितैः
पंचयज्ञैः काकैश्च संस्तुतः ॥ अश्नाति चासंविभज्य यत्किंचिदुपपद्यते ॥ २९ ॥ स पापपुरुषः क्रूरैर्याम्यैश्च कृमिभोजने ॥ नरकाधमके दुष्टकर्मणा

॥२२॥२३॥ बलवान यमदूत उसके अङ्गोंको ईखकी भाँति कोल्हूमें पेरते हैं। वह असह्य पीड़ाके कारण आर्तस्वरसे चिल्लाता रहता है। यों उस प्राणीको अपने कुकर्मके फलस्वरूप अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। हे नारद ! मच्छर एवं खटमल प्रभृति जन्तु मनुष्यका रक्त चूसते हैं, परन्तु वे दूसरेकी पीड़ाको स्वयं समझ नहीं सकते। पर जो मनुष्य अन्य व्यक्तियोंकी व्यथासे परिचित है, वह यदि उन्हें कष्ट पहुँचाता है तो उस कुकर्मके फलस्वरुप उसे 'अन्धकूप' नामक नरकमें गिरना पड़ता है ॥ २४-२६ ॥ वह नरक बिल्कुल अन्धकारमय है। वैर चुकानेवाले पशु, पक्षी, मृग, सर्प, मच्छर, जूँ, खटमल, मधुमक्खी तथा दन्दशूक आदि जन्तुओंसे वह नरक भरा रहता है ॥ २७ ॥ निर्दयी व्यक्ति जब इस नरकमें पहुँचता है, तब वे जन्तु इसे पीड़ित करने लगते हैं। पीड़ासे ग्रस्त होकर वह व्यक्ति इधर-उधर ऐसे भागने लगता है, मानों शरीरके भयानक रोगग्रस्त हो जानेपर उसमें रहनेवाला जीव चक्कर काट रहा हो ॥२८॥ जो कुछ भी भोज्य-पदार्थ प्राप्त हो, उसे पञ्चयज्ञ करके विभाजित करनेके पश्चात् ही भोजन करना चाहिये—यह शास्त्रोक्त नियम है। जो पुरुष ऐसा नहीं करते, उन्हें 'काक' कहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गया है ॥ २९ ॥ इस कुकर्मके फलस्वरूप यमराजके भयंकर दूत उस पापी प्राणीको 'कृमिभोजन' नामक नरकमें गिराते हैं ॥ ३० ॥ उस नरकमें एक लाख योजन विस्तृत एक भयंकर कृमिकुण्ड है। भोजन बनाकर अकेला स्वयं ही खा जानेवाला व्यक्ति कीड़ा होकर उस कुण्डमें वास करता है और उसको नरकके कीड़े बहुत काटते हैं ॥३१॥ हे देवर्षे! विपत्ति-काल होनेपर भी जो ब्राह्मण अथवा अन्य किसी भी वर्णके लोगोंसे चोरी या जबर्दस्ती करके सोना या रत्न छीन लेता है, उसे मरनेपर यमराजके दूत 'संदंश' नामक नरकमें गिराते हैं। वे वहाँ अग्निके समान सन्तप्त लोहेके पिण्डोंसे उसे दागते और सँड़सीसे उसकी खाल नोचते हैं। जो पुरुष अगम्या स्त्रीसे साथ रमण करता है अथवा जो स्त्री अगम्य पुरुषके साथ समागम करती है, उसे यमदूत 'तप्तसूर्मि' नामक नरकमें गिराकर कोड़ेसे पीटते हैं। फिर लोहेकी बनी जलती हुई स्त्रीकी मूर्तिसे पुरुषको और ऐसी ही जलती हुई लोहमयी पुरुष-मूर्तिसे स्त्रीको आलिङ्गन कराते हैं

परिपात्यते ॥ ३० ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णे कृमिकुण्डे भयङ्करे ॥ कृमिरूपं समासाद्य भक्ष्यमाणश्च तैः स्वयम् ॥ ३१ ॥ अप्रत्ताऽप्रहुतादो यः पातमाप्नोति तत्र वै ॥ यस्तु स्तेयेन च बलाद्धिरण्यं रत्नमेव च ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणस्यापहरति अन्यस्यापि च कस्यचित् ॥ अनापदि च देवर्षे तममुत्र यमानुगाः ॥ ३३ ॥ अयस्मयैरग्निपिंडैः संदंशैर्निष्कुषंति च ॥ योऽगम्यां योषितं गच्छेदगम्यं पुरुषं च या ॥ ३४ ॥ तावमुत्रापि कशया तांडयंतो यमानुगाः ॥ तिग्मया लोहमय्या च सूर्म्याऽप्यालिंगयंति तम् ॥ ३५ ॥ तां चापि योषितं सूर्म्याऽऽलिंगयंति यमानुगाः ॥ यस्तु सर्वाभिगमनः पुरुषः पापसंचयी ॥ ३६ ॥ निरयेऽमुत्र तं याम्याः शाल्मलीं रोपयंति तम् ॥ वज्रकंटकसंयुक्तां शाल्मलीं तामयस्मयीम् ॥ ३७ ॥ राजन्या राजपुरुषा ये वा पाखंडवर्तिनः ॥ धर्मसेतुं विभिंदंति ते परेत्य गता नराः ॥ ३८ ॥ वैतरण्यां पतंत्येव भिन्नमर्यादपातकाः ॥ नद्यां निरयदुर्गस्य परिखायां च नारद ॥ ३९ ॥ यादोगणैः समंतात्तु भक्ष्यमाणा इतस्ततः ॥ नात्मना वियुजंत्येव नासुभिश्चापि नारद ॥ ४० ॥ स्वीयेन कर्मपाकेनोपतपंति च सर्वतः ॥ विण्मूत्रपूयरक्तैश्च केशास्थिनखमांसकैः ॥ ४१ ॥ मेदोवसासंयुतायां नद्यामुपपतंति ते ॥ वृषलीपतयो ये च नष्टशौचा गतत्रपाः ॥ ४२ ॥ आचारनियमैस्त्यक्ताः पशुचर्यापरायणाः ॥ तेऽत्रातिकष्टगतयो

॥ ३२-३५ ॥ जो महान् पापी व्यक्ति समस्त प्राणियोंके साथ व्यभिचार करता है, उसे मरनेपर यमराजके दूत 'शाल्मली' नामक नरकमें रखते हैं। यह वज्रके समान लौहमय काँटोंसे भरा हुआ नरक है ॥३६॥३७॥ हे नारद! जो राजे या राज्यके कर्मचारी पाखण्डी बनकर धर्मको मर्यादाका पालन नहीं करते, वे मर्यादा-भङ्गरूपी पापके कारण मरनेपर 'वैतरणी' नामक नरकमें जाते हैं। नरकोंकी खाईके समान प्रतीत होनेवाली इस भयानक वैतरणी नामक नदीमें यमराजके दूत उन्हें ढकेल देते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे नारद! इस नरकमें पड़े हुए प्राणी इधर-उधर भागते हैं, उनके प्राण नहीं निकलते और बाध्य होकर अपने खोटे कर्मके फलको भोगते हुए वे सदा संतप्त रहते हैं। वह नदी मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, अस्थि, नख, चर्बी, मांस और मज्जा आदि घिनौनी वस्तुओंसे भरी रहती है। उसीमें गिरकर वे पापी छटपटाते हैं, जो उच्च कुलके होते हुए भी शूद्राके स्वामी बन जाते और सदाचारसे विमुख होकर निर्लज्जतापूर्वक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पशुवत् व्यवहार करते हैं, उन्हें अत्यन्त कष्टप्रद गतियाँ प्राप्त होती हैं। वे मरनेके बाद 'पूयोद' नामक नरकमें गिरते हैं। वह नरक पीब, विष्ठा, मूत्र, कफ, रक्त और मलसे भरा रहता है। यमराजके क्रूर दूत बड़े दुराग्रहके साथ उस नरकमें पड़े हुए प्राणीको ये अपवित्र वस्तुएँ खानेको विवश करते हैं ॥ ४०–४४ ॥ जो द्विजजातिके श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेकर कुत्ते और गदहे आदि जानवरोंको पालते हैं, शिकारसे बहुत प्रेम रखते तथा अपवित्र स्थानोंमें जाकर नित्य मृगोंको मारा करते हैं ॥ ४५ ॥ ऐसे लाखों अधम प्राणियोंको मरनेके बाद यमदूत 'प्राणरोध' नामक नरकमें गिराकर बाणोंसे छेदते हैं। दुर्नीतिपूर्ण मार्गपर चलनेवाले उन व्यक्तियोंकी बड़ी भारी दुर्दशा होती है ॥४६॥ जो दम्भी एवं नीच मनुष्य दम्भके लिए यज्ञका आयाजन करके उसमें पशुओंकी हिंसा करते हैं, उन्हें इस लोकसे जानेपर यमराजके दूत 'विशसन' नामक नरकमें गिराकर असह्य कोड़ोंसे पीटते हैं। जो द्विज कामसे मोहित होकर सगोत्र स्त्रीके साथ

विण्मूत्रश्लेष्मरक्तकैः ॥ ४३ ॥ श्लेष्ममलसमापूर्णे निपतंति दुराग्रहाः ॥ तदेव खादयन्त्येतान् यमानुचरवर्गकाः ॥ ४४ ॥ ये श्वानगर्द-भादीनां पतयो वै द्विजातयः ॥ मृगयारसिका नित्यमतीर्थे मृगघातकाः ॥ ४५ ॥ परेतांस्तान् यमभटा लक्षीभूतान्नराधमान् ॥ इषुभिश्च विभिंदंति तांस्तान्दुर्नयमागतान् ॥ ४६ ॥ ये दंभा दंभयज्ञेषु पशून्घ्नंति नराधमाः ॥ तानमुष्मिन्यमभटा नरके वैशसे तदा ॥ ४७ ॥ निपात्य पीडयंत्येव कशाघातैर्दुरासदैः । यो भार्यां च सवर्णां वै द्विजो मदनमोहितः ॥ ४८ ॥ रेतः पातयते मूढोऽमुं तं यमकिंकराः ॥ रेतःकुण्डे पातयंति रेतः संपाययंति च ॥ ४९ ॥ ये दस्यवोऽग्निदाश्चैव गरदाः सार्थघातकाः ॥ ग्रामान्सार्थान्विलुंपंति राजानो राजपूरुषाः ॥ ५० ॥ तान्परेतान्यमभटा नयन्ति श्वानकादनम् ॥ विंशत्यधिकसंख्याताः सारमेया महाद्भुताः ॥ ५१ ॥ सप्तशत्या समाख्याता रभसं खादयंति ते ॥ सारमेयादनं नाम नरकं दारुणं मुने ॥ ५२ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि अवीचिप्रमुखान्मुने ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ये नराः सर्वदा साक्ष्ये अनृतं भाषयन्ति च ॥ दाने विनिमयेऽर्थस्य देवर्षे पापबुद्धयः ॥ १ ॥ ते प्रेत्यामुत्र नरके

समागम करता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ उस मूर्ख व्यक्तिको यमदूत वीर्यसे भरे हुए नरककुण्डमें गिराकर बलपूर्वक वीर्य पिलाते हैं ॥ ४९ ॥ जो चोर, राजा अथवा राजपुरुष आग लगाते, विष देते, दूसरेकी सम्पत्ति नष्ट करते तथा गाँवों एवं धनोंको लूटते हैं, उनकी मृत्यु होनेपर यमराजके दूत उन्हें 'सारमेयादन' नामक नरकमें ले जाते हैं। इस नरकमें सात सौ बीस अत्यन्त विचित्र 'सारमेय (कुत्ते) रहते हैं। वे उन नारकी प्राणियोंको नोच-नोचकर खाते हैं। हे मुने ! इसीलिए इस नरकका नाम 'सारमेयादन' पड़ा है। इसके बाद अब 'अवीचि' आदि प्रमुख नरकोंका वर्णन करूँगा ॥ ५०–५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

(नारकीय यातनाओंका वर्णन) भगवान् नारायण कहते हैं–हे देवर्षे ! जो दान और धनके लेन-देनमें साक्षी बनकर सदा झूठ बोलते और झूठी गवाही देते हैं, वे पापबुद्धि मनुष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मरनेपर सौ योजन ऊँचे पर्वत-शिखरसे 'अवीचि'नामक नरकमें गिराये जाते हैं ॥१॥२॥ यह नरक बड़ा ही भयङ्कर है। इस आधारशून्य नरकमें प्राणियोंको नीचा सिर किये हुए गिरना पड़ता है। इन नरककी पथरीली भूमि जलके समान दीखती है। इसीसे इसे 'अवीचि' कहते हैं। हे देवर्ष ! वहाँ पत्थर-ही-पत्थर बिछे रहते हैं। उनपर गिरनेसे प्राणियोंका सारा अङ्ग तिल-तिल करके छितरा जाता है, परन्तु उनकी मृत्यु नहीं होती। अतः वे बाध्य होकर उसीमें पड़े-पड़े कष्ट भोगते हैं ॥३॥४॥ हे नारद ! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य प्रमादवश मदिरा पीते हैं, उन्हें यमदूत 'अयःपान' नामक नरकमें गिराकर आगसे गला हुआ लोहा पिलाते हैं ॥५॥ हे मुने ! जो स्वयं नीच कुलमें उत्पन्न हुआ है, किन्तु अभिमानवश जन्म, तप, विद्या, आचार, वर्ण या आश्रममें अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंका सम्मान नहीं करता, वह पुरुष अधम माना जाता है। मरनेके बाद यमराजके दूत उसका सिर नीचा करके 'क्षारकर्दम' नामक नरकमें गिरा

अवीच्याख्येऽतिदारुणे ॥ योजनानां शतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः पतंति हि ॥ २ ॥ अनाकाशेऽधःशिरसस्तदवीचीतिनामके ॥ यत्र स्थलं दृश्यते च जलवद्वीचिसंयुतम् ॥ ३ ॥ अवीचिमत्ततस्तत्र तिलशश्छिन्नविग्रहः ॥ म्रियते नैव देवर्षे पुनरेवावरोप्यते ॥ ४ ॥ यो वा द्विजो वा राजन्यो वैश्यो वा ब्रह्मसंभव ॥ सोमपीथस्तत्कलत्रं सुरां वा पिबतीव हि ॥ ५ ॥ प्रमादतस्तु तेषां वै निरये परिपातनम् ॥ कुर्वन्ति यमदूतास्ते पानं कार्ष्णायसो मुने ॥ ६ ॥ वह्निना द्रवमाणस्य नितरां ब्रह्मसंभव ॥ संभावनेन स्वस्यैव योऽधमोपि नराधमः ॥ ७ ॥ विद्याजन्मतपोवर्णाश्रमाचारवतो नरान् ॥ वरीयसोऽपि न बहु मन्यते पुरुषाधमः ॥ ८ ॥ स नीयते यमभटैः क्षारकर्दमनामके ॥ निरयेऽर्वाक्शिरा घोरा दुरंतयातनाऽश्नुते ॥ ९ ॥ ये वै नरा -यजंत्यन्यं नरमेधेन मोहिताः ॥ स्त्रियोऽपि वा नरपशुं खादंत्यत्र महामुने ॥ १० ॥ पशवो निहतास्ते तु यमसद्मनि संगताः ॥ सौनिका इव ते सर्वे विदार्य शितधारया ॥ ११ ॥असृक्पिबन्ति नृत्यन्ति गायन्ति बहुधा मुने ॥ यथेह मांसभोक्तारः पुरुषादा दुरासदाः ॥ १२ ॥ अनागसोऽपि येऽरण्ये ग्रामे या ब्रह्मपुत्रक ॥ वैश्रंभकैरुपसृतान्विश्रंभय्य जिजीविषून् ॥१३॥ शूलसूत्रादिषु प्रोतान्क्रीडनोत्कारकानिव ॥ पातयंति च ते प्रेत्य शूल-

देते हैं। वहाँ वह असह्य पीड़ाओंको भोगता है ॥६–९॥ हे मुनिवर ! जो काममोहित मनुष्य नर-बलिके द्वारा भैरव तथा यक्ष आदिका पूजन करते हैं। अथवा जो स्त्रियाँ नरपशुका मांस खाती हैं ॥१०॥ वे मरनेके पश्चात् 'रक्षोगण-भोजन' नामक नरकमें गिरते हैं। उन्होंने जिन प्राणियोंको इस लोकमें मारा और खाया है, ये सब-के-सब पहलेसे ही राक्षस होकर यमराजके यहाँ विद्यमान रहते हैं। हे मुने ! जब मारने-खानेवाले वे व्यक्ति उस नरकमें पहुँचते हैं, तब जो प्राणी मारे और खाये जा चुके थे, ठीक वैसे ही कसाईके रूपमें परिणत होकर तीखी कुल्हाड़ियोंसे वे उनके शरीरको काटते हैं। उससे जो रक्त निकलता है, उसे पीकर वे अनेक प्रकारसे नाचने और गाने लगते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे नारद ! ग्राममें अथवा जंगलमें रहनेवाले प्रत्येक प्राणीको जीनेकी इच्छा रहती है। जिन प्राणियोंका जीवन विश्वस्त व्यक्तियोंपर निर्भर है, उनको उन विश्वस्त व्यक्तियोंमेंसे जो फुसलाकर अपने पास बुला लेते हैं और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने मनोरञ्जनके लिये उनके बदनमें काँटे चुभाकर अथवा रस्सी आदिमें बाँधकर कष्ट देते हैं, उन्हें मरनेपर यमदूतोंकी प्रेरणासे 'शूलप्रोत' नामक नरकमें गिरना पड़ता है। उनके सभी अङ्गोंमें शूल आदि चुभाये जाते हैं। उन्हें भूख और प्यासकी असह्य पीड़ा होने लगती है। कंक और बटेर आदि तीखी चोंचवाले पक्षी उनकी देहमें जहाँ-तहाँ नोचते खाते हैं। उस समय उन्हें अपने पूर्वकृत पापोंकी स्मृति होती है ॥ १३–१५ ॥ हे विप्र ! जो क्रूर स्वभाववाले मनुष्य सर्पोंकी भाँति प्राणियोंको उद्विग्न करते हैं, वे मृत्युके उपरान्त 'दन्दशूक' नामक नरकमें गिराये जाते हैं। वह पाँच और सात मुखवाले सर्पोंसे पूर्णतया भरा रहता है। क्रूर स्वभाववाले सर्प बिलोंमें रहते हैं। जब प्राणी वहाँ पहुँचते हैं, तब वे तुरन्त उन्हें काटने लगते हैं ॥१६–१८॥ जो क्रूर पुरुष किसी व्यक्तिको अँधेरी कोठरी अथवा प्रकाशहीन घरोंमें रहनेके लिए विवश करते हैं, वे इस कुकर्मके फलस्वरूप 'अवटारोध' नामक नरकमें जाते हैं। उन पापी मनुष्योंको यमराजके दूत स्वयं अपने हाथसे वैसे ही अन्धकारमय स्थानोंमें रखकर विषैली अग्निके धुएँसे कष्ट पहुँचाते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ जो द्विज स्वयं गृहका

पाते पतंति ह ॥ १४ ॥ शूलादिषु प्रोतदेहाः क्षुत्तृड्भ्यां चातिपीडिताः ॥ तिग्मतुंडैः कंकवकैरितश्चेतश्च ताडिताः ॥ १५ ॥ पीडिता आत्मशमलं बहुधा संस्मरंति हि ॥ ये भूतानुद्वेजयंति नरा उल्बणवृत्तयः ॥१६॥ यथा सर्पादिकास्तेऽपि नरके निपतंति हि ॥ दंदशूकाभिधाने च यत्रोत्तिष्ठन्ति सर्वतः ॥ १७ ॥ पंचाननाः सप्तमुखा ग्रसंति नरकागतान् ॥ यथा बिलेशया विप्र क्रूरबुद्धिसमन्विताः ॥ १८ ॥ येऽवटेषु कुसूलादिगुहादिषु निरुन्धते ॥ तानमुत्रोद्यतकराः कीनाशपरिसेवकाः ॥१९॥ तेष्वेवोपविशित्वा च सगरेण च वह्निना ॥ धूमेन च निरुन्धन्ति पापकर्मरतान्नरान् ॥२०॥ योऽतिथीन्समयप्राप्तान्दिधक्षुरिव चक्षुषा ॥ पापेनेहालोकयेच्च स्वयं गृहपतिर्द्विजः ॥ २१ ॥ तस्यापि पापदृष्टेर्हि निरये यमकिंकराः ॥ अक्षिणी वज्रतुंडा ये कंकाः काकवटादयः ॥ २२ ॥ गृध्राः क्रूरतराश्चापि प्रसह्योत्पाटयंति हि ॥ य आढ्याभिमतिर्याति अहंकृत्यातिगर्वितः ॥२३॥ तिर्यक्प्रेक्षण एवात्राभिविशंकी नराधमः ॥ चिंतयाऽर्थस्य सर्वत्रायतिव्ययस्वरूपया ॥२४॥ शुष्यद्धृदयवक्त्रश्च निर्वृतिं नैव गच्छति ॥ ग्रहवद्रक्षते चार्थं स प्रेतो यमकिंकरैः ॥ २५ ॥ सूचीमुखे च नरके पात्यते निजकर्मणा ॥ वित्तग्रहं च पुरुषं वायका इव याम्यकाः ॥ २६ ॥ किंकराः सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः

स्वामी होकर अपने यहाँ समयपर आये हुए अतिथियोंको पापपूर्ण नेत्रसे इस प्रकार देखता है, मानो उन्हें भस्म ही कर डालेगा ॥ २१ ॥ मरनेपर उस पापदृष्टिवाले पुरुषको यमराजके सेवक नरकमें ढकेल देते हैं। उस नरकमें काक, कंक, वट और गीध आदि बहुतसे क्रूर पक्षी वज्रके समान चोंचोंसे सुशोभित होकर रहते हैं। वे सहसा उस नारकी व्यक्तिकी आँखें निकाल लेते हैं। इस परिवर्तनके कारण ही यह नरक 'पर्यावर्तन' नामसे विख्यात हुआ है ॥२२॥ जो इस जन्ममें अपनेको धनाढ्य मानकर अभिमानमें अत्यन्त चूर हो दूसरोंको टेढ़ी आँखोंसे देखता है, जो सबके प्रति सशंक रहता तथा धन कमाने और खर्च करनेकी चिन्ता जिसके मनसे कभी दूर नहीं होती, जिसका हृदय और मुख सदा सूखता रहता है, जिसे कहीं शान्ति नहीं मिलती तथा जो यक्षकी भाँति धनकी रक्षामें ही लगा रहता है ॥ २३–२५ ॥ वह अधम मनुष्य मरनेके पश्चात् अपने किये हुए खोटे कर्मके प्रभावसे यमराजके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूतों द्वारा 'सूचीमुख' नामक नरकमें गिराया जाता है। यमराजके अनुचर धनसे चिपके रहनेवाले उस व्यक्तिके सम्पूर्ण अंगोंको सूत्रोंसे दर्जियोंकी भाँति सी देते हैं ॥ २६ ॥ हे देवर्षि नारद! पापकर्म करनेवाले मनुष्योंको यातना भोगवानेके लिए इस प्रकारके सैकड़ों एवं हजारोंकी संख्यामें बहुत-से नरक हैं—ऐसा समझना चाहिये। उनमेंसे कुछ ही बतलाये गये हैं और बहुतोंका तो नाम ही नहीं लिया है ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे मुने! ये सभी नरक महान् दुःखप्रद हैं। पापी मनुष्योंको इनमें जाना पड़ता है। धर्मपरायण पुरुष सुखदायी लोकोंमें जाते हैं ॥ २९ ॥ हे मुनिवर! मैंने जिस प्रकार देवीके पूजनका रूप और आराधनका विधान तुम्हें बताया है, प्रायः वही अपना धर्म है। इसके अनुष्ठानमात्रसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता। सुपूजित होनेपर भगवती जगदम्बा संसाररूपी समुद्रसे मनुष्योंका उद्धार कर देती हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

परिवर्यंति हि ॥ एते बहुविधा विप्र नरकाः पापकर्मणाम् ॥ २७ ॥ नराणां शतशः संति यातनास्थानभूमयः ॥ सहस्रशोऽपि देवर्षे उक्तानुक्तास्तथापि हि ॥ २८ ॥ विशंति नरकानेतान् यातनाबहुलान्मुने ॥ तथा धर्मपराश्चापि लोकान् यान्ति सुखोद्धतान् ॥ २९ ॥ स्वधर्मो बहुधा गीतो यथा तव महामुने ॥ देवीपूजनरूपो हि देव्याराधनलक्षणः ॥ ३० ॥ येनानुष्ठितमात्रेण न नरो नरकं व्रजेत् ॥ सा देवी भवपाथोधेरुद्धर्त्री पूजिता नृणाम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ नारद उवाच ॥ धर्मश्च कीदृशस्तात देव्याराधनलक्षणः॥ कथमाराधिता देवी सा ददाति परं पदम् ॥ १ ॥ आराधनविधिः को वा कथमाराधिता कदा ॥ केन सा दुर्गनरकाद्दुर्गा त्राणप्रदा भवेत् ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देवर्षे शृणु चित्तैकाग्र्येण मे विदुषां वर॥ यथा प्रसीदते देवी धर्माराधनतः स्वयम् ॥ ३ ॥ स्वधर्मो यादृशः प्रोक्तस्तं च मे शृणु नारद ॥ अनादाविह संसारे देवी संपूजिता स्वयम् ॥ ४ ॥ परिपालयते घोरसङ्कटादिषु सा मुने ॥ सा देवी पूज्यते लोकैर्यथावत्तद्विधिं शृणु ॥ ५ ॥ प्रतिपत्तिथिमासाद्य देवीमाज्येन पूजयेत् ॥ घृतं दद्याद् ब्राह्मणाय

(देवीकी उपासनाके प्रसङ्गका वर्णन) नारदजीने पूछा—हे महाराज! देवीके आराधनरूपी श्रेष्ठ धर्मका क्या स्वरूप है तथा किस प्रकारसे उपासना करनेपर देवी परम पद प्रदान करती हैं ॥१॥ उनकी पूजाकी क्या विधि है तथा कैसे, कब एवं किस स्तोत्रसे आराधना करनेपर भगवती दुर्गा कष्टप्रद नरकरूपी दुर्गसे मनुष्योंका उद्धार करती हैं? ॥२॥ भगवान् नारायण कहते हैं— हे परम विद्वान् देवर्षि नारद! जिस प्रकार धर्मपूर्वक आराधना करनेपर भगवती स्वयं प्रसन्न हो जाती हैं, वह प्रसङ्ग अब तुम मनको एकाग्र करके मुझसे सुनो ॥ ३ ॥ हे नारद! अब स्वधर्मका स्वरूप भी समझ लो। यह संसार अनादि है। इसमें आकर जो भगवती जगदम्बाकी उपासना करता है, वह चाहे घोरसे घोर सकटमें ही क्यों न पड़ा हो परन्तु सर्वशक्तिमयी भगवती स्वयं उसकी रक्षा करनेमें संलग्न हो जाती हैं। अतएव प्राणी सम्यक् प्रकारसे देवीकी पूजा करे। यही उसका परम कर्तव्य है। अब पूजाकी विधि सुनो—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥४॥५॥ प्रतिपदा तिथिमें भगवती जगदम्बाकी गोघृतसे पूजा करनी चाहिये—अर्थात् षोडशोपचारसे पूजन करके नैवेद्यके रूपमें उन्हें गायका घृत अर्पण करके किसी शाक्त ब्राह्मणको दे देना चाहिये। इसके फलस्वरूप मनुष्य कभी रोगी नहीं हो सकता ॥ ६ ॥ द्वितीया तिथिको पूजन करके भगवती जगदम्बाको चीनीका-भोग लगावे और ब्राह्मणको दे दे। ऐसा करनेसे मनुष्य दीर्घायु होता है ॥७॥ तृतीयाके दिन भगवतीकी पूजामें दूधकी प्रधानता होनी चाहिये एवं पूजनके उपरान्त वह दूध ब्राह्मणोंको दे देना उचित है। यह सम्पूर्ण दुःखोंसे मुक्त होनेका एक उत्कृष्ट साधन है ॥ ८ ॥ चतुर्थीके दिन मालपूआका नैवेद्य अर्पण करे और फिर वह योग्य ब्राह्मणको दे दिया जाय। इस अपूर्व दानमात्रसे ही किसी प्रकारके विघ्न सामने नहीं आ सकते ॥९॥ पंचमी तिथिके दिन पूजा करके भगवतीको केला भोग लगाये और वह प्रसाद ब्राह्मणको दे दे। ऐसा करनेवाले पुरुषकी बुद्धिका विकास होता है॥१०॥

रोगहीनो भवेत्सदा ॥ ६ ॥ द्वितीयायां शर्करया पूजयेज्जगदंबिकाम् ॥ शर्करां प्रददेद्विप्र दीर्घायुर्जायते नरः ॥ ७ ॥ तृतीयादिवसे देव्यै दुग्धं पूजनकर्मणि ॥ क्षीरं दत्त्वा द्विजाग्रयाय सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ८ ॥ चतुर्थ्यां पूजनेऽपूपा देया देव्यै द्विजाय च ॥ अपूपा एव दातव्या न विघ्नैरभिभूयते ॥ ९ ॥ पंचम्यां कदलीजातफलं देव्यै निवेदयेत् ॥ तदेव ब्रह्मणे देयं मेधावान्पुरुषो भवेत् ॥ १० ॥ षष्ठीतिथौ मधु प्रोक्तं देवीपूजनकर्मणि ॥ ब्राह्मणाय च दातव्यं मधुकांतिर्यतो भवेत् ॥ ११ ॥ सप्तम्यां गुडनैवेद्यं देव्यै दत्त्वा द्विजाय च ॥ गुडं दत्त्वा शोकहीनो जायते द्विजसत्तम ॥ १२ ॥ नारिकेलमथाष्टम्यां देव्यै नैवेद्यमर्पयेत् ॥ ब्राह्मणाय प्रदातव्यं तापहीनो भवेन्नरः ॥ १३ ॥ नवम्यां लाजमंबायै चार्पयित्वा द्विजाय च ॥ दत्त्वा सुखाधिको भूयादिह लोके परत्र च ॥ १४ ॥ दशम्यामर्पयित्वा तु देव्यै कृष्णतिलान्मुने ॥ ब्राह्मणाय प्रदत्त्वा तु यमलोकाद्भयं न हि ॥ १५ ॥ एकादश्यां दधि तथा देव्यै चार्पयते तु यः ॥ ददाति ब्राह्मणायैतद्देवीप्रियतमो भवेत् ॥ १६ ॥ द्वादश्यां पृथुकान्देव्यै दत्त्वाऽऽचार्याय यो ददेत् ॥ तानेव

षष्ठी तिथिको देवीके पूजनमें मधुका महत्त्व बताया गया है। देवीको अर्पण करके वह मधु ब्राह्मणको दे दे। इसके प्रभावसे साधक सुन्दर रूप प्राप्त करता है ॥ ११ ॥ सप्तमी तिथिको भगवतीकी पूजामें गुड़का नैवेद्य अर्पण करके ब्राह्मणको दे देना चाहिये। हे द्विजवर! ऐसा करनेवाला पुरुष शोकमुक्त हो जाता है ॥ १२ ॥ अष्टमी तिथिके दिन भगवतीको नारियलका भोग लगाना चाहिये। फिर नैवेद्यरूप वह नारियल ब्राह्मणको दे देना चाहिये। इसके फलस्वरूप उस पुरुषके पास किसी प्रकारके सन्ताप नहीं आ सकते ॥ १३ ॥ नवमी तिथिमें भगवतीको धानका लावा अर्पण करके ब्राह्मणको दे देना चाहिये। इस दानके प्रभावसे पुरुष इस लोक और परलोकमें सदा सुखी रह सकता है ॥ १४ ॥ हे मुने! दशमी तिथिके दिन भगवतीको काले तिलका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। पूजनके पश्चात् वह नैवेद्य ब्राह्मणको दे दे। ऐसा करनेसे यमलोकका भय भाग जाता है ॥ १५ ॥ जो एकादशीके दिन भगवतीको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दहीका भोग लगाकर ब्राह्मणको देता है, उसपर भगवती जगदम्बा परम सन्तुष्ट होती हैं ॥ १६ ॥ हे मुनिवर ! द्वादशीके पूजनमें चिउड़ेका महत्त्व है । जो उस दिन भगवतीको चिउड़ा भोग लगाकर आचार्य ब्राह्मणको देता है, उसे भगवती अपना प्रेमभाजन बना लेती हैं ॥ १७ ॥ त्रयोदशी तिथिको भगवतीको चनेका नैवेद्य अर्पण करके ब्राह्मणका दे दे । ऐसा करनेसे सन्तति प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ हे देवर्षे ! जो पुरुष चतुर्दशीके दिन भगवती जगदम्बाको सत्तू भोग लगाकर ब्राह्मणको दे देता है, उसपर भगवान शंकर परम प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ पूर्णिमाके दिन भगवती जगदम्बाको खीरका भोग लगाकर श्रेष्ठ ब्राह्मणको अर्पण करनेवाला पुरुष अपने समस्त पितरोंका उद्धार कर देता है । पूर्णिमा और अमावास्या तिथिकी पूजामें कोई अन्तर नहीं है ॥ २० ॥ हे महामुने ! देवीकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए हवन करनेकी बात भी स्पष्ट है । जिस तिथिमें जो वस्तु नैवेद्यके लिए बतायी गयी

च मुनिश्रेष्ठ स देवीप्रियतां व्रजेत् ॥ १७ ॥ त्रयोदश्यां च दुर्गायै चणकान्प्रददाति च ॥ तानेव दत्त्वा विप्राय प्रजासंततिमान्भवेत् ॥१८॥ चतुर्दश्यां च देवर्षे देव्यै सक्तून्प्रयच्छति ॥ तानेव दद्याद्विप्राय शिवस्य दयितो भवेत् ॥ १९ ॥ पायसं पूर्णिमातिथ्यामपर्णायै प्रयच्छति ॥ ददाति च द्विजाग्र्याय पितॄनुद्धरतेऽखिलान् ॥२०॥ तत्तिथौ हवनं प्रोक्तं देवीप्रीत्यै महामुने॥ तत्तत्तिथ्युक्तवस्तूनामशेषारिष्टनाशनम् ॥२१॥ रविवारे पायसं च नैवेद्यं परिकीर्तितम् ॥ सोमवारे पयः प्रोक्तं भौमे च कदलीफलम् ॥ २२ ॥ बुधवारे च संप्रोक्तं नवनीतं नवं द्विज ॥ गुरुवारे शर्करां च सितां भार्गववासरे ॥ २३ ॥ शनिवारे घृतं गव्यं नैवेद्यं परिकीर्तितम् ॥ सप्तविंशतिनक्षत्रनैवेद्यं श्रूयतां मुने ॥ २४ ॥ घृतं तिलं शर्करां च दधि दुग्धं किलाटकम् ॥ दधिकूर्चौ मोदकं च फेणिकां घृतमण्डकम् ॥ २५ ॥ कंसारं वटपत्रं च घृतपूरमतः परम् ॥ वटकं कोकरसकं पूरणं मधु सूरणम् ॥ २६ ॥ गुडं पृथुकद्राक्षे च खर्जूरं चैव चारकम् ॥ अपूपं नवनीतं च मुद्गं मोदकमेव च ॥ २७ ॥ मातुलुंगमिति प्रोक्तं भनैवेद्यं च नारद ॥ विष्कंभादिषु योगेषु प्रवक्ष्यामि निवेदनम् ॥ २८ ॥ पदार्थानां कृतेष्वेषु प्रीणाति जगदम्बिका ॥ गुडं मधु घृतं दुग्धं दधि तक्रं त्वपूपकम् ॥ २९ ॥

है, उसी वस्तुसे उन-उन तिथियोंमें हवन भी करना चाहिये । यह हवन सभी अरिष्टोंका विनाश कर देता है ॥ २१ ॥ अब दिनके पूजनको विशेषता बतलाते हैं । रविवारको खीरका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये । सोमवारको दूध भोग लगानेकी बात कही गयी है । मंगलवारको केला भोग लगाये ॥ २२ ॥ हे नारद ! बुधवारके दिन मक्खन भोग लगानेका आदेश है । बृहस्पतिवारको खाँड़ और शुक्रवारको चीनीका भोग लगाया जाय । शनिवारको गायका घृत नैवेद्यके रूपमें अर्पण किया जाय । हे मुने ! अब सत्ताईस नक्षत्रोंके नैवेद्य सुनो—॥ २३ ॥ २४ ॥ घृत, तिल, चीनी, दही, दूध, मलाई, लस्सी, लड्डू, तारफेनी, घृतमण्ड, कंसार, पापड़, घेवर, पकौड़ी, कोकरस, घृतमिश्रित चनेका चूर्ण, मधु, सूरन (जिमीकन्द), गुड़, चिउड़ा, दाख, खजूर, चारक, पूआ, मक्खन, मूँगके बेसनका लड्डू और अनार ये सत्ताईस वस्तुएँ हैं । क्रमशः एक-एक नक्षत्रमें एक-एक वस्तुका भगवतीको भोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगाना चाहिये । इसीको नक्षत्रनैवेद्य अर्थात् नक्षत्रसम्बन्धी नैवेद्य कहा गया है । हे नारद ! अब विष्कुम्भ आदि योगोंमें नैवेद्य अर्पण करनेकी बात बताता हूँ ॥ २५–२८ ॥ निम्न-लिखित पदार्थोंका भोग लगानेसे भगवती जगदम्बा परम प्रसन्न होती हैं । वे पदार्थ हैं—गुड़, मधु, घृत, दही, छाछ, पूआ, मक्खन, ककड़ी, कोहड़ा, कटहल, केला, जामुन, आम, तिल, संतरा, अनार, बेरका फल, आँवला, खीर, चिउड़ा, चना, नारियल, नीबू, कसार और चूरमा । ये नैवेद्य परम पवित्र हैं । भगवतीको क्रमशः इनका अर्पण करना चाहिये । विष्कुम्भादि योगोंमें इन नैवेद्योंका विधान है—इस विषयपर विद्वान् पुरुष निर्णय कर चुके हैं ॥ २९–३२ ॥ हे मुने ! अब करणसम्बन्धी पृथक् नैवेद्य अर्पण करनेकी बात कहता हूँ । कंसार, मण्डक, फेनी, मोदक, पापड़, लड्डू, घृतपूर, तिल, दही, घृत और मधु—करणोंके लिए ही ये पदार्थ निर्धारित हैं । भगवतीको आदरपूर्वक इन्हीं वस्तुओंका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये

नवनीतं कर्कटीं च कूष्मांडं चापि मोदकम् ॥ पनसं कदलीं जंबुफलमाम्रफलं तिलम् ॥ ३० ॥ नारंगं दाडिमं चैव बदरीफलमेव च ॥ धात्रीफलं पायसं च पृथुकं चणकं तथा ॥ ३१ ॥ नारिकेलं जंभफलं कसेरुं सूरणं तथा ॥ एतानि क्रमशो विप्र नैवेद्यानि शुभानि च ॥ ३२ ॥ विष्कंभादिषु योगेषु निर्णीतानि मनीषिभिः ॥ अथ नैवेद्यमाख्यास्ये करणानां पृथङ्मुने ॥ ३३ ॥ कंसारं मण्डकं फेणीं मोदकं वटपत्रकम् ॥ लड्डुकं घृतपूरं च तिलं दधि घृतं मधु ॥ ३४ ॥ करणानामिदं प्रोक्तं देवीनैवेद्यमादरात् ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि देवीप्रीतिकरं परम् ॥ ३५ ॥ विधानं नारद मुने शृणु तत्सर्वमादृतः ॥ चैत्रशुद्धतृतीयायां नरो मधुकवृक्षकम् ॥३६॥ पूजयेत्पंचखाद्यं च नैवेद्यमुपकल्पयेत् ॥ एवं द्वादशमासेषु तृतीयातिथिषु क्रमात् ॥ ३७ ॥ शुद्धपक्षे विधानेन नैवेद्यमभिदध्महे ॥ वैशाखमासे नैवेद्यं गुडयुक्तं च नारद ॥ ३८ ॥ ज्येष्ठमासे मधु प्रोक्तं देवीप्रीत्यर्थमेव तु ॥ आषाढे नवनीतं च मधूकस्य निवेदनम् ॥ ३९ ॥ श्रावणे दधि नैवेद्यं भाद्रमासे च शर्करा ॥ आश्विने पायसं प्रोक्तं कार्तिके पय उत्तमम् ॥ ४० ॥ मार्गे फेण्युत्तमा प्रोक्ता पौषे च दधिकूर्चिका ॥ माघे मासि च नैवेद्यं घृतं गव्यं समाहरेत् ॥ ४१ ॥ नारिकेलं च नैवेद्यं फाल्गुने परिकीर्तितम् ॥ एवं

॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे मुनिवर नारद ! अब भगवती जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिए दूसरा परम साधन बतलाता हूँ, तुम उसे आदरपूर्वक सुनो । चैत्रमासके शुक्लपक्षमें तृतीयाके दिन महुआके वृक्षमें भगवतीकी भावना करके उसकी पूजा करें ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ नैवेद्यमें पाँच प्रकारके खाद्य पदार्थ उपस्थित करने चाहिये । इसी प्रकार बारहों महीनेकी शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको पूजाका विधान है । विधिपूर्वक क्रमशः नैवेद्य अर्पण करे । हे नारद ! वैशाखमें गुड़से बना हुआ पदार्थ भोग लगाना चाहिए ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ज्येष्ठ मासमें भगवतीके प्रसन्नतार्थ मधु अर्पण करना चाहिए । आषाढ़में मक्खन अथवा महुएके रससे बना हुआ पदार्थ भोग लगाये ॥ ३९ ॥ श्रावणमें दही, भादोंमें चीनी, आश्विनमें खीर, कार्तिकमें दूध ॥ ४० ॥ मार्गशीर्षमें फेनी, पौषमें दधिकूर्चिका (लस्सी), माघमें गायका घृत और फाल्गुनमें नारियल भोग लगानेका विधान है । यों बारह महीनोंमें बारह प्रकारके नैवेद्योंसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवतीकी पूजा करनी चाहिये ॥४१॥४२॥ मङ्गला, वैष्णवी, माया, कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मातंगी, काली, कमलवासिनी, शिवा, सहस्रचरणा और सर्वमङ्गलरूपिणी—इन नामवाचक बारह पदोंका उच्चारण करता हुआ महुएके वृक्षमें भगवतीकी भावना करके पूजा करे ॥४३॥४४॥ महुएके वृक्षमें देवदेवेश्वरी भगवती जगदम्बा विराजती हैं। अतः सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये तथा व्रतसमाप्तिके निमित्त पूजाके पश्चात् इस तरह देवीकी स्तुति करे—॥४५॥ कमलके समान नेत्रोंसे शोभा पानेवाली भगवतीको नमस्कार है। हे भगवती महेश्वरी! तुम महादेवी हो, जगद्धात्री हो तथा तुम्हारा विग्रह मङ्गलमय है, तुम्हें नमस्कार है ॥४६॥ परम बुद्धिमती हे देवी! परमा, पापहन्त्री, परमार्गप्रदायिनी, परमेश्वरी, प्रजोत्पत्ति, परब्रह्मस्वरूपिणी, मददात्री, मदोन्मत्ता, मानगम्या, महोन्नता, मनस्विनी, मुनिध्येया, मार्तण्ड-सहचारिणी तथा जयलोकेश्वरी—ये तुम्हारे नाम हैं। हे प्राज्ञे! प्रलयकालीन मेघकी भाँति तुम

द्वादशनैवेद्यैर्मासे च क्रमतोऽर्चयेत् ॥ ४२ ॥ मंगला वैष्णवी माया कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ महामाया मातंगी च काली कमलवासिनी ॥४३॥
शिवा सहस्रचरणा सर्वमङ्गलरूपिणी ॥ एभिर्नामपदैर्देवीं मधूके परिपूजयेत् ॥ ४४ ॥ ततः स्तुवीत देवेशीं मधूकस्थां महेश्वरीम् ॥
सर्वकामसमृद्ध्यर्थं व्रतपूर्णत्वसिद्धये ॥ ४५ ॥ नमः पुष्करनेत्रायै जगद्धात्र्यै नमोऽस्तु ते ॥ माहेश्वर्यै महादेव्यै महामङ्गलमूर्तये ॥ ४६ ॥
परमा पापहन्त्री च परमार्गप्रदायिनी ॥ परमेश्वरी प्रजोत्पत्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ४७ ॥ मददात्री मदोन्मत्ता मानगम्या महोन्नता ॥
मनस्विनी मुनिध्येया मार्तण्डसहचारिणी ॥ ४८ ॥ जय लोकेश्वरि प्राज्ञे प्रलयांबुदसन्निभे ॥ महामोहविनाशार्थं पूजिताऽसि सुरासुरैः ॥ ४९ ॥
यमलोकाभावकर्त्री यमपूज्या यमाग्रजा ॥ यमनिग्रहरूपा च यजनीये नमो नमः ॥ ५० ॥ समस्वभावा सर्वेशी सर्वसंगविवर्जिता ॥
संगनाशकारी काम्यरूपा कारुण्यविग्रहा ॥ ५१ ॥ कंकालक्रूरा कामाक्षी मीनाक्षी मर्मभेदिनी ॥ माधुर्यरूपशीला च मधुरस्वरपूजिता
॥ ५२ ॥ महामंत्रवती मंत्रगम्या मंत्रप्रियंकरी ॥ मनुष्यमानसगमा मन्मथारिप्रियङ्करी ॥ ५३ ॥ अश्वत्थवटनिंबाम्रकपित्थबदरीगते ॥
पनसाऽर्ककरीरादिक्षीरवृक्षस्वरूपिणि ॥ ५४ ॥ दुग्धवल्लीनिवासार्हे दयनीये दयाधिके ॥ दाक्षिण्यकरुणारूपे जय सर्वज्ञवल्लभे ॥ ५५ ॥ एवं

कान्ति धारण करती हो। देवताओं और दानवोंने महान् मोहको निवृत्तिके लिए तुम्हारी अराधना की है ॥ ४७–४९ ॥ हे यमलोक मिटानेवाली परम आराध्या भगवती जगदम्बे! तुम यमपूज्या, यमाग्रजा, यम-निग्रह-रूपा एवं पूज्या हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥ ५० ॥ हे भगवती सर्वेश्वरी! तुम समस्वभावा, सर्वेशी, सर्वसङ्गविवर्जिता, सङ्गनाशकरी, काम्यरूपा, कारुण्यविग्रहा, कङ्कालक्रूरा, कामाक्षी, मीनाक्षी, मर्मभेदिनी, माधुर्यरूपशीला, मधुरस्वरपूजिता, महामन्त्रवती, मन्त्रगम्या, मन्त्रप्रियंकरा, मनुष्यमानसगमा तथा मन्मथारिप्रियङ्करी—इन नामोंसे विख्यात हो। हे देवी! पीपल, वट, नीम, आम, कैथ, बेर, कटहल, मदार, करील, जामुन और महुआ आदि क्षीरवृक्ष तुम्हारे रूप हैं ॥५१–५४॥ हे दुग्धवल्लीमें निवास करनेवाली देवि! तुम परम कृपालु एवं दयाका भण्डार हो। तुम्हारा श्रीविग्रह करुणासे ओत-प्रोत है। सर्वज्ञ जन तुमपर अधिक श्रद्धा रखते हैं, तुम्हारी जय हो।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ५५ ॥ पूजा करनेके उपरान्त इस प्रकारके स्तवनसे देवेश्वरी जगदम्बाकी स्तुति करनेवाले मनुष्यको व्रतसम्बन्धी सम्पूर्ण पुण्य सर्वथा सुलभ हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ यह स्तोत्र भगवतीको प्रसन्न करनेका परम साधन है। जो मनुष्य इसका निरन्तर पाठ करता है, उसे आधि-व्याधि एवं शत्रु भय नहीं पहुँचा सकते ॥ ५७ ॥ इस स्तोत्रके प्रभावसे धनकी इच्छा करनेवाला धन तथा धर्म चाहनेवाला धर्म पा सकता है ॥ ५८ ॥ यह स्तोत्र ब्राह्मणको वेदसम्पन्न, क्षत्रियको विजयी, वैश्यको प्रचुर धनवान् तथा शूद्रको परम सुखी बना देता है ॥५९॥ जो मनुष्य श्राद्धके समय मनको एकाग्र करके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके पितरोंको एक कल्प तक स्थिर रहनेवाली अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ हे नारद! इस प्रकार देवताओंने भगवती जगदम्बाका आराधन एवं पूजन किया है, जो तुम्हें बता दिया गया। जो मानव भक्तिपूर्वक भगवतीकी आराधना करता है, उसे देवीके लोककी प्राप्ति हो

स्तवेन देवेशीं पूजनांते स्तुवीत ताम् ॥ व्रतस्य सकलं पुण्यं लभते सर्वदा नरः ॥ ५६ ॥ नित्यं यः पठते स्तोत्रं देवीप्रतिकरं नरः ॥ आधिव्या-
धिभयं नास्ति रिपुभीतिर्न तस्य हि ॥ ५७ ॥ अर्थार्थी चार्थमाप्नोति धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ ब्राह्मणो वेदसम्पन्नो विजयी क्षत्रियो भवेत् ॥
वैश्यश्च धनधान्याढ्यो भवेच्छूद्रः सुखाधिकः ॥५९॥ स्तोत्रमेतच्छ्राद्धकाले यः पठेत्प्रयतो नरः ॥ पितॄणामक्षया तृप्तिर्जायते कल्पवर्तिनी ॥ ६० ॥
एवमाराधनं देव्याः समुक्तं सुरपूजितम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या स देवीलोकभाग्भवेत् ॥६१॥ देवीपूजनतो विप्र सर्वे कामा भवन्ति हि ॥ सर्वपा
पहतिः शुद्धा मतिरंते प्रजायते ॥ ६२ ॥ यत्र तत्र भवेत्पूज्यो मान्यो मानधनेषु च ॥ जायते जगदंबायाः प्रसादेन विरिञ्चिज ॥ ६३ ॥ नरकाणां
न तस्यास्ति भयं स्वप्नेऽपि कुत्रचित् ॥ महामायाप्रसादेन पुत्रपौत्रादिवर्धनः ॥ ६४ ॥ देवीभक्तो भवत्येव नात्र कार्या विचारणा ॥ इत्येव ते
समाख्यातं नरकोद्धारलक्षणम् ॥ ६५ ॥ पूजनं हि महादेव्याः सर्वमंगलकारकम् ॥ मधूकपूजनं तद्वन्मासानां क्रमतो मुने ॥ ६६ ॥ सर्वं समाच-
रेद्यस्तु पूजनं मधुकाह्वयम् ॥ न तस्य रोगबाधादिभयमुद्भवतेऽनघ ॥ ६७ ॥ अथान्यदपि वक्ष्यामि प्रकृतेः पंचकं परम् ॥ नाम्ना रूपेण चोत्पत्त्या

जाती है, ॥ ६१ ॥ हे प्रिय! भगवती जगदम्बाकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे रहित होकर निर्मल बुद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ६२ ॥ हे नारद! भगवतीकी कृपासे पुरुष जहाँ-तहाँ धन अथवा मानव समाजके द्वारा आदर एवं सम्मान प्राप्त करता है ॥ ६३ ॥ स्वप्नमें भी नरक-सम्बन्धी किंचिन्मात्र भय उसपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। भगवती जगदम्बा महामाया हैं। इनकी कृपासे पुत्र और पौत्रोंके सम्वर्धनमें वह सफलीभूत रहता है ॥६४॥ हे नारद! मैंने जो यह भगवतीके चरित्रका प्रतिपादन किया है, इसमें नरकसे उद्धार करनेकी स्वाभाविक शक्ति है। हे मुने! महादेवीकी पूजा सम्पूर्ण मङ्गलोंको देनेवाली है। हे नारदजो! चैत्र आदि महीनोंमें क्रमशः महुएके वृक्षपर भगवतीका पूजन करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करनेवालोंको न किसी प्रकारका रोग होता है और न भूत-प्रेत आदिकी बाधा ही सताती है ॥ ६५–६७ ॥ अब एक दूसरा प्रसंग सुनाता हूँ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसका नाम प्रकृतिपंचक है । यह प्रसङ्ग अपने नाम-रूप और उत्पत्तिसे अखिल जगत्को आह्लादित करनेवाला है । हे मुने! यह प्रकृतिपंचक अत्यन्त अद्भुत एवं मुक्तिका परम साधन है। मैं उदाहरण और माहात्म्यसहित इसका वर्णन करता हूँ । तुम सावधान होकर सुनो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे

जगदानंददायकम् ॥ ६८ ॥ साख्यानं च समाहात्म्यं प्रकृतेः पंचकं मुने ॥ कुतूहलकरं चैव शृणु मुक्तिविधायकम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां समाराधनविधानेऽष्टमस्कन्धे देवीपूजननिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

नंदाग्निवसुभिः (८३९) पद्यैर्द्वैपायनमुखच्युतैः ॥ देवीभागवतस्यास्याष्टमस्कंध उदीरितः ॥ १ ॥

पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

भगवान वेदव्यासके मुखारविन्दसे निःसृत आठ सौ उनतालीस (८३९) श्लोकोंमें यह अष्टम स्कन्ध कहा गया है ॥ १ ॥

॥ समाप्तोऽयमष्टमः स्कन्धः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा'भाषाटीकासहिते--

श्रीमद्देवीभागवते अष्टमः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा'भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते नवमः स्कन्धः ।

पण्डित-पुस्तकालय काशी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(पञ्चविध प्रकृतिका स्पष्टीकरण तथा अंश-कलांशका विशद विवेचन) भगवान् नारायण कहते हैं–हे नारद ! गणेशजननी दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और राधा–ये पाँच देवियाँ 'प्रकृति' कहलाती हैं। इन्हींपर सृष्टि निर्भर है ॥ १ ॥ नारदजीने पूछा– ज्ञानियोंमें प्रमुख स्थान प्राप्त हे साधो ! वह प्रकृति कहाँसे प्रकट हुई है, उसका कैसा स्वरूप है, कैसे लक्षण हैं तथा क्यों वह पाँच प्रकारकी हो गयी ? ॥ २ ॥ समस्त देवियोंके चरित्र, उनकी पूजाके विधान, उनके गुण तथा वे किसके यहाँ कैसे प्रकट हुईं–ये सभी प्रसंग आप मुझे बतानेकी कृपा करें ॥३॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे वत्स ! प्रकृतिके लक्षण सम्यक् रीतिसे बतानेमें भला कौन समर्थ हो सकता है ? तथापि धर्मके मुखसे मैंने जो कुछ सुना है, उसे बताऊँगा ॥४॥ 'प्र' का अर्थ है प्रकृष्ट और 'कृति'से 'सृष्टि'के अर्थका बोध होता है। अतः सृष्टि करनेमें जो परम प्रवीण है, उस देवीको 'प्रकृति' कहते हैं ॥५॥ सर्वोत्तम सत्त्वगुणके अर्थमें 'प्र' शब्द मध्यम रजोगुणके अर्थमें 'कृ' शब्द और तमोगुणके अर्थमें 'ति' शब्द है ॥६॥ जो त्रिगुणात्मकस्वरूपा है, वही परम शक्तिसे सम्पन्न होकर सृष्टिविषयक कार्यमें 'प्रधान प्रकृति' कहलाती है ॥७॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ॥ सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृता ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ आविर्बभूव सा केन का वा सा ज्ञानिनां वर ॥ किं वा तल्लक्षणं साधो बभूव पंचधा कथम् ॥ २ ॥ सर्वासां चरितं पूजाविधानं गुण ईप्सितः ॥ अवतारः कुत्र कस्यास्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ प्रकृतेर्लक्षणं वत्स को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ॥ किंचित्तथापि वक्ष्यामि यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥४॥ प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः ॥ सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥५॥ गुणे सत्त्वे प्रकृष्टे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतः ॥ मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः ॥ ६ ॥ त्रिगुणात्मकस्वरूपा या सा च शक्तिसमन्विता ॥ प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥ ७ ॥ प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः ॥ सृष्टेरादौ च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥ ८ ॥ योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः ॥ पुमांश्च दक्षिणार्धांगो वामार्धा प्रकृतिः स्मृता ॥९॥ सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी ॥ यथाऽऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता ॥ १० ॥ अतएव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुंभेदो न मन्यते ॥ सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मञ्छश्वत्सदपि नारद ॥ ११ ॥ स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया ॥ साऽऽविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ १२ ॥ तदाज्ञया पंचविधा सृष्टिकर्मविभेदिका ॥ अथ भक्तानुरोधाद्वा भक्तानु-

'प्र' प्रथम अर्थमें और 'कृति' सृष्टिके अर्थमें है। अतः सृष्टिके आदिमें जो देवी विराजमान रहती है, उसे 'प्रकृति' कहते हैं ॥ ८ ॥ सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा स्वयं दो रूपोंमें प्रकट हुए—प्रकृति और पुरुष। उनका आधा दाहिना अङ्ग 'पुरुष' और आधा बायाँ अङ्ग 'प्रकृति' हुआ ॥ ९ ॥ वही प्रकृति ब्रह्मस्वरूपा, नित्या और सनातनी है। परब्रह्म परमात्माके अनुरूप सभी गुण प्रकृतिमें निहित हैं। जैसे अग्निमें दाहिकाशक्ति सदा रहती है ॥ १० ॥ इसीसे परम योगी पुरुष स्त्री और पुरुषमें भेद नहीं मानते। हे नारद ! वे कहते हैं कि 'सत् असत्' जो कुछ भी है, सब ब्रह्ममय है ॥११॥ भगवान् श्रीकृष्ण सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र परम पुरुष हैं। उनके मनमें सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न होते ही तुरन्त 'मूल प्रकृति' परमेश्वरी प्रकट हो जाती है ॥१२॥ तदनन्तर परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार इनके पाँच रूप हो जाते हैं। विभिन्न प्रकारकी सृष्टिका सृजन करना इनका प्रधान उद्देश्य रहता है। भगवती प्रकृति भक्तोंके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुरोधसे अथवा उनपर कृपा करनेके लिए विविध रूप धारण करती हैं ॥ १३ ॥ जो गणेशकी माता 'भगवती दुर्गा' हैं; उन्हें 'शिवस्वरूपा' कहा जाता है। ये भगवान् शंकरकी प्रेयसी भार्या हैं। नारायणी, विष्णुमाया और पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी नामसे भी वे प्रसिद्ध हैं ॥१४॥ ब्रह्मादि देवत, मुनिगण तथा मनु प्रभृति–सभी इनकी पूजा करते हैं। वे शिवरूपा सनातनी सबकी व्यवस्था करती हैं ॥१५॥ इनका चरित्र परम पावन है। धर्म, सत्य, पुण्य, यश, मङ्गल, सुख कीर्ति, मोक्ष और हर्ष प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है। दुःख, शोक और उद्वेगको वे दूर कर देती हैं ॥१६॥ शरणमें आये हुए दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें वे सदा संलग्न रहती हैं। वे तेजःस्वरूपा हैं। उनका विग्रह तेजस्वी है। उन्हें तेजकी अधिष्ठात्री देवता कहा जाता है। सूर्यमें जो शक्ति है, वह उन्हींका रूप है ॥१७॥ वे शंकरको निरन्तर शक्तिशाली बनाये रखती हैं। सिद्धेश्वरी, सिद्धिरूपा, सिद्धिदा, सिद्धि, ईश्वरी, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति, भ्रान्ति, शान्ति, कान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि; लक्ष्मी, धृति और माया—ये सब उनके ही नाम हैं। श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं। उनके समीप शक्तिरूपसे

ग्रहविग्रहा ॥ १३ ॥ गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया ॥ नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥ १४ ॥ ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः
पूजिता स्तुता ॥ सर्वाधिष्ठात्री देवी सा सर्वरूपा सनातनी ॥ १५ ॥ धर्मसत्यपुण्यकीर्तियशोमंगलदायिनी ॥ सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्तिदुःखना-
शिनी ॥ १६ ॥ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा ॥ तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठातृदेवता ॥ १७ ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य संततम् ॥
सिद्धेश्वरी सिद्धिरूपा सिद्धिदा सिद्धिरीश्वरी ॥ १८ ॥ बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तंद्रा दया स्मृतिः ॥ जातिः क्षांतिश्च भ्रांतिश्च शांतिः कांतिश्च
चेतना ॥ १९ ॥ तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिर्माया तथैव च ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा या कृष्णस्य परमात्मनः ॥ २० ॥ उक्तः श्रुतौ श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो
यथागमम् ॥ गुणोऽस्त्यनंतोऽनंताया अपरां च निशामय ॥ २१ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा सा परमात्मनः ॥ सर्वसंपत्स्वरूपा सा तदधिष्ठातृ-
देवता ॥ २२ ॥ कांताऽतिदांता शांता च सुशीला सर्वमंगला ॥ लोभमोहकामरोषमदाहंकारवर्जिता ॥ २३ ॥ भक्तानुरक्ता पत्युश्च सर्वाभ्यश्च पति-
व्रता ॥ प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्रं प्रियंवदा ॥ २४ ॥ सर्वसस्यात्मिका देवी जीवनोपायरूपिणी ॥ महालक्ष्मीश्च वैकुंठे पतिसेवारता सती ॥ २५ ॥

ये विराजती हैं ॥ १८–२० ॥ श्रुतिमें इनका यश गाया गया है। ये अनन्ता हैं। अतएव इनमें गुण भी अनन्त हैं। अब इनके दूसरे रूपका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥२१॥ जो परम शुद्ध सत्त्वस्वरूपा हैं, उन्हें 'भगवती लक्ष्मी' कहा जाता है। परमप्रभु श्रीहरिकी वे शक्ति कहलाती हैं। अखिल जगत्की सारी सम्पत्तियाँ उनके स्वरूप हैं। उन्हें सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवता माना जाता है ॥२२॥ वे परम सुन्दरी, अनुपम संयमरूपा, शान्तस्वरूपा, श्रेष्ठ स्वभावसे सम्पन्न तथा समस्त मङ्गलोंकी प्रतिमा हैं। लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद और अहङ्कार आदि दुर्गुणोंसे वे रहित हैं ॥२३॥ भक्तोंपर अनुग्रह करना तथा अपने स्वामी श्रीहरिसे प्रेम करना उनका स्वभाव है। सम्पूर्ण स्त्रियोंकी अपेक्षा वे श्रेष्ठ पतिव्रता हैं। श्रीहरि प्राणके समान प्रिय मानकर उनसे अत्यन्त प्रेम करते हैं। वे कभी अप्रिय बात नहीं कहतीं ॥ २४ ॥ धान आदि सभी शस्य उनके रूप हैं। प्राणियोंका जीवन स्थिर रहे—एतदर्थ उन्होंने यह रूप धारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

कर रक्खा है। वे परम साध्वी देवी 'महालक्ष्मी' नामसे विख्यात होकर वैकुण्ठमें अपने स्वामीकी सेवामें संलग्न रहती हैं ॥२५॥ वे स्वर्गमें 'स्वर्गलक्ष्मी' राजाओंके यहाँ 'राजलक्ष्मी' तथा मर्त्यलोकवासी गृहस्थोंके घर 'गृहलक्ष्मी'के रूपमें विराजमान रहती हैं ॥२६॥ प्राणियों तथा सभी द्रव्योंमें सर्वोत्कृष्ट शोभा उन्हींका स्वरूप है, वे परम मनोहर हैं। पुण्यात्माओंकी कीर्ति उन्हींकी प्रतिमा है। वे राजाओंकी प्रभा हैं ॥२७॥ व्यापारियोंके यहाँ वे वाणिज्यरूपसे विराजती हैं। पापीजन जो कलह आदि अशिष्टव्यवहार करते हैं, उनमें भी इन्हींकी शक्ति रहता है। ये दयारूपसे धराधामपर पधारी थीं। यह बात वेदोंमें कही गयी है। सबने इसका समर्थन भी किया है ॥२८॥ सब लोग इनकी आराधना और वन्दना करते हैं। हे नारद! अब मैं देवीका प्रसंग कहता हूँ, सुनो। परब्रह्म परमात्मासे सम्बन्ध रखनेवाली वाणी, बुद्धि, विद्या और ज्ञानकी जो व्यवस्था करती हैं, उन्हें 'सरस्वती' कहा जाता है। सम्पूर्ण विद्याएँ उन्हींके स्वरूप हैं। मनुष्योंको बुद्धि, कविता, मेधा, प्रतिभा और स्मरण-शक्ति उन्हींकी कृपासे प्राप्त होती है ॥ २९ ॥ ३० ॥ अनेक सिद्धान्तोंको पृथक्-पृथक् करना उनका स्वाभाविक गुण है। वे व्याख्या

स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ गृहेषु गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा ॥ २६ ॥ सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा ॥ कीर्तिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च ॥ २७ ॥ वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहांकुरा ॥ दयारूपा च कथिता वेदोक्ता सर्वसंमता ॥ २८ ॥ सर्वपूज्या सर्ववंद्या चान्यां मत्तो निशामय ॥ वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिष्ठात्री च परमात्मनः ॥ २९ ॥ सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती ॥ सा बुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा नृणाम् ॥३०॥ नानाप्रकारसिद्धांतभेदार्थकलना मता ॥ व्याख्याबोधस्वरूपा च सर्वसंदेहभंजिनी ॥३१॥ विचारकारिणी ग्रंथकारिणी शक्तिरूपिणी ॥ स्वरसंगीतसंधानतालकारणरूपिणी ॥ ३२ ॥ विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वोपजीविनी ॥ व्याख्यावादकरी शांता वीणापुस्तकधारिणी ॥ ३३ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सुशीला श्रीहरिप्रिया ॥ हिमचंदनकुंदेंदुकुमुदांभोजसन्निभा ॥ ३४ ॥ यजंती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया ॥ तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनाम् ॥ ३५ ॥ सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा ॥ यथा विना तु विप्रौघो मूको मृतसमः सदा ॥ ३६ ॥ देवी तृतीया गदिता श्रुत्युक्ता जगदंबिका ॥ यथागमं यथा किंचिदपरां त्वं निबोध मे ॥ ३७ ॥ माता चतुर्णां

और बोधस्वरूपा हैं। उनकी कृपासे समस्त संदेह नष्ट हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ उन्हें विचारकारिणी और ग्रन्थकारिणी कहा जाता है। वे शक्तिस्वरूपा हैं। स्वर-संगीत-संधान और ताल—सब उन्हींके रूप हैं ॥ ३२ ॥ वे विषय, ज्ञान और वाणीमयी हैं। वे परम प्रसिद्ध, वाद-विवादकी अधिष्ठात्री एवं शान्तिमूर्ति हैं। वे हाथमें वीणा और पुस्तक लिये रहती हैं ॥ ३३ ॥ उनका विग्रह शुद्धसत्त्वमय है। वे सदाचारपरायणा तथा भगवान् श्रीहरिकी प्रिया हैं। हिम, चन्दन, कुन्द, चन्द्रमा, कुमुद और कमलके समान उनकी कान्ति है ॥३४॥ वे रत्नोंका हार गलेमें पहनाकर भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करती हैं। उनकी मूर्ति तपोमयी है। तपस्वीजनोंको फल प्रदान करनेमें वे सदा तत्पर रहती हैं ॥३५॥ सिद्धि-विद्या उनका स्वरूप है। वे सदा सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करती हैं। उनके अभावमें ब्राह्मण मूक-जैसा होकर मृतकके समान बना रहता है ॥३६॥ वे तृतीया देवी कहलाती हैं। उन्हें श्रुतिमें भगवती जगदम्बा कहा गया

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। हे नारद ! इनके सिवा कुछ अन्य-देवियाँ भी है। आगमशास्त्रके अनुसार उनका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥३७॥ वे चारों वर्णोंकी माता हैं। छन्द और वेद-वेदांग उन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। हे बुद्धिमान् नारद! संध्या-वन्दनके मन्त्र और तन्त्रका निर्माण उन्हींपर निर्भर है ॥ ३८ ॥ द्विजाति वर्णोंके लिए उन्होंने अपना यह रूप धारण किया है। वे जपरूपा, तपस्विनी ब्रह्मतेजसे सम्पन्न तथा सर्वसंस्कारमयी हैं ॥३९॥ उन पवित्र रूप धारण करनेवाली देवीको 'सावित्री' अथवा 'गायत्री' कहते हैं। वे ब्राह्मणोंकी परम प्रिय शक्ति हैं। तीर्थ अपनी शुद्धिके लिए उनके स्पर्शकी कामना करते हैं ॥ ४० ॥ शुद्ध स्फटिक मणिके समान उनकी स्वच्छ कान्ति है। वे शुद्धसत्त्वमय विग्रहसे शोभा पाती हैं। उनका रूप परम आनन्दमय है। उनका सर्वोत्कृष्ट रूप सदा एकसा बना रहता है ॥४१॥ वे परब्रह्मस्वरूपा हैं। वे परम शक्तिसम्पन्न हैं। उन्हें शक्तिकी अधिष्ठात्री माना जाता है ॥४२॥ उनके चरणकी धूलि सम्पूर्ण जगत्को पवित्र कर देती है। हे नारद ! इन चौथी देवीका प्रसंग सुना चुका। अब तुम्हें पाँचवीं देवीका चरित्र सुनाता हूँ ॥४३॥ ये परमात्मा श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। सम्पूर्ण देवियोंकी

वर्णानां वेदांगानां च छंदसाम् ॥ संध्यावंदनमंत्राणां तंत्राणां च विचक्षणा ॥३८॥ द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी ॥ ब्रह्मण्यतेजोरूपा च सर्वसंस्काररूपिणी ॥३९॥ पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्राह्मणप्रिया ॥ तीर्थानि यस्याः संस्पर्शं वांछंति ह्यात्मशुद्धये ॥ ४० ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥ परमानंदरूपा च परमा च सनातनी ॥ ४१ ॥ परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी ॥ ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥ ४२ ॥ यत्पादरजसा पूतं जगत्सर्वं च नारद ॥ देवी चतुर्थी कथिता पंचमीं वर्णयामि ते ॥ ४३ ॥ पंचप्राणाधिदेवी या पंचप्राणस्वरूपिणी ॥ प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाभ्यः सुंदरी परा ॥ ४४ ॥ सर्वयुक्ता च सौभाग्यमानिनी गौरवान्विता ॥ वामांगार्धस्वरूपा च गुणेन तेजसा समा ॥ ४५ ॥ परावरा सारभूता परमाद्या सनातनी ॥ परमानंदरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥ ४६ ॥ रासक्रीडाधिदेवी श्रीकृष्णस्य परमात्मनः ॥ रासमंडलसंभूता रासमंडलमंडिता ॥४७॥ रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी ॥ गोलोकवासिनी देवी गोपीवेषविधायिका ॥ ४८ ॥ परमाह्लादरूपा च संतोषहर्षरूपिणी ॥ निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽऽत्मस्वरूपिणी ॥ ४९ ॥ निरीहा निरहंकारा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥ वेदानुसा-

अपेक्षा इनमें सुन्दरता अधिक है ॥४४॥ इनमें सभी गुण सदा विद्यमान रहते हैं। ये परम सौभाग्यवती हैं। इन्हें अनुपम गौरव प्राप्त है। परब्रह्मका वामार्द्धाङ्ग ही इनका स्वरूप है। ये ब्रह्मके समान ही गुण और तेजसे सम्पन्न हैं ॥ ४५ ॥ इन्हें परावरा, सारभूता, परमाद्या, सनातनी, परमानन्दरूपा, धन्या, मान्या और पूज्या भी कहा जाता है ॥ ४६ ॥ ये नित्यनिकुञ्जेश्वरी और रास-क्रीड़ाकी अधिष्ठात्री देवी हैं। परमात्मा श्रीकृष्णके रासमंडलमें इनका आविर्भाव हुआ है। इनके विराजनेसे रासमंडलकी विचित्र शोभा होती है ॥४७॥ गोलोक-धाममें रहनेवाली ये देवी 'रासेश्वरी' एवं 'सुरसिका' नामसे प्रसिद्ध हैं। रासमण्डलमें पधारे रहना इन्हें बहुत प्रिय है। ये गोपीके वेषमें विराजती हैं ॥ ४८ ॥ ये परम आह्लादस्वरूपिणी हैं। इनका विग्रह सन्तोष और हर्षसे परिपूर्ण है। ये निर्गुणा (लौकिक त्रिगुणोंसे रहित स्वरूपभूत गुणवती), निर्लिप्ता (लौकिक विषयभोगसे रहित), निराकारा (पाञ्चभौतिक शरीरसे रहित दिव्य चिन्मयस्वरूपा), आत्मस्वरूपिणी (श्रीकृष्णकी आत्मा) नामसे विख्यात हैं ॥ ४९ ॥ इच्छा और अहंकारसे ये रहित हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिए ही इन्होंने अवतार धारण कर रक्खा है। वेदोक्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विधिसे ध्यान करनेपर विद्वान् पुरुष इनके रहस्यको समझ पाते हैं ॥५०॥ सुरेन्द्र एवं मुनीन्द्र प्रभृति समस्त प्रधान देवता तथा मुनि अपने चर्मचक्षुओंसे इन्हें देखनेमें असमर्थ हैं। अनेक प्रकारके दिव्य आभूषण इन्हें सुशोभित किये रहते हैं ॥५१॥ इनकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान है। इनका सर्वाङ्गसम्पन्न विग्रह सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न है। भगवान् श्रीकृष्णकी सेवारति ही इनका स्वभाव है। क्योंकि सम्पूर्ण सम्पत्तियोंमें ये इसीको परम श्रेष्ठ मानती हैं ॥ ५२ ॥ श्रीवृषभानुके घर पुत्रीके रूपसे ये पधारी हैं। वाराह अवतारमें इनके चरणकमलका संस्पर्श प्राप्तकर पृथ्वी परम पवित्र हो गयी थी ॥५३॥ हे मुने! जिन्हें ब्रह्मा आदि देवता नहीं देख सके, वही ये देवी भारतवर्षमें सबको दृष्टिगोचर हो रही हैं। ये स्त्रीमय रत्नोंमें सार हैं। भगवान श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर ये इस प्रकार विराजती हैं, जैसे आकाशस्थित नवीन नील मेघोंमें बिजली चमक रही हो। इन्हें पानेके लिए ब्रह्माने साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की है ॥५४॥५५॥ उनकी तपस्याका उद्देश्य यही था कि इनके चरणकमलके नखके दर्शन सुलभ हो जायँ, जिससे मैं परम पवित्र बन जाऊँ, परन्तु स्वप्नमें भी वे इन भगवतीके दर्शन प्राप्त

रिध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः ॥ ५० ॥ दृष्टिदृष्टा न सा चेशैः सुरेन्द्रैर्मुनिपुंगवैः ॥ वह्निशुद्धांशुकधरा नानालंकारभूषिता ॥ ५१ ॥ कोटिचंद्रप्रभापुष्टसर्वश्रीयुक्तविग्रहा ॥ श्रीकृष्णभक्तिदास्यैककरा च सर्वसंपदाम् ॥ ५२ ॥ अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या ॥ यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुंधरा ॥ ५३ ॥ ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वैर्दृष्टा च भारते ॥ स्त्रीरत्नसारसंभूता कृष्णवक्षःस्थले स्थिता ॥ ५४ ॥ यथांबरे नवघने लोला सौदामनी मुने ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा ॥ ५५ ॥ यत्पादपद्मनखरदृष्टये चात्मशुद्धये ॥ न च दृष्टं च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा ॥५६॥ तेनैव तपसा दृष्टा भुवि वृंदावने वने ॥ कथिता पंचमी देवी सा राधा च प्रकीर्तिता ॥५७॥ अंशरूपाः कलारूपा याः कलांशांशसंभवाः ॥ प्रकृतेः प्रतिविश्वेषु देव्यश्च सर्वयोषितः ॥ ५८ ॥ परिपूर्णतमाः पंच विद्यादेव्यः प्रकीर्तिताः ॥ या याः प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय ॥ ५९ ॥ प्रधानांशस्वरूपा सा गंगा भुवनपावनी ॥ विष्णुविग्रहसंभूता द्रवरूपा सनातनी ॥ ६० ॥ पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ सुखस्पर्शा स्नानपानैर्निर्वाणपददायिनी ॥ ६१ ॥ गोलोकस्थानप्रस्थानसुखसोपानरूपिणी ॥ पवित्ररूपा तीर्थानां सरितां च परावरा ॥ ६२ ॥

नहीं कर सके, फिर प्रत्यक्षकी तो बात ही क्या है ॥५६॥ उसी तपके प्रभावसे ये देवी वृन्दावनमें भगवानके सामने प्रकट हुई हैं और धराधामपर इनका पधारना हुआ है। ये ही पाँचवीं देवी 'भगवती राधा'के नामसे प्रसिद्ध हैं ॥५७॥ इन प्रकृति देवीके अंश, कला, कलांश और कलांशांश भेदसे अनेक रूप हैं। प्रत्येक विश्वमें सम्पूर्ण स्त्रियाँ इन्हींकी रूप मानी जाती हैं ॥५८॥ ये पाँच देवियाँ परिपूर्णतम हैं। इन्हें भगवती विद्या कहते हैं। इन देवियोंके जो-जो प्रधान अंश हैं, अब उनका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥५९॥ भूमंडलको पवित्र करनेवाली गंगा इनका प्रधान अंश हैं। ये सनातनी 'गंगा' जलमयी हैं। भगवान् विष्णुके विग्रहसे इनका प्रादुर्भाव हुआ है ॥६०॥ पापियोंके पापमय ईंधनको भस्म करनेके लिए ये प्रज्वलित अग्नि हैं। इन्हें स्पर्श करने, इनमें नहाने अथवा इनका जल पान करनेसे पुरुष कैवल्य-पदके अधिकारी हो जाते हैं ॥६१॥ गोलोक-धाममें जानेके लिए ये सुखप्रद सीढ़ीके रूपमें विराजमान हैं। इनका रूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परम पवित्र है। समस्त तीर्थों और नदियोंमें ये श्रेष्ठ मानी जाती हैं ॥६२॥ ये भगवान् शंकरके मस्तकपर जटामें ठहरी थीं। किसी तरह वहाँसे निकलीं तो सीधे भारतवर्षमें आयीं। तपस्वीजन अपनी तपस्यामें सफलता प्राप्त कर सकें-एतदर्थ शीघ्र ही इनका आगमन हो गया ॥६३॥ इनका शुद्ध एवं सत्त्व स्वरूप चंद्रमा, श्वेतकमल तथा दूधके समान स्वच्छ है। मल और अहंकार इनमें लेश-मात्र भी नहीं है। ये परमसाध्वी गंगा भगवान् नारायणको बहुत प्रिय हैं ॥६४। श्री 'तुलसी'को प्रकृति देवीका प्रधान अंश माना जाता है। ये विष्णुप्रिया हैं। विष्णुको विभूषित किये रहना इनका स्वाभाविक गुण है। भगवान् विष्णुके चरणोंमें ये सदा विराजमान रहती हैं ॥६५॥ हे मुने! तपस्या, संकल्प और पूजा आदि समस्त शुभकर्म इन्हींसे संपन्न होते हैं। पुष्पोंमें ये मुख्य मानी जाती हैं। ये परम पवित्र एवं पुण्यप्रदा हैं ॥६६॥ अपने दर्शन और स्पर्शमात्रसे ये तुरंत मनुष्योंको परमधामका अधिकारी बना देती हैं। पापस्वरूपिणी सूखी लकड़ीको जलानेके लिए प्रज्व-लित अग्निके समान रूप धारण करके ये कलिमें यहाँ पधारी हैं ॥ ६७ ॥ इन देवी तुलसीके चरणकमलका स्पर्श होते ही पृथ्वी परम पावनी बन गयी। तीर्थ स्वयं पवित्र होनेके लिए इनका

शंभुमौलिजटामेरुमुक्तापंक्तिस्वरूपिणी ॥ तपःसंपादिनी सद्यो भारतेषु तपस्विनाम् ॥ ६३ ॥ चंद्रपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥ निर्मला निरहंकारा साध्वी नारायणप्रिया ॥ ६४ ॥ प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी ॥ विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती ॥ ६५ ॥ तपःसंकल्पपूजादिसंघसंपादिनी मुने ॥ सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा ॥ ६६ ॥ दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सद्यो निर्वाणदायिनी ॥ कलौ कलुषशुष्केध्मदहनायाग्निरूपिणी ॥ ६७ ॥ यत्पादपद्मसंस्पर्शात्सद्यः पूता वसुंधरा ॥ यत्स्पर्शदर्शने चैवेच्छंति तीर्थानि शुद्धये ॥ ६८ ॥ यया विना च विश्वेषु सर्वकर्म च निष्फलम् ॥ मोक्षदा या मुमुक्षूणां कामिनी सर्वकामदा ॥ ६९ ॥ कल्पवृक्षस्वरूपा या भारते वृक्षरूपिणी ॥ भारतीनां प्रीणनाय जाता या परदेवता ॥ ७० ॥ प्रधानांशस्वरूपा या मनसा कश्यपात्मजा ॥ शंकरप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा ॥ ७१ ॥ नागेश्वर-स्यानंतस्य भगिनी नागपूजिता ॥ नागेश्वरी नागमाता सुंदरी नागवाहिनी ॥ ७२ ॥ नागेंद्रगणसंयुक्ता नागभूषणभूषिता ॥ नागेंद्रवंदिता सिद्धा योगिनी नागशायिनी ॥ ७३ ॥ विष्णुरूपा विष्णुभक्ता विष्णुपूजापरायणा ॥ तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी ॥ ७४ ॥ दिव्यं त्रिलक्षवर्षं

दर्शन एवं स्पर्श करना चाहते हैं ॥६८॥ इनके अभावमें अखिल जगत् और सम्पूर्ण कर्म निष्फल समझे जाते हैं। इनकी कृपासे मुमुक्षुजन मुक्त हो जाते हैं। जो जिस कामनासे इनकी उपासना करते हैं, उनकी वे सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥६९॥ भारतवर्षमें वृक्षरूपसे पधारनेवाली ये देवी कल्पवृक्ष-स्वरूपा हैं। भारतवासियोंको प्रसन्न करनेके लिए इनका यहाँ आगमन हुआ है। ये परम देवता हैं ॥७०॥ प्रकृति देवीके एक अन्य प्रधान अंशका नाम देवी 'जरत्कारु' है। ये कश्यपजीकी मानस-पुत्री हैं। इन्हें भगवान् शंकरकी प्रिय शिष्या होनेका सौभाग्य प्राप्त है। ये परम विदुषी हैं ॥७१॥ नागराज शेषने इन्हें अपनी बहन माना है। सभी नाग इनका सम्मान करते हैं। नागकी सवारीपर चलनेवाली इन अनुपम सुंदरी देवीको 'नागेश्वरी' और 'नाग-माता' भी कहा जाता है। प्रधान-प्रधान नाग इनके साथ विराजमान रहते हैं। ये नागोंसे सुशोभित रहती हैं। नागराज इनकी स्तुति करते हैं। ये सिद्धि और योगकी साक्षात् मूर्ति हैं। इनकी शय्या नाग है ॥७२॥७३॥ ये विष्णुस्वरूपिणी हैं। भगवान् विष्णुमें इनकी अटल श्रद्धा है। ये सदा श्रीहरिकी पूजामें संलग्न रहती हैं। इनका शरीर तपोमय है। तपस्वीजनोंको फल प्रदान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेमें ये परम कुशल हैं। ये स्वयं भी तपस्या करती हैं ॥ ७४ ॥ इन्होंने देवताओंके वर्षसे तीन लाख वर्षतक भगवान श्रीहरिकी तपस्या की है। भारतवर्षमें जितने तपस्वी और तपस्विनियाँ हैं, उन सबमें ये श्रेष्ठ हैं॥७५॥ सभी मंत्रोंकी ये अधिष्ठात्री हैं। ब्रह्मतेजसे इनका विग्रह सदा प्रकाशमान रहता है। इनको परब्रह्मस्वरूपा कहते हैं। ये ब्रह्मके चिन्तनमें सदा संलग्न रहती हैं ॥७६॥ जरत्कारु मुनि भगवान श्रीकृष्णके अंश हैं। उनकी पत्नी द्वारा पातिव्रत धर्मका पूर्ण पालन होता है। मुनिवर आस्तीक, जो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं, ये देवी उनकी माता हैं ॥७७॥ हे नारद ! प्रकृति देवीके एक प्रधान अंशको 'देवसेना' कहते हैं। मातृकाओंमें ये परम श्रेष्ठ मानी जाती हैं। इन्हें लोग भगवती 'षष्ठी' के नामसे पुकारते हैं ॥७८॥ पुत्रपौत्र आदि सन्तान प्रदान करना तथा त्रिलोकीको जन्म देना इनका प्रधान कार्य है। ये साध्वी भगवती प्रकृतिकी षष्ठांश हैं। अतएव इन्हें 'षष्ठी' देवी कहा जाता है ॥७९॥ सन्तानोत्पत्तिके अवसरपर अभ्युदयके लिए इन षष्ठी योगिनीकी पूजा होती है। अखिल जगतमें बारहों महीने लोग इनकी निरन्तर पूजा करते हैं ॥ ८० ॥ पुत्र उत्पन्न होनेपर छठें दिन सूतिकागृहमें

च तपस्तप्त्वा च या हरेः ॥ तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते ॥ ७५ ॥ सर्वमंत्राधिदेवी च ज्वलंती ब्रह्मतेजसा ॥ ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा ॥ ७६ ॥ जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णांशस्य पतिव्रता ॥ आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् ॥ ७७ ॥ प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद ॥ मातृकासु पूज्यतमा सा षष्ठी च प्रकीर्तिता ॥७८॥ पुत्रपौत्रादिदात्री च धात्री त्रिजगतां सती ॥ षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ७९ ॥ स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी ॥ पूजा द्वादशमासेषु यस्या विश्वेषु संततम् ॥८०॥ पूजा च सूतिकागारे पुरा षष्ठदिने शिशोः ॥ एकविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी ॥८१॥ मुनिभिर्निर्मिता चैषा नित्यकामाऽप्यतः परा ॥ मातृका च दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी ॥ ८२ ॥ जले स्थले चांतरिक्षे शिशूनां सद्मगोचरे ॥ प्रधानांशस्वरूपा च देवीमंडलचंडिका ॥ ८३ ॥ प्रकृतेर्मुखसंभूता सर्वमंगलदा सदा ॥ सृष्टौ मंगलरूपा च संहारे कोपरूपिणी ॥८४॥ तेन मंगलचंडी सा पंडितैः परिकीर्तिता ॥ प्रतिमंगलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता ॥ ८५ ॥ पुत्रौपौत्रधनैश्वर्ययशोमंगलदायिनी ॥ परितुष्टा सर्ववांछाप्रदात्री सर्वयोषिताम् ॥ ८६ ॥ रुष्टा क्षणेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी ॥ प्रधानांशस्वरूपा

इनकी पूजा हुआ करती है—यह प्राचीन नियम है। कल्याण चाहनेवाले कुछ व्यक्ति इक्कीसवें दिन इनकी पूजा करते हैं ॥ ८१ ॥ मुनियोंके प्रणाम करनेपर ये सदा उनकी अभिलाषा पूर्ण करती रहती हैं। अतः इन्हें सर्वोत्तम देवी कहते हैं। इनकी मातृका संज्ञा है। ये दयास्वरूपिणी हैं। ये निरन्तर रक्षा करनेमें तत्पर रहती हैं ॥ ८२ ॥ जल, स्थल, आकाश, गृह-सर्वत्र बच्चोंको सुरक्षित रखना इनका प्रधान उद्देश्य है। प्रकृति देवीका एक प्रधान अंश 'मङ्गलचण्डी'के नामसे विख्यात है ॥ ८३ ॥ ये मङ्गलचण्डी प्रकृति देवीके मुखसे प्रकट हुई हैं। इनको कृपासे समस्त मंगल सुलभ हो जाते हैं। सृष्टिके समय इनका विग्रह मङ्गलमय रहता है। संहारके अवसरपर ये क्रोधमयी बन जाती हैं ॥ ८४ ॥ इसीलिए इन देवीको पण्डित जन मङ्गलचण्डी कहते हैं। प्रत्येक मंगलवारके दिन विश्वभरमें इनकी पूजा होती है ॥ ८५ ॥ इनके अनुग्रहसे साधक पुरुष पुत्र, पौत्र, धन, संपत्ति, यश ओर कल्याण प्राप्त कर लेते हैं। प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण स्त्रियोंके समस्त मनोरथ पूर्ण कर देना इनका स्वभाव ही है ॥ ८६ ॥ ये भगवती महेश्वरी कुपित होनेपर क्षणमात्रमें विश्वको नष्ट कर सकती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवी 'काली'को लोग प्रकृति देवीका प्रधान अंश मानते हैं। इन देवीके नेत्र ऐसे हैं, मानो कमल हों ॥ ८७ ॥ संग्राममें जब भगवती दुर्गाके सामने प्रबल राक्षसबन्धु शुम्भ और निशुंभ डटे थे, उस समय ये काली भगवती दुर्गाके ललाटसे प्रकट हुई थीं। इन्हें दुर्गाका आधा अंश माना जाता है। गुण और तेजमें ये दुर्गाके समान ही हैं ८८ ॥ इनका परम पुष्ट विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान है। संपूर्ण शक्तियोंमें ये परम प्रमुख हैं। इनसे बढ़कर बलवान् कोई है हो नहीं ॥ ८९ ॥ ये परम योगस्वरूपिणी देवी संपूर्ण सिद्धि प्रदान करती हैं। श्रीकृष्णके प्रति इनमें अटूट श्रद्धा है। तेज, पराक्रम और गुणमें ये श्रीकृष्णके समान ही हैं ॥ ९० ॥ इनका सारा समय भगवान् श्रीकृष्णके चिन्तनमें ही व्यतीत होता है। इन सनातनी देवीके शरीरका रंग भी कृष्ण ही है। चाहें तो एक श्वासमें ये समस्त ब्रह्माण्डको नष्ट कर सकती हैं ॥ ९१ ॥ अपने मनोरंजनके लिए अथवा जगत्को शिक्षा देनेके विचारसे ही ये संग्राममें दैत्योंके साथ युद्ध करती हैं। सुपूजित होनेपर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ देनेमें ये पूर्ण समर्थ हैं ॥ ९२ ॥ ब्रह्मादि देवता, मुनिगण,

सा काली कमललोचना ॥ ८७ ॥ दुर्गाललाटसंभूता रणे शुंभनिशुंभयोः ॥ दुर्गार्धांशस्वरूपा सा गुणेन तेजसा समा ॥ ८८ ॥ कोटिसूर्यसमाजुष्ट-पुष्टजाज्वलविग्रहा ॥ प्रधाना सर्वशक्तीनां बाला बलवती परा ॥ ८९ ॥ सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा योगरूपिणी ॥ कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः ॥ ९० ॥ कृष्णभावनया शश्वत्कृष्णवर्णा सनातनी ॥ संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डं शक्ता निःश्वासमात्रतः ॥ ९१ ॥ रणं दैत्यैः समं तस्याः क्रीडया लोकशिक्षया ॥ धर्मार्थकाममोक्षांश्च दातुं शक्ता च पूजिता ॥ ९२ ॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥ प्रधानांशस्वरूपा सा प्रकृतेश्च वसुंधरा ॥ ९३ ॥ आधाररूपा सर्वेषां सर्वशस्या प्रकीर्तिता ॥ रत्नाकरा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया ॥ ९४ ॥ प्रजाभिश्च प्रजेशैश्च पूजिता वंदिता सदा ॥ सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसंपद्विधायिनी ॥ ९५ ॥ यया विना जगत्सर्वं निराधारं चराचरम् ॥ प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर ॥ ९६ ॥ यस्य यस्य च या पत्नी तत्सर्वं वर्णयामि ते ॥ स्वाहादेवी वह्निपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता ॥ ९७ ॥ यया विना हविर्दानं न ग्रहीतुं सुराः क्षमाः ॥ दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता ॥ ९८ ॥ यया विना हि विश्वेषु सर्वकर्म हि निष्फलम् ॥ स्वधा पितॄणां पत्नी

मनुप्रभृति और मानव-समाज सब-के-सब इनकी उपासना करते है। भगवती 'वसुन्धरा' भी प्रकृति देवीके प्रधान अंशसे प्रकट हुई हैं ॥९३॥ अखिल जगत् इन्हींपर ठहरा हुआ है। ये 'सर्वशस्या' कही जाती हैं। इन्हें लोग 'रत्नाकरा' और 'रत्नगर्भा' भी कहते हैं। संपूर्ण रत्नोंकी खान इन्हींके अन्दर विराजमान है ॥ ९४ ॥ राजा और प्रजा—सभी लोग इनकी पूजा एवं स्तुति करते हैं। सबको जीविका प्रदान करनेके लिए ही इन्होंने यह रूप धारण कर रखा है। ये संपूर्ण सम्पत्तियोंका विधान करती हैं ॥ ९५ ॥ यह न रहें तो सारा चराचर जगत् कहीं भी नहीं ठहर सके। हे मुनिवर ! प्रकृति देवीकी जो जो कलाएँ हैं, उन्हें सुनो ॥ ९६ ॥ ये जिन-जिनकी पत्नियाँ हैं, वह सब भी मैं तुम्हें बताता हूँ। देवी 'स्वाहा' अग्निकी पत्नी हैं। संपूर्ण जगत्में इनकी पूजा होती है ॥ ९७ ॥ इनके बिना देवता अर्पित की हुई हवि पानेमें असमर्थ हैं। यज्ञकी पत्नीको 'दक्षिणा' और दीक्षा कहते है। इनका सर्वत्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्मान होता है ॥ ९८ ॥ इनके न रहनेपर विश्वभरके संपूर्ण कर्म निष्फल समझे जाते हैं। 'स्वधा' पितरोंकी पत्नी हैं। मुनि, मनु और मानव—सभी इनकी पूजा करते हैं ॥ ९९ ॥ इनका उच्चारण न करके पितरोंको जो वस्तु अर्पण की जाय, वह निष्फल हो जाती हैं। वायुकी पत्नीका नाम 'स्वस्ति' है। प्रत्येक विश्वमें इनका सत्कार होता है ॥ १०० ॥ इनके विना आदान-प्रदान असम्भव हो जाते हैं। 'पुष्टि' गणेशजीकी पत्नी हैं। धरातलपर सभी इनको पूजते हैं ॥ १०१ ॥ इनके विना पुरुष और स्त्री—सभी शक्तिहीन हो जाते हैं। अनन्तकी पत्नीका नाम 'तुष्टि' है। सब लोग इनकी पूजा और वन्दना करते हैं ॥१०२॥ इनके बिना सम्पूर्ण संसार सम्यक् प्रकारसे कभी संतुष्ट हो ही नहीं सकता। ईशानकी पत्नीका नाम 'सम्पत्ति' है। देवता और मनुष्य सभी इनका सम्मान करते हैं ॥ १०३ ॥ इनके न रहनेपर विश्वभरकी जनता दरिद्र कहलाती है। 'धृति' कपिलमुनिकी पत्नी हैं। ये सब लोग सर्वत्र इनका स्वागत करते हैं ॥ १०४ ॥ ये न रहें तो जगत्में संपूर्ण प्राणी धैर्यसे हाथ धो बैठें। 'सती'को सत्यकी भार्या कहा गया है। सबसे आदर पानेवाली ये देवी परम

च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥ ९९ ॥ पूजिता पितृदानं हि निष्फलं च यया विना ॥ स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता ॥ १०० ॥ आदानं च प्रदानं च निष्फलं च यया विना ॥ पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले ॥ १०१ ॥ यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च ॥ अनंतपत्नी तुष्टिश्च पूजिता वंदिता भवेत् ॥ १०२ ॥ यया विना न संतुष्टाः सर्वलोकाश्च सर्वतः ॥ ईशानपत्नी संपत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः ॥ १०३ ॥ सर्वे लोका दरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना ॥ धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्र पूजिता ॥ १०४ ॥ सर्वे लोका अधैर्याश्च जगत्सु च यया विना ॥ सत्यपत्नी सती मुक्तैः पूजिता च जगत्प्रिया ॥ १०५ ॥ यया विना भवेल्लोको बंधुतारहितः सदा ॥ मोहपत्नी दया साध्वी पूजिता च जगत्प्रिया ॥ १०६ ॥ सर्वे लोकाश्च सर्वत्र निष्फलाश्च यया विना ॥ पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पूजिता पुण्यदा सदा ॥ १०७ ॥ यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ॥ सुकर्मपत्नी संसिद्धा कीर्तिर्धन्यैश्च पूजिता ॥ १०८ ॥ यया विना जगत्सर्वं यशोहीनं मृतं यथा ॥ क्रिया तूद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसंमता ॥ १०९ ॥ यया विना जगत्सर्वं विधिहीनं च नारद ॥ अधर्मपत्नी मिथ्या सा सर्वधूर्तैश्च पूजिता ॥ ११० ॥ यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नं विधिनिर्मितम् ॥ सत्ये अदर्शना या च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी ॥ १११ ॥ अर्धावयवरूपा च द्वापरे चैव संवृता ॥ कलौ महाप्रगल्भा

लोकप्रिय हैं ॥ १०५ ॥ इनके विना जगत् सर्वथा बन्धुता-शून्य हो जाता है। परम साध्वी 'दया' मोहकी पत्नी हैं। ये पूज्य एवं जगत्प्रिय हैं ॥ १०६ ॥ इनके अभावमें संपूर्ण प्राणी सर्वत्र निष्फल माने जाते हैं। पुण्यकी सहधर्मिणी 'प्रतिष्ठा' हैं। पुण्य प्रदान करनेवाली ये देवी सदा सुपूजित होती हैं ॥ १०७ ॥ हे मुने! इनके विना सारा संसार जीते हुए ही मृतकके समान समझा जाता है। सुकर्मकी पत्नी 'कीर्ति' है, जिन्हें सब लोग भली-भाँति जानते हैं। बड़भागी पुरुषों द्वारा इनका सम्मान होता है ॥ १०८ ॥ इनके अभावमें अखिल जगत् यशोहीन होकर मृतकके समान हो जाता है। क्रिया उद्योगकी पत्नी है। इन आदरणीया देवीसे सब लोग सहमत रहते हैं ॥ १०९ ॥ हे नारद! इनके विना सारा संसार विधिहीन हो जाता है। अधर्मकी पत्नीको 'मिथ्या' कहते हैं। सभी धूर्त इनका सत्कार करते हैं ॥११०॥ जिसके बिना विधिनिर्मित समस्त जगत् नष्ट हो जाता है। सत्ययुगमें वे सर्वथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अदृश्य थीं । त्रेतायुगमें सूक्ष्म रूप धारण करके प्रकट हो गयीं ॥१११॥ द्वापरमें वे अपने आधे शरीरसे शोभा पाने लगीं और कलियुगमें तो इन 'मिथ्या' देवीका शरीर बड़ा ही स्थूल हो गया था । ये हठपूर्वक सर्वत्र अपना आधिपत्य जमाये रहती हैं ॥११२॥ इनके भाईका नाम 'कपट' है । उसके साथ ये प्रत्येक घरमें चक्कर लगाती हैं । 'शान्ति' और 'लज्जा'–ये सुशीलकी आदरणीय पत्नियाँ हैं ॥११३॥ हे नारद ! इनके न रहनेपर सारा जगत् उन्मत्तकी भाँति जीवन व्यतीत करने लगता है । ज्ञानकी तीन पत्नियाँ हैं–'बुद्धि', 'मेधा' और 'धृति' ॥ ११४ ॥ ये साथ छोड़ दें तो समस्त संसार मूर्ख और पागलके समान हो जाय । धर्मकी सहधर्मिणीका नाम 'मूर्ति' है । कमनीय कान्तिवाली ये देवी सबके मनको मुग्ध किये रहती हैं ॥ ११५ ॥ विश्वके व्यवस्थापक परमात्मा इनका सहयोग पाये बिना निराधार रहते हैं । इनके स्वरूपको अपनाकर ही साध्वी लक्ष्मी सर्वत्र शोभा पाती हैं ॥११६॥ 'श्री' और 'मूर्ति'—दोनों इनके स्वरूप हैं । ये परम मान्य, धन्य एवं सुपूज्य हैं । रुद्रकी पत्नीका नाम 'कालाग्नि' है । इनको 'योगनिद्रा' और 'सिद्धयोगिनी' भी कहते हैं ॥ ११७ ॥ रात्रिमें इनका सहयोग पाकर

च सर्वत्र व्यापिका बलात् ॥११२॥ कपटेन समं भ्रात्रा भ्रमते च गृहे गृहे ॥ शांतिर्लज्जा च भार्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते ॥ ११३ ॥ याभ्यां विना जगत्सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥ ज्ञानस्य तिस्रो भार्याश्च बुद्धिर्मेधा धृतिस्तथा ॥ ११४ ॥ याभिर्विना जगत्सर्वं मूढं मत्तसमं सदा ॥ मूर्तिश्च धर्मपत्नी सा कांतिरूपा मनोहरा ॥११५॥ परमात्मा च विश्वौघो निराधारो यया विना ॥ सर्वत्र शोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्तिमती सती ॥ ११६ ॥ श्रीरूपा मूर्तिरूपा च मान्या धन्याऽतिपूजिता ॥ कालाग्नी रुद्रपत्नी च निद्रा सा सिद्धयोगिनी ॥ ११७ ॥ सर्वे लोकाः समाच्छन्ना यया योगेन रात्रिषु ॥ कालस्य तिस्रो भार्याश्च संध्या रात्रिर्दिनानि च ॥११८॥ याभिर्विना विधात्रा च संख्यां कर्तुं न शक्यते ॥ क्षुत्पिपासे लोभभार्ये धन्ये मान्ये च पूजिते ॥११९॥ याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं नित्यं चिन्तातुरं भवेत् ॥ प्रभा च दाहिका चैव द्वे भार्ये तेजसस्तथा ॥ १२० ॥ याभ्यां विना जगत्स्रष्टा विधातुं च न हीश्वरः ॥ कालकन्ये मृत्युजरे प्रज्वारस्य प्रियाप्रिये ॥ १२१ ॥ याभ्यां जगत्समुच्छिन्नं विधात्रा निर्मितं विधौ ॥ निद्रा कन्या च तंद्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिया ॥ १२२ ॥ याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं विधिपुत्र विधेर्विधौ ॥ वैराग्यस्य च द्वे भार्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते ॥१२३॥ याभ्यां शश्वज्जगत्सर्वं यज्जीवन्मुक्तिमन्मुने ॥ अदितिर्देवमाता च सुरभी च गवां प्रसूः ॥ १२४ ॥ दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च

सम्पूर्ण प्राणी आच्छन्न अर्थात् नींदसे व्याप्त हो जाते हैं । कालकी तीन भार्याएँ हैं–'सन्ध्या', 'रात्रि' और 'दिन' ॥ ११८ ॥ ये न रहें तो ब्रह्मा भी संख्याका परिगणन नहीं कर सकते । 'क्षुधा' और 'पिपासा'–ये दो लोभकी भार्याएँ हैं । ये परम धन्य, मान्य और आदरकी पात्र हैं ॥११९॥ ये अनुकूल न हों तो सारा जगत् चिन्तातुर हो सकता है । 'प्रभा' और 'दाहिका' ये तेजकी स्त्रियाँ हैं ॥१२०॥ इनके अभावमें जगत्स्रष्टा ब्रह्मा अपना कार्य सम्पादन करनेमें असमर्थ हैं । ज्वरकी दो भार्याएँ हैं—'जरा' और 'मृत्यु' । ये दोनों कालकी पुत्री हैं । प्रिय होते हुए भी ये अप्रिय हैं ॥१२१॥ इनकी सत्ता न रहे तो ब्रह्माके बनाये हुए जगत्‌की व्यवस्था ही बिगड़ जाय । निद्राकी कन्याका नाम 'तन्द्रा' है । यह 'तन्द्रा' और 'प्रीति' ये दो सुखकी भार्यायें हैं ॥१२२॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! विधिके विधानमें बना रहनेवाला यह सारा जगत इनसे व्याप्त है । 'श्रद्धा' और 'भक्ति' ये दो परम आदरणीय पत्नियाँ वैराग्यकी हैं ॥१२३॥ हे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे मुने ! इनके कृपाप्रसादसे अखिल जगत् जीवन्मुक्त हो सकता है। देवमाता 'अदिति', गौओंको उत्पन्न करनेवाली 'सुरभि', दैत्योंकी माता 'दिति', 'कद्रू', 'विनता' और 'दनु' ये सभी देवियाँ सृष्टिका कार्य सँभालती हैं। इन्हें भगवती प्रकृतिकी 'कला' कहा जाता है॥ १२४ ॥ १२५ ॥ अन्य भी बहुत-सी कलाएँ हैं। कुछ कलाओंका परिचय कराता हूँ, सुनो। चन्द्रमाकी पत्नी 'रोहिणी' और सूर्यकी भार्या 'संज्ञा' हैं ॥१२६॥ मनुकी भार्याका नाम 'शतरूपा' है। 'शची' इन्द्रकी धर्मपत्नी हैं। बृहस्पतिकी सहधर्मिणी 'तारा' हैं। 'अरुन्धती' वसिष्ठ मुनिकी धर्मपत्नी हैं ॥१२७॥ 'अहल्या' गौतमकी, 'अनसूया' अत्रिकी, 'देवहूति' कर्दम मुनिकी और 'प्रसूति' दक्षकी पत्नी हैं॥ १२८ ॥ पितरोंकी मानसी कन्या 'मेनका' अम्बिकाकी पुत्री कहलाती है। 'लोपामुद्रा' और कुबेरकी पत्नी 'कुन्ती'को सभी जानते हैं ॥१२९॥ वरुणकी पत्नी 'वरुणानी' भी प्रसिद्ध हैं। बलिकी भार्याका नाम 'विन्ध्यावली' है। 'कान्ता', 'दमयन्ती', साध्वी 'यशोदा'

विनता दनुः ॥ उपयुक्ता सृष्टिविधौ एतास्तु कीर्तिताः कलाः ॥१२५॥ कला अन्याः संति बह्वयस्तासु काश्चिन्निबोध मे ॥ रोहिणी चंद्रपत्नी च संज्ञा सूर्यस्य कामिनी ॥१२६॥ शतरूपा मनोर्भार्या शचींद्रस्य च गेहिनी ॥ तारा बृहस्पतेर्भार्या वसिष्ठस्याप्यरुन्धती ॥ १२७ ॥ अहल्या गौतमस्त्री साऽप्यनसूयाऽत्रिकामिनी ॥ देवहूतिः कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी ॥ १२८ ॥ पितृणां मानसी कन्या मेनका साऽम्बिकाप्रसूः ॥ लोपामुद्रा तथा कुन्ती कुबेरकामिनी तथा ॥१२९॥ वरुणानी प्रसिद्धा च बलेर्विन्ध्यावलिस्तथा ॥ कांता च दमयंती च यशोदा देवकी तथा ॥ १३० ॥ गांधारी द्रौपदी शैव्या सा च सत्यवती प्रिया ॥ वृषभानुप्रिया साध्वी राधामाता कुलोद्वहा ॥१३१॥ मंदोदरी च कौसल्या सुभद्रा कौरवी तथा ॥ रेवती सत्यभामा च कालिंदी लक्ष्मणा तथा ॥१३२॥ जांबवती नाग्नजितिर्मित्रविन्दा तथाऽपरा ॥ लक्ष्मणा रुक्मिणी सीता स्वयं लक्ष्मीः प्रकीर्तिता ॥ १३३ ॥ काली योजनगंधा च व्यासमाता महासती ॥ बाणपुत्री तथोषा च चित्रलेखा च तत्सखी ॥ १३४ ॥ प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती ॥ रेणुका च भृगोर्माता राममाता च रोहिणी ॥ १३५ ॥ एकानंदा च दुर्गा सा श्रीकृष्णभगिनी सती ॥ बह्व्यः सत्यः कलाश्चैव प्रकृतेरेव भारते ॥१३६॥ या याश्च ग्रामदेव्यः स्युस्ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः ॥ कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः ॥१३७॥ योषितामवमानेन

'देवकी', 'गन्धारी', 'द्रौपदी', 'शैव्या', 'वृषभानुप्रिया अर्थात् राधाकी जननी' ॥१३०॥१३१॥ 'मन्दोदरी', 'कौसल्या', 'सुभद्रा', 'रेवती', 'सत्यभामा', 'कालिन्दी', 'लक्ष्मणा', 'जाम्बवती' 'नाग्नजिती', 'मित्रविन्दा,' 'रुक्मिणी', 'सीता'–जो स्वयं लक्ष्मी कहलाती हैं ॥ १३२॥ १३३ ॥ 'काली', व्यासको जन्म देनेवाली महासती 'योजनगन्धा', बाणपुत्री 'उषा', उसकी सखी 'चित्रलेखा' ॥१३४॥ 'प्रभावती', 'भानुमती', 'मायावती', परशुरामजीकी माता 'रेणुका', बलरामकी जननी 'रोहिणी' और 'एकनन्दा'—जो श्रीकृष्णकी बहन परम साध्वी 'दुर्गा' कहलाती हैं, भारतवर्षमें भगवती प्रकृतिकी ये बहुत-सी कलाएँ विख्यात हैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ जो-जो ग्राम-देवियाँ हैं, वे सभी प्रकृतिकी कलाएँ हैं। विश्वभरमें जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सबको कलाके अंशका अंश समझना चाहिए। इसीलिए स्त्रियोंके अपमानसे प्रकृतिका अपमान माना जाता है। पति और पुत्रके सहित साध्वी ब्राह्मणीकी वस्त्र, अलंकार और चन्दनसे जो पूजा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करता है, उसके द्वारा भगवती प्रकृति सुपूजित होती हैं। जिसने ब्राह्मणकी अष्टवर्षा कुमारीका वस्त्र, अलंकार एवं चंदन आदिसे अर्चन कर लिया, उसके द्वारा भगवती प्रकृति स्वयं पूजित हो गयीं। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट—प्रायः सभी स्त्रियाँ भगवती प्रकृतिका अङ्ग हैं ॥१३७-१४०॥ जो श्रेष्ठ आचरणवाली तथा पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, उन्हें प्रकृति देवीका सत्त्वांश समझना चाहिए। इनको 'उत्तम' माना जाता है। जिन्हें भोगही प्रिय हैं, वे राजस अंशसे प्रकट स्त्रियाँ 'मध्य'श्रेणीकी कही गयी हैं ॥१४१॥ वे सब सुख भोगनेके लिए विवश होकर सदा अपने कार्यमें लगी रहती हैं। प्रकृति देवीके तामस अंशसे उत्पन्न स्त्रियाँ 'अधम' कहलाती हैं। उनके कुलका कुछ पता नहीं रहता ॥१४२॥ उनके मुख कुरूप होते हैं। वे धूर्त, स्वेच्छाचारिणी और कलहप्रिया होती हैं। भूमण्डलपर वे कुलटा और स्वर्गमें अप्सरा कहलाती हैं ॥ १४३ ॥ पुंश्चली स्त्री भी प्रकृतिका तामस अंश कही जाती है। हे नारद! इस प्रकार मैंने प्रकृतिके सम्पूर्ण

प्रकृतेश्च पराभवः ॥ ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती ॥ १३८ ॥ प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालंकारचंदनैः ॥ कुमारी चाष्टवर्षा या वस्त्रालंकारचंदनैः ॥ १३९ ॥ पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता ॥ सर्वाः प्रकृतिसंभूता उत्तमाधममध्यमाः ॥ १४० ॥ सत्त्वांशाश्चोत्तमा ज्ञेयाः सुशीलाश्च पतिव्रताः ॥ मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्तिताः ॥१४१॥ सुखसंभोगवश्याश्च स्वकार्ये तत्पराः सदा ॥ अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसंभवाः ॥१४२॥ दुर्मुखाः कुलहा धूर्ताः स्वतंत्राः कलहप्रियाः ॥ पृथिव्यां कुलटा याश्च स्वर्गे चाप्सरसां गणाः ॥१४३॥ प्रकृतेस्तमसश्चांशाः पुंश्चल्यः परिकीर्तिताः ॥ एवं निगदितं सर्वं प्रकृते रूपवर्णनम् ॥१४४॥ ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गनाशिनी ॥ १४५ ॥ ततः श्रीरामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना ॥ तत्पश्चाज्जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ॥१४६॥ जाताऽद्रौ दक्षकन्या या निहत्य दैत्यदानवान् ॥ ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निंदया ॥१४७॥ जज्ञे हिमवतः पत्न्या लेभे पशुपतिं पतिम् ॥ गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः ॥१४८॥ बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्च नारद ॥ लक्ष्मीर्मंगलभूपेन प्रथमं परिपूजिता ॥१४९॥ त्रिषु लोकेषु तत्पश्चाद्देवतामुनिमानवैः ॥ सावित्री चाश्वपतिना प्रथमं परिपूजिता ॥ १५० ॥ तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुंगवैः ॥ आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता

रूपका वर्णन कर दिया ॥ १४४ ॥ भारतवर्ष परम पवित्र देश है। भूमण्डलपर पधारकर इस देशमें सभी देवियाँ सुपूजित हुई हैं। दुर्गा दुर्गतिका नाश करती हैं। राजा सुरथने सर्वप्रथम इनकी उपासना की थी ॥१४५॥ इसके बाद रावणका वध करनेकी इच्छासे भगवान् श्रीरामने देवीकी पूजा की। तत्पश्चात् भगवती जगदम्बा तीनों लोकोंमें सुपूजित हो गयीं ॥१४६॥ पहले दक्षके यहाँ ये प्रकट हुई थीं। दैत्योंका वध करनेके पश्चात् स्वामीका अपमान देखकर इन्होंने यज्ञमें अपना वह शरीर त्याग दिया ॥ १४७ ॥ फिर ये हिमालयकी पत्नीके उदरसे उत्पन्न हुईं और भगवान् शंकरको अपना पति बनाया। गणेश और स्कन्द इनके दो पुत्र हुए। गणेशको स्वयं श्रीकृष्ण माना जाता है। स्कंद विष्णुकी कलासे जनमे हैं। हे नारद! इसके बाद राजा मंगलने सर्वप्रथम लक्ष्मीकी आराधना की ॥१४८॥१४९॥ इसके उपरान्त तीनों लोकोंमें देवता, मुनि और मानव इनकी पूजा करने लगे। राजा अश्वपतिने सबसे पहले सावि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रीका अनुष्ठान किया ॥१५०॥ फिर सब प्रधान देवता और श्रेष्ठ मुनि इनके उपासक बन गये। ब्रह्माने पहले सरस्वतीका सम्मान किया ॥१५१॥ इसके बाद ये देवी तीनों लोकोंमें देवताओं और मुनियोंकी पूज्या हो गयीं। गोलोकमें रासमण्डलके अवसरपर सर्वप्रथम भगवती राधाकी पूजा हुई ॥ १५२ ॥ गोपों, गोपियां, गोपकुमारों और कुमारियोंके साथ सुशोभित होकर श्रीकृष्णने राधाका पूजन किया था। उस समय कार्तिकी पूर्णिमाकी चाँदनी रात थी ॥ १५३ ॥ सुरभी आदि गौओंका समुदाय भी इस उत्सवमें सम्मिलित था। फिर भगवान्‌की आज्ञा पाकर ब्रह्मा प्रभृति देवता तथा मुनिगण बड़े हर्षके साथ भक्तिपूर्वक पुष्प-दीप-धूप आदि सामग्रियोंसे निरन्तर पूजा-वन्दना करने लगे, उन्होंने इनकी स्तुति भी की। इस भूमण्डलपर पहले इनकी पूजा राजा सुयज्ञने की थी ॥१५४॥१५५॥ ये नरेश पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें थे। भगवान् शंकरके आदेशानुसार इन्होंने राधा देवीकी उपासना की थी। फिर भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर त्रिलोकीमें मुनिगण पुष्प एवं धूप आदि उपचारोंसे भक्ति प्रदर्शित करते हुए इनकी पूजामें तत्पर हो गये। बादमें जो-जो कलाएँ प्रकट हुईं, उन सबकी भारतवर्षमें पूजा होती

॥१५१॥ तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुङ्गवैः ॥ प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले ॥१५२॥ पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेन परमात्मना ॥ गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः ॥ १५३ ॥ गवां गणैः सुरभ्या च तत्पश्चादाज्ञया हरेः ॥ तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिः परया मुदा ॥ १५४ ॥ पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वंदिता सदा ॥ पृथिव्यां प्रथमं देवी सुयज्ञेनैव पूजिता ॥१५५॥ शंकरेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः ॥ १५६ ॥ पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सदा ॥ कला या याः समुद्भूताः पूजितास्ताश्च भारते ॥ १५७ ॥ पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने ॥ एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम् ॥ १५८ ॥ यथागमं लक्षणं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ नारद उवाच ॥ समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं प्रभो ॥ विबोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ सृष्टेराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह ॥ कथं वा पंचधा भूता वद वेदविदाम्वर ॥ २ ॥ भूता ययांशकलया तया त्रिगुणया भवे ॥ व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ॥ ३ ॥ तासां जन्मानुकथनं पूजाध्यानविधिं बुध ॥ स्तोत्रं कवचमैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मङ्गलम् ॥ ४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ नित्य आत्मा

है ॥१५६॥१५७॥ हे मुने ! तभीसे प्रत्येक ग्राम और नगरमें ग्रामदेवियोंकी पूजाका प्रचार हो गया। इस प्रकार भगवती प्रकृतिका सम्पूर्ण शुभ चरित्र मैं तुम्हें सुना चुका। सभी लक्षण वैदिक प्रमाणसे सम्पन्न हैं। अब पुनः तुम क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १५८ ॥ ॥ १५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मयी देवी और देवताओंके चरित्र) नारदजीने कहा—हे प्रभो ! देवियोंके सम्पूर्ण चरित्रको मैंने संक्षेपमें सुन लिया। सम्यक् प्रकारसे बोध होनेके लिए पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन करनेकी कृपा कीजिए ॥१॥ सृष्टिके अवसरपर भगवती आद्या देवी कैसे प्रकट हुईं ? वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हे भगवन् ! देवीके पञ्चविध होनेमें क्या कारण है ? यह रहस्य बतानेकी कृपा करें ॥ २ ॥ संसारके प्राणी जिनके अंश एवं कलासे उत्पन्न हुए हैं, उन्हें आपने त्रिगुणमयी बताया है। मैं उनका विस्तृत चरित्र सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे सर्वज्ञ प्रभो! उन देवियोंके प्राकट्यका प्रसङ्ग, पूजा एवं ध्यानकी विधि, स्तोत्र, कवच, ऐश्वर्य तथा मङ्गलमय शौर्य भी सुननेके लिए मैं उत्सुक हूँ ॥ ४ ॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद! आत्मा, आकाश, काल, दिशा, विश्वगोल तथा गोलोकधाम—ये सभी नित्य हैं। इनका कभी अन्त नहीं होता ॥५॥ गोलोकधाममें ही एक ओर वैकुण्ठधाम है। विनम्र पुरुष वहाँ जा सकते हैं। ऐसे ही प्रकृतिको भी नित्य माना जाता है। यह परब्रह्मकी सनातनी लीला है ॥६॥ जिस प्रकार अग्निमें दाहिका शक्ति, चन्द्रमा एवं कमलमें कमनीयता तथा सूर्यमें प्रभा सदा वर्तमान रहती है, वैसे ही यह प्रकृति परमात्मामें नित्य विराजमान रहती है। कभी यह उनसे अलग नहीं रह सकती ॥७॥ जैसे स्वर्णकार सुवर्णके अभावमें कुण्डल नहीं तैयार कर सकता तथा कुम्हार मिट्टीके विना घड़ा बनानेमें असमर्थ होता है, ठीक उसी प्रकार परमात्माको यदि प्रकृतिका सहयोग न मिले तो वे सृष्टि नहीं कर सकते। जिसके सहारे श्रीहरि सदा शक्तिमान् बने रहते हैं, वह प्रकृति देवी ही शक्तिस्वरूपा हैं ॥८॥९॥ प्रकृतिमें वाक्चातुरी, शक्ति और पराक्रम विद्यमान हैं। परमात्मामें भी ये इन गुणोंका संनिवेश कर देती हैं। अतएव इन्हें 'शक्ति'

नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा ॥ विश्वानां गोलकं नित्यं नित्यो गोलोक एव च ॥ ५ ॥ तदेकदेशो वैकुण्ठो नम्रभागानुसारकः ॥ तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीला सनातनी ॥ ६ ॥ यथाऽग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ ॥ शश्वद्युक्ता न भिन्ना सा यथा प्रकृतिरात्मनि ॥ ७ ॥ विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुंडलं कर्तुमक्षमः ॥ विना मृदा घटं कर्तुं कुलालो हि न हीश्वरः ॥ ८ ॥ न हि क्षमस्तथाऽऽत्मा च सृष्टिं स्रष्टुं तया विना ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा सा यथा च शक्तिमान्सदा ॥९॥ ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च ॥ तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता ॥१०॥ ज्ञानं समृद्धिः संपत्तिर्यशश्चैव बलं भगः ॥ तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ॥११॥ तया युक्तः सदाऽऽत्मा च भगवांस्तेन कथ्यते ॥ स च स्वेच्छामयो देवः साकारश्च निराकृतिः ॥ १२ ॥ तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा ॥ वदन्ति च परं ब्रह्म परमानन्दमीश्वरम् ॥ १३ ॥ अदृश्यं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥ सर्वदं सर्वरूपं तं वैष्णवास्तन्न मन्वते ॥ १४ ॥ वदन्ति चैव ते कस्य तेजस्तेजस्विना विना ॥ तेजोमंडल-मध्यस्थं ब्रह्म तेजस्विनं परम् ॥ १५ ॥ स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम् ॥ अतीव सुन्दरं रूपं बिभ्रतं सुमनोहरम् ॥ १६ ॥ किशोरवयसं शांतं

देवी कहते हैं ॥ १० ॥ ज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश, बल और ऐश्वर्यसे परिपूर्ण होनेके कारण इनका नाम भगवती शक्ति है। ये ऐश्वर्यमयी देवी कभी तिरोहित नहीं होतीं ॥ ११ ॥ परमात्मा सदा भगवती प्रकृतिके साथ विराजमान रहते हैं। अतएव इन्हें भी भगवानकी उपाधि सुलभ है। ये सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र प्रभु साकार और निराकार भी हैं ॥ १२ ॥ इनका निराकार रूप परम तेजोमय है। योगी पुरुष सदा उसका ध्यान करते हैं। साथ ही कहते हैं कि परब्रह्म और ईश्वर एक हैं। इनका विग्रह परम आनन्दमय है ॥ १३ ॥ इनका कोई नहीं देख पाता और ये सबको देखते हैं। ये सर्वज्ञ, सर्वकारण, सर्वदा और सर्वरूप हैं। वैष्णवजन इनको वैसा नहीं मानते ॥ १४ ॥ उनका कथन है कि परम तेजस्वी ब्रह्मके सिवा अन्य किसका तेज है? ये ब्रह्म परम तेजोमय मण्डलके मध्यभागमें विराजते हैं। ये स्वेच्छामय, सर्वरूप और सम्पूर्ण कारणोंके भी कारण हैं। जब इन्हें साकाररूपसे प्रकट होनेकी इच्छा हुई, तब इन्होंने अत्यन्त सुन्दर एवं मनको मुग्ध कर देनेवाला दिव्य रूप प्रकट कर दिया ॥१५॥१६॥ इनकी किशोर अवस्था है। ये शान्त स्वभाव हैं। इनके सभी अङ्ग परम सुन्दर हैं। इनसे बढ़कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगत्में दूसरा कोई नहीं है। इनका श्याम विग्रह नवीन मेघकी कांतिका परम धाम है ॥ १७ ॥ इनके विशाल नेत्र शरत्कालके मध्याह्नमें खिले हुए कमलोंकी शोभाको छीन रहे हैं।
मोतियोंकी शोभाको तुच्छ करनेवाली इनकी सुन्दर दन्तपंक्ति है ॥ १८ ॥ मुकुटमें मोरकी पाँख सुशोभित है। मालतीकी मालासे ये अनुपम शोभा पा रहे हैं। इनकी सुन्दर नासिका है।
मुखपर मुसकान छायी रहती है। ये परम मनोहर प्रभु भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए पधारे हैं ॥१९॥ प्रज्वलित अग्निके समान विशुद्ध पीताम्बरसे इनका विग्रह परम मनोहर हो गया है।
रत्नमय भूषणोंसे भूषित इनकी भुजाएँ हैं ॥२०॥ इनके हाथमें बाँसुरी सुशोभित है। ये सबके आश्रय, सबके स्वामी, सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त एवं सर्वव्यापी पूर्ण पुरुष हैं। समस्त ऐश्वर्य
प्रदान करना इनका स्वभाव ही है। ये परम स्वतंत्र एवं सम्पूर्ण मङ्गलके भण्डार हैं ॥ २१ ॥ इन्हें 'सिद्ध', 'सिद्धेश', 'सिद्धिकारक' तथा 'परिपूर्णतम ब्रह्म' कहा जाता है। इन देवाधि-
देव सनातन प्रभुका वैष्णव पुरुष निरन्तर ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥ इनकी कृपासे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय सब प्रभावित हो जाते हैं। ब्रह्माकी आयु इनके एक निमेषके

सर्वकांतं परात्परम् ॥ नवीननीरदाभासधामैकं श्यामविग्रहम् ॥१७॥ शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम् ॥ मुक्ताच्छविविनिंद्यैकदंतपंक्तिमनोरमम्
॥ १८ ॥ मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यमंडितम् ॥ सुनसं सस्मितं कांतं भक्तानुग्रहकारणम् ॥ १९ ॥ ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम् ॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥ सर्वाधारं च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम् ॥ सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वस्वतंत्रं सर्वमङ्गलम् ॥ २१ ॥ परिपूर्णतमं
सिद्धं सिद्धेशं सिद्धिकारकम् ॥ ध्यायंते वैष्णवाः शश्वद्देवदेवं सनातनम् ॥ २२ ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् ॥ ब्रह्मणो वयसा यस्य
निमेष उपचर्यते ॥ २३ ॥ स चात्मा स परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः ॥ २४ ॥ भक्तिदास्यप्रदाता यः
स च कृष्णः प्रकीर्तितः ॥ कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजमेव च ॥ २५ ॥ स कृष्णः सर्वस्रष्टाऽऽदौ सिसृक्षन्नेक एव च ॥ सृष्ट्युन्मुखस्तदंशेन
कालेन प्रेरितः प्रभुः ॥ २६ ॥ स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह ॥ स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान्स्मृतः ॥ २७ ॥ तां ददर्श
महाकामी कामाधारं सनातनः ॥ अतीव कमनीयां च चारुपंकजसन्निभाम् ॥ २८ ॥ चंद्रबिम्बविनिन्द्यैकनितंबयुगलां पराम् ॥ सुचारुकदलीस्तंभ-
निंदितश्रोणिसुंदरीम् ॥२९॥ तां युक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम् ॥ पुष्पजुष्टां सुवलितां मध्यक्षीणां मनोहराम् ॥ ३० ॥ अतीव सुन्दरीं शांतां

बराबर है ॥ २३ ॥ वे ही ये आत्मा परब्रह्म श्रीकृष्ण कहलाते हैं। 'कृषि' तद्भक्तिपरक है और 'न'का अर्थ है 'तद्दास्य'। अतः भक्ति और दास्यभाव देनेकी जिनमें योग्यता है, वे
'कृष्ण' कहलाते हैं। 'कृषि' सर्वार्थवाचक है। 'न' से बीज अर्थकी उपलब्धि होती है ॥२४॥२५॥ अतः इनको लोग आदिस्रष्टा मानते हैं। ये अकेले ही सृष्टि करनेके विचारमें लगे थे।
इन्हींके अंशकालने इनको इस कार्यपर उन्मुख कर रक्खा था ॥ २६ ॥ तब इन परमप्रभुने अपनी रुचिके अनुसार अपने विग्रहको दो भागोंमें विभक्त कर दिया। इनके वामांश भागको
'स्त्री' कहा गया है और 'दक्षिणांश' भागको 'पुरुष' ॥२७॥ तब सनातन पुरुष उस दिव्यस्वरूपिणी स्त्रीको देखने लगा। उसके समस्त अङ्ग बड़े ही सुन्दर थे। विकसित कमलके समान उसकी
कांति थी ॥२८॥ उसके दोनों श्रेष्ठ नितम्ब चन्द्रमाके बिम्बको तिरस्कृत कर रहे थे। उसकी परम मनोहर श्रोणीके समक्ष कदलीका स्तम्भ नगण्य था ॥२९॥ श्रीफलके आकारकी तुलना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेवाले मनोहर दो उरोज (स्तन) थे। सुन्दर उदरप्रान्त पुष्पोंके हारसे सुशोभित था। क्षीण कटिभाग प्रभुको मुग्ध कर रहा था ॥३०॥ उस असीम सुन्दरी देवीने दिव्य स्वरूप धारण कर रक्खा था। मुसकराती हुई वह वंकिम भंगियोंसे प्रभुकी ओर ताक रही थी। उसने विशुद्ध वस्त्र पहन रक्खे थे। रत्नमय दिव्य आभूषण उसके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥३१॥ वह अपने चकोररूपी चक्षुओंके द्वारा श्रीकृष्णके श्रीमुखचन्द्रका निरन्तर हर्षपूर्वक पान कर रही थी। श्रीकृष्णका मुखमण्डल इतना सुन्दर था कि उनके सामने करोड़ों चन्द्रमा भी नगण्य थे ॥ ३२ ॥ उस देवीके ललाटके ऊपरी भागमें कस्तूरीकी बिन्दी थी। नीचे चन्दनकी छोटी-छोटी बिंदियाँ थीं। साथ ही मध्य ललाटमें सिन्दूरकी बिंदी शोभा पा रही थी ॥ ३३ ॥ प्रेमी जनके चित्तको आकर्षित करनेवाली उस देवीके केश घुँघराले थे। मालतीके पुष्पोंका सुन्दर हार उसे सुशोभित कर रहा था ॥३४॥ करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभासे सुप्रकाशित परिपूर्ण शोभासे उस देवीका श्रीविग्रह सम्पन्न था। वह अपनी चालसे राजहंस एवं गजराजके गर्वको नष्ट कर रही थी ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्ण परम रसिक एवं रासके स्वामी हैं। उस देवीको देखकर

सस्मितां वक्रलोचनाम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ३१ ॥ शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यां पिबंतीं सततं मुदा ॥ कृष्णस्य मुखचंद्रं च चंद्रकोटिविनिंदितम् ॥ ३२ ॥ कस्तूरीं बिंदुना सार्धमधश्चन्दनबिंदुना ॥ समं सिंदूरबिंदुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम् ॥३३॥ वक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् ॥ रत्नेंद्रसारहारं च दधतीं कांतकामुकीम् ॥३४॥ कोटिचंद्रप्रभामृष्टपुष्टशोभासमन्विताम् ॥ गमनेन राजहंसगजगर्वविनाशिनीम् ॥३५॥ दृष्ट्वा तां तु तया सार्धं रासेशो रासमण्डले ॥ रासोल्लासे सुरसिको रासक्रीडां चकार ह ॥ ३६ ॥ नानाप्रकारशृंगारं शृंगारो मूर्तिमानिव ॥ चकार सुखसंभोगं यावद्वै ब्रह्मणो दिनम् ॥३७॥ ततः स च परिश्रांतस्तस्यां योनौ जगत्पिता ॥ चकार वीर्याधानं च नित्यानन्दे शुभक्षणे ॥ ३८ ॥ गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतांते च सुव्रत ॥ निःससार श्रमजलं श्रांतायास्तेजसा हरेः ॥३९॥ महाक्रमणक्लिष्टाया निःश्वासश्च बभूव ह ॥ तदा वव्रे श्रमजलं तत्सर्वं विश्वगोलकम् ॥ ४० ॥ स च निश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह ॥ निःश्वासवायुः सर्वेषां जीविनां च भवेषु च ॥ ४१ ॥ बभूव मूर्तिमद्वायोर्वामांगात्प्राणवल्लभा ॥ तत्पत्नी सा च तत्पुत्राः प्राणाः पंच च जीविनाम् ॥४२॥ प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ॥ बभूवुरेव तत्पुत्रा अधःप्राणाश्च पञ्च च

रासके उल्लाससे उल्लसित होकर वे उसके साथ रासमण्डलमें पधारे। रास आरम्भ हो गया ॥ ३६ ॥ वहाँ ऐसी दिव्य सजावट की गयी थी, मानो स्वयं शृंगार ही मूर्तिमान् होकर उपस्थित हो। ब्रह्माके पूरे एक दिन सुख-सम्भोग होता रहा ॥ ३७ ॥ बादमें जगत्पिता श्रीकृष्णको कुछ थकावट आ गयी। हे नारद! रासक्रीड़ा समाप्त हो जानेपर श्रान्त हो जानेके कारण अथवा श्रीकृष्णके असह्य तेजसे उस देवीके शरीरसे दिव्य प्रस्वेद बह चला। उस समय जो श्रमजल था, वही समस्त विश्वगोलक बन गया ॥३८-४०॥ नका निःश्वास वायुरूपमें परिणत हो गया, जिसके आश्रयसे सारा जगत् विद्यमान है। संसारमें जितने सजीव प्राणी हैं, उन सबके भीतर उस वायुका निवास है ॥४१॥ फिर वह वायु मूर्तिमान् हो गया। उसके वामाङ्गसे प्राणोंके समान प्यारी स्त्री प्रकट हो गयी। उससे पाँच पुत्र हुए, जो प्राणियोंके शरीरमें रहकर पञ्चप्राण कहलाते हैं ॥४२॥ उनके नाम हैं—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। यों पांच वायु और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनके पुत्र पाँच प्राण हुए ॥ ४३ ॥ पसीनेके रूपमें जो जल बहा था, वही जलके अधिष्ठाता देव वरुण हो गये। वरुणके बायें अङ्गसे उनकी पत्नी प्रकट हो गयीं ॥ ४४ ॥ उस समय श्रीकृष्णकी चिन्मयी शक्ति उनकी कृपासे गर्भस्थितिका अनुभव करने लगी और सौ मन्वन्तरतक ब्रह्मतेजसे उसका शरीर देदीप्यमान बना रहा ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णके प्राणोंपर उस देवीका अधिकार था। श्रीकृष्ण प्राणोंसे बढ़कर उसको प्यार करते थे। वह सदा उनके साथ रहती थी। श्रीकृष्णका वक्षःस्थल ही उसका स्थान था ॥ ४६ ॥ सौ मन्वन्तरका समय व्यतीत हो जानेपर उसने एक सुवर्णके समान प्रकाशमान बालक उत्पन्न किया ॥ ४७ ॥ उसमें विश्वको धारण करनेकी समुचित योग्यता थी, किन्तु उसे देखकर उस देवीका हृदय दुःखसे सन्तप्त हो उठा। उसने कोपवश उस बालकका ब्रह्माण्ड-गोलकके अथाह जलमें छोड़ दिया ॥ ४८ ॥ उसने बच्चेको त्याग दिया—यह देखकर हाहाकार करते हुए देवेश्वर श्रीकृष्णने तुरन्त उस देवीको शाप देते हुए कहा—॥ ४९ ॥ 'अरी कोपशीले! तूने जो बच्चेको त्याग दिया है, यह बड़ा घृणित कर्म है। इसके फलस्वरूप तू आजसे सन्तानहीन हो जायगी। यह बिल्कुल

॥४३॥ घर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान् ॥ तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा ॥ ४४ ॥ अथ सा कृष्णचिच्छक्तिः कृष्णगर्भं दधार ह ॥ शतमन्वंतरं यावज्ज्वलंती ब्रह्मतेजसा ॥ ४५ ॥ कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया ॥ कृष्णस्य संगिनी शश्वत्कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥४६॥ शतमन्वन्तरांते च कालेऽतीते तु सुन्दरी ॥ सुषाव डिम्भं स्वर्णाभं विश्वाधारालयं परम् ॥४७॥ दृष्ट्वा डिंभं च सा देवी हृदयेन व्यदूयत ॥ उत्स-सर्ज च कोपेन ब्रह्मांडगोलके जले ॥४८॥ दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह ॥ शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम् ॥४९॥ यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले च निष्ठुरे ॥ भव त्वमनपत्याऽपि चाद्यप्रभृति निश्चितम् ॥ ५० ॥ या यास्त्वदंशरूपाश्च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः ॥ अन-पत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समा नित्ययौवनाः ॥ ५१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाग्रात्सहसा ततः ॥ आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥ ५२ ॥ श्वेतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी ॥ रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥ ५३ ॥ अथ कालांतरे सा च द्विधारूपो बभूव ह ॥ वामार्धांगाच्च कमला दक्षिणार्धाच्च राधिका ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्नंतरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः ॥ दक्षिणार्धश्च द्विभुजो वामार्धश्च चतुर्भुजः ॥ ५५ ॥ उवाच वाणीं कृष्णस्तां त्वमस्य कामिनी भव ॥ अत्रैव मानिनी राधा तव भद्रं भविष्यति ॥ ५६ ॥ एवं लक्ष्मीं च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च॥ स जगाम

निश्चित है ॥५०॥ यही नहीं, किन्तु तेरे अंशसे जो-जो दिव्य स्त्रियाँ होंगी, वे सभी तेरे समान ही नूतन तारुण्यसे सम्पन्न रहनेपर भी संतानका मुख नहीं देख सकेंगी।' ॥५१॥ इतनेमें उस देवीकी जीभके अग्रभागसे सहसा एक परम मनोहर कन्या प्रकट हो गयी। उसके शरीरका वर्ण शुक्ल था ॥ ५२ ॥ वह श्वेत वर्णका ही वस्त्र धारण किये हुए थी। उसके दोनों हाथ वीणा और पुस्तकसे सुशोभित थे। सम्पूर्ण शास्त्रोंकी अधिष्ठात्री वह देवी रत्नमय आभूषणोंसे आभूषित थी ॥ ५३ ॥ तदनन्तर कुछ समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् वह मूलकृति देवी दो रूपोंमें प्रकट हुई। आधे वाम अङ्गसे 'कमला'का प्रादुर्भाव हुआ और दाहिने अंगसे 'राधिका'का ॥५४॥ उस समय श्रीकृष्ण भी दो रूप हो गये। आधे दाहिने अङ्गसे स्वयं 'द्विभुज' विराजमान रहे और बायें अङ्गसे चार भुजाओंवाले विष्णुका आविर्भाव हो गया ॥५५॥ तब श्रीकृष्णने सरस्वतीसे कहा—'देवी! तुम इन विष्णुकी प्रिया बन जाओ। मानिनी राधा यहाँ ही रहेगी। तुम्हारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परम कल्याण होगा।' ॥ ५६ ॥ इस प्रकार संतुष्ट होकर श्रीकृष्णने लक्ष्मीको नारायणकी सेवामें उपस्थित होनेकी आज्ञा प्रदान की। फिर तो जगत्की व्यवस्थामें तत्पर रहनेवाले श्रीविष्णु सरस्वती और लक्ष्मी दोनां देवियोंके साथ वैकुण्ठ पधारे ॥५७॥ मूलप्रकृतिरूपा राधाके अंशसे प्रकट होनेके कारण वे देवियाँ भी संतान प्रसव करनेमें असमर्थ रहीं। फिर नारायणके अंगसे चार भुजावाले अनेक पार्षद उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥ सभी पार्षद गुण, तेज, रूप और अवस्थामें श्रीहरिके समान थे। लक्ष्मीके अंगसे उन्हीं जैसे लक्षणोंसे सम्पन्न करोड़ों दासियाँ उत्पन्न हो गयीं ॥ ५९ ॥ हे मुनिवर नारद! इसके बाद गोलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके रोमकूपसे असंख्य गोप प्रकट हो गये। अवस्था, तेज, रूप, गुण, बल और पराक्रममें वे सभी श्रीकृष्णके समान ही प्रतीत होते थे। प्राणोंके समान प्रेमभाजन उन गोपोंको परम प्रभु श्रीकृष्णने अपना पार्षद बना लिया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ऐसे ही श्रीराधाके रोमकूपोंसे बहुत-सी गोपकन्याएँ निकल आयीं। वे सभी राधाके समान ही जान पड़ती थीं। उन मधुरभाषिणी कन्याओंको राधाने अपनी दासी बना लिया ॥ ६२ ॥ वे रत्नमय भूषणोंसे विभूषित थीं। उनका नया तारुण्य

च वैकुण्ठे ताभ्यां सार्धं जगत्पतः ॥ ५७ ॥ अनपत्ये च ते द्वे न जाते राधांशसंभवे ॥ भूता नारायणांगाश्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥ ५८ ॥ तेजसा वयसा रूपगुणाभ्यां च समा हरेः ॥ बभूव कमलांगाश्च दासीकोट्यश्च तत्समाः ॥ ५९ ॥ अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने ॥ भूताश्चासंख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः ॥ ६० ॥ रूपेण च गुणैनैव बलेन विक्रमेण च ॥ प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः ॥ ६१ ॥ राधांगलोमकूपेभ्यो बभवुर्गोपकन्यकाः ॥ राधातुल्याश्च ताः सर्वा राधादास्यः प्रियम्वदाः ॥६२॥ रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः ॥ अनपत्याश्च ताः सर्वाः पुंसः शापेन संततम् ॥ ६३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेवता ॥ आविर्बभूव दुर्गा सा विष्णुमाया सनातनी ॥ ६४ ॥ देवी नारायणीशाना सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ बुद्ध्यधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥६५॥ देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥६६॥ तप्तकाञ्चनवर्णाभा कोटिसूर्यसमप्रभा ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता ॥ ६७ ॥ नानाशस्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना ॥ वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥६८॥ यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः ॥ सर्वे विश्वस्थिता लोका मोहिताः स्युश्च मायया

सदा बना रहता है। परम पुरुषके शापसे अनपत्यदोष तो उनका चिरसाथी बन ही गया था ॥ ६३ ॥ हे विप्र! इतनेमें श्रीकृष्णको उपासना करनेवाली देवी दुर्गाका सहसा आविर्भाव हुआ। ये दुर्गा सनातनी एवं भगवान् विष्णुकी माया हैं ॥ ६४ ॥ इन्हें नारायणी, ईशानी और सर्वशक्तिस्वरूपिणी कहा जाता है। ये परमात्मा श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं ॥ ६५ ॥ सम्पूर्ण देवियाँ इन्हींसे प्रकट होती हैं। अतएव इन ईश्वरीको मूलप्रकृति कहते हैं। इनमें कोई भी अंश अधूरा नहीं है। इन तेजःस्वरूपिणी देवीमें तीनों गुण विद्यमान हैं ॥ ६६ ॥ तपाये हुए स्वर्णके समान इनका वर्ण है। ये ऐसी प्रभाशालिनी हैं, मानो करोड़ों सूर्य चमक रहे हों। इनके मुखपर मन्द-मन्द मुसकराहट छायी रहती है। ये हजारों भुजाओंसे सुशोभित हैं ॥ ६७ ॥ अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको हाथमें लिये रहती हैं। इनके तीन नेत्र हैं। ये विशुद्ध वस्त्र धारण किये हुए हैं। रत्नजटित भूषण इनको शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ६८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पूर्ण स्त्रियाँ इनके अंशकी कलासे उत्पन्न हुई हैं । इनकी माया जगत्के समस्त प्राणियोंको मोहित करनेमें समर्थ है ॥६९॥ गृहस्थ पुरुषोंको ये सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करती हैं । इनकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति उत्पन्न होती है । विष्णुके उपासकोंके लिए ये भगवती वैष्णवी हैं ॥ ७० ॥ मुमुक्षुजनोंको मुक्ति प्रदान करना और सुख चाहनेवालोंको सुखी बनाना इनका स्वभाव है । स्वर्गमें 'स्वर्गलक्ष्मी' और गृहस्थोंके घर 'गृहलक्ष्मी'के रूपमें ये विराजती हैं ॥ ७१ ॥ तपस्वियोंके पास तपस्यारूपसे, राजाओंके यहाँ श्रीरूपसे, अग्निमें दाहिकारूपसे, सूर्यमें प्रभारूपसे तथा चन्द्रमा एवं कमलमें शोभारूपसे इन्हींकी शक्ति शोभा पा रही है । सर्वशक्तिस्वरूपा ये देवी परमात्मा श्रीकृष्णके पास नित्य विराजमान रहती हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इनका सहयोग पाकर ही आत्मामें कुछ करनेकी योग्यता आती है । इन्हींसे जगत् शक्तिमान् माना जाता है । इनकें विना प्राणी जीते हुए भी मृतकके समान रहते हैं ॥ ७४ ॥ हे नारद ! ये सनातनी देवी संसाररूपी वृक्षके लिए बीजस्वरूपा हैं । स्थिति, वृद्धि, फल, क्षुधा, पिपासा, दया, निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, मति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति और कान्ति आदि सभी

॥६९॥ सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिनां गृहवासिनाम् ॥ कृष्णभक्तिप्रदा या च वैष्णवानां च वैष्णवी ॥७०॥ मुमुक्षूणां मोक्षदात्री सुखिनां सुखदायिनी ॥ स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च गृहलक्ष्मीर्गृहेषु च ॥७१॥ तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपा तु नृपेषु च ॥ या वह्नौ दाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे ॥ ७२ ॥ शोभारूपा च चंद्रे च सा पद्मेषु च शोभना ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा या श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥ ७३ ॥ यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमज्जगत् ॥ यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम् ॥७४॥ या च संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी ॥ स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा च नारद ॥ ७५ ॥ क्षुत्पिपासादयारूपा निद्रा तंद्रा क्षमा मतिः ॥ शांतिलज्जातुष्टिपुष्टिभ्रांतिकांत्यादिरूपिणी ॥ ७६ ॥ सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह ॥ रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः ॥ ७७ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः ॥ पद्मनाभेर्नाभिपद्मान्निःससार महामुने ॥ ७८ ॥ कमंडलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः ॥ चतुर्मुखैस्तं तुष्टाव प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥ ७९ ॥ सा तदा सुन्दरी सृष्टा शतचंद्रसमप्रभा ॥ वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषणा ॥ ८० ॥ रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम् ॥ उवास स्वामिना सार्धं कृष्णस्य पुरतो मुदा ॥ ८१ ॥ एतस्मिन्नंतरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः ॥ वामार्धांगो महादेवो दक्षिणे गोपिकापतिः ॥ ८२ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशः शतकोटिरविप्रभः ॥ त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्माम्बरो

इन दुर्गाके ही नाम-रूप हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ये देवी सर्वेश श्रीकृष्णकी स्तुति करके उनके सामने विराजमान हुईं । राधिकेश्वर श्रीकृष्णने इन्हें रत्नमय सिंहासन प्रदान किया ॥ ७७ ॥ हे महामुने ! इतनेमें चतुर्मुख ब्रह्मा अपनी शक्तिके साथ वहाँ पधारे । विष्णुके नाभिकमलसे निकलकर उनका पधारना हुआ था ॥७८॥ ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ परम तपस्वी श्रीमान् ब्रह्मा अपने हाथमें कमण्डलु लिये हुये थे । ब्रह्मतेजसे उनका शरीर देदीप्यमान हो रहा था ॥ ७९ ॥ वहाँ अपने चारों मुखोंसे वे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे । उस समय सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रभाशालिनी उनकी परम सुन्दरी शक्ति चिन्मय वस्त्र एवं रत्ननिर्मित भूषणोंसे अलंकृत होकर सर्वकारण श्रीकृष्णकी स्तुति करके पतिदेवके साथ श्रीकृष्णके सामने रत्नमय सिंहासनपर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गयीं ॥८०॥८१॥ इसी समय भगवान् श्रीकृष्णके दो रूप हो गये । उनका आधा बायाँ अङ्ग महादेवके रूपमें परिणत हो गया और दक्षिण अङ्गसे गोपपति श्रीकृष्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रह गये ॥ ८२ ॥ महादेवकी कान्ति ऐसी थी, मानो शुद्ध स्फटिकमणि हो। एक अरब सूर्यके समान वे चमक रहे थे। भुजाएँ पट्टिश और त्रिशूलसे सुशोभित थीं। वे बाघम्बर पहने हुए थे ॥ ८३ ॥ तपाये हुए सुवर्णके सदृश उनके वर्णकी आभा थी। सिरपर जटाओंका भार छवि बढ़ा रहा था। वे सारे शरीरमें भस्म लगाये हुए थे। मस्तकपर चन्द्रमाकी शोभा हो रही थी। मुखमण्डल मुसकानसे भरा था ॥ ८४ ॥ नील कण्ठसे शोभा पानेवाले वे शंकर दिगम्बर वेषमें थे। सर्पोंने भूषण बनकर उन्हें भूषित कर रखा था। उनके दाहिने हाथमें रत्नोंकी बनी हुई सुसंस्कृत माला सुशोभित थी ॥ ८५ ॥ वे अपने पाँच मुखोंसे ब्रह्म-ज्योतिस्वरूप सनातन श्रीकृष्णके नामका जप कर रहे थे। श्रीकृष्ण सत्यस्वरूप परमात्मा एवं ईश्वर हैं ॥ ८६ ॥ ये कारणोंके कारण, सम्पूर्ण मङ्गलोंके मङ्गल, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक, भयको हरनेवाले और मृत्युके भी मृत्यु हैं। अतएव इन्हें 'मृत्युञ्जय' भी कहा जाता है। महाभाग शंकर श्रीहरिकी स्तुति करके सामने रखे हुए रत्नमय सुरम्य सिंहासनपर विराजमान हो गये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे

हरः ॥ ८३ ॥ तप्तकांचनवर्णाभो जटाभारधरः परः ॥ भस्मभूषितगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥ ८४ ॥ दिगम्बरो नीलकंठः सर्पभूषणभूषितः ॥ बिभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम् ॥ ८५ ॥ प्रजपन्पंचवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ८६ ॥ कारणं कारणानां च सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् ॥ ८७ ॥ संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं यतो मृत्युंजयाभिधः॥ रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेः पुरः ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथ डिंभो जले तिष्ठन्यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ततः स काले सहसा द्विधाभूतो बभूव ह ॥ १ ॥ तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः ॥ क्षणं रोरूयमाणश्च स्तनांधः पीडितः क्षुधा ॥ २ ॥ पित्रा मात्रा परित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः ॥ ब्रह्मांडासंख्यनाथो यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत् ॥ ३ ॥ स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो महाविराट् ॥ परमाणुर्यथा सूक्ष्मात्परः स्थूलात्तथाप्यसौ ॥ ४ ॥ तेजसा षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ आधारः सर्वविश्वानां महाविष्णुश्च प्राकृतः ॥ ५ ॥ प्रत्येकं लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च ॥ अस्यापि तेषां

पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

(परिपूर्णतम श्रीकृष्ण और चिन्मयी श्रीराधासे प्रकट विराट्स्वरूप बालकका वर्णन) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! तदनन्तर वह बालक, जो केवल अण्डाकार था, ब्रह्माकी आयु पर्यन्त समयतक ब्रह्माण्डलोकके जलमें रहा। फिर समय पूरा हो जानेपर वह सहसा दो रूपोंमें प्रकट हो गया ॥ १ ॥ एक अण्डाकार ही रहा और एक शिशुके रूपमें परिणत हो गया। उस शिशुकी कान्ति ऐसी थी, मानो सौ करोड़ सूर्य एक साथ प्रकाशित हो रहे हों। माताका दूध न मिलनेके कारण भूखसे पीड़ित होकर वह कुछ समयतक रोता रहा ॥ २ ॥ माता-पिता उसे त्याग चुके थे। वह निराश्रय होकर जलके अन्दर समय व्यतीत कर रहा था। जो असंख्य ब्रह्माण्डका स्वामी था, उसीने अनाथकी भाँति आश्रय पानेकी इच्छासे ऊपरकी ओर दृष्टि दौड़ायी ॥३॥ उसकी आकृति स्थूलसे भी स्थूल थी। अतएव उसका नाम महाविराट् पड़ा। जैसे परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होता है, वैसे ही वह अत्यन्त स्थूल-सूक्ष्म दोनों था ॥४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह बालक तेजमें परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें अंशकी बराबरी कर रहा था। परमात्मस्वरूपा प्रकृतिसंज्ञक राधासे उत्पन्न यह महान् विराट् बालक सम्पूर्ण विश्वका आधार है। यही 'महाविष्णु' कहलाता है ॥५॥ इसके प्रत्येक रोमकूपमें जितने विश्व हैं, उन सबकी संख्याका पता लगाना श्रीकृष्णके लिए भी असंभव है। वे भी उन्हें स्पष्ट नहीं बता सकते ॥ ६ ॥ जैसे जगत्के रजःकणको कभी नहीं गिना जा सकता, उसी प्रकार इस शिशुके शरीरमें कितने ब्रह्मा और विष्णु आदि हैं—यह नहीं बताया जा सकता ॥७॥ प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव विद्यमान हैं। पातालसे लेकर ब्रह्मलोकतक अनगिनत ब्रह्माण्ड बताये गये हैं। तब उनकी संख्या कैसे निश्चित की जा सकती है ? ॥ ८ ॥ ऊपर वैकुण्ठलोक है। यह ब्रह्माण्डसे बाहर है। इसके ऊपर पचास करोड़ योजनके विस्तारमें गोलोकधाम है ॥९॥ श्रीकृष्णके समान ही यह लोक भी नित्य और चिन्मय सत्यस्वरूप है। पृथ्वी सात द्वीपोंसे सुशोभित है। सात समुद्र इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥१०॥ उनचास छोटे-छोटे द्वीप हैं। पर्वतों और वनोंकी तो कोई संख्या ही नहीं हैं। सबसे ऊपर सात स्वर्गलोक हैं। ब्रह्मलोक भी इन्हीमें सम्मिलित है ॥११॥ नीचे सात पाताल हैं। पृथ्वीसे ऊपर भूलोक, उससे परे भुवर्लोक, भुवर्लोकसे परे स्वर्लोक, उससे परे जनलोक, जनलोकसे परे तपलोक, तपलोकसे परे सत्यलोक और सत्यलोकसे परे ब्रह्मलोक है। ब्रह्मलोक ऐसा प्रकाशमान है कि मानो तपाया हुआ सोना चमक रहा हो। ये सभी कृत्रिम हैं। कुछ तो ब्रह्माण्डके भीतर हैं और कुछ बाहर ॥ १२–१४ ॥ हे नारद ! ब्रह्माण्डके नष्ट होनेपर ये सभी नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि पानीके बुलबुलेकी भाँति यह सारा जगत् अनित्य है ॥ १५ ॥ गोलोक और वैकुण्ठलोकको नित्य, अविनाशी एवं अकृत्रिम कहा गया है। उस विराट्मय बालकके प्रत्येक रोमकूपमें असंख्य ब्रह्माण्ड निश्चितरूपसे विराजमान हैं ॥१६॥ इनकी निश्चित संख्या श्रीकृष्ण भी नहीं जानते, तब और कौन जान सकेगा ? एक-एक ब्रह्माण्डमें अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। हे बेटा नारद! देवताओंकी संख्या तीन करोड़ है। ये सर्वत्र व्याप्त हैं। दिशाओंके स्वामी, दिशाओंकी

संख्यां च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः॥ ६ ॥ संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां न कदाचन ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते ॥ ७ ॥ प्रति-
विश्वेषु संत्येवं ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥ पातालाद्ब्रह्मलोकांतं ब्रह्मांडं परिकीर्तितम् ॥ ८ ॥ तत ऊर्ध्वं च वैकुण्ठो ब्रह्मांडाद्बहिरेव सः॥ तत ऊर्ध्वं च
गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः ॥९॥ नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाऽप्ययम्॥ सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता ॥ १० ॥ ऊनपंचाशदुप-
द्वीपाऽसंख्यशैलवनान्विता ॥ ऊर्ध्वं सप्त स्वर्गलोका ब्रह्मलोकसमन्विताः ॥ ११ ॥ पातालानि च सप्ताधश्चैव ब्रह्मांडमेव च ॥ ऊर्ध्वं धराया भूर्लोको
भुवर्लोकस्ततः परम् ॥१२॥ ततः परश्च स्वर्लोको जनलोकस्तथापरः ॥ ततः परस्तपोलोकः सत्यलोकस्ततः परः ॥१३॥ ततः परं ब्रह्मलोकस्त-
प्तकांचनसन्निभः ॥ एवं सर्वं कृत्रिमं च बाह्याभ्यंतरमेव च ॥ १४ ॥ तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद ॥ जलबुद्बुदवत्सर्वं विश्वसंघमनित्य-
कम् ॥ १५ ॥ नित्यौ गोलोकवैकुंठौ प्रोक्तौ शश्वदकृत्रिमौ ॥ प्रत्येकं लोमकूपेषु ब्रह्मांडं परिनिश्चितम् ॥ १६ ॥ एषां संख्यां न जानाति कृष्णोऽ-
न्यस्यापि का कथा ॥ प्रत्येकं प्रतिब्रह्मांडं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १७ ॥ तिस्रः कोट्यः सुराणां च संख्या सर्वत्र पुत्रक ॥ दिगीशाश्चैव दिक्पाला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रक्षा करनेवाले दिक्पाल, ग्रह एवं नक्षत्र—सभी इसमें सम्मिलित हैं ॥१७॥१८॥ भूमण्डलपर चार प्रकारके वर्ण हैं। नीचे नागलोक है। चर और अचर सभी प्रकारके प्राणी उसपर निवास करते हैं। हे नारद! तदनन्तर वह विराटस्वरूप बालक बार-बार ऊपर दृष्टि दौड़ाने लगा ॥ १९ ॥ वह गोलाकार पिण्ड बिल्कुल खाली था। दूसरी कोई भी वस्तु वहाँ नहीं थी। इससे उसके मनमें चिन्ता उत्पन्न हो गयी। भूखसे आतुर होकर वह बालक बार-बार रुदन करने लगा ॥ २० ॥ फिर जब उसे ज्ञान हुआ, तब उसने परम पुरुष श्रीकृष्णका ध्यान किया। तब वहीं उसे सनातन ब्रह्मज्योतिके दर्शन प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ वे ज्योतिर्मय श्रीकृष्ण नवीन मेघके समान श्याम थे। उनके दो भुजाएँ थीं। उन्होंने पीताम्बर पहन रखा था। उनके हाथमें मुरली शोभा पा रही थी। मुखमण्डल मुसकानसे भरा था। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए वे कुछ व्यस्त-से जान पड़ते थे ॥ २२ ॥ पिता परमेश्वरको देख वह बालक संतुष्ट होकर हँस पड़ा। फिर तो वरके अधिदेवता श्रीकृष्णने समयानुसार उसे वरदान दिया ॥ २३ ॥ उन्होंने कहा—'बेटा! तुम मेरे समान ज्ञानी बन जाओ।

नक्षत्राणि ग्रहादयः ॥ १८ ॥ भुवि वर्णाश्च चत्वारोऽप्यधो नागाश्चराचराः ॥ अथ कालेन स विराड्ढ्र्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः ॥ १९ ॥ डिंभांतरे च शून्यं च न द्वितीयं च किंचन ॥ चिंतामवाप क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः ॥ २० ॥ ज्ञानं प्राप्य तदा दध्यौ कृष्णं परमपूरुषम् ॥ ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ २१ ॥ नवीनजलदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥ सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ २२ ॥ जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम् ॥ वरं तदा ददौ तस्मै वरेशः समयोचितम् ॥ २३ ॥ मत्समो ज्ञानयुक्तश्च क्षुत्पिपासादिवर्जितः ॥ ब्रह्मांडासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि ॥ २४ ॥ निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदो भव ॥ जरामृत्युरोगशोकपीडादिवर्जितो भव ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा तस्य कर्णे स महामंत्रं षडक्षरम् ॥ त्रिःकृत्वश्च प्रजजाप वेदांगप्रवरं परम् ॥ २६ ॥ प्रणवादिचतुर्थ्यंतं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ॥ वह्निजायांतमिष्टं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥ २७ ॥ मंत्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वै विभुः ॥ श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोध कथयामि ते ॥ २८ ॥ प्रतिविश्वं यन्नैवेद्यं ददाति वैष्णवो जनः ॥ तत्षोडशांशो विषयिणो विष्णोः पंचदशास्य वै ॥ २९ ॥ निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च ॥ नैवेद्ये चैव कृष्णस्य न हि किंचि-

भूख और प्यास तुम्हारे पास न आ सकें। प्रलयपर्यन्त यह असंख्य ब्रह्माण्ड तुमपर अवलम्बित रहे ॥२४॥ तुम निष्काम, निर्भय और सबके वरदाता बन जाओ। जरा, मृत्यु, रोग और शोक आदि तुम्हें कष्ट न पहुँचा सकें ॥२५॥ यों कहकर भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके कानमें तीन बार इस षडक्षर महामन्त्रका उच्चारण किया। यह उत्तम मन्त्र वेदका प्रधान अङ्ग है ॥२६॥ आदिमें 'ॐ' का स्थान है। बीचमें चतुर्थी विभक्तिके साथ 'कृष्ण' ये दो अक्षर हैं। अन्तमें अग्निकी पत्नी 'स्वाहा' सम्मिलित हो जाती हैं। इस प्रकार 'ॐ कृष्णाय स्वाहा' यह मन्त्रका स्वरूप है। इस मन्त्रका जप करनेसे सम्पूर्ण विघ्न टल जाते हैं ॥२७॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद! मन्त्रोपदेशके पश्चात् परम प्रभु श्रीकृष्णने उस बालकके लिए भोजनकी जो व्यवस्था की, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो ॥२८॥ प्रत्येक विश्वमें वैष्णवजन जो कुछ भी नैवेद्य भगवान्को अर्पण करते हैं, उसमेंसे सोलहवाँ भाग विष्णुको मिलता है और पन्द्रह भाग इस बालकके लिए निश्चित है। क्योंकि यह बालक स्वयं परिपूर्णतम श्रीकृष्णका विराट रूप है ॥२९॥ हे प्रियवर! सर्वव्यापी श्रीकृष्णने उस उत्तम मन्त्रका ज्ञान प्राप्त करानेके पश्चात् पुनः उस विराट-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मय बालकसे कहा—'हे पुत्र ! तुम्हें इसके सिवा दूसरा कौन-सा वर अभीष्ट है, वह भी मुझे बताओ । मैं देनेके लिये सहर्ष तैयार हूँ ।' ॥३०॥३१॥ उस समय विराट् व्यापक प्रभु ही बालकस्वरूपसे विराजमान था । भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर उसने समयोचित बात कही ॥३२॥ बालकने कहा—हे प्रभो ! आपके चरण-कमलोंमें मेरी अविचल भक्ति हो—मैं यही वर चाहता हूँ । मेरी आयु चाहे एक क्षणकी हो अथवा दीर्घकालकी, परन्तु मैं जबतक जीऊँ तबतक आपमें मेरी अटल श्रद्धा बनी रहे ॥३३॥३४॥ इस लोकमें जो पुरुष आपका भक्त है, उसे सदा जीवन्मुक्त समझना चाहिए । आपकी भक्ति से विमुख मूर्ख व्यक्ति जीते हुए भी मुर्दा माना जाता है ॥३५॥ जिस अज्ञानी जनके हृदयमें आपकी भक्ति नहीं है, उसे जप, तप, यज्ञ, पूजन, व्रत, उपवास, पुण्य अथवा तीर्थसेवनसे क्या लाभ ? उसका जीवन ही निष्फल है । क्योंकि वह मूर्ख जिससे जीवन पाता है, उस परम प्रभुके अस्तित्वको ही नहीं स्वीकार करता

त्प्रयोजनम् ॥३०॥ यद्यद्ददाति नैवेद्यं तस्मै देवाय यो जनः ॥ स च खादति तत्सर्वं लक्ष्मीनाथो विराट् तथा ॥ ३१ ॥ तं च मंत्रवरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः ॥ वरमन्यं किमिष्टं ते तन्मे ब्रूहि ददामि च ॥ ३२ ॥ कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच विराड् विभुः ॥ कृष्णं तं बालकस्ताव-द्वचनं समयोचितम् ॥ ३३ ॥ बालक उवाच ॥ वरो मे त्वत्पदांभोजे भक्तिर्भवतु निश्चला ॥ सततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरं च वा ॥ ३४ ॥ त्वद्भक्तियुक्तलोकेऽस्मिञ्जीवन्मुक्तश्च संततम् ॥ त्वद्भक्तिहीनो मूर्खश्च जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ ३५ ॥ किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च ॥ व्रतेन चोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया ॥ ३६ ॥ कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा ॥ येनात्मना जीवितश्च तमेव न हि मन्यते ॥ ३७ ॥ यावदात्मा शरीरेऽस्ति तावत्स शक्तिसंयुक्तः ॥ पश्चाद्यांति गते तस्मिन्स्वतंत्राः सर्वशक्तयः ॥३८॥ स च त्वं च महाभाग सर्वात्मा प्रकृतेः परः ॥ स्वेच्छामयश्च सर्वाद्यो ब्रह्मज्योतिः सनातनः ॥३९॥ इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद ॥ उवाच कृष्णः प्रत्युक्तिं मधुरां श्रुतिसुन्दरीम् ॥४०॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाऽहं त्वं तथा भव ॥ ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्ते न भविष्यति ॥ ४१ ॥ अंशेन प्रतिब्रह्मांडे त्वं च क्षुद्रविराड् भव ॥ त्वन्नाभिपद्माद्ब्रह्मा च विश्वस्रष्टा भविष्यति ॥४२॥ ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्राश्चैकादशैव ते ॥ शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसंहर-णाय वै ॥ ४३ ॥ कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः ॥ पाता विष्णुश्च विषयी रुद्रांशेन भविष्यति ॥ ४४ ॥ मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि

॥३६॥३७॥ हे प्रभो ! जबतक शरीरमें आत्मा रहता है, तबतक शक्तियाँ साथ रहती हैं । आत्माके चले जानेके पश्चात् सम्पूर्ण स्वतन्त्र शक्तियांकी भी सत्ता वहाँ नहीं रह जाती ॥३८॥ हे महाभाग ! प्रकृतिसे परे सर्वात्मा आप ही हैं । आप स्वेच्छामय सनातन ब्रह्मज्योतिस्वरूप परमात्मा एवं सबके आदिपुरुष हैं ॥ ३९ ॥ हे नारद ! इस प्रकार अपने हृदयका उद्गार प्रकट करके वह बालक चुप हो गया । तब भगवान् श्रीकृष्ण कानोंको सुहावनी लगानेवाली मधुर वाणीमें उत्तर देने लगे ॥४०॥ भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स ! मेरी ही भाँति तुम भी बहुत समय-तक अत्यन्त स्थिर होकर विराजमान रहो । असंख्य ब्रह्माओंका जीवन समाप्त हो जानेपर भी तुम्हारा नाश नहीं होगा ॥४१॥ प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अपने स्वल्प अंशसे तुम लघु विराट्के रूपमें विराजमान रहोगे । तुम्हारे नाभिकमलसे विश्वस्रष्टा ब्रह्मा प्रकट होंगे ॥४२॥ ब्रह्माके ललाटसे ग्यारह रुद्रोंका आविर्भाव होगा । शिवके अंश वे रुद्र ही सृष्टिके संहारकी व्यवस्था करेंगे॥४३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन ग्यारहों रुद्रोंमें 'कालाग्नि' नामसे जो प्रसिद्ध हैं, वे ही रुद्र विश्वके संहारक होंगे। विष्णु विश्वकी रक्षा करनेके लिए रुद्रके अंशसे प्रकट होंगे ॥४४॥ मेरे वरके प्रभावसे तुम्हारे हृदयमें सदा मेरी भक्ति बनी रहेगी। तुम मेरे परम सुन्दर स्वरूपको ध्यानके द्वारा निरन्तर देख सकोगे। यह निश्चित है ॥ ४५ ॥ तुम्हारी कमनीय माता मेरे वक्षःस्थलपर विराजमान रहेगी। उसकी भी झाँकी तुम प्राप्त कर सकोगे। हे वत्स! अब मैं अपने गोलोकको जाता हूँ। तुम यहीं ठहरो ॥ ४६ ॥ इस प्रकार उस बालकसे कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। उन्हें गोलोक जाते क्या देर। वहाँ पहुँचकर उन्होंने तुरन्त सृष्टिकी व्यवस्था करनेवाले ब्रह्मा तथा संहारकार्यमें कुशल रुद्रको आज्ञा दी ॥४७॥ भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मासे कहा—हे वत्स! तुम सृष्टि रचनेके लिए जाओ। हे विधे! मेरी बात सुनो। महाविराट्के रोमकूपोंमें असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। उनमेंसे जो एक छोटा-सा ब्रह्माण्ड है, उसमें विराजनेवाले विराट् पुरुषकी नाभिसे जो कमल निकला है, उसपर तुम प्रकट हो जाओ।' फिर रुद्रको संकेत करके कहा—'हे महाभाग महादेव! तुम मेरे परम प्रिय हो। अपने अंशसे जगत्का संहार करनेके लिए तुम ब्रह्माके ललाटसे प्रकट

वरेण मे ॥ ध्यानेन कमनीयं मां नित्यं द्रक्ष्यसि निश्चितम् ॥ ४५ ॥ मातरं कमनीयां च मम वक्षःस्थलस्थिताम् ॥ यामि लोकं तिष्ठ वत्सेत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत ॥ ४६ ॥ गत्वा स्वलोकं ब्रह्माणं शंकरं समुवाच ह ॥ स्रष्टारं स्रष्टुमीशं च संहर्तुं चैव तत्क्षणम् ॥ ४७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सृष्टिं स्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवो भव ॥ महाविराड् लोमकूपे क्षुद्रस्य च विधे शृणु ॥ ४८ ॥ गच्छ वत्स महादेव ब्रह्मभालोद्भवो भव ॥ अंशेन च महाभाग स्वयं च सुचिरं तप ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुत ॥ जगाम ब्रह्मा तं नत्वा शिवश्च शिवदायकः ॥ ५० ॥ महाविराड् लोमकूपे ब्रह्मांडगोलके जले ॥ बभूव च विराट् क्षुद्रो विराडंशेन सांप्रतम् ॥ ५१ ॥ श्यामो युवा पीतवासाः शयानो जलतल्पके ॥ ईषद्धास्यः प्रसन्नास्यो विश्वव्यापी जनार्दनः ॥ ५२ ॥ तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः ॥ संभूय पद्मदंडे च बभ्राम युगलक्षकम् ॥ ५३ ॥ नांतं जगाम दंडस्य पद्मनालस्य पद्मजः ॥ नाभिजस्य च पद्मस्य चिन्तामाप पिता तव ॥ ५४ ॥ स्वस्थानं पुनरागत्य दध्यौ कृष्णपदांबुजम् ॥ ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा ॥ ५५ ॥ शयानं जलतल्पे च ब्रह्मांडगोलकाप्लुते ॥ यल्लोमकूपे ब्रह्माण्डं तत्कृतं परमीश्वरम् ॥ ५६ ॥

हो जाओ और दीर्घकालतक तपस्या करो' ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हे नारद! जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण यों कहकर चुप हो गये। तब ब्रह्मा और कल्याणकारी शिव—दोनों महानुभाव उन्हें प्रणाम करके विदा हो गये ॥५०॥ महाविराट् पुरुषके रोमकूपमें अब ब्रह्माण्डगोलकका जल विराजमान है। उसमें एक साधारण विराट् पुरुष रहते हैं। ये उन महाविराट्के अंश हैं ॥५१॥ इनकी सदा युवा अवस्था रहती है। इनका श्याम रंगका विग्रह है। ये पीताम्बर पहनते हैं। जलरूपी शय्यापर सोये रहते हैं। इनका मुखमण्डल मुसकानसे भरा रहता है। इन प्रसन्नमुख तथा विश्वव्यापी प्रभुको 'जनार्दन' कहा जाता है ॥५२॥ इन्हींके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने कमलमूलका पता लगानेके विचारसे उस कमलदण्डपर एक लाख युगोंतक चक्कर लगाया ॥५३॥ हे नारद! इतना प्रयास करनेपर भी नाभिसे उत्पन्न उस कमलदण्डके अन्ततक जानेमें तुम्हारे पिताजी सफल नहीं हो सके। अतः उनके मनपर चिन्ता छा गयी ॥५४॥ तब वे पुनः अपने स्थानपर आकर भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलका ध्यान करने लगे। उस स्थितिमें उन्हें दिव्य दृष्टिके द्वारा विराट् पुरुषके दर्शन प्राप्त हुए ॥५५॥ ब्रह्माण्डगोलकके भीतर जल-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शय्यापर वे विराट् पुरुष शयन कर रहे थे। फिर जिनके रोमकूपसे वह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ था, उन परम प्रभु भगवान् श्रीकृष्णके भी दर्शन हुए ॥ ५६ ॥ गोपों और गोपियोंसे सुशोभित गोलोकधामको भी देखनेमें वे सफलता पा गये। फिर तो श्रीकृष्णको स्तुति करके उन्होंने उनसे वरदान पाकर सृष्टिका कार्य आरम्भ कर दिया ॥ ५७ ॥ सर्वप्रथम ब्रह्माके सनकादि चार मानस पुत्र उत्पन्न हुए। फिर शिवकी सुप्रसिद्ध ग्यारह कलाएँ रुद्ररूपसे प्रकट हुईं ॥ ५८ ॥ फिर जगत्‌की रक्षाके व्यवस्थापक श्रीविष्णु प्रकट हुए। उस समय वे विराट्पुरुषके वाम-भागसे प्रकट होकर श्वेतद्वीपमें विराजमान हुए। चार भुजाओंसे उनकी अनुपम शोभा हो रही थी ॥ ५९ ॥ यों विराट्पुरुषके नाभिकमलपर प्रकट होकर ब्रह्माने विश्वकी रचना की। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल–त्रिलोकीके सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंका उन्होंने सृजन किया ॥ ६० ॥ हे नारद ! इस प्रकार महाविराट् पुरुषके सम्पूर्ण रोमकूपोंमें एक-एक करके अनेक ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक विराट्पुरुष और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव प्रभृति सहयोगी देवता रहकर कार्यकी व्यवस्था करते हैं ॥ ६१ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय चरित्रका

श्रीकृष्णं चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम् ॥ तं संस्तूय वरं प्राप ततः सृष्टिं चकार सः ॥ ५७ ॥ बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः ॥ ततो रुद्रकलाश्चापि शिवस्यैकादश स्मृताः ॥ ५८ ॥ बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः ॥ चतुर्भुजश्च भगवान् श्वेतद्वीपे स चावसत् ॥ ५९ ॥ क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्मा विश्वं ससर्ज ह ॥ स्वर्गं मर्त्यं च पातालं त्रिलोकीं सचराचराम् ॥ ६० ॥ एवं सर्वं लोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च ॥ प्रतिविश्वे क्षुद्रविराड्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ६१ ॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्कृष्णसंकीर्तनं शुभम् ॥ सुखदं मोक्षदं ब्रह्मन्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ नारद उवाच ॥ श्रुतं सर्वं मया पूर्वं त्वत्प्रसादात्सुधोपमम् ॥ अधुना प्रकृतीनां च व्यस्तं वर्णय पूजनम् ॥ १ ॥ कस्या पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रचारिता ॥ केन वा पूजिता का वा केन का वा स्तुता प्रभो ॥ २ ॥ तासां स्तोत्रं च ध्यानं च प्रभावं चरितं शुभम् ॥ काभिः केभ्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ॥ सावित्री सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥ ४ ॥ आसां पूजा प्रसिद्धा च प्रभावः परमाद्भुतः ॥ सुधोपमं च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥ ५ ॥ प्रकृत्यंशाः कला याश्च तासां च चरितं

वर्णन कर दिया। यह प्रसंग सुख एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। हे ब्रह्मन् ! अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(सरस्वतीकी पूजाका विधान तथा कवच) नारदजीने कहा–हे भगवन् ! आपकी कृपासे ही मुझे यह अमृतमयी सम्पूर्ण कथा सुननेको मिली है। अब आप इन प्रकृतिसंज्ञक देवियोंके पूजनका प्रसंग विस्तारके साथ बतानेकी कृपा कीजिए ॥ १ ॥ किस पुरुषने किन देवीकी कैसी आराधना की ? मर्त्यलोकमें किस प्रकार उनकी पूजाका प्रचार हुआ ? किस मंत्रसे किनकी पूजा तथा किस स्तोत्रसे किनकी स्तुति की गयी ? ॥ २ ॥ किन देवियोंने किनको कौन-कौनसे वर दिये ? मुझे देवियोंके स्तोत्र, ध्यान, प्रभाव और पावन चरित्रके साथ-साथ उपर्युक्त सारी बातें बतानेकी कृपा कीजिए ॥ ३ ॥ भगवान् नारायण कहते हैं–हे नारद ! गणेशजननी दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री–ये पाँच देवियाँ सृष्टिकी प्रकृति कही जाती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं ॥ ४ ॥ इनकी पूजा और अद्भुत प्रभाव प्रसिद्ध है। अमृतकी तुलना करनेवाले इनके सुप्रसिद्ध चरित्ररस सम्पूर्ण मङ्गल सुलभ हो जाते हैं ॥५॥ हे ब्रह्मन्! प्रकृतिके अंश और कलासंज्ञक जो देवियाँ हैं, उनके पुण्यचरित्र तुम्हें बताता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥६॥ इन देवियोंके नाम हैं—काली, वसुन्धरा, गङ्गा, षष्ठी, मंगलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा ॥७॥ इनके संक्षिप्त, मधुर और वैराग्योत्पादक चरित्रमें भी प्राणीको पवित्र करनेकी पूर्ण शक्ति है। दुर्गा और राधाका चरित्र बहुत विस्तृत है। संक्षेपमें उसे कहता हूँ--सुनो ॥८॥ ९॥ हे मुनिवर! सर्वप्रथम भगवान श्रीकृष्णने उन सरस्वतीको पूजा की है, जिनके प्रसादसे मूर्ख व्यक्ति भी पण्डित बन जाता है ॥१०॥ इन कामस्वरूपिणी देवीने श्रीकृष्णको पानेकी इच्छा प्रकट की थी। ये सरस्वती सबकी माता कही जाती हैं ॥११॥ सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्णने उनका अभिप्राय समझकर सत्य, हितकर तथा परिणाममें सुख देनेवाले वचन कहे ॥ १२ ॥ भगवान्

शुभम् ॥ सर्वं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्सावधानो निशामय ॥ ६ ॥ काली वसुन्धरा गंगा षष्ठी मङ्गलचण्डिका ॥ तुलसी मनसा निद्रा स्वधा स्वाहा च दक्षिणा ॥ ७ ॥ संक्षिप्तमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम् ॥ जीवकर्मविपाकं च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥८॥ दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितं महत् ॥ तद्वत्पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपक्रमतः शृणु ॥ ९ ॥ आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता ॥ यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पंडितः ॥ १० ॥ आविर्भूता यथा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः ॥ इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥ ११ ॥ स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम् ॥ तमुवाच हितं सत्यं परिणामे सुखावहम् ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ भज नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम् ॥ युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम् ॥ १३ ॥ कामज्ञं कामिनीनां च तासां च कामपूरकम् ॥ कोटिकंदर्पलावण्यं लीलालंकृतमीश्वरम् ॥ १४ ॥ कांते कांतं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि ॥ त्वत्तो बलवती राधा न भद्रं ते भविष्यति ॥ १५ ॥ यो यस्माद्बलवान्वाणि ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः ॥ कथं परान्साधयति यदि स्वयमनीश्वरः ॥ १६ ॥ सर्वेशः सर्वशास्ताऽहं राधां बाधितुमक्षमः ॥ तेजसा मत्समा सा च रूपेण च गुणेन च ॥ १७ ॥ प्राणाधिष्ठातृदेवी सा प्राणांस्त्यक्तुं च कः क्षमः ॥ प्राणतोऽपि प्रियः पुत्रः केषां वाऽस्ति च कश्चन ॥ १८ ॥ त्वं भद्रे गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति ॥ पतिं तमीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम् ॥ १९ ॥ लोभमोहकामक्रोधमानहिंसाविवर्जिता ॥ तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च ॥ २० ॥ तया सार्धं

श्रीकृष्ण बोले—हे साध्वी सरस्वती! तुम नारायणके पास पधारो। वे मेरे ही अंश हैं। उनके चार भुजाएँ हैं। मेरे ही समान उन परम सुन्दर पुरुषमें सभी सद्गुण वर्तमान ॥१३॥ हैं वे सदा तरुण रहते हैं। करोड़ों कामदेवोंके समान उनकी सुन्दरता है। लीलामय दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। मैं सबका स्वामी हूँ। सभी मेरा अनुशासन मानते हैं। किंतु राधाकी इच्छाका प्रतिबन्धक मैं नहीं हो सकता। क्योंकि वे तेज, रूप और गुण—सबमें मेरे समान हैं। सबको प्राण अत्यन्त प्रिय होते हैं। फिर मैं अपने प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी इन राधाका त्याग करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ? तुम वैकुण्ठ पधारो। तुम्हारे लिए वहीं रहना हितकर होगा। सर्वसमर्थ विष्णुको अपना स्वामी बनाकर दीर्घकालतक आनन्दका अनुभव करो ॥१४–१९॥ तेज, रूप और गुणमें तुम्हारे ही समान उनकी एक पत्नी लक्ष्मी भी वहाँ हैं। लक्ष्मीमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और हिंसा—ये नाममात्रको भी नहीं हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥२०॥ उनके साथ तुम्हारा समय सदा प्रेमपूर्वक और सुखसे व्यतीत होगा। विष्णु तुम दोनोंका समानरूपसे सम्मान करेंगे ॥२१॥ हे सुन्दरी ! प्रत्येक ब्रह्माण्डमें माघ शुक्ल पञ्चमीके दिन विद्यारम्भके शुभ अवसरपर बड़े गौरवके साथ तुम्हारी विशाल पूजा होगी ॥२२॥ मेरे वरके प्रभावसे आजसे लेकर प्रलयपर्यन्त प्रत्येक कल्पमें मनुष्य, मनुगण, देवता, मोक्षकामी प्रसिद्ध मुनिगण, वसु, योगी, सिद्ध, नाग, गन्धर्व और राक्षस—सभी बड़ी भक्तिके साथ सोलह प्रकारके उपचारों द्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे ॥२३॥२४॥ उन संयमशील तथा जितेन्द्रिय पुरुषोंके द्वारा कण्व-शाखामें कही हुई विधिके अनुसार तुम्हारा ध्यान और पूजन होगा। घट अथवा पुस्तकमें वे तुम्हें आवाहित करेंगे ॥ २५ ॥ तुम्हारे कवचको भोजपत्रपर लिखकर उसे सोनेकी डिब्बीमें रख गन्ध एवं चन्दन आदिसे सुपूजित करके लोग अपने गलेमें अथवा दाहिनी भुजामें धारण करेंगे ॥ २६ ॥ पूजाके पवित्र अवसरपर विद्वान् पुरुषोंके द्वारा तुम्हारा

तव प्रीत्या शश्वत्कालं प्रयास्यति ॥ गौरवं च हरिस्तुल्यं करिष्यति द्वयोरपि ॥२१॥ प्रतिविश्वेषु तां पूजां महतीं गौरवान्विताम् ॥ माघस्य शुक्ल-पञ्चम्यां विद्यारंभे च सुन्दरि ॥ २२ ॥ मानवा मनवो देवा मुनींद्राश्च मुमुक्षवः ॥ वसवो योगिनः सिद्धा नागा गंधर्वराक्षसाः ॥ २३ ॥ मद्वरेण करिष्यंति कल्पे-कल्पे लयावधि ॥ भक्तियुक्ताश्च दत्त्वा वै चोपचाराणि षोडश ॥ २४ ॥ कण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेन स्तवनेन च ॥ जितेंद्रियाः संयताश्च घटे च पुस्तकेऽपि च ॥ २५ ॥ कृत्वा सुवर्णगुटिकां गंधचन्दनचर्चिताम् ॥ कवचं ते ग्रहीष्यंति कंठे वा दक्षिणे भुजे ॥ २६ ॥ पठिष्यंति च विद्वांसः पूजाकाले च पूजिते ॥ इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजिताम् ॥ २७ ॥ ततस्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ अनंतश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः ॥ २८ ॥ सर्वे देवाश्च मुनयो नृपाश्च मानवादयः ॥ बभूव पूजिता नित्यं सर्वलोकैः सरस्वती ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ पूजाविधानं कवचं ध्यानं चापि निरन्तरम् ॥ पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पं च चन्दनादिकम् ॥ ३० ॥ वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ वर्तते हृदये शश्वत्किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कण्वशाखोक्तपद्धतिम् ॥ जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्वितम् ॥ ३२ ॥ माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारंभदिनेऽपि च ॥ पूर्वेऽह्नि समयं कृत्वा तत्राह्नि संयतः शुचिः ॥ ३३ ॥ स्नात्वा नित्यक्रियाः कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः ॥ स्वशाखोक्तविधानेन तांत्रिकेणाथवा पुनः ॥ ३४ ॥ गणेशं पूर्व-

सम्यक् प्रकारसे स्तुतिपाठ होगा। ऐसा कहकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने भी उन सर्वपूजिता देवी सरस्वतीकी पूजा की ॥ २७ ॥ तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, मुनीश्वर सनकादिगण, देवता, मुनि, राजा और मनुगण—ये सभी भगवती सरस्वतीकी उपासना करने लगे। तबसे ये सरस्वती देवी सम्पूर्ण प्राणियों द्वारा सदा सुपूजित होने लगीं ॥२८॥२९॥ नारदजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो ! आप भगवती सरस्वतीकी पूजाका विधान, कवच, ध्यान, उपयुक्त नैवेद्य, फूल तथा चन्दन आदिका परिचय देनेकी कृपा कीजिये। इसे सुननेके लिए मेरे हृदयमें बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥३०॥३१॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! सुनो, कण्वशाखामें कही हुई पूजापद्धति बतलाता हूँ। इसमें जगन्माता सरस्वतीके पूजनकी विधि वर्णित है ॥३२॥ माघ शुक्ल पञ्चमी विद्यारम्भकी मुख्य तिथि है। उस दिन पूर्वाह्नकालमें आराधक प्रतिज्ञा करके संयमशील बन जाय और पवित्र रहे ॥ ३३ ॥ स्नान और नित्य-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रियाके पश्चात् भक्तिपूर्वक कलशस्थापन करे। फिर अपनी शाखामें कही हुई विधिसे अथवा तान्त्रिक विधिके अनुसार पहले गणेशजीका पूजन करे। तत्पश्चात् इष्टदेवता सरस्वतीका पूजन करना उचित है। फिर ध्यान करके बाह्य घटमें देवीका आवाहन करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर व्रती रहकर ध्यानपूर्वक षोडशोपचारसे भगवतीकी पूजा करे। हे सौम्य! पूजाके लिए कुछ उपयोगी नैवेद्य वेदमें कथित हैं ॥३६॥ जैसे—ताजा मक्खन, दही, दूध, धानका लावा, तिलके लड्डू, सफेद गन्ना, गुड़में बना हुआ मधुर पक्वान्न, मिश्री, सफेद मिठाई, घीमें बना हुआ नमकीन पदार्थ, बढ़िया समूचा चिउड़ा, शास्त्रोक्त हविष्यान्न, जौ अथवा गेहूँके आटेसे घृतमें तले हुए पदार्थ, पके हुए स्वच्छ केलेका पिष्टक, उत्तम अन्नको घृतमें पकाकर उससे बना हुआ अमृतके समान मधुर मिष्टान्न, नारियल, उसका पानी, कसेरू, मूली, अदरख, पका हुआ केला, बढ़िया बेल, बेरका फल, देश और कालके अनुसार उपलब्ध ऋतुफल तथा अन्य

मभ्यर्च्य ततोऽभीष्टां प्रपूजयेत् ॥ ध्यानेन वक्ष्यमाणेन ध्यात्वा बाह्यघटे ध्रुवम् ॥३५॥ ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारेण पूजयेद्व्रती ॥ पूजोपयुक्तनैवेद्यं यच्च वेदनिरूपितम् ॥ ३६ ॥ वक्ष्यामि सौम्य तत्किंचिद्यथाधीतं यथागमम् ॥ नवनीतं दधि क्षीरं लाजांश्च तिललड्डुकम् ॥ ३७ ॥ इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु ॥ स्वस्तिकं शर्करा शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम् ॥ ३८ ॥ अच्छिन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम् ॥ घृतसैन्धवसंयुक्तं हविष्यान्नं यथोदितम् ॥ ३९ ॥ यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंयुतम् ॥ पिष्टकं स्वस्तिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्य च ॥ ४० ॥ परमान्नं च सघृतं मिष्टान्नं च सुधोपमम् ॥ नारिकेलं तदुदकं कसेरुं मूलमार्द्रकम् ॥ ४१ ॥ पक्वरंभाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम् ॥ कालदेशोद्भवं चारु फलं शुक्लं च संस्कृतम् ॥ ४२ ॥ सुगंधं शुक्लपुष्पं च सुगन्धं शुक्लचंदनम् ॥ नवीनं शुक्लवस्त्रं च शङ्खं च सुन्दरं मुने ॥ ४३ ॥ माल्यं च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारं च भूषणम् ॥ यादृशं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुंदरम् ॥ ४४ ॥ तन्निबोध महाभाग भ्रमभंजनकारणम् ॥ सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम् ॥ ४५ ॥ कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां वीणापुस्तकधारिणीम् ॥ ४६ ॥ रत्नसारेन्द्रनिर्माण-नवभूषणभूषिताम् ॥ सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ ४७ ॥ वंदे भक्त्या वंदितां च मुनींद्रमनुमानवैः ॥ एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्त्वा

भी पवित्र स्वच्छ वर्णके फल—ये सब नैवेद्यके सामान हैं ॥ ३७-४२ ॥ हे मुने! सुगन्धित सफेद पुष्प और सफेद स्वच्छ चन्दन देवी सरस्वतीको अर्पण करना चाहिये। नवीन श्वेत वस्त्र और सुन्दर शंख विशेष आवश्यक है ॥ ४३ ॥ श्वेत पुष्पोंकी माला और आभूषण भगवतीको चढ़ावे। हे महाभाग मुने! भगवती सरस्वतीका श्रेष्ठ ध्यान परम सुखदायी है तथा भ्रमका उच्छेद करनेवाला है। वह वेदोक्त ध्यान यह है—'सरस्वतीका श्रीविग्रह शुक्लवर्ण है। ये परम सुन्दरी देवी सदा हँसती रहती हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इनके परिपुष्ट विग्रहके सामने करोड़ों चन्द्रमाकी प्रभा भी तुच्छ है। ये विशुद्ध चिन्मय वस्त्र पहने हैं। इनके एक हाथमें वीणा है और दूसरेमें पुस्तक। सर्वोत्तम रत्नोंसे बने हुए आभूषण इन्हें सुशोभित कर रहे हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिवप्रभृति प्रधान देवताओं तथा सुरगणोंसे ये सुपूजित हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठ मुनि, मनु तथा मानव इनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। ऐसी भगवती सरस्वतीका मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।' इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुष पूजनके समग्र पदार्थ मूलमन्त्रसे विधिवत् सरस्वतीको अर्पण कर दे ॥४८॥ फिर कवचका पाठ करनेके पश्चात् दण्डकी भाँति भूमिपर पड़कर देवीको साष्टाङ्ग प्रणाम करे। हे मुने! जो पुरुष भगवती सरस्वतीको अपना इष्टदेवता मानते हैं, उनके लिए यह नित्यक्रिया है ॥ ४९ ॥ 'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' यह वैदिक अष्टाक्षर मूलमन्त्र परम श्रेष्ठ एवं सबके लिए उपयोगी है ॥५०॥ अथवा जिनको जिसने जिस मन्त्रका उपदेश दिया है, उनके लिए वही मूलमन्त्र है। 'सरस्वती' इस शब्दके साथ चतुर्थी विभक्ति जोड़कर अन्तमें स्वाहा शब्द लगा लेना चाहिए ॥ ५१ ॥ लक्ष्मी और योगमायाकी आराधनामें भी इसी मन्त्रका प्रयोग किया जाता है। इस मन्त्रको कल्पवृक्ष कहते हैं। प्राचीन कालमें कृपाके निधि भगवान् नारायणने वाल्मीकि मुनिको इसीका उपदेश दिया था। भारतवर्षमें गङ्गाके पावन तटपर यह कार्य सम्पन्न हुआ था ॥५२॥ फिर सूर्यग्रहणके अवसरपर पुष्कर क्षेत्रमें परशुरामजीने शुक्रको इसका उपदेश दिया था ॥५३॥ मारीचने चंद्रग्रहणके समय प्रसन्न होकर बृहस्पतिको इसे बताया था। वदरी आश्रममें परम

विचक्षणः ॥ ४८ ॥ संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दंडवद्भुवि ॥ येषां चेयमिष्टदेवी तेषां नित्यक्रिया मुने ॥ ४९ ॥' विद्यारम्भे च वर्षान्ते सर्वेषां पञ्चमीदिने ॥ सर्वोपयुक्तं मूलं च वैदिकाष्टाक्षरः परः ॥५०॥ येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च ॥ सरस्वतीचतुर्थ्यंतं वह्निजायांतमेव च ॥५१॥ लक्ष्मीमायादिकं चैव मंत्रोऽयं कल्पपादपः ॥ पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः ॥ ५२ ॥ प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥ ५३ ॥ चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा ॥ भृगोश्चैव ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे ॥ ५४ ॥ आस्तिकस्य जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ ॥ विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते ॥५५॥ शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुदा ॥ सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च ॥५६॥ शेषः पाणिनये चैव भारद्वाजाय धीमते ॥ ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥५७॥ चतुर्लक्षजपेनैव मंत्रः सिद्धो भवेन्नृणाम् ॥ यदि स्यान्मंत्रसिद्धो हि बृहस्पतिसमो भवेत् ॥५८॥ कवचं शृणु विप्रेन्द्र यद्दत्तं ब्रह्मणा पुरा ॥ विश्वस्रष्टा विश्वजयं भृगवे गंधमादने ॥५९॥ भृगुरुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद ॥ सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित ॥६०॥ सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो ॥

प्रसन्न ब्रह्माकी कृपासे भृगु इसे जान सके ॥५४॥ जरत्कारु मुनि क्षीरसागरके पास विराजमान थे। उन्होंने आस्तिकको यह मन्त्र बताया था। बुद्धिमान् ऋष्यशृङ्गने मेरुपर्वतपर विभाण्डक मुनिसे इसकी दीक्षा प्राप्त की थी ॥ ५५ ॥ शिवने आनन्दमें आकर गौतम गोत्रमें उत्पन्न कण्वमुनिको इसका उपदेश किया था। याज्ञवल्क्य और कात्यायनने सूर्यकी दयासे इसे पाया था ॥५६॥ महाभाग-शेषनाग पातालमें बलिके सभाभवनमें विराजमान थे। वहीं उन्होंने पाणिनि, बुद्धिमान्-भारद्वाज और शाकटायनको इसका अभ्यास कराया था ॥५७॥ चार लाख जप करनेपर मनुष्यके लिए यह मन्त्र सिद्ध हो सकता है। इस मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर अवश्य ही मनुष्यमें बृहस्पतिके समान योग्यता आ सकती है ॥ ५८ ॥ हे विप्रेन्द्र! सरस्वतीका कवच विश्वपर विजय प्राप्त करनेवाला है। जगत्स्रष्टा ब्रह्माने गन्धमादन पर्वतपर भृगुके आग्रहसे इसे उन्हें बताया था। वही मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो ॥५९॥ भृगुने कहा—हे ब्रह्मन्! आप ब्रह्मज्ञानी जनोंमें प्रमुख, पूर्ण ब्रह्मज्ञानसम्पन्न, सबके पिता, सबके स्वामी एवं सबके परम आराध्य हैं ॥ ६० ॥ हे प्रभो! आप मुझे सरस्वतीका 'विश्वजय' नामक कवच बतानेकी कृपा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कीजिये। मन्त्रोंका समूह यह कवच परम पवित्र है ॥ ६१ ॥ ब्रह्माजी बोले–हे वत्स! मैं सम्पूर्ण कामना पूर्ण करनेवाला कवच कहता हूँ, सुनो। यह श्रुतियोंका सार, कानोंके लिए सुखप्रद, वेदोंमें प्रतिपादित एवं उनसे अनुमोदित है। राजेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण गोलोकमें विराजमान थे। वहीं वृन्दावनमें रासमण्डल था। उसी समय उन प्रभुने मुझे यह कवच सुनाया था ॥६२॥६३॥ कल्पवृक्षकी तुलना करनेवाला यह कवच परम गोपनीय है। जिन्हें किसीने नहीं सुना है, वे अद्भुत मन्त्र इसमें सम्मिलित हैं ॥६४॥ इसे धारण करनेके प्रभावसे ही भगवान् शुक्राचार्य सम्पूर्ण दैत्योंके पूज्य बन सके। हे ब्रह्मन्! बृहस्पतिमें इतनी बुद्धिका समावेश इस कवचकी महिमासे ही हुआ था ॥ ६५ ॥ वाल्मीकि मुनि सदा इसका पाठ और सरस्वतीका ध्यान करते थे। अतः उन्हें कवीन्द्र कहलानेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। वे भाषण करनेमें परम चतुर हो गये। इसे धारण करके स्वायम्भुव मनुने सबसे पूजा प्राप्त की ॥६६॥

अयातयामं मंत्राणां समूहसंयुतं परम् ॥६१॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम् ॥ श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ॥६२॥ उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने ॥ रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले ॥६३॥ अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम् ॥ अश्रुताद्भुत-मंत्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥ ६४ ॥ यद्धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः ॥ यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मन्बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः ॥ ६५ ॥ पठना-द्धारणाद्वाग्मी कवींद्रो वाल्मिको मुनिः ॥ स्वायंभुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः ॥६६॥ कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः ॥ ग्रन्थं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम् ॥ ६७ ॥ धृत्वा देवविभागं च पुराणान्यखिलानि च ॥ चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ॥ ६८ ॥ शातातपश्च संवर्तो वसिष्ठश्च पराशरः ॥ यद्धृत्वा पठनाद्ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥६९॥ ऋष्यशृंगो भरद्वाजश्चास्तिको देवलस्तथा ॥ जैगीषव्यो ययातिश्च धृत्वा सर्वत्र पूजितः ॥ ७० ॥ कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेव प्रजापतिः ॥ स्वयं छंदश्च बृहती देवता शारदाऽम्बिका ॥ ७१ ॥ सर्वतत्त्व-परिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च ॥ कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥७२॥ श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः ॥ श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु ॥ ७३ ॥ ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरंतरम् ॥ ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदाऽवतु ॥ ७४ ॥ ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदाऽवतु ॥ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदाऽवतु ॥ ७५ ॥

कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष और कात्यायन–इस कवचको धारण करके ही ग्रन्थोंकी रचनामें सफल हुए थे ॥६७॥ इसे धारण करके स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यासदेवने वेदोंका विभाग करके खेल-ही-खेलमें अखिल पुराणोंका प्रणयन किया था ॥६८॥ शातातप, संवर्त, वसिष्ठ, पराशर, याज्ञवल्क्य, ऋष्यशृंग, भारद्वाज, आस्तीक, देवल, जैगीषव्य और ययातिने इस कवचके साथ ही पूरे ग्रन्थका अध्ययन किया था। इसीसे सर्वत्र इनका सम्मान होने लगा ॥६९॥७०॥ हे विप्रेन्द्र! इस कवचके ऋषि प्रजापति हैं। इसका बृहती छन्द है। माता शारदा अधिष्ठात्री देवी हैं ॥७१॥ अखिल तत्त्व परिज्ञानपूर्वक सम्पूर्ण अर्थके साधन तथा समस्त कविताओंके विवेचनमें इसका प्रयोग किया जाता है ॥७२॥ श्रीं-ह्रीं-स्वरूपिणी भगवती सरस्वती सब ओरसे मेरे सिरकी सदा रक्षा करें। श्रींमयी वाग्देवता सदा मेरे ललाटकी रक्षा करें ॥७३॥ ॐ ह्रीं भगवती निरन्तर मेरे कानोंकी रक्षा करें।ॐश्रीं ह्रीं भगवती सरस्वती देवी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सदा मेरे दोनों नेत्रोंकी रक्षा करें ॥७४॥ ऐं-ह्रीं स्वरूपिणी वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सदा मेरी नासिकाकी रक्षा करें । ॐ ह्रींमयी विद्याकी अधिष्ठात्री देवी मेरे होंठकी रक्षा करें ॥७५॥ ॐ श्रीं-ह्रीं भगवती ब्राह्मी मेरी दन्तपंक्तिकी निरन्तर रक्षा करें । 'ऐं' यह देवी सरस्वतीका एकाक्षर मन्त्र मेरे कण्ठकी रक्षा करें ॥७६॥ ॐ-श्रीं-ह्रीं मेरे गलेकी तथा श्रीं मेरे कंधोंकी सदा रक्षा करे । विद्याकी अधिष्ठात्री देवी ॐ ह्रीं-स्वरूपिणी सरस्वती सदा मेरे वक्षस्थलकी रक्षा करें ॥ ७७ ॥ विद्याधिस्वरूपा ॐ ह्रींमयी देवी मेरी नाभिकी रक्षा करें । ॐ ह्रीं क्लीं स्वरूपिणो देवी सदा मेरे हाथकी रक्षा करें ॥ ७८ ॥ ॐस्वरूपिणी सर्ववर्णात्मिका भगवती दोनों पैरोंको सुरक्षित रक्खें । ॐवागधिष्ठात्रीदेवीके द्वारा मैं सब प्रकारसे सदा सुरक्षित रहूँ ॥ ७९ ॥ सबके कण्ठमें निवास करनेवाली ॐस्वरूपा देवी पूर्वदिशामें सदा मेरी रक्षा करें । सबकी जीभके अग्रभागपर विराजनेवाली ॐस्वरूपिणी देवी अग्निकोणमें मेरी रक्षा करें ॥ ८० ॥ 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा ।'—इसको मन्त्रराज कहते हैं । यह इसी रूपमें सदा विराजमान रहता है । यह निरन्तर मेरे दक्षिण भागकी

ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दंतपंक्तिं सदाऽवतु ॥ ऐमित्येकाक्षरो मंत्रो मम कंठं सदाऽवतु ॥ ७६ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीं सदाऽवतु ॥ ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ॥ ७७ ॥ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ॥ ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदाऽवतु ॥ ७८ ॥ ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु ॥ ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा सर्वं सदाऽवतु ॥७९॥ ॐ सर्वकंठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु ॥ ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाऽग्निदिशि रक्षतु ॥ ८० ॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा ॥ सततं मंत्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु ॥ ८१ ॥ ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मंत्रो नैर्ऋत्यां सर्वदाऽवतु ॥ ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु ॥८२॥ ॐ सर्वांबिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदाऽवतु ॥ ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु ॥८३॥ ॐऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदाऽवतु ॥ ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदाऽवतु ॥८४॥ ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदाऽवतु ॥ ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ॥८५॥ इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममंत्रौघविग्रहम् ॥ इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥ ८६ ॥ पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गंधमादने ॥ तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥८७॥ गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः ॥

रक्षा करे ॥८१॥ ऐं ह्रीं श्रीं—यह त्र्यक्षर मंत्र नैर्ऋत्यकोणमें सदा मेरी रक्षा करे । जिह्वाके अग्रभागपर रहनेवाली ॐ ऐं-स्वरूपिणी देवी पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें ॥८२॥ ॐस्वरूपिणी भगवती सर्वाम्बिका वायव्य कोणमें सदा मेरी रक्षा करें । गद्यमें निवास करनेवाली ॐ ऐं श्रीं क्लींमयी देवी उत्तर दिशामें मेरो रक्षा करें ॥ ८३ ॥ सम्पूर्ण शास्त्रोंमें विराजनेवाली ऐं-स्वरूपिणी देवी ईशानकोणमें सदा मेरी रक्षा करें । ॐ ह्रीं-स्वरूपिणी सर्वपूजिता देवी ऊपरमे मेरी रक्षा करें ॥ ८४ ॥ पुस्तकमें निवास करनेवाली ह्रीं-स्वरूपिणी देवी मेरे निम्न-भागकी रक्षा करें । ॐस्वरूपिणी ग्रन्थबीजस्वरूपा देवी सब ओरसे मेरी रक्षा करें ॥ ८५ ॥ हे विप्र ! मैंने यह सरस्वती-कवच तुम्हें सुना दिया । असंख्य ब्रह्ममन्त्रोंका यह मूर्तिमान् विग्रह है । ब्रह्मस्वरूप इस कवचको 'विश्वजय' कहते हैं ॥ ८६ ॥ प्राचीन समयकी बात है—गन्धमादन पर्वतपर धर्मदेवके मुखसे मुझे इसे सुननेका सुअवसर प्राप्त हुआ था । तुम मेरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परम प्रिय हो। अतएव तुमसे मैंने कहा है। तुम्हें अन्य किसीके सामने इसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये ॥८७॥ विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वस्त्र, चन्दन और अलंकार आदि सामानोंसे विधिपूर्वक गुरुकी पूजा करके दण्डकी भाँति जमीनपर पड़कर प्रणाम करे। तत्पश्चात् उनसे इस कवचका अध्ययन करे ॥ ८८ ॥ पाँच लाख जप करनेके पश्चात् यह कवच सिद्ध हो सकता है। इस कवचके सिद्ध हो जानेपर साधकको बृहस्पतिके समान पूर्ण योग्यता प्राप्त हो सकती है ॥ ८९ ॥ इस कवचके प्रसादसे प्राणी भाषण करनेमें प्राण चतुर, कवियोंका सम्राट् और त्रैलोक्यविजयी हो सकता है ॥ ९० ॥ उसमें सब कुछ जीतनेकी योग्यता आ जाती है। हे मुने! यह कवच कण्वशाखाके अन्तर्गत है। अब स्तोत्र, ध्यान, वन्दना और पूजाका विधान बताता हूँ ॥ ९१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(याज्ञवल्क्य द्वारा भगवती सरस्वतीकी स्तुति) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! सरस्वती देवीका वह स्तोत्र सुनो, जिससे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। प्राचीन समयकी

प्रणम्य दंडवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः ॥ ८८ ॥ पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत् ॥ यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत् ॥ ८९ ॥ महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥ शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः ॥ ९० ॥ इदं च कण्वशाखोक्तं कवचं कथितं मुने ॥ स्तोत्रं पूजाविधानं च ध्यानं च वंदनं शृणु ॥ ९१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम् ॥ महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा ॥ १ ॥ गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह ॥ तदा जगाम दुःखार्तो रविस्थानं सुपुण्यदम् ॥२॥ संप्राप्य तपसा सूर्यं लोलार्के दृष्टिगोचरे ॥ तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥३॥ सूर्यस्तं पाठयामास वेदं वेदाङ्गमीश्वरः ॥ उवाच स्तौहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे ॥ ४ ॥ तमित्युक्त्वा दीननाथोऽप्यंतर्धानं चकार सः ॥ मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥५॥ याज्ञवल्क्य उवाच ॥ कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम् ॥ गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम् ॥ ६ ॥ ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम् ॥ ग्रन्थकर्तृत्वशक्तिं च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥ प्रतिभां

बात है—याज्ञवल्क्य नामसे प्रसिद्ध एक प्रधान मुनि थे ॥१॥ उन्होंने भगवती सरस्वतीकी स्तुति की थी। जब गुरुने शाप देकर उनकी श्रेष्ठ विद्याको नष्ट कर दिया, तब वे अत्यन्त दुखी होकर लोलार्ककुण्डपर, जो उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाला स्थान है, गये। तपस्याके साथ ही शोकविह्वल भावसे हुए रोते हुए उन्होंने भगवान सूर्यकी स्तुति की ॥ २ ॥ ३ ॥ तब शक्तिशाली सूर्यने याज्ञवल्क्यको वेद और वेदाङ्गका अध्ययन कराया। साथ ही कहा—हे मुने! तुम स्मरणशक्ति प्राप्त करनेके लिए भक्तिपूर्वक भगवतीकी स्तुति करो।' ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहकर दीनजनोंपर दया करनेवाले सूर्य अन्तर्धान हो गये। तब याज्ञवल्क्य मुनिने स्नान किया और नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर वे भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्य बोले—हे जगन्माता! मुझपर कृपा करो। मैं बड़ा निस्तेज हो गया हूँ। गुरुके शापसे मेरी स्मरण-शक्ति नष्ट हो गयी है। मैं विद्यासे वञ्चित हो बैठा हूँ। मुझे दुःख सता रहा है ॥ ६ ॥ तुम मुझे ज्ञान, स्मृति, शिष्योंको समझानेकी शक्ति, विद्या तथा ग्रन्थ-रचना करनेकी कुशलता देनेके साथ ही अपना उत्तम एवं सुप्रतिष्ठित शिष्य बना लो ॥ ७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे माता ! तुम्हारी कृपासे मैं प्रतिभाशाली बनकर सज्जनोंकी सभामें जाऊँ और वहाँ अपना विचार व्यक्त करनेमें मुझे उत्तम क्षमता प्राप्त हो सके। दुर्भाग्यवश जो मेरा सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो गया है, वह मुझे पुनः प्राप्त हो जाय ॥८॥ जिस प्रकार देवता भस्ममें छिपे हुए बीजको समयानुसार अंकुरित कर देते हैं, वैसे ही तुम भी मेरे लुप्त ज्ञानको पुनः प्रकाशित कर दो। तुम ब्रह्मस्वरूपा, परमा, ज्योतिरूपा, सनातनी, सम्पूर्ण विद्याओंकी अधिष्ठात्री एवं भगवती सरस्वती हो। तुम्हें बार-बार प्रणाम है। विसर्ग, बिन्दु एवं मात्रा-तीनोंमें जो अधिष्ठानरूपसे विद्यमान है, उसकी भी अधिष्ठात्री भगवती वाणीको बार-बार नमस्कार है। वे देवी व्याख्यानस्वरूपिणी हैं तथा व्याख्याकी अधिष्ठात्री भी वे ही हैं ॥९-११॥ जिनके बिना सुप्रसिद्ध गणक भी संख्याके परिमाणमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकता, उन कालसंख्यास्वरूपिणी भगवतीको बार-बार नमस्कार है ॥ १२ ॥ जो भ्रमसिद्धान्तरूपा तथा स्मृतिशक्ति, ज्ञानशक्ति और बुद्धिशक्तिस्वरूपा हैं, उन देवीको बार-बार प्रणाम है। एक बार जब सनत्कुमारने ब्रह्माजीसे ज्ञान पूछा था ॥ १३ ॥ १४ ॥ उस समय ब्रह्मा भी मूक जैसे हो गये थे। वे ब्रह्मसिद्धान्तके

सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम् ॥ लुप्तं सर्वं दैवयोगान्नवीभूतं पुनः कुरु ॥८॥ यथांकुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः ॥ ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी ॥ ९ ॥ सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः ॥ विसर्गबिंदुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च ॥ १० ॥ तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नित्यं नमो नमः ॥ व्याख्यास्वरूपा सा देवी वाक्याधिष्ठातृरूपिणी ॥ ११ ॥ यया विना प्रसंख्यावान्संख्यां कर्तुं न शक्यते ॥ कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥ १२॥ भ्रमसिद्धांतरूपा या तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ स्मृतिशक्तिज्ञानशक्तिबुद्धिशक्तिस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ प्रतिभाकल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमोनमः ॥ सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै ॥१४॥ बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धांतं कर्तुमक्षमः ॥ तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः ॥१५॥ उवाच स च तां स्तौहि वाणीमिष्टां प्रजापते ॥ स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः ॥१६॥ चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धांतमुत्तमम् ॥ यदाऽप्यनंतं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा ॥१७॥ बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धांतं कर्तुमक्षमः ॥ तदा तां स च तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया ॥ १८ ॥ ततश्चकार सिद्धांतं निर्मलं भ्रमभंजनम् ॥ व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकिं यदा ॥१९॥ मौनीभूतश्च सस्मार

विषयमें कुछ भी नहीं कह सके। उस समय स्वयं भगवान श्रीकृष्ण वहाँ पधारे ॥ १५ ॥ उन्होंने आते ही कहा–'प्रजापते ! तुम भगवती सरस्वतीको इष्ट देवता मानकर उनकी स्तुति करो।' परमप्रभु श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर ब्रह्माने तुरन्त सरस्वतीकी स्तुति आरम्भ कर दी ॥ १६ ॥ फिर तो देवीकी कृपासे उत्तम सिद्धान्तके विवेचनमें वे सफलीभूत हो गये। ऐसे ही एक समय पृथ्वीने महाभाग अनन्त (शेष)से ज्ञानका रहस्य पूछा था ॥१७॥ तब शेषकी भी मूकवत् स्थिति हो गयी। वे सिद्धान्त नहीं बता सके। उनके हृदयमें घबराहट उत्पन्न हो गयी। तब कश्यपके आज्ञानुसार उन्होंने सरस्वतीकी स्तुति की ॥ १८ ॥ इससे वे ऐसे सुयोग्य बन गये कि उनके मुखसे भ्रमको दूर करनेवाले निर्मल सिद्धान्तका विशद विवेचन हो सका। जब व्यासने वाल्मीकिसे पुराणसूत्रके विषयमें प्रश्न किया, तब वे चुप हो गये। ऐसी स्थितिमें वाल्मीकिने भगवती जगदम्बाका स्मरण किया। तब भगवतीने उन्हें वर दिया, जिसके प्रभावसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुनिवर वाल्मीकि पुराण-सिद्धान्तका प्रतिपादन कर सके ॥ १९ ॥ २० ॥ उस समय उन्हें भ्रमरूपी अन्धकारको मिटानेवाली प्रकाशमान ज्योतिके सदृश निर्मल ज्ञान प्राप्त हो गया। भगवान श्रीकृष्णके अंश व्यासजी वाल्मीकि मुनिके मुखसे पुराणसूत्र सुनकर उसका अर्थ कविताके रूपमें स्पष्ट करनेके लिए उन कल्याणमयी देवीका ध्यान करने लगे। तदनुसार पुष्कर-क्षेत्रमें रहकर सौ वर्षोंतक उन्होंने उपासना की। तब हे माता! तुमसे वर पाकर व्यासजी कवीश्वर बन सके ॥ २१ ॥ २२ ॥ उसी समय उन्होंने वेदोंका विभाजन तथा पुराणोंकी रचना की। जब देवराज इन्द्रने भगवान शंकरसे तत्त्वज्ञानके विषयमें प्रश्न किया ॥ २३ ॥ तब क्षणभर भगवतीका ध्यान करके वे उन्हें ज्ञानोपदेश देने लगे। फिर इन्द्रने बृहस्पतिसे शब्दशास्त्रके विषयमें पूछा। हे जगदम्बे! तब पुष्करक्षेत्रमें जाकर देवताओंके वर्षसे एक हजार वर्षतक तुम्हारे ध्यानमें संलग्न रहे। इतने वर्षोंके बाद तुमने उन्हें वर प्रदान किया। तब वे इन्द्रको शब्दशास्त्र और उसका अर्थ समझा सके। बृहस्पतिने जितने शिष्योंको पढ़ाया है और जितने सुप्रसिद्ध मुनि उनसे

तामेव जगदम्बिकाम् ॥ तदा चकार सिद्धांतं तद्वरेण मुनीश्वरः ॥ २० ॥ संप्राप्य निर्मलं ज्ञानं भ्रमांधध्वंसदीपकम् ॥ पुराणसूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्णकलोद्भवः ॥ २१ ॥ तां शिवां वेद दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे ॥ तदा त्वत्तो वरं प्राप्य सत्कवींद्रो बभूव ह ॥ २२ ॥ तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार सः ॥ यदा महेंद्रः पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं सदाशिवम् ॥ २३ ॥ क्षणं तामेव संचिंत्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः ॥ पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेंद्रश्च बृहस्पतिम् ॥ २४ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे ॥ तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ २५ ॥ उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम् ॥ अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः ॥ २६ ॥ ते च तां परिसंचिंत्य प्रवर्तंते सुरेश्वरीम् ॥ त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः ॥ २७ ॥ दैत्येंद्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः ॥ २८ ॥ यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः ॥ इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥२९॥ प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥ ज्योतीरूपा महामाया तेन दृष्टाऽप्युवाच तम् ॥ ३० ॥ सुकवींद्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह ॥ याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रमेतत्तु यः पठेत् ॥३१॥ सुकवींद्रो महा-

अध्ययन कर चुके हैं, वे सब-के-सब भगवती सुरेश्वरीका चिन्तन करनेके पश्चात् ही सफलीभूत हुए हैं। हे माता! वह देवी तुम्हीं हो। हे मुनीश्वर! मनु और मानव—सभी तुम्हारी पूजा और स्तुति कर चुके हैं ॥ २४–२७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता और दानवेश्वर प्रभृति—सबने तुम्हारी उपासना की है। जब हजार मुखवाले शेष, पाँच मुखवाले शंकर तथा चार मुखवाले ब्रह्मा तुम्हारा यशोगान करनेमें जड़वत् हो गये, तब एक मुखवाला मैं मानव तुम्हारी स्तुति कर ही कैसे सकता हूँ? हे नारद! इस प्रकार स्तुति करके मुनिवर याज्ञवल्क्य भगवती सरस्वतीको प्रणाम करने लगे। उस समय भक्तिके कारण उनका कंधा झुक गया था। उनकी आँखोंसे निरन्तर जलकी धाराएँ गिर रही थीं। इतनेमें ज्योतिःस्वरूपा महामाया-का उन्हें दर्शन प्राप्त हुआ। देवीने उनसे कहा—॥ २८–३० ॥ 'हे मुने! तुम सुप्रख्यात कवि हो जाओ।' यों कहकर भगवती महामाया वैकुण्ठ चली गयीं। जो पुरुष याज्ञवल्क्यरचित इस सरस्वतीस्तोत्रको पढ़ता है, उसे कवीन्द्र-पदकी प्राप्ति हो जाती है। भाषण करनेमें वह बृहस्पतिकी तुलना कर सकता है। कोई व्यक्ति महान् मूर्ख अथवा दुर्बुद्धि हो क्यों न हो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि वह एक वर्षतक नियमपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है तो निश्चय ही पण्डित, परम बुद्धिमान् एवं सुकवि हो जाता है ॥ ३१-३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(विष्णुपत्नी लक्ष्मी, सरस्वती एवं गङ्गाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! स्वयं भगवती सरस्वती वैकुण्ठमें भगवान् श्रीहरिके पास रहती हैं। गङ्गाने इन्हें शाप दे दिया था। अतः ये भारतवर्षमें अपनी एक कलासे पधारीं और नदीके रूपमें इनका अवतरण हुआ ॥१॥ ये पुण्य प्रदान करनेवाली, पुण्यरूपा, पुण्यतीर्थस्वरूपिणी हैं। हे मुने ! पुण्यात्मा पुरुषोंको चाहिए कि वे इनका सेवन करें। क्योंकि उन्हींके लिए इनका यहाँ पधारना हुआ है॥२॥ ये तपस्वियोंके लिए तपोरूपा हैं और तपस्याका फल भी इनसे कोई अलग वस्तु नहीं है। किये हुए सब पाप लकड़ीके समान हैं। उन्हें जलानेके लिए ये प्रज्वलित अग्निस्वरूपा हैं ॥३॥ भूमण्डलपर रहनेवाले जो मानव इनकी महिमा जानते हुए

वाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत् ॥ महामूर्खश्च दुर्बुद्धिर्वर्षमेकं यदा पठेत् ॥ ३२ ॥ स पंडितश्च मेधावी सुकवींद्रो भवेद्ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सरस्वती तु वैकुण्ठे स्वयं नारायणांतिके ॥ गंगाशापेन कलहात्कलया भारते सरित् ॥ १ ॥ पुण्यदा पुण्यरूपा च पुण्यतीर्थस्वरूपिणी ॥ पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने ॥ २ ॥ तपस्विनां तपोरूपा तपसः फलरूपिणी ॥ कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ ३ ॥ ज्ञानात्सरस्वतीतोये मृता ये मानवा भुवि ॥ तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि ॥ ४ ॥ भारते कृतपापश्च स्नात्वा तत्र च लीलया ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥५॥ चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये ॥ व्यतीपाते च ग्रहणेऽन्यस्मिन्पुण्यदिनेऽपि च ॥ ६ ॥ अनुषंगेण यः स्नातो हेतुना श्रद्धयाऽपि वा ॥ सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि ॥ ७ ॥ सरस्वतीमनुं तत्र मासमेकं च यो जपेत् ॥ महामूर्खः कवींद्रश्च स भवेन्नात्र संशयः ॥८॥ नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नायान्मुंडयन्नरः ॥ न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः ॥ ९ ॥ इत्येवं कथितं किंचिद्भारते गुणकीर्तनम् ॥ सुखदं कामदं सारं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ नारायणवचः श्रुत्वा,नारदो मुनि-

इनके तटपर अपना शरीर त्यागते हैं, उन्हें वैकुण्ठमें स्थान प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुके भवनमें वे बहुत दिनोंतक निवास करते हैं ॥४॥ यदि किसी भारतीयसे कोई पाप हो जाय तो सरस्वती-सरितामें स्नान करके वह सब पापोंसे मुक्त होकर चिरकालतक विष्णुलोकमें रहता है ॥ ५ ॥ चौमासेमें, पूर्णिमाके दिन, अक्षय नवमी, क्षय तिथिको एवं व्यतीत, ग्रहण अथवा अन्य किसी भी पुण्यके दिन जो पुरुष किसी भी हेतुसे श्रद्धापूर्वक इनमें स्नान करता है, वह भगवान् श्रीहरिका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। निश्चय ही उस वैकुण्ठमें रहनेको सुविधा प्राप्त हो जाती है ॥ ६ ॥ ७ ॥ जो महान् मूर्ख होते हुए भी एक महीनेतक प्रतिदिन सरस्वती नदीमें स्नान करके इनके मन्त्रका जप करता है, वह कवीन्द्र बन सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है ॥८॥ जो मनुष्य सिरके सारे बाल मुँड़वाकर निरन्तर सरस्वतीके जलमें स्नान करता है, वह पुनः माताके गर्भमें वास नहीं कर सकता ॥९॥ इस प्रकार सरस्वतीकी महिमाका कुछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्णन किया गया है । इस सारभूत महिमाके प्रभावसे सुख और समृद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥१०॥ सूतजी कहते हैं–हे शौनक ! भगवान् नारायण-की बात सुनकर मुनिवर नारदने पुनः तुरन्त उनसे पूछा ॥११॥ नारदजीने कहा–सरस्वती देवी गंगाजीके शापसे इस साधारण कलहके कारण पुण्यदायिनी नदी कैसे हो गयीं ? ॥१२॥ इस श्रुतिसुखकर वृत्तान्तको सुननेका मुझे बड़ा कौतूहल है । ये कथायें बार-बार सुनकर भी मैं तृप्त नहीं हो पाता ॥१३॥ सत्त्वस्वरूपा, पुण्यदा एवं शुभप्रदा गङ्गाने सरस्वती देवीको क्यों शाप दे दिया ? इन दोनों तेजस्विनी देवियोंके विवादका कारण अवश्य ही कानोंको सुख देनेवाला होगा । अतएव यह पुराणदुर्लभ वृत्तान्त बतानेकी कृपा कीजिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! यह प्राचीन कथा मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो । इसे सुनकर ही प्राणी पापमुक्त हो जाता है ॥ १६ ॥ लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा ये तीनों विष्णुकी भार्या हैं

सत्तमः ॥ पुनः पप्रच्छ संदेहमिमं शौनक सत्वरम् ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ कथं सरस्वती देवी गङ्गाशापेन भारते ॥ कलया कलहेनैव बभूव पुण्यदा सरित् ॥ १२ ॥ श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्धते कौतुकं मम ॥ कथामृते न मे तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते ॥१३॥ कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम् ॥ सा तु सत्त्वस्वरूपा या पुण्यदा शुभदा सदा ॥१४॥ तेजस्विनोर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम् ॥ सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मे व्याख्या-तुमर्हसि ॥ १५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम् ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ १६ ॥ लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि ॥ प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठंति सततं हरिसन्निधौ ॥ १७ ॥ चकार सैकदा गङ्गा विष्णोर्मुखनिरीक्षणम् ॥ सस्मिता च सकामा च सकटाक्षं पुनः पुनः ॥ १८ ॥ विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च क्षणं तदा ॥ क्षमां चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ॥१९॥ बोधयामास पद्मा तां सत्त्वरूपा च सस्मिता ॥ क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शांता बभूव ह ॥२०॥ उवाच वाणी भर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना ॥ कुपिता कामवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥२१॥ सरस्वत्युवाच ॥ सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीं प्रति ॥ धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च ॥२२॥ ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायां ते गदाधर ॥ कमलायां च तत्तुल्यं न च किंचिन्मयि प्रभो ॥ २३ ॥ गङ्गायाः पद्मया सार्धं प्रीतिश्चास्ति सुसंमता ॥

और वे बड़े प्रेमसे साथ भगवान् विष्णुके पास रहती थीं ॥ १७ ॥ एक दिन गंगा भगवान्को देखती हुई मुसकाने और कामातुरा होकर उन्हें बार-बार तिरछी चितवनसे निहारने लगीं ॥१८॥ तब भगवान भी उनकी ओर ताककर मुसकरा दिये । लक्ष्मीने देखा, किन्तु वे कुछ नहीं बोलीं । किन्तु सरस्वतीसे नहीं रहा गया ॥ १९ ॥ सरस्वतीको कुपित देखकर हँसती हुई लक्ष्मीने समझाया । किन्तु सरस्वती शान्त नहीं हुईं ॥२०॥ उस समय उनकी आँखें लाल थीं और कामवेगसे उनके होंठ काँप रहे थे । उन्होंने भगवान् विष्णुसे कहा ॥२१॥ सरस्वतीजी बोलीं—धर्मात्मा और एक अच्छे पतिका यह कर्तव्य होता है कि वह अपनी सभी पत्नियोंको समान दृष्टिसे देखे । किन्तु दुराचारी पुरुष ऐसा नहीं करते ॥ २२ ॥ हे गदाधर ! मैं समझ गयी कि गंगापर आपका अधिक प्रेम है । लक्ष्मीपर भी वैसा ही प्रेम रहता है । किन्तु हे प्रभो ! मेरेपर आपका तनिक भी प्रेम नहीं है ॥ २३ ॥ गंगा और लक्ष्मीपर आपका समान प्रेम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहनेके कारण वे दोनों एकसाथ रहती हैं। इसीसे तो गंगाके अपराधको लक्ष्मीने अनायास सह लिया ॥२४॥ अब मुझ अभागिनके जीनेसे क्या लाभ ? क्योंकि पतिप्रेमसे विहीन नारीका जीवन व्यर्थ हो जाता है ॥२५॥ जो मनीषी आपको सतोगुणी कहते हैं, मैं तो उन्हें मूर्ख ही कहूँगी। क्योंकि उन्हें आपकी चालोंका पता नहीं रहता ॥२६॥ सरस्वतीकी यह बात सुन और उन्हें कुपित देखकर भगवान्ने मनही मन कुछ सोचा और वहाँसे उठकर चल दिये ॥२७॥ भगवान्के चले जानेपर सरस्वतीजी और भी निर्भीक हो गयीं और गंगाजीको डाँटती हुई बोलीं ॥२८॥ अरी निर्लज्ज ! ओ कामुकी ! तुझे अपने स्वामीके प्रेमपर बड़ा घमण्ड हो गया है और तू उसका ढिंढोरा पीटती फिरती है ॥ २९ ॥ अरी अपने पियाकी प्यारी ! आज भगवान्के सामने ही मैं तेरा अभिमान चूर्ण कर दूँगी। तेरा पति मेरा क्या कर लेगा ? ॥३०॥ यह कहकर सरस्वती गंगाजीका केश पकड़नेको लपकीं। किन्तु लक्ष्मीने बीचमें पड़कर

क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया ॥ २४ ॥ किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च सांप्रतम् ॥ निष्फलं जीवनं तस्या या पत्युः प्रेमवंचिता ॥ २५ ॥ त्वां सर्वे सत्त्वरूपं च ये वदंति मनीषिणः ॥ ते च मूर्खा न वेदज्ञा न जानंति मतिं तव ॥ २६ ॥ सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम् ॥ मनसा च समालोच्य स जगाम बहिः सभाम् ॥२७॥ गते नारायणे गङ्गामुवाच निर्भयं रुषा ॥ वागधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुष्करम् ॥२८॥ हे निर्लज्जे हे सकामे स्वामिगर्वं करोषि किम् ॥ अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि ॥ २९ ॥ मानचूर्णं करिष्यामि तवाद्य हरिसन्निधौ ॥ किं करिष्यति ते कान्तो ममैव कांतवल्लभे ॥३०॥ इत्येवमुक्त्वा गङ्गायाः केशमाक्रष्टुमुद्यता ॥ वारयामास तां पद्मा मध्यदेशं समाश्रिता ॥ ३१ ॥ शशाप वाणी तां पद्मां महाबलवती सती ॥ वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः ॥ ३२ ॥ विपरीतं ततो दृष्ट्वा किंचिन्नो वक्तुमर्हसि ॥ संतिष्ठति सभामध्ये यथा वृक्षो यथा सरित् ॥ ३३ ॥ शापं श्रुत्वा तु सा देवी न शशाप चुकोप ह ॥ तत्रैव दुःखिता तस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च ॥ ३४ ॥ अत्युन्नतां तु तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताधराम् ॥ उवाच गंगा तां देवीं पद्मां चारक्तलोचनाम् ॥ ३५ ॥ श्रीगङ्गोवाच ॥ त्वमुत्सृज महोग्रां च पद्मे किं मे करिष्यति ॥ दुःशीला मुखरा नष्टा नित्यं वाचालरूपिणी ॥३६॥ वागधिष्ठात्री देवीयं सततं कलहप्रिया ॥ यावती योग्यता चास्या यावती शक्तिरेव च ॥ ३७ ॥ तथा करोतु वादं च मया सार्धं च दुर्मुखी ॥ स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमिच्छति ॥ ३८ ॥ जानंतु सर्वे

सरस्वतीको वैसा नहीं करने दिया ॥३१॥ इससे कुपित होकर सरस्वतीने लक्ष्मीको शाप दे दिया कि तू नदी और वृक्ष हो जा ॥ ३२ ॥ गंगाका विपरीत आचरण देखकर भी तूने उसे कुछ नहीं कहा, बल्कि वृक्ष और नदीकी तरह जड़ बन गयी। इसलिए तू भी वही हो जा ॥३३॥ यह शाप सुन करके भी लक्ष्मीने न तो सरस्वतीको शाप दिया और न कुपित ही हुईं। वे दुःखित होकर सरस्वतीको पकड़े बठी रह गयीं ॥३४॥ किन्तु यह अनाचार गंगासे नहीं देखा गया। उन्होंने लाल आँखों और काँपते हुए होठोंवाली सरस्वतीसे कहा ॥ ३५ ॥ गंगा बोलीं—लक्ष्मी ! तुम इसे छोड़ दो। देखूँ तो यह क्रोधिनी और बकने-झकनेवाली वाचाल सरस्वती मेरा क्या बिगाड़ लेती है ॥ ३६ ॥ यह वाणीकी अधिष्ठात्री देवी बनती है, किन्तु सदा लड़ाई ही करती रहती है। इसमें जितनो योग्यता हो और जितनी शक्ति हो, वह लाकर मेरे साथ विवाद कर ले। यह कलमुँही मेरी शक्तिपरीक्षा करना चाहती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥३७॥३८॥ अतएव हे सती लक्ष्मी ! आज संसार मेरा और इसका प्रभाव तथा पराक्रम देख ले। ऐसा कहकर गंगाने सरस्वतीको शाप देते हुए कहा–॥३९॥ लक्ष्मी ! जिस सरस्वतीने तुम्हें नदी हो जानेका शाप दिया है, वह सरस्वती भी नदीरूपा हो जाय। यह नीचे मर्त्यलोकमें चली जाय, जहाँ पापीलोग निवास करते हैं ॥ ४० ॥ हे नारद ! गङ्गाकी यह बात सुनकर सरस्वतीने उन्हें शाप दे दिया कि तुम्हें भी धरातलपर जाना होगा और तुम पापियोंके पापोंको अंगीकार करोगी । इतनेमें भगवान श्रीहरि वहाँ आ गये ॥४१॥४२॥ उस समय चार भुजा-वाले विष्णु अपने चार चतुर्भुज पार्षदोंसे सुशोभित थे। उन्होंने सरस्वतीका हाथ पकड़कर उन्हें प्रेमसे अपने समीप बैठा लिया ॥४३॥ तत्पश्चात् वे सर्वज्ञानी श्रीहरि अखिल ज्ञानका रहस्य समझाने लगे। उन दुखियोंके कलह और शापका मुख्य कारण सुनकर परम प्रभुने समयानुकूल बातें बतायीं ॥४४॥ भगवान श्रीहरि बोले—हे लक्ष्मी ! हे शुभे ! तुम अपनी कलासे राजा

ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति ॥ इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापं ददाविति ॥ ३९ ॥ सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वां च शशाप ह ॥ अधोमर्त्यं सा प्रयातु संति यत्रैव पापिनः ॥ ४० ॥ कलौ तेषां च पापानि ग्रहीष्यति न संशयः ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती ॥ ४१ ॥ त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यसि ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र भगवानाजगाम ह ॥ ४२ ॥ चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥ सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि ॥ ४३ ॥ बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम् ॥ श्रुत्वा रहस्यं तासां च शापस्य कलहस्य च ॥ ४४ ॥ उवाच दुःखितास्ताश्च वाचं सामयिकीं विभुः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ लक्ष्मि त्वं कलया गच्छ धर्मध्वजगृहं शुभे ॥ ४५ ॥ अयोनिसंभवा भूमौ तस्य कन्या भविष्यसि ॥ तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वं च लभिष्यसि ॥ ४६ ॥ मदंशस्यासुरस्यैव शंखचूडस्य कामिनी ॥ भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसि न संशयः ॥ ४७ ॥ त्रैलोक्यपावनी नाम्ना तुलसीति च भारते ॥ कलया च सरिद्भावं शीघ्रं गच्छ वरानने ॥ ४८ ॥ भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मावती भव ॥ गङ्गे यास्यसि पश्चात्त्वमंशेन विश्वपावनी ॥ ४९ ॥ भारतं भारतीशापात्पापदाहाय पापिनाम् ॥ भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुकल्पिते ॥ ५० ॥ नाम्ना भागीरथी पूता भविष्यसि महीतले ॥ मदंशस्य समुद्रस्य जाया जाये ममाज्ञया ॥ ५१ ॥ मत्कलांशस्य भूपस्य शंतनोश्च सुरेश्वरि ॥ गङ्गा-

धर्मध्वजके घर पधारो। तुम किसीकी योनिसे उत्पन्न न होकर स्वयं भूमण्डलपर प्रकट हो जाना। वहीं तुम वृक्षरूपसे निवास करोगी। 'शंखचूड़' नामका एक असुर मेरे अंशसे उत्पन्न होगा। तुम उसकी पत्नी बन जाना। तत्पश्चात् निश्चय ही तुम्हें मेरी प्रेयसी भार्या बननेका सौभाग्य प्राप्त हो जायगा ॥४५–४७॥ भारतवर्षमें त्रिलोकपावनी 'तुलसी' के नामसे तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। हे वरानने ! अभी-अभी तो तुम भारतीके शापसे भारतमें 'पद्मावती' नामकी नदी बनकर पधारो ॥४८॥ तदनन्तर गंगासे कहा—'हे गंगे ! तुम सरस्वतीके शापवश अपने अंशसे पापियोंका पाप भस्म करनेके लिए विश्वपावनी नदी बनकर भारतवर्षमें जाओ। हे सुकल्पिते ! भगीरथकी तपस्यासे तुम्हें वहाँ जाना पड़ेगा ॥४९॥५०॥ धरातलपर तुमको सब लोग भगवती भागीरथी कहेंगे। समुद्र मेरा अंश है। मेरे आज्ञानुसार तुम उसकी पत्नी होना स्वीकार कर लेना।' ॥५१॥ इसके बाद सरस्वतीसे कहा–' हे भारती ! तुम गंगाका शाप स्वीकार करके अपनी कलासे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतवर्षमें चलो ॥५२॥ तुम अपने पूर्ण अंशसे ब्रह्मसदनमें पधारकर ब्रह्माकी कामिनी बन जाओ ॥ ५३ ॥ गंगाजी अपने पूर्ण अंशसे शिवके स्थानपर चलें। यहाँ अपने पूर्ण अंशसे केवल लक्ष्मी रह जायँ। कारण, इनका स्वभाव परम शान्त है। ये कभी तनिक-सा क्रोध नहीं करतीं। मुझपर इनकी अटूट श्रद्धा है। ये सत्त्वस्वरूपा हैं ॥५४॥ ये बड़ी साध्वी, अत्यन्त सौभाग्यवती, क्षमामूर्ति, सुन्दर आचरणोंसे सुशोभित तथा निरन्तर धर्मका पालन करती हैं। इनके एक अंशकी कलाका यह महत्त्व है कि विश्वभरमें सम्पूर्ण स्त्रियाँ धर्मात्मा, पतिव्रता, शान्तरूपा तथा सुशीला बनकर प्रतिष्ठा प्राप्त करती हैं ॥ ५५ ॥ अब भगवान् श्रीहरि स्वयं अपना विचार कहने लगे—'अहो! विभिन्न स्वभाववाली तीन स्त्रियों, तीन नौकरों और तीन बान्धवोंका एकत्र रहना वेदकी अनुमतिके विरुद्ध है। ये एक जगह रहकर कल्याणप्रद नहीं हो सकते। जिन गृहस्थोंके घरं स्त्री पुरुषके समान व्यवहार करे और पुरुष स्त्रीके अधीन रहे, उसका जीवन निष्फल समझा जाता है। उसके प्रत्येक पगपर अशुभ है। जिसकी स्त्री मुखदुष्टा, योनिदुष्टा और कलहप्रिया हो, उसके लिए तो जंगल ही घरसे बढ़कर सुखदायी होता है। कारण, वहाँ उसे

शापेन कलया भारतं गच्छ भारति ॥ ५२ ॥ कलहस्य फलं भुंक्ष्व सपत्नीभ्यां सहाच्युते ॥ स्वयं च ब्रह्मसदने ब्रह्मणः कामिनी भव ॥ ५३ ॥
गङ्गा यातु शिवस्थानमत्र पद्मैव तिष्ठतु ॥ शांता च क्रोधरहिता मद्भक्ता सत्त्वरूपिणी ॥ ५४ ॥ महासाध्वी महाभागा सुशीला धर्मचारिणी ॥
यदंशकलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः ॥५५॥ शान्तरूपाः सुशीलाश्च प्रतिविश्वेषु पूजिताः ॥ तिस्रो भार्यास्त्रिशीलाश्च त्रयो भृत्याश्च बांधवाः॥५६॥
ध्रुवं वेदविरुद्धाश्च न ह्येते मंगलप्रदाः ॥ स्त्रीपुंवच्च गृहे येषां गृहिणां स्त्रीवशः पुमान् ॥५७॥ निष्फलं च जन्म तेषामशुभं च पदे पदे ॥ मुखे दुष्टा
योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया ॥ ५८ ॥ अरण्यं तेन गंतव्यं महारण्यं गृहाद्वरम् ॥ जलानां च स्थलानां च फलानां प्राप्तिरेव च ॥ ५९ ॥ सततं
सुलभा तत्र न तेषां गृह एव च ॥ वरमग्नौ स्थितिर्हिंस्रजन्तूनां सन्निधौ सुखम् ॥ ६० ॥ ततोऽपि दुःखं पुंसां च दुष्टस्त्रीसन्निधौ ध्रुवम् ॥ व्याधि-
ज्वाला विषज्वाला वरं पुंसां वरानने ॥६१॥ दुष्टस्त्रीणां मुखज्वाला मरणादतिरिच्यते ॥ पुंसां च स्त्रीजितां चैव भस्मांतं शौचमध्रुवम् ॥६२॥ यदह्नि
कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ निंदितोऽत्र परत्रैव सर्वत्र नरकं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ यशःकीर्तिविहीनो यो जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ बह्वीनां च

जल, स्थल और फल तो मिल ही जाते हैं ॥५६–५९॥ ये फल-जल आदि जंगलमें निरन्तर सुलभ रहते हैं। किंतु घरपर नहीं मिल सकते। अग्निके पास रहना ठीक है, अथवा हिंसक जन्तुओंके निकट रहनेपर भी सुख मिल सकता है ॥ ६० ॥ किन्तु दुष्टा स्त्रीके निकट रहनेवाले पुरुषोंको अवश्य ही महान् क्लेश भोगना पड़ता है। हे वरानने! पुरुषोंके लिए व्याधिज्वाला और विषज्वालाको ठीक बताया जा सकता है ॥६१॥ किन्तु दुष्टा स्त्रियोंके मुखकी ज्वाला मृत्युसे भी अधिक कष्टप्रद होती है। स्त्रीके वशमें रहनेवाले पुरुषोंकी शुद्धि शरीरके भस्म हो जानेपर भी हो जाय—यह अनिश्चित है ॥६२॥ स्त्रीके वशमें रहनेवाला व्यक्ति दिनमें जो कुछ कर्म करता है, उसके फलका वह भागी नहीं हो पाता। इस लोकमें और परलोकमें—सब जगह उसकी निन्दा होती है और उसे नरकगामी भी होना पड़ता है ॥ ६३ ॥ जो पुरुष यश और कीर्तिसे रहित है, उसे जीते हुए भी मुर्दा समझे। एक भार्यावालेको ही चैन नहीं, फिर जिसके अनेक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्त्रियाँ हों, उसके लिए तो सुखकी कल्पना ही असम्भव है। अतएव हे गङ्गे! तुम शिवके पास जाओ और सरस्वती! तुम्हें ब्रह्माके स्थानपर चली जाना चाहिए ॥६४॥६५॥ यहाँ मेरे भवनमें केवल सुशीला लक्ष्मीजी रह जायँ। क्योंकि परम साध्वी, उत्तम आचरण करनेवाली एवं पतिव्रता स्त्रीका स्वामी इस लोकमें स्वर्गका सुख भोगता है और परलोकमें उसके लिए मोक्षपद सुरक्षित रहता है। जिसकी पत्नी पतिव्रता होती है, वह पुरुष परम पवित्र, सुखी और मुक्त समझा जाता है। इसके विपरीत दुःशीलाका पति जीवित ही मुर्दा, दुःखी और अपवित्र रहता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(भगवान्‌के मुखारविन्दसे भक्तोंके महत्त्व और लक्षणोंका विशद वर्णन) भगवान् नारायण कहते हैं–हे नारद! इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। तब गङ्गा, लक्ष्मी तथा सरस्वती–ये तीनों देवियाँ परस्पर एक दूसरेका आलिङ्गन करके रोने लगीं ॥१॥ शोक और भयने उनके शरीरको कँपा दिया था। उनकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। अब उन सबको

सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसे स्थितिः ॥ ६४ ॥ एकभार्यः सुखी नैव बहुभार्यः कदाचन ॥ गच्छ गंगे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वति ॥ ६५ ॥ अत्र तिष्ठतु मद्गेहे सुशीला कमलालया ॥ सुसाध्वी यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता ॥६६॥ इह स्वर्गे सुखं तस्य धर्मो मोक्षः परत्र च ॥ पतिव्रता यस्य पत्नी स च युक्तः शुचिः सुखी ॥६६॥ जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखी दुःशीलापतिरेव च ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम च नारद ॥ अतीव रुरुदुर्देव्यः समालिंग्य परस्परम् ॥ १ ॥ ताश्च सर्वाः समालोक्य क्रमेणोचुस्तदेश्वरम् ॥ कंपिताः साश्रुनेत्राश्च शोकेन च भयेन च ॥ २ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ विशापं देहि हे नाथ दुष्टमाजन्मशोचनम् ॥ सत्स्वामिना परित्यक्तः कुतो जीवंति ताः स्त्रियः ॥३॥ देहत्यागं करिष्यामि योगेन भारते ध्रुवम् ॥ अत्युन्नतो हि नियतं पातुमर्हति निश्चितम् ॥४॥ गंगोवाच ॥ अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते ॥ देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ ॥ ५ ॥ निर्दोषकामिनीत्यागं करोति यो नरो भुवि ॥ स याति नरकं घोरं किंतु सर्वेश्वरोऽपि वा ॥ ६ ॥ पद्मोवाच ॥ नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव ॥ प्रसादं कुरु भार्ये द्वे सदीशस्य क्षमा वरा ॥ ७ ॥ भारते भारतीशापाद्यास्यामि कलया ह्यहम् ॥ कियत्कालं स्थितिस्तत्र कदा द्रक्ष्यामि ते पदम् ॥ ८ ॥ दास्यंति पापिनः पापं

एकमात्र भगवान् ही शरण्य दृष्टिगोचर हुए। अतः वे क्रमशः उनसे प्रार्थना करने लगी ॥ २ ॥ सरस्वतीने कहा–नाथ! मुझ दुष्टाको शापसे बचाइए। अन्यथा मैं आजीवन चिंतामें डूबी रहूँगी। भला, आप-जैसे महान् सच्चरित्र स्वामीके परित्याग कर देनेपर ये स्त्रियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं। हे प्रभो! मैं भारतवर्षमें योगसाधन करके इस शरीरका त्याग कर दूँगी–यह निश्चित है। तब आप मेरी रक्षा करेंगे ही ॥३॥४॥ गङ्गा बोलीं–हे जगत्प्रभो! आप किस अपराधसे मुझे त्याग रहे हैं? मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। तब आपको एक निर्दोष स्त्रीके वधका पाप लगेगा ॥ ॥ जो मनुष्य अपनी निर्दोष पत्नीका परित्याग करता है, वह चाहे सबका ईश्वर ही क्यों न हो, उसे घोर नरकमें जाना पड़ता है। ६॥ लक्ष्मीजीने कहा–नाथ! आप सत्त्वस्वरूप हैं। बड़े आश्चर्यकी बात है. आपको कैसे क्षोभ हो गया? आप इन दोनों पत्नियोंको प्रसन्न कीजिए। क्योंकि सच्चरित्र पतिके लिए क्षमा ही परम धर्म है ॥७॥ मैं सरस्वतीका शाप स्वीकार करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी एक कलासे भारतवर्षमें जाऊँगी। परन्तु हे प्रभो! मुझे कब तक वहाँ रहना होगा और मैं पुनः कब आपके चरणोंके दर्शन प्राप्त कर सकूँगी ॥८॥ पापीजन मेरे जलमें स्नान और आचमन करके अपना पाप मुझपर लाद देंगे तब तुरन्त उसे पापसे मुक्त होकर आपके चरणोंमें आनेका अधिकार मुझे कैसे प्राप्त होगा ॥९॥ मैं अपनी एक कलासे तुलसीरूप धारण करना भी स्वीकार कर रही हूँ। मैं धर्मध्वजकी पुत्री भी बनूँगी। परन्तु हे अच्युत! यह सब भोगनेके पश्चात् मुझे पुनः कब आपके चरणकमल प्राप्त होंगे? ॥१०॥ हे कृपानिधे! आपका अधिष्ठातृ देवता मानकर मैं भारतवर्षमें वृक्षरूपसे निवास करूँगी, किन्तु यह तो बताइये कि आप मेरा उद्धार कब करेंगे? ॥११॥ यदि गंगा सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें जायँगी, तब फिर इन्हें किस समय पुनः ऐसा सुअवसर मिलेगा कि ये शापरूपी पापसे छुटकारा पाकर आपको प्राप्त कर सकेंगी ॥१२॥ गंगाके शापसे ये सरस्वती भी यदि भारतमें जाती हैं तो आप इन्हें भी शापसे मुक्त करके कब अपने चरणकमलोंका दर्शन करायेंगे? ॥१३॥ हे प्रभो! आप जो इन सरस्वतीसे कह रहे हैं कि तुम ब्रह्माके घर पधारो और गंगाको शिवके भवनको जानेकी आज्ञा दे रहे हैं—आपके इन

सद्यः स्नानावगाहनात् ॥ केन तेन विमुक्ताऽहमागमिष्यामि ते पदम् ॥ ९ ॥ कलया तुलसीरूपं धर्मध्वजसुता सती ॥ भुक्त्वा कदा करिष्यामि त्वत्पादांबुजमच्युत ॥ १० ॥ वृक्षरूपा भविष्यामि त्वदधिष्ठातृदेवता ॥ समुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥ ११ ॥ गंगा सरस्वतीशापाद्यदि यास्यति भारते ॥ शापेन मुक्ता पापाच्च कदा त्वां च लभिष्यति ॥ १२ ॥ गंगाशापेन वा वाणी यदि यास्यति भारतम् ॥ कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यति पदं तव ॥ १३ ॥ तां वाणीं ब्रह्मसदनं गंगां वा शिवमन्दिरम् ॥ गन्तुं वदसि हे नाथ तत्क्षमस्व च ते वचः ॥ १४ ॥ इत्युक्त्वा कमला कांतपादं धृत्वा ननाम सा ॥ स्वकेशैर्वेष्टनं कृत्वा रुरोद च पुनः पुनः ॥ १५ ॥ (उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः ॥ १ ॥) श्रीभगवानुवाच ॥ त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यं च सुरेश्वरि ॥ समतां च करिष्यामि शृणु त्वं कमलेक्षणे ॥ १६ ॥ भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारते ॥ अर्धा स ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥ १७ ॥ भगीरथेन सा नीता गंगा यास्यति भारते ॥ पूतं कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥ १८ ॥ तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिं प्राप्स्यति दुर्लभम् ॥ ततः स्वभावतः पूताऽप्यतिपूता भविष्यति ॥ १९ ॥

वचनोंके लिए मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ ॥ १४ ॥ हे नारद! ऐसा कहकर भगवती लक्ष्मीने अपने स्वामी श्रीहरिके चरण पकड़ लिये। उन्हें प्रणाम किया और अपने केशसे भगवानके चरणोंको आवेष्टित करके बारम्बार रुदन करना आरम्भ कर दिया ॥ १५ ॥ (भगवान श्रीहरि भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए सदा कातर रहते हैं। लक्ष्मीकी प्रार्थना सुनकर मुसकान भरे प्रसन्नमुखसे उन्होंने देवी कमलाको हृदयसे चिपका लिया और कहा ॥१॥) भगवान विष्णु बोले—हे सुरेश्वरी! हे कमलेक्षणे! मुझे तुम्हारे वचनके साथ ही अपनी बात भी तो सत्य करनी है। अतः सुनो, मैं तुम तीनोंमें समता कर देता हूँ ॥ १६ ॥ ये सरस्वती कलाके एक अंशसे नदी बनकर भारतवर्षमें जायँ, आधे अंशसे ब्रह्माके भवन पधारें तथा पूर्ण अंशसे स्वयं मेरे पास रहें ॥१७॥ ऐसे ही ये गंगा भगीरथके सत्प्रयत्न द्वारा अपने कलांशसे त्रिलोकीको पवित्र करनेके लिए भारतवर्षमें जायँ और स्वयं पूर्ण अंशसे मेरे भवनमें रहें ॥ १८ ॥ वहाँ इन्हें शंकरके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मस्तकपर रहनेका दुर्लभ अवसर भी प्राप्त होगा। ये स्वभावतः पवित्र तो हैं ही, किंतु वहाँ जानेपर इनकी पवित्रता और भी बढ़ जायगी ॥१९॥ हे वामलोचने! तुम अपनी कलाके अंशांशसे भारतवर्षमें चलो। वहाँ तुम्हें 'पद्मावती' नदी और 'तुलसी' वृक्षके रूपसे विराजना होगा। कलिके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर तुम नदीरूपिणी देवियोंका उद्धार हो जायगा। तदनन्तर तुमलोग फिर मेरे भवनको लौट आओगी ॥२०॥२१॥ हे पद्मभवे! सम्पूर्ण प्राणियोंके पास जो विपत्ति आती है-उसमें सम्पत्तिलाभका कोई-न-कोई हेतु छिपा रहता है। बिना विपत्ति सहे किसीको भी गौरव नहीं प्राप्त हो सकता ॥२२॥ अब तुम्हारे शुद्ध होनेका उपाय बताता हूँ। मेरे मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले बहुत-से संतपुरुष भी तुम्हारे जलमें नहाने-धोनेके लिए पधारेंगे। उस समय तुम उनके दर्शन और स्पर्श प्राप्त करके सब पापोंसे छुटकारा पा जाओगी ॥२३॥ हे सुन्दरी! इतना ही नहीं, किन्तु भूमण्डलपर जो असंख्य तीर्थ हैं, वे सभी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्श पाकर परम पावन बन जायँगे ॥२४॥ भारतवर्षकी भूमि अत्यन्त पवित्र है। मेरे मन्त्रोंके उपासक अनगिनत भक्त वहाँ निवास करते हैं। प्राणियोंको पवित्र करना और तारना ही उनका

कलांशांशेन गच्छ त्वं भारते वामलोचने ॥ पद्मावती सरिद्रूपा तुलसीवृक्षरूपिणी ॥ २० ॥ कलेः पंचसहस्रे च गते वर्षे च मोक्षणम् ॥ युष्माकं सरितां चैव मद्गेहे चागमिष्यथ ॥ २१ ॥ संपदां हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम् ॥ विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मभवे भवेत् ॥ २२ ॥ मन्मंत्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात् ॥ युष्माकं मोक्षणं पापाद्दर्शनात्स्पर्शनात्तथा ॥ २३ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि संत्यसख्यानि सुन्दरि ॥ भविष्यंति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २४ ॥ मन्मंत्रोपासका भक्ता विश्रमंति च भारते ॥ पूतं कर्तुं तारितुं च सुपवित्रां वसुन्धराम् ॥ २५ ॥ मद्भक्ता यत्र तिष्ठंति पादं प्रक्षालयंति च ॥ तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम् ॥ २६ ॥ स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ॥ जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २७ ॥ एकादशीविहीनश्च सन्ध्याहीनोऽथ नास्तिकः ॥ नरघातो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥२८॥ असिजीवी मसीजीवी धावको ग्रामयाचकः ॥ वृषवाहो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २९ ॥ विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यस्य दायकः ॥ स्थाप्याहारी भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥३०॥ अत्युग्रवान्पुंदूषकश्च जारकः पुंश्चलीपतिः ॥ पूतश्च वृषलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३१ ॥

प्रधान उद्देश्य है ॥२५॥ मेरे भक्त जहाँ रहते और अपने पैर धोते हैं, वह स्थान महान् तीर्थ एवं परम पवित्र स्थान बन जाता है—यह बात बिल्कुल निश्चित है ॥२६॥ स्त्रीघाती, गोघाती, कृतघ्न, ब्रह्मघाती तथा गुरुपत्नीगामी व्यक्ति भी मेरे भक्तका दर्शन और स्पर्श करके पवित्र एवं जीवन्मुक्त हो जाता है ॥२७॥ एकादशीव्रतसे हीन, सन्ध्याविहीन, नास्तिक तथा नरघाती मनुष्य भी मेरे भक्तका दर्शन और स्पर्श करके पवित्र हो जाता है ॥२८॥ जो कमरमें तलवार बाँधकर द्वारपालकी हैसियतसे जीविका चलाते हैं, मुन्शीमात्र जिनकी जीविकाका साधन है, जो इधर-उधर चिट्ठी-पत्री पहुँचाकर अपना भरण-पोषण करते हैं, गाँव-गाँव घूमकर भीख माँगना ही जिनका व्यवसाय है एवं जो बैलोंको जोतते हैं, ऐसे 'ब्राह्मण' को अधम कहा जाता है, किंतु मेरे भक्तके दर्शन और स्पर्श उन्हें भी पवित्र कर देते हैं ॥२९॥ विश्वासघाती, मित्रघाती, झूठी गवाही देनेवाले तथा धरोहर हड़पनेवाले नीच व्यक्ति भी मेरे भक्तोंके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दर्शन और स्पर्शसे शुद्ध हो जाते हैं ॥३०॥ अत्यन्त क्रूर, पुरुषको बिगाड़नेवाले, यार, व्यभिचारिणी स्त्रीके पति एवं व्यभिचारिणीका पुत्र ये भी मेरे भक्तका दर्शन-स्पर्श करके पवित्र हो जाते हैं ॥३१॥ शूद्रोंका रसोइया, देवधान्यसेवी, ग्रामयाजक एवं दीक्षाविहीन मनुष्य भी मेरे भक्तका दर्शन और स्पर्श करके पवित्र हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ मेरे भक्तके दर्शन एवं स्पर्शमें ऐसी अद्भुत शक्ति है कि उसके प्रभावसे महापातकी व्यक्तितक पवित्र हो सकता है। हे सुन्दरी! पिता, माता, स्त्री, छोटा भाई, पुत्र, पुत्री, बहन, गुरुकुल, नेत्रहीन बान्धव, सास और ससुर—जो पुरुष इनके भरण-पोषणकी व्यवस्था नहीं करता, उसे महान् पातकी कहते हैं। किंतु मेरे भक्तका दर्शन और स्पर्श करनेसे वह भी शुद्ध हो जाता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ पीपलके वृक्षको काटनेवाले, मेरे भक्तोंके निन्दक तथा शूद्रान्नभोजी ब्राह्मणको भी मेरे भक्तका दर्शन और स्पर्श पवित्र बना देता है ॥३५॥ विप्र तथा देवद्रव्यका अपहरण करनेवाले, लाख, लोहा, कन्या तथा रसके विक्रयी, महापातकी और शूद्रोंका शव जलानेवाले लोग भी मेरे भक्तका दर्शन और स्पर्श करके पवित्र हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ श्रीमहालक्ष्मीने कहा—हे भक्तोंपर

शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः ॥ अदीक्षितो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३२ ॥ पितरं मातरं भार्यां भ्रातरं तनयं सुताम् ॥ गुरोः कुलं च भगिनीं चक्षुर्हीनं च बांधवम् ॥ ३३ ॥ श्वश्रूं च श्वशुरं चैव यो न पुष्णाति सुंदरि ॥ स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३४ ॥ अश्वत्थनाशकश्चैव मद्भक्तनिंदकस्तथा ॥ शूद्रान्नभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात् ॥ ३५ ॥ देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः ॥ लाक्षालोहरसानां च विक्रेता दुहितुस्तथा ॥३६॥ महापातकिनश्चैव शूद्राणां शवदाहकाः ॥ भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥३७॥ श्रीमहालक्ष्मीरुवाच ॥ भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकातर ॥ येषां तु दर्शनस्पर्शात्सद्यः पूता नराधमाः ॥ ३८ ॥ हरिभक्तिविहीनाश्च महाहंकारसंयुताः ॥ स्वप्रशंसारता धूर्ताः शठाश्च साधुनिंदकाः ॥ ३९ ॥ पुनंति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात् ॥ येषां च पादरजसा पूता पादोदकान्मही ॥ ४० ॥ येषां संदर्शनं स्पर्शं ये वा वांछंति भारते ॥ सर्वेषां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः ॥ ४१ ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनंत्यतिकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो ॥४२॥ सूत उवाच ॥ महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकांतश्च सस्मितः ॥ निगूढतत्त्वं कथितुमपि श्रेष्ठोपचक्रमे ॥४३॥

कृपा करनेके लिए आतुर रहनेवाले प्रभो! अब आप उन अपने भक्तोंके लक्षण बतलाइये, जिनके दर्शन और स्पर्शसे हरिभक्तिहीन, अत्यन्त अहंकारी, अपने मुँह अपनी बड़ाई करनेवाले, धूर्त, शठ, साधुनिन्दक एवं अत्यन्त अधम मानवतक तुरंत पवित्र हो जाते हैं तथा जिनके नहाने-धोनेसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें पवित्रता आ जाती है। जिनके चरणोंकी धूलि तथा चरणोदकसे पृथ्वीका कल्मष दूर हो जाता है तथा जिनका दर्शन एवं स्पर्श करनेके लिए भारतवर्षके लोग लालायित रहते हैं। क्योंकि विष्णु भक्त पुरुषोंका समागम सम्पूर्ण प्राणियोंके लिए परमलाभदायक होता है ॥३८-४१॥ जलमय तीर्थ तीर्थ नहीं हैं और न मृन्मय एवं प्रस्तरमय देवता ही देवता हैं। क्योंकि वे बहुत देरमें आश्रित जनोंको पवित्र करते हैं। अहो, साक्षात् देवता तो विष्णु-भक्तोंको मानना चाहिये, जिनके प्रभावसे तुरन्त पवित्रता प्राप्त हो जाती है ॥४२॥ सूतजी कहते हैं—हे शौनक! महालक्ष्मीकी बात सुनकर उनके आराध्य स्वामी भगवान् श्रीहरि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का मुखमण्डल मुसकानसे भर गया। फिर वे अत्यन्त गूढ़ एवं श्रेष्ठ रहस्य कहनेके लिए प्रस्तुत हो गये ॥४३॥ श्रीभगवान बोले—हे लक्ष्मी! भक्तोंके लक्षण श्रुतियों एवं पुराणोंमें छिपे हुए हैं। इन पुण्यमय लक्षणोंमें पापोंका नाश करने, सुख देने तथा भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेकी समुचित शक्ति है ॥४४॥ ये तत्त्वस्वरूप लक्षण परम गोप्य हैं। दुष्ट व्यक्तियोंके समाजमें इनकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। तुम शुद्धस्वरूपा एवं मुझे प्राणोंके समान प्रिय हो। अतः तुमसे कहता हूँ, सुनो ॥ ४५ ॥ जिसको सद्‌गुरुके मुखसे विष्णुका मन्त्र प्राप्त होता है और जो सब कुछ छोड़कर केवल मुझको ही सर्वस्व मानता है, उसीको वेद पुण्यात्मा एवं श्रेष्ठ मनुष्य बतलाते हैं। ऐसे व्यक्तिके जन्म लेनेमात्रसे पूर्वके सौ पुरुष, चाहे वे स्वर्गमें हों अथवा नरकमें, तुरन्त मुक्तिके अधिकारी हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ यदि उन पूर्वजन्मोंमेंसे किन्हींका कहीं जन्म हो गया है तो उन्होंने जिस योनिमें जन्म पाया है, वहीं उनमें जीवन्मुक्तता आ जाती है और समयानुसार वे परम धामको चले जाते हैं ॥ ४८ ॥ मुझमें भक्ति रखनेवाला मानव मेरे गुणसे सम्पन्न होकर मुक्त हो जाता है। उसकी वृत्ति ही

श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः ॥ पुण्यस्वरूपं पापघ्नं सुखदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ४४ ॥ सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च ॥ त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय ॥ ४५ ॥ गुरुवक्त्राद्विष्णुमंत्रो यस्य कर्णे पतिष्यति ॥ वदंति वेदास्तं चापि पवित्रं च नरोत्तमम् ॥ ४६ ॥ पुरुषाणां शतं पूर्वं तथा तज्जन्ममात्रतः ॥ स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिमाप्नोति तत्क्षणात् ॥ ४७ ॥ यैः कैश्चिद्यत्र वा जन्म लब्धं येषु च जंतुषु ॥ जीवन्मुक्तास्तु ते पूता यांति काले हरेः पदम् ॥ ४८ ॥ मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो मद्‌गुणान्वितः ॥ मद्‌गुणाधीन-वृत्तिर्यः कथाविष्टश्च संततम् ॥ ४९ ॥ मद्‌गुणश्रुतिमात्रेण सानंदः पुलकान्वितः ॥ स गद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥ ५० ॥ न वांछति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वांछा मम सेवने ॥ ५१ ॥ इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम् ॥ स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वांछति ॥ ५२ ॥ भ्रमंति भारते भक्तास्तादृग्जन्म सुदुर्लभम् ॥ मद्‌गुणश्रवणाः श्राव्यगानैर्नित्यं मुदान्विताः ॥५३॥ ते यांति च महीं पूत्वा नरं तीर्थं ममालयम् ॥ इत्येवं कथितं सर्वं पद्मे कुरु यथोचितम् ॥ तदाज्ञया तास्तचक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवी-भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मेरे गुणका अनुसरण करने लगती है। वह सदा मेरी कथा-वार्त्तामें लगा रहता है ॥ ४९ ॥ मेरा गुणानुवाद सुननेमात्रसे वह आनन्दमें तन्मय हो उठता है। उसका शरीर पुलकित हो जाता है और वाणी गद्गद हो जाती है। उसकी आँखोंमें आँसू भर आते हैं और वह अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है ॥५०॥ मेरी पवित्र सेवामें नित्य नियुक्त रहनेके कारण वह सुख, चार प्रकारकी सालोक्यादि मुक्ति, ब्रह्माका पद अथवा अमरत्व कुछ भी पानेकी अभिलाषा नहीं करता ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र एवं मनुकी उपाधि तथा स्वर्गके राज्यका सुख—ये सभी परम दुर्लभ हैं, किन्तु मेरा भक्त स्वप्नमें भी इनकी इच्छा नहीं करता ॥ ५२ ॥ ऐसे मेरे बहुतसे भक्त भारतवर्षमें निवास करते हैं। उन भक्तोंके जैसा जन्म सबके लिए सुलभ नहीं है। जो सदा मेरा गुणानुवाद सुनते और सुनने योग्य पद्योंको गाकर आनन्दसे विह्वल हो जाते हैं, वे बड़भागी भक्त अन्य साधारण मनुष्य, तीर्थ एवं मेरे परम धामको भी पवित्र करके धराधामपर पधारते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। हे पद्मे! इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रश्नका समाधान कर दिया। अब तुम्हें जो उचित जान पड़े, वह करो। तदनंतर वे सभी देवियाँ भगवान् श्रीहरिने जो कुछ आज्ञा दी थी, उसीके अनुसार कार्य करनेमें संलग्न हो गयीं और स्वयं भगवान् अपने सुखदायी आसनपर विराजमान हो गये ॥५३॥५४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

(कलियुगके भावी चरित्रका, कालमानका तथा गोलोकमें श्रीकृष्ण-लीलाका वर्णन) भगवान नारायण कहते हैं–हे नारद! तदनंतर सरस्वती गंगाके शापवश अपनी एक कलासे तो पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें पधारीं तथा पूर्ण अंशसे उन्हें भगवान् श्रीहरिके निकट रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ ॥१॥ भारतमें पधारनेसे 'भारती', ब्रह्माका प्रेम-भाजन होनेसे 'ब्राह्मी' तथा वचनकी अधिष्ठात्री होनेसे वे 'वाणी' नामसे विख्यात हुईं ॥२॥ सरोवर एवं बावलीके जलमें सर्वव्यापी श्रीहरि सदा दृष्टिगोचर होते हैं। अतः श्रीहरिका एक नाम 'सरस्वान्' भी है और उनकी प्रिया होनेसे इन देवीको 'सरस्वती' कहा जाता है ॥ ३ ॥ नदीरूपसे पधारकर ये सरस्वती परम पावन तीर्थ बन गयीं। पापीजनों पापोंको भस्म करनेके लिए ये प्रज्वलित अग्निरूपा हैं

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सरस्वती पुण्यक्षेत्रमाजगाम च भारते ॥ गंगाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदे ॥ १ ॥ भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया ॥ वाण्यधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी प्रकीर्तिता ॥ २ ॥ सरोवाप्यां च स्रोतःसु सर्वत्रैव हि दृश्यते ॥ हरिः सरस्वांस्तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती ॥ ३ ॥ सरस्वती नदी सा च तीर्थरूपाऽतिपावनी ॥ पापिनां पापदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ ४ ॥ पश्चाद्भागीरथी नीता महीं भागीरथेन च ॥ स वै जगाम कलया वाणीशापेन नारद ॥ ५ ॥ तत्रैव समये तां च दधार शिरसा शिवः ॥ वेगं सोढुमयं शक्तो भुवः प्रार्थनया विभुः ॥ ६ ॥ पद्मा जगाम कलया सा च पद्मावती नदी ॥ भारतं भारतीशापात्स्वयं तस्थौ हरेः पदे ॥ ७ ॥ ततोऽन्या या सा कलया लेभे जन्म च भारते ॥ धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्याता तुलसीति च ॥ ८ ॥ पुरा सरस्वतीशापात्पश्चाच्च हरिशापतः ॥ बभूव वृक्षरूपा सा कलया विश्वपावनी ॥ ९ ॥ कलेः पंचसहस्रं च वर्षं स्थित्वा च भारते ॥ जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम् ॥१०॥ यानि सर्वाणि तीर्थानि काशीवृंदावनं विना ॥ यास्यंति सार्धं ताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञया हरेः ॥ ११ ॥ शालग्रामः शक्तिशिवौ जगन्नाथश्च भारतम् ॥ कलेर्दशसहस्रांते त्यक्त्वा

॥ ४ ॥ हे नारद! तत्पश्चात् सरस्वतीके शापसे गङ्गा अपनी कलासे धरातलपर पहुँचीं। भगीरथके सत्प्रयत्नसे इनका पृथ्वीपर शुभागमन हुआ ॥५॥ ये गङ्गा आ रही थीं कि शंकरने इन्हें अपने मस्तकपर धारण कर लिया। कारण, गङ्गाके वेगको केवल शंकर ही सँभाल सकते थे। अतएव पृथ्वीकी प्रार्थनासे वे इस कामके लिए प्रस्तुत हो गये ॥ ६ ॥ फिर सरस्वतीके शापसे पद्मा अर्थात् लक्ष्मी अपनी एक कलासे भारतवर्षमें नदीरूपसे पधारीं। इनका नाम 'पद्मावती' हुआ। ये स्वयं पूर्णरूपसे भगवान् श्रीहरिकी सेवामें उनके समीप ही रहीं ॥ ७ ॥ तदनन्तर अपनी एक दूसरी कलासे ये भारतमें राजा धर्मध्वजके यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट हुईं। उस समय इनका नाम 'तुलसी' पड़ा ॥ ८ ॥ श्रीहरिके वचनानुसार इन विश्वपावनी देवीने अपनी एक कलासे वृक्षमय बन जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया ॥ ९ ॥ कलिमें पाँच हजार वर्षों तक भारतवर्षमें रहकर ये तीनों देवियाँ सरित्-रूपका परित्याग करके वैकुण्ठधाम चली जायँगी ॥१०॥ काशी तथा वृन्दावनके अतिरिक्त अन्य प्रायः सभी तीर्थ भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे उन देवियोंके साथ वैकुण्ठ चले जायँगे ॥ ११ ॥ शालग्राम, शिव, शक्ति और भगवान्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरुषोत्तम कलिके दस हजार वर्ष व्यतीत होनेपर भारतवर्षको छोड़कर अपने स्थानपर चले जायेंगे ॥१२॥ इनके साथ ही साधु, पुराण, शंख, श्राद्ध-तर्पण तथा वेदोक्त कर्म भी भारतवर्षसे उठ जायँगे ॥१३॥ देवपूजा, देवनाम, देवताओंके गुणोंका वर्णन, वेद, शास्त्र, पुराण, संत, सत्य, धर्म, ग्रामदेवता, व्रत, तप और उपवास—ये सब भी भारतवर्षसे चल पड़ेंगे ॥१४॥१५॥ तब प्रायः सभी लोग मद्य और मांसका सेवन करेंगे। झूठ और कपटसे किसीको घृणा न होगी। उसके बाद सर्वत्र तुलसीसे रहित पूजा होने लगेगी ॥ १६ ॥ उपर्युक्त देवियों एवं देवताओंके भारतवर्ष छोड़ देनेके पश्चात् शठ, क्रूर, दाम्भिक, अत्यन्त अहंकारी, चोर और हिंसक-ये सब संसारमें फैल जायँगे ॥१७॥ तब पुरुषभेद (परस्पर मैत्रीका अभाव) होगा। जातिभेदकी सत्ता उठ जायगी। अतएव निर्भीकतापूर्वक किसी भी वर्णकी स्त्रीके साथ कोई भी विवाह कर लेगा। वस्तुओंमें स्वामिभेद होगा। परस्पर एक दूसरेको कोई भी वस्तु नहीं देंगे ॥ १८ ॥

यांति निजं पदम् ॥ १२ ॥ साधवश्च पुराणानि शंखानि श्राद्धतर्पणे ॥ वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥ १३ ॥ देवपूजा देवनाम तत्कीर्तिगुणकीर्तनम् ॥ वेदांगानि च शास्त्राणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥ १४ ॥ संतश्च सत्यधर्मश्च वेदाश्च ग्रामदेवताः ॥ व्रतं तपश्चानशनं ययुस्तैः सार्धमेव च ॥ १५ ॥ वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकपटसंयुताः ॥ तुलसीरहिता पूजा भविष्यति ततः परम् ॥ १६ ॥ शठाः क्रूरा दांभिकाश्च महाहंकारसंयुताः ॥ चोराश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यंति ततः परम् ॥ १७ ॥ पुंसो भेदः स्त्रीविभेदो विवाहो वाऽपि निर्भयः ॥ स्वस्वामिभेदो वस्तूनां भविष्यति ततः परम् ॥ १८ ॥ सर्वे स्त्रीवशगाः पुंसः पुंश्चल्यश्च गृहे गृहे ॥ तर्जनैर्भर्त्सनैः शश्वत्स्वामिनं ताडयन्ति च ॥१९॥ गृहेश्वरी च गृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः ॥ चेटीदाससमौ वध्वाः श्वश्रूश्च श्वशुरस्तथा ॥ २० ॥ कर्तारो बलिनो गेहे योनिसंबंधिबान्धवाः ॥ विद्यासंबंधिभिः सार्धं संभाषाऽपि न विद्यते ॥ २१ ॥ तथाऽपरिचिता लोकास्तथा पुंसश्च बान्धवाः ॥ सर्वकर्माक्षमाः पुंसो योषितामाज्ञया विना ॥ २२ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा जात्याचारविवर्जिताः ॥ संध्या च यज्ञसूत्रं च भवेल्लुप्तं न संशयः ॥ २३ ॥ म्लेच्छाचारा भविष्यंति वर्णाश्चत्वार एव च ॥ म्लेच्छशास्त्रं पठिष्यन्ति स्वशास्त्राणि विहाय च ॥ २४ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशां वंशाः शूद्राणां सेवकाः कलौ ॥ सूपकारा धावकाश्च वृषवाहाश्च सर्वशः ॥ २५ ॥

सभी पुरुष स्त्रियोंके अधीन होकर रहेंगे। घर-घरमें पुंश्चलियोंका निवास होगा। वे दुराचारिणी स्त्रियाँ निरन्तर घुड़क और तड़पकर अपने पतियोंको पीड़ित करेंगी ॥ १९ ॥ सेवकमें जितनी नीचता होगी, उससे कहीं अधिक नीच स्वामी बन जायगा। घरके सास-ससुर दासी-दाससे भी हीन माने जायँगे ॥ २० ॥ घरमें जो बलवान् होंगे, उन्हींको कर्ता माना जायगा। बान्धवोंकी सीमा स्त्रीके परिवारमें सीमित हो जायगी। एक साथ पढ़ने-लिखनेवाले लोगोंमें परस्पर बातचीत तकका व्यवहार न रहेगा ॥ २१ ॥ पुरुष अपने ही परिवारसे अन्य अपरिचित व्यक्तियोंकी भांति व्यवहार करेंगे। पुरुष स्त्रीकी आज्ञाके बिना कोई काम न कर सकेगा ॥ २२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्ण अपनी जातिके आचार-विचारको छोड़ देंगे। सन्ध्या-वन्दन और यज्ञोपवीत आदि संस्कार तो प्रायः बंद ही हो जायँगे ॥२३॥ चारों ही वर्णके लोग म्लेच्छके समान आचरण करेंगे। प्रायः सभी लोग अपने शास्त्रोंको छोड़कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

म्लेच्छशास्त्र पढ़ेंगे ॥ २४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्णोंके लोग रसोईदार-चपरासी जैसी सेवावृत्ति करके जीविका चलायेंगे ॥ २५ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंमें सत्यका अभाव हो जायगा। जमीनपर धान्य नहीं उपजेंगे। वृक्ष फलहीन हो जायँगे और स्त्रियाँ सन्तानहीन होंगी ॥ २६ ॥ गौओंमें दूध देनेकी शक्ति नहीं रहेगी। लोग बिना मक्खनके दूधका व्यवहार करेंगे। स्त्री और पुरुषमें प्रेमका अभाव होगा। गृहस्थ असत्य भाषण करेंगे ॥२७॥ राजाओंका तेज समाप्त हो जायगा। प्रजा भयानक करके भारसे अत्यन्त कष्ट पायेगी। बड़ी-बड़ी नदियोंका जल सूख जायगा ॥ २८ ॥ चारों वर्णोंमें धर्म और पुण्यका नितान्त अभाव हो जायगा। लाखोंमें कोई एक भी पुण्यवान् न हो सकेगा ॥ २९ ॥ स्त्री-पुरुष-बालक कुरूप हो जायँगे खोटी वार्तो और खोटे शब्दोंका ही व्यवहार होगा ॥३०॥ ग्राम और नगर जंगल जैसे भीषण प्रतीत होंगे और मनुष्योंका अभाव होगा ॥३१॥ जंगलोंमें रहनेवाले लोग भी 'कर'-

सत्यहीना जनाः सर्वे सस्यहीना च मेदिनी ॥ फलहीनाश्च तरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः ॥ २६ ॥ क्षीरहीनास्तथा गावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम् ॥ दंपती प्रीतिहीनौ च गृहिणः सत्यवर्जिताः ॥ २७ ॥ प्रतापहीना भूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः ॥ जलहीना महानद्यो दीर्घिकाकंदरादयः ॥२८॥ धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एव च ॥ लक्षेषु पुण्यवान्कोऽपि न तिष्ठति ततः परम् ॥ २९ ॥ कुत्सिता विकृताकारा नरा नार्यश्च बालकाः ॥ कुवार्ता कुत्सितः शब्दो भविष्यति ततः परम् ॥ ३० ॥ केचिद्ग्रामाश्च नगरा नरशून्या भयानकाः ॥ केचित्स्वल्पकुटीरेण नरेण च समन्विताः ॥३१॥ अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषु च ॥ अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीडिताः ॥३२॥ सस्यानि च भविष्यन्ति तडागेषु नदीषु च ॥ प्रकृष्टवंशजा हीना भविष्यन्ति कलौ युगे ॥३३॥ अलीकवादिनो धूर्ताः शठाश्चासत्यवादिनः ॥ प्रकृष्टानि च क्षेत्राणि सस्यहीनानि नारद ॥३४॥ हीनाः प्रकृष्टा धनिनो देवभक्ताश्च नास्तिकाः ॥ हिंसकाश्च दयाहीनाः पौराश्च नरघातिनः ॥ ३५ ॥ वामना व्याधियुक्ताश्च नरा नार्यश्च सर्वतः ॥ स्वल्पायुषो गदैर्युक्ता यौवनेन रहिताः कलौ ॥ ३६ ॥ पलिताः षोडशे वर्षे महावृद्धाश्च विंशतौ ॥ अष्टवर्षा च युवती रजोयुक्ता च गर्भिणी ॥ ३७ ॥ वत्सरांतप्रसूता स्त्री षोडशे च जरान्विता ॥ पतिपुत्रवती काचित्सर्वा वंध्याः कलौ युगे ॥३८॥ कन्याविक्रयिणः सर्वे वर्णाश्चत्वार एव च ॥ मातृजाया-

के भारसे कष्ट भोगेंगे। नदियों और तालाबोंपर धान्य होंगे अर्थात् समयोचित वर्षाके अभावसे अन्यत्र खेती न होनेके कारण लोग इनके तटपर ही खेती करेंगे। कलियुगमें सम्भ्रान्त कुलके पुरुषोंकी अवनति होगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे नारद ! कलिके मनुष्य अश्लीलभाषी, धूर्त, शठ और असत्यवादी होंगे। भली-भाँति जोते-बोये हुए खेत भी धान्य देनेमें असमर्थ रहेंगे ॥ ३४ ॥ नीच वर्णवाले लोग धनी होनेके कारण श्रेष्ठ माने जायँगे। देवभक्तोंमें नास्तिकता आ जायगी। नगरनिवासी हिंसक, निर्दय तथा मनुष्यघाती होंगे ॥ ३५ ॥ कलिमें प्रायः स्त्री और पुरुष—बौने, रोगी, थोड़ी उम्रवाले और युवा-अवस्थासे रहित होंगे ॥ ३६ ॥ सोलह वर्षमें ही उनके सिरके बाल पक जायँगे। बीस वर्षमें उन्हें बुढ़ापा घेर लेगा। आठ ही वर्षमें स्त्रियाँ रजस्वला होकर गर्भ धारण करने लगेंगी ॥३७॥ प्रतिवर्ष सन्तानोत्पादन करके वे स्त्रियाँ सोलह वर्षकी अवस्थामें बूढ़ी हो जायँगी। उनमेंसे कुछ ही पति-पुत्रवती होंगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाकी सब बन्ध्या रहेंगी ॥३८॥ चारों वर्णोंके लोग कन्या बेचेंगे। वे माता, स्त्री एवं पतोहूसे व्यभिचार कराके जीविका चलायेंगे ॥३९॥ अपनी बहिन तथा कन्याके यारका दिया हुआ अन्न खायेंगे। कलियुगमें भगवन्नाम बेचनेवाले लोग होंगे ॥४०॥ मिथ्या दान होगा। मनुष्य अपनी कीर्ति बढ़ानेके लिए दान देकर स्वयं पुनः उसे वापस ले लेंगे ॥४१॥ देववृत्ति, ब्राह्मण-वृत्ति अथवा गुरुकुलवृत्ति—चाहे वह अपनी दी हुई हो अथवा दूसरेकी—कलिके मानव उसे छीन लेंगे ॥४२॥ कन्या, सास, पतोहू तथा सब प्रकारकी स्त्रियोंसे लोग समागम करेंगे ॥४३॥ कुछ लोग बहिन, सौतेली माँ और छोटे भाईकी स्त्रीके साथ भी दुराचार करेंगे ॥४४॥ कलियुगमें मनुष्यको अगम्या-गमनमें भी कोई हिचक न रहेगी। कलियुगमें स्त्रियों और पतियोंका निर्णय नहीं हो सकेगा। अर्थात् सभी स्त्री-पुरुषोंमें अवैध व्यवहार होंगे। प्रजा किन्हीं ग्रामों और धनोंपर अपना पूर्ण अधिकार नहीं प्राप्त कर सकेगी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ प्रायः सभी लोग

वधूनां च जारोपेतान्नभक्षकाः ॥३९॥ कन्यानां भगिनीनां वा जारोपात्तान्नजीविनः ॥ हरेर्नाम्नां विक्रयिणो भविष्यंति कलौ युगे॥४०॥ स्वयमुत्सृज्य दानं च कीर्तिवर्धनहेतवे ॥ ॥ ततः पश्चात्स्वदानं च स्वयमुल्लंघयिष्यति ॥ ४१ ॥ देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा सर्वमुल्लंघयिष्यति ॥ ४२ ॥ कन्यकागामिनः केचित्केचिच्च श्वश्रुगामिनः ॥ केचिद्वधूगामिनश्च केचिद्वै सर्वगामिनः ॥ ४३ ॥ भगिनीगामिनः केचित्सपत्नीमातृगामिनः ॥ भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ ४४ ॥ अगम्यागमनं चैव करिष्यंति गृहे गृहे ॥ मातृयोनिं परित्यज्य विहरिष्यंति सर्वतः ॥ ४५ ॥ पत्नीनां निर्णयो नास्ति भर्तॄणां च कलौ युगे ॥ प्रजानां चैव ग्रामाणां वस्तूनां च विशेषतः ॥ ४६ ॥ अलीकवादिनः सर्वे सर्वे चोराश्च लंपटाः ॥ परस्परं हिंसकाश्च सर्वे च नरघातिनः॥ ४७ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यंति च पापिनः॥ लाक्षालोहर-सानां च व्यापारं लवणस्य च॥४८॥ वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः ॥ शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वे च वृषलीरताः ॥४९॥ पञ्चयज्ञविहीनाश्च कुहूरात्रौ च भोजिनः ॥ यज्ञसूत्रविहीनाश्च संध्याशौचविहीनकाः ॥५०॥ पुंश्चली वार्धुषाजीवा कुट्टनी च रजस्वला ॥ विप्राणां रंधनागारे भविष्यति च पाचिका ॥ ५१ ॥ अन्नानां नियमो नास्ति योनीनां च विशेषतः ॥ आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे ॥ ५२ ॥ एवं कलौ संप्रवृत्ते सर्वं म्लेच्छमयं भवेत् ॥ हस्तप्रमाणे वृक्षे च अंगुष्ठे चैव मानवे ॥५३॥ विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्रः कल्किर्भविष्यति ॥ नारायणकलांशश्च भगवान्

अप्रिय वचन बोलेंगे। सभी चोर और लम्पट होंगे। वे एक दूसरेकी हिंसा करनेवाले एवं नरघाती होंगे ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—सबके वंशजोंमें पाप प्रवेश कर जायगा। सभी लोग लाख, लोहा, रस और नमकका व्यापार करेंगे ॥ ४८ ॥ ब्राह्मण बैलोंपर बोझ ढोनेका धन्धा करेंगे, शूद्रोंका शव जलायेंगे, शूद्रोंका अन्न खायेंगे और शूद्राओंसे रति करेंगे ॥ ४९ ॥ पञ्चयज्ञ करनेमें द्विजोंकी प्रवृत्ति न होगी। यज्ञोपवीत पहनना उनके लिए भार हो जायगा। वे सन्ध्या-वन्दन और शौचसे विहीन रहेंगे ॥ ५० ॥ पुंश्चली, सूदसे जीविका चलानेवाली तथा कुटनी स्त्री रजस्वला रहती हुई भी ब्राह्मणोंके घर भोजन बनायेगी ॥ ५१ ॥ अन्नोंमें, स्त्रियोंमें और आश्रमवासी मनुष्योंमें कोई नियम नहीं रहेगा। घोर कलियुगमें प्रायः सभी म्लेच्छ हो जायँगे ॥५२॥ इस प्रकार जब सम्यक् रीतिसे कलियुग छा जायगा, तब सारी पृथ्वी म्लेच्छोंसे भर जायगी। वृक्ष हाथ-हाथ भर ऊँचे और मनुष्य अंगुष्ठप्रमाण हो जायँगे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ५३ ॥ तब विष्णुयश नामक ब्राह्मणके घर उनके पुत्ररूपमें भगवान कल्कि अवतार लेंगे । सुप्रसिद्ध पराक्रमी ये कल्कि भगवान नारायणके अंश होंगे ॥ ५४ ॥ ये एक बहुत ऊंचे घोड़े-पर चढ़कर अपनी विशाल तलवारसे म्लेच्छोंका विनाश करेंगे और तीन रातमें ही पृथ्वीको म्लेच्छशून्य कर देंगे ॥ ५५ ॥ यों वसुधाको म्लेच्छरहित करके वे स्वयं अन्तर्धान हो जायँगे । तब एक बार पृथ्वीपर अराजकता फैल जायगी । डाकू सर्वत्र लूट-पाट मचाने लगेंगे ॥५६॥ तदनन्तर धरतीपर मोटी धारसे असीम जल बरसने लगेगा । लगातार छः दिन-रात वर्षा होगी । जिससे पृथ्वीपर सर्वत्र जल-ही-जल दिखायी पड़ेगा । पृथ्वी प्राणी, वृक्ष और गृहसे शून्य हो जायगी ॥५७॥ हे मुने ! इसके बाद बारह सूर्य एक साथ उदय होंगे । जिनके प्रचण्ड तेजसे पृथ्वी सूख जायगी ॥ ५८ ॥ ऐसा होनेपर दुर्धर्ष कलियुग समाप्त हो जायगा, तब तप और सत्त्वसे सम्पन्न धर्मका पूर्णरूपसे प्राकट्य होगा ॥ ५९ ॥ उस समय तपस्वियों, धर्मात्माओं और वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे पुनः पृथ्वी शोभा पायेगी । घर-घरमें स्त्रियाँ पतिव्रता और धर्मात्मा होंगी ॥ ६० ॥ धर्मप्राण तथा न्यायपरायण क्षत्रियोंके हाथमें राज्यका प्रबन्ध होगा । वे लोग

बलिनां वरः ॥ ५४ ॥ दीर्घेण करवालेन दीर्घघोटकवाहनः ॥ म्लेच्छशून्यां च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति ॥ ५५ ॥ निर्म्लेच्छां वसुधां कृत्वा
चांतर्धानं गमिष्यति ॥ अराजका च वसुधा दस्युग्रस्ता भविष्यति ॥ ५६ ॥ स्थूलाऽप्रमाणा षड्रात्रं वर्षधाराऽऽप्लुता मही ॥ लोकशून्या वृक्षशून्या
गृहशून्या भविष्यति ॥ ५७ ॥ ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यंत्युदयं मुने ॥ प्राप्नोति शुष्कतां पृथ्वी समा तेषां च तेजसा ॥ ५८ ॥ कलौ गते च
दुर्धर्षे प्रवृत्ते च कृते युगे ॥ तपःसत्त्वसमायुक्तो धर्मः पूर्णो भविष्यति ॥ ५९ ॥ तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि ॥ पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा
योषितश्च गृहे गृहे ॥ ६० ॥ राजानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ता मनस्विनः ॥ प्रतापवंतो धर्मिष्ठाः पुण्यकर्मरताः सदा ॥ ६१ ॥ वैश्या वाणिज्यनिरता
विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः ॥ शूद्राश्च पुण्यशीलाश्च धर्मिष्ठा विप्रसेविनः ॥ ६२ ॥ विप्रक्षत्रविशां वंशा देवीभक्तिपरायणाः ॥ देवीमंत्ररताः सर्वे देवीध्यान-
परायणाः ॥ ६३ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञाः पुमांस ऋतुगामिनः ॥ लेशो नास्ति ह्यधर्मस्य पूर्णो धर्मः कृते युगे ॥ ६४ ॥ धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां
द्विपाच्च द्वापरे ततः ॥ कलौ वृत्ते चैकपाच्च सर्वलुप्तिस्ततः परम् ॥ ६५ ॥ वाराः सप्त तथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः ॥ तथा द्वादश मासाश्च ऋत-
वश्च षडेव च ॥ ६६ ॥ द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम् ॥ चतुर्भिः प्रहरै रात्रिर्मासस्त्रिंशदिनैस्तथा ॥ ६७ ॥ वर्षं पञ्चविधं ज्ञेयं काल-

ब्राह्मणोंके भक्त, मनस्वी, तपस्वी, प्रतापी, धर्मात्मा और पुण्यकर्मके प्रेमी होंगे ॥ ६१ ॥ वैश्य व्यापारमें तत्पर रहेंगे । वे मनमें धार्मिक भावना रखते हुए ब्राह्मणोंके प्रति श्रद्धा रखेंगे । शूद्र धर्मपर आस्था रखते हुए पवित्रतापूर्वक सेवा करेंगे ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके वंशज भगवती जगदम्बा एवं शक्ति के परम उपासक होंगे । उनके द्वारा देवीके मंत्रका निरन्तर जप होने लगेगा । सब लोग देवीके ध्यानमें तत्पर रहेंगे ॥ ६३ ॥ समयानुसार व्यवहार करनेवाले पुरुषोंको श्रुति, स्मृति और पुराणका पूर्ण ज्ञान प्राप्त रहेगा । इसीको सत्ययुग कहते हैं । इस युगमें धर्म पूर्णरूपसे विद्यमान रहता है । त्रेतामें तीन पैरसे, द्वापरमें दो पैरसे और कलिमें केवल एक पैरसे धर्म रहता है । घोर काल आनेपर तो यह चारों पैरोंसे हीन हो जाता है, जिससे धर्म नहीं रहता ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हे विप्र ! सात दिन होते हैं । सोलह तिथियाँ कही गयी हैं । बारह महीने और छः ऋतुएँ होती हैं ॥ ६६ ॥ शुक्ल और कृष्ण—दो पक्ष तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्तरायण एवं दक्षिणायन–दो अयन होते हैं। चार पहरका दिन होता है और चार पहरकी रात होती है। तीस दिनोंका एक महीना होता है॥ ६७॥ संवत्सर तथा इडावत्सर आदि भेदसे पाँच प्रकारके वर्ष समझने चाहिये। यही कालकी संख्याका नियम है। जैसे दिन आते-जाते रहते हैं, वैसे ही चारों युगोंका आना-जाना लगा रहता है॥ ६८॥ मनुष्योंका एक वर्ष पूरा होनेपर देवताओंका एक दिन-रात होता है॥६९॥ कालकी संख्याके विशेषज्ञ पुरुषोंका कहना है कि मनुष्योंके तीन सौ साठ युग व्यतीत होनेपर देवताओंका एक युग बीतता है। इस प्रकारके एकहत्तर दिव्य युगोंको एक मन्वतर कहते हैं॥७०॥ एक इन्द्र एक मन्वन्तर पर्यन्त रहते हैं। यों अट्ठाईस मन्वन्तर बीत जानेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है॥७१॥ इस मानसे एक सौ आठ वर्ष व्यतीत होनेपर ब्रह्माकी आयु पूरी हो जाती है। इसीको प्राकृत प्रलय समझना चाहिये। उस समय पृथ्वी नहीं दिखायी पड़ती॥७२॥ पृथ्वी सहित सम्पूर्ण प्राणी जलमें लीन हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ऋषि आदि सभी सच्चिदानन्द ब्रह्ममें प्रवेश कर जाते हैं॥७३॥ उस ब्रह्ममें ही प्रकृति भी लीन हो जाती है और प्रकृति-पुरुष एक हो

संख्याविधिक्रमे॥ यथा चायांति यांत्येव तथा युगचतुष्टयम्॥ ६८॥ वर्षे पूर्णे नराणां च देवानां च दिवानिशम्॥ शतत्रये षष्ठ्यधिके नराणां च युगे गते॥ ६९॥ देवानां च युगं ज्ञेयं कालसंख्याविदां मतम्॥ मन्वंतरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः॥ ७०॥ मन्वंतरसमं ज्ञेयमायुष्यं च शचीपतेः॥ अष्टाविंशतिमे चेन्द्रे गते ब्रह्मदिवानिशम्॥ ७१॥ अष्टोत्तरशते वर्षे गते पातश्च ब्रह्मणः॥ प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्राऽदृष्टा वसुंधरा॥ ७२॥ जलाप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥ ऋषयो ज्ञानिनः सर्वे लीनाः सत्ये चिदात्मनि॥ ७३॥ तत्रैव प्रकृतिर्लीना तत्र प्राकृतिको लयः॥ लये प्राकृतिके जाते पाते च ब्रह्मणो मुने॥७४॥ निमेषमात्रं कालश्च श्रीदेव्याः प्रोच्यते मुने॥ एवं नश्यंति सर्वाणि ब्रह्माण्डान्यखिलानि च॥ ७५॥ निमेषांतरकालेन पुनः सृष्टिक्रमेण च॥ एवं कतिविधा सृष्टिर्लयः कतिविधोऽपि वा॥ ७६॥ कति कल्पा गतायाताः संख्यां जानाति कः पुमान्॥ सृष्टीनां च लयानां च ब्रह्मांडानां च नारद॥ ७७॥ ब्रह्मादीनां च ब्रह्माण्डे संख्यां जानाति कः पुमान्॥ ब्रह्मांडानां च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः॥ ७८॥ सर्वेषां परमात्मा च सच्चिदानन्दरूपधृक्॥ ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट्॥ ७९॥ तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रः सैवेयं प्रकृतिः परा॥ तस्याः सकाशात्संजातोऽप्यर्धनारीश्वरस्ततः॥ ८०॥ सैव कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः॥ चतुर्भुजश्च

जाते हैं। हे मुने! इसीको प्राकृत प्रलय कहते हैं। इस प्रकार प्राकृत प्रलय हो जानेपर ब्रह्माकी आयु समाप्त हो जाती है॥७४॥ हे मुनिवर! इतने सुदीर्घ कालको भगवती जगदम्बाका एक निमेष कहते हैं। इस प्रकार देवीके एक निमेषमें सम्पूर्ण विश्व और अखिल ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाते हैं॥ ७५॥ फिर भगवतीके निमेषमात्रमें ही सृष्टिके क्रमसे अनेक ब्रह्माण्ड बन जाते हैं। यों सृष्टि और प्रलय होते रहते हैं। कितने कल्प गये और आये—इसकी संख्याको कौन जान सकता है? हे नारद! सृष्टियों, प्रलयों, ब्रह्माण्डों और ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मादि प्रधान प्रबन्धकोंकी संख्याका परिज्ञान भला किस पुरुषको हो सकता है?॥७६–७८॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके जो एकमात्र ईश्वर हैं, उन्हें 'परमात्मा' कहा जाता है। उनका विग्रह सत्, चित् और आनन्दमय है। ब्रह्माप्रभृति देवता, महाविराट् और स्वल्पविराट्–सभी उन परमप्रभु परमात्माके अंश हैं। उन परमात्माको ही 'पराशक्ति' कहा जाता है। वही अर्धनारीश्वर श्रीकृष्णके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूपमें प्रकट होते हैं ॥७९॥८०॥ ये स्वयं दो रूपोंमें विभक्त हो जाते हैं—एक द्विभुज और दूसरे चतुर्भुज । चतुर्भुज श्रीहरि बैकुण्ठमें विराजने लगते हैं और स्वयं द्विभुज श्रीकृष्णका गोलोकमें निवास होता है ॥८१॥ ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त—सबको प्राकृतिक कहना चाहिये। ये सभी नश्वर हैं । क्योंकि प्रकृतिसे उत्पन्न सभी वस्तुओंका क्षय अवश्यम्भावी है ॥ ८२ ॥ इस प्रकार सृष्टिके कारणभूत परब्रह्म परमात्मा नित्य, सत्य, सनातन, स्वतन्त्र, निर्गुण और प्रकृतिसे परे हैं ॥ ८३ ॥ उनकी न कोई लौकिक उपाधि होती है और न कोई भौतिक आकार। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए वे सदा प्रस्तुत रहते हैं । उन्हींकी कृपासे ज्ञानी बने हुए कमलयोनि ब्रह्माके द्वारा ब्रह्माण्डकी रचना होती है ॥८४॥ शिवको मृत्युञ्जय और सर्वसत्त्ववित् कहा जाता है । ये सर्वेश एव महान् तपस्वी हैं। परब्रह्मको जानकर उनकी तपस्याके प्रभावसे ये संहारकार्यमें सफल होते हैं ॥ ८५ ॥ उन परब्रह्मके प्रति श्रद्धा रखकर उनकी सेवा करनेके प्रभावसे ही जगत्पालक श्रीमान् विष्णु महान् विभूतिसे सम्पन्न, सर्वज्ञानी, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी, सबके रक्षक, सम्पूर्ण शक्ति प्रदान

वैकुंठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥ ८१ ॥ ब्रह्मादितृणपर्यंतं सर्वं प्राकृतिकं भवेत् ॥ यद्यत्प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेव च ॥ ८२ ॥ एवंविधं सृष्टिहेतुं सत्यं नित्यं सनातनम् ॥ स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥८३॥ निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ करोति ब्रह्मा ब्रह्मांडं यज्ज्ञाना-त्कमलोद्भवः ॥८४॥ शिवो मृत्युंजयश्चैव संहर्ता सर्वसत्त्ववित् ॥ यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा सर्वेशस्तु तपो महान् ॥ ८५ ॥ महाविभूतियुक्तश्च सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ॥ सर्वव्यापी सर्वपाता प्रदाता सर्वसंपदाम् ॥ ८६ ॥ विष्णुः सर्वेश्वरः श्रीमान्यद्भक्त्या यस्य सेवया ॥ महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्ति-मयीश्वरी ॥ ८७ ॥ सैव प्रोक्ता भगवती सच्चिदानंदरूपिणी ॥ यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा यद्भक्त्या यस्य सेवया ॥८८॥ सावित्री देवमाता च वेदाधि-ष्ठातृदेवता ॥ पूज्या द्विजानां वेदज्ञा यज्ज्ञानाद्यस्य सेवया ॥ ८९ ॥ सर्वविद्याधिदेवी सा पूज्या च विदुषां परा ॥ यत्सेवया यत्तपसा सर्वविश्वेषु पूजिता ॥ ९० ॥ सर्वग्रामाधिदेवी सा सर्वसम्पत्प्रदायिनी ॥ सर्वेश्वरी सर्ववंद्या सर्वेषां पुत्रदायिनी ॥ ९१ ॥ सर्वस्तुता च सर्वज्ञा सर्वदुर्गार्ति-नाशिनी ॥ कृष्णवामांशसंभूता कृष्णप्राणाधिदेवता ॥ ९२ ॥ कृष्णप्राणाधिका प्रेम्णा राधिका शक्तिसेवया ॥ सर्वाधिकं च रूपं च सौभाग्यं

करनेमें समर्थ तथा सर्वेश्वर हुए हैं। प्रकृतिको सर्वशक्तिस्वरूपिणी, महामाया और सर्वेश्वरी कहा जाता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ वे भगवती प्रकृति सच्चिदानन्दस्वरूपिणी कहलाती हैं। उन्हें जानकर भक्तिपूर्वक तपस्या एवं सेवा करनेसे देवमाता सावित्री वेदोंकी अधिष्ठातृदेवता हुई हैं। ब्राह्मण उन वेदज्ञानसम्पन्ना देवीकी सदा पूजा करते हैं। इन सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती प्रकृतिकी सेवाका ही प्रभाव है कि सरस्वतीको समस्त विद्याकी अधिष्ठात्री माना जाता है। सब विद्वान् उनकी उपासना करते हैं। इन मूल प्रकृतिको जानकर तथा इनकी सेवा एवं तपस्यासे ही लक्ष्मी सर्वत्र सुपूजित हुई हैं। इन्हींकी उपासिका होनेसे दुर्गाको सब लोग पूजते हैं और ये सर्वेश्वरी सबकी कामनाएँ पूर्ण करके पुत्र प्रदान करती हैं ॥८८-९१॥ श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके वामभागमें शोभा पाती हैं तथा उन सर्वज्ञानसम्पन्ना देवीमें सबके कष्ट शान्त करनेको योग्यता है । उन्हें भगवान् श्रीकृष्णके प्राणकी अधिष्ठातृदेवता माना जाता है ॥ ९२ ॥ राधा श्रीकृष्णस्वरूपा हैं। इसीसे राधा श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हैं। इसीसे उन्हें सबसे अधिक सुन्दर रूप, सौभाग्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवं मान-सम्मान प्राप्त है ॥ ९३॥ इसीसे श्रीराधाने श्रीकृष्णकी पत्नी बनकर उनके वक्षःस्थलपर रहनेका सौभाग्य-प्राप्त किया है। भगवती राधाने शतशृंग पर्वतपर जाकर तपस्या की थी ॥ ९४ ॥ उस तपस्याका उद्देश्य यह था कि भगवान श्रीकृष्ण मेरे पति हों। फिर तो तुरन्त भगवान श्रीकृष्ण सामने प्रकट हो गये। चन्द्रमाकी कलाके समान शोभा पानेवाली राधाको देखकर भगवान श्रीकृष्णने उन्हें अपने हृदयसे चिपका लिया और प्रेमके उद्रेकसे उनकी आँखें आँसू बहाने लगीं। उन्होंने राधाको यह उत्तम वर दिया ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ उन्होंने राधासे कहा–'प्रियतमे ! तुम सदा मेरे वक्षःस्थलपर विराजमान रहो। मेरे प्रति तुम्हारा शाश्वत प्रेम है। सौभाग्य, प्रतिष्ठा, प्रेम और गौरव तुम्हारे नित्यसंगी होंगे ॥ ९७ ॥ तुम मेरे पास ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक प्रेमभाजन बनकर रहोगी। तुम परम आदरणीया एवं गौरवसम्पन्ना देवी हो। हे प्राणवल्लभे ! मैं तुम्हारा ही हो गया हूँ और सदा तुम्हारी इच्छाके अनुकूल व्यवहार करूँगा।' इस प्रकार परम सुन्दरी राधाको वर देकर भगवान श्रीकृष्णने उन्हें अपनी नित्यकी प्राणप्रिया बना लिया। श्रीराधाका अन्य किसीसे कोई भी सम्पर्क

मानगौरवे ॥ ९३ ॥ कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वे प्राप सेवया ॥ तपश्चकार सा पूर्वं शतशृंगे च पर्वते ॥ ९४ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं च पतिप्राप्त्यर्थमेव च ॥ जाते शक्तिप्रसादे तु दृष्ट्वा चंद्रकलोपमाम् ॥ ९५ ॥ कृष्णो वक्षःस्थले कृत्वा रुरोद कृपया विभुः ॥ वरं तस्यै ददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम् ॥ ९६ ॥ मम वक्षःस्थले तिष्ठ मम भक्ता च शाश्वती ॥ सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णाऽथो गौरवेण च ॥ ९७ ॥ त्वं मे श्रेष्ठा च ज्येष्ठा च प्रेयसी सर्वयोषिताम् ॥ वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया ॥ ९८ ॥ सततं तव साध्योऽहं वश्यश्च प्राणवल्लभे ॥ इत्युक्त्वा च जगन्नाथश्चकार ललनां ततः ॥ ९९ ॥ सपत्नीरहितां तां च चकार प्राणवल्लभाम् ॥ अन्या या याश्च ता देव्यः पूजिताः शक्तिसेवया ॥ १०० ॥ तपस्तु यादृशं यासां तादृक्तादृक्फलं मुने ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं च तपस्तप्त्वा हिमाचले ॥१०१॥ दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्या बभूव ह ॥ सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गंधमादने ॥ १०२ ॥ लक्षवर्षं च दिव्यं च सर्ववंद्या बभूव सा ॥ लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे ॥ १०३ ॥ सर्वसंपत्प्रदात्री च जाता देवीनिषेवणात् ॥ सावित्री मलये तप्त्वा पूज्या वंद्या बभूव सा ॥ १०४ ॥ षष्टिवर्षसहस्रं च दिव्यं ध्यात्वा च तत्पदम् ॥ शतमन्वन्तरं तप्तं शंकरेण पुरा विभो ॥ १०५ ॥ शतमन्वंतरं चेदं ब्रह्मा शक्तिं जजाप ह ॥ शतमन्वंतरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह ॥ १०६ ॥ दशमन्वन्तरं

नहीं है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ हे मुने ! ऐसे ही अन्य भी जिन देवियोंने भगवती मूलप्रकृतिकी सेवा की है, वे उसके फलस्वरूप सुपूजित हुई हैं ॥ १००॥ हे मुने ! भगवती दुर्गाने हिमालय पर्वतपर दिव्य सहस्र वर्ष तक तपस्या की थी। वे मूल प्रकृति भगवती जगदम्बाके चरणोंका सदा ध्यान करती रहीं। अतएव वे सबकी परम आराध्या बन गयीं। सरस्वतीने गन्धमादन पर्वतपर रहकर एक लाख वर्षतक तप किया था। इसीसे वे सर्ववन्द्या बन सकीं। लक्ष्मीको पुष्कर क्षेत्रमें सौ युग तपस्या करनेके बाद सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करनेकी योग्यता प्राप्त हुई थी। सावित्रीने मलयगिरिपर आराधना की। अतः लोग इनकी वन्दना एवं पूजा करते हैं ॥ १०१–१०४ ॥ इसी प्रकार दिव्य साठ हजार वर्षतक शंकरजीने उन मूल प्रकृतिका ध्यान करते हुए तप किया था ॥१०५॥ सौ मन्वन्तर ब्रह्माने उनका नाम जपा और सौ ही मन्वन्तरतक विष्णु तपस्या करके सबके रक्षक बने ॥१०६॥ दस मन्वन्तर श्रीकृष्णने परम तप करके दिव्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गोलोक प्राप्त किया और वे आज भी वहाँ आनन्द कर रहे हैं ॥ १०७ ॥ दस मन्वन्तर धर्म भक्तिपूर्वक तप करके सर्वप्राण, सर्वपूज्य और सर्वाधार बने ॥ १०८ ॥ इस प्रकार देवीकी तपस्या करके सब देवता पूजित हुए। हे नारद ! इस तरह देवता, मुनि, मानव, राजा तथा ब्राह्मण प्रायः सभी महानुभावोंने आदिदेवीकी आराधना करके जगत्में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। इस प्रकार पुराणों, शास्त्रों तथा गुरुके वचनोंसे मुझे जो बात ज्ञात हुई थी, सो कह सुनायी। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १०९ ॥ ११० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसंग, ध्यान और पूजनका प्रकार तथा स्तुति एवं पृथ्वीके प्रति शास्त्रविपरीत व्यवहार करनेपर नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन) नारदजीने कहा—हे भगवन् ! आपने बतलाया है कि देवीके निमेषमात्रमें ब्रह्माकी आयु पूरी हो जाती है। उसका सत्ताशून्य हो जाना ही 'प्राकृतिक प्रलय' कहा जाता है ॥ १ ॥ उस समय पृथ्वी अदृश्य हो जाती है। सम्पूर्ण

तप्त्वा श्रीकृष्णः परमं तपः ॥ गोलोकं प्राप्तवान्दिव्यं मोदतेऽद्यापि यत्र हि ॥१०७॥ दशमन्वंतरं धर्मस्तप्त्वा वै भक्तिसंयुतः ॥ सर्वप्राणः सर्वपूज्यः सर्वाधारो बभूव सः ॥ १०८ ॥ एवं देव्याश्च तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः ॥ मुनयो मनवो भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः ॥ १०९ ॥ एवं ते कथितं सर्वं पुराणं सयथागमम् ॥ गुरुवक्त्राद्यथा ज्ञातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ११० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे शक्तिप्रादुर्भावे नारदनारायणसंवादेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ नारद उवाच ॥ देव्या निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च ॥ तस्य पातः प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः ॥ १ ॥ प्रलये प्राकृते चोक्ता तत्रादृष्टा वसुन्धरा ॥ जलाप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाः परात्मनि ॥२॥ वसुंधरा तिरोभूता कुत्र वा सा च तिष्ठति॥ सृष्टिर्विधानसमये साऽऽविर्भूता कथं पुनः ॥ ३ ॥ कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रया जया ॥ तस्याश्च जन्मकथनं वद मंगलकारकम् ॥ ४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म देव्या इति श्रुतिः ॥ आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥ ५ ॥ श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलकारणम् ॥ विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्धनम् ॥ ६ ॥ अहो केचिद्वदंतीति मधुकैटभमेदसा ॥ बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतः शृणु ॥ ७ ॥ ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ

विश्व जलमें डूब जाता है। सबके-सब परब्रह्म परमात्मामें लीन हो जाते हैं ॥ २ ॥ उस समय पृथ्वी छिपकर कहाँ रहती है और सृष्टिके समय वह पुनः कैसे प्रकट हो जाती है ? ॥ ३ ॥ धन्य, मान्य, सबके आश्रय एवं विजयशालिनी होनेका सौभाग्य उसे पुनः कैसे प्राप्त होता है ? हे प्रभो ! अब आप पृथ्वीकी उत्पत्तिके मङ्गलमय चरित्रका सुनानेकी कृपा कीजिए ॥ ४ ॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद ! श्रुति कहती है कि सम्पूर्ण सृष्टियोंके आरम्भमें आदिशक्ति भगवती जगदम्बासे ही अखिल जगत्की उत्पत्ति होती है और प्रलयोंके अवसरपर सब प्राणी उन्हींमें लीन भी हो जाते हैं ॥५॥ अब पृथ्वीके जन्मका प्रसंग सुनो। कुछ लोग कहते हैं कि यह आदरणीया पृथ्वी मधु और कैटभके मेदसे उत्पन्न हुई है। इसका भाव यह है कि उन दैत्योंके जीवनकालमें पृथ्वी स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ती थी। वे जब मर गये, तब उनके शरीरसे मेद निकला—वह सूर्यके तेजसे सूख गया। अतः पृथ्वी 'मेदिनी' इस नामसे विख्यात हुई। अब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस मतका स्पष्टीकरण सुनो। पहले सर्वत्र जल ही जल दृष्टिगोचर होरहा था। पृथ्वी जलसे ढँकी थी। मेदसे केवल उसका स्पर्श हुआ था। अतः लोग उसे 'मेदिनी' कहने लगे। हे मुने! अब पृथ्वीके सार्थक जन्मका प्रसंग कहता हूँ। यह चरित्र सम्पूर्ण मङ्गल प्रदान करनेवाला है। मैं जब पुष्करक्षेत्रमें था, तब महाभाग धर्मके मुखसे जो कुछ सुना वही तुमसे कहूँगा ॥६-११॥ महाविराट् पुरुष अनन्तकालसे जलमें विराजमान रहते हैं—यह स्पष्ट है। समयानुसार उनके भीतर सर्वव्यापी समष्टि मन प्रकट होता है ॥१२॥ महाविराट् पुरुषके सभी रोमकूप उसके आश्रय बन जाते हैं। हे मुने! उन्हीं रोमकूपोंसे पृथ्वी निकल आती है॥१३॥ महाविराट्के जितने रोमकूप हैं, उन सबमेंसे एक-एक करके जल सहित पृथ्वी बार-बार प्रकट होती है ॥१४॥ सृष्टिके समय प्रकट होकर जलके ऊपर स्थित रहना और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर छिपकर जलके भीतर चले जाना-यही इसका नियम है ॥१५॥ अखिल ब्रह्माण्डमें यह विराजती है। वन और पर्वत

युद्धेन तेजसा ॥ आवां वधो न यत्रोर्वी पाथसा संवृतेति च ॥ ८ ॥ तयोर्जीवनकालेन प्रत्यक्षा साऽभवत्फुटम् ॥ ततो बभूव मेदश्च मरणानंतरं तयोः ॥ ९ ॥ मेदिनीति च विख्यातेत्युक्तमेतन्मतं शृणु ॥ जलधौता कृता पूर्वं वर्धिता मेदसा यतः ॥ १० ॥ कथयामि ते तज्जन्म सार्थकं सर्वमंगलम् ॥ पुरा श्रुतं यच्छ्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे ॥ ११ ॥ महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम् ॥ मनो बभूव कालेन सर्वाङ्गव्यापकं ध्रुवम् ॥ १२ ॥ तच्च प्रविष्टं सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च ॥ कालेन महता पश्चाद्बभूव वसुधा मुने ॥ १३ ॥ प्रत्येकं प्रतिलोम्नां च कूपेषु संस्थिता सदा ॥ आविर्भूता तिरोभूता सजला च पुनः पुनः ॥१४॥ आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलोपर्युपस्थिता ॥ प्रलये च तिरोभूता जलस्याभ्यंतरे स्थिता ॥१५॥ प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता ॥ सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपसमन्विता ॥ १६ ॥ हेमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचंद्रार्कसंयुता ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तदाज्ञया ॥ १७ ॥ पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्या भारतसंयुता ॥ कांचनीभूमिसंयुक्ता सप्तस्वर्गसमन्विता ॥ १८ ॥ पातालसप्त तदधस्तदूर्ध्वं ब्रह्मलोकतः ॥ ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वं विश्वं च तत्र वै ॥ १९ ॥ एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि च ॥ नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि वै ॥ २० ॥ प्रलये प्राकृते चैव ब्रह्मणश्च निपातने ॥ महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चात्मना ॥ २१ ॥ नित्यौ च स्थितिप्रलयौ

इसकी शोभा बढ़ाये रहते हैं। यह सात समुद्रोंसे घिरी रहती है। सात द्वीप इसके अङ्ग हैं ॥१६॥ हिमालय और सुमेरु आदि पर्वत तथा सूर्य एवं चन्द्रमा प्रभृति ग्रह इसे सदा सुशोभित करते रहते हैं। महाविराट्की आज्ञा के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता प्रकट होते एवं समस्त प्राणी इसपर रहते हैं ॥ १७ ॥ पुण्य तीर्थ तथा पवित्र भारतवर्ष जैसे देशोंसे सम्पन्न होनेका इसे सुअवसर मिलता है। यह पृथ्वी स्वर्णमयी भूमि है। इसके ऊपर सात स्वर्ग हैं ॥१८॥ इसके नीचे सात पाताल हैं। ऊपर ब्रह्मलोक है। ब्रह्मलोकसे भी ऊपर ध्रुवलोक है। हे नारद! इस प्रकार इस पृथ्वीपर अखिल विश्वका निर्माण हुआ है। ये सभी निर्मित विश्व कृत्रिम तथा नश्वर हैं॥१९॥ ॥२०॥ यहाँतक कि 'प्राकृत प्रलय'का अवसर आनेपर ब्रह्मा भी चले जाते हैं। उस समय केवल महाविराट् पुरुष विद्यमान रहते हैं। कारण, सृष्टिके आरम्भमें ही परब्रह्म श्रीकृष्णने इन्हें उत्पन्न करके इस कार्यपर नियुक्त कर दिया है ॥ २१ ॥ सृष्टि और प्रलय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवाहरूपसे नित्य हैं—इनका क्रम निरन्तर चालू रहता है। ये कालपर नियन्त्रण रखनेवाली अदृष्ट शक्तिके अधीन होकर रहते हैं। प्रवाहक्रमसे पृथ्वी भी नित्य है। वाराहकल्पमें यह मूर्तिमान रूपसे विराजमान हुई थी और देवताओंने इसका पूजन किया था ॥२२॥ मुनि, मनु, गन्धर्व और ब्राह्मण—प्रायः सभी इसकी पूजामें सम्मिलित हुए थे। उस समय भगवान्का वाराहावतार हुआ था। श्रुतिकी सम्मतिसे यह पृथ्वी उनकी पत्नीके रूपमें विराजमान हुई। इससे मङ्गलका जन्म हुआ और मङ्गलसे घटेशका उत्पत्ति हुई ॥२३॥ नारदने पूछा—हे प्रभो! देवताओंने वाराहकल्पमें पृथ्वीको किस रूपमें पूजा की थी? ॥२४॥ सबको आश्रय प्रदान करनेवाली इस साध्वी देवीकी उस कल्पमें सभी लोग पूजा करते थे। यह मूल प्रकृति ही पञ्चीकरण मार्गसे प्रकट हुई है ॥२५॥ हे भगवन्! नीचे तथा ऊपरके लोकोंमें इनके पूजनका विविध प्रकार एवं मङ्गलमें जन्मका कल्याणमय प्रसंग विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये ॥ २६ ॥ नारायण कहते हैं—हे नारद! बहुत पहलेकी बात है। उस समय वाराहकल्प चल रहा था। ब्रह्माके स्तुति करनेपर भगवान श्रीहरि हिरण्याक्षको मारकर पृथ्वीको रसातलसे निकाल ले आये

काष्ठाकालेश्वरैः सह ॥ नित्याधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः ॥ २२ ॥ मुनिभिर्मनुभिर्विप्रैर्गंधर्वादिभिरेव च ॥ विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसंमता ॥ २३ ॥ तत्पुत्रो मंगलो ज्ञेयो घटेशो मंगलात्मजः ॥ नारद उवाच ॥ पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही ॥ २४ ॥ वाराहे चैव वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती ॥ मूलप्रकृतिसंभूता पंचीकरणमार्गतः ॥ २५ ॥ तस्याः पूजाविधानं चाप्यधश्चोर्ध्वमनेकशः ॥ मंगलं मंगलस्यापि जन्म व्यास वद प्रभो ॥ २६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा ॥ उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलम् ॥२७॥ जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथा ह्रदे ॥ तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा विश्वं सर्वं मनोहरम् ॥२८॥ दृष्ट्वा तदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः ॥ वाराहरूपी भगवान् कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ २९ ॥ कृत्वा रतिकलां सर्वां मूर्तिं च सुमनोहराम् ॥ क्रीडां चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ॥ ३० ॥ सुखसंभोग-संस्पर्शान्मूर्च्छां संप्राप सुन्दरी ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमोऽतिसुखप्रदः ॥३१॥ विष्णुस्तदंगसंश्लेषाद्बुबुधे न दिवानिशम् ॥ वर्षान्ते चेतनां प्राप्य कामी तत्याज कामुकीम् ॥ ३२ ॥ पूर्वरूपं वराहं च दधार स च लीलया ॥ पूजां चकार तां देवीं ध्यात्वा च धरणीं सतीम् ॥ ३३ ॥ धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिंदूरैरनुलेपनैः ॥ वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता सुखम् ॥

॥२७॥ उसे जलपर इस प्रकार रख दिया, मानो तालाबमें कमलका पत्ता हो। उसीपर रहकर ब्रह्माने सम्पूर्ण मनोहर विश्वकी रचना की ॥२८॥ पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी एक परम सुन्दरी देवीके वेषमें थीं। उन्हें देखकर भगवान् श्रीहरिके मनमें प्रेम करनेका विचार उत्पन्न हो गया। अतएव भगवान्ने अपना वाराहरूप बना लिया। उनकी कान्ति ऐसी थी, मानो करोड़ों सूर्य उदित हों ॥२९॥ उनके प्रयाससे परम सुन्दरी मूर्ति भलीभाँति रतिके योग्य बन गयी। उस देवीके साथ दिव्य एक वर्षतक वे एकान्तमें विहार करते रहे ॥३०॥ वे उसके साथ सुखसभागमें इतने निमग्न हो गये कि दिन-रात व्यतीत होनेका उन्हें ज्ञान ही नहीं रहा। वर्षभर बाद उन्होंने उस सुन्दरी देवीका संग छोड़ दिया ॥३१॥३२॥ खेल ही खेलमें वे अपने पूर्ववर्ती वराह-रूपसे विराजमान हो गये। तब उनके द्वारा परम साध्वी देवी पृथ्वीका ध्यान और पूजन आरम्भ हो गया ॥३३॥ धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, फूल और बलि आदि सामग्रियोंसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूजा करके भगवान्ने उनसे कहा—॥३४॥ श्रीभगवान् बोले—हे शुभे ! तुम सबकी आश्रय प्रदान करनेवाली बनो। मुनि, मनु, देवता, सिद्ध और दानव आदि सबसे सुपूजित होकर तुम सुख भोगोगी ॥ ३५ ॥ अम्बुवाचीके अतिरिक्त दिनमें गृहप्रवेश, गृहारम्भ, वापी एवं तड़ागके निर्माण अथवा अन्य गृह तथा कृषिकार्यके अवसरपर देवता आदि सभी लोग मेरे वरके प्रभावसे तुम्हारी पूजा करेंगे। आषाढ़ कृष्ण दशमीसे त्रयोदशीतक पृथिवी रजस्वला रहती है। उतने समयको अम्बुवाची कहते हैं। जो मूर्ख तुम्हारी पूजा नहीं करना चाहेंगे, उन्हें नरकमें जाना पड़ेगा ॥३६॥३७॥ पृथ्वी बोली—भगवन् ! आपके आज्ञानुसार वाराहरूपसे मैं सचराचर विश्वका वहन करती हूँ ॥ ३८ ॥ मोती, सीपी, कृष्णपूजन सामग्री-शिवलिंग, पार्वती, शंख, दीप, यंत्र, माणिक्य, हीरा, यज्ञोपवीत, पुष्प, पुस्तक, तुलसीदल, जपमाला, पुष्पमाला, कपूर, सुवर्ण, गोराचन, चन्दन और शालिग्रामका जल, इन वस्तुओंका वहन करनेमें मैं असमर्थ हूँ।

मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च दानवादिभिः ॥ ३५ ॥ अंबुवाचीत्यागदिने गृहारंभे प्रवेशने ॥ वापीतडागारम्भे च गृहे च कृषिकर्मणि ॥ ३६ ॥ तव पूजां करिष्यंति मद्वरेण सुरादयः ॥ मूढा ये न करिष्यंति-यास्यंति नरकं च ते ॥ ३७ ॥ वसुधोवाच ॥ वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया ॥ लीलामात्रेण भगवन्विश्वं च सचराचरम् ॥ ३८ ॥ मुक्तां शुक्तिं हरेरर्चां शिवलिंगं शिवां तथा ॥ शंखं प्रदीपं यंत्रं च माणिक्यं हीरकं तथा ॥ ३९ ॥ यज्ञसूत्रं च पुष्पं च पुस्तकं तुलसीदलम् ॥ जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं च सुवर्णकम् ॥४०॥ गोरोचनचन्दनं च शालग्रामजलं तथा ॥ एतान्वोढुमशक्ताऽहं क्लिष्टा च भगवञ्छृणु ॥ ४१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यंति सुंदरि ॥ यास्यंति कालसूत्रं ते दिव्यं वर्षशतं त्वयि ॥४२॥ इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च नारद ॥ बभूव तेन गर्वेण तेजस्वी मंगलग्रहः ॥४३॥ पूजां चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाज्ञया हरेः॥ कण्वशाखोक्तध्यानेन तुष्टुवुश्च स्तवेन ते ॥ ४४ ॥ ददुर्मूलेन मंत्रेण नैवेद्यादिकमेव च ॥ संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ किं ध्यानं स्तवनं तस्या मूलमंत्रं च किं वद ॥ गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ ४६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आदौ च पृथिवी देवी वराहेण च पूजिता ॥ ततो हि ब्रह्मणा पश्चात्पूजिता पृथिवी तदा ॥ ४७ ॥ ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्मानवादिभिः ॥ ध्यानं च स्तवनं

इनसे मुझे क्लेश होता है ॥३९-४१॥ भगवान बोले—हे सुन्दरी ! जो मूर्ख तुम्हें ये वस्तुयें अर्पित करेंगे, वे कालसूत्र नरकमें जायँगे और सौ वर्ष वहाँकी यंत्रणा भोगेंगे ॥ ४२ ॥ इतना कहकर भगवान चुप हो गये। उस समय पृथ्वी गर्भवती हो चुकी थी। उसी गर्भसे तेजस्वी मङ्गल नामके ग्रहकी उत्पत्ति हुई ॥४३॥ भगवान्के आज्ञानुसार वहाँ उपस्थित सम्पूर्ण व्यक्ति पृथ्वीकी उपासना करने लगे। कण्वशाखामें कहे हुए मन्त्रोंको पढ़कर उन्होंने ध्यान किया और स्तुति की ॥४४॥ मूलमन्त्र पढ़कर नैवेद्य अर्पण किया। यों त्रिलोकी भरमें पृथ्वीकी पूजा और स्तुति होने लगी ॥४५॥ नारदजीने कहा—भगवन् ! पृथ्वीका किस प्रकार ध्यान किया जाता है, इनकी पूजाका प्रकार क्या है और कौन मूलमन्त्र है ? सम्पूर्ण पुराणोंमें छिपे हुए इस प्रसंगको सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥४६॥ अतः बतानेकी कृपा कीजिये। भगवान् नारायण कहते हैं— हे मुने ! सर्वप्रथम भगवान् वाराहने इस पृथ्वीकी पूजा की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥४७॥ उनके पश्चात ब्रह्माजी देवीके पूजनमें संलग्न हुए। तदनन्तर सम्पूर्ण प्रधान मुनियों, मनुओं और मानवों द्वारा इनका सम्मान हुआ। अब मैं उनका ध्यान, पूजन और मन्त्र बतलाता हूँ, सुनो ॥ ४८ ॥ 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा' इसी मन्त्रसे भगवान् विष्णुने इनका पूजन किया था। ध्यानका प्रकार यह है-'पृथ्वी देवीके श्रीविग्रहका वर्ण स्वच्छ कमलके समान उज्वल है। मुख ऐसा जान पड़ता है, मानो शरत्पूर्णिमाका चन्द्रमा हो। सम्पूर्ण अङ्गोंमें ये चन्दन लगाये रहती हैं। रत्नमय अलंकारोंसे इनकी अनुपम शोभा हो रही है। समस्त रत्न इनके ऊपर तथा अन्दर भी विद्यमान हैं। रत्नोंकी खानें इनको गौरवान्वित किये हुए हैं। ये विशुद्ध चिन्मय वस्त्र धारण किये रहती हैं। इनके मुखमण्डलपर मुसकान छायी रहती है। सभी लोग इनकी उपासना करते हैं। ऐसी पृथ्वीकी मैं आराधना करता हूँ।' इसी प्रकार ध्यान करके सब लोगोंने पृथ्वीकी पूजा की। हे विप्रेन्द्र! अब कण्वशाखामें प्रतिपादित इनकी स्तुति सुनो ॥४९--५१॥ वहाँ श्रीनारायणने कहा—हे भगवती जये! तुम सबको जल प्रदान करती हो। भगवान् श्रीहरि यज्ञवाराहरूपसे पधारे थे और तुम उनकी पत्नी बनी थीं। तुम विजय-

मंत्रं शृणु वक्ष्यामि नारद ॥४८॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहेत्यनेन मंत्रेण विष्णुना पूजिता पुरा॥ श्वेतपंकजवर्णाभां शरच्चन्द्रनिभाननाम् ॥४९॥
चन्दनोत्क्षिप्तसर्वांगीं रत्नभूषणभूषिताम् ॥ रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम् ॥ ५० ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वंदितां भजे ॥ ध्यानेना-
नेन सा देवी सर्वैश्च पूजिताऽभवत् ॥५१॥ स्तवनं शृणु विप्रेंद्र कण्वशाखोक्तमेव च ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ जये जये जलाधारे जलशीले जलप्रदे
॥ ५२ ॥ यज्ञसूकरजाये त्वं जयं देहि जयावहे ॥ मंगले मंगलाधारे मांगल्ये मंगलप्रदे ॥ ५३ ॥ मङ्गलार्थं मङ्गलेशे मङ्गलं देहि मे भवे ॥ सर्वाधारे
च सर्वज्ञे सर्वशक्तिसमन्विते ॥ ५४ ॥ सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे ॥ पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि ॥ ५५ ॥ पुण्याश्रये पुण्य-
वतामालये पुण्यदे भवे ॥ सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्ये सर्वसस्यदे ॥५६॥ सर्वसस्यहरे काले सर्वसस्यात्मिके भवे ॥ भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरा-
यणे ॥ ५७ ॥ भूमिपानां सुखकरे भूमिं देहि च भूमिदे ॥ इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ ५८ ॥ कोटिजन्मसु स भवेद्बलवान्भूमि-
पेश्वरः ॥ भूमिदानकृतं पुण्यं लभ्यते पठनाज्जनैः ॥ ५९ ॥ भूमिदानहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ अम्बुवाचीभूकरणपापात्स मुच्यते ध्रुवम्

सम्पन्न, मंगलमयी, मंगलका आश्रय तथा मङ्गलप्रदा हो ॥५२॥५३॥ हे देवी! मुझे जय देनेकी कृपा करो। हे भवे! हे मङ्गलेशी! मैं मङ्गल प्राप्तिके लिए तुमसे प्रार्थना करता हूँ। अतः कृपया मुझे मङ्गल प्रदान करो। सबको आश्रय देनेवाली हे देवी! तुम सर्वज्ञा एवं सर्वशक्ति समन्विता हो ॥ ५४ ॥ सबकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाली हे भगवति भवे! तुम मेरा सम्पूर्ण अभीष्ट कार्य सम्पन्न कर दो, तुम्हारा विग्रह पुण्यमय है। तुम पुण्योंकी बीज हो ॥५५॥ तुम्हें भगवती सनातनी कहा जाता है। हे भवे! तुम पुण्याश्रया, पुण्योंकी आस्पद तथा पुण्यप्रदा हो। सम्पूर्ण शस्योंको उत्पन्न करनेवाली हे देवी! सभी फसलें तुमपर उपजती हैं ॥५६॥ तुम खेतियोंसे लहलहाई रहती हो। अन्तमें सभी खेतियाँ तुम्हारे ही भीतर लीन भी हो जाती हैं। हे भवे! तुम्हारा सर्वाङ्ग शस्यमय है। हे भूमे! तुम राजाओंकी सर्वस्व हो। राजा लोग सदा तुम्हारा सम्मान करते हैं। राजाओंको सुखी बनानेवाली हे भगवति भूमिदे! तुम मुझे भूमि देनेकी कृपा करो। हे नारद! यह स्तोत्र परम पवित्र है। जो पुरुष प्रातःकाल इसका पाठ करता है, उसे अनेक जन्मोंके लिए बलवान् राजा होनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। इसे पढ़नेसे मनुष्य पृथ्वीके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दानसे उत्पन्न पुण्यके अधिकारी बन जाते हैं ॥ ५७–५९ ॥ पृथ्वी-दानके अपहरणसे, दूसरेके कुएँका बिना आज्ञा लिए खोदनेसे और अम्बुवाची योगमें पृथ्वीको खननेसे जो पाप होते हैं, उन पापोंका उच्छेद करनेके लिए यह परम उपयोगी स्तोत्र है ॥६०॥६१॥ हे मुने! पृथ्वीपर वीर्य त्यागने तथा दीपक रखनेसे जो पाप होता है, उससे भी प्राणी इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मुक्त हो जाता है ॥ ६२ ॥ इस स्तोत्रका पाठ करनेसे निःसन्देह सौ अश्वमेध यज्ञ करनेका पुण्य प्राप्त होता है। भूमिदेवीका यह महान् स्तोत्र सब प्रकारसे कल्याणकारी है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

नारदजी बोले—हे भगवन्! पृथ्वीका दान करनेसे जो पुण्य तथा उसे छीनने, कुआँ खोदने, दूसरेकी भूमिका हरण करने, अम्बुवाचीमें पृथ्वीका उपयोग करने, भूमिपर वीर्य गिराने तथा जमीनपर दीपक रखनेसे जो पाप होता है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हे प्रभो! मेरे पूछनेके अतिरिक्त अन्य भी जो पृथ्वी-जन्य पाप हैं, उनको तथा उनके प्रतीकार-

॥ ६० ॥ अन्यकूपे कूपखननपापात्स मुच्यते ध्रुवम् ॥ परभूमिहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥६१॥ भूमौ वीर्यत्यागपापाद्भूमौ दीपादिस्थापनात् ॥ पापेन मुच्यते सोऽपि स्तोत्रस्य पठनान्मुने ॥ ६२ ॥ अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ भूमिदेव्या महास्तोत्रं सर्वकल्याणकारकम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ नारद उवाच ॥ भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन च ॥ परभूहरणात्पापं कूपे कूपखनौ तथा ॥ १ ॥ अंबुवाच्यां भूखनने वीर्यस्य त्याग एव च ॥ दीपादिस्थापनात्पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥ २ ॥ अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत्पृच्छते परम् ॥ यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदां वर ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वितस्तिमात्रभूमिं च यो ददाति च भारते ॥ संध्यापूताय विप्राय स याति शिवमन्दिरम् ॥ ४ ॥ भूमिं च सर्वसस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति च ॥ भूमिरेणुप्रमाणाब्दमंते विष्णुपदे स्थितिः ॥ ५ ॥ ग्रामं भूमिं च धान्यं च ब्राह्मणाय ददाति यः ॥ सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौ चोभौ देवीपुरःस्थितौ ॥ ६ ॥ भूमिदानं च तत्काले यः साधुश्चानुमोदते ॥ स च प्रयाति वैकुण्ठे मित्रगोत्रसमन्वितः ॥ ७ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेतु यः ॥ स तिष्ठति कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ८ ॥ तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः ॥ पुत्रहीनो दरिद्रश्च घोरं याति च

का उपाय बतानेकी कृपा करें ॥१–३॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे मुने! जो पुरुष किसी संध्यापूत ब्राह्मणको बित्ताभर भी भूमि दान देता है, वह भगवान् शिवके मंदिर-निर्माणके पुण्यका भागी बन जाता है ॥४॥ फसलोंसे भरी-पूरी भूमिको ब्राह्मणके लिए अर्पण करनेवाला सत्पुरुष उतने वर्षोंतक भगवान् विष्णुके धाममें विराजता है, जितने उस जमीनके रजःकण होते हैं ॥५॥ जो गाँव, भूमि और धान्य ब्राह्मणको देता है, उसके पुण्यसे दाता और प्रतिगृहीता—दोनों व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर भगवती जगदम्बाके लोकमें स्थान पाते हैं ॥ ६ ॥ जो परोपकारी पुरुष भूमिदानके अवसरपर दाताको उत्साहित करता है, उसे अपने मित्र एवं गोत्रके साथ वैकुण्ठमें जानेकी सुविधा प्राप्त होती है ॥ ७ ॥ अपनी अथवा दूसरेकी दी हुई ब्राह्मणकी भूमि हरण करनेवाला व्यक्ति सूर्य एवं चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त 'कालसूत्र' नामक नरकमें स्थान पाता है ॥८॥ इतना ही नहीं, किन्तु इस पापके प्रभावसे उसके पुत्र-पौत्र आदिके पास भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पृथ्वी नहीं ठहरती। वह श्रीहीन और दरिद्र होकर घोर रौरव नरकका अधिकारी बनता है ॥ ९ ॥ जो गोचर भूमिको जोतकर धान्य उपार्जन करता है और वही धान्य ब्राह्मणको देता है तो इस निन्दित कर्मके प्रभावसे उसे देवताओंके वर्षसे सौ वर्षतक 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें रहना पड़ता है ॥१०॥ गौओंके रहनेका स्थान, तड़ाग तथा रास्तेको जोतकर पैदा किये हुए अन्नका दान करनेवाला मानव चौदह इन्द्रकी आयुतक 'असिपत्र' नामक नरकमें रहता है ॥ ११ ॥ जो दूसरेके खाये हुए अन्नका बदला नहीं चुकाता और पराये कुएँपर स्नान करता है, वह नरकगामी होता है और उसका स्नान व्यर्थ हो जाता है ॥ १२ ॥ जो कामान्ध व्यक्ति एकान्तमें पृथ्वीपर वीर्य गिराता है, उसे वहाँकी जमीनमें जितने रजःकण हैं, उतने वर्षोंतक 'रौरव' नरकमें रहना पड़ता है ॥१३॥ अम्बुवाची योगमें भूमि खोदनेवाला मानव 'कृमिदंश' नामक नरकमें जाता है और उसे वहाँ चार युगोंतक रहना पड़ता है ॥१४॥ जो मनुष्य दूसरेके

रौरवम् ॥ ९ ॥ गवां मार्गं विनिष्कृष्य यश्च सस्यं ददाति वै ॥ दिव्यं वर्षशतं चैव कुम्भीपाके च तिष्ठति ॥ १० ॥ गोष्ठं तडागं निष्कृष्य मार्गे सस्यं ददाति यः ॥ स तिष्ठत्यसिपत्रे च यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ११ ॥ पञ्चपिंडाननुद्धृत्य परकूपे च स्नाति यः ॥ प्राप्नोति नरकं चैव स्नानं निष्फलमेव च ॥ १२॥ कामी भूमौ रहसि वीर्यत्यागं करोति यः ॥ भूमिरेणुप्रमाणं च वर्षं तिष्ठति रौरवे ॥ १३ ॥ अंबुवाच्यां भूकरणं यः करोति च मानवः ॥ स याति कृमिदंशं च स्थितिस्तत्र चतुर्युगम् ॥१४॥ परकीये लुप्तकूपे कूपं मूढः करोति यः॥ पुष्करिण्यां च लुप्तायां पुष्करिणीं ददाति यः॥ १५॥ सर्वं फलं परस्यैव तप्तकुण्डं व्रजेच्च सः ॥ तत्र तिष्ठति संतप्तो यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १६ ॥ परकीये तडागे च पंकमुद्धृत्य चोन्मृजेत् ॥ रेणुप्रमाणवर्षं च ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥ १७॥ पिंडं पित्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः ॥ श्राद्धं करोति यो मूढो नरकं याति निश्चितम् ॥ १८॥ भूमौ दीपं योऽर्पयति स चांधः सप्तजन्मसु ॥ भूमौ शङ्खं च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मान्तरे लभेत् ॥ १९ ॥ मुक्तां माणिक्यहीरौ च सुवर्णं च मणिं तथा ॥ पञ्च संस्थापयद्भूमौ स चान्धः सप्तजन्मसु ॥ २० ॥ शिवलिंगं शिवामर्चां यश्चार्पयति भूतले ॥ शतमन्वन्तरं यावत्कृमिभक्षः स तिष्ठति ॥ २१ ॥ शङ्खं यन्त्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम् ॥ यश्चार्पयति भूमौ च सतिष्ठेन्नरके ध्रुवम् ॥ २२ ॥ जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनं तथा ॥ यो मूढश्चार्पये-

टूटे कुएँपर अपना कुआँ और टूटी बावलीपर अपनी बावली बनवाता है तो उस शुभ कार्यका सारा फल पहलेके निर्माताको प्राप्त होता है। और उसको तप्तकुण्ड नरकमें जाकर चौदह इन्द्रोंके भोगकालतक सन्ताप भोगना पड़ता है ॥१५॥१६॥ दूसरेके तड़ागमें पड़ी हुई कीचड़को निकालकर जो शुद्ध जल होनेपर स्नान करता है, उसे ब्रह्मलोकमें स्थान मिलता है ॥ १७ ॥ जो मन्दबुद्धि मानव भूमिपतिके पितरोंका श्राद्धमें पिण्ड न देकर श्राद्ध करता है, वह अवश्य ही नरकगामी होता है ॥ १८ ॥ भूमिपर दीपक रखनेवाला सात जन्मतक अन्धा और शंख भूमिपर रखनेवाला जन्मान्तरमें कुष्ठरोगी होता है ॥ १९ ॥ मोती, माणिक्य, हीरा, सुवर्ण, मणि, ये पाँच चीजें भूमिपर रखनेवाला सात जन्मतक अन्धा होता है ॥ २० ॥ शिवलिङ्ग और शिवार्चनकी वस्तुयें जमीनपर रखनेवाला मनुष्य सौ मन्वन्तर पयन्त 'कृमिभक्ष' नरकमें रहता है ॥ २१ ॥ शंख, यन्त्र, शालग्रामका जल, पुष्प एवं तुलसीदल भूमिपर रखनेवालेको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवश्य नरकमें जाना पड़ता है ॥ २२ ॥ जपमाला, पुष्पमाला, कपूर तथा गोरोचनको भूमिपर रखनेवाला मूर्ख मनुष्य भी नरकगामी होता है ॥ २३ ॥ चन्दनकाष्ठ, रुद्राक्ष और कुशकी जड़ जमीनपर रखनेवाला मनुष्य मन्वन्तर पर्यन्त नरकवास करता है ॥ २४ ॥ जो ब्राह्मण पुस्तक तथा यज्ञोपवीत भूमिपर रखता है, उसे जन्मान्तरमें ब्राह्मणके घर जन्म नहीं मिलता ॥ २५ ॥ जो विप्र ग्रन्थियुक्त एवं पूज्य यज्ञोपवीतका पूजन नहीं करता, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ २६ ॥ यज्ञ करनेके बाद जो मनुष्य यज्ञभूमिको दूधसे नहीं सींचता, वह सात जन्मतक सन्ताप सहता हुआ 'तप्तभूमि' नरकमें निवास करता है ॥ २७ ॥ भूकम्प तथा ग्रहणके अवसरपर जो मनुष्य भूमि खोदता है, जन्मान्तरमें वह पापी अंगहीन होता है ॥ २८ ॥ इस धरतीपर सब लोगोंके भवन बने हैं, इसलिए यह 'भूमि' कहलाती है। कश्यपकी पुत्री होनेसे 'काश्यपी' तथा स्थिररूप होनेसे 'स्थिरा' कही जाती है ॥ २९ ॥

द्भूमौ स याति नरकं ध्रुवम् ॥ २३ ॥ भूमौ चन्दनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम् ॥ संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वंतरावधि ॥ २४ ॥ पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेन्नरः ॥ न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मांतरे जनिः ॥२५॥ ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम् ॥ ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यं च सर्ववर्णकैः ॥ २६ ॥ यज्ञं कृत्वा तु यो भूमिं क्षीरेण न हि सिंचति ॥ स याति तप्तभूमिं च संतप्तः सप्तजन्मसु ॥ २७ ॥ भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः ॥ जन्मांतरे महापापी ह्यङ्गहीनो भवेद्ध्रुवम् ॥ २८ ॥ भवनं यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्तिता ॥ काश्यपी कश्यपस्येयमचला स्थिररूपतः ॥ २९ ॥ विश्वम्भरा धारणाच्चानंताऽनंतस्वरूपतः ॥ पृथिवी पृथुकन्यात्वाद्विस्तृतत्वान्महामुने ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ नारायण उवाच ॥ श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम् ॥ गंगोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥ १ ॥ भारते भारतीशापात्सा जगाम सुरेश्वरी ॥ विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीति च ॥ २ ॥ कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा ॥ तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम् ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ राजराजेश्वरः श्रीमान्सगरः सूर्यवंशजः ॥ तस्य भार्या च वैदर्भी शैव्या च द्वे मनोहरे ॥ ४ ॥ तत्य-

हे महामुने ! विश्वको धारण करनेसे 'विश्वम्भरा', अनन्तरूप होने 'अनन्ता' तथा पृथुकी कन्या होने अथवा सर्वत्र फैली रहनेसे इसका नाम 'पृथिवी' पड़ा है ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(गङ्गाकी उत्पत्तिका विस्तृत प्रसंग) नारदजीने कहा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हे भगवन् ! पृथ्वीका यह परम मनोहर उपाख्यान मैं सुन चुका ॥१॥ अब आप गङ्गाका विशद प्रसंग सुनानेकी कृपा कीजिये। हे प्रभो ! सुरेश्वरी, विष्णुस्वरूपा एवं स्वयं विष्णुपदी नामसे विख्यात गङ्गा सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें किस प्रकार और किस युगमें पधारीं ? किसकी प्रार्थना एवं प्रेरणासे उन्हें वहाँ जाना पड़ा ? पापका उच्छेद करनेवाला यह पवित्र एव पुण्यप्रद प्रसंग मैं सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ ३ ॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद ! श्रीमान् सगर एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूर्यवंशी सम्राट् हो चुके हैं। मनको मुग्ध करनेवाली उनकी दो रानियाँ थी—वैदर्भी और शैब्या ॥ ४ ॥ उनकी पत्नी शैब्यासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुलको बढ़ानेवाले उस सुन्दर पुत्रका नाम असमञ्ज पड़ा ॥५॥ उनकी दूसरी पत्नी वैदर्भीने पुत्रकी कामनासे भगवान् शंकरकी उपासना की। शंकरके वरदानसे उसे भी गर्भ रह गया ॥६॥ पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर उसके गर्भसे एक मांसपिण्डकी उत्पत्ति हुई। उसे देखकर वह जोर-जोरसे रोने लगी और उसने भगवान् शिवका ध्यान किया ॥ ७ ॥ तब भगवान् शंकर ब्राह्मणके वेषमें उसके पास पधारे और उन्होंने उस मांसपिण्डको साठ हजार भागोंमें बाँट दिया ॥ ८ ॥ वे सभी टुकड़े पुत्ररूपमें परिणत हो गये। उनके बल और पराक्रमकी सीमा नहीं थी। उनके परम तेजस्वी कलेवरने ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालीन सूर्यकी प्रभाका मानो रण कर लिया था, परन्तु वे सभी तेजस्वी कुमार कपिल मुनिके शापसे जलकर भस्म हो गये। यह दुःखद समाचार सुनकर राजा सगरकी आँखें आँसू बहाने लगीं और वे घोर जंगलमें चले गये ॥ ९ ॥ १० तब उनके पुत्र असमञ्जने गङ्गाको ले आनेके लिए तपस्या आरम्भ कर दी। वे लाख

त्यामेकपुत्रश्च बभूव सुमनोहरः ॥ असमंज इति ख्यातः शैब्यायां कुलवर्धनः ॥ ५ ॥ अन्या चाराधयामास शंकरं पुत्रकामुकी ॥ बभूव गर्भस्तस्याश्च हरस्य च वरेण ह ॥ ६ ॥ गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिंडं सुषाव सा ॥ तद्दृष्ट्वा सा शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥ ७ ॥ शंभुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह ॥ चकार संविभज्यैतत्पिंडं षष्टिसहस्रधा ॥ ८ ॥ सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामुष्टकलेवराः ॥ ९ ॥ कपिलस्य मुनेः शापाद्बभूवुर्भस्मसाच्च ते ॥ राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम गहने वने ॥ १० ॥ तपश्चकारासमंजो गंगानयनकारणात् ॥ लक्षवर्षं तपस्तप्त्वा ममार कालयोगतः ॥ ११ ॥ अंशुमांस्तस्य तनयो गंगानयनकारणात् ॥ तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥ १२ ॥ भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः ॥ वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥ १३ ॥ तपः कृत्वा लक्षवर्षं गंगानयनकारणात् ॥ ददर्श कृष्णं ग्रीष्मस्थं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१४॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषिणम् ॥ गोपालसुन्दरीरूपं भक्तानुग्रहरूपिणम् ॥१५॥ स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम् ॥ १६ ॥ निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ ईषद्धा-

वर्षतक तपस्या करते रहे। अन्तमें कालने उन्हें अपना ग्रास बना लिया ॥११॥ असमञ्जके पुत्रका नाम अंशुमान् था। गङ्गाको ले आनेके लिए लंबे समय तक तपस्या करनेके पश्चात् वे भी कालके कलेवा बन गये ॥१२॥ अंशुमान्के पुत्र भगीरथ थे। भगीरथ भगवान्के परम भक्त, विद्वान् श्रीहरिमें अटूट श्रद्धा रखनेवाले, गुणवान्, अजर-अमर तथा वैष्णव पुरुष थे ॥१३॥ गङ्गाको ले आनेका निश्चय करके उन्होंने लाख वर्ष तपस्या की। अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके उन्हें साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए। उन भगवान्के श्रीविग्रहसे ग्रीष्मकालीन करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। उनके दो भुजाएँ थीं। वे हाथमें मुरली लिये हुए थे। उनकी किशोर अवस्था थी। वे गोपके वेषमें पधारे थे। कभी-कभी गोपसुन्दरी राधाके रूपमें भी उनके दर्शन हुआ करते हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिए ही उन्होंने यह रूप धारण किया था ॥१४॥१५॥ हे मुने! भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम परब्रह्म हैं। वे चाहे जैसा रूप बना सकते हैं। उस समय ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि उनकी स्तुति कर रहे थे और मुनियोंने उनके सामने अपने मस्तक झुका रखे थे ॥१६॥ सदा निर्लिप्त, सबके साक्षी, निर्गुण, प्रकृतिसे परे तथा भक्तोंपर अनुग्रह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णका मुखमण्डल मुसकानसे भरा था ॥ १७ ॥ विशुद्ध चिन्मय वस्त्र तथा दिव्य रत्नोंसे निर्मित आभूषण उनके श्रीविग्रहको सुशोभित कर रहे थे। उनकी यह दिव्य झाँकी पाकर भगीरथने बार-बार उन्हें प्रणाम किया और स्तुति की ॥ १८ ॥ लीलापूर्वक उन्हें भगवानसे अभीष्ट वर भी मिल गया। वे चाहते थे कि मेरे पूर्वज तर जायँ। परम आनन्दके साथ उन्होंने भगवानकी स्तुति की थी ॥१९॥ तब भगवान श्रीहरिने गंगाजीसे कहा–हे सुरेश्वरी ! तुम सरस्वतीके शापसे अभी भारतवर्षमें जाओ और मेरी आज्ञाके अनुसार सगरके सभी पुत्रोंको पवित्र करो ॥२०॥ तुमसे स्पर्शित वायुका संयोग पाकर ही वे सभी राजकुमार मेरे धामको चले जायँगे। उनका विग्रह मेरे-जैसा ही हो जायगा और वे दिव्य रथ-पर सवार होंगे ॥ २१ ॥ उन्हें मेरे पार्षद होनेका सुअवसर प्राप्त होगा। वे सर्वदा आधि-व्याधिसे मुक्त रहेंगे। उनके जन्म-जन्मातरके पापोंकी समस्त पूँजी समाप्त हो जायगी ॥ २२ ॥

स्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारणम् ॥ १७ ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् ॥ तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ १८ ॥ लीलया
च वरं प्राप वांछितं वंशतारणम् ॥ कृत्वा च स्तवनं दिव्यं पुलकांकितविग्रहः ॥१९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भारतं भारतीशापाद्गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि ॥
सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाज्ञया ॥ २० ॥ त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यंति मम मंदिरम् ॥ बिभ्रतो मम मूर्तीश्च दिव्यस्यंदनगामिनः ॥२१॥
मत्पार्षदा भविष्यंति सर्वकालं निरामयाः ॥ समुच्छिद्य कर्मभोगान्कृताञ्जन्मनि जन्मनि ॥ २२ ॥ कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत्कृतं नृभिः ॥
गंगाया वातस्पर्शेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥२३॥ स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः ॥ मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम् ॥२४॥
शतकोटिजन्मपापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ २५ ॥ जन्मसंख्यार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि
च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतो नृणाम् ॥२६॥ पुण्याहस्नानतः पुण्यं वेदा नैव वदन्ति च ॥ किंचिद्वदंति ते विप्र फलमेव यथागमम्
॥ २७ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदन्ति च ॥ सामान्यदिवसस्नानसंकल्पं शृणु सुंदरि ॥ २८ ॥ पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम् ॥
ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने ॥ २९ ॥ अमायां चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने ॥ ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे ॥ ३० ॥

श्रुतिमें कहा गया है कि भारत वर्षमें मनुष्यों द्वारा उपार्जित करोड़ों जन्मोंके पाप गङ्गाकी वायुके स्पर्शमात्रसे नष्ट हो जाते हैं ॥२३॥ स्पर्श और दर्शनकी अपेक्षा गङ्गादेवी मौसल (शान्त दिवसे) स्नान करनेसे दसगुना पुण्य होता है। सामान्य दिनोंमें भी स्नान करनेसे मनुष्योंके अनेक जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रुति कहती है कि सैकड़ों जन्मके अर्जित ब्रह्महत्या इत्यादि महापाप भी इस मौसल स्नानसे नष्ट हो जाते हैं। इस विधिसे स्नान करनेपर अनेक जन्मके पातकोंका नाश हो जाता है ॥ २४–२६ ॥ हे विप्र ! पुण्याह स्नानकी महिमाको तो वेद भी नहीं बता सकते। हां, कुछ तांत्रिक विद्वान् अपनी शाखाके अनुसार इसका फल बताते हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता भी पुण्याह स्नानका माहात्म्य नहीं बता सकते। हे सुन्दरि ! अब साधारण दिनके स्नानका संकल्प सुनो ॥ २८ ॥ साधारण स्नानसे मौसल स्नानमें दसगुना अधिक पुण्य और सूर्यग्रहणके समय स्नान करनेसे तीसगुना फल प्राप्त होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है ॥ २९ ॥ अमावस्याको भी स्नान करनेसे इतना ही फल मिलता है, किन्तु दक्षिणायनमें दूना और उत्तरायणमें गङ्गास्नान करनेसे दसगुना फल प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ चातुर्मास, पूर्णिमा तथा अक्षय तृतीयाको स्नान करनेसे अनन्तगुना फल मिलता है ॥ ३१ ॥ सामान्य दिनोंके स्नानसे इन दिनोंमें स्नान करनेपर असंख्यगुना फल प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ युगादि तथा मन्वन्तरादि तिथियों, माघ शुक्ल सप्तमी, भीष्मा अष्टमी, अशोकाष्टमी, रामनवमी तथा नन्दातिथिको गङ्गास्नान करनेपर उससे भी दूना फल मिलता है ॥ ३३ ॥ गङ्गा दशहराकी दशमीको स्नान करनेपर युगादि तिथियों जैसा और वारुणी पर्वपर स्नान करनेसे नन्दातिथिके तुल्य फल मिलता है। महावारुणी आदि पर्वोंपर उससे भी चौगुना फल प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ महामहावारुणी आदि पर्वोंपर स्नान करनेसे सामान्य स्नानकी अपेक्षा कोटिगुना अधिक फल मिलता है ॥३६॥ चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणपर स्नान करनेसे दसगुन और अर्धोदय स्नान करनेसे सौगुना फल मिलता है ॥३७॥ हे नारद! इस प्रकार गङ्गा और भगीरथके सामने कहकर देवेश्वर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। तब गंगाने भक्तिसे अत्यन्त नम्र

चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनंतं पुण्यमेव च ॥ अक्षयायां च तत्तुल्यं चैतद्वेदे निरूपितम् ॥ ३१ ॥ असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् ॥ सामान्य-दिवसस्नानाद्दानाच्छतगुणं फलम् ॥ ३२ ॥ मन्वंतराद्यायां तिथौ युगाद्यायां तथैव च ॥ माघस्य सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च ॥ ३३ ॥ अथाप्यशोकाष्टम्यां च नवम्यां च तथा हरेः ॥ ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नंदायां तव दुर्लभम् ॥ ३४ ॥ दशहरादशम्यां तु युगाद्यादिसमं फलम् ॥ नन्दासनं च वारुण्यां महत्पूर्वे चतुर्गुणम् ॥ ३५ ॥ ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति ॥ पुण्यं कोटिगुणं चैव सामान्यस्नानतोऽपि यत् ॥ ३६ ॥ चन्द्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं ततः ॥ पुण्यमर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम् ॥ ३७ ॥ इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः ॥ तमुवाच ततो गङ्गा भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥ ३८ ॥ गङ्गोवाच ॥ यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा ॥ तवाज्ञया च राजेंद्र तपसा चैव सांप्रतम् ॥ ३९ ॥ दास्यंति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च ॥ तानि मे केन नश्यन्ति तमुपायं वद प्रभो ॥ ४० ॥ कतिकालपरिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते ॥ कदा यास्यामि देवेश तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ४१ ॥ ममान्यद्वांछितं यद्यत्सर्वं जानासि सर्ववित् ॥ सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञ तदुपायं वद प्रभो ॥ ४२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जानामि वांछितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि ॥ पतिस्ते द्रवरूपाया लवणोदो भविष्यति ॥ ४३ ॥

होकर कहा ॥ ३८ ॥ गङ्गा बोलीं—हे नाथ! सरस्वतीका शाप पहलेसे ही मेरे सिरपर सवार है, फिर आप आज्ञा दे रहे हैं और इन महाराज भगीरथने एतदर्थ तपस्या भी की है। अतः मैं अभी भारतवर्ष जा रही हूँ ॥ ३९ परन्तु हे प्रभो! वहाँ जानेपर अनेक पापीजन अपने जिस-किसी प्रकारके भी पापको मुझपर लाद देंगे। ऐसी स्थितिमें मेरे ऊपर आये हुए वे पाप कैसे नष्ट होंगे—इसका उपाय तो बतला दीजिये ॥४०॥ हे देवेश! मुझे भारतवर्षमें कितने वर्षोंतक रहना पड़ेगा? फिर मैं कब आप परम प्रभुके धाममें आनेकी अधिकारिणी बनूँगी? ॥ ४१ ॥ हे प्रभो! आप सर्वान्तर्यामीसे कोई भी बात छिपी नहीं है। हे सर्वज्ञ देव! मेरे अन्तःकरणमें अन्य जो-जो कामनाएँ छिपी हैं, उनके भी पूर्ण होनेका उपाय बतानेकी कृपा करें ॥४२॥ श्रीभगवान बोले—हे सुरेश्वरी गगे! मैं तुम्हारे सभी अभिप्रायोंसे परिचित हूँ। तुम नदीरूपसे भारतवर्षमें पधारोगी और मेरे ही अंश-स्वरूप लवणसमुद्र तुम्हारे पति होंगे ॥ ४३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम लक्ष्मीस्वरूपा हो। अतएव निपुणका निपुणके साथ मिलाप अच्छा ही होता है ॥४४॥ भारतवर्षमें सरस्वती आदि जो अन्य नदियाँ होंगी, उन सबमें समुद्रके लिए तुम ही सबसे अधिक सौभाग्यवती मानी जाओगी ॥४५॥ हे देवेशि ! कलियुगके पाँच हजार वर्षों तक तुम्हें सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें रहना होगा ॥४६॥ हे देवि ! लक्ष्मीरूपा तुम रसिका हो और मेरे स्वरूप समुद्र रसिकराज हैं। तुम उनके साथ एकान्तमें निरन्तर प्रिय संगम करोगी ॥४७॥ भारतवासी सम्पूर्ण मनुष्य भगीरथप्रणीत स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करेंगे और उनके द्वारा भक्तिपूर्वक तुम सुपूजित होओगी ॥४८॥ कण्वशाखामें बताये गये प्रकारसे तुम्हारा ध्यान करके लोग तुम्हारी पूजामें तत्पर होंगे। जो तुम्हारी स्तुति करके प्रणाम करेगा, उसको अश्वमेध यज्ञका फल सुलभतासे प्राप्त हो जायगा ॥४९॥ चाहे सैकड़ों योजनकी दूरीपर क्यों न हो, किन्तु जो 'गङ्गा-गङ्गा' इस नामका उच्चारण करके स्नान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें चला जाता है ॥५०॥ हजारों पापी व्यक्तियोंके स्नानसे जो तुमपर पाप आ जायँगे, सो भगवती जगदम्बाके भक्तोंके स्पर्शमात्रसे ही उनकी सत्ता नष्ट हो

स ममांशस्वरूपश्च त्वं च लक्ष्मीस्वरूपिणी ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भुवि ॥ ४४ ॥ यावत्यः संति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते ॥
सौभाग्या त्वं तास्वेव लवणोदस्य सौरते ॥ ४५ ॥ अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पंचसहस्रकम् ॥ वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥ ४६ ॥
नित्यं त्वमब्धिना सार्धं करिष्यसि रहो रतिम् ॥ त्वमेव रसिका देवि रसिकेंद्रेण संयुता ॥ ४७ ॥ त्वां स्तोष्यंति च स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च ॥
भारतस्था जनाः सर्वे पूजयिष्यंति भक्तितः ॥ ४८ ॥ कण्वशाखोक्तध्यानेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति ॥ यः स्तौति प्रणमेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं
लभेत् ॥ ४९ ॥ गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ५० ॥ सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते
भविष्यति ॥ प्रकृतेर्भक्तसंस्पर्शादेव तद्धि विनंक्ष्यति ॥ ५१ ॥ पापिनां तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्त्वयि ॥ तन्मंत्रोपासकस्नानात्तदघं च विनं-
क्ष्यति ॥५२॥ तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनम् ॥ सार्धं सरिद्भिः श्रेष्ठाभिः सरस्वत्यादिभिः शुभे ॥ ५३ ॥ तत्तु तीर्थं भवेत्सद्यो यत्र तद्गुण-
कीर्तनम् ॥ त्वद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी ॥ ५४ ॥ रेणुप्रमाणवर्षं च देवीलोके वसेद्ध्रुवम् ॥ ज्ञानेन त्वयि ये भक्त्या मन्नामस्मृति-
पूर्वकम् ॥ ५५ ॥ समुत्सृजंति प्राणांश्च ते गच्छंति हरेः पदम् ॥ पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यंति हरेश्चिरम् ॥ ५६ ॥ लयं प्राकृतिकं ते च द्रक्ष्यंति

जायगी ॥५१॥ हजारों पापी प्राणियोंके शवका स्पर्श अवश्य ही पापका साधन है, किन्तु देवीके मन्त्रका अनुष्ठान करनेवाले पुण्यात्मा भक्त पुरुष भी तो तुम्हारे जलमें स्नान करने आयेंगे। उनके स्नानसे तुम्हारा वह सारा पाप नष्ट हो जायगा ॥५२॥ हे शुभे ! पवित्र भारतवर्षमें ही तुम्हारा निवास होगा। उस पापमोचन स्थानपर सरस्वती आदि सभी श्रेष्ठ नदियाँ तुम्हारा साथ देंगी ॥५३॥ जहाँ तुम्हारे गुणोंका कीर्तन होगा, वह स्थान तुरन्त तीर्थ बन जायगा। तुम्हारे रजःकणका स्पर्श-मात्र हो जानेपर पापी भी पवित्र हो सकता है ॥५४॥ उन रजः-कणोंकी जितनी संख्या होती है, उतने वर्षों तक वह देवीके लोकमें बसनेका अधिकारी माना जाता है। हे देवि ! जो भक्ति एवं ज्ञानसे सम्पन्न होकर मेरे नामका स्मरण करते हुए प्राण त्याग करते हैं, वे सीधे मेरे परम धाममें जाते हैं और वहाँ पार्षद बनकर दीर्घकाल तक निवास करते हैं ॥५५॥५६॥ वे असंख्य प्राकृतिक प्रलय देख सकते हैं। मृत व्यक्ति-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का शव बड़े पुण्यके प्रभावसे ही तुम्हारे अन्दर आ सकता है ॥५७ जितने दिनों तक उसकी स्थिति तुम्हारेमें रहती है, उतने समय तक वह वैकुण्ठमें वास करता है। तदनन्तर अनेक देह धारण करके कर्मफल भोग करनेके बाद उसे मैं सारूप्य मुक्ति दे देता हूँ। साथ ही उसे अपना पार्षद भी बना लेता हूँ ॥ ५८ ॥ यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति तुम्हारे जलका स्पर्श करके प्राण-त्याग करता है तो वह मेरी कृपासे सालोक्य-पदका अधिकारी और मेरा पार्षद बन जाता है ॥५९॥ अथवा कोई कहीं भी मरे, मरते समय जस-किसी प्रकारसे भी तुम्हारे नामका स्मरण हो जाता है तो उसे मैं सालोक्य-पद प्रदान करता हूँ। ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वह वहाँ रह सकता है ॥६०॥ कोई तीर्थमें मरे या अतीर्थमें—तुम्हारे स्मरणके प्रभावसे सारूप्य पदका अधि-कारी वह पुरुष असंख्य प्राकृतिक प्रलयपर्यंत आनन्द करता है। बादमें बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित विमानमें बैठकर वह मेरे पार्षदोंके साथ गोलोकमें जा पहुँचता और बिल्कुल मेरे जैसा हो

चाप्यसंख्यकम् ॥ मृतस्य बहुपुण्येन तच्छवं त्वयि विन्यसयेत् ॥५७॥ प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदह्नः स्थितिस्त्वयि ॥ कायव्यूहं ततः कृत्वा भोज-यित्वा स्वकर्मकम् ॥ ५८ ॥ तस्मै ददामि सारूप्यं करोमि तं च पार्षदम् ॥ अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत् ॥ ५९ ॥ तस्मै ददामि सालोक्यं करोमि तं च पार्षदम् ॥ अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥६०॥ तस्मै ददामि सालोक्यं यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥ ६१ ॥ तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणयानेन सह पार्षदैः ॥ ६२ ॥ सद्यः प्रयाति गोलोकं मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥ तीर्थेऽप्यतीर्थे मरणे विशेषो नास्ति कश्चन ॥ ६३ ॥ मन्मंत्रोपासकानां तु नित्यं नैवेद्यभोजिनाम् ॥ पूतं कर्तुं सशक्तो हि लीलया भुवनत्रयम् ॥ ६४ ॥ रत्नेन्द्रसारयानेन गोलोकं संप्रयांति च ॥ मद्भक्ता बांधवा येषां तेऽपि पश्वादयोऽपि हि ॥ ६५ ॥ प्रयांति रत्नयानेन गोलोकं चातिदुर्लभम् ॥ यत्र यत्र स्मृतास्ते च ज्ञानेन ज्ञानिनः संति ॥६६॥ जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्तैः संविधानतः ॥ इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तं च प्रत्युवाच भगीरथम् ॥ ६७ ॥ स्तुहि गंगामिमां भक्त्या पूजां च कुरु साम्प्रतम् ॥ भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः ॥ ६८ ॥ कौथुमोक्तेन ध्यानेन स्तोत्रेणापि पुनः पुनः ॥ प्रणनाम च श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ६९ ॥ भगीरथश्च गंगा च सोऽन्तर्धानं चकार ह ॥

जाता है ॥६१–६३॥ जो व्यक्ति मेरे मंत्रकी उपासना करता हुआ मेरा प्रसाद खाता है, वह भक्त ऐसा शक्तिशाली बन जाता है कि सारी त्रिलोकीको भी पवित्र कर सकता है ॥ ६४ ॥ जिनके बान्धव मेरे भक्त हैं—वे चाहे पशु आदि ही क्यों न हों—वे सर्वोत्तम रत्ननिर्मित विमानपर सवार होकर गोलोकमें चले जाते हैं ॥ ६५ ॥ हे सती ! जो ज्ञानीजन चाहे जहाँ रहते हुए मेरा स्मरण करते हैं, वे मेरी भक्तिके प्रभावसे जीवन्मुक्त और पवित्र हो जाते हैं। हे मुनिवर ! इस प्रकार गंगासे कहकर भगवान् श्रीहरिने राजा भगीरथसे कहा—॥६६॥६७॥ हे राजन् ! तुम अभी इस गंगाकी स्तुति तथा भक्तिभावके साथ पूजा करो।' तब भगीरथ भक्तिपूर्वक गंगाके स्तवन और पूजनमें संलग्न हो गये ॥ ६८ ॥ कौथुमी शाखामें कहे हुए ध्यान और स्तोत्रसे गंगाकी स्तुति की। तदनन्तर उन्होंने परम प्रभु परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार प्रणाम किया ॥ ६९ ॥ क्योंकि समुद्र साक्षात् मेरा ही रूप है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥६९॥ इसके बाद भगीरथ और गङ्गाकी अभीष्ट स्थानकी ओर यात्रा आरम्भ हो गयो। तब भगवान् अन्तर्धान हो गये। नारदने पूछा—हे वेदज्ञोंमें प्रमुख प्रभो! किस ध्यान-स्तोत्र तथा किस पूजाक्रमसे राजा भगीरथने गङ्गाकी पूजा की? यह मुझे स्पष्ट बतानेकी कृपा कीजिये। भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद! राजा भगोरथने नित्यक्रियाके पश्चात् स्नान किया। दो स्वच्छ वस्त्र धारण किये ॥ ७० ॥ ७१ ॥ तब इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रखकर भक्तिपूर्वक छः देवताओंकी पूजा की। वे छः देवता हैं—गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और भगवती शिवा ॥७२॥ इन देवताओंका पूजन करनेपर वे गङ्गाजीकी पूजाके पूर्ण अधिकारी बन गये। हे नारद! विघ्न दूर करनेके लिए गणेशकी, आरोग्यताके लिए सूर्यकी, पवित्रताके लिए अग्निको, लक्ष्मोप्राप्तिके लिए विष्णुकी; ज्ञानके लिए ज्ञानेश्वर शिवकी तथा मुक्ति पानेके लिए भगवती शिवाकी पूजा करनी आवश्यक है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ विद्वान् पुरुषको इन देवताओंकी पूजा सम्पन्न कर लेनेपर हो अन्य किसी पूजामें सफलता प्राप्त होती है। हे मुने! सुनो, इस प्रकार भगीरथने गङ्गाका ध्यान किया था ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागव महापुराणे नवमस्कन्धे

नारद उवाच॥ केन ध्यानेन स्तोत्रेण केन पूजाक्रमेण च ॥ ७० ॥ पूजां चकार नृपतिर्वद वेदविदां वर ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी ॥ ७१ ॥ संपूज्य देवषट्कं च संयतो भक्तिपूर्वकम् ॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ ७२ ॥ संपूज्य देवषट्कं च सोऽधिकारी च पूजने ॥ गणेशं विघ्ननाशाय आरोग्याय दिवाकरम् ॥ ७३ ॥ वह्निं शौचाय विष्णुं च लक्ष्म्यर्थं पूजयेन्नरः ॥ शिवं ज्ञानाय ज्ञानेशं शिवां च मुक्तिसिद्धये ॥७४॥ संपूज्यैताँल्लभेत्प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्यथा ॥ दध्यावनेन ध्यानेन तद्ध्यानं शृणु नारद ॥७५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ध्यानं च कण्वशाखोक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ श्वेतपंकजवर्णाभां गंगां पापप्रणाशिनीम् ॥ १ ॥ कृष्णविग्रहसंभूतां कृष्णतुल्यां परां सतीम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२॥ शरत्पूर्णेंदुशतकमृष्टशोभाकरां पराम् ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥३॥ नारायणप्रियां शान्तां तत्सौभाग्यसमन्विताम् ॥ बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥४॥ सिंदूरबिंदुललितं सार्धं चदनबिंदुभिः ॥

पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(गङ्गाके ध्यान और स्तवनका वर्णन और श्रीराधा-कृष्णके अंगका प्रादुर्भाव) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद! यह कण्वशाखोक्त ध्यान सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर देता है। गङ्गाका वर्ण श्वेत कमलके समान स्वच्छ है। ये समस्त पापोंका उच्छेद कर देती हैं ॥१॥ परब्रह्म पूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहसे इनका प्राकट्य हुआ है। ये परम साध्वी उन्हींके समान सुयोग्य हैं। चिन्मय वस्त्र इनकी शोभा बढ़ाते हैं। ये रत्नमय भूषणोंसे विभूषित हैं ॥२॥ इन आदरणीया देवीने शरत्पूर्णिमाके सैकड़ों चन्द्रमाओंकी स्वच्छ प्रभाको अपनेमें स्थान दे रक्खा है। ये सदा मुसकराती रहती हैं। इनके तारुण्यमें कभी कमी नहीं आती ॥ ३ ॥ ये शान्तस्वरूपिणी देवी भगवान नारायणकी प्रिया हैं। सत्सौभाग्य कभी इनसे दूर नहीं हो सकता। इनके सिरपर सघन अलकावली है। मालतीके पुष्पोंकी माला इनकी शोभा बढ़ा रही है ॥ ४ ॥ इनके ललाटपर अर्धचन्द्राकार चन्दन लगा है और उसके ऊपर सिन्दूरकी बिंदी है। गण्ड-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थलपर कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थोंसे नाना प्रकारकी चित्रकारियाँ रची गयी हैं ॥ ५ ॥ इनके परम मनोहर दोनों होंठ पके हुए विम्बाफलकी लालिमाको तुच्छ कर रहे हैं। इनकी मनोहर दन्तपंक्तियोंके सामने मोतियोंकी स्वच्छ माला नगण्य समझी जाती है ॥ ६ ॥ इनके सुन्दर मुखपर कटाक्षपूर्ण चितवनसे युक्त परम मनोहर नेत्र शोभा पा रहे हैं। श्रीफलके आकारवाले दो उरोज विराजित हैं ॥ ७ ॥ इनके विशाल तथा कठोर जघनस्थल कदलीके खम्भेसे भी सुन्दर हैं और दोनों चरणस्थल कमलिनीको लज्जित करते हैं ॥ ८ ॥ रत्नमयी पादुकाओंसे शोभा पानेवाले उन चरणोंमें महावर लगा हुआ है। देवराज इन्द्रके मुकुटमें लगे हुए मन्दारके फूलोंके रजःकणसे इन देवीके श्रीचरणोंमें लालिमा आ गयी है ॥ ९ ॥ वता, सिद्ध और मुनीन्द्र अर्घ्य लेकर सदा सामने खड़े रहते हैं। तपस्वियोंके मुकु.में रहनेवाले भौंरोंकी पंक्तिसे इनके चरण संयुक्त हैं ॥ १० ॥ इनके पावन चरण मुमुक्षुजनोंको मुक्ति देनेमें तथा कामी पुरुषोंकी कामना पूर्ण करनेमें अत्यन्त कुशल हैं। ये परम आदरणीया देवी सबकी पूज्या, वर देनेमें प्रवीण, भक्तोंपर कृपा करनेमें परम कुशल, भगवान विष्णुका पद प्रदान

कस्तूरीपत्रकं गंडे नानाचित्रसमन्वितम् ॥ ५ ॥ पक्वबिंबविनिंद्याच्छचार्वोष्ठपुटमुत्तमम् ॥ मुक्तापंक्तिप्रभामुष्टदंतपंक्तिमनोरमम् ॥ ६ ॥ सुचारुवक्त्रनयनं सकटाक्षं मनोहरम् ॥ कठिनं श्रीफलाकारं स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम् ॥ ७ ॥ बृहच्छ्रोणिं सुकठिनां रंभास्तंभविनिंदिताम् ॥ स्थलपद्मप्रभामुष्टपदपद्मयुगं वरम् ॥ ८ ॥ रत्नपादुकसंयुक्तं कुंकुमाक्तं सयावकम् ॥ देवेंद्रमौलिमंदारमकरंदकणारुणम् ॥ ९ ॥ सुरसिद्धमुनींद्रैश्च दत्तार्घसंयुतं सदा ॥ तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम् ॥ १० ॥ मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वभोगदम् ॥ वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥ ११ ॥ श्रीविष्णोः पददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम् ॥ इत्यनेनैव ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम् ॥ १२ ॥ दत्त्वा संपूजयेद्ब्रह्मन्नुपचाराणि षोडश ॥ आसनं पाद्यमर्घं च स्नानीयं चानुलेपनम् ॥ १३ ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ॥ वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम् ॥ १४ ॥ मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश ॥ दत्त्वा भक्त्या च प्रणमेत्संस्तूय संपुटांजलिः ॥ १५ ॥ संपूज्यैवं प्रकारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ नारद उवाच ॥ श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकांत जगत्पते ॥ १६ ॥ विष्णोर्विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥ १७ ॥ शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णांगसमुद्भवाम् ॥ राधांगद्रव-

करनेवाली तथा विष्णुपदी नामसे सुविख्यात हैं। इन परम साध्वी गङ्गा देवीकी मैं उपासना करता हूँ। हे ब्रह्मन्! इसी ध्यानके द्वारा तीन मार्गोंसे विचरण करनेवाली कल्याणी गङ्गाका हृदयमें स्मरण करना चाहिये ॥११॥१२॥ इसके बाद सोलह प्रकारके उपचारोंसे इनकी पूजा करे। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, आभूषण, माला, चन्दन, आचमन और सुन्दर शय्या—ये अर्पण करने योग्य सोलह उपचार हैं। इन्हें भगवती गङ्गाको भक्तिपूर्वक समर्पण करके प्रणाम करे और दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करे ॥ १३-१५ ॥ इस प्रकार गङ्गादेवीकी उपासना करनेवाले बड़भागी पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। नारदजीने कहा—हे देवेश! हे लक्ष्मीकान्त! हे जगत्पते! अब मैं भगवान विष्णुकी चिरसङ्गिनी भगवती गङ्गाके पापहारी एवं पुण्यप्रद स्तोत्र सुनना चाहता हूँ। भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! सुनो, अब मैं पापध्वंसक तथा पुण्यदायी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्तोत्र कहता हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ जो श्रीगङ्गाजी भगवान् शंकरका संगीत सुनकर मुग्ध श्रीकृष्णके अंगसे प्रकट हुई हैं तथा जो श्रीराधाके अङ्गद्रवसे सम्पन्न हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१८॥ सृष्टि आरम्भ होनेके अवसरपर गोलोकके रासमण्डलमें जिनका आविर्भाव हुआ है, जो शंकरके संनिधानमें विराजती हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १९ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाके शुभ अवसरपर राधामहोत्सव मनाया जा रहा था। अनेक गोप और गोपियाँ विराजमान थीं। उस समाजमें शोभा पानेवाली भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२०॥ जो करोड़ योजन विस्तृत और लाख योजन चौड़ी हैं तथा जिनसे गोलोक भलीभाँति घिरा हुआ है, उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २१ ॥ जो साठ लाख योजन चौड़ी और इससे चौगुने विस्तारसे वैकुण्ठमें विराजती हैं, उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २२ ॥ जो तीस लाख योजन चौड़ी और पाँचगुने विस्तारसे ब्रह्मलोकमें फैली हैं, उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥ जो तीस लाख योजन चौड़ी और इससे चौगुनी लम्बी होकर शिवलोककी शोभा बढ़ाती हैं, उन भगवती गंगाको मैं

संयुक्तां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ १८ ॥ यज्जन्म सृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले ॥ सन्निधाने शंकरस्य तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ १९ ॥ गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे ॥ कार्त्तिकीपूर्णिमायां च तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥२०॥ कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः ॥ समावृता या गोलोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २१ ॥ षष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा ॥ समावृता या वैकुण्ठे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ २२ ॥ त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः ॥ आवृता ब्रह्मलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ २३ ॥ त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये चतुर्गुणा ततः ॥ आवृता शिवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ २४ ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः ॥ आवृता ध्रुवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥२५॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः ॥ आवृता चन्द्रलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ २६ ॥ षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः ॥ आवृता सूर्यलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ २७ ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः ॥ आवृता या तपोलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ २८ ॥ सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये दशगुणा ततः ॥ आवृता जनलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ २९ ॥ दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः ॥ आवृता या महर्लोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ ३० ॥ सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये शतगुणा ततः ॥ आवृता या च कैलासे तां गङ्गां

प्रणाम करता हूँ ॥२४॥ जो लाख योजन लम्बी और सातगुनी चौड़ी होकर ध्रुवलोकमें विद्यमान हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२५॥ चन्द्रलोकमें लाख योजन विस्तृत और पचगुने दैर्घ्यसे फैली रहनेवाली देवी गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २६ ॥ साठ हजार योजन लम्बी और उससे दसगुनी चौड़ी होकर जो सूर्यलोकमें रहती हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२७॥ जिनकी लम्बाई लाख योजन तथा चौड़ाई उससे दसगुनी है, यों जो तपोलोकमें विराजमान हैं, उन भगवतीको गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२८॥ एक हजार योजन विस्तृत तथा दसगुना दीर्घ रूप बनाकर जनलोकमें फैली रहनेवाली भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥ दस लाख योजन लंबी और उससे पचगुनी चौड़ी होकर महर्लोकमें विद्यमान भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३०॥ कैलासमें जो एक हजार योजन विस्तृत तथा सौ योजन चौड़ी होकर फैली हुई हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रणाम करता हूँ ॥ ३१ ॥ जो सौ योजन लंबी और दस योजन चौड़ी होकर मन्दाकिनी नामसे इन्द्रलोकमें शोभा पाती हैं, उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ जो दस योजन विस्तृत तथा अपने कलेवरसे दसगुनी चौड़ी होकर पातालत्लोकमें 'भोगवती'के नामसे प्रसिद्ध हैं, उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३३ ॥ एक कोस विस्तृत तथा कहीं-कहीं इससे भी कम विस्तृत 'अलकनन्दा' नामसे जो पृथ्वीपर विराजमान हैं, उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३४ ॥ जो सत्ययुगमें दूधके समान, त्रेतायुगमें चन्द्रमाके समान, द्वापरमें चन्दनके समान तथा कलियुगमें जलके समान होकर पृथ्वीपर तथा अन्यत्र जहाँ कहीं भी विचरती हैं एवं स्वर्गमें जो निरंतर दूधके समान आभावाली रहती हैं, उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ३६ ॥ जिनके जलकणका स्पर्श होते ही पापियोंके हृदयमें ज्ञान प्रकट होकर अनेक जन्मोंके उपार्जित ब्रह्महत्या इत्यादि पापोंको भस्म कर देता है, उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३७॥ हे ब्रह्मन् ! इस इक्कीस पद्योंमें गंगाकी स्तुति कही गयी है। इस उत्तम स्तोत्रका पाठ करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं। यह पुण्यका उद्गम-

प्रणमाम्यहम् ॥ ३१ ॥ शतयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः ॥ मंदाकिनी येन्द्रलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ ३२ ॥ पाताले भोगवती च विस्तीर्णा दशयोजना ॥ ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ ३३ ॥ क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा च कुत्रचित् ॥ क्षितौ चालकनन्दा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ ३४ ॥ सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिंदुसन्निभा ॥ द्वापरे चंदनाभा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ ३५ ॥ जलप्रभा कलौ या च नान्यत्र पृथिवीतले ॥ स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३६ ॥ यत्तोयकणिकास्पर्शे पापिनां ज्ञानसंभवः ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत् ॥ ३७ ॥ इत्येवं कथिता ब्रह्मन्गङ्गापद्यैकविंशतिः ॥ स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यजीवनम् ॥ ३८ ॥ नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम् ॥ सोऽश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥ ३९ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्स्त्रियम् ॥ रोगात्प्रमुच्यते रोगी बन्धान्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥४०॥ अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पंडितः ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय गंगास्तोत्रमिदं शुभम् ॥४१॥ शुभं भवेच दुःस्वप्ने गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ स्तोत्रेणानेन गङ्गां च स्तुत्वा चैव भगीरथः ॥ ४२ ॥ जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः ॥ वैकुंठं ते ययुस्तूर्णं गङ्गायाः स्पर्शवायुना ॥४३॥ भगीरथेन साऽऽनीता तेन भागीरथी स्मृता॥ इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यान-

स्थान है ॥३८॥ जो नित्यप्रति सुरेश्वरी गंगाकी भक्तिभावके साथ पूजा करके यह स्तोत्र पढ़ता है, वह निःसंदेह अश्वमेधयज्ञके फलका अधिकारी हो जाता है ॥३९॥ इस स्तोत्रके प्रभावसे संतानहीन पुत्रवान् हो जाता है, स्त्रीहीनको स्त्री मिल जाती है, रोगी व्याधिसे छूट जाता है तथा बन्धनमें पड़े हुए व्यक्तिके समस्त बन्धन कट जाते हैं। यह बिल्कुल निश्चित है ॥४०॥ इतना ही नहीं, किंतु छिपी हुई कीर्तिवालेका जगत्में उत्तम यश फैल जाता है तथा मूर्खके हृदयमें विचारनेकी श्रेष्ठ बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। जो प्रातःकाल उठकर इस पवित्र गंगास्तोत्रका पाठ करता है, उसपर बुरे स्वप्न अपना अनिष्ट प्रभाव नहीं डाल सकते। साथ ही वह गंगामें स्नानके फलका भागी हो जाता है। भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! राजा भगीरथ इस प्रकार स्तुति करके और गंगाको साथ लेकर वहाँ पहुँचे, जहाँ सगरके साठ हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये थे। गंगाका स्पर्श करके बहनेवाली वायुका स्पर्श होते ही वे राज-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुमार तुरन्त वैकुण्ठको चले गये ॥४१–४३॥ भगीरथके सत्प्रयत्नसे गङ्गाका आगमन हुआ है। अतः गंगाको 'भागीरथी' कहते हैं। यों मैंने सम्पूर्ण उत्तम उपाख्यान कह दिया ॥४४॥ यह पुण्यदायी उपाख्यान मोक्षका अचूक साधन है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो ? नारदजीने पूछा—भगवन् ! भूमण्डलको पवित्र करनेवाली त्रिपथगा गङ्गा कैसे प्रकट हुईं ? ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! उनका कहाँ और किस प्रकारसे आविर्भाव हुआ ? वहाँ जो लोग उपस्थित थे, उन्होंने क्या किया ? ॥४६॥ यह सब प्रसंग बतानेकी कृपा कीजिये। भगवान् नारायण बोले–हे नारद ! एक समयकी बात है-कार्तिककी पूर्णिमा थी। राधा-महोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया जा रहा था ॥४७॥ भगवान् श्रीकृष्ण सम्यक् प्रकारसे राधाकी पूजा करके रासमण्डलमें विराजमान थे। तत्पश्चात् ब्रह्मादि देवता तथा शौनकादि ऋषि प्रभृति प्रायः सभी महानुभावोंने बड़े आनन्दके साथ श्रीकृष्णपूजिता श्रीराधाजीकी पूजा की और फिर वे वहीं विराजमान हो गये। इतनेमें भगवान् श्रीकृष्णको संगीत सुनानेवाली देवी सरस्वती हाथमें वीणा लेकर सुन्दर ताल-स्वरके साथ गीत गाने लगीं। तब ब्रह्माने प्रसन्न होकर एक सर्वोत्तम रत्नसे बना हुआ हार

मुत्तमम् ॥४४ ॥ पुण्यदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ कथं गंगा त्रिपथगा जाता भुवनपावनी ॥ ४५ ॥ कुत्र वा केन विधिना तत्सर्वं वद मे प्रभो ॥ तत्रस्थाश्च जना ये ये ते च किं चक्रुरुत्तमम् ॥४६॥ एतत्सर्वं तु विस्तीर्णं कृत्वा वक्तुमिहार्हसि ॥ नारायण उवाच ॥ कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु राधायाः सुमहोत्सवः ॥ ४७ ॥ कृष्णः संपूज्य तां राधामुवास रासमण्डले ॥ कृष्णेन पूजितां तां तु संपूज्य हृष्टमानसाः ॥ ४८ ॥ ऊचुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः शौनकादयः ॥ एतस्मिन्नन्तरे कृष्णसंगीता च सरस्वती ॥ ४९ ॥ जगौ सुन्दरतालेन वीणया च मनोहरम् ॥ तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै रत्नेंद्रसारहारकम् ॥ ५० ॥ शिवो मणींद्रसारं तु सर्वब्रह्माण्डदुर्लभम् ॥ कृष्णः कौस्तुभरत्नं च सर्वरत्नात्परं वरम् ॥ ५१ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं हारसारं च राधिका ॥ नारायणश्च भगवान्ददौ मालां मनोहराम् ॥ ५२ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं लक्ष्मीः कनककुण्डलम् ॥ विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ५३ ॥ दुर्गा नारायणीशाना ब्रह्मभक्तिं सुदुर्लभाम् ॥ धर्मबुद्धिं च धर्मश्च यशश्च विपुलं भवे ॥ ५४ ॥ वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च मणिनूपुरान् ॥ एतस्मिन्नन्तरे शंभुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः ॥ ५५ ॥ जगौ श्रीकृष्णसङ्गीतं रासोल्लाससमन्वितम् ॥ मूर्च्छामापुः

पुरस्काररूपमें उन्हें अर्पण किया ॥४८–५०॥ शिवसे उन्हें अखिल ब्रह्माण्डके लिये दुर्लभ एक उत्तम मणि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें सम्पूर्ण रत्नोंमें श्रेष्ठ कौस्तुभमणि भेंट की ॥५१॥ राधाने बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित एक अनुपम हार, भगवान् नारायणने एक सुन्दर पुष्पमाला तथा लक्ष्मीने बहुमूल्य रत्नोंके दो कुण्डल सरस्वतीको पुरस्काररूपमें दिये। विष्णुमाया, ईश्वरी, दुर्गा, नारायणी और ईशाना नामसे विख्यात भगवती मूलप्रकृतिने सरस्वतीके अन्तःकरणमें परम दुर्लभ परमात्म-भक्ति भर दी। धर्मने धार्मिक बुद्धि उत्पन्न करनेके साथ ही प्रपञ्चात्मक जगत्में उनकी कीर्ति विस्तृत की ॥५२–५४॥ अग्निदेवने चिन्मय वस्त्र तथा पवनदेवने मणिमय नूपुर सरस्वतीको प्रदान किये। इतनेमें ब्रह्मासे प्रेरित होकर भगवान् शंकर श्रीकृष्णसम्बन्धी पद्य, जिसके प्रत्येक शब्दमें रासके उल्लासको बढ़ानेकी शक्ति भरी थी, बारंबार गाने लगे। उसे सुनकर सम्पूर्ण देवता मूर्च्छितसे हो गये। ऐसा जान पड़ता था कि मानो सब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित्र-विचित्र पुतले हों ॥ ५५-५६ ॥ बड़ी कठिनतासे किसी प्रकार उन्हें चेत हुआ। उस समय देखा गया कि समस्त रासमण्डलमें सम्पूर्ण स्थल जलसे आप्लावित है। श्रीराधा और श्रीकृष्णका कहीं पता नहीं है ॥ ५७ ॥ फिर तो गोप, गोपी, देवता और ब्राह्मण—सभी अत्यन्त उच्च स्वरसे विलाप करने लगे। उस समय ब्रह्माजी भी वहीं थे। उन्होंने ध्यानके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णका पुनीत विचार समझ लिया कि—॥५८॥ भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रीराधाके साथ जलमय हो गये है—यह बात उन्हें भली-भाँति मालूम हो गयी। तब वे सभी महाभाग देवता परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥५९॥ वे सब कहने लगे—'हे विभो! हमारा केवल यही अभीष्ट वर है कि आप अपनी श्रीमूर्तिके हमें पुनः दर्शन करा दें।' ठीक उसी समय अति मधुर तथा स्पष्ट शब्दोंमें आकाशवाणी हुई ॥ ६० ॥ सब लोगोंने उसे भलीभाँति सुना। आकाशवाणीमें कहा गया-'मैं सर्वात्मा श्रीकृष्ण और मेरी शक्तिस्वरूपा राधा—हम दोनोंने ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये यह जलमय विग्रह धारण कर लिया है।॥६१॥ हे सुरेश्वरो! तुम्हें मेरे तथा इन राधाके शरीरसे क्या प्रयोजन है? मनु, मुनि, मानव तथा अगणित

सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ॥ ५६ ॥ कष्टेन चेतनां प्राप्य ददृशू रासमंडले ॥ स्थलं सर्वं जलाकीर्णं राधाकृष्णविहीनकम् ॥ ५७ ॥ अत्युच्चै रुरुदुः सर्वे गोपा गोप्यः सुरा द्विजाः ॥ ध्यानेन ब्रह्मा बुबुधे सर्वं तीर्थमभीप्सितम् ॥ ५८ ॥ गतश्च राधया सार्धं श्रीकृष्णो द्रवतामिति ॥ ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ ५९ ॥ स्वमूर्तिं दर्शय विभो वांछितं वरमेव नः ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ ६० ॥ तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरान्विताम् ॥ सर्वात्माऽहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रहविग्रहा ॥ ६१ ॥ ममाप्यस्याश्च देहेन कर्तव्यं च किमावयोः ॥ मनवो मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः ॥ ६२ ॥ मन्मंत्रपूता मां द्रष्टुमागमिष्यंति मत्पदम् ॥ मूर्तिं द्रष्टुं च सुव्यक्तां यदाच्छथ सुरेश्वराः ॥ ६३ ॥ करोतु शंभुस्तत्रैव मदीयं वाक्यपालनम् ॥ स्वयं विधातस्त्वं ब्रह्मन्नाज्ञां कुरु जगद्गुरुम् ॥ ६४ ॥ कर्तुं शास्त्रविशेषं च वेदांगं सुमनोहरम् ॥ अपूर्वमंत्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः ॥ ६५ ॥ स्तोत्रैश्च निकरैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः ॥ मन्मन्त्रकवचस्तोत्रं कृत्या यत्नेन गोपनम् ॥ ६६ ॥ भवन्ति विमुखा यन जना मा तत्करिष्यति ॥ सहस्रेषु शतेष्वेको मन्मन्त्रोपासको भवेत् ॥ ६७ ॥ जना मन्मंत्रपूताश्च गमिष्यंति च मत्पदम् ॥ अन्यथा न भविष्यंति सर्वे गोलोकवासिनः ॥ ६८ ॥ निष्फलं भविता सर्वं ब्रह्मांडं चैव ब्रह्मणः ॥ जनाः पंचप्रकाराश्च युक्ताः सृष्टुं भवे भवे ॥ ६९ ॥

वैष्णवजन मेरे मन्त्रसे पवित्र होकर मुझे देखनेके लिए मेरे धाममें आयेंगे। ऐसे ही तुम्हें भी यदि स्पष्ट दर्शन करनेकी इच्छा हो तो प्रयत्न करो ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ शम्भु वहीं रहकर मेरी आज्ञाका पालन करें। हे विधाता! हे ब्रह्मन्! तुम स्वयं जगद्गुरु शंकरसे कह दो ॥६४॥ वे वेदोंके अंगभूत परम मनोहर विशिष्ट शास्त्र अर्थात् तन्त्रशास्त्रका निर्माण करें और उसमें सम्पूर्ण अभीष्ट फल देनेवाले बहुतसे अपूर्व मन्त्र उद्धृत कर दें ॥ ६५ ॥ स्तोत्र, ध्यान, पूजा-विधि, मन्त्र और कवच-इन सबसे वह तन्त्रशास्त्र सम्पन्न एवं गुप्त हो ॥ ६६ ॥ जिस मन्त्रसे पापीजन मुझसे विमुख हो सकते हैं, उसे स्पष्ट नहीं करना चाहिये। हाँ, सहस्रोंमें एक भी मेरा सच्चा उपासक मिल जाय तो उसके प्रति गोप्य मन्त्रका भी उद्घाटन कर दे ॥ ६७ ॥ मेरे मन्त्रोंके प्रभावसे पुण्यात्मा बनकर मनुष्य मेरे धाममें पहुँचेंगे। यदि मेरे मन्त्रशास्त्रका उद्घाटन नहीं होगा तो किसीको भी गोलोकमें रहनेकी सुविधा नहीं मिल सकेगी ॥ ६८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदनन्तर भगीरथ तथा गंगाजी दोनों अन्तर्धान हो जायँगे। इससे ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो जायगी कि बहुतेरे पुरुष धरातलपर रहेंगे और बहुतोंको स्वर्गमें स्थान मिल जायगा। यदि शंकरजी देवसभामें ऐसा करनेके लिए सुदृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं तो उन्हें तुरन्त मेरे दर्शन प्राप्त हो जायँगे।' आकाशवाणीके द्वारा यों कहकर भगवान श्रीहरि चुप हो गये ॥ ६०-७१ ॥ उनकी वाणी सुनकर जगत्‌की व्यवस्था करनेवाले ब्रह्माने प्रसन्नतापूर्वक भगवान शंकरसे कहा ॥ ७२ ॥ ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा ज्ञानके अधिष्ठाता भगवान् शंकरने ब्रह्माकी बात सुननेके पश्चात् हाथमें गंगाजल ले लिया और आज्ञा पालन करनेके लिए प्रतिज्ञा की। फिर तो वे भगवती जगदम्बाके मन्त्रोंसे सम्पन्न उत्तम तन्त्रशास्त्रके निर्माणमें लग गये ॥ ७३ ॥ 'प्रतिज्ञापालन करनेके लिए मैं वेदके सारभूत महान् तन्त्रशास्त्रका निर्माण करूँगा'—यह विचार उनके हृदयमें गूँजने लगा। तब उन्होंने अपना यह विचार व्यक्त किया कि यदि कोई मनुष्य गंगाका जल हाथमें लेकर प्रतिज्ञा करेगा और फिर उस अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन नहीं करेगा तो वह 'कालसूत्र' नामके नरकका भागी होगा और ब्रह्माकी पूरी आयुतक

पृथिवीवासिनः केचित्केचित्स्वर्गनिवासिनः ॥ इदं कर्तुं महादेवः करोतु देवसंसदि ॥ ७० ॥ प्रतिज्ञां सुदृढां सद्यस्ततो मूर्तिं च द्रक्ष्यति ॥ इत्येवमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः ॥ ७१ ॥ तच्छ्रुत्वा जगतां धाता तमुवाच शिवं मुदा ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनां वरः ॥ ७२ ॥ गङ्गातोयं करे कृत्वा स्वीकारं च चकार सः ॥ संयुक्तं विष्णुमायाया मंत्रौघैः शास्त्रमुत्तमम् ॥ ७३ ॥ वेदसारं करिष्यामि प्रतिज्ञापालनाय च ॥ गङ्गातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः ॥ ७४ ॥ स याति कालसूत्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ इत्युक्ते शंकरे ब्रह्मन्गोलोके सुरसंसदि ॥ ७५ ॥ आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सहितस्ततः ॥ तं सुदृष्ट्वा च संहृष्टास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७६ ॥ परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम् ॥ कालेन शंभुर्भगवान्मुक्तिदीपं चकार सः ॥ ७७ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यं च सुदुर्लभम् ॥ सा एव द्रवरूपा च गङ्गा गोलोकसंभवा ॥ ७८ ॥ राधाकृष्णांगसंभूता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ स्थाने स्थाने स्थापिता सा कृष्णेन च परात्मना ॥ कृष्णस्वरूपा परमा सर्वब्रह्मांडपूजिता ॥ ७९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

उसे वहाँ रहना पड़ेगा। हे ब्रह्मन्! उस समय गोलोकमें देवताओंकी सभा जुड़ी थी। उसमें भगवान् शंकर जब इस प्रकारकी बात कह चुके ॥७४॥७५॥ तब अकस्मात् परब्रह्म परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण भगवती राधाके साथ वहाँ प्रकट हो गये। उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीहरिके प्रत्यक्ष दर्शन पानेपर देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। वे उनकी स्तुति करने लगे ॥७६॥ इसके बाद उपस्थित देवताओंने अत्यन्त आनन्दमें भरकर फिरसे उत्सव मनाया। तत्पश्चात् समयानुसार भगवान् शंकरने मुक्तिदीप अर्थात् मुक्तिको प्रकाशित करनेवाले सात्त्विक तन्त्रशास्त्रका निर्माण किया ॥७७॥ हे नारद! इस प्रकार सम्पूर्ण परम गोप्य प्रसंग मैं तुम्हें सुना चुका। यह सबके लिए अत्यन्त दुर्लभ है। वे पूर्णब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण ही जलरूप होकर गंगा बन गये थे। गोलोकसे प्रकट होनेवाली गंगाका यही रहस्य है। यों भगवान् श्रीराधाकृष्ण ही गंगाके रूपमें प्रकट हुए हैं ॥ ७८ ॥ श्रीराधा और श्रीकृष्णके अंगसे प्रकट हुई गंगा भुक्ति और मुक्ति दोनोंको देनेवाली हैं। परमात्मा श्रीकृष्णकी व्यवस्थाके अनुसार इन्हें जगह-जगह रहनेका सुअवसर प्राप्त हो गया। श्रीकृष्णस्वरूपा इन आदरणीया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गंगादेवीको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके लोग पूजते हैं ॥७९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(राधाका गंगापर रोष और गंगाका श्रीकृष्णके चरणोंमें छिपना) नारदजीने पूछा–हे सुरेश्वर ! कलिके पाँच हजार वर्ष बीत जानेपर गंगा कहाँ गयीं ? हे महाभाग ! यह प्रसंग मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ १ ॥ भगवान् नारायण बोले-हे नारद ! सरस्वतीके शापसे गंगा भारतवर्षमें आयीं । शापकी अवधि पूरी हो जानेपर वे भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे वैकुण्ठको चली गयीं ॥ २ ॥ ऐसे ही सरस्वती भी भारतवर्षको छोड़कर श्रीहरिके धाममें चली गयीं । शाप समाप्त हो जानेपर लक्ष्मीजी भी भगवान्‌के पास पधारीं ॥ ३ ॥ हे नारद ! ये ही गंगा, सरस्वती और लक्ष्मी भगवान श्रीहरिकी प्रेयसी पत्नियाँ हैं । हे ब्रह्मन् ! भगवान्‌की तुलसीसहित चार पत्नियाँ वेदोंमें प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥ नारदने पूछा–हे भगवन ! भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंसे प्रकट होकर गंगादेवी किस प्रकार ब्रह्माजीके कमण्डलमें रहीं तथा शंकरकी प्रिया होनेका सुअवसर इन्हें कैसे मिला ? ॥५॥ हे मुनिवर ! गंगा भगवान् नारायणकी भी प्रेयसी रह चुकी

॥ नारद उवाच ॥ कलेः पंचसहस्राब्दे समतीते सुरेश्वर ॥ क गता सा महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ भारतं भारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया ॥ जगाम तत्र वैकुण्ठे शापान्ते पुनरेव सा ॥ २ ॥ भारती भारतं त्यक्त्वा तज्जगाम हरेः पदम् ॥ पद्मावती च शापांते गङ्गा सा चैव नारद ॥ ३ ॥ गङ्गा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्रः प्रिया हरेः ॥ तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्रः कीर्तिताः श्रुतौ ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ केनोपायेन सा देवी विष्णुपादाब्जसंभवा ॥ ब्रह्मकमंडलुस्था च श्रुता शिवप्रिया च सा ॥ ५ ॥ बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गङ्गा नारायण प्रिया ॥ अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥ श्रीनारायण उवाच ॥ पुरा बभूव गोलोके सा गङ्गा द्रवरूपिणी ॥ राधाकृष्णांगसंभूता तदंशा तत्स्वरूपिणी ॥ ७ ॥ द्रवाधिष्ठातृदेवी या रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ नवयौवनसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ ८ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा ॥ तप्तकांचनवर्णाभा शरच्चंद्रसमप्रभा ॥९॥ स्निग्धप्रभाऽतिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥ सुपीनकठिनश्रोणिः सुनितंबयुगंधरा ॥१०॥ पीनोन्नतं सुकठिनं स्तनयुग्मं सुवर्तुलम् ॥ सुचारुनेत्रयुगलं सुकटाक्षं सुवंक्रिमम् ॥ ११ ॥ वंक्रिमं कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥ सिंदूरबिंदु-

हैं । अहो ! किस प्रकार ये सब घटनाएँ घटित हुईं ? आप यह रहस्य मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ ६ ॥ भगवान नारायण बोले–हे नारद ! प्राचीन समयकी बात हैं, जलमयी गंगा गोलोकमें विराजमान थीं । राधा और श्रीकृष्णके अंगसे प्रकटा हुई गंगा श्रीकृष्णका अंश तथा साक्षात् उनका स्वरूप ही हैं ॥७॥ वे जलमयी गंगाकी अधिष्ठात्री देवी अत्यन्त सुन्दर रूप धारण करके भूमण्डलपर पधारीं । उनका शरीर नूतन यौवनसे सम्पन्न था । उनके सभी अंग अलंकारोंसे अलंकृत थे ॥८॥ शरदऋतुके मध्याह्नकालमें खिले हुए कमलकी भाँति मुस्कान भरा उनका परम मनोहर मुख था । तपाये हुए सुवर्ण सदृश विग्रहकी आभा थी तेजमें वे शरत्कालके चन्द्रमाको भी परास्त कर रही थीं ॥ ९ ॥ मनोहरसे भी मनोहर उनकी कान्ति थी । उन्होंने शुद्ध सात्त्विक स्वरूप धारण कर रखा था । उनका जघनभाग कठिन और सुन्दर नितम्ब था ॥१०॥ कड़े, गाल तथा उन्नत स्तन थे । विशाल दो नेत्र उनकी अनुपम शोभा बढ़ा रहे थे । अत्यन्त कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे वे देख रही थीं ॥११॥ सुन्दर और घुँघराली अलकावली शोभा बढ़ा रही थी । उन्होंने मालतीके पुष्पोंका मनोहर हार पहन रखा था । ललाटपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चन्दनका अर्धचन्द्राकार त्रिपुण्ड्र था और उसके ऊपर सिन्दूरकी सुन्दर बिंदी थी ॥ १२ ॥ दोनों गण्डस्थलोंपर कस्तूरीसे मनोहर पत्र-रचनाएँ की हुई थीं। उनका अधर इतना सुन्दर था कि मानो दुपहरियाका विकसित फूल हो ॥ १३ ॥ उनके दाँतोंकी अत्यन्त उज्ज्वल पंक्ति पके हुए अनारके दानोंकी भाँति चमक रही थी। विशुद्ध दो चिन्मय वस्त्रोंको उन्होंने धारण कर रखा था ॥ १४ ॥ ऐसी गंगाजी मुँह ढाँककर लज्जाका भाव प्रदर्शित करती हुई भगवान् श्रीकृष्णके पास विराजमान हो गयीं। वे निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान्‌के मुखरूपी अमृतको प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर पान कर रही थीं ॥ १५ ॥ उनका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल रहा था। भगवान् श्रीकृष्णके रूपने उन्हें चेतनारहित तथा अत्यन्त पुलकायमान बना दिया था। इतनेमें भगवती राधिका भी वहाँ पधारकर विराजमान हो गयीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ उस समय राधाके साथ असंख्य गोपियाँ थीं। राधाकी कान्ति ऐसी थी कि मानो करोड़ों चन्द्रमाओंकी ज्योत्स्ना एक साथ प्रकट हो गयी हो! वे उस समय क्रोधकी लीला करनी चाहती थीं, अतः सहसा उनकी आँखें लाल कमलकी तुलना करने लगीं ॥१८॥ उनका वर्ण पीले चम्पककी तुलना कर

ललितं सार्धं चन्दनविंदुभिः ॥ १२ ॥ कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गंडयुग्मं मनोरमम् ॥ बंधूककुसुमाकारमधरोष्ठं च सुन्दरम् ॥ १३ ॥ पक्वदाडिमबीजाभदतपंक्तिसमुज्ज्वलम् ॥ वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती ॥१४॥ सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुवास सुलज्जिता ॥ वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम् ॥ १५ ॥ निमेषरहिताभ्यां च पिबंती सततं मुदा ॥ प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसंगमलालसा ॥ १६ ॥ मूर्छिता प्रभुरूपेण पुलकांकितविग्रहा ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका ॥ १७ ॥ गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ता कोटिचंद्रसमप्रभा ॥ कोपेनारक्तपद्मास्या रक्तपंकजलोचना ॥ १८ ॥ पीता चम्पकवर्णाभा गजेंद्रमंदगामिनी ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषिता ॥ १९ ॥ अमूल्यरत्नखचितममूल्यं वह्निशौचकम् ॥ पीतवस्त्रस्य युगलं नीवीयुक्तं च बिभ्रती ॥ २० ॥ स्थलपद्मप्रभायुष्टं कोमलं च सुरंजितम् ॥ कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यसंती पदांबुजम् ॥ २१ ॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानादवरुह्य सा ॥ सेव्यमाना च ऋषिभिः श्वेतचामरवायुना ॥ २२ ॥ कस्तूरीबिंदुभिर्युक्तं चंदनेन समन्वितम् ॥ दीप्तदीपप्रभाकारं सिंदूरं बिंदुशोभितम् ॥ २३ ॥ दधती भालमध्ये च सीमांताधःस्थलोज्ज्वले ॥ पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तं सुबंक्रिमम् ॥ २४ ॥ सुचारुकबरीभारं कंपयंती सुकंपिता ॥ सुचारुरागसंयुक्तमोष्ठं कंपयती रुषा ॥ २५ ॥ गत्वोवाच कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने शुभे ॥ सखीनां च समूहैश्च परिपूर्णा

रहा था तथा उनकी चाल ऐसी थी, मानो मतवाला गजराज चल रहा हो। बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुए नाना प्रकारके आभूषण उनके श्रीविग्रहकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ १९ ॥ उनके शरीरपर रत्नोंसे जटित दो दिव्य चिन्मय पीताम्बर शोभा पा रहे थे ॥२०॥ स्थलकमलिनीकी दीप्तिसे सम्पन्न, कोमल, सुरंजित तथा भगवान् श्रीकृष्णके अर्घ्यसे सुशोभित चरण-कमलोंको वे धीरे-धीरे रख रही थीं ॥२१॥ सर्वोत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर बैठकर वे वहाँ पधारी थीं। ऋषिगण उनकी सेवामें संलग्न थे। स्वच्छ चँवर डुलाया जा रहा था ॥२२॥ कस्तूरीके बिन्दुसे युक्त, चन्दनसे समन्वित, प्रज्वलित दीपकके समान आकारवाला तथा बिन्दुरूपमें शोभायमान सिन्दूर उनके ललाटके मध्यभागमें शोभा पा रहा था ॥२३॥ उनके सीमन्तका निचला भाग परम स्वच्छ था। पारिजातके पुष्पोंकी सुन्दर माला उनके गलेमें सुशोभित थी ॥२४॥ अपनी सुन्दर अलकावलीको कँपाती हुई वे स्वयं भी कम्पित हो रही थीं। रोषके कारण उनके सुंदर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा रागयुक्त ओष्ठ काँप रहे थे ॥२५॥ भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर वे सुन्दर रत्नमय सिंहासनपर विराजित हो गयीं। उनके साथ असंख्य सखियोंकी टोली थी ॥२६॥ उनको पधारे देखकर भगवान् श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए और कुछ हँसकर आश्चर्य प्रकट करते हुए मधुर वचनोंमें उनसे बातचीत करने लगे ॥ २७ ॥ उस समय गोपोंके भयकी सीमा नहीं रही। नम्रतासे कंधे झुकाकर उन्होंने भगवती राधिकाको प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे। परब्रह्म श्रीकृष्णने भी राधिकाकी स्तुति की ॥ २८ ॥ गङ्गा भी तुरन्त उठीं और उन्होंने राधाका स्तवन किया। उनके हृदयमें भय छा गया था। अत्यन्त विनय प्रकट करते हुए उन्होंने राधासे कुशल [illegible] ॥२९॥ वे डरकर नीचे खड़ी हो गयीं। ध्यानपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलकी शरण ही उनके लिए एकमात्र आधार थो ॥ ३० ॥ अपने हृदयरूपी कमलपर स्थित गंगाको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने उन डरी हुई देवीको अभय प्रदान किया। इस प्रकार सर्वेश्वर श्रीकृष्णसे वर पाकर देवी गंगा स्थिरचित्त हो सकीं ॥३१॥ अब गंगाने देखा कि देवी राधिका ऊँचे सिंहासनपर बैठी हैं। उनका रूप परम मनोहर है। वे देखनेमें बड़ी सुखप्रद

विभोः प्रिया ॥ २६ ॥ तां दृष्ट्वा च समुत्तस्थौ कृष्णश्चादरपूर्वकम् ॥ संभाष्य मधुरालापैः सस्मितश्च ससंभ्रमः ॥ २७ ॥ प्रणेमुरतिसंत्रस्ता गोपा नम्रात्मकंधराः ॥ तुष्टुवुस्ते च भक्त्या च तुष्टाव परमेश्वरः ॥ २८ ॥ उत्थाय गंगा सहसा स्तुतिं बहु चकार सा ॥ कुशलं परिपप्रच्छ भीताऽतिविन-येन च ॥ २९ ॥ नम्रभागस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥ ध्यानेन शरणायत्ता श्रीकृष्णचरणांबुजे ॥ ३० ॥ तां हृत्पद्मस्थितां कृष्णो भीतायै चाभयं ददौ ॥ बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च ॥ ३१ ॥ ऊर्ध्वं सिंहासनस्थां च राधां गंगा ददर्श सा ॥ सुस्निग्धां सुखदृश्यां च ज्वलंतीं ब्रह्मतेजसा ॥ ३२ ॥ असंख्यब्रह्मणः कर्त्रीमादिसृष्टेः सनातनीम् ॥ सदा द्वादशवर्षीयां कन्याभिनवयौवनाम् ॥ ३३ ॥ विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च ॥ शांतां कांतामनंतां तामाद्यंतरहितां सतीम् ॥ ३४ ॥ शुभां सुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम् ॥ सौंदर्यसुंदरीं श्रेष्ठां सर्वासु सुंदरीषु च ॥ ३५ ॥ कृष्णार्धांगीं कृष्णसमां तेजसा वयसा त्विषा ॥ पूजितां च महालक्ष्मीं लक्ष्म्या लक्ष्मीश्वरेण च ॥ ३६ ॥ प्रच्छाद्यमाना प्रभया सभा-मीशस्य सुप्रभाम् ॥ सखीदत्तं च ताम्बूलं भुक्तवन्तीं च दुर्लभम् ॥ ३७ ॥ अजन्यां सर्वजननीं धन्यां- मान्यां च मानिनीम् ॥ कृष्णप्राणाधिदेवीं च

हैं। ब्रह्मतेजसे उनका श्रीविग्रह प्रकाशमान हो रहा है ॥ ३२ ॥ वे सनातनी देवी सृष्टिके आदिमें असंख्य ब्रह्माओंको रचती हैं। उनकी अवस्था सदा बारह वर्षकी रहती है। अभिनव यौवनसे उनका विग्रह परम शोभा पाता है ॥ ३३ ॥ अखिल विश्वमें उनके सदृश रूपवती और गुणवती कोई भी नहीं है। वे परम शान्त, कमनीय, अनन्त, परम साध्वी तथा आदि-अन्त-रहित हैं ॥ ३४ ॥ उन्हें 'शुभा', 'सुभद्रा', और 'सुभगा' कहा जाता है। अपने स्वामीके सौभाग्यसे वे सदा सम्पन्न रहती हैं। सम्पूर्ण स्त्रियोंमें वे श्रेष्ठ हैं तथा परम सौन्दर्यसे सुशोभित हैं ॥ ३५ ॥ उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी अर्धाङ्गिनी कहा जाता है। तेज, अवस्था और प्रकाशमें वे भगवान् श्रीकृष्णके ही समान हैं। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने लक्ष्मीको साथ लेकर उन महालक्ष्मीकी उपासना की है ॥३६॥ परमात्मा श्रीकृष्णकी समुज्ज्वल सभाको वे अपनी कान्तिसे सदा आच्छादित किये रहती हैं। सखियोंका दिया हुआ दुर्लभ पान उनके मुखमें शोभा पा रहा है ॥ ३७ ॥ वे स्वयं अजन्मा होती हुई भी अखिल जगत्की जननी हैं। उनकी कीर्ति और प्रतिष्ठा विश्वमें सर्वत्र व्याप्त है। भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी साक्षात् अधिष्ठात्री देवी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। उन परम सुन्दरी देवीको भगवान प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते हैं ॥ ३८ ॥ हे नारद ! रासेश्वरी श्रीराधाकी इस अनुपम झाँकीको देखकर गङ्गाका मन तृप्त नहीं हो सका। वे निर्निमेष नेत्रोंसे राधाकी सौन्दर्य-सुधाका पान करती रहीं ॥३९॥ हे मुने ! इतनेमें राधाने मधुर-वाणीमें जगदीश्वर भगवान श्रीकृष्णसे कहा। उस समय श्रीराधाका विग्रह परम शान्त थ.। उनमें नम्रता आ गयी थी और उनके मुखपर मुसकान छायी हुई थी ॥४०॥ श्रीराधाने कहा—हे प्राणेश ! आपके प्रसन्न मुखकमलको मुसकराकर निहारनेवाली यह कल्याणी कौन है? इसके तिरछे नेत्र आपको लक्ष्य कर रहे हैं। इसके भीतर मिलनेच्छाका भाव जागृत है ॥४१॥ आपके मनोहर रूपने इसे अचेत कर दिया है। इसके सर्वाङ्ग पुलकित हो रहे हैं। वस्त्रसे मुख ढाँककर बार-बार आपको देखा करना मानो इसका स्वभाव ही बन गया है ॥४२॥ आप भी उसकी ओर दृष्टिपात करके मधुर-मधुर मुसका रहे हैं। मेरे जीवित रहते गोलोकमें ऐसी दुराचारिणी

प्राणप्रियतमां रमाम् ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी ॥ निमेषरहिताभ्यां च लोचनाभ्यां पपौ च ताम् ॥३९॥ एतस्मिन्नंतरे राधा जगदीशमुवाच सा ॥ वाचा मधुरया शान्ता विनीता सस्मिता मुने ॥४०॥ राधोवाच ॥ केयं प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखाम्बुजम् ॥ पश्यंती सस्मितं पार्श्वे सकामा वक्रलोचना ॥ ४१ ॥ मूर्च्छां प्राप्नोति रूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा ॥ वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षंती पुनः पुनः ॥ ४२ ॥ त्वं चापि तां संनिरीक्ष्य सकामः सस्मितः सदा ॥ मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरोदृशी ॥ ४३ ॥ त्वमेव चैव दुर्वृत्तं वारं वारं करोषि च ॥ क्षमां करोमि प्रेम्णा च स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा ॥४४॥ संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लंपट ॥ अन्यथा न हि ते भद्रं भविष्यति व्रजेश्वर ॥ ४५ ॥ दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चंदनकानने ॥ क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो ॥ ४६ ॥ त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा ॥ देहं तत्याज विरजा नदीरूपा बभूव सा ॥ ४७ ॥ कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा ॥ अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी ॥ ४८ ॥ गृहं मयि गतायां च पुनर्गत्वा तदंतिके ॥ उच्चै रुरोद विरजे विरजे चेति संस्मरन् ॥ ४९ ॥ तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनो ॥ सालंकारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यं च दर्शनम् ॥ ५० ॥ ततस्तां च समाक्षिप्य वीर्याधानं कृतं त्वया ॥ ततो बभूवुस्तस्यां च समुद्राः सप्त एव च ॥ ५१ ॥

स्त्री कैसे आयी ? ॥४३॥ मैं देखती हूँ कि आप बार-बार दुराचार कर रहे हैं। कोमल स्वभावकी स्त्री-जाति होनेके कारण प्रेमवश मैं आपको क्षम. कर देती हूँ ॥ ४४ ॥ हे छलिया ! अब अपनी इस प्रेयसीको लेकर आप गोलोकसे चले जाइए। नहीं तो हे व्रजेश्वर ! ठीक नहीं होगा ॥४५॥ एक बार मैंने चन्दनवनमें आपको विरजाके साथ प्रेम करते देखा था। उस समय सखियोंके कहनेसे मैंने क्षमा कर दिया ॥ ४६ ॥ मेरा शब्द सुनते ही आप छिप गये और विरजाने वह तन त्यागकर नदीका रूप धारण कर लिया ॥ ४७ ॥ सौ योजन विस्तृत और चार सौ योजन लम्बी आपकी सत्कीर्तिस्वरूपिणी वह देवी नदीरूपमें अब भी विराजमान है ॥ ४८ ॥ जब मैं घर चली गयी, तब आप फिर उसके पास गये और 'विरजे ! विरजे !!' कहते हुए जोरोंसे रोने लगे ॥ ४९ ॥ तब उस सिद्ध योगिनीने योगबलसे नदीके बाहर निकलकर सर्वथा अलंकृत मूर्तिमती सुन्दरीके रूपमें आपको दर्शन दिया था ॥ ५० ॥ तब आपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके साथ रति करके वीर्याधान किया और उससे समयानुसार सात समुद्र उत्पन्न हो गये ॥५१॥ इसी प्रकार चम्पक वनमें मैंने शोभा गोपीके साथ आपको देखा था । मेरी आहट पाते ही आप निकल भागे ॥ ५२ ॥ शोभा वह शरीर त्यागकर चन्द्रमण्डलमें चली गयी और उसका शरीर परम स्निग्ध तेज बन गया ॥ ५३ ॥ आपने दुखी हृदयसे उस तेजको विभक्त करके वितरित कर दिया । रत्न, सुवर्ण, श्रेष्ठ मणि, स्त्रियोंके मुखकमल, राजा, पुष्पोंकी कलियाँ, पके हुए फल, लहलहाती खेतियाँ, राजाओंके सजे-धजे महल, नवीन पुष्प और दूध—ये सब आपके द्वारा उस शोभाके कुछ-कुछ भाग पा गये । मैंने वृन्दावनमें आपको 'प्रभा'के साथ प्रेम करते देखा था ॥ ५४–५६ ॥ वह भी शरीर त्याग सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर गयी । उस समय उसका शरीर अत्यन्त तेजोमय बन गया । उस तेजोमयी प्रभाको रोते-रोते आपने विभाजित करके जगह-जगह बाँट दिया था ॥ ५७–५९ ॥ हे श्रीकृष्ण ! आपकी आँखोंसे

दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने ॥ सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥५२॥ शोभा देहं परित्यज्य जगाम चंद्रमंडले ॥ ततस्तस्याः शरीरं च स्निग्धं तेजो बभूव ह ॥ ५३ ॥ संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता ॥ रत्नाय किंचित्स्वर्णाय किचिन्मणिवराय च ॥ ५४ ॥ किंचित्स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किंचिद्राज्ञे च किंचन ॥ किंचित्किसलयेभ्यश्च पुष्पेभ्यश्चापि किंचन ॥ ५५ ॥ किंचित्फलेभ्यः पक्वेभ्यः सस्येभ्यश्चापि किंचन ॥ नृपदेवगृहेभ्यश्च संस्कृतेभ्यश्च किंचन ॥ ५६ ॥ किञ्चिन्नूतनपत्रेभ्यो दुग्धेभ्यश्चापि किञ्चन ॥ दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने ॥ ५७ ॥ सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥ प्रभा देहं परित्यज्य जगाम सूर्यमण्डले ॥५८॥ ततस्तयोः शरीरं च तीव्रं तेजो बभूव ह ॥ संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा ॥ ५९ ॥ विसृष्टं चक्षुषोः कृष्ण लज्जया मद्भयेन च ॥ हुताशनाय किञ्चिच्च यक्षेभ्यश्चापि किञ्चन ॥ ६० ॥ किञ्चित्पुरुषसिंहेभ्यो देवेभ्यश्चापि किञ्चन ॥ किञ्चिद्विष्णुजनेभ्यश्च नागेभ्योऽपि च किञ्चन ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किञ्चन ॥ स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो यशस्विभ्यश्च किञ्चन ॥ ६२ ॥ तत्तु दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूर्वं प्ररुदितं त्वया ॥ शान्तिगोप्या युतस्त्वं च दृष्टोऽसि रासमंडले ॥ ६३ ॥ वसंते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षितः ॥ रत्नप्रदीपैर्युक्तं च रत्ननिर्माणमंदिरे ॥ ६४ ॥ रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह ॥ तया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवांश्च पुरा विभो ॥ ६५ ॥ सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥ शान्तिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो ॥ ६६ ॥ ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥ सम्विभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा ॥ ६७ ॥ विश्वे तु विपिने किञ्चिद्ब्रह्मणे च मयि प्रभो ॥ शुद्धसत्त्व-

दूर गयी हुई प्रभा अग्नि, यक्ष, नरेश, देवता, वैष्णवजन, नाग, ब्राह्मण, मुनि, तपस्वी, सौभाग्यवती स्त्री तथा यशस्वी पुरुष—इन सबको थोड़े-थोड़े रूपोंमें प्राप्त हुई ॥६ –६२॥ एक बार मैंने आपको 'शान्ति' नामक गोपीके साथ रासमण्डलमें प्रेम करते देखा था ॥६३॥ वसन्त ऋतुमें फूलोंकी सेजपर आप माला पहन तथा शरीरमें चंदन लगाकर लेटे थे । उस रत्ननिर्मित महलमें रत्नोंके दीपक जल रहे थे ॥ ६४ ॥ शान्ति भी रत्नोंके आभूषण पहने थी और आप भी । उसने पान दिया और आपने खा लिया ॥ ६५ ॥ आप मेरी आहट पाकर भाग गये और शान्ति भयसे देह त्यागकर आपमें समा गयी ॥६६॥ उस समय उसका शरीर उत्तम गुणके रूपमें परिणत हो गया । तदनन्तर रोते हुए आपने उसको विभाजित करके सारे विश्वमें बाँट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिया ॥६७॥ हे प्रभो ! उसका कुछ अंश मुझ (राधा) में, कुछ इस निकुञ्जोंमें और कुछ ब्राह्मणोंमें समाविष्ट हुआ। फिर आपने उसका कुछ भाग शुद्धस्वरूपा लक्ष्मीको, कुछ अपने मन्त्रके उपासकोंको, कुछ देवीभक्तोंको, कुछ तपस्वियोंको, कुछ धर्मको और कुछ धर्मात्मा पुरुषोंको सौंप दिया ॥६८॥६९॥ पूर्व समयक बात है, 'क्षमा' के साथ आप प्रेम करते हुए मुझे दृष्टि-गोचर हुए थे। उस समय आपका वेष बहुत ही सुन्दर था और आप माला-इत्र तथा चन्दन लगाये हुए थे॥७०॥ क्षमा नींदमें थी और आपकी देहसे लिपटी थी। आप पुष्प-चन्दन-चर्चित सेजपर बेसुध पड़े थे ॥७१॥ एक नवेलीके नवसंगमसे आप मस्त थे। उसी समय मैं पहुँच गयी और दोनोंको जगाया। इस बातको याद करिए ॥७२॥ उस समय मैंने आपका पीताम्बर, मनोहर मुरली, वनमाला, कौस्तुभ और बहुमूल्य कुंडल छीन लिया था ॥७३॥ बादमें सखियोंके कहनेपर मैंने सब चीजें लौटा दीं और आप उस लज्जा तथा पापसे काले हो गये ॥७४॥ उस

स्वरूपायै किञ्चिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो ॥ ६८ ॥ त्वन्मंत्रोपासकेभ्यश्च शाक्तेभ्यश्चापि किञ्चन ॥ तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किञ्चन ॥ ६९ ॥ मया पूर्वं च त्वं दृष्टो गोप्या च क्षमया सह ॥ सुवेषयुक्तो मालावान्गन्धचंदनचर्चितः ॥ ७० ॥ रत्नभूषितया गंधचंदनोक्षितया सह ॥ सुखेन मूर्च्छितस्तल्पे पुष्पचंदनचर्चिते ॥ ७१ ॥ श्लिष्टो निद्रितया सद्यः सुखेन नवसंगमात् ॥ मया प्रबोधिता सा च भवांश्च स्मरणं कुरु ॥ ७२ ॥ गृहीतं पीतवस्त्रं च मुरली च मनोहरा ॥ वनमालाकौस्तुभश्चाप्यमूल्यं रत्नकुण्डलम् ॥ ७३ ॥ पश्चात्प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो ॥ लज्जया कृष्णवर्णोऽभूद्भवान्पापेन यः प्रभो ॥ ७४ ॥ क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता ॥ ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥ ७५ ॥ संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुनः ॥ किञ्चिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किञ्चन ॥ ७६ ॥ धार्मिकेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किञ्चन ॥ तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पंडितेभ्यश्च किंचन ॥७७॥ एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ त्वद्गुणं चैव बहुशो न जानामि परं प्रभो ॥७८॥ इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपंकजलोचना ॥ गङ्गां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम् ॥७९॥ गङ्गा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी ॥ तिरोभूय सभामध्ये स्वजलं प्रविवेश सा ॥८०॥ राधा योगेन विज्ञाय सर्वत्रावस्थितां च ताम् ॥ पानं कर्तुं समारेभे गंडूषात्सिद्धयोगिनी ॥ ८१ ॥ गंगा रहस्यं विज्ञाय

समय क्षमा अपना शरीर त्यागकर पृथ्वीमें समा गयी और उसका शरीर उत्तम गुणके रूपमें परिणत हो गया ॥७५॥ फिर उसके शरीरका आपने विभाजन किया और उसमेंसे कुछ अंश विष्णुको, वैष्णवोंको, धार्मिक पुरुषोंको, धर्मको, दुर्बलोंको, तपस्वियोंको, देवताओं और कुछ अंश पंडितोंको दे दिया ॥७६॥७७॥ हे प्रभो ! इतनी बातें तो मैं सुना चुकी, और क्या सुनना चाहते हैं ? आपके ऐसे ऐसे बहुतसे गुण हैं। आप सदा ही उच्च सुन्दरी देवियोंसे प्रेम किया करते हैं ॥७८॥ इस तरह सुन्दर नेत्रोंवाली राधाने भगवान् श्रीकृष्णसे कहकर लज्जित गंगासे भी कुछ कहना चाहा। गंगा योगमें परम प्रवीण थीं। योगके प्रभावसे राधाका मनोभाव उन्हें ज्ञात हो गया। अतः बीच सभामें ही अंतर्धान होकर वे जलके रूपमें परिणत हो गयीं॥७९॥८०॥ तब सिद्धयोगिनी राधाने योगद्वारा इस रहस्यको जानकर सर्वत्र विद्यमान उन जलस्वरूपिणी गंगाको अंजलिसे उठा-उठाकर पीना आरंभ कर दिया ॥८१॥ ऐसी स्थितिमें राधाका अभिप्राय पूर्ण योगसिद्धा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गंगासे छिपा नहीं रह सका । अतः वे भगवान श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर उनके चरणकमलोंमें लीन हो गयीं ॥८२॥ उधर राधाने गोलोक, वैकुण्ठलोक तथा ब्रह्मलोक आदि सम्पूर्ण स्थानोंमें गंगाको खोजा, परन्तु कहीं भी वे दिखाई नहीं दीं ॥८३॥ उस समय सर्वत्र जलका नितान्त अभाव हो गया था । कीचड़तक सूख गया था । जलचर जन्तुओंके मृत शरीरसे ब्रह्माण्डका कोई भी भाग खाली नहीं था ॥ ८४ ॥ फिर तो ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, अनन्त, धर्म, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, मनुगण, मुनिसमाज, देवता, सिद्ध और तपस्वी—सभी गोलोकमें गये । उस समय उनके कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गये थे । वहाँ प्रकृतिसे परे सर्वेश भगवान श्रीकृष्णको सबने प्रणाम किया । क्योंकि श्रीकृष्ण सबके परम पूज्य हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ वर देना इन सर्वोत्तम प्रभुका स्वाभाविक गुण है । इन्हें वरका प्रवर्त्तक माना जाता है । ये परम प्रभु सम्पूर्ण गोपों और गोपियोंके समाजमें प्रमुख हैं ॥८७॥ इन्हें निरीह, निराकार, निर्लिप्त, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, निर्विकार और निरञ्जन कहा गया है ॥८८॥ भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए ये अपनी इच्छासे साकार रूपमें प्रकट हो जाते हैं ॥८९॥ इनसे बढ़कर जगत्‌में दूसरा कोई

योगेन सिद्धयोगिनी ॥ श्रीकृष्णचरणांभोजे विवेश शरणं ययौ ॥ ८२ ॥ गोलोके सा च वैकुण्ठे ब्रह्मलोकादिके तथा ॥ ददर्श राधा सर्वत्र नैव
गङ्गां ददर्श सा ॥ ८३ ॥ सर्वत्र जलशून्यं च शुष्कपंकं च गोलकम् ॥ जलजंतुसमूहैश्च मृतदेहैः समन्वितम् ॥ ८४ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवानंतधर्मेन्द्रेन्दु-
दिवाकराः ॥ मनवो मुनयः सर्वे देवसिद्धतपस्विनः ॥८५॥ गोलोकं च समाजग्मुः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥ सर्वे प्रणेमुर्गोविंदं सर्वेशं प्रकृतेः परम्
॥ ८६ ॥ वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम् ॥ गोपिकागोपवृन्दानां सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥ ८७ ॥ निरीहश्च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम् ॥
निर्गुणं च निरुत्साहं निर्विकारं निरंजनम् ॥ ८८ ॥ स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ सत्त्वस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम् ॥ ८९ ॥
परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम् ॥ प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥९०॥ सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकांकितविग्रहाः ॥ सर्वे संस्तूय सर्वेशं
भगवंतं परात्परम् ॥ ९१ ॥ ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥ ९२ ॥ सेव्यमानं च गोपालैः श्वेत-
चामरवायुना ॥ गोपालिकानृत्यगीतं पश्यंतं सस्मितं मुदा ॥९३॥ प्राणाधिकप्रियतमं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ तया प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवंतं सुवासितम्
॥९४॥ परिपूर्णतमं रासे ददृशुश्च सुरेश्वरम् ॥ मुनयो मनवः सिद्धास्तापसाश्च तपस्विनः ॥९५॥ प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम् ॥ परस्परं समालो-

शासक नहीं है । अतएव इन पूर्णब्रह्म परमेश्वर भगवान श्रीकृष्णको उन ब्रह्मादि समस्त उपस्थित देवताओंने प्रणाम करके स्तवन आरम्भ कर दिया । भक्तिके कारण उनके कंधे झुक गये थे । ॥९०॥ उनकी वाणी गद्गद हो गयी थी । आँखोंमें आँसू भर आये थे । उनके सभी अंगोंमें पुलकावली छायी थी । सबने उन परात्पर ब्रह्म भगवान श्रीकृष्णकी स्तुति की ॥९१॥ इन सर्वेश प्रभुकी विग्रह ज्योतिर्मय है । सम्पूर्ण कारणोंके भी य कारण हैं । ये उस समय बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित दिव्य सिंहासनपर विराजमान थे ॥९२॥ गोपाल इनकी सेवामें संलग्न होकर श्वेत चँवर डुला रहे थे । गोपियोंके नृत्यका देखकर प्रसन्नताके कारण इनका मुखमंडल मुसकानसे भरा था ॥ ९३ ॥ प्राणोंसे भी अधिक प्रिय श्रीराधा इनके वक्षःस्थलपर शोभा पा रही थीं । उनके दिये हुए सुवासित पानको ये चबा रहे थे ॥ ९४ ॥ उस अवसरपर ये देवाधिदेव परिपूर्णतम ब्रह्म भगवान श्रीकृष्ण रासमंडलमें विराजमान थे । वहीं मुनियों, मनुष्यों, सिद्धों और तपस्वियोंने तपके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रभावसे इनके दिव्य दर्शन प्राप्त किये ॥९५॥ उस दिव्य दर्शनसे सबके मनमें अपार हर्ष हुआ। साथ ही आश्चर्यकी सीमा भी नहीं रही। सभी परस्पर एक दूसरेको देखने लगे। तत्पश्चात् उन समस्त सज्जनोंने अपना अभीष्ट अभिप्राय जगत्प्रभु चतुरानन ब्रह्मासे निवेदन किया ॥ ९६ ॥ ब्रह्माजी उनकी प्रार्थना सुनकर विष्णुको दाहिने और महादेवको बायें करके भगवान् श्रीकृष्णके निकट पहुँचे। उस समय परम आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण और परम आनन्दस्वरूपिणी श्रीराधा एक साथ विराजमान थीं॥ ९७ ॥ ९८ ॥ उसी समय ब्रह्माने रासमण्डलको केवल श्रीकृष्णमय देखा। सबको वेष-भूषा एक समान थी। सभी एक जैसे आसनोंपर बैठे थे ॥ ९९ ॥ द्विभुज श्रीकृष्णके रूपमें परिणत सभीने हाथोंमें मुरली ले रखी थी। वनमाला सबको छबि बढ़ा रही थी। सबके मुकुटमें मोरके पंख थे। कौस्तुभ मणिसे वे भी परम सुशोभित थे ॥ १०० ॥ गुण, भूषण, रूप, तेज, अवस्था और प्रभासे सम्पन्न उन सबका अत्यन्त कमनीय विग्रह परम शांत था ॥१०१॥ सभी परिपूर्णतम थे और सबमें सभी शक्तियाँ संनिहित थीं। उन्हें देखकर कौन सेवक है और कौन सेव्य–इस बातका निर्णय करनेमें ब्रह्मा भी सफल नहीं

च्य प्रोचुस्ते च चतुर्मुखम् ॥९६॥ निवेदितं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम् ॥ ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुं कृत्वा स्वदक्षिणे ॥९७॥ वामतो वामदेवं च जगाम कृष्णसन्निधिम् ॥ परमानंदयुक्तं च परमानंदरूपिणम् ॥९८॥ सर्वं कृष्णमयं धाता ददर्श रासमण्डले ॥ सर्वं समानवेषं च समानासनसंस्थितम् ॥ ९९ ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम् ॥ मयूरपिच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम् ॥१००॥ अतीव कमनीयं च सुंदरं शांतविग्रहम् ॥ गुणभूषण-रूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥ १०१ ॥ परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ किं सेव्यं सेवकं किं वा दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः ॥ १०२ ॥ क्षणं तेजःस्वरूपं च रूपं तत्र स्थितं क्षणम् ॥ निराकारं च साकारं ददर्श द्विविधं क्षणम् ॥ १०३ ॥ एकमेव क्षणं कृष्णं राधया रहितं परम् ॥ प्रत्येकासनसंस्थं च तया सार्धं च तत्क्षणम् ॥ १०४ ॥ राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपं कलत्रकम् ॥ किं स्त्रीरूपं च पुरुषं विधाता ज्ञातुमक्षमः ॥ १०५ ॥ हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं ध्यात्वा ध्यानेन चक्षुषा ॥ चकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा ॥१०६॥ ततः स्वचक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया ॥ ददर्श कृष्णमेकं च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥१०७॥ स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमण्डलमण्डितम् ॥ पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ १०८ ॥ तदभिप्रायमाज्ञाय

हो सके ॥ १०२ ॥ क्षणभरमें ही भगवान् श्रीकृष्ण अलक्षित हो जाते और तुरन्त आसनपर बैठे हुए दिखायी पड़ने लगते थे। एक ही क्षणमें उनके निराकार और साकार दो रूप ब्रह्माको दृष्टिगोचर हुए ॥ १०३ ॥ फिर एक ही क्षणमें ब्रह्माजीने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अकेले हैं। इसके बाद तुरन्त ही उन्हें राधा और कृष्ण एक-एक आसनपर बैठे दीख पड़े ॥ १०४ ॥ फिर क्या देखते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णने राधाका रूप धारण कर लिया है और राधाने श्रीकृष्णका। कौन स्त्रीके वेषमें है और कौन पुरुषके वेषमें–विधाता इस रहस्यको नहीं समझ सके ॥ १०५ ॥ तब ब्रह्माजीने अपने हृदयरूपी कमलपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान किया। ध्यानचक्षुसे भगवान् दीख गये। अतः अनेक प्रकारसे परिहार करते हुए ब्रह्माने भक्ति-पूर्वक उनकी स्तुति की ॥ १०६ ॥ तत्पश्चात् भगवान्की आज्ञासे उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। तब देखा कि श्रीराधाको वक्षःस्थलपर बैठाये हुए भगवान् श्रीकृष्ण आसनपर विराजमान हैं ॥१०७॥ उन्हें पार्षदोंने घेर रक्खा है। झुण्डकी झुण्ड गोपियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही हैं। फिर उन ब्रह्माप्रभृति प्रधान देवताओंने परम प्रभु भगवान्का दर्शन करके प्रणाम किया और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्तुति भी की ॥१०८॥ तब जो सबके आत्मा, सब कुछ जाननेमें कुशल, सबके शासक तथा सर्वभावन हैं, उन लक्ष्मीपति परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णने उपस्थित देवताओंका अभिप्राय समझकर कहा ॥१०९॥ भगवान श्रीकृष्ण बोले—हे ब्रह्मन्! हे महादेव! आपका सदा कुशल हो, यहाँ आइये। मैं समझ गया, आप सभी महानुभाव गङ्गाको ले जानेके लिये यहाँ पधारे हैं। परन्तु इस समय गङ्गाजी शरणार्थिनी बनकर मेरे चरणकमलमें छिपी हुई हैं ॥११०॥ जब वह मेरे पास बैठी थी, राधाजी उसे देखकर पी जानेके लिये उद्यत हो गयीं। तब वह मेरे चरणोंमें आकर छिप गयी। मैं आप लोगोंको उसे सहर्ष दे दूँगा, परन्तु आप पहले उसको निर्भय बनानेका प्रयत्न करें ॥१११॥ हे नारद! भगवान् कृष्णकी यह बात सुनकर कमलोद्भव ब्रह्माका मुख मुसकानसे भर गया। फिर तो वे सम्पूर्ण देवता, जो सबकी आराध्या तथा भगवान श्रीकृष्णसे सुपूजिता हैं, उन भगवती राधाकी स्तुतिमें संलग्न हो गये ॥ ११२ ॥ भक्तिके कारण अत्यन्त विनीत होकर ब्रह्माजीने अपने चारों मुखोंसे राधाकी स्तुति की। चारों वेदोंके प्रणेता चतुरानन ब्रह्माने भगवती राधाका इस प्रकार स्तवन किया ॥११३॥११४॥

तानुवाच रमेश्वरः ॥ सर्वात्मा च स सर्वज्ञः सर्वेशः सर्वभावनः ॥१०९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आगच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते ॥ इहागच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु वः ॥ ११० ॥ आगता हि महाभागा गङ्गानयनकारणात् ॥ गङ्गा च चरणाम्भोजे भयेन शरणं गता ॥ १११ ॥ राधेमा पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्सन्निधानतः ॥ दास्यामीमां च भवतां यूयं कुरुत निर्भयाम् ॥११२॥ श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः ॥ तुष्टाव राधामाराध्यां श्रीकृष्णपरिपूजिताम् ॥ ११३ ॥ वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥ धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः ॥११४॥ चतुरानन उवाच ॥ गङ्गा त्वदंगसंभूता प्रभोश्च रासमण्डले ॥ युवयोर्द्रवरूपा सा मुग्धयोः शङ्करस्वनात् ॥ ११५ ॥ कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया ॥ त्वन्मंत्रग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम् ॥११६॥ भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठेशश्चतुर्भुजः ॥ भूस्थायाः कलया तस्याः पतिर्लवणवारिधिः ॥११७॥ गोलोकस्था च या गङ्गा सर्वत्रस्था तथान्तिके ॥ तदंबिका त्वं देवेशी सर्वदा सा त्वदात्मजा ॥११८॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता ॥ बहिर्बभूव सा कृष्णपादांगुष्ठनखाग्रतः ॥११९॥ तत्रैव सत्कृता शान्ता तस्थौ तेषां च मध्यतः ॥ उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥१२०॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवी! यह गंगा आपके तथा भगवान् कृष्णके श्रीअंगसे उत्पन्न हुई है। आप दोनों महानुभाव रासमण्डलमें पधारे थे। शङ्करके संगीतने आपको मुग्ध कर दिया था। उसी अवसरपर यह द्रवरूपमें प्रकट हो गयी ॥ ११५ ॥ अतः आप तथा श्रीकृष्णके अंगसे उत्पन्न होनेके कारण आपकी प्रिय पुत्रीके समान शोभा पानेवाली गंगा आपके मन्त्रोंका जप करके उपासना करे ॥ ११६ ॥ इसके द्वारा आपकी आराधना होनी चाहिये। फलस्वरूप वैकुंठाधिपति चतुर्भुज भगवान् श्रीहरि इसके पति हो जायँगे। साथ ही, अपनी एक कलासे ये भूमण्डलपर भी पधारेंगी और वहाँ भगवानके अंश क्षारसमुद्रको इनका पति बनानेका सुअवसर प्राप्त होगा ॥ ११७ ॥ हे माता! यह गंगा जैसे गोलोकमें है, वैसे ही इसे सर्वत्र रहना चाहिये। आप देवेश्वरी इसकी माता हैं और यह सदाके लिए आपकी पुत्री है ॥११८॥ हे नारद! ब्रह्माकी इस प्रार्थनाको सुनकर भगवती राधा हँस पड़ीं। उन्होंने ब्रह्माजीकी सभी बातोंको स्वीकार कर लिया। तब गङ्गा श्रीकृष्णके चरणके अंगूठेके नखाग्रसे निकलकर वहीं विराजमान हो गयीं ॥११९॥ सब लोगोंने उनका सम्मान किया। फिर जलस्वरूपा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गङ्गाकी अधिष्ठात्री देवी जलसे निकलकर परम शान्त विग्रहसे शोभा पाने लगी ॥ १२० । तभी ब्रह्माने गङ्गाके उस जलको अपने कमण्डलुमें रख लिया। भगवान् शंकरने उस जलको अपने मस्तकपर स्थान दिया ॥१२१॥ तत्पश्चात् कमलोद्भव ब्रह्माने गङ्गाको 'राधा-मन्त्र' की दीक्षा दी। साथ ही राधाके स्तोत्र, कवच, पूजन और ध्यानकी विधि भी बतलायी ॥१२२॥ ये सभी अनुष्ठानक्रम सामवेदमें कथित थे। गङ्गाने इन नियमोंके द्वारा राधाकी पूजा करके वैकुण्ठके लिए प्रस्थान किया ॥१२३॥ हे मुने ! लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और विश्वपावनी तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् नारायणकी पत्नियाँ हैं ॥ १२४ ॥ तत्पश्चात् परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर ब्रह्माको दुर्बोध, अपरिचित एवं सामयिकी बातें बतलायीं ॥ १२५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम गङ्गाको स्वीकार करो। हे विष्णो ! हे महेश्वर ! हे विधाता ! मैं समयकी स्थितिका परिचय कराता हूँ, तुम्हें ध्यान देकर सुनना चाहिए ॥१२६॥ तुमलोग तथा अन्य जो देवता, मुनिगण, मनु, सिद्ध और यशस्वी लोग यहाँ आये हुए हैं ॥१२७॥ इन्हींको जीवित समझना चाहिये। क्योंकि गोलोकमें कालके चक्रका प्रभाव नहीं पड़ता। इस समय

तत्तोयं ब्रह्मणा किंचित्स्थापितं च कमंडलौ ॥ किंचिद्दधार शिरसि चंद्रार्धकृतशेखरः ॥१२१॥ गङ्गायै राधिकामंत्रं प्रददौ कमलोद्भवः ॥ तत्स्तोत्रं कवचं पूजां विधानं ध्यानमेव च ॥१२२॥ सर्वं तत्सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा ॥ गङ्गा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सह ॥ १२३ ॥ लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी ॥ एता नारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने ॥१२४॥ अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच सः ॥ सर्वकालस्य वृत्तांतं दुर्बोधमविपश्चितम् ॥१२५॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन्हे विष्णो हे महेश्वर ॥ शृणु कालस्य वृत्तान्तं मतो ब्रह्मन्निशामय ॥ १२६ ॥ यूयं च येऽन्ये देवाश्च मुनयो मनवस्तथा ॥ सिद्धा यशस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः ॥ १२७ ॥ एते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविवर्जिते ॥ जलप्लुते सर्वविश्वं जातं कल्पक्षयोऽधुना ॥ १२८ ॥ ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते विलीनाऽधुना मयि ॥ वैकुंठं च बिना सर्वं जलमग्नं च पद्मज ॥ १२९ ॥ गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं भवम् ॥ स्वं ब्रह्माण्डं विरचय पश्चाद्गङ्गा प्रयास्यति ॥ १३० ॥ एवमन्येषु विश्वेषु सृष्टौ ब्रह्मादिकं पुनः ॥ करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह ॥ १३१ ॥ गतो बहुतरः कालो युष्माकं च चतुर्मुखाः ॥ गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्ति च वेधसः ॥ १३२ ॥ इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरे मुने ॥ देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः ॥ १३३ ॥ गोलोके च स्थिता गंगा

कल्प समाप्त होनेके कारण सारा विश्व जलार्णवमें डूब गया है ॥१२८॥ विविध ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले जो ब्रह्मा आदि प्रधान देवता हैं, वे इस समय मुझमें विलीन हो गये हैं। हे ब्रह्मन् ! केवल वैकुण्ठको छोड़कर और सबका सब जलमग्न है ॥१२९॥ तुम जाकर पुनः ब्रह्मलोकादिकी सृष्टि करो। अपने ब्रह्माण्डकी भी रचना करना आवश्यक है। इसके पश्चात् गङ्गा वहाँ जायगी ॥१३०॥ इसी प्रकार मैं अन्य ब्रह्माण्डोंमें भी इस सृष्टिके अवसरपर ब्रह्मादि लोकोंकी रचनाका प्रयत्न करता हूँ। अब तुम देवताओंके साथ यहाँसे शीघ्र सिधारो ॥१३१॥ बहुत समय व्यतीत हो गया, तुम लोगोंमें कई ब्रह्मा समाप्त हो गये और कितने अभी होंगे ॥१३२॥ हे मुने ! इस प्रकार कहकर परमाराध्या राधाके प्राणपति भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें चले गये। ब्रह्मा प्रभृति देवता वहाँसे चलकर यत्नपूर्वक पुनः सृष्टि करनेमें तत्पर हो गये ॥१३३॥ फिर तो गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक और ब्रह्मलोक तथा अन्यत्र भी जिस-जिस स्थानपर गङ्गाको रहनेके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिए परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने आज्ञा दी थी, उस स्थानके लिए उन्होंने प्रस्थान कर दिया ॥१३४॥ भगवान् श्रीहरिके चरणकमलसे गङ्गा प्रकट हुईं। इसलिए लोग उन्हें 'विष्णुपदी' कहने लगे ॥१३५॥ हे ब्रह्मन्! इस प्रकार गङ्गाके इस उत्तम उपाख्यानका मैं वर्णन कर चुका। इस सारगर्भित प्रसंगसे सुख और मोक्ष दोनों सुलभ हो जाते हैं। अब पुनः क्या सुननेकी तुम्हारी इच्छा है? ॥ १-६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥१३॥

(श्रीकृष्णका देवताओंको आदेश) नारदने कहा—हे भगवन्! लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और जगत्को पावन बनानेवाली तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान नारायणकी ही प्रिया हैं ॥१॥ यह प्रसंग तथा गंगाके वैकुण्ठ जानेकी बात मैं आपसे सुन चुका, परन्तु गङ्गा विष्णुकी पत्नी कैसे हुईं, यह वृत्तान्त सुननेका सुअवसर मुझे नहीं मिला। कृपया उसे सुनाइए ॥२॥ भगवान् नारायण बोले—हे नारद! जब गंगा वैकुण्ठ चली गयीं तो थोड़ी देरके बाद जगत्की व्यवस्था करनेवाले ब्रह्मा भी उनके साथ ही वैकुण्ठ पहुँचे और जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिको

वैकुंठे शिवलोकके ॥ ब्रह्मलोके स्थिताऽन्यत्र यत्र यत्र पुरःस्थिता ॥१३४॥ तत्रैव सा गता गङ्गा चाज्ञया परमात्मनः ॥ निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता ॥१३५॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्गङ्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥ सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे गङ्गोपाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ नारद उवाच ॥ लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी ॥ एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति ॥ १ ॥ गङ्गा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुतं मया ॥ कथं सा तस्य पत्नी च बभूवेति च न श्रुतम् ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गङ्गा जगाम वैकुण्ठं तत्पश्चाज्जगतां विधिः ॥ गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ राधा कृष्णांगसंभूता या देवी द्रवरूपिणी ॥ नवयौवनसंपन्ना सुशीला सुंदरी वरा ॥ ४ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहंकारवर्जिता ॥ तदंगसंभवा नान्यं वृणोतीयं च तं विना ॥ ५ ॥ तत्रातिमानिनी राधा सा च तेजस्विनी वरा ॥ समुद्युक्ता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम् ॥६॥ विवेश चरणांभोजे कृष्णस्य परमात्मनः ॥ सर्वत्र गोलकं शुष्कं दृष्ट्वाऽहमगमं तदा ॥ ७ ॥ गोलोके यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तप्राप्तये ॥ सर्वान्तरात्मा सर्वेषां ज्ञात्वाऽभिप्रायमेव च ॥ ८ ॥ बहिश्चकार गंगां च पादांगुष्ठनखाग्रतः ॥ दत्त्वाऽस्यै

प्रणाम करके कहने लगे ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीने कहा—भगवन्! श्रीराधा और श्रीकृष्णके अंगसे प्रकट ब्रह्मद्रवरूपिणी गंगा इस समय एक सुशीला देवीके रूपमें विराजमान हैं ॥ ४ ॥ दिव्य यौवनसे सम्पन्न होनेके कारण इनका शरीर परम मनोहर जान पड़ता है। शुद्ध एवं सत्त्वस्वरूपिणी इन देवीमें क्रोध और अहंकार लेशमात्र भी नहीं है। श्रीकृष्णके अंगसे प्रकटी हुई गंगा उन्हें छोड़ किसी दूसरेको पति नहीं बनाना चाहतीं ॥५॥ किन्तु परम तेजस्विनी राधा ऐसा नहीं चाहतीं। परम मानिनी राधा गंगाको पी जाना चाहती थीं, परन्तु बड़ी बुद्धिमानीके साथ गंगा परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलमें प्रविष्ट हो गयीं, इसीसे इनकी रक्षा हुई। उस समय सर्वत्र सूखे हुए ब्रह्माण्ड-गोलकको देखकर मैं गोलोक गया ॥ ६ ॥ ७ ॥ सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण वृत्तान्त जाननेके लिए वहाँ विराजमान थे। उन्होंने सबका अभिप्राय समझकर अपने चरणकमलके नखाग्रसे इन्हें बाहर निकाल दिया। तब मैंने इनको राधाकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूजाका मंत्र प्रदान किया। बादमें इनके जलसे ब्रह्माण्डगोलकको पूर्ण कराया ॥८॥९॥ तदनन्तर राधा और श्रीकृष्णके चरणोंको मस्तक झुकाकर इन्हें साथ लेकर यहाँ आया। हे प्रभो! गान्धर्व-विधिसे ब्याहकर इन सुरेश्वरी गंगाको आप अपनी पत्नी बना लीजिये ॥१०॥ हे देवेश! आप रसिक पुरुषोंमें रत्न हैं तो इन साध्वी देवीको भी स्त्रियोंमें रत्न माना जाता है ॥११॥ चतुर नारीका चतुर पुरुषके साथ विवाह होनेमें ही कल्याण होता है। जो पुरुष स्वतः प्राप्त कन्याको नहीं ग्रहण करता ॥ १२ ॥ उसे महालक्ष्मी छोड़कर चली जाती हैं। जिनमें सत्-असत्का पूर्ण ज्ञान है, वे पण्डित पुरुष भी प्रकृतिका अपमान नहीं करते ॥ १३ ॥ सभी पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं और स्त्रियाँ भी उसीकी कलाएँ हैं। केवल आप भगवान श्रीहरि ही प्रकृतिसे परे निर्गुण प्रभु हैं ॥ १४ ॥ क्योंकि परिपूर्णतम श्रीकृष्ण स्वयं एक साथ दो भागोंमें विभक्त हो गये थे। आधे भागसे तो दो भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और उनका आधा अंग चतुर्भुज श्रीहरिके रूपमें प्रकट हो गया। इसी प्रकार भगवान श्रीकृष्णके वामांगसे आविर्भूत श्रीराधा भी दो रूपमें विभक्त हो गयीं ॥ १५ ॥ दाहिने अंशसे तो वे स्वयं राधा रहीं और

राधिकामंत्रं पूरयित्वा च गोलकम् ॥ ९ ॥ प्रणम्य तां च राधेशं गृहीत्वाऽत्रागमं प्रभो ॥ गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम् ॥ १० ॥
सुरेश्वरेषु रसिको रसिकेयं समागता ॥ त्वं रत्नं पुंसु देवेश स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती ॥ ११ ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ॥ उपस्थितां
स्वयं कन्यां न गृह्णातीह यः पुमान् ॥ १२ ॥ तं विहाय महालक्ष्मी रुष्टा याति न संशयः ॥ यो भवेत्पंडितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते ॥ १३ ॥
सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः ॥ त्वमेव भगवान्नाथो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥१४॥ अर्धांगं द्विभुजः कृष्णो योऽर्धांगेन चतुर्भुजः ॥
कृष्णवामांगसंभूता बभूव राधिका पुरा ॥ १५ ॥ दक्षिणांशः स्वयं सा च वामांशा कमला तथा ॥ तेनेयं त्वां वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसंभवा ॥ १६ ॥
एकाङ्गं चैव स्त्रीपुंसोर्यथा प्रकृतिपूरुषौ ॥ इत्येवमुक्त्वा धाता तां तं समर्प्य जगाम सः ॥ १७ ॥ गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम् ॥
नारायणः करं धृत्वा पुष्पचंदनचर्चितम् ॥१८॥ रेमे रमापतिस्तत्र गंगया सहितो मुदा ॥ गंगा पृथ्वीं गता या सा स्वस्थानं पुनरागता ॥ १९ ॥
निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदीति च ॥ मूर्च्छां संप्राप सा देवी नवसंगमलीलया ॥ २० ॥ रसिका सुखसंभोगाद्रसिकेश्वरसंयुता ॥ तां दृष्ट्वा
दुःखिता वाणी पद्मया वर्जिताऽपि च ॥२१॥ नित्यमीर्ष्यति तां वाणीं न च गङ्गा सरस्वतीम् ॥ गङ्गा शशाप कोपेन भारते च हरिप्रिया ॥ २२ ॥

उनके वामांशसे लक्ष्मीका प्राकट्य हुआ। अतएव यह गंगा आपको ही वरण करना चाहती है। क्योंकि आपके श्रीविग्रहसे ही यह प्रकट हुई है ॥ १६ ॥ प्रकृति और पुरुषकी भाँति स्त्री-पुरुष दोनों एक ही तन हैं। हे मुने! इस प्रकार कहकर महाभाग ब्रह्माने भगवान श्रीहरिके पास गंगाको बैठा दिया और वे वहाँसे चल पड़े ॥ १७ ॥ फिर तो स्वयं श्रीहरि गन्धर्व-विवाहविधिके नियमानुसार गंगाके पुष्प एवं चन्दनसे चर्चित कर-कमलको ग्रहण कर लिया और वे उसके प्रियतम पति बन गये ॥ १८ ॥ जो गंगा पृथ्वीपर पधार चुकी थी, वह भी समयानुसार अपने स्थानपर पुनः आ गयी ॥ १९ ॥ यों भगवानके चरणकमलसे प्रकट होनेके कारण गंगाकी 'विष्णुपदी' नामसे प्रसिद्धि हुई। इस प्रकार रसिकेश्वर भगवानके प्रथम सम्पर्कसे रसिका गंगाजी मूर्छित हो गयीं ॥ २० ॥ गंगाके प्रति सरस्वतीके मनमें जो डाह थी, वह बराबर बनी रही। किंतु गंगा सरस्वतीसे कुछ भी द्वेष नहीं रखती थीं। अन्तमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊबकर विष्णुप्रिया गंगाने सरस्वतीको भारतवर्षमें जानेका शाप दे दिया था ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे मुने ! इस प्रकार लक्ष्मीपति श्रीहरिकी गंगासहित तीन पत्नियाँ हैं। बादमें तुलसीको भी उनकी प्रिय पत्नी बननेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। अतएव तुलसी सहित ये चार प्रेयसी पत्नियाँ कही गयी हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेय-रामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(तुलसीके कथाप्रसंगमें राजा वृषध्वजका चरित्र) नारदजीने पूछा—हे प्रभो ! साध्वी तुलसी भगवान् श्रीहरिकी पत्नी कैसे बनी, इसका जन्म कहाँ हुआ था और पूर्वजन्ममें यह कौन थी ? ॥ १ ॥ इस साध्वी देवीने किसके कुलको पवित्र किया था तथा इसके माता-पिता कौन थे ? किस तपस्याके प्रभावसे प्रकृतिके अधिष्ठाता, निर्विकार, निरीह, सर्वविश्वरूप, नारायण, परब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, सर्वाराध्य, सर्वेश, सर्वज्ञ, सर्वाधार, सर्वरूप और सर्वपालक भगवान श्रीहरि इसे पतिरूपम प्राप्त हुए ? ॥२–४॥ क्योंकि ये परम प्रभु तो बिल्कुल निस्पृह

गङ्गया सह तस्यैव तिस्रो भार्या रमापतेः ॥ सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रश्चाभवन्मुने ॥२३॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

॥ नारद उवाच ॥ नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह ॥ तुलसी कुत्र संभूता का वा सा पूर्वजन्मनि ॥ १ ॥ कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्या कुले सती ॥ केन वा तपसा सा च संप्राप्ता प्रकृतेः परम् ॥ २ ॥ निर्विकारं निरीहं च सर्वविश्वस्वरूपकम् ॥ नारायणं परं ब्रह्म परमेश्वरमीश्वरम् ॥ ३ ॥ सर्वाराध्यं च सर्वेशं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥ सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम् ॥ ४ ॥ कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह ॥ कथं साऽप्यसुरग्रस्ता संबभूव तपस्विनी ॥५॥ सुस्निग्धं मे मनो लोलं प्रेरयन्मां मुहुर्मुहुः ॥ छेत्तुमर्हसि संदेहं सर्वं संदेहभंजन ॥६॥ नारायण उवाच॥ मनुश्च दक्षसावर्णिः पुण्यवान्वैष्णवः शुचिः ॥ यशस्वी कीर्तिमांश्चैव विष्णोरंशसमुद्भवः ॥ ७ ॥ तत्पुत्रो ब्रह्मसावर्णिर्धर्मिष्ठो वैष्णवः शुचिः ॥ तत्पुत्रो धर्मसावर्णिर्वैष्णवश्च जितेन्द्रियः ॥८॥ तत्पुत्रो रुद्रसावर्णिर्भक्तिमान्विजितेन्द्रियः ॥ तत्पुत्रो देवसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः ॥ ९ ॥ तत्पुत्र इन्द्रसावर्णि-र्महाविष्णुपरायणः॥ वृषध्वजश्च तत्पुत्रो वृषध्वजपरायणः ॥ १० ॥ यस्याश्रमे स्वयं शंभुरासीद्देवयुगत्रयम् ॥ पुत्रादपि परः स्नेहो नृपे तस्मिञ्शिवस्य

हैं। दूसरा प्रश्न यह है कि ऐसी सुयोग्या देवीको वृक्ष क्यों होना पड़ा और यह परम तपस्विनी देवी असुरके चंगुलमें कैसे फँस गयी ? ॥ ५ ॥ संपूर्ण संदेहोंको दूर करनेवाले हे प्रभो ! आप मेरे इस संशयको मिटानेकी कृपा करें ॥६॥ विष्णु बोले—मेरे अंशसे प्रकट दक्षसावर्णि मनु परम पवित्र, यशस्वी, कीर्तिमान् तथा श्रीहरिके प्रति परम श्रद्धालु थे। इनके पुत्रका नाम था ब्रह्मसावर्णि। उनका भी अन्तःकरण स्वच्छ था। उनके मनमें धार्मिक भावना थी और भगवान श्रीहरिपर वे श्रद्धा रखते थे। ब्रह्मसावर्णिके पुत्र धर्मसावर्णि नामसे प्रसिद्ध हुए, जिनकी इंद्रियाँ सदा वशमें रहती थीं और मन श्रीहरिकी उपासनामें निरत रहता था ॥ ७ ॥ ८ ॥ धर्मसावर्णिसे इन्द्रिय-निग्रही एवं परमभक्त रुद्रसावर्णि उत्पन्न हुए। रुद्रसावर्णिके पुत्रका नाम देवसावर्णि पड़ा। ये भी परम वैष्णव थे ॥ ९ ॥ देवसावर्णिके पुत्रका नाम इन्द्रसावर्णि था। फिर भगवान विष्णुके अनन्य भक्त उन इन्द्रसावर्णिसे वृषध्वजका जन्म हुआ ॥ १० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् शंकरपर वृषध्वजकी असीम श्रद्धा थी । स्वयं भगवान् शंकर उसके यहाँ बहुत कालतक ठहरे थे । उसके प्रति भगवान् शंकरका स्नेह पुत्रसे भी बढ़कर था ॥ ११ ॥ राजा वृषध्वज-
की भगवान् नारायण, लक्ष्मी और सरस्वती–इनमेंसे किसीके प्रति श्रद्धा नहीं थी । उसने सम्पूर्ण देवताओंका पूजन त्याग दिया था ॥१२॥ अभिमानमें चूर होकर वह भाद्रपदमासमें महा-
लक्ष्मीकी पूजामें विघ्न उपस्थित किया करता था । माघ शुक्ल पञ्चमीके दिन समस्त देवता सरस्वतीकी विस्तृतरूपसे पूजा करते थे, परन्तु वह नरेश उसमें सम्मिलित नहीं होता था ।
यज्ञ और विष्णुपूजाकी निन्दा करना उसका मानो स्वभाव ही बन गया था । वह केवल भगवान शिवपर ही श्रद्धा रखता था । ऐसे स्वभाववाले राजा वृषध्वजको देखकर क्रुद्ध सूर्यने उसे
शाप देते हुए कहा—'हे राजन् ! तेरी श्री नष्ट हो जाय ।' ॥१३–१५॥ अपने भक्तपर संकट देखकर आशुतोष भोलेनाथ शंकर हाथमें त्रिशूल लेकर सूर्यपर टूट पड़े । तब सूर्य अपने पिता
कश्यपके साथ ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ १६ ॥ तभी शंकर त्रिशूल लिये ब्रह्मलोकको चल दिये । ब्रह्माको भी शंकरजीका भय था । अतएव उन्होंने सूर्यको आगे करके वैकुण्ठकी यात्रा की

च ॥ ११ ॥ न च नारायणं मेने न लक्ष्मीं न सरस्वतीम् ॥ पूजां च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः ॥ १२ ॥ भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां मत्तो
बभंज ह ॥ तथा माघीयपंचम्यां विस्तृतां सर्वदैवतैः ॥१३॥ पापः सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः ॥ यज्ञं च विष्णुपूजां च निंदंतं तं दिवा-
करः ॥ १४ ॥ चुकोप देवो भूपेंद्रं शशाप शिवकारणात् ॥ भ्रष्टश्रीस्त्वं च भवेति तं शशाप दिवाकरः ॥ १५ ॥ शूलं गृहीत्वा तं सूर्यमधावच्छंकरः
स्वयम् ॥ पित्रा सार्द्धं दिनेशश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १६ ॥ शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा ॥ ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठं च ययौ
भिया ॥ १७ ॥ ब्रह्मकश्यपमार्तंडाः संत्रस्ताः शुष्कतालुकाः ॥ नारायणं च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया ॥ १८ ॥ मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवुश्च
पुनः पुनः ॥ सर्वं निवेदनं चक्रुर्भयस्य कारणं हरौ ॥ १९ ॥ नारायणश्च कृपया तेभ्यश्च ह्यभयं ददौ ॥ स्थिरा भवत हे भीता भयं किं च मयि
स्थिते ॥ २० ॥ स्मरंति ये यत्र यत्र मां विपत्तौ भयान्विताः ॥ तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥ २१ ॥ पाताऽहं जगतां देवाः
कर्ता च सततं सदा ॥ स्रष्टा च ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः ॥ २२ ॥ शिवोऽहं त्वमहं चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः ॥ विधाय नानारूपं च
करोमि सृष्टिपालनम् ॥ २३ ॥ यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः ॥ अद्यप्रभृति मद्वरेण भयं वो नास्ति शंकरात् ॥ २४ ॥ सर्वेशो वै स

॥१७॥ उस समय ब्रह्मा, कश्यप और सूर्य तीनों भयभीत थे और उनका तालु सूख गया था । उन तीनों महानुभावोंने भयवश सर्वेश भगवान् नारायणकी शरण ग्रहण की ॥१८॥ तीनों-
ने मस्तक झुकाकर भगवान् श्रीहरिको प्रणाम किया, बारम्बार प्रार्थना की और उनके सामने अपने भयका सम्पूर्ण कारण कह सुनाया ॥ १९ ॥ तब भगवान् नारायणने कृपापूर्वक उन
सबको अभय प्रदान किया और कहा–'हे भयभीत देवताओ ! स्थिर हो जाओ । मेरे रहते तुम्हें कोई भय नहीं है ॥ २० ॥ विपत्तिके अवसरपर डरे हुए जो भी व्यक्ति जहाँ कहीं भी
मुझे याद करते हैं, मैं चक्रके साथ वहीं पहुँचकर तुरन्त उनकी रक्षा करता हूँ ॥२१॥ हे देवो ! मैं अखिल जगत्का कर्ता-भर्ता हूँ । मैं ही ब्रह्मारूपसे संसारकी सृष्टि करता हूँ और शंकर-
रूपसे संहार ॥ २२ ॥ मैं ही शिव हूँ । तुम भी मेरे ही रूप हो और ये शंकर भी मुझसे भिन्न नहीं हैं । मैं ही नाना रूप धारण करके सृष्टि और पालनकी व्यवस्था किया करता हूँ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥२३॥ हे देवताओ ! तुम्हारा कल्याण हो । जाओ, अब तुम्हें भय नहीं होगा । मैं वचन देता हूँ कि आजसे शंकरका भय तुम्हारे पास नहीं आ सकेगा ॥ २४ ॥ वे सर्वेश भगवान शंकर सत्पुरुषोंके स्वामी हैं । उन्हें भक्तवत्सल कहा जाता है और वे सदा भक्तोंके अधीन रहते हैं ॥२५॥ हे ब्रह्मन् ! सुदर्शन चक्र और भगवान शंकर–ये दोनों मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं । ब्रह्मांडमें इनसे अधिक दूसरा कोई तेजस्वी नहीं है ॥२६॥ चाहें तो वे लीलापूर्वक करोड़ों सूर्योंको प्रकट कर सकते हैं । करोड़ों ब्रह्माओंके निर्माणकी भी इनमें पूर्ण सामर्थ्य है ॥ २७ ॥ इन त्रिशूलधारी भगवान शंकरके लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है, तथापि कुछ भी बाहरी ज्ञान न रखकर ये दिन-रात मेरे ही ध्यानमें लगे रहते हैं । अपने पाँचों मुखोंसे मेरे मन्त्रोंका जप करना और भक्तिपूर्वक मेरे गुण गाते रहना इनका स्वभाव-सा बन गया है ॥२८॥ मैं भी रात-दिन इनके कल्याणकी चिन्तामें ही लगा रहता हूँ । क्योंकि जो जिस प्रकार मेरी उपासना करते हैं, उसी प्रकार मैं भी उनकी सेवामें तत्पर रहता हूँ–यह मेरा नियम है ॥ २९ ॥ इतनेमें भगवान शंकर भी वहाँ पहुँच गये । शंकरजी शिवस्वरूप और शिव (कल्याण)के अधिष्ठाता हैं । इस कारण

भगवाञ्छंकरश्च सतां पतिः ॥ भक्ताधीनश्च भक्तानां भक्तात्मा भक्तवत्सलः ॥ २५ ॥ सुदर्शनः शिवश्चैव मम प्राणाधिकः प्रियः ॥ ब्रह्माण्डेषु न
तेजस्वी हे ब्रह्मन्ननयोः परः ॥ २६ ॥ शक्तः स्रष्टुं महादेवः सूर्यकोटिं च लीलया ॥ कोटिं च ब्रह्मणामेवं नासाध्यं शूलिनः प्रभोः ॥ २७ ॥ बाह्य-
ज्ञानं नैव किंचिद्ध्यायते मां दिवानिशम् ॥ मन्मंत्रान्मद्गुणान्भक्त्या पंचवक्त्रेण गायति ॥ २८ ॥ अहमेवं चिंतयामि तत्कल्याणं दिवानिशम् ॥
ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥ २९ ॥ शिवस्वरूपो भगवाञ्छिवाधिष्ठातृदेवता ॥ शिवं भवति तस्माच्च शिवं तेन विदुर्बुधाः ॥ ३० ॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र जगाम शंकरः स्थितः ॥ शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपंकजलोचनः ॥ ३१ ॥ अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥ ननाम
भक्त्या तं शांतं लक्ष्मीकांतं परात्परम् ॥ ३२ ॥ रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालंकारभूषितम् ॥ किरीटिनं कुंडलिनं चक्रिणं वनमालिनम् ॥ ३३ ॥ नवीन-
नीरदश्यामं सुंदरं च चतुर्भुजम् ॥ चतुर्भुजैः सेवितं च श्वेतचामरवायुना ॥ ३४ ॥ चन्दनोक्षितसर्वांगं भूषितं पीतवाससम् ॥ लक्ष्मीप्रदत्ततांबूलं
भुक्तवंतं च नारद ॥ ३५ ॥ विद्याधरीनृत्यगीतं पश्यंतं सस्मितं सदा ॥ ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ३६ ॥ तं ननाम महादेवो ब्रह्मणा

विद्वान् लोग उन्हें शिव कहते हैं ॥३ ॥ उसी समय शिवजी भी वहाँ पहुँच गये । उनके हाथमें त्रिशूल था । वे वृषभपर आरूढ़ थे और आँखें रक्तकमलके समान लाल थीं ॥३१॥ वहाँ पहुँचते ही वे वृषभसे उतर पड़े और भक्तिविनम्र होकर उन्होंने शान्तस्वरूप परात्पर प्रभु लक्ष्मीकान्त भगवान नारायणको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया ॥३२॥ उस समय भगवान श्रीहरि रत्नमय सिंहासनपर विराजमान थे । रत्ननिर्मित अलंकारोंसे उनका श्रीविग्रह सुशोभित था । किरीट, कुंडल, चक्र और वनमालासे वे अनुपम शोभा पा रहे थे ॥३३॥ नूतन मेघके समान उनकी श्याम कांति थी । उनका परम सुन्दर विग्रह चार भुजाओंसे सुशोभित था और चार भुजावाले अनेक पार्षद स्वच्छ चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रहे थे ॥३४॥ हे नारद ! उनका सम्पूर्ण अङ्ग दिव्य चन्दनसे अनुलिप्त था । वे अनेक प्रकारके भूषण और पीताम्बर धारण किये हुए थे । लक्ष्मीका दिया हुआ ताम्बूल उनके मुखमें शोभा पा रहा था ॥३५॥ मुसकाते हुए वे विद्याधरियोंका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नृत्यगीत देख-सुन रहे थे, उन ईश्वर परमात्मा और भक्तोंपर अनुग्रहशील प्रभुको देखकर भगवान् शंकरका मस्तक उनके चरणोंमें झुक गया। ब्रह्माने शङ्करजीको प्रणाम किया तथा अत्यन्त डरते हुए सूर्य भी शंकरजीको प्रणाम करने लगे ॥३६॥३७॥ कश्यपने भी अतिशय भक्तिके साथ स्तुति और प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान् शिव सर्वेश्वर श्रीहरिकी स्तुति करके एक सुखमय आसनपर विराज गये ॥ ३८ ॥ विष्णुके पार्षदोंने श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा की। जब उनका मार्गश्रम दूर हो गया, तब भगवान् श्रीहरिने अमृतके समान अत्यन्त मनोहर एवं मधुर वचन कहा। भगवान् विष्णु बोले—हे महादेव! आपका यहाँ कैसे पधारना हुआ? क्रोधका कारण बताइये ॥३९॥४०॥ महादेवने कहा—भगवन्! राजा वृषध्वज मेरा परम भक्त है। मैं उसे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय मानता हूँ। सूर्यने उसे शाप दे दिया है—यही मेरे क्रोधका कारण है ॥ ४१ ॥ जब मैं अपने कृपापात्र पुत्रके शोकसे प्रभावित होकर सूर्यको मारनेके लिए तैयार हुआ, तब ब्रह्मासहित सूर्यने आपकी शरण ग्रहण कर ली ॥ ४२ ॥ जो लोग ध्यान अथवा वचनसे भी आपके शरणापन्न हो जाते हैं, उनपर विपत्ति और संकट अपना कुछ भी

नमितश्च सः ॥ ननाम सूर्यो भक्त्या च संत्रस्तश्चंद्रशेखरम् ॥ ३७ ॥ कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च ननाम च ॥ शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने ॥ ३८ ॥ सुखासने सुखासीनं विश्रांतं चंद्रशेखरम् ॥ श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः ॥ ३९ ॥ पीयूषतुल्यमधुरं वचनं सुमनोहरम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ आगतोऽसि कथं चात्र वद कोपस्य कारणम् ॥ ४० ॥ महादेव उवाच ॥ वृषध्वजं च मद्भक्तंमम प्राणाधिकं प्रियम् ॥ सूर्यः शशाप इति मे प्रकोपस्य तु कारणम् ॥ ४१ ॥ पुत्रवत्सलशोकेन सूर्यं हंतुं समुद्यतः ॥ स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च सूर्यश्च स विधिस्त्वयि ॥ ४२ ॥ त्वयि ये शरणापन्ना ध्यानेन वचसाऽपि वा ॥ निरापदो विशंकास्ते जरा मृत्युश्च तैर्जितः ॥ ४३ ॥ प्रत्यक्षं शरणापन्नास्तत्फलं किं वदामि भोः ॥ हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमंगलदा सदा ॥ ४४ ॥ किं मे भक्तस्य भविता तन्नो ब्रूहि जगत्प्रभो ॥ श्रीहतस्यास्य मूढस्य सूर्यशापेन हेतुना ॥ ४५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ कालोऽतियातो दैवेन युगानामेकविंशतिः ॥ वैकुण्ठं घटिकार्धेन शीघ्रं गच्छ त्वमालयम् ॥ ४६ ॥ वृषध्वजो मृतः कालाद्दुर्निवार्यात्सुदारुणात् ॥ रथध्वजश्च तत्पुत्रो मृतः सोऽपि श्रिया ततः ॥ ४७ ॥ तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ ॥ हतश्रियौ सूर्यशापात्स्मृतौ

प्रभाव नहीं डाल सकते। वे जरा और मृत्युसे सर्वथा रहित हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन्! शरणागतिका फल तो प्रत्यक्ष ही है, फिर मैं क्या कहूँ? आपका स्मरण करते ही मनुष्य सदाके लिए अभय एवं मङ्गलमय बन जाते हैं ॥४४॥ परंतु हे जगत्प्रभो! अब मेरे उस भक्तकी जीवनचर्या कैसे चलेगी—यह बतानेकी कृपा कीजिये। क्योंकि सूर्यके शापसे उसकी श्री नष्ट हो चुकी है। उसमें सोचने-समझनेकी शक्ति तनिक भी नहीं रह गयी है ॥४५॥ भगवान् विष्णु बोले—हे शम्भो! दैवकी प्रेरणासे बहुत समय बीत गया। इक्कीस युग समाप्त हो गये। यद्यपि वैकुण्ठमें अभी आधी घड़ीका समय बीता है। अतः अब आप शीघ्र अपने स्थानपर पधारिए ॥४६॥ किसीसे भी न रुकनेवाले अत्यन्त भयंकर कालने इस समय वृषध्वजको अपना ग्रास बना लिया है। उसका पुत्र रथध्वज भी मर चुका है। रथध्वजके दो पुत्र हैं। उनके नाम हैं—धर्मध्वज और कुशध्वज। वे परम वैष्णव पुरुष सूर्यके शापसे श्रीहीन होकर जीवन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यतीत कर रहे हैं ॥४७॥४८॥ राज्य भी उनके हाथमें नहीं है। एकमात्र लक्ष्मीकी उपासना ही उनके जीवनका उद्देश्य बन गया है। अतः उनकी भार्याओंके उदरसे भगवती लक्ष्मी अपनी एक कलासे प्रकट होंगी ।४९॥ तब वे दोनों नरेश लक्ष्मीसे सम्पन्न हो जायँगे। हे शंभो! अब आपके सेवक वृषध्वजका शरीर नहीं रहा। अतः आप यहाँसे पधार सकते हैं। हे देवताओं! अब आप लोग भी जानेका कष्ट करें ॥५०॥ हे नारद! इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरि लक्ष्मीके साथ सभासे उठे और अन्तःपुरमें चले गये। देवताओंने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमकी यात्रा की। परिपूर्णतम शंकर उसी क्षण तपस्या करनेके विचारसे चल पड़े ॥५१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः॥१५॥

(वेदवतीकी कथा, इसी प्रसङ्गमें भगवान् रामके चरित्रका एक अंश कथन और भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त) भगवान् नरायण कहते हैं—हे मुने! धर्मध्वज और कुशध्व--ये दोनों नरेश कठिन तपस्या द्वारा भगवती लक्ष्मीकी उपासना करके एक-एक अभीष्ट वरसे सम्पन्न हो गये ॥ १ ॥ महालक्ष्मीके वर-प्रसादसे उन्हें राजा होनेका सुअवसर पुनः

परमवैष्णवौ ॥४८॥ राज्यभ्रष्टौ श्रिया भ्रष्टौ कमलातपसा रतौ ॥ तयोश्च भार्ययोर्लक्ष्मीः कलया च भविष्यति ॥ ४९ ॥ संपद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः ॥ मृतस्ते सेवकः शंभो गच्छ यूयं च गच्छत ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा च सलक्ष्मीकः सभातोऽभ्यन्तरं गतः ॥ देवा जग्मुः संप्रहृष्टाः स्वाश्रमं परया मुदा ॥ शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमो ययौ ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे शक्तिप्रादुर्भावे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने ॥ वरमिष्टं च प्रत्येकं संप्रापतुरभीप्सितम् ॥ १ ॥ महालक्ष्मीवरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः ॥ पुण्यवंतौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ ॥२॥ कुशध्वजस्य पत्नी च देवी मालावती सती ॥ सा सुषाव च कालेन कमलांशां सुतां सतीम् ॥ ३ ॥ सा च भूयिष्ठकालेन ज्ञानयुक्ता बभूव ह ॥ कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहात् ॥ ४ ॥ वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका ॥ तस्मात्तां च वेदवतीं प्रवदंति मनीषिणः ॥ ५ ॥ जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम् ॥ सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥ ६ ॥ एकमन्वंतरं चैव पुष्करे च तपस्विनी ॥ अत्युग्रां च तपस्यां च लीलया हि चकार सा ॥ ७ ॥ तथापि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवनसंयुता ॥ शुश्राव सा च सहसा सुवाचमशरीरिणीम् ॥ ८ ॥ जन्मांतरे च ते भर्ता भविष्यति हरिः स्वयम् ॥ ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसि सुंदरि ॥ ९ ॥

प्राप्त हो गया। उनके मनमें धार्मिक भावना उत्पन्न हो गयी और वे पुत्रवान् बन गये ॥ २ ॥ कुशध्वजकी परम साध्वी भार्याका नाम मालावती था। समयानुसार उसके एक कन्या उत्पन्न हुई, जो लक्ष्मीकी अंश थी ॥३॥ दीर्घकालसे उसे ज्ञान प्राप्त था। उस कन्याने जन्म लेते ही स्पष्ट स्वरसे वेदके मन्त्रोंका उच्चारण किया। तभी वह उठ कर सूतिकागृहसे बाहर निकल आयी। इसीलिये विद्वान् पुरुष उसे 'वेदवती' कहने लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ उत्पन्न होते ही उस कन्याने स्नान किया और तपस्या करनेके विचारसे वनकी ओर चल पड़ी। भगवान् नारायणके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाली उस देवीको प्रायः सभीने रोका, परन्तु उसने किसीकी नहीं सुनी ॥६॥ वह तपस्विनी कन्या एक मन्वंतरतक पुष्करक्षेत्रमें रही। उसका अत्यन्त कठिन तप लीलापूर्वक चलता रहा ॥७॥ अत्यन्त तपोनिष्ठ रहनेपर भी उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट बना रहा। उसमें दुर्बलता नहीं आ सकी। इतनेमें सहसा उसे यह स्पष्ट आकाशवाणी सुनायी पड़ी—॥८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'हे सुन्दरी ! दूसरे जन्ममें भगवान् श्रीहरि तुम्हारे पति होंगे । ब्रह्माप्रभृति देवता भी बड़ी कठिनाईसे जिनकी उपासना कर पाते हैं, उन्हीं परम प्रभुको स्वामी बनानेका स्वर्णअवसर तुम्हें प्राप्त होगा ।' ॥९॥ हे मुने ! इस प्रकारकी आकाशवाणी सुननेके पश्चात् वेदवती नामको वह कन्या गन्धमादन पर्वतपर गयी और वहाँके निर्जन वनमें उसने पहलेसे भी अधिक कठिन तप आरम्भ कर दिया ॥ १० ॥ वहीं एक दिन उसे अपने सामने रावण दिखायी पड़ा, जो बड़ी कठिनाईसे हटाया जा सकता था ॥ ११ ॥ तब वेदवतीने अतिथि-धर्मके अनुसार पाद्य, परम स्वादिष्ट फल और शीतल जलसे उसका सत्कार किया ॥ १२ ॥ रावण अत्यन्त नीच था । सत्कार पानेके पश्चात् वह वेदवतीके समीप जाकर पूछने लगा—'हे कल्याणी ! तुम कौन हो और यहाँ क्यों ठहरी हुई हो ?' ॥ १३ ॥ वह देवी परम सुन्दरी थी । उस साध्वी कन्याके मुखमण्डलपर मुसकान छायी रहती थी । उसे देखकर दुराचारी रावण बावला हो गया । उसका हृदय कामविकारसे संतप्त हो उठा । वेदवतीको हाथसे खींचकर वह पापी उसका शृङ्गार करने लगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ रावणकी इस कुचेष्टाको देखकर उस

इति श्रुत्वा च सा हृष्टा चकार ह पुनस्तपः ॥ अतीव निर्जनस्थाने पर्वते गंधमादने ॥ १० ॥ तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वस्य समुवास सा ॥ ददर्श
पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा साऽतिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौ किल ॥ सुस्वादुभूतं च फलं जलं चापि सुशीतलम् ॥ १२ ॥
तच्च भुक्त्वा स पापिष्ठश्चोवास तत्समीपतः ॥ चकार प्रश्नमिति तां का त्वं कल्याणि वर्तसे ॥ १३ ॥ तां दृष्ट्वा स वरारोहां पीनश्रोणिपयोधराम् ॥
शरत्पद्मोत्सवास्यां च सस्मितां सुदतीं सतीम् ॥ १४ ॥ मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीडितः ॥ स करेण समाकृष्य शृङ्गारं कर्तुमुद्यतः ॥ १५ ॥
सती चुकोप दृष्ट्वा तं स्तम्भितं च चकार ह ॥ स जडो हस्तपादैश्च किंचिद्वक्तुं न च क्षमः ॥१६॥ तुष्टाव मनसा देवीं प्रययौ पद्मलोचनाम् ॥ सा
तुष्टा तस्य स्तवनं सुकृतं च चकार ह ॥ १७ ॥ सा शशाप मदर्थे त्वं विनंक्ष्यसि सबांधवः ॥ स्पृष्टाऽहं च त्वया कामाद्बलं चाप्यवलोकय ॥ १८ ॥
इत्युक्त्वा सा च योगेन देहत्यागं चकार सा ॥ गंगायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणो ययौ ॥१९॥ अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वाऽनयाऽधुना ॥
इति संचिंत्य संचित्य विललाप पुनः पुनः ॥२०॥ सा च कालान्तरे साध्वी बभूव जनकात्मजा ॥ सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः ॥२१॥

साध्वीका मन क्रोधसे भर गया । उसने रावणको अपने तपोबलसे इस प्रकार स्तम्भित कर दिया कि वह जडवत् होकर हाथों एवं पैरोंसे निश्चेष्ट हो गया । कुछ भी कहने-करनेकी उसमें क्षमता नहीं रह गयी ॥१६॥ ऐसी स्थितिमें उसने मन ही मन उस कमललोचना देवीके पास जाकर उसका मनसे स्तवन किया ॥१७॥ शक्तिकी उपासना विफल नहीं होती, इसे सिद्ध करनेके विचारसे देवी वेदवती रावणपर संतुष्ट हो गयीं और परलोकमें उसकी स्तुतिका फल देना उन्होंने स्वीकार कर लिया । साथ ही उसे शाप देते हुए कहा—'दुरात्मन् ! तू मेरे लिये ही अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ कालका ग्रास बनेगा । क्योंकि तूने कामभावसे मुझे स्पर्श कर लिया है । अब तू मेरा बल देख ।' ॥१८॥ देवी वेदवतीने ऐसा कहकर वहीं योग द्वारा अपने शरीरका त्याग कर दिया । तब रावणने उसका मृत शरीर गंगामें डाल दिया और मनमें इस प्रकार चिन्ता करते हुए घरकी ओर प्रयाण किया—॥ १९ ॥ 'अहो, मैंने यह कैसा अद्भुत दृश्य देखा । इस देवीके द्वारा कैसी अघटित घटना घट गयी ।' इस प्रकार विचार करता हुआ रावण जोर-जोरसे रोने लगा ॥२०॥ हे मुने ! वही साध्वी देवी वेदवती दूसरे जन्ममें जन-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ककी कन्या हुई और उस देवीका नाम सीता पड़ा, जिसके कारण रावणको मृत्युका मुख देखना पड़ा था ॥ २१ ॥ वेदवती बड़ी तपस्विनी थी। पूर्वजन्मकी तपस्याके प्रभावसे स्वयं भगवान् श्रीराम उसके पति हुए। ये राम साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि थे ॥ २२ ॥ इन जगत्पतिकी आराधना सबके लिए सहज नहीं है। देवी वेदवतीने घोर तपस्याके प्रभावसे इन्हें प्राप्त किया था। सीतारूपसे विराजमान उस सुन्दरी देवीने बहुत दिनोंतक भगवान् श्रीरामके साथ सुख भोगा ॥ २३ ॥ उसे पूर्वजन्मकी बातें स्मरण थीं, फिर भी पूर्व समयमें तपस्यासे जो कष्ट हुआ था, उसने उसपर ध्यान नहीं दिया। वर्तमान सुखके सामने उसने सम्पूर्ण पूर्व क्लेशोंकी स्मृतिका त्याग कर दिया था ॥ २४ ॥ श्रीराम परम गुणी, समस्त सुलक्षणोंसे सम्पन्न, रसिक, शान्तस्वभाव, अत्यन्त कमनीय, स्त्रियोंके लिये साक्षात् कामदेवके समान सुन्दर एवं श्रेष्ठतम देवता थे। वेदवतीने ऐसे मनोऽभिलषित स्वामीको प्राप्त किया ॥ २५ ॥ २६ ॥ तदनन्तर कालकी अपार महिमासे प्रेरित होकर रघुकुलभूषण तथा सत्यसंध भगवान् श्रीराम पिताके वचनको सत्य करनेके लिए वनमें पधारे ॥ २७ ॥ वे सीता और लक्ष्मणके साथ

महातपस्विनी सा च तपसा पूर्वजन्मतः ॥ लेभे रामं च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम् ॥ २२ ॥ संप्राप तपसाऽऽराध्य दुराराध्यं जगत्पतिम् ॥ सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुंदरी ॥ २३ ॥ जातिस्मरा न स्मरति तपसश्च क्लमं पुरा ॥ सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखं चापि सुखं फले ॥ २४ ॥ नानाप्रकारविभवं चकार सुचिरं सती ॥ संप्राप्य सुकुमारं तमतीव नवयौवना ॥ २५ ॥ गुणिनं रसिकं शांतं कान्तं देवमनुत्तमम् ॥ स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरं तथा लेभे यथेप्सितम् ॥ २६ ॥ पितुः सत्यपालनार्थं सत्यसंधो रघूद्वहः ॥ जगाम काननं पश्चात्कालेन च बलीयसा ॥ २७ ॥ तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ददर्श तत्र वह्निं च विप्ररूपधरं हरिः ॥ २८ ॥ रामं च दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह ॥ उवाच किंचित्सत्येष्टं सत्यं सत्यपरायणः ॥ २९ ॥ द्विज उवाच ॥ भगवञ्छ्रूयतां राम कालोऽयं यदुपस्थितः ॥ सीताहरणकालोऽयं तवैव समुपस्थितः ॥ ३० ॥ दैवं च दुर्निवार्यं च न च दैवात्परो बली ॥ जगत्प्रसूं मयि न्यस्य छायां रक्षांतिकेऽधुना ॥ ३१ ॥ दास्यामि सीतां तुभ्यं च परीक्षासमये पुनः ॥ देवैः प्रस्थापितोऽहं च न च विप्रो हुताशनः ॥ ३२ ॥ रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम् ॥ स्वीकारं वचसश्चक्रे हृदयेन विदूयता ॥ ३३ ॥ वह्नियोगेन सीताया मायासीतां चकार ह ॥ तत्तुल्यगुणसर्वांगां ददौ रामाय नारद ॥ ३४ ॥ सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषिध्य च ॥

समुद्रके समीप टिके हुए थे। इसी समय ब्राह्मणरूपधारी अग्निसे उनकी भेंट हुई ॥२८॥ भगवान् रामको दुखी देखकर विप्ररूपधारी अग्निका मन संतप्त हो उठा। तब सर्वथा सत्यवादी उन अग्निदेवने सत्यप्रेमी भगवान् रामसे ये सत्य वचन कहे ॥ २९ ॥ ब्राह्मणवेषधारी अग्निने कहा-भगवन्! मेरी कुछ प्रार्थना सुनिये। हे श्रीराम! सीताके हरणका समय अब आपके समक्ष उपस्थित हो रहा है। इसी अवसरपर इनका हरण होगा ॥३०॥ अतएव आप इन जगज्जननी सीताको मुझमें स्थापित करके छायामयी सीताको अपने साथ रखिये ॥३१॥ समय आनेपर इन्हें मैं आपको लौटा दूँगा। उसी समय इनकी परीक्षा-लीला भी हो जायगी। इसी कार्यके लिये मुझे देवताओंने यहाँ भेजा है। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, किन्तु साक्षात् अग्नि हूँ ॥ ३२ ॥ भगवान् श्रीरामने अग्निकी बात सुनकर लक्ष्मणको बताये बिना ही अत्यन्त दुःखके साथ अग्निके प्रस्तावका मान लिया ॥ ३३ ॥ हे नारद! उन्होंने सीताको अग्निके हाथों सौंप दिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तब अग्निसे मायारूपिणी एक सीता प्रकट हुई। उसके सभी अङ्ग और गुण साक्षात् सीताके समान ही थे ॥ ३४ ॥ अग्निदेवके यौगिक प्रभावसे ऐसी सीता रामको मिल गयी। फिर वे उसे लेकर आगे बढ़े। इस गुप्त रहस्यको प्रकट करनेसे मायामयी सीताको भगवान रामने रोक दिया। यहाँतक कि लक्ष्मण भी इस रहस्यको नहीं जान सके, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ॥ ३५ ॥ उसी समय भगवान रामने एक सुवर्णमय मृग देखा। सीताने उस मृगको लानेके लिए भगवान रामसे अनुरोध किया ॥ ३६ ॥ भगवान राम उस वनमें जानकीकी रक्षाके लिए लक्ष्मणको नियुक्त करके स्वयं मृगकी ओर शीघ्रतापूर्वक दौड़े और बाणसे उसे मार गिराया ॥ ३७ ॥ मरते समय उस मायामृगके मुखसे 'हा लक्ष्मण!' यह शब्द निकला। परम सौभाग्यसे उसे भगवान श्रीरामका स्मरण हो आया और अकस्मात् उसके प्राणपखेरू उड़ गये ॥ ३८ ॥ मृगका शरीर त्यागकर वह दिव्यदेहसे सम्पन्न हो गया और रत्ननिर्मित विमानपर सवार होकर वैकुण्ठको चला गया ॥ ३९ ॥ वह मारीच पूर्वजन्ममें दोनों द्वारपालोंका अनुचर बनकर वैकुण्ठके द्वारपर रहता था। किसी कारणवश उसे राक्षसकी योनि मिल

लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कानकं मृगम् ॥ सीता तं प्रेरयामास तदर्थे यत्नपूर्वकम् ॥ ३६ ॥
संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानक्या रक्षणे वने ॥ स्वयं जगाम तूर्णं तं विव्याध सायकेन च ॥ ३७ ॥ लक्ष्मणेति च शब्दं स कृत्वा च मायया मृगः ॥
प्राणांस्तत्याज सहसा पुरो दृष्ट्वा हरिं स्मरन् ॥ ३८ ॥ मृगदेहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च ॥ रत्ननिर्मितयानेन वैकुंठं स जगाम ह ॥ ३९ ॥
वैकुण्ठलोकद्वार्यासीत्किंकरो द्वारपालयोः ॥ पुनर्जगाम तद्द्वारमादेशाद्द्वारपालयोः ॥ ४० ॥ अथ शब्दं च सा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विक्लवम् ॥
तं हि सा प्रेरयामास लक्ष्मणं रामसन्निधौ ॥ ४१ ॥ गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः ॥ सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया ॥ ४२ ॥
विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् ॥ तूर्णं च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्श सः ॥ ४३ ॥ मूर्च्छां संप्राप सुचिरं विललाप भृशं पुनः ॥
पुनः पुनश्च बभ्राम तदन्वेषणपूर्वकम् ॥ ४४ ॥ कालेन प्राप्य तद्वार्तां गोदावरीनदीतटे ॥ सहायान्वानरान्कृत्वा बबंध सागरं हरिः ॥ ४५ ॥
लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च ॥ कालेन प्राप्य तं हत्वा रावणं बांधवैः सह ॥ ४६ ॥ तां च वह्निपरीक्षां च कारयामास सत्वरम् ॥

गयी थी। अब द्वारपालोंके आदेशानुसार वह फिर वैकुण्ठके द्वारपर पहुँच गया ॥४०॥ तदनन्तर 'हा लक्ष्मण' इस कष्ट भरे शब्दको सुनकर सीताने लक्ष्मणको रामके पास जानेके लिए प्रेरित किया ॥ ४१ ॥ रावण अपनी धुनका अटल था। अतः रामके पास लक्ष्मणके चले जानेपर सीताका अपहरण करके खेल-ही-खेलमें वह लङ्काकी ओर चल पड़ा ॥ ४२ ॥ उधर लक्ष्मणको वनमें देखकर रामके कष्टकी सीमा नहीं रही। वे उसी क्षण अपने आश्रमपर गये और सीताको वहाँ नहीं देखा ॥४३॥ जिससे राम तत्काल मूर्छित हो गये और होश आनेपर बड़ी देरतक विलाप करते रहे। फिर, सीताको खोजते हुए वे बारम्बार इधर-उधर चक्कर लगाने लगे ॥ ४४ ॥ कुछ समय बाद गोदावरी नदीके तटपर उन्हें सीताका समाचार मिला। तब वानरोंको अपना सहायक बनाकर उन्होंने समुद्रपर पुल बाँधा ॥४५॥ समयानुसार वे लंकामें पहुँच गये। वहाँ रावणके साथ भयानक युद्ध हुआ और रावण तथा उसके सभी भाई-बन्धु मृत्युके मुखमें चले गये ॥४६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्पश्चात् सीताकी अग्निपरीक्षा हुई। अग्निदेवने उसी क्षण वास्तविक सीताको भगवान रामके सामने उपस्थित कर दिया॥४७॥ तब छायामयी सीताने अत्यन्त नम्र होकर अग्निदेव और भगवान श्रीराम दोनोंसे कहा—'हे महानुभाव! अब मैं क्या करूँ, सो बतानेकी कृपा कीजिये' ॥ ४८ ॥ तब भगवान श्रीराम और अग्निदेव बोले – हे देवी! तुम तप करनेके लिए अत्यन्त पुण्यप्रद पुष्करक्षेत्रमें चली जाओ। वहीं रहकर तपस्या करना। उसके फलस्वरूप तुम्हें स्वर्गलक्ष्मी बननेका सुअवसर प्राप्त होगा ॥ ४९ ॥ भगवान् श्रीराम और अग्निदेवके वचन सुनकर छायासीताने पुष्करक्षेत्रमें जाकर तप आरम्भ कर दिया। उसकी कठिन तपस्या दिव्य तीन लाख वर्षतक चलती रही। इसके बाद उसे स्वर्गलक्ष्मी होनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया ॥ ५० ॥ समयानुसार वही छायासीता राजा द्रुपदके यहाँ यज्ञकी वेदीसे प्रकट हुई। उसका नाम 'द्रौपदी' पड़ा और पाँचो पाण्डव उसके पति बने ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सत्ययुगमें वही कुशध्वजकी कन्या कल्याणी वेदवती त्रेतायुगमें छायारूपसे सीता बनकर भगवान श्रीरामकी सहचरी तथा द्वापरमें द्रुपदकुमारी द्रौपदी हुई। अतएव उसे 'त्रिहायणी' कहा गया है।

हुताशस्तत्र काले तु वास्तवीं जानकीं ददौ ॥४७॥ उवाच छाया वह्निं च रामं च विनयान्विता ॥ करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे ॥४८॥ श्रीरामाग्नी ऊचतुः ॥ त्वं गच्छ तपसे देवि पुष्करं च सुपुण्यदम् ॥ कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यसि ॥४९॥ सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रतप्य पुष्करे तपः ॥ दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च स्वर्गलक्ष्मीर्बभूव ह ॥५०॥ सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्भवा ॥ कामिनी पाण्डवानां च द्रौपदी द्रुपदात्मजा ॥ ५१ ॥ कृते युगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा ॥ त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा ॥५२॥ तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा ॥ त्रिहायणी च सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये ॥५३॥ नारद उवाच ॥ प्रियाः पंच कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुंगव ॥ इति मच्चित्तसंदेहं भंज संदेहभंजन परम् ॥५४॥ नारायण उवाच ॥ लङ्कायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद ॥ रूपयौवनसंपन्ना छाया च बहुचिंतया ॥५५॥ रामाग्न्योराज्ञया तप्तमुपास्ते शङ्करं परम् ॥ कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनः पुनः ॥५६॥ पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन ॥ पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारं चकार सा ॥५७॥ शिवस्तत्प्रार्थनां श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः ॥ प्रिये तव प्रियाः पञ्च भविष्यन्ति वरं ददौ ॥५८॥ तेन सा पांडवानां च बभूव कामिनी प्रिया ॥ इति

वह तीनों युगोंमें विद्यमान रही है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ नारदजीने कहा—सन्देहोंके निराकरण करनेमें परम कुशल हे मुनिवर! द्रौपदीके पाँच पति कैसे हुए? मेरे मनकी यह शंका मिटानेकी कृपा करें ॥ ५४ ॥ भगवान नारायण कहने लगे—हे नारद! जब लंकामें वास्तविक सीता भगवान रामके पास विराजमान हो गया, तब रूप एवं यौवनसे शोभा पानेवाली छायासीताकी चिन्ताका पार नहीं रहा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर वह कामातुर होकर भगवान श्रीराम और अग्निदेवके आज्ञानुसार पतिप्राप्तिके लिए भगवान शंकरकी उपासनामें तत्पर हो गयी ॥ ५६ ॥ पति प्राप्त करनेके लिए व्यग्र होकर वह बार-बार यही प्रार्थना कर रही थी कि 'हे भगवान त्रिलोचन! मुझे पति प्रदान कीजिये।' ये ही शब्द उसके मुँहसे पाँच बार निकले थे ॥५७॥ भगवान शंकर परम रसिक हैं ही। अतएव छायासीताकी यह प्रार्थना सुनकर उसे वर दे दिया कि तुम्हें पाँच पति मिलेंगे ॥ ५८ ॥ हे नारद!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार त्रेतामें जो छायासीता थी, वही द्वापरमें द्रौपदी बनी और पाँचों पाण्डव उसके पति हुए । यह सब जो बीचकी बातें थीं, सुना चुका । अब जो प्रधान विषय चल रहा था, वह सुनो ॥ ५९ ॥ भगवान रामने लंकामें मनोहारिणी सीताको पा जानेके पश्चात् वहाँका राज्य विभीषणको सौंप दिया और वे स्वयं अयोध्या चले गये ॥ ६० ॥ अयोध्या भारतवर्षमें है। ग्यारह हजार वर्षोंतक भगवान श्रीरामने वहाँ राज्य किया । तत्पश्चात् वे समस्त पुरवासियों सहित वैकुण्ठधामको पधारे ॥ ६१ ॥ लक्ष्मीके अंशसे प्रादुर्भूत जो वेदवती थी, वह लक्ष्मीके विग्रहमें विलीन हो गयी । इस प्रकार यह पवित्र आख्यान मैंने कह सुनाया । इस पुण्यदायी उपाख्यानके प्रभावसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । ऐसा कहा जाता है कि मूर्तिमान् चारों वेद उसकी जिह्वाके अग्रभागमें विराजमान रहते थे । इसीसे उसका वेदवती नाम पड़ा था ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ अब धर्मध्वजकी कन्याका प्रसंग कहता हूँ, सुनो ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

ते कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तवं शृणु ॥५९॥ अथ संप्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम् ॥ विभीषणाय तां लङ्कां दत्त्वाऽध्योयां ययौ पुनः ॥६०॥ एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यं च भारते ॥ जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्धं वैकुण्ठमेव च ॥ ६१ ॥ कमलांशा वेदवतो कमलायां विवेश सा ॥ कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम् ॥६२॥ सततं मूर्तिमंतश्च वेदाश्चत्वार एव च ॥ सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवतो श्रुता ॥६३॥ धर्मध्वज-सुताख्यानं निबोध कथयामि ते ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता ॥ नृपेण सार्धं साऽऽरामे रेमे च गंधमादने॥१॥शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचंदन-चर्चिताम् ॥ चंदनालिप्तसर्वांगीं पुष्पचंदनवायुना ॥ २ ॥ स्त्रीरत्नमतिचार्वंगी रत्नभूषणभूषिता ॥ कामुकी रसिका सृष्टा रसिकेन च संयुता ॥ ३ ॥ सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः ॥ गतं देववर्षशतं न ज्ञातं च दिवानिशम् ॥ ४ ॥ ततो राजा मतिं प्राप्य सुरताद्विरराम च ॥ कामुकी सुन्दरी किंचिन्न च तृप्तिं जगाम सा ॥ ५ ॥ दधार गर्भं सा सद्यो दैवादब्दशतं सती ॥ श्रीगर्भा श्रीयुता सा च संबभूव दिने दिने ॥ ६ ॥ शुभे क्षणे शुभदिने शुभयोगे च संयुते ॥ शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्वामिग्रहान्विते ॥ ७ ॥ कार्तिकीपूर्णिमायां तु सितवारे च पद्मजा ॥ सुषाव सा च

(भगवती तुलसीके प्रादुर्भावका प्रसंग) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद ! राजा धर्मध्वजकी पत्नीका नाम माधवी था । वह रा ाके साथ गंधमादन पर्वतपर सुंदर उपवनमें आनन्द करती थी ॥ १ ॥ पुष्प-चन्दनसे चर्चित सुन्दर शय्यापर अपने सारे शरीरमें चन्दन लगा तथा त्रिविध भूषण धारण करके वह रसिका माधवी अपने रसिक पति धर्मध्वजके साथ विहार करने लगी ॥२॥३॥ रतिकृत्यके विज्ञ वे दोनों प्राणी कभी रतिसे विरत होते ही नहीं थे । ऐसा करते-करते दे म नके अनुसार सौ वर्ष बीत गये, किंतु उन्हें इसका ज्ञान न रहा कि कब दिन बीता, कब रात बीती ॥४॥ तदनन्तर राजा धर्मध्वजके हृदयमें ज्ञानका प्रादुर्भाव हुआ और वे भोगविलाससे विलग हो गये । परन्तु माधवी अभी तृप्त नहीं हो सकी थी ॥५॥ अतएव उसे गर्भ रह गया । उसका गर्भ प्रतिदिन क्रमशः शोभा बढ़ाता रहा ॥६॥ हे नारद! कार्तिकी पूर्णिमाके दिन उसके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई । उस समय शुभ दिन, शुभ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

योग, शुभ क्षण, शुभ लग्न और शुभ ग्रहका संयोग था ॥७॥ यों शुक्रवारके दिन देवी माधवी लक्ष्मीके अंशसे प्रादुर्भूत एक कन्याकी जननी बनी ॥ ॥ उस कन्यांका मुख ऐसा था कि मानो शरद् पूर्णिमाका चन्द्रमा हो । नेत्र शरत्कालीन कमलके समान थे । अधर पके हुए बिम्बाफलकी तुलना कर रहे थे। मनको मुग्ध करनेवाली उस कन्याके हाथ और पैरके तलवे लाल थे । उसकी नाभि गहरी थी । शीतकालमें सुख देनेके लिए उसके सम्पूर्ण अंग गरम रहते थे और उष्णकालमें वह शीतलाङ्गी बना रहती थी । उसके शरीरका वर्ण श्याम था। उसके सुन्दर केश ऐसे थे कि मानो बटवृक्षको घेरकर शोभा पानेवाले बरोह हों ॥९-११॥ उसकी कांति पीले चम्पककी तुलना कर रही थी । वह सभी सुन्दरियोंमें एक थी । स्त्री और पुरुष उसे देखकर किसीके साथ तुलना करनेमें असमर्थ हो जाते थे ॥१२॥ अतएव विद्वान् पुरुषोंने उसका नाम 'तुलसी' रखा । भूमिपर पधारते ही वह ऐसी सुयोग्या बन गयी कि मानो साक्षात् प्रकृतिदेवी ही हों ॥१३॥ सब लोगोंके रोकनेपर भी उसने तपस्या करनेके विचारसे बदरीवनको प्रस्थान किया । वहाँ रहकर वह वेदमानके अनुसार एक लाख वर्षतक कठिन तपस्या करती रही ॥१४॥

पद्मांशां पद्मिनीं तां मनोहराम् ॥ ८ ॥ शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् ॥ पक्वबिंबाधरोष्ठीं च पश्यन्तीं सस्मितां गृहम् ॥ ९ ॥ हस्तपाद-
तलारक्तां निम्ननाभिं मनोरमाम् ॥ तदधस्त्रिवलीयुक्तां नितम्बयुगवर्तुलाम् ॥१०॥ शीते सुखोष्णसर्वांगीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम् ॥ श्यामां सुकेशीं
रुचिरां न्यग्रोधपरिमंडलाम् ॥ ११ ॥ पीतचम्पकवर्णाभां सुन्दरीष्वेव सुन्दरीम् ॥ नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमाः ॥ १२ ॥ तेन नाम्ना
च तुलसीं तां वदन्ति मनीषिणः ॥ सा च भूयिष्ठमात्रेण योग्यस्त्री प्रकृतिर्यथा ॥ १३ ॥ सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम् ॥ तत्र देवाब्दलक्षं
च चकार परमं तपः ॥ १४ ॥ मनसा नारायणः स्वामी भवितेति च निश्चिता ॥ ग्रीष्मे पञ्चतपाः शीते तोयवस्त्रा च प्रावृषि ॥ १५ ॥ आसनस्था
वृष्टिधाराः सहंतीति दिवानिशम् ॥ विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा ॥१६॥ त्रिंशत्सहस्रवर्षं च पत्राहारा तपस्विनी ॥ चत्वारिंशत्सहस्राब्दं
वाय्वाहारा कृशोदरी ॥ १७ ॥ ततो दशसहस्राब्दं निराहारा बभूव सा ॥ निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः ॥१८॥ समाययौ वरं दातुं
परं बदरिकाश्रमम् ॥ चतुर्मुखं च सा दृष्ट्वा ननाम हंसवाहनम् ॥१९॥ तामुवाच जगत्कर्ता विधाता जगतामपि ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वरं वृणीष्व तुलसि
यत्ते मनसि वांछितम् ॥ २० ॥ हरिभक्तिं हरेर्दास्यमजरामरतामपि ॥ तुलस्युवाच ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वांछितम् ॥ २१ ॥

उसके मनका निश्चित उद्देश्य यह था कि स्वयं भगवान नारायण मेरे स्वामी हों । ग्रीष्मकालमें वह पञ्चाग्नि तापती और जाड़ेके दिनोंमें गीले वस्त्र पहनकर तपस्या करती थी ॥१५॥ वर्षा ऋतुमें वह आसन लगाकर बैठी रहती । जलकी धाराओंको निरन्तर सहन करना तो उसके लिए सहज काम हो गया था । बीस हजार वर्षोंतक वह फल और जल पर रही, तीस हजार वर्षों-तक वह केवल पत्ते चबाकर रही और चालीस हजार वर्षोंतक केवल वायुके आधारपर उसने प्राणोंको टिकाकर रखा ॥ १६ ॥ १७ ॥ इससे उसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था । तदनन्तर वह दस हजार वर्ष बिल्कुल निराहार रही । निर्लक्ष्य होकर एक पैरपर खड़ी हो वह तपस्या करती रही । उसे देखकर ब्रह्मा उत्तम वर देनेके विचारसे बदरिकाश्रम पधारे । हंसपर बैठे हुए चतुर्मुख ब्रह्माको देखकर तुलसीने प्रणाम किया । तब जगत्की सृष्टि करनेमें निपुण विधाताने उससे कहा । ब्रह्माजी बोले—हे तुलसी ! तुम मुझसे मनोऽभिलषित वर माँग लो ॥१८-२०॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान श्रीहरिकी भक्ति, उनकी दासी बनना अथवा अजर-अमर होना—जो भी तुम्हारी इच्छा हो, वह वर मैं देनेके लिए तैयार हूँ। तुलसी बोली—हे पितामह ! आप सर्वज्ञ हैं। तथापि मेरे मनमें जो अभिलाषा है, उसे कह देती हूँ ॥ २१ ॥ अब आपके सामने मुझे लज्जा हो रहा है। पूर्वजन्ममें मैं तुलसी नामकी गोपी थी। गोलोक मेरा निवासस्थान था ॥ २२ ॥ भगवान श्रीकृष्णकी प्रिया, उनकी अनुचरी, उनकी अर्द्धांगिनी तथा उनकी प्रेयसी सखी—सब कुछ होनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त था। गोविन्द नामसे सुशोभित उन प्रभुके साथ मैं हास-विलासमें रत थी। उस परम सुखसे अभी मैं तृप्त नहीं हुई थी कि इतनेमें एक दिन रासकी अधिष्ठात्री देवी भगवती राधाने रासमंडलमें पधारकर श्रीकृष्णकी भर्त्सना करके रोपसे मुझे यह शाप दे दिया कि 'तुम मानव-योनिमें उत्पन्न होओ'। उसी समय भगवान गोविन्दने मुझसे कहा—हे देवी ! तुम भारतवर्षमें जाकर तपस्या करो। ब्रह्मा वर देंगे, जिससे मेरे स्वरूपभूत अंश चतुर्भुज श्रीविष्णुको तुम पतिरूपमें प्राप्त कर लोगी।' इस प्रकार कहकर देवेश्वर भगवान श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये ॥ २३–२६ ॥ हे गुरो ! मैंने अपना वह शरीर त्याग दिया और अब इस भूमण्डलपर

सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम सांप्रतम् ॥ अहं तु तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा ॥२२॥ कृष्णप्रिया किंकरी च तदंशा तत्सखी प्रिया ॥ गोविन्दरतिसंभुक्तामतृप्तां मां च मूर्छिताम् ॥ २३ ॥ रासेश्वरी समागत्य ददर्श रासमण्डले ॥ गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप रुषान्विता ॥२४॥ याहि त्वं मानवीं योनिमित्येवं च शशाप ह ॥ मामुवाच स गोविन्दो मदंशं च चतुर्भुजम् ॥ २५ ॥ लभिष्यसि तपस्तप्त्वा भारते ब्रह्मणो वरात् ॥ इत्येवमुक्त्वा देवेशोऽप्यंतर्धानं चकार सः ॥ २६ ॥ देव्या भिया तनुं त्यक्त्वा प्राप्तं जन्म गुरो भुवि ॥ अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुंदरविग्रहम् ॥ २७ ॥ सांप्रतं तं पतिं लब्धुं वरये त्वं च देहि मे ॥ ब्रह्मदेव उवाच ॥ सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णांगसमुद्भवः ॥ २८ ॥ तदंशश्चातितेजस्वी लेभे जन्म च भारते ॥ सांप्रतं राधिकाशापाद्दनुवंशसमुद्भवः ॥२९॥ शङ्खचूडेति विख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्समः ॥ गोलोके त्वां पुरा दृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः ॥३०॥ विलम्भितुं न शशाक राधिकायाः प्रभावतः ॥ स च जातिस्मरस्तस्मात्सुदामाऽभूच्च सागरे ॥३१॥ जातिस्मरा त्वमपि सा सर्वं जानासि सुन्दरि ॥ अधुना तस्य पत्नी त्वं संभविष्यसि शोभने ॥ ३२ ॥ पश्चान्नारायणं शान्तं कांतमेव वरिष्यसि ॥ शापान्नारायणस्यैव कलया

उत्पन्न हुई हूँ। सुन्दर विग्रहवाले शान्तस्वरूप भगवान नारायण जो उस समय मेरे पति थे, उन्हींको अब भी मैं पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिए वर माँग रही हूँ। आप मेरी अभिलाषा पूर्ण करनेकी कृपा करें। ब्रह्माजी बोले—भगवान श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट सुदामा नामका एक गोप भी इस समय राधिकाके शापसे भारतवर्षमें उत्पन्न हुआ है। उस परम तेजस्वी गोपको साक्षात् श्रीकृष्णका अंश कहते हैं। राधाके शापवश उसे दनुके कुलमें उत्पन्न होना पड़ा है ॥ २७–२९ ॥ वह 'शंखचूड़' नामसे प्रसिद्ध है। त्रिलोकीमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो उसकी समता कर सके। पूर्वकालमें रासके अवसरपर तुम्हें देखकर वह कामातुर हो उठा था ॥ ३० ॥ किन्तु भगवती राधाके कारण वह तुम्हें नहीं पा सका। वह सुदामा इस समय समुद्रमें उत्पन्न हुआ है। भगवान श्रीकृष्णका अंश होनेसे उसे पूर्वजन्मकी सभी बातें स्मरण हैं। हे सुन्दरी ! हे शोभने ! तुम भी पूर्वजन्मके सभी प्रसंगोंसे परिचित हो। इस जन्ममें वह श्रीकृष्णका अंश तुम्हारा पति होगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इसके बाद शान्तस्वरूप भगवान नारायण तुम्हें पतिरूपमें प्राप्त होंगे। लीलावश वे ही नारायण तुमको शाप भी दे देंगे। अतः अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कलासे तुम्हें वृक्ष बनकर भारतमें रहना पड़ेगा और समस्त जगत्को पवित्र करनेकी योग्यता तुम्हें प्राप्त होगी। संपूर्ण पुष्पोंमें तुम प्रधान मानी जाओगी। भगवान विष्णु तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानेंगे ॥३३॥३४॥ तुम्हारे बिना पूजा निष्फल समझी जायगी। वृन्दावनमें वृक्षरूपसे रहते समय लोग तुम्हें वृन्दावती कहेंगे ॥ ३५ ॥ तुमसे उत्पन्न पत्तियोंसे गोपी और गोपों द्वारा भगवान माधवकी पूजा सम्पन्न होगी। तुम मेरे वरके प्रभावसे वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी बनकर गोपरूपसे विराजनेवाले भगवान श्रीकृष्णके साथ स्वेच्छापूर्वक निरन्तर आनन्द भोगोगी। हे नारद! ब्रह्माकी यह अमरवाणी सुनकर तुलसीके मुखपर हँसी छा गयी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसके मनमें अपार हर्ष हुआ। उसने महाभाग ब्रह्माको प्रणाम किया और कहने लगी। तुलसीने कहा—हे पितामह! मैं बिल्कुल सच्ची बातें कहती हूँ। दो भुजासे शोभा पानेवाले श्यामसुन्दर भगवान श्रीकृष्णको पानेके लिए मेरी जैसी अभिलाषा है, वैसी चतुर्भुज श्रीविष्णुके लिए नहीं है ॥ ३८ ॥ क्योंकि संयोगवश मैं विष्णु भगवानसे पूर्वकालमें शृंगाररससे अतृप्त रह चुकी हूँ। अतएव उन गोविन्दकी आज्ञासे ही मैं चतुर्भुज श्रीहरिके लिए

दैवयोगतः ॥ ३३ ॥ भविष्यसि वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपावनी ॥ प्रधाना सर्वपुष्पेषु विष्णुप्राणाधिका भवेः ॥ ३४ ॥ त्वया विना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत् ॥ वृंदावने वृक्षरूपा नाम्ना वृंदावतीति च ॥ ३५ ॥ त्वत्पत्रैर्गोपिगोपाश्च पूजयिष्यंति माधवम् ॥ वृक्षाधिदेवीरूपेण सार्धं कृष्णेन संततम् ॥३६॥ विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छंदं मद्वरेण च ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा ॥३७॥ प्रणनाम च ब्रह्माणं तं च किञ्चिदुवाच सा ॥ तुलस्युवाच ॥ यथा मे द्विभुजे कृष्णे वांछा च श्यामसुन्दरे ॥३८॥ सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे ॥ अतृप्ताऽहं च गोविन्दे दैवाच्छृङ्गार-भंगतः ॥३९॥ गोविन्दस्यैव वचनात्प्रार्थयामि चतुर्भुजम्॥ त्वत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम् ॥४०॥ ध्रुवमेव लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय ॥ ब्रह्मदेव उवाच ॥ गृहाण राधिकामंत्रं ददामि षोडशाक्षरम् ॥४१॥ तस्याश्च प्राणतुल्या त्वं मद्वरेण भविष्यसि ॥ शृंगारं युवयोर्गोप्यं न ज्ञास्यति च राधिका ॥ ४२ ॥ राधासमा त्वं सुभगे गोविन्दस्य भविष्यसि ॥ इत्येवमुक्त्वा दत्त्वा च देव्यै वै षोडशाक्षरम् ॥ ४३ ॥ मन्त्रं चैव जगद्धाता स्तोत्रं च कवचं परम् ॥ सर्वं पूजाविधानं च पुरश्चर्याविधिक्रमम् ॥४४॥ परां शुभाशिषं चैव पूजां चैव चकार सा ॥ बभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रसादाद्रमा

प्रार्थना करती हूँ। ओह, गोविन्द मेरे लिए परम दुर्लभ हो गये हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे भगवन्! आप ऐसी कृपा करें कि उन्हीं गोविन्दको मैं पुनः निश्चय ही प्राप्त कर सकूँ। साथ ही मुझे राधाके भयसे भी मुक्त कर दीजिये। ब्रह्माजी बोले—हे देवी! मैं तुम्हें भगवती राधाके षोडशाक्षर मंत्रका उपदेश प्रदान करता हूँ। तुम इसे हृदयमें धारण कर लो ॥ ४१ ॥ मेरे वरके प्रभावसे अब तुम राधाकी प्राणोंके समान प्रिय बन जाओगी। हे सुभगे! भगवान गोविन्दकी तुम वैसी ही प्रेयसी बन जाओगी, जैसी राधा हैं। श्रीकृष्णके साथ तुम्हारे प्रेमको राधा नहीं जान सकेंगी ॥ ४२ ॥ हे मुने! इस प्रकार कहकर जगद्धाता ब्रह्माने तुलसीको भगवती राधाका षोडशाक्षर मन्त्र बता दिया ॥ ४३ ॥ साथ ही स्तोत्र, कवच, पूजाकी सम्पूर्ण विधियाँ तथा किस क्रमसे अनुष्ठान करना चाहिये—ये सभी बातें बतला दीं ॥ ४४ ॥ तब तुलसीने भगवती राधाकी उपासना की और उनके कृपाप्रसादसे वह देवी लक्ष्मीके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समान सिद्ध हो गयो ॥४५॥ ब्रह्माजीने जैसा कहा था, उस मन्त्रके प्रभावसे ठीक वैसा ही फल तुलसीको प्राप्त हो गया। उसने भगवान् कृष्णके साथ रमण करके विश्वदुर्लभ भोगोंको भोगा ॥ ४६ ॥ तपस्यासम्बन्धी जो भी क्लेश थे, वे मनमें प्रसन्नता उत्पन्न होनेके कारण दूर हो गये। क्योंकि फल सिद्ध हो जानेपर मनुष्योंका दुःख ही उत्तम सुखके रूपमें परिणत हो जाता है ॥ ४७ ॥ उसने श्रीकृष्णके साथ खाया-पिया और पुष्प-चन्दनचर्चित सेजपर उनके साथ शयन किया ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयराम तेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

(तुलसीको स्वप्नमें शंखचूड़के दर्शन और शंखचूड़ तथा तुलसीको विवाहके लिए ब्रह्माजीका आदेश) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! एक समयकी बात है, वृषध्वजकी कन्या तुलसी अत्यन्त प्रसन्न होकर शयन कर रही थी ॥ १ ॥ उसने स्वप्नमें एक सुन्दर वेषवाले पुरुषको देखा। उसी समय उचित अवसर देखकर कामदेवने उस सुन्दरीपर अपने पाँचों

यथा ॥ ४५ ॥ सिद्धं मंत्रेण तुलसी वरं प्राप यथोदितम् ॥ बुभुजे च महाभोगं यद्विश्वेषु च दुर्लभम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नमनसा देवी तत्याज तपसः क्लमम् ॥ सिद्धे फले नराणां च दुःखं च सुखमुत्तमम् ॥४७॥ भुक्त्वा पीत्वा च सन्तुष्टा शयनं च चकार सा ॥ तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनचर्चिते ॥४८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारायणसंवादे तुलस्युपाख्याने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ तुलसी परितुष्टा च सुष्वाप हृष्टमानसा ॥ नवयौवनसंपन्ना वृषध्वजवरांगना ॥ १ ॥ चिक्षेप पंचबाणश्च पञ्च बाणांश्च तां प्रति ॥ पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचंदनचर्चिता ॥ २ ॥ पुलकांकितसर्वांगी कंपिताऽरक्तलोचना ॥ क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्छामवाप ह ॥ ३ ॥ क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तंद्रां सुखावहाम् ॥ क्षणं च दहनं प्राप क्षणं प्राप प्रसन्नताम् ॥ ४ ॥ क्षणं सा चेतनां प्राप क्षणं प्राप विषण्णताम् ॥ उत्तिष्ठंती क्षणं तल्पाद्गच्छंती निकटे क्षणम् ॥ ५ ॥ भ्रमंती क्षणमुद्वेगान्निवसंती क्षणं पुनः ॥ क्षणमेव समुद्वेगात्सुष्वाप पुनरेव सा ॥ ६ ॥ पुष्पचन्दनतल्पं च तद्बभूवाति कंटकम् ॥ विषहारि सुखं दिव्यं सुंदरं च फलं जलम् ॥ ७ ॥ निलयं च बिलाकरं सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः ॥ सिंदूरपत्रकं चैव व्रणतुल्यं च दुःखदम् ॥८॥ क्षणं ददर्श तंद्रायां सुवेषं पुरुषं सती ॥ सुन्दरं च युवानं च सस्मितं रसिकेश्वरम् ॥ ९ ॥

बाण चला दिये। अतएव पुष्प एवं चन्दनसे चर्चित होती हुई भी वह कामबाणसे आहत होकर जलने लगी ॥२॥ उसका सारा शरीर पुलकित हो उठा, कँपकँपी आ गयी और आँखें लाल हो गयीं। कभी वह सूखने लगती और कभी मूर्च्छित हो जाती थी ॥३॥ क्षण ही भरमें वह उद्विग्न हो उठती थी, किन्तु तनिक ही देरमें उसे आनन्दपूर्वक झपकी आ जाती थी। क्षण ही भरमें वह जलने लगती थी और फिर तुरन्त प्रसन्न हो उठती थी ॥४॥ क्षण भरमें वह सचेत होती और तुरन्त विषण्ण हो जाती थी। कभी वह उठकर टहलने लगती, किन्तु शीघ्र ही फिर सेजपर लेट जाती थी ॥५॥ कभी-कभी वह उठकर इधर-उधर घूमने लगती और तुरन्त बैठ जाती थी। उसके बाद फिर सो जाती थी ॥६॥ फूलों और चन्दनसे सजी हुई सेज उसे काँटे जैसी लगती थी। उच्चकोटिका सुख, सुन्दर फल और जल उसे विष जैसा लगता था ॥ ७ ॥ उसे अपना भव्य भवन बिलके समान लगता था। शरीरके महीन कपड़े आग सरीखे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगते थे और माथेकी बिन्दी फोड़ेकी तरह टपकती थी ॥ ८ ॥ क्षण भरके लिए झपकी लग जाती तो वह किसी सुन्दर वेषधारी, सलोने और रसिक नवयुवकको अपने समक्ष मुसकराता देखती ॥ ९ ॥ बादमें वह चन्दनचर्चित तथा दिव्य माल्यभूषणधारी नवयुवक उसका अधरोष्ठ पान करनेके लिए आगे बढ़ता दिखायी देता ॥ १ ॥ फिर वह रतिक्रीड़ासम्बन्धी तरह-तरहकी बातें करता हुआ जैसे उसका मुँह चूमने लगता था। रतिसम्बन्धी वार्तालाप बराबर चालू रखता था। सहसा उसने उसे अपनी भुजाओंमें कस लिया और सेजपर रति करने लगा ॥ ११ ॥ इसके बाद वह उठकर चल पड़ा, किन्तु तुरन्त फिर लौट आया। चलते समय तुलसीने कहा–'प्राणनाथ! आप कहाँ जा रहे हैं? आइए, बैठिए' ॥ १२ ॥ उसी समय तुलसीकी नींद उच. जाती और वह विलाप करने लगती थी। हे नारद! इस प्रकार युवावस्थामें वह वहाँ ही रही ॥ १३ ॥ जैगीषव्य मुनिकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर मन्त्र उसे प्राप्त हो चुका था। उसने पुष्करक्षेत्रमें रहकर उस मन्त्रको सिद्ध भी कर लिया था ॥ १४ ॥ सर्वमङ्गलमय उस कवचसे उसके गलेकी शोभा हो रही थी। ब्रह्मा उसे अभिलषित

चन्दनोक्षितसर्वांगं रत्नभूषणभूषितम् ॥ आगच्छंतं माल्यवंतं पिबंतं तन्मुखांबुजम् ॥ १० ॥ कथयंतं रतिकथां ब्रुवंतं मधुरं मुहुः ॥ संभुक्तवंतं तल्पे च समाश्लिष्यंतमीप्सितम् ॥ ११ ॥ पुनरेव तु गच्छंतमागच्छंतं च सन्निधौ ॥ यांतं क्व यासि प्राणेश तिष्ठेत्येवमुवाच सा ॥ १२ ॥ पुनश्च चेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः ॥ एवं सा यौवनं प्राप्य तस्थौ तत्रैव नारद ॥ १३ ॥ शंखचूडो महायोगी जैगीषव्यान्मनोहरम् ॥ कृष्णमंत्रं च संप्राप्य कृत्वा सिद्धं तु पुष्करे ॥ १४ ॥ कवचं च गले बद्ध्वा सर्वमंगलमंगलम् ॥ ब्रह्मणश्च वरं प्राप्य यत्ने मनसि वांछितम् ॥ १५ ॥ आज्ञया ब्रह्मणः साऽपि बदरीं च समाययौ ॥ आगच्छंतं शंखचूडं ददर्श तुलसी मुने ॥ १६ ॥ नवयौवनसंपन्नं कामदेवसमप्रभम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभं रत्नभूषण-भूषितम् ॥ १७ ॥ शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पंकजलोचनम् ॥ रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम् ॥ १८ ॥ रत्नकुण्डलयुग्मेन गंडस्थलविरा-जितम् ॥ पारिजातप्रसूनानां मालावंतं च सुस्मितम् ॥ १९ ॥ कस्तूरीकुंकुमायुक्तं सुगंधिचन्दनान्वितम् ॥ सा दृष्ट्वा सन्निधावेनं मुखमाच्छाद्य वाससा ॥ २० ॥ सस्मिता तं निरीक्षंती सकटाक्षं पुनः पुनः ॥ बभूवातिनम्रमुखी नवसंगमलज्जिता ॥ २१ ॥ शरदिंदुविनिंद्यैकस्वमुखेंदुविरा-

वर दे चुके थे और उन्हींकी आज्ञासे वह बदरीवनमें आ पहुँचा। वह आ रहा था, तभी तुलसीकी दृष्टि उसपर पड़ गयी ॥१५॥१६॥ उसकी सुन्दर और कमनीय कान्ति थी। वर्ण ऐसा था, मानो श्वेत चम्पा हो ॥१७॥ उसके मुखकी शोभा शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी तुलना कर रही थी। नेत्र ऐसे जान पड़ते थे, मानो शारदीय कमल हों। अमूल्य रत्नोंसे बने हुए विमानपर वह विराजमान था। रत्नमय कुण्डल उसके गण्डस्थलकी छवि बढ़ा रहे थे। पारिजातके पुष्पोंकी माला उसके गलेको सुशोभित कर रही थी और उसका मुखमण्डल मुसकानसे भरा था ॥१८॥१९॥ कस्तूरी और कुंकुमसे युक्त सुगन्धपूर्ण चन्दन द्वारा उसके अङ्ग अनुलिप्त थे। उस शंखचूडको पास देखकर तुलसीने वस्त्रसे अपना मुख ढाँक लिया ॥ २० ॥ मुसकाती और कटाक्ष करके बार बार उसे निहारती हुई नवीन मिलापसे लज्जावश उसका मुख नीचेकी ओर झुक गया ॥ २१ ॥ शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमा उसके निर्मल दिव्य चन्द्रमा जैसे मुखके सामने तुच्छ थे। बहुमूल्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रत्नोंसे बने हुए महावर उसके चरणोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह मनोहर त्रिवलीसे सम्पन्न थी ॥२२॥ सर्वोत्तम मणिसे निर्मित करधनी सुन्दर शब्द करती हुई उसकी कमरमें सुशोभित थी। मालतीके पुष्पोंकी मालासे सम्पन्न केशकलाप उसके मस्तकपर शोभा पा रहे थे ॥२३॥ उसके कानोंमें बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुए मकराकृत कुण्डल झूल रहे थे ॥२४॥ सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित हार उसके वक्षःस्थलको समुज्ज्वल बना रहा था। रत्नमय कंकण, केयूर, शंख और अंगूठियाँ उस देवीकी शोभा बढ़ा रही थीं। ऐसे भव्य शरीरसे शोभा पानेवाली उस सुन्दरी तुलसीको देखकर शंखचूड़ उसके पास जाकर बैठ गया और मीठे शब्दोंमें बोला। शंखचूड़ने पूछा—हे देवी! तुम कौन हो? तुम्हारे पिता कौन हैं? तुम अवश्य ही सम्पूर्ण स्त्रियोंसे धन्यवाद एवं समादर पानेकी पात्र हो ॥ २५–२७ ॥ समस्त मङ्गल प्रदान करनेवाली हे कल्याणी! तुम वास्तवमें कौन हो? सदा सम्मान पानेवाली हे सुन्दरी! तुम अपना परिचय देनेकी कृपा करो—मुझसे बोलो ॥ २८ ॥ हे नारद! सुन्दर नेत्रोंसे शोभा पानेवाली तुलसीने शंखचूड़के ऐसे वचन सुनते ही मुख नीचेकी ओर झुकाकर उससे कहना

जिता ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणयावकावलिसंयुता ॥ २२ ॥ मणींद्रसारनिर्माणक्वणन्मंजीररंजिता ॥ दधती कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥ २३ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणमकराकृतिकुण्डला ॥ चित्रकुण्डलयुग्मेन गंडस्थलविराजिता ॥ २४ ॥ रत्नेंद्रसारहारेण स्तनमध्यस्थलोज्ज्वला ॥ रत्नकंकणकेयूरशंखभूषणभूषिता ॥ २५ ॥ रत्नांगुलीयकैर्दिव्यैरंगुल्यावलिराजिता ॥ दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् ॥ २६ ॥ उवास तत्समीपे तु मधुरं तामुवाच सः ॥ शंखचूड उवाच ॥ का त्वं कस्य च कन्या च धन्या मान्या च योषिताम् ॥ २७ ॥ का त्वं मानिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनि ॥ मौनीभूते किंकरे मां संभाषां कुरु सुन्दरि ॥ २८ ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना ॥ सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा ॥ २९ ॥ तुलस्युवाच ॥ धर्मध्वजसुताऽहं च तपस्यायां तपोवने ॥ तपस्विन्यहं तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम् ॥ ३० ॥ कामिनीं कुलजातां च रहस्येकाकिनीं सतीम् ॥ न पृच्छति कुले जात इत्येवं मे श्रुतौ श्रुतम् ॥३१॥ लंपटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थवर्जितः ॥ येनाश्रुतः श्रुतेरर्थः स कामीच्छति कामिनीम् ॥ ३२ ॥ आपातमधुरां मत्तामंतकां पुरुषस्य ताम् ॥ विषकुंभाकाररूपाममृतास्यां च संततम् ॥ ३३ ॥ हृदये क्षुरधाराभां शश्वन्मधुरभाषिणीम् ॥ स्वकार्यपरिनिष्पत्त्यै तत्परां सततं च ताम् ॥३४॥ कार्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां सदा ॥ स्वांतर्मलिनरूपां च प्रसन्न-

आरम्भ किया ॥ २९ ॥ तुलसीने कहा—महाशय! मैं राजा धर्मध्वजकी कन्या तथा तपस्या करनेके विचारसे इस तपोवनमें ठहरी हुई एक तपस्विनी हूँ। तुम कौन हो? तुम्हें आनन्दपूर्वक यहाँसे चले जाना चाहिये ॥ ३०॥ क्योंकि उच्च कुलकी किसी भी अकेली साध्वी कन्याके साथ एकान्तमें कोई कुलीन पुरुष बातचीत नहीं करता—ऐसा नियम मैंने श्रुतिमें सुना है ॥ ३१ ॥ जो कलुषित कुलमें उत्पन्न है तथा जिसे धर्मशास्त्र एवं श्रुतिका अर्थ सुननेका कभी सुअवसर नहीं मिला, वह दुराचारी व्यक्ति ही कामी बनकर परस्त्रीकी कामना करता है ॥ ३२ ॥ स्त्रीकी मधुर वाणीमें कोई सार नहीं रहता। वह सदा अभिमानमें चूर रहती है। वह वस्तुतः विषसे भरे हुए घड़ेके समान है, परन्तु उसका मुख ऐसा जान पड़ता है कि मानो अमृतसे भरा हो ॥ ३३ ॥ स्त्रियोंका हृदय छुरेकी धार जैसा तीक्ष्ण होता है, किन्तु ऊपरसे वे मीठी बातें करती हैं। वे परम स्वार्थिनी होती हैं और पुरुषोंसे वे तभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बात करती हैं, जब उनका कोई प्रयोजन होता है ॥ ३४ ॥ अपना मतलब साधनेके लिए वे स्वामीकी वशवर्तिनी बन जाती हैं। वास्तवमें वे सदा वशके बाहर रहती हैं। उनका हृदय बड़ा मलिन होता है, किन्तु ऊपरसे प्रसन्न बनी रहती हैं ॥ ३५ ॥ सभी श्रुतियों और पुराणोंमें उनके दूषित चरित्रकी गाथायें भरी पड़ी हैं। तब आप ही बताइए कि कोई समझदार और विद्वान् पुरुष उनपर कैसे विश्वास कर सकता है ? ॥ ३६ ॥ इन स्त्रियोंका न कोई मित्र होता है और न शत्रु। ये नित्य नये-नये युवकोंकी टोहमें रहा करती हैं। किसी भी सुन्दर नौजवानको देखकर ये उसे मन ही मन चाहने लगती हैं ॥ ३७ ॥ बाहर-बाहरसे ये अपना स्वार्थ साधनेके लिए अपने सतीत्वकी दोहाई देती हैं। लेकिन वास्तवमें ये सदा कामातुर रहती हैं। क्योंकि ये कामदेवका आधारस्तम्भ होती हैं ॥ ३८ ॥ बाहरसे तो ये नहीं-नहीं करके अपने प्रेमीको तड़पाती हैं, किन्तु मन ही मन भोगकी लालसा बनी रहती है। बाहरसे तो ये लज्जाका नाटक रचती हैं, किन्तु एकान्तमें अपने चाहनेवालेसे खूब हँसती-बोलती हैं ॥ ३९ ॥ इन्हें मैथुनका सुयोग नहीं मिलता तो कुपित हो जाती हैं और

वदनेक्षणाम् ॥ ३५ ॥ श्रुतौ पुराणे यासां च चरित्रमतिदूषितम् ॥ तासु को विश्वसेत्प्राज्ञः प्रज्ञावांश्च दुराशयः ॥ ३६ ॥ तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयंति नवं नवम् ॥ दृष्ट्वा सुवेषं पुरुषमिच्छंति हृदये सदा ॥ ३७ ॥ बाह्ये स्वार्थं सतीत्वं च ज्ञापयंति प्रयत्नतः ॥ शश्वत्कामा च रामा च कामाधारा मनोहरा ॥ ३८ ॥ बाह्ये छलात्खेदयंती स्वांतमैथुनमानसा ॥ कान्तं हसंती रहसि बाह्येऽतीव सुलज्जिता ॥ ३९ ॥ मानिनी मैथुनाभावे कोपना कलहांकुरा ॥ सुप्रीता भूरिसंभोगात्स्वल्पमैथुनदुःखिता ॥ ४० ॥ सुमिष्टान्नाच्छीततोयादाकांक्षंती च मानसे ॥ सुन्दरं रसिकं कांतं युवानं गुणिनं सदा ॥ ४१ ॥ सुतात्परमभिस्नेहं कुर्वंती रसिकोपरि ॥ प्राणाधिकं प्रियतमं संभोगकुशलं प्रियम् ॥ ४२ ॥ पश्यंति रिपुतुल्यं च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम् ॥ कलहं कुर्वती शश्वत्तेन सार्धं सुकोपना ॥ ४३ ॥ वचसा भक्षयंती तं सर्प आखुमिवोल्बणम् ॥ दुःसाहसस्वरूपा च सर्वदोषाश्रया सदा ॥ ४४ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुःसाध्या मोहरूपिणी ॥ तपोमार्गार्गला शश्वन्मोक्षद्वारकपाटिका ॥ ४५ ॥ हरेर्भक्तिव्यवहिता सर्वमायाकरंडिका ॥ संसारकारागारे च शश्वन्निगडरूपिणी ॥ ४६ ॥ इन्द्रजालस्वरूपा च मिथ्या च स्वप्नरूपिणी ॥ बिभ्रती बाह्यसौंदर्यमधोऽङ्ग-

झगड़ने लगती हैं। इनका प्रेमी जब भरपूर भोग करता है, तब ये प्रसन्न रहती हैं और स्वल्प मैथुनसे दुखी हो जाती हैं ॥ ४० ॥ अच्छे भोजन और शीतल जलकी अपेक्षा ये सुन्दर, रसिक, श्रीमान्, नौजवान और रतिकलाके अभिज्ञ किसी युवककी विशेष आकांक्षा रखती हैं ॥ ४१ ॥ अपने पुत्रसे भी अधिक स्नेह रसिक युवकपर रखती हैं। अपने संभोग-कुशल प्रेमीको ये प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती हैं ॥ ४२ ॥ वृद्ध और भोग करनेमें असमर्थ पुरुषको ये शत्रुतुल्य समझती हैं। उसपर कुपित होकर ये सदा लड़ती रहती हैं ॥ ४३ ॥ जैसे साँप चूहेपर झपटता है, वैसे ही ये मैथुनमें असमर्थ पुरुषको बात-बातपर खाने दौड़ती हैं। दुःसाहस की तो ये मूर्त रूप हैं और सभी अवगुणोंकी खान हैं ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लिए भी ये असाध्य होती हैं। ये मोहस्वरूपिणी नारियाँ तपस्याके मार्गमें अर्गलादण्ड जैसी बाधक होती हैं ॥ ४५ ॥ भगवद्भक्तिमें भीषण बाधा और सभी मायाओंकी पेटारी होती हैं। संसाररूपी कारागारमें जकड़नेके लिये ये साँकल हैं ॥ ४६ ॥ स्त्रीको इन्द्रजालस्वरूपा तथा स्वप्नके समान मिथ्या कहते हैं। बाहरसे तो ये अत्यन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुन्दरता धारण करती हैं, परन्तु इनके भीतरी अङ्ग कुत्सित भावोंसे भरे रहते हैं ॥४७॥ इनका शरीर विष्ठा, मूत्र, पीब और मल आदि नाना प्रकारकी दुर्गन्धपूर्ण वस्तुओंका आधार है। रक्त-रञ्जित तथा दोषयुक्त यह शरीर कभी भी पवित्र नहीं रहता ॥४८॥ सृष्टिकी रचनाके समय ब्रह्माने मायावी व्यक्तियोंके लिए इस मायास्वरूपिणी स्त्रीका सृजन किया है। मोक्षकी इच्छा करने-वाले पुरुषोंके लिए ये विषका काम करती हैं ॥४९॥ हे नारद ! शंखचूड़से इस प्रकार कहकर तुलसी चुप हो गयी। तब शंखचूड़ हँसकर कहने लगा ॥५०॥ शंखचूड़ बोला- देवी ! तुमने जो कहा है, वह असत्य नहीं है। पर अब मेरी भी कुछ सत्यासत्य-मिश्रित बातें सुननेकी कृपा करो ॥ ५१ ॥ विधाताने दो प्रकारकी स्त्रियोंका निर्माण किया है-वास्तवस्वरूपा और अवास्तव-रूपा। दोनों ही एक समान मनोहर होती हैं, पर एकको प्रशस्त कहते हैं और दूसरीको अप्रशस्त ॥५२॥ लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री और राधिका ये पाँच देवियाँ सृष्टिसूत्र और सृष्टिका

मतिकुत्सितम् ॥ ४७ ॥ नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम् ॥ दुर्गंधिदोषसंयुक्तं रक्तारक्तमसंस्कृतम् ॥ ४८ ॥ मायारूपा मायिनां च विधिना निर्मिता पुरा ॥ विषरूपा मुमुक्षूणामदृश्याऽप्यभिवांछताम् ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वा तुलसी तं च विरराम च नारद ॥ सस्मितः शंखचूडश्च प्रवक्तुमुपच-क्रमे ॥५०॥ शङ्खचूड उवाच ॥ त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम् ॥ किञ्चित्सत्यमलीकं च किञ्चिन्मत्तो निशामय ॥५१॥ निर्मितं द्विविधं धात्रा स्त्रीरूपं सर्वमोहनम् ॥ कृत्वा रूपं वास्तवं च प्रशस्यं चाप्रशंसितम् ॥५२॥ लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिका ॥ सृष्टिसूत्रस्वरूपा च आद्या सृष्टिर्विनिर्मिता ॥ ५३ ॥ एतासामंशरूपं च स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम् ॥ तत्प्रशस्यं यशोरूपं सर्वमंगलकारकम् ॥ ५४ ॥ शतरूपा देवहूती स्वधा स्वाहा च दक्षिणा ॥ छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा ॥ ५५ ॥ कुबेरस्य च पत्नी याऽप्यदितिश्च दितिस्तथा ॥ लोपामुद्राऽनसूया च कोटभी तुलसी तथा ॥ ५६ ॥ अहल्याऽरुंधती मेना तारा मन्दोदरी तथा ॥ दमयन्ती वेदवती गंगा च मनसा तथा ॥ ५७ ॥ पुष्टिस्तुष्टिः स्मृति-र्मेधा कालिका च वसुन्धरा ॥ षष्ठी मंगलचंडी च मूर्तिश्च धर्मकामिनी ॥ ५८ ॥ स्वस्तिः श्रद्धा च शांतिश्च कान्तिः क्षांतिस्तथा परा ॥ निद्रा तंद्रा क्षुत्पिपासा संध्या रात्रिदिनानि च ॥ ५९ ॥ संपत्तिर्धृतिकीर्ती च क्रिया शोभा प्रभा शिवा ॥ यत्स्त्रीरूपं संभूतमुत्तमं तु युगे युगे ॥ ६० ॥ कलाकलांशरूपं च स्वर्वेश्यादिकमेव च ॥ तदप्रशस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च ॥६१॥ सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तद्युक्तं च प्रभावतः ॥ तदुत्तमं च विश्वेषु

मूल कारण हैं। इन आद्या देवियोंके प्रादुर्भावका प्रयोजन सृष्टि करना है ॥५३॥ इनके अंशसे प्रकट गङ्गा आदि देवियाँ वास्तवरूपा कहलाती हैं। इनको श्रेष्ठ माना जाता है। ये यशःस्वरूपा और सम्पूर्ण मंगलोंकी जननी हैं ॥५४॥ शतरूपा, देवहूति, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी, शची, कुबेरपत्नी, अदिति, दिति, लोपामुद्रा, अनुसूया, कोटभी, तुलसी, अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, मनसा, पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, मंगलचण्डी, धर्मपत्नी मूर्ति, स्वस्ति, श्रद्धा, शान्ति, कान्ति, क्षमा, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, संध्या, दिवा, रात्रि, सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा और शिवा—स्त्रीरूपमें प्रकट ये देवियाँ प्रत्येक युगमें उत्तम मानी जाती हैं ॥५५-६०॥ जगदम्बाकी कलाके अंशसे उत्पन्न जो स्वर्गकी दिव्य अप्सराएँ हैं, उन्हें अप्रशस्त कहा गया है। क्योंकि अखिल विश्वमें पुंश्चलीरूपसे ये विख्यात हैं ॥६१॥ स्त्रियोंका जो सत्त्वप्रधान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूप है, वही ठीक है और उसीको उत्तम माना जाता है। विश्वमें इन साध्वी स्त्रियोंकी प्रशंसा की गयी है ॥ ६२ ॥ विद्वान् पुरुष कहते हैं कि इन्हींको 'वास्तवरूपा' कहा जाता है। रजोरूप और तमोरूपके भेदसे कलाओंमें अनेक प्रकारकी स्त्रियाँ प्रसिद्ध हैं ॥६३॥ रजोगुणका अंश जिनमें प्रधान है, वे मध्यम श्रेणीकी हैं। क्योंकि भोगकी उनमें नित्य स्पृहा बनी रहती है। सुखभोगके वशीभूत होकर वे सदा अपने कार्यमें संलग्न रहती हैं॥ ६४ ॥ कपट और मोह–ये दो दुर्गुण उनमें सदा निवास करते हैं। कभी भी उनके द्वारा धर्मके अर्थका यथार्थ पालन नहीं होता। अतः रजोगुणप्रधान स्त्रीमें साध्वीपनका आना सम्भव नहीं है ॥६५॥ विद्वान् पुरुष इसे 'मध्यमरूपा' बतलाते हैं। तमोरूप दुर्निवार्य है। विज्ञ पुरुष इसको 'अधम' कहते हैं ॥६६॥ हे देवी! तुमने जो कहा कि सत्-असत्का विचार रखनेवाले कुलीन पुरुष निर्जन, निर्जल अथवा एकान्त स्थानमें किसी परस्त्रीसे कुछ भी नहीं पूछते, सो ठीक है। मैं भी यह मानता हूँ ॥ ६७ ॥ परन्तु हे शोभने! मैं तो इस समय ब्रह्माकी आज्ञा पाकर ही तुम्हारा कार्य साधनेके लिए तुम्हारे पास आया हूँ और गन्धर्वविवाहकी विधिके अनुसार तुम्हें अपनी सहधर्मिणी

साध्वीरूपं प्रशंसितम् ॥ ६२ ॥ तद्वास्तवं च विज्ञेयं प्रवदंति मनीषिणः ॥ रजोरूपं तमोरूपं कलासु विविधं स्मृतम् ॥ ६३ ॥ मध्यमा रजसश्चांशास्तास्तु भोगेषु लोलुपाः ॥ सुखसंभोगवश्याश्च स्वकार्ये निरताः सदा॥ ६४ ॥ कपटा मोहकारिण्यो धर्मार्थविमुखाः सदा ॥ रजोरूपस्य साध्वीत्वमतो नैवोपजायते ॥ ६५ ॥ इदं मध्यमरूपं च प्रवदंति मनीषिणः ॥ तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद्विदुर्बुधाः ॥ ६६ ॥ न पृच्छति कुले जातः पंडितश्च परस्त्रियम् ॥ निर्जने निर्जले वाऽपि रहस्यपि परस्त्रियम् ॥ ६७ ॥ आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना ॥ गन्धर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने ॥ ६८ ॥ अहमेव शङ्खचूडो देवविद्रावकारकः ॥ दनुवंश्यो विशेषेण सुदामाऽहं हरेः पुरा ॥ ६९ ॥ अहमष्टसु गोपेषु गोपोऽपि पार्षदेषु च ॥ अधुना दानवेंद्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः॥ ७० ॥ जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमन्त्रप्रभावतः ॥ जातिस्मरा त्वं तुलसी संभुक्ता हरिणा पुरा ॥ ७१ ॥ त्वमेव राधिका कोपाज्जातासि भारते भुवि ॥ त्वां संभोक्तुमुत्सुकोऽहं नालं राधाभयात्ततः ॥ ७२ ॥ इत्येवमुक्त्वा स पुमान्विरराम महामुने ॥ सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥७३॥ तुलस्युवाच ॥ एवंविधो बुधो नित्यं विश्वेषु च प्रशंसितः ॥ कान्तमेवंविधं

बनाऊँगा ॥ ६८ ॥ देवताओंमें भगदड़ मचा देनेवाला शंखचूड़ मैं ही हूँ। दनुवंशमें मेरी उत्पत्ति हुई है। विशेष बात तो यह है कि मैं पूर्व जन्ममें श्रीहरिके साथ रहनेवाला उन्हींका अंश सुदामा नामक गोप था ॥६९॥ जो सुप्रसिद्ध आठ गोप भगवान्के प्रमुख पार्षद थे, उनमें एक मैं भी था। देवी राधिकाके शापसे इस समय मैं दानवेन्द्र बन गया हूँ ॥ ७० ॥ भगवान् श्रीकृष्णका मन्त्र मुझे इष्ट है। अतः पूर्वजन्मकी बातोंको मैं जानता हूँ। तुम भी पूर्वजन्ममें श्रीकृष्णके पास रहनेवाली तुलसी थीं ॥ ७१ ॥ यह जाननेकी योग्यता तो तुम्हें भी प्राप्त है। तुम भी जो भारतवर्षमें उत्पन्न हुई हो, इसमें मुख्य कारण श्रीराधिकाका रोष ही है। उस समय राधाके भयसे तुम मुझे नहीं मिल सकी थीं ॥ ७२ ॥ हे मुनिवर! जब इस प्रकार कहकर शंखचूड़ चुप हो गया, तब तुलसी उससे कहने लगी। उस समय तुलसीका मन संतुष्ट था और मुखपर मुसकराहट छायी थी ॥ ७३ ॥ तुलसीने कहा–हे कान्त! इस प्रकारके सद्विचारसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पन्न विज्ञ पुरुष ही विश्वमें सदा प्रशंसित होते हैं। स्त्रीका कर्तव्य है कि वह ऐसे ही सत्पतिकी सदा अभिलाषा करे ॥ ७४ ॥ आप जैसे सद्विचारवाले पुरुषसे इस समय मैं परास्त हो गयी। निन्दाका पात्र तथा अपवित्र तो वह पुरुष माना जाता है, जिसे स्त्रीने जीत लिया हो ॥ ७५ ॥ स्त्रीजित् मनुष्यकी तो पितर, देवता तथा बान्धव–सभी निन्दा करते हैं। यहांतक कि माता, पिता तथा भ्राता भी मन ही मन उसकी निन्दा करनेसे नहीं चूकते ॥७६॥ जिस प्रकार जन्म तथा मृत्युके अशौचमें ब्राह्मण दस दिनोंपर शुद्ध हो जाता है, क्षत्रिय बारह दिनोंपर और वैश्य पन्द्रह दिनोंपर शुद्ध होते हैं ॥७७॥ शूद्रोंकी शुद्धि एक महीनेपर होती है, ऐसे ही गान्धर्व विधिसे विवाहित पति-पत्नीकी सन्तान भी समयानुसार शुद्ध हो जाती है। उसमें वर्णसंकर दोष नहीं आ सकता। यह बात शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। स्त्रीजित् मनुष्यकी तो आजीवन शुद्धि नहीं होती। चितापर जलते समय ही वह इस पापसे मुक्त होता है ॥ ७८ ॥ स्त्रीजित् मनुष्यके पितर उसके दिये हुए पिण्ड और तर्पणको इच्छापूर्वक नहीं ग्रहण करते। देवता भी उसके समर्पण किये हुए पुष्प और जल आदि लेनेमें सहमत नहीं होते ॥७९॥ जिसके

कान्ता शश्वदिच्छति कामतः ॥ ७४ ॥ त्वयाऽहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता ॥ स निंदितश्चाप्यशुचिर्यः पुमांश्च स्त्रिया जितः ॥ ७५ ॥ निन्दन्ति पितरो देवा बांधवाः स्त्रीजितं नरम् ॥ स्त्रीजितं मनसा माता पिता भ्राता च निन्दति ॥७६॥ शुद्धो विप्रो दशाहेन जातके मृतके तथा ॥ भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहतः ॥ ७७ ॥ शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्धीनसंकरः ॥ अशुचिः स्त्रीजितः शुद्ध्येच्चितादहनकालतः ॥ ७८ ॥ न गृह्णन्तीच्छया तस्य पितरः पिण्डतर्पणम् ॥ न गृह्णन्त्येव देवाश्च तस्य पुष्पजलादिकम् ॥ ७९ ॥ किं वा ज्ञानेन तपसा जपहोमप्रपूजनैः ॥ किं विद्यया च यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ ८० ॥ विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः ॥ कृत्वा परीक्षां कान्तस्य वृणोति कामिनी वरम् ॥ ८१ ॥ वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा ॥ दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च ॥ ८२ ॥ अत्यन्तकोपयुक्ताय वाऽत्यन्तदुर्मुखाय च ॥ पंगवे चांगहीनाय चांधाय बधिराय च ॥ ८३ ॥ जडाय चैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने ॥ ब्रह्महत्यां लभेत्सोऽपि स्वकन्यां प्रददाति यः ॥ ८४ ॥ शांताय गुणिने चैव यूने च विदुषेऽपि च ॥ साधवे च सुतां दत्त्वा दशयज्ञफलं लभेत् ॥ ८५ ॥ यः कन्यापालनं कृत्वा करोति यदि विक्रयम् ॥ विक्रेता धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति ॥ ८६ ॥ कन्यामूत्रं पुरीषं च तत्र भक्षति पातकी ॥ कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ८७ ॥

मनको स्त्रीने हरण कर लिया है, उस व्यक्तिके लिए ज्ञान, तप, होम, पूजन, विद्या अथवा यशसे क्या प्रयोजन है? ॥८०॥ मैंने विद्याका प्रभाव जाननेके लिये ही आपकी परीक्षा की है। कारण, कामिनी स्त्रीका प्रधान कर्तव्य है कि वरकी परीक्षा करके ही उसे पतिरूपमें स्वीकार करे ॥८१॥ गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूर्ख, रोगी, कुरूप, परम क्रोधी, अशोभन मुखवाले, पंगु, अंगहीन, नेत्रहीन, बधिर, जड़, मूक तथा नपुंसकके समान पापी वरको जो अपनी कन्या देता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ८२-८४ ॥ शान्त, गुणी, नवयुवक, विद्वान् तथा साधुस्वभाव वरको अपनी कन्या अर्पण करनेवाले पुरुषको दस अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ जो व्यक्ति कन्याको पाल-पोसकर धनके लोभसे बेच देता है, वह 'कुम्भीपाक' नरकमें सड़ता है ॥८६॥ उस पापीको नरकमें भोजनके स्थानपर कन्याके मल-मूत्र प्राप्त होते हैं। चौदह इन्द्रोंके कार्यकालतक कीड़ों और कौओं द्वारा उसका शरीर नोचा जाता है ॥८७॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर जगत्में जन्म पाकर उसका रोगग्रस्त रहना निश्चित है। वह रात-दिन मांसका टोकरा लादकर बेचता फिरता है ॥ ८८ ॥ तपको ही सर्वस्व माननेवाले हे नारद! इस प्रकार कहकर देवी तुलसी चुप हो गयी। इतनेमें ब्रह्माजीने आकर कहा—हे शंखचूड़! तुम इस देवीके साथ क्या बातचीत कर रहे हो? ॥ ८९ ॥ अब गान्धर्व विवाहके नियमानुसार इसे पत्नीरूपसे स्वीकार कर लेना तुम्हारे लिये परम आवश्यक है। क्योंकि तुम पुरुषोंमें रत्न हो और यह साध्वी देवी भी कन्याओंमें रत्न समझी जाती है ॥ ९० ॥ इसके बाद ब्रह्माजीने तुलसीसे कहा—पतिव्रते! चतुरका चतुराके साथ संयोग सदा लाभदायक होता है। दुर्लभ एवं निर्विरोध सुखको पाकर उसे कौन छोड़ता है? ऐसे सुखको जो छोड़ता है, उसे निःसन्देह पशु ही समझा जायगा। तुम ऐसे गुणी पतिकी क्या परीक्षा लेती हो? ॥९१॥९२॥ सब देवों-दानवोंको कुचल डालनेकी इसमें शक्ति है। जैसे भगवान् नारायणके पास

तदन्ते व्याधिसंयुक्तः स लभेज्जन्म निश्चितम् ॥ विक्रीणाति मांसभारं वहत्येव दिवानिशम् ॥ ८८ ॥ इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोनिधे ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किं करोषि शंखचूड संवादमनया सह ॥ ८९ ॥ गांधर्वेण विवाहेन त्वं चास्या ग्रहणं कुरु ॥ पुरुषेष्वसि रत्नं त्वं स्त्रीषु रत्नं त्वियं सती ॥ ९० ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ॥ निर्विरोधसुखं राजन्को वा त्यजति दुर्लभम् ॥ ९१ ॥ योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः ॥ किं परीक्षसि त्वं कांतमीदृशं गुणिनं सति ॥ ९२ ॥ देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम् ॥ यथा लक्ष्मीश्च लक्ष्मीशे यथा कृष्णे च राधिका ॥ ९३ ॥ यथा मयि च सावित्री भवानी च भवे यथा ॥ यथा धरा वराहे च दक्षिणा च यथाऽध्वरे ॥ ९४ ॥ यथाऽत्रेरनसूया च दमयंती यथा नले ॥ रोहिणी च यथा चंद्रे यथा कामे रतिः सती ॥९५॥ यथा दितिः कश्यपे च वसिष्ठेऽरुंधती सती ॥ यथाऽहल्या गौतमे च देवहूतिश्च कर्दमे ॥९६॥ यथा बृहस्पतौ तारा शतरूपा मनौ यथा ॥ यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने ॥९७॥ यथा शची महेंद्रे च यथा पुष्टिर्गणेश्वरे ॥ देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्यथा सती ॥ ९८ ॥ सौभाग्या सुप्रिया त्वं च शंखचूडे तथा भव ॥ अनेन सार्धं सुचिरं सुंदरेण च सुन्दरि ॥ ९९ ॥ स्थाने स्थाने विहारं च यथेच्छं कुरु संततम् ॥ पश्चात्प्राप्स्यसि गोलोके श्रीकृष्णं पुनरेव च ॥ चतुर्भुजं च वैकुंठे शंखचूडे मृते सति ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धेऽष्टादशोध्यायः ॥ १८ ॥

लक्ष्मी, श्रीकृष्णके पास राधिका, मेरे पास सावित्री, भगवान् वाराहके पास पृथ्वी, यज्ञके पास दक्षिणा, अत्रिके पास अनुसूया, नलके पास दमयन्ती, चन्द्रमाके पास रोहिणी, कामदेवके पास रति, कश्यपके पास अदिति, वसिष्ठके पास अरुन्धती, गौतमके पास अहल्या, कर्दमके पास देवहूति, बृहस्पतिके पास तारा, मनुके पास शतरूपा, अग्निके पास स्वाहा, इन्द्रके पास शची, गणेशके पास पुष्टि, स्कन्दके पास देवसेना तथा धर्मके पास साध्वी मूर्ति पत्नीरूपसे शोभा पाती हैं, वैसे ही तुम भी इस शंखचूड़की सौभाग्यवती प्रिया बन जाओ और यथेच्छ विहार करो ॥ ९३-९९ ॥ इसके बाद तुम पुनः गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णके पास चली जाओगी और यह शंखचूड़ भी इस शरीरका त्याग करनेके पश्चात् वैकुण्ठमें जाकर चतुर्भुज भगवान् विष्णुमें लीन हो जायगा ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पोताम्बरा' भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(तुलसीके साथ शङ्खचूड़का गान्धर्व-विवाह तथा देवताओंके प्रति उसके पूर्वजन्मका स्पष्टीकरण) नारदजी बोले—आपने यह बड़ा विचित्र कथानक सुनाया। जिसे सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ॥ १ ॥ इसके बाद जो हुआ हो, सो बताइए। भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! शङ्खचूड़ और तुलसीको इस प्रकार आशीर्वादरूपमें आज्ञा देकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये ॥२॥ तब शङ्खचूड़ने गान्धर्व-विवाहके अनुसार तुलसीको अपनी पत्नी बना लिया। उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और आकाशसे पुष्प बरसने लगे ॥३॥ अब शङ्खचूड़ अपने सुन्दर भवनमें सुन्दरी तुलसीके साथ विवाह करके रहने लगा। प्रथम समागमके समय तुलसी मूर्छित हो गयी ॥ ४ ॥ क्योंकि वह रमणी उस समय संभोग-सुखरूपी जलके सागरमें निमग्न हो गयी थी। चौंसठ कलाओंका विशेष आनन्द है ॥५॥ वह कामी पुरुषोंको विशेष प्रिय होता है। क्योंकि अंग-प्रत्यंगके सम्पर्क द्वारा स्त्रियोंको बड़ा सुख प्राप्त होता है ॥६॥

॥ नारायण उवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं भवता समुदाहृतम् ॥ श्रुतेन येन मे तृप्तिर्न कदापि हि जायते ॥ १ ॥ ततः परं तु यज्जातं तत्त्वं वद महामते ॥ नारायण उवाच ॥ इत्येवमाशिषं दत्त्वा स्वालयं च ययौ विधिः ॥ २ ॥ गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः ॥ स्वर्गे दुंदुभिवाद्यं च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥ ३ ॥ स रेमे रामया सार्धं वासगेहे मनोरमे ॥ मूर्च्छां सा प्राप तुलसी नवसङ्गमसङ्गता ॥ ४ ॥ निमग्ना निर्जले साध्वी संभोगसुखसागरे ॥ चतुःषष्टिकलामानं चतुःषाष्टविधं सुखम् ॥ ५ ॥ कामशास्त्रे यन्निरुक्तं रसिकानां यथेप्सितम् ॥ अङ्गप्रत्यङ्गसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम् ॥ ६ ॥ तत्सर्वं रसशृङ्गारं चकार रसिकेश्वरः ॥ अतीव रम्यदेशे च सर्वजंतुविवर्जिते ॥ ७ ॥ पुष्पचंदनतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना ॥ पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पचन्दनचर्चिते ॥ ८ ॥ गृहीत्वा रसिको रासे पुष्पचन्दनचर्चिताम् ॥ भूषितो भूषणेनैव रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ९ ॥ सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः ॥ जहार मानसं भर्तुर्लोलया लीलया सती ॥ १० ॥ चेतनां रसिकायाश्च जहार रसभाववित् ॥ वक्षसश्चन्दनं राज्ञस्तिलकं विजहार सा ॥११॥ स जहार च तस्याश्च सिंदूरं बिंदुपत्रकम् ॥ स तद्वक्षस्युरोजे च नखरेखां ददौ मुदा ॥ १२ ॥ सा ददौ तद्वामपार्श्वे करभूषणलक्षणम् ॥ राजा तदोष्ठपुटके ददौ रदनदंशनम् ॥ १३ ॥ तद्गंडयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम् ॥ आलिंगनं चुम्बनं च जङ्घादि-

इन चौंसठों कलाओंके रसमय श्रृंगारके हाव-भावमें डूबकर शङ्खचूड़ने भरपूर आनन्द लिया। क्योंकि वह स्थान बड़ा रमणीक था और वहाँ कोई भी प्राणी नहीं था ॥ ७ ॥ वे कभी नदीतट तथा कभी पुष्पोद्यानमें चन्दनचर्चित सेजपर शयन करते थे, जहाँ पुष्प और चन्दनके सम्पर्कसे सुगन्धित बयार बहा करती थी ॥ ८ ॥ पुष्पमाल्य एवं चन्दनसे चर्चित तुलसीके साथ शङ्खचूड़ रासक्रीड़ा करता था। वे दम्पति रत्नजटित आभूषण पहने हुए थे ॥९॥ रतिरसके अभिज्ञ वे दोनों प्राणी भोग-विलाससे कभी भी अलग नहीं हो पाते थे। क्योंकि तुलसीने अपने पतिका मन हर लिया था ॥ १० ॥ इसी प्रकार रसिया शङ्खचूड़ने भी रसिका तुलसीका अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। तुलसीने गाढ़ आलिंगन करके पतिके वक्षःस्थलका चन्दन और माथेका तिलक पोंछ दिया ॥ ११ ॥ उसी प्रकारका आलिंगन करके उसके पतिने प्रियतमाका सिन्दूरबिन्दु मिटा दिया और उसके स्तन तथा छातीमें नखरेखा बना दी ॥ १२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुलसीने पतिके वामपार्श्वमें अपना आभूषण गड़ाकर उसका चिह्न बना दिया । तब शंखचूड़ने दाँतोंसे उसको होंठ काटकर घाव कर दिया ॥ १३ ॥ तुलसीने तुरन्त पतिके गालोंको दाँतसे काटकर उससे भी बड़ा चिह्न बना दिया । इस प्रकार आलिंगन, चुम्बन और जंघा आदिके मर्दनका क्रम बराबर चलता ही रहता था ॥१४॥ इस प्रकार वे दोनों स्वच्छन्द भोग-विलास कर रहे थे । कभी-कभी सुरतसे विरत होकर दोनों उठ बैठते थे ॥१५॥ तब वे मनमाना शृंगार करने लगते थे । तुलसी पतिके मस्तकपर रसमिश्रित चंदनका तिलक लगाकर उसके सारे शरीरमें चन्दन लगाती थी । शंखचूड़ मसालेदार पान खिलाकर उसे ऐसे वस्त्र पहनाता था, जो अग्निमें नहीं जल सकते थे ॥१६॥१७॥ वह वृद्धावस्थारूपी रोग दूर रखनेवाला पारिजातपुष्प सुँघाती और बहुमूल्य रत्नजटित अंगूठियाँ पहनाती था ॥ १८ ॥ तदनन्तर वह उसे ऐसे मणियोंके आभूषण पहनाती थी कि जो तीनों लोकमें दुर्लभ थे । तदनन्तर 'मैं आपकी दासी हूँ' यह

मर्दनं तथा ॥ १४ ॥ एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुस्तौ विजानतौ ॥ सुरते विरते तौ च समुत्थाय परस्परम् ॥ १५ ॥ सुवेषं चक्रतुस्तत्र यद्यन्मनसि वांछितम् ॥ चंदनैः कुंकुमारक्तैः सा तस्य तिलकं ददौ ॥१६॥ सर्वांगे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम् ॥ सुवासं चैव ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी ॥ १७ ॥ पारिजातस्य कुसुमं जरारोगहरं परम् ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणमंगुलीयकमुत्तमम् ॥ १८ ॥ सुंदरं च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ दासी तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनः पुनः ॥ १९ ॥ ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम् ॥ सास्मिता तन्मुखांभोजं लोचनाभ्यां पुनः पुनः ॥२०॥ निमेषरहिताभ्यां चाप्यपश्यत्कामसुन्दरम् ॥ स च तां च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम् ॥ २१ ॥ सस्मितं वाससाच्छन्नं ददर्श मुखपंकजम् ॥ चुचुम्ब कठिने गण्डे बिम्बोष्ठौ पुनरेव च ॥ २२ ॥ ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतं च यत् ॥ तदाहृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ॥२३॥ ददौ मंजीरयुग्मं च स्वाहाया आहृतं च यत् ॥ केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैव कुण्डलम् ॥ २४ ॥ अंगुलीयकरत्नानि रत्याश्च करभूषणम् ॥ शङ्खं च रुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा ॥ २५ ॥ विचित्रपद्मकश्रेणीं शय्यां चापि सुदुर्लभाम् ॥ भूषणानि च दत्त्वा स भूपो हासं चकार ह ॥ २६ ॥ निर्ममे कबरीभारे तस्या मांगल्यभूषणम् ॥ सुचित्रं पत्रकं गंडमंडलेऽस्याः समं तथा ॥ २७ ॥ चंद्रलेखात्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगंधिना ॥ परीतं परितश्चित्रैः सार्धं कुंकुमबिन्दुभिः ॥२८॥ ज्वलत्प्रदीपाकारं च सिंदूरतिलकं ददौ ॥ तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिंदिते ॥२९॥ चित्रालक्तक-

कहकर वह बड़ी श्रद्धाके साथ अपने गुणवान् पतिको प्रणाम करके मुसकराती हुई अपनी निर्निमेष आँखोंसे उसका मुख देखती थी । शंखचूड़ भी तब उसे खींचकर अपनी छातीसे लगा लेता था ॥१९-२१॥ घूँघट निकाले हुए तुलसीके मुसकाते मुखको वह जीभर देखता और उसके कठोर कपोलों तथा लाल-लाल होठोंको चूम लेता था ॥२२॥ इसके बाद उसने वरुणके यहाँसे प्राप्त वस्त्रोंका जोड़ा और सारी त्रिलोकीमें दुर्लभ रत्नमयी माला अपनी प्रियतमाको दी ॥ २३ ॥ इसी प्रकार अग्निपत्नी स्वाहासे प्राप्त पायजेबकी जोड़ी, सूर्यपत्नी छायासे प्राप्त तोड़े और चन्द्रमाकी पत्नीसे प्राप्त कुण्डल दिये ॥ २४ ॥ कामदेवकी पत्नी रतिसे प्राप्त अंगूठी और विश्वकर्मासे प्राप्त शंख प्रदान किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर विचित्र कमलपुष्पोंसे सजी सेज तथा बहुमूल्य आभूषण देकर वह जोरोंसे हँसने लगा ॥२६॥ फिर उसकी चोटीमें पुष्प तथा मोती आदि गूँथकर सिरबेंदी आदि लगाया । उसके गालोंपर कुंकुममिश्रित चन्दनसे चित्रकारी की ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ २७ ॥ २८ ॥ जलती हुई दीपशिखा जैसी लाल बिन्दी उसके ललाटपर लगायी । स्थलकमलिनीको लजानेवाले उसके पैरोंमें महावरसे चित्र बनाया ॥२९॥३०॥ बादमें उसे अपनी गोदमें बैठाकर कहा—हे सुन्दरी ! मैं तुम्हारा सेवक हूँ ॥३१॥ इस प्रकार कुछ समय विहार करनेके बाद राजा शंखचूड़ उस तपोवनको त्यागकर अन्यान्य पर्वतों, देवस्थानों एवं तपोवनोंमें जाकर तुलसीके साथ आनन्द लेने लगा ॥ ३२ ॥ कभी किसी अत्यन्त रमणीक स्थानपर विद्यमान निर्जन पुष्पोद्यानमें और कभी किसी समुद्रतटवर्ती सुन्दर कन्दरामें जाकर रहता था ॥३३॥ कभी अच्छे जल-वायुयुक्त एवं मनोहर पुष्पभद्रावतीके तटपर और कभी अन्यान्य नदियों एव नदोंके तटपर जाकर वह विहार करता था ॥३४॥ कभी वसन्तकालीन भ्रमरोंके गुञ्जार-युक्त वनमें, कभी नन्दनवनमें, कभी गन्धमादन पर्वतपर, ॥३५॥ कभी देवोद्यान नन्दन वनमें, कभी अद्भुत चन्दन वनमें, कभी चम्पाके उपवनमें, कभी माधवी लताके निकुंजमें, कभी माधवकुंजमें, ॥ ३६ ॥ कभी मालती, कुन्द, कुमुद तथा कमलोंके वनमें, कभी एकसे दूसरे कल्पवृक्षके वनमें और कभी पारिजातवनमें ॥ ३७ ॥ कभी किसी निर्जन कांचनस्थलीमें, कभी

रागं च नखरेषु ददौ मुदा ॥ स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्य सरागं चरणाम्बुजम् ॥ ३० ॥ हे देवि तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनः पुनः ॥ रत्नभूषितहस्तेन तां च कृत्वा स्ववक्षसि ॥ ३१ ॥ तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानांतरं ययौ ॥ मलये देवनिलये शैले शैले तपोवने ॥ ३२ ॥ स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्याने च निर्जने ॥ कंदरे कंदरे सिंधुतीरे चैवातिसुंदरे ॥३३॥ पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे ॥ पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे ॥३४॥ मधौ मधुकराणां च मधुरध्वनिनादिते ॥ विस्पंदने सुरसने नंदने गंधमादने ॥ ३५ ॥ देवोद्याने नन्दने च चित्रनन्दनकानने ॥ चम्पकानां केतकीनां माधवीनां च माधवे ॥ ३६ ॥ कुन्दानां मालतीनां च कुमुदांभोजकानने ॥ कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने ॥ ३७ ॥ निर्जने कानने स्थाने धन्ये कांचनपर्वते ॥ कांचीवने किंजलके कंचुके कांचनाकरे ॥ ३८ ॥ पुष्पचन्दनतल्पेषु पुंस्कोकिलरुतश्रुते ॥ पुष्पचन्दनसंयुक्तः पुष्पचन्दनवायुना ॥३९॥ कामुक्या कामुकः कामात्स रेमे रामया सह ॥ न हि तृप्तो दानवेन्द्रस्तृप्तिं नैव जगाम सा ॥४०॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव ववृधे मदनस्तयोः ॥ तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः ॥ ४१ ॥ रम्यं क्रीडालयं गत्वा विजहार पुनः पुनः ॥ एवं स बुभुजे राज्यं शंखचूडः प्रतापवान् ॥ ४२॥ एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो महान् ॥ देवनामसुराणां च दानवानां च सन्ततम् ॥ ४३ ॥ गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानां च शांतिदः ॥

सुवर्णमय सुमेरुपर्वतपर, कभी कांचीवनमें, कभी किंजल्क वनमें, कभी कंचुकमें और कभी कांचनाकरमें विहार करता था ॥३८॥ पुष्प-चन्दनचर्चित शय्यापर लेटकर वे किसी ऐसे रमणीकस्थानों-पर विहार करते थे, जहाँ कोयलकी कूक सुनाया देती और सुगन्धभरी मन्द-मन्द वायु बहती रहती थी ॥३९॥ इस तरह कामुक शंखचूड़ और कामुकी तुलसी दोनों चिरकालतक विहार करते रहे, किन्तु उनमेंसे न तो दानवेन्द्र शंखचूड़ भोगोंसे तृप्त हो सका और न तुलसी ही ॥४०॥ जैसे आहुति पाकर अग्नि भभक उठती है, उसी प्रकार उनकी कामवासना उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। तब वह दानव प्रियतमाके साथ अपनी राजधानीको लौट आया ॥ ४१ ॥ यहाँ अपने राजकीय उद्यानमें जाकर निरन्तर जीवनका आनन्द लेने लगा। इस तरह महान् राजेश्वर एव परम प्रतापी दानवेन्द्र शंखचूड़ने पूरे एक मन्वन्तर पर्यन्त राज्य किया। देवता, दानव, असुर, गन्धर्व, किन्नर और राक्षस—सभी शंखचूड़के शासनकालमें सदा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शान्त रहते थे। अधिकार छिन जानेके कारण देवताओंकी स्थिति अलबत्ते भिक्षुकों जैसी हो गयी थी ॥ ४२–४४ ॥ अंतः वे सभी अत्यन्त उदास होकर ब्रह्माजीकी सभामें गये और अपनी स्थिति बतलाकर बार-बार विलाप करते हुए रोने लगे ॥ ४५ ॥ तब विधाता ब्रह्मा देवताओंको साथ लेकर भगवान् शंकरके स्थानपर गये। वहाँ पहुँचकर मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाले सर्वेश शिवसे सभी बातें कह सुनायीं ॥ ४६ ॥ फिर ब्रह्मा और शंकर देवताओंको साथ लेकर वैकुण्ठके लिये प्रस्थित हुए। वैकुण्ठ परम धाम है। वह सबके लिये दुर्लभ है। वहाँ बुढ़ापा और मृत्युका प्रभाव नहीं रहता ॥४७॥ भगवान श्री.रिके भवनका प्रवेशद्वार परम श्रेष्ठ है। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रत्नमय सिंहासनपर बैठे हुए द्वारपालोंको देखा ॥४८॥ वे सभी द्वारपाल परम सुन्दर थे। सभी पीताम्बर धारण किये हुए थे। वे रत्नमय आभूषणोंसे आभूषित थे। सबके गलेमें दिव्य वनमाला लहरा रही थी। उन सबके सुन्दर शरीर श्याम रंगके थे ॥ ४९ ॥ उनके शंख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित चार भुजाएँ थीं और प्रसन्नमुख मुसकानसे भरे थे। उन मनोहर द्वारपालोंके नेत्र कमलके सदृश सुन्दर थे ॥ ५० ॥

हृताधिकारा देवाश्चरन्ति भिक्षुका यथा ॥ ४४ ॥ ते सर्वेऽतिविषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम् ॥ वृत्तांतं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहुः ॥ ४५ ॥
तदा ब्रह्मा सुरैः सार्धं जगाम शङ्करालयम् ॥ सर्वेशं कथयामास विधाता चन्द्रशेखरम् ॥ ४६ ॥ ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्धं वैकुण्ठं च जगाम ह ॥
दुर्लभं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ॥ ४७ ॥ सम्प्राप च वरं द्वारमाश्रमाणां हरेरहो ॥ ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान् ॥ ४८ ॥ शोभिता-
न्पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥ वनमालान्वितान्सर्वाञ्श्यामसुन्दरविग्रहान् ॥४९॥ शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान् ॥ सस्मितान्स्मेरवक्त्रास्या-
न्पद्मनेत्रान्मनोहरान् ॥ ५० ॥ ब्रह्मा तान्कथयामास वृत्तान्तं गमनार्थकम् ॥ तेऽनुज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया ॥ ५१ ॥ एवं षोडश द्वाराणि
निरीक्ष्य कमलोद्भवः ॥ देवैः सार्धं तानतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम् ॥५२॥ देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥ नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभ-
भूषितैः ॥ ५३ ॥ नवेंदुमण्डलाकारां चतुरस्रां मनोहराम् ॥ मणींद्रहारनिर्माणां हीरासारसुशोभिताम् ॥ ५४ ॥ अमूल्यरत्नखचितां रचितां स्वेच्छया
हरेः ॥ माणिक्यमालाजालाभां मुक्तापंक्तिविभूषिताम् ॥ ५५ ॥ मण्डितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः ॥ विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रि-

उन द्वारपालोंको अपने आगमनका कारण बतानेके बाद अनुमति पाकर ब्रह्मा देवताओंके साथ क्रमशः सोलह द्वारोंको पार करके भगवान् श्रीहरिकी सभामें पहुँचे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उस सभाभवनमें चारों ओर देवर्षि तथा पार्षद विराजमान थे। सभी पार्षदोंके चार भुजाएँ थीं, सबका रूप भगवान नारायणके समान था और सभी कौस्तुभमणिसे अलंकृत थे ॥ ५३ ॥ उनकी आकृति ऐसी थी, मानो नवीन चन्द्रमण्डल हो। उस परम मनोहर सभाभवनके चारों कोने बराबर थे। सर्वोत्तम दिव्य मणियोंसे उसका निर्माण हुआ था ॥ ५४ ॥ बहुमूल्य मणियोंसे वह सभा सजी हुई थी। श्रीहरिके इच्छानुसार बना हुआ वह भवन बहुमूल्य दिव्य रत्नोंसे निर्मित था। मणिमयी मालाएँ जालीके रूपमें शोभा दे रही थीं और दिव्य मोतियोंकी झालरें उसकी छवि बढ़ा रही थीं ॥ ५५ ॥ मण्डलाकार करोड़ों रत्नमय दर्पणोंसे वह सभा सुशोभित थी। विचित्र रेखाचित्रोंसे वह सभाभवन परम सुन्दर जान पड़ता था। अनेक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकारके अद्भुत चित्र उसकी सुन्दरता बढ़ा रहे थे ॥५६॥ सर्वोत्कृष्ट पद्मराग-मणिसे निर्मित वह सभा मणिमय कमलोंसे परम सुशोभित थी। स्यमन्तक मणिसे बनी हुई सौ सीढ़ियोंसे युक्त वह भवन था ॥ ५७ ॥ दिव्य चन्दन वृक्षके सुन्दर पल्लव रेशमके सूत्रोंसे बँधे वन्दनवारका काम दे रहे थे। चारों ओरके खम्भोंका निर्माण इन्द्रनील मणिसे हुआ था ॥ ५८ ॥ उत्तम रत्नोंके कलशोंसे संयुक्त वह सभा थी। पारिजात-पुष्पके बहुतसे हार उसे अलंकृत किये हुए थे ॥ ५९ ॥ कस्तूरी और कुंकुमसे रञ्जित सुगन्धपूर्ण चन्दनके वृक्षोंसे वह भवन सुसज्जित था। सर्वत्र सुगन्धित वायु चल रही थी ॥ ६० ॥ वह एक हजार योजन विस्तृत था। सर्वत्र सेवक खड़े थे। अगणित विद्याधरियाँ नाच रही थीं। वहाँ सभी कुछ दिव्य था। ब्रह्मा-शिव आदि देवता उस सभाभवनको देखकर मुग्ध हो गये। हे नारद! भगवान् श्रीहरि उस अनुपम सभाके मध्यभागमें इस प्रकार विराजमान थे, मानो नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमा विद्यमान हो ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ देवताओं सहित ब्रह्मा और शंकरने उनके साक्षात् दर्शन किये। उस समय श्रीहरि दिव्य रत्नोंसे निर्मित अद्भुत सिंहासनपर विराजित थे। दिव्य किरीट, कुण्डल और वनमालाने

ताम् ॥ ५६ ॥ पद्मरागेंद्ररचितां रुचिरां मणिपङ्कजैः ॥ सोपानशतकैर्युक्तां स्यमन्तकविनिर्मितैः ॥ ५७ ॥ पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥ इन्द्रनीलस्तम्भवर्यैर्वेष्टितां सुमनोहराम् ॥ ५८ ॥ सद्रत्नपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम् ॥ पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम् ॥ ५९ ॥ कस्तूरीकुंकुमारक्तैः सुगन्धिचन्दनद्रुमैः ॥ सुसंस्कृतां तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना ॥ ६० ॥ विद्याधरीसमूहानां नृत्यजालैर्विराजिताम् ॥ सहस्रयोजनायामां परिपूर्णां च किंकरैः ॥ ६१ ॥ ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शङ्करश्च सुरैः सह ॥ वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्दुं तारकावृतम् ॥ ६२ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासने स्थितम् ॥ किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम् ॥ ६३ ॥ चन्दनोक्षितसर्वांगं बिभ्रतं केलिपङ्कजम् ॥ पुरतो नृत्यगीतं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥ ६४ ॥ शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम् ॥ लक्ष्म्या प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥ ६५ ॥ गङ्गया परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः ॥ सर्वैश्च स्तूयमानं च भक्तिनम्रात्मकन्धरैः ॥ ६६ ॥ एवंविशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा ॥ ६७ ॥ पुलकाञ्चितसर्वांगाः साश्रुनेत्राश्च गद्गदाः ॥ भक्ताश्च परया भक्त्या भीता नम्रात्मकन्धराः ॥ ६८ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विधाता जगतामपि ॥ वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरेः पुरः ॥ ६९ ॥ हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित् ॥ प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यं

उनकी छविको और भी अधिक बढ़ा दिया था ॥ ६३ ॥ उनके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे अनुलिप्त थे। एक हाथमें कमल शोभा पा रहा था। उनके समक्ष नृत्य-गीत हो रहा था। भगवान्का श्रीविग्रह अतिशय शान्त था ॥ ६४ ॥ लक्ष्मीजी उनके चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न थीं। लक्ष्मीके करकमलसे प्राप्त सुवासित ताम्बूल लेकर प्रभु चर्वण कर रहे थे ॥ ६५ ॥ देवी गङ्गा उत्तम भक्तिके साथ चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रही थीं। उपस्थित समाज अत्यन्त भक्ति-विनम्र होकर उनका स्तवगान कर रहा था ॥ ६६ ॥ हे मुने! ऐसे परम विशिष्ट परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिके दर्शन प्राप्त होनेपर ब्रह्माप्रभृति समस्त देवता उन्हें प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥ ६७ ॥ उस समय हर्षके कारण उनके सर्वाङ्गमें पुलकावली छा गयी थी, आँखोंमें आँसू भर आये थे और वाणी गद्गद हो गयी थी। परम श्रद्धाके साथ उपासना करके जगत्के व्यवस्थापक ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर बड़े विनयके साथ भगवान् श्रीहरिके सामने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सारी परिस्थिति निवेदित की ॥६८॥६९॥ श्रीहरि सर्वज्ञ एवं सबके अभिप्रायसे पूर्ण परिचित थे । ब्रह्माकी बात सुनकर उनके मुखपर हँसी छा गयी और उन्होंने मनको मुग्ध करनेवाला एक अद्भुत रहस्य कहना आरम्भ किया ॥७०॥ भगवान् श्रीहरि बोले—हे ब्रह्मन् ! यह महान् तेजस्वी शंखचूड़ पूर्वजन्ममें एक गोप था । यह मेरा ही अंश था । मेरे प्रति इसकी अटूट श्रद्धा थी । इसके सम्पूर्ण वृत्तान्तसे मैं पूर्ण परिचित हूँ ॥७१॥ यह वृत्तान्त प्राचीन इतिहासके रूपमें परिणत है । गोलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले इस समस्त पुण्यप्रद इतिहासको सुनिए ॥७२॥ शङ्खचूड़ उस समय सुदामा नामसे प्रसिद्ध गोप था । मेरे पार्षदोंमें उसकी प्रधानता थी । किन्तु श्रीराधाके दारुण शापने उसे दानव-योनिमें उत्पन्न होनेके लिए विवश कर दिया ॥७३॥ एक बार मैं अपने निवासस्थानसे रासमण्डलमें गया । मेरी प्राणाधिक प्रिया विरजा भी उस समय मेरे साथ थी ॥७४॥ जब परिचारिकाके मुखसे राधाने सुना कि मैं विरजाके साथ रासमण्डलसे आ रहा हूँ । तब वे रूठकर वहाँसे चली गयीं । उन्होंने मुझे वहाँ देखना नहीं पसन्द किया ॥७५॥ बादमें मेरे अन्तर्धान तथा विरजाके नदीरूपमें परिणत हो जानेका समाचार सुनकर राधा

च मनोहरम् ॥ ७० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शङ्खचूडस्य वृत्तांतं सर्वं जानामि पद्मज ॥ मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥ ७१ ॥ शृणु तत्सर्ववृत्तांतमितिहासं पुरातनम् ॥ गोलोकस्यैव चरितं पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥७२॥ सुदामा नाम गोपश्च पार्षदप्रवरो मम ॥ स प्राप दानवीं योनिं राधाशापात्सुदारुणात् ॥७३॥ तत्रैकदाऽहमगमं स्वालयाद्रासमंडलम् ॥ विरजामपि नीत्वा च मम प्राणाधिका परा ॥७४॥ सा मां विरजया सार्कं विज्ञाय किंकरीमुखात् ॥ पश्चात्क्रुद्धा साऽऽजगाम न ददर्श च तत्र माम् ॥ ७५ ॥ विरजां च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम् ॥ पुनर्जगाम सा दृष्ट्वा स्वालयं सखिभिः सह ॥७६॥ मां दृष्ट्वा मंदिरे देवी सुदाम्ना सहितं पुरा ॥ भृशं सा भर्त्सयामास मौनीभूतञ्च सुस्थिरम् ॥७७॥ तच्छ्रुत्वाऽसहमानश्च सुदामा तां चुकोप ह ॥ स च तां भर्त्सयामास कोपेन मम सन्निधौ ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वा कोपयुक्ता सा रक्तपंकजलोचना ॥ बहिष्कर्तुं चकाराज्ञां संत्रस्तं मम संसदि ॥ ७९ ॥ सखीलक्षं समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोल्बणम् ॥ बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पन्तं च पुनः पुनः ॥ ८० ॥ सा च तत्ताडनं तासां श्रुत्वा रुष्टा शशाप ह ॥ याहि रे दानवीं योनिमित्येवं दारुणं वचः ॥ ८१ ॥ तं गच्छन्तं शपंतं च रुदंतं मां प्रणम्य च ॥ वारयामास तुष्टा सा रुदती कृपया पुनः ॥८२॥ हे वत्स तिष्ठ मा गच्छ क्व यासीति पुनः पुनः ॥ समुच्चार्य च तत्पश्चाज्जगाम सा च विक्लवम् ॥ ८३ ॥

अपनी सखियोंके साथ अपने भवनमें लौट आयीं ॥ ७६ ॥ उस भवनमें मुझे सुदामाके साथ बैठा देखकर उन्होंने मेरी भरपूर भर्त्सना की ॥ ७७ ॥ यह देखकर सुदामा गोप कुपित हो गया और मेरे सामने ही उसने राधाको बड़े क्रोधके साथ बहुत फटकारा ॥ ७८ ॥ उसकी बातें सुनकर राधाके क्रोधका ठिकाना नहीं रह गया । उनकी आँखें अंगारे जैसी लाल हो गयीं और उन्होंने तत्काल उस भयभीत सुदामाको सभासे बाहर निकाल देनेका आदेश दे दिया ॥७९॥ आज्ञा पाते ही सखियोंके एक विशाल समुदायने उसे निकालकर बाहर कर दिया । उस समय भी सुदामा क्रोधके आवेशमें बड़बड़ा रहा था ॥ ८० ॥ उसकी बकवाससे राधाका क्रोध और भी बढ़ गया और उन्होंने सुदामाको शाप देते हुए कहा—अरे नीच ! तू दानवयोनिमें जाकर जन्म ले ॥ ८१ ॥ राधा अतिशय करुणामयी हैं । सखियोंका तिरस्कार करनेके कारण राधाने शाप तो दे दिया, परन्तु सुदामा मुझे प्रणाम करके रोता हुआ सभाभवनसे बाहर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाने लगा, तब दयामयी राधा कृपावश तुरन्त संतुष्ट हो गयीं । उनकी आँखोंमें आँसू भर आये । उन्होंने सुदामाको रोक लिया ॥८२॥ और कहा–'वत्स ! रुके रहो, मत जाओ, कहाँ जाओगे ? उस समय उनकी बात अनसुनी करके जब सुदामा नहीं रुका और चल ही पड़ा । तब राधा भी उसके पीछे-पीछे दौड़ीं । यह देखकर सभी गोपी और गोप रोने लगे । तब मैंने राधाको समझाया और कहा–'सभी लोग धैर्य रखें, सुदामा आधे क्षणमें ही शापका पालन करके पुनः लौट आयेगा ।' 'हे सुदामन् ! तुम यहाँ अवश्य आ जाना'–यों कहकर मैंने किसी प्रकार राधाको शान्त किया ॥८३–८५॥ अखिल जगत्के रक्षक हे ब्रह्मन् ! गोलोकके आधे क्षणमें ही भूमण्डलपर एक मन्वन्तरका समय बीत जाता है ॥८६॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार यह सब कुछ पूर्वनिश्चित व्यवस्थाके अनुसार ही हो रहा है । अतः सम्पूर्ण मायाओंके पूर्ण ज्ञाता और अपार बलशाली योगेश शंखचूड़ समय आनेपर पुनः गोलोक चला आयेगा ॥ ८७ ॥ आप लोग मेरा यह त्रिशूल लेकर शीघ्र भारतवर्षमें चलें । वहाँ शङ्कर मेरे त्रिशूलसे उस राक्षसका संहार करें ॥८८॥ दानव शंखचूड़ सम्पूर्ण मङ्गल प्रदान करनेवाले मेरे ही कवचको कंठमें

गोप्यश्च रुरुदुः सर्वा गोपाश्चापि सुदुःखिताः ॥ ते सर्वे राधिका चापि तत्पश्चाद्बोधिता मया ॥ ८४ ॥ आयास्यति क्षणार्धेन कृत्वा शापस्य पालनम् ॥ सुदामंस्त्वमिहागच्छेत्युक्त्वा सा च निवारिता ॥ ८५ ॥ गोलोकस्य क्षणार्धेन चैकं मन्वन्तरं भवेत् ॥ पृथिव्यां जगतां धातरित्येव वचनं ध्रुवम् ॥ ८६ ॥ इत्येवं शङ्खचूडश्च पुनस्तत्रैव यास्यति ॥ महाबलिष्ठो योगेशः सर्वमायाविशारदः ॥ ८७ ॥ मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छत भारतम् ॥ शिवः करोतु संहारं मम शूलेन रक्षसः ॥ ८८ ॥ ममैव कवचं कंठे सर्वमङ्गलकारकम् ॥ बिभर्ति दानवः शश्वत्संसारे विजयी ततः ॥ ८९ ॥ तस्मिन्ब्रह्मन्स्थिते चैव न कोऽपि हिंसितुं क्षमः ॥ तद्याचनां करिष्यामि विप्ररूपोऽहमेव च ॥ ९० ॥ सतीत्वहानिस्तत्पत्न्या यत्र काले भविष्यति ॥ तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया ॥ ९१ ॥ तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्यमर्पयिष्यामि निश्चितम् ॥ तत्क्षणे चैव तन्मृत्युर्भविष्यति न संशयः ॥ ९२ ॥ पश्चात्सा देहमुत्सृज्य भविष्यति मम प्रिया ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथो ददौ शूलं हराय च ॥ ९३ ॥ शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यन्तरे मुदा ॥ भारतं च ययुर्देवा ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥ ९४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सदा धारण किये रहता है । इसीलिये वह विश्वविजयी है ॥ ८९ ॥ हे ब्रह्मन् ! उसके कण्ठमें कवच रहते हुए कोई उसको मारनेमें सफल नहीं हो सकता । अतः मैं ही ब्राह्मणका वेष धारण करके उससे कवचकी याचना करूँगा ॥ ९० ॥ साथ ही जिस समय उनकी स्त्रीका सतीत्व नष्ट होगा, उसी समय उसकी मृत्यु होगी—यह भी मैंने उसको वर दे रखा है ॥ ९१ ॥ एतदर्थ मैं उसकी पत्नीके उदरमें वीर्य स्थापित करूँगा—मैंने यह निश्चित कर लिया है । वैसे तो 'तुलसी' मेरी चिरप्रिया हैं । इससे वस्तुतः मुझ सर्वात्माको कोई दोष भी नहीं होगा । उसी समय शङ्खचूड़की मृत्यु हो जायगी–इसमें कोई संदेह नहीं है । तब उस दानवकी पत्नी अपने शरीरको त्यागकर पुनः मेरी प्रिया पत्नी बन जायगी । हे नारद ! इस प्रकार कहकर जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिने शंकरजीको एक त्रिशूल सौंप दिया और प्रसन्नतापूर्वक अन्तःपुरमें चले गये । वह त्रिशूल लेकर रुद्र और ब्रह्मा सब देवताओंके साथ भारतवर्षको चल दिये ॥ ९२–९४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(पुष्पदन्तका शिवदूत बनकर शङ्खचूड़के पास जाना और शङ्खचूड़का तुलसीके प्रति ज्ञानोपदेश) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! तदनन्तर ब्रह्मा उस दानव संहार-कार्यमें शङ्करजीको नियुक्त करके स्वयं उसी क्षण अपने स्थानपर चले गये ॥१॥ अन्य देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। तब चन्द्रभागा नदीके तटपर एक मनोहर वटवृक्षके नीचे जाकर देवताओंका अभ्युदय करनेके विचारसे महादेवजीने आसन जमा लिया। गन्धर्वराज चित्ररथ शंकरजीका बड़ा प्रेमी था। सो शिवजीने उसे दूत बनाकर तुरन्त हर्षपूर्वक शङ्खचूड़के पास भेजा। उनकी आज्ञा पाकर चित्ररथ उसी क्षण शङ्खचूड़के नगरकी ओर चल पड़ा। उस दानवराजकी पुरी अमरावतीसे भी श्रेष्ठ थी। कुबेरका नगर उसके सामने तुच्छ था ॥२-४॥ उस नगरकी लम्बाई दस योजन थी और चौड़ाई पाँच योजन। स्फटिक मणिके समान रत्नोंसे वह बना था। नगरके चारों ओर वाहन खड़े थे ॥ ५ ॥ सात खाइयों और सात दुर्गोंसे वह सुरक्षित था। प्रज्वलित अग्निके समान निरन्तर चमकनेवाले करोड़ों रत्नों द्वारा उसका निर्माण किया गया था ॥६॥ उसमें सैकड़ों सुंदर सड़कें और मणिमयी विचित्र वेदियाँ थीं। व्यापारकुशल पुरुषोंके

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च ॥ जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानं सुरोत्तमाः ॥ १ ॥ चंद्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे ॥ तत्र तस्थौ महादेवो देवविस्तारहेतवे ॥ २ ॥ दूतं कृत्वा चित्ररथं गंधर्वेश्वरमीप्सितम् ॥ शीघ्रं प्रस्थापयामास शंखचूडांतिकं मुदा ॥ ३ ॥ सर्वेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं परम् ॥ महेंद्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥ ४ ॥ पञ्चयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तद्द्विगुणं भवेत् ॥ स्फटिकाकारमणिभिर्निर्मितं यानवेष्टितम् ॥ ५ ॥ सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् ॥ ज्वलदग्निनिभैः शश्वत्कल्पितं रत्नकोटिभिः ॥ ६ ॥ युक्तं च वीथीशतकैर्मणिवेदिविचित्रितैः ॥ परितो वणिजां सौधैर्नानावस्तुविराजितैः ॥ ७ ॥ सिंदूराकारमणिभिर्निर्मितैश्च विचित्रितैः ॥ भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः ॥ ८ ॥ गत्वा ददर्श तन्मध्ये शंखचूडालयं परम् ॥ अतीव वलयाकारं यथा पूर्णेन्दुमंडलम् ॥ ९ ॥ ज्वलदग्निशिखाक्ताभिः परिखाभिश्चतसृभिः ॥ तद्दुर्गमं च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम् ॥ १० ॥ अत्युच्चैर्गगनस्पर्शिमणिशृङ्गविराजितम् ॥ राजतं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितम् ॥ ११ ॥ मणीन्द्रसारनिर्माणैः शोभितं लक्षमंदिरैः ॥ शोभितं रत्नसोपानै रत्नस्तंभविराजितम् ॥ १२ ॥ तद्दृष्ट्वा पुष्पदं-

द्वारा बनवाये हुए भवन और ऊँचे-ऊचे महल चारों ओर शोभित थे, जिनमें नाना प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुएँ भरी हुई थीं ॥ ७ ॥ सिन्दूरके समान लाल मणियों द्वारा बने हुए असंख्य, विचित्र, दिव्य एवं सुन्दर आश्रम उस नगरकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥८॥ हे मुने ! इस प्रकारके सुन्दर नगरमें जाकर चित्ररथने शङ्खचूड़का भवन देखा। वह नगरके बिल्कुल मध्यभागमें था। नगरकी आकृति वलयके समान गोल थी। वह ऐसा जान पड़ता था कि मानो पूर्ण चन्द्रमण्डल हो। प्रज्वलित अग्निकी लपटोंके समान चार परिखाएँ उसे सुरक्षित किये हुए थीं। शत्रुओंके लिए उस भवनमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन था। परन्तु हितैषी व्यक्ति बड़ी सुगमतासे उसमें जा सकते थे ॥ ९ ॥ १० ॥ अत्यन्त उच्च, गगनस्पर्शी तथा मणिसे निर्मित कंगूरेसे वह भवन शोभित था। बाहरी द्वारोंसे उस भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी। प्रत्येक द्वारपाल थे ॥ ११ ॥ सर्वोत्तम मणियों द्वारा निर्मित लाखों मन्दिर, बहुतसे सोपान तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रत्नमय खम्भे थे ॥ १२ ॥ एक द्वारको देखनेके बाद पुष्पदन्तने दूसरे प्रधान द्वारको भी देखा। उस द्वारपर हाथमें त्रिशूल लिये एक पुरुष विद्यमान था। उसके मुखपर मुसकान छायी हुई थी ॥ १३ ॥ उसकी पीली आँखें थीं। उसके शरीरका रंग ताँबेके सदृश लाल था। भय उत्पन्न करनेवाले उस द्वारपालसे आज्ञा पाकर पुष्पदन्त आगे बढ़ा और दूसरे द्वारको लाँघकर भीतर चला गया। यह दूत युद्धकी सूचना पहुँचानेवाला है—यह जानकर कोई भी उसे रोकता नहीं था ॥ १४ ॥ १५ ॥ इसके बाद पुष्पदन्त सबसे भीतरी द्वारपर पहुँच गया। वहाँ द्वारपालसे अनुमति लेकर वह भीतर गया। वहाँ जाकर देखा कि परम मनोहर शंखचूड़ राजाओंके मध्यमें सुवर्णके सिंहासनपर बैठा था। उस दिव्य सिंहासनमें सर्वोत्तम मणियाँ जड़ी थीं। उसके दण्ड रत्नके थे ॥१६–१८॥ रत्नों द्वारा बने हुए श्रेष्ठ पुष्पोंसे उसकी निरन्तर शोभा हो रही थी। ऊपर सोनेका सुन्दर छत्र तना था। सफेद एवं चमकीले चँवर हाथमें लेकर पार्षद

तोऽपि वरं द्वारं ददर्श सः ॥ द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तं च सस्मितम् ॥ १३ ॥ तिष्ठंतं पिंगलाक्षं च ताम्रवर्णं भयंकरम् ॥ कथयामास वृत्तांतं जगाम तदनुज्ञया ॥ १४ ॥ अतिक्रम्य च तद्द्वारं जगामाभ्यन्तरं पुनः ॥ न कोऽपि रक्षति श्रुत्वा दूतरूपं रणस्य च ॥ १५ ॥ गत्वा सोऽभ्यंतरद्वारं द्वारपालमुवाच ह ॥ रणस्य सर्ववृत्तान्तं विज्ञापयत माचिरम् ॥ १६ ॥ स च तं कथयित्वा च दूतो गंतुमुवाच ह ॥ स गत्वा शङ्खचूडं तं ददर्श सुमनोहरम् ॥ १७ ॥ राजमण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासने स्थितम् ॥ मणीन्द्ररचितं दिव्यं रत्नदंडसमन्वितम् ॥ १८ ॥ रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तैः शोभितं सदा ॥ भृत्येन मस्तकन्यस्तं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम् ॥ १९ ॥ सेवितं पार्षदगणै रुचिरैः श्वेतचामरैः ॥ सुवेषं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥ माल्येन लेपनं सूक्ष्मं सुवस्त्रं दधतं मुने ॥ दानवेंद्रैः परिवृतं सुवेषैश्च त्रिकोटिभिः ॥ २१ ॥ शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिरस्त्रपाणिभिः ॥ एवंभूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदंतः सविस्मयः ॥ २२ ॥ उवाच स च वृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च ॥ पुष्पदन्त उवाच ॥ राजेन्द्र शिवभृत्योऽहं पुष्पदंताभिधः प्रभो ॥ २३ ॥ यदुक्तं शङ्करेणैव तद्ब्रवीमि निशामय ॥ राज्यं देहि च देवानामधिकारं च सांप्रतम् ॥ २४ ॥ देवाश्च शरणापन्ना देवेश श्रीहरिं परम् ॥ हरिर्दत्त्वाऽस्य शूलं च तेन प्रस्थापितः शिवः ॥ २५ ॥ पुष्पभद्रानदीतीरे वटमूले त्रिलोचनः ॥ विषयं देहि तेषां

शंखचूड़की सेवामें संलग्न थे। सुन्दर वेष एवं रत्नमय आभूषणोंसे आभूषित होनेके कारण वह परम रमणीय जान पड़ता था ॥१९॥ हे मुने! उसके गलेमें माला थी। शरीरपर चन्दनका अनुलेपन था। वह दो महीन उत्तम वस्त्र पहने हुए थे। सुन्दर वेषवाला वह दानव उस समय असंख्य प्रसिद्ध दानवोंसे घिरा था ॥२०॥ २१॥ अन्य असंख्य दानव हाथोंमें अस्त्र लिये इधर-उधर घूम रहे थे। इस प्रकारके शंखचूड़को देखकर पुष्पदन्त आश्चर्यमें पड़ गया ॥ २२ ॥ तदनन्तर उसने शङ्करजीके कथनानुसार युद्धविषयक संदेश सुनाना आरम्भ किया। पुष्पदन्तने कहा—हे राजेन्द्र! हे प्रभो! मैं शङ्करजीका सेवक हूँ। मेरा नाम पुष्पदन्त है ॥ २३ ॥ शङ्करजीकी कही बातें ही मैं आपसे कह रहा हूँ, आप सुननेकी कृपा करें। अब आप देवताओंका राज्य तथा उनका अधिकार लौटा दें ॥२४॥ क्योंकि वे देवेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये थे। उन प्रभुने अपना त्रिशूल देकर आपके विनाशके लिए शङ्करजीको भेजा है ॥ २५ त्रिनेत्रधारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान शिव इस समय पुष्पभद्रा नदीके तटपर वटवृक्षके नीचे विराजमान हैं। आप या तो देवताओंका राज्य लौटा दें अथवा युद्धका निश्चय कर लें ॥ २६ ॥ मुझे यह भी बता दें कि मैं भगवान शङ्करके पास जाकर उनको क्या उत्तर दूँ।' हे नारद! दूतके रूपमें गये हुए पुष्पदन्तकी बात सुनकर शंखचूड़के मुखपर हँसी छा गयी ॥ २७ ॥ उसने कहा—'हे दूत! मैं कल प्रातःकाल आऊँगा, तुम चलो।' तब पुष्पदन्त वटके नीचे विराजमान भगवान शङ्करके पास लौट गया और उनसे शंखचूड़की वह बात जो स्वयं उसने अपने मुखसे कही थी, कह सुनायी। इतनेमें ही योजनानुसार कार्तिकेय शङ्करजीके समीप आ पहुँचे ॥ २८ ॥ २९ ॥ वीरभद्र, नन्दीश्वर, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, पिंगलाक्ष, बाणासुर, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिलाख्य, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन, कालकण्ठ, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम, आठों भैरव, ग्यारहों रुद्र, आठों वसु, इन्द्र,

च युद्धं वा कुरु निश्चितम् ॥ २६ ॥ गत्वा वक्ष्यामि किं शंभुमथ तद्वद मामपि ॥ दूतस्य वचनं श्रुत्वा शङ्खचूडः प्रहस्य च ॥ २७ ॥ प्रभातेऽहं गमिष्यामि त्वं च गच्छेत्युवाच ह ॥ स गत्वोवाच तं तूर्णं वटमूलस्थमीश्वरम् ॥ २८ ॥ शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं तन्मुखोदितम् ॥ एतस्मिन्नंतरे स्कन्द आजमाम शिवांतिकम् ॥ २९ ॥ वीरभद्रश्च नंदी च महाकालः सुभद्रकः ॥ विशालाक्षश्च बाणश्च पिंगलाक्षो विकंपनः ॥ ३० ॥ विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः ॥ कपिलाख्यो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्रलोचनः ॥३१॥ कालकंठो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः ॥ बलोन्मत्तो रणश्लाघी दुर्जयो दुर्गमस्तथा ॥ ३२ ॥ अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादश स्मृताः ॥ वसवोऽष्टौ वासवश्च आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ ३३ ॥ हुताशनश्च चंद्रश्च विश्वकर्माश्विनौ च तौ ॥ कुबेरश्च यमश्चैव जयंतो नलकूबरः ॥ ३४ ॥ वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मंगलस्तथा ॥ धर्मश्च शनिरीशानः कामदेवश्च वीर्यवान् ॥३५॥ उग्रदंष्ट्रा चोग्रचंडा कोटरा कैटभी तथा ॥ स्वयं चाष्टभुजा देवी भद्रकाली भयंकरी ॥३६॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता ॥ रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ॥ ३७॥ नृत्यंती च हसंती च गायन्ती सुस्वरं मुदा ॥ अभयं ददाति भक्तेभ्योऽभया सा च भयं रिपुम्॥ ३८ ॥ बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम्॥ शङ्खचक्रगदापद्मखड्गचर्मधनुःशरान् ॥ ३९ ॥ खर्परं वर्तुलाकारं गम्भीरं योजनायतम् ॥ त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं च योजनायतम् ॥ ४० ॥ मुद्गरं मुसलं वज्रं खेटं फलकमुज्ज्वलम् ॥ वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं

बारहों सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यमराज, जयन्त, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, शनि, ईशान और प्रतापी कामदेव आदि भी वहाँ आ गये ॥ ३०–३५ ॥ साथ ही तीखे दाढ़वाली उग्रदंष्ट्रा, कोटरा, कैटभी तथा स्वयं आठ भुजासे सुशोभित भगवती भद्रकाली भी भयंकर रूप धारण करके वहाँ आ गयीं ॥ ३६ ॥ वे देवी अतिशय श्रेष्ठ रत्न द्वारा निर्मित विमानपर बैठी थीं। उनका विग्रह लाल रंगके वस्त्रसे सुशोभित था। उनके गलेमें लाल पुष्पोंकी माला थी। उनके सभी अङ्ग लाल चन्दनसे अनुलिप्त थे। नाचना, हँसना और हर्षके उल्लासमें भरकर मीठे स्वरोंमें गाना उन भक्तोंकी अभयस्वरूपिणी भगवती भद्रकालीका सहज गुण बन गया था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उनके मुखमें योजनाभर लंबी जीभ लपलपा रही थी। शंख, चक्र, गदा, पद्म, ढाल, तलवार, धनुष, बाण, एक योजन विस्तृत वर्तुलाकार गंभीर खप्पर, गगनचुम्बी त्रिशूल, एक योजन फैली हुई शक्ति, मुद्गर, मुसल,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वज्र, पाश, खेटक, प्रकाशमान फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्व, गरुड़, ब्रह्मा, पर्जन्य एवं पशुपति शंकरके अस्त्र, जृम्भणास्त्र, पर्वतास्त्र, माहेश्वरास्त्र, वायुका दण्ड, सम्मोहन अस्त्र, अथर्ववेदोक्त दिव्य अस्त्र तथा दिव्य एवं श्रेष्ठ शतक अस्त्र धारण करके भद्रकाली अनन्त योगिनियांके साथ वहाँ आकर विराजमान हो गयीं। उनके साथ अत्यन्त भयंकर अ॰ रुय डाकिनियोंका यूथ सुशोभित था ॥ ३९-४४ ॥ भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष और किन्नर भी सहयोग देनेके लिये आ पहुँचे ॥ ४५ ॥ सबको सा लेकर स्वामिकार्तिकेयने अपने पिता चन्द्रशेखर शिवको प्रणाम किया और सहायता करनेके विचारसे उनकी आज्ञा लेकर पास ही बैठ गये ॥ ४६ ॥ इधर दूतके चले जानेपर प्रतापी शङ्खचूड़ अन्तःपुरमें गया और उसने अपनी पत्नी तुलसीको युद्धसम्बन्धी सब बातें बतायीं ॥ ४७ ॥ सो सुनते ही तुलसीके होंठ और तालु सूख गये। उसका

वाह्नेयं नागपाशकम् ॥ ४१ ॥ नारायणास्त्रं गांधर्वं ब्रह्मास्त्रं गारुडं तथा ॥ पर्जन्यास्त्रं पाशुपतं जृम्भणास्त्रं च पार्वतम् ॥ ४२ ॥ माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दण्डं संमोहनं तथा ॥ अव्यर्थमस्त्रकं दिव्यं दिव्यास्त्रशतकं परम् ॥ ४३ ॥ आगत्य तत्र तस्थौ च योगिनीनां त्रिकोटिभिः ॥ सार्धं च डाकिनीनां च विकटानां त्रिकोटिभिः ॥ ४४ ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्मांडा ब्रह्मराक्षसाः ॥ वेताला राक्षसाश्चैव यक्षाश्चैव तु किन्नराः ॥ ४५ ॥ ताभिश्चैव सह स्कंदः प्रणम्य चन्द्रशेखरम् ॥ पितुः पार्श्वे सहायार्थं समुवास तदाज्ञया ॥ ४६ ॥ अथ दूते गते तत्र शंखचूडः प्रतापवान् ॥ उवाच तुलसीं वार्तां गत्वाऽभ्यंतरमेव च ॥४७॥ रणवार्तां च सा श्रुत्वा शुष्ककंठोष्ठतालुका ॥ उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता ॥४८॥ तुलस्युवाच ॥ हे प्राणबन्धो हे नाथ तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम् ॥ हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवितं क्षणम् ॥ ४९ ॥ भुंक्ष्व जन्म समासाद्य यन्मे मनसि वांछितम् ॥ पश्यामि त्वां क्षणं किंचिल्लोचनाभ्यां च सादरम् ॥५०॥ आन्दोलयन्ते प्राणा मे मनो दग्धं च संततम् ॥ दुःस्वप्नश्च मया दृष्टश्चाद्यैव चरमे निशि ॥५१॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः ॥ उवाच वचनं प्राज्ञो हितं सत्यं यथोचितम् ॥ ५२ ॥ शंखचूड उवाच ॥ कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिबंधनम् ॥ शुभं हर्षः सुखं दुःखं भयं शोकश्च मंगलम् ॥ ५३ ॥ काले भवंति वृक्षाश्च स्कन्धवन्तश्च कालतः ॥ क्रमेण पुष्पवंतश्च फलवंतश्च कालतः ॥ ५४ ॥ तेषां फलानि पक्वानि प्रभवंत्येव कालतः ॥ ते सर्वे फलिताः काले पातं यांति च कालतः ॥ ५५ ॥ काले भवंति विश्वानि काले

हृदय संतप्त हो उठा। फिर परम साध्वी तुलसी मधुर वाणीमें कहने लगी ॥४८॥ तुलसीने कहा—हे प्राणबन्धो! हे नाथ! आप मेरे प्राणोंके अधिष्ठाता देवता हैं। आप विराजिये। मैं अपने नेत्रोंसे कुछ समयतक तो आदरपूर्वक आपके दर्शन कर लूँ। मेरे प्राण तड़फ रहे हैं। आज मैंने रातके अन्तिम क्षणमें एक भीषण स्वप्न देखा है ॥ ४९-५१ ॥ राजा शङ्खचूड़ ज्ञानी पुरुष था। तुलसीकी बात सुनकर उसने भोजन किया। जल पिया। फिर अवसर पाकर उसने सत्य, हितकर एवं यथार्थ वचन तुलसीसे कहे ॥५२॥ शङ्खचूड़ बोला—हे प्रिये! कर्मभोगका सारा बन्धन कालके सूत्रमें बँधा है। शुभ, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक और मङ्गल—सभी कालके अधीन हैं ॥ ५३ ॥ समयानुसार वृक्ष उगते हैं, उनपर शाखाएँ फैलतीं हैं, पुष्प लगते और क्रमशः वे फलसे लद जाते हैं। फिर काल ही उन फलोंको पकाता है। बादमें कालके प्रभावसे फूल-फलकर वे सम्पूर्ण वृक्ष नष्ट भी हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे सुन्दरी! वैसे ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समयपर विश्व उत्पन्न होता है और समयानुसार उसको अन्तिम घड़ी आ जाती है। कालकी महिमा स्वीकार करके ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और विष्णु पालनमें तत्पर रहते हैं ॥५६॥ रुद्रका संहारकार्य भी कालके संकेतपर ही निर्भर है। ये सभी क्रमशः कालानुसार अपने व्यापारमें नियुक्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि प्रधान देवताओंकी भी अधिष्ठात्री देवी भगवती प्रकृति हैं ॥५७॥ उन्हींको स्रष्टा, पाता और संहर्ता कहते हैं। केवल उन्हींमें कालको नचानेकी क्षमता है। उन्हींको परब्रह्म परमात्मा कहा जाता है। वे ही समयपर स्वेच्छापूर्वक अपनेसे अभिन्न प्रकृतिको आगे करके विश्वमें रहनेवाले सम्पूर्ण चराचर जीवोंको रचती हैं। सर्वेश, सर्वरूप, सर्वात्मा और परमेश्वर उनकी उपाधियाँ हैं। जो जनसे जनकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करते हैं, उन्हीं परम प्रभुको अब तुम उपासना करो ॥५८-६०॥ उन्हीकी आज्ञासे शीघ्रगामी पवन प्रवाहित होते हैं, सूर्य आकाशमें तपते हैं, इन्द्र समयानुसार वर्षा करते हैं, मृत्यु प्राणियोंमें विचरती है, अग्नि यथावसर दाह उत्पन्न करते हैं तथा शीतल चन्द्रमा आकाशमण्डलमें चक्कर लगाते हैं ॥६१॥६२॥ हे प्रिये! जो मृत्यु, कालके काल, यमराजके श्रेष्ठ शासक, ब्रह्माके

नश्यंति सुन्दरि ॥ कालात्स्रष्टा च सृजति पाता पाति च कालतः ॥ ५६ ॥ संहर्ता संहरेत्काले क्रमेण संचरंति ते ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतिः परा ॥ ५७ ॥ स्रष्टा पाता च संहर्ता स चात्मा कालनर्तकः ॥ काले स एव प्रकृतिं स्वाभिन्नां स्वेच्छया प्रभुः ॥५८॥ निर्माय कृतवान्स-र्वान्विश्वस्थांश्च चराचरान् ॥ सर्वेशः सर्वरूपश्च सर्वात्मा परमेश्वरः ॥५९॥ जनं जनेन जनिता जनं पाति जनेन यः ॥ जनं जनेन हरते तं देवं भज सांप्रतम् ॥ ६० ॥ यस्याज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च सांप्रतम् ॥ यस्याज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम् ॥ ६१ ॥ यथाक्षणं वर्षतींद्रो मृत्युश्चरति जंतुषु ॥ यथाक्षणं दहत्यग्निश्चन्द्रो भ्रमति शीतवान् ॥ ६२ ॥ मृत्योर्मृत्युं कालकालं यमस्य च यमं परम् ॥ विभुं स्रष्टुश्च स्रष्टारं मातुश्च मातृकं भवे ॥ ६३ ॥ संहर्तारं च संहर्तुस्तं देवं शरणं व्रज ॥ को वा बंधुश्च केषां वा सर्वबंधुं भज प्रिये ॥ ६४ ॥ अहं को वा च त्वं का वा विधिना योजितः पुरा ॥ त्वया सार्धं कर्मणा च पुनस्तेन वियोजितः ॥ ६५ ॥ अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ न च पंडितः ॥ सुखे दुःखे भ्रमत्येव कालनेमिक्रमेण च ॥ ६६ ॥ नारायणं तं सर्वेशं कांतं यास्यसि निश्चितम् ॥ तपः कृतं यदर्थं च पुरा बदरिकाश्रमे ॥ ६७ ॥ मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणस्तु वरेण च ॥ हर्यर्थे यत्तव तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि ॥ ६८ ॥ वृंदावने च गोविंदं गोलोके त्वं लभिष्यसि ॥ अहं यास्यामि

स्वामी, माताओंकी माता, जगत्की जननी तथा संहार करनेवालेके भी संहारकर्ता हैं, उन परम प्रभु भगवान श्रीहरिकी शरणमें जाओ। यहाँ कौन किसका बन्धु है या किसका कौन है? हे कान्ते! जो सबके बन्धु हैं, तुम उन्हींकी उपासना करो ॥६३॥६४॥ ब्रह्माने हम दोनोंको मिलाकर प्रेमबन्धनमें बाँध दिया। इससे मैं तुम्हारे साथ जगत्के व्यवहारमें फँस गया। पुनः विलग हो जाना भी विधिकी इच्छापर ही निर्भर है ॥६५॥ शोक एवं विपत्ति सामने आनेपर अज्ञानी व्यक्ति घबराता है, न कि पण्डित पुरुष। कालचक्रके क्रमसे सुख और दुःख आते-जाते ही रहते हैं ॥ ६६ ॥ अब तुम्हें निश्चय ही वे सर्वेश भगवान नारायण साक्षात् पतिरूपमें प्राप्त होंगे, जिनके लिये बदरी-आश्रममें रहकर तुम तपस्या कर चुकी हो ॥६७॥ तपस्या तथा ब्रह्मा-के वरदानसे तुम्हें मुझको पानेका सुअवसर प्राप्त हुआ था। हे कामिनी! उस समय तुम भगवान् श्रीहरिके लिये तप कर रही थीं। अतएव अब तुम उन्हींको प्राप्त करोगी ॥६८॥ गोलोकमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वृन्दावन है। वहीं भगवान् गोविन्द तुम्हें अपनी प्राणप्रिया बनायेंगे। मैं भी इस दानव-शरीरका परित्याग करके उसी दिव्यलोकमें चलूँगा ॥ ६९ ॥ वहीं तुम मुझे देख सकोगी और मैं तुम्हें। इस समय मैं जो परम दुर्लभ भारतवर्षमें आया हूँ, इसमें केवल श्रीराधाजीका शाप ही कारण है ॥ ७० ॥ हे प्रिये! सुनो, मेरा गोलोकमें पुनः जाना सर्वथा निश्चित है। तब शोक करनेकी क्या आवश्यकता है? हे कान्ते! तुम भी शीघ्र ही इस शरीरका परित्याग करके और दिव्य रूप धारणकर श्रीहरिको पतिरूपमें प्राप्त कर लोगी। अतः तनिक भी घबराने-की आवश्यकता नहीं है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इस प्रकार शंखचूड़ तुलसीके साथ सुन्दर बातचीत कर रहा था। इतनेमें सायंकालका समय हो गया। उस रत्नमय भवनमें पुष्प और चन्दनसे चर्चित श्रेष्ठ शय्या बिछी थी। वह उसपर सो गया और भाँति-भाँतिके वैभवोंकी बात उसके मनमें स्फुरित होने लगी ॥ ७३ ॥ उस समय भवनमें स्त्रियोंमें रत्नस्वरूपा तुलसीको पाकर शंखचूडने वह सारी रात भोग-विलासमें बितायी ॥ ७४ ॥ अत्यन्त दुःखसे रोती हुई, निराहार रहनेके कारण कृशाङ्गी एवं शोकसागरमें निमग्न तुलसीको गोदमें बैठाकर वह ज्ञानी

तल्लोकं तनुं त्यक्त्वा च दानवीम् ॥६९॥ तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वं च द्रक्ष्यामि त्वां च सांप्रतम् ॥ अगमं राधिकाशापाद्भारतं च सुदुर्लभम् ॥ ७० ॥
पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये ॥ त्वं च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च ॥ ७१ ॥ तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कांते कातरा भव ॥
इत्युक्त्वा च दिनांते स तया सार्धं मनोहरम् ॥ ७२ ॥ सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते ॥ नानाप्रकारविभवं चकार रत्नमन्दिरे ॥ ७३ ॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम् ॥ निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमंगलैः ॥ ७४ ॥ कृत्वा वक्षसि तां कांतां रुदतीमतिदुःखिताम् ॥
कृशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे ॥ ७५ ॥ पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन ज्ञानवित् ॥ पुरा कृष्णेन यद्दत्तं भांडीरे तत्त्वमुत्तमम् ॥ ७६ ॥
स च तस्यै ददौ सर्वं सर्वशोकहरं परम् ॥ ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥ ७७ ॥ क्रीडां चकार हर्षेण सर्वं मत्वेति नश्वरम् ॥ तौ दंपती
च क्रीडंतौ निमग्नौ सुखसागरे ॥ ७८ ॥ पुलकांचितसर्वाङ्गौ मूर्छितौ निर्जने मुने ॥ अंगप्रत्यंगसंयुक्तौ सुप्रीतौ सुरतोत्सुकौ ॥ ७९ ॥ एकांगौ च
तथा तौ द्वौ चार्धनारीश्वरो यथा ॥ प्राणेश्वरं च तुलसी मेने प्राणाधिकं परम् ॥८०॥ प्राणाधिकां च तां मेने राजा प्राणेश्वरीं सतीम् ॥ तौ स्थितौ
सुखसुप्तौ च तंद्रितौ सुन्दरौ समौ ॥८१॥ सुवेषौ सुखसंभोगादचेष्टौ सुमनोहरौ ॥ क्षणं सुचेतनौ तौ च कथयंतौ रसाश्रयात् ॥ ८२ ॥ कथां मनोरमां

शंखचूड़ दिव्य ज्ञानका उपदेश देता हुआ समझाने लगा। यह वह ज्ञान था, जो भांडीरवनमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उसे प्रदान किया था ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ वह शोकहारी तत्त्वज्ञान उसने तुलसीको दिया, उसे प्राप्त करके उसका चेहरा प्रसन्नतासे खिल उठा ॥ ७७ ॥ अब उसने सब कुछ नश्वर समझ लिया और वे दोनों प्राणी सुखके सागरमें निमग्न होकर विहार करने लगे ॥ ७८ ॥ उस समय वे दोनों अंग-प्रत्यंग परस्पर सटा तथा मूर्च्छित जैसे होकर भोग-विलास कर रहे थे। उनका शरीर पुलकित था ॥ ७९ ॥ वे अर्धनारीश्वरके समान एकाकार हो गये थे। तुलसी अपने पतिको प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती थी ॥ ८० ॥ उसी प्रकार शंखचूड़ भी तुलसीको अपनी प्राणेश्वरी मानता था। वे दोनों ही सुन्दर दम्पती बड़े आनन्दसे सोये ॥८१॥ उनकी बड़ी ही सुन्दर वेष-भूषा थी। उस अनुपम आनन्दमें विभोर होकर वे अचेत पड़े रहे। जब कभी होश आता था, तब वे परस्पर रसीली बातें करने लगते थे ॥ ८२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्षण भर वे मनोरम बातें करते हुए खूब हँसते और क्षण ही भर बाद शृंगाररसके भावावेशमें आकर केलि करने लगते थे ॥८३॥ कामशास्त्रके पंडित होनेके कारण उनके भोगविलासका अन्त ही नहीं होने आता था। क्षण ही भरमें वे अपनेको विजयी समझने लगते थे और क्षण ही भरमें पराजित ॥ ८४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेज-शास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

(शंखचूड़का पुष्पभद्रा नदीके तटपर जाना, वहाँ भगवान् शंकरका दर्शन करके उनसे विशद वार्तालाप) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद ! शंखचूड़ श्रीकृष्णका भक्त था। वह मनमें भगवान श्रीकृष्णका ध्यान करके ब्राह्ममुहूर्तमें ही अपनी पुष्पमयी शय्यासे उठ गया ॥ १ ॥ उसने स्वच्छ जलसे स्नान करके रातके वस्त्र त्याग दिये और धुले हुए दो वस्त्रोंको पहनकर उज्ज्वल तिलक लगा लिया ॥२॥ फिर इष्टदेवताके वन्दन आदि प्रतिदिनके आवश्यक कर्त्तव्योंको पूरा किया। दही, घृत, मधु और धानका लावा आदि माङ्गलिक वस्तुएँ देखीं ॥३॥

दिव्यां हसंतौ च क्षणं पुनः ॥ क्षणं च केलिसंयुक्तौ रसभावसमन्वितौ ॥ ८३ ॥ सुरते विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपंडितौ ॥ सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं चैव पराजितौ ॥ ८४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारायणसंवादे शक्तिप्रादुर्भावे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ श्रीकृष्णं मनसा ध्यात्वा रक्षः कृष्णपरायणः ॥ ब्राह्मे मूहूर्ते चोत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात् ॥ १ ॥ रात्रिवासः परि-त्यज्य स्नात्वा मंगलवारिणा ॥ धौते च वाससी धृत्वा कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम् ॥ २ ॥ चकाराह्निकमावश्यमभीष्टदेववंदनम् ॥ दध्याज्यमधुलाजांश्च ददर्श वस्तु मंगलम् ॥ ३ ॥ रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्तुश्रेष्ठं च कांचनम् ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यं च नारद ॥ ४ ॥ अमूल्यरत्नं यत्किञ्चि-न्मुक्तामाणिक्यहीरकम् ॥ ददौ विप्राय गुरवे यात्रामंगलहेतवे ॥ ५ ॥ गजरत्नमश्वरत्नं धनरत्नं मनोहरम् ॥ ददौ सर्वं दरिद्राय विप्राय मंगलाय च ॥ ६ ॥ भांडाराणां सहस्राणि नगराणां द्विलक्षकम् ॥ ग्रामाणां शतकोटिं च ब्राह्मणाय ददौ मुदा ॥ ७ ॥ पुत्रं कृत्वा तु राजेन्द्रं सर्वेषु दानवेषु च ॥ पुत्रं समर्प्य भार्यां तां राज्यं च सर्वसम्पदम् ॥ ८ ॥ प्रजानुचरसंघं च भांडारं वाहनादिकम् ॥ स्वयं सन्नाहयुक्तश्च धनुष्पाणिर्बभूव ह ॥ ९ ॥ भृत्यद्वारा क्रमेणैव चकार सैन्यसंचयम् ॥ अश्वानां च त्रिलक्षेण लक्षेण वरहस्तिनाम् ॥१०॥ रथानामयुतेनैव धानुष्काणां त्रिकोटिभिः ॥ त्रिकोटिभि-

हे नारद ! प्रतिदिनकी भाँति उसने भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको उत्तम रत्न, मणि, स्वर्ण और वस्त्र दान दिये ॥ ४ ॥ यात्रा मङ्गलमयी होनेके लिये उसने बहुमूल्य रत्न तथा कुछ मोती, मणि एवं हीरे भी गुरुदेवकी सेवामें समर्पण किये ॥ ५ ॥ वह अपने कल्याणार्थ श्रेष्ठ हाथी, घोड़े और सर्वोत्तम धन दरिद्र ब्राह्मणोंको खुले हाथों बाँटने लगा। उस समस हजारों वस्तुओंसे पूर्ण भवन, लाखों नगर तथा असंख्य गाँव शंखचूड़ने दानरूपमें ब्राह्मणोंको दिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके बाद उसने अपने पुत्रको सम्पूर्ण दानवोंका राजा बनाकर उसे अपनी प्रेयसी पत्नी, राज्य, सम्पूर्ण सम्पत्ति, प्रजा, सेवक-वर्ग, कोष तथा हाथी-घोड़े आदि वाहन सौंप दिये ॥ ८ ॥ उसने स्वयं कवच पहन लिया। हाथमें धनुष और बाण ले लिया। सब सैनिकोंको एकत्र किया। तीन लाख घोड़े और एक लाख उत्तम श्रेणीके हाथी उपस्थित हुए ॥ ९ ॥ १० ॥ दस हजार रथ तथा तीन-तीन करोड़ धनुर्धारी, कवचधारी और त्रिशूलधारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वीर उसकी सेनाके अङ्ग बने ॥ ११ ॥ हे नारद ! इस प्रकार दानवेश्वर शंखचूड़ने अपरिमित सेना सजा ली और युद्धशास्त्रके पारगामी एक महारथी वीरको सेनापतिके पदपर नियुक्त किया ॥ १२ ॥ महारथी उसे समझना चाहिए, जो रथियोंमें श्रेष्ठ हो । राजा शंखचूड़ने उस महारथीको तीन लाख अक्षौहिणी सेनापर अधिकार प्रदान कर दिया ॥ १३ ॥ उस सेनाध्यक्षमें ऐसी योग्यता थी कि तीस अक्षौहिणी सेनाके महास्त्रसे अपनी सेनाको बचा सकता था । तत्पश्चात् शंखचूड़ मन ही मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करता हुआ बाहर निकला ॥१४॥ उत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर वह सवार हुआ और गुरुवर्गको आगे करके भगवान् शङ्करकी ओर चल पड़ा ॥१५॥ हे नारद ! पुष्पभद्रा नदीके तटपर एक सुन्दर अक्षयवट है । वहीं सिद्धोंके बहुत-से आश्रम हैं । उस स्थानको सिद्धक्षेत्र कहा गया है ॥१६॥ वह पवित्र स्थान भारतवर्षमें है । उसे कपिल मुनिका तपोभूमि भी कहते हैं ; वह पश्चिमी समुद्रसे पूर्व तथा मलयपर्वतके पश्चिममें स्थित है ॥१७॥ वह श्रीशैल पर्वतसे उत्तर तथा गंधमादनके दक्षिण भागमें है। उसकी चौड़ाई पाँच योजन और लंबाई पाँच सौ योजन है ॥१८॥ वहाँ भारतवर्षकी एक पुण्यप्रदा नदी बहती

वर्मिणां च शूलिनां च त्रिकोटिभिः ॥ ११ ॥ कृता सेनाऽपरिमिता दानवेन्द्रेण नारद ॥ तस्यां सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः ॥ १२ ॥ महारथः स विज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे ॥ त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः ॥ १३ ॥ त्रिंशदक्षौहिणीबाधं भाण्डौघं च चकार ह ॥ बहिर्बभूव शिविरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥ १४ ॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानमारुरोह सः ॥ गुरुवर्गान्पुरस्कृत्य प्रययौ शङ्करान्तिकम् ॥ १५ ॥ पुष्पभद्रानदी-तीरे यत्राक्षयवटः शुभः ॥ सिद्धाश्रमं च सिद्धानां सिद्धक्षेत्रं च नारद ॥ १६ ॥ कपिलस्य तपःस्थानं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य च पश्चिमे ॥ १७ ॥ श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे ॥ पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा ॥ १८ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशा भारते च सुपुण्यदा ॥ शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा ॥ १९ ॥ लवणाब्धिप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता ॥ शरावतीमिश्रिता च निर्गता सा हिमालयात् ॥ २० ॥ गोमतीं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ ॥ तत्र गत्वा शङ्खचूडो ददर्श चन्द्रशेखरम् ॥ २१ ॥ वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ कृत्वा योगासनं दृष्ट्वा मुद्रायुक्तं च सस्मितम् ॥ २२ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥ त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् ॥ २३ ॥ भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोहरम् ॥ तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥ २४ ॥

है । उसका जल स्वच्छ स्फटिक मणिके समान उद्भासित होता रहता है। वह जलसे कभी खाली नहीं होती । उसे पुष्पभद्रा कहते हैं ॥१९॥ वह नदी समुद्रकी पत्नीरूपसे विराजमान होकर सदा सौभाग्यवती बनी रहती है । उसका उद्गम-स्थान हिमालय है । कुछ दूर आगे जानेपर शरावती नामकी नदी उसमें मिल गयी है ॥२०॥ गोमती नदी उसकी बायीं ओर बहती है । अन्तमें पश्चिमी समुद्रसे उसका संगम हो गया है । वहाँ पहुँचकर शंखचूड़ने भगवान् शङ्करको देखा ॥२१॥ उस समय भगवान् शङ्कर वटवृक्षके नीचे विराजमान थे । उनका विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान उद्भासित हो रहा था । वे योगासनकी मुद्रामें बैठे थे । मुखमण्डल मुसकानसे भरा था । ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होकर वे इस प्रकार प्रदीप्त हो रहे थे, मानो शुद्ध स्फटिकमणि चमक रहा हो ॥२२॥ उनके हाथमें त्रिशूल और पट्टिश था । शरीरपर श्रेष्ठ बाघम्बर शोभा पा रहा था ॥२३॥ वस्तुतः गौरीके प्रिय पति भगवान् शंकर परम सुन्दर हैं । उनका शान्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विग्रह भक्तोंके मृत्युभयको दूर करनेमें पूर्ण समर्थ है। तपस्याका फल देना तथा सभी सम्पत्तियोंको भरपूर रखना उनका स्वाभाविक गुण है ॥ २४ ॥ वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं। उनके मुखपर कभी उदासी नहीं आती। भक्तोंपर कृपा करनेके लिए वे सदा आकुल रहते हैं। उन्हें विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वज, विश्वम्भर, विश्ववर और विश्वसंहारक कहा जाता है। वे कारणोंके कारण तथा नरकरूपी समुद्रसे उद्धार करनेमें परम कुशल हैं ॥२५॥२६॥ वे सनातन प्रभु ज्ञान देनेवाले, ज्ञानके बीज तथा ज्ञानानन्द हैं। दानवराज शङ्खचूड़ उन्हें देखकर विमानसे उतर पड़ा ॥ २७ ॥ फिर सबके साथ विद्यमान भगवान् शङ्करको उसने सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उस समय शङ्करजीके वामभागमें भद्रकाली विराजित थीं और सामने कार्तिकेय बैठे थे ॥ २८ ॥ इन तीनों महानुभावोंने शङ्खचूड़को आशीर्वाद दिया। उसे आये हुए देखकर नन्दीश्वर प्रभृति सबके सब गण उठकर खड़े हो गये ॥ २९ ॥ तदनन्तर सबमें परस्पर सामयिक बातें आरम्भ हो गयीं। उनसे बातचीत करनेके पश्चात् राजा शंखचूड़ भगवान् शङ्करजीके समीप बैठ गया। तब प्रसन्नात्मा भगवान् महादेव

आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम् ॥ २५ ॥ विश्वम्भरं विश्ववरं विश्वसंहारकारकम् ॥ कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम् ॥ २६ ॥ ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् ॥ अवरुह्य विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ॥ २७ ॥ सर्वैः सार्धं भक्तियुक्तः शिरसा प्रणनाम सः ॥ वामतो भद्रकालीं च स्कन्दं च तत्पुरः स्थितम् ॥ २८ ॥ आशिषं च ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शङ्करः ॥ उत्तस्थुरागतं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः ॥ २९ ॥ परस्परं च भाषन्ते चक्रुस्तत्र च सांप्रतम् ॥ राजा कृत्वा च संभाषामुवास शिवसन्निधौ ॥ ३० ॥ प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥ महादेव उवाच ॥ विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् ॥ ३१ ॥ मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चापि धार्मिकः ॥ कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः ॥ ३२ ॥ दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश ॥ तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्धिता ॥ ३३ ॥ चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्बणाः ॥ तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः ॥ ३४ ॥ तत्पुत्रो धार्मिको दंभो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम् ॥ ३५ ॥ शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम् ॥ ३६ ॥ पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वपि सुधार्मिकः ॥ अधुना राधिकाशापाद्भारते दानवेश्वरः ॥ ३७ ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यन्तं

कहने लगे। महादेवजीने कहा—हे राजन्! ब्रह्मा अखिल जगत्के रचयिता हैं। उन धर्मज्ञ पुरुषके पुत्रका नाम धर्म है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ धर्मके पुत्र मरीचि हैं। इनमें श्रीहरिके प्रति अपार श्रद्धा तथा धर्मके प्रति निष्ठा है। मरीचिने धर्मात्मा कश्यपको पुत्ररूपसे प्राप्त किया है ॥ ३२ ॥ प्रजापति दक्षने प्रसन्नतापूर्वक अपनी तेरह कन्याएँ इन्हें सौंपी हैं। उन्हीं कन्याओंमें उस वंशकी वृद्धि करनेवाली परम साध्वी दनु भी है ॥ ३३ ॥ दनुके चालीस पुत्र हैं, जिन्हें परम तेजस्वी दानव कहा जाता है। उन पुत्रोंमें बल एवं पराक्रमसे युक्त एक पुत्रका नाम विप्रचित्ति है ॥ ३४। विप्रचित्तिके पुत्र दम्भ हैं। ये दम्भ धर्मात्मा, जितेन्द्रिय एवं वैष्णव पुरुष हैं। इन्होंने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर भगवान् श्रीकृष्णके उत्तम मन्त्रका पुष्करक्षेत्रमें लाख वर्ष तक जप किया था, तब तुम कृष्णपरायण श्रेष्ठ पुरुष उन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ पूर्वजन्ममें तुम भगवान् कृष्णके पार्षद तथा महान् धर्मात्मा गोप थे। गोपोंमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम्हारी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इस समय तुम राधिकाके शापसे भारतवर्षमें आकर दानवेश्वर बन गये हो ॥ ३७ ॥ वैष्णव पुरुष ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सारी वस्तुओंको तुच्छ मानते हैं। उन्हें केवल भगवान श्रीहरिकी सेवा ही अभीष्ट होती है। सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य और सामीप्य–इन चार प्रकारकी मुक्तियों तकको वे दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करते। उनके मनमें ब्रह्मत्व अथवा अमरत्वके प्रति भी कोई आस्था नहीं रहती ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इन्द्रत्व या मनुष्यत्वको तो वे किसी भी गणनामें स्थान नहीं देते। तुम वही परम वैष्णव श्रीकृष्णभक्त पुरुष हो। फिर देवताओंके राज्य-विषयक तुच्छ पदार्थमें तुम्हारी बुद्धि क्यों चक्कर काट रही है? ॥ ४० ॥ हे राजन्! तुम देवताओंका राज्य वापस करके मेरी प्रीतिकी रक्षा करो। तुम अपने राज्यमें सुखसे रहो और देवता अपने स्थानपर रहें ॥ ४१ ॥ इस विरोधसे कोई प्रयोजन नहीं। क्योंकि सबके सब मुनि कश्यपजीके ही वंशज हैं। ब्रह्महत्या आदिसे उत्पन्न जितने पाप हैं, उनकी यदि जातिद्रोह-सम्बन्धी पापसे तुलना की जाय तो वे उसकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। हे राजेन्द्र! यदि तुम अपनी सम्पत्तिकी हानि समझते हो तो भला सोचो

तुच्छं मेने च वैष्णवः ॥ सालोक्यसार्ष्टिसायुज्यसामीप्यं च हरेरपि ॥ ३८ ॥ दीयमानं न गृह्णंति वैष्णवाः सेवनं विना ॥ ब्रह्मत्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः ॥ ३९ ॥ इन्द्रत्वं वामनत्वं वा न मेने गणनासु च ॥ कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमः ॥ ४० ॥ देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष भूमिप ॥ सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठंतु वै पदे ॥ ४१ ॥ अलं भूतविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजाः ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ ४२ ॥ ज्ञातिद्रोहस्य पापानि कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ स्वसंपदां च हानिं च यदि राजेन्द्र मन्यसे ॥ ४३ ॥ सर्वावस्था च समतां केषां याति च सर्वदा ॥ ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सदा ॥४४॥ आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभावादीश्वरेच्छया ॥ ज्ञानवृद्धिश्च तपसा स्मृतिलोपश्च निश्चितम् ॥ ४५ ॥ करोति सृष्टिं ज्ञानेन स्रष्टा सोऽपि क्रमेण च ॥ परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रये सदा ॥ ४६ ॥ त्रिभागः सोऽपि त्रेतायां द्विभागो द्वापरे स्मृतः ॥ एकभागः कलौ पूर्वं तदंशश्च क्रमेण च ॥४७॥ कलामात्रं कलेः शेषे कुह्वां चंद्रकला यथा ॥ यादृक्तेजो रवेर्ग्रीष्मे न तादृक्शिशिरे पुनः ॥ ४८ ॥ दिनेषु यादृङ्मध्याह्ने सायं प्रातर्न तत्समम् ॥ उदयं याति कालेन बालतां च क्रमेण च ॥ ४९ ॥

तो कौनसे ऐसे पुरुष हैं, जिनकी सदा एक-सी स्थिति बनी रह सकती है। प्राकृतिक प्रलयके समय ब्रह्मा भी अन्तर्धान हो जाते हैं ॥४२–४४ परब्रह्मके प्रभावसे फिर उनका प्राकट्य हो जाता है। उस समय उनकी स्मृति लुप्त-सी रहती है। ईश्वरकी इच्छासे तपस्या करके वे परम ज्ञानी बन जाते हैं—यह निश्चित है ॥ ४५ ॥ फिर वे ज्ञानपूर्वक क्रमशः सृष्टि करते हैं। अतएव उन्हें स्रष्टाकी उपाधि मिलती है। हे राजन्! सत्ययुगमें कोई असत्य भाषण नहीं करता। इसलिए उस युगमें धर्म अपने परिपूर्णतम अंशोंके साथ विराजमान रहता है ॥ ४६ ॥ वही धर्म त्रेतामें तीन भागसे, द्वापरमें दो भागसे तथा कलिमें एक भागसे युक्त कहा जाता है। पूर्वके क्रमसे एक-एक अंश कम होता रहता है ॥ ४७ ॥ अमावस्याके चन्द्रमाकी भाँति कलिके अन्तमें धर्मकी कला केवल नाममात्र रह जाती है। ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यका जैसा तेज रहता है, वैसा शिशिर ऋतुमें नहीं रह पाता ॥ ४८ ॥ एक दिनमें ही प्रातः, सन्ध्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और मध्याह्नके अवसरपर सूर्य एक जैसा ताप पहुँचानेमें असमर्थ होते हैं। कालके क्रमसे उदय होकर वे बालसूर्यकी उपाधि धारण करते हैं, तत्पश्चात् उनका रूप अत्यन्त प्रचण्ड हो जाता है। समय आनेपर फिर वे अस्त भी हो जाते हैं। कभी काल दिनको हो ऐसा दुर्दिन बना देता है कि उन्हें दिनमें ही छिप जाना पड़ता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राहुसे ग्रस्त होनेपर सूर्य काँपने लगते हैं। पुनः थोड़ी देर बाद उनमें प्रसन्नता आ जाती है। हे राजन्! पूर्णिमाको चन्द्रमा जैसे अपनी सभी कलाओंसे युक्त रहते हैं, वैसे सदा नहीं रह सकते। प्रतिदिन उनको कलामें ह्रास होता रहता है। फिर वे पुष्ट भी हो जाते हैं। अमावस्यासे इनके मण्डलमें एक-एक कलाकी प्रतिदिन वृद्धि होती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ शुक्लपक्षमें वे शोभायुक्त रहते और कृष्णपक्षमें पुनः म्लान हो जाते हैं। ग्रहणके अवसरपर उनकी शोभा नष्ट हो जाती है तथा दुर्दिन आनेपर अर्थात् मेघाच्छन्न आकाशमें वे नहीं चमक पाते ॥ ५३ ॥ कालभेदके अनुसार चन्द्रमा किसी समय शुक्ल तो किसी समय कृष्ण होकर भ्रष्टश्री हो जाते हैं। बलि सुतललोकके इन्द्र होंगे। यद्यपि इस समय उनका राज्य छिन गया है ॥ ५४ ॥ कालके ही प्रभावसे

प्रकांडतां च तत्पश्चात्कालेऽस्तं पुनरेति सः ॥ दिने प्रच्छन्नतां याति कालेन दुर्दिने घने ॥ ५० ॥ राहुग्रस्ते कंपितश्च पुनरेव प्रसन्नताम् ॥ परिपूर्णतमश्चन्द्रः पूर्णिमायां च जायते ॥ ५१ ॥ तादृशो न भवेन्नित्यं क्षयं याति दिने दिने ॥ पुनश्च पुष्टिमायाति परं कुह्वा दिने दिने ॥ ५२ ॥ संपद्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्च यक्ष्मणा ॥ राहुग्रस्ते दिने म्लानो दुर्दिने न विरोचते ॥ ५३ ॥ काले चन्द्रो भवेच्छुक्लो भ्रष्टश्रीः कालभेदतः ॥ भविष्यति बलिश्चेन्द्रो भ्रष्टश्रीः सुतलेऽधुना ॥ ५४ ॥ कालेन पृथ्वी सस्याढ्या सर्वाधारा वसुन्धरा ॥ काले जले निमग्ना सा तिरोभूताम्बुविप्लुता ॥ ५५ ॥ काले नश्यंति विश्वानि प्रभवंत्येव कालतः ॥ चराचराश्च कालेन नश्यन्ति प्रभवंति च ॥ ५६ ॥ ईश्वरस्यैव समता ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ अहं मृत्युंजयो यस्मादसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥५७॥ अदर्शं चापि द्रक्ष्यामि वारं वारं पुनः पुनः ॥ स च प्रकृतिरूपश्च स एव पुरुषः स्मृतः ॥५८॥ स चात्मा स च जीवश्च नानारूपधरः परः ॥ करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम् ॥ ५९ ॥ काले मृत्युं स जयति जन्मरोगभयं जराम् ॥ स्रष्टा कृतो विधिस्तेन पाता विष्णुः कृतो भवेत् ॥ ६० ॥ अहंकृतश्च संहर्ता वयं विषयिणः कृताः ॥ कालाग्निरुद्रं संहारे नियोज्य विषये नृप ॥ ६१ ॥ अहं

सबकी आधारस्वरूपा पृथ्वी सब प्रकारके सस्योंसे भर जाती है और ऐसा भी समय आता है कि जब वह प्रलयकालके जलमें डूब जाती है ॥ ५५ ॥ कालसे विश्व नष्ट होते हैं और कालके प्रभावसे ही पुनः उनकी उत्पत्ति होती है ॥५६॥ कालकी प्रेरणाके अनुसार चराचर अखिल जगत्के प्रभु भगवान ही 'सृष्टि' और 'संहार' शब्दको सार्थक करते हैं। केवल परब्रह्म परमात्मासे ही कालकी समता की जा सकती है। कारण, वे ही परमेश्वर हैं। उन्हींकी कृपासे मुझे भी 'मृत्युञ्जय' होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतएव जिसे कोई नहीं देख सकता, उस प्राकृत प्रलयको मैं बार-बार देखता हूँ। वे परमेश्वर ही प्रकृतिरूप हैं और उन्हींको पुरुष भी कहा जाता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ वे ही आत्मा और वे ही जीव हैं। वे नाना प्रकारके रूप धारण करके सदा कार्यमें संलग्न रहते हैं। कार्यके अनुसार उनके नाम और गुणकी प्रसिद्धि होती है ॥ ५९ ॥ उन्हीं परमेश्वरसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु तथा संहारकर्ता महादेव प्रादुर्भूत हुए हैं ॥ ६० ॥ उन्हींकी कृपासे हम सब लोग जगत्के शासक बने हैं। हे राजन्! इस समय मैं प्रलयाग्निके समान भयंकर रुद्रको संहारके कार्यमें नियुक्त करके स्वयं उन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परमेश्वरके नाम और गुणका निरन्तर कीर्तन करता हूँ। इसीसे मृत्यु मुझपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। इस ज्ञानकी महिमासे मैं सदा निर्भय रहता हूँ। मृत्यु भी मृत्युके भयसे इस प्रकार डरती है, जैसे गरुड़से सर्प डरते हैं। हे नारद! उस समय सर्वेश भगवान शंकर सभाके मध्यमें विराजमान थे। पूरी तत्परताके साथ सम्पूर्ण भावोंको प्रदर्शित करते हुए शंकरजी शङ्खचूड़से उपर्युक्त बातें कहकर चुप हो गए। दानवराजने उनके ये वचन सुनकर उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की ॥ ६१–६४ ॥ साथ ही मधुर वाणीमें विनयपूर्वक अपना भाषण आरम्भ किया। शङ्खचूड़ने कहा–हे भगवन्! आपने जो कुछ कहा है, उसे कभी अन्यथा नहीं माना जा सकता ॥६५॥ परन्तु कुछ मेरी भी यथार्थ प्रार्थना है, उसे सुननेकी कृपा करें। अभी आपने जातिद्रोहको जो महान् पाप बतलाया है, सो ठीक है ॥६६॥ मैं ही बलिके समस्त ऐश्वर्यको पातालसे उठाकर यहाँ लाया हूँ। अतः इसपर मेरा ही पूर्ण अधिकार है ॥६७॥ उस समय वहाँ भगवान् श्रीहरि गदा लेकर पहरा दे रहे थे। अतः मैं बलिको नहीं ला सका। भ्राता समेत हिरण्याक्षको देवताओंने क्यों मारा? ॥ ६८ ॥ शुम्भादि असुरोंको देवताओंने

करोमि सततं तन्नामगुणकीर्तनम् ॥ तेन मृत्युंजयोऽहं च ज्ञानेनानेन निर्भयः ॥ ६२ ॥ मृत्युर्मृत्युभयाद्याति वैनतेयादिवोरगाः ॥ इत्युक्त्वा स च सर्वेशः सर्वभावेन तत्परः ॥ ६३ ॥ विरराम च शंभुश्च सभामध्ये च नारद ॥ राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः ॥ ६४ ॥ उवाच मधुरं देवं परं विनयपूर्वकम् ॥ शंखचूड उवाच ॥ त्वया यत्कथितं देव नान्यथा वचनं स्मृतम् ॥ ६५ ॥ तथापि किंचिद्यथार्थं श्रूयतां मन्निवेदनम् ॥ ज्ञाति-द्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत् ॥ ६६ ॥ गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः ॥ मया समुद्धृतं सर्वमूर्ध्वमैश्वर्यमीश्वर ॥ ६७ ॥ सुतलाच्च समुद्धर्तुं नालं तत्र गदाधरः ॥ सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः ॥ ६८ ॥ शुंभादयश्चासुराश्च कथं देवैर्निपातिताः ॥ पुरा समुद्र-मथने पीयूषं भक्षितं सुरैः ॥ ६९ ॥ क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः ॥ क्रीडाभांडमिदं विश्वं प्रकृतेः परमात्मनः ॥ ७० ॥ यस्मै यत्र स ददाति तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा ॥ देवदानवयोर्वादः शश्वन्नैमित्तिकः सदा ॥ ७१ ॥ पराजयो जयस्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च ॥ तदाऽऽवयोर्विरोधे वाऽऽगमनं निष्फलं परम् ॥ ७२ ॥ समसंबंधिनो बंधोरीश्वरस्य महात्मनः ॥ इयं ते महती लज्जा युद्धेऽस्माभिः सहाधुना ॥ ७३ ॥ जये ततोऽधिका कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः ॥ ७४ ॥ यथोचितमुत्तरं तमुवाच दानवेश्वरम् ॥ महादेव उवाच ॥ युष्माभिः

क्यों निर्मूल किया? पुरातन कालमें समुद्रमन्थनके समय देवताओंने अमृत पी लिया ॥ ६९ ॥ उस समय क्लेश हम दानवोंने उठाया और उसका फल (अमृत) देवताओंने पाया। परब्रह्म परमात्मा प्रकृतिस्वरूप हैं। यह विश्व उनके मनोरञ्जनकी सामग्री है ॥७०॥ वे जिस समय जिसको जो सम्पत्ति प्रदान करते हैं, वह उसकी सम्पत्ति मानी जा सकती है। इस वैभवके विषयमें देवताओं और दानवोंका विवाद सदासे चला आ रहा है ॥ ७१ ॥ कभी इसका अन्त नहीं होता। समयानुसार क्रमशः कभी वे जीतते हैं और कभी हारते हैं। वैसे ही हम भी समयानुसार जीतते-हारते हैं। इसलिए हम दोनों पक्षोंके बीचमें आपका आना न्यायसंगत नहीं जान पड़ता ॥ ७२ ॥ आप तो हम दोनोंके समान सम्बन्धी, बन्धु, ईश्वर एवं परमात्मा ठहरे। यदि इस समय हमारे साथ आपका युद्ध ठन जाय तो यह आपके लिए लज्जाकी बात होगी ॥ ७३ ॥ हम विजयी होंगे तो हमारी कीर्ति अधिक फैल जायगी। हम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पराजित होंगे तो हमारी कीर्तिमें बहुत थोड़ा धब्बा लगेगा । हे मुने ! शङ्खचूड़के ये वचन सुनकर भगवान त्रिलोचन हँसने लगे । तत्पश्चात् उन्होंने उस दानवेश्वरको समुचित उत्तर देना आरम्भ किया । महादेवजी बोले–हे राजन् ! तुम लोग भी तो ब्रह्माके हो वंशज हो ॥७४॥७५॥ तब तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे कौनसी बड़ी लज्जा होगी और हारनेपर अपकीर्ति ही क्या होगी ? इसके पहले मधु और कैटभके साथ भी तो श्रीहरिका युद्ध हो चुका है ॥ ७६ ॥ हे राजन् ! एक बार वे हिरण्यकशिपुसे लड़े थे और पुनः दूसरी बार हिरण्याक्षसे ॥ ७७ ॥ स्वयं मैं भी इससे पूर्व त्रिपुर नामक दैत्यसे युद्ध कर चुका हूँ । यही नहीं, बल्कि प्राचीन समयसे जो सर्वेश्वरी एवं प्रकृति नामसे प्रसिद्ध भगवती जगदम्बा हैं, उनका भी शुम्भ आदि असुरोंके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध हुआ था । तुम तो स्वयं परमात्मा श्रीकृष्णके अंश और उनके पार्षद हो ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो-जो दैत्य मारे गये हैं, उनमेंसे कोई भी तुम्हारे जैसे बलवान नहीं थे । फिर हे राजन् ! तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे क्या लज्जा है ? ॥८०॥ सब देवता भगवान श्रीहरिकी शरणमें गये थे । तभी उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है । अतः

सह युद्धे मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः ॥ ७५ ॥ का लज्जा महती राजन्नकीर्तिर्वा पराजये ॥ युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च ॥ ७६ ॥ हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप ॥ हिरण्याक्षस्य युद्धं च पुनस्तेन गदाभृता ॥ ७७ ॥ त्रिपुरैः च सह युद्धं च मयाऽपि च पुरा कृतम् ॥ सर्वेश्वर्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह ॥ ७८ ॥ सह शुंभादिभिः पूर्वं समरः परमाद्भुतः ॥ पार्षदप्रवरस्त्वं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ७९ ॥ ये ये हताश्च दैतेया नहि केऽपि त्वया समाः ॥ का लज्जा महती राजन्मम युद्धे त्वया सह ॥८०॥ सुराणां शरणस्यैव प्रेषितश्च हरेरहो ॥ देहि राज्यं च देवानामिति मे निश्चितं वचः ॥ ८१ ॥ युद्धं वा कुरु मत्सार्धं वाग्व्यये किं प्रयोजनम् ॥ इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च नारद ॥ उत्तस्थौ शंखचूडश्च ह्यमात्यैः सह सत्वरम् ॥ ८२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥श्रीनारायण उवाच॥ शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेंद्रः प्रतापवान् ॥ समारुरोह यानं च सहामात्यैः स सत्वरः ॥१॥ शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरम् ॥ दानवेंद्रः ससैन्यश्च युद्धारम्भे बभूव ह ॥२॥ स्वयं महेंद्रो युयुधे सार्धं च वृषपर्वणा ॥ भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वरः ॥३॥ दम्भेन सह

देवताओंका राज्य तुम लौटा दो । बस, मेरे कहनेका निश्चित अभिप्राय यही है ॥८१॥ अथवा मेरे साथ प्रसन्नतासे लड़नेके लिए तैयार हो जाओ । अब अधिक शब्दोंके अपव्यय करनेका क्या प्रयोजन है ? हे नारद ! जब इस प्रकार कहकर भगवान शंकर चुप हो गए, तब शङ्खचूड़ भी अपने मन्त्रियोंके साथ तुरंत वहाँसे उठकर जानेको तैयार हो गया ॥ ८२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

(भगवान शंकर और शङ्खचूड़के पक्षोंमें घोर युद्ध) भगवान नारायण कहते हैं– हे नारद ! तदनन्तर दानवराज शङ्खचूड़ने मस्तक झुकाकर महादेवजीको प्रणाम किया और मन्त्रियोंके साथ उठकर तुरन्त रथपर सवार हो गया ॥ १ ॥ उसी क्षण भगवान शंकरने अपनी सेना और देवताओंको युद्ध करनेके लिए आज्ञा दे दी । इधर सेना सहित शङ्खचूड़ भी युद्धके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिये तैयार हो गया ॥२॥ स्वयं महेन्द्र वृषपर्वाके साथ और भास्कर विप्रचित्तिके साथ लड़ने लगे ॥ ३ ॥ दम्भके साथ चन्द्रमाकी, कालस्वरके साथ कालकी, गोकर्णके साथ अग्निदेवकी ॥४॥ कालकेयके साथ कुबेरकी, मयके साथ विश्वकर्माकी, भयङ्करके साथ मृत्युकी, संहारके साथ यमकी ॥५॥ विकंकणके साथ वरुणकी, चञ्चलके साथ समीरण (वायु) की, घृतपृष्ठके साथ बुधकी, रक्ताक्षके साथ शनैश्चरकी ॥ ६ ॥ रत्नसारके साथ जयन्तकी, वर्चसगणोंके साथ वसुगणोंकी, दीप्तिमान्के साथ अश्विनीकुमारोंका, धूम्रके साथ नलकूबरकी ॥ ७ ॥ धुरन्धरके साथ धर्मकी, उषाक्षके साथ मंगलकी, शोभाकरके साथ भानुकी, पिठरके साथ मन्मथकी तथा गोधामुख, चूर्ण, खड्ग, ध्वज, काञ्चीमुख, पिण्ड, धूम्र, नन्दो, विश्व और पलाश प्रभृति दानवोंके साथ आदित्योंकी, ग्यारह राक्षसोंके साथ ग्यारह रुद्रोंकी, उग्रचण्डादिके साथ महामारीकी तथा दानवोंके साथ नन्दीश्वर आदि गणोंकी अत्यन्त भयङ्कर लड़ाई होने लगी ॥ ८–११ ॥ वह

चन्द्रश्च चकार परमं रणम् ॥ कालस्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः ॥ ४ ॥ कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च ॥ भयङ्करेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ॥ ५ ॥ विकङ्कणेन वरुणश्चञ्चलेन समीरणः ॥ बुधश्च घृतपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः ॥ ६ ॥ जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसां गणैः ॥ अश्विनौ च दीप्तिमता धूम्रेण नलकूबरः ॥ ७ ॥ धुरन्धरेण धर्मश्च उषाक्षेण च मङ्गलः ॥ शोभाकरेण वै भानुः पिठरेण च मन्मथः ॥ ८ ॥ गोधामुखेन चूर्णेन खड्गेन च ध्वजेन च ॥ काञ्चीमुखेन पिंडेन धूम्रेण सह नंदिना ॥ ९ ॥ विश्वेन च पलाशेनादित्याद्या युयुधुः परे ॥ एकादश च रुद्रा वै एकादश भयङ्करैः ॥ १० ॥ महामारी च युयुधे चोग्रचंडादिभिः सह ॥ नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह ॥ ११ ॥ एकादश महायुद्धे प्रलयेऽपि भयङ्करे ॥ वटमूले च शम्भुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च ॥ १२ ॥ सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने ॥ रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह ॥ १३ ॥ उवास शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः ॥ शङ्करस्य च के योधा दानवैश्च पराजिताः ॥ १४ ॥ देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविग्रहाः ॥ चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ ॥ १५ ॥ बलं च स्वगणानां च वर्धयामास तेजसा ॥ सोऽयमेकश्च युयुधे दानवानां गणैः सह ॥ १६ ॥ अक्षौहिणीनां शतकं समरे च जघान सः ॥ असुरान्पातयामास काली कमललोचना ॥ १७ ॥ पपौ रक्तं दानवानामतिक्रुद्धा ततः

महान् भयङ्कर युद्ध प्रलयकालकी बराबरी कर रहा था । भगवान शंकर काली और स्वामिकार्तिकेयके साथ वटवृक्षके नीचे बैठे थे ॥१२॥ हे मुने! इधर दोनों पक्षोंके योद्धाओंमें भयानक युद्ध हो रहा था । वहीं रत्नमय भूषणोंसे भूषित शंखचूड़ एक रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान था । अगणित दानव उसके साथ थे । उस युद्धमें शंकरदलके बहुतसे वीरोंको दानवोंने परास्त कर दिया ॥ १३ ॥ अतः सम्पूर्ण देवता डरकर भाग चले । उन सबके शरीर छिद गये थे । उस अवसरपर स्वामिकार्तिकेयने कुपित होकर देवताओंको अभय प्रदान किया ॥१४॥१५॥ अपने तेजसे गणोंमें बलकी वृद्धि की । तदनन्तर वे स्वयं दानवोंके साथ अकेले ही लड़ने लगे ॥१६॥ उन्होंने समराङ्गणमें सौ अक्षौहिणी सेनाको समाप्त कर दिया । बहुतसे असुर कमलके समान नेत्रवाली भगवती भद्रकालीके भीषण आघातसे धराशायी हो गये ॥ १७ ॥ तदनन्तर अत्यन्त क्रुद्ध होकर काली उन दानवोंका रुधिर पीने लगीं । वे दस लाख हाथियों तथा करोड़ों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सैनिकोंको एक साथ पकड़-पकड़कर अपने विकराल मुँहमें डालने लगीं। हे मुने! उस समय हजारों दानवोंके मुंडविहीन धड़ रणभूमिमें नाचने लगे ॥१८॥१९॥ स्वामिकार्तिकेयकी बाणवर्षासे अगणित दानव घायल हो होकर मारे डरके भाग खड़े हुए ॥ २० ॥ तदनन्तर वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दम्भ और विकंकण ये सभी योद्धा पूरी शक्ति लगाकर कार्तिकेयके साथ लड़ने लगे ॥२१॥ किन्तु भगवती महामारीने युद्धसे मुँह नहीं मोड़ा। उधर कार्तिकेयकी शक्तिसे पीड़ित होकर वे दानव अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे ॥२२॥ किंतु वे रणभूमिसे भागे नहीं। उधर शिव-तनय कार्तिकेयका समर देखकर देवतागण स्वर्गसे उनपर फूल बरसाने लगे ॥ २३ ॥ उस युद्धमें प्रलयकाल जैसी भीषणता आ गयी। दानवसेना जब घबरा उठी, तब स्वयं शङ्खचूड़ने विमानपर चढ़कर बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥ २४ ॥ उसने इस प्रकार बाण बरसाये, मानो प्रचण्ड मेघ जलधारा गिरा रहे हों। जब चारों ओर महान् भयङ्कर अन्धकार छा गया, तब

परम् ॥ दशलक्षगजेन्द्राणां शतलक्षं च कोटिशः ॥१८॥ समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया ॥ कबन्धानां सहस्रं च ननर्त समरे मुने ॥ १९ ॥ स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविग्रहाः ॥ भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महारणपराक्रमाः ॥ २० ॥ वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दम्भश्चापि विकङ्कणः ॥ स्कन्देन सार्धं युयुधुस्ते सर्वे विक्रमेण च ॥ २१ ॥ महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी ॥ बभूवुस्ते च संक्षुब्धाः स्कन्दस्य शक्तिपीडिताः ॥ २२ ॥ न दुद्रुवुर्भयात्स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥ स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं समुल्बणम् ॥ २३ ॥ दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिको लयः ॥ राजा विमान-मारुह्य चकार बाणवर्षणम् ॥ २४ ॥ नृपस्य शरवृष्टिश्च घनस्य वर्षणं यथा ॥ महाघोरांधकारश्च वह्न्युत्थानं बभूव च ॥ २५ ॥ देवाः प्रदुद्रुवुः सर्वेऽप्यन्ये नन्दीश्वरादयः ॥ एक एव कार्त्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्धनि ॥ २६ ॥ पर्वतानां च सर्पाणां शिलानां शाखिनां तथा ॥ नृपश्चकार वृष्टिं च दुर्वारां च भयङ्करीम् ॥ २७ ॥ नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रहितः शिवनन्दनः ॥ नीहारेण च सान्द्रेण च प्रहितो भास्करो यथा ॥ २८ ॥ धनुश्चिच्छेद स्कंदस्य दुर्वहं च भयङ्करः ॥ बभंज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथपीठकान् ॥२९॥ मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः ॥ शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षस्य घातिनीम् ॥ ३० ॥ क्षणं मूर्च्छां च संप्राप बभूव चेतनः पुनः ॥ गृहीत्वा तद्धनुर्दिव्यं यद्दत्तं विष्णुना पुरा ॥ ३१ ॥ रत्नेन्द्रसार-

उसने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया ॥ २५ ॥ जिससे सम्पूर्ण देवताओंमें भगदड़ मच गयी। कोई भी नहीं रुक सका। उस समय युद्धके मुहानेपर केवल एक स्वामिकार्तिकेय ही डटे रहे ॥२६॥ तब शङ्खचूड़के प्रयत्नसे बहुतसे पर्वत, सर्प, पत्थर तथा वृक्ष उनपर गिरने लगे। इनकी ऐसी भयङ्कर वृष्टि होने लगी कि जिसे रोकनेमें कोई समर्थ नहीं था ॥ २७ ॥ राजा शङ्खचूड़की बाणवर्षासे कार्तिकेय उसी तरह ढँक गये, जैसे कुहरेसे सूर्य ढँक जाते हैं। फिर उस भयङ्कर दानवने स्कन्दके दुर्वह धनुषको, दिव्यरथको तथा रथके बैठकको छिन्न-भिन्न कर दिया ॥२८॥ उसके दिव्यास्त्रसे मयूरके सभी अङ्ग जर्जरित हो गये। फिर उसने सूर्यके समान चमकनेवाली प्राणघातिनी शक्ति स्वामिकार्तिकेयकी छातीपर चला दी ॥ २९ ॥ उस शक्तिके लगते ही वे क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये। फिर सचेत होनेपर उन्होंने अपना दिव्य धनुष हाथमें ले लिया। उन्हें वह धनुष पूर्वकालमें भगवान विष्णुकी कृपासे प्राप्त हुआ था ॥३०॥३१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनके रथकी रचना बहुमूल्य रत्नोंके उपकरणोंसे हुई थी। उसी रथपर शस्त्र-अस्त्रको लेकर वे पुनः बैठ गये और उन्होंने अत्यन्त उग्र युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥३२॥ अब वह दानव सर्पों, पर्वतों, वृक्षों और पत्थरोंकी वर्षा करने लगा। परन्तु शिवपुत्र कार्तिकेयने उन्हें अपने दिव्यास्त्रसे काट डाला ॥३३॥ उस दानव द्वारा लगायी गयी आगको उन्होंने पार्जन्यास्त्रसे बुझा दिया। तदनन्तर उन्होंने शंखचूडके धनुष और रथको भी काट डाला ॥३४॥ उसका कवच, सारथी और मुकुटपर विद्यमान किरीट काट डाला और उसके वक्षःस्थलपर शक्ति चला दी ॥३५॥ उस आघातसे शंखचूड मूर्छित हो गया, किन्तु मूर्छा दूर होनेपर तत्काल दूसरे रथपर सवार होकर उसने दूसरा धनुष उठा लिया ॥३६॥ ऐसा भीषण युद्ध करनेपर भी शंखचूड पराजित नहीं किया जा सका। वह बड़ा मायावी था। उसने मायाका आश्रय लेकर बाणोंका जाल फैला दिया। हे नारद! उस समय समराङ्गणमें उसके बाणजालसे स्वामिकार्तिकेय ढँक गये ॥३७॥ उस दानव-

निर्माणयानमारुह्य कार्त्तिकः ॥ शस्त्रास्त्रं च गृहीत्वा च चकार रणमुल्बणम् ॥ ३२ ॥ सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा ॥ सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः ॥ ३३ ॥ वह्निं निर्वापयामास पार्जन्येन प्रतापवान् ॥ रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया ॥ ३४ ॥ सन्नाहं सारथिं चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम् ॥ चिक्षेप शक्तिं शुक्लाभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि ॥ ३५ ॥ मूर्च्छां संप्राप्य राजा च चेतनश्च बभूव ह ॥ आरुरोह यानमन्यद्धनुर्जग्राह सत्वरः ॥ ३६ ॥ चकार शरजालं च मायया मायिनां वरः ॥ गुहं चच्छाद समरे शरजालेन नारद ॥ ३७ ॥ जग्राह शक्तिमव्यग्रां शतसूर्यसमप्रभाम् ॥ प्रलयाग्निशिखारूपां विष्णोश्च तेजसाऽऽवृताम् ॥३८॥ चिक्षेप तां च कोपेन महावेगेन कार्तिके ॥ पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला ॥ ३९ ॥ मूर्च्छां संपाप शक्त्या च कार्तिकेयो महाबलः ॥ काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ ॥ ४० ॥ शिवस्तं चापि ज्ञानेन जीवयामास लीलया ॥ ददौ बलमनंतं च समुत्तस्थौ प्रतापवान् ॥४१॥ काली जगाम समरं रक्षितुं कार्तिकस्य या ॥ वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः ॥ ४२ ॥ सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ वाद्यभांडाश्च बहुशः शतशो मधुवाहकाः ॥ ४३ ॥ सा च गत्वाऽथ संग्रामं सिंहनादं चकार च ॥ देव्याश्च सिंहनादेन प्रापुर्मूर्च्छां च दानवाः ॥४४॥ अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः ॥ दृष्ट्वा पपौ च माध्वीकं

राजके पास कहीं न अटकनेवाली एक विचित्र शक्ति थी। सैकड़ों सूर्योंके समान उसका प्रकाश था। प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके सदृश उसकी आकृति थी। वह ऐसी उज्ज्वल थी, मानो प्रज्वलित अग्निका समूह हो। विष्णुतेजसे आवृत ऐसी शक्तिको उसने रोषमें भरकर उठाया और बड़े वेगसे स्वामिकार्तिकेयके ऊपर चला दिया ॥३८॥३९॥ उस शक्तिके आघातसे वे मूर्छित हो गये। तब भद्रकाली कार्तिकेयको अपनी गोदमें उठाकर भगवान् शंकरके पास ले गयीं ॥४०॥ उन्होंने अपने ज्ञानके प्रभावसे उन्हें लीलापूर्वक जीवित कर दिया। साथ ही असीम शक्ति भी प्रदान की। तब प्रतापी कार्तिकेय फिर उठ गये ॥४१॥ उनकी रक्षामें तत्पर जो भद्रकाली थीं, वे पुनः युद्धभूमिके लिये प्रस्थित हो गयीं। नन्दीश्वर प्रभृति जितने वीर थे, उन्होंने भद्रकालीका अनुगमन किया ॥४२॥ उनके साथ सभी देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, जुझारू बाजे बजानेवाले और मदिरा ढोनेवाले सैकड़ों लोग चले ॥४३॥ रणभूमिमें पहुँचते ही कालीने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिंहगर्जन किया। उसे सुनते ही दानवगण मूर्छित हो गये ॥४४॥ तदनन्तर उन्होंने भीषण अट्टहास किया और मदिरा पोकर उसी रणभूमिमें नाचने लगीं ॥ ४५ ॥ उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा, कोटवी, योगिणीगण, डाकिनीगण तथा देवताओंने भो मद्यपान किया ॥४६॥ भद्रकालीको समराङ्गणमें उपस्थित देखकर शंखचूड़ भी बहुत शीघ्र वहाँ आ गया। दानव अत्यन्त डर रहे थे। उन्हें उसने अभय प्रदान किया ॥४७॥ तब कालीने शंखचूड़पर प्रलयकालीन अग्निशिखाके सदृश प्रकाशमान अग्निबाण चलाया, परन्तु हँसते-हँसते उस दानवने पार्जन्यास्त्रसे उसे निवृत्त कर दिया ॥४८॥ इसी प्रकार कालीके वारुणास्त्र और अग्निसदृश तेजस्वी माहेश्वरास्त्रका भी दानवराजने क्रमशः गान्धर्वास्त्र और वैष्णवास्त्रसे निवारण कर दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इसके बाद कालीका मन्त्रपूर्वक चलाया हुआ नारायणास्त्र पहुँचा। उसे देखते ही शङ्खचूड़ने रथसे उतरकर दोनों हाथ जोड़ लिये ॥५१॥ वह नारायणास्त्र ऐसा प्रदीप्त था, मानो प्रलयकालीन अग्नि

ननर्त रणमूर्धनि ॥ ४५ ॥ उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटवी च पपौ मधु ॥ योगिनीडाकिनीनां च गणाः सुरगणादयः ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा कालीं शंखचूडः शीघ्रमाजौ समाययौ ॥ दानवाश्च भयं प्रापू राजा तेभ्योऽभयं ददौ ॥ ४७ ॥ काली चिक्षेप वह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ राजा निर्वापयामास पार्जन्येन च लीलया ॥ ४८ ॥ चिक्षेप वारुणं सा च तीव्रं च महदद्भुतम् ॥ गांधर्वेण च चिच्छेद दानवेंद्रश्च लीलया ॥ ४९ ॥ माहेश्वरं प्रचिक्षेप काली वह्निशिखोपमम् ॥ राजा जघान तं शीघ्रं वैष्णवेन च लीलया ॥ ५० ॥ नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप मंत्रपूर्वकम् ॥ राजा ननाम तद्दृष्ट्वा चावरुह्य रथादसौ ॥ ५१ ॥ ऊर्ध्वं जगाम तच्चास्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ पपात शंखचूडश्च भक्त्या तं दंडवद्भुवि ॥ ५२ ॥ ब्रह्मास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मंत्रपूर्वकम् ॥ ब्रह्मास्त्रेण महाराजो निर्वापं च चकार सः ॥ ५३ ॥ तदा चिक्षेप दिव्यास्त्रं सा देवीमंत्रपूर्वकम् ॥ राजा दिव्यास्त्रजालेन तन्निर्वाणं चकार च ॥ ५४ ॥ देवी चिक्षेप शक्तिञ्च विशालां योजनायताम् ॥ राजा दिव्यास्त्रजालेन शतखण्डां चकार ह ॥ ५५ ॥ जग्राह मंत्रपूतं च देवी पाशुपतं रुषा ॥ निक्षेपणं च निरोद्धुं च वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ ५६ ॥ मृत्युः पाशुपते नास्ति नृपस्य च महात्मनः ॥ यावदस्ति च मन्त्रस्य कवचं च हरेरिति ॥ ५७ ॥ यावत्सतीत्वमस्त्येव सत्याश्च नवयोषितः ॥ तावदस्य जरामृत्युर्नास्तीति ब्रह्मणो वचः ॥ ५८ ॥ इत्याकर्ण्य भद्रकाली न तच्चिक्षेप शस्त्रकम् ॥ शतलक्षं दानवानां जग्रास लीलया क्षुधा ॥ ५९ ॥ ग्रस्तुं जगाम वेगेन शंखचूडं

की शिखा हो, परन्तु सत्कृत होकर वह ऊपरको उठ गया और शङ्खचूड़ भक्तिपूर्वक दण्डकी भाँति जमीनपर पड़कर उसे प्रणाम करने लगा ॥ ५२ ॥ तदनन्तर देवीका मन्त्रपूर्वक प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र चला, पर वह दानवराजके ब्रह्मास्त्रसे शमित हो गया॥५३॥तब देवीने मन्त्रोंका उच्चारण करके एक दिव्य अस्त्र और चलाया। दानवराजने अपने दिव्यास्त्रके जालसे उसकी भो शक्ति नष्ट कर दी ॥५४॥ तदनन्तर देवीने योजन भर लम्बी-चौड़ी शक्ति चलायी। किन्तु शंखचूड़ने अपने दिव्य अस्त्रोंसे काटकर उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये ॥५५॥ तब देवीने क्रुद्ध होकर मंत्रसे पवित्र किये हुए पाशुपत-अस्त्रको हाथमें उठा लिया और उसे चलाना ही चाहती थीं कि इसी बीच यह स्पष्ट आकाशवाणी हुई-॥५६॥ 'यह राजा एक महान् पुरुष है और इसकी पत्नी परम साध्वी है। पाशुपत-अस्त्रमें ऐसी शक्ति नहीं है कि जो इसे मार सके। जबतक यह अपने गलेमें भगवान श्रीहरिके मंत्रका कवच धारण किये रहेगा और जबतक इसकी पत्नी अपने सतीत्वकी रक्षा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करती रहेगी, तबतक इसके समीप जरा और मृत्यु अपना कुछ ी प्रभाव नहीं डाल सकती—यह ब्रह्माका वचन है।'॥५७॥५८॥ इस आकाशवाणीको सुनकर भगवती भद्रकालीने शस्त्र चलाना बन्द कर दिया। अब वे क्षुधातुर होकर करोड़ों दानवोंको लीलापूर्वक निगलने लगीं ॥५९॥ भयंकर वेषवाली वे देवी शंखचूड़को खा जानेके लिये बड़े वेगसे उसकी ओर झपटीं। तब दानवने अपने अत्यन्त तेजस्वी दिव्यास्त्रसे उन्हें रोक दिया ॥६०॥ तब देवीने शंखचूड़पर ग्रीष्मकालीन सूर्य जैसे खड्गका प्रहार किया, किन्तु उसने अपने दिव्य अस्त्रसे काटकर उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। तदनन्तर महादेवी उसे निगल लेनेको झपटीं तो वह दानव बहुत बढ़ गया ॥६१॥६२॥ तब अत्यन्त कुपित एवं भयंकर कालीने अपने मुक्केकी मारसे उसके रथ तथा सारथीको चूर कर दिया ॥६३॥ साथ ही प्रलयाग्निके समान भयानक शूल उसके ऊपर चलाया, किन्तु दानवराजने उसे बायें हाथसे पकड़कर नष्ट कर दिया ॥६४॥ इसके बाद अत्यन्त कुपित होकर देवीने बड़े वेगसे उसे मुक्का मारा। जिससे शंखचूड़को चक्कर आ गया और क्षण भरके लिए उसे मूर्छा आ गयी ॥ ६५ ॥ किन्तु वह तुरन्त फिर उठ खड़ा हुआ। वह देवीके साथ बाहुयुद्ध नहीं कर

भयङ्करी ॥ दिव्यास्त्रेण सुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः ॥ ६० ॥ खड्गं चिक्षेप सा देवी ग्रीष्मसूर्योपमं तथा ॥ दिव्यास्त्रेण दानवेंद्रः शतखंडं चकार सः ॥ ६१ ॥ पुनर्ग्रस्तुं महादेवी वेगेन च जगाम तम् ॥ सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्ववृधे दानवेश्वरः ॥६२॥ वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ता भयङ्करी ॥ बभंज च रथं तस्य जघान सारथिं सती ॥ ६३ ॥ सा च शूलं प्रचिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ वामहस्तेन जग्राह शंखचूडः स्वलीलया ॥६४॥ मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः ॥ बभ्राम च तया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप च ॥ ६५ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान् ॥ न चकार बाहुयुद्धं देव्या सह ननाम ताम् ॥ ६६ ॥ देव्याश्चास्त्रं स चिच्छेद जग्राह च स्वतेजसा ॥ नास्त्रं चिक्षेप तां भक्तो मातृभक्त्या तु वैष्णवः ॥ ६७ ॥ गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः ॥ ऊर्ध्वं च प्रापयामास महावेगेन कोपिता ॥ ६८ ॥ ऊर्ध्वात्पपात वेगेन शंखचूडः प्रतापवान् ॥ निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् ॥६९॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणं विमानं सुमनोहरम् ॥ आरुरोह हर्षयुक्तो न विश्रांतो महारणे ॥ ७०॥ दानवानां च क्षतजं सा देवी च पपौ क्षुधा ॥ पीत्वा भुक्त्वा भद्रकाली जगाम शंकरांतिकम् ॥ ७१ ॥ उवाच रणवृत्तांतं पौर्वापर्यं यथाक्रमम् ॥ श्रुत्वा जहास शंभुश्च दानवानां विनाशनम् ॥ ७२ ॥ लक्षं च दानवेंद्राणामवशिष्टं रणेऽधुना ॥ भुंजंत्या निर्गतं वक्त्रात्तदन्यं भुक्तमीश्वर ॥ ७३ ॥

सकता था। अतएव उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥६६॥ अब तक उसने देवीके चलाये हुए अस्त्रोंको या तो काट डाला था या हाथसे पकड़ लिया था। मातृभक्तिके कारण उस वैष्णवने कालीपर अपना कोई शस्त्र नहीं चलाया ॥६७॥ तदनन्तर भगवतीने उसे पकड़कर कई बार घुमाया और बड़े वेगके साथ आकाशमें उछाल दिया ॥६८॥ किन्तु प्रतापशाली शंखचूड़ नीचे गिरते ही फिर भगवतीके समक्ष खड़ा हो गया और उन्हें प्रणाम किया ॥६९॥ इसके बाद शंखचूड़ एक रत्ननिर्मित विमानपर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक आरूढ़ हुआ। उस महान् रणमें उसने तनिक देर भी विश्राम नहीं किया ॥७०॥ तदनन्तर क्षुधित होकर भद्रकालीने दानवोंका रुधिर पिया और तुरन्त वे भगवान् शंकरके पास चली गयीं ॥ ७१ ॥ वहाँ उन्होंने आरम्भसे लेकर अन्त तक क्रमशः युद्धसम्बन्धी सभी बातें भगवान् शंकरको बतलायीं। दानवोंका विनाश सुनकर भगवान हँसने लगे ॥७२॥ भद्रकालीने यह भी कहा—'अब भी रणभूमिमें लगभग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक लाख प्रधान-प्रधान दानव बचे हुए हैं। मैं उन्हें खा रही थी। किन्तु उस समय जो मुखसे निकल गये, वे ही बच रहे हैं ॥ ७३ ॥ फिर जब मैं संग्राममें दानवराज शंखचूड़पर पाशुपतास्त्र छोड़नेको तैयार हुई और जब आकाशवाणी हुई कि यह राजा तुमसे अवध्य है ॥ ७४ ॥ तबसे महान् ज्ञानी एवं असीम बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न उस दानवराजने मुझपर अस्त्र छोड़ना बन्द कर दिया। वह केवल मेरे छोड़े हुए बाणोंको काट भर देता था ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

(शिव-शंखचूड़युद्ध, शिवजीके त्रिशूलसे शंखचूड़का भस्म होना और सुदामा गोपके रूपमें गोलोक जाना) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद ! भगवान् शिव तत्त्वकी बात जाननेमें परम प्रवीण हैं। भद्रकाली द्वारा युद्धकी सारी बातें सुनकर वे स्वयं अपने गणोंके साथ संग्रामभूमिमें पहुँच गये ॥१॥ उन्हें देखकर शंखचूड़ विमानसे उतर गया और उसने परमभक्तिपूर्वक पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया ॥२॥ यों भक्तिविनम्र होकर प्रणाम करनेके पश्चात् वह तुरन्त रथपर सवार हो गया और धनुष लेकर भगवान शिवके साथ युद्ध करने

संग्रामे दानवेन्द्रं च हंतुं पाशुपतेन वै ॥ अवध्यस्तव राजेति वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ ७४ ॥ राजेन्द्रश्च महाज्ञानी महाबलपराक्रमः ॥ न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम् ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः ॥ ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह नारद ॥ १ ॥ शंखचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च ॥ ननाम परया भक्त्या शिरसा दंडवद्भुवि ॥ २ ॥ तं प्रणम्य च वेगेन विमानमारुरोह सः ॥ तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम् ॥ ३ ॥ शिवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा ॥ न बभूवतुरन्योन्यं ब्रह्मञ्जयपराजयौ ॥ ४ ॥ न्यस्तशस्त्रश्च भगवान्न्यस्तशस्त्रश्च दानवः ॥ रथस्थः शंखचूडश्च वृषस्थो वृषभध्वजः ॥ ५ ॥ दानवानां च शतकमुद्धृतं च बभूव ह ॥ रणे ये ये मृताः शंभुर्जीवयामास तान्विभुः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरे वृद्धब्राह्मणः परमातुरः ॥ आगत्य च रणस्थानमुवाच दानवेश्वरम् ॥ ७ ॥ वृद्धब्राह्मण उवाच ॥ देहि भिक्षां च राजेन्द्र मह्यं विप्राय सांप्रतम् ॥ त्वं सर्वसंपदां दाता यन्मे मनसि वांछितम् ॥ ८ ॥ निरीहाय च वृद्धाय तृषिताय च सांप्रतम् ॥ पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुरः सत्यं च कुर्विति ॥ ९ ॥ ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचातिमायया ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा कवचं दिव्यं जग्राह हरिरेव

लगा ॥३॥ हे ब्रह्मन् ! उस समय शिव और शंखचूड़में सौ वर्षतक युद्ध होता रहा। कोई किसीसे न जीतता था और न हारता था ॥४॥ कभी समयानुसार शंखचूड़ शस्त्र रखकर रथपर ही विश्राम कर लेता और कभी भगवान शंकर भी शस्त्र रखकर वृषभपर ही आराम कर लेते थे ॥५॥ शंकरजीके प्रयाससे असंख्य दानवोंका संहार हो गया। इधर संग्राममें देवपक्षके जो-जो योद्धा मरते थे, उनको विभु शंकरजी पुनः जीवित कर देते थे ॥६॥ उसी समय भगवान् श्रीहरि एक अत्यन्त आतुर बूढ़े ब्राह्मणका वेष बनाकर युद्धभूमिमें आये और दानवराज शंखचूड़से कहने लगे ॥७॥ वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें पधारे हुए श्रीहरिने कहा—हे राजेन्द्र! तुम मुझ ब्राह्मणको भिक्षा देनेकी कृपा करो। इस समय सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रदान करनेकी तुममें पूर्ण योग्यता है। अतः तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण करो ॥८॥ मैं निरीह, तृषित एव वृद्ध ब्राह्मण हूँ। पहले तुम देनेके लिये सत्य प्रतिज्ञा कर लो, तब मैं अपनी माँग रक्खूँगा ॥९॥ राजेन्द्र शंख-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चूड़ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'हाँ-हाँ, बहुत ठीक—आप जो चाहें सो ले सकते हैं।' तब अपनी माया फैलाते हुए उस वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'मैं तुम्हारा 'कृष्णकवच' चाहता हूँ।' ॥ १० ॥ उनकी बात सुनकर सत्यप्रतिज्ञ शंखचूड़ने तुरन्त वह दिव्य कवच दे दिया और उन्होंने उसे ले लिया। फिर वे ही श्रीहरि शंखचूड़का रूप धारण करके तुलसीके निकट गये ॥ ११ ॥ वहाँ जाकर कपटपूर्वक उन्होंने उससे हास-विलास करके वीर्याधान कर दिया। (इस प्रकार शंखचूड़की पत्नीके रूपमें उसका सतीत्व भङ्ग हो गया। यद्यपि तत्त्वरूपसे ता वह श्रीहरिकी परम प्रेयसी पत्नी ही थी।) ठीक उसी समय शंकरजीने शंखचूड़पर चलानेके लिए श्रीहरिका दिया हुआ त्रिशूल हाथमें लिया ॥ १२ ॥ वह त्रिशूल इतना प्रकाशमान था कि मानों ग्रीष्म ऋतुका मध्याह्नकालीन सूर्य अथवा प्रलयकालीन प्रचण्ड अग्नि हो। वह त्रिशूल दुर्निवार्य, दुर्धर्ष, अव्यर्थ और शत्रुसंहारक था ॥१३॥ सम्पूर्ण शस्त्रोंके सारभूत उस त्रिशूलकी तेजमें विष्णु चक्रके साथ तुलना की जाती थी। उस भयंकर त्रिशूलको शिव अथवा केशव—ये दो ही उठा सकते थे। अन्य किसीके मानका नहीं था ॥१४॥ वह साक्षात् सजीव ब्रह्म ही था। वह लम्बाईमें हजार धनुष और चौड़ानमें सौ हाथ था। उसके रूपमें कभी परिवर्तन नहीं आता था और सभी लोग उसे नहीं देख पाते थे ॥१५॥ हे नारद! अखिल ब्रह्माण्डका

च ॥ शंखचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति ॥ ११ ॥ गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकार ह ॥ अथ शंभुर्हरेः शूलं जग्राह दानवं प्रति ॥ १२ ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ दुर्निवार्यं च दुर्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥ १३ ॥ तेजसा चक्रतुल्यं च सर्वशस्त्रास्त्रसारकम् ॥ शिवकेशवयोरन्यैर्दुर्वहं च भयंकरम् ॥ १४ ॥ धनुःसहस्रं दैर्घ्येण प्रस्थेन शतहस्तकम् ॥ सजीवं ब्रह्मरूपं च नित्यरूपमनिर्दिशम् ॥ १५ ॥ संहर्तुं सर्वब्रह्मांडमलं तत्स्वीयलीलया ॥ चिक्षेप तोलनं कृत्वा शंखचूडे च नारद ॥१६॥ राजा चापं परित्यज्य श्रीकृष्णचरणांबुजम् ॥ ध्यानं चकार भक्त्या च कृत्वा योगासनं धिया ॥ १७ ॥ शूलं च भ्रमणं कृत्वा पपात दानवोपरि ॥ चकार भस्मसात्तं च सरथं चाथ लीलया ॥ १८ ॥ राजा धृत्वा दिव्यरूपं किशोरं गोपवेषकम् ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥१९॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणं वेष्टितं गोपकोटिभिः ॥ गोलोकादागतं यानमारुरोह पुरं ययौ ॥ २० ॥ गत्वा ननाम शिरसा स राधाकृष्णयोर्मुने ॥ भक्त्या च चरणांभोजं रासे वृन्दावने वने ॥ २१ ॥ सुदामानं च तौ दृष्ट्वा

संहार करनेको उस त्रिशूलमें पूर्ण शक्ति थी। भगवान शंकरने लीलासे ही उसे उठाकर हाथपर आजमाया और शंखचूड़पर फेंक दिया ॥ १६ ॥ तब बुद्धिमान् नरेश शंखचूड़ने सारा रहस्य जानकर अपना धनुष धरतीपर फेंक दिया और वह बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्तिके साथ अनन्य चित्तसे भगवान श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करने लगा ॥ १७ ॥ त्रिशूल कुछ समयतक तो चक्कर काटता रहा। तदनन्तर वह शंखचूड़के ऊपर जा गिरा। उसके गिरते ही वह दानवेश्वर तथा उसका रथ जलकर भस्म हो गया ॥ १८ ॥ दानवशरीरके भस्म होते ही उसने एक दिव्य गोपका वेष धारण कर लिया। उसकी किशोर अवस्था थी। वह दो दिव्य भुजाओंसे सुशोभित था। उसके हाथमें मुरली शोभा पा रही थी और रत्नमय आभूषण उसके शरीरको विभूषित कर रहे थे ॥ १९ ॥ इतनेमें अकस्मात् सर्वोत्तम दिव्य मणियों द्वारा निर्मित एक दिव्य विमान गोलोकसे उतर आया। उसमें चारों ओर असंख्य गोपियाँ बैठी थीं। शंखचूड़ उसीपर सवार होकर गोलोकके लिए प्रस्थित हो गया ॥ २० ॥ हे मुने! उस समय वहाँके वृन्दावनमें रासमण्डलके मध्य भगवान् श्रीकृष्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और भगवती श्रीराधिका विराजमान थीं। वहाँ पहुँचते ही शङ्खचूडने भक्तिके साथ मस्तक झुकाकर उनके चरणकमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥२१॥ अपने चिरसेवक सुदामाको देखकर उन दोनोंके श्रीमुख प्रसन्नतासे खिल उठे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे अपनी गोदमें बिठा लिया ॥२२॥ तदनन्तर वह त्रिशूल वेगसे आदरपूर्वक भगवान श्रीकृष्णके पास लौट आया। शंखचूडकी हड्डियोंसे शंखकी उत्पत्ति हुई ॥२३॥ वहाँ शङ्ख अनेक प्रकारके रूपोंमें निरन्तर विराजमान होकर देवताओंकी पूजामें पवित्र माना जाता है। सब लोग उसके जलको श्रेष्ठ मानते हैं। क्योंकि देवताओंको प्रसन्न करनेके लिए वह अचूक साधन है ॥ २४ ॥ उस पवित्र जलको तीर्थमय माना जाता है। उसके प्रति केवल शंकरजीकी आदरबुद्धि नहीं है। जहाँ-कहीं भी शङ्खध्वनि होती है, वहीं लक्ष्मीजी सम्यक् प्रकारसे विराजमान रहती हैं ॥ २५ ॥ जो शङ्खके जलसे स्नान कर लेता है, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल प्राप्त हो जाता है। शङ्ख साक्षात् भगवान श्रीहरिका अधिष्ठान है। जहाँपर शङ्ख रहता है, वहाँ भगवान श्रीहरि भगवती लक्ष्मीसहित सदा निवास करते हैं और अमङ्गल दूरसे ही भाग जाता है। किन्तु

प्रसन्नवेदनेक्षणौ ॥ क्रोडे चक्रतुरत्यन्तं प्रेम्णाऽतिपरिसंयुतौ ॥ २२ ॥ अथ शूलं च वेगेन प्रययौ तं च सादरम् ॥ अस्थिभिः शंखचूडस्य शंखजातिर्बभूव ह ॥ २३ ॥ नानाप्रकाररूपेण शश्वत्पूता सुरार्चने ॥ प्रशस्तं शंखतोयं च देवानां प्रीतिदं परम् ॥ २४ ॥ तीर्थतोयस्वरूपं च पवित्रं शंभुना विना ॥ शंखशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीः सुसंस्थिरा ॥ २५ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शंखवारिणा ॥ शंखो हरेरधिष्ठानं यत्र शंखस्ततो हरिः ॥ २६ ॥ तत्रैव वसते लक्ष्मीर्दूरीभूतममंगलम् ॥ स्त्रीणां च शंखध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः ॥२७॥ भीता रुष्टा याति लक्ष्मीस्तत्स्थलादन्यदेशतः ॥ शिवोऽपि दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम ह ॥ २८ ॥ प्रहृष्टो वृषभारूढः स्वगणैश्च समावृतः ॥ सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानंदसंयुताः ॥ २९ ॥ नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥ बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम् ॥ प्रशशंसुः सुरास्तं च मुनींद्रप्रवरादयः ॥ ३० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ नारद उवाच ॥ नारायणश्च भगवान्वीर्याधानं चकार ह ॥ तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥

स्त्रियों और शूद्रों द्वारा की गयी शङ्खध्वनि सुनकर लक्ष्मी भयभीत और रुष्ट होकर उस स्थानसे अन्यत्र चली जाती हैं। उधर शिवजी शङ्खचूड़को मारकर अपने लोकको पधार गये ॥२६-२८॥ उनके मनमें अपार हर्ष था। वे वृषभपर आरूढ़ होकर अपने गणोंसहित चले गये। अपना राज्य पा जानेके कारण देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही। स्वर्गमें देवदुन्दुभियाँ बज उठीं और गन्धर्व-किन्नर उनका यशोगान करने लगे। भगवान शङ्करके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा आरम्भ हो गयी। देवताओं और मुनिगणोंने भगवान शंकरकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २९ ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

(शङ्खचूड़वेशधारी श्रीहरि द्वारा तुलसीका पातिव्रत-भङ्ग, तुलसी और श्रीहरिका वृक्ष एवं शालग्राम पाषाणके रूपमें भारतवर्षमें रहना तथा तुलसीकी महिमा, शालग्रामके विभिन्न लक्षण तथा महत्त्वका वर्णन) नारदजीने कहा—हे प्रभो! भगवान नारायणने कौन-सा रूप धारण करके तुलसीके साथ हास-विलास करते हुए वीर्याधान किया था? यह प्रसङ्ग मुझे बतानेकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृपा करें ॥१॥ भगवान नारायण कहते हैं–हे नारद ! भगवान् श्रीहरि देवताओंका कार्य साधन करनेके लिए सदा तत्पर रहते हैं । उन्होंने वैष्णवी माया फैलाकर शङ्खचूड़से कवच ले लिया ॥ २ ॥ फिर शंखचूड़का ही रूप धारण करके वे साध्वी तुलसीके घर पहुँचे । क्योंकि शंखचूड़के निधनके लिए तुलसीके पातिव्रतका भङ्ग ही एकमात्र साधन था ॥ ३ ॥ उन्होंने तुलसीके महलके फाटकके पास धौंसा बजवाया और 'महाराज शंखचूड़की जय हो, जय हो'–ऐसी जयजयकार कराकर उसे यह मालूम कराया कि युद्धमें विजयी होकर उसका पति आ गया है ॥४॥ जयजयकारका शब्द सुनकर तुलसी बड़ी प्रसन्न हुई और अत्यन्त आदरके साथ अपने पतिके दर्शनकी कामनासे झरोखेमें बैठकर सड़ककी ओर देखने लगी ॥ ५ ॥ तब उसने ब्राह्मणोंको दान दिया, मङ्गलाचार करवाया, बन्दीजनों, भिखारियों और सूत-मागधोंको न्योछावर दिये ॥ ६ ॥ इधर भगवान् रथसे उतरकर महारानीके उस महलमें गये, जो बहुमूल्य रत्नोंसे बना अतीव कलापूर्ण, रमणीक एवं भव्य था ॥७॥ अपने प्राणनाथको समक्ष देखकर उसकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा । देखते ही उसने उसके चरणोंको धोया, प्रणाम किया और सिसक-

नारायणश्च भगवान्देवानां साधनेषु च ॥ शङ्खचूडस्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया ॥ २ ॥ पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तत्सतीगृहम् ॥ पातिव्रत्यस्य नाशेन शङ्खचूडजिघांसया ॥ ३ ॥ दुंदुभिं वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ ॥ जयशब्दं च तद्द्वारे बोधयामास सुन्दरीम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा च रवं साध्वी परमानन्दसंयुता ॥ राजमार्गे गवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥ ५ ॥ ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मंगलम् ॥ वंदिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वाचिभ्यश्च धनं ददौ ॥ ६ ॥ अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा च पुरतः कांतं सा तं कांतं मुदान्विता ॥ तत्पादं क्षालयामास ननाम च रुरोद च ॥ ८ ॥ रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कामुकी ॥ तांबूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ९ ॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवनं च बभूव ह ॥ रणे गतं च प्राणेशं पश्यंत्याश्च पुनर्गृहे ॥ १० ॥ सस्मिता सकटाक्षं च सकामा पुलकांकिता ॥ पप्रच्छ रणवृत्तांतं कांतं मधुरया गिरा ॥ ११ ॥ तुलस्युवाच ॥ असंख्यविश्वसंहर्त्रा सार्धमाजौ तव प्रभो ॥ कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥ १२ ॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः ॥ शङ्खचूडस्य रूपेण तामुवाचामृतं वचः ॥ १३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आवयोः समरः कांते पूर्णमब्दं बभूव ह ॥ नाशो बभूव सर्वेषां दानवानां च कामिनि ॥१४॥ प्रीतिं च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः ॥ देवानामधिकारश्च

सिसककर रोने लगी ॥८॥ तब उस काममर्मविह्वल कामिनीने उन्हें रत्नोंके सुन्दर सिंहासनपर बैठाया । कपूर, सौंफ, इलायची आदि डाला हुआ सुगन्धित पान दिया ॥ ९ ॥ फिर बोली–आज मेरा जन्म और जीवन ये दोनों सार्थक हो गये । क्योंकि युद्धभूमिमें जाकर लौटे हुए जीवन-धनको मैं पुनः अपने घरमें और नेत्रोंके समक्ष उपस्थित देख रही हूँ ॥१०॥ इसके बाद मुस्कराती, तिरछी चितवन चलाती, काममदसे विकल और पुलकित होती हुई तुलसीने अपने प्राणनाथसे मधुर वाणीमें रणक्षेत्रका समाचार पूछा ॥ ११ ॥ तुलसीने कहा–हे नाथ ! आपका युद्ध तो असंख्य ब्रह्माण्डोंके संहार करनेवाले शिवजीके साथ हुआ था । फिर यह बतलाइए कि हे करुणासागर ! आपकी विजय कैसे हुई ? ॥१२॥ तुलसीका यह प्रश्न सुनकर शंखचूड़रूपधारी लक्ष्मीकान्त मुस्कराते हुए इस प्रकार अमृतमयी वाणी बोले ॥ १३ ॥ श्रीभगवान्ने कहा–हे प्यारी ! हमारी और शिवकी लड़ाई पूरे वर्षभर चलती रही । हे कामिनी ! उसमें सारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दानव-सेनाका नाश हो गया ॥१४॥ तब स्वयं ब्रह्माजीने आकर हम दोनोंमें सन्धि (सुलह) करा दी। ब्रह्माजीके आदेशानुसार मैंने देवताओंको स्वशासनाधिकार दे दिया ॥१५॥ इधर मैं तुम्हारे पास अपने महलमें चला आया और शिवजी अपने शिवलोकको चले गये। यह कहकर जगदीश्वर पलङ्गपर लेट गये ॥ १६ ॥ उसके बाद हे नारद ! भगवान् रमापति उस रमणीके साथ रमण करने लगे। लेकिन उस पतिव्रताने—इस समयके रतिजन्य अनुभवको अपने पूर्व पतिके किये गये संभोगसे एक दम भिन्न पाया ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब अपने मनमें तरह तरहके सङ्कल्प-विकल्प करनेके बाद जब उसे पूरा निश्चय हो गया कि यह मेरे पति नहीं हैं। तब उनसे बोली। तुलसीने कहा—हे धूर्त ! तुम कौन हो ? तुमने धोखेमें मेरा पतिव्रत धर्म नष्टकर दिया। अतः साफ-साफ बतलाओ, नहीं तो मैं अभी शाप देती हूँ। हे ब्रह्मन् ! तुलसीके वचन सुनकर शापके भयसे भगवान् श्रीहरिने लीलापूर्वक अपना मनोहर स्वरूप प्रकट कर दिया ! तब देवी तुलसीने अपने सामने उन सनातन प्रभु देवेश्वर श्रीहरिको विराजमान देखा ॥ १९ ॥ २० ॥ भगवान्का दिव्य विग्रह नूतन मेघके समान श्याम था। आँखें

प्रदत्तस्तस्य चाज्ञया ॥ १५ ॥ अहं प्राप्तः स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह ॥ १६ ॥ रेमे रमापतिस्तत्र
रामया सह नारद ॥ सा साध्वी सुखसंभोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ॥ १७ ॥ सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा ॥ तुलस्युवाच ॥ को वा त्वं वद
मायेश भुक्ताऽहं मायया त्वया ॥ १८ ॥ दूरीकृतं मत्सतीत्वं यदतस्त्वां शपामि हे ॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च ॥ १९ ॥ दधार
लीलया ब्रह्मन्स्वमूर्तिं सुमनोहराम् ॥ ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम् ॥ २० ॥ नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥ कोटिकन्दर्पलीलाभं
रत्नभूषणभूषितम् ॥ २१ ॥ ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससम् ॥ तं दृष्ट्वा कामिनी कामं मूर्छां संप्राप लीलया ॥ २२ ॥ पुनश्च
चेतनां प्राप्य पुनः सा तमुवाच ह ॥ तुलस्युवाच ॥ हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च ॥ २३ ॥ छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः ॥
पाषाणहृदयस्त्वं हि दयाहीनो यतः प्रभो ॥२४॥ तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भवे देव भवाधुना ॥ ये वदंति च साधुं त्वां ते भ्रांता हि न संशयः ॥२५॥
भक्तो विनापराधेन परार्थे च कथं हतः ॥ भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ ततश्च करुणां दृष्ट्वा करुणारससागरः ॥ नयेन तां

शरत्कालीन कमलकी तुलना कर रही थीं। वह लीला करते समय वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानो करोड़ों कामदेव एकत्र हों। रत्नमय भूषण उन्हें आभूषित किये हुए थे ॥२१॥ उनका प्रसन्न वदन मुसकानसे भरा था। उनके दिव्य शरीरपर पीताम्बर था। उन्हें देखकर कामिनी तुलसी मूर्छित हो गयी। फिर चेतना प्राप्त होनेपर उसने कहा। तुलसी बोली—हे नाथ ! आपका हृदय पाषाणके सदृश है, इसीसे आप इतने निष्ठुर बन गये ॥२२॥२३॥ आज आपने छलपूर्वक (मेरे इस शरीरका) धर्म नष्ट करके मेरे (इस शरीरके) स्वामीको मार डाला। हे प्रभो ! आप अवश्य ही पाषाणहृदय हैं, तभी तो उसमें दयाकी गन्धतक नहीं है। अतः हे देव ! आप पाषाणरूप हो जायँ। जो लोग आपको सज्जन कहते हैं, वे भ्रममें हैं। अहो, बिना अपराध ही आपका भक्त मारा गया। इस प्रकार कहकर शोकसे संतप्त तुलसी आँखों आँसूसे बहाती हुई बार-बार विलाप करने लगी ॥ २४–२६ ॥ तदनन्तर करुणासागरके समुद्र कमलापति भगवान्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीहरि करुणामयी तुलसी देवीको देखकर नीतिभरे वचनोंसे उसे समझाने लगे ॥ २७ ॥ भगवान श्रीहरि बोले—हे भद्रे ! तुम मेरे लिए भारतवर्षमें रहकर बहुत दिनोंतक तपस्या कर चुकी हो । उस समय तुम्हारे लिए शंखचूड़ भी तपस्या कर रहा था (वह मेरा ही अंश था) ॥ २८ ॥ तुम्हें स्त्री-रूपसे प्राप्त करके वह सुखपूर्वक गोलोकमें चला गया । अब मैं तुम्हारी तपस्याका फल देना उचित समझता हूँ ॥२९॥ हे रामे ! तुम इस शरीरको त्याग तथा दिव्य देह धारण करके मेरे साथ आनन्द करो । लक्ष्मीके समान तुम्हें सदा मेरे साथ रहना चाहिये ॥३०॥ तुम्हारा यह शरीर गण्डकी नदीके रूपमें प्रसिद्ध होगा । वह पवित्र नदी पुण्यमय भारतवर्षके मनुष्योंको उत्तम पुण्य देनेवाली बनेगी ॥ ३१ ॥ तुम्हारा केशपाश पवित्र वृक्ष होगा । तुम्हारे केशसे उत्पन्न होनेके कारण तुलसीके नामके उसकी प्रसिद्धि होगी ॥ ३२ ॥ हे वरानने ! देवताओंकी पूजामें काम आनेवाले त्रिलोकीके जितने पत्र और पुष्प हैं, उन सबमें तुलसी प्रधान

बोधयितुमुवाच कमलापतिः ॥२७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तपस्त्वया कृतं भद्रे मदर्थे भारते चिरम् ॥ त्वदर्थे शङ्खचूडश्च चकार सुचिरं तपः ॥२८॥ कृत्वा त्वां कामिनीं सोऽपि विजहार च तत्क्षणात् ॥ अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम् ॥ २९ ॥ इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च ॥ रामे रम मया सार्धं त्वं रमासदृशी भव ॥ ३० ॥ इयं तनुर्नदीरूपा गंडकीति च विश्रुता ॥ पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्ये भवतु भारते ॥ ३१ ॥ तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति ॥ तुलसीकेशसंभूता तुलसीति च विश्रुता ॥३२॥ त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने ॥ प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने ॥ ३३ ॥ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गोलोके मम सन्निधौ ॥ भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी ॥ ३४ ॥ गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने वने ॥ भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने ॥ ३५ ॥ माधवीकेतकीकुन्दमालिकामालतीवने ॥ वासस्तेऽत्रैव भवतु पुण्यस्थानेषु पुण्यदः ॥ ३६ ॥ तुलसीतरुमूलेषु पुण्यदेशेषु पुण्यदम् ॥ अधिष्ठानं च तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति ॥ ३७ ॥ तत्रैव सर्वदेवानां ममाधिष्ठानमेव च ॥ तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने ॥ ३८ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत् ॥ ३९ ॥ सुधाघटसहस्राणां या तुष्टिस्तु भवेद्धरेः॥ सा च तुष्टिर्भवेन्नूनं तुलसीपत्रदानतः ॥ ४० ॥ गवामयुतदानेन यत्फलं तत्फलं भवेत् ॥ तुलसीपत्रदानेन

मानी जायगी ॥३३॥ स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताल तथा गोलोक—सर्वत्र तुम मेरे संनिकट रहोगी । तुम उत्तम वृक्षरूपा होकर पुष्पोंको सुशोभित करोगी ॥३४॥ गोलोक, विरजा नदीके तट, रासमण्डल, वृन्दावन, भाण्डीरवन, चम्पकवन, मनोहर चंदनवन तथा माधवी, केतकी, कुन्द और मल्लिकावन इन सभी पुण्यस्थानोंमें तुम्हारा पुण्यप्रद निवास होगा ॥३५॥३६॥ तुलसीवृक्षके नीचेके स्थान परम पवित्र होंगे, अतएव वहाँ सम्पूर्ण तीर्थोंका पुण्यप्रद अधिष्ठान होगा ॥३७॥ हे वरानने ! तुलसीके गिरे हुए पत्तोंको प्राप्त करनेके लिये उसीके नीचे समस्त देवता रहेंगे तथा मैं भी रहूँगा । तुलसीपत्रके जलसे जिसका अभिषेक हो गया, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान तथा समस्त यज्ञोंमें दीक्षित समझना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे साध्वी ! हजारों घड़े अमृतसे भगवान श्रीहरिको जो तृप्ति होती है, उतनी तृप्ति तुलसीके एक पत्रके चढ़ानेवाले प्राप्त कर लेते हैं ॥४०॥ दस हजार गोदानसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल कार्तिक महीनेमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दानव-सेनाका नाश हो गया ॥१४॥ तब स्वयं ब्रह्माजीने आकर हम दोनोंमें सन्धि (सुलह) करा दी । ब्रह्माजीके आदेशानुसार मैंने देवताओंको स्वशासनाधिकार दे दिया ॥१५॥ इधर मैं तुम्हारे पास अपने महलमें चला आया और शिवजी अपने शिवलोकको चले गये । यह कहकर जगदीश्वर पलङ्गपर लेट गये ॥ १६ ॥ उसके बाद हे नारद ! भगवान् रमापति उस रमणीके साथ रमण करने लगे । लेकिन उस पतिव्रताने—इस समयके रतिजन्य अनुभवको अपने पूर्व पतिके किये गये संभोगसे एक दम भिन्न पाया ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब अपने मनमें तरह तरहके सङ्कल्प-विकल्प करनेके बाद जब उसे पूरा निश्चय हो गया कि यह मेरे पति नहीं हैं । तब उनसे बोली । तुलसीने कहा—हे धूर्त ! तुम कौन हो ? तुमने धोखेमें मेरा पतिव्रत धर्म नष्ट कर दिया । अतः साफ-साफ बतलाओ, नहीं तो मैं अभी शाप देती हूँ। हे ब्रह्मन् ! तुलसीके वचन सुनकर शापके भयसे भगवान् श्रीहरिने लीलापूर्वक अपना मनोहर स्वरूप प्रकट कर दिया ! तब देवी तुलसीने अपने सामने उन सनातन प्रभु देवेश्वर श्रीहरिको विराजमान देखा ॥ १९ ॥ २० ॥ भगवान्का दिव्य विग्रह नूतन मेघके समान श्याम था । आँखें

प्रदत्तस्तस्य चाज्ञया ॥ १५ ॥ अहं प्राप्तः स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह ॥ १६ ॥ रेमे रमापतिस्तत्र
रामया सह नारद ॥ सा साध्वी सुखसंभोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ॥ १७ ॥ सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा ॥ तुलस्युवाच ॥ को वा त्वं वद
मायेश भुक्ताऽहं मायया त्वया ॥ १८ ॥ दूरीकृतं मत्सतीत्वं यदतस्त्वां शपामि हे ॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च ॥ १९ ॥ दधार
लीलया ब्रह्मन्सुमूर्तिं सुमनोहराम् ॥ ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम् ॥ २० ॥ नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥ कोटिकन्दर्पलीलाभं
रत्नभूषणभूषितम् ॥ २१ ॥ ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससम् ॥ तं दृष्ट्वा कामिनी कामं मूर्छां संप्राप लीलया ॥ २२ ॥ पुनश्च
चेतनां प्राप्य पुनः सा तमुवाच ह ॥ तुलस्युवाच ॥ हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च ॥ २३ ॥ छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः ॥
पाषाणहृदयस्त्वं हि दयाहीनो यतः प्रभो ॥२४॥ तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भवे देव भवाधुना ॥ ये वदंति च साधुं त्वां ते भ्रांता हि न संशयः ॥२५॥
भक्तो विनापराधेन परार्थे च कथं हतः ॥ भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ ततश्च करुणां दृष्ट्वा करुणारससागरः ॥ नयेन तां

शरत्कालीन कमलकी तुलना कर रही थीं । वह लीला करते समय वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानो करोड़ों कामदेव एकत्र हों ! रत्नमय भूषण उन्हें आभूषित किये हुए थे ॥२१॥ उनका प्रसन्न वदन मुसकानसे भरा था । उनके दिव्य शरीरपर पीताम्बर था । उन्हें देखकर कामिनी तुलसी मूर्छित हो गयी । फिर चेतना प्राप्त होनेपर उसने कहा । तुलसी बोली—हे नाथ ! आपका हृदय पाषाणके सदृश है, इसीसे आप इतने निष्ठुर बन गये ॥२२॥२३॥ आज आपने छलपूर्वक (मेरे इस शरीरका) धर्म नष्ट करके मेरे (इस शरीरके) स्वामीको मार डाला । हे प्रभो ! आप अवश्य ही पाषाणहृदय हैं, तभी तो उसमें दयाकी गन्धतक नहीं है । अतः हे देव ! आप पाषाणरूप हो जायँ । जो लोग आपको सज्जन कहते हैं, वे भ्रममें हैं । अहो, बिना अपराध ही आपका भक्त मारा गया । इस प्रकार कहकर शोकसे संतप्त तुलसी आँखों आँसूसे बहाती हुई बार-बार विलाप करने लगी ॥ २४–२६ ॥ तदनन्तर करुणासागरके समुद्र कमलापति भगवान्ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीहरि करुणामयी तुलसी देवीको देखकर नीतिभरे वचनोंसे उसे समझाने लगे ॥ २७ ॥ भगवान श्रीहरि बोले—हे भद्रे ! तुम मेरे लिए भारतवर्षमें रहकर बहुत दिनोंतक तपस्या कर चुकी हो। उस समय तुम्हारे लिए शंखचूड़ भी तपस्या कर रहा था (वह मेरा ही अंश था) ॥ २८ ॥ तुम्हें स्त्री-रूपसे प्राप्त करके वह सुखपूर्वक गोलोकमें चला गया। अब मैं तुम्हारी तपस्याका फल देना उचित समझता हूँ ॥२९॥ हे रामे ! तुम इस शरीरको त्याग तथा दिव्य देह धारण करके मेरे साथ आनन्द करो। लक्ष्मीके समान तुम्हें सदा मेरे साथ रहना चाहिये ॥३०॥ तुम्हारा यह शरीर गण्डकी नदीके रूपमें प्रसिद्ध होगा। वह पवित्र नदी पुण्यमय भारतवर्षके मनुष्योंको उत्तम पुण्य देनेवाली बनेगी ॥ ३१ ॥ तुम्हारा केशपाश पवित्र वृक्ष होगा। तुम्हारे केशसे उत्पन्न होनेके कारण तुलसीके नामके उसकी प्रसिद्धि होगी ॥ ३२ ॥ हे वरानने ! देवताओंकी पूजामें काम आनेवाले त्रिलोकीके जितने पत्र और पुष्प हैं, उन सबमें तुलसी प्रधान

बोधयितुमुवाच कमलापतिः ॥२७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तपस्त्वया कृतं भद्रे मदर्थे भारते चिरम् ॥ त्वदर्थे शङ्खचूडश्च चकार सुचिरं तपः ॥२८॥ कृत्वा त्वां कामिनीं सोऽपि विजहार च तत्क्षणात् ॥ अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम् ॥ २९ ॥ इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च ॥ रामे रम मया सार्धं त्वं रमासदृशी भव ॥ ३० ॥ इयं तनुर्नदीरूपा गंडकीति च विश्रुता ॥ पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्ये भवतु भारते ॥ ३१ ॥ तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति ॥ तुलसीकेशसंभूता तुलसीति च विश्रुता ॥३२॥ त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने ॥ प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने ॥ ३३ ॥ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गोलोके मम सन्निधौ ॥ भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी ॥ ३४ ॥ गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने वने ॥ भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने ॥ ३५ ॥ माधवीकेतकीकुन्दमल्लिकामालतीवने ॥ वासस्तेऽत्रैव भवतु पुण्यस्थानेषु पुण्यदः ॥ ३६ ॥ तुलसीतरुमूलेषु पुण्यदेशेषु पुण्यदम् ॥ अधिष्ठानं च तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति ॥ ३७ ॥ तत्रैव सर्वदेवानां ममाधिष्ठानमेव च ॥ तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने ॥ ३८ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत् ॥ ३९ ॥ सुधाघटसहस्राणां या तुष्टिस्तु भवेद्धरेः॥ सा च तुष्टिर्भवेन्नूनं तुलसीपत्रदानतः ॥ ४० ॥गवामयुतदानेन यत्फलं तत्फलं भवेत् ॥ तुलसीपत्रदानेन

मानी जायगी ॥३३॥ स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताल तथा गोलोक—सर्वत्र तुम मेरे संनिकट रहोगी। तुम उत्तम वृक्षरूपा होकर पुष्पोंको सुशोभित करोगी ॥३४॥ गोलोक, विरजा नदीके तट, रासमण्डल, वृन्दावन, भाण्डीरवन, चम्पकवन, मनोहर चंदनवन तथा माधवी, केतकी, कुन्द और मल्लिकावन इन सभी पुण्यस्थानोंमें तुम्हारा पुण्यप्रद निवास होगा ॥३५॥३६॥ तुलसीवृक्षके नीचेके स्थान परम पवित्र होंगे, अतएव वहाँ सम्पूर्ण तीर्थोंका पुण्यप्रद अधिष्ठान होगा ॥३७॥ हे वरानने ! तुलसीके गिरे हुए पत्तोंको प्राप्त करनेके लिये उसीके नीचे समस्त देवता रहेंगे तथा मैं भी रहूँगा। तुलसीपत्रके जलसे जिसका अभिषेक हो गया, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान तथा समस्त यज्ञोंमें दीक्षित समझना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे साध्वी ! हजारों घड़े अमृतसे भगवान श्रीहरिको जो तृप्ति होती है, उतनी तृप्ति तुलसीके एक पत्रके चढ़ानेवाले प्राप्त कर लेते हैं ॥४०॥ दस हजार गोदानसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल कार्तिक महीनेमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुलसीके पत्र-दानसे सुलभ हो जाता है ॥४१॥ जिस व्यक्तिके मुखमें मृत्युके अवसरपर तुलसी-पत्रका जल पहुँच जाता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान विष्णुके लोकका अधिकारी बन जाता है ॥४२॥ जो मनुष्य नित्यप्रति भक्तिपूर्वक तुलसीका जल ग्रहण करता है, वह लाख अश्वमेध यज्ञोंका फल पा लेता है ॥४३॥ जो मानव तुलसीको अपने हाथमें लेकर तीर्थमें प्राण त्यागता है, वह विष्णुलोक चला जाता है ॥४४॥ तुलसी-काष्ठकी मालाको गलेमें धारण करनेवाला पुरुष पद-पदपर अश्वमेध यज्ञके फलका भागी होता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥४५॥ जो मनुष्य तुलसीको अपने हाथपर रखकर प्रतिज्ञा करता है और फिर उस प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, उसे सूर्य और चंद्रमाके अस्तित्वपर्यन्त 'कालसूत्र' नामक नरकमें यातना भोगनी पड़ती है ॥४६॥ जो मनुष्य तुलसीके समीप झूठी प्रतिज्ञा करता है, वह 'कुम्भीपाक' नरकमें जाता है और वहाँ चौदह इन्द्रोंके भोगकालतक निवास करता है ॥ ४७ ॥ मृत्युके समय

तत्फलं कार्त्तिके सति ॥ ४१ ॥ तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥४२॥ नित्यं यस्तुलसीतोयं भुंक्ते भक्त्या च मानवः ॥ लक्षाश्वमेधजं पुण्यं संप्राप्नोति स मानवः ॥ ४३ ॥ तुलसीं स्वकरे कृत्वा धृत्वा देहे च मानवः ॥ प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति ॥४४॥ तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥४५॥ तुलसीं स्वकरे कृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति ॥ स याति कालसूत्रं च यावचन्द्रदिवाकरौ ॥ ४६ ॥ करोति मिथ्याशपथं तुलस्यां योऽत्र मानवः ॥ स याति कुंभीपाकं च यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४७ ॥ तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत् ॥ रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठं प्राप्यते ध्रुवम् ॥ ४८ ॥ पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे ॥ तैलाभ्यंगं च कृत्वा च मध्याह्ने निशि संध्ययोः ॥४९॥ आशौचेऽशुचिकाले ये रात्रिवासोन्विता नराः ॥ तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ॥ ५० ॥ त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति ॥ श्राद्धे व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने ॥ ५१ ॥ भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति ॥ शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि ॥५२॥ वृक्षाधिष्ठातृदेवी त्वं गोलोके च निरामये ॥ कृष्णेन सार्धं नित्यं च नित्यक्रीडां करिष्यसि ॥ ५३ ॥ नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा ॥ लवणोदस्य सा पत्नी मदंशस्य भविष्यसि ॥ ५४ ॥ त्वं च स्वयं महा-

जिसके मुखमें तुलसीके जलका एक कण भी चला जाता है तो वह रत्नके विमानपर बैठकर अवश्य ही विष्णुलोकको जाता है ॥४८॥ पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, सूर्य-संक्रान्ति, मध्याह्न-काल, रात्रि, दोनों संध्याएँ, अशौचके समय और रातमें सोकर बिना नहाये-धोये, अशुद्ध वस्त्र पहने तथा तेल लगाकर जो मनुष्य तुलसीके पत्रोंका तोड़ते हैं, वे मानो स्वयं भगवान श्रीहरिके मस्तकका ही काटते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे साध्वी ! श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा देवार्चनके लिए तुलसीपत्र बासी होनेपर भी तीन राततक पवित्र रहता है ॥५१॥ पृथ्वीपर अथवा जलमें गिरा हुआ तथा श्रीविष्णुको अर्पित तुलसीपत्र धो देनेपर दूसरे कार्यके लिए शुद्ध माना जाता है ॥ ५२ ॥ गोलोक निरापद धाम है । सो तुलसीकी अधिष्ठात्री देवी बनकर गोलोकमें मुझ श्रीकृष्णके साथ तुम निरन्तर क्रीड़ा करोगी ॥ ५३ ॥ तुम्हारी देहसे उत्पन्न नदीकी जो अधिष्ठात्री देवी है, वह भारतवर्षमें परम पुण्यदा नदी बनकर क्षार-समुद्रकी पत्नी होगी । वह समुद्र मेरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही अश है ॥ ५४ ॥ स्वयं तुम महासाध्वी वैकुण्ठमें मेरे संनिकट निवास करोगी । तुम लक्ष्मीके समान वहाँ विराजमान रहोगी । इसमें संशय नहीं है ॥ ५५ ॥ मैं तुम्हारे शापको सत्य करनेके लिए भारतवर्षमें 'पाषाण' (शालग्राम) बनूँगा । गण्डकी नदीके तटपर मेरा निवास होगा ॥ ५६ ॥ वहाँ रहनेवाले करोड़ों कीड़े अपने तीखे दाँतरूपी आयुधोंसे काट-काटकर उन पाषाणोंमें मेरे चक्रका चिह्न बनायेंगे ॥५७॥ जिसमें एक द्वारका चिह्न होगा, चार चक्र होंगे और जो बनमालाने विभूषित होगा, वह नवोन मेघके समान श्यामवर्णका पाषाण 'लक्ष्मीनारायण'-का बोधक होगा ॥ ५८ ॥ जिसमें एक द्वार और चार चक्रके चिह्न होंगे तथा वनमालाकी रेखा नहीं प्रतीत होगी, ऐसे नवीन मेघकी तुलना करनेवाले श्याम रंगके पाषाणको 'लक्ष्मी' और 'विष्णु'की प्रतिमा समझना चाहिये ॥ ५९ ॥ दो द्वार, चार चक्र, गायके खुरके चिह्नसे सुशोभित एवं वनमालाके चिह्नसे रहित पाषाणको भगवान 'राघवेन्द्र'का विग्रह मानना चाहिये ॥ ६० ॥ जिसमें बहुत सूक्ष्म दो चक्रके चिह्न हों और वनमालाकी रेखा न हो, उस नवीन मेघके समान कृष्णवर्णके पाषाणको भगवान 'वामन' मानना चाहिये ॥ ६१ ॥ अत्यन्त

साध्वी वैकुण्ठे मम सन्निधौ ॥ रमासमा च रामा च भविष्यसि न संशयः ॥५५॥ अहं च शैलरूपेण गंडकीतीरसन्निधौ ॥ अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ॥५६॥ कोटिसंख्यात्र कीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रावरायुधैः ॥ तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यंति मदीयकम् ॥५७॥ एकद्वारं चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम् ॥ नवीननीरदाकारं लक्ष्मीनारायणाभिधम् ॥५८॥ एकद्वारं चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम् ॥ लक्ष्मीजनार्दनो ज्ञेयो रहितो वनमालया ॥५९॥ द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन विराजितम् ॥ रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥६०॥ अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम् ॥ तद्वामनाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥६१॥ अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च वनमालाविभूषितम् ॥ विज्ञेयं श्रीधरं रूपं श्रीप्रदं गृहिणां सदा ॥६२॥ स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं वनमालया ॥ द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥६३॥ मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं बाणविक्षतम् ॥ रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम् ॥ ६४ ॥ मध्यमं सप्तचक्रं च छत्रभूषणभूषितम् ॥ राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसंपत्प्रदं नृणाम् ॥ ६५ ॥ द्विसप्तचक्रं स्थूलं च नवनीरदसुप्रभम् ॥ अनंताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ६६ ॥ चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम् ॥ सगोष्पदं मध्यमं च विज्ञेयं मधुसूदनम् ॥ ६७ ॥ सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं

छोटे आकारमें दो चक्र एवं वनमालासे सुशोभित पाषाण स्वयं भगवान 'श्रीधर'का रूप है—ऐसा समझना चाहिये । ऐसी मूर्ति गृहस्थोंको सदा श्रीसम्पन्न बनाती है ॥ ६२ ॥ जा पाषाण स्थूल हो, जिसकी आकृति गोल हो, जिसके ऊपर वनमालाका चिह्न अंकित हो तथा जिसमें दो अत्यन्त स्पष्ट चक्रके चिह्न दिखायी पड़ते हों, वह पाषाण भगवान 'दामोदर'का बोधक होता है ॥६३॥ जो मध्यम श्रेणीका वर्तुलाकार हो, जिसमें दो चक्र तथा धनुष और बाणके चिह्न शोभा पाते हो एवं जिसके ऊपर बाणसे कट जानेका चिह्न हो, उस पाषाणको रणमें शोभा पानेवाले भगवान 'राम' मानना चाहिये ॥६४॥ जो मध्यम श्रेणीका पाषाण सात चक्रों तथा छत्र एवं आभूषणसे अलंकृत हो, उसे भगवान 'राजराजेश्वर'की प्रतिमा समझे । उसकी उपासनासे मनुष्योंको राजाकी सम्पत्ति सुलभ हो सकती है ॥ ६५ ॥ चौदह चक्रोंसे सुशोभित तथा नवीन मेघके समान रंगवाले स्थूल पाषाणको भगवान 'अनन्त'का विग्रह मानना चाहिये । उसके पूजनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों फल प्राप्त होते हैं ॥६६॥ जिसकी आकृति चक्रके समान हो तथा जो दो चक्र श्री और गो-खुरके चिह्नसे शोभा पाता हो, ऐसे नवीन मेघके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समान वर्णवाले मध्यम श्रेणीके पाषाणको भगवान 'मधुसूदन' समझना चाहिये ॥६७॥ केवल एक गुप्त चक्रसे युक्त पाषाण भगवान 'गदाधर'का तथा दो चक्र एवं अश्वके मुखकी आकृतिसे युक्त पाषाण भगवान 'हयग्रीव'का विग्रह कहा जाता है ॥६८॥ हे साध्वी ! जिसका मुख अत्यन्त विस्तृत हो, जिसपर दो चक्र चिह्नित हों तथा जो बड़ा विकट प्रतीत होता हो, ऐसे पाषाणको भगवान 'नरसिंह'की प्रतिमा समझनी चाहिये । मनुष्योंको यह सद्यः वैराग्य प्रदान करनेवाला है ॥ ६९ ॥ जिसमें दो चक्र हों, विशाल मुख हो तथा जो वनमालाके चिह्नसे सम्पन्न हो, गृहस्थोंके लिए सुखदायी उस पाषाणको भगवान 'लक्ष्मीनारायण'का विग्रह समझना चाहिये ॥७०॥ जो द्वार देशमें दो चक्रोंसे युक्त हो तथा जिसपर श्रीका चिह्न स्पष्ट दिखायी पड़े, ऐसे पाषाणको भगवान 'वासुदेव'का विग्रह मानना चाहिये । इस विग्रहकी अर्चनासे सम्पूर्ण कामनायें सिद्ध हो सकती हैं ॥७१॥ सूक्ष्म चक्रके चिह्नसे युक्त, नवीन मेघके समान श्याम तथा मुखपर बहुतेरे छोटे-छोटे छिद्रोंसे सुशोभित पाषाण 'प्रद्युम्न'का स्वरूप होगा । उसके प्रभावसे गृहस्थ सुखी हो जाते हैं ॥ ७२ ॥ जिसमें दो चक्र सँटे हुए हों और जिसका पृष्ठभाग विशाल

गदाधरम् ॥ द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम् ॥६८॥ अतीव विस्तृतास्यं च द्विचक्रं विकटं सति ॥ नरसिंहं सुविज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम् ॥ ६९ ॥ द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमालासमन्वितम् ॥ लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम् ॥ ७० ॥ द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम् ॥ वासुदेवं तु विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७१ ॥ प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रं च नवीननीरदप्रभम् ॥ सुषिरच्छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम् ॥७२॥ द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठं यत्र तु पुष्कलम् ॥ संकर्षणं तु विज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा ॥ ७३ ॥ अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चातिशोभनम् ॥ सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ७४ ॥ शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥ तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता ॥ ७५ ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यंति शालग्रामशिलार्चनात् ॥ ७६ ॥ छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियः ॥ दुःखं च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥ ७७ ॥ विकृतास्ये च दारिद्र्यं पिंगले हानिरेव च ॥ भग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम् ॥ ७८ ॥ व्रतं स्नानं प्रतिष्ठां च श्राद्धं च देवपूजनम् ॥ शालग्रामस्य सान्निध्यात्प्रशस्तं तद्भवेदिति ॥ ७९ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ सर्वयज्ञेषु

हो, गृहस्थोंको निरन्तर सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान 'संकर्षण'की प्रतिमा समझनी चाहिये ॥ ७३ ॥ जो अत्यन्त सुन्दर, गोलाकार तथा पीले रंगसे सुशोभित हो, विद्वान् पुरुष कहते हैं कि गृहाश्रमियोंको सुख देनेवाला वह पाषाण भगवान 'अनिरुद्ध'का स्वरूप है ॥७४॥ जहाँ शालग्रामकी शिला रहती है, वहाँ भगवान श्रीहरि विराजते हैं और वहीं सम्पूर्ण तीर्थोंको साथ लेकर भगवती लक्ष्मी भी निवास करती हैं ॥७५॥ ब्रह्महत्या आदि जितने पाप हैं, वे सब शालग्राम शिलाकी पूजा करनेसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ७६ ॥ छत्राकार शालग्राममें राज्य देनेकी तथा वर्तुलाकारमें प्रचुर सम्पत्ति देनेकी योग्यता रहती है । शकटके आकारवाले शालग्रामसे दुःख तथा शूलके समान आकारवालेसे मृत्यु होनी निश्चित रहती है ॥ ७७ ॥ विकृत मुखवाले दरिद्रता, पिङ्गलवर्णवाले हानि, भग्न चक्रवाले व्याधि तथा कटे हुए शालग्राम निश्चितरूपसे मरणप्रद होते हैं ॥७८॥ व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा श्राद्ध आदि सत्कार्य शालग्रामकी संनिधिमें करनेसे सर्वोत्तम माने जाते हैं ॥ ७९ ॥ शालग्रामके समक्ष रहनेवाला पुरुष सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर चुका तथा समस्त यज्ञोंमें उसे सफलता प्राप्त हो गयी । अखिल यज्ञों, तीर्थों, व्रतों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और तपस्याओंके फलका वह अधिकारी समझा जाता है ॥ ८० ॥ हे साध्वो ! चारों वेद पढ़ने तथा तपस्या करनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य शालग्राम-शिलाकी उपासनासे प्राप्त हो जाता है ॥ ८१ ॥ (जो निरन्तर शालग्राम-शिलाके जलसे अभिषेक करता है, वह सम्पूर्ण दान-पुण्य तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणाके उत्तम फलका अधिकारी हो जाता है ॥ १ ॥) शालग्राम-शिलाके जलका निरन्तर पान करनेवाला पुरुष देवाभिलषित प्रसाद पाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ८२ ॥ सम्पूर्ण तीर्थ उस पुण्यात्मा पुरुषका स्पर्श करना चाहते हैं। जीवन्मुक्त एवं महान् पवित्र वह प्राणी भगवान् श्रीहरिके पदका अधिकारी हो जाता है ॥ ८३ ॥ भगवान्के धाममें वह उनके साथ असंख्य प्राकृत प्रलयतक रहनेकी सुविधा प्राप्त करता है। वहाँ जाते ही भगवान् उसे अपना दास बना लेते हैं ॥ ८४ ॥ उस पुरुषको देखकर ब्रह्महत्या जैसे बड़े बड़े पाप इस प्रकार भागने लगते हैं, जैसे गरुड़को

तीर्थेषु व्रतेषु च तपःसु च ॥ ८० ॥ पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति ॥ तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात् ॥ ८१ ॥ (शालग्राम-
शिलातोयैर्योऽभिषेकं सदा चरेत् ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रदक्षिणं भुवो यथा ॥१॥) शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुंक्ते च यो नरः ॥ सुरेप्सितं प्रसादं च
च लभते नात्र संशयः ॥ ८२ ॥ तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च ॥ जीवन्मुक्तो महापूतोऽप्यन्ते याति हरेः पदम् ॥ ८३ ॥
तत्रैव हरिणा सार्धमसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥ यास्यत्येव हि दास्ये च नियुक्तो दास्यकर्मणि ॥ ८४ ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥
तं दृष्ट्वा च पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः ॥ ८५ ॥ तत्पादरजसा देवी सद्यःपूता वसुन्धरा ॥ पुंसां लक्षं तत्पितॄणां निस्तरेत्तस्य जन्मतः ॥ ८६ ॥
शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८७॥ निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगात्प्रमुच्यते ॥ विष्णोः
पदे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः ॥८८॥ शालग्रामशिलां धृत्वा मिथ्यावाक्यं वदेत्तु यः ॥ स याति कुम्भीपाके च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ८९ ॥
शालग्रामशिलां धृत्वा स्वीकारं यो न पालयेत् ॥ स प्रयात्यसिपत्रं च लक्षमन्वन्तरावधि ॥ ९० ॥ तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः ॥ तस्य
जन्मांतरे कांते स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ॥ ९१ ॥ तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खे यो हि करोति च ॥ भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु ॥ ९२ ॥
शालग्रामं च तुलसी शंखं चैकत्र एव च ॥ यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरेः प्रियः ॥९३॥ सकृदेव हि यो यस्यां वीर्याधानं करोति च ॥ तद्वि-

देखकर सर्प भागते हैं ॥ ८५ ॥ उस पुरुषके चरणोंकी रजसे पृथ्वीदेवी तुरन्त पवित्र हो जाती हैं। उसके जन्म लेते ही लाखों पितरोंका उद्धार हो जाता है ॥ ८६ ॥ मृत्युकालके अवसर-पर जो शालग्रामके जलका पान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको चला जाता है ॥ ८७ ॥ उसे निर्वाणमुक्ति सुलभ हो जाती है। वह कर्मभोगसे छूटकर भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें लीन हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ८८ ॥ शालग्रामको हाथमें लेकर झूठ बोलनेवाला व्यक्ति 'कुम्भीपाक' नरकमें जाता है और ब्रह्माकी आयुपर्यन्त उसे वहाँ रहना पड़ता है ॥ ८९ ॥ जो शालग्रामको हाथमें लेकर की हुई प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, उसे लाख मन्वन्तरतक 'असिपत्र' नामक नरकमें रहना पड़ता है ॥९०॥ हे कान्ते! जो व्यक्ति शालग्रामपर से तुलसीके पत्रको दूर करेगा, वह दूसरे जन्ममें स्त्रीसे वियुक्त होगा ॥ ९१ ॥ शङ्खसे तुलसीपत्रको अलग करनेवाला व्यक्ति भार्याहीन तथा सात जन्मांतक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोगी होता है ॥ ९२ ॥ शालग्राम, तुलसी और शङ्ख—इन तीनोंको जो महान् ज्ञानी पुरुष सुरक्षित रूपसे एकत्र रखता है, उसमें भगवान् श्रीहरि बहुत प्रेम करते हैं ॥ ९३ ॥ हे तुलसी ! जो व्यक्ति एक बार भी किसी स्त्रीके साथ सहवास कर लेता है तो वियोग होनेपर उसे अपार दुःख होता है ॥ ९४ ॥ एक मन्वन्तर तक तुम शंखचूड़की प्रेयसी रह चुकी हो। अतएव उसका वियोग दुःख देगा ही ॥ ९५ ॥ हे नारद ! तुलसीसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि मौन हो गये। उधर देवी तुलसी अपना वह शरीर त्याग तथा दिव्यरूपसे सम्पन्न होकर भगवान् श्रीहरिके वक्षस्थलपर लक्ष्मीकी भाँति शोभा पाने लगीं और कमलापति भगवान् श्रीहरि उन्हें साथ लेकर वैकुण्ठ चले गये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ हे नारद ! इस प्रकार लक्ष्मी, सरस्वती गङ्गा और तुलसी—ये चार देवियाँ भगवान् श्रीहरिकी पत्नियाँ हुईं ॥ ९८ ॥ उसी समय तुरन्त तुलसीकी देहसे गण्डकी नदी उत्पन्न हुई और भगवान् श्रीहरि भी उसीके तटपर मनुष्यों-के लिए पुण्यप्रद शालग्राम शैल बन गये ॥ ९९ ॥ हे मुने ! वहाँ रहनेवाले कीड़े शिलाको काट-काटकर अनेक प्रकारकी बना देते हैं। वे पाषाण जलमें गिरकर निश्चय ही उत्तम फल

च्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम् ॥९४॥ त्वं प्रिया शंखचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि ॥ शंखेन सार्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तथा ॥९५॥ इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां विरराम च नारद ॥ स तं देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च ॥ ९६ ॥ यथा श्रीश्च तथा सा चाप्युवास हरिवक्षसि ॥ स जगाम तया सार्धं वैकुण्ठं कमलापतिः ॥ ९७ ॥ लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी चापि नारद ॥ हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवुरीश्वरस्य च ॥९८॥ सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गंडकी नदी ॥ ईश्वरः सोऽपि शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम् ॥ ९९ ॥ कुर्वंति तत्र कीटाश्च शिलां बहुविधां मुने ॥ जले पतन्ति या याश्च फलदास्ताश्च निश्चितम् ॥ १०० ॥ स्थलस्थाः पिङ्गला ज्ञेयाश्चोपतापाद्रवेरिति ॥ इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ नारद उवाच ॥ तुलसी च यदा पूज्या कृता नारायणप्रिया ॥ अस्याः पूजाविधानं च स्तोत्रं च वद सांप्रतम् ॥ १ ॥ केन पूजा कृता केन स्तुता प्रथमतो मुने ॥ तत्र पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः ॥ कथां

प्रदान करते हैं ॥ १०० ॥ जो पाषाण धरतीपर गिर जाते हैं, उनपर सूर्यका ताप पड़नेसे पीलापन आ जाता है। ऐसी शिला पिङ्गला समझनी चाहिये (वह शिला पूजामें उत्तम नहीं मानी जाती।) हे नारद ! इस प्रकार यह सभी प्रसङ्ग मैंने कह सुनाया। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १०१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेज-शास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

(तुलसीपूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसीस्तवका वर्णन) नारदजीने पूछा—हे प्रभो ! जिस समय भगवान् नारायणने तुलसीको अपनी प्रिया बनाकर उनकी पूजा की, उस समय किस विधिसे उनका पूजन किया गया और किस प्रकार स्तुति की गयी ? यह प्रसङ्ग सुनानेकी कृपा करें ॥ १ ॥ हे भगवन् ! सबसे पहले उन देवीकी पूजा किसने की और किसने उनका स्तवन किया ? अथवा किस प्रकार वे देवी सुपूजित हुईं ? यह सब मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ सूतजी कहते हैं—हे मुनिवरो ! नारदकी बात सुनकर भगवान्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नारायणका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा और उन्होंने पापका ध्वंस करनेवाली परम पुण्यमयी कथा कहनी आरम्भ कर दी ॥३॥ भगवान नारायण बोले—हे मुने! भगवान श्रीहरि तुलसीका सम्मान करके उसके और लक्ष्मी दोनोंके साथ आनन्द करने लगे। उन्होंने तुलसीको भी गौरव प्रदान करके उन्हें लक्ष्मीके समान सौभाग्यवती बना दिया ॥४॥ लक्ष्मी और गङ्गा तो तुलसीके नवसङ्गम तथा सौभाग्य-गौरवको सहन करती रहीं, किन्तु सरस्वतीको क्षोभ हो जानेके कारण उन्हें यह प्रसङ्ग अप्रिय लगा ॥५॥ भगवानके समक्ष कलहमें सरस्वतीके द्वारा ताडित होकर तुलसी अन्तर्धान हो गयीं ॥६॥ देवी तुलसीको सम्पूर्ण योगसिद्धि प्राप्त थी। अतः ज्ञानियोंके लिए सिद्धिस्वरूपा उस देवीने श्रीहरिकी आँखोंसे अपनेको छिपा लिया ॥ ७ ॥ भगवानने उसे न देखकर सरस्वतीको समझाया और उससे आज्ञा लेकर वे तुलसीवनके लिए चल पड़े ॥ ८ ॥ लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और

कथितुमारेभे पुण्यां पापहरां पराम् ॥३॥ नारायण उवाच ॥ हरिः संपूज्य तुलसीं रेमे च रमया सह॥ रमासमानसौभाग्यां चकार गौरवेण च ॥४॥ सेहे च लक्ष्मीर्गंगा च तस्याश्च नवसंगमम् ॥ सौभाग्यगौरवं कोपात्तं न सेहे सरस्वती ॥५॥ सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसन्निधौ ॥ व्रीडया चापमानेन साऽन्तर्धानं चकार ह ॥ ६ ॥ सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनां सिद्धयोगिनी ॥ जगामादर्शनं कोपात्सर्वत्र च हरेरहो ॥ ७ ॥ हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम् ॥ तदनुज्ञां गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम् ॥८॥ तत्र गत्वा च सुस्नातो हरिः स तुलसीं सतीम् ॥ पूजयामास तां ध्यात्वा स्तोत्रं भक्त्या चकार ह ॥ ९ ॥ लक्ष्मी माया कामवाणी बीजपूर्वं दशाक्षरम् ॥ वृन्दावनीति ङेऽन्तं च वह्निजायांतमेव च ॥ १० ॥ अनेन कल्पतरुणा मंत्रराजेन नारद ॥ पूजयेद्यो विधानेन सर्वसिद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥ ११ ॥ घृतदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च ॥ नैवेद्येन च पुष्पेण चोपचारेण नारद ॥ १२ ॥ हरिस्तोत्रेण पुष्टा सा चाविर्भूता महीरुहात् ॥ प्रसन्ना चरणांभोजे जगाम शरणं शुभा ॥ १३ ॥ वरं तस्यै ददौ विष्णुः सर्वपूज्या भवेरिति ॥ अहं त्वां धारयिष्यामि सुरूपां मूर्ध्नि वक्षसि ॥ १४ ॥ सर्वे त्वां धारयिष्यंति स्वमूर्ध्नि च सुरादयः ॥ इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ किं ध्यानं स्तवनं किं वा किं वा पूजाविधानकम् ॥ तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातु-

वाणीबीज (ऐं) इन बीजोंको पूर्वमें उच्चारण करके 'वृन्दावन' इस शब्दके अन्तमें (ङे) विभक्ति लगा तथा अन्तमें वह्निजाया (स्वाहा) का प्रयोग करके अर्थात् 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा' इस दशाक्षर मन्त्रका उच्चारण किया। हे नारद! यह मन्त्रराज कल्पतरु है। जो इस मन्त्रका उच्चारण करके विधिपूर्वक तुलसीकी पूजा करता है, उसे निश्चय ही सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ ९–११ ॥ घृतका दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्प आदि उपचारों तथा स्तोत्र द्वारा भगवान्से सुपूजित होनेपर तुलसीको बड़ी प्रसन्नता हुई। अतः वे वृक्षसे तुरन्त बाहर निकल आयीं और परम प्रसन्न होकर भगवान श्रीहरिके चरणकमलोंकी शरणमें चली गयीं ॥ १२ ॥ १३ ॥ तब भगवानने उन्हें वर दिया—हे देवी! तुम सर्वपूज्या हो जाओ। तुम सुन्दर रूपवाली देवीको मैं अपने मस्तक तथा वक्षःस्थलपर धारण करूँगा ॥ १४ ॥ इतना ही नहीं, सम्पूर्ण देवता तुम्हें अपने मस्तकपर धारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करेंगे ।' यों कहकर भगवान श्रीहरि अपने स्थानपर चले गये ॥ १५ ॥ नारदजी बोले–हे महाभाग ! तुलसीका ध्यान, स्तवन तथा पूजाविधि बतानेकी कृपा करिए ॥ १६ ॥ भगवान नारायण कहते हैं–हे मुने ! तुलसीके अन्तर्धान हो जानेपर भगवान श्रीहरि विरहसे आतुर होकर वृन्दावन चले गये और वहाँ जाकर उन्होंने तुलसीकी इस प्रकार स्तुति की ॥ १७ ॥ श्रीभगवान बोले–जब वृन्दरूपसे वृक्ष एकत्र होते हैं, तब उन्हें बुधजन 'वृन्दा' कहते हैं । ऐसी वृन्दा नामसे प्रसिद्ध अपनी प्रिया तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ ॥ १८ ॥ जो देवी प्राचीन कालमें वृन्दावनमें प्रकट हुई थी, अतएव जिसे 'वृन्दावनी' कहते हैं, उस सौभाग्यवती देवीकी मैं उपासना करता हूँ ॥ १९ ॥ जो असंख्य वृक्षोंमें निरन्तर पूजा प्राप्त करती है, अतः जिसका नाम 'विश्वपूजिता' पड़ा है, उस देवीकी मैं उपासना करता हूँ ॥ २० ॥ हे देवी ! तुमने अनन्त विश्वको पवित्र किया है । ऐसी तुम 'विश्वपावनी' देवीकी मैं विरहसे आतुर होकर उपासना करता हूँ ॥२१॥ जिसके विना प्रचुर पुष्प अर्पण करनेपर भी देवता प्रसन्न नहीं होते, ऐसी पुष्पसारा, पुष्पोंकी सारभूता एवं शुद्धस्वरूपिणी तुलसीदेवीके शोकसे घबराकर

मर्हसि ॥ १६ ॥ नारायण उवाच ॥ अंतर्हितायां तस्यां च हरिर्वृन्दावने तदा ॥ तस्याश्चक्रे स्तुतिं गत्वा तुलसीं विरहातुरः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानु-
वाच ॥ वृन्दरूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवंति च ॥ विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम् ॥ १८ ॥ पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने
वने ॥ तेन वृंदावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम् ॥ १९ ॥ असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरंतरम् ॥ तेन विश्वपूजिताख्यां पूजितां च
भजाम्यहम् ॥ २० ॥ असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि त्वया सदा ॥ तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम् ॥ २१ ॥ देवा न तुष्टाः पुष्पाणां
समूहेन यया विना ॥ तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः ॥२२॥ विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानंदो भवेद्ध्रुवम् ॥ नंदिनी तेन विख्याता
सा प्रीता भवतादिह ॥ २३ ॥ यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च ॥ तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम् ॥ २४ ॥ कृष्ण-
जीवनरूपा सा शश्वत्प्रियतमा सती ॥ तेन कृष्णजीवनी सा सा मे रक्षतु जीवनम् ॥ २५ ॥ इत्येवं स्तवनं कृत्वा तस्थौ तत्र रमापतिः ॥ ददर्श
तुलसीं साक्षात्पादपद्मनतां सतीम् ॥ २६ ॥ रुदतीमवमानेन मानिनीं मानपूजिताम् ॥ प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रं वासयामास वक्षसि ॥ २७ ॥

मैं दर्शन करना चाहता हूँ ॥ २२ ॥ संसारमें जिसकी प्राप्तिमात्रसे भक्त परम आनन्दित हो सकता है, इसलिए 'नन्दिनी' नामसे जिसकी प्रसिद्धि है, वह भगवती तुलसी अब मुझपर प्रसन्न हो जाय ॥२३॥ अखिल विश्वमें जिस देवीकी तुलना नहीं की जा सकती, अतएव जो 'तुलसी' कहलाती है, उस अपनी प्रियाकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २४ ॥ वह साध्वी तुलसी भगवान श्रीकृष्णका जीवनस्वरूपा और निरन्तर प्रेम प्रदान करनेवाली होनेसे 'कृष्णजीवनी' नामसे विख्यात है । वह देवी तुलसी मेरे जीवनकी रक्षा करे ॥२५॥ इस प्रकार स्तुति करके लक्ष्मीकान्त भगवान श्रीहरि वहीं विराजमान हो गये । इतनेमें उनके सामने साक्षात् तुलसी प्रकट हो गयीं । उस साध्वीने उनके चरणोंमें तुरन्त मस्तक झुका दिया ॥ २६ ॥ अपमानके कारण उस मानिनीकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे । क्योंकि पहले उसे बड़ा सम्मान मिल चुका था । ऐसी प्रिया तुलसीको देखकर भगवान श्रीहरिने उसे तुरन्त हृदयमें बैठा लिया ॥२७॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ ही सरस्वतीसे आज्ञा लेकर उसे अपने साथ ले गये और प्रयत्नपूर्वक सरस्वतीके साथ तुलसीका प्रेम स्थापित करवाया ॥२८॥ साथ ही भगवान्‌ने तुलसीको वर देते हुए कहा—'हे देवी! तुम सर्वपूज्या और शिरोधार्या होओ। सब लोग तुम्हारा आदर एवं सम्मान करें ॥ २९ ॥ भगवान विष्णुके इस प्रकार कहनेपर वे देवी सरस्वतीसे परम संतुष्ट हो गयीं और उन्होंने उसे खींचकर अपने पास बैठा लिया ॥३०॥ हे नारद! उस समय लक्ष्मी और गंगाके मुखपर हँसी छा गयी। उन देवियोंने विनयपूर्वक साध्वी तुलसीका हाथ पकड़कर उसे भवनमें प्रवेश कराया ॥३१॥ वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी और कृष्णजीवनी—ये देवी तुलसीके आठ नाम हैं। यह सार्थक नामावली स्तोत्रके रूपमें पढ़ी जाती है। जो पुरुष तुलसीकी पूजा करके इस 'नामाष्टक'का पाठ करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ कार्तिककी पूर्णिमा तिथिको देवी तुलसीका मङ्गलमय प्राकट्य हुआ और सर्वप्रथम भगवान श्रीहरिने उनकी पूजा सम्पन्न की ॥ ३४ ॥ तभीसे यह नियम बन गया है कि कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर विश्वपावनी तुलसीकी भक्तिभावसे

भारत्याज्ञां गृहीत्वा च स्वालयं च ययौ हरिः ॥ भारत्या सह तत्प्रीतिं कारयामास सत्वरम् ॥ २८ ॥ वरं विष्णुर्ददौ तस्यै सर्वपूज्या भवेरिति ॥
शिरोधार्या च सर्वेषां वंद्या मान्या ममेति च ॥ २९॥ विष्णोर्वरेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह ॥ सरस्वती तामाकृष्य वासयामास सन्निधौ ॥ ३० ॥
लक्ष्मीर्गंगा सस्मिता च तां समाकृष्य नारद ॥ गृहं प्रवेशयामास विनयेन सती तदा ॥ ३१ ॥ वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी ॥
पुष्पसारा नंदिनी च तुलसी कृष्णजीवनी ॥ ३२॥ एतन्नामाष्टकं चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम् ॥ यः पठेत्तां सुसंपूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३३ ॥
कार्तिक्यां पूर्णिमायां च तुलस्या जन्म मंगलम् ॥ तत्र तस्याश्च पूजा च विहिता हरिणा पुरा ॥ ३४ ॥ तस्यां यः पूजयेत्तां च भक्त्या च विश्व-
पावनीम् ॥ सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३५ ॥ कार्त्तिके तुलसीपत्रं यो ददाति च विष्णवे ॥ गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति
निश्चितम् ॥ ३६ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम् ॥ बंधुहीनो लभेद्बन्धून्स्तोत्रश्रवणमात्रतः ॥ ३७ ॥ रोगी प्रमुच्यते रोगाद्बद्धो
मुच्येत बन्धनात् ॥ भयान्मुच्येत भीतस्तु पापान्मुच्येत पातकी ॥३८॥ इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं शृणु ॥ त्वमेव वेदे जानासि कण्व-
शाखोक्तमेव च ॥ ३९ ॥ तद्वृक्षे पूजयेत्तां च भक्त्या चावाहनं विना ॥ तां ध्यात्वा चोपचारेण ध्यानं पातकनाशम् ॥ ४० ॥ तुलसीं पुष्पसारां

पूजा करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान विष्णुके लोकमें चला जाता है ॥ ३५ ॥ जो कार्तिक महीनेमें भगवान विष्णुको तुलसीपत्र अर्पण करता है, वह दस हजार गोदानका फल निश्चितरूपसे पा जाता है ॥ ३६ ॥ इस तुलसीनामाष्टकके श्रवणमात्रसे सन्तानहीन पुरुष पुत्रवान् बन जाता है, जिसे पत्नी न हो। उसे पत्नी मिल जाती है तथा बन्धुहीन व्यक्ति बहुत-से बान्धवोंको प्राप्त कर लेता है ॥ ३७ ॥ इसके श्रवणसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ व्यक्ति छुटकारा पा जाता है और भयभीत पुरुष निर्भय हो जाता है ॥ ३८॥ हे नारद! मैंने यह तुलसी-स्तोत्र बतला दिया। अब ध्यान और पूजाविधि सुनो। तुम तो इस ध्यानको जानते ही हो। वेदकी कण्व-शाखामें इसका प्रतिपादन हुआ है ॥३९॥ ध्यानमें सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेकी अबाध शक्ति है। ध्यान करनेके पश्चात् बिना आवाहन किये भक्तिपूर्वक तुलसीके वृक्षमें षोडशोपचारसे इन देवीकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परम साध्वी तुलसी पुष्पोंका सार हैं। इनका सम्पूर्ण मनोहर अंग पवित्र है। किये हुए पापको भस्म करनेके लिए ये प्रज्वलित अग्निकी लपटके समान हैं ॥ ४१ ॥ पुष्पोंमें किसी पुष्पसे इनकी तुलना नहीं की जा सकती। वेदोंमें इनकी महिमा वर्णित है। सभी अवस्थाओंमें ये पवित्र बनी रहती हैं। तुलसी नामसे इनकी प्रसिद्धि है ॥४२॥ भगवान इन्हें अपने मस्तकपर धारण करते हैं। सभीको इन्हें पानेकी इच्छा बनी रहती है। विश्वको पवित्र करनेवाली ये देवी नित्य मुक्त हैं। मुक्ति और भगवान श्रीहरिको भक्ति प्रदान करना इनका सहज गुण है ॥ ४३ ॥ ऐसी भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ। विद्वान् पुरुष इस प्रकार ध्यान, पूजन और स्तवन करके देवी तुलसीको प्रणाम करे। हे नारद! मैं तुलसीका उपाख्यान कह चुका। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

(सावित्रीदेवीकी पूजा-स्तुतिका विधान) नारदजीने कहा—हे भगवन्! अमृतकी तुलना करनेवाली तुलसीकी कथा मैं सुन चुका। अब आप सावित्रीका उपाख्यान कहनेकी

च सतीं पूजां मनोहराम् ॥ कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम् ॥ ४१ ॥ पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम् ॥ पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता ॥ ४२ ॥ शिरोधार्या च सर्वेषामीप्सिता विश्वपावनी ॥ जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम् ॥ ४३ ॥ इति ध्यात्वा च संपूज्य स्तुत्वा च प्रणमेत्सुधीः ॥ उक्तं तुलस्युपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्यानं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ नारद उवाच ॥ तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतं चातिसुधोपमम् ॥ ततः सावित्र्युपाख्यानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ पुरा केन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतेः प्रसूः ॥ केन वा पूजिता लोके प्रथमे कैश्च वा परे ॥ २ ॥ नारायण उवाच ॥ ब्रह्मणा वेदजननी प्रथमे पूजिता मुने ॥ द्वितीये च वेदगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः ॥ ३ ॥ तदा चाश्वपतिर्भूपः पूजयामास भारते ॥ तत्पश्चात्पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वार एव च ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ को वा सोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केन वा तेन पूजिता ॥ सर्वपूज्या च सा देवी प्रथमे कैश्च वा परे ॥ ५ ॥ नारायण उवाच ॥ मद्रदेशे महाराजो बभूवाश्वपतिर्मुने ॥ वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः ॥ ६ ॥ आसीत्तस्य महाराज्ञी महती धर्मचारिणी ॥ मालतीति समाख्याता यथा लक्ष्मीर्ग-

कृपा करें ॥१॥ देवी सावित्री वेदोंकी जननी हैं, ऐसा सुना गया है। वे देवी सर्वप्रथम किससे प्रकट हुईं? सबसे पहले इनकी किसने पूजा की और बादमें किसने की? ॥२॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे मुने! सर्वप्रथम ब्रह्माजीने वेदजननी सावित्रीकी पूजा की। तत्पश्चात् वे देवताओंसे सुपूजित हुईं। तदनन्तर विद्वानोंने इनका पूजन किया ॥ ३ ॥ इसके बाद भारतवर्षमें राजा अश्वपतिने इनकी उपासना की। तदनन्तर चारों वर्णोंके लोग इनकी आराधनामें संलग्न हो गये ॥ ४ ॥ नारदजीने पूछा—हे ब्रह्मन्! राजा अश्वपति कौन थे? किस कामनासे उन्होंने सावित्रीकी पूजा की थी? उन सर्वपूज्या देवीकी किन लोगोंने पहले पूजा की और किन लोगोंने बादमें? ॥५॥ भगवान नारायण बोले—हे मुने! महाराज अश्वपति मद्रदेशके नरेश थे। शत्रुओंकी शक्ति नष्ट करना और मित्रोंके कष्टका निवारण करना उनका स्वभाव था ॥६॥ उनकी रानीका नाम मालती था। सभी धर्मोंका पालन करनेवाली वह महारानी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजाके साथ इस प्रकार शोभा पाती थी,जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुके साथ ॥७॥ हे नारद ! उन्हें कोई सन्तान नहीं थी । अतएव रानीने वसिष्ठजीके आदेशसे भक्तिपूर्वक भगवती सावित्री-की आराधना की ॥ ८ ॥ परन्तु उसे देवीकी ओरसे न तो कोई संकेत मिला, न देवीजीने साक्षात् दर्शन ही दिये । अतः कष्टका अनुभव करती हुई दुःखसे घबराकर वह घर चली गयी ॥ ९ ॥ राजा अश्वपतिने उसे दुखी देखकर नीतिपूर्ण वचनों द्वारा समझाया और स्वयं भक्तिपूर्वक सावित्रीकी तपस्याके लिए पुष्करक्षेत्रमें चले गये ॥१०॥ वहाँ रहकर इन्द्रियोंको वशमें करके उन्होंने सौ वर्ष तक बड़ी कठोर तपस्या की । वहाँ भगवती सावित्रीके दर्शन तो नहीं मिले, किन्तु कुछ उपदेश प्राप्त हुए ॥११॥ महाराज अश्वपतिको आकाशवाणी सुनायी दी । आकाशवाणीने कहा—'हे राजन् ! तुम दस लाख गायत्रीका जप करो ।' इतनेमें ही वहाँ मुनिवर पराशरजी आ गये । राजाने मुनिको प्रणाम किया । मुनि राजासे कहने लगे ॥१२॥१३॥

दाभृतः ॥ ७ ॥ सा च राज्ञी च वन्ध्या च वसिष्ठस्योपदेशतः ॥ चकाराराधनं भक्त्या सावित्र्याश्चैव नारद ॥ ८ ॥ प्रत्यादेशं न सा प्राप्ता महिषी न ददर्श ताम् ॥ गृहं जगाम दुःखार्ता हृदयेन विदूयता ॥ ९ ॥ राजा तां दुःखितां दृष्ट्वा बोधयित्वा नयेन वै ॥ सावित्र्यास्तपसे भक्त्या जगाम पुष्करं तदा ॥ १० ॥ तपश्चकार तत्रैव संयतः शतवत्सरम् ॥ न ददर्श च सावित्र्याः प्रत्यादेशो बभूव च ॥ ११ ॥ शुश्रावाकाशवाणीं च नृपेन्द्र-श्चाशरीरिणीम् ॥ गायत्र्या दशलक्षं च जपं त्वं कुरु नारद ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र आजगाम पराशरः ॥ प्रणनाम ततस्तं च मुनिर्नृप-मुवाच च ॥ १३ ॥ मुनिरुवाच ॥ सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनभवं हरेत् ॥ दशवारं जपेनैव नश्येत्पापं दिवानिशम् ॥ १४ ॥ शतवारं जपश्चैव पापं मासार्जितं हरेत् ॥ सहस्रधा जपश्चैव कल्मषं वत्सरार्जितम् ॥ १५ ॥ लक्षो जन्मकृतं पापं दशलक्षोऽन्यजन्मजम् ॥ सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षा-द्विनश्यति ॥ १६ ॥ करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्ततः ॥ करं सर्पफणाकारं कृत्वा तद्रन्ध्रमुद्रितम् ॥ १७ ॥ आनम्रमूर्धमचलं प्रजपेत्प्राङ्मुखो द्विजः ॥ अनामिकामध्यदेशादधोऽवामक्रमेण च ॥ १८ ॥ तर्जनीमूलपर्यंतं जपस्यैवं क्रमः करे ॥ श्वेतपंकजबीजानां स्फटिकानां च संस्कृताम् ॥ १९ ॥ कृत्वा वै मालिकां राजञ्जपेत्तीर्थे सुरालये ॥ संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रे पद्मे च संयतः ॥ कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नाप-

मुनिने कहा—हे राजन् ! गायत्रीके एक बारका जप दिन भरके पापको नष्ट कर देता है । दस बार जप करनेसे दिन और रातके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १४ ॥ सौ बार जप करने-से महीनोंका उपार्जित पाप नहीं ठहर सकता । एक हजारके जपसे वर्षोंके पाप भस्म हो जाते हैं ॥ १५ ॥ गायत्रीके एक लाख जपसे इस जन्मके तथा दस लाख जपमें अन्य जन्मोंके भी पापोंको नष्ट करनेकी अमोघ शक्ति है ॥ १६ ॥ करोड़ जप करनेपर सभी जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं । दस करोड़ गायत्री-जप ब्राह्मणोंको भवबन्धनसे मुक्त कर देता है । ब्राह्मणको चाहिये कि पूर्वाभिमुख बैठकर हाथको सर्पके फणके समान कर ले । अंगुलीके पर्वसे क्रमशः नीचेसे ऊपर गिनते हुए जप करे । यही करमालाका क्रम है । हे राजन् ! श्वेतकमलके बीजकी अथवा स्फटिक मणिका पवित्र माला होनी चाहिये ॥ १७-१९ ॥ इन्हीं वस्तुओंकी माला बनाकर तीर्थमें अथवा किसी देवताके समक्ष जप करे । पीपल अथवा कमलके पत्रपर संयमपूर्वक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मालाको रखकर गोरोचनसे अनुलिप्त करे। फिर गायत्री-जप करके विद्वान् पुरुष मालाको स्नान करावे। फिर उसी मालापर विधिपूर्वक गायत्रीके सौ मन्त्रोंका जप करना चाहिये। अथवा पञ्चगव्य या गङ्गाजलसे स्नान कराकर शुद्ध की हुई मालासे भी जप किया जा सकता है ॥२०–२२॥ हे राजर्षे! तुम इस क्रमसे दस लाख गायत्रीका जप करो। इससे तुम्हारे तीन जन्मोंके पाप क्षीण हो जायँगे। तत्पश्चात् तुम भगवती सावित्रीका साक्षात् दर्शन कर सकोगे ॥ २३ ॥ हे राजन्! तुम प्रतिदिन मध्याह्न, सायं एवं प्रातःकालकी संध्या पवित्र होकर निरन्तर करे ॥ २४ ॥ क्योंकि संध्या न करनेवाला अपवित्र व्यक्ति सम्पूर्ण कर्मोंके लिये अनधिकारी हो जाता है। वह दिनमें जो कुछ सत्कर्म करता है, उसके फलसे वञ्चित रहता है ॥ २५ ॥ जो प्रातः एवं सायंकालकी संध्या नहीं करता, वह ब्राह्मण सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित कर्मोंसे बहिष्कृत माना जाता है ॥ २६ ॥ जीवनपर्यन्त त्रिकाल संध्या करनेवाले ब्राह्मणमें तेज अथवा तपके प्रभावसे सूर्यके समान तेजस्विता आ जाती है ॥ २७ ॥ ऐसे ब्राह्मणकी चरणरजसे पृथ्वी पवित्र हो जाती है। जिस ब्राह्मणके हृदयमें संध्याके प्रभावसे पाप स्थान नहीं पा

येत्सुधीः ॥ गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥ अथवा पंचगव्येन स्नात्वा मालां सुसंस्कृताम् ॥ अथ गंगोदकेनैव स्नात्वा वाऽति-सुसंस्कृताम् ॥ २२ ॥ एवं क्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु ॥ साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात् ॥ २३ ॥ नित्यं संध्यां च हे राजन्क-रिष्यसि दिने दिने ॥ मध्याह्ने चापि सायाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा ॥ २४ ॥ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ २५ ॥ नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ २६ ॥ यावज्जीवनपर्यन्तं त्रिः संध्यां यः करोति च ॥ स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा ॥ २७ ॥ तत्पादपद्मरजसासद्यः पूता वसुंधरा ॥ जीवन्मुक्तः स तेजस्वी संध्यापूतो हि यो द्विजः ॥ २८ ॥ तीर्थानि च पवित्राणि तस्य संस्पर्शमात्रतः ॥ ततः पापानि यान्त्येव वैनतेयादिवोरगाः ॥ २९ ॥ गृह्णंति सुराः पूजां पितरः पिंडतर्पणम् ॥ स्वेच्छया च द्विजातेश्च त्रिसंध्यारहितस्य च ॥ ३० ॥ मूलप्रकृत्यभक्तो यस्तन्मंत्रस्याप्यनर्चकः ॥ तदुत्सवविहीनश्च विषहीनो यथोरगः ॥ ३१ ॥ विष्णुमंत्रविहीनश्च त्रिसंध्यारहितो द्विजः ॥ एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः ॥ ३२ ॥ हरेरनैवेद्यभोजी धावको वृष-वाहकः ॥ शूद्रान्नभोजी यो विप्रो विषहीनो यथोरगः ॥ ३३ ॥ शूद्राणां शवदाही यः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथो-

सके हों, वह तेजस्वी द्विज जीवन्मुक्त ही है ॥ २८ ॥ उसके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। पाप उसे छोड़कर वैसे ही भाग जाते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्पोंमें भगदड़ मच जाती है ॥२९॥ त्रिकाल संध्या न करनेवाले द्विजके दिये हुए पिण्ड और तर्पणको उसके पितर इच्छापूर्वक नहीं ग्रहण करते। देवगण भी स्वतन्त्रतासे उसकी पूजा नहीं लेना चाहते ॥ ३० ॥ जो व्यक्ति मूल प्रकृतिकी भक्ति नहीं करता, उसके मंत्रपर भी आस्था नहीं रखता और उनका उत्सव नहीं मनाता, वह विषहीन सर्पकी तरह निस्तेज होता है ॥ ३१ ॥ विष्णुमंत्र, त्रिकालसंध्या एवं एकादशी व्रतसे हीन ब्राह्मण विषहीन सर्प सरीखा होता है ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मण भगवानका प्रसाद नहीं खाता, जो धोबीका काम करता है, जो बैल लादता और शूद्रान्न खाता है, वह विषहीन सर्प जैसा निस्तेज विप्र होता है ॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण शूद्रोंके शव जलाता है, जो शूद्रा स्त्रीका पति होता है और जो शूद्रोंके लए भोजन बनाता है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

वह विषहीन सर्प सदृश निस्तेज होता है ॥३४॥ जो विप्र शूद्रोंसे दान लेता, उनका यज्ञ कराता, तलवार लेकर पहरेदारी करता तथा कलमसे मुनीमी करता है, वह विषहीन सर्प जैसा निस्तेज हो जाता है ॥३५॥ जो ब्राह्मण कन्याविक्रय करता है, जो भगवानका नाम बेचता है, जो पति-पुत्रहीन तथा ऋतुस्नाता स्त्रीके यहाँ भोजन करता है, वह विषहीन सर्पकी तरह निस्तेज होता है। जो विप्र स्त्रियोंको फँसानेका धंधा करता है और जो धन लेकर विद्या पढ़ाता है, वह निर्विष सर्प सरीखा होता है ॥३६॥३७॥ जो विप्र सूर्योदयकालमें सोता है, मत्स्य भोजन करता है और शिव आदि देवताओंकी पूजा नहीं करता, वह विषहीन सर्पके समान निस्तेज होता है ॥ ३८ ॥ हे मुने! ऐसा कहकर मुनिवर पराशरने राजा अश्वपतिको सावित्रीकी पूजाके सम्पूर्ण विधान तथा ध्यान आदि आवश्यक प्रयोग बतला दिये ॥३९॥ उन महाराजको उपदेश देकर मुनिवर अपने स्थानको चले गये। फिर राजाने सावित्रीकी उपासना की। जिससे उन्हें उनके दर्शन

रगः ॥ ३४ ॥ शूद्राणां च प्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः ॥ मसिजीवी असीजीवी विषहीनो यथोरगः ॥ ३५ ॥ यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी ॥ यो विप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नातान्नभोजकः ॥ ३६ ॥ भगजीवी बार्धुषिको विषहीनो यथोरगः ॥ यो विद्याविक्रयी विप्रो विषहीनो यथोरगः ॥ ३७ ॥ सूर्योदये स्वपेद्यो हि मत्स्यभोजी च यो द्विजः ॥ शिवापूजादिरहितो विषहीनो यथोरगः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठः सर्वपूजाविधिक्रमम् ॥ तमुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम् ॥ ३९ ॥ दत्त्वा सर्वं नृपेंद्राय ययौ च स्वाश्रमे मुने ॥ राजा संपूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च ॥४०॥ नारद उवाच ॥ किं वा ध्यानं च सावित्र्याः किं वा पूजाविधानकम् ॥ स्तोत्रं मंत्रं च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः ॥ ४१ ॥ नृपः केन विधानेन संपूज्य श्रुतिमातरम् ॥ वरं च कं वा संप्राप्य संपूज्य तु विधानतः ॥ ४२ ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि सावित्र्याः परमं महत् ॥ रहस्यातिरहस्यं च श्रुतिसिद्धं समासतः ॥ ४३ ॥ नारायण उवाच ॥ ज्येष्ठकृष्णत्रयोदश्यां शुद्धकाले च यत्नतः ॥ व्रतमेवं चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत् ॥ ४४ ॥ व्रतं चतुर्दशाब्दं च द्विसप्तफलसंयुतम् ॥ दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं चरेत् ॥ ४५ ॥ वस्त्रं यज्ञोपवीतं च भोजनं विधिपूर्वकम् ॥ संस्थाप्य मंगलघटं फलशाखासमन्वितम् ॥ ४६ ॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ संपूज्य पूजयेदिष्टं

प्राप्त हुए और अभीष्ट वर भी प्राप्त हो गया ॥४०॥ नारदने पूछा—हे भगवन्! मुनिवर पराशरने उन्हें सावित्रीके किस ध्यान, किस पूजा-विधान, किस स्तोत्र और किस मन्त्रका उपदेश दिया था? ॥४१॥ राजाने किस विधिसे श्रुति-जननी सावित्रीकी पूजा करके किस वरको प्राप्त किया? ॥ ४२ ॥ किस विधानसे भगवती उनसे सुपूजित हुईं? मैं ये भी प्रसङ्ग सुनना चाहता हूँ। सावित्रीकी श्रेष्ठ महिमा अत्यन्त रहस्यमयी है। कृपया मुझे सुनाइये ॥ ४३ ॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीके दिन संयमपूर्वक रहकर चतुर्दशीको व्रत करके शुद्ध समयमें भक्तिके साथ भगवती सावित्रीकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४४ ॥ यह चौदह वर्षका व्रत है। इसमें चौदह फल और चौदह नैवेद्य अर्पण किये जाते हैं। पुष्प, धूप तथा यज्ञोपवीत आदिसे विधिपूर्वक पूजन करके नैवेद्य अर्पण करनेका विधान है। एक मङ्गल-कलश स्थापित करके उसपर पल्लव रख दे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ द्विजको चाहिये कि गणेश, सूर्य,

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वतीकी पूजा करके आवाहित कलशपर अपनी इष्टदेवी सावित्रीका ध्यान करे ॥४७॥ देवी सावित्रीका ध्यान सुनो । माध्यन्दिनी शाखामें इसका प्रतिपादन हुआ है। स्तोत्र, पूजाविधान तथा समस्त कामप्रद मन्त्र भी बतलाता हूँ ॥४८॥ ध्यान यह है–'भगवती सावित्रीका वर्ण तपाये हुए सुवर्णके समान तेजस्वी है । ये सदा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं । इनकी प्रभा ऐसी है, मानो ग्रीष्मऋतुके मध्याह्नकालिक सहस्रों सूर्य हों ॥४९ इनके मुखपर मुसकान छायी रहती है। रत्नमय आभूषण इन्हें अलंकृत किये हुए हैं। दो विशुद्ध चिन्मय व[स्त्रों]को इन्होंने धारण कर रखा है । भक्तोंपर कृपा करनेके लिए ही ये साकाररूपसे प्रकट हुई हैं ॥ ५० ॥ जगद्धाता प्रभुकी इन प्राणप्रियाको 'सुखदा', 'शान्ता', 'सर्वसम्पत्स्वरूपा', तथा 'सर्वसम्पत्प्रदात्री' कहते हैं ॥ ५१ ॥ ये वेदकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वेद-शास्त्र इनके स्वरूप हैं । मैं ऐसी वेदबीजस्वरूपा वेदमाता सावित्रीकी उपासना करता हूँ ।' ॥ ५२ ॥ इस प्रकार ध्यान करके नैवेद्य अर्पण करे । फिर श्रद्धाके साथ कलशके ऊपर भगवती सावित्रीका आवाहन करे ॥ ५३ ॥ वेदोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सोलह प्रकारके उपचारोंसे भगव-

घटे आवाहिते द्विजः ॥ ४७ ॥ शृणु ध्यानं च सावित्र्याः प्रोक्तं माध्यंदिने च यत् ॥ स्तोत्रं पूजाविधानं च मंत्रं च सर्वकामदम् ॥ ४८ ॥ तप्तकांचनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडसहस्रसंमितप्रभाम् ॥ ४९ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहविग्रहाम् ॥ ५० ॥ सुखदां मुक्तिदां शांतां कांतां च जगतां विधेः ॥ सर्वसम्पत्स्वरूपां च प्रदात्रीं सर्वसंपदाम् ॥ ५१ ॥ वेदाधिष्ठातृदेवीं च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम् ॥ वेदबीजस्वरूपां च भजे तां वेदमातरम् ॥ ५२ ॥ ध्यात्वा ध्यानेन नैवेद्यं दत्त्वा पाणिं स्वमूर्धनि ॥ पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावाहयेद्व्रती ॥ ५३ ॥ दत्त्वा षोडशोपचारं वेदोक्तं मन्त्रपूर्वकम् ॥ संपूज्य स्तुत्वा प्रणमेद्देवदेवीं विधानतः ॥ ५४ ॥ आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम् ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ॥ ५५ ॥ वसनं भूषणं माल्यं गंधमाचमनीयकम् ॥ मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश ॥ ५६ ॥ दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा ॥ देवाधारं पुण्यदं च मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ५७ ॥ तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत् ॥ पूजांगभूतं शुद्धं च मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ५८ ॥ पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पदलान्वितम् ॥ पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥५९॥ सुगन्धं गन्धतोयं च स्नेहं सौगन्धकारकम् ॥ मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ६० ॥ गन्धद्रव्योद्भवं पुण्यं

तीकी पूजा करे। विधिपूर्वक पूजा और स्तुति सम्पन्न हो जानेपर देवेश्वरी सावित्रीको प्रणाम करे ॥५४॥ आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, चन्दन, आचमन और मनोहर शय्या–ये देने योग्य षोडश उपचार हैं ॥५५॥५६॥ [आसनका मन्त्र यह है-] हे देवी ! यह आसन उत्तम काष्ठ अथवा सुवर्णनिर्मित है । देवताओंके वास करने योग्य यह पुण्यप्रद आसन आपके लिए अर्पण किया गया है ॥५७॥ [पाद्य] हे देवी ! यह तीर्थका पवित्र जल पाद्यके रूपमें मैंने आपको समर्पण किया है । प्रीति उत्पन्न करनेवाला यह पाद्य पूजाका एक प्रधान अङ्ग माना जाता है ॥ ५८ ॥ [अर्घ्य] हे देवी ! दूब, फूल, तुलसी तथा शंखके जलसे इस अर्घ्यको सजाया गया है । ऐसा पवित्र एवं पुण्यप्रद अर्घ्य मेरे द्वारा आपके लिए निवेदित है ॥ ५९ ॥ [स्नान] हे देवी ! चन्दन मिलाकर इस जलको सुगन्धित किया गया है तथा साथ ही सुगन्ध प्रकट करनेवाला यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेल भी है। स्नान करने योग्य इस जलको भक्तिपूर्वक मैंने आपको अर्पण किया है। इसे स्वीकार करें॥ ६० ॥ (अनुलेपन) हे अम्बिके ! जो सुगन्धित वस्तुओंसे बना है, जिससे सुगन्ध फैल रही है तथा चन्दनके जलसे जो गीला किया गया है, ऐसा यह प्रीति बढ़ानेवाला पवित्र अनुलेपन मैंने भक्तिपूर्वक आपको निवेदित किया है—इसे स्वीकार करें ॥ ६१ ॥ (धूप) हे परमेश्वरी ! यह उत्तम धूप सर्वमंगलमय, सम्पूर्ण मंगलोंको देनेवाला तथा पुण्यप्रद है। आप इसे स्वीकार करें ॥६२॥ (दीप) हे देवी ! सुगन्धयुक्त, सुखदायी तथा प्रकाश फैलानेवाले इस दीपको जगत्के प्रदर्शनार्थ मैंने आपको अर्पण किया है। दीपक अन्धकारको दूर करनेका प्रधान बीज है ॥ ६३ ॥ (नैवेद्य) हे देवी ! तुष्टि, पुष्टि, प्रीति एवं पुण्य प्रदान करनेवाले तथा भूख शान्त करनेके परम साधन इस स्वादिष्ट नैवेद्यको आपके सामने मैंने अर्पण किया है। इसे ग्रहण करें। कर्पूर आदिसे सुवासित ताम्बूल भी आपका अर्पण करता हूँ ॥६४॥६५॥ (शीतल जल) हे देवी ! जल प्यास बुझानेका कारण, जगत्को रूप प्रदान करनेवाला तथा जगत्का जीवन है, ऐसा यह परम शीतल जल सेवामें उपस्थित है। इसे स्वीकार कीजिये ॥६६॥

प्रीतिदं दिव्यगंधदम् ॥ मया निवेदितं भक्त्या गंधतोयं तवांबिके ॥ ६१ ॥ सर्वमंगलरूपं च सर्वं च मंगलप्रदम् ॥ पुण्यदं च सुधूपं तं गृहाण परमेश्वरि ॥ ६२ ॥ सुगंधयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ जगतां दर्शनार्थाय प्रदीपं दीप्तिकारकम् ॥ ६३ ॥ अंधकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम् ॥ ६४ ॥ पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ ताम्बूलप्रवरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ६५ ॥ तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ सुशीतलं वारि शीतं पिपासानाशकारकम् ॥ ६६ ॥ जगतां जीवरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम् ॥ देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्धनम् ॥ ६७ ॥ कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम् ॥ काञ्चनादिविनिर्माणं श्रीकरं श्रीयुतं सदा ॥ ६८ ॥ सुखदं पुण्यदं रत्नभूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥ नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम् ॥ ६९ ॥ फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम् ॥ सर्वमंगलरूपं च सर्वमंगलमंगलम् ॥ ७० ॥ नानापुष्पविनिर्माणं बहुशोभासमन्वितम् ॥ प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं च प्रतिगृह्यताम् ॥ ७१ ॥ पुण्यप्रदं च सुगंधाढ्यं गंधं च देवि गृह्यताम् ॥ सिंदूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्धनम् ॥ ७२ ॥ भूषणानां च प्रवरं सिंदूरं प्रतिगृह्यताम् ॥ विशुद्ध-

(वस्त्र) हे परमेश्वरी ! रूई तथा रेशमसे बने हुए इस वस्त्रको ग्रहण कीजिये। शरीरके लिए यह शोभास्वरूप है। इसे धारण करनेसे सभामें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥६७॥ (भूषण) हे देवी ! सुवर्ण तथा रत्नोंसे निर्मित, सदा प्रदीप्त रहकर शोभा बढ़ानेवाले, सुखदायी एवं पुण्यप्रद इस रत्नमय भूषणको आप स्वीकार करें ॥ ६८ ॥ (फल) अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न, विविध रूपवाले फलस्वरूप तथा फल प्रदान करनेके साधन इस फलको ग्रहण कीजिये ॥६९॥ (माला) हे देवी ! अनेक प्रकारके पुष्पोंसे बनी हुई यह पुष्पमाला सम्पूर्ण मंगलोंका प्रतीक है। इसके सभी अङ्ग मङ्गलमय हैं। यह प्रभूत शोभासे सम्पन्न है। पुण्य प्रदान करनेवाली इस मालासे बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती है। अतः आप इसे ग्रहण करें ॥७०॥७१॥ (चन्दन) हे देवी ! आप पुण्यप्रद एवं अत्यन्त सुगन्धपूर्ण इस चन्दनको स्वीकार करें। (सिन्दूर) ललाटकी शोभा बढ़ानेवाला सुन्दर सिन्दूर भूषणोंमें सर्वोत्तम माना जाता है। अतः इसे आप ग्रहण करें ॥७२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(यज्ञोपवीत) यज्ञोपवीत परम पवित्र है। पवित्र सूत्रोंसे यह बना है। वैदिक मंत्रोंसे इसकी शुद्धि हुई है। अतः इसे स्वीकार कीजिये। विद्वान् पुरुष इन द्रव्योंको मूलमन्त्रसे भगवती सावित्रीके लिए अर्पण करके स्तोत्र पढ़े ॥७३॥७४॥ तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दक्षिणा दे। 'सावित्री' इस शब्दमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग करना चाहिये ॥७५॥ इसके पूर्व लक्ष्मी, माया और कामबीजका उच्चारण हो। यही 'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं सावित्र्यै स्वाहा' अष्टाक्षर मंत्र कहा गया है। भगवती सावित्रीका सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाला स्तोत्र माध्यन्दिनी शाखामें वर्णित है। ब्राह्मणोंके लिए जीवनस्वरूप इस स्तोत्रका तुम्हारे सामने मैं व्यक्त करता हूँ, सुनो। प्राचीन कालकी बात है, भगवान श्रीकृष्ण गोलोकमें विराजमान थे। उन्होंने सावित्रीका ब्रह्माके पास जानेकी आज्ञा दी। परन्तु सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोक जानेका प्रस्तुत नहीं हुई। तब भगवान श्रीकृष्णके कथनानुसार ब्रह्माजी भक्तिपूर्वक वेदमाता सावित्रीकी स्तुति करने लगे ॥७६-७८॥ तदनन्तर सावित्रीने संतुष्ट होकर ब्रह्माको पति बनाना स्वीकार कर लिया। ब्रह्माजीने सावित्रीकी इस प्रकार स्तुति की थी। ब्रह्माजीने कहा—हे सुन्दरी! तुम सच्चिदानन्दस्वरूपा एवं

ग्रंथिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम् ॥ ७३ ॥ पवित्रं वेदमंत्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम् ॥ द्रव्याण्येतानि मूलेन दत्त्वा स्तोत्रं पठेत्सुधीः ॥ ७४ ॥ ततो विप्राय भक्त्या च व्रती दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ सावित्रीति चतुर्थ्यंतं वह्निजायान्तमेव च ॥ ७५ ॥ लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः ॥ माध्यंदिनोक्तं स्तोत्रं च सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७६ ॥ विप्रजीवनरूपं च निबोध कथयामि ते ॥ कृष्णेन दत्तां सावित्रीं गोलोके ब्रह्मणे पुरा ॥ ७७ ॥ नायाति सा तेन सार्धं ब्रह्मलोके च नारद ॥ ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या तुष्टाव वेदमातरम् ॥ ७८ ॥ तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणं चकमे पतिम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सच्चिदानंदरूपे त्वं मूलप्रकृतिरूपिणि ॥ ७९ ॥ हिरण्यगर्भरूपे त्वं प्रसन्ना भव सुंदरि ॥ तेजःस्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि ॥ ८० ॥ द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुंदरि ॥ नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि ॥ ८१ ॥ सर्वमंगलरूपे च प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे ॥ ८२ ॥ सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ विप्रपापेध्मदाहाय ज्वदग्निशिखोपमे ॥ ८३ ॥ ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते नरः ॥ ८४ ॥ तत्त्वत्स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा जगतां धाता तस्थौ तत्र च संसदि ॥ ८५ ॥ सावित्री ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं जगाम सा ॥ अनेन स्तवराजेन संस्तूयाश्वपतिर्नृपः ॥ ८६ ॥ ददर्श तां

मूलप्रकृतिमयी हो ॥७९॥ तुम्हारा दिव्य विग्रह हिरण्यमय है। तुम मुझपर प्रसन्न होनेकी कृपा करो। हे देवी! तुम परम तेजःस्वरूपा हो। तुम्हारे प्रत्येक अंगमें परम आनन्द व्याप्त है ॥८०॥ द्विजातियोंके लिए जातिस्वरूपा हे सुन्दरी! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। हे सुन्दरी! तुम नित्या, नित्यप्रिया, नित्यानन्दस्वरूपा तथा सम्पूर्ण मंगलमयी देवी हो। मैं तुम्हारो प्रसन्नता चाहता हूँ, कृपा करो। हे शोभने! तुम ब्राह्मणोंका सर्वस्व हो, तुम सर्वोत्तम एवं मन्त्रोंकी सारतत्त्वा और परात्पर हो ॥८१॥ ८२॥ तुम्हारी उपासनासे सुख और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। मुझपर प्रसन्न हो जाओ। हे सुन्दरी! तुम ब्राह्मणोंके पापरूपी ईंधनको जलानेके लिए प्रज्वलित अग्नि हो ॥८३॥ ब्रह्मतेज प्रदान करना तुम्हारा सहज गुण है। तुम मुझपर प्रसन्न होओ। मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीरसे जो भी पाप करता है, वे सभी पाप तुम्हारे नामका स्मरण करते ही भस्म हो जायँगे। इस प्रकार स्तुति करके जगद्धाता ब्रह्माजी उस सभाभवनमें ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विराजमान हो गये ॥८४॥ ॥८५ तब सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोकमें जानेके लिए प्रस्तुत हो गयीं। हे मुने! इसी स्तोत्रराजसे राजा अश्वपतिने भगवती सावित्रीकी स्तुति की थी ॥ ८६ ॥ तब उन देवीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये और राजाने उनसे मनोऽभिलषित वर प्राप्त किया। यह स्तवराज परम पवित्र है। जो पुरुष संध्याके पश्चात् इस स्तवका पाठ करता है तो चारों वेदोंके पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसी फलका वह अधिकारी हो जाता है ॥८७॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

(राजा अश्वपति द्वारा सावित्रीकी उपासना तथा उसके फलस्वरूप सावित्री नामक कन्याकी उत्पत्ति) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद! जब राजा अश्वपतिने विधिपूर्वक भगवती सावित्रीकी पूजा करके इस स्तोत्रसे उनका स्तवन किया, तब देवी उनके सामने प्रकट हो गयीं। उनका श्रीविग्रह इस प्रकार प्रकाशमान था कि मानो हजारों सूर्य एक साथ उदित हो गये हों। अत्यन्त प्रसन्न होकर हँसती हुई साध्वी सावित्री राजा अश्वपतिसे इस प्रकार बोली कि जैसे माता अपने पुत्रसे बात कर रही हो। उस समय देवी सावित्रीकी प्रभासे

च सावित्रीं वरं प्राप मनोगतम् ॥ स्तवराजमिमं पुण्यं सन्ध्यां कृत्वा च यः पठेत् ॥ पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं लभते च तत् ॥ ८७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ स्तुत्वाऽनेन सोऽश्वपतिः संपूज्य विधिपूर्वकम् ॥ ददर्श तत्र तां देवीं सहस्रार्कसमप्रभाम् ॥ १ ॥ उवाच सा च राजानं प्रसन्ना सस्मिता सती ॥ यथा माता स्वपुत्रं च द्योतयंती दिशस्त्विषा ॥२॥ सावित्र्युवाच ॥ जानाम्यहं महाराज यत्ते मनसि वांछितम् ॥ वांछितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामि निश्चितम् ॥ ३ ॥ साध्वी कन्याभिलाषं च करोति तव कामिनी ॥ त्वं प्रार्थयसि पुत्रं च भविष्यति क्रमेण च ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ राजा जगाम स्वगृहं तत्कन्याऽऽदौ बभूव ह ॥ ५ ॥ आराधनाच्च सावित्र्या बभूव कमला परा ॥ सावित्रीति च तन्नाम चकाराश्वपतिर्नृपः ॥ ६ ॥ कालेन सा वर्धमाना बभूव च दिने दिने ॥ रूपयौवनसंपन्ना शुक्ले चन्द्रकला यथा ॥ ७ ॥ सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा ॥ सत्ववंतं सत्यशीलं नानागुणसमन्वितम् ॥ ८ ॥ राजा तस्मै ददौ तां च रत्नभूषणभूषिताम् ॥

चारों दिशाएँ प्रकाशमान हो रही थीं ॥ १ ॥ २ ॥ देवी सावित्रीने कहा—हे महाराज! तुम्हारे मनकी जो अभिलाषा है, उसे मैं जानती हूँ। तुम्हारी पत्नीके सम्पूर्ण मनोरथ भी मुझसे छिपे नहीं हैं। अतः सब कुछ देनेके लिए मैं निश्चितरूपसे प्रस्तुत हूँ ॥ ३ ॥ हे राजन्! तुम्हारी परम साध्वी रानी कन्याकी अभिलाषा करती है और तुम पुत्र चाहते हो, सो क्रमशः दोनों ही प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥ ऐसा कहकर भगवती सावित्री ब्रह्मलोक चली गयीं और राजा भी अपने घर लौट आये। यहाँ समयानुसार पहले एक कन्याका जन्म हुआ ॥ ५ ॥ भगवती सावित्रीकी आराधनासे उत्पन्न उस कन्याका नाम राजा अश्वपतिने सावित्री ही रक्खा ॥ ६ ॥ वह कन्या समयानुसार शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान दिनदिन बढ़ने लगी। समयपर उस सुन्दरी कन्यामें नवयौवनके लक्षण प्रकट हो गये ॥७॥ द्युमत्सेनकुमार सत्यवान्को वह पति बनाना चाहती थी। क्योंकि सत्यवान् सत्यवादी, सुशील एवं नाना प्रकारके उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थे ॥ ८ ॥ सो राजा अश्वपतिने रत्नमय भूषणोंसे अलंकृत करके अपनी कन्या सावित्री सत्यवान्को समर्पित कर दी। सत्यवान् भी बड़े कौतुकके साथ उस कन्याको लेकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने घर चले गये ॥ ९ ॥ एक वर्ष व्यतीत हो जानेके पश्चात् सत्यपराक्रमी सत्यवान् अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार हर्षपूर्वक फल और ईंधन लानेके लिए वनमें गये ॥ १० ॥ उनके पीछे-पीछे साध्वी सावित्री भी गयी। भाग्यवश सत्यवान् एक वृक्षसे गिरे और उनके प्राण निकल गये ॥ ११ ॥ हे मुने ! यमराजने जब उनके अंगुष्ठ-सदृश सूक्ष्म शरीरको साथ लेकर यमपुरीको प्रस्थान किया। तब साध्वी सावित्री भी उनके पीछे लग गयी ॥ १२ ॥ संयमनी पुरीके स्वामी और साधुश्रेष्ठ यमराजने सुन्दरी सावित्रीको अपने पीछे-पीछे आते देखकर मधुर वाणीमें कहा ॥ १३ ॥ धर्मराज बोले—अहो सावित्री ! तुम इस मानवी देहसे कहाँ आ रही हो ? यदि पतिदेवके साथ जानेकी तुम्हारी इच्छा है तो पहले इस शरीरका त्याग कर दो ॥ १४ ॥ मर्त्यलोकका प्राणी इस पाञ्चभौतिक शरीरको लेकर मेरे लोकमें नहीं जा सकता। नश्वर व्यक्ति नश्वर लोकमें ही जानेका अधिकारी होता है ॥ १५ ॥ हे साध्वी ! तुम्हारा

सोऽपि सार्धं कौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ ॥ ९ ॥ स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान्सत्यविक्रमः ॥ जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया ॥ १० ॥
जगाम साध्वी तत्पश्चात्सावित्री दैवयोगतः ॥ निपत्य वृक्षाद्दैवेन प्राणांस्तत्याज सत्यवान् ॥११॥ यमस्तं पुरुषं दृष्ट्वा बद्ध्वांगुष्ठसमं मुने ॥ गृहीत्वा
गमनं चक्रे तत्पश्चात्प्रययौ सती ॥ १२ ॥ पश्चात्तां सुदतीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः ॥ उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान् ॥ १३ ॥ धर्म-
राज उवाच ॥ अहो क्व यासि सावित्रि गृहीत्वा मानुषीं तनुम् ॥ यदि यास्यसि कांतेन सार्धं देहं तदा त्यज ॥ १४ ॥ गन्तुं मर्त्यो न शक्नोति
गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम् ॥ देहं च मम लोकं च नश्वरं नश्वरः सदा ॥ १५ ॥ भर्तुस्ते पूर्णकालो वै बभूव भारते सति ॥ स्वकर्मफलभोगार्थं सत्यवा-
न्याति मद्गृहम् ॥ १६ ॥ कर्मणा जायते जंतुः कर्मणैव प्रलीयते ॥ सुखं दुःखं भयं शोकः कर्मणैव प्रणीयते ॥ १७ ॥ कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो
ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा ॥ स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादिरहितो भवेत् ॥ १८ ॥ स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद्ध्रुवम् ॥ लभेत्स्वकर्मणा विष्णोः
सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ १९ ॥ सुरत्वं च मनुत्वं च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः ॥ कर्मणा च शिवत्वं च गणेशत्वं तथैव च ॥ २० ॥ कर्मणा च मुनींद्रत्वं
तपस्वित्वं स्वकर्मणा ॥ स्वकर्मणा क्षत्रियत्वं वैश्यत्वं च स्वकर्मणा ॥ २१ ॥ कर्मणैव च म्लेच्छत्वं लभते नात्र संशयः ॥ स्वकर्मणा जंगमत्वं
शैलत्वं च स्वकर्मणा ॥ २२ ॥ कर्मणा राक्षसत्वं च किन्नरत्वं स्वकर्मणा ॥ कर्मणैवाधिपत्यं च वृक्षत्वं च स्वकर्मणा ॥ २३ ॥ कर्मणैव पशुत्वं च

पति सत्यवान् भारतवर्षमें आया था। इसकी आयु अब पूर्ण हो चुकी है। अतएव अपने किये हुए कर्मोंका फल भोगनेके लिए अब यह मेरे लोकको जा रहा है ॥ १६ ॥ प्राणीका कर्मसे ही जन्म होता है और कर्मसे ही उसकी मृत्यु भी होती है। सुख-दुःख, भय और शोक—ये सब कर्मके अनुसार प्राप्त होते रहते हैं ॥ १७ ॥ कर्मके प्रभावसे जीव इन्द्र भी हो सकता है। अपना उत्तम कर्म ब्रह्मपुत्रतक बनानेमें समर्थ है। अपने शुभ कर्मकी सहायतासे प्राणी श्रीहरिका दास बनकर जन्म-मरण आदि बन्धनोंसे मुक्त हो सकता है ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण सिद्धि, अमरत्व तथा श्रीहरिके सालोक्यादि चार प्रकारके पद भी अपने शुभ कर्मके प्रभावसे मिल सकते हैं ॥ १९ ॥ देवता, मनु, राजेन्द्र, शिव, गणेश, मुनीन्द्र, तपस्वी, क्षत्रिय, वैश्य, म्लेच्छ, स्थावर, जङ्गम, पर्वत, राक्षस, किन्नर, अधिपति, वृक्ष, पशु, किरात, अत्यन्त सूक्ष्म जन्तु, कीड़े, दैत्य, दानव तथा असुर—ये सभी योनियाँ प्राणीको अपने कर्मके अनुसार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राप्त होती हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस प्रकार सावित्रीसे कहकर यमराज मौन हो गये ॥ २०–२५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्याय ॥ २७ ॥

(सावित्री-यमराज-संवाद) भगवान नारायण बोले–हे मुने! पतिव्रता और सद्गुणसम्पन्ना सावित्रीने यमराजकी बात सुनकर परम भक्तिके साथ उनका स्तवन किया। फिर वह उनसे पूछने लगी ॥१॥ सावित्रीने पूछा-हे भगवन्! आप मेरे गुरु हैं। सो बताइये कि कौन-सा कार्य है, किस कर्मके प्रभावसे क्या होता है, कैसे फलमें कौन कर्म हेतु है, कौन देह है और कौन देही है और संसारमें प्राणी किसकी प्रेरणासे कर्म करता है? ॥ २ ॥ ज्ञान, बुद्धि, शरीरधारियोंके प्राण, इन्द्रियाँ तथा उनके लक्षण, देवता, भोक्ता, भोजयिता, भोग, निष्कृति, जीव और परमात्मा–ये सब कौन और क्या हैं? आप इन सबका परिचय बतानेकी कृपा कीजिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ यम बोले–हे साध्वी सावित्री! कर्म दो प्रकारके हैं–शुभ और अशुभ। वेदोक्त

वनजीवी स्वकर्मणा ॥ कर्मणा क्षुद्रजंतुत्वं कृमित्वं च स्वकर्मणा ॥ २४ ॥ दैतेयत्वं दानवत्वमसुरत्वं स्वकर्मणा ॥ इत्येतदुक्त्वा सावित्रीं विरराम स वै यमः ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता ॥ तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ॥ १ ॥ सावित्र्युवाच ॥ किं कर्म तद्भवेत्केन को वा तद्धेतुरेव च ॥ को वा देही च देहः कः को वाऽत्र कर्मकारकः ॥२॥ किं वा ज्ञानं च बुद्धिः का को वा प्राणः शरीरिणाम् ॥ कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः ॥ ३ ॥ भोक्ता भोजयिता को वा को वा भोगश्च निष्कृतिः ॥ को जीवः परमात्मा कस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥ धर्म उवाच ॥ वेदप्रणिहितो धर्मः कर्म यन्मंगलं परम् ॥ अवैदिकं तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च ॥ ५ ॥ अहैतुकी देवसेवा संकल्परहिता सती ॥ कर्मनिर्मूलरूपा च सा एव परभक्तिदा ॥ ६ ॥ को वा कर्मफलं भुंक्ते को वा निर्लिप्त एव च ॥ ब्रह्मभक्तो यो नरश्च स च मुक्तः श्रुतः श्रुतौ ॥ ७ ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः ॥ भक्तिश्च द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसंमता ॥ ८ ॥ निर्वाणपददात्री च हरिरूपप्रदा नृणाम् ॥ हरिरूपस्वरूपां च भक्तिं वांछंति वैष्णवाः ॥ ९ ॥ अन्ये निर्वाणमिच्छंति योगिनो ब्रह्मवित्तमाः ॥ कर्मणो बीजरूपश्च सततं

कर्म शुभ हैं। इनके प्रभावसे प्राणी कल्याणके भागी होते हैं। वेदमें जिनका स्थान नहीं है, वे अशुभ कर्म नरकप्रद होते हैं ॥५॥ देवताओंकी संकल्परहित जो अहैतु की सेवाकी जाती है, उसे कर्म-निर्मूलरूपा कहते हैं। ऐसी ही सेवा इष्ट देवताको श्रेष्ठ 'भक्ति' प्रदान करती है ॥ ६ ॥ कौन कर्मके फलका भोक्ता है और कौन निर्लिप्त–इसके उत्तरमें श्रुतिका वचन है कि ब्रह्मकी उपासना करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥ ७ ॥ जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय–ये उसपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। हे सावित्री! श्रुतिमें भक्ति भी दो प्रकारकी बतायी गयी है–इसमें किसीका विरोध नहीं है ॥ ८ ॥ एकको 'निर्वाणप्रदा' कहते हैं और दूसरीको 'सारूप्यप्रदा'। मनुष्य इन दोनोंके अधिकारी हैं। वैष्णव पुरुषोंको भगवान श्रीहरिका सारूप्य प्रदान करनेवाली भक्ति अभीष्ट होती है ॥९॥ अन्य ब्रह्मज्ञानी योगी पुरुष निर्वाणप्रदा भक्ति चाहते हैं। कर्म बीजरूप है। निरन्तर फल प्रदान करना इसका सहज गुण है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥१०॥ यह कोई दूसरी वस्तु नहीं, किन्तु परमात्मा भगवान् श्रीहरि तथा भगवती प्रकृति एक ही रूप हैं। देवी प्रकृति मायाविशिष्ट एवं ब्रह्मस्वरूपा हैं। कर्म भी इन्हींसे उत्पन्न हुआ है। देह तो सदासे नश्वर है ॥११॥ पृथ्वी, तेज, जल, वायु और आकाश—ये पाँच भूत सूत्ररूप हैं। परमात्माके सृष्टिप्रकरणमें इनका उपयोग होता है ॥१२॥ कर्म करनेवाला जीव देही है। वही भोक्ता और अन्तर्यामी रूपसे भोजयिता भी है। सुख एवं दुःखके साक्षात् स्वरूप वैभवका ही दूसरा नाम भोग है। निष्कृति मुक्तिको कहते हैं॥ १३ ॥ सदसत्सम्बन्धी विवेकके आदिकारणका नाम ज्ञान है। इस ज्ञानके अनेक भेद हैं। घट-पटादि विषय तथा उनके भेद ज्ञानके भेदमें कारण कहा जाता है॥ १४ ॥ विवेचनमयी शक्तिको 'बुद्धि' कहते हैं। श्रुतिमें ज्ञानबीज नामसे इसकी प्रसिद्धि है। वायुके ही विभिन्न रूप प्राण हैं। इन्हींके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें शक्तिका संचार होता है ॥ १५ ॥ जो इन्द्रियोंमें प्रमुख परमात्माका अंश, संशयात्मक कर्मोंका प्रेरक, प्राणियोंके लिये दुर्निवार्य, अनिरूप्य, अदृश्य तथा बुद्धिका विरोधी है, उसे 'मन' कहा गया है। यह शरीरधारियोंके अङ्गों तथा सम्पूर्ण कर्मोंका प्रेरक है।

तत्फलप्रदः ॥ १० ॥ कर्मरूपश्च भगवान्परात्मा प्रकृतिः परा ॥ सोऽपि तद्धेतुरूपश्च देहो नश्वर एव च ॥ ११ ॥ पृथिवी वायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च ॥ एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिरूपविधौ सतः ॥ १२ ॥ कर्म कर्ता च देही च आत्मा भोजयिता सदा ॥ भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च ॥ १३ ॥ सदसद्भेदबीजं च ज्ञानं नानाविधं भवेत् ॥ विषयाणां विभागानां भेदि बीजं च कीर्तितम् ॥ १४ ॥ बुद्धिर्विवेचना सा च ज्ञानबीजं श्रुतौ श्रुतम् ॥ वायुभेदाश्च प्राणाश्च बलरूपाश्च देहिनाम् ॥ १५ ॥ इन्द्रियाणां च प्रवरमीश्वरांशमनूहकम् ॥ प्रेरकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम् ॥ १६ ॥ अनिरूप्यमदृश्यं च ज्ञानभेदो मनः स्मृतम् ॥ लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वक्च रसनमिन्द्रियम् ॥ १७ ॥ अंगिनामङ्गरूपं च प्रेरकं सर्वकर्मणाम् ॥ रिपुरूपं मित्ररूपं सुखरूपं च दुःखदम् ॥ १८ ॥ सूर्यो वायुश्च पृथिवी ब्रह्माद्या देवताः स्मृताः ॥ प्राणदेहादिभृद्यो हि स जीवः परकीर्तितः ॥ १९ ॥ परमं व्यापकं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ कारणं कारणानां च परमात्मा स उच्यते ॥ २० ॥ इत्येवं कथितं सर्वं त्वया पृष्टं यथागमम् ॥ ज्ञानिनां ज्ञानरूपं च गच्छ वत्से यथासुखम् ॥२१॥ सावित्र्युवाच ॥ त्यक्त्वा क्व यामि कांतं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं ध्रुवम् ॥ यद्यत्करोमि प्रश्नं च तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥२२॥ कां कां योनिं याति जीवः कर्मणा केन वा पुनः ॥ केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकं पितः ॥ २३॥

यही इन्द्रियोंको विषयोंमें लगाकर दुखी बनानेके कारण शत्रुरूप है और सत्कार्यमें लगाकर सुखी बनानेके कारण मित्ररूप है। आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा आदि इन्द्रियाँ हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ ये इन्द्रियाँ देहधारियोंके अङ्गस्वरूप होती हैं। इन्हींसे सब कामोंकी प्रेरणा मिलती है। ये शत्रु हैं, मित्र हैं, सुखरूप हैं और दुःखरूप भी हैं ॥ १८ ॥ सूर्य, वायु, पृथ्वी और ब्रह्मा आदि इन्द्रियोंके देवता कहे गये हैं। जो प्राण एवं देहादिको धारण करता है, उसीकी 'जीव' संज्ञा है ॥१९॥ प्रकृतिसे परे जो सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म है, उसको 'परमात्मा' कहते हैं। ये कारणोंके भी कारण हैं। हे वत्से! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने शास्त्रानुसार बतला दिया। यह विषय ज्ञानियोंके लिए भी परम ज्ञानमय है। अब तुम सुखपूर्वक लौट जाओ ॥२०॥२१॥ सावित्रीने कहा-हे प्रभो! आप ज्ञानके अथाह समुद्र हैं। अब मैं इन अपने प्राणनाथ और आपको छोड़कर कैसे और कहाँ जाऊँ? मैं जो-जो बातें पूछती हूँ, उन्हें आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुझे बताइए ॥ २२ ॥ जीव किस-किस कर्मके प्रभावसे किन-किन योनियोंमें जाता है ! हे माता ! कौन कर्म स्वर्गप्रद है और कौन नरकप्रद ? ॥ २३ ॥ किस कर्मके प्रभावसे प्राणी मुक्त हो जाता है तथा गुरुदेवमें भक्ति उत्पन्न होनेके लिए कौनसा कर्म कारण होता है ? किस कर्मके फलस्वरूप प्राणी योगी होता है और किस कर्मफलसे रोगी ? ॥ २४ ॥ दीर्घजीवी और अल्पजीवी होनेमें कौन-कौनसे कर्म प्रेरक हैं ? किस कर्मके प्रभावसे प्राणी सुखी होता है और किस कर्मके प्रभावसे दुखी ? ॥२५॥ किस कर्मसे मनुष्य अंगहीन, एकाक्ष, बधिर, अन्धा, पंगु, उन्मादी, पागल अत्यन्त लोभी और चोर होता है । सिद्धि और सालोक्यादि मुक्ति प्राप्त होनेमें कौन-से कर्म सहायक होते हैं ? ॥ २६ ॥ २७ ॥ किस कर्मके प्रभावसे प्राणी ब्राह्मण होता है और किस कर्मके प्रभावसे तपस्वी ? स्वर्गादि भोग प्राप्त होनेमें कौन-से साधन हैं ? किस कर्मसे प्राणी वैकुण्ठमें जाता है ? ॥२८॥ हे ब्रह्मन् ! गोलोक निरामय और सम्पूर्ण स्थानोंसे उत्तम धाम है । किस कर्मके प्रभावसे उसकी प्राप्ति हो सकती है ? कितने प्रकारके नरक हैं ? उनकी कितनी संख्या है और उनके क्या-क्या नाम हैं ? ॥२९॥ कौन किस नरकमें जाता है

केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्गुरौ ॥ केन वा कर्मणा योगी रोगी वा केन कर्मणा ॥ २४ ॥ केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणा ॥ केन वा कर्मणा दुःखी सुखी वा केन कर्मणा ॥ २५ ॥ अंगहीनश्च काणश्च बधिरः केन कर्मणा ॥ अंधो वा पंगुरपि च प्रमत्तः केन कर्मणा ॥ २६ ॥ क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चौरः केन वा कर्मणा भवेत् ॥ केन सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ २७ ॥ केन वा ब्राह्मणत्वं च तपस्वित्वं च केन वा ॥ स्वर्गभोगादिकं केन वैकुण्ठं केन कर्मणा ॥ २८ ॥ गोलोकं केन वा ब्रह्मन्सर्वोत्कृष्टं निरामयम् ॥ नरको वा कतिविधः किंसंख्यो नाम किं च वा ॥ २९ ॥ को वा कं नरकं याति कियंतं तेषु तिष्ठति ॥ पापिनां कर्मणा केन को वा व्याधिः प्रजायते ॥ यद्यत्प्रियं मया पृष्टं तन्मे व्याख्या-तुमर्हसि ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः ॥ प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकं तु जीविनाम् ॥ १ ॥ धर्म उवाच ॥ कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाऽधुना ॥ ज्ञानं ते पूर्वविदुषां ज्ञानिनां योगिनां परम् ॥ २ ॥ सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्री कला सती ॥ प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा सुते ॥ ३ ॥ यथा श्रीः श्रीपतेः क्रोडे भवानी च भवोरसि ॥ यथादितिः कश्यपे च यथाऽहल्या च गौतमे ॥ ४ ॥ यथा

और कितने समय तक वहाँ यातना भोगता है ? किस कर्मके फलसे पापियोंके शरीरमें कौनसी व्याधि उत्पन्न होती है ? हे भगवन् ! मैंने ये जो-जो प्रश्न किये हैं, इन सबके उत्तर देनेकी आप कृपा करें ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

(सावित्रीसे धर्मराजके प्रश्नोत्तर और सावित्रीको वरदान) भगवान नारायण कहते हैं-हे नारद ! सावित्रीके वचन सुनकर यमराजके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ । वे हँसकर प्राणियोंके कर्म-विपाक कहनेके लिए उद्यत हो गये ॥ १ ॥ धर्मराजने कहा—हे वत्से ! अभी तुम हो तो बारह वर्षकी बहुत छोटी वयसकी बालिका, किन्तु तुम्हें विद्वानों, ज्ञानियों और योगियोंसे भी बढ़कर ज्ञान प्राप्त है ॥ २ ॥ हे पुत्री ! भगवती सावित्रीके वरदानसे तुम्हारा जन्म हुआ है । तुम उन देवीकी कला हो । राजाने तपस्याके प्रभावसे तुम-जैसी कन्यारत्नको प्राप्त किया है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥३॥ जिस प्रकार लक्ष्मी भगवान् विष्णुके, भवानी शंकरके, अदिति कश्यपके, अहल्या गौतमके, शची इन्द्रके, रोहिणी चन्द्रमाके, रति कामदेवके, स्वाहा अग्निके, स्वधा पितरोंके, संज्ञा सूर्यके, वरुणानी वरुणके, दक्षिणा यज्ञके, पृथ्वी वाराहके और देवसेना कार्तिकेयके पास उनकी सौभाग्यवती प्रिया बनकर शोभा पाती हैं, तुम भी सत्यवान्की वैसी ही प्रिया बनो। मैंने तुम्हें यह वर दे दिया ॥४–७॥ हे महाभागे ! इसके अतिरिक्त भी जो तुम्हें अभीष्ट हो, वह वर माँगो। मैं तुम्हें सभी अभिलषित वर देनेको तैयार हूँ ॥८॥ सावित्री बोली—हे महाभाग! सत्यवान्से मुझे सौ औरस (सगे) पुत्र प्राप्त हों, मेरे पिताके भी सौ पुत्र हों, मेरे ससुरको नेत्र-लाभ हो और उन्हें पुनः राज्यश्री प्राप्त हो जाय ॥ ९ ॥ १० ॥ हे जगत्प्रभो ! लाख वर्ष बाद सत्यवान्के साथ मैं श्रीहरिके धाममें चली जाऊँ; यह वर भी देनेकी कृपा करें ॥११॥ हे प्रभो ! जीवनके कर्मका विपाक तथा विश्वसे तर जानेका उपाय भी सुननेके लिए मेरे मनमें महान् कौतूहल हो रहा है

शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे च रोहिणी ॥ यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने ॥ ५ ॥ यथा स्वधा च पितृषु यथा संध्या दिवाकरे ॥ वरु-
णानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा ॥ ६ ॥ यथा वराहे पृथिवी देवसेना च कार्तिके ॥ सौभाग्या सुप्रिया त्वं च तथा सत्यवतः प्रिये ॥ ७ ॥
अयं तुभ्यं वरो दत्तोऽप्यपरं च यथेप्सितम् ॥ वृणु देवि महाभागे ददामि सकलेप्सितम् ॥ ८ ॥ सावित्र्युवाच ॥ सत्यव्रत औरसानां पुत्राणां
शतकं मम ॥ भविष्यति महाभाग वरमेतन्मदीप्सितम् ॥ ९ ॥ मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुषी ॥ राज्यलाभो भवत्वेवं वरमेतन्मदीप्सितम्
॥ १० ॥ अंते सत्यवता सार्धं यास्यामि हरिमन्दिरम् ॥ समतीते लक्षवर्षे देहीदं मे जगत्प्रभो ॥ ११ ॥ जीवकर्मविपाकं च श्रोतुं कौतूहलं मम ॥
विश्वनिस्तारबीजं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १२ ॥ धर्मराज उवाच ॥ भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव ॥ जीवकर्मविपाकं च कथयामि
निशामय ॥ १३ ॥ शुभानामशुभानां च कर्मणां जन्म भारते ॥ पुण्यक्षेत्रे च नान्यत्र सर्वं च भुंजते जनाः ॥ १४ ॥ सुरा दैत्या दानवाश्च
गन्धर्वा राक्षसादयः ॥ नराश्च सर्वजनका न सर्वे जीविनः सति ॥ १५ ॥ विशिष्टजीविनः कर्म भुंजते सर्वयोनिषु ॥ शुभाशुभं च सर्वत्र स्वर्गेषु
नरकेषु च ॥ १६ ॥ विशेषतो जीविनश्च भ्रमन्ते सर्वयोनिषु ॥ शुभाशुभं भुंजते च कर्म पूर्वार्जितं परम् ॥ १७ ॥ शुभेन कर्मणा याति स्वर्लोकादि-

॥१२॥ धर्मराजने कहा—हे महासाध्वी ! तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे। अब मैं प्राणियोंका कर्म-विपाक कहता हूँ, सुनो ॥१३॥ शुभ और अशुभ कर्मोंके फलस्वरूप जीव भारतवर्षमें जन्म पाते हैं। यही पुण्यक्षेत्र है। हे पतिव्रते ! देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मनुष्य—ये सभी कर्मके अधिकारी हैं। केवल पशु आदि जीवोंको ही कर्मका अधिकारी नहीं कह सकते। उत्तम कर्म करनेवाले प्राणी सम्पूर्ण योनियोंमें जन्म पाकर उसके फल भोगते हैं। शुभाशुभ कर्मफल भोगनेका स्थान स्वर्ग और नरक निश्चित है ॥ १४–१६ ॥ कर्मकी विशेषतासे प्राणी समस्त योनियोंमें चक्कर काटते रहते हैं। उन्हें पूर्व-जन्मका उपार्जित किया हुआ कभी शुभ फल मिलता है और कभी अशुभ। शुभ कर्मके प्रभावसे प्राणी स्वर्ग-लोकमें जाता है। अशुभ कर्म उसके नरकमें भटकनेके कारण बन जाते हैं। कर्मके निःशेष हो जानेपर प्राणीके हृदयमें भक्ति उत्पन्न होती है। हे साध्वी ! वह भक्ति भी दो प्रकारकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बतलायी गयी है—एक निर्गुण और दूसरी मायाविशिष्ट ब्रह्मरूपिणी भगवती प्रकृतिके प्रति की जानेवाली भक्ति। पूर्वजन्मका असत् कर्म प्राणीको दूसरे जन्ममें रोगी बनाता है और शुभ कर्म आरोग्यवान्। प्राणी अपने शुभ कर्मके अनुसार दीर्घजीवी, अल्पायु, सुखी, दुखी, अन्धा और अङ्गहीन होता है। पूर्वजन्मके उत्तम कर्मसे दूसरे जन्ममें सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥१७–२१॥ हे देवी! साधारण कह चुका, अब विशेष बातें सुनो। हे सुन्दरी! यह अतिशय दुर्लभ विषय शास्त्रों, पुराणों और स्मृतियोंमें वर्णित है ॥२२॥ इसे सबके सामने नहीं कहना चाहिए। सभी जातियोंके लिए भारतवर्षमें मनुष्यका जन्म पाना परम दुर्लभ है। हे साध्वी! सभी वर्णोंकी अपेक्षा सम्पूर्ण कर्मोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ माना जाता है ॥२३॥ भारतवर्षमें ब्रह्मपर आस्था रखनेवाला ब्राह्मण अधिक गौरवका पात्र समझा जाता है। ब्राह्मणोंमें भी दो भेद हैं—सकाम और निष्काम ॥२४॥ सकामकी अपेक्षा निष्काम ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। सकाम विप्र कर्मफल भोगता है

कर्मेव च ॥ कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमंति नरकेषु च ॥ १८ ॥ कर्मनिर्मूलने भक्तिः सा चोक्ता द्विविधा सति ॥ निर्वाणरूपा भक्तिश्च ब्रह्मणः प्रकृतेरिह ॥ १९ ॥ रोगी कुकर्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्मणा ॥ दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च कर्मणा ॥ २० ॥ अन्धादयश्चांगहीनाः कर्मणा कुत्सितेन च ॥ सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेन कर्मणा ॥ २१ ॥ सामान्यं कथितं देवि विशेषं शृणु सुंदरि ॥ सुदुर्लभं सुगोप्यं च पुराणेषु स्मृतिष्वपि ॥ २२ ॥ दुर्लभा मानुषी जातिः सर्वजातिषु भारते ॥ सर्वेभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठो द्विजश्चैव गरीयान् भारते सति ॥ निष्कामश्च सकामश्च ब्राह्मणो द्विविधः सति ॥ २४ ॥ सकामाच प्रधानश्च निष्कामो भक्त एव च ॥ कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः ॥ २५ ॥ स याति देहं त्यक्त्वा च पदं यत्तन्निरामयम् ॥ पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिनां सति ॥ २६ ॥ सेवंते द्विभुजं कृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥ गोलोकं प्रति ते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः ॥ २७ ॥ सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव च ॥ भारतं पुनरायांति तेषां जन्म द्विजातिषु ॥ २८ ॥ काले गते च निष्कामा भवंत्येव क्रमेण च ॥ भक्तिं च निर्मलां तेभ्यो दास्यामि निश्चितं पुनः ॥ २९ ॥ ब्राह्मणा वैष्णवाश्चैव सकामाः सर्वजन्मसु ॥ न तेषां निर्मला बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥ ३० ॥ तीर्थाश्रिता द्विजा ये च तपस्यानिरताः सति ॥ ते यांति ब्रह्मलोकं च पुनरायांति भारते ॥ ३१ ॥ स्वधर्मनिरता ये च तीर्थान्यत्रनिवासिनः ॥ व्रजंति ते सत्यलोकं पुनरायांति भारते ॥ ३२ ॥ स्वधर्म-

और निष्काम सर्वथा निरुपद्रव रहता है ॥२५॥ हे साध्वी! ऐसा निष्काम द्विज शरीर त्यागकर भगवानके निरामय पदकी प्राप्तिका अधिकारी हो जाता है। ऐसे निष्काम व्यक्तियोंका संसारमें बार-बार नहीं आना-जाना पड़ता ॥२६॥ द्विभुज भगवान श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर हैं। उनकी उपासना करनेवाले भक्त पुरुष अन्तमें दिव्य शरीर धारण करके गोलोकमें जाते हैं ॥२७॥ सकाम वैष्णव पुरुष वैकुण्ठधाममें जाकर समयानुसार पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं। यहाँ द्विजातियोंके कुलमें उनका जन्म होता है ॥२८॥ वे सभी समयानुसार क्रमशः निष्काम भक्त बन जाते हैं और मेरे द्वारा उन्हें निर्मल भक्ति भी सुलभ हो सकती है। यह निश्चित है ॥२९॥ सकाम ब्राह्मण एवं वैष्णवजन बहुत जन्मोंमें भी विष्णुभक्तिसे रहित होनेके कारण विशुद्ध बुद्धि नहीं पा सकते ॥३०॥ हे साध्वी! जो तीर्थस्थानमें रहकर सदा तपस्या करते हैं, वे द्विज ब्रह्माके लोकमें जाते हैं, उन्हें पुनः भारतवर्षमें आना पड़ता है ॥३१॥ जो तीर्थोंमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथवा कहीं अन्यत्र रहकर सदा अपने कर्तव्य कार्योंमें संलग्न रहते हैं, उन्हें शरीर त्यागनेपर सत्यलोक प्राप्त होता है। वे समयानुसार पुनः भारतवर्षमें जन्म पाते हैं ॥ ३२ ॥ अपने धर्ममें निरन्तर संलग्न रहकर सूर्यकी उपासना करनेवाले ब्राह्मण सूर्यलोकमें जाते हैं, फिर उन्हें लौटकर भारतवर्षमें आना पड़ता है ॥ ३३ ॥ जो धर्मात्मा पुरुष निष्काम रूपसे मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाकी उपासना करते हैं, वे दिव्य मणिद्वीप लोकमें जाते हैं। आने-जानेकी परिस्थिति पुनः उनके सामने नहीं आ सकती ॥३४॥ अपने धर्मसे विचलित न होनेवाले शिव, शक्ति और गणपतिके उपासक व्यक्ति उन-उन देवताओंके धामोंमें जाते तथा निश्चित अवधिके बाद पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं ॥३५॥ हे साध्वी! अन्य देवताओंकी उपासना करनेवाले स्वधर्मपरायण ब्राह्मण विभिन्न लोकोंमें जाते हैं, किन्तु उन्हें पुनः भारतवर्षमें जन्म लेना पड़ता है ॥ ३६॥ भगवान श्रीहरिकी उपासना करनेवाले तथा अपने धर्ममें निरत निष्काम द्विज भक्तिके प्रभावसे भगवानके परम धाम चले जाते हैं ॥३७॥ जो अपने धर्मका पालन नहीं करते, वे आचारहीन और कामलोलुप लोग अवश्य ही नरकमें जाते हैं ॥३८॥ चारों वर्णके लोग अपने

निरता विप्रा सूर्यभक्ताश्च भारते॥ व्रजन्ति ते सूर्यलोकं पुनरायांति भारते ॥ ३३ ॥ मूलप्रकृतिभक्ता ये निष्कामा धर्मचारिणः ॥ मणिद्वीपं प्रयान्त्येव पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३४ ॥ स्वधर्मे निरता भक्ताः शैवाः शाक्ताश्च गाणपाः ॥ ते यांति शिवलोकं च पुनरायांति भारते ॥ ३५ ॥ ये विप्रा अन्यदेवेज्याः स्वधर्मनिरताः सति ॥ ते यांति सर्वलोकं च पुनरायांति भारते ॥ ३६ ॥ हरिभक्ताश्च निष्कामाः स्वधर्मनिरता द्विजाः ॥ ते यांति च हरेर्लोकं क्रमाद्भक्तिबलादहो ॥ ३७ ॥ स्वधर्मरहिता विप्रा देवान्यसेवनाः सदा ॥ भ्रष्टाचाराश्च कामाश्च ते यांति नरकं ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ स्वधर्मनिरता एव वर्णाश्चत्वार एव च ॥ भवंत्येव शुभस्यैव कर्मणः फलभागिनः ॥ ३९ ॥ स्वकर्मरहिता ये च नरकं यांति ते ध्रुवम् ॥ भारते न भवंत्येव कर्मणः फलभोगिनः ॥ ४० ॥ स्वधर्मनिरता एव वर्णाश्चत्वार एव च ॥ स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मनिरताय च ॥ ४१ ॥ कन्यां ददति विप्राय चंद्रलोकं प्रयान्ति ते ॥ वसंति तत्र ते साध्वि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४२ ॥ सालंकृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते ॥ सकामा यांति तल्लोकं न निष्कामाश्च साधवः ॥ ४३ ॥ ते प्रयांति विष्णुलोकं फलसंघातवर्जिताः ॥ गव्यं च रजतं स्वर्णं वस्त्रं सर्पिः फलं जलम् ॥ ४४ ॥ ये ददत्येव विप्रेभ्यश्चंद्रलोकं प्रयांति ते ॥ वसंति ते च तल्लोके यावन्मन्वंतरं सति ॥ ४५ ॥ सुचिरात्सुचिरं वासं कुर्वन्ति तेन ते जनाः ॥ ये ददति सुवर्णांश्च

धर्ममें तत्पर रहनेपर ही शुभ कर्मका फल भोगनेके अधिकारी होते हैं ॥३९॥ जो अपना कर्तव्य कर्म नहीं करते, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं। कर्मका फल भोगनेके लिए वे भारतवर्षमें नहीं आ सकते ॥४०॥ अतएव चारों वर्णोंके लिए अपने धर्मका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। अपने धर्ममें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण स्वधर्मनिरत विप्रको अपनी कन्या देनेके फलस्वरूप चन्द्रलोकको जाते हैं और वहाँ चौदह इन्द्रोंके भोगकालतक रहते हैं ॥४१॥४२॥ हे साध्वी! यदि कन्याको अलंकृत करके दानमें दिया जाय तो उससे दुगुना फल प्राप्त होता है। उन साधुपुरुषोंके मनमें यदि कामना हो, तब तो वे चन्द्रमाके लोकमें जाते हैं। निष्कामभावसे दान करें तो भगवान विष्णुके परमधाममें पहुँच जाते हैं। गव्य (दूध), चाँदी, सुवर्ण, वस्त्र, घृत, फल और जल ब्राह्मणोंको देनेवाले पुण्यात्मा पुरुष चन्द्रलोकमें जाते हैं। हे साध्वी! एक मन्वन्तरतक वे वहाँ सुविधापूर्वक निवास करते हैं ॥४३-४५॥ उस दानके प्रभावसे उन्हें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वोत्तम स्थानमें निवास प्राप्त होता है। हे पतिव्रते! पवित्र ब्राह्मणको सुवर्ण, गौ और ताम्र आदि द्रव्यका दान देनेवाले सत्पुरुष सूर्यलोकमें जाते हैं। वे भय-बाधासे शून्य होकर उस विस्तृत लोकमें दस हजार वर्ष निवास करते हैं ॥४६॥४७॥ जो ब्राह्मणोंको पृथ्वी अथवा प्रचुर धन दान देता है, वह भगवान विष्णुके परम सुन्दर श्वेतद्वीपमें जाता है और दीर्घकालतक वहाँ निवास करता है। हे मुने! वह पुण्यवान् पुरुष भगवानके उस विशाल लोकमें विपुल कालतक निवास करता है। ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक गृहदान देनेवाला पुरुष भगवान विष्णुके सुखदायी लोकमें दीर्घकालके लिए प्रस्थान करते हैं। भगवान श्रीहरिका वह विशाल लोक महान् और श्रेष्ठ है। वे उस लोकमें उतने दिनोंतक रहते हैं, जितनी संख्यामें उस दान दिये हुए गृहके रजःकण होते हैं ॥४८-५१॥ मनुष्य जिस देवताके उद्देश्यसे गृहदान करता है, अन्तमें उसी देवताके लोकमें जाता है। अपने घरपर दान करनेसे चौगुना, पवित्र तीर्थमें करनेसे सौगुना तथा

गाश्च ताम्रादिकं सति ॥ ४६ ॥ ते यांति सूर्यलोकं च शुचये ब्राह्मणाय च ॥ वसंति ते तत्र लोके वर्षाणामयुतं सति ॥ ४७ ॥ विपुले सुचिरं वासं कुर्वन्ति च निरामयाः ॥ ददाति भूमिं विप्रेभ्यो धनानि विपुलानि च ॥ ४८ ॥ स याति विष्णुलोकं च श्वेतदीपं मनोहरम् ॥ तत्रैव निवसत्येव यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ४९ ॥ विपुले विपुलं वासं करोति पुण्यवान्मुने ॥ गृहं ददति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम् ॥ ५० ॥ ते यांति विष्णुलोकं च सुचिरं सुखदायकम् ॥ गृहरेणुप्रमाणं च विष्णुलोके महत्तमे ॥ ५१ ॥ विपुले विपुलं वासं कुर्वन्ति मानवाः सति ॥ यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः ॥ ५२ ॥ स याति तस्य लोकं च रेणुमानाब्दमेव च ॥ सौधे चतुर्गुणं पुण्यं देशे शतगुणं फलम् ॥ ५३ ॥ प्रकृष्टे द्विगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः ॥ यो ददाति तडागं च सर्वपापपनुत्तये ॥ ५४ ॥ स याति जनलोकं च रेणुमानाब्दमेव च ॥ वाप्यां फलं दशगुणं प्राप्नोति मानवः सदा ॥ ५५ ॥ स तु वापीप्रदानेन तडागस्य फलं लभेत् ॥ धनुश्चतुःसहस्रेण दैर्घ्यमानेन निश्चितम् ॥ ५६ ॥ न्यूना वा तावती प्रस्थे सा वापी परिकीर्तिता ॥ दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते ॥ ५७ ॥ फलं ददाति द्विगुणं यदि साऽलंकृता भवेत् ॥ यत्फलं च तडागे च तदुद्धारे च तत्फलम् ॥५८॥ वाप्याश्च पंकोद्धरणे वापीतुल्यफलं लभेत् ॥ अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां यः करोचि च ॥ ५९ ॥ स प्रयाति तपोलोकं वर्षाणामयुतं सति ॥ पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये ॥ ६० ॥ स वसेद्ध्रुवलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ यो ददाति विमानं च विष्णवे

किसी श्रेष्ठ स्थानमें करनेसे दुगुना फल होता है—यह ब्रह्माजीका वचन है। समस्त पापोंसे मुक्त होनेके लिए तड़ागका दान करनेवाला व्यक्ति रेणुपर्यन्त वर्षोंकी अवधि लेकर जनलोकमें जाता है। बावलीका दान करनेसे मनुष्यको सदा दसगुना फल मिलता है ॥५२-५५॥ उस बावलीदानसे तड़ागका प्रमाण चार हजार धनुष (सोलह हजार हाथ) चौड़ा और उतना ही लम्बा निश्चित किया गया है ॥५६॥ इससे जो लघु प्रमाणमें होती है, वह वापी कही जाती है। सत्पात्रको दी हुई कन्या दस बावलीदानके समान पुण्यप्रदा होती है ॥५७॥ यदि उस कन्याको अलंकृत करके दान दिया जाय तो दुगुना फल मिलता है। तड़ागके दानसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, वही उसके जीर्णोद्धारसे भी सुलभ हो जाता है ॥५८॥ वापीके कीचड़को दूर करानेसे उसके निर्माण कराने-जितना फल मिलता है। हे पतिव्रते! जो पुरुष पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है, वह हजारों वर्षोंके लिए भगवान विष्णुके लोकमें जाता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥५९॥ हे सावित्री ! जो सम्पूर्ण प्राणियोंके लिए पुष्पोद्यान लगाता है, वह दस हजार वर्षोंतक ध्रुवलोकमें स्थान पाता है। हे पतिव्रते ! विष्णुके उद्देश्यसे विमानका दान करनेवाला मानव एक मन्वन्तरतक विष्णुलोकमें बास करता है। यदि वह विमान विशाल और चित्रोंसे सुसज्जित किया गया हो तो उसके दानसे चौगुना फल प्राप्त होता है ॥६०-६२॥ शिविका-दानमें उससे आधा फल होना निश्चित है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक भगवान श्रीहरिके उद्देश्यसे देवालय दान करता है, वह अति मन्वन्तर कालतक भगवान विष्णुके लोकमें निवास करता है। हे पतिव्रते ! राजभवनतक राजमार्ग बनानेवाला सत्पुरुष हजारों वर्षोंतक इन्द्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। ब्राह्मणों अथवा देवताओंको दिया हुआ दान समान फल प्रदान करता है ॥६३-६५॥ जो पूर्व जन्ममें दिया गया है, वही जन्मान्तरमें प्राप्त होता है। जो नहीं दिया गया है, वह कैसे प्राप्त हो सकता है ? पुण्यवान् पुरुष स्वर्गीय सुख भोगकर भारतवर्षमें जन्म पाता है ॥६६॥

भारते सति ॥ ६१ ॥ विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वतरं परम् ॥ चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम् ॥ ६२ ॥ तस्यार्धं शिविकादाने फलमेव लभेद्ध्रुवम् ॥ यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमंदिरम् ॥ ६३ ॥ विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वंतरं शतम् ॥ राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रत ॥ ६४ ॥ वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते ॥ ब्राह्मणेभ्योऽथ देवेभ्यो दानं समफलं लभेत् ॥ ६५ ॥ यद्धि दत्तं च तद्भुंक्ते न दत्तं नोपतिष्ठते ॥ भुक्त्वा स्वर्गादिजं सौख्यं पुण्यवाञ्जन्म भारते ॥ ६६ ॥ लभेद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैवोत्तमादिषु ॥ भारते पुण्यवान्विप्रो भुक्त्वा स्वर्गादिकं फलम् ॥ ६७ ॥ पुनः सोऽपि भवेद्विप्रश्चैवं च क्षत्रियादयः ॥ क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च ॥ ६८ ॥ तपसा ब्राह्मणत्वं च न प्राप्नोति श्रुतौ श्रुतम् ॥ नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ ६९ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ देवतीर्थसहायेन कायव्यूहेन शुद्ध्यति ॥ एतत्ते कथितं किंचित्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्याने एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

॥ सावित्र्युवाच ॥ प्रयांति स्वर्गमन्यं च येनैव कर्मणा यम ॥ मानवाः पुण्यवंतश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ धर्मराज उवाच ॥ अन्नदानं

उसे क्रमशः उत्तमसे उत्तम ब्राह्मणकुलमें जन्म लेनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। पुण्यवान् ब्राह्मण स्वर्गसुख भोगनेके अनन्तर पुनः ब्राह्मण होता है। यही नियम क्षत्रिय आदिके लिए भी है। वैश्य तपस्याके प्रभावसे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है—ऐसी बात श्रुतिमें सुनी जाती है। कितना ही काल क्यों न बीत जाय, बिना भोग किये कर्म क्षीण नहीं हो सकते ॥६७॥६८॥ अपने किए हुये शुभ और अशुभ कर्मोंका फल प्राणियोंको अवश्य भोगना पड़ता है। देवता और तीर्थकी सहायता तथा कायव्यूहसे प्राणी शुद्ध हो जाता है। हे साध्वी ! ये कुछ बातें तो तुम्हें बतला दीं, अब आगे और क्या सुनना चाहती हो ? ॥६९॥७०॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

(सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर) सावित्रीने कहा—हे धर्मराज ! जिन कर्मोंके प्रभावसे पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्ग अथवा अन्य लोकमें जाते हों, वह मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्मराज बोले–हे पतिव्रते ! ब्राह्मण तथा अन्य व्यक्तिको अन्नदान देनेवाला पुरुष शिवलोकमें जाता है और दान किये हुए अन्नमें जितने दाने होते हैं, उतने वर्षोंतक वह वहाँ निवास करता है ॥२॥३॥ अन्नदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान न हुआ है और न होगा। इसमें न कभी पात्रपरीक्षाकी आवश्यकता होती है और न समयकी ॥ ४ ॥ हे साध्वी ! यदि ब्राह्मणों अथवा देवताओंको आसनदान दिया जाय तो दस हजार वर्षोंतक भगवान् विष्णुके लोकमें रहनेकी सुविधा प्राप्त हो जाती है ॥ ५ ॥ जो पुरुष ब्राह्मणको दूध देनेवाली गौ दान देता है, वह गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित रहता है ॥ ६ ॥ यह गोदान साधारण दिनोंकी अपेक्षा पर्वके समय चौगुना, तीर्थमें सौगुना और नारायणक्षेत्रमें कोटिगुना फल देनेवाला होता है ॥७॥ जो मानव भारतवर्षमें रहकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको गौ प्रदान करता है, वह दस हज़ार वर्षोंतक चन्द्रलोकमें रहनेका अधिकारी बन जाता है ॥८॥ गर्भवती गौ

च विप्राय यः करोति च भारते ॥ अन्नप्रमाणवर्षं च शिवलोके महीयते ॥ २ ॥ अन्नदानं महादानमन्येभ्योऽपि करोति यः ॥ अन्नदानप्रमाणं च शिवलोके महीयते ॥ ३ ॥ अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित् ॥ ४ ॥ देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चासनं यदि ॥ महीयते विष्णुलोके वर्षाणामयुतं सति ॥५॥ यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम् ॥ तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोके महीयते ॥ ६ ॥ चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम् ॥ दानं नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत् ॥ ७ ॥ गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम् ॥ वर्षाणामयुतं चैव चंद्रलोके महीयते ॥८॥ यश्चोभयमुखीदानं करोति ब्राह्मणाय च ॥ तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोके महीयते ॥९॥ यो ददाति ब्राह्मणाय श्वेतच्छत्रं मनोहरम् ॥ वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये ॥ १० ॥ विप्राय पीडितांगाय वस्त्रयुग्मं ददाति च ॥ महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं सति ॥ ११ ॥ यो ददाति ब्राह्मणाय शालग्रामं सवस्त्रकम् ॥ महीयते स वैकुण्ठे यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १२ ॥ यो ददाति ब्राह्मणाय दिव्यां शय्यां मनोहराम् ॥ महीयते चंद्रलोके यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १३ ॥ यो ददाति प्रदीपं च देवेभ्यो ब्राह्मणाय च ॥ यावन्मन्वंतरं सोऽपि वह्निलोके महीयते ॥ १४ ॥ करोति गजदानं च यदि विप्राय भारते ॥ यावदिंद्रो नरस्तावदिंद्रस्यार्धासने वसेत् ॥ १५ ॥ भारते योऽश्वदानं च करोति ब्राह्मणाय च ॥ मोदते वारुणे लोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १६ ॥ प्रकृष्टां शिबिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च ॥ मोदते वारुणे लोके

ब्राह्मणको देनेवाला पुरुष उसके रोमपर्यन्त वर्षों तक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ ९ ॥ ब्राह्मणको सुन्दर-स्वच्छ छत्र दान करनेवाला व्यक्ति दस हजार वर्षों तक वरुणके लोकमें आनन्द करता है ॥ १० ॥ हे साधो ! जो दुखी ब्राह्मणको दो वस्त्र प्रदान करता है, उसे दस हजार वर्ष वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ वस्त्रसहित शालग्रामको ब्राह्मणके लिए अर्पण करनेवाला पुण्यात्मा पुरुष सूर्य-चन्द्रके अस्तित्व कालतक वैकुण्ठमें आनन्द करता है ॥ १२ ॥ मनोहर दिव्य शय्या ब्राह्मणको देनेसे दाताको सूर्य-चंद्रके अस्तित्वकालतक चंद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ जो देवताओं अथवा ब्राह्मणोंको दीपदान देता है, वह मन्वन्तर पर्यन्त अग्निलोकमें वास करता है ॥ १४ ॥ भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको हाथी दान देता है, वह इन्द्रकी आयु पर्यन्त उनके आधे आसनपर विराजमान होता है ॥१५॥ ब्राह्मणको घोड़ा देनेवाला भारतवासी मनुष्य चौदह इन्द्रोंके भोगकालतक वरुणलोकमें आनन्द करता है ॥ १६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यही फल उत्तम शिबिका (पालकी) प्रदान करनेका भी है ॥ १७ ॥ ब्राह्मणको उत्तम बगीचा देनेवाला व्यक्ति मन्वन्तर कालतक वायुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मणको पंखा तथा सफेद चँवर अर्पण करता है, वह दस हजार वर्ष वायुलोकमें सम्मान पाता है ॥ १९ ॥ धन और रत्न दान करनेवाला दीर्घायु और विद्वान् होता है । दाता और प्रतिगृहीता दोनों ही वैकुण्ठलोकमें चले जाते हैं॥२०॥ जो भारतवर्षमें निरन्तर भगवान् श्रीहरिके नामका कीर्तन करता है, उस चिरञ्जीवी मनुष्यको देखते ही मृत्यु भाग जाती है ॥२१॥ भारतवर्षमें जो विद्वान् मनुष्य पूर्णिमाकी रातमें दोलोत्सव मनानेका प्रबन्ध करता है, वह जीवन्मुक्त होता है ॥ २२ ॥ इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वह भाग्यवान् सौ मन्वन्तरके लिए विष्णुके धामको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ उत्तराफाल्गुनीमें उत्सव मनानेपर इससे दुगुना फल मिलता है । ब्रह्माजीका कथन है कि वह व्यक्ति कल्पपर्यन्त जीवित रहता है ॥२४॥ जो भारतवर्षमें

यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १७ ॥ प्रकृष्टां वाटिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च ॥ महीयते वायुलोके यावन्मन्वन्तरं सति ॥ १८ ॥ यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम् ॥ महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ १९ ॥ धान्यं रत्नं यो ददाति चिरंजीवी भवेत्सुधीः ॥ दाता ग्रहीता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुण्ठगामिनौ ॥ २० ॥ सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः ॥ स च एव चिरंजीवी ततो मृत्युः पलायते ॥ २१ ॥ यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेत्सुधीः ॥ पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ २२ ॥ इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यंते विष्णुमन्दिरम् ॥ निश्चितं निवसेत्तत्र शत-मन्वंतरावधि ॥ २३ ॥ फलमुत्तरफाल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत् ॥ कल्पांतजीवी स भवेदित्याह कमलोद्भवः ॥ २४ ॥ तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते ॥ तिलप्रमाणवर्षं च मोदते शिवमन्दिरे ॥ २५ ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य चिरंजीवी भवेत्सुखी ॥ ताम्रपात्रस्य दानेन द्विगुणं च फलं लभेत् ॥ २६ ॥ सालंकृतां च भोग्यां च सवस्त्रां सुन्दरीं प्रियाम् ॥ यो ददाति ब्राह्मणाय भारते च पतिव्रताम् ॥ २७ ॥ महीयते चन्द्रलोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ तत्र स्वर्वेश्यया सार्धं मोदते च दिवानिशम् ॥ २८ ॥ ततो गंधर्वलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ दिवानिशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते ॥ २९ ॥ ततो जन्मसहस्रं च प्राप्नोति सुन्दरीं प्रियाम् ॥ सतीं सौभाग्ययुक्तां च कोमलां प्रियवादिनीम् ॥ ३० ॥ प्रददाति फलं चारु ब्राह्मणाय च यो नरः ॥ फलप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते ॥ ३१ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य लभते सुतमुत्तमम् ॥ सफलानां च वृक्षाणां सहस्रं च

ब्राह्मणको तिलदान देता है, वह तिलके दानोंकी संख्या जितने वर्षों तक शिवजीके धाममें सम्मान पाता है ॥२५॥ इसके बाद उत्तम योनिमें जन्म पा तथा चिरञ्जीवी होकर सुख भोगता है । ताँबेके पात्रमें तिल रखकर दान करनेसे दूना फल मिलता है ॥ २६ ॥ जो सुयोग्य एवं सदाचारसम्पन्न कन्याको वस्त्र और भूषणोंसे अलंकृत करके भार्या बनानेके लिए ब्राह्मणको अर्पण करता है, वह चौदह इन्द्रोंके भोगकालतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित रहता है । तदनंतर स्वर्गकी वेश्याओंके साथ आनंद करता है । उसका गंधर्वलोकमें स्थान पाना सुनिश्चित रहता है । उसके दिन-रात उर्वशीके साथ सुख भोगनेमें बीतते हैं॥२७-२९॥ तत्पश्चात् सहस्रों जन्मतक उसे सती, सौभाग्यवती, सुकुमारी एवं प्रिय भाषण करनेवाली सुंदर और कोमल स्त्री प्राप्त होती है ॥३०॥ जो मनुष्य ब्राह्मणको सुपक्व फल प्रदान करता है, वह फलसंख्यक वर्षों तक इन्द्रलोकमें सम्मान पाता है ॥३१॥ फिर उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह सुयोग्य पुत्र प्राप्त करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। फलवाले वृक्षोंके दानकी महिमा इससे हजारगुना अधिक बतायी गयी है ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणको केवल फलका दान देनेवाला पुरुष भी दीर्घकालतक स्वर्गमें निवास करके पुनः भारतवर्षमें जन्म पाता है ॥ ३३ ॥ भारतवर्षमें रहनेवाला जो पुरुष अनेक द्रव्योंसे सम्पन्न तथा भाँति-भाँतिके धान्योंसे भरा-पूरा विशाल भवन ब्राह्मणको दान देता है ॥ ३४ ॥ वह उसके फलस्वरूप सौ मन्वन्तरतक देवताओंके लोकमें वास पाता है। तत्पश्चात् उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह महान् धनवान् होता है ॥ ३५ ॥ हे साध्वी! हरी-भरी खेतीसे युक्त सुन्दर भूमि भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको अर्पण करनेवाला पुण्यात्मा भारतवासी पुरुष निश्चय ही सौ मन्वन्तर वैकुण्ठधाममें प्रतिष्ठित होता है। उसके बाद उत्तम वंशमें जन्म पाकर वह बड़ा जमींदार होता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सौ जन्मतक उसकी जमींदारी बनी रहती है और वह श्रीमान्, धनवान्, पुत्रवान् और राजा होता है ॥ ३८ ॥ जो मानव उत्तम गोशाला तथा गाँव ब्राह्मणको दान

प्रशंसितम् ॥ ३२ ॥ केवलं फलदानं वा ब्राह्मणाय ददाति च ॥ रुचिरं स्वर्गवासं च कृत्वा याति च भारते ॥ ३३ ॥ नानाद्रव्यसमायुक्तं नानासस्यसमन्वितम् ॥ ददाति यश्च विप्राय भारते विपुलं गृहम् ॥ ३४ ॥ सुरलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वंतरं शतम् ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य स महाधनवान्भवेत् ॥ ३५ ॥ यो नरः सस्यसंयुक्तां भूमिं च रुचिरां सति ॥ ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ ३६ ॥ महीयते च वैकुण्ठे मन्वन्तरशतं ध्रुवम् ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य महांश्च भूमिपो भवेत् ॥ ३७ ॥ तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम् ॥ श्रीमांश्च धनवांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः ॥ ३८ ॥ यो व्रजं च प्रकृष्टं च ग्रामं दद्याद्द्विजाय च ॥ लक्षमन्वंतरं चैव वैकुण्ठे स महीयते ॥ ३९ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य ग्रामलक्षसमन्वितम् ॥ न जहाति च तं पृथ्वी जन्मनां लक्षमेव च ॥ ४० ॥ सुप्रजं च प्रकृष्टं च पक्वसस्यसमन्वितम् ॥ नानापुष्करिणीवृक्षफलवल्लीसमन्वितम् ॥ ४१ ॥ नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि ॥ महीयते स कैलासे दशलक्षेंद्रकालकम् ॥ ४२ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥ नगराणां च नियुतं स लभेन्नात्र संशयः ॥ ४३ ॥ धरा तं न जहात्येव जन्मनामयुतं ध्रुवम् ॥ परमैश्वर्यनियुतो भवेदेव महीतले ॥ ४४ ॥ नगराणां च शतकं देशं यो हि द्विजातये ॥ सुप्रकृष्टं मध्यकृष्टं प्रजायुक्तं ददाति च ॥ ४५ ॥ वापीतडागसंयुक्तं नानावृक्षसमन्वितम् ॥

देता है, उसकी मन्वन्तर कालतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठा होती है ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उच्च कुलमें जन्म पाकर वह लाख गाँव पाता है और लाखों जन्मतक धरती उसका साथ नहीं छोड़ती ॥ ४० ॥ जहाँकी उत्तम प्रजाएँ हों, जहाँकी भूमि पकी हुई खेतियोंसे लहलहा रही हो, जो अनेक प्रकारकी पुष्करिणियोंसे युक्त हो तथा फलवाले वृक्ष और लताएँ जिसकी शोभा बढ़ा रही हों, ऐसा श्रेष्ठ नगर भारतवर्षमें रहनेवाला जो पुरुष ब्राह्मणको दान देता है, वह बहुत लम्बे समय पर्यन्त कैलासमें सुप्रतिष्ठित होता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ फिर भारतवर्षमें उत्तम जन्म पाकर वह राजेश्वर होता है। उसे लाखों नगरोंका प्रभुत्व प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है ॥ ४३ ॥ निश्चितरूपसे सम्पूर्ण ऐश्वर्य भूमण्डलपर उसके पास विद्यमान रहते हैं ॥ ४४ ॥ अत्यन्त उत्तम अथवा मध्यम श्रेणीका भी जो नगर प्रजाजनोंसे सम्पन्न हो, वापी-तड़ाग तथा भाँति-भाँतिके वृक्ष जिसकी शोभा बढ़ाते हों, ऐसे सौ नगर ब्राह्मणको दान देनेवाला पुण्यात्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैकुण्ठलोकमें सुप्रतिष्ठित होता है ॥४५॥४६॥ जैसे इन्द्र सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर स्वर्गलोकमें शोभा पाते हैं, वैसे ही जन्मान्तरमें भूमण्डलपर उस पुरुषकी शोभा होती है ॥४७॥ कोटि जन्मोंतक पृथ्वी उसका साथ नहीं छोड़ती और वह कल्पान्तजीवी तथा महान् सम्राट् होता है ॥ ४८ ॥ अपना सम्पूर्ण अधिकार ब्राह्मणको दे देनेवाला पुरुष चौगुने फलका भागी होता है। इसमें संशय नहीं है ॥ ४९ ॥ जो पुरुष तपस्वी ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका दान देता है, उसे निश्चितरूपसे सौगुने फल प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥ जम्बूद्वीपका दान करनेवाले, सम्पूर्ण तीर्थोंमें निवास करनेवाले, समस्त तपस्याओंमें संलग्न, सम्पूर्ण श्रेष्ठ स्थानोंके निवासी, सर्वस्व दान करनेवाले तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंके पारङ्गत जो लोग भगवती जगदम्बाके उपासक पुरुष हैं, उन्हें पुनः जगत्में जन्म नहीं धारण करना पड़ता ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उनके सामने असंख्य ब्रह्माओंका परिवर्तन हो जाता है, किन्तु वे भगवतीके मणिद्वीप नामक स्थानमें सुप्रतिष्ठित

महीयते स वैकुण्ठे कोटिमन्वन्तरावधि ॥ ४६ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य जंबुद्वीपपतिर्भवेत् ॥ परमैश्वर्यसंयुक्तो यथा शक्रस्तथा भुवि ॥ ४७ ॥ मही तं न जहात्येव जन्मनां कोटिमेव च ॥ कल्पांतजीवी स भवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥ ४८ ॥ स्वाधिकारं समग्रं च यो ददाति द्विजातये ॥ चतुर्गुणं फलं चांते भवेत्तस्य न संशयः ॥ ४९ ॥ जंबुद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणाय तपस्विने ॥ फलं शतगुणं चांते भवेत्तस्य न संशयः ॥ ५० ॥ जंबुद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानि सेवितुः ॥ सर्वेषां तपसां कर्तुः सर्वेषां वासकारिणः ॥ ५१ ॥ सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च ॥ अस्त्येव पुनरावृत्तिर्न भक्तस्य महेशितुः ॥ ५२ ॥ असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यंति भुवनेशितुः ॥ निवसन्ति मणिद्वीपे श्रीदेव्याः परमे पदे ॥ ५३ ॥ देवीमन्त्रोपासकाश्च विहाय मानवीं तनुम् ॥ विभूतिं दिव्यरूपं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥ ५४ ॥ लब्ध्वा देव्याश्च सारूप्यं देवीसेवां च कुर्वते ॥ पश्यंति ते मणिद्वीपे सखंडं लोकसंक्षयम् ॥ ५५ ॥ नश्यंति देवाः सिद्धाश्च विश्वानि निखिलानि च ॥ देवीभक्ता न नश्यंति जन्ममृत्युजराहराः ॥ ५६ ॥ कार्त्तिके तुलसीदानं करोति हरये च यः ॥ युगत्रयप्रमाणं च मोदते हरिमन्दिरे ॥ ५७ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥ जितेन्द्रियाणां प्रवरः स भवेद्भारते भुवि ॥ ५८ ॥ मध्ये यः स्नाति गङ्गायामरुणोदयकालतः ॥ युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे ॥ ५९ ॥ पुनः सुयोनिं

रहते हैं ॥५३॥ भगवतीके मन्त्रकी उपासना करनेवाले पुरुष अपना मानव-शरीर त्याग करनेके पश्चात् जन्म, मृत्यु एवं जरारहित वैभवसम्पन्न दिव्य रूप धारण करके भगवती जगदंबाकी सेवामें संलग्न हो जाते हैं। उन्हें सारूप्य मुक्ति प्राप्त हो जाती है और वे मणिद्वीपमें निवास करते हैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ देवता, सिद्ध तथा अखिल विश्व—ये सबके सब समयानुसार नष्ट हो जाते हैं, किन्तु देवीभक्तोंका कभी नाश नहीं होता। जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था उनके निकट नहीं आ सकती ॥५६॥ जो पुरुष कार्तिक मासमें श्रीहरिको तुलसी अर्पण करता है, वह तीन युगोंतक भगवानके भवनमें विराजमान रहता है ॥ ५७ ॥ फिर उत्तम कुलमें उसका जन्म होता है और निश्चितरूपसे भगवानके प्रति उसके मनमें भक्ति उत्पन्न होती है। भारतमें रहनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंमें वह प्रमुख होकर भूमण्डलपर सुप्रतिष्ठित होता है ॥ ५८ ॥ जो पुरुष अरुणोदयके समय मध्य गङ्गामें स्नान करता है, उसे दीर्घकालतक भगवान श्रीहरिके मन्दिरमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आनन्द लाभ करनेका सुअवसर मिलता है ॥ ५९ ॥ फिर वह उत्तम योनिमें जाकर भगवान श्रीहरिके मन्त्रकी उपासना करता हुआ शरीर धारण किये रहता है । पुनः यथासमय मानव-शरीरको त्यागकर वह 'भगवद्धाम'में चला जाता है ॥६०॥ वहाँसे पुनः पृथ्वीतलपर आनेकी स्थिति उसके सामने नहीं आती । भगवानका सारूप्य प्राप्त करके वह उन्हींकी सेवामें सदा लगा रहता है ॥ ६१ ॥ गंगामें सर्वदा स्नान करनेवाला पुरुष सूर्यकी भाँति भूमण्डलपर पवित्र माना जाता है । उसे पद-पदपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है, यह निश्चित है ॥ ६२ ॥ उसकी चरण-रजसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है । वह वैकुण्ठलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है ॥ ६३ ॥ उस तेजस्वी पुरुषको जीवन्मुक्त कहना चाहिये । सभी तपस्वी उसका आदर करते हैं ॥६४॥ वह स्वधर्मपरायण, शुद्ध, विद्वान् और जितेन्द्रिय होता है । मीन और कर्क राशिपर रहते समय सूर्य बहुत तपते हैं ॥ ६५ ॥ जो पुरुष उस समय सुवासित जलका दान करता

संप्राप्य विष्णुमन्त्रं लभेद्ध्रुवम् ॥ त्यक्त्वा च मानुषं देहं पुनर्याति हरेः पदम् ॥६०॥ नास्ति तत्पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले ॥ करोति हरिदास्यं च तथा सारूप्यमेव च ॥ ६१ ॥ नित्यस्नायी च गंगायां स पूतः सूर्यवद्भुवि ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ६२ ॥ तस्यैव पादरजसा सद्यःपूता वसुंधरा ॥ मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६३॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥ जीवन्मुक्तोऽतितेजस्वी तपस्विप्रवरो भवेत् ॥ ६४ ॥ स्वधर्मनिरतः शुद्धो विद्वांश्च स जितेंद्रियः ॥ मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढं तपति भास्करः ॥ ६५ ॥ भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम् ॥ स मोदते च कैलासे यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ६६ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत् ॥ शिवभक्तश्च तेजस्वी वेद-वेदांगपारगः ॥ ६७ ॥ वैशाखे सक्तुदानं च यः करोति द्विजातये ॥ सक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदते शिवमन्दिरे ॥ ६८ ॥ करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ॥ शतजन्मकृतं पापं मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६९ ॥ वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ पुनः सुयोनिं संप्रात्य कृष्णे भक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥ ७० ॥ इहैव भारते वर्षे शिवरात्रिं करोति यः ॥ मोदते शिवलोके स सप्तमन्वंतरावधि ॥७१॥ शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति यः ॥ पत्रमानयुगं तत्र मोदते शिवमन्दिरे ॥ ७२ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥ विद्यावान्पुत्रवाञ्छ्रीमान्प्रजावा-

है, वह कैलासमें आनन्द भोगता है ॥ ६६ ॥ फिर उत्तम योनिमें जन्म पाकर रूपवान्, सुखी, शिवभक्त, तेजस्वी तथा वेद-वेदाङ्गका पारगामी विद्वान् होता है ॥ ६७ ॥ वैशाख मासमें ब्राह्मणको सत्तू दान देनेवाला पुरुष सक्तुकणसंख्यक वर्षतक शिवमन्दिरमें प्रतिष्ठित होता है ॥ ६८ ॥ भारतवर्षमें रहनेवाला जो प्राणी श्रीकृष्णजन्माष्टमीका व्रत करता है, वह सौ जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है । इसमें संशय नहीं है ॥ ६९ ॥ वह दीर्घकालतक वैकुण्ठलोकमें आनन्द भोगता है । फिर उत्तम योनिमें जन्म लेनेपर उसमें भगवान् श्रीकृष्णके प्रति भक्ति उत्पन्न हो जाती है—यह निश्चित है ॥७०॥ इस भारतवर्षमें ही शिवरात्रिका व्रत करनेवाला पुरुष सात मन्वन्तरतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ ७१ ॥ जो शिवरात्रिके दिन भगवान शंकरको बिल्वपत्र चढ़ाता है, वह पत्रसंख्यक युगोंतक कैलासमें सुखपूर्वक निवास करता है ॥७२॥ पुनः श्रेष्ठ योनिमें जन्म पाकर वह भगवान् शिवका परम भक्त होता है । विद्या, पुत्र, सम्पत्ति, प्रजा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और भूमि—ये सभी उसके लिए सुलभ रहते हैं ॥ ७३ ॥ जो व्रती पुरुष चैत्र अथवा माघमें शंकरकी पूजा करता है तथा बेंत लेकर उनके सम्मुख रात-दिन भक्तिपूर्वक नृत्य करनेमें तत्पर रहता है, वह चाहे एक मास, आधा मास, दस दिन, सात दिन, दो दिन या एक ही दिन ऐसा क्यों न करे, उसे युगोंतकके लिए भगवान शिवके लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है ॥७४॥७५॥ जो भारतीय रामनवमीका व्रत करता है, वह सात मन्वन्तर पर्यन्त वैकुण्ठधाममें आनन्द करता है ॥७६॥ उसके बाद उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह रामकी भक्ति पाता है। उस समय वह जितेन्द्रियश्रेष्ठ और धनवान् होता है ॥७७॥ हे साध्वी ! जो पुरुष महिष, छाग, मेष आदिकी बलि-नैवेद्य तथा धूप-दीपसे भगवतीकी शरत्कालीन महापूजा करता है, साथ ही नृत्य, गीत तथा वाद्य आदिके द्वारा नाना प्रकारके उत्सव मनाता है, वह पुरुष भगवान शिवके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। फिर श्रेष्ठ योनिमें जन्म पाकर वह राजाधिराज होता है।

-भूमिमान्भवेत् ॥ ७३ ॥ चैत्रमासेऽथवा माघे शंकरं योऽर्चयेद्व्रती ॥ करोति नर्तनं भक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम् ॥ ७४ ॥ मासं वाऽप्यर्धमासं वा दश सप्त दिनानि च ॥ दिनमानयुगं सोऽपि शिवलोके महीयते ॥ ७५ ॥ श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते पुमान् ॥ सप्तमन्वंतरं यावन्मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ ७६ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य रामभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥ जितेन्द्रियाणां प्रवरो महांश्च धनवान्भवेत् ॥ ७७ ॥ शारदीयां महापूजां प्रकृतेर्यः करोति च ॥ महिषैश्छागलैर्मेषैः खड्गैर्भेकासिभिः सति ॥ ७८ ॥ नैवेद्यैरुपहारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा ॥ नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमङ्गलम् ॥ ७९ ॥ शिवलोके वसेत्सोऽपि सप्तमन्वन्तरावधि ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य नरो बुद्धिं च निर्मलाम् ॥ ८० ॥ अतुलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रविवर्धनीम् ॥ महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः ॥ ८१ ॥ राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः ॥ ततः शुक्लाष्टमीं प्राप्य महालक्ष्मीं च योऽर्चयेत् ॥ ८२ ॥ नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ दत्त्वा तस्यै प्रकृष्टानि चोपचाराणि षोडश ॥ ८३ ॥ गोलोके च वसेत्सोऽपि यावांदद्राश्चतुर्दश ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥ ८४ ॥ कार्त्तिकीपूर्णिमायां च कृत्वा तु रासमंडलम् ॥ गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा ॥ ८५ ॥ शिलायां प्रतिमायां च श्रीकृष्णं राधया सह ॥ भारते पूजयेद्भक्त्या चोपहाराणि षोडश ॥ ८६ ॥ गोलोके वसते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ भारतं पुरागत्य कृष्णे भक्तिं लभेद्दृढाम् ॥ ८७ ॥ क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्वा मन्त्रं हरेरहो ॥ देहं त्यक्त्वा च

निर्मल बुद्धि, अतुल सम्पत्ति, पुत्र-पौत्रोंकी अभिवृद्धि, महान् प्रभाव तथा हाथी-घोड़े आदि वाहन—ये सभी उसे प्राप्त हो जाते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। जो पुरुष पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें रहकर शुक्लाष्टमीके अवसरपर भक्तिपूर्वक निरन्तर पक्षभर महालक्ष्मीकी उपासना करता और सोलह प्रकारके उत्तम उपचारोंसे भली-भाँति पूजामें संलग्न रहता है, वह पुरुष गोलोकमें रहनेका अधिकारी होता है। पुनः सुयोनिमें जन्म पाकर वह राजराजेश्वर होता है ॥ ७८-८४ ॥ कार्तिककी पूर्णिमाको सैकड़ों गोपों एवं गोपियोंको साथ लेकर रासमण्डल-सम्बन्धी उत्सव मनानेकी बड़ी महिमा है ॥ ८५ ॥ उस दिन पाषाणपर या प्रतिमामें सोलह प्रकारके उपचारों द्वारा भक्तिपूर्वक श्रीराधा-कृष्णकी पूजा करे ॥ ८६ ॥ इस पुण्यमय कार्यका सम्पन्न करनेवाला पुरुष ब्रह्माकी आयुतक गोलोकमें निवास करता है और फिर जन्म पाकर भगवान श्रीकृष्णका परम भक्त बन जाता है ॥ ८७ ॥ उसकी भक्ति क्रमशः सुदृढ़ होती जाती है। वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सदा भगवान श्रीहरिका मन्त्र जपता है और देह त्यागनेके बाद फिर गोलोक चला जाता है ॥८८॥ वहाँ भगवान श्रीकृष्णके समान रूप प्राप्त करके वह उनका प्रमुख पार्षद बन जाता है । जरा और मृत्युको जीतनेवाले उस पुरुषका पुनः वहाँसे पतन नहीं होता ॥८९॥ जो पुरुष शुक्ल अथवा कृष्णपक्षकी एकादशीका व्रत करता है, उसे ब्रह्माकी आयुतक वैकुण्ठमें रहनेकी सुविधा प्राप्त होती है ॥९०॥ फिर भारतवर्षमें आनेपर भगवान श्रीहरिके प्रति उसकी भक्ति सुदृढ़ हो जाती है ॥९१॥ शरीर त्यागनेके बाद पुनः गोलोकमें जाकर वह भगवान श्रीकृष्णकी सारूप्य प्राप्त करके उनका पार्षद बन जाता है ॥९२॥ पुनः उसका संसारमें आना नहीं होता और वह जरा-मृत्युसे छूट जाता है । जो पुरुष भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको इन्द्रकी पूजा करता है ॥९३॥ वह इन्द्रलोकमें सम्मानित होता है । जो प्राणी भारतवर्षमें रहकर रविवार, संक्रान्ति अथवा शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको भगवान सूर्यकी पूजा करके

गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः ॥ ८८ ॥ ततः कृष्णस्य सारूप्यं पार्षदप्रवरो भवेत् ॥ पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो भवेत् ॥ ८९ ॥ ॥ शुक्लां वाऽप्यथवा कृष्णां करोत्येकादशीं च यः ॥ वैकुंठे मोदते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ९० ॥ भारतं पुनरागत्य कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥ क्रमेण भक्तिं सुदृढां करोत्येकां हरेरहो ॥ ९१ ॥ देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः ॥ ततः कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदो भवेत् ॥ ९२ ॥ पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो भवेत् ॥ भाद्रे च शुक्लद्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः ॥ ९३ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोके महीयते ॥ रविवारे च संक्रांत्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षके ॥ ९४ ॥ संपूज्यार्कं हविष्यान्नं यः करोति च भारते ॥ महीयते सोऽर्कलोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ९५ ॥ भारतं पुनरागत्य चारोगी श्रीयुतो भवेत ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत् ॥ ९६ ॥ महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि ॥ पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः ॥ ९७ ॥ चिरंजीवी भवेत्सोऽपि ज्ञानवान्संपदा युतः ॥ माघस्य शुक्लपंचम्यां पूजयेद्यः सरस्वतीम् ॥ ९८ ॥ संयुतो भक्तितो दत्त्वा चोपचाराणि षोडश ॥ महीयते मणिद्वीपे यावद्ब्रह्म दिवानिशम् ॥ ९९ ॥ संप्राप्य च पुनर्जन्म स भवेत्कविपंडितः ॥ गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च ॥ १०० ॥ नित्यं जीवनपर्यन्तं भक्तियुक्तश्च भारते ॥ गवां लोमप्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णुमन्दिरे ॥ १०१ ॥ मोदते हरिणा सार्धं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥ तदन्ते पुनरागत्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥ १०२ ॥ श्रीमांश्च पुत्रवान्विद्वाञ्ज्ञानवान्सर्वतः सुखी ॥ भोज-

हविष्यान्न भोजन करता है, वह चौदह इन्द्रोंके भोगकाल तक सूर्यलोकमें विराजमान रहता ह ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ फिर भारतवर्षमें जन्म पाकर वह आरोग्यवान् और धनाढ्य पुरुष होता है । ज्येष्ठ महीनेकी कृष्ण चतुर्दशीको जो व्यक्ति भगवती सावित्रीकी पूजा करता है, वह ब्रह्माके लोकमें प्रतिष्ठित होता है । फिर वह पृथ्वीपर आकर श्रीमान् एवं अतुल पराक्रमी पुरुष होता है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ साथ ही वह चिरञ्जीवी, ज्ञानी और वैभवसम्पन्न होता है । जो मानव माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको संयमपूर्वक उत्तम भक्तिके साथ षोडशोपचारसे भगवती सरस्वतीकी अर्चना करता है, वह मणिद्वीपमें स्थान पाता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ दूसरे जन्ममें वह कवि तथा पंडित होता है । जो भारतवासी व्यक्ति जीवनभर भक्तिके साथ नित्यप्रति ब्राह्मणको गौ और सुवर्ण आदि प्रदान करता है, वह गौके रोमपरिमाण वर्षों तक वैकुण्ठमें सुख भोगता है ॥ १०० ॥ १०१ ॥ वह वहाँ भगवानके साथ विविध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रीडायें करता हुआ आनन्द लूटता है और उसके बाद इस लोकमें आकर राजेश्वर होता है ॥ १०२ ॥ भारतवर्षमें जो प्राणी ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता और जन्मान्तरमें सुखी होता है ॥ १०३ ॥ १ ४ ॥ जो भारतवासी व्यक्ति भगवान श्रीहरिके नामका स्वयं कीर्तन करता अथवा दूसरेको कीर्तन करनेके लिये उत्साहित करता है, वह एक युगतक वैकुण्ठमें विराजमान होकर जन्मान्तरमें सुखी और धनी होता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ यदि नारायणक्षेत्रमें नामाच्चारण किया जाय तो करोड़ों-गुना अधिक फल मिलता है। जो पुरुष नारायणक्षेत्रमें भगवान श्रीहरिके नामका एक करोड़ जप करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जाता है—यह सर्वथा सत्य है। वह पुनः जन्म न पाकर विष्णुलोकमें विराजमान होता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ उसे भगवानकी सारूप्यता प्राप्त हो जाती है। वहाँसे वह फिर गिर नहीं सकता। उसके हृदयमें भक्ति सुदृढ़ हो

येयोऽपि मिष्टान्नं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते ॥ १०३ ॥ विप्रलोमप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ ततः पुनरिहागत्य सुखी च धनवान्भवेत् ॥ १०४ ॥ विद्वान्सुचिरजीवी च श्रीमानतुलविक्रमः ॥ यो वक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते ॥ १०५ ॥ युगं नामप्रमाणं च विष्णुलोके महीयते ॥ ततः पुनरिहागत्य स सुखी धनवान्भवेत् ॥ १०६ ॥ यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत् ॥ नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत् ॥ १०७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥ न लभेत्स पुनर्जन्म वैकुंठे स महीयते ॥ १०८ ॥ लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य पतनं भवेत् ॥ विष्णु भक्तिं लभेत्सोऽपि विष्णुसारूप्यमाप्नुयात् ॥ १०९ ॥ शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिंगं च पार्थिवम् ॥ यावज्जीवनपर्यंतं स याति शिवमन्दिरम् ॥ ११० ॥ मृदो रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते ॥ ततः पुनरिहागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥ १११ ॥ शिलां च पूजयेन्नित्यं शिलातोयं पिबेच्च यः ॥ महीयते च वैकुंठे यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥११२॥ ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं च दुर्लभाम् ॥ महीयते विष्णुलोके न तस्य पतनं भवेत् ॥ ११३ ॥ तपांसि चैव सर्वाणि व्रतानि निखिलानि च ॥ कृत्वा तिष्ठति वैकुण्ठे यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ११४ ॥ ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेंद्रो भारते भवेत् ॥ ततो मुक्तो भवेत्पश्चात्पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ११५ ॥ यः स्नात्वा सर्वतीर्थेषु भुवः कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥ स तु निर्वाणतां याति न तु

जाती है। फिर वह भगवन्मय बन जाता है ॥ १०९ ॥ जो पुरुष प्रतिदिन पार्थिव मूर्ति बनाकर शिवलिङ्गकी अर्चना करता हुआ जीवनभर इस नियमका पालन करता रहता है, वह भगवान शिवके धाममें जाता है और लम्बे समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित रहता है। तत्पश्चात् भारतवर्षमें आकर राजेन्द्रपदको सुशोभित करता है ॥ ११० ॥ १११ ॥ निरन्तर शालग्राम-की पूजा करके उनका चरणोदक पान करनेवाला पुण्यात्मा पुरुष सौ ब्रह्माका आयु पर्यन्त वैकुण्ठमें विराजमान रहता है ॥११२॥ उसे दुर्लभ भक्ति सुलभ हो जाती है और संसारमें उसका पुनः आना नहीं होता ॥११३॥ जिसके द्वारा सम्पूर्ण तप और व्रतका पालन होता है, वह पुरुष इन सत्कर्मोंके फलस्वरूप चौदह इन्द्रोंके भोगकालतक वैकुण्ठमें रहनेका अधिकार पाता है। इसके बाद पुनः जन्म लेकर वह भारतवर्षमें सम्राट् होता है। तदनन्तर वह मुक्त हो जाता है, जिससे उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ जो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, उसे निर्वाणपद मिल जाता है। पुनः संसारमें उसकी उत्पत्ति नहीं होती ॥११६॥ भारत जैसे पुण्यक्षेत्रमें जो अश्वमेध यज्ञ करता है, वह उस अश्वके लोमसंख्यक वर्षों तक इन्द्रके आधे आसनपर विराजमान रहता है ॥११७॥ राजसूययज्ञ करनेसे मनुष्यको इससे चौगुना फल मिलता है। भगवतीका यज्ञ सम्पूर्ण यज्ञोंसे श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ११८ ॥ हे वरानने ! विष्णु और ब्रह्माने पूर्वकालमें देवीकी आराधना की थी। त्रिपुरासुरका वध करनेके लिए महाभाग शंकरने भी देवीकी आराधना की थी ॥११९॥ हे सुन्दरा ! सम्पूर्ण यज्ञोंमें भगवती भुवनेश्वरीका यज्ञ श्रेष्ठ है। त्रिलोकीमें इसके समान कोई भी यज्ञ नहीं है ॥१२०॥ हे पतिव्रते ! पूर्व समयकी बात है, दक्ष प्रजापति और शंकरमें कलह होगया। उस अवसरपर दक्ष प्रजापतिने भगवती जगदम्बाका यज्ञ किया था। ब्राह्मणोंने क्रोधमें आकर नन्दीको और नन्दीने विप्रोंको शाप दे दिया। एतदर्थ भगवान् शंकरने दक्षके यज्ञका विध्वंस कर डाला ॥१२१॥१२२॥ पुनः

जन्म भवेद्भुवि ॥११६॥ पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च ॥ अश्वलोममिताब्दं च शक्रस्यार्धासनं भजेत् ॥ ११७ ॥ चतुर्गुणं राजसूय-
फलमाप्नोति मानवः ॥ सर्वेभ्योऽपि मखेभ्यो हि परो देवीमखः स्मृतः ॥११८॥ विष्णुना च कृतः पूर्वं ब्रह्मणा च वरानने ॥ शंकरेण महेशेन त्रिपुरा-
सुरनाशने ॥ ११९ ॥ शक्तियज्ञः प्रधानश्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि ॥ नानेन सदृशो यज्ञस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १२० ॥ संक्षेपेण कृतः पूर्वं महान्सं-
भारसंयुतः ॥ बभूव कलहो यत्र दक्षशंकरयोः सति ॥ १२१ ॥ शेपुश्च नन्दिनं विप्रा नंदी विप्रांश्च कोपतः ॥ यद्धेतोर्दक्षयज्ञं च बभंज चंद्रशेखरः
॥ १२२ ॥ चकार देवीयज्ञं स पुरा दक्षः प्रजापतिः ॥ धर्मश्च कश्यपश्चैव शेषश्चापि सकर्दमः ॥ १२३ ॥ स्वायंभुवो मनुश्चैव तत्पुत्रश्च प्रिय-
व्रतः ॥ शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा ॥ १२४ ॥ राजसूयसहस्राणां फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ देवीयज्ञात्परो यज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः
॥ १२५ ॥ वर्षाणां शतजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥ ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्यो भवेदिह ॥ १२६ ॥ देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां
च नारदः ॥ शास्त्राणां च यथा वेदा वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥ १२७ ॥ तीर्थानां च यथा गंगा पवित्राणां शिवो यथा ॥ एकादशी व्रतानां च
पुष्पाणां तुलसी यथा ॥ १२८ ॥ नक्षत्राणां यथा चंद्रः पक्षिणां गरुडो यथा ॥ यथा स्त्रीणां च प्रकृती राधा वाणी वसुन्धरा ॥ १२९ ॥ शीघ्राणां

दक्ष प्रजापति देवीका यज्ञ करनेमें संलग्न हो गये। क्योंकि धर्म, कश्यप, शेषनाग, कर्दम मुनि, स्वायम्भुव मनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिव, सनत्कुमार, कपिल तथा ध्रुव भगवती भुवनेश्वरीका यज्ञ कर चुके हैं ॥१२३॥१२४॥ देवीका यज्ञ करनेवाला पुरुष हजारों राजसूय यज्ञोंका फल निश्चित रूपसे पा जाता है। वेदोंमें भी देवीयज्ञसे बढ़कर फलप्रद कोई यज्ञ नहीं है, ऐसा कहा गया है ॥१२५॥ देवीभक्त सौ वर्षोंतक जीवन धारण करके अन्तमें जीवन्मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। ज्ञान तथा तेजमें वह साक्षात् विष्णुभगवान्के तुल्य हो जाता है ॥ १२६ ॥ हे भामिनी ! जिस प्रकार देवताओंमें विष्णु, वैष्णव पुरुषोंमें नारद, शास्त्रोंमें वेद, वर्णोंमें ब्राह्मण, तीर्थोंमें गङ्गा, पुण्यात्मा पुरुषोंमें शिव, व्रतोंमें एकादशी, पुष्पोंमें तुलसी, ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, पक्षियोंमें गरुड़, स्त्रियोंमें भगवती मूलप्रकृति राधा, सरस्वती, वसुन्धरा, चंचल स्वभावशाली-इन्द्रियोंमें मन, प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, प्रजाजनोंमें राजा, वनमें वृन्दावन,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्षोंमें भारतवर्ष, श्रीमानोंमें लक्ष्मी, विद्वानोंमें सरस्वती, पतिव्रताओंमें भगवती दुर्गा और सौभाग्यवती श्रीकृष्ण-पत्नियोंमें श्रीराधा सर्वोपरि मानी जाती हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण यज्ञोंमें 'देवीयज्ञ' श्रेष्ठ माना जाता है ॥ १२९-१३२ ॥ सौ अश्वमेध यज्ञोंसे-इन्द्रपद प्राप्त हो जाता है और हजार अश्वमेध करके राजा पृथुने विष्णुपद पाया था ॥१३३॥ सम्पूर्ण तीर्थों का स्नान अखिल यज्ञोंकी दीक्षा तथा समस्त व्रतों, तपस्याओं और चारों वेदोंके पाठ तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका फल अन्तमें यही होता है कि भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करके पुरुष मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ पुराणों, वेदों और इतिहासोंमें सर्वत्र भगवती जगदम्बाके चरणकमलोंकी उपासनाको ही सारभूत माना गया है ॥ १३६ ॥ वीके स्वरूपका वर्णन, उनका ध्यान, उनके नाम और गुणोंका कीर्तन, स्तोत्रोंका पाठ, नमस्कार, जप, उनका चरणोदक और नैवेद्य ग्रहण करना—यह नित्यका परम कर्तव्य है। हे साध्वी ! इसे सभी चाहते हैं

चेंद्रियाणां चंचलानां मनो यथा ॥ प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजानां च प्रजापतिः ॥ १३० ॥ वृन्दावनं वनानां च वर्षाणां भारतं यथा ॥ श्रीमतां च यथा श्रीश्च विदुषां च सरस्वती ॥ १३१ ॥ प्रतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यानां च राधिका ॥ देवीयज्ञस्तथा वत्से सर्वयज्ञेषु भामिनि ॥ १३२ ॥ अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं च लभेद्ध्रुवम् ॥ सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप्तः पृथुरेव च ॥ १३३ ॥ स्नानं च सर्वतीर्थानां सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् ॥ सर्वेषां च व्रतानां च तपसां फलमेव च ॥ १३४ ॥ पाठे चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ॥ फलभूतमिदं सर्वं मुक्तिदं शक्तिसेवनम् ॥ १३५ ॥ पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः ॥ निरूपितं सारभूतं देवीपादाम्बुजार्चनम् ॥ १३६ ॥ तद्वर्णनं च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्तनम् ॥ तत्स्तोत्रस्मरणं चैव वंदनं जपमेव च ॥ १३७ ॥ तत्पादोदकनैवेद्यं भक्षणं नित्यमेव च ॥ सर्वसम्मतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति ॥ १३८ ॥ भज नित्यं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतिं पराम् ॥ गृहाण स्वामिनं वत्से सुखं वस च मन्दिरे ॥ १३९ ॥ अयं ते कथितः कर्मविपाको मङ्गलो नृणाम् ॥ सर्वेप्सितः सर्वमतस्तत्त्वज्ञानप्रदः परः ॥ १४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शक्तेरुत्कीर्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्त्रतः ॥ साश्रुनेत्रा सपुलका यमं पुनरुवाच सा ॥ १ ॥ सावित्र्युवाच ॥ शक्तेरुत्कीर्तनं धर्म सकलोद्धारकारणम् ॥ श्रोतॄणां चैव वक्तॄणां जन्ममृत्युजराहरम् ॥ २ ॥ दानवानां च सिद्धानां तपसां च परं पदम् ॥ योगानां

और सर्वसम्मतिसे यही सिद्ध भी है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ हे वत्से ! अब तुम मूलप्रकृति निर्गुण परब्रह्मकी निरन्तर उपासना करो। मैं तुम्हारे पतिदेवको लौटा देता हूँ। इन्हें ले जाओ और सुखपूर्वक अपने भवनमें निवास करो ॥ १३९ ॥ मनुष्योंका यह मङ्गलमय कर्मविपाक मैंने तुमको सुना दिया। यह प्रसङ्ग सर्वेप्सित, सर्वसम्मत तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाला है ॥ १४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

(सावित्रीका यमराजको प्रणाम करना) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! धर्मराजके मुखसे उपर्युक्त वर्णन सुनकर सावित्रीकी आँखोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उसका शरीर पुलकायमान हो गया। उसने पुनः धर्मराजसे कहा ॥ १ ॥ सावित्री बोली—हे धर्मराज! शक्तिस्वरूपा मूलप्रकृतिका गुणगान करनेसे सबका उद्धार हो जाता है। भगवतीका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नामसंकीर्तन वक्ता तथा श्रोता दोनोंका जन्म, मरण और बुढ़ापा दूर करके मोक्ष प्रदान करता है ॥२॥ हे प्रभो ! यह देवीका कीर्तन और सेवन दानवों, सिद्धों और तपस्वियोंका परमपद है । यही योगियोंका योग और वैदिकोंका वेद है ॥ ३ ॥ मुक्तिपद, अमरता और सब प्रकारकी सिद्धियाँ श्रीशक्तिके उपासकोंकी तुलनामें उसकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हो सकतीं ॥ ४ ॥ हे धर्मराज ! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो ! मैं किस विधिसे उन भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करूँ, यह बताइए । हे भगवन् ! मैं आपके द्वारा मनुष्योंके मनोहर शुभकर्मका फल सुन चुकी । अब आप मुझे अशुभकर्म-विपाककी व्याख्या सुनानेकी कृपा करें । हे ब्रह्मन् ! सती सावित्री इस प्रकार कहकर फिर भक्तिभावसे अत्यन्त नम्र हो तथा वेदोक्त स्तुतिका पाठ करके धर्मराजकी स्तुति करने लगी । सावित्रीने कहा—प्राचीन कालकी बात है, महाभाग सूर्यने पुष्करमें तपस्याके द्वारा धर्मकी उपासना की ॥ ५–७ ॥ तब धर्मने जिन्हें पुत्ररूपसे अपनेको प्रदान किया, उन भगवान धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ । जो सम्पूर्ण प्राणियोंमें समभाव रखते हैं, जो सबके साक्षी हैं, अतः जिनका नाम शमन है, उन भगवान धर्मराजको

चैव वेदानां कीर्तनं सेवनं विभो ॥ ३ ॥ मुक्तित्वममरत्वं च सर्वसिद्धित्वमेव च ॥ श्रीशक्तिसेवकस्यैव कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ४ ॥ भजामि केन विधिना वद वेदविदां वर ॥ शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नृणां मनोहरम् ॥ ५ ॥ कर्माशुभविपाकं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ इत्युक्त्वा च सती ब्रह्मन्भक्तिनम्रात्मकन्धरा ॥ ६ ॥ तुष्टाव धर्मराजं च वेदोक्तेन स्तवेन च ॥ सावित्र्युवाच ॥ तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा ॥ ७ ॥ धर्मं सूर्यः सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम् ॥ समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः ॥ ८ ॥ अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम् ॥ येनांतश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम् ॥ ९ ॥ कामानुरूपं कालेन तं कृतांतं नमाम्यहम् ॥ बिभर्ति दण्डं दण्डाय पापिनां शुद्धिहेतवे ॥ १० ॥ नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वजीविनाम् ॥ विश्वं च कलयत्येव यः सर्वेषु च संततम् ॥ ११ ॥ अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम् ॥ तपस्वी ब्रह्मनिष्ठो यः संयमी संजितेन्द्रियः ॥ १२ ॥ जीवानां कर्मफलदस्तं यमं प्रणमाम्यहम् ॥ स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत् ॥ १३ ॥ पापिनां क्लेशदो यस्तं पुण्यमित्रं नमाम्यहम् ॥ यज्जन्म ब्रह्मणोंऽशेन ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ १४ ॥ यो ध्यायति परं ब्रह्म तमीशं प्रणमाम्यहम् ॥ इत्युक्त्वा

मैं प्रणाम करती हूँ । जो कालके अनुसार इच्छापूर्वक विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्त करते हैं, उन भगवान अन्तकको मैं प्रणाम करती हूँ । जो जगत्पर नियंत्रण तथा पापीजनोंको शुद्ध करनेके निमित्त सम्पूर्ण जीवोंके शासक बनकर हाथमें दण्ड धारण करते हैं, उन भगवान दण्डधरको मेरा प्रणाम है । जो विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंके समयका निरन्तर परिगणन करते हैं ॥८–११॥ जो परम दुर्धर्ष हैं, उन भगवान कालको मैं प्रणाम करती हूँ । जो तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, संयमी, जितेन्द्रिय और जीवोंको कर्मफल देनेके लिए उद्यत रहते हैं, उन भगवान यमको मैं प्रणाम करती हूँ । जो अपनी आत्मामें रमण करनेवाले, सम्पूर्ण ज्ञानोंसे सम्पन्न, पुण्यात्मा पुरुषोंके लिए मित्ररूप तथा पापियोंके लिए कष्टप्रद हैं, उन 'पुण्यमित्र' नामसे प्रसिद्ध भगवान धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ । जिनका जन्म ब्रह्माके अंशसे हुआ है, ब्रह्मतेजसे जो सदा दीप्तिमान् रहते हैं एवं जिनके द्वारा परब्रह्मका सतत ध्यान होता रहता है, उन 'ईश' नामधारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान धर्मराजको मेरा प्रणाम है। हे मुने! इस प्रकार प्रार्थना करके सावित्रीने धर्मराजको प्रणाम किया ॥ १२–१५ ॥ तब धर्मराजने सावित्रीको भगवती मूलप्रकृतिके मन्त्र तथा शुभकर्मके फलका प्रसङ्ग सुनाया। जो मनुष्य प्रातः उठकर निरन्तर इस यमाष्टकका पाठ करता है, उसे यमराजसे भय नहीं होता और उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। यदि महान् पापी व्यक्ति भी भक्तिसे सम्पन्न होकर निरन्तर इसका पाठ करता है तो यमराज अपने कायव्यूहसे निश्चित ही उसकी शुद्धि कर देते हैं ॥ १६। १७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

(यमपुरीके विभिन्न कुण्डों और उनकी भीषणताका वर्णन) भगवान नारायण कहते हैं–हे नारद! रविनन्दन धर्मराजने सावित्रीको मूलप्रकृति भगवती भुवनेश्वरीका महामन्त्र तथा

सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने ॥ १५ ॥ यमस्तां शक्तिभजनं कर्मपाकमुवाच ह ॥ इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ १६ ॥ यमात्तस्य भयं नास्ति सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ महापापी यदि पठेन्नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥ यमः करोति संशुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम् ॥ १७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ मायाबीजं महामन्त्रं प्रदत्त्वा विधिपूर्वकम् ॥ कर्माशुभविपाकं च तामुवाच रवेः सुतः ॥१॥ धर्मराज उवाच॥ शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति मानवः ॥ कर्माशुभविपाकं च कथयामि निशामय ॥२॥ नानापुराणभेदेन नामभेदेन भामिनि ॥ नानाप्रकारं स्वर्गं च याति जीवः स्वकर्मभिः ॥ ३ ॥ शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति कर्मभिः ॥ कुकर्मणा च नरकं याति नानाविधं नरः ॥ ४ ॥ नरकाणां च कुण्डानि संति नानाविधानि च ॥ नानाशास्त्रप्रमाणेन कर्मभेदेन यानि च ॥ ५ ॥ विस्तृतानि च गर्तानि क्लेशदानि च दुःखिनाम् ॥ भयंकराणि घोराणि हे वत्से कुत्सितानि च ॥ ६ ॥ षडशीति च कुंडानि एवमन्यानि सन्ति च ॥ निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति ॥ ७ ॥ वह्निकुण्डं तप्तकुण्डं क्षारकुण्डं भयानकम् ॥ विट्कुण्डं मूत्रकुण्डं च श्लेष्मकुण्डं च दुःसहम् ॥ ८ ॥ गरकुंडं दूषिकुण्डं वसाकुंडं तथैव च ॥ शुक्रकुण्डमसृक्कुण्डमश्रु-

विधिपूर्वक उपासनाका प्रकार बतलाकर 'अशुभ कर्मका फल' सुनाना आरम्भ किया ॥१॥ धर्मराजने कहा–हे पतिव्रते! मानव शुभकर्मके विपाकसे नरकमें नहीं जा सकता। नरक जानेमें कारण अशुभ कर्मका विपाक है। अतएव अब मैं अशुभ कर्मका परिणाम बतलाता हूँ, सुनो ॥२॥ पुराणभेद और नामभेदसे नाना प्रकारके स्वर्ग हैं। प्राणी अपने-अपने कर्मोंके प्रभावसे उन स्वर्गोंमें जाते हैं ॥३॥ कोई मनुष्य नरकोंमें जाना नहीं चाहता, परंतु अशुभ कर्म-विपाक उन्हें नरकमें जानेके लिए विवश कर देते हैं ॥ ४ ॥ नरकोंमें नाना प्रकारके कुण्ड हैं। विविध शास्त्रोंके प्रमाण एवं कर्मभेदसे ये सब कुण्ड बड़े ही विस्तृत हैं। पापियोंको दुःखका भोग कराना ही इन कुंडोंका प्रयोजन है। हे वत्से! ये भयंकर कुंड अत्यन्त भयावह तथा कुत्सित हैं ॥५॥६॥ इनमें छियासी कुण्ड तो प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अप्रसिद्ध कुण्ड भी हैं। हे साध्वी! उन प्रसिद्ध कुण्डोंके नाम बतलाता हूँ, सुनो–॥७॥ वह्निकुंड, तप्तकुण्ड, भयानक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्षारकुण्ड, विट्कुण्ड, मूत्रकुण्ड, श्लेष्मकुण्ड, दुःसह गरकुण्ड, दूषिकाकुण्ड, वसाकुण्ड, शुक्रकुण्ड, असृक्कुण्ड, दुस्तर अश्रुकुण्ड ॥ ८ ॥ ९ ॥ गात्रमलकुण्ड, कर्णविट्कुण्ड, मज्जाकुण्ड, मांसकुण्ड, दुस्तर नक्रकुण्ड ॥१०॥ लोमकुण्ड, केशकुण्ड, अस्थिकुण्ड, ताम्रकुण्ड, महान् क्लेशमद प्रतप्त लोहकुण्ड ॥ ११ ॥ चर्मकुण्ड, तप्तसुराकुण्ड, तीक्ष्णकण्टककुण्ड, विषविस्तारक विषकुण्ड ॥१२॥ तैलप्रतप्त कुण्ड, दुर्वह कुन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड, पूयकुण्ड, दुरन्तक सर्पकुण्ड ॥१३॥ मशककुण्ड, दंशककुण्ड और भयंकर गरलकुण्ड । हे सुव्रते ! ऐसे ही वज्रसदृश दाँतोंवाले वृश्चिक आदि भयंकर जीवोंके कुण्ड हैं ॥१४॥ शरकुण्ड, शूलकुण्ड, भयंकर खड्गकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, (द्वितीय) काककुण्ड ॥१५॥ मन्थानकुण्ड, बीजकुण्ड, वज्रकुण्ड, दुःसह तप्तपाषाणकुण्ड, तीक्ष्णपाषाणकुण्ड ॥ १६ ॥ लालाकुण्ड, मसीकुण्ड, चूर्णकुण्ड, चक्रकुण्ड, वक्रकुण्ड, कूर्मकुण्ड ॥ १७ ॥ महान् असह्य ज्वालाकुण्ड, दग्धकुण्ड, तप्तसूचीकुण्ड, असिपत्रकुण्ड,

कुण्डं च कुत्सितम् ॥ ९ ॥ कुण्डं गात्रमलानां च कर्णविट्कुण्डमेव च ॥ मज्जाकुण्डं नक्रकुंडं च मांसकुण्डं च दुस्तरम् ॥ १० ॥ लोमकुण्डं केशकुण्डमस्थिकुण्डं च दुस्तरम् ॥ ताम्रकुण्डं लोहकुण्डं प्रतप्तं क्लेशदं महत् ॥११॥ चर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं च परिकीर्तितम् ॥ तीक्ष्णकण्टककुण्डं च विषोदं विषकुण्डकम् ॥ १२ ॥ प्रतप्तकुण्डं तैलस्य कुन्तकुण्डं च दुर्वहम् ॥ कृमिकुण्डं पूयकुण्डं सर्पकुण्डं दुरन्तकम् ॥ १३ ॥ दंशकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम् ॥ कुण्डं च वज्रदंष्ट्राणां वृश्चिकानां च सुव्रते ॥ १४ ॥ शरकुण्डं शूलकुण्डं खड्गकुण्डं च भीषणम् ॥ गोलकुण्डं नक्रकुंडं काककुण्डं शुचास्पदम् ॥ १५ ॥ मन्थानकुण्डं बीजकुण्डं वज्रकुण्डं च दुःसहम् ॥ तप्तपाषाणकुण्डं च तीक्ष्णपाषाणकुंडकम् ॥ १६ ॥ लालाकुंडं मसीकुंडं चूर्णकुंडं तथैव च ॥ चक्रकुंडं वक्रकुंडं कूर्मकुंडं महोल्बणम् ॥ १७ ॥ ज्वालाकुंडं भस्मकुंडं दग्धकुंडं शुचिस्मिते ॥ तप्तसूचीमसिपत्रं क्षुरधारं सूचीमुखम् ॥ १८ ॥ गोकामुखं नक्रमुखं गजदंशं च गोमुखम् ॥ कुम्भीपाकं कालसूत्रं मत्स्योदं कृमितन्तुकम् ॥ १९ ॥ पांसुभोज्यं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकम्पनम् ॥ उल्कामुखमन्धकूपं वेधनं ताडनं तथा ॥ २० ॥ जालरंध्रं देहचूर्णं दलनं शोषणं कषम् ॥ शूर्पं ज्वालामुखं चैव धूमांधं नागवेष्टनम् ॥ २१ ॥ कुण्डान्येतानि सावित्रि पापिनां क्लेशदानि च ॥ नियुतैः किंकरगणैः रक्षितानि च संततम् ॥ २२ ॥ दंडहस्तैः पाशहस्तैर्मदमत्तैर्भयंकरैः ॥ शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैरसिहस्तैः सुदारुणैः ॥ २३ ॥ तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्निवार्यैश्च न सर्वतः ॥ तेजस्विभिश्च

क्षुरधारकुण्ड, सूचीमुखकुण्ड, ॥ १८ ॥ नक्रमुखकुण्ड, गोकामुखकुण्ड, गजदंशकुण्ड, गोमुखकुण्ड, कुम्भीपाक, कालसूत्र, मत्स्योद, कृमिकुण्ड ॥ १९ ॥ पांसुभोज्य, पांशुवेष्ट, शूलप्रोत, प्रकम्पन, उल्कामुख, अन्धकूप, वेधन, ताडन ॥ २० ॥ ज्वालरन्ध्र, देहचूर्ण, दलन, शोषण, शूर्प, ज्वालामुख, धूमान्ध तथा नागवेष्टनकुण्ड हैं ॥ २१ ॥ हे सावित्री ! ये सभी कुण्ड पापियोंको क्लेश देनेके लिए निर्मित हैं। दस लाख अनुचर सदा इनकी देख-रेखपर नियुक्त रहते हैं ॥ २२ ॥ उन अनुचरोंके हाथोंमें दंड रहते हैं। वे भयंकर एवं मदमत्त अनुचर खड्ग लिये रहते हैं। उनके हाथोंमें भयावह गदा, तलवार और शक्ति शोभा पाती है। वे सदा क्रोधमें तमतमाये रहते हैं ॥ २३ ॥ उनमें दयाका नामतक नहीं रहता। उन्हें कोई किसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार भी रोक नहीं सकता। उन तेजस्वी एवं निर्भीक अनुचरोंकी ताँबेके सदृश रक्तवर्णकी आँखें कुछ-कुछ पीले रंगकी होती हैं ॥ २४ ॥ योगसिद्धिसे सम्पन्न होनेके कारण वे नाना प्रकारके रूप धारण कर लिया करते हैं। मृत्युकाल उपस्थित होनेपर पापियोंको वे स्वयं दिखायी पड़ते हैं ॥ २५ ॥ देवी, सूर्य और गणपतिके उपासक तथा अपने कर्मोंमें लगे रहनेवाले सिद्ध एवं योगी पुरुषोंको अपने पुण्यप्रभावसे उनके सम्मुख नहीं जाना पड़ता ॥ २६ ॥ जो अपने धर्ममें सदा निरत रहते हैं, जिनका हृदय विशाल है तथा जो पूर्ण स्वतंत्र हैं, जिन्हें स्वप्नमें या कहीं भी इष्टदेवका दर्शन प्राप्त हो चुका है, ऐसे वैष्णव पुरुषोंको वे बलवान् एवं निःशङ्क यमके अनुचर कभी नहीं दिखायी देते ॥ २७ ॥ हे साध्वी इन कुंडोंकी संख्याका निरूपण तो मैं कर चुका। अब किन पापियोंको किन कुंडोंमें जाना पड़ता है, उन्हें बताता हूँ ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

निःशंकैराताम्रपिंगलोचनैः ॥ २४ ॥ योगयुक्तैः सिद्धियुक्तैर्नानारूपधरैर्भटैः ॥ आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैः पापिभिः सर्वजीविभिः ॥ २५ ॥ स्वकर्मनिरतैः सर्वैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः ॥ अदृश्यैः पुण्यकृद्भिश्च सिद्धैर्योगिभिरेव च ॥ २६ ॥ स्वधर्मनिरतैर्वापि विततैर्वा स्वतन्त्रकैः ॥ बलवद्भिश्च निःशंकैः स्वप्नदृष्टैश्च वैष्णवैः ॥ २७ ॥ एतत्ते कथितं साध्वि कुंडसंख्यानिरूपणम् ॥ येषां निवासो यत्कुण्डे निबोध कथयामि ते ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ धर्मराज उवाच ॥ हरिसेवारतः शुद्धो योगसिद्धो व्रती सति ॥ तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं ध्रुवम् ॥ १ ॥ कटुवाचा बांधवांश्च बललेपेन यो नरः ॥ दग्धान्करोति बलवान्वह्निकुण्डं प्रयाति सः ॥ २ ॥ स्वगात्रलोममानाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने ॥ पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रदग्धां त्रिजन्मनि ॥ ३ ॥ ब्राह्मणं तृषितं तप्तं क्षुधितं गृहमागतम् ॥ न भोजयति यो मूढस्तप्तकुण्डं प्रयाति सः ॥ ४ ॥ तत्र तल्लोममानं च वर्षं स्थित्वा च दुःखदे ॥ तप्तस्थले वह्नितल्पे पक्षी च सप्तजन्मसु ॥ ५ ॥ रविवारे च संक्रांत्याममायां श्राद्धवासरे ॥ वस्त्राणां क्षारसंयोगं करोति केवलं नरः ॥ ६ ॥ स याति क्षारकुण्डं च सूत्रमानाब्दमेव च ॥ स व्रजेद्रजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते ॥ ७ ॥ मूलप्रकृतिनिन्दां यः कुरुते

(नारकी पापियों और पापोंका वर्णन) धर्मराज बोले—हे साध्वी! भगवान श्रीहरिकी सेवामें संलग्न रहनेवाले पुण्यात्मा, योगी, सिद्ध, व्रती, तपस्वी और ब्रह्मचारी पुरुष नरकमें नहीं जाते—यह ध्रुव सत्य है ॥१॥ जो शक्तिशाली मनुष्य बलके अभिमानमें आकर अपने कटु वचनों द्वारा बान्धवोंको दग्ध करता है, वह व्यक्ति अग्निकुंड नामक नरकमें जाता है ॥२॥ उसके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक उसे अग्निमें वास करना पड़ता है। फिर वह तीन बार पशुयोनिमें जन्म पाता है ॥३॥ जो मूर्ख मानव घरपर आये हुए भूखे-प्यासे और दुखी ब्राह्मणको भोजन नहीं देता, वह तप्तकुंड नामक नरकमें जाता है ॥४॥ अपने लोमसंख्यक वर्षोंतक दुःखप्रद नरकमें वास करनेके पश्चात् सात जन्मोंतक वह पक्षी होता है ॥५॥ जो मनुष्य रविवार, सूर्यसंक्रान्ति, अमावस्या और श्राद्धके दिन क्षार पदार्थसे वस्त्रोंका धोता है, उसे क्षारकुंडमें जाना पड़ता है। जो अधम मानव मूलप्रकृति भगवती जगदम्बा, वेद, शास्त्र, पुराण, ब्रह्मा, विष्णु,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिव, गौरी तथा सरस्वती आदि देवियोंकी सदा निन्दा करते हैं, वे पापी उन अत्यन्त भयंकर कुण्डोंमें जाते हैं, जिनसे बढ़कर दुःखदायी दूसरा कोई कुण्ड होता ही नहीं ॥९-१०॥ उन कुण्डोंमें दीर्घकालतक रहनेके पश्चात् सर्पयोनिमें उनकी उत्पत्ति होती है । देवीनिन्दाके अपराधका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है ॥ ११ ॥ अपने अथवा दूसरे द्वारा उपलब्ध ब्राह्मण और देवताओंकी वृत्तिको छीननेवाला व्यक्ति विट्कुण्ड नामक नरकमें जाता है ॥१२॥ साठ हजार वर्षतक वह विष्ठाभोजी पशुकी योनिमें रहता है और उसके बाद पुनः पृथ्वीपर आकर विष्ठाके कीड़ेकी योनिमें रहता है ॥ १३ ॥ जो दूसरोंके तड़ागमें बिना उसकी आज्ञा लिये तड़ाग निर्माण कराता है और तड़ाग बनवानेका झूठा यश लेता है तथा जो वहाँ मूत्र आदिका उत्सर्ग करता है, ऐसा व्यक्ति उस दोषके कारण मूत्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है ॥ १४ ॥ उसे वहाँ वे ही मूत्रादि अपवित्र वस्तुएँ भोजनके लिए मिलती हैं । पुनः भारतवर्षमें वह बैल

मानवाधमः ॥ वेदनिंदां शास्त्रनिंदां पुराणानां तथैव च ॥८॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा निंदापरो जनः ॥ गौरीवाण्यादिदेवीनां तथा निंदापरो जनः ॥ ९ ॥ सर्वे ते निरये यांति तस्मिन्कुण्डे भयानके ॥ नातः परतरं कुंडं दुःखदं तु भविष्यति ॥ १० ॥ तत्र स्थित्वाऽनेककल्पं सर्पयोनिं व्रजेत्पुनः ॥ देवीनिंदापराधस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ११ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा वृत्तिं च सुरविप्रयोः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कुण्डं च प्रयाति सः ॥ १२ ॥ तावंत्येव च वर्षाणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च पुनर्भुवि ॥ १३ ॥ परकोयतडागे च तडागं यः करोति च ॥ उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः ॥ १४॥ तद्रेणुमानवर्षे च तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ पुनः पूर्णशताब्दं च स वृषो भारते भवेत् ॥ १५ ॥ एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयाति च ॥ पूर्णमशब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ १६ ॥ ततः पूर्णशताब्दं च स प्रेतो भारते भवेत् ॥ श्लेष्ममूत्रपरं चैव पूयं भुंक्ते ततः शुचिः ॥१७॥ पितरं मातरं चैव गुरुं भार्यां सुतं सुताम् ॥ यो न पुष्णात्यनाथं च गरकुंडं प्रयाति सः ॥१८॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वाऽतिथिं वक्रचक्षुः करोति यो हि मानवः ॥ पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः ॥२०॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ इहैव लभते चांते दूषिकाकुण्डमाव्रजेत् ॥ २१ ॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥२२॥ दत्त्वा द्रव्यं च विप्राय चान्यस्मै दीयते यदि ॥ स तिष्ठति

होकर रहता है ॥१५॥ मधुर पदार्थको अकेले ही खा जानेवाला व्यक्ति श्लेष्मकुण्ड नामक नरकमें जाता और वहाँ रहता है । तत्पश्चात् वह प्रेत बनता है । चिरकालतक श्लेष्मा और मूत्र खानेके बाद वह शुद्ध होता है । जो पिता-माता, गुरु, स्त्री, पुत्र, पुत्री अथवा अनाथका भरण-पोषण नहीं करता, वह गरल (विष) कुण्ड नामक नरकमें जाता है और खानेके लिए उसे विष ही मिलता है । तत्पश्चात् वह सौ वर्षके लिए भूतयोनिमें जाता है ॥१६-१९॥ जो मनुष्य अतिथिको क्रोधभरे नेत्रोंसे देखता है, उस पापीके दिये हुए जलको पितर और देवता नहीं ग्रहण करते ॥ २० ॥ जिसके द्वारा ब्रह्महत्या जैसे घोर पाप बन जाते हैं तो इनके फलस्वरूप प्राणी दूषिकाकुण्ड नामक नरकमें जाता है ॥ २१ ॥ वहाँ दूषित पदार्थ भोजन करके उसे सौ वर्षतक रहना पड़ता है । फिर भूतकी योनिमें सौ वर्ष रहनेके पश्चात् वह पवित्र होता है ॥ २२ ॥ यदि ब्राह्मणको दी हुई कोई वस्तु फिर दूसरेको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दे दी जाय तो उस दूषित कर्मके प्रभावसे दाताको वसाकुण्डनामक नरकमें जाकर सौ वर्ष वसा खाना पड़ता है ॥२३॥ तदनन्तर सात जन्मोंतक उसे गिरगिट होना पड़ता है। उसके बाद वह दरिद्र तथा अल्पायु होता है ॥२४॥ जो स्त्री परपुरुषसे अथवा पुरुष परायी स्त्रीसे अवैध सम्बन्ध करता है, वह शुक्रकुंड नामक नरकमें जाता है ॥२५॥ वह वहाँ सौ वर्ष वीर्य खाता हुआ रहता है। फिर कीटयोनिमें जन्म पाता है। तत्पश्चात् वह शुद्ध होता है ॥ २६ ॥ जो गुरु अथवा ब्राह्मणको मारकर उनके शरीरसे रक्त बहा देता है, उसे असृक्कुंड नामक नरककी प्राप्ति होती है। उसमें सौ वर्ष रहकर वह रक्तपान करता है ॥२७॥ तदनन्तर वह सात जन्मोंतक बाघ होता है। फिर शुद्ध होकर मानव-योनिमें जन्म पाता है ॥२८॥ भगवद्गुणगान करनेवाले भक्तको देखकर खेदपूर्वक जिसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगते हैं तथा भगवान श्रीकृष्णके गुणसम्बन्धी संगीतके अवसरपर जो अनुचितरूपसे उपहास करता है, वह मानव सौ वर्षों तक अश्रुकुंड नामक नरकमें वास करता है। भोजनके लिए सौ वर्ष उसे अश्रु ही मिलते हैं। तत्पश्चात् तीन जन्मोंतक चांडालकी योनिमें उसका जन्म होता है, तब वह शुद्ध होता है

वसाकुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥२३॥ कृकलासो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु ॥ ततो भवेन्महारौद्रो दरिद्रोऽल्पायुरेव च ॥२४॥ पुमांसं कामिनी वापि कामिनीं वा पुमानथ ॥ यः शुक्रं पाययत्येव शुक्रकुण्डं प्रयाति सः ॥ २५ ॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ कृमियोनिं शताब्दं च व्रजेद्भूत्वा ततः शुचिः ॥२६॥ संताड्य च गुरुं विप्रं रक्तपातं च कारयेत् ॥ स च तिष्ठत्यसृक्कुण्डे तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥२७॥ ततो लभेद्व्याघ्रजन्म सप्तजन्मसु भारते ॥ ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण ह ॥ २८ ॥ योऽश्रुं तत्याज गायंतं भक्तं दृष्ट्वा सगद्गदम् ॥ श्रीकृष्णगुणसंगीते हसत्येव हि यो नरः ॥ २९ ॥ स वसेदश्रुकुण्डे च तद्भोजी शतवर्षकम् ॥ ततो भवेच्च चांडालस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः ॥३०॥ करोति शठतां तद्वन्नित्यं सुहृदि यो नरः ॥ कुण्डं गात्रमलानां च स प्रयाति शताब्दकम् ॥ ३१ ॥ ततः स गर्दभीं योनिमवाप्नोति त्रिजन्मनि ॥ त्रिजन्मनि च शार्गालीं ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ बधिरं यो हसत्येव निंदत्येवाभिमानतः ॥ स वसेत्कर्णविट्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥ ३३ ॥ ततो भवेत्स बधिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु ॥ सप्तजन्मन्यंगहीनस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥ ३४ ॥ लोभात्स्वभरणार्थाय जीवितं हंति यो नरः ॥ मज्जाकुण्डे वसेत्सोऽपि तद्भोजी लक्षवत्सरम् ॥ ३५ ॥ ततो भवेच्च शशको मीनश्च सप्तजन्मसु ॥ त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु ॥ ३६ ॥ एणादयश्च

॥२९॥३०॥ जो मनुष्य सहृदय व्यक्तिके साथ निरन्तर शठताका व्यवहार करता है, वह सौ वर्षके लिये गात्रमलकुंड नामक नरकमें जाता है ॥३१॥ इसके बाद उसे तीन जन्मोंतक गदहे-की तथा तीन जन्म शृगालकी योनि प्राप्त होती है। तत्पश्चात् वह शुद्ध होता है ॥ ३२ ॥ जो बहरेको देखकर हँसता और अभिमानवश उसकी निन्दा करता है, उसका कर्णविट् नामक नरककुंडमें वास होता है और वहाँ उसको कानोंकी मैल भोजनके लिए मिलती है ॥३३॥ फिर सात जन्मतक वह परम दरिद्र होकर जन्म लेता है और उसके कानोंमें सुननेकी शक्ति नहीं रहती ॥३४॥ जो मनुष्य लोभवश अपने भरण-पोषणके लिये प्राणियोंकी हिंसा करता है, वह दीर्घकालतक मज्जाकुंड नामक नरकमें स्थान पाता है। वहाँ लाख वर्ष मज्जा ही उसे भोजनके लिये मिलती है ॥३५॥ इसके बाद वह खरगोशकी योनिमें जन्म पाता है। फिर सात जन्मोंतक मछलीका जीवन व्यतीत करता है। तीन जन्मोंमें सूअर और सात जन्मोंमें मुर्गा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है ॥३६॥ फिर कर्मोंके प्रभावसे उसे मृग आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं। तदनन्तर वह शुद्ध होता है। जो अपनी कन्याको पाल-पोसकर बेचता है ॥ ३७ ॥ वह अर्थलोभी एवं महान् मूर्ख मानव मांसकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँ कन्याका मांस ही उसे भोजनके लिये मिलता है ॥३८॥ मेरे अनुचर उसे डंडोंसे पीटते हैं। वह मांस और रक्तका भार मस्तकपर उठाकर ढोता और वही खाता है ॥३९॥ तदनन्तर वह पापमय जन्म पाकर कन्याकी विष्ठाका कीड़ा होता है। पश्चात् वह साठ हजार वर्ष और सात जन्मों तक वधिक होता है॥४०॥ उसे तीन जन्म-तक सूअर और सात जन्मोंतक मुर्गेकी योनि मिलती है। फिर सात जन्मतक उसे मेढक, जोंक और कौएकी योनि मिलती है। तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है। जो मनुष्य व्रत, श्राद्ध और उपवासके अवसरपर क्षौरकर्म करता है, वह सम्पूर्ण कर्मोंके लिये अपवित्र माना जाता है। हे साध्वी ! ऐसा करनेवाला व्यक्ति नखकुण्डमें स्थान पाता है ॥४१–४३॥ फिर देवगणनाके

कर्मभ्यस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥ स्वकन्यापालनं कृत्वा विक्रीणाति च यो नरः ॥ ३७॥ अर्थलोभान्महामूढो मांसकुण्डं प्रयाति सः ॥ कन्यालोम-प्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ३८ ॥ तस्य दंडप्रहारं च कुर्वंति यमकिंकराः ॥ मांसभारं मूर्ध्नि कृत्वा रक्तभारं लिहेत्क्षुधा ॥ ३९ ॥ ततो हि भारते पापी कन्याविट्कृमिगो भवेत् ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु ॥ ४० ॥ त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु ॥ मंडूको हि जलौकाश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ ४१ ॥ सप्तजन्मसु काकश्च ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥ व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनां च संगमे ॥ ४२ ॥ करोति यः क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ॥ स च तिष्ठति कुण्डे च नखादीनां च सुंदरि ॥४३॥ तद्देवदिनमानाब्दं तद्भोजी दंडताडितः ॥ सकेशं पार्थिवं लिंगं यो वाऽर्चयति भारते ॥ ४४ ॥ स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम् ॥ तदंते यावनीं योनिं प्रयाति हरकोपतः ॥ ४५ ॥ शताब्दाच्छुद्धिमाप्नोति राक्षसः स भवेद्ध्रुवम् ॥ पितॄणां यो विष्णुपदे पिंडं नैव ददाति च ॥ ४६ ॥ स च तिष्ठत्यस्थिकुण्डे स्वलोमाब्दं महोल्बणे ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य कुब्जः सप्तजन्मसु ॥ ४७ ॥ भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धो हि देहतः ॥ यः सेवते महामूढो गुर्विणीं च स्वकामिनीम् ॥ ४८ ॥ प्रतप्ते ताम्रकुण्डे च शतवर्षं स तिष्ठति ॥ अवीरान्नं च यो भुंक्ते ऋतुस्नातान्नमेव च ॥४९॥ लोहकुण्डे शताब्दं च स च तिष्ठति तप्तके ॥ स व्रजेद्रजकीं योनिं काकानां सप्तजन्मसु ॥ ५० ॥ महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ यो हि चर्मांकहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत् ॥ ५१ ॥ शतवर्षप्रमाणं च चर्मकुण्डे स

अनुसार सौ वर्ष तक मेरे दूत डंडोंसे पीटते हैं और उसे केश खाना पड़ता है। जो मनुष्य केशयुक्त पार्थिवलिङ्ग पूजता है ॥ ४४॥ उसे केशकुण्ड नरकमें जाना पड़ता है। बादमें शिव-के कोपसे वह यवन होता है ॥४५॥ सौ वर्ष बाद उसकी शुद्धि होती है। जो मानव विष्णुपद तीर्थमें पितरोंको पिण्ड नहीं देता ॥ ४६ ॥ वह अस्थिकुण्ड नामक भीषण नरकमें जाता है। फिर मानव तन पाकर वह सात जन्म लँगड़ा होता है ॥ ४७ ॥ महान् दरिद्रताके कारण अनेक स्थानोंपर भटकनेके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है। जो महामूर्ख मानव अपनी गर्भवती स्त्रीके साथ भोग करता है ॥ ४८ ॥ वह जलते हुए ताम्रकुण्ड नामक नरकमें सौ वर्ष रहता है। कायर तथा सद्यःऋतुस्नाता स्त्रीका अन्न खानेवाला व्यक्ति जलते हुए लोहकुंड नामक नरकमें जाता है। इसके बाद उसे सात जन्मतक रजक और कौएकी योनि प्राप्त होती है ॥४९॥५०॥ उन दिनों वह बहुत बड़ा दरिद्र रहता है और उसके शरीरमें बड़े-बड़े घाव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहते हैं और बादमें वह शुद्ध होता है। जो चाम छूकर बिना हाथ धोये देवद्रव्यका स्पर्श करता है, वह सौ वर्ष चर्मकुंड नामक नरकमें वास करता है। जो बिना निमन्त्रण मिले शूद्रके घर जाकर उसका अन्न खाता है ॥५१॥५२॥ वह ब्राह्मण तप्तसुरा नामक नरककुण्डमें सौ वर्ष रहता है। उसके बाद सात जन्मतक शूद्रयाजी ब्राह्मण होता है और शूद्रान्न खाता है, तब शुद्ध होता है। जो कठोर वचन कहकर सदा स्वामीको कष्ट पहुँचाता है, वह तीक्ष्णकंटक नामक नरककुंडमें कंटकभोजी बनकर वास करता है। मेरे दूत उसे दंड द्वारा कष्ट पहुँचाते हैं ॥५३-५७॥ सात जन्म बहरा रहनेके बाद वह शुद्ध होता है। जो निर्दयी व्यक्ति किसी प्राणीको विष देकर मार डालता है ॥५६॥ वह हजार वर्षोंतक विषभोजी होकर विषकुंडमें रहता है। फिर सात जन्मतक नरघाती अर्थात् जल्लाद और सात जन्मोंतक कोढ़ी होता है। उसके प्रत्येक अङ्गमें फोड़े-फुन्सियाँ कष्ट देती हैं। तत्पश्चात् उसकी शुद्धि होती है। पुण्यक्षेत्र भारत-

तिष्ठति ॥ यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुंक्ते शूद्रान्नमेव च ॥५२॥ स च तप्तसुराकुण्डे शताब्दं तिष्ठति द्विजः ॥ ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु ॥५३॥ शूद्रश्राद्धान्नभोजी च ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥ वाग्दुष्टः कटुको वाचा ताडयेत्स्वामिनं सदा ॥ ५४ ॥ तीक्ष्णकंटककुण्डे स तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ताडितो यमदूतेन दंडेन च चतुर्युगम् ॥५५॥ ततउच्चैःश्रवाःसप्तजन्मस्वेव ततः शुचि ॥ विषेण जीवनं हंति निर्दयो यो हि मानवः ॥५६॥ विषकुण्डे च तद्भोजी सहस्राब्दं च तिष्ठति ॥ ततो भवेन्नृघाती च व्रणी च शतजन्मसु ॥५७॥ सप्तजन्मसु कुष्ठी च ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥ दण्डेन ताडयेद्गां हि वृषं च वृषवाहकः ॥५८॥ भृत्यद्वारा स्वतंत्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ प्रतप्ते तैलकुण्डेऽग्नौ तिष्ठतिस्म चतुर्युगम् ॥५९॥ गवां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम् ॥ कुन्तेन हंति यो जीवं वह्निलोहेन हेलया ॥६०॥ कुन्तकुण्डे वसेत्सोऽपि वर्षाणामयुतं सति ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य चोदरे व्याधिसंयुतः ॥६१॥ जन्मनैकेन क्लेशेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ यो भुंक्ते च वृथा मांसं मांसलोभी द्विजाधमः ॥ ६२ ॥ हरेरनैवेद्यभोजी कृमिकुण्डे प्रयाति सः ॥ स्वलोममानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥६३॥ ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततो द्विजः ॥ ब्राह्मणः शूद्रयाजी च शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ॥ ६४ ॥ शूद्राणां शवदाही च पूयकुण्डे वसेद्ध्रुवम् ॥ यावल्लोमप्रमाणाब्दं यमदंडेन सुव्रते ॥ ६५ ॥ ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ततो

वर्षमें जन्म पाकर बैल जोतनेवाला जो व्यक्ति डंडेसे बैलको स्वयं मारता अथवा भृत्य द्वारा मरवाता है, वह तप्ततैल नामक नरककुंडमें चार युग रहता है ॥५७-५९॥ फिर उस बैलके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक उसे बैल होकर कष्ट भोगना पड़ता है। हे साध्वी! जो व्यक्ति भालेसे अथवा आगमें संतप्त किये गये लोहेसे अवहेलनापूर्वक प्राणीकी हिंसा करता है ॥ ६० ॥ वह हजार वर्ष कुन्तकुंड नामक नरकमें स्थान पाता है। इसके बाद मानव योनिमें जन्म पाकर उदररोगसे दुखी होता है ॥६१॥ यों एक जन्म कष्ट भोगकर वह शुद्ध होता है। जो विप्र मांस खाता तथा इष्टदेवताको अर्पण किये बिना भोजन करता है, वह मांसलोभी नीच द्विज कृमिकुंड नामक नरकमें जाता है। उसे आहारके रूपमें मांस ही उपलब्ध होता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ तदुपरांत उसे तीन जन्मोंतक म्लेच्छकी योनि मिलती है। इसके बाद वह शूद्रोंका यज्ञ करानेवाला तथा शूद्रोंका श्राद्धान्न खानेवाला ब्राह्मण होता है ॥६४॥ जो शूद्रका शव जलाता है, वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पीबके कुण्डमें पड़ता है। अपने लोमसंख्यक बर्षोंतक वह वही खाता है और यमदूत उसे मारते हैं। तदनन्तर वह भारतवर्षमें सात जन्मतक शूद्र रहता है ॥६५॥६६॥ फिर रोगी, दरिद्र, गूँगा एवं बहरा होता है। कृष्ण सर्पको तथा जिसके मस्तकपर कमलका चिह्न हो, ऐसे सर्पको जो मारता है, वह मानव सर्पकुंड नामक नरकमें जाता है। उसे वहाँ सर्प काटते हैं सर्पकी विष्ठा उसे खानी पड़ती है। तत्पश्चात् वह सर्पकी योनि पाता है। तदुपरांत थोड़ी आयुवाला मानव होता है। उसके शरीरमें दाद आदि चर्मरोग होते हैं ॥६७–६९॥ बादमें सर्पके काटनेसे वह बड़े कष्टसे मरता है। ब्रह्माके विधानमें रक्तपान जिनकी जीविका ही निश्चित है, उन मच्छर आदि क्षुद्र जंतुओंको जो मारते हैं, वे मृत जीवोंके दंशकुण्ड और मशककुण्ड नामक नरकमें निवास करते हैं। दिन-रात वे जन्तु उन्हें काटते हैं। उन्हें खानेको कुछ नहीं मिलता, जिससे वे रोते हैं॥७०॥७१॥ उनके हाथ-पैर बाँधकर यमदूत मारते हैं। तदुपरांत उसी क्षुद्र जंतुकी योनिमें उनका

भारतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु ॥ ६६ ॥ महारोगी दरिद्रश्च बधिरो मूक एव च ॥ कृष्णं पद्मं च के यस्य तं सर्पं हन्ति यो नरः ॥६७॥ स्वलो-
मसानवर्षं च सर्पकुंडं प्रयाति सः॥ सर्पेण भक्षितः सोऽथ मम दूतेन ताडितः॥६८॥ वसेच्च सर्पविड्भोजी ततः सर्पो भवेद्ध्रुवम् ॥ ततो भवेन्मानवश्च
स्वल्पायुर्दद्रुसंयुतः ॥ ६९ ॥ महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षिताद्ध्रुवम् ॥ विधिप्रदत्तजीव्यांश्च क्षुद्रजन्तूंश्च हंति यः ॥७०॥ स दंशमशयोः कुण्डे
जंतुमानाब्दमेव च ॥ दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शब्दवान् ॥ ७१ ॥ हस्तपादादिबद्धश्च यमदूतेन ताडितः ॥ ततो भवेत्क्षुद्रजंतुर्जातिश्च यावनी
भवेत् ॥ ७२ ॥ ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततः शुचिः ॥ यो मूढो मधुमश्नाति हत्वा च मधुमक्षिकाः ॥ ७३ ॥ स एव गारले कुण्डे जीवमा-
नाब्दकं वसेत् ॥ भक्षितो गरलैर्दग्धो मम दूतेन ताडितः ॥ ७४ ॥ ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ दण्डं करोत्यदंड्ये च विप्रे दण्डं
करोति च ॥ ७५ ॥ स कुण्डे वज्रदंष्ट्राणां कीटानां याति सत्वरम् ॥ स तल्लोमप्रमाणाब्दं तत्र तिष्ठत्यहर्निशम् ॥ ७६ ॥ शब्दकृद्भक्षितस्तैस्तु मम
दूतेन ताडितः ॥ करोति रोदनं भद्रे हाहाकारं क्षणे क्षणे ॥ ७७ ॥ पुनः सूकरयोनौ च जायते सप्तजन्मसु ॥ त्रिजन्मनि काकयोनौ ततः शुद्धो
भवेन्नरः ॥ ७८ ॥ अर्थलोभेन यो मूढः प्रजादण्डं करोति सः ॥ वृश्चिकानां च कुण्डं च तल्लोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥ ७९ ॥ ततो वृश्चिकजातिश्च सप्त

जन्म होता है ॥७२॥ फिर वे अङ्गहीन मानव होते हैं। तब उनकी शुद्धि होती है। जो मूढ मक्खियोंको मारकर मधु खाता है ॥७३॥ वह जितनी मधुमखियोंको मारे रहता है, उतने वर्षोंतक गरलकुंडमें रहता है, वहाँ मधुमक्खियाँ उसे काटती रहती हैं और मेरे दूत मारते हैं ॥७४॥ उसके बाद उसे मधुमक्खीकी योनिमें जन्म मिलता है। तब उसकी शुद्धि होती है। जो दण्ड न देने योग्य व्यक्तिको अथवा ब्राह्मणको दण्ड देता है ॥७५॥ वह वज्रदंष्ट्र नामक नरककुण्डमें जाता है। उसमें कीड़े ही कीड़े भरे रहते हैं। उसे कीड़े खाते हैं और मेरे दूत मारते हैं तो वह हाहाकार मचाता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ फिर वह सात जन्मोंतक सूअर और तीन जन्मोंतक कौआ होता है ॥ ७८ ॥ जो मूढ मानव धनके लोभसे प्रजाको सताता है, वह वृश्चिक-कुण्ड नामक नरकमें स्थान पाता है। पुनः सात जन्मोंतक बिच्छू होता है। तत्पश्चात् मनुष्यकी योनिमें उसकी उत्पत्ति होती है। तब वह अङ्गहीन और रोगी होकर जीवन व्यतीत करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है ॥७९॥८०॥ जो ब्राह्मण शस्त्र लेकर दूसरे व्यक्तिके आज्ञानुसार इधर-उधर जानेका काम करता है, कभी संध्या नहीं करता तथा भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख रहता है। वह शर, शूल एवं खड्ग नामक नरककुण्डमें जाता है। शस्त्रोंसे उसके अङ्ग निरन्तर छिदते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ मदके अभिमानमें चूर रहनेवाला जो व्यक्ति अन्धकारपूर्ण कारागारमें प्रजाको मारता है, उसे अपने दोषके फलस्वरूप गोलकुण्ड नामक नरकमें जाना पड़ता है ॥८३॥ वह नरक बड़ा ही भयङ्कर है। उसमें चारों ओर खौलता हुआ जल भरा रहता है और अन्धकार छाया रहता है। तीखे दाँतवाले कीड़े सर्वत्र भरे रहते हैं। ऐसे दारुण नरकमें वह पड़ा रहता है। तत्पश्चात् मनुष्य होकर प्रजाजनोंका भृत्य बनता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ सरोवरसे निकले हुए नक्र आदि जलचर जीवोंको जो मारता है, वह नक्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है ॥ ८६ ॥ तदनन्तर वह नक्र आदि योनियोंमें जन्म पाता है और बड़े कठोर दंड पानेपर उसकी शुद्धि होती है

जन्मसु भारते ॥ ततो नरश्चाङ्गहीनो व्याधिशुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥ ८० ॥ ब्राह्मणः शस्त्रधारी यो ह्यन्येषां धावको भवेत् ॥ संध्याहीनश्च यो विप्रो हरिभक्तिविहीनकः ॥८१॥ स तिष्ठति स्वलोमाब्दं कुण्डेषु च शरादिषु ॥ विद्धः शरादिभिः शश्वत्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥८२॥ कारागारे सांधकारे प्रणिहंति प्रजाश्च यः ॥ प्रमत्तः स्वस्य दोषेण गोलकुण्डं प्रयाति सः ॥८३॥ स पंकतप्ततोयाक्तं सांधकारं भयंकरम् ॥ तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च कीटैश्च संयुक्तं गोलकुण्डकम् ॥ ८४ ॥ कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाब्दमेव च ॥ ततो भवेत्प्रजाभृत्यस्ततः शुद्धो भवेत्क्रमात् ॥८५॥ सरोवरादुत्थितांश्च नक्रादीन्हंति यो नरः ॥ नक्रकंटकमानाब्दं नक्रकुण्डं प्रयाति सः ॥ ८६ ॥ ततो नक्रादिजातीयो भवेन्नक्रादिषु ध्रुवम् ॥ ततः सद्यो विशुद्धो हि दण्डेनैव पुनः पुनः ॥८७॥ वक्षः श्रोणीस्तनास्यं च यः पश्यति परस्त्रियाः ॥ कामेन कामुको यो हि पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥८८॥ स वसेत्काककुण्डे च काकैः संचूर्णलोचनः ॥ ततः स्वलोममानाब्दं भवेद्दग्धस्त्रिजन्मनि ॥८९॥ स्वर्णस्तेयी च यो मूढो भारते सुरविप्रयोः ॥ स च मंथानकुण्डे वै स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥ ९० ॥ ताडितो यमदूतेन मंथानैश्छन्नलोचनः ॥ तद्विड्भोजी च तत्रैव ततश्चांधस्त्रिजन्मनि ॥ ९१ ॥ सप्तजन्म दरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी ॥ भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक्ततः ॥ ९२ ॥ यो भारते ताम्रचौरो लोहचौरश्च सुंदरि ॥ स च स्वलोममानाब्दं बीजकुण्डे प्रयाति सः ॥ ९३ ॥ तत्रैव बीजविड्भोजी बीजैश्च छन्नलोचनः ॥ ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ९४ ॥ भारते देवचोरश्च देवद्रव्यापहारकः ॥

॥ ८७ ॥ जो मनुष्य पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें आकर कामभावसे परस्त्रीके वक्षःस्थल, श्रोणी, स्तन एवं मुख देखता है, वह तीन जन्म काककुण्ड नरकमें वास करता है। कौए उसकी आँख फोड़ देते हैं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ जो मूढ मानव भारतवर्षमें जन्म पाकर देवता और ब्राह्मणका सुवर्ण चुराता है, वह मन्थानकुण्ड नामक नरकमें स्थान पाता है ॥ ९० ॥ मेरे दूत उसकी आँखोंपर पट्टी बाँधकर डंडोंसे उसपर प्रहार करते हैं। इसके बाद वह तीन जन्मोंतक नेत्रहीन तथा सात जन्मोंतक दरिद्र होता है। वह पातकी सात जन्मतक महाक्रूर स्वर्णकार तथा स्वर्ण-व्यवसायी वैश्य होता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ हे देवि! ताँबे और लोहेकी चोरी करनेवाला मानव बीजकुण्ड नामक नरकमें जाता है ॥ ९३ ॥ वहाँ बीज नामक कीड़े उसकी आँखें मूँदकर काटते हैं और यमदूत मारते हैं, तब उसकी शुद्धि होती है ॥ ९४ ॥ भारतवर्षमें जन्म पाकर देवताओंकी प्रतिमा तथा देवसम्बन्धी द्रव्यकी चोरी करनेवाला मानव दुस्तर वज्रकुण्ड नामक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नरकमें निश्चितरूपसे निवास करता है ॥ ९५ ॥ तीखे वज्रों द्वारा यमदूतोंकी मारसे उसका शरीर दग्ध-सा होता रहता है ॥ ९६ ॥ देवता और ब्राह्मणके रजत, गव्य (दूध-दही आदि) पदार्थ तथा वस्त्रोंकी चोरी करनेवाला व्यक्ति तप्तपाषाण नामक नरककुंडमें स्थान पाता है—यह निश्चित है ॥ ९७ ॥ फिर तीन जन्मांतक श्वेतकुष्ठी, एक जन्ममें कोढ़ी, फिर उज्ज्वल पक्षी, इसके बाद अल्पायु मानव होता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ रक्तविकार और शूलरोगसे उसे असह्य पीड़ा सहनी पड़ती है । जो व्यक्ति ब्राह्मण और देवताके पीतल तथा काँसेके पात्रका अपहरण करता है, वह तीक्ष्ण पाषाणकुंडमें अपने रोमपर्यन्त वर्षोंतक स्थान पाता है ॥१००॥ तदनन्तर वह भारतवर्षमें सात जन्मतक घोड़ा होता है । फिर अधिक अङ्गवाला तथा पैरका रोगी होता है । पुंश्चली तथा उसके द्रव्यसे जीविका चलानेवाले व्यक्तिका जो अन्न खाता है, वह लालाकुंड (जिसमें लार हो लार भरी रहती है) नरकमें वास करता है॥१०१॥१ २॥

स दुस्तरे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥ ९५ ॥ देहदग्धोऽपि तद्वज्रैरनाहारश्च शब्दकृत् ॥ ताडितो यमदूतैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ९६ ॥ रौप्यगव्यांशुकानां च यश्चोरः सुरविप्रयोः ॥ तप्तपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥ ९७ ॥ त्रिजन्मनि च कंसोऽपि श्वेतरूपस्त्रिजन्मनि ॥ जन्मैकं श्वेतचिह्नश्च ततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः ॥ ९८ ॥ ततो रक्तविकारी च शूली वै मानवो भवेत् ॥ सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥९९॥ रैतं कांस्यमयं पात्रं यो हरेद्देवविप्रयोः ॥ तीक्ष्णपाषाणकुंडे च स्वलोमाब्दं वसेन्नरः ॥१००॥ स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु ॥ ततोऽधिकांगजातिश्च पादरोगी ततः शुचिः ॥ १०१ ॥ पुंश्चल्यन्नं च यो भुंक्ते पुंश्चलीजीव्यजीविनः ॥ स्वलोममानवर्षं च लालाकुण्डे वसेद्ध्रुवम् ॥ १०२ ॥ ताडितो मम दूतेन तद्भोजी तत्र दुःखितः ॥ ततश्चक्षुःशूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेण सः ॥ १०३ ॥ म्लेच्छसेवी मसीजीवी यो विप्रो भारते भुवि ॥ वसेत्स्वलोममानाब्दं मसीकुण्डे स दुःखभाक् ॥ १०४ ॥ ताडितो मम दूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ततस्त्रिजन्मनि भवेत्कृष्णवर्णः पशुः सति ॥ १०५ ॥ त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णवर्णस्त्रिजन्मनि ॥ ततः स तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ १०६ ॥ धान्यादिसस्यं तांबूलं यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥ आसनं च तथा तल्पं चूर्णकुंडे प्रयाति सः ॥ १०७ ॥ शताब्दं तत्र निवसेन्मम दूतेन ताडितः ॥ ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि ॥ १०८ ॥ ततो भवेद्वानरश्च कासव्याधियुतो भुवि ॥ वंशहीनो दरिद्रश्च अल्पायुश्च ततः

वहाँ मेरे दूत उसे मारते हैं । जिससे उसे बड़ा कष्ट मिलता है । तदनन्तर उसको नेत्ररोग तथा शूलरोग होता है । उसके बाद धीरे-धीरे वह शुद्ध हो जाता है ॥१०३॥ जो ब्राह्मण भारतवर्षमें म्लेच्छ राजाओंकी नौकरी करते हैं, मुंशी या पटवारीका काम करते हैं—वे अपने शरीरके रोमप्रमाण वर्षतक 'मसीकुंड' नरकमें जाकर क्लेश भोगते हैं ॥ १०४ ॥ मेरे दूत लोग उन्हें खूब मारते हैं । वहाँ उन्हें स्याही पीनी पड़ती है । उसके बाद हे सती ! वे तीन जन्मतक लगातार काले रङ्गके पशु होते हैं ॥ १०५ ॥ फिर तीन जन्मतक काले रङ्गके बकरे होते हैं । बादमें ताड़के पेड़ होकर शुद्ध होते हैं ॥ १०६ ॥ जो कोई किसी देवता या ब्राह्मणका धान आदि अनाज, पान, आसन, बिछावन इत्यादि चुराता है—वह 'चूर्णकुंड' नरकमें जाता है ॥ १०७ ॥ वहाँ सो वर्षतक उसे रहना पड़ता है, मेरे दूत उसको मारते रहते हैं । फिर वह तीन जन्मतक भेड़ और तीन जन्म मुर्गा होता है ॥ १०८ ॥ फिर बानर होता है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके बाद भारतमें खाँसीका रोगी, वंशहीन, दरिद्र और अल्पायु मनुष्य होता है। तब वह शुद्ध होता है ॥ १०९ ॥ जो मनुष्य किसी ब्राह्मणके धनका अपहरण करके चक्रपूजा (बौद्धोंके सद्धर्मचक्रकी पूजा या मन्त्रशास्त्रमें प्रसिद्ध चक्रपूजा) करता है (अथवा कुम्हारोंकी चाक या तेलीके कोल्हूका रोजगार करता है) वह सौ वर्षतक 'चक्रकुंड'में पड़ा रहता है। उसके ऊपर मेरे दूतोंकी मार पड़ती रहती है ॥ ११० ॥ उसके बाद उसे मनुष्ययोनि प्राप्त होती है--इसमें वह तीन जन्मतक तरह-तरहकी आधि-व्याधिवाला और वंशहीन तेली होता है, तब शुद्ध होता है ॥ १११ ॥ हे सती ! जो कोई किसी गाय या ब्राह्मणके प्रति क्रूर दृष्टि रखता है, वह सौ युगतक 'वक्रकुंड'में पड़ा रहता है ॥ ११२ ॥ उसके बाद वह सात जन्मतक टेढ़ा-मेढ़ा, हीन अङ्गवाला, दरिद्र, वंशहीन और पत्नीरहित मानव होता है ॥ ११३ ॥ उसके बाद तीन जन्मतक गृध्र, तीन जन्मतक सूअर, तीन जन्मतक बिल्ली और तीन जन्मतक मोर होता है, अन्तमें शुद्ध होता है ॥ ११४ ॥ जो ब्राह्मण कछुएका निषिद्ध मांस खाते हैं–वे सौ वर्षतक कूर्मकुण्डमें पड़े रहते हैं। वहाँ कछुए उन्हें नोच-नोचकर खाते हैं ॥ ११५ ॥ फिर वे तीन

शुचिः ॥ १०९ ॥ करोति चक्रं विप्राणां हृत्वा द्रव्यं च यो जनः ॥ स वसेच्चक्रकुण्डे च शताब्दं दंडताडितः ॥ ११० ॥ ततो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि ॥ व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचिः ॥ १११ ॥ गोधनेषु च विप्रेषु करोति वक्रतां पुमान् ॥ प्रयाति वक्रकुंडं स तिष्ठेद्युगशतं सति ॥ ११२ ॥ ततो भवेत्स वक्रांगो हीनांगः सप्तजन्मनि ॥ दरिद्रो वंशहीनश्च भाग्यहीनस्ततः शुचिः ॥ ११३ ॥ ततो भवेद्गृध्रजन्मा त्रिजन्मनि च सूकरः ॥ त्रिजन्मनि विडालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि ॥ ११४ ॥ निषिद्धं कूर्ममांसं च ब्राह्मणो यो हि भक्षति ॥ कूर्मकुंडे वसेत्सोऽपि शताब्दं कूर्मभक्षितः ॥ ११५ ॥ ततो भवेत्कूर्मजन्म त्रिजन्मनि च सूकरः ॥ त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च ततः शुचिः ॥ ११६ ॥ घृतं तैलादिकं चैव यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥ स याति ज्वालाकुंडं च भस्मकुंडं च पातकी ॥ ११७ ॥ तत्र स्थित्वा शताब्दं च स भवेत्तैलपाचितः ॥ सप्तजन्मनि मत्स्यश्च मूषकश्च ततः शुचिः ॥ ११८ ॥ सुगंधितैलं धात्रीं वा गंधद्रव्याण्यदेव वा ॥ भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥११९॥ स वसेद्दग्धकुंडे च भवेद्दग्धो दिवानिशम् ॥ स्वलोममानवर्षं च ततो दुर्गंधिको भवेत् ॥ १२० ॥ दुर्गंधिकः सप्तजन्म मृगनाभिस्त्रिजन्मनि ॥ सप्तजन्मसु मंथानस्ततो हि मानवो भवेत् ॥ १२१ ॥ बलेनैव छलेनैव हिंसारूपेण वा सति ॥ बलिष्ठश्च हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम् ॥ १२२ ॥ स

जन्मतक कछुए, तीन जन्मतक सूअर, तीन जन्मतक बिल्ली और तोन जन्मतक मोर होते हैं। तत्पश्चात् वे शुद्ध होते हैं ॥ ११६ ॥ जो कोई किसी देवता या ब्राह्मणका घी-तेल आदि चुराता है, वह पापी 'ज्वालाकुण्ड' और 'भस्मकुण्ड'में जाता है ॥ ११७ ॥ वहाँ उसे एक सौ वर्षतक रहना पड़ता है और वह तेलमें पकाया जाता है। तब सात जन्मतक मछली और सात जन्मतक चूहा होता है। अन्तमें वह शुद्ध होता है ॥ ११८ ॥ जो कोई पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें किसी देवता या ब्राह्मणका सुगन्धित (चमेली-आँवला आदिका) तेल या इत्र-फुलेल चुराता है ॥११९॥ वह 'दग्धकुंड'में जाता है। वहाँ उसे अपने शरीरके रोमप्रमाण वर्षतक दिन-रात आगमें झुलसना पड़ता है, उसके बाद वह दुर्गन्धिक होता हैं ॥ १२० ॥ सात जन्मतक वह दुर्गन्धिक, तीन जन्मतक कस्तूरी मृग और सात जन्मतक मन्थान नामक कीड़ा होता है–उसके बाद मनुष्य होता है ॥ १२१ ॥ हे सती ! जो बलिष्ठ पुरुष भारतमें अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शक्तिसे अथवा धोखा देकर किसी दूसरेकी पैतृक सम्पत्तिपर कब्जा कर लेते हैं—॥ १२२ ॥ वे 'तप्तसूर्मीकुंड'में जाते हैं। जैसे कोई जीव खूब खौलाये हुए तेलकी कड़ाहीमें पड़कर लगातार खौलता रहता है—उसी प्रकार वे भी वहाँ दिनरात जलाये जाते हैं ॥ १२३ ॥ लेकिन यद्यपि वे जलाये जाते हैं, तथापि कर्मयोगके कारण न तो उनकी देह जलती है और न भस्म ही होती है। वे पापी वहाँ सात मन्वन्तर तक रहते हैं ॥ १२४ ॥ उन्हें भोजन नहीं मिलता, वे भूखके मारे दिनरात चिल्लाया करते हैं, मेरे दूत लोग उन्हें खूब मारते हैं, उसके बाद वे विष्ठाके कीड़े होते हैं ॥ १२५ ॥ उसके बाद वे घर-खेतरहित कङ्गाल मनुष्य होते हैं, अन्तमें शुद्ध होते हैं। उसके बाद वे अपनी जातिमें जन्म लेकर शुभ आचरण करने लग जाते हैं ॥ १२६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

(नरककुंडोंका विवरण) यमराज बोले—हे सती ! इस भारतमें कोई निर्दयी तथा क्रूर व्यक्ति यदि तलवार लेकर किसी जीवका वध करता है या कोई हत्यारा धनके लोभसे किसी

वसेत्तप्तसूर्मिं च भवेत्तापी दिवानिशम् ॥ तप्ततैले यथा जीवो दग्धो भवति संततम् ॥ १२३ ॥ भस्मसान्न भवत्येव भोगे देही न नश्यति ॥ सप्तमन्वन्तरं पापी सन्तप्तस्तत्र तिष्ठति ॥ १२४ ॥ शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च भवेत्ततः ॥ १२५ ॥ ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततः शुचिः ॥ ततः स्वयोनिं संप्राप्य शुभं कर्माचरेत्पुनः ॥ १२६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सावित्र्युपाख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

॥ यम उवाच ॥ छिनत्ति जीवं खड्गेन दयाहीनः सुदारुणः ॥ नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते ॥ १ ॥ असिपत्रे वसेत्सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ तेषु यो ब्राह्मणान्हंति शतमन्वंतरं वसेत् ॥ २ ॥ छिन्नांगः संवसेत्सोऽपि खड्गधारेण सन्ततम् ॥ अनाहारः शब्दमुच्चैर्यमदूतेन ताडितः ॥ ३ ॥ मन्थानः शतजन्मानि शतजन्मानि सूकरः ॥ कुक्कुटः सप्त जन्मानि शृगालः सप्तजन्मसु ॥ ४ ॥ व्याघ्रश्च सप्त जन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मसु ॥ सप्तजन्मसु मंडूको यमदूतेन ताडितः ॥ ५ ॥ स भवेद्भारते वर्षे महिषश्च ततः शुचिः ॥ ग्रामाणां नगराणां वा दहनं यः करोति च ॥ ६ ॥ क्षुरधारे वसेत्सोऽपि छिन्नांगस्त्रियुगं सति ॥ ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्त्रो भ्रमन्महीम् ॥ ७ ॥ सप्तजन्मामेध्यभोजी कपोतः सप्त-

मनुष्यकी हत्या करता है ॥ १ ॥ वह 'असिपत्र' नामक नरककुंडमें चौदह इन्द्रके भोगकालतक पड़ा रहता है। यदि किसी हत्यारेने ब्राह्मणकी हत्या की हो तो वह सौ मन्वन्तर तक असिपत्रकुंडमें सड़ता रहता है ॥ २ ॥ एक ओर तलवारकी धारसे सदा उसकी देह छलनी होती रहती है, ऊपरसे मेरे दूतोंके डंडे पड़ते हैं। जिससे वह खूब जोर-जोरसे चिल्लाता रहता है और उसे भोजनतक नहीं मिलता ॥ ३ ॥ उसके बाद वह सौ जन्मतक मन्थान कीड़ा, सौ जन्मतक सूअर, सात जन्मतक मुर्गा, सात जन्मतक सियार ॥ ४ ॥ सात जन्मतक बाघ, तीन जन्मतक भेड़िया, सात जन्मतक मेढक और अन्तमें भारतवर्षमें भैंसा होता है, तब शुद्ध होता है। जो लोग गाँव फूँक डालते हैं या शहरका शहर आगमें भस्म कर देते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ वे 'क्षुरधार' नामक नरककुंडमें तीन युगतक रहते हैं और उनका सारा शरीर छुरेकी धारपर कटता रहता है। हे सती सावित्री ! इसके बाद वे प्रेत होते हैं और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुँहसे आग उगलते हुए धरतीपर घूमते रहते हैं ॥ ७ ॥ सात जन्मतक वे अपवित्र मल-मूत्र खाते-पीते हैं। सात जन्मतक वे कबूतर होते हैं। फिर सात जन्मतक मानवी योनिमें उनके पेटमें बड़ा शूल उठा करता है ॥८॥ सात जन्मतक गलित कुष्ठी होनेके बाद वे शुद्ध होते हैं। जो दूसरेके कानमें अपना मुँह सटाकर परायी निन्दा करता है ॥९॥ जो पराया ऐब निकालकर डींग हाँकता है और देवता एवं ब्राह्मणकी निन्दा करता है, वह 'सूचीमुख' नरकमें तीन युगतक सड़ा करता है। वहाँ उसके सारे शरीरमें सूई चुभायी जाती है ॥१०॥ फिर सात जन्म तक बिच्छू, सात जन्म तक साँप, सात जन्म तक वज्र-कीड़ा और सात जन्मतक भस्म-कीड़ा होता है ॥११॥ उसके बाद असाध्य रोगका रोगी होकर शुद्ध होता है। जो गृहस्थोंके घरमें सेंध लगाकर चोरी करता है और गाय, बकरी तथा भेंड़ चुरा ले जाता है, वह 'गोकामुख' नामक नरककुंडमें जाकर तीन युग तक मेरे दूतोंकी मार खाता है ॥१२॥१३॥ फिर सात

जन्मसु ॥ ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मनि ॥८॥ सप्तजन्म गलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ परकर्णे मुखं दत्त्वा परनिंदां करोति यः ॥९॥ परदोषे महाश्लाघी देवब्राह्मणनिंदकः ॥ सूचीमुखे वसेत्सोऽपि सूचीविद्धो युगत्रयम् ॥ १० ॥ ततो भवेद्वृश्चिकश्च सर्पश्च सप्तजन्मसु ॥ वज्रकीटः सप्तजन्म भस्मकीटस्ततः परम् ॥ ११ ॥ ततो भवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः ॥ गृहिणां हि गृहं भित्त्वा वस्तुस्तेयं करोति यः ॥ १२ ॥ गाश्च छागांश्च मेषांश्च याति गोकामुखे च सः ॥ ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्र युगत्रयम् ॥ १३ ॥ ततो भवेत्सप्तजन्म गोजातिर्व्याधिसंयुतः ॥ त्रिजन्मनि मेषजातिश्छागजातिस्त्रिजन्मनि ॥१४॥ ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः ॥ भार्याहीनो बन्धुहीनः सन्तापी च ततः शुचिः ॥१५॥ सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं च सः ॥ ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्राब्दकत्रयम् ॥ १६ ॥ ततो भवेत्सप्तजन्म गोपतिर्व्याधिसंयुतः ॥ ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः ॥ १७ ॥ हंति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नगांस्तथा ॥ स याति गजदंशं च महापापी युगत्रयम् ॥ १८ ॥ ताडितो यमदूतेन नागदन्तेन संततम् ॥ स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि ॥ १९ ॥ गोजातिर्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ जलं पिबंतीं तृषितां गां वारयति यः पुमान् ॥ २० ॥ नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम् ॥ तत्र तिष्ठति संतप्तो यावन्मन्वंतरावधि ॥ २१ ॥

जन्मतक रोगी गाय, तीन जन्मतक भेड़ और तीन जन्मतक बकरी होता है ॥ १४ ॥ उसके बाद नित्य रोगी रहनेवाला, दरिद्र, स्त्रीरहित, भाई-बन्धुसे हीन और नित्य सन्ताप करनेवाला मनुष्य होकर वह शुद्ध होता है ॥१५॥ साधारण सामान चुरानेवाला 'नक्रमुख' नामक नरककुंडमें जाता है और वहाँ मेरे दूतोंकी मार खाता हुआ तीन वर्षका समय काटता है ॥ १६ ॥ उसके बाद सात जन्म तक रोगी बैल होता है। उसके पश्चात् रोगी मनुष्य होकर अन्तमें शुद्ध होता है ॥१७॥ जो लोग गोहत्या, गज-हत्या तथा अश्व-हत्या करते हैं और (हरे-भरे) पेड़ोंको काटते हैं—वे महापापी तीन युग तक 'गजदंश' नामक नरककुंडमें पड़े रहते हैं ॥ १८ ॥ वहाँ मेरे दूत लगातार हाथीके दाँतसे उसे मारते हैं। उसके बाद तीन जन्म तक हाथी, तीन जन्म तक घोड़ा ॥ १९ ॥ तीन जन्म तक गाय और तीन जन्म तक म्लेच्छ होते हैं, तब मनुष्य होकर शुद्ध होते हैं। जो नराधम पानी पीती हुई गायको मारकर हाँक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देता है ॥ २० ॥ वह 'गोमुख' न मक नरककुंडमें जाता है-जिस कुंडमें कांमं पड़ा हुआ गर्म जल श रहता है। वहाँ एक मन्वन्तर तक वह खौलता रहता है ॥ २१ ॥ फिर जब वह मनुष्य होता है तो गोरहित, दरिद्री, महारोगी और सात जन्म तक अछूत रहनेके बाद शुद्ध होता है ॥ २२ ॥ जो महापापी शास्त्रोंका तात्पर्य न समझकर भारतवर्षमें गोहत्या, ब्रह्महत्या, नारीहत्या और अगम्या स्त्रीके साथ गमन करता है ॥२३॥ जो भिक्षुहत्या और भ्रूणहत्या अर्थात् गर्भभात करता है, वह 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें चौदह इन्द्रोंके भोगकाल तक निवास करता है ॥ २४ ॥ वहाँ मेरे दूत उसे इतनी मार मारते हैं कि उसकी हड्डी चूर हो जाती है। वह कभी आगमें झोंका जाता है, कभी काँटोंपर लिटाया जाता है ॥ २५ ॥ कभी गलाये हुए लोहेमें डाला जाता है, कभी गलाया हुआ ताँबा उसके सिर पर छोड़ा जाता है ॥ २६ ॥ उसके बाद एक हजार बार गृध्र, सौ बार सूअर, सात जन्मतक कौआ और सात जन्मतक साँप होता है ॥ २७ ॥ फिर साठ हजार वर्ष तक विष्ठाका कीड़ा, अनेक जन्मों तक बैल और अन्तमें कंगाल और कोढ़ी होता है ॥ २८ ॥ इतना सुननेके बाद सावित्रीने कहा-भगवन् !

ततो नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः ॥ सप्तजन्मांत्यजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ २२ ॥ गोहत्यां ब्रह्महत्यां च करोति ह्यतिदेशिकीम् ॥ यो हि गच्छत्यगम्यां च यः स्त्रीहत्यां करोति च ॥२३॥ भिक्षुहत्यां महापापी भ्रूणहत्यां च भारते ॥ कुम्भीपाके वसेत्सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥२४॥ ताडितो यमदूतेन चूर्ण्यमानश्च संततम् ॥ क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कंटके ॥ २५ ॥ क्षणं पतेत्तप्ततैले तप्तो येन क्षणं क्षणम् ॥ क्षणं च तप्तलोहे च क्षणं च तप्तताम्रके ॥ २६ ॥ गृध्रो जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः ॥ काकश्च सप्त जन्मानि सर्पश्च सप्तजन्मसु ॥ २७ ॥ षष्टिवर्ष-सहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ नानाजन्मसु स वृषस्ततः कुष्ठी दरिद्रकः ॥२८॥ सावित्र्युवाच ॥ विप्रहत्या च गोहत्या किंविधा चातिदेशिकी ॥ का वा नृणामगम्या च को वा सन्ध्याविहीनकः ॥२९॥ अदीक्षितः पुमान्को वा को वा तीर्थप्रतिग्रहो ॥ द्विजः को वा ग्रामयाजी को वा विप्रोऽथ देवलः ॥ ३० ॥ शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः ॥ एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदां वर ॥ ३१ ॥ धर्मराज उवाच ॥ श्रीकृष्णे च तदर्चा-यामन्येषां प्रकृतौ सति ॥ शिवे च शिवलिंगे च सूर्ये सूर्यमणौ तथा ॥३२॥ गणेशे वाऽथ दुर्गायामेवं सर्वत्र सुन्दरि ॥ यः करोति भेदबुद्धिं ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ३३ ॥ स्वगुरौ स्वेष्टदेवे च जन्मदातरि मातरि ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ३४ ॥ वैष्णवेषु च भक्तेषु ब्राह्मणे-

यह तो बतलाइये कि 'आतिदेशकी' ब्राह्मणहत्या और गोहत्या कैसी होती है ? मनुष्योंको किन स्त्रियाके साथ भोग नहीं करना चाहिये ? सन्ध्या-विहीन किसे कहते हैं ? ॥ २९ ॥ अदीक्षित पुरुषोंके क्या लक्षण हैं ? तीर्थ-प्रतिग्रह किसे कहते हैं ? ग्रामयाजी ब्राह्मण और देवल ब्राह्मण किसे कहते ह ? ॥ ० ॥ हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! शूद्रोंके घर रसोईब नानेवाले, प्रमत्त और वृषलीपति ब्राह्मणोंके लक्षण बतलाइए ॥ ३१ ॥ धर्मराजने कहा-हे सावित्री ! जो लोग भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी मूर्तिमें, अन्य देवताओं और उनकी प्रतिमामें, शिवजी तथा शिवलिङ्गमें, सूर्य और सूर्यकान्तमणिमें तथा गणेशजी और गणेशमूर्तिमें, दुर्गाजी और दुर्गाजीकी प्रतिमामें भेद मानते हैं-हे सुन्दरी ! वे ब्रह्महत्याके अपराधी होते हैं ॥३२॥३३॥ जो लोग अपने गुरु, अपने इष्टदेवता, अपने जनक और जननीमें भेद मानते हैं—वे ब्रह्महत्याके अपराधी हैं ॥३४॥ लो लोग विष्णुभगवान्‌के भक्तों और दूसरे देवताओंकी पूजा करनेवाले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्राह्मणोंमें भेद मानते हैं–उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है। जो लोग ब्राह्मणके चरणोदक और शालग्रामके चरणामृतमें भेद मानते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो लोग शिवजीके नैवेद्य और विष्णुभगवानके नैवेद्यमें भेद मानते हैं––उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ३७ ॥ जो लोग भगवान श्रीकृष्ण––जो सर्वेश्वरोंके ईश्वर, समस्त कारणोंके आदि-कारण, सबके आदिस्वरूप, सब देवताओंके आराध्यदेव, सबके अन्तर्यामी ॥३८॥ निर्गुण, एक होते हुए भी अपनी योगमायाकी शक्तिसे अनेक रूप धारण करनेवाले ईश्वर हैं––उनमें और ईशान शिवजीमें भेदभाव रखते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ३९ ॥ इसी प्रकार जो मनुष्य वैष्णवभक्त और शक्तिके उपासकोंसे द्वेष रखते तथा उनके शाक्त तंत्रोंकी निन्दा करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ४० ॥ जो लोग वेदोक्त विधानसे अपने पितरों और देवताओंकी न तो स्वयं पूजा करते हैं और न दूसरोंको करने देते हैं––बल्कि निषेध करनेके लिए प्रचार करते हैं–उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ४१ ॥ जो लोग भगवान हृषीकेश–जो पवित्रोंमें पवित्रतम, ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप, सनातन, वैष्णवों तथा देवताओंके एकमात्र

ष्वितरेषु च ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ३५ ॥ विप्रपादोदके चैव शालग्रामोदके तथा ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु
सः ॥३६॥ शिवनैवेद्यके चैव हरिनैवेद्यके तथा ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ३७ ॥ सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे ॥ सर्वाद्ये
सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि ॥३८॥ माययाऽनेकरूपे वाप्येक एव हि निर्गुणे ॥ करोतीशेन भेदं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ३९ ॥ शक्तिभक्ते
द्वेषबुद्धिं शक्तिशास्त्रे तथैव च ॥ द्वेषं यः कुरुते मर्त्यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ४० ॥ पितृदेवार्चनं यो वा त्यजेद्वेदनिरूपितम् ॥ यः करोति निषिद्धं
च ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ४१ ॥ यो निंदति हृषीकेशं तन्मंत्रोपासकं तथा ॥ पवित्राणां पवित्रं च ज्ञानानंदं सनातनम् ॥ ४२ ॥ प्रधानं वैष्णवानां
च देवानां सेव्यमीश्वरम् ॥ ये नार्चयंति निन्दंति ब्रह्महत्यां लभंति ते ॥ ४३ ॥ ये निंदंति महादेवीं कारणब्रह्मरूपिणीम् ॥ सर्वशक्तिस्वरूपां च
प्रकृतिं सर्वमातरम् ॥ ४४ ॥ सर्वदेवस्वरूपां च सर्वेषां वंदितां सदा ॥ सर्वकारणरूपां च ब्रह्महत्यां लभंति ते ॥ ४५ ॥ कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं
च सुपुण्यदाम् ॥ शिवरात्रिं तथा चैकादशीं वारे रवेस्तथा ॥ ४६ ॥ पंच पर्वाणि पुण्यानि ये न कुर्वंति मानवाः ॥ लभंति ब्रह्महत्यां ते चांडाला-
धिकपापिनः ॥ ४७ ॥ अंबुवाच्यां भूखननं जलशौचादिकं च ये ॥ कुर्वंति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां लभंति ते ॥ ४८ ॥ गुरुं च मातरं तातं साध्वीं

आराधनीय ईश्वर हैं–उनकी निन्दा करते हैं, उनके मन्त्रकी उपासना करनेवालोंकी निन्दा करते हैं और स्वयं उनकी पूजा नहीं करते–उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जो लोग मूलप्रकृति महादेवी- जो कारणब्रह्मस्वरूपिणी, सर्वदेवस्वरूपिणी, जगज्जननी, सर्वशक्तिरूपिणी, विश्ववन्द्या और सर्वकारणरूपिणी हैं, उन श्रीभुवनेश्वरी देवीकी निन्दा करते हैं–उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥४४॥४५॥ जो लोग पुण्यदायक श्रीकृष्णजन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि, एकादशी और रविवार इन पाँच पुण्य पर्वके दिन व्रत नहीं करते, वे चांडालसे भी बढ़कर अधिक पापी होते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥४६॥४७॥ जो लोग इस भारतवर्षमें अम्बुवाची अर्थात् आषाढ़ बदी दशमीसे त्रयोदशी तिथि पर्यन्त जब पृथ्वी रजस्वला रहती है, उन दिनोंमें पृथ्वी खोदते हैं या जलमें शौचादि करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ४८ ॥ जो अपने गुरु, माता, पिता, पति-सेवापरायणा पत्नी पुत्र-पुत्री–इन अनि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न्दनीय आचरणवालोंका भरण-पोषण नहीं करते, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ४९ ॥ जिसका विवाह नहीं हुआ हो, जिसने अपने जीवनमें पुत्रका मुख न देखा हो अर्थात् निःसन्तान हो और जो विष्णु भगवानका भक्त न हो, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥५०॥ जा विना भगवानको नैवेद्य चढ़ाये स्वयं ही भोग लगा लेता हो, जो नित्य भगवान विष्णु-की पूजा नहीं करता और जो पुनीत पार्थिव शिवलिङ्गकी पूजा नहीं करता, उसको ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ५१ ॥ यहाँतक आतिदेशिकी ब्रह्महत्याका वर्णन किया गया। अब आतिदेशिकी गोहत्याके बारेमें वर्णन कर रहा हूँ, सुनो । जो किसी व्यक्तिको गायको मारते हुए देखकर भी उसे मना नहीं करता और जो गाय तथा ब्राह्मणके बीचमेंसे चला जाता है, उसे गोहत्याका पाप लगता है ॥ ५२ ॥ जो मूर्ख ब्राह्मण गायको डंडेसे मारते हैं और बैलपर चढ़ते हैं, उन्हें प्रतिदिन गोहत्याका पाप लगता है। इसमें संशय नहीं है ॥ ५३ ॥ जो सबका जूठा बचा हुआ अन्न गायको खिलाते हैं, जो बैलगाड़ी हाँकनेवाले ब्राह्मणको भोजन कराते हैं और जो बैलगाड़ी चलानेवाले ब्राह्मणके अन्नको स्वयं खाते हैं,

भार्यां सुतं सुताम् ॥ अनिंद्यां यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ४९ ॥ विवाहो यस्य न भवेन्न पश्यति सुतं तु यः ॥ हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ५० ॥ हरेरनैवेद्यभोजी नित्यं विष्णुं न पूजयेत् ॥ पुण्यं पार्थिवलिंगं च ब्रह्महाऽसौ प्रकीर्तितः ॥ ५१ ॥ गोप्रहारं प्रकुर्वंतं दृष्ट्वा यो न निवारयेत् ॥ याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्यां च लभेत्तु सः ॥ ५२ ॥ दंडैर्गास्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृषवाहनः ॥ दिने दिने गोवधं च लभते नात्र संशयः ॥ ५३ ॥ ददाति गोभ्य उच्छिष्टं भोजयेद्वृषवाहकम् ॥ भुनक्ति वृषवाहान्नं स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ५४ ॥ वृषलीपतिं याजयेद्यो भुंक्तेऽन्नं तस्य यो नरः ॥ गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्र संशयः ॥ ५५ ॥ पादं ददाति वह्नौ यो गाश्च पादेन ताडयेत ॥ गेहं विशेदधौतांघ्रिः स्नात्वा गोवधमाप्नुयात् ॥५६॥ यो भुंक्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धांघ्रिरेव च॥ सूर्योदये च यो भुंक्ते स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥५७॥ अवीरान्नं च यो भुंक्ते योनिजीव्यस्य च द्विजः ॥ यस्त्रिसंध्याविहीनश्च गोहत्यां लभते च सः ॥५८॥ स्वभर्तरि च देवे वा भेदबुद्धिं करोति या ॥ कटूक्त्या ताडयेत्कांतं सा गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ५९ ॥ गोमार्गवर्जनं कृत्वा ददाति सस्यमेव वा ॥ तडागे वा तु दुर्गे वा स गोहत्यां लभे-

उन्हें गोहत्याका पाप लगता है ॥ ५४ ॥ जो वृषलीपतिके यहाँ यज्ञ कराते हैं, उसके दिये हुए अन्नको खाते हैं—उन्हें एक सौ गोहत्याका पाप लगता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५५ ॥ जो अग्निदेवताको पैरसे छूते हैं, गायको पैरसे मारते हैं और स्नान करके आनेके बाद विना पैर धोये घर या देवमन्दिरमें चले जाते हैं—उन्हें गोहत्याका पाप लगता है ॥ ५६ ॥ जो लोग गीले पैर भोजन करते हैं, गीले पैर सोते हैं और सूर्योदयके समय भोजन करते हैं—उन्हें निःसन्देह गोहत्याका पाप लगता है ॥ ५७ ॥ जो द्विज पुत्र-विहीन नारियों तथा कुटनीका काम करनेवालियोंका अन्न खाते हैं और जो त्रिकाल संध्या नहीं करते—उन्हे गोहत्याका पाप लगता है ॥ ५८ ॥ जो स्त्री अपने पति और देवतामें भेद मानती हैं तथा अपने पतिसे गाली-गलौज करती और मारती है, उसे गोहत्याका पाप लगता है ॥५९॥ जो मनुष्य गोचरभूमिको जोतकर उसमें अनाज बोता है या तालाबको सुखाकर उसमें अनाज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपजाता है या किलेको नष्ट करके उसमें खेती करता है–उसे निश्चय ही गोहत्याका पाप लगता है ॥६ ॥ जो अपने पुत्रके लोभसे अथवा अज्ञानके कारण गोवधके प्रायश्चित्तमें व्यतिक्रम करता है अर्थात् पुत्रने गोहत्या की है–यह जान करके भी जो उससे प्रायश्चित्त नहीं कराता, उसे अवश्य गोहत्याका पाप लगता है ॥६१॥ जो कोई गाय रखनेवाला व्यक्ति अराजकताके समय और दैवोपद्रवके अवसरपर गायकी रक्षा नहीं करता, बल्कि वह मूर्ख गायको कष्ट पहुँचाता है––उसे गोहत्याका पाप लगता है ॥ ६२ ॥ जो व्यक्ति प्राणी, वमूर्ति, अग्नि, जल, नैवेद्य, पुष्प और भोज्य पदार्थको लाँघता है–उसे अवश्य गोहत्याका पाप लगता है ॥६३॥ जो व्यक्ति किसी अतिथिके आनेपर सदा यही कहा करता है कि हमारे पास कुछ नहीं है, सदा ऐसा झूठ बोला करता है और जो धोखेबाज हो, देवताओंको निन्दा करता हो, गुरुसे बुरा मानता हो–उसे अवश्य ही गोहत्याका पाप लगता है ॥६४॥ हे सती ! जो देवताकी मूर्ति, गुरु और ब्राह्मणको देखकर आदरके साथ प्रणाम नहीं करता–उसे निश्चय ही गोहत्याका पाप लगता है ॥६५॥ जो ब्राह्मण प्रणाम करनेवाले व्यक्तिको मारे क्रोधके आशीर्वाद नहीं देते और विद्या-

द्ध्रुवम् ॥ ६० ॥ प्रायश्चित्ते गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम् ॥ पुत्रलोभादथाज्ञानात्स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ६१ ॥ राजके दैवके यत्नाद्गोस्वामी गां न रक्षति ॥ दुःखं ददाति यो मूढो गोहत्यां स लभेद्ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ प्राणिनो लंघयेद्यो हि देवार्चामनलं जलम् ॥ नैवेद्यं पुष्पमन्नं च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ६३ ॥ शश्वन्नास्तीति यो वादी मिथ्यावादी प्रतारकः ॥ देवद्वेषी गुरुद्वेषी स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ६४ ॥ देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं सति ॥ संभ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ६५ ॥ न ददात्याशिषं कोपात्प्रणताय च यो द्विजः ॥ विद्यार्थिने च विद्यां च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ६६ ॥ गोहत्या विप्रहत्या च कथिता चातिदेशिकी ॥ गम्यां स्त्रियं नृणामेव निबोध कथयामि ते ॥ ६७ ॥ स्वस्त्री गम्या च सर्वेषामिति वेदानुशासनम् ॥ अगम्या च तदन्या या चेति वेदविदो विदुः ॥ ६८ ॥ सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुंदरि ॥ अत्यगम्या हि या याश्च निबोध कथयामि ताः ॥ ६९ ॥ शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी ॥ अत्यगम्या च निंद्या च लोके वेदे पति-व्रते ॥ ७० ॥ शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा ब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥ तत्समं ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं लभेद्ध्रुवम् ॥ ७१ ॥ शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां

र्थियोंको विद्यादान नहीं देते–उन्हें निश्चय ही गोहत्याका पाप लगता है ॥ ६६ ॥ यहाँ तक तो मैंने आतिदेशिकी (शास्त्रानुमोदित) ब्राह्मणहत्या और गोहत्याका वर्णन किया, अब मनुष्योंको किस स्त्रीके साथ भोग करना चाहिए–इसके बारेमें कह रहा हूँ, सुनो ॥ ६७ ॥ सभी मनुष्योंको केवल अपनी स्त्रीके साथ भोग करना चाहिए–यह वेदभगवानकी आज्ञा है। उसके अतिरिक्त बाकी स्त्रियोंके साथ गमन नहीं करना चाहिए—यह धर्मशास्त्रके रचयिता महर्षियोंका आदेश है ॥ ६८ ॥ हे सुन्दरि ! यह तो सामान्य नियम हुआ। कुछ विशिष्ट नियम भी हैं। जो स्त्रियाँ 'अति अगम्य' हैं, उन्हें सुनो ॥ ६९ ॥ हे पतिव्रते ! शूद्रोंके लिए ब्राह्मण-पत्नी अति अगम्य है और ब्राह्मणोंके लिए शूद्र-स्त्री अति अगम्य है। यह दुराचार लोकमें और वेदमें अत्यन्त निन्दनीय कहा गया है ॥७०॥ यदि कोई शूद्र ब्राह्मणीके साथ भोग करता है तो उसे सौ ब्रह्महत्याका पाप लगता है और उस शूद्रके साथ ब्राह्मणीको भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'कुम्भीपाक' नरकमें जाना पड़ता है ॥ ७१ ॥ अतः शूद्रोंका कर्तव्य है कि ब्राह्मणपत्नीसे दूर रहें और ब्राह्मणोंका भी धर्म है कि वे शूद्रपत्नीसे बचें । यदि कोई ब्राह्मण शूद्र-पत्नीको रख लेता है तो उसे 'वृषलीपति' कहते हैं ॥ ७२ ॥ उसे ब्राह्मणजातिसे वहिष्कृत कर देना चाहिए । वह चाण्डालसे भी बढ़कर पतित है । उसका दिया हुआ पिण्ड विष्ठाके समान और तर्पण मूत्रके समान हो जाता है ॥ ७३ ॥ उसका दिया हुआ पिण्डा-पानी देवताओं और पितरोंको नहीं मिलता । करोड़ों जन्ममें पूजा-पाठ एवं जप-तप करके उस ब्राह्मणने जितना भी पुण्य सञ्चय किया हो ॥७४॥ वह सब पुण्य शूद्रा स्त्रीके साथ गमन करनेसे नष्ट हो जाता है–इसमें संदेह नहीं है । जो ब्राह्मण मदिरा पीते हैं, वे भी वृषलीपति होते हैं ॥ ७५ ॥ जिन वैष्णव ब्राह्मणोंके शरीरमें गरम करके लाल लोहेसे चक्रका चिह्न दागा गया हो, जिन शैव ब्राह्मणोंके शरीरमें गरम लोहेसे त्रिशूलका चिह्न दागा गया हो और जो ब्राह्मण एकादशीके दिन भोजन करते हैं–वे 'कुम्भीपाक' नरकमें जाते हैं ॥ ७६ ॥ गुरुकी धर्मपत्नी, राजाकी रानी, सौतेली माता, पुत्री, पतोहू, सास, बहन, सगे भाइयोंकी स्त्रियाँ, मामी, दादी, नानी, मौसी,

शूद्रकामिनी ॥ यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः ॥७२॥ स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चांडालात्सोऽधमः स्मृतः ॥ विष्ठासमश्च तत्पिंडो मूत्रं तस्य च तर्पणम् ॥ ७३ ॥ न पितॄणां सुराणां च तद्दत्तमुपतिष्ठति ॥ कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्यार्चातपसाऽर्जितम् ॥ ७४ ॥ द्विजस्य वृषलीलोभान्नश्यत्येव न संशयः ॥ ब्राह्मणश्च सुरापीतिर्विड्भोजी वृषलीपतिः ॥ ७५ ॥ तप्तमुद्रादग्धदेहस्तप्तशूलांकितस्तथा ॥ हरिवासरभोजी च कुंभीपाकं व्रजेद्द्विजः ॥ ७६ ॥ गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीं मातरं ध्रुवम् ॥ सुतां पुत्रवधं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सतीम् ॥ ७७ ॥ सहोदरभ्रातृजायां मातुलानीं पितुः प्रसूम् ॥ मातुः प्रसूं तत्स्वसारं भगिनीं भ्रातृकन्यकाम् ॥७८॥ शिष्यां शिष्यस्य पत्नीं च भागिनेयस्य कामिनीम् ॥ भ्रातुः पुत्रप्रियां चैवात्यगम्या आह पद्मजः ॥ ७९ ॥ एताः कामेन कांतो यो व्रजेद्वै मानवाधमः ॥ स मातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशतं व्रजेत् ॥ ८० ॥ अकर्मार्होऽप्यसंस्पृश्यो लोके वेदे च निन्दितः ॥ स याति कुम्भीपाके च महापापी सुदुष्करे ॥ ८१ ॥ करोत्यशुद्धां संध्यां वा न संध्यां वा करोति च ॥ त्रिसंध्यं वर्जयेद्यो वा संध्याहीनश्च स द्विजः ॥८२॥ वैष्णवं च तथा शैवं शाक्तं सौरं च गाणपम् ॥ योऽहंकारान्न गृह्णाति मंत्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः ॥८३॥

भतीजी, शिष्या, चेलेकी स्त्री, भाञ्जेकी स्त्री और भाईके पुत्रकी स्त्री–ये अगम्य हैं । ऐसा स्वयं ब्रह्माजीने कहा है ॥७७-७९॥ जो नराधम काममोहित होकर इनके साथ भोग करता है, वह मानो अपनी माताके साथ बुरा कर्म करता है, ऐसा वेदमें लिखा है और ऐसे व्यक्तिको सौ ब्राह्मणोंके वधका पाप लगता है ॥ ८ ॥ उसे कोई कर्म करनेका अधिकार नहीं है, वह अस्पृश्य (अछूत) है, लोकमें और वेदमें सब जगह उसकी निंदा होती है । वह महापापी अत्यन्त क्लेशप्रदायक 'कुम्भीपाक' नरकमें जाता है ॥८१॥ (संध्याहीन ब्राह्मणकी परिभाषा) जो अशुद्ध अर्थात् शास्त्रोक्त विधिसे रहित संध्या करते हैं, जो एकदम ही नहीं करते और जो त्रिकाल संध्या नहीं करते–ये संध्याहीन ब्राह्मण कहे जाते हैं ॥८२॥ (अदीक्षितके लक्षण) जो अहङ्कारके कारण न तो विष्णुभगवानकी मन्त्रदीक्षा लेते हैं, न शिवजीका मन्त्र लेते हैं, न भुवनेश्वरी देवीका मन्त्र लेते हैं, न सूर्यनारायणका मन्त्र लेते हैं और न गणेशजीका मन्त्र लेते हैं–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे ही 'अदीक्षित' कहे जाते हैं ॥८३॥ गङ्गाजीके प्रवाहके दोनों ओरकी चार हाथकी चौड़ी जमीनको गङ्गागर्भ कहते हैं, वहींपर भगवान नारायण निवास करते हैं ॥ ८४ ॥ अतः उसका नाम 'नारायणक्षेत्र' पड़ गया है। जो लोग ऐसे नारायणक्षेत्रमें मृत्युलाभ करते हैं, वे विष्णुभगवानके परमपद को पहुँच जाते हैं। वाराणसी, बदरिकाश्रम, गङ्गासागरसङ्गम, पुष्कर, गंडक और गंगाके संगम-पर स्थित हरिहरक्षेत्र, काठियावाड़के जूनागढ़में स्थित प्रभासक्षेत्र, आसाममें स्थित कामरूपका कामाख्यापीठ, हरिद्वार, केदारक्षेत्र, मातृपुरका रेणुकापीठ, सरस्वती नदीके किनारे, पवित्र वृन्दावन, गोदावरी नदी, कौशिकी नदी, प्रयागका त्रिवेणीसङ्गम और हिमालय इन तीर्थस्थानोंमें जो जान-बूझकर दान लेते हैं—वे तीर्थप्रतिग्रही 'कुम्भीपाक' नरकमें जाते हैं ॥८५–८८॥ जो शूद्रोंके यहाँ नौकरी करते हैं और शूद्रोंके पुरोहित हैं—उन्हें 'ग्रामयाजी' कहते हैं। जो देवताकी पूजा करके अपनी आजीविका चलाते हैं—उन्हें 'देवल' अर्थात् पुजारी कहते हैं ॥८९॥ जो शूद्रोंके यहाँ रसोई बनाकर अपनी जीविका चलाते हैं—उन्हें 'सूपकार' कहते हैं। जो संध्यावन्दन नहीं करते—वे ही 'प्रमत्त' अथवा 'पतित' कहे जाते हैं ॥ ९० ॥ हे कल्याणी! यही

प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् ॥ तत्र नारायणः स्वामी गङ्गागर्भांतरे वसेत् ॥ ८४ ॥ तत्र नारायणक्षेत्रे मृतो याति हरेः पदम् ॥ वाराणस्यां बदर्यां च गङ्गासागरसंगमे ॥ ८५ ॥ पुष्करे हरिहरक्षेत्रे प्रभासे कामरूस्थले ॥ हरिद्वारे च केदारे तथा मातृपुरेऽपि च ॥ ८६ ॥ सरस्वतीनदीतीरे पुण्ये वृन्दावने वने ॥ गोदावर्यां च कौशिक्यां त्रिवेण्यां च हिमाचले ॥ ८७ ॥ एषु तीर्थेषु यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः ॥ स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाके प्रयाति सः ॥ ८८ ॥ शूद्रसेवी शूद्रयाजी ग्रामयाजीति कीर्तितः ॥ तथा देवोपजीवी च देवलः परिकीर्तितः ॥ ८९ ॥ शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः ॥ संध्यापूजनहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः ॥९०॥ उक्तं सर्वं मया भद्रे लक्षणं वृषलीपतेः ॥ एते महापातकिनः कुम्भीपाकं प्रयान्ति ते ॥ ९१ ॥ कुण्डान्यन्यानि ये यांति निबोध कथयामि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

॥ धर्मराज उवाच ॥ देवसेवां विना साध्वि न भवेत्कर्मकृंतनम् ॥ शुद्धकर्म शुद्धबीजं नरकश्च कुकर्मणा ॥ १ ॥ पुंश्चल्यन्नं च यो भुंक्ते योऽस्यां गच्छेत्पतिव्रते ॥ स द्विजः कालसूत्रं च मृतो याति सुदुर्गमम् ॥ २ ॥ शतवर्षं कालसूत्रे स्थिरीभूतो भवेद्ध्रुवम् ॥ तत्र जन्मनि रोगी च

सब वृषलीपतिके लक्षण हैं—जिनका वर्णन मैंने कर दिया। ये सब महापापी हैं और 'कुम्भीपाक' नामक नरकके अधिकारी हैं ॥ ९१ ॥ अब दूसरे पापी लोग जिन नरककुंडोंमें जाते हैं—उनका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सावित्र्युपाख्याने भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

(नरककुंडोंका विवरण) धर्मराजने कहा—हे साध्वी सावित्री! देवताओंकी पूजाके बिना कर्मबन्धनसे छुटकारा नहीं मिल सकता। सुकर्मका शुद्ध बीज होता है और कुकर्म करनेसे अशुद्ध बीज होता है अर्थात् नरक मिलता है ॥ १ ॥ हे पतिव्रते! जो ब्राह्मण 'पुंश्चली' स्त्रियोंका अन्न खाते हैं या पुंश्चली स्त्रियोंके साथ सम्भोग करते हैं—वे मरनेके बाद अतीव कष्टदायक 'कालसूत्र' नामक नरककुंडमें जाते हैं ॥२॥ वे कालसूत्र नरकमें सौ वर्षतक पड़े रहते हैं। उसके बाद उन्हें नरयोनि मिलती है—जिसमें वे जीवनपर्यन्त रोगी रहते हैं, तब शुद्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होते हैं ॥३॥ जिन स्त्रियोंके एक पति होते हैं—वे 'पतिव्रता', दो पतिवाली 'कुलटा', तीन पतिवाली 'धर्षिणी', चार पतिवाली 'पुंश्चली', ॥ ४ ॥ पाँच-छ पतिवाली 'वेश्या' और सात-आठ पतिवाली स्त्री 'पुङ्गी' कहलाती हैं। नौ या इससे अधिक पतिवाली 'महावेश्या' होती है। सभी जातियोंका कर्तव्य है कि इन महावेश्याओंके साथ सम्पर्क न रखें। क्योंकि ये अस्पृश्य हैं ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण 'कुलटा', 'धर्षिणी', 'पुंश्चली' 'पुङ्गी', 'वेश्या' एवं 'महावेश्या'के साथ सम्भोग करते हैं—वे निश्चय ही 'मत्स्यादन' नामक नरककुण्डमें जाते हैं ॥ ६ ॥ वहाँ कुलटागामो सौ वर्ष तक, धर्षिणीगामी चार सौ वर्षतक, पुंश्चलागामी छ सौ वर्षतक, पुङ्गीगामी एक हजार वर्षतक और महावेश्यागामी दस हजार वर्षतक पड़े रहते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ वहाँ रहते समय वे मेरे दूतोंकी मार खाते हैं और तरह-तरहकी यन्त्रणा सहते हैं। अपनी अवधि पूरी कर लेनेके बाद कुलटगामो तीतर, धर्षिणी(धृष्टा)गामी कौआ, पुंश्चलीगामी कोयल, वेश्यागामी भेड़िया और पुंगीगामी सूअर होते हैं। वे सात बार इन विविध योनियोंमें जन्म लेते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ महावेश्यागामी सेमरके पेड़ होते हैं। जो अज्ञानी चन्द्रग्रहण और

ततः शुद्धो भवेद्द्विजः ॥ ३ ॥ पतिव्रता चैकपतौ द्वितीये कुलटा स्मृता ॥ तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चलोत्यपि ॥ ४ ॥ वेश्या च पंचमे षष्ठे पुङ्गी च सप्तमेऽष्टमे ॥ तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु ॥ ५ ॥ यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि ॥ पुंगीं वेश्यां महावेश्यां मत्स्योदे याति निश्चितम् ॥ ६ ॥ शताब्दं कुलटागामी धृष्टागामी चतुर्गुणम् ॥ षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामी गुणाष्टकम् ॥ ७ ॥ पुंगीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः ॥ महावेश्याकामुकश्च ततो दशगुणं वसेत् ॥ ८ ॥ तत्रैव यातनां भुंक्ते यमदूतेन ताडितः ॥ तित्तिरिः कुलटागामी धृष्टागामी च वायसः ॥ ९ ॥ कोकिलः पुंश्चलीगामी वेश्यागामी वृकः स्मृतः ॥ पुङ्गीगामी शूकरश्च सप्तजन्मनि भारते ॥ १० ॥ महावेश्याप्रगामी च जायते शाल्मलीतरुः ॥ यो भुंक्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः ॥ ११ ॥ अरुंतुदं स यात्येवाप्यन्नमानाब्दमेव च ॥ ततो भवेन्मानवश्चाप्युदरे रोगपीडितः ॥ १२ ॥ गुल्मयुक्तश्च काणश्च दंतहीनस्ततः शुचिः ॥ वाक्प्रदत्तां स्वकन्यां च योऽन्यस्मै प्रददाति च ॥ १३ ॥ स वसेत्पांसुकुण्डे च तद्भोजी शतवत्सरम् ॥ तद्द्रव्यहारो यः साध्वि पांसुवेष्टे शताब्दकम् ॥ १४ ॥ निवसेच्छरशय्यायां मम दूतेन ताडितः ॥ भक्त्या न पूजयेद्विप्रः शिवलिंगं च पार्थिवम् ॥ १५ ॥ स याति शूलिनः पापाच्छूलप्रोतं सुदारुणम् ॥ स्थित्वा शताब्दं तत्रैव श्वापदः सप्तजन्मसु ॥ १६ ॥ ततो भवेद्दे-

सूर्यग्रहणके समय भोजन करते हैं ॥ ११ ॥ वे अन्नकी संख्याके प्रमाण वर्षतक मर्मस्थलको खा जानेवाले 'अरुन्तुदकुण्ड'में जाते हैं। फिर वे पेटके रोगी मनुष्य होते हैं। १२ ॥ उनके पेटमें प्लीहारोग हो जाता है, वे काने और दन्तरहित हो जाते हैं, तब शुद्ध होते हैं। जो अपनी कन्याका वाग्दान करके फिर किसी दूसरे व्यक्तिके साथ विवाह कर देते हैं ॥ १ ॥ वे 'पांसुभोज्य कुण्ड'में जाते हैं। वहाँ धूल फाँकते हुए सौ वर्षतक उन्हें रहना पड़ता है। हे साध्वी! जो अपनी कन्याका विक्रय करते हैं—वे सौ वर्षतक 'पांसुवेष्टकुण्ड'में पड़े रहते हैं ॥ १४॥ वहाँ उन्हें बाणकी सेजपर सोना पड़ता है और ऊपरसे मेरे दूतोंके डंडे पड़ते हैं। जो ब्राह्मण भक्तिपूर्वक शिवजीके पार्थिव लिङ्गकी पूजा नहीं करते, वे शूली (महादेव)के प्रति ऐसा पाप करनेके कारण अत्यन्त भयानक 'शूलप्रोत' नामक नरककुण्डमें जाते हैं। वहाँ सौ वर्षतक रहनेके बाद वे सात जन्मंतक पशु होते हैं॥१५॥१६॥ उसके बाद सात जन्मतक पुजारी होते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, तब शुद्ध होते हैं। जो कुतर्क द्वारा शास्त्रार्थमें अपने विपक्षी ब्राह्मणकी बुद्धिको कुण्ठित करके आतंकसे उसका हृदय कम्पित कर देता है॥ १७ ॥ वह पराजित ब्राह्मणके रोमप्रमाण वर्षतक 'प्रकम्पनकुण्ड'में निवास करता है। जो स्त्री कोपके कारण लाल-लाल आँखें निकालकर अपने पतिकी ओर देखती और डाँटती हैं, वह 'उल्कामुख कुण्ड'में जाती है। वहाँ मेरे दूत उसके मुँहमें आग लगा देते हैं ॥ १८॥ १९ ॥ वे उसके सिरपर डंडेका प्रहार करते हैं और उसके पतिके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक उस नरककुंडमें उसे रहना पड़ता है। इतनी अवधि बीत जानेपर वह भारतमें उत्पन्न होकर सात जन्मतक विधवा होती है ॥२०॥ वैधव्य जीवन व्यतीत करनेके पश्चात् वह रोगिणी होती है, तब शुद्ध होती हैं। जो ब्राह्मणी शूद्रके साथ भोग कराती है—वह मरनेके बाद 'अन्धकूप' नरकमें जाती है ॥२१॥ वहाँ वह अन्धकारमें दिन-रात पड़ी रहती है, वहाँ चारों ओर गरम शौचजल भरा रहता है। वही गरम शौचका जल उसे पीना पड़ता है। वह बड़ा कष्टमय जीवन बिताती है। मेरे दूत उसे यन्त्रणा देते रहते हैं ॥२२॥ उस शौचजलमें वह चौदह इन्द्रके पतनकालतक पड़ी रहती है। उसके बाद

वलश्च सप्तजन्म ततः शुचि ॥ करोति कुण्ठितं विप्रं यद्धिया कंपते द्विजः ॥ १७ ॥ प्रकंपने वसेत्सोऽपि विप्रलोमाब्दमेव च ॥ प्रकोपवदना कोपा-
त्स्वामिनं या च पश्यति ॥ १८ ॥ कटूक्तिं तं प्रवदति सोल्मुकं संप्रयाति हि ॥ उल्कां ददाति तद्वक्त्रे सततं मम किंकरः ॥ १९ ॥ दण्डेन ताडये-
न्मूर्ध्नि तल्लोमाब्दप्रमाणकम् ॥ ततो भवेन्मानवी च विधवा सप्तजन्मसु ॥ २० ॥ सा भुक्त्वा चैव वैधव्यं व्याधियुक्ता ततः शुचिः ॥ या
ब्राह्मणी शूद्रभोग्या चांधकूपे प्रयाति सा ॥ २१ ॥ तप्तशौचोदके ध्वांते तदाहारी दिवानिशम् ॥ निवसेदतिसन्तप्ता मम दूतेन ताडिता
॥ २२ ॥ शौचोदके निमग्ना सा यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ काकी जन्मसहस्राणि शतजन्मानि शूकरी ॥ २३ ॥ शृगाली शतजन्मानि
शतजन्मानि कुक्कुटी ॥ पारावती सप्तजन्म वानरी सप्तजन्मसु ॥ २४ ॥ ततो भवेत्सा चांडाली सर्वभोग्या च भारते ॥ ततो भवेच्च
रजकी यक्ष्मग्रस्ता च पुंश्चली ॥ २५ ॥ ततः कुष्ठयुता तैलकारी शुद्धा भवेत्ततः ॥ निवसेद्वेधने वेश्या पुंगी च दंडताडने ॥ २६ ॥ जलरंध्रे वसे-
द्वेश्या कुलटा देहचूर्णके ॥ स्वैरिणी दलने चैव धृष्टा च शोषणे तथा ॥ २७ ॥ निवसेद्यातनायुक्ता मम दूतेन ताडिता ॥ विण्मूत्रभक्षा सततं याव-
न्मन्वंतरं सति ॥ २८ ॥ ततो भवेद्विट्कृमिश्च लक्षवर्षं ततः शुचिः ॥ ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत्क्षत्रियां वाऽपि क्षत्रियः ॥ २९ ॥ वैश्यो वैश्यां च

एक हजार जन्मतक कौवी, एक सौ जन्मतक सूकरी, एकसौ जन्मतक सियारिन, एक सौ जन्मतक मुर्गी, सात जन्मतक कबूतरी और सातजन्मतक वानरी होती है ॥२३॥२४॥ फिर भारतमें वह चाण्डाली होती है और सर्वसाधारणके लोग उसके साथ भोग करते हैं। उसके बाद वह व्यभिचारिणी धोबिन होती है—जिससे उसे यक्ष्मारोग हो जाता है॥ २५ ॥ तदनन्तर वह कोढ़ रोगवाली तेलिन होती है—तत्पश्चात् वह शुद्ध होती है। महावेश्या मरनेके बाद 'वेधनकुण्ड'में, पुङ्गी मरनेके बाद 'तण्डताडनकुंड'में, वेश्या 'जलरन्ध्रकुंड'में, कुलटा 'देहचूर्णकुंड'में, स्वैरिणी पुंश्चली 'दलनकुंड'में और धृष्टा 'शोषणकुंड'में जाती है ॥२६॥२७॥ इन व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी बड़ी साँसत होती है और मेरे दूत उनकी खूब मरम्मत करते हैं। हे सती! उन औरतों-को एक मन्वन्तर तक लगातार विष्ठाका भोजन और मूत्रका जलपान करना पड़ता है॥ २८ ॥ उसके बाद एक लाख वर्ष तक वे विष्ठाकी कोड़ी होती हैं। तदनन्तर वे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुद्ध होती हैं। जो ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणकी स्त्रीके साथ, जो क्षत्रिय परायी क्षत्रिया नारीके साथ, जो वैश्य अन्य वैश्य-पत्नीके साथ और जो शूद्र परायी शूद्र स्त्रीके साथ-अर्थात् सवर्णा परायी महिलाओंके साथ व्यभिचार करते हैं—वे स्त्री-पुरुष दोनों 'कषाय' नामक नरकमें जाते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ वहाँ वे दोनों गरम तथा कसैला पानी पीते हुए बारह वर्षतक पड़े रहते हैं। उसके बाद वे ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि व्यभिचारी शुद्ध होते हैं ॥३१॥ इसी प्रकार वे दुराचारिणी ब्राह्मणी-क्षत्रिया आदि स्त्रियाँ भी शुद्ध होती हैं, ऐसा पितामह ब्रह्माने कहा है। हे पतिव्रता सावित्री! जो क्षत्रिय या कोई वैश्य किसी ब्राह्मणीके साथ व्यभिचार करता है ॥३२॥ उसे अपनी माताके साथ दुराचार करनेका पाप लगता है और वह 'शूर्प' नामक नरककुण्डमें जाता है। वहाँ सूपके आकारके लम्बे-चौड़े कीड़े रहते हैं—जो उन क्षत्रियों, वैश्यों और ब्राह्मणोंको नोच-नोचकर खाते रहते हैं ॥३३॥ वहाँ उसे खूब खौलाया हुआ मूत्रको पीनेको मिलता है, मेरे दूत उसे मारते रहते हैं और वह चौदह इन्द्रकी आयु पर्यन्त ऐसी यातना भोगता है ॥३४॥ फिर सात जन्म तक सुअर और सात जन्मतक बकरा होता है। तदनन्तर शुद्ध होता है। जो

शूद्रां वा शूद्रश्चापि व्रजेद्यदि ॥ सवर्णपरदारैश्च कषायं यांति ते जनाः ॥ ३० ॥ भुक्त्वा कषायं तप्तोदं निवसेद्वा शताब्दकम् ॥ ततो विप्रो भवेच्छुद्धस्ततो वै क्षत्रियादयः ॥ ३१ ॥ योषितश्चापि शुद्ध्यंतीत्येवमाह पितामहः ॥ क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेद्वैश्यो वाऽपि पतिव्रते ॥ ३२ ॥ मातृगामी भवेत्सोऽपि शूर्पे च नरके वसेत् ॥ शूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः ॥ ३३ ॥ प्रतप्तमूत्रभोजी च मम दूतेन ताडितः ॥ तत्रैव यातनां भुंक्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३४ ॥ सप्तजन्म वराहश्च छागलश्च ततः शुचिः ॥ करे धृत्वा तु तुलसीं प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥ ३५ ॥ मिथ्या वा शपथं कुर्यात्स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ गंगातोयं करे कृत्वा प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥ ३६ ॥ शिलां वा देवप्रतिमां स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ दत्त्वा दक्षिणहस्तं च प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥ ३७ ॥ स्थित्वा देवगृहे वाऽपि स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ आस्पृश्य ब्राह्मणं गां च ज्वालावह्निं व्रजेद्द्विजः ॥ ३८ ॥ न पालयेत्प्रतिज्ञां च स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः ॥ ३९ ॥ मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ एते तत्र वसंत्येव यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४० ॥ तथांगारप्रदग्धाश्च मम दूतेन ताडिताः ॥ चांडालस्तुलसीं

अपने हाथमें तुलसी लेकर असत्य प्रतिज्ञा करते हैं ॥३५॥ जो झूठी कसम खाते हैं, वे 'ज्वालामुख' नामक नरकमें जाते हैं। जो हाथमें गङ्गाजल लेकर की हुई प्रतिज्ञा पूरी नहीं करते या झूठी कसम खाते हैं ॥ ३६ ॥ जो लोग अपने हाथमें शालग्रामशिला अथवा किसी देवताकी मूर्ति लेकर असत्य प्रतिज्ञा करते या झूठी कसम खाते हैं, वे 'ज्वालामुखकुण्ड'में जाते हैं। जो अपने दाहिने हाथको किसी दूसरेके दाहिने हाथपर रखकर या किसी देवमन्दिरमें किसी बातकी प्रतिज्ञा करके या कसम खाकर बादमें उससे मुकर जाते हैं, वे 'ज्वालामुखकुंड'में जाते हैं। जो द्विज किसी ब्राह्मण या गायका स्पर्श करके मिथ्या प्रतिज्ञा करते हैं, वे भी 'ज्वालामुखकुण्ड'में जाते हैं ॥३७॥३८॥ जो अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करते, जो अपने मित्रके साथ द्रोहभाव रखते हैं, जो पराये उपकारको नहीं मानते, जो विश्वासघात करते हैं, ॥३९॥ जो झूठी गवाही देते हैं, वे सभी 'ज्वालामुख' नरककुण्डमें जाकर चौदह इन्द्रके भोगकाल तक निवास करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं ॥४०॥ लाल अंगारोंसे जला-जलाकर मेरे दूत उन्हें पीटते हैं। जो हाथमें तुलसीदल लेकर मिथ्या प्रतिज्ञा करते या झूठी कसम खाते हैं, वे सात जन्मतक चाण्डाल होनेके बाद शुद्ध होते हैं ॥४१॥ हे सुन्दरी! जो हाथमें गङ्गाजल लेकर मिथ्या प्रतिज्ञा करते हैं, वे पाँच जन्मतक म्लेच्छ होते हैं। तत्पश्चात् वे शुद्ध होते हैं। जो शालग्रामशिला हाथमें लेकर झूठी कसम खाते हैं, वे सात जन्मतक विष्ठाके कीड़े होते हैं ॥४२॥ जो किसी देवताकी मूर्तिको स्पर्श करके मिथ्या प्रतिज्ञा करते हैं, वे सात जन्मतक ब्राह्मण-गृहस्थके यहाँ कीड़े होते हैं, तब शुद्ध होते हैं। जो किसीके दाहिने हाथपर अपना दाहिना हाथ रखकर झूठी कसम खाते हैं, वे सात जन्म साँप होते हैं ॥४३॥ फिर ब्रह्मज्ञानविहीन ब्राह्मण होनेके बाद शुद्ध होते हैं। जो देव-मन्दिरमें झूठ बोलते हैं, वे सात जन्मतक पुजारी होते हैं ॥४४॥ जो ब्राह्मण आदिको स्पर्श करके झूठी कसम खाते हैं, वे बाघ होते हैं। फिर तीन जन्मतक गूँगे और तीन जन्मतक बहरे मनुष्य होते हैं ॥४५॥ न उन्हें स्त्री मिलती है, न भाई-बन्धु होते हैं और न उनका वंश ही चलता है। तब जाकर शुद्ध होते हैं। जो मित्रके साथ द्रोह करते हैं। वे नेवला होते हैं।

स्पृष्ट्वा सप्तजन्म ततः शुचिः ॥४१॥ म्लेच्छो गंगाजलस्पर्शी पंचजन्म ततः शुचिः ॥ शिलास्पर्शी विट्क्रमिश्च सप्तजन्मसु सुंदरि ॥ ४२ ॥ अर्चा-स्पर्शी ब्रह्मक्रमिः सप्तजन्म ततः शुचिः ॥ दक्षहस्तप्रदाता च सर्पश्च सप्तजन्मसु ॥ ४३ ॥ ततो भवेद्ब्रह्महीनो मानवश्च ततः शुचिः ॥ मिथ्यावादी देवगृहे देवलः सप्तजन्मसु ॥ ४४ ॥ विप्रादिस्पर्शकारी च व्याघ्रजातिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ततो भवेच्च मूकः स बधिरश्च त्रिजन्मनि ॥ ४५ ॥ भार्याहीनो बंधुहीनो वंशहीनस्ततः शुचिः ॥ मित्रद्रोही च नकुलः कृतघ्नश्चापि गंडकः ॥ ४६ ॥ विश्वासघाती व्याघ्रश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ मिथ्यासाक्षी च वक्तव्ये मंडूकः सप्तजन्मसु ॥ ४७ ॥ पूर्वान्सप्तापरान्सप्त पुरुषान्हंति चात्मनः ॥ नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतो द्विजः ॥ ४८ ॥ यस्या-नास्था वेदवाक्ये मंदं हसति संततम् ॥ व्रतोपवासहीनश्च सद्वाक्यपरनिंदकः ॥ ४९ ॥ धूम्रांधे च वसेत्सोऽपि शताब्दं धूम्रभक्षकः ॥ जलजंतुर्भ-वेत्सोऽपि शतजन्मक्रमेण च ॥ ५० ॥ ततो नानाप्रकारश्च मत्स्यजातिस्ततः शुचिः ॥ यः करोत्युपहासं च देवब्राह्मणयोर्धने ॥ ५१ ॥ पातयित्वा स पुरुषान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥ सोऽयं याति च धूम्रांधं धूमध्वांतसमन्वितम् ॥ ५२ ॥ धूम्रक्लिष्टो धूम्रभोजी वसेत्तत्र चतुर्गुणम् ॥ ततो मूषकजा-

जो औरोंके किये उपकारको नहीं मानते, वे गैंड़ा होते हैं ॥ ४६ ॥ विश्वासघात करनेवाले सात जन्मतक भारतमें बाघ होते हैं। जो झूठी गवाही देते हैं, वे सात जन्मतक मेढक होते हैं ॥४७॥ इतना ही नहीं—बल्कि उनकी सात पीढ़ी पहले और सात पीढ़ी बादके लोग नरकमें जाते हैं। जो ब्राह्मण नित्यकर्म नहीं करते, वे जड़ कहलाते हैं ॥४८॥ उन्हें वेदके वाक्यों-पर श्रद्धा नहीं होती, बल्कि सदा उनका उपहास करते हैं। वे व्रत और उपवास नहीं मानते और दूसरोंकी भली सलाहकी निन्दा करते हैं ॥४९॥ व 'धूम्रान्ध' नामक नरकमें एक सौ वर्ष तक धूम्रपान करते हुए रहते हैं। उसके बाद क्रमशः सौ जन्मतक अनेक प्रकारके पानीके जीव होते हैं ॥५०॥ फिर वे अनेक तरहकी मछलियोंकी योनिमें जन्म लेकर शुद्ध होते हैं। जो देवोत्तर सम्पत्ति और ब्राह्मणकी सम्पत्तिका उपहास करते हैं ॥५१॥ वे अपनी करनीसे अपने दस पीढ़ी पहलेके पुरुषोंको नरकमें डालते हैं। वे स्वयं 'धूम्रान्ध' नामक नरककुण्डमें जाते हैं, जहाँ धुआँ और घना अन्धकार भरा रहता है ॥५२॥ वे नित्य धुएँके कारण कष्ट उठाते हैं, धुएँका भोजन करते हैं और वहाँ चार सौ वर्ष तक रहते हैं। उसके बाद भारतमें सात जन्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक लगातार चूहे होते हैं ॥५३॥ बादमें तरह-तरहके पक्षी, कीड़े-मकोड़े और वृक्ष-पशु आदि होते हैं। अन्तमें उन्हें मनुष्ययोनि मिलती है ॥५४॥ जो ब्राह्मण ज्योतिषविद्यासे अपनी आजीविका चलाते हैं, चिकित्सक होकर वैद्यका काम करते हैं, लाख तथा लोहेका रोजगार करते हैं, नमक-तेल आदि बेचते हैं ॥ ५५ ॥ वे नागोंसे व्याप्त 'नागवेष्टन' नामक नरककुण्डमें जाते हैं। वहाँके नाग उनके शरीरको कसकर जकड़ लेते हैं। वहाँ वे अपने शरीरके रोमप्रमाण वर्ष तक निवास करते हैं ॥५६॥ तब उन्हें तरह-तरहकी पक्षीयोनि मिलती है। बादमें मनुष्य होते हैं। जिसमें सात जन्म तक ज्योतिषी और सात जन्म तक वैद्य होते हैं ॥५७॥ फिर गोप, लोहार और रंगरेज होते हैं—तब शुद्ध होते हैं। इस तरह हे पतिव्रता सावित्री! जितने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नरककुण्ड थे, मैंने उनका वर्णन कर दिया ॥५८॥ इनके अतिरिक्त और भी अनेक कुण्ड हैं, लेकिन वे इतने प्रसिद्ध नहीं हैं। और भी छोटे-छोटे कुण्ड हैं, जहाँ पापी लोग अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिए जाते हैं और विविध योनियोंमें घूमते रहते हैं। अब तुम क्या सुनना चाहती हो? ॥५९॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

तिश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ ५३ ॥ ततो नानाविधाः पक्षिजातयः कृमिजातिभिः ॥ ततो नानाविधा वृक्षाः पशवश्च ततो नरः ॥ ५४ ॥ विप्रो दैवज्ञजीवी च वैद्यजीवी चिकित्सकः ॥ लाक्षालोहादिव्यापारी रसादिविक्रयी च यः ॥५५॥ स याति नागवेष्टं च नागैर्वेष्टितमेव च ॥ वसेत्स लोममानाब्दं तत्रैव नागपाशितः ॥ ५६ ॥ ततो नानाविधाः पक्षिजातयश्च ततो नरः ॥ ततो भवेत्स गणको वैद्यश्च सप्तजन्मसु ॥ ५७ ॥ गोपश्च कर्मकारश्च रंगकारस्ततः शुचिः ॥ प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते ॥ ५८ ॥ अन्यानि चाप्रसिद्धानि क्षुद्राणि संति तत्र वै ॥ संति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः ॥ भ्रमंति नानायोनिं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥५९॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

॥ सावित्र्युवाच ॥ धर्मराज महाभाग वेदवेदांगपारग ॥ नानापुराणेतिहासे यत्सारं तत्प्रदर्शय ॥ १ ॥ सर्वेषु सारभूतं यत्सर्वेष्टं सर्वसंमतम् ॥ कर्मच्छेदबीजरूपं प्रशस्तं सुखदं नृणाम् ॥ २ ॥ सर्वप्रदं च सर्वेषां सर्वमंगलकारणम् ॥ भयं दुःखं न पश्यन्ति येन वै सर्वमानवाः ॥ ३ ॥ कुण्डानि ते न पश्यन्ति तेषु नैव पतन्ति च ॥ न भवेद्येन जन्मादि तत्कर्म वद सांप्रतम् ॥ ४ ॥ किमाकाराणि कुण्डानि तानि वा निर्मितानि च ॥ के च केनैव रूपेण तत्र तिष्ठन्ति पापिनः ॥ ५ ॥ स्वदेहे भस्मसाद्भूते याति लोकान्तरं नरः ॥ केन देहेन वा भोगं करोति च शुभाशुभम् ॥ ६ ॥ सुचिरं

(पञ्चदेवोपासकोंके नरकमें न जानेका कथन) सावित्रीने कहा—हे महाभाग धर्मराज! आप वेद एवं वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् हैं। जो सब पुराणों-इतिहासोंका सारभूत, अभीष्ट, सर्वसम्मत, कर्मका उच्छेद करनेके लिए मूल आधार, परमश्रेष्ठ, मनुष्योंके लिए सुखदायी ॥ १ ॥ २ ॥ सब कुछ देनेमें समर्थ और सबको सब प्रकारका मंगल प्रदान करनेवाला हो, जिसके प्रभावसे सम्पूर्ण मानव भय और दुःखदर्शनसे भी छूट जाते हैं ॥ ३ ॥ जिसकी महिमासे मनुष्य इन कुण्डोंमें पड़ते तो हैं ही नहीं, इनके पास भी नहीं जाते तथा मनुष्योंको जन्म आदि विकारोंसे रहित कर देता है, अब वह महान् सत्कर्म आप मुझे बतानेकी कृपा करें ॥४॥ साथ ही उन कुण्डोंके आकार कैसे हैं, वे किस प्रकार बने हैं तथा कौन-से पापी किस रूपसे उनमें निवास करते हैं—यह मैं सुनना चाहती हूँ ॥ ५ ॥ देहके अग्निमें भस्म हो जानेके पश्चात् मानव किस देहसे लोकान्तरोंमें जाता और अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगता है?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अत्यन्त क्लेश पानेपर भी वह शरीर नष्ट क्यों नहीं हो जाता आदि सभी बातें मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ ६ ॥ ७ ॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! सावित्रीके वचन सुनकर धर्मराजने भगवान् श्रीहरिका स्मरण करते हुए कर्मरूपी वन्धनको काटनेवाली पवित्र कथा आरम्भ की ॥ ८ ॥ धर्मराज बोले—हे पतिव्रते ! चारों वेद, धर्मशास्त्र, संहिता, पुराण, इतिहास, पाञ्चरात्र प्रभृति धर्मग्रन्थ तथा अन्य धर्मशास्त्र एवं वेदाङ्ग—इन सबमें पाँच देवताओंकी उपासनाको सर्वेष्ट एवं सारभूत बतलाया गया है ॥९॥१०॥ इस देवोपासनासे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि तथा शोक-संताप नष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥ इससे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यह नरकसे प्राणीका उद्धार करनेवाला है। भक्तिरूपी वृक्षमें अङ्कुर उत्पन्न करनेवाला तथा कर्मरूपी वृक्षोंको काटनेके लिए देवाराधन सदा कटिबद्ध रहता है ॥१२॥ मोक्षमार्गपर अग्रसर होनेके लिए यह सोपान है। भगवान्के सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य और सामीप्य आदि अवि-

क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति ॥ देहो वा किंविधो ब्रह्मंस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥ नारायण उवाच ॥ सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् ॥ कथां कथितुमारेभे कर्मबंधनिकृंतनीम् ॥ ८ ॥ धर्मराज उवाच ॥ वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मेषु संहितासु च ॥ पुराणेष्वितिहासेषु पाञ्चरात्रादिकेषु च ॥ ६ ॥ अन्येषु धर्मशास्त्रेषु वेदांगेषु च सुव्रते ॥ सर्वेष्टं सारभूतं च पञ्चदेवानुसेवनम् ॥१०॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसंतापनाशनम् ॥ सर्वमंगलरूपं च परमानंदकारणम् ॥ ११ ॥ कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम् ॥ भक्तिवृक्षांकुरकरं कर्मवृक्षनिकृंतनम् ॥ १२ ॥ विमोक्षसोपानमिदमविनाशपदं स्मृतम् ॥ सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभम् ॥ १३ ॥ कुण्डानि यमदूतैश्च रक्षितानि सदा शुभे ॥ न हि पश्यन्ति स्वप्ने च पञ्चदेवार्चका नराः ॥ १४ ॥ देवीभक्तिविहीना ये ते पश्यन्ति ममालयम् ॥ यान्ति ये हरितीर्थं वा श्रयंति हरिवासरम् ॥ १५ ॥ प्रणमंति हरिं नित्यं हर्यर्चां कल्पयंति च ॥ न यांति तेऽपि घोरां च मम संयमिनीं पुरीम् ॥ १६ ॥ त्रिसन्धिपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः ॥ निर्वृतिं नैव लप्स्यंते देवीसेवां विना नराः ॥ १७ ॥ स्वधर्मनिरताचाराः स्वधर्मनिरतास्तथा ॥ गच्छंतो मृत्युलोकं च दुर्दृशा मम किंकराः ॥ १८ ॥ भीताः शिवोपासकेभ्यो वैनतेयादिवोरगाः ॥ स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छंतं वारयाम्यहम् ॥ १६ ॥ यास्यंति ते च सर्वत्र हरिदासाश्रयं

नाशी एवं शुभ पद प्रदान करनेवाला यह साधन बताया गया है ॥ १३ ॥ हे शुभे ! मेरे दूत नरककुंडोंकी सदा रखवाली करते हैं। पञ्चदेवोंकी यथार्थ उपासना करनेवाले मनुष्य उन नरकोंको स्वप्नमें भी नहीं देख सकते ॥१४॥ जो भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना नहीं करते, उन्हें मेरी पुरी देखनी पड़ती है। एकादशीका व्रत करनेवाले विष्णुलोकमें जाते हैं॥१५॥ जो निरन्तर भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करते और उनकी प्रतिमाकी पूजा करते हैं, उन्हें भी मेरी भयंकर संयमनीपुरीमें नहीं जाना पड़ता ॥१६॥ त्रिकालसंध्यासे पवित्र एवं सदाचारी ब्राह्मण भी विना भगवतीकी आराधनाके सुखी नहीं हो पाते ॥१७॥ जो अपने धार्मिक आचार-विचारसे सम्पन्न तथा धर्ममें संलग्न रहते हैं, मृत्युलोकमें ऐसे लोगोंको मेरे दूत नहीं दिखायी देते ॥१८॥ भगवान् शंकरके भक्तोंसे मेरे दूत इस प्रकार डरते हैं, जैसे गरुड़से सर्प। फिर भी यदि वे पाश लेकर उनकी ओर जाते हैं तो मैं उन्हें रोक देता हूँ ॥ १९ ॥ भगवान् श्रीहरिके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भक्तोंके आश्रमको छोड़कर अन्यत्र सभी जगह मेरे सेवक जा सकते हैं। भगवान श्रीकृष्णके मंत्रोपासक होनेके कारण हरिभक्त तो मेरे दूतोंको ऐसे भयानक लगते हैं, मानो सर्पोंके लिए गरुड़ हों ॥२०॥ देवीके उपासकोंका नाम यदि मेरे खातेमें लिखा रहता है तो डरकर चित्रगुप्त अपने नखरूपी लेखनीसे उसे काट देते हैं ॥२१॥ भगवती जगदम्बाके भक्त वहाँ पहुँच जाते हैं तो चित्रगुप्त मधुपर्क आदि उपचारोंसे बार-बार उनका सत्कार करके उनके लिए ब्रह्मलोक लिख देते हैं। हे साध्वी! तब वे भगवतीके उपासक मणिद्वीप लोककी यात्रा करते हैं ॥२२॥ जिनके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण अशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं, वे देवीभक्त महान् सौभाग्यशाली हैं। कारण, उनके जन्मसे अनेकों कुलोंकी शुद्धि हो जाती है ॥ २३ ॥ उनके पाप जलती हुई आगमें पड़े हुए सूखे तिनकोंकी भाँति भस्म हो जाते हैं। देवीभक्तोंको देखकर मोह भी भयभीत होकर मोहित हो जाता है ॥ २४ ॥ हे साध्वी! काम, क्रोध, लोभ, मृत्यु, रोग, जरा, शोक, भय, काल, शुभाशुभ कर्म, हर्ष तथा भोग-ये सब देवीभक्तोंको देखकर अपना प्रभाव प्रकट करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। हे साध्वी! जिन-जिन व्यक्तियोंको नारकी पीड़ी नहीं सहनी

विना ॥ कृष्णमंत्रोपासकाच्च वैनतेयादिवोरगाः ॥ २० ॥ देवीमंत्रोपासकानां नाम्नां चैव निकृंतनम् ॥ करोति नखलेखन्या चित्रगुप्तश्च भीतवत् ॥ २१ ॥ मधुपर्कादिकं तेषां कुरुते च पुनः पुनः ॥ विलंघ्य ब्रह्मलोकं च लोकं गच्छंति ते सति ॥ २२ ॥ दुरितानि च नश्यन्ति येषां संस्पर्शमात्रतः ॥ ते महाभाग्यवन्तो हि सहस्रकुलपावनाः ॥ २३ ॥ यथा च प्रज्वलद्वह्नौ शुष्कानि च तृणानि च ॥ प्राप्नोति मोहः सम्मोहं तांश्च दृष्ट्वा च भीतवत् ॥२४॥ कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधौ ततः सति ॥ मृत्युः प्रलीयते रोगो जरा शोको भयं तथा ॥२५॥ कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च ॥ ये ये न यांति तां पीडां कथितास्ते मया सति ॥ २६ ॥ शृणु देहविवरणं कथयामि यथागमम् ॥ पृथिवी वायुराकाशस्तेजस्तोयमिति स्फुटम् ॥ २७ ॥ देहिनां देहबीजं च स्रष्टृसृष्टिविधौ परम् ॥ पृथिव्यादिपंचभूतैर्यो देहो निर्मितो भवेत् ॥ २८ ॥ स कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदिह ॥ बद्धोंगुष्ठप्रमाणश्च यो जीवः पुरुषः कृतः ॥ २९ ॥ बिभर्ति सूक्ष्मं देहं तं तद्रूपं भोगहेतवे ॥ स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ ममालये ॥ ३० ॥ जलेन नष्टो देही वा प्रहारे सुचिरं कृते ॥ न शस्त्रेण न वाऽस्त्रेण सुतीक्ष्णकंटके तथा ॥ ३१ ॥

पड़ती, उनका परिचय बता चुका ॥ २५ ॥ २६ ॥ अब आगम-शास्त्रके अनुसार देहका विवरण बतलाता हूँ, सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व स्पष्ट हो हैं ॥ २७ ॥ स्रष्टाके सृष्टि-विधानमें प्राणियोंके लिए एक देहबीज पृथक् निर्मित होता है। पृथ्वी आदि पाँच भूतोंसे बने हुए शरीरको कृत्रिम और नश्वर कहते हैं। चिताकी आगमें जलकर वह राख हो जाता है। उस समय जो जीव रहता है, उसकी बँधे हुए अंगूठे जैसी आकृति हो जाती है ॥ २८ ॥ २९ ॥ वही फल भोगनेके लिए सूक्ष्मरूपमें देह धारण कर लेता है। वह देह प्रज्वलित अग्निमें भस्म न होकर मेरी संयमनीपुरीमें जाता है ॥ ३० ॥ स्थूल शरीर तो जलनेपर तथा दीर्घकालतक प्रहार करनेपर नष्ट हो सकता है, परन्तु उस यातना-शरीरको अस्त्र अथवा शस्त्र नष्ट नहीं कर सकते। अत्यन्त तीखी धारवाले काँटे तथा तपते हुए तेल, लोह और पाषाण पड़नेपर भी वह ज्योंका त्यों बना रहता है। जलती हुई प्रतिमासे सँटनेपर भी वह न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जलता और न मरता है, बल्कि पूर्ववत बना रह जाता है। उसे ही भयानक संताप भोगने पड़ते हैं। हे साध्वी! इसी प्रकार आगमशास्त्रमें देहवृत्तान्त तथा कारण स्पष्ट किया गया है–इसे मैं बता चुका। अब तुम्हें नरककुण्डोंके सम्पूर्ण लक्षण बताता हूँ, सुनो ॥ ३१–३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

(नरककुंडोंके लक्षण) यमराज बोले–हे पतिव्रते! वे नरककुंड पूर्ण चन्द्रमंडलकी भाँति गोलाकार हैं। उनकी गहराई भी पर्याप्त है। वे अनेक प्रकारके पाषाणोंसे निर्मित हैं ॥१॥ उनका नाश नहीं होता। वे प्रलयकालतक बने रहते हैं। भगवान श्रीहरिकी इच्छासे पापियोंको क्लेश देनेके लिए नाना रूपोंमें उनका निर्माण हुआ है ॥२॥ जो जलते हुए अङ्गारके समान लाल और एक कोसकी लंबाई-चौड़ाईके विस्तारमें है तथा जिसमें सौ हाथ ऊपरतक आगकी लपटें निकला करती हैं, उसे 'अग्निकुंड' कहा गया है। भयानक चीत्कार करनेवाले पापियोंसे वह सदा

तप्तद्रवे तप्तलोहे तप्तपाषाण एव च ॥ प्रतप्तप्रतिमाश्लेषे यत्पूर्वपतनेऽपि च ॥ ३२ ॥ न दग्धो न च भग्नः स भुंक्ते संतापमेव च ॥ कथितो देहवृत्तांतः कारणं च यथागमम् ॥ कुण्डानां लक्षणं सर्वं बोधाय कथयामि ते ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

॥ धर्मराज उवाच ॥ पूर्णेन्दुमण्डलाकारं सर्वं कुण्डं च वर्तुलम् ॥ निम्नं पाषाणभेदैश्च पाचितं बहुभिः सति ॥ १ ॥ न नश्वरं चाप्रलयं निर्मितं चेश्वरेच्छया ॥ क्लेशदं पातकानां च नानारूपं तदालयम् ॥२॥ ज्वलदंगाररूपं च शतहस्तशिखान्वितम् ॥ परितः क्रोशमानं च वह्निकुंडं प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥ महाशब्दं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम् ॥ रक्षितं मम दूतैश्च ताडितैश्चापि संततम् ॥ ४ ॥ प्रतप्तोदकपूर्णं च हिंस्रजंतुसमन्वितम् ॥ महाघोरं काकुशब्दं प्रहारेण दृढेन च ॥५॥ क्रोशार्धमानं तद्दूतैस्ताडितैर्मम पार्षदैः ॥ तप्तक्षारोदकैः पूर्णं पुनः काकैश्च संकुलम् ॥ ६॥ संकुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं भयानकम् ॥ त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिर्मम दूतैश्च ताडितैः ॥ ७ ॥ प्रचलद्भिरनाहारैः शुष्ककंठोष्ठतालुकैः ॥ विड्भिरेव कृतं पूर्णं क्रोशमानं च कुत्सितम् ॥ ८ ॥ अतिदुर्गंधिसंसक्तं व्याप्तं पापिभिरन्वहम् ॥ ताडितैर्मम दूतैश्च तत्प्रहारैः सुदारुणैः ॥ ९ ॥ रक्षेति शब्दं कुर्वद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितैः ॥ तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च संकुलम् ॥ १० ॥ युक्तं महापातकिभिस्तत्कीटैर्भक्षितः सदा ॥ गव्यूतिमानं

भरा रहता है। उनपर प्रहार करनेवाले मेरे दूत निरन्तर उसकी रक्षामें तत्पर रहते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ जो हिंसक जन्तुओंसे भरा पूरा अत्यन्त भयंकर तथा आधे कोसका विस्तृत नरक है, उसे 'तप्तकुंड' कहते हैं। मेरे सेवकों द्वारा कठिन प्रहार पड़नेपर नारकी जीव चिल्लाते रहते हैं। इसके बाद 'तप्तक्षारोदकुंड' है। वह खौलते हुए खारे जलसे भरा रहता है। एक कोस विस्तारवाला वह भयानक नरक पापियों तथा कौओंसे भरपूर रहता है ॥५॥६॥ एक कोसके विस्तारमें 'विट्कुंड' नामक नरक है। निराहार रहनेके कारण सूखे हुए कंठ, ओठ और तालुवाले पापी मेरे दूतोंकी मार खाकर उसमें इधर-उधर भागते रहते हैं। वह दारुण नरक विष्ठासे ही बना हुआ है। उसमें अत्यन्त दुर्गन्ध फैली रहती है ॥ ७ ॥ ८ ॥ वहाँ कीड़ोंके काटनेसे उनका सारा अङ्ग छिद जाता है। 'मूत्रकुंड' नामक नरक खौलते हुए मूत्र तथा मूत्रके कीड़ोंसे भलीभाँति भरा रहता है ॥९॥१०॥ अत्यन्त पातकी जीवोंसे भरा हुआ वह नरक दो कोस-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के परिमाणमें है। वहाँ कीड़े जीवोंको काटते रहते हैं। उसमें पड़े पापियोंके कंठ, होंठ और तालु सूखे रहते हैं। श्लेष्मा आदि अपवित्र वस्तुओं और उनके कीड़ों तथा श्लेष्मभोजी पापीजनोंसे भरा नरक 'श्लेष्मकुंड' कहा गया है ॥११॥१२॥ आधे कोसके परिमाणमें विषभक्षी पापियों तथा कीड़ोंसे भरा हुआ नरक 'गरकुंड' कहा जाता है ॥१३॥ उन विषैले कीड़ोंके काटने तथा मेरे दूतोंकी मार पड़नेपर चीत्कार करनेवाले पापियोंसे वह नरक भरा रहता है ॥१४॥ सर्पके समान आकारवाले वज्रमय दाँतोंसे युक्त, क्षुधातुर, सूखे कंठवाले तथा अत्यन्त भयंकर जन्तुओं द्वारा वह नरक भरा रहता है। आँखोंके मलसे युक्त आधे कोसके विस्तारवाला 'दूषिकाकुंड' है ॥ १५ ॥ कीड़ोंसे क्षत-विक्षत पापी प्राणी निरन्तर उसमें चक्कर लगाते रहते हैं। वसासे पूर्ण चार कोसका लंबा-चौड़ा 'वसाकुंड' है ॥१६॥ वसाभोजी पातकी जीव उसमें भरे रहते हैं। एक कोसकी लम्बाई-चौड़ाईवाला 'शुक्रकुंड' है। वीर्यके कीड़ोंसे वह व्याप्त रहता है ॥ १७ ॥ उसमें रहनेवाले पापियोंको जब कीड़े काटते या मेरे दूत मारते हैं, तब वे इधर-उधर भागते हैं। बावड़ीके समान परिमाणवाला एवं दुर्गन्धित रक्तसे भरा हुआ 'रक्तकुंड' है ॥ १८ ॥

ध्वांतार्कं शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥ ११ ॥ मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः ॥ श्लेष्मपूर्णं प्रशमितं तत्कीटैः पूरितं सदा ॥ १२ ॥ तद्भोजिभिः पापिभिश्च वेष्टितं वेष्टितैः सदा ॥ क्रोशार्धं गरकुंडं च गरभोजिभिरन्वितम् ॥ १३ ॥ गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च ॥ ताडितैर्मम दूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कम्पितैः ॥ १४ ॥ सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककण्ठैः सुदारुणैः ॥ नेत्रयोर्मलपूर्णं च क्रोशार्धं कीटसंयुतम् ॥ १५ ॥ पापिभिः संकुलं शश्वद्भ्रमद्भिः कीटभक्षितैः ॥ वसारसेन संपूर्णं क्रोशतुर्यं सुदुःसहम् ॥ १६ ॥ तद्भोजिभिः पातकिभिर्मम दूतैश्च ताडितैः ॥ शुक्रकुंडं क्रोशमितं शुक्रकीटैश्च संयुतम् ॥ १७ ॥ पापिभिः संकुलं शश्वद्द्रवद्भिः कीटभक्षितैः ॥ दुर्गंधिरक्तपूर्णं च वापीमानं गभीरकम् ॥ १८ ॥ तद्भोजिभिः पापिभिश्च संकुलं कीटभक्षितम् ॥ पूर्णं नेत्राश्रुभिस्तप्तं बहुपापिभिरन्वितम् ॥ १९ ॥ वापीतुर्यप्रमाणं च रुदद्भिः कीटभक्षितैः ॥ नृणां गात्रमलैर्युक्तं तद्भक्षैः पापिभिर्युतम् ॥ २० ॥ ताडितैर्मम दूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः ॥ कर्णविट्परिपूर्णं च तद्भक्षैः पापिभिर्वृतम् ॥ २१ ॥ वापीतुर्यप्रमाणं च ब्रुवद्भिः कीटभक्षितैः ॥ मज्जापूर्णं नराणां च महादुर्गन्धिसंयुतम् ॥ २२ ॥ महापातकिभिर्युक्तं वापीतुर्यप्रमाणकम् ॥ परिपूर्णं स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताडितैः ॥ २३ ॥ पापिभिः संकुलं चैव वापीमानं भयानकम् ॥ कन्याविक्रयिभिश्चैव तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः ॥ २४ ॥ पाहीति

उस गहरे कुंडमें रक्त पीनेवाले प्राणी तथा काटनेवाले कीड़े भरे रहते हैं। 'अश्रुकुंड' नेत्रोंके आँसुओंसे पूर्ण रहता है। अनेक पापीजन उसमें भरे रहते हैं ॥ १९ ॥ चार बावड़ी जितना उसका विस्तार है। कीड़ोंके काटनेपर जीव उसमें रुदन करते हैं। मनुष्योंके शारीरिक मलों तथा मलभक्षी पापी जीवोंसे युक्त 'गात्रकुंड' है। मेरे दूतोंके मारनेके कारण घबराए हुए जीव उसमें किसी प्रकार समय बिताते हैं। कानोंकी मैल खानेवाले पापियोंसे भरा 'कर्णविट्कुंड' है ॥ २० ॥ २१ ॥ चार बावड़ी जितने प्रमाणवाला वह कुंड कीड़ों द्वारा काटे जानेवाले पापियोंके चीत्कारसे पूरित रहता है। मनुष्योंकी मज्जासे भरा अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त 'मज्जाकुंड' है ॥ २२ ॥ जो महापापियोंसे युक्त एवं चार वापीके विस्तारवाला है। दूतोंसे प्रताडित प्राणियोंसे भरा और स्निग्ध मांसवाला 'मांसकुंड' है ॥ २३ ॥ एक वापी-जितने प्रमाणवाले उस कुंडमें भयानक प्राणी भरे रहते हैं। कन्याका विक्रय करनेवाले पापी वहाँ रहकर कन्याका मांस भक्षण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते हैं। कीड़ोंके काटनेपर वे अत्यन्त भयभीत होकर 'बचाओ-बचाओ'की पुकार करते हैं। चार बावड़ी-जितने लंबे-चौड़े 'नखादि' चार कुण्ड हैं॥ २४ ॥ २५ ॥ ताम्रमयी उल्कासे युक्त तथा जलते हुए ताँबेके सदृश 'ताम्रकुण्ड' है ॥२६॥ ताँबेकी लाखों प्रज्वलित प्रतिमाएँ उसमें भरी रहती हैं। प्रत्येक प्रतिमासे पापियोंको सँटाया जाता हैं। तब वे चिल्ला उठते हैं। मेरे दूतोंसे प्रताडित नारकी जीवोंसे भरा वह नरक दो कोस लम्बा-चौड़ा है। प्रज्वलित लोहे तथा चमकते हुए अङ्गारोंसे युक्त 'लौहकुंड' है ॥२७॥२८॥ जलते हुए लौहकी प्रत्येक प्रतिमासे पापियोंको सँटाया जाता है। तब वे चीत्कार कर उठते हैं। वहाँ निरन्तर जलते हुए वे पापी भयमीत होकर 'रक्षा करो-रक्षा करो' पुकारते हैं। वह कुंड दो कोसमें विस्तृत तथा अत्यन्त भयानक है और वहाँ चारों ओर भयानक अन्धकार छाया रहता है। 'चर्मकुण्ड' और 'तप्तसुराकुंड' आधी बावड़ीके प्रमाणके होते हैं। चर्मभक्षण तथा सुरापान करनेवाले और मेरे दूतोंकी मार खाते हुए पापी जीव उसमें भी रहते हैं॥ २९-३१ ॥ कंटकमय वृक्षोंसे भरा 'शाल्मलीकुण्ड, है। वह दुःखप्रद नरक एक कोसके विस्तारमें है। लाखों मनुष्य उसमें

शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्च भयानकैः ॥ वापीतुर्यप्रमाणं च नखादिकचतुष्टयम् ॥ २५ ॥ पापिभिः संयुतं शश्वन्मम दूतैश्च ताडितैः ॥ प्रतप्तताम्रकुंडं च ताम्रोपर्युल्मुकान्वितम् ॥ २६ ॥ ताम्राणां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैर्व्याप्तं सदा ॥ प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टै रुदद्भिः पापिभिर्युतम् ॥ २७ ॥ गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ प्रतप्तलोहधारं च ज्वलदंगारसंयुतम् ॥ २८ ॥ लोहानां प्रतिमाश्लिष्टै रुदद्भिः पापिभिर्युतम् ॥ प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः शश्वत्प्रज्वलितैर्भिया ॥ २९ ॥ रक्ष रक्षेति शब्दं च कुर्वद्भिर्दूतताडितैः ॥ महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥ ३० ॥ भयानकं ध्वांतयुक्तं लोहकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥ चर्मकुंडं तप्तसुराकुण्डं वाप्यर्धमेव च ॥ ३१ ॥ तद्भोजिपापिभिर्व्याप्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ अतः शाल्मलिकुण्डं च वृक्षकंटकशोभितम् ॥ ३२ ॥ लक्षपौरुषमानं च क्रोशमानं च दुःखदम् ॥ धनुर्मानैः कंटकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम् ॥ ३३ ॥ प्रत्येकं विद्धगात्रैश्च महापातकिभिर्युतम् ॥ वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्च मम दूतैश्च पातितैः ॥ ३४ ॥ जलं देहीति शब्दं च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः ॥ महाभियाऽतिव्यग्रैश्च दण्डैः संभग्नमस्तकैः ॥ ३५ ॥ प्रचलद्भिर्यथा तप्ततैलजीविभिरेव च ॥ विषोदैस्तक्षकाणां च पूर्वं च क्रोशमानकम् ॥ ३६ ॥ तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ प्रतप्ततैलचूर्णं च कीटादिपरिवर्जितम् ॥ ३७ ॥ महापातकिभिर्युक्तं दग्धाङ्गारैश्च वेष्टितम् ॥ काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चल-

अँट सकते हैं। वहाँ चार-चार हाथके अत्यन्त तीखे काँटे शाल्मली वृक्षसे गिरे तथा मेरे दूतों द्वारा गिराये जाकर नीचे बिछे रहते हैं। एक-एक करके सभी काँटोंसे पापियोंके अङ्ग छिद उठते हैं ॥३२–३४॥ उन अत्यन्त व्यग्र पापियोंके तालू सूख जाते हैं, तब वे भयभीत और भग्नमस्तक होकर 'मुझे जल दो'–यों चिल्लाने लगते है ॥३५॥ जिस प्रकार खौलते हुए तेलमें कोई वस्तु पड़ जाय तो वह नाचने लगती है, वैसे ही तक्षकसंज्ञक सर्पोंके विष निगलनेवाले जीव जिसमें भरे रहते हैं, वह नरक 'विषोदकुण्ड' कहलाता है। मेरे दूतों द्वारा ताडित और विषोद पापियोंसे वह कुंड भरा रहता है। उसका परिमाण एक कोस है। 'प्रतप्ततैलकुंड'में सदा खौलता हुआ तेल भरा रहता है। जलनके कारण कीड़ेतक उसमें नहीं रहते, किंतु मेरे दूतोंकी चोट खाकर पापियोंको वहाँ रहना पड़ता और जलता हुआ तैल ही उन्हें पीना पड़ता है॥ ३६ ॥ ३७॥ अङ्गारोंसे जो झुलस उठे हैं, ऐसे महान् पापियोंसे युक्त 'अङ्गारकुंड' नामक नरक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह अन्धकारसे पूर्ण, एक कोस विस्तृत, नारकी जीवोंके लिए कष्टप्रद एवं अतिशय भयानक है। जिनके आकार त्रिशूल जैसे होते हैं तथा जिनकी धार अत्यन्त तीक्ष्ण होती है, उन लौहमय भालोंसे सम्पन्न 'कुन्तकुण्ड' है ॥३८॥३९।' चार कोसमें विस्तृत, वह नरक ऐसा जान पड़ता है कि मानो शस्त्रोंकी शय्या हो। मेरे दूतकी मार खाने तथा भालोंसे छिद जानेके कारण जिनके कंठ, होंठ और तालू सूख गये रहते हैं, ऐसे पापी जीवोंसे उस नरकका कोना-कोना भरा रहता है ॥४०॥ हे साध्वी ! जिसमें शूल तथा सर्प जैसे असंख्य भयंकर कीड़े रहते हैं, उसे 'कृमिकुण्ड' कहा जाता है ॥४१॥ विकृत वदनवाले उन कीड़ोंके दाँत बड़े तेज होते हैं। वहाँ सर्वत्र अन्धकार फैला रहता है। मेरे दूतोंकी मार खानेवाले महापापी उसमें भरे रहते हैं ॥ ४२ ॥ 'पूयकुण्ड'को चार कोस लंबा-चौड़ा बताया जाता है। पूयभक्षी प्राणी उसमें निवास करते हैं ॥४३॥ तालके वृक्ष जितना गहरा तथा असंख्य सर्पोंसे युक्त 'सर्पकुण्ड' है। वहाँके साँप पापियोंके शरीरसे लिपटकर उन्हें काटते रहते हैं ॥४४॥ मशक आदि क्रूर जन्तुओंसे पूर्ण 'मशककुण्ड' 'दंशकुण्ड' और 'गोलकुण्ड'—ये तीन नरक हैं। महान् पापियोंसे युक्त उन नरकोंको सीमा आधे-आधे कोसकी है।

द्भिर्दूतपीडितैः ॥ ३८ ॥ ध्वांतयुक्तं क्रोशमानं क्लेशदं च भयानकम् ॥ शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रैर्लोहशस्त्रैश्च वेष्टितम् ॥ ३९ ॥ शस्त्रतल्पस्वरूपं च क्रोशतुर्यप्रमाणकम् ॥ वेष्टितं तत्पातकिभिः कुन्तविद्धैश्च वेष्टितैः ॥ ४० ॥ ताडितैर्मम दूतैश्च शुष्ककंठोष्ठतालुकैः ॥ कीटैश्च शंकुप्रमितैः सर्पमानै-र्भयंकरैः ॥ ४१ ॥ तीक्ष्णदंतैश्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वांतयुतं सति ॥ महापातकिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ ४२ ॥ द्विगव्यूतिप्रमाणं च पूयकुंडं प्रचक्षते ॥ तद्भक्ष्यैः प्राणिभिर्युक्तं मम दूतश्च ताडितैः ॥ ४३ ॥ तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम् ॥ सर्पवेष्टितगात्रैश्च पापिभिः सर्पत-क्षितैः ॥ ४४ ॥ संकुलं शब्दकृद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ कुण्डत्रयं कशादीनां पूर्णं च मशकादिभिः ॥ ४५ ॥ सर्वं क्रोशार्धमानं च महापात-किभिर्युतम् ॥ हस्तपादादिबद्धैश्च क्षतजौघेन लोहितैः ॥ ४६ ॥ हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्ताडितैर्मम पार्षदैः ॥ वज्रवृश्चिकयोः कुंडं ताभ्यां च परि-पूरितम् ॥ ४७ ॥ वाप्यर्धं पापिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः ॥ कुंडत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम् ॥ ४८ ॥ तैर्विद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्धं रक्त-लोहितैः ॥ तप्ततोयोदकैः पूर्णं सध्वांतं गोलकुण्डकम् ॥ ४९ ॥ कीटैः शंकुसमानैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥ वाप्यर्धमानं भीतैश्च पापिभिः कीटभक्षितैः ॥ ५० ॥ रुदद्भिः क्रोशमानैश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ अतिदुर्गंधिसंयुक्तं दुःखदं पापिनां सदा ॥ ५१ ॥ दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितं

जिनके हाथ बँधे रहते हैं, रुधिरसे सर्वाङ्ग लाल रहता है तथा जो मेरे दूतोंकी मारसे घायल रहते हैं, उन प्राणियों द्वारा वहाँ हाहाकार मचा रहता है। वज्र और बिच्छुओंसे ओत-प्रोत 'वज्रकुण्ड' और 'वृश्चिककुण्ड' हैं ॥४५–४७॥ आधी बावड़ीके प्रमाणवाले उन नरकोंमें वज्र एवं बिच्छुओंसे विद्ध प्राणी भरे रहते हैं। 'शरकुण्ड', 'शूलकुण्ड' और 'खड्गकुण्ड'—ये तीनों आयुधोंसे व्याप्त हैं ॥४८॥ उन नरकोंमें पड़े प्राणियोंका शरीर शस्त्रास्त्रोंसे छिदता रहता है। रक्तकी धारा बहने लगती है, जिससे वे लाल प्रतीत होते हैं। उन नरकोंका प्रमाण आधी बावड़ी है। संतप्त जलसे पूर्ण तथा अन्धकारमय 'गोलकुण्ड' है ॥४९॥ टेढ़े-मेढ़े काँटोंकी-सी आकृतिवाले कीड़े जहाँके पापियोंको काटते हैं। उस नरकका विस्तार आधी बावड़ी है। कीड़ोंके काटने तथा मेरे दूतोंके मारनेपर भयसे घबराये हुए प्राणी रोते रहते हैं। पापियोंका झुण्ड कोसोंतक फैला रहता है। अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त तथा पापियोंको निरन्तर दुःख देनेवाला 'नक्रकुण्ड' है। वहाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विकृत आकारवाले भयंकर नक्र आदि जन्तु उन्हें काटते रहते हैं। उस नरककी लंबाई-चौड़ाई आधी बावड़ीके परिमाणमें है ॥५०-५२॥ विष्ठा, मूत्र और श्लेष्मभक्षी असंख्य पापियोंसे भरा हुआ 'काककुण्ड' है। उसमें विशाल आकारवाले भयंकर कौए पापियोंको नोचते रहते हैं ॥५३॥ 'मन्थानकुण्ड' और 'बीजकुण्ड' इन्हीं दोनों वस्तुओं तथा कीटविशेषोंसे ओत-प्रोत रहते हैं। इन कुण्डोंका परिमाण सौ धनुष है। उन कीड़ोंसे दंशित प्राणी सदा चीत्कार किया करते हैं। हाहाकार करनेवाले पापी जीवोंसे व्याप्त तथा सौ धनुष विस्तृत 'वज्रकुण्ड' है। वज्रके समान दाँतवाले भयंकर जन्तु उसमें रहते हैं। वहाँ सर्वत्र घोर अन्धकार छाया रहता है ॥५४॥५५॥ दो वापी जितना लंबा-चौड़ा और तप्तप्रस्तरनिर्मित 'तप्तपाषाणकुंड' है। उसका आकार ऐसा है कि मानो आग धधक रही हो। पापी प्राणी संतप्त होकर इधर-उधर भागते रहते हैं ॥५६॥ छुरेकी धारके समान तीखे पाषाणोंसे बना हुआ 'तीक्ष्ण पाषाणकुंड' है। महान् पापी उसमें वास करते हैं। रक्तसे लतपथ प्राणियोंसे भरा हुआ 'लालाकुंड' है। यह कुंड एक कोस नीचेतक गहरा है। मेरे दूतोंसे संतप्त प्राणी उसमें खचाखच भरे रहते हैं। कज्जल

पापिभिर्युतम् ॥ वाप्यर्धं परिपूर्णं च जलस्थैर्नक्रकोटिभिः ॥ ५२ ॥ विण्मूत्रश्लेष्मभक्षैश्च संयुतं शतकोटिभिः ॥ काकैश्च विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥ ५३ ॥ मंथानकुण्डं बीजकुण्डं ताभ्यां पूर्णं धनुःशतम् ॥ भक्षितैः पापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥ ५४ ॥ धनुःशतं जीवयुक्तं पापिभिः संकुलं सदा ॥ शब्दकृद्भिर्वज्रदंष्ट्रैः सांद्रध्वांतमयं परम् ॥ ५५ ॥ वापीद्विगुणमानं च तप्तप्रस्तरनिर्मितम् ॥ ज्वलदंगार सदृशं चलद्भिः पापिभिर्युतम् ॥ ५६ ॥ क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम् ॥ महापातकिभिर्युक्तं लालाकुण्डं च लोहितैः ॥ ५७ ॥ क्रोशमात्रं च गंभीरं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ तप्तांजनाचलाकारैः परिपूर्णं धनुःशतम् ॥ ५८ ॥ चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ पूर्णं चूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम् ॥ ५९ ॥ तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ कुण्डं कुलालचक्रं च घूर्णमानं च संततम् ॥ ६० ॥ सुतीक्ष्णं षोडशारं च चूर्णितैः पापिभिर्युतम् ॥ अतीव वक्रं निम्नं च द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥ ६१ ॥ कन्दराकारनिर्माणं तप्तोदैश्च समन्वितम् ॥ महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजंतुभिः ॥ ६२ ॥ ज्वलद्भिश्च शब्दकृद्भिश्च ध्वांतयुक्तं भयानकम् ॥ कोटिभिर्विकृताकारैः कच्छपैश्च सुदारुणैः ॥ ६३ ॥ जलस्थैः संयुतं तैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥ ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्मितैः क्रोशमानकम् ॥ ६४ ॥ शब्दकृद्भिः पातकिभिः संयुतं क्लेशदं सदा ॥

वर्णवाले संतप्त पत्थरोंसे निर्मित तथा सौ धनुष परिमाणवाला 'मसीकुण्ड' है ॥५७॥५८॥ मेरे दूतों द्वारा ताडित पापियोंसे वह कुण्ड पूरित रहता है। तपे हुए बालूसे भरपूर एक कोस विस्तारवाला 'चूर्णकुंड' है। उसमें प्रतप्त बालुकासे दग्ध होकर चिल्लानेवाले पापी निवास करते हैं ॥ ५९ ॥ कुम्हारके चक्रकी भाँति निरन्तर घूमता हुआ 'चक्रकुंड' है। उसमें अत्यन्त तीक्ष्णधारवाले सोलह आरे लगे हुए हैं, जिनसे वहाँके पापियोंके अङ्ग सदा क्षत-विक्षत होते रहते हैं। उस कुंडका आकार अत्यन्त टेढ़ी-मेढ़ी कन्दराके समान है तथा वह पर्याप्त गहरा है। उसकी लंबाई-चौड़ाई चार कोस है। उसमें खौलता हुआ जल भरा रहता है। वहाँके घोर पापियोंको जलचर जन्तु काटते खाते हैं ॥ ६०-६२ ॥ उस अंधकारमय भयानक कुंडमें संतप्त प्राणियोंका करुण क्रन्दन होता रहता है। विकृत आकारवाले अत्यन्त भयंकर असंख्य कछुओंसे भरा हुआ 'कूर्मकुंड' है ॥ ६३ ॥ जलमें रहनेवाले कछुए नारकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवोंको नोचते-खाते रहते हैं । प्रज्वलित ज्वालाओंसे व्याप्त 'ज्वालाकुंड' है । जिसकी लंबाई-चौड़ाई एक कोस है ॥ ६४ ॥ उस कष्टदायी कुण्डमें पातकी प्राणी निरन्तर चिल्लाते रहते हैं । एक कोस गहराईवाला 'भस्मकुण्ड' है, जिसमें सर्वत्र प्रतप्त भस्म ही भरा रहता है ॥६०॥ जलते हुए भस्मको खानेके कारण वहाँके पातकी जीवोंके अङ्गोंमें दाह-सी उठती रहती है । जो तपे हुए लौहसे परिपूर्ण तथा जले हुए गात्रवाले पापियोंसे युक्त नरक है, उसे 'दग्धकुण्ड' कहा गया है । वह अत्यन्त भयंकर और गहरा कुण्ड एक कोसके परिमाणमें है । वहाँ सर्वत्र अन्धकार छाया रहता है । ज्वालाके कारण पापियोंके तालु सूखे रहते हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो बहुसंख्यक उर्मियों, संतप्त खारे जलों और नाना प्रकारके शब्द करनेवाले जल-जन्तुओंसे युक्त है तथा जिसकी चौड़ाई चार कोस है, ऐसे गहरे और अन्धकारयुक्त नरकको 'प्रतप्तसूचीकुण्ड' कहते हैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस भयानक कुण्डमें दग्ध होनेके कारण आर्तनाद करते हुए प्राणी एक दूसरेको नहीं देख पाते । ७०॥ जिसमें तलवारकी धारके समान तीखे पत्तेवाले बहुतसे ऊँचे-ऊँचे ताड़के वृक्ष हैं । उस नरकको 'असिपत्रकुण्ड' कहा गया है । उस नरकके ये ताड़ वृक्ष आधे कोसकी

क्रोशमानं च गंभीरं तप्तभस्मभिरन्वितम् ॥ ६५ ॥ शश्वज्ज्वलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षितैः ॥ तप्तपाषाणलोहानां समूहैः परिपूरितैः ॥६६॥ पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तं च शुष्कतालुकैः ॥ क्रोशमानं ध्वांतयुक्तं गंभीरमतिदारुणम् ॥ ६७ ॥ ताडितैश्च प्रदग्धैश्च दग्धकुंडं प्रकीर्तितम् ॥ अतीवोर्मियुतं तोयं प्रतप्तक्षारसंयुतम् ॥ ६८ ॥ नानाप्रकारैर्विततैर्जलजंतुभिरन्वितम् ॥ द्विगव्यूतिप्रमाणं च गंभीरं ध्वांतसंयुतम् ॥ ६९ ॥ तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजंतुभिः ॥ ज्वलद्भिः शब्दकृद्भिश्च न पश्यद्भिः परस्परम् ॥ ७० ॥ प्रतप्तसूचीकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् ॥ असीवधारापत्रस्याप्युच्चैस्तालतरोरधः ॥ ७१ ॥ क्रोशार्धमानं कुंडं च पतत्पत्रसमन्वितम् ॥ पापिनां रक्तपूर्णं च वृक्षाग्रात्पततां भुवम् ॥ ७२ ॥ परित्राहीति शब्दं च कुर्वतामसतामपि ॥ गंभीरं ध्वांतयुक्तं च रक्तकीटसमन्वितम् ॥ ७३ ॥ तदसीपत्रकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् ॥ धनुःशतप्रमाणं च क्षुरधारास्त्रसंयुतम् ॥७४॥ पापिनां रक्तपूर्णं च क्षुरधारं भयानकम् ॥ सूचीमुखास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम् ॥ ७५ ॥ पंचाशद्धनुरायामं क्लेशदं च सूचीमुखम् ॥ कस्यचिज्जन्तुभेदस्य गोकाख्यस्य मुखाकृति ॥ ७६ ॥ कूपरूपं गभीरं च धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ महापातकिनां चैव महाक्लेशप्रदं

लंबाईतक ऊपरको फैले हुए हैं और उन्हीं वृक्षोंपरसे वहाँके पापियोंको गिराया जाता है । उन वृक्षोंके सिरसे गिराये गये पापियोंके रक्तोंसे वह कुंड भरा रहता है ॥७१॥७२॥ उन पापियोंके मुखमें 'रक्षा करो-रक्षा करो'की चीख निकलती रहती है । वह भयानक कुंड अत्यन्त गहरा, अंधकारसे आच्छन्न तथा रक्त के कोड़ोंसे परिपूरित है ॥७३॥जो सौ धनुष-जितना लम्बा-चौड़ा तथा छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण अस्त्रोंसे युक्त है, उस भयानक नरकको 'क्षुरधारकुण्ड' कहते हैं॥७४॥पापियोंके रक्तसे वह कभी खाली नहीं होता । उसमें सूईके जैसा नोकवाले अस्त्र भरे रहते हैं और वह पापियोंके रक्तसे सदा परिपूर्ण रहता है ॥७५॥ पचास धनुष-जितना लम्बा-चौड़ा वह नरक 'सूचीमुख' कहलाता है । वहाँ नारकी प्राणी अत्यन्त कष्ट भोगते हैं । किसी जन्तुविशेषका नाम गोका है । उसके मुखके समान जिसकी आकृति होती है, उसका नाम 'गोकामुखकुण्ड' है ॥७६॥ उसकी गहराई कुएँके समान है और उसका परिमाण बीस धनुष है । वह नरक घोर पापियोंके लिए अत्यन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कष्टप्रद है ।।७७।। उन गोकासंज्ञक कीड़ोंके काटनेसे नारकी जीवोंका मुख सदा नीचेको लटका रहता है। नाक (मगर जैसा जलजन्तु)के मुख जैसी जिसकी आकृति होती है, उसे 'नक्रकुंड' कहते हैं। वह सोलह धनुषके विस्तारमें स्थित है ।।७८।। उसकी गहराई कुएँ-जितनी है। उस कुण्डमें सदा पापी भरे रहते हैं। 'गजदंशकुण्ड' को सौ धनुष लम्बा चौड़ा बतलाया गया है ।।७९।। तीस धनुष-जितना विस्तृत, गौके मुखकी आकृतिवाला एवं पापियोंके लिए अत्यन्त दुःखद जो नरक है, उसे 'गोमुखकुण्ड' कहा गया है ।।८०।। कालचक्रसे युक्त तथा सदा चक्कर काटनेवाला भयानक नरक जिसकी आकृति घड़ेके समान है, वह 'कुम्भीपाक' कहलाता है। चार कासके परिमाणवाला वह नरक महान् अंधकारमय है ।।८१।। हे साध्वी! उसकी गहराई एक लाख पोरसा है। उस कुंडके अन्तर्गत तप्ततैल एवं ताम्रकुंड आदि बहुसंख्यक कुण्ड हैं ।।८२।। उस नरकमें बड़े-बड़े पापी अचेत होकर पड़े रहते हैं। भयंकर कीड़ोंके काटनेपर चिल्लाते हुए नारकी जीव परस्पर एक दूसरेको देखनेमें असमर्थ होकर चिल्लाते रहते हैं ।।८३।। मेरे दूतोंके मूसरों और मुग्दरोंकी मार खाकर उन्हें क्षण-क्षणमें मूर्छा आती रहती है और वे पृथ्वीपर लोट

परम् ।। ७७ ।। तत्कीटभक्षितानां च नम्रास्यानां च संततम् ।। कुंडं नक्रमुखाकारं धनुःषोडशमानकम् ।। ७८ ।। गंभीरं पापरूपं च पापिनां संकुलं सदा ।। धनुःशतप्रमाणं च कीर्तितं गजदंशनम् ।। ७९ ।। धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च कुण्डं च गोमुखाकृति ।। पापिनां क्लेशदं शश्वद्गोमुखं परि-कीर्तितम् ।। ८० ।। कालचक्रेण संयुक्तं भ्रममाणं भयानकम् ।। कुम्भाकारं ध्वांतयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ।। ८१ ।। लक्षपौरुषमानं च गंभीरं विस्तृतं सति ।। कुत्रचित्तप्ततैलं च ताम्रादिकुण्डमेव च ।। ८२ ।। पापिनां च प्रधानैश्च मूर्छितैः कृमिभिर्युतम् ।। परस्परं च नरद्भिः शब्दकृद्भिश्च संततम् ।। ८३ ।। ताडितैर्यमदूतैश्च मुसलैर्मुद्गरैस्तथा ।। घूर्णमानैः पतद्भिश्च मूर्छितैश्च क्षणं क्षणम् ।। ८४ ।। पातितैर्यमदूतैश्च रुदंत्यस्मात्क्षणं पुनः ।। यावंतः पापिनः संति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि ।। ८५ ।। ततश्चतुर्गुणाः संति कुम्भीपाके च दुःखदे ।। सुचिरं वध्यमानास्ते भोगदेहा न नश्वराः ।। ८६ ।। सर्वकुण्डप्रधानं च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम् ।। कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिनः ।। ८७ ।। उत्थापिताश्च दूतैश्च क्षणमेव निमज्जिताः ।। निःश्वासबद्धाः सुचिरं तथा मोहं गताः पुनः ।।८८।। अतीव क्लेशसंयुक्ता देहभोगेन सुंदरि ।। प्रतप्ततोययुक्तं च कालसूत्रं प्रकीर्ति-तम् ।। ८९ ।। अवटः कूपभेदश्च मत्स्योदः स उदाहृतः ।। प्रतप्तयोयपूर्णं च चतुर्विंशत्प्रमाणकम् ।। ९० ।। व्याप्तं महापापिभिर्व्यादग्धांगैश्च संत-

जाते हैं ।।८४।। हे पतिव्रते! उन सभी कुंडोंमें जितने पापी पड़े रहते हैं, उन सबकी ऐसी ही दुर्दशा होती है। मेरे दूतोंकी मार पड़नेपर वे क्षणमें गिरते और क्षणभरमें चिल्लाहट मचाने लगते हैं ।।८५।। कुम्भीपाकके अन्तर्गत जो नरककुण्ड हैं, वे उससे चौगुने कष्टप्रद हैं। सुदीर्घकालतक मार पड़नेपर भी यातना भोगनेवाले उन शरीरोंका अन्त नहीं होता ।।८६।। कुम्भीपाकको संपूर्ण नरककुण्डोंमें प्रधान बताया गया है। कालनिर्मित सुदृढ़ सूत्रसे बँधे हुए पापी जीव वहाँ निवास करते हैं, उसे 'कालसूत्र' नामक नरककुंड कहा गया है। वहाँ मेरे दूतोंके प्रयाससे प्राणी कभी ऊपर उठते हैं और कभी डूब जाते हैं। बहुत देरतक उनकी साँस बन्द रहती है। जिससे वे अचेत हो जाते हैं ।।८७।।८८।। हे साध्वी! उसका जल सदा खौलता रहता है। नरकभोगी प्राणियोंके लिए वह बड़ा ही कष्टप्रद नरक है ।।८९।। 'अवटकुंड' और 'मत्स्योदकुंड' एक ही हैं। 'अवट' संज्ञक एक कूप है। अतः उसे अवटकुंड कहा करते हैं। संतप्त जलसे वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिपूर्ण रहता है। चौबीस धनुष जितना वह लम्बा-चौड़ा है ॥९०॥ जलते हुए शरीरवाले घोर पापी जीव उसमें निरन्तर भरे रहते हैं। मेरे दूतोंको कठिन मार उन्हें सहनी पड़ती है। उस कुंडकी 'अवटोद' संज्ञा है ॥९१॥ उसके जलका स्पर्श होते ही सम्पूर्ण व्याधियाँ पापियोंको अनायास घेर लेती हैं। उसकी गहराई सौ धनुष है ॥९२॥ जिसमें पड़े हुए प्राणियोंको भयानक कीड़े काटते रहते हैं, उसे 'अरुन्तुदकुंड' कहा जाता है। दुखी जीव वहाँ सदा हाहाकार मचाया करते हैं ॥ ९३ ॥ अत्यन्त तपी हुई धूलोंसे व्याप्त नरकको 'पांसुकुंड' कहते हैं। वह सौ धनुष-जितना विस्तृत है। उसमें पड़े नारकी जीवोंके चमड़े जलते रहते हैं। खानेके लिये उन्हें जलती हुई धूल ही उपलब्ध होती है ॥ ९४ ॥ जिसमें गिरते ही पापी पाशोंसे आवेष्टित हो जाता है, उसे विज्ञ पुरुषोंने 'पाशवेष्टनकुंड' कहा है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक कोस है ॥९५॥ जहाँ पापी ज्यों ही गिरते हैं, त्यों ही शूलसे जकड़ उठते हैं। उसे 'शूल-प्रोतकुंड' कहा जाता है। उसका परिमाण बीस धनुष है ॥९६॥ 'प्रकम्पनकुंड' आधे कोसके विस्तारमें है। उसका जल बरफके समान ठण्ढा रहता है। उसमें पड़ते ही प्राणियोंके शरीरमें

तम् ॥ मद्दूतैस्ताडितैः शश्वदवटोदं प्रकीर्तितम् ॥९१॥ यत्रोदस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम् ॥ भवेदकस्मात्पततां यस्मिन्कुण्डे धनुःशते ॥९२॥ अरुंतुदैर्भक्षितैस्तु प्राणिभिर्यच्च संकुलम् ॥ हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्तदेवारुंतुदं विदुः ॥ ९३ ॥ तप्तपांसुभिराकीर्णं ज्वलद्भिस्तुषदग्धकैः ॥ तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं पांसुभोजैर्धनुःशतम् ॥ ९४ ॥ पातमात्रेण पापी च शूलेन वेष्टितो भवेत् ॥ क्रोशमात्रेण कुण्डं च तत्पाशवेष्टनं विदुः ॥ ९५ ॥ पातमात्रेण पापी च शूलेन वेष्टितो भवेत् ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं च शूलप्रोतं प्रकीर्तितम् ॥ ९६ ॥ पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकंपनम् ॥ अतीव हिमतोयाक्तं क्रोशार्धं च प्रकंपनम् ॥ ९७ ॥ ददत्येव हि मे दूता यत्रोल्काः पापिनां मुखे ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं तदुल्काभिश्च सुसंकुलम् ॥ ९८ ॥ लक्षपौरुषमानं च गंभीरं च धनुःशतम् ॥ नानाप्रकारकृमिभिः संयुक्तं च भयानकम् ॥ ९९ ॥ अत्यंधकारव्याप्तं च कूपाकारं च वर्तुलम् ॥ तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं प्रणश्यद्भिः परस्परम् ॥ १०० ॥ तप्ततोयप्रदग्धैश्च ज्वलद्भिः कीटभक्षितैः ॥ ध्वांतेन चक्षुषा चांधैरंधकूपः प्रकीर्तितः ॥ १०१ ॥ नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं च वेधनं तत्प्रकीर्तितम् ॥ १०२ ॥ दंडेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिनः ॥ धनुः-

कँपकँपी मच जाती है ॥९७॥ जिसमें पापियोंके मुखोंमें जलती हुई लुआठी ठूँस दी जाती है। उसे 'उल्कामुखकुण्ड' कहा गया है। वह भी बीस धनुष जितना लम्बा-चौड़ा है ॥ ९८ ॥ जिसकी गहराई एक लाख पोरसा तथा जो सौ धनुष जितना विस्तृत है, उस भयानक कुण्डको 'अन्धकूप नरक' कहते हैं। उसमें नाना प्रकारकी आकृतिवाले कीड़े रहते हैं। वह सदा अन्धकारसे व्याप्त रहता है। कूपके समान उसको गोलाई है। कीड़ोंके काटनेपर प्राणी आतुर होकर परस्पर एक दूसरेको काटने लगते हैं ॥९९॥१००॥ उन्हें खौलता हुआ जल ही पीनेको मिलता है। एक तो वे खौलते हुए जलसे जलते हैं, दूसरे कीड़े भी काटते हैं। वहाँ इतना अन्धकार रहता है कि वे आँखोंसे कुछ भी नहीं देख सकते। इसीसे इसे अन्धकूप कहा गया है ॥ १०१ ॥ जहाँ जानेपर पापी अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे बिंध जाते हैं, वह 'वेधनकुण्ड' कहलाता है। उसकी लम्बाई बीस धनुष है ॥ १०२ ॥ जहाँ पापियोंको डंडोंसे मारा जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, उस सोलह धनुषके प्रमाणवाले नरकको 'दण्डताडनकुंड' कहते हैं ॥ १०३ ॥ जहाँ जाते ही पापी जीव मछलियोंकी भाँति महाजालमें फँस जाते हैं । जो बीस धनुष विस्तृत है, वह 'जालरन्ध्रकुण्ड' कहलाता है ॥१०४॥ जहाँ गिरे हुए पापियोंके शरीर चूर-चूर हो जाते हैं । वह नरक 'देहचूर्णकुंड' नामसे प्रसिद्ध है । वहाँ गये हुए पापियोंके पैरमें लोहेकी बेड़ी पड़ी रहती है । असंख्य पोरसा वह गहरा है । उसकी लम्बाई और चौड़ाई बीस धनुष है । प्रकाशका तो वहाँ कहीं नाम भी नहीं रहता । उसमें प्राणी मूर्च्छित होकर जड़की भाँति पड़े रहते हैं । जहाँ गये हुए पापी मेरे दूतों द्वारा दलित और ताड़ित होते रहते हैं, उसको 'दलनकुंड' कहा गया है । वह सोलह धनुषके विस्तारमें है ॥१०५–१०७॥ तपी हुई बालूसे व्याप्त होनेके कारण जहाँ गिरते ही पापीके कण्ठ, ओठ और तालू सूख जाते हैं । जो तीस धनुष-जितने परिमाणमें है । जिसकी गहराई सौ पोरसा है एवं जो सदा अन्धकारसे आच्छन्न रहता है, पापियोंके लिये अतिशय दुःखप्रद उस नरकको 'शोषकुण्ड' कहते हैं ॥१०८॥१०९॥ जहाँ विविध चर्मोंके कसैले जलसे लबालब भरा रहता है, जिसकी लंबाई-चौड़ाई सौ धनुष है और जहाँ सदा

षोडशमानं च तत्कुण्डं दंडताडनम् ॥ १०३ ॥ निरुद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं च जालरंध्रं प्रकीर्तितम् ॥ १०४ ॥ पततां पापिनां कुण्डे देहश्चूर्णो भवेदिह ॥ लोहबंदीनिबद्धानां कोटिपौरुषमानकम् ॥ १०५ ॥ गंभीरं ध्वांतसंयुक्तं धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ मूर्छितानां जडानां च देहचूर्णं प्रकीर्तितम् ॥ १०६ ॥ दलिताः पापिनो यत्र मम दूतैश्च ताडिताः ॥ धनुःषोडशमानं च तत्कुण्डं दलनं स्मृतम् ॥ १०७ ॥ पतनेनैव पापी च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥ बालुकासु च तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ॥ १०८ ॥ शतपौरुषमानं च गंभीरं ध्वांतसंयुतम् ॥ शोषणं कुण्डमेतद्धि पापिनां परदुःखदम् ॥ १०९ ॥ नानाचर्मकषायोदपरिपूर्णं धनुःशतम् ॥ दुर्गंधियुक्तं तद्भक्ष्यैः प्राणिभिः सङ्कुलं कषम् ॥ ११० ॥ शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमानकम् ॥ तप्तलोहबालुकाभिः पूर्णं पातकिसंयुतम् ॥१११॥ दुर्गंधियुक्तं तद्भक्ष्यैः पापिभिः सङ्कुलं सति ॥ शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमात्रकम् ॥ ११२ ॥ प्रतप्तबालुकापूर्णं महापातकिभिर्युतम् ॥ अंतरग्निशिखानां च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा ॥ ११३ ॥ धनुर्विंशतिमात्रं च प्रमाणं यस्य सुन्दरि ॥ ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पापिभिर्व्याप्तमेव च ॥ ११४ ॥ तन्महाक्लेशदं शश्वत्कुण्डं ज्वालामुखं स्मृतम् ॥ पातमात्राद्यत्र पापी मूर्छितो वै नरो भवेत् ॥११५॥ तप्तेष्टकाभ्यंतरितं वाप्यर्धं जिह्मकुण्डकम् ॥ धूम्रांधकारसंयुक्तं धूम्रांधैः पापिभिर्युतम् ॥ ११६ ॥

दुर्गन्ध फैली रहती है और उस अमेध्य वस्तुके आहारपर ही निर्भर रहकर पापी जीव यातना भोगते हैं, वह नरक 'कषकुण्ड' कहलाता है ॥ ११० ॥ हे साध्वी ! जिस कुण्डका आकार शूर्पके सदृश है, जो बारह धनुषके बराबर लंबा-चौड़ा है, जहाँ सर्वत्र संतप्त बालुका बिछी रहती है और पातकियोंसे कोई स्थल खाली नहीं रहता, उस नरकको 'शूर्पकुण्ड' कहते हैं । वहाँ सदा दुर्गन्ध भरी रहती है । वही खाकर पापी जीव वहाँ यातना भोगते हैं ॥ १११ ॥ ११२ ॥ हे पतिव्रते ! जहाँकी रेणुका अत्यन्त संतप्त रहती है, जो घोर पापी जीवोंसे युक्त रहता है एवं जिसके भीतर आगकी लपटें उठा करती हैं, ऐसी ज्वालासे भरे हुए मुखवाले नरकको 'ज्वालामुखकुण्ड' कहा जाता है । वह बीस धनुष विस्तृत है । ज्वालासे दग्ध पापी उसके कोने-कोनेमें भरे रहते हैं ॥११३॥११४॥ उस कुण्डमें प्राणियोंको असीम कष्ट भोगना पड़ता है । वहाँ गिरते ही मानव मूर्च्छित हो जाता है ॥११५॥ जिसके भीतर ईंटें अत्यन्त संतप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहती हैं एवं जो आधी बावड़ी जितने परिमाणवाला है, वह 'जिह्मकुंड' कहलाता है। जो धूममय अन्धकारसे युक्त रहता है तथा जहाँ गये हुए पापी धुएके कारण नेत्रहीन हो जाते हैं। ॥ ११६ ॥ जिसमें साँस लेनेके लिए बहुतसे छिद्र बने हैं, उस नरकको 'धूम्रान्धकुण्ड' कहा गया है। जो सौ धनुषके बराबर परिमाणमें है। जहाँ जानेपर पापीको तुरन्त नाग बाँध लेते हैं। जो सौ धनुष-जितना लम्बा-चौड़ा है और जिसमें सदा नाग भरे रहते हैं, उसे 'नागवेष्टनकुण्ड' कहा गया है। इन सभी कुण्डोंमें मेरे दूत प्राणियोंको मारते, जलाते तथा भाँति-भाँतिसे भयानक कष्ट देते रहते हैं ॥ १७ ॥ हे सावित्री ! सुनो, मैंने ये छियासी नरककुंड और इनके लक्षण भी बतला दिये। अब तुम क्या चाहती हो ? ॥ ११८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

(भगवती भुवनेश्वरीके स्वरूप, महत्त्व और गुणोंकी अनिर्वचनीयता) सावित्रीने कहा—हे प्रभो ! अब आप मुझे जो समस्त सार पदार्थोंमें सर्वप्रधान है, वह भगवतीकी भक्ति प्रदान

धनुःशतं श्वासरंध्रैर्धूम्रांधं परिकीर्तितम् ॥ पातमात्राद्यत्र पापी नागैश्च वेष्टितो भवेत् ॥११७॥ धनुःशतं नागपूर्णं तन्नागैर्वेष्टितं भवेत् ॥ षडशीति च कुंडानि मयोक्तानि निशामय ॥ लक्षणं चापि तेषां च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११८॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

॥सावित्र्युवाच ॥ देवीभक्तिं देहि मह्यं साराणां चैव सारकम् ॥ पुंसां मुक्तिद्वारबीजं नरकार्णवतारकम् ॥ १ ॥ कारणं मुक्तिसाराणां सर्वाशुभविनाशनम् ॥ दारकं कर्मवृक्षाणां कृतपापौघहारणम् ॥२॥ मुक्तिश्च कतिधाऽप्यस्ति किं वा तासां च लक्षणम् ॥ देवीभक्तिं भक्तिभेदं निषेकस्यापि खंडनम् ॥ ३ ॥ तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता ॥ किंचिज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदां वर ॥ ४ ॥ सर्वं दानं च यज्ञश्च तीर्थस्नानं व्रतं तपः ॥ अज्ञानिज्ञानदानस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ५ ॥ पितुः शतगुणा माता गौरवे चेति निश्चितम् ॥ मातुः शतगुणः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो ॥ ६ ॥ धर्मराज उवाच ॥ पूर्वं सर्वो वरो दत्तो यस्ते मनसि वांछितः ॥ अधुना शक्तिभक्तिस्ते वत्से भवतु मद्वरात् ॥ ७ ॥ श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीदेवीगुणकीर्तनम् ॥ वक्तॄणां पृच्छकानां च श्रोतॄणां कुलतारणम् ॥ ८ ॥ शेषो वक्त्रसहस्रेण न हि यद्वक्तुमीश्वरः ॥

करनेकी कृपा कीजिये। क्योंकि वही मुक्तिका सिद्ध मार्ग है। उसीके प्रभावसे मनुष्य नरकसे तर जाते हैं ॥१॥ वही सम्पूर्ण अशुभ कर्मोंको नष्ट करनेकी शक्तिसे सम्पन्न है। उसकी महिमासे कर्मवृक्षकी जड़ ही कट जाती है ॥२॥ हे भगवन् ! शक्ति किसको कहते हैं ? मुक्तियाँ कितने प्रकारकी होती हैं ? उनके क्या लक्षण हैं तथा देवी भक्तिका वास्तविक स्वरूप क्या है ? भक्तिके कितने भेद हैं एवं किये हुए कर्मोंके भोगका नाश किस प्रकार हो सकता है—ये सारी बातें भी मैं जानना चाहती हूँ ॥३॥ वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हे प्रभो ! आप मुझ तत्त्वज्ञानहीन नारीको संक्षेपमें परम साररूप ज्ञान प्रदान करनेकी कृपा कीजिये ॥४॥ अज्ञानीको ज्ञान प्रदान करनेसे जो महान् पुण्य होता है—यज्ञ, तीर्थ, स्नान, दान, व्रत और तपके सम्पूर्ण पुण्यफल उसकी सोलहवीं कलाको भी बराबरी नहीं कर सकते ॥५॥ पिताकी अपेक्षा माताकी श्रेष्ठता सौगुनी अधिक मानी जाती है—यह बिल्कुल निश्चित है। परन्तु हे प्रभो ! ज्ञानदाता होनेके कारण गुरु मातासे भी सौगुने अधिक पूज्य हैं ॥६॥ धर्मराज बोले—हे वत्से ! तुम जिसकी अभिलाषा कर रही थीं, वह सब तो मैं तुम्हें पहले ही दे चुका हूँ। अब जो तुम भगवती जगदम्बाकी भक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहती हो, वह भी अब मेरे दिये हुए वरके प्रभावसे तुम्हें प्राप्त हो जायगी ॥७॥ हे कल्याणी ! तुम जो मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाके गुणानुवादको श्रवण करना चाहती हो, सो यह बड़ा ही विलक्षण प्रसंग है। इसके पूछने, कहने और सुननेवाले—सभी अपने कुलको तारनेवाले हैं ॥८॥ परन्तु है यह बहुत कठिन। सहस्रमुखवाले शेष भी इसे कहनेमें असमर्थ हैं। मृत्युञ्जय भगवान् शंकर यदि अपने पाँच मुखोंसे कहने लगें तो वे भी पार नहीं पा सकते ॥९॥ ब्रह्माजी चारों वेदों तथा अखिल जगत्के स्रष्टा हैं। चार मुखोंसे उनकी परम शोभा होती है। भगवान् विष्णु सर्वज्ञ हैं। परन्तु ये दोनों प्रधान देवता भी भगवतीके गुणोंका सम्यक् प्रकारसे वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥१०॥ स्वामिकार्तिकेय अपने छः मुखोंसे वर्णन करते रहें, तो भी अन्त नहीं पा सकते। महाभाग गणेशजीको योगीन्द्रोंके गुरुका गुरु कहा जाता है, किन्तु भगवतीके गुणोंका वर्णन कर पाना उनके लिये भी असम्भव है॥ ११ ॥ सम्पूर्ण शास्त्रोंके सारतत्त्व चार वेद हैं। ये वेद तथा इनके विद्वान् भी भगवती जगदम्बाके गुणोंकी एक कला भी जाननेमें असमर्थ सिद्ध हो जाते हैं ॥ १२ ॥ देवीकी महिमा-वर्णनमें साक्षात्

मृत्युञ्जयो न क्षमश्च वक्तुं पंचमुखेन च ॥ ९ ॥ धाता चतुर्णां वेदानां विधाता जगतामपि ॥ ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालं विष्णुश्च सर्ववित् ॥ १० ॥
कार्तिकेयः षण्मुखेन नापि वक्तुमलं ध्रुवम् ॥ न गणेशः समर्थश्च योगींद्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ११ ॥ सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वार एव च ॥
कलामात्रं यद्‌गुणानां न विदन्ति बुधाश्च ये ॥ १२ ॥ सरस्वती जडीभूता नालं तद्‌गुणवर्णने ॥ सनत्कुमारो धर्मश्च सनंदनः सनातनः ॥१३॥
सनकः कपिलः सूर्यो येऽन्ये च ब्रह्मणः सुताः ॥ विचक्षणा न यद्वक्तुं किं चान्ये जडबुद्धयः ॥१४॥ न यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धा मुनींद्रा योगिनस्तथा ॥
के चान्ये च वयं के वा श्रीदेव्या गुणवर्णने ॥१५॥ ध्यायंते यत्पदांभोजं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ अतिसाध्यं स्वभक्तानां तदन्येषां सुदुर्लभम् ॥१६॥
कश्चित्किंचिद्विजानाति तद्‌गुणोत्कीर्तनं शुभम् ॥ अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मविशारदः ॥१७॥ ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः ॥
सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शंभुरेव सः ॥ १८ ॥ तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना ॥ अतीव निर्जनेऽरण्ये गोलोके रासमंडले ॥ १९ ॥
तत्रैव कथितं किंचित्तद्‌गुणोत्कीर्तनं शुभम् ॥ धर्मं च कथयामास शिवलोके शिवः स्वयम् ॥ २० ॥ धर्मस्तु कथयामास भास्वते पृच्छते तथा ॥

सरस्वती भी जड़के समान होकर असमर्थता प्रकट करने लगती हैं। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, धर्म, कपिल तथा सूर्य—ये तथा ब्रह्माजीके अन्यान्य सुयोग्य पुत्र भी उनके महत्त्वका वर्णन करनेमें सफलता नहीं प्राप्त कर सके, तब फिर अन्य जडबुद्धिवाले व्यक्तियोंसे क्या आशा की जा सकती है ? ॥ १३ ॥ १४ ॥ श्रीदेवीके जिन गुणोंकी व्याख्या सिद्ध, मुनीन्द्र तथा योगीन्द्र भी नहीं कर सकते, उनका वर्णन अन्य पुरुष कैसे कर सकते हैं तथा मैं ही कैसे कर सकता हूँ ? ॥ १५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिवप्रभृति देवता भगवतीके जिन चरणकमलोंका ध्यान धरते हैं, वे देवी भक्तोंके लिये जितनी सुगम हैं, उतनी ही भक्तिहीन जनोंके लिये दुर्लभ भी हैं ॥ १६ ॥ भगवतीका गुणानुवाद परम पवित्र है। कुछ लोग उनके किसी अंशको जानते हैं। परम ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मा कुछ अतिरिक्त ही अंशसे परिचित हैं ॥१७॥ ज्ञानियोंके गुरु गणेशजीको कुछ और ही ढंगसे भगवतीका गुण ज्ञात है। सबसे विलक्षण गुण सर्वज्ञानी भगवान् शंकर ही जानते हैं ॥ १८ ॥ क्योंकि परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उन्हें इनका ज्ञान प्राप्त हो चुका है। पूर्व समयकी बात है—भगवान शंकर एक बार गोलोकमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गये थे। वहाँ एक परम निर्जन वनमें रासमण्डलका आयोजन था ॥ १९ ॥ वहीं भगवान श्रीकृष्णने शंकरजीको भगवती जगदम्बाके कुछ पवित्र गुण सुनाये थे। इसके बाद स्वयं शिवजीने अपनी पुरीमें नको धार्मिक उपदेश दिया था ॥ २० ॥ महाभाग सूर्यके पूछनेपर धर्मने उनके सामने इन देवीकी व्याख्या की थी। हे साध्वो! मेरे पिता भगवान सूर्य तपस्या करनेके पश्चात् देवीकी उपासना करके कुछ-कुछ इस ज्ञानको प्राप्त कर सके थे ॥२१॥ पूर्वसमयमें मेरे पिताजी यत्नपूर्वक मुझे यमपुरीका राज्य दे रहे थे, किन्तु मैं लेना नहीं चाहता था। हे सुव्रते! वैराग्य हो जानेके कारण मेरे मनमें तपस्या करनेकी बात आ रही थी ॥ २२ ॥ पिताजीने मेरे सामने भगवतीके गुणोंका वर्णन किया। उस समय मैंने जो कुछ सुना था, उसी परम दुर्लभ विषयको आज मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥२३॥ हे वरानने! मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाके इतने अधिक गुण हैं कि उन्हें वे स्वयं ही पूरे तौरसे नहीं जानतीं। तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है। जैसे आकाश अपने भीतरकी सभी वस्तुओंसे अनभिज्ञ रहता है, वैसे ही भगवती भी अपने समस्त गुणोंसे अपरिचित ही हैं ॥२४॥ उन ब्रह्मस्वरूपिणी भगवतीका प्रथम रूप 'सर्वात्मा' है। जिनके भगवान, सम्पूर्ण कारणोंके कारण, सर्वेश्वर, सर्वाद्य, सर्ववित् और सर्वपरिपालक आदि पृथक्-पृथक् नाम हैं ॥ २५ ॥ जो नित्यस्वरूप नित्यविग्रह एवं

यामाराध्य मत्पिता च यं प्राप तपसा सति ॥ २१ ॥ पूर्वं स्वं विषयं चाहं न गृह्णामि प्रयत्नतः ॥ वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छामि सुव्रते ॥ २२ ॥ तदा मां कथयामास पिता तद्गुणकीर्तनम् ॥ यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम् ॥ २३ ॥ तद्गुणं सा न जानाति तदन्यस्य च का कथा ॥ यथाऽऽकाशो न जानाति स्वांतमेव वरानने ॥ २४ ॥ सर्वात्मा सर्वभगवान्सर्वकारणकारणः ॥ सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित्परिपालकः ॥ २५ ॥ नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानंदो निराकृतिः ॥ निरंकुशो निराशंको निर्गुणश्च निरामयः ॥ २६ ॥ निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः ॥ मायाविशिष्टः प्रकृतिस्तद्विकाराश्च प्राकृताः ॥ २७ ॥ स्वयं पुमांश्च प्रकृतिस्तावभिन्नौ परस्परम् ॥ यथा वह्नेस्तस्य शक्तिर्न भिन्नाऽस्त्येव कुत्रचित् ॥ २८ ॥ सेयं शक्तिर्महामाया सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ रूपं बिभर्त्यरूपा च भक्तानुग्रहहेतवे ॥ २९ ॥ गोपालसुन्दरीरूपं प्रथमं सा ससर्ज ह ॥ अतीव कमनीयं च सुन्दरं सुमनोहरम् ॥ ३० ॥ नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपवेषकम् ॥ कंदर्पकोटिलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् ॥ ३१ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मानां

सदा परमानन्दपरिपूर्ण रहते हैं, जो भौतिक आकारसे रहित हैं तथा जो निरंकुश, निःशङ्क, निर्गुण (त्रिगुणरहित), निरामय, निर्लिप्त, सर्वसाक्षी, सर्वाधार एवं परात्पर हैं, वे ही परमात्मा अपनी मायासे मूलप्रकृति भगवती भुवनेश्वरीके रूपमें अभिव्यक्त हो जाते हैं। सभी नामधारी वस्तुओंकी अभिव्यक्ति या उत्पत्ति उन्हींसे हुई है ॥ २६ ॥ २७ ॥ स्वयं परमात्मा ही प्रकृतिके संयोगसे 'प्रकृति' शब्दवाच्य हो जाते हैं। इन प्रकृति और पुरुष-दोनोंमें वस्तुतः इस प्रकारकी अभिन्नता है—जैसे अग्नि और दाहिका शक्तिमें कभी किञ्चित् भी भिन्नताकी कल्पना नहीं की जा सकती ॥२८॥ वे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती जगदम्बा शक्ति एवं महामाया नामसे प्रसिद्ध हैं। उनका कोई रूप नहीं है। तथापि भक्तोंपर कृपा करनेके लिए वे विविध रूप धारण किये हुए हैं ॥ २९ ॥ वे ही सर्वप्रथम गोपालसुन्दरीका रूप धारण कर चुकी हैं। अतः स्वयं परब्रह्म परमात्मा भगवान श्रीकृष्ण उन्हींके अभिन्न स्वरूप हैं। उस समय उनकी अवर्णनीय शोभा थी और परम कमनीय कलेवर था ॥३०॥ मनोमुग्धकारिणी, निरतिशय सुंदर एवं नव-नील-नीरद जैसी आकृति थी। नित्य नवकिशोर गोपवेष था। उनके नेत्र-कमलकी शोभाके सामने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शरत्कालीन मध्याह्नके कमलकी सुषमा छविहीन हो रही थी। उनकी सौंदर्य-माधुरीपर अनन्त अनङ्ग न्योछावर हो रहे थे ॥ ३१ ॥ उनके मधुर और मनोहर मुखचंद्रको देखकर शारदीय पूर्णिमाके कोटि-कोटि कलाधर छिप जाते थे। दिव्य अमूल्य रत्नोंसे रचित प्रभामय आभूषणोंसे उनके सर्वाङ्ग अलंकृत थे। कटिप्रदेश परम प्रभाशाली पीताम्बरसे सुशोभित था ॥३२॥३३॥ सहज ब्रह्मज्योतिसे उनका श्रीविग्रह उद्भासित था। उनका स्वरूप आनन्ददायी था। वह शान्त रूप राधाको अत्यधिक प्रसन्न करनेवाला था ॥३४॥ मुसकाती हुई बहुतेरी गोपियाँ उन्हें निहार रही थीं। वे रासमण्डलके मध्य रत्नजटित सिंहासनपर बैठे थे ॥३५॥ उनके दो भुजायें थीं और वे उनसे वंशी बजा रहे थे। उनके विशाल वक्षःस्थलपर दिव्य सुगन्धमयी वनमाला लहरा रही थी। चम्पा और मालतीकी मनोहर मालाएँ घुटनोंतक लटक रही थीं। उरःस्थलपर कौस्तुभमणि चमचमा रही थी ॥३६॥ उनके सभी अङ्ग कस्तूरी, केसर और अगुरुमिश्रित दिव्य चन्दनसे चर्चित

शोभामोचनलोचनम् ॥ शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभाप्रच्छादनाननम् ॥ ३२ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषितम् ॥ सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्य-पीतवाससा ॥ ३३ ॥ परब्रह्मस्वरूपं च ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ सुखदृश्यं च शांतं च राधाकांतमनन्तकम् ॥ ३४ ॥ गोपीभिर्वीक्ष्यमाणं च सस्मिता-भिश्च संततम् ॥ रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् ॥ ३५ ॥ वंशीं क्वणन्तं द्विभुजं वनमालाविभूषितम् ॥ कौस्तुभेन्द्रमणीन्द्रेण शश्वद्वक्षःस्थ-लोज्ज्वलम् ॥ ३६ ॥ कुंकुमागुरुकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम् ॥ चारुचंपकमालाक्तं मालतीमाल्यमंडितम् ॥ ३७ ॥ चारुचन्द्रकशोभाढ्यं चूडावंक्रिम-राजितम् ॥ एवंभूतं च ध्यायंति भक्ता भक्तिपरिप्लुताः ॥ ३८ ॥ यद्भयाज्जगतां धाता विधत्ते सृष्टिमेव च ॥ कर्मानुसाराल्लिखितं करोति सर्वकर्मणाम् ॥ ३९ ॥ तपसां फलदाता च कर्मणां च यदाज्ञया ॥ विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात्पाति संततम् ॥ ४० ॥ कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात् ॥ शिवो मृत्युञ्जयश्चैव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः ॥ ४१ ॥ यज्ज्ञानाज्ज्ञानवानस्ति योगीशो ज्ञानवित्प्रभुः ॥ परमा-नन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः ॥ ४२ ॥ यद्भयाद्वाति पवनः प्रवरः शीघ्रगामिनाम् ॥ तपनश्च प्रतपति यद्भयात्सन्ततं सति ॥ ४३ ॥ यदाज्ञया वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥ यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेवं सुशीतलम् ॥ ४४ ॥ दिशो रक्षन्ति दिक्पाला महाभीता यदाज्ञया ॥ भ्रमन्ति

थे। वह श्रीविग्रह मनोहर दिव्य चूडामणिसे सुशोभित था। भक्तिरससे सराबोर भक्तजन उनकी इसी रूपका ध्यान करते हैं ॥३७॥३८॥ वे श्रीकृष्ण सभीके एकमात्र महेश्वर हैं। जगद्धाता ब्रह्मा उन्हींका भय मानकर सृष्टिका विधान तथा कर्मानुसार सम्पूर्ण कर्मोंका उल्लेख करते हैं ॥ ३९ ॥ उन्हींके आज्ञानुसार देवता सबको तपस्याओं तथा कर्मोंका फल देते हैं। उन्हींके आदेशसे भगवान विष्णुको सबका रक्षक माना गया है। वे उन्हींको आज्ञा पाकर निरन्तर रक्षाके कार्यमें तत्पर रहते हैं ॥४०॥ उनके भीतर रहनेवाले कालाग्नि रुद्र द्वारा अखिल जगत्का संहार होता है। जो ज्ञानियोंके गुरु एवं मृत्युञ्जय नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव हैं, वे भी उन्हींको जाननेसे ज्ञानवान्, योगीश, प्रभु, परम आनन्दसे सम्पन्न तथा भक्ति एवं वैराग्यसे युक्त हैं ॥४१॥४२॥ हे साध्वी! उन्हींका भय मानकर शीघ्रगामियोंमें प्रमुख पवन चलते तथा सूर्य निरन्तर तपते हैं ॥४३॥ उन्हींकी आज्ञाके अनुसार इन्द्र वर्षा करते, मृत्यु प्राणियोंपर प्रभाव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डालती, अग्नि जलाते तथा जल शीतल करते हैं ॥४४॥ उन्हींकी आज्ञासे भयभीत दिक्पालों द्वारा दिशाओंकी रक्षा होती है। उन्हींके भयसे ग्रह राशिचक्रोंपर भ्रमण करते रहते हैं ॥ ४५ ॥ वृक्ष जो फूलते और फलते हैं, इसमें भी उनका भय ही कारण है। उन्हींकी आज्ञाको शिरोधार्य करके काल जगत्का संहार करता है ॥४६॥ उनकी आज्ञाके विना जलचर और स्थलचर कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। उनकी आज्ञाके बिना संग्राममें तथा किसी विषम स्थलमें आवद्ध प्राणोको भी मृत्यु नहीं मार सकती ॥४७॥ उन्हींकी आज्ञासे वायु अगाध जलको, जल कच्छपको, कच्छप शेषनागको, शेषनाग पृथ्वीको और पृथ्वी समुद्रों तथा पर्वतोंको धारण किये रहती है ॥४८॥ जो सब प्रकारसे क्षमामयी है, वह पृथ्वी उन्हींकी आज्ञासे नाना प्रकारसे रत्नोंको धारण करती है। उन्हींके आज्ञानुसार पृथ्वीपर सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न और नष्ट होते हैं ॥४९॥ हे पतिव्रते! देवताओंके इकहत्तर युगोंकी इन्द्रकी आयु होती है। ऐसे अट्ठाईस इन्द्रोंके बीत जानेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है ॥५०॥ इसी प्रकार तीस दिनोंका एक मास होता है। दो मासकी ऋतु तथा छः ऋतुओंका एक वर्ष होता है। ऐसे

राशिचक्राणि ग्रहाश्च यद्भयेन च ॥ ४५ ॥ भयात्फलंति वृक्षाश्च पुष्यंत्यपि च यद्भयात् ॥ यदाज्ञां तु पुरस्कृत्य कालः काले हरेद्भयात् ॥ ४६ ॥
तथा जलस्थलस्थाश्च न जीवंति यदाज्ञया ॥ अकाले नाहरेद्विद्धं रणेषु विषमेषु च ॥ ४७ ॥ धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयं कूर्मं तदाज्ञया ॥ कूर्मोऽनंतं
स च क्षोणीं समुद्रान्सा च पर्वतान् ॥ ४८ ॥ सर्वा चैव क्षमारूपा नानारत्नं बिभर्ति या ॥ यतः सर्वाणि भूतानि स्थीयंते हंति तत्र हि ॥ ४९ ॥
इन्द्रायुश्चैव दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ॥ अष्टाविंशे शक्रपाते ब्रह्मणश्च दिवानिशम् ॥ ५० ॥ एवं त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वाभ्यामाभ्यामृतुः स्मृतः ॥
ऋतुभिः षड्भिरेवाब्दं ब्रह्मणो वै वयः स्मृतम् ॥५१॥ ब्रह्मणश्च निपाते च चक्षुरुन्मीलनं हरेः ॥ चक्षुरुन्मीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः ॥५२॥
प्रलये प्राकृते सर्वे देवाद्याश्च चराचराः ॥ लीना धाता विधाता च श्रीकृष्णनाभिपंकजे ॥ ५३ ॥ विष्णुः क्षीरोदशायी च वैकुंठे यश्चतुर्भुजः ॥
विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ५४ ॥ यस्य ज्ञाने शिवो लीनो ज्ञानाधीशः सनातनः ॥ दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः
॥ ५५ ॥ सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता ॥ नारायणांशः स्कन्दश्च लीनो वक्षसि तस्य च ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो

सौ वर्ष ब्रह्माकी आयु होती है। यही ब्रह्माकी आयुका मान कहा गया है ॥ ५१ ॥ ब्रह्माके शान्त होनेपर मायाविशिष्टप्रकृतिब्रह्मस्वरूप परमात्माकी एक पलक गिरती है। जब वे आँख मूँद लेते हैं, तब उसीको 'प्राकृतिक प्रलय' कहते हैं ॥५२॥ उस प्राकृतिक प्रलयके समय सम्पूर्ण देवता, चराचर प्राणी, धाता तथा विधाता-ये सब भगवान श्रीकृष्णके नाभिकमलमें लीन हो जाते हैं ॥५३॥ क्षीरसागरमें शयन करनेवाले श्रीविष्णु तथा वैकुण्ठवासी चतुर्भुज भगवान श्रीविष्णु परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके वामपार्श्वमें लीन हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ ज्ञानके अधिष्ठाता सनातन भगवान शिव उन परमात्मा श्रीकृष्णके ज्ञानमें प्रवेश कर जाते हैं। सम्पूर्ण शक्तियाँ विष्णुमाया दुर्गामें तिरोहित हो जाती हैं ॥५५॥ विष्णुमाया दुर्गा भगवान श्रीकृष्णकी बुद्धिमें स्थान ग्रहण कर लेती हैं। क्योंकि वे उनकी बुद्धिको अधिष्ठात्री देवी हैं। नारायणके अंश स्वामिकार्तिकेय उनके वक्षःस्थलमें लीन हो जाते हैं ॥५६॥ हे सुव्रते! गुणोंके स्वामी देवेश्वर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गणेशको भगवान् श्रीकृष्णका अंश माना गया है। वे उनकी दोनों भुजाओंमें प्रविष्ट हो जाते हैं। लक्ष्मीकी अंशभूता देवियाँ लक्ष्मीमें तथा लक्ष्मी श्रीराधामें लीन हो जाती हैं ॥ ५७ ॥ गोपियाँ तथा सम्पूर्ण देवपत्नियाँ भी श्रीराधामें लीन हो जाती हैं। भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधीश्वरी देवी श्रीराधा उनके प्राणोंमें विलीन हो जाती हैं ॥ ५८ ॥ सावित्री, वेद एवं सम्पूर्ण शास्त्र सरस्वतीमें प्रवेश कर जाते हैं। सरस्वती परब्रह्म परमात्मा भगवान श्रीकृष्णकी जिह्वामें विलीन हो जाती हैं ॥ ५९ ॥ गोलोकके सम्पूर्ण गोप भगवान श्रीकृष्णके रोमकूपोंमें लीन हो जाते हैं। उन प्रभुके प्राणोंमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राणवायु, उनकी जठराग्निमें समस्त अग्नियोंका तथा उनकी जिह्वाके अग्रभागपर जलका लय हो जाता है। वैष्णव पुरुष अत्यन्त आनन्दित होकर उन भगवान श्रीकृष्णके चरणकमलमें लीन हो जाते हैं ॥६०॥६१॥ सारके भी सार भक्तिरूपी रसमय अमृतको पीनेवाले भक्त एवं महान् पुरुष भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो जाते हैं। क्योंकि वे उन्हींके अंश होते हैं। महाविराट् पुरुष उन्हें कहा जाता है, जिनके रोमकूपोंमें सम्पूर्ण विश्व स्थान पाता है और जिनके आँख मीचनेपर प्राकृत प्रलय हो जाता है ॥६२॥६३॥

गणेश्वरः ॥ पद्माशाश्चैव पद्मायां सा राधायां च सुव्रते ॥ ५७ ॥ गोप्यश्चापि च तस्यां च सर्वाश्च देवयोषितः ॥ कृष्णप्राणाधिदेवी सा तस्य प्राणेषु संस्थिता ॥ ५८ ॥ सावित्री च सरस्वत्यां वेदाः शास्त्राणि यानि च ॥ स्थिता वाणीं च जिह्वायां यस्य च परमात्मनः ॥ ५९ ॥ गोलोकस्य च गोपाश्च विलीनास्तस्य लोमसु ॥ तत्प्राणेषु च सर्वेषां प्राणा वाता हुताशनाः ॥ ६० ॥ जठराग्नौ विलीनाश्च जलं तद्रसनाग्रतः ॥ वैष्णवाश्चरणांभोजे परमानन्दसंयुताः ॥ ६१ ॥ सारात्सारतरा भक्तिरसपीयूषपायिनः ॥ विराडंशाश्च महति लीनाः कृष्णे महाविराट् ॥ ६२ ॥ यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च ॥ यस्य चक्षुषु उन्मेषे प्राकृतः प्रलयो भवेत् ॥६३॥ चक्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव पुनरेव सः ॥ यावत्कालो निमिषेण तावदुन्मीलनेन च ॥ ६४ ॥ ब्रह्मणश्च शताब्दे च सृष्टेः सूत्रलयः पुनः ॥ ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्त्येव सुव्रते ॥ ६५ ॥ यथा भूरजसां चैव संख्यानं नैव विद्यते ॥ चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वांतरात्मनः ॥ ६६ ॥ उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेद्देवेश्वरेच्छया ॥ स कृष्णः प्रलये तस्यां प्रकृतौ लीन एव हि ॥ ६७ ॥ एकैव च परा शक्तिर्निर्गुणः परमः पुमान् ॥ सदेवेदमग्र आसीदिति वेदविदो विदुः ॥ ६८ ॥ मूलप्रकृतिरव्यक्ताऽप्यव्याकृतपदाभिधा ॥ चिदभिन्नत्वमापन्ना प्रलये सैव तिष्ठति ॥६९॥ तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः ॥ मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरु-

जिनके शयन करनेके पश्चात् पुनः सृष्टिका कार्य आरम्भ हो जाता हैं। ब्रह्माके सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर सृष्टिका सूत्रलय होता है। हे सुव्रते! ब्रह्माकी सृष्टि और प्रलयकी कोई संख्या ही नहीं है ॥६४॥६५॥ जैसे पृथ्वीके रजःकणकी गणना नहीं की जा सकती। जिन सर्वान्तरात्मा प्रभुके पलक मारनेपर प्रलय तथा शयन करनेके पश्चात् जिनकी इच्छासे पुनः सृष्टि होती है, वे परब्रह्म भगवान श्रीकृष्ण प्रलयकाल उपस्थित होनेपर उन परात्पर मूलप्रकृतिस्वरूपा शक्तिमें मिलकर एकाकार हो जाते हैं ॥६६॥६७॥ उस समय एक परा शक्ति ही शेष रह जाती है, उसीको निर्गुण कहते हैं। उसीके विषयमें वेदके ज्ञाता विद्वानोंका कथन है कि 'सदेवेदमग्र आसीत्' अर्थात् वे ही ये पुरुष हैं, जो सर्वप्रथम विराजमान थे ॥६८॥ भगवती मूलप्रकृति अव्यक्त होनेपर भी व्यक्त पदसे सम्बोधित होती है। उसे चिद्ब्रह्मसे अभिन्नत्व प्राप्त है। अतः प्रलयकालमें भी वह ज्योंकी त्यों विराजमान रहती है ॥६९॥ तब ऐसे विशिष्ट गुणोंसे सम्पन्न भगवती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगदम्बाके गुणोंका वर्णन करनेके लिये अखिल ब्रह्माण्डमें कौन ऐसा पुरुष है, जो सफलता प्राप्त कर सके। चारों वेदोंने मुक्तिके चार भेद बतलाये हैं॥७०॥उन सबमें प्रभुकी भक्तिको प्रधान माना गया है। क्योंकि इसके सामने सब तुच्छ हैं। एक मुक्ति 'सालोक्य' प्रदान करनेवाली, दूसरी 'सारूप्य' देनेमें निपुण, तीसरी 'सामीप्य' प्रदान करनेवाली और चौथी 'निर्वाण पद' देनेवाली कही जाती है। भक्तपुरुष परम प्रभु परमात्माकी सेवा छोड़कर इन मुक्तियोंकी भी इच्छा नहीं करते ॥७१॥ वे शिवत्व, अमरत्व, ब्रह्मत्व, जन्म, जरा (बुढ़ापा), व्याधि, भय, शोक, धन, दिव्य रूपधारण तथा निर्वाण मोक्षकी भी अवहेलना करते हैं। मुक्ति सेवारहित होती है और भक्तिमें निरन्तर सेवाभावका उत्कर्ष होता रहता है। यही भक्ति और मुक्तिका भेद है। अब निषेक खण्डनका प्रसङ्ग सुनो। विद्वान् पुरुष कहते हैं कि किये हुए कर्मोंका भोग ही निषेक है॥७२-७५॥ उसके खण्डनका कल्याणप्रद उपाय तो यही है कि मूलप्रकृति भगवती श्रीदेवीकी उत्तम सेवा की जाय। हे साध्वी! यह तत्त्वज्ञान लोक और वेदमें कथित है ॥७६॥ अतएव हे वत्से! तुम इस विघ्नरहित एवं शुभप्रद मार्गका सुखपूर्वक अनुसरण करो। इस प्रकार कहकर सूर्यपुत्र

क्ताश्च चतुर्विधाः ॥ ७० ॥ तत्प्रधाना देवभक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी ॥ सालोक्यदा भवेदेका तथा सारूप्यदा परा ॥ ७१ ॥ सामीप्यदाऽथ निर्वाणप्रदा मुक्तिश्चतुर्विधा ॥ भक्तास्ता न हि वांछन्ति विना तत्सेवनं विभोः ॥ ७२ ॥ शिवत्वममरत्वं च ब्रह्मत्वं चावहेलया ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिकं धनम् ॥ ७३ ॥ दिव्यरूपधारणं च निर्वाणं मोक्षणं विदुः ॥ मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्धिनी ॥ ७४ ॥ भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकखण्डनं शृणु ॥ विदुर्बुधा निषेकं च भोगं च कृतकर्मणाम् ॥ ७५ ॥ तत्खण्डनं च शुभदं श्रीविभोः सेवनं परम् ॥ तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि स्थिरं त्र लोकवेदयोः ॥ ७६ ॥ निर्विघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छ वत्से यथासुखम् ॥ इत्युक्त्वा सूर्यपुत्रश्च जीवयित्वा च तत्पतिम् ॥ ७७ ॥ तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः ॥ दृष्ट्वा यमं च गच्छन्तं सा सावित्री प्रणम्य च ॥ ७८ ॥ रुरोद चरणौ धृत्वा साधुच्छेदेन दुःखिता ॥ सावित्रीरोदनं श्रुत्वा यमश्चैव कृपानिधिः ॥ ७९ ॥ तामित्युवाच संतुष्टः स्वयं चैव रुरोद ह ॥ धर्म उवाच ॥ लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ ८० ॥ अन्ते यास्यसि तं लोकं यत्र देवी विराजते ॥ गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतं कुरु ॥ ८१ ॥ द्विसप्तवर्षपर्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम् ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं शुभम् ॥ ८२ ॥ शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्या यथा व्रतम् ॥ द्व्यष्टवर्षं व्रतं चैव प्रत्यादेयं शुचिस्मिते ॥ ८३ ॥

धर्मराजने सावित्रीके पति सत्यवान्को जीवन प्रदान करके सावित्रीको शुभ आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् वे जानेके लिये उद्यत हो गये। उन्हें जाते देखकर सावित्रीने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उनके चरणोंको पकड़कर रो पड़ी। उन परम उदार धर्मराजके बिछोहसे वह विकल हो रही थी। कृपासागर धर्मराज सावित्रीकी यह स्थिति देखकर परम सन्तुष्ट हुए। साथ ही उनकी आँखोंसे भी स्नेह-जलकी धारा बहने लगी। उन्होंने सावित्रीसे कहा। धर्मराज बोले—हे सावित्री! तुम भारतवर्षमें बहुत वर्षोंतक सुख भोगनेके अनन्तर उस लोकमें जाओगी, जहाँ स्वयं भगवती विराजमान रहती हैं। हे भद्रे! अब तुम अपने घर जाओ और भगवती सावित्रीका व्रत करो॥७७-८१॥ चौदह वर्षोंतक करनेपर यह व्रत नारियोंको मोक्ष प्रदान करता है। ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षमें चतुर्दशी तिथिको यह व्रत करना चाहिये। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें अष्टमी तिथिको महालक्ष्मीका व्रत होता है। हे शुचिस्मिते! यह व्रत सोलह वर्षोंतक करना चाहिये ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो नारी भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करती है, उसे भगवान् श्रीहरिका परम पद प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक मङ्गलवारको मङ्गल प्रदान करनेवाली भगवती मङ्गलचण्डिकाकी पूजा करनी चाहिए ॥८४॥ प्रत्येक मासके शुक्लपक्षमें षष्ठी तिथिको मङ्गलप्रदा भगवती षष्ठीकी उपासना करनेका विधान है। इसी प्रकार आषाढ़की संक्रान्तिके अवसरपर सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करनेवाली भगवती मनसाकी पूजा होती है ॥८५॥ कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथिको रासके अवसरपर भगवान् श्रीकृष्णकी प्राणाधिका प्रिया श्रीराधाकी उपासना करनी चाहिये। प्रत्येक मासकी शुक्ला अष्टमीके दिन मङ्गल प्रदान करनेवाली भगवती दुर्गाका व्रत करना चाहिये। जो नारी पुत्रवती और सुहागिन स्त्रियों, पुण्यमयी पतिव्रताओं एवं यन्त्रोंमें तथा प्रतिमाओंमें भगवती विष्णुमाया, दुर्गतिनाशिनी दुर्गा तथा प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी भावना करके धन और संतति-प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करती है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवती श्रीदेवीके परम पदको प्राप्त होती है। साधक पुरुषको चाहिये कि इस प्रकार देवीकी विभूतियोंका निरन्तर पूजन करे ॥८६-८९॥ अतएव तुम निरन्तर सर्वरूपा

करोति भक्त्या या नारी सा याति च विभोः पदम् ॥ प्रतिमङ्गलवारे च देवीं मङ्गलदायिनीम् ॥८४॥ प्रतिमासं शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मङ्गलदायिनीम् ॥
तथा चाषाढसंक्रांत्यां मनसां सर्वसिद्धिदाम् ॥८५॥ राधां रासे च कार्तिक्यां कृष्णप्राणाधिकप्रियाम् ॥ उपोष्य शुक्लाष्टम्यां च प्रतिमासं वरप्रदाम्
॥८६॥ विष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ प्रकृतिं जगदम्बां च पतिपुत्रवतीषु च ॥ ८७ ॥ पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेषु प्रतिमासु च ॥
या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसन्तानहेतवे ॥ ८८ ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीविभोः पदम् ॥ एवं देव्या विभूतीश्च पूजयेत्साधकोऽनिशम्
॥ ८९ ॥ सर्वकालं सर्वरूपा संसेव्या परमेश्वरी ॥ नातः परतरं किञ्चित्कृतकृत्यत्वदायकम् ॥ ९० ॥ इत्युक्त्वा तां धर्मराजो जगाम निजमंदिरम् ॥
गृहीत्वा स्वामिनं सा च सावित्री च निजालयम् ॥ ९१ ॥ सावित्री सत्यवांश्चैव प्रययौ च यथागतम् ॥ अन्यांश्च कथयामास स्ववृत्तान्तं हि नारद
॥९२॥ सावित्रीजनकः पुत्रान्सम्प्राप्तः प्रक्रमेण च ॥ श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं सा च पुत्रान् वरेण च ॥९३॥ लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥
जगाम स्वामिना सार्धं देवीलोकं पतिव्रता ॥ ९४ ॥ सवितुश्चाधिदेवी या मंत्राधिष्ठातृदेवता ॥ सावित्री ह्यपि वेदानां सावित्री तेन कीर्तिता ॥९५॥

मूलप्रकृति श्रीभुवनेश्वरीकी उपासना करो। इन परमेश्वरीकी सेवासे बढ़कर दूसरा कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जिससे प्राणी कृतकृत्य हो सके ॥ ९० ॥ इस प्रकार कहकर धर्मराज अपने स्थानको चले गये। सावित्री भी पतिदेवको लेकर अपने घर लौट गयीं ॥९१॥ हे नारद! यों सावित्री और सत्यवान्—दोनों जब घरपर चले आये, तब सावित्रीने अपने अन्य बान्धवोंको सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ९२ ॥ फिर यमराजके वरके प्रभावसे क्रमशः सावित्रीके पिता पुत्रवान् बन गये। उसके श्वसुरकी आँखें ठीक हो गयीं, वे अपना राज्य पा गये और सावित्री स्वयं भी बहुतसे पुत्रोंकी जननी बन गयी ॥ ९३ ॥ उस पतिव्रता सावित्रीने पुण्यभूमि भारतवर्षमें अनेक वर्षोंतक सुखभोग किया। तत्पश्चात् वह अपने पतिके साथ भगवती भुवनेश्वरीके लोकमें चली गयी ॥९४॥ सूर्यमण्डलात्मक सविताकी अधिष्ठात्री देवी होनेसे अथवा सूर्यके अन्तर्गत ब्रह्मप्रतिपादक गायत्री मन्त्रकी अधिदेवता होनेसे इनका नाम 'सावित्री' पड़ा है॥९५॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथवा सम्पूर्ण वेदोंकी जननी होनेसे जगत्‌में इसका सावित्री नाम प्रसिद्ध हुआ है। हे वत्स नारद! इस प्रकार सावित्रीका श्रेष्ठ उपाख्यान तथा प्राणियोंके कर्मविपाक—ये प्रसंग मैंने तुम्हें बता दिये। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो? ॥ ९६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

(महालक्ष्मीकी जन्मगाथा) नारदजीने कहा—हे भगवन्! मैं धर्मराज और सावित्रीके संवादमें मूलप्रकृति भुवनेश्वरी तथा निर्गुणस्वरूपा गायत्रीका निर्मल यश सुन चुका ॥ १ ॥ इन देवियोंके गुणोंका वर्णन निःसन्देह सत्यस्वरूप एवं मंगलोंका भी मंगल है। हे प्रभो! अब मैं भगवती लक्ष्मीका उपाख्यान सुनना चाहता हूँ ॥२॥ हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! सर्वप्रथम भगवती लक्ष्मीकी किसने पूजा की? इन देवीका कैसा स्वरूप है और किस मन्त्रसे इनकी पूजा होती है? आप मुझे इनका गुणानुवाद सुनानेकी कृपा कीजिये ॥ ३ ॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! प्राचीन समयकी बात है, सृष्टिके आदिमें परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके वामभागसे रासमण्डलमें भगवती श्रीराधा प्रकट हुईं ॥ ४ ॥ उन परम सुन्दरी

इत्येवं कथितं वत्स सावित्र्याख्यानमुत्तमम् ॥ जीवकर्मविपाकं च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥९७॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्यानेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

॥ नारद उवाच ॥ श्रीमूलप्रकृतेर्देव्या गायत्र्यास्तु निराकृतेः ॥ सावित्रीयमसंवादे श्रुतं वै निर्मलं यशः ॥ १ ॥ तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं मंगलानां च मंगलम् ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर ॥ २ ॥ केनादौ पूजिता साऽपि किंभूता केन वा पुरा ॥ तद्गुणोत्कीर्तनं मह्यं वद वेदविदां वर ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन्कृष्णस्य परमात्मनः ॥ देवी वामांससंभूता बभूव रासमंडले ॥ ४ ॥ अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमंडिता ॥ यथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुस्थिरयौवना ॥ ५ ॥ श्वेतचंपकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा ॥ शरत्पार्वणकोटींदुप्रभाप्रच्छादनानना ॥ ६ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना ॥ सा देवी द्विविधा भूता सह सर्वेश्वरेच्छया ॥ ७ ॥ स्वीयरूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा ॥ यशसा वाससा कृत्या भूषणेन गुणेन च ॥ ८ ॥ स्मितेन वीक्षणेनैव प्रेम्णा वाऽनुनयेन च ॥ तद्वामांसान्महालक्ष्मीर्दक्षिणांसाच्च राधिका ॥ ९ ॥ राधाऽऽदौ वरयामास द्विभुजं च परात्परम् ॥ महालक्ष्मीश्च तत्पश्चाच्चकमे कमनीयकम् ॥ १० ॥ कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह ॥

श्रीराधाके चारों ओर वटवृक्ष शोभा दे रहे थे। उनकी अवस्था ऐसी थी, मानो द्वादशवर्षीया देवी हों। सदा-सर्वदा रहनेवाला तारुण्य उनकी शोभा बढ़ा रहा था ॥५॥ उनका दिव्य विग्रह ऐसा प्रकाशमान था, मानो श्वेत चम्पकका पुष्प हो। उन मनोहारिणी देवीके दर्शन परम सुखी बनानेवाले थे। उनका प्रसन्नमुख शरत्पूर्णिमाके कोटि-कोटि चन्द्रमाओंकी प्रभासे पूर्ण था ॥६॥ उनके विकसित नेत्रोंके सामने शरत्कालके मध्याह्नकालिक कमलोंकी शोभा छिप जाती थी। परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके साथ विराजमान रहनेवाली वे देवी उनकी इच्छाके अनुसार दो रूप हो गयीं ॥ ७ ॥ वर्ण, तेज, अवस्था, कान्ति, यश, वस्त्र, आभूषण, गुण, कृत्य, मुसकान, अवलोकन, प्रेम तथा अनुनय उनके ये सभी दिव्य गुण दोनों रूपोंमें समान ही थे। बाँयें कन्धेसे लक्ष्मीका प्रादुर्भाव हुआ और दाहिने कन्धेसे श्रीराधा उत्पन्न हुईं ॥ ८ ॥ ॥ पहले श्रीराधाने परात्पर प्रभु द्विभुज भगवान् श्रीकृष्णको पतिरूपसे स्वीकार कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया। भगवानका विग्रह अत्यन्त कमनीय था। श्रीराधाके वर लेनेके पश्चात् महालक्ष्मीने भी उन्हींको पति बनानेकी इच्छा प्रकट की ॥ १० ॥ तब भगवान श्रीकृष्ण तन्हें गौरव प्रदान करनेके विचारसे स्वयं दो रूपोंमें प्रकट हो गये। अपने दक्षिण अंशसे वे दो भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और बाँयें अंशसे चतुर्भुज विष्णु हो गये ॥ ११ ॥ द्विभुज श्रीकृष्णने महालक्ष्मीको भगवान् विष्णुकी सेवामें समर्पित कर दिया। जो देवी अपनी स्नेहभरी दृष्टिसे विश्वको निरन्तर निरखती और लक्षित करती रहती हैं, वे ही अत्यन्त गौरवान्वित होनेके कारण महालक्ष्मीके नामसे प्रसिद्ध हुईं। इस प्रकार द्विभुज भगवान श्रीकृष्ण श्रीराधाके प्राणपति बने और चतुर्भुज भगवान श्रीविष्णु लक्ष्मीके ॥ १२ ॥ १३ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा भगवती श्रीराधा गोपों और गोपियोंसे आवृत होकर अत्यन्त शोभा पाने लगीं। तदनन्तर चतुर्भुज भगवान भगवती लक्ष्मीसहित वैकुण्ठधामको चले गये ॥ १४ ॥ ये भगवान श्रीविष्णु और भगवान श्रीकृष्ण दोनों समस्त अंशोंमें एक समान ही हैं। भगवती श्रीमहालक्ष्मी योगसिद्धिके कारण नानारूपोंमें विराजमान हुईं ॥ १५ ॥ परिपूर्णतम परम शुद्ध सत्त्वस्वरूपा भगवती लक्ष्मी

दक्षिणांशश्च द्विभुजो वामांशश्च चतुर्भुजः ॥ ११ ॥ चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ पुरा ॥ लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या ययाऽनिशम्
॥ १२ ॥ देवीभूता च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता ॥ राधाकांतश्च द्विभुजो लक्ष्मीकांतश्चतुर्भुजः ॥ १३ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च गोपैर्गोपीभि-
रावृता ॥ चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह ॥ १४ ॥ सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णनारायणौ वरौ ॥ महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव स।
॥ १५ ॥ वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतया रमा ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता ॥ १६ ॥ प्रेम्णा सा च प्रधाना च सर्वासु रमणीषु
च ॥ स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसंपत्स्वरूपिणी ॥ १७ ॥ पाताले नागलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ गृहलक्ष्मीश्च गृहेष्वेव गृहिणां च कलांशतः
॥ १८ ॥ संपत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमंगलमंगला ॥ गवां प्रसूतिः सुरभिर्दक्षिणा यज्ञकामिनी ॥ १९ ॥ क्षीरोदसिंधुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च ॥
शोभास्वरूपा चंद्रे च सूर्यमंडलमंडिता ॥ २० ॥ विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु च जलेषु च ॥ नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च ॥ २१ ॥ सर्वसस्येषु
वस्त्रेषु स्थानेषु संस्कृतेषु च ॥ प्रतिमासु च देवानां मंगलेषु घटेषु च ॥ २२ ॥ माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा ॥ मणीन्द्रेषु च हीरेषु

सम्पूर्ण सौभाग्योंसे सम्पन्न तथा 'महालक्ष्मी'के नामसे प्रसिद्ध होकर वैकुण्ठ धाममें निवास करने लगीं ॥ १६ ॥ प्रेमके कारण समस्त नारीसमुदायमें वे प्रधान हुईं। इन्द्रकी सम्पत्तिके समान सुन्दर विग्रह धारण करके देवी 'स्वर्गलक्ष्मी'के नामसे स्वर्गमें प्रसिद्ध हुईं ॥१७॥ पातालमें उनका नाम 'नाग-लक्ष्मी' और राजाओंके यहाँ 'राज्य-लक्ष्मी' नाम पड़ा। गृहस्थोंके यहाँ 'गृह-लक्ष्मी'के नामसे वे पूजित हुईं। ये सभी रूप इन महालक्ष्मीके एक अंशके हैं ॥ १८ ॥ अपने पूर्णरूपसे तो वे नित्य वैकुण्ठधाममें ही विराजती हैं। गृहस्थोंके सम्पूर्ण मंगलोंको भी मङ्गल प्रदान करनेवाली देवी सम्पत्तिस्वरूपा होकर विराजने लगीं। गौओंमें 'सुरभि'रूपसे तथा यज्ञोंमें 'दक्षिणा'रूपसे वे प्रसिद्ध हुईं ॥ १९ ॥ क्षीरसागरके यहाँ उसकी कन्या बनीं वे कमलिनियोंके लिए 'श्री'रूपा और चन्द्रमाके लिए 'शोभा' रूपा हुईं। इन्हींकी कृपासे सूर्यमण्डल शोभा पाने लगा ॥ २० ॥ भूषण, रत्न, फल, जल, राजा, रानी, दिव्य नारी, गृह,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पूर्ण धान्य, वस्त्र, पवित्र स्थान, देवताओंकी प्रतिमा, मंगलकलश, माणिक्य, मोतियोंकी सुन्दर मालाएँ, बहुमूल्य हीरे, चन्दन, वृक्षोंकी सुरम्य शाखा तथा नूतन मेघ—इन सभी वस्तुओंमें भगवती श्रीलक्ष्मीका अंश विद्यमान रहता है। हे मुने! सर्वप्रथम भगवान नारायणने वैकुण्ठधाममें उन महालक्ष्मीकी पूजा की थी ॥ २३–२४॥ दूसरी बार ब्रह्माजीने भक्तिपूर्वक उनका अर्चन किया। उनके तीसरे उपासक भगवान शिव हैं। भगवान विष्णुने क्षीरसागरमें उनकी पूजा की ॥ २५ ॥ तदनन्तर स्वायम्भुव मनु, मानवेन्द्र, मुनीश्वर, सभ्य गृहस्थ—इन लोगोंने जगत्में उन महालक्ष्मीकी उपासना की ॥ २६ ॥ गन्धर्वों और नागोंने पाताललोकमें उनका पूजन किया। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें पूरे पक्षतक त्रिलोकीमें उनकी भक्तिपूर्वक पूजा होती रही। चैत्र, पौष तथा भाद्रपदमासके पवित्र मंगलवारको उनकी पूजाका महोत्सव होने लगा ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीविष्णु द्वारा सुपूजित होनेके कारण त्रिलोकीमें सब लोगोंने बड़े भक्तिभावके साथ उनकी उपासना की। वर्षके अन्तमें पौषकी संक्रान्तिके अवसरपर मध्याह्नकालमें मनुने मंगलकलशपर उनकी प्रतिमाका आवाहन करके पूजा की। तत्पश्चात्

क्षीरेषु चन्दनेषु च ॥ २३ ॥ वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु ॥ वैकुण्ठे पूजिता साऽऽदौ देवी नारायणेन च ॥ २४ ॥ द्वितीये ब्राह्मणा भक्त्या तृतीये शंकरेण च ॥ विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने ॥ २५ ॥ स्वायंभुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः ॥ ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवे ॥ २६ ॥ गन्धर्वैश्चैव नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता ॥ शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजा च ब्रह्मणा ॥ २७ ॥ भक्त्या च पक्षपर्यंतं त्रिषु लोकेषु नारद ॥ चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मंगलवासरे ॥ २८ ॥ विष्णुना पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु भक्तितः ॥ वर्षांते पौषसंक्रात्यां माध्यामावाह्य मंगले ॥ २९ ॥ मनुस्तां पूजयामास सा भूता भुवनत्रये ॥ पूजिता सा महेन्द्रेण मंगलेनैव मंगला ॥ ३० ॥ केदारेणैव नीलेन सुबलेन नलेन च ॥ ध्रुवेणोत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा ॥ ३१ ॥ कश्यपेन च दक्षेण कर्दमेन विवस्वता ॥ प्रियव्रतेन चंद्रेण कुबेरेणैव वायुना ॥ ३२ ॥ यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता ॥ एवं सर्वत्र सर्वेषु पूजिता वंदिता सदा ॥ सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ नारद उवाच ॥ नारायणप्रिया सा च वरा वैकुण्ठवासिनी ॥ वैकुण्ठाधिष्ठातृदेवी महालक्ष्मीः सनातनी ॥ १ ॥ कथं बभूव सा देवी

वे महादेवी तीनों लोकोंके लिए नित्यपूज्य हो गयीं। इन्द्र उनके उपासक बने। राजा मंगलने मंगलके रूपमें उनकी उपासना की ॥ २९ ॥ ३० ॥ तदनन्तर राजा केदार, नील, नल, सुबल, ध्रुव, उत्तानपाद, शुक्र, बलि, कश्यप, दक्ष, कर्दम, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्रमा, कुबेर, वायु, यम, अग्नि और वरुणने उनकी उपासना की। इस प्रकार वे भगवती महालक्ष्मी सर्वत्र सब लोगों द्वारा सदा सुपूजित हुई हैं। वे सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। उन्हें समस्त सम्पत्तियोंका साक्षात् विग्रह कहा गया है ॥ ३१–३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

(नारायणका नारदको लक्ष्मीके जन्म आदिका वृत्तान्त सुनाना) नारदजीने पूछा—हे भगवन्! श्रीमहालक्ष्मी भगवान नारायणकी प्रिया होकर सदा वैकुंठमें विराजती हैं। इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सनातनी देवीको वैकुण्ठकी अधिष्ठात्री देवी कहा गया है ॥१॥ पूर्वकालमें भगवान नारायणकी बात सत्य करनेके लिए इन देवीने पृथ्वीपर आकर समुद्रकी कन्या होनेका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। सो ये समुद्रकी कन्या कैसे बनीं और पहले किसने इनकी स्तुति की? मुझे स्पष्टरूपसे यह प्रसंग सुनानेकी कृपा करें ॥ २ ॥ भगवान नारायणने कहा—हे नारद! पूर्व समयकी बात है, दुर्वासाके शापसे भगवती श्री इन्द्रके पाससे चली गयीं। ऐसी स्थितिमें देवसमुदाय मर्त्यलोकमें भटकने लगा ॥ ३ ॥ लक्ष्मीने स्वर्ग त्याग तथा कुपित होकर दुःखके साथ वैकुण्ठके लिए प्रस्थान कर दिया। हे नारद! वे वहाँ गयीं और महालक्ष्मीमें अपने रूपको विलीन कर दिया ॥ ४ ॥ उस समय देवताओंके शोककी सीमा नहीं रही। वे परम दुखी होकर भगवान ब्रह्माकी सभामें गये। वहाँ जाकर ब्रह्माको अपना अगुआ बनाया और सब देवता वैकुंठ पधारे ॥५॥ वहाँ भगवान नारायण विराजमान थे। अत्यन्त दैन्यभाव प्रकट करते हुए देवताओंने उनकी शरण ग्रहण की। वस्तुतः देवता बहुत दुखी थे। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे ॥६ तब पुराणपुरुष भगवान श्रीहरिकी आज्ञा मानकर वे सर्वसम्पत्ति-

पृथिव्यां सिन्धुकन्यका ॥ पुरा केन स्तुताऽऽदौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ पुरा दुर्वाससः शापाद्भ्रष्टश्रीश्च पुरंदरः ॥ बभूव देवसंघश्च मर्त्यलोके च नारद ॥ ३ ॥ लक्ष्मीः स्वर्गादिकं त्यक्त्वा रुष्टा परमदुःखिता ॥ गत्वा लीना च वैकुण्ठे महालक्ष्मीश्च नारद ॥ ४ ॥ तदा शोकाद्ययुः सर्वे दुःखिता ब्रह्मणः सभाम् ॥ ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च ॥ ५ ॥ वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे ॥ अतीव दैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥ ६ ॥ तदा लक्ष्मीश्च कलया पुराणपुरुषाज्ञया ॥ बभूव सिन्धुकन्या सा सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥ ७ ॥ तथा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह ॥ संप्राप्तश्च महालक्ष्मीं विष्णुस्तां च ददर्श ह ॥ ८ ॥ सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालां च विष्णवे ॥ ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने ॥ ९ ॥ देवाश्चाप्यसुरग्रस्तं राज्यं प्रापुश्च नारद ॥ तां संपूज्य च संभूय सर्वत्र च निरापदः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः कदाचन ॥ केन दोषेण वा ब्रह्मन् ब्रह्मिष्ठस्तत्त्ववित्पुरा ॥११॥ ममंथुः केन रूपेण जलधिं ते सुरादयः ॥ केन स्तोत्रेण वा देवी शक्रं साक्षाद्बभूव सा ॥१२॥ को वा तयोश्च संवादो बभूव तद्वद प्रभो ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्या-

स्वरूपा लक्ष्मी अपनी कलासे समुद्रकी कन्या हुईं ॥ ७ ॥ देवताओं और दैत्योंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया था। उसीसे महालक्ष्मीका प्रादुर्भाव हुआ। भगवान विष्णुने उनका साक्षात्कार किया ॥ ८ ॥ उस अवसरपर उन प्रसन्नवदना देवीने देवताओंको वर दिया और क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान विष्णुको वरमाला अर्पण करके वे स्वयं उन्हींके पास चली गयीं ॥९॥ हे नारद! उनकी कृपासे असुरोंके हाथमें गया हुआ राज्य देवताओंको पुनः प्राप्त हो गया। तदनन्तर देवता उनकी भलीभाँति पूजा करके निरापद भावसे सर्वत्र आनन्द करने लगे ॥ १० ॥ नारदजीने पूछा—हे ब्रह्मन्! ब्रह्मनिष्ठ और तत्त्वज्ञ मुनिवर दुर्वासाने कब, क्यों और किस अपराधके कारण इन्द्रको शाप दे दिया था? ॥ ११ ॥ देवताओंने किस रूपसे समुद्रका मन्थन किया? किस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर देवीने इन्द्रको साक्षात् दर्शन दिये थे? हे प्रभो! इन्द्र और दुर्वासामें किस प्रकारका संवाद हुआ था? यह सब बतानेकी कृपा करें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् नारायण कहते हैं–हे नारद ! प्राचीन कालकी वात है, त्रैलोक्याधिपति इन्द्र मद्यपान करके मतवाले हो गये ॥१२॥१३॥ सो वे कामातुर होकर रम्भाके साथ विहार करने लगे। चिरकालतक रमण करके भी वे तृप्त नहीं हुए। क्योंकि उस कामुकी अप्सरानें उनका मन हर लिया था ॥ १४ ॥ अतएव वे अत्यन्त कामासक्त होकर एक वनमें निवास करने लगे। उसी समय उन्होंने वैकुण्ठ धामसे कैलास जाते हुए महर्षि दुर्वासाको देखा ॥१५॥ मुनिवरका शरीर ब्रह्मतेजसे प्रदीप्त हो रहा था। वे ऐसे जान पड़ते थे कि मानो ग्रीष्मकालके मध्याह्नकालिक सूर्यकी सहस्रों प्रभाओंसे सम्पन्न हों ॥ १६ उनकी अत्यन्त स्वच्छ जटाएँ तपाये हुए सुवर्णके समान चमक रही थीं। वे श्वेत वर्णका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे तथा उनके हाथोंमें मृगचर्म, दण्ड और कमंडल शोभा पा रहे थे ॥१७॥ उनके ललाटपर महान् उज्ज्वल तिलक चन्द्रमाके सदृश जान पड़ता था। वेद-वेदाङ्गके पारगामी लाखों शिष्य उनके साथ विद्यमान थे ॥ १८ ॥ उन्हें देख इन्द्रने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उनके शिष्योंकी भी भक्तिपूर्वक प्रसन्नताके साथ इन्द्रने स्तुति की ॥ १९ ॥ तब शिष्यों सहित मुनिवर दुर्वासाने इन्द्रको

धिपतिःपुरा॥१३॥क्रीडां चकार रहसि रंभया सह कामुकः॥ कृत्वा क्रीडां तया सार्धं कामुक्या हृतमानसः॥१४॥ तस्थौ तत्र महारण्ये कामोन्मथितमानसः॥ कैलासशिखरे यांतं वैकुंठादृषिसत्तमम् ॥ १५ ॥ दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम् ॥ १६ ॥ प्रतप्तकांचनाकारं जटाभारमहोज्ज्वलम् ॥ शुक्लयज्ञोपवीतं च चीरदंडौ कमण्डलुम् ॥१७॥ महोज्ज्वलं च तिलकं बिभ्रतं चेन्दुसन्निभम्॥ समन्वितं शिष्यलक्षैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ १८ ॥ दृष्ट्वा ननाम शिरसा संप्रमत्तः पुरंदरः ॥ शिष्यवर्गं तदा भक्त्या तुष्टाव च मुदान्वितम् ॥ १९ ॥ मुनिना च सशिष्येण दत्तास्तस्मै शुभाशिषः ॥ विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पं च सुमनोहरम् ॥ २० ॥ तज्जरारोगमृत्युघ्नं शोकघ्नं मोक्षकारकम् ॥ शक्रः पुष्पं गृहीत्वा च प्रमत्तो राज्यसंपदा ॥ २१ ॥ पुष्पं स न्यस्तयामास तदैव करिमस्तके ॥ हस्ती तत्स्पर्शमात्रेण रूपेण च गुणेन च ॥ २२ ॥ तेजसा वयसाऽकस्माद्विष्णुतुल्यो बभूव ह ॥ त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्च जगाम घोरकाननम् ॥ २३ ॥ न शशाक महेन्द्रस्तं रक्षितुं तेजसा मुने ॥ तत्पुष्पं त्यक्तवंतं च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः ॥ २४ ॥ तमुवाच महारुष्टः शशाप च रुषान्वितः ॥ मुनिरुवाच ॥ अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे ॥ २५ ॥ मद्दत्तपुष्पं दत्तं च गर्वेण करिमस्तके ॥ विष्णोर्निवेदितं चैव नैवेद्यं वा फलं जलम् ॥ २६ ॥ प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा भवेत् ॥

शुभ आशीर्वाद दिया, साथ ही भगवान विष्णु द्वारा प्राप्त परम मनोहर पारिजात पुष्प भी उन्हें समर्पित किया ॥ २० ॥ राज्यश्रीके गर्वसे गर्वित इन्द्रने जरा, मृत्यु एवं शोकका विनाश करने वाले तथा मोक्षदायी उस पुष्पको लेकर ऐरावत हाथीके मस्तकपर फेंक दिया। उस पुष्पका स्पर्श होते ही रूप, गुण, तेज और अवस्था–इन सबसे सम्पन्न होकर ऐरावत सहसा भगवान विष्णुके समान हो गया। जिससे इन्द्रको छोड़कर वह घोर वनमें चला गया ॥ २१–२३ ॥ हे मुने ! उस समय तेजसे युक्त इन्द्र उस ऐरावतपर शासन नहीं कर सके। इन्द्रने इस दिव्य पुष्पका परित्याग करके तिरस्कार किया है—यह जानकर मुनिवर दुर्वासाके रोषकी सीमा नहीं रही। उन्होंने क्रोधसे भरकर शाप देते हुए कहा। मुनिवर दुर्वासा बोले–अरे ! राज्यश्रीके अभिमानसे प्रमत्त होकर तुम क्यों मेरा अपमान कर रहे हो ? ॥२४॥२५॥ तुम्हें मैंने यह पारिज़ात पुष्प दिया। गर्वके कारण तुमने स्वयं इसका उपयोग न करके हाथीके मस्तकपर फेंक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिया ? नियम तो यह है कि श्रीविष्णुको समर्पित किये हुए नैवेद्य, फल अथवा जल प्राप्त होते ही उनका उपभोग कर लेना चाहिये। त्याग करनेसे ब्रह्महत्याका दोष लगता है। सौभाग्यवश प्राप्त भगवान विष्णुके पावन नैवेद्यका जो त्याग करता है, वह पुरुष श्री और बुद्धिसे भ्रष्ट हो जाता है। भगवान विष्णुके लिए अर्पित की हुई वस्तुको पाते ही उसे खा लेनेवाला बड़भागी पुरुष अपने सौ पूर्वजोंका उद्धार करके स्वयं मुक्त हो जाता है। वह पुरुष नैवेद्य भोजन करके भगवान विष्णुके समान हो जाता है। उसका स्पर्श करके चलनेवाली वायुका संयोग पाकर तीर्थसमुदाय पवित्र हो जाता है ॥२६-३०॥ उसकी चरणरज लगते ही पृथ्वीमें अपार पवित्रता आ जाती है। श्रीहरिको भोग न लगाया हुआ अन्न पुंश्चली, कायर और शूद्रके अन्नके समान दोषप्रद होता है। वह मांसभक्षणसे भी अधिक दोषावह है। शिवलिंगके लिये अर्पण किया हुआ अन्न तथा शूद्रयाजी, देवल, कन्याविक्रयी और योनिजीवीका अन्न,

भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च पुरभ्रष्टो भवेत्तु सः ॥ २७ ॥ यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम् ॥ प्राप्तिमात्रेण यो भुंक्ते भक्तो विष्णुनिवेदितम् ॥२८॥
पुंसां शतं समुद्धृत्य जीवन्मुक्तः स्वयं भवेत् ॥ नैवेद्यं भोजनं कृत्वा नित्यं यः प्रणमेद्धरिम् ॥ २९ ॥ पूजयेत्स्तौति वा भक्त्या स विष्णुसदृशो
भवेत् ॥ तत्स्पर्शवायुना सद्यस्तीर्थौघश्च विशुध्यति ॥ ३० ॥ तत्पादरजसा मूढ सद्यःपूता वसुन्धरा ॥ पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव
च ॥ ३१ ॥ यद्धरेरनिवेद्यं च वृथा मांसस्य भक्षणम् ॥ शिवलिंगप्रदान्नं च यद्दत्तं शूद्रयाजिना ॥ ३२ ॥ चिकित्सकद्विजान्नं च देवलान्नं तथैव
च ॥ कन्याविक्रयिणामन्नं यदन्नं योनिजीविनाम् ॥३३॥ उच्छिष्टान्नं पर्युषितं सर्वभक्षावशेषितम् ॥ शूद्रापतिद्विजानां च वृषवाहद्विजान्नकम् ॥३४॥
अदीक्षितद्विजानां च यदन्नं शवदाहिनाम् ॥ अगम्यागामिनां चैव द्विजानामन्नमेव च ॥ ३५ ॥ मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नं विश्वासघातिनाम् ॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदान्नं च ब्राह्मणान्नं तथैव च ॥ ३६ ॥ एते सर्वे विशुध्यंति विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥ श्वपचश्चेद्विष्णुसेवी वंशानां कोटिमुद्धरेत् ॥ ३७ ॥
हरेरभक्तो मनुजः स्वं च रक्षितुमक्षमः ॥ अज्ञानाद्यदि गृह्णाति विष्णोर्निर्माल्यमेव च ॥ ३८ ॥ सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥
ज्ञात्वा भक्त्या च गृह्णाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च ॥३९॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते निश्चितं हरे ॥ यस्मात्संस्थापितं पुष्पं गर्वेण करिमस्तके ॥४०॥
तस्माद्युष्मान्परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम् ॥ नारायणस्य भक्तोऽहं न बिभेमि सुराद्विधेः ॥ ४१ ॥ कालान्मृत्योर्जरातश्च कानन्यान्गणयामि च ॥

उच्छिष्ट, बासी, सबके भोजनकर लेनेपर बचा हुआ अन्न, शूद्रापति, वृषवाही, अदीक्षित, शवदाही, अगम्यागामी, मित्रद्रोही, विश्वासघाती, कृतघ्न तथा मिथ्याभाषी ब्राह्मणोंका अन्न अत्यन्त दूषित समझा जाता है, परन्तु ये सब भी भगवान विष्णुको अर्पण करके भोजन करनेसे शुद्ध हो जाते हैं। यदि चाण्डाल भी भगवान विष्णुकी उपासना करता है तो उसमें करोड़ों मनुष्योंका उद्धार करनेकी शक्ति आ जाती है ॥३१-३७॥ श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख मानव स्वयं अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता। यदि अज्ञानसे भी भगवान विष्णुको समर्पित नैवेद्य ग्रहण कर लिया जाय तो वह पुरुष अपने अनेक जन्मोंके उपार्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो जान-बूझकर भक्तिपूर्वक श्रीहरिका प्रसाद ग्रहण करता है, उसके तो कई जन्मोंके पाप निश्चितरूपसे भस्म हो जाते हैं। हे इन्द्र! तुमने जो अभिमानवश भगवानके प्रसादरूप पारिजातके पुष्पको हाथीके मस्तकपर रख दिया है ॥ ३८-४० ॥ इस अपराधके फलस्वरूप लक्ष्मी तुम्हें छोड़कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान श्रीहरिके समीप चली जाय। मैं भगवान नारायणका भक्त हूँ। मुझे देवताओं तथा ब्रह्मासे भी किंचित् भय नहीं है ॥ ४१ ॥ काल, मृत्यु और जरासे भी मैं नहीं डरता। तब दूसरोंकी तो गिनती ही क्या है? तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यप भी मेरा क्या कर लेंगे? ॥४२॥ हे देवराज! तुम्हारे गुरु बृहस्पति भी मुझ निःशङ्क पुरुषका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। देखो, यह पुष्प जिसके मस्तकपर रहता है, उसीकी पूजा श्रेष्ठ मानी जाती है ॥४३॥ मुनिवर दुर्वासाके ये वचन सुनकर देवराज इन्द्रने उनके चरण पकड़ लिये। भयके कारण उनके मनमें घबराहट छा गयी। शोकातुर इन्द्र उच्च स्वरसे रोते हुए कहने लगे ॥ ४४ ॥ इन्द्रने कहा—हे प्रभो! आपने मुझे यह मायानाशक शाप देकर बहुत ही उचित किया है। अब मैं गयी हुई सम्पत्तिकी याचना नहीं करता। आप मुझे कुछ ज्ञानोपदेश देनेकी कृपा कीजिये ॥ ४५ ॥ ऐश्वर्य तो विपत्तियोंका बीज है। उससे ज्ञान ढँक जाता है। इससे इसको मुक्तिमार्गका कुठार कहा जाता है। इसके कारण भक्तिमें पद-पदपर बाधा उपस्थित हुआ करती है ॥ ४६ ॥ मुनि बोले—हे देवराज! सम्पत्ति जन्म, मृत्यु, जरा, शोक और रोगके बीजका उत्तम अंकुर है।

किं करिष्यति ते तातः कश्यपश्च प्रजापतिः॥ ४२ ॥ बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशंकस्य च मे हरे ॥ इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नि तस्यैव पूजनं परम् ॥ ४३ ॥ इति श्रुत्वा महेंद्रश्च धृत्वा स चरणं मुनेः ॥ उच्चै रुरोद शोकार्तस्तमुवाच भयाकुलः ॥ ४४ ॥ महेन्द्र उवाच ॥ दत्तः समुचितः शापो मह्यं मायापहः प्रभो ॥ हृतां न याचे संपत्तिं किञ्चिज्ज्ञानं च देहि मे ॥४५॥ ऐश्वर्यं विपदां बीजं ज्ञानप्रच्छन्नकारणम् ॥ मुक्तिमार्गकुठारश्च भक्तेश्च व्यवधायकम् ॥ ४६ ॥ मुनिरुवाच ॥ जन्ममृत्युजराशोकरागबीजांकुरं परम् ॥ संपत्तितिमिरांधश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति ॥ ४७ ॥ संपन्मत्तो विमूढश्च सुरामत्तः स एव च ॥ बांधवैर्वेष्टितः सोऽपि बन्धुत्वेनैव हे हरे ॥ ४८ ॥ संपत्तिमदमत्तश्च विषयांधश्च विह्वलः ॥ महाकामो राजसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति ॥ ४९ ॥ द्विविधो विषयांधश्च राक्षसस्तामसः स्मृतः ॥ अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजसः स्मृतः ॥ ५० ॥ शास्त्रं च द्विविधं मार्गं दर्शयेत्सुरपुंगव ॥ प्रवृत्तिबीजमेकं च निवृत्तेः कारणं परम् ॥ ५१ ॥ चरंति जीविनश्चादौ प्रवृत्तेर्दुःखवर्त्मनि ॥ स्वच्छंदं च प्रसन्नं च निर्विरोधं च संततम् ॥ ५२ ॥ आयाति मधुनो लोभात्क्लेशेन सुखमानितः ॥ परिणामे नाशबीजे जन्ममृत्युजराकरे ॥ ५३ ॥ अनेकजन्मपर्यंतं कृत्वा च

इसके प्रभावसे अन्धा बना हुआ मानव मुक्तिके मार्गको नहीं देख सकता ॥४७॥ हे इन्द्र! जो मूढ़ मानव संपत्तिसे प्रमत्त हो गया है, उसको मदिरासे भी अधिक मत्त समझना चाहिये। उसे ही बान्धवजन बन्धु कहकर घेरे रहते हैं ॥४८॥ वैभवमत्त, विषयान्ध, विह्वल, महाकामी और राजसिक व्यक्तिमें सत्यमार्गका अवलोकन करनेकी योग्यता नहीं रह जाती ॥४९॥ विषयान्ध भी दो प्रकारके बताये गये हैं—राजस और तामस। जिसमें शास्त्रका ज्ञान नहीं है, वह तामस कहलाता है और शास्त्रज्ञ राजस ॥५०॥ हे सुरश्रेष्ठ! शास्त्र दो प्रकारके मार्ग दिखलाते हैं—एक प्रवृत्ति-बीज और दूसरा निवृत्ति-बीज ॥५१॥ पहला जो प्रवृत्तिमार्ग है, उसके भीतर दुःख-ही-दुःख भरे पड़े हैं। परन्तु प्राणी उसीपर स्वच्छन्द, प्रसन्नतापूर्वक तथा सर्वदा निर्विरोध होकर उसी प्रकार पैर रखते हैं, जैसे मधुका लोभी भौंरा सुख मानकर क्लेशके साथ पुष्पोंपर आ गिरता है। यह प्रवृत्तिमार्ग जन्म, मृत्यु, जरा और नाशके परिणामका मूल कारण है ॥५२॥५३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रसन्नतापूर्वक अनेक जन्मोंतक अपने विहित कर्मके परिणामस्वरूप नाना प्रकारकी योनियोंमें क्रमशः भ्रमण करनेके पश्चात् भगवानकी कृपासे मानव होकर भी सैकड़ों और हजारों प्राणियोंमेंसे
किसी एकको सत्सङ्गका सुअवसर प्राप्त होता है ॥५४॥५५॥ सत्सङ्ग संसाररूपी अपार सागरको पार करनेके लिए परम साधन तथा तत्त्वको प्रकट करनेके लिए प्रज्वलित दीपक है। सैकड़ों
और सहस्रोंमें कोई बिरला ही साधु पुरुष उसके प्रकाशसे मुक्तिमार्गका अवलोकन कर पाता है। तब बन्धनको तोड़नेके लिए जीवके हृदयमें यत्न करनेकी भावना उत्पन्न होती है ॥५६॥
जब अनेक जन्मोंका पुण्य, तपस्या और उपवास सहायक होते हैं, तब प्राणीको मुक्तिमार्गकी उपलब्धि होती है। यह मार्ग निर्विघ्न और परम सुखद है ॥ ५७ ॥ हे पुरन्दर! तुम जो
विषय पूछ रहे हो, उसे मैं गुरुके मुखसे सुन चुका हूँ। हे ब्रह्मन्! मुनिवर दुर्वासाका यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र वीतराग हो गये ॥ ५८ ॥ दिनोदिन उनके हृदयमें वैराग्यकी भावना
बढ़ने लगी। तब मुनिके स्थानसे चलकर वे अपने भवन पहुँचे ॥५९॥ उस समय उन्होंने देखा, उनकी अमरावतीपुरी दैत्यों और असुरोंसे भली भाँति भरी हुई हैं। उस पुरमें रहनेवाले

भ्रमणं मुदा ॥ स्वकर्मविहितायां च नानायोन्यां क्रमेण च ॥ ५४ ॥ ततश्चेशानुग्रहाच्च सत्संगं लभते च सः ॥ सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धिपारका-
रणम् ॥ ५५ ॥ साधुस्तत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत् ॥ तदा करोति यत्नं च जीवो बंधनखंडने ॥ ५६ ॥ अनेकजन्मयोगेन तपसाऽनशनेन
च ॥ तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम् ॥५७॥ इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्राद्यत्पृच्छसि पुरंदर ॥ मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः ॥ ५८ ॥
वैराग्यं वर्धयामास तस्य ब्रह्मन्दिने दिने ॥ मुनेः स्थानाद्गृहं गत्वा स ददर्शामरावतीम् ॥ ५९ ॥ दैत्यैरमरसंघैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम् ॥
विषमोपप्लवां पुत्रबंधुहीनां च कुत्रचित् ॥ ६० ॥ पितृमातृकलत्रादिविहीनामतिचंचलाम् ॥ शत्रुग्रस्तां च तां दृष्ट्वा जगाम वाक्पतिं प्रति
॥ ६१ ॥ शक्रो मन्दाकिनीतीरे ददर्श गुरुमीश्वरम् ॥ ध्यायमानं परं ब्रह्म गंगातोये स्थितं परम् ॥ ६२ ॥ सूर्याभिसंमुखं पूर्वमुखं च
विश्वतोमुखम् ॥ साश्रुनेत्रं पुलकितं परमानन्दसंयुतम् ॥ ६३ ॥ वरिष्ठं च गरिष्ठं च धर्मिष्ठं श्रेष्ठसेवितम् ॥ प्रेष्ठं च बंधुवर्गाणामति-
श्रेष्ठं च ज्ञानिनाम् ॥ ६४ ॥ ज्येष्ठं च भ्रातृवर्गाणामनिष्टं सुरवैरिणाम् ॥ दृष्ट्वा गुरुं जपंतं च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः ॥ ६५ ॥ प्रहरान्ते
गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः ॥ प्रणम्य चरणांभोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥ ६६ ॥ वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा ॥ पुनर्वरोप-

देवता भयसे व्याकुल हैं। सारी परिस्थिति विषम दृष्टिगोचर हो रही थी। कहीं किसीके भाई-बन्धु नहीं थे ॥ ६० ॥ कहीं किसीके माता-पिता और स्त्रीने ही उसका साथ छोड़ दिया
था। वहाँ अत्यन्त खलबली मची थी। सब ओर शत्रु ही शत्रु दिखायी देते थे। ऐसी स्थिति देखकर देवराज इन्द्र बृहस्पतिके पास गये ॥ ६१ ॥ उस समय शक्तिशाली बृहस्पतिजी
मन्दाकिनीके तटपर विराजमान होकर परब्रह्म परमात्माका ध्यान करते हुए देवराज इन्द्रको दृष्टिगोचर हुए। ६२॥ फिर देखा तो वे गङ्गाके जलमें पूर्वाभिमुख खड़े होकर सूर्यका अभिवादन
कर रहे थे। उनके नेत्रोंमें हर्षके आँसू भरे थे ॥६३॥ वे परमश्रेष्ठ, गाम्भीर्यसंपन्न, धर्मात्मा, श्रेष्ठ पुरुषोंसे सेवित, बन्धुवर्गमें आदरणीय, भ्रातृसमुदाय और ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा देवशत्रुओंके
लिये अनिष्टकारी गुरुवर बृहस्पति मंत्रका जप कर रहे थे। देवराज एक पहरतक उन्हें देखते रह गये। तत्पश्चात् उनको ध्यानसे उपरत देखकर प्रणाम किया। फिर वे गुरुदेवके चरणकमलोंमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मस्तक झुकाकर उच्च स्वरसे रोने लगे ॥६४–६६॥ तदनन्तर दुर्वासाजीके द्वारा किये गये शापके सम्बन्धकी सारी बातें इन्द्रने बृहस्पतिजीको बतायीं। इसके बाद वरदान तथा ज्ञानप्राप्तिकी बात कही ॥ ६७ ॥ फिर शत्रुओंसे घिरी अमरावतीका वृत्तान्त बताया। अपने शिष्य इन्द्रकी सारी बातें सुनकर परम बुद्धिमान् एवं वक्ताओंमें श्रेष्ठ बृहस्पतिजीने कोपसे लाल नेत्र करके इस प्रकार कहा। बृहस्पतिजी बोले—हे सुरश्रेष्ठ! मैं सब कुछ सुन चुका हूँ। तुम विषाद मत करो, मेरी बात सुनो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ नीतिज्ञ पुरुष विपत्तिके समय कभी भी घबराता नहीं है। क्योंकि विपत्ति और सम्पत्ति श्रमसाध्य है—इसे नश्वर कहा जाता है ॥ ७० ॥ यह सम्पत्ति और विपत्ति अपने ही पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मका फल है। उसीके अधीन होकर कर्त्ता फल भोगता है। प्रायः सम्पूर्ण प्राणियोंके लिए प्रत्येक जन्ममें यही शाश्वत नियम है ॥ ७१ ॥ चक्रकी भाँति वह सदा घूमता रहता है। फिर इस विषयमें चिन्ता किस बात की? शुभ हो अथवा अशुभ, जिस किसी प्रकारके अपने कर्मफलको भोगनेके लिए ही पुरुष शरीर प्राप्त करता है। करोड़ों कल्प क्यों न बीत जायँ, किन्तु बिना भोग भोगे कर्मका अन्त नहीं होता

लब्धिं च ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम् ॥ ६७ ॥ वैरिग्रस्तां च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः ॥ शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सुबुद्धिर्वदतां वरः ॥ ६८ ॥ बृहस्पतिरुवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः ॥ गुरुरुवाच ॥ श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मा रोदीर्वचनं शृणु ॥ ६९ ॥ न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ च कदाचन ॥ संपत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरा श्रमरूपिणी ॥ ७० ॥ पूर्वस्य कर्मायत्ता च स्वयं कर्ता तयोरपि ॥ सर्वेषां च भवत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि ॥ ७१ ॥ चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना ॥ उक्तं हि स्वकृतं कर्म भुज्यतेऽखिलभारते ॥ ७२ ॥ शुभाशुभं च यत्किंचित्स्वकर्मफलभुक्पुमान् ॥ नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ ७३ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना ॥ ७४ ॥ सामवेदोक्तशाखायां संबोध्य कमलोद्भवम् ॥ जन्मभोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम् ॥ ७५ ॥ अनुरूपं हि तेषां च भारतेऽन्यत्र चैव हि ॥ कर्मणा ब्रह्मशापं च कर्मणा च शुभाशिषम् ॥ ७६ ॥ कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यं च कर्मणा ॥ कोटिजन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति ॥ ७७ ॥ न हि त्यजेद्विना भोगं तच्छायेव पुरंदर ॥ कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम् ॥७८॥ न्यूनताधिकभावोऽपि भवेदेव हि कर्मणा॥ वस्तुदानेन वस्तूनां समं पुण्यं दिने दिने ॥७९॥ दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥ समे देशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सुर ॥ ८० ॥ देशभेदे कोटिगुणमसंख्यं वा ततोऽ-

॥ ७२ ॥ ७३ ॥ अतएव शुभाशुभ कर्मका फल भोगना अनिवार्य है। इस प्रकारकी बातें परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मजीको सम्बोधित करके सामवेदकी शाखामें स्पष्ट कही हैं। किये हुए सम्पूर्ण कर्मोंका भोग शेष रह जानेपर कर्मानुसार प्राणियोंका भारतवर्षमें अथवा कहीं अन्यत्र जन्म होता है। कर्मसे ही ब्रह्मशाप मिलता है और उसीसे आशीर्वाद भी प्राप्त होता है। कर्मसे ही महालक्ष्मी प्राप्त होती है और उसीसे दरिद्रता मिलती है। करोड़ों जन्मोंके किये हुए कर्म प्राणीके पीछे लगे रहते हैं ॥७४–७७॥ हे पुरन्दर! छायाकी भाँति वे बिना भोगे अलग नहीं होते। काल, देश और पात्रके भेदसे कर्मोंमें न्यूनाधिकता हुआ ही करती है। जैसे साधारण समय दानमें दी गयी वस्तुओंका साधारण फल प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ यदि किसी विशेष दिनमें कोई वस्तु दान दी जाती है तो उसका साधारण दिनोंकी अपेक्षा करोड़ों और असंख्यगुना फल मिलता है। यदि कोई साधारण वस्तु साधारण स्थलपर दी जाती है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो उसका साधारण फल मिलता है ॥८०॥ किन्तु यदि किसी खास देशमें वही दान दिया जाता है तो उसका करोड़ोंगुना, असंख्यगुना और उससे भी अधिक फल प्राप्त होता है । यदि कोई वस्तु दान करके किसी साधारण पात्रको दी जाती है तो उसका साधारण फल मिलता है ॥ ८१ ॥ किन्तु यदि वह वस्तु दान करके किसी विशेष पात्रको दी जाती है तो उसका करोड़ोंगुना, असंख्यगुना अथवा उससे भी अधिक फल प्राप्त होता है । जैसे किसान खेतोंमें अनाज बोते हैं तो किसी खेतमें अधिक और किसीमें कम अन्न उत्पन्न होता है ॥ ८२ ॥ उसी प्रकार दानमें भी क्षेत्र तथा पात्रभेदसे फलप्राप्तिमें न्यूनाधिकता आती है । यदि किसी सामान्य दिन सामान्य वस्तु दान करके ब्राह्मणको दी जाय तो उसका सामान्य फल होता है । ॥८३॥ किन्तु अमावस्या तथा सूर्यसंक्रान्तिको दान देनेसे सौगुना फल मिलता है और चौमासेमें तथा पूर्णिमाको दान देनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥ इसी प्रकार चन्द्रग्रहणके समय दानसे करोड़गुना और सूर्यग्रहणके समय दान देनेपर उससे दसगुना अधिक फल मिलता है॥८४॥अक्षय तृतीया तथा अक्षय नौमीको दिया हुआ दान अक्षय तथा असंख्य फलदायक

धिकम् ॥ समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च ॥ ८१ ॥ पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥ यथा फलंति सस्यानि न्यूनान्यप्यधिकानि च ॥ ८२ ॥ कर्षकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदे फलं तथा ॥ सामान्यदिवसे विप्र दानं समफलं भवेत् ॥ ८३ ॥ अमायां रविसंक्रांत्यां फलं शतगुणं भवेत् ॥ चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनंतं फलमेव च ॥ ८४ ॥ ग्रहणे शशिनः कोटिगुणं च फलमेव च ॥ सूर्यस्य ग्रहणे वाऽपि ततो दशगुणं भवेत् ॥ ८५ ॥ अक्षयायामक्षयं तदसंख्यं फलमुच्यते ॥ एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिति ॥ ८६ ॥ यथा दाने तथा स्नाने जपेऽन्यपुण्यकर्मसु ॥ एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम् ॥ ८७ ॥ यथा दंडेन चक्रेण शरावेण भ्रमेण च ॥ कुम्भं निर्माति निर्मोता कुंभकारो मृदा भुवि ॥ ८८ ॥ तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च॥ यस्याज्ञया सृष्टमिदं तं च नारायणं भज ॥ ८९ ॥ स विधाता विधातुश्च पातुः पाता जगत्त्रये ॥ स्रष्टुः स्रष्टा च संहर्तुः संहर्ता कालकालकः ॥ ९० ॥ महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम् ॥ विपत्तौ तस्य संपत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः ॥ ९१ ॥ इत्येवमुक्त्वा तत्त्वज्ञः समालिंग्य सुरेश्वरम् ॥ दत्त्वा शुभाशिषं चेष्टं बोधयामास नारद ॥९२॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

होता है ॥ ८६ ॥ जैसे विशिष्ट दिनों और पर्वोंपर दान करनेसे अधिक फल मिलता है, वैसे ही विशिष्ट दिनोंमें स्नान, जप तथा अन्य पुण्यकार्य करनेपर अधिक फल प्राप्त होता है । इस तरह मनुष्योंको कर्मका फल जानना चाहिए ॥ ८७॥ जिस तरह कुशल कुम्भकार दण्ड, चक्र, शराव और भ्रमणके द्वारा क्रमशः मिट्टीसे सुंदर घटका निर्माण कर लेता है ॥ ८८ ॥ उसी प्रकार विधाता कर्मसूत्रसे प्राणियोंको फल प्रदान करते हैं । अतः हे देवराज ! जिनकी आज्ञासे जगत्‌की सृष्टि हुई है, उन भगवान् नारायणकी तुम उपासना करो ॥ ८९ ॥ वे प्रभु त्रिलोकीमें विधाताके विधाता, रक्षकके रक्षक, स्रष्टाके स्रष्टा, संहर्ताके संहारकर्ता तथा कालके भी काल हैं ॥ ९० ॥ जो पुरुष महाविपत्तिके अवसरपर उन भगवान् मधुसूदनका स्मरण करता है, उसके लिए उस विपत्तिमें भी सम्पत्तिकी संभावना उत्पन्न हो जाती है । ऐसा भगवान शंकरने कहा है ॥ ९१ ॥ हे नारद ! इस प्रकार कहकर तत्त्वज्ञानी बृहस्पतिजीने देवराज इन्द्रको हृदयसे लगा लिया और शुभाशीर्वाद देकर उन्हें पूर्णरूपसे सारी बातें समझा दीं ॥ ९२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(इन्द्रका ब्रह्मलोक जाना) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! तदनन्तर भगवान श्रीहरिका ध्यान करके देवराज इन्द्रने बृहस्पतिको आगे करके सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माकी सभाके लिए प्रस्थान किया ॥१॥ वे वहाँ शीघ्र ही पहुँच गये। सबको ब्रह्माजीके दर्शन मिले। इन्द्र और बृहस्पतिसहित समस्त देवताओंने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया ॥२॥ तत्पश्चात् देवगुरु बृहस्पतिने ब्रह्माजीको सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उनकी बात सुनकर ब्रह्माजी हँस पड़े। उन्होंने देवराजसे कहा ॥३॥ ब्रह्माजी बोले–हे वत्स! तुम मेरे वंशज हो और तुम्हें उत्तम बुद्धि प्राप्त है। तुम मेरे प्रपौत्र हो। बृहस्पतिजी तुम्हारे गुरु हैं और तुम स्वयं भी देवताओंके स्वामी हो ॥४॥ परम प्रतापी दक्ष प्रजापति तुम्हारे मातामह हैं। भला, जिसके तीनों कुल ऐसे पवित्र हों, वह सुयोग्य पुरुष अहंकार क्यों करे? ॥५॥ जिसकी माता परम पतिव्रता, पिता शुद्धस्वरूप और मातामह एवं मातुल जितेन्द्रिय हों, वह व्यक्ति अहंकारी क्यों बन जाय? ॥६॥ क्योंकि यदि पिता, मातामह और गुरु—ये तीनों दोषी हों तो इन्हींके दोषसे सम्पन्न होकर पुरुष भगवान श्रीहरिका द्रोही बन सकता है—यह निश्चित है ॥७॥

॥ नारायण उवाच ॥ हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मञ्जगाम ब्रह्मणः सभाम् ॥ बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैः सुरगणैः सह ॥ १ ॥ शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वा च कमलोद्भवम् ॥ प्रणेमुर्देवताः सर्वाः सहेन्द्रा गुरुणा सह ॥ २ ॥ वृत्तांतं कथयामास सुराचार्यो विधिं प्रति ॥ प्रहस्योवाच तच्छ्रुत्वा महेन्द्रं कमलासनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वत्स मद्वंशजातोऽसि प्रपौत्रो मे विचक्षणः ॥ बृहस्पतेश्च शिष्यस्त्वं सुराणामधिपः स्वयम् ॥ ४ ॥ मातामहश्च दक्षस्ते विष्णुभक्तः प्रतापवान् ॥ कुलत्रयं यस्य शुद्धं कथं सोऽहंकृतो भवेत् ॥ ५ ॥ माता पतिव्रता यस्य पिता शुद्धो जितेन्द्रियः ॥ मातामहो मातुलश्च कथं सोऽहंकृतो भवेत् ॥ ६ ॥ जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च ॥ गुरुदोषात्त्रिभिर्दोषैर्हरिदोषी भवेद्ध्रुवम् ॥ ७ ॥ सर्वांतरात्मा भगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः ॥ यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणं भवेत् ॥ ८ ॥ मनोऽहमिन्द्रियेशं च ज्ञानरूपो हि शंकरः ॥ विष्णुप्राणा च प्रकृतिर्बुद्धिर्भगवती सती ॥ ९ ॥ निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः ॥ आत्मनः प्रतिबिम्बश्च जीवो भोगशरीरभृत् ॥ १० ॥ आत्मनीशे गते देहात्सर्वे यांति ससंभ्रमाः ॥ यथा वर्त्मनि गच्छंतं नरदेवमिवानुगाः ॥ ११ ॥ अहं शिवश्च शेषश्च विष्णुर्धर्मो महाविराट् ॥ यूयं यदंशा भक्ताश्च

सर्वान्तरात्मा भगवान श्रीहरि सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें विराजमान रहते हैं। देहसे उनके निकल जानेपर उसी क्षण प्राणी शव बन जाता है ॥८॥ वे स्वामी हैं और हम सब लोग उनके अनुचर हैं। मैं प्राणियोंके शरीरमें इन्द्रियोंका स्वामी मन बनकर रहता हूँ। शंकर ज्ञानका रूप धारण करके रहते हैं। विष्णुके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी भगवती श्रीराधा प्रकृतिके रूपमें विराजमान रहती हैं ॥ ९ ॥ बुद्धिको साध्वी दुर्गाका रूप माना गया है। निद्रा एवं क्षुधा आदि भगवती प्रकृतिकी कलाएँ हैं। जो बुद्धिमें आत्माका प्रतिबिम्ब है, वही जीव है। उसीने इस भोगशरीरको धारण कर रक्खा है ॥ १० ॥ जब शरीरका स्वामी आत्मा देहसे निकलकर जाने लगता है, तब ये सब भी तुरन्त उसीके साथ-साथ चल पड़ते हैं। जैसे रास्तेमें वरके आगे चलनेपर सभी बाराती सज्जन उसका अनुसरण करते हैं ॥ ११ ॥ मैं, शिव, शेषनाग, विष्णु, धर्म, महाविराट् तथा तुम सब लोग—ये सब जिनके अंश और भक्त हैं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्हीं भगवान श्रीकृष्णके निर्माल्यस्वरूप पुष्पका तुमने अपमान कर दिया है ॥ १२ ॥ भगवान शिवने जिस पुष्पसे श्रीहरिके चरणकमलोंकी पूजा की थी, वही पुष्प सौभाग्यवश मुनिवर दुर्वासाकी कृपासे तुम्हें प्राप्त हुआ था, परन्तु तुमने उसका सम्मान नहीं किया ॥१३॥ भगवान श्रीकृष्णके चरणकमलसे च्युत पुष्प जिसके मस्तकपर स्थान पाता है, वह सौभाग्यशाली व्यक्ति सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधान माना जाता है और उसीकी पहले पूजा होती है ॥ १४ ॥ हा ! बलवान् दुर्दैवने तुम्हें ठग लिया । अभागे और मूढ़ मनुष्यकी कौन रक्षा कर सकता है? ॥ १५ ॥ इस समय भगवान् श्रीकृष्णके निर्माल्यका परित्याग करनेसे रोषमें आकर भगवती श्रीदेवी तुम्हारे पाससे चली गयी हैं । अब तुम मेरे तथा बृहस्पतिके साथ वैकुण्ठमें चलो ॥१६॥ मैं वर देता हूँ, अतः तुम वहाँ लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरिकी सेवा करके लक्ष्मीको अवश्य प्राप्त कर लोगे। हे नारद ! इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओंको साथ लेकर वैकुण्ठ गये ॥१७॥ वहाँ जानेपर उन्हें परब्रह्म सनातन भगवान् श्रीहरिके दर्शन प्राप्त हुए । उस समय वे तेजपुञ्ज प्रभु अपने ही तेजसे प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥ उनका श्रीविग्रह ऐसा

तत्पुष्पं न्यक्कृतं त्वया ॥ १२ ॥ शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च ॥ तत्र दुर्वाससा दत्तं दैवेन न्यक्कृतं त्वया ॥ १३ ॥ तत्पुष्पं मस्तके यस्य कृष्णपादाब्जप्रच्युतम् ॥ सर्वेषां च सुराणां च तत्पूजा पुरतो भवेत् ॥ १४ ॥ दैवेन वंचितस्त्वं हि दैवं च बलवत्तरम् ॥ भाग्यहीनं जनं मूढं को वा रक्षितुमीश्वरः ॥ १५ ॥ सा श्रीर्गताऽधुना कोपात्कृष्णनिर्माल्यवर्जनात् ॥ अधुना गच्छ वैकुण्ठं मया च गुरुणा सह ॥ १६ ॥ निषेव्य तत्र श्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि मद्वरात् ॥ एवमुक्त्वा च स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैः सह ॥ १७ ॥ तत्र गत्वा परब्रह्म भगवंतं सनातनम् ॥ दृष्ट्वा तेजः-स्वरूपं च प्रज्वलंतं स्वतेजसा ॥ १८ ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडशतकोटिसमप्रभम् ॥ शान्तमनादिमध्यांतं लक्ष्मीकांतमनंतकम् ॥ १९ ॥ चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या युतं प्रभुम् ॥ भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गंगया परिवेष्टितम् ॥२०॥ तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः ॥ भक्तिनम्राः साश्रु-नेत्रास्तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ २१ ॥ वृत्तांतं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृतांजलिः ॥ रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकाराच्च्युताश्च ताः ॥ २१ ॥ स ददर्श सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम् ॥ रत्नभूषणशून्यं च वाहनादिविवर्जितम् ॥ २३ ॥ शोभाशून्यं हतश्रीकं निष्प्रभं सभयं परम् ॥ उवाच कातरं दृष्ट्वा

जान पड़ता था, मानो ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालीन असंख्य सूर्य एक साथ चमक रहे हों । वे आदि, मध्य और अन्तसे रहित लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरि शान्तरूपसे विराजमान थे॥१९॥ वे चार भुजावाले पार्षदों और भगवती सरस्वतीसे युक्त थे । चारों वेदों सहित भगवती गङ्गा भक्ति प्रदर्शित करती हुई उनके पास विराजमान थीं ॥ २० ॥ उन्हें देखकर ब्रह्माके अनुयायी सम्पूर्ण देवताओंने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । उनके प्रत्येक अङ्गमें भक्ति और विनयका विकास हो चुका था । आँखोंमें आँसू भरकर वे परम प्रभु भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥२१॥ तब स्वयं ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर भगवान्‌को यथावत् समस्त वृत्तान्त कह सुनाया । उस समय समस्त देवता अपने अधिकारसे च्युत होनेके कारण रो रहे थे ॥२२॥ विपत्तिने उनके हृदयमें भलीभाँति स्थान प्राप्त कर लिया था । भयके कारण उनमें घबराहटकी सीमा नहीं थी । उनके शरीरपर एक भी रत्न या आभूषण नहा था । वे सवारीसे भी रहित थे ॥ २३ ॥ उन सभीके मुख म्लान थे । श्री तो पहले ही उनका साथ छोड़ चुकी थी । वे निस्तेज एवं भयग्रस्त थे । कुछ भी करनेकी शक्ति उनमें नहीं रह गयी थी । देवताओंको ऐसी दीन-दशामें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़े देखकर भयके भी भयको दूर करनेवाले भगवान् श्रीहरिने उनसे कहा ॥२४॥ भगवान बोले—हे ब्रह्मन् तथा देवताओ! भय मत करो। मेरे रहते तुम लोगोंको किस बातका भय है? मैं तुम्हें परम ऐश्वर्य बढ़ानेवाली अचल लक्ष्मी प्रदान करूंगा ॥ २५ ॥ परन्तु कुछ समयोचित बात कहता हूँ, तुमलोग उसपर ध्यान दो। मेरे वचन हितकर, सत्य, संभव एवं परिणाममें सुखावह हैं ॥२६॥ जैसे अखिल विश्वके संपूर्ण प्राणी निरन्तर मेरे अधीन रहते हैं, वैसे ही मैं भी अपने भक्तोंके अधीन रहता हूँ। मैं अपनी इच्छासे कभी कुछ नहीं कर सकता ॥२७॥ सदा मेरे भजन-चिन्तनमें लगा रहनेवाला निरङ्कुश भक्त जिसपर रुष्ट हो जाता है, उसके घर लक्ष्मी तथा मैं नहीं ठहर सकता—यह बिल्कुल निश्चित है ॥ २८ ॥ मुनिवर दुर्वासा महाभाग शंकरके अंश एवं वैष्णव पुरुष हैं। उनके हृदयमें मेरे प्रति अटूट श्रद्धा है। उन्होंने तुम्हें शाप दे दिया है। अतएव तुम्हारे घरसे लक्ष्मी सहित मैं चला आया हूँ॥ २९॥ क्योंकि जहाँ शंखध्वनि नहीं होती, तुलसीका निवास नहीं रहता, शंकरजीकी पूजा नहीं होती तथा ब्राह्मणोंको भोजन नहीं कराया जाता, वहाँ लक्ष्मी नहीं रहतीं ॥३०॥ हे ब्रह्मन् तथा देवताओ!

भवभीतिविभञ्जनः ॥२४॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्ब्रह्मन् हे सुराश्च भयं किं वो मयि स्थिते ॥ दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्धिनीम् ॥२५॥ किं च मद्वचनं किञ्चिच्छ्रूयतां समयोचितम् ॥ हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम् ॥ २६ ॥ जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्च संततम् ॥ यथा तथाऽहं मद्भक्तपराधीनोऽस्वतंत्रकः ॥ २७ ॥ यं यं रुष्टो हि मद्भक्तो मत्परो हि निरंकुशः ॥ तद्गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम् ॥ २८ ॥ दुर्वासाः शंकरांशश्च वैष्णवो मत्परायणः ॥ तच्छापादागतोऽहं च सलक्ष्मीको हि वो गृहात् ॥ २९ ॥ यत्र शंखध्वनिर्नास्ति तुलसी न शिवार्चनम् ॥ न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति ॥३०॥ मद्भक्तानां च मे निन्दा यत्र ब्रह्मन् भवेत्सुराः ॥ महारुष्टा महालक्ष्मीस्ततो याति पराभवम् ॥ ३१ ॥ मद्भक्तिहीनो यो मूढो भुंक्ते यो हरिवासरे ॥ मम जन्मदिने वापि याति श्रीस्तद्गृहादपि ॥ ३२ ॥ मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम् ॥ यत्रातिथिर्न भुंक्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात् ॥३३॥ यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः ॥ पापिनो यो गृहं याति शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ॥ ३४ ॥ महारुष्टा ततो याति मंदिरात्कमलालया ॥ शूद्राणां शवदाही च भाग्यहीनो द्विजाधमः ॥ ३५ ॥ याति रुष्टा तद्गृहाच्च देवाः कमलवासिनी ॥ शूद्राणां सूपकारी यो ब्राह्मणो वृषवाहकः ॥ ३६ ॥ तत्तोयपानभीता च कमला याति तद्गृहात् ॥ अशुद्धहृदयः

जिस स्थानपर मेरे भक्तोंकी निन्दा होती है, वहाँ रहनेवाली महालक्ष्मीके मनमें अपार क्रोध उत्पन्न हो जाता है। अतः वे उस स्थानको छोड़कर चल देती हैं ॥ ३१ ॥ जो मेरी उपासना नहीं करता तथा एकादशी और जन्माष्टमीके दिन अन्न खाता है, उस मूर्ख व्यक्तिके घरसे भी लक्ष्मी चली जाती हैं ॥ ३२ ॥ जो मेरे नामका तथा अपनी कन्याका विक्रय करता है एवं जहाँ अतिथि भोजन नहीं पाता, उस घरको त्यागकर मेरी प्रिया लक्ष्मी अन्यत्र चली जाती हैं ॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण पुंश्चलीके उदरसे उत्पन्न हुआ है अथवा पुंश्चलीका पति है, उसे 'महापापी' कहा जाता है। उसके घर लक्ष्मी नहीं ठहर सकतीं ॥३४॥ जो व्यक्ति शूद्रान्न खाता है, उसके घरसे लक्ष्मी रूठकर चली जाती हैं। शूद्रशवदाही द्विजाधमके घरसे भी लक्ष्मी क्रुद्ध होकर चली जाती हैं। जो ब्राह्मण शूद्रोंके यहाँ भोजन बनानेका काम करता और जो बैल जोतता है, वह कमलालया भगवती लक्ष्मीका प्रेमभाजन नहीं हो सकता। अतः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके यहाँसे वे चल देती हैं। जो अशुद्ध-हृदय, क्रूर, हिंसक और निन्दक है, उस ब्राह्मणके हाथका जल पीनेसे भगवती लक्ष्मी डरती हैं। अतः उसके घरसे वे चल :ती हैं। जो शूद्रोंसे यज्ञ कराता है,-कायर व्यक्तियोंका अन्न खाता है, निष्प्रयोजन तृण तोड़ता है, नखोंसे पृथ्वीको कुरेदता रहता है, जो निराशावादी है, जो सूर्योदयके समय भोजन करता है, जो दिनमें सोता और मैथुन करता है और जो सदाचारहीन है, उन मूर्खोंके घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं ॥३९-४०॥ आचारहीन, शूद्रका दान लेनेवाले और दीक्षारहित मूर्ख ब्राह्मणके घरसे लक्ष्मी चली जाती हैं ॥ ४१ ॥ जो अल्पज्ञानी व्यक्ति भींगे पैर अथवा नंगा होकर सोता है तथा निरन्तर बेसिर-पैरकी बातें बकता रहता है, उसके घरसे साध्वी लक्ष्मी चली जाती हैं ॥ ४२ ॥ जो सिरपर तेल लगाकर उसी हाथसे दूसरेके अङ्गका स्पर्श करता है। अपने सिरका तेल दूसरेको लगाता तथा अपने किसी अङ्गको बाजेकी तरह बजाता है, उसके घरसे रुष्ट होकर लक्ष्मी

क्रूरो हिंसको निंदको द्विजः ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणः शूद्रयाजो च याति देवी च तद्गृहात् ॥ अवीरान्नं च यो भुंक्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः ॥ ३८ ॥ तृणं छिनत्ति नखैरैस्तैर्वा यो विलिखेन्महीम् ॥ निराशो ब्राह्मणो यत्र तद्गृहाद्याति मत्प्रिया ॥ ३९ ॥ सूर्योदये द्विजो भुंक्ते दिवास्वापी च ब्राह्मणः ॥ दिवा मैथुनकारी च यस्तस्माद्याति मत्प्रिया ॥ ४० ॥ आचारहीनो विप्रो यो यश्च शूद्रप्रतिग्रही ॥ अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्माद्वै याति मत्प्रिया ॥ ४१ ॥ स्निग्धपादश्च नग्नो हि यः शेते ज्ञानदुर्बलः ॥ शश्वद्वदति वाचालो याति सा तद्गृहात्सती ॥ ४२ ॥ शिरःस्नातस्तु तैलेन योऽन्यांगं समुपस्पृशेत् ॥ स्वांगं च वादयेद्वाद्यं रुष्टा सा याति तद्गृहात् ॥४३॥ व्रतोपवासहीनो यः संध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः ॥ विष्णुभक्तिविहीनस्तु तस्माद्याति च मत्प्रिया ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणं निंदयेद्यो हि तं च यो द्वेष्टि संततम् ॥ जीवहिंस्रो दयाहीनो याति सर्वप्रसूस्ततः ॥ ४५ ॥ यत्र यत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्तनं तथा ॥ तत्र तिष्ठति सा देवी सर्वमंगलमंगला ॥४६॥ यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह ॥ सा च कृष्णप्रिया देवी तत्र तिष्ठति संततम् ॥ ४७ ॥ यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिला च तुलसीदलम् ॥ तत्सेवा वंदनं ध्यानं तत्र सा परितिष्ठति ॥ ४८ ॥ शिवलिंगार्चनं यत्र तस्य चोत्कीर्तनं शुभम् ॥ दुर्गार्चनं तद्गुणाश्च तत्र पद्मनिवासिनी ॥ ४९ ॥ विप्राणां सेवनं यत्र तेषां च भोजनं शुभम् ॥ अर्चनं सर्वदेवानां तत्र पद्म-

चली जाती है ॥४३॥४४॥ जो ब्राह्मणोंकी निन्दा तथा उनसे द्वेष करता है, सदा जीवोंकी हिंसा करता है और दयारहित है, उसके घरसे जगज्जननी लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४५॥ जिस स्थानपर भगवान श्रीहरिकी चर्चा होती है और उनके गुणोंका कीर्तन होता है, वहींपर सम्पूर्ण मंगलोंको भी मंगल प्रदान करनेवाली भगवती लक्ष्मी निवास करती हैं ॥४६॥ हे पितामह! जहाँ भगवान श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तोंका यश गाया जाता है, वहीं उनकी प्राणप्रिया भगवती लक्ष्मी सदा विराजती हैं ॥ ४७ ॥ जहाँ शंखध्वनि होती है तथा शंख, शालग्राम और तुलसी इनका निवास रहता है एवं उनकी सेवा-वन्दना और ध्यान होता है, वहाँ लक्ष्मी सदा विद्यमान रहती हैं ॥४८॥ जहाँ शिवलिंगकी पूजा, पवित्र कीर्तन, दुर्गापूजन एवं उनके नामका कीर्तन होता है, वहाँ कमलालया लक्ष्मी निवास करती हैं ॥ ४९ ॥ जहाँ ब्राह्मणोंकी सेवा होती है, उन्हें उत्तम पदार्थ भोजन कराये जाते हैं तथा सम्पूर्ण देवताओंका पूजन होता है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वहाँ पद्ममुखी साध्वी लक्ष्मी विराजती हैं ॥५०॥ हे नारद ! रमापति भगवान श्रीहरिने सम्पूर्ण देवताओंसे यों कहकर श्रीलक्ष्मीसे कहा–'हे देवी ! तुम अपनी एक कलासे क्षीरसागरके यहाँ जाकर जन्म लेना स्वीकार कर लो ॥ ५१ ॥ इस प्रकार लक्ष्मीसे कहनेके पश्चात् उन जगत्प्रभुने पुनः ब्रह्मासे कहा—'हे पद्मज ! तुम समुद्रका मन्थन करो, उससे लक्ष्मी प्रकट होंगी। तब उन्हें देवताओंको सौंप देना ॥५२॥ हे मुने ! यों अपना वक्तव्य समाप्त करके कमलाकान्त भगवान श्रीहरि अन्तःपुरमें चले गये और देवता उसी क्षण क्षीरसागरकी ओर चल पड़े ॥५३॥ वहाँ सभी देवता और दानव एकत्रित हुए। मन्दराचल पर्वतको मन्थनकाष्ठ, कच्छपको पात्र तथा शेषनागको मन्थनकाष्ठकी रस्सी बनाकर वे क्षीरसमुद्रको मथने लगे ॥५४॥ फलस्वरूप धन्वन्तरि वैद्य, अमृत, उच्चैःश्रवा घोड़ा, विविध रत्न, हाथियोंमें रत्न ऐरावत, लक्ष्मी, सुदर्शनचक्र तथा वनमाला–ये बहुमूल्य पदार्थ उन्हें प्राप्त हुए। हे मुने ! उस समय भगवान् विष्णुमें अपार श्रद्धा रखनेवाली साध्वी श्रीलक्ष्मीने क्षीरसागरशायी सर्वेश्वर श्रीहरिके गलेमें वनमाला पहना दी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ फिर देवता, ब्रह्मा और शंकरके पूजा एवं स्तवन

मुखी सती ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा च सुरान्सर्वान् रमामाह रमापतिः ॥ क्षीरोदसागरे जन्म कलया कलयेति च ॥५१॥ इत्युक्त्वा तं जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च ॥ मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देवेभ्यो देहि पद्मज ॥ ५२ ॥ इत्युक्त्वा कमलाकांतो जगामांतःपुरं मुने ॥ देवाश्चिरेण कालेन ययुः क्षीरोद-सागरम् ॥ ५३ ॥ मंथानं मंदरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम् ॥ कृत्वा शेषं मंथपाशं ममंथुरसुराः सुराः ॥ ५४ ॥ धन्वन्तरिं च पीयूषमुच्चैःश्रवस-मीत्सितम् ॥ नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्मीं सुदर्शनम् ॥ ५५ ॥ वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने ॥ सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवे वैष्णवी सती ॥ ५६ ॥ देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शंकरेण च ॥ ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचनाम् ॥ ५७ ॥ प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यग्रस्तं भयंकरम् ॥ महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद ॥ ५८ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं लक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम् ॥ सुखदं सारभूतं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

॥ नारद उवाच ॥ हरेरुत्कीर्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम् ॥ ईप्सितं लक्ष्म्युपाख्यानं ध्यानं स्तोत्रं वद प्रभो ॥१॥ नारद उवाच ॥ स्नात्वा तीर्थे

करनेपर उन्होंने देवताओंके भवनपर केवल अपनी दृष्टि डाल दी। इतनेसे ही दुर्वासा मुनिके शापसे मुक्त होकर दैत्योंके हाथमें गये हुए अपने राज्यको उन देवताओंने पुनः प्राप्त कर लिया। हे नारद ! यों महालक्ष्मीकी कृपासे वर पाकर सब देवता परम सुखी हो गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इस प्रकार महालक्ष्मीका सम्पूर्ण श्रेष्ठ उपाख्यान मैंने सुना दिया। इस सारभूत उपाख्यानके प्रभावसे समस्त सुख प्राप्त हो जाता है। अब पुनः कहो, तुम क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेज-शास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

(महालक्ष्मीकी पूजाविधि) नारदजीने कहा–हे प्रभो ! मैं भगवान श्रीहरिका मंगलमय गुणानुवाद, उत्तम ज्ञान तथा भगवती लक्ष्मीका अभीष्ट उपाख्यान सुन चुका। अब आप उनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यान और स्तोत्रका प्रसङ्ग बतानेकी कृपा कीजिये ॥१॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद ! प्राचीन कालकी बात है, देवराज इन्द्रने क्षीरसमुद्रके तटपर तीर्थस्नान किया । उन्होंने दो स्वच्छ वस्त्र पहने और कलश स्थापित किया । तदनन्तर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और दुर्गा इन देवताओंकी गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक भलीभाँति पूजा करनेके पश्चात् इन्द्रने परम ऐश्वर्यस्वरूपिणी भगवती महालक्ष्मीका आवाहन किया और अपने पुरोहित बृहस्पति तथा ब्रह्माजीके बताये अनुसार पूजा सम्पन्न की ॥ २–४ हे मुने ! उस समय उस पवित्र प्रदेशमें अनेक मुनिगण, ब्राह्मणसमाज, गुरुदेव, श्रीहरि, देववृन्द तथा आनन्दमय ज्ञानस्वरूप भगवान शंकर विराजमान थे ॥ ५ ॥ हे नारद ! देवराजने पारिजातका चन्दन-चर्चित पुष्प लेकर भगवती महालक्ष्मीका ध्यान किया और उनकी पूजा की ॥ ६ ॥ पूर्वकालमें भगवान श्रीहरिने ब्रह्माजीको जो ध्यान बतलाया था, उसी सामवेदोक्त ध्यानसे इन्द्रने भगवतीका चिन्तन किया । मैं वह ध्यान तुम्हें बताता हूँ, सुनो ॥ ७ ॥ 'परम पूज्या भगवती महालक्ष्मी सहस्र दलवाले कमलकी कर्णिकाओंपर विराजमान हैं। इनकी उत्तम कान्ति शर-

पुरा शक्रो धृत्वा धौते च वाससी ॥ घटं संस्थाप्य क्षीरोदे षड्देवान्पर्यपूजयत् ॥२॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ एतान् भक्त्या समभ्यर्च्य पुष्पगंधादिभिस्तदा ॥ ३ ॥ आवाह्य च महालक्ष्मीं परमैश्वर्यरूपिणीम् ॥ पूजां चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा ॥ ४ ॥ पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ हरौ ॥ देवादिषु सुदेशे च ज्ञानानंदे शिवे मुने ॥ ५ ॥ पारिजातस्य पुष्पं च गृहीत्वा चन्दनोक्षितम् ॥ ध्यात्वा देवीं महालक्ष्मीं पूजयामास नारद ॥ ६ ॥ ध्यानं च सामवेदोक्तं यद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा ॥ हरिणा तेन ध्यानेन तन्निबोध वदामि ते ॥ ७ ॥ सहस्रदलपद्मस्थकर्णिकावासिनीं पराम् ॥ शरत्पार्वणकोटींदुप्रभामुष्टिकरां पराम् ॥ ८ ॥ स्वतेजसा प्रज्वलंतीं सुखदृश्यां मनोहराम् ॥ प्रतप्तकांचननिभशोभां मूर्तिमतीं सतीम् ॥ ९ ॥ रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ १० ॥ सर्वसंपत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम् ॥ ध्यानेनानेन तां ध्यात्वा नानागुणसमन्विताम् ॥ ११ ॥ संपूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपचाराणि षोडश ॥ ददौ भक्त्या विधानेन प्रत्येकं मंत्रपूर्वकम् ॥१२॥ प्रशस्तानि प्रकृष्टानि वराणि विविधानि च ॥ अमूल्यरत्नसारं च निर्मितं विश्वकर्मणा ॥१३॥ आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम् ॥

त्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाओंकी शोभाको हरण किये लेती हैं ॥८॥ ये परम साध्वी देवी स्वयं अपने तेजसे प्रकाशित हो रही हैं । इन परम मनोहर देवीका दर्शन पाकर मन आनन्दसे खिल उठता है । ये मूर्तिमती होकर संतप्त सुवर्णकी शोभाको धारण किये हुए हैं ॥ ९ ॥ रत्नमय भूषण इनकी छबि बढ़ा रहे हैं । इन्होंने पीताम्बर पहन रक्खा है । इन प्रसन्नवदनवाली गवती महालक्ष्मीके मुखपर मुसकान छा रही है । ये सदा युवावस्थासे सम्पन्न रहती हैं ॥ १० ॥ इनकी कृपासे सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ सुलभ हो जाती हैं । ऐसी कल्याणस्वरूपिणी भगवती महालक्ष्मीकी मैं उपासना करता हूँ ।' हे नारद ! इस प्रकार ध्यान करके ब्रह्माजीके कथनानुसार सोलह प्रकारके उपचारोंसे देवराज इन्द्रने असंख्य गुणोंवाली उन भगवती महालक्ष्मीकी पूजा की । प्रत्येक वस्तुको भक्तिपूर्वक मन्त्र पढ़ते हुए विधिके साथ समर्पण किया ॥ ११ ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारकी उत्तम वस्तुएँ प्रचुरमात्रामें उपस्थित कीं । (पूजाके मन्त्र इस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं-) 'हे भगवती महालक्ष्मी ! जो बहुमूल्य रत्नोंका सार है तथा विश्वकर्मा जिसके निर्माता हैं, ऐसा यह विचित्र आसन स्वीकार कीजिये । हे कमलालये ! इस शुद्ध गङ्गाजलको सब लोग मस्तकपर चढ़ाते हैं। सभीको इसे पानेकी इच्छा रहती है ॥१३॥१४॥ पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये यह अग्निस्वरूप है। आप इसे पाद्यरूपमें स्वीकार करें । हे पद्मवासिनी ! शंखमें पुष्प, चन्दन, दूर्वा आदि श्रेष्ठ वस्तुएँ तथा गङ्गाजल रखकर यह अर्घ्य प्रस्तुत है। इसे ग्रहण कीजिये । हे हरिप्रिये ! यह उत्तम गन्धवाले पुष्पोंसे सुवासित तैल तथा सुगन्धपूर्ण आमलकी-चूर्ण शरीरकी सुन्दरता बढ़ानेका परम साधन है। आप इस स्नानोपयोगी वस्तुको स्वीकार करें। हे देवी ! इन कपास तथा रेशमके सूत्रसे बने हुए वस्त्रोंको आप ग्रहण कीजिये ॥१५-१७॥ 'हे देवी ! यह भूषण रत्न और सुवर्णका सुसंस्कृत रूप है। इसे धारण करनेसे शरीरकी शोभा बहुत बढ़ जाती है। यह सम्पूर्ण सुन्दरताका परम कारण है। इसे पहनते ही शोभा निखर उठती है। अतः परम सुशोभित होनेके लिये आप इसे ग्रहण कीजिये । हे श्रीकृष्णकान्ते ! वृक्षका रस सूखकर इस रूपमें परिणत हो गया है। इसमें सुगन्धित द्रव्य मिला दिये गये हैं। ऐसा यह

शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववंदितमीप्सितम् ॥ १४ ॥ पापेध्मवह्निरूपं च गृह्यतां कमलालये ॥ पुष्पचंदनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम् ॥ १५ ॥ शङ्खगर्भ-
स्थितं स्वर्घ्यं गृह्यतां पद्मवासिनि ॥ सुगंधिपुष्पतैलं च सुगंधामलकीफलम् ॥१६॥ देहसौंदर्यबीजं च गृह्यतां श्रीहरेः प्रिये ॥ कार्पासजं च कृमिजं
वसनं देवि गृह्यताम् ॥ १७ ॥ रत्नस्वर्णविकारं च देहभूषाविवर्धनम् ॥ शोभायै श्रीकरं रत्नं भूषणं देवि गृह्यताम् ॥ १८ ॥ सर्वसौंदर्यबीजं च सद्यः
शोभाकरं परम् ॥ वृक्षनिर्यासरूपं च गंधद्रव्यादिसंयुतम् ॥१९॥ श्रीकृष्णकान्ते धूपं च पवित्रं प्रतिगृह्यताम् ॥ सुगंधियुक्तं सुखदं चंदनं देवि गृह्य-
ताम् ॥ २० ॥ जगच्चक्षुःस्वरूपं च पवित्रं तिमिरापहम् ॥ प्रदीपं सुखरूपं च गृह्यतां च सुरेश्वरि ॥ २१ ॥ नानोपहाररूपं च नानारससमन्वितम् ॥
अतिस्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२॥ अन्नं ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम् ॥ तुष्टिदं पुष्टिदं चैव देव्यन्नं प्रतिगृह्यताम् ॥२३॥ शाल्य-
न्नजं सुपक्वं च शर्करागव्यसंयुतम् ॥ स्वादुयुक्तं महालक्ष्मि परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥२४॥ शर्करागव्यपक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम् ॥ स्वस्तिकं नाम
नैवेद्यं गृहाण परमेश्वरि ॥२५॥ नानाविधानि रम्याणि पक्वान्नानि फलानि च ॥ सुरभिस्तनसंत्यक्तं सुस्वादु सुमनोहरम् ॥२६॥ मर्त्यामृतं सुगव्यं

पवित्र धूप स्वीकार कीजिये । हे देवी ! सुखदायी एवं सुगन्धियुक्त यह चन्दन सेवामें समर्पित है, इसे स्वीकार करें ॥१८-२०॥ हे सुरेश्वरी ! जो जगत्के लिए चक्षुस्स्वरूप है, जिसके सामने अन्धकार टिक नहीं सकता तथा जो सुखस्वरूप है, ऐसे इस प्रज्वलित दीपको स्वीकार कीजिये ॥२१॥ हे देवी ! यह नाना प्रकारका उपहारस्वरूप नैवेद्य अत्यन्त स्वादिष्ट है। इसमें विविध रस भरे हैं। इसे स्वीकार कीजिये ॥२२॥ हे देवी ! अन्नको ब्रह्मका रूप माना गया है। प्राणकी रक्षा इसीपर निर्भर है। तुष्टि और पुष्टि प्रदान करना इसका सहज गुण है। आप इसे ग्रहण कीजिये ॥२३॥ हे महालक्ष्मी ! यह उत्तम पक्वान्न चीनी और घृतयुक्त अगहनी चावलसे तैयार किया हुआ है—इसे आप स्वीकार कीजिये । हे देवि ! शर्करा और घृतमें सिद्ध किया हुआ यह परम मनोहर एवं स्वादिष्ट स्वस्तिक नामक नैवेद्य है। इसे आपकी सेवामें समर्पित किया है, स्वीकार करें ॥२४॥२५॥ हे अच्युतप्रिये ! ये अनेक प्रकारके पके हुए सुन्दर फल हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा सुरभी गौके स्तनसे दुहा गया मृत्युलोकके लिये अमृतस्वरूप परम सुस्वादु दुग्ध है—इन पदार्थोंको ग्रहण कीजिए ॥२६॥२७॥ हे देवी ! ईखके स्वादभरे रसको अग्निपर चढ़ाकर बनाया गया यह गुड़ है, इसे स्वीकार कीजिए। हे देवी ! जौ-गेहूँ आदिके चूर्णसे तैयार किया हुआ यह मिष्टान्न है ॥२८॥ गुड़ और घृतके साथ अग्निपर यह सिद्ध किया गया है, इसे आप स्वीकार करें ॥२९॥ धान्यके चूर्णसे बनाए गए स्वस्तिक आदि चिह्नोंसे युक्त इस पक्वान्नको भक्तिपूर्वक आपकी सेवामें समर्पित किया है, इसको स्वीकार कीजिये। हे कमले ! शीतल वायु प्रदान करनेवाला यह पंखा तथा स्वच्छ चवँर उष्णकालके लिये परम सुखदायी है—इसे ग्रहण कीजिये ॥ ३० ॥ यह उत्तम ताम्बूल कर्पूर आदि सुगन्धित वस्तुओंसे सुवासित होनेसे जिह्वाको स्फूर्ति प्रदान करनेवाला है, इसे आप स्वीकार कीजिये ॥३१॥ हे देवी ! प्यासको शान्त करनेवाला, अत्यन्त शीतल, सुवासित एवं जगत्‌के लिये जीवन-स्वरूप यह जल स्वीकार

च गृह्यतामच्युतप्रिये ॥ सुस्वादुरससंयुक्तमिक्षुवृक्षसमुद्भवम् ॥ २७ ॥ अग्निपक्वमतिस्वादु गुडं च प्रतिगृह्यताम् ॥ यवगोधूमसस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम् ॥ २८ ॥ सुपक्वं गुडगव्याक्तं मिष्टान्नं देवि गृह्यताम् ॥ सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादिसमन्वितम् ॥ २९ ॥ मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ शीतवायुप्रदं चैव दाहे च सुखदं परम् ॥ ३० ॥ कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम् ॥ तांबूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ३१ ॥ जिह्वाजाड्यच्छेदकरं तांबूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ सुवासितं सुशीतं च पिपासानाशकारणम् ॥ ३२ ॥ जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम् ॥ देहसौंदर्यबीजं च सदाशोभाविवर्धनम् ॥ ३३ ॥ कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम् ॥ रक्तस्वर्णविकारं च देहभूषादिवर्धनम् ॥ ३४ ॥ शोभाधारं श्रीकरं च भूषणं देवि गृह्यताम् ॥ नानाऋतुषु निर्माणं बहुशोभाश्रयं परम् ॥ ३५ ॥ सुरभूपप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम् ॥ शुद्धिदं शुद्धरूपं च सर्वमंगलमंगलम् ॥ ३६ ॥ गंधवस्तूद्भवं रम्यं गन्धं देवि प्रगृह्यताम् ॥ पुण्यतीर्थोदकं चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा ॥ ३७ ॥ गृह्यतां कृष्णकान्ते त्वं रम्यमाचमनीयकम् ॥ रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनचर्चितम् ॥ ३८ ॥ वस्त्रभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं देवि गृह्यताम् ॥ यद्यद्द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामपि दुर्लभम् ॥ ३९ ॥ देवभूषार्हभोग्यं च तद्द्रव्यं देवि गृह्यताम् ॥ द्रव्याण्येतानि दत्त्वा च मूलेन देव-

कीजिये ॥३२॥ देह-सौन्दर्यका मूल कारण और सदा शोभा बढ़ानेवाला यह रेशमी तथा सूती वस्त्र स्वीकार करिए ॥३३॥ देहकी शोभा बढ़ानेवाला, सौन्दर्यका आधार तथा कान्तिवर्द्धक यह आभूषण ग्रहण कीजिये ॥३४॥ हे देवी ! विविध ऋतुओंके पुष्पोंसे गूँथी गयी, असीम शोभाका आश्रय तथा देवराजके लिये भी परम प्रिय इस मालाका स्वीकार करें। ३५॥ यह शुद्धि प्रदान करनेवाला, समस्त मङ्गलोंका भी मङ्गल और सुगन्धित वस्तुओंसे सम्पन्न दिव्य चन्दन आपकी सेवामें समर्पित है, स्वीकार कीजिये॥३६॥ हे कृष्णकान्ते ! यह पवित्र तीर्थजल स्वयं शुद्ध है तथा औरोंको भी सदा शुद्ध करनेवाला है, इसे आप आचमनके रूपमें स्वीकार करें ॥३७॥ हे देवी ! यह अमूल्य रत्नोंसे बनी सुन्दर शय्या वस्त्र-आभूषणांसे सजायी गयी है, पुष्प और चन्दनसे चर्चित है, इसे स्वीकार करे ॥३८॥ हे देवी ! यही नहीं, किंतु पृथ्वीपर जितने भी अपूर्व द्रव्य शरीरको सजानेके लिए उपयोगी हैं, वे दुर्लभ वस्तुएँ भी आपकी सेवामें उपस्थित हैं, स्वीकार करें ॥ ३९ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे मुने ! यह सूत्ररूप मन्त्र पढ़कर भगवती महालक्ष्मीको उपर्युक्त द्रव्य समर्पण करनेके पश्चात् देवराज इन्द्रने भक्तिपूर्वक विधिसहित उनके मूलमन्त्रका दस लाख जप किया, जिसके फलस्वरूप उन्हे मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो गयी ॥४०॥४१॥ यह मूलमन्त्र सभीके लिए कल्पवृक्षके समान है। ब्रह्माजीकी कृपासे यह उन्हें प्राप्त हुआ था। पूर्वमें श्रीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं) का प्रयोग करके 'कमलवासिनी' इस शब्दके अन्तमें 'ङे' विभक्ति लगाकर अन्तमें 'स्वाहा' शब्द जोड़ दिया जाय। "ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा" यही इस मन्त्रराजका स्वरूप है। कुबेरने इसी मन्त्रसे भगवती महालक्ष्मीकी आराधना करके परम ऐश्वर्य प्राप्त किया है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ इसी मन्त्रके प्रभावसे दक्षसावर्णि मनुको राजाधिराजकी पदवी प्राप्त हुई है तथा मङ्गल सातों द्वीपोंके राजा हुए हैं ॥ ४४ । हे नारद ! प्रियव्रत, उत्तानपाद तथा राजा केदार—इन सिद्ध पुरुषोंको राजेन्द्र कहलानेका सौभाग्य इसी मन्त्रने दिया है ॥ ४५ ॥ इस मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर भगवती महलक्ष्मीने इन्द्रको दर्शन दिये। उस समय वे वरदायिनी सर्वोत्तम रत्नसे निर्मित विमानपर विराजमान थीं ॥ ४६ ॥

पुंगवः ॥ ४० ॥ मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः ॥ जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह ॥ ४१ ॥ मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वतः ॥ लक्ष्मीर्माया कामवाणो ङेन्ता कमलवासिनी ॥ ४२ ॥ वैदिको मन्त्रराजोऽयं प्रसिद्धः स्वाहयाऽन्वितः ॥ कुबेरोऽनेन मन्त्रेण परमैश्वर्यमाप्तवान् ॥ ४३ ॥ राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च ॥ मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपेऽवनीपतिः ॥ ४४ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च ॥ एते सिद्धाश्च राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद ॥ ४५ ॥ सिद्धे मंत्रे महालक्ष्मीः शक्राय दर्शनं ददौ ॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानस्था वरप्रदा ॥४६॥ सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयंती त्विषा च सा ॥ श्वेतचंपकवर्णाभा रत्नभूषणभूषिता ॥४७॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा ॥ बिभ्रती रत्नमालां च कोटिचन्द्रसमप्रभाम् ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शांतां तुष्टावैतां पुरंदरः ॥ पुलकांचितसर्वांगः साश्रुनेत्रः कृतांजलिः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयुतः ॥ सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च ॥ ५० ॥ पुरंदर उवाच ॥ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः ॥ कृष्णप्रियायै सततं महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥ ५१ ॥ पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः ॥ पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः ॥ ५२ ॥ सर्वसंपत्स्वरूपिण्यै

उनके तेजसे सप्तद्वीपवती पृथ्वी व्याप्त थी। उनका श्रीविग्रह ऐसा प्रकाशमान था कि मानो श्वेत चम्पाका पुष्प हो। रत्नमय भूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥४७॥ उनके मुखपर मुसकान छायी थी। भक्तोंपर कृपा करनेके लिए वे परम आतुर थीं। उनके गलेमें रत्नोंका हार शोभा पा रहा थां। करोड़ चन्द्रमाके समान उनकी कान्ति थीं ॥ ४८ ॥ जगत्को जन्म देनेवाली शांतस्वरूपा भगवती महालक्ष्मीको देखकर देवराज इन्द्र उनकी स्तुति करने लगे। उस समय इन्द्रके सर्वाङ्गमें पुलकावली छा गयी थी। उनके नेत्र आनन्दके आँसुओंसे पूर्ण थे और उनको अञ्जलि बँधी हुई थी ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजीकी कृपासे सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करनेवाला वैदिक स्तोत्रराज उन्हें स्मरण था। उसीको पढ़कर उन्होंने स्तुति आरम्भ की ॥ ५० ॥ देवराज इन्द्र बोले—भगवती कमलवासिनीको नमस्कार है। देवी नारायणीको बार-बार नमस्कार है। कृष्णप्रिया भगवती महालक्ष्मीको निरन्तर अनेकशः नमस्कार है ॥ ५१ ॥ कमलपत्रके समान नेत्रवाली एव कमलमुखी भगवती महालक्ष्मीको नमस्कार है। पद्मासना, पद्मिनी एव वैष्णवी नामसे शोभा पानेवाली भगवती महलक्ष्मीको बार-बार नमस्कार है ॥ ५२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वसम्पत्स्वरूपिणी एवं सर्वाराध्या देवीको नमस्कार है। भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाली तथा हर्ष प्रदान करनेमें कुशल देवीको बार-बार नमस्कार है॥ ५३ ॥ हे रत्नपद्मे ! हे शोभने ! तुम भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर विराजमान होकर कार्यकी व्यवस्था करती हो। तुम्हारा स्वरूप चन्द्रमाके समान सुन्दर है। तुम्हें मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥ ५४ ॥ संपूर्ण संपत्तिकी अधिष्ठात्री महा वीके लिए बार-बार नमस्कार है। बुद्धिस्वरूपा एवं बुद्धिप्रदा भगवतीके लिए अनेकशः प्रणाम है ॥५५॥ हे देवी ! तुम वैकुण्ठमें महालक्ष्मी, क्षीरसमुद्रमें लक्ष्मी, राजाओंके भवनमें राज्यलक्ष्मी, इन्द्रके स्वर्गमें स्वर्ग-लक्ष्मी, गृहस्थोंके घर गृहलक्ष्मी एवं गृहदेवता, सागरके यहाँ सुरभि और यज्ञके पास दक्षिणाके रूपमें विराजमान रहती हो ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तुम देवताओंकी माता अदिति हो। तुम्हें कमला और कमलालया कहा जाता है। हव्य प्रदान करते समय 'स्वाहा' और कव्य प्रदान करनेके अवसरपर 'स्वधा'का जो उच्चारण होता है, वह तुम्हारा ही नाम है ॥५८॥ सबको धारण करनेवाली विष्णुमयी पृथ्वी तुम्हीं हो। भगवान् नारायणकी उपासनामें सदा तत्पर रहनेवाली हे देवी ! तुम्हारा सत्त्वमय

सर्वाराध्यै नमो नमः ॥ हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः ॥ ५३ ॥ कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः ॥ चंद्रशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने ॥ ५४ ॥ संपत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः ॥ नमो वृद्धिस्वरूपायै वृद्धिदायै नमो नमः ॥ ५५ ॥ वैकुंठे या महालक्ष्मीर्या लक्ष्मीः क्षीरसागरे ॥ स्वर्गलक्ष्मीरिंद्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये ॥ ५६ ॥ गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता ॥ सुरभिः सागरे जाता दक्षिणा यज्ञकामिनी ॥ ५७ ॥ अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालया ॥ स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता ॥५८॥ त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा ॥५९॥ क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा शारदा शुभा ॥ परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा ॥ ६० ॥ यया बिना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम् ॥ जीवन्मृतं च विश्वं च शश्वत्सर्वं यया विना ॥ ६१ ॥ सर्वेषां च परा माता सर्वबांधवरूपिणी ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी ॥ ६२ ॥ यथा माता स्तनांधानां शिशूनां शैशवे सदा ॥ तथा त्वं सर्वदा माता सर्वबांधवरूपतः ॥ ६३ ॥ मातृहीनः स्तनांधस्तु स च जीवति दैवतः ॥ त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम् ॥ ६४ ॥ सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवांबिके ॥ वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि ॥ ६५ ॥ अहं यावत्त्वया हीनो बंधुहीनश्च भिक्षुकः ॥ सर्वसंपद्विहीनश्च तावदेव हरि-

विग्रह परम शुद्ध है। तुम्हारेमें क्रोध और हिंसाको किञ्चिन्मात्र स्थान नहीं है। तुम्हें वरदा, शारदा, शुभा, परमार्थदा एवं हरिदास्यप्रदा कहते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ तुम्हारी अनुपस्थितिमें सारा जगत् निस्तत्त्व होकर भस्मीभूत हो जाता है। तुम्हारे न रहनेसे प्राण रहते हुए भी अखिल विश्वकी मृतक-जैसी स्थिति हो जा जाती है ॥६१॥ तुम संपूर्ण प्राणियोंकी श्रेष्ठ माता हो। सबके बान्धवरूपमें तुम्हारा ही आगमन हुआ है। तुम्हारी ही कृपासे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार बचपनमें दुधमुँहे बच्चोंके लिये माता है, वैसे ही तुम अखिल जगत्की जननी होकर सबकी सभी अभिलाषायें पूर्ण किया करती हो ॥ ६३ ॥ स्तनपायी बालक माताके न रहनेपर भाग्यवश जी भी सकता है, परन्तु तुम्हारे बिना कोई भी नहीं जी सकता–यह बिल्कुल निश्चित है ॥६४॥ हे अंबिके ! सदा प्रसन्न रहना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। अतः मुझपर प्रसन्न हो जाओ। हे सनातनो ! मेरा राज्य शत्रुओंके हाथमें चला गया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है । तुम्हारी कृपासे वह मुझे पुनः प्राप्त हो जाय ॥ ६५ ॥ हे हरिप्रिये ! मुझे जबतक तुम्हारा दर्शन नहीं मिला था, तभी तक मैं बन्धुहीन, भिक्षुक तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे शून्य था ॥६६॥ किन्तु अब तो मुझे ज्ञान, धर्म, अखिल अभीष्ट, सौभाग्य, प्रभाव, प्रताप, सर्वाधिकार, परम ऐश्वर्य, पराक्रम तथा युद्धमें विजय प्राप्त होना ही चाहिये। हे नारद ! इस प्रकार कहकर सम्पूर्ण देवताओंके साथ देवराज इन्द्रने मस्तक झुकाकर भगवती महालक्ष्मीको बार-बार प्रणाम किया । उस समय उनकी आँखोंमें प्रेमानन्दके आँसू भरे थे । देवताओंके कल्याणार्थ ब्रह्मा, शंकर, शेषनाग, धर्म तथा केशव–इन सभी महानुभावोंने भगवती महालक्ष्मीसे प्रार्थना की । तब उस देवसभामें शोभा पानेवाली भगवती प्रसन्न हो गयीं । उन्होंने देवताओंको वर दिया और भगवान श्रीकृष्णको मनोहर पुष्पमाला समर्पित की । तब सभी देवता अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥ ६७–७१ ॥ भगवती महालक्ष्मी क्षीरशायी भगवान श्रीहरिके स्थानपर प्रसन्नतापूर्वक पधार गयीं । हे मुने ! ब्रह्मा और शंकरजी भी देवताओंको शुभ आशीर्वाद देकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए अपने-अपने धामको चले गये ॥ ७२ ॥ यह स्तोत्र महान् पवित्र है ।

प्रिये ॥ ६६ ॥ ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम् ॥ प्रभावं च प्रतापं च सर्वाधिकारमेव च॥ ६७ ॥ जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च ॥ इत्युक्त्वा च महेंद्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह ॥ ६८ ॥ प्रणनाम साश्रुनेत्रो मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः ॥ ब्रह्मा च शंकरश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः ॥ ६९ ॥ सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थे च पुनः पुनः ॥ देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम् ॥ ७० ॥ केशवाय ददौ लक्ष्मीः संतुष्टा सुरसंसदि ॥ ययुर्देवाश्च संतुष्टाः स्वं स्वं स्थानं च नारद ॥ ७१ ॥ देवी ययौ हरेः स्थानं हृष्टा क्षीरोदशायिनः ॥ ययतुश्चैव स्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद ॥ ७२ ॥ दत्त्वा शुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम् ॥ इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः ॥ ७३ ॥ कुबेरतुल्यः स भवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥ पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ७४ ॥ सिद्धस्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं तु संततम् ॥ महासुखी च राजेंद्रो भविष्यति न संशयः ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

॥ नारद उवाच ॥ नारायण महाभाग नारायणसम प्रभो ॥ रूपेणैव गुणेनैव यशसा तेजसा त्विषा ॥ १ ॥ त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां मुने ॥ तपस्विनां मुनीनां च परो वेदविदां वरः ॥ २ ॥ महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम् ॥ अन्यत्किंचिदुपाख्यानं निगूढं वद

इसका त्रिकाल पाठ करनेवाला बड़भागी पुरुष कुबेरके समान राजाधिराज हो सकता है । पाँच लाख जप करनेपर मनुष्योंके लिए यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है ॥७३॥७४॥ यदि इस सिद्ध स्तोत्रका कोई निरन्तर एक महीने तक पाठ करे तो वह महान् सुखी एवं राजेश्वर हो जायगा—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

(भगवतीकी स्वाहाशक्तिका उपाख्यान) नारदजीने कहा—हे प्रभो ! हे नारायण ! आप रूप, गुण, यश, तेज एवं कान्तिसे सम्पन्न होनेके कारण मेरे लिए साक्षात् भगवान नारायण ही हैं ॥ १ ॥ हे मुने ! आप ही ज्ञानियों, सिद्धों, योगियों, तपस्वियों और वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥ आपकी कृपासे मुझे महालक्ष्मीका महान् अद्भुत उपाख्यान ज्ञात

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो गया । अब आप उचित समझ तो भगवती स्वाहा, भगवती स्वधा और भगवती दक्षिणाके चरित्र तथा उनका महत्त्व सुनाइये ॥ ३ ॥ जो अत्यन्त गोप्य, लोकोपयोगी, धार्मिक तथा वेदप्रतिपादित हो, जिसकी पुराणोंमें चर्चा न हुई हो ॥ ४ ॥ नारायणने कहा—ऐसे बहुतेरे उपाख्यान हैं कि जिनका अबतक पुराणोंमें उल्लेख नहीं हुआ है । वे बड़े गूढ और अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥ ५ ॥ उनमेंसे किस सारभूत उपाख्यानको आप सुनना चाहते हैं ? यह बताइए तो मैं कहूँ ॥ ६ ॥ नारदजी बोले—यज्ञमें स्वाहादेवी और श्राद्धमें स्वधादेवी सबसे प्रशस्त मानी जाती हैं ॥७॥ अतएव मैं आपके मुखसे इन्हींका जीवनचरित्र, गुणानुवाद और महावाक्य सुनना चाहता हूँ, कहिए ॥८॥ सूतजी कहते हैं—हे मुनियो ! नारदजीकी बात सुनकर मुनिवर नारायण हँस पड़े और उन्होंने पुराणोक्त प्राचीन उपाख्यान कहना आरम्भ किया ॥ ९ ॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे मुने ! सृष्टिके समयका यह प्रसंग है, जब देवताओंको भोजन नहीं मिल रहा था । अतएव वे पहले ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीकी मनोहारिणी सभामें गये ॥१०॥ हे मुने ! वहाँ जाकर उन्होंने अपने आहारके लिए ब्रह्माजीसे प्रार्थना की । उनकी बात

सांप्रतम् ॥ ३ ॥ अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तं च सर्वतः ॥ अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम् ॥ ४ ॥ नारायण उवाच ॥ नानाप्रकारमाख्यान-मप्रकाश्यं पुराणतः ॥ श्रुतं कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन्सुदुर्लभम् ॥ ५ ॥ तेषु यत्सारभूतं च श्रोतुं किं वा त्वमिच्छसि ॥ तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ स्वाहा देवी हविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु ॥ पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा ॥ ७ ॥ एतासां चरितं जन्मफलं प्राधान्यमेव च ॥ श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्राद्वद वेदविदां वर ॥८॥ सूत उवाच ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः ॥ कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम् ॥ ९ ॥ नारायण उवाच ॥ सृष्टेः प्रथमतो देवाः स्वाहारार्थं ययुः पुरा ॥ ब्रह्मलोकं ब्रह्मसभामाजग्मुः सुमनोहराम् ॥१०॥ गत्वा निवेदनं चक्रुराहारहैतुकं मुने ॥ ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय निषेवे श्रीहरिं परम् ॥११॥ नारद उवाच ॥ यज्ञरूपो हि भगवान्कलया च बभूव ह ॥ यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्राह्मणैः ॥ १२ ॥ नारायण उवाच ॥ हविर्ददति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः ॥ सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुङ्गव ॥ १३ ॥ देवा विषण्णास्ते सर्वे तत्सभां च ययुः पुनः ॥ गत्वा निवेदनं चक्रुराहाराभावहेतुकम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मा श्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं शरणं ययौ ॥ पूजां चकार प्रकृतेर्ध्यानेनैव तदाज्ञया ॥ १५ ॥ प्रकृतेः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ अतीव सुन्दरी श्यामा

सुनकर ब्रह्माजीने कहा कि ब्राह्मणलोग जो हवन करते हैं, उसीसे तुम्हारे भोजनकी व्यवस्था कर दी जायगी ।' तदनन्तर इसके लिए ब्रह्माजी भगवान विष्णुकी स्तुति करने लगे। नारदजीने कहा—हे मुने । भगवान श्रीहरि अपनी कलासे यज्ञके रूपमें प्रकट हो चुके थे । तब ब्राह्मण यज्ञमें देवताओंके उद्देश्यसे जो हवि प्रदान करते थे, वह क्या हो जाता था ? ॥११॥१२॥ भगवान नारायण कहते हैं–हे मुनिवर ! ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि वर्ण भक्तिपूर्वक जो हवन करते थे, वह देवताओंको उपलब्ध नहीं होता था ॥१३॥ इसीसे वे सब उदास होकर ब्रह्मसभामें गये और वहाँ जाकर उन्होंने आहार न-मिलनेका कारण बतलाया ॥ १४ ॥ ब्रह्माजीने देवताओंकी प्रार्थना सुनकर ध्यानपूर्वक श्रीकृष्णकी शरण ली । तब भगवानने उन्हें आदेश दिया और उसके अनुसार ध्यान करके ब्रह्माजी भगवती मूलप्रकृतिकी उपासना करने लगे ॥ १५ ॥ तब सर्वशक्तिस्वरूपिणी भगवती 'स्वाहा' भगवती भुवनेश्वरीकी कलासे प्रकट हुईं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन परम सुन्दरी देवीके विग्रहकी सुन्दर और श्याम कान्ति थी। वे मनोहारिणी देवी मुस्करा रहीं थीं। भक्तोंपर-अनुग्रह करनेके लिये व्यग्र चित्तवाली उन भगवती स्वाहाने ब्रह्माजीके सम्मुख उपस्थित होकर उनसे कहा—'हे पद्मयोने! तुम वर माँगो।' ॥ १६ ॥ १७ ॥ भगवतीका वचन सुनकर ब्रह्माजीने आश्चर्यपूर्वक कहा। ब्रह्माजी बोले—तुम परम सुन्दरी देवी अग्निकी दाहिका शक्ति होनेकी कृपा करो ॥ १८ ॥ क्योंकि तुम्हारे बिना अग्निदेव आहुतियोंको भस्म करनेमें असमर्थ हैं। जो मानव मन्त्रके अन्तमें तुम्हारे नामका उच्चारण करके देवताओंके लिये हवनपदार्थ अर्पण करेंगे, वह देवताओंको सहज ही उपलब्ध हो जायगा। हे अम्बिके! तुम सर्वसम्पत्स्वरूपिणी देवी अग्निकी गृहस्वामिनी बनो। देवता और मनुष्य सदा तुम्हारी पूजा करें। ब्रह्माजीकी बात सुनकर भगवती स्वाहा उदास हो गयीं ॥ १९–२१ ॥ तदनन्तर उन्होंने स्वयं अपना अभिप्राय ब्रह्माजीके प्रति व्यक्त किया। भगवती स्वाहाने कहा—हे ब्रह्मन्! मैं दीर्घकालतक तपस्या करके भगवान श्रीकृष्णकी उपासना करूँगी ॥ २२ ॥ उन परब्रह्म भगवान श्रीकृष्णके अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह सब स्वप्नवत् केवल भ्रम है।

रमणीया मनोहरा ॥ १६ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा ॥ उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु ॥ १७ ॥ विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा संभ्रमात्समुवाच ताम् ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्भव याऽतीव सुन्दरी ॥ १८ ॥ दग्धुं न शक्तः प्रकृतीर्हुताशश्च त्वया विना ॥ त्वन्नामोच्चार्य मंत्रांते यो दास्यति हविर्नरः ॥ १९ ॥ सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवंति सुराः सानंदपूर्वकम् ॥ अग्नेः संपत्स्वरूपा च श्रीरूपा सा गृहेश्वरी ॥ २० ॥ देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवांबिके ॥ ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा विषण्णा बभूव ह ॥ २१ ॥ तमुवाच ततो देवी स्वाभिप्रायं स्वयंभुवम् ॥ स्वाहोवाच ॥ अहं कृष्णं भजिष्यामि तपसा सुचिरेण च ॥ २२ ॥ ब्रह्मंस्तदन्यं यत्किंचित्स्वप्नवद्भ्रममेव च ॥ विधाता जगतस्त्वं च शंभुर्मृत्युञ्जयो विभुः ॥ २३ ॥ बिभर्ति शेषो विश्वं च धर्मः साक्षी च धर्मिणाम् ॥ सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषु च गणेश्वरः ॥ २४ ॥ प्रकृतिः सर्वसंपूज्या यत्प्रसादात्पुराऽभवत् ॥ ऋषयो मुनयश्चैव पूजिता यन्निषेवया ॥ २५ ॥ तत्पादपद्मं नियतं भावेन चिंतयाम्यहम् ॥ पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मनाभानुसारतः ॥ २६ ॥ जगाम तपसे देवी ध्यात्वा कृष्णं निरामयम् ॥ तपस्तेपे वर्षलक्षमेकपादेन पद्मजा ॥ २७ ॥ तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ अतीव कमनीयं च रूपं दृष्ट्वा च रूपिणी ॥ २८ ॥ मूर्च्छां संप्राप कालेन कामेशस्य च कामुकी ॥ विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच

तुम जगत्‌की रक्षा करते हो। शंकरने मृत्युपर विजय प्राप्त की है ॥ २३ ॥ शेषनाग अखिल विश्वको धारण करते हैं। धार्मिक पुरुषोंको धर्म जाननेकी योग्यता प्राप्त है। गणेश संपूर्ण देव-समाजमें सर्वप्रथम पूजा प्राप्त करते हैं ॥२४॥ प्रकृतिदेवी सर्वपूज्या हुई हैं। यह सब उन भगवान श्रीकृष्णकी उपासनाका ही फल है। उपर्युक्त सभी देवता सम्यक् प्रकारसे श्रीकृष्णकी आराधना कर चुके हैं। भगवान श्रीकृष्णके सेवक होनेसे ही ऋषियों और मुनियोंका सर्वत्र सम्मान है ॥२५॥ अतः मैं भी उन्हीं परम प्रभु श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करना चाहती हूँ। ब्रह्माजीसे यों कहकर वे कमलमुखी देवी स्वाहा निरामय भगवान श्रीकृष्णके उद्देश्यसे तपस्या करनेके लिये चल पड़ीं और एक पैरसे खड़ी होकर उन्होंने श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए एक लाख वर्षोंतक तप किया ॥२६॥२७॥ तब उन्हें प्रकृतिसे परे निर्गुण परब्रह्म श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त हुए। भगवानके परम कमनीय सौंदर्यको देखकर सुरूपिणी देवी स्वाहा मूर्च्छित-सी हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गयीं। क्योंकि उन कामुकी देवीने कामेश प्रभुको सुदीर्घ समयके बाद देखा था। चिरकालतक तपस्या करनेके कारण क्षीण शरीरवाली देवी स्वाहाके अभिप्रायको सर्वज्ञ भगवान श्रीकृष्ण समझ गये। उन्होंने उन्हें उठाकर अपनी गोदमें बैठा लिया और कहा। भगवान श्रीकृष्ण बोले—हे कान्ते! तुम वाराहकल्पमें मेरी प्रिया बनोगी ॥२८–३ ॥ तुम्हारा नाम 'नाग्नजिती' होगा। राजा नग्नजित तुम्हारे पिता होंगे। इस समय तुम दाहिका शक्तिसे संपन्न होकर अग्निकी प्रिय पत्नी बनो ॥३१॥ मेरे प्रसादसे तुम मन्त्रोंका अङ्ग बनकर पूजा प्राप्त करोगी। अग्निदेव तुम्हें गृहस्वामिनी बनाकर भक्तिभावके साथ तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम परम रमणीया देवीको उनके साथ हास-विलास करनेका सुअवसर प्राप्त होगा। हे नारद! देवी स्वाहासे ऐसा सम्भाषण करके भगवान श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये ॥३२॥३३॥ फिर उनकी आज्ञाके अनुसार डरते हुए अग्निदेव वहाँ आये और सामवेदमें कही हुई विधिसे जगज्जननी भगवतीका ध्यान करने लगे ॥३४॥ तदनन्तर उन्होंने देवीकी भली-भाँति पूजा और स्तुति की। तत्पश्चात् भगवती स्वाहा और अग्निदेवका मन्त्रोच्चारणपूर्वक विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। देवताओंके वर्षसे

ह ॥ २९ ॥ समुत्थाप्य च तां क्रोडे क्षीणांगीं तपसा चिरम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वाराहे वै त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यसि ॥ ३० ॥ नाम्ना नाग्नजिती कन्या कांते नग्नजितस्य च ॥ अधुनाऽग्नेर्दाहिका त्वं भव पत्नी च भामिनि ॥३१॥ मन्त्रांगरूपा पूज्या च मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ वह्निस्त्वां भक्तिभावेन संपूज्य च गृहेश्वरीम् ॥ ३२ ॥ रमिष्यति त्वया सार्धं रामया रमणीयया ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवो देवीं संभाष्य नारद ॥ ३३ ॥ तत्राजगाम संत्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः ॥ सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम् ॥ ३४ ॥ संपूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मंत्रतः ॥ तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह ॥ ३५ ॥ अतीव निर्जने देशे संभोगसुखदे सदा ॥ बभूव गर्भस्तस्यां च हुताशस्य च तेजसा ॥ ३६ ॥ तं दधार च सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् ॥ ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान् ॥ ३७ ॥ दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान् क्रमेण च ॥ ऋषयो मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः ॥३८॥ स्वाहांतं मंत्रमुच्चार्य हविर्दानं च चक्रिरे ॥ स्वाहायुक्तं च मंत्रं च यो गृह्णाति प्रशस्तकम् ॥३९॥ सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य मंत्रग्रहणमात्रतः ॥ विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः ॥४०॥ पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथा पुमान् ॥ फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो हि निन्दितः ॥ ४१ ॥ स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न हुतः फलदायकः ॥ परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः संप्रापुराहुतीः ॥ ४२ ॥

सौ वर्षतक वे उनके साथ आनन्द करते रहे ॥३५॥ उस सुखप्रद निर्जन प्रदेशमें रहते समय देवी स्वाहा अग्निदेवके तेजसे गर्भवती हो गयीं ॥३६॥ बारह दिव्य वर्षोंतक वे उस गर्भको धारण किये रहीं। तत्पश्चात् दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि एवं आहवनीयाग्निके क्रमसे मनको मुग्ध करनेवाले परम सुन्दर पाँच पुत्र उनसे उत्पन्न हुए। तबसे ऋषि, मुनि, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि सभी श्रेष्ठ वर्णके लोग 'स्वाहान्त' मन्त्रोंका उच्चारण करके अग्निमें हवन करने लगे और देवताओंको वह आहाररूपमें प्राप्त होने लगा ॥३७–३९॥ जो पुरुष स्वाहायुक्त प्रशस्त मन्त्रका उच्चारण करता है, उसे केवल मन्त्र पढ़ने मात्रसे ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जिस प्रकार विषहीन सर्प, वेदहीन ब्राह्मण, पतिसेवाविहीन स्त्री, विद्याहीन पुरुष तथा फल-शाखाहीन वृक्ष निंदाके पात्र होते हैं ॥४०॥४१॥ वैसे ही स्वाहाहीन मंत्र भी निंद्य होता है। ऐसे मंत्रसे किया हुआ हवन फल नहीं देता। फिर तो सभी ब्राह्मण संतुष्ट हो गये। देवताओंको आहुतियाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिलने लगीं। हे मुने! इस प्रकार भगवती स्वाहासे सम्बन्ध रखनेवाला यह सारा उपाख्यान मैंने कह सुनाया ॥४२॥४३॥ यह प्रसङ्ग सुख और मोक्ष प्रदान करनेमें परम उपयोगी एवं रहस्यपूर्ण है। तुम अब क्या सुनना चाहते हो? नारदजीने कहा—हे प्रभो! हे मुनीश्वर! अब मुझे भगवती स्वाहाकी पूजाका वह विधान, ध्यान एवं स्तोत्र बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे अग्निदेवने उनकी पूजा करके स्तुति की थी। भगवान् नारायण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! हे मुनिवर! भगवती स्वाहाके ध्यान, स्तोत्र और पूजाका जो विधान सामवेदमें कहा गया है, वही मैं तुम्हें बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। मनुष्यको चाहिये कि फल प्राप्त करनेके लिए सम्पूर्ण यज्ञोंके आरम्भमें शालग्रामकी प्रतिमा अथवा कलशपर यत्नपूर्वक भगवती स्वाहाका पूजन करके यज्ञ आरम्भ करे ॥४४-४६॥ ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—'देवी स्वाहा वेदाङ्गमय मन्त्रोंसे सम्पन्न हैं। इनका दिव्य विग्रह मन्त्रसिद्धस्वरूप है। ये स्वयं सिद्ध, कल्याणमयी तथा मनुष्योंको

स्वाहांतेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वमेव च ॥ इत्येवं कथितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम् ॥ ४३ ॥ शुभदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ स्वाहापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर ॥४४॥ सम्पूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तद्वद मे प्रभो ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ध्यानं च सामवेदोक्तं स्तोत्रपूजाविधानकम् ॥ ४५ ॥ वदामि श्रूयतां ब्रह्मन्सावधानो मुनीश्वर ॥ सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा ॥ ४६ ॥ स्वाहां सम्पूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात्फलाप्तये ॥ स्वाहां मन्त्रांगसंयुक्तां मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम् ॥ ४७ ॥ सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां शुभाम् ॥ इति ध्यात्वा च मूलेन दत्त्वा पाद्यादिकं नरः ॥४८॥ सर्वसिद्धिं लभेत्स्तुत्वा मूलमन्त्रं मुने शृणु ॥ ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च ॥ ४९ ॥ यः पूजयेच्च तां भक्त्या सर्वेष्टं सम्भवेद्ध्रुवम् ॥ स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया सन्तोषकारिणी ॥ ५० ॥ शक्तिः क्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुवा ॥ गतिः सदा नराणां च दाहिका दहनक्षमा ॥ ५१ ॥ संसारसाररूपा च घोरा संसारतारिणी ॥ देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥ ५२ ॥ षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः ॥ सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य इह लोके परत्र च ॥ ५३ ॥ नांगहीनं भवेत्तस्य सर्वं कर्म सुशोभनम् ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्प्रियाम् ॥ रम्भोपमां स्वकान्तां च संप्राप्य सुखमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारद-नारायणसंवादे स्वाहोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

सिद्धि एवं कर्मफल प्रदान करनेमें परम कुशल हैं।' हे मुने! यों ध्यान करके मूलमन्त्रसे पाद्य आदि अर्पण करके स्तोत्रका पाठ करनेसे मनुष्यको सम्पूर्ण सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। यह मूलमन्त्र है—'ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा।' इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक जो भगवती स्वाहाकी पूजा करता है, उसके सारे मनोरथोंको पूर्ण हो जानेमें कोई सन्देह नहीं रहता ॥४७-५०॥ अग्निदेव कहते हैं—स्वाहा, वह्निप्रिया, वह्निजाया, संतोषकारिणी, शक्ति, क्रिया, कालदात्री, परिपाककरी, ध्रुवा, मानवोंकी गति, दाहिका, दहनक्षमा, संसारसाररूपा, घोरसंसारतारिणी, देवजीवनरूपा और देवपोषणकारिणी—ये सोलह नाम भगवती स्वाहाके हैं ॥५१॥५२॥ इसे पढ़नेवाला पुण्यात्मा पुरुष इहलोक और परलोकमें भी सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है ॥ ५३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसका कोई शुभ कार्य अधूरा नहीं रह सकता। इस षोडश नामके प्रभावसे अपुत्री पुत्रवान् होता तथा भार्याहीन व्यक्ति रंभा जैसी सुन्दरी स्त्री पाकर सुख भोगता है ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

(भगवती स्वधाशक्तिकी कथा) भगवान नारायण कहते हैं—हे मुने! अब भगवती स्वधाका उत्तम उपाख्यान कहता हूँ, सुनो। पितरोंके लिए यह तृप्तिप्रद एवं श्राद्धान्नके फलको बढ़ानेवाला है ॥ १ ॥ जगत्स्रष्टा ब्रह्माने सृष्टिके आरम्भमें सात पितरोंका सृजन किया। चार तो मूर्तिमान् थे और तीन तेजःस्वरूप ॥ २ ॥ उन सातों सुखस्वरूप मनोहर पितरोंको देखकर उनके भोजनके लिए श्राद्ध-तर्पणपूर्वक दिया हुआ आहार निश्चित किया ॥ ३ ॥ स्नान, तर्पण, श्राद्ध, देवपूजन तथा प्रतिदिन त्रिकालसंध्या—यह ब्राह्मणोंका परम कर्तव्य है—यह बात श्रुतिमें प्रसिद्ध है ॥४॥ जो ब्राह्मण नित्य त्रिकालसंध्या, श्राद्ध, तर्पण, बलिवैश्वदेव और वेदघोष नहीं करता, उसे विषहीन सर्पके समान निस्तेज समझना चाहिये ॥ ५ ॥ हे नारद!

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् ॥ पितॄणां च तृप्तिकरं श्राद्धान्नफलवर्धनम् ॥ १ ॥ सृष्टेरादौ पितृगणान्ससर्ज जगतां विधिः ॥ चतुरश्च मूर्तिमन्तस्त्रींश्च तेजःस्वरूपिणः ॥२॥ दृष्ट्वा सप्त पितृगणान् सुखरूपान्मनोहरान् ॥ आहारं ससृजे तेषां श्राद्धं तर्पणपूर्वकम् ॥ ३ ॥ स्नानं तर्पणपर्यंतं श्राद्धं तु देवपूजनम् ॥ आह्निकं च त्रिसन्ध्यांतं विप्राणां च श्रुतौ श्रुतम् ॥ ४ ॥ नित्यं न कुर्याद्यो विप्रस्त्रिसन्ध्यं श्राद्धतर्पणम् ॥ बलिं वेदध्वनिं सोऽपि विषहीनो यथोरगः ॥५॥ देवीसेवाविहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक् ॥ भस्मांतं सूतकं तस्य न कर्मार्हश्च नारद ॥ ६ ॥ ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे ॥ न प्राप्नुवंति पितरो ददति ब्राह्मणादयः ॥ ७ ॥ सर्वे च जग्मुः क्षुधिताः खिन्नास्तु ब्रह्मणः सभाम् ॥ सर्वं निवेदनं चक्रुस्तमेव जगतां विधिम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे च मनोहराम् ॥ रूपयौवनसंपन्नां शतचन्द्रनिभाननाम् ॥९॥ विद्यावतीं गुणवतीमतिरूपवतीं सतीम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥१०॥ विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम् ॥ स्वधाभिधां च सुदतीं लक्ष्मीलक्षणसंयुताम् ॥ ११ ॥ शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम् ॥ पत्नीं पितॄणां पद्मास्यां पद्मजां पद्मलोचनाम् ॥१२॥

देवीकी सेवासे वञ्चित तथा भगवानको बिना भोग लगाये खानेवाला व्यक्ति जीवनपर्यन्त अपवित्र रहता है। उसे कोई भी शुभ कार्य करनेका अधिकार नहीं है ॥ ६ ॥ यों ब्रह्माजी तो पितरोंके आहारार्थ श्राद्ध आदिका विधान करके चले गये, परन्तु ब्राह्मण प्रभृति साधारण व्यक्तियोंके दिये हुए श्राद्धीय पदार्थ पितर नहीं पा सकते थे ॥ ७ ॥ अतः वे सभी क्षुधा शान्त न होनेके कारण उदास होकर ब्रह्माजीकी सभामें गये। उन्होंने वहाँ ब्रह्माजीको सारी बातें बतायीं ॥ ८ ॥ तब उन महाभाग विधाताने एक परम सुन्दर मानसी कन्या उत्पन्न की। सैकड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाके समान मुखवाली वह देवी रूप और यौवनसे सम्पन्न थी ॥९॥ उस साध्वी देवीमें विद्या, गुण, बुद्धि और रूप सम्यक् प्रकारसे विद्यमान थे। श्वेत चम्पाके समान उसका उज्ज्वल वर्ण था। वह रत्नमय भूषणोंसे विभूषित थी ॥१०॥ मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाकी अंशभूता वह देवी मुस्करा रही थी। सदा विशुद्ध, वर देनेवाली एवं कल्याणस्वरूपिणी उस सुन्दरीका नाम 'स्वधा' था ॥ ११ ॥ भगवती लक्ष्मीके सभी शुभ लक्षण उसमें विद्यमान थे। वह अपने चरणकमलांको शतदल कमलपर रखे हुए थी। उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुख और नेत्र विकसित कमलके सदृश सुन्दर थे ॥१२॥ उसे पितरोंकी पत्नी बनाया गया। ब्रह्माजीने पितरोंको सन्तुष्ट करनेके लिए इस तुष्टिस्वरूपिणी देवीको पत्नीरूपसे सौंप दिया। साथ ही अन्तमें 'स्वधा' लगाकर मन्त्रोंका उच्चारण करके पितरोंके उद्देश्यसे पदार्थ अर्पण करना चाहिये—यह गोपनीय बात भी ब्राह्मणोंको बतला दी ॥१३॥ तबसे ब्राह्मण लोग उसी क्रमसे पितरोंको कव्य प्रदान करने लगे। यों देवताओंके लिये वस्तुदानमें 'स्वाहा' और पितरोंके लिये 'स्वधा' शब्दका उच्चारण श्रेष्ठ माना जाने लगा। दक्षिणा सर्वत्र प्रशस्त मानी गयी है। क्योंकि दक्षिणाके बिना यज्ञ नष्ट हो जाता है ॥१४॥१५॥ उस समय देवता, पितर, ब्राह्मण, मुनि और मानव—इन सबने बड़े आदरके साथ उन शान्तस्वरूपिणी भगवती स्वधाकी पूजा एवं स्तुति की ॥ १६ ॥ देवीके वर-प्रसादसे वे सबके सब परम संतुष्ट हो गये। उनकी सारी मनःकामनाएँ पूर्ण हो गयीं ॥ १७ ॥ हे मुने! इस प्रकार भगवती स्वधाके सम्पूर्ण उपाख्यानका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने कर दिया। यह सबके लिये तुष्टिकारक है। पुनः क्या सुनना चाहते हो? ॥१८॥ नारदजीने कहा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हे महामुने! अब मैं भगवती

पितृभ्यश्च ददौ ब्रह्मा तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम् ॥ ब्राह्मणानां चोपदेशं चकार गोपनीयकम् ॥१३॥ स्वधान्तं मंत्रमुच्चार्य पितृभ्यो देयमित्यपि ॥ क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रे दानं ददुः पुरा ॥ १४ ॥ स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा स्मृता ॥ सर्वत्र दक्षिणा शस्ता हतं यज्ञमदक्षिणम् ॥ १५ ॥ पितरो देवता विप्रा मुनयो मनवस्तथा ॥ पूजां चक्रुः स्वधां शांतां तुष्टुवुः परमादरात् ॥१६॥ देवादयश्च संतुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः ॥ विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण च ॥ १७ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं स्वधोपाख्यानमेव च ॥ सर्वेषां च तुष्टिकरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ स्वधापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं महामुने ॥ श्रोतुमिच्छामि यत्नेन वद वेदविदां वर ॥ १९ ॥ नारायण उवाच ॥ ध्यानं च स्तवनं ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वमंगलकम् ॥ सर्वं जानासि च कथं ज्ञातुमिच्छसि वृद्धये ॥ २० ॥ शरत्कृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे ॥ स्वधां सम्पूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत् ॥ २१ ॥ स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः ॥ न भवेत्फलभाक्सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च ॥ २२ ॥ ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ पूज्यां वै पितृदेवानां श्राद्धानां फलदां भजे ॥ २३ ॥ इति ध्यात्वा शिलायां वा ह्यथवा मंगले घटे ॥ दद्यात्पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम् ॥ २४ ॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामुने ॥ समुच्चार्य च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेद्द्विजः ॥ २५ ॥

स्वधाकी पूजाका विधान, ध्यान और स्तोत्र सुनना चाहता हूँ। सो यत्नपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये ॥१९॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! देवी स्वधाका वेदोक्त ध्यान-स्तवन मङ्गलमय होता है। आश्विन मासके कृष्णपक्षमें त्रयोदशी तिथिको मघानक्षत्रमें अथवा श्राद्धके दिन यत्नपूर्वक भगवती स्वधाकी पूजा करके श्राद्ध करना चाहिये ॥२०॥२१॥ जो बुद्धिका अभिमानी ब्राह्मण स्वधादेवीकी उपासना न करके श्राद्ध करता है, उसके श्राद्ध और तर्पण सफल नहीं होते ॥२२॥ ये भगवती स्वधा ब्रह्माजीकी मानसी कन्या हैं। ये सदा तरुणावस्थासे संपन्न रहती हैं। पितर सदा इनकी पूजा करते हैं। इन्हींकी कृपासे श्राद्धोंका फल मिलता है। ऐसी इन देवीकी मैं उपासना करता हूँ ॥ २३ ॥ इस प्रकार ध्यान करके शिला अथवा मङ्गलमय कलशपर इनका आवाहन करना चाहिये। तदनन्तर मूलमंत्रसे पाद्य आदि उपचारों द्वारा इनका पूजन करना चाहिये ॥२४॥ हे महामुने! 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस मन्त्रका उच्चारण करके ब्राह्मण इनकी पूजा-स्तुति और प्रणाम करें ॥२ ॥ हे ब्रह्मपुत्र एवं विज्ञानी नारद ! अब स्तोत्र सुनो । यह स्तोत्र मानवोंकी सम्पूर्ण अभिलाषा प्रदान करनेवाला हैं । पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इसका पाठ किया था ॥ २६ ॥ भगवान नारायण कहते हैं–हे नारद ! 'स्वधा' शब्दके उच्चारणमात्रसे मानव तीर्थस्नायी समझा जाता है । वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर वाजपेय यज्ञके फलका अधिकारी हो जाता है ॥२७॥ 'स्वधा, स्वधा, स्वधा' इस प्रकार तीन बार यदि इनका स्मरण किया जाय तो श्राद्ध, बलि वैश्वदेव और तर्पणके फल पुरुषको प्राप्त हो जाते हैं ॥२८॥ श्राद्धके अवसरपर जो पुरुष सावधान होकर स्वधादेवीके स्तोत्रका श्रवण करता है, वह श्राद्धका फल पा लेता है । इसमें संशय नहीं है ॥२९॥ जो मानव 'स्वधा' 'स्वधा' 'स्वधा' इस पवित्र नामका त्रिकालसंध्याके समय उच्चारण करता हैं, उसे पुत्रों तथा सद्गुणोंसे संपन्न, विनीत, पतिव्रता तथा प्रिय पत्नी प्राप्त होती है ॥३०॥ हे देवी ! तुम पितरोंके लिये प्राणतुल्या और ब्राह्मणोंके लिए जीवनस्वरूपिणी हो । तुम्हें श्राद्धकी अधिष्ठात्री देवी कहा गया है । तुम्हारी ही कृपासे श्राद्ध और तर्पण आदिके फल मिलते हैं ॥३१॥ हे सुव्रते ! तुम्हारा

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद ॥ सर्ववांछाप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा ॥ २६ ॥ नारायण उवाच ॥ स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत् ॥ २७ ॥ स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत् ॥ श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च ॥ २८ ॥ श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ॥ स लभेच्छ्राद्धसम्भूतं फलमेव न संशयः ॥२९॥ स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥ प्रियां विनीतां स लभेत्साध्वीं पुत्रगुणान्विताम् ॥३०॥ पितृणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी ॥ श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा ॥ ३१ ॥ नित्या त्वं सत्यरूपाऽसि पुण्यरूपाऽसि सुव्रते ॥ आविर्भावतिरोभावौ सृष्टौ च प्रलये तव ॥ ३२ ॥ ॐ स्वस्तिश्च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा ॥ निरूपिताश्चतुर्वेदैः प्रशस्ताः कर्मिणां पुनः ॥३३॥ कर्मपूर्त्यर्थमेवैता ईश्वरेण विनिर्मिताः ॥ इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके स्वसंसदि ॥३४॥ तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधा साऽऽविर्बभूव ह ॥ तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम् ॥ ३५ ॥ तां सम्प्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः ॥ स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु वांछितं फलमाप्नुयात् ॥३६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसम्वादे स्वधोपाख्याने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

विग्रह नित्य, सत्य और पुण्यमय है । तुम सृष्टिके समय प्रकट होती हो और प्रलयकालमें तुम्हारा तिरोभाव हो जाता हैं ॥३२॥ तुम प्रणवस्वरूपा, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा एवं दक्षिणा-मयी देवीको नमस्कार है । चारों वेदों द्वारा कर्मफलको संपन्न करनेके लिये तुम निरूपित हुई हो । कर्मोंकी पूर्तिके लिये हो ईश्वरने तुम्हारे ये चार रूप बनाये हैं । इस प्रकार देवी स्वधाकी महिमा गाकर ब्रह्माजी अपनी सभामें विराजमान हो गये ॥३३॥३४॥ इतनेमें सहसा भगवती स्वधा उनके सामने प्रकट हो गयीं । तब पितामहने उन कमलनयनी देवीको पितरोंके साथ कर दिया ॥ ३५ ॥ उन देवीको प्राप्तिसे पितर अत्यन्त प्रसन्न हुए । वे आनन्दसे विह्वल हो गए । यही भगवती स्वधाका पुनीत स्तोत्र है । जो पुरुष समाहित चित्तसे इस स्तोत्रका श्रवण करता है, उसने मानों सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया । उसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥३६॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(दक्षिणादेवीका उपाख्यान) भगवान् नारायण कहते हैं—हे मुने! भगवती स्वाहा और स्वधाका परम मधुर तथा उत्तम उपाख्यान सुना चुका। अब भगवती दक्षिणाका कथाप्रसंग वर्णन करूँगा। तुम सावधान होकर सुनो ॥१॥ प्राचीनकालकी बात है, गोलोकमें भगवान श्रीकृष्णकी प्रेयसी एक गोपी थी। उसका नाम सुशीला था। उसे श्रीराधाकी प्रधान सखी होनेका सौभाग्य प्राप्त था। वह धन्य, मान्य एवं मनोहर अङ्गवाली थी ॥२॥ वह गोपी परम सुंदरी थी। वह सौन्दर्यमें लक्ष्मीके समान थी। उसमें पातिव्रतके सभी शुभ लक्षण संनिहित थे। वह साध्वी गोपी विद्या, गुण और उत्तम रूपसे सदा सुशोभित रहती थी ॥३॥ कलावती, कोमलाङ्गी, कान्ता, कमललोचनी, सुश्रोणी, सुस्तनी, श्यामा और न्यग्रोधमण्डिता—ये सभी विशेषण उसके लिए उपयुक्त थे ॥४॥ उसका प्रसन्न मुख सदा मुसकानसे भरा रहता था। रत्नमय अलंकार शोभा बढ़ाते थे। उसके शरीरकी कान्ति ऐसी थी, मानो स्वच्छ चम्पा हो। बिम्बाफलके समान लाल-लाल उसके ओष्ठ तथा मृगके सदृश उसके मनोहर नेत्र थे ॥५॥ हंसके समान गंभीर गतिसे चलनेवाली उस कामिनी सुशीलाको कामशास्त्रका सम्यक् ज्ञान था। भगवान

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ उक्तं स्वाहास्वधाख्यानं प्रशस्तं मधुरं परम् ॥ वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानो निशामय ॥ १ ॥ गोपी सुशीला गोलोके पुराऽऽसीत्प्रेयसी हरेः ॥ राधाप्रधाना सध्रीची धन्या मान्या मनोहरा ॥२॥ अतीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती ॥ विद्यावती गुणवती चातिरूपवती सती ॥ ३ ॥ कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना ॥ सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डिता ॥ ४ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालङ्कारभूषिता ॥ श्वेतचम्पकवर्णाभा बिम्बोष्ठी मृगलोचना ॥ ५ ॥ कामशास्त्रेषु निपुणा कामिनी हंसगामिनी ॥ भावानुरक्ता भावज्ञा कृष्णस्य प्रियभामिनी ॥ ६ ॥ रसज्ञा रसिका रासे रासेशस्य रसोत्सुका ॥ उवासादक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा ॥ ७ ॥ संबभूवानम्रमुखो भयेन मधुसूदनः ॥ दृष्ट्वा राधां च पुरतो गोपीनां प्रवरोत्तमाम् ॥८॥ कामिनीं रक्तवदनां रत्नपंकजलोचनाम् ॥ कोपेन कम्पिताङ्गीं च कोपेन स्फुरिताधराम् ॥ ९ ॥ वेगेन तां तु गच्छन्तीं विज्ञाय तदनन्तरम् ॥ विरोधभीतो भगवानन्तर्धानं चकार सः ॥ १० ॥ पलायंतं च कान्तं च शांतं सत्त्वं सुविग्रहम् ॥ विलोक्य कंपिता गोप्यः सुशीलाद्यास्ततो भिया ॥११॥ विलोक्य लंपटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः ॥ पुटांजलियुता भीता भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥ १२ ॥ रक्ष रक्षेत्युक्तवंत्यो देवीमिति पुनः पुनः ॥ ययुर्भयेन शरणं तस्याश्चरणपंकजे ॥ १३ ॥ त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय

कृष्ण उससे प्रेम करते थे और वह भी उनके भावके अनुसार ही व्यवहार करती थी ॥६॥ वह रसज्ञा, रासक्रीड़ाकी रसिका और रासेश्वर भगवान कृष्णके प्रेमकी पुजारिन थी। एक दिन वह सुशीला राधाके सामने ही भगवानकी बायीं जाँघपर बैठ गयी ॥ ७ ॥ तब श्रीकृष्णने रासेश्वरी राधाके मुखकी ओर निहारकर भयके मारे अपना मुख नीचे कर लिया ॥ ८ ॥ उस समय कामिनी राधाका मुख और उनकी आँखें लाल कमलके समान लाल हो गयीं। कोपके कारण उनके अंग काँप रहे थे और होंठ फड़फड़ा रहे थे ॥९॥ बड़े वेगसे उन्हें जाते देखकर भगवान् कृष्ण अन्तर्धान हो गये। क्योंकि उन्हें राधाके विरोध (कलह) का बड़ा भय था ॥ १० ॥ जब सुशीला आदि गोपियोंने देखा कि शान्तरस, सत्त्वगुण और रूपके निधान कृष्ण गायब हो गये, तब वे गोपियाँ मारे डरके काँपने लगीं ॥११॥ वे असंख्य गोपियाँ श्रीकृष्णको अन्तर्धान तथा राधारानीको कुपित देखकर बहुत डरीं और भक्तिपूर्वक मस्तक झुका तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हाथ जोड़कर कहने लगीं- 'महारानी ! हमारी रक्षा करिए' ऐसा कहकर वे उनके चरणोंपर लोट गयीं ॥१२॥१३॥ हे नारद! गोलोकके सुदामा आदि एक करोड़ तीन लाख गोप भी भयभीत होकर राधारानीके चरणोंकी शरणमें चले गये ॥ १४ ॥ परमेश्वरी राधाने जब भगवान्‌को अन्तर्धान तथा सुशीलाको भागते देखा, तब उन्होंने शाप देते हुए कहा कि 'आजसे यदि सुशीला गोलोकमें आयेगी तो भस्म हो जायगी' ॥ १५ ॥ १६ ॥ ऐसा कहकर देवदेवेश्वरी एवं रासेश्वरी राधा उसी आवेशमें रासमण्डलके मध्य रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको जोर-जोरसे पुकारने लगीं ॥१७॥ परन्तु भगवान्‌ने उन्हें दर्शन नहीं दिया । तब तो श्रीराधा अत्यन्त विरह-कातर हो उठीं । उन साध्वी देवीको विरहका एक-एक क्षण करोड़ों युगोंके समान प्रतीत होने लगा ॥ १८ ॥ उन्होंने करुण प्रार्थना की–हे श्रीकृष्ण ! हे श्यामसुंदर ! आप मेरे प्राणनाथ हैं । मैं आपके प्रति प्राणोंसे भी बढ़कर प्रेम करती हूँ । आप शीघ्र यहाँ पधारनेकी कृपा कीजिये । हे भगवन् ! आप मेरे प्राणोंके अधिष्ठाता हैं । आपके बिना अब ये प्राण नहीं रह सकते ॥ १९ ॥ स्त्री पतिके सौभाग्यपर गर्व करती है । पतिके साथ प्रतिदिन उसका सुख बढ़ता रहता

एव च ॥ ययुर्भयेन शरणं तत्पादाब्जे च नारद॥१४॥ पलायन्तं च कान्तं च विज्ञाय परमेश्वरी ॥ पलायन्तीं सहचरीं सुशीलां च शशाप सा ॥१५॥ अद्यप्रभृति गोलोकं सा चेदायाति गोपिका ॥ सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवेश्वरी रुषा ॥ रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमाजुहाव ह ॥१७॥ नालोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा ॥ युगकोटिसमं मेने क्षणभेदेन सुव्रता ॥१८॥ हे कृष्ण प्राणनाथे-शागच्छ प्राणाधिकप्रिय ॥ प्राणाधिष्ठातृदेवेश प्राणा यांति त्वया विना ॥ १९ ॥ स्त्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्धते च दिने दिने ॥ सुखं च विपुलं यस्मात्तं सेवेद्धर्मतः सदा ॥ २० ॥ पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदा गतिः ॥ परं संपत्स्वरूपश्च मूर्तिमान्भोगदः सदा ॥ २१ ॥ धर्मदः सुखदः शश्वत्प्रीतिदः शांतिदः सदा॥ सम्मानैर्दीप्यमानश्च मानदो मानखण्डनः ॥२२॥ सारात्सारतरः स्वामी बन्धूनां बन्धुवर्धनः ॥ न च भर्तुः समो बन्धुर्बन्धोर्बंधुषु दृश्यते ॥ २३ ॥ भरणादेव भर्ता च पालनात्पतिरुच्यते ॥ शरीरेशाच्च स स्वामी कामदः कांत उच्यते ॥ २४ ॥ बन्धुश्च सुखवृद्धया च प्रीतिदानात्प्रियः स्मृतः ॥ ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात्प्राणनायकः ॥ २५ ॥ रतिदानाच्च रमणः प्रियो नास्ति प्रियात्परः ॥ पुत्रस्तु स्वामिनः

है । अतएव उसे धर्मपूर्वक पतिकी सेवामें ही सदा तत्पर रहना चाहिये ॥२०॥ कुलीन स्त्रियोंके लिए बन्धु, अधिदेवता, आश्रय, परम सम्पत्तिस्वरूप तथा सदा स्नेहदान करनेके लिए प्रस्तुत मूर्तिमान् विग्रह एकमात्र पति ही है ॥२१॥ पतिव्रताएँ स्वामीको सम्मान प्रदान करके उससे धर्म, शाश्वत सुख, शांति एवं सम्मान प्राप्त करती हैं । स्वामी ही स्त्रीके लिए सर्वस्व है । उसीकी कृपासे बान्धव बढ़ते हैं । वह केवल पति ही नहीं है, किन्तु समय पड़नेपर वह उसका परम बन्धु भी है ॥ २२ ॥ २३ ॥ भरण करनेसे उसे 'भर्ता', पालन करनेसे 'पति', शरीरका शासक होनेसे 'स्वामी' तथा कामनाकी पूर्ति करनेसे 'कान्त' कहते हैं ॥ २४ ॥ वह सुखकी वृद्धि करनेसे 'बन्धु', प्रीति प्रदान करनेसे 'प्रिय', ऐश्वर्यका दाता होनेसे 'ईश', प्राणका स्वामी होनेसे 'प्राणनाथ' तथा रतिसुख प्रदान करनेसे 'रमण' कहलाता है । अतः कुलीन स्त्रियोंके लिए पतिसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं होता । पतिके शुक्र (वीर्य)से पुत्रकी उत्पत्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होती है, इससे वह प्रिय माना जाता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ पतिव्रताएँ पतिको सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रेमपात्र समझती हैं। उनके मनसे यह धारणा कभी दूर नहीं होती। जो असत् कुलमें उत्पन्न है, वह स्त्री पतिके इस मार्मिक रहस्यको समझनेमें असमर्थ रहती है ॥२७॥ सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान, अखिल यज्ञोंमें दक्षिणादान, पृथ्वीकी प्रदक्षिणा, अनेक प्रकारके तप, सभी व्रत, महादान, पवित्र उपवास तथा गुरु, देवता एवं ब्राह्मणोंकी सेवा—इन श्रेष्ठ कार्योंकी बड़ी प्रशंसा सुनी जाती है, किंतु ये सब पुण्य स्वामीके चरण-सेवनके पुण्यकी सोलहवीं कलाकी भी तुलना नहीं कर सकते ॥२८-३०॥ गुरु, ब्राह्मण और देवता—ये सभी एकसे-एक श्रेष्ठ हैं, किन्तु इन सबकी अपेक्षा स्त्रीके लिए पति ही परम गुरु है। जिस प्रकार पुरुषोंके लिए विद्या प्रदान करनेवाले गुरु श्रेष्ठ माने जाते हैं, वैसे ही कुलीन स्त्रियोंके लिए पति श्रेष्ठ है ॥३१॥ हे भगवन्! आप असंख्य गोपों, गोपियों, ब्रह्माण्डों तथा वहाँके निवासी प्राणियोंके एकमात्र स्वामी हैं। विश्वसे लेकर अखिल ब्रह्माण्ड-गोलक तकका साम्राज्य जो मुझे प्राप्त है, वह केवल आपकी कृपाका ही प्रसाद है। स्त्री-स्वभाव कभी मिटता नहीं। अतः मैं आपके रहस्यको न समझकर कभी-कभी इस

शुक्राज्जायते तेन स प्रियः ॥ २६ ॥ शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानां प्रियः सदा ॥ असत्कुलप्रसूता या कान्तं विज्ञातुमक्षमा ॥ २७ ॥ स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा ॥ प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणि च तपांसि च ॥२८॥ सर्वाण्येव व्रतादीनि महादानानि यानि च ॥ उपोषणानि पुण्यानि यानि यानि श्रुतानि च ॥ २९ ॥ गुरुसेवा विप्रसेवा वेदसेवादिकं च यत् ॥ स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ ३० ॥ गुरुविप्रेन्द्रदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः ॥ विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथा प्रियः ॥ ३१ ॥ गोपीनां लक्षकोटीनां गोपानां च तथैव च ॥ ब्रह्मांडानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैव च ॥३२॥ विश्वादिगोलकांतानामीश्वरी यत्प्रसादतः ॥ अहं न जाने तं कान्तं स्त्रीस्वभावो दुरत्ययः ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वा राधिका कृष्णं तत्र दध्यौ स्वभक्तितः ॥ रुरोद प्रेम्णा सा राधा नाथनाथेति चाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ दर्शनं देहि रमण दीना विरहदुःखिता ॥ अथ सा दक्षिणा देवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने ॥ ३५ ॥ सुचिरं च तपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ ॥ अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम् ॥ ३६ ॥ नालभंस्ते फलं तेषां विषण्णाः प्रययुर्विधिम् ॥ विधिर्निवेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिम् ॥ ३७ ॥ दध्यौ च सुचिरं भक्त्या प्रत्यादेशमवाप सः ॥ नारायणश्च

प्रकार दुराव कर बैठती हूँ। आप मुझे क्षमा करें ॥३२॥३३॥ इस प्रकार कहकर श्रीराधा भक्तिपूर्वक भगवान श्रीकृष्णका ध्यान करने लगीं। प्रेमके कारण वे रो रही थीं और हे नाथ! हे नाथ! की करुणध्वनि उनके मुखसे निकल रही थी। वियोगके कठिन दुःखका अनुभव करती हुई वे दैन्यभावसे कह रही थीं—हे प्रभो! अब तुरन्त दर्शन देनेकी कृपा कीजिये ॥३४॥ तत्काल श्रीकृष्णने प्रकट होकर राधाके विरहतापको शान्त किया। हे मुने! उसी समयका प्रसंग है—श्रीराधाकी सहचरी सुशीला नामकी जो गोपी थी, जिसे राधाने गोलोकसे च्युत होनेके लिए कह दिया था। वहाँसे चलकर वह देवी दक्षिणाके नामसे प्रकट हुई ॥३५॥ इनके प्रकट होनेका प्रसंग इस प्रकार है—दीर्घकालतक तपस्या करके भगवती लक्ष्मीके विग्रहमें उसने स्थान प्राप्त कर लिया। तभी अत्यन्त कठिन यज्ञ करनेपर भी देवताओंके सामने फल नहीं उपस्थित हुआ तो वे उदास होकर ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने उनकी प्रार्थना सुनकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगत्प्रभु भगवान हरिका ध्यान किया । बहुत समयतक भक्तिपूर्वक ध्यान करनेके पश्चात् उन्हें आदेश प्राप्त हुआ । स्वयं भगवान नारायणने महालक्ष्मीके दिव्य विग्रहसे मर्त्यलक्ष्मीको प्रकट किया और 'दक्षिणा' नाम रखकर ब्रह्माजीको सौंप दिया । ब्रह्माजीने यज्ञसम्बन्धी कार्योंकी सम्पन्नताके लिए देवी दक्षिणाके वास्ते यज्ञपुरुषके पास रहनेकी व्यवस्था कर दी ॥३८–३९॥ उस समय यज्ञपुरुषका मन आनन्दसे भर गया । उन्होंने विधिवत् भगवती दक्षिणाकी पूजा और स्तुति की । उन देवीका वर्ण तपाये हुए सुवर्णके समान स्वच्छ था । प्रभा ऐसी थी, मानो करोड़ों चंद्रमा हों । ४०॥ उनका अत्यन्त कमनीय विग्रह मनको मुग्ध कर देता था । कमलके समान मुखवाली वे कोमलाङ्गी देवी कमल जैसे विशाल नेत्रोंसे शोभा पा रही थीं ॥ ४१ ॥ भगवती लक्ष्मीके लिए प्रकट उन आदरणीया देवीका कमल ही आसन था । शुद्ध चिन्मय वस्त्र उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे । उन साध्वीका होंठ सुपक्व बिम्बाफलके सदृश था । सुंदर दाँत थे ॥४२॥ उन्होंने अपने केशकलापमें मालतीके पुष्पोंकी माला धारण कर रक्खी थी । उनके प्रसन्न मुखपर मुसकान छायी थी । वे रत्ननिर्मित भूषणोंसे विभूषित थीं ॥४३॥

भगवान्महालक्ष्म्याश्च देहतः ॥ ३८ ॥ विनिष्कृष्य मर्त्यलक्ष्मीं ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ ॥ ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूरणार्थं च कर्मणाम् ॥ ३९ ॥ यज्ञः सम्पूज्य विधिवत्तां तुष्टाव तदा मुदा ॥ तप्तकांचनवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम् ॥ ४० ॥ अतीव कमनीयां च सुन्दरीं सुमनोहराम् ॥ कमलास्यां कोमलांगीं कमलायतलोचनाम् ॥ ४१ ॥ कमलासनपूज्यां च कमलांगसमुद्भवाम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां बिंबोष्ठीं सुदतीं सतीम् ॥ ४२ ॥ बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम् ॥ ईषाद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ४३ ॥ सुवेषाढ्यां च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम् ॥ कस्तूरी-बिंदुभिः सार्धं सुगंधिचन्दनेन्दुभिः ॥ ४४ ॥ सिंदूरबिंदुनाल्पेनाप्यलकाधःस्थलोज्ज्वलाम् ॥ सुप्रशस्तनितंबाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम् ॥ ४५ ॥ कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीडिताम् ॥ तां दृष्ट्वा रमणीयां च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह ॥ ४६ ॥ पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितपूर्वकम् ॥ दिव्यं वर्षशतं चैव तां गृहीत्वा तु निर्जने ॥ ४७ ॥ यज्ञो रेमे मुदा युक्तो रामेशो रमया सह ॥ गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवर्षकम् ॥ ४८ ॥ ततः सुषाव पुत्रं च फलं वै सर्वकर्मणाम् ॥ परिपूर्णे कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः ॥ ४९ ॥ यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च ॥ कर्मिणां

उनका सुंदर वेष था । उन्हें देखकर मुनियोंका भी मन मुग्ध हो जाता था । कस्तूरीमिश्रित चंदनसे लगा बिंदीके रूपमें अर्द्धचंद्राकार तिलक उनके ललाटपर शोभा पा रहा था । केशोंके समीप सिंदूरकी एक छोटी बिंदी थी । उनके रहनेका स्थान जगमगा रहा था । सुन्दर नितम्ब, बृहत् श्रोणी और विशाल वक्षःस्थलसे वे शोभा पा रही थीं ॥४४॥४५॥ बादमें ब्रह्माजीके कथनानुसार यज्ञपुरुषने उन देवीको अपनी सहधर्मिणी बना लिया । उनका शरीर कामदेवका आधार था और वे कामदेवके बाणसे व्यथित थीं । उन रमणीय रमणीको देखकर यज्ञपुरुष मूर्च्छित हो गये ॥ ४६ ॥ उन्हें लेकर वे निर्जन स्थानपर चले गये और दिव्य सौ वर्षतक उनके साथ सानन्द रमण करते रहे । कुछ समय बाद देवी दक्षिणा गर्भवती हो गयीं । बारह दिव्य वर्षोंके बाद उन्होंने सम्पूर्ण कर्मोंके फलस्वरूप श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया । कर्म समाप्त होनेपर फल प्रदान करना उस पुत्रका सहज गुण हुआ ॥ ४७–४९ ॥ अतएव वेदज्ञ पुरुष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहते हैं कि भगवान यज्ञ देवी दक्षिणा तथा अपने पुत्र 'फल'से सम्पन्न होनेपर ही कर्मोंका फल प्रदान करते हैं ॥ ५० ॥ हे नारद ! इस प्रकार यज्ञपुरुष दक्षिणा तथा फलदाता पुत्रको प्राप्त करके सबको कर्मोंका फल प्रदान करने लगे ॥५१॥ इससे देवताओंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे सफलमनोरथ होकर अपने-अपने स्थानको चले गये । मैंने धर्मदेवके मुखसे ऐसा सुना है ॥५२॥ अतएव हे मुने ! कर्ताका चाहिये कि कर्म करनेके पश्चात् तुरन्त दक्षिणा दे दे । तभी सद्यःफल प्राप्त होता है—यह वेदोंकी स्पष्ट वाणी है ॥५३॥ यदि दैववश अथवा अज्ञानसे यज्ञकर्त्ता कर्म सम्पन्न हो जानेपर तुरन्त ब्राह्मणोंको दक्षिणा नहीं दे देता ॥ ५४ ॥ तब एक मुहूर्त बीतनेपर दक्षिणाकी संख्या दूनी, रातभर बाद तिगुनी, तीन रात बाद सौगुनी, सप्ताह भर बाद तीन सौगुनी और महीने भर बाद ब्राह्मणोंकी देय दक्षिणा लाखगुनी हो जाती है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ एक साल बीत जानेपर वह तीन करोड़गुनी हो जाती है और

फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः ॥ ५० ॥ यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रं च फलदायकम् ॥ फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मिणां चैव नारद ॥ ५१ ॥ तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः ॥ स्वस्थाने ते ययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ॥ ५२ ॥ कृत्वा कर्म च कर्ता च तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने ॥ ५३ ॥ कर्मी कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणं यदि दक्षिणाम् ॥ न दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥ ५४ ॥ मुहूर्ते समतीते तु द्विगुणा सा भवेद्ध्रुवम् ॥ एकरात्रे व्यतीते तु दक्षिणा त्रिगुणा भवेत् ॥ ५५ ॥ त्रिरात्रे तच्छतगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः ॥ मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते ॥ ५६ ॥ संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत् ॥ कर्म तद्यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत् ॥ ५७ ॥ स च ब्रह्मस्वहारी च न कर्मार्होऽशुचिर्नरः ॥ दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी ॥ ५८ ॥ तद्गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम् ॥ ५९ ॥ एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम् ॥ दत्तं न दीयते दानं गृहीता नैव याचते ॥ ६० ॥ उभौ तौ नरके यातश्छिन्नरज्जौ यथा घटः ॥ नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितश्चापि दक्षिणाम् ॥ ६१ ॥ भवेद्ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥ वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः ॥ ६२ ॥ ततो भवेत्स चांडालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः ॥ पातयेत्पुरुषान्सप्त पूर्वांश्च सप्त जन्मतः

यजमानका सम्पूर्ण कर्म भी निष्फल हो जाता है ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणका स्वत्व अपहरण करनेसे वह अपवित्र मानव किसी कर्मका अधिकारी नहीं रह जाता । उसी पापके फलस्वरूप उस पातकी मानवको रोगी और दरिद्र होना पड़ता है ॥ ५८ ॥ लक्ष्मी अत्यन्त भयंकर शाप देकर उसके घरसे चली जाती हैं । उसके दिये हुए श्राद्ध और तर्पणको पितर नहीं ग्रहण करते ॥५९॥ ऐसे ही, देवता उसकी की हुई पूजा तथा अग्निमें दी हुई आहुति भी स्वीकार नहीं करते । यज्ञ करते समय कर्त्ताने दक्षिणा संकल्प कर दी, किन्तु दी नहीं और प्रतिग्रह लेनेवालेने उसे माँगा भी नहीं, तो ये दोनों व्यक्ति नरकमें इस प्रकार गिरते हैं, जैसे रस्सी टूट जानेपर घड़ा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ हे विप्र ! मैंने इस प्रकारकी ये रहस्यभरी बातें बतला दीं । ब्राह्मणका धन मारनेवाला पापी कुम्भीपाक नरकमें जाता है । वहाँ यमदूतोंकी मार खाता हुआ वह एक लाख वर्ष यातनायें भोगता है ॥ ६२ ॥ उसके बाद वह दरिद्र तथा रोगी चाण्डाल होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। वह अपनी सात पीढ़ी आगे-पीछेके पूर्वजोंको सात जन्मके लिये नरकमें डाल देता है। अब तुम्हें क्या सुननेकी इच्छा है? नारदजीने पूछा—हे मुने! दक्षिणाहीन कर्मके फलको कौन भोगता है? ॥६३॥६४॥ साथ ही यज्ञपुरुषने भगवती दक्षिणाकी किस प्रकार पूजा की थी, यह भी बतलाइए। भगवान् नारायण कहते हैं—हे मुने! दक्षिणाहीन कर्ममें फल ही कैसे लग सकता है? ॥६५॥ क्योंकि फल प्रसव करनेकी योग्यता तो दक्षिणावाले कर्ममें ही होती है। हे मुने! बिना दक्षिणाका कर्म तो राजा बलिके पेटमें चला जाता है॥६६॥ पूर्व समयमें भगवान् वामन बलिके लिये आहाररूपमें इसे अर्पण कर चुके हैं। हे नारद! अश्रोत्रिय और श्रद्धाहीन व्यक्तिके द्वारा श्राद्धमें दी हुई वस्तुको बलि भोजनरूपमें प्राप्त करते हैं॥६७॥ शूद्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणोंके पूजासम्बन्धी द्रव्य, निषिद्ध एवं आचरणहीन ब्राह्मणों द्वारा किया हुआ पूजन तथा गुरुमें भक्ति न रखनेवाले पुरुषका कर्म—ये सब बलिके आहार हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ६८ ॥ हे मुने! भगवती दक्षिणाके ध्यान, स्तोत्र और पूजाकी विधिके क्रम कण्वशाखामें वर्णित हैं। वह सब मैं कहता हूँ, सुनो ॥ ६९ ॥ पूर्व समयमें कर्मफल

॥ ६३ ॥ इत्येवं कथितं विप्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ यत्कर्म दक्षिणाहीनं को भुंक्ते तत्फलं मुने ॥ ६४॥ पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतं वद ॥ नारायण उवाच ॥ कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने ॥ ६५ ॥ सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्तते ॥ अदक्षिणं च यत्कर्म तद्भुङ्क्ते च बलिर्मुने ॥६६॥ बलये तत्प्रदत्तं च वामनेन पुरा मुने ॥ अश्रोत्रियः श्राद्धद्रव्यमश्रद्धादानमेव च ॥६७॥ वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकं च यत् ॥ असद्द्विजैः कृतं यज्ञमशुचेः पूजनं च यत् ॥ ६८ ॥ गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुंक्ते न संशयः॥ दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम् ॥ ६९ ॥ तत्सर्वं कण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय ॥ पुरा संप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षां च दक्षिणाम् ॥ ७० ॥ मुमोहास्याः स्वरूपेण तुष्टाव कामकातरः ॥ यज्ञ उवाच ॥ पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरा वरा ॥ ७१ ॥ राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिया ॥ कार्तिकीपूर्णिमायां तु रासे राधामहोत्सवे ॥ ७२ ॥ आविर्भूता दक्षिणांसाल्लक्ष्म्याश्च तेन दक्षिणा ॥ पुरा त्वं च सुशीलाख्या ख्याता शीलेन शोभने ॥ ७३ ॥ लक्ष्मीदक्षांशभागात्त्वं राधाशापाच्च दक्षिणा ॥ गोलोकात्त्वं परिभ्रष्टा मम भाग्यादुपस्थिता ॥ ७४ ॥ कृपां कुरु महाभागे मामेव स्वामिनं कुरु ॥ कर्मिणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा ॥७५॥ त्वया विना च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥ त्वया विना तथा कर्म कर्मिणां च

प्रदान करनेवाली भगवती दक्षिणा जब यज्ञपुरुषको प्राप्त हुईं, तब वे उनके सुन्दर रूपपर मोहित हो गये। ऐसी स्थितिमें उन्होंने उन देवीकी स्तुति की। यज्ञपुरुषने कहा—हे महाभागे! तुम पूर्व समयमें गोलोककी एक गोपी थीं। गोपियोंमें तुम्हारा प्रमुख स्थान था ॥७०॥७१॥ राधाके समान ही तुम श्रीकृष्णकी प्रिय सखी थीं। भगवान् श्रीकृष्ण तुमसे प्रेम करते थे। एक बार कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर राधा-महोत्सव मनाया जा रहा था ॥ ७२ ॥ कुछ कार्यान्तर उपस्थित हो जानेके कारण तुम भगवती महालक्ष्मीके दक्षिण कंधेसे प्रकट हुई थीं। अतएव तुम्हारा नाम दक्षिणा पड़ गया। हे शोभने! तुम इससे पहले परम शीलवती होनेके कारण 'सुशीला' कहलाती थीं ॥७३॥ तुम जैसी सुयोग्या देवी श्रीराधाके शापसे गोलोकसे च्युत हो और दक्षिणा नामसे सम्पन्न होकर सौभाग्यवश मुझे प्राप्त हुई हो ॥७४॥ हे सुभगे! तुम मुझे अपना स्वामी बनानेकी कृपा करो। तुम्हीं यज्ञशील पुरुषोंके कर्मका फल प्रदान करनेवाली आदरणीया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवी हो ॥७५॥ तुम्हारे विना सम्पूर्ण प्राणियोंके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं । तुम्हारी अनुपस्थितिमें कर्मियोंका कर्म भी शोभा नहीं पाता ॥७६॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा दिक्पाल प्रभृति सभी देवता तुम्हारे न रहनेसे कर्मोंका फल देनेमें असमर्थ रहते हैं ॥७७॥ ब्रह्मा स्वयं कर्मरूप हैं । शंकरको फलरूप बतलाया गया है । मैं विष्णु स्वयं यज्ञरूपसे प्रकट हुआ हूँ । इन सबमें साररूपा तुम्हीं हो ॥ ७८ ॥ फल प्रदान करनेवाले परब्रह्म, निर्गुणा भगवती प्रकृति तथा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे ही सहयोगसे शक्तिमान् बने हैं ॥ ७९ ॥ हे क्रान्ते ! तुम्हीं मेरी शक्ति हो । हे वरानने ! तुम जन्म-जन्मान्तरमें भी निरन्तर मेरे समीप रहो और मैं तुम्हारे सम्पूर्ण कार्योंमें सहायता देनेमें सफल बना रहूँ ॥ ८० ॥ यज्ञपुरुषके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर यज्ञकी अधिष्ठात्री देवी भगवती दक्षिणा प्रसन्न होकर उनके सामने उपस्थित हुईं और उन महाभाग यज्ञको उन्होंने अपना स्वामी बना लिया ॥ ८१ ॥ यह भगवती दक्षिणाका स्तोत्र है । जो पुरुष यज्ञके अवसरपर इसका पाठ करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञोंके फल सुलभ हो जाते हैं—इसमें संशय नहीं है ॥ ८२ ॥ जो लोग राजसूय, वाजपेय, गोमेध,

न शोभते ॥ ७६ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च ॥ कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना ॥७७॥ कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः ॥ यज्ञरूपो विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी ॥ ७८ ॥ फलदातृ परं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिः परा ॥ स्वयं कृष्णश्च भगवान्स च शक्तस्त्वया सह ॥७९॥ त्वमेव शक्तिः कांते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि ॥ सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने ॥८०॥ इत्युक्त्वा च पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवता ॥ तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला ॥ ८१ ॥ इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत् ॥ फलं च सर्वयज्ञानां प्राप्नोति नात्र संशयः ॥ ८२ ॥ राजसूये वाजपेये गोमेधनरमेधके ॥ अश्वमेधे लांगले च विष्णुयज्ञे यशस्करे ॥ ८३ ॥ धनदे भूमिदे पूर्ते फलदे गजमेधके ॥ लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे रत्नयज्ञेऽथ ताम्रके ॥ ८४ ॥ शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शक्रयज्ञे च बन्धुके ॥ वृष्टौ वरुणयागे च कुण्डके वैरिमर्दने ॥ ८५ ॥ शुचियज्ञे धर्मयज्ञेऽध्वरे च पापमोचने ॥ ब्रह्माणीकर्मयागे च योनियागे च भद्रके ॥ ८६ ॥ एतेषां च समारंभे इदं स्तोत्रं च यः पठेत् ॥ निर्विघ्नेन च तत्कर्म सर्वं भवति निश्चितम् ॥ ८७ ॥ इदं स्तोत्रं च कथितं ध्यानं पूजाविधिं शृणु ॥ शालग्रामे घटे वापि दक्षिणां पूजयेत्सुधीः ॥ ८८ ॥ लक्ष्मीदक्षांससम्भूतां दक्षिणां कमलाकलाम् ॥ सर्वकर्म सुदक्षां च फलदां सर्वकर्मणाम् ॥ ८९ ॥ विष्णोः शक्तिस्वरूपां च पूजितां वन्दितां शुभाम् ॥ शुद्धिदां शुद्धिरूपां

लांगलयज्ञ, यशस्वी विष्णुयज्ञ, धनदान, भूमिदान, पूर्तकर्म (बावली-कूप आदिका निर्माण), फलदान, गजमेध, लोहयज्ञ, स्वर्णयज्ञ, रत्नयज्ञ, ताम्रयज्ञ, शिवयज्ञ, रुद्रयाग, इन्द्रयाग, बन्धुकयज्ञ, वरुण याग, कंडकयाग, शत्रुनाशनयाग, शुचियज्ञ, धर्मयज्ञ, पापमोचनयज्ञ, ब्रह्माणीकर्मयाग तथा अम्बायज्ञ इन सभी प्रकारके यज्ञोंके आरम्भमें जो पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके सभी यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जाते हैं—यह ध्रुव सत्य है ॥ ८३–८७ ॥ यह स्तोत्र तो मैंने कह दिया, अब ध्यान और पूजाविधि सुनो । विद्वान् पुरुषको चाहिये कि शालग्राम मूर्तिमें अथवा कलशपर आवाहन करके भगवती दक्षिणाकी पूजा करे ॥ ८८ ॥ ध्यान यों करना चाहिए—'भगवती लक्ष्मीके दाहिने कन्धेसे प्रकट होनेके कारण दक्षिणा नामसे विख्यात ये देवी साक्षात् कमलाकी कला हैं । सम्पूर्ण यज्ञ-यागादि कर्मोंमें अखिल कर्मोंका फल प्रदान करना इनका सहज गुण है ॥ ८९ ॥ ये भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं । सबने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनकी बन्दना की है। ऐसी शुभा, शुद्धिदा, शुद्धिरूपा एवं सुशीला नामसे प्रसिद्ध भगवती दक्षिणाकी मैं उपासना करता हूँ ॥ ९० ॥ हे नारद! इसी मन्त्रसे ध्यान करके विद्वान् पुरुष मूलमन्त्रसे इन वरदायिनी देवीकी पूजा करे। पाद्य-अर्घ्य आदि सभी वस्तु इसी वेदोक्त मन्त्रके द्वारा अर्पण करनी चाहिए ॥ ९१ ॥ मन्त्र यह है—'ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा।' सुधीजनोंको चाहिए कि सर्वपूजिता इन भगवती दक्षिणाकी भक्तिपूर्वक उत्तम विधिके साथ अर्चना करें ॥ ९२ ॥ हे ब्रह्मन्! मैंने इस प्रकार भगवत दक्षिणाका उपाख्यान कह दिया। यह उपाख्यान सुख, प्रीति एवं संपूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाला है ॥ ९३ ॥ भूमण्डलपर रहनेवाला भारतवर्षका जो पुरुष देवी दक्षिणाके इस चरित्रका सावधान होकर श्रवण करता है, उसके कोई कर्म अधूरे नहीं रह सकते ॥ ९४ ॥ पुत्रहीन पुरुष गुणवान् पुत्रके पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। जो भार्याहीन हो, उसे परम सुशीला सुन्दरी पत्नी सुलभ हो जाती है ॥ ९५ ॥ साथ ही उसका घर कुलीन पुत्रवधूसे भी संपन्न हो जाता है। पुत्र उत्पन्न करना, विनय, मधुर भाषण, पातिव्रत्य तथा शुद्ध आचरण—ये सभी सद्गुण उस पुत्रवधूमें

च सुशीलां शुभदां भजे ॥९०॥ ध्यात्वाऽनेनैव वरदां मूलेन पूजयेत्सुधीः ॥ दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेनैव नारद ॥९१॥ ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहेति च विचक्षणः ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम् ॥ ९२ ॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्दक्षिणाख्यानमेव च ॥ सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम् ॥ ९३ ॥ इदं च दक्षिणाख्यानं यः शृणोति समाहितः ॥ अङ्गहीनं च तत्कर्म न भवेद्भारते भुवि ॥ ९४ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं निश्चितं च गुणान्वितम् ॥ भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम् ॥९५॥ वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम् ॥ पतिव्रतां च शुद्धां च कुलजां च वधूं वराम् ॥ ९६ ॥ विद्याहीनो लभेद्विद्यां धनहीनो लभेद्धनम् ॥ भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाम् ॥ ९७ ॥ सङ्कटे बन्धुविच्छेदे विपत्तौ बन्धने तथा ॥ मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारद-नारायणसंवादे दक्षिणोपाख्याने पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

॥ नारद उवाच ॥ अनेकानां च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम् ॥ अन्यासां चरितं ब्रह्मन् वद वेदविदां वर ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सर्वासां चरितं विप्र देवेषु च पृथक् पृथक् ॥ पूर्वोक्तानां च देवीनां कासां श्रोतुमिहेच्छसि ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसा

विद्यमान रहते हैं ॥ ९६ ॥ विद्याहीन विद्वान्, दरिद्री धनवान् और भूमिमान् तथा पुत्रहीन व्यक्ति इसके श्रवणके प्रभावसे पुत्रवान् बन जाता है ॥ ९७ ॥ संकट, बन्धु-विच्छेद, विपत्ति तथा बन्धनके अवसरपर एक महीने तक इसका श्रवण करके पुरुष इन सभी विषम परिस्थितियोंसे छूट जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ९८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

(षष्ठी देवीके ध्यान, पूजन, स्तोत्र तथा विषद महिमाका वर्णन) नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैंने बहुतेरी देवियोंके उत्तम आख्यान सुने, अब अन्य देवियोंके चरित्र सुनाइए ॥ १ ॥ नारायणने कहा—हे विप्र! सभी देवियोंके एक साथ, अलग-अलग अथवा पूर्वोक्त देवियोंमेंसे किनका चरित्र आप सुनना चाहते हैं? ॥२॥ नारदजीने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा–हे प्रभो ! भगवती षष्ठी, मङ्गलचण्डी तथा मनसादेवो–ये देवियाँ मूल प्रकृतिकी कला मानी गयी हैं। मैं अब इनके प्राकट्यका प्रसंग तत्त्वपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ भगवान नारायण कहते हैं–हे मुने ! मूलप्रकृतिके छठें अंशसे प्रकट होनेके कारण ये 'षष्ठी' देवी कहलाती हैं। बालकोंकी ये अधिष्ठात्री देवी हैं–इन्हें 'विष्णुमाया' और 'बालदा' भी कहा जाता है। मातृकाओंमें 'देवसेना' नामसे ये प्रसिद्ध हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली इन साध्वी देवीको स्वामिकार्तिकेयकी पत्नी होनेका सौभाग्य प्राप्त है। वे प्राणोंसे भी बढ़कर इनसे प्रेम करते हैं ॥४। ५॥ बालकोंको दीर्घायु बनाना तथा उनका भरण-पोषण एवं रक्षण करना इनका स्वाभाविक गुण है। ये सिद्धयोगिनी देवी अपने योगके प्रभावसे बच्चोंके पास सदा विराजमान रहती हैं ॥६॥ हे ब्रह्मन् ! इनकी पूजा-विधिके साथ ही यह एक उत्तम इतिहास भी सुनो। पुत्र प्रदान करनेवाला यह परम सुखदायी उपाख्यान धर्मदेवके मुखसे मैंने सुना है ॥७॥ प्रियव्रत नामके एक राजा हो चुके हैं। उनके पिताका नाम था–स्वायम्भुव मनु। प्रियव्रत योगिराज होनेके कारण विवाह नहीं करना चाहते थे। तपस्यामें उनकी विशेष रुचि थी ॥८॥ परन्तु

प्रकृतेः कला ॥ उत्पत्तिमासां चरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्तिता ॥ बालकाना-
मधिष्ठात्री विष्णुमाया च बालदा ॥ ४ ॥ मातृकासु च विख्याता देवसेनाभिधा च या ॥ प्राणाधिकप्रिया साध्वी स्कन्दभार्या च सुव्रता ॥ ५ ॥
आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी ॥ सततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धयोगिनी ॥ ६ ॥ तस्याः पूजाविधिं ब्रह्मन्नितिहासमिदं शृणु ॥
यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण सुखदं पुत्रदं परम् ॥ ७ ॥ राजा प्रियव्रतश्चासीत्स्वायम्भुवमनोः सुतः ॥ योगीन्द्रो नोद्वहद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा ॥ ८ ॥
ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव ह ॥ सुचिरं कृतदारश्च न लेभे तनयं मुने ॥९॥ पुत्रेष्टियज्ञं तं चापि कारयामास कश्यपः ॥ मालिन्यैः तस्य
कांतायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ ॥ १० ॥ भुक्त्वा च तं चरुं तस्याः सद्यो गर्भो बभूव ह ॥ दधार तं च सा देवी दैवं द्वादशवत्सरम् ॥ ११ ॥ ततः
सुषाव सा ब्रह्मन्कुमारं कनकप्रभम् ॥ सर्वावयवसम्पन्नं मृतमुत्तारलोचनम् ॥१२॥ तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्यश्च बांधवस्त्रियः ॥ मूर्च्छामवाप तन्माता
पुत्रशोकेन भूयसा ॥ १३ ॥ श्मशानं च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने ॥ रुरोद तत्र कांतारे पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥ १४ ॥ नोत्सृजद्बालकं
राजा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः ॥ ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकात्सुदारुणात् ॥ १५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं च ददर्श सः ॥ शुद्धस्फटिक-

ब्रह्माजीकी आज्ञा तथा सत्प्रयत्नके प्रभावसे उन्होंने विवाह कर लिया। हे मुने ! विवाहके बाद सुदीर्घ कालतक उन्हें कोई सन्तान नहीं हो सकी ॥ ॥ तब महर्षि कश्यपने उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। राजाको प्रेयसी भार्याका नाम मालिनी था। मुनिने उन्हें चरु प्रदान किया ॥१०॥ चरु भक्षण करनेके पश्चात् रानी मालिनी गर्भवती हो गयीं। उस गर्भको वे दिव्य बारह वर्ष अपनी कोखमें रक्खे रहीं ॥११॥ तत्पश्चात् सुवर्णके समान तेजस्वी एक कुमारकी उत्पत्ति हुई। परन्तु संपूर्ण अङ्गोंसे सम्पन्न वह कुमार मृत हुआ था। उसकी आँखें उलट चुकी थीं ॥१२॥ उसे देखकर समस्त नारियाँ तथा बान्धवोंकी स्त्रियाँ रो पड़ीं। मृत पुत्रके असह्य शोकके कारण माताको मूर्च्छा आ गयी ॥१३॥ हे मुने ! राजा प्रियव्रत उस मृत बालकको लेकर श्मशानमें गये और उस एकान्तभूमिमें पुत्रको छातीसे चिपकाकर आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाने लगे ॥१४॥ उस मृतक पुत्रको त्यागे बिना ही राजा प्रियव्रत मरनेको उद्यत हो गये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्योंकि दारुण पुत्रशोकसे उनका ज्ञान लुप्त हो चुका था ॥१५॥ इतनेमें उन्हें वहाँ एक दिव्य विमान दिखायी दिया । शुद्ध स्फटिक मणिके समान चमकनेवाला वह विमान बहुमूल्य रत्नोंसे बना था ॥१६॥ तेजसे जगमगाते हुए उस विमानकी रेशमी वस्त्रोंसे अनुपम शोभा हो रही थी । अनेक प्रकारके अद्भुत चित्रोंसे वह विभूषित था । पुष्पोंकी मालासे वह सुसज्जित था । उसीपर बैठी हुई मनको मुग्ध करनेवाली एक परम सुन्दरी देवीको राजा प्रियव्रतने देखा । श्वेत चम्पापुष्पके समान उनका उज्ज्वल वर्ण था । सदा सुस्थिर तारुण्यसे शोभा पानेवाली वे देवी मुसकरा रही थीं ॥१७॥१८॥ उनके मुखपर प्रसन्नता छायी हुई थी । रत्नमय भूषण उनकी छवि बढ़ाए हुए थे । योगशास्त्रमें पारंगत वे देवी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए आतुर थीं । ऐसा जान पड़ता था कि वे मानो मूर्तिमती कृपा ही हों ॥१९॥ उन्हें सामने विराजमान देखकर राजाने बालकको भूमिपर रख दिया और बड़े आदरके साथ उनकी पूजा और स्तुति की ॥२०॥ हे नारद ! उस समय स्कन्दकी प्रिया देवी षष्ठी अपने तेजसे देदीप्यमान थीं । उनका शान्त विग्रह ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान चमचमा रहा था ।

संकाशं मणिराजविनिर्मितम् ॥ १६ ॥ तेजसा ज्वलितं शश्वच्छोभितं क्षौमवाससा ॥ नानाचित्रविचित्राढ्यं पुष्पमालाविराजितम् ॥ १७ ॥ ददर्श तत्र देवीं च कमनीयां मनोहराम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ १८ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकातराम् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरात् ॥ चकार पूजनं तस्या विहाय बालकं भुवि ॥ २० ॥ पप्रच्छ राजा तां तुष्टां ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ॥ तेजसा ज्वलितां शांतां कान्तां स्कन्दस्य नारद ॥२१॥ राजोवाच॥ का त्व सुशोभने कान्ते कस्य कान्ताऽसि सुव्रते ॥ कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम् ॥२२॥ नृपेंद्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मंगलचंडिका ॥ उवाच देवसेना सा देवानां रणकारिणी ॥२३॥ देवानां दैत्यग्रस्तानां पुरा सेना बभूव सा ॥ जयं ददौ सा तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा ॥२४॥ श्रीदेवसेनोवाच॥ ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाऽहमीश्वरी ॥ सृष्ट्वा मां मनसा धाता ददौ स्कन्दाय भूमिप ॥२५॥ मातृकासु च विख्याता स्कन्दभार्या च सुव्रता ॥ विश्वे षष्ठीति विख्याता षष्ठान्शा प्रकृतेः परा ॥ २६ ॥ अपुत्राय पुत्रदाऽहं प्रियादात्री प्रियाय च ॥ धनदाऽहं दरिद्रेभ्यः कर्मिभ्यश्च स्वकर्मदा ॥ २७ ॥ सुखं दुःखं भयं शोको हर्षो मङ्गलमेव च ॥ सम्पत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा ॥ २८ ॥ कर्मणा बहुपुत्रश्च वंशहीनः स्वकर्मणा ॥ कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिर-

उन्हें प्रसन्न देखकर राजा प्रियव्रतने पूछा ॥२१॥ राजा प्रियव्रत बोले—हे सुशोभने ! हे कान्ते ! हे सुव्रते ! हे वरारोहे ! तुम कौन हो ? तुम्हारे पतिदेव कौन हैं और तुम किसकी कन्या हो ? तुम स्त्रियोंमें धन्यवाद एवं आदरकी पात्र हो ॥ २२ ॥ हे नारद ! जगत्‌को मङ्गल प्रदान करनेमें प्रवीण तथा देवताओंको रणमें सहायता पहुँचानेवाली वे भगवती 'देवसेना' थीं । पूर्व समयमें देवता दैत्योंसे परास्त हो चुके थे । इन देवीने स्वयं देवसेना बनकर देवताओंकी ओरसे युद्ध किया था । इनकी कृपासे देवता विजयी हो गये थे । अतएव इनका नाम 'देवसेना' पड़ गया । महाराज प्रियव्रतकी बात सुनकर देवी उनसे कहने लगीं ॥२३॥२४॥ भगवती देवसेनाने कहा—राजन् ! मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूँ । जगत्पर शासन करनेवाली मुझ देवीका नाम 'देवसेना' है । विधाताने मुझे उत्पन्न करके स्वामिकार्तिकेयको सौंप दिया है ॥२५॥ मैं सम्पूर्ण मातृकाओंमें प्रसिद्ध हूँ । स्कन्दकी पतिव्रता भार्या होनेका गौरव मुझे प्राप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है । भगवती मूलप्रकृतिके छठें अंशसे प्रकट होनेके कारण विश्वमें 'षष्ठी' देवी नामसे मेरी प्रसिद्धि है ॥२६॥ मेरे प्रसादसे पुत्रहीन व्यक्ति सुयोग्य पुत्र, प्रियाहीन जन प्रियपत्नी, दरिद्री धन तथा कर्मशील पुरुष कर्मोंके उत्तम फल प्राप्त कर लेते है ॥२७॥ हे राजन् ! सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मङ्गल, सम्पत्ति और विपत्ति—ये सब कर्मके अनुसार होते हैं ॥ २८ ॥ अपने ही कर्मके प्रभावसे पुरुष अनेक पुत्रोंका पिता होता है और कुछ लोग पुत्रहीन होते हैं । किसीको मरा हुआ पुत्र होता है और किसीको दीर्घजीवी–यह सब कर्मका ही फल है ॥ २९ ॥ गुणी, अंगहीन, अनेक पत्नियोंका स्वामो, भार्यारहित, रूपवान्, रोगी और धर्मी होनेमें मुख्य कारण अपना कर्म ही है ॥ ३० ॥ कर्मके अनुसार ही व्याधि होती है और पुरुष आरोग्यवान् भी होता है ॥३१॥ अतएव हे राजन् ! कर्म सबसे बलवान् है–यह बात श्रुतिमें कही गयी है । हे मुने ! इस प्रकार कहकर देवी षष्ठीने उस बालकको उठा लिया और अपने महान् ज्ञानके प्रभावसे खेल-खेलमें ही उसे पुनः जीवित कर दिया । अब राजाने देखा तो सुवर्णके समान प्रभासम्पन्न वह बालक हँस रहा था ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ महाराज प्रियव्रत उस बालकको ओर देख रहे थे

जीवनः ॥ २९ ॥ कर्मणा गुणवांश्चैव कर्मणा चाङ्गहीनकः ॥ कर्मणा बहुभार्यश्च भार्याहीनश्च कर्मणा ॥ ३० ॥ कर्मणा रूपवान्धर्मी रोगी शश्वत्स्व-कर्मणा ॥ कर्मणा च भवेद्व्याधिः कर्मणाऽऽरोग्यमेव च ॥ ३१ ॥ तस्मात्कर्मपरं राजन्सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम् ॥ इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने ॥ ३२ ॥ महाज्ञानेन सा देवी जीवयामास लीलया ॥ राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम् ॥ ३३ ॥ देवसेना च पश्यन्तं नृपमा-पृच्छ्य सा तदा ॥ गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता ॥३४॥ पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥ नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह ॥ ३५ ॥ उवाच तं नृपं ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्मनिर्मितम् ॥ देव्युवाच ॥ त्रिषु लोकेषु त्वं राजा स्वायम्भुवमनोः सुतः ॥ ३६ ॥ मम पूजां च सर्वत्र कारयित्वा स्वयं कुरु ॥ तदा दास्यामि पुत्रं ते कुलपद्मं मनोहरम् ॥ ३७ ॥ सुव्रतं नाम विख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम् ॥ जातिस्मरं च योगीन्द्रं नारायणकलात्मकम् ॥ ३८ ॥ शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणां च वन्दितम् ॥ मत्तमातङ्गलक्षाणां धृतवन्तं बलं शुभम् ॥ ३९ ॥ धनिनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च ॥ योगिनां ज्ञानिनां चैव सिद्धिरूपं तपस्विनाम् ॥ ४० ॥ यशस्विनं च लोकेषु दातारं सर्वसम्पदाम् ॥ इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ ॥ ४१ ॥ राजा चकार स्वीकारं पूजार्थं च प्रियव्रतः ॥ जगाम देवी स्वर्गं च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम्

कि देवी देवसेना उनसे पूछ तथा वह बालक लेकर आकाशमें जानेको तैयार हो गयीं । हे ब्रह्मन् ! उन देवीने राजासे कर्मनिर्मित वेदोक्त वचन कहा । देवी बोलीं–तुम स्वायंभुव मनुके पुत्र हो । त्रिलोकीमें तुम्हारा शासन चलता है । तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराओ और स्वयं भी करो। तब मैं तुम्हें कमलके समान मुखवाला मनोहर पुत्र प्रदान करूँगी ॥३४–३७॥ उसका नाम सुव्रत होगा । उसमें सभी गुण और विवेकशक्ति विद्यमान रहेगी । वह भगवान नारायणका कलावतार तथा प्रधान योगी होगा और उसे पूर्वजन्मकी बातें याद रहेंगी ॥३८॥ क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ वह बालक सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा । सभी उसका सम्मान करेंगे । उत्तम बलसे सम्पन्न होनेके कारण वह ऐसी शोभा पायेगा, जैसे लाखों हाथियोंमें सिंह हो ॥३९॥ वह धनी, गुणी, शुद्ध, विद्वानोंका प्रेमभाजन तथा योगियों, ज्ञानियों एवं तपस्वियोंका सिद्धिस्वरूप होगा ॥४०॥ त्रिलोकोमें उसकी कीर्ति फैल जायगी । वह सबको सब संपत्ति प्रदान कर सकेगा । इस प्रकार राजा प्रियव्रतसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहनेके पश्चात् भगवती देवसेनाने उन्हें पुत्रप्राप्तिका वरदान दे दिया ॥४१॥ राजा प्रियव्रतने भी पूजाकी बातें स्वीकार कर लीं। यों भगवती देवसेनाने उन्हें उत्तम वर देकर स्वर्गके लिए प्रस्थान किया ॥४२॥ राजा भी प्रसन्न मन होकर मन्त्रियोंके साथ आपने घर लौट आये। यहाँ आकर पुत्र वषयक वृत्तान्त सबसे कह सुनाया ॥४३॥ हे नारद! यह प्रिय वचन सुनकर स्त्री और पुरुष सब-के-सब परम संतुष्ट हो गये। राजाने सर्वत्र पुत्रप्राप्तिके उपलक्ष्यमें माङ्गलिक कार्य आरंभ करा दिया ॥४४॥ भगवतीकी पूजा की। ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान दिया। तबसे प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको भगवती षष्ठीका महोत्सव यत्नपूर्वक मनाया जाने लगा। बालकोंके प्रसवगृहमें छठें दिन, इक्कीसवें दिन तथा अन्नप्राशनके शुभ समयपर यत्नपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी। सर्वत्र इसका प्रचार हो गया। स्वयं राजा प्रियव्रत भी पूजा करते थे। हे सुव्रत! अब भगवती देवसेनाका ध्यान, पूजन और स्तोत्र कहता हूँ, सुनो ॥ ४५– ॥ यह प्रसङ्ग कौथुमशाखामें वर्णित है। धर्मदेवके मुखसे सुननेका मुझे अवसर मिला था। हे मुने! शालग्रामकी प्रतिमा, कलश अथवा वटके मूलभागमें या दीवारपर पुत्त-

॥ ४२ ॥ आजगाम सहामात्यः स्वगृहं हृष्टमानसः ॥ आगत्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वा बभूवुः सन्तुष्टा नरा नार्यश्च नारद ॥ मङ्गलं कारयामास सर्वत्र पुत्रहेतुकम् ॥ ४४ ॥ देवीं च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ राजा च प्रतिमासेषु शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम् ॥ ४५ ॥ षष्ठ्या देव्याश्च यत्नेन कारयामास सर्वतः ॥ बालानां सूतिकागारे षष्ठाहे यत्नपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे ॥ बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा ॥ ४७ ॥ सर्वत्र वर्धयामास स्वयमेव चकार ह ॥ ध्यानं पूजाविधानं च स्तोत्रं मत्तो निशामय ॥ ४८ ॥ यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तं च सुव्रत ॥ शालग्रामे घटे वाऽथ वटमूलेऽथवा मुने ॥ ४९ ॥ भित्त्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः ॥ षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां प्रतिष्ठाप्य च सुप्रभाम् ॥ ५० ॥ सुपुत्रदां च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम् ॥ श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ५१ ॥ पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे ॥ इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः ॥ ५२ ॥ पुनर्ध्यात्वा च मूलेन पूजयेत्सुव्रतां सतीम् ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गन्धपुष्पप्रदीपकैः ॥ ५३ ॥ नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन शोभनेन च ॥ ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै च स्वाहेति विधिपूर्वकम् ॥ ५४ ॥ अष्टाक्षरं महामन्त्रं यथाशक्ति जपेन्नरः ॥ ततः स्तुत्वा च प्रणमेद्भक्तियुक्तः समाहितः ॥ ५५ ॥

लिका बनाकर प्रकृतिके छठें अंशसे प्रकट होनेवाली शुद्धस्वरूपिणी इन भगवतीकी इस प्रकार पूजा करनी चाहिये ॥४९॥५०॥ विद्वान् पुरुष इनका इस प्रकार ध्यान करे—'सुन्दर पुत्र' कल्याण तथा दया प्रदान करनेवाली देवी जगत्की माता हैं। श्वेतचम्पकके समान इनका वर्ण है। रत्नमय भूषणोंसे अलंकृत हैं ॥ ५१ ॥ इन पवित्रस्वरूपिणी भगवती देवसेनाकी मैं उपासना करता हूँ।' विद्वान् पुरुष यों ध्यान करनेके पश्चात् भगवतीको पुष्पाञ्जलि समर्पण करे ॥ ५२ ॥ पुनः ध्यान करके मूलमन्त्रसे इन साध्वीदेवीकी पूजा करनेका विधान है। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, दीप, विविध प्रकारके नैवेद्य तथा सुन्दर फल द्वारा भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। उपचार अर्पण करनेके पूर्व 'ॐ ह्रीं क्लीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा' इस मन्त्रका उच्चारण करना आवश्यक है। पूजक पुरुषको चाहिये कि यथाशक्ति इस अष्टाक्षर महामन्त्रका जप भी करे। तदनन्तर मनको शान्त करके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेके पश्चात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवीको प्रणाम करे ॥ ५३–५५ ॥ फल प्रदान करनेवाला यह उत्तम स्तोत्र सामवेदमें वर्णित है। जो पुरुष देवीके उपर्युक्त अष्टाक्षर महामन्त्रका एक लाख जप करता है, उसे अवश्य उत्तम पुत्र प्राप्त होता है। ऐसा ब्रह्माजीने कहा है। हे मुनिवर ! अब सम्पूर्ण शुभ कामनाओंको प्रदान करनेवाला स्तोत्र सुनो ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे नारद ! सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाला यह स्तोत्र वेदोंमें गोप्य है। 'देवीको नमस्कार है, महादेवीको नमस्कार है और शान्तस्वरूपिणी भगवती सिद्धिको नमस्कार है। ५८ ॥ शुभा, देवसेना एवं भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदा, पुत्रदा, धनदा, सुखदा एवं मोक्षदा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूल प्रकृतिके छठें अंशसे प्रकट होनेवाली सिद्धस्वरूपिणी भगवती षष्ठीको नमस्कार है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ माया, सिद्धयोगिनी, सारा, शारदा और परादेवी नामसे शोभा पानेवाली षष्ठी देवीको बार-बार नमस्कार है ॥ ६१ ॥ बालकोंकी अधिष्ठात्री, कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याणस्वरूपिणी एवं कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है ॥ ६२ ॥ अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली तथा सबके लिये सम्पूर्ण

स्तोत्रं च सामवेदोक्तं वरं पुत्रफलप्रदम् ॥ अष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षधा यो जपेत्ततः ॥ ५६ ॥ सुपुत्रं स लभेन्नूनमित्याह कमलोद्भवः ॥ स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वकामशुभावहम् ॥ ५७ ॥ वांछाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदेषु नारद ॥ नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शांत्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥ शुभायै देवसेनायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः ॥ वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः ॥५९॥ सुखदायै मोक्षदायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः ॥ सृष्ट्यै षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः ॥ ६० ॥ मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ सारायै शारदायै च परादेव्यै नमो नमः ॥ ६१ ॥ बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम् ॥ ६२ ॥ प्रत्यक्षायै स्वभक्तानां षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः ॥ पूज्यायै स्कंदकांतायै सर्वेषां सर्वकर्मसु ॥ ६३ ॥ देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा ॥ ६४ ॥ हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ॥ ६५ ॥ मानं देहि जयं देहि द्विषो जहि महेश्वरि ॥ धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ६६ ॥ देहि भूमिं प्रजां देहि विद्यां देहि सुपूजिते ॥ कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ६७ ॥ इति देवीं च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः ॥ यशस्विनं च राजेन्द्रः षष्ठीदेव्याः प्रसादतः ॥ ६८ ॥ षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति तु वत्सरम् ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं वरं

कार्योंमें पूजा प्राप्त करनेकी अधिकारिणी स्वामिकार्तिकेयकी प्राणप्रिया देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है ॥ ६३ ॥ मनुष्य जिनकी सदा वन्दना करते हैं तथा देवताओंकी रक्षामें जो तत्पर रहती हैं, उन शुद्धसत्त्वस्वरूपा देवीको बार-बार नमस्कार है ॥६४॥ हिंसा और क्रोधसे रहित भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हे सुरेश्वरी ! तुम मुझे धन दो, प्रिया पत्नी दो और पुत्र देनेकी कृपा करो ॥६५॥ हे महेश्वरी ! तुम मुझे सम्मान दो, विजय दो और मेरे शत्रुओंका संहार कर डालो। धन और यश प्रदान करनेवाली षष्ठी देवीको बार-बार नमस्कार है ॥ ६६ ॥ हे सुपूजिते ! तुम मुझे भूमि दो, प्रजा दो, विद्या दो तथा कल्याण एवं जय प्रदान करो। तुम षष्ठी देवीको बार-बार नमस्कार है ॥ ६७ ॥ इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् महाराज प्रियव्रतने षष्ठी देवीके प्रभावसे यशस्वी पुत्र प्राप्त कर लिया ॥६८॥ हे ब्रह्मन् ! जो पुरुष भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रको एक वर्षतक श्रवण करता है, वह यदि अपुत्री हो तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीर्घजीवी एवं सुन्दर पुत्र प्राप्त कर लेता है ॥ ६९ ॥ जो एक वर्षतक भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करके यह स्तोत्र सुनता है, उसके संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। अतीव वन्ध्या स्त्री भी इसके प्रसादसे संतान प्रसव करनेकी योग्यता प्राप्त कर लेती है ॥ ७० ॥ वह भगवती देवसेनाकी कृपासे गुणी, विद्वान्, यशस्वी, दीर्घायु एवं श्रेष्ठ पुत्रकी जननी बन जाती है ॥ ७१ ॥ काकवन्ध्या अथवा मृतवत्सा नारी एक वर्षतक इसका श्रवण करनेके फलस्वरूप भगवती षष्ठीके प्रभावसे पुत्रवती हो जाती है ॥ ७२ ॥ यदि बालकको रोग हो जाय तो उसके माता-पिता एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करें तो षष्ठी देवीकी कृपासे उस बालककी व्याधि दूर हो जाती है ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

(भगवती मंगलचंडीकी कथा) भगवान नारायण कहते हैं—हे ब्रह्मपुत्र नारद ! आगमशास्त्रके अनुसार मैंने षष्ठी देवीका चरित्र कहा। अब भगवती मंगलचण्डीका उपाख्यान और उनकी

सुचिरजीविनम् ॥ ६९ ॥ वर्षमेकं च यो भक्त्या संपूज्येदं शृणोति च ॥ सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महावन्ध्या प्रसूयते ॥ ७० ॥ वीरं पुत्रं च गुणिनं विद्यावंतं यशस्विनम् ॥ सुचिरायुष्यवंतं च सूते देवीप्रसादतः ॥७१॥ काकवंध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत् ॥ वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥ ७२ ॥ रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति चेत् ॥ मासेन मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे षष्ठ्युपाख्याने षष्ठचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् ॥ देवी मङ्गलचण्डी च तदाख्यानं निशामय ॥ १ ॥ तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्रेण यच्छ्रुतम् ॥ श्रुतिसंमतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि ॥ २ ॥ दक्षा या वर्तते चण्डी कल्याणेषु च मंगला ॥ मंगलेषु च या दक्षा सा च मंगलचण्डिका ॥ ३ ॥ पूज्या या वर्तते चण्डी मंगलोऽपि महासुत ॥ मंगलाभीष्टदेवी या सा वा मंगलचण्डिका ॥४॥ मंगलो मनुवंशश्च सप्तद्वीपधरापतिः ॥ तस्य पूज्याऽभीष्टदेवी तेन मंगलचंडिका ॥ ५ ॥ मूर्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ कृपारूपाऽतिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता ॥६॥ प्रथमे पूजिता सा च शंकरेण परात्परा ॥ त्रिपुरस्य वधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च ॥ ७ ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मोपदेशेन दुर्गतेन च संकटे ॥ आकाशात्पतिते

पूजाका विधान भी सुनो। इसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना था। वही बता रहा हूँ। श्रुतिसम्मत यह उपाख्यान सभी विद्वानोंको मान्य है ॥१॥२॥ कल्याण एवं प्रिय प्रदानकरनेमें जो सुरक्षा चंडी अर्थात् प्रतापवती हैं तथा मङ्गलोंके मध्यमें जो मङ्गला हैं, वे देवी 'मङ्गलचंडी'के नामसे विख्यात हैं। अथवा भूमिपुत्र मङ्गल भी जिनकी पूजा करते हैं तथा जो उनकी अभीष्ट देवता हैं, इसलिये भी उन देवीकी मङ्गलचंडिका संज्ञा है ॥३॥४॥ मनुवंशमें मंगल नामक एक राजा थे। सप्तद्वीपवती पृथ्वी उनके शासनमें थी। इसीसे वे देवी मंगलचंडीके नामसे विख्यात हुई ॥५॥ जो मूलप्रकृति भगवती जगदीश्वरी 'दुर्गा' कहलाती हैं, उन्हींका यह रूपान्तर-भेद है। ये देवी मूर्ति धारण करके सबके सामने प्रत्यक्ष हुई हैं। स्त्रियोंके लिये ये परम अभीष्टप्रद हैं॥६॥ सर्वप्रथम भगवान् शंकरने इन सर्वश्रेष्ठरूपा देवीकी आराधना की थी। हे ब्रह्मन् ! त्रिपुर नामक भयंकर दैत्यके वधके समयका यह प्रसङ्ग है। भगवान शंकर संकटमें पड़ गये थे। त्रिपुर दैत्यने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोषमें आकर उनके वाहन विमानको आकाशसे नीचे गिरा दिया । तब ब्रह्मा और विष्णुने उन्हें प्रेरणा दी ॥७॥८॥ उन महानुभावोंका उपदेश मानकर शंकरजी भगवती दुर्गाकी स्तुति करने लगे। वे भी मङ्गलचंडी ही थीं। उन्होंने केवल रूप बदल लिया था। स्तुति करनेपर वे देवी भगवान् शंकरके सामने प्रकट हुईं और उनसे बोलीं–'हे प्रभो! तुम्हें कोई भय नहीं करना चाहिए। स्वयं सर्वेश भगवान् श्रीहरि ही वृषभका रूप धारण करके तुम्हारे सामने उपस्थित होंगे॥९॥१०॥ हे वृषध्वज! मैं युद्ध-शक्तिस्वरूपा बनकर तुम्हारा साथ दूँगी। फिर स्वयं मेरी तथा श्रीहरिकी सहायतासे तुम देवताओंको पदच्युत करनेवाले उस दानवको, जिसने तुमसे घोर शत्रुता ठान रखी हैं, मार डालोगे।' हे मुनिवर! इस प्रकार कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। उसी क्षण भगवान् शंकर उन शक्तिरूपिणी देवीसे सम्पन्न हो गये॥११॥१२॥ भगवान् श्रीहरिने उन्हें एक अस्त्र दे दिया था। उसी अस्त्रसे त्रिपुरवधमें उन्हें सफलता प्राप्त हो गयी। दैत्यके मारे जानेपर सम्पूर्ण देवताओं तथा महर्षियोंने भगवान् शंकरका स्तवन किया! उस समय वे सब उनकी भक्तिसे सराबोर होकर अत्यन्त विनम्र हो गये थे। उसी क्षण भगवान् शंकरके मस्तक-

याने दैत्येन पातिते रुषा ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शंकरः ॥ सा च मङ्गलचण्डी या बभूव रूपभेदतः ॥९॥ उवाच पुरतः शम्भोर्भयं नास्तीति ते प्रभो ॥ भगवान्वृषरूपश्च सर्वेशस्ते भविष्यति ॥ १० ॥ शुद्धशक्तिस्वरूपाऽहं भविष्यामि न संशयः ॥ मायात्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज ॥११॥ जहि दैत्यं स्वशत्रुं च सुराणां पदघातकम्॥ इत्युक्त्वांतर्हिता देवी शम्भोः शक्तिर्बभूव सा ॥१२॥ विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान तमुमापतिः ॥ मुनींद्र पतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः ॥१३॥ तुष्टुवुः शंकरं देवं भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥ सद्यः सिरसि शम्भोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥१४॥ ब्रह्मा विष्णुश्च सन्तुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम् ॥ ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च सुस्नातः शंकरस्तथा ॥ १५ ॥ पूजयामास तां भक्त्या देवीं मंगलचण्डिकाम् ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च वस्त्रैश्च विविधैरपि ॥१६॥ पुष्पचन्दननैवेद्यैर्भक्त्या नानाविधैर्मुने ॥ छागैर्मेषैश्च महिषैर्गवयैः पक्षिभिस्तथा ॥ १७ ॥ वस्त्रालंकारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि ॥ मधुभिश्च सुधाभिश्च फलैर्नानाविधैरपि ॥ १८ ॥ संगीतैर्नर्तकैर्वाद्यैरुत्सवैर्नामकीर्तनैः ॥ ध्यात्वा माध्यान्दिनोक्तेन ध्यानेन भक्तिपूर्वकम्॥१९॥ ददौ द्रव्याणि मूलेन मन्त्रेणैव च नारद॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके ॥२०॥ हुं हुं फट् स्वाहा चाप्येकविंशाक्षरो मनुः ॥ पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वकामदः ॥ २१ ॥ दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन्वेदोक्तं

पर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ १३ ॥ १४ ॥ ब्रह्मा और विष्णुने परम सन्तुष्ट होकर उन्हें आशीर्वाद और उपदेश दिया। तब भगवान् शंकर सम्यक् प्रकारसे स्नान करके भक्तिके साथ भगवती मङ्गलचण्डीकी आराधना करने लगे। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, विविध वस्त्र, पुष्प, चन्दन, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, बलि, छाग, मेष, महिष, नीलगाय, पक्षी, वस्त्र, अलंकार, माला, खीर, पिष्टक, मधु, सुधा तथा नाना प्रकारके फलों द्वारा भक्तिपूर्वक उन्होंने देवीकी पूजा की ॥१५–१८॥ नृत्य, गान, वाद्य और नामकीर्तन भी कराया। तत्पश्चात् माध्यन्दिन-शाखामें कहे हुए ध्यान-मन्त्रके द्वारा भगवती मङ्गलचण्डीका भक्तिपूर्वक ध्यान किया। हे नारद! उन्होंने मूलमन्त्रका उच्चारण करके ही भगवतीको सभी द्रव्य समर्पण किये थे। वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके हुं हुं फट् स्वाहा।' इक्कीस अक्षरका यह मन्त्र सुपूजित होनेपर भक्तोंकी सम्पूर्ण कामना प्रदान करनेके लिए कल्प-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वृक्षस्वरूप है ॥१९–२१॥ दस लाख जप करनेपर इस मन्त्रकी सिद्धि होती है । हे ब्रह्मन् ! अब देवीका ध्यान सुनो । यह सर्वसम्मत ध्यान वेदप्रणीत है ॥२२॥ सुस्थिरयौवना भगवती मङ्गलचण्डिका सदा सोलह वर्षकी ही जान पड़ती हैं । इन शुद्धस्वरूपा सुन्दरीके ओष्ठ बिंबाफलके सदृश लाल हैं । सुन्दर दाँत हैं । इनका मुख शरत्कालके कमलकी छविको धारण किये हुए हैं ॥२३॥ श्वेत चंपाके समान इनका वर्ण है । आँखें ऐसी जान पड़ती हैं कि मानो खिले हुए कृष्ण कमल हों । सबका धारण-पोषण करनेवाली ये देवी सबके लिए संपूर्ण वस्तुएँ प्रदान करनेमें परम कुशल हैं ॥२४॥ संसाररूपी घोर समुद्रमें पड़े हुए व्यक्तियोंके लिए ये ज्योतिःस्वरूपा हैं । मैं सदा इनकी उपासना करता हूँ ।' हे मुने ! यह तो भगवती मङ्गलचण्डिकाका ध्यान हुआ । ऐसे ही स्तवन भी है, सुनो ॥ २५ ॥ महादेवजीने कहा—हे जगन्माता भगवती मङ्गलचण्डिके ! तुम संपूर्ण विपत्तियोंका विध्वंस करनेवाली हो एवं हर्ष तथा मङ्गल प्रदान करनेको सदा प्रस्तुत रहती हो ॥२६॥ मेरी रक्षा करो, रक्षा करो । खुले हाथ मङ्गल देनेवाली हे भगवती मङ्गलचण्डिके ! तुम मङ्गलदायिका, शुभा, मङ्गलदक्षा, मङ्गला, मङ्गलार्हा तथा

सर्वसम्मतम् ॥२२॥ देवीं षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ बिम्बोष्ठीं सुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम् ॥२३॥ श्वेतचम्पकवर्णाभां सुनीलोत्पललोचनाम् ॥ जगद्धात्रीं च दात्रीं च सर्वेभ्यः सर्वसम्पदाम् ॥ २४ ॥ संसारसागरे घोरे ज्योतीरूपां सदा भजे ॥ देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने ॥२५॥ महादेव उवाच ॥ रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके ॥ हारिके विपदां राशेर्हर्षमङ्गलकारिके ॥२६॥ हर्षमङ्गलदक्षे च हर्षमङ्गलदायिके ॥ शुभे मङ्गलदक्षे च शुभे मङ्गलचण्डिके ॥२७॥ मङ्गले मङ्गलार्हे च सर्वमङ्गलमङ्गले ॥ सतां मङ्गलदे देवि सर्वेषां मङ्गलालये ॥२८॥ पूज्ये मङ्गलवारे च मङ्गलाभीष्टदेवते ॥ पूज्ये मङ्गलभूपस्य मनुवंशस्य संततम् ॥२९॥ मङ्गलाधिष्ठातृदेवि मङ्गलानां च मङ्गले ॥ संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि ॥३०॥ सारे च मङ्गलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम् ॥ प्रतिमङ्गलवारे च पूज्ये मङ्गसुखप्रदे ॥ ३१ ॥ स्तोत्रेणानेन शम्भुश्च स्तुत्वा मङ्गलचण्डिकाम् ॥ प्रतिमङ्गलवारे च पूजां दत्त्वा गतः शिवः ॥३२॥ प्रथमे पूजिता देवी शिवेन सर्वमङ्गला ॥ द्वितीये पूजिता सा च मङ्गलेन ग्रहेण च ॥३३॥ तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेन नृपेण च ॥ चतुर्थे मङ्गले वारे सुन्दरीभिः प्रपूजिता ॥ ३४ ॥ पञ्चमे मंगलाकांक्षिनरैर्मंगलचण्डिका ॥ पूजिता प्रतिविश्वेषु

सर्वमंगलमङ्गला कहलाती हो । हे देवी ! साधुपुरुषोंको मंगल प्रदान करना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है । तुम सबके लिए मङ्गलका आश्रय हो ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे देवी ! मङ्गलग्रहने तुम्हें अपनी अधिष्ठात्री देवी मानकर मङ्गलवारके दिन तुम्हारी पूजा की है । मनुवंशमें उत्पन्न मंगल राजा निरन्तर तुम्हारी पूजा करते हैं । हे मंगलाधिष्ठात्री देवी ! तुम मङ्गलोंके लिए भी मङ्गल हो । जगत्के समस्त मङ्गल तुमपर आश्रित हैं । तुम सबको मोक्षमय मङ्गल प्रदान करती हो ॥२९॥३०॥ मङ्गलवारके दिन सुपूजित होनेपर मङ्गलमय सुख प्रदान करनेवाली हे देवी ! तुम जगत्की सर्वस्व, मङ्गलाधार तथा सर्वमङ्गलमयी हो ॥३१॥ इस स्तोत्रसे स्तुति करके भगवान् शंकरने मङ्गलचण्डिकाकी उपासना की । प्रत्येक मङ्गलवारके दिन उन्होंने पूजन किया । इसके बाद वे वहाँसे चले गए ॥ ३२ ॥ यों ये भगवती सर्वमङ्गला सर्वप्रथम भगवान् शंकरसे पूजित हुईं । उनका दूसरा उपासक मङ्गलग्रह है ॥ ३३ ॥ तीसरी बार राजा मंगलने तथा चौथी बार मङ्गलवारके दिन कुछ सुन्दरी स्त्रियोंने इन देवीकी पूजा की ॥ ३४ ॥ पाँचवी बार मङ्गलकी कामना रखनेवाले बहुसंख्यक मनुष्योंने मङ्गलचण्डिकाका पूजन किया ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर तो विश्वेश शङ्करसे सुपूजित ये देवी प्रत्येक विश्वमें सदा पूजित होने लगीं। हे मुने! इसके बाद देवता, मुनि, मनु और मानव—सभी सर्वत्र इन परमेश्वरीकी पूजा करने लगे ॥३५॥३६॥ जो पुरुष मनको एकाग्र करके भगवती मङ्गलचंडिकाके इस मङ्गलमय स्तोत्रका श्रवण करता है, उसे मङ्गल प्राप्त होता है। अमङ्गल उसके पास नहीं आ सकता। उसके पुत्र और पौत्रोंकी वृद्धि होती है तथा उसे प्रतिदिन मङ्गल ही मङ्गल दृष्टिगोचर होता है ॥३७॥ भगवान नारायण कहते हैं–हे नारद! देवी षष्ठी और मङ्गलचंडिकाका यथागम उपाख्यान मैं कह चुका। अब मनसा-देवीका चरित्र, जो धर्मके मुखसे मैं सुन चुका हूँ, तुमसे कहता हूँ–सुनो ॥३८॥ ये कश्यपकी मानसी कन्या अथवा मनसे जाननेका विषय होनेके कारण देवी 'मनसा'के नामसे विख्यात हैं ॥ ३९ ॥ मन ही मन परमात्मा ईश्वरका ध्यान करनेके कारण ध्यानयोगमें लीन ये मनसादेवी कहलाती हैं ॥ ४० ॥ आत्मामें रमण करनेवाली सिद्धयोगिनी इन वैष्णवी देवीने तीन

विश्वेशपूजिता सदा ॥ ३५ ॥ ततः सर्वत्र सम्पूज्या बभूव परमेश्वरी ॥ देवैश्च मुनिभिश्चैव मानवैर्मनुभिर्मुने ॥ ३६ ॥ देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ॥ तन्मङ्गलं भवेत्तस्य न भवेत्तदमङ्गलम् ॥ वर्धते पुत्रपौत्रैश्च मङ्गलं च दिने दिने ॥३७॥ श्रीनारायण उवाच ॥ उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् ॥ श्रूयतां मनसाऽऽख्यानं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥३८॥ सा च कन्या भगवती कश्यपस्य च मानसी ॥ तेनैव मनसा देवी मनसा या च दीव्यति ॥ ३९ ॥ मनसा ध्यायते या च परमात्मनमीश्वरम् ॥ तेन सा मनसादेवी तेन योगेन दीव्यति ॥ ४० ॥ आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी ॥ त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ४१ ॥ जरत्कारुशरीरं च दृष्ट्वा यत्क्षीणमीश्वरः ॥ गोपीपतिर्नाम चक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः ॥ ४२ ॥ वांछितं च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः ॥ पूजां च कारयामास चकार च स्वयं प्रभुः ॥ ४३ ॥ स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः ॥ भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा ॥ ४४ ॥ जगद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती ॥ शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवी प्रकीर्तिता ॥ ४५ ॥ विष्णुभक्ताऽतीव शश्वद्वैष्णवी तेन कीर्तिता ॥ नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे पारीक्षितस्य च ॥ ४६ ॥ नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनीति च ॥ विषं संहर्तुमीशा या तेन विषपरी स्मृता ॥ ४७ ॥ सिद्धयोगं हरात्प्राप तेन सा सिद्धयोगिनी ॥

युगोंतक परब्रह्म भगवान श्रीकृष्णकी तपस्या की है ॥४१॥ गोपीपति परम प्रभु उन परमेश्वर कृष्णने इनके वस्त्र और शरीरको जीर्ण देखकर इनका 'जरत्कारु' नाम रख दिया ॥४२॥ साथ ही, उन कृपानिधिने कृपापूर्वक इनकी अन्य भी अभिलाषाएँ पूर्ण कर दीं। उन्होंने ही इनकी पूजाका प्रचार किया और स्वयं भी इनकी पूजा की ॥४३॥ स्वर्गमें सुपूजित होनेके पश्चात् ये ब्रह्मलोकमें गयीं और वहाँसे भूमण्डल और पातालमें पधारीं। मनको मुग्ध करनेवाली ये सुन्दरी देवी 'गौरी' नामसे जगत्‌में निरन्तर पूजा प्राप्त करने लगीं। ये साध्वी देवी 'जगद्गौरी' नामसे भी विख्यात होकर सम्मान प्राप्त करती हैं। भगवान शिवसे शिक्षा प्राप्त करनेके कारण ये देवी 'शैवी' कहलाती हैं ॥४४॥४५॥ भगवान विष्णुकी ये अनन्य उपासिका हैं। अतएव लोग इन्हें 'वैष्णवी' कहते हैं। राजा जनमेजयके यज्ञमें इन्हींके सत्प्रयत्नसे नागोंके प्राणोंकी रक्षा हुई थी। अतः इनका नाम 'नागेश्वरी' और नागभगिनी पड़ गया। विषका हरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेमें समर्थ होनेसे इनका नाम 'विषहरी' भी है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इन्हें भगवान शङ्करसे योगसिद्धि प्राप्त हुई थी। अतः ये 'सिद्धयोगिनी' कहलाने लगीं। शङ्करसे महान् ज्ञान एवं योग आदि प्राप्त करनेके कारण विद्वान पुरुष इन्हें 'मृत-संजीवनी' तथा 'महाज्ञानयुता' कहते हैं। ये परम तपस्विनी देवी मुनिवर आस्तीककी माता हैं। अतः ये देवी जगत्में सुप्रसिद्ध होकर 'आस्तीकमाता' नामसे विख्यात हुई हैं। मुनिवर जरत्कारु बड़े महात्मा पुरुष थे। उन्होंने पत्नीरूपसे इन्हें स्वीकार किया ॥४८–५०॥ जरत्कारु मुनि योगी थे। विश्व उनकी पूजा करता था। अतः उनके यहाँ ये 'जरत्कारुप्रिया' नामसे विख्यात हुई। जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरी और महाज्ञानयुता—इन बारह नामोंसे सारा विश्व इनकी पूजा करता है। जो पुरुष पूजाके समय इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशजोंको सर्पका भय नहीं हो सकता। जिस शयनागारमें नागोंका भय हो, जिस भवनमें बहुतेरे नाग भरे हों ॥ ५१–५४ ॥ नागोंसे युक्त होनेके कारण जो महान् दारुण स्थान बन गया हो तथा जो नागोंसे वेष्टित

महाज्ञानं च योगं च मृतसंजीवनीं पराम् ॥ ४८ ॥ महाज्ञानयुतां तां च प्रवदंति मनीषिणः ॥ आस्तीकस्य मुनींद्रस्य माता साऽपि तपस्विनी ॥ ४९ ॥ आस्तीकमाता विज्ञाता जगत्यां सुप्रतिष्ठिता ॥ प्रिया मुनेर्जरत्कारोर्मुनींद्रस्य महात्मनः ॥ ५० ॥ योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारुप्रिया ततः ॥ जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी ॥ ५१ ॥ वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा ॥ जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरीति च ॥ ५२ ॥ महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता ॥ द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत् ॥ ५३ ॥ तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥ नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे ॥ ५४ ॥ नागशोभे महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥ इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५५ ॥ नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते ॥ दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥५६॥ स्तोत्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः ॥ नागैश्च भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः ॥ ५७ ॥ नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः ॥ अन्ते च विष्णुना सार्धं क्रीडत्येव दिवानिशम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ततः पूजाविधानं च श्रूयतां मुनिपुंगव ॥ ध्यानं च सामवेदोक्तं प्रोक्तं देवीविधानकम् ॥ १ ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां

हो, वहाँ भी पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करके सर्पभयसे मुक्त हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ५५ ॥ जो नित्य इसका पाठ करता है, उसे देखकर नाग भाग जाते हैं। दस लाख पाठ करनेसे यह स्तोत्र मनुष्योंके लिए सिद्ध हो जाता है ॥५६॥ जिसे यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है, वह विष-भक्षण करने तथा नागोंको भूषण बनाकर नागपर सवारी करनेमें भी समर्थ हो सकता है ॥ ५७ ॥ वह नागासन, नागतल्प तथा महान् सिद्ध होकर अन्तमें भगवान विष्णुके साथ अहर्निश क्रीडा करनेका सौभाग्य प्राप्त करता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

(मनसा देवीकी कथा तथा स्तुति) भगवान नारायण बोले—हे मुनिवर! अब मैं मनसा की पूजाका विधान तथा सामवेदोक्त ध्यान बतलाता हूँ, सुनो ॥१॥ भगवती मनसा श्वेत चंपक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुष्पके समान वर्णवाली हैं। इनका विग्रह रत्नमय भूषणोंसे विभूषित है। विशुद्ध चिन्मय वस्त्र इनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इन्होंने सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण कर रखा है। महान् ज्ञानसे संपन्न होनेके कारण प्रसिद्ध ज्ञानियोंमें भी ये प्रमुख मानी जाती हैं। ये सिद्ध पुरुषोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। ऐसी सिद्धि प्रदान करनेवाली सिद्धस्वरूपिणी भगवती मनसाकी मैं उपासना करता हूँ ॥२॥३॥ इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिए। अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा अनुलेपनसे देवीकी पूजा होती है ॥ ४ ॥ सभी उपचार मूलमन्त्रको पढ़कर अर्पण करने चाहिए। हे मुने! यह द्वादशाक्षर मंत्र सिद्ध हो जानेपर भक्त पुरुषोंके मनोरथ पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षका काम करता है ॥५॥ मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा' पाँच लाख जप करनेपर यह मंत्र सिद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥ जिसे मंत्रसिद्धि प्राप्त हो गयी, वह धरातलपर सिद्ध कहलाता है। उसके लिए विष भी अमृतके समान हो जाता है। उस पुरुषसे धन्वन्तरिकी तुलना की जा सकती है ॥७॥ हे ब्रह्मन्! जो पुरुष संक्रान्तिके शुभ अवसरपर स्नान करके यत्नपूर्वक भक्तिभावके साथ इन भगवती मनसाका

रत्नभूषणभूषिताम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥ २ ॥ महज्ज्ञानयुतां तां च प्रवरज्ञानिनां वराम् ॥ सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां
सिद्धिप्रदां भजे ॥ ३ ॥ इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलनैव प्रपूजयेत् ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्धूपैः पुण्यगंधानुलेपनैः ॥४॥ मूलमंत्रैश्च वेदोक्तैर्भक्तानां वांछि-
तप्रदैः ॥ मुने कल्पतरुर्नाम सुसिद्धो द्वादशाक्षरः ॥५॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसा देव्यै स्वाहेति कीर्तितः ॥ पंचलक्षजपेनैव मंत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्
॥ ६ ॥ मंत्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगतीतले ॥ सुधासमं विषं तस्य धन्वंतरिसमो भवेत् ॥ ७ ॥ ब्रह्मन्स्नात्वा तु संक्रांत्यां गूढशालासु यत्नतः ॥
आवाह्य देवीमीशानां पूजयेद्योऽतिभक्तितः ॥ ८ ॥ पंचम्यां मनसा ध्यायन् देव्यै दद्याच्च यो बलिम् ॥ धनवान्पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान्स भवेद्ध्रुवम्
॥ ९ ॥ पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय ॥ कथयामि महाभाग यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥ १० ॥ पुरा नागभयाक्रांता बभूवुर्मानवा भुवि ॥
गतास्ते शरणं सर्वे कश्यपं मुनिपुङ्गवम् ॥ ११ ॥ मंत्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणाऽन्वितः ॥ वेदबीजानुसारेण चोपदेशेन ब्रह्मणः ॥ १२ ॥
मंत्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसा ससृजे तथा ॥ तपसा मनसा तेन बभूव मनसा च सा ॥ १३ ॥ कुमारी सा च संभूता जगाम शंकरालयम् ॥ भक्त्या
संपूज्य कैलासे तुष्टाव चंद्रशेखरम् ॥ १४ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं तं सिषिवे च मुनेः सुता ॥ आशुतोषो महेशश्च तां च तुष्टो बभूव ह ॥ १५ ॥ महा-

आवाहन करके पूजा करता है तथा पञ्चमी तिथिको मनसे ध्यान करके उन देवीको बलि अर्पण करता है, वह अवश्य ही धनवान्, पुत्रवान् और कीर्तिमान् होता है ॥८॥९॥ हे महाभाग! पूजाका विधान कह चुका। अब धर्मदेवके मुखसे जैसा कुछ सुना है, वह उपाख्यान कहता हूँ, सुनो ॥१०॥ प्राचीन समयकी बात है, भूमण्डलके सभी मानव नागोंके भयसे आक्रान्त हो गए थे। अतः सबने मुनिवर कश्यपकी शरण ग्रहण की ॥११॥ कश्यपजी भी भयभीत हो गए, किन्तु ब्रह्माजीके सहयोगसे उन्होंने मन्त्रोंकी रचना की। उसमें ब्रह्माजी उपदेष्टा थे। वेदबीजके अनुसार मन्त्रोंकी रचना हुई ॥१२॥ साथ ही ब्रह्माजीने अपने मनसे उत्पन्न करके इन देवीको इस मंत्रकी अधिष्ठात्री देवी बना दिया। तपस्या तथा मनसे प्रकट होनेके कारण ये देवी 'मनसा' नामसे विख्यात हुईं ॥१३॥ कुमारी अवस्थामें ही ये भगवान् शंकरके धाममें चली गयी थीं। कैलासमें पहुँचकर इन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान् चन्द्रशेखरकी स्तुति की ॥१४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुनिकुमारी मनसाने देवताओंके वर्षसे हजार वर्षोंतक भगवान शंकरकी उपासना की तदनन्तर भगवान आशुतोष इनपर प्रसन्न हो गए १५॥ हे मुने ! भगवान शंकरने प्रसन्न होकर इन्हें महान् ज्ञान प्रदान किया। सामवेदका अध्ययन कराया और भगवान श्रीकृष्णके कल्पवृक्षस्वरूप अष्टाक्षर मन्त्रका उपदेश किया ॥१६॥ मन्त्रका रूप यह हैं—लक्ष्मीबीज, मायाबीज और कामबीजका पूर्वमें प्रयोग करके कृष्णशब्दके अन्तमें 'ङे' विभक्ति लगाकर नमः पद जोड़ दिया जाता है (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः) भगवान शंकरकी कृपासे जब मुनिकुमारी मनसाको त्रैलोक्यमङ्गल नामक कवच, जपका क्रम, सर्वसम्मत एवं वेदोक्त पुरश्चरणका नियम तथा मन्त्र प्राप्त हो गया, तब वे साध्वी उनसे आज्ञा लेकर पुष्करक्षेत्रमें तपस्या करनेके लिए चली गयीं। वहाँ जाकर उन्होंने परब्रह्म भगवान श्रीकृष्णकी तीन युगोंतक उपासना की ॥१७-१९॥ इसके बाद उन्हें तपस्यामें सिद्धि प्राप्त हुई। भगवान श्रीकृष्णने सामने प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिए। उस समय कृपानिधि श्रीकृष्णने उन कृशांगी बालापर अपनी कृपाकी दृष्टि डाली ॥२०॥ उन्होंने उनका दूसरोंसे पूजन कराया और स्वयं भी पूजा की। साथ ही यह वर

ज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च ॥ कृष्णमंत्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने ॥१६॥ लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेऽन्तं कृष्णपदं ततः ॥ त्रैलोक्यमंगलं नाम कवचं पूजनक्रमम् ॥ १७ ॥ पुरश्चर्याक्रमं चापि वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥ प्राप्य मृत्युंजयान्मंत्रं सा सती च मुनेः सुता ॥ १८ ॥ जगाम तपसे साध्वी पुष्करं शंकराज्ञया ॥ त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ १९ ॥ सिद्धा बभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् ॥ दृष्ट्वा कृशांगीं बालां च कृपया च कृपानिधिः ॥२०॥ पूजा च कारयामास चकार च स्वयं हरिः ॥ वरं च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव ॥ २१ ॥ वरं दत्त्वा च कल्याण्यै ततश्चांतर्दधे हरिः ॥ प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना ॥ २२ ॥ द्वितीये शंकरेणेव कश्यपेन सुरेण च ॥ मुनिना मनुना चैव नागेन मानवादिभिः ॥ २३ ॥ बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु सुव्रता ॥ जरत्कारुमुनींद्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा ॥ २४ ॥ अयाचितो मुनिश्रेष्ठो जग्राह ब्राह्मणाज्ञया ॥ कृत्वोद्वाहं महायोगी विश्रांतस्तपसा चिरम् ॥२५॥ सुष्वाप देव्या जघने वटमूले च पुष्करे ॥ निद्रां जगाम स मुनिः स्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम् ॥ २६ ॥ जगामास्तं दिनकरः सायंकाल उपस्थिते ॥ संचिंत्य मनसा साध्वी मनसा सा पतिव्रता ॥ २७ ॥ धर्मलोपभयेनैव चकारालोचनं सती ॥ अकृत्वा पश्चिमां संध्यां नित्यां चैव द्विजन्मनाम् ॥ २८ ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम ॥ नोपतिष्ठति यः पूर्वां

दिया कि 'हे देवी ! तुम जगत्में पूजा प्राप्त करो।' ॥२१॥ इस प्रकार कल्याणी मनसाको वर प्रदान करके भगवान कृष्ण अन्तर्धान् हो गए। इस तरह इन मनसादेवीकी सर्वप्रथम भगवान श्रीकृष्णने पूजा की ॥२२॥ तत्पश्चात् शंकर, कश्यप, देवता, मुनि, मनु, नाग एवं मानव आदिके द्वारा त्रिलोकीमें श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाली ये देवी सुपूजित हुईं। फिर कश्यपजीने जरत्कारु मुनिके साथ उनका विवाह कर दिया ॥ २३ ॥ २४ ॥ वे मुनि महान् योगी थे। विवाह करनेके पश्चात् वे चिरकालीन तपस्यामें संलग्न हो गए ॥२५॥ वे एक दिन पुष्करक्षेत्रमें एक वटवृक्षके नीचे देवी जरत्कारुको जाँघपर लेट गए और उन्हें नींद आ गयी। इतनेमें सायंकाल होनेको आया और सूर्यनारायण अस्ताचलको जाने लगे। देवी मनसा परमसाध्वी एवं पतिव्रता थीं। उन्होंने मनमें सोचा ॥२६॥२७॥ 'द्विजोंके लिए नित्य सायंकालमें संध्या करनेका विधान है। यदि मेरे पति सोये ही रह जाते हैं तो इन्हें ब्रह्महत्या आदिके पाप लग जायँगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्योंकि ऐसा नियम है कि जो प्रातः और सायंकालकी संध्या ठीक समयपर नहीं करता, वह अपवित्र होकर पापका भागी बन जाता है। यों विचार करके उस परम सुन्दरी मनसाने पतिदेवको जगा दिया ॥२८–३०॥ हे मुने! मुनिवर जरत्कारु जागनेपर क्रोधसे भर गये। मुनिने कहा—हे साध्वी! मैं सुखपूर्वक सो रहा था, तुमने मेरी निद्रा क्यों भंग कर दी?॥३१॥ जो स्त्री अपने स्वामीका अपकार करती है तो उसके व्रत, तपस्या, उपवास और दान आदि सभी सत्कर्म व्यर्थ हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ स्वामीका अप्रिय करनेवाली स्त्री किसी भी सत्कर्मका फल नहीं प्राप्त कर सकती। जिसने अपने पतिकी पूजा की, उससे मानो साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण पूजित हो गये॥ ३३ ॥ पतिव्रताओंके व्रतके लिए स्वयं भगवान श्रीहरि पतिके रूपमें विराजमान रहते हैं। सम्पूर्ण दान, यज्ञ, तीर्थसेवन, व्रत, तप, उपवास, धर्म, सत्य और देवपूजन—ये सब पुण्यकर्म स्वामीकी सेवाकी सोलहवीं कलाकी भी तुलना नहीं कर सकते।

नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥ २९ ॥ स सर्वत्राशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत् ॥ वेदोक्तमिति संचिंत्य बोधयामास सुन्दरी ॥ ३० ॥ स च बुद्धो मुनिश्रेष्ठस्तां चुकोप भृशं मुने ॥ मुनिरुवाच ॥ कथं मे सुखिनः साध्वि निद्राभंगः कृतस्त्वया ॥३१॥ व्यर्थं व्रतादिकं तस्या या भर्तुश्चापकारिणी ॥ तपश्चानशनं चैव व्रतं दानादिकं च यत् ॥३२॥ भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम् ॥ यया प्रियः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया ॥३३॥ पतिव्रताव्रतार्थं च पतिरूपो हरिः स्वयम् ॥ सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम् ॥ ३४ ॥ सर्वं व्रतं तपः सर्वमुपवासादिकं च यत् ॥ सर्वधर्मश्च सत्यं च सर्वदेवप्रपूजनम् ॥ ३५ ॥ तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥ पुण्ये च भारते वर्षे पतिसेवां करोति या ॥ ३६ ॥ वैकुण्ठे स्वामिना सार्धं सा याति ब्रह्मणः पदम् ॥ विप्रियं कुरुते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम् ॥ ३७ ॥ असत्कुले प्रसूता हि तत्फलं श्रूयतां सति ॥ कुम्भीपाकं व्रजेत्सा च यावचन्द्रदिवाकरौ ॥ ३८ ॥ ततो भवति चांडाली पतिपुत्रविवर्जिता ॥ इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः ॥ ३९॥ चकंपे तेन सा साध्वी भयेनोवाच तं पतिम् ॥ साध्व्युवाच ॥ संध्यालोपभयेनैव निद्राभंगः कृतस्तव ॥ ४० ॥ कुरु शान्तिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत ॥ शृंगाराहारनिद्राणां यश्च भंगं करोति वै ॥ ४१ ॥ स व्रजेत्कालसूत्रं च यावचन्द्रदिवाकरौ ॥ इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणाम्बुजे

जो स्त्री भारतवर्ष जैसे पुण्यक्षेत्रमें पतिकी सेवा करती है, वह अपने स्वामीके साथ वैकुण्ठमें जाकर श्रीहरिके चरणोंमें शरण पाती है। हे साध्वी! जो असत्कुलमें उत्पन्न स्त्री अपने स्वामीके प्रतिकूल आचरण करती तथा उसके प्रति कटु वचन बोलती है ॥ ३४–३७ ॥ वह कुम्भीपाक नरकमें सूर्य और चन्द्रमाकी आयुपर्यन्त निवास करती है ॥ ३८ ॥ तदनन्तर चाण्डालके घरमें उसका जन्म होता है और पति एवं पुत्रके सुखसे वह वञ्चित रहती है। यों कहकर वे चुप हो गये। यह सुनकर साध्वी मनसा भयसे काँपने लगी। उसने पतिदेवसे कहा। साध्वी मनसा बोली—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे महाभाग! आपकी सन्ध्या लुप्त न हो जाय, इसी भयसे मैंने आपको जगा दिया है—यह मेरा दोष अवश्य है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे महाभाग! आप शान्त हों। जो व्यक्ति शृंगार, आहार और निद्रा भंग करता है ॥ ४१ ॥ वह सूर्य-चन्द्रमाके अस्तित्व पर्यन्त कालसूत्र नरकमें यातना भोगता है। इस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहकर देवी मनसा भक्तिपूर्वक अपने स्वामी जरत्कारु मुनिके चरणकमलोंपर लोट गयी ॥ ४२ ॥ उस समय रोषके आवेशमें आकर जरत्कारु मुनि सूर्यको भी शाप देनेके लिए उद्यत हो गये ॥ ४३ ॥ हे नारद! उन्हें कुपित देखकर स्वयं भगवान सूर्य सन्ध्यादेवीको साथ लेकर वहाँ आये और भयभीत होकर विनयपूर्वक मुनिवर जरत्कारु सम्यक् प्रकारसे यथार्थ बात कहने लगे। भगवान सूर्यने कहा—हे भगवन्! आप परम शक्तिशाली ब्राह्मण हैं। संध्याका समय देखकर धर्म लोप हो जानेके भयसे इस साध्वीने आपको जगा दिया है। हे मुने। हे विप्रवर! मैं आपकी शरणमें उपस्थित हूँ। मुझे शाप देना आपके लिए उचित नहीं है ॥ ४४–४६ ॥ ब्राह्मणोंका हृदय नवनीतके समान कोमल होता है, यदि वे आधे क्षणके लिए भी कुपित हो जायँ तो सारा संसार भस्म हो जाय ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण चाहे तो पुनः सृष्टि कर सकते हैं, इनसे बढ़कर तेजस्वी दूसरा कोई है ही नहीं। ब्राह्मणके द्वारा निरन्तर सनातन भगवान

॥ ४२ ॥ पपात भक्त्या भीता च रुरोद च पुनः पुनः ॥ कुपितं च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्यं शप्तुमुद्यतम् ॥ ४३ ॥ तत्राजगाम भगवान्संध्यया सह नारद ॥ तत्रागत्य मुनिं सम्यगुवाच भास्करः स्वयम् ॥ ४४ ॥ विनयेन च भीतश्च तया सह यथोचितम् ॥ भास्कर उवाच ॥ सूर्यास्तमसमयं दृष्ट्वा साध्वी धर्मभयेन च ॥ ४५ ॥ बोधयामास त्वां विप्र शरणं त्वामहं गतः ॥ क्षमस्व भगवन्ब्रह्मन्मां शप्तुं नोचितं मुने ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणानां च हृदयं नवनीतसमं सदा ॥ तेषां क्षणार्धं क्रोधश्च ततो भस्म भवेज्जगत् ॥ ४७ ॥ पुनः स्रष्टुं द्विजः शक्तो न तेजस्वी द्विजात्परः ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मणो वंशः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा द्विजस्तुष्टो बभूव ह ॥ ४९ ॥ सूर्यो जगाम स्वस्थानं गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम् ॥ तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च ॥ ५० ॥ रुदतीं शोकसंयुक्तां हृदयेन विदूयता ॥ सा सस्मार गुरुं शंभुमिष्टदेवं विधिं हरिम् ॥ ५१ ॥ कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्शिता ॥ तत्राजगाम गोपीशो भगवाञ्छंभुरेव च ॥ ५२ ॥ विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिंतितः ॥ दृष्ट्वा विप्रोऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ ५३ ॥ तुष्टाव परया भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥ नमश्चकार शंभुं च ब्रह्माणं कश्यपं तथा ॥ ५४ ॥ कथमागमनं देवा इति प्रश्नं चकार सः ॥ ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम् ॥ ५५ ॥ प्रत्युवाच नम-

श्रीकृष्णकी आराधना होती है। सूर्यके उपर्युक्त वचन सुनकर विप्रवर जरत्कारु प्रसन्न हो गये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ उनसे आशीर्वाद लेकर सूर्य अपने स्थानको चले गये। प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिए उन ब्राह्मण देवताने देवी मनसाका त्याग कर दिया ॥ ५० ॥ उस समय देवीके शोककी सीमा नहीं रही। दुःखके कारण उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा था। वे रो रही थीं। उस विपत्तिके अवसरपर भयसे व्याकुल होकर उस देवीने अपने गुरुदेव शंकरजी, इष्टदेवता ब्रह्मा, श्रीहरि तथा जन्मदाता कश्यपजीका स्मरण किया। देवी मनसाके चिंतन करनेपर तुरन्त गोपीश भगवान श्रीकृष्ण, शंकर, ब्रह्मा और कश्यप मुनि वहाँ आ गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ प्रकृतिसे परे निर्गुण परब्रह्म भगवान श्रीकृष्ण मुनिवर जरत्कारुके इष्टदेव थे। उनके दर्शन पाकर परम भक्तिके साथ मुनि बार-बार प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने भगवान शंकर, ब्रह्मा और कश्यपको भी नमस्कार किया ॥५३॥५४॥ फिर 'हे महाभाग देवताओं! आप लोगोंका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ कैसे पधारना हुआ है ?' यों पूछा। मुनिवर जरत्कारुकी बात सुनकर ब्रह्माजीने समयोचित बातें कहीं ॥ ५५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलको प्रणाम करके उन्होंने मुनिको उत्तर दिया—'हे मुने ! तुम्हारी धर्मपत्नी मनसा परम साध्वी एवं धर्ममें आस्था रखनेवाली नारी है। यदि तुम इसे त्यागना ही चाहते हो तो पहले इसका किसी संतानकी जनना बनो दो, जिससे यह अपने धर्मका पालन कर सके। सन्तान हो जानेके पश्चात् स्त्रीको त्यागा जा सकता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ जो पुरुष पुत्रोत्पत्ति कराये बिना ही प्रिय पत्नीको त्याग देता है, उसका पुण्य चलनीसे बह जानेवाले जलकी भाँति नष्ट हो जाता है।' ॥ ५८ ॥ हे नारद ! ब्रह्माजीकी बात सुनकर मुनिवर जरत्कारुने मन्त्र पढ़ तथा योगबलका सहारा लेकर मनसाकी नाभिका स्पर्श कर दिया और उससे कहा। मुनिवर जरत्कारु बोले—हे मनसे ! इस गर्भसे तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा ॥ ५९ ॥ ६० ॥ वह पुत्र जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ, धार्मिक, ब्रह्मज्ञानी, तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, गुणी, वेदवेत्ताओं, ज्ञानियों और योगियोंमें प्रमुख, विष्णुभक्त तथा अपने कुलका उद्धारक होगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ऐसे सुयोग्य पुत्रके उत्पन्न

स्कृत्य हृषीकेशपदांबुजम् ॥ यदि त्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती ॥ ५६ ॥ कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं स्त्रीधर्मपालनाय वै ॥ जायायां च सुतोत्पत्तिं
कृत्वा पश्चात्त्यजेन्मुने ॥ ५७ ॥ अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं विरागी यस्त्यजेत्प्रियाम् ॥ स्रवते तस्य पुण्यं च चालन्यां च यथा जलम् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मणो
वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः ॥ चकार नाभिसंस्पर्शं योगेन मंत्रपूर्वकम् ॥ ५९ ॥ मनसाया मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम् ॥ जरत्कारुरुवाच ॥
गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति ॥ ६० ॥ जितेंद्रियाणां प्रवरो धार्मिको ब्राह्मणाग्रणीः ॥ तेजस्वी च तपस्वी च यशस्वी च गुणान्वितः
॥ ६१ ॥ वरो वेदविदां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा ॥ स च पुत्रो विष्णुभक्तो धार्मिकः कुलमुद्धरेत् ॥ ६२ ॥ नृत्यंति पितरः सर्वे जन्ममात्रेण वै
मुदा ॥ पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी ॥ ६३ ॥ धर्मिष्ठा पुत्रमाता च कुलश्रीः कुलपालिका ॥ हरिभक्तिप्रदो बंधुर्न चाभीष्टसुखप्रदः
॥ ६४ ॥ यो बंधुश्चेत्स च पिता हरिवर्त्मप्रदर्शकः ॥ सा गर्भधारिणी या च गर्भावासविमोचनी ॥ ६५ ॥ दयारूपा च भगिनी यमभीतिविमोचनी ॥
विष्णुमन्त्रप्रदाता च सा गुरुर्विष्णुभक्तिदः ॥६६॥ गुरुश्च ज्ञानदो यो हि यज्ज्ञानं कृष्णभावनम् ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतं यतो विश्वं चराचरम् ॥६७॥

होनेमात्रसे पितर आनन्दमें भरकर नाचने लगते हैं। जो स्त्री पतिव्रतधर्मका पालन करती है, प्रिय वचन बोलती है और सुशीला है, वही प्रिया होती है। जो धर्ममें श्रद्धा रखती है, पुत्र उत्पन्न करती है तथा कुलकी रक्षा करती है, उसीको कुलीन स्त्री कहते हैं। जो निरन्तर भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करता एवं अभीष्ट सुख देनेमें तत्पर रहता है, वही बन्धु है। यदि भगवान् श्रीहरिके मार्गका प्रदर्शक हो तो उस बन्धुको पिता भी कह सकते हैं। वही गर्भधारिणी स्त्री कहलाती है, जो ज्ञानोपदेश द्वारा संतानको गर्भवाससे मुक्त कर दे ॥६३–६५ ॥ दयारूपा भगिनी उसको कहते हैं, जिसकी कृपासे प्राणी यमराजके भयसे मुक्त हो जाय। भगवान् विष्णुके मन्त्रका प्रदान करनेवाला गुरु वही है, जो भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न कर दे ॥ ६६ ॥ दानदाता गुरु उसीको कहते हैं, जिसकी कृपासे भगवान श्रीकृष्णके चिन्तनकी योग्यता प्राप्त हो जाय। क्योंकि ब्रह्मापर्यन्त चराचर सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होकर नष्ट हो जाता है। वेद अथवा यज्ञसे जो कुछ सारतत्त्व निकलता है, वह यही है कि भगवान श्रीहरिकी सेवा की जाय ॥६७॥६८। यही तत्त्वोंका भी तत्त्व है ! भगवान श्रीहरिकी उपासनाके अतिरिक्त सब कुछ केवल विडम्बनामात्र है। इस तरह मैंने तुम्हें यथार्थ ज्ञानोपदेश कर दिया। क्योंकि स्वामी भी वही कहलाता है, जो ज्ञान प्रदान कर सके ॥ ६९ ॥ ज्ञानके द्वारा बन्धनसे मुक्त करनेवाला स्वामी माना जाता है और वही यदि बन्धनमें डालता है तो शत्रु है। जो गुरु भगवान श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला ज्ञान नहीं देता, उसे शिष्यघाती कहते हैं। क्योंकि वह शिष्यको बन्धनमुक्त नहीं कर सकता। जो जननीके गर्भजनित क्लेश तथा यमयातनासे मुक्त नहीं कर सकता, उसे गुरु, तात और बान्धव कैसे कहा जाय ? भगवान श्रीकृष्णका सनातन मार्ग परम आनन्दस्वरूप है ॥७०–७२॥ जो निरन्तर ऐसे मार्गका प्रदर्शन नहीं कराता, वह मनुष्योंके लिये कैसा बान्धव है ? अतः हे साध्वी ! तुम निर्गुण एवं अच्युत ब्रह्म भगवान श्रीकृष्णकी उपासना करो ॥७३॥ इनकी उपासनासे पुरुषोंके सारे कर्ममूल कट जाते हैं। हे प्रिये ! मैंने जो तुम्हारा परित्याग कर दिया है, मेरे इस अपराधको क्षमा करो

आविर्भूतं तिरोभूतं किं वा ज्ञानं तदन्यतः ॥ वेदजं यज्ञजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम् ॥ ६८ ॥ तत्त्वानां सारभूतं च हरेरन्यद्विडंबनम् ॥ दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं स स्वामी ज्ञानदो हि यः ॥ ६९ ॥ ज्ञानात्प्रमुच्यते बन्धात्स रिपुर्यो हि बंधदः ॥ विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं नो ददाति हि यो गुरुः ॥ ७० ॥ स रिपुः शिष्यघाती च यतो बंधान्न मोचयेत् ॥ जननीं गर्भजक्लेशाद्यमयातनया तथा ॥७१॥ न मोचयेद्यः स कथं गुरुस्तातो हि बांधवः॥ परमानंदरूपं च कृष्णमार्गमनश्वरम् ॥ ७२ ॥ न दर्शयेद्यः सततं कीदृशो बान्धवो नृणाम् ॥ भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णं च निर्गुणम् ॥ ७३ ॥ निर्मूलं च भवेत्पुंसां कर्म वै तस्य सेवया ॥ मया छलेन त्वं त्यक्ता क्षमस्वैतन्मम प्रिये ॥ ७४ ॥ क्षमायुतानां साध्वीनां सत्वात्क्रोधो न विद्यते ॥ पुष्करे तपसे यामि गच्छ देवि यथासुखम् ॥ ७५ ॥ श्रीकृष्णचरणांभोजे निःस्पृहाणां मनोरथाः ॥ जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा शोककातरा ॥ ७६ ॥ साश्रुनेत्रा च विनयादुवाच प्राणवल्लभम् ॥ मनसोवाच ॥ दोषो नास्त्येव मे त्यक्तुं निद्राभंगेन ते प्रभो ॥ ७७ ॥ यत्र स्मरामि त्वां नित्यं तत्र मामागमिष्यसि ॥ बन्धुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परम् ॥ ७८ ॥ प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात्सर्वतः परः ॥ पतिः पतिव्रतानां तु शतपुत्राधिकं

॥ ७४ ॥ क्योंकि साध्वी स्त्रियाँ क्षमापरायण होती हैं। सत्त्वगुणके प्रभावसे उनमें क्रोध नहीं रहता। हे देवी ! मैं तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्र जा रहा हूँ" ७५ ॥ तुम भी सुखपूर्वक यहाँसे जा सकती हो। क्योंकि निःस्पृह पुरुषोंके लिये एकमात्र मनोरथ यही है कि वे भगवान श्रीकृष्णके चरणकमलकी उपासनामें लग जायँ। मुनिवर जरत्कारु का यह वचन सुनकरदेवी मनसा शोकसे आतुर हो गयी ॥ ७६ ॥ उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने विनयभाव प्रदर्शित करते हुए अपने प्राणप्रिय पतिदेवसे कहा। देवी मनसा बोली–हे प्रभो ! मैंने आपकी निद्रा भङ्ग कर दी –यह मेरा दोष नहीं कहा जा सकता, जिससे आप मेरा त्याग कर रहे हैं ॥७७॥ अतएव मेरी यही प्रार्थना है कि जहाँ मैं आपका स्मरण करूँ, वहीं आप मुझे दर्शन देनेकी कृपा कीजियेगा। क्योंकि किसी भाई-बन्धुका वियोग होनेसे बड़ा क्लेश होता है। यदि पुत्रका वियोग हो जाय तो वह उससे भी अधिक दुखदायी होता है ॥ ७८ ॥ यदि प्राणनाथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पतिका वियोग हो जाय तो वह प्राण निकलनेके समान एवं पुत्रवियोगसे भी अधिक कष्टकारक होता है। पतिव्रता स्त्रियोंके लिए सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रेमभाजन पति होता है ॥७९॥ पति स्त्रियोंके लिए सम्यक् प्रकारसे प्रिय है। अतएव विद्वान् पुरुषोंने पतिको 'प्रिय'की संज्ञा दी है। जिस प्रकार एक पुत्रवालोंका पुत्रमें, वैष्णव पुरुषोंका भगवान श्रीहरिमें, एक नेत्रवालोंका नेत्रमें, प्यासे जनोंका जलमें, क्षुधातुरोंका अन्नमें, विद्वानोंका शास्त्रमें तथा वैश्योंका वाणिज्यमें निरन्तर मन लगा रहता है, वैसे ही हे प्रभो ! पतिव्रता स्त्रियोंका मन सदा अपने स्वामीका किङ्कर बना रहता है। इस प्रकार कहकर मनसा देवी अपने स्वामीके चरणोंपर गिर पड़ीं ॥८०-८३॥ मुनिवर जरत्कारु कृपाके समुद्र थे। उन्होंने कृपाके वशीभूत होकर क्षण भरके लिए उसे अपनी गोदमें ले लिया। मुनिके नेत्रोंसे जलकी ऐसी धारा गिरी कि वह साध्वी मनसा नहा उठी ॥८४॥ उस समय मुनिवर जरत्कारुकी गोदमें स्थान पानेवाली उस देवीके भी नेत्रोंमें आँसू आ गये थे। उन्हीं आँसुओंसे उसने पतिकी गोद भिगो दी। मुनिके अश्रुजलसे अभिषिक्त होनेपर भी सम्बन्ध-विच्छेद होनेके भयसे उसके मनमें घबराहट उत्पन्न हो गयी थी। तत्प-

प्रियः ॥ ७९ ॥ सर्वस्मात्तु प्रियः स्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यते बुधैः ॥ पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथा हरौ ॥ ८० ॥ नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथा जले ॥ क्षुधितानां यथाऽन्ने च कामुकानां च मैथुने ॥८१॥ यथा परस्वे चोराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥ विदुषां च यथा शास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा ॥ ८२ ॥ तथा शश्वन्मनः कान्ते साध्वीनां योषितां प्रभो ॥ इत्युक्त्वा मनसा देवी पपात स्वामिनः पदे ॥ ८३ ॥ क्षणं चकार क्रोडे तां कृपया च कृपानिधिः ॥ नेत्रोदकेन मनसा स्नापयामास तां मुनिः ॥८४॥ साश्रुनेत्रा मुनेः क्रोडं सिषेच भेदकातरा ॥ तदा ज्ञानेन तौ द्वौ च विशोकौ संबभूवतुः ॥ ८५ ॥ स्मारं स्मारं पदांभोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ जगाम तपसे विप्रः स्वकान्तां संप्रबोध्य च ॥ ८६ ॥ जगाम मनसा शंभोः कैलासं मन्दिरं गुरोः ॥ पार्वती बोधयामास मनसां शोककर्शिताम् ॥ ८७ ॥ शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालयः ॥ सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषुवे मङ्गलक्षणे ॥ ८८ ॥ नारायणांशं पुत्रं तं योगिनां ज्ञानिनां गुरुम् ॥ गर्भस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शंकर-वक्त्रतः ॥ ८९ ॥ संबभूव च योगींद्रो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः ॥ जातकं कारयामास वाचयामास मङ्गलम् ॥ ९० ॥ वेदांश्च

श्चात् वे दोनों पति-पत्नी ज्ञानद्वारा शोकसे मुक्त हो गये ॥८५॥ तदनन्तर मुनिवर जरत्कारु परमात्मा भगवान श्रीकृष्णके चरणकमलका बार-बार स्मरण करते हुए अपनी प्रिया मनसाको समझाकर तपस्या करनेके लिए चले गये ॥८६॥ इधर देवी मनसा भी कैलासपर पहुँचकर अपने गुरु भगवान शंकरके मन्दिरमें चली गयी। वह शोकसे व्याकुल थी। भगवती पार्वतीने उसे भलीभाँति समझाया ॥ ७॥ भगवान शंकरसे भी उसे उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। फिर जब मङ्गलमय दिन था। सभी शुभ योग उपस्थित थे। उसी क्षण साध्वी मनसाने पुत्र उत्पन्न किया ॥८८॥ जो भगवान नारायणका अंश तथा योगियों और ज्ञानियोंका भी गुरु था। वह गर्भमें था, तभी भगवानशंकरके मुखसे उसे ज्ञानोपलब्धि हो चुकी थी। अतएव वह बालक योगीन्द्र तथा योगियों एवं ज्ञानियोंका गुरु होनेका अधिकारी था। भगवान शंकरने उसका जातकर्म और नामकरण आदि माङ्गलिक संस्कार कराया ॥ ८९ ॥ ९० ॥ भगवान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिवने उस शिशुके कल्याणार्थ वेदघोष कराया और बहुतसे मणि, रत्न तथा किरीट ब्राह्मणोंको दान दिये ॥९१॥ देवी पार्वती द्वारा लाखों गौएँ तथा भाँति-भाँतिके रत्न ब्राह्मणोंके लिए वितरित किए गए। भगवान शिव स्वयं उस बालकको चारों वेद और वेदाङ्ग निरन्तर पढ़ाते रहे ॥ ९२॥ साथ ही मृत्युञ्जय शिवने उसे श्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश दिया। उनकी कृपासे उस बालकमें अपने इष्टदेव और गुरुदेवके प्रति अपार श्रद्धा उत्पन्न हो गयी ॥ ९३ ॥ पति, गुरु तथा इष्टदेवमें मनसाकी अधिक भक्ति थी। इसलिए उस पुत्रका नाम 'आस्तीक' हुआ। मुनिवर जरत्कारु पहले ही भगवान शंकरसे आज्ञा लेकर भगवान विष्णुकी तपस्या करनेके लिए पुष्करक्षेत्रमें चले गए थे ॥ ९४ ॥ उन तपोधन मुनिने परमात्मा श्रीकृष्णका महामन्त्र प्राप्त करके दीर्घकालतक तप किया ॥ ९५ ॥ फिर वे महान् योगी मुनि भगवान शंकरको नमस्कार करनेके लिए वहाँ आए। तबतक वह बालक भी वहीं था। बादमें उदार देवी मनसा उस बालकको लेकर अपने पिता कश्यप मुनिके आश्रमपर चली आयी। उस पुत्रवती कन्याको देखकर प्रजापति कश्यपके मनमें अपार हर्ष हुआ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ हे मुने! उस

पाठयामास शिवाय च शिवः शिशोः ॥ मणिरत्नकिरीटांश्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः ॥ ९१ ॥ पार्वती च गवां लक्षं रत्नानि विविधानि च ॥ शंभुश्च चतुरो वेदान्वेदाङ्गानितरांस्तथा ॥ ९२ ॥ बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युंजयं परम् ॥ भक्तिरस्त्यधिका कान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ तथा ॥ ९३ ॥ यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवास्तीक एव च ॥ जगाम तपसे विष्णोः पुष्करं शंकराज्ञया ॥ ९४ ॥ संप्राप्य च महामन्त्रं ततश्च परमात्मनः ॥ दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपस्तप्त्वा तपोधनः ॥ ९५ ॥ आजगाम महायोगी नमस्कर्तुं शिवं प्रभुम् ॥ शंकरं च नमस्कृत्य स्थित्वा तत्रैव बालकः ॥ ९६ ॥ सा चाजगाम मनसा कश्यपस्याश्रमं पितुः ॥ तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः ॥ ९७ ॥ शतलक्षं च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने ॥ ब्राह्मणान्भोजयामास सोऽसंख्यान् श्रेयसे शिशोः ॥९८॥ अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्राप परंतप ॥ सा सपुत्रा च सुचिरं तस्थौ तातालये तदा ॥ ९९ ॥ तदीयं पुनराख्यानं वक्ष्यामि तन्निशामय ॥ अथाभिमन्युतनये ब्रह्मशापः परीक्षिते ॥ १०० ॥ बभूव सहसा ब्रह्मन् दैवदोषेण कर्मणा ॥ सप्ताहे समतीते तु तक्षकस्त्वां च धक्ष्यति ॥ १०१ ॥ शशाप शृङ्गी तत्रैव कोशिक्याश्च जलेन वै ॥ राजा श्रुत्वा तत्प्रवृत्तिं निर्वातस्थानमागतः ॥ १०२ ॥ तत्र तस्थौ च सप्ताहे देहरक्षणतत्परः ॥ सप्ताहे समतीते तु गच्छंतं तक्षकं पथि ॥ १०३ ॥ धन्वंतरिर्नृपं मोक्तुं ददर्श गामुकः पथि ॥

अवसरपर प्रजापतिने ब्राह्मणोंको प्रचुर रत्न दान दिये। शिशुके कल्याणार्थ असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया ॥ ९८ ॥ हे परंतप! कश्यपजीकी दिति-अदिति तथा अन्य भी जितनी पत्नियाँ थीं, उनके मनमें भी बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रकार देवी मनसा पुत्रके साथ सुदीर्घकालतक उस आश्रमपर ठहरी रही ॥ ९९ ॥ इसका उपाख्यान अभी पुनः कहता हूँ, सुनो। इसी बीच अभिमन्युकुमार राजा परीक्षितको ब्राह्मणका शाप लग गया। हे ब्रह्मन्! दुर्दैवकी प्रेरणासे उनके द्वारा ऐसा कर्म बन गया कि सहसा परीक्षित् शापसे ग्रस्त हो गए। शृङ्गीने कह दिया कि एक सप्ताहके बीतते ही तक्षक सर्प तुम्हें काट खायेगा ॥ १०० ॥ १०१ ॥ विप्रपुत्र शृङ्गीने कौशिकीका जल हाथमें लेकर वह शाप दिया था। जब राजा परीक्षित्ने शापकी बात सुनी, तब वे ऐसे सुरक्षित स्थानपर चले गए, जहाँ वायुकी भी पहुँच नहीं थी ॥ १०२ ॥ वहाँ आत्मरक्षा करते हुए राजा एक सप्ताह रहे। सप्ताह बीत जानेपर तक्षक राजाको काटने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चला ॥ १०३ ॥ मार्गमें उसने धन्वन्तरिको देखा, जो राजाको विषमुक्त करने जा रहे थे । अब दोनोंमें बातें होने लगीं, जिससे परस्पर बड़ी प्रीति हो गयी ॥ १०४ ॥ अन्तमें धन्वन्तरि मणि पाकर लौट गये और तक्षक इच्छानुसार अपना काम करनेको चला गया ॥ १०५ ॥ वहाँ पहुँचकर उसनें सुरक्षाके लिए मञ्चपर बैठे हुए राजाका काट लिया । जिससे तत्काल राजा परीक्षित् तन त्यागकर परलोक चले गये ॥१०६॥ तब जनमेजयने अपने पिताका दाहसंस्कार कराया । हे मुने ! इसके बाद महाराज जनमेजयने सर्पसत्र आरम्भ किया ॥१०७॥ ब्रह्मतेजके कारण समूह-के-समूह सर्प प्राणोंसे हाथ धोने लगे । तब तक्षक भयसे घबराकर इन्द्रकी शरणमें चला गया ॥१०८॥ इधर ब्राह्मणमण्डली इन्द्रसहित तक्षकको मारनेके लिए उद्यत हो गयी। ऐसी स्थितिमें इन्द्र भयसे अधीर हो उठे । उन्होंने भगवती मनसाकी स्तुति की । उसके फलस्वरूप मुनिवर आस्तीक माताकी आज्ञासे राजा जनमेजय यज्ञमें आये ॥१०९॥११०॥ उन्होंने

तयोर्बभूव संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम् ॥१०४॥ धन्वंतरिर्मणिं प्राप तक्षकः स्वेच्छया ददौ ॥ स ययौ तं गृहीत्वा तु संतुष्टो हृष्टमानसः ॥१०५॥ तक्षको भक्षयामास तं नृपं मञ्चके स्थितम् ॥ राजा जगाम तरसा देहं त्यक्त्वा परत्र च ॥ १०६ ॥ संस्कारं कारयामास पितुर्वै जनमेजयः ॥ राजा चकार यज्ञं च सर्पसत्रं ततो मुने ॥ १०७ ॥ प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा ॥ स तक्षको वै भीतस्तु महेन्द्रं शरणं ययौ ॥ १०८ ॥ सेन्द्रं च तक्षकं हंतुं विप्रवर्गः समुद्यतः ॥ अथ देवाश्च सेंद्राश्च संजग्मुर्मनसान्तिकम् ॥ १०९ ॥ तां तुष्टाव महेन्द्रश्च भयकातरविह्वलः ॥ तत आस्तीक आगत्य यज्ञं च मातुराज्ञया ॥ ११० ॥ महेन्द्रतक्षकप्राणान् ययाचे भूमिपं परम् ॥ ददौ वरं नृपश्रेष्ठः कृपया ब्राह्मणाज्ञया ॥ १११ ॥ यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणां च ददौ मुदा ॥ विप्राश्च मुनयो देवा गत्वा च मनसान्तिकम् ॥ ११२ ॥ मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक् पृथक् ॥ शक्रः संभृतसंभारो भक्तियुक्तः सदा शुचिः ॥ ११३ ॥ मनसां पूजयामास तुष्टात्र परमादरात् ॥ नत्वा षोडशोपचारं बलिं च तत्प्रियं तदा ॥११४॥ प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया ॥ संपूज्य मनसां देवीं प्रययुः स्वालयं च ते ॥ ११५ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ केन स्तोत्रेण तुष्टाव महेन्द्रो मनसां सतीम् ॥ ११६ ॥ पूजाविधिक्रमं तस्याः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ नारायण उवाच ॥ सुस्नातः

राजा जनमेजयसे इन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना की । तब ब्राह्मणोंकी आज्ञा एवं कृपावश राजाने वर दे दिया ॥ १११ ॥ यज्ञकी पूर्णाहुति कर दी गयी । सुप्रसन्न राजा द्वारा ब्राह्मण यज्ञांत-दक्षिणा पा गये । तत्पश्चात् ब्राह्मण, देवता और मुनि सभी मनसादेवीके पास गये ॥११२॥ उन सबने पृथक्-पृथक् उन देवीकी पूजा और स्तुति की । इन्द्रने पवित्र हो तथा श्रेष्ठ सामग्रियोंको लेकर उनके द्वारा देवी मनसाका पूजन किया । फिर वे भक्तिपूर्वक नित्य उनकी पूजा करने लगे । षोडशोपचारसे अतिशय आदर प्रकट करते हुए वे पूजा और स्तुति करते रहे। यों देवी मनसाकी अर्चना करनेके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु और शिवके आज्ञानुसार सभी देवता संतुष्ट होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये । हे मुने ! मैं मनसासम्बन्धी सम्पूर्ण कथा कह चुका अब और क्या सुनना चाहते हो ? नारदजीने पूछा–हे प्रभो ! देवराज इन्द्रने किस स्तोत्रसे देवी मनसाकी स्तुति की ? ॥११३–११६॥ किस विधि और किस क्रमसे उन्होंने पूजन किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। इस प्रसङ्गको मैं सुनना चाहता हूँ। नारायण बोले–हे नारद! देवराज इन्द्रने स्नान किया, फिर पवित्र हो तथा आचमन करके दो नूतन वस्त्र धारण किये ॥११७॥ देवी मनसाको उन्होंने रत्नमय सिंहासनपर पधराया और भक्तिपूर्वक रत्नमय कलशमें स्वर्गगङ्गाका जल लेकर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उससे देवीको स्नान कराया और विशुद्ध होकर दो मनोहर चिन्मय वस्त्र पहननेके लिए अर्पण किया ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ देवीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें चन्दन लगाया। भक्तिपूर्वक पाद्य और अर्घ्य उनके सामने रक्खा। उस समय देवराज इन्द्रने गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु शिव और गौरी—इन छः देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् साध्वी मनसाकी पूजा की थी। 'ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा' इस दशाक्षर मूल मन्त्रका उच्चारण करके यथोचित रूपसे पूजनकी सभी सामग्री देवीको अर्पण की। इस तरह सोलह प्रकारकी दुर्लभ वस्तुएँ देवराज इन्द्रके द्वारा मनसा देवीकी सेवामें अर्पित की गयीं ॥ १२०–१२२ ॥ भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे इन्द्र प्रसन्नतापूर्वक भक्तिसहित पूजामें लगे रहे। उस समय उन्होंने नाना प्रकारके बाजे बजवाये ॥ १२३ ॥ देवी मनसाके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी।

शुचिराचान्तो धृत्वा धौते च वाससी ॥ ११७ ॥ रत्नसिंहासने देवीं वासयामास भक्तितः ॥ स्वर्गंगाया जलेनैव रत्नकुम्भस्थितेन च ॥ ११८ ॥
स्नापयामास मनसां महेन्द्रो वेदमन्त्रतः ॥ वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोहरे ॥११९॥ सर्वाङ्गे चन्दनं कृत्वा पाद्यार्घ्यं भक्तिसंयुतः ॥ गणेशं च
दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ १२० ॥ संपूज्यादौ देवषट्कं पूजयामास तां सतीम् ॥ ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवं च मन्त्रतः
॥ १२१ ॥ दशाक्षरेण मूलेन ददौ सर्वं यथोचितम् ॥ दत्त्वा षोडशोपचारान्दुर्बलान्देवनायकः ॥ १२२ ॥ पूजयामास भक्त्या च विष्णुना प्रेरितो
मुदा ॥ वाद्यं नानाप्रकारं च वादयामास तत्र वै ॥ १२३ ॥ बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि ॥ देवप्रियाज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया
॥ १२४ ॥ तुष्टाव साश्रुनेत्रैश्च पुलकाङ्कितविग्रहः ॥ पुरंदर उवाच ॥ देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां वराम् ॥ १२५ ॥ परात्परां च
परमां न हि स्तोतुं क्षमोऽधुना ॥ स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतत्परम् ॥ १२६ ॥ न क्षमः प्रकृते वक्तुं गुणानां गणनां तव ॥ शुद्धसत्त्व-
स्वरूपा त्वं कोपहिंसादिवर्जिता ॥ १२७ ॥ न च शक्तो मुनिस्तेन त्यक्तुं याच्ञा कृता यतः ॥ त्वं मया पूजिता साध्वी जननी मे यथाऽदितिः
॥ १२८ ॥ दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः ॥ त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि ॥ १२९ ॥ अहं करोमि त्वत्पूजां प्रीतिश्च

तदनन्तर पुलकित शरीर होकर नेत्रोंमें अश्रु भरे हुए इन्द्रने ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी आज्ञासे देवी मनसाकी स्तुति की। इन्द्र बोले–हे देवी! तुम साध्वी पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ तथा परात्पर देवी हो ॥१२४॥१२५॥ इस समय मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, किन्तु यह महत्त्वपूर्ण कार्य मेरी शक्तिके बाहर है। हे देवी प्रकृते! तुम्हारे स्तोत्रके लक्षण और तुमसे सम्बन्ध रखनेवाले उपाख्यान वेदोंमें वर्णित हैं ॥१२६॥ मैं तुम्हारे गुणोंकी गणना नहीं कर सकता। तुम शुद्ध सत्त्वस्वरूपा हो, तुममें कोप और हिंसाका नितान्त अभाव है ॥ १२७ ॥ मुनिवर जरत्कारु तुम्हें त्यागनेमें असमर्थ थे, अतएव उन्होंने तुमसे याचना की थी। तुम साध्वी देवी माता अदितिके समान मेरी परम पूज्या हो ॥१२८॥ तुम दयारूपसे भगिनी और क्षमारूपसे जननी हो। हे सुरेश्वरी! तुम्हारी कृपासे पुत्र और स्त्रीके साथ मेरे प्राणोंकी रक्षा हुई है ॥१२९॥ मैं तुम्हारी पूजा करती हूँ। तुम्हारे प्रति मेरी प्रीति सदा बढ़ती रहे। हे जगदंबिके! तुम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सनातनी देवी हो। यद्यपि तुम्हारी सर्वत्र नित्य पूजा होती है ॥१३०॥ फिर भी मैं तुम्हारी पूजाका प्रचार कर रहा हूँ। हे सुरेश्वरी! जो पुरुष आषाढ़ मासकी संक्रान्ति, मनसासंज्ञक पंचमी अर्थात् नागपंचमी, मासके अन्तमें तथा प्रतिदिन भक्तिके साथ तुम्हारी पूजा करेंगे, उनके पुत्र-पौत्र और धनमें वृद्धि होगी—यह निश्चित है ॥१३१॥१३२॥ वे यशस्वी, कीर्तिमान्, विद्वान् एवं गुणी होंगे। जो लोग अज्ञानके कारण पूजासे विमुख होकर तुम्हारी निन्दा करेंगे ॥१३३॥ उनके यहाँ लक्ष्मी नहीं ठहरेगी और उन्हें सर्पोंसे सदा भय बना रहेगा। तुम स्वयं सर्वलक्ष्मी हो। वैकुण्ठमें तुम्हें 'कमलालया' कहते हैं ॥१३४॥ ये मुनिवर जरत्कारु भगवान नारायणके साक्षात् अंश हैं। तपस्या और तेजके प्रभावसे मनके द्वारा तुम्हारे पिताने तुम्हारी सृष्टि की है ॥१३५॥ तुम्हारी सृष्टिमें हमारी रक्षा ही उद्देश्य है। अतएव तुम मनसा देवी कहलाती हो। हे देवी! तुम मनसा देवीने स्वयं अपनी शक्तिसे योगसिद्धि प्राप्त की है ॥१३६॥

वर्धतां सदा ॥ नित्या यद्यपि पूज्या त्वं सर्वत्र जगदम्बिके ॥१३०॥ तथापि तव पूजां च वर्धयामि सुरेश्वरि ॥ ये त्वामाषाढसंक्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः ॥ १३१ ॥ पञ्चम्यां मनसाख्यायां मासान्ते वा दिने दिने ॥ पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि वै ॥ १३२ ॥ यशस्विनः कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः ॥ ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निंदन्त्यज्ञानतो जनाः ॥१३३॥ लक्ष्मीहीना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा ॥ त्वं स्वयं सर्वलक्ष्मीश्च वैकुण्ठे कमलालया ॥ १३४ ॥ नारायणांशो भगवाञ्जरत्कारुर्मुनीश्वरः ॥ तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता ॥ १३५ ॥ अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा ॥ मनसादेवि शक्त्या त्वं स्वात्मना सिद्धयोगिनी ॥ १३६ ॥ तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भव ॥ ये भक्त्या मनसां देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम् ॥१३७॥ तेन त्वां मनसां देवीं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ सत्यस्वरूपा देवि त्वं शश्वत्सत्यनिषेवणात् ॥ १३८ ॥ यो हि त्वां भावयेन्नित्यं स त्वां प्राप्नोऽतितत्परः ॥ इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीवरम् ॥ १३९ ॥ प्रजगाम स्वभवनं भूषया सपरिच्छदम् ॥ पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे ॥१४०॥ भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्मान्या वन्द्या च सर्वतः ॥ गोलोकात्सुरभिर्ब्रह्मन् तत्रागत्य सुपूजिताम् ॥ १४१ ॥ तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामाय सादरम् ॥ ज्ञानं च कथयामास गोप्यं सर्वं सुदुर्लभम् ॥ १४२ ॥ तया देवैः पूजिता सा स्वर्लोकं च पुनर्ययौ ॥

इससे तुम मनसादेवी सबकी पूज्या और वन्दिता होनेकी कृपा करो। देवता भक्तिपूर्वक निरन्तर तुम्हारी पूजा करते हैं, इसीसे विद्वान् पुरुष तुम्हें मनसादेवी कहते हैं। हे देवी! तुम सदा सत्यकी उपासिका होनेसे सत्यस्वरूपा हो ॥१३७॥१३८॥ जो पुरुष निरन्तर तुम्हारा ध्यान करते हैं, उन्हें तुम प्राप्त हो जाती हो। हे मुने! इस प्रकार इन्द्र मनसादेवीकी स्तुति करके उनसे वर पाकर अपने भवनको, जो अनेक प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत था, चले गये। इधर देवी मनसाने अपने पुत्रके साथ पिता कश्यपजीके आश्रममें दीर्घकालतक निवास किया ॥१३९॥१४०॥ भ्रातृवर्ग सदा उनका पूजन, अभिवादन और सम्मान करता था। हे ब्रह्मन्! तदनन्तर गोलोकसे सुरभी गौ आयी और अपने दूधसे आदरणीया मनसाको स्नान कराकर सम्मानपूर्वक उनकी पूजा करने लगी। साथ ही, उसने अत्यन्त दुर्लभ एवं गोप्य ज्ञानका भी उपदेश दिया ॥१४१॥१४२॥ तदनन्तर सुरभी तथा देवताओंसे सुपूजित देवी मनसा पुनः स्वर्गलोकको चली गयीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह स्तोत्र पुण्यबीज कहलाता है। जो पुरुष इस स्तोत्रको पढ़कर मनसादेवीकी उपासना करता है, उसे तथा उसके वंशके लिए भी नागसे भय नहीं रह जाता। यदि यह स्तोत्र सिद्ध हो जाय तो उस पुरुषके लिए विष भी अमृततुल्य हो जाता है ॥१४३॥१४४॥ इस स्तोत्रका पाँच लाख जप करनेपर यह सिद्ध हो जाता है। वह मन्त्रसिद्ध पुरुष सर्पशायी तथा सर्पवाहन हो सकता है और उसपर सर्पका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता॥ १४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते नवमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

(आदिगौ सुरभी देवीका उपाख्यान) नारदजीने पूछा—हे ब्रह्मन् ! वह सुरभी देवी कौन थी, जो गोलोकसे आयी थी ? मैं उसके जन्मका चरित्र सुनना चाहता हूँ ॥१॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! देवी सुरभी गोलोकमें प्रकट हुई। वह गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदि, गौओंकी जननी तथा सम्पूर्ण गौओंमें प्रमुख थी ॥ २ ॥ हे मुने ! समस्त

इदं स्तोत्रं पुण्यबीजं मनसा पूजयेत्पठेत् ॥ १४३ ॥ तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥ विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रो यदा भवेत् ॥ १४४ ॥ पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः ॥ सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः ॥ १४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

॥ नारद उवाच ॥ का वा सा सुरभिर्देवी गोलोकादागता च या ॥ तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः ॥ गवां प्रधाना सुरभिर्गोलोके सा समुद्भवा ॥ २ ॥ सर्वादिसृष्टेश्चरितं कथयामि निशामय ॥ बभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥ ३ ॥ एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकी ॥ गोपाङ्गनापरिवृतो पुण्यं वृन्दावनं ययौ ॥ ४ ॥ सहसा तत्र रहसि विजहार स कौतुकात् ॥ बभूव क्षीरपानेच्छा तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥ ५ ॥ ससृजे सुरभिं देवीं लीलया वामपार्श्वतः ॥ वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सो नाम मनोरथः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा सवत्सां श्रीदामा नवभाण्डे दुदोह च ॥ क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥ ७ ॥ तदुत्थं च पयः स्वादु पपौ गोपीपतिः स्वयम् ॥ सरो बभूव पयसां भाण्डविस्रंसनेन च ॥ ८ ॥ दीर्घं च विस्तृतं चैव परितः शतयोजनम् ॥ गोलोकेऽयं प्रसिद्धश्च सोऽपि

गौओंसे भरे वृन्दावनमें सर्वप्रथम उस सुरभीका ही जन्म हुआ था। अतः मैं उसका चरित्र कहता हूँ, सुनो ॥३॥ एक समयकी बात है—राधापति कौतुकी भगवान श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ गोपांगनाओंसे घिरे हुए पुनीत वृन्दावनमें गये ॥४॥ कौतूहलवश थक जानेके बहाने सहसा वे किसी एकान्त स्थानमें बैठ गये और उन स्वेच्छामय प्रभुके मनमें दूध पीनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी ॥५॥ उसी क्षण उन्होंने अपने वामभागसे लीलापूर्वक सुरभी गौको प्रकट कर दिया। बछड़ा उस गौके साथ था। उसके थनोंमें दूध भरा था। उसके बछड़ेका नाम 'मनोरथ' था। ॥६॥ उस सवत्सा गौको सामने देखकर श्रीदामाने एक नूतन पात्रमें उसका दूध दुहा। वह दूध जन्म और मृत्युको दूर करनेवाला एक दूसरा अमृत ही था ॥७॥ स्वयं गोपीपति भगवान श्रीकृष्णने उस स्वादिष्ट दूधको पिया। सहसा हाथसे वह पात्र गिरकर फूटा और दूध धरतीपर फैल गया ॥ ८ ॥ गिरते ही वह दूध सरोवरके रूपमें परिणत हो गया। उसके चारों ओरकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लम्बाई और चौड़ाई सौ-सौ योजन थी। वही सरोवर गोलोकमें 'क्षीरसरोवर'के नामसे प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ वह गोपिकाओं और श्रीराधाके लिए क्रीड़ा-सरोवर बन गया। वे सभी वहाँ मनोरञ्जन करने लगीं। अमूल्य रत्नों द्वारा उस सरोवरके घाट बने थे। भगवान श्रीकृष्णकी इच्छासे उसी समय अकस्मात् असंख्य कामधेनु गौएँ प्रकट हो गयीं। जितनी वे गौएँ थीं, उतने ही गोप भी उस सुरभी गौके रोमकूपसे निकल आये ॥१०॥११॥ फिर उन गौओंसे बहुत-सी संतानें उत्पन्न हुईं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती थी। यों उस सुरभीदेवीसे ही गौओंकी सृष्टि कही जाती है, जिससे सारा जगत् व्याप्त है ॥ १२ ॥ हे मुने! उस समय भगवान श्रीकृष्णने देवी सुरभीकी पूजा की थी। तत्पश्चात् त्रिलोकीमें उस देवीकी दुर्लभ पूजाका प्रचार हो गया ॥ १३ ॥ दीपावलीके दूसरे दिन भगवान श्रीकृष्णकी आज्ञासे देवी सुरभीकी पूजा सम्पन्न हुई थी। यह कथाप्रसङ्ग मैंने अपने पिता धर्मके मुखसे सुना है ॥ १४ ॥ हे महाभाग! देवी सुरभीका ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र तथा पूजाकी विधिका क्रम मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो ॥ १५ ॥ 'ॐ सुरभ्यै नमः' सुरभीदेवीका यह षडक्षर मन्त्र है। एक

क्षीरसरोवरः ॥ ९ ॥ गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा ॥ रत्नेन्द्ररचिता पूर्णं भूता चापीश्वरेच्छया ॥ १० ॥ बभूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः ॥ यावंतस्तत्र गोपाश्च सुरभ्या लोमकूपतः ॥ ११ ॥ तासां पुत्राश्च बहवः संबभूवुरसंख्यकाः ॥ कथिता च गवां सृष्टिस्तया च पूरितं जगत् ॥१२॥ पूजां चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने ॥ ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥ १३ ॥ दीपान्विताऽपरदिने श्रीकृष्णस्याज्ञया हरेः ॥ बभूव सुरभिः पूज्या धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ॥ १४ ॥ ध्यानं स्तोत्रं मूलमंत्रं यद्यत्पूजाविधिक्रमम् ॥ वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि ते ॥ १५ ॥ ॐ सुरभ्यै नम इति मंत्रस्तस्याः षडक्षरः ॥ सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ॥ १६ ॥ ध्यानं यजुर्वेदगीतं तस्याः पूजा च सर्वतः ॥ ऋद्धिदा वृद्धिदा चैव मुक्तिदा सर्वकामदा ॥ १७ ॥ लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम् ॥ गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम् ॥ १८ ॥ पवित्ररूपां पूतां च भक्तानां सर्वकामदाम् ॥ यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभिं भजे ॥१९॥ घटे वा धेनुशिरसि बंधस्तंभे गवामपि ॥ शालग्रामे जलाग्नौ वा सुरभिं पूजयेद्द्विजः ॥ २० ॥ दीपान्वितापरदिने पूर्वाह्णे भक्तिसंयुतः ॥ यः पूजयेच्च सुरभिं स च पूज्यो भवेद्भुवि ॥ २१ ॥ एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया ॥ क्षीरं जहार सुरभिश्चिन्तिताश्च सुरादयः ॥ २२ ॥ ते गत्वा ब्रह्मलोके च ब्रह्माणं तुष्टु-

लाख जप करनेपर मन्त्र सिद्ध होकर भक्तोंके लिए कल्पवृक्षका काम करता है ॥१६॥ ध्यान और पूजन यजुर्वेदमें सम्यक् प्रकारसे वर्णित हैं। जो ऋद्धि, वृद्धि, भुक्ति तथा मुक्तिदायिनी और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है ॥ १७ ॥ जो लक्ष्मीस्वरूपा, श्रीराधाकी सहचरी, गौओंकी अधिष्ठात्री, गौओंकी आदिजननी, पवित्ररूपा, भक्तोंके अखिल मनोरथ सिद्ध करनेवाली हैं तथा जिनसे यह सारा विश्व पावन बना हुआ है, उन भगवती सुरभीकी मैं उपासना करता हूँ ॥ १८ ॥ १९ ॥ कलश, गायके मस्तक, गौओंके बाँधनेके स्तम्भ, शालग्रामकी मूर्ति, जल अथवा अग्निमें देवी सुरभीकी भावना करके द्विज इनकी पूजा करें। दीपमालिकाके दूसरे दिन पूर्वाह्णकालमें भक्तिपूर्वक पूजा करें ॥ २० ॥ दीपमालिकाके दूसरे दिन पूर्वाह्णकालमें भी भक्तिपूर्वक पूजा होनी चाहिए। जो भगवती सुरभीकी पूजा करेगा, वह जगत्में पूज्य हो जायगा ॥२१॥ एक समयकी बात है, वाराहकल्प चल रहा था। देवी सुरभीने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूध देना बन्द कर दिया तो सारी त्रिलोकीमें दूधका अभाव हो गया। तब देवता अत्यन्त चिन्तित होकर ब्रह्मलोकमें गये और उनकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर इन्द्रने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर देवी सुरभीकी स्तुति आरम्भ की ॥२२॥२३॥ इन्द्रने कहा-सुरभी देवीको नमस्कार है। महादेवी सुरभीको बार-बार नमस्कार है। हे जगदम्बिके ! तुम गौओंकी आदि कारण हो, तुम्हें नमस्कार है ॥२४॥ श्रीराधा-प्रियाको नमस्कार है। देवी पद्मांशाको बार-बार नमस्कार है। श्रीकृष्ण-प्रियाको नमस्कार है ॥२५॥ सबके लिए जो कल्पवृक्षस्वरूपा हैं तथा क्षीर, धन और बुद्धि प्रदान करनेके लिए सदा तत्पर रहती हैं, उन भगवती सुरभीको बार-बार नमस्कार है ॥ २६ ॥ शुभा, सुभद्रा और गोप्रदा नामसे शोभा पानेवाली देवीको बार-बार नमस्कार है। यश, कीर्ति और धर्म प्रदान करनेवाली देवीको बार-बार नमस्कार है ॥२७॥ इस प्रकारकी स्तुति सुनते ही जगज्जननी भगवती सुरभी संतुष्ट और प्रसन्न होकर उस ब्रह्म-लोकमें ही प्रकट हो गयीं ॥२८॥ वे सनातनी देवी देवराज इन्द्रको परम दुर्लभ अभीष्ट वर देकर गोलोकको चली गयीं। वे देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ९॥ हे नारद !

वुस्तदा ॥ तदाज्ञया च सुरभिं तुष्टाव पाकशासनः ॥ २३ ॥ पुरंदर उवाच ॥ नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः ॥ गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदंबिके ॥ २४ ॥ नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः ॥ नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः ॥ २५ ॥ कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परे ॥ क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदाय नमो नमः ॥ २६ ॥ शुभायै च सुभद्रायै गोप्रदायै नमो नमः ॥ यशोदायै कीर्तिदायै धर्मदायै नमो नमः ॥ २७ ॥ स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः ॥ आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी ॥ २८ ॥ महेंद्राय वरं दत्त्वा वांछितं चापि दुर्लभम् ॥ जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् ॥ २९ ॥ बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद ॥ दुग्धं घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च ॥ ३० ॥ इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ॥ स गोमान् धनवांश्चैव कीर्तिमान्पुत्रवांस्तथा ॥ ३१ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यंते कृष्णमंदिरे ॥३२॥ सुचिरं निवसेत्तत्र करोति कृष्णसेवनम् ॥ न पुनर्भवनं तत्र ब्रह्मपुत्रो भवेत्ततः ॥३३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नारदनारायणसंवादे नवमस्कन्धे एकोनपंचाशत्तमोध्यायः ॥ ४९ ॥

॥ नारद उवाच ॥ श्रुतं सर्वमुपाख्यानं प्रकृतीनां यथातथम् ॥ यच्छ्रुत्वा मुच्यते जंतुर्जन्मसंसारबंधनात् ॥ १ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि

अब विश्व सहसा दूधसे परिपूर्ण हो गया। जिससे देवता संतुष्ट हुए ॥३०॥ जो मानव इस महान् तथा पवित्र स्तोत्रका भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, वह गोधनसे सम्पन्न, प्रचुर सम्पत्तिमान्, परम यशस्वी और पुत्रवान् हो जायगा ॥३१॥ उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने तथा अखिल यज्ञोंमें दीक्षित होनेका फल सुलभ होगा। ऐसा पुरुष इस लोकके सुख भोगकर अन्तमें भगवान श्रीकृष्णके धाममें चला जाता है ॥ ३२ ॥ चिरकालतक वहाँ रहकर वह भगवानकी सेवा करता है। पुनः इस संसारमें उसे नहीं आना पड़ता। वह ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीका पुत्र होकर वहीं निवास करता है ॥३३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकोनपञ्चाशोऽध्यायः ४९॥

(भगवती श्रीराधा तथा श्रीदुर्गाके मन्त्र-ध्यान-पूजाविधान तथा स्तोत्रका वर्णन) नारदजीने कहा—हे प्रभो ! मूलप्रकृति तथा आराध्या देवियोंके सम्पूर्ण यथार्थ उपाख्यान मैं सुन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चुका, जिनके श्रवणमात्रसे प्राणी जन्म ओर मृत्युके बन्धनसे छूट जाता है ॥ १ ॥ अब मैं भगवती 'श्रीराधा' और 'दुर्गा'के वेदगोप्य रहस्य तथा उनके मन्त्रके अनुष्ठानका प्रयोग जो श्रुतिमें वर्णित है, उसे सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ हे मुनीश्वर ! आपने इन दोनों महादेवियोंकी महिमा भी भलीभाँति बतलायी। भला कौन ऐसा पुरुष है, जो इनकी महिमा सुनकर गद्गद न हो जाय ॥ ३ ॥ जिनके अंशसे यह सारा जगत् उपजा है, जो चराचर जगत्पर शासन करती हैं तथा जिनकी भक्तिसे मानव सहज ही कृतार्थ हो जाता है, उन भगवती श्रीराधा और दुर्गाके विधान-मन्त्र, अनुष्ठान तथा पूजाका प्रकार बतानेकी कृपा कीजिये ॥ ४ ॥ भगवान नारायण कहते हैं--हे नारद ! सुनो, यह देववर्णित रहस्य मैं तुम्हें बताता हूँ। यह सर्वोत्तम एवं परात्पर सार-रहस्य जिस किसीके सम्मुख नहीं कहना चाहिये ॥ ५ ॥ इस रहस्यको सुनकर दूसरोंसे कहना उचित नहीं है। क्योंकि यह अत्यन्त गुप्त रहस्य है। मूलप्रकृतिस्वरूपिणी भगवती भुवनेश्वरीसे जगत्की उत्पत्तिके समय दो शक्तियाँ प्रकट हुईं। श्रीराधा भगवान श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं और श्रीदुर्गा उनकी बुद्धिकी

रहस्यं वेदगोपितम् ॥ राधायाश्चैव दुर्गाया विधानं श्रुतिचोदितम् ॥ २ ॥ महिमा वर्णितोऽतीव भवता परयोर्द्वयोः ॥ श्रुत्वा तं तद्गतं चेतो न कस्य स्यान्मुनीश्वर ॥ ३ ॥ ययोरंशो जगत्सर्वं यन्नियम्यं चराचरम् ॥ ययोर्भक्त्या भवेन्मुक्तिस्तद्विधानं वदाधुना ॥ ४ ॥ नारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं श्रुतिचोदितम् ॥ यन्न कस्यापि चाख्यातं सारात्सारं परात्परम् ॥५॥ श्रुत्वा परस्मै नो वाच्यं यतोऽतीव रहस्यकम् ॥ मूलप्रकृतिरूपिण्याः संविदो जगदुद्भवे ॥ ६ ॥ प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं प्राणबुद्ध्यादिदैवतम् ॥ जीवानां चैव सर्वेषां नियंतृप्रेरकं सदा ॥ ७ ॥ तदधीनं जगत्सर्वं विराडादिचराचरम् ॥ यावत्तयोः प्रसादो न तावन्मोक्षो हि दुर्लभः ॥ ८ ॥ ततस्तयोः प्रसादार्थं नित्यं सेवेत तद्द्वयम् ॥ तत्रादौ राधिकामंत्रं शृणु नारद भक्तितः ॥९॥ ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्नित्यं सेवितो यः परात्परः ॥ श्रीराधेति चतुर्थ्यंतं वह्नेर्जाया ततः परम् ॥ १० ॥ षडक्षरो महामंत्रो धर्माद्यर्थप्रकाशकः ॥ मायाबीजादिकश्चायं वांछाचितामणिः स्मृतः ॥ ११ ॥ वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ॥ एतन्मन्त्रस्य माहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥ १२ ॥ जग्राह प्रथमं मंत्रं श्रीकृष्णो भक्तितत्परः ॥ उपदेशान्मूलदेव्या गोलोके रासमंडले ॥ १३ ॥ विष्णुस्तेनोपदिष्टस्तु तेन ब्रह्मा

अधिष्ठात्री हैं। ये ही दोनों देवियाँ सम्पूर्ण जगत्को नियन्त्रणमें रखतीं और प्रेरणा प्रदान करती हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ विराट् आदि चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् इन्हींके अधीन है। अतः इन भगवती श्रीराधा और दुर्गाको प्रसन्न करनेके लिए निरन्तर उपासना करनी चाहिये। हे नारद ! पहले मैं श्रीराधाका मन्त्र बतलाता हूँ, तुम भक्तिपूर्वक सुनो ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस श्रेष्ठ मन्त्रका ब्रह्मा-विष्णु आदि देवताओंने सदा जप किया है। 'श्रीराधा' इस शब्दके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसके आगे वह्निजाया अर्थात् 'स्वाहा' शब्द जोड़ देना चाहिये। 'श्रीराधायै स्वाहा' यह भगवती राधाका षडक्षर मंत्र धर्म और अर्थका प्रकाशक है। इसीके आदिमें मायाबीज (ह्रीं) का प्रयोग करे तो यह भगवती श्रीराधाका वाञ्छाचिन्तामणि मंत्र बन जाता है (मन्त्र इस प्रकार है--ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा) ॥१०॥११॥ असंख्य मुख और जिह्वावाले लोग भी इस मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन नहीं कर सकते ॥ १२ ॥ सर्वप्रथम भगवान श्रीकृष्णने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भक्तिपूर्वक इस मन्त्रका जप किया था । उस समय भगवान गोलोकमें थे, रासका प्रारम्भ था और मूलप्रकृति श्रीराधादेवीके आदेशसे इस मन्त्रके जपमें भगवानकी प्रवृत्ति हुई थी । फिर भगवान श्रीकृष्णने विष्णुको, विष्णुने विराट् ब्रह्माको, ब्रह्माने धर्मदेवको और धर्मदेवने मुझे इसका उपदेश दिया । इस प्रकार परम्परा चली आया ॥ १३ ॥ १४ ॥ मैं निरन्तर इस मन्त्रका जप करता हूँ । इसीसे ऋषि मेरा सम्मान करते हैं । ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता नित्य प्रसन्न होकर उन भगवती राधाका ध्यान करते हैं ॥१५॥ क्योंकि जो श्रीराधाकी पूजा नहीं करता, वह भगवान श्रीकृष्णकी पूजाका अनधिकारी समझा जाता है । इसलिए संपूर्ण विष्णुभक्तोंको चाहिये कि भगवती श्रीराधाकी उपासना अवश्य करें ॥ १६ ॥ ये देवी भगवान श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री हैं । अतएव भगवान इनके अधीन रहते हैं । भगवान श्रीकृष्णके रासकी ये नित्यस्वामिनी हैं । इन श्रीराधाके विना भगवान श्रीकृष्ण क्षण भर भी नहीं ठहर सकते ॥ १७ ॥ संपूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेके कारण ही इन देवीका नाम श्रीराधा हुआ है । यहाँ जितने मंत्र उद्धृत हैं, उनमें यह जो श्रीराधाका मंत्रका है—इसका ऋषि मैं नारायण हूँ, गायत्री छन्द

विराट् तथा ॥ तेन धर्मस्तेन चाहमित्येषा हि परम्परा ॥ १४ ॥ अहं जपामि तं मन्त्रं तेनाहमृषिरीडितः ॥ ब्रह्माद्याः सकला देवा नित्यं ध्यायन्ति तां मुदा ॥ १५ ॥ कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना ॥ वैष्णवैः सकलैस्तस्मात्कर्तव्यं राधिकार्चनम् ॥ १६ ॥ कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः ॥ रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति ॥१७॥ राध्नोति सकलान्कामांस्तस्माद्राधेति कीर्तिता ॥ अत्रोक्तानां मनूनां च ऋषिरस्म्यहमेव च ॥ १८ ॥ छंदश्च देवी गायत्री देवताऽत्र च राधिका ॥ तारा बीजं शक्तिबीजं शक्तिस्तु परिकीर्तिता ॥ १९ ॥ मूलावृत्त्या षडंगानि कर्तव्यानीतरत्र च ॥ अथ ध्यायेन्महादेवीं राधिकां रासनायिकाम् ॥ २० ॥ पूर्वोक्तरीत्या तु मुने सामवेदे विगीतया ॥ श्वेतचम्पकवर्णाभां शरदिंदुसमाननाम् ॥२१॥ कोटिचन्द्रप्रतीकाशां शरदंभोजलोचनाम् ॥ बिंबाधरां पृथुश्रोणीं काञ्चीयुतनितंबिनीम् ॥ २२ ॥ कुंदपंक्तिसमानाभदंतपंक्तिविराजिताम् ॥ क्षौमाम्बरपरीधानां वह्निशुद्धांशुकान्विताम् ॥ २३ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां करिकुंभयुगस्तनीम् ॥ सदा द्वादशवर्षीयां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ २४ ॥ शृङ्गारसिंधुलहरीं भक्तानुग्रहकातराम् ॥ मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ॥२५॥ सुकुमाराङ्गलतिकां रासमंडलमध्य-

है, श्रीराधा इस मन्त्रकी देवता हैं । तारावीज और शक्तिबीजको इनकी शक्ति कहा गया है ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे मुने ! इसके बाद रासेश्वरी भगवती श्रीराधाका सामवेदमें वर्णित पूर्वोक्त विधिके अनुसार ही ध्यान करना चाहिये ॥ २० ॥ भगवती श्रीराधाका वर्ण श्वेत चम्पकसे समान है । इनका मुख ऐसा प्रतीत होता है कि मानो शरदृऋतुका चन्द्रमा हो ॥ २१ ॥ इनका श्रीविग्रह असंख्य चन्द्रमाके समान चमचमा रहा है । आँखें शरदृऋतुके विकसित कमलकी तुलना कर रही हैं । इनके अधर बिम्बाफलके समान, श्रोणी स्थूल और नितम्ब करधनीसे अलंकृत है ॥ २२ ॥ कुन्दपुष्पके सदृश इनकी स्वच्छ दन्तपंक्तिसे इनकी विचित्र शोभा हो रही है । चिन्मय दिव्य रेशमी वस्त्र इन्होंने पहन रखे हैं ॥ २३ ॥ इनके प्रसन्नमुखपर मुसकान विद्यमान है । इनके विशाल उरोज हैं । रत्नमय भूषणोंसे विभूषित ये देवी सदा बारह वर्षकी अवस्थाकी ही प्रतीत होती हैं ॥ २४ ॥ शृङ्गारकी मानो ये समुद्र हैं । भक्तोंपर कृपा करनेके लिए सदा आतुर रहती हैं । इन्होंने अपने केशोंमें मल्लिका और मालतीकी मालाओंको धारण कर रखा है, जिससे इनकी विचित्र शोभा हो रही है ॥२५॥ इनके सभी अंग अत्यन्त सुकुमार हैं । रासमण्डलमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विराजमान होकर ये देवी सबको अभय प्रदान करती हैं। ये शान्तस्वरूपा देवी सदा शाश्वतयौवना बनी रहती हैं ॥२६॥ गोपियोंकी स्वामिनी बनकर ये रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। ये परमेश्वरी देवी भगवान श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिदेवता हैं। वेदोंने इनकी महिमाका गान किया है ॥२७॥ इस प्रकार हृदयमें ध्यान करके बाहर शालग्रामकी मूर्ति, कलश अथवा आठ दलवाले यन्त्रपर श्रीराधादेवीका आवाहन करके विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए ॥२८॥ क्रम यह है—पहले देवीका आवाहन करे। तत्पश्चात् आसन आदि समर्पण करे। मूलमन्त्र-का उच्चारण करके आसन आदि वस्तुयें भगवतीके सम्मुख उपस्थित करनी चाहिए ॥२९॥ उनके चरणोंमें पाद्य देनेका विधान है। अर्घ्य मस्तकपर देना चाहिए। मुखके सम्मुख जल ले जाकर मूलमन्त्रसे तीन बार आचमन कराना चाहिए ॥३०॥ इसके अनन्तर मधुपर्क निवेदन करके श्रीराधाके लिए एक पयस्विनी गौ देनी चाहिए। तत्पश्चात् उन्हें स्नानगृहमें पधरा-कर वहीं इनकी पूजा सम्पन्न करे ॥३१॥ तैल आदि सुगन्धित वस्तु लगाकर सविधि स्नान करानेके पश्चात् दो वस्त्र अर्पण करे। अनेक प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत करके चन्दन अर्पण

गाम् ॥ वराभयकरां शान्तां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ २६ ॥ रत्नसिंहासनासीनां गोपीमंडलनायिकाम् ॥ कृष्णप्राणाधिकां वेदबोधितां परमेश्वरीम् ॥ २७ ॥ एवं ध्यात्वा ततो बाह्ये शालग्रामे घटेऽथवा ॥ यंत्रे वाऽष्टदले पूजयेत्तु विधानतः ॥ २८ ॥ आवाह्य देवीं तत्पश्चादासनादि प्रदीय-ताम् ॥ मूलमन्त्रं समुच्चार्य चासनादीनि कल्पयेत् ॥ २९ ॥ पाद्यं तु पादयोर्दद्यान्मस्तकेऽर्घ्यं समीरितम् ॥ मुखे त्वाचमनीयं स्यात्त्रिवारं मूलवि-द्यया ॥ ३० ॥ मधुपर्कं ततो दद्यादेकां गां च पयस्विनीम् ॥ ततो नयेत्स्नानशालां तां च तत्रैव भावयेत् ॥ ३१ ॥ अभ्यंगादिस्नानविधिं कल्प-यित्वाऽथ वाससी ॥ ततश्च चन्दनं दद्यान्नानालंकारपूर्वकम् ॥३२॥ पुष्पमाला बहुविधास्तुलसीमञ्जरीयुताः ॥ पारिजातप्रसूनानि शतपत्रादिकानि च ॥३३॥ ततः कुर्यात्पवित्रं तत्परिवारार्चनं विभोः ॥ अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वंगपूजनम् ॥ ३४ ॥ कृत्वा पश्चादष्टदले दक्षिणावर्ततोऽग्रतः ॥ मालावतीमग्रदले वह्निकोणे च माधवीम् ॥३५॥ रत्नमालां दक्षिणे च नैर्ऋत्ये तु सुशीलकाम् ॥ पश्चाद्दले शशिकलां पूजयेन्मतिमान्नरः ॥ ३६ ॥ मारुते पारिजातां चाप्युत्तरे च परावतीम् ॥ ईशानकोणे संपूज्या सुंदरी प्रियकारिणी ॥ ३७ ॥ ब्राह्म्यादयस्तु तद्बाह्येऽप्याशापालांस्तु भूपुरे ॥ वज्रादिकान्यायुधानि देवीमित्थं प्रपूजयेत् ॥ ३८ ॥ ततो देवीं सावरणां गंधाद्यैरुपचारकैः ॥ राजोपचारसहितैः पूजयेन्मतिमान्नरः ॥ ३९ ॥ ततः

करे ॥३२॥ अनेक प्रकारके पुष्पोंकी मालाएँ तथा तुलसी निवेदन करे। पारिजात और कमल आदि नाना प्रकारके पुष्प चढ़ावे। तत्पश्चात् परमेश्वरी श्रीराधाके पवित्र परिवारका अर्चन करना चाहिए। पूर्व, अग्निकोण और वायव्य दिशाके मध्यमें श्रीराधाके दिक्सम्बन्धी अङ्गकी पूजा होती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसके बाद अष्टदल-यन्त्रको आगे करके उसके अग्रभागमें मालावती, अग्निकोणमें माधवी, दक्षिणमें रत्नमाला, नैर्ऋत्यकोणमें सुशीला, पश्चिममें शशिकला, वायव्यकोणमें पारिजाता, उत्तरमें परावती तथा ईशानकोणमें सुन्दरी प्रियकारिणी—इन-इन दिशाओंके दलोंमें बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त देवियोंकी पूजा करें। यन्त्रपर ही दलके बाहर ब्रह्मा आदि देवताओंके सामनेकी भूमिपर दिक्पालों एवं वज्र आदि आयुधोंकी अर्चा करे—इस प्रकार भगवती श्रीराधाकी पूजा करनी चाहिए ॥ ३५–३८ ॥ ये पूर्वकथित देवता देवीके आवरण हैं। इनके साथ गन्ध आदि उत्तम उपचारोंसे बुद्धिमान् पुरुष भगवती श्रीराधाकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्चना करे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर इनके सहस्रनामका पाठ करके स्तुति करनी चाहिए। इन देवीके मन्त्रका यत्नपूर्वक नित्य एक हजार जप करनेका विधान हैं ॥ ४० ॥ इस प्रकार जो पुरुष रासेश्वरी परमपूज्या श्रीराधा देवीकी अर्चना करते हैं, वे भगवान विष्णुके समान होकर सदा गोलोकमें निवास करते हैं ॥४१॥ जो बुद्धिमान् पुरुष शुभ अवसरपर भगवती श्रीराधाका जन्मोत्सव मनाता है, उसे रासेश्वरी श्रीराधा अपना सांनिध्य प्रदान कर देती हैं ॥४२॥ गोलोकमें सदा निवास करनेवाली भगवती श्रीराधा किसी कारणवश वृन्दानमें पधारीं। सो श्री राधा वृन्दावनमें रह गयीं और वृषभानुसुता स्थायीरूपसे गोलोकमें रहने लगीं ॥ ४३ ॥ यहाँ कहे हुए सम्पूर्ण मन्त्रोंकी वर्णसंख्याके अनुसार ऋषियोंने पुरश्चरण विधान बताया है। इसमें मंत्रका दशांश हवन करना चाहिए ॥४४॥ दूध, मधु और घृत आदि स्वादिष्ट पदार्थोंसे युक्त तिलों द्वारा भक्तिसे सम्पन्न होकर हवन करे। नारदजीने कहा–हे मुने ! अब आप सम्यक् प्रकारसे वह स्तोत्र सुनानेकी कृपा करें, जिससे भगवती श्रीराधा प्रसन्न हो जाती हैं ॥४५॥ भगवान् नारायण कहते हैं–हे भगवती परमेशानी ! तुम रासमण्डलमें विराजमान

स्तुवीत देवेशीं स्तोत्रैर्नामसहस्रकैः॥ सहस्रसंख्यं च जपं नित्यं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ४० ॥ य एवं पूजयेद्देवीं राधां रासेश्वरीं पराम् ॥ स भवेद्विष्णुतुल्यस्तु गोलोकं याति संततम् ॥ ४१ ॥ यः कार्तिक्यां पौर्णमास्यां राधाजन्मोत्सवं बुधः॥ कुरुते तस्य सान्निध्यं दद्याद्रासेश्वरी परा ॥ ४२ ॥ केनचित्कारणेनैव राधा वृन्दावने वने ॥ वृषभानुसुता जाता गोलोकस्थायिनी सदा ॥ ४३ ॥ अत्रोक्तानां तु मन्त्राणां वर्णसंख्याविधानतः ॥ पुरश्चरणकर्मोक्तं दशांशं होममाचरेत् ॥ ४४ ॥ तिलैस्त्रिस्वादुसंयुक्तैर्जुहुयाद्भक्तिभावतः ॥ नारद उवाच ॥ स्तोत्रं वद मुने सम्यग्येन देवी प्रसीदति ॥ ४५ ॥ नारायण उवाच ॥ नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि ॥ रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये ॥ ४६ ॥ नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे ॥ ब्रह्मविष्वादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदाम्बुजे ॥ ४७ ॥ नमः सरस्वतीरूपे नमः सावित्रि शंकरि ॥ गंगापद्मावतीरूपे षष्ठि मंगलचण्डिके ॥ ४८ ॥ नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि ॥ नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि ॥ ४९ ॥ मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजामः करुणार्णवाम् ॥ संसारसागरादस्मानुद्धराम्ब दयां कुरु ॥५०॥ इदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेद्राधां स्मरन्नरः ॥ न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचिच्च भवि-

रहती हो, तुम्हें नमस्कार है। हे रासेश्वरि ! भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते हैं, तुम्हें नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे करुणार्णवे ! तुम त्रिलोककी जननी हो, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम मुझपर प्रसन्न होनेको कृपा करो। ब्रह्मा-विष्णु आदि समस्त देवता तुम्हारे चरणकमलोंकी उपासना करते हैं ॥ ४७ ॥ हे जगदम्बे ! तुम सरस्वती, सावित्री, शंकर, गङ्गा, पद्मावती, षष्ठी और मङ्गलचण्डिका–इन रूपोंसे विराजती हो। तुम्हें नमस्कार है ॥ ४८ ॥ हे तुलसीरूपे ! तुम्हें नमस्कार है। हे लक्ष्मीस्वरूपिणी ! तुम्हें नमस्कार है। हे भगवती दुर्गे ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ४९ ॥ हे जननी ! तुम मूलप्रकृतिस्वरूपा एवं करुणाकी सागर हो। हम तुम्हारी उपासना करते हैं। अतः तुम इस संसार-सागरसे हमारा उद्धार करनेकी कृपा करो ॥ ५० ॥ जो पुरुष त्रिकालसंध्याके समय भगवती श्रीराधाका स्मरण करते हुए उनके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके लिए कभी कोई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वस्तु किञ्चिन्मात्र भी दुर्लभ नहीं हो सकती ॥ ५१ ॥ आयु समाप्त होनेपर शरीर त्याग वह बड़भागी पुरुष गोलोकमें जाकर रासमण्डलमें स्थायी स्थान पाता है। यह परम रहस्य जिस किसीके सामने नहीं कहना चाहिये ॥ ५२ ॥ हे विप्रवर ! अब भगवती श्रीदुर्गाकी पूजाका विधान सुनो, जिसके श्रवणमात्रसे घोर विपत्तियाँ स्वयं भाग जाती हैं ॥५३॥ जो इन भगवती दुर्गाकी उपासना न करता हो, ऐसा तो इस जगत्में कोई है ही नहीं। क्योंकि ये सबकी उपास्या, सबकी जननी, शैवी एवं शक्ति देवी बड़ी ही अद्भुत हैं ॥ ५४ ॥ ये भगवती दुर्गा सबकी बुद्धिकी अधिदेवी हैं, अन्तर्यामीरूपसे सबके भीतर इनका वास रहता है और घोर संकटसे रक्षा करनेके कारण जगत्में ये दुर्गा नामसे प्रसिद्ध हैं ॥५५॥ शैव और वैष्णव पुरुषों द्वारा इनकी उपासना होती है। इन मूलप्रकृति श्रीदुर्गादेवीके सत्प्रयाससे जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार होते रहते हैं ॥५६॥ अब इनके उत्तम नवाक्षर मन्त्रका वर्णन करता हूँ। सरस्वती-बीज (ऐं), भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं) और कामबीज (क्लीं)–इन तीनों बीजोंका आदिमें क्रमशः प्रयोग करके 'चामुण्डायै' इस पदको लगाकर, फिर 'विच्चे' यह दो अक्षर जोड़ देना चाहिये।

ष्यति ॥ ५१ ॥ देहांते च वसेन्नित्यं गोलोके रासमण्डले ॥ इदं रहस्यं परमं न चाख्येयं तु कस्यचित् ॥ ५२ ॥ अधुना शृणु विप्रेन्द्र दुर्गादेव्या विधानकम् ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण पलायन्ते महापदः ॥ ५३ ॥ एनां न भजते यो हि तादृङ्नास्त्येव कुत्रचित् ॥ सर्वोपास्या सर्वमाता शैवी शक्तिर्महाद्भुता ॥ ५४ ॥ सर्वबुद्ध्यधिदेवीयमन्तर्यामिस्वरूपिणी ॥ दुर्गसंकटहंत्रीति दुर्गेति प्रथिता भुवि ॥ ५५ ॥ वैष्णवानां च शैवानामुपास्येयं च नित्यशः ॥ मूलप्रकृतिरूपा सा सृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥ ५६ ॥ तस्या नवाक्षरं मन्त्रं वक्ष्ये मन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ वाग्भवं शंभुवनिता कामबीजं ततः परम् ॥ ५७ ॥ चामुंडायै पदं पश्चाद्विच्चे इत्यक्षरद्वयम् ॥ नवाक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतां कल्पपादपः ॥ ५८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाना ऋषयोऽस्य प्रकीर्तिताः ॥ छन्दांस्युक्तानि सततं गायत्र्युष्णिगनुष्टुभः ॥ ५९ ॥ महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वत्यपि देवताः ॥ स्याद्रक्तदंतिकाबीजं दुर्गा च भ्रामरी तथा ॥ ६० ॥ नंदाशाकम्भरीदेव्यौ भीमा च शक्तयः स्मृताः ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोग उदाहृतः ॥ ६१ ॥ ऋषिच्छन्दो दैवतानि मौलौ वक्त्रे हृदि न्यसेत् ॥ स्तनयोः शक्तिबीजानि न्यसेत्सर्वार्थसिद्धये ॥ ६२ ॥ बीजत्रयैश्चतुर्भिश्च द्वाभ्यां सर्वेण चैव हि ॥ षडंगानि मनोः कुर्याज्जाति-

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' यही नवाक्षर मन्त्र है। उपासकोंके लिए यह कल्पवृक्षके समान है ॥५७॥५८॥ इस नवार्णमन्त्रके ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये तीन ऋषि कहे जाते हैं। गायत्री, उष्णिक् और त्रिष्टुप्—ये तीन छन्द हैं ॥५९॥ महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती देवता हैं तथा रक्तदन्तिका, दुर्गा एवं भ्रामरी बीज हैं ॥ ६० ॥ नन्दा, शाकम्भरी और भीमा शक्तियाँ कही गयी हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिए इस मन्त्रका प्रयोग किया जाता है ॥ ६१ ॥ ऋषि, छन्द और देवताका क्रमशः मस्तकपर अर्थात् 'ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि', मुखमें 'गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमो मुखे' और हृदयमें 'महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमो हृदि' कहकर न्यास करे। फिर दोनों स्तनोंमें शक्तित्रय एवं वाम स्तन और दक्षिण स्तनमें बीजत्रयका सर्वार्थसिद्धिके निमित्त न्यास करे ॥६२॥ ऐं ह्रीं क्लीं—तीन बीजमन्त्र, चामुण्डायै ये चार अक्षर तथा विच्चेमें दो अक्षर–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये ही मन्त्रके अङ्ग हैं । प्रत्येकके साथ नमः, स्वाहा, वषट्, हुम् वौषट् और फट्—ये छः जातिसंज्ञक वर्ण लगाकर शिखा, दोनों नेत्र, दोनों कान, नासिका, मुख और गुदा आदि स्थानोंमें इस मन्त्रके वर्णोंका न्यास करना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ध्यान इस प्रकार करे–(महाकालीका ध्यान) तीन नेत्रोंसे शोभा पानेवाली भगवती महाकालीकी मैं उपासना करता हूँ । वे अपने हाथोंमें खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्ड, कपाल और शङ्ख धारण करती हैं ॥ ६५ ॥ त्रिनयना महालक्ष्मी समस्त अङ्गोंमें दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं । उनके शरीरकी कान्ति नील अञ्जनके समान है तथा ये दस मुख और दस पैरोंसे युक्त हैं ॥ ६६ ॥ कमलासन ब्रह्माजीने मधु और कैटभका वध करनेके लिए इन महाकालीको उपासना की थी । इस प्रकार कामबीजस्वरूपिणी भगवती महाकालीका ध्यान करना चाहिये ॥ ६७ ॥ (महालक्ष्मीका ध्यान–) जो अपने हाथोंमें अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुंडिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, घण्टा, मधुपात्र, त्रिशूल, पाश और सुदर्शन चक्र धारण करती हैं. जिनका वर्ण अरुण है तथा जो लाल कमलपर विराजमान हैं, उन महिषासुरमर्दिनी

युक्तानि देशिकः ॥ ६३ ॥ शिखायां लोचनद्वन्द्वे श्रुतिनासास्यनेषु च ॥ गुदे न्यसेन्मन्त्रवर्णान्सर्वेण व्यापकं चरेत् ॥ ६४ ॥ खड्गचक्रगदाबाण-चापानि परिघं तथा ॥ शूलं भुशुण्डीं च शिरः शंखं संदधतीं करैः ॥ ६५ ॥ महाकालीं त्रिनयनां नानाभूषणभूषिताम् ॥ नीलाञ्जनसमप्रख्यां दशपादाननां भजे ॥ ६६ ॥ मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥ एवं ध्यायेन्महाकालीं कामबीजस्वरूपिणीम् ॥ ६७ ॥ अक्षमालां च परशुं गदेषुकुलिशानि च ॥ पद्मं धनुष्कुण्डिकां च दंडशक्तिमसिं तथा ॥ ६८ ॥ चर्माबुजं तथा घंटां सुरापात्रं च शूलकम् ॥ पाशं सुदर्शनं चैव दधती-मरुणप्रभाम् ॥ ६९ ॥ रक्ताम्बुजासनगतां मायाबीजस्वरूपिणीम् ॥ महालक्ष्मीं भजेदेवं महिषासुरमर्दिनीम् ॥ ७० ॥ घंटाशूले हलं शंखं मुसलं च सुदर्शनम् ॥ धनुर्बाणान्हस्तपद्मैर्दधानां कुन्दसन्निभाम् ॥ ७१ ॥ शुम्भादिदैत्यसंहर्त्रीं वाणीबीजस्वरूपिणीम् ॥ महासरस्वतीं ध्यायेत्सच्चिदानंद-विग्रहाम् ॥ ७२ ॥ यन्त्रमस्याः शृणु प्राज्ञ त्र्यस्रं षट्कोणसंयुतम् ॥ ततोऽष्टदलपद्मं च चतुर्विंशतिपत्रकम् ॥ ७३ ॥ भूगृहेण समायुक्तं यन्त्रमेवं विचिन्तयेत् ॥ शालग्रामे घटे वाऽपि यन्त्रे वा प्रतिमासु वा ॥ ७४ ॥ बाणलिंगेऽथवा सूर्ये यजेद्देवीमनन्यधीः ॥ जयादिशक्तिसंयुक्तं पीठे देवीं प्रपूजयेत् ॥ ७५ ॥ पूर्वकोणे सरस्वत्या सहितं पद्मजं यजेत् ॥ श्रिया सह हरिं तत्र नैर्ऋते कोणके यजेत् ॥ ७६ ॥ पार्वत्या सहितं शंभुं वायुकोणे

भगवती महालक्ष्मीकी आराधना करे ॥ ६८–७० ॥ (सरस्वतीका ध्यान–) जो अपने करकमलोंमें घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मुसल, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, कुन्दके समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो शुभ आदि दैत्योंका नाश करनेवाली हैं, बाणीबीज जिनका स्वरूप है तथा जो सच्चिदानन्दमय विग्रहसे सम्पन्न हैं, उन भगवती सरस्वतीका ध्यान करना चाहिये ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ हे प्राज्ञ ! अब यन्त्र बतलाता हूँ सुनो । छः कोणसे युक्त तीन अस्रका यन्त्र होना चाहिये । चारों ओर अष्टदल कमल हो । कमलमें चौबीस पंखुड़ियाँ होनी चाहिये ॥७३॥ वह भूगृहसे युक्त हो । यों यन्त्रके विषयमें चिन्तन करे । शालग्राम, कलश, यन्त्र, प्रतिमा, बाणचिह्न अथवा सूर्यमें एकनिष्ठ भावसे भगवतीकी भावना करके पूजा करे । जया एवं विजया आदि शक्तियोंसे सम्पन्न पीठपर देवीकी अर्चना करना श्रेष्ठ माना गया है ॥७४॥७५॥ यन्त्रके पूर्वकोणमें सरस्वती सहित ब्रह्मा, नैर्ऋत्यकोणमें लक्ष्मीसहित श्रीहरि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा वायव्यकोणमें पार्वतीसहित शम्भुकी पूजा करनी चाहिये। देवीके उत्तर सिंहकी तथा बायीं ओर महिषासुरकी पूजाका नियम है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ छः कोणोंमें क्रमशः नन्दजा, रक्तदन्ता, शाकम्भरी, शिवा, दुर्गा, भीमा और भ्रामरीकी पूजा होनी चाहिये। आठ दलोंमें ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री और चामुण्डाकी अर्चना करे ॥७८॥७९॥ इनके बाद चौबीस पंखुड़ियोंमें पूर्वके क्रमसे विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, पराशक्ति, तृष्णा, शान्ति, जाति, लज्जा, क्षान्ति, श्रद्धा, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति, स्मृति, दया, तुष्टि, माता और भ्रान्ति–इन देवियोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ८०–८२ ॥ तदनन्तर भूगृह-कोणमें गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक और योगिनीकी बुद्धिमान् पुरुष पूजा करे ॥ ८३ ॥ इसके बाद वज्र आदि आयुधोंसहित इन्द्र आदि देवताओंकी पूजा करे। इसी रीतिसे देवीकी सावरण (परिकरोंसहित) पूजा होती है ॥ ८४ ॥ भगवती श्रीदुर्गाकी

समर्चयेत् ॥ देव्या उत्तरतः पूज्यः सिंहो वामे महासुरम् ॥ ७७ ॥ महिषं पूजयेदन्ते षट्कोणेषु यजेत्क्रमात् ॥ नंदजां रक्तदन्तां च तथा शाकंभरीं शिवाम् ॥ ७८ ॥ दुर्गां भीमां भ्रामरीं च ततो वसुदलेषु च ॥ ब्राह्मीं माहेश्वरीं चैव कौमारीं वैष्णवीं तथा ॥ ७९ ॥ वाराहीं नारसिंहीं च ऐन्द्रीं चामुण्डकां तथा ॥ पूजयेच्च ततः पश्चात्तत्त्वपत्रेषु पूर्वतः ॥८०॥ विष्णुमायां चेतनां च बुद्धिं निद्रां क्षुधां तथा ॥ छायां शक्तिं परां तृष्णां शान्तिं जातिं च लज्जया ॥ ८१ ॥ शान्तिं श्रद्धां कीर्तिलक्ष्म्यौ धृतिं वृत्तिं श्रुतिं स्मृतिम् ॥ दयां तुष्टिं ततः पुष्टिं मातृभ्रान्ती इति क्रमात् ॥ ८२ ॥ ततो भूपुरकोणेषु गणेशं क्षेत्रपालकम् ॥ वटुकं योगिनीश्चापि पूजयेन्मतिमान्नरः ॥ ८३ ॥ इन्द्राद्यानपि तद्बाह्ये वज्राद्यायुधसंयुतान् ॥ पूजयेदनया रीत्या देवीं सावरणां ततः ॥ ८४ ॥ राजोपचारान्विविधान्दद्यादम्बाप्रतुष्टये ॥ ततो जपेन्नवार्णं मन्त्रं च मंत्रार्थपूर्वकम् ॥ ८५ ॥ ततः सप्तशतीस्तोत्रं देव्या अग्रे तु संपठेत् ॥ नानेन सदृशं स्तोत्रं विद्यते भुवनत्रये ॥ ८६ ॥ ततश्चानेन देवेशीं तोषयेत्प्रत्यहं नरः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणामालयं जायते नरः ॥ ८७ ॥ इति ते कथितं विप्र श्रीदुर्गाया विधानकम् ॥ कृतार्थता येन भवेत्तदेतत्कथितं तव ॥ ८८ ॥ सर्वे देवा हरिब्रह्मप्रमुखा

प्रसन्न होनेके लिए भाँति-भाँतिके राजोपचार उन्हें अर्पण किये जायँ। तत्पश्चात् अर्थपर ध्यान रखते हुए नवार्ण-मन्त्रका जप करे ॥ ८५ ॥ इसके बाद भगवतीके सामने सप्तशतीस्तोत्रका पाठ करना चाहिये। इस स्तोत्रके समान त्रिलोकीमें दूसरा कोई स्तोत्र नहीं है ॥८६॥ मनुष्यको चाहिये कि प्रतिदिन इसी स्तोत्रसे भगवती श्रीदुर्गाको प्रसन्न करनेमें लगा रहे। ऐसा करनेवाला पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका निवास बन जाता है ॥ ८७ ॥ हे विप्र ! यह भगवती श्रीदुर्गाके पूजनका प्रकार मैं तुमको बता चुका। इसके प्रभावसे लोग कृतार्थ हो जाते हैं। सम्पूर्ण देवता, भगवान श्रीहरि, ब्रह्मा, प्रमुख मनुगण, ज्ञाननिष्ठ मुनि, आश्रमवासी योगी तथा लक्ष्मी आदि देवियाँ—ये सबके-सब इन भगवती दुर्गाका ध्यान करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसी समय जन्मकी सफलता समझी जाती है, जब भगवती श्रीदुर्गाका स्मरण हो जाय ॥ ८८–९० ॥ चौदह मनुओंने भगवती श्रीदुर्गाके चरणोंका ध्यान करनेसे ही मनुपद प्राप्त किया है। इन श्रीदुर्गाकी कृपासे ही देवता अपने-अपने स्थानपर विराजमान रहते हैं ॥ ९१ ॥ हे मुने! यह सम्पूर्ण उपाख्यान परम रहस्यमय है। इसमें देवी प्रकृतिके पाँच रूप्य स्वरूपों तथा उनके अंशोंका वर्णन हुआ है ॥९२॥ इसका नित्य श्रवण करनेसे मनुष्य चारों प्रकारके पुरुषार्थोंको प्राप्त कर लेता है–इसमें संशय नहीं है। मेरी यह वाणी सत्य है, सत्य है ॥ ९३ ॥ इस रहस्यके प्रभावसे सन्तानहीन पुत्रवान् तथा विद्याका अभिलाषी विद्वान् बन जाता है। यही नहीं, जिसको जिस-जिस वस्तुकी कामना होती है, वह इस रहस्यश्रवणके फल-

मनवस्तथा ॥ मुनयो ज्ञाननिष्ठाश्च योगिनश्चाश्रमास्तथा ॥ ८९ ॥ लक्ष्म्यादयस्तथा देव्यः सर्वे ध्यायन्ति तां शिवाम् ॥ तदैव जन्मसाफल्यं दुर्गास्मरणमस्ति चेत् ॥ ९० ॥ चतुर्दशापि मनवो ध्यात्वा चरणपङ्कजम् ॥ मनुत्वं प्राप्तवन्तश्च देवाः स्वं स्वं पदं तथा ॥ ९१ ॥ तदेतत्सर्वमाख्यातं रहस्यातिरहस्यकम् ॥ प्रकृतीनां पञ्चकस्य तदंशानां च वर्णनम् ॥ ९२ ॥ श्रुत्वैतन्मनुजो नित्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ लभते नात्र संदेहः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ९३ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं विद्यार्थी प्राप्नुयाच्च ताम् ॥ यं यं कामं स्मरेद्वापि तं तं श्रुत्वा समाप्नुयात् ॥ ९४ ॥ नवरात्रे पठेदेतद्देव्यग्रे तु समाहितः ॥ परितुष्टा जगद्धात्री भवत्येव हि निश्चितम् ॥ ९५ ॥ नित्यमेकैकमध्यायं पठेद्यः प्रत्यहं नरः ॥ तस्य वश्या भवेद्देवी देवीप्रियकरो हि सः ॥९६॥ शकुनांश्च परीक्षेत नित्यमस्मिन्यथाविधि ॥ कुमारीदिव्यहस्तेन यद्वा बटुकराम्बुजात् ॥९७॥ मनोरथं तु संकल्प्य पुस्तकं पूजयेत्ततः ॥ देवीं च जगदीशानीं प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥ ९८ ॥ सुस्नातां कन्यकां तत्रानीयाभ्यर्च्य यथाविधि ॥ शलाकां रोपयेन्मध्ये तथा स्वर्णेन निर्मिताम्

स्वरूप उस-उस मनोरथको प्राप्त कर लेता है ॥ ९४ ॥ नवरात्रमें मनको सावधान करके भगवती दुर्गाके सम्मुख इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये। इससे जगद्धात्री भगवती जगदम्बा अवश्य ही सन्तुष्ट हो जाती हैं ॥ ९५ ॥ जो पुरुष प्रतिदिन इस स्तोत्रके एक अध्यायका भी पाठ करता है तो भगवती उसके अनुकूल हो जाती हैं। क्योंकि यह स्तोत्र देवीको प्रसन्न करनेका परम साधन है ॥९६॥ इस विषयमें यथाविधि शकुनकी परीक्षा करनी चाहिये। किसी कुमारीके दिव्य हाथ अथवा बालकके करकमलसे यह परीक्षा होती है ॥ ९७ ॥ अपने मनोरथके निमित्त संकल्प करके पुस्तककी अर्चना करनेका विधान है। तत्पश्चात् जगदीश्वरी देवी जगदम्बाको पुनः पुनः प्रणाम करे ॥ ९८ ॥ उस समय एक कन्याको भलीभाँति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्नान कराकर वहाँ विराजमान करे। उसकी सविधि पूजा करके उसे स्वर्णशलाका अर्पण करे ॥ ९९ ॥ इससे यदि वह कन्या प्रसन्न हो तो भगवतीकी प्रसन्नता, अप्रसन्न हो तो भगवतीकी अप्रसन्नता तथा उदासीन हो तो भगवतीकी उदासीनता समझनी चाहिये। देवीकी प्रसन्नता, अप्रसन्नता अथवा उदासीनताके अनुसार कर्मका शुभ-अशुभ फल होना निश्चित

॥ ६६ ॥ शुभं वाऽप्यशुभं तत्र यदायाति च तद्भवेत् ॥ उदासीनेऽप्युदासीनं कार्यं भवति निश्चितम् ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

बाणाक्षिरसरामैस्तु सार्धैः (३६२५॥) श्लोकैः सुविस्तरैः ॥ देवीभागवतस्यास्य नवमः स्कन्ध ईरितः ॥ ९ ॥

है ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५० ॥ देवीभागवतके इस नवमस्कन्धमें व्यासजीने तीन हजार छ सौ साढ़े पचीस श्लोक लिखे हैं ॥ ९ ॥

॥ समाप्तोऽयं नवमः स्कन्धः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते--

श्रीमद्देवीभागवते नवमः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते दशमः स्कन्धः ।

पण्डित-पुस्तकालय काशी

१३१५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति, उनके द्वारा भगवतीकी आराधना और वरप्राप्ति) नारदजीने कहा—सबका पालन करनेमें तत्पर हे भगवान् नारायण! हे धरणीके आधार! आपने पापनाशक देवीचरित कहा ॥ १ ॥ अब जिन-जिन मन्वन्तरोंमें जिस-जिस आकारसे उन महेश्वरीका जैसा प्रादुर्भाव हुआ हो, जगदम्बाके माहात्म्यसे संयुक्त उन सम्पूर्ण प्रसङ्गोंका वर्णन करनेकी कृपा कीजिये। साथ ही जैसे और जिस-जिस प्रकारसे भगवतीकी पूजा तथा स्तुति हुई हो और उन भक्तवत्सला देवीने भक्तोंका जिस-जिस प्रकार मनोरथ पूर्ण किया हो, वह सब चरित्र भी मैं सुनना चाहता हूँ। हे कृपासिन्धो! आप उसका वर्णन कीजिए। जिसे सुनकर सुख प्राप्त हो। भगवान् नारायण कहते हैं—हे महर्षे! तुम पापोंका संहार करनेवाला देवीमाहात्म्य सुनो ॥ २-५ ॥ इस माहात्म्य-श्रवणके प्रभावसे भक्तोंके हृदयमें श्रद्धाका प्रादुर्भाव होता है और यह संपत्तिकी प्राप्तिका परम महान् साधन है। सर्वप्रथम जगत्के आदिकारण और महान् तेजस्वी लोकपितामह ब्रह्माजी चक्रपाणि देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिके नाभिकमलसे प्रकट हुए। हे महामते! उस समय ब्रह्माजी अपने चार मुखोंसे शोभा पा रहे थे।

॥ नारद उवाच ॥ नारायण धराधार सर्वपालनकारण ॥ भवतोदीरितं देवीचरितं पापनाशनम् ॥ १ ॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु सा देवी यत्स्वरूपिणी ॥ यदाकारेण कुरुते प्रादुर्भावं महेश्वरी ॥ २ ॥ तान्नः सर्वान्समाख्याहि देवीमाहात्म्यमिश्रितान् ॥ यथा च येन येनेह पूजिता संस्तुताऽपि हि ॥ ३ ॥ मनोरथान्पूरयति भक्तानां भक्तवत्सला ॥ तन्नः शुश्रूषमाणानां देवीचरितमुत्तमम् ॥ ४ ॥ वर्णयस्व कृपासिंधो येनाप्नोति सुखं महत ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आकर्णय महर्षे त्वं चरितं पापनाशनम् ॥ ५ ॥ भक्तानां भक्तिजननं महासंपत्तिकारकम् ॥ जगद्योनिमहातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ६ ॥ आविरासीन्नाभिपद्माद्देवदेवस्य चक्रिणः ॥ स चतुर्मुख आसाद्य प्रादुर्भावं महामते ॥७॥ मनुं स्वायभुवं नाम जनयामास मानसात् ॥ स मानसो मनुः पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ८ ॥ शतरूपां च तत्पत्नीं जज्ञे धर्मस्वरूपिणीम् ॥ स मनुः क्षीरसिन्धोश्च तीरे परमपावने ॥ ९ ॥ देवीमाराधयामास महाभाग्यफलप्रदाम् ॥ मूर्तिं च मृन्मयीं तस्या विधाय पृथिवीपतिः ॥१०॥ उपासतेस्म तां देवीं वाग्भवं स जपन् रहः ॥ निराहारो जितश्वासो नियमव्रतकर्शितः ॥ ११ ॥ एकपादेन संतिष्ठन् धरायामनिशं स्थिरः ॥ शतवर्षं जितः कामः क्रोधस्तेन महात्मना ॥ १२ ॥ भेजे स्थावरतां देव्याश्चरणौ चिन्तयन् हृदि ॥ तस्य तत्तपसा देवी प्रादुर्भूता जगन्मयी ॥१३॥ उवाच वचनं दिव्यं वरं वरय भूमिप ॥ तत आनं-

उन्होंने स्वायम्भुव मनुको अपने मानसपुत्रके रूपमें प्रकट किया ॥ ६-८ ॥ फिर ब्रह्माजीने धर्मस्वरूपिणी शतरूपाको अपने मनसे प्रकट किया और उसे स्वायम्भुव मनुकी पत्नी बनाया। तब मनु क्षीरसागरके परमपावन तटपर ही महान् भाग्यफल प्रदान करनेवाली देवीकी आराधना करने लगे ॥ ९ ॥ महाराज स्वायम्भुव मनुने धर्मस्वरूपा देवीकी मृन्मयी मूर्ति बनाकर उनकी पूजा की ॥ १० ॥ उन्होंने एकान्तमें रहकर देवीका स्मरण करते हुए उनके वाग्भव मन्त्रका जप आरम्भ किया। वे निराहार रहते थे, इन्द्रियाँ उनके वशमें थीं और व्रत तथा नियमका पालन करते-करते बहुत दुर्बल हो गये थे ॥ ११ ॥ तदनन्तर वे मनु पृथ्वीपर एक पगसे खड़े होकर निरन्तर तपस्या करने लगे। उन महात्माने काम और क्रोधपर विजय प्राप्त करके सौ वर्षों तक तप किया ॥ १२ ॥ अपने हृदयमें भगवती जगदंबाके चरणोंका चिन्तन करते हुए वे ऐसे अटल-अचल प्रतीत होने लगे,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानो कोई स्थावर प्राणी हो। उनकी उस कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर जगन्मयी भगवती जगदम्बा प्रकट हो गयीं और उन्होंने यह दिव्य वचन कहा--'हे राजन्! तुम वर माँगो।' देवीके उस आनन्दप्रद वचनको सुनकर महाराज स्वायम्भुव मनुने अपने हृदयगत तथा देवताओंके लिए परम दुर्लभ श्रेष्ठ वरकी याचना की। स्वायम्भुव मनुने कहा--विशाल नेत्रोंसे शोभा पानेवाली हे देवी! तुम्हारी जय हो। समस्त प्राणियोंके भीतर निवास करनेवाली हे देवी! तुम्हारी जय हो ॥ १३-१५ ॥ तुम परम मान्य, पूज्य, जगत्को धारण करनेवाली तथा संपूर्ण मंगलोंके लिए भी परम मंगल हो। तुम्हारी भौंहोंके संकेतमात्रसे पद्मयोनि ब्रह्मा जगत्की सृष्टि, भगवान विष्णु पालन तथा रुद्र क्षणभरमें संहारका कार्य सम्पन्न कर देते हैं। तुम्हारी ही आज्ञासे शचीपति इन्द्र त्रिलोकीपर शासन करते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ तुम्हारे आज्ञानुसार यमराज दंड लेकर प्राणियोंको दंड प्रदान करते हैं। जलचर प्राणियोंके स्वामी वरुण हम-जैसे व्यक्तियोंके पालनमें तत्पर रहते हैं ॥१८॥ कुबेर सम्पत्तियोंके अविनाशी अधिपति बने हुए हैं। अग्नि, नैर्ऋत, वायु, ईशान और शेषनाग-ये सब तुम्हारे ही अंश हैं और

दजनकं श्रुत्वा वाक्यं महीपतिः ॥१४॥ वरयामास तान् हृत्स्थान् वरानमरदुर्लभान् ॥ मनुरुवाच ॥ जय देवि विशालाक्षि जय सर्वान्तरस्थिते ॥१५॥ मान्ये पूज्ये जगद्धात्रि सर्वमंगलमंगले ॥ त्वत्कटाक्षावलोकेन पद्मभूः सृजते जगत् ॥ १६ ॥ वैकुंठः पालयत्येव हरः संहरते क्षणात् ॥ शचीपतिस्त्रिलोक्याश्च शासको भवदाज्ञया ॥ १७ ॥ प्राणिनः शिक्षयत्येव दण्डेन च परेतराट् ॥ यादसामधिपः पाशी पालनं मादृशामपि ॥ १८ ॥ कुरुते स कुबेरोऽपि निधीनां पतिरव्ययः ॥ हुतभूङ्नैर्ऋतो वायुरीशानः शेष एव च ॥ १९ ॥ त्वदंशसंभवा एव त्वच्छक्तिपरिबृंहिताः ॥ अथापि यदि मे देवि वरो देयोऽस्ति साम्प्रतम् ॥ २० ॥ तदा प्रह्वाः सर्गकार्ये विघ्ना नश्यन्तु मे शिवे ॥ वाग्भवस्यापि मन्त्रस्य ये केचिदुपसेविनः ॥ २१ ॥ तेषां सिद्धिः सत्वराऽपि कार्याणां जायतामपि ॥ ये संवादमिमं देवि पठंति श्रावयंति च ॥ २२ ॥ तेषां लोके भुक्तिमुक्ती सुलभे भवतां शिवे ॥ जातिस्मरत्वं भवतु वक्तृत्वं सौष्ठवं तथा ॥ २३ ॥ ज्ञानसिद्धिः कर्ममार्गसंसिद्धिरपि चास्तु हि ॥ पुत्रपौत्रसमृद्धिश्च जायेदित्येव मे वचः ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सबमें तुम्हारी ही शक्ति व्याप्त है। तथापि हे देवी! यदि अब तुम मुझे कुछ वर देना चाहती हो तो हे शिवे! नम्रतापूर्वक मेरी यही प्रार्थना है कि मेरी सृष्टिके कार्यमें किसी प्रकारका विघ्न न उपस्थित हो। जो कोई पुरुष इस वाग्भव मन्त्रको उपासना करे, उसके कार्य सिद्ध होनेमें किंचिन्मात्र विलम्ब न हो। हे देवी! तुम्हारे इस संवादको जो पढ़ें-सुनें, उन्हें भुक्ति और मुक्ति सुलभ हो जायँ। हे शिवे! तुम्हारे उपासकको पूर्वजन्मोंकी स्मृति बनी रहे और वह भाषण करनेमें परम प्रवीण हो ॥ १९-२३ ॥ उसे ज्ञानसिद्ध और कर्मयोगकी सिद्धि भी प्राप्त हो जाय तथा तुम्हारा उपासक पुत्र, पौत्र और समृद्धिसे सदा सम्पन्न रहे, यही मेरी प्रार्थना है ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(भगवतीका विन्ध्यगिरिपर पधारना) श्रीदेवीने कहा—हे भूमिपाल ! हे महाबाहो ! हे मनुजाधिप ! तुम्हारी प्रार्थनाके अनुसार ही सब कुछ होगा ॥१॥ प्रधान-प्रधान दैत्योंका संहार करना मेरा स्वाभाविक गुण है । मेरी शक्ति कभी विफल नहीं होती । तुमने जो वाग्भव मन्त्रका जप किया है और तपस्या की है, इससे से अवश्य ही तुमपर परम प्रसन्न हूँ ॥ २ ॥ तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होगा और वंशकी वृद्धि करनेवाले पुत्र उत्पन्न होंगे । हे वत्स ! मुझमें तुम्हारी भक्ति होगी और अन्तमें तुम परम पदको प्राप्त करोगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार महात्मा स्वायम्भुव मनुको वर देकर भगवती महादेवी मनुके देखते-ही-देखते विन्ध्याचल पर्वतपर चली गयीं ॥४॥ यह वही विन्ध्याचल है, जा सूर्यका मार्ग रोकनेके लिए आकाशतक बढ़ा चला जा रहा था और अगस्त्यजीने उसे रोक दिया था ॥ ५ ॥ हे मुनिवर ! वर देनेवाली ये वे ही भगवती विंध्यवासिनी हैं, जो भगवान श्रीकृष्णकी अनुजा थीं । संपूर्ण प्राणियोंसे पूज्या होकर वे उस पर्वतकी शोभा बढ़ाने लगीं ॥ ६ ॥ ऋषियोंने पूछा—हे सूतजी ! वह विंध्याचल कौन था ? क्यों वह आकाशतक बढ़ गया था ? उसने क्यों सूर्यके मार्गको रोकनेका दुष्प्रयत्न

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ भूमिपाल महाबाहो सर्वमेतद्भविष्यति ॥ यत्त्वया प्रार्थितं तत्ते ददामि मनुजाधिप ॥ १ ॥ अहं प्रसन्ना दैत्येन्द्रनाशनाऽमोघविक्रमा ॥ वाग्भवस्य जपेनैव तपसा ते सुनिश्चितम् ॥ २ ॥ राज्यं निष्कंटकं तेऽस्तु पुत्रा वंशकरा अपि ॥ मयि भक्तिर्दृढा वत्स मोक्षान्ते सत्पदे भवेत् ॥ ३ ॥ एवं वरान्महादेवी तस्मै दत्त्वा महात्मने ॥ पश्यतस्तु मनोरेव जगाम विंध्यपर्वतम् ॥ ४ ॥ योऽसौ विंध्याचलो रुद्धः कुम्भोद्भवमहर्षिणा ॥ भानुमार्गावरोधार्थं प्रवृत्तो गगनं स्पृशन् ॥ ५ ॥ सा विंध्यवासिनी विष्णोरनुजा वरदेश्वरी ॥ बभूव पूज्या लोकानां सर्वेषां मुनिसत्तम ॥ ६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कोऽसौ विंध्याचलः सूत किमर्थं गगनं स्पृशन् ॥ भानुमार्गावरोधं च किमर्थं कृतवानसौ ॥ ७ ॥ कथं च मैत्रावरुणिः पर्वतं तं महोन्नतम् ॥ प्रकृतिस्थं चकारेति सर्वं विस्तरतो वद ॥ ८ ॥ न हि तृप्यामहे साधो त्वदास्यगलितामृतम् ॥ देव्याश्चरित्ररूपाख्यं पीत्वा तृष्णा प्रवर्धते ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ आसीद्विन्ध्याचलो नाम मान्यः सर्वधराभृताम् ॥ महावनसमूहाढ्यो महापादपसंवृतः ॥ १० ॥ सुपुष्पितैरनेकैश्च लतागुल्मैस्तु संवृतः ॥ मृगा वराहा महिषा व्याघ्राः शार्दूलका अपि ॥ ११ ॥ वानराः शशका ऋक्षाः शृगालाश्च समंततः ॥ विचरन्ति सदा हृष्टाः पुष्टा एव महोद्यमाः ॥ १२ ॥ नदीनदजलाक्रान्तो देवगंधर्वकिन्नरैः ॥ अप्सरोभिः किंपुरुषैः सर्वकामफलद्रुमैः ॥ १३ ॥ एतादृशे विंध्यनगे

किया ? ॥ ७ ॥ उस उन्नत पर्वतको अगस्त्यजीने क्यों नहीं आगे बढ़ने दिया ? यह सब प्रसङ्ग कहनेको कृपा कीजिये ॥ ८ ॥ हे साधो ! आपके मुखसे निकलनेवाले देवीचरित्ररूपी वचनामृतको निरन्तर पीते हुए भी हम तृप्त नहीं हो पाते । उसे पी-पीकर प्यास उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है ॥ ९ ॥ सूतजी कहते हैं—हे ऋषियां ! संपूर्ण पर्वतोंमें श्रेष्ठ विंध्याचल नामका पर्वत था । उसपर बड़े-बड़े वन थे । असंख्य वृक्षोंसे वह घिरा था ॥ १० ॥ पुष्पोंसे लदी हुई लताओं और वल्लरियोंने उसे आच्छादित कर रखा था । मृग, वाराह, महिष, व्याघ्र, शार्दूल, वानर, खरगोश, भालू और शृगाल—ये अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट एवं अत्यन्त चञ्चल वनपशु उस पर्वतपर चारों ओर सदा घूमते रहते थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ नदियों और नदोंके जलसे वह व्याप्त था । देवता, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा तथा सबको मनोऽभिलषित फल देनेवाले वृक्ष उस विन्ध्यगिरिको सुशोभित कर रहे थे ॥ १३ ॥ एक समयकी बात है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवर्षि नारदजी अत्यन्त प्रसन्न होकर इच्छापूर्वक भूमण्डलपर विचरते हुए उस सर्वगुणसंपन्न विन्ध्य पर्वतपर पहुँच गये ॥ १४ ॥ देवर्षि नारदजीको देखकर बुद्धिमान् विन्ध्याचल तुरन्त उठ खड़ा हुआ और उसने मुनिको उत्तम आसनपर बैठाकर पाद्य और अर्घ्य अर्पण किया ॥ १५ ॥ जब प्रसन्न होकर नारदजी सुखपूर्वक बैठ गये, तब पर्वतराजने उनसे कहा । विन्ध्याचलने पूछा—हे देवर्षे ! कहिए, आपका श्रेष्ठ आगमन कहाँसे हुआ है ? ॥ १६ ॥ आपके पधारनेसे मेरा गृह पवित्र हो गया । जैसे सूर्य जगत्के कल्याणार्थ भ्रमण करते हैं, वैसे ही आपका भ्रमण देवताओंको अभय प्रदान करनेके लिए ही होता है ॥ १७ ॥ हे नारदजी ! आप अपने मनकी बात मुझे बतानेकी कृपा कीजिए । नारदजी बोले—हे पर्वतराज ! इस समय मैं सुमेरुगिरिसे आ रहा हूँ ॥ १८ ॥ वहाँ मैंने इन्द्र, अग्नि, यम और वरुणके बहुत-से लोक देखे हैं । संपूर्ण लोकपालोंके असंख्य भवन चारों ओर मुझे दृष्टिगोचर

कदाचित्पर्यटन्महीम् ॥ देवर्षिः परमप्रीतो जगाम स्वेच्छया मुनिः ॥ १४ ॥ तं दृष्ट्वा स नगो मंक्षु तूर्णमुत्थाय संभ्रमात् ॥ पाद्यमर्घ्यं तथा दत्त्वा वरासनमथार्पयत् ॥ १५ ॥ सुखोपविष्टं देवर्षिं प्रसन्नं नग ऊचिवान् ॥ विंध्य उवाच ॥ देवर्षे कथ्यतां जात आगः कुत उत्तमः ॥ १६ ॥ तवागमनतो जातमनर्घ्यं मम मंदिरम् ॥ तव चंक्रमणं देवाभयार्थं हि यथा रवेः ॥ १७ ॥ अपूर्वं यन्मनोवृत्तं तद्ब्रूहि मम नारद ॥ नारद उवाच ॥ ममागमनमिंद्रारे जातं स्वर्णगिरेरथ ॥ १८ ॥ तत्र दृष्टा मया लोकाः शक्राग्नियमपाशिनाम् ॥ सर्वेषां लोकपालानां भवनानि समंततः ॥ १९ ॥ मया दृष्टानि विन्ध्याग नानाभोगप्रदानि च ॥ इति चोक्त्वा ब्रह्मयोनिः पुनरुच्छ्वासमाविशत् ॥ २० ॥ उच्छ्वसंतं मुनिं दृष्ट्वा पुनः पप्रच्छ शैलराट् ॥ उच्छ्वासकारणं किं तद्ब्रूहि देवऋषे मम ॥ २१ ॥ इत्याकर्ण्य नगस्योक्तं देवर्षिरमितद्युतिः ॥ अब्रवीच्छ्रूयतां वत्स ममोच्छ्वासस्य कारणम् ॥ २२ ॥ गौरीगुरुस्तु हिमवाञ्छिवस्य श्वशुरः किल ॥ संबंधित्वात्पशुपतेः पूज्य आसीत्क्ष्माभृताम् ॥ २३ ॥ एवमेव च कैलासः शिवस्यावसथः प्रभुः ॥ पूज्यः पृथ्वीभृतां जातो लोके पापौघदारणः ॥ २४ ॥ निषधः पर्वतो नीलो गंधमादन एव च ॥ पूज्याः स्वस्थानमासाद्य सर्व एव क्ष्माभृतः ॥ २५ ॥ यं पर्येति च विश्वात्मा सहस्रकिरणः स्वराट् ॥ सग्रहर्क्षगणोपेतः सोऽयं कनकपर्वतः ॥ २६ ॥ आत्मानं मनुते श्रेष्ठं वरिष्ठं च

हुए हैं ॥१९॥ हे पर्वतराज विन्ध्य ! वहाँ मैंने नाना प्रकारके भोग प्रदान करनेवाले देवताओंको भी देखा । यह कहकर उन्होंने लंबी साँस ली । उन्हें इस प्रकार साँस लेते देखकर शैलराज विन्ध्यने कहा—'हे देवर्षे ! आप अपने उच्छ्वासका कारण बताइए । विन्ध्यका प्रश्न सुनकर अपरिमित तेजस्वी नारदजी बोले—हे वत्स ! मेरे उच्छ्वासका कारण सुनो ॥ २०-२२ ॥ गौरीके पिता हिमालय शंकरजीके ससुर हैं । शिवजीके संबन्धसे वे सभी पर्वतोंके पूज्य बन गये हैं ॥२३॥ इसी प्रकार शिवजीका निवासस्थान कैलास भी समस्त पर्वतोंका पूजनीय और पापसमूहका विनाशक हो गया ॥ २४ ॥ ऐसे ही निषध, नील और गन्धमादन पर्वत भी अपनी-अपनी जगह पूज्य बने बैठे हैं ॥ २५ ॥ और फिर सुमेरुपर्वतका क्या कहना है । समस्त विश्वके आत्मा, स्वर्गके राजा एवं सहस्रकिरणधारी भगवान् सूर्य सभी ग्रहों और नक्षत्रोंको अपने साथ लेकर उस पर्वतकी परिक्रमा करते हैं ॥ २६ ॥ इसीसे वह सभी पर्वतोंमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनेको श्रेष्ठ और महान् मानता है। वह कहता है कि सब पहाड़ोंका अग्रणी मैं ही हूँ। संसारमें मेरे समान कोई भी पर्वत नहीं है ॥ २७ ॥ उसके इस अभिमानका स्मरण आनेसे ही मैंने ठंडी साँस ली है। अस्तु, हे पर्वतराज! हम तपस्वियोंको इन बातोंसे क्या काम? ॥ २८ ॥ प्रसंगवश मैंने यह बात कह दी। अच्छा, अब मैं अपने घर जा रहा हूँ ॥ इति श्रीदेवीभागवते दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

(विन्ध्य द्वारा सूर्यका मार्गावरोध) सूतजी कहते हैं—हे ऋषियो! विंध्यगिरिसे मिलकर परम स्वतन्त्र देवर्षि नारदजी तो ब्रह्मलोक पधार गये ॥ १ ॥ इससे विंध्यके हृदयमें अशान्ति समा गयी। वह नित्य इसी बातको सोचने लगा—॥ २ ॥ किस उपायसे मैं सुमेरु पर्वतको जीत लूँ। उसे परास्त किये बिना मुझे न शान्ति मिलेगी न मनको चैन ॥३॥ मेरे उत्साह,

धराभृताम् ॥ सर्वेषामहमेवाग्रयो नास्ति लोकेषु मत्समः ॥ २७ ॥ एवं मानाभिमानं तं स्मृत्वोच्छ्वासो मयोज्झितः ॥ अस्तु नैतावता कृत्यं तपोबलवतां नग ॥ २८ ॥ प्रसंगतो मयोक्तं ते गमिष्यामि निजं गृहम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ सूत उवाच ॥ एवं समुपदिश्यायं देवर्षिः परमः स्वराट् ॥ जगाम ब्रह्मणो लोकं स्वैरचारी महामुनिः ॥ १ ॥ गते मुनिवरे विंध्यश्चिंतां लेभेऽनपायिनीम् ॥ नैव शांतिं स लेभे च सदांतःकृतशोचनः ॥२॥ कथं किं त्वत्र मे कार्यं कथं मेरुं जयाम्यहम् ॥ नैव शांतिं लभे नापि स्वास्थ्यं मे मानसे भवेत् ॥ ३ ॥ (धिगुत्साहं च मानं च धिङ्मे कीर्तिं च धिक्कुलम् ॥) धिग्बलं मे पौरुषं धिक् स्मृतं पूर्वैर्महात्मभिः ॥ एव चिंतयमानस्य विंध्यस्य मनसि स्फुटम् ॥ ४ ॥ प्रादुर्भूता मतिः कार्ये कर्तव्ये दोषकारिणी ॥ मेरुप्रदक्षिणां कुर्वन्नित्यमेव दिवाकरः ॥ ५ ॥ सग्रहर्क्षगणोपेतः सदा दृप्यत्ययं नगः ॥ तस्य मार्गस्य संरोधं करिष्यामि निजैः करैः ॥ ६ ॥ तदा निरुद्धो द्युमणिः परिक्रामेत्कथं नगम् ॥ एवं मार्गे निरुद्धे तु मया दिनकरस्य च ॥ ७ ॥ भग्नदर्पो दिव्यनगो भविष्यति विनिश्चितम् ॥ एवं निश्चित्य विंध्याद्रिः खं स्पृशन्ववृधे भुजैः ॥ ८ ॥ महोन्नतैः शृङ्गवरैः सर्वं व्याप्य व्यवस्थितः ॥ कदोदेष्यिति भास्वांस्तं रोधयष्याम्यहं कदा ॥९॥ एवं संचिन्तयानस्य सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ प्रभातं विमलं जज्ञे दिशो वितिमिराः करैः ॥ १० ॥ कुर्वन्स निर्गतो भानुरुदयायोदये गिरौ ॥ प्रकाशतेस्म विमलं नभो भानुकरैः शुभैः ॥ ११ ॥ विकासं नलिनी भेजे

सम्मान, कीर्ति और कुलको धिक्कार है। मेरे पराक्रम और पुरुषार्थको धिक्कार है। यह सोचते-सोचते विन्ध्यके मनमें दूषित बुद्धिका उदय हो गया। उसने सोचा—'ये सूर्य ग्रहों और नक्षत्रोंसे संपन्न होकर सुमेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते हैं। इसी कारण वह पर्वत अपनेको सर्वश्रेष्ठ मानता है। जब मैं अपने ऊँचे शृङ्गोंसे सूर्यके मार्गको ही रोक दूँगा, तब देखूँगा कि रुके हुए ये सूर्यदेव किस प्रकार उसकी परिक्रमा करते हैं? इस प्रकार जब मैं सूर्यका मार्ग रोक दूँगा, तब निश्चित है कि सुमेरुपर्वतका सारा अभिमान चूर-चूर हो जायगा।' यों विचार करके विन्ध्यगिरिने अपने शिखरोंको आकाशतक फैलाया ॥ ४—८ ॥ वह अपने उत्तुङ्ग शृङ्गोंसे सूर्यके मार्गको रोककर प्रतीक्षा करने लगा कि कब सूर्योदय हो और कब मैं उसे रोकूँ ॥ ९ ॥ इस प्रकार विचार करते-करते रात्रि व्यतीत हो गयी और विमल प्रभातकाल आया। सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकारको दूर करने लगे ॥ १० ॥ उदयाचलपर उदय होनेके लिए उनकी झलक मिलने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगी। उनकी शुभ्र किरणोंसे आकाश प्रकाशित हो उठा ॥ ११ ॥ कमल खिलने लगे और कुमुदिनी संकुचित होने लगी। संपूर्ण प्राणी अपने-अपने कार्योंमें तत्पर हो गये ॥ १२ ॥ प्राह्ण, अपराह्ण और मध्याह्नके विभागसे देवताओंके लिए हव्य, कव्य एवं भूतबलि आदिका संवर्धन करते हुए प्रकाशमान सूर्य क्रमशः चिरवियोगिनो प्राची और अग्नि-दिशाको आश्वासन देकर दक्षिण दिशाके लिए प्रस्थित हुए। त्यागी हुई दिशाएँ वियोगकी अग्निसे इस प्रकार संतप्त हो उठीं, मानो विरहसे आतुर कामिनियाँ हों, किन्तु सूर्य आगे नहीं बढ़ सके ॥ १३–१५ ॥ अरुणने कहा—सुमेरुसे स्पर्धा करके विन्ध्यपर्वतने आपके मार्गको रोक दिया है ॥ १६ ॥ अरुणकी बात सुनकर सूर्य बड़ी चिन्तामें पड़ गये, परन्तु उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा ॥१७॥ सूर्य सोचने लगे—अहो! आकाशका भी मार्ग अवरुद्ध हो गया! कुपथपर उतरा हुआ बलवान् पुरुष क्या नहीं कर सकता? ॥ १८ ॥ दैव बड़ा प्रबल होता है। राहुकी बाहुओंमें

मीलनं च कुमुद्वती ॥ स्वानि कार्याणि सर्वे च लोकाः समुपतस्थिरे ॥१२॥ हव्यं कव्यं भूतबलिं देवानां च प्रवर्धयन् ॥ प्राह्णापराह्णमध्याह्नविभागेन त्विषां पतिः ॥१३॥ एवं प्राचीं तथाऽऽग्नेयीं समाश्वास्य वियोगिनीम् ॥ ज्वलन्तीं चिरकालीनविरहादिव कामिनीम् ॥१४॥ भास्करोऽथ कृशानोश्च दिशं नूनं विहाय च ॥ याम्यां गंतुं ततस्तूर्णं प्रतस्थे कमलाकरः ॥ १५ ॥ न शशाकाग्रतो गंतुं ततोऽनूरुर्व्यजिज्ञपत् ॥ अनूरुरुवाच ॥ भानो मानोन्नतो विंध्यो निरुध्य गगनं स्थितः ॥ १६ ॥ स्पर्धते मेरुणा प्रेप्सुस्त्वद्दत्तां च प्रदक्षिणाम् ॥ सूत उवाच ॥ अनूरुवाक्यमाकर्ण्य सविता ह्यास चिंतयन् ॥ १७ ॥ अहो गगनमार्गोऽपि रुध्यते चातिविस्मयः ॥ प्रायः शूरो न किं कुर्यादुत्पथे वर्त्मनि स्थितः ॥ १८ ॥ निरुद्धो नो वाजिमार्गो दैवं हि बलवत्तरम् ॥ राहुबाहुग्रहव्यग्रो यः क्षणं नावतिष्ठते ॥ १९ ॥ स चिरं रुद्धमार्गोऽपि किं करोति विधिर्बली ॥ एवं च मार्गे संरुद्धे लोकाः सर्वे च सेश्वराः ॥ २० ॥ नान्वविंदन्त शरणं कर्तव्यं नान्वपद्यत ॥ चित्रगुप्तादयः सर्वे कालं जानन्ति सूर्यतः ॥ २१ ॥ स रुद्धो विंध्यगिरिणा अहो दैवविपर्ययः ॥ यदा निरुद्धः सविता गिरिणा स्पर्धया तदा ॥२२॥ नष्टः स्वाहास्वधाकारो नष्टप्रायमभूज्जगत् ॥ एवं च पश्चिमा लोका दाक्षिणात्यास्तथैव च ॥ २३ ॥ निद्रामीलितचक्षुष्का निशामेव प्रपेदिरे ॥ प्रांचस्तथोत्तरस्थाश्च तीक्ष्णतापप्रतापिताः ॥ २४ ॥ मृता नष्टाश्च भग्नाश्च विनाशमभजन्प्रजाः ॥ हाहाभूतं जगत्सर्वं स्वधाकव्यविवर्जितम् ॥ देवाः सेंद्राः समुद्विग्नाः किं कुर्म इतिवादिनः ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जकड़े जानेपर भी मेरे जिन घोड़ेकी गति नहीं रुकती थी, उन्हीं घोड़ोंका मार्ग अवरुद्ध हो गया ॥ १९ ॥ चिरकालतक मेरा मार्ग रोककर विधाता क्या करेगा? इस प्रकार सूर्यका मार्ग रुक जानेसे सभी लोक और लोकेश्वर असहाय होकर अपना कर्तव्य नहीं पालन कर सके। क्योंकि चित्रगुप्त आदि सूर्यसे ही समयका ज्ञान प्राप्त करते थे ॥२०॥२१॥ अहो! भाग्यके फेरसे आज विन्ध्य पर्वतने उन्हीं सूर्यका मार्ग रोक दिया। उनके रुकनेसे जगत् स्वाहा और स्वधाकारसे रहित हो गया। पश्चिम और दक्षिणके प्राणी निद्रामें थे। क्योंकि उनके लिए अभी रात्रि ही चल रही थी। ऐसे ही पूर्व और उत्तरके प्राणी सूर्यके तीक्ष्ण तापसे दग्ध हो रहे थे॥ २२–२४ ॥ उस समय कितने ही प्राणी मृत्युको प्राप्त हो गये, कितने ही नष्ट हुए और कितनोंके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अङ्ग भङ्ग हो गये। इस प्रकार प्रजाके लिए असमयमें ही भीषण विनाशका समय उपस्थित हो गया। समस्त जगत्में हाहाकार मच गया। पितरोंके श्राद्ध-तर्पण सब बन्द हो गये। इन्द्र आदि देवता सोचने लगे कि अब क्या किया जाय ॥ २९ ॥ इती श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे 'पोतांबरा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(वृषध्वज द्वारा देवीकी स्तुति) सूतजी कहते हैं–हे ऋषियों! इस प्रकार जगत्के उपद्रवग्रस्त हो जानेपर इन्द्रप्रभृति सम्पूर्ण देवता ब्रह्माजीको अपना प्रधान बनाकर भगवान् शंकरकी शरणमें गये ॥ १ ॥ उन्होंने बारम्बार प्रणाम करके देवदेव गिरिशायी चन्द्रशेखर शंकरकी स्तुति आरम्भ कर दी ॥ २ ॥ देवता बोले—हे देव! हे गणाध्यक्ष एवं हे पार्वती द्वारा पूजित-चरण! आप भक्तोंको अष्ट विभूतियाँ प्रदान करते हैं। आपकी जय हो ॥ ३ ॥ महामाया आपका विलासस्थान है। आप अमरेश और वृषाङ्क कहलाते हैं। कैलासपर्वतपर आप निवास करते हैं ॥४॥ आप अहिर्बुध्न्य, मान्य, मनु, मानदायी, अज, बहुरूप, आत्माराम और शम्भु हैं ॥ ५ ॥ गणनाथ, देव, गिरीश, महाविभूतिदाता और महाविष्णुके द्वारा संस्तुत आपको हम

॥ सूत उवाच ॥ ततः सर्वे सुरगणा महेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥ पद्मयोनिं पुरस्कृत्य रुद्रं शरणमन्वयुः ॥ १ ॥ उपतस्थुः प्रणतिभिः स्तोत्रैश्चारुविभू-
तिभिः ॥ देवदेवं गिरिशयं शशिलोलितशेखरम् ॥२॥ देवा ऊचुः ॥ जय देव गणाध्यक्ष उमालालितपत्कज ॥ अष्टसिद्धिविभूतीनां दात्रे भक्तजनाय
ते ॥ ३ ॥ महामायाविलसितस्थानाय परमात्मने ॥ वृषाङ्कायामरेशाय कैलासस्थितिशालिने ॥ ४ ॥ अहिर्बुध्न्याय मान्याय मनवे मानदायिने ॥
अजाय बहुरूपाय स्वात्मारामाय शंभवे ॥ ५ ॥ गणनाथाय देवाय गिरिशाय नमोऽस्तु ते ॥ महाविभूतिदात्रे ते महाविष्णुस्तुताय च ॥ ६ ॥
विष्णुहृत्कंजवासाय महायोगरताय च ॥ योगगम्याय योगाय योगिनां पतये नमः ॥ ७ ॥ योगीशाय नमस्तुभ्यं योगानां फलदायिने ॥ दीनदान-
परायापि दयासागरमूर्तये ॥ ८ ॥ आर्तिप्रशमनायोग्रवीर्याय गुणमूर्तये ॥ वृषध्वजाय कालाय कालकालाय ते नमः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवं
स्तुतः स देवेशो यज्ञभुग्भिर्वृषध्वजः ॥ प्राह गंभीरया वाचा प्रहसन्विबुधर्षभान् ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रसन्नोऽहं दिविषदः स्तोत्रेणोत्तम-
पूरुषाः ॥ मनोरथं पूरयामि सर्वेषां देवतर्षभाः ॥ ११ ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वदेवेश गिरिश शशिमौलिविराजित ॥ आर्तानां शंकरस्त्वं च शं विधेहि
महाबल ॥ १२ ॥ पर्वतो विंध्यनामाऽस्ति मेरुद्वेष्टा महोन्नतः ॥ भानुमार्गं निरोद्धा हि सर्वेषां दुःखदोऽनघ ॥ १३ ॥ तद्वृद्धिं स्तंभयेशान सर्वकल्या-

प्रणाम करते हैं ॥६॥ विष्णुके हृदयकमलमें निवास करनेवाले, महायोगमें रत, योगगम्य और योगियोंके अधीश्वर आपको नमस्कार है ॥ ७ ॥ योगीश, योगोंके फलदायक, दीनोंको दान देनेमें तत्पर और दयासागरके मूर्त रूप आप शंकरजीको हम प्रणाम करते हैं ॥८॥ दुखियोंका दुःख दूर करनेके लिए उग्र पराक्रमी, गुणमूर्ति, वृषध्वज, काल तथा कालके भी काल आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ सूतजी बोले—हे शौनक! देवताओंकी स्तुति सुनकर हँसते हुए शंकरजीने गंभीर वाणीमें कहा ॥ १० ॥ भगवान् शंकर बोले—हे देवताओं! तुम्हारी स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूँ और तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेको सन्नद्ध हूँ ॥११॥ देवता कहने लगे—हे सर्वदेवेश! हे गिरीश! हे चन्द्रशेखर! हे महाबल! हम आर्तजनोंका संकट काटकर हमारा कल्याण करिए ॥ १२ ॥ हे पुण्यात्मन्! विन्ध्य पर्वत सुमेरुसे द्वेष करके इतना बढ़ गया है कि जिससे सूर्यका मार्ग अवरुद्ध हो गया। ऐसा करके उसने सबपर विपत्ति उपस्थित कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दी है ॥ १३ ॥ हे ईशान ! उसकी वृद्धि रोककर सबका कल्याण करिए । सूर्यकी गति रुक जानेपर लोगोंको समयका ज्ञान कैसे होगा ? ॥ १४ ॥ जब देवताओं और पितरोंका स्वाहा और स्वधाकार ही लुप्त हो जायगा तो हमें कौन शरण देगा ? हम भयार्त देवताओंके रक्षक एकमात्र आप ही दीख रहे हैं ॥ १५ ॥ हे गिरिजापते ! आप प्रसन्न होकर हमारा दुःख नष्ट कर दीजिए । शंकरजी बोले–हे देवताओं ! विन्ध्यकी वृद्धि रोकनेकी शक्ति मुझमें नहीं है ॥ १६ ॥ चलो, हम लोग चलकर भगवान् लक्ष्मीकान्तको यह हाल बतायें । क्योंकि वे ही हमारे प्रभु, आत्मा, पूज्य तथा आदि कारण हैं ॥ १७ ॥ गोविन्द एवं भगवान् विष्णु सभी कारणोंके कारण हैं । अतएव यदि हम लोग अपना दुःख उन्हें सुनायेंगे तो वे अवश्य इसका अन्त कर देंगे ॥ १८ ॥ तदनन्तर भगवान् शंकरकी सम्मतिसे काँपते हुए इन्द्र और ब्रह्मासहित सम्पूर्ण देवता रुद्रको आगे करके वैकुण्ठलोकमें भगवान् विष्णुके पास जा पहुँचे ॥ १९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

णकुद्भव ॥ भानुसंचाररोधेन कालज्ञानं कथं भवेत् ॥ १४ ॥ नष्टे स्वाहास्वधाकारे लोके कः शरणं भवेत् ॥ अस्माकं च भयार्तानां भवानेव वि-
दृश्यते ॥ १५ ॥ दुःखनाशकरो देव प्रसीद गिरिजापते ॥ श्रीशिव उवाच ॥ नास्माकं शक्तिरस्तीह तद्वृद्धिस्तम्भने सुराः ॥ १६ ॥ इममेवं
वदिष्यामो भगवंतं रमाभवम् ॥ सोऽस्माकं प्रभुरात्मा च पूज्यः कारणरूपधृक् ॥ १७ ॥ गोविंदो भगवान्विष्णुः सर्वकारणकारणः ॥ तं गत्वा कथ-
यिष्यामः स दुःखांतो भविष्यति ॥ १८ ॥ इत्येवमाकर्ण्य गिरिशभाषितं देवाश्च सेंद्राः सपयोजसंभवाः ॥ रुद्रं पुरस्कृत्य च वेपमाना वैकुण्ठलोकं
प्रतिजग्मुरंजसा ॥ १९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ सूत उवाच ॥ ते गत्वा देवदेवेशं रमानाथं जगद्गुरुम् ॥ विष्णुं कमलपत्राक्षं ददृशुः प्रभयान्वितम् ॥ १ ॥ स्तोत्रेण तुष्टुवुर्भक्त्या गद्गद-
स्वरसत्कृताः ॥ देवा ऊचुः ॥ जय विष्णो रमेशाद्य महापुरुष पूर्वज ॥ २ ॥ दैत्यारे कामजनक सर्वकामफलप्रद ॥ महावराह गोविंद महायज्ञ-
स्वरूपक ॥ ३ ॥ महाविष्णो ध्रुवेशाद्य जगदुत्पत्तिकारण ॥ मत्स्यावतारे वेदानामुद्धाराधाररूपक ॥ ४ ॥ सत्यव्रत धराधीश मत्स्यरूपाय ते
नमः ॥ जयाकूपार दैत्यारे सुरकार्यसमर्थक ॥ ५ ॥ अमृताप्तिकरेशान कूर्मरूपाय ते नमः ॥ जयादिदैत्यनाशार्थमादिसूकररूपधृक् ॥ ६ ॥

(देवताओं द्वारा विष्णुकी स्तुति) सूतजी कहते हैं—ऋषियोंने वैकुण्ठमें जाकर लक्ष्मीकान्त देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिके दर्शन किये । उस समय कमलके समान नेत्रवाले जगद्गुरु भगवान विष्णु अपनी दिव्यशक्ति महालक्ष्मीके साथ शोभा पा रहे थे ॥१॥ देवताओंने गद्गद वाणीसे सत्कार करते हुए भक्तिपूर्वक स्तोत्र पढ़कर श्रीहरिकी स्तुति की । देवता बोले–हे विष्णो ! हे रमेश ! आपकी जय हो । आप आद्य महापुरुष एवं सबके पूज्य हैं ॥२॥ हे दैत्यारे ! आप कामदेवके पिता, अखिल कामनाओंके फल प्रदान करनेवाले तथा गोविन्द नामसे प्रसिद्ध हैं । आप महावराह एवं महायज्ञका रूप धारण कर चुके हैं ॥३॥ हे महाविष्णो ! आप ध्रुवेश तथा जगत्की उत्पत्तिके आदि कारण हैं । आपने मत्स्यावतार धारण करके वेदोंका उद्धार किया है ॥ ४ ॥ हे जगत्प्रभो ! सत्यव्रतमें अटल रहनेवाले मत्स्यरूपधारी आप श्रीहरिके लिये नमस्कार है । देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाले हे दयासागर ! हे दैत्यारे ! आपकी जय हो ॥ ५ ॥ अमृतकी प्राप्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करानेवाले हे प्रभो ! आप कूर्मरूपधारीको नमस्कार है। आदिदैत्य हिरण्याक्षका वध करनेके लिये सूकररूपधारी आप भगवानकी जय हो ॥६॥ पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये उद्योगशील आप भगवान वाराहको नमस्कार है। जिन्होंने नृसिंहावतार लेकर महान् दैत्य हिरण्यकशिपुको नखोंसे विदीर्ण कर दिया, उन भगवान नृसिंहके लिये नमस्कार है ॥७॥ राजा बलि त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे मोहित था। आपने वामनरूप धारण करके उसकी सम्पत्ति छीन ली थी। उन वामनरूपधारी आप भगवानको नमस्कार है। आप जमदग्नि मुनिके यहाँ रेणकाके गर्भसे प्रकट हो चुके हैं। दुष्ट क्षत्रियांका संहार करना आपका उद्देश्य था। कार्तवीर्यसे आपकी घोर शत्रुता थी। आपके उस परशुरामावतारको नमस्कार है। पुलस्त्यनन्दन दुराचारी रावणके सिर काटनेमें परम कुशल तथा अनन्त पराक्रमी आप भगवान दाशरथी रामको नमस्कार है ॥८–१०॥ हे प्रभो! कंस और दुर्योधन आदि राक्षस राजाओंके लिये लांछन स्वरूप थे। उनके भारसे पृथ्वी दबी जा रही थी। आप महाप्रभुने उन दुष्टोंका संहार कर डाला। आपके द्वारा धर्मकी स्थापना हुई और पापका अन्त हुआ ॥११॥१२॥ हे विभो ! उन आप भगवानके श्रीकृष्णस्वरूपको नमस्कार

मह्युद्धारकृतोद्योग कोलरूपाय ते नमः ॥ नारसिंहं वपुः कृत्वा महादैत्यं ददार यः ॥ ७ ॥ करजैर्वरदृप्तांगं तस्मै नृहरये नमः ॥ वामनं रूपमास्थाय त्रैलोक्यैश्वर्यमोहितम् ॥ ८ ॥ बलिं संछलयामास तस्मै वामनरूपिणे ॥ दुष्टक्षत्रविनाशाय सहस्रकरशत्रवे ॥ ९ ॥ रेणुकागर्भजाताय जामदग्न्याय ते नमः ॥ दुष्टराक्षसपौलस्त्यशिरश्छेदपटीयसे ॥ १० ॥ श्रीमद्दाशरथे तुभ्यं नमोऽनंतक्रमाय च ॥ कंसदुर्योधनाद्यैश्च दैत्यैः पृथ्वीशलांछनैः ॥११॥ भाराक्रांतां महीं योऽसावुज्जहार महाविभुः ॥ धर्मं संस्थापयामास पापं कृत्वा सुदूरतः ॥ १२ ॥ तस्मै कृष्णाय देवाय नमोऽस्तु बहुधा विभो ॥ दुष्टयज्ञविघाताय पशुहिंसानिवृत्तये ॥ १३ ॥ बौद्धरूपं दधौ योऽसौ तस्मै देवाय तें नमः ॥ म्लेच्छप्रायेऽखिले लोके दुष्टराजन्यपीडिते ॥ १४ ॥ कल्किरूपं समादध्यौ देवदेवाय ते नमः ॥ दशावतारास्ते देव भक्तानां रक्षणाय वै ॥१५॥ दुष्टदैत्यविघाताय तस्मात्त्वं सर्वदुःखहृत् ॥ जय भक्तार्तिनाशाय धृतं नारीजलात्मसु ॥१६॥ रूपं येन त्वया देव कोऽन्यस्त्वत्तो दयानिधिः ॥ इत्येवं देवदेवेशं स्तुत्वा श्रीपीतवाससम् ॥१७॥ प्रणेमुर्भक्तिसहिताः साष्टांगं विबुधर्षभाः ॥ तेषां स्तवं समाकर्ण्य देवः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ उवाच विबुधान्सर्वान् हर्षयञ्छ्रीगदाधरः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि स्तवेनाहं देवास्तापं विमुंचथ ॥ १९ ॥ भवतां नाशयिष्यामि दुःखं परमदुःसहम् ॥ वृणुध्वं च वरं मत्तो देवाः परमदुर्लभम् ॥ २० ॥

है। हे भगवन् ! निन्दित यज्ञका उच्छेद करने तथा पशुहिंसा रोकनेके लिये आप बौद्धावतार धारण कर चुके हैं। उन बुद्धरूपधारी आप भगवानको नमस्कार है ॥१३॥ हे प्रभो ; जब अखिल जगत् म्लेच्छमय बन गया था। दुराचारी नरेश प्रजाजनोंको सता रहे थे। ऐसी स्थितिमें आप कल्किरूपसे जगत्में पधारे थे, उन देवाधिदेव आप प्रभुको नमस्कार है। आपके ये दस अवतार भक्तोंकी रक्षा तथा दुष्ट दैत्योंका संहार करनेके लिए ही हुए हैं ॥१४॥१५॥ अतएव आप सर्वदुःखहारी कहलाते हैं। भक्तोंका संकट दूर करनेके लिए ही आपने मोहिनी स्त्री तथा जलजन्तुओं (हस आदि) का रूप धारण किया था, आपकी जय हो। हे प्रभो ! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन दयासागर हो सकता है ? इस प्रकार देवाधिदेव पीताम्बरधारी भगवान श्रीहरिकी स्तुति करके उन सभी प्रधान् देवताओंने भक्तिपूर्वक भगवानको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनको स्तुति सुनकर गदा धारण करनेवाले भगवान पुरुषोत्तम प्रसन्न हो गये। हर्ष प्रकट करते हुए उन्होंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वहाँ उपस्थित समस्त देवताओंसे कहा। श्रीभगवान् बोले—मैं तुम्हारी स्तुतिसे प्रसन्न हूँ। अब तुम्हें मनमें संताप नहीं करना चाहिये ॥१६-१९॥ मैं तुम्हारे दुःसह दुःखको दूर कर दूँगा। हे देवताओं! तुम मुझसे परम दुर्लभ वर माँग लो ॥ २० ॥ इस स्तुतिके फलस्वरूप मैं परम प्रसन्न होकर तुम्हें वर देनेके लिए उद्यत हूँ। हे देवताओं! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसकी मेरे प्रति अपार श्रद्धा होगी और शोक कभी भी उसका स्पर्श नहीं कर सकेगा। दरिद्रता उसके घरपर आक्रमण न कर सकेगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ उसे किसी प्रकारकी व्याधि नहीं होगी। बेताल, ग्रह और ब्रह्मराक्षस उसे नहीं सता सकेंगे। वात, पित्त और कफसंबन्धी बीमारियोंसे वह ग्रसित न होगा ॥२३॥ कभी भी उसकी अकाल मृत्यु नहीं होगी। उसकी संतान दीर्घजीवी होगी। इस स्तोत्रका पाठ करनेवाले पुण्यात्मा पुरुषके गृहमें सुखदायक भोगकी सभी सामग्रियाँ सदा उपस्थित रहेंगी। अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन है-यह स्तोत्र संपूर्ण अर्थोंका परम साधक है ॥ २४ ॥ २५ ॥ इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मनुष्योंके लिए भुक्ति और मुक्ति सुलभ रहेगी। हे देवताओं! तुम्हें जो दुःख हों, उसे सन्देह छोड़कर

ददामि परमप्रीतः स्तवस्यास्य प्रसादतः ॥ य एतत्पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥ २१ ॥ मयि भक्तिं परां कृत्वा न तं शोकः स्पृशेत्कदा ॥ अलक्ष्मीः कालकर्णी च नाक्रामेत्तद्गृहं सुराः ॥ २२ ॥ नोपसर्गा न वेताला न ग्रहा ब्रह्ममानवाः ॥ न रोगा वातिकाः पैत्ताः श्लेष्मसंभविनस्तथा ॥ २३ ॥ नाकालमरणं तस्य कदापि च भविष्यति ॥ संततिश्चिरकालस्था भोगाः सर्वे सुखादयः ॥ २४ ॥ संभविष्यन्ति तन्मर्त्यगृहे यः स्तोत्र-पाठकः ॥ किं पुनर्बहुनोक्तेन स्तोत्रं सर्वार्थसाधकम् ॥ २५ ॥ एतस्य पठनान्नृणां भुक्तिमुक्ती न दूरतः ॥ देवा भवत्सु यद्दुःखं कथ्यतां तदसंशयम् ॥ २६ ॥ नाशयामि न संदेहश्चात्र कार्योऽणुरेव च ॥ एवं श्रीभगवद्वाक्यं श्रुत्वा सर्वे दिवौकसः ॥ प्रसन्नमनसः सर्वे पुनरूचुर्वृषाकपिम् ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ सूत उवाच ॥ श्रीशस्य वचनाद्देवाः संतुष्टाः सर्व एव हि ॥ प्रसन्नमनसो भूत्वा पुनरेनं समूचिरे ॥ १ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महाविष्णो सृष्टिस्थित्यंतकारण ॥ विष्णो विन्ध्यनगोऽर्कस्य मार्गरोधं करोति हि ॥ २ ॥ तेन भानुविरोधेन सर्व एव महाविभो ॥ अलब्धभोगभागा हि किं कुर्मः कुत्र याम हि ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ या कर्त्री सर्वजगतामाद्या च कुलवर्धनी ॥ देवी भगवती तस्याः पूजकः परमद्युतिः ॥ ४ ॥ अगस्त्यो

बताओ ॥ ६ ॥ मैं तुम्हारा दुःख दूर करनेके लिए प्रस्तुत हूँ। इसमें अणुभर भी संशय नहीं है। इस प्रकार भगवान् श्रीहरिके वचन सुनकर देवताओंका मन प्रसन्नतासे भर गया। वे पुनः भगवान् वृषाकपि (विष्णु) से कहने लगे ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीतांबरा'भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(अगस्त्यके देवीकी स्तुति करनेपर विन्ध्यकी वृद्धि रुकना) सूतजी कहते हैं—हे ऋषियों! भगवान् लक्ष्मीकान्त श्रीहरिकी वाणीने देवताओंको परम आश्वस्त कर दिया। वे सब अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान्से यों कहने लगे ॥१॥ देवता बोले—हे सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले देवाधिदेव भगवान् महाविष्णो! इस समय विंध्यपर्वत सूर्यके मार्गको रोककर खड़ा है ॥२॥ हे महाविभो! उसके द्वारा सूर्यके मार्गका अवरोध हो जानेमे हमें यज्ञभाग मिलना बन्द हो गया है। अब हम क्या करें और कहाँ जायँ ॥३॥ भगवान् श्रीहरिने कहा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे महानुभाव देवताओं! जो अखिल जगत्‌की जननी तथा कुलकी अभिवृद्धि करनेवाली भगवती आद्या हैं, उनके उपासक परम तेजस्वी अगस्त्यमुनि इस समय काशीमें विराजमान हैं। विंध्यपर्वतके उत्कर्षको वे ही रोक सकेंगे। हे देवताओं! काशी कल्याण प्रदान करनेके लिए सर्वोत्तम स्थान है। तुम वहाँ जाओ और परम प्रतापी अगस्त्यको प्रसन्न करके उनसे इस विषयमें याचना करो ॥ ४–६ ॥ सूतजी कहते हैं–हे ऋषियों! इस प्रकार भगवान् विष्णुसे आदेश प्राप्त करके वे प्रमुख देवता संदेहरहित होकर नम्रतापूर्वक काशीपुरी गये। मणिकर्णिका घाटपर भक्तिके साथ उन्होंने गङ्गामें सचैल स्नान किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ पितरोंका तर्पण करनेके बाद वहाँके देवताओंका सन्तुष्ट करके वे मुनिवर अगस्त्यके परम पवित्र आश्रमपर गये ॥ ९ ॥ उस आश्रममें सिंह आदि हिंस्र पशु मरे थे। विविध प्रकारके वृक्ष उगे थे। मयूर, सारस, हंस, चक्रवाक, महावराह, सूअर, व्याघ्र, मृग, रुरु, खड्ग (गैंड़े) और साँभर अत्यधिक संख्यामें वहाँ विद्यमान थे ॥ १० ॥ ११ ॥ मुनिवर अगस्त्य परम श्रीसंपन्न होकर विराजमान थे। समस्त देवता दण्डकी भाँति उनके चरणोंमें गिरकर बार-बार प्रणाम करने लगे ॥ १२ ॥ देवताओंने

मुनिवर्योऽसौ वाराणस्यां समासते ॥ तत्तेजोवञ्चकोऽगस्त्यो भविष्यति सुरोत्तमाः ॥ ५ ॥ तं प्रसाद्य द्विजवरमगस्त्यं परमौजसम् ॥ याचध्वं विबुधाः काशीं गत्वा निःश्रेयसः पदीम् ॥६॥ सूत उवाच ॥ एवं समुपदिष्टास्ते विष्णुना विबुधोत्तमाः ॥ प्रतीताः प्रणताः सर्वे जग्मुर्वाराणसीं पुरीम् ॥७॥ क्षणेन विबुधश्रेष्ठा गत्वा काशीपुरीं शुभाम् ॥ मणिकर्णीं समाप्लुत्य सचैलं भक्तिसंयुताः ॥८॥ संतर्प्य देवाँश्च पितॄन्दत्त्वा दानं विधानतः ॥ आगत्य मुनिवर्यस्य चाश्रमं परमं महत् ॥ ९ ॥ प्रशांतश्वापदाकीर्णं नानापादपसंकुलम् ॥ मयूरैः सारसैर्हंसैश्चक्रवाकैरुपाश्रितम् ॥ १० ॥ महावराहैः कोलैश्च व्याघ्रैः शार्दूलकैरपि ॥ मृगै रुरुभिरत्यर्थं खड्गैः शरभकैरपि ॥ ११ ॥ समाश्रितं परमया लक्ष्म्या मुनिवरं तदा ॥ दंडवत्पतिताः सर्वे प्रणेमुश्च पुनः पुनः ॥ १२ ॥ देवा ऊचुः ॥ जय द्विजगणाधीश मान्य पूज्य धरासुर ॥ वातापीबलनाशाय नमस्ते कुम्भयोनये ॥ १३ ॥ लोपामुद्रापते श्रीमान्मैत्रावरुणसंभव ॥ सर्वविद्यानिधेऽगस्त्य शास्त्रयोने नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥ यस्योदये प्रसन्नानि भवन्त्युज्ज्वलभांज्यपि ॥ तोयानि तोयराशीनां तस्मै तुभ्यं नमोऽस्तु नः ॥ १५ ॥ काशपुष्पविकासाय लंकावासप्रियाय च ॥ जटामण्डलयुक्ताय सशिष्याय नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥ जय सर्वामरस्तव्य गुणराशे महामुने ॥ वरिष्ठाय च पूज्याय सश्रीकाय नमोऽस्तु ते ॥१७॥ प्रसादः क्रियतां स्वामिन् वयं त्वां शरणं गताः ॥ दुस्तराच्छैलजाद्दुःखा-

कहा–हे भूदेव! आप द्विजगणोंके स्वामी, मान्य एवं पूज्य हैं। आपने वातापीके बलका नष्ट कर दिया था। आप घटसे प्रकट हुए हैं। आपके लिए नमस्कार है ॥१३॥ हे भगवन् अगस्त्य! आप लोपामुद्राके प्राणनाथ, मित्रावरुणसे उत्पन्न, संपूर्ण विद्याओंके भण्डार तथा शास्त्रयोनि हैं। आपके लिए नमस्कार है ॥ १४ ॥ जिनके उदय होनेपर नदियोंके जल स्वच्छ एवं प्रसन्न हो जाते हैं, उन आप द्विजवर अगस्त्यको हमारा प्रणाम स्वीकार हो ॥ १५ ॥ काससंज्ञक पुष्पको विकसित करनेवाले, लंकावासके अभिलाषी, भगवान् रामके परम प्रिय, जटाकलापसे संपन्न एवं शिष्योंसे परम सुशोभित आप धीरवर अगस्त्यजी हमारा प्रणाम स्वीकार करें ॥ १६ ॥ हे महामुने! सभी देवता आपकी स्तुति करते हैं, आपकी जय हो। हे गुणनिधे! आप सबसे श्रेष्ठ एवं आदरणीय हैं। आप सपत्नीक द्विजवरको नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे स्वामिन्! आप प्रसन्न हो जायँ, हम आपकी शरणमें आये हैं। हे परमद्युते! दुस्तर विंध्य द्वारा संतप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होकर हम महान् क्लेशका अनुभव कर रहे हैं ॥ १८ ॥ देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर परम धार्मिक द्विजवर अगस्त्यमुनि हँसते हुए प्रसन्नतापूर्ण शब्दोंमें कहने लगे ॥१९॥ मुनिवर अगस्त्यजी बोले—हे देवताओं ! आपलोग परम श्रेष्ठ पुरुष हैं । सारा त्रिलोक आपका शासन मानता है । आप सभी महानुभाव लोकपाल हैं । निग्रह और अनुग्रह करनेमें आपकी पूर्ण क्षमता है ॥२०॥ जो अमरावतीपुरीके स्वामी, वज्र जैसे आयुधको धारण करनेवाले तथा मरुद्गणोंके नायक हैं, आठ प्रकारकी सिद्धियाँ जिनके द्वारपर विराजती हैं, वे ही ये शक्र (इन्द्र) हैं ॥२१॥ निरन्तर हव्य-कव्य प्राप्त करानेवाले वैश्वानर एवं कृशानु नामसे विख्यात तथा संपूर्ण देवताओंके मुखस्वरूप जो अग्निदेव हैं, उनके लिए कौन-सा कार्य दुष्कर है ? हे देवताओं ! जो प्रतापी यम राक्षसगणोंके अधिपति हैं, जिन्हें संपूर्ण प्राणियोंके कर्मोंका साक्षी तथा शासक बनाया गया है तथा जो हाथमें दंड लेकर सदा व्यस्त रहते हैं, उन महाभागके लिए कौन-

तपीडिताः परमद्युते ॥ १८ ॥ इत्येवं संस्तुतोऽगस्त्यो मुनिः परमधार्मिकः ॥ प्राह प्रसन्नया वाचा विहसन् द्विजसत्तमः ॥ १९ ॥ मुनिरुवाच ॥ भवन्तः परमश्रेष्ठा देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ लोकपाला महात्मानो निग्रहानुग्रहक्षमाः ॥ २० ॥ योऽमरावत्यधीशानः कुलिशं यस्य चायुधम् ॥ सिद्ध्यष्टकं च यद्द्वारि स शक्रो मरुतां पतिः ॥ २१ ॥ वैश्वानरः कृशानुर्हि हव्यकव्यवहोऽनिशम् ॥ मुखं सर्वामराणां हि सोऽग्निः किं तस्य दुष्करम् ॥ २२ ॥ रक्षोगणाधिपो भीमः सर्वेषां कर्मसाक्षिकः ॥ दंडव्यग्रकरो देवः किं तस्याशुकरं सुराः ॥ २३ ॥ तथापि यदि देवेशाः कार्यं मच्छक्तिसिद्धिभृत् ॥ अस्ति चेदुच्यतां देवाः करिष्यामि न संशयः ॥२४॥ एवं मुनिवरेणोक्तं निशम्य विबुधर्षभाः ॥ प्रतीताः प्रणयोद्विग्नाः कार्यं निजगदुर्निजम् ॥ २५ ॥ महर्षे विंध्यगिरिणा निरुद्धोऽर्कविनिर्गमः ॥ त्रैलोक्यं तेन संविष्टं हाहाभूतमचेतनम् ॥ २६ ॥ तद्वृद्धिं स्तम्भय मुने निजया तपसः श्रिया ॥ भवतस्तेजसाऽगस्त्य नूनं नम्रो भविष्यति ॥ एतदेवास्मदीयं च कार्यं कर्तव्यमस्ति हि ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ सूत उवाच ॥ इति वाक्यं समाकर्ण्य विबुधानां द्विजोत्तमः ॥ करिष्ये कार्यमेतद्वै प्रत्युवाच ततो मुनिः ॥ १ ॥ अङ्गीकृते तदा कार्ये

सा कार्य दुष्कर है ? तथापि हे देवताओं ! मेरी शक्तिसे सिद्ध होनेवाला जो भी कार्य हो, उसे आप कहें । मैं उसको पूर्ण करनेके लिए अवश्य प्रयत्न करूँगा ॥२२-२४॥ मुनिवर अगस्त्यके ऐसे वचन सुनकर उन प्रमुख देवताओंके मनमें पूर्ण विश्वास हो गया । वे अधीर होकर अपना अभिप्राय बताने लगे ॥२५॥ वे बोले—'हे महर्षे ! विन्ध्यपर्वतने सूर्यके मार्गको रोक लिया है, इससे त्रिलोकीमें हाहाकार मच गया है । सभी प्राणी अचेत-जैसे हो गये हैं ॥२६॥ हे मुने ! आप अपनी तपस्याके प्रभावसे उस पर्वतकी वृद्धि रोकनेकी कृपा कीजिये । हे अगस्त्यजी ! आपके तेजसे वह अवश्य ही नम्र हो जायगा । इस समय आपको हमारा यही कार्य करना है ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते दशमस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(अगस्त्यका विन्ध्यकी वृद्धि रोकना) सूतजी कहते हैं—हे ऋषियों ! देवताओंकी उपर्युक्त बातें सुनकर द्विजश्रेष्ठ अगस्त्य मुनिने उनसे कहा—'मैं आप लोगोंका यह कार्य पूर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करूँगा ।' ॥ १ ॥ जब कुम्भयोनि अगस्त्यने देवताओंका कार्य करना स्वीकार कर लिया, तब उनके हर्षकी सीमा नहीं रही । मुनिके वाक्यपर निर्भर होकर वे अपने-अपने स्थानोंको चले गये । तब राजपुत्री अपनी पत्नी लोपमुद्रासे महर्षि अगस्त्य बोले—॥ २ ॥ ३ ॥ हे नृपपुत्रि ! यह बहुत अनर्थकारी विघ्न आ उपस्थित हुआ है, जो विन्ध्यपर्वतने सूर्यका मार्ग रोक दिया ॥ ४ ॥ हाँ, मुझे इसका कारण ज्ञात हो गया । काशीके विषयमें तत्त्वदर्शी मुनियोंने बहुत पहले ही कहा है—॥ ५ ॥ मोक्ष चाहनेवाले लोग काशी न छोड़ें । किन्तु काशीवास करनेवालोंके समक्ष नाना प्रकारके विघ्न आते हैं । वही बात मेरे साथ भी हुई । ऐसा कहकर मुनिराज अगस्त्य बहुत प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब उन्होंने मणिकर्णिकाकुण्डमें स्नान करके भगवान् विश्वनाथ तथा दण्डपाणिका पूजन किया और कालभैरवका दर्शन करने गये ॥८॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा—भक्तोंका भय हरनेवाले हे महाबाहो कालराज ! आप काशी-

मुनिना कुंभजन्मना ॥ देवाः प्रमुदिताः सर्वे बभूवुर्द्विजसत्तमाः ॥२॥ ते देवाः स्वानि धिष्ण्यानि भेजिरे मुनिवाक्यतः ॥ पत्नीं मुनिवरः श्रीमानुवाच नृपकन्यकाम् ॥ ३ ॥ अये नृपसुते प्राप्तो विघ्नोऽनर्थस्य कारकः ॥ भानुमार्गनिरोधेन कृतो विन्ध्यमहीभृता ॥ ४ ॥ आः ज्ञातं कारणं तच्च स्मृतं वाक्यं पुरातनम् ॥ काशीमुद्दिश्य यद्गीतं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥५॥ अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः ॥ किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति काश्यां निवसतां सताम् ॥ ६ ॥ सोऽन्तरायो मया प्राप्तः काश्यां निवसता प्रिये ॥ इत्येवमुक्त्वा भार्यां तां मुनिः परमतापनः ॥७॥ मणिकर्ण्यां समाप्लुत्य दृष्ट्वा विश्वेश्वरं विभुम् ॥ दंडपाणिं समभ्यर्च्य कालराजं समागतः ॥ ८ ॥ कालराज महाबाहो भक्तानां भयहारक ॥ कथं दूरयसे पुर्याः काशी-पुर्यास्त्वमीश्वर ॥९॥ त्वं काशीवासविघ्नानां नाशको भक्तरक्षकः ॥ मां किं दूरयसे स्वामिन् भक्तार्तिविनिवारक ॥१०॥ परापवादो नोक्तो मे न पैशुन्यं न चानृतम् ॥ केन कर्मविपाकेन काश्या दूरं करोषि माम् ॥ ११ ॥ एवं प्रार्थ्य च तं कालनाथं कुम्भोद्भवो मुनिः ॥ जगाम साक्षिविघ्नेशं सर्वविघ्ननिवारणम् ॥ १२ ॥ तं दृष्ट्वाऽभ्यर्च्य सम्प्रार्थ्य ततः पुर्या विनिर्गतः ॥ लोपामुद्रापतिः श्रीमानगस्त्यो दक्षिणां दिशम् ॥ १३ ॥ काशी-विरहसंतप्तो महाभाग्यनिधिर्मुनिः ॥ संस्मृत्यानुक्षणं काशीं जगाम सह भार्यया ॥ १४ ॥ तपोयानमिवारुह्य निमिषार्धेन वै मुनिः ॥ अग्रे ददर्श तं विन्ध्यं रुद्धांबरमथोन्नतम् ॥१५॥ चकम्पे चाचलस्तूर्णं दृष्ट्वैवाग्रे स्थितं मुनिम् ॥ गिरिः खर्वतरो भूत्वा विविक्षुरवनीमिव ॥ १६ ॥ दंडवत्पतितो

पुरीके स्वामी हैं । मुझे आप अपनी पुरासे बाहर क्यों निकाल रहे हैं ? ॥ ९ ॥ भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले हे स्वामिन् ! आप तो काशीनिवासियोंके विघ्न दूर करके अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं । तब आप मुझे यहाँसे क्यों दूर कर रहे हैं ? ॥ १० ॥ मैंने कभी किसीकी निन्दा नहीं की, चुगली नहीं खायी और कभी झूठ नहीं बोला, तब किस दुर्भाग्यसे आप मुझे काशीसे दूर कर रहे हैं ? ॥ ११ ॥ महर्षि अगस्त्य कालभैरवसे ऐसी प्रार्थना करके सब विघ्नोंके विनाशक साक्षीविनायकके पास गये ॥ १२ ॥ उनका दर्शन, पूजन और प्रार्थना करके श्रीमान् अगस्त्य अपनी पत्नी लोपमुद्राके साथ काशीसे दक्षिण दिशाको चल पड़े ॥ १३ ॥ काशीत्यागसे सन्तप्त महान् भाग्यशाली अगस्त्य प्रतिक्षण काशीका स्मरण करते हुए अपनी भार्याके साथ चले ॥ १४ ॥ अपने तपरूपी विमानपर चढ़कर उन्होंने आधे निमेषमें ही मार्ग तय कर लिया । आगे जाकर देखा कि विन्ध्यपर्वतने अत्यन्त ऊँचे होकर आकाशको रूँध रक्खा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है ॥ १५ ॥ मुनिको सम्मुख उपस्थित देखकर विन्ध्य काँपने लगा। वह अपने समस्त अभिमानका पूर्णरूपसे परित्याग करके मुनिसे कुछ प्रार्थना करनेके विचारसे उनके सम्मुख पृथ्वीकी भाँति विनयावनत हो गया ॥ १६ ॥ भक्तिसे भावित होकर वह साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगा। उस समय नम्र शिखरवाले उस विन्ध्यनामक महान् पर्वतको इस रूपमें पड़े देखकर मुनिवर अगस्त्यजीके मुखपर प्रसन्नता छा गयी। उन्होंने उससे कहा—'वत्स! तुम तबतक ऐसे ही लेटे रहो; जबतक कि मैं दक्षिण दिशासे न लौट आऊँ ॥ १७ ॥ १८ ॥ बेटे! मैं तुम्हारे शिखरपर चढ़नेमें असमर्थ हूँ।' इस प्रकार कहकर मुनिवर अगस्त्यजी दक्षिण दिशाकी ओर जानेके लिये तैयार हो गये ॥ १९ ॥ वे विन्ध्य पर्वतके शिखरपर चढ़कर क्रमशः नीचे पृथ्वीपर उतर आये और वहाँसे दक्षिणको चले। मार्गमें उन्हें श्रीशैलपर्वत दृष्टिगोचर हुआ ॥ २० ॥ इसके बाद उन्होंने मलयाचलपर जाकर अपना आश्रम बनाया और सदाके लिए वहीं रहनेका निश्चय कर लिया। बादमें विन्ध्यपर जो देवी पधारीं, वे मनुके द्वारा पूजित हुईं। हे शौनक! वे ही देवी जगत्में विन्ध्यवासिनीके नामसे प्रसिद्ध हुईं। सूतजी कहते हैं—

भूमौ साष्टांगं भक्तिभावितः ॥ तं दृष्ट्वा नम्रशिखरं विन्ध्यं नाम महागिरिम् ॥ १७ ॥ प्रसन्नवदनोऽगस्त्यो मुनिर्विन्ध्यमथाब्रवीत् ॥ वत्सैवं तिष्ठ तावत्त्वं यावदागम्यते मया ॥ १८ ॥ अशक्तोऽहं गंडशैलारोहणे तव पुत्रक ॥ एवमुक्त्वा मुनिर्याम्यदिशं प्रति गमोत्सुकः ॥ १९ ॥ आरुह्य तस्य शिखराण्यवारुहदनुक्रमात् ॥ गतो याम्यदिशं चापि श्रीशैलं प्रेक्ष्य वर्त्मनि ॥ २० ॥ मलयाचलमासाद्य तत्राश्रमपरोऽभवत् ॥ सापि देवी तत्र विन्ध्यमागता मनुपूजिता ॥ २१ ॥ लोकेषु प्रथिता विन्ध्यवासिनीति च शौनक ॥ सूत उवाच ॥ एतच्चरित्रं परमं शत्रुनाशनमुत्तमम् ॥ २२ ॥ अगस्त्यविंध्यनगयोराख्यानं पापनाशम् ॥ राज्ञां विजयदं तच्च द्विजानां ज्ञानवर्धनम् ॥ २३ ॥ वैश्यानां धान्यधनदं शूद्राणां सुखदं तथा ॥ धर्मार्थी धर्ममाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ २४ ॥ कामानवाप्नुयात्कामी भक्त्या चास्य सकृच्छ्रवात् ॥ एवं स्वायंभुवमनुर्देवीमाराध्य भक्तितः ॥ २५ ॥ लेभे राज्यं धरायाश्च निजमन्वन्तराश्रयम् ॥ इत्येतद्वर्णितं सौम्य मया मन्वन्तराश्रितम् ॥ आद्यं चरित्रं श्रीदेव्याः किं पुनः कथयामि ते ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

हे शौनक! शत्रुओंका संहार करनेवाला यह परम पावन चरित्र है ॥ २१ ॥ २२ ॥ अगस्त्य और विन्ध्यपर्वतके इस उपाख्यानके सुननेसे पापोंका उच्छेद हो जाता है। यह आख्यान राजाओंको विजयदायक और ब्राह्मणोंके लिए ज्ञानवर्धक है ॥ २३ ॥ यह वैश्योंके लिए धन-धान्य दायक और शूद्रोंको सुखदायक है। इसे सुननेवाला धर्मार्थी धर्म और धनका इच्छुक धन पाता है ॥ २४ ॥ भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करनेसे सकाम पुरुषोंके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। इस प्रकार स्वायम्भुव मनुने भक्तिपूर्वक देवीकी आराधना करके अपने मन्वन्तरभर पृथ्वीपर राज्य किया। हे सौम्य! मन्वन्तरसे संबन्ध रखनेवाला यह उपाख्यान मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया। यह भगवती श्रीदेवीका प्रथम चरित्र है, अब तुम्हें और कौन प्रसङ्ग सुनाऊँ? ॥ २५ ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीतांबरा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत मनुकी कथा) शौनकजीने कहा—हे सूतजी ! आपने जैसे प्रथम मन्वन्तरका उत्तम उपाख्यान सुनाया, वैसे ही अन्य तेजस्वी मनुओंकी कथा भी सुनानेकी कृपा कीजिये ॥१॥ सूतजी कहते हैं—हे शौनक ! इसी प्रकार आद्य स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनकर अन्य मनुओंका प्रादुर्भाव सुननेके विचारसे नारदजीने भी भगवान नारायणसे पूछा था । वे परमज्ञानी मुनि भगवतीके परम रहस्यको भलीभाँति जानते थे । नारदजीने कहा—हे सनातन प्रभो ! मुझे मनुओंका प्रसङ्ग सुनानेकी कृपा कीजिए ॥२॥ ॥ ३ ॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे महामुने ! मैंने इन प्रथम स्वायम्भुव मनुकी कथा सुनायी, जिन्होंने भगवतीकी आराधना करके निष्कण्टक राज्य भागा था ॥ ४ ॥ उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो महान् तेजस्वी पुत्र हुए । राज्यका पालन करनेवाले उन दोनों मनुपुत्रोंकी भूमण्डलपर बड़ी ख्याति हुई ॥ ५ ॥ विद्वान् पुरुष स्वारोचिष मनुको द्वितीय मनु कहते हैं । ये अमित पराक्रमी श्रीमान् स्वारोचिष मनु प्रियव्रतके पुत्र थे ॥६॥ सम्पूर्ण प्राणियोंका प्रिय करनेवाले मनु यमुनाके तटपर रहकर सूखे पत्तोंके आहारपर तपस्या करने लगे । वे

॥ शौनक उवाच ॥ आद्यो मन्वंतरः प्रोक्तो भवता चायमुत्तमः ॥ अन्येषामुद्भवं ब्रूहि मनूनां दिव्यतेजसाम् ॥१॥ सूत उवाच ॥ एवमाद्यस्य चोत्पत्तिं श्रुत्वा स्वायम्भुवस्य हि ॥ अन्येषां क्रमशस्तेषां संभूतिं परिपृच्छति ॥२॥ नारदः परमो ज्ञानी देवीतत्त्वार्थकोविदः ॥ नारद उवाच ॥ मनूनां मे समाख्याहि सूत्पत्तिं च सनातन ॥३॥ श्रीनारायण उवाच ॥ प्रथमोऽयं मनुः स्वायम्भुव उक्तो महामुने ॥ देव्याराधनतो येन प्राप्तं राज्यमकंटकम् ॥ ४ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ राज्यपालनकर्त्तारौ विख्यातौ वसुधातले ॥ ५ ॥ द्वितीयश्च मनुः स्वारोचिष उक्तो मनीषिभिः ॥ प्रियव्रतसुतः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥ ६ ॥ स स्वारोचिषनामापि कालिन्दीकूलतो मनुः ॥ निवासं कल्पयामास सर्वसत्त्वप्रियंकरः ॥ ७ ॥ जीर्णपत्राशनो भूत्वा तपः कर्तुमनुव्रतः ॥ देव्या मूर्तिं मृन्मयीं च पूजयामास भक्तितः ॥ ८ ॥ एवं द्वादश वर्षाणि वनस्थस्य तपस्यतः ॥ देवी प्रादुरभूत्तात सहस्रार्कसमद्युतिः ॥ ९ ॥ ततः प्रसन्ना देवेशी स्तवराजेन सुव्रता ॥ ददौ स्वारोचिषायैव सर्वमन्वन्तराश्रयम् ॥ १० ॥ आधिपत्यं जगद्धात्री तारिणीति प्रथामगात् ॥ एवं स्वारोचिषमनुस्तारिण्याराधनात्ततः ॥११॥ आधिपत्यं च लेभे स सर्वारातिविवर्जितम् ॥ धर्मं संस्थाप्य विधिवद्राज्यं पुत्रैः समं विभुः ॥ १२ ॥ भुक्त्वा जगाम स्वर्लोकं निजमन्वन्तराश्रयात् ॥ तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥ १३ ॥ गंगाकूले तपस्तप्त्वा

भगवतीकी मृन्मयी मूर्ति बनाकर भक्तिपूर्वक उनकी उपासना कर रहे थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे तात ! वनमें बारह वर्षोंकी तपस्या पूर्ण होनेपर हजारों सूर्योंके समान तेजसे सम्पन्न देवी उनके सामने प्रकट हो गयीं ॥९॥ उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाली उन देवेश्वरीने मनु द्वारा किए गए स्तवराजके प्रभावसे संतुष्ट होकर स्वारोचिष मनुको सम्पूर्ण मन्वन्तरका राजा बना दिया ॥ १० ॥ उस समय ऐसी प्रथा ही प्रचलित हो गयी कि प्रायः सभी लोग भगवतीको जगद्धात्री और तारिणी मानकर उनकी उपासना करने लगे ११ ॥ इस प्रकार स्वारोचिष मनुने तारिणीसंज्ञक देवीकी आराधना करके सम्पूर्ण शत्रुओंसे रहित निष्कण्टक राज्य प्राप्त कर लिया, धर्मकी विधिवत् स्थापना की और अपने पुत्रोंके साथ उसकी रक्षा करने लगे ॥१२॥ तदनन्तर अपने मन्वन्तर-कालके बाद वे स्वर्गको चले गए । इसके बाद प्रियव्रतपुत्र श्रीमान् उत्तम तीसरे मनु हुए ॥१३॥ वे गङ्गाके तटपर तपस्यामें संलग्न होकर निरन्तर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवती भुवनेश्वरीके मन्त्रका जप करने लगे। तीन वर्षोंतक उपासनाके पश्चात् उनपर भगवतीकी कृपा हुई ॥ १४ ॥ उन्होंने भक्तिपूर्ण मनसे उत्तम स्तोत्रका पाठ करके श्रीदेवीका स्तवन करनेके प्रसादस्वरूप निष्कण्टक राज्य तथा दीर्घजीवी सन्तान प्राप्त की ॥१५॥ राज्यसे प्राप्त होने योग्य सुखोंका भोग तथा युगके धर्मोंका पालन करके अन्य श्रेष्ठ राजर्षि जिस स्थानको प्राप्त कर चुके हैं, उसी पदपर वे भी चले गये ॥१६॥ चौथे मनुका नाम तामस मनु हुआ। उनके पिता प्रियव्रत थे। नर्मदाके दक्षिणी तटपर इन्होंने जगन्मयी भगवती जगदम्बाकी उपासना की ॥ १७ ॥ भगवती महेश्वरीके कामबीज मन्त्रका इन्होंने जप किया। आश्विन और चैत्रके नवरात्रमें ये देवीकी उपासना करते रहे ॥१८॥ इन्होंने उत्तम स्तोत्रोंका पाठ किया। इनके इस सत्प्रयत्नसे कमलके समान नेत्रोंसे अनुपम शोभा पानेवाली देवी संतुष्ट हो गयीं ॥१९॥ उनकी प्रसन्नता प्राप्त करके तामस मनुने शान्तिपूर्वक निष्कण्टक और विस्तृत राज्य भोगा। अपनी भार्याके उदरसे बड़े ही पराक्रमी शूरवीर दस पुत्रोंको उत्पन्न करके वे स्वयं उत्तम लोकके निवासी हुए। रैवतको पाँचवाँ मनु कहा जाता है। ये तामस मनुके छोटे भ्राता हैं

वाग्भवं संजपन्नहः ॥ वर्षाणि त्रीण्युपवसन्देव्यनुग्रहमाविशत् ॥ १४ ॥ स्तुत्वा देवीं स्तोत्रवरैर्भक्तिभावितमानसः ॥ राज्यं निष्कण्टकं लेभे संततिं चिरकालिकीम् ॥ १५ ॥ राज्योत्थान्यानि सौख्यानि भुक्त्वा धर्मान्युगस्य च ॥ सोऽप्याजगाम पदवीं राजर्षिवरभाविताम् ॥१६॥ चतुर्थस्तामसो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥ नर्मदादक्षिणे कूले समाराध्य जगन्मयीम् ॥ १७ ॥ महेश्वरीं कामराजकूटजापपरायणः ॥ वासंते शारदे काले नवरात्रसपर्यया ॥ १८ ॥ तोषयामास देवेशीं जलजाक्षीमनूपमाम् ॥ तस्याः प्रसादमासाद्य नत्वा स्तोत्रैरनुत्तमैः ॥ १९ ॥ अकंटकं महद्राज्यं बुभुजे गतसाध्वसः ॥ पुत्रान्बलोद्धताञ्छूरान्दश वीर्यनिकेतनान् ॥ २० ॥ उत्पाद्य निजभार्यायां जगामाम्बरमुत्तमम् ॥ पंचमो मनुराख्यातो रैवतस्तामसानुजः ॥ २१ ॥ कालिंदीकूलमाश्रित्य जजाप कामसंज्ञकम् ॥ बीजं परमवाग्दर्पदायकं साधकाश्रयम् ॥ २२ ॥ एतदाराधनादाप स्वाराज्यर्द्धिमनुत्तमाम् ॥ बलमप्रहतं लोके सर्वसिद्धिविधायकम् ॥ २३ ॥ संततिं चिरकालीनां पुत्रपौत्रमयीं शुभाम् ॥ धर्मान्व्यस्य व्यवस्थाप्य विषयानुपभुज्य च ॥ जगामाप्रतिमः शूरो महेंद्रालयमुत्तमम् ॥ २४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां चित्रं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ अंगपुत्रेण मनुना यथाऽऽप्तं राज्यमुत्तमम् ॥१॥ अङ्गस्य राज्ञः पुत्रोऽ-

॥ २० ॥ २१ ॥ यमुनाके तटपर रहकर इन्होंने कामबीजसंज्ञक मन्त्रका जप किया। सम्मान प्रदान करनेवाला यह बीजमन्त्र साधकके लिए परम आश्रयस्वरूप है ॥ २२ ॥ इसके द्वारा देवीकी आराधना करनेसे रैवत मनुको अपना समृद्धशाली उत्तम राज्य तथा जगत्में सर्वत्र सिद्धि प्रदान करनेवाला अप्रतिहत बल प्राप्त हो गया ॥ २३ ॥ पुत्र-पौत्र आदि उत्तम चिरञ्जीवी संतान भी इनको सुलभ हो गयी। इन्होंने धर्मकी स्थापना की और उसकी रक्षाका प्रबन्ध किया। तत्पश्चात् अप्रतिम शूरवीर ये रैवत मनु राज्यसुख भोगकर उत्तम स्वर्गलोकको सिधारे ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(चाक्षुष मनुकी कथा) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! इसके बाद भगवती जगदम्बाका अत्यन्त अद्भुत एवं उत्तम माहात्म्य सुनो। जिस प्रकार अङ्गके पुत्र मनुने श्रेष्ठ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राज्य प्राप्त किया था, वह प्रसङ्ग अब सुनाता हूँ ॥ १ ॥ राजा अङ्गके उत्तम पुत्रका नाम चाक्षुष था। वे छठें मनु हुए। उन्होंने ब्रह्मर्षि श्रीमान् पुलहकी शरणमें जाकर कहा–॥ २ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! मैं आतुर होकर नम्रतापूर्वक आपकी शरणमें आया हूँ। हे स्वामिन् ! आप मुझे अपना सेवक समझकर ऐसा उपदेश दीजिये कि जिससे मैं उत्तम 'श्री' प्राप्त कर सकूँ ॥ ३ ॥ साथ ही मुझे पृथ्वीका अखण्ड राज्य प्राप्त हो, मेरी भुजाओंमें अप्रतिहत बल हो और अस्त्र-शस्त्रके प्रयोगमें मैं पूर्णरूपसे निपुण हो जाऊँ ॥ ४ ॥ मेरी संतान चिरञ्जीवी हो, मेरी उत्तम आयु विघ्न-बाधासे रहित हो तथा आपके उपदेशसे अन्तमें मैं स्वर्ग प्राप्त कर सकूँ ॥ ५ ॥ चाक्षुष मनुकी ऐसी बातें सुननेपर श्रीमान् मुनिवर पुलहने उन्हें देवीकी उपासना करनेका आदेश दिया ॥६॥ उन्होंने कहा–हे राजन् ! कानोंको महान् सुख देनेवाली मेरी बात सुनो। इस समय तुम भगवती जगदम्बाकी आराधना करो। उनकी कृपासे तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण हो जायगा ॥७॥ चाक्षुष मनुने पूछा–हे मुने ! उन देवीकी आराधनाका क्या स्वरूप है ? उनकी परम पवित्र उपासना किस प्रकार करनी चाहिये ? इसे आप बतानेकी कृपा कीजिये।

भूश्चाक्षुषो मनुरुत्तमः ॥ षष्ठः सुपुलहं नाम ब्रह्मर्षिं शरणं गतः ॥२॥ ब्रह्मर्षे त्वामहं प्राप्तः शरणं प्रणतार्तिहन् ॥ शाधि मां किंकरं स्वामिन् येनाहं प्राप्नुयां श्रियम् ॥ ३ ॥ मेदिन्याश्चाधिपत्यं मे स्याद्यथावदखंडितम् ॥ अव्याहतं भुजबलं शस्त्रास्त्रनिपुणं क्षमम् ॥ ४ ॥ संततिश्चिरकालीनाऽप्यखंडं वय उत्तमम् ॥ अंतेऽपवर्गलाभश्च स्यात्तथोपदिशाद्य मे ॥ ५ ॥ इत्येवं वचनं तस्य मनोः कर्णपथेऽभवत् ॥ प्रत्युवाच मुनिः श्रीमान्देव्याः संराधनं परम् ॥ ६ ॥ राजन्नाकर्णय वचो मम श्रोत्रसुखं महत् ॥ शिवामाराधयाद्य त्वं तत्प्रसादादिदं भवेत् ॥ ७ ॥ चाक्षुष उवाच ॥ कीदृगाराधनं देव्यास्तस्याः परमपावनम् ॥ केनाकारेण कर्तव्यं कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ मुनिरुवाच ॥ राजन्नाकर्ण्यतां देव्याः पूजनं परमव्ययम् ॥ वाग्भवं बीजमव्यक्तं संजप्यमनिशं तथा ॥ ९ ॥ त्रिकालं संजपन्मर्त्यो भुक्तिमुक्ती लभेत्तु सः ॥ न बीजं वाग्भवादन्यदस्ति राजन्यनन्दन ॥ १० ॥ जपात्सिद्धिकरं वीर्यबलवृद्धिकरं परम् ॥ एतस्य जापात्पाद्मोऽपि सृष्टिकर्ता महाबलः ॥११॥ विष्णुर्यज्जपतः सृष्टिपालकः परिकीर्तितः ॥ महेश्वरोऽपि संहर्ता यज्जपादभवन्नृप ॥ १२ ॥ लोकपालास्तथान्येऽपि निग्रहानुग्रहक्षमाः ॥ यदाश्रयादभूवंस्ते बलवीर्यमदोद्धताः ॥ १३ ॥ एवं त्वमपि राजन्य महेशीं जगदम्बिकाम् ॥ समाराध्य महर्षे च लप्स्यसेऽचिरकालतः ॥ १४ ॥ एवं स मुनिवर्येण पुलहेन प्रबोधितः ॥ अङ्गपुत्रस्तपस्तप्तुं जगाम विरजां

मुनिने कहा–हे राजन् ! सुनो, देवीकी पूजाका प्रकार बता रहा हूँ। यह श्रेष्ठ पूजापद्धति सनातन है। सरस्वतीबीजका अव्यक्त रूपसे निरन्तर जप करना चाहिये ॥८॥९॥ प्रातः, सायं और मध्याह्न–तीनों कालमें जप करनेवाला मनुष्य भुक्ति और मुक्ति प्राप्त कर सकता है। हे राजनन्दन ! इस वाग्भव बीजके सिवा दूसरा कोई बीज ऐसा उपयोगी नहीं है ॥ १० ॥ इसका जप करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। यह बल और वीर्यको बढ़ानेवाला है। इसी मंत्रको जपकर ब्रह्मा महाबली होकर सृष्टिकर्ता बने। इसीको जपकर विष्णु सृष्टिपालक तथा इस मंत्रके जपसे ही शिवजी संहारकारी बने हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ निग्रह और अनुग्रह करनेमें समर्थ अन्यान्य लोकपाल भी इन्हींकी कृपासे बल-वीर्यसम्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥ अतः तुम भी इन्हींकी सम्यक् प्रकारसे आराधना करो। इसके फलस्वरूप तुम्हें शीघ्र समृद्धिशाली राज्य प्राप्त हो जायगा ॥ १४ ॥ इस प्रकार मुनिवर पुलहके समझानेपर अङ्गपुत्र चाक्षुष मनु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तपस्या करनेके विचारसे विरजा नदीके तटपर चले गये और उन्होंने वहाँ कठिन तपस्या आरम्भ कर दी ॥ १५ ॥ वे सरस्वतीबीजके जपमें संलग्न हो गये । वृक्षके जीर्ण-शीर्ण पत्तोंपर ही वे अपना निर्वाह करने लगे ॥१६॥ प्रथम वर्षमें वे पत्तोंपर तथा दूसरे वर्ष केवल पानीके आधारपर रहे और तीसरे वर्ष एकमात्र पवन ही उनका आहार रहा । उनके शरीरकी स्थिति ऐसी हो गयी थी कि मानो कोई अविचल स्थाणु हो ॥१७॥ निराहार रहकर बारह वर्षोंतक वे वाग्भव बीजका नित्य जप करते रहे । क्योंकि उनके अन्तःकरणमें ऐसी ही कल्याणमयी बुद्धि उत्पन्न हो गयी थी ॥ १८ ॥ उन्होंने देवीके श्रेष्ठ मन्त्रका जप करना ही जीवनका मुख्य उद्देश्य मान लिया था । अतः परमेश्वरी भगवती जगदम्बाने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया ॥ १९ ॥ परम दुर्धर्ष सर्वदेवमयी उन देवीका विग्रह अत्यन्त तेजोमय था । उन्होंने प्रसन्न होकर अङ्गकुमार चाक्षुप मनुसे सुन्दर शब्दोंमें कहा ॥ २० ॥ श्रीदेवी बोलीं—हे राजन् ! तुमने जो भी उत्तम वर पानेकी बात मनमें सोची हो, वह मुझे बतलाओ । मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट होनेके कारण उसे अवश्य पूर्ण करूँगी ॥ २१ ॥ चाक्षुष मनुने कहा—हे देवदेवेशी ! हे देवपूजिते !

नदीम् ॥ १५ ॥ स च तेपे तपस्तीव्रं वाग्भवस्य जपे रतः ॥ बीजस्य पृथिवीपालः शीर्णपर्णाशनो विभुः ॥ १६ ॥ प्रथमेऽब्दे पल्लवाशो द्वितीये तोयभक्षणः ॥ तृतीयेऽब्दे पवनभुक्तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥ १७ ॥ एवं द्वादश वर्षाणि त्यक्ताहारस्य भूभुजः ॥ वाग्भवं जपतो नित्यं मतिरासीच्छुभान्विता ॥ १८ ॥ तथा च देव्याः परमं मन्त्रं संजपतो रहः ॥ प्रादुरासीज्जगन्माता साक्षाच्छ्रीपरमेश्वरी ॥ १९ ॥ तेजोमयी दुराधर्षा सर्वदेवमयीश्वरी ॥ उवाचाङ्गतनूजं तं प्रसन्ना ललिताक्षरम् ॥ २० ॥ देव्युवाच ॥ पृथिवीपाल ते यत्स्याच्चिन्तितं परमं वरम् ॥ तद्ब्रूहि सम्प्रदाम्यामि तपसा ते सुतोषिता ॥ २१ ॥ चाक्षुष उवाच ॥ जानासि देवदेवेशि यत्प्रार्थ्यं मनसेप्सितम् ॥ अन्तर्यामीस्वरूपेण तत्सर्वं देवपूजिते ॥ २२ ॥ तथापि मम भाग्येन जातं यत्तव दर्शनम् ॥ ब्रवीमि देवि मे देहि राज्यं मन्वन्तराश्रितम् ॥ २३ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ दत्तं मन्वन्तरस्यास्य राज्यं राजन्यसत्तम ॥ पुत्रा महाबलास्ते च भविष्यन्ति गुणाधिकाः ॥२४॥ राज्यं निष्कंटकं भावि मोक्षोऽन्ते चापि निश्चितः ॥ एवं दत्त्वा वरं देवी मनवे वरमुत्तमम् ॥२५॥ जगामादर्शनं सद्यस्तेन भक्त्या च संस्तुता ॥ सोऽपि राजा मनुः षष्ठः प्रसादात्तु तदाश्रयात् ॥ २६ ॥ बभूव मनुमान्योऽसौ सार्वभौमसुखैर्वृतः ॥ पुत्रास्तस्य बलोद्युक्ताः कार्यभारसहाद्दताः ॥ २७ ॥ देवीभक्ताश्च शूराश्च महाबलपराक्रमाः ॥ अन्यत्र माननीयाश्च महाराज्यसुखास्पदाः ॥ २८ ॥

मैं जिस अभिलषित वस्तुके लिए प्रार्थना करना चाहता हूँ, सबकी अन्तर्यामीस्वरूपिणी होनेके कारण आप उसे भलीभाँति जानती हैं ॥ २२ ॥ तथापि हे देवि ! यदि मेरे सौभाग्यवश दर्शन हो गया है तो मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे मन्वन्तरका राज्य प्रदान करनेकी कृपा करिए ॥ २३ ॥ श्रीदेवी बोलीं—हे राजेन्द्र ! मैंने इस मन्वन्तरका राज्य तुम्हें दे दिया । इनके सिवा महान् पराक्रमी तथा श्रेष्ठ गुणवाले अनेक पुत्र भी तुम्हें प्राप्त होंगे ॥ २४ ॥ तुम्हारा भावी राज्य निष्कण्टक होगा और अन्तमें तुम मेरे परम धाममें चले आओगे । यह निश्चित है । इस प्रकार चाक्षुप मनुके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेपर भगवती उन्हें उत्तम वर देकर तुरन्त अन्तर्धान हो गयीं । वे ही राजा भगवती जगदंबाकी कृपासे और उनका आश्रय लेकर छठें मनु हुए ॥ २५ ॥ २६ ॥ उन परम आदरणीय मनुको अखिल भूमण्डलका सुख प्राप्त हो गया । उनके अतिशय बलवान् तथा कार्यभार सँभालनेवाले अनेक पुत्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुए ॥ २७ । वे सभी पुत्र भगवतीके उपासक, शूरवीर, अमित बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न, सर्वत्र आदर पानेवाले और महान् राज्य-सुखके अधिकारी थे ॥ २८ ॥ इस प्रकार चाक्षुष मनु भगवतीकी उपासना करके मनुओंमें प्रतिष्ठित होकर राज्य भोगनेके पश्चात् अन्तमें देवीके परम धाम चले गये ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पाण्डेय-रामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

(सावर्णि मनुकी कथा) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद ! महाभाग सप्तम वैवस्वत मनु प्रसिद्ध हैं। अपार आनन्दसे सम्पन्न इन मनुको 'श्राद्धदेव' भी कहा जाता है। सभी नरेश इनका आदर करते थे ॥१॥ परम पूज्या भगवतीकी कृपा तथा तपस्याके प्रभावसे उन्हें मन्वन्तरके अधिपति होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था ॥२॥ आठवें मनु भूमण्डलपर 'सावर्णि' नामसे विख्यात हुए। वे पूर्वजन्ममें देवीकी आराधना करके उनसे वर पाकर इस जन्ममें मन्वन्तरके अधिपति हुए थे ॥ ३ ॥ संपूर्ण राजाओंसे उन्हें सम्मान प्राप्त था। वे अपार

एवं च चाक्षुषमनुर्देव्याराधनतः प्रभुः ॥ बभूव मनुवर्योऽसौ जगामांते शिवापदम् ॥२९॥ इति श्रीदेवीभागवते दशमस्कन्धे देवीचरित्रे नवमोऽध्यायः ॥९॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सप्तमो मनुराख्यातो मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ॥ श्राद्धदेवः परानन्दभोक्ता मान्यस्तु भूभुजाम् ॥ १ ॥ स च वैवस्वतमनुः परदेव्याः प्रसादतः ॥ तथा तत्तपसा चैव जातो मन्वन्तराधिपः ॥ २ ॥ अष्टमो मनुराख्यातः सावर्णिः प्रथितः क्षितौ ॥ स जन्मान्तर आराध्य देवीं तद्वरलाभतः ॥ ३ ॥ जातो मन्वन्तरपतिः सर्वराजन्यपूजितः ॥ महापराक्रमो धीरो देवीभक्तिपरायणः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ कथं जन्मान्तरे तेन मनुनाऽऽराधनं कृतम् ॥ देव्याः पृथिव्युद्भवायास्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ चैत्रवंशसमुद्भूतो राजा स्वारोचिषेऽन्तरे ॥ सुरथो नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ६ ॥ गुणग्राही धनुर्धारी मान्यः श्रेष्ठः कविः कृती ॥ धनसंग्रहकर्ता च दाता याचकमण्डले ॥ ७ ॥ अरीणां मर्दनो मानी सर्वास्त्रकुशलो बली ॥ तस्यैकदा बभूवुस्ते कोलाविध्वंसिनो नृपाः ॥ ८ ॥ शत्रवः सैन्यसहिताः परिवार्यैनमूर्जिताः ॥ रुरुधुर्नगरीं तस्य राज्ञो मानधनस्य हि ॥ ९ ॥ तदा स सुरथो नाम राजा सैन्यसमावृतः ॥ निर्ययौ नगरात्स्वीयात्सर्वशत्रुनिबर्हणः ॥ १० ॥ तदा स

पराक्रमी, विद्वान् और भगवती जगदंबाके परम उपासक थे ॥ ४ ॥ नारदजीने कहा—सावर्णि मनुने पूर्वजन्ममें भगवतीकी कैसी पार्थिव मूर्तिका पूजन किया था ? इसे बताइए ॥ ५ ॥ श्रीनारायणने कहा—जिस समय दूसरे मनु स्वारोचिष राज्य कर रहे थे, उस समय उनके मन्वन्तरकालमें आठवें सावर्णि मनु चैत्रवंशमें उत्पन्न हुए थे। उस समय उनका नाम सुरथ था और वे महाबली एवं पराक्रमी थे ॥ ६ ॥ वे गुणग्राही, धनुर्धारी, माननीय, श्रेष्ठ, कवि, कुशल तथा धनसंग्रह करनेवाले थे और याचकोंको दान देते थे ॥ ७ ॥ शत्रुओंकी शक्तिको कुचल देनेवाले, मानी, समस्त अस्त्र चलानेमें निपुण और बली थे। एक समयकी बात है कि एक क्षत्रिय राजाने उनकी कोला राजधानीको मटियामेट कर देनेको संनद्ध हो गया ॥ ८ ॥ तेजस्वी शत्रुओंने सेनाके साथ चढ़ाई करके सम्मानके धनी राजा सुरथकी राजधानीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ९ ॥ तब समस्त शत्रुओंका उच्छेद करनेवाले राजा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुरथ सेना सजाकर अपने नगरसे निकले ॥ १० ॥ लेकिन शत्रुओंने युद्धमें राजा सुरथको जीत लिया । उस परिस्थितिसे लाभ उठाकर उनके दुष्ट प्रधानामात्य एवं अर्थमन्त्रियोंने राजकीय खजानेके सारे धनको हथिया लिया । इससे राजाको बड़ा सन्ताप हुआ । वे परम तेजस्वी राजा नगरसे बाहर निकाल दिये गये ॥ ११ ॥ १२ ॥ तब वे शिकार खेलनेके बहाने एक घोड़ेपर सवार होकर जङ्गलमें चले गये । बियाबान जङ्गलमें वे घूमने लगे—किन्तु उनका चित्त चक्कर काट रहा था ॥ १३ ॥ फिर किसी मुनि (अर्थात् सुमेधा ऋषि) के आश्रममें पहुँचनेपर उनका चित्त शान्त हुआ । क्योंकि उस आश्रममें शान्त प्रकृतिके पशु रहते थे और मुनिशिष्य लोग निवास करते थे ॥ १४ ॥ दीर्घदृष्टि मुनिवर सुमेधाके परम सुन्दर आश्रममें राजाने कुछ समय तक निवास किया ॥ १५ ॥ एक दिन जब मुनि पूजा आदि नित्य-कृत्यसे निवृत्त हुए तो राजा सुरथ उनके पास पहुँचे और प्रणाम करके नम्रता-पूर्वक कहने लगे—॥१६॥ हे मुनिवर ! मेरा मन मानसिक कष्टके कारण बड़ा दुखी रहता है । हे भूसुर ! यद्यपि मैं सब बातें जानता हूँ । तथापि मुझे निरन्तर इतना मार्मिक क्लेश होता,

समरे राजा सुरथः शत्रुभिर्जितः ॥ अमात्यैर्मंत्रिभिश्चैव तस्य कोशगतं धनम् ॥ ११ ॥ हृतं सर्वमशेषेण तदाऽतप्यत भूमिपः ॥ निष्काशितश्च नगरात्स राजा परमद्युतिः ॥ १२ ॥ जगामाश्वमथारुह्य मृगयामिषतो वनम् ॥ एकाकी विजनेऽरण्ये बभ्रामोद्भ्रांतमानसः ॥ १३ ॥ मुनेः कस्यचि-दागत्य स्वाश्रमं शांतमानसः ॥ प्रशांतजंतुसंयुक्तं मुनिशिष्यगणैर्युतम् ॥ १४ ॥ उवास कंचित्कालं स राजा परमशोभने ॥ आश्रमे मुनिवर्यस्य दीर्घदृष्टेः सुमेधसः ॥ १५ ॥ एकदा स महीपालो मुनिं पूजावसानके ॥ काले गत्वा प्रणम्याशु पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ १६ ॥ मुने मम मनोदुःखं बाधते चाधिसंभवम् ॥ ज्ञाततत्त्वस्य भूदेव निष्प्रज्ञस्य च संततम् ॥ १७ ॥ शत्रुभिर्निर्जितस्यापि हृतराज्यस्य सर्वशः ॥ तथापि तेषु मनसि ममत्वं जायते स्फुटम् ॥१८॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे मुने ॥ त्वदनुग्रहमाशासे वद वेदविदां वर ॥१९॥ मुनिरुवाच ॥ आकर्णय महीपाल महाश्चर्यकरं परम् ॥ देवीमाहात्म्यमतुलं सर्वकामप्रदं परम् ॥२०॥ जगन्मयी महामाया विष्णुब्रह्महरोद्भवा ॥ सा बलादपहृत्यैव जंतूनां मानसानि हि ॥ २१ ॥ मोहाय प्रतिसंयच्छेदिति जानीहि भूमिप ॥ सा सृजत्यखिलं विश्वं सा पालयति सर्वदा ॥२२॥ संहारे हररूपेण संहरत्येव भूमिप ॥ कामदात्री महामाया कालरात्रिर्दुरत्यया ॥२३॥ विश्वसंहारिणी काली कमला कमलालया ॥ तस्यां सर्वं जगज्जातं तस्यां विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ २४ ॥

है कि मानो मैं एकदम अज्ञानी हूँ ॥ १७ ॥ शत्रुओंने मुझे परास्त करके मेरा राज्य अपहरण कर लिया है । फिर भी न मालूम क्यों, मेरी ममता उसपर बनी हुई है ॥ १८ ॥ हे मुनिराज ! हे वेदवेत्ताओंमें अग्रगण्य ! मैं क्या करूँ ? कहा जाऊँ ? कैसे मेरे चित्तको शान्ति मिले ? अब आपकी कृपाकी ही आशा है, कृपया मुझे कोई उपाय बतलाइए ॥ १९ ॥ ऋषिने कहा—हे राजन् ! आप अत्यन्त विस्मयजनक, श्रेष्ठ, अद्वितीय और समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली देवीके महात्म्यको सुनिये ॥२०॥ वे महामाया विश्वमयी हैं, वे ही ब्रह्मा-विष्णु और शिवकी माता हैं, वे ही प्राणियोंके अन्तःकरणको बलपूर्वक आकर्षित करके मोहमें डाल देती हैं । हे भूमिपाल ! इस बातको आप अच्छी तरह समझ लीजिए । वे ही सारे विश्वकी सृष्टि, पालन और संहारकालमें शिवरूपसे संहार करती हैं । हे नरपाल ! वे ही महामाया सबकी कामना पूर्ण करती हैं और वे ही दुर्दान्त कालरात्रि हैं ॥२१–२३॥ वे ही विश्व-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

-का संहार करनेवाली काली हैं और वे ही विश्वका पालन करनेवाली तथा कमल-निवासिनी महालक्ष्मी हैं। उन्हींसे यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है और उन्हींमें यह विश्व स्थित है ॥ २४ ॥ उन्हींमें फिर यह विश्व लीन हो जायगा। इसीसे वे श्रेष्ठ और उच्चसे भी उच्च हैं। हे महाराज! उन भगवतीकी कृपा जिस व्यक्तिके ऊपर हो जाय। वही मनुष्य इस मोहके चंगुलसे छूट सकता है। हे धरापति! इसमें रञ्चमात्र संशय नहीं है ॥२५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीतांबरा' भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

राजा सुरथने पूछा–हे काल-ज्ञान रखनेवालोंमें श्रेष्ठ! हे द्विज! आपने जिनके बारेमें अभी-अभी कहा है, वे देवी कौन हैं? वे देवी प्राणियोंको क्यों मोहित करती हैं? इसमें क्या कारण है? ॥ १ ॥ वे देवी किनसे उत्पन्न हुई हैं? उनका कैसा स्वरूप है? उनका कैसा चरित्र है? हे ब्रह्मन्! आप कृपा करके मुझे इन सब बातोंको भली-भाँति बतलाइए ॥ २ ॥ मुनिने कहा–हे महाराज! वे देवी जिस प्रकार उत्पन्न हुईं, जिनसे उनका प्रादुर्भाव हुआ और देवीका जैसा स्वरूप है–मैं आपसे इन सबका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिए ॥ ३ ॥

लयमेष्यति तस्यां च तस्मात्सैव परात्परा ॥ तस्या देव्याः प्रसादश्च यस्योपरि भवेन्नृप ॥ स एव मोहमत्येति नान्यथा धरणीपते ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ राजोवाच ॥ का सा देवी त्वया प्रोक्ता ब्रूहि कालविदां वर ॥ का मोहयति सत्त्वानि कारणं किं भवेद्द्विज ॥ १ ॥ कस्मादुत्पद्यते देवी किंरूपा सा किमात्मिका ॥ सर्वमाख्याहि भूदेव कृपया मम सर्वतः ॥ २ ॥ मुनिरुवाच ॥ राजन्देव्याः स्वरूपं ते वर्णयामि निशामय ॥ यथा चोत्पतिता देवी येन वा सा जगन्मयी ॥ ३ ॥ यदा नारायणो देवो विश्वं संहृत्य योगराट् ॥ आस्तीर्य शेषं भगवान्समुद्रे निद्रितोऽभवत् ॥ ४ ॥ तदा प्रस्वापवशगो देवदेवो जनार्दनः ॥ तत्कर्णमलसंजातौ दानवौ मधुकैटभौ ॥ ५ ॥ ब्रह्माणं हंतुमुद्युक्तौ दानवौ घोररूपिणौ ॥ तदा कमलजो देवो दृष्ट्वा तौ मधुकैटभौ ॥ ६ ॥ निद्रितं देवदेवेशं चिंतामाप दुरत्ययाम् ॥ निद्रितो भगवानीशो दानवौ च दुरासदौ ॥ ७ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे ह्यहम् ॥ एवं चिंतयतस्तस्य पद्मयोनेर्महात्मनः ॥ ८ ॥ बुद्धिः प्रादुरभूत्तात तदा कार्यप्रसाधनी ॥ यस्या वशं गतो देवो निद्रितो भगवान्हरिः ॥९॥ तां देवीं शरणं यामि निद्रां सर्वप्रसूतिकाम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवि देवि जगद्धात्रि भक्ताभीष्टफलप्रदे ॥ १० ॥ जगन्माये

कल्पके अंतमें योगिराज भगवान् नारायण विश्वका संहार करके शेषनागकी शय्यापर समुद्रमें योगनिद्राका आश्रय लेकर सो रहे थे ॥ ४ ॥ देवाधिदेव भगवान् जनार्दनके निद्रित हो जानेपर उनके कानका मैलसे मधु और कैटभ नामके दो दानव उत्पन्न हुए ॥५॥ वे दोनों भयङ्कर आकृतिवाले दानव ब्रह्माजीका वध करनेको उद्यत हो गये। तब कमलयोनि ब्रह्माजी एक ओर तो मधु-कैटभको प्रहार करते और दूसरी ओर देवाधिदेव भगवान्‌को शयन करते देखकर अत्यन्त चिन्तित हुए। वे सोचने लगे कि भगवान् ईश्वर तो निद्राके वशमें हैं और ये दोनों प्रबल दैत्य मुझे मारनेके लिए तैयार हैं ॥६॥७॥ अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मुझे शान्ति कैसे मिले? महात्मा पद्मयोनि ब्रह्मा इस तरह चिन्ता कर ही रहे थे कि हे वत्स! उनके मनमें उनकी अभिलाषाकी पूर्ति करनेवाली यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि जिनके वशमें होकर भगवान् विष्णु सो रहे हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ सबका प्रसव करनेवाली उन्हीं निद्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवीकी शरणमें जाना चाहिए। ब्रह्माजीने कहा—हे देवताओंकी देवी! हे जगद्धात्री! हे भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली! ॥१ " हे जगन्माया! हे महामाया! हे समुद्रमें शयन करनेवाली! हे कल्याणी! आपकी आज्ञाके वशीभूत होकर सब लोग सीमित क्षेत्रके भीतर अपना-अपना कार्य करते हैं ॥ ११ ॥ आप ही कालरात्रि हैं, आप ही महारात्रि हैं और आप ही भयंकर मोहरात्रि हैं। आप ही व्यापिका हैं, आप ही भक्तोंके वशीभूत हैं, आप ही सम्माननीया और सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हैं ॥१२॥ आप ही महनीय (बड़ी) हैं, आप ही महा आराधनीया हैं, आप ही माया हैं, आप ही मधुमती हैं, आप ही पृथ्वी हैं, समस्त श्रेष्ठ एवं साधारण पदार्थोंमें आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१३॥ आप ही लज्जा, पुष्टि, क्षमा, कीर्ति, कान्ति और करुणाकी प्रतिमूर्ति हैं। सभी लोग आपकी कामना करते हैं, आपहीकी सारा विश्व वन्दना करता है, आप ही जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाकी प्रतिरूपिणी हैं ॥ १४ ॥ आप ही परमा, परमेश्वरी और परमानन्दपरायणा हैं। आप ही एक (अद्वितीय) हैं। इसलिए आप 'एक' संख्यारूपिणी कही गयी हैं। आप ही सद्वितीया (अर्थात् माया सहित) होनेके कारण 'दो' संख्यारूपिणी भी कही जाती हैं।

महामाये समुद्रशयने शिवे ॥ त्वदाज्ञावशगाः सर्वे स्वस्वकार्यविधायिनः ॥११॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिर्मदोत्कटा ॥ व्यापिनी वशगा मान्या महानंदैकशेवधिः ॥ १२ ॥ महनीया महाराध्या माया मधुमती मही ॥ परापराणां सर्वेषां परमा त्वं प्रकीर्तिता ॥ १३ ॥ लज्जा पुष्टिः क्षमा कीर्तिः कान्तिकारुण्यविग्रहा ॥ कमनीया जगद्वंद्या जाग्रदादिस्वरूपिणी ॥ १४ ॥ परमा परमेशानी परानंदपरायणा ॥ एकाऽप्येकस्वरूपा च सद्वितीया द्वयात्मिका ॥ १५ ॥ त्रयी त्रिवर्गनिलया तुर्या तुर्यपदात्मिका ॥ पंचमी पंचभूतेशी षष्ठी षष्ठेश्वरीति च ॥ १६ ॥ सप्तमी सप्तवारेशी सप्तसप्तवरप्रदा ॥ अष्टमी वसुनाथा च नवग्रहमयीश्वरी ॥ १७ ॥ नवरागकला रम्या नवसंख्या नवेश्वरी ॥ दशमी दशदिक्पूज्या दशाशाव्यापिनी रमा ॥ १८ ॥ एकादशात्मिका चैकादशरुद्रनिषेविता ॥ एकादशीतिथिप्रीता एकादशगणाधिपा ॥ १९ ॥ द्वादशी द्वादशभुजा द्वादशादित्यजन्मभूः ॥ त्रयोदशात्मिका देवी त्रयोदशगणप्रिया ॥ २० ॥ त्रयोदशाभिधा भिन्ना विश्वेदेवाधिदेवता ॥ चतुर्दशेंद्रवरदा चतुर्दशमनुप्रसूः ॥ २१ ॥ पंचाधिकदशी वेद्या

॥१५॥ आप ही त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की धाम हैं—इसलिए 'त्रयी' (वेदत्रयी या गुणत्रयरूपिणी) कही गयी हैं—अतः आप 'चार' हैं। आप पंचमहाभूतोंकी अधीश्वरी हैं—अतः 'पंचमी' हैं। आप काम-क्रोध-मद-मोह-लोभ-मत्सरकी ईश्वरी हैं—अतः 'षष्ठी' हैं ॥१६॥ आप सात वार अर्थात् रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनिवारकी अधिष्ठात्री देवी और सात-सात वर देनेवाली अर्थात् सप्तसप्त अग्निको वर देनेवाली हैं—अतः 'सप्तमी' हैं। आप धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास इन अष्टवसुओंकी ईश्वरी हैं। अतः 'अष्टमी' हैं। आप ही नवग्रहमयी ईश्वरी, नव-राग, नवकला एवं नवकी अधीश्वरी हैं—अतः 'नवमी' हैं। आप दसों दिशाओंमें व्याप्त रमारूपिणी हैं, आप दसों दिशाओंमें पूजी जाती हैं—अतः 'दशमी' हैं ॥१७॥१८॥ एकादश रुद्र आपकी आराधना करते हैं, आपको एकादशी तिथि बड़ी प्रिय है, आप ग्यारह गणोंकी अधीश्वरी हैं—अतः 'एकादशी' हैं ॥ १९ ॥ आप द्वादशभुजा देवी हैं, द्वादश आदित्यको जन्म देनेवाली आदिमाता हैं—अतः 'द्वादशी' हैं। आप त्रयोदशात्मिका देवी हैं अर्थात् मलमासके सहित तेरहों गणोंको प्रिया हैं ॥२०॥ आप विश्वेदेवकी अधिष्ठात्री देवी

१३३७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। अतः आप 'त्रयोदशी' हैं। आप चौदहों इन्द्रोंको वर देनेवाली हैं और चौदहों मनुओंकी माता हैं, अतः 'चतुर्दशी' हैं॥ २१॥ आप पंचदशी अर्थात् कामराजविद्यारूपा त्रिपुरसुन्दरी विद्यासे जानी जाती हैं। अतः आप पञ्चदशी तिथिरूपिणी 'पञ्चदशी' हैं। आप सोलह भुजाओंवाली हैं। आपके भालपर चन्द्रमाकी सोलहों कला विराजमान है॥ २२॥ आपके दिव्य शरीरमें चन्द्रमाकी षोडशकलात्मक किरणें व्याप्त होनेसे अमावस्यारूपिणी हैं, अतः 'षोडशी' हैं। हे देवेशी! आप निर्गुणा हैं, निराकार हैं, किन्तु तमोगुणी होकर अवतार धारण करती हैं॥२३॥ आपने भगवान, देवाधिदेव और रमारमण विष्णुको मोहमें डालकर निद्राके अधीन कर दिया है। ये दोनों मधु और कैटभ नामके दानव बड़े क्रूर और पराक्रमी हैं॥२४॥ अतः इन दोनोंका वध करने लिए आप विष्णुभगवानको जगा दीजिए। सुमेधा ऋषिने कहा कि जब ब्रह्माने भगवत्प्रिया एवं तामसी योगनिद्रा भगवतीकी इस प्रकार स्तुति की॥ २५॥ तब उन्होंने भगवान विष्णुके शरीरसे निकलकर उन दोनों दानवोंको मोहित कर दिया। उसी समय परमात्मा, जगन्नाथ और भगवान् विष्णु जाग गये और उन्होंने दोनों दैत्यश्रेष्ठोंको देखा।

पञ्चाधिकदशी तिथिः॥ षोडशी षोडशभुजा षोडशेन्दुकलामयी॥२२॥ षोडशात्मकचंद्रांशुव्याप्तदिव्यकलेवरा॥ एवंरूपाऽसि देवेशि निर्गुणे तामसोदये॥ २३॥ त्वया गृहीतो भगवान्देवदेवो रमापतिः॥ एतौ दुरासदौ दैत्यौ विक्रान्तौ मधुकैटभौ॥ २४॥ एतयोश्च वधार्थाय देवेशं प्रतिबोधय॥ मुनिरुवाच॥ एवं स्तुता भगवती तामसी भगवत्प्रिया॥ २५॥ देवदेवं तदा त्यक्त्वा मोहयामास दानवौ॥ तदैव भगवान्विष्णुः परमात्मा जगत्पतिः॥ २६॥ प्रबोधमाप देवेशो ददृशे दानवोत्तमौ॥ तदा तौ दानवौ घोरौ दृष्ट्वा तं मधुसूदनम्॥ २७॥ युद्धाय कृतसंकल्पौ जग्मतुः सन्निधिं हरेः॥ युयुधे च ततस्ताभ्यां भगवान्मधुसूदनः॥२८॥ पंचवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः। तौ तदाऽतिबलोन्मत्तौ जगन्मायाविमोहितौ॥ २९॥ व्रियतां वर इत्येवमूचतुः परमेश्वरम्॥ एवं तयोर्वचः श्रुत्वा भगवानादिपूरुषः॥३०॥ वव्रे वध्यावुभौ मेऽद्य भवेतामिति निश्चितम्॥ तौ तदाऽतिबलौ देवं पुनरेवोचतुर्हरिम्॥ ३१॥ आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा च परिप्लुता॥ तथेत्युक्त्वा भगवता गदाशंखभृता नृप॥ ३२॥ कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः॥ एवं देवी समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता नृप॥ ३३॥ महाकाली महाराज सर्वयोगेश्वरेश्वरी॥ महालक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिं निशामय महीपते॥ ३४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

उधर दोनों भयंकर दानवोंने जब देखा कि मधुसूदन भगवान जाग गये हैं॥ २६॥ २७॥ तब लड़नेकी इच्छासे वे भगवानके समीप पहुँचे। तदनन्तर भगवान विष्णु मधुसूदनने उन दोनोंके साथ पाँच हजार वर्ष तक बाहुयुद्ध किया। ये दोनों अत्यन्त बलके कारण उन्मत्त हो रहे थे। इधर महामायाने भी उन्हें मोहमें डाल रक्खा था॥ २८॥ २९॥ इसलिए वे परमेश्वरसे कहने लगे—हम दोनोंसे कोई वरदान माँग लो। उनकी यह बात सुनकर भगवान आदि पुरुषने यही वरदान माँगा कि तुम दोनों अभी मेरे हाथों मारे जाओ। तब वे दोनों अतीव बलशाली दानव भगवान विष्णुसे कहने लगे—॥ ३०॥ ३१॥ अच्छी बात है, जहाँ पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो अर्थात् जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो। हे राजा सुरथ! तब भगवान गदा-शंखधारी नारायणने कहा कि ऐसे ही स्थलमें मैं तुम्हारा वध करूँगा॥ ३२॥ यह कहकर भगवानने उन दोनोंके मस्तकको अपनी जाँघपर रखकर चक्रसे काट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डाला। हे राजन्! इस प्रकार ब्रह्माजीके स्तुति करनेपर भगवती महाकाली—जो सभी योगिराजोंकी अधीश्वरी हैं—प्रकट हुई थीं। अब महालक्ष्मीजीकी उत्पत्तिका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये॥ ३३॥ ३४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः॥ ११॥

सुमेधा ऋषिने कहा—महिषीके गर्भसे उत्पन्न महाबली और पराक्रमी महिषासुर समस्त देवताओंको परास्त करके अखिल भूमण्डलका एकछत्र सम्राट् हो गया॥ १॥ वह असुरसम्राट् समस्त लोकपालोंके अधिकारोंको हठात् छीनकर त्रिभुवनका ऐश्वर्य भोगने लगा॥२॥ जब सब देवता उससे पराजित हो गये तो वे स्वर्गलोकसे बाहर निकाल दिये गये। तब वे देवता ब्रह्माजीके साथ उत्तम कैलास और वैकुण्ठ धाममें गये, जहाँ देवाधिदेव भगवान शंकर और विष्णु रहते हैं। देवताओंने उनसे अत्याचारी महिषका सारा वृत्तान्त बताते हुए कहा—वह असुर समस्त देवताओंको जीत तथा बल, वीर्य एवं मदके कारण अहङ्कारी होकर स्वयं देवसाम्राज्यपर शासन कर रहा है॥ ३–५॥ हे देवताओंके ईश्वर! हे असुरनाशक

॥ मुनिरुवाच ॥ महिषीगर्भसंभूतो महाबलपराक्रमः॥ देवान्सर्वान्पराजित्य महिषोऽभूज्जगत्प्रभुः॥ १॥ सर्वेषां लोकपालानामधिकारान्महासुरः॥ बलान्निर्जित्य बुभुजे त्रैलोक्यैश्वर्यमद्भुतम्॥ २॥ ततः पराजिताः सर्वे देवाः स्वर्गपरिच्युताः॥ ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ते जग्मुर्लोकमुत्तमम्॥ ३॥ यत्रोत्तमौ देवदेवौ संस्थितौ शंकराच्युतौ॥ वृत्तान्तं कथयामासुर्महिषस्य दुरात्मनः॥ ४॥ देवानां चैव सर्वेषां स्थानानि तरसाऽसुरः॥ विनिर्जित्य स्वयं भुंक्ते बलवीर्यमदोद्धतः॥५॥ महिषासुरनामाऽसौ दुष्टदैत्योऽमरेश्वरौ॥ वधोपायश्च तस्याशु चिंत्यतामसुरार्दनौ॥ ६॥ एवं श्रुत्वा स भगवान्देवानामार्तियुग्वचः॥ चक्रतुः परमं कोपं तदा शंकरपद्मजौ॥ ७॥ एवं कोपयुतस्यास्य हरेरास्यान्महीपते॥ तेजः प्रादुर्भूद्दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति॥ ८॥ अथानुक्रमतस्तेजः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम्॥ शरीरादुद्भवं प्राप हर्षयद्विबुधाधिपान्॥ ९॥ यदभूच्छंभुजं तेजो मुखमस्योदपद्यत॥ केशा बभूवुर्याम्येन वैष्णवेन च बाहवः॥ १०॥ सौम्येन च स्तनौ जातौ माहेन्द्रेण च मध्यमः॥ वारुणेन ततो भूप जंघोरू संबभूवतुः॥ ११॥ नितम्बौ तेजसा भूमेः पादौ ब्राह्मेण तेजसा॥ पादाङ्गुल्यो भानवेन वासवेन कराङ्गुली॥ १२॥ कौबेरेण तथा नासा दन्ताः

शिवजी तथा विष्णु भगवान! उसका नाम महिषासुर है। वह बड़ा अत्याचारी शासक है। अतः आप शीघ्र उसके वध करनेका कोई उपाय ढूँढ़ निकालिए॥ ६॥ जब भगवान विष्णुने देवताओंकी इस प्रकार कष्टमयी करुणवाणी सुनी तो उन्हें बड़ा क्रोध आ गया। इसी प्रकार भगवान शंकर और ब्रह्माजी भी बड़े कुपित हुए॥ ७॥ हे महाराज! इस प्रकार कुपित भगवान विष्णुके मुखसे हजारों सूर्यकी कान्तिके समान दिव्य तेज प्रकट हुआ॥ ८॥ इसके बाद क्रमशः इन्द्र, अग्नि, कुबेर आदि सभी देवताओंके शरीरसे उन्हें प्रसन्न करता हुआ तेज निकला॥ ९॥ शम्भुके शरीरसे जो तेज निकला उससे मुख बना, यमराजके तेजसे सिरके बाल बने और विष्णु भगवानके तेजसे भुजाएँ बनीं॥ १०॥ हे भूप! चन्द्रमाके तेजसे दोनों स्तन बने, इन्द्रके तेजसे कमर बनी, वरुणके तेजसे जंघा और पिंडलीका प्रादुर्भाव हुआ॥ ११॥ पृथ्वीके तेजसे नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण, सूर्यके तेजसे पैरोंकी अंगुलियाँ और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अष्टवसुओंके तेजसे हाथोंकी अंगुलियाँ बनीं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! कुबेरके तेजसे नाक और प्रजापतिके उत्कृष्ट तेजसे दाँत उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ अग्निके तेजसे शुभदायक तीनों नेत्रों और सन्ध्याके तेजसे कान्तिके निधान दोनों भौंहोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥ १४ ॥ वायुके तेजसे दोनों कान उत्पन्न हुए। हे महाराज ! इस प्रकार सभी देवताओंके तेजसे भगवती महिषमर्दिनीका अवतार हुआ ॥ १५ ॥ तब शिवजीने भगवतीको अपना त्रिशूल, विष्णुभगवानने अपना सुदर्शन चक्र, वरुणने शंख, अग्निने शक्ति तथा वायुने धनुष और बाण दिये ॥ १६ ॥ इन्द्रने वज्र और अपने ऐरावत हाथीका घण्टा, यमराजने कालदण्ड तथा ब्रह्माने अक्षमाला और कमण्डलु दिये ॥ १७ ॥ हे राजन् ! सूर्यने देवीके समस्त रोमछिद्रोंमें अपनी किरणोंका तेज भर दिया। कालने चमकती हुई ढाल और तलवार दी ॥ १८ ॥ हे महाराज ! क्षीरसागरने एक निर्मल हार तथा कभी पुरानी न होनेवाली लाल रंगकी साड़ी और दुपट्टे दिये। सागरने

संजज्ञिरे तदा ॥ प्राजापत्येनोत्तमेन तेजसा वसुधाधिप ॥ १३ ॥ पावकेन च संजातं लोचनत्रितयं शुभम् ॥ सांध्येन तेजसा जाते भृकुट्यौ तेजसां निधी ॥ १४ ॥ कर्णौ वायव्यतो जातौ तेजसो मनुजाधिप ॥ सर्वेषां तेजसा देवी जाता महिषमर्दिनी ॥ १५ ॥ शूलं ददौ शिवो विष्णुश्चक्रं शङ्खं च पाशभृत् ॥ हुताशनो ददौ शक्तिं मारुतश्चापसायकौ ॥१६॥ वज्रं महेन्द्रः प्रददौ घण्टां चैरावताद्गजात् ॥ कालदण्डं यमो ब्रह्मा चाक्षमाला-कमण्डलू ॥ १७ ॥ दिवाकरो रश्मिमालां रोमकूपेषु संददौ ॥ कालः खड्गं तथा चर्म निर्मलं वसुधाधिप ॥ १८ ॥ समुद्रो निर्मलं हारमजरे चाम्बरे नृप: ॥ चूडामणिं कुण्डले च कटकानि तथाऽङ्गदे ॥ १९ ॥ अर्धचन्द्रं निर्मलं च नूपुराणि तथा ददौ ॥ ग्रैवेयकं भूषणं च तस्यै देव्यै मुदान्वितः ॥ २० ॥ विश्वकर्मा चोर्मिकाश्च ददौ तस्यै धरापते ॥ हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥२१॥ पानपात्रं सुरापूर्णं ददौ तस्यै धनाधिपः ॥ शेषश्च भगवान्देवो नागहारं ददौ विभुः ॥ २२ ॥ अन्यैरशेषविबुधैर्मानिता सा जगन्मयी ॥ तां तुष्टुवुर्महादेवीं देवा महिषपीडिताः ॥ २३ ॥ नानास्तोत्रैर्महेशानीं जगदुद्भवकारिणीम् ॥ तेषां निशम्य देवेशी स्तोत्रं विबुधपूजिता ॥ २४ ॥ महिषस्य वधार्थाय महानादं चकार ह ॥ तेन नादेन महिषश्चकितोऽभूद्धरापते ॥ २५ ॥ आससाद जगद्धात्रीं सर्वसैन्यसमावृतः ॥ ततः स युयुधे देव्या महिषाख्यो महासुरः ॥ २६ ॥ शस्त्रास्त्रै-

चूडामणि, कुण्डल, कड़े, बाजूबन्द, निर्मल अर्धचन्द्र (सिरबेंदी), पायजेब और गलेका आभूषण टीक आदि परम प्रसन्नताके साथ देवीको दिये ॥१९॥२०॥ हे पृथ्वीपाल ! विश्वकर्माने उन्हें अंगूठियाँ दीं। हिमालयने तरह-तरहके जवाहरात और सवारीके लिए एक सिंह दिया ॥२१॥ धनाध्यक्ष कुबेरने सुरासे भरा हुआ एक पान-पात्र (कटोरा) दिया। भगवान अनन्तदेव शेषनागने नाग-हार दिया ॥ २२ ॥ इसी प्रकार बाकी सभी देवताओंने आभूषण आदि दे देकर जगन्मयी देवीका सम्मान किया। तब महिषासुर द्वारा सताये हुए देवताओंने महादेवी और संसारको उत्पन्न करनेवाली महेश्वरीकी विविध स्तोत्रोंके द्वारा स्तुति की। उनकी स्तुति सुनकर देवपूजिता सुरेश्वरी भगवतीने महिषासुरके वधके लिए उच्चस्वरसे गर्जना की। हे महाराज ! उस गर्जनको सुनकर महिषासुर चौंक पड़ा ॥२३–२५॥ तत्काल वह अपनी दानवी सेनाके साथ जगद्धात्रीके पास पहुँचा। पश्चात् महिषासुरने देवीके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥२६॥ उसने बहुत तरहके अस्त्र-शस्त्रोंकी झड़ी लगाकर पृथ्वीसे लेकर आकाशमार्गतक आच्छादित कर दिया। उसके ग्रामणी सेनापति चिक्षुर, दुर्धर, दुर्मुख, बाष्कल, ताम्र तथा बिडालास्य आदि थे, जो संग्रामभूमिमें यमराजकी भाँति भयंकर थे ॥२७।२८॥ इन सेनापतियों तथा अन्य दानवसैनिकोंको लेकर दानवसम्राट् महिषने वहाँ लड़ाई छेड़ दी। तभी क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके भुवनमोहिनी देवीने लड़ाईके मैदानमें महिषके अधीनस्थ सारे सेनापतियोंको मार डाला। उन दैत्य-सरदारोंके मारे जानेपर महिष कोपसे बेसुध होकर देवीके सामने आया। वह दानवेश्वर बड़ा मायावी था। अतः मायासे रूप बदल-बदलकर युद्ध करने लगा ॥२९–३१॥ किन्तु उसने जितने भी रूप धारण किये, उन सबको देवीने नष्ट कर दिया। अन्तमें देवताओंपर अत्याचार करनेवाले महिषने भैंसेका रूप धारण किया ॥३२॥ तब देवीने देवताओंकी मृत्युके तुल्य भीषण महिषको पाशमें खूब मजबूत बाँधकर अपनी तलवारसे उसका सिर उड़ा

बहुधा क्षिप्तैः पूरयन्नंबरांतरम् ॥ चिक्षुरो ग्रामणीः सेनापतिर्दुर्धरदुर्मुखौ ॥ २७ ॥ बाष्कलस्ताम्रकश्चैव बिडालवदनोऽपरः ॥ एतैश्चान्यैरसंख्यातैः संग्रामांतकसन्निभैः ॥ २८ ॥ योधैः परिवृतो वीरो महिषो दानवोत्तमः ॥ ततः सा कोपताम्राक्षी देवी लोकविमोहिनी ॥ २९ ॥ जघान योधान्समरे देवी महिषमाश्रितान् ॥ ततस्तेषु हतेष्वेव स दैत्यो रोषमूर्छितः ॥ ३० ॥ आससाद तदा देवीं तूर्णं मायाविशारदः ॥ रूपांतराणि संभेजे मायया दानवेश्वरः ॥ ३१ ॥ तानि तान्यस्य रूपाणि नाशयामास सा तदा ॥ ततोऽन्ते महिषं रूपं बिभ्राणममरार्दनम् ॥ ३२ ॥ पाशेन बद्ध्वा सुदृढं छित्त्वा खड्गेन तच्छिरः ॥ पातयामास महिषं देवी देवगणांतकम् ॥ ३३ ॥ हाहाकृतं ततः शेषं सैन्यं भग्नं दिशो दश ॥ तुष्टुवुर्देवदेवेशीं सर्वे देवाः प्रमोदिताः ॥ ३४ ॥ एवं लक्ष्मीः समुत्पन्ना महिषासुरमर्दिनी ॥ राजञ्छृणु सरस्वत्याः प्रादुर्भावो यथाऽभवत् ॥ ३५ ॥ एकदा शुम्भनामाऽऽसीद्दैत्यो मदबलोत्कटः ॥ निशुंभश्चापि तद्भ्राता महाबलपराक्रमः ॥ ३६ ॥ तेन संपीडिता देवाः सर्वे भ्रष्टश्रियो नृप ॥ हिमवंतमथासाद्य देवीं तुष्टुवुरादरात् ॥ ३७ ॥ देवा ऊचुः ॥ जय देवेशि भक्तानामार्तिनाशनकोविदे ॥ दानवांतकरूपे त्वमजरामरणेऽनघे ॥ ३८ ॥ देवेशि भक्तिसुलभे महाबल-

दिया ॥३३॥ इससे दानवी सेनामें हाहाकार मच गया। जिससे बड़ी भगदड़ मची और वह सेना दसों दिशाओंमें तितर-बितर हो गयी। इससे सब देवता प्रसन्न होकर उन देवदेवेशीकी स्तुति करने लगे ॥३४॥ इस तरह महिषासुरका वध करनेके लिए भगवती महालक्ष्मी उत्पन्न हुईं। हे महाराज! अब सरस्वती किस लिए उत्पन्न हुईं–यह वृत्तान्त कहता हूँ, सुनिए॥ ३५ ॥ शुम्भ नामका एक दैत्य अपने मद एवं बलका अहङ्कारी था। उसका भाई निशुंभ भी महाबली था ॥ ३६ ॥ हे महाराज सुरथ! उस दैत्यने सब देवताओंपर आक्रमण करके उन्हें पराजित किया और देवराज्यसे बाहर निकाल दिया। तब देवता हिमालय पर्वतपर जाकर श्रद्धापूर्वक देवीकी स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ देवताओंने कहा–हे देवेशी! हे भक्तोंके कष्टोंको दूर करनेमें निपुण देवी! आपकी जय हो, जय हो। हे दानवोंके लिए यमराजस्वरूपिणी! हे निष्पाप भगवती! आप जरा और मरणसे रहित अर्थात् अजर और अमर हैं ॥३८॥ हे सुरेश्वरी! आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भक्तिमार्ग द्वारा सुलभ हैं। हे महाबल-पराक्रमशालिनी! आप ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूपिणी हैं। आपके पराक्रमका अंत नहीं है ॥३९॥ हे सृष्टिकारिणी! हे सृष्टिपालनकर्त्री! हे सृष्टि-संहारकारिणी! हे कान्ति देनेवाली! हे मोददायिनी! हे माधवी! आप महाप्रलयके समय ताण्डव नृत्य करती हैं ॥४०॥ हे देवाधिदेवेश्वरी! हे करुणाकी खान! आप प्रसन्न होइए। शुम्भ और निशुम्भजनित भय हमारे लिए इतना भारी समुद्र है कि उसको ओर-छोरका ठिकाना नहीं है ॥४१॥ हे शरणार्थियोंके कष्टको दूर करनेवाली! हम शरणागतोंका उद्धार कीजिये। हे महाराज! जब उन देवताओंने इस प्रकार स्तुति की ॥४२॥ तब प्रसन्न होकर गिरिराज-तनया पार्वतीजी बोलीं—आप लोग किस लिए मेरी स्तुति कर रहे हैं? उसी समय उनके शरीररूपी कोशसे जगद्वन्दनीय कौशिकी देवी प्रकट हुईं। बड़े प्रेमके साथ वे देवताओंसे कहने लगीं—हे देवताओं! उत्तमस्वरूपिणी मैं आपके इस स्तोत्रसे बहुत प्रसन्न हूँ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ अब आप

पराक्रमे ॥ विष्णुशंकरब्रह्मादिस्वरूपेऽनंतविक्रमे ॥३९॥ सृष्टिस्थितिकरे नाशकारिके कांतिदायिनि ॥ महातांडवसुप्रीते मोददायिनि माधवि ॥४०॥ प्रसीद देवदेवेशि प्रसीद करुणानिधे ॥ निशुंभशुंभसंभूतभयापारांबुवारिधे ॥ ४१ ॥ उद्धरास्मान्प्रपन्नार्तिनाशिके शरणागतान् ॥ एवं संस्तुवतां तेषां त्रिदशानां धरापते ॥ ४२ ॥ प्रसन्ना गिरिजा प्राह ब्रूत स्तवनकारणम् ॥ एतस्मिन्नंतरे तस्याः कोशरूपात्समुत्थिता ॥ ४३ ॥ कौशिकी सा जगत्पूज्या देवान्प्रीत्येदमब्रवीत् ॥ प्रसन्नाऽहं सुरश्रेष्ठाः स्तवेनोत्तमरूपिणी ॥ ४४ ॥ व्रियतां वर इत्युक्ते देवाः संवव्रिरे वरम् ॥ शुंभनामाऽवरो भ्राता निशुंभस्तस्य विश्रुतः ॥ ४५ ॥ त्रैलोक्यमोजसाऽऽक्रांतं दैत्येन बलशालिना ॥ तद्वधश्चिन्त्यतां देवि दुरात्मा दानवेश्वरः ॥ ४६ ॥ बाधते सततं देवि तिरस्कृत्य निजौजसा ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ देवशत्रुं पातयिष्ये निशुंभं शुंभमेव च ॥ ४७ ॥ स्वस्थास्तिष्ठंतु भद्रं वः कंटकं नाशयामि वः॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशी देवान्सेंद्रान्दयामयी ॥४८॥ जगामादर्शनं सद्यो मिषतां त्रिदिवौकसाम् ॥ देवाः समागता हृष्टाः सुवर्णाद्रिगुहां शुभाम् ॥ ४९ ॥ चंडमुंडौ पश्यतःस्म भृत्यौ शुंभनिशुंभयोः ॥ दृष्ट्वा तां चारुसर्वांगीं देवीं लोकविमोहिनीम् ॥५०॥ कथयामासतू राज्ञे भृत्यौ तौ चंडमुंडकौ ॥ देव

वरदान माँग लीजिए। उनके ऐसा कहनेपर देवताओंने वर माँगते हुए कहा कि शुम्भ और निशुम्भ नामके दो भाई इस समय बड़े लब्धप्रतिष्ठ हैं ॥४५॥ उन बलवान् दैत्योंने अपने तेजसे तीनों लोकोंपर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन कर लिया है। अतः हे देवी! उस कलुषित अन्तःकरणवाले दानवसम्राट्के वधकी कोई योजना बनाइए ॥ ४६ ॥ हे देवी! वह अपने बाहुबलसे अपमान करके हमारे ऊपर तरह-तरहका अत्याचार किया करता है। श्रीदेवीने कहा—मैं सुरारि निशुम्भ-शुम्भका वध कर डालूँगी ॥ ४७ ॥ आप स्वस्थचित्त होकर रहिए। आपका कल्याण अवश्य होगा। मैं आपके इस काँटेको सदाके लिए निकाल दूँगी। इन्द्र आदि देवताओंसे यह कहकर करुणामयी देवजननी अम्बिका देवताओंके देखते-देखते उनके सामनेसे तत्काल अन्तर्धान हो गयीं। तब देवता हर्षित होकर सुमेरु पर्वतकी कन्दरामें चले गये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इधर शुम्भ-निशुम्भके सेवक दो दानव चण्ड-मुण्ड वहाँ आये और उन्होंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नख-शिखसे सर्वाङ्गसुन्दरी भगवती भुवनमोहिनीको देखा ॥ ५० ॥ तब वे शुम्भके पास जाकर कहने लगे—हे देव ! हे समस्त असुरोंमें श्रेष्ठ ! हे मान देनेवाले ! आप समस्त रत्नोंको भोगनेके योग्य हैं ॥ ५१ ॥ हे शत्रुनाशक ! आज हमने एक अपूर्व स्त्रीका दर्शन किया है । वह आपके ही सभागके योग्य है ॥ ५२ ॥ अतः उस लावण्यमयी रमणीको लाकर सुखके साथ भोग कीजिये । जैसी रूपवती वह कामिनी है, वैसी न कोई असुर-कन्या, न नाग-कुमारी, न गन्धर्व-तनया, न दानव-सुता, न देव-पुत्री और न भारतीय कन्या ही हो सकती है । शत्रुके बलको मटियामेट करनेवाले शुम्भने अपने राजकीय अधिकारीकी बात सुनकर सुग्रीव नामके दानवको दूत बनाकर भेजा । वह दूत तुरन्त देवीके पास पहुँचकर आदरके साथ जैसा शुम्भने कहा था, वह सब बातें कह दीं । उसने कहा—हे देवी ! शुम्भ नामक असुर त्रैलोक्यका विजेता एकमात्र सम्राट् है ॥५३–५६॥ सभी देवता उसका सम्मान करते हैं, वह सभी रत्नोंका उपभोग

सर्वासुरश्रेष्ठ रत्नभोगार्ह मानद ॥ ५१ ॥ अपूर्वा कामिनी दृष्टा चावाभ्यां रिपुमर्दन ॥ तस्याः सम्भोगयोग्यत्वमस्त्येव तव सांप्रतम् ॥ ५२ ॥ तां समानय चार्वंगीं भुंक्ष्व सौख्यसमन्वितः ॥ तादृशी नासुरी नारी न गंधर्वी न दानवी ॥ ५३ ॥ न मानवो नापि देवी यादृशी सा मनोहरा ॥ एवं भृत्यवचः श्रुत्वा शुम्भः परबलार्दनः ॥५४॥ दूतं संप्रेषयामास सुग्रीवं नाम दानवम् ॥ स दूतस्त्वरितं गत्वा देव्याः सविधमादरात् ॥५५॥ वृत्तांतं कथयामास देव्यै शुम्भस्य यद्वचः ॥ देवि शुम्भासुरो नाम त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ॥ ५६ ॥ सर्वेषां रत्नवस्तूनां भोक्ता मान्यो दिवौकसाम् ॥ तदुक्तं शृणु मे देवि रत्नभोक्ताऽहमव्ययः ॥ ५७ ॥ त्वं चापि रत्नभूताऽसि भज मां चारुलोचने ॥ सर्वेषु यानि रत्नानि देवासुरनरेषु च ॥ ५८ ॥ तानि मय्येव सुभगे भज मां कामजै रसैः ॥ देव्युवाच ॥ सत्यं वदसि हे दूत दैत्यराजप्रियंकरम् ॥ ५९ ॥ प्रतिज्ञा या मया पूर्वं कृता साऽप्यनृता कथम् ॥ भवेत्तां शृणु मे दूत या प्रतिज्ञा यथा कृता ॥६०॥ यो मे दर्पं विधुनुते यो मे बलमपोहति ॥ यो मे प्रतिबलो भूयात्स एव मम भोगभाक् ॥६१॥ तत एनां प्रतिज्ञां मे सत्यां कृत्वाऽसुरेश्वरः ॥ गृह्णातु पाणिं तरसा तस्याशक्यं किमत्र हि ॥ ६२ ॥ तस्माद्गच्छ महादूत स्वामिनं ब्रूहि चादृतः ॥

कर रहा है । उसने जो सन्देश दिया है, उसे सुनिए । हे देवी ! मेरा कभी विनाश होनेवाला नहीं है । मैं ही अकेला सब रत्नोंका उपभोग कर रहा हूँ ॥ ५७ ॥ हे सुन्दरनयनवाली ! आप रमणीरत्न हैं, अतः मुझे वरण कर लीजिए । देवलोकमें, असुरलोकमें और नरलोकमें जितने रत्न थे ॥ ५८ ॥ आज वे सभी हमारे पास हैं । अतः हे सुन्दर भाग्यवाली ! आप शृंगाररससे परिपूर्ण होकर मेरे साथ दाम्पत्य-सुखका उपभोग करें । देवीने कहा—हे दूत ! तुम जो कहते हो, सो अपने दैत्यराजकी भलाईके विचारसे ठीक ही कह रहे हो ॥५९॥ किंतु बाल्यावस्थामें मैंने जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसे मिथ्या कैसे करूँ ? हे दूत ! मैंने पूर्वकालमें क्या प्रतिज्ञा की है—उसे सुनो ॥६०॥ जो मेरे अभिमानको चूर कर दे, जो मेरे बलको पीसकर रख दे और जो मेरी तरह बलवान् हो, वही व्यक्ति मेरे साथ भोग-विलास कर सकता है ॥ ६१ ॥ अतः वह असुर-सम्राट् आकर मेरी इस प्रतिज्ञाको सत्य करके मेरा पाणि-ग्रहण कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ले। भला, दैत्यराजके लिए कौन-सा कार्य असंभव है ? ॥ ६२ ॥ अतः हे राजदूत ! तुम जाकर अपने स्वामीसे मेरी प्रतिज्ञाके बारेमें सब कुछ कह दो, जिससे वह अत्यधिक शक्तिशाली शुम्भ मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करके दिखा सके ॥ ६३ ॥ महादेवीकी यह बात सुनकर उस दानव दूतने जाकर शुम्भसे देवीका पूरा सन्देश कह दिया ॥ ६४ ॥ अपने दूतसे यह कड़वी बात सुनकर महाबलशाली दानवसम्राट् शुम्भ बड़ा कुपित हुआ ॥ ६५ ॥ दैत्येश्वर शुम्भने धूम्राक्ष एवं धूम्रलोचन नामके दैत्यसेनापतिको आज्ञा देते हुए कहा—हे धूम्रलोचन ! अत्यन्त सावधानीके साथ मेरी बात सुनो ॥ ६६ ॥ तुम उस दुष्टा नारीको केश पकड़कर घसीटते हुए मेरे पास शीघ्र ले आओ। बस, मेरे सामनेसे शीघ्र जाओ ॥६७॥ ऐसा आदेश पानेके बाद दैत्यसेनापति महाबलशाली धूम्रलोचन अपने साथ साठ हजार असुरोंकी सेना लेकर चल पड़ा और शीघ्र देवीके पास हिमालय पर्वतपर जा पहुँचा। वहाँ उसने जोरसे चिल्लाकर कहा--हे कल्याणी !

प्रतिज्ञां चापि मे सत्यां विधास्यति बलाधिकः ॥६३॥ एवं वाक्यं महादेव्याः समाकर्ण्य स दानवः ॥ कथयामास शुंभाय देव्या वृत्तांतमादितः ॥६४॥ तदाऽप्रियं दूतवाक्यं शुम्भः श्रुत्वा महाबलः ॥ कोपमाहारयामास महांतं दनुजाधिपः ॥६५॥ ततो धूम्राक्षनामानं दैत्यं दैत्यपतिः प्रभुः ॥ आदिदेश शृणु वचो धूम्राक्ष मम चादृतः ॥ ६६ ॥ तां दुष्टां केशपाशेषु धृत्वाऽप्यानीयतां मम ॥ समीपमविलंबेन शीघ्रं गच्छस्व मे पुरः ॥ ६७ ॥ इत्यादेशं समासाद्य दैत्येशो धूम्रलोचनः ॥ षष्ट्याऽसुराणां सहितः सहस्राणां महाबलः ॥६८॥ तुहिनाचलमासाद्य देव्याः सविधमेव सः ॥ उच्चैर्देवीं जगादाशु भज दैत्यपतिं शुभे ॥ ६९ ॥ शुम्भं नाम महावीर्यं सर्वभोगानवाप्नुहि ॥ नोचेत्केशान्गृहीत्वा त्वां नेष्ये दैत्यपतिं प्रति ॥ ७० ॥ इत्युक्ता सा ततो देवी दैत्येन त्रिदशारिणा ॥ उवाच दैत्य यद्ब्रूषे तत्सत्यं ते महाबल ॥ ७१ ॥ राजा शुम्भासुरस्त्वं च किं करिष्यसि तद्वद ॥ इत्युक्तो दैत्यपोऽधावत्तूर्णं शस्त्रसमन्वितः ॥ ७२ ॥ भस्मसात्तं चकाराशु हुंकारेण महेश्वरी ॥ ततः सैन्यं वाहनेन देव्या भग्नं महीपते ॥ ७३ ॥ दिशो दशाभजच्छीघ्रं हाहाभूतमचेतनम् ॥ तद्वृत्तांतं समाश्रुत्य स शुम्भो दैत्यराड्विभुः ॥७४॥ चुकोप च महाकोपाद्भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ ततः कोप-

आप चलकर दैत्यसम्राट् शुम्भको पतिरूपमें वरण कीजिए। वे बड़े बलशाली हैं। इससे आप समस्त भोग्य पदार्थोंका उपभोग कर सकेंगी। यदि इसे स्वीकार न करेंगी तो मैं केश पकड़कर घसीटते हुए आपको दैत्यपतिके पास ले चलूँगा ॥६८–७०॥ जब उस देवशत्रु दैत्यने देवीसे ऐसा कहा तो वे बोलीं—हे महाबली दैत्य ! जो तुम कह रहे हो—वह ठीक हो है ॥७१॥ लेकिन यह तो बतलाओ कि तुम्हारे राजा शुम्भासुर और तुम हमारा क्या कर लोगे ? ऐसा कहनेपर दैत्यसेनापति धूम्रलोचन शीघ्र हथियार लेकर देवीकी ओर झपटा ॥ ७२ ॥ किन्तु महेश्वरीने अपने हुंकारसे ही तत्काल उसको भस्म कर दिया। हे महाराज ! देवीका वाहन सिंह भी उसकी सेनाको नष्ट करने लगा ॥७३॥ यह देखकर दैत्यसैनिक हाय-हाय करने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगे, कितने बेहोश हो गये और बाकी दसों दिशाओंमें भाग गये। दैत्यसम्राट् शुम्भ यह वृत्तान्त सुनकर गुस्साके मारे लाल हो गया और उसकी भौंहें तन गयीं। तब क्रोधसे भरकर प्रतापी दैत्यराज शुम्भने क्रमशः चण्ड-मुण्ड और रक्तबीजको भेजा। वे बड़े पराक्रमी और विक्रमशाली तीनों दैत्य वहाँ जाकर तत्परतापूर्वक ऐसा प्रयत्न करने लगे कि वे देवीको पकड़कर बाँध लें। तब मदमें भरी हुई देवीने उन्हें अपनी ओर बढ़ते देखकर शूल उठाया और बड़े वेगके साथ उन तीनोंको मारकर जमीनपर सुला दिया। जब दोनों दानवाधिपतियों शुम्भ और निशुम्भने यह सुना कि तीनों दैत्यसेनापति मार डाले गये हैं और सारी दानवसेना काट डाली गयी है ॥ ७४–७८ ॥ तब अमर्षके कारण वे स्वयं रणभूमिमें आये। तत्काल शुम्भ एवं निशुम्भने घमासान लड़ाई आरम्भ कर दी ॥ ७९ ॥ जब वे युद्धके कारण थककर देवीकी पकड़में आये तो भगवतीने

परीतात्मा दैत्यराजः प्रतापवान् ॥ ७५ ॥ चण्डं मुण्डं रक्तबीजं क्रमशः प्रैषयद्विभुः ॥ ते च गत्वा त्रयो दैत्या विक्रांता बहुविक्रमाः ॥७६॥ देवीं ग्रहीतुमारब्धयत्नास्ते ह्यभवन्बलात् ॥ तानपतत एवासौ जगद्धात्री मदोत्कटा ॥ ७७ ॥ शूलं गृहीत्वा वेगेन पातयामास भूतले ॥ ससैन्यान्नि-हताञ्छ्रुत्वा दैत्यांस्त्रीन्दानवेश्वरौ ॥ ७८ ॥ शुंभश्चैव निशुंभश्च समाजग्मतुरोजसा ॥ निशुंभश्चैव शुम्भश्च कृत्वा युद्धं महोत्कटम् ॥ ७९ ॥ देव्याश्च वशगौ जातौ निहतौ च तयाऽसुरौ ॥ इति दैत्यवरं शुम्भं घातयित्वा जगन्मयी ॥८०॥ विबुधैः संस्तुता तद्वत्साक्षाद्वागीश्वरी परा ॥ एवं ते वर्णितो राजन्प्रादुर्भावोऽतिरम्यकः ॥ ८१ ॥ काल्याश्चैव महालक्ष्म्याः सरस्वत्याः क्रमेण च ॥ परा परेश्वरी देवी जगत्सर्वं करोति च ॥ ८२ ॥ पालनं चैव संहारं सैव देवी दधाति हि ॥ तां समाश्रय देवेशीं जगन्मोहनिवारिणीम् ॥८३॥ महामायां पूज्यतमां सा ते कार्यं विधास्यति ॥ नारायण उवाच ॥ इति राजा वचः श्रुत्वा मुनेः परमशोभनम् ॥ ८४ ॥ देवीं जगाम शरणं सर्वकामफलप्रदाम् ॥ निराहारो यतात्मा च तन्मनाश्च समाहितः ॥ ८५ ॥

उन दोनों असुरोंका वध कर दिया। जब विश्वमयी भगवतीने दोनों दैत्यराजोंको मार डाला ॥ ८० ॥ तब देवताओंने वाणीकी साक्षात् अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीकी स्तुति की। हे सुरथ! इस प्रकार मैंने आपसे देवीके अत्यन्त रमणीय प्रादुर्भावके सम्बन्धमें वर्णन किया कि किस प्रकार क्रमशः महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वतीने इस संसारमें अवतार लिया। वे ही परमा परमेश्वरी देवी जगत्की सृष्टि करती हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वे ही देवी पालन करती हैं और वे ही संहार करती हैं। आप सांसारिक मोहको दूर करनेवाली उन्हीं सुरेश्वरीकी उपासना कीजिए ॥८३॥ वे पूजनीया देवी महामाया देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, वे ही आपका मनोरथ पूरा करेंगी। श्रीनारायणने कहा–राजा सुरथ सुमेधा मुनिकी अतीव सुन्दर बात सुनकर सब कामनाओंको देनेवाली देवीकी शरणमें गये। उपवास करके संयतचित्तसे ध्यान लगा तथा शान्त मनसे देवीकी पार्थिव मूर्ति बनाकर वे भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगे। पूजनके अन्तमें अपने शरीरके रक्तसे वे बलि प्रदान करते थे ॥ ८४–८६ ॥ तीन वर्षकी आराधनाके पश्चात् करुणामयी जगज्जननी देवेशी प्रसन्न हुई और उनके सम्मुख प्रकट होकर बोलीं— वर माँगिए।' तब राजाने महेश्वरीसे कहा–आप मुझे ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान प्रदान करें कि जिससे मेरा मोह दूर होजाय और मैं निष्कण्टक राज्य कर सकूँ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ देवीने कहा–हे राजन्! मैं वरदान देती हूँ कि आपको इसी जन्ममें निष्कण्टक राज्य मिलेगा और मोहनाशक ज्ञान भी प्राप्त होगा ॥ ८९ ॥ हे पृथ्वीपाल! अब मैं आपके दूसरे जन्मका विवरण बतलाती हूँ। अगले जन्ममें आप सूर्य-तनय होकर सावर्णि मनु होंगे ॥ ९० ॥ उस जन्ममें भी मेरे वरदानके कारण आप उस मन्वन्तरके अधिपति, अत्यन्त पराक्रमी और बहुत सन्तानवाले होंगे ॥ ९१ ॥ इस प्रकार वर देकर देवी अन्तर्धान हो गयीं। राजा सुरथ भी देवीकी कृपासे मन्वन्तरके अधिपति हुए ॥ ९२ ॥ हे साधो! इस प्रकार मैंने सावर्णिके

देवीमूर्तिं मृन्मयीं च पूजयामास भक्तितः ॥ पूजनांते बलिं तस्यै निजगात्रासृजं ददत् ॥ ८६ ॥ तदा प्रसन्ना देवेशी जगद्योनिः कृपावती ॥ प्रादुर्बभूव पुरतो वरं ब्रूहीति भाषिणी ॥ ८७ ॥ स राजा निजमोहस्य नाशनं ज्ञानमुत्तमम् ॥ राज्यं निष्कंटकं चैव याचतिस्म महेश्वरीम् ॥ ८८ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ राजन्निष्कंटकं राज्यं ज्ञानं वै मोहनाशनम् ॥ भविष्यति मया दत्तमस्मिन्नेव भवे तव ॥ ८९ ॥ अन्यच्च शृणु भूपाल जन्मांतरविचेष्टितम् ॥ भानोर्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता भवान् ॥ ९० ॥ तत्र मन्वंतरस्यापि पतिस्त्वं बहुविक्रमम् ॥ सन्ततिं बहुलां चापि प्राप्स्यते मद्वराद्भवान् ॥ ९१ ॥ एवं दत्त्वा वरं देवी जगामादर्शनं तदा ॥ सोऽपि देव्याः प्रसादेन जातो मन्वंतराधिपः ॥ ९२ ॥ एवं ते वर्णितं साधो सावर्णेर्जन्म कर्म च ॥ एतत्पठंस्तथा शृण्वन्देव्यनुग्रहमाप्नुयात् ॥ ९३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते दशमस्कन्धे देवीमहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां शेषमनूनां चित्रमुद्भवम् ॥ यस्य स्मरणमात्रेण देवीभक्तिः प्रजायते ॥ १ ॥ आसन्वैवस्वतमनोः पुत्राः षड्विमलोदयाः ॥ करूषश्च पृषध्रश्च नाभागो दिष्ट एव च ॥ २ ॥ शर्यातिश्च त्रिशंकुश्च सर्व एव महाबलाः ॥ ततः षडेव ते गत्वा कालि-

जन्म और कर्मका वृत्तान्त बता दिया। जो व्यक्ति इसे पढ़ते और सुनते हैं, उनपर देवीकी कृपा सदा बनी रहती है ॥ ९३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पाण्डेय-रामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(नवमादि मनुओंकी कथा) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! अब शेष मनुओंकी अद्भुत उत्पत्ति सुनो। जिसका स्मरणमात्र करनेसे मनुष्य देवीभक्त हो जाता है ॥ १ ॥ वैवस्वत मनुके छः पुत्र थे–करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट, शर्याति और त्रिशंकु। सभी महान् पराक्रमी और निर्मल बुद्धिवाले थे। ये छहों पुत्र यमुनाके पावन तटपर जाकर भगवतीकी उपासना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करने लगे। उन्होंने भोजन त्याग दिया। अपने श्वासपर पूरा नियन्त्रण रक्खा। सभी देवियोंकी अलग-अलग मृन्मयी मूर्ति बनाकर वे भाँति-भाँतिके उपचारोंसे सादर पूजा करते थे। इसके बाद उन समस्त महाबली पुत्रोंने अतिशय कठिन तपस्या आरंभ कर दी ॥२-५॥ पहले तो वे कुछ जीर्ण-शीर्ण पत्ते खा लेते थे। बादमें क्रमशः वायु, जल, धूम्र और सूर्य किरणके आहारपर रहकर कठोर तप करने लगे ॥ ६ ॥ यों परम आदरके साथ सदा भगवतीकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले उन महानुभावोंको तपके फलस्वरूप संपूर्ण मोहका नाश करनेवाली निर्मल बुद्धि प्राप्त हुई ॥ ७ ॥ वे मनुपुत्र एकमात्र देवीके चरणचिन्तनमें लगे थे। पवित्र बुद्धिके प्रभावसे उन्हें अखिल जगत्‌का अपने आत्मामें ही साक्षात्कार होने लगा ॥८॥ उनकी बड़ी ही विचित्र स्थिति हो गयी। इस प्रकार वे लगातार बारह वर्षोंतक भगवती जगदीश्वरीकी तपस्या करते रहे ॥९॥ तत्पश्चात् हजारों सूर्योंके समान तेजसे सम्पन्न देवेश्वरी उनके सामने प्रकट हुईं। तब उन

द्यास्तीरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ निराहारा जितश्वासाः पूजां चक्रुस्ततः स्थिताः ॥ देव्या महीमयीं मूर्तिं विनिर्माय पृथक्पृथक् ॥ ४ ॥ विविधैरुपचारैस्तां
पूजयामासुराद्दृताः ॥ ततश्च सर्व एवैते तपःसारा महाबलाः ॥५॥ जीर्णपर्णाशना वायुभक्षणास्तोयजीवनाः ॥ धूम्रपाना रश्मिपानाः क्रमशश्च बहु-
श्रमाः ॥ ६ ॥ ततस्तेषामादरेणाराधनं कुर्वतां सदा ॥ विमला मतिरुत्पन्ना सर्वमोहविनाशिनी ॥ ७ ॥ बभूवुर्मनुपुत्रास्ते देवीपादैकचिन्तनाः ॥
मत्या विमलया तेषामात्मन्येवाखिलं जगत् ॥ ८ ॥ दर्शनं संजगामाशु तदद्भुतमिवाभवत् ॥ एवं द्वादशवर्षांते तपसा जगदीश्वरी ॥ ९॥ प्रादुर्बभूव
देवेशी सहस्रार्कसमद्युतिः ॥ तां दृष्ट्वा विमलात्मानो राजपुत्राः षडेव ते ॥ १० ॥ तुष्टुवुर्भक्तिनम्रांतःकरणा भावसंयुताः ॥ राजपुत्रा ऊचुः ॥
महेश्वरि जयेशानि परमे करुणालये ॥ ११ ॥ वाग्भवाराधनप्रीते वाग्भवप्रतिपादिते ॥ क्लींकारविग्रहे देवि क्लींकारप्रीतिदायिनि ॥ १२॥ काम-
राजमनोमोददायिनीश्वरतोषिणि ॥ महामाये मोदपरे महासाम्राज्यदायिनि ॥ १३ ॥ विष्णवर्कहरशक्रादिस्वरूपे भोगवर्धिनि ॥ एवं स्तुता भगवती
राजपुत्रैर्महात्मभिः ॥ १४ ॥ प्रसादसुमुखी देवी प्रोवाच वचनं शुभम् ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ राजपुत्रा महात्मानो भवंतस्तपसा युताः ॥ १५ ॥

पुण्यात्मा छहों राजकुमारोंने देवीके साक्षात् दर्शन किये ॥१०॥ तदनन्तर वे भक्ति-विनम्र होकर सकाम भावसे भगवतीकी स्तुति करने लगे। राजकुमारोंने कहा—हे महेश्वरी! आप सबकी स्वामिनी एवं करुणाकी परम आश्रय हैं। आपकी जय हो ॥११॥ हे देवी! वाणी-बीजसे आराधना करनेपर आप बहुत शीघ्र प्रसन्न होती हैं। वाणीबीजप्रतिपादिता आपका नाम हो है। क्लींकाररूपी विग्रहसे शोभा पानेवाली हे देवी! आप 'क्लीं' इस बीजमन्त्रकी उपासनासे अपार प्रीति प्रदान करती हैं ॥१२॥ हे महामाये! आप कामेश्वरके मनको प्रसन्न करनेवाली तथा परम प्रभुको संतुष्ट करनेमें परम निपुण हैं। आपकी आराधनासे विपुल हर्ष एवं महान् साम्राज्य प्राप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ हे भोगवर्धिनी! ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आपके ही रूप हैं। इस प्रकार उन महाभाग राजपुत्रोंके स्तुति करनेपर भगवती प्रसन्न होकर उनके प्रति कल्याणमय वचन बोलीं। श्रीदेवीने कहा—कठिन तपस्या करनेवाले हे राजपुत्रो! तुम बड़े महात्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरुष हो गये हो। मेरी उपासनासे तुम्हारे सारे पाप धुल गये हैं। तुम्हें विमल बुद्धि प्राप्त हो गयी है। अब तुम शीघ्र अपनी सारी मनःकामनाओंको वरके रूपमें मुझसे माँग लो ॥१४-१६॥ मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मेरे द्वारा इस समय तुम्हारे संपूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जायँगे। राजपुत्रोंने कहा—हे देवी! हमें निष्कण्टक राज्य, दीर्घजीवी संतान, अव्याहत भोग, यथेच्छ यश, तेज, बद्धि तथा सबसे अजेयत्व प्रदान करनेकी कृपा कीजिये। बस, हमारी यही प्रार्थना है ॥१७॥१८॥ श्रीदेवी बोलीं—बहुत ठीक, ऐसा ही होगा। तुम सबके मनमें जो जो कामनाएँ हैं, वे सभी पूर्ण होंगी। मेरी एक बात और आदरके साथ सुन लो ॥१९॥ तुम लोग मन्वन्तरोंके स्वामी बनोगे। तुम्हें दीर्घजीवी संतान प्राप्त होगी और अनेक प्रकारके भोग भी प्राप्त होंगे ॥२०॥ तुम्हारे बलको कोई खण्डित न कर सकेगा। ऐश्वर्य, यश, तेज और विभूतियाँ पूर्णरूपसे सदा तुम्हारा साथ देंगी। हे राजपुत्रों! तुम क्रमशः मन्वन्तरोंके अधिष्ठाता बनोगे ॥२१॥ भगवान

निष्कल्मषाः शुद्धधियो जाता वै मदुपासनात् ॥ वरं मनोगतं सर्वं याचध्वमविलंबितम् ॥ १६ ॥ प्रसन्नाऽहं प्रदास्यामि युष्माकं मनसि स्थितम् ॥
राजपुत्रा ऊचुः ॥ देवि निष्कंटकं राज्यं संततिश्चिरजीविनी ॥ १७ ॥ भोगा अव्याहताः कामं यशस्तेजो मतिश्च ह ॥ अकुण्ठितत्वं सर्वेषामेष एव
वरो हितः ॥ १८ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एवमस्तु च सर्वेषां भवतां यन्मनोगतम् ॥ अथान्यदपि मे वाक्यं श्रूयतामादरादिदम् ॥ १९ ॥ भवन्तः सर्व
एवैते मन्वन्तरपतीश्वराः ॥ संतत्या दीर्घया भोगैरनेकैरपि संगमः ॥ २० ॥ अखंडितबलैश्वर्यं यशस्तेजोविभूतयः ॥ भवितारो मत्प्रसादाद्राजपुत्राः
क्रमेण तु ॥ २१ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ एवं तेभ्यो वरान्दत्त्वा भ्रामरी जगदम्बिका ॥ अन्तर्धानं जगामाशु भक्त्या तैः संस्तुता सती ॥ २२ ॥
ते राजपुत्राः सर्वेऽपि तस्मिञ्जन्मन्यनुत्तमम् ॥ राज्यं महीगतान्भोगान्बुभुजुश्च महौजसः ॥ २३ ॥ संततिं चाखंडितां ते समुत्पाद्य महीतले ॥
वंशं संस्थाप्य सर्वेऽपि मनूनां पतयोऽभवन् ॥ २४ ॥ भवान्तरे क्रमेणैव सावर्णिपदभागिनः ॥ प्रथमो दक्षसावर्णिर्नवमो मनुरीरितः ॥ २५ ॥
अव्याहतबलो देव्याः प्रसादादभवद्विभुः ॥ द्वितीयो मेरुसावर्णिर्दशमो मनुरेव च ॥२६॥ बभूव मन्वन्तरपो महादेवीप्रसादतः ॥ तृतीयो मनुराख्यातः

नारायण कहते हैं—हे नारद! राजकुमारोंने भक्तिपूर्वक भगवती भ्रामरीकी स्तुति की। उनपर प्रसन्न होकर जगदंबाने उन्हें वर प्रदान किया। तदनन्तर उसी क्षण वे अन्तर्धान हो गयीं। ॥२२॥ उनकी कृपासे उन महान् तेजस्वी सभी राजकुमारोंने उस जन्ममें श्रेष्ठ राज्य और पृथ्वीके विपुल भोग भोगे ॥२३॥ उन्हें उत्तम संतान प्राप्त हुई। वे सभी धरातलपर अपनी-अपनी वंशावली स्थापित करके मन्वन्तरोंके अध्यक्ष बने ॥ २४ ॥ वे ही दूसरे जन्ममें क्रमशः सावर्णि मनु कहलाये। प्रथम राजकुमारका नाम 'दक्षसावर्णि' हुआ। वे नवम मनु कहलाये ॥२५॥ भगवतीकी कृपासे उन्हें अव्याहत बल प्राप्त था। दूसरे पुत्र 'मेरुसावर्णि' हुए, जो दसवें मनु कहलाते हैं ॥२६॥ महादेवीके प्रसादसे मन्वन्तर भर उन्होंने राज्य किया। तीसरे राजकुमार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'सूर्यसावर्णि'के नामसे विख्यात हुए ॥२७॥ अपनी तपस्यासे महान् गौरव प्राप्त करनेवाले ये महान् उत्साही मनु ग्यारहवें मनु कहे जाते हैं। चौथे 'इन्द्रसावर्णि' हुए, जो ग्यारहवें मनु कहलाये ॥२८॥ देवीकी आराधनाके प्रभावसे उन्हें मन्वन्तरका राज्य भोगनेका स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। पाँचवें राजकुमार 'रुद्रसावर्णि'के नामसे विख्यात होकर तेरहवें मनु कहलाये ॥२९॥ वे महान् बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न होकर पृथ्वीपर राज्य करते रहे। छठें राजकुमारका नाम 'विष्णुसावर्णि' हुआ। ये चौदहवें मनु कहलाते हैं॥ ३० ॥ भगवतीसे वर प्राप्त करके वे जगत्में सुविख्यात राजा हुए। ये चौदहों मनु महान् तेजस्वी और अनुपम बलसे सम्पन्न थे ॥ ३१ ॥ ये सभी मनु भगवती 'भ्रामरी'को नित्य उपासना करते थे। अतएव इन्हें जगत्में पूज्य एवं वन्द्य होनेका सौभाग्य प्राप्त था। भगवती भ्रामरीके प्रसादसे ये सब महान् प्रतापी हो गये ॥ ३२ ॥ नारदजीने पूछा—हे प्राज्ञ! वे भ्रामरी देवी कौन हैं, वे कैसे प्रकट हुईं और उनका कैसा स्वरूप है? हे भगवन्! शोक दूर करनेवाला वह विचित्र उपाख्यान सुनानेकी कृपा कीजिये ॥ ३३ ॥ देवीके कथामृतका

सूर्यसावर्णिनामकः ॥ २७ ॥ एकादशो महोत्साहस्तपसा स्वेन भावितः ॥ चतुर्थश्चेंद्रसावर्णिर्द्वादशो मनुराड् विभुः ॥ २८ ॥ देवीसमाराधनेन जातो मन्वन्तरेश्वरः ॥ पंचमो रुद्रसावर्णिस्त्रयोदशमनुः स्मृतः ॥ २९ ॥ महाबलो महासत्त्वो बभूव जगदीश्वरः ॥ षष्ठश्च विष्णुसावर्णिश्चतुर्दशमनुः कृती ॥ ३० ॥ बभूव देवीवरतो जगतां प्रथितः प्रभुः ॥ चतुर्दशैते मनवो महातेजोबलैर्युताः ॥ ३१ ॥ देव्याराधनतः पूज्या वंद्या लोकेषु नित्यशः ॥ महाप्रतापिनः सर्वे भ्रामर्यास्तु प्रसादतः ॥ ३२ ॥ नारद उवाच ॥ केयं सा भ्रामरी देवी कथं जाता किमात्मिका ॥ तदाख्यानं वद प्राज्ञ विचित्रं शोकनाशकम् ॥ ३३ ॥ न तृप्तिमधिगच्छामि पिबन्देवीकथामृतम् ॥ अमृतं पिबतां मृत्युर्नास्य श्रवणतो यतः ॥ ३४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि जगन्मातुर्विचेष्टितम् ॥ अचिंत्याव्यक्तरूपाया विचित्रं मोक्षदायकम् ॥ ३५ ॥ यद्यच्चरित्रं श्रीदेव्यास्तत्सर्वं लोकहेतवे ॥ निर्व्याजया करुणया पुत्रे मातुर्यथा तथा ॥ ३६ ॥ पूर्वं दैत्यो महानासीदरुणाख्यो महाबलः ॥ पाताले दैत्यसंस्थाने देवद्वेषी महाखलः ॥ ३७ ॥ स देवाञ्जेतुकामश्च चकार परमं तपः ॥ पद्मसंभवमुद्दिश्य स नस्त्राता भविष्यति ॥ ३८ ॥ गत्वा हिमवतः पार्श्वे गङ्गाजलसुशीतले ॥ पक्वपर्णाशनो योगी

पुनः पुनः पान करते हुए भी मैं तृप्त नहीं हो रहा हूँ। क्योंकि अमृत पीकर भी मृत्यु हो सकती है, किन्तु यह कथामृत पीनेवालेकी मृत्यु असंभव है ॥ ३४ ॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! सुनो, अब मैं अचिन्त्य और अव्यक्तस्वरूपिणी भगवती जगन्मायाकी मोक्ष देनेवाली अद्भुत लीलाका वर्णन करूँगा ॥३५॥३६॥ भगवती श्रीदेवीके जो-जो चरित्र हैं, वे सब किसी-न-किसी बहाने जगत्के कल्याणार्थ ही होते हैं। उन करुणामयी देवीके कार्य जगत्में वैसे ही हितभरे होते हैं, जैसे संतानवत्सला माताके कार्य पुत्रके प्रति होते हैं। पूर्व समयकी बात है, अरुण नामका एक महान् पराक्रमी दैत्य था। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला वह महान् नीच दानव पातालमें रहता था ॥ ३७ ॥ सहसा उसके मनमें देवताओंको जीतनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी। अतः वह हिमालयपर जाकर पद्मयोनि ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिए कठोर तप करने लगा। क्योंकि उसे यह विश्वास था कि ब्रह्माजी ही मेरे रक्षक हो सकते हैं ॥ ३८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसने चित्त शान्त करके आसन जमाया और श्वास रोक लिया। भूख लगनेपर कभी-कभी सूखे पत्ते खा लिया करता था ॥ ३९ ॥ वह तामसिक कामनासे गायत्रीमन्त्र जपता हुआ तप करने लगा। तदनन्तर दस हजार वर्षोंतक थोड़ा-सा जल पीकर ही उसने तप किया ॥ ४० ॥ उसके बाद दस हजार वर्ष केवल वायुके आहारपर बिताये। तत्पश्चात् दस हजार वर्षोंतक बिल्कुल निराहार रहकर उसने तप किया ॥४१॥ इस प्रकार घोर तपस्या करनेपर उसके शरीरसे एक प्रचण्ड अग्नि निकली, जो संपूर्ण जगत्‌को दग्ध करने लगी। उस समय यह बड़ी अद्भुत घटना घटी ॥४२॥ 'यह क्या, यह क्या ?' कहकर संपूर्ण देवता काँप उठे। सभी प्राणियोंके हृदयमें आतङ्क छा गया। तब सब प्रधान देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उन्हें इस बातकी सूचना दी। देवताओंकी बात सुनकर चतुर्मुख ब्रह्माजी गायत्रीदेवीको साथ लेकर हंसपर बैठे और प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे चल पड़े ॥४३॥४४॥ उस समय अरुण दैत्यके सैकड़ों

संनिरुध्य मरुद्गणम् ॥ ३९ ॥ गायत्रीजपसंसक्तः सकामस्तमसा युतः ॥ दशवर्षसहस्राणि ततो वारिकणाशनः ॥ ४० ॥ दशवर्षसहस्राणि ततः पवनभोजनः ॥ दशवर्षसहस्राणि निराहारोऽभवत्ततः ॥ ४१ ॥ एवं तपस्यतस्तस्य शरीरादुत्थितोऽनलः ॥ ददाह जगतीं सर्वां तदद्भुतमिवाभवत् ॥४२॥ किमिदं किमिदं चेति देवाः सर्वे चकंपिरे ॥ संत्रस्ताः सकला लोका ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥४३॥ विज्ञापितं देववरैः श्रुत्वा तत्र चतुर्मुखः ॥ गायत्रीसहितो हंससमारूढो ययौ मुदा ॥ ४४ ॥ प्राणमात्रावशिष्टं तं धमनीशतसंकुलम् ॥ शुष्कोदरं क्षामगात्रं ध्यानमीलितलोचनम् ॥ ४५ ॥ ददर्श तेजसा दीप्तं द्वितीयमिव पावकम् ॥ वरं वरय भद्रं ते वत्स यन्मनसि स्थितम् ॥ ४६ ॥ श्रुतिमात्रेण संतोषकारकं वाक्यमूचिवान् ॥ श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणीं सुधाधारामिवारुणः ॥ ४७ ॥ उन्मीलिताक्षः पुरतो ददर्श जलजोद्भवम् ॥ गायत्रीसहितं देवं चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ ४८ ॥ अक्षस्रक्कुण्डिकाहस्तं जपंतं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ दृष्ट्वोत्थाय ननामाथ स्तुत्वा च विविधैः स्तवैः ॥ ४९ ॥ वरं वव्रे स्वबुद्धिस्थं मा भवेन्मृत्युरित्यपि ॥ श्रुत्वाऽरुणवचो ब्रह्मा बोधयामास सादरम् ॥ ५० ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या मृत्युना कवलीकृताः ॥ तदाऽन्येषां तु का वार्ता मरणे दानवोत्तम ॥ ५१ ॥ वरं

नाड़ियोंसे युक्त शरीरमें केवल प्राणमात्र शेष रह गये थे। उसका पेट सूख गया था। उसके सभी अङ्ग शीर्ण हो चुके थे। वह नेत्रोंको मूँदे हुए ध्यानमें लीन था ॥४५॥ अपने तेजसे वह ऐसा दिखायी पड़ता था कि मानो कोई दूसरा प्रचण्ड अग्नि हो। ब्रह्माजीने उससे कहा—'हे वत्स ! तुम्हारे मनमें जो कुछ भी हो, वह वर मुझसे माँग लो' ॥४६॥ ब्रह्माजीकी अमृतके समान वाणी सुनते ही उसका मन संतुष्ट हो गया ॥४७॥ अरुणने आँखें खोलीं तो उसे अपने सामने खड़े कमलोद्भव ब्रह्माजीके दर्शन हुए। चारों वेदोंसे संपन्न महाभाग ब्रह्माजी गायत्री-देवीके साथ विद्यमान थे ॥४८॥ वे हाथोंमें अक्षमाला और कुण्डिका लेकर अविनाशी ब्रह्म प्रणवमंत्रका जप कर रहे थे। उन्हें देखकर अरुण उठा। उसने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया तथा अनेक प्रकारके स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुति की ॥४९॥ फिर उसने अपनी बुद्धिमें स्थित वरकी याचना की। उसकी माँग थी कि 'मैं कभी मरूँ नहीं'। अरुणकी बात सुनकर ब्रह्माजीने आदरपूर्वक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसे समझाते हुए कहा—॥५०॥ जन्म लेनेवाला प्राणी अवश्य मरता है। जब ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी मरते हैं, तब औरोंकी बात ही क्या है। इसीसे बुद्धिमान् लोग इस विषयपर कभी भी आग्रह नहीं करते। अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो, जो तुम्हें दे सकूँ॥ ५१॥ ५२॥ ब्रह्माजीकी बात सुनकर अरुणने पुनः आदरपूर्वक उनसे इस प्रकार कहा—'हे प्रभो! अच्छी बात है। तब मुझे यह वर देनेकी कृपा कीजिये कि मैं न युद्धमें मरूँ, न किसी शस्त्र-अस्त्रसे मरूँ, न किसी भी स्त्री-पुरुष अथवा उभयाकारसे ही मेरी मृत्यु हो और न दो पैर तथा चार पैरोंवाला कोई प्राणी मुझे मार सके। साथ ही आप मुझे ऐसा विपुल बल दीजिये कि जिससे मैं सम्पूर्ण देवताओंपर विजय प्राप्त कर सकूँ।' अरुणकी बात सुनकर ब्रह्माजीने तुरन्त 'तथास्तु' कह दिया और इस प्रकार वर देकर वे उसी क्षण ब्रह्मलोक चले गये। तदनन्तर अरुण नामक उस दैत्यने पातालनिवासी दैत्योंको बुला लिया

योग्यं ततो ब्रूहि दातुं यः शक्यते मया॥ नात्राग्रहं प्रकुर्वन्ति बुद्धिमंतो जनाः क्वचित् ॥५२॥ इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा पुनः प्रोवाच सादरम्॥ न युद्धे न च शस्त्रास्त्रान्न पुम्भ्यो नापि योषितः ॥५३॥ द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतस्तथा॥ भवेन्मे मृत्युरित्येवं देव देहि वरं प्रभो॥५४॥ बलं च विपुलं देहि येन देवजयो भवेत्॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तथाऽस्त्विति वचोऽब्रवीत्॥ ५५॥ दत्त्वा वरं जगामाशु पद्मजः स्वं निकेतनम्॥ ततोऽरुणाख्यो दैत्यस्तु पातालात्स्वाश्रयस्थितान् ॥५६॥ दैत्यानाकारयामास ब्रह्मणो वरदर्पितः॥ आगत्य तेऽसुराः सर्वे दैत्येशं तं प्रचक्रिरे ॥५७॥ दूतं च प्रेषयामासुर्युद्धार्थममरावतीम्॥ दूतवाक्यं तदा श्रुत्वा देवराड् भयकम्पितः॥ ५८॥ देवैः सार्धं जगामाशु ब्रह्मणः सदनं प्रति॥ ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य जग्मुस्ते शंकरालयम्॥ ५९॥ विचारं चक्रिरे तत्र वधार्थं ते सुरद्रुहाम्॥ एतस्मिन्समये तत्र दैत्यसेनासमावृतः॥ ६०॥ अरुणाख्यो दैत्यराजो जगामाशु त्रिविष्टपम् ॥सूर्येन्दुयमवह्नीनामधिकारान्पृथक्पृथक् ॥६१॥ स्वयं चकार तपसा नानारूपधरो मुने॥ स्वस्वस्थानच्युताः सर्वे जग्मुः कैलासमण्डलम् ॥६२॥ शशंसुः शंकरं देवाः स्वस्वदुःखं पृथक् पृथक्॥ महान्विचारस्तत्रासीत्किंकर्तव्यमतः परम्॥ ६३॥ न युद्धे न च

॥ ५३–५६॥ वे सभी असुर आकर उस बलाभिमानी दानवके आज्ञाकारी बन गये और उसे दैत्योंका राजा बना दिया॥ ५७॥ फिर उसने युद्ध करनेके अभिप्रायसे अपने दूतको अमरावती भेजा। उस दूतकी बात सुनकर देवराज इन्द्र भयसे काँपने लगे॥ ५८॥ इन्द्र तत्काल देवताओंके साथ ब्रह्माके पास पहुँचे और ब्रह्मा विष्णुको अगुआ बनाकर शंकरजीके यहाँ गये॥ ५९॥ वे महानुभाव देवता राक्षसोंके वधकी बात सोच ही रहे थे कि इतनेमें दैत्यराज अरुण अपनी दानवी सेनामें सुसज्जित होकर स्वर्ग पहुँच गया और बातकी बातमें उसने समस्त देवताओंको पराजित कर दिया। हे मुने! उसने तपस्याके प्रभावसे अपने अनेक रूप बना लिये और सूर्य, चन्द्रमा, यम तथा अग्निके समस्त अधिकारोंको पृथक्-पृथक् अपने हाथोंमें लेकर वह स्वयं सबपर शासन करने लगा। तब अपने-अपने स्थानसे च्युत होकर दीन बने हुए सभी देवता कैलास पर्वतपर गये॥ ६०–६२॥ वहाँ वे एक एक करके भगवान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंकरको अपनी दुःखगाथा सुनाने लगे। उस समय भगवान् शंकरके मनमें भी बड़ा विचार उत्पन्न हो गया। उन्होंने सोचा—ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिए? ॥६३॥ क्योंकि ब्रह्माजी इसे वर दे चुके हैं। अतः यह दानव न युद्धमें, न शस्त्रों एवं अस्त्रोंसे, न पुरुष एवं स्त्रीके द्वारा अथवा न द्विपद, चतुष्पद और तदितर प्राणियोंसे ही मर सकता है॥ ६४॥ उस समय सभी आर्त होकर चिन्ता करने लगे। परन्तु किसीको कोई उपाय नहीं सूझा॥ ६५॥ ठीक उसी समय यह आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुमलोग भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करो। वे ही तुम लोगोंका कार्य सिद्ध करेंगी॥६६॥ यदि दानवराज अरुण गायत्रीके जपसे विरत हो जाय तो उसकी मृत्युके योग्य परिस्थिति आ सकती है।' संतोष प्रदान करनेवाली यह आकाशवाणी बड़े उच्चस्वरसे हुई थी॥ ६७॥ इस दिव्य आकाशवाणीको सुनकर आदरणीय देवताओंने बृहस्पतिजीको बुलाया। तब देवराज इन्द्रने उनसे प्रार्थना की—॥ ६८॥ हे गुरो! आप देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिए दानवराज अरुणके पास जाइये और जिस किसी भी प्रकार वह दानव गायत्रीजपसे विरत हो सके, परम कर्तव्य मानकर आप वैसा ही

शस्त्रास्त्रैर्न पुंभ्यो नापि योषितः॥ द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतोऽपि वा॥६४॥ मृत्युर्भवेदिति ब्रह्मा प्रोवाच वचनं यतः॥ इति चिंतातुराः सर्वे कर्तुं किंचिन्न च क्षमाः॥ ६५॥ एतस्मिन्समये तत्र वागभूदशरीरिणी॥ भजध्वं भुवनेशानीं सा वः कार्यं विधास्यति॥ ६६॥ गायत्रीजपसंसक्तो दैत्यराड्यदि तां त्यजेत्॥ मृत्युयोग्यस्तदा भूयादित्युच्चैस्तोषकारिणी॥ ६७॥ श्रुत्वा दैवीं तथा वाणीं मंत्रयामासुरादृताः॥ बृहस्पतिं समाहूय वचनं प्राह देवराट्॥ ६८॥ गुरो गच्छ सुराणां तु कार्यार्थमसुरं प्रति॥ यथा भवेच्च गायत्रीत्यागस्तस्य तथा कुरु॥ ६९॥ अस्माभिः परमेशानी सेव्यते ध्यानयोगतः॥ प्रसन्ना सा भगवती साहाय्यं ते करिष्यति॥ ७०॥ इत्यादिश्य गुरुं सर्वे जग्मुर्जाम्बूनदेश्वरीम्॥ साऽस्मान्दैत्यभयत्रस्तान्पालयिष्यति शोभना॥ ७१॥ तत्र गत्वा तपश्चर्यां चक्रुः सर्वे सुनिष्ठिताः॥ मायाबीजजपासक्ता देवीमखपरायणाः॥ ७२॥ बृहस्पतिस्तदा शीघ्रं जगामासुरसन्निधौ॥ आगतं मुनिवर्यं तं पप्रच्छाथ स दैत्यराट्॥ ७३॥ मुने कुत्रागमः कस्मात्किमर्थमिति मे वद॥ नाहं युष्मत्पक्षपाती प्रत्युताराातिरेव च॥७४॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिनायकः॥ अस्मत्सेव्या च या देवी सा त्वया पूज्यतेऽनिशम्॥७५॥

प्रयत्न कीजिये॥ ६९॥ हमलोग ध्यानपूर्वक भगवती परमेश्वरीकी उपासना करते हैं। वे प्रसन्न होकर आपकी सहायता करेंगी॥ ७०॥ बृहस्पतिजीसे इस प्रकार कहकर वे सब देवता भगवती जाम्बूनदेश्वरीके पास जानेको तैयार हो गये। उनका विश्वास था कि वे परम सुन्दरी देवी दैत्यके भयसे घबराये हुए हम देवताओंकी रक्षा करेंगी॥७१॥ वे वहाँ जाकर सुनिष्ठित चित्तसे तपस्या करने लगे। उनके द्वारा मायाबीजका जप होने लगा। वे तन-मनसे देवीयज्ञमें तत्पर हो गये॥७२॥ इधर बृहस्पतिजी शीघ्र ही दानवराज अरुणके पास पहुँचे। सामने आये हुए उन मुनिवरसे दैत्यने पूछा—॥ ७३॥ 'हे मुने! तुम कहाँसे यहाँ आ गये? तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है? शीघ्र बताओ। मैं तुम्हारा पक्षपाती तो हूँ नहीं, बल्कि तुम्हारे प्रति मेरी शत्रुता ही रहती है॥ ७४॥ दानवराज अरुणकी बात सुनकर मुनिवर बृहस्पतिजीने उससे कहा—'दानवेन्द्र! हम जिन देवीकी उपासना करते हैं, तुम भी निरन्तर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्हींकी उपासना करते हो ॥ ७५ ॥ अतएव तुम भी हमारे पक्षपाती हो गये। फिर कैसे कहते हो कि मैं तुम्हारा पक्षपाती नहीं हूँ।' बृहस्पतिजीकी यह बात सुनकर तथा देवमायासे मोहित हो और अभिमानमें आकर उसने कहा—'अच्छा, अब मैं गायत्रीकी उपासना नहीं करूँगा' यों कहकर वह दैत्य गायत्रीके जपसे विरत हो गया। गायत्रीके जपका त्याग करते ही उसका शरीर निस्तेज हो गया ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ इस प्रकार अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करके बृहस्पतिजी वहाँसे अमरावती लौट आये। उन्होंने आकर इन्द्रसे सारा समाचार कह सुनाया ॥ ७८ ॥ इससे सभी देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे भगवती परमेश्वरीकी उपासना करने लगे। हे मुने! इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होनेके पश्चात् किसी एक शुभ अवसरपर जगत्का कल्याण करनेवाली भगवती जगदम्बा प्रकट हुईं। उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। करोड़ों कामदेवके सदृश वे सुन्दर थीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ उनके शरीरमें अद्भुत अनुलेपन लगा हुआ था। दो विचित्र वस्त्र उन्हें सुशोभित किये हुए थे। उनके गलेमें विचित्र माला थी और उनके सभी अङ्ग दिव्य

तस्मादस्मत्पक्षपाती न भवेस्त्वं कथं वद ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा मोहितो देवमायया ॥ ७६ ॥ तत्याज परमं मंत्रमभिमानेन सत्तम ॥ गायत्री-
त्यागतो दैत्यो निस्तेजस्को बभूव ह ॥ ७७ ॥ कृतकार्यो गुरुस्तस्मात्स्थानान्निर्गतवान्पुनः ॥ ततो वृत्तान्तमखिलं कथयामास वज्रिणे ॥ ७८ ॥
संतुष्टास्ते सुराः सर्वे भेजिरे परमेश्वरीम् ॥ एवं बहुगते काले कस्मिंश्चित्समये मुने ॥ ७९ ॥ प्रादुरासीज्जगन्माता जगन्मङ्गलकारिणी ॥ कोटिसूर्य-
प्रतीकाशा कोटिकन्दर्पसुन्दरी ॥ ८० ॥ चित्रानुलेपना देवी चित्रवासोयुगान्विता ॥ विचित्रमाल्याभरणा चित्रभ्रमरमुष्टिका ॥ ८१ ॥ वराभयकरा
शांता करुणामृतसागरा ॥ नानाभ्रमरसंयुक्तपुष्पमालाविराजिता ॥ ८२ ॥ भ्रामरीभिर्विचित्राभिरसंख्याभिः समावृता ॥ भ्रमरैर्गायमानैश्च ह्रींकार-
मनुमन्वहम् ॥८३॥ समंततः परिवृता कोटिकोटिभिरंबिका ॥ सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्ववेदप्रशंसिता ॥८४॥ सर्वात्मिका सर्वमयी सर्वमंगलरूपिणी ॥
सर्वज्ञा सर्वजननी सर्वा सर्वेश्वरी शिवा ॥८५॥ दृष्ट्वा तां तरलात्मानो देवा ब्रह्मपुरोगमाः ॥ तुष्टुवुर्हृष्टमनसो विष्टरश्रवसं शिवाम् ॥८६॥ देवा ऊचुः ॥
नमो देवि महाविद्ये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ॥ नमः कमलपत्राक्षि सर्वाधारे नमोऽस्तु ते ॥ ८७ ॥ सविश्वतैजसप्राज्ञविराट्सूत्रात्मिके नमः ॥ नमो

अलंकारोंसे अलंकृत थे। उनकी मुट्ठी अद्भुत भ्रमरोंसे भरी थी। वे करुणामयी देवी परम शान्त थीं और वर तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए थीं। नाना भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी माला उनकी छवि बढ़ा रही थी। वे चारों ओरसे असंख्य एवं विचित्र भ्रमरों द्वारा घिरी हुई थीं। वे भ्रमर 'ह्रीं' इस शब्दका गायन करते थे और देवी उस गीतका अनुमोदन कर रही थीं ॥८१-८३॥ उनके पार्श्ववर्ती कई करोड़ भ्रमर थे। वे देवी सम्पूर्ण शृङ्गारोंसे समलंकृत थीं। वेदमें प्रशंसित सभी गुण उनमें विराजमान थे ॥ ८४ ॥ वे देवी सर्वात्मिका, सर्वमयी, सर्वमङ्गलरूपिणी, सर्वज्ञा, सर्वजननी, सर्वा, सर्वेश्वरी और शिवा—इन नामोंसे सुशोभित थीं ॥ ८५ ॥ उन देवीके दर्शन पाकर दैत्योंसे हारे हुए देवता ब्रह्मा आदि प्रधान देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक उन वेदप्रतिपादिता भगवती शिवाकी स्तुति करने लगे ॥ ८६ ॥ देवताओंने कहा—सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली हे भगवती महाविद्ये! आपको नमस्कार है। कमलके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समान नेत्रोंसे शोभा पानेवाली हे देवी ! आप संपूर्ण जगत्को धारण करती हैं, आपको बारम्बार प्रणाम है ॥८७॥ विश्वसहित तैजस प्राज्ञमय विराट् रूप धारण करनेवाली हे देवी ! आपको नमस्कार है । व्याकृत तथा कूटस्थरूपसे शोभा पानेवाली हे देवी ! आपको नमस्कार है ॥ ८८ ॥ सृष्टि, स्थिति और संहारसे रहित तथा दुष्टोंके लिए अर्गलास्वरूपिणी भगवती हे दुर्गे ! ज्योतिस्वरूपिणी आप निर्मल भक्तिसे प्राप्य हैं, आपके लिए हमारा नमस्कार स्वीकार हो ॥ ८९ ॥ हे माता श्रीकालिके ! आपको नमस्कार है । नीलसरस्वती, उग्रतारा और महोग्रा नाम धारण करनेवाली हे देवी ! आपको निरन्तर बार-बार नमस्कार है ॥९०॥ त्रिपुरसुन्दरी नामसे प्रसिद्ध हे देवी ! आपको नमस्कार है । हे देवी पीताम्बरे ! आपको नमस्कार है । भैरवी, मातङ्गी और देवी धूमावतीको बार-बार नमस्कार है ॥९१॥ हे छिन्नमस्तके ! आपको नमस्कार है । हे क्षीरसागरकन्यके ! आपको नमस्कार है । हे शाकम्भरी ! आपको नमस्कार है । हे शिवे ! आपको नमस्कार है । हे रक्तदन्तिके ! आपको नमस्कार है ॥ ९२ ॥ हे भगवती शिवे ! आपने शुम्भ और निशुंभका दलन किया है । आपके द्वारा रक्तबीजकी

व्याकृतरूपायै कूटस्थायै नमो नमः ॥८८॥ दुर्गे सर्गादिरहिते दुष्टसंरोधनार्गले ॥ निरर्गलप्रेमगम्ये भर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥८९॥ नमः श्रीकालिके मातर्नमो नीलसरस्वति ॥ उग्रतारे महोग्रे ते नित्यमेव नमोनमः ॥९०॥ नमः पीताम्बरे देवि नमस्त्रिपुरसुन्दरि ॥ नमो भैरवि मातंगि धूमावति नमो नमः ॥ ९१ ॥ छिन्नमस्ते नमस्तेऽस्तु क्षीरसागरकन्यके ॥ नमः शाकंभरि शिवे नमस्ते रक्तदन्तिके॥ ९२॥ निशुंभशुंभदलनि रक्तबीजविनाशिनि ॥ धूम्रलोचननिर्णाशे वृत्रासुरनिबर्हिणि ॥ ९३ ॥ चंडमुण्डप्रमथिनि दानवांतकरे शिवे ॥ नमस्ते विजये गंगे शारदे विकचानने ॥ ९४ ॥ पृथ्वीरूपे दयारूपे तेजोरूपे नमो नमः ॥ प्राणरूपे महारूपे भूतरूपे नमोऽस्तु ते ॥ ९५ ॥ विश्वमूर्ते दयामूर्ते धर्ममूर्ते नमो नमः ॥ देवमूर्ते ज्योतिमूर्ते ज्ञानमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥ ९६ ॥ गायत्रि वरदे देवि सावित्रि च सरस्वति ॥ नमः स्वाहे स्वधे मातर्दक्षिणे ते नमो नमः ॥ ९७ ॥ नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः ॥ सर्वं प्रत्यक्स्वरूपां तां भजामः परदेवताम् ॥ ९८ ॥ भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद्भ्रामरी या ततः स्मृता ॥ तस्यै

जीवन-लीला समाप्त हुई है । आप वृत्रासुर और धूम्रलोचनको मारनेवाली हैं ॥९३॥ आपने चण्ड और मुण्डके दलको मथ डाला है । आपके द्वारा बहुत-से दानव कालके ग्रास बन चुके हैं । हे विकसित-कमलानने ! आप गङ्गा, शारदा और विजया नामसे प्रसिद्ध हैं । आपको नमस्कार है ॥९४॥ हे दयास्वरूपिणी देवी ! पृथ्वी और तेज आपके रूप हैं । आपके लिए नमस्कार है । प्राणरूपा, महारूपा और भूतरूपा आप देवीको नमस्कार है ॥९५॥ हे विश्वमूर्ते ! हे दयामूर्ते ! हे धर्ममूर्ते ! आपको बार-बार नमस्कार है । देवता, ज्योति और ज्ञानमय विग्रह धारण करनेवाली आप देवीको नमस्कार है ॥ ९६ ॥ हे माता ! गायत्री, वरदा, सावित्री, सरस्वती, स्वाहा, स्वधा और दक्षिणा—ये सब आपके नाम हैं । आपको नमस्कार है ॥ ९७ ॥ आगमशास्त्र 'नेति-नेति' वाक्योंके द्वारा जिनका बोध कराते हैं, उन प्रत्यक्स्वरूपिणी आप पराशक्ति देवीकी हम उपासना करते हैं ॥९८॥ भ्रमरोंसे वेष्टित होनेके कारण जो 'भ्रामरी'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नामसे प्रसिद्ध हैं, उन आप भगवतीको हम नित्य-नित्य अनेकशः प्रणाम करते हैं ॥ ९९ ॥ हे अंबिके ! आपके पार्श्व तथा पृष्ठभागमें हमारा नमस्कार है। आपके आगे, ऊपर और नीचे सर्वत्र हमारा अनेकशः नमस्कार है ॥ १०० ॥ मणिद्वीपमें विराजनेवाली हे महादेवी ! आप हमपर कृपा कीजिये । हे जगदंबिके ! आप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी अधीश्वरी हैं ॥ १०१ ॥ हे जगन्माता ! आपको जय हो । हे परात्परस्वरूपिणी देवी ! आपकी जय हो ! हे भगवती श्रीभुवनेश्वरी ! आपकी जय हो । हे सर्वोत्तमोत्तमे ! आपको जय हो ॥ १०२ ॥ हे कल्याणमय गुणोंकी आलय भगवती भुवनेश्वरी ! आपकी जय हो । हे परमेश्वरी ! आप प्रसन्न होइये । संसारकी तोरणस्वरूपा हे देवि ! आप हमपर प्रसन्न होनेकी कृपा करें ॥ १०३ ॥ भगवान नारायण बोले—हे नारद ! देवताओंकी वाणी परम मधुर और प्रेमपूर्ण थी। उसे सुनकर मस्त कोयलकी भाँति मधुर भाषण करनेवाली भगवती जगदंबा उनसे कहने लगीं ॥१०४॥ श्रीदेवीने

देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः ॥ ९९ ॥ नमस्ते पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्ते पुरतोऽम्बिके ॥ नम ऊर्ध्वं नमश्चाधः सर्वत्रैव नमो नमः ॥ १०० ॥ कृपां कुरु महादेवि मणिद्वीपाधिवासिनि ॥ अनन्तकोटिब्रह्मांडनायिके जगदम्बिके ॥१०१॥ जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे ॥ जय श्रीभुवनेशानि जय सर्वोत्तमोत्तमे ॥ १०२ ॥ कल्याणगुणरत्नानामाकरे भुवनेश्वरि ॥ प्रसीद परमेशानि प्रसीद जगतोरणे ॥ १०३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रगल्भं मधुरं वचः ॥ उवाच जगदम्बा सा मत्तकोकिलभाषिणी ॥ १०४ ॥ देव्युवाच ॥ प्रसन्नाऽहं सदा देवा वरदेशशिखामणिः ॥ ब्रुवन्तु विबुधाः सर्वे यदेव स्याच्चिकीर्षितम् ॥ १०५ ॥ देवीवाक्यं सुराः श्रुत्वा प्रोचुर्दुःखस्य कारणम् ॥ दुष्टदैत्यस्य चरितं जगद्बाधाकरं परम् ॥ १०६ ॥ देवब्राह्मणवेदानां हेलनं नाशनं तथा ॥ स्थानभ्रंशं सुराणां च कथयामासुरादृताः ॥ १०७ ॥ ब्रह्मणो वरदानं च यथावत्ते समूचिरे ॥ श्रुत्वा देवमुखाद्वाणीं महाभगवती तदा ॥ १०८ ॥ प्रेरयामास हस्तस्थान्भ्रमरान्भ्रामरी तदा ॥ पार्श्वस्थानग्रभागस्थान्नानारूपधरांस्तदा ॥ १०९ ॥ जनयामास बहुशो यैर्व्याप्तं भुवनत्रयम् ॥ मटचीयूथवत्तेषां समुदायस्तु निर्गतः ॥ ११० ॥ तदांतरिक्षं तैर्व्याप्तमंधकारः क्षितावभूत् ॥

कहा—हे देवताओ ! मैं तुमपर सदाके लिए प्रसन्न हूँ । वर देना मेरा स्वाभाविक गुण है । तुम समस्त देवताओंके मनमें जो भी अभिलाषा हो, वह वर मुझसे माँग लो ॥ १०५ ॥ देवीका यह वचन सुनकर देवताओंने अपने दुःखका कारण बतलाया और दुश्चरित्र दैत्य अरुणके द्वारा जगत्को प्राप्त होनेवाली असह्य पीड़ाका वर्णन किया ॥१०६॥ वे बोले—'हे माता ! देवताओं, ब्राह्मणों और वेदोंकी सर्वत्र निन्दा हो रही है। उनपर घोर आघात पहुँचा है। सभी देवता अपने-अपने स्थानोंसे च्युत हो गये हैं ॥१०७॥ ब्रह्माजीने इस दानवराज अरुणको विचित्र वर दे रक्खा है। देवताओंकी आर्त वाणी सुनकर भगवती महादेवी भ्रामरीने अपने हस्तगत भ्रमरोंको प्रेरित किया, उनके साथ ही अपने पार्श्वप्रान्त और अग्रभागमें रहनेवाले नानारूपधारी भ्रमरोंको भी भेजा ॥१०८॥१०९॥ उन्होंने और भी असंख्य भ्रमरोंको उत्पन्न किया । उन भ्रमरोंसे सारी त्रिलोकी व्याप्त हो गयी । उस समय इन भ्रमरोंके झुण्ड टिड्डीदलके समान निकलने लगे ॥११०॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आकाश, पर्वतश्रृङ्ग, वृक्ष और वन जहाँ-तहाँ भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगोचर होने लगे। जिससे अन्धकार छा गया। वह दृश्य बड़ा ही आश्चर्यजनक था। उन संपूर्ण भ्रमरोंने तुरन्त जाकर दैत्योंकी छाती छेद डाली ॥ १११ ॥ ११२ ॥ वे उनको इस प्रकार काट रहे थे, जैसे मधु निकालनेवाले व्यक्तिको कोपमें भरी मधुमक्खियाँ काटें। उस समय शस्त्रों तथा अस्त्रोंसे किसी प्रकार भी उनका निवारण नहीं किया जा सकता था ॥११३॥ ऐसो स्थितिमें न युद्ध हो सका और न कोई संभाषण ही। दैत्योंको अपने सामने केवल मृत्यु ही दृष्टिगोचर हो रही थी। जिस-जिस स्थलपर जो-जो दैत्य जिस-जिस रूपमें विद्यमान थे, वहीं-वहीं उसी-उसी रूपमें वे सब अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे। परस्पर किसीसे कोई कुछ बातचीत भी नहीं कर सका ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ क्षणमात्रमें ही वे संपूर्ण शक्तिशाली दानव नष्टभ्रष्ट हो गये। इस प्रकारका अद्भुत कार्य करके वे सब भ्रमर पुनः देवीके निकट लौट आये ॥ ११६ ॥ 'यह बड़े ही

दिवि पर्वतशृंगेषु द्रुमेषु विपिनेष्वपि ॥ १११ ॥ भ्रमरा एव संजातास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ते सर्वे दैत्यवक्षांसि दारयामासुरुद्धताः ॥ ११२ ॥ नरं मधुहरं यद्वन्मक्षिकाः कोपसंयुताः ॥ उपायो न च शस्त्राणां तथाऽस्त्राणां तथाऽभवत् ॥ ११३ ॥ न युद्धं न च संभाषा केवलं मरणं खलु ॥ यस्मिन्यस्मिन्स्थले ये ये स्थिता दैत्या यथा यथा ॥ ११४ ॥ तत्रैव च तथा सर्वे मरणं प्रापुरुत्स्मयाः ॥ परस्परं समाचारो न कस्याप्यभवत्तदा ॥११५॥ क्षणमात्रेण ते सर्वे विनष्टा दैत्यपुंगवाः ॥ कृत्वेत्थं भ्रमराः कार्यं देवीनिकटमाययुः ॥ ११६ ॥ आश्चर्यमेतदाश्चर्यमिति लोकाः समूचिरे ॥ किं चित्रं जगदम्बाया यस्या मायेयमीदृशी ॥११७॥ ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ निमग्ना हर्षजलधौ पूजयामासुरंबिकाम् ॥ ११८॥ नानोपचारैर्विविधैर्नानोपायनपाणयः ॥ जयशब्दं प्रकुर्वाणा मुमुचुः सुमनांसि च ॥ ११९ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ पेठुर्वेदान्मुनिश्रेष्ठा गंधर्वाद्या जगुस्तथा ॥ १२० ॥ मृदङ्गमुरजावीणाढक्काडमरुनिःस्वनैः ॥ घंटाशंखनिनादैश्च व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् ॥ १२१ ॥ नानास्तोत्रैस्तदा स्तुत्वा मूर्ध्न्याधायांजलींस्तथा ॥ जय मातर्जयेशानीत्येवं सर्वे समूचिरे ॥ १२२ ॥ ततस्तुष्टा महादेवी वरान्दत्त्वा पृथक्पृथक् ॥ स्वस्मिंश्च विपुलां

आश्चर्यकी बात है, बड़े ही आश्चर्यकी बात है' सब ओर यही ध्वनि गूँजने लगी। जिनकी ऐसी माया है, उन भगवती जगदंबाके लिए कौन-सा काम विचित्र है ॥११७॥ तदनन्तर ब्रह्मा-विष्णु आदि संपूर्ण देवताओंने हर्षके समुद्रमें डूबकर भगवती जगदंबाकी पूजा की। अनेक प्रकारके उपचारों तथा भाँति-भाँतिकी सामग्रियोंसे देवीका पूजन किया गया। जयजयकारकी तुमुल ध्वनि हुई और देवीके ऊपर पुष्प बरसने लगे ॥११८॥११९॥ आकाशमें दुन्दुभियाँ बज उठीं और श्रेष्ठ मुनिगण वेद-पाठ करने लगे। गन्धर्वोंके द्वारा यशोगान होने लगा ॥१२०॥ मृदङ्ग, वीणा, ढाक, डमरू, घण्टा और शङ्ख आदि वाद्योंकी ध्वनिसे सारी त्रिलोकी व्याप्त हो गयी ॥१२१॥ उस समय नाना प्रकारके स्तोत्रों द्वारा स्तुति करके अपनी अञ्जलि मस्तकपर किये हुए संपूर्ण देवताओंने देवीका जयजयकार आरंभ किया और बार-बार कहा—'हे माता ईशानी! आपकी जय हो, जय हो ॥ १२२ ॥ तब भगवती महादेवीने संतुष्ट होकर सब देव-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ताओंको पृथक्- पृथक् वर दिये । देवताओंके प्रार्थना करनेपर उन्होंने उनको अपनी विपुल भक्ति प्रदान की । फिर उन देवोंके सामने ही वे अन्तर्धान हो गयीं । हे नारद ! इस प्रकार भगवती भ्रामरीका यह संपूर्ण विशद चरित्र मैं तुम्हें सुना चुका ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ इसको पढ़ने और सुननेवाले लोगोंके संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । सुननेमें यह बहुत ही आश्चर्य-जनक विषय है । इसके प्रभावसे मनुष्य संसाररूपी समुद्रसे तर जाता है ॥१२५॥ इसी प्रकार संपूर्ण मनुओंका चरित्र भी पापोंका उच्छेद कर डालता है । देवीके माहात्म्यसे संबंध रखने-

भक्ति प्रार्थिता तैर्ददौ च ताम् ॥ १२३ ॥ पश्यतामेव देवनामन्तर्धानं गता ततः ॥ इति ते सर्वमाख्यातं भ्रामर्याश्चरितं महत् ॥ १२४ ॥ पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ श्रुतमाश्चर्यजनकं संसारार्णवतारकम् ॥ १२५ ॥ एवं मनूनां सर्वेषां चरितं पापनाशनम् ॥ देवीमाहात्म्यसंयुक्तं पठञ्शृण्वञ्शुभप्रदम् ॥ १२६ ॥ यश्चैतत्पठते नित्यं शृणुयाद्योऽनिशं नरः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १२७ ॥ इति श्रीदेवी-भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सार्धरुद्रैः पंचशत [५११ ॥] श्लोकैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्य दशमस्कन्ध ईरितः ॥ १० ॥

वाला यह विषय पढ़ने और सुननेवालोंके लिए कल्याणप्रद है ॥ १२६ ॥ जो पुरुष नित्य इस प्रसङ्गका पठन और श्रवण करता है, वह संपूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवतीके परमपदको प्राप्त कर लेता है ॥ १२७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

भगवान् वेदव्यास द्वारा प्रणीत पाँच सौ साढ़े ग्यारह शुभ श्लोकों द्वारा यह दशम स्कन्ध कहा गया है ॥ १० ॥

॥ समाप्तोऽयं दशमः स्कन्धः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते दशमः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते एकादशः स्कन्धः ।

पण्डित-पुस्तकालय काशी

१३५९.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(सदाचारका वर्णन) नारदने कहा—हे भगवन् ! हे भूतभव्येश ! हे नारायण ! हे सनातन ! आपने भगवती जगदम्बाके परम आश्चर्यजनक एवं उत्तम चरित्रका वर्णन किया ॥ १ ॥ साथ ही देवताओंका कार्य संपन्न करनेके लिए भगवतीके प्रादुर्भावकी बातें बतलायीं । भगवतीकी कृपासे देवताओंको उनके अधिकार प्राप्त हुए—यह प्रसङ्ग भी कहा ॥ २ ॥ हे प्रभो ! जिससे प्रसन्न होकर भगवती सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करती हैं, अब मैं वह सदाचार जानना चाहता हूँ । उसे बतानेको कृपा कीजिये ॥३ भगवान् नारायण कहते हैं—हे तत्त्वज्ञानी नारद ! सुनो, अब मैं उन सदाचारोंका क्रमशः वर्णन करता हूँ, जिनके अनुष्ठानसे देवी प्रसन्न हो जाती हैं ॥ ४ ॥ प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर द्विजको जिसका पालन करना चाहिये, उस उपकारी सदाचारका मैं वर्णन करूँगा ॥५॥ उदयसे अस्ततक द्विजको दिनभर नित्य, नैमित्तक, काम्य, धर्म-साधन एवं सत्कर्ममें लगे रहना चाहिए ॥६॥ क्योंकि माता, पिता, पुत्र, स्त्री और बंधु-

॥ नारद उवाच ॥ भगवन् भूतभव्येश नारायण सनातन ॥ आख्यातं परमाश्चर्यं देवीचारित्रमुत्तमम् ॥ १ ॥ प्रादुर्भावः परो मातुः कार्यार्थमसुरद्रुहाम् ॥ अधिकाराप्तिरुक्ताऽत्र देवीपूर्णकृपावशात् ॥ २ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि येन प्रीणाति सर्वदा ॥ स्वभक्तान्परिपुष्णाति तमाचारं वद प्रभो ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ शृणु नारद तत्त्वज्ञ सदाचारविधिक्रमम् ॥ यदनुष्ठानमात्रेण देवी प्रीणाति सर्वदा ॥ ४ ॥ प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद्द्विजेन दिने दिने ॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥ ५ ॥ उदयास्तमयं यावद्द्विजः सत्कर्मकृद्भवेत् ॥ नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ॥ ६ ॥ आत्मैव न सहायार्थं पिता माता न तिष्ठति ॥ न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलम् ॥ ७ ॥ तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनु साधनैः ॥ धर्मेणैव सहायात्तु तमस्तरति दुस्तरम् ॥ ८ ॥ आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ॥ तस्मादस्मिन्समायुक्तो नित्यं स्यादात्मनो द्विजः ॥ ९ ॥ आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते प्रजाः ॥ आचारादन्नमक्षय्यमाचारो हंति पातकम् ॥ १० ॥ आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः ॥ इह लोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम् ॥ ११ ॥ अज्ञानांधजनानां तु मोहितैर्भ्रमितात्मनाम् ॥ धर्मरूपो महादीपो मुक्तिमार्गप्रदर्शकः ॥ १२ ॥ आचारात्प्राप्यते श्रैष्ठ्यमाचारात्कर्म लभ्यते ॥ कर्मणो जायते ज्ञानमिति वाक्यं मनोः स्मृतम् ॥ १३ ॥

बान्धव कोई भी आत्माकी सहायता नहीं कर सकते । केवल एक धर्म ही सहायकरूपमें साथ देता है ॥ ७ ॥ अतएव सभी साधनोंसे अपने सहायक धर्मका नित्य संचय करे । धर्मकी सहायतासे पुरुष दुस्तर अन्धकारको पार कर जाता है ॥ ८ ॥ आचारको ही पहला धर्म माना गया है—यह बात श्रुति और स्मृतिसे सिद्ध है । अतः इस जगत्में आकर द्विजको अपने कल्याणार्थ सदा सदाचारसे सम्पन्न रहना चाहिये ॥ ९ । आचारसे ही आयु, संतान तथा प्रचुर अन्नकी उपलब्धि होती है । आचार समस्त पातकोंको दूर कर देता है ॥१०॥ मनुष्योंके लिये आचारको कल्याणकारक तथा परम धर्म माना गया है । आचारवान् पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर परलोकमें भी सुखी होता है ॥११॥ धर्ममय आचार अज्ञानके अन्धकारमें भटकनेवालोंको महान् दीपकका रूप धारण करके मुक्तिका मार्ग दिखलाता है ॥१२॥ आचारसे ही गौरव बढ़ता है और आचार ही मनुष्यको सत्कर्मी बनाता है । सत्कर्मसे ज्ञानकी वृद्धि होती है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह मनुका वचन है ॥ १३ ॥ आचार सम्पूर्ण धर्मोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण परम तप कहा जाता है। इसीकी ज्ञान संज्ञा है। आचारसे सब कुछ सिद्ध हो सकता है ॥ १४ ॥ जो उत्तम कोटिका ब्राह्मण होता हुआ भी आचारसे हीन हो, उसका शूद्रके समान बहिष्कार करना चाहिए। क्योंकि वह सर्वथा शूद्र ही जैसा होता है ॥ १५ ॥ आचार दो प्रकारके होते हैं—शास्त्रीय और लौकिक। शुभकी इच्छा करनेवाले पुरुषको उन दोनोंका पालन करना चाहिये। उनमेंसे किसीका भी त्याग उचित नहीं है ॥ १६॥ सत्पुरुषोंको ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म और कुलधर्म सबका आदर करना चाहिये। हे मुने! इनमेंसे किसी भी धर्मका उल्लंघन करना अनुचित है ॥१७॥ क्योंकि दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दाका पात्र समझा जाता है। उसे सदा कष्ट भोगने पड़ते हैं। व्याधि कभी उसका पिण्ड नहीं छोड़ती ॥ १८ ॥ जो अर्थ तथा काम धर्मसे हीन हों, उनका त्याग कर देना चाहिये। यदि धर्म भी लोकसे विरुद्ध हो तो वह सुखकर नहीं हो सकता ॥ १९ ॥ नारदजीने कहा—हे मुने! जगत्में अनेक प्रकारके शास्त्र हैं। किसके आधारपर निश्चय किया जाय? धर्ममार्गके निर्णायक कितने प्रमाण हैं? यह बतानेकी

सर्वधर्मवरिष्ठोऽयमाचारः परमं तपः ॥ तदेव ज्ञानमुद्दिष्टं तेन सर्वं प्रसाध्यते ॥ १४ ॥ यस्त्वाचारविहीनोऽत्र वर्तते द्विजसत्तमः ॥ स शूद्रवद्बहि-
ष्कार्यो यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ १५ ॥ आचारो द्विविधः प्रोक्तः शास्त्रीयो लौकिकस्तथा ॥ उभावपि प्रकर्तव्यौ न त्याज्यौ शुभमिच्छता ॥ १६ ॥
ग्रामधर्मा जातिधर्मा देशधर्माः कुलोद्भवाः॥ परिग्राह्या नृभिः सर्वैर्नैव तांल्लंघयेन्मुने ॥ १७ ॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः ॥ दुःख-
भागी च सततं व्याधिना व्याप्त एव च ॥ १८ ॥ परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ॥ धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्टमेव च ॥ १९॥ नारद
उवाच ॥ बहुत्वादिह शास्त्राणां निश्चयः स्यात्कथं मुने ॥ कियत्प्रमाणं तद्ब्रूहि धर्ममार्गविनिर्णयम् ॥२०॥ नारायण उवाच ॥ श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे
पुराणं हृदयं स्मृतम् ॥ एतत्त्रयोक्त एव स्याद्धर्मो नान्यत्र कुत्रचित् ॥२१॥ विरोधो यत्र तु भवेत्त्रयाणां च परस्परम् ॥ श्रुतिस्तत्र प्रमाणं स्याद्द्वयो-
र्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥२२॥ श्रुतिद्वैधं भवेद्यत्र तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ॥ स्मृतिद्वैधं तु यत्र स्याद्विषयः कल्प्यतां पृथक् ॥२३॥ पुराणेषु क्वचिच्चैव तत्र दृष्टं
यथातथम् ॥ धर्मं वदंति तं धर्मं गृह्णीयान्न कथंचन ॥२४॥ वेदाविरोधि चेत्तंत्रं तत्प्रमाणं न संशयः ॥ प्रत्यक्षश्रुतिरुद्धं यत्तत्प्रमाणं भवेन्न च ॥२५॥

कृपा कीजिये ॥२०॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद! श्रुति और स्मृति—ये दो नेत्र हैं। पुराणको हृदय कहा गया है। इन तीनोंकी वाणी ही धर्म है, अन्य किसीकी नहीं ॥२१॥ यदि तीनोंमें परस्पर भेद हो तो ऐसी स्थितिमें श्रुतिके वचनोंको प्रमाण मानना चाहिये और श्रुति-स्मृति दोनोंमें विरोध होनेपर स्मृति श्रेष्ठ मानी जाती है ॥ २२ ॥ यदि श्रुति ही दो बातोंका समर्थन करती हो तो वे दोनों धर्म माने जा सकते हैं। यदि स्मृतिमें दो प्रकारके वचन मिलें तो प्रसंगानुसार पृथक्-पृथक् कल्पना कर लेनी चाहिये ॥ २३ ॥ सभी पुराण वेदमूलक नहीं हैं। क्योंकि उनमें कहीं-कहीं तन्त्र भी देखे जाते हैं। ऋषिगण जिसे धर्म कहते हैं, उसीको धर्मरूपसे ग्रहण करना चाहिये। दूसरेको धर्म मानना किसी प्रकार समाचीन नहीं है ॥२४॥ यदि तन्त्र वेदसे सहमत हो तो उसकी प्रामाणिकतामें कोई संदेह नहीं है। जो श्रुतिसे प्रत्यक्ष विरुद्ध हो, उसे प्रमाण नहीं माना जा सकता ॥ २५ ॥ सम्यक् प्रकारसे वेद ही धर्मके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मार्गका प्रमाण है। इसलिए वेदका अविरोधी जो कुछ है, वही प्रमाण है ॥ २६ ॥ जो वेदोक्त धर्मका त्याग करके दूसरेको प्रमाण मानकर व्यवहार करता है, उसे दण्ड देनेके लिये यमलोकमें बहुतसे नरककुंड बने हुए हैं ॥२७॥ इसलिये भलीभाँति प्रयत्न करके वेदोक्त धर्मका ही आश्रय लेना चाहिये। स्मृति, पुराण, तन्त्र तथा अन्य शास्त्रको तभी प्रमाण माना जाय, जब वे वेदमूलक हों। वेदविरुद्ध होनेपर वे कदापि प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। जो लोग मनुष्योंको निन्दित शास्त्रोंका उपदेश करते हैं ॥ २८ ॥ उन्हें मुख नीचे और पैर ऊपर करके नरकमें रहना पड़ता है। स्वेच्छाचारी, पाशुपतमार्गानुयायी, वैखानस मतके माननेवाले तथा तप्तमुद्रासे अंकित लोग वेद-बहिष्कृत होनेके कारण नरकगामी होते हैं ॥ २९–३१ ॥ अतएव मनुष्य वेदोक्त सद्धर्मका ही सदा पालन करे। बार-बार सावधान होकर पुरुष विचार करे कि आज मेरे द्वारा कौन-कौनसा कार्य हुआ है ॥ ३२ ॥ मैंने किसको

सर्वथा वेद एवासौ धर्ममार्गप्रमाणकः ॥ तेनाविरुद्धं यत्किंचित्तत्प्रमाणं न चान्यथा ॥ २६ ॥ यो वेदधर्ममुज्झित्य वर्ततेऽन्यप्रमाणतः ॥ कुण्डानि तस्य शिक्षार्थं यमलोके वसंति हि ॥ २७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदोक्तं धर्ममाश्रयेत् ॥ स्मृतिः पुराणमन्यद्वा तंत्रं वा शास्त्रमेव च ॥ २८ ॥ तन्मूलत्वे प्रमाणं स्यान्नान्यथा तु कदाचन ॥ ये कुशास्त्राभियोगेन वर्तयंतीह मानवान् ॥ २९ ॥ अधोमुखोर्ध्वपादास्ते यास्यंति नरकार्णवम् ॥ कामाचाराः पाशुपतास्तथा वै लिंगधारिणः ॥ ३० ॥ तप्तमुद्रांकिता ये च वैखानसमतानुगाः ॥ ते सर्वे निरयं यांति वेदमार्गबहिष्कृताः ॥ ३१ ॥ वेदोक्तमेव सद्धर्मं तस्मात्कुर्यान्नरः सदा ॥ उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं कि मयाऽद्य कृतं कृतम् ॥ ३२ ॥ दत्तं वा दापितं वापि वाक्येनापि च भाषितम् ॥ उपपापेषु सर्वेषु पातकेषु महत्स्वपि ॥ ३३ ॥ अवाप्य रजनीयामं ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥ ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये चोरौ तथोत्तरम् ॥ ३४ ॥ उत्तानं किंचिदुत्तानं मुखमाच्छाद्य चोरसा ॥ निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥३५॥ तालुस्थाचलजिह्वश्च संवृतास्यः सुनिश्चलः ॥ सन्निरुद्धेंद्रियग्रामो नातिनिम्नस्थितासनः ॥३६॥ द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत् ॥ ततो ध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ॥३७॥ धारयेत्तत्र चात्मानं धारणां धारयेद्बुधः ॥ सधूमश्च विधूमश्च सगर्भश्चाप्यगर्भकः ॥ ३८ ॥ सलक्ष्यश्चाप्यलक्ष्यश्च प्राणायामस्तु षड्विधः ॥

क्या दिया, क्या दिलाया अथवा वचनसे भी क्या सहायता की। सभी पातक और उपपातक अत्यन्त दारुण हैं—कहीं इनमें तो मैं नहीं फँस गया ॥ ३३ ॥ रात्रिके चौथे पहरमें उठकर ब्रह्मका ध्यान करे। वीरासनसे बैठकर ध्यान करना चाहिये। सीधेसे कुछ उत्तान होकर बैठे। मुख भी ऊपर रहे। आँखें मूँद ले। दाँतोंको दाँतसे स्पर्श न करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ जीभ तालूके पास रहे और उसमें हिलने-डुलनेकी क्रिया न हो। मुख बंद न करे। मन शान्त रहे। सभी इन्द्रियाँ वशमें हों। आसन बहुत नीचा न हो ॥३६॥ दो बार अथवा तीन वार प्राणायाम करना चाहिये। इसके बाद जो दीपकके समान हृदयमें विराजमान हैं, उन प्रभुका ध्यान करे ॥ ३७ ॥ विवेकी पुरुषके मनमें यह धारणा बनी रहनी चाहिये कि मेरे हृदयमें परमात्मा अवश्य विराजमान हैं। सधूम (श्वाससहित), विधूम (श्वासरहित), सगर्भ (मन्त्रजपसहित), अगर्भ (मंत्ररहित), सलक्ष्य (आराध्यदेवके ध्यानसहित) और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलक्ष्य (ध्यानरहित) के भेदसे प्राणायाम छः प्रकारके होते हैं । प्राणायाममें वायुका नियमन किया जाता है । इसीलिए इसकी तुलना योगसे की गयी है ॥३८॥३९॥ इस प्राणायाममें भी रेचक (श्वास खींचना), पूरक (रोकना) और कुंभक (श्वास छोड़ना)—यह तीन प्रकारका भेद है । ये प्राणायाम वर्णत्रयात्मक अर्थात् प्रणव (ॐ) स्वरूप हैं । उस प्रणवको ही परमात्माका स्वरूप कहा गया है । वही तन्मय प्राणायाम भी है । इडा नाडीसे वायुको ऊपर खींचकर उदरमें पूर्णरूपसे स्थित करे ॥४०।४१॥ फिर दूसरी (पिंगला) नाडीसे धीरे-धीरे सोलह मात्रामें वायुका विरेचन अर्थात् त्याग करना चाहिये । हे मुने ! इस प्रकार प्राणोंके आयामको ही 'सधूम' प्राणायाम कहते हैं ॥४२॥ मूलाधार, लिङ्ग, नाभी, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य—इन छः स्थानोंमें चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल और द्विदल कमल हैं । इन कमलोंके पत्रोंपर प्रदक्षिणक्रमसे सभी वर्ण विराजमान हैं । ये ब्रह्मस्वरूप हैं । इन्हें मैं प्रणाम करता हूँ—इस प्रकार भावना करनी चाहिए ॥ ४३ ॥ जो मूलाधारमें स्थित चार दलवाले अरुण कमलपर विराजमान, रजोगुणसे युक्त मायाबीजसे चिह्नित तथा कमल-तन्तुके

प्राणायामसमो योगः प्राणायाम इतीरितः ॥ ३९ ॥ प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः ॥ वर्णत्रयात्मका ह्येते रेचपूरककुम्भकाः ॥ ४० ॥ स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः ॥ इडया वायुमारोप्य पूरयित्वोदरे स्थितम् ॥ ४१ ॥ शनैः षोडशमात्राभिरन्यथा तं विरेचयेत् ॥ एवं सधूमः प्राणानामायामः कथितो मुने ॥ ४२ ॥ आधारो लिंगनाभिप्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदलद्वादशार्धे चतुष्के ॥ वासांते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां हंक्षंतत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ॥ ४३ ॥ अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुंजवर्णा हरनियमितचिह्ना पद्मतंतुस्वरूपा ॥ रविहुतवहराकानायकास्यस्तनाढ्या सकृदपि यदि चित्ते संवसेत्स्यात्स मुक्तः ॥४४॥ स्थितिः सैवागतिर्यात्रा मतिश्चिंता स्तुतिर्वचः ॥ अहं सर्वात्मको देवः स्तुतिः सर्वं त्वदर्चनम् ॥ ४५ ॥ अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ॥ सच्चिदानन्दरूपोऽहं स्वात्मानमिति चिंतयेत् ॥ ४६ ॥ प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ॥ अंतःपदव्यामनुसंचरंतीमानंदरूपामबलां प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ ततो निजब्रह्मरंध्रे ध्यायेत्तं गुरुमीश्वरम् ॥ उपचारैर्मानसैश्च पूजयेत्तं यथाविधि ॥ ४८ ॥ स्तुवीतानेन मंत्रेण साधको

समान सूक्ष्मस्वरूपा हैं । सूर्य-बिन्दु जिनका मुख है तथा अग्नि और चन्द्रमा जिनके स्तन हैं, ऐसी कुण्डलिनीस्वरूपा भगवती श्रीजगदंबा यदि चित्तमें एक बार भी बस जायँ तो प्राणी जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥ वे ही स्थिति हैं, वे ही गति हैं, वे ही मति हैं, वे ही चिंता हैं, वे ही स्तुति हैं और वे वाणी हैं । 'हे देवी । मैं सर्वात्मा हूँ । मैं जो स्तुति करता हूँ, वही आपकी पूजा है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ मैं आपका स्वरूप ही हूँ, दूसरा कुछ नहीं । मैं ब्रह्म हूँ । मुझमें लेशमात्र भी शोकका प्रवेश नहीं हो सकता । मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ'—इस प्रकार स्वयं अपनी आत्मामें भावना करे ॥ ४७ ॥ जो प्रथम प्रयाणमें विद्युत्के समान प्रकाशमान रहती हैं, प्रतिप्रयाणमें अमृतके सदृश हैं तथा अन्तिम प्रयाणमें सुषुम्ना नाडीमें संचार करती हैं, उन आनन्दस्वरूपिणी भगवती कुण्डलिनीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ४८ ॥ तदनन्तर अपने ब्रह्मरन्ध्रमें ईश्वरमय गुरुका ध्यान करे । मानसिक उप-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चारोंसे विधिपूर्वक गुरुदेवकी पूजा करे ॥४९॥ फिर साधक संयतचित्त होकर इस मन्त्रसे गुरुदेवकी प्रार्थना करे—गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही देवता हैं और गुरु ही महेश्वर हैं। अतः उन श्रीगुरुदेवके लिये मेरा नमस्कार है ॥५०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

(शौचाशौचविचार) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! वेद अपने छहों अङ्गोंसहित भी क्यों न अध्ययन किये गये हों, आचारहीन व्यक्तिको वे पवित्र नहीं कर सकते। ऐसे प्राणीको अधीत छन्द मृत्युकालमें उसी प्रकार त्याग देते हैं, जैसे पंख निकल आनेपर पक्षी अपने घोंसलेको छोड़ देते हैं ॥१॥ विद्वान् पुरुषको चाहिए कि ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर अपने संपूर्ण सदाचारका पालन करे। रात्रिके चौथे प्रहरमें वेदका अभ्यास करना परम धर्म है ॥ २ ॥ फिर कुछ समयतक अपने इष्टदेवका चिन्तन करे। योगी पुरुष पूर्वोक्त मार्गसे ब्रह्मका ध्यान करे ॥३॥ जिससे जीव और ब्रह्मकी निरन्तर एकता हो जाय। हे नारद! ऐसा पुरुष शीघ्र ही जीवन्मुक्त हो जाता है ॥४॥ रात्रिके अन्तमें पचपन घड़ीके बाद उषःकाल, सत्तावन

नियतात्मवान् ॥ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे प्रातश्चिन्तनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यदप्यधीताः सह षड्भिरंगैः ॥ छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजंति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥ १ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् ॥ रात्रेरंतिमयामे तु वेदाभ्यासं चरेद्बुधः ॥ २ ॥ किंचित्कालं ततः कुर्यादिष्टदेवानुचिंतनम् ॥ योगी तु पूर्वमार्गेण ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥ ३ ॥ जीवब्रह्मैक्यता येन जायते तु निरंतरम् ॥ जीवन्मुक्तश्च भवति तत्क्षणादेव नारद ॥ ४ ॥ पंचपंच उषःकालः सप्तपंचारुणोदयः ॥ अष्टपंच भवेत्प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः ॥ ५ ॥ प्रातरुत्थाय यः कुर्याद्विण्मूत्रं द्विजसत्तमः ॥ नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः ॥६॥ विण्मूत्रेऽपि च कर्णस्थ आश्रमे प्रथमे द्विजः ॥ निवीतं पृष्ठतः कुर्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥७॥ कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कंठलंबितम् ॥ विण्मूत्रं तु गृही कुर्यात्कर्णस्थं प्रथमाश्रमी ॥ ८ ॥ अंतर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥ वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनश्वासवर्जितः ॥ ९ ॥ न फालकृष्टे न जले न चितायां न पर्वते ॥ जीर्णे देवालये कुर्यान्न वल्मीके न शाद्वले ॥ १० ॥ न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्न

घड़ीके बाद अरुणोदयकाल और अट्ठावन घड़ीके बाद प्रातःकाल होता है। इसके बादके समयको सूर्योदयकाल कहते हैं॥५॥ श्रेष्ठ द्विजको चाहिए कि वह नैर्ऋत्य दिशामें धनुषसे छूटा बाण जितनी दूर जा सके, उससे आगे जाकर मल-मूत्रका त्याग करे ॥६॥ ब्रह्मचर्य आश्रममें रहते समय मल-मूत्र त्यागनेके अवसरपर यज्ञोपवीतको अपने कानपर रख ले। वानप्रस्थ और गृहस्थके लिए यज्ञोपवीतको आगे लटकाकर पीठपर रख लेनेका विधान है ॥ ७ ॥ गृहस्थ यज्ञोपवीतको कण्ठीके समान पीठकी ओर लटकाकर और ब्रह्मचारी कानपर रखकर मल-मूत्रका त्याग करे—यह साधारण नियम है ॥ ८ ॥ तृणोंसे मलत्यागकी भूमिको ढँक दे। सिरको वस्त्रसे ढाँक ले। मौन रहे। किसी कारण यदि अधिक श्वास चल रहा हो तो उस समय शौचके लिए न बैठे और न थूके ॥ ९ ॥ जोती हुई भूमिपर, चिताके स्थानपर, पर्वतपर, टूटे-फूटे देवमन्दिरके स्थानमें तथा सर्पके बिल एवं हरी घासपर मलमूत्रका त्याग न करे ॥१०॥ बहुत-से जीवों-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाले गड्ढोंमें, जहाँ लोग चलते हों ऐसे मार्गमें, दोनों संध्या, जप, भोजन और दन्तधावन करते समय मल-मूत्रका त्याग अनुचित है ॥११॥ देवकार्य, पितृकार्य, पानीके झरनेपर, मैथुनके समय अथवा गुरुकी संनिधिमें मल-मूत्रका त्याग करना निषिद्ध है ॥१२॥ मल-मूत्र त्यागनेसे पहले इस मन्त्रका उच्चारण करे- 'देवता, ऋषि, पिशाच, उरग और राक्षस—सभी भूत-समुदाय यहाँसे जानेकी कृपा करें। क्योंकि मैं यहाँ मलत्याग करना चाहता हूँ।' इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् विधिपूर्वक शौच करे ॥ १३ ॥ १४ ॥ मल-मूत्रका त्याग करते समय वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल और गौपर कदापि दृष्टिपात न करे ॥ १५ ॥ दिनमें उत्तरकी ओर तथा रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करे। पश्चात् उसे मिट्टी, पत्ते अथवा तृणसे ढँक दे ॥१६॥ जलाशयके निकट मलत्याग किया हो तो हाथमें लिङ्ग थामकर जलके पास जाय। अन्यत्र पात्रमें जल लेकर शौचके लिए जानेका विधान है ॥ १७ ॥ शुद्धि करनेके लिए

पथि स्थितः ॥ संध्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दंतधावने ॥११॥ पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ उत्साहे मैथुने वापि तथा वै गुरु सन्निधौ ॥ १२ ॥ यागे दाने ब्रह्मयज्ञे द्विजो मौनं समाचरेत ॥ देवता ऋषयः सर्वे पिशाचोरगराक्षसाः ॥ १३ ॥ इतो गच्छंतु भूतानि बहिर्भूमिं करोम्यहम् ॥ इति संप्रार्थ्य पश्चात्तु कुर्याच्छौचं यथाविधि ॥ १४ ॥ वाय्वग्नी विप्रमादित्यमापः पश्यंस्तथैव गाः ॥ न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥ १५ ॥ उदङ्मुखो दिवा कुर्याद्रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥ तत आच्छाद्य विण्मूत्रं लोष्ठपर्णतृणादिभिः ॥ १६ ॥ गृहीतलिंग उत्थाय स गच्छेद्वारिसन्निधौ ॥ पात्रे जलं गृहीत्वा तु गच्छेदन्यत्र चैव हि ॥ १७ ॥ गृहीत्वा मृत्तिकां कूलाच्छ्वेतां ब्राह्मणसत्तमः ॥ रक्तां पीतां तथा कृष्णां गृह्णीयुश्चान्यवर्णकाः ॥ १८ ॥ अथवा या यत्र देशे सैव ग्राह्या द्विजोत्तमैः ॥ अंतर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषकोत्करात् ॥ १९ ॥ कृतशौचावशिष्टाच न ग्राह्याः पञ्च मृत्तिकाः ॥ मूत्रात्तु द्विगुणं शौचे मैथुने त्रिगुणं स्मृतम् ॥ २० ॥ एका लिंगे करे तिस्र उभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम् ॥ मूत्रशौचं समाख्यातं शौचे तद्द्विगुणं स्मृतम् ॥ २१ ॥ विट्शौचे लिंगदेशे तु प्रदद्यान्मृत्तिकाद्वयम् ॥ पंचापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥ २२ ॥ वामपादं पुरस्कृत्य पश्चाद्दक्षिणमेव च ॥ प्रत्येकं च चतुर्वारं मृत्तिकां लेपयेत्सुधीः ॥ २३ ॥ एवं शौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥ त्रिगुणं

तटसे मिट्टी ले। ब्राह्मणको सफेद, क्षत्रियको लाल, वैश्यको पीली और शूद्रको काली मिट्टी लेनी चाहिये ॥१८॥ अथवा श्रेष्ठ द्विज जिस देशमें जो मिल सके, उसी मृत्तिकासे काम चला ले। हाँ, पानीके भीतरसे, देवमन्दिरसे, दीमकके स्थानसे, चूहेके बिलसे तथा शौचसे बची हुई मृत्तिका न ले। ऐसी पाँच प्रकारकी मृत्तिकाएं अग्राह्य हैं ॥ १९ ॥ मूत्रत्यागको अपेक्षा शौचके बाद दुगुनी तथा मैथुनके बाद तीनगुनी जननेन्द्रियकी शुद्धि की जाती है। मूत्र त्यागनेके बाद लिङ्गमें एक बार और दोनों हाथोंमें तीन-तीन बार मृत्तिका लगाये। इसे मूत्र-शौच कहा गया है। मल-शौचमें उपर्युक्त क्रियायें दूनी संख्यामें बतायी जाती हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ मल त्यागनेके पश्चात् शुद्धिके लिए लिङ्गमें दो बार, गुदामें पाँच बार तथा दोनों हाथोंमें ग्यारह बार मृत्तिका लगानेका विधान है ॥ २२ ॥ विद्वान् पुरुष पहले अपना बायाँ पैर धोवे, तत्पश्चात् दाहिना। प्रत्येक पैरमें चार-चार बार मिट्टी लगानी चाहिये ॥ २३ ॥ यह शौच-शुद्धिका नियम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गृहस्थके लिए है। ब्रह्मचारीको इससे दुगुनी, वानप्रस्थको तिगुनी तथा संन्यासीको चौगुनी मिट्टी लेनेका विधान है ॥२४॥ संन्यासियोंको प्रत्येक बार ताजे आँवलेके बराबर मिट्टी लेनी चाहिये। कभी इससे कम न ले ॥२५॥ यह नियम दिनमें शौच करनेका है। रात्रिशौचके समय आधेमें ही नियम पूर्ण मान लिया गया है। रोगीके लिए इससे आधा तथा मार्गमें जानेवाले पथिकके लिए उससे भी आधा लेनेका नियम है ॥२६॥ स्त्रियों, शक्तिहीनों और बालकोंके लिए शौच-कर्ममें मिट्टी आदि लगानेकी कोई संख्या नहीं है। उनकी शुद्धि दुर्गन्धि मिट जाने तक सीमित है ॥ २७ ॥ जबतक दुर्गन्धि दूर न हो, तबतक मिट्टीका अनुलेपन करना चाहिये। सम्पूर्ण वर्णोंके लिए प्रायः यही नियम है। यह भगवान मनुका कथन है ॥२८॥ बायें हाथसे शौच साफ करे। दाहिना हाथ लगाना अनुचित है। नाभिसे नीचे बायें हाथसे और नाभिसे ऊपर दाहिने हाथसे काम लेना चाहिये। श्रेष्ठ द्विजोंके लिए शौचकर्ममें यह नियम अवश्य पालनीय है। विज्ञजन मल और मूत्रका त्याग करते समय जलपात्र हाथमें न लिये रहें ॥ २९ ॥ ३० ॥ कदाचित् मोह अथवा आलस्यवश आत्मशुद्धिकी विधि पूरी न हो सके तो

वानप्रस्थस्य यतीनां च चतुर्गुणम् ॥ २४ ॥ आर्द्रामलकमाना तु मृत्तिका शौचकर्मणि ॥ प्रत्येकं तु सदा ग्राह्यो नातो न्यूना कदाचन ॥ २५ ॥ एतद्दिवा स्याद्रिट्शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् ॥ आतुरस्य तदर्धं तु मार्गस्थस्य तदर्धकम् ॥ २६ ॥ स्त्रीशूद्राणामशक्तानां बालानां शौचकर्मणि ॥ यथा गंधक्षयः स्यात्तु तथा कुर्यादसंख्यकम् ॥२७॥ गंधलेपक्षयो यावत्तावच्छौचं विधीयते ॥ सर्वेषामेव वर्णानामित्याह भगवान्मनुः ॥ २८ ॥ वामहस्तेन शौचं तु कुर्याद्वै दक्षिणेन न ॥ नाभेरधो वामहस्तो नाभेरूर्ध्वं तु दक्षिणः ॥ २९ ॥ शौचकर्मणि विज्ञेयो नान्यथा द्विजपुंगवैः ॥ जलपात्रं न गृह्णायाद्विण्मूत्रोत्सर्जने बुधः ॥ ३० ॥ गृह्णीयाद्यदि मोहेन प्रायश्चित्तं चरेत्ततः ॥ मोहाद्वाप्यथवाऽऽलस्यान्न कुर्याच्छौचमात्मनः ॥३१॥ जलाहारस्त्रिरात्रः स्यात्ततो जापाच्च शुध्यति ॥ देशकालद्रव्यशक्तिस्वोपपत्तींश्च सर्वशः ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वा शौचं प्रकर्तव्यमालस्यं नात्र धारयेत् ॥ पुरीषोत्सर्जने कुर्याद्गंडूषान्द्वादशैव तु ॥ ३३ ॥ चतुरो मूत्रविक्षेपे नातो न्यूनान्कदाचन ॥ अधोमुखं नरः कृत्वा त्यजेत्तं वामतः शनैः ॥ ३४ ॥ आचम्य च ततः कुर्याद्दंतधावनमादरात् ॥ कंटकिक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशांगुलमव्रणम् ॥ ३५ ॥ कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं पूर्वार्धे कृतकूर्चकम् ॥ करंजोदुम्बरौ चूतः कदम्बो लोध्रचम्पकौ ॥ ३६ ॥ बदरीति द्रुमाश्चेति प्रोक्ता दंतप्रधावने ॥ अन्नाद्याय व्यूहध्वंसे सोमो राजायमागमत् ॥ स मे मुखं प्रक्षाल्येत

इसके प्रायश्चित्तस्वरूप तीन रात तक केवल जल पीकर रहे या गायत्रीजप करे, तब उसकी शुद्धि होती है। देश, काल, द्रव्य, शक्ति और अपनी उपपत्तिपर सम्यक् प्रकारसे विचार करके शौचमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ शौचके सम्बन्धमें कभी आलस्य न करे। मल त्यागनेके पश्चात् शुद्धिके लिए बारह बार कुल्ला करना चाहिये ॥ ३३ ॥ मूत्रत्याग करनेके उपरान्त चार बार कुल्ला करनेका नियम है—कम नहीं। मुख नीचे करके कुल्लेको धीरे-धीरे अपनी बायीं ओर फेंकना चाहिये ॥ ३ ॥ फिर आचमन करके आदरपूर्वक दन्तधावन करे। काँटे तथा दूधवाले वृक्षोंकी बारह अंगुलके प्रमाणकी छिद्रहीन दातौन होनी चाहिये ॥ ३५ ॥ वह हाथकी कनिष्ठिका अँगुली-जितनी मोटी हो। पहले दाँतोंको स्वच्छ करनेके लिए कूँची बनानी चाहिये। करञ्ज, गूलर, आम, कदम्ब, लोध, चम्पा और बेरके वृक्ष दन्तधावनके लिए श्रेष्ठ माने गये हैं। (दातौनका मन्त्र) अन्नको सुपाच्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बनाने तथा विघ्न-बाधाको दूर करनेके लिए दाँतुनके रूपमें ये स्वयं राजा सोम ही यहाँ पधारे हुए हैं। ये यज्ञ और तेजसे मेरे मुखका प्रक्षालन करें ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे वनस्पते ! राजा सोम तुम्हीं हो। तुम मुझे आयु, बल, यश, तेज, प्रजा, पशुधन, ब्रह्मज्ञान और बुद्धि प्रदान करनेकी कृपा करो ॥ ३८ ॥ यदि दाँतुनके लिए काठ मिलना असम्भव हो अथवा निषिद्ध तिथियाँ हों तो उस रोज बारह बार कुल्ला करनेमात्रसे दन्तधावनकी विधि पूरी हो सकती है ॥ ३९ ॥ जो प्रतिपदा, अमावस्या, षष्ठी, नवमी, एकादशी तिथि तथा रविवारके दिन दाँतोंका काष्ठसे संयोग करता है, उसे सूर्यपर आघात पहुँचाने तथा अपने कुलका विनाश करने-जैसा दोष लगता है। उपर्युक्त दिनों तथा तिथियोंको काष्ठका दाँतसे संयाग करानेपर कुलकी सात पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ जलद्वारा पैरोंको शुद्ध करके तीन बार आचमन करनेके पश्चात् दो बार मुख पोंछे। तदनन्तर जल लेकर अंगूठे और तर्जनीके दोनों नासिका-छिद्रोंका, अंगूठे और अनामिकासे दोनों नेत्रों तथा दोनों कानोंका एवं कनिष्ठिका और अंगूठेसे नाभि-देशका तथा हाथके तलवेसे हृदयका स्पर्श करे। फिर सभी अंगुलियोंसे

तेजसा च भगेन च ॥ ३७ ॥ आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥ ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते ॥ ३८ ॥ अभावे दंतकाष्ठस्य प्रतिषिद्धदिनेषु च ॥ अपां द्वादशगंडूषैर्विदध्याद्दंतधावनम् ॥ ३९ ॥ रवेर्दिने यः कुरुते प्राणी दन्तस्य धावनम् ॥ सविता भक्षितस्तेन स्वकुलं तेन घातितम् ॥ ४० ॥ प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्येकादशीरवौ ॥ दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ ४१ ॥ कृत्वाऽलं पादशौचं ह्यमलमथ जलं त्रिःपिबेद्द्विर्विमृज्य तर्जन्यांगुष्ठवत्या सजलमभिमृशेन्नासिकारंध्रयुग्मम् ॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां नयनयुगयुतं कर्णयुग्मं कनिष्ठांगुष्ठाभ्यां नाभिदेशे हृदयमथ तलेनांगुलीभिः शिरांसि ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ (शुद्धं स्मार्तं चाचमनं पौराणं वैदिकं तथा ॥ तांत्रिकं श्रौतमित्याहुः षड्विधं श्रुतिचोदितम् ॥ १ ॥ विण्मूत्रादिकशौचं च शुद्धं च परिकीर्तितम् ॥ स्मार्तं पौराणिकं कर्म आचांते विधिपूर्वकम् ॥ २ ॥ वैदिकं श्रौत्रमित्यादि ब्रह्मयज्ञादिपूर्वकम् ॥ अस्त्रविद्यादिकं कर्म तांत्रिको विधिरुच्यते ॥ ३ ॥) स्मृत्वा चोंकारगायत्रीं निबध्नीयाच्छिखां तथा ॥ पुनराचम्य हृदयं बाहू स्कंधौ च संस्पृशेत् ॥ १ ॥

सिरका स्पर्श करे ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

(सदाचारवर्णन और रुद्राक्षका माहात्म्य) भगवान् नारायण कहते हैं—(हे नारद ! शुद्ध, स्मार्त, पौराणिक, वैदिक, तान्त्रिक और श्रौत—ये छः प्रकारके आचमन श्रुतियोंमें कहे गये हैं ॥१॥ मल-मूत्र त्यागनेके पश्चात् पवित्रताके लिए जो आचमन किया जाता है, उसे 'शुद्ध' आचमन कहते हैं। किसी कार्यके पूर्व किया हुआ आचमन 'स्मार्त' और 'पौराणिक' कहलाता है ॥२॥ ब्रह्मयज्ञ आरंभ करनेके पूर्व 'वैदिक' और 'श्रौत' आचमन किया जाता है। अस्त्र-विद्याके प्रारम्भमें 'तान्त्रिक' आचमनकी विधि है ॥३॥) ॐकार सहित गायत्री-मंत्रको तीन बार पढ़कर शिखा बाँधे। आचमन करके हृदय, बाहु और कन्धेका स्पर्श करे ॥ १ ॥ छींकने, थूकने, दाँतोंका उच्छिष्ट छू जाने, मुखसे असत्य बात निकलने तथा पतितोंसे बातचीत होनेपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुद्ध होनेके लिए दाहिने कानका स्पर्श करे ॥२॥ हे नारद ! अग्नि, जल, वेद, सोम, सूर्य और पवन—ये सभी देवता ब्राह्मणके दक्षिण कर्णपर विराजमान रहते हैं ॥३॥ हे मुनिवर ! इसके बाद नदी अथवा तालाब आदिपर जाकर देहको शुद्ध करनेके लिए सविधि स्नान करे ।.४॥ क्योंकि शरीर अत्यन्त अपवित्र रहता है । इसके नौ द्वारोंसे सदा मल निकलते रहते हैं । अतः इसकी शुद्धिके अभिप्रायसे प्रातःकालका स्नान परमावश्यक है ॥ ५ ॥ अनुचित स्थानपर जाने, दान लेने अथवा एकान्तमें कुछ निन्दित कर्म बन जानेसे जो पाप लगता है, वह प्रातःकालके स्नानसे धुल जाता है ॥६॥ जो मनुष्य प्रातःकाल स्नान नहीं करता, उसकी सम्पूर्ण क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं । अतएव प्रतिदिन प्रातःकाल अवश्य स्नान करना चाहिए ॥ ७ ॥ स्नान और संध्यावन्दन आदि सभी कार्य कुशाके साथ करनेका विधान है । जो सात दिनोंतक प्रातःस्नान नहीं करता, तीन दिनोंतक संध्यारहित रहता तथा बारह दिनोंतक हवन नहीं करता, वह द्विज शूद्रके समान हो जाता है । प्रातःकाल हवनके लिए बहुत कम समय रहता है । अधिक समय विधिवत् स्नान-सन्ध्या आदि करनेमें ही निकल जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ अतएव

क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथाऽनृते ॥ पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ २ ॥ अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनलस्तथा ॥ सर्वे नारद विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥ ३ ॥ ततस्तु गत्वा नद्यादौ प्रातःस्नानं विशोधनम् ॥ समाचरेन्मुनिश्रेष्ठ देहसंशुद्धिहेतवे ॥ ४ ॥ अत्यंत-मलिनो देहो नवद्वारैर्मलं वहन् ॥ सदाऽऽस्ते तच्छोधनाय प्रातःस्नानं विधीयते ॥ ५ ॥ अगम्यागमनात्पापं यच्च पापं प्रतिग्रहात् ॥ रहस्याचरितं पापं मुच्यते स्नानकर्मणा ॥ ६ ॥ अस्नातस्य क्रियाः सर्वा भवंति विफला यतः ॥ तस्मात्प्रातश्चरेत्स्नानं नित्यमेव दिने दिने ॥ ७ ॥ दर्भयुक्तश्च-रेत्स्नानं तथा संध्याभिवंदनम् ॥ सप्ताहं प्रातरस्नायी संध्याहीनस्त्रिभिर्दिनैः ॥ ८ ॥ द्वादशाहमनग्निः सन्द्विजः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥ अल्पत्वाद्धो-मकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः ॥ ९ ॥ प्रातर्न तु तथा स्नायाद्धोमकाले विगर्हितः ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च ॥ १० ॥ गायंतं त्रायते यस्माद्गायत्रीत्यभिधीयते ॥ प्रणवेन तु संयुक्तां व्याहृतित्रयसंयुताम् ॥ ११ ॥ वायुं वायौ जयेद्विप्रः प्राणसंयमनत्रयात् ॥ ब्राह्मणः श्रुति-संपन्नः स्वधर्मनिरतः सदा ॥ १२ ॥ स वैदिकं जपेन्मंत्रं लौकिकं न कदाचन ॥ गोशृंगे सर्षपो यावत् तावद्येषां न स स्थिरः ॥ १३ ॥ न तार-यंत्युभौ पक्षौ पितॄनेकोत्तरं शतम् ॥ सगर्भो जपसंयुक्तस्त्वगर्भो ध्यानमात्रकः ॥१४॥ स्नानांगतर्पणं कृत्वा देवर्षिपितृतोषकम् ॥ शुद्धे वस्त्रे परीधाय

हवनके लिए विशेष समय निकालनेके निमित्त प्रातःस्नान शीघ्र कर ले । गायत्री-जपके समान श्रेष्ठ कार्य इस लोक अथवा परलोकमें भी दूसरा कुछ नहीं है ॥१०॥ उच्चारण करनेवालेकी यह रक्षा करती है । अतः इसका नाम 'गायत्री' पड़ा है । प्रणव (ॐकार) और व्याहृतियाँ (भूर्भुवः स्वः) इसके साथ सदा कहना चाहिए ॥११॥ प्राणायामके समय प्राण, अपान और समान—इन तीन वायुओंको संयममें रखे । वह श्रुतिसम्पन्न होकर अपने धर्म-पालनमें निरत रहते हुए निरन्तर वैदिक मन्त्रका जप करे, लौकिक नहीं । सगर्भ (इष्टदेवके ध्यानपूर्वक) गायत्री मंत्रका जप करना चाहिए । केवल ध्यानके समय अगर्भका प्रयोग किया जाता है । गौकी सींगपर रक्खी हुई सरसों जितनी देर रुक सकती है, उतनी देर भी प्राणायामके समय जिसका प्राणवायु न रुक सके ॥१२॥१३॥ वह प्राणायामी पुरुष अपनी माता तथा पिताके कुलकी एक सौ पीढ़ीका नहीं तार सकता ॥१४॥ स्नान करते समय देवताओं और पितरोंको संतुष्ट करनेके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्नानाङ्ग-तर्पण करना चाहिये। फिर जलसे बाहर निकलकर दो शुद्ध वस्त्र पहन ले ॥ १५ ॥ भस्म और रुद्राक्षकी माला धारण करे। इस प्रकार साधकको योगके क्रमसे सदा जप करना चाहिये ॥ १६ ॥ रुद्राक्षका बड़ा माहात्म्य है। जो अपने कण्ठमें बत्तीस, मस्तकपर चालिस, दोनों कानोंमें छः छः, दोनों हाथोंमें बारह-बारह, दोनों भुजाओंमें सोलह-सोलह, शिखामें एक तथा वक्षःस्थलपर एक सौ आठ रुद्राक्षोंको धारण करता है, वह स्वयं भगवान नीलकण्ठ हो जाता है॥ १७ ॥ हे मुने! सुवर्ण अथवा चाँदीके तारमें पिरोकर बड़ी सावधानीके साथ शिखा और कानोंमें रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥ १८ ॥ यज्ञोपवीत, हाथ, कण्ठ अथवा उदरपर भी रुद्राक्ष धारण करे तथा प्रणवके साथ पञ्चाक्षर 'ॐ नमः शिवाय' मंत्रका जप करे ॥ १९ ॥ विद्वान् पुरुष निष्कपट भक्तिके साथ प्रसन्नतापूर्वक रुद्राक्षकी माला धारण करे। रुद्राक्ष धारण करना भगवान् शंकरके साक्षात् ज्ञानका साधन है ॥ २० ॥ जो लोग अपनी शिखामें रुद्राक्ष धारण करते हैं तो वह रुद्राक्ष 'तारक' तत्त्व अर्थात् ॐकारकी भाँति महत्त्वपूर्ण होता है। हे ब्रह्मन्! दोनों कानोंका रुद्राक्ष शिव और शिवाकी भाँति होता है॥ २१ ॥

जलाद्बहिरुपागतः ॥ १५ ॥ विभूतिधारणं कार्यं रुद्राक्षाणां च धारणम् ॥ क्रमयोगेन कर्तव्यं सर्वदा जपसाधकैः ॥ १६ ॥ रुद्राक्षान्कंठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव ॥ बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते त्वेकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकंठः ॥ १७ ॥ बद्ध्वा स्वर्णेन रुद्राक्षं रजतेनाथवा मुने ॥ शिखायां धारयेन्नित्यं कर्णयोर्वा समाहितः ॥ १८ ॥ यज्ञोपवीते हस्ते वा कंठे तुंदेऽथवा नरः ॥ श्रीमत्पंचाक्षरेणैव प्रणवेन तथापि वा ॥ १९ ॥ निर्व्याजभक्त्या मेधावी रुद्राक्षं धारयेन्मुदा ॥ रुद्राक्षधारणं साक्षाच्छिवज्ञानस्य साधनम् ॥ २० ॥ रुद्राक्षं यच्छिखायां तत्तारतत्त्वमिति स्मरेत् ॥ कर्णयोरुभयोर्ब्रह्मन् देवं देवीं च भावयेत् ॥ २१ ॥ यज्ञोपवीते वेदांश्च तथा हस्ते दिशः स्मरेत् ॥ कंठे सरस्वतीं देवीं पावकं चापि भावयेत् ॥२२॥ सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षाणां च धारणम् ॥ कर्तव्यं मंत्रतः प्रोक्तं द्विजानां नान्यवर्णिनाम् ॥ २३ ॥ रुद्राक्षधारणाद्रुद्रो भवत्येव न संशयः ॥ पश्यन्नपि निषिद्धांश्च तथा शृण्वन्नपि स्मरन् ॥ २४ ॥ जिघ्रन्नपि तथा चाश्नन्प्रलपन्नपि संततम् ॥ कुर्वन्नपि सदा गच्छन्विसृजन्नपि मानवः ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणादेव सर्वपापैर्न लिप्यते ॥ अनेन भुक्तं

यज्ञोपवीतमें जो रुद्राक्ष धारण किया जाता है, वह वेद तुल्य होता है। हाथमें जो रुद्राक्ष धारण किया जाता है, वह दिशा तुल्य होता है। कण्ठमें जो रुद्राक्ष धारण किया जाता है, वह सरस्वती देवी और अग्निदेवके तुल्य होता है ॥ २२ ॥ चारों आश्रमों और चारों वर्णोंको रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णके लोग मन्त्र पढ़कर रुद्राक्ष धारण करें। इनके अतिरिक्त शूद्रोंके लए अमन्त्रक रुद्राक्ष धारण करनेका विधान है ॥ २३ ॥ रुद्राक्ष धारण करनेके बाद लोग रुद्र ही हो जाते हैं—इसमें संशय नहीं है। रुद्राक्ष धारण करनेपर वह चाहे निषिद्ध वस्तुओंको देखे, चाहे निषिद्ध बातोंको सुने, चाहे निषिद्ध वस्तुओंका स्मरण करे ॥ २४ ॥ चाहे निषिद्ध वस्तुओंको सूँघे, चाहे निषिद्ध वस्तुओंको खाये, चाहे निषिद्ध बातोंका प्रलाप करे, चाहे निषिद्ध कर्म करे, चाहे निषिद्ध मार्गमें गमन करे और चाहे निषिद्ध वस्तुओंका परित्याग करे या न करे, तो भी उसे पाप नहीं लगता। यदि किसी रुद्राक्ष धारण करनेवालेने भोजन कर लिया तो मानों स्वयं रुद्रदेवने भोजन कर लिया। यदि उसने कोई वस्तु पी ली तो मानो स्वयं रुद्र भगवान्ने उसका पान कर लिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि उसने कोई वस्तु सूँघ ली तो मानों स्वयं शिवजीने सूँघ लिया। हे महर्षि! जो लोग रुद्राक्ष धारण करनेमें लजाते हैं॥२५-२७॥ उनका इस संसारसे करोड़ों जन्ममें भी निस्तार नहीं होता। जो किसीको रुद्राक्ष धारण किये देखकर उसकी निन्दा करता है॥ २८॥ वह वर्णसंकर है। यह ध्रुव सत्य है। रुद्राक्षके धारण करने हीसे रुद्र रुद्रत्वको प्राप्त हुए थे॥२९॥ इसीसे मुनि लोग सत्यवादी हुए और ब्रह्मा ब्रह्मत्वके अधिकारी बने। रुद्राक्ष धारणसे कोई वस्तु श्रेष्ठ नहीं है॥३०॥ जो लोग रुद्राक्ष धारण करनेवालेको भक्तिपूर्वक वस्त्र और अन्न देते हैं, उनका सब पाप कट जाता है और वे शिवलोकमें चले जाते हैं॥ ३१॥ जो लोग मुदित मनसे रुद्राक्ष धारण करनेवालेको श्राद्धमें भोजन कराते हैं, वे पितृलोकमें जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं है॥ ३२॥ जो लोग रुद्राक्ष धारण करनेवालेके चरणकमलोंको धोकर उनका चरणामृत पान करते हैं, वे सब पापोंसे छूटकर शिवलोकमें चले जाते हैं॥ ३३॥ जो ब्राह्मण

देवेन भुक्तं यत्तु तथा भवेत्॥ २६॥ पीतं रुद्रेण तत्पीतं घ्रातं घ्रातं शिवेन तत्॥ रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने॥ २७॥ तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः॥ रुद्राक्षधारिणं दृष्ट्वा परिवादं करोति यः॥ २८॥ उत्पत्तौ तस्य सांकर्यमस्त्येवेति विनिश्चयः॥ रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो रुद्रत्वमाप्नुयात्॥ २९॥ मुनयः सत्यसंकल्पा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः॥ रुद्राक्षधारणाच्छ्रेष्ठं न किंचिदपि विद्यते॥ ३०॥ रुद्राक्षधारिणे भक्त्या वस्त्रं धान्यं ददाति यः॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति॥३१॥ रुद्राक्षधारिणं श्राद्धे भोजयेत विमोदतः॥ पितृलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ३२॥ रुद्राक्षधारिणः पादौ प्रक्षाल्याद्भिः पिबेन्नरः॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥ ३३॥ हारं वा कटकं वापि सुवर्णं वा द्विजोत्तमः॥ रुद्राक्षसहितं भक्त्या धारयन्रुद्रतामियात्॥ ३४॥ रुद्राक्षं केवलं वापि यत्र कुत्र महामते॥ समंत्रकं वा मंत्रेण रहितं भाववर्जितम्॥ ३५॥ यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जयाऽपि वा॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात्॥ ३६॥ अहो रुद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्रुद्राक्षधारणम्॥ ३७॥ इति श्रीदेवीभागवते एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ नारद उवाच॥ एवंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो भवताऽनघ॥ वर्णितो महतां पूज्यः कारणं तत्र किं वद॥ १॥ नारायण उवाच॥ एवमेव पुरा पृष्टो भगवान् गिरिशः प्रभुः॥ षण्मुखेन च रुद्रस्तं यदुवाच शृणुष्व तत्॥ २॥ ईश्वर उवाच॥ शृणु षण्मुख तत्त्वेन कथयामि समासतः॥

भक्तिपूर्वक रुद्राक्षके सहित हार, कड़ा या सुवर्णके आभूषण धारण करते हैं-वे रुद्रत्वको प्राप्त होते हैं॥ ३४॥ हे बुद्धिशाली! जो लोग जहाँ भी, जैसे भी, मन्त्रसहित या मन्त्ररहित, अश्रद्धासे या श्रद्धासे केवल रुद्राक्ष धारण करते हैं, वे सब पापोंसे छूटकर तत्त्वज्ञानी हो जाते हैं॥ ३५॥ ३६॥ अहो! मैं रुद्राक्षका माहात्म्य भलीभाँति वर्णन नहीं कर सकता। इसलिए जहाँ तक हो सके, रुद्राक्ष अवश्य धारण करे॥३७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सदाचारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

(रुद्राक्ष-माहात्म्य) नारदजीने पूछा-हे पूतात्मन्! आपने जो रुद्राक्षका इस प्रकार माहात्म्य बताया, सो महान् लोगों द्वारा उसके पूजित होनेमें क्या कारण है? इसे आप बतलाइए॥१॥ नारायण बोले-हे नारद! जिस प्रकार आज आपने यह प्रश्न किया है, उसी तरह अत्यन्त प्राचीनकालमें षडानन स्कन्दकुमारने शङ्कर भगवानसे पूछा था। तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्होंने जो उत्तर दिया, उसे मैं कहता हूँ। आप सुनिए ॥ २ ॥ शिवजीने कहा—हे स्कन्द ! मैं रुद्राक्षतत्त्वके बारेमें अत्यन्त संक्षेपमें कहता हूँ, सुनो। प्राचीन कालमें त्रिपुर नामका एक बड़ा भारी दैत्य था, जिसे कोई नहीं जीत सकता था ॥ ३ ॥ उसने ब्रह्मा, विष्णु एवं अन्यान्य देवताओंको जीत लिया। तब सब देवता मेरे पास आये और त्रिपुरको मारनेके लिए मुझसे अनुरोध किया ॥ ४ ॥ तब मैंने 'अघोर' नामके एक मनोहर किन्तु महान् शस्त्रका आविष्कार किया। उसमें समस्त देवताओंकी शक्ति समायी हुई थी। वह दिव्य शस्त्र प्रज्वलित था और देखनेमें बड़ा भयानक था ॥५॥ त्रिपुरसे देवताओंकी रक्षा और समस्त विघ्नोंको दूर करनेके लिए अघोरशस्त्रके महत्त्वकी कल्पना करते हुए दिव्य एक हजार वर्ष तक मैं आँख खोले ही रह गया। इससे मेरी तीनों आँखें दुखने और उनमेंसे जलकी बूँदें गिरने लगीं ॥६॥७॥ उन आँसुओंकी बूँदोंसे रुद्राक्षके बड़े-बड़े पेड़ उत्पन्न हो गये। हे महासेन ! मेरी आज्ञा और अखिल लोककी जनताके कल्याणकी कामनासे वे अड़तीस प्रकारके रुद्राक्ष हुए। मेरे सूर्यनेत्र अर्थात् दाहिनी आँखसे बारह प्रकारके लाल और पीले रंगके रुद्राक्ष उपजे ॥ ८ ॥ ९ ॥

त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुराऽऽसीत्सर्वदुर्जयः ॥ ३ ॥ जितास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादिदेवताः ॥ सर्वैस्तु कथिते तस्मिंस्तदाऽहं त्रिपुरं प्रति ॥ ४ ॥ अचिंतयं महाशस्त्रमघोराख्यं मनोहरम् ॥ सर्वदेवमयं दिव्यं ज्वलंतं घोररूपि यत् ॥ ५ ॥ त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां तारणाय च ॥ सर्वविघ्नोपशमनमघोरास्त्रमचिंतयम् ॥ ६ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं तु चक्षुरुन्मीलितं मया ॥ पश्चान्ममाकुलाक्षिभ्यः पतिता जलबिंदवः ॥ ७ ॥ तत्राश्रुबिन्दुतो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः ॥ ममाज्ञया महासेन सर्वेषां हितकाम्यया ॥ ८ ॥ बभूवुस्ते च रुद्राक्षा अष्टत्रिंशत्प्रभेदतः ॥ सूर्यनेत्रसमुद्भूताः कपिला द्वादश स्मृताः ॥ ९ ॥ सोमनेत्रोत्थिताः श्वेतास्ते षोडशविधाः क्रमात् ॥ वह्निनेत्रोद्भवाः कृष्णा दश भेदा भवंति हि ॥ १० ॥ श्वेतवर्णश्च रुद्राक्षो जातितो ब्राह्म उच्यते ॥ क्षात्रो रक्तस्तथा मिश्रो वैश्यः कृष्णस्तु शूद्रकः ॥ ११ ॥ एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ द्विवक्त्रो देवदेव्यौ स्याद्द्विविधं नाशयेदघम् ॥ १२ ॥ त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ॥ चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति ॥ १३ ॥ पंचवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नामनामतः ॥ अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरगम्यागमनोद्भवैः ॥ १४ ॥ मुच्यते सर्वपापैस्तु पंचवक्त्रस्य धारणात् ॥ षड्वक्त्रः

मेरे चन्द्रनेत्र अर्थात् बाँयीं आँखसे सोलह प्रकारके सफेद रुद्राक्ष उत्पन्न हुए। मेरे अग्निनेत्र (तृतीय चक्षु) से दस प्रकारके काले रङ्गके रुद्राक्ष उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ सफेद रङ्गका रुद्राक्ष जातिसे ब्राह्मण हुआ और उसे ब्राह्मण धारण करते हैं। लाल रङ्गका रुद्राक्ष क्षत्रिय जातिका हुआ। उसे क्षत्रिय धारण करते हैं। पीले रङ्गका रुद्राक्ष वैश्यजातिका हुआ। उसे वैश्य धारण करते हैं। काले रङ्गका रुद्राक्ष शूद्रजातिका हुआ। वह शूद्रोंके लिए प्रशस्त होता है ॥ ११ ॥ एकमुखी रुद्राक्षका दाना साक्षात् शिवस्वरूप है और धारण करनेसे वह ब्रह्महत्यातकके पापको दूर कर देता है। दोमुखी रुद्राक्ष देवी और देवतास्वरूप है और वह दो प्रकारके पापोंको दूर करता है ॥ १२ ॥ तीनमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्निस्वरूप है और वह नारी-वधजनित पापको क्षण भरमें भस्म कर देता है। चारमुखी रुद्राक्ष स्वयं चतुरानन ब्रह्माके तुल्य है और नर-वधजनित पापको दूर करता है ॥ १३ ॥ पञ्चमुखी रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्नि नामका रुद्र है और अभक्ष्य-भक्षण, अगम्या नारीके साथ संभोगजनित तथा अन्य प्रकारके पापोंको दूर करता है ॥ १४ ॥ छमुखी रुद्राक्ष कार्तिकेयस्वरूप है। इसे दाहिने हाथमें धारण करना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिए ॥ १४ ॥ १५ ॥ इसको धारण करनेसे ब्रह्महत्या आदिका पाप कट जाता है। इसमें संशय नहीं है। सातमुखी रुद्राक्ष महाभाग्यशाली और कामदेवस्वरूप है ॥ १६ ॥ इसे धारण करनेवाला सोना चुराने आदिके पातकोंसे छूट जाता है। हे स्कन्दकुमार! आठमुखी रुद्राक्ष साक्षात् विनायक देव है ॥ १७ ॥ इसे धारण करनेसे घरमें अन्न, वस्त्र और सोनेका पहाड़ लग जाता है। दूषित कुलकी स्त्रीके साथ संभोग करने और गुरुपत्नीके साथ बलात्कार करने जैसे अन्यान्य पाप भी दूर हो जाते हैं। उस व्यक्तिके सारे विघ्नोंका नाश हो जाता है और अन्तमें वह परमपद (मोक्ष) का अधिकारी बन जाता है ॥१८ १९॥ ये सभी गुण अष्टमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे प्राप्त होते हैं। नवमुखी रुद्राक्ष भैरवस्वरूप है, इसे बाँयीं भुजापर धारण करना चाहिये ॥ २० ॥ इसे धारण करनेसे भोग और मोक्ष दोनों मिलता है। इसे धारण करनेवाला मेरे समान बली होता है। हजारों भ्रूणहत्या (गर्भ गिराने) और सैकड़ों ब्रह्महत्याके पाप

कार्तिकेयस्तु स धार्यो दक्षिणे करे ॥ १५ ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ सप्तवक्त्रो महाभागो ह्यनंगो नाम नामतः ॥ १६ ॥ तद्धारणान्मुच्यते हि स्वर्णस्तेयादिपातकैः ॥ अष्टवक्त्रो महासेन साक्षाद्देवो विनायकः ॥१७॥ अन्नकूटं तूलकूटं स्वर्णकूटं तथैव च ॥ दुष्टान्वयस्त्रियं वाऽथ संस्पृशंश्च गुरुस्त्रियम् ॥१८॥ एवमादीनि पापानि हंति सर्वाणि धारणात् ॥ विघ्नास्तस्य प्रणश्यंति याति चांते परं पदम् ॥ १९ ॥ भवंत्येते गुणाः सर्वे ह्यष्टवक्त्रस्य धारणात् ॥ नववक्त्रो भैरवस्तु धारयेद्वामबाहुके ॥ २० ॥ मुक्तिमुक्तिप्रदः प्रोक्तो मम तुल्यबलो भवेत् ॥ भ्रूणहत्यासहस्राणि ब्रह्महत्याशतानि च ॥ २१ ॥ सद्यः प्रलयमायांति नववक्त्रस्य धारणात् ॥ दशवक्त्रस्तु देवेशः साक्षाद्देवो जनार्दनः ॥ २२ ॥ ग्रहाश्चैव पिशाचाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः ॥ पन्नगाश्चोपशाम्यंति दशवक्त्रस्य धारणात् ॥ २३ ॥ वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्रैकादशकं स्मृतम् ॥ शिखायां धारयेद्यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥ २५ ॥ तत्फलं लभते शीघ्रं वक्त्रैकादशधारणात् ॥ द्वादशास्यस्य रुद्राक्षस्यैव कर्णे तु धारणात् ॥ २६ ॥ आदित्यास्तोषिता नित्यं द्वादशास्ये व्यवस्थिताः ॥ गोमेधे चाश्वमेधे च यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥२७॥ शृंगिणां शस्त्रिणां चैव व्याघ्रादीनां भयं न हि ॥ न च व्याधिभयं तस्य नैव चाधिः प्रकीर्तितः ॥२८॥

नवमुखी रुद्राक्ष धारण करनेसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं। दशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् देवाधिदेव जनार्दन है ॥ २१ ॥ २२ ॥ इसे धारण करनेसे ग्रह, पिशाच, वेताल, ब्रह्मराक्षस और पन्नग-जनित बाधा दूर हो जाती है ॥ २३ ॥ ग्यारहमुखी रुद्राक्ष एकादश रुद्र है। इसे शिखामें धारण करनेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उसे सुनो ॥२४॥ हजारों अश्वमेध यज्ञ करनेसे, सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करनेसे और लाखों गोदान करनेसे जो फल होता है ॥२५॥ वह फल एकादशमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे शीघ्र मिल जाता है। बारहमुखी रुद्राक्षको कानमें धारण करनेसे द्वादश आदित्य प्रसन्न हो जाते हैं। क्योंकि वे उसमें निवास करते हैं और धारणकर्ताको गोमेध और अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है ॥२६॥२७॥ उसे सींगवाले जानवरों, बाघ आदि क्रूर पशुओं एवं शस्त्रधारी शत्रुओंका भय नहीं होता। उसे न शारीरिक कष्ट मिलता है और न मानसिक पीड़ा ही सताती है ॥ २८ ॥ न किसी तरहका रोग होता है, न किसी पिशाचादिका भय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सताता है, वह सदा सुखी रहता है और राज्यमें उच्च पदाधिकारी होता है ॥२९॥ हाथी, घोड़े, हरिण, बिल्ली, साँप, चूहे, मेढक, गदहे, कुत्ते, सियार और अनेक तरहके जानवरोंको मारनेवाला भी द्वादशमुखी रुद्राक्ष धारणके प्रभावसे इन पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। हे वत्स ! तेरहमुखी रुद्राक्ष अलभ्य है, यदि कहीं वह किसीको मिल जाय तो उसकी सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। उसे 'अर्थ'की प्राप्ति होती है, अष्टसिद्धि मिलती है और रस-रसायन सब सिद्ध हो जाते हैं अर्थात् उसे सोना-चांदी बनाना आ जाता है। यह रुद्राक्ष स्वामिकार्तिकेयस्वरूप है॥ ३०-३२ ॥ उसे पानेवालेको सभी भोग्य पदार्थ निःसन्देह सुलभ हो जाते हैं। अपने माता-पिता और भाईकी हत्या करनेवाला व्यक्ति भी त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष धारण करके सब पापोंसे छूट जाता है। हे वत्स ! यदि किसीको चौदहमुखी रुद्राक्ष मिल जाय ॥३३॥३४॥ और वह उसे निरन्तर मस्तकपर धारण करे तो वह शिव (मेरे) तुल्य

न च किंचिद्भयं तस्य न च व्याधिः प्रवर्तते ॥ न कुतश्चिद्भयं तस्य सुखी चैवेश्वरो भवेत् ॥ २९ ॥ हस्त्यश्वमृगमार्जारसर्पमूषकदर्दुरान् ॥ खरांश्च श्वशृगालांश्च हत्वा बहुविधानपि ॥ ३० ॥ मुच्यते नात्र संदेहो वक्त्रद्वादशधारणात् ॥ वक्त्रत्रयोदशो वत्स रुद्राक्षो यदि लभ्यते ॥ ३१ ॥ कार्तिकेयसमो ज्ञेयः सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ रसो रसायनं चैव तस्य सर्वं प्रसिद्ध्यति ॥ ३२ ॥ तस्यैव सर्वभोग्यानि नात्र कार्या विचारणा ॥ मातरं पितरं चैव भ्रातरं वा निहंति यः ॥ ३३ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो धारणात्तस्य षण्मुख ॥ चतुर्दशास्यो रुद्राक्षो यदि लभ्येत पुत्रक ॥ ३४ ॥ धारयेत्सततं मूर्ध्नि तस्य पिंडः शिवस्य तु ॥ किं मुने बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः ॥ ३५ ॥ पूज्यते संततं देवैः प्राप्यते च परा गतिः ॥ रुद्राक्ष एकः शिरसा धार्यो भक्त्या द्विजोत्तमैः ॥ ३६ ॥ षड्विंशद्भिः शिरोमाला पंचाशद्धृदयेन तु ॥ कलाक्षैर्बाहुवलये अर्काक्षैर्मणिबंधनम् ॥ ३७ ॥ अष्टोत्तरशतैर्माला पंचाशद्भिः षडानन ॥ अथवा सप्तविंशत्या कृत्वा रुद्राक्षमालिकाम् ॥ ३८ ॥ धारणाद्वा जपाद्वापि ह्यनंतं फलमश्नुते ॥ अष्टोत्तरशतैर्माला रुद्राक्षैर्धार्यते यदि ॥ ३९ ॥ क्षणे क्षणेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति षण्मुख ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ॥ ४० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हो जाता है। हे नारदजो ! बार-बार कहने और वर्णन करनेसे क्या लाभ ? ॥३५॥ देवता लोग भी उसकी निरन्तर पूजा करते हैं और अन्तमें उसको परम गति मिलती है। ब्रह्मणको एक रुद्राक्ष भक्तिपूर्वक सिरपर धारण करना चाहिए ॥३६॥ छब्बीस रुद्राक्षके दानेकी माला सिरपर, पचास रुद्राक्षदानेकी माला हृदयपर, सोलह रुद्राक्षदानेकी माला भुजबन्दपर, बारह रुद्राक्ष दानेकी माला कलाईपर धारण करे ॥३७॥ हे षण्मुख ! जो लोग एक सौ आठ रुद्राक्षदानेकी माला, पचास रुद्राक्षदानेकी माला अथवा सत्ताइस रुद्राक्षदानेकी माला बनाकर उसे धारण करते हैं या उससे जप करते हैं तो उन्हें अनन्त फल मिलता है। जो लोग एक सौ आठ रुद्राक्षदानेकी माला पहनते हैं ॥३८॥३९॥ उन्हें प्रत्येक क्षण एक-एक अश्वमेध यज्ञ करनेका फल मिलता है। वे अपनी इक्कीस पीढ़ीका उद्धार करके शिवलोकमें पूजित होते हैं॥ ४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(जपमालाके लक्षण) शिवजीने कहा—हे स्कन्द! अब मैं जपमालाका लक्षण बतलाता हूँ, सुनो। रुद्राक्षका मुख ब्रह्मा है, रुद्राक्षका बिन्दु (उपरी भाग) शिवजी हैं (अर्थात् मैं हूँ) ॥१॥ पुच्छ (निचला भाग) विष्णु हैं। यह माला भोग और मोक्षदायक है। पहले पञ्चमुखी रुद्राक्षका पचीस दाना ले, जो काँटेदार हो ॥२॥ सफेद रङ्गका हो, लाल रङ्गका हो या पीले रङ्गका हो, उसको छेदमेंसे पिरोकर गायकी पूँछके आकारकी तरह रुद्राक्षकी एक माला बनाये ॥ ३ ॥ (गोपुच्छमालाका लक्षण) रुद्राक्षकी माला गायकी पूँछकी तरह ऊपरसे चौड़ी और नीचेकी ओर पतली होती जाय। माला बनाते समय इस बातका ध्यान रहे कि मुखसे मुख मिला रहे अर्थात् एक रुद्राक्ष दानेका चौड़ा मुँह दूसरे रुद्राक्ष दानेके चौड़े मुँहकी तरफ रहे। जिससे रुद्राक्षके प्रत्येक दानेकी पूँछ अर्थात् नुकीला भाग दूसरे रुद्राक्ष दानाके नुकीले भागके सामने पड़े। सुमेरु (सबसे ऊपरके दाने) का मुँह ऊपरकी तरफ रहे और उसके ऊपर नागपाश (गाँठ) रहे ॥ ४ ॥ इस प्रकार बनी हुई गोपुच्छमाला मन्त्रकी सिद्धि करनेमें सहायता पहुँचाती है। माला तैयार

॥ ईश्वर उवाच ॥ लक्षणं जपमालायाः शृणु वक्ष्यामि षण्मुख ॥ रुद्राक्षस्य मुखं ब्रह्मा बिन्दू रुद्र इतीरितः ॥ १ ॥ विष्णुः पुच्छं भवेच्चैव भोगमोक्षफलप्रदम् ॥ पंचविंशतिभिश्चाक्षैः पंचवक्त्रैः सकंटकैः ॥ २ ॥ रक्तवर्णैः सितैर्मिश्रैः कृतरंध्रविदर्भितैः ॥ अक्षसूत्रं प्रकर्तव्यं गोपुच्छवलयाकृति ॥ ३ ॥ वक्त्रं वक्त्रेण संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत् ॥ मेरुमूर्ध्वमुखं कुर्यात्तदूर्ध्वं नागपाशकम् ॥ ४ ॥ एवं संग्रथितां मालां मंत्रसिद्धिप्रदायिनीम् ॥ प्रक्षाल्य गंधतोयेन पंचगव्येन चोपरि ॥ ५ ॥ ततः शिवांभसा क्षाल्य ततो मंत्रगणान्न्यसेत् ॥ स्पृष्ट्वा शिवास्त्रमंत्रेण कवचेनावगुंठयेत् ॥ ६ ॥ मूलमंत्रं न्यसेत्पश्चात्पूर्ववत्कारयेत्तथा ॥ सद्योजातादिभिः प्रोक्ष्य यावदष्टोत्तरं शतम् ॥ ७ ॥ मूलमंत्रं समुच्चार्य शुद्धभूमौ निधाय च ॥ तस्योपरि न्यसेत्सांबं शिवं परमकारणम् ॥ ८ ॥ प्रतिष्ठिता भवेन्माला सर्वकामफलप्रदा ॥ यस्य देवस्य यो मंत्रस्तां तेनैवाभिपूजयेत् ॥ ९ ॥ मूर्ध्नि कंठेऽथवा कर्णे न्यसेद्वा जपमालिकाम् ॥ रुद्राक्षमालया चैवं जप्तव्यं नियतात्मना ॥ १० ॥ कण्ठे मूर्ध्नि हृदि प्रांते कर्णे बाहुयुगेऽथवा ॥ रुद्राक्षधारणं नित्यं भक्त्या परमया युतः ॥ ११ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः ॥ रुद्राक्षधारणं नित्यं तस्मादेतत्प्रशस्यते ॥ १२ ॥

हो जानेके बाद पहले उसे गन्ध-जलसे और बादमें पञ्चगव्यसे स्नान कराना चाहिए ॥ ५ ॥ उसके बाद शुद्ध एवं स्वच्छ जलसे धोकर मन्त्रोंका न्यास करे। फिर शिव-मन्त्र अर्थात (षडङ्ग मन्त्र) से स्पर्श करके कवच-मन्त्र (हुम्) से अवगुण्ठन (एकत्र) करे ॥६॥ पश्चात् मूलमन्त्रसे पूर्ववत् स्वयं न्यास करे या गुरुके द्वारा न्यास कराये। सद्योजातादि मंत्र पढ़कर उसपर एक सौ आठ बार जलसे प्रोक्षण करे ॥ ७ ॥ बादमें मूलमन्त्रका उच्चारण करके उसे शुद्ध भूमिपर रखे। तदनन्तर उसके ऊपर मुक्तिके परम कारण साम्ब सदाशिवका न्यास करे ॥८॥ इस प्रकार प्रतिष्ठित माला समस्त कामनाओंका फल देनेवाली होती है। जिस देवताका जो मन्त्र साधना हो, उसी देवताके मन्त्रसे उस मालाका पूजन करे ॥ ९ ॥ जपमालाको मस्तकपर, गलेमें या कानपर धारण करना चाहिए। संयतचित्त होकर रुद्राक्षके माला ही से जप करना चाहिए ॥१०॥ परम भक्तिके साथ गलेमें, मस्तकपर, हृदयपर और दोनों भुजाओंपर नित्य रुद्राक्ष धारण करे ॥११॥ इसके सम्बन्धमें वही बात बार-बार कहने और वर्णन करनेसे क्या लाभ? जो नित्य रुद्राक्ष धारण करते हैं, उन्हींकी प्रतिष्ठा और प्रशंसा होती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है ॥ १२ ॥ विशेष करके स्नान, दान, जप, होम, बलि-वैश्वदेव, देवपूजा, श्राद्ध तथा दीक्षाके अवसरपर इसे अवश्य धारण करना चाहिए ॥ १३ ॥ जो ब्राह्मण रुद्राक्ष धारण किये विना ही अज्ञानवश हो जो कुछ भी वैदिक कृत्य करते हैं, वे अवश्य नरकमें जाते हैं ॥ १४ ॥ सोनेके तारमें मढ़ाकर या मणि जड़ाकर शुद्ध रुद्राक्षको मस्तकपर, गलेमें, यज्ञोपवीतमें या हाथमें पहनना चाहिए। दूसरेका पहना हुआ रुद्राक्ष नहीं धारण करना चाहिये। क्योंकि वह कल्याणकारक नहीं होता ॥ १५ ॥ अपवित्र अवस्थामें रुद्राक्षको न पहने रहे, पवित्र अवस्था ही में इसे सदा भक्तिके साथ धारण करे। यहाँ तक कि रुद्राक्षके पेड़की हवा लगकर उससे जो आस-पास घास जम जाती है ॥ १६ ॥ वह भी पुण्यलोकमें जाती है। वहाँसे फिर उसे लौटकर इस संसारसे नहीं आना पड़ता (अर्थात् उसकी मुक्ति हो जाती है)। जो मनुष्य रुद्राक्ष धारण करके पाप करते हैं ॥ १७ ॥ वे उस पापसे छूट जाते हैं—ऐसा (अथर्ववेदके) जाबालोपनिषद्में कहा गया है। पशु भी रुद्राक्ष धारण करनेसे रुद्रस्वरूप हो जाते हैं ॥ १८ ॥ फिर उनके बारेमें क्या पूछनेकी बात है, जो मनुष्यकी योनिमें उत्पन्न होकर

स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ॥ प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ॥ १३ ॥ अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किंचित्कर्म वैदिकम् ॥
कुर्वन्विप्रस्तु मोहेन नरके पतति ध्रुवम् ॥ १४ ॥ रुद्राक्षं धारयेन्मूर्ध्नि कंठे सूत्रे करेऽथवा ॥ सुवर्णमणिसंभिन्नं शुद्धं नान्यैर्धृतं शिवम् ॥ १५ ॥
नाशुचिर्धारयेदक्षं सदा भक्त्यैव धारयेत् ॥ रुद्राक्षतरुसंभूतवातोद्धूततृणान्यपि ॥ १६ ॥ पुण्यलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ रुद्राक्षं धार-
यन्पापं कुर्वन्नपि च मानवः ॥ १७ ॥ सर्वं तरति पाप्मानं जाबालश्रुतिराह हि ॥ पशवोऽपि हि रुद्राक्षधारणाद्यांति रुद्रताम् ॥ १८ ॥ किमु ये
धारयन्ति स्म नरा रुद्राक्षमालिकाम् ॥ रुद्राक्षः शिरसा ह्येको धार्यो रुद्रपरैः सदा ॥ १९ ॥ ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविमोचनम् ॥ व्याहरन्ति
च नामानि ये शंभोः परमात्मनः ॥ २० ॥ रुद्राक्षालंकृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ रुद्राक्षधारणं कार्यं सर्वश्रेयोऽर्थिभिर्नृभिः ॥ २१ ॥
कर्णपाशे शिखायां च कण्ठे हस्ते तथोदरे ॥ महादेवश्च विष्णुश्च ब्रह्मा तेषां विभूतयः ॥ २२ ॥ देवाश्चान्ये तथा भक्त्या खलु रुद्राक्षधारिणः ॥
गोत्रर्षयश्च सर्वेषां कूटस्था मूलरूपिणः ॥ २३ ॥ तेषां वंशप्रसूताश्च मुनयः सकला अपि ॥ श्रौतधर्मपराः शुद्धाः खलु रुद्राक्षधारिणः ॥ २४ ॥

रुद्राक्ष धारण करते हैं। जो शिवजीके परम भक्त हों, उन्हें कमसे कम एक रुद्राक्ष अवश्य सिरपर सदा धारण करना चाहिए ॥ १९ ॥ जो रुद्राक्षधारी भगवान शम्भुका नाम लेते हैं, उनके सब क्लेशोंका नाश हो जाता है और वे सब पापोंसे छूट जाते हैं ॥ २० ॥ जो रुद्राक्ष धारण करते हैं, वे सर्वोत्तम भगवद्भक्त होते हैं। जिन्हें अपने कल्याणकी कामना हो, उन्हें चाहिए कि रुद्राक्ष धारण करें ॥ २१ ॥ जो लोग कानमें, शिखामें, गलेमें और पेटपर रुद्राक्ष धारण करते हैं, उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महादेव विभूतिके रूपमें प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ देवता, गोत्रप्रवर्तक समस्त ऋषि, मूल-पुरुष (प्रत्येक वंशके आदिसंस्थापक) तथा अन्य व्यक्ति भक्तिके साथ रुद्राक्ष धारण करते हैं ॥ २३ ॥ इनके अतिरिक्त गोत्रप्रवर्तक ऋषियोंके वंशमें उत्पन्न अन्य ऋषि, मुनि, श्रौत धर्मको माननेवाले और शुद्ध आचार-विचारके भारतीय भी रुद्राक्ष धारण करते हैं ॥ २४ ॥ यह सम्भव है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि आरम्भमें वेद-प्रतिपादित एवं मुक्तिदायक रुद्राक्षको धारण करनेमें श्रद्धा न उत्पन्न हो, लेकिन अनेक जन्म-जन्मान्तरके बाद महादेवजीकी कृपासे रुद्राक्ष-धारणके लिए स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न हो जाती है। जाबालिशाखाके महर्षिगण रुद्राक्षका माहात्म्य अत्यन्त आदरके साथ वर्णन करते हैं। हे पुत्र! मैंने भी जाबालोपनिषद्में पढ़ा है। तीनों लोकोंमें रुद्राक्ष धारण-का माहात्म्य प्रसिद्ध है ॥ २५–२७ ॥ रुद्राक्षके केवल दर्शन कर लेने हीसे बड़ा पुण्य होता है, रुद्राक्षके स्पर्श कर लेनेपर रदर्शनकी अपेक्षा करोड़गुना अधिक पुण्य होता है और रुद्राक्षके धारण करनेपर स्पर्शको अपेक्षा सौ करोड़ (अरब) गुना पुण्य होता है ॥ २८ ॥ रुद्राक्षमालासे नित्य जप करनेमें धारण करनेकी अपेक्षा हजारों करोड़गुना पुण्य होता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ जो लोग अपने हाथमें, वक्षःस्थलपर, गलेमें, दोनों कानोंमें और मस्तकपर रुद्राक्ष धारण करते हैं, वस्तुतः शिवजी ही हैं। इसमें संशय नहीं है ॥ ३० ॥ वे सारे संसारमें निर्भय होकर शिवजीके समान विचरण करते हैं और किसी व्यक्ति या पशु-पक्षीका साहस नहीं होता कि उन्हें मार सके। चाहे देवता हों या दानव, सभी शिवजीकी तरह

श्रद्धा न जायते साक्षाद्वेदसिद्धे विमुक्तिदे ॥ बहूनां जन्मनामन्ते महादेवप्रसादतः ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणे वांछा स्वभावादेव जायते ॥ रुद्राक्षस्य तु माहात्म्यं जाबालैरादरेण तु ॥ २६ ॥ पठ्यते मुनिभिः सर्वैर्मया पुत्र तथैव च ॥ रुद्राक्षस्य फलं चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २७ ॥ फलस्य दर्शने पुण्यं स्पर्शात्कोटिगुणं भवेत् ॥ शतकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥२८॥ लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च॥ जपाच्च लभते नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ २९ ॥ हस्ते चोरसि कंठे च कर्णयोर्मस्तके तथा ॥ रुद्राक्षं धारयेद्यस्तु स रुद्रो नात्र संशयः ॥ ३० ॥ अवध्यः सर्व-भूतानां रुद्रवद्धि चरेद्भुवि ॥ सुराणामसुराणां च वंदनीयो यथा शिवः ॥ ३१ ॥ रुद्राक्षधारी सततं वंदनीयस्तथा नरैः ॥ उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ ३२ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ कंठे रुद्राक्षमाबध्य श्वाऽपि वा म्रियते यदि ॥ ३३ ॥ सोऽपि मुक्तिम-वाप्नोति किं पुनर्मानुषोऽपि सः ॥ जपध्यानविहीनोऽपि रुद्राक्षं यदि धारयेत् ॥ ३४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ एवमेव हि रुद्राक्षं कृत्वा यत्नेन धारयेत् ॥ ३५ ॥ एकविंशतिमुद्धृत्य रुद्रलोके महीयते ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राक्षस्य पुनर्विधिम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीदेवी-भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उनकी वन्दना करते हैं ॥३१॥ इसी प्रकार सारा मानव-समाज रुद्राक्ष धारण करनेवालेकी पूजा करता है। जूठाका विचार न रखनेवाले, निषिद्ध कर्म करनेवाले और सब तरहके पापकर्म करनेवाले व्यक्ति भी रुद्राक्षके धारण करनेपर सब पापोंसे छूट जाते हैं। यदि किसी कुत्तेके गलेमें रुद्राक्ष बाँध दिया जाय और वह मर जाय तो उसकी भी मुक्ति हो जाती है। फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? जप और ध्यान न करनेवाले लोग भी यदि रुद्राक्ष धारण कर लें तो वे सब पापोंसे छूटकर परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो लोग एक रुद्राक्ष भी बड़े विधि-विधानके साथ धारण करते हैं ॥ ३२–३५ ॥ वे अपनी इक्कीस पीढ़ीके लोगोंका उद्धार करके रुद्रलोकमें जाकर वहाँ सम्मानित होते हैं। इसके अतिरिक्त मैं रुद्राक्षकी और भी विधि बतला रहा हूँ ॥ ३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(रुद्राक्षमाहात्म्य) शिवजीने कहा—हे वत्स महासेन ! कुशकी गाँठकी बनी हुई माला, जियापोताकी बनी हुई या दूसरी वस्तुमे बनी हुई माला रुद्राक्षमालाके सोलहवें भागके बराबर भी नहीं हो सकती ॥ १ ॥ जैसे परम पुरुषोंमें विष्णु, नवग्रहोंमें सूर्य, नदियोंमें गङ्गा, महर्षियोंमें कश्यप, घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, देवोंमें महादेव और देवियोंमें गौरी सबसे प्रधान हैं, उसी तरह सभ। तरहकी मालाओंमें रुद्राक्षकी बनी हुई माला श्रेष्ठ है॥ २ ॥ ३ ॥ यह स्तोत्रपाठसे भी बढ़कर पुण्यदायक, व्रतसे भी बढ़कर अत्यन्त पवित्रकारक और समस्त अक्षय दानोंमें सबसे विशिष्ट है ॥ ४ ॥ जो लोग किसी शान्तस्वभाव शिवभक्तको असली रुद्राक्षका दान देते हैं, उनका इतना अधिक पुण्य-फल होता है कि शब्दोंमें वर्णन नहीं किया जा सकता ॥५॥ जो लोग कण्ठमें रुद्राक्षकी माला पहने हुए किसी व्यक्तिको अन्नदान देते हैं तो वे अपनी इक्कीस पीढ़ीका उद्धार करके रुद्रलोकमें निवास करते हैं ॥ ६ ॥ जो ब्राह्मण होकर भी अपने मस्तकपर भस्म नहीं लगाते, शरीरपर रुद्राक्ष नहीं धारण करते और शिवमन्दिरमें जाकर पूजा नहीं करते अर्थात् शिवपूजाके विरोधी हैं, वे ब्राह्मण नहीं बल्कि चाण्डालोंसे भी नीच चांडाल

॥ ईश्वर उवाच ॥ महासेन कुशग्रंथिपुत्रजीवादयः परे ॥ रुद्राक्षस्य तु नैकोऽपि कलामर्हति षोडशीम् ॥ १ ॥ पुरुषाणां यथा विष्णुर्ग्रहाणां च यथा रविः ॥ नदीनां तु यथा गंगा मुनीनां कश्यपो यथा ॥ २ ॥ उच्चैःश्रवा यथाऽश्वानां देवानामीश्वरो यथा ॥ देवीनां तु यथा गौरी तद्वच्छ्रेष्ठमिदं भवेत् ॥ ३ ॥ नातः परतरं स्तोत्रं नातः परतरं व्रतम् ॥ अक्षय्येषु च दानेषु रुद्राक्षस्तु विशिष्यते ॥ ४ ॥ शिवभक्ताय शान्ताय दद्याद्रुद्राक्षमुत्तमम् ॥ तस्य पुण्यफलस्यान्तं न चाहं वक्तुमुत्सहे ॥ ५ ॥ धृतरुद्राक्षकंठाय यस्त्वन्नं संप्रयच्छति ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ६ ॥ यस्य भाले विभूतिर्न नांगे रुद्राक्षधारणम् ॥ न शंभोर्भवने पूजा स विप्रः श्वपचाधमः ॥ ७ ॥ खादन्मांसं पिबन्मद्यं संगच्छन्नंत्यजानपि ॥ पातकेभ्यो विमुच्येत रुद्राक्षे शिरसि स्थिते ॥ ८ ॥ सर्वयज्ञतपोदानवेदाभ्यासैश्च यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥९॥ वेदैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं पुराणपठनेन च ॥ यत्तीर्थसेवनेनैव सर्वविद्यादिभिस्तथा ॥ १० ॥ तत्पुण्यं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ प्रयाणकाले रुद्राक्षं बंधयित्वा म्रियेद्यदि ॥ ११ ॥ स रुद्रत्वमवाप्नोति पुनर्जन्म न विद्यते ॥ रुद्राक्षं धारयेत्कंठे बाह्वोर्वा म्रियते यदि ॥ १२ ॥ कुलैकविंशमुत्तार्य रुद्रलोके वसेन्नरः ॥ ब्राह्मणो वाऽपि चांडालो निर्गुणः सगुणोऽपि च ॥ १३ ॥ भस्मरुद्राक्षधारी यः स देवत्वं शिवं व्रजेत् ॥

हैं ॥ ७ ॥ जो मांसाहारी हैं, शराबी हैं, अस्पृश्योंके साथ उठते-बैठते हैं-वे भी रुद्राक्षको सिरपर धारण करनेपर मांस-भक्षण तथा सुरापान आदिके पातकोंसे छूट जाते हैं ॥ ८ ॥ विविध प्रकारके यज्ञ, तपस्या, दान और वेदाध्ययन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल केवल रुद्राक्ष धारण करनेसे तत्काल मिल जाता है ॥९॥ चारों वेदोंके पढ़नेसे, अट्ठारहों पुराणोंका पाठ करनेसे अथवा तीर्थयात्रा, तीर्थवास एवं तीर्थस्नान करनेसे जो फल होता है या चौदहों विद्याओंके अध्ययनसे जो फल होता है ॥ १ ॥ वह फल रुद्राक्षके धारण करनेसे तत्काल मिल जाता है। प्राण निकलनेके समय रुद्राक्ष धारण किये जो लोग मर जाते हैं ॥ ११ ॥ वे रुद्र हो जाते हैं और उनको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। जो लोग कण्ठमें या भुजापर रुद्राक्ष पहने हुए मर जाते हैं, वे इक्कीस पीढ़ीको तारकर रुद्रलोकमें वास करते हैं। चाहे वे ब्राह्मण हों या चाण्डाल, गुणी हों या उनमें कोई गुण न हो ॥ १२ ॥ १३ ॥ लेकिन यदि वे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भस्म लगाते और रुद्राक्ष धारण करते हैं तो वे शिवत्व प्राप्त कर लेते हैं। चाहे कोई पवित्र हो या अपवित्र, अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करनेवाला हो ॥ १४ ॥ म्लेच्छ हो, चाण्डाल हो या सारा कुकर्म करनेवाला हो, किन्तु रुद्राक्ष धारण कर लेनेपर वह रुद्र हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ सिरपर रुद्राक्ष धारण करनेसे करोड़गुना, दोनों कानोंमें पहननेसे दस करोड़गुना, रुद्राक्षको गलेमें पहननेसे अरबगुना और मस्तकपर धारण करनेसे दस अरबगुना फल प्राप्त होता है ॥१६॥ रुद्राक्षको यज्ञोपवातमें पहननेसे दस हजार अरबगुना फल, भुजाओंपर धारण करनेसे लाख-करोड़गुना फल और कलाईमें पहननेसे परम पद (मोक्ष) मिल जाता है ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मण रुद्राक्ष पहनकर भक्तिपूर्वक जितना भी वैदिक कर्म करते हैं, उसका बड़ा फल मिलता है ॥ १८ ॥ जो अश्रद्धाके साथ भी गलेमें रुद्राक्षकी माला डाल लेता है, वह चाहे नित्यप्रति पापकर्म ही क्यों न करता हो तो समस्त सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ जिसके चित्तमें रुद्राक्ष धारण करनेकी लालसा रहती हो, लेकिन उसे धारण करनेका अवसर न प्राप्त हो तो वह शिवलोकमें शिवजीके समान पूजित होता

शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि तथाऽभक्ष्यस्य भक्षकः ॥१४॥ म्लेच्छो वाप्यथ चांडालो युतो वा सर्वपातकैः ॥ रुद्राक्षधारणादेव स रुद्रो नात्र संशयः ॥१५॥ शिरसा धारिते कोटिः कर्णयोर्दश कोटयः ॥ शतकोटिर्गले बद्धो मूर्ध्नि कोटिसहस्रकम् ॥ १६ ॥ अयुतं चोपवीते तु लक्षकोटिर्भुजे स्थिते ॥ मणिबन्धे तु रुद्राक्षो मोक्षसाधनकः परः ॥ १७ ॥ रुद्राक्षधारको भूत्वा यत्किंचित्कर्म वैदिकम् ॥ कुर्वन्विप्रः सदा भक्त्या महदाप्नोति तत्फलम् ॥ १८ ॥ रुद्राक्षमालिकां कंठे धारयेद्भक्तिवर्जितः ॥ पापकर्मा तु यो नित्यं स मुक्तः सर्वबंधनात् ॥ १९ ॥ रुद्राक्षार्पितचेता यो रुद्राक्षस्तेन वै धृतः ॥ असौ माहेश्वरो लोके नमस्यः स तु लिंगवत् ॥ २० ॥ अविद्यो वा सविद्यो वा रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ शिवलोकं प्रपद्येत कीकटे गर्दभो यथा ॥ २१ ॥ स्कंद उवाच ॥ रुद्राक्षान्संदधे देव गर्दभः केन हेतुना ॥ कीकटे केन वा दत्तस्तद्ब्रूहि परमेश्वर ॥२२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र पुरावृत्तं गर्दभो विन्ध्यपर्वते ॥ धत्ते रुद्राक्षभारं तु वाहितः पथिकेन तु ॥ २३ ॥ श्रांतोऽसमर्थस्तद्भारं योढुं पतितवान्भुवि ॥ प्राणैस्त्यक्तस्त्रिनेत्रस्तु शूलपाणिर्महेश्वरः ॥ २४ ॥ मत्प्रसादान्महासेन मदंतिकमुपागतः ॥ यावद्वक्त्रस्य संख्यानं रुद्राक्षाणां सुदुर्लभम् ॥ २५ ॥ तावद्युग-

है ॥ २० ॥ जिस तरह कीकट देशविशेषमें एक गदहा शिवलोकको चला गया था, उसी प्रकार चाहे कोई एकदम निरक्षर हो या उच्चकोटिका विद्वान् हो तो वह भी रुद्राक्ष धारण करनेसे शिवलोकका अधिकारी हो जाता है ॥ २१ ॥ स्कन्दकुमारने पूछा—हे देव ! हे परमेश्वर ! कीकट देशमें उस गदहेने किस लिए रुद्राक्ष धारण किया था ? सो आप मुझको बतलाइए ॥ २२ ॥ श्रीमहादेवजोने कहा—हे पुत्र ! अब तुम प्राचीन घटना सुनो। विन्ध्य पर्वतपर एक गदहा रहता था। वह एक व्यापारीका बोझा ढोया करता था ॥ २३ ॥ एक दिन वह इतना थक गया कि बोझ ढोनेमें असमर्थ हो ठोकर खाकर सड़कपर गिर पड़ा और मर गया। फिर वह मेरे अनुग्रहके कारण त्रिनेत्रधारी तथा हाथमें शूल लिये हुए महेश्वरके रूपसे मेरे लोकमें चला आया। रुद्राक्षके जितने दुर्लभ मुखोंकी संख्या हो, उतने हजार युगों तक रुद्राक्ष धारण करनेवाले मेरे लोकमें पूजित होते हैं। अपने शिष्योंसे ही रुद्राक्षके माहात्म्यका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्णन करना चाहिये। जो अपना शिष्य न हो, उसे कभी भूलकर भी इसकी महत्ता न बतानी चाहिए ॥२४-२६॥ जिसकी आस्था रुद्राक्षके प्रति न हो या जो एकदम वज्र मूर्ख हो, उसको भी इसका माहात्म्य नहीं बताना चाहिए। चाहे कोई भक्त हो या भक्तिरहित हो, चाहे कोई नीच हो या नीचसे भी बढ़कर महानीच हो ॥२७॥ यदि वह रुद्राक्ष धारण करतो है तो समस्त पापोंसे छूट जाता है। रुद्राक्ष पहननेके पुण्यकी तुलना किसके साथ की जाय? ॥२८॥ तत्त्ववेत्ता महर्षि लोग रुद्राक्षधारणको वड़ा भारी व्रत बतलाते हैं। जो एक हजार रुद्राक्ष धारण करनेका नियम बनाता है ॥२९॥ उसे सब देवता नमस्कार करते हैं। क्योंकि उसमें और रुद्रमें कोई भिन्नता नहीं रह जाती। जिससे एक हजार रुद्राक्ष धारण करनेका नियम न चल सके—वह यदि सोलह रुद्राक्ष दाहिनी भुजापर, सोलह रुद्राक्ष बायीं भुजापर, एक रुद्राक्ष शिखामें, बारह रुद्राक्ष दाहिने हाथमें, बारह रुद्राक्ष बाँयें हाथमें, बत्तीस रुद्राक्ष गलेमें, चालीस रुद्राक्ष मस्तकपर, छ रुद्राक्ष दाहिने कानमें, छ रुद्राक्ष बायें कानमें और एक सौ आठ रुद्राक्ष वक्षःस्थलपर धारण कर ले तो वह रुद्रके समान पूजनीय हो जाता है ॥३०-३२॥ जो लोग

सहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ स्वशिष्येभ्यस्तु वक्तव्यं नाशिष्येभ्यः कदाचन ॥ २६ ॥ अभक्तेभ्योऽपि मूर्खेभ्यः कदाचिन्न प्रकाशयेत् ॥ अभक्तो वाऽस्तु भक्तो वा नीचो नीचतरोऽपि वा ॥ २७ ॥ रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः ॥ रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ॥ २८ ॥ महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ॥ २९ ॥ तं नमंति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ॥ अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडश षोडश ॥ ३० ॥ एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वादशैव तु ॥ द्वात्रिंशत्कंठदेशे तु चत्वारिंशच्च मस्तके ॥ ३१ ॥ एकैकं कर्णयोः षट् षट् वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ॥ यो धारयति रुद्राक्षान्रुद्रवत्स तु पूज्यते ॥ ३२ ॥ मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैडूर्यकांचनैः ॥ समेतान्धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत् ॥ ३३ ॥ केवलानपि रुद्राक्षान् यद्यालस्याद्बिभर्ति यः ॥ तं न स्पृशंति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥ ३४ ॥ रुद्राक्षमालया मंत्रो जप्तोऽनंतफलप्रदः ॥ यस्यांगे नास्ति रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः ॥ ३५ ॥ तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितं यथा ॥ रुद्राक्षं मस्तके धृत्वा शिरःस्नानं करोति यः ॥ ३६ ॥ गंगास्नानफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥ एकवक्त्रः पंचवक्त्र एकादशमुखाः परे ॥ चतुर्दशमुखाः केचिद्रुद्राक्षा लोकपूजिताः ॥ ३७ ॥ भक्त्या संपूज्यते नित्यं रुद्राक्षः शंकरात्मकः ॥ ३८ ॥ दरिद्रं वापि पुरुषं राजानं कुरुते भुवि ॥

रुद्राक्षमें मोती, मूँगा, स्फटिक, चाँदी, सोना और वैदूर्य लगाकर पहनते हैं—वे शिवस्वरूप होते हैं ॥३३॥ जो आलस्यवश केवल रुद्राक्षको ही धारण करते हैं, उन्हें पाप उसी तरह स्पर्श नहीं कर सकता, जैसे सूर्यको अन्धकार स्पर्श नहीं कर पाता ॥ ३४ ॥ रुद्राक्षकी मालापर मन्त्रका जप करनेसे अनन्तगुना फल मिलता है। यह रुद्राक्ष बहुत पुण्यदायक है। जिसके शरीरपर एक भी रुद्राक्ष न रहे ॥ ३५ ॥ उसका जन्म लेना उसी भाँति निरर्थक होता है, जैसे त्रिपुण्ड् न लगानेवालेका जीवन वृथा होता है। जो लोग रुद्राक्ष मस्तकपर धारण करके शिरःस्नान करते हैं ॥३६॥ उन्हें गङ्गाजीमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है। एकमुखी, पंचमुखी, ग्यारहमुखी और चौदहमुखी रुद्राक्ष लोकवन्दनीय होता है। जो साक्षात् शङ्करके अवतार रुद्राक्षकी भक्तिके साथ नित्य पूजा करते हैं ॥३७॥३८॥ वे भिखारी ही क्यों न हों—इस भूतलपर राजा हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें मैं एक उत्तम पौराणिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इतिहासका वर्णन करूँगा ॥३९॥ कहा जाता है कि कोशल देश (अयोध्या) में गिरिनाथ नामका एक ब्राह्मण रहता था। वह महाधनी, धर्मात्मा, वेद-वेदाङ्गका ज्ञाता, यज्ञ करनेवाला और दीक्षित ब्राह्मण था। उसका पुत्र गुणनिधिके नामसे विख्यात था। उसका आकार बड़ा सुन्दर था। वह युवा और कामदेवकी भाँति आकर्षक था ॥४०॥४१॥ जिस समय वह गुरुकुलमें पढ़ता था, उस समय अपने रूप और यौवनके मदसे उसने सुधिषण नामक गुरुकी मुक्तावली नामकी पत्नीको मोहित कर लिया ॥ ४२ ॥ कुछ दिनों तक उसने उसके साथ गुरुके डरसे चुपके-चुपके भोग किया। बादमें स्वतन्त्र मिलनमें बाधा देखकर उसने गुरुको विष देकर मार डाला और फिर बेखटके उसके साथ मैथुन करने लगा ॥ ४३ ॥ जब उसके माता-पिताको उसके कुकर्मका हाल मालूम हुआ, तब उसने उन्हें भी तत्काल जहर देकर मार डाला ॥४४॥ तदनन्तर अनेक प्रकारके भोग-विलासमें उसका सारा धन स्वाहा हो गया। पश्चात् वह दुष्ट गुणनिधि ब्राह्मणोंके घर जाकर चोरी करने लगा ॥ ४५ ॥ चोरीका माल हाथ लगनेपर वह मदिरा पीकर नशेमें पागल हो जाता था। तब उसके सम्बन्धियोंने उसे जातिच्युत करके

अत्र ते कथयिष्यामि पुराणं मतमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ कोसलेषु द्विजः कश्चिद्गिरिनाथ इति श्रुतः ॥ महाधनी च धर्मात्मा वेदवेदांगपारगः ॥ ४० ॥
यज्ञकृद्दीक्षितस्तस्य तनयः सुंदराकृतिः ॥ नानागुणनिधिः ख्यातस्तरुणः कामसुन्दरः ॥४१॥ गुरोः सुधिषणस्याथ पत्नीं मुक्तावलीमथ ॥ मोहयामास रूपेण यौवनेन मदेन च ॥ ४२ ॥ संगतस्तु तया सार्धं कंचित्कालं ततो भिया ॥ विषं ददौ च गुरवे येभे पश्चात्तु निर्भयः ॥ ४३ ॥ यदा माता पिता कर्म किंचिज्जानाति तत्क्षणम् ॥ मातरं पितरं चापि मारयामास तद्विषात् ॥ ४४ ॥ नानाविलासभोगैश्च जाते द्रव्यव्यये ततः ॥ ब्राह्मणानां गृहे चौर्यं चकार स तदा खलः ॥ ४५ ॥ सुरापानमदोन्मत्तस्तदा ज्ञातिबहिष्कृतः ॥ ग्रामान्निष्कासितः सर्वैस्तदा सोऽभूद्वनेचरः ॥ ४६ ॥
मुक्तावल्या तया सार्धं जगाम गहनं वनम् ॥ मार्गे स्थितो द्रव्यलोभाज्जघान ब्राह्मणान्बहून् ॥ ४७ ॥ एवं बहुगते काले ममार स तदाऽधमः ॥
नेतुं तं यमदूताश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥ ४८ ॥ शिवलोकाच्छिवगणास्तथैव च समागताः ॥ तयोः परस्परं वादो बभूव गिरिजासुत ॥ ४९ ॥
यमदूतास्तदा प्रोचुः पुण्यमस्य किमस्ति हि ॥ ब्रुवंतु सेवकाः शंभोर्यद्येनं नेतुमिच्छथ ॥ ५० ॥ शिवदूतास्तदा प्रोचुरयं यस्मिन्स्थले मृतः ॥
दशहस्तादधो भूमे रुद्राक्षस्तत्र चास्ति हि ॥ ५१ ॥ तत्प्रभावेण हे दूता नेष्यामः शिवसन्निधिम् ॥ ततो विमानमारुह्य दिव्यरूपधरो द्विजः ॥५२॥

अपने गाँवसे बाहर निकाल दिया। तब वह जंगली मुसहर हो गया ॥४६॥ मुक्तावलीको साथ लेकर वह बियाबान जंगलमें चला गया। वहाँ सड़कके किनारे छिपकर बैठता और उधरसे जितने ब्राह्मण आते, उन्हें धनके लोभसे मार डालता ॥ ४७ ॥ इस तरह कुकर्म करते-करते बहुत समय बीत गया। अन्तमें वह नीच मर गया, तब उसे ले जानेके लिए हजारों यमदूत आये ॥ ४८ ॥ उसी समय शिवलोकसे शिवगण भी आ पहुँचे। हे गिरिजासुवन! वहाँ यमदूतों और शिवदूतोंमें बड़ा वाद-विवाद होने लगा ॥ ४९ ॥ यमदूतोंने पूछा—हे शम्भुके गणो! इसने कौनसा पुण्य किया है? जिसके कारण आप लोग इसे लेनेके लिए आये हैं ॥५०॥ शिवदूतोंने उत्तर दिया—हे यमदूतो! यह जिस स्थानपर मरा है, उसके दस हाथ नीचे जमीनमें रुद्राक्ष है ॥ ५१ ॥ उसी रुद्राक्षके प्रभावसे इसे हम शिवलोक ले जायँगे। तदनुसार वह ब्राह्मण गुणनिधि दिव्य रूप धारण करके और विमानपर बैठकर शिवदूतोंके साथ शिवलोकमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चला गया। हे सुव्रत! इस प्रकार मैंने आपसे रुद्राक्षका माहात्म्य कहा ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यह तो अत्यन्त संक्षेपमें रुद्राक्षकी महिमा बतलायी है। यह सब पापोंका नाशक और महान् फलदायक है ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(रुद्राक्षके लक्षण और मन्त्र-विन्यास) श्रीनारायणने कहा—हे नारद! इस प्रकार गिरिजापतिने षडाननको रुद्राक्षकी महिमा बतलायी। जिसे जानकर वे कृतकृत्य हुए ॥ १ ॥ उसी रुद्राक्षके माहात्म्यका मैंने भी आपसे वर्णन कर दिया। अब सदाचारके सम्बन्धमें अन्य बातोंको सावधानीके साथ सुनिये ॥ २ ॥ जिस तरह मैंने कहा है कि रुद्राक्षकी महिमा अनन्त पुण्य देनेवाली है, उसी तरह रुद्राक्षके लक्षण और रुद्राक्षके मन्त्र-विन्यासके बारेमें भी आपसे वर्णन करूँगा ॥ ३ ॥ रुद्राक्षका दर्शन करनेसे एक लाखगुना पुण्य होता है, रुद्राक्षका स्पर्श करनेसे करोड़गुना पुण्य होता है और उसको धारण करनेसे स्पर्श करनेकी अपेक्षा कईगुना अधिक पुण्य होता है ॥४॥ जो लोग रुद्राक्षमालासे

गतो गुणनिधिर्दूतैः सहितः शंकरालयम् ॥ इति रुद्राक्षमाहात्म्यं कथितं तव सुव्रत ॥ ५३ ॥ एवं रुद्राक्षमहिमा समासात्कथितो मया ॥ सर्वपापक्षयकरो महापुण्यफलप्रदः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ एवं नारद षड्वक्त्रो गिरिशेन विबोधितः ॥ रुद्राक्षमहिमानं च ज्ञात्वाऽऽसीत्स कृतार्थकः ॥ १ ॥ इत्थंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो वर्णितो मया ॥ सदाचारप्रसङ्गेन शृणु चान्यत्समाहितः ॥ २ ॥ यथा रुद्राक्षमहिमा वर्णितोऽनंतपुण्यदः ॥ लक्षणं मन्त्रविन्यासं तथाऽहं वर्णयामि ते ॥ ३ ॥ लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिस्तत्स्पर्शनाद्भवेत् ॥ तस्य कोटिगुणं पुण्यं लभते धारणान्नरः ॥ ४ ॥ लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥ तज्जपाल्लभते पुण्यं नरो रुद्राक्षधारणात् ॥ ५ ॥ रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षधारणात्स्यान्महाफलम् ॥ धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥ बदरीफलमात्रं तु प्रोच्यते मध्यमं बुधैः ॥ अधमं चणमात्रं स्यात्प्रतिज्ञैषा मयोदिता ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया ॥ वृक्षाजाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥ ८ ॥ श्वेता तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः ॥ पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्राः प्रकीर्त्तिताः ॥९॥ ब्राह्मणो बिभृयाच्छ्वेतान्रक्तान्राजा तु धारयेत् ॥ पीतान्वैश्यस्तु बिभृयात्कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत् ॥१०॥

जप करते हैं, उन्हें रुद्राक्ष धारणकी अपेक्षा एक सौ लाख करोड़गुना अथवा एक हजार लाख करोड़गुना पुण्य होता है ॥५॥ (रुद्राक्ष न मिलनेपर भद्राक्ष धारण करना चाहिए लेकिन) भद्राक्ष धारण करनेकी अपेक्षा रुद्राक्ष धारण करनेसे विशेष फल होता है। जो रुद्राक्ष आकारमें आँवलेकी तरह होता है, वही उत्तम माना जाता है ॥६॥ जो रुद्राक्ष आकारमें बेरके फलकी तरह हो, उसे विद्वानोंने मध्यम कहा है और जो रुद्राक्ष चनाके आकारका हो, वह 'अधम' कहा गया है। यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ ७ ॥ शिवजीकी आज्ञासे पृथ्वीतलमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार प्रकारके शुभ रुद्राक्षके पेड़ उत्पन्न हुए॥८॥ जो रुद्राक्ष सफेद रङ्गका हो वह ब्राह्मण, जो लाल रङ्गका हो वह क्षत्रिय, जो पीले रङ्गका हो वह वैश्य और जो काले रङ्गका हो, वह शूद्र होता है ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंको चाहिये कि सफेद रङ्गका रुद्राक्ष धारण करें, क्षत्रिय लाल रङ्गका, वैश्य पीले रङ्गका और शूद्र काले रङ्गका रुद्राक्ष पहने ॥१०॥ जो रुद्राक्ष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चौकोर हो, गोल हो, चिकना हो, मजबूत हो, जिसपर साफ-साफ काँटोंकी रेखाएँ उभड़ी हों—वही शुभ (श्रेष्ठ) माना गया है। लेकिन जिन अद्राक्षके दानोंको कीड़ोंने खा लिया हो, जो टूटे हों, जो फूट गये हों, जिनमें काँटोंकी रेखाएँ स्पष्ट न दिखायी पड़ती हों ॥ ११ ॥ जो चुटीले हों और जिनपर परत चढ़ी हुई हो—इन छ प्रकारके रुद्राक्षोंको न धारण करे। जिसमें प्राकृतिक छेद बना हो, वह उत्तम है ॥ १२ ॥ जिसमें मनुष्य प्रयत्न करके छेद करे, वह मध्यम है। जो रुद्राक्षके दाने समान आकारके हों, चिकने हों, ठोस हों, गोल-गोल हों, उन्हें रेशमी तागेमें पिरोकर धारण करे ॥१३॥ [असली रुद्राक्षके पहचाननेकी विधि] जिस तरह सोना कसौटीपर घिसनेसे उसपर सोनेकी लकीर पड़ जाती है, उसी तरह रुद्राक्षपर रेखा खींचकर इनके असली होनेकी परख की जाती है। ऐसी रेखा खींचनेपर जो लकीर एक-सी, सीधी, चिकनी और अत्यन्त सुन्दर रहे ॥१४॥ वह रुद्राक्ष सर्वोत्तम होता है। शिवभक्तोंको यही रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। एक रुद्राक्ष शिखामें, तीस रुद्राक्ष सिरपर, छत्तीस रुद्राक्ष गलेमें, सोलह रुद्राक्ष दाहिनी भुजापर, सोलह रुद्राक्ष बाँयीं भुजापर, बारह रुद्राक्ष दाहिनी कलाईमें,

समाः स्निग्धाः दृढास्तद्वत्कंटकैः संयुताः शुभाः ॥ कृमिदष्टाञ्छिन्नभिन्नान्कंटकै रहितांस्तथा ॥ ११ ॥ व्रणैर्युक्तानावृतांश्च षड्रुद्राक्षांस्तु वर्जयेत् ॥ स्वयमेव कृतद्वारो रुद्राक्षः स्यादिहोत्तमः ॥ १२ ॥ यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् ॥ समान्स्निग्धान्दृढान्वृत्तान्क्षौमसूत्रेण धारयेत् ॥१३॥ सर्वगात्रेषु साम्येन समानाऽतिविलक्षणा ॥ निर्घर्षे हेमलेखाभा यत्र लेखा प्रदृश्यते ॥ १४ ॥ तदक्षमुत्तमं विद्यात्स धार्यः शिवपूजकैः ॥ शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिंशद्वै शिरसा वहेत् ॥ १५ ॥ षट्त्रिंशच्च गले धार्या बाह्वोः षोडश षोडश ॥ मणिबंधे द्वादशाक्षान्स्कंधे पञ्चाशतं भवेत ॥ १६ ॥ अष्टोत्तरशतैर्मालोपवीतं च प्रकल्पयेत् ॥ द्विसरं त्रिसरं वापि बिभृयात्कंठदेशतः ॥१७॥ कुण्डले मुकुटे चैव कर्णिकाहारकेषु च ॥ केयूरे कटके चैव कुक्षिवंशे तथैव च ॥ १८ ॥ सुप्ते पीते सर्वकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः ॥ त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते ॥१९॥ सहस्रमुत्तमं प्रोक्तं चैवं भेदेन धारयेत् ॥ शिरसीगानमन्त्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च ॥ २० ॥ अघोरेण ललाटे तु तेनैव हृदयेऽपि च ॥ अघोरबीजमंत्रेण करयोर्धारयेत्पुनः ॥२१॥ पञ्चाशदक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे ॥ पञ्चब्रह्मभिरंगैश्चाप्येवं रुद्राक्षधारणम् ॥ २२ ॥ ग्रथितान्मूलमंत्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत् ॥ एकवक्त्रस्तु रुद्राक्षः

बारह रुद्राक्ष बाँयीं कलाईमें और पचास रुद्राक्ष कन्धेपर धारण करे ॥ १५ ॥ १६ ॥ एक सौ आठ रुद्राक्षकी मालाका यज्ञोपवीत धारण करे। दो लड़ी या तीन लड़ी रुद्राक्षकी माला गलेमें पहने ॥१७॥ कुंडलमें रुद्राक्ष, मुकुटमें रुद्राक्ष, कर्णपाशमें रुद्राक्ष, हारमें रुद्राक्ष, बिजायठमें रुद्राक्ष, कड़ामें रुद्राक्ष और कमरकी करधनीमें रुद्राक्ष पहने ॥१८॥ सोते समय, खाते समय, पीते समय और सभी समय रुद्राक्ष धारण किये रहे। तीन सौ रुद्राक्षका धारण करना 'अधम', पाँच सौ रुद्राक्षका धारण करना 'मध्यम' और एक हजार रुद्राक्षका धारण करना 'उत्तम' कहा गया है। अतः उत्तम-मध्यमभेदके अनुसार रुद्राक्ष धारण करे। सिरपर रुद्राक्ष धारण करते समय 'ईशान' मन्त्र पढ़े। कानमें रुद्राक्ष पहनना हो तो 'तत्पुरुषाय विद्महे' मन्त्र पढ़कर धारण करे ॥ १९ ॥ २० ॥ ललाटपर और हृदयपर 'अघोर' मन्त्रसे धारण करे। हाथोंपर अघोर-बीज-मन्त्र [ह्सौं] से रुद्राक्ष धारण करे ॥ २१ ॥ रुद्राक्षके पचास दानोंकी मालाको उदरपर 'वामदेव' मन्त्रसे, पाँच ब्रह्ममन्त्र और छ षडङ्ग मन्त्रसे धारण करे ॥२२॥ एक-एक रुद्राक्षको पिरोते समय मूलमन्त्र पढ़े और तब उसे धारण करे। एकमुखी रुद्राक्षका दाना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परम तत्त्वका उद्घाटन करता है ॥२३॥ इस परम तत्त्वमय रुद्राक्षके धारण करनेपर ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है ! हे ऋषिराज ! दोमुखी रुद्राक्ष अर्द्धनारीश्वर होता है ॥ २४ ॥ जो व्यक्ति इसे नित्य धारण करते हैं, उनपर भगवान् अर्द्धनारीश्वर शिव प्रसन्न रहते हैं । तीनमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्निस्वरूप है । यह स्त्रीवधजनित पापको क्षण भरमें ही भस्म कर देता है ॥२५॥ तीनमुखी रुद्राक्ष त्रेताग्नि अर्थात् गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निस्वरूप है । इसको धारण करनेसे अग्निदेवता उस व्यक्तिपर नित्य सन्तुष्ट रहते हैं ॥ २६ ॥ चारमुखी रुद्राक्ष साक्षात् चतुरानन ब्रह्मास्वरूप है । इसको धारण करनेसे अतीव वैभव, उत्तम स्वास्थ्य और ज्ञानरूपिणी महती सम्पत्ति बढ़ती है । मनुष्यको चाहिए कि हृदयकी शुद्धिके निमित्त इसे धारण करे । पञ्चमुखी रुद्राक्ष पञ्चब्रह्म (शिव) स्वरूप है ॥२७॥२८॥ इसको धारण करते ही भगवान् पञ्चवक्त्र (महेश्वर) सन्तुष्ट हो जाते हैं । छमुखी रुद्राक्षके अधिदेवता षडानन कार्तिकेय हैं ॥२९॥ कुछ महर्षि लोग कहते हैं कि छमुखी रुद्राक्षके देवता विनायक (गणेशजी) हैं । सातमुखी रुद्राक्षकी अधिदेवी सात मातृकाएँ हैं ॥ ३० ॥ सप्ताश्व देवता

परतत्त्वप्रकाशकः ॥ २३ ॥ परतत्त्वधारणाच्च जायते तत्प्रकाशनम् ॥ द्विवक्त्रस्तु मुनिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो भवेत् ॥ २४ ॥ धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ॥ त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ॥२५॥ त्रिमुखश्चैव रुद्राक्षोऽप्यग्नित्रयस्वरूपकः ॥ तद्धारणाच्च हुतभुक्तस्य तुष्यति नित्यशः ॥ २६ ॥ चतुर्मुखस्तु रुद्राक्षः पितामहस्वरूपकः ॥ तद्धारणान्महाश्रीमान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ २७ ॥ महती ज्ञानसंपत्तिः शुद्धये धारयेन्नरः ॥ पंचमुखस्तु रुद्राक्षः पंचब्रह्मस्वरूपकः ॥ २८ ॥ तस्य धारणमात्रेण संतुष्यति महेश्वरः ॥ षड्वक्त्रश्चैव रुद्राक्षः कार्तिकेयाधिदैवतः ॥ २९ ॥ विनायकं चापि देवं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ सप्तवक्त्रस्तु रुद्राक्षः सप्तमात्राधिदैवतः ॥ ३० ॥ सप्ताश्वदैवतश्चैव मुनिसप्तैकदैवतः ॥ तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ महती ज्ञानसंपत्तिः शुचिर्वै धारयेन्नरः ॥ अष्टवक्त्रस्तु रुद्राक्षोऽप्यष्टमात्रधिदैवतः ॥ ३२ ॥ वस्वष्टकप्रीतिकरो गंगाप्रीतिकरः शुभः ॥ तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः ॥ ३३ ॥ नववक्त्रस्तु रुद्राक्षो यमदेव उदाहृतः ॥ तद्धारणाद्यमभयं न भवत्येव सर्वथा ॥ ३४ ॥ दशवक्त्रस्तु रुद्राक्षो दशाशादैवतः स्मृतः ॥ दशाशाप्रीतिजनको धारणे नात्र संशयः ॥ ३५ ॥ एकादशमुखस्त्वक्षो रुद्रैकादशदैवतः ॥ तमिंद्रदैवतं चाहुः सदा सौख्यविवर्धनम् ॥ ३६ ॥ रुद्राक्षो द्वादशमुखो महाविष्णुस्वरूपकः ॥ द्वादशादित्यदैवश्च बिभ-

(सूर्य) और सप्तर्षि हैं । इसको धारण करनेसे महती सम्पत्ति प्राप्त होती है और स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है ॥ ३१ ॥ साथ ही महान् ज्ञानका भण्डार मिलता है। मनुष्यको चाहिए कि पवित्र होकर रुद्राक्षको धारण करे । आठ मुखी रुद्राक्षकी अधिदेवी अष्टमातृकाएँ अर्थात् ब्राह्मी, माहेश्वरी, चण्डी, वाराही, वैष्णवी, कौमारी, चामुण्डा और चर्चिका हैं ॥ ३२ ॥ इसको धारण करनेसे आठों वसु प्रसन्न होते हैं । वसुओंके प्रसन्न होनेपर उनकी माता गङ्गाजी भी प्रसन्न होती हैं । इसका पहननेसे लोगोंका अन्तःकरण प्रसन्न हो जाता है और वे सत्यवादी होते हैं ॥३३॥ नौमुखी रुद्राक्षके देवता यम हैं । इसको पहननेसे यमका तनिक भी भय नहीं रहता ॥३४॥ दशमुखी रुद्राक्षके देवता दसों दिशाएँ हैं । इसको धारण करनेसे दसों दिशाओंको प्रसन्नता होती है—इसमें सन्देह नहीं है ॥३५॥ ग्यारहमुखी रुद्राक्षके अधिदेवता एकादश रुद्र हैं । उन्हें इन्द्र देवता भी कहते हैं । इसका धारण करनेसे निरन्तर सुखकी वृद्धि होती है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥३६॥ बारहमुखी रुद्राक्ष साक्षात् महाविष्णु है। इसके अधिदेवता द्वादश आदित्य हैं और सूर्यपरायण लोग इसे धारण करते हैं ॥३७॥ तेरहमुखी रुद्राक्ष मनोवाञ्छा पूरा करनेवाला, सफलता देनेवाला और कल्याणकारी है। इसके धारणसे ही कामदेव प्रसन्न हो जाते हैं ॥३८॥ चौदहमुखी रुद्राक्ष साक्षात् रुद्रके नेत्रसे उत्पन्न हुआ है। इसके धारणकर्ताकी सारी व्याधि नष्ट हो जाती है और वह सदा नीरोग रहता है ॥३९॥ रुद्राक्ष धारण करनेवालेको मदिरा, मांस, लहसुन, प्याज, सहिंजन, लिसोढ़ा और विष्ठाभोजी सूअरका मांस नहीं खाना चाहिए ॥४०॥ जो लोग ग्रहणके दिन, सूर्यके विषुवत् रेखामें संक्रमण करनेपर अर्थात् तुला और मेषकी संक्रान्तिके अवसरपर, उत्तरायण तथा दक्षिणायनके अवसरपर, अमावस्याके दिन, पूर्णिमाके दिन एवं अन्यान्य पुण्यदिवसोंपर रुद्राक्ष धारण करते हैं—वे सब पापोंसे छूट जाते हैं ॥४१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीनारायणने कहा—हे महामुनि नारदजी ! वस्त्र पहिननेके बाद आसनपर बैठकर भस्म लगाये, फिर रुद्राक्ष धारण करे, उसके बाद क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर—

त्र्यैव हि तत्परः ॥ ३७ ॥ त्रयोदशमुखश्चाक्षः कामदः सिद्धिदः शुभः ॥ तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदसि ॥ ३८ ॥ चतुर्दशमुखश्चाक्षो रुद्रनेत्रसमुद्भवः ॥ सर्वव्याधिहरश्चैव सर्वारोग्यप्रदायकः ॥ ३९ ॥ मद्यं मांसं च लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च ॥ श्लेष्मातकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः ॥ ४० ॥ ग्रहणे विषुवे चैव संक्रमे अयने तथा ॥ दर्शे च पौर्णमासे च पुण्येषु दिवसेष्वपि ॥ रुद्राक्षधारणात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीनारायण उवाच ॥ भूतशुद्धिप्रकारं च कथयामि महामुने ॥ मूलाधारात्समुत्थाय कुण्डलीं परदेवताम् ॥१॥ सुषुम्नामार्गमाश्रित्य ब्रह्मरंध्रगतां स्मरेत् ॥ जीवं ब्रह्मणि संयोज्य हंसमंत्रेण साधकः ॥२॥ पादादिं जानुपर्यंतं चतुष्कोणं सवज्रकम् ॥ लंबीजाढ्यं स्वर्णवर्णं स्मरेदवनिमण्डलम् ॥३॥ जान्वाद्यान्नादिचंद्रार्धनिभं पद्मद्वयांकितम् ॥ वंबीजयुक्तं श्वेताभमंभसो मंडलं स्मरेत् ॥ ४ ॥ नाभेर्हृदयपर्यन्तं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम् ॥ रंबी-

इन पञ्चभूतोंकी शुद्धि करनी चाहिए। अब मैं भूतशुद्धिकी विधि बतला रहा हूँ। पहले परदेवता कुण्डलिनीको कुम्भक प्राणायाम द्वारा मूलाधारसे उठकर सुषुम्नामार्गके आश्रयसे ब्रह्मरन्ध्र तक गयी हुई है—ऐसी कल्पना करे। फिर साधकको चाहिए कि हंसमन्त्रसे जीवात्माको परब्रह्मसे मिला देनेकी कल्पना करे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर पैरसे लेकर घुटने तक चतुष्कोण (चौकोर) यन्त्रको वज्रके सहित (जिसके चारों कोनोंपर ६३ रेखाएँ हों ऐसी) कल्पना करे। इसी कोणको सोनेके वर्णका 'अवनी (पृथ्वी) मण्डल' जिसके बीचोबीच 'लं' बीजमन्त्र हो—ऐसी कल्पना करके उस (पृथ्वीमण्डल) का ध्यान करे ॥ ३ ॥ इसके बाद घुटनेसे लेकर नाभि तक आधे चन्द्रमाके आकारकी कल्पना करे, जिसके दोनों कानोंपर दो कमल हों। इसे 'जलमण्डल' समझे, इसका वर्ण श्वेत हो और जलका बीजमन्त्र 'वं' इसके बीचोबीच हो—इस प्रकार ध्यान करे ॥ ४ ॥ इसके बाद नाभिसे लेकर हृदय तकको—ऐसे त्रिकोणके आकारकी कल्पना करे, जिसके कोनोंपर स्वस्तिक बना रहे। इसे 'अग्निमण्डल' समझे। जिसका वर्ण रक्त हो और अग्निका बीजमन्त्र 'रं' जिसके बीचोबीच हो—उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार ध्यान करे ॥ ५ ॥ इसके बाद हृदयसे लेकर दोनों भौंहोंके बीचोबीच वृत्त (गोल) आकारकी कल्पना करे। जिसमें छ बिन्दु दिये हुए हों, जिसका वर्ण धुएँके रङ्गकी तरह हो, जिसके बीचोबीच 'य' बीजमन्त्र हो, उसे 'वायुमण्डल' समझकर ध्यान करे ॥ ६ ॥ इसके बाद भौंके मध्यभागसे लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक वृत्त (गोल) आकारकी कल्पना करे। जिसका वर्ण एकदम स्वच्छ और सुन्दर हो, जिसके बीचोबीच 'ह' बीजमन्त्र हो, उसे 'आकाशमण्डल' समझकर ध्यान करे ॥ ७ ॥ इस प्रकार पञ्चभूतोंकी कल्पना करके प्रत्येकको अपने कारणरूपमें लय करे। पृथ्वीको जलमें लय करे (अर्थात् जलतत्त्वमें विलीन करनेकी कल्पना करे)। फिर अग्निको वायुमें लय करे अर्थात् अग्नितत्त्वको अपने कारणरूप 'वायुतत्त्व'में विलीन करनेका ध्यान करे ॥ ८ ॥ फिर आकाशको अहङ्कारमें लय करे (अर्थात् आकाशतत्त्वको अपने कारणरूप 'अहङ्कार'में विलय करनेकी कल्पना करे)। फिर अहङ्कारको 'महत्तत्त्व'में लय करे। महत्तत्त्वको अपने कारणरूप 'प्रकृति'में लय करे और प्रकृतिको अपने कारणरूप 'आत्मा'में लय करे ॥ ९ ॥ फिर अपनेको शुद्ध संविद् (ज्ञान) स्वरूप समझे। तदनन्तर अपने शरीरके अन्दर 'पापपुरुष'का ध्यान करे। यह पुरुष बायीं कोखमें रहता है, इसका रङ्ग एकदम काला है और इसका आकार अंगूठेकी नापका है ॥१०॥ इस पापपुरुषका सिर (प्रथम महापातक)

जेन युतं रक्तं स्मरेत्पावकमण्डलम् ॥ ५ ॥ हृदो भ्रूमध्यपर्यंतं वृत्तं षड्बिंदुलांछितम् ॥ यंबीजयुक्तं धूम्राभं नभस्वन्मंडलं स्मरेत् ॥६॥ आब्रह्मरंध्रभ्रूमध्याद्वृत्तं स्वच्छं मनोहरम् ॥ हंबीजयुक्तमाकाशमंडलं च विचिंतयेत् ॥ ७ ॥ एवंभूतानि संचिंत्य प्रत्येकं संविलापयेत् ॥ भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ नभस्युमुम् ॥ ८ ॥ विलाप्य खमहंकारे महत्तत्त्वेऽप्यहंकृतिम् ॥ महांतं प्रकृतौ मायामात्मनि प्रविलापयेत् ॥ ९ ॥ शुद्धसंविन्मयो भूत्वा चिंतयेत्पापपूरुषम् ॥ वामकुक्षिस्थितं कृष्णमंगुष्ठपरिमाणकम् ॥ १० ॥ ब्रह्महत्याशिरोयुक्तं कनकस्तेयबाहुकम् ॥ मदिरापानहृदयं गुरुतल्पकटीयुतम् ॥ ११ ॥ तत्संसर्गिपदद्वंद्वमुपपातकमस्तकम् ॥ खड्गचर्मधरं कृष्णमधोवक्त्रं सुदुःसहम् ॥ १२ ॥ वायुबीजं स्मरन्वायुं संपूर्यैनं विशोषयेत् ॥ स्वशरीरयुतं मंत्रो वह्निबीजेन निर्दहेत् ॥ १३ ॥ कुंभके परिजप्तेन ततः पापनरोद्भवम् ॥ बहिर्भस्म समुत्सार्य वायुं बीजेन रेचयेत् ॥ १४ ॥ सुधाबीजेन देहोत्थं भस्म संप्लावयेत्सुधीः ॥ भूबीजेन घनीकृत्य भस्म तत्कनकांडवत् ॥ १५ ॥ विशुद्धमुकुराकारं जपन्बीजं विहायसः ॥ मूर्धादिपादपर्यंतान्यं-

'ब्रह्महत्या' है, इसकी भुजा (द्वितीय महापातक) 'सुवर्णस्तेय' (सोना चुराना) है, इसका हृदय (तृतीय महापातक) 'मदिरापान' है, इसकी कमर (चतुर्थ महापातक) 'गुरुपत्नी-गमन' है ॥ ११ ॥ इसके दोनों पैर महापातकियोंके साथ उठने-बैठनेवाले लोग हैं। इसके पैरके अंगूठे आदि 'अन्य उपपातक' हैं। यह पापपुरुष ढाल और तलवार लिये हुए है। यह बड़े दुष्ट स्वभावका है। यह नीचे मुँह लटकाये रहता है और बड़ा भयानक है ॥ १२ ॥ फिर बाँयीं नाकसे भीतर श्वास खींचते (पूरक करते) हुए वायुबीजमन्त्र (यं) का स्मरण करे। फिर कुम्भक करे अर्थात् सारे शरीरको वायुसे भरकर पापपुरुषको सुखा दे। बादमें अग्निबीज मन्त्र (रं) का स्मरण करते हुए पापपुरुषको उसके शरीरके साथ ही साथ जला दे ॥ १३ ॥ फिर पापपुरुषके भस्मको वायुबीजमन्त्रका उच्चारण करके दाहिने नाकसे श्वास छोड़ते हुए (रेचक करते हुए) बाहर निकाल दे अर्थात् यह क्रिया रेचक प्राणायामसे करे ॥१४॥ तदनन्तर पापपुरुषके शरीरके भस्मको चन्द्रमाके अमृत-बीज (वं) के उच्चारण करनेसे उत्पन्न अमृतसे आप्लावित करे (अर्थात् ऐसी कल्पना करे कि मानो वह भस्म अमृतसे सनकर पिण्डके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आकारका बन गया है) फिर पृथ्वी बीज (लं) मन्त्रसे उस द्रवीभूत भस्मको घनीभूतकी तरह कल्पना करे। फिर उस घनीभूत पिण्डकी इस रूपमें भावना करे कि वह सोनेका अण्डा हो गया है ॥१५॥ फिर विहायस (आकाश) के बीजमन्त्र (हं) का उच्चारण करके उसके सुवर्ण अण्डकी एकदम साफ और निर्मल दर्पणकी तरह कल्पना करे। फिर साधकको चाहिए कि उसमें मस्तकसे लेकर चरण पर्यन्त सभी अङ्गोंकी मानसिक कल्पना करे ॥१६॥ पश्चात (जिस क्रमसे ब्रह्ममें पञ्चभूतोंका लय किया है, उसी क्रमसे) आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीको फिर चित् (ब्रह्म) से उत्पन्न करके उन्हें यथापूर्व स्थानोंमें स्थापित करे। तब 'सोऽहम्' मन्त्रसे जीवात्माको परमात्मासे पृथक् करके जीवात्माको हृदयकमलमें स्थापित करे ॥१७॥ (जीवात्माको परमात्मासे पृथक् करनेकी विधि) ऐसी कल्पना कीजिए कि कुण्डलिनी परमात्माके सम्पर्कसे अमृतमय बने हुए जीवात्माको पृथक् करके हृत्पुण्डरीकमें स्थापित करनेके बाद मूलाधारमें लौट आयी है। (फिर प्राणप्रतिष्ठा करे) ॥ १८ ॥ (प्राणशक्तिका ध्यान) फिर इस प्रकार प्राणशक्तिका ध्यान करे—एक रक्ताम्भोधि (लालसागर) है, उसमें एक जहाज है, उसमें एक लाल कमल खिला हुआ है। उस कमलपर आप प्राणशक्ति बैठी हुई हैं। आपके छ कर-कमलोंमें त्रिशूल, ईखका बना हुआ धनुष, गुण (पाश), अंकुश, पाँच तीर और

गानि रचयेत्सुधीः ॥ १६ ॥ आकाशादीनि भूतानि पुनरुत्पादयेच्चितः ॥ सोऽहंमंत्रेण चात्मानमानयेद्धृदयांबुजे ॥ १७ ॥ कुण्डलीं जीवमादाय परसंगात्सुधामयम् ॥ संस्थाप्य हृदयांभोजे मूलाधारगतां स्मरेत् ॥ १८ ॥ रक्तांभोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः शूलं कोदण्डमिक्षूद्भवमणिगुणमप्यंकुशं पंचबाणान् ॥ बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ॥ १९ ॥ एवं ध्यात्वा प्राणशक्तिं परमात्मस्वरूपिणीम् ॥ विभूतिधारणं कार्यं सर्वाधिकृतसिद्धये ॥ २० ॥ विभूतेर्विस्तरं वक्ष्ये धारणे च महाफलम् ॥ श्रुतिस्मृतिप्रमाणोक्तं भस्मधारणमुत्तमम् ॥ २१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इदं शिरोव्रतं चीर्णं विधिवद्यैर्द्विजातिभिः ॥ तेषामेव परां विद्यां वदेदज्ञानबाधिकाम् ॥ १ ॥ विधिवच्छ्रद्धया सार्धं न चीर्णं यैः शिरोव्रतम् ॥ श्रौतस्मार्तसमाचारस्तेषामनुपकारकः ॥ २ ॥ शिरोव्रतसमाचारादेव ब्रह्मादिदेवताः ॥ देवता अभवन्विद्वन् खलु नान्येन

असृक् (खून) से भरा हुआ कपाल (खोपड़ी) है। आप तीन नयनवाली हैं, आपके स्तन अत्यन्त पुष्ट हैं, आपके शरीरका रंग उदयकालीन सूर्यकी तरह लाल है। हे परा प्राणशक्ति ! आप हमें सुख प्रदान करें ॥१९॥ इस प्रकार परमात्मस्वरूपिणी प्राणशक्तिका ध्यान करे। तत्पश्चात् समस्त अधिकारांपर सफलता पानेके लिए विभूति लगानी चाहिए ॥ २० ॥ शरीरपर भस्म लगानेसे बड़ा फल होता है। वेद और धर्मशास्त्रके प्रमाणके अनुसार भस्म धारण करना बड़ा उत्तम माना गया है। अतः विभूति लगानेके बारेमें मैं विस्तारके साथ वर्णन करूँगा ॥ २१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

(शिरोव्रतमाहात्म्य) श्रीनारायणने कहा—जो द्विजाति इस शिरोव्रत अर्थात् मस्तकपर भस्म लगानेके नियमका पालन करें, उन्हींसे अविद्याको नष्ट करनेवाली परा विद्याकी बात कहनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मज्ञानके वे ही अधिकारी होते हैं ॥१॥ जो लोग विधिपूर्वक और श्रद्धा-भक्तिके साथ शिरोव्रतका पालन नहीं करते, उनके लिए वेदोक्त आचार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और धर्मशास्त्रोक्त सदाचार दोनों ही व्यर्थ हैं ॥२॥ हे ज्ञानी ! शिरोव्रतके सदाचारसे ही ब्रह्मा आदि देवता ब्रह्मत्व और देवत्वके अधिकारी हुए हैं, इसमें कोई अन्य कारण नहीं था ॥३॥ प्राचीनकालीन महर्षि शिरोव्रतके माहात्म्यको जानते थे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं समस्त देवता भस्म धारण करते थे ॥ ४ ॥ हे ऋषिवर ! जो लोग इस शिरोव्रतका विधिपूर्वक अनुष्ठान करते हैं, वे यदि समस्त पातकोंसे युक्त हों तो भी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥ अथर्ववेदके आरम्भमें इस व्रतका उल्लेख होनेसे इसका नाम 'शिरोव्रत' पड़ गया। शिरोव्रतके विषयमें अथर्ववेदके जाबालोपनिषद्में जितना वर्णन मिलता है, उतना वर्णन अन्यत्र बड़ा पुण्य होनेपर ही मिलता है ॥ ६ ॥ हे मुनिराज ! अथर्ववेदकी सभी शाखाओंमें इस व्रतका भिन्न-भिन्न नाम दिया गया है अर्थात् कहीं शिरोव्रत, कहीं पाशुपत व्रत, कहीं शिवव्रत आदि। किन्तु नामभेद होनेपर भी यही एक व्रत सभी शाखाओंमें पाया जाता है ॥ ७ ॥ सब शाखाओंमें बस एक शिवनामक सत्, चित्, घन अर्थात् घनीभूत सत्यज्ञान पदार्थ है और इस तत्त्वके ज्ञानका ही नाम 'शिरोव्रत' है ॥८॥ जो शिरोव्रत नहीं करते—वे कोई भी धर्म नहीं मानते। चाहे वे समस्त विद्याओंके पंडित ही क्यों न हों, फिर भी वे अधार्मिक ही हैं। इसमें संशय नहीं है ॥९॥ यह शिरोव्रत पापरूपी वनको जलानेके लिए दावाग्नि है और समस्त विद्याओं

हेतुना ॥ ३ ॥ शिरोव्रतस्य माहात्म्यं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवताः सकला अपि ॥ ४ ॥ सर्वपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः ॥ शिरोव्रतमिदं येन चरितं विधिवद्बुध ॥५॥ शिरोव्रतमिदं नाम शिरस्याथर्वणश्रुतेः ॥ यदुक्तं तद्धि नैवान्यत्तत्तु पुण्येन लभ्यते॥६॥ शाखाभेदेषु नामानि व्रतस्यास्य विभेदतः ॥ पठ्यंते मुनिशार्दूल शाखास्वेकव्रतं हि तत् ॥ ७ ॥ सर्वशाखासु वस्त्वेकं शिवाख्यं सत्यचिद्घनम् ॥ तथा तद्विषयं ज्ञानं तथैव च शिरोव्रतम् ॥ ८ ॥ शिरोव्रतविहीनस्तु सर्वधर्मविवर्जितः ॥ अपि सर्वासु विद्यासु सोऽधिकारी न संशयः ॥ ९ ॥ शिरोव्रतमिदं कार्यं पापकांतारदाहकम् ॥ साधनं सर्वविद्यानां यतस्तत्सम्यगाचरेत् ॥ १० ॥ श्रुतिराथर्वणी सूक्ष्मा सूक्ष्मार्थस्य प्रकाशिनी ॥ यदुवाच व्रतं प्रीत्या तन्नित्यं सम्यगाचरेत् ॥ ११ ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैः षड्भिः शुद्धेन भस्मना ॥ सर्वांगोद्धूलनं कुर्याच्छिरोव्रतसमाह्वयम् ॥ १२ ॥ एतच्छिरोव्रतं कुर्यात्संध्याकालेषु सादरम् ॥ यावद्विद्योदयस्तावत्तस्य विद्या खलूत्तमा ॥१३॥ द्वादशाब्दमथाब्दं वा तदर्धं च तदर्धकम् ॥ प्रकुर्या-

का साधन है। अतः इसका भली भाँति आचरण करना चाहिए ॥ १० ॥ आथर्वणी श्रुति अत्यन्त सूक्ष्म है और सूक्ष्म अर्थका प्रकाशन करनेवाली है। उसमें कहा है कि इस शिरोव्रतको बड़े प्रेमके साथ विधिके अनुसार प्रतिदिन करना चाहिए ॥११॥ 'अग्निरिति भस्म' (अग्नि भस्म है), 'जलमिति भस्म' (जल भस्म है), 'स्थलमिति भस्म' (पृथ्वी भस्म है), 'वायुरिति भस्म' (वायु भस्म है), 'व्योमेति भस्म' (आकाश भस्म है), सर्वं ह वा इदं भस्म' (समस्त दृश्य विश्व भस्म है), आथर्वणोक्त इन छ मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सर्वांगमें भस्म लगाना चाहिए। इसीका नाम शिरोव्रत है ॥ १२ ॥ प्रातःकाल सन्ध्या करते समय, मध्याह्नकालमें सन्ध्या करते समय और सायंकालको सन्ध्या करते समय इस शिरोव्रतको तबतक करते रहना चाहिए, जबतक ब्रह्मविद्या (ब्रह्मज्ञान) का उदय न हो। उसकी यह उत्तम विद्या है ॥ १३ ॥ यह शिरोव्रत करनेके पूर्व इस बातका सङ्कल्प करना चाहिए कि हम बारह वर्ष तक, एक वर्ष (बारह महीने) तक, छ महीने (बारह पक्ष) तक, तीन महीने (बारह सप्ताह) तक तथा कमसे कम बारह दिन तक इसे बराबर करते रहेंगे। शिरोव्रतके स्नानतकको जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुरु ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं देता, वह बड़ा निर्दयी गुरु होता है और उसकी ब्रह्मविद्याका नाश हो जाता है ॥१४॥१५॥ जिस प्रकार भगवान सर्वेश्वर (जगद्‌गुरु) परम कारुणिक हैं, उसी प्रकार ब्रह्मविद्याका उपदेश देनेवाला गुरु भी साक्षात् ऋषि, ब्रह्मा और करुणाका अवतार होता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य हजारों जन्ममें लगातार धर्माचरण करते हैं—उन्हींके हृदयमें शिरोव्रतके प्रति श्रद्धा होती है, दूसरेंके हृदयमें इसके प्रति कभी भी श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो सकती ॥१७॥ प्रत्युत उसके हृदयमें अज्ञानकी अधिकता होती है। अतः द्वेषभावनाके जाग्रत् होनेसे उसे आत्मबोध (ज्ञान) नहीं हो सकता ॥ १८॥ हे ब्रह्मन्! जो शिरोव्रतके स्नातक हैं—वे ही ब्रह्मविद्याके उपदेशके सच्चे अधिकारी हैं, दूसरे नहीं ॥ १९ ॥ वेदभगवान्‌का आदेश है कि जिन द्विजोंने आदरके साथ पाशुपत-व्रत (शिरोव्रत) का अनुष्ठान किया है—उन्हींको ब्रह्मविद्याका उपदेश देना चाहिए ॥ २० ॥ वेदान्तदर्शनका यह निर्णय है कि—इस शिरोव्रतके अनुष्ठानसे पशुका पशुत्व भी छूट जाता है। अतः उन पशुओंको मारकर भी ब्रह्मवेत्ता पापी नहीं हो सकता ॥२१॥ जाबालश्रुतिमें कहा गया है कि त्रिपुण्ड्र धारण करना ब्राह्मणका धर्म है।

द्वादशाहं वा संकल्पेन शिरोव्रतम् ॥ १४ ॥ शिरोव्रतेन यः स्नातस्तं तु नोपदिशेत्तु यः ॥ तस्य विद्या विनश्टा स्यान्निर्घृणः स गुरुः खलु ॥१५॥ ब्रह्मा विद्यागुरुः साक्षान्मुनिः कारुणिकः खलु ॥ यथा सर्वेश्वरः श्रीमान्मृदुः कारुणिकः खलु ॥ १६ ॥ जन्मांतरसहस्रेषु नरा ये धर्मचारिणः ॥ तेषामेव खलु श्रद्धा जायते न कदाचन ॥ १७ ॥ प्रत्युताज्ञानबाहुल्याद्द्वेष एव विजायते ॥ अतः प्रद्वेषयुक्तस्य न भवेदात्मवेदनम् ॥१८॥ ब्रह्मविद्योपदेशस्य साक्षादेवाधिकारिणः ॥ त एव नेतरे विद्वन्ये तु स्नाताः शिरोव्रतैः ॥ १९ ॥ व्रतं पाशुपतं चीर्णं यैर्द्विजैरादरेण तु ॥ तेषामेवोपदेष्टव्यमिति वेदानुशासनम् ॥ २० ॥ यः पशुस्तत्पशुत्वं च व्रतेनानेन संत्यजेत् ॥ तान्हत्वा न स पापीयान्भवेद्वेदांतनिश्चयः ॥ २१ ॥ त्रिपुण्ड्रधारणं प्रोक्तं जाबालैरादरेण तु ॥ त्रियंबकेन मंत्रेण सतारेण शिवेन च ॥ २२ ॥ त्रिपुंड्रं धारयेन्नित्यं गृहस्थाश्रममाश्रितः॥ ओंकारेण त्रिरुक्तेन सहंसेन त्रिपुंड्रकम् ॥ धारयेद्भिक्षुको नित्यमिति जाबालिकी श्रुतिः ॥ त्रियंबकेन मंत्रेण प्रणवेन शिवेन च ॥ २४ ॥ गृहस्थश्च वनस्थश्च धारयेच्च त्रिपुंड्रकम् ॥ मेधावीत्यादिना वाऽपि ब्रह्मचारी दिने दिने ॥ २५ ॥ भस्मना सजलेनापि धारयेच्च त्रिपुंड्रकम् ॥ ब्राह्मणो विधिनोत्पन्नस्त्रिपुण्ड्रभस्म-

तारकमन्त्र (ॐ) के साथ त्र्यम्बकमन्त्र (नमः शिवाय) का उच्चारण करके गृहस्थका कर्तव्य है कि वह प्रतिदिन त्रिपुण्ड्र लगावे। ॐकारके साथ हंसमन्त्रको तीन बार उच्चारण करके नित्य त्रिपुण्ड्र लगानेका भिक्षुक (संन्यासी) के लिए भी विधान है—ऐसा जाबालोपनिषद्‌में कहा गया है। शिवजीके प्रणव (ॐ ह्रौं) तथा त्र्यम्बकमन्त्रसे गृहस्थ तथा वानप्रस्थको चाहिए कि त्रिपुण्ड्र धारण करें। ब्रह्मचर्यका नियम पालन करनेवाले (ब्रह्मचारी) को चाहिए कि 'मेधावी' इत्यादि मन्त्रसे प्रतिदिन त्रिपुण्ड्र लगावे ॥ २२-२५ ॥ भस्ममें जल मिलाकर त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए। ब्राह्मणका कर्तव्य है कि विधिपूर्वक भस्मको अपने ललाटपर नित्य लगावे। भस्मकी तीन तिरछी रेखाको त्रिपुण्ड्र कहते हैं। (महादेवजीके सम्बन्धमें अर्थात् शिवजी अपने शरीरमें भस्म रमाये रहते हैं, इससे उनके अनुयायी शैवधर्मावलम्बियोंको भी भस्म धारण करना उचित है)। ब्राह्मणका धर्म है कि नित्य विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगायें ॥ २६ ॥ २७ ॥ क्योंकि ब्राह्मणोंके आदिकरण ब्रह्माजीने भस्मसे ही त्रिपुण्ड्र लगाया था। अतः उनके वंशधर ब्राह्मणोंके लिए सदा त्रिपुण्ड्र धारण करना आवश्यक हो जाता है ॥२८॥ वेद-प्रतिपादित भस्मसे (अर्थात् जिसके बारेमें अथर्ववेदमें विधान है) अपने शरीरमें त्रिपुण्ड्र लगाये और शिवलिङ्गकी पूजा करता रहे। भूलकर भी इन दोनों बातोंका परित्याग न करे ॥२९॥ हे महर्षि नारदजी! संन्यासीको चाहिए कि तारकमन्त्रके साथ त्र्यम्बकमन्त्र और प्रणव (ॐ) के साथ पञ्चाक्षरमन्त्र (नमः शिवाय) से अपने ललाटपर, हृदयपर और भुजदण्डोंपर नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ब्रह्मचारीको चाहिए कि 'त्र्यायुषेण जमदग्नेः०' इत्यादि मन्त्रोंसे अग्निहोत्रजन्य भस्मको छोड़कर गौण भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥३२॥ त्रैवर्णिकोंकी सेवामें तत्पर शूद्र भी भक्तिपूर्वक 'शिवाय नमः' मन्त्रसे मस्तकपर त्रिपुण्ड्र और सारे शरीरमें भस्म नित्य लगा सकता है ॥ ३३ ॥ हे सुव्रत!

नैव तु ॥२६॥ ललाटे धारयेन्नित्यं तिर्यग्भस्मावगुंठनम् ॥ (महादेवस्य सम्बन्धात्तद्धर्मेऽप्यस्ति संगतिः ॥) सम्यक् त्रिपुण्ड्रधर्मं च ब्राह्मणो नित्यमाचरेत ॥२७॥ आदिब्राह्मणभूतेन त्रिपुंड्रं भस्मना धृतम् ॥ यतोऽत एव विप्रस्तु त्रिपुण्ड्रं धारयेत्सदा ॥२८॥ भस्मना वेदसिद्धेन त्रिपुण्ड्रं देहगुण्ठनम् ॥ रुद्रलिंगार्चनं वाऽपि मोहतोऽपि च न त्यजेत् ॥२९॥ त्रियंबकेन मंत्रेण सतारेण तथैव च ॥ पंचाक्षरेण मंत्रेण प्रणवेन तथैव च ॥३०॥ ललाटे हृदये चैव दोर्द्वंद्वे च महामुने ॥ त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं संन्यासाश्रममाश्रितः ॥ ३१ ॥ त्रियायुषेण मंत्रेण मेधावीत्यादिनाऽथवा ॥ गौणेन भस्मना धार्यं त्रिपुण्ड्रं ब्रह्मचारिणा ॥३२॥ नमोंतेन शिवेनैव शूद्रः शुश्रूषणे रतः ॥ उद्धूलनं त्रिपुण्डं च नित्यं भक्त्या समाचरेत् ॥ ३३ ॥ अन्येषामपि सर्वेषां विना मंत्रेण सुव्रत ॥ उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च कर्तव्यं भक्तितो मुने ॥ ३४ ॥ भूत्यैवोद्धूलनं तिर्यक् त्रिपुण्डस्य च धारणम् ॥ वरेण्यं सर्वधर्मेभ्यस्तस्मान्नित्यं समाचरेत् ॥ ३५ ॥ भस्माग्निहोत्रजं वाऽथ विरजाग्निसमुद्भवम् ॥ आदरेण समादाय शुद्धे पात्रे निधाय तत् ॥ ३६ ॥ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च द्विराचम्य समाहितः ॥ गृहीत्वा भस्म तत्पंचब्रह्ममंत्रैः शनैः शनैः ॥३७॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा अग्निरित्यादिमंत्रितम् ॥ तैरेव सप्तभिर्मन्त्रैस्त्रिवारमभिमंत्रयेत् ॥ ३८ ॥ ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा ध्यात्वा मंत्रानुदीरयेत् ॥ सितेन भस्मना पूर्वं समुद्धूल्य शरीरकम् ॥ ३९ ॥

हे ऋषिवर! इनके अतिरिक्त सारी जनता भक्तिके साथ अमन्त्रक अर्थात् बिना मन्त्रका उच्चारण किये त्रिपुण्ड्र और सारे शरीरमें भस्ममें लगा सकती है ॥३४॥ सारे शरीरमें विभूति और मस्तकपर तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना समस्त धर्मोंमें श्रेष्ठ है। अतः सारे धर्मोंका आदितत्त्व होनेके कारण इसे प्रतिदिन धारण करना चाहिए ॥३५॥ अग्निहोत्र-जन्य भस्म और आगे चलकर दशम अध्यायमें वर्णित विरजाग्नि-जन्य भस्मको अत्यन्त आदरके साथ किसी शुद्ध बर्तनमें रखना चाहिए ॥ ३६ ॥ फिर हाथ-पैर धो तथा दो बार आचमन करके सावधानचित्तसे हाथमें भस्म लेकर धीरे-धीरे पाँच ब्रह्ममन्त्र (सद्योजातं प्रपद्यामि० आदि) का उच्चारण करे ॥ ३७ ॥ फिर तीन बार प्राणायाम करे। पश्चात् 'अग्निरिति भस्म', 'जलमिति भस्म' 'स्थलमिति भस्म', 'वायुरिति भस्म', 'व्योमेति भस्म', 'सर्वं ह वा इदं भस्म', इन छ आथर्वण मन्त्रोंमंसे बृहज्जाबालि-उपनिषद्का 'तेजो-भस्मेति' एक मन्त्र जोड़कर कुल सात मन्त्रोंसे तीन बार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसे अभिमन्त्रित करे ॥३८॥ तदनन्तर 'ॐ आपो ज्योति रसोऽमृतम्' इस मन्त्रसे शिवका ध्यान करके पूर्वोक्त सात मंत्रोंका उच्चारण करे और पहले सफेद तथा सूखे भस्मको सारे शरीरमें लगा ले ॥३९॥ इससे मनुष्य निष्पाप, रजोगुणरहित, सत्त्वगुणसम्पन्न और पुण्यात्मा हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। सूखा भस्म लगानेके बाद भगवान जगन्नाथ एवं जलाधिपति महाविष्णुका ध्यान करे ॥४०॥ फिर 'अग्निरिति भस्म०' आदि मन्त्रोंका उच्चारण करके उस भस्ममें जल मिलाये। पश्चात् साम्ब सदाशिवका ध्यान करके उसे अपने मस्तकपर लगा ले ॥ ४१ ॥ भस्ममें शिवजीकी भावना करके अर्थात् भस्मको साक्षात् शिवजी समझकर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमके लिए विहित मन्त्रसे ललाटपर, वक्षःस्थलपर और कन्धेपर त्रिपुण्ड्र लगाये ॥४२॥ अनुलोम-विलोम क्रमसे अर्थात् बीचवाली अंगुलीसे और उसके बगलवाली अंगुलीसे पहले बायीं ओरसे दाहिनी तरफ भस्मकी दो रेखा बनाये। फिर अंगूठे द्वारा दाहिनी ओरसे आरम्भ करके भस्मकी तीसरी रेखा बनावे। इस प्रकार प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न एवं संध्याके समय भक्तिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥४३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीतांबरा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

विपापो विरजो मर्त्यो जायते नात्र संशयः ॥ ततो ध्यात्वा महाविष्णुं जगन्नाथं जलाधिपम् ॥ ४० ॥ संयोज्य भस्मना तोयमग्निरित्यादिभिः पुनः ॥ विमृज्य सांबं ध्यात्वा च समुद्धूल्योर्ध्वमस्तकम् ॥ ४१ ॥ ते च भावनया ब्राह्मभूतेन सितभस्मना ॥ ललाटवक्षःस्कंधेषु स्वाश्रमोचितमंत्रतः ॥ ४२ ॥ मध्यमानामिकांगुष्ठैरनुलोमविलोमतः ॥ त्रिपुड्रं धारयेन्नित्यं त्रिकालेष्वपि भक्तितः ॥ ४३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे नारायणनारदसंवादे भस्मोद्धूलनविधिर्नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आग्नेयं गौणमज्ञानध्वंसकं ज्ञानसाधकम् ॥ गौणं नानाविधं विद्धि ब्रह्मन्ब्रह्मविदांवर ॥ १ ॥ अग्निहोत्राग्निजं तद्वद्विरजानलजं मुने ॥ औपासनसमुत्पन्नं समिदग्निसमुद्भवम् ॥ २ ॥ पचनाग्निसमुत्पन्नं दावानलसमुद्भवम् ॥ त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥ ३ ॥ विरजानलजं चैव धार्यं भस्म महामुने ॥ औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः ॥ ४ ॥ समिदग्निसमुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणा ॥ शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्निसमुद्भवम् ॥ ५ ॥ अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं दावानलोद्भवम् ॥ कालश्चित्रा पौर्णमासी देशः स्वीयः परि-

(शिरोव्रतविधि) श्रीनारायणने कहा—हे ब्रह्मन्! हे ब्रह्मवेत्ताओंमें अग्रगण्य! साधारण अग्निसे तैयार किया हुआ भस्म 'गौण' होता है। यह भी अज्ञानका नाश और ब्रह्मज्ञानदाता है। यह गौण भस्म भी कई तरहका होता है ॥ १ ॥ हे मुनि! अग्निहोत्र-जन्य भस्म, विरजाग्नि-जन्य भस्म, औपासनाग्नि (स्मार्ताग्नि तथा विवाहाग्नि) जन्य भस्म, समिधाग्निजन्य भस्म, रसोई बनानेसे तैयार भस्म और दावाग्निजन्य भस्म—इतने प्रकारका गौण भस्म होता है। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको अग्निहोत्रजन्य और विरजाग्निजन्य भस्म लगाना चाहिए। हे महर्षि! खास करके गृहस्थोंको उपासनाग्नि-जन्य भस्म लगाना चाहिए ॥ २–४ ॥ ब्रह्मचारीको समिधाग्नि-जन्य भस्म धारण करना चाहिए। शूद्रोंको श्रोत्रिय (वैदिक) ब्राह्मणके रसोईघरमें भोजन बनानेसे तैयार भस्म लगाना चाहिए ॥ ५ ॥ सर्वसाधारण जनताको दवाग्निजन्य भस्म लगाना चाहिए। अब मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विरजाग्नि-जन्य भस्मकी उत्पत्तिके बारेमें वर्णन करता हूँ—विरज (होम) के लिए चित्रा नक्षत्र सहित पूर्णिमा अर्थात् जिस पूर्णिमाको चन्द्रमाके साथ चित्राका सङ्गम होता है, वह उपयुक्त काल होता है और जहाँ अपना निवास-स्थल हो, वहीं उपयुक्त स्थान है ॥ ६ ॥ इसके अतिरिक्त खेत, बाग अथवा वन भी विरजाहोमके लिए शुभलक्षणसम्पन्न और प्रशस्त माना गया है। पूर्णिमाके पूर्व त्रयोदशीको भलीभाँति स्नान करनेके बाद सन्ध्या आदि नित्यकर्म करके अपने आचार्य (गुरु) की पूजा करे, उन्हें प्रणाम करे और फिर उनसे आज्ञा लेकर विशेष पूजा करे। फिर सफेद कपड़ा पहिन तथा यज्ञोपवीत बदलकर सफेद माला पहिने। उसके बाद चन्दनका अनुलेपन लगाकर कुशासनपर बैठे और हाथमें कुशा लेकर पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके तीन बार प्राणायाम करे। पश्चात् 'आत्मनिवेदन'की विधिसे देवाधिदेव महादेव और देवाधिदेवी महादेवीका मानसिक ध्यान करके उनसे अनुमति देनेके लिए कहे—॥ ८-१० ॥ हे देव! हे देवी! मैं इस शिरोव्रतको यावज्जीवन, बारह वर्षतक, छ वर्ष बारह (अयन) तक, तीन वर्ष तक (बारह महीने)

ग्रहः ॥ ६ ॥ क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तः शुभलक्षणः ॥ तत्र पूर्वत्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः ॥ ७ ॥ अनुज्ञाप्य स्वमाचार्यं संपूज्य प्रणि-
पत्य च ॥ पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लांबरधरः स्वयम् ॥ ८ ॥ शुद्धयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च
॥ ९ ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ ध्यात्वा देवं च देवीं च तद्विज्ञापनवर्त्मना ॥ १० ॥ व्रतमेतत्करोमीति भवेत्संकल्पदी-
क्षितः ॥ यावच्छरीरपातं वा द्वादशाब्दमथापि वा ॥ ११ ॥ तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा ॥ तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकमथापि वा
॥ १२ ॥ दिनद्वादशकं वाऽपि दिनषट्कमथापि वा ॥ तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसंकल्पनावधि ॥ १३ ॥ अग्निमाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात् ॥
हुत्वाऽऽज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाविधि ॥ १४ ॥ पूताहात्पुरतो भूयस्तत्त्वानां शुद्धिमुद्दिशन् ॥ जुहुयान्मूलमंत्रेण तै रेव समिदादिभिः
॥१५॥ तत्त्वान्येतानि मे देहे शुद्ध्यन्तामित्यनुस्मरन् ॥ पश्चाद्भूतादितन्मात्राः पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च ॥१६॥ ज्ञानकर्मविभेदेन पञ्च पञ्च विभागशः ॥
त्वगादिधातवः सप्त पञ्च प्राणादिवायवः ॥ १७ ॥ मनोबुद्धिरहंकारो गुणाः प्रकृतिपूरुषौ ॥ रागो विद्याकला चैव नियतिः काल एव च ॥ १८ ॥

तक, छ महीने (बारह पक्ष) तक, तीन महीने (बारह सप्ताह) तक, एक महीना तक, बारह दिन तक, छ दिन तक, तीन दिन तक या एक दिन करूँगा। इस प्रकार शिरोव्रतके लिए संकल्प करे ॥ ११-१३ ॥ फिर विरजा-होमके लिए विधिपूर्वक अपनी शाखाके गृह्यसूत्रकी विधिसे अग्न्याधान करे। तदनन्तर घी, समिधा और चरुद्रव्यसे विधि-विधानके साथ हवन करे ॥ १४ ॥ पवित्र दिनके पूर्व अर्थात् चतुर्दशीके दिन अपने तत्त्वोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे मूलमन्त्र द्वारा उन्हीं समिधा, घी और चरुद्रव्योंसे १०८ आहुतिका हवन करे ॥ १५ ॥ मेरे शरीरके दो तत्त्व शुद्ध हो रहे हैं—इस भावनासे अग्निमें आहुति दे और 'पृथिवी तत्त्वं मे शुध्यतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूय.सं स्वाहा' इस प्रकार निम्नाङ्कित एक-एक तत्त्वका नामोच्चारण करते हुए हवन करे। पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश), पञ्चतन्मात्रा (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द), पञ्चकर्मेन्द्रिय (हाथ, पैर, वाणी, पायु और उपस्थ), पञ्चज्ञानेन्द्रिय (आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा), पञ्चप्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) वायु, सात धातु (रस, रक्त,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य) मन, बुद्धि, अहंकार, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, भाग्य (दैव), काल (समय), माया (अविद्या), शुद्धविद्या, महेश्वर, शक्ति, शिवतत्त्व—ये क्रमशः तत्त्व कहे गये हैं ॥ १६-१९ ॥ विरजामन्त्रोंका उच्चारण करके आहुति देनेसे हवनकर्ता रजोगुणरहित एवं निष्पाप हो जाता है। पश्चात् गायका गोबर लाकर उसका पिण्ड बनाये। फिर उसे पञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) से अभिमन्त्रित करे ॥ २० ॥ तब अग्निमें रखकर उसकी रखवाली करे। उस दिन हविष्यान्न खाय। तदनन्तर चतुर्दशीके दिन प्रातःकाल पूर्वोक्त रीतिसे नित्यकर्म और पञ्चाक्षर मन्त्रसे हवन आदि करे ॥ २१ ॥ इस दिन उपवास करके सारा समय बिताये। फिर प्रातःकाल अर्थात् पर्व- (पूर्णिमा) के दिन नित्यकर्म करनेके बाद पञ्चाक्षर मन्त्रसे हवन करे ॥ २२ ॥ तब रुद्राग्निका विसर्जन करे और बड़ी सावधानीसे वह भस्म उठा ले। फिर जटाधारी होकर अथवा सिर मुड़ाकर स्नान करे। यदि लज्जा न लगती हो तो दिगम्बर साधु हो जाय। यदि लज्जा मालूम पड़ती हो तो चाहे काषायवसन (गेरुआ कपड़ा) धारण करे, मृगछाला आदि पहने

माया च शुद्धिविद्या च महेश्वरसदाशिवौ ॥ शक्तिश्च शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशो विदुः ॥ १९ ॥ मंत्रैस्तु विरजैर्हुत्वा होताऽसौ विरजो भवेत् ॥
अथ गोमयमादाय पिंडीकृत्याभिमंत्र्य च ॥ २० ॥ न्यस्याग्नौ तं च संरक्ष्य दिने तस्मिन्हविष्यभुक् ॥ प्रभाते च चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम्
॥ २१ ॥ तस्मिन्दिने निराहारः कालशेषं समापयेत् ॥ प्रातः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमावसानतः ॥ २२ ॥ उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृहीत्वा भस्म
यत्नतः ॥ ततश्च जटिलो मुंडः शिखैकजट एव च ॥ २३ ॥ भूत्वा स्नात्वा पुनर्वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगंबरः ॥ अन्यः काषायवसनश्चर्मचीरांबरोऽथ
वा ॥ २४ ॥ एकांबरो वल्कलवान्भवेद्दंडी च मेखली ॥ प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद्द्विराचम्यात्मनस्तनुम् ॥ २५ ॥ संकुलीकृत्य तद्भस्म विरजान-
लसंभवम् ॥ अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिराथर्वणैः क्रमात् ॥ २६ ॥ विमृज्यांगानि मूर्धादिचरणांतं च तैः स्पृशेत् ॥ ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धूल्य
च भस्मना ॥ २७ ॥ सर्वांगोद्धूलनं कुर्यात्प्रणवेन शिवेन वा ॥ ततश्च पुण्ड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम् ॥ २८ ॥ शिवभावं समागम्य शिवभावमथा-
चरेत् ॥ कुर्यात्त्रिसंध्यमप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम् ॥ २९ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव पशुत्वं विनिवर्तयेत् ॥ तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम्

या चिरकुट (लँगोटी) लपेट ले ॥२३।२४॥ एक कपड़ा पहिने या वल्कल (पेड़की छाल) धारण करे। फिर हाथमें दण्ड धारण करे और कमरमें मेखला पहिने। अपने दोनों पैर पखारकर हाथ धो डाले और दो बार आचमन करे। अपने शरीरपर एकत्र किये हुए विरजाग्नि-जन्य भस्मको पूर्वोक्त छ 'अग्निरिति भस्म' आदि आथर्वण मंत्रों द्वारा क्रमशः मस्तकसे लेकर चरण तक लगावे। इसी क्रमसे भस्म द्वारा उद्धूलन करे ॥२५-२७॥ फिर प्रणव (ॐ) मन्त्रसे या शिवमन्त्र (बम् बम्) से सारे शरीरमें भस्म लगाये। तदनन्तर 'त्र्यायुषं जमदग्नेः०' आदि मन्त्रोंसे त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥ २८ ॥ ऐसा करनेपर जीव शिव-स्वरूप हो जाता है। अतः उसे शिवजीकी तरह आचरण करना चाहिए। यह भावना प्रातःसन्ध्या, मध्याह्नसन्ध्या एवं सायं सन्ध्याके समय करे। इसीका नाम 'पाशुपत व्रत' है ॥२९॥ यह व्रत भाग तथा मोक्षको देनेवाला और पशुत्व (हिंसा-परदारागमन आदि) की भावनाको दूर करनेवाला है। अतः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस पाशुपत व्रतका अनुष्ठान करके क्रमशः पशुत्वभावनाका परित्याग कर दे ॥ ३० ॥ फिर सदाशिव महादेवकी लिङ्गमूर्तिकी पूजा आरम्भ करे। यह भस्मस्नान महापुण्यदायक और परम सुखकारी है ॥३१॥ क्योंकि भस्म लगानेसे आयु तथा बलकी वृद्धि होती है, शरीर सदा नीरोग रहता है, सौन्दर्य बढ़ता है और शरीरका पोषण होता है। अपनी जीवनरक्षाके निमित्त, अपनी कल्याणकामनाके निमित्त और सब तरहकी सम्पत्तिकी समृद्धिके लिए भस्म धारण करना चाहिये ॥३२॥ भस्म लगानेवाले मनुष्योंको महामारी होनेका भय नहीं रहता। यह भस्म तीन प्रकारका होता है–शान्तिक अर्थात् शान्तिदायक भस्म, पौष्टिक अर्थात् शरीरका पोषणकारक भस्म और कामद अर्थात् मनोवाञ्छाका पूर्तिकारक भस्म ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(भस्मके तीन प्रकार और उनकी विशेषता) नारदजीने पूछा–हे देवी! भस्म तीन तरहका कैसे हुआ? यह मुझे बतलाइए। क्योंकि इसे जाननेके लिए मुझे बड़ी उत्कण्ठा हो

॥ ३० ॥ पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिः सदाशिवः ॥ भस्मस्नानं महापुण्यं सर्वसौख्यकरं परम् ॥ ३१ ॥ आयुष्यं बलमारोग्यं श्रीपुष्टिवर्धनं यतः ॥ रक्षार्थं मंगलार्थं च सर्वसंपत्समृद्धये ॥ ३२ ॥ भस्मस्निग्धमनुष्याणां महामारीभयं न च ॥ शांतिकं पौष्टिकं भस्म कामदं च त्रिधा भवेत् ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

नारद उवाच ॥ त्रिविधत्वं कथं चास्य भस्मनः परिकीर्तितम् ॥ एतत्कथय मे देव महत्कौतूहलं मम ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ त्रिविधत्वं प्रवक्ष्यामि देवर्षे भस्मनः शृणु ॥ महापापक्षयकरं महाकीर्तिकरं परम् ॥ २ ॥ गोमयं योनिसंबद्धं तद्धस्तेनैव गृह्यते ॥ ब्राह्मैर्मंत्रैस्तु संदग्धं तच्छांतिकृदिहोच्यते ॥ ३ ॥ सावधानस्तु गृह्णीयान्नरो वै गोमयं तु तत् ॥ अन्तरिक्षे गृहीत्वा तत्षडंगेन दहेत्ततः ॥ ४ ॥ पौष्टिकं तत्समाख्यातं कामदं च ततः शृणुः ॥ प्रासादेन दहेदेतत्कामदं भस्म कीर्तितम् ॥५॥ प्रातरुत्थाय देवर्षे भस्मव्रतपरः शुचिः ॥ गवां गोष्ठेषु गत्वा तु नमस्कृत्य तु गोकुलम् ॥ ६ ॥ गवां वर्णानुरूपाणां गृह्णीयाद्गोमयं शुभम् ॥ ब्राह्मणस्य च गौः श्वेता रक्ता गौः क्षत्रियस्य च ॥ ७ ॥ पीतवर्णा तु वैश्यस्य कृष्णा शूद्रस्य

रही है ॥१॥ नारायणने कहा–हे देवर्षि! मैं तीनों प्रकारके भस्मोंका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिए। यह भारीसे भारी पापको भस्म कर देनेवाला और महाकीर्तिकारक है ॥ २ ॥ जो गोबर गायके पेटसे निकलने और जमीनपर गिरनेके पहिले हाथोंपर ही रोक लिया जाय, फिर उसे 'सद्योजातादि०' पञ्च ब्राह्ममन्त्रोंसे दग्ध करनेपर जो भस्म बनती है, उसे 'शान्तिक भस्म' कहते हैं ॥ ३ ॥ जो गोबर गायके पेटसे बाहर होकर जमीनपर गिरनेके पहिले ही बड़ी सावधानीके साथ हाथमें ले लिया जाय और षडङ्ग (षडक्षर) मंत्रसे भस्म बनायी जाय ॥ ४ ॥ उसे 'पौष्टिक भस्म' कहते हैं। अब कामद भस्मके बारेमें सुनिए। जो गोबर प्रासाद (हौम्) मंत्रसे दग्ध किया जाय, उसे 'कामद भस्म' कहते हैं ॥५॥ हे देवर्षि नारदजी! भस्मव्रतपरायण व्यक्तिको चाहिये कि (निम्नलिखित तिथिको) प्रातःकाल उठ तथा नित्य कर्मसे पवित्र होनेके बाद गायके बाड़ेमें जाकर सभी गौओंको नमस्कार करे ॥६॥ फिर गायके रंगके अनुसार अच्छा गोबर ले। ब्राह्मण सफेद रंगकी गायका और क्षत्रिय लाल रंगकी गायका गोबर ले ॥ ७ ॥ वैश्य पीले रंगकी गायका और शूद्र काली गायका गोबर ले। निर्मल अन्तःकरण-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वालेको चाहिए कि पूर्णिमा, अमावस्या या अष्टमीको प्रासाद (हौम्) मंत्रसे शुद्ध गोबर उठावे और हृदय (नमः) मन्त्रसे उसे पिण्डके आकारका बनावे ॥ ८ ॥ ९ ॥ फिर उस गोबरके पिण्डको पवित्र और सुन्दर जगहपर रखकर सूर्यकी किरणों (धूप)में खूब सुखावे। जब सूख जाय तो उसे धानकी भूसी या (गेहूँ-जौ आदिके) भूसेमें प्रासाद (हौम्) मंत्रसे डाल दे ॥१ ॥ बादमें दावाग्नि या वैदिक ब्राह्मणके घरसे आग लाकर उसमें शिवजीके (हौम्) मन्त्रसे उसे डाल दे ॥११॥ बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिए कि बड़ी निपुणताके साथ उस अग्निकुण्डमेंसे भस्म निकाले। एक नया बर्तन लेकर प्रासाद मन्त्र (हौम्) से उसके भीतर रख दे ॥१२॥ फिर शुद्धबुद्धिके व्यक्तिको चाहिए कि केवड़ा, गुलाब, खस, चन्दन और केसर आदि विविध प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंको 'सद्योजातं प्रपद्यामि०' मन्त्रसे उस बर्तनके भस्ममें मिला दे। पहले जलस्नान और उसके बाद भस्मस्नान करे ॥ १३ ॥ १४ ॥ यदि जलसे स्नान करनेकी

कथ्यते ॥ पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यां वा विशुद्धधीः ॥८॥ प्रासादेन तु मंत्रेण गृहीत्वा गोमयं शुभम् ॥ हृदयेन तु मंत्रेण पिंडीकृत्य च गोमयम् ॥९॥ रविरश्मिसुसंतप्तं शुचौ देशे मनोहरे ॥ तुषेण वा बुसैर्वापि प्रासादेन तु निक्षिपेत् ॥ १० ॥ अरण्युद्भवमग्निं वा श्रोत्रियागारजं तु वा ॥ तदग्नौ विन्यसेत्तं च शिवबीजेन मंत्रतः ॥११॥ गृह्णीयादथ तत्राग्निकुंडाद्भस्म विचक्षणः ॥ नवं पात्रं समादाय प्रासादेन तु निक्षिपेत् ॥१२॥ केतकी पाटली तद्वदुशीरं चन्दनं तथा ॥ नानासुगन्धिद्रव्याणि काश्मीरप्रभृतीनि च ॥ १३ ॥ निक्षिपेत्तत्र पात्रे तु सद्योमन्त्रेण शुद्धधीः ॥ जलस्नानं पुरा कृत्वा भस्मस्नानमतः परम् ॥ १४ ॥ जलस्नाने त्वशक्तश्च भस्मस्नानं समाचरेत् ॥ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च शिरश्चेशानमन्त्रतः ॥ १५ ॥ समुद्धूल्य ततः पश्चादास्यं तत्पुरुषेण तु ॥ अघोरेण तु हृदयं नाभिं वामेन तत्परम् ॥ १६ ॥ सद्योमंत्रेण सर्वाङ्गं समुद्धूल्य विचक्षणः ॥ पूर्ववस्त्रं परित्यज्य शुद्धवस्त्रं परिग्रहेत् ॥ १७ ॥ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च पश्चादाचमनं चरेत् ॥ भस्मनोद्धूलनाभावे त्रिपुण्ड्रं तु विधीयते ॥ १८ ॥ मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ॥ तर्जन्यनामिकामध्यैस्त्रिपुंड्रं च समाचरेत् ॥ १९ ॥ मूर्ध्नि चैव ललाटे च कर्णे कण्ठे तथैव च ॥ हृदये चैव बाह्वोश्च न्यासस्थानं हि चोच्यते ॥ २० ॥ पंचांगुल्यैर्न्यसेन्मूर्ध्नि प्रासादेन तु मन्त्रतः ॥ त्र्यंगुलैर्विन्यसेद्भाले शिरोमन्त्रेण देशिकः ॥ २१ ॥ सद्येन दक्षिणे कर्णे वामदेवेन

सामर्थ्य न हो तो भस्मस्नान ही करे। 'ईशानः सर्वविद्यानाम्०' मन्त्रसे हाथ-पैर और सिर धो ले ॥१५॥ इसके बाद 'तत्पुरुष' मन्त्रसे मुखपर भस्म लगावे। 'अघोर०' मन्त्रसे हृदयपर और 'वामदेव०' मन्त्रसे नाभिपर भस्म लगावे ॥१६॥ बुद्धिमान्को चाहिए कि 'सद्योजातं०' मन्त्रसे सर्वाङ्गमें भस्म धारण करे। पहलेके पहने हुए कपड़ोंको उतारकर शुद्ध कपड़ा पहने ॥१७॥ हाथ-पैर धोकर आचमन करे। सर्वाङ्गमें भस्म न लगा सके तो त्रिपुण्ड्र ही धारण करे ॥ १८ ॥ यदि दोपहरके पहले भस्म लगाना हो तो जलमें मिलाकर लगावे। बादमें (सन्ध्यासमय अथवा सूर्यके अस्त होनेपर ठण्डक होनेके कारण) सूखा भस्म तर्जनी, मध्यमा और अनामिका—इन तीन अंगुलियोंसे लगावे ॥१९॥ सिर, ललाट, कान, कण्ठ, हृदय और दोनों बाहु—ये ही त्रिपुण्ड्र लगानेके स्थान हैं ॥२०॥ सिरपर प्रासाद (हौम्) मन्त्रसे पाँचों उँगलियों द्वारा त्रिपुण्ड्र लगाये। तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अँगुलियों द्वारा शिरोमन्त्र (स्वाहा) से ललाट-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर त्रिपुण्ड् लगाये ॥ २१ ॥ 'सद्योजातं०' मन्त्रसे दाहिने कानपर, 'वामदेव०' मन्त्रसे बाएँ कानपर और 'अघोर०' मन्त्रसे कण्ठमें बीचवाली अंगुलीसे त्रिपुंड्र लगावे ॥ २२ ॥ 'नमः' मन्त्रसे हृदयमें तीनों अंगुलियोंसे और शिखामन्त्र (वषट्कार) से दाहिनी भुजापर त्रिपुण्ड्र लगाये ॥ २३ ॥ कवचमन्त्र (हुम्) से बायीं भुजापर तीनों अंगुलियोंसे और 'ईशानः सर्वदेवानाम्' मन्त्रसे नाभिपर बीचवाली अंगुलीसे त्रिपुण्ड् लगाये ॥ २४ ॥ त्रिपुण्ड्रकी तीन रेखा, ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। त्रिपुण्ड्रकी पहली रेखाका नाम 'ब्रह्मा', बीचवाली रेखाका नाम 'विष्णु' और तीसरी (अर्थात् सबसे ऊपरवाली) रेखाका नाम 'शिव' है ॥ २५ ॥ एक (मध्यमा) अंगुलीसे जो भस्म (नाभिपर) लगायी जाती है, वह रेखा देव 'ईश्वर' है। सिरमें 'ब्रह्मा', ललाटपर 'ईश्वर', कानोंमें 'अश्विनीकुमार' और गलेमें 'गणेश' का निवास रहता है। क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंको सर्वाङ्गमें भस्म न लगाना चाहिये ॥२६॥२७॥ समस्त अन्त्यजों (धोबी, चमार, नट आदि) को विना मन्त्रका उच्चारण किये भस्म लगाना चाहिए। (जिन मनुष्योंने गुरुमन्त्र न लिया हो, वे भी अमन्त्रक भस्म लगावें।) ॥ इति

वामतः ॥ अघोरेण तु कंठे च मध्यांगुल्या स्पृशेद्गुदम् ॥२२॥ हृदयं हृदयेनैव त्रिभिरंगुलिभिः स्पृशेत् ॥ विन्यसेद्दक्षिणे बाहौ शिखामंत्रेण देशिकः ॥ २३ ॥ वामबाहौ न्यसेद्धीमान्कवचेन त्रियङ्गुलैः ॥ मध्येन संस्पृशेन्नाभ्यामीशान इति मंत्रतः ॥ २४ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानास्तिस्रो रेखा इति स्मृताः ॥ आद्यो ब्रह्मा ततो विष्णुस्तदूर्ध्वं तु महेश्वरः ॥ २५ ॥ एकांगुलेन न्यस्तं यदीश्वरस्तत्र देवता ॥ शिरोमध्ये स्वयं ब्रह्मा ईश्वरस्तु ललाटके ॥ २६ ॥ कर्णयोरश्विनौ देवौ गणेशस्तु गले तथा ॥ क्षत्रियश्च तथा वैश्यः शूद्रश्चोद्धूलनं त्यजेत् ॥२७॥ सर्वेषामंत्यजातीनां मंत्रेण रहितं भवेत् ॥ (अदीक्षितमनुष्याणामपि मंत्रं विना भवेत्) ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देवर्षे शृणु तत्सर्वं भस्मोद्धूलनजं फलम् ॥ सरहस्यविधानं च सर्वकामफलप्रदम् ॥ १ ॥ कपिलायाः शकृत्स्वच्छं गृहीत्वा गगने पतत् ॥ न क्लिन्नं नापि कठिनं न दुर्गंधं न चोषितम् ॥ २ ॥ उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि ॥ पिंडीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमंत्रकम् ॥३॥ आदाय वाससाऽऽच्छाद्य भस्माधाने विनिक्षिपेत् ॥ सुकृते सुदृढे शुद्धे क्षालिते प्रोक्षिते शुभे ॥४॥ विन्यस्य मंत्री मंत्रेण

श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(भस्म धारण करनेका फल) श्रीनारायणने कहा—हे देवर्षि नारद ! अब रहस्य और विधानके साथ भस्म लगानेका फल सुनिये। यह सब कामनाओंका फल देनेवाला है ॥ १ ॥ कपिला गायका स्वच्छ गोबर जमीनपर गिरनेके पूर्व ही हाथोंपर रोक ले। वह गोबर न बहुत गीला हो और न बहुत सूखा ही हो। गोबरमेंसे न तो किसी तरहकी दुर्गन्ध निकलती हो और न बासी हो ॥ २ ॥ यदि गोबर जमीनपर गिर ही पड़ा हो तो नीचे और ऊपरकी ओरका हिस्सा छोड़कर बीचका ले लेना चाहिए। फिर उस पिण्डके आकारका बनाकर मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके शिवाग्निमें डाल दे ॥ ३ ॥ जल जानेपर उस भस्मको निकाल तथा किसी कपड़ेसे छानकर बर्तनमें रख दे। अत्यन्त सुन्दर, मजबूत,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साफ, माँजे हुए, जल छिड़के गये और शुभ बर्तनमें मन्त्रवेत्ता मूलमन्त्र पढ़कर वह भस्म रक्खे। किसी (सोना, चाँदी, ताँबा आदि) धातु या लकड़ीका, मिट्टीका, कपड़ेका (बटुआ या थैली) अथवा किसी दूसरे शुद्ध पदार्थका भस्मपात्र बनवाये। अथवा अत्यन्त शुद्ध रेशमी बटुआमें भस्म रक्खे ॥४–६॥ प्रस्थान करते (अर्थात् परदेश जाते) समय या तो स्वयं भस्म ले जाय या अपने साथ जानेवाले विश्वासपात्र नौकरको दे दे, लेकिन उसे न किसी अनुपयुक्त व्यक्तिके हाथमें दे और न अपवित्र स्थानमें रक्खे ॥ ७ ॥ भस्मको कभी भी नीच अङ्ग (पैर आदिसे) छुए न, न लात मारे और न उसे लाँघे। उस नौकरके हाथसे लेकर मन्त्र पढ़नेके बाद पवित्र करके वह भस्म लगाये ॥ ८ ॥ स्मृतिग्रन्थोंमें भस्म धारण करनेको जैसी विधि बतलायी गयी है, उसे ही मैंने बतलाया है। जिसके अनुसार आचरण करनेपर मनुष्य शिवजीके समान हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ जिस भस्मको शिवजीके सामने वैदिक शिवभक्त बनाये, उसे परम भक्तिके साथ ग्रहण करना चाहिए। अन्य लोगों अर्थात् तांत्रिकोंको चाहिए कि वे उसे माँगकर उसकी पूजा करें ॥१०॥ लेकिन जिस भस्मको तांत्रिक

पात्रे भस्म विनिक्षिपेत् ॥ तैजसं दारवं चाथ मृन्मयं चैलमेव च ॥५॥ अन्यद्वा शोभनं शुद्धं भस्माधारं प्रकल्पयेत् ॥ क्षौमे चैवातिशुद्धे वा घनवद्भस्म निक्षिपेत् ॥६॥ प्रस्थितो भस्म गृह्णीयात्स्वयं चानुचरोऽपि वा ॥ न चायुक्तकरे दद्यान्न चाशुचितले क्षिपेत् ॥७॥ न संस्पृशेत्तु नीचांगैर्न क्षिपेन्न च लंघयेत् ॥ तस्माद्भसितमादाय विनियुंजीत मंत्रितम् ॥ ८ ॥ विभूतिधारणविधिः स्मृतिप्रोक्तो मयेरितः ॥ यदीयाचरणेनैव शिवतुल्यो न संशयः ॥ ९ ॥ शैवैः संपादितं भस्म वैदिकैः शिवसन्निधौ ॥ भक्त्या परमया ग्राह्यं प्रार्थयित्वा तु पूजयेत् ॥ १० ॥ तंत्रोक्तवर्त्मना सिद्धं भस्म तांत्रिकपूजकैः ॥ यत्र कुत्रापि दत्तं चेत्तद्ग्राह्यं नैव वैदिकैः ॥ ११ ॥ शूद्रैः कापालिकैर्वाथ पाखंडैरपरैस्तु तत् ॥ त्रिपुण्ड्रं धारयेद्भक्त्या मनसाऽपि न लंघयेत् ॥ १२ ॥ श्रुत्वा विधीयते यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत् ॥ त्रिपुण्ड्रधारणं भक्त्या तथा देहावगुंठनम् ॥ १३ ॥ द्विजः कुर्याद्धि मंत्रेण तत्त्यागी पतितो भवेत् ॥ उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च भक्त्या नैवाचरन्ति ये ॥ १४ ॥ तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ येन भस्मोक्तमार्गेण धृतं न मुनिपुंगव ॥ १५ ॥ तस्य विद्धि मुने जन्म निष्फलं सौकरं यथा ॥ येषां वपुर्मनुष्याणां त्रिपुण्ड्रेण विना स्थितम् ॥ १६ ॥

लोग तान्त्रिक-प्रणालीसे तैयार करें, उसे तान्त्रिक तथा अन्य लोग ले सकते हैं। किन्तु वैदिक ब्राह्मणको वह भस्म नहीं लगानी चाहिए ॥ ११ ॥ शूद्रों कापालिकों या अन्य पाखण्डी लोगोंसे भी भस्म नहीं लेनी चाहिए। बड़ी भक्तिके साथ सबको त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए और 'कर्मणा' तथा 'वाचा'की कौन कहे, 'मनसा' (चित्तसे) भी भस्मका तिरस्कार नहीं करना चाहिए ॥१२॥ क्योंकि श्रुति (वेद) में इसका विधान बतलाकर कहा गया है कि भस्मका परित्याग करनेसे वह पतित हो जाता है। भक्तिपूर्वक मंत्र पढ़कर त्रिपुण्ड्र धारण करना और देहोद्धूलन करना (भस्म रमाना) द्विजोंका कर्तव्य है। इसके परित्यागसे वे पतित हो जाते हैं। जो लोग भक्तिपूर्वक न तो सर्वांगमें भस्म लगाते हैं और न त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ उनको करोड़ों जन्ममें भी संसारसे छुटकारा नहीं मिलता। हे नारदजी! जो विहित मार्गसे विधिपूर्वक भस्म नहीं धारण करते ॥ १५ ॥ उनका जन्म सूअरके जन्मका तरह व्यर्थ समझिए। हे मुनि! जिस व्यक्तिका शरीर बिना त्रिपुण्ड्रके रहता है। उसके शरीरको श्मशानसदृश समझना चाहिए। पुण्यात्मा व्यक्ति उसकी ओर आँख उठाकर भी न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखे। भस्मरहित मस्तकको धिकार है—धिकार है। जहाँ एक भी शिवमन्दिर न हो, उस गाँवको धिकार है। जो शिवार्चन नहीं करता, उसके जन्मको धिकार है। उस विद्याको भी धिकार है कि जिससे शिवतत्त्वका बोध न हो। जो लोग त्रिपुण्ड्रकी निन्दा करते हैं, वे वस्तुतः शिवजीकी निन्दा करते हैं ॥१६-१८॥ जो भक्तिके साथ त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे मानों अपने भालपर शिवजीको धारण करते हैं। जिस तरह अग्निहोत्रके विना ब्राह्मणकी शोभा नहीं होती ॥१९॥ उसी प्रकार विना भस्म लगाये जो लोग समस्त साधनों (उपचारों) के साथ शिवार्चन करते हैं, उनकी शोभा नहीं होती। जो लोग अपने शरीरपर श्रद्धाके साथ भस्म नहीं लगाते और मस्तकपर त्रिपुण्ड्र नहीं धारण करते ॥ २० ॥ उनका पहिलेका सब किया-कराया उल्टा हो जाता है, अर्थात् सुकर्म कुकर्मके रूपमें परिणत हो जाता है। वेदमंत्र पढ़कर भस्म द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करना धार्मिक कृत्य है ॥ २१ ॥ विना वैदिक मन्त्रके त्रिपुण्ड्र धारण करना वैदिक आचार और स्मार्त आचार दोनोंके लिए अनर्थकारी होता है। जो त्रिपुण्ड्र नहीं लगाता, उसका किया न कियाके बराबर और सुना हुआ वेदवाक्य न सुनेके बराबर हो जाता है ॥२२॥ उसका

श्मशानसदृशं तत्स्यान्न प्रेक्ष्यं पुण्यकृज्जनैः ॥ धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम् ॥ १७ ॥ धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम् ॥ त्रिपुण्ड्रं ये विनिंदंति निन्दन्ति शिवमेव ते ॥ १८ ॥ धारयन्ति च ये भक्त्या धारयन्ति तमेव ते ॥ तथा कृशानुरहितो भूधरो न विराजते ॥ १६ ॥ अशेषसाधनेऽप्येवं भस्महीनं शिवार्चनम् ॥ उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरंति ये ॥ २० ॥ तैः पूर्वाचरितं सर्वं विपरीतं भवेदपि ॥ भस्मना वेदमंत्रेण त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ॥ २१ ॥ विना वेदोचिताचारं स्मार्तस्यानर्थकारणम् ॥ कृतं स्यादकृतं तेन श्रुतमप्यश्रुतं भवेत् ॥ २२ ॥ अधीतमनधीतं च त्रिपुण्ड्रं यो न धारयेत् ॥ वृथा यज्ञा वृथा दानं वृथा वेदा वृथा तपः ॥ २३ ॥ वृथा व्रतोपवासेन त्रिपुण्ड्रं यो न धारयेत् ॥ भस्मधारणकं त्यक्त्वा मुक्तिमिच्छति यः पुमान् ॥ २४ ॥ विषपानेन नित्यत्वं कुरुते ह्यात्मनो हि सः ॥ स्रष्टा सृष्टिच्छलेनाह त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ॥ २५ ॥ ससर्ज सललाटं हि तिर्यगूर्ध्वं न वर्तुलम् ॥ तिर्यग्रेखाः प्रदृश्यन्ते ललाटे सर्वदेहिनाम् ॥ २६ ॥ तथापि मानवा मूर्खा न कुर्वंति त्रिपुण्ड्रकम् ॥ न तद्ध्यानं न तन्मोक्षं न तज्ज्ञानं न तत्तपः ॥ २७ ॥ विना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं च विप्रेण यदनुष्ठितम् ॥ वेदस्याध्ययने शूद्रो

वेदाध्ययन अध्ययन न कियेके बराबर हो जाता है। जो व्यक्ति त्रिपुण्ड्र नहीं धारण करता, उसका वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, तप, व्रत और उपवास—ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं। जिस पुरुषकी यह धारणा हो कि विना भस्म धारण किये मुक्ति मिल जायगी ॥२३॥२४॥ वह धारणा ऐसी ही है, जैसे कोई जहर खाकर यह समझ ले कि वह अमर होकर जीवित रहेगा। सृष्टिकर्ताने मस्तककी सृष्टिके बहाने ही मानों त्रिपुण्ड्रका धारण करना बतला दिया है ॥ २५ ॥ क्योंकि उन्होंने मस्तकको न एकदम दण्डाकार लम्बा और न एकदम गोल बनाया, बल्कि कुछ तिरछा बनाया है। यही कारण है कि समस्त देहधारियोंके ललाटपर तिरछी रेखाएँ स्पष्टतः दिखायी पड़ती हैं ॥ २६ ॥ इतना होनेपर भी मूर्ख जनता त्रिपुण्ड्र नहीं धारण करती। उस ब्राह्मणको न ध्यानका फल हो सकता है, न मोक्ष मिल सकता है, न ज्ञान-प्राप्ति हो सकती है और न तपस्याका फल ही मिल सकता है ॥ २७ ॥ जो ब्राह्मण विना तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाये उपर्युक्त कर्म करता है तो जैसे शूद्र वेदाध्ययनका अधिकारी नहीं होता, उसी प्रकार विना त्रिपुण्ड्र लगाये ब्राह्मण शिवजीकी पूजा करनेका अधिकारी नहीं होता। पहले पूर्वकी ओर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुँह करके पूर्ववत् हाथ-पैर धोकर आचमन करे ॥ २८ ॥ ९ ॥ फिर क्रमशः प्राणायाम और सङ्कल्प करनेके बाद भस्मस्नान करे। अग्निहोत्रजन्य शुद्ध भस्म लेकर 'ईशान०' मन्त्रसे अपने मस्तकपर भस्म धारण करे। फिर 'तत्पुरुष०' मन्त्रसे चेहरेपर भस्म लगावे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ 'अघोर०' मन्त्रसे हृदयपर, 'वामदेव०' मन्त्रसे गुह्यस्थलपर और 'सद्योजात०' मन्त्रसे अपने दोनों पैरोंपर भस्म लगावे ॥ ३२ ॥ फिर प्रणवमन्त्र (ॐ) से सर्वाङ्गमें भस्म धारण करे। इसे महर्षि लोग 'आग्नेय स्नान' कहते हैं ॥३३॥ बुद्धिमान्को चाहिए कि समस्त नित्य-नैमित्तिक तथा काम्य कर्मोंमें सफलता प्राप्तिके निमित्त इस आग्नेय स्नानको सबसे पहले करे। फिर हाथ-पैर धोकर विधिपूर्वक जल-स्पर्श (आचमन) करके उपर्युक्त विधिसे ललाटपर, हृदयपर और गलेमें, पूर्वोक्त (सद्योजातादि) पञ्च ब्रह्ममन्त्रोंसे भस्म लगावे और त्रिपुण्ड्र धारण करे तो वह वैदिक कर्मोंको करनेके लिए पवित्र (अधिकारी) हो जाता है। शूद्रोंको कभी

नाधिकारी यथा भवेत् ॥ २८ ॥ त्रिपुण्ड्रेण विना विप्रो नाधिकारी शिवार्चने ॥ प्राङ्मुखश्चरणौ हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्ववत् ॥ २९ ॥ प्राणानायम्य संकल्प्य भस्मस्नानं समाचरेत् ॥ आदाय भसितं शुद्धमग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥ ३० ॥ ईशानेन तु मंत्रेण स्वमूर्धनि विनिक्षिपेत् ॥ तत आदाय तद्भस्म मुखे च पुरुषेण तु ॥ ३१ ॥ अघोराख्येण हृदये गुह्ये वामाह्वयेन च ॥ सद्योजाताभिधानेन भस्म पादद्वये क्षिपेत् ॥३२॥ सर्वांगं प्रणवेनैव मंत्रेणोद्धूलनं ततः ॥ एतदाग्नेयकं स्नानमुदितं परमर्षिभिः ॥ ३३ ॥ सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थं कुर्यादादाविदं बुधः ॥ ततः प्रक्षाल्य हस्तादीनुपस्पृश्य यथाविधि ॥ ३४ ॥ तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं विधिना ललाटे हृदये गले ॥ पंचभिर्ब्रह्मभिर्वापि कृतेन भसितेन च ॥ ३५ ॥ धृतमेतत्त्रिपुण्ड्रं स्यात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥ शूद्रैरंत्यजहस्तस्थं न धार्यं भस्म च क्वचित् ॥ ३६ ॥ भस्मना साग्निहोत्रेण लिप्तः कर्म समाचरेत् ॥ अन्यथा सर्वकर्माणि न फलंति कदाचन ॥ ३७ ॥ सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थं देवादिपूजनम् ॥ तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुंड्रं न धारयेत् ॥ ३८ ॥ त्रिपुण्ड्रधृग्विप्रवरो यो रुद्राक्षधरः शुचिः ॥ स हंति रोगदुरितव्याधिदुर्भिक्षतस्करान् ॥ ३९ ॥ समाप्नोति परं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः ॥ स पंक्तिपावनः श्राद्धे पूज्यो विप्रैः सुरैरपि ॥ ४० ॥ श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ॥ धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ॥ ४१ ॥ भस्मधारणमाहात्म्यं भूयोऽपि कथयानि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

भी अन्त्यजके हाथकी भस्म न लगानी चाहिए ॥३४-३६॥ अग्निहोत्रजन्य भस्मको सर्वाङ्गमें लगाकर ही कर्म करे। अन्यथा समस्त कर्मोंका कुछ भी फल नहीं मिलता ॥३७॥ त्रिपुण्ड्र न धारण करनेवालेके सत्य, पवित्रता, जप, होम, तीर्थ और देवपूजन आदि समस्त कर्म व्यर्थ हो जाते हैं ॥३८॥ जो ब्राह्मण त्रिपुण्ड्रधारी और रुद्राक्षधारी होकर सदा पवित्र बने रहते हैं, उन्हें रोग, पाप, व्याधि, दुर्भिक्ष और चोर-डाकूका भय नहीं सता सकता ॥ ३९ ॥ अन्तमें उन्हें उस परमपदकी प्राप्ति होती है, जहाँसे पुनः लौटकर आना नहीं होता अर्थात् मोक्ष हो जाता है। वही श्राद्धमें पंक्तिपावन ब्राह्मण है तथा अन्य ब्राह्मणों एवं देवताओंसे पूजनीय है ॥४०॥ जो मनुष्य श्राद्धमें, यज्ञमें, जपमें, होममें, बलिवैश्वदेवमें और पूजा करते समय त्रिपुण्ड्र धारण करके पवित्र होते हैं, वे मृत्युको भी जीत लेते हैं ॥४१॥ अब मैं आपका भस्म धारण करनेका और भी माहात्म्य बतलाता हूँ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(भस्मधारणकी फलश्रुति) श्रीनारायणने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! भस्म धारण करनेसे पञ्च महापातक तथा अन्य उपपातक नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ—इसमें रंचमात्र भी असत्य नहीं है ॥१॥ जिसने केवल भस्म ही धारण किया हो, उसके पुण्यका फल सुनिए । भस्म धारण करनेसे यति (संन्यासी) लोगोंको ब्रह्मज्ञान हो जाता है और वानप्रस्थ लोगोंको संसारसे विरक्ति होती है । हे मुने ! गृहस्थके धर्मको वृद्धि होती है और ब्रह्मचारियोंको वेदाध्ययनमें सफलता मिलती है ॥२॥३॥ शूद्रोंको नित्य पुण्यदायक है और दूसरे लोगोंके पापको नष्ट कर देता है। भस्म लगाना और तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सब जीवोंके लिए कल्याणकारी है—यह वेदके उपनिषदोंका कथन है । सारे शरीरमें भस्म धारण करना और तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना सब मनुष्योंके लिए यज्ञ करनेके समान फलदायक है—ऐसा वेदमें लिखा है । भस्मोद्धूलन करना और टेढ़ा त्रिपुण्ड्र लगाना ॥४-·॥ यह सब (शैव-पाशुपत आदि) धर्मोंमें सामान्य

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ महापातकसंघाश्च पातकान्यपराण्यपि ॥ नश्यन्ति मुनिशार्दूल सत्यं सत्यं न चान्यथा ॥ १ ॥ एकं भस्म धृतं येन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ यतीनां ज्ञानदं प्रोक्तं वनस्थानां विरक्तिदम् ॥ २ ॥ गृहस्थानां मुने तद्वद्धर्मवृद्धिकरं तथा ॥ ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां स्वाध्यायप्रदमेव च ॥ ३ ॥ शूद्राणां पुण्यदं नित्यमन्येषां पापनाशनम् ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ४ ॥ रक्षार्थं सर्वभूतानां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ५ ॥ यज्ञत्वेनैव सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ६ ॥ सर्वधर्मतया तेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ७ ॥ माहेश्वराणां लिंगार्थं विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ८ ॥ विज्ञानार्थं च सर्वेषां विधत्ते वैदिको श्रुतिः ॥ शिवेन विष्णुना चैव ब्रह्मणा वज्रिणा तथा ॥ ९ ॥ हिरण्यगर्भेण तदवतारैर्वरुणादिभिः ॥ देवताभिर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मकम् ॥ १० ॥ उमादेव्या च लक्ष्म्या च वाचा चान्याभिरास्तिकैः ॥ सर्वस्त्रीभिर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ॥ ११ ॥ यक्षराक्षसगंधर्वसिद्धविद्याधरादिभिः ॥ मुनिभिश्च धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ॥ १२ ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च संकरैः ॥ अपभ्रंशैर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ॥ १३ ॥ उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च यैः समाचरितं मुदा ॥ त एव शिष्टा विद्वांसो नेतरे मुनिपुंगव ॥ १४ ॥ शिवलिंगं मणिः सख्यं मंत्रः पञ्चाक्षरस्तथा ॥ विभूतिरौषधं

नियम है—ऐसा उपनिषदोंका कथन है । भस्म रमाना और तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना यह माहेश्वर (शैव) लोगोंका चिह्न है, ऐसी अथर्ववेदकी श्रुति है । भस्म धारण करना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना—यह सबकी पहचानके लिए है, ऐसा जाबाल उपनिषद्‌का कथन है । शिवजीने, विष्णुभगवान्‌ने, ब्रह्माजीने, इन्द्रने, हिरण्यगर्भ और उनके अवतारोंने, वरुण तथा अन्य देवताओंने भस्म और त्रिपुण्ड्र धारण किया था ॥ ७-१० ॥ उमादेवी, लक्ष्मीजी, सरस्वतीजी तथा अन्य आस्तिक देवाङ्गनाओंने भी भस्म और त्रिपुड्र लगाया था ॥११॥ यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर और मुनि लोगोंने भी भस्म तथा त्रिपुण्ड्र धारण किया था ॥१२॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और मिश्रित वर्णकी सन्तान शबर आदि वनचरोंने भी भस्म और त्रिपुण्ड्र लगाया था ॥ १३ ॥ हे मुनिवर नारदजी ! जो मुदित मनसे भस्म और त्रिपुण्ड्र लगाते हैं, वे ही शिष्ट एवं विद्वान् हैं । दूसरे लोग शिष्ट नहीं कहे जा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकते ॥१४॥ जैसे परायी नारीको वशमें करनेके लिए गलेमें बहुमूल्य आभूषण पहिना जाता है, उससे मेल-जोल बढ़ाया जाता है, बाजीकरण औषधका प्रयोग किया जाता है या वशीकरणकी गोली खिलायी जाती है, उसी प्रकार मुक्तिरूपिणी नारीको अपने वशमें करनेके लिए शिवलिङ्गरूपी बहुमूल्य मणि, पञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) रूपी मेल-जोल और विभूति (भस्म) रूपी वशीकरण औषधि है ॥१५॥ जहाँ भस्म धारण किये मूर्ख या पण्डित कोई भी भोजन करता है, वहाँ मानो साक्षात् वृषध्वज भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ भोजन करते हैं ॥१६॥ जो मनुष्य स्वयं भस्म न लगाये रहनेपर भी सर्वाङ्गमें भस्म लगाये हुए किसी व्यक्तिके साथ आते हैं तो वे सब तरहके पापसे युक्त होनेपर भी शीघ्र ही पूजनीय हो जाते हैं ॥ १७ ॥ जो मनुष्य सर्वाङ्गमें भस्म धारण किये हुए किसी व्यक्तिकी प्रशंसा करते हैं, वे सब पापोंसे छूटकर शीघ्र ही प्रतिष्ठा पाते हैं ॥१८॥ जो लोग केवल त्रिपुण्ड्रधारीको भिक्षा देते हैं, उन्होंने मानों सारा वेद पढ़ लिया, समस्त श्रुतियोंको सुन लिया और समस्त धार्मिक कृत्योंको कर लिया ॥१९॥ यदि कोई ब्राह्मण अपने मस्तकपर त्रिपुण्ड्र और शरीरपर भस्म लगाकर कीकट

पुंसां मुक्तिस्त्रीवश्यकर्मणि ॥ १५ ॥ भुनक्ति यत्र भस्मांगो मूर्खो वा पंडितोऽपि वा ॥ तत्र भुंक्ते महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ॥ १६ ॥ भस्मसंछन्नसर्वांगमनुगच्छति यः पुमान् ॥ सर्वपातकयुक्तोऽपि पूजितो मानवोऽचिरात् ॥ १७ ॥ भस्मसंछन्नसर्वाङ्गं यः स्तौति श्रद्धया सह ॥ सर्वपातकयुक्तोऽपि पूज्यते मानवोऽचिरात् ॥ १८ ॥ त्रिपुंड्रधारिणे भिक्षाप्रदानेन हि केवलम् ॥ तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ॥ १९ ॥ येन विप्रेण शिरसि त्रिपुंड्रं भस्मना कृतम् ॥ कीकटेष्वपि देशेषु यत्र भूतिविभूषणः ॥ २० ॥ मानवस्तु वसेन्नित्यं काशीक्षेत्रसमं हि तत् ॥ दुःशीलः शीलयुक्तो वा योगयुक्तोऽप्यलक्षणः ॥ २१ ॥ भूतिशासनयुक्तो वा स पूज्यो मम पुत्रवत् ॥ छद्मनापि चरेद्यो हि भूतिशासनमैश्वरम् ॥ २२ ॥ सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां यज्ञशतैरपि ॥ संपर्काल्लीलया वापि भयाद्वा धारयेत्तु यः ॥ २३ ॥ विधियुक्तो विभूतिं तु स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥ शिवस्य विष्णोर्देवानां ब्रह्मणस्तृप्तिकारणम् ॥ २४ ॥ पार्वत्याश्च महालक्ष्म्या भारत्यास्तृप्तिकारणम् ॥ न दानेन न यज्ञेन न तपोभिः सुदुर्लभैः ॥ २५ ॥ न तीर्थयात्रया पुण्यं त्रिपुंड्रेण च लभ्यते ॥ दानं यज्ञाश्च धर्माश्च तीर्थयात्राश्च नारद ॥ २६ ॥ ध्यानं तपस्त्रिपुंड्रस्य कलां

(मगध) देशमें रहता हो तो भी वह विभूति-विभूषित मानव मानों काशीपुरीमें ही निवास करता है। चाहे कोई दुराचारी हो या सदाचारी, योगी हो या भोगी, यदि वह भस्म धारण करता है तो मेरे पुत्र (ब्रह्मा) के समान पूजनीय है। जो जनताको धोखा देनेके लिए (ढोंगसे) शैवभस्म धारण करता है ॥ २०–२२ ॥ वह भी उस गतिको प्राप्त करता है, जिसे सौ यज्ञ करनेवाले भी नहीं प्राप्त कर सकते। जो भस्म लगानेवालेके सम्पर्कसे, खिलवाड़से अथवा डरसे विधिपूर्वक भस्म धारण करते हैं—वे मेरी तरह पूजनीय होते हैं। यह विभूति शिवजीकी, विष्णु भगवान्की, ब्रह्मा और अन्य देवताओंकी तृप्तिका कारण है ॥ २३ ॥ २४ ॥ इतना ही नहीं—बल्कि पार्वती, महालक्ष्मी और सरस्वतीजी भी भस्म लगाकर परम संतोष प्राप्त करती हैं। उतना पुण्य न तो दान देनेसे, न यज्ञ करनेसे, न दुर्लभ तपस्या करनेसे और न तीर्थयात्रा करनेसे मिलता है—जितना पुण्य केवल त्रिपुण्ड्र लगानेसे प्राप्त होता है। हे नारद! उपर्युक्त दान, यज्ञ, धर्म, तीर्थयात्रा, ध्यान और तपस्या—ये सब मिलकर त्रिपुण्ड्रधारणके पुण्यकी सोलहवीं कला (षोडशांश) के बराबर भी नहीं हो सकते। जिस तरह राजा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोग राजकीय चिह्नसे अङ्कित पदाधिकारीको सदा अपना खास आदमी मानते हैं ॥ २५–२७ ॥ उसी तरह शिवजी भी त्रिपुण्ड्रके चिह्नसे अङ्कित व्यक्तिको अपने भृत्यके समान मानते हैं। जो लोग विमल अन्तःकरणसे भस्म द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे द्विजाति हों या चाण्डाल—उन्होंने मानो शिवजीको अपने वशमें कर लिया है। जिसने चारों आश्रमोंके आचार-विचारका परित्याग कर दिया हो और समस्त नित्य-नैमित्तिक कृत्योंको करना छोड़ दिया हो ॥ २८ ॥ २९ ॥ ऐसा व्यक्ति यदि एक बार भी त्रिपुंड लगा ले तो वह मुक्त हो जाता है। उसके ज्ञान [शिक्षा-दीक्षा] की परीक्षा न करे, न उसके वंश [जाँति-पाँति] की परीक्षा करे और न उसके व्रतानुष्ठानकी ही परीक्षा करे ॥ ३० ॥ हे नारद! वह तो भालपर त्रिपुंड्र लगाते ही पूजनीय हो गया। शिवमंत्रसे बढ़कर श्रेष्ठ कोई दूसरा मंत्र नहीं है और शिवजीसे बढ़कर श्रेष्ठ कोई दूसरा देवता नहीं है ॥ ३१ ॥ शिवार्चनसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है और भस्मसे बढ़कर कोई दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ नहीं है। क्योंकि भस्म कोई साधारण वस्तु नहीं है, बल्कि रुद्रनामक कालाग्निका जो परम वीर्य है—उसे ही 'भस्म'

नार्हति षोडशीम् ॥ यथा राजा स्वचिह्नाङ्कं स्वजनं मन्यते सदा ॥ २७ ॥ तथा शिवस्त्रिपुंड्रांकं स्वकीयमिव मन्यते ॥ द्विजातिर्वाऽन्यजातिर्वा शुद्धचित्तेन भस्मना ॥ २८ ॥ धारयेद्यस्त्रिपुंड्रांकं रुद्रस्तेन वशीकृतः ॥ त्यक्तसर्वाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि सः ॥ २९ ॥ सकृत्तिर्यक्त्रिपुंड्रांकं धारयेत्सोऽपि मुच्यते ॥ नास्य ज्ञानं परीक्षेत न कुलं न व्रतं तथा ॥३०॥ त्रिपुंड्रांकितभालेन पूज्य एव हि नारद ॥ शिवमन्त्रात्परो मंत्रो नास्ति तुल्यं शिवात्परम् ॥ ३१ ॥ शिवार्चनात्परं पुण्यं न हि तीर्थं च भस्मना ॥ रुद्राग्नेर्यत्परं तीर्थं तद्भस्म परिकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविशोधनम् ॥ अंत्यजो वाऽधनो वाऽपि मूर्खो वा पंडितोऽपि वा ॥ ३३ ॥ यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं भूतिशासनसंयुतः ॥ तस्मिन्सदाशिवः सोमः सर्वभूतगणैर्वृतः ॥ सर्वतीर्थैश्च संयुक्तः सान्निध्यं कुरुते सदा ॥ ३४ ॥ एतानि पंचशिवमंत्रपवित्रितानि भस्मानि कामदहनांगविभूषितानि ॥ त्रैपुंड्रकाणि रचितानि ललाटपट्टे लुंपंति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥ ३५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ भस्मदिग्धशरीराय यो ददाति धनं मुदा ॥ तस्य सर्वाणि पापानि विनश्यंति न संशयः ॥ १ ॥ श्रुतयः स्मृतयः

कहते हैं ॥ ३२ ॥ यह समस्त क्लेशनाशक और समस्त पापोंसे शुद्ध करनेवाला है। यदि कोई धोबी-चमार आदि हो, अधम [शबर आदि] हो, चाहे मूर्ख हो या पंडित हो—॥ ३३ ॥ वह विभूति लगाकर जिस स्थानपर निवास करता है—उस स्थानपर उसके निकट उमासहित समस्त भूतगणोंको साथ लेकर और समस्त तीर्थोंके सहित भगवान सदाशिव सदा निवास करते हैं ॥ ३४ ॥ इस भस्मको सर्वप्रथम भगवान् काम-दहन [शिवजी] ने अपने अङ्गमें लगाया था। अतः ऐसे कामदहनाङ्ग विभूति और पञ्च शिवमंत्रसे पवित्र किये हुए भस्मसे त्रिपुंडको जो लोग अपने ललाटपर लगाते हैं, उनके ललाट-पटपर विधाताके लिखे हुए अभाग्यसूचक अक्षर मिट जाते हैं ॥ ३५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

[भस्मधारीकी महत्ता] श्रीनारायणने कहा—जो लोग सर्वाङ्गमें भस्म लगाये हुए किसी मनुष्यको मुदित मनसे धन देते हैं, उनके सारे पाप कट जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है ॥ १ ॥ चारों वेद, समस्त धर्मशास्त्र और अट्ठारहों पुराण एक स्वरसे विभूतिकी महत्ता बतलाते हैं। अतः त्रैवर्णिकोंको चाहिए कि इसे अवश्य धारण करें ॥ २ ॥ जो प्रातः सायं एवं मध्याह्न सन्ध्याके समय सफेद भस्मसे त्रिपुंड्र लगाते हैं, वे सब पापोंसे छूटकर शिवलोकमें ससम्मान निवास करते हैं ॥ ३ ॥ जो योगी प्रातः, मध्याह्न एवं सायं सन्ध्याके समय पैरोंके तलवेसे लेकर मस्तक पर्यन्त सर्वांगमें नित्य भस्म लगाते हैं, वे शीघ्र ही योगसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं ॥४॥ भस्मस्नान करके मनुष्य अपने वंशका उद्धार करते हैं। भस्मस्नान करनेपर जलसे स्नान करनेकी अपेक्षा असंख्यगुना फल प्राप्त होता है ॥५॥ समस्त तीर्थोंमें जानेसे जितना पुण्य होता है और सभी तीर्थोंमें जानेसे जितना फल मिलता है, उतना पुण्य और फल भस्मस्नान करनेसे मिल जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। चाहे कितना ही महापातक या उपपातक क्यों न लगा हो, वह भस्मस्नानसे इस तरह भस्म हो जाता है, जैसे अग्नि ईंधनको जला देती है। भस्मस्नानसे बढ़कर पवित्र और कोई दूसरा स्नान नहीं है, इस बातकी घोषणा सबसे पहले शिवजीने की और बादमें सर्वप्रथम उन्होंने ही भस्मस्नान किया ॥६-८॥ उसी दिनसे शिव

सर्वाः पुराणान्यखिलान्यपि ॥ वदंति भूतिमाहात्म्यं तत्तस्माद्धारयेद् द्विजः ॥ २ ॥ सितेन भस्मना कुर्यात्त्रिसंध्यं यस्त्रिपुंड्रकम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ३ ॥ योगी सर्वाङ्गकं स्नानमापादतलमस्तकम् ॥ त्रिसंध्यमाचरेन्नित्यमाशु योगमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥ भस्मस्नानेन पुरुषः कुलस्योद्धारको भवेत् ॥ भस्मस्नानं जलस्नानादसंख्येयगुणान्वितम् ॥ ५ ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते सर्वं भस्मस्नानान्न संशयः ॥ ६ ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः ॥ भस्मस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेंधनम् ॥ ७ ॥ भस्मस्नानात्परं स्नानं पवित्रं नैव विद्यते ॥ एवमुक्तं शिवेनादौ तदा स्नातः स्वयं शिवः ॥ ८ ॥ तदाप्रभृति ब्रह्माद्या मुनयश्च शिवार्थिनः ॥ सर्वकर्मसु यत्नेन भस्मस्नानं प्रचक्रिरे ॥ ९ ॥ तस्मादेतच्छिरःस्नानमाग्नेयः यः समाचरेत् ॥ अनेनैव शरीरेण स हि रुद्रो न संशयः ॥ १० ॥ ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा परितृप्ता भवंति ते ॥ देवासुरमुनींद्रैश्च पूज्या नित्यं न संशयः ॥ ११ ॥ भस्मसंछन्नसर्वांगं दृष्ट्वोत्तिष्ठति यः पुमान् ॥ तं दृष्ट्वा देवराजोऽपि दंडवत्प्रणमिष्यति ॥ १२ ॥ अभक्ष्यभक्षणं येषां भस्मधारणपूर्वकम् ॥ तेषां तद्भक्ष्यमेव स्यान्मुने नात्र विचारणा ॥ १३ ॥ यः स्नाति भस्मना नित्यं जले स्नात्वा ततः परम् ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवादरात् ॥ १४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ आग्नेयं भस्मना स्नानं यतीनां

(कल्याण) की कामनासे ब्रह्मा आदि देवता और ऋषिगण समस्त कृत्योंको आरम्भ करनेके पूर्व बड़ी तत्परताके साथ भस्मस्नान करने लगे ॥ ९ ॥ अतः जो लोग यह 'आग्नेय' नामक शिरःस्नान करते हैं, वे शरीरसे रुद्र हो जाते हैं—इसमें सन्देह नहीं है ॥१०॥ जो लोग किसी भस्मधारीको देखकर आनन्दित होते हैं—वे देवताओं, असुरों और ऋषियोंसे प्रतिदिन पूजित होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥ जो लोग सर्वाङ्गमें भस्म लगाये हुए किसी व्यक्तिको देखकर श्रद्धाके साथ उठकर खड़े हो जाते हैं, उनको देखकर देवराज इन्द्र भी दण्डवत् प्रणाम करते हैं ॥ १२ ॥ हे नारदजी ! जो भस्म धारण करके अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करते हैं, उनके लिए वह भी भक्ष्य पदार्थके तुल्य हो जाता है। इसमें तनिक भी सन्देह न करे ॥ १३ ॥ जो जलमें स्नान करनेके बाद नित्य आदरके साथ भस्मस्नान करते हैं—वे चाहे ब्रह्मचारी हों, गृहस्थ हों या वानप्रस्थी हों ॥ १४ ॥ वे सब पापोंसे छूटकर परम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पद पाते हैं। खास करके यतियोंको भस्मसे आग्नेय स्नान करना परम आवश्यक है ॥१५॥ जलके स्नानसे भस्मका स्नान श्रेष्ठ होता है। इसीसे आर्द्र (प्रकृति-पुरुषके बन्धन)का नष्टहोना अवश्यम्भावी है। 'आर्द्र'को 'प्रकृति' जानना चाहिए और 'प्रकृति' ही 'बन्धन'स्वरूप है ॥१६॥ अतः प्राकृतिक बन्धन (सुख-दुःख) को काटनेके लिए भस्मस्नानका विधान बतलाया गया है। हे ब्रह्मन्! भस्मके समान कोई दूसरा पदार्थ तीनों लोकमें नहीं है ॥१७॥ प्राचीन कालकी बात है कि देवताओंने अपनी रक्षाके लिए, अपने कल्याणके निमित्त और पवित्र होनेके लिए भस्मको स्वीकार किया था। हे मुने! यह भस्म सबसे पहले शिवजीने पार्वतीजीको दिया था ॥ १८ ॥ इसलिए जो आग्नेय नामक शिरःस्नान करते हैं, वे सांसारिक बन्धनसे छूटकर शिवलोकमें चले जाते हैं॥१९॥ ज्वर, राक्षस, पिशाच, पूतना, रोग, कोढ़, तापतिल्लीका रोग, सब तरहका भगन्दर रोग, अस्सी प्रकारके गठिया आदि वातरोग, चौंसठ प्रकारके पित्तरोग, एक सौ पाँच प्रकारके कफरोग, बाघका डर, चोर-डाकूका डर और दुष्टग्रहजनित पीडाको भी भस्मस्नान इस तरह नष्ट कर देता है, जैसे सिंह हाथियोंको मार डालता है। जो लोग भस्ममें

च विशिष्यते ॥ १५ ॥ आर्द्रस्नानाद्वरं भस्मस्नानमार्द्रवधो ध्रवः ॥ आर्द्रं तु प्रकृतिं विद्यात्प्रकृतिं बंधनं विदुः ॥ १६ ॥ प्रकृतेस्तु प्रहाणाय भस्मना स्नानमिष्यते ॥ भस्मना सदृशं ब्रह्मन्नास्ति लोकत्रयेष्वपि ॥ १७ ॥ रक्षार्थं मङ्गलार्थं च पवित्रार्थं पुरा सुरैः ॥ भस्म दृष्ट्वा मुने पूर्वं दत्तं देव्यै प्रियेण तु ॥ १८ ॥ तस्मादेतच्छिरःस्नानमाग्नेयं यः समाचरेत् ॥ भवपाशैर्विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ १९ ॥ ज्वररक्षःपिशाचाश्च पूतनाकुष्ठगुल्मकाः ॥ भगंदराणि सर्वाणि चाशीतिर्वातरोगकाः ॥ २० ॥ चतुःषष्टिः पित्तरोगाः श्लेष्माः सप्तत्रिपंचकाः ॥ व्याघ्रचौरभयं चैवाप्यन्ये दुष्टग्रहा अपि ॥ २१ ॥ भस्मस्नानेन नश्यन्ति सिंहेनेव यथा गजाः ॥ शुद्धशीतजलेनैव भस्मना च-त्रिपुण्ड्रकम् ॥ २२ ॥ यो धारयेत्परं ब्रह्म स प्राप्नोति न संशयः ॥ (भस्मना च त्रिपुंड्रं च यः कोऽपि धारयेत्परम् ॥ स ब्रह्मलोकमाप्नोति मुक्तपापो न संशयः ॥) यथाविधि ललाटे वै वह्निवीर्यप्रधारणात् ॥ २३ ॥ नाशयेल्लिखितां यामीं ललाटस्थां लिपिं ध्रुवम् ॥ कंठोपरि कृतं पापं नाशयेत्तत्प्रधारणात् ॥ २४ ॥ कंठे च धारणात्कंठभोगादिकृतपातकम् ॥ बाह्वोर्बाहुकृतं पापं वक्षसा मनसा कृतम् ॥ २५ ॥ नाभ्यां शिश्नकृतं पापं गुदे गुदकृतं हरेत् ॥ पार्श्वयोर्धारणाद्ब्रह्म-

शुद्ध और शीतल जल मिलाकर त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे परब्रह्मको प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। (जो लोग भस्म द्वारा श्रेष्ठ त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे पापरहित होकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं, इसमें संशय नहीं है।) जो लोग विधि-विधानके साथ ललाटपर रुद्राग्निवीर्यस्वरूप भस्मको धारण करते हैं ॥२०-२३॥ वे ललाटपर लिखी हुई यमकी लिपिको मिटानेमें समर्थ हो जाते हैं, यह बात ध्रुव सत्य है। भालपर भस्म लगानेसे कण्ठके ऊपरी भागसे जितने पाप किये जाते हैं, वे सब नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥ कण्ठपर भस्म लगानेसे कंठ द्वारा अभक्ष्य पदार्थोंके भक्षण करनेका पाप नष्ट होता है, बाहुपर लगानेसे बाहुजनित पाप नष्ट होता है, वक्षःस्थलपर भस्म लगानेसे मानसिक पाप कट जाता है ॥२५॥ नाभिपर लगानेसे लिंगजनित (परदारा-गमन आदि) पाप दूर होता है और गुदापर लगानेसे गुह्येन्द्रियजनित पाप नष्ट होता है। हे ब्रह्मन्! दोनों बगलमें भस्म लगानेसे परायी नारीको आलिंगन आदि करनेके पाप कट जाते हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ २६ ॥ सर्वत्र तीन तिरछी रेखावाला भस्म (त्रिपुण्ड्र) धारण करना प्रशस्त माना गया है । क्योंकि ये तीनों साधारण रेखाएँ नहीं हैं, बल्कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। इतना ही नहीं—बल्कि गार्हपत्य, दक्षिण और आहवनीय अग्नि हैं ॥ २७ ॥ ये तीनों गुण (सत्त्व, रज और तम) हैं और तीनों लोक (आकाश, पाताल और मर्त्य) हैं। अतः जिसने त्रिपुण्ड्र धारण किया उसने ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गार्हपत्य, दक्षिण, आहवनीय अग्नि, सत्त्व, रज, तमोगुण और आकाश, पाताल तथा मर्त्यलोक धारण कर लिया। जो विद्वान् द्विज भस्म धारण करते हैं, वे पञ्चमहापातक ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णस्तेय आदि जनित दोषोंसे तत्काल छूट जाते हैं—इसमें सन्देह नहीं है। भस्म लगानेवाले व्यक्तिके दोष भस्मकी अग्निके सम्पर्कसे नष्ट हो जाते हैं ॥ २८ ॥ २९॥ जिस मनुष्यकी आत्मा भस्मस्नान करनेसे शुद्ध हो गयी हो, उसे ही 'आत्मवेत्ता' कहते हैं। जो सर्वाङ्गमें भस्मसे स्नान करते (लगाते) हैं, जो भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाते हैं ॥३०॥ जो भस्मपर सोते हैं—उन्हें 'भस्मनिष्ठ' कहते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, उरग, राक्षस, वेताल आदि और बड़े भयंकर रोग भस्मनिष्ठके सामनेसे डरकर भाग जाते हैं

न्परस्त्यालिंगनादिकम् ॥ २६ ॥ तद्भस्मधारणं शस्तं सर्वत्रैव त्रिलिंगकम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्र्यग्नीनां च धारणम् ॥ २७ ॥ गुणलोकत्रयाणां च धारणं तेन वै कृतम् ॥ भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वन्महापातकसंभवैः ॥ २८ ॥ दोषैर्वियुज्यते सद्यो मुच्यते च न संशयः ॥ भस्मनिष्ठस्य दह्यंते दोषा भस्माग्निसंगमात् ॥ २९ ॥ भस्मस्नानविशुद्धात्मा आत्मनिष्ठ इति स्मृतः ॥ भस्मना दिग्धसर्वांगो भस्मदीप्तत्रिपुण्ड्रकः ॥ ३० ॥ भस्मशायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्या रोगाश्चातीव दुःसहाः ॥ ३१ ॥ भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवंति न संशयः ॥ भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात् ॥ ३२ ॥ भूतिर्भूतिकरी पुंसां रक्षा रक्षाकरी पुरा ॥ त्रिपुण्ड्रधारिणं दृष्ट्वा भूतप्रेतपुरःसराः ॥ ३३ ॥ भीताः प्रकंपिताः शीघ्रं नश्यन्त्येव न संशयः ॥ स्मरणादेव रुद्रस्य यथा पापं प्रणश्यति ॥ ३४ ॥ अप्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना ॥ तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम् ॥३५॥ कृत्वापि चातुलं पापं मृत्युकालेऽपि यो द्विजः ॥ भस्मस्नानो भवेत्कश्चित्क्षिप्रं पापैः प्रमुच्यते ॥३६॥ भस्मस्नानाद्विशुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ मत्समीपं समागत्य न स भूयोऽभिवर्तते ॥ ३७ ॥ वनस्पतिगते सोमे भस्नोद्धूलितविग्रहः ॥ अर्चितं शङ्करं

सन्देह नहीं है। ब्रह्मका भास करानेसे इसे 'भसित' पापका क्षण करनेसे 'भस्म', भूति अर्थात् अणिमा-महिमा आदि अष्ट सिद्धियें प्रदान करनेसे 'भूति' और धारण करनेवाले पुरुषोंकी परम रक्षा करनेसे 'रक्षा' कहते हैं। त्रिपुण्ड्रधारीको देखकर भूत-प्रेत आदि डरके मारे थर-थर काँपने लगते हैं। वे शीघ्र ही उसी प्रकार भस्म हो जाते हैं, जैसे भगवान् रुद्रका स्मरण करते ही पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३१–३४॥ हजारों तरहके निंद्य कर्म करके भी जो लोग भस्मस्नान करते हैं, उन सब कुकर्मोंको भस्म उसी तरह भस्म कर देता है, जिस तरह अग्निदेव अपने तेजके प्रभावसे समूचे जंगलको जलाकर राख कर डालते हैं॥३५॥जो द्विज असंख्य प्रकारके पापकर्म करके भी मृत्युके समय भस्मस्नान कर लें तो वे तुरंत पापोंसे छूट जाते हैं ॥३६॥ भस्मस्नान करनेसे आत्मा शुद्ध हो जाती है, क्रोधभावनाका नाश हो जाता है और इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं—ऐसा व्यक्ति मेरे पास आकर फिर जन्म-मरणके चक्करमें नहीं पड़ता ॥३७॥ सोमवारके दिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोम (चन्द्रमा) के वनस्पतिमें प्रवेश करनेपर अर्थात् सोमवती अमावस्याके दिन जो लोग अपने शरीरमें भस्म लगाकर शिवलिङ्गका दर्शन करते हैं, वे समस्त पापोंसे छूट जाते हैं ॥३८॥ जिस विद्वान् द्विजकी दीर्घायुको इच्छा हो, वैभवकी कामना हो या मोक्षकी अभिलाषा हो, उसे प्रतिदिन भस्म धारण करना चाहिए ॥ ३९ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिवमय त्रिपुण्ड् परम पुण्यदायक है। भयङ्कर राक्षस, प्रेत और दूसरे क्षुद्र जीव त्रिपुण्ड्रधारीको देखकर भाग जाते हैं—इसमें संशय नहीं है। शौचादि कृत्यसे निवृत्त होकर जलमें स्नान करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ फिर मस्तकसे लेकर पैरके तलुवे तक भस्म लगावे। जलका स्नान तो केवल बाहरी मैलको धो सकता है ॥ ४२ ॥ लेकिन पुनीत विभूतिस्नान तो भीतरी और बाहरी दोनों मैलोंको धोकर बहा देता है। अतएव जलस्नानका परित्याग करके भी भस्मस्नान-परायण होना चाहिए—इसमें सन्देह नहीं है॥ ४३ ॥ हे ऋषिवर नारदजी! भस्मस्नानके बिना जो कृत्य किया जाता है, वह वस्तुतः न कियेके बराबर होता है। भस्मस्नान करना श्रुत्युक्त (अथर्ववेदोक्त) विधान है। इसे ही 'आग्नेयस्नान' कहते हैं ॥ ४४ ॥ भीतर और बाहरसे शुद्ध होनेपर ही

दृष्ट्वा सर्वैपापैः प्रमुच्यते ॥ ३८ ॥ आयुष्कामोऽथवा विद्वान्भूतिकामोऽथवा नरः ॥ नित्यं वै धारयेद्भस्म मोक्षकामी च वै द्विजः ॥ ३९ ॥ त्रिपुण्ड्रं परमं पुण्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ ये घोरा राक्षसाः प्रेता ये चान्ये क्षुद्रजंतवः ॥ ४० ॥ त्रिपुण्डधारिणं दृष्ट्वा पलायन्ते न संशयः ॥ कृत्वा शौचादिकं कर्म स्नात्वा तु विमले जले ॥ ४१ ॥ भस्मनोद्धूलनं कार्यमापादतलमस्तकम् ॥ केवलं वारुणं स्नानं देहे बाह्यमलापहम् ॥ ४२ ॥ विभूतिस्नानमनघं बाह्यांतरमलापहम् ॥ त्यक्त्वापि वारुणं स्नानं तत्परः स्यान्न संशयः ॥ ४३ ॥ कृतमप्यकृतं सत्यं भस्मस्नानं विना मुने ॥ भस्मस्नानं श्रुतिप्रोक्तमाग्नेयं स्नानमुच्यते ॥ ४४ ॥ अंतर्बहिश्च संशुद्धं शिवपूजाफलं लभेत् ॥ यद्बाह्यमलमात्रस्य नाशकं स्नानमस्ति तत् ॥४५॥ तन्नाशयति तीव्रेण प्राणिबाह्यांतरं मलम् ॥ कृत्वाऽपि कोटिशो नित्यं वारुणं स्नानमादरात् ॥४६॥ न भवत्येव पूतात्मा भस्मस्नानं विना मुने ॥ यद्भस्मस्नानमाहात्म्यं तद्वेदो वेद तत्त्वतः ॥४७॥ यद्वा वेद महादेवः सर्ववेदशिखामणिः ॥ भस्मस्नानमकृत्वैव यः कुर्यात्कर्म वैदिकम् ॥ ४८ ॥ स तत्कर्मकलार्धार्धमपि नाप्नोति वस्तुतः ॥ यः करिष्यति यत्नेन भस्मस्नानं यथाविधि ॥ ४९ ॥ स एवैकः सर्वकर्मस्वधिकारी श्रुतिश्रुतः ॥ पावनं पावनानां च भस्मस्नानं श्रुतिश्रुतम् ॥ ५० ॥ न करिष्यति यो मोहात्स महापातकी भवेत् ॥ अनन्तैर्वारुणैः स्नानैर्यत्पुण्यं प्राप्यते द्विजैः ॥ ५१ ॥ ततोऽनंत-

शिवपूजनका फल मिलता है। जलस्नान तो केवल बाहरी मैलका नाशक होता है ॥ ४५ ॥ लेकिन भस्मस्नान बड़ी तेजीसे प्राणीके बाहरी और भीतरी मैलको नष्ट कर देता है। चाहे कोई एक दिनमें करोड़ों बार श्रद्धापूर्वक जलस्नान क्यों न कर डाले ॥४६॥ फिर भी वह भस्मस्नानके बिना पवित्रात्मा नहीं हो सकता। हे मुनिराज! भस्मस्नानके माहात्म्यको या तो वेद भलीभाँति जानते हैं ॥ ४७ ॥ या समस्त देव-कुल-चूडामणि महादेवजी जानते हैं। जो लोग भस्म-स्नान किये बिना ही वैदिक कृत्य करते हैं ॥ ४८ ॥ वे वस्तुतः उस कर्मकी आधीकी आधी कला अर्थात् रुपयेमें एक पैसाके बराबर भी फल नहीं पाते। जो लोग विधिपूर्वक बड़ी तत्परताके साथ भस्मस्नान करते हैं ॥४९॥ वे ही एकमात्र समस्त कृत्योंके अधिकारी होते हैं, ऐसा वेदोंमें लिखा है। भस्मस्नान पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाला है, ऐसा वेदमें कहा गया है ॥५०॥ जो लोग अज्ञानवश भस्मस्नान नहीं करते, वे महापापी होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्विजोंको असंख्य बार जल-स्नान करनेसे जितना पुण्य प्राप्त होता है, उससे अनन्तगुना पुण्य भस्मस्नान करनेसे मिलता है। अतः जहाँतक हो सके, ऐसा प्रयत्न करे कि जिसमें प्रातः सायं एवं मध्याह्नकालमें भस्मस्नान हो जाय ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ भस्मस्नान श्रौत कर्म है। अतः इसे न करनेवाले लोग पतित हो जाते हैं। मल-मूत्रत्यागके बाद प्रयत्नके साथ भस्मस्नान करे ॥५३॥ अन्यथा प्राणी अपवित्र रहता है। विधिपूर्वक शौच-क्रियासे निवृत्त होनेपर भी भस्मस्नानके बिना द्विजका अन्तःकरण पवित्र नहीं होता और न वह किसी कृत्यका अधिकारी ही हो सकता है। गुदामार्गसे हवा निकलनेपर, जँभाई आनेपर, पतली टट्टी आनेपर, छींक आनेपर और खखारनेपर बड़ी तत्परताके साथ भस्मस्नान करे। यह मैंने भस्मस्नानका एकदेशीय माहात्म्य बतलाया है ॥ ५४–५६ ॥ अब भस्मस्नान-जनित बाकी फलके विषयमें वर्णन करूँगा। हे देवर्षि नारदजी! आप दत्तचित्त होकर इसे सुनें ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीतांबरा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

गुणं पुण्यं भस्मस्नानादवाप्यते ॥ कालत्रयेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥५२॥ भस्मस्नानं स्मृतं श्रौतं तत्त्यागी पतितो भवेत् ॥ मूत्राद्युत्सर्जनांते तु भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥ ५३ ॥ कर्तव्यमन्यथा पूता न भविष्यन्ति मानवाः ॥ विधिवत्कृतशौचोऽपि भस्मस्नानं विना द्विजः ॥ ५४ ॥ न भविष्यति पूतात्मा नाधिकार्यपि कर्मणि ॥ अपानवायुनिर्याते जृम्भणे स्कन्दने कृते ॥ ५५ ॥ श्लेष्मोद्गारेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥ श्रीभस्मस्नानमाहात्म्यस्यैकदेशोऽत्र वर्णितः ॥ ५६ ॥ पुनश्च संप्रवक्ष्यामि भस्मस्नानोत्थितं फलम् ॥ सावधानेन मनसा श्रोतव्यं मुनिपुङ्गव ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ नारायण उवाच ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैर्भस्म संशोध्य सादरम् ॥ धारणीयं ललाटादौ त्रिपुंड्रं केवलं द्विजैः ॥ १ ॥ ब्रह्मक्षत्रियवैश्याश्च एते सर्वे द्विजाः स्मृताः ॥ तस्माद्द्विजैः प्रयत्नेन त्रिपुंड्रं धार्यमन्वहम् ॥ २ ॥ यस्योपनयनं ब्रह्मन् स एव द्विज उच्यते ॥ तस्माच्छ्रौतं द्विजैः कार्यं त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ॥ ३ ॥ विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः सत्कर्म समाचरेत् ॥ तत्कृतं चाकृतप्रायं भवत्येव न संशयः ॥ ४ ॥ न गायत्र्युपदेशोऽपि भस्मनो धारणं विना ॥ ततो धृत्वैव भस्मांगो गायत्रीजपमाचरेत् ॥ ५ ॥ गायत्रीं मूलमेवाहुर्ब्राह्मण्ये मुनिपुङ्गव ॥ सा भस्मधारणाभावे न

(भस्मधारणका विधान) श्रीनारायणने कहा—पूर्वोक्त 'अग्निरिति भस्म०' आदि मन्त्रोंसे श्रद्धापूर्वक भस्म शुद्ध करके द्विजोंको चाहिए कि वे अपने ललाटपर त्रिपुण्ड्र धारण करें ॥ १ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंके लोग 'द्विज' कहलाते हैं। अतः द्विजोंका कर्तव्य है कि प्रतिदिन सावधानीके साथ त्रिपुण्ड्र धारण करें ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्! जिनका उपनयन हो गया रहता है, वे द्विज कहे जाते हैं। इसलिए द्विजोंको श्रुति-विहित त्रिपुण्ड्र धारण करना आवश्यक कर्तव्य है ॥ ३ ॥ जो लोग बिना विभूति लगाये ही धार्मिक कृत्य करते हैं, उनका वह कृत्य न कियेके बराबर हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ बिना भस्म लगाये गायत्री-मन्त्रका उपदेश नहीं मिलता। अतः अपने शरीरमें भस्म लगाकर गायत्रीका जप करना चाहिए ॥ ५ ॥ हे देवर्षि! गायत्री ही ब्राह्मणत्वका मूलतत्त्व है। लेकिन भस्म न धारण करनेपर उस गायत्रीमन्त्रका उपदेश किसीको नहीं दया जा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकता ॥ ६ ॥ हे ऋषिवर ! जबतक अग्निहोत्र-जन्य भस्म भालपर नहीं लगाया जाता, तबतक किसी भी व्यक्तिको गायत्रीमंत्र लेनेका अधिकार नहीं होता ॥७॥ हे ब्रह्मन्। जिसके भाल-पर भस्म नहीं लगा रहता, उसे देखकर कोई ब्राह्मणत्वका अनुमान नहीं कर सकता। इसीलिए मैंने भस्मको अत्यन्त पुण्यदायक हेतु बतलाया है ॥ ८ ॥ जिसके ललाटपर मन्त्रसे पवित्र किया हुआ सफेद भस्म सुशोभित रहे, वही विद्वान् 'ब्राह्मण' है। ऐसा मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ॥९॥ जिस व्यक्तिकी स्वाभाविक प्रीति मणि सञ्चय करनेवालेकी भाँति भस्म एकत्र करनेमें हो, हे ब्रह्मन् ! वही 'ब्राह्मण' है—ऐसा मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ॥१०॥ किंतु मणि इकट्ठी करनेमें जितनी स्वाभाविक प्रीति हो, उतनी भस्म एकत्र करनेमें जिसकी अभिरुचि न हो तो यह निश्चय समझ लीजिए कि वह जन्मान्तरमें चाण्डाल रहा होगा ॥ ११ ॥ त्रिपुण्ड्र धारण करनेके प्रति जिस व्यक्तिका स्वाभाविक प्रेम नहीं होता, वह चाण्डाल है—यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ॥ १२ ॥ जो भस्म-धारणका परित्याग करके कन्द-मूल-फल खाते हैं—वे सभी घोर नरकमें जाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ (जो लोग विभूति लगाये बिना

केनाप्युपदिश्यते ॥ ६ ॥ न तावदधिकारोऽस्ति गायत्रीग्रहणे मुने ॥ यावन्न भस्म भालादौ धृतमग्निसमुद्भवम् ॥ ७ ॥ भस्महीनललाटत्वं न ब्राह्मण्यानुमापकम् ॥ एवमेव मया ब्रह्मन्हेतुरुक्तः सुपुण्यदः ॥ ८ ॥ मंत्रपूतं सितं भस्म ललाटे यस्य वर्तते ॥ स एव ब्राह्मणो विद्वान्सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ ९ ॥ यस्यास्ति सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे ॥ स एव ब्राह्मणो ब्रह्मन्सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ १० ॥ न यस्य सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे ॥ स चांडाल इति ज्ञेयो जन्मजन्मांतरे ध्रुवम् ॥ ११ ॥ न यस्य सहजा प्रीतिस्त्रिपुण्ड्रोद्धूलनादिषु ॥ स चांडाल इति ज्ञेयः सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ १२ ॥ ये भस्मधारणं त्यक्त्वा भुंजंते च फलादिकम् ॥ ते सर्वे नरकं घोरं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ १३ ॥ ("विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः शिवं पूजयिष्यति ॥ स दुर्भगः शिवद्वेष्टा स द्वेषो नरकप्रदः ॥ सर्वकर्मबहिर्भूतो भस्मधारणवर्जितः ॥") विभूतिधारणं त्यक्त्वा कुर्वन् हेमतुलामपि ॥ न तत्फलमवाप्नोति पतितो हि भवेद्धि सः ॥ १४ ॥ यथोपवीतरहितैः संध्या न क्रियते द्विजैः ॥ तथा संध्या न कर्तव्या विभूतिरहितैरपि ॥ १५ ॥ गतोपवीतैः सन्ध्यायां कार्यः प्रतिनिधिः क्वचित् ॥ जपादिकं तु सावित्र्यास्तथैवोपोषणादिकम् ॥ १६ ॥ विभूतिधारणे त्वन्यो नास्ति प्रतिनिधिः क्वचित् ॥ विभूतिधारणं त्यक्त्वा यदि सन्ध्यां करोति यः ॥ १७ ॥ प्रत्यवैत्येव येनासौ नाधिकारी तदा द्विजः ॥ यथा श्रुत्वांत्यजो वेदान्प्रत्यवैति

शिवजीकी पूजा करते हैं—वे अभागे हैं, शिवके द्वेषी हैं। उस द्वेषके कारण उन्हें नरक मिलता है। जो भस्म नहीं लगाते—वे समस्त नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके अनधिकारी हैं) जो लोग विभूति धारण किये बिना सोनेका तुलादान करते हैं, उन्हें उस दानका कुछ फल नहीं मिलता—बल्कि उन्हें नरक मिलता है ॥ १४ ॥ जिस प्रकार यज्ञोपवीत-रहित द्विज सन्ध्या नहीं करते, उसी प्रकार विभूति-रहित द्विजको भी सन्ध्या नहीं करनी चाहिए ॥ १५ ॥ कभी कभी ऐसा होता है कि किसीका यज्ञोपवीत छिन्न-भिन्न हो जाता या उतर जाता है तो वह सन्ध्याके स्थानापन्न गायत्रीका जप कर लेता है ॥ १६ ॥ किन्तु विभूतिधारणके सम्बन्धमें ऐसे प्रतिनिधित्वका नियम नहीं है। जो विभूतिका परित्याग करके सन्ध्या करते हैं तो उन्हें प्रत्यवाय (पाप) लगता है। जैसे अन्त्यजको वेदमन्त्र सुननेसे प्रत्यवाय (पाप) लगता है, वैसे ही द्विजको बिना भस्म लगाये सन्ध्या करनेपर प्रत्यवाय लगता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, यह निश्चित है। अतः द्विजको चाहिये कि बड़ी तत्परताके साथ श्रौताग्निजन्य भस्म लगाये ॥१७–१९॥ उसके अभावमें स्मार्ताग्नि-जन्य भस्म लगावे। वह भी न मिले तो लौकिकाग्नि-जन्य भस्म सावधान चित्तसे लगावे। क्योंकि चाहे जैसा भस्म हो वह तो सदा पवित्र ही है ॥२०॥ सन्ध्यावन्दन एवं पूजन आदि करते समय द्विजोंको चाहिए कि तत्परताके साथ भस्म धारण करें। सदा भस्मनिष्ठ रहनेपर किसी तरहका पाप स्पर्श नहीं कर सकता ॥२१॥ अतः ब्राह्मणोंका कर्तव्य है कि यत्नके साथ भस्म लगावें। अपने दाहिने हाथकी तीन अंगुलियों—तर्जनी, मध्यमा और अनामिकासे छः अङ्गुल लम्बा या इससे भी अधिक लम्बा त्रिपुण्ड्र धारण करें। जो लोग—एक नेत्रसे लेकर दूसरे नेत्र तक लम्बा देदीप्यमान त्रिपुण्ड्र अपने भालपर लगाते हैं॥ २ ॥ २३ ॥ वे रुद्र हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। 'अ'कार अनामिका अंगुली, 'उ'कार बीचवाली अंगुली और 'म'कार तर्जनी अंगुली है। इसलिए त्रिपुण्ड्र त्रिगुणात्मक है। तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलीसे अनुलोमके क्रमसे अर्थात बाँयीं ओरसे दाहिनी ओर त्रिपुण्ड्रको रेखा बनावे ॥ २४ ॥ २५ ॥ इस सम्बन्धमें मैं एक अत्यन्त प्राचीन

तथा द्विजः ॥ १८ ॥ प्रत्यवैति न सन्देहः सन्ध्याकृद्भस्मवर्जितः॥ संपादनीयं यत्नेन श्रौतं भस्म सदा द्विजैः ॥ १९ ॥ स्मार्तं वा तदभावे तु लौकिकं वा समाहितैः ॥ यादृशं तादृशं वाऽस्तु पवित्रं भस्म संततम् ॥ २० ॥ धारणीयं प्रयत्नेन द्विजैः संध्यादिकर्मसु ॥ न संविशंति पापानि भस्मनिष्ठे ततः सदा ॥ २१ ॥ कर्तव्यमपि यत्नेन ब्राह्मणैर्भस्मधारणम् ॥ मध्यांगुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु ॥ २२ ॥ षडंगुलायतं मानमपि चाधिकमानकम् ॥ नेत्रयुग्मप्रमाणेन भाले दीप्तं त्रिपुंड्रकम् ॥ २३ ॥ कदाचिद्भस्मना कुर्यात्स रुद्रो नात्र संशयः ॥ अकारोऽनामिका प्रोक्ता उकारो मध्यमांगुलिः ॥ २४ ॥ मकारस्तर्जनी तस्मात्त्रिपुंड्रं त्रिगुणात्मकम् ॥ त्रिपुंड्रं मध्यमातर्जन्यनामाभिरनुलोमतः ॥ २५ ॥ अत्र ते कथया-म्येनमितिहासं पुरातनम् ॥ कदाचिदथ दुर्वासाः पितृलोकं गतोऽभवत् ॥२६॥ भस्मसंदिग्धसर्वांगो रुद्राक्षाभरणान्वितः ॥ शिव शङ्कर सर्वात्मञ्छ्री-मातर्जगदम्बिके ॥ २७ ॥ नामानीति गृणन्नुच्चैस्तापसानां शिखामणिः ॥ कव्यवाडादयस्ते तु प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥ २८ ॥ आसनाद्युपचारैश्च संमानं बहु चक्रिरे ॥ नानाकथाभिरन्योन्यसंभाषां चक्रिरे तदा ॥ २९ ॥ तस्मिंस्तु समये कुंभीपाकस्थानां तु पापिनाम् ॥ घोरः समभवच्छब्दो हा हताः स्मेतिवादिनाम् ॥३०॥ मृताः स्मेति वदंत्येके दग्धाः स्मेति परे जगुः ॥ छिन्नाः स्मेति विभिन्नाः स्मेत्येवं रोदनकारिणः ॥३१॥ श्रुत्वा तं करुणं

इतिहास कहता हूँ, सुनिए। एक समय दुर्वासा मुनि पितृलोक गये ॥२६॥ वे सर्वाङ्गमें भस्म लगाये और सर्वाङ्गमें रुद्राक्षका आभूषण पहने हुए थे। 'हे शिवजी! हे शङ्करजी! हे जगदात्मन्! हे श्रीमाता! हे जगदम्बा!' ॥२७॥ इन नामोंको तापस-शिरोमणि दुर्वासा बड़ो जोर-जोरसे जप रहे थे तब कव्यवाट् अर्थात् अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, सोमपा आदि पितर उनको देखते ही उठकर खड़े हो गये और उनका अभिवादन किया ॥२८॥ आसनादि उपचार अर्थात् पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदिसे उनका बहुत सम्मान किया। बादमें परस्पर तरह-तरहकी कथा और इधर-उधरकी बातचीत करने लगे ॥२९॥ जब उन लोगोंमें परस्पर वार्ता हो रही थी, तभी कुम्भीपाक नरकमें पड़े हुए पापियोंका बड़े जोरोंका चीत्कार हुआ कि 'हाय! हम मारे जा रहे हैं' ॥३०॥ कुछ पापी चिल्लाये कि 'हम मर गये', कुछ चिल्लाये कि 'हम जल गये', कुछ चिल्लाये कि 'हम कट गये'—इसी प्रकार कह-कहकर वे विलाप करने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगे ॥३१॥ उनके बिलखनेकी आवाज सुनकर मुनिराज दुर्वासाके हृदयको बड़ा क्लेश हुआ। तब उन्होंने पितृगणके स्वामियोंसे पूछा कि यह कैसा चीत्कार सुनायी पड़ रहा है? ॥३२॥ पितृदेवताओंने कहा कि यहींपर संयमनी पुरी नामक स्थान है। जहाँ यमराज रहते हैं और पापियोंको दण्ड देते हैं ॥ ३३ ॥ हे निष्पाप! वे इस पुरीके अधिपति हैं। कालके मूर्तिमान् अवतार तथा काले रंगके भयंकर दूतोंके साथ यमराज निवास करते हैं ॥३४॥ यमपुरीमें पापियोंको अपनी करनीका फल भोगनेके लिए छियासी प्रकारके कुंड हैं, जिनकी भयंकर आकृतिवाले यमदूत रक्षा करते हैं ॥३५॥ उन कुंडोंमें 'कुम्भीपाक' नरक-कुंड बड़ा लम्बा-चौड़ा और सबमें मुख्य है। कुम्भीपाकमें जो पापी जाते हैं और वहाँ उनकी जो साँसत होती है, उसका वर्णन सौ वर्षमें भी कोई नहीं कर सकता। जो शिवजीके द्रोही होते हैं और देवीकी निन्दा करते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जो विष्णु भगवानके विरोधी हैं, वे उसी कुंडमें जाते हैं। हे दुर्वासा मुनि! जो वेदकी निन्दा करते हैं, सूर्यपूजाके विरोधी हैं और गणेशजीकी निन्दा करते हैं ॥३८॥ ब्राह्मण-मात्रके साथ विरोधभावना रखते हैं, वे सब कुम्भीपाक नरककुंडमें पड़ते हैं। हे महर्षि!

शब्दं दुःखितो मुनिराड् हृदि ॥ पप्रच्छ पितृनाथांस्तान्केषां शब्दोऽयमित्यति ॥ ३२ ॥ ते समूचुर्मुनेऽत्रैव पुरी संयमनी परा ॥ वर्तते यमराडत्र पापिनां भोगदायकः ॥ ३३ ॥ नानादूतैः कालरूपैः कृष्णवर्णैर्भयङ्करैः ॥ सहितोऽत्रैव तत्पुर्यां नायको विद्यतेऽनघ ॥ ३४ ॥ तत्र कुण्डान्यनेकानि पापिनां भोगदानि च ॥ षडशीतिर्घोररूपैर्दूतैः परिकृतानि च ॥ ३५ ॥ तत्र मुख्यतमं कुण्डं कुंभीपाकाभिधं महत् ॥ वर्तते तद्गतानां च यातनानां तु वर्णनम् ॥३६॥ कर्तुं न शक्यते कैश्चिदपि वर्षशतैरपि ॥ ये शिवद्रोहिणः संति तथा देवीविनिंदकाः ॥ ३७ ॥ ये विष्णुद्रोहिणः सन्ति पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ ये वेदनिंदकाः संति सूर्यस्य च गणेशितुः ॥३८॥ ब्राह्मणानां द्रोहिणो ये पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ कामाचाराश्च ये संति तप्तमुद्रांकिताश्च ये ॥३९॥ त्रिशूलधारिणो ये च पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ मातृपितृगुरुज्येष्ठपुराणस्मृतिनिंदकाः ॥ ४० ॥ ये धर्मदूषकाः सन्ति पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ तेषामयं महाघोरः शब्दः श्रवणदारुणः ॥ ४१ ॥ श्रूयतेऽस्माभिरनिशं वैराग्यं यच्छ्रुतेर्भवेत् ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा मुनिराट् तद्दिदृक्षया ॥ ४२ ॥ उत्थाय चलितस्तूर्णं ययौ कुंडसमीपतः ॥ अवाङ्मुखो ददर्शाधस्तस्मिन्नेव क्षणे मुने ॥ ४३ ॥ तत्रस्थानां पापिनां तु स्वर्गाधिकमभूत्सुखम् ॥ हसंति

जिन अवैदिक सम्प्रदायोंमें स्वेच्छाचारिताके सिद्धान्त प्रचलित हैं, उनके अनुयायी तथा जिस सम्प्रदायके लोग लोहा गर्म करके अपने शरीरपर शंख-चक्र आदिके चिह्न दागते हैं, वे लोग और जिस सम्प्रदायके लोग अपने शरीरपर त्रिशूल गर्म करके दागते हैं, वे सब इसी नरककुंडमें आते हैं। हे महर्षि! जो लोग अपने पिता, माता, गुरु, ज्येष्ठ भ्राता, पुराण और स्मृतिग्रन्थोंकी निन्दा करते हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जो धर्मकी आलोचना करते हैं, वे लोग इसी कुम्भीपाक नरकमें पड़ते हैं। हे दुर्वासा मुनि! यह उन्हीं पापियोंका महाभयानक चीत्कार सुनायी दे रहा है, जिससे कानके पर्दे फटे जा रहे हैं ॥ ४१ ॥ हम लोग तो नित्य यह हाहाकार सुनते रहते हैं, जिसे सुनकर चित्तमें बड़ा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। पितृगणोंकी यह बात सुनकर महर्षि दुर्वासा उठकर पापियोंको देखनेके लिए चल दिये। वे बड़ी तेजीसे चलकर कुम्भीपाक नरककुण्डके पास पहुँचे। हे नारद! वहाँ जाकर नीचेकी ओर मुँह करके वे ज्यों ही देखने लगे, त्यों ही उन पापियोंको स्वर्गसे भी बढ़कर अधिक सुख मिलने लगा। उनमेंसे कुछ हँसने लगे, कुछ गाने लगे और कुछ नाचने लगे। कुछ अतिशय सुखकी वृद्धिके कारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मस्त होकर परस्पर क्रीड़ा करने लगे। मृदंग, पखावज, वीणा, नगाड़ा, शहनाई तथा कोयलकी भाँति पंचम स्वरसे विभूषित अत्यन्त मधुर ध्वनि सुनायी पड़ने लगी। वासन्ती लताके फूलोंके सम्पर्कसे सुगन्धित वायु बहने लगी ॥४२-४६॥ यह देखकर दुर्वासा मुनिके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। यमदूत भी बड़े चकराये। वे तुरन्त सर्वज्ञ धर्मराजके पास जाकर कहने लगे—॥ ४७ ॥ हे महाराज! हे प्रभु! अभी-अभी एक बड़ी आश्चर्यजनक घटना घटी है। कुम्भीपाकके पापियोंको स्वर्गसे भी बढ़कर अधिक सुख मिल रहा है ॥४८॥ हे विभो! यह अचानक क्या हो गया? इसका कारण हमारी समझमें नहीं आ रहा है। हे देव! हम लोग तो हक्का-बक्का होकर आपके पास चले आ रहे हैं ॥ ४९ ॥ अपने दूतोंकी यह बात सुनकर धर्मराज तुरन्त उठ खड़े हुए और अपने सबसे बड़े भैंसेपर बैठकर कुम्भीपाक नरक कुंडके पापियोंके पास गये ॥ ५० ॥ उन्होंने इसी सन्देशको अपने दूतों द्वारा अमरावतीपुरीमें इन्द्रके पास भेजा। उसे सुनकर देवराज इन्द्र भी देवताओंके साथ वहाँ जा पहुँचे ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकसे ब्रह्माजी, वैकुंठलोकसे विष्णुभगवान और अपने-अपने लोकसे अष्टदिक्पाल भी आ गये

केचिद्गायंति नृत्यन्ति च तथापरे ॥ ४४॥ परस्परं रमंते तेऽप्युन्मत्ताः सुखवर्धनात् ॥ मृदंगमुरजावीणाढक्कादुन्दुभिनिःस्वनाः॥ ४५ ॥ समुद्भूतास्तु मधुराः पञ्चमस्वरभूषिताः ॥ वसंतवल्लीपुष्पाणां सुगंधमरुतो ववुः ॥ ४६ ॥ मुनिस्तु चकितो दृष्ट्वा यमदूताश्च विस्मिताः ॥ शीघ्रं ते कथयामासुर्धर्मराजाय वेदिने ॥ ४७ ॥ महाराज महाश्चर्यमधुनैवाभवद्विभो ॥ स्वर्गादप्यधिकं सौख्यं कुम्भीपाकस्थपापिनाम् ॥ ४८ ॥ निमित्तं नैव जानीमः कस्मादिदमभूद्विभो ॥ चकिताः स्म वयं सर्वे प्राप्ता देव त्वदंतिकम् ॥ ४९ ॥ निशम्य दूतवाणीं तां धर्मराट् शीघ्रमुत्थितः ॥ महामहिषमारूढो ययौ ते यत्र पापिनः ॥ ५० ॥ तां वार्तां प्रेषयामास दूतद्वाराऽमरावतीम् ॥ श्रुत्वा तां देवराजोऽपि प्राप्तो देवगणैः सह ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकात्पद्मजोऽपि वैकुण्ठाद्विष्टरश्रवाः ॥ तत्तल्लोकाच्च दिक्पालाः समाजग्मुर्गणैः सह ॥५२॥ परिवार्य स्थिताः सर्वे कुम्भीपाकमितस्ततः॥ अपश्यंस्तद्गताञ्जीवान्स्वर्गाधिकसुखान्वितान् ॥ ५३ ॥ चकिता एव ते सर्वे न विदुस्तस्य कारणम् ॥ अहो पापस्य भोगार्थं कुण्डमेतद्विनिर्मितम् ॥ ५४ ॥ तत्र सौख्यं यदा जातं तदा पापात्तु किं भयम् ॥ उच्छिन्ना वेदमर्यादा परमेशकृता कथम्॥५५॥ भगवांस्तस्य संकल्पं वितथं कृतावान्कथम् ॥ आश्चर्यमेतदाश्चर्यमेतदित्येव भाषिणः ॥५६॥ तटस्था अभवन्सर्वे न विदुस्तत्र कारणम्॥ एतस्मिन्नंतरे शौरिः संमंत्र्य विबुधादिभिः ॥५७॥ ययौ कैश्चि-

॥ ५२ ॥ वे सब कुम्भीपाक नरककुंडको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। उन्होंने देखा कि कुंडके पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुख मिल रहा है ॥ ५३ ॥ वे सभी देवता बड़े फेरमें पड़ गये और यह नहीं समझ सके कि इसका कारण क्या है? वे कहने लगे—अरे! पाप भोगनेके लिए यह कुंड बना था ॥ ५४ ॥ जब यहाँ इतना मौज मिल रहा है, तब फिर पाप-कर्म करनेसे कौन डरेगा? परमात्माकी बनायी हुई वेदकी मर्यादा कैसे छिन्न-भिन्न हो गयी? ॥५५॥ भगवानने अपने निश्चय अर्थात् पापी लोग नरकमें कष्ट पायेंगे, इस संकल्पको कैसे असत्य कर दिया? बड़े आश्चर्यकी बात है। यह बड़ी विस्मयकारक घटना है। यही बात प्रत्येक देवताके मुखसे निकलने लगी॥ ५६ ॥ यह देखकर वे तटस्थ हो गये। लेकिन किसीकी समझमें यह बात नहीं आयी कि किस कारण ऐसी अघटित घटना घटी। इसी समय विष्णुभगवान परस्पर परामर्श करके कुछ देवताओंके साथ कैलास पर्वतपर गये। वहाँ देवाधिदेव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिव पार्वतीजीके साथ विराजमान थे। वे करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर थे ॥५७॥५८॥ उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे रमणीयता टपक रही थी, वे लावण्यकी खान थे, बड़ा अद्भुत स्वरूपथा, वे सोलह वर्षके मालूम पड़ते थे, उनके शरीरपर विविध प्रकारके आभूषण सुशोभित थे ॥५९॥ उनके चारों ओर तरह-तरहके गण खड़े थे और शिवजी शिवा पार्वतीजीको प्यार कर रहे थे। चारों वेदों और चन्द्रमौलि शिवजीका दर्शन करके विष्णुभगवान्ने नमस्कार किया ॥६०॥ फिर जो आश्चर्यजनक घटना घटी थी, उसका अत्यन्त स्फुट शब्दोंमें वर्णन किया। उन्होंने कहा—हे देव! ऐसा क्यों हुआ? इसका कारण हम लोगोंकी समझमें नहीं आ रहा है॥६१॥ हे भगवन्! उसका कारण बतलाइए। क्योंकि हे प्रभु! आप सर्वज्ञ हैं। विष्णुभगवान्की बात सुनकर जिनका मुख-कमल प्रसन्न था, वे भगवान् शिवजी मेघके समान गम्भीर वाणीमें मधुर वचन बोले—हे विष्णु! इसका कारण सुनिए। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।, ६२ ॥ ६३ ॥ इसका कारण भस्मकी महिमा है। भस्मसे क्या नहीं हो सकता? शैव-सम्मत होकर अर्थात् भस्म एवं त्रिपुण्ड्र लगाकर दुर्वासा मुनि कुम्भीपाक नरककुण्ड देखने गये थे ॥६४॥ गर्दन झुकाकर

त्सुरगणैः सहितः शङ्करालयम् ॥ पार्वत्या सहितं देवं कोटिकंदर्पसुन्दरम् ॥ ५८ ॥ रमणीयतमांगं तं लावण्यखनिमद्भुतम् ॥ सदा षोडशवर्षीयं नानालंकारभूषितम् ॥ ५६ ॥ नानागुणैः परिवृतं लालयंतं परां शिवाम् ॥ ददर्श चंद्रमौलिं स चतुर्वेदं ननाम ह ॥ ६० ॥ वृत्तांतं कथयामास चमत्कृतमतिस्फुटम् ॥ एतस्य कारणं देव न जानीमः कथंचन ॥ ६१ ॥ वद यत्कारणं देव सर्वज्ञोऽसि यतः प्रभो ॥ विष्णुवाक्यं तदा श्रुत्वा प्रसन्नमुखपंकजः ॥६२॥ उवाच मधुरं वाक्यं मेघगंभीरया गिरा ॥ शृणु विष्णो तन्निमित्तं नाश्चर्यं त्वत्र विद्यते ॥६३॥ भस्मनो महिमैवायं भस्मना किं भवेन्न हि ॥ कुंभीपाकं गतो द्रष्टुं दुर्वासाः शैवसंमतः ॥ ६४ ॥ अवाङ्मुखो ददर्शाधस्तदा वायुवशाद्धरे ॥ भालभस्मकणास्तत्र पतिता दैवयोगतः ॥ ६५ ॥ तेन जातमिदं सर्वं भस्मनो महिमा त्वयम् ॥ इतः परं तु तत्तीर्थं पितृलोकनिवासिनाम् ॥ ६६ ॥ भविष्यति न संदेहो यत्र स्नात्वा सुखी भवेत् ॥ पितृतीर्थे तु तन्नाम्नाऽप्यत ऊर्ध्वं भविष्यति ॥ ६७ ॥ मल्लिंगस्थापनं तत्र कार्यं देव्याश्च सत्तम ॥ पूजयिष्यंति ते तत्र पितृलोकनिवासिनः ॥ ६८ ॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि तत्र श्रेष्ठमिदं भवेत् ॥ पित्रीश्वरपूजया तु त्रैलोक्यं पूजितं भवेत् ॥ ६६ ॥ नारायण उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा देवं मूर्ध्ना प्रणम्य च ॥ तदनुज्ञां समादाय ययौ देवांतिकं हरिः ॥ ७० ॥ तत्सर्वं कथयामास कारणं शंकरोदितम् ॥ साधु

वे नीचे कुण्डके भीतरकी ओर देखने लगे। हे हरि! उस समय हवा लगनेसे उनके मस्तकपरके कुछ भस्मकण दैवसंयोगसे कुंडमें गिर गये ॥६५॥ उसीसे यह घटना घटी। इसे भस्मकी महिमा ही जानिए। अबसे कुम्भीपाक नरककुंड न रहेगा, बल्कि पितृलोकमें रहनेवालोंके लिए तीर्थस्थल बन जायगा। इसमें सन्देह नहीं है। इस कुंडमें स्नान करके वे सुखी होते रहेंगे। आजसे उसका नाम 'पितृतीर्थ' पड़ जायगा ॥६६॥६७॥ हे पुरुषोत्तम! आप वहाँ मेरे लिङ्ग और देवीकी मूर्तिकी स्थापना करें। जिससे पितृतीर्थके निवासी लोग पूजा कर सकें ॥ ६८ ॥ त्रिभुवनमें जितने तीर्थ हैं, उन सबमें यह सर्वश्रेष्ठ तीर्थ होगा। उसी तीर्थमें स्थापित भगवती पित्रीश्वरीकी पूजासे तीनों लोकोंकी पूजा हो जायगी ॥ ६९ ॥ नारायणने कहा—हे नारद! महादेवजीकी यह बात सुनकर विष्णुभगवान्ने उन्हें मस्तक नवाया और उनकी आज्ञा लेकर देवताओंके पास लौट आये ॥ ७० ॥ जो कारण शिवजीने बतलाया था, वह सब बातें बतला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीं। तब सब देवता माथा हिला-हिलाकर कहने लगे–'धन्य है, धन्य है' ॥७१॥ अब विष्णुभगवान्, ब्रह्माजी और सब देवता भस्मकी महिमाका बखान करने लगे। हे शत्रुनिषूदन! एक नवीन तीर्थ बन जानेसे पितरोंकी प्रसन्नताका वारापार नहीं रहा ॥ ७२ ॥ देवताओंने उस तीर्थके तटपर शिवलिङ्ग और भगवती पित्रीश्वरी देवीकी मूर्ति विधिपूर्वक स्थापित की और प्रतिदिन पूजा करने लगे ॥ ७३ ॥ उस कुंडमें अपने पापकर्मोंका फल भोगनेके लिए जितने पापी थे, वे सब विमानपर बैठकर कैलासको चले गये ॥ ७४ ॥ आज भी वे 'भद्रगण' के नामसे कैलास पर्वतपर निवास करते हैं। फिर वहाँसे हटकर बहुत दूर एक दूसरा कुम्भीपाक नामका नरककुंड बनाया गया ॥ ७५ ॥ उसी दिनसे देवताओंने कुम्भीपाक नरककुंडके मार्गसे शैवोंको नहीं जाना चाहिए, ऐसा नियन्त्रण लगा दिया। अर्थात् जो शैव भस्म तथा त्रिपुण्ड्र लगाये रहेंगे, वे इस कुंडमें नहीं पड़ेंगे। बाकी लोग इस नरकमें जायँगे। इस प्रकार मैंने आपको भस्मका उत्तम माहात्म्य कह सुनाया ॥७६॥ हे नारदजी! इससे बढ़कर कोई दूसरी वस्तु संसारमें है ही नहीं। अब अधिकारीभेदसे ऊर्ध्वपुण्ड्र लगानेकी विधि बतला रहा हूँ।

साध्विति ते प्रोचुरमरा मौलिचालनैः ॥ ७१ ॥ शशंसुर्भस्ममाहात्म्यं हरिब्रह्मादयः सुराः ॥ पितरश्चैव संतुष्टास्तीर्थलाभात्परन्तप ॥ ७२ ॥ तत्तीर्थतीरे लिंगं च देव्या मूर्तिं यथाविधि ॥ स्थापयामासुरमराः पूजयामासुरन्वहम् ॥ ७३ ॥ तत्र ये प्राणिनोऽभूवन्पापभोगार्थमास्थिताः ॥ ते विमानं समारुह्य गताः कैलासमंडलम् ॥७४॥ नाम्ना भद्रगणास्ते तु वसंत्यद्यापि तत्र हि ॥ पुनश्च दूरदेशे तु कुंभीपाको विनिर्मितः ॥ ७५॥ निरुद्धं शैवगमनं देवैस्तत्र तु तद्दिनात् ॥ इति ते सर्वमाख्यातं भस्ममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ७६ ॥ नातः परतरं किंचिदधिकं विद्यते मुने ॥ ऊर्ध्वपुंड्रविधिं चैवाप्यधिकारिविभेदतः ॥ ७७ ॥ प्रवक्ष्ये मुनिशार्दूल वैष्णवागमलोकनात् ॥ ऊर्ध्वपुंड्रप्रमाणानि दिव्यान्यंगुलिभेदतः ॥ ७८ ॥ वर्णाभिमंत्रदेवांश्च प्रवक्ष्यामि फलानि च ॥ पर्वताग्रे नदीतीरे शिवक्षेत्रे विशेषतः ॥ ७९ ॥ सिंधुतीरे च वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते ॥ मृद एतास्तु संग्राह्या वर्जयेदन्यमृत्तिकाः ॥ ८० ॥ श्यामं शांतिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं भवेत् ॥ श्रीकरं पीतमित्याहुर्धर्मदं श्वेतमुच्यते ॥ ८१ ॥ अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमायुष्करी भवेत् ॥ अनामिकान्नदा नित्यं मुक्तिदा च प्रदेशिनी ॥ ८२ ॥ एतैरंगुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः स्पृशेत् ॥ बर्तिदीपावलिकृतिं

हे ऋषिराज! वैष्णव शास्त्रोंके अवलोकनसे जो मुझे मालूम हुआ है, उसीके आधारपर वर्णन करूँगा। अँगुलीके नापसे ऊर्ध्वपुंड्रका प्रमाण, ऊर्ध्वपुंड्रका रंग, ऊर्ध्वपुंड्रका मन्त्र, ऊर्ध्वपुंड्रके देवता और ऊर्ध्वपुंड्रका फल बतलाऊँगा। (कहाँकी मिट्टी लेनी चाहिए?–इसका वर्णन) पहाड़की चोटीपरकी मिट्टी, नदीके किनारेकी मिट्टी, विशेषतया शिवजीके स्थलकी मिट्टी समुद्रके किनारेकी मिट्टी, बाँबीकी मिट्टी और तुलसीके पेड़के जड़की मिट्टी ले आवे। इनके अतिरिक्त दूसरी जगहकी मिट्टी न ले ॥७७-८०॥ काली मिट्टी शान्तिदायिनी, लाल मिट्टी दूसरोंको अपने वशमें करनेवाली, पीली मिट्टी धनदायिनी और सफेद मिट्टी धर्मकी ओर प्रवृत्ति बढ़ानेवाली होती है। अर्थात् जैसी कामना हो उसके अनुसार उसी रंगकी मिट्टी लेकर ऊर्ध्वपुंड्र लगावे ॥ ८१ ॥ अंगूठा द्वारा ऊर्ध्वपुंड्र लगानेसे शरीरका पोषण होता है, बीचवाली अँगुली द्वारा ऊर्ध्वपुंड्र लगानेसे आयु बढ़ती है, अनामिका (कनिष्ठिकाके बगलवाली) अँगुली द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र लगानेसे नित्य भोजनकी प्राप्ति होती है और प्रदेशिनी (अँगूठाके बगलवाली) अँगुली द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र लगानेसे शाश्वत मुक्ति मिलती है ॥ ८२ ॥ इतनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अंगुलियोंमेंसे किसी अंगुली द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र लगावे। लेकिन लगाते समय नाखून न लगे। आकारमें चाहे दीपककी बत्ती (लौ) की तरह नीचेकी ओर मोटा और ऊपरकी ओर पतला और लम्बा ऊर्ध्वपुण्ड्र लगावे, या बाँसकी पत्ती तरह, या कमलकी कलीकी तरह, या मछलीके आकारका, या कछुएके आकारका अथवा शंखके आकारका ऊर्ध्वपुण्ड्र लगावे ॥८३॥८४॥ दस अंगुल लम्बा ऊर्ध्वपुंड्र 'सर्वोत्तम' होता है, नौ अङ्गुल लम्बा उत्तम कोटिमें मध्यम और आठ अङ्गुल लम्बा ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तमकोटिमें साधारण होता है ॥ ८५ ॥ इसी प्रकार मध्यम ऊर्ध्वपुण्ड्र भी तीन प्रकारका होता है अर्थात् सात अङ्गुलका ऊर्ध्वपुंड्र मध्यम कोटिमें श्रेष्ठतम, छ अङ्गुलका मध्यम कोटिमें श्रेष्ठतर और पाँच अङ्गुलका मध्यम कोटिमें साधारण होता है। इसी तरह अधम ऊर्ध्वपुण्ड्र भी तीन प्रकारका होता है। चार अंगुलका ऊर्ध्वपुंड्र अधम कोटिमें सबसे अच्छा, तीन अङ्गुलका अधमकोटिमें उससे कम अच्छा और तीन अंगुलका अधमकोटिमें साधारण होता है ॥ ८६ ॥ ललाटके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'केशव', उदरके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'नारायण', हृदयके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'माधव', कण्ठके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'गोविन्द', ॥ ८७ ॥ उदरकी दाहिनी बगलके ऊर्ध्वपुंड्रको 'विष्णु', उदरकी बायीं बगलके ऊर्ध्वपुंड्रको 'मधुसूदन', ॥८८॥ दाहिने कानके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'त्रिविक्रम'. बायीं कोखके ऊर्ध्वपुंड्रको 'वामन', बायीं भुजाके

वेणुपत्राकृतिं तथा ॥८३॥ पद्मस्य मुकुलाकारं तथा कुर्यात्प्रयत्नतः॥ मत्स्यकूर्माकृति वापि शंखाकारं ततः परम् ॥८४॥ दशांगुलिप्रमाणं तु उत्तमोत्तम-मुच्यते ॥ नवांगुलं मध्यमं स्यादष्टांगुलमतः परम् ॥ ८५ ॥ सप्तषट्पञ्चभिः पुण्ड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् ॥ चतुस्त्रिद्व्यंगुलैः पुंड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत् ॥ ८६ ॥ ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे ॥ माधवं हृदि विन्यस्य गोविंदं कंठकूपके ॥ ८७ ॥ उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्यभिधी-यते ॥ तत्पार्श्वबाहुमध्ये च मधुसूदनमेव च ॥ ८८ ॥ त्रिविक्रमं कर्णदेशे वामकुक्षौ तु वामनम् ॥ श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु कर्णके ॥ ८९ ॥ पृष्ठे च पद्मनाभं तु ककुद्दामोदरं स्मरेत् ॥ द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि ॥ ९० ॥ पूजाकाले च होमे च सायंप्रातः समाहितः ॥ नामान्युच्चार्य विधिना धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम् ॥ ९१ ॥ अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरेत् ॥ शुचिरेव भवेन्नित्यं मूर्ध्नि पुण्ड्रांकितो नरः ॥ ९२ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित ॥ श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥ ९३ ॥ एकांतिनो महाभागा मत्स्वरूपविदोऽमलाः ॥

ऊर्ध्वपुंड्रको 'श्रीधर', बायें कानके ऊर्ध्वपुंड्रको 'हृषीकेश' ॥८९॥ पीठके ऊर्ध्वपुंड्रको 'पद्मनाभ', कन्धेके ऊर्ध्वपुंड्रको 'दामोदर' और ब्रह्मरन्ध्रके ऊर्ध्वपुंड्रको 'वासुदेव' समझकर उनका स्मरण करे। इस प्रकार भगवान् विष्णुके इन बारह नामोंका स्मरण करे ॥ ९० ॥ प्रातःकालीन तथा सायंकालीन पूजा एवं प्रातःकालीन और सायंकालीन हवन करनेके पूर्व शान्तचित्तसे उपर्युक्त बारह नामोंका उच्चारण करके विधिपूर्वक ऊर्ध्वपुंड्र लगाना चाहिए ॥ ९१ ॥ चाहे कोई कितना ही अपवित्र क्यों न हो, अनाचारी क्यों न हो और मनसे कितना ही पापी क्यों न हो, प्रतिदिन ऊर्ध्वपुंड्रके लगाते ही वह पवित्र हो जाता है ॥ ९२ ॥ ऊर्ध्वपुंड्र धारण करनेवाला मनुष्य भारतवर्षके किसी भी कोनेमें क्यों न मरे और चाहे चाण्डाल ही क्यों न हो, वह विमानपर बैठकर मेरे लोकमें आकर पूजित होता है ॥९३॥ महाभाग्यशाली ऐकान्तिक वैष्णव भक्त ही मेरे विमल स्वरूपको जानते हैं। अतः वे विष्णुभगवान्के चरणके आकारके ऊर्ध्वपुंड्रकी दोनों रेखाओंके बीचमें खाली जगह छोड़ देते हैं। इसी प्रकार मेरे परमैकान्तिक वैष्णवभक्त भी विष्णुपदके आकारके निर्मल शूलको तरह लम्बे ऊर्ध्वपुंड्रको हल्दीकी बुकनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(रोली) से धारण करते हैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ अन्य वैष्णव भक्तिके साथ दीपककी बत्तीकी तरह अर्थात् नीचेकी ओर मोटा और ऊपरकी ओर पतला, कमलकी तरह या बाँसकी पत्तीकी तरह ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाते हैं—लेकिन वे दोनों रेखाओंके बीचमें खाली जगह नहीं छोड़ते ॥ ९६ ॥ जो केवल वैष्णवनामधारी अर्थात् साधारण वैष्णव गृहस्थ हैं, वे चाहे अच्छिद्र (रेखाओंके बीचमें खाली न छोड़कर) ऊर्ध्वपुण्ड्र लगावें और चाहे सच्छिद्र (दोनों रेखाओंके बीचमें खाली जगह छोड़कर) ऊर्ध्वपुण्ड्र लगावें। अच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र लगानेमें उन्हें किसी तरहका पाप नहीं लगता ॥९७॥ लेकिन जो ऐकान्तिक वैष्णव और परमैकान्तिक वैष्णव अर्थात् मध्वसम्प्रदाय एवं रामानुज सम्प्रदायके वैष्णव भक्त हैं, वे यदि अच्छिद्र ऊर्ध्वपुंड्र लगावें तो उन्हें महापाप लगता है ॥ ९८ ॥ जो वैष्णवभक्त डंडेके आकारका सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र रेखाओंके बीचमें खाली स्थान छोड़कर 'केशवाय नमः, नारायणाय नमः, माधवाय नमः, गोविन्दाय नमः, विष्णवे नमः, मधुसूदनाय नमः, त्रिविक्रमाय नमः, वामनाय नमः, श्रीधराय नमः, हृषीकेशाय नमः, पद्मनाभाय नमः, दामोदराय नमः', इन बारह नामोंका उच्चारण करके विभिन्न अङ्गोंपर

सांतरालान्प्रकुर्वंति पुण्ड्रान्विष्णुपदाकृतीन् ॥ ९४ ॥ परमैकांतिनोऽप्येवं मत्पादैकपरायणाः ॥ हरिद्राचूर्णसंयुक्ताञ्छूलाकारांस्तु वाऽमलान् ॥ ९५ ॥
अन्ये तु वैष्णवाः पुण्ड्रानच्छिद्रानपि भक्तितः ॥ प्रकुर्वीरन्दीपपद्मवेणुपत्रोमाकृतीन् ॥९६॥ अच्छिद्रानपि सच्छिद्रान्कुर्युः केवलवैष्णवाः ॥ अच्छि-
द्रकरणे तेषां प्रत्यवायो न विद्यते ॥ ९७ ॥ एकांतिनां प्रपन्नानां परमैकान्तिनामपि ॥ अच्छिद्रपुण्ड्राकरणे प्रत्यवायो महान्भवेत् ॥ ९८ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं
तु यः कुर्याद्दण्डाकारं तु शोभनम् ॥ मध्येछिद्रं वैष्णवाश्च नमोन्तैः केशवादिभिः ॥ ९९ ॥ विमलान्यूर्ध्वपुण्ड्राणि सांतरालानि यो नरः ॥ करोति
विपुलं तत्र मन्दिरं मे करोति सः ॥ १०० ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे ॥ लक्ष्म्या साकं सहासीनो रमते विष्णुरव्ययः ॥ १०१ ॥
निरंतरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः ॥ स हि तत्र स्थितं विष्णुं श्रियं चैव व्यपोहति ॥१०२॥ अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु यः करोति विमूढधीः ॥
स पर्यायेण तानेति नरकानेकविंशतिम् ॥ १०३ ॥ ऋजूनि स्फुटपार्श्वानि सांतरालानि विन्यसेत् ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्राणि दण्डाब्जदीपमत्स्यनिभानि
च ॥ १०४ ॥ शिखोपवीतवद्धार्यमूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजेन च ॥ विना कृताश्चेद्विफलाः क्रियाः सर्वा महामुने ॥ १०५ ॥ तस्मात्सर्वेषु कार्येषु कार्यं

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं ॥ ९९ ॥ वे निर्मल ऊर्ध्वपुण्ड्र ही नहीं लगाते, बल्कि मेरा विशाल मन्दिर बनाते हैं ॥१००॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रकी रेखाओंके बीचकी विशाल और अत्यन्त मनोहर खाली जगहमें लक्ष्मीजीके साथ अविनाशी भगवान् विष्णु रमण करते हैं ॥ १०१ ॥ लेकिन जो नराधम द्विज रेखाओंके बीचमें बिना खाली स्थान छोड़े ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाते हैं, वे उस स्थानपर स्थित विष्णुभगवान् और लक्ष्मीजीको ही मानो मार डालते हैं ॥ १०२ ॥ जो मूर्ख अच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं, वे क्रमशः इक्कीस नरकोंमें जाते हैं ॥ १०३ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रकी रेखाएँ सीधी, अत्यन्त स्पष्ट और बीचमें अवकाश (खाली जगह) वाली और आकारमें डंडेकी तरह, या कमलकी कलीकी तरह, या दीपककी बत्तीकी तरह, या मछलीकी तरह होनी चाहिए ॥१०४॥ द्विजोंका कर्तव्य है कि शिखा और यज्ञोपवीतकी तरह ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें। क्योंकि हे देवर्षि नारदजी! इसके बिना उनकी सारी क्रिया व्यर्थ हो जाती है ॥ १०५ ॥ इसलिए समस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नित्य-नैमित्तिक कर्म करते समय बुद्धिमान् ब्राह्मणको चाहिये कि त्रिशूलके आकारका गोल अथवा चौकोर आकारका ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे ॥१०६॥ जो वेदनिष्ठ ब्राह्मण हों, उन्हें अर्धचन्द्र अर्थात् आधे चन्द्रमाके आकारका तिलक नहीं लगाना चाहिए। किन्तु जो अवैदिक ब्राह्मण हों, वे इसका व्यवहार कर सकते हैं। जो जन्मना ब्राह्मण हों और वैदिकधर्मके अनुयायी हों ॥१०७॥ वे भूलकर भी ऊर्ध्वपुण्ड्रके अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकारका पुण्ड्र अपने भालपर न लगावें। वैष्णव ग्रंथोंमें कीर्तिकी कामनाके विचारसे या शारीरिक कान्ति बढ़ानेके लिए अनेक प्रकारके चिह्न धारण करनेके लिए बतलाये गये हैं ॥१०८॥ किंतु वैदिक ब्राह्मणको त्रिपुण्ड्रके अतिरिक्त कोई दूसरा चिह्न भूलकर भी नहीं धारण करना चाहिए ॥१०९॥ जो वैदिक ब्राह्मण अज्ञानवश ललाटपर भस्मसे तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करनेके स्थानपर किसी दूसरी तरहका चिह्न लगाते हैं तो वे नरकमें जाते हैं ॥११०॥ जो वैदिक धर्मके कट्टर अनुयायी हैं और मोहवश भिन्न प्रकारके चिह्न (तप्तमुद्रा) धारण करें तो वे नरकके अधिकारी होते हैं—इसमें संशय नहीं है। इसी प्रकार अन्य पुण्ड्रोंके बारेमें भी समझिए ॥ १११ ॥ जो वैदिक धर्मावलम्बी हैं, उन्हें अपने

. विप्रस्य धीमतः ॥ ऊर्ध्वपुंड्रं त्रिशूलं च वर्तुलं चतुरस्रकम् ॥१०६॥ अर्धचन्द्रादिकं लिंगं वेदनिष्ठो न धारयेत् ॥ जन्मना-लब्धजातिस्तु वेदपंथानमाश्रितः ॥ १०७ ॥ पुण्ड्रांतरं भ्रमाद्वापि ललाटे नैव धारयेत् ॥ ख्यातिकांत्यादिसिद्ध्यर्थं चापि विष्णवागमादिषु ॥१०८॥ स्थितं पुण्ड्रांतरं नैव धारयेद्वैदिको जनः ॥ तिर्यक्त्रिपुंड्रं संत्यज्य श्रौतं कथमपि भ्रमात् ॥ १०९ ॥ ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ॥ बिना पुंड्रांतरं मोहाद्धारयन्नारकी भवेत् ॥ ११० ॥ वेदमार्गैकनिष्ठस्तु मोहेनाप्यङ्कितो यदि ॥ पतत्येव न संदेहस्तथा पुंड्रांतरादपि ॥ १११ ॥ नांकनं विग्रहे कुर्याद्वेदमार्गं समाश्रितः ॥ श्रौतधर्मैकनिष्ठानां तु लिंगं श्रौतमेव हि ॥११२॥ अश्रौतधर्मनिष्ठानामश्रौतं लिंगमीरितम् ॥ देवता वेदसिद्धा यास्तासां लिंगं तु वैदिकम् ॥ ११३ ॥ अश्रौततंत्रनिष्ठा यास्तासामश्रौतमेव हि ॥ वेदसिद्धो महादेवः साक्षात्संसारमोचकः ॥ ११४ ॥ भक्तानामुपकाराय श्रौतं लिंगं दधाति च ॥ वेदसिद्धस्य विष्णोश्च श्रौतं लिंगं न चेतरत् ॥ ११५ ॥ प्रादुर्भावविशेषाणामपि तस्य तदेव हि ॥ श्रौतं लिंगं तु विज्ञेयं त्रिपुंड्रोद्धूलनादिकम् ॥ ११६ ॥ अश्रौतमूर्ध्वपुंड्रादि नैव तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ वेदमार्गैकनिष्ठानां वेदोक्तेनैव वर्त्मना ॥११७॥ ललाटे भस्मना तिर्य-

शरीरपर किसी प्रकारका चिह्न नहीं दगवाना चाहिए। कट्टर वैदिकधर्मके पालन करनेवालोंके लिए एकमात्र वैदिकचिह्न त्रिपुण्ड्र ही है ॥११२॥ हाँ, जो वैदिक धर्मपरायण नहीं हैं, वे अपने सम्प्रदायानुसार अवैदिक चिह्न धारण कर सकते हैं। वेदमें जितने देवताओंका उल्लेख पाया जाता है, उनके वैदिक ही चिह्न हैं। अतः जो लोग देवताओंकी उपासना करते हों, वे त्रिपुण्ड्र अवश्य धारण करें ॥ ११३ ॥ जो लोग अवैदिक अर्थात् तन्त्रशास्त्रके अनुयायी हों, वे अपने तन्त्रोक्त चिह्न धारण कर सकते हैं। महादेवजी वैदिक देवता हैं और वे भवबन्धनसे मुक्त करनेवाले हैं ॥११४॥ वे भक्तोंके उपकारके लिए वेदानुमोदित चिह्न भस्म-त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं। विष्णु भगवान भी वैदिक देवता हैं और वे भी वेदानुमोदित चिह्न धारण करते हैं, दूसरा चिह्न नहीं धारण करते ॥११५॥ उनके जितने राम-कृष्ण आदि अवतार हुए हैं, वे भी भस्म तथा त्रिपुण्ड्र धारण किये हैं। सर्वाङ्गमें भस्म लगाना और त्रिपुण्ड्र धारण करना ही वैदिक चिह्न है ॥ ११६ ॥ वैदिकधर्मके अतिरिक्त जो तन्त्र-शास्त्रानुमोदित सम्प्रदाय हैं, उनमें लोग ऊर्ध्वपुण्ड्र नहीं धारण करते। कट्टर वैदिक धर्मावलम्बियोंको वैदिक-प्रणालीसे ललाटपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भस्मसे तिर्यक् त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए। जो भगवान नारायणको अपना आराध्य देव मानकर उनके परम पदकी अभिलाषा रखते हों, उन्हें चाहिए कि अपने ललाटपर सुगन्धित चन्दन आदिके लेपसे शूलाकार तिलक लगावें ॥११७॥११८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

(सन्ध्योपासनकी विवेचना) नारायण बोले—हे नारद! भस्म धारण करनेका विस्तृत माहात्म्य मैंने तुम्हें सुनाया। अब सन्ध्योपासनके उत्तम पुण्यका प्रसङ्ग सुनो ॥ १ ॥ हे अनघ! पहले प्रातः संध्योपासनका विधान बतलाता हूँ। प्रातःकालकी संध्या ताराओंके रहते-रहते, मध्याह्नकी संध्या जब सूर्य मध्य-आकाशमें हों तब और सायंकालकी संध्या सूर्यके पश्चिम दिशामें चले जानेपर करनेका विधान है। इस प्रकार तीन तरहकी संध्या प्रतिदिन करनी चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥ अब उनके भेद सुनिए—हे देवर्षिसत्तम! सूर्योदयसे पूर्व जबतक तारे दिखायी देते रहें—प्रातः संध्याका उत्तम काल है। ताराओंके छिपनेसे लेकर सूर्योदय तक मध्यम और सूर्योदयके पश्चात् अधम काल है—यों तीन प्रकारकी प्रातःकालीन संध्या बतायी गयी। जब

क्त्रिपुण्ड्रं धार्यमेव हि ॥ यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम् ॥ धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गंधवारिणा ॥११८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ नारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां पुण्यं संध्योपासनमुत्तमम् ॥ भस्मधारणमाहात्म्यं कथितं चैव विस्तरात् ॥ १ ॥ प्रातः संध्याविधानं च कथयिष्यामि तेऽनघ ॥ प्रातःसंध्यां सनक्षत्रां मध्याह्ने मध्यभास्कराम् ॥ २ ॥ ससूर्यां पश्चिमां संध्यां तिस्रः संध्या उपासते ॥ तद्भेदानपि वक्ष्यामि शृणु देवर्षिसत्तम ॥ ३ ॥ उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ॥ अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा मता ॥ ४ ॥ उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमाऽस्तमिते रवौ ॥ अधमा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा मता ॥ ५ ॥ विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र संध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् ॥ तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा ॥ ६ ॥ संध्या येन न विज्ञाता संध्या येनानुपासिता ॥ जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते ॥ ७ ॥ तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं संध्योपासनमुत्तमम् ॥ तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्न हि ॥ ८ ॥ उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्या-

सूर्य दिखायी देते रहें, उस समय की गयी सायं-संध्या उत्तम, सूर्यास्तके बाद ताराओंके उदयसे पहले की हुई संध्या मध्यम और ताराओंके उदयके पश्चात् की गयी सायं-संध्या निम्न श्रेणीकी समझी जाती है। सायंकालीन संध्याके ये तीन प्रकार कहे गये हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ब्राह्मण वृक्ष हैं। उनकी जड़ें ये संध्याएँ हैं, वेदशाखा हैं और धार्मिक कृत्य पत्ते हैं। अतएव यत्नपूर्वक जड़की ही रक्षा करनी चाहिये। यदि मूल ही कट गया तो न वृक्ष रहेगा और न शाखा ही ॥ ६ ॥ जिसे संध्याका ज्ञान नहीं है और जो संध्या नहीं करता, वह द्विज शूद्रके समान है। जीते हुए भी उसे मृतक समझना चाहिए और जन्मान्तरमें वह कुत्ता होता है ॥ ७ ॥ अतः द्विजको नित्य उत्तम संध्योपासना करनी चाहिये। संध्योपासनके अभावमें किसी भी शुभ कर्ममें उसका अधिकार नहीं है ॥८॥ जब सूर्य उदय और अस्त हों, उस समयसे तीन-तीन घड़ी बाद तक संध्योपासना की जा सकती है। इसके बाद संध्या करनेपर प्रायश्चित्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करना पड़ता हैं ॥९॥ उचित समय बीत जानेपर यदि संध्याकी जाय तो चार बार अर्घ्य देना चाहिये । अथवा संध्योपासनसे पूर्व एक सौ आठ (१०८) बार गायत्रीका जप करके तब संध्योपासन करे । अभिप्राय यह है कि कुछ ही कालका अतिक्रम हुआ हो, तब तो चार बार अर्घ्य देनेसे और अधिक समय व्यतीत हो गया हो तो १०८ बार गायत्रीका जप करनेसे प्रायश्चित्त सम्पन्न होता है ॥१०॥ जिस समय जो कर्म करना हो, उस समयकी अधीश्वरी देवी गायत्री हैं । अतएव संध्योपासन करके ही समयोचित कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिए ॥११॥ घरमें की हुई संध्या 'साधारण' कही गयी है, गोशालाकी संध्याको 'मध्यम' कहते हैं, नदीके तटपर की गयी संध्या 'उत्तम' श्रेणीकी तथा देवीगृहमें की हुई संध्या 'उत्तमोत्तम' होती हैं ॥ २॥ जो गायत्रीदेवीके उपासक हों, उनके लिये तो देवीके समीप ही संध्योपासन करना श्रेष्ठ है । वहाँ त्रैकालिक सन्ध्या करनेसे अनन्त फल मिलता है ॥ १३ ॥ गायत्रीदेवीके अतिरिक्त ब्राह्मणोंके लिए और कोई देवता नहीं है । ब्राह्मणोंके लिए विष्णु ओर शिवकी नित्य उपासना भी महादेवी गायत्रीकी आराधनाके समान नहीं हो सकती—यह श्रुतिका वचन

द्वटिकात्रयम् ॥ तावत्संध्यामुपासीत प्रायश्चित्तं ततः परम् ॥९॥ कालातिक्रमणे जाते चतुर्धाऽर्घ्यं प्रदापयेत् ॥ अथवाऽष्टशतं देवीं जप्त्वाऽऽदौ तां समाचरेत् ॥ १० ॥ यस्मिन्काले तु यत्कर्म तत्कालाधीश्वरीं च ताम् ॥ संध्यामुपास्य पश्चात्तु तत्कालीनं समाचरेत् ॥ ११ ॥ गृहे साधारणा प्रोक्ता गोष्ठे वै मध्यमा भवेत् ॥ नदीतीरे चोत्तमा स्याद्देवीगेहे तदुत्तमा ॥ १२ ॥ यतो देव्या उपासेयं ततो देव्यास्तु सन्निधौ ॥ संध्यात्रयं प्रकर्तव्यं तदाऽनंत्याय कल्पते ॥ १३ ॥ एतस्या अपरं दैवं ब्राह्मणानां न विद्यते ॥ न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा ॥ १४ ॥ यथा भवेन्महादेव्या गायत्र्याः श्रुतिचोदिता ॥ सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना ॥ १५ ॥ ब्रह्मादयोऽपि संध्यायां तां ध्यायंति जपंति च ॥ वेदा जपंति तां नित्यं वेदोपास्या ततः स्मृता ॥ १६ ॥ तस्मात्सर्वे द्विजाः शाक्ता न शैवा न च वैष्णवाः ॥ आदिशक्तिमुपासंते गायत्रीं वेदमातरम् ॥ १७ ॥ आचांतः प्राणमायम्य केशवादिकनामभिः ॥ केशवश्च तथा नारायणो माधव एव च ॥ १८ ॥ गोविंदो विष्णुरेवाथ मधुसूदन एव च ॥ त्रिविक्रमो वामनश्च श्रीधरोऽपि ततः परम् ॥ १९ ॥ हृषीकेशः पद्मनाभो दामोदर अतः परम् ॥ संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नोऽप्यनिरुद्धकः ॥ २० ॥ पुरुषोत्तमाधोक्षजौ च नारसिंहोऽच्युतस्तथा ॥ जनार्दन उपेन्द्रश्च हरिः कृष्णोऽन्तिमस्तथा ॥ २१ ॥ ॐकारपूर्वकं नाम चतुर्विंशतिसंख्यया ॥

है ॥१४॥ देवी गायत्रीकी उपासना सम्पूर्ण वेदोंका सार है । ब्रह्मा आदि देवता भी सन्ध्याकालमें गायत्रीका ध्यान और जप करते हैं । वेदों द्वारा नित्य इनका जप होता है । अतएव इनका नाम 'वेदोपास्या' है ॥ १५ ॥ १६ ॥ देवी गायत्री ही वेदकी माता और आदिशक्ति हैं । अतः सभी वैष्णव, शाक्त और शैवोंके लिए देवीकी उपासना परम आवश्यक है ॥ १७ ॥ हे नारद ! अब संध्याविधिका क्रम बतलाते हैं—केशव आदि नामोंका उच्चारण करके आचमन और प्राणायाम करनेके पश्चात् संध्योपासनमें प्रवृत्त होना चाहिए । वे इस प्रकार हैं— केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नरसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि और श्रीकृष्ण ॥ १८–२१ ॥ इन चौबीस नामोंके पूर्वमें ॐकार और अन्तमें 'स्वाहा' और 'नमः' का उच्चारण करके आचमन करना चाहिये । तत्पश्चात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'ॐ केशवाय नमः, ॐ माधवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः'–इन तीन नाममंत्रोंसे आचमन करके 'ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ माधवाय नमः'–इन दो मन्त्रोंसे हाथका प्रक्षालन करे। 'मधुसूदन' और 'त्रिविक्रम' इन दो नामोंसे अंगूठेके मूलद्वारा ओठका तथा 'वामन' 'श्रीधर'–इन नामोंसे मुखका सम्मार्जन करे ॥२२॥२३॥ 'हृषीकेश' का उच्चारण करके बायें हाथका, 'पद्मनाभ'से दोनों पैरोंका, 'दामोदर'से मस्तकका, 'संकर्षण'से बीचकी तीन अँगुलियों द्वारा मुखका, 'वासुदेव' एव 'प्रद्युम्न'–इन दो नामोंसे अँगूठे और तर्जनी अँगुलियोंद्वारा दोनों नासापुटोंका, 'अनिरुद्ध' और 'पुरुषोत्तम'–इन दोनों नामोंसे अंगूठे और अनामिका द्वारा दोनों नेत्रोंका, 'अधोक्षज' और 'नरसिंह' इन दो नामोंसे दोनों कानोंका, 'अच्युत'का उच्चारण करके कनिष्ठिका और अंगूठे द्वारा नाभिका, 'जनार्दन'से हाथके तलवे द्वारा हृदयका, 'उपेन्द्र'से सिरका, एवं ॐ हरये नमः, ॐ कृष्णाय नमः—इन दो नामोंसे दक्षिण और वाम भुजाका स्पर्श करना चाहिये। इस प्रकार इन नामों द्वारा प्रत्येक अङ्गके स्पर्शका विधान है २४॥ विवेको पुरुष दाहिने हाथसे जल पीते समय पात्रका बायें हाथसे भी स्पर्श किये रहे। पीनेवाला जल तबतक शुद्ध नहीं समझा जाता, जबतक बायें हाथका स्पर्श न हो ॥२५॥ आचमन करते समय हाथकी मुद्रा गौके कानके समान होनी चाहिए। आचमनमें एक मासा जल पीनेका विधान है।

स्वाहान्तैः प्राशयेद्वारि नमोन्तैः स्पर्शयेत्तथा ॥ २२ ॥ केशवादि त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ ॥ मुखं प्रक्षालयेद्द्वाभ्यां द्वाभ्यामुन्मार्जनं तथा ॥ २३ ॥ एकेन पाणिं संप्रोक्ष्य पादावपि शिरोऽपि च ॥ संकर्षणादिदेवानां द्वादशांगानि संस्पृशेत् ॥ २४ ॥ दक्षिणेनोदकं पीत्वा वामेन संस्पृशेद्बुधः ॥ तावन्न शुध्यते तोयं यावद्वामेन न स्पृशेत् ॥ २५ ॥ गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत् ॥ ततो न्यूनाधिकं पीत्वा सुरापायी भवेद्द्विजः ॥ २६ ॥ संहतांगुलिना तोयं पाणिना दक्षिणेन तु ॥ मुक्तांगुष्ठकनिष्ठाभ्यां शेषेणाचमनं विदुः ॥ २७ ॥ प्राणायामं ततः कृत्वा प्रणवस्मृतिपूर्वकम् ॥ गायत्रीं शिरसा सार्धं तुरीयपदसंयुतम् ॥ २८ ॥ दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेन पूरितोदरम् ॥ कुंभेन धारयेन्नित्यं प्राणायामं विदुर्बुधाः ॥ २९ ॥ पीडयेद्दक्षिणां नाडीमंगुष्ठेन तथोत्तराम् ॥ कनिष्ठानामिकाभ्यां तु मध्यमां तर्जनीं त्यजेत् ॥ ३० ॥ रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः ॥ प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः ॥ ३१ ॥ रेचकः सृजते वायुं पूरकः पूरयेत्तु तम् ॥ साम्येन संस्थितिर्यत्तत्कुंभकः परिकी-

उससे अधिक जल पीनेवाला ब्राह्मण सुरापानके पापका भागी होता है ॥ २६ ॥ दाहिना हाथ हो, अँगूठा और कनिष्ठिका–ये दोनों अलग-अलग हों तथा बीचकी तीनों अँगुलियाँ सँटी हुई हों–यों आचमन करनेका विधान किया गया है ॥ २७ ॥ तदनन्तर प्राणायाम करना चाहिए। प्राणायाम करते समय पहले प्रणवका उच्चारण करके चतुर्थ्यन्त पदके साथ गायत्रीका उच्चारण करे ॥२८॥ नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुका रेचन करना, बाँयेंसे वायु भरना और वायुको धारण किये रहना–इन्हींको पण्डित पुरुषोंने रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायाम कहा है ॥२९॥ वायुको खींचते समय दाहिनी नासिकाको अंगूठेसे दबावे। इसके बाद कनिष्ठिका और अनामिका दो अँगुलियोंसे बाँयीं नासिकाको बंद कर ले। 'मध्यमा' और 'तर्जनी'-का स्पर्श होना निन्द्य है ॥३०॥ सम्पूर्ण शास्त्रोंमें संयमशील योगियों द्वारा इसी प्रकारके रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायामका वर्णन किया गया है ॥३१॥ जो वायुका सृजन करता है वह 'रेचक', जो पूर्ण करता है वह पूरक और जो उसे साम्यस्थितिमें धारण किये रहता है, वह कुम्भक प्राणायाम कहलाता है ॥ ३२ ॥ पूरक करते समय नील कमलदलके समान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्यामसुन्दर चतुर्भुज भगवान विष्णुका नाभिदेशमें ध्यान करे ॥ ३३ ॥ कुम्भक करते समय भगवानकी नाभिसे प्रकटे हुए कमलके आसनपर विराजमान अरुण-गौर मिश्रित वर्णवाले चतुर्भुज ब्रह्माजीका हृदयमें ध्यान करे ॥ ३४ ॥ रेचक करते समय शुद्ध स्फटिकके समान श्वेत वर्ण, निर्मल और पापोंका संहार करनेवाले महादेवजीका ललाटमें ध्यान करे ॥३५॥ पूरक प्राणायामसे मनुष्य भगवान विष्णुका सायुज्य, कुम्भकसे ब्रह्मपद तथा रेचकसे भगवानके तृतीय पदका अधिकारी होता है ॥ ३६ ॥ हे देवर्षिसत्तम! मैंने पहले जो बतलाया है, वह पौराणिक आचमन है। हे मुने! अब मैं पापहारी श्रौत आचमनकी विधि बतलाता हूँ, सुनो ॥३७॥ पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण करके गायत्रीकी ऋचा (तत्सवितुः आदि)का जिसमें उच्चारण होता है और पदके आदिमें तीनों व्याहृतियाँ उच्चरित होती हैं—उस मंत्रको पढ़कर किया हुआ आचमन श्रौत आचमन कहा जाता है। प्रणव, व्याहृति और शीर्षकके साथ गायत्रीका प्राणायामके समय जप करना चाहिये। ये ही तीनों प्राणायाम हैं। [अब लक्षणसहित प्राणायामोंका वर्णन करता हूँ। यह अनेक पापोंका संहार करने और महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है।]

तिंतः ॥३२॥ नीलोत्पलदलश्यामं नाभिमध्ये प्रतिष्ठितम् ॥ चतुर्भुजं महात्मानं पूरके चिंतयेद्धरिम् ॥३३॥ कुम्भके तु हृदि स्थाने ध्यायेत्तु कमलासनम् ॥ प्रजापतिं जगन्नाथं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥३४॥ रेचके शंकरं ध्यायेल्ललाटस्थं महेश्वरम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्मलं पापनाशनम् ॥३५॥ पूरके विष्णुसायुज्यं कुंभके ब्रह्मणो गतिम् ॥ रेचकेन तृतीयां तु प्राप्नुयादीश्वरं पदम् ॥३६॥ पौराणाचमनाद्यं च प्रोक्तं देवर्षिसत्तम ॥ श्रौतमाचमनाद्यं च शृणु पापापहं मुने ॥ ३७ ॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य गायत्रीं तु तदित्यृचम् ॥ पादादौ व्याहृतीस्तिस्रः श्रौताचमनमुच्यते ॥ ३८ ॥ गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् ॥ प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रितयं प्राणसंयमः ॥३९॥ (सलक्षणं तु प्राणानामायामं कीर्त्यतेऽधुना ॥ नानापापैकशमनं महापुण्यफलप्रदम् ॥) पंचांगुलीभिर्नासाग्रं पीडयेत्प्रणवेन तु ॥ सर्वपापहरा मुद्रा वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥४०॥ कनिष्ठानामिकांकुष्ठैर्यतेश्च ब्रह्मचारिणः ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिः प्रोक्षणं स्यात्कुशोदकैः ॥४१॥ ऋगंते मार्जनं कुर्यात्पादान्ते वा समाहितः ॥ नवप्रणवयुक्तेन आपोहिष्ठेत्यनेन तु ॥ ४२ ॥ नश्येदघं मार्जनेन संवत्सरसमुद्भवम् ॥ तत आचमनं कृत्वा सूर्यश्चेति पिबेदपः ॥ ४३ ॥ अंतःकरणसंभिन्नं पापं तस्य विनश्यति ॥ प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवाद्यया ॥ ४४ ॥ आपोहिष्ठेति सूक्तेन मार्जनं चैव कारयेत् ॥ उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णवत्कृते ॥ ४५ ॥

अन्य पक्षकी रीतिसे अब प्राणायामकी मुद्रा बताते हैं। उनका यह सिद्धान्त है कि गृहस्थ और वानप्रस्थको पाँचों अँगुलियां द्वारा प्रणवका उच्चारण करके नासिकाके अग्रभागको दबाना चाहिये। इस मुद्रासे समस्त पाप भस्म हो जाते हैं ॥३८-४०॥ ब्रह्मचारी और संन्यासी कनिष्ठा और अंगुष्ठ-इन दो अँगुलियोंसे प्राणायाम करें। 'आपो हिष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओंसे कुशाके जल द्वारा तीन बार शरीरका प्रोक्षण करे अथवा इन तीनों ऋचाओंमें जो नौ पद हैं, उनके आदिमें प्रणवका उच्चारण करके उनसे मार्जन करे। इस मार्जनसे एक वर्षका संचित पाप धुल जाता है। तत्पश्चात् 'सूर्यश्च०' इस मन्त्रको पढ़कर आचमन करे ॥४१-४३॥ यह आचमन अन्तःकरणके पापोंका अन्त करनेवाला है। [कुछ लोग मार्जन करनेका अन्य प्रकार बतलाते हैं—] उनका कथन है, प्रणव और व्याहृतिके साथ गायत्रीका और 'आपो हिष्ठा' इस सूत्रका साथ-साथ उच्चारण करके मार्जन करना चाहिये। अपने दाहिने हाथका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गौके कानके समान बनाकर उसमें जल भर ले ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उस जलको नासिकाके अग्रभागपर रखे और सोचे कि वामकुक्षिमें पाप जमा हुआ है। कुशके समान उसकी आकृति है। उसका कृष्ण वर्ण है। यों भावना करते हुए 'ऋतञ्च सत्यम्' इस ऋचाका पाठ करे ॥ ४६ ॥ तत्पश्चात् 'द्रुपदादिव' इस ऋचाका पढ़कर नासिकाके दाहिने छिद्रसे श्वास-मार्ग द्वारा शरीरमें रहनेवाले उस पापको हाथके जलमें उपस्थित करे और उसपर दृष्टि न डालकर उस जलको अपने वामभागमें भूमिपर फेंक दे और ऐसी भावना करे कि मेरा शरीर अब बिल्कुल निष्पाप हो गया है। ४७ ॥ ४८ ॥ उसके बाद उठकर खड़ा हो जाय। दोनों पैर सँटे रहें। अञ्जलिमें जल ले ले। तर्जनी और अंगूठेको अञ्जलिसे अलग रखे। फिर सूर्यनारायणकी ओर देखकर गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल उनको अर्पण करे। हे मुनिवर! अर्घ्य देते समय इसी प्रकार तीन अञ्जलि जल देना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इसके बाद उपासक सूर्यका मन्त्र पढ़ते हुए उनकी प्रदक्षिणा करे। मध्याह्न-समयमें एक बार और दोनों सन्ध्याओंमें तीन-तीन बार अर्घ्यदानका नियम है ॥ ५१ ॥ प्रातःकाल कुछ नम्र होकर, मध्याह्नकालमें

नीत्वा तं नासिकाग्रं तु वामकुक्षौ स्मरेदघम् ॥ पुरुषं कृष्णवर्णं च ऋतं चेति पठेत्ततः ॥ ४६ ॥ द्रुपदां वा ऋचं पश्चाद्दक्षनासापुटेन च ॥ श्वास-मार्गेण तं पापमानयेत्करवारिणि ॥ ४७ ॥ नावलोक्यैव तद्वारि वामभागेऽश्मनि क्षिपेत् ॥ निष्पापं तु शरीरं मे संजातमिति भावयेत् ॥ ४८ ॥ उत्थाय तु ततः पादौ द्वौ समौ सन्नियोजयेत् ॥ जलांजलिं गृहीत्वा तु तर्जन्यंगुष्ठवर्जितम् ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य भानुं क्षिपेद्वारि गायत्र्या चाभिमंत्रितम् ॥ त्रिवारं मुनिशार्दूल विधिरेषोऽर्घ्यमोचने ॥ ५० ॥ ततः प्रदक्षिणां कुर्यादसावादित्यमन्त्रतः ॥ मध्याह्ने सकृदेव स्यात्संध्ययोस्तु त्रिवारतः ॥ ५१ ॥ ईषन्नम्रः प्रभाते तु मध्याह्ने दण्डवत्स्थितः ॥ आसने चोपविष्टस्तु द्विजः सायं क्षिपेदपः ॥ ५२ ॥ उदकं प्रक्षिपेद्यस्मात्तत्कारणमतः शृणु ॥ त्रिंश-त्कोट्यो महावीरा मन्देहा नाम राक्षसाः ॥ ५३ ॥ कृतघ्ना दारुणा घोराः सूर्यमिच्छंति खादितुम् ॥ ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ५४ ॥ उपासते महासंध्यां प्रक्षिपंत्युदकांजलिम् ॥ दह्यंते तेन दैत्यास्ते वज्रीभूतेन वारिणा ॥ ५५ ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः संध्यां नित्यमुपासते ॥ महा-पुण्यस्य जननं संध्योपासनमीरितम् ॥ ५६ ॥ अर्घ्याङ्गभूतमन्त्रोऽयं प्रोच्यते शृणु नारद ॥ यदुच्चारणमात्रेण सांगं संध्याफलं भवेत् ॥ ५७ ॥ सोऽह-मर्कोऽस्म्यहं ज्योतिरात्मा ज्योतिरहं शिवः ॥ आत्मज्योतिरहं शुक्लः सर्वज्योती रसोऽस्म्यहम् ॥ ५८ ॥ आगच्छ वरदे देवि गायत्रि ब्रह्मरूपिणि ॥

दण्डकी भाँति सीधे खड़े होकर और सायंकालमें बैठे ही-बैठे द्विज भगवान सूर्यको जल अर्पण करे ॥ ५२ ॥ अर्घ्य क्यों दिया जाता है, इसका कारण सुनो। मन्देह नामके महापराक्रमी तीस करोड़ राक्षस हैं ॥ ५३ ॥ उन कृतघ्न राक्षसोंकी आकृति भयंकर है। वे सूर्यको खा जाना चाहते हैं। ऐसी स्थितिमें तप ही जिनका धन है, ऐसे सम्पूर्ण ऋषि-मुनिगण भगवती महासंध्याकी उपासना करते हैं, साथ ही अञ्जलिमें जल भरकर उसे छोड़ते हैं। वह जल वज्रके समान हो जाता है, जिससे वे दैत्य भस्म हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इसीलिये द्विज नित्य संध्योपासन करते हैं। यह संध्योपासनक्रिया महापुण्यकी जननी है ॥ ५६ ॥ हे नारद! अर्घ्यदानका यह मन्त्र कहा गया है, सुनो। इसके उच्चारणमात्रसे साङ्गो-पाङ्ग सन्ध्याका फल प्राप्त हो सकता है ॥ ५७ ॥ 'वह सूर्य मैं ही हूँ। मैं ही आत्मज्योति हूँ। मैं ही शिव सम्बन्धी ज्योति हूँ। आत्मज्योति मेरा ही रूप है। मैं सर्वशुक्ल ज्योति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हूँ । मैं रसस्वरूप हूँ ।।५८।। हे वरदायिनी भगवती गायत्री ! तुम ब्रह्मस्वरूपिणी हो । मेरे इस जपमय अनुष्ठानको सिद्ध करनेके लिए तुम यहाँ पधारकर मेरे हृदयमें प्रवेश करो ।।५९।। हे देवी ! उठो और इस अर्घ्यके जलमें पधारनेकी कृपा करो । हे देवि ! मेरे हृदयमें प्रविष्ट होकर पुनः मुझे दर्शन दो ।। ६० ।। इस प्रकार अर्घ्य देकर पवित्र स्थानमें विद्वान् पुरुष अपना आसन लगाये । उसपर बैठकर वेदमाता गायत्रीका जप करे ।। ६१ ।। हे मुने ! यहीं प्राणायामके पश्चात् खेचरी मुद्रा करनेका विधान है । हे मुनिवर ! प्रातःकालकी संध्याके समय इस मुद्राकी आवश्यकता पड़ती है ।।६२।। हे नारद ! इसके नामकी व्याख्या करता हूँ, सुनो । जिसके प्रभावसे चित्त और जिह्वा आकाशमें जाकर विचरण करती है, उसका नाम 'खेचरी' है । साथ ही जिसकी प्रेरणासे दृष्टि दोनों भौंहोंके अन्तर्गत रहती है, वही मुद्रा खेचरी है । हे नारद ! सिद्धासनके समान न कोई आसन है, कुम्भक वायुके समान न कोई वायु है और खेचरी मुद्राके समान न कोई मुद्रा है—इसे ध्रुव सत्य समझना चाहिये । वायुको यत्नपूर्वक रोककर घण्टाध्वनिके समान प्लुत स्वरसे प्रणवका उच्चारण करे ।। ६३–६५ ।। उस समय

जपानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रविश्य हृदयं मम ।। ५९ ।। उत्तिष्ठ देवि गंतव्यं पुनरागमनाय च ।। अर्घ्येषु देवि गन्तव्यं प्रविश्य हृदयं मम ।। ६० ।। ततः शुद्धः स्थले नैजमासनं स्थापयेद्बुधः ।। तत्रारुह्य जपेत्पश्चाद्गायत्रीं वेदमातरम् ।।६१।। अत्रैव खेचरी मुद्रा प्राणायामोत्तरं मुने ।। प्रातःसंध्याविधाने च कीर्तिता मुनिपुङ्गव ।। ६२ ।। तन्नामार्थं प्रवक्ष्यामि सादरं शृणु नारद ।। चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खे गता ।। ६३ ।। भ्रुवोरंतर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ।। न चासनं सिद्धसमं न कुंभसदृशोऽनिलः ।।६४।। न खेचरीसमा मुद्रा सत्यं सत्यं च नारद ।। घण्टावत्प्रणवोच्चाराद्वायुं निर्जित्य यत्नतः ।। ६५ ।। स्थिरासने स्थिरो भूत्वा निरहंकारनिर्ममः ।। लक्षणं नारदमुने शृणु सिद्धासनस्य च ।। ६६ ।। योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेन्मेढे पादमथैकमेव हृदयं कृत्वा समं विग्रहम् ।। स्थाणुः संयमितेंद्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरंतरं तिष्ठत्येतदतीव योगिसुखदं सिद्धासनं प्रोच्यते ।। ६७ ।। आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसंमितम् ।। गायत्री छन्दसां मातरिदं ब्रह्म जुषस्व मे ।। ६८ ।। यदह्नात्कुरुते पापं तदह्नात्प्रतिमुच्यते ।। यदात्र्यात्कुरुते पापं तद्रात्र्यात्प्रतिमुच्यते ।। ६९ ।। सर्ववर्णे महादेवि संध्याविद्ये सरस्वति ।। अजरे अमरे देवि सर्वदेवि

अहङ्कार और ममताको हृदयसे निकालकर स्थिरभावसे आसनपर बैठे रहना चाहिये । हे मुनिवर नारद ! अब सिद्धासनका लक्षण बताता हूँ, सुनो ।। ६६ ।। एक पैरका मूल लिङ्गके मूलपर और दूसरे पैरका मूल अण्डकोशके नीचे दृढ़ स्थिर रहे । हृदय आदि तथा शरीर दण्डकी भाँति सीधा हो । इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार रहे । स्थाणुकी भाँति हिले-डुले नहीं । भौंहोंके मध्यमें दृष्टि स्थिर रखे । इस प्रकारका आसन योगियोंके लिए अत्यन्त सुखदायी है । इसीको सिद्धासन कहते हैं ।। ६७ ।। अब गायत्रीके आवाहन तथा नमस्कारका मन्त्र बतलाता हूँ—'छन्दोंकी माता हे भगवती गायत्री ! हे महादेवी ! यहाँ पधारो । हे माता ! वरदायिनी देवी और अक्षर ब्रह्म तुम्हीं हो । हे ब्रह्मस्वरूपिणी देवी ! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ ।। ६८ ।। जो दिनमें पाप हो चुके हैं, उनसे तुम्हारी सायंकालकी उपासनासे तथा रात्रिमें हुए पापोंसे प्रातःकालीन उपासनासे मेरा उद्धार हो ।। ६९ ।। हे महादेवी ! तुम सर्ववर्णा, संध्या, विद्या, सरस्वती,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon:

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अजरा, अमरा और सर्वदेवी नामसे विख्यात हो । तुम्हें नमस्कार है ॥७०॥ इसके बाद 'तेजोसीति०' इत्यादि मन्त्रसे देवीका आवाहन करना चाहिये । हे देवी ! मैंने जो कुछ भी तुम्हारा अनुष्ठान किया है, वह सब पूर्ण हो जाय । इस प्रकार क्षमाप्रार्थना करे ॥ ७१ ॥ तत्पश्चात् सम्यक् प्रकारसे शापसे मुक्त होनेके लिए यत्न करे । ब्रह्मशाप, विश्वामित्र-शाप तथा वसिष्ठ-शाप–ये सभी शाप दो प्रकारके होते हैं । ब्रह्मका स्मरण करनेसे ही ब्रह्मशाप निवृत्त हो जाता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ऐसे ही विश्वामित्रका स्मरण करनेसे उनका शाप तथा वसिष्ठका स्मरण करनेसे वसिष्ठका शाप नष्ट हो जाता है ॥ ७४ ॥ परमात्माका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये–ये पुरुषाकार परब्रह्म परमात्मा मेरे हृदयकमलपर विराजमान हैं । ये सत्यात्मक, सम्पूर्ण जगत्के साक्षात् विग्रह और शाश्वत हैं । इनकी परमात्मा संज्ञा है । ये एक, चिद्रूप तथा वाणीसे अगम्य हैं । ऐसे इन परम प्रभुका मैं नित्य ध्यान करता हूँ ॥ ७५ ॥ हे नारद ! अब

नमोऽस्तु ते ॥ ७० ॥ तेजोसीत्यादिमन्त्रेण देवीमावाहयेत्ततः ॥ यत्कृतं त्वदनुष्ठानं तत्सर्वं पूर्णमस्तु मे ॥ ७१ ॥ ततः शापविमोक्षाय विधानं सम्यगाचरेत् ॥ ब्रह्मशापस्ततो विश्वामित्रस्य च तथैव च ॥ ७२ ॥ वसिष्ठशाप इत्येतद्द्विविधं शापलक्षणम् ॥ ब्रह्मणः स्मरणेनैव ब्रह्मशापो निवर्तते ॥ ७३ ॥ विश्वामित्रस्मरणतो विश्वामित्रस्य शापतः ॥ वसिष्ठस्मरणादेव तस्य शापो विनश्यति ॥ ७४ ॥ हृत्पद्ममध्ये पुरुषप्रमाणं सत्यात्मकं सर्वजगत्स्वरूपम् ॥ ध्यायामि नित्यं परमात्मसंज्ञं चिद्रूपमेकं वचसामगम्यम् ॥ ७५ ॥ अथ न्यासविधिं वक्ष्ये सन्ध्याया अङ्गसंभवम् ॥ ॐकारं पूर्व-मुद्योज्यं ततो मन्त्रानुदीरयेत् ॥ ७६ ॥ भूरित्युक्त्वा च पादाभ्यां नम इत्येव वोच्चरेत् ॥ भुवः पूर्वं तु जानुभ्यां स्वः कटिभ्यां नमो वदेत् ॥ ७७ ॥ महर्नाभ्यै जनश्चैव हृदयाय ततस्तपः ॥ कण्ठय च ततः सत्यं ललाटे परिकीर्तयेत् ॥ ७८ ॥ अङ्गुष्ठाभ्यां तत्सवितुस्तर्जनीभ्यां वरेण्यकम् ॥ भर्गो देवस्य मध्याभ्यां धीमहीत्येव कीर्तयेत् ॥ ७९ ॥ अनामाभ्यां कनिष्ठाभ्यां धियो यो नः पदं पदेत् ॥ प्रचोदयात्करपृष्ठतलयोर्विन्यसेत्सुधीः ॥ ८० ॥ ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयाय नमस्तथा ॥ विष्ण्वात्मने वरेण्यं च शिरसे नम इत्यपि ॥ ८१ ॥ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै परिकीर्तितम् ॥ शक्त्यात्मने धीमहीति कवचाय ततः परम् ॥८२॥ कालात्मने धियो यो नो नेत्रत्रय उदीरितम् ॥ प्रचोदयाच्च सर्वात्मनेऽस्त्राय परिकीर्तितम् ॥८३॥

न्यासकी विधि कहूँगा । यह सन्ध्याका प्रधान अंग है । पहले ॐकारका प्रयोग करके सब मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये ॥ ७६ ॥ 'ॐ भूः पादाभ्यां नमः' इस मन्त्रसे दोनों पैर छुए । ऐसे ही 'ॐ भुवः जानुभ्यां नमः', 'ॐ स्वः कटिभ्यां नमः', 'ॐ महः नाभ्यै नमः', 'ॐ जनः हृदयाय नमः', 'ॐ तपः कण्ठाय नमः' और 'सत्यं ललाटाय नमः' यही अङ्गन्यासका प्रकार है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ करन्यास यों करना चाहिये–'ॐ तत्सवितुः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः,' 'ॐ वरेण्यं तर्जनीभ्यां नमः', 'ॐ भर्गो देवस्य मध्यमाभ्यां नमः', 'ॐ धीमहि अनामिकाभ्यां नमः', 'ॐ धियो यो नः कनिष्ठिकाभ्यां नमः' 'ॐ प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' इस प्रकार विद्वान् पुरुष अंगुष्ठ आदि अंगोंका न्यास करे ॥ ७९ ॥ ८० अब हृदयादि न्यास कहे जाते हैं—'ॐ ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयाय नमः', 'ॐ विष्ण्वात्मने वरेण्यं शिरसे नमः', 'ॐ रुद्रात्मने भर्गो देवस्य शिखायै नमः', 'ॐ शक्त्यात्मने धीमहि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कवचाय नमः', 'ॐ सर्वात्मने प्रचोदयात् नमः अस्त्राय फट्'—इस प्रकार हृदयादि न्यास करना चाहिये ॥ ८१-८३ ॥ हे महामुने! इसके बाद अक्षरन्यास कहता हूँ। यह पापोंका विध्वंसक न्यास गायत्रीके प्रत्येक वर्णका वर्णन किया जाता है ॥ ८४ ॥ प्रथम प्रणवका उच्चारण करके वर्णन्यास करनेकी विधि बतलायी जाती है। पहले 'तत्'-कारका उच्चारण करके पैरके दोनों अंगूठोंमें, 'स'कारका दोनों गुल्फोंमें, 'वि'कारका दोनों जाँघोंमें, 'तु'कारका दोनों जानुओंमें, 'व'कारका दोनों ऊरुओंमें, 'रे'कारका गुदामें, 'णि'कारका लिङ्गमें, 'य'कारका कटिभागमें, 'भ'कारका नाभिमण्डलमें, 'र्गो'कारका हृदयमें, 'दे'कारका दोनों स्तनोंमें, 'व'कारका हृदयमें 'स्य'कारका कण्ठकूपमें, 'धी'कारका मुखमें, 'म'कारका तालुमें, 'हि'कारका नासिकाके अग्रभागमें, 'धि'कारका नाभिमण्डलमें, 'यो'कारका भ्रूमध्यमें, 'यो'कारका ललाटमें, 'न'कारका मुखके पूर्वभागमें, 'प्र'कारका मुखके दक्षिण भागमें, 'चो'कारका मुखके पश्चिमभागमें, 'द'कारका मुखके उत्तरभागमें, 'या'कारका मस्तकमें एवं 'त'कारका सम्पूर्ण शरीरमें न्यास करना चाहिए ॥ ८५-९१ ॥ जपमें

अक्षरन्यासमेवाग्रे कथयामि महामुने ॥ गायत्रीवर्णसंभूतो न्यासः पापहरः परः ॥८४॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य वर्णन्यासः प्रकीर्तितः ॥ तत्कारमादावुच्चार्य पादांगुष्ठद्वये न्यसेत् ॥ ८५ ॥ सकारं गुल्फयोस्तद्वद्विकारं जंघयोर्न्यसेत् ॥ जान्वोस्तुकारं विन्यस्य ऊर्वोश्चैव वकारकम् ॥ ८६ ॥ रेकारं च गुदे न्यस्य णिकारं लिंग एव च ॥ कट्यां यकारमेवात्र भकारं नाभिमण्डले ॥ ८७ ॥ गोकारं हृदये न्यस्य देकारं स्तनयोर्द्वयोः ॥ वकारं हृदि विन्यस्य स्यकारं कण्ठकूपके ॥ ८८ ॥ धीकारं मुखदेशे तु मकारं तालुदेशके ॥ हिकारं नासिकाग्रे तु धीकारं नेत्रमण्डले ॥ ८९ ॥ भ्रूमध्ये चैव योकारं योकारं च ललाटके ॥ नकारं वै पूर्वमुखे प्रकारं दक्षिणे मुखे ॥ ९० ॥ चोकारं पश्चिममुखे दकारं चोत्तरे मुखे ॥ याकारं मूर्ध्नि विन्यस्य तकारं व्यापकं न्यसेत् ॥ ९१ ॥ एतन्न्यासविधिं केचिन्नेच्छन्ति जपतत्पराः ॥ ततो ध्यायेन्महादेवीं जगन्मातरमम्बिकाम् ॥ ९२ ॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभां कुमारीं परमेश्वरीम् ॥ रक्तांबुजासनारूढां रक्तगन्धानुलेपनाम् ॥ ९३ ॥ रक्तमाल्यांबरधरां चतुरास्यां चतुर्भुजाम् ॥ द्विनेत्रां स्रुक्स्रुवौ मालां कुंडिकां चैव बिभ्रतीम् ॥ ९४ ॥ सर्वाभरणसंदीप्तामृग्वेदाध्यायिनीं पराम् ॥ हंसपत्रामाहवनीयमध्यस्थां ब्रह्मदेवताम् ॥ ९५ ॥ चतुष्पदामष्टकुक्षिं सप्तशीर्षां महेश्वरीम् ॥ अग्निवक्त्रां रुद्रशिखां विष्णुचित्तां तु भावयेत् ॥ ९६ ॥ ब्रह्मा तु कवचं यस्या गोत्रं सांख्यायनं स्मृतम् ॥

तत्पर रहनेवाले कुछ पुरुषोंने इस न्यासविधिको अभीष्ट नहीं माना है। तदनन्तर जगज्जननी भगवती जगदम्बाका, जो महादेवी नामसे विख्यात हैं, ध्यान करना चाहिये ॥ ९२ ॥ (भगवती गायत्रीका ध्यान) इन भगवती परमेश्वरीका श्रीविग्रह जपाकुसुमके समान प्रभासे सम्पन्न होकर भास मान हो रहा है। ये कुमारी अवस्थामें विराजमान हैं। लाल चन्दनसे अनुलिप्त होकर रक्त कमलके आसनपर आसीन हैं ॥९३॥ इनकी माला भी लाल वर्णकी है। चार मुखों और दो भुजाओंसे शोभा पानेवाली ये देवी लाल रंगके वस्त्र पहने हुए हैं। इनके प्रत्येक मुखमें दो-दो नेत्र हैं। इन्होंने स्रुक, स्रुवा, जप-माला और कमण्डलु धारण कर रखा है ॥९४॥ इनके दिव्य विग्रहको आभरण प्रकाशित कर रहे हैं। ये भगवती ऋग्वेदका अध्ययन कर रही हैं। हंस इनका वाहन है। ब्रह्माजी इन्हें अपने हृदयमें विराजमान करके इनकी उपासना करते हैं ॥ ९५ ॥ इनके (ऋक् साम और अथर्ववेद) चार पद हैं। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्तर, ऊर्ध्व, अधर, अन्तरिक्ष और अवान्तर आदि दिशाएँ—इन) आठ कुक्षियोंसे ये शोभा पाती हैं। (व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, इतिहास, पुराण और उपनिषद्—ये भगवती महेश्वरीके सात सिर हैं। अग्नि इनके मुखके, रुद्र शिखाके और विष्णु चित्तके स्थानमें शोभा पाते हैं) ॥ ९६ ॥ इस प्रकार भगवती गायत्रीका स्मरण करना चाहिये। ब्रह्मा जिनके कवच हैं, सांख्यशास्त्र जिनका गोत्र कहा गया है तथा जो आदित्यमण्डलमें विराजमान रहती हैं, उन भगवती महेश्वरीका अपने हृदयमें स्मरण करे ॥ ९७ ॥ इस प्रकार वेदमाता भगवती गायत्रीका विधिपूर्वक स्मरण करके उन्हें परम प्रसन्न करनेवाली पवित्र मुद्राएँ बनानी चाहियें ॥ ९८ ॥ सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पञ्चमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकाञ्जलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख, विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, 'सिंहाक्रांत, महाक्रान्त, मुद्गर और पल्लव—ये चौबीस मुद्रायें हैं। भगवती गायत्रीके सम्मुख इन मुद्राओंके प्रदर्शनका बड़ा महत्त्व है। इसके बाद विद्वान् पुरुषोंको सौ अक्षरोंवाली गायत्रीकी एक आवृत्ति करनी चाहिये ॥९९-१०२॥

आदित्यमंडलांतःस्थां ध्यायेद्देवीं महेश्वरीम् ॥ ९७ ॥ एवं ध्यात्वा विधानेन गायत्रीं वेदमातरम् ॥ ततो मुद्राः प्रकुर्वीत देव्याः प्रीतिकराः शुभाः
॥ ९८ ॥ सुमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ॥ द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुष्कं पंचकं तथा ॥ ९९ ॥ षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा ॥
शकटं यमपाशं च ग्रथितं संमुखोन्मुखम् ॥१००॥ विलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम् ॥ सिंहाक्रांतं महाक्रांतं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥ १०१ ॥
चतुर्विंशतिमुद्राश्च गायत्र्याः संप्रदर्शयेत् ॥ शताक्षरां च गायत्रीं सकृदावर्तयेत्सुधीः ॥ १०२ ॥ चतुर्विंशत्यक्षराणि गायत्र्याः कीर्तितानि हि ॥
जातवेदसनाम्नीं च ऋचमुच्चारयेत्ततः ॥ १०३ ॥ त्र्यम्बकस्यर्चमावृत्य गायत्री शतवर्णका ॥ भवतीयं महापुण्या सकृज्जप्या बुधैरियम् ॥ १०४ ॥
ॐकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च ॥ चतुर्विंशत्यक्षरां च गायत्रीं प्रोच्चरेत्ततः ॥ १०५ ॥ एवं नित्यं जपं कुर्याद्ब्राह्मणो विप्रपुंगवः ॥ स समग्रं
फलं प्राप्य संध्यायाः सुखमेधते ॥ १०६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्याप्रणाशिनी ॥ अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति ॥ १ ॥ अच्छिन्नपादा गायत्रो

गायत्रीके चौबीस अक्षर तो वर्णित हैं ही, 'जातवेदसे सुनवाम सोम०' तथा 'त्र्यम्बकं यजामहे०'—इन वैदिक मन्त्रोंका साथ हो उच्चारण करनेसे सौ अक्षरोंवाला गायत्रीमन्त्र सम्पन्न हो जाता है। 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्। ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।'—यह सौ अक्षरोंकी गायत्री है। इसमें 'भूर्भुवः स्वः' ये तीन व्याहृतियाँ नहीं गिनी जाती हैं। ॐ (एक प्रणव) से सम्पन्न है। विद्वान् पुरुषको चाहिए कि एक बार इसका भी जप करे ॥१०३॥१०४॥ इस जपके पश्चात् पहले ॐकारका उच्चारण करके 'भूर्भुवः स्वः' इसके साथ चौबीस अक्षरोंवाली गायत्रीका जप करे। इस प्रकार नित्य जप करनेवाला श्रेष्ठ ब्राह्मण संध्याके संपूर्ण फलोंको प्राप्त करके परम सुखी होता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(गायत्रीजपसम्बन्धी विवेचना) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद ! भिन्न पादवाली गायत्री ब्रह्महत्याका शमन करती है । अभिन्न पादवाली गायत्री जपनेवाला पुरुष पापका भागी बन जाता है ॥१॥ जो ब्राह्मण अभिन्नपादवाली गायत्रीका जप करते हैं, उन्हें करोड़ों कल्पतक नीचे मुख करके लटके रहना पड़ता है ॥२॥ हे सुव्रत ! धर्मशास्त्रों, पुराणों और इतिहासोंमें गायत्री तीन प्रकारको मानी गयी है—॥ ३ ॥ प्रणवसे सम्पुटित एवं पाँच प्रणववाली गायत्रीका जप करना चाहिये, यही शास्त्रोंकी आज्ञा है । जितना जप करना अभीष्ट हो, उसके आठवें भागमें गायत्रीके चौथे पदका जप करना आवश्यक है ॥४॥ इस प्रकार जप करनेवाले द्विजको ज्ञानी समझना चाहिए । वह सायुज्य पदका अधिकारी हो जाता है । इसके विपरीत क्रमसे गायत्री जपनेवाला विप्र जपके फलसे वंचित हो जाता है ॥५॥ एकसम्पुटा तथा षडोंकारा–ये दो गायत्रियाँ केवल ब्रह्मचारियोंके लिए हैं । गृहस्थ, ब्रह्मचारी अथवा मोक्षकामी पुरुष तुरीया गायत्रीका जप करें ॥६॥ गायत्रीका तुरीय पाद 'परो रजसे सावदोम्' यही है । इस तुरीय पादमें ब्रह्मका ध्यान करनेसे ही जपका सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है ॥७॥ अब ध्यान

जपं कुर्वन्ति ये द्विजाः ॥ अधोमुखाश्च तिष्ठंति कल्पकोटिशतानि च ॥२॥ संपुटैका षडोंकारा गायत्री त्रिविधा मता॥ धर्मशास्त्रपुराणेषु इतिहासेषु सुव्रत ॥ ३ ॥ पञ्चप्रणवसंयुक्तां जपेदित्यनुशासनम् ॥ जपसंख्याऽष्टभागान्ते पादो जप्यस्तुरीयकः ॥ ४ ॥ स द्विजः परमो ज्ञेयः परं सायुज्यमाप्नुयात् ॥ अन्यथा प्रजपेद्यस्तु स जपो विफलो भवेत् ॥ ५ ॥ संपुटैका षडोंकारा भवेत्सा ऊर्ध्वरेतसाम्॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी वा मोक्षार्थी तुरियां जपेत् ॥ ६ ॥ तुरीयपादो गायत्र्याः परोरजसे सावदोम् ॥ ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि जपसांगफलप्रदम् ॥ ७ ॥ हृदि विकसितपद्मं सार्कसोमाग्निबिंबं प्रणवमयमचिंत्यं यस्य पीठं प्रकल्प्यम् ॥ अचलपरमसूक्ष्मं ज्योतिराकाशसारं भवतु मम मुदेऽसौ सच्चिदानंदरूपः ॥ ८ ॥ त्रिमूलयोनी सुरभिमक्षमालां च लिङ्गकम् ॥ अम्बुजं च महामुद्रामिति सप्त प्रदर्शयेत् ॥ ९ ॥ या संध्या सैव गायत्री सच्चिदानंदरूपिणी ॥ भक्त्या तां ब्राह्मणो नित्यं पूजयेच्च नमेत्ततः ॥ १० ॥ ध्यातस्य पूजां कुर्वीत पञ्चभिश्चोपचारकैः ॥ लं पृथिव्यात्मने गंधमर्पयामि नमो नमः ॥ ११ ॥ हमाकाशात्मने पुष्पं चार्पयामि नमो ममः ॥ यं च वाय्वात्मने धूपं चार्पयामि ततो वदेत् ॥ १२ ॥ रं च वह्न्यात्मने दीपमर्पयामि ततो वदेत् ॥ वममृतात्मने तस्मै नैवेद्यमपि

बतलाता हूँ । सूर्य, चंद्रमा एवं अग्निकी तुलना करनेवाला, प्रणवस्वरूप, अचिन्त्य, हृदयस्थ विकसित कमल हैं जिनका आसन है, वे ब्रह्म अचल, परम सूक्ष्म ज्योतिःस्वरूप एवं सच्चिदानन्दमय हैं, वे मेरी प्रसन्नताके साधक बनें ॥८॥ त्रिमूल, योनि, सुरभि, अक्ष, माला, लिंग और अम्बुज—ये सात महामुद्रायें तुरीय गायत्रीको प्रदर्शित करनी चाहिये॥ ॥ संध्याको ही गायत्री कहते हैं । इनका रूप सच्चिदानन्दमय है । अतएव द्विजको चाहिये कि भक्तिपूर्वक इन गायत्रीदेवीका नित्य पूजन और नमन करे ॥ १० ॥ मनमें ध्यान करके पाँच प्रकारके उपचारोंसे इनकी मानसिक पूजा की जाती है । 'लं' पृथ्वीस्वरूपिणी देवीको गन्ध अर्पण करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है ॥११॥ 'हं' आकाशस्वरूपिणी देवीको पुष्प समर्पण करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है । 'यं' वायुस्वरूपिणी देवीको धूप समर्पण करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है ॥ १२ ॥ 'रं' अग्निस्वरूपिणी देवीको दीपक प्रदान करता हूँ, उन्हें बार-बार

१४२५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नमस्कार है। 'वं' अमृतस्वरूपिणी देवीको नैवेद्य अर्पण करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है ॥ १३ ॥ 'यं, रं, लं, वं, हं'—इनका उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि अर्पण करनी चाहिये। इस प्रकार मानसिक पूजा करनेके उपरान्त मुद्रा प्रदर्शित करे ॥१४ फिर मनसे देवीका ध्यान करते हुए मुखसे मंत्रोंका धीरे-धीरे उच्चारण करे। सिर और ग्रीवाको कँपाना निषिद्ध है। दाँत न दिखाये—अर्थात् ठठाकर नहीं हँसे ॥१५॥ विधिके साथ एक सौ आठ, अट्ठाईस अथवा अशक्त हो तो दस बार ही गायत्रीका जप करे। इससे कम किसी भी स्थितिमें नहीं जपना चाहिये ॥१६॥ इसके बाद 'उत्तम' इत्यादि अनुवाक्मन्त्र पढ़कर देवीका विसर्जन किया जाता है। विद्वान्को जलमें खड़े होकर कभी भी गायत्रीका जप नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥ क्योंकि कुछ महर्षियोंका कथन है कि गायत्री अग्निमुखी कहलाती है। जपके बाद सुरभि, ज्ञान, शूर्प, कूर्म, योनि, पङ्कज, लिङ्ग और निर्वाण—ये आठ मुद्रायें प्रदर्शित करे। तदनन्तर इस

चार्पयेत् ॥१३॥ यं रं लं वं हमिति च पुष्पांजलिमथार्पयेत् ॥ एवं पूजां विधायाथ चांते मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥ १४ ॥ ध्यायेत्तु मनसा देवीं मंत्रमुच्चारयेच्छनैः ॥ न कंपयेच्छिरो ग्रीवां दंतान्नैव प्रकाशयेत् ॥ १५ ॥ विधिनाऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥ दशवारमशक्तो वा नातो न्यूनं कदाचन ॥ १६ ॥ तत उद्वासयेद्देवीमुत्तमेत्यनुवाकतः ॥ न गायत्रीं जपेद्विद्वाञ्जलमध्ये कथंचन ॥ १७ ॥ यतः साऽग्निमुखी प्रोक्तेत्याहुः केचिन्महर्षयः ॥ सुरभिर्ज्ञानशूर्पं च कूर्मो योनिश्च पंकजम् ॥ १८ ॥ लिङ्गं निर्वाणकं चैव जपांतेऽष्टौ प्रदर्शयेत् ॥ यदक्षरपदभ्रष्टं स्वरव्यञ्जनवर्जितम् ॥ १९ ॥ तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कश्यपप्रियवादिनि ॥ गायत्रीतर्पणं चातः करणीयं महामुने ॥ २० ॥ गायत्रीछन्द आख्यातं विश्वामित्रऋषिः स्मृतः ॥ सविता देवता प्रोक्ता विनियोगश्च तर्पणे ॥ २१ ॥ भूरित्युक्त्वा च ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि च ॥ भुव इत्येतदुक्त्वा च यजुर्वेदमथो वदेत् ॥ २२ ॥ स्वर्व्याहृतिं समुक्त्वा च सामवेदं समुच्चरेत् ॥ मह इत्येतदुक्त्वांतेऽथर्ववेदं च तर्पयेत् ॥ २३ ॥ जनः पदांत इतिहासपुराणमितीरयेत् ॥ तपः सर्वागमं चैव पुरुषं तर्पयामि च ॥ २४ ॥ सत्यं च सत्यलोकाख्यपुरुषं तर्पयामि च ॥ ॐभूर्लोकपुरुषं तर्पयामि ततो वदेत् ॥ २५ ॥ भुवश्चेति भुवर्लोकपुरुषं तर्पयामि च ॥ स्वः स्वर्गलोकपुरुषं तर्पयामि ततः परम् ॥ २६ ॥ ॐभूरेकपदां नाम गायत्रीं तर्पयामि च ॥ भुवो द्विपदां गायत्रीं तर्पयामीति कीर्तयेत् ॥ २७ ॥ स्वश्च त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि ततो वदेत् ॥ ॐभूर्भुवः स्वश्चेति तथा गायत्रीं च चतुष्पदाम् ॥ २८ ॥ उषसीं चैव

प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—'कश्यपके प्रति प्रिय भाषण करनेवाली हे देवी! मेरे उच्चारण करनेमें जो अक्षर, पद, स्वर और व्यञ्जनकी त्रुटि हो गयी हो, वह सब आप क्षमा करनेकी कृपा करें। हे महामुने! तदनन्तर गायत्री-तर्पण करनेका नियम है ॥१८–२०॥ इसका गायत्री छन्द है, विश्वामित्र ऋषि कहे गये हैं और सविता देवता हैं। तर्पण करनेके लिए इसका विनियोग किया जाता है ॥२१॥ (तर्पणका यह नियम है—) 'भूः'से ऋग्वेद पुरुषका, 'भुवः'से यजुर्वेदका, 'स्वः'से इतिहास-पुराणका, 'तपः'से सम्पूर्ण आगमशास्त्रोंका, 'सत्य'से सत्यलोकसंज्ञक पुरुषका और 'ॐभूः'से भूर्लोकसंज्ञक पुरुषका तर्पण करता हूँ ॥ २२–२५ ॥ 'भुवः'से भुवर्लोकपुरुषका, 'ॐभूः'से एकपदा गायत्रीका, 'भुवः'से दो पदवाली गायत्रीका, 'स्वः'से तीन पदवाली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गायत्रीका तथा 'भूर्भुवः स्वः'से चतुष्पदा गायत्रीका मैं तर्पण करता हूँ—यों कहना चाहिये ॥२६–२८॥ इसके बाद उषसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, वेदमाता, पृथ्वी, अजा, कौशिकी, सांकृति और सार्वजिती—इन नामोंका उच्चारण करके भगवती गायत्रीका तर्पण करना चाहिये। तर्पणके अनन्तर 'जातवेदसं०' आदि ऋचाका पाठ करना आवश्यक है ॥ २९ ॥ ३० ॥ विद्वान् पुरुष शान्तिके लिए 'मानस्तोके०' इस मन्त्रका भी पाठ करे। इसके बाद 'त्र्यम्बकं०' इस मन्त्रका भी जप किया जाता है। इसके बाद 'अतो देवा' इस मन्त्रको पढ़कर अपने दोनों हाथोंसे सम्पूर्ण शरीरका स्पर्श करे ॥३१॥३२॥ फिर 'स्योना पृथिवि०' इस मंत्रको पढ़कर पृथ्वीदेवीको प्रणाम करनेका विधान है। श्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि प्रणाम करते समय नियमानुसार अपने नाम और गोत्रका उच्चारण कर ले ॥ ३३ ॥ इस प्रकारका विधान प्रातःकालकी सन्ध्याका कहा गया है। सन्ध्याकर्म समाप्त करके अग्निहोत्र भी करे ॥ ३४ ॥ होम करनेके पश्चात्

गायत्रीं सावत्रीं च सरस्वतीम् ॥ वेदानां मातरं पृथ्वीमजां चैव तु कौशिकीम् ॥ २९ ॥ सांकृतिं वै सार्वजितिं गायत्रीं तर्पणे वदेत् ॥ तर्पणांते च शांत्यर्थं जातवेदसमीरयेत् ॥ ३० ॥ मानस्तोकेति मंत्रं च शांत्यर्थं प्रजपेत्सुधीः ॥ ततोऽपि त्र्यम्बको मंत्रः शांत्यर्थः परिकीर्तितः ॥ ३१ ॥ तच्छंयोरिति मंत्रं च जपेच्छांत्यर्थमेव तु ॥ अतो देवा इति द्वाभ्यां सर्वांगस्पर्शनं चरेत् ॥ ३२ ॥ स्योनापृथिविमंत्रेण भूम्यै कुर्यात्प्रणामकम् ॥ यथाविधि च गोत्रादीनुच्चरेद्द्विजसत्तमः ॥ ३३ ॥ एवं विधानं संध्यायाः प्रातःकाले प्रकीर्तितम् ॥ संध्याकर्म समाप्यांतेऽत्यग्निहोत्रं स्वयं हुनेत् ॥ ३४ ॥ पञ्चायतनपूजां च ततः कुर्यात्समाहितः ॥ शिवां शिवं गणपतिं सूर्यं विष्णुं तथाऽर्चयेत् ॥ ३५ ॥ पौरुषेण तु सूक्तेन व्याहृत्या वा समाहितः ॥ मूलमंत्रेण वा कुर्याद्श्रीश्च ते इति मन्त्रतः ॥ ३६ ॥ भवानीं तु यजेन्मध्ये तथेशान्यां तु माधवम् ॥ आग्नेय्यां गिरिजानाथं गणेशं रक्षसां दिशि ॥ ३७ ॥ वायव्यामर्चयेत्सूर्यमिति देवस्थितिक्रमः ॥ षोडशानुपचारांश्च षोडशर्ग्भिर्हरेन्नरः ॥३८॥ देवीमभ्यर्च्य पुरतो यजेदन्याननुक्रमात् ॥ न देवीपूजनात्पुण्यमधिकं क्वचिदीक्ष्यते ॥३९॥ अतएव तु संध्यासु संध्योपास्तिः श्रुतीरिता ॥ नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणेश्वरम् ॥ ४० ॥ दूर्वाभिर्नार्चयेद्दुर्गां केतकैर्न महेश्वरम् ॥ मल्लिकाजातिकुसुमं कुटजं पनसं तथा ॥ ४१ ॥ किंशुकं बकुलं कुन्दं लोध्रं तु करवीरकम् ॥

सावधान होकर पाँच देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। वे पाँच देवता हैं—भगवती शिवा, शंकर, गणेश, सूर्य और विष्णु ॥ ३५ ॥ पुरुषसूक्त, व्याहृति, मूलमन्त्र अथवा 'श्रीश्च ते०' इस मन्त्रसे पूजा की जा सकती है ॥ ३६ ॥ मण्डलके मध्यभागमें भवानीकी पूजा होनी चाहिये। ईशानकोणमें माधवको, अग्निकोणमें गिरिजापति शंकरजीको, नैर्ऋत्य-कोणमें गणेशको और वायव्यकोणमें सूर्यकी क्रमशः स्थापना करके पूजा करे। सोलह प्रकारके उपचारोंसे पूजन तथा सोलह ऋचाओंका पाठ करके मनुष्य इन देवताओंको सब वस्तुयें अर्पण करे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सर्वप्रथम देवीका पूजा करके क्रमशः अन्य देवताओंका पूजन करना चाहिए। क्योंकि, देवीकी पूजासे बढ़कर पुण्य कहीं भी नहीं दिखायी पड़ता ॥ ३९ ॥ इसीलिए संध्याओंमें संध्याकी उपासना की जाती है। अक्षतसे भगवान विष्णुकी, तुलसीसे गणेशकी, दूर्वासे दुर्गाकी और केतकीके पुष्पसे शंकरकी पूजा नहीं करनी चाहिये। मालती, चमेली,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुटज, पनस, किंशुक, बकुल, कुन्द, लोध, करवीर, शिंशपा, अपराजिता, अगस्त्य, मन्दार, सिन्दुवार, पलाश, दूर्वा, बिल्वपत्र, कुशकी मञ्जरी, शल्लकी, माधवी, मन्दारका पुष्प, केतकी, कचनार, कदम्ब, नागकेसर, चम्पा, जुही और तगर आदि पुष्प भगवतीको अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ४०–४५ ॥ गुग्गुलसे भवानीके लिए धूप और तिलके तेलसे दीपक प्रज्वलित करना चाहिए। इस प्रकार देवीकी पूजा करके मूलमन्त्रका जप करे। बुधजन यों पूजा समाप्त करनेके बाद ही वेदके अध्ययनमें तत्पर हों। इसके बाद अपनी वृत्तिके अनुसार अपवर्गका साधन करनेके लिए तपमें प्रवृत्त होना चाहिये। विद्वान् पुरुष दिनके तीसरे भागमें नियमपूर्वक इस तपसे अवकाश प्राप्त करता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

शिंशपाऽपराजितापुष्पं बंधूकागस्त्यपुष्पके ॥ ४२ ॥ मदंतं सिन्दुवारं च पालाशकुसुमं तथा ॥ दूर्वांकुरं बिल्वदलं कुशमंजरिकां तथा ॥ ४३ ॥ शल्लकीमाधवीपुष्पमर्कमंदारपुष्पकम् ॥ केतकीं कर्णिकारं च कदंबकुसुमं तथा ॥ ४४ ॥ पुन्नागश्चंपकस्तद्वद्यूथिका तगरौ तथा ॥ एवमादीनि पुष्पाणि देवीप्रियकराणि च ॥ ४५ ॥ गुग्गुलस्य भवेद्धूपो दीपः स्यात्तिलतैलतः ॥ कृत्वेत्थं देवतापूजां ततो मूलमनुं जपेत् ॥ ४६ ॥ एवं पूजां समाप्यैव वेदाभ्यासं चरेद्बुधः ॥ तपः स्ववृत्त्या कुर्वीत पोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥ तृतीयदिनभागे तु नियमेन विचक्षणः ॥४७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे नारायणनारदसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ श्रीनारद उवाच ॥ पूजाविशेषं श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि मानद ॥ येनाश्रितेन मनुजः कृतकृत्यत्वमावहेत् ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देवर्षे शृणु वक्ष्यामि श्रीमातुः पूजनक्रमम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं साक्षात्समस्तापन्निवारणम् ॥ २ ॥ आचम्य मौनी संकल्प्य भूतशुद्ध्यादिकं चरेत् ॥ मातृकान्यासपूर्वं तु षडंगन्यासमाचरेत् ॥ ३ ॥ शङ्खस्य स्थापनं कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥ पूजाद्रव्याणि चास्त्रेण प्रोक्षयेन्मतिमान्नरः ॥ ४ ॥ गुरोरनुज्ञामादाय ततः पूजां समारभेत् ॥ पीठपूजां पुरा कृत्वा देवीं ध्यायेत्ततः परम् ॥५॥ आसनाद्युपचारैश्च भक्तिप्रेमयुतः सदा ॥ स्नापयेत्परदेवीं

श्रीनारदने कहा—हे मानद! अब मैं श्रीदेवीकी विशेष पूजाका विधान सुनना चाहता हूँ, जिसके करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥ १ ॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे देवर्षे! भगवती जगदम्बाकी पूजाका क्रम कहता हूँ, सुनो। यह प्रसङ्ग भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला तथा सभी आपत्तियोंका निवारक है ॥ २ ॥ सर्वप्रथम आचमन करके मौनभावसे संकल्प करे। भूतशुद्धि आदि करना आवश्यक है। मातृकान्यास करके षडङ्गन्यास करना चाहिये ॥३॥ बुद्धिमान् पुरुष शंखकी स्थापना करके अर्घ्य आदि सामग्री एकत्र करे। पूजनोपयोगी उपस्थित द्रव्योंका अस्त्रमय जलसे प्रोक्षण करे ॥ ४ ॥ फिर गुरुसे आज्ञा लेकर पूजा आरम्भ करे। पहले पीठकी पूजा सम्पन्न करके देवीका ध्यान करनेका नियम है ॥ ५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवतीको भक्ति और प्रेमपूर्वक आसन आदि उपचार अर्पण करनेके पश्चात् पञ्चामृत एवं रस आदिसे उन्हें स्नान करावे ॥६॥ जो पुरुष पौण्ड्रसंज्ञक (पौंड़ा) गन्नेके रससे भरे हुए सौ कलशों द्वारा भगवती महेश्वरीको स्नान कराता है, उसका फिर जगत्में जन्म नहीं होता ॥ ७ ॥ इसी प्रकार जो पुरुष वेदका पारायण करके आम अथवा ईखके रससे भगवती जगदम्बाको स्नान कराते हैं, उनके घरसे लक्ष्मी और सरस्वती कभी दूर नहीं होतीं। जो श्रेष्ठ मानव वेदका पारायण करते हुए दाखके रससे भगवती जगदम्बाका अभिषेक करते हैं, वे अपने कुटुंबों सहित रसमें जितने रेणु हैं, उतने वर्षों तक देवीलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ कर्पूर, अगुरु, केसर, कस्तूरी और कमलके जलसे वेदपाठ करते हुए देवीको स्नान करानेवाले पुरुषके सैकड़ों जन्मोंके उपार्जित पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। जो पुरुष वेदके मन्त्र पढ़कर दुग्धपूर्ण कलशोंसे देवीको स्नान कराता है, वह निरन्तर कल्पपर्यन्त क्षीरसागरमें स्थान पाता है। दहीसे

तां पंचामृतरसादिभिः ॥ ६ ॥ पौंड्रेक्षुरसपूर्णैस्तु कलशैः शतसंख्यकैः ॥ स्नापयेद्यो महेशानीं न स भूयोऽभिजायते ॥ ७ ॥ यश्च चूतरसैरेवं स्नापयेज्जगदंबिकाम् ॥ वेदपारायणं कृत्वा रसेनेक्षूद्भवेन वा ॥८॥ तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती ॥ यस्तु द्राक्षारसेनैव वेदपारायणं चरन् ॥९॥ अभिषिचेन्महेशानीं सकुटुम्बो नरोत्तमः ॥ रसरेणुप्रमाणं च देवीलोके महीयते ॥१०॥ कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीपंकपंकिलैः ॥ सलिलैः स्नापयेद्देवीं वेदपारायणं चरन् ॥ ११ ॥ भस्मीभवंति पापानि शतजन्मार्जितानि च ॥ यो दुग्धकलशैर्देवीं स्नापयेद्वेदपाठतः ॥ १२ ॥ आकल्पं स वसेन्नित्यं तस्मिन्वै क्षीरसागरे ॥ यस्तु दध्नाऽभिषिञ्चेत्तां दधिकुल्यापतिर्भवेत् ॥ १३ ॥ मधुना च घृतेनैव तथा शर्करयाऽपि च ॥ स्नापयेन्मधुकुल्यादिनदीनां स पतिर्भवेत् ॥ १४ ॥ सहस्रकलशैर्देवीं स्नापयन्भक्तितत्परः ॥ इह लोके सुखी भूत्वाऽप्यन्यलोके सुखी भवेत् ॥ १५ ॥ क्षौमं वस्त्रद्वयं दत्त्वा वायुलोकं स गच्छति ॥ रत्ननिर्मितभूषाणां दाता निधिपतिर्भवेत् ॥१६॥ काश्मीरचंदनं दत्त्वा कस्तूरीबिंदुभूषितम् ॥ तथा सीमंतसिंदूरं चरणेऽलक्तकपत्रकम् ॥ १७ ॥ इन्द्रासने समारूढो भवेद्देवपतिः परः ॥ पुष्पाणि विविधान्याहुः पूजाकर्मणि साधवः ॥ १८ ॥ तानि दत्त्वा यथालाभं कैलासं लभते स्वयम् ॥ बिल्वपत्राण्यमोघानि यो दद्यात्परशक्तये ॥ १९ ॥ तस्य दुःखं कदाचिच्च क्वचिच्च न भविष्यति ॥ बिल्वपत्रत्रये रक्तचन्दनेन तु

स्नान करानेवाला पुरुष दधिकुण्डका अधिपति होता है ॥ १०–१३ ॥ मधु, घृत तथा शर्करासे स्नान करानेवाले पुरुषोंको तत्तद् वस्तुओंके स्वामी होनेकी सुविधा प्राप्त होती है ॥ १४ ॥ भक्तिपूर्वक हजार कलशोंसे देवीको स्नान करानेवाला पुण्यात्मा पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर परलोकमें भी सुखी होता है ॥१५॥ भगवतीको दो रेशमी वस्त्र प्रदान करके पुरुष वायुलोकमें जाता है। रत्नजटित भूषण देवीको अर्पण करनेवाला मानव दूसरे जन्ममें धनी होता है ॥१६॥ केसर, कस्तूरीकी बिन्दी, ललाटपर सिन्दूर एवं देवीके चरणोंमें महावर लगानेवाला पुरुष देवताओंका स्वामित्व प्राप्त करके इन्द्रासनपर विराजमान होता है। साधु पुरुष पूजाकी विधिमें अनेक प्रकारके पुष्प बतलाते हैं ॥१७॥१८॥ पुष्पोंको अर्पण करके पुरुष स्वयं कैलासधाम प्राप्त कर लेता है। भगवती आद्या शक्तिको पवित्र बिल्वपत्र अर्पण करने चाहिये ॥ १९ ॥ बिल्वपत्र समर्पण करनेवाले पुरुषको कभी किसी भी परिस्थितिमें दुःख नहीं भोगना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ता। तीन पत्तेवाले बिल्वपत्रपर लाल चन्दनसे यत्नपूर्वक स्पष्ट एवं सुन्दर अक्षरोंमें मायाबीज मन्त्र (ह्रीं) तीन बार लिखे। मायाबीज जिसके आदिमें हो, उस नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका उच्चारण करके अन्तमें 'नमः' शब्द जोड़कर (ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः) इस मन्त्रसे महादेवी भगवती जगदम्बाके चरणकमलमें परम भक्तिपूर्वक वह कोमल पत्र समर्पण करे ॥२०-२२॥ जो भक्तिके साथ इस प्रकार भगवतीकी उपासना करता है, वह मनु होता है। जो एक करोड़ कोमल और निर्मल बिल्वपत्र देवीको अर्पण करता है, वह ब्रह्मांडका अधिपति होता है ॥ २३ ॥ अष्टगन्धस चर्चित एक करोड़ नूतन कुन्द पुष्पों द्वारा देवीकी पूजा करनेवाला पुरुष निश्चय ही प्रजापतिके पदका अधिकारी होता है ॥ २४ ॥ ऐसे ही अष्टगन्धसे चर्चित कोटि-कोटि मल्लिका और मालतीसे जो भगवतीकी पूजा करता है, वह चतुर्मुख ब्रह्मा होता है ॥२५॥ हे मुने! इसी प्रकार दस करोड़ पुष्पोंसे पूजा करनेवाले मानवको विष्णुपदकी, जो देवताओंके लिए भी दुर्लभ है, प्राप्ति होती है। पूर्व समयमें भगवान् विष्णु भी अपना पद प्राप्त करनेके लिए यह व्रत कर चुके हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसी प्रकार एक अरब पुष्पोंको चढ़ानेसे

संलिखेत् ॥२०॥ मायबीजत्रयं यत्नात्सुस्फुटं चातिसुंदरम् ॥ मायाबीजादिकं नाम चतुर्थ्यंतं समुचरेत ॥२१॥ नमोऽन्तं परया भक्त्या देवीचरण-पंकजे ॥ समर्पयेन्महादेव्यै कोमलं तच्च पत्रकम् ॥२२॥ य एवं कुरुते भक्त्या मनुत्वं लभते हि सः ॥ यस्तु कोटिदलैरेवं कोमलैरतिनिर्मलैः ॥२३॥ पूजयेद्भुवनेशानीं ब्रह्मांडाधिपतिर्भवेत् ॥ कुंदपुष्पैर्नवीनैस्तु ललितैरष्टगंधतः ॥२४॥ कोटिसंख्यैः पूजयेत्तु प्राजापत्यं लभेद्ध्रुवम् ॥ मल्लिकामालती-पुष्पैरष्टगंधेन लोलितैः ॥ २५ ॥ कोटिसंख्यैः पूजया तु जायते स चतुर्मुखः ॥ दशकोटिभिरप्येवं तैरेव कुसुमैर्मुने ॥ २६ ॥ विष्णुत्वं लभते मर्त्यो यत्सुरेष्वपि दुर्लभम् ॥ विष्णुनैतद्व्रतं पूर्वं कृतं स्वपदलब्धये ॥ २७ ॥ शतकोटिभिरप्येव सूत्रात्मत्वं व्रजेद्ध्रुवम् ॥ व्रतमेतत्पुरा सम्यक्कृतं भक्त्या प्रयत्नतः ॥२८॥ तेन व्रतप्रभावेण हिरण्योदरतां व्रजेत् ॥ जपाकुसुमपुष्पस्य बंधूककुसुमस्य च ॥ २९ ॥ दाडिमीकुसुमस्यापि विधिरेष उदीरितः ॥ एवमन्यानि पुष्पाणि श्रीदेव्यै विधिनाऽर्पयेत् ॥३०॥ तस्य पुण्यफलस्यान्तं न जानातीश्वरोऽपि सः ॥ तत्तद्दतूद्भवैः पुष्पैर्नामसाहस्रसंख्यया ॥३१॥ समर्पयेन्महादेव्यै प्रतिवर्षमतंद्रितः ॥ य एवं कुरुते भक्त्या महापातकसंयुतः ॥३२॥ उपपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः ॥ देहांते श्रीपदाम्भोजं

सूत्रात्मा (सूक्ष्म-ब्रह्म) की प्राप्ति होती है। यत्नपूर्वक भक्तिके साथ सम्यक् प्रकारसे किये हुए इस व्रतके प्रभावसे ही भगवान् विष्णु हिरण्यगर्भ हुए हैं। जपाकुसुम (अड़हुल), बन्धूक (दुपहरिया) और दाड़िम (अनार) का पुष्प भी भगवतीको अर्पण किया जाता है। ऐसी विधि कही गयी है। ऐसे अन्य भी बहुत-से पुष्प भगवती श्रीदेवीको विधिपूर्वक अर्पण करने चाहिए ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसके अनंत पुण्यफलको ईश्वर भी नहीं जानते। जिस-जिस ऋतुमें जो-जो पुष्प उपलब्ध हो सकते हों, सहस्रनामकी संख्याके अनुसार उन हजारों पुष्पोंसे प्रतिवर्ष सावधान होकर भगवती महादेवीकी पूजा करे। जो भक्तिपूर्वक इस प्रकार उपासना करता है, वह महापातकी एवं उपपातकी ही क्यों न हो, उसके सभी पाप भस्म हो जाते हैं। हे मुने! ऐसा श्रेष्ठ साधक जीवनके अन्तमें भगवतीके चरणकमलको, जो प्रमुख देवताओंके लिए भी दुर्लभ है, प्राप्त कर लेता है—इसमें कोई संशय नहीं है। कृष्ण अगुरु, कर्पूर,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चन्दन, सिल्हक (लोबान), घृत और गुग्गुलसे युक्त धूप महादेवीको दिया जाय, जिससे मन्दिर सुवासित हो उठे ॥३२–३५॥ इससे प्रसन्न होकर भगवती देवेश्वरी साधकको तीनों लोक सौंप देती हैं। कर्पूरखण्डोंसे युक्त दीपक देवीको निरन्तर अर्पण करे ॥३६॥ इससे साधकको सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। चित्तको सावधान करके सैकड़ों एवं हजारों दीपक देनेका भी विधान है ॥३७॥ इसके बाद देवीके सम्मुख नैवेद्यका पर्वत-जैसा ढेर लगा दे। उसमें लेह्य, चोष्य, पेय और षड्रस सभी वस्तुएँ होनी चाहिये ॥३८॥ अनेक प्रकारके स्वादिष्ट तथा रससे भरे हुए दिव्य फल हों। ये सभी पदार्थ सुवर्णके थालमें रखकर देवीको निरन्तर अर्पण करे ॥३९॥ श्रीमहादेवीके तृप्त हो जानेपर तीनों लोक तृप्त हो जाते हैं। क्योंकि अखिल जगत् उन्हींका तो रूप है। जैसे रस्सीमें सर्पका भान होता है, वैसे ही जगत् केवल आभासमात्र है ॥४०॥ इसके बाद प्रचुरमात्रामें पवित्र गङ्गाजल देवीको निवेदन करे। कर्पूर और नारियल-जलसे

दुर्लभं देवसत्तमैः ॥३३॥ प्राप्नोति साधकवरो मुने नास्त्यत्र संशयः ॥ कृष्णागुरुं सकर्पूरं चंदनेन समन्वितम् ॥३४॥ सिल्हकं चाज्यसंयुक्तं गुग्गुलेन समन्वितम् ॥ धूपं दद्यान्महादेव्यै येन स्याद्धूपितं गृहम् ॥ ३५ ॥ तेन प्रसन्ना देवेशी ददाति भुवनत्रयम् ॥ दीपं कर्पूरखंडैश्च दद्याद्देव्यै निरन्तरम् ॥३६॥ सूर्यलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ शतदीपांस्तथा दद्यात्सहस्रान् वा समाहितः ॥३७॥ नैवेद्यं पुरतो देव्याः स्थापयेत्पर्वताकृतिम् ॥ लेह्यैश्चोष्यैस्तथा पेयैः षड्रसैस्तु समाहितैः ॥३८॥ नानाफलानि दिव्यानि स्वादूनि रसवंति च ॥ स्वर्णपात्रस्थितान्नानि दद्याद्देव्यै निरन्तरम् ॥ ३९ ॥ तृप्तायां श्रीमहादेव्यां भवेत्तृप्तं जगत्त्रयम् ॥ यतस्तदात्मकं सर्वं रज्जौ सर्पो यथा तथा ॥ ४० ॥ ततः पानीयकं दद्याच्छुभं गङ्गाजलं महत् ॥ कर्पूरवालासंयुक्तं शीतलं कलशस्थितम् ॥४१॥ तांबूलं च ततो देव्यै कर्पूरशकलान्वितम् ॥ एलालवंगसंयुक्तं मुखसौगन्ध्यदायकम् ॥४२॥ दद्याद्देव्यै महाभक्त्या येन देवी प्रसीदति ॥ मृदङ्गवीणामुरजढक्कादुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ४३ ॥ तोषयेज्जगतां धात्रीं गायनैरतिमोहनैः ॥ वेदपारायणैः स्तोत्रैः पुराणादिभिरप्युत ॥ ४४ ॥ छत्रं च चामरे द्वे च दद्याद्देव्यै समाहितः ॥ राजोपचारान् श्रीदेव्यै नित्यमेव समर्पयेत् ॥ ४५ ॥ प्रदक्षिणां नमस्कारं कुर्याद्देव्या अनेकधा ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदम्बां मुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥ सकृत्स्मरणमात्रेण यत्र देवी प्रसीदति ॥ एतादृशोपचारैश्च प्रसीदेदत्र कः स्मयः ॥ ४७ ॥ स्वभावतो भवेन्माता पुत्रेऽतिकरुणावती ॥ तेन भक्तौ कृतायां तु वक्तव्यं किं ततः परम् ॥ ४८ ॥ अत्र ते कथयिष्यामि पुरा-

युक्त कलशका शीतल जल भी देवीको अर्पण करे ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् मुखको सुगन्ध प्रदान करनेवाला ताम्बूल भगवतीको अर्पण करना चाहिये। इस ताम्बूलमें कर्पूरके छोटे-छोटे टुकड़े, इलायची और लवङ्ग भी रहें ॥४२॥ इसे भक्तिपूर्वक अर्पण करनेसे भगवती प्रसन्न होती हैं। फिर मृदङ्ग, वीणा, मञ्जीर, डमरू और दुन्दुभि आदि वाद्योंकी ध्वनिसे अत्यन्त मनोहर संगीत, वेदपाठ, स्तोत्र और पुराणोंके पाठसे भगवती जगदंबाको सन्तुष्ट करे ॥४३॥४४॥ तदनन्तर सावधान होकर देवीका छत्र और चमर अर्पण करे। श्रीदेवीका नित्यप्रति राजोपचारसे पूजन करनेका नियम है ॥४५॥ जगत्‌को धारण करनेवाली भगवती जगदंबाको अनेक प्रकारसे दक्षिणा दे। फिर नमस्कार करके बार-बार क्षमा-प्रार्थना करे ॥४६॥ एक बारके स्मरणमात्रसे जब देवी प्रसन्न हो जाती हैं, तब इस प्रकारके उपचारोंसे प्रसन्न हो जायँ तो इसमें संदेह ही क्या है ॥४७॥ पुत्रपर कृपा करना माताका स्वभाव ही है, फिर जिसने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माताके प्रति श्रद्धा-भक्ति की है, उसके विषयमें तो कहना ही क्या है ॥ ४८ ॥ इस विषयमें एक बहुत पुराना इतिहास तुम्हें सुनाता हूँ। मनमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला यह प्रसङ्ग राजा बृहद्रथसे सम्बन्ध रखता है ॥४९॥ हिमालय प्रदेशमें एक चक्रवाक पक्षी रहता था। वह अनेक देशोंमें घूमता-घामता काशी पहुँच गया ॥५०॥ भाग्यवश वह पक्षी अन्नपूर्णाके दिव्य स्थानपर जा पहुँचा। अनाथकी भाँति अन्नकणके लोभसे ही वह वहाँ गया था ॥५१॥ अनायास आकाशमें घूमते हुए उसके द्वारा मन्दिरका प्रदक्षिणा हो गयी। बादमें किसी अन्य देशमें न जाकर अत्र वह मुक्तिप्रदायिनी काशीपुरीमें ही रहने लगा ॥५२॥ बहुत दिनोंके बाद वह मृत्युको प्राप्त होकर स्वर्गमें चला गया। दिव्य रूपधारी युवक बनकर वहाँ उसने संपूर्ण भोग भोगे ॥५३॥ बादमें स्वर्गमें दो कल्पतक रहनेके पश्चात् पुनः भूमण्डलपर उसका जन्म हुआ। क्षत्रियोंके उत्तम वंशमें उसकी उत्पत्ति हुई और भूमण्डलपर बृहद्रथनामसे उसकी प्रसिद्धि हुई। वह महान् यज्ञ-

वृत्तं सनातनम् ॥ बृहद्रथस्य राजर्षेः प्रियं भक्तिप्रदायकम् ॥४९॥ चक्रवाकोऽभवत्पक्षी क्वचिद्देशे हिमालये ॥ भ्रमन्नानाविधान्देशान् ययौ काशीपुरीं प्रति ॥ ५० ॥ अन्नपूर्णामहास्थाने प्रारब्धवशतो द्विजः ॥ जगाम लीलया तत्र कणलोभादनाथवत् ॥ ५१ ॥ कृत्वा प्रदक्षिणामेकां जगाम स विहायसा ॥ देशान्तरं विहायैव पुरीं मुक्तिप्रदायिनीम् ॥ ५२ ॥ कालांतरे ममारासौ गतः स्वर्गपुरीं प्रति ॥ बुभुजे विषयान्सर्वान् दिव्यरूपधरो युवा ॥ ५३ ॥ कल्पद्वयं तथा भुक्त्वा पुनः प्राप भुवं प्रति ॥ क्षत्रियाणां कुले जन्म प्राप सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ५४ ॥ बृहद्रथेति नाम्नाऽभूत्प्रसिद्धिः क्षितिमण्डले ॥ महायज्वा धार्मिकश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥५५॥ त्रिकालज्ञः सार्वभौमो यमी परपुरंजयः ॥ पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य वर्तते दुर्लभा भुवि ॥ ५६ ॥ इति श्रुत्वा किंवदन्तीं मुनयः समुपागताः ॥ कृतातिथ्या नृपेन्द्रेण विष्टरेषूपुरेव ते ॥ ५७ ॥ पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे संशयोऽस्ति महान्नृप ॥ केन पुण्यप्रभावेण पूर्वजन्मस्मृतिस्तव ॥५८॥ त्रिकालज्ञानमेवापि केन पुण्यप्रभावतः ॥ ज्ञानं तवेति तज्ज्ञातुमागताः स्म तवान्तिकम् ॥ ५९ ॥ वद निर्व्याजया वृत्त्या तदस्माकं यथातथम् ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः ॥ ६० ॥ उवाच सकलं ब्रह्मंस्त्रिकालज्ञानकरणम् ॥ श्रूयतां मुनयः सर्वे मम ज्ञानस्य कारणम् ॥६१॥ चक्रवाकः स्थितः पूर्वं नीचयोनिगतोऽपि वा ॥ अज्ञानतोऽपि कृत-

शील, परम धार्मिक, सत्यवादी, जितेन्द्रय, त्रिकालज्ञ, शत्रुविजयी, संयमी और सार्वभौम राजा हुआ। उसे पूर्वजन्मकी सभी बातें स्मरण थीं, जो जगत्में सबके लिये दुर्लभ हैं ॥५४-५६॥ परम्परासे उसके इस गुणको सुनकर मुनिगण वहाँ आये। राजाने आतिथ्य सत्कार किया। वे सब आसनपर विराजे ॥ ५७ ॥ तत्पश्चात् मुनियोंने पूछा—'हे राजन्! किस पुण्यके प्रभावसे तुम्हें पूर्वजन्मकी सारी बातें स्मरण हो जाया करती हैं? तुम्हारे द्वारा कौन ऐसा पुण्यकार्य बन चुका है, जिससे तुम त्रिकालज्ञानी हो गये हो? तुम्हारे इस ज्ञानके रहस्यको जाननेके लिये ही हम यहाँ आये हैं। हे राजन्! तुम कपटरहित होकर यथार्थ बातें हमें बताओ।' भगवान् नारायण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मुनियोंकी उपयुक्त बात सुनकर परम धार्मिक राजा बृहद्रथने उनसे सारी बातें कह सुनायीं ॥५८-६०॥ उन्होंने कहा—'हे मुनिवरो! आप सब लोग मेरे त्रिकालज्ञ एवं ज्ञानी होनेका कारण सुनें ॥६१॥ इस जन्मके पहले मैं चक्रवाक था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नीच योनिमें मेरी उत्पत्ति हुई थी। मेरे द्वारा अकस्मात् देवी अन्नपूर्णाके मन्दिरकी प्रदक्षिणा हो गयी ॥ ६२ ॥ उसी पुण्यके प्रभावसे मैं स्वर्गमें गया। दो कल्पोंतक वहाँ सुख भोगता रहा। हे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनियों! उसीके प्रभावसे इस भूमण्डलपर जन्म लेनेके बाद भी मुझे तीनों कालकी बातें जाननेकी शक्ति प्राप्त है ॥६३॥ भगवती जगदम्बाके चरणोंका स्मरण करनेसे कितना फल होता है, इसे कौन जान सकता है? ओह! आज उनकी महिमाका स्मरण करते ही मेरी आँखोंसे अविरल आनन्दके आँसू झर रहे हैं ॥६४॥ उन कृतघ्न और पापियोंके जन्मको धिक्कार है, जो जगज्जननी भगवतीको अपना उपास्य देवता समझते हुए भी उनकी आराधना नहीं करते ॥६५॥ विष्णुकी उपासना तथा शिवोपासना भी नित्य नहीं है। एकमात्र परा देवीकी उपासना ही नित्य है। यह श्रुतिका कथन है ॥ ६६ ॥ इस संशयशून्य विषयमें मैं अधिक क्या कहूँ? बस, भगवतीके चरणकमलोंकी ही निरन्तर उपासना करनी चाहिए ॥ ६७ ॥ इससे बढ़कर धरातलपर दूसरा कोई श्रेष्ठ कार्य नहीं है। निर्गुणा अथवा सगुणा किसी भी देवीकी भक्तिपूर्वक उपासना करनी चाहिए ॥६८॥ भगवान नारायण

वानन्नपूर्णाप्रदक्षिणाम् ॥ ६२ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण स्वर्गे कल्पद्वयस्थितिः ॥ त्रिकालज्ञानताऽप्यस्मिन्नभूज्जन्मनि सुव्रताः ॥ ६३ ॥ को वेद जगदम्बायाः पदस्मृतिफलं कियत् ॥ स्मृत्वा तन्महिमानं तु पतंत्यश्रूणि मेऽनिशम् ॥ ६४ ॥ धिगस्तु जन्म तेषां वै कृतघ्नानां तु पापिनाम् ॥ ये सर्वमातरं देवीं स्वोपास्यां न भजन्ति हि ॥ ६५ ॥ न शिवोपासना नित्या न विष्णूपासना तथा ॥ नित्योपास्तिः परा देव्या नित्या श्रुत्यैव चोदिता ॥ ६६ ॥ किं मया बहु वक्तव्यं स्थाने संशयवर्जिते ॥ सेवनीयं पदांभोजं भगवत्या निरंतरम् ॥ ६७ ॥ नातः परतरं किंचिदधिकं जगतीतले ॥ सेवनीया परा देवी निर्गुणा सगुणाऽथवा ॥ ६८ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजर्षेर्धार्मिकस्य च ॥ प्रसन्नहृदयाः सर्वे गताः स्वस्वनिकेतनम् ॥ ६९ ॥ एवंप्रभावा सा देवी तत्पूजायाः फलं कियत् ॥ अस्तीति केन प्रष्टव्यं वक्तव्यं वा न केनचित् ॥ ७० ॥ येषां तु जन्मसाफल्यं तेषां श्रद्धा तु जायते ॥ येषां तु जन्मसांकर्यं तेषां श्रद्धा न जायते ॥७१॥ इति श्रीदेवीभागवते एकादशस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् संध्यां माध्याह्निकीं शुभाम् ॥ यदनुष्ठानतोऽपूर्वं जायतेऽत्युत्तमं फलम् ॥ १ ॥ सावित्रीं युवतीं श्वेतवर्णां चैव त्रिलोचनाम् ॥ वरदां चाक्षमालाढ्यां त्रिशूलभयहस्तकाम् ॥ २ ॥ वृषारूढां यजुर्वेदसंहितां रुद्रदेवताम् ॥ तमोगुणयुतां

कहते हैं—हे नारद! राजर्षि बृहद्रथ बड़े ही धार्मिक नरेश थे। उनके वचन सुनकर सम्पूर्ण ऋषियोंका हृदय प्रसन्नतासे भर गया। वे सब अपने-अपने स्थानोंपर चले गये ॥ ६९ ॥ ये भगवती जगदम्बा किस प्रकारके विलक्षण प्रभावोंसे सम्पन्न हैं? इनकी पूजाके कितने महान् फल हैं? इसके विषयमें कौन पूछे और उत्तर दे? अर्थात् इसके प्रष्टा और वक्ता दोनों ही दुर्लभ हैं ॥ ७० ॥ जिनका जन्म सफल होनेको होता है, उन्हीं लोगोंकी देवीपूजापर श्रद्धा होती है। जो वर्णसंकर होते हैं, उनके मनमें ऐसी श्रद्धा कदापि नहीं उत्पन्न होती ॥७१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(मध्याह्नसन्ध्याविधि) भगवान् नारायण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! अब मध्याह्नकालकी पुण्यमयी संध्याका प्रसंग सुनो, जिसके अनुष्ठानसे मनुष्यको अपूर्व तथा उत्तम फल प्राप्त होता है ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवती गायत्री युवावस्थासे सम्पन्न हैं। इनका श्वेतपर्ण है। तीन नेत्र इनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। ये वरद मुद्रा, अक्षमाला और त्रिशूल हाथमें लेकर अभय प्रदान करती हैं ॥२॥ ये वृषभपर आरूढ़ हैं। यजुर्वेद-संहितामें इनकी महिमा गायी गयी है। रुद्र इनके देवता हैं। तमोगुणसे युक्त होकर ये भूमण्डलकी व्यवस्था करती हैं ॥३॥ इन्हींकी कृपासे सूर्य अपने मार्गपर संचरण करते हैं। ऐसी भगवती महामायाको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार आदिदेवीका स्मरण करके आचमन आदि सभी क्रियाएँ पूर्ववत् करनी चाहिए ॥४॥ अब अर्घ्यका प्रकरण बतलाता हूँ। सुंदर पुष्प चुनना चाहिए। पुष्प न मिल सके तो जल और बिल्वपत्र मिलाकर अर्घ्य सम्पन्न करे ॥५॥ यह अर्घ्य सूर्यके सामने ऊपर मुँह करके देना चाहिए। आदिसे अन्ततक सभी नियम प्रातःकालकी संध्याके समान हैं ॥ ६ ॥ मध्याह्न सन्ध्यामें कुछ लोग गायत्री मन्त्रका 'तत्सवितुः' पढ़कर अर्घ्य देनेकी सम्मति देते हैं, किंतु यह असांप्रदायिक है और ऐसा करनेसे कार्यकी हानि होती है ॥७॥ सायं और प्रातःकालकी संन्ध्याके समय अर्घ्य देनेका कारण श्रुतिमें यह बतलाया गया है कि मन्देहा नामके राक्षस सूर्यको खा जाना

चैव भुवर्लोकव्यवस्थिताम् ॥३॥ आदित्यमार्गसंचारकर्त्रीं मायां नमाम्यहम् ॥ आदिदेवीमथ ध्यात्वाऽऽचमनादि च पूर्ववत् ॥४॥ अथ चार्घ्यप्रकरणं पुष्पाणि चिनुयात्ततः ॥ तदलाभे बिल्वपत्रतोयेन मिश्रयेत्ततः ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वं च पूर्वाभिमुखं क्षिप्त्वाऽर्घ्यं प्रतिपादयेत् ॥ प्रातःसंध्यादिवत्सर्वमुपसंहारपूर्वकम् ॥६॥ मध्याह्ने केचिदिच्छन्ति सावित्रीं तु तदित्यृचम् ॥ असंप्रदायं तत्कर्म कार्यहानिस्तु जायते ॥७॥ कारणं संन्ध्ययोश्चात्र मन्देहा नाम राक्षसाः ॥ भक्षितुं सूर्यमिच्छन्ति कारणं श्रुतिचोदितम् ॥८॥ अतस्तु कारणाद्विप्रः संध्यां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ संध्ययोरुभयोर्नित्यं गायत्र्या प्रणवेन च ॥ ९ ॥ अंभस्तु प्रक्षिपेत्तेन नान्यथा श्रुतिघातकः ॥ आकृष्णेनेति मंत्रेण पुष्पैर्वांबुविमिश्रितम् ॥ १० ॥ अलाभे बिल्वदूर्वादिपत्रेणोक्तेन पूर्वकम् ॥ अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन सांगं संध्याफलं लभेत् ॥ ११ ॥ अत्रैव तर्पणं वक्ष्ये शृणु देवर्षिसत्तम ॥ भुवः पुनः पूरुषं तु तर्पयामि नमो नमः ॥ १२ ॥ यदुर्वेदं तर्पयामि मंडलं तर्पयामि च ॥ हिरण्यगर्भं च तथाऽन्तरात्मानं तथैव च ॥ १३ ॥ सावित्रीं च ततो देवमातरं सांकृतिं तथा ॥ संध्यां तथैव युवतीं रुद्राणीं नीमृजां तथा ॥ १४ ॥ सर्वार्थानां सिद्धिकरीं सर्वमंत्रार्थसिद्धिदाम् ॥ भूर्भवः स्वः पूरुषं तु इति मध्याह्नतर्पणम् ॥ १५ ॥ उदुत्यमिति सूक्तेन सूर्योपस्थानमेव च ॥ चित्रं देवानामिति च सूर्योपस्थानमाचरेत् ॥१६॥ ततो जपं प्रकुर्वीत मंत्रसाधनतत्परः ॥ जपस्यापि प्रकारं तु वक्ष्यामि

चाहते हैं। उनके निवारणार्थ अर्घ्यकी आवश्यकता होती है ॥८॥ अतएव ब्राह्मणको यत्नपूर्वक उन राक्षसोंके निवारणार्थ अर्घ्य देना चाहिए। दोनों संध्याओंमें नित्य प्रणवसहित गायत्रीका उच्चारण करके यह अर्घ्य दिया जाता है ॥९॥ मध्याह्न-कालमें 'आकृष्णेन०' इस मन्त्रसे पुष्प और जल सूर्यको निवेदित करे ॥१०॥ पुष्पके अभावमें बिल्वपत्र और दूर्वादलसे पूर्वोक्त विधिके अनुसार यत्नपूर्वक अर्घ्य देनेसे पुरुष सांगोपाङ्ग संध्याके फलका अधिकारी हो जाता है ॥११॥ हे देवर्षिसत्तम ! इसी प्रकरणमें तर्पणकी विधि भी बतलाता हूँ, सुनो। 'भुवः पुरुषं तर्पयामि नमो नमः' 'यजुर्वेदं तर्पयामि नमो नमः'—इसी प्रकार मण्डल, हिरण्यगर्भ, अन्तरात्मा, सावित्री, देवसेना, सांकृति, संध्या, युवती, रुद्राणी, नीमृजा, सर्वार्थसिद्धिकरी, सर्वमंत्रसिद्धिद और भूर्भुवः स्वः पुरुष-इन नामोंके साथ भी 'तर्पयामि नमो नमः'-इन शब्दोंको जोड़कर तर्पण करना चाहिए। यही मध्याह्नका तर्पण है ॥१२-१५॥ इसके बाद 'उदुत्यं०' 'तथा' चित्रंदेवानां०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन मन्त्रोंका उच्चारण करके सूर्योपस्थान करे ॥ १६ ॥ हे नारद ! तदनन्तर साधनमें तत्पर रहकर मन्त्रका जप किया जाता है। जपका भी प्रकार बतलाता हूँ, सुनो ॥ १७ ॥ प्रातःकाल जपके समय दोनों हाथोंको उत्तान, सायंकालमें औंधे और मध्याह्नकालमें हृदयके पास हाथ करके जप करना चाहिये ॥१८॥ अनामिका अंगुलीके दूसरे पोरवे अर्थात् मध्यसे आरम्भ करके कनिष्ठिका आदिके क्रमसे तर्जनीके मूलपर्यन्त 'करमाला' कही गयी है ॥ १९ ॥ गोघाती, पिता-माताका हत्यारा, भ्रूणघाती, गुरुतल्पगामी, ब्राह्मणका धन एवं भूमि हरण करनेवाला और मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण भी हजार गायत्रीका जप करनेसे पवित्र हो सकता है ॥ २० ॥ मन, वाणी और इन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न पाप एक हजार गायत्रीका जप करनेसे नष्ट हो जाता है ॥२१॥ एक हजार गायत्रीका जप करनेसे तीन जन्मके पाप कट जाते हैं। जो व्यक्ति गायत्रीमन्त्र नहीं जानता, उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है ॥ २२ ॥ एक ओर चारों वेदोंका

शृणु नारद ॥ १७ ॥ कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं चाधःकरौ तथा ॥ मध्याह्ने हृदयस्थौ तु कृत्वा जपमुदीरयेत् ॥ १८ ॥ पर्वद्वयमनामिक्याः कनिष्ठादिक्रमेण तु ॥ तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्तिता ॥१९॥ गोघ्नः पितृघ्नो मातृघ्नो भ्रूणहा गुरुतल्पगः ॥ ब्रह्मस्वक्षेत्रहारी च यश्च विप्रः सुरां पिबेत् ॥ २० ॥ स गायत्र्याः सहस्रेण पूतो भवति मानवः ॥ मानसं वाचिकं पापं विषयेन्द्रियसंगजम् ॥ २१ ॥ तत्किल्बिषं नाशयति त्रीणि जन्मानि मानवः ॥ गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः ॥२२॥ पठेच्च चतुरो वेदान् गायत्रीं चैकतो जपेत् ॥ वेदानां चावृतेस्तद्वद्गायत्रीजप उत्तमः ॥ २३ ॥ इति मध्याह्नसंध्यायाः प्रकारः कीर्तितो मया ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मयज्ञविधिक्रमम् ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ त्रिराचम्य द्विजः पूर्वं द्विर्मार्जनमथाचरेत् ॥ उपस्पृशेत्सव्यपाणिं पादौ च प्रोक्षयेत्ततः ॥ १ ॥ शिरसि चक्षुषि तथा नासायां श्रोत्रदेशके ॥ हृदये च तथा मौलौ प्रोक्षणं सम्यगाचरेत् ॥२॥ देशकालौ समुच्चार्य ब्रह्मयज्ञमथाचरेत् ॥ द्वौ दर्भौ दक्षिणे हस्ते वामे त्रीनासने सकृत् ॥३॥ उपवीते शिखायां च पादमूले सकृत्सकृत् ॥ विमुक्तये सर्वपापक्षयार्थं चैवमेव हि ॥४॥ सूत्रोक्तदेवताप्रीत्यै ब्रह्मयज्ञं करोम्यहम् ॥

अध्ययन और उनकी पुनः पुनः आवृत्ति एवं दूसरी ओर गायत्रीका जप रखकर तुलना करनेपर गायत्रीका जप ही उत्तम सिद्ध होता है ॥२३॥ इस प्रकार मध्याह्न-संध्याकी विधि बतायी गयी। इसके बाद ब्रह्मयज्ञकी विधिका क्रम बतलाऊँगा ॥२४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

(सायंसंध्याविधि) भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! तीन बार आचमन करके द्विज दो बार मार्जन करे। फिर दाहिने हाथ तथा पैरोंका प्रोक्षण करे ॥ १ ॥ सिर, नेत्र, नासिका, दोनों कान, हृदय और शिखाका सम्यक् प्रकारसे प्रोक्षण करे ॥ २ ॥ देश-कालके उच्चारणपूर्वक संकल्प करके ब्रह्मयज्ञ करे। दाहिने हाथमें दो कुशा, बायें हाथमें तीन कुशा, आसन, यज्ञोपवीत, शिखा और तलवेके नीचे एक-एक कुशा रक्खे। विमुक्त होनेके लिए, सम्पूर्ण पापोंके विनाशार्थ तथा सूत्रोक्त देवताकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए मैं ब्रह्मयज्ञ करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, यह संकल्प करे। सर्वप्रथम तीन बार गायत्रीका जप करे। 'ॐअग्निमीडे०', 'यदङ्गे', 'अग्निर्वै०', 'अथ महाव्रतं चैव पन्था०' आदि मंत्रोंका क्रमशः पाठ करे ॥३–६॥ इसके बाद संहिताके 'विदाम मघव०', 'महाव्रतस्य०', 'इषेत्वोर्जे०', 'अग्न आयाहि०', 'शन्नो देवी०', 'अथ तस्य समाम्नाय वृद्धिरादैच्०', 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि०' 'पञ्चसंवत्सर०', 'मयरसतजभ०' और 'गौर्मा०' इत्यादि मन्त्रोंका भी पाठ करना चाहिये। 'अथातो धर्मजिज्ञासा०', अथातो ब्रह्मजिज्ञासा०', 'तच्छंयो०', 'ब्रह्मणे नमः' – ऋग्वेदके इन मन्त्रोंका भी पाठ करना चाहिये ॥७–१०॥ इसके बाद देवताओंका तर्पण करके प्रदक्षिणा करे। प्रजापति, ब्रह्मा, वेद, देवता, ऋषिगण, सम्पूर्ण छन्द, ॐकार, वषट्कार, व्याहृति, सावित्री, गायत्री, यज्ञ, आकाश, पृथ्वी,

गायत्रीं त्रिर्जपेत्पूर्वं चाग्निमीडे ततः परम् ॥ ५ ॥ यदंगेति ततः प्रोच्य अग्निर्वै इति कीर्त्तयेत् ॥ अथ महाव्रतं चैव पंथा एतच्च कीर्तयेत् ॥ ६ ॥
अथातः संहितायाश्च विदा मघवदित्यपि ॥ महाव्रतस्येति तथा इषेत्वोर्ज इतीव हि ॥७॥ अग्न आयाहि चेत्येवं शन्नोदेवीरितीति च ॥ अथ तस्य
समाम्नायो वृद्धिरादैजितीव हि ॥ ८ ॥ अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पंचसंवत्सरेति च ॥ मयरसतजभेत्येव गौर्ग्मा इत्येव कीर्तयेत् ॥ ९ ॥ अथातो
धर्मजिज्ञासा अथातो ब्रह्म इत्यपि ॥ तच्छंयोरिति च प्रोच्य ब्रह्मणे नम इत्यपि ॥ १० ॥ तर्पणं चैव देवानां ततः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ प्रजापतिश्च
ब्रह्मा च वेदा देवास्तथर्षयः ॥ ११ ॥ सर्वाणि चैव छन्दांसि तथोङ्कारस्तथैव च ॥ वषट्कारो व्याहृतयः सावित्री च ततः परम् ॥ १२ ॥ गायत्री
चैव यज्ञाश्च द्यावापृथिवी इत्यपि ॥ अंतरिक्षं त्वहोरात्राणि च सांख्या अतः परम् ॥ १३ ॥ सिद्धाः समुद्रा नद्यश्च गिरयश्च ततः परम् ॥ क्षेत्रौष-
धिवनस्पत्यो गंधर्वाप्सरसस्तथा ॥ १४ ॥ नागा वयांसि गावश्च साध्या विप्रास्तथैव च ॥ यज्ञा रक्षांसि भूतानीत्येवमन्तानि कीर्तयेत् ॥ १५ ॥
अथो निवीती भूत्वा च ऋषीन्संतर्पयेदपि ॥ शतर्चिषो माध्यमाश्च गृत्समदस्तथैव च ॥ १६ ॥ विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिर्भरद्वाज एव च ॥ वसिष्ठश्च
प्रगाथश्च पावमान्यस्ततः परम् ॥ १७ ॥ क्षुद्रसूक्ता महासूक्ताः सनकश्च सनन्दनः ॥ सनातनस्तथैवात्र सनत्कुमार एव च ॥ १८ ॥ कपिला-
सुरिनामानौ वोहलिः पञ्चशीर्षकः ॥ प्राचीनावीतिना तच्च कर्तव्यमथ तर्पणम् ॥ १९ ॥ सुमन्तुर्जैमिनिर्वैशंपायनः पैलसूत्रसुक् ॥ भाष्यभारतपूर्वं च
महाभारत इत्यपि ॥ २० ॥ धर्माचार्या इमे सर्वे तृप्यन्त्विति च कीर्तयेत् ॥ जानन्ति बाहविर्गार्ग्यगौतमाश्चैव शाकलः ॥ २१ ॥ बाभ्रव्यमांडव्ययुतो

अन्तरिक्ष, दिन-रात, सांख्य, सिद्ध, समुद्र, नदी, पर्वत, क्षेत्र, ओषधि, वनस्पति, गन्धर्व, अप्सरागण, नाग, पक्षी, गौ, साध्यगण, विप्रगण, यक्ष, राक्षस, भूत एवं यमराज आदिके नामोंका उच्चारण करके तर्पण करे ॥११–१५॥ इसके बाद जनेऊको कण्ठी जैसा करके ऋषियोंका भी तर्पण करना चाहिये। ऋषियोंके नाम इस प्रकार हैं–शतर्चि, माध्यम, गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, प्रगाथ, पावमान, क्षुद्रसूक्त, महासूक्त, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, वोहलि और पञ्चशीर्ष। फिर अपसव्य होकर इन ऋषियोंका तर्पण करे– ॥१६–१९॥ सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल, सूत्र, भाष्य, भारत, महाभारत तथा ये सभी धर्माचार्य तृप्त हो जायँ–यों उच्चारण करे। जानन्ति, बाहवि, गार्ग्य, गौतम, शाकल, बाभ्रव्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माण्डव्य, गार्गी, वाचक्नवी, वडवा, प्रातिथेयी, सुलभा, मैत्रेयी, कहोल, कौषीतक, महाकौषीतक, भारद्वाज, पैङ्ग्य, महापैङ्ग्य, सुयज्ञ, सांख्यायन, ऐतरेय, महाऐतरेय, बाष्कल, शाकल, सुजातवक्त्र, औदवाहि, सौजामि, शौनक और आश्वलायन–ये तथा अन्य भी जो आचार्य हैं, वे सभी तृप्त हो जायँ ॥२०–२५॥ फिर पितरोंका तर्पण करे। तत्पश्चात् 'जो लोग मेरे कुलमें उत्पन्न होकर अपुत्र दिवंगत हो चुके हैं, जिनका मेरे गोत्रसे सम्बन्ध है, इनके लिये मैं वस्त्रको निचोड़कर जल देता हूँ; वे इसे स्वीकार करें'-यों कहकर वस्त्रनिष्पीडन करे। हे महामुने! ब्रह्मयज्ञकी विधि मैं बता चुका ॥२६॥२७॥ जो साधक ब्रह्मयज्ञकी इस उत्तम विधिका पालन करता है, उसे अङ्गोंसहित संपूर्ण वेदोंके पाठका फल मिल जाता है ॥२८॥ तदनन्तर वैश्वदेव और नित्य-श्राद्ध करना चाहिये। प्रतिदिन अतिथियोंको अन्न देना परम कर्तव्य है ॥२९॥ गोग्रास देनेके पश्चात् ब्राह्मणोंके साथ बैठकर भोजन करे। दिनके पाँचवें भागमें यह उत्तम कार्य करना चाहिये ॥३०॥ दिनका छठाँ और

मांडूकेयस्ततः परम् ॥ गार्गी वाचक्नवी चैव वडवा प्रातिथेयिका ॥ २२ ॥ सुलभा युक्तमैत्रेयी कहोलश्च ततः परम् ॥ कौषीतकं महाकौशीतकं वै तर्पयेत्ततः ॥ २३ ॥ भारद्वाजं च पैंग्यं च महापैंग्यं सुयज्ञकम् ॥ सांख्यायनमैतरेयं महैतरेयमेव च ॥२४॥ बाष्कलं शाकलं चैव सुजातवक्त्रमेव च ॥ औदवाहिं च सौजामिं शौनकं चाश्वलायनम् ॥ २५ ॥ ये चान्ये सर्व आचार्यास्ते सर्वे तृप्तिमाप्नुयुः ॥ ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ॥ २६ ॥ ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥ एवं ते ब्रह्मयज्ञस्य विधिरुक्तो महामुने ॥ २७ ॥ यश्चायं कुरुते ब्रह्मयज्ञस्य विधिमुत्तमम् ॥ सर्ववेदांगपाठस्य फलमाप्नोति साधकः ॥२८॥ वैश्वदेवं ततः कुर्यान्नित्यश्राद्धं तथैव च ॥ अतिथिभ्योऽन्नदानं च नित्यमेव समाचरेत् ॥२९॥ गोग्रासं च ततो दत्त्वा भुञ्जीत ब्राह्मणैः सह ॥ अह्नस्तु पञ्चमे भागे प्रकुर्यादेतदुत्तमम् ॥ ३० ॥ इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमकौ नयेत् ॥ अष्टमे लोकयात्रा तु बहिः सन्ध्यां ततः पुनः ॥ ३१ ॥ अथ सायन्तनीं सन्ध्यां प्रवक्ष्यामि महामुने ॥ यदनुष्ठानमात्रेण महामाया प्रसीदति ॥ ३२ ॥ आचम्य प्राणनायम्य साधकः स्थिरमानसः ॥ बद्धपद्मासनो योगी सायंकाले स्थिरो भवेत् ॥ ३३ ॥ श्रुतिस्मृत्यादिकर्मादौ सगर्भः प्राणसंयमः ॥ अगर्भो ध्यानमात्रं तु स चामन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ ३४ ॥ भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा नान्यथा कर्म कीर्तितम् ॥ सलक्ष्यो देवतां ध्यात्वा पूरकुम्भकरेचकैः ॥ ३५ ॥ ध्यानं प्रकुर्यात्संध्यायां सायंकाले विचक्षणः ॥ वृद्धां सरस्वतीं देवीं कृष्णांगीं कृष्णवाससम् ॥३६॥ शंखचक्रगदापद्महस्तां गरुडवाहनाम् ॥

सातवाँ भाग इतिहास और पुराण आदिके स्वाध्यायमें व्यतीत करे। आठवाँ भाग लौकिक कार्यके लिये है। इसके बाद पुनः संध्या करे ॥३१॥ हे महामुने! अब सायंकालकी संध्या बतलाता हूँ. जिसके अनुष्ठानसे भगवती महामाया प्रसन्न होती हैं ॥३२॥ सायंकालमें साधक योगी आचमन और प्राणायाम करके शान्तचित्त हो पद्मासान लगाकर बैठ जाय ॥३३॥ श्रुति-स्मृतिसम्बन्धी कर्मोंमें दो प्रकारके प्राणायाम हैं–सगर्भ और अगर्भ। प्राणवायुको रोककर किये जानेवाले प्राणायामको सगर्भ कहते हैं और केवल ध्यान करनेको अगर्भ। अगर्भ अमन्त्रक होता है ॥३४॥ भूतशुद्धिके पश्चात् कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिए। अन्यथा उसे कर्म नहीं कह सकते। लक्ष्य स्थिर करके पूरक, कुभक और रेचक द्वारा देवताका ध्यान करे ॥३५॥ विद्वान् पुरुष सायंकालमें संध्या करते समय भगवती सरस्वतीका इस प्रकार ध्यान करे–'भगवती सरस्वतीका अब वृद्धावस्थाको प्राप्त हो चुकी हैं। इनका श्रीविग्रह कृष्णवर्ण है। कृष्णवर्णके वस्त्र पहने हुए हैं ॥ ३६ ॥ इन्होंने अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रखे हैं। ये गरुड़पर विराजमान हैं। भाँति-भाँतिके रत्न इनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इनकी करधनी और पायजेबसे ध्वनि निकल रही है ॥३७॥ इनके मस्तकपर बहुमूल्य रत्ननिर्मित मुकुट है। तारमय हार इन्हें सुशोभित करते हैं। मणिमय कुण्डलोंकी कान्तिसे इनके कपोल परम शोभा पा रहे हैं ॥३८॥ इन्होंने पीताम्बर धारण कर रक्खा है। ये सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हैं। सामवेद और सत्त्वमार्ग इनके अङ्ग हैं ॥३९॥ स्वर्गलोककी व्यवस्था इनके हाथमें है। सूर्यमण्डलसे होकर ये पधारती हैं। अब देवी सूर्यमंडलसे यहाँ आ रही हैं। मैं इनका आवाहन कर रहा हूँ' ॥४०॥ इस प्रकार भगवती सरस्वतीका ध्यान करके सायंकालकी संध्याका संकल्प करना चाहिए। 'आपोहिष्ठा' इस मंत्रसे मार्जन तथा 'अग्निश्चेति'से आचमन करे ॥४१॥ शेष कर्म प्रातःकालकी संध्याके समान कहा गया है। साधक पुरुष शान्तचित्त हो भगवान् नारायणके प्रसन्नतार्थ गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके सूर्यको अर्घ्य

नानारत्नलसद्भूषां क्वणन्मंजीरमेखलाम् ॥ ३७ ॥ अनर्घ्यरत्नमुकुटां तारहारावलीयुताम् ॥ ताटंकबद्धमाणिक्यकांतिशोभिकपोलकाम् ॥ ३८ ॥
पीताम्बरधरां देवीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ सामवेदेन सहितां संयुतां सत्त्ववर्त्मना ॥३९॥ व्यवस्थितां च स्वर्लोके आदित्यपथगामिनीम् ॥ आवा-
हयाम्यहं देवीमायांतीं सूर्यमण्डलात् ॥ ४० ॥ एवं ध्यात्वा च तां देवीं सन्ध्यासंकल्पमाचरेत् ॥ आपोहिष्ठेति मन्त्रेण अग्निश्चेति तथैव च ॥ ४१ ॥
विद्ध्यादाचमनकं शेषं पूर्ववदारितम् ॥ गायत्रीमन्त्रमुच्चार्य श्रीनारायणप्रीतये ॥ ४२ ॥ अर्घ्यं दद्याच्च सूर्याय साधकः शुद्धमानसः ॥ उभौ पादौ
समौ कृत्वा हस्ते धृत्वा जलांजलिम् ॥४३॥ देवं ध्यात्वा मण्डलस्थं क्षिपेदर्घ्यं ततः क्रमात् ॥ अर्घ्यं दद्यात्तु यो नीरे मूढात्मा ज्ञानवर्जितः ॥ ४४ ॥
उल्लंघ्य स्मृतिमन्त्रांश्च प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः ॥ ततः सूर्यमुपस्थायाप्यसावादित्यमन्त्रतः ॥ ४५ ॥ गायत्र्याश्च जपं कुर्यादुपविश्य ततो बृसीम् ॥
सहस्रं वा तदर्धं वा श्रीदेवीध्यानपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ यथा प्रातः पुनस्तद्वदुपस्थानादिकं चरेत् ॥ सायं सन्ध्यातर्पणे च क्रमेण परिकीर्तयेत् ॥ ४७ ॥
वसिष्ठो ऋषिरेवात्र सरस्वत्याः प्रकीर्तितः ॥ देवता विष्णुरूपा सा छन्दश्चैव सरस्वती ॥ ४८ ॥ सायंकालीनसंध्यायास्तर्पणे विनियोगकः ॥ स्वरि-
त्युक्त्वा च पुरुषं सामवेदं तथैव च ॥ ४९ ॥ मण्डलं चेति संप्रोच्यं हिरण्यगर्भकं तथा ॥ तथैव परमात्मानं ततोऽपि च सरस्वतीम् ॥ ५० ॥

दे। दोनों पैर समान हों। हाथकी अञ्जलिमें जल भर लिया जाय ॥४२॥४३॥ तब मण्डलस्थ देवताका ध्यान करके क्रमशः अर्घ्य प्रदान करे। जलमें अर्घ्य देनेवाला मानव मूर्ख और अज्ञानी समझा जाता है ॥ ४४॥ स्मृतियोंका उल्लंघन करनेसे ऐसा द्विज प्रायश्चित्तका भागी होता है। तदनन्तर 'असावादित्य' इस सूर्यमन्त्रसे उपस्थान करके कुशके आसनपर बैठकर गायत्रीका जप करना चाहिए। जप एक हजार हो या आधा हजार, किन्तु श्रीदेवीका ध्यान करते हुए जप होना आवश्यक है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सायंकालकी संध्याके तर्पणमें भी प्रातःकालकी ही भाँति उपस्थान आदि कार्य करने चाहिए ॥४७॥ पहले विनियोग इस प्रकार करे—इसके ऋषि वसिष्ठ, विष्णुरूपा सरस्वती देवता और सरस्वती छन्द हैं ॥ ४८॥ सायंकालीन संध्याके तर्पणमें इसका विनियोग किया जाता है। स्वः पुरुष, सामवेद, मण्डल, हिरण्यगर्भ, परमात्मा, सरस्वती, वेदमाता, सांकृति, संध्या तथा विष्णुस्वरूपिणी वृद्धा सरस्वती, उपसी, निमृजी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वसिद्धिकरी, सर्वमन्त्राधीश्वरी तथा भूर्भुवः स्वः पुरुष—इन नामोंका उच्चारण करके तर्पण करे। यह संध्याकालीन तर्पण श्रुतिसम्मत है। हे नारद! सायंकालकी संध्याका विधान कह दिया। हे मुनिवर! यह पापोंका नाशक, सम्पूर्ण क्लेशोंको दूर करनेवाला, व्याधिसे मुक्त करनेमें परम कुशल तथा मोक्षप्रद है। सम्पूर्ण सदाचारोंमें सन्ध्या अपना मुख्य स्थान रखती है। सन्ध्याके प्रभावसे प्रसन्न होकर देवी भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करती हैं॥ ४९-५४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः॥ २०॥

(गायत्रीपुरश्चरणविधि) भगवान नारायण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! अब देवी गायत्रीका पापनाशक, परम पवित्र तथा यथेष्ट फलदायी पुरश्चरण सुनो॥ १॥ पर्वतके शिखर, नदीतट, बिल्ववृक्षके नीचे, जलाशय, गोशाला, देवमन्दिर, पीपलके नीचे, उद्यान, तुलसीवन, किसी पुण्यक्षेत्र अथवा गुरुके निकट तथा जहाँ भी चित्त एकाग्र रह सके, उस स्थलपर

वेदमातरमेवात्र संकृतिं तद्वदेव च॥ सन्ध्यां वृद्धां तथा विष्णुरूपिणीमुषसीं तथा ॥ ५१ ॥ निर्मृजीं च तथा सर्वसिद्धीनां कारिणीं तथा॥ सर्वमन्त्राधिपतिकां भूर्भुवःस्वश्च पूरुषम् ॥ ५२॥ इत्येवं तर्पणं कार्यं सन्ध्यायाः श्रुतिसंमतम्॥ सायं संध्याविधानं च कथितं पापनाशनम् ॥ ५३॥ सर्वदुःखहरं व्याधिनाशकं मोक्षदं तथा॥ सदाचारेषु संध्यायाः प्राधान्यं मुनिपुंगव ॥ सन्ध्याचरणतो देवी भक्ताभीष्टं प्रयच्छति ॥ ५४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ श्रीनारायण उवाच॥ अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् गायत्र्याः पापनाशनम्॥ पुरश्चरणकं पुण्यं यथेष्टफलदायकम्॥१॥ पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले जलाशये॥ गोष्ठे देवालयेऽश्वत्थे उद्याने तुलसीवने॥२॥ पुण्यक्षेत्रे गुरोः पार्श्वे चित्तैकाग्र्यस्थलेऽपि च॥ पुरश्चरणकृन्मंत्री सिध्यत्येव न संशयः॥३॥ यस्य-कस्यापि मंत्रस्य पुरश्चरणमारभेत्॥ व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं चायुतं जपेत्॥ ४॥ नृसिंहार्कवराहाणां तांत्रिकं वैदिकं तथा॥ विना जप्त्वा तु गायत्रीं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥५॥ सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः॥ आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम्॥६॥ मंत्रं संशोध्य यत्नेन पुरश्चरणतत्परः॥ मंत्रशोधनपूर्वांगमात्मशोधनमुत्तमम्॥ ७॥ आत्मतत्त्वशोधनाय त्रिलक्षं प्रजपेद्बुधः॥ अथवा चैकलक्षं तु श्रुतिप्रोक्तेन वर्त्मना॥८॥ आत्मशुद्धिं विना कर्तुर्जपहोमादिकाः क्रियाः॥ निष्फलास्तास्तु विज्ञेयाः कारणं श्रुतिचोदितम्॥ ९॥ तपसा तापयेद्देहं

पुरश्चरण करनेवाला पुरुष सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इसमें संशय नहीं है॥ २॥ ३॥ जिस किसी मन्त्रका भी पुरश्चरण आरम्भ करना हो, उसके पूर्व तीनों व्याहृतियों सहित दस हजार गायत्रीका जप कर लेना आवश्यक है॥ ४॥ नृसिंह, सूर्य तथा वराह—इन देवताओंके तांत्रिक अथवा वैदिक कर्म गायत्रीका जप किये विना निष्फल हो जाते हैं॥ ५॥ सभी द्विज शाक्त होते हैं—शैव और वैष्णव नहीं। क्योंकि सभी ब्राह्मण आदिशक्ति वेदमाता गायत्रीकी सदा उपासना करते हैं॥ ६॥ गायत्रीके जप द्वारा मन्त्रको शुद्ध करके यत्नपूर्वक पुरश्चरणमें लगना चाहिये। मंत्रशोधनके पूर्व आत्मशुद्धि करना परमावश्यक है॥७॥ आत्मतत्त्वकी शुद्धिके लिए बुधजन श्रुतिके कथनानुसार तीन लाख अथवा एक लाख गायत्रीका जप करें॥ ८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मशुद्धि किये बिना कर्त्ताकी जप-होम आदि क्रियाएँ सफल नहीं होतीं ॥९॥ तपस्याके द्वारा शरीरको तपाना तथा देवताओं और पितरोंका तर्पण करना पुरुषका प्रधान धर्म है · तपस्यासे स्वर्गकी प्राप्ति तथा महान् फल प्राप्त होता है ॥१०॥ क्षत्रिय बाहुबल, वैश्य धनसे, शूद्र द्विजकी सेवासे तथा श्रेष्ठ द्विज जप एवं होमसे अपनी आत्माका उद्धार कर सकता है ॥ ११ ॥ अतएव हे द्विजवर ! यत्नपूर्वक तप करना अपना परम धर्म है। तपस्याकी चरम सीमा शरीरको सुखा डालनेमें है ॥१२॥ शरीरका शोधन करनेके लिए वैध मार्गसे कृच्छ्र एवं चान्द्रायण आदि व्रत करे। हे नारद ! अब अन्नशुद्धिका प्रकरण कहता हूँ, सुनो ॥ १३ ॥ तांत्रिक और वैदिक पुरुषोंने अत्याचित, उञ्छ, शुक्ल और भिक्षावृत्ति—ये चार निश्चित जीविकाएँ बतलायी हैं ॥ १४ ॥ इस अन्नसे आत्मा परम शुद्ध हो जाता है। भिक्षामें मिले हुए अन्नको लाकर चार भाग कर ले। एक भाग द्विजोंको, दूसरा गौको और तीसरा अतिथियोंको दे। इसके बाद

पितन्देवांश्च तर्पयेत् ॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विंदते महत् ॥ १० ॥ क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापद आत्मनः ॥ धनेन वैश्यः शूद्रस्तु जप-होमैर्द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥ अतएव तु विप्रेन्द्र तपः कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम् ॥ १२ ॥ शोधयेद्विधिमार्गेण कृच्छ्रचां-द्रायणादिभिः ॥ अथान्नशुद्धिकरणं वक्ष्यामि शृणु नारद ॥ १३ ॥ अयाचितोञ्छशुक्लाख्याभिक्षावृत्तिचतुष्टयम् ॥ तांत्रिकैर्वैदिकैश्चैवं प्रोक्तान्नस्य विशुद्धता ॥ १४ ॥ भक्षान्नं शुद्धमानीय कृत्वा भागचतुष्टयम् ॥ एकं भागं द्विजेभ्यस्तु गोग्रासस्तु द्वितीयकः ॥ १५ ॥ अतिथिभ्यस्तृतीयस्तु तदूर्ध्वं तु स्वभार्ययोः ॥ आश्रमस्य यथा यस्य कृत्वा ग्रासविधिं क्रमात् ॥ १६ ॥ आदौ क्षिप्त्वा तु गोमूत्रं यथाशक्ति यथाक्रमम् ॥ तदूर्ध्वं ग्रास-संख्या स्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥ १७ ॥ कुक्कुटांडप्रमाणं तु ग्रासमानं विधीयते ॥ अष्टौ ग्रासा गृहस्थस्य वनस्थस्य तदर्धकम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मचारी यथेष्टं च गोमूत्रं विधिपूर्वकम् ॥ प्रोक्षणं नववारं च षड्वारं च त्रिवारकम् ॥ १९ ॥ निश्छिद्रं च करं कृत्वा सावित्रीं च तदित्यृचम् ॥ मंत्रमुच्चार्य मनसा प्रोक्षणे विधिरुच्यते ॥ २० ॥ चौरो वा यदि चांडालो वैश्यः क्षत्रस्तथैव च ॥ अन्नं दद्यात्तु यः कश्चिदधमो विधिरुच्यते ॥ २१ ॥ शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कं शूद्रेण च सहासनम् ॥ ते यांति नरकं घोरं यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ २२ ॥ गायत्रीच्छंदो मन्त्रस्य यथासंख्याक्षराणि च ॥ तावल्ल-

अवशिष्ट भागमें स्वयं अपनी पत्नी सहित अन्न ग्रहण करे। जिस आश्रममें ग्रासकी जो विधि निश्चित है, उसी क्रमका पालन आवश्यक है ॥ १५ ॥ १६ ॥ उस अन्नपर शक्ति एवं क्रमके अनुसार पहले गोमूत्रका छींटा दे। तत्पश्चात् वानप्रस्थी और गृहस्थको ग्रासकी संख्या निर्धारित करनी चाहिये ॥१७॥ ग्रासका परिमाण कुक्कुटाण्ड-जितना होता है। गृहस्थके लिए आठ ग्रास और वानप्रस्थीके लिए चार ग्रास लेनेका नियम है ॥१८॥ ब्रह्मचारी यथेष्ट ग्रास ले सकता है। सर्वप्रथम गोमूत्रकी विधि सम्पन्न करके नौ, छः अथवा तीन वार गायत्रीके मंत्र द्वारा अन्नका प्रोक्षण करे ॥१९॥ गायत्रीकी ऋचाका जप करते समय अंगुलियाँ अस्त-व्यस्त न हों। मन्त्रोंका उच्चारण करके मनसे प्रोक्षण करनेकी विधि कही गयी है ॥ २० ॥ चोरीका अन्न, चाण्डालका अन्न, वैश्यका अन्न और क्षत्रियका अन्न निकृष्ट माना गया है ॥ २१ ॥ जो ब्राह्मण शूद्रोंके घर भोजन करते हैं, उनके साथ उठते-बैठते हैं, उनकी पङ्क्तमें बैठकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खाते हैं—वे तबतक नरकमें पड़े रहते हैं, जबतक कि सूर्य-चन्द्रमाका अस्तित्व रहता है ॥ २२ ॥ गायत्री छन्दमें अक्षरोंकी जितनी संख्या है, उतने लाख (अर्थात २४ लाख) जप करनेसे एक पुरश्चरण सम्पन्न होता है ॥२३॥ विश्वामित्रजीका मत है कि बत्तीस लाख जप होना चाहिए। किन्तु जिस कार्यसे शरीरके निष्प्राण होनेकी सम्भावना हो, वह सम्पूर्ण कर्मोंमें अनुचित समझा जाता है तथा वह मन्त्र पुरश्चरणसे हीन कहा गया है ॥२४॥ ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, पौष, अधिक मास, मङ्गलवार, शनिवार, व्यतीपात, वैधृति, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी, अमावस्या, प्रदोष, रात्रि, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण, जन्मनक्षत्र, मेष, कर्क, तुला, कुम्भ और मकर ये सभी राशियें, महीने, दिन, योग, समय, नक्षत्र तथा लग्न पुरश्चरणकर्ममें वर्जित हैं ॥२५–२८॥ चन्द्रमा और नक्षत्र अनुकूल हों, तब शुक्लपक्षमें पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिए। यों पुरश्चरण करनेसे शीघ्र सिद्धि प्राप्त

क्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा ॥ २३ ॥ द्वात्रिंशल्लक्षमानं तु विश्वामित्रमतं तथा ॥ जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ॥ २४ ॥ पुरश्चरणहीनस्तु तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ ज्येष्ठाषाढौ भाद्रपदं पौषं तु मलमासकम् ॥ २५ ॥ अङ्गारं शनिवारं च व्यतीपातं च वैधृतिम् ॥ अष्टमीं नवमीं षष्ठीं चतुर्थीं च त्रयोदशीम् ॥ २६ ॥ चतुर्दशीममावास्यां प्रदोषं च तथा निशाम् ॥ यमाग्निरुद्रसर्पेन्द्रवसुश्रवणजन्मभम् ॥ २७ ॥ मेषकर्कतुलाकुम्भान्मकरं चैव वर्जयेत् ॥ सर्वाण्येतानि वर्ज्यानि पुरश्चरणकर्मणि ॥ २८ ॥ चन्द्रतारानुकूले च शुक्लपक्षे विशेषतः ॥ पुरश्चरणकं कुर्यान्मंत्रसिद्धिः प्रजायते ॥२९॥ स्वतिवाचनकं कुर्यान्नांदीश्राद्धं यथाविधि ॥ विप्रान्सन्तर्प्य यत्नेन भोजनाच्छादनादिभिः ॥३०॥ आरभेत्तु ततः पश्चादनुज्ञानपुरःसरम् ॥ प्रत्यङ्मुखः शिवस्थाने द्विजश्चान्यतमे जपेत् ॥ ३१ ॥ काशीपुरी च केदारो महाकालोऽथ नासिकम् ॥ त्र्यम्बकं च महाक्षेत्रं पंच दीपा इमे भुवि ॥ ३२ ॥ सर्वत्रैव हि दीपस्तु कूर्मासनमिति स्मृतम् ॥ प्रारंभदिनमारभ्य समाप्तिदिवसावधि ॥ ३३ ॥ न न्यूनं नातिरिक्तं च जपं कुर्याद्दिने दिने ॥ नैरंतर्येण कुर्वंति पुरश्चर्यां मुनीश्वराः ॥ ३४ ॥ प्रातरारभ्य विधिवज्जपेन्मध्यदिनावधि ॥ मनःसंहरणं शौचं ध्यानं मंत्रार्थचिंतनम् ॥ ३५ ॥ गायत्रीच्छन्दो मंत्रस्य यथासंख्याक्षराणि च ॥ तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा ॥ ३६ ॥ जुहुयात्तद्दशांशेन सघृतेन पयोंधसा ॥ तिलैः पत्रैः

होतो है ॥ २९ ॥ आरम्भमें विधिपूर्वक स्वस्तिवाचन और नान्दीमुख श्राद्ध करे। ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक भोजन-वस्त्रसे सन्तुष्ट करे। फिर उन ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर पुरश्चरण आरम्भ करे। शिवके मन्दिर तथा अन्य किसी भी शिवजीके स्थानपर द्विज पश्चिमाभिमुख बैठकर जप आरम्भ करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ काशी, केदार, महाकाल, नासिक और महान् क्षेत्र त्र्यम्बक—ये भूमण्डलपर पाँच सिद्ध स्थान हैं। कूर्मासनको सर्वत्रके लिए सिद्धपीठ कहा गया है। आरम्भके दिनसे लेकर समाप्तिके समय तक समानरूपमे प्रतिदिन जप करना चाहिए ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ न किसी दिन अधिक हो और न कम। प्रधान मुनिगण निरन्तर पुरश्चरण किया करते हैं ॥ ३४ ॥ प्रातःकाल आरम्भ करके मध्याह्नतक विधिवत् जप करे। मनपर अधिकार रक्खे। किसी प्रकारकी अपवित्रता न आने दे। इष्टदेवताका ध्यान और मंत्रके अर्थका चिन्तन करता रहे ॥३५॥ गायत्रीमन्त्रमें जितने अक्षर हैं (अर्थात् २४) उतने लाख मंत्रसे पुरश्चरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है ॥३६॥ घृत, खीर, तिल, बिल्वपत्र, पुष्प, यव और मधु आदि हव्यद्रव्योंका दशांश हवन करे ॥ ३७ ॥ मनुका कथन है कि दशांश हवन करनेपर ही मन्त्र सिद्ध होता है। यह गायत्रीदेवी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करती हैं ॥३८॥ अतः इनकी उपासना परमावश्यक है। नित्य, नैमित्तिक और काम्य–तीनों कर्मोंमें इसका पारायण उपयोगी है। इससे बढ़कर इस लोक तथा परलोकमें कोई भी दूसरा श्रेष्ठ साधन नहीं है ॥३९॥ मध्याह्नमें बहुत थोड़ा भोजन करे। मौन रहे। तीनों समय स्नान और संध्योपासन करे। विद्वान् पुरुष मनकी सारी वृत्तियोंको रोककर जलमें तीन लाख मन्त्रोंका जप करे ॥४०॥ पहले यों पुरश्चरण करनेके पश्चात् अभिलषित काम्य कर्मोंके निमित्त जप करना चाहिए। जबतक कार्यमें सफलता न प्राप्त हो, तबतक जपका क्रम चालू रखे ॥४१॥ सामान्य काम्य कर्ममें यथावत् विधि कहते हैं। प्रतिदिन सूर्योदयकालमें ही स्नान करके एक हजार गायत्रीका जप करे ॥४२॥ ऐसा करनेसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और धन अवश्य प्राप्त होते हैं। तीन महीने, छः महीने अथवा वर्ष बीतते-बीतते पुरुषको सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥४३॥ एक लाख घृताक्त कमलके पुष्प हवन

प्रसूनैश्च यवैश्च मधुरान्वितैः ॥ ३७ ॥ कुर्याद्दशांशतो होमं ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥ गायत्री चैव संसेव्या धर्मकामार्थमोक्षदा ॥ ३८ ॥ नित्ये नैमित्तिके काम्ये क्रियते तु परायणः ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च ॥ ३९ ॥ मध्याह्नमितभुङ् मौनी त्रिःस्नानार्चनतत्परः ॥ जले लक्षत्रयं धीमाननन्यमानसक्रियः ॥४०॥ कर्मणा यो जपेत्पश्चात्कर्मभिः स्वेच्छयाऽपि वा ॥ यावत्कालं न सिद्धयेत्तु तावत्कुर्याज्जपादिकम् ॥४१॥ सामान्यकाम्यकर्मादौ यथावद्विधिरुच्यते ॥ आदित्यस्योदये स्नात्वा सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ ४२ ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनं च लभते ध्रुवम् ॥ षण्मासं वा त्रिमासं वा वर्षांते सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४३ ॥ पद्मानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने ॥ प्राप्नोति निखिलं मोक्षं सिध्यत्येव न संशयः ॥ ४४ ॥ मंत्रसिद्धिं विना कर्तुर्जपहोमादिकाः क्रियाः ॥ काम्यं वा यदि वा मोक्षः सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥ ४५ ॥ पञ्चविंशतिलक्षेण दध्ना क्षीरेण वा हुतात् ॥ स्वदेहे सिध्यते जंतुर्महर्षीणां मतं तथा ॥ ४६ ॥ अष्टाङ्गयोगसिद्धया च नरः प्राप्नोति यत्फलम् ॥ तत्फलं सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ४७ ॥ शक्तो वापि त्वशक्तो वा आहारं नियतं चरेत् ॥ षण्मासात्तस्य सिद्धिः स्याद्गुरुभक्तिरतः सदा ॥ ४८ ॥ एकाहं पञ्चगव्याशी चैकाहं मारुताशनः ॥ एकाहं ब्राह्मणान्नाशी गायत्रीजपकृद्भवेत् ॥ ४९ ॥ स्नात्वा गङ्गादितीर्थेषु शतमंतर्जले जपेत् ॥ शतेनापस्ततः पीत्वा

करनेपर मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है और मुक्ति सुलभ हो जाती है ॥४४॥ बिना मन्त्रसिद्धिके कर्ताके जप और होम आदि सभी क्रियाएँ–चाहे वे सकाम हों अथवा निष्काम सफल नहीं होतीं ॥४५॥ पचीस लाख गायत्रीका जप तथा दही और दूधसे हवन करनेपर पुरुष स्वयं सिद्ध हो जाता है–यह महर्षियोंका मत है। मनुष्यको अष्टाङ्गयोगसे जो फल प्राप्त होता है, वही फलसिद्धि इस जपके प्रभावसे भी प्राप्त होती है ॥४६॥४७॥ साधक सशक्त हो अथवा अशक्त, किंतु आहार निश्चित रूपसे करे। गुरुके वचनोंपर विश्वास रखते हुए सदा जप करता रहे। छः महीनेतक जप करनेसे सिद्धि प्राप्त हो सकती है ॥४८॥ एक दिन केवल पंचगव्य प्राशन करके रहे। एक दिन वायुके आहारपर रहनेका नियम है। एक दिन ब्राह्मणके हाथसे मिला हुआ कुछ सिद्ध अन्न भोजन कर ले। यों नियमपूर्वक गायत्रीका जप करे ॥ ४९ ॥ गङ्गा आदि पवित्र नदियोंमें स्नान करके जलके भीतर ही सौ मन्त्रका जप करे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर सौ मन्त्रोंका उच्चारण करके जल पिये। ऐसा करनेसे पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥५०॥ यही नहीं, बल्कि उसे चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि व्रतोंके फल निश्चितरूपसे प्राप्त हो जाते हैं। यदि साधक राजा अथवा ब्राह्मण हो तो वह अपने घरपर ही गायत्रीका पुरश्चरण करे ॥ ५१ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ अथवा वानप्रस्थोको भी अपने अधिकारके अनुसार जप आदि करनेके पश्चात् पुरश्चरण करनेसे फल प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले पुरुष श्रौत और स्मार्त आदि कम करते हैं। पुरुषोंको चाहिए कि विद्वानोंसे शिक्षा प्राप्त करके आचारका पालन करते हुए साग्निक होकर यत्नपूवक जप करें। फल-मूल खाकर रहे। स्वयं केवल आठ ग्रास भोजन करें ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे देवर्षे! इस प्रकार पुरश्चरण करनेसे वह मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है, जिसके अनुष्ठानमात्रसे दरिद्रता दूर भाग जाती है ॥ ५५ ॥ इसके श्रवणकी इतनी महिमा है कि बड़ीसे बड़ी सिद्धि स्वयं पुरुषको उपलब्ध हो जाती है।
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५० ॥ चान्द्रायणादि कृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ राजा वा यदि वा विप्रस्तपः कुर्यात्स्वके गृहे ॥ ५१ ॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथवापि च ॥ अधिकारपरत्वेन फलं यज्ञादिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ श्रौतस्मार्तादिकं कर्म क्रियते मोक्षकांक्षिभिः ॥ साग्निकश्च सदाचारो विद्वद्भिश्च सुरक्षितः ॥ ५३ ॥ ततः कुर्यात्प्रयत्नेन फलमूलोदकादिभिः ॥ भिक्षान्नं शुद्धमश्नीयादष्टौ ग्रासान्स्वयं भुजेत् ॥ ५४ ॥ एवं पुरश्चरणकं कृत्वा मंत्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ देवर्षे यदनुष्ठानाद्दारिद्र्यं विलयं व्रजेत् ॥ ५५ ॥ तच्छ्रुत्वापि च पुण्यानां महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ नारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां ब्रह्मन्वैश्वदेवविधानकम् ॥ पुरश्चर्याप्रसंगेन ममापि स्मृतिमागतम् ॥ १ ॥ देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञो भूतयज्ञस्तथैव च ॥ पितृयज्ञो मनुष्यस्य यज्ञश्चैव तु पंचमः ॥ २ ॥ पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ॥ कंडणी चोदकुम्भश्च तेषां पापस्य शान्तये ॥ ३ ॥ न चुल्ल्यां नायसे पात्रे न भूमौ न च खर्परे ॥ वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुण्डे वा स्थंडिलेऽपि वा ॥ ४ ॥ न पाणिना न शूर्पेण न चमेध्याजिनादिभिः ॥ मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेव व्यजायत ॥ ५ ॥ पुटकेन भवेद्व्याधिः शूर्पेण धननाशनम् ॥ पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेन तु

(बलिवैश्वदेव तथा प्राणाग्निहोत्रकी विधि) भगवान् नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! अब बलिवैश्वदेवकी विधि सुनो। पुरश्चरणके प्रसङ्गमें मुझे अचानक यह बात स्मरण आ गयी है ॥ १ ॥ देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और पाँचवाँ मनुष्ययज्ञ—इसीको वैश्वदेवयज्ञ कहते हैं ॥ २ ॥ गृहस्थके घरमें चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली तथा जलपात्रके द्वारा अर्थात् भोजन बनानेके लिए आग जलाने, आटा पीसने, झाड़ू लगाने, धान आदि कूटने तथा जलके घड़े रखने आदिसे पाँच पाप नित्य होते रहते हैं। इन पापोंका नाश करनेके लिए यह यज्ञ परमावश्यक है। चूल्हा, लोहेके बर्तन, पृथ्वी, मिट्टीके पात्र, कुण्ड अथवा वेदोपर बलिवैश्वदेव नहीं करना चाहिए। अग्निको प्रज्वलित करनेके लिए हाथ, सूप अथवा पवित्र मृगचर्मसे हवा करना अनुचित है। उसे फूँककर प्रज्वलित कर ले। क्योंकि मुखसे ही तो अग्निका प्राकट्य हुआ है ॥ ३-५ ॥ कपड़े द्वारा हवा करनेसे रोग, सूपसे हवा करनेपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धनका नाश तथा हाथपर हवा करनेसे मृत्यु प्राप्त होती है। मुखकी हवासे अग्निको प्रज्वलित करना कार्यसिद्धिका साधक है ॥ ६ ॥ फल, दही, मूल और शाक आदिसे बलिवैश्वदेव करना चाहिये। इन वस्तुओंका अभाव हो तो काष्ठ, मूल अथवा तृण आदि किसी भी वस्तुसे उसको किया जा सकता है ॥७॥ घृत तर किया हुआ हव्य हवन करना चाहिये। तैल और लवणमिश्रित वस्तु हवनमें निषिद्ध है। घृतके अभावमें दही और दूधसे मिश्रित तथा यदि इनका भी अभाव हो तो जलसे आर्द्र वस्तु भी हवन की जा सकती है ॥८॥ सूखा एवं बासी अन्न हवन करनेसे कोढ़ी, जूठे अन्नके होमसे शत्रुकी अधीनता, रूखेसे दरिद्र तथा क्षार वस्तुओंका हवन करनेसे मानव नरकगामी होता है ॥९॥ कुछ भस्ममिश्रित अङ्गारोंको अग्निसे निकालकर उत्तर दिशामें फेंक दे। तत्पश्चात् अक्षार आदि मिश्रित वस्तुओंसे हवन करे ॥ १० ॥ बिना बलिवैश्वदेव किये जो द्विज भोजन करता है, उसकी बुद्धि मारी जा चुकी रहती है। वह मूर्ख 'कालसूत्र' नामक नरकमें औंधे मुख रहकर निवास करता है ॥ ११ ॥ फल, मूल अथवा पत्र—जो कुछ भोजनके लिए उपलब्ध हों, उसीमेंसे संकल्पपूर्वक अग्निमें हवन करे ॥ १२ ॥

॥ ६ ॥ फलैर्दधिघृतैः कुर्यान्मूलशाकोदकादिभिः ॥ अलाभे येन केनापि काष्ठमूलतृणादिभिः ॥ ७ ॥ जुहुयात्सर्पिषाऽभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम् ॥ दध्याक्तं वा पायसाक्तं तदभावेऽम्भसापि वा ॥ ८ ॥ शुष्कैः पर्युषितैः कुष्ठी उच्छिष्टेन द्विषां वशी ॥ रुक्षैर्दरिद्रतां याति क्षारं हुत्वा व्रजत्यधः ॥ ९॥ अंगारान्भस्ममिश्रांस्तु निर्हृत्योत्तरतोऽनलात् ॥ जुहुयाद्वैश्वदेवं तु न क्षारादिविमिश्रितम् ॥ १० ॥ अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुंक्ते मूढधीर्द्विजः ॥ स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ॥ ११ ॥ शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम् ॥ संकल्पयेद्यदाहारं तेनाग्नौ जुहुयादपि ॥१२॥ अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षौ भिक्षार्थमागते ॥ उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ १३ ॥ वैश्वदेवकृतं दोषं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥ न तु भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥१४॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ॥ तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१५॥ वैश्वदेवानंतरं च गोग्रासं प्रतिपादयेत् ॥ तद्विधानं प्रवक्ष्यामि शृणु देवर्षिपूजितः ॥ १६ ॥ सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ॥ गोग्रासं च मया दत्तं सुरभे प्रतिगृह्यताम् ॥ १७ ॥ गोभ्यश्च नम इत्येव पूजां कृत्वा गवेऽर्पयेत् ॥ गोग्रासेन तु गोमाता सुरभिः संप्रसीदति ॥ १८ ॥ ततो गोदो-

यदि वैश्वदेव करनेके पहले ही भिक्षाके लिए भिक्षुक आ जाय तो वैश्वदेवके लिए कुछ सामान अलग रख ले और शेष अन्नमेंसे भिक्षुकको भिक्षा देकर विदा करे ॥ १३ ॥ क्योंकि पहले वैश्वदेव न करनेसे उत्पन्न दोषको भिक्षुक शान्त कर सकता है। किन्तु भिक्षुकके अपमानसे जो दोष हो जाता है, उसे वैश्वदेव दूर करनेमें असमर्थ है ॥ १४ ॥ संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये दोनों सिद्ध अन्नके स्वामी माने जाते हैं। अतः इन्हें दिये बिना भोजन कर लेनेपर चान्द्रायण व्रत करना आवश्यक हो जाता है ॥१५॥ बलिवैश्वदेव करनेके पश्चात् गोग्रास निकालना चाहिये। देवर्षियों द्वारा सुपूजित हे नारद ! गोग्रासका विधान बतलाता हूँ, सुनो ॥१६॥ हे सुरभे ! तुम वैष्णवी माता हो। तुम्हारा नाम सुरभी है। तुम सदा वैकुंठमें विराजमान रहती हो। मेरा दिया हुआ यह गोग्रास स्वीकार करो ॥१७॥ 'गोभ्यो नमः' यों कहकर गौको पूजा करके ग्रास अर्पण करे। गोग्रास प्रदान करनेसे गोमाता सुरभी परम प्रसन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो जाती हैं ॥१८॥ इसके बाद गोदोहनकालतक घरके प्रांगणमें खड़े होकर अतिथिकी प्रतीक्षा करे। क्योंकि अतिथि निराश होकर जिस घरसे लौट जाता है, उस समय वह अपना पाप गृहस्वामीको देकर उसका पुण्य ले जाता है। माता, पिता, गुरु, भाई, प्रजा, सेवक, अपने आश्रयमें रहनेवाले व्यक्ति, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि—ये पोष्य कहे गये हैं। जो इस प्रकारके ज्ञानसे सम्पन्न होकर मोहवश गृहस्थाश्रमका निर्वाह नहीं करता, उसके लिए न यह लोक है और न परलोक। धनी द्विज धर्मपूर्वक सोमयज्ञसे जो फल प्राप्त करता है, वही फल एक निर्धन द्विज भलीभाँति पञ्चमहायज्ञ करनेसे पा लेता है। हे मुनिवर! अब प्राणाग्निहोत्रका प्रकरण कहता हूँ ॥ १९-२३ ॥ जिसे जानकर प्राणी जन्म, मृत्यु और जरा आदि रोगोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥ इस विधिसे भोजन करनेवाला पुरुष तीनों ऋणोंसे छूट जाता है और वह अपनी इक्कीस पीढ़ीके पुरुषोंको नरकसे उबार लेता है ॥ २५ ॥

इनं कालं तिष्ठेच्चैव गृहांगणे ॥ अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ १९ ॥ स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥ माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दासः समाश्रितः ॥ २० ॥ अभ्यागतोऽथिश्चाग्निरेते पोष्या उदाहृताः ॥ एवं ज्ञात्वा तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमम् ॥ २१ ॥ तस्य नायं तु न नरो लोको भवति धर्मतः ॥ यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान्द्विजः ॥२२॥ सम्यक् पञ्चमहायज्ञैर्दरिद्रस्तेन चाप्नुयात् ॥ अथ प्राणाग्निहोत्रं तु वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव ॥ २३ ॥ यज्ज्ञात्वा मुच्यते जंतुर्जन्ममृत्युजरादिभिः ॥ परिज्ञानेन मुच्यन्ते नराः पातककिल्बिषैः ॥ २४ ॥ विधिना भुज्यते येन मुच्येत स ऋणत्रयात् ॥ कुलान्युद्धरते विप्रो नरकानेकविंशतिम् ॥ २५ ॥ सर्वयज्ञफलप्राप्तिः सर्वलोकेषु गच्छति ॥ हृत्पुण्डरीकमणिर्मनो मंथानसंज्ञकम् ॥ २६ ॥ वायुरज्ज्वा मथेदग्निं चक्षुरध्वर्यु रेव च ॥ तर्जनीमध्यमांगुष्ठैरुदानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥ २७ ॥ मध्यमानामिकांगुष्ठैरपानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥ कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्व्यानस्य तदनंतरम् ॥ २८ ॥ कनिष्ठातर्जन्यंगुष्ठैरुदानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥ सर्वांगुलैर्गृहोत्वान्नं समानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥ २९ ॥ स्वाहांतान्प्रणवाद्यांश्च नाममंत्रांश्च वै पठेत् ॥ मुखे चाहवनीयस्तु हृदयो गार्हपत्यकः ॥ ३० ॥ नाभौ च दक्षिणाग्निः स्यादधः सभ्यावसथ्यकौ ॥ वाग्घोता प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्यु रेव च ॥ ३१ ॥ मनो ब्रह्मा भवेच्छ्रोत्रमाग्नीध्रस्थान एव च ॥ अहंकारः पशुश्चात्र

सम्पूर्ण यज्ञोंके फल उसे सुलभ हो जाते हैं। वह जहाँ कहीं भी जाने-आनेमें स्वतंत्र हो जाता है। ऐसी भावना करनी चाहिये कि हृदयरूपी कमल अरणि है, मन मन्थनकाष्ठ है और वायु रस्सी है। इनसे मन्थन करनेपर अग्नि प्रकट हो गयी है। यह नेत्र अध्वर्यु बनकर यज्ञ कर रहा है। ऐसी भावना करके तर्जनी, मध्यमा और अंगूठेसे प्राणरूपी अग्निमें आहुति डाले ॥ २६ ॥ २७ ॥ मध्यमा, अनामिका और अंगूठेसे अपानके लिए, कनिष्ठिका, अनामिका और अंगूठेसे व्यानके लिए, कनिष्ठा, तर्जनी और अंगूठेसे उदानके लिए तथा सम्पूर्ण अंगुलियोंसे अन्न उठाकर समानसंज्ञक प्राणाग्निके लिए आहुति छोड़े ॥ २८ ॥ २९ ॥ इस नाममन्त्रके आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका उच्चारण करना चाहिये। 'ॐ प्राणाय स्वाहा'—यों कहे। मुखमें आहवनीय अग्नि, हृदयमें गार्हपत्याग्नि, नाभिमें दक्षिणाग्नि तथा नीचेके भागमें सभ्य एवं आवसथसंज्ञक अग्नि विद्यमान है—ऐसा चिन्तन करे। वाणी होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, प्राण उद्गाता है और चक्षु ही अध्वर्यु है, मन ब्रह्मा है, श्रोत्र आग्नीध्रके स्थानपर है, अहङ्कार यज्ञसम्बन्धी पशु है और प्रणवको पय कहा गया है ॥ ३०–३२ ॥ बुद्धिको पत्नी कहा गया है, जिसके अधीन रहकर गृहस्थ पुरुष कार्य सम्पादन करता है । छाती वेदी है, राम कुश हैं तथा दोनों हाथ स्रुक् और स्रुवा हैं ॥ ३३ ॥ 'प्राणाय स्वाहा' इस मन्त्रके सुवर्णके समान कान्तिवाले क्षुधाग्नि नामक ऋषि हैं, सूर्य देवता हैं और गायत्री इसका छन्द कहा जाता है ॥ ३४ ॥ 'ॐ प्राणाय स्वाहा' इस मन्त्रके अन्तमें यह भी कहना चाहिये कि यह हवि महाभाग सूर्यके लिए है, न कि मेरे लिए । अर्थात् 'इदमादित्यदेवाय न मम' ॥ ३५ ॥ अपानमन्त्रके गोदुग्धके समान शुक्ल आकृतिवाले श्रद्धाग्नि ऋषि हैं । सोमको इसका देवता कहा गया है ॥ ३६ ॥ उष्णिक् छन्द है । 'ॐ अपानाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम' यों मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये ॥३७॥ व्यानमन्त्रके कमलके सदृश वर्णवाले आख्यात-

प्रणवः पय ईरितम् ॥ ३२ ॥ बुद्धिश्च पत्नी संप्रोक्ता यदधीनो गृहाश्रमी ॥ उरो वेदिस्तु रोमाणि दर्भाः स्रुचश्च स्रुवौ करौ ॥ ३३ ॥ प्राणमंत्रस्य च ऋषी रुक्मवर्णः क्षुधाग्निकः ॥ देवतादित्य एवात्र गायत्रीच्छंद उच्यते ॥ ३४ ॥ प्राणाय च तथा स्वाहा मन्त्रांते कीर्तयेदपि ॥ इदमादित्य-देवाय न ममेति वदेदपि ॥३५॥ अपानमन्त्रस्य तथा गोक्षीरधवलाकृतिः ॥ श्रद्धाग्नि ऋषिरेवात्र सोमो वै देवता स्मृता ॥३६॥ उष्णिक्छंदस्तथा-ऽपानाय स्वाहेत्यपि कीर्तयेत् ॥ सोमायेदं च न ममेत्यत्रोहः परिकीर्तितः ॥३७॥ व्यानमन्त्रस्य चाख्यातोऽम्बुजवर्णो हुताशनः॥ ऋषिरुक्तो देवता-ग्निरनुष्टुप् छंद ईरितम् ॥ ३८ ॥ व्यानाय च तथा स्वाहाऽग्नयेदं न ममेत्यपि ॥ उदानमंत्रस्य तथा शक्रगोपसवर्णकः ॥३९॥ ऋषिरग्निः समा-ख्यातो वायुर्वै देवता स्मृता ॥ बृहतीच्छंद आख्यातमुदानाय च पूर्ववत् ॥ ४० ॥ वायवे चेदं न मम एवं चैवोच्चरेद्द्विजः ॥ समानवायुमंत्रस्य विद्युद्वर्णो विरूपकः ॥ ४१ ॥ ऋषिरग्निः समाख्यातः पर्जन्यो देवता मता ॥ पंक्तिश्छंदः समाख्यातं समानाय च पूर्ववत् ॥४२॥ पर्जन्यायेदमि-त्युक्त्वा षष्ठीं चैवाहुतिं क्षिपेत् ॥ वैश्वानरो महानग्निर्ऋषिर्वै परिकीर्तितः ॥ ४३ ॥ गायत्रीच्छंद आख्यातं देवस्त्वात्मा भवेदपि ॥ स्वाहांतो मंत्र आख्यातः परमात्मन उच्चरेत् ॥४४॥ इदं न मम चेत्येवं जातं प्राणाग्निहोत्रकम् ॥ एतज्ज्ञात्वा विधिं कृत्वा ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ प्राणाग्निहोत्रविद्येयं

संज्ञक अग्नि ऋषि हैं, देवता अग्नि हैं और इसका अनुष्टुप् छन्द कहा गया है ॥ ३८ ॥ 'ॐ व्यानाय स्वाहा' कहकर अन्तमें 'इदमग्नये न मम' यह भी उच्चारण करना आवश्यक है । उदानमन्त्रके गोपबहूटीके समान लाल वर्णवाले अग्नि ऋषि हैं और वायु देवता कहलाते हैं । बृहती छन्द है । पहले जैसे ही 'ॐ उदानाय स्वाहा, इदं वायवे न मम' इस प्रकार द्विजको उच्चारण करना चाहिये । समानमन्त्रके बिजलीके समान वर्णवाले विरूपक नामक अग्नि ऋषि हैं । इस मन्त्रके देवता पर्जन्य माने जाते हैं आर पंक्ति छन्द कहा गया है । पूर्वकी भाँति 'ॐ समानाय स्वाहा, इदं पर्जन्याय न मम' इस मन्त्रका उच्चारण करे ॥ ३९–४२ ॥ इसके बाद छठीं आहुति देनी चाहिये । इस मंत्रके वैश्वानर नामक महान् अग्नि ऋषि कहे जाते हैं ॥४३॥ गायत्री छन्द है । इसके देवता आत्मा हैं । मन्त्र स्वाहान्त उचारण करनेकी विधि है—'ॐ परमात्मने स्वाहा, इदमात्मने न मम' । इस प्रकार प्राणाग्निहोत्र किया जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥४५॥ इस विधिको जानकर तदनुसार करनेसे पुरुष ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। यों इस प्राणाग्निहोत्रविद्याका संक्षेपमें मैंने तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

(प्राजापत्य आदि व्रतोंका वर्णन) भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद! भोजनके पश्चात् उत्तम साधक पुरुष 'ॐ अमृतापिधानमसि'—इस मन्त्रका उच्चारण करके आचमन करे। इसके बाद पात्रमें बचे हुए अन्नको उच्छिष्टभागी पितरोंके लिए अर्पण करे ॥१॥ उस समय ऐसा कहना चाहिये—'हमारे कुलमें उत्पन्न स्वजन तथा जो भी दास-दासी हो चुके हैं और जो हमसे अन्न पानेकी अभिलाषा रखते हैं, वे सभी भूतलपर रखे हुए मेरे इस अन्नसे तृप्त हो जायँ ॥ २ ॥ तदुपरान्त इस मन्त्रसे जल दे—रौरव नामक नरक घोर अपवित्र स्थान है। जो वहाँ असंख्य वर्षोंसे यातना भोग रहे हैं और जिन्हें मुझसे जल पानेकी इच्छा है, वे मेरे दिये हुए अक्षयोदकसे तृप्त हो जायँ ॥३॥ भोजनके समय उँगलीमें पड़े हुए पवित्रकको ग्रंथि खोलकर

संक्षेपात्कथिता हि ते ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अमृतापिधानमित्येवमुच्चार्य साधकोत्तमः ॥ उच्छिष्टभाग्भ्यः पात्रान्नं दद्यादन्ते विचक्षणः ॥ १ ॥ ये के चास्मत्कुले जाता दासदास्योऽन्नकांक्षिणः ॥ ते सर्वे तृप्तिमायांतु मया दत्तेन भूतले ॥ २ ॥ रौरवेऽपुण्यनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम् ॥ अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ ३ ॥ पवित्रग्रन्थिमुत्सृज्य मण्डले भुवि निक्षिपेत् ॥ पात्रे तु निक्षिपेद्यस्तु स विप्रः पंक्तिदूषकः ॥ ४ ॥ उच्छिष्टस्तेन संस्पृष्टः शुना शूद्रेण च द्विजः ॥ उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ ५ ॥ अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टेः स्नानमेव विधीयते ॥ एकाहुतिप्रदानेन कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ ६ ॥ पञ्चभिः पञ्चकोटीनां तदनंतफलं स्मृतम् ॥ प्राणाग्निहोत्रे वेत्रे यो ह्यन्नदानं करोति च ॥ ७ ॥ दातुश्चैव तु यत्पुण्यं भोक्तुश्चैव तु यत्फलम् ॥ प्राप्नुतस्तौ तदेव द्वावुभौ तौ स्वर्गगामिनौ ॥ ८ ॥ सपवित्रकरो भुंक्ते यस्तु विप्रो विधानतः ॥ ग्रासे ग्रासे फलं तस्य पञ्चगव्यसमं भवेत् ॥ ९ ॥ पूजाकालत्रये नित्यं जपस्तर्पणमेव च ॥ होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ॥ १० ॥ अधःशयानो धर्मात्मा जितक्रोधो जितें-

पृथ्वीपर रख दे। जो विप्र उसे पात्रमें ही रख देता है, उसे पंक्तिदूषक कहते हैं ॥ ४ ॥ यदि द्विजका उच्छिष्ट, कुत्ते अथवा चाण्डालसे स्पर्श हो जाय तो वह दोषका भागी होता है। उसे इस दोषसे छूटनेके लिए एक रात उपवास और पञ्चगव्यका प्राशन करना आवश्यक है ॥५॥ अनुच्छिष्टकी स्थितिमें स्पर्श होनेपर केवल स्नान कर ले। प्राणाग्निमें एक आहुति प्रदान करनेसे एक करोड़, पाँच आहुतिसे पाँच करोड़ और उससे अधिक आहुतियें देनेवालेको अनन्त फल प्राप्त होता है। प्राणाग्निहोत्रके विशेषज्ञ ब्राह्मणोंको जो अन्नदान करता है, वह भी पुण्यका भागी होता है। दाता और भोक्ता—दोनों समान फलके भागी होते हैं और दोनोंको स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥६–८॥ जो द्विज हाथमें पवित्रक धारण करके विधिपूर्वक भोजन प्राप्त करता है, उसे प्रत्येक ग्रासमें पञ्चगव्यप्राशन-जैसा पुण्यफल उपलब्ध होता है ॥९॥ पूजाके तीनों काल अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और सायकालमें प्रतिदिन जप, तर्पण, होम और ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इसे ही पुरश्चरण कहते हैं। पृथ्वीपर शयन करे, मनमें धार्मिक भावना बनाये रहे, क्रोधके वशीभूत न हो, इन्द्रियोंपर अधिकार रखे, थोड़ा और मधुर पदार्थ भोजन करे और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित्तको शान्त रखे ॥१०॥११॥ नित्य तीनों समय स्नान करे। मुँहसे सदा पवित्र वाणी बोले। स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक और जूठे मुँहवाले व्यक्तिसे बातचीत न करे ॥१२॥ चाण्डालसे वार्तालाप न करे। हे मुनिवर! जप तथा होमके समय किसीको प्रणाम करके बातचीत न करे ॥ १३ ॥ मैथुनसम्बन्धी बातचीत तथा गोष्ठी करना वर्जित है। मन, वाणी और कर्मसे सभी अवस्थाओंमें सर्वदा और सर्वत्र (अष्ट) मैथुनोंका त्याग करे। इसीको ब्रह्मचर्य कहते हैं। राजा और गृहस्थके लिये भी ब्रह्मचर्यकी ये बातें कही गयी हैं कि वे अपनी ऋतुस्नाता स्त्रियोंके साथ विधिपूर्वक नियमित सङ्ग करे। स्त्री पाणिगृहीता और सवर्णा हो। ऋतु देखकर रात्रिके अवसरपर नियमित गमन करे। इससे ब्रह्मचर्यका नाश नहीं होता। तीनों ऋणोंका मार्जन और पुत्रोंको उत्पन्न किये बिना ही जो यज्ञोंका अनुष्ठान करके संन्यास लेना चाहता है, वह नरकमें जाता है। बकरीके गलेके स्तनकी भाँति उसके जन्मको श्रुति

द्रियः ॥ लघुमिष्टहिताशी च विनीतः शांतचेतसा ॥ ११ ॥ नित्यं त्रिषवणस्नायी नित्यं स शुभभाषणः ॥ स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम् ॥१२॥ चांडालभाषणं चैव न कुर्यान्मुनिसत्तम ॥ नत्वा नैव च भाषेत जपहोमार्चनादिषु ॥१३॥ मैथुनस्य तथालापं तद्गोष्ठीमपि वर्जयेत ॥ कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ १४ ॥ सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥ राज्ञश्चैव गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम् ॥ १५ ॥ ऋतुस्नातेषु दारेषु संगतिर्या विधानतः ॥ संस्कृतायां सवर्णायामृतुं दृष्ट्वा प्रयत्नतः ॥ १६ ॥ रात्रौ तु गमनं कार्यं ब्रह्मचर्यं हरेन्न तत् ॥ ऋणत्रयमसंशोध्य त्वनुत्पाद्य सुतानपि ॥१७॥ तथा यज्ञाननिष्ट्वा च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ अजागलस्य यज्जन्म तज्जन्म श्रुतिचोदितम् ॥१८॥ अतः कार्यं तु विप्रेंद्र ऋणत्रयविशोधनम् ॥ ते देवानामृषीणां च पितॄणामृणिनस्तथा ॥ १९ ॥ ऋषिभ्यो ब्रह्मचर्येण पितृभ्यस्तु तिलोदकैः ॥ मुच्येद्यज्ञेन देवेभ्यः स्वाश्रमं धर्ममाचरेत् ॥ २० ॥ क्षीराहारी फलाशी वा शाकाशी वा हविष्यभुक् ॥ भिक्षाशी वा जपेद्विद्वान्कृच्छ्रचांद्रायणादिकृत् ॥ २१ ॥ लवणं क्षारमम्लं च गृञ्जनं कांस्यभोजनम् ॥ तांबूलं च द्विभुक्तं च दुष्टवासः प्रमत्तनम् ॥ २२ ॥ श्रुतिस्मृतिविरोधं च जपं रात्रौ विवर्जयेत् ॥ वृथा न कालं गमयेद्द्यूतस्त्रीस्वापवादतः ॥ २३ ॥ गमयेद्देवतापूजास्तोत्रागमविलोकनैः ॥ भूशय्याब्रह्मचारित्वं मौनचर्या तथैव च ॥ २४ ॥ नित्यं त्रिष-

निष्फल बतलाती है ॥ १४-१८ ॥ हे विप्रेन्द्र! इसलिए तीनों ऋणोंसे मुक्त होनेका कार्य करना भी आवश्यक है। वे तीनों ऋण देवताओं, ऋषियों और पितरोंके होते हैं ॥ १९ ॥ ब्रह्मचर्य द्वारा ऋषियोंके, तिलोदक-दानसे पितरोंके तथा यज्ञसे देवताओंके ऋणसे पुरुष मुक्त हो जाता है। अपने-अपने आश्रममें रहकर धर्मका आचरण करे ॥ २० ॥ विद्वान् पुरुष दूध, फल, शाक और हविष्य भोजन करे अथवा भिक्षान्न खाकर जप करे। कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रत करनेवाला पुरुष लवण, क्षार, अम्ल, गाजर, कांस्यपात्रमें भोजन, ताम्बूलभक्षण, दोनों समयका भोजन, दूषित वस्त्रधारण, उन्मत्तकी भाँति बातचीत, श्रुति-स्मृतिसे विरुद्ध व्यवहार एवं रात्रिमें वैदिक मन्त्रका जप न करे। जुआ, स्त्री और परावादमें समय न व्यतीत करे ॥ २१-२३ ॥ देवताओंके पूजन, स्तवन और शास्त्रावलोकनमें उसका समय व्यतीत हो। पृथ्वीपर शयन करे। ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करे और मौन रहे ॥ २४ ॥ प्रतिदिन तीनों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समय स्नान करे। नीच कर्मोंका परित्याग कर दे। पूजा, दान, आनन्द, स्तुति और कीर्तन–ये नित्य उसके द्वारा होते रहें ॥२५॥ नैमित्तिक पूजा करे और गुरु एवं देवताओंमें विश्वास रखे। जपशील पुरुषके लिये परम सिद्धि प्रदान करनेवाले ये बारह धर्म हैं ॥२६॥ प्रतिदिन सूर्योपस्थान करके उनके सामने ही जप करे। निष्काम भावसे अपने किये हुए सम्पूर्ण कर्म देवताके अर्पण करे ॥ २७ ॥ २८ ॥ पुरश्चरण करनेवाले पुरुषको इस प्रकारके नियमोंका पालन करना आवश्यक है। अतएव द्विज प्रसन्नतापूर्वक जप और होममें सदा लगा रहे ॥२९॥ तपस्या और अध्ययन करता रहे तथा प्राणियोंपर दया करे। तपस्यासे स्वर्गकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३० ॥ तप महान् फलको देनेवाला है। नियमित रूपसे तपस्या करनेवाले पुरुषके सभी कर्म सिद्ध हो जाते हैं। देवप्रतिमा अथवा अग्निमें सूर्यकी पूजा न करके उनके अभिमुख स्नान, पूजा, जप, ध्यान, होम तथा तर्पण करे। वह चाहे तो विद्वेषकी भावनाको भड़का सकता है, संहार कर सकता है और रोगीको रोगमुक्त कर सकता है। जिन-जिन ऋषियोंने जिस-जिस प्रयोजनकी सिद्धिके लिये देवताओंकी स्तुति की, उन पुरश्चरण करनेवाले

वणस्नानं चुद्रकर्मविवर्जनम् ॥ नित्यपूजा नित्यदानमानंदस्तुतिकीर्तनम् ॥ २५ ॥ नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः ॥ जपनिष्ठस्य धर्मा ये द्वादशैते सुसिद्धिदाः ॥ २६ ॥ नित्यं सूर्यमुपस्थाय तस्य चाभिमुखो जपेत् ॥ देवताप्रतिमादौ वा वह्नौ वाऽभ्यर्च्य तन्मुखः ॥ २७ ॥ स्नानपूजा-जपध्यानहोमतर्पणतत्परः ॥ निष्कामो देवतायां च सर्वकर्मनिवेदकः ॥ २८ ॥ एवमादींश्च नियमान्पुरश्चरणकृच्चरेत् ॥ तस्माद्द्विजः प्रसन्नात्मा जपहोमपरायणः ॥ २९ ॥ तपस्यध्ययने युक्तो भवेद्भूतानुकंपकः ॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विंदते महत् ॥ ३० ॥ तपोयुक्तस्य सिद्धयन्ति कर्माणि नियतात्मनः ॥ विद्वेषणं संहरणं मारणं रोगनाशनम् ॥ ३१ ॥ येन येनाथ ऋषिणा यदर्थं देवताः स्तुताः ॥ स स कामः समृद्धयेत तेषां तेषां तथा तथा ॥ ३२ ॥ तानि कर्माणि वक्ष्यामि विधानानि च कर्मणाम् ॥ पुरश्चरणमादौ च कर्मणां सिद्धिकारणम् ॥ ३३ ॥ स्वाध्यायाभ्यस-नस्यादौ प्राजापत्यं चरेद्द्विजः ॥ केशश्मश्रुलोमनखान् वापयित्वा ततः शुचिः ॥ ३४ ॥ तिष्ठेदहनि रात्रौ तु शुचिरासीत वाग्यतः ॥ सत्यवादी पवित्राणि जपेद्व्याहृतयस्तथा ॥ ३५ ॥ ॐकाराद्यास्तु ता जप्त्वा सावित्रीं च तदित्यृचम् ॥ आपोहिष्ठेति सूक्तं च पवित्रं पापनाशनम् ॥ ३६ ॥ पुनंत्यः स्वस्तिमत्यश्च पावमान्यस्तथैव च ॥ सर्वत्रैतत्प्रयोक्तव्यमादावंते च कर्मणाम् ॥ ३७ ॥ आसहस्रादाशताद्वाप्यादशादथवा जपेत् ॥ ॐकारं

ऋषियोंकी वे सभी कामनाएँ पूरी हो गयीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उनके शान्ति आदि कर्म, जो अनेक प्रकारके हैं, आगे बताये जायँगे। परन्तु वे सभी कर्म पहले पुरश्चरण करके आरम्भ करने चाहिये। तभी वे सिद्धि देनेवाले होते हैं ॥३३॥ स्वाध्यायाभ्यसन अर्थात् गायत्रीमन्त्रके पुरश्चरणमें द्विज पहले प्राजापत्य व्रत करे। इस व्रतका नियम यह है कि सिर और दाढ़ीके बाल बनवा ले और नखोंको काटकर पवित्र हो जाय ॥ ३४ ॥ एक दिन-रात पवित्रतापर पूर्ण ध्यान दे। वाणीपर पूरा अधिकार रक्खे। सत्य बोले। पवित्र मन्त्रों तथा व्याहृतियोंका जप करे ॥३५॥ गायत्रीकी तीनों ऋचाओंके आदिमें ॐकार लगाकर जप करे। 'आपो हिष्ठा०' यह सूक्त पवित्र एवं पापोंका संहारक है ॥३६॥ ऐसे ही 'पुनन्त्यः स्वस्ति-मत्यश्च०' और 'पावमान्यः'-ये भी पुनीत मन्त्र हैं। सभी कर्मोंके आदि और अन्तमें सर्वत्र इनका प्रयोग करना चाहिये ॥३७॥ शान्त्यर्थ एक हजार, एक सौ अथवा दस बार इनका जप करना

१४८९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आवश्यक है। अथवा ॐकार और तीनों व्याहृतियोंसहित त्रिपदा गायत्रीका दस हजार जप करे ॥३८॥ आचार्यों, ऋषियों, छन्दों और देवताओंका जलसे तर्पण करना चाहिये। अनार्य शूद्र और नीच व्यक्तिसे बातचीत न करे ॥ ३ ॥ ऋतुमती स्त्री, पुत्रवधू, पतित, शूद्र मानव तथा देवता, ब्राह्मण, आचार्य और गुरुकी निन्दा करनेवाले व्यक्तिके साथ सम्भाषण न करे ॥४०॥ माता-पितासे द्वेष रखनेवाले व्यक्तियोंके साथ भी वार्तालाप न करे। किसीका अपमान न करे। सम्पूर्ण कृच्छ्रव्रतोंके ये ही नियम हैं। मैं इनका आनुपूर्वी वर्णन कर चुका ॥ ४१ ॥ अब प्राजापत्य, सान्तपन, पराक, कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रतकी विधि कही जाती है ॥ ४२ ॥ इसके प्रभावसे पुरुष पाँच प्रकारके पापों तथा सम्पूर्ण दुष्कृत्योंसे मुक्त हो जाते हैं। तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे सम्पूर्ण पाप उसी क्षण भस्म हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ तीन चान्द्रायण व्रत करनेपर प्राणी पवित्र होकर चन्द्रलोकमें जाता है। आठ चान्द्रायण व्रतके प्रभावसे वर देनेवाले देवताओंका साक्षात्कार करनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है ॥ ४४ ॥ दस चान्द्रायण व्रत करनेसे छन्दोंका ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको पा लेता है। तीन

व्याहृतीस्तिस्रः सावित्रीमथवाऽयुतम् ॥ ३८ ॥ तर्पयित्वाऽद्भिराचार्यानृषींश्छंदांसि देवताः ॥ अनार्येण न भाषेत शूद्रेणापि न गर्हितैः ॥ ३९ ॥ नापि चोदक्यया वध्वा पतितैर्नांत्यजैर्नृभिः ॥ न देवब्राह्मणद्विष्टैर्नाचार्यगुरुनिंदकैः ॥ ४० ॥ न मातृपितृविद्विष्टैर्नावमन्येत कंचन ॥ कृच्छ्राणामेष सर्वेषां विधिरुक्तोऽनुपूर्वशः ॥ ४१ ॥ प्राजापत्यस्य कृच्छ्रस्य तथा सांतपनस्य च ॥ पराकस्य च कृच्छ्रस्य विधिश्चांद्रायणस्य च ॥ ४२ ॥ पञ्चभिः पातकैः सर्वैर्दुष्कृतैश्च प्रमुच्यते ॥ तप्तकृच्छ्रेण सर्वाणि पापानि दहति क्षणात् ॥ ४३ ॥ त्रिभिश्चांद्रायणैः पूतो ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ अष्टभिर्देवताः साक्षात्पश्येत वरदास्तदा ॥ ४४ ॥ छन्दांसि दशभिर्ज्ञात्वा सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ॥ ४५ ॥ त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरेद्द्विजः ॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरदधिसर्पिः कुशोदकम् ॥ ४६ ॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ एकैकं ग्रासमश्नीयादहनि त्रीणि पूर्ववत् ॥ ४७ ॥ त्र्यहं चोपवसेदित्थमतिकृच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥ एवमेव त्रिभिर्युक्तं महासांतपनं स्मृतम् ॥ ४८ ॥ तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ॥ प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥ ४९ ॥ नियतस्तु पिबेदापः प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥ यतात्मनोऽ-

दिन प्रातःकाल और तीन दिन सायंकाल तथा तीन दिन बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसीका भोजन करे ॥ ४५ ॥ इसके बाद तीन दिनतक उपवास करे। इस प्रकार द्विजको 'प्राजापत्य' व्रत करना चाहिये। अब सान्तपन व्रतका स्वरूप बतलाते हैं। पहले दिन गोमूत्र, गोबर, गायका दूध, दही, घृत तथा कुशोदक—इनको एकमें मिलाकर पी ले। दूसरे दिन उपवास करे। इस प्रकार दो रात्रिमें यह कृच्छ्र-सान्तपन व्रत पूर्ण माना गया है। अब अतिकृच्छ्र व्रत कहते हैं। तीन दिनोंतक एक-एक ग्रास, तीन दिनोंतक दो-दो ग्रास और तीन दिनोंतक तीन-तीन ग्रास तथा तीन दिनोंतक उपवास करे। इस प्रकार द्विजको अतिकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। कृच्छ्र-सान्तपन व्रतमें जो नियम बतलाये गये हैं, उन नियमोंको तिगुने रूपसे पालन किया जाय तो उसे महासान्तपन व्रत कहते हैं ॥ ४६–४८ ॥ अब तप्तकृच्छ्र व्रत बतलाते हैं। इस व्रतमें द्विजको चाहिये कि तीन-तीन दिनोंतक क्रमशः जल, क्षीर, घृत और वायु पीकर रहे। जल गरम पीना चाहिये। एक समय स्नान करे ॥ ४९ ॥ नियमपूर्वक केवल जलके आहारपर रहे। यह प्राजापत्यव्रतकी विधि बतलायी गयी है।

१४५०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनको अधिकारमें रखे । प्रमत्तकी भाँति आचरण न करे । बारह दिनोंतक उपवास करे ॥ ५० ॥ इसीको पराक कृच्छ्रव्रत भी कहते हैं । इसमें सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेकी शक्ति है । अब चान्द्रायण व्रतकी विधि बतलाते हैं । कृष्णपक्षमें एक-एक ग्रास कम करे और शुक्लपक्षमें एक-एक ग्रास बढ़ावे ॥ ५१ ॥ अमावस्या तिथिको कुछ भी न खाय । चन्द्रायण व्रतमें इस प्रकारकी विधिका पालन करना चाहिये । इस व्रतमें त्रिकालस्नान करनेका नियम है ॥ ५२ ॥ विप्र प्रातःकाल स्नान करनेके पश्चात् अपना आह्निक कृत्य करके मध्याह्नकालमें चार ग्रास भोजन करे । रातमें भी चार ग्रास ले । इसको शिशुचान्द्रायण व्रत कहते हैं ॥ ५३ ॥ नियमपूर्वक रहकर दिनके मध्याह्नकालमें हविष्यके आठ-आठ ग्रास भोजन करे । यह यति चान्द्रायण व्रत कहलाता है ॥५४॥ रुद्र, आदित्य, वसुगण, मरुद्गण एवं पृथ्वी आदि सम्पूर्ण कुशल देवता सदा इस व्रतका पालन करते आये हैं ॥५५॥ विधिपूर्वक किया हुआ यह व्रत सात रातमें शरीरके भीतर रहनेवाली त्वक्, असृक्, पिशित, अस्थि, मेद और मज्जा आदि धातुओंको पवित्र कर देता है ॥५६॥ इससे एक-एक धातु सात रात्रियोंमें पवित्र हो जाती है ।

प्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ॥ ५० ॥ पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापप्रणोदनः ॥ एकैकं तु ग्रसेत्पिंडं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ॥ ५१ ॥ अमावास्यां न भुंजीत एवं चांद्रायणे विधिः ॥ उपस्पृश्य त्रिषवणमेतच्चांद्रायणं स्मृतम् ॥ ५२ ॥ चतुरः प्रातरश्नीयाद्विप्रः पिंडान्कृताह्निकः ॥ चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचांद्रायणं स्मृतम् ॥ ५३ ॥ अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिंडान्मध्यंदिने स्थिते ॥ नियतात्मा हविष्यस्य यतिचांद्रायणं व्रतम् ॥ ५४ ॥ एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्च चरंति हि ॥ सर्वे कुशलिनो देवा मरुतश्च भुवा सह ॥ ५५ ॥ एकैकं सप्तरात्रेण पुनाति विधिवत्कृतम् ॥ त्वगसृक्पिशितास्थीनि मेदोमज्जावसास्तथा ॥ ५६ ॥ एकैकं सप्तरात्रेण शुद्ध्यत्येव न संशयः ॥ एभिर्व्रतैर्विपूतात्मा कर्म कुर्वीत नित्यशः ॥ ५७ ॥ एवं शुद्धस्य कर्माणि सिद्ध्यन्त्येव न संशयः ॥ शुद्धात्मा कर्म कुर्वीत सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ इष्टान्कामांस्ततः सर्वान्संप्राप्नोति न संशयः ॥ त्रिरात्रमेवोपवसेद्रहितः सर्वकर्मणा ॥ ५९ ॥ त्रीणि नक्तानि वा कुर्यात्ततः कर्म समारभेत् ॥ एवं विधानं कथितं पुरश्चर्याफलप्रदम् ॥ ६० ॥ गायत्र्याश्च पुरश्चर्या सर्वकामप्रदायिनी ॥ कथिता तव देवर्षे महापापविनाशिनी ॥ ६१ ॥ आदौ कुर्याद्व्रतं मंत्री देहशोधनकारकम् ॥ पुरश्चर्या

इसमें कोई संशय नहीं है । इन व्रतोंके द्वारा पवित्र होकर सदा सत्कर्मका अनुष्ठान करता रहे ॥५७॥ इस प्रकार शुद्ध हुए पुरुषके सब कर्म सिद्ध हो जाते हैं—इसमें संशय नहीं है । अन्तःकरणको शुद्ध करके सत्यवादी और जितेन्द्रिय बनकर उत्तम कर्म करनेका विधान है ॥ ५८ ॥ तभी पुरुष अपने सम्पूर्ण अभिलषित कामनाओंको निश्चितरूपसे प्राप्त करता है । सम्पूर्ण कर्मोंसे रहित होकर तीन राततक उपवास करे ॥ ५९ ॥ अथवा तीन राततक नियमका पालन करे । तदनन्तर कार्य आरंभ करे । इस प्रकार पुरश्चरणका फल प्रदान करनेवाला विधान कहा गया है, जिससे संपूर्ण फल सुलभ हो जाते हैं । गायत्रीके पुरश्चरणसे संपूर्ण कामनायें सिद्ध हो जाती हैं । हे देवर्षे ! विशाल पापोंका उच्छेद करनेवाली यह गायत्रीकी उपासना मैंने तुम्हारे सामने कही ॥ ६० ॥ ६१ ॥ मन्त्रके जापकको चाहिये कि आरम्भमें देहको शुद्ध करनेवाले व्रतका पालन करे । तत्पश्चात् पुरश्चरण प्रारम्भ करे । वही सम्पूर्ण फलका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधिकारी होता है ॥६२॥ इस प्रकार पुरश्चरणका यह गोपनीय विधान मैंने सुना दिया। इसे किसी साधारण व्यक्तिके सामने नहीं कहना चाहिये। क्योंकि इसको श्रुतियोंका सार बतलाया गया है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

(कामना-सिद्धि और उपद्रवशान्तिके लिए गायत्रीके विविध प्रयोग) नारदजीने कहा—हे नारायण! हे करुणानिधे! अब आप गायत्रीके शान्ति आदि प्रयोगोंका संक्षेपमें वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ भगवान नारायण कहते हैं—ब्रह्माके विग्रहसे प्रकट होनेवाले हे नारद! तुमने यह बड़ा ही गोप्य विषय पूछा है। किसी भी दुष्ट अथवा कृपणके सामने इस विषयका स्पष्टीकरण नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥ अब शान्तिका प्रकार बतलाते हैं। द्विजको चाहिए कि एक हजार गायत्रीका जप करके दूधवाली समिधाओंसे हवन करे। वे समिधाएँ शमीकी हों। इससे भौतिक रोग और ग्रह शान्त हो जाते हैं ॥ ३ ॥ अथवा सम्पूर्ण भौतिक रोगोंकी शान्तिके लिए द्विज क्षीरवाले वृक्ष अर्थात् पीपल, गूलर, पाकड़ एवं

ततः कुर्यात्समस्तफलभाग्भवेत् ॥ ६२ ॥ इति ते कथितं गुह्यं पुरश्चर्याविधानकम् ॥ एतत्परस्मै नो वाच्यं श्रुतिसारं यतः स्मृतम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ नारद उवाच ॥ नारायण महाभाग गायत्र्यास्तु समासतः ॥ शांत्यादिकान्प्रयोगांस्तु वदस्व करुणानिधे ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अतिगुह्यमिदं पृष्टं त्वया ब्रह्मतनूद्भव ॥ न कस्यापि च वक्तव्यं दुष्टाय पिशुनाय च ॥२॥ अथ शांतिः पयोऽक्ताभिः समिद्भिर्जुहुयाद्द्विजः ॥ शमीसमिद्भिः शाम्यन्ति भूतरोगग्रहादयः ॥ ३ ॥ आर्द्राभिः क्षीरवृक्षस्य समिद्भिर्जुहुयाद्द्विजः ॥ जुहुयाच्छकलैर्वापि भूतरोगादिशांतये ॥ ४ ॥ जलेन तर्पयेत्सूर्यं पाणिभ्यां शांतिमाप्नुयात् ॥ जानुदघ्ने जले जप्त्वा सर्वान्दोषाञ्छमं नयेत् ॥ ५ ॥ कंठदघ्ने जले जप्त्वा मुच्येत्प्राणांतिकाद्भयात् ॥ सर्वेभ्यः शांतिकर्मभ्यो निमज्ज्याप्सु जपः स्मृतः ॥ ६ ॥ सौवर्णे राजते वापि पात्रे ताम्रमयेऽपि वा ॥ क्षीरवृक्षमये वापि निर्व्रणे मृन्मयेऽपि वा ॥७॥ सहस्रं पञ्चगव्येन हुत्वा सुज्वलितेऽनले ॥ क्षीरवृक्षमयैः काष्ठैः शेषं संपादयेच्छनैः ॥ ८ ॥ प्रत्याहुतिं स्पृशञ्जप्त्वा सहस्रं पात्रसंस्थितम् ॥ तेन तं

वटकी गीली समिधाओंसे हवन करे ॥ ४ ॥ जप और होमके पश्चात् हाथमें जल लेकर उससे सूर्यका तर्पण करे। इससे शान्ति प्राप्त होती है। जानुपर्यन्त जलमें रहकर गायत्रीका जप करके पुरुष सम्पूर्ण दोषोंको शान्त कर सकता है ॥ ५ ॥ कण्ठपर्यन्त जलमें जप करनेसे प्राणान्तकारी भय भी दूर हो जाता है। सभी प्रकारकी शान्तिके लिए जलमें डूबकर गायत्रीका जप करना चाहिये, ऐसा कहा गया है ॥ ६ ॥ (अब दूसरा प्रयोग कहते हैं—) सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, मिट्टी अथवा किसी दूधवाले काष्ठके पात्रमें रक्खे हुए पञ्चगव्य द्वारा प्रज्वलित अग्निमें क्षीरवाले वृक्षकी समिधाओंसे एक हजार गायत्रीका मन्त्र उच्चारण करके हवन करे। यह कार्य धीरे-धीरे सम्पन्न करे। प्रत्येक आहुतिके समय मंत्रका पाठ करता हुआ हवन करके पात्रमें रक्खे हुए पञ्चगव्यसे समिधाको स्पर्श कराकर हवन करे। हजार बार ऐसा करे। हवनके पश्चात् एक हजार गायत्री-मन्त्र पढ़कर पात्रमें अवशिष्ट पञ्चगव्यका अभिमन्त्रण करे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और फिर मन्त्रका स्मरण करते हुए कुशों द्वारा पञ्च गव्यसे वहाँके स्थानका प्रोक्षण करे ॥ ७–९ ॥ इसके बाद बलि देते हुए इष्ट देवताका ध्यान करे। यों करनेपर अभिचारसे उत्पन्न हुई कृत्या और पापका नाश हो जाता है ॥ १० ॥ जो इस प्रकार करता है तो देवता, भूत और पिशाच उसके वशमें हो जाते हैं। अतः गृह, ग्राम, पुर और राष्ट्र—इन सबपर वे अपना अनिष्ट प्रभाव नहीं डाल सकते ॥ ११ ॥ भूमिपर चतुष्कोण मण्डल लिखकर उसके मध्यभागमें गायत्रीमन्त्र पढ़कर त्रिशूल धँसा दे। इससे भी पिशाचोंके आक्रमणसे पुरुष बच सकता है ॥१२॥ अथवा सब प्रकारकी शान्तिके लिए पूर्वोक्त मण्डलमें ही गायत्रीके एक हजार मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके त्रिशूल गाड़े और वहीं सुवर्ण, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीका नवीन दिव्य कलश स्थापित करे ॥ १३ ॥ उस कलशमें छिद्र नहीं होना चाहिए। उसे वस्त्रसे वेष्टित कर दे। बालूसे बनी हुई वेदीपर उसे स्थापित करे। मन्त्रज्ञ पुरुष जलसे कलशको भर दे ॥ १४ ॥ फिर श्रेष्ठ द्विज चारों दिशाओंके तीर्थोंका उसमें आवाहन करे। इलायची, चन्दन, कर्पूर, जायफल, गुलाब, मालती, बिल्वपत्र, विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, धान, यव, तिल, सरसों

प्रोक्षयेद्देशं कुशैर्मन्त्रमनुस्मरन् ॥९॥ बलिं किरंस्ततस्तस्मिन्ध्यायेत्तु परदेवताम् ॥ अभिचारसमुत्पन्ना कृत्या पापं च नश्यति ॥१०॥ देवभूतपिशाचाद्यान् यद्येवं कुरुते वशे ॥ गृहं ग्रामं पुरं राष्ट्रं सर्वं तेभ्यो विमुच्यते ॥ ११ ॥ निखनेन्मुच्यते तेभ्यो लिखने मध्यतोऽपि च ॥ मंडले शूलमालिख्य पूर्वोक्ते च क्रमेऽपि वा ॥ १२ ॥ अभिमन्त्र्य सहस्रं तन्निखनेत्सर्वशांतये ॥ सौवर्णं राजतं वापि कुम्भं ताम्रमयं च वा ॥ १३ ॥ मृन्मयं वा नवं दिव्यं सूत्रवेष्टितमव्रणम् ॥ स्थंडिले सैकते स्थाप्य पूरयेन्मन्त्रविज्जलैः ॥१४॥ दिग्भ्य आहृत्य तीर्थानि चतसृभ्यो द्विजोत्तमैः ॥ एलाचन्दनकर्पूरजातीपाटलमल्लिकाः ॥१५॥ बिल्वपत्रं तथा क्रान्तां देवीव्रीहियवांस्तिलान् ॥ सर्षपान्क्षीरवृक्षाणां प्रवालानि च निक्षिपेत् ॥१६॥ सर्वाण्यभिविधायैवं कुशकूर्चसमन्वितम् ॥ स्नातः समाहितो विप्रः सहस्रं मंत्रयेद्बुधः ॥ १७ ॥ दिक्षु सौरानधीयीरन्मंत्रान्विप्रांस्त्रयीविदः ॥ प्रोक्षयेत्पाययेदेनं नीरं तेनाभिषिचयेत् ॥१८॥ भूतरोगाभिचारेभ्यः स निर्मुक्तः सुखी भवेत् ॥ अभिषेकेण मुच्येत मृत्योरास्यगतो नरः ॥ १९ ॥ अवश्यं कारयेद्विद्वान्राजा दीर्घं जिजीविषुः ॥ गावो देयाश्च ऋत्विग्भ्य अभिषेके शतं मुने ॥ २० ॥ दक्षिणा येन वा तुष्टिर्यथाशक्त्याऽथवा भवेत् ॥ जपेदश्वत्थमालभ्य

तथा दूधवाले वृक्ष अर्थात् पीपल, गूलर, पाकड़ और वटके कोमल पल्लव उस कलशमें छोड़ दे ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसमें सत्ताईस कुशोंसे निर्मित एक कूर्च रख दे। यों सब सम्पन्न हो जानेपर स्नान आदिसे पवित्र तथा जितेन्द्रिय बुद्धिमान् ब्राह्मण एक हजार गायत्रीके मन्त्रसे उस कलशको अभिमन्त्रित करे ॥ १७ ॥ वेदज्ञ ब्राह्मण चारों दिशाओंमें बैठकर सूर्य आदि देवताओंके मन्त्रोंका पाठ करे। साथ ही इस अभिमन्त्रित जलसे प्रोक्षण, पान और अभिषेक करे ॥ १८ ॥ इस प्रकारकी विधि सम्पन्न करनेवाला पुरुष भौतिक रोगों और अभिचारोंसे मुक्त होकर परम सुखी हो सकता है। इस अभिषेकके प्रभावसे मृत्युके मुखमें गया हुआ मानव भी मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ विद्वान् पुरुष दीर्घ समयतक जीवन धारण करनेकी इच्छावाले नरेशको ऐसा अनुष्ठान करनेको अवश्य प्रेरित करे। हे मुने! अभिषेक समाप्त हो जानेपर ऋत्विजोंको दक्षिणामें सौ गौएँ दे ॥ २० ॥ दक्षिणा उतनी होनी चाहिये, जिससे ऋत्विक्गण

१४५३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सन्तुष्ट हो सकें अथवा जिसकी जैसी शक्ति हो, उसके अनुसार दक्षिणा दी जा सकती है। शनिवारके दिन पीपल वृक्षके नीचे द्विज गायत्रीका सौ बार जप करे ॥ २१ ॥ इससे वह भौतिक रोग एवं अभिचारजनित महान् भयसे मुक्त हो जाता है । द्विजको चाहिये कि गुरुचको खण्ड-खण्ड करके उसे दूधमें भिगोकर अग्निमें आहुति दे ॥ २२ ॥ इस प्रकारके होमको 'मृत्युञ्जय' कहते हैं। इसमें सम्पूर्ण व्याधियोंका नाश करनेकी शक्ति है। ज्वरकी शान्तिके लिए दूधमें भिगोये आमके पल्लवोंसे हवन करे॥ २३ ॥ क्षीराक्त मीठे वचका हवन करनेसे क्षयरोग दूर होता है। तीन मधु अर्थात् दूध, दही और घृतसे किये हुए होममें राजयक्ष्माको दूर करनेकी शक्ति है ॥ २४ ॥ खीरका हवन करके उसे भगवान सूर्यको अर्पण करे। फिर प्रसादरूपसे स्वयं प्राशन करे तो राजयक्ष्माका उपद्रव शान्त हो जाता है ॥ २५ ॥ सोमलताको गाँठोंपरसे अलग-अलग करके उसे दूधमें भिगोकर क्षयरोगकी शान्तिके लिए द्विज अमावस्या तिथिको हवन करे ॥ २६ ॥ शङ्खवृक्षके पुष्पोंसे हवन करके कुष्ठरोगका निवारण करे। अपामार्गके बीजसे यदि हवन किया जाय तो मृगी दूर हो सकती

मंदवारे शतं द्विजः ॥ २१ ॥ भूतरोगाभिचारेभ्यो मुच्यते महतो भयात् ॥ गुडूच्याः पर्वविच्छिन्नाः पयोऽक्ता जुहुयाद्द्विजः ॥२२॥ एवं मृत्युंजयो होमः सर्वव्याधिविनाशनः ॥ आम्रस्य जुहुयात्पत्रैः पयोऽक्तैर्ज्वरशांतये ॥२३॥ वचाभिः पयसाऽक्ताभिः क्षयं हुत्वा विनाशयेत् ॥ मधुत्रितयहोमेन राजयक्ष्मा विनश्यति ॥ २४ ॥ निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् ॥ राजयक्ष्माभिभूतं च प्राशयेच्छांतिमाप्नुयात् ॥ २५ ॥ लताः पर्वसु विच्छिद्य सोमस्य जुहुयाद्द्विजः ॥ सोमे सूर्येण संयुक्ते पयोऽक्ताः क्षयशांतये ॥ २६ ॥ कुसुमैः शंखवृक्षस्य हुत्वा कुष्ठं विनाशयेत् ॥ अपस्मार-विनाशः स्यादपामार्गस्य तंडुलैः ॥ २७ ॥ क्षीरवृक्षसमिद्धोमादुन्मादोऽपि विनश्यति ॥ औदुम्बरसमिद्धोमादतिमेहः क्षयं व्रजेत् ॥२८॥ प्रमेहं शम-येद्धुत्वा मधुनेक्षुरसेन वा ॥ मधुत्रितयहोमेन नयेच्छांतिं मसूरिकाम् ॥ २९ ॥ कपिलासर्पिषा हुत्वा नयेच्छांति मसूरिकाम् ॥ उदुम्बरवटाश्वत्थैर्गो-गजाश्वामयं हरेत् ॥ ३० ॥ पिपीलिमधुवल्मीके गृहे जाते शतं शतम् ॥ शमीसमिद्भिरन्नेन सर्पिषा जुहुयाद्द्विजः ॥ ३१ ॥ तदुत्थं शांतिमायाति शेषैस्तत्र बलि हरेत् ॥ अभ्रस्तनितभूकम्पालक्ष्यादौ वनवेतसः ॥३२॥ सप्ताहं जुहुयादेवं राष्ट्रे राज्यं सुखी भवेत् ॥ यां दिशं शतजप्तेन लोष्ठेनाभि-

है ॥ २७ ॥ क्षीरी वृक्षकी समिधासे हवन करनेपर उन्माद रोग शान्त हो जाता है। गूलरकी समिधाका हवन असाध्य प्रमेहरोगको दूर कर देता है ॥ २८ ॥ मधु अथवा ईखके रससे हवन करके पुरुष प्रमेहरोगको शान्त करे। त्रिमधु अर्थात् दूध, दही और घृतके हवनसे मसूरिका (चेचक) रोग शान्त होता है ॥ २९ ॥ कपिला गौके घृतसे हवन करके भी मसूरिका रोगको शान्त किया जा सकता है। गूलर, वट और पीपलको समिधाओंसे हवन करके गौ, घोड़े और हाथीके रोगको दूर करे ॥ ३० ॥ पिपीलिका और मधुवल्मीकसंज्ञक जन्तुओं द्वारा गृहमें उपद्रव उपस्थित होनेपर द्विज शमीकी समिधाओं, खीर और घृतसे प्रत्येक कार्यके लिए दो सौ आहुतियोंसे हवन करे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार करनेसे वह उपद्रव शान्त हो जाता है। अवशिष्ट पदार्थोंसे वहाँ बलि प्रदान करनी चाहिये। बिजली गिरने और भूकम्प आदिके लक्षित होनेपर जंगली बेंतकी समिधासे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सात दिनों तक हवन करे। ऐसा करनेसे राष्ट्रमें राज्यसुख विद्यमान रहता है। कोई पुरुष सौ बार गायत्री मन्त्रका उच्चारण करके जिस दिशामें ढेला फेंकता है, उस दिशामें कभी अग्नि, पवन और शत्रुओंसे भय नहीं हो सकता। यदि मन ही मन गायत्रीका जप किया जाय तो बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है ॥३२॥३३॥ गायत्रीका जप करके कुशसे स्पर्श करता हुआ पुरुष भौतिक रोग और विष आदिके भयसे रोगीको मुक्त कर देता है। गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलका पान करके मनुष्य भूत-प्रेत आदिके उपद्रवोंसे मुक्त हो जाते हैं ॥३४॥ ३५॥ भूतादिके उपद्रवको शान्त करनेके लिये गायत्री मन्त्रका सौ बार उच्चारण करके उससे अभिमन्त्रित किये हुए भस्मको सिरपर धारण करे ॥३६॥ ऐसा करनेसे वह पुरुष सम्पूर्ण व्याधियोंसे मुक्त होकर सौ वर्षोंतक सुखी जीवन धारण कर सकता है। यदि स्वयं ऐसा करनेमें अशक्त हो तो दक्षिणा देकर ब्राह्मण द्वारा कर-

प्रताडयेत् ॥३३॥ ततोऽग्निमारुतादिभ्यो भयं तस्य विनश्यति ॥ मनसैव जपेदेनां बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ३४ ॥ भूतरोगविषादिभ्यः स्पृशञ्ज-प्त्वा विमोचयेत् ॥ भूतादिभ्यो विमुच्येत जलं पीत्वाऽभिमंत्रितम् ॥३५॥ अभिमन्त्र्य शतं भस्म न्यसेद्भूतादिशांतये ॥ शिरसा धारयेद्भस्म मंत्रयित्वा तदित्यृचा ॥ ३६ ॥ सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः सुखी जीवेच्छतं समाः ॥ अशक्तः कारयेच्छांतिं विप्रं दत्त्वा तु दक्षिणाम् ॥ ३७ ॥ अथ पुष्टिं श्रियं लक्ष्मीं पुष्पैर्हुत्वाऽऽप्नुयाद्द्विजः ॥ श्रीकामो जुहुयात्पद्मै रक्तैः श्रियमवाप्नुयात् ॥३८॥ हुत्वा श्रियमवाप्नोति जातीपुष्पैर्नवैः शुभैः ॥ शालितंडुल-होमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम् ॥ ३९ ॥ समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य हुत्वा श्रियमवाप्नुयात् ॥ बिल्वस्य शकलैर्हुत्वा पत्रैः पुष्पैः फलैरपि ॥ ४० ॥ श्रिय-माप्नोति परमां मूलस्य शकलैरपि ॥ समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य पायसेन च सर्पिषा ॥४१॥ शतं शतं च सप्ताहं हुत्वा श्रियमवाप्नुयात् ॥ लाजैस्त्रिमधुरो-पेतैर्होमे कन्यामवाप्नुयात् ॥ ४२ ॥ अनेन विधिना कन्या वरमाप्नोति वांछितम् ॥ रक्तोत्पलशतं हुत्वा सप्ताहं हेम चाप्नुयात् ॥ ४३ ॥ सूर्यबिंबे

वानेकी चेष्टा करे ॥३७॥ तदनन्तर पुष्टि, श्री और लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये द्विजको चाहिये कि पुष्पोंकी आहुति दे। लक्ष्मी चाहनेवाला पुरुष लाल पुष्पोंसे हवन करे। इससे उसे लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है ॥३८॥ जूहीके ताजे फूलों तथा साठी धानके चावलका होम करनेसे भी पुष्कल लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ बिल्वफलके खण्डों, पत्रों और पुष्पोंसे हवन करके पुरुष उत्तम लक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। समिधायें भी बिल्ववृक्षकी होनी चाहिये ॥ ४० ॥ दूध और घृतसे मिश्रित बिल्वकाष्ठका हवन करे। सात दिनोंतक प्रतिदिन दो-दो सौ आहुतियाँ देनेवाला लक्ष्मीको पानेका अधिकारी होता है। तीन मधुओंसे युक्त लावाका हवन करनेसे पुरुषको कन्या प्राप्त होती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इसी विधिका पालन करनेसे कन्या अभिलषित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर प्राप्त कर लेती है। एक सप्ताहतक लाल कमलकी सौ आहुति देनेपर सुवर्णको प्राप्ति होती है ।।४३।। गायत्री मन्त्रका उच्चारण करके सूर्यका तर्पण करनेवाला जलमें छिपा हुआ सुवर्ण प्राप्त कर लेता है। अन्नका हवन करनेसे अन्न तथा व्रीहिका हवन करनेसे पुरुष व्रीहिका स्वामी हो जाता है ।। ४४ ।। बछड़ेके गोबरके उपलोंका हवन करनेवाला पुरुष पशु-धन पा लेता है। दूध और घृतमिश्रित प्रियङ्गुके हवनसे प्रजाकी अनुकूलता प्राप्त होती है ।।४५।। खीर बनाकर हवन करे और उसे भगवान् सूर्यको अर्पण करके ऋतुस्नाता ब्राह्मणीको भोजन करायें तो पुरुषको श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्ति होती है। गोली समिधाका हवन आयु प्रदान करनेवाला हैं। क्षीरी वृक्षोंके अग्रभाग युक्त समिधाओंसे, जो तीनों मधुओंसे आर्द्र हों ऐसी व्रीहियोंसे सौ आहुति देकर पुरुष सुवर्ण और आयु प्राप्त करता है। सुनहरे रङ्गके कमलकी आहुति देनेपर सौ वर्षकी आयु प्राप्त होती है। दूर्वा, दूध, मधु एवं घृतसे प्रतिदिन सौ-सौ आहुति देनेपर एक सप्ताहमें अपमृत्यु

जलं हुत्वा जलस्थं हेम चाप्नुयात् ।। अन्नं हुत्वाप्नुयादन्नं व्रीहीन्व्रीहिपतिर्भवेत् ।।४४।। करीषचूर्णैर्वत्सस्य हुत्वा पशुमवाप्नुयात् ।। प्रियंगुपायसाज्यैश्च भवेद्धोमादिभिः प्रजा ।। ४५ ।। निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् ।। भोजयेत्तदृतुस्नातां पुत्रं परमवाप्नुयात् ।। ४६ ।। सप्ररोहाभिरार्द्राभिरा-युर्हुत्वा समाप्नुयात् ।। समिद्भिः क्षीरवृक्षस्य हुत्वाऽऽयुषमवाप्नुयात् ।।४७।। सप्ररोहाभिरार्द्राभी रक्ताभिर्मधुरत्रयैः ।। व्रीहीणां च शतं हुत्वा हेम चायुर-वाप्नुयात् ।।४८।। सुवर्णकुड्मलं हुत्वा शतमायुरवाप्नुयात् ।। दुर्वाभिः पयसा वापि मधुना सर्पिषाऽपि वा ।।४९।। शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ।। शमी समिद्भिरन्नेन पयसा वा च सर्पिषा ।। ५० ।। शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ।। न्यग्रोधसमिधो हुत्वा पायसं होमयेत्ततः ।। ५१ ।। शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ।। क्षीराहारो जपेन्मृत्योः सप्ताहाद्विजयी भवेत् ।। ५२ ।। अनश्नन्वाग्यतो जप्त्वा त्रिरात्रं मुच्यते यमात् ।। निमज्ज्याप्सु जपदेवं सद्यो मृत्योर्विमुच्यते ।। ५३ ।। जपेद्बिल्वं समाश्रित्य मासं राज्यमवाप्नुयात् ।। बिल्वं हुत्वाऽऽप्नुयाद्राज्यं समूलफलपल्लवम् ।। ५४ ।। हुत्वा पद्मशतं मासं राज्यमाप्नोत्यकंटकम् ।। यवागूं ग्राममाप्नोति हुत्वा शालिसमन्वितम् ।। ५५ ।। अश्वत्थसमिधो हुत्वा युद्धादौ

दूर होती है। ऐसे ही शमीकी समिधा, अन्न, क्षीर और घृतकी एक सप्ताहतक दी हुई सौ-सौ आहुतियाँ अपमृत्युका विनाश करती हैं। न्यग्रोधकी समिधाका हवन करके खीरका हवन करे। एक सप्ताहतक प्रतिदिन आहुतियाँ देनी चाहिये। इसके प्रभावसे अपमृत्यु दूर हो जाती है। जो केवल दूध पीकर गायत्रीका जप करता है। इससे एक सप्ताहमें वह मृत्युपर विजय प्राप्त कर लेता है। यदि मौन रहकर बिना कुछ खाये-पीये जप करे तो तीन रातमें यमके पाशसे मुक्त हो जाता है। यदि जलमें डुबकी लगाकर जप करे तो उसी क्षण मृत्युसे छुट्टी मिल जाती है ।।४६-५३।। यदि बिल्व-वृक्षके नीचे बैठकर जप करे तो एक महीनेमें राज्य मिल सकता है ! मूल, फल और पल्लवसहित बिल्वकी आहुति राज्य प्रदान करती है ।।५४।। कमलकी सौ आहुति देनेपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानव निष्कण्टक राज्य प्राप्त करता है। अगहनी धानके चूर्णकी लपसीका हवन करके पुरुष ग्राम प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ पीपलके वृक्षकी समिधाओंका हवन युद्ध आदिमें विजय प्रदान करता है। मदारकी समिधाके हवनसे पुरुष सर्वत्र विजयी होता है ॥५६॥ क्षीरसे संयुक्त बेंतके पत्रोंकी अथवा खीरकी यदि सौ आहुति दी जाय तो एक सप्ताहमें वृष्टि होती है ॥ ५७॥ अथवा नाभिपर्यन्त जलमें खड़े होकर एक सप्ताहतक जप करनेपर वृष्टि होती है। जलमें भस्मकी सौ आहुति देनेसे घोर वृष्टि बन्द हो जाती है ॥५८॥ पलाशकी समिधासे हवन करनेपर ब्रह्मतेज प्राप्त होता है। पलाशके पुष्पोंकी आहुतियाँ सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करती हैं ॥५९॥ दूधकी आहुति मेधा तथा घृतकी आहुति बुद्धिकी प्राप्तिमें सहायक होती है। ब्राह्मी बूटीके रसको गायत्री मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके यदि पान किया जाय तो निर्मल बुद्धि प्राप्त होती है ॥६०॥ ब्राह्मी बूटीके पुष्पोंका हवन करनेसे सुगन्ध तथा तन्तुओंके हवनसे उसीके समान वस्त्र प्राप्त होते हैं, मधुमिश्रित बिल्व-पुष्पोंकी आहुति इष्टदेवको वशमें करनेवाली होती है ॥६१॥ फूलको शहदमें तर करके हवन करनेसे प्रेमी अपने वशमें हो जाता है। जलमें खड़े होकर गायत्रीमन्त्रको

जयमाप्नुयात् ॥ अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ५६ ॥ संयुक्तैः पयसा पत्रैः पुष्पैर्वा वेतसस्य च ॥ पायसेन शतं हुत्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ॥ ५७ ॥ नाभिदघ्ने जले जप्त्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ॥ जले भस्मशतं हुत्वा महावृष्टिं निवारयेत् ॥ ५८ ॥ पालाशाभिरवाप्नोति समिद्भिर्ब्रह्मवर्चसम् ॥ पलाशकुसुमैर्हुत्वा सर्वमिष्टमवाप्नुयात् ॥ ५९ ॥ पयो हुत्वाऽऽप्नुयान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात् ॥ अभिमन्त्र्य पिबेद्ब्राह्मं रसं मेधामवाप्नुयात् ॥ ६० ॥ पुष्पहोमे भवेद्वासस्तंतुभिस्तद्विधं पटम् ॥ लवणं मधुसंमिश्रं हुत्वेष्टं वशमानयेत् ॥ ६१ ॥ नयेदिष्टं वशं हुत्वा लक्ष्मीं पुष्पैर्मधुप्लुतैः ॥ नित्यमंजलिनाऽऽत्मानमभिषिंचेज्जले स्थितः ॥६२॥ मतिमारोग्यमायुष्यमग्र्यं स्वास्थ्यमवाप्नुयात् ॥ कुर्याद्विप्रोऽन्यमुद्दिश्य सोऽपि पुष्टिमवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ अथ चारुविधिर्मासं सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ आयुष्कामः शुचौ देशे प्राप्नुयादायुरुत्तमम् ॥ ६४ ॥ आयुरारोग्यकामस्तु जपेन्मासद्वयं द्विजः ॥ भवेदायुष्यमारोग्यं श्रियै मासत्रयं जपेत् ॥ ६५ ॥ आयुः श्रीपुत्रदाराद्याश्चतुर्भिश्च यशो जपात् ॥ पुत्रदाराऽऽयुरारोग्यं श्रियं विद्यां च पंचभिः ॥ ६६ ॥ एवमेवोत्तरान्कामान् मासैरेवोत्तरैर्व्रजेत् ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहुः स्थित्वा निराश्रयः ॥ ६७ ॥ मासं शतत्रयं विप्रः

पढ़ते हुए नित्य अञ्जलिसे अपने ऊपर अभिषेक करे ॥६२॥ ऐसा करनेसे पुरुष बुद्धि, आरोग्यता, उत्तम आयु और स्वास्थ्य प्राप्त करता है। यदि ब्राह्मण दूसरेके लिए ऐसा करे तो उस अन्य पुरुषको भी पुष्टि प्राप्त होती है ॥ ६३ ॥ आयुकी कामना करनेवाला द्विज किसी पवित्र स्थानमें बैठकर उत्तम विधिके साथ महीनेभर प्रतिदिन एक-एक हजार गायत्रीका जप करे। इससे उत्तम आयुकी प्राप्ति होता है ॥ ६४ ॥ यदि आयु और आरोग्य दोनोंकी कामना हो तो द्विजको चाहिये कि दो मासतक एक-एक हजार गायत्री मन्त्रका नियमसे जप करे। आयु, आरोग्य और लक्ष्मी चाहनेवालेको तीन महीनेतक जप करना चाहिये ॥६५॥ इसी तरह आयु, लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री और यशकी कामनावाला द्विज चार मासतक जप करे। पुत्र, स्त्री, आयु, आरोग्य, लक्ष्मी और विद्या—इनकी कामना करनेवालेको पाँच महीनेतक नित्य एक हजारके नियमसे जप करनेका विधान है ॥ ६६ ॥ यों जितने-जितने मनोरथ अधिक हों, उसीके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रमसे महीनेकी संख्या भी बढ़ानी चाहिये। एक पैरपर खड़े हो बिना किसी अवलम्बके बाँहोंको ऊपर उठाये हुए तीन सौ गायत्री मन्त्रोंका प्रतिदिन महीने भर जप करनेसे द्विजकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इस प्रकार ग्यारह सौ मन्त्रोंका नित्य महीनेभर जप करनेसे द्विजकी कोई भी अभिलाषा अधूरी नहीं रह जाती ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ यदि प्राण और अपान वायुको रोककर तीन सौ गायत्रीमन्त्रोंका एक महीना जप करे तो वह जिसकी इच्छा करे, वह उसे प्राप्त हो जाय। यों हजार मन्त्रोंका जप करनेपर पुरुष सर्वस्व पा जाता है ॥ ६९ ॥ कौशिकजीका कथन है कि एक पैरपर खड़े हो बाँहें ऊपर उठाकर श्वास रोकते हुए रोज सौ मन्त्रोंके क्रमसे एक महीना जप करे तो उसकी यथेष्ट कामनाएँ पूरी हो जाती हैं ॥ ७० ॥ इसी प्रकार तेरह सौ मन्त्रोंका प्रतिदिन महीनेभर जप करनेसे सभी मनोरथ प्राप्त हो जाते हैं। जलमें डुबकी लगाकर सौ मन्त्रोंके नियमसे एक मास जप करे तो पुरुष अपना अभीष्ट

सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥६८॥ रुद्ध्वा प्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयम् ॥ यदिच्छेत्तदवाप्नोति सहस्रात्परमाप्नुयात् ॥६९॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वाऽनिलं वशी ॥ मासं शतमवाप्नोति यदिच्छेदिति कौशिकः ॥७०॥ एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥ निमज्ज्याप्सु जपेन्मासं वत्सराद्दषितामियात् ॥ ७१ ॥ एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वा निराश्रयः ॥ ७२ ॥ नक्तमश्नन्हविष्यान्नं वत्सराद्दषितामियात् ॥ गीरमोघा भवेदेवं जप्त्वा संवत्सरद्वयम् ॥ ७३ ॥ त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्त्रैकालदर्शनम् ॥ आयाति भगवान्देवश्चतुःसंवत्सरं जपेत् ॥ ७४ ॥ पंचभिर्वत्सरैरेवमणिमादिगुणो भवेत् ॥ एवं षड्वत्सरं जप्त्वा कामरूपित्वमाप्नुयात् ॥ ७५ ॥ सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात् ॥ मनुत्वं नवभिः सिद्धमिंद्रत्वं दशभिर्भवेत् ॥ ७६ ॥ एकादशभिराप्नोति प्राजापत्यं सुवत्सरैः ॥ ब्रह्मत्वं

प्राप्त कर लेता है ॥ ७१ ॥ तेरह सौ गायत्री मन्त्रोंका महीनेभर जप करनेसे द्विजकी सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। यदि एक पैरसे, बिना किसी सहारे बाँहें ऊपर उठाकर खड़े हो एक वर्षतक जप करे और रातमें केवल हविष्यान्न खाय, वह पुरुष ऋषि हो जाता है। यों यदि दो वर्ष करे तो उसकी बाणी अमोघ हो जाती है अर्थात् वह जो कहता है, सो होकर रहता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इस नियमसे तीन वर्षोंतक जप करनेपर मानव त्रिकालदर्शी हो जाता है। यदि चार वर्षोंतक करे तो स्वयं भगवान् सूर्य उसके सामने आकर दर्शन देते हैं ॥७४॥ पाँच वर्षोंतक जप करनेसे अणिमादि सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार यदि छः वर्षोंतक जप करे तो उस पुरुषको इच्छानुसार रूप धारण करनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है ॥७५॥ सात वर्षोंतक जप करनेसे देवत्व, नौ वर्षोंतक मनुत्व और दस वर्षों तक जप करनेसे इन्द्रापद प्राप्त हो सकता है ॥७६॥ ग्यारह वर्षों तक जप करनेसे पुरुष प्रजापति तथा बारह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्षोंके जपसे उसे ब्रह्माकी योग्यता प्राप्त हो जाती है ॥७७॥ इसी प्रकारकी तपस्या करके नारद प्रभृति ऋषियोंने सम्पूर्ण लोकोंपर विजय प्राप्त की है। कुछ लोग केवल शाकके आहार-पर रहते थे। बहुतसे ऐसे थे कि जिनका आहार केवल फल, फूल और दूध था ॥ ७८ ॥ कुछ ऋषि घृत पान करते, कुछ सोमरस पीते और कुछ चरु भक्षण करते थे। कुछ लोग पक्षभर-में केवल एक बार भोजन करते और कितने प्रतिदिन भिक्षा माँगकर खाते थे ॥७९॥ बहुतसे ऋषि हविष्यान्नभोजी थे। इस प्रकार रहते हुए उन ऋषियोंने कठिन तप किया था। पातकोंकी शुद्धिके लिये द्विजको चाहिए कि तीन हजार गायत्रीका जप करे ॥८०॥ एक महीनेतक प्रतिदिन जप करनेसे उत्तम द्विज सुवर्णकी चोरीके पापसे मुक्त हो जाता है। यदि महीनेभर प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीका जप करे तो सुरापानके पापकी शुद्धि हो जाती है ॥८१॥ प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीमन्त्रका महीनेभर जप करनेवाला मानव यदि गुरुतल्पगामी हो तो

प्राप्नुयादेवं जप्त्वा द्वादशत्सरान् ॥७७॥ एतेनैव जिता लोकास्तपसा नारदादिभिः ॥ शाकमन्ये परे मूलं फलमन्ये पयः परे ॥ ७८ ॥ घृतमन्ये परे सोममपरे चरुवृत्तयः ॥ ऋषयः पक्षमश्नंति केचिद्भैक्ष्याशिनोऽहनि ॥ ७९ ॥ हविष्यमपरेऽश्नंतः कुर्वंत्येव परं तपः ॥ अथ शुद्ध्यै रहस्यानां त्रिसहस्रं जपेद्द्विजः ॥८०॥ मासं शुद्धो भवेत्स्तेयात्सुवर्णस्य द्विजोत्तमः॥ जपेन्मासं त्रिसाहस्रं सुरापः शुद्धिमाप्नुयात् ॥८१॥ मासं जपेत्त्रिसाहस्रं शुचिः स्याद्गुरुतल्पगः ॥ त्रिसहस्रं जपेन्मासं कुटीं कृत्वा वने वसन् ॥८२॥ ब्रह्महा मुच्यते पापादिति कौशिकभाषितम् ॥ द्वादशाहं निमज्ज्याप्सु सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ ८३ ॥ मुच्येरन्नंहसः सर्वे महापातकिनो द्विजाः ॥ त्रिसाहस्रं जपेन्मासं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ८४ ॥ महापातकयुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ॥ प्राणायामसहस्रेण ब्रह्महाऽपि विमुच्यते ॥ ८५ ॥ षट्कृत्वस्त्वभ्यसेदूर्ध्वं प्राणापानौ समाहितः ॥ प्राणायामो भवेदेष सर्व-पापप्रणाशनः ॥ ८६ ॥ सहस्रमभ्यसेन्मासं क्षितिपः शुचितामियात् ॥ द्वादशाहं त्रिसाहस्रं जपेद्धि गोवधे द्विजः ॥ ८७ ॥ अगम्यागमनस्तेयहन-

भी पवित्र हो जाता है। वनमें कुटी बनाकर वहीं रहते हुए एक महीनेतक नित्य तीन हजार गायत्रीका जप करे ॥ ८२ ॥ कौशिक मुनि कहते हैं कि ऐसा करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। जलमें डुबकी मारकर बारह दिनोंतक प्रतिदिन एक-एक हजार गायत्रीका जप करे तो महान् पापी द्विज भी सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। प्राणायामपूबक मौन होकर एक मासतक प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीका जप करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ऐसा करनेसे महान् पातकी व्यक्ति भी असीम भयसे मुक्त हो जाता है। एक हजार प्राणायाम करनेसे ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो सकता है ॥ ८५ ॥ प्राण और अपान वायुको ऊपर चढ़ाकर संयमपूर्वक गायत्रीका छः बार जप करे। यह प्राणायाम सम्पूर्ण पापोंका नाशक है ॥ ८६ ॥ मासपर्यन्त प्रतिदिन एक हजार गायत्रीका जप करनेसे राजा पवित्र हो जाता है। द्विजको चाहिये कि यदि गोवधकी हत्या लग जाय तो उसकी शुद्धिके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बारह दिनोंतक तीन-तीन हजार गायत्रीका जप करे ॥ ८७ ॥ दस हजार गायत्रीका जप द्विजको अगम्यागमन, चोरी, प्राणिहिंसा तथा अभक्ष्यभक्षणके पापसे शुद्ध कर देता है ॥ ८८ ॥ सौ बार प्राणायाम करके पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है । यदि कोई पुरुष सम्पूर्ण मिश्रित पापोंसे ग्रस्त हो तो उसकी शुद्धिके लिए वनमें रहकर एक मासतक प्रतिदिन उपवास करते हुए गायत्रीके एक हजार मन्त्रोंका जप करना चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥ चौबीस हजार गायत्रीके जपको कृच्छ्रव्रत कहते हैं । चौंसठ हजार गायत्रीका जप चान्द्रायण व्रतके समान होता है ॥ ९१ ॥ यदि प्रातःसायं दोनों संध्याओंके समय नित्य प्राणायाम करके गायत्रीके सौ मन्त्रका जप किया जाय तो उससे समस्त पापोंका क्षय हो जाता है ॥ ९२ ॥ जलमें डूबकर सूर्यमयी देवीका ध्यान करते हुए गायत्रीका नित्य सौ बार जप करनेवाला पुरुष सभी पापोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ९३ ॥ हे नारद ! इस

नाभक्ष्यभक्षणे ॥ दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधयेद्द्विजम् ॥ ८८ ॥ प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥ सर्वेषामेव पापानां संकरे सति शुद्धये ॥ ८९ ॥ सहस्रमभ्यसेन्मासं नित्यजापी वने वसन् ॥ उपवाससमं जप्यं त्रिसहस्रं तदित्यृचम् ॥ ९० ॥ चतुर्विंशतिसाहस्रमभ्यस्तात्कृच्छ्र-संज्ञिता ॥ चतुःषष्टिसहस्राणि चांद्रायणसमानि तु ॥ ९१ ॥ शतकृत्वोऽभ्यसेन्नित्यं प्राणानायम्य सन्ध्ययोः ॥ तदित्यृचमवाप्नोति सर्वपापक्षयं परम् ॥९२॥ निमज्ज्याप्सु जपेन्नित्यं शतकृत्वस्तदित्यृचम् ॥ ध्यायन्देवीं सूर्यरूपां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९३ ॥ इति ते सम्यगाख्याताः शांतिशुद्ध्यादि-कल्पनाः ॥ रहस्यातिरहस्याश्च गोपनीयस्त्वया सदा ॥९४॥ इति संक्षेपतः प्रोक्तः सदाचारस्य संग्रहः ॥ विधिनाऽऽचरणादस्य माया दुर्गा प्रसीदति ॥ ९५ ॥ नैमित्तिकं च नित्यं च काम्यकर्म यथाविधि ॥ आचरेन्मनुजः सोऽयं भुक्तिमुक्तफलाप्तिभाक् ॥ ९६ ॥ आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरीश्वरी ॥ इत्युक्तं सर्वशास्त्रेषु सदाचारफलं महत् ॥ ९७ ॥ आचारवान्सदा पूतः सदैवाचारवान्सुखी ॥ आचारवान्सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद ॥ ९८ ॥ देवीप्रसादजनकं सदाचारविधानकम् ॥ यदपि शृणुयान्मर्त्यो महासंपत्तिसौख्यभाक् ॥ ९९ ॥ सदाचारेण सिद्धेच्च ऐहिकामुष्मिकं

प्रकार शान्ति और शुद्धिका प्रसङ्ग सम्यक् प्रकारसे मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया । इन सभी प्रसङ्गोंको तुम्हें सदा गोप्य रखना चाहिये ॥ ९४ ॥ यह सदाचारका संग्रह संक्षेपमें बतला दिया गया । इसका विधिपूर्वक आचारण करनेसे महामाया दुर्गा प्रसन्न हो जाती हैं ॥ ९५ ॥ नित्य, नैमित्तक और काम्य कर्मके विषयमें जो मनुष्य विधिके अनुसार आचरण करता है, उसे भुक्ति और मुक्तिरूपी फल प्राप्त हो जाते हैं ॥९६॥ मनुष्यके लिए प्रथम आचार धर्म है और धर्मकी अधिष्ठात्री भगवती जगदम्बा हैं । इस प्रकार संपूर्ण शास्त्रोंमें आचारका महान् फल वर्णित है ॥ ९७ ॥ हे नारद ! आचारवान् पुरुष सदा पवित्र, सदा सुखी और सदा ही धन्य है—यह सत्य है, सत्य है ॥ ९८ ॥ सदाचारके विधानसे देवी परम प्रसन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो जाती हैं। यद्यपि कहा जाता है कि मनुष्य अधिक सम्पत्तिसे सुखका भागी होता है ॥ ९९ ॥ किन्तु सदाचारसे मानवको इहलोक और परलोक दोनों जगहके सुख सुलभ हो जाते हैं। उसी सदाचारका प्रसङ्ग मैंने तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। अब और कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहते हो? ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पाण्डेय-

सुखम् ॥ तदेव ते मया प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे नारायणनारदसंवादे सदाचार-निरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सार्धै रामाब्धिनेत्रेन्दु (१२४३ ॥) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्यैकादशः स्कन्ध ईरितः ॥ ११ ॥

रामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

महर्षि वेदव्यास द्वारा निर्मित बारह सौ साढ़े तैंतालीस शुभ श्लोकोंमें यह एकादश स्कन्ध कहा गया है ॥ ११ ॥

॥ समाप्तोऽयमेकादशः स्कन्धः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति 'पीताम्बरा'भाषाटीकासहिते--

श्रीमद्देवीभागवते एकादशः स्कन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ 'पीताम्बरा' भाषाटीकासहिते—

श्रीमद्देवीभागवते द्वादशः स्कन्धः ।

पण्डित-पुस्तकालय काशी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(नारदका नारायणसे सदाचारविषयक प्रश्न) नारदजीने कहा—हे प्रभो ! आपने सदाचारकी विधिका वर्णन कर दिया और उसका सर्वपापविनाशक एवं अतुलित माहात्म्य भी बतलाया। आपके मुखारविन्दसे निकली हुई भगवतीकी अमृतमयी कथा सुननेका मुझे अवसर भी मिल गया। किन्तु आपने जो चान्द्रायण आदि व्रत बतलाये हैं ॥१॥२॥ वे बड़े दुःसाध्य दीखते हैं, अतएव अब कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि जिसे प्राणी सुखपूर्वक कर सके ॥३॥ जिससे भगवती प्रसन्न हों और शुभ अनुष्ठानोंसे सिद्धि प्राप्त हो सके। हे स्वामिन् ! हे सुरेश्वर ! आप मुझे वही कर्म बताइये ॥४॥ आपने सदाचारके विषयमें गायत्रीकी जो विधि बतलायी है, उसमें मुख्यतम वस्तु क्या है और क्या करनेसे अधिक पुण्य मिलनेकी सम्भावना है ? ॥५॥ इसके अतिरिक्त आपने गायत्रीके जो चौबीस वर्ण बतलाये हैं, उनके कौन-कौन ऋषि हैं, उनके छन्दोंके क्या-क्या नाम हैं और उनके देवता कौन-कौन हैं ? हे प्रभो ! यह सब भी बतलानेकी कृपा

॥ नारद उवाच ॥ सदाचारविधिर्देव भवता वर्णितः प्रभो ॥ तस्याप्यतुलमाहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् ॥१॥ श्रुतं भवन्मुखांभोजच्युतं देवीकथामृतम् ॥ व्रतानि यानि चोक्तानि चांद्रायणमुखानि च ॥ २॥ दुःखसाध्यानि जानीमः कर्तृसाध्यानि तानि च ॥ तदस्मात्सांप्रतं यत्तु सुखसाध्यं शरीरिणाम् ॥ ३ ॥ देवीप्रसादजनकं शुभानुष्ठानसिद्धिदम् ॥ तत्कर्म वद मे स्वामिन्कृपापूर्वं सुरेश्वर ॥४॥ सदाचारविधौ यश्च गायत्रोविधिरीरितः ॥ तस्मिन्मुख्यतमं किं स्यात्किं वा पुण्याधिकप्रदम् ॥५॥ ये गायत्रीगता वर्णास्तत्त्वसंख्यास्त्वयेरिताः ॥ तेषां के ऋषयः प्रोक्ताः कानि छंदांसि वै मुने ॥ ६ ॥ तेषां का देवताः प्रोक्ताः सर्वं कथय मे प्रभो ॥ महत्कौतूहलं मे च मानसे परिवर्तते ॥ ७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा ॥ गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद्द्विजः ॥ ८ ॥ संध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्रीजपमेव च ॥ सहस्रत्रितयं कुर्वन्सुरैः पूज्यो भवेन्मुने ॥ ९ ॥ न्यासान्करोतु वा मा वा गायत्रीमेव चाभ्यसेत् ॥ ध्यात्वा निर्व्याजया वृत्त्या सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ १० ॥ यदक्षरैकसंसिद्धेः स्पर्धते ब्राह्मणोत्तमः ॥ हरिशंकरकंजोत्थसूर्यचंद्रहुताशनैः ॥११॥ अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् वर्णऋष्यादिकांस्तथा ॥ छंदांसि देवतास्तद्वत्क्रमात्तत्त्वानि चैव हि ॥ १२ ॥ वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः शुक्रः कण्वः पराशरः ॥ विश्वामित्रो महातेजाः कपिलः शौनको महान् ॥ १३ ॥ याज्ञवल्क्यो भरद्वाजो जमदग्निस्तपोनिधिः ॥ गौतमो मुद्गलश्चैव वेदव्यासश्च लोमशः ॥ १४ ॥ अगस्त्यः कौशिको वत्सः पुलस्त्यो मांडुकस्तथा ॥ दुर्वासास्तपतां श्रेष्ठो

कीजिये। क्योंकि मुझे बड़ा कौतूहल है ॥६॥७॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे मुने ! अन्य कोई अनुष्ठान किया जाय अथवा न किया जाय, किंतु यदि द्विज केवल गायत्रीका ही अनुष्ठान कर ले तो वह कृतकृत्य हो जाता है ॥८॥ हे मुने ! तीनों संध्याओंमें भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना और गायत्रीका जप करना आवश्यक है। प्रतिदिन तीन हजार जप करनेवाले पुरुषको देवतालोग आदर देते हैं ॥९॥ न्यास करे अथवा न करे, किन्तु गायत्रीका जप अवश्य करे। निष्कपट वृत्तिसे सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवतीका ध्यान करके जप करना चाहिये ॥१०॥ हे ब्रह्मन् ! अब इस गायत्रीके वर्ण, ऋषि, छन्द तथा देवता आदि जितने तत्त्व हैं, उनका क्रमशः वर्णन करता हूँ, सुनो। वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महान् तेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, महाभाग शौनक, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, तपोनिधि जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, वेदव्यास, लोमश, अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, माण्डूक, परमतपस्वी दुर्वासा, नारद और कश्यप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्णोंके क्रमसे ये चौबीस ऋषि कहे गये हैं॥ ११-१५ ॥ गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, धृति, अतिधृति, विराट्, प्रस्तार, पंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अक्षरपंक्ति, भूः, भुवः, स्वः और ज्योतिष्मती। हे महामुने! ये गायत्रीके चौबीस छन्द कहे गये हैं॥१६-१९॥ हे प्राज्ञ! अब गायत्रीके चौबीस अक्षरोंके देवताओंका परिचय सुनो। प्रथम वर्णके अग्नि, द्वितीयके प्रजापति, तृतीयके चन्द्रमा, चतुर्थके ईशान, पञ्चम और षष्ठके सूर्य, सप्तमके बृहस्पति, अष्टमके मित्रावरुण, नवमके भग, दशमके ईश्वर, एकादशके गणेश, द्वादशके त्वाष्ट्र, त्रयोदशके पौष्ण, चतुर्दशके इन्द्राग्नि, पंचदशके वायु, षोडशके वामदेव, सप्तदशके मैत्रावरुणि, अष्टादशके विश्वेदेव, एकोनविंशके मातृक, विंशके विष्णु, एकविंशके वसुदैवत, द्वाविंशके रुद्र, त्रयोविंशके कुबेर और चतुर्विंश वर्णके देवता अश्विनीकुमार हैं। इस प्रकार इन चौबीस देवताओंका वर्णन किया गया है ॥ २०-२६ ॥

नारदः कश्यपस्तथा ॥ १५ ॥ इत्येते ऋषयः प्रोक्ता वर्णानां क्रमशो मुने ॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥ १६ ॥ त्रिष्टुभं जगती चैव तथाऽतिजगती मता ॥ शक्वर्यतिशक्वरी च धृतिश्चातिधृतिस्तथा ॥१७॥ विराट् प्रस्तारपंक्तिश्च कृतिः प्रकृतिराकृतिः॥ विकृतिः संकृतिश्चैवाक्षरपंक्तिस्तथैव च ॥ १८ ॥ भूर्भुवः स्वरिति छंदस्तथा ज्योतिष्मती स्मृतम्॥ इत्येतानि च छंदांसि कीर्तितानि महामुने ॥ १९ ॥ दैवतानि शृणु प्राज्ञ तेषामेवानुपूर्वशः ॥ आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं प्राजापत्यं द्वितीयकम् ॥२०॥ तृतीयं च तथा सौम्यमीशानं च चतुर्थकम्॥ सावित्रं पंचमं प्रोक्तं षष्ठमादित्यदैवतम् ॥ २१ ॥ बार्हस्पत्यं सप्तमं तु मैत्रावरुणमष्टमम् ॥ नवमं भगदैवत्यं दशमं चार्यमैश्वरम् ॥ २२ ॥ गणेशमेकादशकं त्वाष्ट्रं दादशकं स्मृतम् ॥ पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैंद्राग्नं च चतुर्दशम् ॥२३॥ वायव्यं पञ्चदशकं वामदैव्यं च षोडशम्॥ मैत्रावरुणिदैवत्यं प्रोक्तं सप्तदशाक्षरम् ॥२४॥ अष्टादशं वैश्वदेवमूनविंशंतिमातृकम् ॥ वैष्णवं विशतितमं वसुदैवतमीरितम् ॥ २५ ॥ एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंशं रुद्रदैवतम् ॥ त्रयोविंशं च कौबेरमाश्विनं तत्त्वसंख्यकम् ॥ २६ ॥ चतुर्विंशतिवर्णानां दैवतानां च संग्रहः ॥ कथितः परमश्रेष्ठो महापापैकशोधनः ॥ यदाकर्णनमात्रेण साङ्गं जाप्यफलं मुने ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे गायत्रीविचारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वर्णानां शक्तयः काश्च ताः शृणुष्व महामुने ॥ वामदेवी प्रिया सत्या विश्वा भद्रविलासिनी ॥ १ ॥ प्रभावती जया शांता कांता दुर्गा सरस्वती ॥ विद्रुमा च विशालेशा व्यापिनी विमला तथा ॥२॥ तमोऽपहारिणी सूक्ष्मा विश्वयोनिर्जया वशा ॥ पद्मालया परा

इस तरह मैंने गायत्रीके चौबीस अक्षरोंके चौबीस देवताओंका नाम बतलाया। यह प्रसंग परम श्रेष्ठ और महापापनाशक है। इसे सुननेसे ही गायत्रीके जपका फल मिल जाता है ॥२७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(नारायण द्वारा गायत्रीका गुणगान) भगवान् नारायण कहते हैं—हे महामुने! उन वर्णोंकी कौन-कौन-सी शक्तियाँ हैं, अब उन्हें सुनो—वामदेवी, प्रिया, सत्या, विश्वा, भद्रविलासिनी, प्रभावती, जया, शान्ता, कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा, विशालेशा, व्यापिनी, विमला, तमोऽपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जया, वशा, पद्मालया, परा शोभा, भद्रा और द्विपदा—चौबीस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्णोंकी ये चौबीस शक्तियाँ कही गयी हैं। हे मुने! इसके बाद वर्णोंके यथार्थ रूपका परिचय बतलाता हूँ ॥ १–४ ॥ चम्पा, अलसीके पुष्प, मूँगा, स्फटिक, कमलके पुष्प, तरुण सूर्य, शंख-चन्द्रमा-कुन्दके समान, रक्तदल कमलकी पंखुड़ी, पद्मराग, इन्द्रनील मणि, मोती, कुंकुम, काजल, रक्तचन्दन, वैदूर्य, मधु, कुन्द एवं दुग्धके सदृश, हल्दी, सूर्यकान्तमणि, सुग्गेकी पूँछ, कमल, केतकी, मल्लिका और कनेरके पुष्पके समान क्रमशः इन वर्णोंके चौबीस रूप कहे गये हैं ॥ ५–९ ॥ हे मुने! ये जो वर्णोंके रूप कहे गये हैं, इनमें महान् पापोंका संहार करनेकी शक्ति है। इन वर्णोंके तत्त्व बतलाते हैं–पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश तथा गन्ध, रस, रूप, शब्द और स्पर्श, पायु, पाद, हस्त और वागिन्द्रिय तथा नासिका, प्राण, जिह्वा, चक्षु, त्वचा और श्रोत्र एवं प्राण, अपान, व्यान और समान–वर्णोंके ये क्रमशः चौबीस तत्त्व कहे जाते हैं। अब इसके बाद क्रमशः वर्णोंकी मुद्रा बतलाऊँगा–॥ १०–१३ ॥ सुमुख, संपुट,

शोभा भद्रा च त्रिपदा स्मृता ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतिवर्णानां शक्तयः समुदाहृता ॥ अतः परं वर्णवर्णान्व्याहरामि यथातथम् ॥ ४ ॥ चंपका अतसी-पुष्पसन्निभं विद्रुमं तथा ॥ स्फटिकाकारकं चैव पद्मपुष्पसमप्रभम् ॥ ५ ॥ तरुणादित्यसंकाशं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ प्रवालपद्मपत्राभं पद्मरागसम-प्रभम् ॥ ६ ॥ इन्द्रनीलमणिप्रख्यं मौक्तिकं कुंकुमप्रभम् ॥ अंजनाभं च रक्तं च वैदूर्यं क्षौद्रसन्निभम् ॥७॥ हारिद्रं कुन्ददुग्धाभं रविकान्तिसमप्रभम् ॥ शुकपुच्छनिभं तद्वच्छतपत्रनिभं तथा ॥ ८ ॥ केतकीपुष्पसंकाशं मल्लिकाकुसुमप्रभम् ॥ करवीरश्च इत्येते क्रमेण परिकीर्तिताः ॥ ९ ॥ वर्णाः प्रोक्ताश्च वर्णानां महापापविशोधनाः ॥ पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ॥ १० ॥ गंधो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शस्तथैव च ॥ उपस्थं पायुपादं च पाणी वागपि च क्रमात् ॥ ११ ॥ प्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्श्रोत्रं च ततः परम् ॥ प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानश्च ततः परम् ॥ १२ ॥ तत्त्वान्येतानि वर्णानां क्रमशः कीर्तितानि तु ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्णमुद्राः क्रमेण तु ॥ १३ ॥ सुमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ॥ द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुःपंचमुखं तथा ॥ १४ ॥ षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा ॥ शकटं यमपाशं च ग्रथितं संमुखोन्मुखम् ॥ १५ ॥ बिलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम् ॥ सिंहाक्रांतं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥ १६ ॥ त्रिशूलयोनी सुरभिश्चाक्षमाला च लिंगकम् ॥ अंबुजं च महामुद्रास्तुर्यरूपाः प्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥ इत्येताः कीर्तिता मुद्रा वर्णानां ते महामुने ॥ महापापक्षयकराः कीर्तिदाः कांतिदा मुने ॥ १८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकाञ्जलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सन्मुख, उन्मुख, प्रलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराहक, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, और पल्लव–त्रिपदा गायत्रीके चौबीस अक्षरोंकी ये चौबीस मुद्राएँ हैं। त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिङ्ग और अम्बुज—ये महामुद्राएँ सूर्यरूपा गायत्रीके चौथे चरणकी हैं। हे महामुने! गायत्रीके वर्णोंकी ये मुद्राएँ तुम्हें बतला दीं। ये मुद्राएँ महापापनाशिनी, कीर्तिदायिनी और कान्तिदायिनी हैं ॥ १४–१८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(गायत्रीका ध्यान और गायत्रीके कवचका वर्णन) नारदजीने कहा–हे स्वामिन् ! आप जगत्के स्वामी, चौंसठ कलाओंको जाननेवाले तथा योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। हे प्रभो ! मेरे मनमें यह प्रश्न उत्पन्न हो रहा है कि किस पुण्यके प्रभावसे मनुष्य पापोंसे छूट सकते हैं, उनके ब्रह्मरूप होनेका क्या उपाय है तथा उनका देह देवरूप एवं मन्त्ररूप हो जाय, इसका क्या साधन है ? ॥१॥२ यह सब मैं सुनना चाहता हूँ। हे प्रभो ! इसीके साथ उसके न्यास, विधि, ऋषि, छन्द, अधिदेवता तथा ध्यानका भी विधिवत् वर्णन सुननेकी मेरी इच्छा है ॥३॥ भगवान् नारायण कहते हैं–हे नारद ! इसके लिए 'गायत्रीकवच' नामका एक अत्यन्त गुप्त उपाय है। इसका पाठ करने और इसको धारण करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥४॥ उसकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह स्वयं देवीका रूप बन जाता है। हे नारद ! इस गायत्री-कवचके ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीन ऋषि हैं। ऋक्, यजुः, साम और अथर्व ये चार छंद हैं। परब्रह्म देवता हैं। यह गायत्री उच्च कलाओंसे सम्पन्न कही गयी है ॥५॥६॥ भर्ग इसका बीज है। विद्वानोंने स्वयं इसीको शक्ति कहा है। बुद्धि कीलक है।

॥ नारद उवाच ॥ स्वामिन्सर्वजगन्नाथ संशयोऽस्ति मम प्रभो ॥ चतुःषष्टिकलाभिज्ञ पातकाद्योगविद्वर ॥ १ ॥ मुच्यते केन पुण्येन ब्रह्मरूपः
कथं भवेत् ॥ देहश्च देवतारूपो मन्त्ररूपो विशेषतः ॥ २ ॥ कर्म तच्छ्रोतुमिच्छामि न्यासं च विधिपूर्वकम् ॥ ऋषिश्छंदोऽधिदैवं च ध्यानं च विधि-
वत्प्रभो ॥३॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अस्त्येकं परमं गुह्यं गायत्रीकवचं तथा ॥ पठनाद्धारणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥ सर्वान्कामानवाप्नोति
देवीरूपश्च जायते ॥ गायत्रीकवचस्यास्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥५॥ ऋषयो ऋग्यजुःसामाथर्वश्छंदांसि नारद ॥ ब्रह्मरूपा देवतोक्ता गायत्री परमा
कला ॥६॥ तद्बीजं भर्ग इत्येषा शक्तिरुक्ता मनीषिभिः ॥ कीलकं च धियं प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियोजनम् ॥७॥ चतुर्भिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः
स्मृतम् ॥ चतुर्भिः स्याच्छिखा पश्चात्त्रिभिस्तु कवच स्मृतम् ॥८॥ चतुर्भिर्नेत्रमुद्दिष्टं चतुर्भिः स्यात्तदस्त्रकम् ॥ अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकाभीष्ट-
दायकम् ॥ ९ ॥ मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिंदुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ॥ गायत्रीं वरदाभयांकुशकशाः शुभ्रं
कपालं गुणं शंखं चक्रमथारविंदयुगलं हस्तैर्वहंतीं भजे ॥ १० ॥ गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे ॥ ब्रह्मसंध्या तु मे पश्चादुत्तरस्यां
सरस्वती ॥ ११ ॥ पार्वती मे दिशं रक्षेत्पावकी जलशायिनी ॥ यातुधानी दिशं रक्षेद्यातुधानभयंकरी ॥१२॥ पावमानी दिशं रक्षेत्पवमानविला-

मोक्षकी प्राप्तिके लिए इसका विनियोग किया जाता है ॥७॥ चार वर्णोंसे हृदय, तीन वर्णोंसे मस्तक, चार वर्णों से शिखा, तीन वर्णों से कवच, चार वर्णों से नेत्र तथा चार वर्णों से इसके अन्य सभी अङ्ग सम्पन्न हैं। अब साधकोंको अभीष्ट प्रदान करनेवाला ध्यान कहता हूँ ॥८॥९॥ मैं तत्त्व और वर्णस्वरूपिणी भगवती गायत्रीका भजन करता हूँ। वे देवी मोती, मूँगा, सुवर्ण, नीलमणि तथा उज्ज्वल प्रभासे युक्त पाँच मुखोंसे सुशोभित हैं। तीन नेत्रोंसे उनके मुखोंकी अनुपम शोभा होती है। उनका रत्नमय मुकुट चन्द्रमासे सम्पन्न है। वे अपने हाथोंमें अभय, वरमुद्रा, अङ्कुश, कशा, शुभ्र कपाल, रस्सी, शङ्ख, चक्र और दो कमल धारण करती हैं ॥ १० ॥ पूर्वदिशामें गायत्री मेरी रक्षा करें, दक्षिणमें सावित्री रक्षा करें, पश्चिममें ब्रह्म-सन्ध्या एवं उत्तरदिशामें भगवती सरस्वती मेरी रक्षा करें ॥११॥ भगवती पार्वती पर्वतीय दिशा (अग्निकोण). अग्नि और जलमें व्यापक रहनेवाली देवी उन उन दिशाओंमें तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राक्षसोंमें भय उत्पन्न करनेवाली भगवती यातुधानी राक्षसोंकी दिशाओं (नैर्ऋत्यकोण) में मेरी रक्षा करें ॥१२॥ वायुको आनन्द प्रदान करनेवाली भगवती पावमानीके द्वारा उस दिव्य (वायव्यकोण) में मेरो रक्षा हो । रुद्ररूप धारण करनेवाली भगवती रुद्राणी ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें ॥१३॥ ब्रह्माणी ऊपरकी ओर मेरो रक्षा करें और वैष्णवी देवी नीचेकी ओरसे मेरी रक्षा करें । इसी प्रकार भगवती भुवनेश्वरी दसों दिशाओंमें मेरे सम्पूर्ण अङ्गोंकी रक्षा करें ॥ १४ ॥ 'तत्' पद मेरे पैरोंकी, 'सवितुः' मेरी जाँघोंकी, 'वरेण्यं' कटिदेशकी, 'भर्गः' नाभिकी, ॥१५॥ 'देवस्य' हृदयकी, 'धीमहि' दोनों कपोलोंकी, 'धियः' नेत्रोंकी, 'यः' ललाटकी, ॥१६॥ 'नः' मस्तककी तथा 'प्रचोदयात्' पद मेरी शिखाकी रक्षा करे । 'तत्' मस्तककी, 'स'कार ललाटकी ॥ ७॥ 'वि'कार दोनां नेत्रोंकी, 'तु'कार दोनों कपोलोंकी, रेफयुक्त 'व'कार नासापुटकी, 'रे'कार मुखको, ॥१८॥ 'ण्य'कार ऊपरके ओष्ठकी, 'य'कार नीचेके ओष्ठकी,

सिनी ॥ दिशं रौद्रीं च मे पातु रुद्राक्षी रुद्ररूपिणी ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा ॥ एवं दश दिशो रक्षेत्सर्वांगं भुवनेश्वरी
॥१४॥ तत्पदं पातु मे पादौ जंघे मे सवितुः पदम् ॥ वरेण्यं कटिदेशे तु नाभिं भर्गस्तथैव च ॥ १५॥ देवस्य मे तद्धृदयं धीमहीति च गल्लयोः॥
धियःपदं च मे नेत्रे यःपदं मे ललाटकम् ॥ १६ ॥ नः पातु मे पदं मूर्ध्नि शिखायां मे प्रचोदयात् ॥ तत्पदं पातु मूर्धानं सकारः पातुः भालकम्
॥१७॥ चक्षुषी तु विकारार्णस्तुकारस्तु कपोलयोः ॥ नासापुटं वकारार्णो रेकारस्तु मुखे तथा ॥ १८॥ ण्यकार ऊर्ध्वमोष्ठं तु यकारस्त्वधरोष्ठकम् ॥
आस्यमध्ये भकारार्णो र्गोकारश्चिबुके तथा॥१९॥ देकारः कण्ठदेशे तु वकारः स्कन्धदेशकम् ॥ स्यकारो दक्षिणं हस्तं धीकारो वामहस्तकम् ॥२०॥
मकारो हृदयं रक्षेद्धिकार उदरे तथा ॥ धिकारो नाभिदेशे तु योकारस्तु कटिं तथा ॥ २१ ॥ गुह्यं रक्षतु योकार ऊरू द्वौ नःपदाक्षरम् ॥ प्रकारो
जानुनी रक्षेचोकारो जंघदेशकम् ॥२२॥ दकारं गुल्फदेशे तु यकारः पदयुग्मकम् ॥ तकारव्यंजनं चैव सर्वांगे मे सदाऽवतु ॥२३॥ इदं तु कवचं
दिव्यं बाधाशतविनाशनम् ॥ चतुःषष्टिकलाविद्यादायकं मोक्षकारकम् ॥२४॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोस-
हस्रफलं लभेत् ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे गायत्रीमंत्रकवचं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

'ग'कार मुखमध्यकी, रेफयुक्त 'गो'कार चिवुक (ठुड्डी) की ॥१९॥ 'दे'कार कण्ठकी, 'व'कार कंधोंको, 'स्य'कार दाहिने हाथकी, 'धी'कार बायें हाथकी, ॥ २० ॥ 'म'कार हृदयकी, 'हि'कार उदरकी, 'धि'कार नाभिकी, 'यो'कार कमरकी, ॥२१॥ (दूसरा) 'यो'कार गुह्य अङ्गकी, 'नः' पद दोनों ऊरुओंकी, 'प्र'कार घुटनोंकी, 'चो'कार जाँघोंकी, ॥ २२ ॥ 'द'कार गुल्फोंकी, 'या'कार दोनों पैरोंकी और 'त'कार—यह व्यञ्जन मेरे सम्पूर्ण अङ्गोंकी सदा रक्षा करे ॥२३॥ भगवती गायत्रीका यह दिव्य कवच सैकड़ों बाधाओंको दूर करनेवाला है । इसकी कृपासे चौंसठ प्रकारकी कलाएँ प्राप्त हो जाती हैं । साथ ही यह मोक्षदायक भी है ॥२४॥ इसका आश्रय लेनेवाला पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है । इसके पढ़ने अथवा सुननेसे भी एक हजार गोदानका फल मिलता है ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(गायत्रीहृदय) नारदजीने कहा—हे भगवन्! हे देवदेवेश! आप भूत एवं भविष्यत् जगत्के स्वामी हैं। हे प्रभो! मैं दिव्य कवच और गायत्री-मन्त्रका स्वरूप तो सुन चुका ॥ १ ॥ अब श्रेष्ठ 'गायत्रीहृदय' सुनना चाहता हूँ, जिसके धारणसे गायत्री-जपसे मिलनेवाले सभी पुण्य प्राप्त हो जाते हैं ॥ २ ॥ भगवान नारायण कहते हैं—हे नारद! गायत्री देवीके हृदयका प्रसंग अथर्ववेदमें स्पष्टरूपसे वर्णित है। वही परम रहस्ययुक्त प्रसंग मैं तुम्हें सुनाऊँगा ॥३॥ महादेवी गायत्रीका विराट् रूप है। ये वेदकी जननी हैं। इनका ध्यान करके अंगोंमें इन देवताओंका ध्यान करना चाहिये ॥४॥ जैसे पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनोंमें एकता है, वैसे ही अपनेमें और देवीमें एकत्वकी भावना करनी चाहिये। साधक पुरुष देवीके रूपमें और अपनेमें कोई पार्थक्य न समझे ॥ ५ ॥ वेदज्ञ पुरुषोंका कथन है कि देवभावसे सम्पन्न होकर ही देवताकी पूजा करे। अतः इष्टदेवतामें अभेद-सम्पादन करनेके लिए अपने शरीरमें वक्ष्यमाण

॥ नारद उवाच ॥ भगवन्देवदेवेश भूतभव्यजगत्प्रभो ॥ कवचं च श्रुतं दिव्यं गायत्रीमंत्रविग्रहम् ॥ १ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि गायत्रीहृदयं परम् ॥ यद्धारणाद्भवेत्पुण्यं गायत्रीजपतोऽखिलम् ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देव्याश्च हृदयं प्रोक्तं नारदाथर्वणे स्फुटम् ॥ तदेवाहं प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम् ॥ ३ ॥ विराड्रूपां महादेवीं गायत्रीं वेदमातरम् ॥ ध्यात्वा तस्यास्त्वथांगेषु ध्यायेदेताश्च देवताः ॥ ४ ॥ पिंडब्रह्मांडयोरैक्याद्भावयेत्स्वतनौ तथा ॥ देवीरूपे निजे देहे तन्मयत्वाय साधकः ॥ ५ ॥ नादेवोऽभ्यर्चयेद्देवमिति वेदविदो विदुः ॥ ततोऽभेदाय काये स्वे भावयेद्देवता इमाः ॥ ६ ॥ अथ तत्संप्रवक्ष्यामि तन्मयत्वमथो भवेत् ॥ गायत्रीहृदयस्यास्याप्यहमेव ऋषिः स्मृतः ॥ ७ ॥ गायत्रीच्छन्द उद्दिष्टं देवता परमेश्वरी ॥ पूर्वोक्तेन प्रकारेण कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् ॥ आसने विजने देशे ध्यायेदेकाग्रमानसः ॥ ८ ॥ अथाङ्गन्यासः ॥ द्यौर्मूर्ध्नि दैवतम् ॥ दंतपंक्तावश्विनौ ॥ उभे संध्ये चोष्ठौ ॥ मुखमग्निः ॥ जिह्वा सरस्वती ॥ ग्रीवायां तु बृहस्पतिः ॥ स्तनयोर्वसवोऽष्टौ बाह्वोर्मरुतः ॥ हृदये पर्जन्यः ॥ आकाशमुदरम् ॥ नाभावंतरिक्षम् ॥ कट्योरिंद्राग्नी ॥ जघने विज्ञानघनः प्रजापतिः ॥ कैलासमलये ऊरू ॥ विश्वेदेवा जान्वोः ॥ जंघायां कौशिकः ॥ गुह्यमयने ॥ ऊरू पितरः ॥ पादौ पृथिवी ॥ वनस्पतयोऽङ्गुलीषु ॥ ऋषयो रोमाणि ॥ नखानि

देवताओंका न्यास करना परम आवश्यक है ॥६॥ अब मैं इसका उपाय बतलाता हूँ, जिससे तन्मयता प्राप्त हो सकती है। इस 'गायत्रीहृदय'का मैं नारायण ही ऋषि कहा गया हूँ ॥७॥ गायत्री छन्द है और भगवती परमेश्वरी इसकी इष्टदेवता हैं। पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमशः अपने छहों अंगोंमें इसका न्यास करना चाहिये। एकान्त देशमें किसी आसनपर बैठ तथा मनको एकाग्र करके भगवती गायत्रीका ध्यान करे ॥८॥ अब अंगन्यासका प्रयोग बतलाया जाता है। मस्तकमें द्यौसम्बन्धी देवताकी, दन्तपंक्तिमें अश्विनीकुमारोंकी, दोनों होठोंमें सन्ध्याओंकी, मुखमें अग्निकी, जिह्वामें सरस्वतीकी, ग्रीवामें बृहस्पतिकी, दोनों स्तनोंमें आठों वसुओंकी, दोनों भुजाओंमें मरुद्गणोंकी, हृदयमें पर्जन्यकी, उदरमें आकाशकी, नाभिमें अन्तरिक्षकी, दोनों कटिमें इन्द्र और अग्निकी, पेड़में विज्ञानघन प्रजापतिकी, एक जाँघमें कैलास और मलयगिरिकी, दोनों जानुओंमें विश्वेदेवोंकी, पिंडलियोंमें कौशिककी, गुदामें उत्तरायण एवं दक्षिणायनके अधिष्ठात-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवताओंकी, दूसरी जाँघमें पितरोंकी, पैरोंमें पृथ्वीकी, अंगुलियोंमें वनस्पतिकी, रोमोंमें ऋषियोंकी, नखोंमें मुहूर्तोंकी, हड्डियोंमें ग्रहोंकी तथा रुधिर और मांसमें ऋतुओंकी भावना करे। संवत्सर जिनका एक पल है, जिनकी आज्ञाके अनुसार सूर्य- चन्द्रमा दिन और रातका विभाजन करते हैं तथा जो दिव्य, परम पूज्य एवं सहस्रों नेत्रोंसे शोभा पानेवाली भगवती गायत्री हैं, उनकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। ॐ सूर्यके उस श्रेष्ठ तेजको प्रणाम है। पूर्व दिशामें उदय होनेवाले भगवान सूर्यको प्रणाम है। प्रातःकालीन भगवान सूर्यको नमस्कार है। आदित्यमंडलमें प्रतिष्ठा पानेवाली भगवती गायत्रीको नमस्कार है। प्रातःकाल इन गायत्रीका ध्यान करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापोंका नाश करता है। सायंकालमें ध्यान करनेवाला दिनके पापोंका नाश करता है और दोनों समय ध्यान करनेवाला निष्पाप हो जाता है। वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नात तथा अखिल देवताओंसे परिचित हो जाता है। गायत्रीके जपकी महिमासे पुरुष अवाच्य-वाचनसे, अभक्ष्य-भक्षणसे, अभोज्य-भोजनसे, अचोष्य-चोषणसे, असाध्य-साधनसे, सहस्रों दुष्प्रतिग्रहोंसे, सब प्रकारके प्रतिग्रहोंसे, पंक्ति-दूषणसे तथा असत्य वचनसे भी कभी अपवित्र नहीं हो सकता,

मुहूर्तानि ॥ अस्थिषु ग्रहाः ॥ असृङ्मांसमृतवः ॥ संवत्सरा वै निमिषम् ॥ अहोरात्रावादित्यश्चंद्रमाः ॥ प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये ॥ ॐतत्सवितुर्वरेण्याय नमः ॥ ॐतत्पूर्वाजयाय नमः ॥ तत्प्रातरादित्याय नमः ॥ तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायै नमः ॥ प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति ॥ सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति ॥ सायंप्रातरधीयानो अपापो भवति ॥ सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति ॥ सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति ॥ अवाच्यवचनात्पूतो भवति ॥ अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति ॥ अभोज्यभोजनात्पूतो भवति ॥ अचोष्यचोषणात्पूतो भवति ॥ असाध्यसाधनात्पूतो भवति ॥ दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात्पूतो भवति ॥ सर्वप्रतिग्रहात्पूतो भवति ॥ पंक्तिदूषणात्पूतो भवति ॥ अनृतवचनात्पूतो भवति ॥ अथाब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति ॥ अनेन हृदयेनाधीतेन क्रतुसहस्रेणेष्टं भवति ॥ षष्टिशतसहस्रगायत्र्या जप्यानि फलानि भवन्ति ॥ अष्टौ ब्राह्मणान्सम्यग्ग्राहयेत् ॥ तस्य सिद्धिर्भवति ॥ य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्यत इति ॥ ब्रह्मलोके महीयते ॥ इत्याह भगवान् श्रीनारायणः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे गायत्रीहृदयं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ नारद उवाच ॥ भक्तानुकंपिन्सर्वज्ञ हृदयं पापनाशनम् ॥ गायत्र्याः कथितं तस्माद्गायत्र्याः स्तोत्रमीरय ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥

अब्रह्मचारीमें भी ब्रह्मचारीके गुण आ जाते हैं। इस गायत्रीकाहृदयका अध्ययन करनेसे हजार यज्ञोंका फल मिलता है। साठ लाख गायत्रीके जपसे जितना फल मिलता है, उतने ही फलका देनेवाला यह गायत्री-हृदय है। गायत्रीके अनुष्ठानमें आठ ब्राह्मणोंका सम्यक् प्रकारसे वरण करना चाहिये। ऐसा करनेसे सद्यः सिद्धि प्राप्त होती है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल पवित्र होकर इस गायत्रीहृदयका अध्ययन करता है, उसके सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं और ब्रह्मलोकमें उसकी प्रतिष्ठा होती है। यह भगवान नारायणकी अमर वाणी है। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(गायत्रीस्तोत्र) नारदजीने कहा—भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हे सर्वप्रभो! आपने गायत्रीके पापनाशक हृदयका वर्णन किया। अब 'गायत्रीस्तुति' सुनानेकी कृपा कीजिये ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् नारायण कहते हैं–हे आदिशक्ते ! तुम जगत्की माता, भक्तोंपर कृपा करनेवाली, सर्वत्र व्याप्त, अनन्त तथा श्रीसम्पन्ना हो, तुम्हें नमस्कार है ॥२॥ तुम्हीं संध्या, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री हो। रक्त, श्वेत और कृष्ण–ये तुम्हारे वर्ण हैं ॥ ३ ॥ हे देवी ! तुम प्रातःकालमें बाल-अवस्थासे सम्पन्न, मध्याह्नकालमें युवावस्थावाली और सायंकालमें वृद्धावस्थासे युक्त हो जाती हो। मुनिलोग सदा तुम्हारे रूपके विषयमें इस प्रकारका चिन्तन करते हैं ॥ ४ ॥ तुम्हारे प्रातःकालके वाहन हंस, मध्याह्नकालके गरुड़ और सायंकालके वाहन वृषभ हैं। तुम ऋग्वेदका ध्यान करती हो। ऐसी मुद्रामें तपस्वीगण भूमण्डलपर तुम्हारी झाँकी प्राप्त करते हैं॥ ५ ॥ तुम अन्तरिक्षमें विराजमान होकर यजुर्वेदका पाठ करती हो। भूमण्डलपर सर्वत्र भ्रमण करते हुए तुम्हारे मुखसे सामवेदका उच्चारण होता है ॥ ६ ॥ विष्णुलोकमें निवास करनेवाली तुम रुद्रलोकमें भी पधारती हो। देवताओंपर अनुग्रह करनेके

आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि ॥ सर्वत्र व्यापिकेऽनंते श्रीसंध्ये तु नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥ त्वमेव संध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती ॥
ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेतरा ॥ ३ ॥ प्रातर्बाला च मध्याह्ने यौवनस्था भवेत्पुनः ॥ वृद्धा सायं भगवती चिंत्यते मुनिभिः सदा ॥ ४ ॥
हंसस्था गरुडारूढा तथा वृषभवाहिनी ॥ ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः ॥ ५ ॥ यजुर्वेदं पठंती च अन्तरिक्षे विराजते ॥ सा साम-
गाऽपि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि ॥ ६ ॥ रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी ॥ त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी ॥ ७ ॥ सप्तर्षि-
प्रीतिजननी माया बहुवरप्रदा ॥ शिवयोः करनेत्रोत्था ह्यश्रुस्वेदसमुद्भवा ॥ ८ ॥ आनन्दजननी दुर्गा दशधा परिपठ्यते ॥ वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा
वरवर्णिनी ॥ ९ ॥ गरिष्ठा च वरार्हा च वरारोहा च सप्तमी ॥ नीलगंगा तथा संध्या सर्वदा भोगमोक्षदा ॥ १० ॥ भागीरथी मर्त्यलोके पाताले
भोगवत्यपि ॥ त्रिलोकवाहिनी देवी स्थानत्रयनिवासिनी ॥ ११ ॥ भूर्लोकस्था त्वमेवासि धरित्री लोकधारिणी ॥ भुवो लोके वायुशक्तिः स्वर्लोके
तेजसां निधिः ॥ १२ ॥ महर्लोके महासिद्धिर्जनलोके जनेत्यपि ॥ तपस्विनी तपोलोके सत्यलोके तु सत्यवाक् ॥ १३ ॥ कमला विष्णुलोके च
गायत्री ब्रह्मलोकदा ॥ रुद्रलोके स्थिता गौरी हरार्धाङ्गनिवासिनी ॥ १४ ॥ अहमो महतश्चैव प्रकृतिस्त्वं हि गीयसे ॥ साम्यावस्थात्मिका त्वं हि

लिए तुम्हीं ब्रह्मलोकमें विराजती हो ॥ ७ ॥ तुम सप्तर्षियोंको प्रसन्न करनेवाली और अनेक प्रकारके वर देनेमें कुशल महामाया हो। शिव-शक्तिके हाथ, नेत्र, अश्रु और स्वेदसे प्रकटित दस प्रकारकी दुर्गा भी तुम्हीं हो॥ ८ ॥ तुम्हें आनन्द-जननी कहते हैं। दस दुर्गाओंके नाम इस प्रकार हैं—वरेण्या, वरदा, वरिष्ठा, वरवर्णिनी, गरिष्ठा, वरार्हा, वरारोहा, नीलगङ्गा, संध्या और भोग-मोक्षदा ॥९॥१०॥ हे देवी ! तुम मर्त्यलोकमें भगवती भागीरथी, पातालमें भोगवती और स्वर्गमें त्रिलोकवाहिनी (मन्दाकिनी)का रूप धारण करके तीनों लोकोंमें निवास करती हो ॥ ११ ॥ तुम्हीं भूलोकमें शोकका नियन्त्रण करनेवाली धरित्रीरूपसे विराजमान हो। तुम भुवर्लोकमें वायुशक्ति, स्वर्लोकमें तेजःपुञ्ज, महर्लोकमें महासिद्धि, जनलोकमें जना, तपोलोकमें तपस्विनी, सत्यलोकमें सत्यवाक्, विष्णुलोकमें कमला, ब्रह्मलोकमें गायत्री और रुद्रलोकमें भगवान शंकरके अर्द्धाङ्गमें निवास करनेवाली गौरीके नामसे प्रसिद्ध हो ॥१२-१४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अहं और महत् तत्त्वोंकी प्रकृतिरूपसे तुम्हीं गायी जाती हो। शबलब्रह्म तुम्हारा स्वरूप है ॥ १५ ॥ अतएव तुम्हें पराशक्ति और परमात्मा कहा जाता है। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति—ये तीनों शक्तियाँ तुम्हारी ही कृपासे प्राप्त होती हैं ॥ १६ ॥ गङ्गा, यमुना, विपाशा, सरस्वती, सरयू, देविका, सिन्धु, नर्मदा, इरावती, गोदावरी, शतद्रु, देवलोकमें विचरण करनेवाली कावेरी, कौशिकी, चन्द्रभागा, बितस्ता, सरस्वती, गण्डकी, तापिनी, करतोया, गोमती और वेत्रवती—ये नदियाँ भी तुम्हारे ही रूप हैं। इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, अपूषा, अलम्बुषा, कुहू और शङ्खिनी आदि नामोंसे विख्यात प्राण वहन करनेवाली नाड़ियोंके रूपसे तुम सबके शरीरमें निवास करती हो—ऐसा प्राचीन बुधजन कहते हैं। तुम प्राणशक्तिरूपसे हृदयकमलपर विराजमान रहती हो। कण्ठमें रहकर स्वप्नोंका सृजन करना तुम्हारा सहज गुण है ॥ १७-२१ ॥ तुम सर्वाधारस्वरूपिणी हो। तालुओंमें तुम्हारा निवास है। भौंहोंके मध्यमें बिन्दुरूपसे तुम विराजती हो। तुम्हें बिन्दुमालिनी कहते हैं। मूलाधारमें कुण्डलिनी नाडी तुम्हारी ही आकृति है। व्यापकरूपसे तुम सबके रोमकूपमें विरा-

शबलब्रह्मरूपिणी ॥ १५ ॥ ततः परा परा शक्तिः परमा त्वं हि गीयसे ॥ इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्रिशक्तिदा ॥ १६ ॥ गंगा च यमुना चैव विपाशा च सरस्वती ॥ सरयूर्देविका सिंधुर्नर्मदैरावती तथा ॥ १७ ॥ गोदावरी शतद्रुश्च कावेरी देवलोकगा ॥ कौशिकी चन्द्रभागा च बितस्ता च सरस्वती ॥१८॥ गंडकी तापिनी तोया गोमती वेत्रवत्यपि ॥ इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ॥१९॥ गांधारी हस्तिजिह्वा च पूषाऽपूषा तथैव च ॥ अलंबुषा कुहूश्चैव शंखिनी प्राणवाहिनी ॥ २० ॥ नाडी च त्वं शरीरस्था गीयसे प्राक्तनैर्बुधैः ॥ हृत्पद्मस्था प्राणशक्तिः कंठस्था स्वप्ननायिका ॥२१॥ तालुस्था त्वं सदाधारा बिंदुस्था बिंदुमालिनी ॥ मूले कुण्डलीशक्तिर्व्यापिनी केशमूलगा ॥ २२ ॥ शिखामध्यासना त्वं हि शिखाग्रे तु मनोन्मनी ॥ किमन्यद्बहुनोक्तेन यत्किंचिज्जगतीत्रये ॥२३॥ तत्सर्वं त्वं महादेवि श्रिये संध्ये नमोऽस्तु ते ॥ इतीदं कीर्तितं स्तोत्रं संध्यायां बहुपुण्यदम् ॥२४॥ महापापप्रशमनं महासिद्धिविधायकम् ॥ य इदं कीर्तयेत्स्तोत्रं संध्याकाले समाहितः ॥ २५ ॥ अपुत्रः प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ सर्वतीर्थतपोदानयज्ञयोगफलं लभेत् ॥ २६ ॥ भोगान्भुक्त्वा चिरं कालमंते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ तपस्विभिः कृतं स्तोत्रं स्नानकाले तु यः पठेत् ॥ २७ ॥ यत्र कुत्र जले मग्नः संध्यामज्जनजं फलम् ॥ लभते नात्र संदेहः सत्यं सत्यं च नारद ॥ २८ ॥ शृणुया-

जती हो ॥ २२ ॥ तुम्हारी शिखाके मध्यमें परमात्मा तथा शिखाके अग्रभागमें मनोन्मनी शक्ति विराजमान रहती है। हे महादेवी! अधिक कहनेसे क्या—त्रिलोकीमें जो कुछ है, वह सब तुम्हीं हो। हे संध्ये! मैं मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्तिके लिए तुम्हें नमस्कार करता हूँ। यदि संध्याके अवसरपर इस स्तोत्रका पाठ किया जाय तो प्रचुर पुण्य प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस स्तोत्रके प्रभावसे ढेर-के-ढेर पापोंका नाश हो जाता है। यह स्तोत्र महान् सिद्धिप्रद है। जो पुरुष सावधान होकर संध्याकालमें इसका पाठ करता है ॥२५॥ वह अपुत्र हो तो पुत्रवान् और धनकी इच्छावाला हो तो धनवान् हो जाता है। सम्पूर्ण तीर्थ, जप, तप, योग, यज्ञ और दानके पुण्य उसे प्राप्त हो जाते हैं ॥ २६ ॥ वह दीर्घकालतक प्रचुर भोग भोगकर अन्तमें मुक्त हो जाता है। तपस्वियोंके बनाये हुए इस स्तोत्रको जो स्नानके समय पढ़ता है, वह जहाँकहीं भी जलमें स्नान करे, उसे संध्या-स्नानजनित उत्तम फल प्राप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो जाता है। हे नारद ! मेरी यह बात सत्य है, सत्य है—इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये ॥२७॥२८॥ हे नारद ! जो भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रको सुनेगा, वह भी पापोंसे छूट जायगा। सन्ध्याके उद्देश्यसे कहा हुआ यह स्तोत्र अमृतकी तुलना करनेवाला है ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते द्वादशस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(श्रीगायत्रीसहस्रनाम) नारदजीने कहा—हे सम्पूर्ण धर्मोंको जाननेवाले भगवन् ! आप अखिल शास्त्रोंके पारगामी विद्वान् हैं। आपके श्रीमुखसे श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणोंका वह सर्वपापहारी रहस्य मुझे सुननेको मिला ॥ १ ॥ जिससे विद्याकी प्राप्ति होती है। कमलके समान नेत्रोंसे शोभा पानेवाले हे देव ! किससे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है और मोक्ष-साधनमें कौन उपयोगी है ? ॥ २ ॥ किसके अनुष्ठानसे ब्राह्मणको सद्गति प्राप्त होती है और किसके प्रभावसे मृत्यु पास नहीं आती ? अथवा किसके सहारे लोग इहलोक और परलोकमें महान् फलके भागी हो सकते हैं ॥ ३ ॥ वह सारा प्रसंग आप आद्योपान्त कहनेकी कृपा कीजिये। भगवान नारायण कहते हैं—हे महाप्राज्ञ ! हे अनघ ! तुम्हें धन्यवाद है।

द्योऽपि तद्भक्त्या स तु पापात्प्रमुच्यते ॥ पीयूषसदृशं वाक्यं सन्ध्योक्तं नारदेरितम् ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे गायत्रीस्तोत्रं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ नारद उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यं त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥१॥ सर्वपापहरं देव येन विद्या प्रवर्तते ॥ केन वा ब्रह्मविज्ञानं किं नु वा मोक्षसाधनम् ॥२॥ ब्राह्मणानां गतिः केन केन वा मृत्युनाशनम् ॥ ऐहिकामुष्मिकफलं केन वा पद्मलोचन ॥ ३ ॥ वक्तुमर्हस्यशेषेण सर्वं निखिलमादितः ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ साधु साधु महाप्राज्ञ सम्यक् पृष्टं त्वयाऽनघ ॥ ४ ॥ शृणु वक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥ नाम्नां शुभानां दिव्यानां सर्वपापविनाशनम् ॥५॥ सृष्ट्यादौ यद्भगवता पूर्वं प्रोक्तं ब्रवीमि ते ॥ अष्टोत्तरसहस्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्तितः ॥ ६ ॥ छंदोऽनुष्टुप्तथा देवी गायत्री देवता स्मृता ॥ हलो बीजानि तस्यैव स्वराः शक्तय ईरिताः ॥७॥ अङ्गन्यासकरन्यासावुच्येते मातृकाक्षरैः ॥ अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ॥ ८ ॥ रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम् ॥ गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डांबुजां पद्माक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे ॥ ९ ॥ अचिंत्यलक्षणाव्यक्ताप्यर्थमातृमहेश्वरी ॥

तुमने बड़ी अच्छी बात पूछी है, सुनो ॥ ४ ॥ मैं तुम्हारे सामने गायत्रीके एक सहस्र आठ नामोंका वर्णन करूँगा। ये दिव्य नाम परम मंगलकारी हैं। इनका श्रवण करनेसे पापोंका लेशमात्र भी शरीरमें नहीं रह सकता ॥५॥ बहुत पहले सृष्टिके आदिमें भगवान्ने जिसका प्रतिपादन कियां है, वही सहस्रनाम मैं तुम्हें सुनाता हूँ। इस एक सहस्र आठ नामवाले स्तोत्रके ऋषि ब्रह्माजी कहे जाते हैं ॥ ६ ॥ अनुष्टुप् छन्द है। भगवती गायत्री इसकी देवता कही गयी हैं। हलन्त अक्षर इसके बीज और स्वरोंको इसकी शक्ति कहा जाता है ॥ ७ ॥ मातृका-मन्त्रके छः अक्षर ही इसके छः अङ्गन्यास और करन्यास कहे जाते हैं। अब साधकोंके कल्याणार्थ भगवतीका ध्यान कहता हूँ ॥ ८ ॥ जो रक्त, श्वेत, पीत, नील और धवल वर्णोंके (श्रीमुखोंसे) सम्पन्न हैं, तीन नेत्रोंसे जिनका विग्रह देदीप्यमान हो रहा है, जिन्होंने अपने रक्तवर्ण शरीरको लाल कमलोंकी मालासे सजा रखा है, जो अनेक मणियोंसे युक्त हैं, जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कमलके आसनपर विराजमान हैं, जिनके दो हाथोंमें कमल और कुण्डिका एवं दो हाथोंमें वर तथा अक्षमाला सुशोभित है, उन हंसकी सवारी करनेवाली और कुमारी-अवस्थासे सम्पन्न भगवती गायत्रीकी मैं उपासना करता हूँ ॥ ९ ॥ उनके १००८ पवित्र नाम ये हैं—१ अचिन्त्यलक्षणा-बुद्धिकी पहुँचसे परेके लक्षणोंवाली, २ अव्यक्ता-जिनका तत्त्व जाननेमें नहीं आता, ३ अर्थ-मातृमहेश्वरी-अर्थ आदि पार्थिव पदार्थोंके परिच्छेदक ब्रह्मा आदि देवताओंपर नियन्त्रण करनेवाली, ४ अमृता-अमृतस्वरूपिणी, ५ अर्णवमध्यस्था-समुद्रके भीतर विराजनेवाली देवी, ६ अजिता-किसीसे परास्त न होनेवाली, ७ अपराजिता-जिन्हें युद्धमें दूसरा कोई भी नहीं जीत सकता ॥ १० ॥ ८ अणिमादिगुणाधारा-अणिमा-महिमा आदि सिद्धियोंकी आश्रयभूता देवी, ९ अर्कमण्डलसंस्थिता-सूर्यके मण्डलमें विराजमान, १० अजरा-सदा तरुण-अवस्थासे शोभा पानेवाली, ११ अजा--जो जन्मरहित हैं, १२ अपरा-जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है वे देवी, १३ अधर्मा-जिनमें जात्यादिनिमित्तक लौकिक धर्म नहीं है, १४ अक्षसूत्रधरा-अक्षसूत्र धारण करनेवाली, १५ अधरा-जो अपने ही आधारपर स्थित हैं ॥ ११ ॥ १६ अकारा-दिक्षकारान्ता-अकार जिनके आदिमें और क्षकार जिनके अन्तमें हैं, वे वर्णमातृकास्वरूपिणी देवी, १७ अरिषड्वर्गभेदिनी-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्यरूप छः प्रकारके शत्रुओंका भेदन करनेवाली, १८ अञ्जनाद्रिप्रतीकाशा-अञ्जनगिरिके समान (आन्तरिक) कृष्णवर्णकी प्रभासे सुशोभित, १९ अञ्जनाद्रिनिवासिनी-असित गिरिपर निवास करनेवाली

अमृतार्णवमध्यस्थाऽप्यजिता चापराजिता ॥ १० ॥ अणिमादिगुणाधाराऽप्यर्कमंडलसंस्थिता ॥ अजराऽजाऽपराऽधर्मा अक्षसूत्रधराऽधरा ॥ ११ ॥
अकारादिक्षकारांताप्यरिषड्वर्गभेदिनी ॥ अंजनाद्रिप्रतीकाशाऽप्यंजनाद्रिनिवासिनी ॥ १२ ॥ अदितिश्चाजपा विद्याऽप्यरविन्दनिभेक्षणा ॥ अंतर्बहिः
स्थिताऽविद्याध्वंसिनी चांतरात्मिका ॥ १३ ॥ अजा चाजमुखाऽवासाऽप्यरविंदनिभानना ॥ अर्धमात्रार्थदानज्ञाऽप्यरिमंडलमर्दिनी ॥ १४ ॥ असुरघ्नी
ह्यमावस्याऽप्यलक्ष्मीघ्नन्यंत्यजार्चिता ॥ आदिलक्ष्मीश्चादिशक्तिराकृतिश्चायतानना ॥ १५ ॥ आदित्यपदवीचाराऽप्यादित्यपरिसेविता ॥ आचार्या-

देवी, ॥१२॥ २० अदिति-देवताओंकी माता, २१ अजपा-अजपाजपरूपिणी, २२ अविद्या-अविद्याको भी सत्ता देनेवाली, २३ अरविन्दनिभेक्षणा-कमलके समान नेत्रोंसे शोभा पानेवाली, २४ अन्तर्बहिःस्थिता-व्यापकरूपसे प्राणिमात्रके भीतर और बाहर स्थित रहनेवाली, २५ अविद्याध्वंसिनी-अविद्याका ध्वंस करनेवाली, २६ अन्तरात्मिका-सबके अन्तःकरणमें विराजनेवाली ॥ १३ ॥ २७ अजा-जन्मसे रहित प्रकृतिस्वरूपिणी, २८ अजमुखावासा-ब्रह्माके मुखमें निवास करनेवाली, २९ अरविन्दनिभानना--कमलके समान प्रफुल्लित मुखसे अनुपम शोभा पानेवाली ३० अर्धमात्रा--प्रणवाङ्गभूत अर्धमात्रास्वरूपा, ३१ अर्थदानज्ञा-चारों प्रकारके पुरुषार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका दान करनेमें कुशल, ३२ अरिमण्डलमर्दिनी-शत्रुसमूहोंका मर्दन करनेवाली देवी ॥१४॥ ३३ असुरघ्नी--असुरोंके वधमें सदा तत्पर रहनेवाली, ३४ अमावास्या--अमावास्या तिथि जिनका स्वरूप है, ३५ अलक्ष्मीघ्नन्त्यजार्चिता--अलक्ष्मीका नाश करनेवाली अन्त्यजा अर्थात् मातङ्गी देवीसे सुपूजित, ३६ आदिलक्ष्मी--साम्यावस्थापन्न मायासे युक्त ब्रह्मकी मूर्तिरूपा, ३७ आदिशक्ति--महामाया, ३८ आकृति--आकारस्वरूपिणी, ३९ आयतानना--ठठाकर हँसनेवाली ॥ १५ ॥ ४० आदित्यपदवीचारा--आदित्य-मार्गपर चलनेवाली सूर्यगतिरूपा, ४१ आदित्यपरिसेविता--सूर्यादि देवताओंसे सेवा पानेवाली, ४२ आचार्या--स्वयं सदाचारकी व्याख्या करनेवाली, ४३ आवर्तना--भ्रमणशील जगत्की रचना करनेवाली, ४४ आचारा--दक्षिणाचार आदि आचाररूपिणी, ४५ आदिमूर्तिनिवासिनी--आदिमूर्ति ब्रह्ममें जिनका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निवास है ॥१६॥ ४६ आग्नेयी–अग्निदेवकी अधिष्ठात्री, ४७ आमरी—देवताओंकी पुरी जिनका रूप माना जाता है, ४८ आद्या–आदिस्वरूपिणी भगवती योगमाया, ४९ आराध्या—सभी जिनकी आराधना करते हैं, ५० आसनस्थिता–दिव्य आसनपर विराजनेवाली, ५१ आधारनिलया–मूलाधारमें निवास करनेवाली कुण्डलिनीरूपा, ५२ आधारा–जगत्को धारण करनेवाली, ५३ आकाशान्तनिवासिनी–आकाश-तत्त्वके अन्तरूप अहंकारमें जिनका निवास है ॥१७॥ ५४ आद्याक्षरसमायुक्ता–सर्वप्रथम अक्षर (अकार) से युक्त; ५५ आन्तराकाशरूपिणी—आन्तर आकाश (दहराकाश) रूपिणी, ५६ आदित्यमण्डलगता–सूर्यमण्डलके भीतर शोभा पानेवाली देवी, ५७ आन्तरध्वान्तनाशिनी–अज्ञानरूप आन्तरिक अन्धकारका नाश करनेवाली ॥१८॥ ५८ इन्दिरा–लक्ष्मी नामसे प्रसिद्ध, ५९ इष्टदा–भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली, ६० इष्टा–साधक पुरुष इष्ट देवता मानकर जिनकी उपासना करते हैं, ६१ इन्दीवरनिभेक्षणा—सुन्दर कमलके समान नेत्रोंवाली, ६२ इरावती–इरावती नामवाली नदी अथवा इरा अर्थात् पृथ्वीसे युक्त, ६३ इन्द्रपदा–जिनकी कृपासे इन्द्रने अपना पद प्राप्त किया है, ६४ इन्द्राणी—शचीके रूपसे विराजमान, ६५ इन्दुरूपिणी–चन्द्रमाके सदृश सुन्दर रूपवाली ॥१९॥ ६६ इक्षुकोदण्डसंयुक्ता--हाथमें इक्षुका धनुष धारण करनेवाली, ६७ इषुसंधानकारिणी--बाणोंका संधान करनेमें जो परम प्रवीण हैं वे देवी, ६८ इन्द्रनीलसमाकारा--इन्द्रनीलमणिके समान प्रभासे शोभा पानेवाली, ६९ इडापिङ्गलरूपिणी--इडा और पिङ्गला (आदि) नाड़ियाँ जिनके रूप हैं ॥ २० ॥

वर्तनाचाराप्यादिमूर्तिनिवासिनी ॥ १६ ॥ आग्नेयी चामरी चाद्या चाराध्या चासनस्थिता ॥ आधारनिलयाधारा चाकाशान्तनिवासिनी ॥ १७ ॥ आद्याक्षरसमायुक्ता चान्तराकाशरूपिणी ॥ आदित्यमंडलगता चांतरध्वांतनाशिनी ॥ १८ ॥ इन्दिरा चेष्टदा चेष्टा चेंदीवरनिभेक्षणा ॥ इरावती चेंद्रपदा चेंद्राणी चेंदुरूपिणी ॥ १९ ॥ इक्षुकोदंडसंयुक्ता चेषुसंधानकारिणी ॥ इन्द्रनीलसमाकारा चेडापिंगलरूपिणी ॥ २० ॥ इन्द्राक्षी चेश्वरी देवी चेहात्रयविवर्जिता ॥ उमा चोषा ह्युडुनिभा उर्वारुकफलानना ॥ २१ ॥ उडुप्रभा चोडुमती ह्युडुपा ह्युडुमध्यगा ॥ ऊर्ध्वं चाप्यूर्ध्वकेशी चात्यूर्ध्वाधोगतिभेदिनी ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वबाहुप्रिया चोर्मिमालावाग्ग्रंथदायिनी ॥ ऋतं चर्षिर्ऋतुमती ऋषिदेवनमस्कृता ॥२३॥ ऋग्वेदा ऋणहर्त्री च ऋषिमंडलचारिणी ॥ ऋद्धिदा ऋजुमार्गस्था ऋजुधर्मा ऋतुप्रदा ॥२४॥ ऋग्वेदनिलया ऋज्वी लुप्तधर्मप्रवर्तिनी ॥ लूतारिवरसंभूता लूता-

७० इन्द्राक्षी--शताक्षी नाम्नी देवी, ७१ ईश्वरी देवी--अखिल ऐश्वर्यों से संपन्न तेजोमयस्वरूपा, ७२ ईहात्रयविवर्जिता–तीनों एषणाओं अर्थात् लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणासे वर्जित, ७३ उमा--भगवती उमाके नामसे प्रसिद्ध, ७४ उषा--रात्रिविशेषरूपिणी अथवा बाणासुरके घर पुत्रीरूपके विराजमान, ७५ उडुनिभा--नक्षत्रके सदृश प्रभावाली देवी, ७६ उर्वारुकफलानना-ककड़ीके फलके समान जिनका मुख सदा प्रफुल्लित रहता है ॥२१॥ ७७ उडुप्रभा–जलके समान वर्णवाली, ७८ उडुमती--रात्रिरूपिणी, ७९ उडुपा--चन्द्रमा अथवा नौकारूपिणी, ८० उडुमध्यगा-नक्षत्रमण्डलके मध्य विराजमान, ८१ ऊर्ध्वं–उर्ध्वदेशरूपिणी, ८२ ऊर्ध्वकेशी–जिनके केश ऊपरको उठे हुए हैं ८३ ऊर्ध्वाधोगतिभेदिनी--ऊर्ध्वगति (स्वर्ग) और अधोगति (नरक) दोनोंका भेदन करनेवाली मोक्षदायिका ॥२२॥ ८४ ऊर्ध्वबाहुप्रिया–बाहुओंको ऊपर उठाकर प्रार्थना करनेवाले भक्तोंसे प्रेम करनेवाली, ८५ ऊर्मिमाला वाग्ग्रन्थदायिनी–तरङ्गमालाओंके समान श्रेष्ठ वाणीसे सम्पन्न वाणियोंको ग्रन्थरूपमें परिणत करनेवाली शक्ति, ८६ ऋतम्–सत्य-वाणीरूपा, ८७ ऋषि–वेदरूपा, ८८ ऋतुमती--रजस्वला, ८९ ऋषिदेवनमस्कृता--ऋषि और देवता जिनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं ॥२३॥ ९० ऋग्वेदा--ऋग्वेदस्वरूपिणी देवी, ९१ ऋणहर्त्री–देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणका नाश करनेवाली, ९२ ऋषिमण्डलचारिणी–ऋषि-मण्डलीमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विचरणशील, ९३ ऋद्धिदा–समृद्धि देनेवाली, ९४ ऋजुमार्गस्था–सीधे (सदाचारके) मार्गपर चलना जिनका स्वाभाविक गुण है, ९५ ऋजुधर्मा—ऋजु (सहज) धर्मवाली, ९६ ऋतुप्रदा—जिनकी कृपासे ऋतुएँ अपने-अपने रूपमें परिणत होती हैं, वे देवी ॥२४॥ ९७ ऋग्वेदनिलया–ऋग्वेदमें विराजमान, ९८ ऋज्वी–सरल स्वभावशाली, ९९ लुप्तधर्मप्रवर्तिनी–लुप्त धर्मोंका पुनः प्रवर्तन करनेवाली देवी, १०० लूतारिवरसंभूता–लूतारि विशिष्ट रोगको दूर करनेवाले मन्त्र जिनसे प्रकट हुए हैं, वे देवी, १०१ लूतादिविषहारिणी—मकड़ी आदिके विषको हरण करनेवाली ॥ २५ ॥ १०२ एकाक्षरा–एक अक्षरसे संपन्न, १०३ एकमात्रा–एक मात्रामें विराजनेवाली देवी, १०४ एका–अपने ढंगकी अकेली, १०५ एकनिष्ठा–सदा एकनिष्ठ रहनेवाली, १०६ ऐन्द्री–इन्द्रकी शक्तिरूपा, १०७ ऐरावतारूढ़ा–ऐरावतपर विराजनेवाली १०८ ऐहिकामुष्मिकप्रदा–ऐहलौकिक और पारलौकिक फल प्रदान करनेवाली ॥ २६ ॥ १०९ ओंकारा–प्रणव-रूपिणी, ११० ओषधी–संसाररोगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये ओषधिरूपा, १११ ओता–मणिमें सूत्रकी भाँति सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें विराजमान, ११२ ओतप्रोतनिवासिनी–ब्रह्मसे ओत-प्रोत जगत्में निवास करनेवाली, ११३ और्वा–वाडवाग्निरूपा, ११४ औषधसंपन्ना–भवरोग दूर करनेको ओषधिसे संपन्न, ११५ औपासनफलप्रदा–उपासना करनेपर उत्तम फल प्रदान करनेवाली ॥ २७ ॥ ११६ अण्डमध्यस्थिता देवी–ब्रह्माण्डके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विराजनेवाली देवी, ११७ अःकारमनुरूपिणी–अःकार (विसर्ग) रूप जिनका मन्त्रमय विग्रह है,

दिविषहारिणी ॥ २५ ॥ एकाक्षरा चैकमात्रा चैका चैकैकनिष्ठिता ॥ ऐन्द्री ह्यैरावतारूढा चैहिकामुष्मिकप्रदा ॥२६॥ ओंकारा ह्योषधी चोता चोत-प्रोतनिवासिनी ॥ और्वा ह्यौषधसंपन्ना औपासनफलप्रदा ॥ २७ ॥ अंडमध्यस्थिता देवी चाःकारमनुरूपिणी ॥ कात्यायनी कालरात्रिः कामाक्षी कामसुन्दरी ॥ २८ ॥ कमला कामिनी कांता कामदा कालकंठिनी ॥ करिकुंभस्तनभरा करवीरसुवासिनी ॥२९॥ कल्याणी कुण्डलवती कुरुक्षेत्र-निवासिनी ॥ कुरुविंददलाकारा कुंडली कुमुदालया ॥ ३० ॥ कालजिह्वा करालास्या कालिका कालरूपिणी ॥ कमनीयगुणा कांतिः कलाधारा कुमुद्वती ॥ ३१ ॥ कौशिकी कमलाकारा कामचारप्रभंजिनी ॥ कौमारी करुणापांगी ककुबंता करिप्रिया ॥३२॥ केसरी केशवनुता कदंबकुसुम-

११८ कात्यायनी–कात्यायन ऋषिद्वारा उपासित देवी, ११९ कालरात्रि–राक्षसोंका संहार करनेके लिये कालरात्रिके रूपमें प्रकट, १२० कामाक्षी–कामको नेत्रोंमें धारण करनेवाली, १२१ कामसुन्दरी–सुन्दरतामें कामदेवको तुच्छ करनेवाली ॥२८॥ १२२ कमला–लक्ष्मीस्वरूपा, १२३ कामिनी-उपासकोंकी मंगल-कामना करनेवाली, १२४ कान्ता–अत्यन्त कमनीय रूपवाली, १२५ कामदा–भक्तोंकी इच्छाएँ पूर्ण करनेवाली, १२६ कालकण्ठिनी–कालको भी कण्ठमें रख लेनेवाली, १२७ करिकुंभस्तनभरा–हाथीके कुंभस्थलसदृश पीन पयोधरोंसे माराक्रान्त, १२८ करवीरसुवासिनी–करवीर अर्थात् महालक्ष्मी-क्षेत्रमें निवास करनेवाली देवी ॥२९॥ १२९ कल्याणी कल्याणमय विग्रहमें संपन्न, १३० कुण्डलवती–कानोंमें सुन्दर कुण्डल धारणकरनेवाली १३१ कुरुक्षेत्रनिवासिनी–कुरुक्षेत्रमें जिनका निवास है, वे देवी, १३२ कुरुविन्ददलाकारा–मुस्तादलके समान आकारसे शोभा पानेवाली, १३३ कुंण्डली–कुण्डलिनी शक्तिके रूपमें विराजमान देवी, १३४ कुमुदालया–कुमुदके आसनपर विराजमान ॥३०॥ १३५ कालजिह्वा–राक्षसोंके संहारार्थ कालरूपिणी जिह्वासे संपन्न, १३६ करालास्या–शत्रुओंके सामने भयंकर मुखमुद्रा प्रदर्शित करनेवाली, १३७ कालिका–काले वर्णवाली देवी, १३८ कालरूपिणी–दैत्योंके लिए कालमय विग्रह धारण करनेवाली, १३९ कमनीयगुणा–सुन्दर गुणोंसे सुभूषित, १४० कान्ति–दीप्तिमती, १४१ कलाधारा–चौंसठ कलाओंको धारण करनेवाली, १४२ कुमुद्वती–कुमुदका धारण करनेवाली ॥३१॥ १४३ कौशिकी–इस नामकी देवी अथवा कुशिक मुनिपर दया करनेवाली, १४४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कमलाकारा—कमलके समान सुन्दर आकारवाली, १४५ कामचारप्रभञ्जिनी—स्वेच्छाचारका नाश करनेवाली, १४६ कौमारी—सदा कुमारी अवस्थासे सम्पन्न, १४७ करुणापाङ्गी—भक्तोंपर करुणायुक्त कटाक्षपात करनेवाली, १४८ ककुबन्ता—दिशाओंकी अवसानरूपा, १४९ करिप्रिया—हाथी जिन्हें अधिक प्रिय हैं, वे महालक्ष्मीरूपिणी ॥३२॥ १५० केसरी—सिंहरूपिणी, १५१ केशवनुता—भगवान् श्रीकृष्ण भी जिन्हें प्रणाम करते हैं, १५२ कदम्बकुसुमप्रिया—कदम्बके फूलसे प्रसन्न होनेवाली, १५३ कालिन्दी—कलिन्दकन्या यमुना या श्रीकृष्णकी पटरानीरूपा, १५४ कालिका—काली नामसे विख्यात, १५५ काञ्ची—काञ्चीनामक क्षेत्रमें जिनकी पूजा होती है, १५६ कलशोद्भवसंस्तुता—अगत्स्यजीने जिनकी स्तुति की है ॥३३॥ १५७ काममाता—कामदेवकी जननी, १५८ क्रतुमती—यज्ञमय विग्रह धारण करनेवाली, १५९ कामरूपा—इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ, १६० कृपावती—कृपासे ओत-प्रोत, १६१ कुमारी—कुमारीके रूपमें विराजमान, १६२ कुण्डनिलया—अग्निहोत्रके कुण्डमें विराजनेवाली, १६३ किराती—भक्तोंका कार्य साधनके लिए किरातवेष धारण करनेवाली, १६४ कीरवाहना—तोता पक्षी जिनका वाहन है ॥ ३४ ॥ १६५ कैकेयी—राजा केकयके घर कन्यारूपमें पधारकर कैकेयीके नामसे प्रसिद्ध, १६६ कोकिलालापा—कोयलके समान मधुर वचन बोलनेवाली, १६७ केतकी—फूलोंमें केतकी रूपसे विराजमान, १६८ कुसुमप्रिया—पुष्प जिन्हें परम प्रिय हैं, १६९ कमण्डलुधरा—ब्रह्मचारिणीके रूपमें कमण्डलु धारण करनेवाली, १७० काली—

प्रिया ॥ कालिंदी कालिका कांची कलशोद्भवसंस्तुता ॥३३॥ काममाता क्रतुमती कामरूपा कृपावती ॥ कुमारी कुंडनिलया किराती कीरवाहना ॥ ३४ ॥ कैकेयी कोकिलालापा केतकीकुसुमप्रिया ॥ कमंडलुधरा काली कर्मनिर्मूलकारिणी ॥ ३५ ॥ कलहंसगतिः कक्षा कृतकौतुकमंगला ॥ कस्तूरीतिलका कम्रा करीन्द्रगमना कुहूः ॥ ३६ ॥ कर्पूरलेपना कृष्णा कपिला कुहराश्रया ॥ कूटस्था कुधरा कम्रा कुक्षिस्थाखिलविष्टपा ॥३७॥ खड्गखेटकरा खर्वा खेचरी खगवाहना ॥ खट्वाङ्गधारिणी ख्याता खगराजोपरिस्थिता ॥३८॥ खलघ्नी खंडितजरा खंडाख्यानप्रदायिनी ॥ खण्डेन्दुतिलका गङ्गा गणेशगुहपूजिता ॥ ३९ ॥ गायत्री गोमती गीता गाधारी गानलोलुपा ॥ गौतमी गामिनी गाधा गंधर्वाप्सरसेविता ॥ ४० ॥

कालिकास्वरूपा, १७१ कर्मनिर्मूलकारिणी—जिनकी आराधनासे कर्म निर्मूल हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ १७२ कलहंसगति—हंसके समान मन्दगतिसे चलनेवाली, १७३ कक्षा—कक्षा नामसे प्रसिद्ध, १७४ कृतकौतुकमङ्गला—सदा विवाहोचित मङ्गलमय वेष धारण करनेवाली, १७५ कस्तूरीतिलका—कस्तूरीके तिलकसे सुशोभित, १७६ कम्रा—चञ्चला (स्फूर्तियुक्त), १७७ करीन्द्रगमना—ऐरावत हाथीपर सवारी करनेवाली, १७८ कुहू—तिथियोंमें कुहू (अमावस्या) नामसे प्रसिद्ध ॥३६॥ १७९ कर्पूरलेपना—कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थोंके लेपसे सुशोभित, १८० कृष्णा—श्यामल अङ्गवाली देवी, १८१ कपिला—भूरे रङ्गवाली, १८२ कुहराश्रया—बुद्धिरूपिणी गुहा जिनका आश्रय है, १८३ कूटस्था—पर्वत-शृङ्गपर निवास करनेवाली, अथवा ब्रह्मरूपमें सदा एकरस रहनेवाली, १८४ कुधरा—पृथ्वीको जो धारण किये हुए हैं, १८५ कम्रा—परम सुन्दरी, १८६ कुक्षिस्थाखिलविष्टपा—अपने कुक्षिस्थलमें रहनेवाले अखिल जगत्की रक्षा करनेवाली ॥ ३७ ॥ १८७ खड्गखेटकरा—हाथमें ढाल-तलवार लेकर द्रोही दानवोंको मारनेमें तत्पर, १८८ खर्वा-नाटे कदकी, १८९ खेचरी-आकाशमें विचरण करनेवाली, १९० खगवाहना—हंस जिनका वाहन है, १९१ खट्वाङ्गधारिणी—खट्वाङ्गको आयुधके रूपमें धारण करनेवाली, १९२ ख्याता—जगत्प्रसिद्ध, १९३ खगराजोपरिस्थिता—पक्षिराज गरुडकी पीठपर विराजनेवाली ॥ ३८ ॥ १९४ खलघ्नी—दुष्टोंका संहार करनेवाली, १९५ खण्डितजरा—जिनका विग्रह बुढ़ापेसे रहित है, १९६ खण्डाख्यानप्रदायिनी—पानशास्त्र अथवा मेदशास्त्रको जन्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देनेवाली, १९७ खण्डेन्दुतिलका–जो ललाटपर द्वितीयाके चन्द्रमाके आकारका तिलक धारण करती हैं, १९८ गङ्गा–'स्वर्गाद् गां गतवतीति गङ्गा' अर्थात् स्वर्गसे भूतलपर गमन करनेके कारण गङ्गा नामसे प्रसिद्ध अथवा कलकल गान करनेवाली या ब्रह्मद्रवस्वरूपा सच्चिदानन्दमयी देवी, १९९ गणेशगुहपूजिता – गणेश और स्वामिकार्तिकेयने जिनकी आराधना की है ॥३९॥ २०० गायत्री—अपना गुणगान करनेवालेकी रक्षा करनेवाली, २०१ गोमती–द्वारका अथवा नैमिषारण्यमें स्थित गोमतीनदीस्वरूपा, २०२ गीता— भगवद्गीतास्वरूपा, २०३ गान्धारी— पृथ्वीको धारण करनेवाली वाराही-शक्तिस्वरूपा, अथवा पतिव्रताशिरोमणि धृतराष्ट्र पत्नीस्वरूपा, २०४ गानलोलुपा–संगीत सुननेके लिए उत्कट इच्छा रखनेवाली, २०५ गौतमी-गौतम मुनिके यहाँ पत्नीरूपसे पधारनेकी कृपा करनेवाली (अहल्यारूपा), २०६ गामिनी—व्यापकरूपसे सर्वत्र विचरनेवाली देवी, २०७ गाधा—पृथ्वी जिनके आश्रयपर टिकी हुई है, वे देवी, २०८ गन्धर्वाप्सरसेविता—गन्धर्व और अप्सराओंसे सेवित ॥ ४० ॥ २०९ गोविन्दचरणाक्रान्ता—श्रीविष्णुके चरणोंसे आक्रान्त (पृथ्वीरूपा), २१० गुणत्रयविभाविता—तीनों गुणोंके साथ प्रकट हुई, २११ गन्धर्वी—गन्धर्वोंकी स्त्रीके रूपमें अभिव्यक्त रहनेवाली, २१२ गह्वरी—दुरूह महिमावाली, २१३ गोत्रा—पृथ्वीरूपा, २१४ गिरिशा–पर्वतोंकी अधिष्ठात्री देवी, २१५ गहना—गूढ़ स्वभाववाली, २१६ गमी–पर्यालोचन करनेवाली ॥४१॥२१७ गुहावासा—पर्वतकी कन्दरामें अथवा हृदयरूपिणी गुहामें निवास करनेवाली, २१ गुणवती-अनेक सद्गुणोंसे सम्पन्न, २१ गुरुपापप्रणाशिनी— जिनकी कृपासे बड़ेसे बड़े पाप ध्वंस हो जाते हैं, २२० गुर्वी--सर्वोपांग विराजमान, २२१ गुणवती–जिनमें विविध प्रकारके गुण विद्यमान हैं,

गोविंदचरणाक्रांता गुणत्रयविभाविता ॥ गंधर्वी गह्वरी गोत्रा गिरीशा गहना गमी ॥ ४१ ॥ गुहावासा गुणवती गुरुपापप्रणाशिनी ॥ गुर्वी गुणवती गुह्या गोप्तव्या गुणदायिनी ॥४२॥ गिरिजा गुह्यमातंगी गरुडध्वजवल्लभा ॥ गर्वापहारिणी गोदा गोकुलस्था गदाधरा ॥४३॥ गोकर्णनिलयासक्ता गुह्यमंडलवर्तिनी ॥ घर्मदा घनदा घंटा घोरदानवमर्दिनी ॥ ४४ ॥ घृणिमंत्रमयी घोषा घनसंपातदायिनी ॥ घंटारवप्रिया घ्राणा घृणिसंतुष्टकारिणी ॥ ४५ ॥ घनारिमंडला घूर्णा घृताची घनवेगिनी ॥ ज्ञानधातुमयी चर्चा चर्चिता चारुहासिनी ॥ ४६ ॥ चटुला चंडिका चित्रा

२२२ गुह्या–गुप्तरूपसे सर्वत्र विराजनेवाली, २२३ गोप्तव्या–गुप्तधनकी भाँति हृदयमें छिपा रखने योग्य, २२४ गुणदायिनी–जिनकी कृपासे सभी सद्गुण प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ २२५ गिरिजा–हिमवान्‌की पुत्रीरूपसे विराजमान, २२६ गुह्यमातङ्गी--ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी, २२७ गरुडध्वजवल्लभा–भगवान् विष्णुकी प्राणप्रिया लक्ष्मीस्वरूपा देवी, २२८ गर्वापहारिणी—गर्वका अपहरण कर लेना जिनका स्वभाव ही है, २२९ गोदा–गौ अथवा पृथ्वी प्रदान करनेवाली, २३० गोकुलस्था—गोकुलसमूहमें रहनेवाली, २३१ गदाधरा–जिनकी भुजामें गदा शोभा पाती है ॥ ४३ ॥ २३२ गोकर्णनिलयासक्ता–गोकर्ण नामक तीर्थस्थानमें विराजनेवाली, २३३ गुह्यमण्डलवर्तिनी–अत्यन्त गुह्य मण्डलमें जिनका निवास है, २३४ घर्मदा—सूर्यकी प्रभाके रूपमें ऊष्मा प्रदान करनेवाली, २३५ घनदा—जिनकी कृपासे मेघ प्रकट होते हैं, २३६ घण्टा–घण्टारूपसे विराजमान, २३७ घोरदानवमर्दिनी—भयङ्कर दानवोंका संहार करनेवाली देवी ॥ ४४ ॥ २३८ घृणिमन्त्रमयी–सूर्यको प्रसन्न करनेवाले मन्त्ररूपसे विराजमान, २३९ घोषा–समराङ्गणमें भयंकर शब्द करनेवाली, २४० घनसम्पातदायिनी–मेघोंको जल बरसानेकी आज्ञा देनेवाली, २४१ घण्टारवप्रिया–घण्टनादसे प्रसन्न होनेवाली, २४२ घ्राणा–घ्राणेन्द्रियकी अधिष्ठात्री देवी, २४३ घृणिसंतुष्टकारिणी–सूर्यको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाली ॥ ४५ ॥ २४४ घनारिमण्डला--अनेकों दैत्य जिनके शत्रु हैं, २४५ घूर्णा—सर्वत्र भ्रमण करनेवाली, २४६ घृताची--सरस्वतीरूपा अथवा रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी, २४७ घनवेगिनी–प्रचण्ड

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेगवाली, २४८ ज्ञानधातुमयी–चिन्मय धातुओंसे बनी हुई, २४९ चर्चा–परिभापण-क्रियारूपा, २५० चर्चिता–चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंसे सुपूजिता, २५१ चारुहासिनी-जिनका मुखमंडल सदा हँसता रहता है ॥ ४६ ॥ २५२ चटुला–चञ्चल स्वभाववाली लक्ष्मीस्वरूपा, २५३ चंडिका–शत्रुओंके लिए प्रचण्ड रूप धारण करनेवाली अथवा क्रोधयुक्त, २५४ चित्रा–अद्भुत रूपोंसे सम्पन्न, २५५ चित्रमाल्यविभूषिता—रंग-बिरंगी मालाओंसे विभूषित, २५६ चतुर्भुजा–चार भुजाओंसे शोभा पानेवाली, २५७ चारुदन्ता-जिनके दाँत परम मनोहर हैं, २५८ चातुरी—चातुर्यकी मूर्ति, २५९ चरितप्रदा–भक्तोंको (अपने आचरणों द्वारा) सदाचारकी शिक्षा प्रदान करनेवाली ॥४७॥ २६० चूलिका–देवियोंमें चोटीका सर्वोच्च स्थान अपने लिए सुरक्षित रखनेवाली, २६१ चित्रवस्त्रान्ता—विचित्र (रङ्ग-बिरङ्गे) वस्त्रोंको धारण करनेवाली, २६२ चंद्रमःकर्णकुण्डला – जिनके कानोंमें चंद्राकार कुंडल विराजमान हैं, २६३ चंद्रहासा—जिनकी हँसी चंद्रमाके समान आह्लाद उत्पन्न करनेवाली है, २६४ चारुदात्री–सुन्दर वस्तुएँ देनेवाली, २६५ चकोरा–चंद्रस्वरूप परमात्मामें चकोरीके समान अनुरक्त, २६६ चंद्रहासिनी–चंद्रमाको भी अपने मुखचंद्र द्वारा आह्लादित करनेवाली ॥४८॥ २६७ चंद्रिका—ज्योत्स्नास्वरूपिणी, २६८ चंद्रधात्री—चंद्रमाको (मस्तकपर) धारण करनेवाली, २६९ चौरी—अपनी शक्तिको छिपाकर रखनेवाली, २७० चौरा—भक्तोंके पापोंका अपहरण करनेवाली, २७१ चंडिका—चंडिका नामसे प्रसिद्ध, २७२ चञ्चद्वाग्वादिनी—चञ्चलतापूर्वक (तर्जीसे) भाषण करनेवाली, २७३ चंद्रचूडा—जिनकी

चित्रमाल्यविभूषिता ॥ चतुर्भुजा चारुदंता चातुरी चरितप्रदा ॥४७॥ चूलिका चित्रवस्त्रांता चन्द्रमःकर्णकुण्डला ॥ चन्द्रहासा चारुदात्री चकोरी चन्द्रहासिनी ॥ ४८ ॥ चन्द्रिका चन्द्रधात्री च चौरी चौरा च चंडिका ॥ चंचद्वाग्वादिनी चन्द्रचूडा चोरविनाशिनी ॥ ४९ ॥ चारुचन्दनलिप्तांगी चंचच्चामरवीजिता ॥ चारुमध्या चारुगतिश्चंदिला चंद्ररूपिणी ॥५०॥ चारुहोमप्रिया चार्वाचरिता चक्रबाहुका ॥ चन्द्रमंडलमध्यस्था चन्द्रमंडल-दर्पणा ॥५१॥ चक्रवाकस्तनी चेष्टा चित्रा चारुविलासिनी ॥ चित्स्वरूपा चन्द्रवती चन्द्रमाश्चंदनप्रिया ॥५२॥ चोदयित्री चिरप्रज्ञा चातका चारु-हेतुकी ॥ छत्रयाता छत्रधरा छाया छंदःपरिच्छदा ॥ ५३ ॥ छायादेवी छिद्रनखा छन्नेन्द्रियविसर्पिणी ॥ छंदोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठांता छिद्रोपद्रवभेदिनी

चूड़ामें चंद्रमा विराजमान हैं, २७४ चोरविनाशिनी—स्तेय कर्म करनेवालोंका संहार करनेमें तत्पर ॥ ४९ ॥ २७५ चारुचन्दनलिप्तांगी—जिनके सभी अंग उत्तम चन्दनसे अनुलिप्त हैं, २७६ चञ्चच्चामरवीजिता—डुलाये जाते हुए चँवरोंसे सेवित, २७७ चारुमध्या—मनोहर कटिवाली, २७८ चारुगतिः—सुन्दर गतिसे सम्पन्न, २७९ चन्दिला कर्नाटक देशकी सुप्रसिद्ध देवी, २८० चन्द्ररूपिणी—चन्द्रस्वरूपिणी देवी ॥ ५० ॥ २८१ चारुहोमप्रिया—श्रेष्ठ हवनसे जो परम प्रसन्न होती हैं, २८२ चार्वाचरिता—पवित्र आचरणवाली, २८३ चक्रबाहुका–सुदर्शनचक्रको हाथमें धारण करनेवाली, २८४ चन्द्रमण्डलमध्यस्था–चन्द्रमण्डलके मध्यमें विराजनेवाली, २८५ चन्द्रमण्डलदर्पणा–चन्द्रमण्डलको ही दर्पणके रूपमें धारण करनेवाली ॥ ५१ ॥ २८६ चक्रवाकस्तनी–चक्रवाकके समान स्तनोंमे सुशोभित, २८७ चेष्टा–जिनके कारण चेतन प्राणियोंमें सब प्रकारकी चेष्टाएँ होती हैं, अथवा चेष्टारूपा, २८८ चित्रा–अद्भुत चरित्रोंवाली, २८९ चारुविलासिनी–मनोहर विलाससे सम्पन्न, २९० चित्स्वरूपा–चिन्मयी भगवती, २९१ चंद्रवती-अपने ललाटपर चंद्रमाको धारण करने-वाली, २९२ चंद्रमा–चंद्रस्वरूपा, २९३ चन्दनप्रिया–चन्दन जिन्हें अत्यन्त प्रिय है ॥५२॥ २९४ चोदयित्री–हृदयमें प्रेरणा प्रदान करनेवाली, २९५ चिरप्रज्ञा–सनातन विद्यास्वरूपिणी, २९६ चातका–चातकके समान अटल टेकवाली, २९७ चारुहेतुकी–जगत्‌की रचना करनेमें सुन्दर हेतुओंसे सम्पन्न, २९८ छत्रयाता–चलते समय उपासकगण जिनके मस्तकपर छत्र ताने रहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, २९९ छत्रधरा—छत्र धारण करनेवाली, ३०० छाया—छायास्वरूपिणी, ३०१ छन्दःपरिच्छदा—वेदसे ही जिनके अभिप्रायका ज्ञान होता है ॥५३॥ ३०२ छायादेवी—छायाकी अधिष्ठात्री देवी, ३०३ छिद्रनखा—छिद्रयुक्त नखोंवाली, ३०४ छन्नेन्द्रियविसर्पिणी—इन्द्रियविजयी योगियोंके पास पधारनेवाली, ३०५ छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठान्ता— अनुष्टुप् छन्दवाला गायत्रीमंत्र जिनका स्वरूप है, ३०६ छिद्रोपद्रवभेदिनी—कपटरूप उपद्रवको शान्त करनेवाली, ५४॥ ३ ७ छेदा—पापका उच्छेद करनेवाली, ३०८ छत्रेश्वरी—जगत्पर एकछत्र शासन करनेवाली, ३०९ छिन्ना—छिन्नमस्तकस्वरूपिणीदेवी, ३१० छुरिका--छुरिका नामक शस्त्र धारण करनेवाली, ३११ छेदनप्रिया--दैत्योंको छिन्न-भिन्न कर डालना जिन्हें परम प्रिय है, ३१२ जननी—जगत्को जन्म देनेवाली, ३१३ जन्मरहिता—जिनका कभी जन्म नहीं होता वे देवी, ३१४ जातवेदाः--अग्निस्वरूपिणी, ३१५ जगन्मयी—सम्पूर्ण जगत्के रूपमें अभिव्यक्त॥५५॥ ३१६ जाह्नवी—राजा जह्नु के यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट होनेवाली गङ्गारूपा, ३१७ जटिला—साधारण पुरुष जिनके रहस्यको नहीं समझ पाते, ३१८ जेत्री—सर्वत्र विजय प्राप्त करनेवाली, ३१९ जरामरणवर्जिता—जरा और मरणसे रहित नित्य तरुणीरूपा, ३२० जम्बूद्वीपवती--जम्बूद्वीपकी स्वामिनी, ३२१ ज्वाला—तेजःस्वरूपिणी ज्वाला नामकी देवी, ३२२ जयन्ती—जयशीला, जयन्ती नामकी देवी, ३२३ जलशालिनी—विश्वको जल देनेवाली जलशालिनी शताक्षी देवी ॥ ५६ ॥ ३२४ जितेन्द्रिया—इन्द्रियोंपर विजय पायी हुई, ३२५ जितक्रोधा—जिन्होंने क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली है, ३२६ जिता-

॥ ५४ ॥ छेदा छत्रेश्वरी छिन्ना छुरिका छेदनप्रिया ॥ जननी जन्मरहिता जातवेदा जगन्मयी ॥५५॥ जाह्नवी जटिला जेत्री जरामरणवर्जिता ॥ जंबूद्वीपवती ज्वाला जयन्ती जलशालिनी ॥ ५६ ॥ जितेंद्रिया जितक्रोधा जितामित्रा जगत्प्रिया ॥ जातरूपमयी जिह्वा जानकी जगती जरा ॥ ५७ ॥ जनित्री जह्नुतनया जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ज्वालामुखी जपवती ज्वरघ्नी जितविष्टपा ॥ ५८ ॥ जिताक्रांतमयी ज्वाला जाग्रती ज्वरदेवता ॥ ज्वलंती जलदा ज्येष्ठा ज्याघोषस्फोटदिङ्मुखी ॥ ५९ ॥ जंभिनी जृम्भणा जृम्भा ज्वलन्माणिक्यकुण्डला ॥ झिंझिका

मित्रा—शत्रुओंपर सदा विजय प्राप्त करनेवाली, ३२७ जगत्प्रिया—समस्त जगत् जिनसे प्रेम करता है, ३२८ जातरूपमयी—परम सुन्दर रूपवाली, ३२९ जिह्वा—प्राणियोंके मुखमें जिह्वारूपसे विराजमान, ३३० जानकी—राजा जनकके यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट होनेवाली, ३३१ जगती—विश्वरूपा अथवा सर्वत्र व्यापिनी, ३३२ जरा—संध्याकालमें वृद्धरूप धारण करनेवाली, ।५७॥ ३३३ जनित्री—जिन्होंने अपने शरीरको प्रकट किया है, ३३४ जह्नुतनया—जह्नुकी पुत्री, ३३५ जगत्त्रयहितैषिणी—तीनों जगत्के हित-साधनकी इच्छा रखनेवाली, ३३६ ज्वालामुखी—ज्वालामुखी पर्वत जिनका रूप है, ३३७ जपवती—सदा ब्रह्मका चिन्तन करनेवाली, ३३८ ज्वरघ्नी—जिनकी कृपासे सभी प्रकारके ज्वर शान्त हो जाते हैं, ३३९ जितविष्टपा—अखिल जगत्पर विजय प्राप्त करनेवाली ॥५८॥ ३४० जिताक्रान्तमयी--सबपर प्रभाव डालनेवाली विजयशालिनी देवी, ३४१ ज्वाला—प्रचण्ड तेजःस्वरूप जिनका विग्रह है, ३४२ जाग्रती—जिनपर निद्रा अपना प्रभाव नहीं डाल सकती, ३४३ ज्वरदेवता--ज्वरोंकी अधिष्ठात्री देवी, ३४४ ज्वलन्ती—सदा देदीप्यमान रहनेवाली, ३४५ जलदा—मेघोंके द्वारा जल बरसानेवाली, ३४६ ज्येष्ठा—परमादरणीया, ३४७ ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी—जिनके धनुषकी टंकोर दिशाओं-विदिशाओंमें स्पष्ट रूपसे सुनायी पड़ती है ॥५९॥ ३४८ जम्भिनी—दाँतोंसे दैत्योंको चूर्ण करनेवाली, ३४९ जृम्भणा--समयानुसार जँभाईकी मुद्रासे सम्पन्न, ३५० जृम्भा—जृम्भास्वरूपिणी ३५१ ज्वलन्माणिक्यकुण्डला—प्रज्वलित मणिमय कुण्डलोंसे शोभा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पानेवाली, ३५२ झिंझिका–झींगुर जैसे क्षुद्र प्राणी भी जिनके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, ३५३ झणनिर्घोषा–कंकणकी झनकार-ध्वनिसे सदा मुखरित, ३५४ झंझामारुतवेगिनी–झंझावातके समान भयंकर वेगवाली ॥ ६० ॥ ३५५ झल्लरीवाद्यकुशला–झल्लरी (ढोलक) बाजेको बजानेमें निपुण, ३५६ ञरूपा–बलीवर्दरूपा, ३५७ ञभुजा–बलीवर्दके समान पराक्रमी दोनों भुजाओंसे सुशोभित, ३५८ टङ्कबाणसमायुक्ता–फरसा और बाण धारण करनेवाली, ३५९ टङ्किनी–संग्राममें धनुष टंकारनेवाली, ३६० टङ्कभेदिनी–शत्रुके धनुषकी टंकोरको भेदन करनेवाली ॥ ६१ ॥ ३६१ टङ्कीगणकृताघोषा–रुद्रगणके समान गम्भीर घोष करनेवाली, ३६२ टङ्कनीयमहोरसा–वर्णनीय महान् वक्षःस्थलवाली ३६३ टङ्कारकारिणी देवी–टङ्कार शब्द करनेवाली देवियोंकी स्वामिनी, ३६४ ठठशब्दनिनादिनी–ठ-ठ शब्द करके शत्रुओंको भयभीत करनेवाली ॥६२॥ ३६५ डामरी–तन्त्रशास्त्रकी अधिष्ठात्री देवी, ३६६ डाकिनी–डाकिनी-स्वरूपा, ३६७ डिम्भा–बालरूपा, ३६८ डुण्डुमारैकनिर्जिता–डुण्डुमार नामक राक्षसको परास्त करनेवाली, ३६९ डामरीतन्त्रमार्गस्था–डामरतन्त्रके साधनमें स्थित, ३७० डमड्डमरुनादिनी–डमड्-डमड् ध्वनिसे डमरू बजानेवाली ॥६३॥ ३७१ डिण्डीरवसहा–डिण्डी नामक वाद्यविशेषकी ध्वनिको सहन करनेवाली, ३७२ डिम्भलसत्क्रीडापरायणा–मातृरूपसे बालकोंके साथ उल्लासपूर्वक क्रीड़ा करनेमें संलग्न रहनेवाली, ३७३ ढुण्ढिविघ्नेशजननी–ढुण्ढिराज गणेशकी माता, ३७४ ढक्काहस्ता–ढक्का नामक बाजेको हाथोंमें लिये हुए, ३७५

झणनिर्घोषा झंझामारुतवेगिनी ॥ ६० ॥ झल्लरीवाद्यकुशला ञरूपा ञभुजा स्मृता ॥ टंकबाणसमायुक्ता टंकिनी टंकभेदिनी ॥ ६१ ॥ टंकीगणकृताघोषा टंकनीयमहोरसा ॥ टंकारकारिणी देवी ठठशब्दनिनादिनी ॥ ६२ ॥ डामरी डाकिनी डिम्भा डुंडुमारैकनिर्जिता ॥ डामरीतंत्रमार्गस्था डमड्डमरुनादिनी ॥ ६३ ॥ डिंडीरवसहा डिम्भलसत्क्रीडापरायणा ॥ ढुंढिविघ्नेशजननी ढकाहस्ता ढिलिव्रजा ॥६४॥ नित्यज्ञाना निरुपमा निर्गुणा नर्मदा नदी ॥ त्रिगुणा त्रिपदा तंत्री तुलसी तरुणा तरुः ॥ ६५ ॥ त्रिविक्रमपदाक्रांता तुरीयपदगामिनी ॥ तरुणादित्यसंकाशा तामसी तुहिनातुरा ॥ ६६ ॥ त्रिकालज्ञानसंपन्ना त्रिवली च त्रिलोचना ॥ त्रिशक्तिस्त्रिपुरा तुंगा तुरंगवदना तथा॥ ६७ ॥ तिमिंगिलगिला तीव्रा

ढिलिव्रजा–ढिलिनामक गण जिनके सहयोगी हैं ॥६४॥ ३७६ नित्यज्ञाना–नित्य ज्ञानमयी, ३७७ निरुपमा–जिनकी उपमा दूसरे किसीसे नहीं दी जा सकती, ३७८ निर्गुणा–निर्गुण-स्वरूपिणी (त्रिगुणसे रहित) देवी, ३७९ नर्मदा–नर्मदासंज्ञक नदीरूपसे विराजमान, ३८० नदी–अव्यक्त शब्द करनेवाली सरिता, ३८१ त्रिगुणा–सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंके रूपमें प्रकट, ३८२ त्रिपदा–तीन पैरोंवाली, ३८३ तन्त्री–तन्त्रशास्त्र जिनके स्वरूप हैं, ३८४ तुलसीतरुणातरुः–वृक्षोंमें तरुणी तुलसीरूपसे विराजमान ॥ ६५ ॥ ३८५ त्रिविक्रमपदाक्रान्ता–भगवान् वामनके चरणसे आक्रान्त धरणीरूपा, ३८६ तुरीयपदगामिनी–चार पदोंसे गमन करनेवाली, ३८७ तरुणादित्यसंकाशा–प्रचण्ड सूर्यके समान प्रकाशसे सम्पन्न, ३८८ तामसी–दानववधके समय तामस रूप धारण करनेवाली, ३८९ तुहिना–चन्द्रमाके समान शीतल किरणोंवाली, ३९० तुरा–शीघ्रगामिनी ॥ ६६ ॥ ३९१ त्रिकालज्ञानसम्पन्ना–भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालका पूर्ण ज्ञान रखनेवाली, ३९२ त्रिवेणी–गङ्गा-यमुना-सरस्वतीरूपा, ३९३ त्रिलोचना–तीन नेत्रोंवाली देवी, ३९४ त्रिकालज्ञानसम्पन्ना–भूत, भविष्य और वर्तमान तीन शक्तियोंके रूपमें विराजमान अथवा इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिरूपा, ३९५ त्रिपुरा–त्रिपुरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवीरूपा, ३९६ तुङ्ग–श्रेष्ठ विग्रहवाली, ३९७ तुरङ्गवदना–हयग्रीवावतारके समय उनकी शक्तिरूपसे विराजमान ॥६७॥ ३९८ तिमिङ्गिलगिला–मत्स्योंको खानेवाले तिमिङ्गिलको भी उदरस्थ कर लेनेवाली, ३९९ तीव्रा–परम चञ्चल, ४०० त्रिस्रोता–तीन धाराओंसे सम्पन्न, ४०१ तामसादिनी–अज्ञानरूपी अन्धकारको खा जानेवाली, ४०२ तंत्रविशेषज्ञ-तंत्र-मंत्रकी विशेषरूपसे जानकार, ४०३ तनुमध्या- पतली कमरवाली, ४०४ त्रिविष्टपा–स्वर्गलोक जिनका स्वरूप है ॥६८॥ ४०५ त्रिसंध्या–तीनों संध्याओंकी आराध्या देवी, ४०६ त्रिस्तनी–राजा मलयध्वजके यहाँ कन्यारूपसे विराजमान, ४०७ तोषासंस्था-सदा संतुष्ट रहनेवाली, ४०८ तालप्रतापिनी–ताली बजाकर शत्रुओंको आतङ्कित करनेवाली, ४०९ ताटङ्किनी–धनुषका टंकोर करनेमें परम प्रवीण, ४१० तुषारामा–बर्फके समान शुभ्र कान्तिवाली, ४११ तुहिनाचलवासिनी–हिमालय पर्वतपर निवास करनेवाली ॥६९॥ ४१२ तन्तुजालसमायुक्ता–जिनका तन्तुजाल जगत्‌में व्याप्त है, ४१३ तारहारावलिप्रिया--चमकीले तारोंसे युक्त हार जिन्हें परम प्रिय हैं, ४१४ तिलहोमप्रिया--तिलके हवनसे प्रसन्न होनेवाली, ४१५ तीर्था–तीर्थस्वरूपिणी देवी, ४१६ तमालकुसुमाकृति–तमाल-पुष्पके सदृश श्याम आकृतिवाली ॥७०॥ ४१७ तारका—अपने भक्तोंको तारनेवाली, ४१८ त्रियुता—तीन गुणों अथवा तीन वेदांसे युक्त, ४१९ तन्वी—सूक्ष्म शरीरसे सुशोभित, ४२० त्रिशंकुपरिवारिता–राजा त्रिशंकुके द्वारा उपास्यरूपमें वरण की हुई, ४२१ तलोदरी--पृथ्वी जिनके उदररूपसे शोभा पाती है, ४२२ तिलाभूषा-तिलपुष्पके समान नील कान्तिवाली, ४२३ ताट-

त्रिस्रोता तामसादिनी ॥ तंत्रमंत्रविशेषज्ञा तनुमध्या त्रिविष्टपा ॥६८॥ त्रिसन्ध्या त्रिस्तनी तोषासंस्था तालप्रतापिनी ॥ ताटंकिनी तुषाराभा तुहिनाचलवासिनी ॥ ६९ ॥ तंतुजालसमायुक्ता तारहारावलिप्रिया ॥ तिलहोमप्रिया तीर्था तमालकुसुमाकृतिः ॥ ७० ॥ तारका त्रियुता तन्वी त्रिशंकुपरिवारिता ॥ तलोदरी तिलाभूषा ताटंकप्रियवाहिनी ॥ ७१ ॥ त्रिजटा तित्तिरी तृष्णा त्रिविधा तरुणाकृतिः ॥ तप्तकांचनसंकाशा तप्तकांचनभूषणा ॥ ७२ ॥ त्रैयंबका त्रिवर्गा च त्रिकालज्ञानदायिनी ॥ तर्पणा तृप्तिदा तृप्ता तामसी तुंबुरुस्तुता ॥ ७३ ॥ तार्क्ष्यस्था त्रिगुणाकारा त्रिभंगीतनुवल्लरिः ॥ थात्कारी थारवा थांता दोहिनी दीनवत्सला ॥ ७४ ॥ दानवांतकरी दुर्गा दुर्गासुरनिबर्हिणी ॥ देवरीतिर्दिवारात्रिर्द्रौपदी दुंदुभि-

ङ्कप्रियवाहिनी–प्रेमपूर्वक कानोंमें कर्णफूल धारण करनेवाली ॥७१॥ ४२४ त्रिजटा–तीन वेणियोंसे सुशोभित, ४२५ तित्तिरी–'तित्ति' इस प्रकार अव्यक्त ध्वनि करनेवाली, ४२६ तृष्णा देवी–तृष्णाके रूपमें विराजमान, ४२७--त्रिविधा–तीन प्रकारके रूप धारण करनेवाली, ४२८ तरुणाकृति-तरुण अवस्थासे सुशोभित, ४२९ तप्तकाञ्चनसंकाशा–तपाये हुए सुवर्णके सदृश दीप्तिसे सम्पन्न, ४३० तप्तकाञ्चनभूषणा—तपे हुए स्वर्णभूषणसे अलंकृत ॥७२॥ ४३१ त्रैयम्बका–तीनों लोकोंको प्रकट करनेवाली माता, ४३२ त्रिवर्गा–धर्म, अर्थ और काम जिनके स्वरूप हैं, ४३३ त्रिकालज्ञानदायिनी--भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालका ज्ञान देनेवाली,४३४ तर्पणा–तर्पणस्वरूपा, ४३५ तृप्तिदा-तृप्ति प्रदान करनेवाली, ४३६ तृप्ता--अपनी महिमामें तृप्त, ४३७ तामसी--उग्ररूपा, ४३८ तुम्बुरुस्तुता-तुम्बुरु जिनकी सदा स्तुति करते हैं ॥७३॥ ४३९ तार्क्ष्यसंस्था--गरुड़पर विराजनेवाली लक्ष्मीरूपा, ४४० त्रिगुणाकारा--जिनके श्रीविग्रहमें सात्त्विक, राजस और तामस तीनों गुण हैं, ४४१ त्रिभङ्गी--तीन स्थानोंमें वक्रतासे युक्त, ४४२ तनुवल्लरि--कोमल लताकी भाँति जिनके शरीरके अवयव हैं, ४४३ थात्कारी--समरांगणमें 'थात्' इस शब्दका उच्चारण करनेवाली, ४४४ थारवा--भयसे मुक्त करनेवाले शब्दोंका उच्चारण करनेवाली, ४४५ थान्ता--मंगलमयी देवी, ४४६ दोहिनी--इच्छानुसार दोहन करने योग्य अर्थात् कामधेनुस्वरूपा, ४४७ दीनवत्सला--दीनजनोंपर कृपा करनेवाली ॥७४॥ ४४८ दानवान्तकरी--दानवोंका अन्त करनेवाली, ४४९ दुर्गा–संकटोंका निवारण करना जिनका स्वाभाविक गुण है, ४५० दुर्गासुर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निबर्हिणी–दुर्ग नामक असुरको मारनेवाली, ४५१ देवरीतिः–दिव्यमार्गसे सम्पन्न, ४५२ दिवारात्रिः—दिन और रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी, ४५३ द्रौपदी—द्रौपदीरूपसे विराजमान, ४५४ दुन्दुभिस्वना—दुन्दुभिके समान उच्च घोष करनेवाली ॥ ७५ ॥ ४५५ देवयानी—देवयानी नामक शुक्राचार्यकी कन्याके रूपमें विराजमान, ४५६ दुरावासा—दुर्गम आवासवाली, ४५७ दारिद्र्योद्भेदिनी–दरिद्रताका नाश करनेवाली, ४५८ दिवा–स्वर्गमयी देवी, ४५९ दामोदरप्रिया–भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया, ४६० दीप्ता–परम प्रदीप्तस्वरूपिणी, ४६१ दिग्वासा–संपूर्ण दिशाएँ जिनके वस्त्र हैं (उलंगिनी), ४६२ दिग्विमोहिनी—समस्त दिशाओंको मोहित करनेवाली ॥ ७६ ॥ ४६३ दण्डकारण्यनिलया–दण्डकारण्यमें निवास करनेवाली, ४६४ दण्डिनी—जिनके करकमलमें दण्ड शोभा पाता है, ४६५ देवपूजिता–देवताओंके द्वारा पूजा प्राप्त करनेवाली, ४६६ देववन्द्या–देवताओंकी परम वन्दनीया देवी, ४६७ दिविषदा–सदा स्वर्गमें विराजनेवाली, ४६८ द्वेषिणी—राक्षसोंके प्रति द्वेष रखनेवाली, ४६९ दानवाकृतिः—दानवों जैसी आकृति धारण करनेवाली ॥ ७७ ॥ ४७० दीनानाथस्तुता—दीनजनोंकी रक्षा करनेवाले भगवानके द्वारा स्तुति प्राप्त करनेवाली, ४७१ दीक्षा—दीक्षास्वरूपिणी, ४७२ दैवतादिस्वरूपिणी—देवताओंकी आदिस्वरूपा, ४७३ धात्री–धगत्का धारण-पोषण करनेवाली, ४७४ धनुर्धरा—धनुष धारण करनेवाली, ४७५ धेनुः–कामधेनुस्वरूपिणी, ४७६ धारिणी–जगत्को धारण करनेवाली, ४७७ धर्मचारिणी–धर्मका आचरण करनेवाली ॥७८॥ ४७८ धुरंधरा–अखिल जगत्का भार

स्वना ॥ ७५ ॥ देवयानी दुरावासा दारिद्र्योद्भेदिनी दिवा ॥ दामोदरप्रिया दीप्ता दिग्वासा दिग्वमोहिनी ॥७६॥ दंडकारण्यनिलया दंडिनी देवपूजिता ॥ देववंद्या दिविषदा द्वेषिणी दानवाकृतिः ॥७७॥ दीनानाथस्तुता दीक्षा दैवतादिस्वरूपिणी ॥ धात्री धनुर्धरा धेनुर्धारिणी धर्मचारिणी ॥७८॥ धुरंधरा धराधारा धनदा धान्यदोहिनी ॥ धर्मशीला धनाध्यक्षा धनुर्वेदविशारदा ॥७९॥ धृतिर्धन्या धृतपदा धर्मराजप्रिया ध्रुवा ॥ धूमावती धूमकेशी धर्मशास्त्रप्रकाशिनी ॥ ८० ॥ नंदा नंदप्रिया निद्रा नृनुता नंदनात्मिका ॥ नर्मदा नलिनी नीला नीलकंठसमाश्रया ॥ ८१ ॥ नारायणप्रिया नित्या निर्मला निर्गुणा निधिः ॥ निराधारा निरुपमा नित्यशुद्धा निरंजना ॥८२॥ नादबिंदुकलातीता नादबिंदुकलात्मिका ॥ नृसिंहिनी नगधरा

सहन करनेवाली, ४७९ धराधरा–पृथ्वी अथवा नदीकी धारके रूपमें विराजमान धरतीकी आधाररूपा, ४८० धनदा–धन प्रदान करनेवाली, ४८१ धान्यदोहिनी–धान्य दोहन करनेवाली, ४८२ धर्मशीला–सद्धर्मका पालन करनेवाला, ४८३ धनाध्यक्षा–धनको स्वामिनी, ४८४ धनुर्वेदविशारदा–धनुर्वेदके रहस्यको भलीभाँति जाननेवाली ॥७९॥ ४८५ धृतिः–धारणशक्ति या धैर्यरूपिणी, ४८६ धन्या–सदा ही धन्य रहनेवाली, ४८७ धृतपदा–उत्तम पदपर प्रतिष्ठित, ४८८ धर्मराजप्रिया–धर्मराजके यहाँ प्रियारूपसे सुशोभित, ४८९ ध्रुवा–अपने निश्चयसे कभी न डिगनेवाली, ४९० धूमावती–धूमावतो नामसे प्रसिद्ध देवी, ४९१ धूमकेशी–धुएँके समान धूमिल केशवाली, ४९२ धर्मशास्त्रप्रकाशिनी–धर्मशास्त्रोंको प्रकट करनेवाली ॥८० ४९३ नन्दा–आनन्दस्वरूपिणी, ४९४ नन्दप्रिया—नन्दके घर यशोदारूपसे विराजमान, ४९५ निद्रा—निद्रारूप धारण करनेवाली अर्थात् योगनिद्रा, ४९६ नृनुता—अखिल मानव जिनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, ४९७ नन्दनात्मिका—नन्दके घर पुत्रीरूपसे प्रकट होनेवाली, ४९८ नर्मदा—हास्यभरी वाणी बोलनेवाली या नर्मदा नदीरूपा ४९९ नलिनी—कमलिनीस्वरूपा, ५०० नीला—जिनके विग्रहका वर्ण नील है, ५०१ नीलकण्ठसमाश्रया—नीलकण्ठ महादेवको आश्रय प्रदान करनेवाली ॥ ८१ ॥ ५०२ नारायणप्रिया—भगवान् नारायणकी परम प्रिया लक्ष्मीदेवी, ५०३ नित्या—नित्यरूपिणी, ५०४ निर्मला—मलरहित विग्रह धारण करनेवाली, ५०५ निर्गुणा—जो तीनों गुणोंसे रहित हैं, ५०६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निधिः—सम्पत्तिस्वरूपिणी, ५०७ निराधारा—जिन्हें किसीका आश्रय अपेक्षित नहीं है, ५०८ निरुपमा—अनुपम रूप धारण करनेवाली, ५०९ नित्यशुद्धा—सदा परम पवित्र रहनेवाली ५१० निरञ्जना—मायारहित ॥ ८२ ॥ ५११ नादबिन्दुकलातीता—नाद-बिन्दु-कलासे परे, ५१२ नादबिन्दुकलात्मिका—नाद-बिन्दुकलारूपिणी, ५१३ नृसिंहरूपा—भगवान् नृसिंह जिनके प्रियतम हैं, ५१४ नगधरा—पर्वतोंको धारण करनेवाली, ५१५ नृपनागविभूषिता—नागराजसे विभूषित ॥ ८३ ॥ ५१६ नरकक्लेशशमनी—नरकके कष्टको दूर करनेवाली, ५१७ नारायणपदोद्भवा—भगवान् नारायणके चरणसे प्रकट गङ्गा-स्वरूपिणी, ५१८ निरवद्या–निर्दोषरूपा, ५१९ निराकारा–आकाररहित (भौतिकरूपसे रहित), ५२० नारदप्रियकारिणी–नारदजीका प्रिय करनेवाली ॥८४॥ ५२१ नानाज्योतिःसमाख्याता–नाना प्रकारकी ज्योतिरूपसे विख्यात, ५२२ निधिदा–अखिल वैभव देनेवाली, ५२३ निर्मलात्मिका–शुद्धस्वरूपिणी, ५२४ नवसूत्रधरा–नवीन सूत्र धारण करनेवाली, ५२५ नीतिः–नीतिस्वरूपिणी, ५२६ निरुपद्रवकारिणी–सारे उपद्रवोंको शान्त करनेवाली ॥८५॥ ५२७ नन्दजा—नन्दके घर पुत्रीरूपसे प्रकट, ५२८ नवरत्नाढ्या–नौ रत्नोंसे युक्त, ५२९ नैमिषारण्यवासिनी–नैमिषारण्यमें भगवती ललिता नामसे विराजनेवाली, ५३० नवनीतप्रिया–नवनीत अर्पण करनेपर तुरन्त प्रसन्न होनेवाली ५३१ नारी–नारीरूपसे संसारमें सुशोभित, ५३२ नीलजीमूतनिस्वना–नील मेघके समान भीषण गर्जन करनेवाली ॥ ८६ ॥ ५३३ निमेषिणी—निमेष जिनका रूप है, ५३४ नदीरूपा—

नृपनागविभूषिता ॥८३॥ नरकक्लेशशमनी नारायणपदोद्भवा ॥ निरवद्या निराकारा नारदप्रियकारिणी ॥८४॥ नानाज्योतिःसमाख्याता निधिदा निर्मलात्मिका ॥ नवसूत्रधरा नीतिर्निरुपद्रवकारिणी ॥ ८५ ॥ नंदजा नवरत्नाढ्या नैमिषारण्यवासिनी ॥ नवनीतप्रिया नारी नीलजीमूतनिस्वना ॥८६॥ निमेषिणी नदीरूपा नीलग्रीवा निशीश्वरी ॥ नामावलिर्निशुंभघ्नी नागलोकनिवासिनी ॥ ८७ ॥ नवजांबूनदप्रख्या नागलोकाधिदेवता ॥ नूपुराक्रान्तचरणा नरचित्तप्रमोदिनी ॥ ८८ ॥ निमग्ना रक्तनयना निर्घातसमनिस्वना ॥ नंदनोद्याननिलया निर्व्यूहोपचारिणी ॥ ८९ ॥ पार्वती परमोदारा परब्रह्मात्मिका परा ॥ पंचकोशविनिर्मुक्ता पंचपातकनाशिनी ॥९०॥ परचित्तविधानज्ञा पंचिका पंचरूपिणी ॥ पूर्णिमा परमा प्रीतिः परतेज-

नदीरूपसे विराजनेवाली, ५३५ नीलग्रीवा–जिनकी ग्रीवामें नीलवर्ण सुशोभित है, ५३६ निशीश्वरी–रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी, ५३७ नामावली—अनेक नामोंसे प्रसिद्ध, ५३८ निशुम्भघ्नी–निशुम्भ नामक राक्षसका वध करनेवाली, ५३९ नागलोकनिवासिनी–पाताललोकमें निवास करनेवाली ॥८७॥ ५४० नवजाम्बूनदप्रख्या–नूतन सुवर्णके समान कान्तिवाली, ५४१ नागलोकाधिदेवता–पातालकी अधिष्ठात्री देवी, ५४२ नूपुराक्रान्तचरणा–चरणोंमें सुन्दर नूपुर धारण करनेवाली, ५४३ नरचित्तप्रमोदिनी—मानवोंके चित्तको आह्लादित करनेवाली, ॥ ८८ ॥ ५४४ निमग्नारक्तनयना–धँसी हुई लाल आँखोंवाली, ५४५ निर्घातसमनिस्वना–तूफानके समान शब्द करनेवाली, ५४६ नन्दनोद्याननिलया–दिव्य नन्दनवनमें विहार करनेवाली, ५४७ निर्व्यूहोपचारिणी–बिना व्यूह बनाये आकाशमें स्वच्छन्द विचरनेवाली, ॥८९॥ ५४८ पार्वती–पार्वती नामसे विख्यात, ५४९ परमोदारा–अतिशय उदार स्वभाववाली, ५५० परब्रह्मात्मिका–परब्रह्मस्वरूपिणी, ५५१ परा–पराविद्या नामसे प्रसिद्ध, ५५२ पंचकोशविनिर्मुक्ता–अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पाँच कोषोंसे रहित दिव्य विग्रहवाली, ५५३ पंचपातकनाशिनी–पाँच प्रकारके पापोंका नाश करनेवाली ॥९०॥ ५५४ परचित्तविधानज्ञा–दूसरेके चित्तकी गतिविधिको जाननेवाली, ५५५ पंचिका—पंचिका देवीके नामसे सुविख्यात,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

५५६ पञ्चरूपिणी–पञ्चस्वरूपिणी, ५५७ पूर्णिमा–पूर्ण कलाओंसे सम्पन्न, ५५८ परमा–सर्वोपरि श्रेष्ठतमा, ५५९ प्रीति–प्रीतिस्वरूपिणी, ५६० परतेजः–परम तेजोरूपिणी, ५६१ प्रकाशिनी–सर्वत्र प्रकाश फैलानेवाली ॥ ९१ ॥ ५६२ पुराणी–सनातनमयी देवी, ५६३ पौरुषी परम पुरुष–परमात्मासे सम्बन्ध रखनेवाली, ५६४ पुण्या–पुण्यमय विग्रह धारण करनेवाली, ५६५ पुण्डरीकनिमेक्षणा–प्रफुल्लित कमलके समान नेत्रोंसे सुशोभित, ५६६ पातालतलनिमग्ना–पातालतलमें प्रवेश करनेकी शक्ति रखनेवाली; ५६७ प्रीता–सदा प्रेममयो, ५६८ प्रीतिविवर्धिनी–प्रेमकी सदा वृद्धि करनेवाली ॥ ९२ ॥ ५६९ पावनी–पवित्र करनेवाली, ५७० पादसहिता–किरणोंसे शोभा पानेवाली, ५७१ पेशला–परम सुंदर विग्रहवाली, ५७२ पवनाशिनो–वायुका आहार करनेवाली, ५७३ प्रजापतिः–प्रजाजनोंकी रक्षा करनेमें तत्पर, ५७४ परिश्रान्ता–भक्तोंकी रक्षामें भलीप्रकार व्यस्त रहनेवाली, ५७५ पर्वतस्तनमंडला–पर्वताकार स्तनोंसे सुशोभित॥९३॥ ५७६, पद्मप्रिया–कमलसे अतिशय प्रेम रखनेवाली, ५७७ पद्मसंस्था–कमलके आसनपर विराजमान, ५७८ पद्माक्षी–कमलके समान नेत्रोंवाली, ५७९ पद्मसम्भवा–कमलसे प्रकट होनेवाली ब्रह्माणी; ५८० पद्मपत्रा–कमलपत्रके समान जगत्से निर्लिप्त, ५८१ पद्मपदा--कमल-जैसे चरणोंसे सुशोभित, ५८२ पद्मिनी-हाथमें कमल धारण किये रहनेवाली या स्त्रियोंमें श्रेष्ठ पद्मिनीरूपा ५८३ प्रियभाषिणी–प्रिय वचन बोलनेवाली ॥ ९४ ॥ ५८४ पशुपाशविनिर्मुक्ता–पाशविक पाशसे सदा मुक्त, ५८५ पुरन्ध्री–घरका कार्य सँभालनेवाली स्त्रीके रूपमें विराजमान, ५८६

प्रकाशिनी ॥ ९१ ॥ पुराणी पौरुषी पुण्या पुंडरीकनिभेक्षणा ॥ पातालतलनिर्मग्ना प्रीतिः प्रीतिविवर्धिनी ॥ ९२ ॥ पावनी पादसहिता पेशला पवनाशिनी ॥ प्रजापतिः परिश्रांता पर्वतस्तनमंडला ॥ ९३ ॥ पद्मप्रिया पद्मसंस्था पद्माक्षी पद्मसंभवा ॥ पद्मपत्रा पद्मपदा पद्मिनी प्रियभाषिणी ॥९४॥ पशुपाशविनिर्मुक्ता पुरंध्री पुरवासिनी ॥ पुष्कला पुरुषा पर्वा पारिजातसुमप्रिया ॥९५॥ पतिव्रता पवित्रांगी पुष्पहासपरायणा ॥ प्रज्ञावती-सुता पौत्री पुत्रपूज्या पयस्विनी ॥ ९६ ॥ पट्टिपाशधरा पंक्तिः पितृलोकप्रदायिनी ॥ पुराणी पुण्यशीला च प्रणतार्तिविनाशिनी ॥ ९७ ॥ प्रद्युम्न-जननी पुष्टा पितामहपरिग्रहा ॥ पुण्डरीकपुरावासा पुण्डरीकसमानना ॥९८॥ पृथुजंघा पृथुभुजा पृथुपादा पृथूदरी ॥ प्रवालशोभा पिंगाक्षी पीत-

पुरवासिनी–नगरमें निवास करनेवाली, ५८७ पुष्कला–सर्वोत्कृष्ट देवी, ५८८ पुरुषा–पुरुषार्थसे सम्पन्न, ५८९ पर्वा–पुण्य पर्वपर प्राप्त होनेवाली या स्वयं पर्वस्वरूपा, ५९० पारिजातसुमप्रिया–पारिजातके पुष्पसे परम प्रसन्न होनेवाली ॥९५॥ ५९१ पतिव्रता--पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली, ५९२ पवित्रांगी—पवित्र अंगोंसे सम्पन्न, ५९३ पुष्पहासपरायणा—प्रफुल्लित पुष्पके समान हँसनेवाली, ५९४ प्रज्ञावतीसुता–प्रज्ञावतीके यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट, ५९५ पौत्री–पौत्रीरूपसे विराजमान, ५९६ पुत्रपूज्या–पुत्रसे पूजा प्राप्त करनेवाली, ५९७ पयस्विनी–जगत्के लिये अमृतमय दुग्ध प्रदान करनेवाली ॥९६॥५९८ पट्टिपाशधरा–भुजाओंमें पट्टिश एवं पाश धारण करनेवाली, ५९९ पङ्क्तिः--श्रेणीबद्ध, ६०० पितृलोकप्रदायिनी–जिनकी कृपासे प्राणी पितरोंके लोकमें पहुँच जाता है, ६०१ पुराणी--सदासे विराजमान रहनेवाली सनातनी देवी, ६०२ पुण्यशीला–पवित्र आचरणवाली, ६०३ प्रणतार्तिविनाशिनी–प्रणतजनोंका दुःखनाश करनेवाली ॥९७॥६०४ प्रद्युम्नजननी–प्रद्युम्नकी माता, ६०५ पुष्टा–पुष्टिस्वरूपिणी, ६०६ पितामहपरिग्रहा--आदिशक्ति द्वारा पितामह ब्रह्माके लिये प्रदत्त देवी, ६०७ पुण्डरीकपुरावासा--पुण्डरीकपुर अर्थात् चिदम्बर क्षेत्रमें निवास करनेवाली, ६०८ पुण्डरीकसमानना–कमलके समान मुखसे सुशोभित, ६०९ पृथुजंघा–विशाल जाँघोंवाली, ६१० पृथुभुजा-दीर्घभुजाओं-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पन्न, ६११ पृथुपादा–वृहच्चरणोंवाली, ६१२ पृथूदरी–पृथुल उदरवाली, ६१३ प्रवालशोभा–मूँगेके समान कान्तिवाली, ६१४ पिङ्गाक्षी–पिंगल नेत्रोंवाली ६१५ पीतवासा-पीताम्बरसे सुशोभित, ६१६ प्रचापला-अत्यन्त चंचल स्वभाववाली, ॥९८॥९९॥६१७ प्रसवा–अखिल जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है, ६१८पुष्टिदा–पुष्टि प्रदान करनेमें परम निपुण, ६१९पुण्या-पुण्यस्वरूपिणी ६२० प्रतिष्ठा–सबकी आधारभूता देवी, ६२१ प्रणवागति–ओंकारकी मूलरूपा, ६२२ पञ्चवर्णा–पाँचवर्णों सेसम्पन्न, ६२३ पञ्चवाणी–विस्तृत वाणीवाली, ६२४ पञ्चिका–किसीदेशकीप्रसिद्धदेवता ६२५ पंजरस्थिता–प्राणिमात्रके शरीरमें विराजनेवाली ॥१००॥ ६२६ परमाया–परम मायास्वरूपिणी, ६२७ परज्योतिः–सर्वोत्कृष्ट ज्योतिस्वरूपा, ६२८ परप्रीतिः-परम प्रीतिमयीदेवी, ६२९परागतिः-सर्वोत्तम आश्रयस्वरूपा, ६३० पराकाष्ठा–जिनसेपरे जगत्में दूसरा कोई नहीं है, ६३१ परेशानी–सबसे बढ़-चढ़कर शासन करनेवाली, ६३२ पाविनी–जिनकी उपासनासे प्राणी पवित्र हो जाता है, ६३३ पावकद्युतिः–अग्निके समान प्रकाशवाली ॥१०१॥६३४ पुण्यभद्रा–पवित्र करनेमें परम कुशल, ६३४ परिच्छेद्या–सबसे विलक्षण स्वभाववाली, ६३६ पुष्पहासा–पुष्प जिनके हास्यके द्योतक हैं, ६३७ पृथूदरी–विशाल उदरवाली, ६३८ पीतांगी–पीले वर्णवाले अङ्गोंसे सुशोभित, ६३९ पीतवसना–पीले रंगके वस्त्र धारण करनेवाली, ६४० पीतशय्या–पीले सेजपर सोनेवाली ६४१ पिशाचिनी—पिशाचोंका गण साथ रखनेवाली ॥१०२॥६४२ पीतक्रिया—मधुपानक्रियारूपिणी, ६४३ पिशाचघ्नी-पिशाचोंका संहार करनेवाली, ६४४ पाटलाक्षी–खिले हुए गुलाब-पुष्पके समान

वासाः प्रचापला ॥ ९९ ॥ प्रसवा पुष्टिदा पुण्या प्रतिष्ठा प्रणवागतिः ॥ पंचवर्णा पंचवाणी पंचिका पंजरस्थिता ॥ १०० ॥ परमाया परज्योतिः परप्रीतिः परा गतिः ॥ पराकाष्ठा परेशानी पावनी पावकद्युतिः ॥ १०१ ॥ पुण्यभद्रा परिच्छेदा पुष्पहासा पृथूदरी ॥ पीतांगी पीतवसना पीतशय्या पिशाचिनी ॥ १०२ ॥ पीतक्रिया पिशाचघ्नी पाटलाक्षी पटुक्रिया ॥ पंचभक्षप्रियाचारा पूतनाप्राणघातिनी ॥ १०३ ॥ पुन्नागवनमध्यस्था पुण्यतीर्थनिषेविता ॥ पंचाङ्गी च परा शक्तिः परमाह्लादकारिणी ॥ १०४ ॥ पुष्पकांडस्थिता पूषा पोषिताखिलविष्टपा ॥ पानप्रिया पंचशिखा पन्नगोपरिशायनी ॥ १०५ ॥ पंचमात्रात्मिका पृथ्वी पथिका पृथुदोहिनी ॥ पुराणन्यायमीमांसापाटली पुष्पगंधिनी ॥१०६॥ पुण्यप्रजा पारदात्री परमार्गैकगोचरा ॥ प्रवालशोभा पूर्णाशा प्रणवा पल्लवोदरी ॥ १०७ ॥ फलिनी फलदा फल्गुः फूत्कारी फलकाकृतिः ॥

नेत्रोंवाली, ६४५ पटुक्रिया—चातुरीपूर्वक कार्य सम्पादन करनेवाली, ६४६ पञ्चभक्षप्रियाचारा—भोज्य, चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय पाँच प्रकारके भोजन जिन्हें प्रिय हैं, ६४७ पूतनाप्राणघातिनी–पूतनाके प्राणोंका नाश करनेवाली॥१०३॥६४८ पुन्नागवनमध्यस्था—जायफलके वनमें विराजनेवाली, ६४९ पुण्यतीर्थनिषेविता–पुण्यमय-तीर्थोंमें जिनका निवास है, ६५० पञ्चाङ्गी पाँच अङ्गोंसे सुशोभित, ६५१ पराशक्तिः—परम आराध्या देवी, ६५२ परमाह्लादकारिणी-परमानन्द देनेवाली॥१०४॥६५३ पुष्पकाण्डस्थिता-पुष्पित वृक्षोंके स्कन्धोंपर स्थिर रहनेवाली, ६५४ पूषा—सदा परिपुष्ट रहनेवाली, ६५५ पोषिताखिलविष्टपा—अखिल जगत्का पोषण करनेवाली, ६५६ पानप्रिया–मधु आदि पेय पदार्थ जिन्हें परम प्रिय हैं, ६५७ पञ्चशिखा–पाँच वेणियोंसे सुशोभित, ६५८ पन्नगोपरिशायिनी —सर्पपर शयन करनेवाली ॥१०५॥ ६५९ पञ्चमात्रात्मिका–पाँच मात्राएँ जिनके स्वरूप हैं, ६६ पृथ्वी-पृथ्वीका रूप धारण करनेवाली, ६६१ पथिका-मार्गमें क्षेमकरीरूपसे विराजमान, ६६२ पृथुदोहिनी—बहुत-सी वस्तुओंका दोहन करनेवाली, ६६३ पुराणन्यायमीमांसा–पुराण, न्याय और मीमांसारूपमें विराजमान, ६६४ पाटली—गुलाबका पुष्प धारण करनेवाली, ६६५ पुष्पगन्धिनी—फूलोंकी गन्धसे सुवासित॥१०६॥ ६६६ पुण्यप्रजा—पुण्यमयी प्रजाकी जननी, ६६७ पारदात्री सबका उद्धार करनेवाली, ६६८ परमार्गैकगोचरा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रेष्ठ मार्गके द्वारा ज्ञात होनेवाली ६६९ प्रवालशोभापूर्णाशा--मूँगोंके समान अथवा मूँगोंसे शोभा पानेवाली, ६७० पूर्णाशा--जिनकी कोई आशा कभी अधूरी नहीं रह सकती, ६७१ प्रणवा--ॐकारस्वरूपिणी, ६७२ पल्लवोदरी--नवीन पल्लवके समान कोमल उदरवाली ॥१०७॥ ६७३ फलिनो--फलस्वरूपिणी, ६७४ फलदा--फल प्रदान करनेमें तत्पर, ६७५ फल्गुः--फल्गु नदीके रूपमें विराजमान, ६७६ फूत्कारी--क्रोधके आवेशमें भरकर फूत्कार करनेवाली, ६७७ फलकाकृतिः--बाणके अग्रभागके समान आकृतिवाली, ६७८ फणीन्द्रभोगशयना--शेषनागपर शयन करनेवाली, ६७९ फणिमण्डलमण्डिता--शेषनागके मण्डलसे सुशोभित ॥१०८॥ ६८० बालबाला--बालिकाओंसे भी बालिका, ६८१ बहुमता--सबके द्वारा सम्मानित; ६८२ बालातपनिभांशुका--प्रातःकालीन सूर्यकी भाँति अरुण वस्त्र धारण करनेवाली, ६८३ बलभद्रप्रिया--बलभद्रजीकी प्रिय पत्नी रेवतीके रूपमें विराजमान, ६८४ वन्द्या--जगत् जिनकी वन्दना करते हैं, ६८५ वडवा--वडवानलके रूपमें विराजमान, ६८६ बुद्धिसंस्तुता--बुद्धि आदि देवियों द्वारा संस्तुत ॥१०९॥ ६८७ बन्दीदेवी--बन्दीगणोंकी आराध्या, ६८८ बिलवतो--गुहामें निवास करनेवाली, ६८९ बडिशघ्नी--कपटविनाशिनी, ६९० बलिप्रिया--पूजाकांक्षिणो, ६९१ बान्धवी--सभी प्राणियोंकी हितैषिणी, ६९२ बोधिता--अखिल-ज्ञानसम्पन्न, ६९३ बुद्धिः--बुद्धिस्वरूपिणी देवी, ६९४ बन्धूककुसुमप्रिया--बन्धूकके पुष्पसे प्रसन्न होनेवाली ॥११०॥ ९९५ बालभानुप्रभाकारा--प्रातःकालीन सूर्यकी प्रभाके समान विग्रहवाली, ६९६ ब्राह्मी--ब्रह्माकी शक्तिरूपसे विराजमान,

फणींद्रभोगशयना फणिमंडलमंडिता ॥ १०८ ॥ बालबाला बहुमता बालातपनिभांशुका ॥ बलभद्रप्रिया वंद्या वडवा बुद्धिसंस्तुता ॥ १०६ ॥ वंदीदेवी बिलवती बडिशघ्नी बलिप्रिया ॥ बांधवी बोधिता बुद्धिर्बंधूककुसुमप्रिया ॥ ११० ॥ बालभानुप्रभाकारा ब्राह्मी ब्राह्मणदेवता ॥ बृहस्पतिस्तुता वृंदा वृंदावनविहारिणी ॥ १११ ॥ बलाकिनी बिलाहारा बिलवासा बहूदका ॥ बहुनेत्रा बहुपदा बहुकर्णावतंसिका ॥ ११२ ॥ बहुबाहुयुता बोजरूपिणी बहुरूपिणी ॥ बिंदुनादकलातीता बिंदुनादस्वरूपिणी ॥ ११३ ॥ बद्धगोधांगुलित्राणा बदर्याश्रमवासिनी ॥ वृंदारका बृहत्स्कंधा बृहती बाणपातिनी ॥ ११४ ॥ वृंदाध्यक्षा बहुनुता वनिता बहुविक्रमा ॥ बद्धपद्मासनासीना बिल्वपत्रतलस्थिता ॥ ११५ ॥ बोधिद्रु-

६९७ ब्राह्मणदेवता--ब्राह्मणोंको देवता माननेवाली, ६९८ बृहस्पतिस्तुता--बृहस्पतिजीके द्वारा संस्तुत, ६९९ वृन्दा--वृन्दा नामसे विख्यात, ७०० वृन्दावनविहारिणी--वृन्दावनमें विहार करनेवाली देवी ॥१११॥ ७०१ बलाकिनी--बगुलोंकी पंक्ति जिनका रूप माना जाता है ७०२ बिलाहारा--कर्मोंकी त्रुटिको दूर करनेवाली, ७०३ बिलावासा--बिलरूपिणी गुहा जिनका निवासस्थान है, ७०४ बहूदका--नदीके रूपमें प्रकट होकर प्रभूत जलसे शोभा पानेवाली, ७०५ बहुनेत्रा--अनेक नेत्रोंसे सम्पन्न, ७०६ बहुपदा--जिनके अनगिनत पैर हैं, ७०७ बहुकर्णावतंसिका--बहुतसे कर्णभूषणोंसे सुशोभित ॥११२॥ ७०८ बहुबाहुयुता--अनेक भुजाओंसे संपन्न, ७०९ बीजरूपिणी--बीजरूपधारिणी ७१० बहुरूपिणी--बहुतसे रूपोंमें विराजमान, ७११ बिन्दुनादकलातीता--बिन्दु, नाद और कलासे सर्वथा परे, ७१२ बिन्दुनादस्वरूपिणी--बिन्दु और नाद जिनका स्वरूप माना जाता है ॥११३॥ ७१३ बद्धगोधाङ्गुलित्राणा--गोधाके चर्मका अङ्गुलित्राण धारण करनेवाली, ११४ बदर्याश्रमवासिनी--बदरीआश्रममें विराजमान, ७१५ वृन्दारका--देवोपम सुन्दरी, ७१६ बृहत्स्कन्धा--विशाल कंधोंसे सुशोभित, ७१७ बृहती--बृहती छन्दके रूपमें विराजमान, ७१८ बाणपातिनी--बाण बरसानेवाली॥११४॥ ७१९ वृन्दाध्यक्षा--वृन्दा आदि कृष्णकीसखियोंकी अध्यक्षा, ७२० बहुनुता--जिनके चरणोंमें प्रायः सभी लोग मस्तक झुकाते हैं, ७२१ वनिता--परम सुंदरी स्त्रीरूपिणी, ७२२ बहुविक्रमा--अपार बलसे सम्पन्न, ७२३ बद्धपद्मासनासीना--पद्मासन लगाकर बैठनेवाली, ७२४ बिल्वपत्रतलस्थिता--बिल्वपत्रके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मध्यमें निवास करनेवाली ॥ ११५ ॥ ७२५ बोधिद्रुमनिजावासा—पीपलके वृक्षके नीचे अपना स्थान बनानेवाली, ७२६ बडिस्था (बलिस्था)—शूरवीरोंमें शक्तिरूपसे विराजमान, ७२७ बिंदुदर्पणा—अव्यक्त माया जिनका दर्पण है, ७२८ बाला—कन्यारूपसे विराजमान, ७२९ बाणासनवती—बाणासनसे विराजमान, ७३० बडवानलवेगिनी—बडवानलके समान वेगवाली ॥११६॥ ७३१ ब्रह्माण्डबहिरन्तःस्था—ब्रह्माण्डके भीतर-बाहर विराजमान, ७३२ ब्रह्मकङ्कणसूत्रिणी—ब्रह्माकी कंकण सूत्र स्वरूपा, ७३३ भवानी—शिवपत्नी, ७३४ भीषणवती—दैत्योंका संहार करनेके लिये भयावह रूप धारण करनेवाली, ७३५ भाविनी—उत्पत्ति, स्थिति और पालन करनेवाली, ७३६ भयहारिणी—भयका हरण करनेवाली ॥११७॥ ७३७ भद्रकाली—भद्रकाली नामके प्रसिद्ध देवी, ७३८ भुजङ्गाक्षी—सर्पोंके नेत्रके समान आँखोंवाली, ७३९ भारती—वाणीमयी देवी, ७४० भारताशया—अपने ज्ञानमें संलग्न पुरुषोंके अन्तःकरणमें विराजमान देवी, ७४१ भैरवी—इसी नामसे विख्यात, ७४२ भीषणाकारा—भयंकर आकृतिवाली, ७४३ भूतिदा—विभूति प्रदान करनेवाली, ७४४ भूतिमालिनी—प्रचुर ऐश्वर्यमयी ॥११८॥ ७४५ भामिनी—समयानुसार कोप करनेवाली देवी, ७४६ भोगनिरता—उपासकोंके अर्पण किये हुए पदार्थ भोगनेमें सदा तत्पर, अथवा भुवनेश्वरके साथ संभोगरता, ७४७ भद्रदा—मङ्गल प्रदान करनेवाली, ७४८ भूरिविक्रमा—प्रचुर पराक्रमसमन्वित, ७४९ भूतावासा—समग्र प्राणियोंमें निवास करनेवाली, ७५० भृगुलता—

मनिजावासा बडिस्था बिंदुदर्पणा ॥ बाला बाणासनवती बडवानलवेगिनी ॥ ११६ ॥ ब्रह्मांडबहिरंतःस्था ब्रह्मकंकणसूत्रिणी ॥ भवानी भीषणवती भाविनी भयहारिणी ॥ ११७ ॥ भद्रकाली भुजंगाक्षी भारती भारताशया ॥ भैरवी भीषणाकारा भूतिदा भूतिमालिनी ॥ ११८ ॥ भामिनी भोगनिरता भद्रदा भूरिविक्रमा ॥ भूतावासा भृगुलता भार्गवी भूसुरार्चिनी ॥११९॥ भागीरथी भोगवती भवनस्था भिषग्वरा ॥ भामिनी भोगिनी भाषा भवानी भूरिदक्षिणा ॥ १२० ॥ भर्गात्मिका भीमवती भवबंधविमोचिनी ॥ भजनीया भूतधात्री रंजिता भुवनेश्वरी ॥ १२१ ॥ भुजंगवलया भीमा भेरुंडा भागधेयिनी ॥ माता माया मधुमती मधुजिह्वा मधुप्रिया ॥१२२॥ महादेवी महाभागा मालिनी मीनलोचना ॥ मायातीता मधुमती

भृगुलताके रूपमें विराजमान, ७५१ भार्गवी—भृगुके यहाँ उनकी शक्तिके रूपसे विराजमान, ७५२ भूसुरार्चिता—ब्राह्मणोंसे भलीभाँति पूजित ॥११९॥ ७५३ भागीरथी—राजा भगीरथके द्वारा लायी हुई गङ्गारूपसे विराजमान, ७५४ भोगवती—विविध प्रकारके भोगोंसे संपन्न या भोगवती नदी, ७५५ भवनस्था—भवनमें विराजनेवाली, ७५६ भिषग्वरा—संसार-भयरूपी रोगसे मुक्त करनेके लिए सुप्रसिद्ध वैद्या ७५७ भामिनी—उत्तम भावोंसे अलंकृत, ७५८ भोगिनी—नाना प्रकारके उत्तम भोगोंको भोगनेवाली, ७५९ भाषा—भाषारूपधारिणी, ७६० भवानी—इसी नामसे प्रसिद्ध, ७६१ भूरिदक्षिणा—प्रचुर दक्षिणावाली ॥१२०॥ ७६२ भर्गात्मिका—परम तेजःस्वरूपिणी, ७६३ भीमवती—संग्राममें भयंकर रूपसे दीखनेवाली, ७६४ भवबन्धविमोचिनी—भवके बन्धनको काटनेवाली देवी, ७६५ भजनीया—भजन करने योग्य, ७६६ भूतधात्रीरञ्जिता—जिनकी कृपासे प्राणी जीवन धारण करते हैं तथा प्रसन्न रहते हैं, ७६७ भुवनेश्वरी—अखिल भुवनमण्डलकी स्वामिनी ॥१२१॥ ७६८ भुजंगवलया—सर्पोंको वलयरूपसे हाथोंमें लपेटनेवाली, ७६९ भीमा—भयंकर वेषवाली, ७७० भेरुण्डा—भेरुण्डाके नामसे विख्यात देवी, ७७१ भागधेयिनी—परम सौभाग्यशालिनी, ७७२ माता—जगज्जननी, ७७३ माया—मायारूप धारण करनेवाली, ७७४ मधुमती—मधुपान करनेवाली, ७७५ मधुजिह्वा—मधुका आस्वादन करनेवाली, ७७६ मधुप्रिया—मधुसे अतिशय प्रेम रखनेवाली ॥१२२॥ ७७७ महादेवी—समस्त देवियोंमें प्रधान, ७७८ महाभागा—अतीव सौभाग्यशालिनी, ७७९ मालिनी—माला धारण करनेवाली,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

७८० मीनलोचना–मछलीके समान चंचल आँखोंवाली, ७८१ मायातीता–मायासे परे, ७८२ मधुमती–मधुपान करनेमें तत्पर, ७८३ मधुमासा–मधुमासरूपा, ७८४ मधुद्रवा–मधु अर्पण करनेसे प्रसन्न होनेवाली, ॥१२३॥ ७८५ मानवी–मानवरूप धारण करनेवाली, ७८६ मधुसम्भूता–चैत्रमासमें प्रकट होनेवाली, ७८७ मिथिलापुरवासिनी–मिथिलापुरमें निवास करनेवाली सीतारूपा, ७८८ मधुकैटभसंहर्त्री–मधु और कैटभका संहार करनेवाली, ७८९ मेदिनी–पृथ्वीरूपसे विराजमान, ७९० मेघमालिनी–मेघसमूहसे घिरी हुई ॥ १२४ ॥ ७९१ मन्दोदरी--मन्दोदरीके रूपमें प्रकट देवी, ७९२ महामाया–महामाया नाम धारण करनेवाली आद्याशक्ति, ७९३ मैथिली–श्रीसीताके रूपमें विराजमान, ७९४ मसृणप्रिया–मधुर एवं चिकने पदार्थोंसे प्रेम करनेवाली, ७९५ महालक्ष्मी–भगवती महालक्ष्मीके रूपसे विराजमान, ७९६ महाकाली–कालियोंमें सुप्रसिद्ध, ७९७ महाकन्या–महान् हिमाचलकी कन्याका वेष धारण करनेवाली, ६९८ महेश्वरी--परम ईश्वरी ॥ १२५ ॥ ७९९ माहेन्द्री–शचीका रूप धारण करनेवाली देवी, ८०० मेरुतनया–सुमेरु पर्वतके यहाँ प्रकट होनेवाली, ८०१ मन्दारकुसुमार्चिता–मन्दारके फूलोंसे सुपूजिता, ८०२ मञ्जुमंजीरचरा--पैरोंमें सुन्दर पायजेब धारण करनेवाली, ८०३ मोक्षदा–मोक्ष प्रदान करनेवाली, ८०४ मंजुभाषिणी–मधुर भाषण करनेवाली ॥ १२६ ॥ ८०५ मधुरद्राविणी–कृपावश पिघलकर मधुर वचन बोलनेवाली, ८०६ मुद्रा–मुद्रारूपसे विराजमान, ८०७ मलया–मलयाचलपर निवास करनेवाली,

मधुमासा मधुद्रवा ॥ १२३ ॥ मानवी मधुसंभूता मिथिलापुरवासिनी ॥ मधुकैटभसंहर्त्री मेदिनी मेघमालिनी ॥ १२४ ॥ मंदोदरी महामाया मैथिली मसृणप्रिया ॥ महालक्ष्मीर्महाकाली महाकन्या महेश्वरी ॥ १२५ ॥ माहेन्द्री मेरुतनया मंदारकुसुमार्चिता ॥ मंजुमंजीरचरणा मोक्षदा मंजुभाषिणी ॥ १२६ ॥ मधुरद्राविणी मुद्रा मलया मलयान्विता ॥ मेधा मरकतश्यामा मागधी मेनकात्मजा ॥ १२७ ॥ महामारी महावीरा महाश्यामा मनुस्तुता ॥ मातृका मिहिराभासा मुकुन्दपदविक्रमा ॥ १२८ ॥ मूलाधारस्थिता मुग्धा मणिपूरकवासिनी ॥ मृगाक्षी महिषारूढा महिषासुरमर्दिनी ॥ १२९ ॥ योगासना योगगम्या योगा यौवनकाश्रया ॥ यौवनी युद्धमध्यस्था यमुना युगधारिणी ॥ १३० ॥ यक्षिणी योगयुक्ता च यक्षराज-

८०८ मलयान्विता--मलयागिरि चन्दनसे युक्त, ८०९ मेधा--बुद्धिस्वरूपिणी, ८१० मरकतश्यामा--मरकतमणिके समान श्याम वर्णवाली, ८११ मागधी–मगधमें सुपूजित या मगधदेशमें रहनेवाली, ८१२ मेनकात्मजा–मेनकाके यहाँ कन्यारूपमें प्रकट होनेवाली ॥ १२७ ॥ ८१३ महामारी–महामारीरूपा, ८१४ महावीरा–असीम शक्तिसे सम्पन्न देवी, ८१५ महाश्यामा–सघन श्यामल शरीरसे सुशोभित; ८१६ मनुस्तुता-मनुने जिनका स्तवन किया है, ८१७ मातृका—मातृका नामसे प्रसिद्ध, ८१८ मिहिराभासा–सूर्यके समान प्रकाशमान देवी, ८१९ मुकुन्दपदविक्रमा--भगवान विष्णुके पदका अनुसरण करनेवाली ॥ १२८ ॥ ८२० मूलधारस्थिता–मूलाधारमें विराजमान कुण्डलिनीरूपा, ८२१ मुग्धा–सदा प्रसन्न रहनेवाली, ८२२ मणिपूरकवासिनी–मणिपूरकमें निवास करनेवाली देवी, ८२३ मृगाक्षी–मृगके नेत्रोंके सदृश नेत्रोंसे सुशोभित, ८२४ महिषारूढा–भैंसेकी सवारी करनेवाली यमरूपिणी, ८२५ महिषासुरमर्दिनी–महिषासुरका मर्दन करनेवाली ॥ १२९ ॥ ८२६ योगासना—योगासन लगाकर बैठनेवाली, ८२७ योगगम्या—योग-साधनसे जाननेमें आनेवाली, ८२८ योगा—योगस्वरूपिणी, ८२९ यौवनकाश्रया—सदा तरुण-अवस्थासे सम्पन्न, ८३० यौवनी–यौवनरूपिणी, ८३१ युद्धमध्यस्था–समराङ्गणमें शोभा पानेवाली, ८३२ यमुना—यमुना नामकी नदीके रूपमें विराजमान, ८३३ युगधारिणी—युगोंको धारण करनेवाली ॥ १३० ॥ ८३४ यक्षिणी—यक्षिणीरूपसे प्रकट, ८३५ योगयुक्ता–योगसे सम्पन्न, ८३६ यक्षराजप्रसूतिनी-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यक्षराजको जन्म देनेवाली देवी, ८३७ यात्रा—शत्रुओंपर धावा करनेवाली या यात्रारूपिणी, ८३८ यानविधानज्ञा—विमानोंकी व्यवस्थामें परम कुशल, ८३९ यदुवंशसमुद्भवा—राजा यदुके वंशमें प्रकट होनेवाली देवी ॥१३१॥ ८४० यकारादिहकारान्ता—यकारसे लेकर हकारतक सभी अक्षर जिनके रूप हैं, ८४१ याजुषी—यजुर्वेद जिनका रूप है, ८४२ यज्ञरूपिणी—यज्ञस्वरूपिणी, ८४३ यामिनी—रात्रिका रूप धारण करनेवाली, ८४४ योगनिरता—योगमें रत रहनेवाली, ८४५ यातुधानभयंकरी—राक्षसोंको भयभीत करनेवाली ॥१३२॥ ८४६ रुक्मिणी—रुक्मिणी नामसे विख्यात, ८४७ रमणी—आनन्दस्वरूपिणी देवी, ८४८ रामा—योगियोंके चित्तमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाली, ८४९ रेवती—रेवतके घर पुत्रीरूपसे प्रकट, ८५० रेणुका—परशुरामकी माता, ८५१ रति—कामदेवकी प्रेयसी भार्याके रूपसे सुशोभित, ८५२ रौद्री—भयंकर वेषवाली रुद्रपत्नी, ८५३ रौद्रप्रियाकारा—रौद्र आकार जिन्हें प्रिय है, ८५४ राममाता—कौसल्याके रुपसे प्रकट, ८५५ रतिप्रिया—रतिसे प्रेम करनेवाली ॥१३३॥ ८५६ रोहिणी—रोहिणी नामसे विख्यात, ८५७ राज्यदा—राज्य प्रदान करनेवाली, ८५८ रेवा—नर्मदासंज्ञक नदी, ८५९ रमा—नेत्र और मनको रमानेवाली या लक्ष्मीजी, ८६० राजीवलोचना—कमलके समान नेत्रोंसे सुशोभित, ८६१ राकेशी—चन्द्रमाको ललाटपर धारण करनेवाली, ८६२ रूपसम्पन्ना—अतिशय रूपवती देवी, ८६३ रत्नसिंहासनस्थिता—रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजनेवाली ॥१३४॥ ८६४ रक्तमाल्याम्बरधरा—रक्त वर्णकी माला और वस्त्र धारण करनेवाली, ८६५ रक्तगन्धानुलेपना—लाल चन्दनसे भलीभाँति

प्रसूतिनी ॥ यात्रा यानविधानज्ञा यदुवंशसमुद्भवा ॥ १३१ ॥ यकारादिहकारांता याजुषी यज्ञरूपिणी ॥ यामिनी योगनिरता यातुधानभयंकरी ॥ १३२ ॥ रुक्मिणी रमणी रामा रेवती रेणुका रतिः ॥ रौद्री रौद्रप्रियाकारा राममाता रतिप्रिया ॥ १३३ ॥ रोहिणी राज्यदा रेवा रमा राजीवलोचना ॥ राकेशी रूपसंपन्ना रत्नसिंहासनस्थिता ॥ १३४ ॥ रक्तमाल्यांबरधरा रक्तगंधानुलेपना ॥ राजहंससमारूढा रंभा रक्तबलिप्रिया ॥ १३५ ॥ रमणीययुगाधारा राजिताखिलभूतला ॥ रुरुचर्मपरीधाना रथिनी रत्नमालिका ॥ १३६ ॥ रोगेशी रोगशमनी राविणी रोमहर्षिणी ॥ रामचन्द्रपदाक्रान्ता रावणच्छेदकारिणी ॥ १३७ ॥ रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना रथस्था रुक्मभूषणा ॥ लज्जाधिदेवता लोला ललिता लिंगधारिणा ॥ १३८ ॥ लक्ष्मीर्लोला लुप्तविषा लोकिनी लोकविश्रुता ॥ लज्जा लम्बोदरी देवी ललना लोकधारिणी ॥ १३९ ॥

अनुलिप्त, ८६६ राजहंससमारूढा—राजहंसपर सवारी करनेवाली, ८६७ रम्भा—रम्भानामक अप्सराके रूपमें विराजमान, ८६८ रक्तबलिप्रिया—युद्धमें रक्तकी बलि जिन्हें परम प्रिय है ॥१३५॥ ८६९ रमणीययुगाधारा—मनोहर युगकी आश्रयस्वरूपा, ८७० राजिताखिलभूतला—समस्त भूमण्डलको सुशोभित करनेवाली, ८७१ रुरुचर्मपरीधाना—मृगचर्म धारण करनेवाली, ८७२ रथिनी-रथपर विराजमान, ८७३ रत्नमालिका-रत्नोंकी माला पहननेवाली ॥१३६॥ ८७४ रोगेशी—रोगोंपर शासन करनेवाली, ८७५ रोगशमनी—रोगोंका शमन करनेवाली, ८७६ राविणी—भीषण गर्जन करनेवाली, ८७७ रोमहर्षिणी—जिनके रोम पुलकायमान रहते हैं, ८७८ रामचन्द्रपदाक्रान्ता—भगवान रामचन्द्रके पदसे आक्रान्त, ८७९ रावणच्छेदकारिणी रावणका संहार करनेवाली, ॥१३७॥ ८८० रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना—रत्न और वस्त्रसे भलीभाँति आच्छादित, ८८१ रथस्था—रथपर विराजमान, ८८२ रुक्मभूषणा—सुवर्णमय भूषणोंसे विभूषित, ८८३ लज्जाधिदेवता—लज्जाकी अधिष्ठात्री देवी, ८८४ लोला—अतिशय चञ्चल स्वभाववाली, ८८५ ललिता—परम सुन्दरी या ललितादेवीरूपिणी, ८८६ लिङ्गधारिणी-उत्तम चिह्न धारण करनेवाली ॥१३८॥ ८८७ लक्ष्मी-भगवती लक्ष्मीके नामसे सुप्रसिद्ध, ८८८ लोला—कभी स्थिर न रहनेवाली, ८८९ लुप्तविषा—जिनपर विष अपना प्रभाव नहीं डाल सकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

८९० लोकिनी–जगत्स्वरूपिणी देवी, ८९१ लोकविश्रुता–संसारमें प्रसिद्ध, ८९२ लज्जा–लज्जामयी देवी, ८९३ लंबोदरी देवी–विशाल उदरवाली भगवती, ८९४ ललना–स्त्रीस्वरूपिणी, ८९५ लोकधारिणी–लोकोंको धारण करनेवाली ॥ १३९ ॥ ८९६ वरदा–वर प्रदान करनेवाली, ८९७ वन्दिता–सभी जिनकी वन्दना करते हैं, ८९८ विद्या–विद्यास्वरूपिणी, ८९९ वैष्णवी–भगवान विष्णुकी शक्ति, ९०० विमलाकृतिः–निर्मल आकृतिसे सुशोभित, ९०१ वाराही–वाराहरूप धारण करनेवाली, ९०२ विरजा–विरजा नामकी नदीके रूपमें विराजमान, ९०३ वर्षा–वर्षामयी देवी, ९०४ वरलक्ष्मी–श्रेष्ठ लक्ष्मीका वेष धारण करनेवाली, ९०५ विलासिनी –सदा मनोरंजन करनेवाली ॥१४०॥ ९०६ विनता –विनताके रूपमें विराजमान, ९०७ व्योममध्यस्था–आकाशके मध्यमें प्रतिष्ठित, ९०८ वारिजासनसंस्थिता–कमलके आसनपर विराजमान, ९०९ वारुणी–वरुणकी शक्ति, ९१० वेणुसम्भूता–बाँससे प्रकट होनेवाली, ९११ वीतिहोत्रा–हवनमें निष्णात, ९१२ विरूपिणी–विशिष्टरूपसे सम्पन्न ॥ १४१ ॥ ९१३ वायुमण्डलमध्यस्था–वायुमंडलके मध्यमें रहनेवाली, ९१४ विष्णुरूपा —विष्णुस्वरूपिणी देवी, ९१५ विधिप्रिया–भगवती ब्रह्माणीके रूपमें विराजमान, ९१६ विष्णुपत्नी –स्वयं भगवती लक्ष्मी, ९१७ विष्णुमती–श्रीहरिके साथ सुशोभित, ९१८ विशालाक्षी–विशाल नेत्र धारण करनेवाली, ९१९ वसुन्धरा–भगवती भूदेवी ॥१४२॥ ९२० वामदेवप्रिया–रुद्राणीरूपसे विराजमान, ९२१ वेला–समयकी अधिष्ठात्री देवी, ९२२ वज्रिणी—वज्र धारण करनेवाली, ९२३ वसुदोहिनी–धन-धान्य दोहन करनेमें

वरदा वंदित. विद्या वैष्णवी विमलाकृतिः ॥ वाराही विरजा वर्षा वरलक्ष्मीर्विलासिनी ॥ १४० ॥ विनता व्योममध्यस्था वारिजासनसंस्थिता ॥
वारुणी वेणुसंभूता वीतिहोत्रा विरूपिणी ॥ १४१ ॥ वायुमण्डलमध्यस्था विष्णुरूपा विधिप्रिया ॥ विष्णुपत्नी विष्णुमती विशालाक्षी वसुन्धरा
॥ १४२ ॥ वामदेवप्रिया वेला वज्रिणी वसुदोहिनी ॥ वेदाक्षरपरितांगी वाजपेयफलप्रदा ॥ १४३ ॥ वासवी वामजननी वैकुण्ठनिलया वरा ॥
व्यासप्रिया वर्मधरा वाल्मीकिपरिसेविता ॥१४४॥ शाकम्भरी शिवा शांता शारदा शरणागतिः ॥ शातोदरी शुभाचारा शुंभासुरविमर्दिनी ॥१४५॥
शोभावती शिवाकारा शंकरार्धशरीरिणी ॥ शोणा शुभाशया शुभ्रा शिरःसंधानकारिणी ॥१४६॥ शरावती शरानन्दा शरज्ज्योत्स्ना शुभानना ॥

परम निपुण, ९२४ वेदाक्षरपरीतङ्गी–जिनके प्रत्येक अङ्ग वेदके अक्षरोंसे सुशोभित हैं, ९२५ वाजपेयफलप्रदा–जिनकी उपासनासे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है ॥१४३॥ ९२६ वासवी-इंद्राणी, ९२७ वामजननी—वामदेवकी जननी, ९२८ वैकुंठनिलया—वैकुंठमें विराजनेवाली, ९२९ वरा–परम आदरणीया देवी, ९३० व्यासप्रिया—वेदव्यासकी प्रिया, ९३१ वर्मधरा—कवच धारण करनेवाली, ९३२ वाल्मीकिपरि सेविता—महर्षि वाल्मीकिसे भलीभाँति परिसेवित ॥ १४४ ॥ ९३३ शाकम्भरी नामसे प्रसिद्ध, ९३४ शिवा— कल्याणमयी देवी, ९३५ शान्ता—शान्तस्वरूपिणी, ९३६ शारदा—देवी शारदा नामसे प्रसिद्ध, ९३७ शरणागतिः— जगत्को शरणमें लेनेवाली, ९३८ शातोदरी—तेजःपुर्ण उदरसे सम्पन्न, ९३९ शुभाचारा—पवित्र आचरण करनेवाली, ९४० शुम्भासुरविमर्दिनी—शुम्भनामक दैत्यका सहार करनेवाली ॥ १४५ ॥ ९४१ शोभावती—परम शोभासे सम्पन्न, ९४२ शिवाकारा— कल्याणमयी आकृति धारण करनेवाली, ९४३ शंकरार्द्धशरीरिणी—भगवान शंकरकी अर्धाङ्गिनी, ९४४ शोणा—रक्तवर्णवाली देवी, ९४५ शुभाशया–मङ्गलमय अभिप्रायसे सम्पन्न, ९४६ शुभ्रा–शुभ्रवर्णवाली, ९४७ शिरःसंधानकारिणी—दानवोंके मस्तकपर निशाना साधनेवाली ॥ १४६ ॥ ९४८ शरावती–बाणोंसे रक्षा करनेवाली, ९४९ शरानन्दा–बाण चलाकर प्रसन्न होनेवाली, ९५० शरज्ज्योत्स्ना–शारदीय चन्द्रमाके समान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उज्ज्वल किरणोंवाली, ९५१ शुभानना—मनोहर मुखसे सम्पन्न, ९५२ शरभा—हरिणीरूपसे वनमें विहार करनेवाली, ९५३ शूलिनी—शूलधारिणी ९५४ शुद्धा—शुद्धस्वरूपिणी, ९५५ शबरी—शबरीके रूपमें प्रकट, ९५६ शुकवाहना—शुकपर सवारी करनेवाली ।।१४७।। ९५७ श्रीमती—शोभायुक्त, ९५८ श्रीधरानन्दा—भगवान विष्णुको आनन्दित करनेवाली, ९५९ श्रवणानन्ददायिनी—जिनका चरित्र श्रवण करनेसे भक्तोंको परम आनन्द प्राप्त होता है, ९६० शर्वाणी—भगवान महादेवकी शक्ति भगवती पार्वती, ९६१ शर्वरीवन्द्या—रात्रि अथवा प्रदोषकालमें वन्दिता, ९६२ षड्भाषा—छः भाषाएँ जिनके रूप हैं, ९६३ षड्ऋतुप्रिया—छहों ऋतुओंसे प्रेम रखनेवाली ।।१४८।। ९६४ षडाधारस्थिता देवी—छः प्रकारके आधारोंमें विराजनेवाली देवी ९६५ षण्मुखप्रियकारिणी—स्वामिकार्तिकेयका प्रिय करनेवाली, ९६६ षडङ्गरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता—षड्ङ्गरूपवाले जो सुमति-संज्ञक देवता और असुर हैं, उनके द्वारा नमस्कृत ।।१४९।। ९६७ सरस्वती—वाणीकी अधिष्ठात्री देवी, ९६८ सदाधारा—सबकी सदा आधारस्वरूपिणी, ९६९ सर्वमङ्गलकारिणी—सम्पूर्ण मङ्गल प्रदान करनेवाली, ९७० सामगानप्रिया—सामगानसे परम प्रसन्न होनेवाली, ७७१ सूक्ष्मा—इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे स्थित सूक्ष्मस्वरूपा, ९७२ सावित्री—भगवती सावित्री नामसे विख्यात, ९७३ सामसम्भवा—सामवेदसे प्रकट होनेवाली ।।१५०।। ९७४ सर्वावासा—सर्वव्यापिनी, ९७५ सदानन्दा—सर्वदा प्रसन्न रहनेवाली, ९७६ सुस्तनी—सुन्दर स्तनोंसे सुशोभित, ९७७ सागराम्बरा—सागररूपी वस्त्रको धारण करनेवाली, ९७८

**शरभा शूलिनी शुद्धा शबरी शुकवाहना ।।१४७।। श्रीमती श्रीधरानन्दा श्रवणानंददायिनी ।। शर्वाणी शर्वरी वंद्या षड्भाषा षड्तुप्रिया ।।१४८।।
षडाधारस्थिता देवी षण्मुखप्रियकारिणी ।। षडङ्गरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता ।। १४९ ।। सरस्वती सदाधारा सर्वमंगलकारिणी ।। सामगानप्रिया
सूक्ष्मा सावित्री साममंभवा ।। १५० ।। सर्वावासा सदानन्दा सुस्तनी सागराम्बरा ।। सर्वैश्वर्यप्रिया सिद्धिः साधुबंधुपराक्रमा ।। १५१ ।।
सप्तर्षिमंडलगता सोममंडलवासिनी ।। सर्वज्ञा सांद्रकरुणा समानाधिकवर्जिता ।। १५२ ।। सर्वोत्तुङ्गा संगहीना सद्गुणा सकलेष्टदा ।।
सरघा सूर्यतनया सुकेशी सोमसंहतिः ।। १५३ ।। हिरण्यवर्णा हरिणी ह्रींकारी हंसवाहिनी ।। क्षौमवस्त्रपरीतांगो क्षीराब्धितनया क्षमा ।। १५४ ।।
गायत्री चैव सावित्री पार्वती च सरस्वती ।। वेदगर्भा वरारोहा श्रीगायत्री परांबिका ।। १५५ ।। इति साहस्रकं नाम्नां गायत्र्याश्चैव नारद ।।**

सर्वैश्वर्यप्रिया—सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे प्रीति रखनेवाली, ९७९ सिद्धिः—अणिमा आदि अष्टसिद्धिस्वरूपा, ९८० साधुबन्धुपराक्रमा—अपने भक्तोंके लिए पराक्रम प्रदर्शित करनेवाली ।। १५१ ।। ९८१ सप्तर्षिमंडलगता—सप्तर्षियोंके मंडलमें विराजमान देवी, ९८२ सोममंडलवासिनी—चन्द्रमंडलमें निवास करनेवाली, ९८३ सर्वज्ञा—सब कुछ जाननेवाली, ९८४ सान्द्रकरुणा—करुण रससे ओत-प्रोत, ९८५ समानाधिकवर्जिता—सदा एक समान रहनेवाली ।।१५२।। ९८६ सर्वोत्तुङ्गा—सर्वोपरि विराजमान, ९८७ सङ्गहीना—किसीमें आसक्ति न रखनेवाली, ९८८ सद्गुणा—सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न, ९८९ सकलेष्टदा—सदा एक समान रहनेवाली, ९९० सरघा—मधुमक्षिकाके रूपमें विराजमान, ९९१ सूर्यपुत्री-यमुना नदीके रूपमें सुशोभित, ९९२ सुकेशी—मनोहर केशोंसे शोभा पानेवाली देवी, ९९३ सोमसंहतिः—अनेक चन्द्रमाओंके समान सुशोभित ।। १५३ ।। ९९४ हिरण्यवर्णा—स्वर्णके समान वर्णवाली, ९९५ हरिणी—किंचित हरित वर्णविशिष्ट, ९९६ ह्रींकारी—ह्रीं जिनका रूप माना जाता है वे देवी, ९९७ हंसवाहिनी—हंसपर सवारी करनेवाली, ९९८ क्षौमवस्त्रपरीतांगी—रेशमी वस्त्रसे जिनके सभी अंग ढँके रहते हैं ९९९ क्षीराब्धितनया—क्षीरसागरसे प्रकट होनेवाली १००० क्षमा—सहनशीला पृथ्वीस्वरूपा ।। १५४ ।। १००१ गायत्री, १००२ सावित्री, १००३ पार्वती, १००४ सरस्वती, १००५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेदगर्भा, १००६ वरारोहा, १००७ श्रीगायत्री और १००८ पराम्बिका ॥१५५॥ हे नारद ! यह भगवती गायत्रीका सहस्रनाम है। यह महान् पुण्यप्रद, सम्पूर्ण पापोंका उच्छेद करनेवाला और प्रचुर सम्पत्तिदायक है ॥ १५६ ॥ इस प्रकार कहे गये ये सभी नाम भगवती गायत्रीको संतुष्ट करनेवाले हैं। ब्राह्मणोंके साथ अष्टमी तिथिको विशेषरूपसे इसका पाठ करना चाहिये ॥ १५७ ॥ भलीभाँति जप, होम, पूजा और ध्यान करके भगवतीकी उपासना करनी चाहिये। ऐरे-गैरे लोगोंको गायत्रीके इस सहस्रनामका उपदेश करना कदापि उचित नहीं है ॥ १५८ ॥ सुयोग्य भक्त, आज्ञाकारी शिष्य अथवा ब्राह्मणके प्रति ही इसका उपदेश करे। भ्रष्ट साधक अपना बान्धव ही क्यों न हो, किंतु उसको इसका प्रदर्शन न करावे ॥१५९॥ जिसके घरमें इस गायत्री सम्बन्धी शास्त्रका लेखन होता है, उसके यहाँ कभी भी भय नहीं टिक सकता। चञ्चला होती हुई भी लक्ष्मी उसके घर स्थिर होकर विराजमान रहती हैं ॥ १६० ॥ यह रहस्य परम गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय है। इसके प्रभावसे मनुष्य पुण्यवान् होते हैं और दरिद्र धनवान हो जाते हैं ॥ १६१ ॥ मुमुक्षुओंको यह मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

पुण्यदं सर्वपापघ्नं महासंपत्तिदायकम् ॥ १५६ ॥ एवं नामानि गायत्र्यास्तोषोत्पत्तिकराणि हि ॥ अष्टम्यां च विशेषेण पठितव्यं द्विजैः सह ॥ १५७ ॥ जपं कृत्वा होमपूजाध्यानं कृत्वा विशेषतः ॥ यस्मै कस्मै न दातव्यं गायत्र्यास्तु विशेषतः ॥ १५८ ॥ सुभक्ताय सुशिष्याय वक्तव्यं भूसुराय वै ॥ भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्यश्च बांधवेभ्यो न दर्शयेत् ॥ १५९ ॥ यद्गृहे लिखितं शास्त्रं भयं तस्य न कस्यचित् ॥ चञ्चलापि स्थिरा भूत्वा कमला तत्र तिष्ठति ॥ १६० ॥ इदं रहस्यं परमं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥ पुण्यप्रदं मनुष्याणां दरिद्राणां निधिप्रदम् ॥ १६१ ॥ मोक्षप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदम् ॥ रोगाद्वै मुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ १६२ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयिनो नराः ॥ गुरुतल्पगतो वाऽपि पातकान्मुच्यते सकृत् ॥ १६३ ॥ असत्प्रतिग्रहाच्चैवाभक्ष्यभक्षाद्विशेषतः ॥ पाषण्डानृतमुख्येभ्यः पठनादेव मुच्यते ॥ १६४ ॥ इदं रहस्यममलं मयोक्तं पद्मजोद्भव ॥ ब्रह्मसायुज्यदं नृणां सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे गायत्रीसहस्रनामस्तोत्रकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इसका पाठ करके सकाम पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं। रोगीका रोगसे उद्धार हो जाता है और बन्धनमें पड़ा हुआ मानव बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ १६२ ॥ ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णकी चोरी तथा गुरुपत्नीगमन जैसे महान् पाप करनेवाले मानव भी एक बार इस स्तोत्रका पाठ करके उक्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं ॥ १६३ ॥ निषिद्ध दान लेने, अभक्ष्य पदार्थ खाने, पाखण्डपूर्ण बर्ताव करने और झूठ बोलनेके पापसे भी मानव इसके पाठसे मुक्त हो जाता है ॥ १६४ ॥ हे नारद ! मैंने यह जो परम पवित्र रहस्यका वर्णन किया है, यह मनुष्योंको ब्रह्मसायुज्य प्रदान करनेवाला है। यह बात सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है ॥ १६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां गायत्रीसहस्रनामस्तोत्रं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(दीक्षाविधि) नारदजीने कहा—हे भगवन् ! मैं श्रीगायत्रीदेवीका सहस्रनामसंज्ञक विलक्षण फल प्रदान करनेवाला, प्रचुर भाग्यशाली बनानेमें कुशल एवं महान् उन्नतिके शिखरपर चढ़ा देनेवाला स्तोत्र सुन चुका ॥ १ ॥ अब दीक्षाका उत्तम लक्षण सुनना चाहता हूँ, जिसके बिना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा स्त्रीजाति इनमेंसे किसीको देवीमन्त्र जप करनेका अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता । अतएव हे प्रभो ! सामान्य विधिसे यह सारा प्रसंग बतानेकी कृपा कीजिये ॥ २ ॥ ३ ॥ भगवान नारायण बोले—हे नारद ! पुण्यात्मा शिष्ट पुरुषोंके दीक्षा लेनेका विधान कहता हूँ, सुनो । जिससे वे देवता, अग्नि और गुरुकी पूजाके अधिकारी हो सकते हैं ॥४॥ वेदमंत्रके पारगामी विद्वानोंका कथन है कि जो दिव्य ज्ञान प्रदान करती है तथा पापोंके ध्वंसमें मुख्य कारण है, उसीको 'दीक्षा' कहते हैं ॥५॥ अतएव दीक्षा लेना आवश्यक कर्तव्य है । क्योंकि इससे बहुतेरे फल प्राप्त होते हैं । परन्तु इसमें गुरु और शिष्य दोनोंको ही अत्यन्त शुद्धि अपेक्षित है ॥६॥ गुरुको चाहिये कि प्रातःकालका सम्पूर्ण कृत्य विधिवत् सम्पन्न करके विधि-विधानके साथ स्नान और संध्या आदि सभी कृत्य सुचारुरूपसे सम्पन्न करे ॥७॥ हाथमें

॥ श्रीनारद उवाच ॥ श्रुतं सहस्रनामाख्यं श्रीगायत्र्याः फलप्रदम् ॥ स्तोत्रं महोन्नतिकरं महाभाग्यकरं परम् ॥ १ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि दीक्षालक्षणमुत्तमम् ॥ विना येन न सिध्येत देवीमंत्रेऽधिकारिता ॥ २ ॥ ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां विशां स्त्रीणां तथैव च ॥ सामान्यविधिना सर्वं विस्तरेण वद प्रभो ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु दीक्षां प्रवक्ष्यामि शिष्याणां भावितात्मनाम् ॥ देवाग्निगुरुपूजादावधिकारो यया भवेत् ॥ ४ ॥ दिव्यं ज्ञानं हि या दद्यात्कुर्यात्पापक्षयं तु या ॥ सैव दीक्षेति संप्रोक्ता वेदतंत्रविशारदैः ॥५॥ अवश्यं सा तु कर्तव्या यतो बहुफला मता ॥ गुरुशिष्यावुभावत्राप्यतिशुद्धावपेक्षितौ ॥ ६ ॥ गुरुस्तु विधिवत्प्रातः कृत्यं सर्वं विधाय च ॥ स्नानसंध्यादिकं सर्वं यथाविधि विधाय च ॥ ७ ॥ कमण्डलुकरो मौनी गृहं यायात्सरित्तटात् ॥ यज्ञमण्डपमासाद्य विशेत्तत्रासने वरे ॥ ८ ॥ आचम्य प्राणानायम्य गंधपुष्पविमिश्रितम् ॥ सप्तवारास्त्र-मंत्रेण जप्तं वारि सुसाधयेत् ॥ ९ ॥ वारिणा तेन मतिमानस्त्रमंत्रं समुच्चरन् ॥ प्रोक्षयेद्द्वारमखिलं ततः पूजां समाचरेत् ॥ १० ॥ ऊर्ध्वोदुंबरके देवं गणनाथं तथा श्रियम् ॥ सरस्वतीं नाममंत्रैः पूजयेद्गन्धपुष्पकैः ॥ ११ ॥ द्वारदक्षिणशाखायां गंगाविघ्नेशमर्चयेत् ॥ द्वारस्य वामशाखायां क्षेत्रपालं च सूर्यजाम् ॥१२॥ देहल्यां पूजयेदस्त्रदेवतामस्त्रमंत्रतः ॥ सर्वं देवीमयं दृश्यमिति संचिंत्य सर्वतः ॥ १३ ॥ दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्रमंत्र-

कमण्डलु लेकर नदीके तटसे घरपर जाये । यज्ञमण्डपमें पहुँचकर एक श्रेष्ठ आसनपर बैठ जाये ॥ ८ ॥ आचमन और प्राणायाम करनेके पश्चात् गन्ध और पुष्पसे मिश्रित जलको 'ॐ फट्' इस अस्त्रमन्त्रका सात बार जप करके अभिमन्त्रित करे ॥ ९ ॥ बुद्धिमान् पुरुष 'ॐ फट्' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए उसी अभिमन्त्रित जलसे सभी द्वारोंका तथा पूजाकी सामग्री-का प्रोक्षण करे ॥ १० ॥ दरवाजेके ऊपरी भागमें एक ओर गणेशकी, मध्यमें भगवती लक्ष्मीको तथा दूसरी ओर सरस्वतीकी पूजा करे । नाममन्त्रोंका उच्चारण करके गन्ध और पुष्पोंसे पूजा करे ॥ ११ ॥ द्वारकी दक्षिण शाखामें भगवती गंगा और गणेशकी तथा वामशाखामें क्षेत्रपाल और सूर्यतनया यमुनाकी पूजा करे ॥ १२ ॥ देहलीपर 'ॐ फट्'का उच्चारण करके अस्त्रदेवताकी पूजा करे । सब ओर ऐसी भावना करे कि ये सब देवीमय ही हैं ॥ १३ ॥ इस अस्त्रमन्त्रके जपद्वारा दैवी विघ्नका उच्छेद करे तथा पदके आघातसे अन्तरिक्ष और भूतलके

१४१.४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विघ्नोंको दूर करे ॥१४॥ बायीं शाखाका स्पर्श करते हुए पहले दाहिना पैर रखकर मण्डपमें प्रवेश करे । भीतर जाकर जलका कलश रख दे । तत्पश्चात् सामान्य विधिसे वास्तुदेवताको अर्घ्य दे ॥१५॥ नैर्ऋत्य दिशामें गन्ध, पुष्प और अक्षत आदि वस्तुओं द्वारा उस अर्घ्यजलसे वास्तुके स्वामी पद्मयोनि ब्रह्माजीकी पूजा करे ॥१६॥ तदनन्तर अर्घ्यके उस अवशिष्ट जलसे पञ्चगव्य बनावे । गुरुदेव उस जलसे तोरणसे लेकर स्वम्बपर्यन्त सम्पूर्ण मण्डपका प्रोक्षण करें ॥ १७ ॥ उस समय मनमें यह भावना करे कि यह सब कुछ देवीमय है । भक्तिके साथ मूलमन्त्रका जप करते हुए 'ॐ फट्' इस मन्त्रका उच्चारण करके प्रोक्षण करनेका नियम है । शरमन्त्र अर्थात् 'ॐ फट्'का उच्चारण करके पृथ्वीका ताडन करनेके पश्चात् 'ॐ हुम्' इस मन्त्रको पढ़कर उसपर जलके छींटे दे ॥ १८ ॥ १९ ॥ धूपसे सुगन्ध दे । तदनन्तर विघ्नकी शान्तिके लिये जल, चन्दन, अक्षत, दूर्वा, भस्म आदि वस्तुओंका विकिरण करे ।

जपेन तु ॥ अन्तरिक्षगतान्विघ्नान्पादघातैस्तु भूमिगान् ॥ १४ ॥ वामशाखां स्पृशन्पश्चात्प्रविशेद्दक्षिणांघ्रिणा ॥ प्रविश्य कुंभं संस्थाप्य सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥ १५ ॥ तेन चार्घ्यजलेनापि नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत् ॥ वास्तुनाथं पद्मयोनिं गंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥ १६ ॥ ततः कुर्यात्पंचगव्यं तेन चार्घ्योदकेन च ॥ तोरणस्तंभपर्यंतं प्रोक्षयेन्मंडपं गुरुः ॥ १७ ॥ सर्वं देवीमयं चेदं भावयेन्मनसा किल ॥ मूलमंत्रं जपन्भक्त्या प्रोक्षणं स्याच्छराणुना ॥१८॥ शरमंत्रं समुच्चार्य ताडयेन्मंडपक्षमाम् ॥ हुंमंत्रं तु समुच्चार्य कुर्यादभ्युक्षणं ततः ॥ १९ ॥ धूपयेदंतरं धूपैर्विकारान्विकिरेत्ततः ॥ मार्जयेत्तांस्तु मार्जन्या कुशनिर्मितया पुनः ॥२०॥ ईशानदिशि तत्पुंजं कृत्वा संस्थापयेन्मुने ॥ पुण्याहवाचनं कृत्वा दीनानाथांश्च तोषयेत् ॥२१॥ विशेन्मृद्वासने पश्चान्नमस्कृत्य गुरुं निजम् ॥ प्राङ्मुखो विधिवद्ध्यात्वा देयमंत्रस्य देवताम् ॥ २२ ॥ भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥ ऋष्यादिन्यासकं कुर्याद्देयमंत्रस्य वै मुने ॥२३॥ न्यसेन्मुनिं तु शिरसि मुखे छंदः समीरितम् ॥ देवतां हृदयांभोजे गुह्ये बीजं तु पादयोः ॥ २४ ॥ शक्तिं विन्यस्य पश्चात्तु तालत्रयरवात्ततः ॥ दिग्बंधं कारयेत्पश्चाच्छोटिकाभिस्त्रिभिर्नरः ॥२५॥ प्राणायामं ततः कृत्वा मूलमंत्रमनुस्मरन् ॥ मातृकां विन्यसेद्देहे तत्प्रकारस्तथोच्यते ॥ २६ ॥ ॐअं नम इति प्रोच्य न्यसेच्छिरसि मंत्रवित् ॥ एवमेव तु सर्वेषु न्यसेत्स्थानेषु वै मुने ॥ २७ ॥ मूलमंत्रं

कुशकी बनी हुई मार्जनीसे उस स्थानको झाड़ दे ॥ २० ॥ हे मुने ! उन द्रव्योंको ईशान दिशामें किसी जगह रख दे । इसके बाद पुण्याहवाचन करके गरीबों और निराश्रितोंको सन्तुष्ट करनेका यत्न करे ॥ २१ ॥ तत्पश्चात् कोमल आसनपर बैठे । अपने गुरुदेवको प्रणाम करके पूर्वाभिमुख बैठना चाहिये । फिर देय मन्त्रके जो देवता हों, उनका विधिवत् ध्यान करे ॥ २२ ॥ ग्यारहवें स्कन्धमें बतायी हुई विधिके अनुसार पहले भूतशुद्धि आदि क्रिया कर लेना आवश्यक है । हे मुने ! फिर देय मन्त्रके ऋषिका न्यास करे ॥२३॥ मस्तकमें देय मन्त्रके मुनिका, मुखमें छन्दका, हृदयरूपी कमलमें देवताका, गुह्यमें बीजका और दोनों पैरोंमें शक्तिका न्यास करके तीन बार ताली बजाये । फिर तीन बार चुटकी बजाकर दिग्बन्ध करे ॥२४॥२५॥ इसके बाद प्राणायाम करके मूलमंत्रका स्मरण करते हुए अपने शरीरमें मातृकान्यास करे । उसकी विधि इस प्रकार कही गयी गयी है ॥२६॥ हे मुने ! मन्त्रका 'ॐ अं नमः'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का उच्चारण करके अपने सिरमें मातृकाका न्यास करे। इसी प्रकार सम्पूर्ण अङ्गोंमें न्यास करना चाहिए ॥२७॥ श्रेष्ठ पुरुष देय मूलमन्त्रका अङ्गुष्ठ आदि अँगुलियों और हृदय आदि अङ्गोंमें क्रमशः षडङ्गन्यास करे ॥ २८ ॥ 'नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् और फट्'—इन पदोंके साथ ॐ लगा देनेसे ये मन्त्रके रूपमें परिणत हो जाते हैं। इन्हीं छः मन्त्रोंसे षडङ्गन्यास करे। ॥२९॥ तत्पश्चात् देय मन्त्रके वर्णोंका तत्तत् कल्पित स्थानोंमें न्यास करे। इस प्रकार न्यासकी विधि कही गयी है॥३०॥ हे मुने! तदनन्तर अपने शरीरमें ऐसी भावना करे कि यह एक पवित्र आसन है। इसके दक्षिण भागमें धर्म, वामभागमें ज्ञान, वाम ऊरुमें वैराग्य, दक्षिण ऊरुमें ऐश्वर्य और मुखदेशमें अधर्म विराजमान है। इस प्रकार चिन्तन करे॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर वामपार्श्व, नाभिस्थान तथा दक्षिणपार्श्वमें उक्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि नामोंके साथ 'नमः' लगाकर अर्थात् 'ॐअधर्माय नमः' 'अज्ञानाय नमः' 'अनैश्वर्याय नमः' यह उच्चारण करके इनका न्यास करे ॥३३॥ हे मुनिवर! शरीरमें जो आसनकी कल्पना की है, उसके विषयमें ऐसी भावना करे कि यह एक सुन्दर पलंग है। इसके चारों पाये अधर्म कहे गये हैं।

षडंगं च न्ससेदंगेषु सत्तमः ॥ अङ्गुष्ठादिष्वंगुलीषु हृदयादिषु च क्रमात् ॥ २८ ॥ नमः स्वाहावषड्युक्तैर्हुंवौषट्फट्पदान्वितैः ॥ प्रणवादियुतैर्मन्त्रैः षड्भिरेवं षडंगकम् ॥ २९ ॥ वर्णन्यासादिकं पश्चान्मूलमंत्रस्य योजयेत् ॥ स्थानेषु तत्तत्कल्पोक्तेष्विति न्यासविधिः स्मृतः ॥ ३० ॥ ततो निजे शरीरेऽस्मिंश्चितयेदासनं शुभम् ॥ दक्षांसे च न्यसेद्धर्मं वामांसे ज्ञानमेव च ॥ ३१ ॥ वामोरौ चापि वैराग्यं दक्षोरावथ विन्यसेत् ॥ ऐश्वर्यं मुखदेशे तु मुने ध्यायेदधर्मकम् ॥ ३२ ॥ वामपार्श्वे नाभिदेशे दक्षपार्श्वे तथा पुनः ॥ नञादींश्चापि ज्ञानादीन्पूर्वोक्तानेव विन्यसेत् ॥ ३३ ॥ पादा धर्मादयः प्रोक्ताः पीठस्य मुनिसत्तम ॥ अधर्माद्यास्तु गात्राणि स्मृतानि मुनिपुंगवैः ॥ ३४ ॥ मध्येऽनंतं हृदि स्थाने न्यसेन्मृद्वासने स्थले ॥ प्रपंचपद्मं विमलं तस्मिन्सूर्येन्दुपावकान् ॥ ३५ ॥ न्यसेत्कलायुतान्मन्त्री संक्षेपात्ता वदाम्यहम् ॥ सूर्यस्य द्वादश कलास्ता इन्दोः षोडश स्मृताः ॥३६॥ दश वह्नेः कलाः प्रोक्तास्ताभिर्युक्तांस्तु तान्स्मरेत् ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव न्यसेत्तेषामथोपरि ॥३७॥ आत्मानमंतरात्मानं परमात्मानमेव च ॥ ज्ञानात्मानं न्यसेद्विद्वानित्थं पीठस्य कल्पना ॥ ३८ ॥ अमुकासनाय नम इति मंत्रेण साधकः ॥ आसनं पूजयित्वा तु तस्मिन्ध्यायेत्परांबिकाम् ॥ ३९ ॥ कल्पोक्त-

क्योंकि श्रेष्ठ मुनियोंका ऐसा कथन है कि शरीरमय पलंगके चार पाये अधर्ममय हैं ॥ ३४ ॥ तत्पश्चात् ऐसी भावना करे कि इसके मध्यमें हृदय है और यह हृदय अत्यन्त सुकोमल है। इसपर भगवान् अनन्त विराजमान हैं। फिर प्रपंचमय विमल कमलका चिन्तन करे और उसपर सूर्य, चन्द्रमा और अग्निका मन्त्रोच्चारणपूर्वक कलायुक्त स्थानका न्यास करे। अब कलाओंका संक्षिप्त परिचय बताता हूँ। सूर्यकी बारह, चन्द्रमाकी सोलह और अग्निकी दस कलाएँ कही गयी हैं। उन कलाओंके साथ उनका स्मरण करे। उनके ऊपर सत्त्व, रज और तमका न्यास करे ॥ ३५—३७ ॥ फिर उस पीठकी चारों दिशाओंमें आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा—इनका विद्वान् पुरुष न्यास करे। इस प्रकार पीठकी कल्पना करनी चाहिए ॥ ३८ ॥ इसके बाद साधक पुरुष 'ॐ अमुकासनाय नमः' यह मन्त्र पढ़कर शरीररूपी आसनकी पूजा करे। साथ ही उस आसनपर भगवती जगदम्बाका ध्यान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करे ॥३९॥ कल्पोक्त विधिसे देय मन्त्रके देवताकी मानसिक उपचारोंके द्वारा विधिवत् पूजा करे ॥४०॥ फिर विद्वान् पुरुष प्रसन्नता प्रकट करनेवाली ये मुद्रायें प्रदर्शित करे, जिनसे भगवती-
को परम प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥४१॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे नारद ! इसके बाद अपने वामभागके अग्रदेशमें षट्कोण चक्रके ऊपर एक वर्तुलाकार चक्र बनावे। उसके ऊपर चन्दन-
से चतुष्कोण मण्डल लिखे। फिर षट्कोणके मध्यमें त्रिकोणका उल्लेख करके शङ्खमुद्रा प्रदर्शित करे। छः कोणोंमें छः अङ्गोंकी पुष्प आदिसे पूजा करनी चाहिये ॥४२॥४३॥ हे मुनिवर !
अग्नि आदि कोणोंमें छः अङ्गोंकी अर्चना करे। इसके बाद शङ्ख रखनेके पात्रको लेकर 'ॐ फट्' इस अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षण करके उस मंडलमें स्थापित करे। 'ॐ मं वह्निमंडलाय नमः' यह
मन्त्र पढ़कर 'दशकलात्मने अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नमः।' इसका उच्चारण करके विद्वान् पुरुष शङ्खके आधारका स्थापन करे। आधार-स्थापनके लिये भी यही मन्त्र है। आधारदेशमें

विधिना मंत्री देयमंत्रस्य देवताम् ॥ मानसैरुपचारैश्च पूजयेत्तां यथाविधि ॥ ४० ॥ मुद्राः प्रदर्शयेद्विद्वान्कल्पोक्ता मोदकारिकाः ॥ याभिर्विरचिता-
भिस्तु मोदो देव्यास्तु जायते ॥ ४१ ॥ नारायण उवाच ॥ ततः स्ववामभागाग्रे षट्कोणोपरि वर्तुलम् ॥ चतुरस्रयुतं सम्यङ्मध्ये मंडलमालिखेत्
॥ ४२ ॥ मध्ये त्रिकोणं संलिख्य शंखमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ षडंगानि च षट्कोणेष्वर्चयेत्कुसुमादिभिः ॥ ४३ ॥ अग्न्यादिषु तु कोणेषु षडंगार्चनमा-
चरेत् ॥ आधारपात्रमादाय शंखस्य मुनिसत्तम ॥४४॥ अस्त्रमंत्रेण संप्रोक्ष्य स्थापयेत्तत्र मंडले ॥ मं वह्निमंडलायोक्त्वा ततो दशकलात्मने ॥४५॥
अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नम इत्यपि ॥ मंत्रोऽयमुक्तः शंखस्याप्याधारस्थापने बुधैः ॥ ४६ ॥ आधारे पूर्वमारभ्य प्रदक्षिणक्रमेण तु ॥
दशवह्निकलाः पूज्या वह्निमंडलसंस्थिताः ॥४७॥ ततो वै मूलमंत्रेण प्रोक्षितं शंखमुत्तमम् ॥ स्थापयेत्तत्र चाधारे मूलमंत्रमनुस्मरन् ॥ ४८ ॥
अं सूर्यमंडलायोक्त्वा द्वादशांते कलात्मने ॥ अमुकदेव्यर्घ्यपात्राय नम इत्युच्चरेत्ततः ॥ ४९ ॥ शं शंखाय पदं प्रोच्य नम इत्येतदुच्चरेत् ॥ प्रोक्षयेत्तेन
तं शंखं तस्मिन्द्वादश पूजयेत् ॥५०॥ सूर्यस्य द्वादश कलास्तपिन्याद्या यथाक्रमम् ॥ विलोममातृकां प्रोच्य मूलमंत्रं विलोमकम् ॥ ५१ ॥
जलैरापूरयेच्छंखं तत्र चेंदोः कलां न्यसेत् ॥ उं सोममंडलायोक्त्वांते षोडशकलात्मने ॥ ५२ ॥ अमुकार्घ्यामृतायेति हृन्मंत्रांतो मनुः स्मृतः॥ पूज-
येन्मनुना तेन जलं तु सृणिमुद्रया ॥ ५३ ॥ तीर्थान्यावाह्य तत्रैवाप्यष्टकृत्वो जपेन्मनुम् ॥ षडंगानि जले न्यस्य हृदांसे पूजयेदपः ॥ ५४ ॥ अष्ट-

पूर्वसे आरम्भ करके दक्षिणके क्रमसे अग्निमण्डलमें निवास करनेवाली दस कलाओंकी पूजा करे ॥४४—४७॥ इसके बाद मूलमन्त्र द्वारा प्रोक्षित शंख देय मन्त्रका स्मरण करके उस आधारपर
रख दे। 'ॐ सूर्यमण्डलाय नमः' कहकर 'द्वादशान्ते कलात्मने अमुकदेव्यर्घ्यपात्राय नमः' का उच्चारण करे ॥४८॥ 'ॐ शं शङ्खाय नमः' इस पदको पढ़कर इसीसे शङ्खका प्रोक्षण करे।
फिर उस शङ्खमें बारह सूर्योंकी पूजा करे ॥४९॥ सूर्यको तपिनी आदि बारह कलायें हैं। यथाक्रम इनकी अर्चना करे। फिर मूलमन्त्र और विलोम मातृकाका उच्चारण करे ॥५०॥ इसके
बाद शङ्खको जलसे भर दे। उसमें चन्द्रमाकी कलाओंका न्यास करे। 'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अमुकार्घ्यामृताय हृदयाय नमः' यह मन्त्रका रूप बतलाया गया है। इस मन्त्रको
पढ़कर अङ्कुशमुद्रासे जलकी पूजा करे ॥ ५१॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसी स्थानपर तीर्थोंका आवाहन करके आठ बार इस मन्त्रका जप करे। फिर जलमें न्यास करके 'हृदयाय नमः' इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रद्वारा जलका पूजन करे ॥५४॥ तत्पश्चात् आठ बार मूलमन्त्रका जप करके मत्स्यमुद्रासे जलको ढाँक दे। तदनन्तर दक्षिणभागमें शंखकी प्रोक्षणी रखे ॥५५॥ शंखसे कुछ जल लेकर उसके द्वारा सब ओर प्रोक्षण करे। पूजाकी सामग्री और अपने शरीरका भी उसी जलसे प्रोक्षण करे। तदनन्तर शरीरकी परम शुद्धिकी कल्पना कर ले ॥५६॥ भगवान् नारायण कहते हैं– हे नारद! इसके बाद अपने सामने वेदीपर 'सर्वतोभद्रमण्डल' लिखकर उसकी कर्णिकाके मध्यभागको अगहनी धानके चावलसे भर दे ॥५७॥ वहीं 'कूर्च' जिनकी संज्ञा है, ऐसे सत्ताईस कुशोंको स्थापित करे। फिर 'ॐ आधारशक्तये नमः, 'ॐ मूलप्रकृत्यै नमः, 'ॐ कूर्माय नमः, ॐशेषाय नमः, ॐक्षमायै नमः, ॐसुधासिन्धवे नमः, ॐदुर्गादेवीयोगपीठाय नमः'— इन मन्त्रोंका उच्चारण करके पीठकी पूजा करे ॥५८॥ तत्पश्चात् छिद्ररहित कलश हाथमें लेकर 'ॐफट्' इस अस्त्रमन्त्रसे उसे प्रक्षालित करे। फिर तीन धागेवाले लाल सूत्रसे उस कलशको आवेष्टित करे ॥५९॥ नवरत्न और कूर्च उस कलशमें रखकर गन्ध आदिसे सुपूजित करके तारामन्त्रका उच्चारण करते हुए उस पीठपर उसे स्थापित कर दे ॥६०॥ हे मुने! इसके बाद

कृत्वो जपेन्मूलं छादयेन्मत्स्यमुद्रया ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे शंखस्य प्रोक्षणीं न्यसेत् ॥ ५५ ॥ शंखांबु किंचिन्निक्षिप्य प्रोक्षयेत्तेन सर्वतः ॥ पूजाद्रव्यं निजात्मानं विशुद्धं भावयेत्ततः ॥ ५६ ॥ नारायण उवाच ॥ ततः स्वपुरतो वेद्यां सर्वतोभद्रमंडलम् ॥ संलिख्य कर्णिकामध्यं पूरयेच्छालितंडुलैः ॥ ५७ ॥ आस्तीर्य दर्भास्तत्रैव न्यसेत्कूर्चं सलक्षणम् ॥ आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्वंतमर्चयेत् ॥ ५८ ॥ निर्व्रणं कुम्भमादायाप्यस्त्राद्भिः क्षालितांतरम् ॥ तंतुना वेष्टयेत्तं तु त्रिगुणेनारुणेन च ॥ ५९ ॥ नवरत्नोदरं कूर्चयुतं गंधादिपूजितम् ॥ स्थापयेत्तत्र पीठे तु तारामंत्रेण देशिकः ॥ ६० ॥ ऐक्यं कुंभस्य पीठस्य भावयेत्पूरयेत्ततः ॥ मातृकां प्रतिलोमेन जपंस्तीर्थोदकैर्मुने ॥ ६१ ॥ मूलमंत्रं च संजप्य पूरयेद्देवताधिया ॥ अश्वत्थपनसाम्राणां कोमलैर्नवपल्लवैः ॥ ६२ ॥ छादयेत्कुंभवदनं चषकं सफलाक्षतम् ॥ संस्थापयेत मतिमान्वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ ६३ ॥ प्राणस्थापनमंत्रेण प्राणस्थापनमाचरेत् ॥ आवाहनादिमुद्राभिर्मोदयेद्देवतां पराम् ॥ ६४ ॥ ध्यायेत्तां परमेशानीं कल्पोक्तेन प्रकारतः ॥ स्वागतं कुशलप्रश्नं देव्या अग्रे समुच्चरेत् ॥ ६५ ॥ पाद्यं दद्यात्ततोऽप्यर्घ्यं ततश्चाचमनीयकम् ॥ मधुपर्कं च साभ्यंगं देव्यै स्नानं निवेदयेत् ॥ ६६ ॥ वाससी च ततो दद्याद्रक्ते क्षौमे सुनिर्मले ॥ नानामणिगणाकीर्णानाकल्पान्कल्पयेत्ततः ॥ ६७ ॥ मनुना पुटितैर्वर्णैर्मातृकाया विधानतः ॥ देव्या अंगेषु विन्यस्य चन्दनाद्यैः

कलश और पीठमें ऐक्यभावकी कल्पना करे। फिर प्रतिलोमके क्रमसे मातृकामन्त्रका उच्चारण करते हुए तीर्थके जलसे कलशको भर दे ॥ ६१ ॥ देवताबुद्धिसे मूलमन्त्रका जप करके उस कलशको पूरा करे! तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष पीपल, कटहल अथवा आम्रके कोमल नये पल्लवोंसे कलशके मुखको ढाँक दे और उसके ऊपर फल और अक्षतसहित पात्र स्थापित करके दो वस्त्रोंसे उस कलशको लपेट दे ॥६२ ६३॥ प्राणप्रतिष्ठाका मन्त्र पढ़कर प्राणप्रतिष्ठा करे और आवाहनादि मुद्रासे परम आराध्या देवीको प्रसन्न करे ॥६४॥ कल्पोक्त विधिसे उन भगवती परमेश्वरीका ध्यान करके उनके आगे स्वागत और कुशलप्रश्न आदिसे भरे वाक्योंका उच्चारण करे ॥६५॥ फिर पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क और अभ्यङ्ग-स्नान आदि देवीको निवेदन करे ॥ ६६ ॥ फिर दो वस्त्र अर्पण करे। वे रेशमी वस्त्र लाल रंगके और स्वच्छ होने चाहिये। इसके बाद ऐसी भावना करे कि हम नाना प्रकारकी अकल्पित मणियाँ भगवतीको अर्पण कर रहे हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ ६७ ॥ तदनन्तर मन्त्रसंपुटित वर्णोंद्वारा विधिपूर्वक देवीके अङ्गोंमें मातृकाका न्यास करके चन्दन आदि उपचारोंसे भलीभाँति पूजा करे ॥६८॥ हे मुने ! काला अगुरु और कर्पूरयुक्त गंध, कस्तूरीयुक्त केसर, चन्दन तथा कुंदके पुष्प भगवतीको अर्पण करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष अगुरु, गुग्गुल, उशीर, चन्दन, शर्करा और मधुमिश्रित धूप, जो जगवतीको अत्यन्त प्रिय हैं, अर्पण करे। फिर बहुत-से दीपक सेवामें प्रदर्शित करके नैवेद्य अर्पण करे ॥६९-७१॥ प्रत्येक द्रव्यमें प्रोक्षणीका किञ्चित् जल छोड़े। प्रोक्षणीके सिवा दूसरा जल नहीं होना चाहिए। इसके बाद अङ्गपूजा और कल्पोक्त आवरणपूजा करे ॥७२॥ तदनन्तर देवीकी साङ्गपूजा करके विश्वेदेवकी पूजा करे। दक्षिण दिशामें वेदी बनाकर उसपर अग्निस्थापन करे ॥७३॥ मूर्तिमान् देवताका आवाहन करके क्रमशः अर्चन करे। इसके बाद प्रणवपूर्वक व्याहृतिसहितं मूलमन्त्रका उच्चारण करे ॥ ७४ ॥ हे मुने ! घृतसहित खीरकी पचीस आहुति देनेके पश्चात् व्याहृति मंत्रोंसे हवन

समर्चयेत् ॥ ६८ ॥ गंधः कालागुरुभवः कर्पूरेण समन्वितः ॥ काश्मीरं चंदनं चापि कस्तूरीसहितं मुने ॥ ६९ ॥ कुन्दपुष्पादिपुष्पाणि परदेव्यै समर्पयेत् ॥ धूपोऽगुरुपुरुगुग्नातोशीरचन्दनशर्कराः ॥७०॥ मधुमिश्राः स्मृता देव्याः प्रिया धूपात्मना सदा ॥ दीपाननेकान्दत्त्वाऽथ नैवेद्यं दर्शयेत्सुधीः ॥ ७१ ॥ प्रतिद्रव्यं जलं दद्यात्प्रोक्षणीस्थं न चान्यथा ॥ ततः कुर्यादंगपूजां कल्पोक्तावरणानि च ॥ ७२ ॥ सांगां देवीमथाभ्यर्च्य वैश्वदेवं ततश्चरेत् ॥ दक्षिणे स्थंडिलं कृत्वा तत्राधाय हुताशनम् ॥ ७३ ॥ मूर्तिस्थां देवतां तत्रावाह्य सम्पूज्य च क्रमात् ॥ तारव्याहृतिभिर्हुत्वा मूलमंत्रेण वै ततः ॥ ७४ ॥ पञ्चविंशतिवारं तु पायसेन ससर्पिषा ॥ हुनेत्पश्चाद्व्याहृतिभिः पुनश्च जुहुयान्मुने ॥ ७५ ॥ गंधाद्यैरर्चयित्वा च देवीं पीठे तु योजयेत् ॥ वह्निं विसृज्य हविषा परितो विकिरेद्बलिम् ॥ ७६ ॥ देवतायाः पार्षदेभ्यो गंधपुष्पादिसंयुतान् ॥ पञ्चोपचारान्दत्त्वाऽथ ताम्बूलं छत्रचामरे ॥ ७७ ॥ दद्याद्देव्यै ततो मंत्रं सहस्रावृत्तितो जपेत् ॥ जपं समर्प्य चैशान्यै विकिरे दिशि संस्थिते ॥७८॥ कर्करीं स्थापयेत्तस्यां दुर्गामावाह्य पूजयेत् ॥ रक्षरक्षेति चोच्चार्य्य नालमुक्तेन वारिणा ॥७९॥ अस्त्रमंत्रं जपन्देशं सेचयेत्तु प्रदक्षिणम् ॥ कर्करीं स्थापयेत्स्थाने पूजयेच्चास्त्रदेवताम् ॥८०॥ पश्चाद्गुरुस्तु शिष्येण सह भुंजीत वाग्यतः ॥ तस्यां रात्रौ तु तद्वेद्यां निद्रां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ८१ ॥ नारायण उवाच ॥ ततः कुण्डस्य संस्कारं स्थंडिलस्य च वा

करे ॥ ७५ ॥ गन्ध आदि उपचारोंसे पूजा करके देवीको उस पीठपर पधरावे। अग्निका विसर्जन करे। इसके बाद वहाँ चारों ओर खीरसे बलि दे ॥ ७६ ॥ प्रधान देवताके पार्षदोंको गन्ध-पुष्प आदिसे युक्त पाँच प्रकारके उपचार अर्पण करके उन्हें ताम्बूल, छत्र और चँवर अर्पण करे ॥७७॥ इसके बाद देवीके मन्त्रका एक हजार जप करे। पहलेसे ही ईशान दिशाको स्वच्छ करके वहाँ कर्करी (दो मुँहका करवा) स्थापित करे, वहीं भगवती दुर्गाकी अर्चना करे। तदनन्तर (रक्ष--रक्ष) इस मंत्रका उच्चारण करके उस करवेकी टोंटीसे जल गिराते हुए दाहिना ओरके मण्डपस्थानको सींचे और फट् मंत्रका जप करे। फिर अस्त्रदेवता (दुर्गा) का पूजन करनेके बाद करवेको अपनी जगह रख दे ॥७८-८०॥ तत्पश्चात् शिष्यके साथ गुरु मौन होकर भोजन करे। उस रात उसी वेदीपर यत्नपूर्वक शयन करे ॥ ८१ ॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे मुने ! इसके बाद कुण्ड तथा वेदीका जिस विधिसे संस्कार किया जाता है, वह प्रसङ्ग संक्षेपमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बतलाता हूँ ॥ ८२ ॥ मूलमन्त्रका उच्चारण करके कुण्ड अथवा वेदीका निरीक्षण करे। 'ॐ फट्' इस अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके दृढ़ करनेके विचारसे समिधा आदिका प्रोक्षण और ताड़न करे ॥ ८३ ॥ फिर 'ॐ हुं' इस कवचमंत्रसे अभ्युक्षण करे। फिर वेदीपर तीन-तीन रेखाएँ खींचे। वे रेखाएँ प्रागग्र अथवा उदगग्र हों ॥ ८४ ॥ प्रणवमंत्रका उच्चारण करके अभ्युक्षण करे। इसके बाद देवीके सिंहासनकी पूजा करे। 'ॐ आधारशक्तये नमः' यहाँसे आरम्भ करके 'ॐ अमुकदेवीयोगपीठाय नमः' यहाँतकके मन्त्रोंको पढ़कर पीठकी पूजा करे ॥ ८५ ॥ इसके बाद उस पीठपर परम दयालु भगवान शंकर और पार्वतीका आवाहन करके गन्ध आदि उपचारों द्वारा सावधानीके साथ उनकी पूजा करे ॥ ८६ ॥ उस समय इस प्रकार देवीका ध्यान करे—'भगवती पार्वती ऋतुस्नानसे निवृत्त होकर भगवान शंकरके पास विराज रही हैं। इनके मनमें मिलनाकांक्षा जाग्रत् हो गयी है। ये दोनों महानुभाव कुछ हासविलास करना चाहते हैं।' ॥ ८७ ॥ तदनन्तर एक पात्रमें अग्नि लाकर रक्खे। उसमेंसे क्रव्यादांशका परित्याग करे

मुने ॥ प्रवक्ष्यामि समासेन यथाविधि विधानतः ॥ ८२ ॥ मूलमंत्रं समुच्चार्य वीक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥ प्रोक्षयेत्ताडनं कुर्यात्तेनैव कवचेन तु ॥ ८३ ॥ अभ्युक्षणं समुद्दिष्टं तिस्रस्तिस्रस्ततः परम् ॥ प्रागग्रा उदगग्राश्च लिखेल्लेखाः समंततः ॥ ८४ ॥ प्रणवेन समभ्युक्ष्य पीठं देव्याः समर्चयेत् ॥ आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्त्रावसानकम् ॥ ८५ ॥ तस्मिन्पीठे समावाह्य शिवौ परमकारणौ ॥ गन्धाद्यैरुपचारैश्च पूजयेत्तौ समाहितः ॥ ८६ ॥ देवीं ध्यायेदृतुस्नातां संसक्तां शंकरेण तु ॥ कामातुरां तयोः क्रीडां किंचित्कालं विभावयेत् ॥ ८७ ॥ अथ वह्निं समादाय पात्रेण पुरतो न्यसेत् ॥ क्रव्यादांशं परित्यज्य पूर्वोक्तैर्वीक्षणादिभिः ॥ ८८ ॥ संस्कृत्य वह्निं रंबीजमुच्चार्य तदनन्तरम् ॥ चैतन्यं योजयेत्तस्मिन्प्रणवेनाभिमंत्रयेत् ॥ ८९ ॥ सप्तवारं ततो धेनुमुद्रां संदर्शयेद्गुरुः ॥ शरेण रक्षितं कृत्वा तनुत्रेणावगुंठयेत् ॥ ९० ॥ अर्चितं त्रिः परिभ्राम्य प्रादक्षिण्येन सत्तमः ॥ कुण्डोपरि जपंस्तारं जानुस्पृष्टमहीतलः ॥ ९१ ॥ शिवबीजधिया देव्या योनौ वह्निं विनिक्षिपेत् ॥ आचामयेत्ततो देवं देवीं च जगदम्बिकाम् ॥ ९२ ॥ चिपिंगल हन दहपचयुग्मं ततः परम् ॥ सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मंत्रोऽयं वह्निदीपने ॥९३॥ अग्निं प्रज्वलितं वंदे जातवेदं हुताशनम् ॥ सुवर्णवर्ण-

दे। तत्पश्चात् पूर्वकथित वीक्षण आदि क्रियाओंसे अग्निका संस्कार करके 'ॐ रं' इस बीजमन्त्रका उच्चारण करके उस अग्निमें चेतनाकी योजना करे। फिर सात बार प्रणवका उच्चारण करके उसका अभिमन्त्रण करे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ फिर गुरुको चाहिये कि वे अग्निको धेनुमुद्रा प्रदर्शित करें। 'ॐ फट्' इस अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके अग्निको सुरक्षित करनेके पश्चात् 'ॐ हुं' इस कवचमन्त्रसे अवगुण्ठन करे ॥ ९० ॥ फिर श्रेष्ठ पुरुष अपने घुटनोंको पृथ्वीपर टेककर तारमन्त्रका उच्चारण करते हुए चन्दन आदिसे सुपूजित अग्निकी प्रदक्षिणाके क्रमसे कुण्डके ऊपर तीन बार घुमाये ॥९१॥ यह अग्नि शिवका बीजस्वरूप है, इस बुद्धिसे कुण्डरूपा देवीकी योनिमें छोड़ दे। फिर भगवान शिव और भगवती जगदम्बिकाको आचमन कराये ॥ ९२ ॥ इसके बाद 'ॐ चित्पिङ्गल हन-हन दह-दह पच-पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' इस मन्त्रको पढ़कर अग्निको प्रज्वलित करे ॥ ९३ ॥ 'जातवेदा' नामसे प्रसिद्ध एवं प्रज्वलित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अग्निदेवको मैं प्रणाम करता हूँ । हुताशनसंज्ञक ये अग्निदेव सुवर्णके समान पीतवर्ण, निर्मल, परम प्रदीप्त और सर्वतोमुख हैं ॥९४॥ इस मन्त्रसे अत्यन्त आदरपूर्वक अग्निकी स्तुति करे । इसके बाद श्रेष्ठ आचार्यको वह्निमन्त्रसे षडङ्गन्यास करना चाहिये ॥९५॥ 'ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम्, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट्' इस प्रकार पूर्वस्थानमें षडङ्गन्यास करे ॥ ९६ ॥ ये नाम अङ्गन्यासके समय जातियुक्त अर्थात् नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् और फट्–इन पदोंसे युक्त होकर छः अंगोंमें व्यस्त होते हैं । इसके बाद अग्निका ध्यान करे । ये अग्निदेव हेमवर्ण हैं और तीन नेत्रोंसे सुशोभित होकर कमलके आसनपर विराजमान हैं ९७॥ तदनन्तर मन्त्रज्ञ वरमुद्रा, इष्टशक्ति, स्वस्तिक, अभय, धारक और परम मंगल मुद्रा प्रदर्शित करके कुण्डमें मेखलाके ऊपर जलके छींटे दे ॥९८॥ इसके बाद कुशोंसे परिस्तरण करे । तत्पश्चात् कुण्डके चारों ओर परिधि बनावे । अग्निस्थापनके पूर्व त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल कमल और भूपूरसहित यन्त्र लिखे अथवा अग्निस्थापने करके उसे

ममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥९४॥ मंत्रणानेन तं वह्निं स्तुवीत परमादरात् ॥ ततो न्यसेद्वह्निमंत्रं षडंगं देशिकोत्तमः ॥ ९५ ॥ सहस्रार्चिः स्वस्ति-
पूर्ण उत्तिष्ठपुरुषः स्मृतः ॥ धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इति क्रमात् ॥ ९६ ॥ जातियुक्ताः षडंगाः स्युः पूर्वस्थानेषु विन्यसेत् ॥ ध्यायेद्वह्निं हेमवर्णं
त्रिनेत्रं पद्मसंस्थितम् ॥ ९७ ॥ इष्टशक्तिस्वस्तिकाऽभीर्धारकं मंगलं परम् ॥ परिषिंचेत्ततः कुंडं मेखलोपरि मंत्रवित् ॥ ९८ ॥ दर्भैः परिस्तरेत्पश्चा-
त्परिधीन्विन्यसेदथ ॥ त्रिकोणवृत्तषट्कोणं साष्टपत्रं सभूपुरम् ॥ ९९ ॥ यंत्रं विभावयेद्वह्नेः पूर्वं वा संलिखेदथ ॥ तन्मध्ये पूजयेद्वह्निं मंत्रेणानेन वै
मुने ॥ १०० ॥ वैश्वानर ततो जातवेदः पश्चादिहावह ॥ लोहिताक्षपदं प्रोक्त्वा सर्वकर्माणि साधय ॥ १०१ ॥ वह्निजायांतको मन्त्रस्तेन वह्निं तु
पूजयेत् ॥ मध्ये षट्स्वपि कोणेषु हिरण्या गगना तथा ॥ १०२ ॥ रक्ता कृष्णा सुप्रभा च बहुरूपाऽतिरक्तिका ॥ पूजयेत्सप्तजिह्वास्ताः केसरेष्वंग-
पूजनम् ॥१०३॥ दलेषु पूजयेन्मूर्तीः शक्तिस्वस्तिकधारिणीः ॥ जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन एव च ॥१०४॥ अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वा-
नराह्वयः ॥ कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृतः ॥१०५॥ तारागन्ये पदाद्याः स्युर्नत्यंता वह्निमूर्तयः ॥ लोकपालांश्चतुर्दिक्षु वज्राद्यायुध-
संयुतान् ॥ १०६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ततः स्रुक्स्रुवसंस्कारावाज्यसंस्कार एव च ॥ कृत्वा होमं ततः कुर्यात्स्रुवेणादाय वै घृतम् ॥ १०७ ॥

लिख ले । हे मुने ! उसके मध्यमें वह्निमन्त्रसे पूजा करे ॥९९॥१००॥ वह मन्त्र इस प्रकार है–'ॐ वैश्वानरो जातवेदा इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा ।' बीचके ६ कोणोंमें हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरक्तिका--अग्निकी इन सात जिह्वाओंकी पूजा करे ॥१०१--१०३॥ केसरोंमें अंगोंको तथा दलोंमें शक्ति और स्वस्ति धारण करने-वाली मूर्तियोंकी पूजा करे । जातवेदा, सप्तजिह्वा, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेजा, विश्वमुख और देवमुख—ये आठ अग्नियाँ प्रसिद्ध हैं ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ इन अग्नियोंके आदिमें 'ॐ अग्नये' और अन्तमें 'नमः स्वाहा' इस पदका उच्चारण करके पूजा करनेका विधान है--अर्थात् 'अग्नये जातवेदसे नमः स्वाहा', 'ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः स्वाहा', ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः स्वाहा', 'ॐ अग्नये देवमुखाय नमः स्वाहा',--इस प्रकार आठों दलों तथा आठों मूर्तियोंकी पूजा करे । इसके बाद चारों दिशाओंमें वज्र एवं आयुध धारण करनेवाले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकपालोंकी पूजा करे ॥१०६॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे मुने ! तदनन्तर स्रुक्, स्रुवा और घृतका संस्कार करके स्रुवासे घृतका अग्निमें हवन करे ॥१०७॥ हे मुनिवर ! घृतको दक्षिणभागसे उठाकर 'ॐ अग्नये स्वाहा'से अग्निके दक्षिण नेत्रमें, वामभागसे उठाकर 'ॐ सोमाय स्वाहा' से वामनेत्रमें तथा घृत लेकर 'ॐअग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए अग्निके मध्य नेत्रमें हवन करे ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ फिर दक्षिणभागसे घृत लेकर 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्रके द्वारा अग्निके मुखमें हवन करे ॥ ११० ॥ इसके बाद साधक पुरुष 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वाहा' इनसे हवन करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त अग्निमन्त्रका उच्चारण करके तीन बार आहुति दे ॥ १११ ॥ हे मुने ! फिर प्रणवमन्त्रसे गर्भाधान आदि आठ संस्कारोंके निमित्त प्रणवका उच्चारण करते हुए घृतकी आठ आहुतियाँ दे ॥११२॥ गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण और व्रतबन्ध--ये आठ संस्कार हैं। ऐसे ही चार वैदिक संस्कारोंके लिये भी चार बार प्रणवका उच्चारण करके घृतका हवन करे। वे वैदिक संस्कार इस प्रकार

दक्षिणाद्घृतभागात्तु वह्नेर्दक्षिणलोचने ॥ जुहुयादग्नये स्वाहेत्येवं वै वामतोऽन्यतः ॥१०८॥ सोमाय स्वाहेति मध्याद्घृतमादाय सत्तम॥ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति मध्यनेत्रे हुनेत्ततः ॥ १०९ ॥ पुनर्दक्षिणभागात्तु घृतमादाय वै मुखे ॥ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेत्यनेनैव हुनेत्ततः ॥११०॥ सताराभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयादथ साधकः ॥ जुहुयादग्निमंत्रेण त्रिवारं तु ततः परम् ॥१११॥ ततस्तु प्रणवेनैवाप्यष्टावष्टौ घृताहुतीः ॥ गर्भाधानादिसंस्कारकृते तु जुहुयान्मुने ॥ ११२ ॥ गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः ॥ जातकर्म नामकर्माप्युपनिष्क्रमणं तथा ॥ ११३ ॥ अन्नाशनं तथा चूडा व्रतबंधस्तथैव च ॥ महानाम्न्यं व्रतं पश्चात्तथोपनिषदं व्रतम् ॥ ११४ ॥ गोदानोद्वाहकौ प्रोक्ताः संस्कारा श्रुतिचोदिताः ॥ ततः शिवं पार्वतीं च पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥११५॥ जुहुयात्पंच समिधो वह्निमुद्दिश्य साधकः ॥ पश्चादावरणानां चाप्येकैकामाहुतिं हुनेत् ॥११६॥ घृतं स्रुचि समादाय चतुर्वारं स्रुवेण च ॥ पिधाय तां तु तेनैव मुने तिष्ठन्निजासने॥११७॥ वौषडन्तेन मनुना वह्नेस्तु जुहुयात्ततः ॥ महागणेशमंत्रेण जुहुयादाहुतीर्दश ॥ ११८ ॥ वह्नौ पीठं समभ्यर्च्य देयमन्त्रस्य देवताम् ॥ वह्नौ ध्यात्वा तु तद्वक्त्रं पंचविंशतिसंख्यया ॥ ११९ ॥ मूलमंत्रेण जुहुयाद्वक्त्रैकीकरणाय च ॥ वह्निदेवतयोरैक्यं भावयान्नात्मना सह ॥१२०॥ एकीभूतं भावयेत्तु ततस्तु साधकोत्तमः ॥ षडङ्गं देवतानां च जुहुयादाहुतीः पृथक् ॥१२१॥

प्रसिद्ध हैं--महानाम्न्य, औषनिषद, गोदान और उद्वाहक। इसके बाद शिव और पार्वतीकी पूजा करके उनका विसर्जन करे ॥ ११३--११५ ॥ फिर साधक पुरुष अग्निके उद्देश्यसे पाँच समिधाओंका हवन करे। तदनन्तर आवरणदेवताओंके लिए भी एक-एक आहुति दे ॥ ११६ ॥ हे मुने ! इसके पश्चात् स्रुवामें घृत रखकर उसे ढँक दे। अपने आसनपर बैठे ही बैठे स्रुवामें लेकर उसी घृतसे चार बार हवन करे ॥ ११७ ॥ यह आहुति अग्निमन्त्रके साथ 'वौषट्' लगाकर उसीका उच्चारण करे। तदनन्तर महागणेश मन्त्रसे दस आहुतियाँ दे ॥ ११८ ॥ पुनः देय मन्त्रके देवताके आसनकी अग्निमें पूजा करे। साथ ही उन देय मन्त्र-सम्बन्धी देवताका ध्यान करे। तत्पश्चात् उन देवताओंके मुखमें मूल मन्त्रका उच्चारण करके पचीस आहुतियाँ दे ॥ ११९ ॥ मुझमें, अग्नि और देय मन्त्र सम्बन्धी देवतामें एकता स्थापित हो जाय, इस भावनासे श्रेष्ठ साधकको ये आहुतियाँ अवश्य देनी चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर छः अङ्गवाले देवताओंको पृथक्-पृथक् छः आहुतियाँ दे ॥ १२० ॥ १२१ ॥ हे मुनिवर ! अग्नि और देय मन्त्रसम्बन्धी देवताकी नाड़ियोंका एकीकरण करनेके लिए ग्यारह आहुतियाँ दे । हे मुने ! एक देवताके उद्देश्यसे एक आहुति, यों आवृत्तिपूर्वक क्रमशः घृतसे एक-एक आहुति दे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ तदनन्तर कल्पोक्त द्रव्यों अथवा तिलसे देवताके मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए एक हजार आठ आहुतियाँ दे ॥१२४॥ हे मुने ! इस प्रकार आहुति देनेके पश्चात् मनमें यह भावना करे कि 'देवी अब मुझपर प्रसन्न हो गयी हैं। ऐसी आवृत्तिसे देवी, अग्नि तथा देयमन्त्रसम्बन्धी देवता भी प्रसन्न हो गये हैं।' ॥१२५॥ तदनन्तर जिसने भलीभाँति स्नान कर लिया हो, जो संध्या-वन्दन आदिसे निवृत्त हो, दो वस्त्र धारण किये हुए हो, जिसके शरीरपर सुवर्णका कोई आभूषण हो तथा हाथमें कमण्डलु हो, ऐसे शिष्यको आचार्य कुण्डके पास बुला ले। शिष्यको चाहिए कि गुरुदेवको, वहाँ बैठे हुए जो श्रेष्ठ पुरुष हों,

एकादशव जुहुयादाहुतीर्मुनिसत्तम ॥ एतेन नाडीसंधानं वह्निदेवतयोर्मुने ॥१२२॥ एकैकक्रमयोगेनाप्यावृत्तीनां तथैव च ॥ एकैकक्रमयोगेन घृतेन जुहुयान्मुने ॥ १२३ ॥ ततः कल्पोक्तद्रव्यैस्तु जुहुयादथवा तिलैः ॥ देवतामूलमंत्रेण गजांतकसहस्रकम् ॥ १२४ ॥ एवं हुत्वा ततो देवीं संतुष्टां भावयेन्मुने ॥ तथैवावृतिदेवीश्च वह्न्याद्या देवता अपि ॥ १२५ ॥ ततः शिष्यं च सुस्नातं कृतसंध्यादिकक्रियाम् ॥ वस्त्रद्वययुतं स्वर्णाभरणेन समन्वितम् ॥१२६॥ कमंडलुं करशुद्ध्यै कुंडस्यांतिकमानयेत् ॥ नमस्कृत्य ततः शिष्यो गुरूनथ सभासदः ॥ १२७ ॥ कुलदेवं नमस्कृत्य विशेत्तत्राथ विष्टरे ॥ गुरुस्ततस्तु तं शिष्यं कृपादृष्ट्या विलोकयेत् ॥ १२८ ॥ तच्चैतन्यं निजे देहे भावयेत्संगतं त्विति ॥ ततः शिष्यतनुस्थानामध्वनां परिशोधनम् ॥१२९॥ कुर्यात्तु होमतो विद्वान्दिव्यदृष्ट्याऽवलोकनात् ॥ येन जायेत शुद्धात्मा योग्यो देवाद्यनुग्रहे ॥१३०॥ श्रीनारायण उवाच ॥ तनौ ध्यायेत्तु शिष्यस्य षडध्वनः क्रमेण तु ॥ पादयोस्तु कलाध्वानं लिंगे तत्त्वाध्वकं पुनः ॥१३१॥ नाभौ तु भुवनाध्वानं वर्णाध्वानं तथा हृदि ॥ पदाध्वानं तथा भाले मंत्राध्वानं तु मूर्धनि ॥ १३२ ॥ शिष्यं स्पृशंस्तु कूर्चेन तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥ शोधयाम्यमुमध्वानं स्वाहेति मनुमुच्चरन् ॥ १३३ ॥ ताराढ्यं जुहुयादष्टवारं प्रत्यध्वमेव हि ॥ षडध्वनस्ततस्तांस्तु लीनान्ब्रह्मणि भावयेत् ॥ १३४ ॥ पुनरुत्पादयेत्तस्मात्सृष्टिमार्गेण वै गुरुः ॥ आत्म-

उनको तथा कुलदेवको नमस्कार करके वहीं आसनपर बैठ जाय। तब गुरुदेव कृपापूर्ण दृष्टिसे उस शिष्यको देखें ॥१२६-१२८॥ साथ ही शिष्यकी चेतना मेरे शरीरमें आ गयी हैं; इस प्रकारकी भावना करें। तदनन्तर वे विद्वान् आचार्य दिव्य दृष्टिसे अवलोकन द्वारा हवनपूर्वक शिष्यके देहमें स्थित मार्गोंका परिशोधन करें। जिससे शिष्य देवताओंकी कृपाका शुद्ध अधिकारी बन सके ॥१२९-१३१॥ भगवान् नारायण कहते हैं—हे मुने ! शिष्यके शरीरमें क्रमशः छः अध्वाओंका चिन्तन करना चाहिए—पैरोंमें कलाध्वाका, लिंगमें तत्त्वाध्वाका, नाभिमें भुवनाध्वाका, हृदयमें वर्णाध्वाका, ललाटमें पदाध्वाका तथा मस्तकमें मन्त्राध्वाका चिन्तन करे ॥१३२॥ कूर्चसे शिष्यको स्पर्श करते हुए 'ॐ अमुमध्वानं शोधयामि स्वाहा' इस मंत्रके द्वारा घृतमिश्रित तिलोंका हवन करे ॥१३३॥ प्रत्येक अध्वाके निमित्त आठ-आठ आहुतियाँ देनी चाहिए। यों करके ऐसी भावना करे कि शिष्यके ये छहों अध्वा अब ब्रह्ममें लीन हो गये हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥१३४॥ फिर गुरु ब्रह्ममें लीन उन अध्वाओंको पुनः सृष्टिमार्गसे उत्पन्न करनेकी भावना करे। अपने शरीरमें स्थित चैतन्यरूपको शिष्यमें नियोजित करना गुरुके लिये आवश्यक है ॥१३५॥ इसके पश्चात् पूर्णाहुति देकर होमके लिए आवाहित देवताओंको कलशपर स्थापित करे। फिर अग्निके अङ्गोंके उद्देश्यसे व्याहृतियोंका उच्चारण करके आहुतियाँ दे॥ १३६॥ एक-एक देवताके लिए एक-एक आहुति दे। ऐसा करके आत्मामें अग्निका विसर्जन कर दे। इसके बाद गुरु 'ॐ वौषट्' इस मंत्रको पढ़कर वस्त्रसे शिष्यकी दोनों आँखोंको ढाँक दे और उसे कुण्डके समीपसे उठकर कलशके पास उपस्थित होनेकी आज्ञा दे। फिर शिष्यके हाथसे प्रधान देवीके लिये पुष्पाञ्जलि समर्पित करावे ॥१३७॥१३८॥ अब नेत्रोंका आवरण हटाकर शिष्यको कुशके आसनपर बैठा दे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे शिष्यके शरीरकी भूतशुद्धि करे ॥१३९॥ इसके बाद शिष्यके शरीरमें मन्त्रोक्त न्यास करनेके पश्चात् उसे दूसरे मण्डलमें शान्तभावसे बैठ जानेकी आज्ञा दे। तदनन्तर कलशमें रखे हुए पल्लवोंको शिष्यके मस्तकपर रखकर मातृकाका जप करे। फिर कलशके दिव्य जलसे शिष्यको नहानेकी आज्ञा दे॥१४०॥१४१॥ स्नानके पश्चात् शिष्यको

स्थितं तच्चैतन्यं पुनः शिष्ये तु योजयेत् ॥१३५॥ पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा देवतां कलशे नयेत्॥ पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा वह्नेरंगाहुतीस्तथा ॥ १३६ ॥
एकैकशो गुरुर्दत्त्वा विसृजेद्वह्निमात्मनि ॥ ततः शिष्यस्य नेत्रे तु बध्नीयाद्वाससा गुरुः ॥ १३७ ॥ नेत्रमंत्रेण तं शिष्यं कुण्डतो मंडलं नयेत् ॥
पुष्पांजलिं मुख्यदेव्यां कारयेच्छिष्यहस्ततः ॥ १३८॥ नेत्रबंधं निराकृत्य वेशयेत्कुशविष्टरे ॥ भूतशुद्धिं शिष्यदेहे कुर्यात्प्रोक्तेन वर्त्मना ॥ १३९ ॥
मंत्रोदितांस्तथा न्यासान्कृत्वा शिष्यतनौ ततः ॥ मंडले वेशयेच्छिष्यमन्यस्मिन्कुम्भसंस्थितान् ॥ १४० ॥ पल्लवाञ्छिष्यशिरसि विन्यसेन्मातृकां
जपेत् ॥ कलशस्थजलैः शिष्यं स्नापयेद्देवतात्मकैः ॥ १४१ ॥ वर्धनीजलसेकं च कुर्याद्रक्षार्थमंजसा ॥ ततः शिष्यः समुत्थाय वाससी परिधाय च
॥ १४२ ॥ कृतभस्मावलेपश्च संविशेद्गुरुसन्निधौ ॥ ततो गुरुः स्वकीयात्तु हृदयान्निर्गतां शिवाम् ॥१४३॥ प्रविष्टां शिष्यहृदये भावयेत्करुणानिधिः॥
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैरैक्यं वै भावयंस्तयोः ॥१४४॥ ततस्त्रिशो दक्षकर्णे शिष्यस्योपदिशेद्गुरुः॥ महामंत्रं महादेव्याः स्वहस्तं शिरसि न्यसेत् ॥१४५॥
अष्टोत्तरशतं मंत्रं शिष्योऽपि प्रजपेन्मुने ॥ दंडवत्प्रणमेद्भूमौ तं गुरुं देवतात्मकम् ॥ १४६ ॥ सर्वस्वमर्पयेत्तस्मै यावज्जीवमनन्यधीः ॥ ऋत्विग्भ्यो
दक्षिणां दत्त्वा ब्रह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ १४७ ॥ सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकांश्चैव सर्वशः ॥ दीनानाथान्दरिद्रांश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ १४८ ॥

भलीभाँति सुरक्षित रखनेके लिये वर्धनीसंज्ञक कलशके जलसे अभिषेक करे। इसके बाद शिष्य उठकर दो नये वस्त्र धारण करके और भस्म आदि लगाकर गुरुदेवके समीप बैठ जाय। तब परम कृपालु गुरुदेव ऐसी भावना करें कि 'भगवती शिवा मेरे हृदयसे निकलकर अब इस शिष्यके हृदयमें विराज रही हैं।' अतः उन दोनोंमें ऐक्यकी भावनासे गंध आदि उपचारों द्वारा उनकी अर्चना करें ॥१४२–१४४॥ तत्पश्चात् गुरुदेव अपना हाथ शिष्यके सिरपर रखते हुए उसके दाहिने कानमें देवीके महामंत्रका तीन बार उपदेश करें। हे मुने! तब शिष्य उस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। शिष्य गुरुको देवतास्वरूप मानता हुआ पृथ्वीपर पड़कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करे ॥१४५॥१४६॥ उन्हें अपनेको अर्पण कर दे। ऐसी सद्भावना उसके मनमें जीवनपर्यन्त रहनी चाहिये। तदनन्तर ऋत्विजोंको दक्षिणा दे और ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥१४७॥ सौभाग्यवती स्त्रियां, कन्याओं और ब्रह्मचारियोंको भलीभाँति भोजन करावे। धनको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृपणता न करके दीनों, अनाथों और दरिद्रोंकी सेवा करे॥१४८॥अपनेको कृतार्थ समझकर मन्त्रकी नित्य उपासना करे। इस प्रकार दीक्षाकी यह उत्तम विधि मैंने तुम्हें बतला दी ॥१४९॥ इस विषयमें सम्यक् प्रकारसे विचार करके अब तुम देवीके चरणकमलकी उपासनामें संलग्न हो जाओ। ब्राह्मणके लिये इससे बढ़कर परम उपयोगी दूसरा कोई धर्म नहीं है ॥१५०॥ वैदिक पुरुष अपने-अपने गृह्यसूत्रमें कहे हुए नियमके अनुसार मन्त्रका उपदेश करें। तान्त्रिकको तन्त्रकी रीतिसे उपदेश करना चाहिये। यही सनातन प्रणाली है ॥१५१॥ जिनके लिये जो-जो प्रयोग निर्धारित हैं, वे उन्हीं-उन्हींका उपयोग करें, न कि दूसरेका। भगवान नारायण कहते हैं–हे नारद! तुमने जो पूछा था, वह सब मैं बता चुका ॥१५२॥ अब तुम परम आदरणीया भगवती जगदम्बाके चरणकमलकी नित्य उपासना करो। मैं जो इस निवृत्तिमार्गपर पहुँचा हूँ, यह भी देवीकी सतत आराधनाका ही सत्फल है ॥१५३॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन्! इस प्रकार यह सम्पूर्ण श्रेष्ठ प्रसङ्ग नारदजीसे कहकर भगवान् नारायणने अपनी आँखें मूँद लीं और वे भगवतीके चरणकमलका ध्यान करने लगे ॥ १५४ ॥ ये भगवान्

कृतार्थतां स्वस्य बुद्ध्वा नित्यमाराधयेन्मनुम् ॥ इति ते कथितः सम्यग्दीक्षाविधिरनुत्तमः ॥ १४९ ॥ विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदाम्बुजम् ॥ नान्यस्तु परमो धर्मो ब्राह्मणस्यात्र विद्यते ॥ १५० ॥ वैदिकः स्वस्वगृह्योक्तक्रमेणोपदिशेन्मनुम् ॥ तांत्रिकस्तंत्ररीत्या तु स्थितिरेषा सनातनी ॥ १५१ ॥ तत्तदुक्तप्रयोगांस्ते ते ते कुर्युर्न चान्यथा ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इति सर्वं मयाऽऽख्यातं यत्पृष्टं नारद त्वया ॥ १५२ ॥ अतः परं परांबाया भज नित्यं पदांबुजम् ॥ नित्यमाराध्य तच्चाहं निर्वृतिं परमां गतः ॥१५३॥ इति राजन्नारदाय प्रोक्त्वा सर्वमनुत्तमम् ॥ समाधिमीलिताक्षस्तु दध्यौ देवीपदांबुजम् ॥ १५४ ॥ नारायणस्तु भगवान्मुनिवर्यशिखामणिः ॥ नारदोऽपि ततो नत्वा गुरुं नारायणं परम् ॥ जगाम सद्यस्तपसे देवीदर्शनलालसः ॥१५५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रवतां वर ॥ द्विजातीनां तु सर्वेषां शक्त्युपास्तिः श्रुतीरिता ॥१॥ संध्याकालत्रयेऽन्यस्मिन्काले नित्यतया विभो ॥ तां विहाय द्विजाः कस्माद्गृह्णीयुश्चान्यदेवताः ॥ २ ॥ दृश्यन्ते वैष्णवाः केचिद्गाणपत्यास्तथाऽपरे ॥ कापालिकाश्चीनमार्गरता बल्कलधारिणः ॥ ३ ॥ दिगम्बरास्तथा बौद्धाश्चार्वाका एवमादयः ॥ दृश्यन्ते बहवो लोके वेदश्रद्धाविवर्जिताः ॥ ४ ॥ किमत्र कारणं ब्रह्मंस्तद्ब्रू-

नारायण प्रधान मुनियोंके भी शिरोमणि हैं। उन परम गुरु भगवान् नारायणको प्रणाम करके नारदजी भी भगवतीका दर्शन करनेकी लालसासे उसी क्षण तपस्या करनेके लिए चले गये ॥ १५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(देवताओंका गर्वध्वंस) जनमेजयने पूछा–सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हे भगवन्! आपसे धर्मका कोई रहस्य छिपा नहीं है। जब श्रुतिने सबके लिए तीनों सन्ध्याओंमें शक्तिकी उपासना आवश्यक है–यह घोषणा कर दी है, तब फिर लोग विभिन्न देवताओंकी आराधना क्यों करते हैं? ॥ १ ॥ २ ॥ यहाँ कुछ लोग वैष्णव, कुछ गणपतिके उपासक, कुछ कापालिक, कुछ चीनमार्गी, कुछ वल्कलधारी, कुछ नंगे, कुछ बौद्ध और कुछ ऐसे नास्तिक दिखायी देते हैं कि जिनकी वेदपर श्रद्धा नहीं है ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनमें कुछ बड़े विद्वान् और विविध प्रकारके तर्क

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करनेमें कुशल हैं। किन्तु वेदपर उनकी आस्था नहीं है। कोई भी व्यक्ति जान-बूझकर अपना कल्याण नहीं त्यागना चाहता। तब वे ऐसा क्यों करते हैं? ॥५॥६॥ हे ब्रह्मन्! यह बतलानेकी कृपा कीजिये। इसके अतिरिक्त आपने पहले मणिद्वीपके माहात्म्यकी चर्चा की थी ॥७॥ अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि देवीका वह परम उत्तम स्थान कैसा है? हे अनघ! मैं आपका भक्त हूँ, मुझको ये सभी विषय बतानेकी कृपा कीजिये। क्योंकि प्रसन्न गुरुजन गुप्त बात बता भी देते हैं। सूतजी कहते हैं—हे मुनिवरो! महाराज जनमेजयकी उपर्युक्त बात सुनकर भगवान् वेदव्यासने कहना आरम्भ किया। जिसे सुनकर वेदपर द्विजोंकी श्रद्धा बढ़ती है ॥८-१०॥ व्यासजीने कहा—हे राजन्! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। क्योंकि इस समयके लिये यह परम उपयोगी विषय है। वस्तुतः तुम बड़े बुद्धिमान् तथा वेदोंमें श्रद्धा रखनेवाले श्रोता प्रतीत होते हो ॥११॥ हे महाराज! पूर्व समयकी बात है, महाअभिमानी दैत्य देवताओंके साथ

वान्वक्तुमर्हति ॥ बुद्धिमन्तः पंडिताश्च नानातर्कविचक्षणाः ॥ ५ ॥ अपि संत्येव वेदेषु श्रद्धया तु विवर्जिताः ॥ न हि कश्चित्स्वकल्याणं बुद्ध्या हातुमिहेच्छति ॥ ६ ॥ किमत्र कारणं तस्माद्वद वेदविदां वर ॥ मणिद्वीपस्य महिमा वर्णितो भवता पुरा ॥ ७ ॥ कीदृक्तदस्ति यद्देव्याः परं स्थानं महत्तरम् ॥ तच्चापि वद भक्ताय श्रद्दधानाय मेऽनघ ॥ ८ ॥ प्रसन्नास्तु वदंत्येव गुरवो गुह्यमप्युत ॥ सूत उवाच ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा भगवान्बादरायणः ॥ ९ ॥ निजगाद ततः सर्वं क्रमेणैव मुनीश्वराः ॥ यच्छ्रुत्वा तु द्विजातीनां वेदश्रद्धा विवर्धते ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ सम्यक्पृष्टं त्वया राजन्समये समयोचितम् ॥ बुद्धिमानसि वेदेषु श्रद्धावांश्चैव लक्ष्यसे ॥ ११ ॥ पूर्वं मदोद्धता दैत्या देवैर्युद्धं तु चक्रिरे ॥ शतवर्षं महाराज महाविस्मयकारकम् ॥ १२ ॥ नानाशस्त्रप्रहरणं नानामायाविचित्रितम् ॥ जगत्क्षयकरं नूनं तेषां युद्धमभून्नृप ॥ १३ ॥ पराशक्तिकृपावेशाद्देवैर्दैत्या जिता युधि ॥ भुवं स्वर्गं परित्यज्य गताः पातालवेश्मनि ॥ १४ ॥ ततः प्रहर्षिता देवाः स्वपराक्रमवर्णनम् ॥ चक्रुः परस्परं मोहात्साभिमाना समंततः ॥ १५ ॥ जयोऽस्माकं कुतो न स्यादस्माकं महिमा यतः ॥ सर्वोत्तमः कुत्र दैत्याः पामरा निष्पराक्रमाः ॥ १६ ॥ सृष्टिस्थितिक्षयकरा वयं सर्वे यशस्विनः ॥ अस्मदग्रे पामराणां दैत्यानां चैव का कथा ॥ १७ ॥ पराशक्तिप्रभावं ते न ज्ञात्वा मोहमागताः ॥ तेषामनुग्रहं कर्तुं तदैव जग-

युद्ध करने लगे। उनका अत्यन्त विस्मयकारक युद्ध सौ वर्षोंतक चलता रहा॥१२॥ हे राजन्! उसमें विविध शस्त्रोंका प्रहार तथा अनेक प्रकारकी मायाओंका विचित्र प्रयोग किया जा रहा था। उस समय उन देवताओं और दैत्योंका वह युद्ध ऐसा जान पड़ता था, मानो जगत्के लिये प्रलयकी ही घड़ी आ गयी है ॥ १३ ॥ उस समय भगवती पराशक्तिकी कृपासे देवताओं द्वारा संग्राममें दानवोंकी हार हो गयी। तब वे भूलोक और स्वर्ग छोड़कर पातालमें चले गये ॥ १४ ॥ तब देवताओंके मनमें अपार हर्ष हुआ। साथ ही वे मोहके कारण विजयमदमें चूर होकर चारों ओर परस्पर अपने पराक्रमका बखान करने लगे ॥१५॥ वे कहने लगे—'अहा! हमारी विजय क्यों न हो? क्योंकि हमारी महिमा सर्वोत्तम जो ठहरी। कहाँ ये पराक्रमहीन औरमूर्ख दैत्य और कहाँ सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले हम परम यशस्वी देवता। फिर हमारे सामने पामर दैत्योंकी कौन-सी बात थी' ॥ १६ ॥ १७ ॥ पराशक्तिके प्रभुत्वको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न जाननेके कारण उस समय देवताओंमें इस प्रकारका मोह छा गया था। हे राजन्! तब उन देवताओंपर अनुग्रह करनेके लिए दयामयी भगवती जगदम्बा एक यक्षके रूपसे प्रकट हुईं। उनका विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान था। उनमें शीतलता इतनी थी कि मानो करोड़ों चन्द्रमा हों ॥१८॥१९॥ करोड़ों बिजलियोंके समान प्रकाशमान उनका श्रीविग्रह हस्त-चरण आदि इन्द्रियोंसे रहित था। पहले कभी न देखे हुए उस परम सुन्दर तेजको देखकर देवताओंके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। वे परस्पर कहने लगे--'यह क्या है? यह क्या है? यह देवताओंकी चेष्टा है या कोई बलवती माया है? ॥ २० ॥ २१ ॥ यदि देवताओंको आश्चर्यमें डालनेवाली माया है तो यह किसके द्वारा रची गयी है?' इस प्रकारकी कल्पना करके वे सभी देवता उस समय परस्पर अपना उत्तम विचार प्रकट करने लगे ॥ २२ ॥ उन्होंने कहा--'इस यक्षके पास जाकर पूछना चाहिये कि तुम कौन हो? उसके बलाबलका ज्ञान होनेके पश्चात् ही कुछ करना चाहिये।' ॥२३॥ यों निश्चित विचार करके देवराज इन्द्रने अग्निको बुलाया और कहा--'अग्निदेव! तुम जाओ। क्योंकि तुम्हें हमलोगोंका मुँह कहा गया है। वहाँ

दम्बिका ॥ १८ ॥ प्रादुरासीत्कृपापूर्णा यक्षरूपेण भूमिप ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ १९ ॥ विद्युत्कोटिसमानाभं हस्तपादादि-वर्जितम् ॥ अदृष्टपूर्वं तद्दृष्ट्वा तेजः परमसुन्दरम् ॥ २० ॥ सविस्मयास्तदा प्रोचुः किमिदं किमिदं त्विति ॥ दैत्यानां चेष्टितं किं वा माया काऽपि महीयसी ॥ २१ ॥ केनचिन्निर्मिता वाऽथ देवानां स्मयकारिणी ॥ सम्भूय ते तदा सर्वे विचारं चक्रुरुत्तमम् ॥ २२ ॥ यक्षस्य निकटे गत्वा प्रष्टव्यं कस्त्वमित्यपि ॥ महाबलं ततो ज्ञात्वा कर्तव्या तु प्रतिक्रिया ॥ २३ ॥ ततो वह्निं समाहूय प्रोवाचेन्द्रः सुराधिपः ॥ गच्छ वह्ने त्वमस्माकं यतोऽसि मुखमुत्तमम् ॥ २४ ॥ ततो गत्वा तु जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि ॥ सहस्राक्षवचः श्रुत्वा स्वपराक्रमगर्भितम् ॥ २५ ॥ वेगात्स निर्गतो वह्निर्ययौ यक्षस्य संनिधौ ॥ तदा प्रोवाच यक्षस्तं त्वं कोऽसीति हुताशनम् ॥ २६ ॥ वीर्यं च त्वयि किं यत्तद्वद सर्वं ममाग्रतः ॥ अग्निरस्मि तथा जातवेदा अस्मीति सोऽब्रवीत् ॥ २७ ॥ सर्वस्य दहने शक्तिर्मयि विश्वस्य तिष्ठति ॥ तदा यक्षं परं तेजस्तदग्रे निदधौ तृणम् ॥ २८ ॥ दहैनं यदि ते शक्तिर्विश्वस्य दहनेऽस्ति हि ॥ तदा सर्वबलेनैवाकरोद्यत्नं हुताशनः ॥ २९ ॥ न शशाक तृणं दग्धुं लज्जितोऽगात्सुरान्प्रति ॥ पृष्टे देवैस्तु वृत्तान्ते सर्वं प्रोवाच हव्यभुक् ॥ ३० ॥ वृथाऽभिमानो ह्यस्माकं सर्वेशत्वादिके सुराः ॥ ततस्तु वृत्रहा वायुं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ त्वयि

जाकर यह जाननेका यत्न करो कि यह यक्ष कौन है?' सहस्राक्ष इन्द्रके मुखसे अपने प्रति पराक्रमगर्भित वचन सुनकर अग्निदेव शीघ्रतापूर्वक उठे और यक्षके पास जा पहुँचे। तब यक्षने अग्निसे पूछा-'अजी, तुम कौन हो? ॥२४-२६॥ तुममें कौन-सा पराक्रम है? तुम यह सब मुझे बतलाओ।' इसपर अग्निने कहा-'मैं अग्निदेव हूँ तथा मेरा नाम जातवेदा भी है ॥२७॥ अखिल विश्वको जला डालनेकी शक्ति मुझमें है।' अग्निके यों कहनेपर तेजस्वी यक्षने उनके सामने एक तृण रख दिया और कहा-'यदि विश्वको भस्म कर डालनेकी शक्ति तुममें है तो इस तृणको जला दो।' तब अग्निदेवने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उस तृणको भस्म करनेका यत्न किया ॥२८॥२९॥ परन्तु उसे वे जला नहीं सके। अतः लज्जित होकर वे देवता-ओंके पास लौट गये। उनके पूछनेपर अग्निने वहाँका पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया साथ ही कहा-'देवताओ! हम लोगोंका सर्वेश बननेका अभिमान सर्वथा व्यर्थ है।' इसके बाद इन्द्रने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वायुदेवको बुलाकर उनसे कहा—॥ ३० ॥ ३१ ॥ 'हे वायो! तुममें यह सारा जगत् ओत-प्रोत है, तुम्हारी चेष्टासे ही संसार सचेष्ट बना हुआ है। तुम प्राणरूप होकर अखिल प्राणियोंके शरीरमें सम्पूर्ण शक्तियोंका संचार करते हो ॥ ३२ ॥ तुम्हीं जाकर पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है? उस परम तेजस्वी यक्षको जाननेके लिए दूसरा कोई भी समर्थ नहीं हो सकता।' ॥ ३३ ॥ इन्द्रकी गुण और गौरवसे गुम्फित यह बात सुनकर वायुके मनमें अभिमानका पार नहीं रहा। वे तुरन्त यक्षके समीप गये ॥३४॥ वायुको देखकर यक्षने मधुर वाणीमें कहा—'तुम कौन हो और तुममें कौन-सी शक्ति है? मेरे सामने सब बतानेकी कृपा करो।' ॥ ३५ ॥ उस यक्षका वचन सुनकर वायुने अभिमानके साथ कहा—'मैं मातरिश्वा हूँ। मुझे लोग वायुदेव भी कहते हैं ॥ ३६ ॥ सबका संचालन और ग्रहण करनेकी मुझमें असीम शक्ति है। मेरी चेष्टासे ही समस्त जगत्के सब प्रकारके व्यापार चलते हैं।' ॥ ३७ ॥ वायुकी उपयुक्त वाणी सुनकर परम तेजस्वी यक्षने उनसे कहा—'तुम्हारे सामने यह तृण पड़ा हुआ है, इसे अपनी इच्छाके अनुसार चला दो ॥ ३८ ॥ और यदि इसे नहीं चला सकते तो अभिमान

प्रोतं जगत्सर्वं त्वच्चेष्टाभिस्तु चेष्टितम् ॥ त्वं प्राणरूपः सर्वेषां सर्वशक्तिविधारकः ॥ ३२ ॥ त्वमेव गत्वा जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि ॥ नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति ज्ञातुं यक्षं परं महः ॥ ३३ ॥ सहस्राक्षवचः श्रुत्वा गुणगौरवगुम्फितम् ॥ साभिमानो जगामाशु यत्र यक्षं विराजते ॥ ३४ ॥ यक्षं दृष्ट्वा ततो वायुं प्रोवाच मृदुभाषया ॥ कोऽसि त्वं त्वयि का शक्तिर्वद सर्वं ममाग्रतः ॥ ३५ ॥ ततो यक्षवचः श्रुत्वा गर्वेण मरुदब्रवीत् ॥ मातरिश्वाऽहमस्मीति वायुरस्मीति चाब्रवीत् ॥३६॥ वीर्यं तु मयि सर्वस्य चालने ग्रहणेऽस्ति हि ॥ मच्चेष्टया जगत्सर्वं सर्वव्यापारवद्भवेत् ॥३७॥ इति श्रुत्वा वायुवाणीं निजगाद परं महः ॥ तृणमेतत्तवाग्रे यत्तच्चालय यथेप्सितम् ॥ ३८ ॥ नोचेद्गर्वं विहायैनं लज्जितो गच्छ वासवम् ॥ श्रुत्वा यक्षवचो वायुः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥३९॥ उद्योगमकरोत्तच्च स्वस्थानान्न चचाल ह ॥ लज्जितोऽगाद्देवपार्श्वे हित्वा गर्वं स चानिलः ॥४०॥ वृत्तांतमवदत्सर्वं गर्वनिर्वापकारणम् ॥ नैतज्ज्ञातुं समर्थाः स्म मिथ्यागर्वाभिमानिनः॥ ४१ ॥ अलौकिकं भाति यक्षं तेजः परमदारुणम् ॥ ततः सर्वे सुरगणाः सहस्राक्षं समूचिरे ॥४२॥ देवराडसि यस्मात्त्वं यक्षं जानीहि तत्त्वतः ॥ तत इन्द्रो महागर्वात्तद्यक्षं समुपाद्रवत् ॥४३॥ प्राद्रवच्च परं तेजो यक्षरूपं परात्परम् ॥ अन्तर्धानं ततः प्राप तद्यक्षं वासवाग्रतः ॥ ४४ ॥ अतीव लज्जितो जातो वासवो देवराडपि ॥ यक्षसंभाषणाभावाल्लघुत्वं प्राप चेतसि ॥ ४५ ॥

त्याग और लज्जित होकर इन्द्रके पास लौट जाओ। यक्षका कथन सुनकर पवनदेव अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे उस तिनकेको उड़ाने लग गये। परन्तु उड़ाना तो दूर रहा, वे उस तृणको अपने स्थानसे जरा-सा हिला भी नहीं सके। तब तो वे लज्जित हो तथा अभिमान त्यागकर देवताओंके पास लौट गये ॥ ३९ । ४० ॥ वहाँ उन्होंने गर्वको दूर करनेवाली सारी बातें उनको कह सुनायीं और इस प्रकार कहा—'हमलोग इस यक्षको जाननेमें असमर्थ हैं। हम सब व्यर्थ ही अभिमानमें भूले हुए हैं ॥४१॥ यह यक्ष बड़ा ही अलौकिक प्रतीत हो रहा है। इसका तेज असह्य है।' तब सम्पूर्ण देवताओंने इन्द्रसे कहा—॥४२॥ 'हे देवराज! आप हमलोगोंके स्वामी हैं, अतः यक्षके सम्बन्धमें पूरी जानकारी प्राप्त करनेके लिए आप ही प्रयत्न कीजिये ॥ ४३ ॥ यह सुनकर इन्द्र बड़े अभिमानसे यक्षके पास गये। वे उसके पास पहुँचे ही थे कि वह तेजस्वी यक्ष उसी क्षण अन्तर्धान हो गया ॥ ४४ ॥ अब देवराज इन्द्रके मनमें लज्जाकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सीमा नहीं रही। यक्षने उनसे बाततक नहीं की, इससे इन्द्र बड़ी आत्मग्लानिका अनुभव करने लगे ॥४५॥ उन्होंने सोचा—'अब मुझे देवताओंके समाजमें लौटकर नहीं जाना चाहिए। क्योंकि वहाँ जानेपर मुझे देवताओंके सामने अपनी हीनता प्रकट करनी पड़ेगी ॥४६॥ अतएव अच्छा हो कि मैं यहाँ ही देह त्याग दूँ। क्योंकि महापुरुषोंका धन मान ही होता है। मान नष्ट हो जानेपर उनका जीवन मृतक तुल्य हो जाता है। इसमें संदेह नहीं है' ॥४७॥ इस तरह कई प्रकारसे विचार करनेके पश्चात् देवराज इन्द्र अपना अभिमान त्यागकर वहीं, जिनका ऐसा चरित्र था, उन परम देवताके शरणागत हो गये ॥४८॥ उसी समय यह आकाशवाणी हुई--'हे सहस्राक्ष! तुम मायाबीजका जप करो, तब सुखी हो सकोगे' ॥४९॥ तब इन्द्रने परात्पर मायाबीजका जप आरम्भ कर दिया। आँखें मूँदकर देवीका ध्यान करते हुए वे निराहार रहकर एक लाख वर्ष जप करते रहे ॥५०॥ तदनन्तर एक दिन चैत्रमासके शुक्लपक्षमें नवमी तिथिको मध्याह्न-कालमें उसी स्थलपर सहसा एक महान् तेज प्रकट हो गया ॥५१॥ उस तेजःपुञ्जके मध्यमें नूतन यौवनसे सम्पन्न एक देवो प्रकट हो गयीं। उनको कान्ति ऐसी थी कि मानो जपाकुसुम

अतः परं न गंतव्यं मया तु सुरसंसदि ॥ किं मया तत्र वक्तव्यं स्वलघुत्वं सुरान्प्रति ॥४६॥ देहत्यागो वरस्तस्मान्मानो हि महतां धनम् ॥ माने नष्टे जीवितं तु मृततुल्यं न संशयः ॥ ४७ ॥ इति निश्चित्य तत्रैव गर्वं हित्वा सुरेश्वरः ॥ चरित्रमीदृशं यस्य तमेव शरणं गतः ॥ ४८ ॥ तस्मि-न्नेव क्षणे जाता व्योमवाणी नभस्तले ॥ मायाबीजं सहस्राक्ष जप तेन सुखी भव ॥ ४९ ॥ ततो जजाप परमं मायाबीजं परात्परम् ॥ लक्षवर्षं निराहारो ध्यानमीलितलोचनः ॥ ५० ॥ अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां मध्यगे रवौ ॥ तदैवाविरभूत्तेजस्तस्मिन्नेव स्थले पुनः ॥ ५१ ॥ तेजोमंडल-मध्ये तु कुमारीं नवयौवनाम् ॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभां बालकोटिरविप्रभाम् ॥ ५२ ॥ बालशीतांशुमुकुटां वस्त्रांतर्व्यंजितस्तनीम् ॥ चतुर्भिर्वरहस्तैस्तु वरपाशांकुशाभयान् ॥ ५३ ॥ दधानां रमणीयांगीं कोमलांगलतां शिवाम् ॥ भक्तकल्पद्रुमामंबां नानाभूषणभूषिताम् ॥ ५४ ॥ त्रिनेत्रां मल्लिका-मालाकबरीजूटशोभिताम् ॥ चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुताम् ॥ ५५ ॥ दंतच्छटाभिरभितः पद्मरागीकृतक्ष्माम् ॥ प्रसन्नस्मेरवदनां कोटिकंदर्प-सुन्दराम् ॥ ५६ ॥ रक्तांबरपरीधानां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ उमाभिधानां पुरतो देवीं हैमवतीं शिवाम् ॥ ५७ ॥ निर्व्याजकरुणामूर्तिं सर्वकारण-

हो। प्रातःकालीन सूर्यके समान अरुण कान्तिसे वे शोभा पा रही थीं ॥५२॥ द्वितीयाके चन्द्रमा उनके मुकुटमें विद्यमान थे। वे अपने चार हाथोंमें वर, पाश, अङ्कुश और अभयमुद्रा धारण किये हुए थीं ॥५३॥ उनके सभी अङ्ग अत्यन्त मनोहर थे। कोमल लताकी भाँति शोभा पानेवाली वे भगवती शिवा थीं। भक्तोंके लिए वे भगवती जगदंबा कल्पवृक्ष हैं। अनेक प्रकारके भूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥५४॥ तीन नेत्रवाली वे देवी अपनी वेणीमें चमेलीकी माला धारण करनेके कारण अत्यन्त शोभा पा रही थीं। चारों दिशाओंमें वेद मूर्तिमान् होकर उनका यशोगान कर रहे थे ॥५५॥ उन्होंने अपने दाँतोंकी आभासे वहाँकी भूमिको इस प्रकार उज्ज्वल बना दिया था कि मानो पद्मराग मणि बिछा हो। उनका प्रसन्नमुख करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर था ॥५६॥ वे लाल रंगके वस्त्र पहने थीं और उनका श्रीविग्रह रक्त चन्दनसे चर्चित था। वे हिमालयपर प्रकट होनेवाली 'उमा'नामसे विख्यात कन्याणस्वरूपिणी भगवती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगदम्बा थीं ॥५७॥ विना कारण वे करुणामयी देवी सम्पूर्ण कारणोंकी भी कारण हैं। उनके दर्शन करते ही इन्द्रका अंतःकरण प्रेमसे गद्गद हो गया ॥५८॥ उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु उमड़ आये और शरीरमें रोमाञ्च हो आया। तब भगवती जगदीश्वरीके चरणोंमें दण्डकी भाँति पड़कर उन्होंने प्रणाम किया ॥५९॥ अनेक प्रकारके स्तोत्रों द्वारा उन्होंने भगवतीकी स्तुति की। इसके बाद भक्ति-विनम्र चित्तसे सिर झुकाये हुए उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक देवीके प्रति कहा—॥६०॥ 'परम शोभा पानेवाली हे देवी! यह यक्ष कौन था? क्यों यह प्रकट हुआ था? यह सब रहस्य बतलानेकी कृपा करें।' इन्द्रकी बात सुनकर दयाकी समुद्रस्वरूपा देवी कहने लगीं—॥६१॥ 'प्रकृति आदि सम्पूर्ण कारणोंका भी कारण ब्रह्म मेरा ही रूप है। यह मायाका अधिष्ठान, सबका साक्षी तथा निरामय है ॥ ६२ ॥ सम्पूर्ण वेद और तप जिस पदका वर्णन करते एवं लक्ष्य कराते हैं तथा जिसकी प्राप्तिकी इच्छासे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया जाता है, वही पद संक्षेपमें मैं तुम्हें बताता हूँ ॥६३॥ उसीको 'ॐ' एक अक्षरवाला ब्रह्म कहते हैं। वही 'ह्रीं' रूप भी है। हे देवेश्वर! 'ह्रीं' और 'ॐ' ये दो मेरे मुख्य बीजमंत्र हैं ॥ ६४ ॥ इन्हीं दो भागोंसे सम्पन्न होकर मैं अखिल

कारणम् ॥ ददर्श वासवस्तत्र प्रेमगद्गदितांतरः ॥ ५८ ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयनो रोमांचिततनुस्ततः ॥ दंडवत्प्रणनामाथ पादयोर्जगदीशितुः ॥ ५९ ॥ तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैर्भक्तिसन्नतकंधरः ॥ उवाच परमप्रीतः किमिदं यक्षमित्यपि ॥ ६० ॥ प्रादुर्भूतं च कस्मात्तद्वद सर्वं सुशोभने ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच करुणार्णवा ॥ ६१ ॥ रूपं मदीयं ब्रह्मैतत्सर्वकारणकारणम् ॥ मयाऽधिष्ठानभूतं तु सर्वसाक्षि निरामयम् ॥ ६२ ॥ सर्वे वेदा यत्पदमामनंति तपांसि सर्वाणि च यद्वदंति ॥ यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥ ६३ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म तदेवाहुश्च ह्रींमयम् ॥ द्वे बीजे मम मंत्रौ स्तो मुख्यत्वेन सुरोत्तम ॥ ६४ ॥ भागद्वयवती यस्मात्सृजामि सकलं जगत् ॥ तत्रैकभागः संप्रोक्तः सच्चिदानंदनामकः ॥ ६५ ॥ मायाप्रकृतिसंज्ञस्तु द्वितीयो भाग ईरितः ॥ सा च माया परा शक्तिः शक्तिमत्यहमीश्वरी ॥ ६६ ॥ चंद्रस्य चंद्रिकेवेयं ममाभिन्नत्वमागता ॥ साम्यावस्थात्मिका चैषा माया मम सुरोत्तम ॥ ६७ ॥ प्रलये सर्वजगतो मदभिन्नैव तिष्ठति ॥ प्राणिकर्मपरीपाकवशतः पुनरेव हि ॥ ६८ ॥ रूपं तदेवमव्यक्तं व्यक्तिभावमुपैति च ॥ अंतर्मुखा तु याऽवस्था सा मायेत्यभिधीयते ॥ ६९ ॥ बहिर्मुखा तु या माया तमःशब्देन सोच्यते ॥ बहिर्मुखात्तमोरूपाज्जायते सत्त्वसंभवः ॥ ७० ॥ रजोगुणस्तदैव स्यात्सर्गादौ सुरसत्तम ॥ गुणत्रयात्मकाः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ७१ ॥ रजोगुणाधिको

जगत्की सृष्टि करती हूँ। इसीका एक भाग 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' नामसे विख्यात है और दूसरे भागको 'मायाप्रकृति' कहते हैं। वह माया ही परा शक्ति है और अखिल जगत्पर प्रभुत्व रखनेवाली वह शक्तिशालिनी देवी मैं ही हूँ ॥६५॥६६॥ चन्द्रमाकी चाँदनीकी भाँति यह मायाप्रकृति अभिन्नरूपसे सदा मुझमें विराजमान रहती है। हे सुरोत्तम! यह मेरी माया साम्यावस्थात्मिका है ॥ ६७ ॥ प्रलयकालमें सम्पूर्ण जगत् इसमें लीन हो जाता है और प्राणियोंके कर्मपरिपाकवश वही अव्यक्तरूपिणी माया पुनः व्यक्त रूप धारण कर लेती है ॥६८॥६९॥ जो अन्तर्मुखी है, उसे 'माया' या 'योगमाया' आदि नामोंसे व्यवहृत करते हैं और जो बहिर्मुखी माया है, उसे तम (अविद्या) कहते हैं ॥७०॥ तमोरूपिणी उस बहिर्मुखी मायासे इस प्राणि-जगत्की सृष्टि होती है। हे सुरश्रेष्ठ! सृष्टिके आदिमें वे ही रजोगुणरूपसे विराजती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ये त्रिगुणात्मक कहे गये हैं ॥ ७१ ॥ रजोगुणकी अधिकतासे ब्रह्मा, सत्त्वगुण अधिक होनेसे विष्णु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और तमोगुण अधिक होनेसे शिव रुद्रके नामसे प्रसिद्ध होते हैं ॥७२॥ स्थूल देहवाले ब्रह्मा कहलाते हैं, सूक्ष्म शरीरवालेको विष्णु कहा गया है और कारण-देहधारी रुद्र कहलाते हैं। इन तीनोंसे परे एक चतुर्थ रूप धारण करनेवाली मैं ही हूँ ॥७३॥ जिसे साम्यावस्था कहते हैं। वह सर्वान्तर्यामी रूप मेरा ही है। इसके ऊपर जो परब्रह्म रूप है, वह भी मेरा ही निराकार रूप है ॥७४॥ निर्गुण और सगुण मेरे दो प्रकारके रूप कहे जाते हैं। माया (शक्ति) रहित रूप निर्गुण है और मायायुक्त रूप सगुण ॥७५॥ वही मैं सम्पूर्ण जगत्को सृष्टि करके उसके भीतर भली भाँति प्रविष्ट होकर निरन्तर जीवोंको कर्म और शास्त्रके अनुसार प्रेरणा देती रहती हूँ ॥७६॥ ब्रह्मा, विष्णु और कारणात्मक रुद्रको मेरे द्वारा ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेके लिये प्रेरणा प्राप्त होती है ॥ ७७ ॥ पवन मेरे भयसे प्रवाहित होता है और मेरा भय मानकर सूर्य आकाशमें गमन करते हैं। उसी प्रकार इन्द्र, अग्नि और यम मुझसे भयभीत रहकर ही अपने-अपने कर्तव्यका सम्पादन करते हैं। क्योंकि मैं सर्वोत्तमा और सर्वशक्तिमती हूँ ॥ ७८ ॥ मेरी कृपासे ही तुम लोगोंको सब प्रकारसे विजय प्राप्त हुई है। तुम सब काठकी

ब्रह्मा विष्णुः सत्त्वाधिको भवेत् ॥ तमोगुणाधिको रुद्रः सर्वकारणरूपधृक् ॥ ७२ ॥ स्थूलदेहो भवेद्ब्रह्मा लिंगदेहो हरिः स्मृतः ॥ रुद्रस्तु कारणो देहस्तुरीया त्वहमेव हि ॥ ७३ ॥ साम्यावस्था तु या प्रोक्ता सर्वान्तर्यामिरूपिणी ॥ अत ऊर्ध्वं परं ब्रह्म मद्रूपं रूपवर्जितम् ॥ ७४ ॥ निर्गुणं सगुणं चेति द्विधा मद्रूपमुच्यते ॥ निर्गुणं मायया हीनं सगुणं मायया युतम् ॥ ७५ ॥ साऽहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदंतः संप्रविश्य च ॥ प्रेरयाम्यनिशं जीवं यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥ सृष्टिस्थितितिरोधाने प्रेरयाम्यहमेव हि ॥ ब्रह्माणं च तथा विष्णुं रुद्रं वै कारणात्मकम् ॥ ७७ ॥ मद्भयाद्वाति पवनो भीत्या सूर्यश्च गच्छति ॥ इन्द्राग्निमृत्यवस्तद्वत्साऽहं सर्वोत्तमा स्मृता ॥ ७८ ॥ मत्प्रसादाद्भवद्भिस्तु जयो लब्धोऽस्ति सर्वथा ॥ युष्मानहं नर्तयामि काष्ठपुत्तलिकोपमान् ॥ ७९ ॥ कदाचिद्देवविजयं दैत्यानां विजयं क्वचित् ॥ स्वतंत्रा स्वेच्छया सर्वं कुर्वे कर्मानुरोधतः ॥ ८० ॥ तां मां सर्वात्मिकां यूयं विस्मृत्य निजगर्वतः ॥ अहंकारावृतात्मानो मोहमाप्ता दुरंतकम् ॥ ८१ ॥ अनुग्रहं ततः कर्तुं युष्मद्देहादनुत्तमम् ॥ निःसृतं सहसा तेजो मदीयं यक्षमित्यपि ॥ ८२ ॥ अतः परं सर्वभावैर्हित्वा गर्वं तु देहजम् ॥ मामेव शरणं यात सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ८३ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा च महादेवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ अन्तर्धानं गता सद्यो भक्त्या देवैरभिष्टुता ॥ ८४ ॥ ततः सर्वे स्वगर्वं तु विहाय पदपंकजम् ॥ सम्यगाराधयामासुर्भ-

पुतलीके समान हो और मैं सबको नचानेवाली हूँ ॥७९॥ मैं कभी तुम देवताओंकी विजय कराती हूँ और कभी दैत्योंकी। मैं स्वतन्त्र हूँ। अपनी इच्छाके अनुसार मैं यह सब कराती हूँ, परन्तु सबके प्रारब्धपर मेरा ध्यान अवश्य रहता है ॥८०॥ तुमलोग अभिमानवश मुझ सर्वात्मिका मायाको और मेरी शक्तिको भूल गये थे। तुम्हारी बुद्धि अहंकारसे आवृत हो गयी थी ॥८१॥ तुमपर दुस्तर मायाकी गहरी छाप पड़ चुकी थी। अतः तुमपर अनुग्रह करनेके लिए मेरा ही सर्वोत्तम तेज सहसा यक्षरूपसे प्रकट हुआ था ॥ ८२ ॥ वस्तुतः वह मेरा ही रूप था। अब इसके बाद तुमलोग सब प्रकारसे अपने अभिमानका परित्याग करके सच्चिदानन्दस्वरूपिणी मुझ देवीके शरणागत हो जाओ ॥८३॥ व्यासजी कहते हैं—हे जनमेजय! इस प्रकार कहकर मूलप्रकृति एवं ईश्वरी नामसे सुप्रसिद्ध भगवती महादेवी देवताओंके द्वारा भक्तिपूर्वक सुपूजित होकर उसी क्षण अन्तर्धान हो गयीं ॥ ८४ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण देवता अपने अभिमानका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परित्याग करके भगवती जगदम्बाके सर्वोत्तम चरण-कमलोंकी सब प्रकारसे आराधना करने लगे। उन सबने नियमपूर्वक भगवतीकी नित्य उपासना प्रारम्भ कर दी ॥८५॥८६॥ इस प्रकार सत्ययुगमें सभी लोग गायत्रीके जपमें संलग्न थे। उनका मन प्रणव और हृल्लेखा अर्थात् मूलप्रकृतिके जपमें ही लगा रहता था ॥८७॥ वेदोंमें विष्णु या शिवकी उपासना एवं विष्णु तथा शिवकी दीक्षाको भी नित्य नहीं कहा गया है ॥८८॥ सम्पूर्ण वेदोंने उस गायत्रीकी उपासनाको ही नित्य कहा है, जिसके बिना ब्राह्मणकी सर्वथा अधोगति हो सकती है ॥८९॥ केवल गायत्रीमन्त्रसे ही वह कृतकृत्य हो जाता है, उसे दूसरे किसी साधनको अपेक्षा नहीं रहती। द्विज दूसरा कुछ सत्कार्य करे या न करे, केवल गायत्रीके जपमें लगे रहनेसे ही मुक्त हो जाता है। स्वयं मनुजीकी यह घोषणा है। हे राजन्! गायत्रीको त्यागकर विष्णु या शिवकी उपासना करनेवाले विप्रको नरकगामी होना पड़ता है। इसीलिए सम्पूर्ण श्रेष्ठ द्विज सत्ययुगमें निरन्तर गायत्रीके जप तथा भगवतीके चरणकमलकी उपासनामें ही संलग्न रहते थे ॥९०-९२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां

गवत्याः परात्परम् ॥ ८५ ॥ त्रिसंध्यं सर्वदा सर्वे गायत्रीजपतत्पराः॥ यज्ञभागादिभिः सर्वे देवीं नित्यं सिषेविरे ॥ ८६ ॥ एवं सत्ययुगे सर्वे गायत्री-जपतत्पराः ॥ तारहृल्लेखयोश्चापि जपे निष्णातमानसाः ॥ ८७ ॥ न विष्णूपासना नित्या वेदे प्रोक्ता तु कुत्रचित् ॥ न विष्णुदीक्षा नित्याऽस्ति शिवस्यापि तथैव च ॥ ८८ ॥ गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता ॥ यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥ ८९ ॥ तावता कृत-कृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि ॥ गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ९० ॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादिति प्राह मनुः स्वयम् ॥ विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणाः ॥ ९१ ॥ शिवोपास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा ॥ तस्मादाद्ययुगे राजन्गायत्रीजपतत्पराः ॥ देवीपदांबुजरता आसन्सर्वे द्विजोत्तमाः ॥ ९२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ कदाचिदथ काले तु दश पंच समा विभो ॥ प्राणिनां कर्मवशतो न ववर्ष शतक्रतुः ॥ १ ॥ अनावृष्ट्याऽतिदुर्भिक्षम-भवत्क्षयकारकम् ॥ गृहे गृहे शवानां तु संख्या कर्तुं न शक्यते ॥ २ ॥ केचिदश्वान्वराहान्वा भक्षयंति क्षुधार्दिताः ॥ शवानि च मनुष्याणां भक्ष-यंत्यपरे जनाः ॥ ३ ॥ बालकं बालजननी स्त्रियं पुरुष एव च ॥ भक्षितुं चलिताः सर्वे क्षुधया पीडिता नराः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणा बहवस्तत्र विचारं

'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(गौतम द्वारा असंख्य ब्राह्मणोंकी रक्षा और उनकी कृतघ्नतासे कुपित होकर शापदान) व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! एक समयकी बात है, प्राणियोंको कर्मफलका भोग कराने के लिए इन्द्रने पंद्रह वर्षोंतक जल बरसाना बन्द कर दिया ॥१॥ इस अनावृष्टिके कारण संहारकारी घोर दुर्भिक्ष पड़ गया। घर-घरमें इतनी लाशें एकत्र हो गयीं कि जिनकी गणना नहीं हो सकती थी ॥२॥ भूखे लोगोंमेंसे कुछ लोग घोड़ों, सुअरों और मनुष्योंके शवतक खा जाते थे। क्षुधासे पीडित माता अपने बच्चेको, पुरुष स्त्रीको एवं सभी मानव क्षुधाकी ज्वालासे संतप्त होकर एक दूसरेको खानेके लिए दौड़ पड़ते थे ॥३॥४॥ ऐसी विकट स्थितिमें बहुत-से ब्राह्मणोंने एकत्र होकर यह उत्तम विचार उपस्थित किया कि 'गौतमजी तपस्याके बड़े धनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। इस अवसरपर वे ही हमारे इस दुःखको दूर कर सकते हैं। अतः अब हम सब लोग मिलकर उनके आश्रमपर चलें। मुनिवर अपने आश्रमपर गायत्रीकी उपासना कर रहे हैं। सुना है कि इस समय भी उनके यहाँ सुभिक्ष ही है। बहुत-से प्राणी वहाँ पहुँच चुके हैं।' इस प्रकार विचार करके वे सभी ब्राह्मण अपने अग्निहोत्रके सामान, कुटुम्बी, गोधन तथा दास-दासियोंको साथ लेकर गौतमजीके आश्रमपर गये। कुछ लोग पूर्वसे, कुछ दक्षिणसे, कुछ पश्चिमसे और कुछ उत्तरसे—अनेक दिशाओंसे बहुत-से ब्राह्मण वहाँ पहुँच गये। ब्राह्मणोंके इस बड़े समाजको उपस्थित देखकर गौतमजीने उनको प्रणाम किया ॥५–९॥ उन्होंने आसन आदि उपचारोंसे उन ब्राह्मणोंकी पूजा की और कुशल-प्रश्नके अनंतर उनके आगमनका कारण पूछा ॥ १० ॥ तब सम्पूर्ण ब्राह्मणोंने अपना-अपना दुःख उनके सामने निवेदन किया। वस्तुतः ब्राह्मणसमाज बहुत दुखी था। उन सबको दुखी देखकर मुनिने अभय प्रदान किया ॥ ११ ॥ उन्होंने कहा—'हे विप्रो! यह आश्रम आप ही लोगोंका है। मैं सर्वथा आप लोगोंका दास हूँ। मुझ दासके रहते आप लोगोंको चिंता नहीं करनी चाहिए ॥१२॥ इस समय आप तपोधन ब्राह्मणोंके पधारनेसे

चक्रुरुत्तमम् ॥ तपोधनो गौतमोऽस्ति स नः खेदं हरिष्यति ॥ ५ ॥ सर्वैर्मिलित्वा गंतव्यं गौतमस्याश्रमेऽधुना ॥ गायत्रीजपसंसक्तगौतमस्याश्रमेऽधुना ॥ ६ ॥ सुभिक्षं श्रूयते तत्र प्राणिनो बहवो गताः ॥ एवं विमृश्य भूदेवाः साग्निहोत्राः कुटुम्बिनः ॥ ७ ॥ सगोधनाः सदासाश्च गौतमस्याश्रमं ययुः ॥ पूर्वदेशाद्ययुः केचित्केचिद्दक्षिणदेशतः ॥ ८ ॥ पाश्चात्या औत्तराहाश्च नानादिग्भ्यः समाययुः ॥ दृष्ट्वा समाजं विप्राणां प्रणनाम स गौतमः ॥ ९ ॥ आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास वाडवान् ॥ चकार कुशलप्रश्नं ततश्चागमकारणम् ॥ १० ॥ ते सर्वे स्वस्ववृत्तांतं कथयामासुरुत्स्मयाः ॥ दृष्ट्वा तान्दुःखितान्विप्रानभयं दत्तवान्मुनिः ॥ ११ ॥ युष्माकमेतत्सदनं भवद्दासोऽस्मि सर्वथा ॥ का चिंता भवतां विप्रा मयि दासे विराजति ॥ १२ ॥ धन्योऽहमस्मिन्समये यूयं सर्वे तपोधनाः ॥ येषां दर्शनमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते ॥ १३ ॥ ते सर्वे पादरजसा पावयन्ति गृहं मम ॥ को मदन्यो भवेद्धन्यो भवतां समनुग्रहात् ॥ १४ ॥ स्थेयं सर्वैः सुखेनैव संध्याजपपरायणैः ॥ व्यास उवाच ॥ इति सर्वान्समाश्वास्य गौतमो मुनिराट् ततः ॥ १५ ॥ गायत्रीं प्रार्थयामास भक्तिसन्नतकंधरः ॥ नमो देवि महाविद्ये वेदमातः परात्परे ॥ १६ ॥ व्याहृत्यादिमहामंत्ररूपे प्रणवरूपिणि ॥ साम्यावस्थात्मिके मातर्नमो ह्रींकाररूपिणि ॥ १७ ॥ स्वाहास्वधास्वरूपे त्वां नमामि सकलार्थदाम् ॥ भक्तकल्पलतां देवीमवस्थात्रय-

मैं कृतकृत्य हो गया। जिनके दर्शनमात्रसे दुष्कृत सुकृतके रूपमें परिणत हो जाते हैं, वे सभी ब्राह्मण अपनी चरणधूलिसे मेरे गृहको पवित्र कर रहे हैं। आपके अनुग्रहसे मैं धन्य हो गया। मेरे सिवा किस दूसरेको यह सौभाग्य मिल सकता है? ॥१३॥१४॥ सन्ध्या और जपमें परायण रहनेवाले आप सभी द्विजगण सुखपूर्वक मेरे यहाँ रहनेकी कृपा करें।' व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! मुनिवर गौतमजी सभी ब्राह्मणोंका आश्वासन देकर भक्तिविनम्र हो भगवती गायत्रीकी प्रार्थना करते हुए कहने लगे—'हे देवी! तुम्हें प्रणाम है। तुम महाविद्या, देवमाता और परात्परस्वरूपिणी हो ॥ १५ ॥ १६ ॥ व्याहृति आदि महान् मंत्र और प्रणव तुम्हारे रूप हैं। हे माता! तुम साम्यावस्थामें विराजमान रहती हो। 'ह्रीं' का रूप धारण करनेवाली तुम देवीको मेरा नमस्कार है ॥ १७ ॥ 'स्वाहा' और 'स्वधा' रूपसे शोभा पानेवाली और संपूर्ण कामनाओंको देनेमें परम कुशल देवीको मैं प्रणाम करता हूँ। तुम भक्तोंके लिए कल्पलता और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तीनों अवस्थाओंकी परम साक्षिणी हो ॥१८॥ तुम्हारा स्वरूप तुरीयावस्थासे अतीत है तथा तुम सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हो । तुम सम्पूर्ण वेदांतोंकी वेद्य विषय हो । सूर्यमण्डलमें तुम्हारा निवास है ॥१९॥ प्रातःकालमें तुम बालसूर्यके समान रक्तवर्णवाली कुमारी, मध्याह्नकालमें श्रेष्ठ युवती और सायंकालमें वृद्धाके रूपसे विराजती हो । मैं तुम्हें नित्य प्रणाम करता हूँ ॥२०॥ संपूर्ण प्राणियोंका उद्धार करनेवाली हे देवी परमेश्वरी ! तुम मेरे अपराध क्षमा करो ।' गौतमजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती जगदम्बा उनके सामने प्रकट हो गयीं ॥२१॥ जिससे उन्होंने गौतम मुनिको एक ऐसा पूर्णपात्र दिया, जिससे सबके भरण-पोषणकी व्यवस्था हो सकती थी । साथ ही उन भगवती जगदंबाने मुनिसे कहा—'हे मुने ! तुम्हें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा होगी, मेरा दिया हुआ यह पात्र उसे पूर्ण कर देगा ।' यों कहकर श्रेष्ठ कला धारण करनेवाली भगवती गायत्री अन्तर्धान हो गयीं ॥ २२॥२३ ॥ हे राजन् ! उस समय उस पात्रसे प्राप्त अन्नोंके इतने ढेर लग गये कि मानो पर्वत हों । छः प्रकारके रस, भाँति-भाँतिके तृण, दिव्य भूषण, रेशमी वस्त्र, यज्ञोंकी सामग्रियाँ तथा अनेक प्रकारके पात्र देवीके दिये हुए उस

साक्षिणीम् ॥ १८ ॥ तुर्यातीतस्वरूपां च सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ सर्ववेदांतसंवेद्यां सूर्यमंडलवासिनीम् ॥ १९ ॥ प्रातर्बालां रक्तवर्णां मध्याह्ने युवतीं पराम् ॥ सायाह्ने कृष्णवर्णां तां वृद्धां नित्यं नमाम्यहम् ॥ २० ॥ सर्वभूतारणे देवि क्षमस्व परमेश्वरि ॥ इति स्तुता जगन्माता प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ २१ ॥ पूर्णपात्रं ददौ तस्मै येन स्यात्सर्वपोषणम् ॥ उवाच मुनिमंबा सा यं यं कामं त्वमिच्छसि ॥ २२ ॥ तस्य पूर्तिकरं पात्रं मया दत्तं भविष्यति ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी गायत्री परमा कला ॥ २३ ॥ अन्नानां राशयस्तस्मान्निर्गताः पर्वतोपमाः ॥ षड्रसा विविधा राजंस्तृणानि विविधानि च ॥ २४ ॥ भूषणानि च दिव्यानि क्षौमानि वसनानि च ॥ यज्ञानां च समारंभाः पात्राणि विविधानि च ॥ २५ ॥ यद्यदिष्टमभूद्राजन्मुनेस्तस्य महात्मनः ॥ तत्सर्वं निर्गतं तस्माद्गायत्रीपूर्णपात्रतः ॥ २६ ॥ अथाहूय मुनीन्सर्वान्मुनिराड्गौतमस्तदा ॥ धन्यधान्यं भूषणानि वसनानि ददौ मुदा ॥ २७ ॥ गोमहिष्यादिपशवो निर्गताः पूर्णपात्रतः ॥ निर्गतान्यज्ञसंभारान्स्रुक्स्रुवप्रभृतीन्ददौ ॥ २८ ॥ ते सर्वे मिलिता यज्ञांश्चक्रिरे मुनिवाक्यतः ॥ स्थानं तदेव भूयिष्ठमभवत्स्वर्गसन्निभम् ॥ २९ ॥ यत्किंचित्त्रिषु लोकेषु सुन्दरं वस्तु दृश्यते ॥ तत्सर्वं तत्र निष्पन्नं गायत्रीदत्तपात्रतः ॥ ३० ॥ देवांगनासमा दाराः शोभंते भूषणादिभिः ॥ मुनयो देवसदृशा शास्त्रचन्दनभूषणैः ॥ ३१ ॥ नित्योत्सवः प्रववृते मुनेराश्रममंडले ॥

पूर्णपात्रसे निकल आये ॥२४॥२५॥ हे राजन् ! मुनिवर गौतमजी बड़े महात्मा पुरुष थे । जिस-जिस वस्तुके लिए उनके मनमें इच्छा उत्पन्न होती थी, वे सभी पदार्थ देवी गायत्रीके पूर्णपात्रसे प्राप्त हो जाते थे ॥२६॥ उस समय मुनिवर गौतमजीने संपूर्ण मुनियोंको बुलाकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक धन-धान्य और वस्त्र-भूषण आदि समर्पण किये ॥२७॥ उनके द्वारा गाय-भैंस आदि पशु तथा स्रुक्-स्रुवा आदि यज्ञकी सामग्रियाँ, जो सब-की-सब भगवती गायत्रीके पूर्णपात्रसे निकली थीं, आये हुए ब्राह्मणोंको प्राप्त हुईं । तब सभी लोग एकत्रित होकर गौतमजीकी आज्ञासे यज्ञ करने लगे । स्वर्गकी समानता रखनेवाला वह आश्रम उस समय एक महान् विस्तृत आश्रय-क्षेत्र बन गया था ॥ २८ ॥ २९ ॥ त्रिलोकीमें जितनी भी सुंदर वस्तुएँ दिखायी पड़ती हैं, वे सब-की-सब भगवती गायत्रीकी कृपासे प्राप्त उस पात्रसे निकल आयी थीं ॥ ३० ॥ वहाँ उपस्थित मुनियोंकी स्त्रियाँ वस्त्राभूषण आदि धारण करनेके कारण ऐसी शोभा पाने लगीं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानो देवाङ्गनाएँ हों। साथ ही वस्त्र, चन्दन और आभूषणोंसे अलंकृत ब्राह्मण ण भी इन्द्र जैसे प्रतीत हो रहे थे ॥३१॥ उस समय गौतमजीके आश्रमपर नित्य उत्सव मानाया जाता था। न किसीको रोगका भय था और न दैत्य ही किसीको भय पहुँचा सकते थे ॥३२॥ गौतमजीका वह आश्रम चारों ओरसे सौ-सौ योजनके विस्तारमें था। अन्य भी बहुतसे प्राणी उस अवसरपर वहाँ आये और आत्मज्ञानी मुनिवर गौतमने सभीको अभय प्रदान करके उनके भरण-पोषणकी व्यवस्था कर दी। अनेक प्रकारके महान् यज्ञ विधिवत् सम्पन्न होनेके कारण उस समय देवता भी परम संतुष्ट हो गये। उन्होंने गौतमजीके यशकी पर्याप्त प्रशंसा की। महान यशस्वी इन्द्रने भी अपनी सभामें बार-बार यह श्लोक कहा—॥३३–३५॥ 'अहो, ये गौतम मुनि हम लोगोंके लिये इस समय साक्षात् कल्पवृक्ष बन गये हैं। तभी तो इन महाभागके द्वारा हमारे सभी मनोरथ पूर्ण हो रहे हैं, अन्यथा इस दुष्कालमें, जब कि जीनेकी आशा भी अत्यन्त दुर्लभ थी, हमारे लिये कौन हवि प्रदान करता ? ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मुनिवर गौतम बारह वर्षोंतक उन श्रेष्ठ मुनियों के भरण-पोषणकी व्यवस्था करते रहे। वे पुत्रके समान सबकी

न रोगादिभयं किंचिन्न च दैत्यभयं क्वचित् ॥ ३२ ॥ स मुनेराश्रमो जातः समंताच्छतयोजनः ॥ अन्ये च प्राणिनो येऽपि तत्र तेऽपि समागताः ॥ ३३ ॥ तांश्च सर्वान्पुपोषायं दत्त्वाऽभयमथात्मवान् ॥ नानाविधैर्महायज्ञैर्विधिवत्कल्पितैः सुराः ॥ ३४ ॥ सन्तोषं परमं प्रापुर्मुनेश्चैव जगुर्यशः ॥ सभायां वृत्रहा भूयो जगौ श्लोकं महायशाः ॥३५॥ अहो अयं नः किल कल्पपादपो मनोरथान्पूरयति प्रतिष्ठितः ॥ नोचेदकाण्डे क्व हविर्लभामहे सुदुर्लभा यत्र तु जीवनाशा ॥ ३६ ॥ इत्थं द्वादश वर्षाणि पुपोष मुनिपुंगवान् ॥ पुत्रवन्मुनिराड्गर्वगंधेन परिवर्जितः ॥ ३७ ॥ गायत्र्याः परमं स्थानं चकार मुनिसत्तमः ॥ यत्र सर्वैर्मुनिवरैः पूज्यते जगदम्बिका ॥ ३८ ॥ त्रिकालं परया भक्त्या पुरश्चरणकर्मभिः ॥ अद्यापि यत्र देवी सा प्रातर्बाला तु दृश्यते ॥ ३९ ॥ मध्याह्ने युवती वृद्धा सायंकाले तु दृश्यते ॥ तत्रैकदा समायातो नारदो मुनिसत्तमः ॥ ४० ॥ रणयन्महतीं गायन्गायत्र्याः परमान्गुणान् ॥ निषसाद सभामध्ये मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ४१ ॥ गौतमादिभिरत्युच्चैः पूजितः शांतमानसः ॥ कथाश्चकार विविधा यशसो गौतमस्य च ॥ ४२ ॥ ब्रह्मर्षे देवसदसि देवराट् तव यद्यशः ॥ जगौ बहुविधं स्वच्छं मुनिपोषणजं परम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वा शचीपतेर्वाणी

सार-सँभल करते थे, तथापि उनके मनमें अभिमानकी गन्ध भी नहीं आ सकी थी ॥ ३७ ॥ उन मुनिवरने गायत्रीकी आराधनाके लिये एक श्रेष्ठ स्थानका निर्माण करवा दिया था। सभी प्रधान-प्रधान मुनि वहाँ जाकर भगवती जगदम्बाकी उपासना करते थे। परम भक्तिके साथ तीनों समय (प्रातः, मध्याह्न, सायं) वहाँ पुरश्चरण आदि कर्म सम्पन्न होते थे। उस स्थानपर अब भी भगवतीका रूप प्रातःकालमें बाला, मध्याह्नकालमें युवती तथा सायंकालमें वृद्धावस्थासे सम्पन्न दृष्टिगोचर होता है। एक समयकी बात है, मुनिवर नारदजी वहाँ पधारे ॥३८–४०॥ उनकी विशाल वीणा बज रही थी और वे भगवती गायत्रीके उत्तम गुणोंका गान कर रहे थे। वहाँ आकर वे पुण्यात्मा मुनियोंकी सभामें बैठ गये ॥४१॥ गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियोंने नारदजीका विधिवत् स्वागत किया। तदनन्तर नारदजी गौतमके यश-सम्बन्धी विविध प्रसङ्गोंका वर्णन करने लगे ॥४२॥ उन्होंने कहा—'मैं देवसभामें गया था। वहाँ देवराज इन्द्रने आपका यश गाया है। उनका कथन है कि मुनि गौतमने सबका भरण-पोषण करके विशाल एवं निर्मल यश प्राप्त किया है ॥४३॥ हे मुनिवर ! शचीपति इन्द्रकी बात

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुनकर तुम्हें देखनेके लिए मैं यहाँ आ गया। भगवती जगदम्बाके कृपाप्रसादसे तुम धन्यवादके पात्र बन गये हो ॥४४॥ मुनिवर गौतमसे इस प्रकार कहकर नारदजी गायत्री-सदनमें गये। उन्हें वहाँ भगवती जगदम्बाकी झाँकी प्राप्त हुई। उनका दर्शन करके नारदजीकी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठीं ॥ ४५ ॥ उन्होंने देवीकी विधिवत् स्तुति की और पुनः स्वर्गको प्रस्थान कर दिया। उस समय वहाँ जितने ब्राह्मण थे, गौतम मुनिके द्वारा ही उन सबके भरण-पोषणकी व्यवस्था होती थी ॥४६॥ परन्तु उनमेंसे कुछ कृतघ्न ब्राह्मण गौतमजीके इस उत्कर्षको सुनकर ईर्ष्यासे जल उठे। उन्होंने द्वेषवश निश्चय किया कि जिस किसी भी प्रकारसे हमें सर्वथा वही प्रयत्न करना चाहिये, जिससे इनकी ख्याति न बढ़े ॥ ४७ ॥ उन लोगोंने इस प्रकारका विचार निश्चित कर लिया। कुछ दिनोंके बाद धरातलपर वृष्टि भी होने लगी ॥ ४८ ॥ हे राजेन्द्र! अब सम्पूर्ण देशोंमें सुभिक्षकी बातें सुनायी पड़ने लगीं। उसे सुनकर वे ब्राह्मण एकत्र हुए और उन्होंने गौतमजीको शाप देनेका विचार किया। वे माता-पिता धन्य होंगे, जिनके घर ऐसे कुलकलंकी पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई होगी ॥ ४९ ॥ ५० ॥

त्वां द्रष्टुमहमागतः ॥ धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ जगदम्बाप्रसादतः ॥४४॥ इत्युक्त्वा मुनिवर्यं तं गायत्रीसदनं ययौ ॥ ददर्श जगदम्बां तां प्रेमोत्फुल्लविलोचनः ॥ ४५ ॥ तुष्टाव विधिवद्देवीं जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ अथ तत्र स्थिता ये ते ब्राह्मणा मुनिपोषिताः ॥ ४६ ॥ उत्कर्षं तु मुनेः श्रुत्वाऽसूयया खेदमागताः । यथाऽस्य न यशो भूयात्कर्तव्यं सर्वथैव हि ॥ ४७ ॥ काले समागते पश्चादिति सर्वैस्तु निश्चितम् ॥ ततः कालेन कियताऽप्यभूद्वृष्टिर्धरातले ॥ ४८ ॥ सुभिक्षमभवत्सर्वदेशेषु नृपसत्तम ॥ श्रुत्वा वार्तां सुभिक्षस्य मिलिताः सर्ववाडवाः ॥ ४९ ॥ गौतमं शप्तुमुद्योगं हा हा राजन्प्रचक्रिरे ॥ धन्यौ तेषां च पितरौ ययोरुत्पत्तिरीदृशी ॥ ५० ॥ कालस्य महिमा राजन्वक्तुं केन हि शक्यते ॥ गौर्निर्मिता माययैका मुमूर्षुर्जरती नृप ॥ ५१ ॥ जगाम सा च शालायां होमकाले मुनेस्तदा ॥ हुंहुंशब्दैर्वारिता सा प्राणांस्तत्याज तत्क्षणे ॥ ५२ ॥ गौर्हताऽनेन दुष्टेनेत्येवं ते चुक्रुशुर्द्विजाः ॥ होमं समाप्य मुनिराड् विस्मयं परमं गतः ॥ ५३ ॥ समाधिमीलिताक्षः संश्चिन्तयामास कारणम् ॥ कृतं सर्वं द्विजैरेतदिति ज्ञात्वा तदैव सः ॥ ५४ ॥ दधार कोपं परमं प्रलये रुद्रकोपवत् ॥ शशाप च ऋषीन्सर्वान्कोपसंरक्तलोचनः ॥ ५५ ॥ वेदमातरि गायत्र्यां तद्ध्याने

हे महाराज! उन कृतघ्न ब्राह्मणोंने मायाकी एक गौ बनायी। उस गौका शरीर जीर्ण-शीर्ण था। वह अब मरना ही चाहती थी ॥ ५१ ॥ जिस समय मुनिवर गौतम हवनकाल उपस्थित होनेपर यज्ञशालामें हवन कर रहे थे, उसी क्षण वह गौ वहाँ पहुँची। मुनिने 'हु हुं' इन शब्दोंसे उसे आनेसे रोका। इतनेमें ही उस गौके प्राण निकल गये ॥ ५२ ॥ फिर तो उन ब्राह्मणोंने यह हल्ला मचा दिया कि इस दुष्ट गौतमने गौकी हत्या कर दी है। मुनिवर गौतम भी हवन समाप्त करके अत्यन्त आश्चर्य करने लगे ॥ ५३ ॥ वे आँखें मूँदकर समाधिमें स्थित हो इसके कारणपर विचार करने लगे। जिससे उन्हें तुरन्त पता लग गया कि यह सब इन ब्राह्मणोंकी ही काली करतूत है ॥ ५४ ॥ तब तो उनके मनमें इतना क्रोध हुआ, मानो प्रलयकालीन रुद्र हों। उनकी आँखें लाल हो गयीं और उन द्वेष करनेवाले ब्राह्मणोंको उन्होंने शाप देते हुए कहा—॥ ५५ ॥ 'अरे ओ अधम ब्राह्मणों!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आजसे तुम वेदमाता गायत्रीके ध्यान और उनके मन्त्रजपके सर्वथा अनधिकारी हो जाओ ॥ ५६ ॥ वेद, वेदोक्त यज्ञ तथा वेदकी वार्ताओंमें तुम अधम ब्राह्मणोंका सर्वदा अनधिकार हो जाय ॥ ५७ ॥ शिवकी उपासना, शिवमन्त्रका जप और शिव-सम्बन्धी शास्त्रके अध्ययनके लिए भी तुम अधम ब्राह्मण सदा अनधिकारी हो जाओ ॥ ५८ ॥ मूलप्रकृति भगवती श्रीदेवीके ध्यान तथा उनकी कथाके श्रवणमें तुम्हारा मन नहीं लगेगा, जिससे तुम सदा नीच श्रेणीके ब्राह्मण समझे जाओगे। देवीके मन्त्र, देवीके ध्यान और उनके अनुष्ठानकर्ममें तुम्हारा अधिकार न होगा। अतएव तुम सदा अधम समझे जाओगे ॥५९॥६०॥ देवीका उत्सव देखने और उनके नामोंका कीर्तन करनेसे विमुख होनेके कारण तुम सदा अधम बने रहोगे ॥ ६१ ॥ देवीभक्तके समीप रहने और देवीभक्तोंकी अर्चना करनेके अनधिकारी होकर तुमलोग सदा नीच ब्राह्मणोंकी श्रेणीमें रहोगे ॥ ६२ ॥ भगवान् शिवका उत्सव देखने और शिवभक्तका

तन्मनोजपे ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वथा ब्राह्मणाधमाः ॥ ५६ ॥ वेदे वेदोक्तयज्ञेषु तद्वार्तासु तथैव च ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥५७॥ शिवे शिवस्य मंत्रे च शिवशास्त्रे तथैव च ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ५८ ॥ मूलप्रकृत्याः श्रीदेव्यास्तद्ध्याने तत्कथासु च ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ५९ ॥ देवीमंत्रे तथा देव्याः स्थानेऽनुष्ठानकर्मणि ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणधमाः ॥ ६० ॥ देव्युत्सवदिदृक्षायां देवीनामानुकीर्तने ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६१ ॥ देवीभक्तस्य सान्निध्ये देवीभक्तार्चने तथा ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६२ ॥ शिवोत्सवदिदृक्षायां शिवभक्तस्य पूजने ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६३ ॥ रुद्राक्षे बिल्वपत्रे च तथा शुद्धे च भस्मनि ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६४ ॥ श्रौतस्मार्तसदाचारे ज्ञानमार्गे तथैव च ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६५ ॥ अद्वैतज्ञाननिष्ठायां शान्तिदान्त्यादिसाधने ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६६॥ नित्यकर्माद्यनुष्ठानेऽप्यग्निहोत्रादिसाधने ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६७॥ स्वाध्यायाध्ययने चैव तथा प्रवचनेऽपि च ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६८ ॥ गोदानादिषु दानेषु पितृश्राद्धेषु चैव हि ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६९ ॥ कृच्छ्रचांद्रायणे चैव प्रायश्चित्ते तथैव च ॥ भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ७० ॥ श्रीदेवीभिन्नदेवेषु श्रद्धाभक्तिसमन्विताः ॥ शंखचक्राद्यङ्किताश्च भवत

सम्मान करनेमें तुम्हारा मन नहीं लगेगा, जिससे तुमसदा अधम ब्राह्मण गिने जाओगे। रुद्राक्ष, बिल्वपत्र और शुद्ध भस्म धारण करनेसे वञ्चित होकर तुम सदा अधम ब्राह्मणका जीवन व्यतीत करोगे ॥६३॥६४॥ श्रौत-स्मार्तसम्बन्धी सदाचार तथा ज्ञानमार्गमें तुम्हारी गति नहीं होगी। अतः तुम सदा अधम ब्राह्मण समझे जाओगे ॥६५॥ अद्वैत ज्ञाननिष्ठा तथा शम-दम आदि साधनोंसे विमुख होकर तुम अधम ब्राह्मण बन जाओ ॥६६॥ नित्यकर्म आदिके अनुष्ठान तथा अग्निहोत्र आदि साधनमें भी तुम्हारा अनधिकार हो और तुम सदाके लिए अधम बन जाओ ॥६७॥ स्वाध्यायाध्यन तथा प्रवचनसे पृथक् होकर तुम सर्वदा अधम जीवन व्यतीत करो॥६८॥हे ब्राह्मणाधमो! गौ आदिके दान और पितरोंके श्राद्धसे तुम विमुखहो जाओ ॥ ६९ ॥ हे अधम ब्राह्मणो! कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतोंमें तुम्हारा सदाके लिए अनधिकार हो जाय॥७०॥देवी भगवतीको त्यागकर तुमलोग बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ शंख-चक्र आदिका छापा

१५१७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगाकर अधम ब्राह्मण हो जाओ ॥७१॥ कापालिक मत, बौद्धशास्त्र तथा पाखंडियोंके आचार-विचारको अपनाकर तुम अधम हो जाओ ॥७२॥ पिता, माता, पुत्र, भ्राता, कन्या और भार्याका विक्रय करनेवाले व्यक्तिके समान तुम्हें नीच ब्राह्मण होनेका अवसर मिल जाय ॥७३॥ हे अधम ब्राह्मणों! वेदका विक्रय करनेवाले तथा तीर्थ एवं धर्म बेचनेमें लगे हुए नीच व्यक्तियों-को जो गति मिलती है, वही तुम्हें प्राप्त हो ॥ ७४ ॥ पांचरात्र, कामशास्त्र, कापालिक मत तथा बौद्ध मतमें श्रद्धा रखकर तुम अधम ब्राह्मण हो जाओ ॥७५॥ माता, कन्या, बहिन तथा परस्त्रीके साथ दुराचार करके तुम लोग अधम ब्राह्मण हो जाओ ॥७६॥ तुम्हारे वंशमें उत्पन्न स्त्री तथा पुरुष मेरे दिये हुए शापसे दग्ध होकर तुम्हारे ही समान नीच होंगे ॥७७॥ बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन। गायत्री नामसे प्रसिद्ध मूल-प्रकृति भगवती जगदम्बाका अवश्य ही तुमपर महान् कोप है। अतएव तुम लोगोंको अन्धकूप आदि नरककुण्डोंमें वास करना पड़ेगा। व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार वचनों द्वारा दण्ड देनेके पश्चात् गौतमजीने आचमन किया ॥७८-७९॥ और भगवती गायत्रीका दर्शन करनेके लिए अत्यन्त उत्सुक होकर

ब्राह्मणाधमाः ॥ ७१ ॥ कापालिकमतासक्ता बौद्धशास्त्ररताः सदा ॥ पाखंडाचारनिरता भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७२ ॥ पितृमातृसुतभ्रातृकन्या-विक्रयिणस्तथा ॥ भार्याविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७३ ॥ वेदविक्रयिणस्तद्वत्तीर्थविक्रयिणस्तथा ॥ धर्मविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७४ ॥ पांचरात्रे कामशास्त्रे तथा कापालिके मते ॥ बौद्धे श्रद्धायुता यूयं भवत ब्राह्मणधमाः ॥ ७५ ॥ मातृकन्यागामिनश्च भगिनीगामि-नस्तथा ॥ परस्त्रीलंपटाः सर्वे भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७६ ॥ युष्माकं वंशजाताश्च स्त्रियश्च पुरुषास्तथा ॥ मद्दत्तशापदग्धास्ते भविष्यन्ति भवत्समाः ॥ ७७ ॥ किं मया बहुनोक्तेन मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ गायत्री परमा भूयाद्युष्मासु खलु कोपिता ॥ ७८ ॥ अंधकूपादिकुण्डेषु युष्माकं स्यात्सदा स्थितिः ॥ व्यास उवाच ॥ वाग्दंडमीदृशं कृत्वाऽप्युपस्पृश्य जलं ततः ॥ ७९ ॥ जगाम दर्शनार्थं च गायत्र्याः परमोत्सुकः ॥ प्रणनाम महादेवीं साऽपि देवी परात्परा ॥ ८० ॥ ब्राह्मणानां कृतिं दृष्ट्वा स्वयं चित्ते चकार ह ॥ अद्यापि तस्या वदनं स्मययुक्तं च दृश्यते ॥ ८१ ॥ उवाच मुनिवर्यं तं स्मयमानमुखांबुजा ॥ भुजंगायार्पितं दुग्धं विषायैवोपजायते ॥ ८२ ॥ शांतिं कुरु महाभाग कर्मणो गतिरीदृशी ॥ इति देवीं प्रणम्याथ ततोऽ-गौतमश्चाश्रमं प्रति ॥ ८३ ॥ ततो विप्रैः शापदग्धैर्विस्मृता वेदराशयः ॥ गायत्री विस्मृता सर्वैस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ८४ ॥ ते सर्वेऽथ मिलित्वा तु

देवालयमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने महादेवीके चरणोंमें मस्तक झुकाया ॥ ८० ॥ परम आदरणीया देवी भी ब्राह्मणोंकी इस कृतघ्नताको देखकर स्वयं अपने मनमें विचार कर रही थीं। उस समय देवीका मुखकमल आश्चर्यसे युक्त दिखायी पड़ रहा था ॥८१॥ अब आश्चर्यसे सम्पन्न मुखकमलवाली भगवती गायत्री मुनिवर गौतमसे कहने लगीं—'हे महाभाग! सर्पके लिए दिया हुआ दुग्ध भी विषको ही बढ़ानेवाला होता है ॥८२॥ तुम धैर्य धारण करो। कर्मकी ऐसी ही विपरीत गति है।' इसके बाद भगवती जगदम्बाको प्रणाम करके मुनिवर गौतम अपने आश्रमपर चले गये ॥८३॥ तदनन्तर शापसे दग्ध होनेके कारण उन ब्राह्मणोंने जितना वेदाध्ययन किया था, वह सब-का-सब विस्मृत हो गया। गायत्रीमन्त्र भी उनके लिये अन-भ्यस्त हो गया। वह एक अत्यन्त भयानक दृश्य उनके सामने उपस्थित था ॥ ८४ ॥ तब वे सब एकत्र होकर अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगे। फिर उन लोगोंने मुनिके सामने दण्डकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाँति पृथ्वीपर पड़कर उन्हें प्रणाम किया ॥८५॥ लज्जासे उनके सिर झुके हुए थे और वे कुछ भी कहनेमें असमर्थ थे । वे बार-बार यही कह रहे थे—'मुनिवर ! प्रसन्न होइए । प्रसन्न होइए । प्रसन्न होइए ।' ॥८६॥ जब मुनिवर गौतमको चारों ओरसे घेरकर वे प्रार्थना करने लगे, तब दयालु मुनिका हृदय करुणासे भर गया । उन्होंने उन ब्राह्मणोंसे कहा—॥८७॥ 'हे ब्राह्मणों ! जबतक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार नहीं होगा, तबतक तो तुम्हें कुम्भीपाक नरकमें अवश्य रहना पड़ेगा । क्योंकि मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता । यह तुम्हें समझ लेना चाहिए ॥८८॥ इसके बाद कलियुगमें तुम लोगोंका भूमण्डलपर जन्म होगा । मेरी कही हुई ये सभी बातें होकर रहेंगी । ये अन्यथा नहीं हो सकतीं । ८९॥ हाँ, यदि तुम्हें शापसे मुक्त होनेकी इच्छा हो तो तुम सब लोगोंके लिये परम आवश्यक यह है कि भगवती गायत्रीके चरणकमलकी सतत उपासना करो ॥९०॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन् ! इस प्रकार कहकर ब्राह्मणोंको विदा करनेके पश्चात् 'यह सब कुछ प्रारब्धका प्रभाव है' यों विचारते हुए मुनिने अपना चित्त शान्त कर लिया ॥९१॥ हे राजन् ! यही कारण है कि भगवान् श्रीकृष्णके परम

पश्चात्तापयुतास्तथा ॥ प्रणेमुर्मुनिवर्यं तं दंडवत्पतिता भुवि ॥ ८५ ॥ नोचुः किंचन वाक्यं तु लज्जयाऽधोमुखाः स्थिताः ॥ प्रसीदेति प्रसीदेति प्रसीदेति पुनः पुनः ॥ ८६ ॥ प्रार्थयामासुरभितः परिवार्य मुनीश्वरम् ॥ करुणापूर्णहृदयो मुनिस्तान्समुवाच ह ॥ ८७ ॥ कृष्णावतारपर्यन्तं कुंभीपाके भवेत्स्थितिः ॥ न मे वाक्यं मृषा भूयादिति जानीथ सर्वथा ॥ ८८ ॥ ततः परं कलियुगे भुवि जन्म भवेद्धि वाम् ॥ मदुक्तं सर्वमेतत्तु भवेदेव न चान्यथा ॥ ८९ ॥ मच्छापस्य विमोक्षार्थं युष्माकं स्याद्यदीषणा ॥ तर्हि सेव्यं सदा सर्वैर्गायत्रीपदपंकजम् ॥ ९० ॥ व्यास उवाच ॥ इति सर्वान्विसृज्याथ गौतमो मुनिसत्तमः ॥ प्रारब्धमिति मत्वा तु चित्ते शांतिं जगाम ह ॥ ९१ ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्गते कृष्णे तु धीमति ॥ कलौ युगे प्रवृत्ते तु कुम्भीपाकात्तु निर्गताः ॥ ९२ ॥ भुवि जाता ब्राह्मणाश्च शापदग्धाः पुरा तु ये ॥ संध्यात्रयविहीनाश्च गायत्रीभक्तिवर्जिताः ॥ ९३ ॥ वेदभक्तिविहीनाश्च पाखण्डमतगामिनः ॥ अग्निहोत्रादिसत्कर्मस्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥ ९४ ॥ मूलप्रकृतिमव्यक्तां नैव जानंति कर्हिचित् ॥ तप्तमुद्रांकिताः केचित्कामाचाररताः परे ॥९५॥ कापालिकाः कौलिकाश्च बौद्धा जैनास्तथापरे ॥ पंडिता अपि ते सर्वे दुराचारप्रवर्तकाः ॥ ९६ ॥ लंपटाः परदारेषु दुराचारपरायणाः॥ कुम्भीपाकं पुनः सर्वे यास्यन्ति निजकर्मभिः ॥ ९७ ॥ तस्मात्सर्वात्मना

धाम पधार जानेपर जब कलियुग आ गया, तब कुम्भीपाक नरकसे वे ब्राह्मण निकल आये ॥ ९२ ॥ भूमण्डलपर उनकी उत्पत्ति हुई । पूर्वकालमें जितने ब्राह्मण शापसे दग्ध हो चुके थे, वे ही त्रिकाल-संध्यासे हीन तथा गायत्रीकी भक्तिसे विमुख होकर ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न हुए ॥ ९३ ॥ उस शापके प्रभावसे ही वेदके प्रति उनमें श्रद्धा नहीं रही और वे पाखण्ड-मतका प्रचार करने लगे । वे अग्निहोत्र आदि सत्कर्म नहीं करते तथा उनके मुँहसे स्वधा और स्वाहाका उच्चारण नहीं होता । कितने तो ऐसे हैं, जिन्हें मूलप्रकृति तथा अव्यक्तस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाका किञ्चिन्मात्र भी ज्ञान प्राप्त नहीं है । वे तप्तमुद्रा धारण करके स्वेच्छाचारी हो गये हैं ॥९४॥९५॥ उनमेंसे कुछ कापालिक, कौलिक, बौद्ध एवं जैनमतावलम्बी बन गये । उन सबके पण्डित होनेपर भी उनके द्वारा दुराचारका ही प्रचार होता है ॥९६॥ बहुत-से लम्पट तो ऐसे हैं, जो अत्यन्त दुराचारी होकर परस्त्रियोंके साथ कुत्सित व्यभिचार करनेके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण वे अपने घृणित कर्मके प्रभावसे पुनः कुम्भीपाक नरकमें ही जायँगे ॥९७॥ अतएव हे राजन् ! सब प्रकारसे भगवती परमेश्वरीकी ही आराधना करनी चाहिये । न विष्णुकी उपासना नित्य है और न शिवोपासना ॥९८॥ एकमात्र शक्तिकी उपासना ही नित्य है । उसे न करनेसे प्राणीकी अधोगति हो जाती है । हे पुण्यात्मन् ! आपने जो प्रश्न किया था, उसका मैंने संक्षेपमें समाधान कर दिया ॥९९॥ अब इसके बाद मणिद्वीपका वर्णन करता हूँ, सुनो । यह सुन्दर स्थान जगत्को उत्पन्न करनेवाली आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरीका परम धाम है ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

(मणिद्वीपका वर्णन) व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें जो सर्वलोक सुना जाता है, वही मणिद्वीप है, जहाँ भगवती जगदम्बा विराजती हैं ॥१॥ भगवती

राजन्संसेव्या परमेश्वरी ॥ न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा ॥ ९८ ॥ नित्या चोपासना शक्तेर्यां विना तु पतत्यधः ॥ सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयाऽनघ ॥ ९९ ॥ अतः परं मणिद्वीपवर्णनं शृणु सुन्दरम् ॥ यत्परं स्थानमाद्याया भुवनेश्या भवारणेः ॥ १०० ॥ इति देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः ॥ मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते ॥ १ ॥ सर्वस्मादधिको यस्मात्सर्वलोकस्ततः स्मृतः ॥ पुरा पराम्बयैवायं कल्पितो मनसेच्छया ॥२॥ सर्वादौ निजवासार्थं प्रकृत्या मूलभूतया ॥ कैलासादधिको लोको वैकुण्ठादपि चोत्तमः ॥ ३ ॥ गोलोकादपि सर्वस्मात्सर्वलोकोऽधिकः स्मृतः ॥ नैतत्समं त्रिलोक्यां तु सुन्दरं विद्यते क्वचित् ॥ ४ ॥ छत्रीभूतं त्रिजगतो भवसंतापनाशकम् ॥ छायाभूतं तदेवास्ति ब्रह्मांडानां तु सत्तमः ॥ ५ ॥ बहुयोजनविस्तीर्णो गंभीरस्तावदेव हि ॥ मणिद्वीपस्य परितो वर्तते तु सुधोदधिः ॥ ६ ॥ मरुत्संघट्टनोत्कीर्णतरंगशतसंकुलः ॥ रत्नाच्छवालुकायुक्तो झषशंखसमाकुलः ॥ ७ ॥ वीचिसंघर्षसंजातलहरीकणशीतलः ॥ नानाध्वजसमायुक्तनानापोतगतागतैः ॥ ८ ॥ विराजमानः परितस्तीररत्नद्रुमो महान् ॥ तदुत्तरमयोधातुनिर्मितो गगने ततः ॥ ९ ॥ सप्तयोजन-

जगदम्बाने पूर्व समयमें स्वेच्छासे उसका निर्माण किया था ॥२॥ उनके निवासार्थ निर्मित वह द्वीप कैलास, वैकुण्ठ और गोलोकसे भी उत्तम है । सम्पूर्ण गोलोकसे श्रेष्ठ होनेके कारण उसका 'सर्वलोक' यह नाम पड़ा है । उसके समान त्रिलोकीमें कहीं कोई भी सुन्दर धाम नहीं है ॥३॥४॥ जगत्के लिए वह छत्रस्वरूप है । वहाँ सांसारिक ताप अपना प्रभाव नहीं जमा सकता । हे राजन् ! सभी ब्रह्माण्ड उसकी छत्रछायामें रहते हैं ॥५॥ उस मणिद्वीपके चारों ओर अनेक योजन दीर्घ और विस्तारसे सम्पन्न अमृतका समुद्र विराजमान है ॥ ६ ॥ पवनके झोकोंसे उठी हुई शत-शत तरङ्गें उसकी शोभा बढ़ाती रहती हैं । रत्नमयी बालुका, मत्स्य और शङ्खसे वह भरा है ॥७॥ तरङ्गोंके संघर्षसे उठी हुई बड़ी-बड़ी लहरें चारों ओर शीतल जलके कण फैलाती हैं । अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे सम्पन्न तथा इधर-उधर जाने-आनेवाली नौकाएँ उस सुधासागरकी शोभा बढ़ाती हैं ॥८॥ उस सुधामय समुद्रके तटपर चारों ओर रत्नमय वृक्ष शोभा पा रहे हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस समुद्रके बाद लौहमयी धातुकी बनी हुई गगनचुम्बी चहारदीवारी है। उसका विस्तार सात योजन है। उस महान् परकोटेमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारण करनेवाले तथा युद्धसंबंधी विविध विद्याओंके पारंगत बहुत-से रक्षक निवास करते हैं। वहाँ सर्वत्र आनन्दका ही साम्राज्य रहता है। उस परकोटेमें चार द्वार और बहुतेरे द्वारपाल हैं। हे राजन्! उस चहार-दीवारीके भीतर देवीमें भक्ति रखनेवाले अनेक गण रहते हैं। भगवती जगदम्बाका दर्शन करनेके लिए जो देवता आते हैं ॥ ९–१२ ॥ उनके वाहन और विमान यहाँ रहते हैं। सैकड़ों विमानोंके संघर्षकी ध्वनिसे वहाँका कोना-कोना भरा रहता है ॥ १३ ॥ घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा उनके टापकी ध्वनिसे दसों दिशाएँ मुखरित होती रहती हैं। हाथमें बेंत लिये हुए देवीके गणोंका अट्टहास सुनायी देता रहता है ॥१४॥ उनके हाथकी मार खानेवाले देवताओंके सेवक घूमते रहते हैं। हे राजन्! वहाँके भीषण कोलाहलमें कोई किसीकी बात नहीं सुन पाता ॥१५॥ बहुत चेष्टा करनेपर ही उस कोलाहलमें किसीकी कोई बात समझमें आती है। वहाँ स्थान-स्थानपर मीठे जलसे परिपूर्ण बहुतेरे सरोवर हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्! रत्नमय

विस्तीर्णः प्राकारो वर्तते महान् ॥ नाना शस्त्रप्रहरणा नानायुद्धविशारदाः ॥ १० ॥ रक्षका निवसंत्यत्र मोदमानाः समंततः ॥ चतुर्द्वारसमायुक्तो द्वारपालशतान्वितः ॥ ११ ॥ नानागणैः परिवृतो देवीभक्तियुतैर्नृप ॥ दर्शनार्थं समायांति ये देवा जगदीशितुः ॥ १२ ॥ तेषां गणा वसंत्यत्र वाहनानि च तत्र हि ॥ विमानशतसंघर्षघंटास्वनसमाकुलः ॥ १३ ॥ हयहेषाखुराघातबधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ गणैः किलकिलारावैर्वेत्रहस्तैश्च ताडिताः ॥ १४ ॥ सेवका देवसंघानां भ्राजंते तत्र भूमिप ॥ तस्मिन्कोलाहले राजन्न शब्दः केनचित्क्वचित् ॥ १५ ॥ कस्यचिच्छ्रूयतेऽत्यंतं नाना-ध्वनिसमाकुले ॥ पदे पदे मिष्टवारिपरिपूर्णसरांसि च ॥ १६ ॥ वाटिका विविधा राजन् रत्नद्रुमविराजिताः ॥ तदुत्तरं महासारधातुनिर्मितमंडलः ॥ १७ ॥ सालोऽपरो महानस्ति गगनस्पर्शि यच्छिरः ॥ तेजसा स्याच्छतगुणः पूर्वसालादयं परः ॥ १८ ॥ गोपुरद्वारसहितो बहुवृक्षसमन्वितः ॥ या वृक्षजातयः संति सर्वास्तास्तत्र संति च ॥ १९ ॥ निरंतरं पुष्पयुताः सदाफलसमन्विताः ॥ नवपल्लवसंयुक्ताः परसौरभसंकुलाः ॥ २० ॥ पनसा बकुला लोध्राः कर्णिकाराश्च शिंशपाः ॥ देवदारुकांचनारा आम्राश्चैव सुमेरवः ॥ २१ ॥ लिकुचा हिंगुलाश्चैला लवंगाः कट्फलास्तथा ॥ पाटला मुचुकुन्दाश्च फलिन्यो जघनेफलाः ॥ २२ ॥ तालास्तमालाः सालाश्च कंकोला नागभद्रकाः ॥ पुन्नागाः पीलवः साल्वका वै कर्पूरशाखिनः ॥ २३ ॥

वृक्षोंसे सुशोभितअनेक प्रकारके सुन्दर बगीचे वहाँकी शोभा बढ़ाते हैं। उस लौहमय प्रकारके आगे कांस्यनिर्मित परकोटा है ॥१७॥ पहलेवालेसे यह परकोटा बहुत बड़ा है। इसका शिखर आकाशको छूता रहता है। तेजमें पूर्व प्राकारसे यह सौ गुना अधिक तेजस्वी माना जाता है ॥ १८ ॥ गोपुर और द्वारसे शोभा पानेवाला यह प्राकार अनेक वृक्षोंसे युक्त है। जितनी जातिके वृक्ष होते हैं, वे सब वहाँ पाये जाते हैं ॥ ९ ॥ वे वृक्ष सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते हैं। नूतन पल्लवों और उत्तम सुगन्धसे उन वृक्षोंका कोई भी अङ्ग खाली नहीं रहता ॥ २० ॥ कटहल, मौलसिरी, लोध, कर्णिकार, शीशम, देवदारु, कचनार, आम और सुमेरुक वृक्ष वहाँ विद्यमान हैं ॥ २१ ॥ बड़हर, हिंगुल, इलायची, लौंग, जायफल, पाटल, मुचुकुन्द, फलिनी (फूलफेन) तथा कठूमरके भी वृक्ष वहाँ हैं ॥२२॥ ताड़, तमाल, साल, साखू, कंकोल, नागभद्र, नागकेसर, पीलु, साल्व, अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, एकांगी, मुरा, अनार, सफेद गुलदुप-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हरिया, जँभीरी नीबू, कटसरैया, चम्पा, लाल गुलदुपहरियां, धतूरा, कालागुरु, चन्दन, खजूर, जूही, तालपर्णी, ईख, क्षीरीवृक्ष (पाकड़-पीपल आदि), बेर, इमली, मेलावा, रेंड़, कुड़ा, कोरैया, तुलसी तथा मोतिया आदि बहुतेरे फूलों और फलोंवाले वृक्षोंके बगीचे वहाँ विद्यमान हैं ॥२३--२७॥ उन अनेक जातिवाले वृक्षोंके बहुत-से वन और उपवन जो सैकड़ों बावलियांसे युक्त हैं, वहाँ शोभा पाते हैं ॥ २८ ॥ कोयलोंके कलरवसे युक्त, भ्रमरोंकी गुञ्जारसे मुखरित तथा स्निग्ध छायावाले वे सभी वृक्ष सदा रस टपकाते रहते हैं ॥ २९ ॥ अनेक ऋतुओं में पुष्पित-फलित होनेवाले उन वृक्षोंपर भाँति-भाँतिके पक्षियोंके समाज निवास करते हैं। अनेक प्रकारके रसोंको प्रवाहित करनेवाली नदियोंसे उन वृक्षोंकी असीम शोभा होती है ॥ ३० ॥ कबूतर, तोते, मैना तथा हंस आदि पक्षियोंके पंखोंसे उठे हुए पवन द्वारा वहाँके वृक्ष सदा हिलते-डलते रहते हैं ॥३१॥ नाचते हुए मोरोंकी सुखदायक केकावाणी सुनायी देती रहती

अश्वकर्णा हस्तिकर्णास्तालपर्णाश्च दाडिमाः ॥ गणिका बंधुजीवाश्च जंबीराश्च कुरंडकाः ॥ २४ ॥ चांपेया बंधुजीवाश्च तथा वै कनकद्रुमाः ॥ कालागुरुद्रुमाश्चैव तथा चन्दनपादपाः ॥ २५ ॥ खर्जूरा यूथिकास्तालपर्ण्यश्चैव तथेक्षवः ॥ क्षीरवृक्षाश्च खदिराश्चिंचाभल्लातकास्तथा ॥ २६ ॥ रुचकाः कुटजा वृक्षा बिल्ववृक्षास्तथैव च ॥ तुलसीनां वनान्येवं मल्लिकानां तथैव च ॥२७॥ इत्यादितरुजातीनां वनान्युपवनानि च ॥ नानावापीशतैर्युक्तान्येवं संति धराधिप ॥२८॥ कोकिलारावसंयुक्ता गुंजद्भ्रमरभूषिताः ॥ निर्यासस्राविणः सर्वे स्निग्धच्छायास्तरूत्तमाः ॥ २९ ॥ नानाऋतुभवा वृक्षा नानापक्षिसमाकुलाः ॥ नानारसस्राविणीभिर्नदीभिरतिशोभिताः ॥ ३० ॥ पारावतशुकव्रातसारिकापक्षमारुतैः ॥ हंसपक्षसमुद्भूतवातव्रातैश्चलद्द्रुमम् ॥ ३१ ॥ सुगंधग्राहिपवनपूरितं तद्वनोत्तमम् ॥ सहितं हरिणीयूथैर्धावमानैरितस्ततः ॥ ३२ ॥ नृत्यद्बर्हिकदंबस्य केकारावैः सुखप्रदैः ॥ नादितं तद्वनं दिव्यं मधुस्रावि समंततः ॥३३॥ कांस्यसालादुत्तरे तु ताम्रसालः प्रकीर्तितः ॥चतुरस्रसमाकार उन्नत्या सप्तयोजनः ॥३४॥ द्वयोस्तु सालयोर्मध्ये संप्रोक्ता कल्पवाटिका ॥ येषां तरूणां पुष्पाणि कांचनाभानि भूमिप ॥ ३५ ॥ पत्राणि कांचनाभानि रत्नबीजफलानि च ॥ दशयोजनगंधो हि प्रसर्पति समंततः ॥ ३६ ॥ तद्वनं रक्षितं राजन्वसंतेनर्तुनाऽनिशम् ॥ पुष्पसिंहासनासीनः पुष्पच्छत्रविराजितः ॥ ३७ ॥ पुष्पभूषाभूषितश्च पुष्पासवविघूर्णितः ॥ मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ ३८ ॥ क्रीडतः स्मेरवदने सुमस्तबककंदुकैः ॥ अतीव रम्यं विपिनं

है। जिससे मुखरित होता हुआ वह वन नित्य रस बरसाया करता है। सुगन्धिमिश्रित पवन बहता रहता है और हरिणियोंको टोली नित्य दौड़ती रहती है ॥३२॥३३॥ काँसेको चहारदीवारीके बाद ताँबेकी चहारदीवारी है। इस प्राकारका आकार चौकोर है और ऊँचाई सात योजन है ॥ ३४ ॥ उन दोनों प्राकारोंके मध्यमें कल्पवृक्षकी सुन्दर वाटिका है। हे राजन्! उन वृक्षोंके पुष्प सुवर्णके समान चमकते हैं ॥३५॥ पत्तोंसे भी सोने जैसी ही आभा छिटकती है। उनके बीज और फल रत्न सदृश हैं। वहाँकी सुगन्ध चारों दिशाओंमें दस योजनतक फैली रहती है ॥३६॥ हे राजन्! वसन्तऋतु द्वारा वह वन सदा सुरक्षित रहता है। वहाँ पुष्पोंके छत्रसे सुशोभित, पुष्पाभूषणसे विभूषित तथा पुष्पासव पीकर मस्त 'वसन्त' पुष्पनिर्मित सिंहासनपर विराजमान रहता है। 'मधुश्री' और 'माधवश्री' इन नामोंसे प्रसिद्ध उसकी दो भार्याएँ हैं॥ ३७ ॥ ३८ ॥ कामदेवके समान सुन्दर मुखवाली वे देवियाँ फूलोंके गुच्छोंका गेंद हाथमें लेकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रीड़ा करती हैं। वह अत्यन्त दिव्य वाटिका चारों ओर मधुकी धारा बहाती रहती है ॥ ३९ ॥ पुष्पोंकी गन्धको लेकर चलनेवाली वायुने वहाँके दस योजनतकको सुवासित कर दिया है। गायन-लोलुप दिव्य गन्धर्व अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ विराजमान रहते हैं ॥४०॥ अनुपम शोभा पानेवाला वह दिव्य वन मतवाले कोकिलोंकी काकलीसे निनादित है। वसन्तलक्ष्मी वहाँ नित्य निवास करती हुई कामियोंकी कामवासनाको उद्दीप्त करती हैं ॥ ४१ ॥ उस ताँबेके परकोटेसे आगे शीशेका प्रसिद्ध परकोटा है। उसकी ऊँचाई सात योजन कही जाती है। ॥ ४२ ॥ हे राजन्! इन दोनों परकोटोंके मध्यमें सन्तान नामक वृक्षोंकी वाटिका है। वहाँके पुष्पोंकी सुगन्ध दस योजन तक चारों ओर सुवासित किये रहती है ॥४३॥ निरन्तर विकसित पुष्प सुवर्णकी कान्ति धारण किये रहते हैं। अमृतके समान मधुर रसोंसे भरे हुए मीठे फलोंकी वहाँ प्रचुरता है ॥४४॥ हे राजेन्द्र! उस वाटिकाका स्वामी 'ग्रीष्म' ऋतु है। उसकी

मधुस्त्रावि समंततः ॥ ३९ ॥ दशयोजनपर्यंतं कुसुमामोदवायुना ॥ पूरितं दिव्यगंधर्वैः सांगनैर्गानलोलुपैः ॥ ४० ॥ शोभितं तद्वनं दिव्यं मत्तकोकिलनादितम् ॥ वसंतलक्ष्मीसंयुक्तं कामिकामप्रवर्धनम् ॥४१॥ ताम्रसालादुत्तरत्र सीससालः प्रकीर्तितः ॥ समुच्छ्रायः स्मृतोऽप्यस्य सप्तयोजनसंख्यया ॥ ४२ ॥ संतानवाटिकामध्ये सालयोस्तु द्वयोर्नृप ॥ दशयोजनगंधस्तु प्रसूनानां समंततः ॥ ४३ ॥ हिरण्याभानि कुसुमान्युत्फुल्लानि निरंतरम् ॥ अमृतद्रवसंयुक्तफलानि मधुराणि च ॥ ४४ ॥ ग्रीष्मर्तुर्नायकस्तस्या वाटिकाया नृपोत्तम ॥ शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ ४५ ॥ संतापत्रस्तलोकास्तु वृक्षमूलेषु संस्थिताः ॥ नानासिद्धैः परिवृतो नानादेवैः समन्वितः ॥४६॥ विलासिनीनां वृंदैस्तु चंदनद्रवपंकिलैः ॥ पुष्पमालाभूषितैस्तु तालवृंतकरांबुजैः ॥ ४७ ॥ प्राकारः शोभितो राजञ्छीतलांबुनिषेविभिः ॥ सीससालादुत्तरत्राप्यारकूटमयः शुभः ॥ ४८ ॥ प्राकारो वर्तते राजन्मुनियोजनदैर्घ्यवान् ॥ हरिचन्दनवृक्षाणां वाटी मध्ये तयोः स्मृता ॥ ४९ ॥ सालयोरधिनाथस्तु वर्षर्तुर्मेघवाहनः ॥ विद्युत्पिंगलनेत्रश्च जीमूतकवचः स्मृतः ॥ ५० ॥ वज्रनिर्घोषमुखरश्चेंद्रधन्वा समंततः ॥ सहस्रशो वारिधारा मुंचन्नास्ते गणावृतः ॥ ५१ ॥ नभःश्रीश्च नभस्यश्रीः स्वरस्या रस्यमालिनी ॥ अंबादुला निरत्निश्चाभ्रमंती मेघयंतिका ॥ ५२ ॥ वर्षयंती चिबुणिका वारिधारा च संमताः ॥ वर्षर्तोर्द्वादश प्रोक्ताः शक्तयो मद-

दो भार्याएँ हैं—'शुक्रश्री' और 'शुचिश्री' ॥४५॥ सन्तापसे सन्तप्त प्राणी वहाँके वृक्षोंकी छायामें निवास करते हैं। अनेक सिद्धों और देवताओंसे वहाँका कोना-कोना भरा रहता है ॥४६॥ पुष्पमालासे विभूषित होकर हाथमें पंखा लिये और शरीरमें चन्दन लगाये ललनायें विहार करती रहती हैं ॥४७॥ हे राजन्! उस शीशेके परकोटेके आगे एक सुन्दर एवं पीतल द्वारा निर्मित चहारदीवारी है। उसकी लंबाई सात योजन है। उन दो परकोटोंके मध्यमें मलयागिरि चन्दनके वृक्षोंकी वाटिका है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ मेघोंपर सवारी करनेवाली 'वर्षा' ऋतु वहाँकी व्यवस्था करती है। उसके नेत्र पिंगलवर्णके हैं। वह मेघरूपी कवचको नित्य धारण किये रहती है ॥ ५० ॥ विद्युत्की कड़कड़ाहट ही इसका शब्द है। इन्द्रधनुष उसके धनुषका काम देता है। अपने गणोंसे सम्पन्न होकर सहस्रों जलधाराएँ बरसाना उसका स्वाभाविक गुण है ॥ ५१ ॥ 'नभःश्री, नभस्यश्री, स्वरस्या, रस्यमालिनी, अम्बादुला, निरत्नि, अभ्रमन्ती, मेघय-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न्तिका, वर्षयन्ती, चिबुणिका, वारिधारा और सम्मता' नामसे प्रसिद्ध ये बारह शक्तियाँ वर्षाऋतुकी देवियाँ कही गयी हैं। ये सदा मदसे विह्वल रहती हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ नवीन पल्लवों तथा लताओंसे युक्त वृक्ष एवं हरे तृण वहाँ सदा पाये जाते हैं, जिनसे वहाँकी सारी पृथ्वी परिवेष्टित रहती है ॥ ५४ ॥ नदी और नद बड़े वेग बहते रहते हैं। वहाँसे बहुतेरे ऐसे सरोवर भी हैं, जिनमें राग-द्वेषयुक्त मनुष्योंके चित्त जैसा गँदला जल भरा रहता है ॥ ५५ ॥ देवता, सिद्ध तथा देवीके यज्ञसम्बन्धी कार्यमें निरत एवं देवीके लिए वापी, कूप और तड़ाग बनाकर अर्पण करनेवाले पुण्यात्मा पुरुष अपनी स्त्रियोंके साथ वहाँ सानन्द निवास करते हैं। पीतलके परकोटेसे आगे सात योजन लंबा पञ्चलौहसे बना हुआ परकोटा है। उसके बीचमें मंदारनामक दिव्य वृक्षोंकी वाटिका है। भाँति-भाँतिके पुष्पों और लताओंसे परिव्याप्त वह वाटिका विविध पल्लवोंसे अनुपम शोभा पाती है ॥ ५६-५८ ॥ पवित्रात्मा 'शरद्'ऋतुको उसका अधिष्ठाता कहते हैं। उसकी दो सुप्रसिद्ध देवियाँ हैं— 'इषुलक्ष्मी' और 'ऊर्जलक्ष्मी' ॥ ५९ ॥ अपनी स्त्रियों तथा अनुचरोंके साथ अनेक सिद्धपुरुष वहाँ निवास करते हैं। उस लोहात्मक छठें परकोटेके

विह्वलाः ॥ ५३ ॥ नवपल्लववृक्षाश्च नवीनलतिकान्विताः ॥ हरितानि तृणान्येव वेष्टिता यैर्धराऽखिला ॥ ५४ ॥ नदीनदप्रवाहाश्च प्रवहंति च वेगतः ॥ सरांसि कलुषांबूनि रागिचित्तसमानि च ॥ ५५ ॥ वसंति देवाः सिद्धाश्च ये देवीकर्मकारिणः ॥ वापीकूपतडागाश्च ये देव्यर्थं समर्पिताः ॥ ५६ ॥ ते गणा निवसंत्यत्र सविलासाश्च सांगनाः ॥ आरकूटमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥ ५७ ॥ पंचलोहात्मकः सालो मध्ये मंदारवाटिका ॥ नानापुष्पलताकीर्णा नानापल्लवशोभिता ॥ ५८ ॥ अधिष्ठाताऽत्र संप्रोक्तः शरदृतुरनामयः ॥ इषुलक्ष्मीरूर्जलक्ष्मीर्द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ ५९ ॥ नानासिद्धा वसंत्यत्र सांगनाः सपरिच्छदाः ॥ पंचलोहमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥६०॥ दीप्यमानो महाशृंगैर्वर्तते रौप्यसालकः ॥ पारिजाताटवी-मध्ये प्रसूनस्तबकान्विता ॥ ६१ ॥ दशयोजनगंधीनि कुसुमानि समंततः ॥ मोदयन्ति गणान्सर्वान् ये देवीकर्मकारिणः ॥ ६२ ॥ तत्राधिनाथः संप्रोक्तो हेमन्तुर्महोज्ज्वलः ॥ सगणः सायुधः सर्वान् रागिणो रंजयन्नृप ॥ ६३ ॥ सहश्रीश्च सहस्यश्रीर्द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ वसंति तत्र सिद्धाश्च ये देवीव्रतकारिणः ॥ ६४ ॥ रौप्यसालमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥ सौवर्णसालः संप्रोक्तस्तप्तहाटककल्पितः ॥ ६५ ॥ मध्ये कदम्बवाटी तु पुष्प-पल्लवशोभिता ॥ कदम्बमदिराधाराः प्रवर्तन्ते सहस्रशः ॥६६॥ याभिर्निपीतपीताभिर्निजानन्दोऽनुभूयते ॥ तत्राधिनाथः संप्रोक्तः शैशिरर्तुर्महोदयः

आगे सातवाँ चाँदीका परकोटा है। उसकी लम्बाई सात योजन है। विशाल शिखर उस परकोटेकी शोभा बढ़ाते हैं। उसके मध्यभागमें पुष्पों और गुच्छोंसे सम्पन्न सुन्दर परिजातका बगीचा है। चारों ओर दस योजनतक सुगन्ध फैलानेवाले वे पुष्प देवीयज्ञमें निरत समस्त गणोंको परम प्रसन्न करते हैं ॥६०-६२॥ महान् उज्ज्वल 'हेमन्त' ऋतु उस परकोटेका स्वामी है। हे राजन्! वह हाथमें आयुध लिये रहता है और उसके गण सदा साथ रहते हैं। रागियोंको रंजित करना उसका स्वाभाविक गुण है ॥६३॥ उस हेमन्तऋतुकी 'सहश्री' और 'सहस्यश्री' नामसे प्रसिद्ध दो स्त्रियाँ हैं। भगवतीके कृच्छ्र आदि व्रत करनेवाले सिद्धपुरुष वहाँ रहते हैं ॥ ६४ ॥ उस चाँदीके परकोटेके बाद सुवर्णसे निर्मित आठवाँ सौवर्णसाल कहा गया है। उसकी लम्बाई सात योजन है, ६५॥ उसके बीचमें कदम्बकी सुन्दर वाटिका है। पुष्प और पल्लव उसे सुशोभित किये रहते हैं। कदम्बमद्यकी हजारों धाराएँ वहाँ नित्य बहती रहती हैं ॥६६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिनको पीनेसे निजानन्दका अनुभव होने लगता है। 'शिशिर' ऋतुके आदरणीय देवता वहाँके कार्यकी व्यवस्था करते हैं ॥६७॥ 'तपःश्री' और 'तपस्यश्री' इन दो प्रतिष्ठित भार्याओंके साथ रहकर शिशिरऋतुकी आकृति धारण करनेवाले देवता प्रसन्नतापूर्वक वहाँ निवास करते हैं ॥ ६८ ॥ देवीको प्रसन्न करनेके लिए गौ और भूमि दान करनेवाले महान् सिद्धपुरुषोंका वह निवास-स्थान बना हुआ है ॥ ६९ ॥ विविध विलासमयी वस्तुओंसे सम्पन्न वे सिद्ध अपने परिवारके लोगों तथा अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर वहाँ रहते हैं ॥ ७० ॥ उस हिरण्यमय प्राकारसे आगे कुंकुमके समान अरुण वर्णवाला पुष्पराग-मणिसे बना हुआ सात योजन लम्बा एक परकोटा है ॥ ७१ ॥ वहाँकी भूमि, वन, वृक्षोंके थाले और उपवन पुखराजके समान प्रतीत होते हैं। वहाँके वृक्षों और वालुकाओंको भी पुष्पराग रत्नमय ही कहा गया है ॥७२॥ जिस रत्नका वह प्राकार बना हुआ है, उसी रत्नके द्वारा वहाँके वृक्ष, पृथ्वी, पक्षी, जल, मण्डप, उसके खम्भे, सरोवर और कमल भी निर्मित हैं। यही नहीं, बल्कि उस परकोटेके भीतर जो-जो वस्तुएँ हैं; वे सब पुष्पराग मणिसे ही बनी हुई हैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे राजन्! रत्ननिर्मित पर-

॥ ६७ ॥ तपःश्रीश्च तपस्यश्रीर्द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ मोदमानः सहैताभ्यां वर्तते शिशिराकृतिः ॥६८॥ नानाविलाससंयुक्तो नानागणसमावृतः ॥ निवसन्ति महासिद्धा ये देवीदानकारिणः ॥६९॥ नानाभोगसमुत्पन्नमहानन्दसमन्विताः ॥ सांगनाः परिवारैस्तु संघशः परिवारिताः ॥ ७० ॥ स्वर्णसालमयादग्रे मुनियोजनदैर्घ्यवान् ॥ पुष्परागमयः सालः कुंकुमारुणविग्रहः ॥७१॥ पुष्परागमयी भूमिर्वनान्युपवनानि च ॥ रत्नवृक्षालबालाश्च पुष्परागमयाः स्मृताः ॥ ७२ ॥ प्राकारो यस्य रत्नस्य तद्रत्नरचिता द्रुमाः ॥ वनभूः पक्षिणश्चैव रत्नवर्णजलानि च ॥ ७३ ॥ मंडपा मंडपस्तंभाः सरांसि कमलानि च ॥ प्राकारे तत्र यद्यत्स्यात्तत्सर्वं तत्समं भवेत् ॥७४॥ परिभाषेयमुद्दिष्टा रत्नसालादिषु प्रभो ॥ तेजसा स्याल्लक्षगुणः पूर्वसालात्परो नृप ॥ ७५ ॥ दिक्पाला निवसंत्यत्र प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम् ॥ दिक्पालानां समष्ट्यात्मरूपाः स्फूर्जद्वरायुधाः ॥ ७६ ॥ पूर्वाशायां समुत्तुङ्गशृंगा पूरमरावती ॥ नानोपवनसंयुक्तो महेंद्रस्तत्र राजते ॥ ७७ ॥ स्वर्गशोभा च या स्वर्गे यावती स्यात्ततोऽधिका ॥ समष्टिशतनेत्रस्य सहस्रगुणतः स्मृता ॥ ७८ ॥ ऐरावतसमारूढो वज्रहस्तः प्रतापवान् ॥ देवसेनापरिवृतो राजतेऽत्र शतक्रतुः ॥ ७९ ॥ देवांगनागणयुता शची तत्र विराजते ॥ वह्निकोणे वह्निपुरी वह्निपूःसदृशी नृप ॥ ८० ॥ स्वाहास्वधासमायुक्तो वह्निस्तत्र विराजते ॥ निजवाहनभूषाढ्यो निजदेवगणैर्वृतः ॥ ८१ ॥

कोटोंका यह साधारण-सा परिचय है। हे प्रभो! क्रमशः एक परकोटेसे दूसरा परकोटा तेजमें लाखगुना अधिक तेजस्वी है ॥७५॥ प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले इन्द्र आदि दिक्पाल अपना एक समाज बनाकर हाथोंमें उत्तम आयुध लिये हुए यहाँ निवास करते हैं ॥ ७६ ॥ इस मणिद्वीपसे पूर्व दिशामें ऊँचे महलोंवाली अमरावतीपुरी है। भाँति-भाँतिके उपवन अमरावतीकी शोभा बढ़ाते हैं। वह पुरी देवराज इन्द्रकी है ॥ ७७ ॥ स्वर्गमें जितनी शोभा हैं, उससे अधिक शोभा इस अमरावतीमें है। अनेक इन्द्रोंके सहस्रों गुणोंसे भी अधिक गुण वहाँ लक्षित होते हैं ॥ ७८ ॥ वहाँके शतक्रतु इन्द्र ऐरावतपर चढ़कर हाथमें वज्र लिये देवसेनाके साथ शोभा पाते हैं। शची भी देवाङ्गनाओंसे सम्पन्न होकर वहाँ सुशोभित होती हैं। हे राजन्! मणिद्वीपके अग्निकोणमें अग्निके समान प्रज्वलित वह्निपुरी है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ 'स्वाहा' और 'स्वधा'—इन दो शक्तियोंके साथ 'अग्निदेव' वहाँ विराजते हैं। अपने वाहनों और भूषणोंसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुशोभित एवं अपने गणोंसे युक्त होकर उनका वहाँ निवास होता है ॥ ८१ ॥ मणिद्वीपकी दक्षिण दिशामें यमराजपुरी है। हे राजन्! चित्रगुप्त आदि मंत्रियोंके साथ अपने अनुचरोंसे घिरे हुए यमराज हाथमें विशाल दण्ड लेकर वहाँ विराजते हैं ॥८२॥ सूर्यनन्दन महाभाग यमराज अपनी सहधर्मिणीके साथ वहाँ रहते हैं। नैर्ऋत्यकोणमें राक्षसोंकी पुरी कही जाती है। यह पुरी मणिद्वीपके नैर्ऋत्यकोणमें है। हाथमें खड्ग धारण करनेवाले निर्ऋति अपनी शक्तिके साथ राक्षसोंसे घिरे हुए वहाँ विराजते हैं। पश्चिम दिशामें पाश धारण करनेवाले प्रतापी वरुणराज विराजते हैं ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ महान् मत्स्य इनकी सवारीका काम देता है। मधुमय वारुणी पान करनेसे विह्वल होकर वे अपनी शक्ति और गणोंके साथ वहाँ विराजते हैं। उस लोकमें अपनी स्त्री वरुणानीके साथ वरुणदेवका वास होता है। मणिद्वीपके वायव्यकोणमें वायुलोक है। वहाँ वायुदेव विराजते हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ प्राणयाम करनेमें परम कुशल सिद्ध योगियोंसे घिरे हुए वायुदेव हाथमें ध्वजा लेकर शोभा पाते हैं। विशाल नेत्रवाले इन वायुदेवकी सवारी मृग है ॥८७॥ इनकी शक्ति सदा इनके साथ रहती है और मरुद्गण इन्हें घेरे रहते हैं। हे राजन्!

याम्याशायां यमपुरी तत्र दंडधरो महान् ॥ स्वभटैर्वेष्टितो राजन् चित्रगुप्तपुरोगमैः ॥ ८२ ॥ निजशक्तियुतो भास्वत्तनयोऽस्ति यमो महान् ॥ नैर्ऋत्यां दिशि राक्षस्यां राक्षसैः परिवारितः ॥ ८३ ॥ खड्गधारी स्फुरन्नास्ते निर्ऋतिर्निजशक्तियुक् ॥ वारुण्यां वरुणो राजा पाशधारी प्रतापवान् ॥ ८४ ॥ महाझषसमारूढो वारुणीमदविह्वलः ॥ निजशक्तिसमायुक्तो निजयादोगणान्वितः ॥ ८५ ॥ समास्ते वारुणे लोके वरुणानीरताकुलः ॥ वायुकोणे वायुलोको वायुस्तत्राधितिष्ठति ॥ ८६ ॥ वायुसाधनसंसिद्धयोगिभिः परिवारितः ॥ ध्वजहस्तो विशालाक्षो मृगवाहनसंस्थितः ॥ ८७ ॥ मरुद्गणैः परिवृतो निजशक्तिसमन्वितः ॥ उत्तरस्यां दिशि महान् यक्षलोकोऽस्ति भूमिप ॥ ८८ ॥ यक्षाधिराजस्तत्रास्ते वृद्धिऋद्ध्यादिशक्तिभिः ॥ नवभिर्निधिभिर्युक्तस्तुंदिलो धननायकः ॥ ८९ ॥ मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्मणिकन्धरः ॥ मणिभूषो मणिस्रग्वी मणिकार्मुकधारकः ॥ ९० ॥ इत्यादियक्षसेनानीसहितो निजशक्तियुक् ॥ ईशानकोणे संप्रोक्तो रुद्रलोको महत्तरः ॥९१॥ अनर्घ्यरत्नखचितो यत्र रुद्रोऽधिदैवतः ॥ मन्युमान्दीप्तनयनो बद्धपृष्ठमहेषुधिः ॥९२॥ स्फूर्जद्धनुर्वामहस्तोऽधिज्यधन्वभिरावृतः ॥ स्वसमानैरसंख्यातरुद्रैः शूलवरायुधैः ॥ ९३ ॥ विकृतास्यैः करालास्यैर्वमद्वह्निभिरास्यतः ॥ दशहस्तैः शतकरैः सहस्रभुजसंयुतैः ॥ ९४ ॥ दशपादैर्दशग्रीवैस्त्रिनेत्रैरुग्रमूर्तिभिः ॥ अन्तरिक्षचरा ये च ये च भूमिचराः

मणिद्वीपकी उत्तरदिशामें यक्षोंका महान् लोक है ॥ ८८ ॥ वहाँ यक्षोंके स्वामी तुन्दिल कुबेर अपनी 'ऋद्धि-वृद्धि' प्रभृति शक्तियों तथा नवनिधियोंसे युक्त होकर विराजते हैं ॥ ८९ ॥ मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिमान्, मणिकन्धर, मणिभूषण, मणिमाली और मणिधनुर्धर आदि नामोंसे प्रसिद्ध यक्षसेनाओंको साथ लिये हुए महाभाग कुबेर वहाँ रहते हैं। मणिद्वीपके ईशानकोणमें महान् रुद्रलोक कहा गया है ॥ ९० ॥ ९१ ॥ बहुमूल्य रत्नोंसे भरे इस लोकमें प्रधान देवता रुद्र निवास करते हैं। इनका क्रोधमय विग्रह प्रज्वलित नेत्रोंसे सम्पन्न है। ये पीठपर महान् तरकस बाँधे हुए हैं ॥ ९२ ॥ तना हुआ धनुष इनके बायें हाथमें शोभा पाता है। अपने जैसे ही असंख्य रुद्र हाथमें त्रिशूल और धनुष लेकर इनका सहयोग करते हैं ॥ ९३ ॥ उन सहयोगी रुद्रोंका मुख बड़ा विकराल और विकृत है। वे मुखसे आग उगलते रहते हैं। कितनोंके दस हाथ हैं। कितने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सौ हाथों और कितने हजार हाथोंसे सम्पन्न हैं ॥ ९४ ॥ बहुत-से उग्र रूप धारण करनेवाले रुद्र दस पैरों, दस गर्दनों और तीन नेत्रोंसे शोभा पाते हैं। जो अन्तरिक्षलोकमें और भूलोकमें विचरण करनेवाले रुद्र प्रसिद्ध हैं तथा रुद्राध्यायमें जिनका वर्णन आता है, उन सभी रुद्रोंसे घिरे हुए भगवान शंकर उस लोकमें विराजते हैं। करोड़ों रुद्राणियाँ और भद्रकाली आदि मातृकायें इनके साथ रहती हैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ये विविध शक्तियोंसे सम्पन्न होकर डामरी आदि गणोंसे घिरे रहते हैं। हे राजन्! वीरभद्र आदि गणोंके साथ इनकी वहाँ विचित्र शोभा होती है ॥९७॥ इनके गलेमें मुण्डोंकी माला, हाथमें सर्पका वलय, कंधेपर सर्पमय यज्ञोपवीत, शरीरपर बाघम्बर और उत्तरीयके स्थानपर गजचर्म शोभा पाता है ॥९८॥ ये अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें चिताकी राख लपेटे रहते हैं। प्रमथ आदि गण इनसे कभी अलग नहीं होते। इनके डमरूकी ध्वनिसे वहाँकी दिशायें बहरी हो जाती हैं ॥९९॥ इनके अट्टहास और स्फुट शब्दोंने आकाशमें त्रास फैला रखा है। भूतोंके निवासस्वरूप ये महान् रुद्र भूतोंकी टोलियोंसे सदा घिरे रहते हैं। ईशान दिशाके स्वामी होनेके कारण ही ये 'ईशान'के नामसे प्रसिद्ध हैं ॥१००॥

स्मृताः ॥ ९५ ॥ रुद्राध्याये स्मृता रुद्रास्तैः सर्वैश्च समावृतः ॥ रुद्राणीकोटिसहितो भद्रकाल्यादिमातृभिः ॥ ९६ ॥ नानाशक्तिसमाविष्टडामर्यादि-गणावृतः ॥ वीरभद्रादिसहितो रुद्रो राजन्विराजते ॥ ९७ ॥ मुण्डमालाधरो नागबलयो नागकंधरः ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः ॥ ९८ ॥ चिताभस्मांगलिप्तांगः प्रमथादिगणावृतः ॥ निनदड्डमरुध्वानैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ ९९ ॥ अट्टहासास्फोटशब्दैः संत्रासितनभस्तलः ॥ भूतसंघसमाविष्टो भूतावासो महेश्वरः ॥ ईशानदिक्पतिः सोऽयं नाम्ना चेशान एव च ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ व्यास उवाच ॥ पुष्परागमयादग्रे कुंकुमारुणविग्रहः ॥ पद्मरागमयः सालो मध्ये भूश्चैव तादृशी ॥ १ ॥ दशयोजनवान्दैर्घ्ये गोपुरद्वार-संयुतः ॥ तन्मणिस्तंभसंयुक्ता मण्डपाः शतशो नृप ॥ २ ॥ मध्ये भुवि समासीनाश्चतुःषष्टिमिताः कलाः ॥ नानायुधधरा वीरा रत्नभूषणभूषिताः ॥ ३ ॥ प्रत्येकलोकस्तासां तु तत्तल्लोकस्य नायकाः ॥ समन्तात्पद्मरागस्य परिवार्य स्थिताः सदा ॥ ४ ॥ स्वस्वलोकजनैर्जुष्टाः स्वस्ववाहनहेतिभिः ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु त्वं जनमेजय ॥५॥ पिंगलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च ॥ श्रद्धा स्वाहा स्वधाभिख्या माया संज्ञा वसुन्धरा ॥६॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(मणिद्वीपका वर्णन) व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! इस पुष्परागनिर्मित परकोटेके आगे कुंकुमके समान अरुण विग्रहवाला पद्मरागमणिका एक परकोटा है। उसके मध्यकी भूमि भी ऐसे ही वर्णसे सम्पन्न है ॥१॥ यह प्राकार दस योजन लम्बा है। अनेक गोपुर और द्वार इसकी शोभा बढ़ाते हैं। हे राजन्! यहाँके सैकड़ों मंडप पद्मराग मणियोंके स्तम्भोंसे युक्त हैं ॥२॥ इसके बीचकी भूमिपर अनेक आयुधोंको धारण करनेवाली रत्नमय भूषणोंसे भूषित वीरवेषवाली चौंसठ कलाएँ निवास करती हैं ॥३॥ उन कलाओंका एक-एक पृथक्-पृथक् लोक है। अपने-अपने लोककी वे अधीश्वरी हैं। वहाँ जो भी वस्तुएँ हैं, वे सभी पद्मराग मणिसे बनी हैं ॥४॥ अपने-अपने लोकके निवासियों तथा अपने-अपने शस्त्रों और वाहनोंसे युक्त उन कलाओंके नाम बतलाता हूँ, सुनो—॥५॥ पिङ्गलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुन्धरा, त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुशोभित एवं अपने गणोंसे युक्त होकर उनका वहाँ निवास होता है ॥ ८१ ॥ मणिद्वीपकी दक्षिण दिशामें यमराजपुरी है। हे राजन्! चित्रगुप्त आदि मंत्रियोंके साथ अपने अनुचरोंसे घिरे हुए यमराज हाथमें विशाल दण्ड लेकर वहाँ विराजते हैं ॥८२॥ सूर्यनन्दन महाभाग यमराज अपनी सहधर्मिणीके साथ वहाँ रहते हैं। नैर्ऋत्यकोणमें राक्षसोंकी पुरी कही जाती है। यह पुरी मणिद्वीपके नैर्ऋत्यकोणमें है। हाथमें खड्ग धारण करनेवाले निर्ऋति अपनी शक्तिके साथ राक्षसोंसे घिरे हुए वहाँ विराजते हैं। पश्चिम दिशामें पाश धारण करनेवाले प्रतापी वरुणराज विराजते हैं ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ महान् मत्स्य इनकी सवारीका काम देता है। मधुमय वारुणी पान करनेसे विह्वल होकर वे अपनी शक्ति और गणोंके साथ वहाँ विराजते हैं। उस लोकमें अपनी स्त्री वरुणानीके साथ वरुणदेवका वास होता है। मणिद्वीपके वायव्यकोणमें वायुलोक है। वहाँ वायुदेव विराजते हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ प्राणयाम करनेमें परम कुशल सिद्ध योगियोंसे घिरे हुए वायुदेव हाथमें ध्वजा लेकर शोभा पाते हैं। विशाल नेत्रवाले इन वायुदेवकी सवारी मृग है ॥८७॥ इनकी शक्ति सदा इनके साथ रहती है और मरुद्गण इन्हें घेरे रहते हैं। हे राजन्!

याम्याशायां यमपुरी तत्र दंडधरो महान् ॥ स्वभटैर्वेष्टितो राजन् चित्रगुप्तपुरोगमैः ॥ ८२ ॥ निजशक्तियुतो भास्वत्तनयोऽस्ति यमो महान् ॥ नैर्ऋत्यां दिशि राक्षस्यां राक्षसैः परिवारितः ॥ ८३ ॥ खड्गधारी स्फुरन्नास्ते निर्ऋतिर्निजशक्तियुक् ॥ वारुण्यां वरुणो राजा पाशधारी प्रतापवान् ॥ ८४ ॥ महाझषसमारूढो वारुणीमदविह्वलः ॥ निजशक्तिसमायुक्तो निजयादोगणान्वितः ॥ ८५ ॥ समास्ते वारुणे लोके वरुणानीरताकुलः ॥ वायुकोणे वायुलोको वायुस्तत्राधितिष्ठति ॥ ८६ ॥ वायुसाधनसंसिद्धयोगिभिः परिवारितः ॥ ध्वजहस्तो विशालाक्षो मृगवाहनसंस्थितः ॥ ८७ ॥ मरुद्गणैः परिवृतो निजशक्तिसमन्वितः ॥ उत्तरस्यां दिशि महान् यक्षलोकोऽस्ति भूमिप ॥ ८८ ॥ यक्षाधिराजस्तत्रास्ते वृद्धिऋद्ध्यादिशक्तिभिः ॥ नवभिर्निधिभिर्युक्तस्तुंदिलो धननायकः ॥ ८९ ॥ मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्मणिकन्धरः ॥ मणिभूषो मणिस्रग्वी मणिकार्मुकधारकः ॥ ९० ॥ इत्यादियक्षसेनानीसहितो निजशक्तियुक् ॥ ईशानकोणे संप्रोक्तो रुद्रलोको महत्तरः ॥९१॥ अनर्घ्यरत्नखचितो यत्र रुद्रोऽधिदैवतः ॥ मन्युमान्दीप्तनयनो बद्धपृष्ठमहेषुधिः ॥९२॥ स्फूर्जद्धनुर्वामहस्तोऽधिज्यधन्वभिरावृतः ॥ स्वसमानैरसंख्यातरुद्रैः शूलवरायुधैः ॥ ९३ ॥ विकृतास्यैः करालास्यैर्वमद्वह्निभिरास्यतः ॥ दशहस्तैः शतकरैः सहस्रभुजसंयुतैः ॥ ९४ ॥ दशपादैर्दशग्रीवैस्त्रिनेत्रैरुग्रमूर्तिभिः ॥ अन्तरिक्षचरा ये च ये च भूमिचराः

मणिद्वीपकी उत्तरदिशामें यक्षोंका महान् लोक है ॥ ८८ ॥ वहाँ यक्षोंके स्वामी तुन्दिल कुबेर अपनी 'ऋद्धि-वृद्धि' प्रभृति शक्तियां तथा नवनिधियोंसे युक्त होकर विराजते हैं ॥ ८९ ॥ मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिमान्, मणिकन्धर, मणिभूषण, मणिमाली और मणिधनुर्धर आदि नामोंसे प्रसिद्ध यक्षसेनाओंको साथ लिये हुए महाभाग कुबेर वहाँ रहते हैं। मणिद्वीपके ईशानकोणमें महान् रुद्रलोक कहा गया है ॥ ९० ॥ ९१ ॥ बहुमूल्य रत्नोंसे भरे इस लोकमें प्रधान देवता रुद्र निवास करते हैं। इनका क्रोधमय विग्रह प्रज्वलित नेत्रोंसे सम्पन्न है। ये पीठपर महान् तरकस बाँधे हुए हैं ॥ ९२ ॥ तना हुआ धनुष इनके बायें हाथमें शोभा पाता है। अपने जैसे ही असंख्य रुद्र हाथमें त्रिशूल और धनुष लेकर इनका सहयोग करते हैं ॥ ९३ ॥ उन सहयोगी रुद्रोंका मुख बड़ा विकराल और विकृत है। वे मुखसे आग उगलते रहते हैं। कितनोंके दस हाथ हैं। कितने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सौ हाथों और कितने हजार हाथोंसे सम्पन्न हैं ॥ ९४ ॥ बहुत-से उग्र रूप धारण करनेवाले रुद्र दस पैरों, दस गर्दनों और तीन नेत्रोंसे शोभा पाते हैं । जो अन्तरिक्षलोकमें और भूलोकमें विचरण करनेवाले रुद्र प्रसिद्ध हैं तथा रुद्राध्यायमें जिनका वर्णन आता है, उन सभी रुद्रोंसे घिरे हुए भगवान शंकर उस लोकमें विराजते हैं । करोड़ों रुद्राणियाँ और भद्रकाली आदि मातृकायें इनके साथ रहती हैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ये विविध शक्तियोंसे सम्पन्न होकर डामरी आदि गणोंसे घिरे रहते हैं । हे राजन् ! वीरभद्र आदि गणोंके साथ इनकी वहाँ विचित्र शोभा होती है ॥९७॥ इनके गलेमें मुण्डोंकी माला, हाथमें सर्पका वलय, कंधेपर सर्पमय यज्ञोपवीत, शरीरपर बाघम्बर और उत्तरीयके स्थानपर गजचर्म शोभा पाता है ॥९८॥ ये अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें चिताकी राख लपेटे रहते हैं । प्रमथ आदि गण इनसे कभी अलग नहीं होते । इनके डमरूकी ध्वनिसे वहाँकी दिशायें बहरी हो जाती हैं ॥९९॥ इनके अट्टहास और स्फुट शब्दोंने आकाशमें त्रास फैला रखा है । भूतोंके निवासस्वरूप ये महान् रुद्र भूतोंकी टोलियोंसे सदा घिरे रहते हैं । ईशान दिशाके स्वामी होनेके कारण ही ये 'ईशान'के नामसे प्रसिद्ध हैं ॥१००॥

स्मृताः ॥ ९५ ॥ रुद्राध्याये स्मृता रुद्रास्तैः सर्वैश्च समावृतः ॥ रुद्राणीकोटिसहितो भद्रकाल्यादिमातृभिः ॥ ९६ ॥ नानाशक्तिसमाविष्टडामर्यादि-गणावृतः ॥ वीरभद्रादिसहितो रुद्रो राजन्विराजते ॥ ९७ ॥ मुण्डमालाधरो नागबलयो नागकंधरः ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः ॥ ९८ ॥ चिताभस्मांगलिप्तांगः प्रमथादिगणावृतः ॥ निनदड्डमरुध्वानैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ ९९ ॥ अट्टहासास्फोटशब्दैः संत्रासितनभस्तलः ॥ भूतसंघसमाविष्टो भूतावासो महेश्वरः ॥ ईशानदिक्पतिः सोऽयं नाम्ना चेशान एव च ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ व्यास उवाच ॥ पुष्परागमयादग्रे कुंकुमारुणविग्रहः ॥ पद्मरागमयः सालो मध्ये भूश्चैव तादृशी ॥ १ ॥ दशयोजनवान्दैर्घ्ये गोपुरद्वार-संयुतः ॥ तन्मणिस्तंभसंयुक्ता मण्डपाः शतशो नृप ॥ २ ॥ मध्ये भुवि समासीनाश्चतुःषष्टिमिताः कलाः ॥ नानायुधधरा वीरा रत्नभूषणभूषिताः ॥ ३ ॥ प्रत्येकलोकस्तासां तु तत्तल्लोकस्य नायकाः ॥ समन्तात्पद्मरागस्य परिवार्य स्थिताः सदा ॥ ४ ॥ स्वस्वलोकजनैर्जुष्टाः स्वस्ववाहनहेतिभिः ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु त्वं जनमेजय ॥५॥ पिंगलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च ॥ श्रद्धा स्वाहा स्वधाभिख्या माया संज्ञा वसुन्धरा ॥६॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(मणिद्वीपका वर्णन) व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! इस पुष्परागनिर्मित परकोटेके आगे कुंकुमके समान अरुण विग्रहवाला पद्मरागमणिका एक परकोटा है । उसके मध्यकी भूमि भी ऐसे ही वर्णसे सम्पन्न है ॥१॥ यह प्राकार दस योजन लम्बा है । अनेक गोपुर और द्वार इसकी शोभा बढ़ाते हैं । हे राजन् ! यहाँके सैकड़ों मंडप पद्मराग मणियोंके स्तम्भोंसे युक्त हैं ॥२॥ इसके बीचकी भूमिपर अनेक आयुधोंको धारण करनेवाली रत्नमय भूषणोंसे भूषित वीरवेषवाली चौंसठ कलाएँ निवास करती हैं ॥३॥ उन कलाओंका एक-एक पृथक्-पृथक् लोक है । अपने-अपने लोककी वे अधीश्वरी हैं । वहाँ जो भी वस्तुएँ हैं, वे सभी पद्मराग मणिसे बनी हैं ॥४॥ अपने-अपने लोकके निवासियों तथा अपने-अपने शस्त्रों और वाहनोंसे युक्त उन कलाओंके नाम बतलाता हूँ, सुनो—॥५॥ पिङ्गलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुन्धरा, त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता, अच्युतप्रिया, विमला, अमला, अरुणी, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, संहृति, माता, संध्या, सती, हंसी, मर्दिका, वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तमुखी, सुरासुरविमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी, रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, भुवनपाला, मदनातुरा, अनङ्गा, अनङ्गमथना, अनङ्गमेखला, अनंङ्गकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयकरी, शक्ति, अक्षोभ्या, सत्यवादिनी, बहुरूपा, शुचिव्रता, उदारा और वागीशो ये चौंसठ कलायें कही गयी हैं ॥६–१४॥ इन सभी कलाओंके मुख प्रज्वलित जिह्वासे सम्पन्न हैं। ये अपने मुँहसे अग्नि उगला करती हैं। 'हम सभी जलको पीये डालती हैं। अग्निकी सत्ता हमारे सामने नहीं ठहर सकती। हम पवनको रोक देनेमें समर्थ हैं। अभी-अभी सारा जगत् हमारा ग्रास बन जायगा।'–इस प्रकारके शब्द उच्चारण करनेवाली वे कलायें क्रोधके आवेशमें आकर सदा आँखें लाल किये रहती हैं ॥१५॥१६॥ उन

त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिदशेश्वरी ॥ सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाताऽच्युतप्रिया ॥७॥ विमला चामला तद्वदरुणी पुनरारुणी ॥ प्रकृति-विकृतिःसृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च ॥ ८ ॥ सन्ध्या माता सती हंसी मर्दिका वज्रिका परा ॥ देवमाता भगवती देवकी कमलासना ॥ ९ ॥ त्रिमुखी सप्तमुख्यन्या सुरासुरविमर्दिनी ॥ लंबोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशीर्षा बृकोदरी ॥१०॥ रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथाऽपरा ॥ गगनवेगा पवनवेगा वेगा चैव ततः परम् ॥ ११ ॥ अग्रे भुवनपाला स्यात्तत्पश्चान्मदनातुरा ॥ अनंगाऽनंगमथना तथैवानंगमेखला ॥ १२ ॥ अनंगकुसुमा पश्चाद्विश्वरूपा सुरादिका ॥ क्षयंकरी भवेच्छक्तिरक्षोभ्या च ततः परम् ॥१३॥ सत्यवादिन्यथ प्रोक्ता बहुरूपा शुचिव्रता ॥ उदाराख्या च वागीशो चतुःषष्टिमिताः स्मृताः ॥१४॥ ज्वलज्जिह्वाननाः सर्वा वमंत्यो वह्निमुल्बणम् ॥ जलं पिबामः सकलं संहरामो विभावसुम् ॥१५॥ पवनं स्तंभयामोऽद्य भक्षयामोऽखिलं जगत् ॥ इति वाचं संगिरंते क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥ १६ ॥ चापबाणधराः सर्वा युद्धायैवोत्सुकाः सदा ॥ दंष्ट्राकटकटारावैर्बधिरीकृत-दिङ्मुखाः ॥ १७ ॥ पिंगोर्ध्वकेश्यः संप्रोक्ताश्चापबाणकराः सदा ॥ शताक्षौहिणिका सेनाऽप्येकैकस्याः प्रकीर्तिता ॥ १८ ॥ एकैकशक्तेः सामर्थ्यं लक्षब्रह्मांडनाशने ॥ शताक्षौहिणिका सेना तादृशी नृपसत्तम ॥ १९ ॥ किं न कुर्याज्जगत्यस्मिन्नशक्यं वक्तुमेव तत् ॥ सर्वाऽपि युद्धसामग्री तस्मिन्साले स्थिता मुने ॥ २१ ॥ रथानां गणना नास्ति हयानां करिणां तथा ॥ शस्त्राणां गणना तद्वद्गणानां गणना तथा ॥ २१ ॥ पद्मरागमया-

सभी कलाओंके हाथमें धनुष और बाण शोभा पाते हैं। उन्हें युद्ध करनेकी अभिलाषा सदा बनी रहती है। उनके दाँतोंके कटकटानेसे वहाँकी दिशाएँ बहरी बनी हुई हैं ॥ १७ ॥ उनमेंसे एक-एक कलाके पास सौ-सौ अक्षौहिणी सेना बतायी जाती है। अपने हाथमें सदा धनुष और बाण धारण करनेवाले वे सैनिक पिङ्गलवर्णवाले उठे हुए केशोंसे सम्पन्न कहे गये हैं ॥१८॥ एक-एक शक्तिमें इतनी सामर्थ्य है कि वे लाखों ब्रह्माण्डोंका संहार कर डालें। हे राजेन्द्र! ऐसी शक्तियोंकी सौ अक्षौहिणी सेनाएँ प्रत्येक कलाके साथ रहती हैं ॥१९॥ इस जगत्में वे क्या नहीं कर सकतीं–यह कहना मेरी शक्तिसे बाहर है। हे मुने! इस पद्मरागनिर्मित परकोटेके भीतर युद्धकी सारी सामग्रियाँ सदा प्रस्तुत रहती हैं ॥२०॥ यहाँके रथों, हाथियों, घोड़ों, शस्त्रों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और गणोंकी तो गणना ही नहीं की जा सकती ॥२१॥ हे राजन् ! इस पद्मरागमय परकोटेके आगे गोमेदरत्नसे बना हुआ दस योजनका एक महान् प्राकार है। इसकी कान्ति जपाकुसुम (अड़हुल) के फूल जैसी भासित होती है। इसके मध्यकी भूमि भी ऐसे ही वर्णसे सुशोभित है। पद्मरागके प्राकारमें जैसा वर्णन मिलता है, ठीक वैसे ही भवन आदि इसमें भी हैं ॥२२॥२३॥ पक्षी, श्रेष्ठ खम्भे, वृक्ष, बावलियाँ और सरोवर—ये सब भी गोमेदमणिसे निर्मित हैं। सबका विग्रह कुङ्कुमके समान अरुण है ॥२४॥ इस प्राकारके मध्यभागमें बत्तीस प्रसिद्ध महाशक्तियाँ या देवियाँ निवास करती हैं। इन देवियोंके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र शोभा पाते हैं और वहाँ निवास करनेवाली ये देवियाँ चारों ओरसे घिरी रहती हैं। हे राजन् ! इस गोमेद-निर्मित प्राकारमें पिशाचोंके समान भयंकर मुखवाली शक्तियाँ युद्धके लिए सजी-धजी तैयार रहती हैं ॥२५॥२६॥ स्वर्गलोकके रहनेवाले पुरुषों द्वारा हाथमें चक्र धारण करनेवाली उन शक्ति-योंकी नित्य पूजा होती है। क्रोधके कारण लाल आँखोंवाली वे देवियाँ कहती हैं—'इसे काटो, पचाओ, छेदो और भस्म कर डालो' ॥२७॥ ये शब्द निरन्तर उनके मुखसे निकलते रहते हैं।

दग्रे गोमेदमणिनिर्मितः ॥ दशयोजनदैर्घ्येण प्राकारो वर्तते महान् ॥ २२ ॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभो मध्यभूस्तस्य तादृशी ॥ गोमेदकल्पितान्येव तद्वा-सिसदनानि च ॥ २३ ॥ पक्षिणः स्तंभवर्याश्च वृक्षा वाप्यः सरांसि च ॥ गोमेदकल्पिता एव कुंकुमारुणविग्रहाः ॥ २४ ॥ तन्मध्यस्था महादेव्यो द्वात्रिंशच्छक्तयः स्मृताः ॥ नानाशस्त्रप्रहरणा गोमेदमणिभूषिताः ॥ २५ ॥ प्रत्येकलोकवासिन्यः परिवार्य समंततः ॥ गोमेदसाले सन्नद्धाः पिशाच-वदना नृप ॥ २६ ॥ स्वर्लोकवासिभिर्नित्यं पूजिताश्चक्रबाहवः ॥ क्रोधरक्तेक्षणा भिंधि पच छिंधि दहेति च ॥ २७ ॥ वदंति सततं वाचं युद्धोत्सु-कहृदंतराः ॥ एकैकस्या महाशक्तेर्दशाक्षौहिणिका मता ॥ २८ ॥ सेना तत्राप्येकशक्तिर्लक्षब्रह्मांडनाशिनी ॥ तादृशीनां महासेना वर्णनीया कथं नृप ॥ २९ ॥ रथानां नैव गणना वाहनानां तथैव च ॥ सर्वयुद्धसमारंभस्तत्र देव्या विराजते ॥ ३० ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि पापनाशकराणि च ॥ विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूस्तथा ॥३१॥ रुद्रा वीर्या प्रभा नन्दा पोषिणी ऋद्धिदा शुभा ॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपर्दिनी ॥ ३२ ॥ विकृतिर्दंडिमुण्डिन्यौ सेंदुखंडा शिखंडिनी ॥ निशुंभशुंभमथिनी महिषासुरमर्दिनी ॥ ३३ ॥ इन्द्राणी चैव रुद्राणी शंकरार्धशरीरिणी ॥ नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी ॥ ३४ ॥ अंबिका ह्लादिनी पश्चादित्येवं शक्तयः स्मृताः ॥ यद्येताः कुपिता देव्यस्तदा ब्रह्मांडनाशनम्

उनके हृदयमें युद्धकी बड़ी लालसा रहती है। उन एक-एक महाशक्तिके साथ दस-दस अक्षौहिणी सेना कही गयी है ॥२८॥ उनमें एक ही शक्ति एक लाख ब्रह्माण्डोंका संहार कर सकती है। हे राजन् ! ऐसी विभूतियोंसे संयुक्त शक्तियोंकी विशाल सेनाका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥२९॥ उनके रथों, गणों तथा वाहनोंकी गणना भी असम्भव है। भगवती जगदम्बाकी युद्ध-सम्बन्धी सभी सामग्रियाँ वहाँ विद्यमान रहती हैं ॥३०॥ भगवतीकी ये अन्तरङ्ग सेनायें हैं। अब उनके पापनाशक नामोंका वर्णन करता हूँ। विद्या, ह्री, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुहू, रुद्रा, वीर्या, प्रभा, आनन्दा, पोषिणी, ऋद्धिदा, कालरात्रि, भद्रकाली, कपर्दिनी, विकृति, दण्डिनी, मुण्डिनी, सेन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुम्भ-शुम्भमथिनी, महिषासुरमर्दिनी, इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्द्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी, पालिनी, अम्बिका तथा ह्लादिनी—इस प्रकार ये बत्तीस शक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। यदि ये देवियाँ कुपित हो जायँ तो सारे ब्रह्माण्डका तुरन्त नाश हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाय ॥३१-३५॥ कहीं किसी समय भी इनकी पराजय नहीं हो सकती । इस गोमेदप्राकारके आगे हीरेसे बना हुआ दस योजन विशाल परकोटा है । उसमें अनेक गोपुर और दरवाजे बने हुए हैं । कपाट और साँकलसे वह बँधा रहता है । नवीन वृक्ष उसे प्रकाशित करते रहते हैं ॥३६॥३७॥ इस प्राकारके मध्यकी सारी भूमि हीरकमयी कही जाती है । बड़े-बड़े महल गलियाँ, चौराहे, राजमार्ग, वृक्ष, लताएँ, शार्ङ्ग आदि पक्षी—ये सब भी हीरे जैसे ही चमकते हैं । अनेक बावलियाँ, पोखरे और कुओंसे वह युक्त है ॥३८॥३९॥ वहाँ भगवती भुवनेश्वरीको परिचारिकाएँ रहती हैं । एक-एक परिचारिकाकी सेवामें मंदके गर्वसे मस्त रहनेवाली नाना प्रकारकी सामग्री लिये लाखों दासियाँ खड़ी रहती हैं ॥४०॥बहुतेरी दासियोंके हाथमें पंखे, कुछके हाथमें चषक (पानपात्र) और कुछ दासियाँ पानके डब्बे लिये गर्वसे चूर रहती हैं ॥४१॥ कुछ छत्र-चमर लिये, कुछ नाना प्रकारके वस्त्र लिये और कुछ दासियाँ फूलकी टोकरियें लिये रहती हैं

॥ ३५ ॥ पराजयो न चैतासां कदाचित्कचिदस्ति हि ॥ गोमेदकमयादग्रे सद्वज्रमणिनिर्मितः ॥ ३६ ॥ दशयोजनतुंगोऽसौ गोपुरद्वारसंयुतः ॥ कपाटशृंखलाबद्धो नववृक्षसमुज्ज्वलः ॥ ३७ ॥ सालस्तन्मध्यभूम्यादि सर्वं हीरमयं स्मृतम् ॥ गृहाणि वीथयो रथ्या महामार्गाङ्गणानि च ॥ ३८ ॥ वृक्षालबालतरवः सारंगा अपि तादृशाः ॥ दीर्घिकाश्रेणयो वाप्यस्तडागाः कूपसंयुताः ॥ ३९ ॥ तत्र श्रीभुवनेश्वर्या वसंति परिचारिकाः ॥ एकैका लक्षदासीभिः सेविता मदगर्विताः ॥ ४० ॥ तालवृंतधराः काश्चिच्चषकाढ्यकरांबुजाः ॥ काश्चित्तांबूलपात्राणि धारयंत्योऽतिगर्विताः ॥ ४१ ॥ काश्चित्तच्छत्रधारिण्यश्चामराणां विधारिकाः ॥ नानावस्त्रधराः काश्चित्काश्चित्पुष्पकरांबुजाः ॥ ४२ ॥ नानादर्शकराः काश्चित्काश्चित्कुंकुमलेपनम् ॥ धारयंत्यः कज्जलं च सिंदूरचषकं पराः ॥ ४३ ॥ काश्चिच्चित्रकनिर्मात्र्यः पादसंवाहने रताः ॥ काश्चित्तु भूषाकारिण्यो नानाभूषाधराः पराः ॥ ४४ ॥ पुष्पभूषणनिर्मात्र्यः पुष्पशृङ्गारकारिकाः ॥ नानाविलासचतुरा बह्व्य एवंविधाः पराः ॥ ४५ ॥ निबद्धपरिधानीया युवत्यः सकला अपि ॥ देवी-कृपालेशवशात्तुच्छीकृतजगत्त्रयाः ॥ ४६ ॥ एता दूत्यः स्मृता देव्यः शृङ्गारमदगर्विताः ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम ॥ ४७ ॥ अनंगरूपा प्रथमाऽप्यनंगमदना परा ॥ तृतीया तु ततः प्रोक्ता सुंदरी मदनातुरा ॥ ४८ ॥ ततो भुवनवेगा स्यात्तथा भुवनपालिका ॥ स्यात्सर्वशि-

॥४२॥ बहुतेरी दासियाँ दर्पण, कुछ कुंकुमका लेप, कुछ काजल और कुछ दासियें सिंदूरका पात्र लिये खड़ी रहती हैं ॥ ४३ ॥ भाँति-भाँतिके भूषण धारण करनेवाली बहुत-सी दासियाँ चित्रकारी बनाने, चरण दबाने और भूषण सजानेमें संलग्न रहती हैं ॥४४॥ पुष्पोंके आभूषण बनानेवाली, पुष्प-शृङ्गारमें कुशल तथा नाना प्रकारके विलासमें चतुर—इस प्रकारकी बहुत-सी श्रेष्ठ दासियाँ वहाँ विराजती हैं॥४५॥युवावस्थासे सम्पन्न वे सभी देवियाँ सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने रहती हैं । देवीकी किञ्चिन्मात्र कृपासे ही वे तीनों लोकोंकेतृणके समान तुच्छ समझती हैं॥४६॥ हे राजेन्द्र ! ये सभी शक्तियाँ देवीकी दूतिका कही गयी हैं । इनके नाम बतलाता हूँ—॥४७॥ अनङ्गरूपा, अनङ्गमदना, सुन्दरी, मदनातुरा, भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनङ्ग-वदना और अनङ्गमेखला—इनके अङ्ग बिजलीके समान प्रकाशमान रहते हैं। इनके कटिप्रान्त कई लड़ियोंसे युक्त किङ्किणियोंसे क्वणित होते रहते हैं। इनके चरणोंमें शब्दायमान नूपुर सुशोभित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। विद्युल्लताके समान चमकनेवाली ये सभी दूतियाँ वेगपूर्वक भीतर और बाहर जाते समय अत्यन्त शोभा पाती हैं। हाथमें बेंत लेकर सर्वत्र भ्रमण करनेवाली ये सभी कार्योंमें परम कुशल हैं ॥४८—५१॥ इस प्रकारकी भीतरी आठों दिशाओंमें तथा बाहर भाँति-भाँतिके वाहनों और शस्त्रोंसे सम्पन्न सुन्दर सदन इन दूतियोंके निवास करनेके लिये हैं ॥५२॥ इस हीरक प्राकारसे आगे वैदूर्यमणिसे बना हुआ प्राकार है। गोपुर और द्वारसे शोभा पानेवाले इस प्राकारकी ऊँचाई दस योजन है ॥५३॥ यहाँकी सारी भूमि, अनेक प्रकारके भवन, गलियाँ, चौराहे, राजमार्ग, वापी, कूप, तड़ाग और नदियोंके तट तथा बालुकाएँ—ये सबके-सब वैदूर्यमणिके बने हुए हैं। इस परकोटेकी बावलियें, कुएँ, तड़ाग, नदियोंके घाट और उनकी बालू सब वैदूर्यमणि-निर्मित हैं ॥५४॥५५॥ हे राजेन्द्र! इस प्राकारकी आठों दिशाओंमें सब ओर ब्राह्मी आदि देवियोंका समुदाय रहता है। वहाँ ये देवियाँ अपने गणोंसे घिरी हुई विचित्र शोभा पाती हैं।

शिराऽनंगवदनाऽनंगमेखला ॥ ४९ ॥ विद्युद्दामसमानांग्यः क्वणत्कांचीगुणान्विताः ॥ रणन्मंजीरचरणा बहिरंतरतस्ततः ॥ ५० ॥ धावमानास्तु शोभन्ते सर्वा विद्युल्लतोपमाः ॥ कुशलाः सर्वकार्येषु वेत्रहस्ताः समन्ततः ॥ ५१ ॥ अष्टदिक्षु तथैतासां प्राकाराद्बहिरेव च ॥ सदनानि विराजंते नानावाहनहेतिभिः ॥ ५२ ॥ वज्रसालादग्रभागे सालो वैदूर्यनिर्मितः ॥ दशयोजनतुंगोऽसौ गोपुरद्वारभूषितः ॥ ५३ ॥ वैदूर्यभूमिः सर्वापि गृहाणि विविधानि च ॥ वीथ्यो रथ्या महामार्गाः सर्वे वैदूर्यनिर्मिताः ॥ ५४ ॥ वापीकूपतडागाश्च स्रवंतीनां तटानि च ॥ बालुका चैव सर्वाऽपि वैदूर्यमणि-निर्मिता ॥ ५५ ॥ तत्राष्टदिक्षु परितो ब्राह्म्यादीनां च मंडलम् ॥ निजैर्गणैः परिवृतं भ्राजते नृपसत्तम ॥ ५६ ॥ प्रतिब्रह्माण्डमातॄणां ताः समष्टय ईरिताः ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥५७॥ वाराही तथेंद्राणी चामुण्डाः सप्त मातरः ॥ अष्टमी तु महालक्ष्मीर्नाम्ना प्रोक्तास्तु मातरः ॥ ५८ ॥ ब्रह्मरुद्रादिदेवानां समाकारास्तु ताः स्मृताः ॥ जगत्कल्याणकारिण्यः स्वस्वसेनासमावृताः ॥ ५९ ॥ तत्सालस्य चतुर्द्वार्षु वाहनानि महेशितुः ॥ सज्जानि नृपते संति सालंकाराणि नित्यशः ॥ ६० ॥ दंतिनः कोटिशो वाहाः कोटिशः शिबिकास्तथा ॥ हंसाः सिंहाश्च गरुडा मयूरा वृषभास्तथा ॥ ६१ ॥ तैर्युक्ताः स्यंदनास्तद्वत्कोटिशो नृपनंदन ॥ पार्ष्णिग्राहसमायुक्ता ध्वजैराकाशचुम्बिनः ॥ ६२ ॥ कोटिशस्तु विमानानि नानाचिह्नान्वितानि च ॥ नानावादित्रयुक्तानि महाध्वजयुतानि च ॥ ६३ ॥ वैदूर्यमणिसालस्याप्यग्रे सालः परः स्मृतः ॥ दशयोजन-

॥५६॥ प्रत्येक ब्रह्माण्डकी मातृकाओंका ही यह समष्टिरूप कहा जाता है। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा—ये सप्तमातृकाके नामसे प्रसिद्ध हैं। आठवीं मातृकाका नाम महालक्ष्मी है। इस प्रकार मातृकाओंके नाम बताये गये हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ जगत्का कल्याण करनेवाली तथा अपनी-अपनी सेनाओंसे समावृत इन मातृकाओंका आकार-प्रकार ब्रह्मा-रुद्र आदि देवताओंके समान ही कहा जाता है ॥५९॥ हे राजन्! इस प्रकार चारों द्वारोंपर भगवती महेश्वरीके वाहन अलंकारोंसे सज-धजकर प्रतिक्षण विराजमान रहते हैं ॥६०॥ करोड़ों हाथी, करोड़ों पालकियाँ, हंस, सिंह, गरुड़, मयूर और बैल रथोंमें जुतकर करोड़ोंकी संख्यामें वहाँ खड़े रहते हैं। उन सभी रथोंपर सजग सारथी बैठे रहते हैं और उनपर गगनचुम्बी पताकायें फहराती हैं ॥६१॥६२॥ विमानोंसे स्वयं बड़ी ध्वनि बड़ी होती है और उनपर अनेक वाद्य भी रखे रहते हैं ॥६३॥ वैदूर्यमणिके प्राकारसे आगे इन्द्रनीलमणिसे बना हुआ दस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

योजन ऊँचा एक उत्तम प्राकार कहा जाता है ॥६४॥ उस प्राकारके मध्यकी भूमि, गलियाँ, राजमार्ग, भवन, वापी, कुएँ और तड़ागके घाट भी इन्द्रनीलमणिसे ही बने हुए हैं ॥६५॥ कहा जाता है कि वहाँ अनेक योजन विस्तृत एक कमल है। वह परम प्रकाशमान कमल ऐसा जान पड़ता है, मानो सोलह अरोंवाला कोई सुदर्शनचक्र ही हो ६६ ॥ उसपर सोलह शक्तियोंको विराजनेके लिए विविध स्थान बने हुए हैं। वे सभी स्थान सम्पूर्ण सामग्रियों तथा समृद्धियोंसे सम्पन्न हैं ॥६७॥ हे राजेन्द्र ! उन शक्तियोंके नाम बतलाता हूँ, सुनो—कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति और आर्या। ये सोलह शक्तियाँ नीले मेघके समान वर्णसे सुशोभित हैं। सभी एकाकार होकर अपने करकमलमें ढाल और तलवार धारण किये रहती हैं। उनके मनमें सदा युद्धकी लालसा बनी रहती है॥६८–७०॥जगत्पर शासन करनेवाली भगवती श्रीदेवीकी ये सेनानी हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाली शक्तियोंकी ये स्वामिनी कही जाती हैं॥७१॥ भगवती जगदम्बाकी शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण सारे ब्रह्माण्डको क्षुब्ध करनेमें ये परम समर्थ हैं। अनेक शक्तियोंको

तुंगोऽसाविंद्रनीलाश्मनिर्मितः ॥ ६४ ॥ तन्मध्यभूस्तथा वीथ्यो महामार्गा गृहाणि च ॥ वापीकूपतडागाश्च सर्वे तन्मणिनिर्मिताः ॥ ६५ ॥ तत्र पद्मं तु संप्रोक्तं बहुयोजनविस्तृतम् ॥ षोडशारं दीप्यमानं सुदर्शनमिवापरम् ॥ ६६ ॥ तत्र षोडशशक्तीनां स्थानानि विविधानि च ॥ सर्वोपस्कर-युक्तानि समृद्धानि वसंति हि ॥ ६७ ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम ॥ कराली विकराली च तथोमा च सरस्वती ॥ ६८ ॥ श्रीदुर्गोषा तथा लक्ष्मीः श्रुतिश्चैव स्मृतिर्धृतिः ॥ श्रद्धा मेधा मतिः कांतिरार्या षोडश शक्तयः ॥६९॥ नीलजीमूतसंकाशाः करबालकरांबुजाः ॥ समाः खेटकधारिण्यो युद्धोपक्रांतमानसाः ॥७०॥ सेनान्यः सकला एताः श्रीदेव्या जगदीशितुः ॥ प्रतिब्रह्मांडसंस्थानां शक्तीनां नायिकाः स्मृताः ॥७१॥ ब्रह्मांडक्षोभकारिण्यो देवीशक्त्युपबृंहिताः ॥ नानारथसमारूढा नानाशक्तिभिरन्विताः ॥ ७२ ॥ एतत्पराक्रमं वक्तुं सहस्रास्योऽपि न क्षमः ॥ इन्द्रनीलमहासालादग्रे तु बहुविस्तृतः ॥ ७३ ॥ मुक्ताप्राकार उदितो दशयोजनदैर्घ्यवान् ॥ मध्यभूः पूर्ववत्प्रोक्ता तन्मध्येऽष्टदलांबुजम् ॥ ७४ ॥ मुक्तामणिगणाकीर्णं विस्तृतं तु सकेसरम् ॥ तत्र देवीसमाकारा देव्यायुधधराः सदा ॥ ७५ ॥ संप्रोक्ता अष्ट मंत्रिण्यो जगद्वार्ताप्रबोधिकाः ॥ देवी-समानभोगास्ता इङ्गितज्ञास्तु पंडिताः ॥ ७६ ॥ कुशलाः सर्वकार्येषु स्वामिकार्यपरायणाः ॥ देव्यभिप्रायबोध्यस्ताश्चतुरा अतिसुन्दराः ॥ ७७ ॥

साथ लेकर ये भाँति-भाँतिके रथोंपर विराजमान रहती हैं ॥७२॥ सहस्र मुखवाले शेषनाग भी इनके पराक्रमका बखान करनेमें असमर्थ हैं। हे राजन् ! इस इन्द्रनीलमणिके महान् प्राकारसे आगे एक बहुत विशाल मुक्ताका प्राकार है। इसकी ऊँचाई दस योजन है। पूर्व प्राकारोंके समान ही इसके भी मध्यकी भूमि है। इसके मध्यभागमें एक आठ दलवाला कमल है॥७३॥७४॥ मुक्ता प्रभृति मणियोंवाला यह विस्तृत कमल केसरसे युक्त है। कमलके उन आठ दलोंपर भगवती भुवनेश्वरीके समान आकृतिवाली देवियाँ हाथमें आयुध लेकर सदा विराजमान रहती हैं ॥ ७५ ॥ जगत्का समाचार सूचित करनेको नियुक्त ये देवियाँ भगवतीकी आठ सचिवा कही गयी हैं। जगदम्बाके मनोभावको समझनेमें परम चतुर इन देवियोंका सारा आकार-प्रकार भगवतीके समान ही है ॥७६॥ इन्हें सभी कामोंकी कुशलता प्राप्त है। अपनी स्वामिनीका कार्य सम्पादन करनेमें ये तत्पर रहती हैं। भगवती भुवनेश्वरीके अभिप्रायका ज्ञान रखनेवाली ये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवियाँ अत्यन्त सुन्दरी एवं परम प्रवीण हैं ॥७७॥ अनेक शक्तियाँ इनके साथ शोभा पाती हैं। अपनी ज्ञानशक्तिके द्वारा प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले प्राणियोंका समाचार जानकर देवीको बतलाना इनका प्रधान कार्य है ॥७८॥ हे राजेन्द्र ! अब मैं इन देवियोंके नाम बतलाता हूँ, सुनो—अनङ्गकुसुमा, अनङ्गकुसुमातुरा, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, भुवनपाला, गगनवेगा, शशिरेखा और गगनरेखा। इनका लाल विग्रह है और ये हाथोंमें पाश, अङ्कुश, वरद एवं अभयमुद्रा धारण किये रहती हैं ॥७९–८१॥ प्रतिक्षण विश्वसंबंधी वार्ताका देवीको बोधन करना इनका प्रधान कार्य है। इस मुक्ताप्राकारके आगे महामरकतमणिसे बना हुआ एक दूसरा प्राकार है ॥८२॥ दस योजन दीर्घ इस प्राकारको सभी प्राकारोंसे श्रेष्ठ कहा गया है। इसमें नाना प्रकारके सौभाग्यमय पदार्थ तथा भोगसामग्रियाँ विद्यमान रहती हैं ॥८३॥ इसके मध्यकी भूमि और भवन भी महामरकतमणिके समान ही कहे जाते हैं। इस प्राकारमें भगवती भुवनेश्वरीका एक विशाल छः कोणवाला यंत्र है। अब कोणपर रहनेवाले देवताओंके नाम बतलाता हूँ, सुनो ॥ ८४ ॥ पूर्वकोणमें भगवती गायत्रीके साथ चतुर्मुख ब्रह्मा विराजते हैं। ये कमण्डलु, अक्षसूत्र, अभय-

नानाशक्तिसमायुक्ताः प्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम् ॥ प्राणिनां ताः समाचारं ज्ञानशक्त्या विदन्ति च ॥७८॥ तासां नामानि वक्ष्यामि मत्तः शृणु नृपोत्तम ॥ अनङ्गकुसुमा प्रोक्ताऽप्ययनंगकुसुमातुरा ॥ ७९ ॥ अनंगमदना तद्वदनंगमदनातुरा ॥ भुवनपाला गगनवेगा चैव ततः परम् ॥ ८० ॥ शशिरेखा च गगनरेखा चैव ततः परम् ॥ पाशांकुशवराभीतिधरा अरुणविग्रहाः ॥ ८१ ॥ विश्वसंबन्धिनीं वार्तां बोधयन्ति प्रतिक्षणम् ॥ मुक्तासालादग्रभागे महामारकतोऽपरः ॥ ८२ ॥ सालोत्तमः समुद्दिष्टो दशयोजनदैर्घ्यवान् ॥ नानासौभाग्यसंयुक्तो नानाभोगसमन्वितः ॥ ८३ ॥ मध्यभूस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि तथैव च ॥ षट्कोणयंत्रविस्तीर्णं कोणस्था देवताः शृणु ॥ ८४ ॥ पूर्वकोणे चतुर्वक्त्रो गायत्रीसहितो विधिः ॥ कुण्डिकाक्षगुणाभीतिदंडायुधधरः परः ॥ ८५ ॥ तदायुधधरा देवी गायत्री परदेवता ॥ वेदाः सर्वे मूर्तिमंतः शास्त्राणि विविधानि च ॥ ८६ ॥ स्मृतयश्च पुराणानि मूर्तिमंति वसंति हि ॥ ये ब्रह्मविग्रहाः सन्ति गायत्रीविग्रहाश्च ये ॥ ८७ ॥ व्याहृतीनां विग्रहाश्च ते नित्यं तत्र संति हि ॥ रक्षःकोणे शंखचक्रगदांबुजकरांबुजा ॥ ८८ ॥ सावित्री वर्तते तत्र महाविष्णुश्च तादृशः ॥ ये विष्णुविग्रहाः सन्ति मत्स्यकूर्मादयोऽखिलाः ॥ ८९ ॥ सावित्रीविग्रहा ये च ते सर्वे तत्र सन्ति हि ॥ वायुकोणे परश्वक्षमालाभयवरान्वितः ॥ ९० ॥ महारुद्रो वर्ततेऽत्र सरस्वत्यपि तादृशी ॥ ये ये तु रुद्रभेदाः स्युर्दक्षिणा-

मुद्रा, दण्ड और श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए हैं ॥८५॥ परम आदरणीया भगवती गायत्री भी उन्हीं आयुधोंको लिये हुए हैं। वेद तथा विविध शास्त्र—सभी मूर्तिमान् होकर वहाँ विराजमान हैं ॥८६॥ स्मृतियाँ और पुराण भी स्वरूप धारण करके वहाँ निवास करते हैं। जिन्हें ब्रह्मका विग्रह कहा जाता है तथा जो गायत्रीके विग्रह हैं, वे एवं व्याहृतियोंके विग्रह भी वहाँ नित्य निवास करते हैं। नैर्ऋत्यकोणमें शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करनेवाली भगवती सावित्री विराजमान हैं। भगवान् विष्णु भी ऐसे ही वेषसे वहाँ विराजते हैं। मत्स्य और कूर्म आदि जो महाविष्णुके तथा गायत्रीके जो विग्रह हैं, उन सबके रहनेका स्थान वहाँ निश्चित है ॥ ८७–८९ ॥ फरसा, अक्षमाला, अभय और वरमुद्रा धारण करके महान् रुद्र उसके वायव्यकोणमें निवास करते हैं। वहाँ भगवती सरस्वती इसी वेषमें विराजती हैं। हे राजन् ! दक्षिणास्य आदि भेदसे जितने रुद्र तथा गौरी आदि भेदसे जितनी पार्वती हैं, वे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वहाँ निवास करती हैं। चौंसठ प्रकारके आगम तथा इनसे अतिरिक्त जो अन्य आगमशास्त्र हैं, वे सभी मूर्तिमान् होकर वहाँ विराजते हैं। धनके स्वामी कुबेर अपने दोनों हाथोंमें रत्नमय कलश और मणिकरण्ड लिये अग्निकोणमें विराजमान हैं। वे अनेक प्रकारकी वीथियों और महालक्ष्मियोंसे युक्त हैं ॥९०–९४॥ अपने सद्गुणोंसे संपन्न कुबेर भगवती जगदम्बाके कोषकी रक्षा कर रहे हैं। वरुणके महान् कोणमें रतिके साथ कामदेव निवास करते हैं ॥ ९५ ॥ कामदेवकी भुजाएँ पाश, अङ्कुश, धनुष और बाणसे सदा सुसज्जित रहती हैं। मूर्तिमान् संपूर्ण शृंगारोंका वहाँ निवास होता है ॥९६॥ ईशानकोणमें विघ्नोंपर शासन करनेवाले विघ्नविनाशक प्रतापी गणेशजी देवी पुष्टिके साथ पाश और अङ्कुश लिये हुए सदा विराजते हैं ॥ ९७ ॥ हे राजेन्द्र! गणेशकी जितनी विभूतियाँ हैं, वे सभी महान् ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर वहाँ सुशोभित होती हैं ॥ ९८ ॥ प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मा-प्रभृतिकी जितनी

स्यादयो नृप ॥ ९१ ॥ गौरीभेदाश्च ये सर्वे ते तत्र निवसन्ति हि॥ चतुःषष्ट्यागमा ये च ये चान्येऽप्यागमाः स्मृताः ॥ ९२ ॥ ते सर्वे मूर्तिमंतश्च तत्रैव निवसन्ति हि ॥ अग्निकोणे रत्नकुम्भं तथा मणिकरंडकम् ॥ ९३ ॥ दधानो निजहस्ताभ्यां कुबेरो धनदायकः ॥ नानावीथीसमायुक्तो महालक्ष्मीसमन्वितः ॥ ९४ ॥ देव्या निधिपतिस्त्वास्ते स्वगुणैः परिवेष्टितः ॥ वारुणे तु महाकोणे मदनो रतिसंयुतः ॥ ९५ ॥ पाशांकुशधनुर्बाणधरो नित्यं विराजते ॥ शृंगारा मूर्तिमंतस्तु तत्र सन्निहिताः सदा ॥ ९६ ॥ ईशानकोणे विघ्नेशो नित्यं पुष्टिसमन्वितः ॥ पाशांकुशधरो वीरो विघ्नहर्ता विराजंते ॥ ९७ ॥ विभूतयो गणेशस्य या याः सन्ति नृपोत्तम ॥ ताः सर्वा निवसंत्यत्र महैश्वर्यसमन्विताः ॥ ९८ ॥ प्रतिब्रह्मांडसंस्थानां ब्रह्मादीनां समष्टयः ॥ एते ब्रह्मादयः प्रोक्ताः सेवन्ते जगदीश्वरीम् ॥ ९९ ॥ महामारकतस्याग्रे शतयोजनदैर्घ्यवान् ॥ प्रवालसालोऽस्त्यपरः कुंकुमारुणविग्रहः ॥ १०० ॥ मध्यभूस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि च पूर्ववत् ॥ तन्मध्ये पंचभूतानां स्वामिन्यः पंच संति च ॥ १०१ ॥ हृल्लेखा गगना रक्ता चतुर्थी तु करालिका ॥ महोच्छुष्मा पंचमी च पंचभूतसमप्रभाः ॥१०२॥ पाशांकुशवराभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः ॥ देवीसमानवेषाढ्या नवयौवनगर्विताः ॥१०३॥ प्रवालसालादग्रे तु नवरत्नविनिर्मितः ॥ बहुयोजनविस्तीर्णो महासालोऽस्ति भूमिप ॥ १०४ ॥ तत्र चाम्नातदेवीनां सदनानि बहून्यपि ॥

समष्टियाँ हैं, वे सभी 'ब्रह्मा' नामसे विख्यात हैं। इन सबके द्वारा भगवती जगदीश्वरीकी वहाँ सदा सेवा होती है ॥९९॥ इस महामरकतमय प्राकारसे आगे सौ योजन विस्तृत एक दूसरा प्रवालका प्राकार है। इसका विग्रह कुंकुमके समान अरुण वर्ण है। इसके मध्यकी भूमि तथा भवन भी पहले जैसे हैं। इस प्राकारके मध्यभागमें पञ्चभूतोंकी पाँच स्वामिनियें निवास करती हैं ॥१०० ॥ १०१ ॥ हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका और महोच्छुष्मा—ये पञ्चभूतोंके समान ही प्रभावमयी पाँच शक्तियाँ हैं ॥ १०२ ॥ पाश, अङ्कुश, वर और अभयमुद्रा धारण करनेवाली ये शक्तियाँ सदा अलंकृत रहती हैं। इनके प्रत्येक अङ्गमें नूतन तारुण्यका गर्व व्याप्त है। वेष-भूषामें ये भगवती जगदम्बाके समान ही हैं ॥ १०३ ॥ हे राजन्! इस प्रवालमय प्राकारके बाद नौ रत्नोंसे बना हुआ अनेक योजन विस्तृत एक बहुत बड़ा प्राकार है ॥ १०४ ॥ आगमप्रसिद्ध 'आम्नाय'संज्ञक देवताओंके बहुत-से भव्य भवन वहाँ शोभा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाते हैं। वे सभी नौ रत्नोंसे निर्मित हैं। वहाँके तड़ाग और पोखरे भी रत्नमय ही हैं ॥१०५॥ हे राजन्! श्रीदेवीके जितने अवतार हैं, उन सबके निवास-स्थान वहाँ निश्चित हैं। महाविद्याके सभी अवतार वहाँ सदा विराजते हैं ॥१०६॥ करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान सम्पूर्ण देवियाँ अपनी अङ्गरक्षक शक्तियों, भूषणों और वाहनोंके साथ वहाँ अनुपम शोभा पाती हैं ॥१०७॥ सात करोड़ महामन्त्रोंके देवताओंका भी वहाँ निवासस्थान है। इस नौ रत्नमय प्राकारसे आगे चिन्तामणिनिर्मित एक विशाल मन्दिर है ॥१०८॥ वहाँ रहनेवाली सभी वस्तुएँ चिन्तामणिसे बनी हुई हैं। सूर्य, चन्द्रमा एवं बिजलीके समान चमकनेवाले पत्थरोंसे बने हुए हजारों खम्भे उस भवनमें लगे हैं, जिनकी प्रभाकी चकाचौंधसे वहाँकी कोई वस्तु नेत्रोंसे नहीं दीखती ॥१०९॥११०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(मणिद्वीपका वर्णन) व्यासजी बोले—हे राजन्! मध्य भागमें शोभा पानेवाला वही भवन भगवती जगदम्बाका है। उसमें चार मण्डप हैं। प्रत्येक मण्डप हजार-हजार स्तम्भोंसे

नवरत्नमयान्येव तडागाश्च सरांसि च ॥१०५॥ श्रीदेव्या येऽवताराः स्युस्ते तत्र निवसन्ति हि ॥ महाविद्यामहाभेदाः संति तत्रैव भूमिप ॥१०६॥ निजावरणदेवीभिर्निजभूषणवाहनैः ॥ सर्वदेव्यो विराजंते कोटिसूर्यसमप्रभाः ॥ १०७ ॥ सप्तकोटि महामंत्रदेवताः संति तत्र हि ॥ नवरत्नमयादग्रे चिंतामणिगृहं महत् ॥ १०८ ॥ तत्रत्यं वस्तुमात्रं तु चिंतामणिविनिर्मितम् ॥ सूर्योद्गारोपलस्तद्वच्चंद्रोद्गारोपलैस्तथा ॥ १०९ ॥ विद्युत्प्रभोपलैः स्तम्भाः कल्पितास्तु सहस्रशः ॥ येषां प्रभाभिरन्तःस्थं वस्तु किंचिन्न दृश्यते ॥११०॥ इति श्रीदेवीभागवते द्वादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

॥ व्यास उवाच ॥ तदेव देवीसदनं मध्यभागे विराजते ॥ सहस्रस्तंभसंयुक्ताश्चत्वारस्तेषु मंडपाः ॥ १ ॥ शृंगारमंडपश्चैको मुक्तिमंडप एव च ॥ ज्ञानमंडपसंज्ञस्तु तृतीयः परिकीर्तितः ॥ २ ॥ एकांतमंडपश्चैव चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ नानावितानसंयुक्ता नानाधूपैस्तु धूपिताः ॥ ३ ॥ कोटिसूर्यसमाः कांत्या भ्राजंते मंडपाः शुभाः ॥ तन्मंडपानां परितः काश्मीरवनिका स्मृता ॥४॥ मल्लिका कुन्दवनिका यत्र पुष्कलकाः स्थिताः ॥ असंख्याता मृगमदैः पूरितास्तत्स्रवा नृप ॥ ५ ॥ महापद्माटवी तद्वद्रत्नसोपाननिर्मिता ॥ सुधारसेन संपूर्णा गुञ्जन्मत्तमधुव्रता ॥ ६ ॥ हंसकारंडवाकीर्णा गंधपूरितदिक्तटा ॥ वनिकानां सुगंधैस्तु मणिद्वीपं सुवासितम् ॥ ७ ॥ शृंगारमंडपे देव्यो गायंति विविधैः स्वरैः ॥ सभासदो देववरा मध्ये

युक्त हैं ॥१॥ पहला 'शृंगार-मण्डप', दूसरा 'मुक्तिमण्डप', और तीसरा 'ज्ञानमण्डप' और चौथा 'एकान्तमण्डप' नामसे विख्यात है। इन मण्डपोंमें अनेक प्रकारकी चाँदनियाँ तनी रहती हैं। भाँति-भाँतिके धूपोंसे इन्हें सुवासित किया जाता है ॥२॥३॥ ये सुन्दर मण्डप कान्तिमें करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान हैं। इन मण्डपोंके चारों ओर केसर, मल्लिका और कुन्दकी असंख्य वाटिकाएँ हैं। हे राजन्! इन वाटिकाओंमें पुष्कल गन्धवाले मृगमदोंसे परिपूर्ण तथा मदस्रावी असंख्य दिव्य भृंग विराजमान रहते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ चारों मण्डपोंके सभी ओर महापद्माटवी है। उसकी सीढ़ियाँ रत्नोंसे बनी हुई हैं। वह अमृतके समान मधुर रससे परिपूर्ण है। वहाँ भौंरे सदा गुञ्जार करते रहते हैं ॥ ६ ॥ कारण्डव नामके पक्षियों तथा हंसोंसे वह सदा भरी-पूरी रहती है। उसके चारों ओरके तट सुगन्धसे सुवासित रहते हैं। इस प्रकारको असंख्य वाटिकाओंकी सुरम्य सुगन्धोंसे मणिद्वीप सुवासित रहता है ॥ ७ ॥ पहला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'शृंगारमण्डप' है। उसके मध्यभागमें एक दिव्य सिंहासनपर देवी बैठती हैं। वहाँ सभासदरूपसे रहनेवाले प्रमुख देवता, देवाङ्गनाएँ तथा सम्पूर्ण अप्सराएँ विविध स्वरोंसे भगवती जगदंबाके सामने गान करती हैं ॥८॥ दूसरा 'मुक्तिमण्डप' है। उसके मध्यभागमें विराजनेवाली कल्याणमयी भगवती शिवा प्रत्येक ब्रह्माण्डनिवासी भक्तोंको सदा मुक्ति प्रदान करती रहती हैं। हे राजन्! तीसरे मण्डपका नाम 'ज्ञानमण्डप' है। वहाँ विराजमान होकर भगवती ज्ञानका उपदेश करती हैं ॥ ९ ॥ 'एकान्तमंडप'संज्ञक चौथे मंडपमें भगवती जगदंबा अनङ्गकुसुमा आदि सचिवा शक्तियोंके साथ बैठकर जगत्की रक्षाके विषयमें परामर्श किया करती हैं ॥१०॥ हे राजन्! 'चिन्तामणिगृह' देवीका प्रधान स्थान है। मूलप्रकृति भगवती भुवनेश्वरीके दस शक्तितत्त्व सोपानरूपसे वहाँ उपस्थित रहते हैं। उनसे युक्त भगवतीका ऊँचा मञ्च महान् शोभा पाता है ॥११॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और सदाशिवको उस मञ्चका पटल कहा जाता है ॥१२॥ उस मञ्चके ऊपर महान् देवता और परम आदरणीय भुवनेश्वर विराजित हैं। सृष्टिके आदिमें अपनी लीला करनेके लिए स्वयं भगवती ही दो रूपोंमें विराजमान रहती हैं ॥१३॥ उस समय

श्रीजगदंबिका ॥ ८ ॥ मुक्तिमंडपमध्ये तु मोचयत्यनिशं शिवा ॥ ज्ञानोपदेशं कुरुते तृतीये नृप मंडपे ॥ ९ ॥ चतुर्थमंडपे चैव जगद्रक्षाविचिंतनम् ॥ मंत्रिणीसहिता नित्यं करोति जगदंबिका ॥ १० ॥ चिंतामणिगृहे राजञ्छक्तितत्त्वात्मकैः परैः ॥ सोपानैर्दशभिर्युक्तो मंचकोऽप्यधिराजते ॥ ११ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ एते मंचखुराः प्रोक्ताः फलकस्तु सदाशिवः ॥ १२ ॥ तस्योपरि महादेवो भुवनेशो विराजते ॥ या देवी निजलीलार्थं द्विधाभूता बभूव ह ॥ १३ ॥ सृष्ट्यादौ तु स एवायं तदर्धांगो महेश्वरः ॥ कंदर्पदर्पनाशोद्यत्कोटिकंदर्पसुंदरः ॥ १४ ॥ पंचवक्त्रस्त्रिनेत्रश्च मणिभूषणभूषितः ॥ हरिणाभीतिपरशून् वरं च निजबाहुभिः ॥ १५ ॥ दधानः षोडशाब्दोऽसौ देवः सर्वेश्वरो महान् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशश्चंद्रकोटिसुशीतलः ॥ १६ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशस्त्रिनेत्रः शीतलद्युतिः ॥ वामांके सन्निषण्णाऽस्य देवी श्रीभुवनेश्वरी ॥ १७ ॥ नवरत्नगणाकीर्णकांचीदामविराजिता ॥ तप्तकांचनसन्नद्धवैदूर्यांगदभूषणा ॥ १८ ॥ कर्णच्छ्रीचक्रताटंकविटंकवदनांबुजा ॥ ललाटकांतिविभवविजितार्धसुधाकरा ॥ १९ ॥ बिंबकांतितिरस्कारिरदच्छदविराजिता ॥ लसत्कुंकुमकस्तूरीतिलकोद्भासितानना ॥ २० ॥ दिव्यचूडामणिस्फारचंचच्चंद्रकसूर्यका ॥

दाहिने भागसे वे भगवान् भुवनेश्वर और बायें भागसे शवल ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती भुवनेश्वरी प्रकट हुई। भगवतीके अर्धाङ्गस्वरूप वे ही ये महान् ईश्वर हैं। कामदेवके मदका मर्दन करनेमें परम कुशल ये महेश्वर करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं ॥१४॥ पाँच मुख और तीन नेत्रोंसे शोभा पानेवाले वे महेश्वर मणिसे विभूषित तथा अपनी भुजाओंमें हरिण, अभय, वरमुद्रा तथा फरसा धारण किये हुए हैं ॥ १५ ॥ सबपर शासन करनेवाले उन महान् देवेश्वरकी आयु सोलह वर्ष जैसी है। वे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान हैं। शीतल ऐसे हैं कि मानो करोड़ों चन्द्रमा हों ॥१६॥ वे शुद्ध स्फटिकमणिके समान देदीप्यमान हैं। उनके श्रीविग्रहसे शीतल प्रकाश फैलता रहता है। उनके वामाग्रभागमें भगवती भुवनेश्वरी विराजमान हैं ॥१७॥ नौ प्रकारके रत्नोंसे बनी हुई दिव्य करधनी भगवतीके कटिभागकी छवि बढ़ा रही है। तप्त सुवर्ण और वैदूर्यमणिसे सम्पन्न बाजूबंद देवीकी भुजाओंको सुशोभित किये हुए हैं ॥ १८ ॥ जिसमें सुवर्णके समान चमक है तथा जिसकी आकृति श्रीचक्र-जैसी है, ऐसी छतरीवाला कर्णफूल भगवती भुवनेश्वरीके मुखकमलको मनोहर बना रहा है। देवीके ललाटकी कान्तिके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैभवने अर्द्धचन्द्रमाकी शोभाको तुच्छ बना दिया है ॥ १९ ॥ विम्बाफलको तिरस्कृत करनेवाले लाल होठों और मनोहर दाँतोंसे देवी परम सुशोभित रहती हैं। कुंकुम-कस्तूरीके सुन्दर तिलकसे उनका मुखमण्डल असीम शोभा पा रहा है ॥२०॥ वे चन्द्रमा और सूर्य-जैसी आकृतिवाली रत्ननिर्मित दिव्य चूड़ामणि मस्तकपर धारण किये हुए हैं। उदयकालीन शुक्र नक्षत्रके समान स्वच्छ नासिकाभूषण उसके प्रकाशका परम साधन बना हुआ है ॥२१॥ कण्ठके भूषणमें लटकती हुई मोतीकी स्वच्छ लड़ीसे देवी अतिशय शोभा पाती हैं। चन्दनके पङ्क, कपूर और कुंकुमसे उन्होंने स्तनोंको अलंकृत कर रखा है ॥२२॥ विचित्र प्रकारके उनके अद्भुत कंधे शंखके समान सुन्दर जान पड़ते हैं। अनारके दानों सदृश स्वच्छ दाँतोंकी पंक्तिसे वे अतीव शोभा पाती हैं ॥२३॥ मस्तकपर बहुमूल्य रत्नोंका मुकुट धारण करनेसे वे अत्यन्त सुशोभित हो रही हैं। देवीके मुखपर अलकावली छितरायी रहती है और उसपर मतवाले भ्रमर मँडराते रहते हैं ।.२-॥ कलङ्ककी कालिमासे रहित शारदीय चन्द्रमाकी भाँति उनका स्वच्छ मुखमण्डल है। गङ्गाके जलतरङ्ग-जैसी सुन्दर नाभिसे वे शोभा पाती हैं ॥ २५ ॥ मणियोंसे जड़ित मुद्रिका

उद्यत्कविसमस्वच्छनासाभरणभासुरा ॥ २१ ॥ हृदये लंबितस्वच्छमुक्तागुच्छविराजिता ॥ पाटीरपंककर्पूरकुंकुमालंकृतस्तनी ॥ २२ ॥ विचित्रविविधाकल्पा कंबुसंकाशकंधरा ॥ दाडिमीफलबीजाभदंतपंक्तिविराजिता ॥ २३ ॥ अनर्घ्यरत्नघटितमुकुटांचितमस्तका ॥ मत्तालिमालाविलसदलकाढ्यमुखांबुजा ॥ २४ ॥ कलंककार्श्यनिर्मुक्तशरच्चंद्रनिभानना ॥ जाह्नवीसलिलावर्तशोभिनाभिविभूषिता ॥ २५ ॥ माणिक्यशकलाबद्धमुद्रिकांगुलिभूषिना ॥ पुंडरीकदलाकारनयनत्रयसुन्दरी ॥२६॥ कल्पिताच्छमहारागपद्मरागोज्ज्वलप्रभा ॥ रत्नकिंकिणिकायुक्तरत्नकंकणशोभिता ॥२७॥ मल्लिकामोदिधम्मिमणिमुक्तासरापारलसत्पदकसंततिः ॥ रत्नांगुलिप्रविततप्रभाजाललसत्करा ॥ २८ ॥ कंचुकीगुंफितापारनानारत्नततिद्युतिः ॥ मल्लिकामोदिधम्मिल्लमल्लिकालिसरावृता ॥ २९ ॥ सुवृत्तनिविडोत्तुङ्गकुचभारालसा शिवा ॥ वरपाशांकुशाभीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥ ३० ॥ सर्वभृङ्गारवेषाढ्या सुकुमारांगवल्लरी ॥ सौन्दर्यधारासर्वस्वा निर्व्याजकरुणामयी ॥ ३१ ॥ निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी ॥ कोटिकोटिरवींदूनां कांतिं या बिभ्रती परा ॥ ३२ ॥ नानासखीभिर्दासीभिस्तथा देवांगनादिभिः ॥ सर्वाभिर्देवताभिस्तु समंतात्परिवेष्टिता ॥ ३३ ॥ इच्छाशक्त्या ज्ञानशक्त्या क्रियाशक्त्या

उनकी अँगुलीको सुशोभित किए हुये है। कमलदलकी आकृति धारण करनेवाले तीन नेत्रोंसे वे अतिशय मनोहर जान पड़ती हैं ॥२६॥ शानपर चढ़ाकर स्वच्छ किये हुए महाराग और पद्मरागमणिके समान उनकी उज्ज्वल कान्ति है। रत्ननिर्मित किङ्किणी और कंकणसे वे विचित्र शोभाशालिनी हो गयी हैं ॥ २७ ॥ मणियों और मोतियोंकी मालाओंमें रहनेवाली अपार शोभा उनके चरणकमलसे उत्पन्न हुई है। रत्नमय विस्तृत अँगुलियोंके प्रभाजालसे उनके करकमल शोभा पा रहे हैं ॥२८॥ उनकी कंचुकीमें गुथे हुए विविध रत्न प्रकाश फैला रहे हैं। मल्लिकाकी सुगन्धिसे पूर्ण धम्मिल अर्थात् केशपाशकी मालापर भ्रमण करनेवाले भ्रमर भगवती भुवनेश्वरीके मुखको घेरे हुए हैं ॥२९॥ अतिशय गोल, सघन एवं उच्च उरोजोंके भारसे भगवती शिवा कुछ अलसायी हुई जान पड़ता हैं। उनकी चार भुजाएँ पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्रासे सुशोभित हैं ॥३०॥ वे सम्पूर्ण शृंगारोंसे सम्पन्न, अत्यन्त सुकुमार अंगोंवाली, समस्त सौन्दर्यकी आधारसर्वस्व तथा निष्कपट करुणाकी मूर्ति हैं ॥३१॥ भगवतीने स्वयं अपने मधुर स्वरसे वीणाके स्वरको तुच्छ कर दिया है। वे कोटि-कोटि सूर्यों और चन्द्रमाओंका

१५३७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कान्तिको धारण किये हुए हैं ॥३२॥ बहुत-सी सखियाँ, दासियाँ, देवस्त्रियाँ तथा अखिल देववृन्द भगवती भुवनेश्वरीको चारों ओरसे घेरकर बैठे हुए हैं ॥ ३३ ॥ वे देवी इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे युक्त हैं। लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, कीर्ति, कान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि, मेधा, स्मृति और लक्ष्मी, ये मूर्तिमती होकर भगवतीके पास विराजती हैं। जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा और अमंगला—ये नौ पीठशक्तियाँ भगवती पराम्बाकी सेवामें सदा तत्पर रहती हैं ॥३४-३६॥ शङ्खनिधि और पद्म नधि भगवतीके पार्श्वभागमें विद्यमान हैं। नवरत्नवहा, काञ्चनस्रवा और सप्तधातुवहासंज्ञक नदियाँ उपर्युक्त निधियोंसे निकली हैं। हे राजेन्द्र! ये सभी नदियाँ सुधासिन्धुमें जाकर मिलती हैं ॥३७॥३८॥ इस प्रकारकी विशिष्ट शक्तिशालिनी वे भगवती भुवनेश्वरी महाभाग भुवनेश्वरके वाम अङ्कमें विराजती हैं। उन्हींके सङ्गसे भुवनेश्वरको सर्वेश होनेकी योग्यता प्राप्त हुई है। इसमें कुछ अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ ३९ ॥ हे राजन्! अब इस चिन्तामणि गृहका परिमाण सुनो। यह अतिविशाल भवन हजार योजन लम्बा-चौड़ा कहा जाता है ॥ ४० ॥ इसके उत्तरभागमें बहुतसे

समन्विता ॥ लज्जा तुष्टिस्तथा पुष्टिः कीर्तिः कांतिः क्षमा दया ॥ ३४ ॥ बुद्धिर्मेधा स्मृतिर्लक्ष्मीर्मूर्तिमत्योऽङ्गनाः स्मृताः ॥ जया च विजया चैवा-प्यजिता चापराजिता ॥ ३५ ॥ नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मंगला नव ॥ पीठशक्तय एतास्तु सेवंते यां परांबिकाम् ॥ ३६ ॥ तस्यास्तु पार्श्वभागे स्तो निधी तौ शंखपद्मकौ ॥ नवरत्नवहा नद्यस्तथा वै कांचनस्रवाः ॥ ३७ ॥ सप्तधातुवहा नद्यो निधिभ्यां तु विनिर्गताः ॥ सुधासिंध्वं-तगामिन्यस्ताः सर्वा नृपसत्तम ॥ ३८ ॥ सा देवी भुवनेशानी तद्वामांके विराजते ॥ सर्वेशत्वं महेशस्य यत्संगादेव नान्यथा ॥ ३९ ॥ चिंतामणि-गृहस्यास्य प्रमाणं शृणु भूमिप ॥ सहस्रयोजनायामं महांतस्तत्प्रचक्षते ॥ ४० ॥ तदुत्तरे महाशालाः पूर्वस्माद्द्विगुणाः स्मृताः ॥ अन्तरिक्षगतं त्वेतन्निराधारं विराजते ॥ ४१ ॥ संकोचश्च विकासश्च जायतेऽस्य निरंतरम् ॥ पटवत्कार्यवशतः प्रलये सर्जने तथा ॥ ४२ ॥ शालानां चैव सर्वेषां सर्वकांतिपरावधि ॥ चिंतामणिगृहं प्रोक्तं यत्र देवी महोमयी ॥ ४३ ॥ ये ये उपासकाः संति प्रतिब्रह्मांडवर्तिनः ॥ देवेषु नागलोकेषु मनुष्येष्वितरेषु च ॥ ४४ ॥ श्रीदेव्यास्ते च सर्वेऽपि व्रजंत्यत्रैव भूमिप ॥ देवीक्षेत्रे ये त्यजन्ति प्राणान्देव्यर्चने रताः ॥ ४५ ॥ ते सर्वे यांति तत्रैव यत्र देवी महो-त्सवा ॥ घृतकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या मधुस्रवाः ॥ ४६ ॥ स्यंदन्ति सरितः सर्वास्तथाऽमृतवहाः पराः ॥ द्राक्षारसवहाः काश्चिज्जंबूरसवहाः

सुदीर्घ प्राकार हैं। पूर्व प्राकारसे उत्तरका प्राकार क्रमशः दुगुने परिमाणमें है, ऐसा कहा जाता है। भगवतीका यह मणिद्वीप भूमिपर न रहकर अन्तरिक्षमें सुशोभित है ॥ ४१ ॥ न तो प्रलयकालमें इसका नाश होता है और न सृष्टिके समय इसकी उत्पत्ति होती है, किंतु कार्यवश पटकी भाँति निरन्तर इसमें संकोच एवं विकास होता रहता है ॥४२ वहाँ जितने परकोटे हैं, उन सबकी शोभा उस चिन्तामणिगृहकी अवधिसे सापेक्ष है। वही भव्य भवन भगवती महामायाके विराजनेका स्थान कहा गया है ॥ ४३ ॥ हे राजन्! जो प्रत्येक ब्रह्माण्डवर्ती उपासक हैं तथा देवलोक, नागलोक एवं मनुष्यलोक आदि अन्य लोकोंमें जो श्रीदेवीके भक्त हैं, वे सब यहीं आते हैं। जो देवीके क्षेत्रमें रहकर उनकी उपासनामें तत्पर रहते हुए प्राण त्यागते हैं, वे सब वहीं जाते हैं, जहाँ देवी महोत्सवा विराजती हैं। वहाँ घृतकुल्या, दधिकुल्या, मधुस्रवा, अमृतवहा, द्राक्षारसवहा, जम्बूरसवहा तथा आम्रेक्षुरसवहा आदि हजारों श्रेष्ठ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नदियाँ प्रवाहित होती हैं। वहाँ मनोरथरूपी फलवाले बहुतसे वृक्ष, बावलियाँ तथा कूप भी हैं॥ ४४-४८॥ वे सभी यथेष्ट पान करने योग्य फल प्रदान करते हैं। इनमें किंचिन्मात्र भी कमी नहीं है। मणिद्वीपमें रोगसे किसीका शरीर क्षीण नहीं होता और कभी बुढ़ापा अपना प्रभाव नहीं डाल सकता॥ ४९॥ वह दिव्य स्थान चिन्ता, मात्सर्य, काम और क्रोधसे रहित है। वहाँ रहनेवाले सभी लोग युवावस्थासे सम्पन्न, स्त्रीयुक्त और हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी बने रहते हैं॥५०॥ वहाँ स्थित होकर भगवती श्रीभुवनेश्वरीकी सतत उपासना करनेवाले व्यक्तियोंमेंसे कितने सालोक्य मुक्ति और कितने सामीप्य मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं॥ ५१॥ बहुतसे सारूप्य मुक्तिके भागी बन गये तथा कुछ श्रेष्ठ प्राणी सार्ष्टिताको प्राप्त हुए हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले जो-जो देवता हैं, उनके बहुतसे समाज मणिद्वीपमें रहकर भगवती जगदीश्वरीकी उपासना करते हैं। सात करोड़ महामन्त्र मूर्तिमान् होकर भगवतीकी आराधनामें तत्पर रहते हैं॥ ५२॥५३॥ साम्यावस्थामें स्थित देवी शिवा कारणब्रह्मरूपा हैं। उन्होंने मायामय शबल विग्रह धारण कर रखा है। सम्पूर्ण महाविद्याएँ सदा उनकी सेवामें

पराः॥ ४७॥ आम्रेक्षुरसवाहिन्यो नद्यस्तास्तु सहस्रशः॥ मनोरथफला वृक्षा वाप्यः कूपास्तथैव च॥ ४८॥ यथेष्टपानफलदा न न्यूनं किञ्चिदस्ति हि॥ न रोगपलितं वापि जरा वापि कदाचन॥ ४९॥ न चिंता न च मात्सर्यं कामक्रोधादिकं तथा॥ सर्वे युवानः सस्त्रीकाः सहस्रादित्यवर्चसः॥ ५०॥ भजन्ति सततं देवीं तत्र श्रीभुवनेश्वरीम्॥ केचित्सलोकतापन्नाः केचीत्सामीप्यतां गताः॥ ५१॥ सरूपतां गताः केचित्सार्ष्टितां च परे गताः॥ या यास्तु देवतास्तत्र प्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम्॥ ५२॥ समष्टयः स्थितास्तास्तु सेवंते जगदीश्वरीम्॥ सप्तकोटिमहामंत्रा मूर्तिमंत उपासते॥ ५३॥ महाविद्याश्च सकलाः साम्यावस्थात्मिकां शिवाम्॥ कारणब्रह्मरूपां तां मायाशबलविग्रहाम्॥ ५४॥ इत्थं राजन्मया प्रोक्तं मणिद्वीपं महत्तरम्॥ न सूर्यचन्द्रौ नो विद्युत्कोटयोऽग्निस्तथैव च॥ ५५॥ एतस्य भासा कोट्यंशकोट्यंशेनापि ते समाः॥ क्वचिद्विद्रुमसंकाशं क्वचिन्मरकतच्छवि॥ ५६॥ विद्युद्भानुसमच्छायं मध्यसूर्यसमं क्वचित्॥ विद्युत्कोटिमहाधारा सारकांतिततं क्वचित्॥ ५७॥ क्वचित्सिंदूरनीलेंद्रमाणिक्यसदृशच्छवि॥ हीरसारमहागर्भधगद्धगितदिक्तटम्॥ ५८॥ कान्त्या दावालनसमं तप्तकांचनसन्निभम्॥ क्वचिच्चन्द्रोपलोद्गारं सूर्योद्गारं च कुत्रचित्॥ ५९॥ रत्नश्रृंगिसमायुक्तं रत्नप्राकारगोपुरम्॥ रत्नपत्रै रत्नफलैर्वृक्षैश्च परिमंडितम्॥ ६०॥ नृत्यन्मयूरसंघैश्च कपोतरणितोज्ज्वलम्॥

संलग्न रहती हैं॥५४॥ हे राजन्! इस प्रकार मैंने मणिद्वीपकी महामहिमा बतला दी। करोड़ों सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और विद्युत् इस मणिद्वीपकी प्रभाके कोट्यंशकी भी तुलना करनेमें असमर्थ हैं। इस पुरीमें कहीं मूँगेके समान प्रकाश फैलता है और कुछ भाग मरकतमणिकी छवि धारण किये हुए हैं, कहीं बिजली और सूर्य-सदृश चमक है एवं कहीं ऐसा जान पड़ता है कि मानो मध्याह्नकालिक प्रचण्ड सूर्य तप रहे हों। कहीं तो करोड़ों बिजलियोंका तेज धारण करनेवाली दिव्य कान्ति विस्तृत है॥ ५५-५७॥ कहीं सिन्दूर, नीलेन्द्र-मणि और माणिक्यके समान दृष्टिगोचर होती है। कुछ दिशाओंका भाग कान्तिमें हीरा, दावानल तथा तपाये हुए सुवर्णके समान है। कहीं जान पड़ता है कि चन्द्रकान्तमणि तथा सूर्यकान्तमणिके पत्थरसे यह बना है॥ ५८॥ ५९॥ इस पुरीका शिखर रत्नमय है। प्राकार और गोपुर रत्नसे निर्मित हैं। रत्नमय वृक्षों, पत्रों और फूलोंसे यह भलीभाँति सुसज्जित है॥ ६०॥ इस प्रकाशमान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरीमें सदा दिव्य मोर नाचते तथा कबूतर बोलते रहते हैं। कोलिकोंकी काकली और सुग्गोंकी मीठी वाणी इस पुरीको मुखरित किये रहती है ॥ ६१ ॥ सुरम्य एवं रमणीय जल-वाले लाखों सरोवरोंसे यह आवृत है। मणिद्वीपका मध्यभाग खिले हुए रत्नमय कमलोंसे अनुपम शोभा पाता है ॥६२॥ उसके चारों ओरकी सौ योजन भूमि उत्तम गन्धोंसे सदा सुवासित रहती है। मन्दगतिसे प्रवाहित होकर वायु वृक्षोंको धीरे-धीरे स्पन्दित करता रहता है ॥ ६३ ॥ चिन्तामणिके समूहोंकी ज्योतिसे आकाश जगमगाता रहता है। सर्वत्र बिखरे हुए रत्नोंकी प्रभासे सारी दिशायें अग्निकी भाँति चमकती रहती हैं ॥६४॥ वृक्षोंकी मधुर सुगन्धोंसे युक्त सुखदायक पवन सदा प्रवाहित होता रहता है। हे राजन्! दस हजार योजनतक चमकनेवाला मणिद्वीप धूपसे परम सुधूपित रहता है ॥६५॥ दर्पणयुक्त इस मणिद्वीपकी दिशाएँ रत्नमयी जालियोंके छिद्रोंकी शोभा धारण करके सबके मनमें दिशाभ्रम उत्पन्न कर देती हैं ॥६६॥ हे राजन्! सम्पूर्ण ऐश्वर्यों, शृंगारों, सर्वज्ञताओं, तेजों, पराक्रमों, उत्तमगुणों और दयाओंकी इस मणिद्वीपकी पुरीमें समाप्ति हो जाती है ॥६७॥६८॥ राजाके आनन्दसे लेकर ब्रह्मलोकपर्यन्त जितने 'आनन्द'

काकलीकोकिलालापैः शुकालापैश्च शोभितम् ॥ ६१ ॥ सुरम्यरमणीयांबुलक्षावधिसरोवृतम् ॥ तन्मध्यभागविलसद्विकचद्रत्नपंकजैः ॥ ६२ ॥ सुगं-धिभिः समंतात्तु वासितं शतयोजनम् ॥ मंदमारुतसंभिन्नचलद्द्रुमसमाकुलम् ॥ ६३ ॥ चिंतामणिसमूहानां ज्योतिषा विततांबरम् ॥ रत्नप्रभाभिर-भितो धगद्धगितदिक्तटम् ॥ ६४ ॥ वृक्षव्रातमहागंधवातव्रातसुपूरितम् ॥ धूपधूपायितं राजन्मणिदीपायुतोज्ज्वलम् ॥ ६५ ॥ मणिजालकसच्छि-द्रतरलोदरकान्तिभिः ॥ दिङ्मोहजनकं चैतद्दर्पणोदरसंयुतम् ॥६६॥ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य शृंगारस्याखिलस्य च ॥ सर्वज्ञतायाः सर्वायास्तेजसश्चाखि-लस्य च ॥ ६७ ॥ पराक्रमस्य सर्वस्य सर्वोत्तमगुणस्य च ॥ सकलाया दयायाश्च समाप्तिरिह भूपते ॥ ६८ ॥ राज्ञ आनंदमारभ्य ब्रह्मलोकांत-भूमिषु ॥ आनंदा ये स्थिताः सर्वे तेऽत्रैवांतर्भवंति हि ॥ ६९ ॥ इति ते वर्णितं राजन्मणिद्वीपं महत्तरम् ॥ महादेव्याः परं स्थानं सर्वलोकोत्तमो-त्तमम् ॥ ७० ॥ एतस्य स्मरणात्सद्यः सर्वपापं विनश्यति ॥ प्राणोत्क्रमणसंधौ तु स्मृत्वा तत्रैव गच्छति ॥ ७१ ॥ अध्यायपञ्चकं त्वेतत्पठेन्नित्यं समाहितः ॥ भूतप्रेतपिशाचादिबाधा तत्र भवेन्न हि ॥७२॥ नवीनगृहनिर्माणे वास्तुयागे तथैव च ॥ पठितव्यं प्रयत्नेन कल्याणं तेन जायते ॥७३॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

हैं, वे सब इस पुरीमें ही विद्यमान हैं ॥६९॥ हे राजन्! मैंने तुम्हारे सामने मणिद्वीपकी महिमाका वर्णन कर दिया। महादेवीका यह परम धाम सम्पूर्ण लोकोंसे अतिशय श्रेष्ठ है ॥७०॥ इस मणिद्वीपके स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। यदि मरणसमयमें मणिद्वीपका स्मरण हो जाय तो प्राणी वहीं जाता है ॥ ७१ ॥ आठवें अध्यायसे आरम्भ करके यहाँतकके विषयको 'अध्यायपञ्चक' कहते हैं। सावधान होकर नित्य इसका पाठ करनेवाला प्राणी भूत, प्रेत और पिशाच आदिकी बाधासे मुक्त हो जाता है ॥ ७२ ॥ नवीन गृह बनवाने अथवा वास्तुदेवताकी पूजाके अवसरपर यत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये, इससे परम कल्याण होता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेय-रामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(जनमेजयके द्वारा अम्बायज्ञ तथा देवीभागवतकी महिमा) व्यासजी कहते हैं–हे निष्पाप राजन् ! तुमने जो-जो पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें कह सुनाया । आठवें स्कन्धसे आरम्भ करके यहाँतकका विषय महात्मा नारदके प्रति भगवान् नारायणके द्वारा कहा गया है, वह भी मैंने सुना दिया ॥ १ ॥ भगवती महादेवीका यह पुराण परम अद्भुत है । इसे सुनकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । क्योंकि इससे भगवती अत्यन्त प्रसन्न हो जाती हैं ॥ २ ॥ अपने पिताकी दुर्गतिका वृत्तान्त सुनकर तुम बहुत खिन्न हो । अतएव हे राजेन्द्र ! अब तुम अपने पिताके उद्धारके लिये देवीयज्ञ करो ॥ ३ ॥ पहले देवीके सर्वोत्तमोत्तम मन्त्रकी दीक्षा लेना तुम्हारे लिये आवश्यक है । विधि-विधानके साथ ग्रहण किया हुआ यह मन्त्र मनुष्यके जन्मको सफल कर देता है ॥४॥ सूतजी कहते हैं–हे शौनक आदि ऋषियों ! उपर्युक्त बातें सुननेके पश्चात् महाराज जनमेजयने मुनिवर व्यासकी प्रार्थना करके उन्हींसे देवीके 'प्रणव' संज्ञक महामन्त्रकी विधि-विधानके साथ दीक्षा ग्रहण की । तदनन्तर उन्होंने नवरात्रके पुण्य अवसरपर धौम्य आदि मुनियोंको बुलाया और अम्बायज्ञ आरम्भ कर दिया । उसमें उन्होंने खुले हाथों धनदान

॥ व्यास उवाच ॥ इति ते कथितं भूप यद्यत्पृष्टं त्वयाऽनघ ॥ नारायणेन यत्प्रोक्तं नारदाय महात्मने ॥ १ ॥ श्रुत्वैतत्तु महादेव्याः पुराणं परमाद्भुतम् ॥ कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देव्याः प्रियतमो हि सः ॥ २ ॥ कुरु चांबामखं राजन्स्वपित्रुद्धरणाय वै ॥ खिन्नोऽसि येन राजेंद्र पितुर्ज्ञात्वा तु दुर्गतिम् ॥ ३ ॥ गृहाण त्वं महादेव्या मंत्रं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ यथाविधि विधानेन जन्मसाफल्यदायकम् ॥४॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलः प्रार्थयित्वा मुनीश्वरम् ॥ तस्मादेव महामंत्रं देवीप्रणवसंज्ञकम् ॥५॥ दीक्षां विधिविधानेन जग्राह नृपसत्तमः ॥ तत आहूय धौम्यादीन्नवरात्रसमागमे ॥ ६ ॥ अंबायज्ञं चकाराशु वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ब्राह्मणैः पाठयामास पुराणं त्वेतदुत्तमम् ॥ ७ ॥ श्रीदेव्यग्रेऽम्बिकाप्रीत्यै देवीभागवतं परम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयामासाप्यसंख्यातान्सुवासिनीः ॥८॥ कुमारीर्बटुकादींश्च दीनानाथांस्तथैव च ॥ द्रव्यप्रदानैस्तान्सर्वान्संतोष्य वसुधाधिपः ॥९॥ समाप्य यज्ञं संस्थाने संस्थितो यावदेव हि ॥ तावदेव हि चाकाशान्नारदः समवातरत् ॥१०॥ रणयन्महतीं वीणां ज्वलदग्निशिखोपमः ॥ ससंभ्रमः समुत्थाय दृष्ट्वा तं नारदं मुनिम् ॥ ११ ॥ आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास भूमिपः ॥ कृत्वा तु कुशलप्रश्नं पप्रच्छागमकारणम् ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ कुत आगमनं साधो ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ सनाथोऽहं कृतार्थोऽहं त्वदागमनकारणात् ॥ १३ ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिसत्तमः ॥ अद्या-

किया । इस उत्तम श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणका ब्राह्मणोंके द्वारा पाठ कराया ॥५–७॥ भगवती श्रीदेवीकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये उनके सामने ही इस परम पावन पुराणका पारायण हुआ । असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया । सुवासिनी स्त्रियों, कुमारी कन्याओं और ब्रह्मचारियोंको भी भोजन दिया गया । दीन और अनाथ भी भोजनसे तृप्त हुए । राजाने द्रव्य-प्रदानसे उन सबको अत्यन्त सन्तुष्ट किया ॥ ८ ॥ ९ ॥ जिस समय महाराज जनमेजय यज्ञ समाप्त करके अपने स्थानपर विराजित हुए, उसी समय आकाशसे मुनिवर नारदजी वहाँ पधारे ॥ १० ॥ प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी उन महामुनिकी महती वीणा बज रही थी । मुनिवर नारदजीको देखकर आश्चर्ययुक्त हो महाराज आसनसे उठ खड़े हुए ॥ ११ ॥ उन्होंने आसन दान आदि उपचारोंसे मुनिकी पूजा की । तत्पश्चात् वे कुशल-प्रश्न करके पधारनेका कारण पूछने लगे ॥१२॥ राजाने पूछा–भगवन् ! आप कहाँसे पधार रहे हैं ? आपके लिये मैं क्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करूँ ? आज्ञा देनेकी कृपा कीजिये। हे भगवन् ! आपके आगमनसे मैं सनाथ और कृतकृत्य हो गया ॥ १३ ॥ राजा जनमेजयकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उनसे कहा—हे राजेन्द्र ! आज मैंने देवलोकमें एक महान् अद्भुत दृश्य देखा है ॥ १४ ॥ वही बतानेके लिये परम विस्मित होकर मैं यहाँ तुम्हारे पास आ गया। अपने दुर्भाग्यसे जो दुर्गतिमें पड़े हुए थे, हे राजन् ! अब उन तुम्हारे पिताका शरीर अत्यन्त दिव्य हो गया है। बड़े-बड़े देवता और अप्सराएँ सब ओरसे भली-भाँति उनकी स्तुति कर रही हैं ॥१५॥१६॥ उत्तम रथपर बैठकर वे अब मणिद्वीपको चले गये हैं। यह सब कुछ देवीभागवतके ही श्रवणका फल है ॥ १७ ॥ तुम्हारे द्वारा देवीयज्ञ सम्पन्न हुआ है, जिसके फलस्वरूप तुम्हारे पिताकी परम सद्गति हो गयी। अतः तुम धन्य और कृतकार्य हुए एवं तुम्हारा जीवन सफल हो गया ॥ १८ ॥ कुलको विभूषित करनेवाले हे राजन् ! तुमने अपने पिताका उद्धार किया है, इससे आज देवलोकमें तुम्हारी कीर्तिका विस्तार हो रहा है ॥ १९ ॥ सूतजी कहते हैं—हे ऋषियो ! नारदजीके ये वचन सुनकर महाराज जनमेजयका हृदय प्रेमसे गद्गद हो गया। वे अद्भुत-

श्चर्यं मया दृष्टं देवलोके नृपोत्तम ॥ १४ ॥ तन्निवेदयितुं प्राप्तस्त्वत्सकाशे सुविस्मितः ॥ पिता ते दुर्गतिं प्राप्तो निजकर्मविपर्ययात् ॥ १५ ॥ स एवायं दिव्यरूपवपुर्भूत्वाऽधुनैव हि ॥ देवदेवैः स्तुतः सम्यगप्सरोभिः समंततः ॥ १६ ॥ विमानवरमारुह्य मणिद्वीपं गतोऽभवत् ॥ देवीभागवतस्यास्य श्रवणोत्थफलेन च ॥ १७ ॥ अम्बामखफलेनापि पिता ते सुगतिं गतः ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं सफलं तव ॥ १८ ॥ नरकादुद्धृतस्तातस्त्वया तु कुलभूषण ॥ देवलोके स्फीतकीर्तिस्तवाद्य विपुलाऽभवत् ॥१९॥ सूत उवाच ॥ नारदोक्तं समाकर्ण्य प्रेमगद्गदितांतरः ॥ पपात पादांबुजयोर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥२०॥ तवानुग्रहतो देव कृतार्थोऽहं महामुने ॥ किं मया प्रतिकर्तव्यं नमस्कारादृते तव ॥ २१ ॥ अनुग्राह्यः सदैवाहमेवमेव त्वया मुने ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वाप्याशीर्भिरभिनन्द्य च ॥ २२ ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं भगवान्बादरायणः ॥ राजन्सर्वं परित्यज्य भज देवीपदांबुजम् ॥ २३ ॥ देवीभागवतं चैव पठ नित्यं समाहितः ॥ अम्बामखं सदा भक्त्या कुरु नित्यमतंद्रितः ॥ २४ ॥ अनायासेन तेन त्वं मोक्ष्यसे भवबन्धनात् ॥ सन्त्यन्यानि पुराणानि हरिरुद्रमुखानि च ॥ २५ ॥ देवीभागवतस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ सारमेतत्पुराणानां वेदानां चैव सर्वशः ॥ २६ ॥ मूलप्रकृतिरेवैषा यत्र तु प्रतिपाद्यते ॥ समं तेन पुराणं स्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम ॥ २७ ॥ पाठे वेदसमं पुण्यं यस्य स्याज्जनमेजय ॥

कर्मा व्यासजीके चरणकमलोंपर लोट गये ॥२०॥ उन्होंने कहा--'हे भगवन् ! आपकी कृपासे ही मुझे इस कार्यमें सफलता प्राप्त हुई है। हे महामुने ! नमस्कारके अतिरिक्त मैं आपके लिये और कर ही क्या सकता हूँ ॥ २१ ॥ हे मुने ! इसी प्रकार आपको मुझपर सदा कृपाभाव बनाये रखना चाहिये।' राजाके इस कथनको सुनकर व्यासजीने आशीर्वचनोंसे उनका अभिनन्दन किया ॥ २२ ॥ साथ ही उन भगवान् बादरायणने राजासे यह मधुर वचन कहा—'हे राजन् ! तुम सब कुछ त्यागकर भगवतीके चरणकमलोंकी उपासना करो ॥ २३ ॥ सावधान होकर श्रीमद्देवीभागवतका पाठ करना तुम्हारा नित्यका नियम हो जाना चाहिये। भक्तिपूर्वक सदा अम्बायज्ञमें तत्पर रहो। इसमें तुम्हें कभी आलस्य नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥ इसके फलस्वरूप संसाररूपी बन्धनसे तुम अनायास मुक्त हो जाओगे। यद्यपि विष्णुपुराण तथा शिवपुराण आदि अन्य बहुतेरे पुराण हैं ॥ २५ ॥ किन्तु वे देवीभागवत महापुराणकी सोलहवीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कलाके भी बराबर नहीं हो सकते। क्योंकि समस्त पुराणों और वेदोंका यह समीचीन सार है ॥ २६ ॥ हे जनमेजय! जिसमें साक्षात् मूलप्रकृतिका प्रतिपादन किया गया है, उसकी समता अन्य पुराण कैसे कर सकते हैं? ॥ २७ ॥ इसका पाठ करनेसे पुरुषको वेदपाठ करनेके समान पुण्य प्राप्त होता है। अतएव श्रेष्ठ विद्वानोंको चाहिये कि वे यत्नपूर्वक इसीका पारायण करें ॥ २८ ॥ इस प्रकार महाराज जनमेजयसे कहकर मुनिवर व्यासजी चले गये। साथ ही पवित्र अन्तःकरणवाले धौम्य आदि मुनि भी यथास्थान सिधारे ॥२९ उन मुनियोंके मुखसे श्रीमद्देवीभागवत-की श्रेष्ठ प्रशंसाकी ही चर्चा होती रही। इसके बाद राजा जनमेजय मन ही मन अत्यन्त सन्तुष्ट होकर पृथ्वीका शासन करने लगे। वे निरन्तर श्रीमद्देवीभागवतको ही पढ़ते और सुनते थे ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

(फलश्रुति) सूतजी कहते हैं—हे ऋषियो! देवीके मुखकमलसे 'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्' यह जो आधा श्लोक निकला था, उसीका 'श्रीमद्भागवत' नाम पड़ा। यह पुराण

पठितव्यं प्रयत्नेन तदेव विबुधोत्तमैः ॥२८॥ इत्युक्त्वा नृपवर्यं तं जगाम मुनिराट् ततः ॥ जग्मुश्चैव यथास्थानं धौम्यादिमुनयोऽमलाः ॥ २९ ॥ देवीभागवतस्यैव प्रशंसां चक्रुरुत्तमाम् ॥ राजा शशास धरणीं ततः संतुष्टमानसः ॥ देवीभागवतं चैव पठञ्छृण्वन्निरंतरम् ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ सूत उवाच ॥ अर्धश्लोकात्मकं यत्तु देवीवक्त्राब्जनिर्गतम् ॥ श्रीमद्भागवतं नाम वेदसिद्धांतबोधकम् ॥ १ ॥ उपदिष्टं विष्णवे यद्वटपत्र-निवासिने ॥ शतकोटिप्रविस्तीर्णं तत्कृतं ब्रह्मणा पुरा ॥ २ ॥ तत्सारमेकतः कृत्वा व्यासेन शुकहेतवे ॥ अष्टादशसहस्रं तु द्वादशस्कन्धसंयुतम् ॥ ३ ॥ देवीभागवतं नाम पुराणं ग्रथितं पुरा ॥ अद्यापि देवलोके तद्बहुविस्तीर्णमस्ति हि ॥ ४ ॥ नानेन सदृशं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ पदे पदेऽ-श्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ ५ ॥ पौराणिकं पूजयित्वा वस्त्राद्याभरणादिभिः ॥ व्यासबुद्ध्या तन्मुखात्तु श्रुत्वैतत्समुपोषितः ॥ ६ ॥ लिखित्वा निजहस्तेन लेखकेनाथवा मुने ॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ॥ ७ ॥ दद्यात्पौराणिकायाथ दक्षिणां च पयस्विनीम् ॥ सालंकृतां

वेदके सिद्धान्तका बोधक है ॥१॥ वटके पत्रपर शयन करनेवाले विष्णुको देवीने इसका उपदेश दिया था। इसीको सर्वप्रथम ब्रह्माजीने सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तृतरूपसे वर्णन किया ॥२॥ तत्पश्चात् वेदव्यासजीने शुकदेवजीको पढ़ानेके लिये इसके सारभागको एकत्र करके अठारह हजार श्लोकोंमें इस पुराणकी रचना की और इसे बारह स्कन्धोंमें सजाया ॥ ३ ॥ उसी समय इसका नाम 'श्रीमद्देवीभागवत' रख दिया। यह पुराण अब भी देवलोकमें वैसे ही विस्तृतरूपसे विद्यमान है। इसके समान पवित्र, पापनाशक और पुण्यप्रद दूसरा कोई पुराण नहीं है। इसके एक-एक पदका अध्ययन करनेसे मनुष्योंको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥४॥ ॥ पुराणका प्रवचन करनेवाले विद्वान्की वस्त्र और आभरण आदिसे पूजा करनी चाहिये। नित्यप्रति व्यासबुद्धि रखकर नियमपूर्वक उनके मुखसे इस पुराणका श्रवण करे ॥६॥ हे मुने! स्वयं अपने हाथसे लिखकर या लेखक द्वारा लिखवाकर भाद्रपदकी पूर्णिमाके पुण्य अवसरपर स्वर्णमय सिंहा-सनके साथ इस पुराणको पुराणवेत्ता विद्वान्के लिये दान करे ॥७ फिर दक्षिणा देकर दूध देनेवाली, अलंकारोंसे युक्त तथा सोनेके हारसे विभूषित सवत्सा कपिला गौ व्यासको अर्पण करे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कथा समाप्त होनेपर इस पुराणमें जितने अध्याय हैं, उतने ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिए। उतनी ही सुवासिनियों, बालकों एवं कुमारियोंको भी भोजन कराये ॥ ८ ॥ ९ ॥ उन सबमें देवीकी भावना करके वस्त्र और आभरण आदिसे उनकी पूजा करे। चन्दन, माला और पुष्प आदिसे सुपूजित करके उन्हें उत्तम पायसान्न भोजन कराये ॥१०॥ इस पुराणके दानसे पृथ्वी-दानका फल प्राप्त होता है। ऐसा पुण्यात्मा पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें देवीके लोकमें चला जाता है ॥ ११ ॥ जो इस श्रेष्ठ देवीभागवतका नित्य श्रवण करता है, उसके लिये कहीं कमी कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥१२॥ इस पुराण-श्रवणके प्रभावसे अपुत्री पुत्रवान्, धनार्थी धनवान् और विद्यार्थी विद्वान् हो जाता है। जगत्‌में उसकी कीर्ति फैल जाती है ॥ १३ ॥ वन्ध्या, काकवन्ध्या अथवा मृतवन्ध्या आदि दोषोंसे युक्त स्त्री इस पुराणके श्रवणसे दोषमुक्त हो जाती है, इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥ जिसके घरमें भली-भाँति पूजित होकर यह पुराण स्थापित रहता है, उसके गृहको लक्ष्मी और सरस्वती कभी नहीं छोड़तीं ॥ १५ ॥ वेताल, डाकिनी और राक्षस आदिकी दृष्टि उस गृहपर नहीं पड़ सकती। यदि ज्वरयुक्त मनुष्यका

सवत्सां च कपिलां हेममालिनीम् ॥ ८ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणानंतेऽप्यध्यायपरिसंमितान् ॥ सुवासिनीस्तावतीश्च कुमारीर्वटुकैः सह ॥ ९ ॥ देवीबुद्ध्या पूजयेत्तान्वसनाभरणादिभिः ॥ पायसान्नवरेणापि गन्धस्रक्कुसुमादिभिः ॥१०॥ पुराणदानेनैतेन भूदानस्य फलं लभेत् ॥ इह लोके सुखी भूत्वाऽप्यंते देवीपुरं व्रजेत् ॥ ११ ॥ नित्यं यः शृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतं परम् ॥ न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि ॥ १२ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां कीर्तिमण्डितभूतलः ॥१३॥ वंध्या वा काकवंध्या व मृतवंध्या च यांगना ॥ श्रवणादस्य तद्दोषान्निवर्तेत न संशयः ॥१४॥ यद्गेहे पुस्तकं चैतत्पूजितं यदि तिष्ठति ॥ तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती ॥ १५ ॥ नेक्षंते तत्र वेतालडाकिनीराक्षसादयः ॥ ज्वरितं तु नरं स्पृष्ट्वा पठेदेतत्समाहितः ॥१६॥ मंडलान्नाशमाप्नोति ज्वरो दाहसमन्वितः ॥ शतावृत्त्याऽस्य पठनात्क्षयरोगो विनश्यति ॥१७॥ प्रतिसंध्यं पठेद्यस्तु संध्यां कृत्वा समाहितः ॥ एकैकमस्य चाध्यायं स नरो ज्ञानवान्भवेत् ॥ १८ ॥ शकुनांश्चैव वीक्षेत कार्याकार्येषु चैव हि ॥ तत्प्रकारः पुरस्तात्तु कथितोऽस्ति मया मुने ॥१९॥ नवरात्रे पठेन्नित्यं शारदीयेऽतिभक्तितः ॥ तस्यांबिका तु संतुष्टा ददातीच्छाधिकं फलम् ॥२०॥ वैष्णवैश्चैव शैवैश्च रमोमा प्रीयते सदा ॥ सौरैश्च गाणपत्यैश्च स्वेष्टशक्तेश्च तुष्टये ॥ २१ ॥ पठितव्यं प्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये ॥ वैदिकैर्निज-

स्पर्श करके सावधानीके साथ इस पुराणका पाठ किया जाय तो दाहकारक ज्वर उसके मण्डलसे भाग जाता है। इस पुराणकी सौ आवृत्ति पाठ करनेसे क्षयरोग दूर हो जाता है ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ जो मनुष्य मनको एकाग्र करके प्रत्येक संध्याके अवसरपर इस श्रीमद्देवीभागवतके एक-एक अध्यायका पाठ करता हैं, उसे ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती हैं ॥ १८ ॥ संकटके समय इससे शकुन भी देखा जा सकता है। उसकी विधि पीछे नवमस्कन्धमें बतायी जा चुकी है ॥ १९ ॥ शरद्‌ऋतुके नवरात्रमें उत्तम भक्तिपूर्वक इसका नित्य पाठ करना चाहिये। इससे भगवती जगदम्बा उसपर प्रसन्न होकर उसकी इच्छासे अधिक फल प्रदान कर देती हैं ॥२०॥ वैष्णव, शैव, सौर और गाणपत्य पुरुष अपने इष्टदेवकी शक्ति लक्ष्मी, पार्वती, छाया तथा ऋद्धि-सिद्धको सन्तुष्ट करनेके लिये इस पुराणका पाठ करें। हे मुने! वर्षमें आषाढ़, आश्विन, माघ और चैत्र—इन मासोंके शुक्लपक्षमें कुल चार नवरात्र होते हैं। वैदिक पुरुषोंको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिये कि गायत्री देवीको प्रसन्न करनेके लिए इन चारों नवरात्रोंमें नित्य इस पुराणका पाठ करें ॥२१॥२२॥ इस पुराणमें कहीं किसीका विरोध-वचन नहीं है। इसमें सब देवताओंकी
उपासनाका विषय आया है। क्योंकि भगवती जगदम्बा शक्तिरूपसे सभीके भीतर विराजमान रहतीं हैं ॥ २३ ॥ उस देवीमयी शक्तिको संतुष्ट करनेके लिए द्विजको इसका पारायण करना
चाहिये। स्त्री और शूद्रको स्वयं न पढ़कर ब्राह्मणके मुखसे नित्य इसका श्रवण करना चाहिये, यही इसकी मर्यादा है। मैं तुम्हें वस्तुतः सार बात बतला रहा हूँ ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे
द्विजवरो! यह श्रीमद्देवीभागवतनामक महापुराण परम पवित्र एवं वेदोंका सारभाग है। इसको पढ़ने तथा सुननेवाले पुरुष वेदपाठके समान फलके भागी होते हैं, यह निश्चित है ॥ २६ ॥
'जो भगवती सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हैं, वे ही गायत्रीके नामसे विख्यात हैं। उन 'ह्रीं'मयी जगदम्बाको मैं प्रणाम करता हूँ। वे हमारी बुद्धिको सत्प्रेरणा प्रदान करनेकी कृपा करें' ॥२७॥
नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले तपोधन मुनियोंने पुराणवेत्ता परम श्रेष्ठ सूतजीका यह कथन सुनकर बड़े समारोहके साथ उनका सम्मान किया ॥ २८ ॥ इससे सबका हृदय प्रसन्नतासे

गायत्रीप्रीतये नित्यशो मुने ॥२२॥ पठितव्यं प्रयत्नेन विरोधो नात्र कस्यचित् ॥ उपासना तु सर्वेषां शक्तियुक्ताऽस्ति सर्वदा ॥२३॥ तच्छक्तेरेव
तोषार्थं पठितव्यं सदा द्विजैः ॥ स्त्रीशूद्रो न पठेदेतत्कदापि च विमोहितः ॥२४॥ शृणुयाद्द्विजवक्त्रात्तु नित्यमेवेति च स्थितिः ॥ किं पुनर्बहुनोक्तेन
सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥२५॥ वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तमाः ॥ वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि ॥२६॥ सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रति-
पादिताम् ॥ नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२७॥ इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषीयास्तपोधनाः ॥ पूजयामासुरत्युच्चैः सूतं पौराणिको-
त्तमम् ॥२८॥ प्रसन्नहृदयाः सर्वे देवीपादांबुजार्चकाः ॥ निर्वृतिं परमां प्राप्ताः पुराणस्य प्रभावतः ॥२९॥ नमश्चक्रुः पुनः सूतं क्षमाप्य च मुहुर्मुहुः ॥ संसार-
वारिधेस्तात प्लवोऽस्माकं त्वमेव हि ॥ ३० ॥ इति स मुनिवराणामग्रतः श्रावयित्वा सकलनिगमगुह्यं दौर्गमेतत्पुराणम् ॥ नतमथ मुनिसंघं वर्धयित्वा-
शिषाऽम्बाचरणकमलभृङ्गो निर्जगामाथ सूतः ॥३१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

खिल उठा। भगवती जगदम्बाके चरणकमलोंकी उपासना करके इस पुराणके प्रभावसे उनकी सारी लौकिक आकांक्षाएँ शान्त हो गयीं ॥२९॥ मुनियोंको कथा सुनानेके लिए सूतजीने जो
परिश्रम किया था, उसे क्षमा करनेके लिये उन्होंने बार-बार उनसे प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'हे तात! इस संसाररूपी समुद्रको पार करानेमें हमारे लिए आप ही नौका हुए हैं' ॥३०॥
यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सम्पूर्ण वेदोंका गुह्य विषय है। इसके प्रत्येक पदमें माँ दुर्गाकी व्याख्या की हुई है। महाभाग सूतजीने प्रमुख मुनियोंको इसका श्रवण कराया था। उस समय
मुनियोंका समाज हाथ जोड़कर सूतजीके सामने उपस्थित था। मुनियोंने आशीर्वचनों द्वारा उनके अभ्युदयकी कामना की। इसके बाद भगवती जगदम्बाके चरणकमलोंमें भृङ्गकी भाँति
सदा निवास करनेवाले सूतजी वहाँसे चले गये ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥ ॥ श्रीजगदम्बाऽर्पणमस्तु ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रमोद कुमार दीक्षित

राजगुरु मठ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2
RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon